Visit **Dwarkadheeshvastu.com** For

FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

****

All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name

****

We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK.**

Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

RIGVED KA SUBODH BHASHYA

PART-1

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

भूमिका

ऋग्वेद संसारमें सबसे प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है। इसमें आर्योंकी उच्चतम संस्कृतिका पुरातनतम विवरण है। इसकी प्राचीनताके बारेमें अनेक मत हैं। मैक्समूलरके अनुसार ऋग्वेदका काल १२०० ईसा पूर्व, हॉगके अनुसार २४०० ई. पू. और तिलकके अनुसार ४००० ईसा पूर्व है। ऋग्वेदके कालके बारेमें मतभेद भले ही हों, पर इसमें प्रतिपादित ज्ञानकी अद्वितीयताके विषयमें सभी सहमत हैं।

वेदोंकी महत्ता

प्राचीन भारतीय परम्पराके अनुसार ये वेद सर्वप्रथम ऋषियोंके हृदयमें उतरे थे। लोकके हितके लिए परमात्माने इन वेदोंका प्रकाश किया था। स्वयं वेद इस बातके साक्षी हैं कि वेद उसी परमात्माकी वाणी हैं।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥
(यजु. ३१।७)

" उसी सबके द्वारा बुलाये जानेवाले यजनीय परमात्मासे ऋचायें, साम उत्पन्न हुए, उसीसे छन्द प्रकट हुए और उसीसे यजु प्रकट हुए।" इस मंत्रमें ऋचायें ऋग्वेदके, साम सामवेदके, छन्द अथर्ववेदके और यजु यजुर्वेदके परिचायक हैं। अथर्ववेदमें भी एक मंत्र है, जिसमें सामको परमात्माके लोम और अथर्वको मुख बताया गया है—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्॥
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः। (अथर्व० १०।७।२०)

" जिस स्कंभ अर्थात् सर्वाधार परमात्मासे ऋचायें या ऋग्वेद प्रकट हुआ, जिससे यजुर्वेद प्रकट हुआ, साम जिसके लोमके समान हैं और अंगिरसका अथर्ववेद जिसके मुखके समान है, वही सर्वाधार परमेश्वर है।"

उपनिषद्में वेदोंको परमात्माके निःश्वास बताये गए हैं। जिस प्रकार मनुष्यके निःश्वास अनायास आते जाते रहते हैं, उसीप्रकार ये वेद भी परमात्मासे निकलते रहते हैं और उसीमें विलीन भी होते रहते हैं। सायण भी इस मतका अपने "ऋग्भाष्य" में प्रतिपादन करते हुए लिखते हैं

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

" जिस परमात्माके वेद निःश्वासके समान हैं और जिसने

वेदोंसे सारे संसारका निर्माण किया, उस विद्याके सागर परमात्माको प्रणाम है। "

इसप्रकार वेदोंकी प्राचीनता शास्त्रोंमें सिद्ध की है।

वेदोंके अन्दर प्राचीन ऋषियोंके ज्ञानका अगाध भण्डार भरा पड़ा है। न वेदोंके द्वारा ऋषियोंने संसारके सभी ज्ञानका प्रकाश किया है। संसारमें कोई ज्ञान ऐसा नहीं है, जो वेदोंमें न हो। इस प्रकार सारे ज्ञानका आदिस्रोत परमेश्वर ही है। महर्षि दयानन्दने लिखा है कि— " सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। " जिसप्रकार भगवान् व्यासने अपने महाकाव्य महाभारतके बारेमें कहा था कि " यदिहाऽस्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् " " जो इसमें है, वही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है, वह दूसरी जगह भी नहीं है। " यही वेदोंके बारेमें भी कहा जा सकता है।

वेदोंके बारेमें वैदिक परम्परामें बड़ा महत्त्व है। सबका आधार वेद माना गया है, मनु कहते हैं —

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। (मनुस्मृति)

" सम्पूर्ण वेद धर्मके मूल है। " अर्थात् सभी धर्म इसी वेदके आधार पर स्थित हैं। अब प्रश्न उठता है कि धर्म क्या है ? इसका उत्तर भी मनुस्मृति ही देती है।

धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

" धारण करनेके कारण धर्म कहा जाता है, और यही धर्म प्रजाओंका धारण करता है। " जो ज्ञान प्रजाओंको धारण करता है, प्रजाओंकी हरतरहकी उन्नति करता है, उनका आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थात् हरतरहका अभ्युदय करता है, वही धर्म है। यह धर्म वेदोंका विषय है। आज भी भारतमें कोई भी धार्मिक विधि बिना वेदपाठके प्रारंभ नहीं होती। इतना महत्त्व आज भी वेदोंका है।

वेदोंका स्वरूप

भारतीय परम्पराके अनुसार कुछ ऐसी प्राचीन मान्यता है कि प्रथम एक ही वेद था, पर बादमें जाकर लोगोंके पठनकी सुविधाकी दृष्टिसे एकको चार भागोंमें बांट दिया गया। भागवतमें कहा है।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।
वेदो नारायणो नान्यः एकोऽग्निर्वर्ण एव च।
(भागवत० ९।१४।४८)

प्रथम एक ही वेद था। पर आगे चलकर उसके ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके रूपमें चार ग्रंथ हो गए। यहां यह शंका हो सकती है कि एक वेद और चार वेद ये दोनों विरोधी बातें क्यों हैं ? अथवा एक ही वेदका अध्ययन श्रेयस्कर है या चारोंहीका मिलकर अध्ययन करना ही श्रेयस्कर है ? इस प्रश्न पर विचार करनेसे पूर्व हमें वेदोंके उद्देश्यके विषय पर विचार करना पड़ेगा तभी उपर्युक्त शंकाका निराकरण हो सकेगा। वेदोंके विषयमें और उनके ध्येयके बारेमें विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि वेद यद्यपि स्थूल रूपसे भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं, पर उनका अन्तिम उद्देश्य एक ही है। यजुर्वेदका विषय " कर्म " है। यजुर्वेदको कर्मवेद कहते हैं। इसप्रकार कर्म, सत्कर्म अथवा प्रशस्ततम कर्म यजुर्वेदका विषय है। " उपासना " सामवेदका विषय है। " या: ऋक् तत् साम " के अनुसार ताल और स्वरके अनुसार बैठाये गए ऋग्वेदके मंत्र ही साम हैं, उनका उपयोग देवताओंकी उपासना करनेके काममें किया जाता है। सामवेदके १८७५ मंत्रोंमें केवल ७५ मंत्र ऋग्वेदमें नहीं मिलते, बाकी १८०० मंत्र ऋग्वेदमें यत्रतत्र मिलते हैं। ×ये सभी मंत्र उपासना परक हैं। सामके मंत्रोंसे सब देवताओंमें व्यापक आत्माकी उपासना करके शान्ति प्राप्त की जा सकती है। इसलिए इन मंत्रोंको " सामन् " कहते हैं, " साम " का अर्थ है आत्मिक शान्ति देनेवाले मंत्र। इसप्रकार यजुर्वेदका उद्देश्य मनुष्यको उत्तम कर्मोंकी शिक्षा देना है और सामवेदका उद्देश्य भगवदुपासना द्वारा मनुष्योंको आत्मिक शांति प्रदान करना है।

ऋग्वेद " सूक्तवेद " है। " सूक्त " का अर्थ " सु+उक्त " अर्थात् " सुभाषित " या " उत्तम वचन " है। उत्तम वचन जिन मंत्रोंमें होते हैं उन मंत्रोंके समूहको सूक्त कहा जाता है। उन्हींको " ऋक् " या " ऋचा " भी कहते हैं। इसप्रकार ऋग्वेदमें " उत्तम विचारोंको प्रेरित करनेवाले " मंत्र हैं, यजुर्वेदमें मनुष्यको " प्रशस्ततम कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले " मंत्र हैं और सामवेदमें " उपासना द्वारा आत्मिक शान्ति देनेवाले " मंत्र हैं। इनकी तालिका इसप्रकार बनाई जा सकती है।

१ ऋग्वेद– उत्तम विचारोंका संग्रह – सुविचार वेद।
२ यजुर्वेद– उत्तम कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला संग्रह – सत्कर्म वेद।
३ सामवेद– सदुपासनाका संग्रह– उपासना वेद।

× सामवेदके कौन कौनसे मंत्र ऋग्वेदमें कहां कहां पर मिलते हैं, यह जाननेके लिए देखिये, हमारे द्वारा प्रकाशित " सामवेदका सुबोध अनुवाद " मू० (॥)

साधारणतया (१) सद्विचार, (२) सत्कर्म और (३) सदुपासना इन तीनोंको यदि वेदत्रयी कहा जाए तो तत्त्वदृष्ट्या दोषपूर्ण नहीं होगा।

"अ-थर्व" का अर्थ है "गति-रहित"। "थर्वति गतिकर्मा न थर्व इति अथर्वः" इसप्रकार इस शब्दकी व्युत्पत्ति है। इसप्रकार "थर्व" शब्द चंचलताका वाचक होनेके कारण "अथर्व" का अर्थ है– निश्चलता, समता, समत्व। गीतामें जिस भावको "स्थितप्रज्ञ" शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है, वही "अथर्ववेद" में "अ-थर्व" शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है। इसप्रकार योगसाधनके द्वारा प्राप्त होनेवाला चित्तवृत्तिका निरोध ही "अथर्व" है। इसप्रकार पूर्वोक्त त्रयीविद्याकी समाप्ति इस चौथी स्थितिमें आकर होती है—

ऋग्वेद
(विचारोंकी पवित्रता)
|
यजुर्वेद
(कर्मोंकी पवित्रता)
|
सामवेद
(उपासनासे शुद्धता)
|
अथर्ववेद
(समता या स्थित प्रज्ञत्व)

मनुष्यकी उन्नतिके लिए ये उत्तरोत्तर सीढियां हैं। प्रथम मनुष्य विचार करता है, तत्पश्चात् उन विचारोंको कार्यमें परिणित करता है, तब वह अपने कर्मोंका फल पाता है; उपनिषद्में कहा है—

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति,
यत्कर्मणा करोति, तदभि संपद्यते।

मनुष्य जिसका मनमें ध्यान करता है, उसीको वाणीसे बोलता है, जो कुछ वाणीसे बोलता है, उसीको कर्ममें लाता है और जो कुछ कर्म करता है, उसका फल वह पाता है।

इन चारों वेदोंके विषय परस्पर अत्यन्त निगडित हैं। सद्विचार और सत्कर्ममें किसी प्रकारका फरक नहीं हो सकता
उसीप्रकार ऋग्वेद और यजुर्वेदमें भी किसी प्रकार
मानना भूल है।

विचार, क्रिया, भक्ति और एकाग्रतामें जो
सम्बन्ध है, वही सम्बन्ध चार वेदोंमें भी है। इस
चार वेद परस्पर भिन्न न होकर "एक ही वेद"

अथर्ववेदका विषय "योग" है, सर्वसाधारण
बात नहीं है। इसलिए अथर्ववेद कुछ विशेष
लोगोंके लिए ही है। बाकीके तीन विषयों या वे
साधारणके सामने प्रस्तुत किया गया; इसीलिए
विषयोंका नाम "त्रयी विद्या" पड गया।
"त्रयी विद्या" के आधार पर जो यह सिद्ध क
हैं, कि पहले तीन ही वेद थे, अथर्ववेद तो पीछे
श्रेणीमें खडा कर दिया गया, यह उनके विचा
गलत है।

इसीप्रकार कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है वि
केवल भौतिक ज्ञान है, आध्यात्मज्ञान नहीं है, अत
प्रतिक्रिया स्वरूप अध्यात्मज्ञान देनेवाली उपनिषदों
हुई। पर यह उनका कथन उनकी वेदविषयक अज्ञा
द्योतक है, ऋग्वेदका अस्यवामीय सूक्त (१।१६४) ;
सूक्त (१०।६४); हिरण्यगर्भ सूक्त, विष्णुसू
सभी सूक्त अध्यात्मविद्याके स्रोत हैं। आज जो
विद्वान् अनेकतामें एकता (Unity in Divers
सिद्धान्तका प्रचार करते हैं, उसको ऋग्वेदिक
"एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" कहकर ब
कह दिया था। इसप्रकार ऋग्वेदमें अनेक दार्शनि
दर्शन होते हैं।

उस अखण्ड ज्ञानके भण्डार "ऋग्वेदका सुबोध
पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। ध्यानपूर्वक देखनेके
इस ग्रंथमें संभवतः कुछ प्रूफसम्बन्धी तथा अन्य भी
गई हों, उन्हें हम अगले संस्करणमें सुधारनेका प्रय

हम इस ग्रंथके लिए धर्मप्राण दानी स्वर्गी
जुगलकिशोरजी बिरला के अत्यन्त कृतज्ञ हैं,
धन देकर हमें इस ग्रंथके प्रकाशनके कार्यमें पूरी सह

उनके अतिरिक्त श्री सेठ गंगाप्रसादजी
भी हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस ग्रंथके प्रकाशनके लि
देकर सहायता दी।

स्वाध्याय मण्डल, पारडी (जि. बलसाड)
आश्विन शुक्ल प्रतिपदा, संवत् २०२४

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

(१)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छंदः-गायत्री ।)

१ अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् । होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥

२ अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त । स दे॒वाँ एह व॑क्षति ॥ २ ॥

---

(१)

अर्थ— [१] (पुरोहितं, यज्ञस्य देवं, ऋत्विजं) स्वयं आगे बढकर लोगोंका हित करनेवाले, यज्ञके प्रकाशक, ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले, (होतारं, रत्नधातमं) देवोंको बुलानेवाले और रत्नोंको धारण करनेवाले (अग्निं ईळे) अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ पुरोहितं होतारं अग्निं ईळे— पुर अर्थात् नगरका हित करनेवाले, अग्र स्थानमें रहनेवाले, पीछे न रहनेवाले, विद्वानोंको बुलानेवाले अग्रणी नेताकी मैं प्रशंसा करता हूँ । ऐसा नेता सर्वत्र प्रशंसित होता है ।

२ यज्ञस्य देवः— समाजके संगठनका संचालक, शुभ कर्म करनेवाला ।

३ अग्निः— अग्रणी, नेता अग्निके समान तेजस्वी ।

[२] (अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः ईड्यः) यह अग्रणी पहलेके ऋषियोंसे प्रशंसित किया गया था, (नूतनैः उत) नयोंसे भी यह प्रशंसित हुआ है (सः) वह अग्नि (इह देवान् आवक्षति) इस यज्ञमें देवोंको ले आवे ॥ २ ॥

१ इह देवान् आ वक्षति । (सः) अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः— इस संगतिकरणके कार्यमें विद्वानोंको बुलाकर लानेवाला नेता अग्रणी प्राचीन और नवीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होता रहा है।

भावार्थ— सबका हित करनेवाले, यज्ञके प्रकाशक, सदा अनुकूल यज्ञ कर्म करनेवाले, विद्वानोंके सहायक, बलवान् [अग्नि] अग्रणीकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ १ ॥

यह अग्नि प्राचीन कालसे लेकर आजतक उसी प्रकार प्रशंसित होता चला आ रहा है। वही सब देवोंको बुलाता है। शरीरके प्रत्येक इंद्रियमें एक एक देव है, ऐसे ३३ देव इस शरीरमें हैं। वे देव शरीरमें तबतक रहते हैं कि जबतक शरीरमें अग्नि (उष्णताके रूपसे) रहती है। इस अग्नि या गर्मीके इस शरीरमेंसे निकल जानेपर इंद्रिय स्थानीय देव भी निकल जाते हैं। यह मृत्युकी ही अवस्था है ॥ २ ॥

३ अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥
४ अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद् देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥
५ अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५ ॥
६ यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥
७ उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

अर्थ— [३] मनुष्य (अग्निना दिवेदिवे) अग्निसे प्रतिदिन (पोषं) पोषण (यशसं वीरवत्तमं रयिं एव अश्नुते) यश देनेवाले और अत्यन्त श्रेष्ठ वीरताको देनेवाले धनको अवश्य प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

१ अग्निना पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिं अश्नुते— ऐसे नेताके कारण समाज पोषणकारक यश और वीरतासे युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करता है ।

[४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (यं अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि) जिस हिंसारहित यज्ञको सब ओरसे सफल बनाता है, (सः इत् देवेषु गच्छति) वह ही देवोंके समीप जाता है ॥ ४ ॥

१ परि-भूः— शत्रुका पराभव करना, विजय प्राप्त करना, शत्रुको चारों ओरसे घेरना ।

२ अग्निः अ-ध्वरं यज्ञं परि-भूः असि- (अस्ति)— अग्रणी शत्रुका पराभव करके अहिंसामय शुभ कर्मको सफल बनाता है ।

३ अ-ध्वरः— अहिंसा ' ध्वर इति हिंसायां, तत्प्रतिषेधो अध्वरः-यज्ञ इत्यर्थः ' ' यज्ञ ' का नाम ' अ-ध्वर ' है । ' अ-हिंसामय ' यह उस अध्वरका अर्थ है ।

[५] (होता) देवोंको बुलानेवाला यज्ञ निष्पादक (कविक्रतुः) ज्ञानियोंकी कर्मशक्तिका प्रेरक (सत्यः चित्रः श्रवस्तमः) सत्य परायण विविध रूपोंवाला और अतिशय कीर्ति युक्त यह तेजस्वी अग्नि (देवेभिः आगमत्) देवोंके साथ इस यज्ञमें आया है ॥ ५ ॥

१ कविक्रतुः— (कवि) ज्ञानी (क्रतुः) कर्म अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला ।

[६] हे (अङ्ग अग्ने) प्रिय अग्ने ! (यत् त्वं दाशुषे भद्रं करिष्यसि) जो तू दानशीलका कल्याण करता है । (अङ्गिरः) अंगोंमें रमनेवाले अग्ने ! (तव तत् सत्यं इत्) वह तेरा कर्म निस्सन्देह एक सत्य कर्म है ॥ ६ ॥

१ अग्निः दाशुषे भद्रं करिष्यति— यह अग्नि दाताका कल्याण करता है ।

२ अङ्गिरः— अंगों या अवयवोंमें रममाण होनेवाला, रहनेवाला । शरीरके प्रत्येक अंगमें अग्नि रहता है, इसलिये शरीरमें गर्मी रहती है ।

[७] हे (अग्नि) अग्ने ! (वयं दिवे दिवे दोषावस्तः) हम प्रतिदिन दिन और रात (धिया नमः भरन्तः) बुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हुये (त्वा उप एमसि) तेरे समीप आते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— अग्नि ही पुष्टिकारक बलयुक्त और यशस्वी अन्न प्रदान करता है । अग्निसे पोषण होता है, यश बढता है और वीरतासे धन प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

जिस अहिंसक यज्ञमें इस अग्निकी पूजा होती है, वही देवोंके अनुकूल यज्ञ होता है ॥ ४ ॥

विद्वान् यज्ञशील सत्यस्वरूप तथा अन्नादिसे युक्त अग्नि देवोंके साथ यज्ञमें आता है ॥ ५ ॥

यह अग्नि हमेशा दान देनेवालेका ही कल्याण करता है, कंजूसका नहीं । यह उसका एक अटल नियम है ॥ ६ ॥

अपनी बुद्धियों व स्तुतियोंसे हमेशा उस प्रकाशक एवं तेजस्वी प्रभुके गुण गाने चाहिए । दिनके तथा रात्रीके समय अर्थात् सदा उसको प्रणाम करना चाहिये, उसका आदर करना चाहिये उसका महत्त्व जानना चाहिये और अपने ऊपर उसका अधिकार समझना चाहिये ॥ ७ ॥

८ राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥
९ स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

(२)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवताः- १-३ वायुः ४-६ इन्द्र-वायू; ७-९ मित्रा-वरुणौ । छन्दः- गायत्री ।)

१० वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
११ वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥
१२ वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

अर्थ— [८] (राजन्तं, अध्वराणां गोपां) दीप्यमान, हिंसारहित यज्ञोंके रक्षक (ऋतस्य दीदिविं) अटल सत्यके प्रकाशक और (स्वे दमे वर्धमानं) अपने घरमें बढनेवाले अग्निके पास हम नमस्कार करते हुये आते हैं ॥ ८ ॥

१ अध्वराणां राजा— हिंसा रहित, कुटिलता रहित शुभ कर्मोंका स्वामी ।

[९] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः त्वं नः सूनवे पिता इव सु उप अयनः भव) वह प्रसिद्ध तू हमारे लिये, पुत्रके लिये पिताके समान सुखसे प्राप्त होने योग्य हो, (नः स्वस्तये आ सचस्व) हमारे कल्याणके लिये तू हमारा सहायक हो ॥ ९ ॥

१ सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व— हे अग्ने ! जिस प्रकार पिता पुत्रके कल्याणकारी काममें सहायक होता है, उसी प्रकार तू हमारे कल्याणमें सहायक हो ।

(२)

[१०] हे (दर्शत वायो) दर्शनीय वायो ! (आ याहि) आ । (इमे सोमाः अरं-कृताः) ये सोमरस तुम्हारे लिये तैय्यार करके रखे हुए हैं । (तेषां पाहि) उनका पान कर और (हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थना श्रवण कर ॥ १ ॥

वायु सोमका रक्षक है, क्योंकि वह सोमके साथ रहता है, अथवा सोमरसका हरण करता है । (निरु. १।५)

[११] हे (वायो) वायो ! (सुत-सोमः) सोमरस तैयार करके रखनेवाले (अहः-विदः) दिनका उत्तम ज्ञान रखनेवाले (जरितारः) स्तोत्रपाठक (उक्थेभिः) स्तोत्रोंसे (त्वां अच्छा जरन्ते) तेरी उत्तम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ अहः-विदः— दिनका महत्व जाननेवाले । समयका ज्ञान रखनेवाले । समयका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

[१२] हे (वायो) वायो ! (तव) तेरी (प्रपृञ्चती) संगठन करनेवाली और (उरूची) विशाल (धेना) वाणी (दाशुषे) दाताके पास (सोमपीतये जिगाति) सोमरसपानकी इच्छासे जाती है । [सोमरस निकालनेवालेके अनुकूल बोलती है] ॥ ३ ॥

भावार्थ— यज्ञोंकी रक्षा करनेवाले, तेजस्वी तथा अपनी स्वयंकी शक्तिसे बढनेवाले अग्निका गुणगान करना चाहिए ॥८॥

जिस प्रकार पिता पुत्रका सहायक होता है, उसी प्रकार यह अग्नि विद्वानोंका हर काममें सहायक होता है ॥ ९ ॥

हे दर्शनीय वायु ! ये सोमरस तेरे लिए तैयार करके रखे हुए हैं अतः उनका पान कर और हमारी प्रार्थना सुन ॥ १ ॥

उत्तम दिनोंका ज्ञान रखनेवाले स्तोता सोम तैयार करके तेरी स्तुति करते हैं अतः तू आ और इनको पी ॥ २ ॥

संगठन करनेवाली उदार वाणी दाताका वर्णन करती है । दाताके दातृत्वभावसे ही संगठन होता है और संकुचित भाव दूर होकर विशालतासे युक्त उदारताका भाव आता है ।

१३ इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥
१४ वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥
१५ वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥
१६ मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥
१७ ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥
१८ कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [१३] (इन्द्रवायू) हे इन्द्र और वायु ! (इमे सुताः) ये सोमके रस यहां तैयार करके रखे हुए हैं, (प्रयोभिः आ गतम्) प्रयत्नके साथ यहां आओ. (हि इन्दवः वां उशन्ति) क्योंकि ये सोमरस तुम्हें चाहते हैं ॥४॥

[१४] हे (वायो) वायु ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र दोनों (वाजिनीवसू) अन्न और धनसे समृद्ध हो और (सुतानां चेतथः) सोमरसकी विशेषताओंको जानते हो, (तौ द्रवत् उप आ यातं) वे तुम दोनों शीघ्र यहां आओ ॥५॥

[१५] (वायो) हे वायु ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र (नरा) आगे ले जानेवाले नेता हो, तुम दोनों (इत्था धिया) इस प्रकार बुद्धिपूर्वक (मक्षु सुन्वतः निष्कृतं) शीघ्र रस निकालनेवालेके द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसके (उप आ यातम्) पास आओ ॥ ६ ॥

[१६] (पूतदक्षं मित्रं) पवित्र बलसे युक्त मित्रको, (रिशादसं वरुणं च हुवे) और शत्रुका नाश करनेवाले वरुणको मैं बुलाता हूँ (घृताचीं धियं साधन्ता) ये स्नेहमयी बुद्धि तथा कर्मको सम्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥

[१७] (मित्रावरुणौ ऋतावृधौ) ये मित्र और वरुण सत्यसे बढनेवाले (ऋतस्पृशा) सत्यसे सदा युक्त हैं। (ऋतेन बृहन्तं क्रतुं आशाथे) वे सत्यसे ही बडे यज्ञको सम्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

[१८] (कवी, तुविजाता, उरुक्षया) ज्ञानी, बलशाली और सर्वत्र उपस्थित रहनेवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण (अपसं दक्षं नः दधाते) कर्म करनेका उत्साह देनेवाला बल हमें देते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनोंके लिए ये सोमरस तैयार किए गए हैं और ये तुम्हारी कामना भी करते हैं, अतः तुम यहां आओ ॥ ४ ॥

हे इन्द्र वायु ! तुम दोनों बल और धनसे समृद्ध हो और सोमरसकी विशेषताओंको जानते हो, अतः तुम शीघ्र यहां आओ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों लोगोंको उत्तम मार्ग पर ले जाते हो । अतः श्रद्धासे तैय्यार किए गए इस आनन्ददायक रसके पास आओ ॥ ६ ॥

मित्रवत् सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाले पवित्र कार्यमें अपनी शक्ति लगानेवाले मित्र और शत्रुको पूर्णरूपसे नष्ट करनेवाले वरुण दोनों स्नेहसे परिपूर्ण कर्म करते हैं ॥ ७ ॥

ये मित्र और वरुण सदा सत्यको ही स्पर्श करनेवाले और सत्यपालक हैं। सत्य व्यवहारसे ही सदा वृद्धिको प्राप्त करनेवाले हैं, कभी असत्यकी ओर नहीं जाते इसलिये बडे बडे कार्योंको सत्यसे ही परिपूर्ण करते हैं ॥ ८ ॥

ये दोनों मित्रावरुण बुद्धिमान् और दूरदर्शी हैं, सामर्थ्यवान् हैं, विस्तृत घरमें रहते हैं, कर्म करनेकी शक्ति धारण करते हैं ॥ ९ ॥

(३)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवताः- १-३ अश्विनौ; ४-६ इन्द्रः । ७-९ विश्वे देवाः, १०-१२ सरस्वती । छन्दः- गायत्री ।)

१९ अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥

२० अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥

२१ दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

२२ इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥

२३ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

(३)

अर्थ— [१९] हे (पुरु-भुज) विशाल बाहुवाले ! हे (शुभस्पती) शुभ कार्योंके पालनकर्ता ! और हे (द्रवत् पाणी) अपने हाथोंसे अतिशीघ्र कार्य करनेवाले या कार्यमें शीघ्र जुटजानेवाले (अश्विनौ) अश्विदेवो ! इन हमारे लिये (यज्वरीः इषः) यज्ञके योग्य अर्थात् पवित्र अन्नोंसे (चनस्यतं) सन्तुष्ट हो जाओ। इस अन्नका सेवन करके आनन्दित हो जाओ ॥ १ ॥

[२०] हे (पुरुदंससा) बहुत कार्य करनेवाले। (धिष्ण्या) धैर्ययुक्त बुद्धिमान् तथा (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (शवीरया धिया) बहुत तेज बुद्धिसे अर्थात् ध्यानपूर्वक (गिरः वनतं) हमारे भाषणोंको स्वीकार करो अर्थात् हमारा भाषण प्रेमसे सुनो ॥ २ ॥

[२१] हे (दस्रा) शत्रुके विनाशकर्ता और (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले (रुद्र-वर्तनी !) हे शत्रुओंको रुलानेवाले वीरोंके मार्गसे जानेवाले तुम दोनों अश्विदेवो ! (युवाकवः वृक्त-बर्हिषः) ये मिश्रित किये हुए और जिनसे तिनके निकाल लिये गए हैं ऐसे (सुताः) अभी निचोडे हुए सोमरसको पीनेके लिये (आयातं) इधर पधारो ॥ ३ ॥

[२२] हे (चित्रभानो इन्द्र) हे विशेष तेजस्वी इन्द्र ! (आ याहि) यहां आ। (इमे सुताः त्वायवः) ये रस तेरे लिये हैं, ये रस (अण्वीभिः तना: पूतासः) अंगुलियोंसे निचोडे गए हैं और छानकर पवित्र किये गए हैं ॥ ४ ॥

[२३] हे इन्द्र ! (धिया इषितः) बुद्धिसे प्रेरित तथा (विप्रजूतः) विप्रोंके लिए प्रिय (सुतावतः वाघतः ब्रह्माणि) सोमरस निकालनेवाले स्तोताओंके स्तोत्रोंके गानके पास (आ याहि) आ ॥ ५ ॥

१ धिया इषितः— बुद्धिसे प्राप्त करनेकी इच्छा जिसके विषयमें की जाती है। जिसको प्राप्त करनेकी इच्छा की जाती है। सज्जन जिसको प्राप्त करना चाहते हैं।

२ विप्र-जूतः— ज्ञानी जिसकी प्राप्तिकी इच्छा करते हैं।

भावार्थ— अश्विदेव विशाल भुजावाले, केवल शुभ कार्य ही करनेवाले और आरंभित कार्य अतिशीघ्र समाप्त करनेवाले हैं। वे हमारे यज्ञमें आकर हमारा दिया पवित्र अन्न सेवन करें और हर्षित प्रसन्न हो जायें ॥ १ ॥

अश्विदेव बहुत कार्य करते हैं, बडे बुद्धिमान् हैं, नेता हैं, वे अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे हमारे कथनको सुनें ॥ २ ॥

अश्विदेव शत्रुओंका वध करनेमें प्रवीण, वीरभद्रके मार्गसे जानेवाले और कभी असत्यका आश्रय लेनेवाले नहीं हैं। उन्हें अपने पास बुलाना और निचोडा सोमरस दूध, जल आदिके साथ मिश्रित करके उनको पीनेके लिये देना चाहिये ॥ ३ ॥

हे तेजस्वी इन्द्र ! तेरे लिए ये रस अंगुलियोंसे निचोड कर और छान कर पवित्र किए गए हैं, उनका आनन्द ले ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! स्वयं अपनी श्रद्धासे प्रेरित होकर ज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा उत्साहित होकर सोमरस निकालनेवाले स्तोतागण तेरी स्तुति कर रहे हैं, तू उनके पास आ ॥ ५ ॥

२४ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥
२५ ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत । दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥
२६ विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः । उस्रा इव स्वसराणि ॥ ८ ॥
२७ विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः । मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥
२८ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
२९ चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

अर्थ— [२४] हे (हरिवः इन्द्रः) घोडोंको पास रखनेवाले इन्द्र ! (तूतुजानः) त्वरा करता हुआ तू (ब्रह्माणि उप आ याहि) हमारे स्तोत्रोंके पास आ । (नः सुते चनः दधिष्व) हमारे दिये सोमरसमें आनन्द मना ॥ ६ ॥

[२५] हे (विश्वे देवासः) सब देवो ! तुम (ओमासः चर्षणीधृतः) सबके रक्षक और सब मनुष्यों धारण करनेवाले तथा (दाश्वांसः) सबको धनादि देनेवाला हो, अतः तुम (दाशुषः सुतं आ गत) दान करनेवाले इस यजमानके सोमयज्ञकी तरफ आओ ॥ ७ ॥

[२६] हे (विश्वे देवासः) विश्वे देवो ! तुम (अप्-तुरः) कर्म करनेमें कुशल (तूर्णयः) तथा शीघ्रतासे कर्म करनेवाले हो, (उस्रा स्वसराणि इव आ गन्त) अतः जिस प्रकार गायें गौशालामें आती हैं, उसी प्रकार तुम यहां आओ ॥ ८ ॥

[२७] हे (विश्वे देवासः) विश्वे देवो ! (अस्रिधः) तुम अहिंसनीय हो, तुम्हारा वध कोई नहीं कर सकता, (एहिमायासः) अनुपम कुशलतासे युक्त हो, (अ-द्रुहः) किसीसे द्रोह नहीं करते (वह्नयः) तुम सबके लिए सुखके साधन ढोकर लाते हो, ऐसे (मेधं जुषन्त) तुम हमारे द्वारा दिए गए अन्नका सेवन करो ॥ ९ ॥

[२८] (सरस्वती नः पावका) सरस्वती हमें पवित्र करनेवाली है (वाजेभिः वाजिनीवती) अन्नोंको देनेके कारण वह अन्नवाली भी है । (धियावसुः यज्ञं वष्टु) बुद्धिसे होनेवाले अनेक कर्मोंसे नाना प्रकारका धन देनेवाली यह विद्या हमारे यज्ञको सफल करे ॥ १० ॥

[२९] (सूनृतानां चोदयित्री) सत्य कर्मोंको प्रेरणा देनेवाली (सुमतीनां चेतन्ती) उत्तम बुद्धियोंको बढाने-वाली (सरस्वती) विद्याकी देवी (यज्ञं दधे) यज्ञको पूर्णरूपसे धारण करती है ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू शीघ्रतासे हमारी स्तुतियोंको सुन और हमारे द्वारा दिए सोमरसका आनन्द उठा ॥ ६ ॥

ये विश्वे देव सबका रक्षण करनेवाले, मानव संघोंका धारण पोषण करनेवाले तथा दान देनेवाले हैं । ये देव यज्ञकर्ताके सोमयागके पास आते हैं ॥ ७ ॥

विश्वे देवो ! तुम सब कार्यमें कुशल हो, इसलिए सब कार्य शीघ्रतापूर्वक उत्तम रीतिसे करते हो ! अतः तुम इस स्तोताके घर आओ ॥ ८ ॥

हे विश्वे देवो ! तुम अहिंसनीय, अनुपम कुशलतासे युक्त, किसीसे द्रोह न करनेवाले और सबके लिए सुखके साधन देनेवाले हो, अतः तुम हमारे द्वारा प्रसन्नतापूर्वक दिए गए अन्नका सेवन करो ॥ ९ ॥

यह विद्या शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सब तरहकी पवित्रता करनेवाली है, विद्या अन्न देती है, अनेक तरहके बल भी इससे प्राप्त होते हैं, बुद्धिपूर्वक किए जानेवाले कर्मोंको यह सफल करती है ॥ १० ॥

[illegible] होनेवाले कर्मोंको प्रेरणा देनेवाली, उत्तम मतियोंको चेतना देनेवाली यह सरस्वती उत्तम कर्मोंको धारण करती है, अ[illegible]त् लोगोंको उत्तम कर्मोंमें नियुक्त करती है ॥ ११ ॥

३० महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

(४)

(ऋषिः– मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– गायत्री ।)

३१ सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

३२ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २ ॥

३३ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

३४ परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

३५ उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥

अर्थ— [३०] (सरस्वती) यह विद्या (केतुना) ज्ञानसे (महः अर्णः प्र चेतयति) संसाररूपी महासागरका ज्ञान कराती है और (विश्वाः धियः वि राजति) सब प्रकारकी बुद्धियोंको प्रकाशित करती है ॥ १२ ॥

(४)

[३१] (सुदुघां इव गोदुहे) उत्तम दूध देनेवाली गौको जैसे दोहनके समय बुलाते हैं, उसी तरह (सु-रूप-कृत्नुं) उत्तम रूप प्रदान करनेवाले इन्द्रको हम (ऊतये द्यवि द्यवि जुहूमसि) सहायतार्थ प्रतिदिन बुलाते हैं ॥ १ ॥

[३२] (नः सवना उप आगहि) हमारे सवनों-यज्ञोंकी ओर आ। (सोमपाः सोमस्य पिब) तू सोमरस पीनेवाला है, अतः तू सोमको पी। (रेवतः मदः गो-दाः) धनवान्‌का आनंद गौओंको देनेवाला होता है ॥ २ ॥

[३३] (अथा ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम) अब हम तेरी अन्दरकी सुमतियोंको जानें। (नः मा अति ख्यः) हमें दूर मत कर, (आ गहि) अपितु हमारे समीप आ ॥ ३ ॥

[३४] (यः) जो इन्द्र (ते सखिभ्यः वरं आ) तेरे मित्रोंको श्रेष्ठ धन देता है उस (विग्रं अ-स्तृतं इन्द्रं परा इहि) बुद्धिमान् अपराजित इन्द्रके पास जा और (विपश्चितं पृच्छ) विशेष ज्ञानी इन्द्रसे प्रार्थना कर ॥ ४ ॥

[३५] (उत नः निदः ब्रुवन्तु) चाहे हमारे निंदक भले ही यह कहें कि (अन्यतः चित् निः आरत) तुम यहांसे निकल जाओ, (इन्द्रे इत् दुवः दधानाः) क्योंकि तुम इन्द्रमें ही भक्ति रखते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ– ज्ञानका प्रसार करनेवाली यह विद्याकी देवी कर्मोंके महासागरको ज्ञानीके सामने खुला कर देती है अर्थात् इस विद्याके कारण मनुष्य कर्मके नाना मार्गोंका ज्ञाता हो जाता है और इस प्रकार अपनी बुद्धिको ज्ञानयुक्त करता है ॥१२॥

जिस प्रकार दूध दुहनेके समय लोग गायोंको बुलाते हैं, उसी प्रकार उत्तम रूप प्रदान करनेवाले इन्द्रको अपनी सहायताके लिए सब बुलाते हैं ॥ १ ॥

धनवान् जब प्रसन्न होते हैं, तब वे गौका दान करते हैं, अतः तू भी हे इन्द्र ! यहां हमारे यज्ञोंमें सोमरस पीकर प्रसन्न हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो तेरी उत्तम बुद्धियां हैं, उन्हें हम ही जानें, दूसरे नहीं ! अतः तू हमें अपने पाससे दूर मत कर, अपितु तू हमारे पास आ ॥ ३ ॥

जो इन्द्र अपने भक्तों और मित्रोंको धन देता है, उसी अपराजित इन्द्रकी धन-प्राप्तिके लिए प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

देवोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक जन भले ही ईश्वरकी भक्ति करनेवाले आस्तिक जनोंको अपने समाजसे निकाल दें, पर तो भी आस्तिक जनोंको चाहिए कि वे सदा इन्द्रके ही शरणमें रहें ॥ ५ ॥

३६ उत नः सुभगाँ अरि—र्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

३७ एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन् मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

३८ अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

३९ तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

४० यो रायो३वनिर्महान्—त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

(५)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

४१ आ त्वेता नि षीदते—न्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

अर्थ—[३६] क्योंकि हम (इन्द्रस्य शर्मणि स्याम इत्) तुझ इन्द्रकी शरणमें हैं, इसलिए हे (दस्म) दर्शनीय इन्द्र ! (अरिः कृष्टयः) शत्रु और साधारण जन सभी (उत नः सुभगान् वोचेयुः) हमें सौभाग्यसंपन्न कहें ॥ ६ ॥

[३७] (यज्ञश्रियं नृमादनं) यज्ञके शोभारूप, नेताओंको उत्साहित करनेवाले, (मन्दयत्सखं पतयत्) मित्रोंको आनन्दित करनेवाले (ईं आशुं) इस सोमरसको (आशवे आ भर) शीघ्रतासे कार्य करनेवाले इन्द्रके लिये भर ॥ ७ ॥

[३८] हे (शतक्रतो) सैंकडों उत्तम कार्य करनेवाले इन्द्र ! (अस्य पीत्वा) इस सोमरसको पीकर (वृत्राणां घनः अभवः) तू वृत्रोंको मारनेवाला हुआ है । (वाजेषु वाजिनं प्र अवः) तू संग्रामोंमें बलवान् वीरकी रक्षा कर ॥८॥

[३९] हे (शतक्रतो) सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! हम (तं त्वा वाजिनं) उस तुझे बलवाला जानकर (धनानां सातये) धनोंकी प्राप्तिके लिए (वाजयामः) यह सोमरूपी उत्तम अन्न प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥

[४०] (यः रायः महान् अवनिः) जो धनका महान् रक्षक है, (सुपारः) दुःखोंसे पार करानेवाला और (सुन्वतः सखा) यज्ञ कर्ताओंका मित्र है (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके स्तोत्र गाओ ॥ १० ॥

(५)

[४१] हे (स्तोमवाहसः सखायः) यज्ञ चलानेवाले मित्रो (आ तु इति) आओ (निषीदत) बैठो और (इन्द्रं अभि प्र गायत) प्रभुकी स्तुति गाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— यदि मनुष्य इन्द्रकी शरणमें ही रहेंगे, तो वे ऐसे सौभाग्यशाली होंगे, कि शत्रु भी उनकी प्रशंसा करेंगे ॥ ६ ॥

सोमरस यज्ञको उत्तम बनानेवाला यज्ञकर्ताओंको उत्साहित करनेवाला तथा मित्रोंको आनन्दित करनेवाला है । इसे पीकर कर्ता उत्साहित होकर शीघ्रतासे कार्य करता है ॥ ७ ॥

सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र भी इस सोमरसको पीकर वृत्रों अर्थात् उत्तम काममें विघ्न उपस्थित करनेवालोंका विनाश करता है । और संग्रामोंमें बलवान् वीरकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

धन चाहनेवाले सभी लोगोंको चाहिए, कि वे सैंकडों तरहके उत्तम कर्म करनेवाले इस इन्द्रको सोमरसरूपी अन्न प्रदान करें ॥ ९ ॥

यह इन्द्र धनका रक्षक है, दुःखोंसे पार करानेवाला है, यज्ञकर्ताओंका मित्र है, ऐसे इन्द्रकी अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १० ॥

प्रभुकी सामुदायिक उपासना करो । सामुदायिक उपासनासे संघशक्ति बढती है, इसलिये सार्वजनिक स्थानमें इकट्ठे होकर, एक स्थान पर बैठकर उपासना करनी चाहिये । यज्ञस्थानमें सब इकट्ठे होकर प्रातः, माध्यंदिन और सायं सवनोंमें वैदिक आर्य बैठते थे, इसलिये उनमें ऐक्य था ॥ १ ॥

४२ पुरूतमं पुरूणा—मीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥
४३ स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् । गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥
४४ यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥
४५ सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥
४६ त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥
४७ आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥

अर्थ— [४२] (सचा सुते सोमे) साथ बैठकर सोमरस निकालनेके समय (पुरूतमं) बहुत शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरूणां वार्याणां ईशानं इन्द्रं) बहुत धनोंके स्वामी इन्द्रके गुणोंका गान करो ॥ २ ॥

पुरु-तमं— बहुतसे शत्रुओंको भी (तामयति) दबाता है ।

पुरूणां वार्याणां ईशानं अभि प्रगायत— बहुत धनोंके स्वामी इन्द्रके गुणोंका गान करो ।

[४३] (सः घ नः योगे आ भुवत्) वह निश्चयसे हमारे लिये अप्राप्त धन देनेवाला हो, (सः राये) वह धन देनेवाला हो (स पुरंध्यां) वह अनेक प्रकारकी बुद्धियां देवे । (सः वाजेभिः नः आ गमत्) वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

[४४] (समत्सु यस्य संस्थे हरी शत्रवः न वृण्वते) युद्धोंमें जिसके रथमें जोडे हुए घोडोंको शत्रु पकड नहीं पाते (तस्मै इन्द्राय गायत) उस प्रभुके गुणोंका गान करो ॥ ४ ॥

[४५] (इमे शुचयः दध्याशिरः सुताः सोमासः) ये शुद्ध दही मिलाये गए और निचोडे गए सोमरस (वीतये सुतपाव्ने यन्ति) पीनेके लिये रसपान करनेवाले इन्द्रके पास जाते हैं ॥ ५ ॥

[४६] (सुक्रतो इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं सुतस्य पीतये ज्यैष्ठ्याय) तू सोमरसके पीनेके लिये तथा श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये (सद्यः वृद्धः अजायथाः) तत्काल बडा हो गया है ॥ ६ ॥

१ ज्यैष्ठ्याय सद्यः वृद्धः अजायथाः— श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिये तत्काल बडा हो गया ।

[४७] हे (गिर्वणः इन्द्र) प्रशंसनीय इन्द्र ! (आशवः सोमासः त्वा आविशन्तु) उत्साहवर्धक ये सोमरस तुझमें प्रविष्ट हों । ये सोम (ते प्रचेतसे शं सन्तु) तेरे चित्तके लिये सुख देनेवाले हों ॥ ७ ॥

भावार्थ— बहुतसे शत्रुओंका नाश करनेवाले वीर इन्द्रकी स्तुति करो । उसके गुण अपनेमें धारण करो, बढाओ और उसके समान वीर बनो ॥ २ ॥

वह हमें अप्राप्त धन देनेवाला है । वह हमें धन तथा बुद्धि देनेवाला हो । वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

युद्धोंमें जिसके रथमें जुडे हुए घोडोंको शत्रु पकड नहीं पाते । ऐसे वेगवान् और शक्तिशाली जिसके घोडे हैं उस इन्द्रके गुणोंका गान करो ॥ ४ ॥

ये सोमरस कूटे और छाने जानेके बाद दहीके साथ मिलाये जाने पर सोमरसके पान करनेवाले इन्द्रके द्वारा पीने योग्य होते हैं ॥ ५ ॥

उत्तम कर्म करनेवाला वह इन्द्र श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिए और उत्तम कर्म करनेके लिए ही महान् हुआ । इसी प्रकार महान् होकर उत्तम और श्रेष्ठ कर्म ही करने चाहिए ॥ ६ ॥

ये सोमरस अपने पीनेवालेको उत्साह प्रदान करते हैं और उसके चित्तको शान्ति देकर उसे सुख देते हैं । वास्तविक सुख चित्तकी शान्ति और उत्साहमें है ॥ ७ ॥

४८ त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
४९ अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥
५० मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

(६)

(ऋषिः– मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवताः– १-३ इन्द्रः, ४, ६, ८, ९ मरुतः, ५, ७ मरुत इन्द्रश्च, १० इन्द्रः । छन्दः– गायत्री ।)

५१ युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

अर्थ— [४८] हे (शतक्रतो) सैकडों उत्तम कर्म करनेवाले वीर! (त्वां स्तोमाः अवीवृधन्) तुझे स्तोत्र बढावें, तेरी महिमा बढावें, (उक्था त्वां) यह काव्य तेरी महिमा बढावें । (नः गिरः त्वां वर्धन्तु) हमारी वाणियां तेरी महिमा बढावें ॥ ८ ॥

[४९] (अक्षित-ऊतिः इन्द्रः) संरक्षण करनेके अक्षय सामर्थ्यसे युक्त इन्द्र (सहस्रिणं इमं वाजं सनेत्) हजारों तरहके इस अन्नका सेवन करे (यस्मिन् विश्वानि पौंस्या) जिसमें सब बल हैं ॥ ९ ॥

१ अक्षित-ऊतिः इन्द्रः इमं सहस्रिणं वाजं सनेत्— अक्षय रक्षण सामर्थ्यवाला वीर इस सहस्रों प्रकारके बल बढानेवाले अन्नका सेवन करे । अन्नका ऐसा सेवन करना चाहिये जिससे बल बढे ।

२ यस्मिन् विश्वानि पौंस्या— जिसमें अनेक बल बढानेकी शक्ति है । (वह अन्न सेवन किया जाय ।)

[५०] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुत्य इन्द्र ! (मर्ताः नः तनूनां मा अभि द्रुहन्) शत्रुके लोग हमारे शरीरोंसे द्रोह न करें । (ईशानः वधं यवय) सबका स्वामी तू शत्रुके शस्त्रको हमसे दूर रख ॥ १० ॥

१ मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन्— शत्रुके मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह न करें, हमारी हानि न करें । हमारे शरीर क्षत विक्षत न करें ।

२ ईशानः वधं यवय— सामर्थ्यवान् तू वीर हमसे शत्रुके शस्त्रको दूर रख । हमें सुरक्षित रख ।

(६)

[५१] (अरुषं) तेजस्वी (चरन्तं) गतिमान् (ब्रध्नं) महान् आत्माको (तस्थुषः परि युञ्जन्ति) स्थिर रहनेवाले उपासक अपने मनसे बांधते हैं । उस समय (रोचनाः दिवि रोचन्ते) चमकनेवाले नक्षत्र प्रकाशते हैं ॥ १ ॥

ब्रध्न— सूर्य, महान् आत्मा ।

भावार्थ— इस उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रकी महिमाको हमारे स्तोत्र बढावें । हर उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी सब प्रशंसा करते हैं और उससे उसकी महिमा बढती है ॥ ८ ॥

संरक्षण करनेमें अत्यन्त सामर्थ्यशाली इन्द्र ऐसे अन्नका सेवन करता है, जो अनेक तरहके बल देता है । अतः मनुष्योंको भी बलदायक अन्नका सेवन ही करना चाहिए ॥ ९ ॥

हम इतने शक्तिशाली हों कि शत्रुके शस्त्र भी हमारे शरीरोंको कोई हानि न पहुंचा सकें । हम ऐसे उत्तम कर्म करें कि सबका स्वामी इन्द्र हम पर कभी क्रोधित न हो और अपने शस्त्रोंका हम पर प्रयोग न करे ॥ १० ॥

जिस समय नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं उस समय तेजस्वी गतिमान् महान् आत्माको स्वयं स्थिर रहनेवाले साधक उपासक अपनी आत्माके साथ जोड देते हैं । परमात्माकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

५२ युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
५३ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥
५४ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
५५ वीळु चिदारुजत्नुभि-र्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥
५६ देवयन्तो यथा मति-मच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२] (अस्य रथे) इस वीर इन्द्रके रथमें (काम्या) सुंदर (विपक्षसा) दोनों बाजूमें रहनेवाले (शोणा) लाल (धृष्णु) शत्रुका धर्षण करनेवाले (नृवाहसा) इन्द्र तथा सारथी रूप नरोंको ले जानेवाले (हरी) दो घोडे (युञ्जन्ति) जोडे जाते हैं ॥ २ ॥

[५३] हे (मर्याः) मनुष्यो ! (अ-केतवे केतुं कृण्वन्) अज्ञानीके लिये ज्ञान देनेवाला, (अ-पेशसे पेशः) रूप रहितको रूप देनेवाला सूर्य (उषद्भिः अजायथाः) उषाओंके साथ उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

१ अकेतवे केतुं कृण्वन्— अज्ञानीको ज्ञान देवे ।

२ अपेशसे पेशः कृण्वन्— अरूपको सुरूप बनावें ।

[५४] (आत् अह) सचमुच ही (यज्ञियं नाम) पूजनीय नाम तथा यश (दधानाः) धारण करनेवाले वीर मरुत (स्व-धां अनु) अन्नकी इच्छासे (पुनः) बार बार (गर्भत्वं एरिरे) गर्भको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

[५५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वीळु चित्) अत्यन्त सामर्थ्यवान् शत्रुओंका भी (आ-रुजत्नुभिः) विनाश करनेहारे और (वह्निभिः) धन ढोनेवाले इन वीर मरुतोंकी सहायतासे शत्रुओंके द्वारा (गुहा चित्) गुफामें या गुप्त जगह रखी हुई (उस्रियाः) गौओंको तू (अनु अविन्दः) पा सका, वापिस लेनेमें समर्थ हो गया ॥ ५ ॥

[५६] (देवयन्तः) देवत्व पानेकी लालसावाले उपासकोंकी (गिरः) वाणियाँ, (महां) बडे तथा (विदद्-वसुं) धनकी योग्यता जाननेवाले (श्रुतं) विख्यात वीरोंकी (यथा) जैसे (मतिं) बुद्धिपूर्वक स्तुति करनी चाहिए, (अच्छ अनूषत) उसी प्रकार सराहना करती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके रथमें सुन्दर, शत्रुको हरानेवाले तथा मनुष्योंको उत्तम रीतिसे ले जानेवाले घोडे जोडे जाते हैं, इन्हीं घोडोंके कारण वह वीरताके काम करता है । उसी प्रकार यह शरीरस्थ इन्द्र भी अपने इन्द्रियरूपी घोडोंको उत्तम बनाकर स्वयं भी सामर्थ्यशाली बने ॥ २ ॥

उषाके पश्चात् सूर्य उदय होकर ऊपर आता है; वह प्रकाश देता है, पदार्थोंको सुंदर रूप देता है । वैसे ही मनुष्य भी दूसरोंको ज्ञान देवें और अरूपको सुरूप करें ॥ ३ ॥

यथेष्ट अन्न मिले इस लालसासे पूजनीय नामोंसे युक्त यशस्वी मरुत् फिर बार बार गर्भवास स्वीकारनेके लिए तैयार हुए ॥ ४ ॥

ये वीर दुश्मनोंके बडे बडे वीरोंको नष्ट करके अपने अधीन करनेमें बडे ही सफल होते हैं । इन्हीं वीरोंकी मदद पाकर इन्द्र शत्रुओंके द्वारा बडी सतर्कतापूर्वक किसी गुप्त स्थानमें रखी हुई गौएँ या धनसंपदाका पता लगानेमें सफलता पाता है । यदि ये वीर सहायता न पहुँचाते, तो किसी अज्ञात, दुर्गम तथा बीहड भूभागमें छिपी हुई गोसंपदाको पाना उसके लिये दूभर हो जाता, इसमें क्या संशय ? ॥ ५ ॥

जो उपासक देवत्व पाना चाहते हैं, वे वीरोंके समुदायकी सराहना करते हैं; क्योंकि वह संघ जानता है कि, जनताके उत्तम निवासके लिए आवश्यक धनकी योग्यता कैसी होती है । अतएव वह इस तरहके धनको पाकर सबको उचित प्रमाणों प्रदान करता है ॥ ५ ॥

५७ इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
५८ अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
५९ अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
६० इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

(७)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

६१ इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

अर्थ— [५७ । हे वीरो ! तुम सदैव (अ-बिभ्युषा इन्द्रेण) न डरनेवाले इन्द्रसे (सं-जग्मानः) मिलकर आक्रमण करनेहारे (सं दृक्षसे हि) सचमुच दीख पडते हो । तुम दोनों (समान-वर्चसा) सदृश तेज या उत्साहसे युक्त हो और (मन्दू) हमेशा प्रसन्न एवं उल्हसित बने रहते हो ॥ ७ ॥

[५८] (मखः) यह यज्ञ (अन्-अवद्यैः) निर्दोष, (अभि-द्युभिः) तेजस्वी तथा (काम्यैः) वाञ्छनीय ऐसे (गणैः) मरुत्समुदायोंसे युक्त (इन्द्रस्य सहस्-वत्) इन्द्रके शत्रुओंको परास्त करनेमें क्षमता रखनेवाले बलकी (अर्चति) पूजा करता है ॥ ८ ॥

[५९] हे (परि-ज्मन्) सभी जगह गमन करनेवाले मरुत् गण ! (अतः) यहाँसे (वा) अथवा (दिवः) द्युलोकसे या (रोचनात् अधि) किसी दूसरे प्रकाशमान अंतरिक्षवर्ती स्थानमेंसे (आ गहि) यहांपर आओ, क्योंकि (अस्मिन्) इस यज्ञमें (गिरः) हमारी वाणियाँ तुम्हारी ही (समृञ्जते) इच्छा कर रही हैं ॥ ९ ॥

[६०] (इतः पार्थिवात् वा) इस पृथ्वीलोकसे (महः रजसः) अथवा इस बडे अंतरिक्षलोकसे अथवा (दिवः वा) द्युलोकसे (इंद्रं सातिं अधि ईमहे) इन्द्रके पाससे हम धनका दान चाहते हैं ॥ १० ॥

(७)

[६१] (गाथिनः इन्द्रं इत् बृहत् अनूषत) गायक इन्द्रका ही बडा गान करते हैं । (अर्किणः अर्केभिः) अर्चक लोग मंत्रोंसे उसकी अर्चना करते हैं । लोग (वाणीः) अपनी वाणियोंसे (इन्द्रं अनूषत) इन्द्रकी ही उपासना करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे वीरो ! तुम निडर इन्द्रके सहवासमें सदैव रहते हो । इन्द्रको छोडकर तुम कभी क्षण भर भी नहीं रहते हो । तुममें एवं इन्द्रमें समान कोटिका तेज एवं प्रभाव विद्यमान है । तुम्हारा उत्साह कभी घटता नहीं है ॥ ७ ॥

यज्ञकी सहायतासे दोषरहित, तेजस्वी तथा सबके प्रिय वीरोंके संघोंमें रहकर, शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्रके महान् प्रभावी सामर्थ्यकी ही महिमा गायी जाती है ॥ ८ ॥

चूँकि मरुत्संघोंमें पर्याप्त मात्रामें शूरता तथा वीरता विद्यमान् है, अतः वे उसके प्रभावसे समूचे विश्वको व्याप्त कर लेते हैं । वीरोंको चाहिए कि वे इन गुणोंको स्वयं धारण करें । ऐसे वीरोंका सत्कार करनेके लिए सभी कवियोंकी वाणियाँ उत्सुक रहा करती हैं ॥ ९ ॥

हम पृथिवीपरसे अन्तरिक्ष या द्युलोकसे इन्द्रके पास धन मांगते हैं । किसी स्थानसे वह हमें धन लाकर देवे ॥ १० ॥

गायक लोग गानोंसे, मंत्रोंसे और अपनी वाणियोंसे इन्द्रकी महिमाका ही गान करते हैं ॥ १ ॥

६२ इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥
६३ इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयत् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥
६४ इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
६५ इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥
६६ स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६२] (इन्द्रः इत् वचोयुजा हर्योः सचा) इन्द्र निःसंशय शब्दके इशारेसे जुड जानेवाले घोडोंका साथी है (संमिश्लः वज्री हिरण्ययः इन्द्रः) संमिश्रण करनेवाला, वज्रधारी, सोनेके वस्त्राभूषण धारण करनेवाला इन्द्र है ॥ २ ॥

१ वचोयुजा हर्योः सचा— शब्दके इशारेसे रथके साथ जोडे जानेवाले घोडोंका वह मित्र है। घोडे ऐसे शिक्षित रहने चाहिये।

२ संमिश्लः वज्री हिरण्ययः— वह सम्यक् रीतिसे मिलनेवाला वज्रधारी और सोनेके आभूषणोंसे वह युक्त है।

[६३] (इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत्) इन्द्रने विशेष प्रकाशके लिये द्युलोकमें सूर्यका स्थापन किया। उसीने (गोभिः अद्रिं वि ऐरयत्) किरणोंसे मेघको प्रेरित किया है ॥ ३ ॥

[६४] हे (उग्र इन्द्रः) वीर इन्द्र! (सहस्रप्रधनेषु वाजेषु) सहस्रों लाभ देनेवाले युद्धोंमें (उग्राभिः ऊतिभिः) वीरता युक्त संरक्षणोंसे (नः अव) हमारी रक्षा कर ॥ ४ ॥

[६५] (वयं महाधने इन्द्रं हवामहे) हम बडे युद्धमें इन्द्रको सहायताके लिए बुलाते हैं और (अर्भे इन्द्रं) छोटी लडाईमें भी इन्द्रको ही बुलाते हैं (वज्रिणं युजं वृत्रेषु) इस वज्रधारी मित्रको हम शत्रुओंके साथ करनेके युद्धमें बुलाते हैं ॥ ५ ॥

१ वयं महाधने इन्द्रं हवामहे— हम बडे युद्धोंमें इन्द्र वीरको सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

२ वयं अर्भे इन्द्रं हवामहे— हम छोटे झगडोंमें भी इन्द्रवीरको सहाय्यार्थ ही बुलाते हैं।

[६६] हे (सत्रा-दावन्) सतत दान देनेवाले वीर इन्द्र (अ-प्रतिष्कुतः सः) सदा अपराजित ऐसा वह तू (अस्मभ्यं नः) हमारे लिये (अमुं चरुं वृषन् अपा वृधि) इस मेघको वृष्टि करके दूर कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके घोडे इतने शिक्षित हैं कि केवल कहने मात्रसे ही रथमें जुड जाते हैं। ऐसे शिक्षित घोडे होने चाहिए। इस प्रकार इन्द्र सोनेके अलंकारोंको पहन कर इन घोडोंके रथ पर बैठता है ॥ २ ॥

ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशी परमेश्वरने सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया। वह सूर्य सर्वत्र प्रकाश फैलाता है अपनी किरणोंसे मेघोंको बना कर पानी बरसाता है ॥ ३ ॥

युद्धमें जय कमानेवाले वीरोंको हजारों प्रकारके धन मिलते हैं ये धन पराजित शत्रुसे लूट कर मिलनेवाले धन हैं। 'प्रधन, धन' ये नाम इसीलिये युद्धके हैं। युद्धसे लूट करके धन प्राप्त होते हैं। लूट करना विजेताका अधिकार ही है ॥ ४ ॥

हम बडे छोटे और अनेक शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें इस वज्रधारी इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ५ ॥

अ-प्रतिस्खलगतिवाला, प्रतीकार रहित, अपराजित वह इन्द्र हम सबके लिये इस मेघपटलको वृष्टि करके दूर करे। अर्थात् इतनी वर्षा हो कि सब पानी बरसा कर बादल अदृश्य हो जाएं ॥ ६ ॥

६७ तुञ्जेतुंञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥
६८ वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
६९ य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥
७० इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

(८)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

७१ एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥
७२ नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥

अर्थ— [६७] (तुञ्जे तुञ्जे) प्रत्येक दानके समय (वज्रिणः इन्द्रस्य स्तोमाः) वज्रधारी इन्द्रके जो अधिक उत्तम स्तोत्र गाये जाते हैं उनमें (अस्य सुष्टुतिं न विन्धे) इसकी उत्तम स्तुति की गई है ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता ॥ ७ ॥

[६८] जैसे (वंसगः वृषा यूथा इव) बलवान् सांड गौओंके झुंडमें जाता है वैसे ही वह (अप्रतिष्कुतः ईशानः ओजसा कृष्टीः इयर्ति) अप्रतिहत शक्तिमान् स्वामी इन्द्र सामर्थ्यसे मनुष्योंमें जाता है ॥ ८ ॥

१ अ-प्रतिष्कुतः (अ-प्रति-स्कुतः)— अपराजित, जिसका प्रतिकार कोई कर नहीं सकता ऐसा वीर ।

[६९] (चर्षणीनां वसूनां पंचक्षितीनां एकः इन्द्रः इरज्यति) सर्व कृषकों, सर्वधनों तथा पांच ही जनोंका एक इन्द्र ही राजा है ॥ ९ ॥

[७०] (विश्वतः परि वः जनेभ्यः इन्द्रं हवामहे) सब ओरसे सब लोगोंके हितार्थ हम इन्द्रको बुलाते हैं। (अस्माकं केवलः अस्तु) वह हमारा ही केवल सहायक होकर रहे ॥ १० ॥

(८)

[७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सानसिं) सेवनीय (स-जित्वानं) विजय करनेवाले (सदा-सहं) सदा शत्रुका पराजय करनेवाले (वर्षिष्ठं) श्रेष्ठ (रयिं) धनको (ऊतये आभर) हमारी रक्षाके लिए भर ॥ १ ॥

[७२] (येन) जिस ऐश्वर्यको प्राप्त करके (मुष्टिहत्यया) मुष्टि युद्धसे (वृत्रा नि निरुणधाम है) हम शत्रुओंको रोक दें । (त्वोतासः) तेरे द्वारा सुरक्षित होकर हम (अर्वता नि) अश्वसे भी शत्रुको रोक रखें ॥ २ ॥

भावार्थ— जो स्तुति की जा रही है वह इसके महान् कार्यके लिये योग्य है, ऐसा मुझे नहीं लगता क्योंकि इन्द्रके पराक्रम इससे भी कई गुने अधिक प्रशंसनीय हैं ॥ ७ ॥

जैसे बलवान् सांड गौओंमें जाता है, वैसे ही अपराजित स्वामी इन्द्र सामर्थ्यसे मानवोंमें घूमता है ॥ ८ ॥

सब किसानों, सब धनों और पांचों तरहके मनुष्योंका वह इन्द्र स्वामी है । वह सबका हित करता है, इसीलिए उसे सब अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, तो भी वह इन्द्र हमारे पास ही आवे शत्रुओंके पास न जावे ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! सेवनीय, विजयी, शत्रुका पराभव करनेवाले श्रेष्ठ धनको हमारे विजयके लिये हमें दे दो । हमें ऐसा धन चाहिये कि जो विजय करनेवाला, सेवनके योग्य और शत्रुका पराभव करनेकी श्रेष्ठ शक्ति देनेवाला हो ॥ १ ॥

धन प्राप्त करनेके बाद हम मुष्टि युद्धसे शत्रुको रोक सकेंगे । तथा घोडोंसे भी शत्रुको रोक सकेंगे । हम ऐश्वर्य मदमें उन्मत्त न होकर वीर बनकर रहेंगे ॥ २ ॥

७३ इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
७४ वयं शूरेभिरस्तृभि-रिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
७५ महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥
७६ समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥
७७ यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

अर्थ— [७३] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वा ऊतासः वयं) तेरे द्वारा सुरक्षित होकर हम (वज्रं घना आददीमहि) वज्र और शस्त्र हाथमें लें और (युधि स्पृधः संजयेम) युद्धमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको हम जीतें ॥ ३ ॥

[७४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं त्वया युजा) हम तेरे तथा (अस्तृभिः शूरेभिः) शस्त्र फेंकनेमें कुशल शूरोंके साथ रहकर (पृतन्यतः सासह्याम) सेनासे हमला करनेवाले शत्रुओंको पराभूत करें ॥ ४ ॥

अस्तृ— अस्त्र फेंकनेवाले वीर ।

पृतन्यतः वयं सासह्याम— सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुओंको हम पराभूत करें ।

[७५] (इन्द्रः महान् परः च नु) इन्द्र बडा और श्रेष्ठ है । (वज्रिणे महित्वं अस्तु) वज्रधारी शूर इन्द्रको महत्त्व प्राप्त हो । (द्यौः न) द्युलोकके समान (प्रथिना शवः) विस्तृत बल प्राप्त हो ॥ ५ ॥

१ वज्रिणे महत्त्वं अस्तु— वज्रधारी वीरको महत्त्व प्राप्त हो ।

२ वज्रिणे प्रथिना शवः अस्तु— वज्रधारी वीरको विस्तृत यश और बल प्राप्त हो ।

३ इन्द्र महान् परः च— इन्द्र बडा और श्रेष्ठ वीर है ।

[७६] (ये नरः समोहे आशत) जो नेता युद्धोंमें लगे रहते हैं । तथा जो (तोकस्य वा सनितौ) पुत्रकी सुव्यवस्थामें लगे हुए हैं तथा जो (धियायवः वा विप्रासः) बुद्धिमान् ज्ञानी हैं वे सब आदरणीय हैं ॥ ६ ॥

१ ये नरः समोहे आशत— जो नेता युद्धमें लगे हुए हैं ।

२ ये नरः तोकस्य सनितौ आशत— जो नेता पुत्रपौत्रोंकी सुव्यवस्थामें लगे रहते हैं ।

३ ये धियायवः विप्रासः— जो बुद्धिमान् ज्ञानी हैं । ये सब सम्मानके योग्य हैं ।

[७७] (यः सोमपातमः कुक्षिः) जो सोम अतिपीनेवाला पेट (समुद्रः इव पिन्वते) समुद्रके समान फैलता है (काकुदः उर्वीः आपः न) और जैसे ऊंचे स्थानसे बडे जल प्रवाह बहते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम अपने हाथोंमें वज्र आदि भयंकर शस्त्र ग्रहण करें साथ ही तेरी सहायता भी प्राप्त करें और इस प्रकार इन शत्रुओंको नष्ट करें ॥ ३ ॥

हम इन्द्रके तथा अस्त्र चलानेवाले कुशल वीरोंके साथ सेना लेकर हम पर चढाई करनेवाले शत्रुओंको हरावें ॥ ४ ॥

जो वज्रोंको धारण करता है, वही यश और बल प्राप्त करता है और वही वीर ऐश्वर्यशाली होकर बडा और श्रेष्ठ होता है ॥ ५ ॥

जो नेता सेनापति आदि बाहर शत्रुओंसे युद्ध करते हुए देशके संरक्षणमें रत रहते हैं, तथा जो मंत्री आदि नेता राष्ट्रके अन्दर प्रजाकी उत्तम व्यवस्था करनेमें लगे रहते हैं तथा जो विद्वान् आदि नेता राष्ट्रमें ज्ञान प्रसारके कार्यमें लगे रहते हैं, वे सभी आदरणीय हैं ॥ ६ ॥

जैसे ऊंचे पहाडसे जलके प्रवाह बडे वेगसे नीचेकी ओर बहते हैं, उसी तरह सोमरसके प्रवाह इन्द्रकी ओर बहते हैं और इन्द्रको शक्तिशाली कर उसका यश फैलाते हैं ॥ ७ ॥

७८ एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥
७९ एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
८० एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

(९)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

८१ इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
८२ एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

अर्थ— [७८] जिस प्रकार (पक्वा शाखा न) पके हुए फलोंवाली डालियोंसे युक्त वृक्ष मनुष्योंको सुख देते हैं, (एव) उसी प्रकार (अस्य) इस इन्द्रके (गोमती मही विरप्शी सूनृता) गाय देनेवाले महान् और सच्चे शुभाशीर्वाद (दाशुषे) दानशीलको सुख देते हैं ॥ ८ ॥

[७९] हे (इन्द्र) प्रभो ! (ते एवा हि विभूतयः) तेरी ऐसी विभूतियां या ऐश्वर्य हैं और (मावते ऊतयः) मुझ जैसेके लिये संरक्षण हैं, वे सब (दाशुषे सद्यः चित् सन्ति) दाताके लिये तत्काल फलदायी होती हैं ॥ ९ ॥

१ दाशुषे ऊतयः सद्यः सन्ति— दाताके लिए सुरक्षायें तत्काल प्राप्त हों।

[८०] (अस्य एवा) इसकी (स्तोम उक्थं च) स्तुतियां और प्रशंसाएं (काम्या शंस्या) बहुत मधुर और प्रशंसनीय हैं। ये सब (सोमपीतये इन्द्राय) सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये हैं ॥ १० ॥

(९)

[८१] हे इन्द्र ! (आ इहि) तू आ, तू (विश्वेभिः सोमपर्वभिः) सब सोमपेयोंसे और (अन्धसः मत्सि) अन्नसे आनंदित होता है । (ओजसा महान् अभिष्टिः) तू अपने सामर्थ्यसे हम सबको महान् प्रिय हो गया है ॥ १ ॥

[८२] (मंदिने इन्द्राय) आनंदित इन्द्रके लिये (सुते) सोमरस निकालने पर (एनं ईं आसृजत) इस हर्ष देनेवाले पेयको अर्पण करो (विश्वानि चक्रये चक्रिं) सब कार्योंके कर्ताको यह कर्तृत्व बढानेवाला पेय अर्पण करो ॥ २ ॥

१ विश्वानि चक्रये चक्रिं आसृजत— सब कार्य करनेवाले वीरके लिये कर्तृत्व और उत्साह बढानेवाला यह अन्न दे दो।

भावार्थ— पके हुए फलोंसे युक्त वृक्ष जिस तरह लोगोंको सुख देते हैं, उसी प्रकार इन्द्रके कभी व्यर्थ न होनेवाले शुभाशीर्वाद दानशील मनुष्योंको सुख और गौ आदि ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्र अपने सब ऐश्वर्योंसे उदार दाताकी सहायता करता है, उसी प्रकार अन्योंकी भी सहायता करता है । इसलिए सभी उदार और दानी बनें ॥ ९ ॥

इन्द्रका चरित्र बहुत उत्तम और प्रशंसनीय है, इसलिए सब इसको चाहते हैं और सब इसे अपने यज्ञमें बुलाते हैं ॥ १० ॥

जिस प्रकार इन्द्र सोम पीकर उत्साहित और आनन्दित होता है और अपने सामर्थ्यके कारण सबका प्रिय है, उसी प्रकार उत्साहसे कार्य करनेवाले सामर्थ्यशाली मनुष्य सबके प्रिय होते हैं ॥ १ ॥

सबकी रक्षा करनेवाले इस इन्द्रको उत्तम अन्न देना चाहिए । जो वीर देशकी रक्षा करते हैं उन्हें उत्तम अन्न दिया जाना चाहिए ताकि वे उत्तम वीर और बलशाली होकर देशके संरक्षण कार्यमें समर्थ हों ॥ २ ॥

८३ मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥
८४ असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥
८५ सं चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित् ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥
८६ अस्मान्त्सु तत्र चोदये—न्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥
८७ सं गोमदिन्द्र वाजव—दस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥
८८ अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

अर्थ— [८३] हे (सु-शिप्र) उत्तम सिरस्त्राण धारण करनेवाले वीर ! हे (विश्व-चर्षणे) सर्वद्रष्टा प्रभो ! (मन्दिभिः स्तोमेभिः मत्स्व) आनन्ददायक स्तोत्रोंसे आनंदित हो । (एषु सवनेषु आ सच) इन यज्ञोंमें आ कर रह ॥ ३ ॥

[८४] हे इन्द्र ! (ते गिरः असृग्रम्) तेरी स्तुतियां रची गयीं, वे स्तुतियां (वृषभं पतिं त्वां प्रति उदहासत) बलवान् और सबके स्वामी तुझे प्राप्त हुई हैं और तूने उन्हें (अजोषाः) स्वीकार भी किया है ॥ ४ ॥

[८५] हे इन्द्र ! (चित्रं वरेण्यं राधः) विलक्षण श्रेष्ठ धन (अर्वाक् संचोदय) हमारे पास भेज ! (विभु प्रभु ते असत् इत्) विपुल प्रभावशाली धन निःसंदेह तेरे पास ही है ॥ ५ ॥

[८६] हे इन्द्र ! हे (तुविद्युम्न) विशेष तेजस्वी वीर ! (रभस्वतः यशस्वतः) प्रयत्नशील और यशस्वी (अस्मान्) हमें (तत्र राये सुचोदय) उस धनके प्रति प्रेरित कर ॥ ६ ॥

[८७] हे इन्द्र ! (गोमत् वाजवत्) गौओं और अन्नोंसे युक्त (बृहत् पृथुश्रवः) बडा विशाल यश तथा (अ-क्षितं विश्वायुः) अक्षत पूर्णायु (अस्मे सं धेहि) हमें दे ॥ ७ ॥

[८८] हे इन्द्र ! (सहस्र-सातमं) सहस्रों दान जिससे होते हैं वैसा (द्युम्नं बृहद् श्रवः) तेजस्वी बडा वैभव (अस्मे धेहि) हमें दे (ताः रथिनीः इषः) वे रथसे ढोये जानेवाले अन्न हमें दे ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे सुन्दर सिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! हर्ष बढानेवाले इन स्तोत्रोंसे आनंदित हो और हे सब मानवोंका हित करनेवाले इन्द्र ! तू हमारे यज्ञमें आ । जो मनुष्योंके हितकारी हैं उन्हें हमेशा अपने कार्योंमें बुलाना चाहिए ॥ ३ ॥

यह इन्द्र बहुत बलवान् है, इसीलिए सबका यह स्वामी है । इसकी सब मनुष्य प्रेमसे स्तुति करते हैं और यह भी प्रेमसे की गई स्तुतियोंको स्वीकार करता है । जो बलवान् और स्वामी होते हैं उसकी सब स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! विलक्षण श्रेष्ठ धन हमें दे क्योंकि तेरे पास ही विपुल और प्रभावशाली धन रहता है । सदा श्रेष्ठ धन ही प्राप्त करना चाहिये ॥ ५ ॥

धन प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करने चाहिये । जो महान् प्रयत्न करता है वह यशस्वी होता है । हमेशा प्रयत्न करने चाहिए । प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं होते ॥ ६ ॥

गौओंसे युक्त, अन्नोंसे युक्त बडा यश हमें मिले और क्षयरहित पूर्ण आयु हमें प्राप्त हो । उत्तम गौका दूध पीने और बलदायक अन्न खानेसे आयु दीर्घ होती है ॥ ७ ॥

तेजस्वी और अपार धन प्राप्त होने पर उसका दान मनुष्योंको करना चाहिए । वह धन किसी अकेलेके भोगके लिए नहीं होता, अतः उसे सहस्रों मनुष्योंके पालन पोषण और संवर्धनमें लगाना चाहिए ॥ ८ ॥

८९ वसोरिन्द्रं वसुंपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥
९० सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥

(१०)

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

९१ गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद् वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥
९२ यत् सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

अर्थ— [८९] (वसु-पतिं) धनोंके स्वामी (वसोः इन्द्रं) ऐश्वर्योंके प्रभु और (ऋग्मियं गीर्भिः गृणन्त) ऋचाओंसे वर्णनीय स्वामीका अपनी वाणियोंसे वर्णन करो। (ऊतये) संरक्षणके लिये (होम गन्तारं) यज्ञके पास जानेवालेका वर्णन करो ॥ ९ ॥

[९०] (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (अरिः) यज्ञकर्ता और (न्योकसे इन्द्राय) यज्ञके स्थानमें आनेवाले इन्द्रके लिये (बृहत् बृहत शूषं आ इत् अर्चत) बडे बडे बलकी आदरपूर्वक अर्चना करो ॥ १० ॥

(१०)

[९१] हे (शतक्रतो) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (गायत्रिणः त्वा गायन्ति) गायक तेरे गुण वर्णनका स्तोत्र गाते हैं। (अर्किणः) पूजक (अर्कं अर्चन्ति) पूजनीय तेरी पूजा करते हैं। (वंशं इव) बांसको जैसे ऊंचा उठाते हैं उसी तरह (ब्रह्माणः त्वा उत् येमिरे) ज्ञानी तुम्हें ऊंचा उठाते हैं ॥ १ ॥

[९२] (यत् सानोः सानुं आरुहत्) जैसे एक पर्वत शिखरसे दूसरे पर्वत शिखर पर जाता है वैसे जो (भूरि कर्त्वं अस्पष्ट) बहुत कार्य पूर्ण करता है, (इन्द्रः तत् अर्थं चेतति) इन्द्र उसके उद्देश्यको जानता है और (यूथेन वृष्णिः एजति) अपने दलके साथ उसके उद्देश्यकी पूर्ति करनेके लिये जाता है ॥ २ ॥

वृष्णिः— वर्षक, उद्देश्य सिद्धिकी वृष्टि करनेवाली।

कर्त्वं— कर्म, पुरुषार्थ।

भावार्थ— यह इन्द्र धनोंका स्वामी, ऐश्वर्यशाली, ऋचाओंसे वर्णनीय है। अतः अपने संरक्षणके लिए इस बलशालीकी अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

प्रत्येक यज्ञमें यज्ञकर्ताको चाहिए कि वह यज्ञमें आनेवाले इन्द्रके बलकी पूजा करे और अपने अन्दर धारण करे ॥ १० ॥

यह इन्द्र अनेक बुद्धि सामर्थ्योंसे युक्त है अतः गायक लोग इस पूजनीय इन्द्रकी पूजा करते हैं और जैसे बांस ऊंचा करके उस पर लगे झण्डेको फहराते हैं, उसी प्रकार इस इन्द्रको स्तोत्रों द्वारा ऊंचा करके सबको उसकी उच्चता दिखाते हैं ॥ १ ॥

जब एक पर्वतसे दूसरे पर्वत पर आनेवाला कवि इन्द्रकी प्रचण्ड कर्म शक्तिको साक्षात् देखता है, तब उसके हृदयस्थ भावको जानता हुआ वृद्धिकर्ता इन्द्र भी अपने साथियोंके साथ उस कविकी सहायताके लिए दौडता है ॥ २ ॥

९३ युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥
९४ एहि स्तोमाँ अभि स्वरा—ऽभि गृणीह्या रुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचे—न्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥
९५ उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥ ५ ॥
९६ तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शक—दिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥
९७ सुविवृतं सुनिरज—मिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

अर्थ— [९३] हे इन्द्र ! (केशिना वृषणा कक्ष्य-प्रा हरी युक्ष्व हि) केशवाले बलवान् दोनों बाजुओंसे रहनेवाले दो घोडे रथमें जोड और (अथ सोमपाः) हे सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (नः गिरां उपश्रुतिं चर) हमारी वाणियोंसे होनेवाली स्तुति श्रवण करनेके लिये आ ॥ ३ ॥

[९४] हे (वसो सखा इन्द्र) बसानेवाले साथी इन्द्र ! (एहि) आ (स्तोमान् अभि स्वर) हमारी स्तुतियोंका श्रवण कर (गृणीहि) प्रशंसा कर (आ रुव) आनन्द प्रकट कर। (नः ब्रह्म) हमारे ज्ञानका और (यज्ञं च वर्धय) यज्ञका संवर्धन कर ॥ ४ ॥

[९५] (पुरु-निष्षिधे इन्द्राय) बहुतसे शत्रुओंका निवारण करनेवाले इन्द्रके लिये (वर्धनं उक्थं शंस्यं) इसके यशको बढानेवाले स्तोत्र गाने चाहिए। (यथा शक्रः) जिससे वह समर्थ इन्द्र (नः सुतेषु) हमारे पुत्रोंमें और (सख्येषु च) मित्रोंमें (रारणत्) मित्रतापूर्वक भाषण करे ॥ ५ ॥

सुतः— पुत्र, यज्ञ।

[९६] (तं इत् सखित्वं ईमहे) उसके पास मित्रताके लिये हम जाते हैं, (तं राये) उसके पास धनके लिये, (तं सुवीर्ये) उसके पास उत्तम पराक्रमके लिये हम जाते हैं। (स शक्रः इन्द्रः) वह समर्थ इन्द्र (वसु दयमानः) धन देता हुआ (उत नः शकत्) हमारे सामर्थ्यकी वृद्धि करता है ॥ ६ ॥

[९७] हे इन्द्र ! (त्वादातं यशः इत्) तेरे द्वारा दिया हुआ यशस्वी धन (सु-विवृतं) फैलनेवाला और (सुनिरजं) सहज प्राप्य है। हे (अद्रि-वः) पहाडके किलेमें रहनेवाले इन्द्र ! (गवां व्रजं अपवृधि) गौओंके बाडेको हमारे लिये खुला कर और हमारे लिये (राधः कृणुष्व) धनका दान कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! बडी अयालवाले बलवान् और पुष्ट दोनों घोडोंको अपने रथमें जोड और उस पर बैठकर हमारे पास हमारे द्वारा की जानेवाली स्तुति सुननेके लिए आ ॥ ३ ॥

हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! हमारे समीप आ, हमारे स्तोत्रोंकी प्रशंसा कर, हमारे साथ आनन्दसे बोल और हमारे अन्दर ज्ञान और कर्मकी शक्ति बढा ॥ ४ ॥

शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रके यशको बढानेवाले स्तोत्र अवश्य गाने चाहिए, ताकि वह हमारे साथ सदा मैत्री करता हुआ प्रेमपूर्वक बोले ॥ ५ ॥

मित्रता, धन एवं श्रेष्ठ पराक्रमको प्राप्त करनेके लिए उसी इन्द्रके पास जाना चाहिए, क्योंकि वह शक्तिमान् इन्द्र ही हमें धन देनेमें समर्थ है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिया गया यश सर्वत्र फैलनेवाला और आसानीसे प्राप्त होनेवाला है। तू हमें समृद्धशाली बना तथा गाय तथा अन्य सम्पत्तियोंसे सम्पन्न कर ॥ ७ ॥

*

९८ नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

९९ आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

१०० विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

१०१ आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [९८] हे इन्द्र ! (ऋघायमाणं) शत्रुनाश करनेके समय (उभे रोदसी) दोनों भू और द्युलोक (त्वा नहि इन्वतः) तेरी महिमाको धारण कर नहीं सकते, (स्वर्वतीः अपः जेषः) तू स्वर्गीय जल पर विजय कर और (गाः अस्मभ्यं सं धूनुहि) गौओंको हमारे पास भेज ॥ ८ ॥

[९९] हे (आश्रुत्कर्ण) भक्तोंकी प्रार्थना सुननेवाले इन्द्र ! (हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थना भी सुन, (मे गिरः नू चित् दधिष्व) हमारी स्तुतिको अपनेमें धारण कर । (इमं मम स्तोमं) इस मेरे स्तोत्रको तथा (युजः चित्) मेरे मित्रके स्तोत्रको भी (अन्तरं कृष्वं) अपने मनमें धारण कर ॥ ९ ॥

[१००] (वृषन्तमं त्वा विद्म हि) तू बलवान् है यह हम जानते हैं । (वाजेषु हवनश्रुतं) युद्धोंमें हमारी पुकार तू सुनता है (वृषन्तमस्य सहस्र-सातमां ऊतिं हूमहे) अति बलवान् तेरे सहस्रों प्रकारके धनके साथ रहनेवाले संरक्षणको हम तुमसे मांगते हैं ॥ १० ॥

[१०१] (कौशिक इन्द्र) कुशिक पुत्र इन्द्र ! (नः तु आ) हमारे पास आ । (मन्दसानः सुतं पिब) आनन्दित होकर सोमपान कर (नव्यं आयुः प्र सू तिर) नवीन आयु हमें दे, कर्मशक्ति हमें दे । (ऋषिं सहस्रसां कृधि) इस ऋषिको सहस्र धनोंसे युक्त कर ॥ ११ ॥

कौशिक— कोशमें रहनेवाला, पंचकोशमें रहनेवाला ।

नव्यं आयुः प्र सू तिर— नवीन आयु हमें दे दो ।

ऋषिं सहस्रसां कृधि— ऋषिको सहस्र प्रकारके धनोंसे युक्त कर ।

भावार्थ— शत्रुका नाश करनेवाले इस वीर इन्द्रका यश द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंमें भी नहीं समा सकता । आकाशीय जलप्रवाहों अर्थात् वर्षा पर भी इसी इन्द्रका अधिकार है । उन जल प्रवाहोंसे यह सबको पुष्ट करता है ॥ ८ ॥

हे भक्तोंकी प्रार्थना सुननेवाले इन्द्र ! मेरी और मेरे मित्रकी प्रार्थना ध्यानसे सुन और उस पर मननपूर्वक विचार कर ॥ ९ ॥

यह इन्द्र अत्यन्त बलवान् है और युद्धोंमें अपने मित्रोंकी पुकार सुनकर उनकी रक्षा करता है । इसलिए लोग इस इन्द्रसे हजारों तरहके धनके साथ उसकी संरक्षणशक्ति भी मांगते हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हमारे पास आ और आनन्दसे सोमरसका पान कर । नवीन उत्साहपूर्ण तारुण्यावस्था हमें दे । और मुझे सहस्रों सामर्थ्योंसे युक्त ऋषि बना ॥ ११ ॥

१०२ परि॑ त्वा गिर्वणो॒ गिर॑ इ॒मा भ॑वन्तु वि॒श्वतः॑ ।
वृ॒द्धायु॒मनु॒ वृद्ध॑यो॒ जुष्टा॑ भवन्तु॒ जुष्ट॑यः ॥ १२ ॥

(११)

(ऋषिः– जेता माधुच्छन्दसः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– अनुष्टुप् ।)

१०३ इन्द्रं॒ विश्वा॑ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिरः॑ ।
र॒थीत॑मं र॒थीनां॒ वाजा॑नां॒ सत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ १ ॥

१०४ स॒ख्ये त॑ इन्द्र वा॒जिनो॒ मा भे॑म शवसस्पते ।
त्वाम॒भि प्र णो॑नुमो॒ जेता॑र॒मप॑राजितम् ॥ २ ॥

१०५ पू॒र्वीरिन्द्र॑स्य रा॒तयो॒ न वि द॑स्यन्त्यू॒तयः॑ ।
यदी॒ वाज॑स्य॒ गोम॑तः स्तो॒तृभ्यो॒ मंह॑ते म॒घम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०२] हे (गिर्वणः) स्तुति योग्य इन्द्र ! (इमाः गिरः त्वा विश्वतः परि भवन्तु) ये स्तुतियां चारों ओरसे तुझे प्राप्त हों । (वृद्धायुं वृद्धयः) अधिक आयुवाले तुझे ये स्तुतियां यशोवर्धक हों, (जुष्टयः जुष्टाः अनु भवन्तु) तेरे द्वारा स्वीकार की गई ये स्तुतियां हमारा आनन्द बढानेवाली हों ॥ १२ ॥

(११)

[१०३] (समुद्र–व्यचसं) सागरके समान विस्तृत (रथीनां रथीतमं) रथियोंमें अतिश्रेष्ठ (वाजानां पतिं सत्पतिं) अन्नोंके स्वामी सज्जनोंके प्रतिपालक (इन्द्रं) इन्द्रको (विश्वा गिरः अवीवृधन्) सारी स्तुतियां संवर्धित करती हैं, इन्द्रका यश बढाती हैं ॥ १ ॥

[१०४] हे (शवसः पते इन्द्र) बलके स्वामी इन्द्र ! (ते सख्ये वाजिनः) तेरी मित्रतामें हम बलवान् बन कर (मा भेम) नहीं डरें । (जेतारं अपराजितं त्वां) विजयी और अपराजित ऐसे तुझको (अभि प्र णोनुमः) हम प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

[१०५] (इन्द्रस्य पूर्वीः रातयः) इन्द्रके दान पूर्व कालसे प्रसिद्ध हैं । (स्तोतृभ्यः गोमतः वाजस्य) स्तोताओंके लिए गौओंसे प्राप्त अन्नका (यदि मघं मंहते) जो दान करते हैं, (ऊतयः न वि दस्यन्ति) उनके लिए संरक्षण कभी कम नहीं होते ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! हमारे द्वारा सब ओरसे की गईं ये स्तुतियां तेरी आयुकी वृद्धिके साथ ही साथ तेरा यश भी बढानेवाली हों, साथ ही हमारा भी आनन्द बढानेवाली हों ॥ १२ ॥

सब वाणियां समुद्र जैसे विस्तृत, रथियोंमें श्रेष्ठ रथी, बलों और अन्नोंके स्वामी और सज्जनोंके पालनकर्ता इन्द्रके महत्त्वको बढाती हैं ॥ १ ॥

हे बलोंके स्वामी इन्द्र ! तेरी मित्रतामें रहकर हम बलिष्ठ तथा निर्भीक बनें । कभी किसीसे पराजित न होते हुए सदा विजयी बनें और नित्य तेरी भक्ति करें । इस इन्द्रकी भक्ति अर्थात् इसके गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेसे मनुष्य निर्भीक होता है ॥ २ ॥

इन्द्र दान देनेमें बहुत कुशल है । अपने इस कामके लिए वह अनन्त कालसे प्रसिद्ध है । इसीलिए वह दानियोंका सहायक होता है और उनकी हमेशा रक्षा करता है ॥ ३ ॥

१०६ पुरां भिन्दुर्युवा कवि- रमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

१०७ त्वं वलस्य गोमतो ऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस् तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

१०८ तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

१०९ मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास् तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

अर्थ—[१०६] (पुरां भिन्दुः) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला (युवा कविः अ-मित-ओजाः) तरुण, ज्ञानी, अपरिमित पराक्रमी (वज्री पुरुष्टुतः) बहुतों द्वारा प्रशंसित (विश्वस्य कर्मणः धर्ता) सब कर्मोंका कर्ता ऐसा (इन्द्रः अजायत) इन्द्र हुआ है ॥ ४ ॥

पुरां भिन्दुः— शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला, शत्रुके किलोंको तोडनेवाला।
युवा अमित-ओजाः कविः— तरुण अपरिमित शक्तिवाला ज्ञानी।
विश्वस्य कर्मणः धर्ता— सब कर्मोंका धारण करनेवाला इन्द्र है।

[१०७] हे (अद्रिवः) पर्वत पर रहनेवाले इन्द्र ! (गोमतः वलस्य बिलं त्वं अपावः) गौवें हरण करनेवाले बल असुरकी गुहाका तूने द्वार खोला (तुज्यमानासः देवाः) उस समय पीडित हुए देव (अ-बिभ्युषः) निर्भय होकर (त्वां आविषुः) तेरे पास आगये, तेरे आश्रयको प्राप्त हुए ॥ ५ ॥

[१०८] हे (शूर) शूर ! (तव रातिभिः) तेरे धन दानसे उत्साहित होकर (अहं सिन्धुं आवदन्) मैं समुद्रके समान तेरा गुण वर्णन करता हुआ (प्रत्यायं) आ रहा हूं। हे (गिर्वणः) स्तवनीय इन्द्र ! (कारवः तस्य उपातिष्ठन्त) यज्ञकर्ता तेरे समीप आते हैं और (ते विदुः) वे तेरी महिमाको जानते हैं ॥ ६ ॥

[१०९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मायिनं शुष्णं) मायावी शुष्णको (मायाभिः) मायाओंसे ही (त्वं अवातिरः) तूने दूर किया, वध किया। (मेधिराः तस्य ते विदुः) बुद्धिमान् लोग उस तेरी महिमाको जानते हैं (तेषां श्रवांसि उत्तिर) उनको यश या बल दे ॥ ७ ॥

मायिनं शुष्णं मायाभिः त्वं अवातिरः— कपटी शुष्णको कपटोंसे तुमने मारा है। कपटी शत्रुके साथ कपट प्रयोग करके उस कपटीका पराभव करना चाहिए।

भावार्थ— शत्रुके किलोंको तोडनेवाला, तरुण, ज्ञानी, अपरिमित बलशाली सब कर्मोंको धारण करनेवाला बहुतों द्वारा प्रशंसित वज्रधारी इन्द्र (अब) प्रकट हुआ है ॥ ४ ॥

हे पर्वत पर रहकर युद्ध करनेवाले इन्द्र ! तूने गौवें चुरानेवाले वलासुरके दुर्गके द्वारको खोल दिया। इस युद्धमें संत्रस्त हुए देव तेरी सुरक्षाके कारण निर्भीक होकर तेरे पास पहुंचे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरे दानोंसे उत्साहित होकर मैं तेरे समुद्रके समान विस्तृत गुणोंका वर्णन करता हुआ तेरे आश्रयमें आ रहा हूँ। हे इन्द्र ! जो क्रियाशील मनुष्य तेरे पास पहुंचते हैं, वे ही तेरी महिमाको जान सकते हैं ॥ ६ ॥

कपट करनेवालोंके साथ कपटका रास्ता ही अपनाना चाहिए और उन्हें हर तरहसे समाप्त करना चाहिए। इस प्रकार दुर्जनोंका नाश करके सज्जनोंकी उन्नति करनी चाहिए ॥ ७ ॥

११० इन्द्रमीशा॑नमोज॑सा॒भि स्तोमा॑ अनूषत ।
सहस्रं॒ यस्य॑ रा॒तय॑ उ॒त वा॒ सन्ति॒ भूय॑सीः ॥ ८ ॥

(१२)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- अग्निः, ६ प्रथमपादस्य [निर्मथ्याहवनीयौ] अग्नी । छन्दः- गायत्री ।)

१११ अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम् । अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म् ॥ १ ॥
११२ अ॒ग्निम॑ग्निं॒ हवी॑मभिः॒ सदा॑ हवन्त वि॒श्पति॑म् । ह॒व्य॒वाहं॑ पुरुप्रि॒यम् ॥ २ ॥
११३ अग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह जज्ञा॒नो वृ॒क्तब॑र्हिषे । असि॒ होता॑ न॒ ईड्यः॑ ॥ ३ ॥

अर्थ— [११०] (यस्य सहस्रं रातयः) जिसके हजारों दान हैं, (उत वा भूयसीः सन्ति) अथवा उससे भी अधिक हैं उस (ओजसा ईशानं इन्द्रं) सामर्थ्यसे स्वामी बने इन्द्रकी (स्तोमाः अभि अनूषत) स्तोत्र प्रशंसा गाते हैं ॥ ८ ॥

(१२)

[१११] (होतारं विश्ववेदसं) देवताओंको बुलानेवाले, सब ज्ञान और सब धनोंसे युक्त और (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं) इस यज्ञको अच्छी तरहसे पूर्ण करनेवाले (अग्निं दूतं वृणीमहे) अग्निको हम दूतके रूपमें स्वीकार करते हैं ॥१॥

१ विश्ववेदाः— सब ज्ञान और धनसे युक्त ।

२ विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं अग्निं वृणीमहे— सब ऊंचनीचको जाननेवाले, इस संघटना (यज्ञ) के कार्यको करनेवाले अग्रणीको हम एकमतसे अपना नेता स्वीकार करते हैं ।

[११२] (विश्पतिं, हव्यवाहं) प्रजाओंके पालक, हविको देवोंके पास ले जानेवाले (पुरुप्रियं अग्निं अग्निं) बहुत लोकप्रिय ऐसी सब प्रकारकी अग्निको (हवीमभिः सदा हवन्ते) हवियोंके द्वारा लोग हमेशा हवन करते हैं ॥ २ ॥

१ पुरुप्रिय अग्निं विश्पतिं सदा हवन्ते— प्रजाओंको प्रिय और तेजस्वी प्रजापालक राजाकी सदा प्रशंसा होती है ।

[११३] हे (अग्ने) अग्ने ! (जज्ञानः वृक्तबर्हिषे इह देवान् आवह) प्रकट होते ही तू आसन फैलानेवाले भक्तके पास यहां सब देवोंको ले आ (नः होता ईड्यः असि) हमारे लिये देवोंको बुलानेवाला होनेसे तू प्रशंसनीय है ॥ ३ ॥

१ देवान् होता ईड्यः— देवों अर्थात् विद्वानोंको बुलाकर लानेवाला हमेशा प्रशंसनीय होता है ।

भावार्थ— वह इन्द्र हजारों मार्गोंसे अपने भक्तोंको धन देता है, इसलिए सभी यज्ञकर्ता अपनी शक्तिसे सबके स्वामी बने हुए उस इन्द्रका यश फैलाते हैं ॥ ८ ॥

दूत तेजस्वी, बुलानेवाला अर्थात् अच्छा वक्ता, सब प्रकारके ज्ञान व धनसे युक्त, यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठोंका सत्कार करनेवाला, समाजमें संगठन करनेवाला तथा याचकोंको यथाशक्ति दान देनेवाले हो ॥ १ ॥

राजा प्रजाका पालन करनेवाला, सबके पास (हव्य) अर्थात् अन्न पहुंचानेवाला, सबको प्रिय और तेजस्वी हो ॥ २ ॥

वह अग्नि प्रकट होते ही भक्तोंके पास पहुंचती है और स्तुतिको प्राप्त करती है । तथा विद्वानोंका संगठन करती है ॥ ३ ॥

११४ ताँ उँशतो वि बोधय यदंग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा संत्सि बर्हिषि ॥ ४ ॥
११५ घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥ ५ ॥
११६ अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥ ६ ॥
११७ कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥
११८ यस्त्वामग्ने हविष्पति‍र्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥
११९ यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥

अर्थ— [११४] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् दूत्यं यासि) जब तू दूत कर्म करनेके लिए देवोंके पास पहुंचता है, तब (उशतः तान् वि बोधय) उन हविको चाहनेवाले उन देवोंको बुला और (बर्हिषि देवैः आसत्सि) इस यज्ञमें देवोंके साथ आकर बैठ ॥ ४ ॥

१ दूत्यं उशतः वि बोधय— दूत राष्ट्रकी प्रजाको सत्यज्ञानसे युक्त करे और उन्हें सचेत रखे ।

२ बर्हिषि देवैः आसत्सि— यज्ञमें आ, एक आसन पर बैठ, प्रजाको विद्वानोंके साथ संघटित कर ।

[११५] हे (घृताहवन दीदिवः अग्ने) घीकी आहुतियां लेनेवाले प्रदीप्त अग्ने ! (त्वं रक्षस्विनः रिषतः) तू राक्षसी स्वभाववाले हिंसक-शत्रुओंको (प्रति दह स्म) सर्वथा जला दे ॥ ५ ॥

१ दीदिवः अग्ने ! त्वं रक्षस्विनः रिषतः दह— हे तेजस्वी अग्ने ! तू राक्षसी स्वभाववाले हिंसक शत्रुओं-को जला दे ।

[११६] (कविः गृहपतिः युवा) मेधावी, गृहके स्वामी, तरुण (हव्यवाट् जुह्वास्यः अग्निः) अन्न पहुंचाने वाले और ज्वालारूप मुखवाले अग्निको (अग्निना समिध्यते) दूसरी अग्निसे भली प्रकार प्रदीप्त किया जाता है ॥ ६ ॥

१ अग्निः कविः युवा जुह्वास्यः— अग्रणी सदा ज्ञानी, तरुण और तेजस्वी मुखवाला हो ।

[११७] (कविं सत्यधर्माणं) मेधावी, सत्यधर्मके पालक (अमीवचातनं देवं अग्निं) रोगनाशक और प्रकाश-मान अग्निकी (अध्वरे उपस्तुहि) हिंसारहित यज्ञमें स्तुति कर ॥ ७ ॥

१ सत्यधर्मा— अग्रणी सत्यधर्मका पालन करनेवाला हो, वचन और आचरणमें सचाई रखनेवाला हो ।

[११८] हे (अग्ने देव) अग्नि देव ! (यः हविष्पतिः त्वा दूतं सपर्यति) जो हविका देनेवाला यजमान तुझ जैसे दूतकी सेवा करता है (तस्य प्राविता भव स्म) उसका तू भली प्रकार रक्षा करनेवाला हो ॥ ८ ॥

१ यः दूतं सपर्यति, तस्य प्राविता— जो इस अग्रणीकी सेवा करता है, उसकी वह रक्षा करता है ।

[११९] (हविष्मान् यः देववीतये) हविसे युक्त जो यजमान देवोंको प्रसन्न करनेके लिए तुझ (अग्निं आविवासति) अग्निकी सेवा करता है, हे (पावक) पवित्र करनेवाले ! (तस्मै मृळय) उसे सुखी कर ॥ ९ ॥

१ देववीतये अग्निं आ विवासति, तस्मै मृडय— जो श्रेष्ठोंको प्रसन्न करनेके लिए अग्रणीकी सहायता करता है, वह सुखी होता है ।

भावार्थ— यह अग्नि जिस प्रकार देवोंको जगाकर उन्हें यज्ञमें लाता है, उसी प्रकार दूत राष्ट्रकी प्रजाओंमें जागृति फैलाकर उन्हें एक स्थानपर संगठित करे ॥ ४ ॥

तेजस्वी अग्रणीको चाहिए कि वह राक्षसी हिंसक स्वभाववाले शत्रुओंको नष्ट कर दे ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अग्नि हमेशा तरुण और ज्ञानी रहता है, उसी प्रकार सब रहें और जिस प्रकार एक अग्निसे दूसरी अग्नि जलती है और सर्वत्र प्रकाश हो जाता है उसी तरह सर्वत्र ज्ञानाग्निका प्रकाश हो ॥ ६ ॥

ज्ञानी, सत्यके पालक, शत्रुनाशक, तेजस्वी अग्रणीकी सब जगह प्रशंसा होती है ॥ ७ ॥

अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको इस अग्रणीकी सेवा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

इस अग्निकी स्तुति व उपासना करनेसे सब देव प्रसन्न रहते हैं और वह स्तोता सुखी होता है । शरीरमें भी अग्नि रूप प्राण या आत्माकी सेवा करने और उसे बलवान् बनानेसे सब इन्द्रियादि देव प्रसन्न रहते हैं और वह मनुष्य स्वस्थ एवं निरोगी रहकर सुखी होता है ॥ ९ ॥

१२० स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥
१२१ स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥
१२२ अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥

(१३)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- (आप्रीसूक्तं, अग्निरूपा देवताः =) १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळः, ५ बर्हिः, ६ देवीर्द्वारः, ७ उषासानक्ता, ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः । छन्दः- गायत्री ।)

१२३ सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥
१२४ मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

अर्थ— [१२०] हे (दीदिवः पावक अग्ने) तेजस्वी और पवित्र करनेवाले अग्ने ! (सः नः इह देवान् आवह) वह प्रसिद्ध तू हमारे लिये यहाँ श्रेष्ठोंको ले आ और (नः यज्ञं हविः च उपवह) हमारे यज्ञको और हविको देवोंके समीप ले जा ॥ १० ॥

[१२१] हे (अग्ने) अग्ने ! (नवीयसा गायत्रेण स्तवानः सः) नये गायत्री छन्दसे प्रशंसित हुआ हुआ वह तू (नः रयिं वीरवतीं इष आ भर) हमारे लिये धन और शक्तिशाली अन्नको भरपूर भर दे ॥ ११ ॥

[१२२] हे (अग्ने) अग्ने ! (शुक्रेण शोचिषा) अपनी शुद्ध दीप्तिसे और (विश्वाभिः देवहूतिभिः) देवोंके बुलाने योग्य सम्पूर्ण स्तुतियोंसे युक्त होकर (नः इमं स्तोमं जुषस्व) हमारे इस यज्ञका सेवन कर ॥ १२ ॥

१ शुक्रशोचिः— अग्निकी किरणें पवित्रता करनेवाली हैं । अर्थात् जिस स्थानमें अग्नि जलाई जाती या हवन किया जाता है, वह जगह पवित्र हो जाती है ।

(१३)

[१२३] हे (पावक होतः अग्ने) पवित्रता करनेवाले और हवन करनेवाले अग्ने ! (सुसमिद्धः) अच्छी तरह प्रदीप्त हुआ तू (हविष्मते) हवन करनेवालों पर कृपा करनेके लिए (देवान् नः आ वह) सब देवोंको हमारे पास ले आ और (यक्षि) उनके उद्देश्यसे हवन कर ॥ १ ॥

[१२४] हे (कवे) बुद्धिमान् अग्ने ! (तनूनपात्) तू शरीरको न गिरानेवाला है (अद्य नः मधुमन्तं यज्ञं) अतः आज हमारे इस मधुर यज्ञकी हविको (वीतये देवेषु कृणुहि) भक्षण करनेके लिए देवोंतक पहुंचा ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्निदेव देवोंको हमारे पास लाने और हमारी हवि और स्तुतियोंको देवोंतक पहुंचानेका दूतका काम करता है ॥ १० ॥

नवीन स्तोत्रोंके द्वारा प्रशंसित यह अग्रणी हमें वीरोंसे युक्त धन और अन्न भरपूर दे । हमें ऐसा धन दे जिसका हमारे वीर अर्थात् पुत्रादि उपभोग कर सकें ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! पवित्रता बढानेवाली अपनी किरणोंसे हमारी इस यज्ञ स्थली पर आ ॥ १२ ॥

यह अग्नि सर्वत्र पवित्रता करनेवाला है, अतः यह अच्छी तरह प्रदीप्त होकर यज्ञकर्ताओं पर कृपा करनेके लिए देवोंको बुलाकर लाता है और उनका सम्मान करता है ॥ १ ॥

यह अग्नि शरीरका धारक है । जबतक इस शरीरमें अग्निकी उष्णता रहती है, तभीतक यह शरीर क्रियाशील रहता है । इस प्रकार इस शरीरमें रहकर यह अग्नि देवों अर्थात् इन्द्रियोंको रस पहुंचाता है, इस प्रकार इन्द्रियां शक्तिसे युक्त होती हैं ॥ २ ॥

१२५ नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥
१२६ अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥
१२७ स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥
१२८ वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥
१२९ नक्तोषासा सुपेशसाऽस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥
१३० ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१२५] (इह अस्मिन् यज्ञे), यहां इस यज्ञमें (प्रियं मधुजिव्हं) प्रिय, मधुरभाषी (हविष्कृतं नराशंसं) हविको तय्यार करनेवाले तथा मनुष्यों द्वारा प्रशंसित अग्निकी (उपह्वये) मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[१२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (ईळितः) प्रशंसित हुआ तू (सुखतमे रथे देवान् आ वह) उत्तम सुख देनेवाले रथमें बिठलाकर देवोंको यहां ले आ, क्योंकि तू (मनुर्हितः होता असि) मनुष्योंका हित करनेवाला और मनुष्योंका होता है ॥ ४ ॥

[१२७] हे (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोगो ! (घृतपृष्ठं बर्हिः आनुषक् स्तृणीत) घीके समान तेजस्वी इस अग्निके लिए (यत्र अमृतस्य चक्षणं) जहां अमृतका साक्षात्कार होता है, उस जगह (बर्हिः आनुषक् स्तृणीत) आसनको यथा क्रम बिछाओ ॥ ५ ॥

[१२८] (अद्य नूनं यष्टवे च) आज निस्सन्देह यज्ञ करनेके लिए (ऋतावृधः) सत्यको बढानेवाले (असश्चतः) अविनाशी (देवीः द्वारः विश्रयन्ताम्) ये दिव्य द्वार खुल जाएं ॥ ६ ॥

[१२९] (सुपेशसा नक्तोषासा) सुन्दर रूपवाली रात्रि और उषाको (अस्मिन् यज्ञे उपह्वये) मैं इस यज्ञमें बुलाता हूँ, (नः इदं बर्हिः आ सदे) हमारा यह आसन उनके बैठनेके लिए है ॥ ७ ॥

[१३०] (ता सुजिह्वा, होतारा) उन उत्तम भाषण करनेवाले तथा यज्ञ करनेवाले उन दोनों (दैव्या कवी) दिव्य कवियोंको (उपह्वये) मैं यहां बुलाता हूँ, वे (नः इमं यज्ञं यक्षतां) हमारे इस यज्ञको संपन्न करें ॥ ८ ॥

भावार्थ— यज्ञमें मधुर पदार्थ खानेवाले और प्रिय इस अग्निकी सब प्रशंसा करते हैं। क्योंकि सब ज्ञानी जानते हैं कि इसके बिना विश्वमें कुछ भी कार्य नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

जिससे अत्यन्त सुख होता है, ऐसे रथमें बैठकर यह अग्नि सब देवोंको इस यज्ञभूमिमें लाता है और मनुष्योंका हित करता है ॥ ४ ॥

इस शरीरमें ही अमृतका साक्षात्कार होता है, यहां सब देवताओंके लिए यथा क्रम आसन बिछाये गए हैं। आंख, कान, नाक आदि इन्द्रियोंमें आसनों पर ये देव आकर बैठते हैं और यज्ञ करते हैं। इस यज्ञमें ही अमृतका साक्षात्कार होता है ॥ ५ ॥

प्रातः समय यज्ञशालाके दिव्य द्वार खोले जाते हैं। ये दिव्य द्वार हैं क्योंकि मनुष्य इन्हींके द्वारा यज्ञशालामें प्रविष्ट होता है। यज्ञ ही सबसे परम श्रेष्ठ और उत्तम कर्म है! इसलिए इस पवित्र यज्ञके कारण ये द्वार भी पवित्र ही हैं ॥ ६ ॥

जिस समय उषाके साथ थोडी रात भी संयुक्त होती है, उस कालको नक्तोषस काल कहते हैं। इस समयसे यज्ञ शुरु होते हैं। यह काल अत्यन्त सुन्दर और आनन्दप्रद होता ॥ ७ ॥

यज्ञमें ज्ञानी दिव्य होताओंको बुलाया जाता है, ये उत्तम मीठी जिह्वावाले ज्ञानी उत्तम वक्ता होते हैं। ये आते हैं और यज्ञको यथायोग्य रीतिसे सिद्ध करते हैं ॥ ८ ॥

१३१ इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥
१३२ इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥
१३३ अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः । प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥ ११ ॥
१३४ स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे । तत्र देवाँ उप ह्वये ॥ १२ ॥

(१४)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः। देवताः- विश्वे देवाः (विश्वैर्देवैः सहितोऽग्निः), ३ इन्द्रवायुबृहस्पति-मित्राग्निपूषभगादित्यमरुद्गणाः, १० विश्वदेवाग्नीन्द्रवायुमित्रधामानि, ११ अग्निः। छन्दः-गायत्री।)

१३५ ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥

अर्थ— [१३१] (इळा, सरस्वती, मही) भूमि, सरस्वती और वाणी ये (तिस्रः देवीः मयोभुवः) तीन देवियां सुख देनेवाली हैं, वे (अस्रिधः बर्हिः सीदन्तु) क्षीण न होती हुई आसन पर बैठें ॥ ९ ॥

[१३२] (अग्रियं विश्वरूपं) प्रथम पूजनीय नानारूपोंके निर्माता (त्वष्टारं इह उपह्वये) कारीगरको यहां बुलाता हूँ, (केवलः अस्माकं अस्तु) वह देव केवल हमारा ही हो ॥ १० ॥

[१३३] हे (देव वनस्पते) वनस्पति देव! (देवेभ्यः हविः अव सृज) देवोंके लिए हवि रूप अन्न दे, (दातुः चेतनं प्र अस्तु) दाताके लिए उत्साह प्राप्त हो ॥ ११ ॥

[१३४] (यज्वनः गृहे) याजकके घरमें (इन्द्राय यज्ञं स्वाहा कृणोतन) इन्द्रके लिए यज्ञ स्वाहापूर्वक करो, (तत्र देवान् उपह्वये) वहां मैं देवोंको बुलाता हूँ ॥ १२ ॥

(१४)

[१३५] (अग्ने) हे अग्ने! (एभिः विश्वेभिः देवेभिः) इन सब देवोंके साथ (सोमपीतये) सोम पीनेके लिए यहां (आ याहि) आ और हमारी (दुवः गिरः च) प्रार्थना सुन और (यक्षि च) इस यज्ञको पूर्ण कर ॥ १ ॥

(इळा) मातृभूमि, (सरस्वती) मातृसंस्कृति (महीभारती) मातृभाषा ये तीन देवियां उपासनाके योग्य हैं। ये बडी सुख देनेवाली हैं। भूमि, सभ्यता और वाणी इनमें मानवकी मानवता रहती है। इसलिए यज्ञके द्वारा इनकी सुरक्षा और उन्नति की जानी चाहिए ॥ ९ ॥

भावार्थ— त्वष्टा कारीगरको कहते हैं, 'विश्वरूप त्वष्टा' है, जो मूल कारीगर है, वह विश्वरूप है। विश्व ही विष्णु है, अतः इस विश्वरूप कारीगर देवकी उपासना अवश्य करनी चाहिए ॥ १० ॥

पर्जन्यसे औषधियां और औषधियोंसे अन्न उत्पन्न होता है। यही अन्न देवोंको दिया जाता है। दान देनेसे उत्साह बढता है। इसीसे यज्ञकर्मकी वृद्धि और मनुष्योंका हित होता है ॥ ११ ॥

जो अपनी वस्तु है, उसे दूसरेके लिए अर्पण करनेका नाम 'स्वाहा' है इसीका नाम यज्ञ है। यही श्रेष्ठतम कर्म है। इसमें सभी देवोंका सत्कार करना चाहिए ॥ १२ ॥

यह अग्नि सब देवोंके साथ सोम पीनेके लिए आता है और अपने भक्तोंकी प्रार्थना सुनता है। और यज्ञका संरक्षण करता है ॥ १ ॥

*

१३६ आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥
१३७ इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ॥ ३ ॥
१३८ प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥
१३९ ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरंकृतः ॥ ५ ॥
१४० घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥

अर्थ— [१३६] हे (विप्र अग्ने) ज्ञानी अग्ने ! (कण्वाः त्वा आ अहूषत) कण्व तुझे बुला रहे हैं । (ते धियः गृणान्ति) तेरी बुद्धि एवं कर्मोंकी प्रशंसा कर रहे हैं इसलिए, (देवेभिः आ गहि) देवोंके साथ यहां आ ॥ २ ॥

१ हे विप्र अग्ने ! ते धियः गृणन्ति— हे ज्ञानी अग्ने ! तेरे ज्ञानपूर्वक कर्मोंकी सब प्रशंसा करते हैं । ज्ञानपूर्वक किए गए कर्मोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती है । अतः बुद्धिपूर्वक उत्तम कर्म करने चाहिये ।

[१३७] हे अग्ने ! (इन्द्रवायू बृहस्पतिं, मित्राग्नि पूषणं भगं आदित्यान् मारुतं गणं) इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुतोंके गणोंको तू बुलाकर ला ॥ ३ ॥

अग्नि– ज्ञानी है । इन्द्र– शूर है जो शत्रुको दूर करता है (इन्–द्र)– शत्रुका नाश करता है । बृहस्पति ज्ञानी है । मित्र– सहायक है । पूषा– पोषक है । भग– भाग्यवान् है । आदित्य– आदित्य १२ हैं जो सब सहायक हैं । मरुतः– सैनिक हैं । शूरवीर हैं । ये सब प्रजाकी सहायता करनेके लिये यत्न करें ।

[१३८] (चमूषदः) पात्रमें रखे हुए (मत्सराः, मादयिष्णवः) आनन्दवर्धक, उत्साह बढानेवाले (द्रप्साः मध्वः) टपकनेवाले मधुर (इन्दवः) सोमरस (वः प्रभ्रियन्ते) यहां आपके लिए भरे हुए हैं ॥ ४ ॥

[१३९] (हविष्मन्तः) अन्न सिद्ध करनेवाले (अरंकृत) अलंकृत हुए (वृक्तबर्हिषः) आसन फैलानेवाले (अवस्यवः) अपनी सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले (कण्वासः त्वां ईळते) कण्व तेरी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

१ अवस्यवः कण्वासः वृक्तबर्हिषः ईळते— अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले ज्ञानीजन अपने अपने आसनोंको फैलाकर अग्रणीकी स्तुति करते हैं ;

[१४०] (घृतपृष्ठाः) तेजस्वी पीठवाले (मनोयुजाः) मनके इशारेसे ही रथमें जुड जानेवाले (ये वह्नयः) जो घोडे (त्वा हवन्ति) तुझे सर्वत्र पहुंचाते हैं, उनसे तू (देवान्) देवोंको (सोमपीतये) सोमपानके लिए (आ) यहां ले आ ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि स्वयं ज्ञानी होनेसे कारण अपने सब कर्म ज्ञानपूर्वक करता है । इसलिए उसे सब लोग अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, और उसके कामकी प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

वह अग्नि इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा भग, आदित्य और मरुतोंके समूहको बुलाकर लाता है ॥ ३ ॥

सोमरस आनन्द और उत्साह बढानेवाले तथा मधुर होते हैं, यह सोमरस अग्निको दिया जाता है ॥ ४ ॥

इस अग्रणी नेताका सभी लोग आसन बिछाकर आदर करते हैं, और इससे अपने संरक्षणकी इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥

इस अग्रणीके घोडे अर्थात् किरणें घृतके कारण और तेजस्वी होते हैं, अनुकूलतासे रहनेवाले तथा इस अग्रणीको सब जगह पहुंचानेवाले हैं । घोडे तेजस्वी, मनकी इच्छानुसार चलनेवाले हों ॥ ६ ॥

१४१ तान् यज॑त्राँ ऋता॒वृधो ऽग्ने॒ पत्नी॑वतस्कृधि । मध्वः॑ सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥
१४२ ये यज॑त्रा य ईड्या॒स् ते ते॑ पिबन्तु जि॒ह्वया॑ । मधो॑रग्ने॒ वष॑ट्कृति ॥ ८ ॥
१४३ आकीं॒ सूर्य॑स्य रोच॒नाद् विश्वा॑न्दे॒वाँ उ॑ष॒र्बुधः॑ । विप्रो॒ होते॒ह व॑क्षति ॥ ९ ॥
१४४ विश्वे॑भिः सो॒म्यं मध्व॒ऽग्न॒ इन्द्रे॑ण वा॒युना॑ । पिबा॑ मि॒त्रस्य॒ धाम॑भिः ॥ १० ॥
१४५ त्वं होता॒ मनु॑र्हि॒तो ऽग्ने॑ य॒ज्ञेषु सीदसि । सेमं नो॑ अध्व॒रं य॑ज ॥ ११ ॥

अर्थ— [१४१] हे (सुजिह्व अग्ने) मधुर जीभवाले अग्ने ! (तान् यजत्रान्) उन यजन करनेवाले और (ऋतावृधः) सत्यकी वृद्धि करनेवाले मनुष्योंको (पत्नीवतः) पत्नियोंसे युक्त (कृधि) कर और उन्हें (मध्वः पायय) मधुरपेय पिला ॥ ७ ॥

१ यजत्रान् ऋतावृधः पत्नीवतः कृधि— यज्ञ करनेवालों और सत्यको बढानेवालोंको यह अग्रणी पत्नीसे युक्त करता है ।

[१४२] हे (अग्ने) अग्रणी देव ! (ये यजत्राः) जो यज्ञ करनेवाले (ये ईड्याः) जो स्तुति किए जाने योग्य हैं, (ते) वे सब (वषट्कृति) वषट्कार पूर्वक यज्ञकर्मके शुरु होनेपर (मधोः जिह्वया पिबन्तु) मधुर रसको जीभसे पीयें ॥ ८ ॥

[१४३] (विप्रः) ज्ञानी (होता) यज्ञ करनेवाले (उषर्बुधः) उषःकालमें जागनेवाले (विश्वान् देवान्) सब विद्वानोंको (सूर्यस्य रोचनात्) सूर्यकी किरणोंके साथ अग्नि (इह आ वक्षति) यहाँ हमारे पास पहुंचा देगा ॥ ९ ॥

१ विप्रः होता उषर्बुधः— यह अग्रणी नेता ज्ञानी, यज्ञ करनेवाला और उषःकालमें जागनेवाला है ।

२ सूर्यस्य रोचनात् विश्वान् देवान् इह आवक्षति— सूर्यके प्रकाश द्वारा हमारे शरीरमें सब देव प्रविष्ट होते हैं ।

[१४४] हे (अग्ने) अग्रणी देव ! (इन्द्रेण वायुना मित्रस्य) इन्द्र, वायु, मित्र आदि देवोंके (विश्वेभिः धामभिः) सम्पूर्ण तेजके साथ (मधु सोम्यं पिब) मधुर सोमरसको पी ॥ १० ॥

[१४५] (अग्ने) हे तेजस्वी देव ! (त्वं मनुर्हितः) तू मनुष्योंका हित करनेवाला (होता) तथा हवि देनेवाला होकर (यज्ञेषु सीदसि) यज्ञोंमें बैठता है, (सः) ऐसा वह तू (नः) हमारे (इमं अध्वरं यज) हमारे यज्ञकी पूर्णता कर ॥ ११ ॥

१ मनुः हितः— यह अग्रणी देव हमेशा मनुष्योंका हित करनेवाला है ।

भावार्थ— यह अग्रणी हमेशा यज्ञ करनेवालों और सत्यपालकोंकी सहायता करता है और उन्हें हर प्रकारके सांसारिक सुख प्रदान करता है ॥ ७ ॥

यज्ञ करनेवाले, स्तुतिके योग्य, वषट्कारसे युक्त यज्ञकर्म करनेवाले जन हमेशा आनन्ददायक सोमरस पीते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्रणी ज्ञानी, यज्ञ करने और उषःकालमें जागनेके कारण तेजस्वी है । सूर्य किरणोंके द्वारा अग्नि सब देवोंको बुलाकर लाता है । शरीरमें अग्निके रहनेतक सब इंद्रियोंमें सब देव रहते हैं, आंखमें सूर्य, मुखमें अग्नि इत्यादि ॥ ९ ॥

यह अग्रणी देव इन्द्र आदि देवोंके साथ अत्यन्त तेजस्वी होकर मधुर रस पीता है ॥ १० ॥

वह तेजस्वी अग्रणी सदा मनुष्योंका हित करता है, यज्ञशील है और दूसरोंके यज्ञकी पूर्णता करनेवाला है । ॥ ११ ॥

१४६ युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥

(१५)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- [प्रतिदैवतं ऋतुसहितम् =] १ इन्द्रः, २ मरुतः, ३ त्वष्टा, ४ अग्निः, ५ इन्द्रः, ६ मित्रावरुणौ, ७-१० द्रविणोदाः, ११ अश्विनौ, १२ अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१४७ इन्द्र सोमं पिब ऋतुना ऽऽ त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥

१४८ मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

१४९ अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

१५० अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४६] हे (देव) प्रकाशमान अग्ने ! तू (रथे) अपने रथमें (अरुषीः) क्रोध न करनेवाली*(हरितः) हमेशा प्रसन्न रहनेवाली (रोहितः) लाल रंगकी घोडियोंको (युक्ष्व) जोड और (ताभिः) उन घोडियोंके द्वारा (देवान्) देवोंको (इहा वह) यहां ले आ ॥ १२ ॥

१ अरुषीः, हरितः, रोहितः— इस अग्रणीकी घोडियां कभी क्रोध न करनेवाली, हमेशा प्रसन्न रहनेवाली और वृद्धिको प्राप्त होनेवाली हैं ।

(१५)

[१४७] हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ऋतुना सोमं पिब) ऋतुके अनुकूल सोमरसका पान कर, (इन्दवः त्वा आविशन्तु) ये सोमरस तेरे अन्दर प्रविष्ट हों । (तदोकसः मत्सराः) वही घर आनन्ददायक सोमरसोंका है ॥ १ ॥

[१४८] हे (मरुतः) मरुतो ! (पोत्रात् ऋतुना पिबत) पोतृनामक पात्रसे ऋतुके अनुकूल रसोंको पीओ (यज्ञं पुनीत) हमारे यज्ञको पवित्र करो, हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले मरुतो ! (हि यूयं स्थ) तुम वैसे ही पवित्रता करनेवाले हो ॥ २ ॥

[१४९] हे (ग्नावः नेष्टः) हे पत्नीसहित प्रगतिशील याचक ! (नः यज्ञं अभि गृणीहि) हमारे यज्ञकी प्रशंसा कर, (ऋतुना सोमं पिब) ऋतुके अनुसार पी, (हि त्वं रत्नधाः असि) क्योंकि तू रत्नोंको धारण करनेवाला है ॥ ३ ॥

[१५०] (अग्ने) अग्ने ! (देवान् इह आवह) देवोंको यहाँ बुला ला और (त्रिषु योनिषु सादय) उनको तीनों स्थानोंपर बैठा । (परिभूष, ऋतुना पिब) उन्हें अलंकृत कर तथा ऋतुके अनुसार सोमका पान कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी देव हमेशा ऐसे घोडियोंवाले रथ पर चढता है, जो इसे सन्मार्ग पर ले जाती हैं । यह हमेशा अपने साथ देवोंको रखता है जहां अग्नि जाता है वहां उसके साथ सब देव जाते और उसके साथ रहते हैं ॥ १२ ॥

हे इन्द्र व मरुत देवो ! तुम सब यहां यज्ञमें आओ और पोतृनामक पात्रसे आनन्ददायक सोमरस भरपूर पीओ और हम पर प्रसन्न होओ ॥ १-२ ॥

हे यजमान ! तू हमेशा सपत्नीक यज्ञ कर और आनन्दसे सोमरसका पान कर । इस प्रकार अनेक रत्नोंसे युक्त होकर ऐश्वर्यसम्पन्न हो ॥ ३ ॥

यह अग्रणी देव इस शरीरमें तैंतीस देवोंको अपने साथ लाता है और मस्तिष्क, हृदय और अधोभागमें स्थापित करता है । वे देव इस शरीरमें उपभोग प्राप्त करते और ऋतुओंके अनुसार कर्म करते हैं । सिर, छाती और पांव तीनों स्थानोंमें वे ३३ देव रहते हैं ॥ ४ ॥

१५१ ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५ ॥
१५२ युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥
१५३ द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥
१५४ द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे । देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥
१५५ द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥
१५६ यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे । अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

अर्थ— [१५१] हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (ब्राह्मणात् राधसः) ब्राह्मणके पाससे उसके पात्रसे (ऋतून् अनु सोमं पिब) ऋतुओंके अनुसार सोम पी, (हि तव इत् सख्यं अस्तृतं) क्योंकि तेरी यह मित्रता अटूट है ॥ ५ ॥

[१५२] हे (धृतव्रत मित्रावरुण) नियमोंके पालन करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! (युवं) तुम दोनों (ऋतुना) ऋतुके अनुसार (दक्षं दूळभं) बल प्रदान करनेवाले, दुर्दमनीय (यज्ञं आशाथे) यज्ञको सिद्ध करते हो ॥ ६ ॥

[१५३] (द्रविणसः) धन प्राप्त करनेकी इच्छावाले (ग्रावहस्तासः) हाथमें सोम कूटनेके पत्थर लेकर (अध्वरे यज्ञेषु) यज्ञमें और प्रत्येक कर्ममें (द्रविणोदा देवं ईळते) धन देनेवाले देवकी स्तुति गाते हैं ॥ ७ ॥

[१५४] (द्रविणोदाः नः वसूनि ददातु) धन देनेवाला देव हमें उन सभी तरहके धनोंको देवे (यानि शृण्विरे) जिन धनोंका वर्णन हम सुनते आए हैं, (ता देवेषु वनामहे) वे धन हम पुनः देवोंको ही अर्पण करते हैं ॥८॥

[१५५] (द्रविणोदाः) धन देनेवाला देव (नेष्ट्रात्) नेष्टृ सम्बन्धी पात्रसे (ऋतुभिः पिपीषति) ऋतुके अनुसार सोमरस पीनेकी इच्छा करता है, अतः हे मनुष्यो ! (इष्यत, जुहोत प्र च तिष्ठत) वहां जाओ, हवन करो और पश्चात् वहांसे चले जाओ ॥ ९ ॥

[१५६] हे (द्रविणोदः) धनके दाता देव ! (यत् ऋतुभिः) जिस कारण हम ऋतुओंके अनुसार (त्वां तुरीयं यजामहे) तुझे चौथे भागका अर्पण करते हैं, (अध) इस कारण तू (न ददिः भव स्म) हमारे लिए धनका दान करनेवाला हो ॥ १० ॥

भावार्थ— यह ऐश्वर्यवान् इन्द्र सोमसे सम्पन्न अर्थात् यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंके साथ हमेशा मित्रता रखता है। देवोंके साथ एक बार जुडी हुई मित्रता हमेशा बनी रहती है, कभी टूटती नहीं ॥ ५ ॥

सबके मित्र और वरणीय ये देव सब नियमोंका पालन करनेवाले हैं, तथा बलप्रदान करनेवाले और कठिन यज्ञोंको भी पूरा करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

यह धन देनेवाला देव हर उत्तम कर्म करनेवालेको अत्युत्तम धन देता है। पर धनवान्‌को भी चाहिए कि वह देवोंसे प्राप्त किए धनको अपने पास इकट्ठा न कर उसे फिर देवोंके कामोंमें लगा दे ॥ ७-८ ॥

यह धनको देनेवाला देव सोम पीना चाहता है, अतः हे याजको ! इसको ऋतुके अनुसार सोमका चौथा भाग दो, ताकि वह प्रसन्न होकर तुम्हें धन प्रदान करे ॥ ९-१० ॥

१५७ अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता । ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥
१५८ गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥

(१६)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

१५९ आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥
१६० इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥
१६१ इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

अर्थ— [१५७] हे (दीद्यग्नी, शुचिव्रता) तेजस्वी शुद्ध कर्म करनेवाले (ऋतुना यज्ञवाहसा) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले (अश्विना) अश्विदेवो ! (मधु पिबतं) इस मधुर सोमरसका पान करो ॥ ११ ॥

[१५८] हे (सन्त्य) फल देनेवाले अग्ने ! (गार्हपत्येन ऋतुना) तू गार्हपत्यके नियमोंके अनुसार ऋतुके अनुकूल रहकर (यज्ञनीः असि) यज्ञ करनेवाला है इसलिये (देवयते देवान् यज) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले यजमानके लिये देवोंका सत्कार कर ॥ १२ ॥

१ गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः— गृहस्थाश्रममें रहनेवाला ऋतुके अनुसार रहकर ही शुभ कर्म करनेमें समर्थ होता है । अतः गृहस्थियोंको ऋतुके अनुकूल कर्म करने चाहिए ।

२ देवयते देवान् यज— देवत्व पानेकी इच्छा करनेवालोंको ज्ञानियोंका सत्कार करना चाहिए । उन्हें ऐसे कर्म करने चाहिए कि इस शरीरमें सभी देव संगठित होकर सदा शुभकर्ममें तत्पर रहें ।

(१६)

[१५९] हे इन्द्र ! (सूर-चक्षसः हरयः) तेजस्वी घोडे (सोमपीतये) सोमरस पीनेके लिये (वृषणं त्वा) बलवान् ऐसे तुझे (आ वहन्तु) ले आयें ॥ १ ॥

[१६०] (इन्द्रं) इन्द्रको (सुखतमे रथे) अत्यन्त सुखदायक रथमेंसे (इमा घृतस्नुवः धानाः) इन घीसे भीगे लाजाओंके पास (इह) यहां (हरी उपवक्षतः) दो घोडे लावें ॥ २ ॥

१ घृतस्नुवः धानाः— यज्ञमें लाजाओंका हवन करना हो तो वे लाजाएं घीसे भीगी होनी चाहिए ।

[१६१] हम (प्रातः) प्रातःकाल (इन्द्रं हवामहे) इन्द्रको बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति) यज्ञ शुरू होनेपर उसको बुलाते हैं, (सोमस्य पीतये इन्द्रं) सोमरस पीनेके लिये इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— ये अश्विदेव तेजस्वी, हमेशा पवित्र करनेवाले और ऋतुके अनुसार यज्ञकर्म करनेवाले हैं, अतः इनका सत्कार करना चाहिए ॥ ११ ॥

यह अग्रणी गृहस्थी शुभ नियमोंके अनुसार रहता हुआ, ऋतुओंके अनुकूल कर्म करता रहे । और शुभकर्म करनेकी कामना करता हुआ ज्ञानियोंको संगठित करे ॥ १२ ॥

यह इन्द्र सदा सुखदायक वाहनोंपर ही सर्वत्र भ्रमण करता है, यह आनन्ददायक है अतः इसको घी आदिसे पुष्ट करना चाहिए । इसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह पुष्ट होकर प्रजाकी रक्षा करता हुआ सर्वत्र आनन्दसे घूमे ॥ १-२ ॥

प्रातःसवन, माध्यंदिन सवन और सायं सवन ऐसे यज्ञमें तीन सोमसवन होते हैं । इन तीनों सवनोंमें हम यज्ञमें इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ३ ॥

१६२ उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ हरि॑भिरिन्द्र के॒शिभिः॑ । सु॒ते हि त्वा॒ हवा॑महे ॥ ४ ॥
१६३ सेमं नः॒ स्तोम॒मा ग॒ह्युपे॒दं सव॑नं सु॒तम् । गौ॒रो न तृ॑षि॒तः पि॑ब ॥ ५ ॥
१६४ इ॒मे सोमा॑स॒ इन्द॑वः सु॒तासो॒ अधि॑ ब॒र्हिषि॑ । ताँ इ॑न्द्र॒ सह॑से पिब ॥ ६ ॥
१६५ अ॒यं ते॒ स्तोमो॑ अग्रि॒यो हृ॑दि॒स्पृग॑स्तु॒ शंत॑मः । अथा॒ सोमं॑ सु॒तं पि॑ब ॥ ७ ॥
१६६ विश्व॒मित्सव॑नं सु॒तमिन्द्रो॒ मदा॑य गच्छति । वृ॒त्र॒हा सोम॑पीतये ॥ ८ ॥
१६७ सेमं नः॒ काम॒मा पृ॑ण॒ गोभि॒रश्वैः॑ शतक्रतो । स्तवा॑म त्वा स्वा॒ध्यः॑ ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (केशिभिः हरिभिः) अयालवाले घोडोंसे (नः सुतं उप आ गहि) हमारे सोमयागके पास आ । (हि त्वा सुते हवामहे) क्योंकि तुझे हम सोमयज्ञके लिये बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[१६३] (सः) वह तू (नः इमं स्तोमं आ गहि) हमारे स्तोत्रपाठ या इस यज्ञमें आ । (इदं सुतं सवनं उप) इस सोमरसके समीप आ । (तृषितः गौरः न पिब) प्यासे गौर मृगके समान सोमरसको पी ॥ ५ ॥

[१६४] हे इन्द्र ! (इमे इन्दवः सोमासः) ये तेजस्वी सोमरस (सुतासः बर्हिषि अधि) निकाल कर दर्भाओंके पास रखे हैं । (सहसे तान् पिब) बल बढानेके लिये उन रसोंको तू पी ॥ ६ ॥

[१६५] (ते अयं स्तोमः) तेरा यह स्तोत्र (अग्रियः) श्रेष्ठ (हृदिस्पृग्) हृदयस्पर्शी और (शंतमः अस्तु) आनंदवर्धक हो । (अथ) अब (सुतं सोमं पिब) निकाले सोम रसको पीओ ॥ ७ ॥

१ अग्रियः हृदिस्पृक् शंतमः— श्रेष्ठ, हृदयको आनंद देनेवाला और शान्ति देनेवाला स्तोत्र हो ।

[१६६] (वृत्रहा इन्द्रः) शत्रुको मारनेवाला इन्द्र (सोमपीतये) सोमरस पीनेके लिये तथा (मदाय) आनंद बढानेके लिये (विश्वं सुतं सवनं इत् गच्छति) सभी सोमयागोंके प्रति जाता है ॥ ८ ॥

१ वृत्रहा इन्द्रः— शत्रुका नाश करनेवाला इन्द्र है अतः प्रशंसनीय है । जो शत्रुका नाश करेगा वह प्रशंसनीय होगा ।

[१६७] हे (शतक्रतो) सैकडों काम करनेवाले ! इन्द्र (सः) वह तू (नः इमं कामं) हमारी इच्छाको (गोभिः अश्वैः) गौओंसे और घोडोंसे अर्थात् गौवें और घोडे हमें देकर (आ पृण) पूर्ण करो । (स्वाध्यः त्वा स्तवाम) बुद्धिपूर्वक हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तुझे सोमरस तैय्यार करके बुला रहे हैं, तू अपने उत्तम अयालवाले घोडोंके द्वारा इस रसके पास आ और इसे प्रेमसे पी ॥ ४-५ ॥

ये सोम चमकनेवाले, बल बढानेवाले उत्तम श्रेष्ठ, हृदयस्पर्शी तथा आनंद बढानेवाले हैं । सोम अर्थात् ब्रह्मज्ञानी भी सदा प्रसन्न और श्रेष्ठ होता है ॥ ६-७ ॥

यह इन्द्र शत्रुओंका नाश करनेवाला है, सैकडों शुभ कर्म उत्तम रीतिसे करनेवाला है । यह आनन्द बढानेके लिए सबके पास जाता है, तथा सबको गौ आदि पशु देकर समृद्ध बनाता है । इसीलिए सब उसकी प्रशंसा करते हैं । ऐसे उत्तम मनुष्यकी सर्वत्र प्रशंसा होती है ॥ ८-९ ॥

(१७)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री, ४-५ पादनिचृत् (५ ह्रसीयसी वा) गायत्री)

१६८ इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

१६९ गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

१७० अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

१७१ युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥

१७२ इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

१७३ तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

[१७]

अर्थ— [१६८] (अहं) मैं (इन्द्रावरुणयोः सम्राजोः) इन्द्र और वरुण नामक दोनों सम्राटोंसे (अवः आ वृणे) अपनी सुरक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करना चाहता हूं (ईदृशे ता नः मृळातः) ऐसी स्थितिमें वे दोनों हमें सुखी करें ॥ १ ॥

[१६९] (चर्षणीनां धर्तारा) ये दोनों सम्राट मानवोंका धारणपोषण करनेवाले हैं (मावतः विप्रस्य) मुझ जैसे ब्राह्मणकी (अवसे) सुरक्षा करनेके लिये (हवं गन्तारा हि स्थ) पुकारके स्थानतक जानेवाले होवें ॥ २ ॥

[१७०] हे (इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र और वरुण ! (अनुकामं) हमारे मनोरथके अनुसार (रायः आ तर्पयेथां) धन देकर हमें तृप्त करो (ता वां) तुम दोनोंका (नेदिष्ठं ईमहे) हमारे समीप रहना ही हम चाहते हैं ॥ ३ ॥

[१७१] (हि शचीनां युवाकु) शक्तियोंकी संघटना हुई है । (सुमतीनां युवाकु) सुमतियोंकी भी एकता हुई है (वाजदाव्नां भूयाम) अन्न दान करनेवालोंमें हम मुख्य बनें ॥ ४ ॥

[१७२] (इन्द्रः सहस्रदाव्नां क्रतुः) इन्द्र सहस्रों दाताओंमें मुख्य कार्यकर्ता है, । (वरुणः शंस्यानां उक्थ्यः भवति) और वरुण सहस्रों प्रशंसनीयोंमें मुख्य प्रशंसित होने योग्य है ॥ ५ ॥

[१७३] (तयोः अवसा) उनकी सुरक्षासे (इत् वयं) सुरक्षित हुए हम (सनेम, निधीमहि च) धन प्राप्त करना और संग्रह करना चाहते हैं । (उत प्ररेचनं स्यात्) चाहे इससे भी अधिक धन हमारे पास हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्र और वरुण दोनों अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाले और मनुष्योंकी रक्षा करके उनका भरणपोषण करनेवाले हैं । ये दोनों बुलाये जाने पर भक्तकी रक्षा करनेके लिए जाते हैं । उसी प्रकार राष्ट्रका राजा अपनी प्रजाओंकी रक्षा करके उनको शक्तिसे युक्त करके उनका पालनपोषण करे और अपने तेजसे वह प्रकाशित हो ॥ १-२ ॥

राष्ट्रमें उत्तम बुद्धिवाले ब्राह्मण, उत्तम शक्तियोंवाले क्षत्रिय और अन्नका दान करनेवाले वैश्य ये सभी वर्ण एक विचारके हों, जिससे राष्ट्रकी उन्नति हो, तथा राजा और मंत्रीगण भी एक विचारवाले हों ॥ ३-४ ॥

इन्द्र दान देनेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ है और वरुण प्रशंसाके योग्य देवोंमें सर्वाधिक प्रशंसनीय है । इन दोनोंसे सुरक्षित होकर हम धनादिसे समृद्ध हों । जिस देशका राजा दानशील हो तथा जिस देशके मंत्रियोंकी सब प्रजायें प्रशंसा करे, वह देश निश्चय धनधान्यसे समृद्ध होगा और वहांकी प्रजा भी सुरक्षित और सुखी रहेगी ॥ ५-६ ॥

१७४ इन्द्रा॑वरुण वाम॒हं हु॒वे चि॒त्राय॒ राध॑से । अ॒स्मान्त्सु जि॒ग्युष॑स्कृतम् ॥ ७ ॥
१७५ इन्द्रा॑वरु॒ण॒ नू नु वां॒ सिषा॑सन्तीषु धी॒ष्वा । अ॒स्मभ्यं॒ शर्म॑ यच्छतम् ॥ ८ ॥
१७६ प्र वा॑मश्नोतु सुष्टु॒ति-रिन्द्रा॑वरुण॒ यां हु॒वे । याम्॒धाथे॑ स॒धस्तु॑तिम् ॥ ९ ॥

(१८)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- १-३ ब्रह्मणस्पतिः, ४ इन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः सोमश्च, ५ ब्रह्मणस्पतिः सोम इंद्रो दक्षिणा च, ६-८ सदसस्पतिः, ९ सदसस्पतिर्नराशंसो वा । छन्दः- गायत्री ।)

१७७ सो॒मानं॒ स्वर॑णं कृणु॒हि ब्र॑ह्मणस्पते । क॒क्षीव॑न्तं॒ य औ॑शि॒जः ॥ १ ॥
१७८ यो रे॒वान् यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित् पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः । स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः ॥ २ ॥
१७९ मा नः॒ शंसो॒ अर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य । रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥
१८० स घा॑ वी॒रो न रि॑ष्यति॒ यमिन्द्रो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पति॑ः । सोमो॑ हि॒नोति॒ मर्त्य॑म् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१७४] हे (इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र और वरुण ! (वां अहं चित्राय राधसे हुवे) तुम दोनोंको मैं अद्भुत सिद्धिके लिये प्रार्थना करता हूं । (अस्मान् सु जिग्युषः कृतं) तुम दोनों हमें उत्तम विजयी बनाओ ॥ ७ ॥

[१७५] हे (इन्द्रावरुण) हे इन्द्र और वरुण ! (धीषु वां सिषासन्तीषु) हमारी बुद्धियाँ तुम्हारा कार्य कर रही हैं (अस्मभ्यं शर्म नू नु आ यच्छतं) इसलिये हमें सुख दो ॥ ८ ॥

[१७६] हे (इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र और वरुण ! (यां सधस्तुतिं हुवे) जिस संमिलित स्तुतिको हम करते हैं, (यां ऋधाते) जिसको तुम बढाते हो, (सा सुष्टुतिः वां प्र अश्नोतु) वही उत्तम स्तुति तुम्हें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

(१८)

[१७७] हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (सोमानं स्वरणं कृणुहि) सोमयाग करनेवालेको उत्तम प्रगतिसंपन्न कर । (यः औशिजः, तं कक्षीवन्तं इव) जैसा उशिक्पुत्र कक्षीवान् उन्नत किया गया था वैसा ही इसको कर ॥ १ ॥

[१७८] (यः रेवान्) जो ब्रह्मणस्पति सम्पत्तिवान्, (यः अमीवहा) जो रोगोंका नाश करनेवाला, (वसुवित् पुष्टिवर्धनः) धनदाता और पुष्टिवर्धक (यः तुरः) तथा जो शीघ्रतासे कार्य करनेवाला है, (सः नः सिषक्तु) वही हमारे ऊपर कृपा करता रहे ॥ २ ॥

[१७९] हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (अररुषः मर्त्यस्य धूर्तिः) घात करनेवाले कपटी धूर्तकी निंदा (नः मा शंसः) हमारे तक न पहुंचे । (नः रक्ष) इससे हमारी सुरक्षा कर ॥ ३ ॥

[१८०] (यं मर्त्यं) जिस मनुष्यको (इन्द्रः ब्रह्मणस्पतिः सोमः च) इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और सोम (हिनोति) बढा देते हैं, (सः घा वीरः न रिष्यति) वह वीर निःसंदेह नष्ट नहीं होता ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो इन्द्र और वरुणकी सच्चे मनसे प्रार्थना करता है, वह हर प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त कर सकता है, और उत्तम विजयी बन सकता है । जो इन दोनोंके अनुकूल आचरण करता है वह सुखी और उन्नतिशील होता है । राष्ट्रकी प्रजाको भी चाहिए कि वह उत्तम राजा और मंत्रियोंके अनुकूल आचरण करके देशमें एकता स्थापित करे ॥ ७–९ ॥

ज्ञानके स्वामी अर्थात् विद्यासम्पन्न विद्वान् वह ब्रह्मणस्पति रोगोंका नाश करनेवाला, धनदाता और पुष्टिवर्धक तथा अपने भक्तोंकी उन्नति करनेवाला है । ऐसे ज्ञानी विद्वान्की कृपा जिस मनुष्य पर रहती है, वह सदा प्रगति करता है ॥ १–२ ॥

जिस मनुष्यको ब्रह्मणस्पति–ज्ञानी, इन्द्र–शक्तिशाली क्षत्रिय और सोम–धनवान् इन तीनोंकी सहायता मिलती है, उसके पास धूर्त या हिंसक नहीं पहुंच सकते और वह वीर होकर निःसन्देह बढता जाता है ॥ ३–४ ॥

*

१८१ त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥
१८२ सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥
१८३ यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
१८४ आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
१८५ नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥

(१९)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- अग्निर्मरुतश्च । छन्दः- गायत्री ।)

१८६ प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥
१८७ नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

अर्थ— [१८१] हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्मणस्पते ! (त्वं तं मर्त्यं) तू उस मानवको (अंहसः) पापसे बचा (सोमः इन्द्रः दक्षिणा च पातु) वैसे ही सोम, इन्द्र और दक्षिणा उसको बचावें ॥ ५ ॥

[१८२] (अद्भुतं इन्द्रस्य प्रियं) मैं आश्चर्यकारक, इन्द्रके प्रिय मित्र (काम्यं सनिं सदसस्पतिं) आदरणीय और धनदाता सदसस्पतिसे (मेधां अयासिषम्) मेधाबुद्धिको मांगता हूँ ॥ ६ ॥

[१८३] (यस्माद् ऋते) जिसके बिना (विपश्चितः चन यज्ञः) ज्ञानीका भी यज्ञ (न सिध्यति) सिद्ध नहीं होता (सः धीनां योगं इन्वति) वह सदसस्पति हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥ ७ ॥

[१८४] (आत् हविष्कृतिं ऋध्नोति) हवि तैयार करनेवालेकी वह उन्नति करता है, (अध्वरं प्राञ्चं कृणोति) हिंसारहित यज्ञको बढाता है, (होत्रा देवेषु गच्छति) हमारी प्रशंसा करनेवाली वाणीको देवोंतक पहुंचा देता है ॥ ८ ॥

[१८५] (दिवो न सद्ममखसं) द्युलोकके समान तेजस्वी (सुधृष्टमं सप्रथस्तमं) प्रतापशाली और प्रसिद्ध (नराशंसं अपश्यं) तथा मानवों द्वारा सुपूजित सदसस्पति मैंने देखा है ॥ ९ ॥

[१९]

[१८६] (हे अग्ने) हे अग्ने ! (त्यं चारुं अध्वरं प्रति) उस सुंदर हिंसारहित यज्ञके प्रति (गोपीथाय प्रहूयसे) तुम्हें सोमरसका पान करनेके लिये बुलाते हैं (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ १ ॥

[१८७] (नहि देवः) ना ही कोई देव (न मर्त्यः) और न कोई मर्त्य ऐसा है कि जो (महः तव क्रतुं परः) तुम्हारे महासामर्थ्यसे किये यज्ञसे बढकर कुछ कर्म कर सकता हो (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्रके प्रिय मित्र, पूज्य सदसस्पति उत्तम मेधाबुद्धिका स्वामी है, उससे इस मेधाबुद्धिको प्राप्त करनेवाला मनुष्य पाप कर्मोंसे बचता है, और उस मनुष्यकी सोम, इन्द्र और दक्षिणा सहायता करते हैं ॥ ५-६ ॥

श्रेष्ठ विद्वानोंकी सभाका सभापति यह सदसस्पति सबकी बुद्धियोंको प्रेरित करता है, सन्मार्गमें चलाता है, उन्नत करता है, इसकी सहायताके बिना कोई कर्म सफल नहीं हो सकता। यह अन्नका दान देनेवालेकी उन्नति करता है और हिंसारहित और कुटिलतारहित कर्मोंको बढाता है तथा स्तोताओंकी प्रार्थनाओंको यह देवोंतक पहुंचाता है। यह द्युलोकके समान विस्तृत और तेजस्वी है। अतः सब इसीको स्तुति करते हैं ॥ ७-९ ॥

इस अग्निके साथ मरुत् रहते हैं, जो सामर्थ्यशाली हैं, कि उनके सामर्थ्यसे बढकर कर्म न कोई देव ही कर सकता है और न कोई मनुष्य ही। ऐसे इन मरुतोंके साथ अग्निको अहिंसक यज्ञमें उपासक सोम पीनेके लिए बुलाते हैं ॥ १-२ ॥

१८८ ये महो रजसो विदु—र्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥
१८९ य उग्रा अर्कमानृचु—रनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥
१९० ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥
१९१ ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥
१९२ य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७ ॥
१९३ आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८ ॥
१९४ अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८८] (ये अद्रुहः विश्वे देवासः) जो द्रोह न करनेवाले सब देव हैं (महः रजसः विदुः) वे इस बडे अन्तरिक्षको जानते हैं (अग्ने मरुद्भिः आ गहि) हे अग्ने! अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ३ ॥

[१८९] हे अग्ने! (ये ओजसा अनाधृष्टासः) जो अपने विशाल बलके कारण अजेय (उग्राः) और उग्रवीर हैं (अर्कं आनृचुः) और जो प्रकाशके स्थानतक पहुंचते हैं (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ४ ॥

[१९०] हे अग्ने! (ये शुभ्राः) जो गौर वर्णवाले (घोरवर्पसः) बडे शरीरवाले (सुक्षत्रासः रिशादसः) उत्तम पराक्रमी और शत्रुका नाश करनेवाले हैं (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ५ ॥

[१९१] हे अग्ने! (ये देवासः) जो ये मरुत् देव (नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते) सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हुए द्युलोकमें रहते हैं (मरुद्भिः आ गहि) उन मरुतोंके साथ तुम आओ ॥ ६ ॥

[१९२] (ये पर्वतान् ईङ्खयन्ति) जो पर्वत जैसे मेघोंको उखाड देते हैं (समुद्रं अर्णवं तिरः) और जलराशीको तुच्छ मानते हैं (मरुद्भिः आ गहि) उन मरुतोंके साथ तुम आओ ॥ ७ ॥

[१९३] (ये रश्मिभिः आ तन्वन्ति) जो किरणोंसे व्यापते हैं (ओजसा समुद्रं तिर) और जो बलसे समुद्रको भी तुच्छ मानते हैं (मरुद्भिः आ गहि) उन मरुतोंके साथ तुम आओ ॥ ८ ॥

[१९४] हे (अग्ने) हे अग्ने! (पूर्वपीतये त्वा) तुम्हारे प्रथम रसपानके लिये (सोम्यं मधु अभि सृजामि) यह मधुर सोमरस मैं अर्पण करता हूं, (मरुद्भिः आ गहि) अतः तुम उन मरुतोंके साथ आओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— ये मरुत् स्वयं किसीसे द्रोह नहीं करते तथा सब विशाल स्थानोंको जानते हैं। ये बलवान् होनेके कारण अजेय हैं, बडे उग्र और शूरवीर हैं और तेजस्वी होनेके कारण सूर्यके समान हैं ॥ ३–४ ॥

सभी मरुत् गौरवर्णवाले, विशाल शरीरवाले और शूरवीरतामें अद्वितीय हैं तथा शत्रुका नाश करनेमें बडे प्रवीण हैं, ये द्युलोकमें सदा सूर्यके समान चमकते रहते हैं ॥ ५–६ ॥

ये इतने शूरवीर हैं कि पर्वतोंको भी तुच्छ समझकर उखाड फेंकते हैं और समुद्रको भी आसानीसे लांघ जाते हैं अर्थात् इतने ज्यादा उत्साही हैं कि उनके रास्तेमें कोई भी विघ्न टिक नहीं पाता। ऐसे ही राष्ट्रके सैनिक उत्साही चाहिए कि जो विघ्नोंकी परवाह न करते हुए आगे बढते चले जायें ॥ ७ ॥

ये अपने तेज और प्रभावके कारण सर्वत्र व्याप्त हैं अर्थात् सर्वत्र बिना अडचनके सब जगह आते जाते हैं। ऐसे ये वीर मरुत् अग्निकी सहायता करनेके लिए सदा तैय्यार रहते हैं। इसी प्रकार राष्ट्रके सैनिक प्रभावशाली हों तथा अपने राज्यमें सर्वत्र घूमते हुए ज्ञानीकी सहायता करें और प्रजायें भी इनका यथोचित सत्कार करें ॥ ८–९ ॥

(२०)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः। देवता- ऋभवः। छन्दः- गायत्री।)

१९५ अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥
१९६ य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥
१९७ तक्षन् नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥
१९८ युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्टयक्रत ॥ ४ ॥
१९९ सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥
२०० उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥
२०१ ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

---

[२०]

अर्थ— [१९५] (विप्रेभिः आसया) ज्ञानियोंने अपने मुखसे (अयं रत्नधातमः स्तोमः) इस रत्नोंको देनेवाले स्तोत्रका (जन्मने देवाय अकारि) दिव्य जन्मको प्राप्त होनेवाले ऋभुदेवोंके लिये पाठ किया ॥ १ ॥

[१९६] (ये) जिन्होंने (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वचोयुजा हरी) शब्दके इशारेसे चलनेवाले दो घोडे (मनसा ततक्षुः) चतुराईसे बनाये, सिखाये; (शमीभिः यज्ञं आशत) वे ऋभु देव शमी अर्थात् चमसादिके साथ यज्ञमें आते हैं ॥ २ ॥

[१९७] (नासत्याभ्यां) अश्विदेवोंके लिये उन्होंने (परिज्मानं सुखं रथं) उत्तम गतिमान् सुखदायी रथका (तक्षन्) निर्माण किया (धेनुं सबर्दुघां तक्षन्) और गौको उत्तम दुधारू बना दिया ॥ ३ ॥

[१९८] (सत्यमन्त्राः ऋजूयवः) सत्य विचारवाले सरल स्वभावी (विष्टी ऋभवः) चारों ओर जानेवाले ऋभुओंने (पितरा पुनः युवाना अकृत) मातापिताको पुनः जवान बना दिया ॥ ४ ॥

[१९९] (वः मदासः) हे ऋभुओ ! आपको आनन्द देनेवाले सोमरस (मरुत्वता इन्द्रेण,) मरुतोंके साथ इन्द्रके (च राजभिः आदित्येभिः च) और चमकनेवाले आदित्योंके साथ (सं अग्मत) तुमको दिये जाते हैं ॥ ५ ॥

[२००] (उत देवस्य त्वष्टुः निष्कृतं नवं त्यं चमसं) त्वष्टाके द्वारा बनाया यह नया ही चमस था (पुनः चतुरः अकर्त) ऋभुओंने उस एक हीको चार प्रकारका बना दिया ॥ ६ ॥

[२०१] (ते सुशस्तिभिः) वे तुम स्तुतियोंसे प्रशंसित होकर (नः सुन्वते) हमारे सोमयाग करनेवाले ऋत्विजोंमेंसे (एकं एकं त्रिः साप्तानि रत्नानि आ धत्तन) प्रत्येकके लिये इक्कीस रत्नोंको धारण कराओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये ऋभुदेव कारीगर हैं, ये घोडोंको शिक्षित करते हैं और ऐसा बना देते हैं कि वे इशारेके अनुसार ही चलने लगते हैं। इन्होंने ऐसे घोडे इन्द्रको प्रदान किए थे। ऐसे ऋभुओंका सब ज्ञानी सत्कार करते हैं। ऐसे उत्तम कारीगरोंका सत्कार राष्ट्रमें होना ही चाहिए ॥ १-२ ॥

अश्विनोंके लिए इन्होंने उत्तम रथ बनाया, जो बडा सुखदायी था और चारों ओर चलाया जा सकता था। इन्होंने गायोंकोभी दुधारु बनाया। गायोंको दुधारु बनानेकी विद्या ऋभुओंको आती थी ॥ ३ ॥

सरल स्वभाववाले और सत्यमार्ग पर चलनेवाले इनके पास विद्या भी थी, जिससे ये बूढोंको भी जवान बना देते थे। ये जीवनविद्या और औषधि प्रयोगमें भी प्रवीण थे। इस कारण इन्हें इन्द्र और आदित्योंके साथ सोम दिया जाता था ॥ ४-५ ॥

२०२ अधारयन्त वह्नयो ऽभजन्त सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥

(२१)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री ।)

२०३ इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित् स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥

२०४ ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥

२०५ ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

२०६ उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

२०७ ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

२०८ तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥

---

[२१]

अर्थ— [२०२] (वह्नयः) अग्निके समान तेजस्वी ऋभु देवोंने (सुकृत्यया) अपने उत्तम कर्मोंसे (देवेषु) देवोंमें स्थान प्राप्त करके (यज्ञियं भागं अधारयन्त अभजन्त) यज्ञका हविर्भाग प्राप्त किया और उसका सेवन भी किया ॥ ८ ॥

[२०३] (इह इन्द्राग्नी उप ह्वये) इस यज्ञमें इन्द्र और अग्निको मैं बुलाता हूं (तयोः इत्) उनकी ही (स्तोमं उश्मसि) स्तुति करना चाहता हूं (ता सोमपातमा सोमं) वे सोमपान करनेवाले यहां सोमरस पीयें ॥ १ ॥

[२०४] हे (नरः) हे मनुष्यो ! (ता इन्द्राग्नी) उन इन्द्र और अग्निकी (यज्ञेषु प्रशंसत) यज्ञोंमें प्रशंसा करो (ता गायत्रेषु गायत) गायत्री छन्दमें उनके काव्योंका गान करो ॥ २ ॥

[२०५] (मित्रस्य प्रशस्तये) मित्रकी प्रशंसा करनेके समान (ता सोमपा) उन सोमपान करनेवाले (ता इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्निको (सोमपीतये हवामहे) सोमपानके लिये ही हम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[२०६] (इदं सुतं सवनं) सोमरस निकालनेपर (उग्रा सन्ता उप हवामहे) उन उग्रवीरोंको बुलाते हैं। (इन्द्राग्नी इह आ गच्छतां) वे इन्द्र और अग्नि यहां आयें ॥ ४ ॥

[२०७] (ता महान्ता सदसस्पती) वे इन्द्र और अग्नि बडे सभापति हैं (इन्द्राग्नी रक्षः उब्जतं) वे राक्षसोंको सरल स्वभाववाले बना देवें। (अत्रिणः अप्रजाः सन्तु) वे सर्व भक्षक (राक्षस न सुधरें तो) प्रजारहित हो जावें ॥ ५ ॥

[२०८] हे (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि! (प्रचेतुने पदे) चित् प्रकाशसे उज्ज्वल हुए स्थानमें (तेन सत्येन अधि जागृतं) उसी सत्यके साथ तुम जागते रहो (शर्म यच्छतं) और हमें सुख प्रदान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ये ऋभुगण अपने उपासकोंको हर तरहके रत्न एवं धनैश्वर्य आदि प्रदान करते हैं। अग्निके समान तेजस्वी इन ऋभुओंने अपने कर्मोंसे देवोंमें स्थान प्राप्त किया और हविर्भाग ग्रहण किया। इस प्रकार हर मनुष्य अपने कर्मोंसे उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है ॥ ६-८ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों देव सोमपान करनेवाले हैं, स्तुतिके योग्य हैं। उपासक यज्ञोंमें इनकी प्रशंसा करते हैं और गायत्री छन्दके द्वारा उनके यशका गान करते हैं ॥ १-२ ॥

ये इन्द्र और अग्नि बडे वीर हैं, शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। वे मित्रके समान सदा सबका हित करनेवाले हैं। इस लिए सब उपासक इनको अपने पास बुलाते हैं। इसी प्रकार सबके हित करनेवालेका सर्वत्र सत्कार होना चाहिए ॥ ३-४ ॥

ये दोनों देव बडे श्रेष्ठ सभापति हैं। सभापतिका कार्य वे उत्तम रीतिसे निभाते हैं, ये दोनों मांसभक्षी राक्षसों पर ऐसा शासन करते हैं कि वे सुधर जाते हैं। सदा ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य स्थानमें सत्यके साथ जाग्रत रहते हैं। इसी प्रकार नेताको चाहिए कि वह भी सदा सत्यका पालन करता हुआ राक्षसों और दुष्ट स्वभाववालोंको उत्तम स्वभाववाला बनावे ॥ ५-६ ॥

(२२)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- १-४ अश्विनौ, ५-८ सविता; ९-१० अग्निः; ११ देव्यः; १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः; १३-१४ द्यावापृथिव्यौ; १५ पृथिवी; १६ विष्णुर्देवा वा; १७-२१ विष्णुः । छन्द- गायत्री ।)

२०९ प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
२१० या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥
२११ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥
२१२ नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥
२१३ हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥
२१४ अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥
२१५ विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [२०९] (प्रातर्युजौ वि बोधय) प्रातःकालके समयमें जागनेवाले अश्विदेवोंको जगाओ । (अश्विनौ इह) वे अश्विदेव इस यज्ञमें (अस्य सोमस्य पीतये आ गच्छतां) इस सोमरसका पान करनेके लिये पधारें ॥ १ ॥

[२१०] (या उभा अश्विना) ये दोनों अश्विदेव (सुरथा रथितमा) सुंदर रथसे युक्त हैं, वे सबसे श्रेष्ठ रथी हैं, (दिविस्पृशा) और वे अपने रथसे आकाशमें संचार करते हैं, (देवा ता हवामहे) इन दोनों देवोंको हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[२११] हे (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (वां या मधुमती सूनृतावती कशा) तुम्हारा जो मीठा सुंदर शब्द करनेवाला चाबुक है, (तया सह यज्ञं मिमिक्षतं) उसके साथ यज्ञमें आओ ॥ ३ ॥

[२१२] हे (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (सोमिनः गृहं) सोमयाग करनेवालेके घरके पास (यत्र रथेन गच्छथः) जहां अपने रथसे तुम जाते हो (वां दूरके न अस्ति) वह तुम्हारे लिये बिलकुल दूर नहीं है ॥ ४ ॥

[२१३] (हिरण्यपाणिं सवितारं) सुवर्णके समान किरणोंवाले सविताको (ऊतये उप ह्वये) अपनी सुरक्षा करनेके लिये मैं बुलाता हूं । (सः देवता पदं चेत्ता) वही देवता प्राप्तव्य स्थानका बोध करा देता है ॥ ५ ॥

[२१४] (अपां नपातं) जलोंको न प्रवाहित करनेवाले (सवितारं उप स्तुहि) सविताकी स्तुति करो (तस्य व्रतानि उश्मसि) इसके लिये हम व्रतोंका पालन करना चाहते हैं ॥ ६ ॥

[२१५] (वसोः) निवासके कारणीभूत (चित्रस्य राधसः विभक्तारं) नाना प्रकारके धनोंके दाता (नृचक्षसं सवितारं हवामहे) मनुष्योंके लिये प्रकाशके प्रदाता, सूर्यदेवका हम आवाहन करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये दोनों अश्विनौ देव प्रातःकाल जागनेवाले तथा उत्तम रथ पर चढकर द्युलोकमें संचार करनेवाले हैं । इसी प्रकार राष्ट्रके वैद्योंको चाहिए कि वे रोज प्रातःकाल उत्तम यानमें बैठकर राष्ट्रनिवासियोंके स्वास्थ्यका निरीक्षण करें ॥ १-२ ॥

इन अश्विनौका चाबुक बहुत मीठा और शब्द करनेवाला है, इस मीठे ताडनसे वे सब रोगियोंको स्वास्थ्य प्रदान करते हैं । इस चाबुकके शब्दसे अश्विनौ देवोंके आगमनकी सूचना मिलती है । इनका रथ वेगवान् होनेसे इनके लिए कोई स्थान दूर नहीं है । जहां इन्हें पहुंचना होता है, वहां शीघ्र ही ये पहुंच जाते हैं ॥ ३-४ ॥

सोनेके समान अपनी सुनहरी किरणोंसे सूर्य सब रोग बीजोंको दूर करके आरोग्य बढाता है और दीर्घायु प्रदान करता है । वही प्राप्त करने योग्य स्थानका ज्ञान कराता है । सूर्य जब इच्छा करता है, तब पानी बरसाता है । यह अपनी कृपा उन्हीं लोगों पर करता है, जो इसके व्रतोंका पालन करते हैं ॥ ५-६ ॥

२१६ सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥
२१७ अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥
२१८ आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥
२१९ अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः । अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥
२२० इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥
२२१ मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥
२२२ तयोरिद् घृतवत् पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

अर्थ— [२१६] हे (सखायः) हे मित्रो ! (आ निषीदत) आ कर बैठ जाओ (नः सविता नु स्तोम्यः) हम सबके लिये यह सविता स्तुति करने योग्य है। (राधांसि दाता शुम्भति) सिद्धियोंके प्रदाता सूर्यदेव अब प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ८ ॥

[२१७] (हे अग्ने) हे अग्ने ! (उशतीः) इधर आनेकी इच्छा करनेवाली (देवानां पत्नीः) देवोंकी पत्नियोंको (इह उप आ वह) यहाँ ले आओ (त्वष्टारं सोमपीतये) तथा त्वष्टाको सोमपान करनेके लिये यहां ले आओ ॥ ९ ॥

[२१८] (हे अग्ने) हे अग्ने ! (ग्नाः) देवपत्नियोंको (अवसे) हमारी सुरक्षा करनेके लिये (इह आ वह) यहां ले आओ। (हे यविष्ठ) हे तरुण अग्ने ! (अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये (होत्रां भारतीं वरूत्रीं, धिषणां) देवोंको बुलानेवाली, भरणपोषण करनेवाली, सुरक्षा करनेवाली बुद्धिको यहां ले आओ ॥ १० ॥

[२१९] (नृपत्नीः अच्छिन्नपत्राः देवीः) जिनके आनेके साधन अविच्छिन्न हैं और जो मनुष्योंका पालन करती हैं, वे देवपत्नियाँ (अवसा महः शर्मणा) हमारी सुरक्षा करके बडे सुखके साथ (नः अभि सचन्तां) हमारे पास इस यज्ञमें आ जायँ ॥ ११ ॥

[२२०] (इह इन्द्राणीं वरुणानीं अग्नायीं) यहां इन्द्रपत्नी, वरुणपत्नी और अग्निपत्नीको (स्वस्तये) अपनी सुरक्षाके लिये (सोमपीतये) और उनके सोमपानके लिये (उप ह्वये) बुलाता हूँ ॥ १२ ॥

[२२१] (मही द्यौः पृथिवी च) महान् द्युलोक और बडी पृथ्वी (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (मिमिक्षतां) उत्तम रससे–जलसे सिंचित करें और (भरीमभिः नः पिपृतां) पोषणों द्वारा हमें पूर्ण करें ॥ १३ ॥

[२२२] (गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे) गन्धर्व लोकके ध्रुव स्थानमें अर्थात् अन्तरिक्षमें (तयोः इत्) इन दोनों द्यु और पृथ्वीके मध्यमें (घृतवत् पयः) घीके समान जल (विप्राः धीतिभिः रिहन्ति) ज्ञानी लोक अपने कर्मों और बुद्धियोंके बलसे प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ— सूर्य इस शरीरमें नेत्र बना हुआ है, इसलिए वह सबके लिए नेत्रके समान है । इसके प्रकाशमें मनुष्य अच्छी तरह देख सकता है । यह सूर्य अपनी सम्पत्ति प्रकाश सभी वृक्षवनस्पति एवं प्राणीमात्रको समान रूपसे देता है । इसी प्रकार मनुष्यको अपनी धन सम्पत्तिका संग्रह नहीं करना चाहिए, अपितु सबमें समान रूपसे बांट देना चाहिए । तभी वह सूर्यकी तरह स्तुतिके योग्य होगा ॥ ७–८ ॥

त्वष्टा और देवपत्नियोंका सोम देकर सत्कार करना चाहिए । तथा उनकी पूजा करके ऐसी बुद्धि प्राप्त करनी चाहिए, जो देवोंको बुलानेवाली, भरणपोषण करनेवाली और सुरक्षा करनेवाली हो । इसी प्रकार राष्ट्रमें कारीगर और विद्वानोंकी पत्नियोंका भी सत्कार करना चाहिए और उनकी संगतिसे ऐसी उत्तम बुद्धि प्राप्त करनी चाहिए, जो श्रेष्ठ और उत्तम विद्वानोंको आकर्षित कर सके, तथा उस मनुष्यका भरणपोषण करके उसकी रक्षा कर सके ॥ ९–१० ॥

इन्द्रपत्नी, वरुणपत्नी और अग्निपत्नी ये सभी अपने उपासककी रक्षा करनेवाली हैं, इनके मार्ग कहीं भी अवरुद्ध नहीं हैं, ये सभीके यज्ञमें जाती हैं । उसी प्रकार राजाकी, वैश्यकी और ब्राह्मणकी पत्नियोंके मार्ग कभी भी राष्ट्रमें अवरुद्ध नहीं होने चाहिए । ये सभी राष्ट्रकी सुरक्षा करनेवाली हैं ॥ ११–१२ ॥

२२३ स्योना पृथिवि भवा नृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥
२२४ अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥
२२५ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥
२२६ त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥
२२७ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

अर्थ— [२२३] (हे पृथिवि) हे पृथ्वी ! (स्योना, अनृक्षरा) तू सुखदायिनी, कण्टकरहित (निवेशिनी भव) और हमारा निवास करानेवाली बन (सप्रथः शर्म नः यच्छ) और हमें विस्तृत सुख दे ॥ १५ ॥

[२२४] (विष्णुः) विष्णुने (सप्त धामभिः) सातों धामोंसे (यतः पृथिव्याः वि चक्रमे) जिस पृथ्वीपर विक्रम किया (अतः नः देवाः अवन्तु) वहांसे हमारी सब देव सुरक्षा करें ॥ १६ ॥

[२२५] (विष्णुः इदं वि चक्रमे) विष्णुने यह विक्रम किया। (त्रेधा पदं नि दधे) उसने तीन प्रकारसे अपने पद रखे थे। (अस्य पांसुरे समूळ्हं) पर इसका एक पद धूली प्रदेशमें (अन्तरिक्षमें) गुप्त हुआ है ॥ १७ ॥

[२२६] (अदाभ्यः गोपाः विष्णुः) न दबनेवाला, सबका रक्षक विष्णु (धर्माणि धारयन्) सब धर्मोंको धारण करता हुआ (अतः त्रीणि पदा वि चक्रमे) वहांसे तीन पद रखनेका विक्रम करता है ॥ १८ ॥

[२२७] (विष्णोः कर्माणि पश्यत) विष्णुके ये कर्म देखो (यतः व्रतानि पस्पशे) उनसे ही हम अपने व्रतोंको किया करते हैं (इन्द्रस्य युज्यः सखा) वह विष्णु इन्द्रका सुयोग्य मित्र है ॥ १९ ॥

भावार्थ— जिस यज्ञमें ये पत्नियां आती हैं; वहां द्युलोक और पृथ्वीलोक उत्तम उत्तम रस सींचते हैं और पोषण युक्त पदार्थ देते हैं। तथा ज्ञानी लोग अपने कर्म और बुद्धिके बलपर सभी स्थलसे घी आदि पोषणयुक्त पदार्थ प्राप्त करते हैं। उनके लिए यह पृथ्वी सुख देनेवाली, विघ्नरहित और सुखसे निवासके योग्य होती है। जो मनुष्य अपनी उत्तम बुद्धिसे उत्तम उत्तम कर्म करते हैं, वे संसारके सभी सुखोंको प्राप्त करते हैं ॥ १३–१५ ॥

जो सब विश्वको व्यापता है, वह व्यापक देव विष्णु कहलाता है। यह व्यापक देव सात धामोंसे पृथ्वीपर विक्रम करता है। पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्रा और महत्तत्व ये सात धाम हैं, जहां यह व्यापक प्रभु अपना विक्रम दिखाता है। इसका पराक्रम यहां सतत चल ही रहा है। सब नक्षत्रादि तेजोलोक तथा अग्न्यादि देव इसी व्यापक प्रभुकी महिमासे अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ हुए हैं। उस व्यापक देवका सामर्थ्य लेकर ये सब देव हमारी सुरक्षा करें ॥ १६ ॥

यह व्यापक प्रभु ही यह सब, जो इस विश्वमें दिखाई देता है, पराक्रम करता है। जो यहां दीख रहा है वह सब उसीका पराक्रम अथवा उसीका सामर्थ्य ही है। सात्विक, राजस और तामस ऐसे तीन स्थानोंमें तीन पद उन्होंने रखे हुए हैं। द्युलोक सात्विक, अन्तरिक्ष लोक राजस और भूलोक तमोगुण प्रधान है, यहां इसके तीन पद कार्य करते हैं। इनमें बीचके अन्तरिक्षमें जो इनका कार्य है वह गुप्त है। द्युलोक प्रकाशित है, भूलोकपर तो मनुष्य कार्य कर ही रहे हैं अतः ये दो लोक स्पष्ट दीख रहे हैं। पर बीचका अन्तरिक्ष लोकका वायु अदृश्य है, विद्युत् भी अदृश्य ही रहती है, पर कभी कभी दीखती है। इस तरह बीचके स्थानमें होनेवाला उसका कार्य दीखता नहीं ॥ १७ ॥

यह व्यापक प्रभु किसीसे कदापि दबनेवाला नहीं है। यही सबकी सुरक्षा करता है और यही सबमें व्यापक है, अतः प्रत्येक वस्तुमें विद्यमान है। ये सब कार्य यही करता है। भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें जो इनके तीन पद कार्य कर रहे हैं उनको देखो और उसका सामर्थ्य जानो ॥ १८ ॥

इस व्यापक प्रभुके ये सब कार्य देखो। ये कार्य सब विश्वमें सतत चल रहे हैं। इसीके व्यापक कार्योंके आश्रयसे मनुष्यके कार्य होते हैं। उसके किये कर्मोंका आश्रय करके ही मनुष्य अपने कार्य करता है जैसे उसकी अग्निसे मनुष्य अपने अन्न पकाता है, उसके बीजसे यह खेती करता है इत्यादि, यह इन्द्रका योग्य मित्र है। व्यापक प्रभु जीवका मित्र है ॥ १९ ॥

२२८ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥
२२९ तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ २१ ॥

(२३)

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- १ वायुः; २-३ इन्द्रवायू; ४-६ मित्रावरुणौ; ७-९ इन्द्रो मरुत्वान्; १०-१२ विश्वे देवाः; १३-१५ पूषा; १६-२२, २३ (पूर्वार्धस्य) आपः; २३ (उत्तरार्धस्य), २४ अग्निः। छन्दः- १-१८ गायत्री; १९ पुर उष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा; २०, २२-२४ अनुष्टुप्।)

२३० तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे । वायो तान् प्रस्थितान् पिब ॥ १ ॥
२३१ उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
२३२ इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥
२३३ मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

अर्थ— [२२८] (विष्णोः तत् परमं पदं) विष्णुका वह परम स्थान (दिवि आततं चक्षुः इव) द्युलोकमें फैले हुए प्रकाशके समान (सूरयः सदा पश्यन्ति) ज्ञानी सदा देखते हैं ॥ २० ॥

[२२९] (विष्णोः यत् परमं पदं) विष्णुका जो पद है (तत् विपन्यवः) उसे कर्मकुशल (जागृवांसः विप्रासः) जाग्रत रहनेवाले ज्ञानी (सं इन्धते) सम्यक् प्रकाशित हुआ देखते हैं ॥ २१ ॥

[२३]

[२३०] (हे वायो) हे वायो! (इमे सोमासः सुताः) ये सोमरस निचोडे गए हैं (तीव्राः आशीर्वन्तः) ये तीखे हैं अतः इनमें दुग्धादि मिलाये हैं। (आ गहि) यहाँ आओ (प्रस्थितान् तान् पिब) और यहां रखे हुए इन रसोंको पीओ ॥ १ ॥

[२३१] (दिविस्पृशा) द्युलोकको स्पर्श करनेवाले (उभा देवा इन्द्रवायू) इन दोनों इन्द्र और वायु देवोंको (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसके पान करनेके लिये (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

[२३२] (सहस्राक्षा) सहस्रों आंखोंवाले (धियः पती) बुद्धिके अधिपति (मनोजुवा) मन जैसे वेगवान् (इन्द्रवायू) ये इन्द्र और वायु हैं, (विप्राः ऊतये हवन्ते) इनको ज्ञानी लोग अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[२३३] (वयं) हम (मित्रं वरुणं च) मित्रको और वरुणको (सोमपीतये हवामहे) सोमपानके लिये बुलाते हैं। (जज्ञाना पूतदक्षसा) वे दोनों बडे ज्ञानी और पवित्रकार्यके लिये अपने बलका उपयोग करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस व्यापक प्रभुका वह परम स्थान है जो आकाशमें है जैसे प्रकाशित हुए सूर्यको मानव देखते हैं, उसी तरह ज्ञानी लोग सदा उसे देखते हैं। प्रत्येक वस्तुमें वे उसके कार्यको स्पष्टताके साथ सदा देखते हैं ॥ २० ॥

व्यापक प्रभुका वह स्थान है कि जो कर्मकुशल, जगनेवाले ज्ञानी सदा प्रकाशित अग्निके समान सर्वत्र प्रकाशित रूपमें देखते हैं ॥ २१ ॥

सोमरस तीखे होते हैं। अतः वैसे ही उसका पान करना अशक्य है। इसीलिए उसमें जल, दूध, दही आदि मिला कर पिया जाता है। कुछ शहद भी मिलाते हैं और इस प्रकार इसे तैय्यार करके इसकी आहुति डाली जाती है ॥ १ ॥

इन्द्र और वायु ये दोनों क्षत्रिय देव हैं। ये आकाशमें विमानोंसे संचार करनेवाले, हजारों आंखोंवाले अर्थात् हजारों गुप्तचरोंके द्वारा अपने तथा शत्रु देशकी जानकारी रखते हैं और अपनी राज्यव्यवस्था करते हैं। ये श्रेष्ठ राजाओंके गुण हैं ॥ २-३ ॥

मित्र और वरुण ये राजाके गुण हैं। राजा सबके हितकर्ता और वरण किए जानेके योग्य हों। ये दोनों देव ज्ञानी और पवित्र कार्य करनेमें ही अपने बलका उपयोग करते हैं, कभी भी बुरे कार्यमें अपनी शक्ति नहीं गँवाते ॥ ४ ॥

*

२३४ ऋतेन यावृतावृधा—वृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥
२३५ वरुणः प्राविता भुवन् मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥
२३६ मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥
२३७ इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥
२३८ हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥
२३९ विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥
२४० जयतामिव तन्यतु—र्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥
२४१ हस्काराद् विद्युतस्पर्य—ऽतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

अर्थ— [२३४] (यौ ऋतेन ऋतावृधौ) जो सरलतासे सन्मार्गकी वृद्धि करनेवाले (ऋतस्य ज्योतिषः पती) और सन्मार्गकी ज्योतिके पालनकर्ता हैं (ता मित्रावरुणा हुवे) उन मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूं ॥ ५ ॥

[२३५] (वरुणः प्राविता भुवत्) वरुण हमारी विशेष सुरक्षा करता है (मित्रः विश्वाभिः ऊतिभिः) मित्र भी सब सुरक्षाके साधनोंसे हमारी सुरक्षा करता है, वे दोनों (नः सुराधसः करतां) हमें उत्तम धनोंसे युक्त करें ॥ ६ ॥

[२३६] (मरुत्वन्तं इन्द्रं) मरुतोंके साथ इन्द्रको (सोमपीतये आ हवामहे) हम सोमपानके लिये बुलाते हैं। (गणेन सजूः तृम्पतु) वह मरुद्गणके साथ तृप्त हो ॥ ७ ॥

[२३७] (हे विश्वे देवासः) हे सब देवो मरुद्गणो ! (इन्द्रज्येष्ठाः पूषरातयः) तुम्हारे अन्दर इन्द्र श्रेष्ठ है, पूषाके समान तुम्हारे दान हैं, (मरुद्गणाः) ऐसे मरुतो (मम हवं श्रुत) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ८ ॥

[२३८] (हे सुदानवः) हे उत्तम दाता मरुतो ! (सहसा युजा इन्द्रेण) बलवान् और अपने साथी इन्द्रके साथ रहकर (वृत्रं हतं) वृत्रका वध करो (दुःशंसः नः मा ईशत) कोई दुष्ट हमारा स्वामी न बन बैठे ॥ ९ ॥

[२३९] (विश्वान् मरुतः देवान्) सब मरुत् देवोंको (सोमपीतये हवामहे) सोमपानके लिये हम बुलाते हैं (हि उग्राः पृश्निमातरः) वे बडे शूरवीर हैं और भूमिको माता मानते हैं ॥ १० ॥

[२४०] (यत् नरः शुभं याथन) जब वे नेता शुभ कार्यके लिये आगे बढते हैं तब (जयतां इव) विजयी लोगोंकी तरह (मरुतां तन्यतुः) मरुतोंका शब्द (धृष्णुया एति) बडी वीरताके साथ होता रहता है ॥ ११ ॥

[२४१] (हस्कारात् विद्युतः अतः परि जाताः) प्रकाशित हुई विद्युत्में उत्पन्न हुए (मरुतः) मरुद्वीर (नः अवन्तुः) हमारी रक्षा करें (मृळयन्तु) और हमें सुख देवें ॥ १२ ॥

भावार्थ— ये दोनों सरल मार्गसे सत्यकी वृद्धि करते हैं । सत्य एवं उन्नतिके लिए कभी भी ये कुमार्गका सहारा नहीं लेते । इस प्रकार ये उत्तम मार्गसे सत्यकी ज्योतिकी रक्षा करते हैं । सत्यके मार्ग पर चलनेवाला सदा ज्योतिर्युक्त और तेजस्वी होता है ॥ ५ ॥

ये अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करते हैं, इनके पास सुरक्षाके अत्युत्तम साधन हैं । जिसकी ये सुरक्षा करते हैं उसे ये सुराधस् अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य या उत्तम सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ ६ ॥

मरुद्गण अर्थात् राष्ट्रके सैनिक अपने राजाके साथ आनन्दित हों, तथा इन्द्र अर्थात् राजाके समान श्रेष्ठ तथा पूषा अर्थात् पोषण करनेवाले वैश्यके समान सैनिक अपनी वीरतासे राष्ट्रके शत्रुओंका वध करें, ताकि कोई दूसरा दुष्ट राष्ट्रका स्वामी न बन सके ॥ ७–९ ॥

मरुत् देव बडे शूरवीर और भूमिको माता मानकर उसकी हरतरहसे सुरक्षा करते हैं । और जब वे किसी शुभ कामको करनेके लिए जाते हैं, तब वे बडे हर्षित होते हैं और तब उनका शब्द बहुत बडा होता है । ये विद्युत्से उत्पन्न होते हैं । विद्युत्से उत्पन्न होनेकी बातसे ऐसा प्रतीत होता है कि ये मरुत् मेघ या वर्षाकी धारायें हैं ॥ १०–१२ ॥

२४२ आ पूषञ्चित्रबर्हिष - माघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥

२४३ पूषा राजानमाघृणि - रपगूळ्हं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥ १४ ॥

२४४ उतो स मह्यमिन्दुभिः षड् युक्ताँ अनुसेषिधत् । गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥ १५ ॥

२४५ अम्बयो यन्त्यध्वभि - र्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १६ ॥

२४६ अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥

२४७ अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥

२४८ अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषज - मपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

अर्थ— [२४२] (हे आघृणे आज पूषन्) हे दीप्तिमन् शीघ्रगन्ता पूषा देव! (चित्रबर्हिषं धरुणं) तुम सुन्दर तेजवाले तथा धारकशक्ति बढानेवाले सोमको (दिवः आ) द्युलोकसे उसी प्रकार ले आओ (यथा नष्टं पशुं आ) जिस तरह गुम हुए पशुको ढूंढकर लाते हैं ॥ १३ ॥

[२४३] (आघृणिः पूषा) तेजस्वी पूषाने (अपगूळ्हं, गुहाहितं) छिपे हुए, गुहामें रहनेवाले, (चित्रबर्हिषं राजानं) विचित्र सुगंधिवाले सोम राजाको (अविन्दत्) प्राप्त किया ॥ १४ ॥

[२४४] (उतो स मह्यं) और वह मेरे लिये (इन्दुभिः युक्तान् षट्) सोमोंसे युक्त छः ऋतुओंको (अनुसेषिधत्,) बारबार उसी तरह लाया, (गोभिः यवं न चर्कृषत्) जिस तरह किसान बैलोंसे बारबार खेत जोतता है ॥ १५ ॥

[२४५] (अध्वरीयतां जामयः) यज्ञ करनेवालोंके सहायक (अम्बयः) माताओंके समान ये जलप्रवाह (मधुना पयः पृञ्चन्तीः) अपने मधुर रसको दूधमें मिलाकर (अध्वभिः यन्ति) अपने मार्गोंसे जा रहे हैं ॥ १६ ॥

[२४६] (याः अमूः सूर्ये उप) जो यह जल सूर्यके सम्मुख हैं, (याभिः वा सह सूर्यः) अथवा जिनके साथ सूर्य है (ताः नः अध्वरं हिन्वन्तु) वे जलप्रवाह हमारे यज्ञको आनन्दसे प्राप्त हों ॥ १७ ॥

[२४७] (नः गावः यत्र पिबन्ति) हमारी गायें जिस जलका पान करती हैं, (आपः देवीः उपह्वये) उसी जलकी हम प्रशंसा गाते हैं (सिन्धुभ्यः हविः कर्त्वं) नदियोंके लिये हम हवि अर्पण करते हैं ॥ १८ ॥

[२४८] (अप्सु अन्तः अमृतं) जलके भीतर अमृत है, (अप्सु भेषजं) जलमें औषधि गुण हैं (उत अपां प्रशस्तये) ऐसे जलोंकी प्रशंसा करनेके लिये (देवाः वाजिनः भवत) हे देवो ! तुम उत्साही बनो ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह सोम उत्तम सुगंधिवाला तथा स्थिर रहनेवाला है । यह द्युलोक अर्थात् आठ दस हजार फुटकी ऊंचाई पर मिलता है । हिमालयके ७–१० हजार फुटकी ऊंचाई पर मिलनेवाला सोम उत्तम माना जाता है । इसलिए इसका प्राप्त करना सरल नहीं है । इसे बहुत ढूंढना पडता है । जैसे खोये हुए पशुको ढूंढना पडता है, उसी प्रकार इसे खोजना पडता है ॥ १३ ॥

यह सोम बहुत गुप्त रहता है । इसके विशेषज्ञ ही इसको पहचान पाते हैं, इसलिए यह गुहामें रहता है । यह तेजस्वी है इसके पत्ते और रस अन्धेरेमें चमकते हैं ॥ १४ ॥

सोम तेज और सामर्थ्य प्रदान करनेवाला है । इसके साथ छहों ऋतुयें रहती हैं अर्थात् यह बारहमासों उगता है । इसलिए यह सदा प्राप्य है और यह बारबार लाया जाता है ॥ १५ ॥

जल सब प्रकारसे मनुष्योंका हित करता है । जैसे माताएं और बहिनें हित करती हैं, वैसाही जल प्राणियोंका हित करता है ॥ १६ ॥

जल सूर्यके सम्मुख रहे अर्थात् वह सूर्य-किरणोंके साथ संबंध रखे, सूर्य-किरणें उसपर पडती रहें । ऐसा जल हिंसा नहीं करता अर्थात् अनेक दोषोंको दूर करता है और प्राणीको सुरक्षित रखता है ॥ १७ ॥

जिन नदियोंमें हमारी गौवें जलपान करती हैं, वे नदियाँ स्तुतिके योग्य हैं, उन नदियोंके लिये हमें हवि अर्पण करना योग्य है ॥ १८ ॥

२४९ अप्सु मे सोमो अब्रवी—दुन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशंभुव—मापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० ॥
२५० आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥
२५१ इदमापः प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि ।
यद् वाहमभिदुद्रोह यद् वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥
२५२ आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥
२५३ सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ २४ ॥

अर्थ— [२४९] (सोमः मे अब्रवीत्) सोमने मुझसे कहा कि— (अप्सु अन्तः विश्वानि भेषजा) 'जलोंके अन्दर सब औषधियाँ हैं (विश्वशंभुवं अग्निं) सबको सुख देनेवाला अग्नि है (विश्वभेषजीः आपः च) और सब तरहकी दवाईयाँ जल देता है ' ॥ २० ॥

[२५०] हे (आपः) हे जलो ! (मम तन्वे) मेरे शरीरके लिये (वरूथं भेषजं पृणीत) संरक्षक औषधि देओ (ज्योक् च सूर्यं दृशे) जिससे निरोग होकर मैं बहुत कालतक सूर्यको देखता रहूं ॥ २१ ॥

[२५१] (मयि यत् किं च दुरितं) मुझमें जो दोष हो (यत् वा अहं अभिदुद्रोह) जो मैंने द्रोह किया हो (यत् वा शेपे) जो मैंने शाप दिया हो (उत अनृतं) जो असत्य भाषण किया हो (इदं आपः प्र वहत) यह सब दोष ये जल मेरे शरीरसे बाहर बहा कर ले जावें और मैं शुद्ध बन जाऊं ॥ २२ ॥

[२५२] (अद्य आपः अनु अचारिषं) आज जलमें मैं प्रविष्ट हुआ हूं (रसेन सं अगस्महि) मैं इस जलके रसके साथ संमिलित हुआ हूं (हे अग्ने !) हे अग्ने ! (पयस्वान् आ गहि) तू जलमें स्थित है, मेरे पास आ (तं मा वर्चसा सं सृज) और उस मुझे तेजसे युक्त कर ॥ २३ ॥

[२५३] (हे अग्ने) हे अग्ने ! (मा वर्चसा सं सृज) मुझे तेजसे युक्त कर (प्रजया सं, आयुषा सं) प्रजा और दीर्घ आयुसे युक्त कर, (देवाः अस्य मे विद्युः) देव मेरे इस अनुष्ठानको जानें (इन्द्रः ऋषिभिः सह विद्यात्) इन्द्र ऋषियोंके साथ इसको जाने ॥ २४ ॥

भावार्थ— जलमें अमृत है अर्थात् अपमृत्युको दूर करनेका गुण है । जलमें औषधिके गुण धर्म हैं । इसलिए जल प्रशंसाके योग्य है ॥ १९ ॥

औषधियोंका राजा सोम है, उसका कहना है कि ' जलमें सब औषधियां हैं, जलमें विश्वको सुख देनेवाली अग्नि है । और सब दवाइयां जलमें हैं ' ॥ २० ॥

जल मेरे शरीरको औषधि गुण देवे और मुझे दीर्घायु बनावे । मैं दीर्घ आयुतक सूर्यको देखना चाहता हूँ अर्थात् मेरी दृष्टि दीर्घआयु तक उत्तम रहे ॥ २१ ॥

मुझमें जो दोष है, द्रोह भाव है, शाप देनेका दुर्गुण है, असत्य है, वह सब दोष जल मेरे शरीरसे दूर बहा दे । अर्थात् जल चिकित्सासे रोगबीज दूर होते हैं, मनके दुष्ट भाव दूर होते हैं, गालियां देने और असत्य बोलनेकी दुष्प्रवृत्ति दूर होती है । जलसे शरीर निर्दोष होकर मन और वाणीकी भी शुद्धता होती है ॥ २२ ॥

जलमें प्रवेश करके अथवा जलको शरीरमें प्रवेश करा कर जलके रसके साथ मेरे शरीरका संयोग हुआ है । जलके अन्तर्गत उष्णता भी मेरे शरीरकी उष्णतासे मिल चुकी है, इससे मेरा तेज बढेगा ॥ २३ ॥

जलकी अग्नि मुझे तेजस्विता, सुप्रजा और दीर्घायु प्रदान करे । सब देव और इन्द्र तथा सब ऋषि इस कार्यके लिए मेरी सहायता करें, अर्थात् इन सबकी सहायताके साथ मैं तेजस्वी, वर्चस्वी, दीर्घायु, और सुप्रजावान् बनूं ॥ २४ ॥

(२४)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। देवताः- १ कः (प्रजापतिः); २ अग्निः, ३-४ सविता, ५ भगो वा, ६-१५ वरुणः। छन्दः- १, २, ६-१५ त्रिष्टुप्, ३-५ गायत्री।)

२५४ कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥
२५५ अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥
२५६ अभि त्वा देव सवित—रीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे ॥ ३ ॥
२५७ यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः। अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥
२५८ भगभक्तस्य ते वय—मुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥

[२४]

अर्थ— [२५४] (अमृतानां कतमस्य नूनं कस्य देवस्य) हम अमर देवोंमेंसे किस देवके (चारु नाम मनामहे) शुभनामका मनन करें (कः नः मह्यै अदितये पुनः दात्) कौन देव भला मुझे बडी अदितिके पास पुनः देगा (पितरं च मातरं च दृशेयं) जिससे मैं पिताको और माताको देख सकूं ॥ १ ॥

[२५५] (वयं अमृतानां प्रथमस्य अग्नेः देवस्य) हम अमर देवोंमें पहले अग्नि देवके (चारु नाम मनामहे) शुभनामका मनन करें। (सः नः मह्यै अदितये पुनः दात्) वह मुझे बडी अदितिके पास पुनः देगा (पितरं च मातरं च दृशेयं) जिससे मैं पिताको और माताको देख सकूंगा ॥ २ ॥

[२५६] (हे सदा अवन् सवितः देव) हे सर्वदा सुरक्षा करनेवाले सविता देव! (वार्याणां ईशानं त्वा) तुम स्वीकार करने योग्य धनोंके स्वामी हो, इसलिये तुम्हारे पास (भागं अभि ईमहे) उपभोगके योग्य धनको हम मांगते हैं ॥ ३ ॥

[२५७] (यः हि चित् इत्था शशमानः) जो इसतरहसे प्रशंसायोग्य (पुरा निदः) निंदकोंसे दूर रहनेवाला (अद्वेषः) और शत्रु जिसके पास नहीं पहुंचते (भगः) ऐसा भाग्य (ते हस्तयोः दधे) तुमने अपने दोनों हाथोंमें धारण किया है ॥ ४ ॥

[२५८] (ते वयं) वे हम, (भगभक्तस्य) भाग्यका बंटवारा करनेवाले (तव अवसा उदशेम) तुम्हारी सुरक्षासे उन्नतिको प्राप्त करें (रायः मूर्धानं आरभे) तथा धनके शिखर पर चढकर बडे कर्तव्योंका आरंभ करें ॥ ५ ॥

भावार्थ— (प्रश्न) साधक जिज्ञासा करता है, कि हम अनेकों अमर देवोंमेंसे किस देवका मनन करें, कौन देव हम सबको अदितिके पास देव बननेके लिए भेजता है? तथा कौन हमें माता पिताके बारबार दर्शन करवाता है? ॥ १ ॥

(उत्तर) सब देवोंमें अग्नि प्रथम अर्थात् मुख्य है, अतः उसीके सुन्दर नामका मनन करना चाहिए। उसके नामका अर्थके साथ मनन करते हुए जप करना चाहिए। वह अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। वही अदिति अर्थात् अमरता या स्वच्छन्दावस्थाकी तरफ प्रेरित करता है और वही उत्तम कर्म उत्तम करनेके लिए बारबार माता पिताके दर्शन करवाता है अर्थात् बारबार मनुष्य जन्म देता है ॥ २ ॥

सविता देव स्वीकार करने योग्य धनोंका स्वामी है। इसीलिए प्रशंसनीय, निन्दाके अयोग्य और शत्रुओंसे रहित भाग्यको वह धारण करता है। उसकी उपासना करनेवाले भी इसी प्रकार भाग्यशाली बनते हैं ॥ ३-४ ॥

यह सविता सबको अपने कर्मोंके अनुसार भाग्य देनेवाला है। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह उन्नतिके शिखर पर चढकर भी उत्तम कर्म ही करे। धनवान् होकर अहंकारी न बने ॥ ५ ॥

२५९ नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्—न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥

२६० अबुध्ने राजा वरुणो वनस्यो—र्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषा—मस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७ ॥

२६१ उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उं ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽक—रुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥

२६२ शतं ते राजन् भिषजः सहस्र—मुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९ ॥

अर्थ— [२५९] (पतयन्तः अमी वयः चन) हे वरुण देव ! ये उडनेवाले पक्षी (ते क्षत्रं नहि आपुः) तेरे पराक्रमका अन्त नहीं प्राप्त कर सकते (सहः न) तथा तेरा बल (मन्युं न) तथा उत्साह भी नहीं प्राप्त कर सकते, (अनिमिषं चरन्तीः) सतत गमन करनेवाले (इमाः आपः न) ये जलप्रवाह भी तेरी गतिको नहीं जान सकते (ये वातस्य अभ्वं प्रमिनन्ति, न) और जो वायुके वेगको रोकते हैं, वे भी तेरे सामर्थ्यको लांघ नहीं सकते ॥ ६ ॥

[२६०] (पूतदक्षः राजा वरुणः) पवित्र कार्यके लिये अपना बल लगानेवाला राजा वरुण (वनस्य स्तूपं) वनके स्तंभको (अबुध्ने ऊर्ध्वं ददते) आधाररहित आकाशमें ऊपर ही ऊपर धारण करता है (नीचिनाः स्थुः) इसकी शाखाएं नीचे होती हैं (एषां बुध्नः उपरि) इनका मूल ऊपर है, (अस्मे अन्तः) इसके मध्यमें (केतवः निहिताः स्युः) किरणें फैली रहती हैं ॥ ७ ॥

[२६१] (राजा वरुणः) राजा वरुणने (सूर्याय पन्थां) सूर्यके मार्गको (अनु-एतवै उ) उसके गमनके लिये (उरुं चकार हि) विस्तृत बनाया है (अपदे) स्थानरहित अन्तरिक्षमें (पादा प्रतिधातवे अकः) पांव रखनेके लिये स्थान भी बना दिया है (उत हृदया-विधः चित्) निःसन्देह हृदयको कष्ट पहुंचानेवाले शत्रुओंको (अप-वक्ता) वह देव निषेध करता हुआ सचेत करता है, वैसा न करनेकी आज्ञा देता है ॥ ८ ॥

[२६२] हे (राजन्) हे राजन् ! (ते शतं सहस्रं भिषजः) तेरे पास सैंकडों और हजारों औषधियाँ हैं (ते सुमतिः उर्वी गभीरा अस्तु) तेरी सुमति बडी विस्तृत और गम्भीर हो (निर्ऋतिं पराचैः) दुर्गतिको नीचें मुख करके (दूरे बाधस्व) दूर ही रोक रखो (कृतं चित् एनः) किये हुए पापसे (अस्मत् प्र मुमुग्धि) हमें मुक्त करो ॥ ९ ॥

भावार्थ— उस वरणीय प्रभुका पराक्रम इतना महान् और सर्वत्र फैला हुआ है कि द्यौमें उडनेवाले सुपर्ण आदि, पृथ्वी पर बहनेवाले जलप्रवाह तथा अन्तरिक्षमें बहनेवाली वायु भी उसके पराक्रमके अन्तका पता नहीं लगा सकते। तीनों लोकोंमें रहनेवाले उस प्रभुके अनुशासनका उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

वह पवित्र बलवाला वरणीय प्रभु जलके आधारभूत सूर्यको बिना किसी आधारके ऊपर द्युलोकमें लटकाये है। इस सूर्यकी शाखायें अर्थात् किरणें नीचेकी ओर आती हैं, पर इन किरणोंका मूल सूर्य ऊपर ही रहता है। तथा इस सूर्यकी किरणें अन्तरिक्षमें भी चमकती हैं ॥ ७ ॥

उसी वरुणने सूर्यके जानेके लिए इतना बडा विस्तृत द्युलोक बनाया और अन्तरिक्षमें भी वायुके संचार करनेके लिए स्थान बनाया। पृथ्वी पर भी सज्जनोंके लिए उत्तम मार्ग बनाता है और दुष्टोंको वह सीधे मार्ग पर चलनेके लिए बारबार प्रेरणा देता है ॥ ८ ॥

इस तेजस्वी वरुणके पास अनेकों औषध अर्थात् उपाय हैं, जिनके द्वारा वह सज्जनोंकी रक्षा करता है। वह सज्जनोंको उत्तम बुद्धि देकर दुर्गतिसे उनकी रक्षा करता है और पापसे उन्हें मुक्त करता है ॥ ९ ॥

२६३ अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद् दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥ १० ॥

२६४ तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान--स्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्यु--रुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ११ ॥

२६५ तदिन्नक्तं तद् दिवा मह्यमाहुस् तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२ ॥

२६६ शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस् त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद् विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

अर्थ—[२६३] (अमी ऋक्षाः) ये नक्षत्र (उच्चा निहितासः) ऊपर आकाशमें उच्च भागमें रखे हुए हैं (ये नक्तं ददृश्रे) ये रात्रीके समय दीखते हैं (दिवा कुह चित् ईयुः) पर ये दिनमें भला कहां चले जाते हैं ? (वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि) वरुण राजाके नियम अटूट हैं (विचाकशत् चन्द्रमाः नक्तं एति) विशेष चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रिमें आता है ॥ १० ॥

[२६४] (वरुण) हे वरुण देव ! (ब्रह्मणा वन्दमानः) मन्त्रके अनुसार तुम्हें वन्दन करता हुआ (तत् त्वा यामि) मैं वही दीर्घ आयु तुमसे मांगता हूँ (यजमानः) जो यज्ञ करनेवाला (हविर्भिः तत् आशास्ते) हविर्द्रव्यके अर्पणसे चाहता है (अहेळमानः बोधि) निरादर न करता हुआ तू हमारी इस प्रार्थनाको जान, हे (उरुशंस) बहुतों द्वारा प्रशंसित हुए देव ! (नः आयुः मा प्रमोषीः) हमारी आयुको मत घटा ॥ ११ ॥

[२६५] (तत् इत् नक्तं) वही निश्चयसे रात्रीमें, (तत् दिवा) और वही दिनमें (मह्यं आहुः) ज्ञानियोंने मुझसे कहा था (हृदः अयं केतः) मेरे हृदय स्थानमें रहनेवाला यह ज्ञान भी (तत् आ वि चष्टे) यही कह रहा है (गृभीतः शुनःशेपः) कि बन्धनमें पडे शुनःशेपने (यं अह्वत्) जिस वरुण देवकी प्रार्थना की थी (सः राजा वरुणः) वही राजा वरुण (अस्मान् मुमोक्तु) हम सबोंको मुक्त करे ॥ १२ ॥

[२६६] (त्रिषु द्रुपदेषु बद्धः) तीन स्तंभोंमें बंधे, (गृभीतः शुनःशेपः) अतः बन्धनमें पडे शुनःशेपने (आदित्यं अह्वत्) आदित्य वरुण देवकी प्रार्थना की थी (विद्वान् अदब्धः राजा वरुणः) कि ज्ञानी, न दबनेवाला राजा वरुण (पाशान् वि मुमोक्तु) इसके पाशोंको खोल देवे (एनं अव ससृज्यात्) और इसको मुक्त करे ॥ १३ ॥

भावार्थ— रातमें चमकनेवाले पर दिनमें अदृश्य हो जानेवाले ये तारे अधरमें लटक रहे हैं, एक दूसरेसे टकराते नहीं, कभी गिरते नहीं। चन्द्रमा भी अपने समय पर उदय होकर संसारको प्रकाशित करता है तथा अपने समय पर अस्त हो जाता है। ये सब राजा वरुणके नियमोंमें बंधे हुए चल रहे हैं, उसके नियम अटूट हैं, कोई भी उनको तोड नहीं सकता। इतना इस वरुणका प्रताप है ॥ १० ॥

सभी यज्ञ करनेवाले इस वरुणकी स्तुति करते और उससे दीर्घायुकी प्रार्थना करते हैं। वह भी अपने उपासकोंकी स्तुतियोंका निरादर न करता हुआ उनकी प्रार्थनाओं पर ध्यान देता है और उनकी आयु दीर्घ करता है ॥ ११ ॥

यदि (शुनः) कुत्तेकी तरह (शेप) कुवृत्तियोंमें पडा हुआ कामी पुरुष भी ज्ञानियोंके सत्संगमें रहता हुआ दिनरात वरुणका हृदयसे ध्यान करे, तो वह भी पापोंसे छूट सकता है ॥ १२ ॥

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों तरहकी पीडाओंके बंधनसे बंधा हुआ दुर्मार्गगामी मनुष्य जब प्रभुको हृदयसे प्रार्थना करता है, तो वह पाशोंसे छूटकर दुःखसे मुक्ति पा सकता है ॥ १३ ॥

२६७ अव॑ ते॒ हेळो॑ वरुण॒ नमो॑भि॒रव॑ य॒ज्ञेभि॑रीमहे ह॒विर्भिः॑ ।
क्षय॑न्न॒स्मभ्य॑मसुर प्रचेता॒ राज॒न्नेनां॑सि शिश्रथः कृ॒तानि॑ ॥ १४ ॥
२६८ उदु॑त्त॒मं व॑रुण॒ पाश॑म॒स्मदवा॑ध॒मं वि म॑ध्य॒मं श्र॑थाय ।
अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते तवाना॑गसो॒ अदि॑तये स्याम ॥ १५ ॥

(२५)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- वरुणः । छन्दः- गायत्री ।)

२६९ यच्चि॒द्धि ते॒ विशो॑ यथा॒ प्र दे॑व वरुण व्र॒तम् । मि॒नी॒मसि॒ द्यवि॑द्यवि ॥ १ ॥
२७० मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिही॒ळान॒स्य॑ रीरधः । मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥ २ ॥

अर्थ— [२६७] (वरुण) हे वरुण ! (ते हेळः) तेरे क्रोधको (नमोभिः अव ईमहे) हम अपने नमस्कारोंसे दूर करते हैं (हविर्भिः यज्ञेभिः) हविर्द्रव्योंके द्वारा तथा यज्ञोंसे भी तेरे क्रोधको हम (अव) दूर हटाते हैं (हे असुर प्रचेतः राजन्) हे जीवनशक्तिको प्रदान करनेवाले ज्ञानी राजन् ! (अस्मभ्यं क्षयन्) यहां हमारे कल्याण करनेके लिये निवास करता हुआ (कृतानि एनांसि शिश्रथः) तू हमारे किये पापोंको शिथिल करके विनष्ट कर ॥ १४ ॥

[२६८] (वरुण) हे वरुण ! (उत्तमं पाशं) हमारे इस उत्तम पाशको (अस्मत् उत् श्रथाय) हमसे शिथिल करो (अधमं अव श्रथाय) हमारे इस अधम पाशको नीचे करके शिथिल करो । (मध्यमं वि श्रथाय) हमारे इस मध्यम पाशको विशेष ढीला कर दो । (हे आदित्य) हे अदितिपुत्र वरुण देव ! (अथ वयं) अब हम (तव व्रते) तुम्हारे व्रतमें रहते हुए (अदितये) अदितिके लिये समर्पित होकर (अनागसः स्याम) पापरहित हों ॥ १५ ॥

[२५]

[२६९] (हे वरुण देव) हे वरुण देव ! (यथा विशः) जैसे अन्य मनुष्य (ते यत् चित् हि व्रतं) तेरे जो भी नियम हैं उनके करनेमें प्रमाद करते हैं वैसे (द्यवि द्यवि प्र मिनीमसि) प्रति दिन हम भी प्रमाद करते ही हैं ॥ १ ॥

[२७०] (जिहीळानस्य हत्नवे) तेरा निरादर करनेवालेका वध करनेके लिए (वधाय) ऊपर उठाये तेरे हाथके सामने (नः मा रीरधः) हमको मत खडा रख (हृणानस्य मन्यवे) तथा क्रुद्ध हुए तेरे क्रोधके सामने (मा) हमें मत खडा रख ॥ २ ॥

भावार्थ— वरुणका क्रोध बडा भयंकर होता है । जिस पर वह क्रोध करता है, उसे बंधनोंमें डालकर उसका नाश करता है । इसलिए उसके क्रोधसे सदा डर कर रहना चाहिए । वह वरुण जीवनशक्तिको प्रदान करनेवाला है और वह उत्तमतासे रहनेके लिए पापोंके बंधनको ढीला करता है ॥ १४ ॥

हर मानव तीन प्रकारके पाशोंसे बंधा हुआ है पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण ये तीन ऋण मनुष्यपर हैं या सत्व रज, तम इन तीन गुणोंके पाशसे बंधा हुआ मनुष्य उनसे प्रभावित होता है । इनको दूर कर तीनों ऋणोंसे उऋण होना या त्रिगुणातीत होना ही तीनों पाशोंसे मुक्त होना है । इनसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय वरुण प्रभुके नियमोंमें चलकर अमरता प्राप्त करना और पापरहित होना ही है ॥ १५ ॥

हे प्रभो ! जैसे सब अन्य मानव सदा प्रमाद करते रहते हैं, वैसे हमारे हाथसे भी प्रतिदिन अनेक प्रमाद होते रहते हैं, इसलिये हमारे प्रत्येक प्रमादके लिये तुम क्रोधित होकर हमें दण्डित मत करो । दयाकी दृष्टि हमारे ऊपर रखो ॥ १-२ ॥

२७१ वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३ ॥
२७२ परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥ ४ ॥
२७३ कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ ॥
२७४ तदित् समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥
२७५ वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥ ७ ॥
२७६ वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥

अर्थ— [२७१] (वरुण) हे वरुण ! (रथीः संदितं अश्वं न) जिस प्रकार रथी वीर अपने थके हुए घोडोंको शान्त करता है, (मृळीकाय ते मनः) उसी तरह सुख देनेवाले तेरे मनको (गीर्भिः वि सीमहि) स्तोत्रोंद्वारा हम विशेष प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

[२७२] (वयः वसतीः उप न) जिस तरह पक्षी अपने घोसलोंकी ओर दौडते हैं, (मे विमन्यवः) उसी तरह मेरी विशेष उत्साहित बुद्धियाँ (वस्यइष्टये हि) धनकी प्राप्तिके लिये (परा पतन्ति) दूर दूर दौड रही हैं ॥ ४ ॥

[२७३] (क्षत्रश्रियं नरं) पराक्रमके कारण शोभायमान नेता (उरुचक्षसं वरुणं) विशेष द्रष्टा वरुणको (कदा मृळीकाय आ करामहे) हम यहां कब सुखप्राप्तिके लिये बुलायेंगे ? ॥ ५ ॥

[२७४] (धृतव्रताय दाशुषे) व्रत धारण करनेवाले दाताके लिये (वेनन्ता) सुखकी इच्छा करनेवाले ये मित्र और वरुण (समानं तत इत् आशाते) समान भावसे वही हविष्यान्न चाहते हैं (न प्र युच्छतः) वे कभी उसका त्याग नहीं करते ॥ ६ ॥

[२७५] (अन्तरिक्षेण पततां वीनां) अन्तरिक्षमें उडनेवाले पक्षियोंका (पदं यः वेद) मार्ग जो जानते हैं (समुद्रियः नावः वेद) तथा जो समुद्रमें संचार करनेवाली नौकाओंका मार्ग भी जानते हैं ॥ ७ ॥

[२७६] (धृतव्रतः) नियमानुसार चलनेवाला वरुण देव (प्रजावतः द्वादशमासः वेद) प्रजाकी वृद्धि करनेवाले बारह महिनोंको जानता है (यः उपजायते) और जो तेरहवाँ महिना बीचमें उत्पन्न होता है (वेद) उसको भी जानता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे प्रभो ! जैसे थके घोडेपर उसका मालिक दया करके उसको विश्राम देता है, उस प्रकार मैं इस संसारसे त्रस्त और दुःखी हुआ हूं, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूं कि स्वामीकी तरह मुझपर दया करो और मुझे अपनी अतुल दयासे सुखी करो। मेरे योग्य कर्म न भी हों, तथापि तुम अपनी दया प्रकट करके मुझे सुखी करो। मैं तुम्हारी प्रार्थना ही कर सकता हूँ ॥ ३ ॥

जिस तरह पक्षी दिनभर इधर उधर घूमघाम करे शामको विश्रामके लिये अपने अपने घोंसलेकी ओर ही आते हैं, और वहां विश्राम पाते हैं, उसी तरह मेरी बुद्धियाँ और मेरी विचारधाराएं इस विश्वमें इधर उधर घूमती रहती हैं, परंतु फिर शान्तिकी और शाश्वत सुखकी इच्छासे तुम्हारे ही आश्रयमें आती हैं और वहीं शान्ति सुख और आनन्द पाती हैं ॥ ४॥

जो प्रभु सबको सुरक्षितता करनेका सामर्थ्य रखता है, जो विश्वका नेता और संचालक है, जो चारों ओर विशाल दृष्टिसे सबको यथातथ्य रीतिसे देखता है, जो सबसे श्रेष्ठ है, उस सुखदायी प्रभुकी हम सब मिलकर कब उपासना करेंगे ? कब वह हमारे सामने साक्षात् दर्शन देगा ? हम आतुर हुए हैं उसकी भक्ति करनेके लिये, अतः चाहते हैं कि उसके साक्षात्कारका समय शीघ्र प्राप्त हो और हम उस प्रभुकी आनन्दकी प्राप्ति होनेतक यथेच्छ उपासना करें ॥ ५ ॥

ये मित्र और वरुण ऐसे हैं कि जो व्रती और दाता पुरुषकी उन्नति करना चाहते हैं, वे कभी अपने भक्तका त्याग करते नहीं ॥ ६ ॥

२७७ वेद॒ वात॑स्य वर्त॒निमु॒रोर्ऋ॒ष्वस्य॑ बृह॒तः । वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते ॥ ९ ॥
२७८ नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒३॒॑स्वा । साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतु॑ः ॥ १० ॥
२७९ अतो॒ विश्वा॒न्यद्भु॑ता चिकि॒त्वाँ अ॒भि प॑श्यति । कृता॑नि॒ या च॒ कर्त्वा॑ ॥ ११ ॥
२८० स नो॑ वि॒श्वाहा॑ सु॒क्रतु॑रादि॒त्यः सु॒पथा॑ करत् । प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत् ॥ १२ ॥
२८१ बिभ्र॑द् द्रा॒पिं हि॑र॒ण्ययं॒ वरु॑णो वस्त नि॒र्णिज॑म् । परि॒ स्पशो॒ नि षे॑दिरे ॥ १३ ॥
२८२ न यं दिप्स॑न्ति दि॒प्सवो॒ न द्रुह्वा॑णो॒ जना॑नाम् । न दे॒वम॒भिमा॑तयः ॥ १४ ॥

अर्थ— [२७७] (उरोः ऋष्वस्य बृहतः वातस्य) विशाल महान् और बडे वायुके मार्गको (वर्तनिं वेद) भी जो जानते हैं (ये अध्यासते) तथा जो अधिष्ठाता होते हैं (वेद) उनको भी जानते हैं ॥ ९ ॥

[२७८] (धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः) नियमके अनुसार चलनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले वरुण देव (पस्त्यासु) प्रजाओंमें (साम्राज्याय आ नि ससाद) साम्राज्यके लिये आकर बैठता है ॥ १० ॥

[२७९] (अतः विश्वानि अद्भुता चिकित्वान्) इसलिये सब अद्भुत कर्मोंको करनेकी विधि जाननेवाला (या कृतानि) जो किया है, (च कर्त्वा) और जो करना है (अभि पश्यति) उस सबको पूर्णतासे देखता है ॥ ११ ॥

[२८०] (सुक्रतुः सः आदित्यः) उत्तम कर्म करनेवाला वह अदिति पुत्र वरुण देव (विश्वाहा नः सुपथा करत्) सर्वदा हमें सुपथसे चलनेवाला करे (नः आयूंषि प्र तारिषत्) और हमारी आयु बढावे ॥ १२ ॥

[२८१] (हिरण्ययं द्रापिं बिभ्रत् वरुणः) सुवर्णमय चोगा धारण करनेवाला वरुण देव (निर्णिजं वस्त) उसपर और तेजस्वी वस्त्र धारण करता है (स्पशः परि निषेदिरे) उसके दूत किरण चारों ओर फैले रहते हैं ॥ १३ ॥

[२८२] (दिप्सवः यं न दिप्सन्ति) घातक दुष्ट लोग जिससे दुष्टता नहीं कर सकते (जनानां द्रुह्वाणः न) लोगोंसे द्रोह करनेवाले जिससे द्रोह नहीं करते (अभिमातयः देवं न) शत्रु उस देवको पीडा नहीं देते ॥ १४ ॥

भावार्थ — वह प्रभु आकाशमें उडनेवाले पक्षियोंकी गति जानता है, कौनसा पक्षी कहांसे उडा है और कहां जायेगा यह सब उसको पता है, समुद्रमें इतस्ततः घूमनेवाली नौकाएं किस गतिसे घूम रही हैं, उनमेंसे कौनसी नौका अपने स्थानको ठीक तरह पहुंचेगी और कौनसी नहीं यह सब उस प्रभुको पता है। वर्षके बारह महिनोंमें और (तीसरे वर्ष आनेवाले) तेरहवें पुरुषोत्तम मासमें क्या उत्पन्न होता है और उससे प्रजाकी उन्नति कैसे होती है यह सब उस प्रभुको पता है। चारों ओर संचार करनेवाले महान् प्राण वायुकी गति कैसी होती है यह भी उसको पता है और इन सबपर जिनकी निगरानी है उन सब अधिष्ठाता देवताओंका भी यथायोग्य ज्ञान उस प्रभुको है ॥ ७–९ ॥

वह प्रभु अपने नियमोंके अनुसार सब कार्य यथायोग्य रीतिसे करता है, जो करता है वह उत्तम रीतिसे करता है, ऐसा वह सर्वश्रेष्ठ प्रभु सब प्रजाओंमें बैठता है और अपना साम्राज्य चलाता है। वहां रहकर विश्वमें क्या हो रहा है, क्या किया गया है और क्या करना चाहिये इसका यथायोग्य निरीक्षण करता है। वही उत्तम कार्य करनेवाला प्रभु सबका बंधनसे छुटकारा करा देनेके लिये सब मानवोंको उत्तम मार्गसे चलावे और सबसे उत्तम कर्म होनेके लिये उनको दीर्घ आयु भी देवे ॥ १०–१२ ॥

उस प्रभुके ऊपर सुवर्णके वस्त्रका आच्छादन है, मानो वह प्रभु जरी कपडे पहनकर और ऊपर वैसा ही दुपट्टा ओढता है। इसके दूत चारों ओर संपूर्ण विश्वमें उसीका कार्य करनेके लिये घूम रहे हैं। वे हम सबके चालचलनको देख रहे हैं। कोई दुष्ट शत्रु या द्रोही इस प्रभुको किसी तरह कष्ट नहीं दे सकता, इतना इसका सामर्थ्य है ॥ १३–१४ ॥

२८३ उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या । अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥
२८४ परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥
२८५ सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥
२८६ दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥
२८७ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय । त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥
२८८ त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥
२८९ उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥

अर्थ— [२८३] (उत यः मानुषेषु यशः आ चक्रे) और जिसने मनुष्योंमें यश फैलाया है (असामि आ) संपूर्णतया सब कुछ किया है (अस्माकं उदरेषु आ) हमारे पेटोंमें भी सुंदर रचना उसीने की है ॥ १५ ॥

[२८४] (उरुचक्षसं इच्छन्तीः) उस सर्वसाक्षी प्रभुकी इच्छा करनेवाली (मे धीतयः) मेरी बुद्धियाँ (गावः न गव्यूतीः अनु) जिस तरह गौवें गोचर भूमिके पास जाती हैं (परा यन्ति) उसी तरह उसीके पास दूरतक जाती हैं ॥ १६ ॥

[२८५] (यतः मे मधु आभृतं) जो मैं यह मधु भरकर लाया हूँ (होता इव प्रियं क्षदसे) हवनकर्ताके समान इस प्रिय मधुर रसका तुम भक्षण करो (पुनः नु सं वोचावहै) फिर हम दोनों मिलकर बातें करेंगे ॥ १७ ॥

[२८६] (विश्वदर्शतं दर्शं नु) विश्वरूपमें दर्शनीय देवको निःसंदेह मैंने देख लिया है । (क्षमि रथं अधि दर्शं) भूमिपर उसके रथको मैंने देखा है (एता मे गिरः जुषत) ये मेरी स्तुतियां उसने स्वीकार की हैं ॥ १८ ॥

[२८७] (वरुण) हे वरुण ! (इमं मे हवं श्रुधि) मेरी यह प्रार्थना सुन (अद्य मृळय च) आज मुझे सुखी कर (अवस्युः त्वां आ चके) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाला मैं तेरी स्तुति करता हूँ ॥ १९ ॥

[२८८] (मेधिर) हे बुद्धिसे प्रकाशित होनेवाले देव ! (त्वं दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि) तू द्युलोक, भूलोक और सब विश्वपर राज्य करता है (सः यामनि प्रति श्रुधि) वह तू हमारी प्रार्थनाके पश्चात् उसका उत्तर दे ॥ २० ॥

[२८९] (नः उत्तमं पाशं उत् मुमुग्धि) हमारे उत्तम पाशको खुला करो (मध्यमं वि चृत) हमारे मध्यम पाशको ढीला करो (जीवसे अधमानि अव) और दीर्घ जीवनके लिये मेरे अधम पाशोंको भी खोल दो ॥ २१ ॥

भावार्थ— उस प्रभुने ही मानवोंमेंसे कईयोंको यशस्वी किया है । वह जो करता है वह कभी अधूरा नहीं करता है वह यथायोग्य, यथातथ्य परिपूर्ण करता है अतः उसमें कभी त्रुटि नहीं होती । मनुष्यके पेटमें ही देखिये उसने कैसी उत्तम रचना की है कि जिससे खाये अन्नसे अन्दर ही अन्दरसे शरीरका पोषण होता रहता है । ऐसा ही सब विश्वभरमें हो रहा है ॥ १५ ॥

जैसी गौवें घासकी भूमिके पास दौडती हुई जाती है, वैसी ही मेरी बुद्धियाँ इसी प्रभुके पास दौड रहीं हैं । इस प्रभुको अर्पण करनेके लिये जो भी मधुरतायुक्त रस मुझे मिला है वह सब मैंने उसको अर्पण करनेके लिये इकट्ठा करके रखा है । उसको वह स्वीकार करे और पश्चात् उस प्रभुसे मेरा दिल खोलकर वार्तालाप होता रहे ॥ १६–१७ ॥

मैंने उस विश्वरूपमें दिखाई देनेवाले प्रभुका साक्षात् दर्शन किया है । जैसे पृथ्वीपर खडा रथ दीखता है, वैसे ही वह प्रभु मेरे सम्मुख खडा है । वह अब मेरी प्रार्थना सुने । हे प्रभो ! मेरी प्रार्थना सुनो ! आज ही मुझे सुखी करो । अपनी सुरक्षाके लिये मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूं । अतः हे प्रभु मुझे आनन्दमय बनाओ । हे बुद्धिप्रदाता प्रभो ! तुम्हारा साम्राज्य आकाशसे पृथ्वीतक सर्वत्र अखण्ड है । वह हमारी प्रार्थनाओंका श्रवण करके उनको पूर्ण करे और हमें पूर्ण आनन्दका भागी बनावे ॥ १८–२० ॥

हे प्रभो ! ऊपरके उत्तम मध्यम और कनिष्ठ ऐसे तीनों पाश ढीले करो और मुझे मुक्त करो ॥ २१ ॥

(२६)

(ऋषिः– आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। देवता– अग्निः। छन्दः– गायत्री।)

२९० वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते। सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥
२९१ नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः। अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥
२९२ आ हि ष्मा सूनवे पिताऽऽपिर्यजत्यापये। सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥
२९३ आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा। सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥
२९४ पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥
२९५ यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे। त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥

---

[२६]

अर्थ— [२९०] (मियेध्य ऊर्जां पते) हे पवित्र और बलोंके स्वामी ! (वस्त्राणि वसिष्व हि) वस्त्रोंको पहनो (यः नः इमं अध्वरं यज) और वह तू हमारे इस यज्ञका यजन कर ॥ १ ॥

[२९१] (सदा यविष्ठ अग्ने) हे सदा तरुण अग्नि देव ! (नः वरेण्यः होता) तुम हमारे श्रेष्ठ होता हो (मन्मभिः दिवित्मता वचः) वह तुम हमारे मननीय दिव्य वचन सुननेके लिये (नि) इस यज्ञमें आकर यहां बैठो ॥२॥

[२९२] (वरेण्यः पिता सूनवे) श्रेष्ठ पिता अपने पुत्रकी (आपिः आपये) बन्धु अपने बन्धुकी (सखा सख्ये आ) और मित्र अपने मित्रको सहायता करता है (यजति स्म) वैसे ही यह अग्नि देव हमें सहायता देवे ॥ ३ ॥

[२९३] (रिशादसः वरुणः मित्रः अर्यमा) शत्रुनाशक वरुण, मित्र और अर्यमा (नः बर्हिः आ सीदन्तु) हमारे आसनोंपर बैठे (यथा मनुषः) जैसे मनुष्य बैठते हैं अथवा जैसे मनुके यज्ञमें बैठे थे ॥ ४ ॥

[२९४] (पूर्व्यः होतः) हे प्राचीन होता! (नः अस्य सख्यस्य च मन्दस्व) हमारे इस मित्रभावसे तुम प्रसन्न हो (इमाः गिरः उ सु श्रुधि) और हमारा यह भाषण उत्तम रीतिसे सुनो ॥ ५ ॥

[२९५] (यत् चित् हि शश्वता) जिस तरह शाश्वत कालसे (तना) और सनातन रीतिसे (देवंदेवं यजामहे) प्रत्येक देवका हम यजन करते आये हैं (हविः त्वे इत् हूयते) वही हवि तुम्हें दी जा रही है ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे सबसे अत्यंत पवित्र और सब प्रकारका बल देनेवाले प्रभो ! तुम अपने प्रकाशरूपी वस्त्रोंको पहनकर प्रकट हो आओ और हम जिस यज्ञका प्रारंभ कर रहे हैं उसको यथायोग्य रीतिसे संपन्न करो ॥ १ ॥

हे प्रभो ! तुम सदा तरुण हो, बाल्य और वार्धक्य ये अवस्थाएं तुम्हारे लिये नहीं हैं, तुम ही हमारे श्रेष्ठ सहायक हो, इसलिये आओ, यहां विराजमान होकर हमारा काव्यगायन सुनो ॥ २ ॥

जैसे पिता प्रेमसे अपने पुत्रकी सहायता करता है, भाई अपने भाईको हर प्रकारकी मदद पहुंचाता है, और मित्र अपने मित्रका सदा हित ही करता है, वैसे ही तुम हमारे पिता, बन्धु और मित्र हो अतः हम सबकी सहायता करो ॥ ३ ॥

जैसे मनुष्य अपने मित्रके घरमें आकर वहां प्रेमसे बैठते हैं, वैसे ही तुम मित्रभावसे आकर हमारे यहां बैठो और हमारे सहायक बनो ॥ ४ ॥

तुम सनातन यज्ञकर्ता हो। मित्रभावसे किये इस हमारे आदरातिथ्यसे तुम आनन्द प्रसन्न होओ और हमारा भाषण सुनो ॥ ५ ॥

जैसे सनातन समयसे देवताओंका सत्कार करनेकी रीति चली आ रही है, उसी पद्धतिके अनुसार हम तुम्हारा हविष्यान्नका अर्पण करके पूजन कर रहे हैं ॥ ६ ॥

२९६ प्रियो नो अस्तु विश्पति-र्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥
२९७ स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥
२९८ अथा न उभयेषा-ममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥
२९९ विश्वेभिरग्ने अग्निभि-रिमं यज्ञमिदं वचः । चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥

(२७)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- १-१२ अग्निः १३ देवाः । छन्दः- १-१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप् ।

३०० अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥
३०१ स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

अर्थ— [२९६] (विश्पतिः, होता, मन्द्रः, वरेण्यः) प्रजाओंका पालक, हवनकर्ता, आनन्दित और श्रेष्ठ यह अग्नि (नः प्रियः अस्तु) हमारा प्रिय हो (वयं स्वग्नयः प्रियाः) हम भी उत्तम अग्निसे युक्त होकर उसके प्रिय बनें ॥ ७ ॥

[२९७] (स्वग्नयः देवासः) उत्तम अग्निसे युक्त देवोंने (नः वार्यं दधिरे) हमारे लिये श्रेष्ठ ऐश्वर्य धारण कर रखा है (स्वग्नयः च मनामहे) इसलिये हम उत्तम अग्निसे युक्त होकर इस देवके नामका मनन करते हैं ॥ ८ ॥

[२९८] (अमृत) हे अमर देव! (अथ मर्त्यानां नः) तुम अमर हो और हम मर्त्य हैं (उभयेषां मिथः प्रशस्तयः सन्तु) अतः हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें ॥ ९ ॥

[२९९] (सहसः यहो अग्ने) हे बलके साथ प्रकट होनेवाले अग्निदेव! (विश्वेभिः अग्निभिः) सब अग्नियोंके साथ (इमं यज्ञं इदं वचः) यहां इस यज्ञको और इस स्तोत्रको (चनः धाः) स्वीकार करके हमारे लिये पर्याप्त अन्नका प्रदान करो ॥ १० ॥

[२७]

[३००] (वारवन्तं अश्वं न) बालोंवाले-अयालवाले सुंदर घोडेके समान (अध्वराणां सम्राजन्तं अग्निं) अहिंसायुक्त यज्ञकर्मको निभानेवाले, ज्वालाओंसे प्रदीप्त अग्निको (नमोभिः वन्दध्यै) हम नमस्कारोंसे सुपूजित करते हैं ॥ १ ॥

[३०१] (शवसा सूनुः) बलके लिये ही उत्पन्न हुए (पृथुप्रगामा) सर्वत्र गमन करनेवाले (सः घा नः सुशेवः) वह अग्निदेव निश्चयसे हमारे लिये सुखसे सेवा करनेयोग्य (अस्माकं मीढ्वान् बभूयात्) तथा हमारे लिये सुख देनेवाला हो ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम ही हम सबके सच्चे पालनकर्ता हो, तुम ही सबसे श्रेष्ठ हो । हमारे लिये तुम ही सबके हर्ष बढानेवाले हो, तुम ही सबसे श्रेष्ठ हो । हमारे लिये तुम ही अत्यंत प्रिय हो । हम भी इस शुभ कर्म द्वारा तुम्हारे लिये प्रिय होकर रहें ॥ ७ ॥

उत्तम तेजस्वी देवोंने अनेक प्रकारसे उत्तमसे उत्तम धन ऐश्वर्य आदि हमारे हितके लिये यहां धारण किया है, हम भी तेजस्वी बनकर उसका अच्छीतरह मनन करें ॥ ८ ॥

हे देव ! तुम अमर हो और हम मरणधर्मा हैं । हम और तुम मिलकर परस्पर सहायक हों और अपूर्व यश निर्माण करनेवाले बनें ॥ ९ ॥

हे बलके साथ प्रकट होनेवाले प्रभो! सब अपने तेजस्वी सामर्थ्योंके साथ प्रकट होकर हमारे इस यज्ञकर्मको सफल बनाओ और हमारा स्तोत्र सुनकर, हमें सब प्रकारका अन्न धन आदि, उत्तम प्रकारसे प्रदान करो जिससे हम सुखी बनें ॥ १० ॥

जिस तरह अयालवाला घोडा सुंदर दीखता है, वैसे ही ज्वालारूपी अयालसे युक्त प्रदीप्त अग्निरूपी घोडा अति सुंदर दीखता है । इस यज्ञवेदीपर प्रदीप्त हुए इस अग्निको हम नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥

यह देव बलके विविध कार्य करनेके लिये ही प्रकट हुआ है, वह सर्वत्र गमन भी करता है अतः यह हमें सुख देवे ॥ २ ॥

३०२ स नो॑ दूरा॒च्चासा॒च्च॒ नि मर्त्या॑दघा॒योः । पा॒हि सद॒मिद् वि॒श्वायु॑ः ॥ ३ ॥
३०३ इ॒मम् षु त्वम॒स्माकं॑ स॒निं गा॑य॒त्रं नव्यां॑सम् । अग्ने॑ दे॒वेषु॒ प्र वो॑चः ॥ ४ ॥
३०४ आ नो॑ भज पर॒मे॒ष्वा वाजे॑षु मध्य॒मेषु॑ । शिक्षा॒ वस्वो॒ अन्त॑मस्य ॥ ५ ॥
३०५ वि॒भ॒क्तासि॑ चित्रभानो॒ सिन्धो॑रू॒र्मा उ॑पा॒क आ । स॒द्यो दा॒शुषे॑ क्षरसि ॥ ६ ॥
३०६ यम॑ग्ने पृ॒त्सु मर्त्य॒मवा॒ वाजे॑षु॒ यं जु॒नाः । स यन्ता॒ शश्व॑ती॒रिषः॑ ॥ ७ ॥
३०७ नकि॑रस्य सहन्त्य पर्ये॒ता कय॑स्य चित् । वाजो॑ अस्ति श्र॒वाय्यः॑ ॥ ८ ॥
३०८ स वाजं॑ वि॒श्वच॑र्षणि॒रर्व॑द्भिरस्तु॒ तरु॑ता । विप्रे॑भिरस्तु॒ सनि॑ता ॥ ९ ॥
३०९ जरा॑बोध॒ तद् वि॑विड्ढि वि॒शेवि॑शे य॒ज्ञिया॑य । स्तोमं॑ रु॒द्राय॒ दृशी॑कम् ॥ १० ॥

अर्थ— [३०२] (विश्वायुः) हे संपूर्ण आयुके प्रदाता (स दूरात् च आसात् च) वह तुम दूरसे पाससे (अघायोः मर्त्यात् नः) पापी मनुष्यसे हम सबकी (सदं इत् नि पाहि) सदाके लिये सुरक्षा करो ॥ ३ ॥

[३०३] (अग्ने) हे अग्निदेव ! (त्वं अस्माकं) तुम हमारे (इमं उ सु सनिं, नव्यांसं गायत्रं) इस दानकी और नवीन गायत्री छन्दके स्तोत्रकी बात (देवेषु प्रवोचः) देवोंसे कहो ॥ ४ ॥

[३०४] (परमेषु वाजेषु नः आ भज) उच्च कोटिके बल हमें दो, (मध्यमेषु आ) मध्यम कोटिके बल भी हमें दो (अन्तमस्य वस्वः शिक्षा) तथा पाससे मिलनेवाले धन भी हमें प्रदान करो ॥ ५ ॥

[३०५] (चित्रभानो) हे विलक्षण तेजस्वी देव ! (सिन्धोः उपाके ऊर्मौ) सिन्धुके पास तरङ्गकी तरह तुम (विभक्ता असि) धनोंका बंटवारा करनेवाला हो (दाशुषे सद्यः क्षरसि) दाताको तो तुम तत्काल ही धन देते हो ॥ ६ ॥

[३०६] (अग्ने) हे अग्नि देव ! (पृत्सु यं मर्त्यं अवाः) युद्धमें जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, (यं वाजेषु जुनाः) जिसको तुम रणोंमें जानेके लिये उत्साहित करते हो (सः शश्वतीः इषः यन्ता) वह शाश्वत अन्नोंका नियामक होता है ॥ ७ ॥

[३०७] (सहन्त्य) हे शत्रुके दमनकर्ता ! (अस्य कयस्य चित् पर्येता नकिः) इसको घेरनेवाला कोई भी नहीं है (वाजः श्रवाय्यः अस्ति) क्योंकि इसकी शक्ति प्रशंसनीय है ॥ ८ ॥

[३०८] (विश्वचर्षणिः सः) सर्व मानवोंका हित करनेवाला वह देव हमें (अर्वद्भिः वाजं तरुता अस्तु) घोडोंके साथ युद्धसे पार करनेवाला होवे (विप्रेभिः सनिता अस्तु) तथा ज्ञानियोंके साथ धनका प्रदानकर्ता हो जावे ॥ ९ ॥

[३०९] (जराबोध) हे प्रार्थना सुननेके लिये जाग्रत रहनेवाले देव ! (विशे विशे यज्ञियाय) प्रत्येक मनुष्यके कल्याणके लिये चलाये इस यज्ञमें (तत् रुद्राय) रुद्र देवके प्रीतिके लिये (दृशीकं स्तोमं विविड्ढि) सुन्दर स्तोत्र गाया जाता है अतः वहां तुम प्रवेश करो ॥ १० ॥

भावार्थ— यह देव हमें दीर्घ आयु देता है, वह सब स्थानोंसे अर्थात् पाससे और दूरसे पापी मनुष्योंके कपट जालसे हमें बचावे ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! प्रशंसाके योग्य तथा गायककी रक्षा करनेवाले स्तोत्रोंको देवोंतक पहुंचाओ ॥ ४ ॥

हमें उच्च, मध्यम आदि सब प्रकारके बल दो, तथा उन बलोंसे हमें सब प्रकारके धन पास होनेके समान प्राप्त हों ॥ ५ ॥

जिस तरह समुद्र तरङ्गोंके कारण उछलता है वैसे ही तुम प्रेमसे उछलो और हमें सब धन दो ॥ ६ ॥

जिसपर तुम्हारी दया है उसको अक्षय धन प्राप्त होते हैं। और वह नियामक होता है ॥ ७ ॥

उसको घेरनेवाला कोई नहीं रहता, इतनी उसकी विशाल शक्ति होती है। वह संपूर्ण रूपसे शत्रुका दमन करता है ॥ ८ ॥

वह देव सब मानवोंका हित करता है, वह हमें युद्धोंमें विजय देवे और ज्ञानियोंके साथ रखे ॥ ९ ॥

हे स्तुतिसे जाग्रत होनेवाले देव ! प्रत्येक मनुष्यके कल्याणके लिए इस यज्ञमें सुन्दर स्तोत्र गाया जाता है, अतः तुम इस यज्ञमें आओ ॥ १० ॥

३१० स नो॑ म॒हाँ अ॑निमा॒नो धू॒मके॑तुः पुरु॒श्च॒न्द्रः । धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ॥ ११ ॥

३११ स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॑णोतु नः । उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥ १२ ॥

३१२ नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑ ।
यजा॑म दे॒वान्यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः ॥ १३ ॥

(२८)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- १-४ इन्द्रः, ५-६ उलूखलं, ७-८ उलूखलमुसले, ९ प्रजापतिर्हरिश्चन्द्रः, (अधिषवण-) चर्म सोमो वा । छन्दः- १-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री ।)

३१३ यत्र॒ ग्रावा॑ पृ॒थुबु॑ध्न ऊ॒र्ध्वो भव॑ति॒ सोत॑वे । उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥

३१४ यत्र॒ द्वावि॑व ज॒घना॑धिषव॒ण्या॑ कृ॒ता । उ॒लूख॑लसुताना॒मवेद्वि॑न्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥

अर्थ— [३१०] (सः महान् अनिमानः धूमकेतुः) वह बडा अपरिमेय धूमके झण्डेवाला (पुरुश्चन्द्रः) अत्यंत तेजस्वी देव (नः धिये वाजाय हिन्वतु) हमें बुद्धि और बलकी वृद्धिके लिए प्रेरित करे ॥ ११ ॥

[३११] (सः दैव्यः केतुः) वह प्रजापालक दिव्यसामर्थ्यका झण्डा जैसा (विश्पतिः बृहद्भानुः अग्निः) तेजस्वी अग्नि देव, (रेवान् इव) धनवानोंकी तरह (उक्थैः नः शृणोतु) स्तोत्रोंके साथ हमारी प्रार्थनाको सुनें ॥१२॥

[३१२] (महद्भ्यः नमः) बडोंके लिये नमस्कार (अर्भकेभ्यः नमः) बालकोंके लिये प्रणाम (युवभ्यः नमः) तरुणोंके लिये नमन (आशिनेभ्यः नमः) और वृद्धोंके लिये भी हम वन्दन करते हैं (यदि शक्नवाम, देवान् यजाम) जितना सामर्थ्य होगा, उतनेसे हम देवोंका यजन करेंगे (हे देवाः) हे देवो ! (ज्यायसः आशंसं मा वृक्षि) उस एक श्रेष्ठ देवकी प्रशंसा करनेमें हमसे त्रुटी न हो ॥ १३ ॥

[२८]

[३१३] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्र सोतवे) जहां सोमरस चुआनेके लिये (पृथुबुध्नः ग्रावा ऊर्ध्वः भवति) बडे मूलवाला पत्थर ऊपर उठाया जाता है, (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥ १ ॥

[३१४] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्र अधिषवण्या) जहां सोम कूटनेके दो फलक (द्वौ जघना इव कृता) दो जंघाओंकी तरह विस्तृत रखे होते हैं (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥ २ ॥

भावार्थ— वह अपरिमित बलसे युक्त देव हमें बुद्धि और बल बढानेके कार्योंमें प्रेरित करे ॥ ११ ॥

वह प्रजापालन करता है, दिव्य सामर्थ्यसे युक्त है, वह हमारी प्रार्थना सुने ॥ १२ ॥

बालक, तरुण, बडे और वृद्ध जो भी पुरुष हैं वे सब इसी प्रभुके रूप हैं, अतः इनको नमन करते हैं । जहांतक हमारी शक्ति रहेगी तबतक उन सब देवोंके लिये हम यज्ञ करते रहेंगे, इससे त्रुटि न हो ॥ १३ ॥

सोमको कूटकर रस निकालनेवाले दोनों पत्थर अर्थात् सिल और बट्टा जांघोंके समान विशाल हैं । जहां इन पत्थरोंसे सोम पीसा जाता है, वहां इन्द्र सोमरस पीनेके लिए जाता है ॥ १-२ ॥

३१५ यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥
३१६ यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन् यमितवा इव । उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४॥
३१७ यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे । इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥५॥
३१८ उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥
३१९ आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः । हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥
३२० ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः । इन्द्राय मधुमत् सुतम् ॥ ८ ॥
३२१ उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥

अर्थ—[३१५] (यत्र नारी) जहां यजमानकी पत्नी (अपच्यवं उपच्यवं च शिक्षते) दूर होने और पास जानेकी शिक्षा पाती है (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥३॥

[३१६] (यत्र मन्थां) जहां मन्थन दण्ड (रश्मीन् यमितवै इव) लगाम पकडनेके समान (विबध्नते) बांधा जाता है (उलूखलसुतानां अव इत् जल्गुलः) वहां ओखलसे निचोडा गया सोमरस पास जाकर पान करो ॥४॥

[३१७] (उलूखलक) हे ओखल ! (यत् चित् हि त्वं गृहेगृहे युज्यसे) यद्यपि घर घरमें तुमसे काम लिया जाता है (जयतां दुन्दुभिः इव) तथापि यहां विजयी लोगोंके ढोलकी तरह (द्युमत्तमं वद) तू बडी ध्वनि कर ॥५॥

[३१८] (वनस्पते) हे वनस्पते ! (उत ते अग्रं इत् वातः वि वाति स्म) तुम्हारे सामने वायु बहती है । (उलूखल) हे ओखल ! (अथो इन्द्राय पातवे सोमं सुनु) अब इन्द्रके पानके लिये सोमका रस निचोडो ॥६॥

[३१९] (आ यजी, वाजसातमा ता हि) यज्ञके साधन, अन्न देनेवाले वे दोनों पत्थर (अन्धांसि बप्सता हरी इव) खाद्य खानेवाले इन्द्रके दोनों घोडोंकी तरह (उच्चा विजर्भृतः) उच्च स्वरसे विहार करते हैं ॥ ७ ॥

[३२०] (अद्य ऋष्वौ वनस्पती ता) आज वृक्षसे उत्पन्न सुन्दर ये दोनों फलक (ऋष्वेभिः सोतृभिः) दर्शनीय स्तोताओंके साथ (मधुमत् नः सुतं) इन्द्रके लिये मीठा सोमरस हमारे यज्ञमें निकालें ॥ ८ ॥

[३२१] (चम्वोः शिष्टं उत् भर) दोनों पात्रोंसे अवशिष्ट रस उठा लो (सोमं पवित्रे आ सृज) सोमको छाननीके ऊपर रखो (गोः त्वचि अधि नि धेहि) गोचर्म पर रखो ॥ ९ ॥

भावार्थ— दहीको मथनेसे मक्खन निकलता है । मक्खन निकालनेकी भी एक कला है, जिसे हर गृहिणीको सीखना चाहिए। इस कार्यके लिए मथना रस्सीसे बांधकर गृहिणी अपने हाथोंको आगे पीछे करके मथती है । उससे मक्खन निकाल कर उसका घी बनाती है, जो यज्ञमें डाला जाता है ॥ ३–४ ॥

ऊखल और मूसलका उपयोग घर घरमें किया जाता है । यह चावलोंको स्वच्छ करनेके लिए काममें लाया जाता है । धानको मूसलसे कूटकर उसे छाजसे साफ किया जाता है । उसके सामने हवा चलती है, उस वायुसे भूसा उड जाता है । इस प्रकारके चावल यज्ञके लिए उपयोगी होते हैं, क्योंकि ऐसे चावलोंमें जीवनसत्त्व अधिक रहता है ॥ ५–६ ॥

ऊखल मूसल ये दो कूटनेके साधन हैं, अतः ये यज्ञके भी साधन हैं । यज्ञमें शब्द करते हुए मूसल और ऊखल नाचते और विहार करते हैं । वृक्ष अर्थात् लकडीसे बने हुए ये दोनों सोमरसको निकालनेके काममें भी आते हैं । उसे छाना जाता और घडोंमें भर दिया जाता है । तथा विशाल स्थानमें उन धान्योंको फैला दिया जाता है । गोचर्मका अर्थ गौका चमडा न होकर विशाल स्थान है । (टिप्पणी देखें) ॥ ७–९ ॥

दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः ।
पंच चाभ्यधिकान् दद्यात् एतद् गोचर्म चोच्यते ॥ (वसिष्ठस्मृति)

(२९)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- पंक्तिः।)

३२२ यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥
३२३ शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
३२४ नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
३२५ ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
३२६ समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥

---

[२९]

अर्थ—[३२२] (सत्य सोमपाः) हे सत्य स्वरूप सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (यत् चित् हि अनाशस्ता इव स्मसि) जो भी हो, हम बहुत प्रशंसित जैसे नहीं है यह सत्य है (तुवीमघ इन्द्र) तथापि हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥१॥

[३२३] (शचीवः शिप्रिन् वाजानां पते) हे सामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणधारी और सब बलोंके स्वामी इन्द्र ! (तव दंसना) तेरे कर्म अद्भुत हैं (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ २ ॥

[३२४] (मिथूदृशा निष्वापय) दोनों दुर्गतियाँ परस्परकी ओर ताकती हुई सो जांय (अबुध्यमाने सस्तां) वे कभी न जागती हुई बेहोश पडी रहें अर्थात् हमें उनसे उपद्रव न हो (हे तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ३ ॥

[३२५] (शूर) हे शूर वीर ! (त्या अरातयः ससन्तु) हमारे शत्रु सोये रहें (रातयः बोधन्तु) और मित्र जागते रहें (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ४ ॥

[३२६] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (अमुया पापया) इस पाप विचारमयी वाणीसे (नुवन्तं गर्दभं सं मृण) बोलनेवाले गधेका वध करो (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र महासामर्थ्यवान्, शिरस्त्राणको धारण करनेवाला सत्यके मार्गपर चलानेवाला है। यह बलोंका स्वामी इन्द्र अपने अप्रशंसित भक्तके पास भी जाता है, और उसे ऐश्वर्य प्रदान करके समृद्धशाली बनाता है ॥ १–२ ॥

दुर्गतियां कभी भी अपना सिर न उठावें वे हमेशा सोई रहें। क्योंकि जब मनुष्यपर दुर्गतियां आती हैं, तो उसके शत्रु भी बढ जाते हैं और मित्र कम हो जाते हैं। अतः जब दुर्गतियां सोती रहेंगी, तो उसके शत्रु भी सोते रहेंगे ॥ ३–४ ॥

३२७ पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥

३२८ सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥

(३०)

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवता- १-१६ इन्द्रः, १७-१९ अश्विनौ, २०-२२ उषाः । छन्दः- १-१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृद्गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।)

३२९ आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

३३० शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

३३१ सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

अर्थ— [३२७] (वातः कुण्डृणाच्या) विध्वंस करनेवाले झंझावात (वनात् अधि दूरं पताति) दूरके वनमें चला जाय। (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) उत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ६ ॥

[३२८] (सर्वं परिक्रोशं जहि) आक्रोश करनेवाले सब शत्रुओंका नाश करो। (कृकदाश्वं जम्भय) और हिंसकोंका संहार करो। (तुवीमघ इन्द्र) हे बहुधनवाले इन्द्र ! (सहस्रेषु शुभ्रिषु गोषु अश्वेषु) सर्वोत्तम सहस्रों गायें और घोडे (नः आ शंसय) हमें मिलें ऐसा हमें आशीर्वाद दो ॥ ७ ॥

[३०]

[३२९] (वाजयन्तः वयं) सामर्थ्यकी इच्छा करनेवाले हम (वः) तुम्हारे कल्याणके लिये (शतक्रतुं मंहिष्ठं इन्द्रं) सैंकडों पराक्रम करनेवाले महान् इन्द्रको (यथा क्रिविं आ सिञ्चे) जैसे हौजको पानीसे भरते हैं वैसे सोमरससे भर देते हैं ॥ १ ॥

[३३०] (यः शुचीनां शतं वा) जो शुद्ध सोमरसोंके सैंकडों (समाशिरां सहस्रं वा) तथा दुग्धमिश्रित रसोंके सहस्रों प्रवाहोंके पास (निम्नं न) जैसे जल नीचेकी ओर जाता है (आ इत् उ रीयते) उस तरह जाता है ॥२॥

[३३१] (यत् शुष्मिणे मदाय) जो सोमरस बलवान् इन्द्रके आनन्द बढानेके लिये (एना हि अस्य उदरे) इसके उदरमें (समुद्रः न व्यचः सं दधे) समुद्र जैसा इकट्ठा होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार गधेका रेंकना बहुत बुरा लगता है, उसी प्रकार पापी विचारोंको वाणीसे व्यक्त करना बडा खराब है। वाणीसे निकले हुए पापी विचार मनुष्यको नष्ट कर देते हैं। अतः पापयुक्त विचारवाली वाणीका झंझावात मनुष्योंमें न रहे अपितु दूर वनमें चला जाए। और वह शत्रुओंमें जाकर शत्रुओं और हिंसकोंका संहार करे। और हमें इन्द्र बहुत ऐश्वर्य देवे ॥ ५-७ ॥

अनेक तरह दूध आदि रसोंसे मिले हुए ये सोमरस जैसे पानी नीचेकी ओर बहते हैं, उसी प्रकार इन्द्रकी ओर जाते हैं, और जैसे समुद्रमें जल इकट्ठा हो जाता है, उसी तरह सब सोमरस इन्द्रके पास जाकर इकट्ठे हो जाते हैं और उसे आनंदित करते हैं ॥ १-३ ॥

३३२ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥
३३३ स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥
३३४ ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये ऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥
३३५ योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥
३३६ आ घा गमद्यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥
३३७ अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥
३३८ तं त्वां वयं विश्ववारा ऽऽशास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥
३३९ अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥
३४० तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन् तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२ ॥

अर्थ— [३३२] (अयं कपोतः गर्भधिं इव) यह सोमरस कपोत गर्भिणी कपोतीके साथ (ते सं अतसि) जैसा रहता है वैसा तुम्हारे लिये है, (तत् चित् नः वचः ओहसे) तब तुम हमारी प्रार्थनाका विचार करो ॥ ४ ॥

[३३३] (राधानां पते गिर्वाहः वीरः) हे धनोंके स्वामिन् स्तुति योग्य वीर ! (यस्य ते स्तोत्रं विभूतिः सूनृता अस्तु) यह स्तोत्र तुम्हारी विभूतिका सत्य सत्य वर्णन करनेवाला हो ॥ ५ ॥

[३३४] (शतक्रतो) हे सैंकडों कर्म करनेवाले ! (अस्मिन् वाजे) इस युद्धमें (नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ) हमारी सुरक्षाके लिये खडा रह । (अन्येषु सं ब्रवावहै) अन्य कार्यके विषयमें पीछेसे संभाषण करेंगे ॥ ६ ॥

[३३५] (योगेयोगे) प्रत्येक कर्ममें (वाजेवाजे) और प्रत्येक युद्धमें (तवस्तरं इन्द्रं ऊतये) बलशाली इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिये (सखायः हवामहे) उसके मित्रोंकी तरह बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[३३६] (यदि नः हवं श्रवत्) यदि वह हमारी पुकार सुनेंगे (सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः) तो अपनी सहस्रों प्रकारकी सुरक्षा करनेवाले बलोंके साथ (घ उप आगमत्) हमारे पास निःसन्देह आवेंगे ॥ ८ ॥

[३३७] (प्रत्नस्य ओकसः) अपने पुरातन स्थानसे (तुविप्रतिं नरं अनु हुवे) अनेक भक्तोंके पास पहुंचने-वाले वीर इन्द्रको मैं बुलाता हूँ । (यं ते पूर्वं पिता हुवे) जिस तुमको पहिले मेरे पिता बुला चुके थे ॥ ९ ॥

[३३८] (विश्ववार पुरुहूत सखे वसो) हे इस विश्वमें वरणीय श्रेष्ठ बहुतों द्वारा प्रशंसित मित्र और धन-पति इन्द्र ! (तं त्वा जरितृभ्यः) उस तुमसे स्तोताओंका कल्याण करनेके लिये (वयं आशास्महे) हम आशीर्वाद मांगते हैं ॥ १० ॥

[३३९] (सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी वीर ! (सखीनां प्रियाणां सोमपाव्नां अस्माकं) मित्र प्रिय और सोम पीनेवाले हमारे (शिप्रिणीनां) पास उत्तम नासिकावाली गौवोंके झुण्ड हों ॥ ११ ॥

[३४०] (हे सोमपाः सखे वज्रिन्) हे सोम पीनेवाले मित्र वज्रधारी (इष्टये ते यथा उश्मसि) हमारी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये तेरी प्राप्तिकी हम जिस तरह इच्छा करेंगे (तथा कृणु तत्) वैसा करो (तथा अस्तु) वह वैसा ही हो ॥ १२ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार कबूतर अपनी कबूतरीके साथ हमेशा रहता है, उसी तरह ये सोम भी इन्द्रके साथ हमेशा रहते हैं । तब उससे उत्साहित होकर वह युद्धमें शत्रुओंके सामने खडा रहता है और तब वाणियां उसकी शूर वीरताका सच्चा वर्णन करती हैं ॥ ४–६ ॥

हमारे पूर्वज ऋषि मुनि भी इस इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते थे, उसी कर्ममें कुशल, युद्ध करनेमें वीर इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिए उसके स्थानसे बुलाते हैं । यदि वह हमारी पुकार सुनेगा, तो अवश्य हमारी रक्षा करनेके लिए वह आएगा, ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है ॥ ७–९ ॥

सबके द्वारा वरणीय उस इन्द्रसे सभी आशीर्वाद मांगते हैं । हम उस वज्रधारीको पानेके लिए बहुत प्रयत्न करते हैं, अतः वह हमें प्राप्त हो और वह हमारे पास आकर हमें सुन्दर सुन्दर गायें प्रदान करे ॥ १०–१२ ॥

३४१ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥
३४२ आ घ त्वावान् त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥
३४३ आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥
३४४ शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६ ॥
३४५ आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
३४६ समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥
३४७ न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

अर्थ— [३४१] (क्षुमन्तः याभिः मदेम) अन्नसे युक्त होकर हम जिनसे आनन्दित होंगे (इन्द्रे सधमादे) वैसे इन्द्रके हमारे ऊपर प्रसन्न होनेपर (नः रेवतीः तुविवाजाः सन्तु) हमारे दूध देनेवाली और शक्तिसम्पन्न गायें हों ॥ १३ ॥

[३४२] (धृष्णो) हे शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र ! (त्वावान् त्मना आप्तः) तुम्हारे समान तुम ही आप्त हो (स्तोतृभ्यः इयानः घ) जो तुम स्तोताओंके पास (चक्र्योः अक्षं न) चक्रोंके अक्षकी तरह (आ ऋणोः) पहुंचता है ॥ १४ ॥

[३४३] (शतक्रतो) हे सैंकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले ! (यत् दुवः आ कामं जरितॄणां) जो धन इच्छाके अनुसार स्तोताओंके पास (शचीभिः अक्षं न) शक्तियोंसे रथका अक्ष चलानेके समान (आ ऋणोः) तुम पहुंचाते हो ॥ १५ ॥

[३४४] (इन्द्रः) इन्द्र (शश्वत्) हमेशा (पोप्रुथद्भिः नानदद्भिः शाश्वसद्भिः) फडफडाते, हिनहिनाते तथा जोरसे श्वास लेते हुए घोडोंके द्वारा (धनानि जिगाय) धनोंको जीतता है (दंसनावान् सः सनिता) कर्मकुशल उस दाता इन्द्रने (नः सनये) हमारे उपयोगके लिये (हिरण्यरथं अदात्) सोनेका रथ दिया है ॥ १६ ॥

[३४५] (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (अश्वावत्या शवीरया इषा) अनेक घोडोंसे युक्त शक्ति देनेवाले अन्नके साथ (आ यातं) आओ (हे दस्रा) हे शत्रुनाशको ! (गोमत् हिरण्यवत्) हमारे घरमें गायें और सुवर्ण होवें ॥ १७ ॥

[३४६] (दस्रौ) हे शत्रुनाशको ! (वां रथः समानयोजनः अमर्त्यः) तुम दोनोंका एक साथ जोतनेवाला विनाशरहित रथ है (हि समुद्रे ईयते) जो समुद्रमें भी जाता है ॥ १८ ॥

[३४७] (रथस्य चक्रं) तुमने अपने रथका एक चक्र (अघ्न्यस्य मूर्धनि) पर्वतके शिखरके मूलमें (नि येमथुः) रखा है (अन्यत् परि द्याम् ईयते) और दूसरा द्युलोकमें चलता है ॥ १९ ॥

भावार्थ— इन्द्र सबसे ज्यादा आप्त अर्थात् श्रेष्ठ है । उत्तम उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र जब अपनी सभी श्रेष्ठ शक्तियोंके साथ स्तुति करनेवालोंके पास पहुंचता है, और उन्हें शक्ति सम्पन्न गायें प्रदान करता है, तब सभी स्तोता अत्यन्त आनन्दित होते हैं ॥ १३-१५ ॥

यह इन्द्र हमेशा हिनहिनाते हुए तथा वायुके वेगके समान उडनेवाले घोडोंके द्वारा शत्रुओंके धनोंको जीतता है । वह इन्द्र धनके दाताओंको सोनेके रथ अर्थात् अत्यधिक सम्पत्ति देता है ॥ १६ ॥

अश्विदेवोंके पास एक रथ है, जो अश्विनी कुमारोंके लिए एक ही समय जोडा जाता है । यह रथ समुद्रमें भी चलता है, भूमि पर भी चलता है और अमर होनेसे आकाशमें भी उडता है । इस रथ पर बैठकर अश्विनी अश्व, गाय और सुवर्णके साथ सबके घरोंमें जाते हैं ॥ १७-१९ ॥

३४८ कस्त्वं उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥
३४९ वयं हि ते अमन्मह्या ऽऽन्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥
३५० त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ ॥

(३१)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती; ८, १६, १८ त्रिष्टुप् ।)

३५१ त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषि- र्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसो ऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥
३५२ त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥

अर्थ— [३४८] (कधप्रिये अमर्त्ये विभावरि उषः) हे स्तुतिप्रिय अमर शोभावाली उषादेवी ! (भुजे मर्तः कः) तुम्हें भोजन देनेवाला मानव कौन है ? (कं नक्षसे) किसे तुम प्राप्त होना चाहती हो ॥ २० ॥

[३४९] (अश्वे चित्रे अरुषि) हे अश्वयुक्त विचित्र प्रकाशवाली उषादेवी ! (आ अन्तात् आ पराकात्) दूरसे या पाससे (वयं ते न अमन्महि) हम तुम्हें नहीं जान सकते ॥ २१ ॥

[३५०] (हे दिवः दुहितः) हे द्युलोककी पुत्री ! (त्येभिः वाजेभिः त्वं आ गहि) उन बलोंके साथ तुम आओ (अस्मे रयिं नि धारय) और हमें धन प्रदान करो ॥ २२ ॥

[३१]

[३५१] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रथमः अङ्गिरा ऋषिः अभवः) तू सबसे पहला अङ्गिरा नामक ऋषि हुआ था । (देवः देवानां शिवः सखा अभवः) तू देवोंका देव और कल्याणकारक मित्र हुआ (तव व्रते कवयः विद्मनापसः भ्राजदृष्टयः मरुतः अजायन्त) तेरा ही कर्म करनेके लिए मेधावी और कार्यपद्धतिको जाननेवाले तथा शोभायमान शस्त्रोंवाले मरुत् गण पैदा हुये ॥ १ ॥

१ अंगिराः अग्निः देवः— प्रत्येक अंग और अवयवमें रसरूपसे रहनेवाला ।
२ प्रथमः ऋषिः देवानां शिवः सखा— पहला ज्ञानी और देवोंका शुभ मित्र ।
३ व्रते कवयः विद्मनापसः— उसके नियमानुसार जो चलते हैं, वे अतीन्द्रिय ज्ञानी बनकर सब कार्य विधिपूर्वक करते हैं ।

[३५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रथमः अङ्गिरस्तमः कविः देवानां व्रतं परिभूषसि) तू सबसे प्रथम मुख्य अङ्गिरा होकर मेधावी होनेसे देवोंके कर्मको विभूषित करता है । तू (विश्वस्मै भुवनाय विभुः) सारे संसारमें व्यापक है, तथा तू (मेधिरः द्विमाता आयवे कतिधा चित् शयुः) बुद्धिमान् दो माँवाला होकर मनुष्यके हित लिये कई रूपोंमें सर्वत्र वर्तमान है ॥ २ ॥

१ देवानां व्रतं परिभूषसि— यह अग्रणी देवोंके व्रतोंको सुशोभित करता है ।
२ विश्वस्मै भुवनस्य मेधि-रः— सब प्राणियोंको बुद्धिका दान करता है ।

भावार्थ— विचित्र प्रकाशके कारण अत्यन्त शोभा देनेवाली यह उषा सब मनुष्योंके पास पहुंचती है । पर मनुष्य इसके महत्वको नहीं जान पाते । यह जब मनुष्योंके पास आती है, तब बल और धनसे युक्त होकर आती है । जो उषःकालको जानते हैं, वे बल और धनसे युक्त होते हैं । पर कुछ मनुष्य इस उषाके महत्वको नहीं जानते, और वे उषःकालमें भी सोते रहते हैं, और इस प्रकार धन और बल पानेसे वंचित रह जाते हैं ॥ २०-२२ ॥

यह अग्नि अंगिरा अर्थात् शरीरके अंगोंमें बहनेवाले जीवन रसको पैदा करती है, जब तक शरीरमें अग्नि रहती है, तभी तक यह जीवन रस बहता है । यह देव अर्थात् इन्द्रियोंका देव है । इसीसे शरीरका सारा कार्य चलता है ॥ १ ॥

यह मेधावी अग्रणी देवोंकी हर प्रकारसे सहायता करता है तथा सब मनुष्योंको बुद्धि देकर उनकी आयु बढानेवाला है तथा दो माताओंवाला है, इसकी एक माता जन्मदात्री है और दूसरी माता विद्या है । यह सर्वत्र व्यापक है ॥ २ ॥

३५३ त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो मा॑त॒रिश्व॑न आ॒विर्भ॑व सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते ।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्ये॒ ऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ॥ ३ ॥

३५४ त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पु॒रूर॑वसे सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः ।
श्वा॒त्रेण॒ यत् पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या ऽऽ त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुनः॑ ॥ ४ ॥

३५५ त्वम॑ग्ने वृष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्यः॑ ।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ वष॑ट्कृति॒मेका॑युरग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑ससि ॥ ५ ॥

अर्थ— [३५३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (प्रथम) अग्रगामी हो, (सुक्रतूया विवस्वते मातरिश्वने आविर्भव) अच्छे कर्म करनेकी इच्छाके साथ सूर्य और वायुके लिये प्रकट हो। तेरी शक्ति देखकर (रोदसी अरेजेतां) आकाश और पृथ्वी काँप गये । तूने (होतृवूर्ये भारं असघ्नोः) होताके रूपमें वरण किये जानेपर यज्ञके भारको वहन किया। हे (वसो) निवासके हेतु अग्ने ! तूने (महः अजयः) पूजनीय देवोंका यज्ञ पूर्ण किया है ॥ ३ ॥

१ सुक्रतूया विवस्वते आविर्भव— उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे युक्त होकर यह अग्नि मनुष्योंके हितके लिए प्रकट हुई है।

२ रोदसी अरेजेतां— इसके डरसे दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक कांपते हैं।

[३५४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं मनवे द्यां अवाशयः) तूने मनुष्यके हितके लिये द्युलोकको शब्दमय किया; (सुकृते पुरूरवसे सुकृत्तरः) सुकर्मा पुरूरवाके लिये तू अधिक अच्छे कर्मवाला हुआ। (यत् पित्रोः श्वात्रेण परि-मुच्यसे) जब तू माता पिताके मथन करनेसे मुक्त होता अर्थात् पैदा होता है तब (त्वा पूर्वं आ अनयत्) तुझे पूर्वकी ओर ले गये, (पुनः अपरं आ अनयत्) फिर दूसरी ओर ले गये ॥ ४ ॥

१ मनवे द्यां अ-वाशयः— मनुष्यके हितके लिए आकाशको शब्दगुण-युक्त बनाया।

२ पुरू-रवसे सुकृते सुकृत्तरः— बहुज्ञानी शुभ कर्म करनेवालेके हित करनेके लिए यह अधिक शुभ काम करता है।

३ पुरू-रवाः— बहुशब्दवाला, बहुत ज्ञानी, बहुत व्याख्यान देनेवाले।

[३५५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वृषभः पुष्टिवर्धनः) तू बडा बलिष्ठ और पुष्टि देकर सबको बढानेवाला है। (उद्यतस्रुचे श्रवाय्यः भवसि) यज्ञ करनेवालेके द्वारा तू स्तुतिके योग्य है। (यः वषट्कृतिं आहुतिं परिवेद) जो यज्ञकर्ता वषट्कारसे युक्त आहुतिको देना जानता है उसे तू सम्पूर्ण आयु देता है और (विशः आः विवाससि) प्रजाओंमें सबसे आगेके भागमें प्रतिष्ठापित करता है ॥ ५ ॥

१ वृषभः पुष्टिवर्धनः श्रवाय्यः— यह अग्रणी बलवान् पुष्टिकर्ता और प्रशंसाके योग्य है।

२ एकायुः विशः आविवाससि— पूर्णायु देकर मनुष्योंको बसाता है।

भावार्थ— यह अग्नि अग्रगामी है यह महाशक्तिशाली है। इसकी शक्तिसे सारा विश्व कांपता है। इसीके कारण यज्ञ सम्पूर्ण होता है ॥ ३ ॥

आकाशका गुण शब्द है। उस शब्दके रहस्यको जाननेवाला ज्ञानी, लोगोंके हितके लिए हमेशा शुभ कर्म करता है। जब पुत्र पैदा होता है तब वह पहले ब्रह्मचर्याश्रममें प्रविष्ट होता है, तब फिर बादमें गृहस्थाश्रमी होता है ॥ ४ ॥

यह अग्रणी सबको पुष्टि देता है, और यज्ञशीलके लिए सम्पूर्ण आयु प्रदान करता है। यज्ञ करनेसे मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है और सब मनुष्योंमें उत्तम बनता है ॥ ५ ॥

३५६ त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न् पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे ।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त् सम्यृ॑ता॒ हंसि॒ भूय॑सः ॥ ६ ॥
३५७ त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ॥ ७ ॥
३५८ त्वं नो॑ अग्ने स॒नये॒ धना॑नां य॒शसं॑ का॒रुं कृ॑णुहि॒ स्तवा॑नः ।
ऋ॒ध्याम॒ कर्मा॒पसा॒ नवे॑न दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३५६] हे (विचर्षणे अग्ने) विशिष्ट ज्ञानसे युक्त अग्ने ! (त्वं वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि) तू कुमार्गगामी मनुष्यकी भी अपने साथ रहनेपर युद्धमें सहायता करता है। और (यः परितक्म्ये धने शूरसाता दभ्रेभिः चित्) जो तू सब ओरसे आक्रमण होनेवाले, धन प्राप्त होनेवाले तथा शूरवीरोंसे युद्ध किये जाने योग्य संग्राममें थोडे वीरतायुक्त पुरुषोंके द्वारा (सम्यृता भूयसः हंसि) अच्छी प्रकार युद्ध प्रारम्भ होनेपर बडे बडे वीरोंको भी मार देता है ॥ ६ ॥

१ वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि— पापी मनुष्यको भी विद्वानोंके साथ संयुक्त करके उनकी युद्धमें रक्षा करता है।

२ शूरसातौ दभ्रेभिः चित् भूयसः हंसि— शूरों द्वारा छेडे गए युद्धमें यह अग्रणी थोडेसे शत्रुओंको लेकर भी बहुतोंको मार देता है।

[३५७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं तं मर्तं) तुम इस उत्तम मनुष्यको (दिवे दिवे) प्रतिदिन (श्रवसे उत्तमे अमृतत्वे दधासि) यशस्वी बनाते हुए उत्तम अमरपदपर प्रतिष्ठित करते हो और (यः उभयाय जन्मने तातृषाणः) जो दोनों प्रकारके जन्मके लिये अतीव पिपासु हैं, उस (सूरये मयः प्रयः च आ कृणोषि) ज्ञानीके लिये सुख और अन्न सब ओरसे देते हो ॥ ७ ॥

१ मर्तं श्रवसे उत्तमे अमृतत्वे दधासि— यह अग्रणी यशके लिए उत्तम मनुष्यको अमर बनाता है।

२ उभयाय जन्मने तातृषाणः सूरये मयः प्रयः च कृणोषि— ब्रह्मचर्य और गृहस्थ इन दोनों जीवनोंमें उन्नतिकी इच्छा करनेवाले विद्वान्‌के लिए यह अग्रणी सुख और अन्न देता है। (मयः–सुख–प्रयः–सुख)

[३५८] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्तवानः त्वं धनानां सनये) प्रशंसित होता हुआ तू धनोंके दानके लिये (नः यशसं कारुं कृणुहि) हमें यश और कर्म करनेका सामर्थ्य दे। (नवेन अपसा कर्म ऋध्याम) नये कर्मके द्वारा हम सत्कर्मकी वृद्धि करें। (द्यावापृथिवी ! देवैः नः प्रावतं) हे द्यु और पृथ्वी लोक ! सब देवोंके साथ हमारी सुचारु-रूपसे रक्षा करो ॥ ८ ॥

१ धनानां सनये यशसं कारुं कृणुहि— यह अग्रणी लोगोंको धनकी प्राप्तिके लिए यश देनेवाली कारीगरीकी विद्या प्रदान करता है।

भावार्थ— यह अग्रणी दुराचारी मनुष्यको भी अपनी सहायता देकर सुधारता है। तथा युद्धमें चुने हुए वीरोंको लेकर बडीसे बडी शत्रुसेनाको भी हरा देता है। यह अग्रणी इतना वीर है ॥ ६ ॥

उत्तम मनुष्य ब्रह्मचर्य और गृहस्थ इन दोनों जीवनोंमें सुख और अन्न प्राप्त कर अन्तमें अमरपद प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

कारीगरी सदा यश प्रदान करनेवाली होती है। मनुष्य कारीगरीसे धन प्राप्त कर सकता है। जिस देशमें कारीगर ज्यादा होते हैं, वह देश धनधान्य सम्पन्न होता है ॥ ८ ॥

३५९ त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥
३६० त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस् त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनं सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥ १० ॥
३६१ त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत् पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥

अर्थ— [३५९] हे (अनवद्य अग्ने) दोषोंसे रहित अग्ने ! (देवेषु जागृविः देवः त्वं) सब देवोंके मध्य जागरूक रहनेवाला देव तू (पित्रोः उपस्थे नः तनूकृत् आ बोधि) हमारे माता पिताकी सहायतासे हमारे शरीरका निर्माण करता है और हमें ज्ञानवान् बनाता है। (कारवे प्रमतिः च) कर्म करनेके लिए विशेष बुद्धि देकर, हे (कल्याण) कल्याण करनेवाले अग्ने ! (त्वं विश्वं वसु ओपिषे) तू हमें सम्पूर्ण धन प्रदान कर ॥ ९ ॥

१ देवेषु जागृविः— यह अग्रणी देवोंमें हमेशा जागता रहता है ।

२ कल्याण ! विश्वं वसु ओपिषे— यह अग्रणी कल्याण करनेवाला, धन प्रदान करनेवाला और सबको निवासकी सुविधा देनेवाला है ।

[३६०] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रमतिः) तू विशेष बुद्धिमान् है, (त्वं नः पिता असि) तू हमारा पिता है, (त्वं वयस्कृत्) तू आयुको देनेवाला है, (वयं तव जामयः) हम तेरे बन्धु हैं । हे (अदाभ्य) किसीसे भी हिंसित न होनेवाले अग्ने ! (सुवीरं व्रतपां त्वा शतिनः सहस्रिण रायः संयन्ति) अच्छे वीरोंसे युक्त और नियमोंका पालन करनेवाले तुझको सैंकडों और हजारों तरहके धन प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

१ व्रतपां सुवीरं सहस्रिणः रायः यन्ति— नियमके पालन करनेवाले तथा उत्तम पुत्रवाले मनुष्यको अनेक प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ।

२ अ-दाभ्यः— यह अग्रणी किसीसे न दबनेवाला है ।

[३६१] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वां देवाः आयवे प्रथमं आयुं) तुझको देवोंने प्रथम आयु दी, पश्चात् उन्होंने (नहुषस्य विश्पतिं अकृण्वन्) मानवोंके लिये प्रजापालक राजाका निर्माण किया । तब (मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन्) मनुष्योंकी व्यवस्थाके लिये धर्मनीतिका निर्माण किया । (यत् ममकस्य पितुः पुत्रः जायते) जैसे पितासे ममत्वरूप पुत्रका जन्म होता है वैसे ही आत्मीयतासे राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करे ॥ ११ ॥

१ देवाः आयवे आयुं अकृण्वन्— देवोंने मानवोंके लिए आयु बनाई ।

२ विश्पतिं अकृण्वन्— प्रजाके पालकको उत्पन्न किया ।

भावार्थ— यह हमेशा जागरूक रहनेवाला अग्रणी सबको बुद्धि प्रदान कर उन्हें कर्म करनेकी प्रेरणा देता है । इस प्रकार वह सबका कल्याण करता है ॥ ९ ॥

वह अग्रणी प्रभु हमारा माता, पिता, भाई है, वह सर्वशक्तिमान् हर तरहके ऐश्वर्योंसे युक्त है, वह अपने भक्तको भी हर तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ १० ॥

प्रथम सब मनुष्य उत्पन्न हुए, फिर उनका पालन करनेके लिए राजाका चुनाव किया गया । उसने तथा अन्य प्रजा-प्रतिनिधियोंने मिलकर व्यवस्थाके लिए धर्म और नीतिका निर्माण किया, ताकि उन नियमोंके अनुसार चलता हुआ राजा प्रजाका पुत्रवत पालन करे । इस मंत्रमें समाजव्यवस्थाका बहुत सुन्दर वर्णन है ॥ ११ ॥

३६२ त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॒—र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य ।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒—स्यनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥ १२ ॥
३६३ त्वम॑ग्ने॒ यज्य॑वे पा॒युरन्त॑रो ऽनिष॒ङ्गाय॑ चतुर॒क्ष इ॑ध्यसे ।
यो रा॒तह॑व्यो ऽवृ॒काय॒ धाय॑से की॒रेश्चि॒न् मन्त्रं॒ मन॑सा व॒नोषि॒ तम् ॥ १३ ॥
३६४ त्वम॑ग्न उरु॒शंसा॑य वा॒घते॑ स्पा॒र्हं यद् रेक्णः॑ पर॒मं व॒नोषि॒ तत् ।
आ॒ध्रस्य॑ चि॒त् प्रम॑तिरुच्यसे पि॒ता प्र पाकं॒ शास्सि॒ प्र दिशो॑ वि॒दुष्ट॑रः ॥ १४ ॥

अर्थ— [३६२] हे (वन्द्य अग्ने देव) वन्दनीय अग्नि देव ! (त्वं तव पायुभिः मघोनः नः तन्वः च रक्ष) तू अपनी संरक्षण शक्तिसे हमें धनवान् बनाकर हमारे शरीरोंकी सुरक्षा कर । (तव व्रते अनिमेषं रक्षमाणः) तेरे नियममें हमेशा रहनेवालेकी सदा रक्षा करनेवाला तू (तोकस्य तनये गवां त्राता असि) हमारे बालबच्चों तथा गौओंकी रक्षा कर ॥ १२ ॥

१ तव पायुभिः मघोनः तन्वः तोकस्य रक्ष— अपनी शक्तियोंसे हमें धनवान् बनाकर हमारे तथा हमारे पुत्रोंके शरीरोंकी रक्षा करो ।

[३६३] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं यज्यवे पायुः) तू यज्ञ करनेवालेका संरक्षक है । (अनिषङ्गाय अन्तरः चतुः अक्षः इध्यसे) सङ्गरहित होकर कार्य करनेवालेके हितके लिये पास रहकर चारों ओर अपनी आँखें रखते हुआ तू तेजस्वी होकर उसका रक्षक होता है । (अवृकाय धायसे रातहव्यः) अहिंसक और पोषकके लिये जो अन्नदान करता है, उस (कीरे चित् तं मन्त्रं मनसा वनोषि) कविके उस मन्त्रको तू मनसे स्वीकार करता है ॥ १३ ॥

१ यज्यवे पायुः— यज्ञ करनेवालेकी रक्षा करता है ।

२ अ-वृकाय धायसे रातहव्यः— किसीकी हिंसा न करनेवाले और दूसरोंके पोषण करनेवालेको तू अन्न देता है ।

[३६४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं उरुशंसाय वाघते स्पार्हं परमं यत् रेक्णः तत् वनोषि) तू बहुत प्रशंसा करनेवाले ऋत्विक् यजमानके लिये जो जो इच्छा करने योग्य धन है वह सब इकट्ठा करता है अर्थात् उसको देता है । (आध्रस्य चित् प्रमतिः पिता उच्यसे) दुर्बलके लिये भी उत्तम बुद्धि प्रदान करनेके कारण तुझे सब पिता कहते हैं । तू (विदुष्टरः पाकं दिशः प्र प्र शास्सि) अधिक ज्ञानवान् है, अतः अज्ञानीको सब दिशायें दर्शाता है अर्थात् अच्छी शिक्षा देता है ॥ १४ ॥

१ उरुशंसाय वाघते परमं स्पार्हं रेक्णः वनोषि— यह अग्रणी भक्तको देनेके लिए उत्तम धन ग्रहण करता है ।

२ आध्रस्य प्रमतिः— अज्ञानीके लिए उत्तम बुद्धि देता है ।

३ पाकं दिशः प्रशास्सि— यह अग्रणी अज्ञानियोंको ज्ञान और उन्नतिकी दिशा दिखाता है ।

भावार्थ— यह अग्नि देव अपने सामर्थ्यसे हमारे शरीरोंकी रक्षा करता है । शरीरमें उष्णता पैदा कर शरीरकी स्थिति रखता है, इसीलिए इसे ' तनू-न-पात् ' भी कहते हैं । नियमोंमें रहकर जो व्यक्ति इस अग्निका सामर्थ्य बढाता है, वह स्वस्थ एवं नीरोग रहकर दीर्घायु प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

यज्ञ करनेसे शरीर स्वास्थ्यकी रक्षा होती है । दूसरोंकी हिंसा न करनेवाले दानशीलको ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

यह अग्रणी देव स्तुति करनेवालेको धन प्रदान करता है । अज्ञानियोंको विद्वान् बनाकर उन्हें उन्नत करता है, इसीलिए सब लोग उसे पालनकर्ता कहते हैं ॥ १४ ॥

३६५ त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज् जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥ १५ ॥
३६६ इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन् मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥
३६७ मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जन—मा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥ १७ ॥

अर्थ— [३६५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं प्रयतदक्षिणं नरं) तू प्रयत्नशील मानवके लिये दान देनेवाले नेताको ठीक तरह (स्यूतं वर्म इव विश्वतः परिपासि) सिये हुए कवचके समान सब ओरसे सुरक्षित रखता है। (स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्) जिस घरमें जो गृहस्वामी मीठा अन्न तैयार करके अपने घरमें अतिथियोंको सुख देता और जो (यः जीवयाजं यजते) जीवोंके हितके लिए यज्ञ करता है (सः दिवः उपमा) वह घर स्वर्गकी उपमाके योग्य होता है ॥१५॥

१ प्रयतदक्षिणं नरं विश्वतः परिपासि— प्रयत्नसे उत्तम कर्म करनेवालेके लिए जो योग्य दक्षिणा देता है, उस नेता अथवा मनुष्यकी तू चारों ओरसे सुरक्षा करता है ।

२ स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्, यः जीवयाजं यजते स दिवः उपमा— जिस घरमें अतिथियोंके लिए हमेशा स्वादिष्ट पदार्थ तैयार रहते हैं, तथा जीवोंके हितके लिए यज्ञ किया जाता है, वह घर स्वर्गसदृश ही है।

[३६६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः इमां शरणिं मीमृषः) हमारी इस त्रुटिको क्षमा कर, क्योंकि हम (दूरात् यं इमं अध्वानं अगाम) इस समय तक दूर दूर भटकते रहे थे पर अब इस धर्म मार्ग पर आ गये हैं । तू (सोम्यानां मर्त्यानां आपिः पिता प्रमतिः भृमिः ऋषिकृत् असि) शान्त स्वभाववाले मानवोंके बन्धु पिता, सुबुद्धि देनेवाले शीघ्रतासे कार्य करनेवाले और ऋषियोंके भी निर्माण करनेवाला है ॥ १६ ॥

१ दूरात् इमं अध्वानं अगाम नः इमां शरणिं मीमृषः— हम अपने अधर्मके मार्गसे हटकर धर्म मार्ग पर आगए हैं अतः अब हमारी त्रुटियोंको क्षमा करो ।

२ सोम्यानां मर्त्यानां पिता असिः— यह अग्रणी देव शान्त और अकुटिल स्वभाववालोंका पालक है ।

[३६७] हे (शुचे अङ्गिरः अग्ने) शुद्ध अङ्गिरा अग्ने! तू (मनुष्वत् अङ्गिरस्वत् ययातिवत् पूर्ववत् सदने अच्छ याहि) मनु, अङ्गिरा, ययाति और पूर्व पुरुषोंके समान यज्ञस्थानमें सीधे जा । वहां (दैव्यं जनं आ वह) दिव्यजनोंको ले आ, उनको (बर्हिषि आसादय) आसनोंपर बिठा और उन्हें (प्रियं यक्षि च) प्रिय अन्न प्रदान कर ॥१७॥

१ दैव्यं जनं आवह— यह अग्रणी दिव्यजनोंको आगे बढाता है ।

भावार्थ— दान सदा प्रयत्नशील मनुष्यको ही देना चाहिए, ताकि किया हुआ दान सत्कर्ममें लगाया जावे । घरोंमें हमेशा अतिथिका सत्कार होना चाहिए और यज्ञ भी प्रतिदिन करना चाहिए । ऐसे घर स्वर्गके समान होते हैं और हमेशा देवों द्वारा सुरक्षित रहते हैं ॥ १५ ॥

परमात्माकी प्रार्थनासे मनुष्य अधर्म मार्गसे हटकर धर्म मार्ग पर चलता है और तब उस अकुटिल मनुष्यकी परमात्मा रक्षा करता है और उसे ज्ञानी बनाता है ॥ १६ ॥

यज्ञमें सब बुलाये जाएं और उनमें जो दिव्य और ज्ञानी पुरुष हों, उन्हें प्राधान्यता देकर उन्हें अन्नादि प्रदान किया जाए ॥ १७ ॥

३६८ एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत् ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान् त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ ॥

(३२)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३६९ इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥ १ ॥

३७० अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥

३७१ वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [३६८] हे (अग्ने) अग्ने ! (एतेन ब्रह्मणा वावृधस्व) इस स्तोत्रसे तेरा यश बढता रहे । अथवा (शक्ती वा विदा वा यत् ते चकृमः) शक्तिसे और ज्ञानसे जो यह तेरा पूजन हमने किया है उससे (अस्मान् वस्यः प्रणेषि) हमें धनके पास पहुंचा । (उत नः वाजवत्या सुमत्या संसृज) और हमें बल बढानेवाले अन्नसे समन्न करके शोभनमतिसे भी संयुक्त कर ॥ १८ ॥

[३२]

[३६९] (वज्री) वज्रधारी इन्द्रने (यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार) जो पहिले पराक्रम किये थे (इन्द्रस्य नु प्र वोचं) इन्द्रके उन्हीं पराक्रमोंका हम वर्णन करते हैं (अहिं अहन्) उसने अहिका वध किया (अनु अपः ततर्द) पश्चात् जलप्रवाहोंको खुला किया (पर्वतानां वक्षणाः प्र अभिनत्) और पर्वतोंमेंसे नदियोंका मार्ग खोदकर विशाल किया ॥ १ ॥

[३७०] (पर्वते शिश्रियाणं अहिं अहन्) पर्वतपर आश्रय करनेवाले अहिका वध इन्द्रने किया (त्वष्टा अस्मै स्वर्यं वज्रं ततक्ष) त्वष्टा कारीगरने उसके लिये शत्रुपर उत्तम रीतिसे फेंकने योग्य दूरसे वेध करनेवाला वज्र बनाया था (धेनव वाश्राः इव) तब गौवें जैसी हम्बारव करती हुई अपने बछोंकी ओर दौडती हैं वैसे ही, (स्यन्दमाना आपः) दौडनेवाले जल-प्रवाह (समुद्रं अञ्जः अव जग्मुः) समुद्रके पास वेगसे जाने लगे ॥ २ ॥

[३७१] (वृषायमाणः) बलवान् इन्द्रने (सोमं अवृणीत) सोमको स्वीकार किया (त्रिकद्रुकेषु सुतस्य अपिबत्) तीन पात्रोंमें रखे हुए रसका पान किया (मघवा सायकं वज्रं आ अदत्त) धनवान् इन्द्रने बाण और वज्रको हाथमें पकडा (अहीनां प्रथमजां एनं अहन्) और अहियोंमेंसे इस मुखियाका वध किया ॥ ३ ॥

भावार्थ— भक्त अपनी शक्ति एव ज्ञानसे परमात्माकी भक्ति करे । धन-धान्य आदि सम्पत्ति प्राप्त करनेका एक मात्र उपाय परमात्माकी प्रार्थना ही है ॥ १८ ॥

इन्द्रने अहिको मारा, पानी बहाया, पर्वतोंसे नदियां बहायीं । पर्वतोंपरका बर्फ पिघलनेसे सिन्धु गंगा आदि नदियोंका बहना प्रत्यक्ष दीखता है । इस प्रकार नदियोंको बहाना इन्द्रका पराक्रम है ॥ १ ॥

कारीगर त्वष्टाने शत्रुपर उत्तम प्रकारसे फेंके जाने योग्य वज्रको बनाया, उससे इन्द्रने पर्वतपर रहनेवाले अहिनामक शत्रुका वध किया । तब उसके वध होनेपर जलप्रवाह ऐसे बह निकले जैसे रंभाते हुए बछडे अपनी मांकी तरफ दौडते हैं ॥ २ ॥

इन्द्रने सोमपानसे उत्साहित होकर अहिनामक असुरजातिके मुख्य मुख्य चुने हुए वीरोंको मारा । इसके अलावा और जितने षड्यंत्रकारी थे उनका भी नाश किया । इसी प्रकार सावधानीसे शत्रुओंकी कपटयुक्तिको जानकर उनका नाश करना चाहिए ॥ ३ ॥

३७२ यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीना—मान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥
३७३ अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंस—मिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा—ऽहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ५ ॥
३७४ अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥
३७५ अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र—मास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥

अर्थ— [३७२] (उत इन्द्र) और हे इन्द्र ! (यत् अहीनां प्रथमजां अहन्) जब अहियोंमेंसे प्रमुख वीरका वध किया (आत् मायिनां मायाः प्र अमिनाः) तब कपटियोंके कपटमय षड्यंत्रोंका भी विनाश किया (आत् द्यां उषासं सूर्यं जनयन्) पश्चात् आकाशमें उषा और सूर्यको प्रकट किया। (तादीत्ना शत्रुं न विवित्से किल) तब तुम्हारे लिये कोई शत्रु निःसंदेह नहीं रहा ॥ ४ ॥

[३७३] (इन्द्रः) इन्द्रने (महता वधेन वज्रेण) बडे घातक शस्त्रसे (वृत्रतरं वृत्रं) बडे घेरनेवाले वृत्रका (व्यंसं, अहन्) उसके बाहु काटनेके पश्चात् वध किया (कुलिशेन विवृक्णा स्कन्धांसि इव) कुल्हाडेसे छेदे गये वृक्षकी शाखाओंकी तरह (अहिः पृथिव्याः उपपृक् शयते) वह अहि पृथ्वीके ऊपर पडा हुआ है ॥ ५ ॥

[३७४] (दुर्मदः अयोद्धा इव) महा घमण्डी और अपनेको अप्रतिम योद्धा माननेवाले वृत्रने (महावीरं तुविबाधं ऋजीषं) महावीर, बहुत शत्रुओंका प्रतिबंध करनेवाले शत्रुनाशक इन्द्रको (आ जुह्वे हि) आह्वान देकर युद्धके लिये बुलाया, पर पश्चात् (अस्य वधानां समृतिं न अतारीत्) इस इन्द्रके आघातोंका सामना वह कर नहीं सका (इन्द्रशत्रुः रुजानाः सं पिपिषे) पश्चात् इन्द्रके शत्रु वृत्रने नदियोंको भी स्वयं गिरते गिरते तोड डाला ॥ ६ ॥

[३७५] (अपात् अहस्तः) पांव और हाथ कट जानेपर भी वृत्रने (इन्द्रं अपृतन्यत्) इन्द्रसे युद्ध करना चाहा (अस्य सानौ अधि वज्रं आ जघान) इन्द्रने इसके सिर पर वज्र मारा (वध्रिः वृष्णः प्रतिमानं बुभूषन्) वीर्यहीन मनुष्यके बलशाली वीरके साथ सामना करनेके समान (वृत्रः पुरुत्रा व्यस्तः अशयत्) वह वृत्र अनेक स्थानोंपर शस्त्रके आघात सहकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ७ ॥

भावार्थ— वृत्र इन्द्रकी सेनाको चारों ओरसे घेरकर मारना चाहता था, पर इस कपटको जानकर इन्द्रने वृत्रको ही मार डाला। इन्द्रने वृत्रके हाथ पैर काटकर उसका वध किया। इसी प्रकार उसने अहिको भी मारा। यहां अहि और वृत्रका अर्थ बर्फ है। मेघ नहीं। क्योंकि मेघ कभी पृथ्वी पर नहीं सोता। बर्फ तो पहाडपर भी गिरती है और भूमिपर भी। वहां सूर्य किरणोंसे वह बर्फ पिघलती है। यही इन्द्र अर्थात् सूर्यके द्वारा वृत्र या अहि अर्थात् बर्फका वध करना है ॥४–५॥

घमण्डी और अपनेको अजिक्य समझनेवाले वृत्रने इन्द्रको लडनेके लिए आह्वान किया। उस शत्रुने अपनेको इन्द्रसे अधिक बलवान् समझकर यह आह्वान किया था। पर इन्द्रने जब उसपर आघात किए तब वह शत्रु आघातोंको सह न सका और वह पृथ्वीपर गिर कर मर गया। इन्द्रका शत्रु वृत्र नदियोंको बर्फके रूपमें जमा कर उनके प्रवाहको रोक देता है। पर जब सूर्य अपनी किरणोंसे उस बर्फको पिघला देता है, तब नदियां फिर बह निकलती हैं ॥ ६ ॥

हाथ पांव टूट जानेपर भी सेनासहित वृत्र युद्ध कर ही रहा था। पर जब इन्द्रने वृत्रके सिरपर वज्रका प्रहार किया तब वह घायल होकर एवं अस्तव्यस्त होकर भूमिपर गिर पडा। वृत्रकी इन्द्रके साथ यह स्पर्धा उसी प्रकार थी जिस प्रकार किसी नपुंसककी वीर पुरुषके साथ ॥ ७ ॥

३७६ नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥
३७७ नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥
३७८ अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० ॥
३७९ दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार ॥ ११ ॥

अर्थ— [३७६] (अमुया शयानं) इस पृथ्वीके साथ सोनेवाले वृत्रको लांघकर (भिन्नं नदं न) बाढसे तटको छिन्न भिन्न करके बहनेवाली नदीके समान (मनः रुहाणाः आपः अति यन्ति) मनोहारी जलप्रवाह बहने लगे (वृत्रः महिना याः चित् पर्यतिष्ठत्) वृत्रने अपनी महिमासे जिन जलोंको बन्द कर रखा था (तासां पत्सुतःशीः अहिः बभूव) उनके पांवोंके नीचे सोनेवाला ही अब वही अहि बन गया ॥ ८ ॥

[३७७] (वृत्रपुत्रा नीचावयाः अभवत्) वृत्रकी माताकी संरक्षण करनेकी शक्ति कम हो गयी (इन्द्रः अस्याः वधः अव जभार) वह माता पुत्रके ऊपर सो गयी, पर इन्द्रने उस माताके नीचेसे वृत्रपर प्रहार किया (सूः उत्तरा, पुत्रः अधरः आसीत्) उस समय माता ऊपर और पुत्र नीचे था (सहवत्सा धेनुः न) बछडेके साथ जैसी धेनु सोती है (दानुः शये) वैसीही वह दानु वृत्रमाता पुत्रके ऊपर सो गयी थी ॥ ९ ॥

[३७८] (अतिष्ठन्तीनां अनिवेशमानानां काष्ठानां मध्ये) स्थिर न रहनेवाले और विश्राम न करनेवाले जलप्रवाहोंके बीचमें (वृत्रस्य निण्यं शरीरं निहितं) वृत्रका शरीर छिपा हुआ था (आपः वि चरन्ति) और उसपरसे जलप्रवाह चल रहे थे (इन्द्रशत्रुः) इन्द्रके शत्रु वृत्रने (दीर्घं तमः आशयत्) बडा ही अन्धकार फैला रखा था ॥ १० ॥

[३७९] (पणिना गावः इव) पणी नामक असुरने जैसी गौवें गुप्त रखी थीं, (दासपत्नीः अहिगोपाः) उस तरह दास वृत्रके द्वारा पालित और अहिद्वारा सुरक्षित (आपः निरुद्धाः अतिष्ठन्) जलप्रवाह रुके पडे थे अर्थात् स्थिर हो गये थे (अपां यत् बिलं अपिहितं आसीत्) जलका जो द्वार बन्द था (तत् वृत्रं जघन्वान्) वह वृत्रके वधके पश्चात् (अप ववार) खोल दिया गया अर्थात् जलप्रवाह बहने लगे ॥ ११ ॥

भावार्थ— वृत्र अपने पौरुषपर बडा अभिमान करता था और लोगोंके सिरपर नाचता था, पर अब वही उनके पांवोंके नीचे गिरा हुआ था। जब वह गिर गया, तब भूमिपर सोनेवाले इस वृत्रपरसे जलप्रवाह लांघकर जाने लगे ॥ ८ ॥

इन्द्रने जब वृत्रपर वज्र फेंका और वृत्र नीचे गिर गया, तब वृत्रकी माता वृत्रको बचानेके लिए उसके ऊपर लेट गई। इस प्रकार अपने पुत्रकी सुरक्षाके लिए उसके ऊपर लेट जानेपर भी इन्द्रने नीचेसे वज्र फेंककर वृत्रको मार दिया ॥ ९ ॥

प्रवाहोंके बीचमें वृत्रका शरीर छिपा पडा था। उस परसे जलप्रवाह बहने लगे थे। इन्द्रके शत्रु इस वृत्रने चारों ओर घना अंधकार छा दिया था। इससे भी यह प्रतीत होता है कि वृत्रका अर्थ बर्फ ही है, बादल नहीं ॥ १० ॥

जलप्रवाह रुके हुए थे, जलोंका द्वार बंद था। अर्थात् जलप्रवाह बह नहीं पाते थे। तब इन्द्रने वृत्रका वध करके वे जलप्रवाह खोल दिए। नदियोंका सब जल बर्फ बन गया था, इसलिए प्रवाह भी बन्द हो गए, पर जब सूर्य किरणोंने बर्फको पिघलाया, तब प्रवाह फिर बहने शुरू हो गए ॥ ११ ॥

३८० अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोम- मवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ १२ ॥
३८१ नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्चो- तापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥
३८२ अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन् नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४ ॥
३८३ इन्द्रो यातो ऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीना- मरान न नेमिः परि ता बभूव ॥ १५ ॥

अर्थ— [३८०] (सृके यत्) इन्द्रके वज्रपर (एकः देवः त्वा प्रत्यहन्) जब एक अद्वितीय युद्धकुशल वृत्रने, मानो तुमपरही प्रहार किया (तत् अश्व्यः वारः अभवः) तब घोडेकी पूँछकी तरह तुमने उसका निवारण किया (गाः अजयः) और गौओंको प्राप्त किया (हे शूर इन्द्र) हे शूरवीर इन्द्र ! (सोमं अजयः) सोमको तुमने प्राप्त किया (सप्त सिन्धून् सर्तवे अव असृजः) और सात सिन्धुओंके प्रवाहोंको गतिमान् करके खुला छोड दिया ॥ १२ ॥

[३८१] (अस्मै विद्युत् न सिषेध) जब इन्द्र युद्ध करने लगा तब इस इन्द्रका बिजली प्रतिबंध न कर सकी (तन्यतुः, यां मिहं अकिरत् न) मेघगर्जना और जो हिमवृष्टि हुई वह भी उसका प्रतिबंध न कर सकी (ध्रादुनिं च) गिरनेवाली विद्युत् भी इस इन्द्रको न रोक सकी (इन्द्रः च अहिः च यत् युयुधाते) इन्द्र और अहि परस्पर युद्ध करने लगे (उत मघवा) उस समय धनवान् इन्द्रने (अपरीभ्यः वि जिग्ये) अन्यान्य शत्रुप्रेरित कपट प्रयोगोंको भी जीत लिया ॥ १३ ॥

[३८२] (इन्द्रः) हे इन्द्र ! (जघ्नुषः ते हृदि) वृत्रका वध करते समय तुम्हारे हृदयमें (यत् भीः अगच्छत्) यदि भय उत्पन्न हो जाता (अहेः यातारं कं अपश्यः) तब तुमने अहिका वध करनेके लिये किस दूसरे वीरको देखा होता अर्थात् तुम्हें छोडकर दूसरा कोई वीर मिलना संभव ही नहीं था । (यत् नव च नवतिं च स्रवन्तीः रजांसि) तुमने जो नौ और नब्बे जल-प्रवाहोंको (भीतः श्येनः न) अन्तरिक्षमें भयभीत श्येनकी तरह (अतरः) पार कर दिया ॥ १४ ॥

[३८३] (वज्रबाहुः इन्द्रः) वज्रबाहु इन्द्र (यातः अवसितस्य) जङ्गम और स्थावरों (शमस्य शृङ्गिणः च) शान्त और क्रूरों सींगवालोंका (राजा) राजा है (सः इत् उ चर्षणीनां राजा क्षयति) वही मनुष्योंका भी राजा है (अरान् नेमिः न) अरोंको जिस तरह चक्रकी नेमि धारण करती है (ताः परि बभूव) उस तरह वे सब उसके चारों ओर रहते हैं अर्थात् वही सबका धारण करता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— इन्द्रने वृत्रका वध किया, सोम आदि वनस्पतियां प्राप्त कीं, गायें प्राप्त कीं और सातों सिन्धुनदियोंका जल प्रवाहित किया.। सातों नदियां भरपूर बहने लगीं । बर्फके पडनेपर बर्फसे सब वनस्पतियां ढक जाती हैं पर सूर्यके कारण बर्फके पिघलनेपर फिर वनस्पतियां प्रकट हो जाती हैं ॥ १२ ॥

बिजलियां, मेघगर्जन, बडी वृष्टियां, बर्फकी वर्षा, बिजलियोंका गिरना आदि आपत्तियां इन्द्रको न रोक सकीं । इन्द्रके शत्रुपर हमला करनेके समय ये आपत्तियां होती रहीं, पर इन्द्रका हमला रुका नहीं। शत्रुके परास्त होनेतक इन्द्रने विघ्नोंकी परवाह न करते हुए हमला किया और अन्तमें विजय पायी ॥ १३ ॥

जब इस हमलेको करते समय इन्द्रके भी हृदयमें यदि भय उत्पन्न होने लगे तो फिर उसका सहायक कौन होगा ? अर्थात् कोई नहीं । जब इन्द्र जैसा बलशाली भी युद्ध करनेसे डरने लगे, तो फिर वृत्रसे युद्ध करनेमें कोई समर्थ नहीं होगा ॥ १४ ॥

यह इन्द्र सभी प्राणियोंका राजा है । यह शान्त भी है पर भी जब क्रोध आता है, तो भयंकर भी बहुत हो जाता है । इसीलिए सब प्राणी इससे डरते हैं । सभी प्रजायें इसके चारों ओर उसी प्रकार रहती हैं, जिस प्रकार चक्रके चारों ओर अरे । उसी प्रभुके आधार पर सारा विश्व है ॥ १५ ॥

(३३)

(ऋषिः– हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

३८४ एतायामोप गव्यन्त इन्द्र॑मस्माकं॒ सु प्रम॑तिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

३८५ उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥

३८६ नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥

३८७ वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक् ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

। ३३ ।

अर्थ— [३८४] (आ इत) आओ ! (गव्यन्तः) गायें प्राप्त करनेकी इच्छासे (इन्द्रं उप अयाम) हम इन्द्रके पास जावें (अनामृणः) जिसका कभी पराजय नहीं होता ऐसा यह इन्द्र (अस्माकं प्रमतिं सु वावृधाति) हमारी बुद्धि उत्तम रीतिसे बढायेगा (आत् अस्य) निःसंदेह इसकी भक्ति (रायः गवां परं केतं नः कुवित् आवर्जते) धनों और गायोंकी प्राप्तिका श्रेष्ठ ज्ञान हमें प्रदान करेगी ॥ १ ॥

[३८५] (जुष्टां वसतिं श्येनः न) जैसा श्येन पक्षी अपने रहनेके घोंसलेके पास दौडता है, (धनदां अप्रतीतं इन्द्रं) वैसे उस धनदाता और अपराजित इन्द्रके पास (अहं उपमेभिः अर्कैः नमस्यन्) मैं उपासनाके योग्य स्तोत्रोंसे नमन करता हुआ (उप इत् पतामि) जा पहुंचता हूँ, (यः स्तोतृभ्यः यामन् हव्यः अस्तिः) यह इन्द्र भक्तोंके लिये युद्धके समय सहायार्थ बुलाने योग्य है ॥ २ ॥

[३८६] (सर्वसेनः इषुधीन् नि असक्त) सब सेनाओंका सेनापति इन्द्र तर्कसोंको अपने पीठपर धारण करता है (अर्यः यस्य वृष्टि गाः सं अजति) वह स्वामी इन्द्र जिसको देना चाहता है उसके पास गायें भेजता है (हे प्रवृद्ध इन्द्र) हे श्रेष्ठ इन्द्र ! (भूरि वामं चोष्कूयमाणः) हमें बहुत श्रेष्ठ धन देनेकी इच्छा करते हुए (अस्मत् अधि पणिः मा भूः) हमारे साथ बनिया जैसा व्यवहार न करना ॥ ३ ॥

[३८७] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (उप शाकेभिः) शक्तिशाली वीरोंके साथ हमला करते हुए भी (एकः चरन्) अन्तमें तुम अकेलेने ही चढाई करके (धनिनं दस्युं) धनी दस्यु वृत्रका अपने (घनेन वधीः हि) प्रचण्ड वज्रसे वध किया । (धनोः अधि विषुणक् ते वि आयन्) तब तुम्हारे धनुष्यके ही ऊपर विशेष नाश होनेके लिये ही मानो, वे सब चढाई करने लगे (अयज्वानः सनकाः) अन्तमें वे यज्ञ न करनेवाले दानव (प्र-इतिं ईयुः) मृत्युको ही प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र सब भक्तोंके द्वारा बुलाने योग्य है। उसके बलको कोई रोक नहीं सकता। ऐसे इन्द्रको जो नमस्कार करता है, उस पर यह इन्द्र बहुत कृपा करता है और उसे हर तरहसे समृद्धि युक्त करता है ॥ १–२ ॥

सब सेना और सेनापतिको सभी तरहके अस्त्रास्त्रोंसे सज्जित रहना चाहिए । इस प्रकार अपनी शूरवीरतासे जो इन्द्रको प्रसन्न करता है, वह अनेक गायोंसे समृद्ध होता है ॥ ३ ॥

धनुष आदि अस्त्रोंका संग्रह करके शत्रु सैनिक इन्द्रका नाश करनेके लिए आए, पर वे स्वयं विनष्ट हो गए । शत्रु-सैनिक असावधानीसे लाभ उठाना चाहते हैं, उस समय स्वयं सावधान रहकर उनका नाश करना चाहिए ॥ ४ ॥

३८८ परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रा ऽयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥

३८९ अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेना मयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

३९० त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चा ऽयोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥

३९१ चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात् सूर्येण ॥ ८ ॥

अर्थ— [३८८] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (अयज्वानः ते) स्वयं यज्ञ न करनेवाले वे शत्रु (यज्वभिः स्पर्धमानः) याजकोंके साथ स्पर्धा करनेके कारण (शीर्षा परा चित् ववृजुः) अपना सिर घुमा कर दूर भगाये गये (हे हरिवः स्थातः उग्र) हे घोडोंको जोडनेवाले, युद्धमें स्थिर उग्र वीर इन्द्र ! (यत् दिवः रोदस्योः अव्रतान् निः प्र अधमः) तुमने द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसे धर्मव्रत–हीन दुष्टोंको भगा दिया है ॥ ५ ॥

[३८९] (अनवद्यस्य सेनां अयुयुत्सन्) निर्दोष इन्द्रकी सेनाके साथ युद्ध करनेकी इच्छा उन शत्रुओंने की, (नवग्वाः क्षितयः अयातयन्त) तब नवीन गतिसे मानवोंने– इन सैनिकोंने उस शत्रुपर चढाई की (वृषायुधः वध्रयः न) बलिष्ठ शूर पुरुषोंके साथ युद्ध करनेसे जो गति नपुंसककी होती है (निरष्टाः चितयन्तः) वैसी ही दशा पराजित होकर उनकी हो गयी (इन्द्रात् प्रवद्भिः आयन्) और वे अपनी निर्बलता मानकर इन्द्रसे दूर भाग गये ॥ ६ ॥

[३९०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (त्वं रुदतः जक्षतः च एतान्) तुमने रोनेवाले या खानेवाले इन शत्रुओंको (रजसः पारे अयोधयः) रजोलोकके परे युद्ध करके भगा दिया । (दस्युं दिवः आ उच्चा अव अदहः) इस दस्यु (वृत्र) को द्युलोकसे खींचकर नीचे लाकर अच्छी तरह जला दिया (सुन्वतः स्तुवतः शंसं प्र आवः) और सोम–याजकों तथा स्तोताओंके स्तुतियोंकी उत्तम रक्षा की ॥ ७ ॥

[३९१] (हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः) सुवर्णों और रत्नोंसे अपने आपको शोभायमान करके (पृथिव्या परिणहं चक्राणासः) पृथ्वीके ऊपर अपना प्रभाव शत्रुओंने जमाया था (हिन्वानासः) वे बढते ही जाते थे (ते इन्द्रं न तितिरुः) पर वे इन्द्रके साथ युद्धमें न ठहर सके (स्पशः) अन्तमें शत्रुके अनुचरोंको (सूर्येण परि अदधात्) सूर्यके द्वारा पराभूत होना पडा ॥ ८ ॥

भावार्थ— शत्रुके साथ युद्ध करनेकी ऐसी तैय्यारी होनी चाहिए, कि हमला होने पर सब शत्रु सिर नीचा करके भाग जाएं । युद्धमें स्थिर रहनेवाला उग्रवीर ही अनियमसे चलनेवाले दुष्ट शत्रुओंका विनाश कर सकता है ॥ ५ ॥

निर्दोष और बलवान् वीरके साथ युद्ध करनेवाले शत्रुओंपर युद्धके नवीन साधनोंसे युक्त होकर ही हमला करना चाहिए । यहां नवग्वाका अर्थ नवीन गति अर्थात् युद्ध विद्यामें चतुरता है । अपने सैनिक बडे प्रखर हों और शत्रुओंके सैनिक उनके सामने शक्तिहीन नपुंसकके समान हों ॥ ६ ॥

यह इन्द्र इतना वीर है कि यह लडकर शत्रुओंको अन्तरिक्षके उस पारतक खदेड देता है । उनको जला देता है और इस प्रकार अपने भक्तोंकी रक्षा करता है ॥ ७ ॥

शत्रुके गुप्तचर बडे खतरनाक होते हैं, वे सब गुप्त ज्ञान शत्रुओंको पहुंचाते रहते हैं, इसलिए इन्हें चारों ओरसे घेर कर पकडना चाहिए । इसके साथ ही सैनिकोंकी शक्ति इतनी हो कि सुवर्णों और रत्नोंके आभूषण धारण करते हुए अर्थात् ऐश्वर्यसम्पन्न होते हुए, तथा बडे वेगसे हमला करनेपर भी हमारे वीरोंको दबा न सकें ॥ ८ ॥

३९२ परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानै- निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥

३९३ न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापु- र्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १० ॥

३९४ अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्या- ऽवर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

३९५ न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥

अर्थ— [३९२] (इन्द्र) हे इन्द्र! (यत् उभे रोदसी) जब दोनों द्यु और भू लोकोंका (महिना) अपनी महिमासे (विश्वतः सीं परि अबुभोजीः) चारों ओरसे सब प्रकार तुमने उपभोग किया, (इन्द्र) तब हे इन्द्र! (अमन्यमानान्) न माननेवालोंको अर्थात् नास्तिकोंको भी (अभि मन्यमानैः ब्रह्मभिः) माननेवालोंके आस्तिकोंके द्वारा ज्ञानपूर्वक की गयी अनेक योजनाओंसे (दस्युं निः अधमः) शत्रुको परास्त किया ॥ ९ ॥

[३९३] (ये दिवः पृथिव्याः अन्तं न आपुः) जो द्यु लोकसे पृथ्वीतकके अवकाशका अन्तिम परिमाण न जान सके (धनदां मायाभिः न पर्यभूवन्) जो धनदाता इन्द्रका कपट युक्तियोंसे भी पराभव न कर सके (वृषभः इन्द्रः वज्रं युजं चक्रे) तब बलवान् इन्द्रने वज्र ठीक तरह पकड लिया (ज्योतिषा तमसः गाः निः अधुक्षत्) और प्रकाश द्वारा अन्धकारमेंसे गौओंको निकाल कर प्राप्त करके, उसने उनका दोहन किया ॥ १० ॥

[३९४] (आपः अस्य स्वधां अनु अक्षरन्) जल-प्रवाह इसके अन्नके अनुसार खेतमेंसे चलने लगे (नाव्यानां मध्ये आ अवर्धत) परंतु वृत्र नौकाओंद्वारा प्रवेश करने योग्य नदियोंके बीच बढ रहा था (इन्द्रः सध्रीचीनेन मनसा) इन्द्रने धैर्ययुक्त मनसे (तं ओजिष्ठेन हन्मना) उस शत्रुको बलवान् घातक वज्रसे (अभि द्यून् अहन्) कुछ एक दिनोंकी अवधिमें मार दिया ॥ ११ ॥

[३९५] (इली-बिशस्य) भूमिपर सोनेवाले वृत्रके (दृळ्हा) सुदृढ सैन्यों या किलोंका (इन्द्रः नि अविध्यत्) इन्द्रने वेध किया (शृङ्गिणं शुष्णं वि अभिनत्) और सींगवाले शोषक वृत्रको छिन्नभिन्न किया (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र! (यावत् तरः) तुम्हारा जितना वेग (यावत् ओजः) और जितना बल था (पृतन्युं शत्रुं वज्रेण अवधीः) उतनेसे तुमने सेनाको साथ रखकर लडनेवाले शत्रुका वज्रसे वध किया ॥ १२ ॥

भावार्थ— अपना कहना न मानकर शत्रुओंका कहना माननेवाले मित्रोंसे दूर ही रहना चाहिए। पहले की गई संधिको न मानकर जो बिना कारण आक्रमण करते हैं, वे शत्रु हैं। उनके साथ लडनेके लिए मित्र सैनिकोंको नियुक्त करना चाहिए ॥ ९ ॥

जो शत्रु द्यु और पृथ्वीतक भी नहीं पहुंच पाते, वे भला किस तरह अपने कपटोंसे इन्द्रको घेर सकते हैं। अपनी शक्ति इतनी अधिक हो कि शत्रु कपटके प्रयोगोंसे भी हमारा विनाश न कर सकें ॥ १० ॥

जलप्रवाह अन्नको बढानेके लिए अच्छी तरह चलते रहें। देशमें अन्नकी स्थिति उत्तम हो। और देशके बाहर देशके सैनिक धैर्ययुक्त मनसे, शांत चित्तसे और उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुओंसे मुकाबला करते रहें ॥ ११ ॥

जबर्दस्ती हमारे प्रदेशों पर कब्जा किए हुए शत्रुओंको और उनके सुदृढ किलोंको तोड देना चाहिए। तीक्ष्ण शस्त्रोंसे शत्रुको छिन्न भिन्न करना चाहिए। जहांतक वेग हो और हमारी शक्ति काम कर सके, वहांतक शत्रुओंका सफाया कर देना चाहिए ॥ १२ ॥

*

३९६ अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद् वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥
३९७ आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥
३९८ आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ ॥

(३४)

(ऋषिः– हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता– अश्विनौ । छन्दः– जगती; ९, १२ त्रिष्टुप् ।)

३९९ त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

अर्थ— [३९६] (अस्य सिध्मः शत्रून् अभि अजिगात्) इस इन्द्रका वज्र शत्रुओंके ऊपर आक्रमण करने लगा (तिग्मेन वृषभेण वज्रेण) तीक्ष्ण और बलशाली वज्रसे (पुरः वि अभेत्) उस इन्द्रने शत्रुके नगरोंको तोड डाला (इन्द्रः वज्रेण सं असृजत्) इन्द्रने वज्रसे शत्रुपर सम्यक् प्रहार किया (शाशदानः स्वां मतिं प्र अतिरत्) तब शत्रुनाशक इन्द्रने अपनी उत्तम विशाल बुद्धि प्रकट की ॥ १३ ॥

[३९७] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यस्मिन् चाकन् कुत्सं आवः) जिसपर तुमने अपनी कृपा की उस कुत्सकी तुमने सुरक्षा की (युध्यन्तं वृषभं दशद्युं प्र आवः) युद्ध करते हुए बलवान् दशद्युकी भी तुमने रक्षा की (शफच्युतः रेणुः द्यां नक्षत) उस समय तुम्हारे घोडोंके खुरोंसे उडी धूली द्युलोकतक फैल गयी थी (श्वैत्रेयः नृसाह्याय उत् तस्थौ) श्वैत्रेय भी सब मानवोंमें अधिक समर्थ होनेके लिये तुम्हारी कृपासे ऊपर उठ गया ॥ १४ ॥

[३९८] (मघवन्) हे धनवान् इन्द्र ! (क्षेत्रजेषे) क्षेत्र-प्राप्तिके युद्धमें (शमं वृषभं तुग्र्यासु गां श्वित्र्यं आवः) शान्त बलवान् परंतु जलप्रवाहोंमें डूबनेवाले श्वित्र्यकी तुमने रक्षा की (अत्र ज्योक् चित् तस्थिवांसः अक्रन्) यहां बहुत समयतक ठहरे हुए हमारे शत्रु हमसे युद्ध कर रहे थे (शत्रूयतां अधरा वेदना अकः) उन शत्रुओंको नीचे गिराकर तुमने ही दुःख दिया ॥ १५ ॥

(३४)

[३९९] (नवेदसा अश्विना) हे ज्ञानी अश्विदेवो ! (अद्य) आज तुम दोनों (त्रिः चित् नः भवतं) तीनों बार हमारे ही होकर रहो । (वां यामः) तुम दोनोंका रथ (उत रातिः विभुः) और दान बडा होता है; (वाससः हिम्या इव) जैसे कपडेका सर्दीसे सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है वैसे ही (युवोः यन्त्रं हि) तुम दोनोंका नियंत्रण हमसे घनिष्ठ होता रहे, (मनीषिभिः अभ्यायंसेन्या भवतं) मननशील लोगोंको तुम दोनों सहज हीसे प्राप्त होते रहो ॥ १ ॥

भावार्थ— शत्रुओंके नाशकी इच्छा करनेवाला वीर अपनी बुद्धिको शत्रुसे अधिक उत्तम बनाये, ताकि शत्रु हमारी बुद्धिकी थाह न पा सके और इस प्रकार उत्तम बुद्धिसे शत्रुओंका नाश करना चाहिए ॥ १३ ॥

अपने देशमें (कु-त्स) बुराइयोंको नष्ट करनेवालों और (दशद्यु) दान देनेवालोंकी रक्षा करनी चाहिए। और सेना तथा घोडे इतने वेगवान् हों कि उनके चलते समय उनके खुरोंसे उडाई गई धूलसे सारी दिशायें भर जाएं ॥ १४ ॥

शत्रुको नष्ट करनेके लिए प्रथम उसके देशमें अशिक्षाका प्रसार करना चाहिए और अपने राष्ट्रमें शिक्षाका प्रसार करना चाहिए । इस प्रकार जब शत्रु राष्ट्रके निवासी अशिक्षित रहेंगे और अपने देशवासी शिक्षित होंगे, तो शत्रु अवश्य विनष्ट हो जाएगा ॥ १५ ॥

अश्विदेव ज्ञानी हैं । वे हमारे यज्ञमें आज तीनों सवनोंमें आजायें । उनका रथ भी बडा है और उनके पास दान देने योग्य धन भी उस रथमें बहुत रखा रहता है । सर्दीसे कपडेका सम्बन्ध जैसे अटूट रहता है वैसे ही अश्विदेवोंकी निगरानीका सम्बन्ध हमसे रहे । अश्विदेवोंकी सहायता मननशील लोगोंको सहज हीसे प्राप्त होती रहे ॥ १ ॥

४०० त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २ ॥
४०१ समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥
४०२ त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥
४०३ त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [४००] इनके (मधु-वाहने रथे) मधुको ढोनेवाले रथमें (त्रयः पवयः) तीन पहिये लगे हुए हैं, (विश्वे इत्) सभी आप दोनोंकी (सोमस्य वेनां अनु विदुः) सोमकी चाहको जानते हैं। हे (अश्विना) अश्विदेवो! (आरभे त्रयः स्कम्भासः) तुम दोनोंके रथपर आलम्बनके लिए तीन खंभे (स्कभितासः) स्थिर किये हुए हैं, (नक्तं त्रिः याथः) रात्रीके समय तुम दोनों तीनबार यात्रा करते हो, (दिवा उ त्रिः) और दिनके समय भी तीन बार घूमते हो ॥ २ ॥

[४०१] हे (अवद्य-गोहना अश्विना) अश्विदेवो! तुम दोनों दोषोंको गुप्त रखनेवाले हो। (समाने अहन्) एक ही दिन (अद्य) आज (यज्ञं त्रिः) हमारे यज्ञको तीन बार (मधुना मिमिक्षतं) मधुसे पूर्ण करो; (युवं अस्मभ्यं) तुम दोनों हमें (उषसः दोषाः च) प्रातःकाल तथा सायंकाल (वाजवतीः इषः) बलवर्धक अन्न (त्रिः पिन्वतं) तीनबार भरपूर दे दो ॥ ३ ॥

[४०२] हे अश्विनौ! (वर्तिः त्रिः यातं) हमारे घरपर तुम दोनों तीन बार आओ, (अनुव्रते जने त्रिः) अनुयायी लोगोंके मध्य तुम दोनों तीन बार जाओ, (सुप्राव्ये) उत्तम रक्षा करने योग्य मनुष्योंको (त्रिः) तीन बार (त्रेधा इव शिक्षतं) तीन प्रकारके ज्ञानको पढाओ; (युवं) तुम दोनों (नान्द्यं त्रिः वहतं) अभिनन्दनीय पदार्थोंको तीन बार ढोकर इधर पहुँचा दो और (अस्मे) हमें (पृक्षः) अन्नोंको (अक्षरा इव त्रिः पिन्वतं) स्थायी वस्तुओंके समान तीनबार पर्याप्त मात्रामें देकर पुष्ट करो ॥ ४ ॥

[४०३] हे (अश्विनौ) अश्विनौ! (युवं नः) तुम दोनों हमारे लिए (त्रिः रयिं वहतं) तीनबार धन पहुँचा दो, (देवताता त्रिः) यज्ञमें तीनबार आओ (उत) और यहांके (धियः त्रिः अवतं) कर्मोंको तीनबार सुरक्षित रखो, (सौभगत्वं त्रिः) अच्छा ऐश्वर्य तीनबार दो, (उत श्रवांसि त्रिः) और अन्न समूह तीनबार दो, (वां त्रिः स्थं रथं) तुम दोनोंके तीन पहियोंके रथपर (सूरेः दुहिता) सूर्यकी कन्या (रुहत्) चढ गयी है ॥ ५ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंके रथके तीन पहिये हैं। उसमें बैठ कर वे सोमके स्थानपर जाते हैं क्योंकि वे सोमको चाहनेवाले हैं। इनके रथमें पकडनेके लिये तीन खम्भे हैं, ये खम्भे स्थिर हैं। रात्रीमें तथा दिनमें तीन तीन बार ये अश्विदेव इस रथमें बैठकर भ्रमण करते हैं। इनके रथमें पर्याप्त मधु रहता है ॥ २ ॥

अश्विदेव हमारे कर्ममें दोष अर्थात् त्रुटि रही तो उसको क्षमा करते हैं। दिनमें तीन तीन बार यज्ञमें आते और मधु देते हैं, तथा सवेरे और शामको बलवर्धक अन्न दिनमें तीनबार देते हैं ॥ ३ ॥

अश्विदेव अनुयायियोंके घरपर तीनबार दिनमें जायँ, अपने घर तीनबार आ जायँ। जिसकी सुरक्षा करनी हो उसको तीनबार तीन प्रकारका ज्ञान देकर अपनी सुरक्षा करनेकी रीति बतावें। आनन्द देनेवाले पदार्थ तीनबार दिनमें ले आवें और अन्न भी तीनबार देकर हमें पुष्ट करें ॥ ४ ॥

अश्विदेव हमारे लिए तीनबार धन दें, यज्ञमें आकर तीनबार कर्मोंकी देखभाल करें, उत्तम भाग्य तीनबार दें, और तीनबार अन्न दें। इनके तीन पहियोंवाले रथपर सूर्यकी दुहिता चढ बैठी है ॥ ५ ॥

४०४ त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ ॥

४०५ त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥ ७ ॥

४०६ त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस् त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥ ८ ॥

४०७ क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४०४] हे (शुभः पती अश्विना) शुभ कर्मोंके पालनकर्ता अश्विदेवो ! (नः) हमें (दिव्यानि भेषजा त्रिः) द्युलोककी दवाइयाँ तीनबार (पार्थिवानि त्रिः) भूमिपरकी औषधियाँ तीनबार और (अद्भ्यः त्रिः दत्तं) जलोंसे तीनबार औषधोंका दान करो । (ममकाय सूनवे शंयोः) मेरे पुत्रको सुखकी प्राप्ति होनेके लिए (ओमानं त्रिधातु शर्म वहतं) संरक्षण तथा तीन धातुओंकी सुस्थितिसे मिलनेवाला सुख पहुँचा दो ॥ ६ ॥

[४०५] (यजता अश्विना) हे पूजनीय अश्विदेवो ! (नः दिवे दिवे) हमारे प्रतिदिन करनेके (त्रिः) तीनों यज्ञोंमें (पृथिवीं) पृथ्वी स्थानीय वेदीपर (त्रिः परि अशायतं) तीनबार आकर बैठो, (रथ्या नासत्या) हे रथारूढ और सत्यपालक देवो ! (परावतः) सुदूरवर्ती स्थानसे भी (वातः आत्मा इव) प्राण वायुरूपी आत्माके समान (स्वसराणि तिस्रः गच्छतं) हमारे घरोंमें तीनों बार आओ ॥ ७ ॥

[४०६] हे अश्विदेवो ! (सप्तमातृभिः सिन्धुभिः) माताओंके समान पवित्र सातों नदियोंके जलसे (त्रिः) तीनबार, (त्रयः आहावाः) ये तीन पात्र भर दिये हैं, (हविः त्रेधा कृतं) हविको भी तीन हिस्सोंमें बांट रखा है, (तिस्रः पृथिवीः उपरि प्रवा) इन तीनों लोगोंमें ऊपर जानेवाले तुम दोनों (दिवः हितं नाकं) द्युलोकमें प्रस्थापित सुखकी (द्युभिः अक्तुभिः) दिनों और रात्रियोंमें (रक्षेथे) रक्षा करते हो ॥ ८ ॥

[४०७] (नासत्या) हे सत्यका पालन करनेवाले देवो ! (त्रिवृतः रथस्य) तीन छोरवाले रथके (त्रि चक्रा क्व) तीन पहिये किधर हैं ? (ये सनीळाः त्रयः) जो एक ही स्थानमें रखे हुए तीनों (वंधुरः क्व) खंभे हैं वे कहाँ हैं ? (वाजिनः रासभस्य) बलवान् गर्दभका तुम्हारे (योगः कदा) रथमें जोतना कब होगा ? तुम दोनों (येन यज्ञं उपयाथः) जिस रथपर चढकर यज्ञमें आते हो ॥ ९ ॥

भावार्थ— अश्विदेव हमारे शुभ कर्मोंकी रक्षा करें । पर्वत, भूमि और जलसे चिकित्सा करें और बाल बच्चोंकी सुरक्षाके लिये वात-पित्त कफकी (विषमताको दूर करके) समताका सुख दें ॥ ६ ॥

पूजनीय अश्विदेव प्रतिदिनके यज्ञमें तीनबार आकर आसनोंपर बैठें । जब वे दूर देशमें हों तब भी वे रथपर चढ कर, जैसा प्राण शरीरमें घुसता है वैसे, वेगसे हमारे यज्ञस्थानमें शीघ्रतासे आ जाँय । अर्थात् जहां कहीं भी हों वहांसे वे अवश्य आ जायँ ॥ ७ ॥

अश्विदेवोंका सत्कार करनेके लिये सात नदियोंका जल भरकर रखा है जिससे ये तीन पात्र भरे पडे हैं । उनके लिये हवि भी तीन पात्रोंमें रखी हुई है । ये दोनों देव तीनों लोकोंमें भ्रमण करते हैं और स्वर्गमें रखे सुखकी दिन रात सुरक्षा करते रहते हैं ॥ ८ ॥

रथको पूर्णतया तैयार करके तथा रथकी सभी वस्तुओंकी भलीभाँति जाँच पडताल करके ही यात्रा करनी चाहिए ॥ ९ ॥

४०८ आ नासत्या गच्छतं हूयते हवि—र्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथ—मृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥
४०९ आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११ ॥
४१० आ नो अश्विना त्रिवृता रथेना—ऽर्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ ॥

(३५)

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवता- १ (पादानां क्रमेण) अग्निः, मित्रावरुणौ, रात्रिः, सविता च । छन्दः- २-११ सविता । त्रिष्टुप्; १, ९ जगती ।)

४११ ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १ ॥

अर्थ—[४०८] (नासत्या) हे असत्यसे दूर रहनेवाले देवो! (हविः हूयते) यहां हविको अग्निमें डाला जाता है, अतः (आ गच्छतं) यहां आओ। (मधुपेभिः आसभिः) मधु पीनेवाले मुखोंमें (मध्वः पिबतं) मीठे सोम रसका पान करो। (युवः चित्रं घृतवन्तं रथं हि) तुम दोनोंके विचित्र एवं घीसे युक्त रथको तो (सविता उषसः पूर्वं) सूर्य उषःकालके पहले ही (ऋताय इष्यति) यज्ञके लिए प्रेरित करता है ॥ १० ॥

[४०९] (नासत्या अश्विना) हे सत्यके पालक अश्विदेवो! (त्रिभिः एकादशैः देवैः) तीनबार ग्यारह अर्थात् तैंतीस देवोंके साथ (इह मधुपेयं आयातं) इधर मीठे सोमरसके पान करनेके लिए यज्ञमें आ जाओ। (आयुः प्रतारिष्टं) हमारे जीवनको सुदीर्घ करो। (रपांसि नि मृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया दूर करके हमारी शुद्धता करो। (द्वेषः सेधतं) वैरभावको दूर करो। (सचा भुवा भवतं) हमारे साथ रहो ॥ ११ ॥

[४१०] हे अश्विदेवो! (त्रिवृता रथेन) तीन छोरवाले रथसे (सुवीरं रयिं) अच्छे वीरोंसे युक्त धनको (नः अर्वाञ्चं आवहतं) हमारे समीप पहुंचा दो। (वां शृण्वन्ता) तुम दोनों सुननेवालोंको (अवसे जोहवीमि) मैं अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ। (वाजसातौ च) और युद्धके मौकेपर (नः वृधे भवतं) हमारी वृद्धिके लिए तुम प्रयत्नशील हो ॥ १२ ॥

[३५]

[४११] (स्वस्तये प्रथमं अग्निं ह्वयामि) कल्याणके लिये प्रथम अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूं। (इह अवसे मित्रावरुणौ ह्वयामि) यहां सुरक्षितताके लिये मित्र और वरुणको मैं बुलाता हूं (जगतः निवेशनीं रात्रीं ह्वयामि) जगत्‌को विश्राम देनेवाली रात्रिकी मैं प्रार्थना करता हूं (ऊतये सवितारं देवं ह्वयामि) और अपनी सुरक्षाके लिये सविता देवका आवाहन मैं करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रातःकाल होते ही रथको सज्ज करके यज्ञ स्थानके पास जाना चाहिए। अश्विदेव उषःकालके पहिले ही यज्ञ स्थानपर जाते हैं। क्योंकि सूर्य ही उस समय सबको यज्ञ करनेके लिये प्रवृत्त करता है ॥ १० ॥

अश्विदेव सत्यका पालन करते हैं। तैंतीस देवोंके साथ वे हमारे यहां रसपान करनेके लिये आवें और हमें दीर्घायु करें। हमारे अन्दरके दोष दूर करें, द्वेषभाव दूर करें, और मित्र जैसे हमारे पास रहें ॥ ११ ॥

अश्विदेव अपने त्रिकोणाकृति रथपरसे वीरोंके साथ रहनेवाला धन हमारे पास ले आवें। वे हमारी प्रार्थना सुनते हैं, इसलिये हम उनको बुलाते हैं। युद्ध छिडजानेपर वे हमारी ही सहायता करें ॥ १२ ॥

अग्नि, मित्र, वरुण, रात्रि और सविता ये सभी देव कल्याण करनेवाले हैं। अग्नि ज्ञान और उष्णता द्वारा, मित्र बिजली द्वारा पानी बरसाकर, वरुण जल द्वारा और सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा सबकी सुरक्षा एवं सबका कल्याण करता है ॥ १ ॥

४१२ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥
४१३ याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३ ॥
४१४ अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४ ॥
४१५ वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद् विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥

अर्थ— [४१२] (कृष्णेन रजसा आ वर्तमानः) अन्धकारसे युक्त अन्तरिक्षलोकमेंसे परिभ्रमण करनेवाले (अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्) अमर्त्य और मर्त्यका निवेश करनेवाले (सविता देवः भुवनानि पश्यन्) सविता देव सब भुवनोंको देखते हुए (हिरण्ययेन रथेन आ याति) सुवर्णके रथसे आते हैं ॥ २ ॥

[४१३] (देवः सविता प्रवता याति) सविता देव प्रथम ऊंचाईके मार्गसे ऊपर चढकर जाते हैं, (उद्वता याति) और पश्चात् अधोगामी मार्गसे नीचे उतरते हुए चलते हैं (यजतः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति) पूजाके योग्य ये सूर्यदेव तेजस्वी घोडोंसे गमन करते हैं । (सविता देवः) ये सविता देव (विश्वा दुरिता अपबाधमानः) सब पापोंको रोकनेके लिये (परावतः आ याति) दूर देशसे आते हैं ॥ ३ ॥

[४१४] (अभिवृतं, कृशनैः विश्वरूपं) सतत गतिशील, सुवर्णादिके कारण, सुंदर नानारूपवाले (हिरण्य-शम्यं बृहन्तं रथं) सुवर्णकी रस्सियोंसे किरणोंसे युक्त बडे रथपर (यजतः चित्रभानुः) पूजनीय चित्रविचित्र किरणों-वाले (कृष्णाः रजांसि तविषीं दधानः) और अन्धकारका नाश करनेवाले प्रकाशका धारण अपने बलसे करनेवाले (सविता आ अस्थात्) सविता देव आ गए हैं ॥ ४ ॥

[४१५] (श्यावाः शितिपादः) सूर्यके घोडे सफेद पैरोंवाले हैं (हिरण्यप्रउगं रथं वहन्तं) वे सुवर्णके युग-वाले रथको ढोते हैं (जनान् वि अख्यत्) जो मानवोंके लिये प्रकाश देते हैं । (शश्वत् विश्वा भुवनानि विशः) सर्वदा सभी भुवन और सब प्रजाजन (दैव्यस्य सवितुः उपस्थे तस्थुः) दिव्य सविता देवके समीप उपस्थित होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— अमर और मर्त्य ऐसे दो पदार्थ इस विश्वमें हैं, इन दोनोंका निवास सर्वथा सूर्य देवकी किरणोंपर है । बरसातके दिनोंमें जब एक दो मासतक सूर्य नहीं निकलता, तब सारा स्वास्थ्य बिगड जाता है । इस प्रकार आरोग्य प्रदान करता हुआ सूर्य अपने तेजस्वी रथसे प्रतिदिन जाता है ॥ २ ॥

सूर्य देव सब दुरितोंका नाश तथा प्रतिबंध करता है । जो रोगबीज बाहरसे शरीरके अन्दर या मनके अन्दर घुसता है, उसको दुरित कहते हैं । सूर्य किरणोंसे इन सबका नाश होता है । यह देव प्रथम ऊपर आकाशमें चढता है और फिर उतरता है । इसी प्रकार यह परिभ्रमण करता है ॥ ३ ॥

इस सविता देवका रथ हमेशा गतिशील और सोनेके समान तेजस्वी है । यह अनेक किरणोंसे चमकता रहता है । उस रथपर सवार होकर यह सविता देव अन्धकारका नाश करके सबके अन्दर बल स्थापित करता है । सब तरहके बल इसी सूर्यसे ही मिलते हैं ॥ ४ ॥

इस सूर्यकी किरणें अत्यधिक तेजस्वी होनेके कारण सफेद दीखती हैं । ये ही किरणें सूर्यको प्रकाशित करती हैं और सब प्रजाजन सूर्यका सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

४१६ तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थु—रिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥
४१७ वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥
४१८ अष्टौ व्यख्यत् ककुभः पृथिव्यास् त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद् दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥
४१९ हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणि—रुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्य—मभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥

अर्थ— [४१६] (द्यावः तिस्रः,) तीन दिव्य लोक हैं, (द्वा सवितुः उपस्था,) उनमेंसे दो लोक सविता देवके पास हैं (एका यमस्य भुवने विराषाट्) और तीसरा लोक यमके भुवनमें वीरोंके लिये रहनेका स्थान देता है (रथ्यं आणिं न) रथके अक्षमें रहनेवाली कीलके समान (अमृता अधि तस्थुः) सब अमर देव सूर्यपर अधिष्ठित हैं (यः तत् चिकेतत्) जो यह जानता है, (उ, इह ब्रवीतु) वह यहां आकर कहे ॥ ६ ॥

[४१७] (गभीरवेपाः) गम्भीर गतिसे युक्त, (असुरः, सुनीथः, सुपर्णः) प्राणशक्तिका दाता, उत्तम मार्ग-दर्शक, उत्तम प्रकाश देनेवाला सूर्यदेव (अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्) अन्तरिक्षादि तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है (सूर्यः इदानीं क्व) इस समय सूर्य रात्रिके समय कहां है ? (कः चिकेत) कौन जानता है ? इस (अस्य रश्मिः कतमां द्यां आ ततान) सूर्यका किरण किस द्युलोकमें फैला होगा ॥ ७ ॥

[४१८] (पृथिव्याः अष्टौ ककुभः) पृथ्वीकी आठों दिशाएं (योजना धन्व त्रिः) परस्पर संयुक्त हुए तीनों लोक (सप्त सिन्धून् वि अख्यत्) और सात सिन्धु नदियां सविता देवने प्रकाशित की हैं (हिरण्याक्षः सविता देवः) सुवर्णके समान तेजस्वी किरणवाला यह सविता देव (दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत्) दाताके लिये स्वीकार करनेयोग्य रत्नोंको देता हुआ (आ गात्) समीप आया है ॥ ८ ॥

[४१९] (हिरण्यपाणिः विचर्षणिः सविता) सुवर्णके समान किरणवाला सर्वत्र संचार करनेवाला सविता देव (उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते) दोनों द्यावापृथिवीके बीचमें संचार करता है (अमीवां अप बाधते) रोगोंको दूर करता है, (सूर्यं वेति) इसीको सूर्य कहते हैं (कृष्णेन रजसा द्यां अभि ऋणोति) प्रकाश-हीन अन्तरिक्ष लोकसे द्युलोक तक प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— आकाशका नाम द्युलोक है। क्योंकि आकाश सदा सर्वदा प्रकाशयुक्त रहता है। इस द्युलोकके तीन विभाग हैं। दो विभाग सूर्यके पास रहते हैं और एक विभाग यमके भुवनमें वीरोंके रहनेका स्थान है। अर्थात् वीर मरनेके बाद वहां आकर रहते हैं ॥ ६ ॥

जीवनकी शक्ति देनेवाला सूर्य तीन अन्तरिक्षोंको प्रकाशित करता है। पर वह सूर्य क्या है, किसका बना हुआ है और वह अपनी रश्मियां कब फैलाता है, यह कोई भी जानता नहीं, लोग केवल यही, जानते हैं कि वह जगत्को प्रकाशित अवश्य करता है ॥ ७ ॥

पृथ्वीकी आठों दिशाओंको यह सूर्य प्रकाशित करता है। सातों सिन्धुओंको यह प्रकाशित करता है। सोनेके जैसा तेजस्वी यह सूर्य ग्रहण करने योग्य धनोंको धारण करता हुआ उदय होता है ॥ ८ ॥

यह सूर्य सुनहली किरणोंसे युक्त होकर दोनों द्यावा और पृथ्वीके बीचमें चलता है और रोगबीजोंको दूर करता है। सूर्य ही सब रोग बीजोंको दूर करता है। न पचे हुए अन्नको आम कहते हैं। इस आमसे जो रोग होते हैं उन रोगबीजोंका नाश सूर्य करता है सूर्यसे पाचनशक्ति बढती है ॥ ९ ॥

४२० हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन् रक्षसो यातुधाना—नस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

४२१ ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

(३६)

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- अग्निः, १३-१४ यूपो वा । छन्दः- प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः (१३ उपरिष्टाद्बृहती । ऐ. आ. २।२ चरणच्छेदः)

४२२ प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥

अर्थ— [४२०] (हिरण्यहस्तः असुरः) सुवर्ण जैसे किरणवाला, प्राणशक्तिका दाता (सुनीथः सुमृळीकः स्ववान् अर्वाङ् यातु) उत्तम नेता, सुख-दाता, निज शक्तिसे संपन्न सविता देव यहां आवे । (देवः प्रतिदोषं गृणानः) यह सविता देव प्रत्येक रात्रिमें स्तुति किये जानेपर (रक्षसः यातुधानान् अपसेधन्) राक्षसों और यातना देनेवालोंको दूर करता हुआ (अस्थात्) यहां आवे ॥ १० ॥

[४२१] (सवितः) हे सविता देव ! (ये ते पन्थाः पूर्व्यासः) जो तुम्हारे मार्ग पहिलेसे निश्चित हुए, (अरेणवः अन्तरिक्षे सुकृताः) धूलिरहित और अन्तरिक्षमें उत्तम निर्माण किये हैं (सुगेभिः तेभिः पथिभिः) उत्तम जानेयोग्य उन मार्गोंसे (अद्य नः रक्ष च) आज हमारी सुरक्षा करो और (देव) हे देव ! (नः अधि ब्रूहि च) हमें आशीर्वाद दो ॥ ११ ॥

(३६)

[४२२] (देवयतीनां पुरूणां विशां वः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले बहुसंख्य तुम सब प्रजाजनोंके लिए (यह्वं अग्निं सूक्तेभिः वचोभिः प्र ईमहे) सामर्थ्यवान् अग्निकी सूक्तों और वाक्यों द्वारा हम प्रार्थना करते हैं । इसी तरह (अन्ये इत् यं सीं ईळते) अन्य भी उसीकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सूर्य सोनेकी किरणोंवाला, प्राणदायक, उत्तम मार्गपर ले जानेवाला और सुखदायक है । यह सूर्य अन्धकाररूपी राक्षसको नष्ट करता हुआ चलता है । इस सूर्यकी किरणोंमें प्राणशक्ति रहती है । उससे मनुष्य स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है ॥ १० ॥

सूर्यका रथ अन्तरिक्षमें चलनेके कारण धूलि नहीं उड़ाता, उसके रथका मार्ग बहुत उत्तम है । इसी प्रकार सबके रथ उत्तम हों, उनपर सोनेका काम हो । उत्तम घोडे हों और यह रथ धूलि रहित मार्गोंपर चलें । ऐसे रथोंपर बैठकर वीर राक्षसोंका नाश करें ॥ ११ ॥

यह अग्नि महासामर्थ्यवान् है, इसकी रोज प्रार्थना करनेसे तेजस्विता प्राप्त होती है और उत्तम गुण मिलते हैं । इसी लिए सब उसकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

४२३ जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

४२४ प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

४२५ देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— [४२३] (जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे) लोगोंने बलके बढानेवाले अग्निको धारण किया। (हविष्मन्तः ते विधेम) हविसे युक्त होकर हम तेरी पूजा करते हैं। (वाजेषु सन्त्य! स त्वं अद्य इह नः सुमना अविता भव) अन्नोंमें दानशील हे अग्ने! वह प्रसिद्ध तू आज हमारे ऊपर प्रसन्नचित्तवाला होकर रक्षक हो ॥ २ ॥

१ जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे— लोग बल बढानेवाली इस अग्निको धारण करते हैं। यह अग्नि शारीरिकशक्तियोंको बढाती है, अंगोंमें रसका संचार करती है।

२ सुमनाः अविता भव— उत्तम मनवाला संरक्षक हो। रक्षक उत्तम मनवाला ही होना चाहिए अन्यथा वह रक्षककी जगह भक्षक बन जाएगा।

[४२४] (होतारं विश्ववेदसं दूतं त्वा वृणीमहे) देवोंको बुलानेवाले, सर्वज्ञ और देवताओंके दूत तुझको हम प्रसन्न होकर वरण करते हैं। (महः सतः ते अर्चयः विचरन्ति) महान् और सत्य स्वरूप तेरी ज्वालायें फैल रही हैं और तेरी (भानवः दिवि स्पृशन्ति) किरणें आकाशतक पहुंचती हैं ॥ ३ ॥

१ होतारं विश्ववेदसं दूतं वृणीमहे— दान देनेवाले एवं सब जाननेवाले दूतका वरण हम करते हैं। दूत दाता हो, ज्ञानी हो, समझदार हो।

२ महः सतः अर्चयः विचरन्ति, भानवः दिवि स्पृशन्ति— जो महात्मा सत्यनिष्ठ होते हैं उनका तेज चारों ओर फैलता है और उनका तेज आकाशतक पहुंचता है।

[४२५] हे (अग्ने) अग्ने! (वरुणः मित्रः अर्यमा देवासः त्वा प्रत्नं दूतं सं इन्धते) वरुण, मित्र और अर्यमा यह तीनों देव तुझ प्राचीन दूतको अच्छी प्रकार प्रदीप्त करते हैं। (यः मर्त्यः ते ददाश) जो मनुष्य तेरे लिये दान देता है, (सः त्वया विश्वं धनं जयति) वह यजमान तेरी सहायतासे समस्त धनको जीतता है ॥ ४ ॥

१ यः ददाशः सः विश्वं धनं जयति— जो दान करता है, वह सब धन प्राप्त करता है। जो अपने पासके धन आदि सब शक्तियोंका यज्ञ करता है, वह सर्वत्र विजय प्राप्त करता है।

भावार्थ— यह अग्रणी लोगोंका बल बढाता है और शुद्ध और पवित्र मनसे लोगोंकी रक्षा करता है। ऐसे अग्रणी इसकी पूजा लोगोंको अवश्य करनी चाहिए ॥ २ ॥

यह अग्रणी महान् और सत्यनिष्ठ है, अतः इसे विद्वान् दूतके रूपमें चुनते हैं। इस अग्निका तेज चारों ओर फैलता है ॥ ३ ॥

वरणीय, मित्र श्रेष्ठ पुरुष और विद्वान् पुरुष इस अग्रणीको प्रज्वलित करते हैं। उसमें यज्ञ करके हर प्रकारके धन प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

*

४२६ मन्द्रो होता गृहपति-रग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥
४२७ त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥
४२८ तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥
४२९ घ्नन्तो वृत्रमतरन् रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत् कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

अर्थ— [४२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मन्द्रः होता विशां गृहपतिः दूतः असि) हर्षवर्धक, दाता, प्रजाओंके घरोंका रक्षक और देवोंका दूत है। (यानि देवाः ध्रुवा अकृण्वत) जिनको सब देव दृढतापूर्वक करते हैं, (विश्वा व्रता त्वे संगतानि) वे सब व्रत तेरे अन्दर संगत होते हैं ॥ ५ ॥

[४२७] हे (यविष्ठय अग्ने) बलशाली अग्ने ! (सुभगे त्वे इत् विश्वं हविः आ हूयते) उत्तम भाग्यसम्पन्न ऐसे तेरे अन्दर ही सब प्रकारकी हविको अर्पण किया जाता है। (सः त्वं नः सुमनाः) वह प्रसिद्ध तू हमारे ऊपर आनन्दचित्तवाला होकर (अद्य उत अपरं सुवीर्या देवान् यक्षि) आज और दूसरे दिन भी प्रभावशाली देवोंका अर्चन कर ॥ ६ ॥

१ सुमनाः सुवीर्या यक्षि— उत्तम मनसे वीरोंकी पूजा करनी चाहिए। वीर भी प्रजाओंसे अपना व्यवहार ऐसे रखें, कि सारी प्रजायें प्रसन्न मनसे उस वीरका सत्कार करें, जबर्दस्ती नहीं।

[४२८] (नमस्विनः स्वराजं तं घ ईं इत्था उप आसते) नमस्कार करनेवाले उपासक स्वयंप्रकाशी इस अग्निकी इस तरह उपासना करते हैं। (स्रिधः अति तितिर्वांसः मनुष्यः) शत्रुओंको पार करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (होत्राभिः अग्निं सं इन्धते) हवन करनेके साधनोंके द्वारा अग्निको प्रकाशित करते हैं ॥ ७ ॥

१ नमस्विनः स्वराजं उपासते— शस्त्रधारी वीर पुरुष ही स्वराज्यकी उपासना कर सकते हैं।
२ स्रिधः अति तितीर्वांसः मनुषः— मनुष्य हिंसक मनुष्योंको पराहत करनेकी इच्छा करे।

[४२९] (घ्नन्तः वृत्रं अतरन्) प्रहार करनेवालोंने-वीरोंने वृत्रका वध किया। और (रोदसी अपः क्षयाय उरु चक्रिरे) अन्तरिक्षको जलोंके रहनेके लिये बहुत विस्तृत किया। (वृषा द्युम्नी आहुतः कण्वे भुवत्) बलवान् और प्रकाशित अग्नि आहुतियाँ प्राप्त करके कण्वके लिये उसी प्रकार यशदायी हुआ जैसे (गविष्टिषु अश्वः क्रन्दत्) गौओंकी प्राप्तिके युद्धमें हिनहिनानेवाला घोडा यशदायी होता है ॥ ८ ॥

१ घ्नन्तः वृत्रं अतरन्— प्रहार करनेवालोंने चारों ओरसे घेर कर वृत्रको मारा।

भावार्थ— प्रजाओंके गृहोंका रक्षक यह अग्नि देवोंका दूत है, तथा सब व्रतोंका पालक है। वह दूसरोंको भी व्रतपालनकी प्रेरणा देता है ॥ ५ ॥

इस भाग्यसम्पन्न तथा सदा तरुण रहनेवाले इस अग्निकी सब प्रसन्न मनसे पूजा करते हैं। इसीके द्वारा मनुष्य दूसरे देवोंकी भी पूजा कर सकता है ॥ ६ ॥

नम्र हुए हुए उपासक ही उस स्वयं प्रकाशक प्रभुकी भक्ति कर सकते हैं। तथा शत्रुओंको परास्त करके ही मनुष्य अग्नि प्रकाशित कर सकते हैं ॥ ७ ॥

वीरोंने वृत्रका वध करके जलोंके लिए अन्तरिक्षको विस्तृत किया, उसी प्रकार मनुष्य भी विशाल घरोंमें रहें और अग्निहोत्र प्रज्ज्वलित करें। और उसके द्वारा यश प्राप्त करें ॥ ८ ॥

४३० सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

४३१ यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

४३२ यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस् तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥

४३३ रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते ऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥

अर्थ— [४३०] हे देव ! (सं सीदस्व) बैठ जाओ, तुम (महान् असि) बडे हो, (देववीतमः शोचस्व) देवोंकी कामना करते हुये प्रकाशित होओ । हे (मियेध्य प्रशस्त अग्ने) पवित्र और प्रशंसित अग्ने ! (अरुषं दर्शतं धूमं वि सृज) वेगवान् दर्शनीय धूम उत्पन्न करो ॥ ९ ॥

[४३१] हे (हव्यवाहन) हव्य पहुँचानेवाले अग्ने ! (मनवे देवासः यजिष्ठं यं त्वा इह दधुः) मानवोंके हितके लिये सब देवोंने यजनीय ऐसे तुझको यहाँ इस यज्ञमें धारण किया है । (मेध्यातिथिः कण्वः यं धनस्पृतं) मेध्यातिथि कण्वने धन देनेवाले तुझे धारण किया, तथा (वृषा यं उपस्तुतः यं) बलको बढानेवाले वीर और उपस्तुतने भी तुझे धारण किया है ॥ १० ॥

[४३२] (मेध्यतिथिः कण्वः ऋतात् अधि यं अग्निं ईधे) मेध्यातिथि कण्वने सूर्यसे लेकर जिस अग्निको दीप्त किया, (तस्य इषः प्रदीदियुः) उसकी गतिशील किरणें चमकने लगी हैं, (तं इमाः ऋचः) उसीको ये हमारी ऋचायें बढाती हैं, (तं अग्निं वर्धयामसि) उसी अग्निको हम भी बढाते हैं ॥ ११ ॥

[४३३] हे (स्वधावः) अपनी धारणाशक्तिवाले अग्ने ! हमें (रायः पूर्धि) धन भरपूर दे । हे (अग्ने) अग्ने ! (देवेषु ते आप्यं अस्ति हि) देवोंमें तेरी निःसंदेह मित्रता है, (त्वं श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि) तू प्रशंसनीय बलका प्रकाशक है । (सः नः मृळ, महान् असि) वह प्रसिद्ध तू हमें सुखी कर, तू महान् है ॥ १२ ॥

१ स्व-धा-वः रायः पूर्धि— अपनी शक्तिसे मनुष्य भरपूर धन कमावे ।

२ श्रुत्यस्य वाजस्य राजसि— प्रशंसनीय बलसे तेजस्वी बनना चाहिए । ऐसे श्रेष्ठ पराक्रम करने चाहिए कि जिससे चारों ओर कीर्ति फैले ।

भावार्थ— यह देव प्रकाश करनेवाला तथा अन्य देवोंकी कामना करता है ॥ ९ ॥

इस पूजनीय और प्रशंसनीय अग्निको देवोंने मनुष्योंके हितके लिए स्थापित किया है । तथा मेधातिथि और उपस्तुत आदि ऋषियोंने भी धारण किया है ॥ १० ॥

मेध्यातिथिने सूर्यसे शक्ति लेकर इस अग्निको प्रदीप्त किया, फिर उसकी किरणोंमें चमक आ गई । उसीको मनुष्य ऋचाओंको बोलकर प्रदीप्त करते हैं ॥ ११ ॥

इस अग्रणीकी मित्रता सब देवोंके साथ है, वह अपने भक्तोंको सुखी और धनसे युक्त करता है ॥ १२ ॥

४३४ ऊर्ध्व ऊ षु णं ऊतये तिष्ठां देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदुञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥
४३५ ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी नं ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥
४३६ पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥
४३७ घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस् तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभि— र्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

अर्थ— [४३४] (नः ऊतये ऊर्ध्वः सु तिष्ठ) हे यूप ! हमारी रक्षाके लिए उसी प्रकार ऊंचे खडे रहो, (देवः सविता न) जिस प्रकार तेजस्वी सूर्य । (ऊर्ध्वः वाजस्य सनिता) उन्नत होकर तुम अन्नके दाता बनो, (यत् अञ्जिभिः वाघद्भिः विह्वयामहे) अच्छी तरहसे अलंकृत स्तोताओंके साथ हम तुम्हें बुला रहे हैं ॥ १३ ॥

[४३५] हे यूप ! (ऊर्ध्वः केतुना नः अंहसः नि पाहि) ऊंचे होकर ज्ञानके द्वारा हमें पापसे बचाओ; (विश्वं अत्रिणं सं दह) सब खाऊ राक्षसोंको जला दो, (चरथाय जीवसे नः ऊर्ध्वान् कृधि) प्रगति और दीर्घजीवनके लिए हमें उच्च बनाओ । (नः दुवः देवेषु विदाः) हमारी प्रार्थना देवोंतक पहुंचाओ ॥ १४ ॥

[४३६] हे (बृहद्भानो यविष्ठ्य अग्ने) महातेजस्वी, बलवान् अग्ने ! (नः रक्षसः पाहि) हमें राक्षसोंसे बचा । (अ-राव्णः धूर्तेः पाहि) कन्जूस धूर्तोंसे बचा । (रिषतः उत वा. जिघांसतः पाहि) हिंसकों और घातकोंसे हमें सुरक्षित रख ॥ १५ ॥

१ राक्षसः, अराव्णः, धूर्तेः, रिषतः जिघांसतः नः पाहि— राक्षसों, कंजूसों, धूर्तों, घातकों और हिंसकोंसे हमें बचाओ । ये पद रोगबीजोंके भी वाचक हैं ।

[४३७] हे (तपुर्जम्भ) अपनी उष्णतासे रोगबीजोंके नाश करनेवाले अग्ने ! (अराव्णः विष्वक् घना इव विजहि) कंजूसोंको चारों ओरसे, गदासे नष्ट करनेके समान विनष्ट कर । (यः अस्मध्रुक्, यः मर्त्यः, अक्तुभिः अति शिशीते) जो हमसे द्रोह करता है और जो रात्रीमें जागता हुआ हमारे नाशका प्रयत्न करता है (सः रिपुः नः मा ईशतः) वह शत्रु हमपर कभी प्रभुत्व न करे ॥ १६ ॥

१ य अस्म-ध्रुक् मर्त्यः अक्तुभिः अति शिशीते सः रिपुः नः मा ईशत— जो द्रोह करनेवाला हमारा शत्रु हमारे घातका विचार करता है, वह कभी हमपर शासन न करे ।

भावार्थ— प्रथम स्वयं उच्च बनकर दूसरोंको उन्नत करनेका प्रयत्न करना चाहिए, यह एक आदर्श है । उन्नत होकर घमंडी नहीं होना चाहिए, अपितु दानी बनना चाहिए ॥ १३ ॥

उत्तम चाल चलन और दीर्घजीवनके लिए सबको उच्च बनना चाहिए । श्रेष्ठ बननेसे उत्तम आचार होगा और दीर्घ जीवन प्राप्त होगा । दीर्घ जीवनका कारण रोगबीजोंका नाश है । ये रोगबीज शरीरमें घुसकर मांस मज्जा खाकर रक्त सुखा देते हैं; इसलिए इन्हें वेदमें अत्रि (खानेवाला) कहा है । इनको जलाकर नष्ट कर देनेसे ही स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन-की प्राप्ति हो सकती है ॥ १४ ॥

यह अग्रणी राक्षस, कंजूस आदि दुष्ट जनोंसे बचाता है । हर राष्ट्रके नेताका कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्रमें कंजूस, धूर्त और हिंसकोंको न रहने दे । इस प्रकार अपने राष्ट्रमें शान्ति रखे । इसी प्रकार राष्ट्रसे रोगोंको भगाकर सब प्रजाओंको स्वस्थ रखे ॥ १५ ॥

कई ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो रातको हमला करके मनुष्योंका घात करते और उनका माल हड़प लेते हैं । ऐसे मनुष्य कभी भी शासक न बनें । उसी प्रकार ये रोग भी सहसा आक्रमण करते हैं । अतः इन रोगों और दुष्टोंको अग्नि नष्ट करे ॥ १६ ॥

४३८ अग्निर्ददात् सुवीर्य॑म॒ग्निः कण्वा॑य॒ सौभ॑गम् ।
अ॒ग्निः प्राव॑न् मि॒त्रोत मेध्या॑तिथिम॒ग्निः सा॒ता उ॑पस्तु॒तम् ॥ १७ ॥

४३९ अ॒ग्निना॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ परा॒वत॑ उ॒ग्रादे॑वं हवामहे ।
अ॒ग्निर्न॑यन्नव॑वास्त्वं बृ॒हद्र॑थं तु॒र्वीतिं॒ दस्य॑वे सहः॑ ॥ १८ ॥

४४० नि त्वाम॑ग्ने॒ मनु॑र्दधे॒ ज्योति॒र्जना॑य॒ शश्व॑ते ।
दी॒देथ॒ कण्व॑ ऋ॒तजा॑त उ॒क्षि॒तो यं न॑म॒स्यन्ति॑ कृ॒ष्टयः॑ ॥ १९ ॥

४४१ त्वे॒षासो॑ अ॒ग्नेरम॑वन्तो अ॒र्चयो॑ भी॒मासो॒ न प्रती॑तये ।
र॒क्ष॒स्विनः॒ सद॒मिद् या॑तु॒माव॑तो॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ॥ २० ॥

अर्थ— [४३८] (अग्निः सुवीर्यं ददात्) अग्नि उत्तम वीर्य देता है। (अग्निः कण्वाय सौभगं) अग्निने कण्वको उत्तम भाग्य दिया। (अग्निः मित्रा प्र आवत्) अग्निने हमारे मित्रोंकी रक्षा की है (उत अग्निः मेध्यातिथिं उपस्तुतं साता) अग्निने मेध्यातिथि और उपस्तुतकी विनाशसे रक्षा की है ॥ १७ ॥

१ सुवीर्यं ददात् सौभगं मित्रा प्रावत्— यह अग्रणी उत्तम पराक्रम करता है, सौभाग्य देता है और मित्रोंकी रक्षा करता है।

[४३९] (अग्निना तुर्वशं यदुं उग्रादेवं हवामहे) अग्निके साथ हम तुर्वश, यदु और उग्रदेवको बुलाते हैं। (दस्यवे सहः अग्निः नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं नयत्) दुष्टोंका दमन करनेका बल देनेवाला अग्नि नववास्त्व बृहद्रथ और तुर्वीतिको उत्तम मार्गसे ले चलता है ॥ १८ ॥

[४४०] हे (अग्ने) अग्ने ! (यं कृष्टयः नमस्यन्ति) जिसको सब मनुष्य नमन करते हैं ऐसे (ज्योतिः त्वां शश्वते जनाय मनुः निदधे) ज्योतिस्वरूप तुझको शाश्वतकालसे मानवोंके हितके लिये मनुने स्थापित किया। (ऋत-जातः उक्षितः कण्वे दीदेथ) यज्ञमें प्रकट होकर और यज्ञमें तृप्त होकर तूने कण्वको यश दिया ॥ १९ ॥

१ ज्योतिः शश्वते जनाय मनुः निदधे— ज्योतिस्वरूप इस अग्रणीको शाश्वतकालसे मानवोंके हितके लिए मनुने स्थापित किया।

२ ऋतजातः उक्षितः कण्वे दीदेथ— यज्ञमें प्रकट होकर और घीसे तृप्त होकर इस अग्रणीने कण्वको यश दिया।

[४४१] (अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः) अग्निकी ज्वालायें प्रकाशित, बलशाली और भयंकर हैं, (प्रति-ईतये न) अतः उनका विरोध नहीं किया जा सकता। हे अग्ने ! तू (रक्षस्विनः यातु-मावतः सदं इत् सं दह) राक्षसों और यातना देनेवालोंको जला दे, (विश्वं अत्रिणं सं दह) तथा सभी भक्षकोंको जला दे ॥ २० ॥

१ अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः— अग्निकी ज्वालायें प्रकाशित, बलशाली और भयंकर हैं।

२ प्रति ईतये न — इनका कोई विरोध नहीं कर सकता।

३ अत्रिणः— खाऊ शत्रु, शरीरको खानेवाले रोगजन्तु।

भावार्थ— इस अग्रणीने पराक्रम करके कण्व, मित्र, मेध्यातिथि, उपस्तुत आदियोंकी रक्षा की और उन्हें सौभाग्य प्रदान किया। इसी प्रकार राष्ट्रमें भी अग्रणी विद्वानोंकी रक्षा करें और उन्हें सौभाग्य प्रदान करें ॥ १७ ॥

यह अग्रणी शत्रुओंको नष्ट करनेवाले वीर दुष्टोंके दमन करनेवाले महारथीकी रक्षा करता है और उन्हें उत्तम मार्गसे ले चलता है ॥ १८ ॥

मनुने इस अग्रणीको मानवोंके हितके लिए सर्व प्रथम स्थापित किया। पश्चात् घी आदि आहुतियोंसे प्रकट होकर उस अग्निने यज्ञकर्ताओंको यश प्रदान किया। इसी कारण सब मनुष्य उसकी पूजा करते हैं ॥ १९ ॥

यह अग्रणी देव बडा शक्तिशाली होता है, इसकी ज्वालायें बडी भयंकर होती हैं, अतः इसे शत्रु या मित्र कोई भी रोक नहीं सकता। इस अग्निमें रोग विनाशक औषधियोंको डालनेसे यह रोगजन्तुओंको विनष्ट करता है ॥ २० ॥

(३७)

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

४४२ क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥
४४३ ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥
४४४ इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद् वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥
४४५ प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥
४४६ प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥

(३७)

अर्थ— [४४२] हे (कण्वाः) काव्यगायन करनेवालो ! (वः) तुम्हारे निजी कल्याणके लिए (मारुतं) मरुतोंके समूहसे उत्पन्न हुआ, (क्रीळं) क्रीडनमय भावसे युक्त (अन्-अर्वाणं) भाइयोंमें पाये जानेवाली कलहप्रिय मनोवृत्तिसे कोसों दूर याने जिसमें पारस्परिक मनोमालिन्य नहीं है, ऐसा (रथे-शुभं) रथमें सुहानेवाले अर्थात् रथी वीरको शोभादायक जो (शर्धः) बल है, उसीका (अभि प्र गायत) वर्णन करो ॥ १ ॥

[४४३] (ये स्व-भानवः) जो अपने निजी तेजसे युक्त हैं, वे मरुत् (पृषतीभिः) धब्बोंसे अलंकृत हिरनियों या घोडियोंके साथ (ऋष्टिभिः) भालोंसहित (वाशीभिः) कुठार एवं (अञ्जिभिः) वीरोंके आभूषण या गणवेशके (साकं अजायन्त) संग प्रकट हुए ॥ २ ॥

[४४४] (एषां हस्तेषु) इन मरुतोंके हाथोंमें विद्यमान (कशाः) कोडे (यत्) जब (वदान्) शब्द करने लगते हैं, तब उन ध्वनियोंको मैं (इह इव) इसी जगह पर खडा रह कर (शृण्वे) सुन लेता हूँ । वह ध्वनि (यामन्) युद्धभूमिमें (चित्रं) विलक्षण ढंगसे (नि-ऋञ्जते) शूरता प्रकट करती है ॥ ३ ॥

[४४५] (वः शर्धाय) तुम्हारा बल बढानेके लिये, (घृष्वये) शत्रुदलका विनाश करनेके हेतु और (त्वेष-द्युम्नाय) तेजसे प्रकाशमान (शुष्मिणे) सामर्थ्य पानेके लिए (देवत्तं ब्रह्म) देवताविषयक ज्ञानको बतलानेवाले काव्य-का (प्र गायत) तुम यथेष्ट गायन करो ॥ ४ ॥

[४४६] (यत्) जो बल (गोषु) गौओंमें पाया जाता है, जो (क्रीळं मारुतं) खिलाडीपनसे परिपूर्ण मरुत् संघोंमें विद्यमान है, जो (रसस्य जम्भे) गोरसके यथेष्ट सेवनसे (ववृधे) बढ जाता है, उस (अघ्न्यं शर्धः) अवि-नाशनीय बलकी (प्र शंस) स्तुति करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— अपनी प्रगति हो इसलिए उपासक मरुतोंके स्तोत्रका पठन करें; क्योंकि इन मरुतोंमें सात्विक बल, खिलाडीपन, पारस्परिक मित्रता, भ्रातृप्रेम तथा रथी बननेके लिए उचित बल विद्यमान है ॥ १ ॥

मरुतोंके रथमें जो घोडियाँ या हिरनियाँ जोडी जाती हैं वे धब्बेवाली होती हैं । मरुतोंके निकट भाले, कुठार, वीरभूषण या गणवेश पाये जाते हैं । कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि, मरुत् जिस प्रकार सुसज्ज दीख पडते हैं वैसे ही अन्य सभी वीर सदैव शस्त्रास्त्रोंसे लैस रहें ॥ २ ॥

शूर मरुत् अपने हाथोंमें रखे हुए कोडोंसे जब आवाज निकालने लगते हैं तब उस शब्दको सुनकर रणक्षेत्रमें लडने-वाले वीरोंमें जोशीले भाव उठ खडे होते हैं ॥ ३ ॥

अपना बल बढाना चाहिए । शत्रुदलको तहसनहस करनेके लिए उनसे संघर्ष करनेको पर्याप्त बल या शक्ति रहे, ताकि शत्रुओंपर टूट पडनेपर अपनेको मुँहकी खाना न पडे और तेजका उजियारा फैलानेवाला सामर्थ्य प्राप्त हो, इसलिए जिसमें देवताकी जानकारी व्यक्त की गयी हो, ऐसे स्तोत्रका पठन एवं गायन करना उचित है, क्योंकि इस भाँति करनेसे हममें यह शक्ति पैदा होगी । जो विचार बारबार मनमें दुहराये जाते हैं वे कुछ समयके उपरान्त हमसे अभिन्न हो जाते हैं ॥ ४ ॥

गोरसके रूपमें गौओंमें बल तथा सामर्थ्य इकट्ठा किया जाता है, वीरोंकी क्रीडासक्त वृत्तिमें वह बल प्रकट हो जाता है, जो हरएकमें बढानेयोग्य है । गोरसका पर्याप्त सेवन करनेसे यह शक्ति अपने शरीरमें बढ सकती है और इसकी सराहना करनी उचित है ॥ ५ ॥

४४७ को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत् सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥
४४८ नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥
४४९ येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥
४५० स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत् सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४४७] हे (नरः) नेतृत्वगुणसे सम्पन्न वीर मरुतो! (दिवः) द्युलोकको एवं (ग्मः च) भूलोकको भी (धूतयः) तुम कंपित करनेवाले हो, ऐसे (वः) तुममें (आ) सब प्रकारसे (वर्षिष्ठः) उच्च कोटिका भला (कः) कौन है? (यत्) जो (सीं) सदैव (अन्तं न) पेडोंके अग्रभागको हिलानेके समान शत्रुदलको विचलित कर देता है, या तुम सभी (धूनुथ) विकंपित कर डालते हो ॥ ६ ॥

[४४८] (वः उग्राय) तुम्हारे भयावह (मन्यवे) क्रोधयुक्त या आवेश एवं उत्साहसे लबालब भरे हुए (यामाय) आक्रमणसे डरकर (मानुषः) मानव तो किसी न किसी (निदध्रे) के सहारे ही रहता है, क्योंकि (पर्वतः) पहाड या (गिरिः) टीलेको भी तुम (जिहीत) विकंपित बना देते हो ॥ ७ ॥

[४४९] (येषां) जिनके (यामेषु) आक्रमणोंके अवसरपर और (अज्मेषु) चढाई करनेके प्रसंगपर (पृथिवी) यह भूमि (जुजुर्वान् विश्पतिः इव) मानों क्षीण नृपतिकी भाँति (भिया रेजते) भयके मारे विकंपित तथा विचलित हो उठती है ॥ ८ ॥

[४५०] (एषां) इन वीर मरुतोंकी (जानं) जन्मभूमि (स्थिरं हि) सचमुच दृढीभूत एवं अटल है। (मातुः) मातासे जैसे (वयः) पंछी (निः- एतवे) बाहर जानेके लिए चेष्टा करते हैं, उसी तरह ये अपनी मातृभूमिसे दूरवर्ती देशोंमें विजय पानेके लिए निकल जाते हैं, (यत्) तब इनका (शवः) बल (सीं) सदैव (द्विता अनु) दोनों ओर विभक्त रहता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् राष्ट्रके नेता हैं और वे शत्रुसंघको जडमूलसे विचलित एवं कंपायमान कर देते हैं। ठीक उसी तरह जैसे आँधी या तूफान पृथ्वी या द्युलोकमें विद्यमान पेडसदृश वस्तुजातको हिलाता है, अथवा वायुके झकोरे वृक्षोंके ऊपरके हिस्सेको चलायमान कर देते हैं। इन वायुप्रवाहोंकी भाँति वीर मरुत् शत्रुओंको अपदस्थ कर डालते हैं। यहाँपर प्रश्न उठाया है कि, क्या ये सभी मरुत् समान हैं अथवा इनमें कोई प्रमुख नेताके पदपर अधिष्ठित हो विराजमान है? ॥ ६ ॥

वीर मरुतोंके भीषण आक्रमणके फलस्वरूप मानवके तो हाथपाँव फूल जाते हैं और वे कहीं न कहीं आश्रय पानेकी चेष्टामें निरत रहते हैं, इसके साथ ही बडे बडे पर्वत भी आन्दोलित एवं स्पंदित हो उठते हैं। वीरोंकी शत्रुदल पर चढाइयाँ इसी भाँति प्रभावोत्पादक हों ॥ ७ ॥

वीर मरुत् जब शत्रुदल पर धावा करते हैं और बडे वेगसे विद्युत्-युद्धप्रणालीसे कार्य करते हैं, उस समय, आगे क्या होगा, क्या नहीं, इस चिंतासे तथा डरसे आसन्नमरण नरेशकी भाँति, यह समूची भूमि दहल उठती है। इसी भाँति वीर सैनिकोंको शत्रुदलपर आक्रमणका सूत्रपात करना चाहिए ॥ ८ ॥

वीर मरुत् भूमिके पुत्र हैं। उनकी यह भूमि माता स्थिर है और इसी अटल मातृभूमिसे ये वीर अतीव वेगशाली उत्पन्न हुए हैं। जिस भाँति पंछी अपनी मातासे दूर निकलनेके लिए छटपटाते हैं, ठीक वैसे ही ये वीर अपनी मातृभूमिसे सुदूरवर्ती स्थानोंमें जाकर असीम पराक्रम दर्शानेके लिए उत्सुक हैं और चले भी जाते हैं। ऐसे मौकेपर इनका सारा ध्यान अपनी जन्मदात्री भूमिकी ओर लगा रहता है, वैसे ही शत्रुओंसे जूझते समय युद्ध पर भी इनका ध्यान केन्द्रित रहता है। इस प्रकार इनकी शक्ति दो भागोंमें विभक्त हो जाती है ॥ ९ ॥

४५१ उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥
४५२ त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् । प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥
४५३ मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन । गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥
४५४ यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [४५१] (त्ये) उन (गिरः सूनवः) वाणीके पुत्र, वक्ता मरुतोंने (अज्मेषु) अपने शत्रुओंपर किये जानेवाले आक्रमणोंमें अपने हलचलोंकी (काष्ठाः) सीमाएँ या परिधियाँ बढाई हैं, जैसे कि, (वाश्राः) गौओंको (अभि-ज्ञु) सभी जगह घुटनेतकके पानीमेंसे (यातवे) निकल आना सुगम हो, इसलिए जैसे जलको (उत् उ अत्नत) दूर तक फैलाया जाय ॥ १० ॥

[४५२] (त्यं चित् घ) उस प्रसिद्ध, (दीर्घं) बहुत ही लंबे, (पृथुं) फैले हुए (अ-मृध्रं) तथा जिसका कोई नाश नहीं कर सकता, ऐसे (मिहः न-पातं) जलकी वृष्टि न करनेवाले मेघको भी ये वीर मरुत् (यामभिः) अपनी गतियोंसे (प्र च्यावयंति) हिला देते हैं ॥ ११ ॥

[४५३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यत् ह) जो सचमुच (वः बलं) तुम्हारा बल (जनान् अचुच्यवीतन) लोगोंको हिला देता है, विकंपित या स्थानभ्रष्ट कर डालता है, वही (गिरीन्) पर्वतोंको भी (अचुच्यवीतन) विचलित बना डालता है ॥ १२ ॥

[४५४] (यत् ह) जिस समय सचमुच ही (मरुतः यान्ति) वीर मरुत् संचार करने लगते हैं, यात्राका सूत्रपात करते हैं, तब वे (अध्वन्) सडकके बीचमें ही (आ सं ब्रुवते ह) सब मिल कर परस्पर वार्तालाप करना शुरु कर देते हैं। (एषां) इनका शब्द (कः चित्) भला कोई क्या (शृणोति) सुन लेता है ॥ १३ ॥

भावार्थ — ये मरुत् (गिरः सूनवः) वाणीके पुत्र हैं, वक्ता हैं । या 'गोमातरः' नाम मरुतोंका ही है । 'गौ' अर्थात् 'वाणी, गौ, भूमि' का सूचक शब्द है । मातृभाषा, मातृभूमि तथा गौमाताके सुखके लिए अथक प्रयत्न करनेवाले ये मरुत् विख्यात हैं। अपने शत्रुदलको तितरबितर करनेके लिए उन्होंने जिस भूमिपर हलचल प्रवर्तित किए, उस भूमिकी सीमाएँ बहुत चौडी कर रखी हैं; अर्थात् अपने आक्रमणके क्षेत्रको अति विस्तृत करते हैं । अतः जैसे अगर गौओंको घुटनेतकके जलसंचयमेंसे आना पडे, तो कुछ कष्टदायक नहीं प्रतीत होता है, वैसे उन्होंने भूमिपर पाये आनेवाले ऊबडखाबड स्थलोंको न्यून कर दिया, भूमि समतल बना डाली, पानी इकट्ठा हो जाय, तो भी गौओंके लिए वह घुटनोंसे ऊपर न चढ जाए ऐसी सतर्कता दर्शायी । गौओंके लिए मरुतोंने भूमिपर इतना अच्छा प्रबन्ध कर डाला । इसी प्रकार शत्रुपर चढाई करनेके लिए भी यातायातकी सभी सुविधाएँ उपस्थित कर दीं, ताकि विरोधी दलपर धावा करते समय अत्यधिक कठिनाइयोंका सामना न करना पडे ॥ १० ॥

जिन मेघोंसे वर्षा नहीं होती हो ऐसे बडे बडे बादलोंको भी मरुत् (वायुप्रवाह) अपने प्रचण्ड वेगसे विकंपित कर डालते हैं । वीरोंको भी यही उचित है कि, वे दान न देनेवाले कृपण शत्रुओंको जडमूलसे हिलाकर पदभ्रष्ट कर दें ॥ ११ ॥

मरुतोंमें इतना बल विद्यमान है कि, उसकी वजहसे शत्रुके सैनिक तथा पार्वतीय दुर्ग या गढ भी दहल उठते हैं। वीर सदा इस भाँति बल बढानेमें सचेष्ट हों ॥ १२ ॥

जिस प्रकार वीर मरुत् सैनिक अभिगमन करते हैं, तब वे इकट्ठे हो सात (सात वीरोंकी पंक्ति बनाकर सडक परसे) चलने लगते हैं । इस प्रकार आगे बढते समय वे जो कुछ भी बातचीत करते हैं उसे सुन लेना बाहरके व्यक्तिको असंभव है; क्योंकि वह भाषण धामिः आवाजमें प्रचलित रहता है ॥ १३ ॥

४५५ प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः । तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥
४५६ अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम् । विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥

[३८]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

४५७ कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥
४५८ क्व नूनं कद् वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः । क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥

अर्थ— [४५५] (आशुभिः) तीव्र गतियोंद्वारा और (शीभं) वेगपूर्वक (प्र यात) चलो, (कण्वेषु) कण्वोंके मध्य, याजकोंके यज्ञोंमें (वः) तुम्हारे (दुवः सन्ति) सत्कार होनेवाले हैं। (तत्रो) उधर तुम (सु मादयाध्वै) भलीभाँति तृप्त बनो ॥ १४ ॥

[४५६] (वः) तुम्हारी (मदाय) तृप्तिके लिए यह हमारा अर्पण (अस्ति हि स्म) तैयार है। (विश्वं चित् आयुः) समूचे जीवन भर सुखपूर्वक (जीवसे) दिन बितानेके लिए (वयं) हम (एषां स्मसि स्म) इनके ही अनुयायी बनकर रहनेवाले हैं ॥ १५ ॥

[३८]

[४५७] (कध-प्रियः) स्तुति बहुत चाहनेवाले (वृक्त-बर्हिषः) तथा आसनपर बैठनेवाले मरुतो ! (पिता) बाप (पुत्रं न) पुत्रको जैसे (हस्तयोः) अपने हाथोंसे उठा लेता है, उसी प्रकार तुम भी हमें (कत् ह नूनं) सचमुच कब भला अपने करकमलोंसे (दधिध्वे) धारण करोगे ? ॥ १ ॥

[४५८] (नूनं क) सचमुच तुम भला किधर जाओगे ? (वः कत्) तुम किस (अर्थं) उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर आनेवाले हो ? (दिवः गन्त) तुम भले ही द्युलोकसे प्रस्थान करो, लेकिन (न पृथिव्याः) इस भूलोकसे तुम कृपा करके न चले जाओ; भूमंडलपर ही अविरत निवास करो। (वः गावः) तुम्हारी गौएँ (क) भला कहाँ (न रण्यन्ति) नहीं रँभाती हैं ? ॥ २ ॥

भावार्थ— 'आशुभिः शीभं प्रयात' (Quick march) अत्यन्त वेगसे शीघ्रतापूर्वक चलो। सैनिक शीघ्रतया चलना प्रारंभ करें, इसलिए यह 'सैनिकीय आज्ञा' है। मरुत् यथासंभव शीघ्र यज्ञभूमिमें पहुँच जायँ, क्योंकि उधर उनके सत्कार एवं आवभगतके लिए आयोजनाएँ प्रस्तुत कर रखी हैं। मरुत् इस आदरसत्कारको स्वीकार करें और तृप्त हों ॥ १४ ॥

वीर मरुतोंको हर्षित तथा प्रसन्न करनेके लिए हम खानेपीनेकी वस्तुएँ दे रहे हैं। जब तक हमारे जीवनकी अवधि प्रचलित होगी, तब तक यह हमारा निर्धार हो चुका है कि हम मरुतोंके ही अनुयायी बनकर रहेंगे ॥ १५ ॥

जिस भाँति पिताका आधार पानेसे पुत्र निर्भय होकर रहता है, ठीक उसी प्रकार भला कब हमें इन वीरोंका सहारा मिलेगा ? एक बार यदि यह निश्चित हो जाए कि, हमें उनका आश्रय मिलेगा, तो हम अकुतोभय हो सुखपूर्वक कालक्रमण करने लगेंगे और हमारी जीवनयात्रा निश्चिन्त हो जायेगी ॥ १ ॥

वीर मरुत् कहाँ जा रहे हैं ? किस दिशामें वे गमन कर रहे हैं ? किस अभिप्रायसे वे अभियान कर रहे हैं ? हमारी यह तीव्र लालसा है कि, वे द्युलोकसे इधर पधारनेकी कृपा करें और इसी अवनीतलपर सदाके लिए निवास करें। कारण यही है कि उनकी छत्रछायामें हमारी रक्षामें कोई त्रुटि न रहने पायेगी, अतः वे इधरसे अन्य किसी जगह न चले जाएँ। मरुतोंकी गौएँ सभी स्थानोंमें विद्यमान हैं और वे अत्यानन्दवश रँभाती हैं ॥ २ ॥

*

४५९ क्वं वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्वं सुविता । क्वोश्चु विश्वानि सौभंगा ॥ ३ ॥
४६० यद् यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातंन । स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥
४६१ मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः । पथा यमस्यं गादुपं ॥ ५ ॥
४६२ मो षु णः परांपरा निर्ऋतिर्दुर्हणां वधीत् । पदीष्ट तृष्णंया सह ॥ ६ ॥
४६३ सत्यं त्वेषा अमंवन्तो धन्वंञ्चिदा रुद्रियांसः । मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [४५९] हे (मरुतः !) वीर मरुद्गण ! (वः) तुम्हारी (नव्यांसि) नयी नयी (सुम्ना क) संरक्षणकी आयोजनाएँ कहाँ हैं ? तुम्हारे (सुविता क) उच्च कोटिके वैभव तथा सुखके साधन ऐश्वर्य किधर हैं ? और (विश्वानि) सभी प्रकारके (सौभगा क्वो) सौभाग्य कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥

[४६०] हे (पृश्नि-मातरः !) मातृभूमिके सुपुत्र वीरो ! (यूयं) तुम (यद्) यद्यपि (मर्तासः) मर्त्य या मरणशील (स्यातन) हो, तो भी (वः) तुम्हारा (स्तोता) काव्यगायन करनेवाला बेशक (अमृतः स्यात्) अमर होगा ॥ ४ ॥

[४६१] (मृगः) हिरन (यवसे न) जैसे तृणको असेवनीय नहीं समझता है, ठीक उसी प्रकार (वः जरिता) तुम्हारी स्तुति एवं सराहना करनेवाला तुम्हें (अ-जोष्यः) अ-सेव्य या अप्रिय (मा भूत्) न होने पाय और वैसे ही वह (यमस्य पथा) यमलोककी राहपर (मा उप गात्) न चले, अर्थात् उसकी मौत न होने पाय ॥ ५ ॥

[४६२] (परा-परा) अत्यधिक मात्रामें बलिष्ठ तथा (दुर्-हना) विनाश करनेमें बहुत ही कठिन ऐसी (निर्-ऋतिः) बुरी दशा या दुर्दशा (नः) हमारा (मो सु वधीत्) विनाश न करे. (तृष्णया सह) प्यासके मारे उसी का (पदीष्ट) विनाश हो जाए ॥ ६ ॥

[४६३] (धन्वन् चित्) मरुभूमिमें भी (त्वेषाः) तेजयुक्त और (अमवन्तः) बलिष्ठ (रुद्रियासः) महान् वीर मरुत् (अ-वातां) वायुरहित (मिहं आ कृण्वन्ति) वर्षाको चहुं ओर कर डालते हैं, (सत्यं) यह सच बात है ॥ ७ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् संरक्षणकार्यका बीडा उठाते हैं, अतः जनताकी रक्षा भलीभाँति हुआ करती है और वह श्रेष्ठ वैभव एवं सुख पानेमें सफलता प्राप्त करती है । वीरोंके लिए यह अतीव उचित कार्य है कि, वे जनताकी यथोचित रक्षा कर उसे वैभवशाली तथा सुखी करें ॥ ३ ॥

शूर वीर मरुत् (पृश्नि-मातरः, गो-मातरः) मातृभूमि, मातृभाषा तथा गोमाताकी सेवा करनेवाले हैं और यद्यपि ये स्वयं मर्त्य हैं, तो भी इनके अनुयायी अमरपन पानेमें सफलता पायेंगे ॥ ४ ॥

जैसे हिरन जौ के खेतको सेवनीय मानता है, उसी तरह तुम्हारा बखान करनेवाला कवि तुम्हें सदैव प्रिय लगे और वह मृत्युके दायरेसे कोसों दूर रहे । वह यमलोकको पहुँचानेवाली सडक पर संचार न करे, याने वह अमर बने ॥ ५ ॥

विपदा, बुरी हालत एवं भाग्यचक्रके उलट फेरके फलस्वरूप होनेवाली परिस्थिति सुतरां बलवत्तर होती है और उसे हटाना तो कोई सुगम कार्य बिलकुल नहीं, ऐसी आपदाके कारण हमारा नाश न होने पाय; परन्तु सुखकी प्यास या क्षुधा बढ जाए, जिससे वही विपत्ति विनष्ट होवे ॥ ६ ॥

मरुस्थलमें वर्षा प्रायः नहीं होती है, परन्तु यदि मरुत् वैसा चाहें तो वैसे ऊसर स्थानमें भी वे धुवाँधार बारिश कर सकते हैं । अभिप्राय यही है कि, बारश होना या न होना मरुतों-वायुप्रवाहोंके अधीन है । यदि अनुकूल वायुप्रवाह बहने लग जायँ, तो वर्षा होनेमें देरी न लगेगी ॥ ७ ॥

४६४ वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति । यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥
४६५ दिवा चित् तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन । यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥
४६६ अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् । अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥
४६७ मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु । यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥
४६८ स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् । सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥
४६९ अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [४६४] (यत्) जब (एषां) इन मरुतोंकी सहायतासे (वृष्टिः असर्जि) वर्षाका सृजन होता है तब (वाश्रा इव) रँभानेवाली गौके समान (विद्युत्) बिजली (मिमाति) बडा भारी शब्द करती है और (माता) माता (वत्सं न) जिस प्रकार बालकको अपने समीप रखती है, वैसही बिजली मेघोंके समीप (सिषक्ति) रहती है ॥ ८ ॥

[४६५] वे वीर मरुत् ! (यत्) जब (पृथिवीं) भूमिको (व्युन्दन्ति) गीली या आर्द्र कर डालते हैं, उस समय (उद-वाहेन पर्जन्येन) जलसे भरे हुए मेघोंसे सूर्यको ढककर (दिवा चित्) दिनकी वेलामें भी (तमः कृण्वन्ति) अँधियारी फैलाते हैं ॥ ९ ॥

[४६६] (मरुतां स्वनात् अधः) मरुतोंकी दहाड या गर्जनाके फलस्वरूप निम्न भागमें अवस्थित (पार्थिवं) पृथ्वीमें पाये जानेवाला (विश्वं सद्म) समूचा स्थान (आ अरेजत) विचलित, विकंपित एवं स्पन्दमान हो उठता है और (मानुषाः प्र अरेजन्त) मानव भी काँप उठते हैं ॥ १० ॥

[४६७] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वीळु-पाणिभिः) बलयुक्त बाहुओंसे युक्त तुम (चित्राः रोधस्वतीः अनु) सुन्दर नदियोंके तटोंपरसे (अ-खिद्र-यामभिः) बिना किसी थकावटके (यात ईं) गमन करो ॥ ११ ॥

[४६८] (एषां वः रथाः) ये तुम्हारे रथ (नेमयः) रथके अरे तथा (अश्वासः) घोडे एवं (अभीशवः) लगाम सभी (स्थिराः) दृढ तथा अटल और (सु-संस्कृताः) ठीक प्रकार परिष्कृत हों ॥ १२ ॥

[४६९] (ब्रह्मणः पतिं) ज्ञानके अधिपति (अग्निं) अग्निको अर्थात् नेताको (दर्शतं मित्रं न) देखनेयोग्य मित्रके समान (जरायै) स्तुति करनेके लिए (तना) सातत्ययुक्त (गिरा) वाणीसे (अच्छ वद) प्रमुखतया सराहते जाओ ॥ १३ ॥

भावार्थ— जिस समय भारी आँधीके पश्चात् वर्षाका प्रारम्भ होता है उस समय बिजलीकी गर्जना सुनाई देती है और मेघवृन्दोंमें दामिनीकी दमक दिखाई देती है । (यहाँ पर ऐसी कल्पना की है कि, बिजली मानों गाय है) वह जिस तरह अपने बछडेके लिए रँभाती है और अपने वत्सको समीप रखना चाहती है, उसी तरह बिजली मेघका आलिंगन करती है ॥ ८ ॥

जिस वक्त मरुत् बारिश करनेकी तैयारीमें लगे रहते हैं, तब समूचा आकाश बादलोंसे आच्छादित हो जाता है, सूर्यका दर्शन नहीं होता है, अँधेरा फैला जाता है और तदुपरान्त वर्षाके फलस्वरूप भूमंडल गीला या पानीसे तर हो जाता है ॥ ९ ॥

तीव्र आँधी, बिजलीकी दहाड तथा चमकनेसे समूची पृथ्वी मानों विचलित हो उठती है और मनुष्य भी सहम जाते हैं, तनिक भयभीतसे हो जाते हैं ॥ १० ॥

इन वीरोंके बाहुओंमें बहुत भारी शक्ति है और इस बाहुबलसे चतुर्दिक् ख्याति पाते हुए ये वीर नदियोंके नयनमनोरम तटकी राहसे थकानकी तनिक भी अनुभूति पाये बिना आगे बढते जायँ ॥ ११ ॥

वीरोंके रथ, पहिए, अरे, अश्व एवं लगाम सभी बलयुक्त एवं सुसंस्कृत रहें । अश्व भी भली भाँति शिक्षित हों तथा अन्य वैसी चीजें भी सुहानेवाली एवं परिष्कृत हों ॥ १२ ॥

अग्नि मरुतोंका मित्र है, तथा ज्ञानका स्वामी है । इसलिए इसकी महिमाकी सराहना करनी चाहिए ॥ १३ ॥

४७० मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥
४७१ वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५ ॥

[३९]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- मरुतः । छन्दः- प्रगाथः=विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

४७२ प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥

अर्थ — [४७०] तुम्हारे (आस्ये) मुँहके अन्दर ही (श्लोकं मिमीहि) श्लोकको भलीभाँति नापजोखकर तैयार करो और (पर्जन्यः इव) मेघके समान (ततनः) विस्तारित करो । वैसे ही (गायत्रं) गायत्री छन्दमें रचे हुये (उक्थ्यं) काव्यका (गाय) गायन करो ॥ १४ ॥

[४७१] (त्वेषं) तेजयुक्त (पनस्युं) स्तुत्य अथवा सराहनीय तथा (अर्किणं) पूजनीय ऐसे (मारुतं गणं) वीर मरुतोंके दल या समुदायका (वन्दस्व) अभिवादन करो । (इह) यहाँपर (अस्मे) हमारे समीप ही वे (वृद्धाः असन्) वृद्ध रहें ॥ १५ ॥

[३९]

[४७२] हे (धूतयः मरुतः) शत्रुदलको विकंपित तथा विचलित करनेवाले वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम अपना (मानं) बल (परावतः इत्था) अत्यन्त सुदूर स्थानसे इस भाँति (शोचिः न) बिजलीके समान (प्र अस्यस्थ) यहाँ पर फेंकते हो, तब (कस्य क्रत्वा) भला किस कार्य तथा उद्देश्यको लक्ष्यमें रख, (कस्य वर्पसा) किसकी आयोजनासे अथवा (कं याथ) किसकी तरफ तुम चल रहे हो या (कं ह) तुम्हें किसके निकट पहुँचना है ॥ १ ॥

भावार्थ— मन ही मन अक्षरसंख्या गिनकर श्लोक तैयार कर रखे और वह कंठस्थ या मुखस्थ हो । यह आवश्यक है कि, ऐसे श्लोकोंमें किसी न किसी वीर पुरुषकी महनीयताका बखान किया हो । जैसे वर्षाका प्रारम्भ होने पर वह लगातार हुआ करती है और सर्वत्र शांतिका वायुमण्डल फैला देती है, उसी प्रकार इस श्लोकका स्पष्टीकरण या व्याख्यान अथवा प्रवचन बिना तनिक भी रुके करो और अर्थकी व्यापकता या गहराई सबको बतलाकर उनके चित्तमें शांतता उत्पन्न होवे, ऐसी चेष्टा करो । गायत्री छन्दमें जो श्लोक बनाये जायँ, उनका गायन विभिन्न स्वरोंमें करो ॥ १४ ॥

तेजसे अत्यधिक मात्रामें परिपूर्ण, प्रशंसाके योग्य तथा आदरसत्कारके अधिकारी जो वीर हों, उनको ही प्रणाम करना, उनके सम्मुख ही सीस झुकाना अतीव उचित है । अतः तुम ऐसा ही करो, तथा तुम इस भाँति सतर्क एवं सचेत रहो कि, अपने संघमें एवं समाजमें ज्ञानवृद्ध, वीर्यवृद्ध, धनवृद्ध तथा कर्मवृद्ध महान् पुरुष पर्याप्त मात्रामें रहने पायँ ॥ १५ ॥

(अधिदैवत) वायुके प्रवाह जब बहुत वेगसे संचार करना शुरु करते हैं, तब मनमें यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता है कि, भला ये कहाँ और किसके समीप जाना चाहते हैं, तथा उनके गन्तव्य स्थानमें क्या रखा होगा, कौनसी बात उन्हें कार्यरूपमें परिणत करनी होगी ? नहीं तो उनके ऐसे वेगसे बहते रहनेका अन्य प्रयोजन क्या हो सकता है ? (अधिभूतमें) जिस समय वीर पुरुष शत्रुदलको मटियामेट करनेके लिए उनपर धावा करना प्रारम्भ करते हैं, तब वे शूर मानव अपना सारा बल उसी कार्य पर पूर्णरूपेण केन्द्रित करते हैं । ऐसे अवसर पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि, वे सर्वप्रथम यह पूरी तरह निश्चित कर लें कि, किस हेतुकी पूर्तिके लिए यह चढाई करनी है, कितनी सफलता मिलनी चाहिए, किस स्थल पर पहुँचना है और बीचमें किसकी सहायता लेनी पडेगी । पश्चात् वह निर्धारित योजना फलीभूत हो जाए, इस ढंगसे कार्रवाही प्रारम्भ कर दें । वीरोंके लिए यह उचित है कि, वे निश्चयात्मक हेतुसे प्रभावित हों, विशिष्ट कार्यको सफलतापूर्वक निष्पन्न करनेके लिए ही अपना आंदोलन प्रवर्तित करें, व्यर्थ ही आटाटोप या गीदड भभकी न दें, क्योंकि उतावलापन एवं अविचारितासे सदैव हानि उठानी पडती है ॥ १ ॥

४७३ स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥
४७४ परा ह यत् स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
४७५ नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥
४७६ प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥

अर्थ— [४७३] (वः आयुधा) तुम्हारे हथियार (परा-नुदे) शत्रुदलको हटानेके लिए (स्थिरा) अटल तथा सुदृढ रहें, (उत) और (प्रतिष्कभे) उनकी राहमें रुकावटें खडी करनेके लिए, प्रतिबंध करनेके लिए (वीळु सन्तु) अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्तिसंपन्न भी हों। (युष्माकं तविषी) तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य (पनीयसी अस्तु) अतीव प्रशंसाई और सराहनीय हो; (मायिनः) कपटी (मर्त्यस्य) लोगोंका बल (मा) न बढे ॥ २ ॥

[४७४] (नरः !) नेता वीरो ! (यत्) जब तुम (स्थिरं) स्थिर रूपसे अवस्थित शत्रुको (परा हत) अत्यधिक मात्रामें विनष्ट करते हो, (गुरु) बलिष्ठ शत्रुको भी (वर्तयथ) हिला देते हो, विकंपित कर डालते हो और (पृथिव्याः वनिनः) भूमंडलपर विद्यमान अरण्योंके वृक्षोंको भी (वि याथन) जडमूलसे उखाड फेंक देते हो, तब (पर्वतानां आशाः) पर्वतोंके चतुर्दिक् (वि ह) तुम सुगमतासे निकल जाते हो ॥ ३ ॥

[४७५] हे (रिश-अदसः) शत्रुको नष्ट करनेवाले वीरो ! (अधि द्यवि) द्युलोकमें तो (वः शत्रुः) तुम्हारा शत्रु (नहि विविदे) अस्तित्वमें ही नहीं पाया जाता है और (भूम्यां न) भूमंडलपर भी नहीं विद्यमान है; हे (रुद्रासः !) शत्रुको रुलानेवाले वीरो ! (युष्माकं युजा) तुम्हारे साथ रहते हुए (आधृषे) शत्रुओंको तहसनहस करनेके लिए मेरी (तविषी) शक्ति (नु चित् तना अस्तु) शीघ्र ही विस्तारशील तथा बढनेवाली हो जाए ॥ ४ ॥

[४७६] हे (देवासः मरुतः !) वीर मरुतो ! (दुर्मदाः इव) बलके कारण मतवाले हुए लोगोंके समान तुम्हारे वीर (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतोंको भी विचलित कर देते हैं, हिला देते हैं और (वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति) पेडोंको उखाडकर दूर फेंक देते हैं, इसलिए तुम (सर्वया विशा) समूची जनताके साथ मिलजुलकर (प्रो आरत) प्रगति करते चलो ॥ ५ ॥

भावार्थ— वीर पुरुष अपने हथियारों एवं शस्त्रास्त्रोंको बलयुक्त, तीक्ष्ण तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम बना दें। वे सदाके लिए सतर्क एवं सचेष्ट रहें कि वे शत्रुदलसे मुठभेड या भिडंत करते समय यथेष्ट मात्रामें प्रभावशाली ठहरें। (ध्यानमें रखना चाहिए कि, कदापि विरोधी तथा शत्रुसंघके हथियार अपने हथियारोंसे बढकर प्रबल तथा प्रभावशाली न होने पायें) और कपटाचरणमें न झिझकनेवाले शत्रुओंका बल कभी न वृद्धिंगत हो ॥ २ ॥

वीर पुरुष सदैव स्थिर एवं प्रबल शत्रुको भी विचलित करनेकी क्षमता रखते हैं, वनोंमेंसे सडकोंका निर्माण करते हैं और पर्वतोंके मध्यसे भी लीलयैव दूसरी ओर चले जाते हैं, तथा शत्रुसंघ पर आक्रमणका सूत्रपात करते हैं ॥ ३ ॥

वीरोंका यह अनिवार्य कर्तव्य है कि, वे अपने शत्रुओंका समूल विनाश करें, कहीं भी उन्हें रहनेके लिए स्थान न दें और उनका आमूलचूल विध्वंस कर चुकने पर ही अपनी शक्तिको बढाते चलें ॥ ४ ॥

बल अत्यधिक बढ जानेसे तनिक मतवालेसे बनकर वीर पुरुष शत्रुदल पर आक्रमण करते समय पर्वतोंको भी विकंपित कर देते हैं और मार्ग पर पाये जानेवाले वृक्षोंको भी उखाडकर हटा देते हैं। ऐसे बलकी आवश्यकता रखनेवाले कार्योंकी पूर्ति करना उनके लिए संभव है, अतः वे सारी जनताके सहयोगकी सहायतासे ऐसी कार्य सिद्धिमें अपना बल लगा देवें कि अन्तमें सबकी प्रगति हो। व्यर्थ ही उत्पात तथा विध्वंस-कार्योंमें उलझे न रहें। वायु जिस तरह वेगवान् होकर पेडोंको झकझोर देती है, ठीक उसी प्रकार वे वीर भी शत्रुदलका विनाश कर देते हैं ॥ ५ ॥

४७७ उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रो—दबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥

४७८ आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरे—त्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥

४७९ युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥

४८० असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभि—र्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४७७] तुम (रथेषु) अपने रथोंमें (पृषतीः) चित्रविचित्र धब्बोंसहित घोडियाँ या हरिनियाँ (उपो अयुग्ध्वं) जोड चुके हो और (रोहितः) लालवर्णवाला घोडा या हिरन (प्रष्टिः) धुराको (वहति) खींच लेता है। (वः यामाय) तुम्हारे जानेका शब्द (पृथिवी चित्) भूमि (आ अश्रोत्) सुन लेती है, पर उस आवाजसे (मानुषाः अबीभयन्त) सभी मानव भयभीत हो उठते हैं ॥ ६ ॥

[४७८] हे (रुद्राः) शत्रुको रुलानेवाले वीर मरुद्गण ! (तनाय कं) हमारे बालबच्चोंका कल्याण तथा हित होवे, इसलिए (मक्षु) बहुत ही शीघ्र हमें (वः अवः) तुम्हारा संरक्षण मिल जाए, ऐसा (आ वृणीमहे) हम चाहते हैं; (यथा पुरा) जैसे पहले तुम (बिभ्युषे कण्वाय) भयभीत कण्वकी ओर (नूनं गन्त) शीघ्र जा चुके थे, (इत्था) इसी प्रकार (अवसा) रक्षा करनेकी शक्तिके साथ (नः) हमारी ओर जितनी जल्द हो सके, उतनी जल्दी आ जाओ ॥ ७ ॥

[४७९] हे (मरुतः) वीर मरुत्संघ ! (यः अभ्वः) जो डरावना हथियार (युष्मा-इषितः) तुमसे फेंका हुआ या (मर्त्य-इषितः) किसी अन्य मानवसे प्रेरित होता हुआ, अगर (नः आ ईषते) हमारे ऊपर आ गिरता हो तो (तं) उसे (शवसा वि युयोत) अपने बलसे हटा दो, (ओजसा वि) अपने तेजसे दूर कर दो और (युष्माकाभिः ऊतिभिः) तुम्हारी संरक्षण आयोजनाओंद्वारा उसे (वि) विनष्ट करो ॥ ८ ॥

[४८०] हे (प्र-यज्यवः) अतीव पूज्य तथा (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट ज्ञानी (मरुतः) वीर मरुतो ! (कण्वं) कण्वको जैसे तुमने (अ-सामि हि) पूर्ण रूपसे (दद) आधार या आश्रय दे दिया था, वैसे ही (अ-सामिभिः ऊतिभिः) संरक्षणकी संपूर्ण एवं अविकल आयोजनाओं तथा साधनोंसे युक्त होकर (विद्युतः वृष्टिं न) बिजलियाँ वर्षाकी ओर जैसे चली जाती हैं, वैसे ही तुम (नः आगन्त) हमारी ओर आ जाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— मरुतोंके रथमें जो घोडियाँ या हिरनियाँ जोडी जाती हैं, उनके पृष्ठभागपर धब्बे होते हैं, और उनके अग्रभागमें धुरी उठानेके लिए एक लाल रंगका अश्व या हरिण रखा जाता है। जब मरुतोंका रथ आगे बढने लगता है, तब सारी पृथ्वी उसके शब्दको ध्यानपूर्वक सुन लेती है। हाँ, अन्य सभी मानव उस ध्वनिको श्रवण करते ही सहम जाते हैं, उनके अन्तस्तलमें भीतिरेखा चमक उठती है। यहाँपर एक ध्यानमें रखनेयोग्य बात है कि, मरुतोंके वाहन लालवर्णवाले होते हैं, भले ही वे हरिण या घोडे हों। मरुतोंके पहनावेका रंग केसरिया बतलाया है ॥ ६ ॥

राष्ट्रके बालकोंका रक्षण करनेका कार्य वीरोंपर अवलम्बित है, जो आगामी पुश्तकी प्रगतिके लिए अत्यधिक सावधानता रखें। जैसे अतीतकालमें समय समय पर वीरोंने सहायता प्रदान की थी, वैसे ही अब भी वे करें ॥ ७ ॥

यदि हमपर कोई आपत्ति आनेवाली हो, तो वीर अपने बलसे, प्रभावसे तथा संरक्षणसे उसे हटाकर पूर्णतया पैरोंतले रौंद दें, क्योंकि जनताको निर्भय करना वीरोंका ही कर्तव्य है ॥ ८ ॥

पूजार्ह तथा ज्ञानविज्ञानसे युक्त एवं विभूषित वीर लोग हमें सब प्रकारसे सुरक्षित रखें और हमारी मदद करें ॥ ९ ॥

४८१ असाम्योजो बिभृथा सुदानवो ऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥

[४०]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः- प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

४८२ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

४८३ त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

४८४ प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४८१] हे (सु-दानवः) अच्छे दान देनेवाले वीर मरुत् ! (अ-सामि ओजः) अधूरा नहीं, ऐसा समूचा बल एवं (अ-सामि शवः) अविकल शक्ति (बिभृथ) तुम धारण करते हो, हे (धूतयः मरुतः) शत्रुओंको विकंपित करनेवाले वीर मरुद्गण ! (ऋषि-द्विषे) ऋषियोंसे द्वेष करनेवाले (परि-मन्यवे) क्रोधी शत्रुको धराशायी करनेके लिए (इषुं न) बाणके समान (द्विषं) द्वेष करनेवाले शत्रुको ही (सृजत) उसपर छोड दो ॥ १० ॥

[४०]

[४८२] (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानके स्वामिन् ! (उत्तिष्ठ) उठो (देवयन्तः त्वा ईमहे) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं (सुदानवः मरुतः उप प्र यन्तु) उत्तम दानी मरुत् वीर साथ साथ रहकर यहां आवें (इन्द्र) हे इन्द्र ! (सचा प्राशूः भव) सबके साथ रहकर इस सोमरसका पान कर ॥ १ ॥

[४८३] (सहसः पुत्र) हे बलके लिये उत्पन्न होनेवाले वीर ! (मर्त्यः) मनुष्य (हिते धने) युद्ध छिड जानेपर (त्वां इत् उपब्रूते हि) तुम्हें ही सहायतार्थ बुलाता है (मरुतः) हे मरुतों ! (यः वः आचके) जो तुम्हारे गुण गाता है, (स्वश्व्यं सुवीर्यं आ दधाति) वह उत्तम घोडोंसे युक्त और उत्तम वीरतावाला धन पाता है ॥ २ ॥

[४८४] (ब्रह्मणस्पतिः प्र एतु) ज्ञानी ब्रह्मणस्पति हमारे पास आ जावे (सूनृता देवी प्र एतु) सत्यरूपिणी देवी भी आवे (देवाः) सब देव (नर्यं पङ्क्तिराधसं यज्ञं वीरं) मनुष्योंके लिये हितकारी, पंक्तिके संमान योग्य, उत्तम यज्ञ करनेवाले वीरको (नः अच्छ नयन्तु) हमारे पास ले आवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— वीर मरुतोंके समीप अविकल रूपसे शारीरिक बल तथा अन्य सामर्थ्य भी है, किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं है। वे इस असीम सामर्थ्यका प्रयोग करके उस शत्रुको दूर हटा दें, जो ऋषियोंका अर्थात् विद्वान् तथा श्रेष्ठ ज्ञानियोंसे द्वेषपूर्ण भाव रखता हो; या उसीपर दूसरे शत्रुको छोडकर उसे विनष्ट कर डाले ॥ १० ॥

हे ज्ञानी उठो। राष्ट्रमें क्षात्रवृत्तिको जगाओ। जो देवत्वका भाव अपने अन्दर बढानेके इच्छुक हों, उन्हें संगठित किया जाय। मातृभूमिके लिए आत्मसमर्पण करनेवाले वीर समीप आकर प्रगति करनेके लिए आगे बढें ॥ १ ॥

ये क्षत्रियवीर बलके कार्यके लिए ही उत्पन्न हुए हैं। बलसे होनेवाला हर एक कार्य ये आनन्दसे करते हैं। मनुष्य युद्ध छिड जाने पर उन वीरोंको ही अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं। ये क्षत्रियवीर अपने पास उत्तम घोडे रखते हैं, वे पराक्रमी शूरवीर भी होते हैं ॥ २ ॥

वीर पुरुष सब मानवोंके हित करनेमें तत्पर रहें। शत्रुओंको अपनी वीरतासे दूर करें। श्रेष्ठोंका सत्कार करें, प्रजाओंमें संगठन करे और दीनदुःखियोंकी सहायता करे, ऐसा करनेसे वह अपने आगमनसे पंक्तियोंकी शोभा बढाता है ॥ ३ ॥

४८५ यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

४८६ प्र नूनं ब्रह्मणस्पति--र्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५ ॥

४८७ तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

४८८ को देवयन्तमश्नवज् जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थिता--ऽन्तर्वावत् क्षयं दधे ॥ ७ ॥

अर्थ— [४८५] (यः वाघते सूनरं वसु ददाति) जो यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश प्राप्त करता है (तस्मै सुवीरां सुप्रतूर्तिं अनेहसं इळां आ यजामहे) उसके हितार्थ हम उत्तम वीरोंसे युक्त, शत्रुका हनन करनेवाली, अपराजित मातृभूमिकी प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

[४८६] (यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे) जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा देवोंने अपने घर बनाये हैं। (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्मणस्पति (उक्थ्यं मंत्रं नूनं प्र वदति) पवित्र मंत्रका अवश्य ही उच्चारण करता है ॥ ५ ॥

[४८७] (देवाः) हे देवों! (तं इत् शंभुवं अनेहसं मन्त्रं) उस सुखदायी अविनाशी मंत्रको (विदथेषु वोचेम) हम यज्ञमें बोलते हैं (नरः) हे नेता लोगों! (इमां वाचं प्रतिहर्यथ च) इस मंत्ररूप वाणीकी यदि प्रशंसा करोगे (विश्वा इत् वामा वः अश्नवत्) तो सभी सुख तुम्हें मिलेंगे ॥ ६ ॥

[४८८] (देवयन्तं जनं कः अश्नवत्) देवत्वकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके पास ब्रह्मणस्पतिको छोडकर कौन भला दूसरा आवेगा (वृक्तबर्हिषं कः) आसन फैलानेवाले उपासकके पास दूसरा कौन आवेगा (दाश्वान् पस्त्याभिः प्रप्र अस्थित) दाता अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है (अन्तर्वावत् क्षयं दधे) संतानोंवाले घरका आश्रय करते हैं ॥७॥

भावार्थ— इसी वीरके लिए उत्तम वीरोंको उत्पन्न करनेवाली, शत्रुओंका नाश करनेवाली, अपराजिता तथा अन्नदायी मातृभूमिकी हम प्रार्थना करते हैं। मातृभूमिके लिए हम सर्वस्वका यज्ञ करते हैं। क्योंकि जो धनका दान करता है, वह अक्षय यश कमाता है ॥ ४ ॥

यह ज्ञानका देव ब्रह्मणस्पति ऐसे उत्तम और पवित्र मंत्र बोलता है, जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देव अपना घर बनाकर निवास करते हैं। इसीलिए ये मंत्र सबका कल्याण करनेवाले, पराभव और विनाशसे बचानेवाले होते हैं, इसीलिए युद्धके समय इन मंत्रोंका उच्चारण किया जाता है ॥ ५-६ ॥

देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला मनुष्य ब्रह्मणस्पति अर्थात् ज्ञानके देवको बुलाता है। क्योंकि ज्ञानके बिना देवत्वकी प्राप्ति असंभव है। अतः जो उपासक इस ज्ञान देव ब्रह्मणस्पतिके लिए आसन बिछाता है, उसकी उपासना करता है, वह अपनी प्रजाके साथ प्रगति करता है ॥ ७ ॥

४८९ उप॑ क्ष॒त्रं पृ॑ञ्ची॒त हन्ति॒ राज॑भि॒र्भ॒ये चि॑त् सुक्षि॒तिं द॑धे ।
नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता म॑हाध॒ने नार्भे॑ अस्ति व॒ज्रिणः॑ ॥ ८ ॥

[४१]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- वरुणमित्रार्यमणः, ४-६ आदित्याः । छन्दः- गायत्री ।)

४९० यं रक्ष॑न्ति॒ प्रचे॑तसो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । नू चि॒त् स द॑भ्यते॒ जनः॑ ॥ १ ॥

४९१ यं बा॒हुते॑व॒ पिप्र॑ति॒ पान्ति॒ मर्त्यं॑ रि॒षः । अरि॑ष्टः॒ सर्व॑ एधते ॥ २ ॥

४९२ वि दु॒र्गा वि द्विषः॑ पु॒रो घ्नन्ति॒ राजा॑न एषाम् । नय॑न्ति दुरि॒ता ति॒रः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४८९] (ब्रह्मणस्पतिः क्षत्रं उप पृञ्चीत) ब्रह्मणस्पति क्षात्रबलका संचय करता है (राजभिः हन्ति) राजाओंकी सहायतासे यह शत्रुओंको मारता है (भये चित् सुक्षितिं दधे) महा भयके उपस्थित होने पर भी यह उत्तम धैर्यको धारण करता है। (वज्रिणः अस्य) इस वज्रधारीके साथ होनेवाले (महाधने) बडे युद्धमें (न वर्ता अस्ति) इसका निवारण करनेवाला है (न तरुता) और पराजय करनेवाला नहीं है (न अर्भे) और छोटे युद्धमें भी कोई नहीं है ॥ ८ ॥

[४१]

[४९०] (प्रचेतसः वरुणः मित्रः अर्यमा) उत्तम ज्ञानी वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (यं रक्षन्ति) जिसकी सुरक्षा करते हैं, (सः जनः नू चित् दभ्यते ?) उस मानवको कौन भला दबा सकता है ? ॥ १ ॥

[४९१] (यं बाहुता इव पिप्रति) ये देव जिसका अपने बाहुबलसे जैसा हो वैसा पोषण करते हैं (मर्त्यं रिषः पान्ति) और जिस मानवको हिंसक शत्रुसे बचाते हैं, (सर्वः अरिष्टः एधते) वह सब प्रकारसे अहिंसित होता हुआ बढता ही है ॥ २ ॥

१ प्रचेतसः यं पान्ति स अरिष्टः एधते— ज्ञानी जिसकी रक्षा करते हैं, वह बढता है।

[४९२] (राजानः एषां पुरः दुर्गा वि घ्नन्ति) राजाके समान ये देव शत्रुओंके नगरों और किलोंका नाश करते हैं (द्विषः वि) द्वेष करनेवालोंका भी नाश करते हैं (दुरिता तिरः नयन्ति) और पापोंसे परे पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— क्षात्रशक्तिको संगठित करना चाहिए, उसे बढाना चाहिए। वह इतनी बढे कि इस शूरवीरके साथ होनेवाले बडे अथवा छोटे संग्राममें इसको परास्त करनेवाला कोई न रहे। ऐसा यह वीर अपने दलोंके साथ शत्रुओंपर हमला करके उन्हें विनष्ट करे ॥ ८ ॥

शत्रुका निवारण करना चाहिए। शत्रुके निवारण करनेका मुख्य साधन 'ज्ञान और विज्ञान' है। अतः ज्ञानी जन जिसकी सुरक्षा करते हैं, वह मनुष्य दबाया नहीं जा सकता। जिसके पीछे ज्ञानकी शक्ति है, वह मनुष्य कभी पराधीन नहीं होता। यह ज्ञानका महत्त्व है। केवल सुरक्षा ही मुख्य नहीं है अपितु ज्ञानपूर्वक ज्ञान विज्ञान द्वारा होनेवाली सुरक्षा ही मुख्य है ॥ १ ॥

ज्ञानी जिसका पालन करते हैं, ज्ञानी जिसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंसे बचाते हैं, वह विनाशको प्राप्त नहीं होता। इसके विपरीत वह बढता जाता है। ज्ञानी जिसका पोषण करते हैं और जिसको हिंसकोंसे सुरक्षित रखते हैं, वह कभी विनष्ट नहीं होता ॥ २ ॥

ज्ञानी क्षत्रियवीर राजपुरुष शत्रुओंके नगरों और किलोंको तोड देते हैं। अपने मित्रोंके विद्वेषक वैरियोंका नाश करते हैं और उन्हें पापोंसे बचाकर दूर पहुंचा देते हैं ॥ ३ ॥

*

४९३ सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥ ४ ॥
४९४ यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र वः स धीतये नशत् ॥ ५ ॥
४९५ स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना । अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥
४९६ कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः । महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
४९७ मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् । सुम्नैरिद् व आ विवासे ॥ ८ ॥
४९८ चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयादा निधातोः । न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ— [४९३] (आदित्यासः) हे अदितिके पुत्रों ! (ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः) सत्य मार्गसे जानेवालेके लिये मार्ग सुगम और कण्टकरहित होता है (अत्र वः अवखादः न अस्ति) इससे यहां तुम्हारे किये बुरा खाद्य कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

१ ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः च— सत्यके मार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कण्टकरहित मार्ग मिलता है ।

[४९४] (नरः आदित्याः) हे नेता, अदितिके पुत्रों ! (यं यज्ञं ऋजुना पथा नयथ) जिस यज्ञको तुम सरल मार्गसे चलाते हो (सः वः धीयते प्र नशत्) वह यज्ञ आपके ध्यानमें भला कैसे नष्ट होगा ? ॥ ५ ॥

[४९५] (सः मर्त्यः अस्तृतः) वह मनुष्य विनष्ट न होता हुआ (रत्नं विश्वं वसु अच्छ गच्छति) रत्न आदि सब धन सहजहीसे प्राप्त करता है (उत त्मना तोकं) और अपने लिये पुत्र भी प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[४९६] (सखायः) हे मित्रो ! (मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य) मित्र, अर्यमा और वरुणके (महि प्सरः स्तोमं कथा राधाम) महत्त्वके अनुरूप स्तोत्र हम किस तरह सिद्ध करेंगे ? ॥ ७ ॥

[४९७] (देवयन्तं घ्नन्तं) देवत्व-प्राप्तिके इच्छुकका जो नाश करता है, (वः मा प्रति वोचे) आपसे हम कहते हैं कि उससे हमारा भाषण भी न होवे, (शपन्तं मा) उसी तरह गाली देनेवालेके साथ भी न भाषण होवे (सुम्नैः इत् वः आ विवासे) शुभ संकल्पोंके द्वारा ही आपको हम तृप्त करें ॥ ८ ॥

[४९८] (दुरुक्ताय न स्पृहयेत्) दुष्ट भाषण करनेकी इच्छा कोई न करे, (चतुरः ददमानात्) चारों पुरुषार्थोंको जो धारण करता है (आ निधातोः बिभीयात्) उससे विरोध करनेवालेसे मनुष्य डरे ॥ ९ ॥

भावार्थ— सत्यमार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कण्टक-रहित मार्ग मिलता है । एकबार सत्यके मार्गसे जानेका निश्चय करने पर आगेका मार्ग सरल हो जाता है । इसे अयोग्य और निन्द्य भोजन कभी नहीं मिलता ॥ ४ ॥

जो सन्मार्गसे जाता है, भला वह विनष्ट कैसे हो सकता है । अथवा जिसे देव स्वयं सन्मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा देते हैं, उसको विनष्ट करनेका साहस किसीमें भी नहीं है ॥ ५ ॥

ऐसा मनुष्य कभी भी विनष्ट नहीं होता, इसके विपरीत वह हर तरहके धन प्राप्त करता है और उत्तम औरस संतान भी प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

राष्ट्रके वीर श्रेष्ठवीर, मित्रवत् व्यवहार करनेवाले, श्रेष्ठताके विचार करनेवाले और देव अर्थात् सज्जन और संगठनकर्ता हों, ये ज्ञानी हों । सभी मानवोंको चाहिए कि वे इन गुणोंको धारण करें और उत्तम देव बननेका यत्न करें ॥ ७ ॥

देवत्वको पानेके लिए प्रयत्न करनेवालोंका जो विनाश करते हैं, ऐसे दुष्टोंके साथ बोलना भी नहीं चाहिए । स्वयं तो ऐसे दुष्टोंसे व्यवहार करना ही नहीं चाहिए, इस पर यदि वे दुष्ट स्वयं आकर बोलने भी लगें, तो भी उनसे बातचीत करनी नहीं चाहिए । इस प्रकार उन्हें पूर्णरूपसे बहिष्कृत कर देना चाहिए, इसी प्रकार गालीगलौज करनेवालेके साथ भी नहीं बोलना चाहिए ! सदा उत्तम मन और शुभ संकल्पोंके साथ ही ईश्वरकी सेवा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

बुरे शब्द बोलनेवालेको अपने सम्मुख आने भी नहीं देना चाहिए । चारों पुरुषार्थोंको करनेका सामर्थ्य धारण करनेवालेको जो नीचे दबाता है, उससे डरना चाहिए, क्योंकि वह कब और किसका घात करेगा, इसका कुछ भी पता नहीं । इसलिए ऐसोंसे दूर ही रहना चाहिए ॥ ९ ॥

[४२]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री ।)

४९९ सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् । सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥

५०० यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥

५०१ अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥

५०२ त्वं तस्य द्वयाविनो ऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥

५०३ आ तत् ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे । येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥

५०४ अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

[४२]

अर्थ— [४९९] (विमुचो नपात् पूषन्) हे मुक्त करनेवाले पूषा! (अध्वनः सं तिर) हमें मार्गके पार पहुंचा दो (अंहः वि) हमें पापके परे कर दो। (देव नः पुरः प्र सक्ष्व) हे देव हमें आगे बढाओ ॥ १ ॥

[५००] (पूषन्) हे पूषा! (यः अघः वृकः दुःशेवः) जो कोई पापी, क्रूर और; सेवाके अयोग्य शत्रु (नः आदिदेशति) हमें आदेश देता हो, (तं पथः अप जहि स्म) उसको मार्गसे दूर करो ॥ २ ॥

[५०१] (त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितं) उस बटमार चोर कपटीको (स्रुतेः दूरं अधि अप अज) मार्गसे दूर करके विनष्ट करो ॥ ३ ॥

[५०२] (त्वं) तू (कस्य चित् तस्य द्वयाविनः अघशंसस्य) किसी भी उस दुरंगे पापीके (तपुषिं) शरीरको (पदा अभि तिष्ठ) अपने पांवसे दबाकर खडा रह ॥ ४ ॥

[५०३] (मन्तुमः दस्र पूषन्) हे शत्रुका दमन करनेवाले ज्ञानी पूषा! (ते तत् अवः आ वृणीमहे) तुम्हारा वह रक्षा-सामर्थ्य हम चाहते हैं (येन पितॄन् अचोदयः) कि जिससे तुमने पितरोंको उत्साह दिया था ॥ ५ ॥

[५०४] (विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम) हे विश्वमें सौभाग्ययुक्त और सुवर्णके अलंकारोंसे युक्त (अध नः धनानि सुषणा कृधि) अब हमें धनोंको और उत्तम दानोंको अर्पण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य पुष्टि चाहता हो, वह अपने मुक्तिके मार्गकी तलाश करे और उस मार्ग पर चलता हुआ वह दुःखके पार पहुंच जाए। अपने उन्नतिके मार्गको निष्कण्टक करे। अपने आपको पापसे बचावे और इस प्रकार प्रगति करे ॥ १ ॥

जो पापी, क्रूर और सेवाके अयोग्य मनुष्य सज्जनों पर हुकूमत करता हो, उसे अपने मार्गसे हटा देना चाहिए। दुष्टकी आज्ञा कोई न माने ॥ २ ॥

बटमार, चोर, कपटी, मार्गके बीचमें छिपकर राहगीरोंको लूटनेवाले ऐसे व्यक्तियोंको सदाके लिए विनष्ट कर देना चाहिए ॥ ३ ॥

दुरंगे पापीको अपने पैरके नीचे दबाकर रखना चाहिए। ऐसे दुरंगी चालवाले मनुष्य समाजके लिए बडे खतरनाक होते हैं। जो एक जगह जाकर कुछ और कहते हैं और दूसरी जगह जाकर कुछ और कहते हैं, वे समाजको विनाशकी ओर ले चलते हैं और वे समाजको गर्तमें गिरा देते हैं ॥ ४ ॥

राष्ट्रका पोषक शत्रुओंका दमन करनेवाला हो, जब राष्ट्र चारों ओरसे शत्रुओंसे रहित हो, तभी वह शान्तिसे रहकर सामर्थ्यशाली हो सकता है। शत्रुओंको दूर करनेका सामर्थ्य सभी मनुष्योंमें हो। पर यह कार्य तभी हो सकता है, जब राष्ट्के रक्षक सत्कर्ममें प्रवृत्त हों। पर जब राष्ट्रके रक्षक ही भक्षक बन जाते हैं, तब राष्ट्रका पतन निस्सन्देह ही समझना चाहिए ॥ ५ ॥

जिसके पास सेवन करने योग्य धन होता है, जिसके पास सब सुखके साधन प्राप्त हों, वही सच्चा सौभाग्यशाली है। जिसके पास अपार सम्पत्ति होनेपर भी जो कंजूसी करता है, उससे ज्यादा दुर्भाग्यशाली और कोई नहीं हो सकता। ऐसे उत्तम धनको अच्छे कामोंमें ही अर्पित करना चाहिए ॥ ६ ॥

५०५ अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥
५०६ अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥
५०७ शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥
५०८ न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥

[४३]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवता- रुद्रः ३, रुद्रः मित्रावरुणौ च ७-९ सोमः । छन्दः- गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।)

५०९ कद् रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥

अर्थ— [५०५] (सश्चतः नः अति नय) बाधा करनेवाले दुष्टोंसे हमें पार ले जाओ (नः सुगा सुपथा कृणु) हमें सुगम उत्तम मार्गसे ले चलो (पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ७ ॥

[५०६] (पूषन्) हे पूषन् ! (सुयवसं अभि नय) उत्तम जौंवाले देशमें हमें ले चलो । (अध्वने नवज्वारः न) मार्गमें नवीन संताप न होने पावे । (हे पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका पता है ॥ ८ ॥

[५०७] (पूषन्) हे पूषन् ! (शग्धि) हमें सामर्थ्यवान् बनाओ (पूर्धि) हमें धनधान्यसे संपन्न करो । (प्र यंसि) हमें संपत्तिमान् करो, (शिशीहि) हमें तेजस्वी करो । (उदरं प्रासि) हमारे पेटको भर दो । (पूषन्) हे पूषन् ! (इह क्रतुं विदः) तुम्हें यहांके कर्तव्यका ज्ञान है ॥ ९ ॥

[५०८] (पूषणं न मेथामसि) हम पूषाको भूल नहीं सकते (सूक्तैः अभि गृणीमसि) सूक्तोंसे उनकी स्तुति करते हैं (दस्मं वसूनि ईमहे) दर्शनीय धनोंको हम चाहते हैं ॥ १० ॥

[४३]

[५०९] (प्रचेतसे) विशेष ज्ञानी (मीळ्हुष्टमाय) अत्यंत सुखदायी (तव्यसे रुद्राय) महान् रुद्रके लिये (हृदे कत् शंतमं वोचेम) हृदयसे कब शान्तिपाठके स्तोत्र बोलेंगे ? ॥ १ ॥

भावार्थ— उन्नतिके मार्गमें बाधा डालनेवाले दुष्टोंको दूर करना चाहिए । सुखसे जाने योग्य उत्तम मार्गोंको दूर करना चाहिए और राष्ट्रको उन्नत करनेवाले कर्तव्योंको जानना चाहिए ॥ ७ ॥

अपने राष्ट्रको उत्तम धन धान्यसे पूर्ण करना चाहिए । जो भूमि उपजाऊ नहीं है, उसे उपजाऊ बनाना चाहिए । राष्ट्रमें किसी प्रकारका रोग न हो, कोई कष्ट न हो, कोई सन्ताप न हो ॥ ८ ॥

सभी प्रजाजनको समर्थ बनना चाहिए, सभी कर्म पूर्ण करने चाहिए, सभीको सम्पन्न बनना चाहिए, तेजस्वी बनना चाहिए । अपने शस्त्रास्त्रोंको सदा तीक्ष्ण करना चाहिए और सदा उत्साहित रहना चाहिए ॥ ९ ॥

जो हमारा पोषण करता है, उसका उपकार कभी नहीं भूलना चाहिए । उसकी हमेशा प्रशंसा करनी चाहिए और उसकी धनादिसे हमेशा सहायता करनी चाहिए ॥ १० ॥

४८ रुद्र देव विशेष ज्ञानी, रोग दूर करके आनन्द बढानेवाला, आयु बढानेकी शक्ति बढानेवाला, रोगोंके कारणोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है । ऐसे ही गुण राष्ट्रके वीरोंको भी धारण करने चाहिए ॥ १ ॥

५१० यथा नो अदितिः करत् पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥
५११ यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥
५१२ गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥
५१३ यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥
५१४ शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥
५१५ अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [५१०] (अदितिः नः रुद्रियं यथा करत्) अदिति हमारे लिये रोग दूर करनेका चिकित्साका उपाय जैसा करे (यथा पश्वे नृभ्यः गवे) वैसा ही पशु, मानव, गाय (यथा तोकाय) और बालबच्चोंके लिये भी करे ॥ २ ॥

[५११] (मित्रः वरुणः नः यथा चिकेतति) मित्र और वरुण हमारे लिये हित करना जैसा जानता है (रुद्रः यथा चिकेतति) रुद्र जैसा जानता है (सजोषसः विश्वे) वैसा ही सब उत्साही देव जानते हैं ॥ ३ ॥

[५१२] (गाथपतिं मेधपतिं) गाथाओंके स्वामी, यज्ञोंके प्रभु (जलाषभेषजं रुद्रं) जलचिकित्सक रुद्रके पाससे (शंयोः) हम शान्तिकी प्राप्ति और अनिष्टको दूर करनेसे मिलनेवाला (तत् सुम्नं ईमहे) वह सुख हम प्राप्त करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

[५१३] (यः शुक्रः इव सूर्यः) जो सामर्थ्यवान् होनेसे सूर्यके समान (हिरण्यं इव रोचते) तथा सुवर्णके समान प्रकाशता है (देवानां श्रेष्ठः वसुः) वह देवोंमें वैभववान् है ॥ ५ ॥

[५१४] (नः अर्वते मेषाय मेष्ये नृभ्यः नारिभ्यः गवे) हमारे घोडे, मेढे, भेडी, पुरुषों, नारियों और गौके लिये (सुगं शं करति) वह रुद्र देव सुख प्रदान करता है ॥ ६ ॥

[५१५] (सोम) हे सोम ! (नृणां शतस्य) हमें सैंकडों मानवोंके लिये (महि तुविनृम्णं श्रवः) पर्याप्त होनेवाला महान् तेजस्वी अन्न (श्रियं अस्मे अधि नि धेहि) बल या धन दो ॥ ७ ॥

भावार्थ— खाने, पीने, दवा देने आदिका प्रबन्ध करनेवाली देवमाता अदिति है । खानपानकी व्यवस्था जो यथायोग्य और यथासमय करती है, वही रोगोंको दूर करने औषधको प्रदान करती है । मनुष्य, पशु, गायें, बालबच्चे इन सबके लिए खानपानका पथ्य आवश्यक है ॥ २ ॥

मित्र, वरुण, रुद्र तथा सब अन्य देव रोग दूर करते हैं । सूर्यकिरणोंसे, औषधिके रसोंसे, जलसे, विद्युत्से इसी तरह सब अन्य देवोंके सामर्थ्यसे रोग दूर होते हैं । मानवी जीवनको सुखमय करना इन्हीं देवोंके सामर्थ्यपर अवलम्बित है ॥३॥

वैद्य गाथाओंको जाने, क्योंकि पूर्वकालके लोगोंके अनुभव गाथामें लिखे रहते हैं, उन्हें जानना चाहिए। औषधियोंको परस्पर मिश्रण करनेका नाम 'मेध' है। किन औषधियोंको मिलानेसे क्या लाभ होते हैं, यह सब वैद्योंको जानना चाहिए। रोगको शान्त करनेवाले उपायका नाम 'शं' है और रोगबीज तथा अनिष्टभावको दूर करनेका नाम 'यु' है। इसीसे सुख होता है । मन प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

सूर्य वीर्यवर्धक है, सुवर्ण तेजस्विता बढानेवाला है, देवताओंमें जो मूल सत्त्व हैं, ये मनुष्योंको लाभ देनेवाले हैं ॥ ५ ॥

घोडे, भेड, भेडा, पुरुष, स्त्रियाँ और गाय आदिको स्वस्थ रखनेसे मनुष्य भी समृद्ध और ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥६॥

सोम आदि औषधियां सैंकडों मानवोंको पुष्ट करती हैं । यह सोमरूप अन्न भी वनस्पतिसे उत्पन्न होता है । बहुत अन्न खानेपर भी जिसका मन प्रसन्न नहीं होता, वह कभी सामर्थ्यशाली नहीं हो सकता, इसीलिए कहा है कि मनुष्यका मन भी उत्तम हो । जिसका मन समर्थ है, उसका शरीर भी समर्थ होता है ॥ ७ ॥

५१६ मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
५१७ यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥

[४४]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अग्निः, १-२ अग्निः, अश्विनौ, उषाश्च ।
छन्दः- प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

५१८ अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥
५१९ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

अर्थ— [५१६] (सोमपरिबाधः नः मा जुहुरन्त) सोममें विघ्न करनेवाले शत्रु हमारा घातपात न करें (अरातयः मा) दुष्ट कंजूस भी हमें न सतावे (इन्दो) हे सोम ! (वाजे नः आ भज) हमारा बल बढाओ ॥ ८ ॥

[५१७] (सोम) हे सोम ! (परस्मिन् धामन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (ऋतस्य अमृतस्य) सत्य और अमृतसे युक्त (ते याः आभूषन्तीः प्रजाः) ऐसे तेरी पूजा करनेवाली यह प्रजा (मूर्धा नाभा वेनः वेद) उच्च स्थानमें अपने ही घरमें विराजे ॥ ९ ॥

[४४]

[५१८] हे (अमर्त्य जातवेदः अग्ने) अमर ज्ञानी अग्ने ! (त्वं उषसः विवस्वत्) तू उषाके साथ (चित्रं राधः दाशुषे आवह) अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देनेके लिये ला और (अद्य उषर्बुधः देवान्) आज उषः-कालमें जागनेवाले देवोंको यहाँ ले आ ॥ १ ॥

१ उषर्बुधः देवाः— उषःकालमें जागनेवाले देव। उषःकालमें जागनेसे देवत्वकी प्राप्ति होती है ।

[५१९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (जुष्टः दूतः हव्यवाहनः) देवों द्वारा सेवित, दूत, हव्य लानेवाला (अध्वराणां रथीः असि हि) और हिंसारहित कर्मोंको निभानेवाला तथा रथवाला है । (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विदेवों और उषाके साथ (सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि) उत्तम वीर्य बढानेवाला बडा धन हमें ला ॥ २ ॥

१ सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि— उत्तम वीर्य, सामर्थ्य और पराक्रम बढानेवाला धन, अन्न और यश हमें मिले।

२ अध्वराणां रथीः— हिंसा, कुटिलता, कपटता आदि कर्मोंको न करनेवालोंमें श्रेष्ठ ।

भावार्थ— सोम आदि वनस्पतियोंसे मिलनेवाले अन्नमें जो बाधा डालते हैं, वे मानवोंके शत्रु हैं । वे हमारे मार्गमें बाधा न डालें अर्थात् वनस्पतियाँ हमें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त होती रहें । कंजूस भी हमारे बाधक न हों ॥ ८ ॥

यह सोम (उत्तम बुद्धि) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाली, सत्य और अमृतसे युक्त होती है । इस उत्तम बुद्धिकी उपासना करके जो बुद्धिशाली होता है, वह मनुष्य भी श्रेष्ठ स्थानमें जाकर विराजता है ॥ ९ ॥

यह अमर और सब कुछ जाननेवाला अग्रणी देव अनेक प्रकारका तेजस्वी धन दाताको देता है और उषःकालमें उठनेवाले देवोंको अपने साथ लाता है। उषःकालमें उठनेसे शरीरस्थ देव अर्थात् इन्द्रियोंकी शक्ति बढती है ॥ १ ॥

यह अग्रणी देव विद्वानों द्वारा सेवित, दूतकर्म करनेवाला और देवोंतक हव्य पहुंचानेवाला है। यह हिंसायुक्त कामोंमें कभी भी हिस्सा नहीं लेता । हिंसारहित काम करनेवालोंको यह उत्तम सामर्थ्य और यशयुक्त धन देता है ॥ २ ॥

५२० अधा दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥
५२१ श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदस—मग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥
५२२ स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥
५२३ सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२०] (अद्य) आज हम (दूतं, वसुं, पुरुप्रियं, धूमकेतुं, भाऋजीकं) देवोंके दूत, सबके निवासके हेतु, सर्व प्रिय, धुएंकी ध्वजावाले, ज्वालाओंसे सुशोभित (व्युष्टिषु यज्ञानां अध्वरश्रियं अग्निं वृणीमहे) उषःकालमें अहिंसक यज्ञकर्मोंके कर्ता तथा उन यज्ञोंसे ऐश्वर्यको प्राप्त हुए हुए अग्निको स्वीकार करते हैं ॥ ३ ॥

वसुः— सबको बसानेवाला। उष्णता देकर सबको जीवित रखनेवाला।

[५२१] (व्युष्टिषु देवान् अच्छा यातवे) उषःकालोंमें देवोंकी ओर जानेके लिये (श्रेष्ठं, यविष्ठं, अतिथिं स्वाहुतं) श्रेष्ठ, अतिशय युवक, सदा गतिशील, सबसे बुलाये हुये (दाशुषे जनाय जुष्टं जातवेदसं अग्निं ईळे) दानशील यजमानके द्वारा सेवित और सर्वज्ञ अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

१ व्युष्टिषु देवान् यातवे— प्रातःकालमें देवोंको बुलाना चाहिए।

२ जातवेदः— संसारमें जो भी उत्पन्न हुआ है, उसे जाननेवाला अथवा ज्ञान जिससे उत्पन्न हुआ है।

[५२२] हे (अमृत, विश्वस्य भोजन, हव्यवाहन मियेध्य अग्ने) अमर, सबको भोजन देने हारे तथा हविको पहुँचानेवाले पवित्र अग्ने! (त्रातारं अमृतं, यजिष्ठं त्वां अहं स्तविष्यामि) विश्वके त्राणकर्ता, मरणरहित और सामर्थ्यवान् तेरी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

१ विश्वस्य भोजन— यह अग्नि ही सबको भोजन देता है। यदि वृक्ष वनस्पति औषधादियोंमें सूर्य अग्नितत्वका आधान न करे, तो सब विनष्ट हो जाए।

२ त्रातारं अहं स्तविष्यामि— रक्षककी मैं प्रशंसा करता हूँ। जो वीर निर्बलोंकी रक्षा करता है, उसकी प्रशंसा होनी ही चाहिए।

[५२३] हे (यविष्ठ्य) तरुण अग्ने! (गृणते सुशंसः मधुजिह्वः स्वाहुतः बोधि) तू स्तोता यजमानके लिये स्तुतिका पात्र है, मधुर शिखाओंवाला तू उत्तम हवन होनेके पश्चात् हमारे अभिप्रायको समझ। (प्रस्कण्वस्य जीवसे आयुः प्रतिरन् दैव्यं जनं नमस्य) प्रस्कण्वके दीर्घ जीवनके लिये आयु बढाता हुआ तू दिव्य मानवको सम्मान दे ॥ ६ ॥

१ मधुजिह्वः— घृतादि मधुर पदार्थोंको अपनी जीभ अर्थात् ज्वालाओंसे चाटनेवाला। अथवा हमेशा मधुर वाणी बोलनेवाला ज्ञानी।

२ दैव्यं जनं नमस्य— दिव्य अर्थात् उत्तम गुणवालोंकी हमेशा पूजा करनी चाहिए।

भावार्थ— यह अग्नि सबको बसानेवाला, सर्व प्रिय, उषःकालमें होनेवाले यज्ञोंकी ज्वालासे शोभित और ऐश्वर्ययुक्त है। ऐसे अग्निको सब चाहते हैं। अर्थात् प्रत्येकके घरमें यज्ञ होने चाहिए ॥ ३ ॥

देवत्वको प्राप्त करनेके लिए मैं श्रेष्ठ, बलशाली, दानियों द्वारा सेवित अग्निकी स्तुति करता हूँ। अग्नि अर्थात् ज्ञानीकी उपासना अर्थात् उसके पास बैठनेसे ही मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

अमर, सबको जीवन देनेवाले, हवियोंको ले जानेवाले, पवित्र तथा दूसरोंकी रक्षा करनेवाले अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ५ ॥

यह अग्रणी मीठी वाणी बोलनेवाला, सबके मनोगतोंको जाननेवाला कण्व अर्थात् ज्ञानियोंको दीर्घायु देनेवाला और उत्तम गुणोंसे युक्त है। ऐसे अग्रणीका सबको सम्मान करना चाहिए ॥ ६ ॥

५२४ होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसो ऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥
५२५ सवितारमुषसमश्विना भग- मग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥
५२६ पतिर्ह्यध्वराणा- मग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥
५२७ अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववि्ता पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

अर्थ— [५२४] (होतारं विश्ववेदसं त्वा) हवन करनेवाले सर्वज्ञ तुझको (विशः हि सं इन्धते) सब प्रजायें निश्चयसे प्रदीप्त करती हैं। हे (पुरुहूत अग्ने) बहुतोंसे बुलाये गये अग्ने ! (सः प्रचेतसः देवान् इह द्रवत् आवह) वह प्रसिद्ध तू प्रकृष्ट ज्ञानसे युक्त देवोंको यहाँ इस यज्ञकर्ममें दौडते हुये शीघ्र ले आ ॥ ७ ॥

१ विश्ववेदसं विशः सं इन्धते— सर्वज्ञ इस अग्निको सब प्रजायें प्रदीप्त करती हैं। सब प्रजाजनोंके घरोंमें हवन होना चाहिए।

[५२५] हे (स्वध्वर) शोभन यज्ञके कर्ता अग्ने ! (क्षपः व्युष्टिषु सवितारं उषसं अश्विना भगं अग्निं) रात्रीके अनन्तर उषःकालमें सविता, उषा, दोनों अश्विनीकुमारों, भग और अग्निको यहाँ ले आ। (सुतसोमासः कण्वासः हव्यवाहं त्वा इन्धते) सोम तैयार किये हुये ज्ञानी लोग हवियोंको पहुँचानेवाले तुझको प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

[५२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विशां अध्वराणां पतिः दूतः असि हि) प्रजाओंके यज्ञका पालक और देवोंका दूत है। (उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान् अद्य सोमपीतये आ वह) उषःकालमें जागनेवाले आत्मदर्शी देवोंको आज सोमपान करनेके लिये ले आ ॥ ९ ॥

१ उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान्— उषःकालमें जागनेवाले तथा आत्मसाक्षात्कारी ज्ञानियोंको 'देव' कहते हैं।

[५२७] हे (विभावसो अग्ने) विशेष तेजस्वी अग्ने ! (विश्वदर्शतः पूर्वाः उषसः अनु दीदेथ) विश्वमें दर्शनीय ऐसा तू उषासे पहले प्रदीप्त होता है। तू (ग्रामेषु अविता असि) ग्रामोंमें रक्षक है, और (यज्ञेषु मानुषः पुरोहितः असि) यज्ञोंमें, मनुष्योंका अग्रगामी नेता है ॥ १० ॥

१ उषसः पूर्वाः अनु दीदेथ— यह अग्रणी उषासे पहले प्रदीप्त किया जाता है। उषःकालसे पूर्व उठनेवाला तेजस्वी होता है।

२ ग्रामेषु अविता असि— यह अग्रणीनेता अपने ग्रामका रक्षक होता है। हर अग्रणी नेताको अपने अपने ग्रामकी रक्षा करनी चाहिए।

भावार्थ— क्योंकि यह ज्ञानी अग्रणी देव सब देवोंको बुलाकर लाता है, इसलिए सभी प्रजायें उसे प्रदीप्त करती हैं ॥ ७ ॥

उषःकालमें अग्नि सविता, उषा, अश्विनीकुमार आदि सब देवताओंको बुलाकर लाता है। इसलिए सवेरे सवेरे ज्ञानीजन सोम तैयार करके इस अग्निको प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्रणी यज्ञोंका स्वामी है। यह उषःकालमें जागनेवाले और आत्मसाक्षात्कारी देवोंको सोमयज्ञमें बुलाकर लाता है। आत्मचिन्तनका सर्वोत्तमकाल उषःकाल या ब्राह्ममुहूर्त है, इसी समय ज्ञानीजन आत्मचिन्तन करते हैं। मनुस्मृतिमें भी कहा है— ॥ ९ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत, धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥

' मनुष्य ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर, धर्म, अर्थ, कायक्लेश और उनके कारण तथा वेदोंके तत्त्वोंका चिन्तन करे। '

प्राचीनकालमें उषःकालसे पहले यज्ञ प्रारम्भ हो जाते थे, अतः उषासे पूर्व ही इस तेजस्वी अग्निको प्रकट करते थे। यह यज्ञाग्नि जिस जिस ग्राममें जलाई जाती है, वहां वहांके रोगजन्तुओंको नष्ट करके यह अग्नि उस ग्रामकी रक्षा करती है। इसीलिए यज्ञमें इसे सर्वप्रथम प्रदीप्त किया जाता है ॥ १० ॥

५२८ नि त्वा॑ य॒ज्ञस्य॒ साध॑न॒—मग्ने॒ होता॑रमृ॒त्विज॑म् ।
मनु॒ष्वद् दे॑व धीमहि॒ प्रचे॑तसं जी॒रं दू॒तमम॑र्त्यम् ॥ ११ ॥

५२९ यद् दे॒वाना॑ मित्रमहः पु॒रोहि॑तो ऽन्त॑रो॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ।
सिन्धो॑रिव॒ प्रस्व॑नितास ऊ॒र्मयो॒ ऽग्नेर्भ्रा॑जन्ते अ॒र्चयः॑ ॥ १२ ॥

५३० श्रुधि॑ श्रुत्कर्ण॒ वह्नि॑भि—र्दे॒वैर॑ग्ने स॒याव॑भिः ।
आ सी॑दन्तु ब॒र्हिषि॑ मि॒त्रो अ॑र्य॒मा प्रा॑त॒र्यावा॑णो अध्व॒रम् ॥ १३ ॥

५३१ शृ॒ण्वन्तु॒ स्तोमं॑ म॒रुतः॑ सु॒दान॑वो ऽग्निजि॒ह्वा ऋ॑ता॒वृधः॑ ।
पिब॑तु॒ सोमं॒ वरु॑णो धृ॒तव्र॑तो॒ ऽश्विभ्या॑मु॒षसा॑ स॒जूः ॥ १४ ॥

अर्थ— [५२८] हे (अग्ने देव) अग्नि देव ! हम (मनुष्वत् त्वा) मनुष्योंकी तरह तुझको (यज्ञस्य साधनं होतारं ऋत्विजं, प्रचेतसं) यज्ञके साधन, होता, याजक, ज्ञानी, (जीरं, अमर्त्यं दूतं नि धीमहि) वृद्ध अमर दूतके रूपमें यहाँ स्थापित करते हैं ॥ ११ ॥

[५२९] हे (मित्रमहः) मित्रोंमें पूजनीय अग्ने ! तू (यत् पुरोहितः अन्तरः देवानां दूत्यं यासि) जब यज्ञके पुरोहित रूपमें देवोंके बीचमें दूतकर्म करनेके लिये जाता है, तब (सिन्धोः प्रस्वनितासः ऊर्मयः इव) समुद्रके प्रचण्ड ध्वनि करनेवाली लहरोंके सदृश (अग्नेः अर्चयः भ्राजन्ते) तुझ अग्निकी ज्वालायें प्रदीप्त होती हैं ॥ १२ ॥

[५३०] हे (श्रुत्कर्ण अग्ने) सुननेमें समर्थ कानोंवाले अग्ने (श्रुधि) हमारे कथनको सुन ले । (प्रातर्यावाणः मित्रः, अर्यमा, वह्निभिः सयावभिः देवैः) प्रातःकालमें जानेवाले मित्र और अर्यमा तथा तेजस्वी रथोंसे जानेवाले देवोंके साथ (अध्वरं बर्हिषि आ सीदन्तु) हिंसारहित यज्ञमें आसनपर आकर विराजमान होवें ॥ १३ ॥

[५३१] (सुदानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः मरुतः स्तोमं शृण्वन्तु) उत्तमदानी, अग्निरूप जिह्वावाले, यज्ञकर्मकी वृद्धि करनेवाले मरुत् वीर इस स्तोत्रको सुनें । तथा (धृतव्रतः वरुणः) व्रतपालन करनेवाला वरुण (अश्विभ्यां उषसा सजूः सोमं पिबतु) अश्विनीकुमारों और उषाके साथ सोम रसका पान करे ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि यज्ञका साधन, होता, ज्ञानी और सबसे महान् और अमर है ॥ ११ ॥

जब देवताओंको हवि पहुंचानेके उद्देश्यसे यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है, तब उसकी ज्वालायें समुद्रकी लहरोंकी तरह आकाशमें बहुत ऊंची उठती हैं ॥ १२ ॥

यह अग्रणी देव सबकी प्रार्थनाओंको ध्यानसे सुनता है और सब देवोंके साथ मनुष्यके श्रेष्ठ कर्मोंमें सहायक होता है। इसी प्रकार अग्रणी नेता भी अपनी प्रजाओंकी प्रार्थनायें सुने और तदनुसार उनकी सहायता करे ॥ १३ ॥

उत्तम दानी मरुत् गण हमारी प्रार्थना सुनें, तथा व्रतके पालक वरुण एवं अश्विनीकुमार आदि देव भी हमारे यज्ञमें आवें ॥ १४ ॥

*

[४५]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अग्निः, १० (उत्तरार्धस्य) देवाः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

५३२ त्वम॑ग्ने वसूँ॑रिह रुद्राँ आ॑दित्याँ उत । यजा॑ स्वध्वरं जनं॒ मनु॑जातं घृतप्रुषम् ॥१॥
५३३ श्रुष्टीवानो॒ हि दाशुषे॑ देवा अ॑ग्ने विचे॑तसः । तान् रो॑हिदश्व गिर्वण॒स् त्रय॑स्त्रिंशत॒मा व॑ह ॥२॥
५३४ प्रियमेधवद॑त्रिवज् जात॑वेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन्म॑हिव्रत प्रस्क॑ण्वस्य श्रुधी हव॑म् ॥३॥
५३५ महि॑केरव ऊतये॑ प्रियमे॑धा अहूषत् । राजं॑तमध्वराणा॑मग्निं शुक्रे॑ण शोचिषा ॥४॥

[४५]

अर्थ— [५३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं इह वसून् रुद्रान् आदित्यान् यज) तू यहाँ वसुओं, रुद्रों और आदित्योंकी सन्तुष्टिके लिये यज्ञ कर । (उत स्वध्वरं घृतप्रुषं मनुजातं जनं आयज) तथा उत्तम यज्ञ करनेवाले एवं घृताहुति देनेवाले मनुसे उत्पन्न हुये मानवोंकी सन्तुष्टिके लिये भी यज्ञ कर ॥ १ ॥

१ वसून् रुद्रान् आदित्यान् इह यज— वसु, रुद्र और आदित्योंके लिए यजन कर। अर्थात् इनकी प्रसन्नताके लिए यज्ञ करना चाहिए । इनके प्रसन्न रहनेपर स्वास्थ्य उत्तम रहेगा ।

२ जनं यज— मनुष्य मात्रके हितके लिए यज्ञ करना चाहिए ।

[५३३] हे (अग्ने) अग्ने ! (विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि) विशेष ज्ञानसम्पन्न देवता लोग दाताके लिये उत्तम फल देते ही हैं । हे (रोहिदश्व, गिर्वणः) लाल रङ्गके घोडेवाले, स्तुति योग्य अग्ने ! (त्रयस्त्रिंशतं तान् आ वह) उन तैंतीस देवोंको तू यहाँ ले आ ॥ २ ॥

१ विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानो हि— विशेष ज्ञान सम्पन्न देव दाताको उत्तम फल देते ही हैं ।

[५३४] हे (महिव्रत जातवेदः) महान् कर्म करनेवाले ज्ञानी अग्ने ! (प्रियमेधवत् अत्रिवत् विरूपवत् अङ्गिरस्वत् प्रस्कण्वस्य हवं श्रुधि) तूने जैसी प्रियमेध, अत्रि, विरूप और अङ्गिरसकी प्रार्थनाएँ सुनी थीं, वैसी प्रस्कण्वकी भी प्रार्थना श्रवण कर ॥ ३ ॥

प्रियमेधाः— बुद्धिपूर्वक कार्य करना जिसे प्रिय है ।
अत्रिः— (अतति) जो भ्रमण करता है ।
विरूपः— विशेष रूपवान् ।
अंगिराः— अंगरस-चिकित्सा-विद्याका ज्ञाता ।
प्रस्कण्वः— विशेष व्याख्याता 'कण्-शब्दे' ।

[५३५] (महिकेरवः प्रियमेधाः) महान् कर्म करनेवाले प्रियमेध ऋषियोंने (अध्वराणां शुक्रेण शोचिषा राजन्तं अग्निं ऊतये अहूषत) यज्ञोंके मध्यमें पवित्र प्रकाश और तेजस्वी हुये अग्निकी अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४ ॥

१ प्रियमेधाः महिकेरवः ऊतये अग्निं अहूषत— बुद्धिपूर्वक महान् कार्य करनेवालोंने अपनी रक्षाके लिए अग्रणीको बुलाया । ऐसोंकी अग्नि सहायता करता है ।

भावार्थ— यह अग्रणी देवोंको प्रसन्न करनेके लिए यज्ञ करता है, इस यज्ञसे मानवोंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है, इसलिए यज्ञ एक उपयोगी कार्य है ॥ १ ॥

विद्वान् तथा दिव्य गुण सम्पन्न देव दाताको सदा सुखी रखते हैं और उसके हर कार्यमें ३३ देव सहायक होते हैं ॥२॥

यह अग्रणी देव बुद्धिसे कार्य करनेवाले ज्ञान प्रसार करते हुए सर्वत्र घूमनेवाले अंगरस् चिकित्साके ज्ञाता तथा ज्ञानी पुरुषकी प्रार्थना सुनता है और उसकी सहायता करता है ॥ ३ ॥

महान् कर्म करनेवाले बुद्धिमान ऋषियोंने रक्षाके लिए अग्निसे प्रार्थना की ॥ ४ ॥

५३६ घृताहवन सन्त्ये॒मा उ॒ षु श्रु॑धी गिरः॑ । याभि॒ः कण्व॑स्य सू॒नवो॒ हव॑न्तेऽवसे त्वा ॥५॥
५३७ त्वां चि॒त्रश्र॑वस्तम॒ हव॑न्ते वि॒क्षु ज॒न्तवः॑ । शो॒चिष्के॑शं पुरुप्रिया॒ग्ने ह॒व्याय॒ वोळ्ह॑वे ॥६॥
५३८ नि त्वा॒ होता॑रमृ॒त्विजं॑ द॒धि॒रे व॑सु॒वित्त॑मम् । श्रु॒त्क॑र्णं स॒प्रथ॑स्तमं॒ विप्रा॑ अग्ने दि॒वि॑ष्टिषु ॥७॥
५३९ आ त्वा॒ विप्रा॑ अचुच्यवुः सु॒तसो॑मा अ॒भि प्रयः॑ ।
बृ॒हद् भा बिभ्र॑तो ह॒वि॒रग्ने॒ मर्ता॑य दा॒शुषे॑ ॥ ८ ॥
५४० प्रा॒तर्याव्णः॑ सहस्कृत सोम॒पेया॑य सन्त्य । इ॒हाद्य दैव्यं॒ जनं॑ ब॒र्हिरा सा॑दया वसो ॥९॥

अर्थ— [५३६] हे (घृताहवन सन्त्य) घृतकी आहुतियाँ लेनेवाले दाता अग्ने! (कण्वस्य सूनवः याभिः अवसे त्वा हवन्ते) कण्वके पुत्र जिनसे सबकी सुरक्षाके लिये तेरी प्रार्थना करते हैं, उन (इमा उ गिरः सुश्रुधि) इन प्रार्थनाओंको भली प्रकार सुन ॥ ५ ॥

१ सन्त्य— दाता ।

[५३७] हे (चित्र श्रवस्तम पुरुप्रिय अग्ने) विलक्षण यशवाले और सबके प्रिय अग्ने! (शोचिष्केशं त्वां) तेजस्वी किरणवाले तुझको (हव्याय वोळ्हवे) हव्य वहन करनेके लिये (विक्षु जन्तवः हवन्ते) प्रजाओंमें सब प्राणी बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ शोचिष्केशः— ज्वालायें ही इस अग्निके बाल हैं। शुद्ध प्रकाशसे युक्त ।
२ जन्तवः ह्वयन्ते— इस अग्रणीको सब प्राणी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ।

[५३८] हे (अग्ने) अग्ने! (विप्राः दिविष्टिषु) ज्ञानी लोग यज्ञोंमें (होतारं ऋत्विजं वसुवित्तमं) देवोंको बुलाने हारे, ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, बहुत धनके दाता, (श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा नि दधिरे) प्रार्थना सुननेमें तत्पर और सर्वत्र प्रसिद्ध ऐसे तुम्हें स्थापित करते हैं ॥ ७ ॥

१ ऋत्विज्— (ऋतु-यज्) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाला ।
२ श्रुत्कर्ण— जो लोगोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी हर तरहसे सहायता करता है ।
३ सप्रथस्तमः— सर्वत्र अत्यन्त प्रसिद्ध ।

[५३९] हे (अग्ने) अग्ने! (दाशुषे मर्ताय हविः बिभ्रतः) दानशील मनुष्यके लिये हव्य धारण किये हुये, (सुतसोमाः विप्राः प्रयः अभि) सोमरसको तैयार करनेवाले बुद्धिमान लोग अन्नके पास (बृहत् भाः त्वा अचुच्यवुः) महान् तेजस्वी तुझको बुलाते हैं ॥ ८ ॥

१ बृहत् भाः— अत्यन्त तेजस्वी ।

[५४०] हे (सहस्कृत, सन्त्य, वसो) बलके उत्पन्नकर्ता, दानशील तथा सबके निवासक अग्ने! (इह अद्य सोमपेयाय) यहाँ आज सोमपानके लिये (प्रातर्याव्णः दैव्यं जनं बर्हिः आ सादय) प्रातःकाल हीमें आनेवाले दिव्य विबुधोंको इन आसनों पर लाकर बिठला ॥ ९ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी विद्वानोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी हर प्रकारसे सहायता करता है। वह हमारी भी प्रार्थना सुने ॥ ५ ॥

ज्वालाओंके बालोंसे युक्त इस अग्रणीका सम्मान करनेके लिए सब बुलाते हैं ॥ ६ ॥

यह अग्रणी देवोंको बुलाकर लानेवाला, प्रार्थनाओंको ध्यानसे सुननेवाला, धन ऐश्वर्यादिको देनेवाला है, ऐसे इसको ज्ञानी जन यज्ञमें प्रज्वलित करते हैं ॥ ७ ॥

दानशील मनुष्यके सुखके लिए बुद्धिमान् होता सोमरस तैय्यार करके अग्निको अन्नके पास बुलाते हैं ॥ ८ ॥

यह अग्नि सबको जीवन देनेवाला, बल देनेवाला तथा सोमपानके लिए प्रातःकालमें उठनेवाले दिव्य गुण युक्त ज्ञानियोंको यज्ञमें लानेवाला है ॥ ९ ॥

५४१ अर्वाञ्चं दैव्यं जन॒मग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥१०॥

[४६]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।)

५४२ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

५४३ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

५४४ वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥

५४५ हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥

अर्थ— [५४१] हे (अग्ने) अग्ने (अर्वाञ्चं दैव्यं जनं सहूतिभिः यक्ष्व) पास आये दिव्य जनोंका उत्तम भाषणके साथ आदरपूर्वक यजन कर । हे (सुदानवः) दानशीलो ! (अयं सोमः तं तिरो अह्न्यं पात) यह सोमरस है, गत दिवस तैयार किया गया है उसका पान कर ॥ १० ॥

[४६]

[५४२] हे अश्विदेवो ! (एषा प्रिया) यह प्रिय (अपूर्व्या उषाः) अपूर्वसी दीखनेवाली उषा (दिवः व्युच्छति) द्युलोकसे आती है। अर्थात् अन्धकार दूर करती है। इस समय (वां बृहत् स्तुषे) तुम दोनोंकी मैं बहुत स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[५४३] (या देवा, दस्रा) जो तुम दोनों देवतारूपी, शत्रुविनाशकर्ता (सिन्धु-मातरा, रयीणां मनो-तरा) नदीको माता समझनेवाले, धनोंको मनसोक्त देनेहारे तथा (धिया वसुविदा) कर्म और बुद्धिके अनुसार धनको देनेहारे हो ॥ २ ॥

[५४४] (वां रथः) तुम दोनोंका रथ (यत् विभिः पतात्) जिस समय पक्षिके सदृश उडने लगता है, तब (जूर्णायां) प्रशंसाके योग्य (अधि विष्टपि) द्युलोकमें भी (वां ककुहासः वच्यन्ते) तुम दोनोंके प्रधान कर्मोंका वर्णन किया जाता है ॥ ३ ॥

[५४५] हे (नरा !) नेताओ ! (अपां जारः) जलोंको सुखानेवाला (पपुरिः पिता) पोषणकर्ता पिता (कुटस्य चर्षणिः) किये हुए कार्योंका निरीक्षक सूर्य (हविषा पिपर्ति) हविसे आपको संतुष्ट करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— घरमें आए हुए दिव्य अर्थात् उत्तम गुणोंसे विभूषित मनुष्योंका मीठी बोलीसे सदा सत्कार करना चाहिए । ताकि उसके यहां विद्वान् बैठकर आनन्दसे सोमरसका पान करें ॥ १० ॥

उषा आकर अन्धकारको दूर करती है । हे अश्वि देवो ! इस समय मैं आपकी स्तुति करता हूं । मनुष्यको अपना अज्ञान दूर करना चाहिये ॥ १ ॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करनेवाले, धनका दान करनेवाले नदीको माता माननेवाले और कर्म करनेकी योग्यतानुसार धन देनेवाले हैं । मनुष्य अपने शत्रुको दूर करे, धनका दान करे, जो जैसा कर्म करेगा वैसा धन उस कर्मकी योग्यतानुसार उसको देता रहे, अधिक कर्म कराकर थोडा धन न देवे, अपने देशकी नदियोंकी माताके समान सुरक्षा करें । क्योंकि उनसे धान्य उत्पन्न होकर मानवोंका पोषण होता है ॥ २ ॥

अश्विदेवोंका रथ पक्षीके सदृश आकाशमें उडने लगता है, तब स्वर्गमें भी उसकी प्रशंसा होती है । (यह रथ विमान ही है ।) आकाशमें गमन करनेके लिये आकाशगामी रथ (विमान) मनुष्य बनावें । यह कर्म प्रशंसा योग्य है ॥ ३ ॥

जलको सुखानेवाला, सबका पोषक, कृत कर्मोंको देखनेवाला पिता सूर्य अश्विदेवोंको अन्नसे सन्तुष्ट करता है । मनुष्य अन्न उत्पन्न करे, उससे यज्ञ करे, अनुयायियोंका पोषण करे, अनुयायियोंके लिये कर्मोंका निरीक्षण करे और योग्यतानुसार उनको धन आदि देवे ॥ ४ ॥

५४६ आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥
५४७ या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥
५४८ आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥
५४९ अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥
५५० दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥
५५१ अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥

अर्थ— [५४६] (मत-वचसा नासत्या) हे मननपूर्वक भाषण करनेहारे तथा असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवो! यह (वां मतीनां आदारः) तुम दोनोंकी बुद्धियोंकी प्रेरणा करनेवाला है, (धृष्णुया सोमस्य पातं) धर्षक शक्ति देनेवाले सोमका पान करो ॥ ५ ॥

[५४७] हे अश्विदेवो ! (या ज्योतिष्मती) जो प्रकाशसे पूर्ण होकर (तमः तिरः) अँधियारीको दूर हटाकर (नः पीपरत्) हमें पुष्ट करता है, (तां इषं) उस अन्नको (अस्मे रासाथां) हमें दे दो ॥ ६ ॥

[५४८] हे अश्विदेवो ! (रथं युञ्जाथां) तुम दोनों अपना रथ जोतो, (पाराय गन्तवे) पार चले आनेके लिये (नः मतीनां) हमारी बुद्धिपूर्वक रची हुई (नावा आयातं) नौकासे आओ ॥ ७ ॥

[५४९] (सिन्धूनां तीर्थे) नदियोंकी उतराईके स्थानपर (वां अरित्रं) तुम दोनोंकी बल्ली या नाव खेनेका डंडा (दिवः पृथु) द्युलोक जैसा विस्तीर्ण है, (रथः) तुम दोनोंका रथ भी तैयार है, यहां वे (इन्दवः धिया युयुज्रे) सोमरस कुशलतासे तैयार किये हैं ॥ ८ ॥

[५५०] (कण्वासः) हे कण्वपरिवारके लोगो ! (दिवः इन्दवः) द्युलोकसे सोमरस लाये हैं । (सिन्धूनां पदे वसु) नदियोंके तटपर धन है, अब (स्वं वव्रिं) अपने स्वरूपको (कुह धित्सथः) भला तुम दोनों किधर रखना चाहते हो ? ॥ ९ ॥

[५५१] (भाः अंशवे) यह आभा सोमके लिये ही (अभूत् उ) प्रकट हुई है, (सूर्यः हिरण्यं प्रति) सूर्य सुवर्ण तुल्य प्रकाशसे युक्त हो रहा है; (अ-सितः) कुछ फीकासा पडा हुआ अग्नि (जिह्वया वि अख्यत्) अपनी ज्वालासे विशेषतया प्रकाशमान हो चुका है ॥ १० ॥

भावार्थ— अश्विदेव मननपूर्वक भाषण करते हैं, वे सोमरस पीते हैं जो वीरत्वके उत्साहको बढाता है । मनुष्य भाषण करनेके पूर्व मनन करे और अपना वक्तव्य निश्चित करें और उतना ही बोले । बलवर्धक रसोंका पान करें ॥ ५ ॥

अश्विदेव ऐसा अन्न देते हैं, जो हमें प्रकाश देगा, अन्धकार दूर करेगा और हमारा पालन भी करेगा । मनुष्य अपने अज्ञानान्धकारको दूर करें, ज्ञानके प्रकाशको प्राप्त करें और उत्तम पुष्टि देनेवाला अन्न प्राप्त करें ॥ ६ ॥

समुद्रको पार करके आना हो तो नौकासे आवें, ये नौकाएं उत्तम बुद्धिसे तैयार की हैं । भूमि परसे रथ जोड कर आओ । मनुष्य समुद्र पार करनेके लिये उत्तमसे उत्तम नौकायें तैयार करे और भूमीपर संचार करनेके लिये उत्तम रथ तैयार करे ॥ ७ ॥

नदियोंमें जहां उतार होता है, वहां अच्छी विस्तीर्ण बल्लियां तैयार हैं, भूमि पर रथ भी तैयार है, यहां सोमरस भी तैयार रखे हैं । नदियोंके उतारके स्थानपर नौका रखनेके लिये आवश्यक साधन रहें, मनुष्योंके लिये रथ भी वहीं रहें और अन्नपानका भी सतत प्रबंध रहे ॥ ८ ॥

पर्वतके शिखर परसे सोम लाकर तयार रखा है, नदीपार होनेपर यहां धन भी बहुत है । हे बुद्धिमानो ! आप अब कहां जायेंगे ? पर्वतपरसे औषधियां लाकर उनके रस पीनेके लिये तैयार करो । समुद्रके पार जाकर धन भी कमाओ ॥ ९ ॥

सोमका रस तैयार करनेके लिये ही यह उषाका प्रकाश हुआ है, इसीलिये सूर्य प्रकाशित हुआ है, अग्नि भी इसीलिये प्रदीप्त हुआ है । सोम, सूर्य और अग्नि मनुष्योंकी सहायता करनेके लिये सिद्ध हैं (अर्थात् मनुष्य पुरुषार्थ करके उनसे सुख प्राप्त करे) ॥ १० ॥

५५२ अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥

५५३ तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥

५५४ वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १३ ॥

५५५ युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥

५५६ उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥

अर्थ— [५५२] (ऋतस्य पन्थाः) यज्ञका मार्ग (पारं एतवे) दुःखके पार होनेके लिए (साधुया अभूत् उ) अच्छा बन चुका है । (दिवः) द्युलोकसे (विस्रुतिः अदर्शि) विशेष प्रकाशकी प्रभा दीख पडी है ॥ ११ ॥

[५५३] (सोमस्य मदे) सोमरसके सेवनसे उत्पन्न हर्षमें (पिप्रतोः अश्विनोः) जनताको सन्तुष्ट रखनेवाले अश्विदेवोंके (तत् तत्) उसी (अवः इत्) संरक्षणको (जरिता प्रति भूषति) स्तोता अच्छे ढंगसे वर्णित करता है ॥ १२ ॥

[५५४] हे (शंभू) सुख देनेवाले और (मनुष्वत् विवस्वति) मनुके समान विशेष सेवा करनेवालेके समीप (वावसाना) रहनेकी इच्छा करनेवाले अश्विदेवो ! (गिरा) हमारे भाषणसे आकर्षित होकर (सोमस्य पीत्या) सोमपान करनेके निमित्त (आगतं) इधर आओ ॥ १३ ॥

[५५५] (परिज्मनोः युवोः) चारों ओर घूमनेवालों तुम दोनोंकी (श्रियं अनु) शोभाके पीछे पीछे (उषा उपाचरत्) उषा प्रकट हो समीप संचार कर रही है; (अक्तुभिः) रात्रियोंमें (ऋता वनथः) तुम दोनों यज्ञोंका सेवन करते हो ॥ १४ ॥

[५५६] हे अश्विदेवो ! (उभा पिबतं) तुम दोनों सोमपान करो, (अविद्रियाभिः ऊतिभिः) निरलस रक्षाओंकी आयोजनाओंके साथ (उभा) तुम दोनों (नः शर्म यच्छतं) हमें सुख दे दो ॥ १५ ॥

भावार्थ— दुःखसे पार होनेके लिए यह यज्ञका मार्ग उत्तम रीतिसे बन गया है । मानो यह स्वर्गसे प्रकाश ही आया है । मनुष्योंके दुःख दूर करनेके लिये यह यज्ञका मार्ग बडा ही सरल मार्ग है । इसमें किसी तरहके कष्ट नहीं हैं । यह स्वर्गका ही मार्ग है ॥ ११ ॥

अश्विदेव सोम पीकर आनन्दित होते और जनताको संतुष्ट करके उनकी सुरक्षा करते हैं । इसकी स्तुति सभी करते हैं । मनुष्य स्वयं आनन्द प्रसन्न रहें, अन्योंको संतुष्ट करें और जनताकी उत्तम रक्षा करें, यही प्रशंसनीय कार्य है ।

अश्विदेव सबको सुख देते और अनुयायियोंके संगमें रहते हैं । वे सोमपानके लिये यहां आवें । नेता अनुयायियोंको सुख देवें, उनके साथ रहे, उनसे पृथक् न रहे । वनस्पतियोंके मधुर रसोंका पान करे ॥ १३ ॥

उषःकालके पूर्व अश्विदेव चारों ओर भ्रमण करते हैं । और रात्रीके समयमें भी यज्ञोंको देखते हैं । नेता लोग अनुयायियोंके पूर्व ही उठकर चारों ओरके सब कर्मोंकी अच्छी तरह देखभाल करें । रात्रीके समयमें भी निरीक्षण करें ॥ १४ ॥

अश्विदेव सोमपान करें और निरलस रक्षाओंसे सबको सुख देवें । नेता लोग आलस्य छोडकर अनुयायियोंकी रक्षा करें और उनको सुखी करें । वनस्पतियोंके रसोंका पान करें ॥ १५ ॥

(४७)

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- प्रगाथः=विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

५५७ अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥

५५८ त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥ २ ॥

५५९ अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥

५६० त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥

[४७]

अर्थ— [५५७] हे (ऋतावृधा अश्विना) यज्ञको बढानेवाले अश्विदेवो ! (अयं मधुमत्तमः) यह अत्यन्त मीठा (सोमः वां सुतः) सोम तुम दोनोंके लिए निचोडा जा चुका है, (तिरोअह्न्यं तं पिबतं) कल निचोडे हुए उस रसको तुम दोनों पी लो और (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाताको अनेक रत्न दे दो ॥ १ ॥

[५५८] हे अश्विदेवो ! (सुपेशसा त्रिवृता) सुन्दर आकारवाले, तीन छोरवाले, (त्रिवन्धुरेण रथेन आयातं) तीन शिखरोंसे युक्त रथपर चढकर आओ । (अध्वरे) हिंसा रहित कार्यमें (वां) तुम दोनोंके लिए (कण्वासः ब्रह्म कृण्वन्ति) कण्व परिवारके लोग काव्य, स्तोत्र, बनाते हैं, करते हैं, (तेषां हवं) उनकी पुकारको (सु शृणुतं) भली भाँति सुन लो ॥ २ ॥

[५५९] हे (ऋतावृधा) यज्ञको बढानेवाले ! (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (मधुमत्तमं सोमं पातं) अत्यन्त मीठे सोमरसका तुम दोनों पान करो । (अथ अद्य) और आजके दिन (रथे वसु बिभ्रता) रथमें धन रखे हुए तुम दोनों (दाश्वांसं उप गच्छतं) दानीके समीप चले जाओ ॥ ३ ॥

[५६०] हे (विश्ववेदसा अश्विना) सब कुछ जाननेहारे अश्विदेवो ! (त्रिषधस्थे बर्हिषि) तीन स्थानों पर रखे हुए कुशासनपर बैठकर (यज्ञं मध्वा मिमिक्षतं) यज्ञको मधुसे युक्त करो (अभिद्यवः कण्वासः) द्योतमान कण्वके पुत्र (वां सुतसोमाः) तुम दोनोंके लिए सोमरस निचोडकर (युवां हवन्ते) तुम दोनोंको बुलाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यज्ञकी वृद्धि करनेवाले अश्विदेव यहां आवें और हमने गत दिन तैयार करके रखा हुआ यह अत्यंत मीठा सोमरस पीवें, और दाताको अनेक रत्न देवें । यज्ञकी वृद्धि करो । सोम आदि वनस्पतियोंका रस पीओ और उदार दाताओंको बहुत धन दो ॥ १ ॥

हे अश्विदेव ! तुम दोनों दीखनेमें सुन्दर, तीन छोरवाले और तीन शिखरोंवाले अपने रथमें बैठकर यहां आओ और इस हिंसा रहित यज्ञमें जो कण्वोंका मन्त्र पाठ हो रहा है उसे सुन लो । सुन्दर रथ तैयार करो, उन रथोंमें बैठकर यज्ञके स्थानमें जाओ और वहांके पुण्य कर्मका निरीक्षण करो । नेता लोग वहांके काव्य गानको सुनें ॥ २ ॥

यज्ञ मार्गके प्रचारक, शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो मधुर सोमरस पीओ और अपने रथमें बहुत धन रखकर दाताको उसका दान करो । यज्ञ मार्गका प्रचार करो । शत्रुका नाश करो । धनका दान करो और रसपान करो ॥ ३ ॥

सर्वज्ञ अश्विदेवो ! तीन कोनोंवाले आसन पर बैठो और यज्ञको मधुरिमामय करो । सोमरस निचोडकर ये कण्व तुम्हें बुलाते हैं । आसन पर आकर बैठो, सर्वत्र मीठा वायुमण्डल बनाओ ॥ ४ ॥

५६१ याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्वस्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
५६२ सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
५६३ यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥
५६४ अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥

अर्थ— [५६१] हे (ऋतावृधा) यज्ञको बढानेवाले (शुभस्पती अश्विना) सज्जनोंके पालक अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (याभिः अभिष्टिभिः) जिन इच्छा योग्य शक्तियोंसे (कण्वं प्र अवतं) कण्वकी अच्छी रक्षा की थी (ताभिः अस्मान्) उन्हींसे हमारी (सु अवतं) भली प्रकार रक्षा करो और (सोमं पातं) सोमका पान करो ॥ ५ ॥

[५६२] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुनाशक अश्विदेवो ! (रथे वसु बिभ्रता) रथमें धन रखकर लानेवाले तुम दोनों (सुदासे पृक्षः वहतं) सुदासको अन्न सामग्री पहुँचाओ; (समुद्रात्) समुन्दरमेंसे (उत) या (दिवः परि वा) द्युलोकसे (अस्मे) हमारे लिए (पुरुस्पृहं रयिं धत्तं) बहुतों द्वारा स्पृहणीय धन दे दो ॥ ६ ॥

[५६३] (नासत्या !) हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यत् तुर्वशे अधि स्थः) जो तुम दोनों समीप रहे हो, (यत् वा) अथवा (परावति) सुदूरवर्ती स्थानमें रहे हो, (अतः सुवृता रथेन) वहांसे सुन्दर रथमें बैठकर (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूरजकी किरणोंके साथ (नः आगतं) हमारे समीप आओ ॥ ७ ॥

[५६४] हे (नरा) नेताओ ! (अध्वरश्रियः सप्तयः) यज्ञकी शोभा बढानेवाले तुम्हारे घोडे (वां सवना) तुम दोनोंको सोम सवनके उद्देश्यसे (अर्वाञ्चा) समीप आनेवाले बनाकर वहन्तु) यज्ञके समीप ही लेकर के आयें, (सुकृते सुदानवे) अच्छे कार्यकर्ता और दानी पुरुषके लिए अन्नकी पूर्ति करते हुए तुम दोनों (बर्हिः आसीदतं) कुशासन पर बैठ जाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— अश्विदेव यज्ञके प्रसारक और शुभ कार्योंके रक्षक हैं। उन्होंने कण्वकी जैसी रक्षा की थी, वैसी ही वे हमारी रक्षा करें, क्योंकि हम भी अच्छे कर्म कर रहे हैं। मनुष्य यज्ञ मार्गका प्रचार करें और सदा शुभ कर्म करते रहें। तथा शुभ कर्म करनेवालोंकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करते हैं। उन्होंने अपने रथ पर बहुत धन रख कर सुदासको बहुत ही द्रव्य दिया था. उसी तरह समुद्रके अथवा स्वर्गसे धन लाकर वे हमें दें। मनुष्य शत्रुका नाश करें। अपने रथ पर बहुत धन और धान्य रखकर अपने अनुयायियोंको बाँटें। वे यह धन समुद्रके पारसे, पर्वतके शिखरपर जाकर अथवा किसी अन्य स्थानसे ले आवें और उसका प्रदान करें ॥ ६ ॥

अश्विदेव सत्यका पालन करते हैं। वे समीप हों या दूर रहें, परन्तु वे अपने रथ पर चढ कर सूर्योदयके समय ही हमारे पास आवें। मनुष्य सत्यका पालन करें। असत्य मार्गसे न जायें। नेता लोग कहीं भी हों, वे अपने वाहनोंपर बैठकर जहां कार्यकर्ता कार्य करते हों, वहां तडके ही पहुंच जायें और उस कार्यका निरीक्षण करें ॥ ७ ॥

हे नेता अश्विदेवो ! तुम्हारे घोडे यज्ञ भूमिकी शोभा बढाते हैं। वे तुम्हें सोमरस निचोडनेके समय यज्ञके पास ले आवें। आनेपर तुम दोनों आसनोंपर बैठ जाओ। नेता लोग सदा जहां शुभ कार्य चलते हों वहां जायें, उस कार्यके कर्ताओंकी हर प्रकारकी मदद करें। शुभ कार्योंमें जायें, वहां बैठें, उसका निरीक्षण करें ॥ ८ ॥

५६५ तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥
५६६ उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥ १० ॥

[४८]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- उषाः । प्रगाथः= विषमा बृहत्यः, समाः सतोबृहत्यः ।)

५६७ सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

अर्थ— [५६५] (नासत्या) हे असत्यसे दूर रहनेवाले ! (येन सूर्यत्वचा रथेन) जिस सूर्यसम कान्तिवाले रथसे (दाशुषे शश्वत्) दानीके लिए हमेशा (वसु ऊहथुः) धन ढोकर तुम दोनों पहुँचा देते हो, (तेन) उसी रथपर बैठकर (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे सोमरसके पानके लिए (आगतं) तुम दोनों आओ ॥ ९ ॥

[५६६] हे (पुरुवसू अश्विना) बहुत धनवाले अश्विदेवो ! (उक्थेभिः अर्कैः च) स्तोत्रोंसे और अर्चनोंसे हम (अवसे) अपनी रक्षाके लिए (अर्वाक् नि ह्वयामहे) अपने सम्मुख तुम्हें बुला रहे हैं । (कण्वानां प्रिये सदसि हि) कण्वोंके प्रिय यज्ञ सभा मंडपमें तो (कं सोमं) आनन्ददायी सोमरसको (शश्वत् पपथुः) सदासे तुम दोनों पीते आये हो ॥ १० ॥

[४८]

[५६७] हे (दिवः दुहितः उषः) स्वर्गकन्ये उषा देवी ! (वामेन सह नः व्युच्छ) उत्तम धनके साथ हमारे लिये प्रकाशित होती रह । हे (विभावरि देवी) तेजस्विनि देवी ! (बृहता द्युम्नेन सह) बडे तेजस्वी धनके साथ प्रकाशित हो और हे उषा ! (दास्वती) दान देनेवाली तू (राया) बडे वैभवसे प्रकाशित हो ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विदेव असत्यका आश्रय कभी नहीं करते । अपने सूर्यके समान तेजस्वी रथपर बैठकर दाता लोगोंको धन देनेके लिये सदा आते हैं । उसी रथपर बैठकर वे मधुर सोमरस पीनेके लिये हमारे पास आ जायें । कभी असत्यका आश्रय न करो । अपने रथपर चढकर अपने अनुयायियोंको धनका प्रदान करो ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंके पास बहुत ही धन रहता है । अपनी रक्षा करनेके लिए उनको हम स्तोत्रों द्वारा बुलाते हैं । कण्वोंके यज्ञमें वे सोमरस पीनेके लिये बारंबार आते हैं । नेता अपने पास बहुत धन रखे । उससे अपने अनुयायियोंका हित करे, अनुयायियोंको सुरक्षित रखनेके लिये प्रयत्न करे ॥ १० ॥

उषा स्वर्गसे अवतरित होती है । जब वह अवतरित होती है, तब वह दर्शनीय होती है । वह आते समय अपने साथ अनेक तरहके धन लाती है । उसी प्रकार राष्ट्रकी कन्यायें धनैश्वर्यसे सम्पन्न होकर दर्शनीय हों और प्रकाशित हों । उषा किसी भी देशकी स्त्रियोंके लिए आदर्श है ॥ १ ॥

*

५६८ अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्वि॒श्वसु॑विदो॒ भूरि॑ च्यवन्त॒ वस्त॑वे ।
उदी॑रय॒ प्रति॑ मा सू॒नृता॑ उषु॒श्चोद॒ राधो॑ म॒घोना॑म् ॥ २ ॥
५६९ उ॒वासो॒षा उ॒च्छाच्च॒ नु दे॒वी जी॒रा रथा॑नाम् ।
ये अ॑स्या आ॒चर॑णेषु दधि॒रे स॑मु॒द्रे न श्र॑व॒स्यवः॑ ॥ ३ ॥
५७० उषो॒ ये ते॒ प्र यामे॑षु यु॒ञ्जते॒ मनो॑ दा॒नाय॑ सू॒रयः॑ ।
अत्राह॒ तत् कण्व॑ एषां॒ कण्व॑तमो॒ नाम॑ गृणाति नृ॒णाम् ॥ ४ ॥
५७१ आ घा॒ योषे॑व सू॒नर्यु॒षा या॑ति प्रभुञ्ज॒ती ।
जर॒यन्ती॒ वृज॑नं प॒द्वदी॑यत॒ उत्पा॑तयति प॒क्षिणः॑ ॥ ५ ॥

अर्थ— [५६८] (अश्वावतीः गोमतीः) घोडोंवाली और गौवोंवाली तथा (विश्वसु-विदः) सब प्रकारके धनको प्राप्त करानेवाली उषाएँ (वस्तवे भूरि च्यवन्त) प्रजाजनोंके निवासको हितकारी करनेके लिये बहुत प्रकारसे प्रकाशित हो चुकी हैं। (मा प्रति सूनृता उदीरय) ऐसी तू मेरे लिये हितकारी वाणी बोल। हे (उषः) उषा! (मघोनां राधः चोद) धनवानोंके योग्य धन हमारे पास भेज ॥ २ ॥

[५६९] जो (उषाः देवी उवास) उषा देवी पहिले भी निवास कर चुकी थी (रथानां जीरा) वह रथोंको चलानेवाली उषा (च नु उच्छात्) और भी प्रकाशती रहे। (श्रवस्यवः समुद्रे न) धनकी इच्छा करनेवाले लोग जिस तरह समुद्रमें नौकाएं चलाते हैं, उस तरह (ये अस्याः आचरणेषु दधिरे) जो रथ इस उषाके आगमनके समय तैयार रखे रहते हैं उन रथोंको उषा चलाती है ॥ ३ ॥

[५७०] हे (उषः) उषा देवी! (ते यामेषु) तेरे आगमनके समय (ये सूरयः) जो विद्वान् (मनः दानाय प्र युञ्जते) अपना मन धनादिका दान करनेमें लगा देते हैं, (एषां नृणां) इन मनुष्योंमें (कण्वतमो नाम कण्वः) अत्यंत बुद्धिमान् करके जो प्रसिद्ध है वह कण्व ऋषि (अत्र अह गृणाति) यहां ही स्तोत्र गाता है ॥ ४ ॥

[५७१] (सू-नरी योषा इव) उत्तम गृहिणी स्त्रीके समान (प्रभुञ्जती उषाः) विशेष रीतिसे सबका पालन करनेवाली उषा (घ आ याति) आ रही है। वह (वृजनं जरयन्ती) बलवान् बना देती है (पद्वत् ईयते) पांववालोंको चलाती और (पक्षिणः उत्पातयति) पक्षियोंको उडाती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह उषा घोडों और गौवोंसे युक्त होती है। यह प्रकाशित होती हुई प्रजाओंका हित करती है, उनसे हितकारक वाणी बोलती है और गरीबोंकी हर तरहसे सहायता करती है, उसी प्रकार देशकी स्त्रियां भी गौवोंसे युक्त हों, प्रजाओंका हित करें, सभीसे मीठी वाणी बोलें और सबकी हर तरहसे सहायता करें ॥ २ ॥

जिस प्रकार धनको प्राप्त करनेकी इच्छावाले व्यापारसे धन कमानेके लिए अपनी नावें समुद्रमें चलाकर देश विदेशोंमें व्यापार करते हैं, उसी प्रकार यह उषा भी अपने रथ चलाती है। जो मनुष्य इस उषाके आदर्शोंके अनुकूल अपना आचरण बनाते हैं, वे इस उषाके प्रिय होकर समृद्ध एवं सम्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

उषाके आनेके समय जो मनुष्य धनका दान करते हैं, वे मनुष्योंमें अत्यन्त बुद्धिमान् होते हैं। जो मनुष्य सबेरे सबेरे उठकर अपना मन उत्तम कर्मोंमें लगाता है, उसका मन इधर उधर नहीं घूमता, इस प्रकार उसकी बुद्धि तीक्ष्ण होकर वह बुद्धिमान् होता है। इसीलिए उषःकालमें किया हुआ अध्ययन बडा फलप्रद होता है ॥ ४ ॥

उषा एक उत्तम गृहिणी है, वह सबको बलवान् बनाती है, वह सबका पालन करनेवाली है, उसके आते ही सारे मनुष्य अपने कामोंमें लग जाते हैं और पक्षी भी अपने आहारकी खोजमें अपने घोंसलोंसे उड जाते हैं ॥ ५ ॥

५७२ वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥

५७३ एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

५७४ विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥

५७५ उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

अर्थ— [५७२] (या स-मनं विसृजति) जो मननशील पुरुषोंको कार्य करनेके लिये प्रेरित करती है, (अर्थिनः वि) धनेच्छुओंको जो प्रेरित करती है तथा (ओदती पदं न वेति) जीवन देनेवाली यह उषा एक स्थानपर स्थिर नहीं रहती। हे (वाजिनीवति) वैभवसंपन्न उषा देवी ! (ते व्युष्टौ) तेरे प्रकाशित होनेपर (पप्तिवांसः वयः) उडनेवाले पक्षी भी (न किः आसते) बैठे नहीं रहते ॥ ६ ॥

[५७३] (एषा) यह उषा (परावतः सूर्यस्य उदयनात् अधि) दूरसे सूर्यके उदयके पूर्व ही (अयुक्त) अपने रथोंको जोडती है। (इयं सुभगा उषा) यह उत्तम भाग्यशाली उषा (मानुषान् अभि) मनुष्योंके प्रति (शतं रथेभिः वि याति) सैंकडों रथोंसे जाती है ॥ ७ ॥

[५७४] (विश्वं जगत्) सब जगत् (अस्याः चक्षसे नानाम) इस उषाको देखते ही नमस्कार करता है क्योंकि यह (सू-नरी) उत्तम संचालन करनेवाली उषा (ज्योतिः कृणोति) प्रकाश करती है। (मघोनी दिवः दुहिता उषाः) ऐश्वर्यवाली स्वर्गीय कन्या यह उषा (स्रिधः द्वेषः अप अप उच्छत्) हिंसक शत्रुओंको दूर करती है ॥ ८ ॥

[५७५] हे (दिवः दुहितः उषः) स्वर्गकन्ये उषा देवि ! (चन्द्रेण भानुना आ भाहि) तू आल्हाददायक प्रकाशसे प्रकाशित हो। (दिविष्टिषु व्युच्छन्ती) दिनोंके इष्टीके समय अन्धकारको दूर करती हुई (अस्मभ्यं भूरि सौभगं आवहन्ती) हमारे लिये विपुल सौभाग्य ले आ ॥ ९ ॥

भावार्थ— मनन करनेवाले योगीजन भी इसी कालमें उठकर अपनी साधना करते हैं, तथा जो धनकी इच्छा करते हैं वे भी इसी कालमें उठकर परिश्रम करते हैं। यह सबको जीवन प्रदान करती हुई सर्वत्र चमकती है। इस कालमें प्राणप्रद हवा बहती है, जो सबको जीवन प्रदान करती है! इसके प्रकाशित होनेपर उडनेवाले पक्षी भी बैठे नहीं रहते, वे भी घोंसले छोडकर उड जाते हैं ॥ ६ ॥

यह उषा सूर्यके उदयके पूर्व चमकती है अर्थात् प्रथम उषःकाल आता है, फिर सूर्य उदय होता है। अपनी सैंकडों किरणोंपर चढकर यह उषा मनुष्योंके पास जाती है और उन्हें भाग्यशाली बनाती है। इसलिए सारा संसार इसे देखते ही इसे प्रणाम करता है। यह लोगोंको अपने अपने कामोंमें लगाती है। इस प्रकार स्वर्ग या आकाशसे उतरनेवाली यह उषा हिंसक शत्रुओंको दूर करती है, अर्थात् यह वीर भी है ॥ ७-८ ॥

हे स्वर्ग कन्ये उषे ! तू अपने आल्हाददायक प्रकाशसे युक्त होकर इस भूमिपर उतर और अन्धकारको दूर कर ताकि हम सभी तेरे उपासक उत्तम सौभाग्य प्राप्त करें। जब सभी ..मोंका संचालन करनेवाली यह उषा अन्धकार दूर करती है, तब संसारके प्राणियोंको जीवन मिलता है ॥ ९-१० ॥

५७६ विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥

५७७ उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥

५७८ विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतये ऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

५७९ यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥

अर्थ—[५७६] हे (सू-नरि) उत्तम नेतृत्व करनेवाली उषा देवी ! (यत् वि उच्छसि) जब तू अन्धकार दूर करती है, तब (त्वे हि विश्वस्य प्राणनं जीवनं) सब विश्वका प्राण और जीवन तेरे अन्दर ही रहता है। हे (चित्रा-मघे विभा-वरि) विलक्षण धनवाली तेजस्विनी उषा देवि ! (सा) वह तू (बृहता रथेन) अपने बडे रथसे आ और (नः हवं श्रुधि) हमारी प्रार्थनाका श्रवण कर ॥ १० ॥

[५७७] हे (उषः) उषा ! (यः मानुषे जने चित्रः) जो मानवी लोगोंमें विलक्षण अन्नधन है, (वाजं वंस्व हि) उस अन्नधनको तू स्वीकार कर, यज्ञमें दिये हुए अन्नभागको स्वीकार कर। तथा (ये वह्नयः त्वा गृणन्ति) जो याजक तेरी स्तुति गाते हैं, (तेन सुकृतः अध्वरान् उप वह) उनसे संतुष्ट होकर पुण्य कर्म करनेवालोंको यज्ञोंके समीप ले आ ॥ ११ ॥

[५७८] हे (उषः) उषा ! (त्वं) तू (सोमपीतये) सोमपानके लिये (विश्वान् देवान् अन्तरिक्षात् आ वह) सब देवोंको अन्तरिक्षसे ले आ। हे (उषः) उषा ! (सा) वह तू (गोमत् अश्वावत् उक्थ्यं सुवीर्यं वाजं) गौओं और घोडोंसे समृद्ध प्रशंसनीय वीर्य बढानेवाला अन्न बल तथा उत्तम वीर्य (अस्मासु धाः) हमारे अंदर स्थापित कर ॥ १२ ॥

[५७९] (यस्याः रुशन्तः) जिस उषाकी शत्रुनाशक तेजस्वी (भद्राः अर्चयः) कल्याणकारी किरणें (प्रति अदृक्षत) दीख रही हैं। (सा उषाः) वह उषा (नः) हमें (विश्ववारं सुपेशसं सुग्म्यं रयिं) सबके स्वीकार करने योग्य सुंदर और सुखकारक धन (ददातु) देवे ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे उषे ! मानवोंके पास जो उत्तम और विलक्षण धन हो, वह बलवर्धक अन्न आदि धन हमें प्रदान कर, जो स्तोत्रपाठक तेरी स्तुति करते हैं, उस स्तुतिको सुननेके लिए सत्कर्म करनेवालोंके पास तू जा। इस मंत्रका बोध यह है कि उषा लोगोंको यज्ञशालामें पहुंचाती है, क्योंकि उषःकालमें याजक यज्ञका कार्य शुरू करते हैं। घर घरमें तरुण भी हवन करे ॥ ११ ॥

हे उषे ! तू गौओंवाला तथा घोडोंवाला प्रशंसनीय अन्न जो उत्तम वीर्य शरीरमें उत्पन्न करता है, वैसा अन्न हमें दे। वैसा बल दे। गौवें दूध दही मक्खन घी आदि पदार्थ देती हैं। घोडे बाहरके प्रदेशसे अन्न लाते हैं। इन पदार्थोंको खानेसे उत्तम सन्तानका निर्माण करनेवाला वीर्य शरीरमें उत्पन्न होता है। ऐसा वीर्य हमारे शरीरमें बढे और हमारी सन्तान उत्तम बलवाली हो ॥ १२ ॥

जिस उषाकी किरणें सुन्दर और कल्याण करनेवाली हैं, वह उषा मनुष्योंके द्वारा स्वीकार करने योग्य सुन्दर और सुखदायी धन हमें देवे ॥ १३ ॥

५८० ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्वं ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥

५८१ उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥

५८२ सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

[४९]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता- उषाः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

५८३ उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद् रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

अर्थ— [५८०] हे (महि उषः) श्रेष्ठ उषा! (त्वां ये चित् हि) तुम्हारी जो कोई (पूर्वे ऋषयः) प्राचीन ऋषि (ऊतये अवसे जुहूरे) संरक्षण और अन्न प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते थे, (सा) वह तू (राधसा शुक्रेन शोचिषा) सिद्धि, वीर्य और तेजसे युक्त होकर (नः स्तोमान् अभि गृणीहि) हमारे स्तोत्रोंकी प्रशंसा कर ॥ १४ ॥

[५८१] हे (उषः) उषा ! (यत् अद्य) जब तूने आज (भानुना) अपने प्रकाशसे (दिवः द्वारौ ऋणवः) द्युलोकके दोनों द्वार खोल दिये हैं, (नः अवृकं पृथु छर्दिः) तब हमें अहिंसक विस्तीर्ण तेजस्वी घर रहनेके लिये (प्र यच्छतात्) दे । हे देवि उषा ! तथा (गोमतीः इषः प्र) गोदुग्धादि युक्त अन्न हमें प्राप्त हों ॥ १५ ॥

[५८२] हे (उषः) उषा ! (बृहता विश्वपेशसा राया) बडे अत्यंत सुंदर धनसे (नः सं मिमिक्ष्व) हमें संयुक्त कर, तथा (इळाभिः सं आ) गौओंसे युक्त कर । हे (वाजिनीवति महि उषः) अन्नवाली श्रेष्ठ उषा ! (विश्वतुरा द्युम्नेन सं) शत्रुनाशक तेजस्वी धनसे हमें युक्त कर । तथा (वाजैः सं) अन्नों और बलोंसे हमें युक्त कर ॥ १६ ॥

[४९]

[५८३] हे (उषः) उषः ! (दिवः रोचनात् चित् अधि) द्युलोकके तेजस्वी स्थानसे (भद्रेभिः आ गहि) कल्याण करनेवाले मार्गोंसे इधर आ (अरुण-प्सवः) अरुण वर्णके घोडे (त्वा सोमिनो गृहं) तुझे सोमयाजकके घर (उप वहन्तु) पहुंचा देवें ॥ १ ॥

भावार्थ— हे श्रेष्ठ उषा देवी ! प्राचीन श्रेष्ठ ऋषि अपनी सुरक्षाके लिए तुम्हारी प्रार्थना करते रहे, वह तू उत्तम तेजस्वी सिद्धिके साथ हमारे यज्ञोंके सम्बन्धका उत्तम वर्णन कर । हमारे शुभकर्मोंकी प्रशंसा कर । जिससे हमें अधिक उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा मिले ॥ १४ ॥

हे उषा ! आज तूने अपने प्रकाशसे द्युलोकके दोनों द्वार खोल दिए हैं, जब हिंसा जहां नहीं होती, ऐसे विशाल घर और गौवोंके साथ पर्याप्त अन्न हमें प्रदान कर । तरुण भी घरमें प्रातःकाल उठे, घरमें प्रकाश करे, घरके द्वार खोले, हिंसक शत्रुओंको दूर हटाकर अपना घर सुरक्षित रखे । गौओंका दोहन करे, पुष्टिकारक अन्न तैय्यार करे ॥ १५ ॥

हे उषा ! विशाल और सबसे सुन्दर धनसे, गौओंसे, शत्रुनाशक तेजस्वी धनसे और बलवर्धक अन्नोंसे हमें युक्त कर । इतने पदार्थ हमें चाहिए ॥ १६ ॥

हे उषा ! द्युलोकके तेजस्वी स्थानसे हमारे पास प्रतिदिन आ और हमारे घरोंको प्रकाशित कर ॥ १ ॥

५८४ सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥
५८५ वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उप प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥
५८६ व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥

[५०]

(ऋषिः– प्रस्कण्वः काण्वः । देवता– सूर्यः (११–१३ रोगघ्न उपनिषद्, १३ अन्त्योऽर्धर्चः द्विषद्घ्नश्च) । छन्दः– गायत्री, १०–१३ अनुष्टुप् ।)

५८७ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १ ॥
५८८ अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २ ॥

अर्थ— [५८४] हे (उषः) उषा ! (त्वं यं सुपेशसं सुखं रथं) तू जिस सुन्दर सुखदायी रथपर (अध्यास्थाः) बैठी है । हे (दिवः दुहितः) स्वर्गीय कन्ये ! (तेन) उस रथसे (अद्य सुश्रवसं जनं) आज उत्तम अन्नवाले मनुष्यका (प्र अव) विशेष रक्षण कर ॥ २ ॥

[५८५] हे (अर्जुनि उषः) गौरवर्णवाली उषा ! (ते ऋतून् अनु) तुम्हारे आगमनके अनुसार (द्विपत् चतुष्पत्) द्विपाद मनुष्य, चतुष्पाद पशु और (पतत्रिणः वयः चित्) उडनेवाले पक्षी भी (दिवः अन्तेभ्यः परि) द्युलोकके अन्ततक तेरा स्वागत करनेके लिये (प्र–आरन्) उठते हैं ॥ ३ ॥

[५८६] हे (उषः) उषा देवी ! (व्युच्छन्ती) अन्धकारको दूर करनेवाली तू (रश्मिभिः विश्वं रोचनं) अपने किरणोंसे सब विश्वको तेजस्वी करके (आ भासि) प्रकाशित करती है । (तां त्वां) उस तुझको (वसूयवः कण्वाः) धनकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी कण्व ऋषि (अहूषत) बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[४३]

[५८७] (विश्वाय दृशे) सम्पूर्ण जगत् सूर्यको देखे, इसलिए (त्यं जातवेदसं देवं सूर्यं) उस सर्वज्ञ और तेजस्वी सूर्यको (केतवः उत् वहन्ति) उसकी किरणें ऊपर उठाती हैं ॥ १ ॥

[५८८] (विश्वचक्षसे सूराय) सर्वद्रष्टा सूर्यके उदय होने पर (अक्तुभिः) रात्रियोंके साथ (नक्षत्रा अप यन्ति) नक्षत्र उसी तरह भाग जाते हैं (तायवः यथा) जिस प्रकार सूर्यके दर्शन होते ही चोर भाग जाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे उषा ! तू उत्तम और सुन्दर रीतिसे बनाये गए रथपर बैठ और उत्तम तथा यशस्वी अन्नका दान करनेवाले मनुष्यका संरक्षण कर ॥ २ ॥

हे उषा! तुम्हारे आते ही दो पांववाले, चार पांववाले तथा उडनेवाले सभी प्राणी उठते हैं और द्युलोकके अन्ततक पक्षीगण संचार करते हैं । चारों ओर आनन्द ही आनन्द अनुभवमें आने लगता है ॥ ३ ॥

हे उषा ! तू प्रकाशित हो, अन्धेरा दूर कर, अपने किरणोंसे सब विश्वको प्रकाशित कर । कण्वगोत्री लोग अथवा ज्ञानी तुम्हारी प्रशंसा गा रहे हैं । अतः हमें सुखी कर और हमारा संरक्षण कर ॥ ४ ॥

सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेके लिए वह सर्वज्ञ और प्रत्येक प्राणियोंके कर्मोंको देखनेवाला सूर्य उदय होता है और उसके उदय होनेके साथ ही रात्री और तारे उसी तरह गायब हो जाते हैं, जिस तरह सुबह होते ही चोर ॥ १–२ ॥

५८९ अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३ ॥

५९० तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४ ॥

५९१ प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ ५ ॥

५९२ येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६ ॥

५९३ वि द्यामेषि रजस्पृथ्व—हा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ७ ॥

५९४ सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥

५९५ अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥

५९६ उद् वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य—मगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

अर्थ— [५८९] (अग्नयः यथा भ्राजन्तः) अग्नियोंके समान जगमगानेवाली (अस्य केतवः रश्मयः) इस सूर्यके आगमनको जतानेवाली किरणें (जनान् अदृश्रं) मनुष्योंको दिखाई देने लगी हैं ॥ ३ ॥

[५९०] हे (सूर्य) सूर्य ! (विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृत्) सबको देखनेवाला तथा प्रकाश करनेवाला तू (तरणिः) महावेगसे जानेवाला है । तू ही (विश्वं रोचनं आ भासि) सारे आकाशको प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

[५९१] (स्वः दृशे) सबको सूर्यका दर्शन हो, इसलिए हे सूर्य ! तू (देवानां प्रत्यङ्) देवोंके सामने और (विश्वं प्रत्यङ्) सारे संसारके सामने (उत् एषि) उदय होता है ॥ ५ ॥

[५९२] हे (पावक वरुण) पवित्र करनेवाले स्वीकरणीय देव ! (येन चक्षसा) जिस दृष्टिसे (त्वं) तू (भुरण्यन्तं जनान् पश्यसि) अपने अपने कामोंमें व्यस्त लोगोंको देखता है, उस कृपादृष्टिको (अनु) हमारी ओर भी कर ॥ ६ ॥

[५९३] हे (सूर्य) सूर्य ! (जन्मानि पश्यन्) सब प्राणियोंको देखता हुआ तू (अक्तुभिः अहा मिमानः) रात्रियोंसे दिनोंका मापन करता हुआ (पृथु रजः द्यां एषि) विस्तृत अन्तरिक्ष और द्युलोकमें संचार करता है ॥ ७ ॥

[५९४] हे (विचक्षण देव सूर्य) सर्वद्रष्टा दिव्यगुणयुक्त सूर्य ! (शोचिष्केशं त्वा) तेजस्वी ज्वालारूपी बालोंवाले तुझे (सप्त हरित) सात हरणशील घोडे (रथे वहन्ति) रथ पर बैठाकर ले जाते हैं ॥ ८ ॥

[५९५] (शुंध्युवः सूरः नप्त्यः) पवित्र करनेवाला, बुद्धिमान् तथा कभी न गिरनेवाला सूर्य (रथस्य सप्त अयुक्त) अपने रथमें सात घोडे जोडता है और फिर (ताभिः स्वयुक्तिभिः याति) उन स्वयं जुड जानेवाले घोडोंसे वह सर्वत्र जाता है ॥ ९ ॥

[५९६] (तमसः परि) अन्धकारसे ऊपर (उत्तरं ज्योतिः पश्यन्तः) श्रेष्ठतर ज्योतिको देखते हुए (वयं) हमने (उत्तमं ज्योतिः) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योति और (देवत्रा देवं) देवोंमें भी सर्वश्रेष्ठ देव ऐसे (सूर्यं उत् अगन्म) सूर्यको प्राप्त किया ॥ १० ॥

भावार्थ— इस सूर्यकी किरणें अग्निकी तरह जगमगाती हैं, जो सूर्यके आगमनकी पूर्व सूचना देती हैं। इन्हीं किरणोंसे यह सूर्य सब संसारके कार्योंको देखता हुआ चलता है और महावेगसे जाता है तथा अपने तेजसे संपूर्ण आकाशको प्रकाशित करता है ॥ ३-४ ॥

यह सूर्य देवोंके, मनुष्योंके और सारे संसारके सामने उदय होता हुआ अपनी दृष्टिसे सभी लोगोंके कामोंको देखता चलता है और अपनी कृपादृष्टि सभी मनुष्योंपर करता चलता है ॥ ५-६ ॥

सब प्राणियोंको देखता हुआ यह सूर्य रात और दिनका निर्माण करता हुआ विशाल अन्तरिक्षमें अपने प्रकाशको फैलाता हुआ द्युलोकमें संचार करता है। इस सूर्यके रथमें सात रंगके घोडे जुडे हुए होते हैं। सात रंगकी किरणें ही इस सूर्यके घोडे हैं, जिनपर चढकर यह सूर्य विचरता है ॥ ७-८ ॥

सूर्यकी किरणें पवित्र करनेवाली हैं, अर्थात् जहां ये सूर्यकी किरणें पडती हैं, वहां की जगह पवित्र हो जाती है। यह सूर्य देवोंमें सर्वश्रेष्ठ देव और अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योति है, यह अन्धकारसे ऊपर उठकर सर्वत्र प्रकाश करता है ॥ ९-१० ॥

५९७ उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

५९८ शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

५९९ उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥

[५१]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; १४, १५ त्रिष्टुप् ।)

६०० अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मिय- मिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥

अर्थ— [५९७] हे (मित्रमह सूर्य) हितकारी तेजवाले सूर्य ! (अद्य उद्यन्) आज उदय होते हुए तथा (उत्तरां दिवं आरोहन्) उत्तर दिशामें चढते हुए तू (मम हृद्रोगं हरिमाणं च नाशय) मेरे हृदयके रोग अर्थात् क्षय आदि तथा पीलिया आदि रोगोंको नष्ट कर ॥ ११ ॥

[५९८] (मे हरिमाणं) अपने हरे रंगवाले रोगको हम (शुकेषु रोपणाकासु) तोतों और वृक्षोंमें (दध्मसि) रखते हैं, (अथ) और (मे हरिमाणं) अपने हरे रंगवाले रोगको हम (हारिद्रवेषु नि दध्मसि) हरे रंगवाले वनस्पतियोंमें स्थापित करते हैं ॥ १२ ॥

[५९९] (द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको हमारे अधिकारमें करता हुआ (आदित्यः) यह सूर्य (विश्वेन सहसा सह) अपने सम्पूर्ण तेजके साथ (उत् अगात्) उदय हो गया है । उसकी कृपासे (अहं द्विषते मा रधं) मैं कभी शत्रुओंके अधिकारमें न जाऊं ॥ १३ ॥

[५१]

[६००] हे मनुष्यो ! (मेषं, पुरुहूतं) स्पर्धाके योग्य, बहुतोंसे बुलाये गए, (ऋग्मियं वस्वो अर्णवं) ऋचाओंसे प्रशंसनीय, धनके समुद्र (त्यं इन्द्रं अभि) उस इन्द्रको (गीर्भिः मदत) स्तुतियोंसे आनन्दित करो, (यस्य मानुषाः) जिसके गुप्तचर (द्यावः न) किरणोंके समान सर्वत्र (विचरन्ति) विचरते हैं, ऐसे (मंहिष्ठं विप्रं) महान् ज्ञानी इन्द्रका (अभि अर्चत) सत्कार करो ॥ १ ॥

१ मेषः— स्पर्धाके योग्य 'मिष स्पर्धायां'।
२ ऋग्-मियः— ऋचाओंसे प्रशंसनीय।
३ यस्य मानुषाः विचरन्ति— इस इन्द्रके गुप्तचर सब जगह घूमते हैं।

भावार्थ— इस सूर्यका तेज बहुत हितकारी है, इसके प्रकाशमें रोगोंको दूर करनेकी शक्ति है। इसीलिए बालसूर्यमें नंगे बदन बैठनेका विधान वैद्यकशास्त्रोंमें है । जो रोज सूर्यप्रकाशका सेवन करता है, उसे कभी भी क्षयरोग और पीलिया नहीं हो सकता। इसके अलावा सूर्य-प्रकाश सेवनसे हृदयके सारे रोग मिट जाते हैं। इस प्रकार सूर्यप्रकाश अनेक रोगोंकी अत्युत्तम औषधि है ॥ ११ ॥

वह रोग, जिससे रोगीका शरीर हरा हरा सा हो जाता है, तोते पेड आदि हरी वनस्पतियोंमें ही रहे, अर्थात् वे मनुष्योंको कष्ट न दें। इस प्रकार मनुष्य स्वस्थ होकर अपनेसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंपर अधिकार करता रहे, वह कभी भी अपने शत्रुओंके अधिकारमें न जावे। वे शत्रु रोगोंके जन्तु हैं, जो मौका पाकर मनुष्यको घर दबाते हैं। पर जिसपर सूर्यकी दृष्टि रहती है अर्थात् जो सूर्यकी किरणोंका उत्तम उपयोग करता है, वह कभी भी इन रोगजन्तुओंके अधिकारमें नहीं जाता ॥ १२-१३ ॥

यह इन्द्र विशेष ज्ञानी है। ऋचाओंका यह अध्ययन करता है और ऋचाओं द्वारा इसका वर्णन किया जाता है। इसके पास धनका समुद्र भरा पडा है। यह सर्वद्रष्टा है। इसके गुप्तचर सब जगह घूमते रहते हैं। इन्हीं गुणोंसे युक्त देशके राजाको होना चाहिए। राजाके गुप्तचर राष्ट्रके चप्पे चप्पेमें घूमते रहें ॥ १ ॥

६०१ अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयो ऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥
६०२ त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपो तात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेनं चिद् विमदायावहो वस्वा जावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥
६०३ त्वमपामपिधानावृणोरपा ऽधारयः पर्वते दानुमद् वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहि मादित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥

अर्थ— [६०१] (ऊतयः दक्षासः ऋभवः) रक्षा करनेवाले, वृद्धिको प्राप्त हुए मरुतोंने (सु-अभिष्टिं) इच्छित पदार्थ देनेवाले, (अन्तरिक्ष-प्रां) अन्तरिक्षको [अपने तेजसे] पूर्ण करनेवाले (तविषीभिः आवृतं) बलसे युक्त (मदच्युतं) [शत्रुके] घमण्डको चूर करनेवाले (शतक्रतुं) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले (ईं इन्द्रं) इस इन्द्रकी (अभि अवन्वन्) सहायता की और (जवनी सूनृता) बलसे युक्त स्तुतियोंने भी (आरुहत्) सहायता की ॥ २ ॥

[६०२] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (अंगिरोभ्यः) अंगिरा ऋषियोंके लिए (गोत्रं अप अवृणोः) गौ समूहको बाहर निकाला, (उत) और (शतदुरेषु) सैंकडों द्वारवाले भवनमें कैद किए गए (अत्रये) अत्रि ऋषिके लिए (गातुवित्) मार्ग ढूंढ निकाला, (विमदाय) विमद ऋषिके लिए (ससेन चित् वसु) अन्नसे युक्त धनको (अवहः) पहुंचाया, और (अद्रिं नर्तयन्) वज्रको नचाते हुए (आजौ वावसानस्य) संग्राममें स्थित लोगोंकी रक्षा की ॥ ३ ॥

१ त्वं अंगिरोभ्यः गोत्रं अप वृणोः— तूने अंगिराओंके लिए गौसमूहको बाहर निकाला ।
२ शतदुरेषु अत्रये गातुविद्— सैंकडों द्वारवाले भवनमें कैद किए गए अत्रिके लिए मार्गको ढूंढा ।
३ विमदाय ससेन चित् वसु अवहः— विमद ऋषिके लिए अन्नयुक्त धनको पहुंचाया ।

[६०३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (अपां अपिधाना) जलोंको रोकनेवाले मेघोंको (अप अवृणोः) बरसाया, तथा (पर्वते) पर्वतमें रहनेवाले (दानुमत्) वृत्रके (वसु) धनको (अधारयः) धारण किया, तथा (यत्) जब (शवसा वृत्रं अहिं अवधीः) बलसे वृत्रको और अहिको मारा (आत् इत्) उसके अनन्तर ही (दृशे) देखनेके लिए (सूर्यं दिवि आरोहयः) सूर्यको द्युलोकमें चढाया ॥ ४ ॥

१ यत् शवसा वृत्रं अहिं अवधीः यत् इत् दृशे सूर्यं दिवि आरोहयः— जब बलसे आच्छादन करनेवाले अहिको मारा, उसके बाद ही देखनेके लिए सूर्यको द्युलोकमें चढाया अर्थात् जब बादल हट गए तो सूर्य चमका ।

भावार्थ— रक्षा करनेवाले, वृद्धिको प्राप्त हुए मरुतोंने अन्तरिक्षको अपने यशसे पूर्ण करनेवाले, शत्रुके घमण्डको चूर करनेवाले, इच्छित पदार्थ देनेवाले बलसे युक्त इन्द्रकी सहायता की । मरुत राष्ट्रके सैनिक हैं और इन्द्र उनका राजा है । सैनिकोंका कर्तव्य है कि वे राजाकी हर तरहसे सहायता करें । सैनिक भी बडे निर्भीक और शत्रुओंके घमण्डको चूर करनेवाले हों ॥ २ ॥

अंगरसकी विद्या जाननेवालोंकी इन्द्रियें पुष्ट होती हैं । इन्द्रने अंगिराओंके लिए गौओंका मार्ग खोल दिया । अत्रि ऋषि अनेकों द्वारवाले किलेमें बंद था, उस किलेमेंसे उसे बाहर निकाला, वि-मद अर्थात् अहंकार रहित मनुष्यको अनेक धनसे समृद्ध किया । इन्द्रके बहाने ये सब राजाके कर्तव्य वेदने बताये हैं । इसी प्रकार राजा भी गौओंका पालक, ऋषियोंका रक्षक और सज्जनोंका पालक हो ॥ ३ ॥

इन्द्रने जलोंको रोककर रखनेवाले मेघोंको बरसाया तथा पर्वतोंकी चोटियों पर बैठकर जलरूपी धनको रोककर रखनेवाले आवरणशील मेघोंको नीचे गिराया । जब इन्द्रने शक्तिसे वृत्रको मारा, इसके बाद सूर्यने अपना प्रकाश फैलाया । इस मंत्रमें मेघका वर्णन है, जो सारे आकाशमें छा जाता है, पर बरसता नहीं । इन्द्र बिजली है, जो मेघोंको बरसाकर आकाश साफ करता है और सूर्यको चमकाता है ॥ ४ ॥

६०४ त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥

६०५ त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथा— ऽरन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६ ॥

अर्थ— [६०४] (ये स्वधाभिः शुप्तौ अधि अजुह्वत) जो अन्न आदिका अपने मुंहमें ही हवन करते थे, उन (मायिनः) मायावियोंको (त्वं) तूने (मायाभिः) मायाओंसे ही (अप अधमः) मारा, हे (नृमणः) मनुष्योंसे प्रशंसनीय इन्द्र ! (त्वं) तूने (पिप्रोः) पिप्र नामक असुरके (पुरः) नगरोंको (प्र अरुजः) तोडा तथा (दस्यु-हत्येषु) संग्रामोंमें (ऋजिश्वानं) ऋजिश्वा ऋषिकी (प्र आविथ) रक्षा की ॥ ५ ॥

१ त्वं पिप्रोः पुरः प्र अरुजः, दस्युहत्येषु ऋजिश्वानं आविथ— तूने पिप्र असुरके नगरोंको तोडा और युद्धोंमें ऋजिश्वकी रक्षा की ।

२ पिप्र— जो केवल अपना ही पेट भरते हैं, असुर ।

[६०५] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (शुष्णहत्येषु) शुष्ण असुरके मारे जानेवाले संग्राममें (कुत्सं आ विथ) कुत्स ऋषिकी रक्षा की, (अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः) अतिथिग्व ऋषिके लिए शम्बरासुरको मारा, तथा (महान्तं अर्बुदं चित्) महान् शक्तिशाली अर्बुदको भी (पदा निक्रमीः) पैरसे कुचल डाला, तू (सनात् एव दस्युहत्याय जज्ञिषे) प्राचीन कालसे ही असुरोंको मारनेके लिए उत्पन्न हुआ है ॥ ६ ॥

१ त्वं शुष्णहत्येषु कुत्सं आविथ— तूने युद्धोंमें कुत्सकी रक्षा की ।

२ अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः— अतिथिग्वके लिए शम्बरको मारा ।

३ महान्तं अर्बुदं चित् पदा निक्रमीः— महान् अर्बुदको भी पैरसे कुचल डाला ।

४ सनात् एव दस्युहत्याय जज्ञिषे— प्राचीन कालसे ही तू असुरोंको मारनेके लिए पैदा हुआ है ।

शुष्ण– सोखनेवाला; कुत्स– कुत्सितं सारयति– बुराइयोंको हटानेवाला; अतिथिग्व– अतिथियोंका सत्कार करनेवाला ।

भावार्थ — जो स्वयं अपने मुंहमें ही अन्नोंका हवन करते थे, अर्थात् अन्नोंका उपभोग स्वयं करते थे, ऐसे अपना ही पेट भरनेवाले तथा छलकपटका मार्ग अपनानेवाले असुरोंको छलकपटसे ही मारा और ऋजु अर्थात् सरल मार्गसे चलने-वालेकी रक्षा की । इसी प्रकार राजा भी स्वार्थी तथा केवल अपना ही फायदा देखनेवाले दुष्टोंको छलकपटसे ही मारे । छली और कपटीसे उसी तरहका व्यवहार करना चाहिए और इस प्रकार उनका नाश करके सत्य मार्गगामी सज्जनोंकी रक्षा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

प्रजाको निचोडने अर्थात् पीडा देनेवाले दुष्टको मारकर इन्द्रने बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जन पुरुषकी रक्षा की, इसी प्रकार अतिथिग्वके लिए शम्बरासुरको मारा, अर्बुदको तो इन्द्रने पैरोंसे कुचल डाला, इस प्रकार यह इन्द्र राष्ट्रसे द्वेष करने-वाले असुरोंको मारता रहता है, क्योंकि यह इसी कार्यके लिए उत्पन्न हुआ है । इसी प्रकार राजाको भी चाहिए कि वह राष्ट्रसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंको नष्ट करे, क्योंकि प्रजायें किसीको राजगद्दी पर इसीलिए बिठाती हैं कि वह उनकी हर तरहसे रक्षा करे ॥ ६ ॥

६०६ त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥
६०७ वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८ ॥
६०८ अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ ९ ॥

अर्थ— [६०६] हे इन्द्र ! (त्वे) तुझमें (विश्वा तविषी) सम्पूर्ण बल (सध्र्यक् हिता) एक साथ स्थित है, (तव राधः) तेरा धन (सोमपीथाय हर्षते) सोम पीनेवालेको हर्षित करता है, (चिकिते) ज्ञानी मनुष्यकी रक्षाके लिए (वज्रः) वज्रको (तव बाह्वोः हितः) तेरी भुजाओंमें रखा गया है, अतः (शत्रोः) शत्रुके (विश्वानि वृष्ण्या) सम्पूर्ण बलोंको (अव वृश्च) काट डाल ॥ ७ ॥

१ त्वे विश्वा तविषी सध्र्यक् हिता— इस इन्द्रमें सब बल एक साथ स्थित हैं ।
२ तव बाह्वोः वज्रः हितः— तेरी भुजाओंमें वज्र रखा गया है ।
३ शत्रोः विश्वानि वृष्ण्या अव वृश्च— शत्रुके सब बलोंको नष्ट कर ।

[६०७] हे इन्द्र ! तू (आर्यान् वि जानीहि) आर्योंका ज्ञान (ये च दस्यवः) और जो राक्षस हैं, उन्हें भी जान, तथा (अव्रतान् शासत्) व्रतहीनों पर शासन करते हुए उन्हें (बर्हिष्मते रन्धय) यज्ञकर्ताओंके लिए नष्ट कर, (हे शाकी) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (यजमानस्य चोदिता भव) यजमानका प्रेरक हो, (ते ता विश्वा इत्) तेरे वे सम्पूर्ण कर्म (सधमादेषु चाकन) यज्ञोंमें प्रशंसित हों ऐसा मैं चाहता हूँ ॥ ८ ॥

१ अव्रतान् शासत् बर्हिष्मते रन्धय— व्रतहीनों पर शासन करते हुए उन्हें यज्ञकर्ताओंके लिए मार ।
२ आर्यान् विजानीहि— आर्योंके संरक्षणको ध्यानमें रख ।

[६०८] (इन्द्रः) यह इन्द्र (अनुव्रताय) व्रत करनेवालोंके लिए (अपव्रतान् रन्धयन्) व्रतहीनोंको मारते हुए तथा (आभूभिः) मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा (अनाभुवः श्नथयन्) देशद्रोहियोंको विनष्ट करते हुए वर्तमान है ऐसे (वृद्धस्य चित्) बढे हुए इन्द्रकी (स्तवानः) स्तुति करते हुए (वम्रः) वम्र ऋषिने (वर्धतः) बढते हुए तथा (द्यां इनक्षतः) द्युलोकको ढकनेवाले असुरोंको (सन्दिहः वि जघान) काटा और मार डाला ॥ ९ ॥

१ इन्द्रः अनुव्रताय अपव्रतान् रन्धयन्— यह इन्द्र व्रत करनेवालोंके लिए व्रतहीनोंका नाश करता है।
२ आभूभिः अनाभुवः श्नथयन्— मातृभूमिके भक्तोंसे देशसे द्रोह करनेवालोंको नष्ट किया ।

भावार्थ— इस इन्द्रमें सभी तरहके बल एकत्रित हैं। इसका धन यज्ञ-करनेवालोंको मिलता है । इसका वज्र ज्ञानियोंकी रक्षा करता है, देशका राजा भी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक बलोंसे युक्त हो। उसका शस्त्र सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके नाशके लिए ही हो, अर्थात् उसका शस्त्र कभी सज्जनोंको पीडित और दुष्टोंकी रक्षा न करे। इन शस्त्रोंसे वह अपने शत्रुओंकी सम्पूर्ण शक्तिको समाप्त कर दे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! हे राजन् ! तू श्रेष्ठ पुरुषोंको अच्छी तरह पहचान ले, और जो दुष्ट हैं, उन्हें भी अच्छी तरह पहचान ले। और ऐसे व्रतहीन या उत्तम कर्म न करनेवाले मनुष्योंको संगतिकरण, दान, देवपूजा आदि उत्तम कर्म करनेवालोंके लिए वश कर अर्थात् ऐसा प्रबन्ध कर कि व्रतहीन मनुष्य उत्तम कर्म करनेवालोंको दुःख न दे सकें। उन मनुष्योंको अपने शासनमें रख । इस प्रकार तेरे राज्यमें प्रजाओंको उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा मिले और वे प्रजायें तेरे हर कामोंकी हृदयसे प्रशंसा करें ॥ ८ ॥

यह इन्द्र मातृभूमिके भक्तों द्वारा मातृभूमिके विरोधकोंका नाश करवाता है । अनुकूल कर्म करनेवालोंके हितके लिए व्रतहीन कुकर्मियोंका नाश करता है । इस इन्द्रके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके मनुष्य अपने शत्रुओंका समूल नाश कर सकता है ॥ ९ ॥

६०९ तक्षद् यत् त उशना सहसा सहो　वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज　आ पूयमाणमवहन्नभि श्रवः　॥ १० ॥
६१० मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ　इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्　वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः　॥ ११ ॥
६११ आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि　शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि　॥ १२ ॥

अर्थ— [६०९] हे इन्द्र ! (यत्) जब (उशना) उशना ऋषिने अपने (सहसा) बलसे (ते सहः) तेरे बलको (तक्षद्) तीक्ष्ण किया, तो तेरे (शवः) बलने (मज्मना) अपनी तीक्ष्णतासे (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोकको (वि बाधते) डराया, हे (नृमणः) मनुष्योंसे स्तुत्य इन्द्र ! (आ पूयमाणं त्वा) मन्त्रादिसे पूर्ण तुझे (मनोयुजः वातस्य) संकल्प मात्रसे जुड जानेवाले तथा वायु जैसे वेगवाले घोडे, (श्रवः) यशकी ओर (अभि आ वहन्) ले आये ॥ १० ॥

१ मज्मना रोदसी वि बाधते— इन्द्रके बलसे द्युलोक और पृथिवी लोक डरते हैं ।

[६१०] (इन्द्रः) इन्द्र (यत्) जब (उशने काव्ये) सुन्दर स्तुतिके (सचा मन्दिष्ट) साथ साथ आनन्दित होता है, तब (वंकू वंकुतर अधि) अत्यन्त कुटिल शत्रु पर भी (तिष्ठाति) शासन करता है, (उग्रः) वीर इन्द्रने (ययिं) मेघसे (स्रोतसा) प्रवाहरूपमें (अपः निर् असृजत्) जलोंको बहाया और (शुष्णस्य दृंहिता पुरः ऐरयत्) शुष्ण असुरके बडे बडे सुदृढ नगरोंको तोडा ॥ ११ ॥

१ इन्द्रः मन्दिष्ट, वंकू वंकुतर अधि तिष्ठति— इन्द्र जब आनन्दित होता है, तब कुटिलसे कुटिल शत्रु पर भी शासन करता है ।
२ उग्रः अपः निर् असृजत्— वीर इन्द्रने जलोंको बहाया ।
३ शुष्णस्य दृंहिता पुरः ऐरयत्— शुष्णके बडे बडे सुदृढ नगरोंको तोडा ।

[६११] हे इन्द्र ! तू (वृषपाणेषु) सोम यज्ञोंमें (रथं आ तिष्ठति स्म) रथ पर चढकर जाता है (येषु मन्दसे) जिन सोमरसोंसे आनन्दित होता है वे सोमरस (शार्यातस्य प्रभृताः) अंगुलियोंके द्वारा निकाले गए हैं, हे इन्द्र ! तू (यथा सुतसोमेषु चाकनः) जैसे ही सोमयज्ञोंमें आनन्दित होता है, वैसे ही (दिवि) द्युलोकमें (अन्–अर्वाणं श्लोकं आरोहसे) स्थिर यशको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्रके बलको उशनाने बढाया तब उसने दोनों लोकों पर विजय प्राप्त की और वह यशस्वी हुआ । इसी प्रकार जो राजा दूरदर्शी (उशना) विद्वान् ब्राह्मणोंकी सहायतासे अपनी शक्ति बढाता है, वह सभी संसार पर विजय प्राप्त करके अपने यशको चारों ओर फैला सकता है । यह मंत्र यह बताता है कि क्षात्रशक्तिको ब्राह्मशक्तिसे मिलकर ही साम्राज्यका विस्तार करना चाहिए । ब्राह्मशक्तिसे शून्य क्षात्रशक्ति उच्छृंखल हो जाती है और वह देशका नाश कर देती है । अतः क्षात्रशक्ति सदा ब्राह्मशक्तिसे शासित होनी चाहिए ॥ १० ॥

इन्द्र जब उशनाके साथ आनन्दित होता है, तब वह कुटिलसे भी कुटिल लोगों पर अपना शासन करता है । तब वह मेघोंसे पानी बहाता और शुष्णके नगरोंको नष्ट करता है । जब राष्ट्रमें क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों संगठित होकर आनन्दसे रहते हैं, तब उस राष्ट्रमें कुटिलसे कुटिल शत्रु भी राजाके वशमें हो जाते हैं और तब मेघ भी उस राष्ट्रमें पानी समयानुसार बरसाता है, जिसके कारण भयंकरसे भयंकर (शुष्ण) सूखा या अकाल भी सर्वथा नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

यह इन्द्र बलवर्धक सोमपान करनेके स्थान पर पहुंचनेके लिए रथ पर चढता है और उस स्थान पर जाकर वह अंगुलियोंसे निचोडे गए सोमरसको पीता है और आनन्दित होकर यशको फैलाता है ॥ १२ ॥

६१२ अदंदा अर्भां महते वंचस्यवें कक्षीवंते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनांभवो वृषणश्वस्यं सुक्रतो विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्यां ॥ १३ ॥

६१३ इन्द्रों अश्रायि सुध्यों निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयु-रिन्द्र इद्रायः क्षंयति प्रयन्ता ॥ १४ ॥

६१४ इदं नमों वृषभायं स्वराजें सत्यशुष्माय तवसेंऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत् सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥ १५ ॥

[५२]

(ऋषिः–सव्य आङ्गिरसः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– जगती; १३, १५ त्रिष्टुप् ।)

६१५ त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्यं सुभ्वः साकमीरंते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथ-मेन्द्रं ववृत्यामवंसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

अर्थ— [६१२] हे (इन्द्रः) इन्द्र! तूने (महते, वचस्यवे सुन्वते, कक्षीवते) महान्, स्तुति करनेकी इच्छावाले सोमयाग करनेवाले कक्षीवान् राजाके लिए (अर्भां) कम आयुवाली (वृचयां अददाः) वृचया नामकी स्त्री दी। हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र! तूने (वृषणश्वस्य मेना अभवः) वृषणश्व राजाकी मेना भी बनाई है) तेरे (ता विश्वा इत्) वे सभी कर्म (सवनेषु प्रवाच्या) यज्ञोंमें कहने योग्य हैं ॥ १३ ॥

[६१३] (इन्द्रः) इन्द्र (निरेके) दरिद्र हो जानेपर (सुध्यः) उत्तम प्रज्ञावालोंकी (अश्रायि) सहायता करता है, अतः (पज्रेषु) मनुष्योंमें (स्तोमः) इन्द्रकी स्तुति (यूपः दुर्यः न) जैसे खम्बा दरवाजेमें स्थिर रहता है, उसी प्रकार स्थिर रहती है। (प्रयन्ता) दाता (अश्वयुः गव्युः रथयुः वसूयुः इन्द्रः इत्) घोडे, गाय, रथ और धन-का चाहनेवाला इन्द्र ही (रायः क्षयति) धनोंपर शासन करता है ॥ १४ ॥

१ इन्द्रः सु-ध्यः निरेके अश्रायि— वह इन्द्र उत्तम बुद्धिवालोंकी दारिद्र्यमें सहायता करता है।
२ इन्द्रः रायः क्षयति— इन्द्र सब धनोंपर शासन करता है।

[६१४] हम (वृषभाय, स्वराजे, सत्यशुष्माय तवसे) बलवान् स्वयं प्रकाशमान्, यथार्थ बलवाले, अत्यंत महान् इन्द्रके लिए (इदं नमः अवाचि) इस स्तुतिको कहते हैं; हे (इन्द्र) इन्द्र! (अस्मिन् वृजने) इस संग्राममें हम (सर्ववीराः स्मत्) सब वीर होते हुए (सूरिभिः) पुत्रादि सहित (तव शर्मन् स्याम) तेरे आश्रयमें रहें ॥ १५ ॥

१ वृषभाय, स्वराजे, सत्यशुष्माय तवसे नमः अवाचि— बलवान्, स्वयं तेजस्वी, सत्यपराक्रमी महान् इन्द्रके लिए हम प्रणाम करते हैं।
२ अस्मिन् वृजने सर्ववीराः तव शर्मन् स्याम— इस संग्राममें हम सब वीरोंके साथ तेरे आश्रयमें रहें।

[५२]

[६१५] हे मनुष्यो! (यस्य) जिस इन्द्रके रथको (शतं सुभ्वः) सौ घोडे (साकं ईरते) एक साथ ले जाते हैं, ऐसे (त्यं मेषं स्वः विदं) उस स्पर्धाके योग्य, सुखको प्राप्त करानेवाले इन्द्रका (सु महय) उत्तम रीतिसे सत्कार करो, मैं (अवसे) संरक्षणके लिए (वाजं अत्यं न) तेज घोडेके समान (हवनस्यदं) यज्ञकी तरफ तेजीसे दौडनेवाले (इन्द्रं रथं) इन्द्रके रथको अपने (सु-वृक्तिभिः) उत्तम वचनोंसे (ववृत्यां) दौडाता हूँ ॥ १ ॥

१ यस्य शतं सुभ्वः साकं ईरते— उस इन्द्रके रथको सौ घोडे एक साथ ढोते हैं।
रथको सौ घोडे जोतना यह वर्णन आलंकारिक है।

भावार्थ— इस इन्द्रने कक्षीवान्को वृचया नामकी स्त्री प्रदान की, वृषणश्वको मेना प्रदान की। तथा यह इन्द्र उत्तम बुद्धिवालोंकी सदा सहायता करता है, उन्हें कभी दरिद्र नहीं रहने देता। इन्हीं कारणोंसे उसकी कीर्ति सर्वत्र गाई जाती है और उसकी यह कीर्ति हमेशा स्थायी रहती है। इसी तरह जो राजा अपनी प्रजाकी हर आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है और उनके कामोंको हर तरहसे सहायता करता है, उसका यश चारों ओर फैलता है और वह यश भी स्थायी रहता है ॥ १३–१४ ॥

बलवान्, स्वयं तेजस्वी, सत्य पराक्रमी और महान् इन्द्रको सभी प्रणाम करते हैं। क्योंकि बडे बडे संग्रामोंमें एक ऐसा वीर है, जिसका आश्रय सब लेते हैं ॥ १५ ॥

६१६ स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥

६१७ स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥

६१८ आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४ ॥

अर्थ—[६१६] (यत्) जब (अन्धसा जर्हृषाणः) सोमरूपी अन्नसे हर्षित होते हुए (इन्द्रः) इन्द्रने (नदीवृतं वृत्रं) जलप्रवाहोंको रोकनेवाले वृत्रको (अर्णांसि उब्जन्) पानियोंको बहाते हुए (अवधीत्) मारा, तब (सहस्रं ऊतिः सः) हजारों तरहसे संरक्षण करनेवाला वह इन्द्र (धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः) जलप्रवाहोंमें पर्वतके समान स्थिर रहकर (तविषीषु वावृधे) बलोंमें बढा ॥ २ ॥

१ सः तविषीषु धरुणेषु पर्वतः न अच्युतः-- वह संग्रामोंमें, जलप्रवाहोंमें पर्वतके समान, स्थिर रहता है।

[६१७] (सः हि) वह इन्द्र (द्वरिषु द्वरः) शत्रुओंका कट्टर शत्रु है, (ऊधनि वव्रः) अन्तरिक्षमें व्याप्त है, (चन्द्रबुध्नः) आल्हादक है, तथा (मनीषिभिः मदवृद्धः) बुद्धिमानों द्वारा सोमरसोंसे बढाया गया है, ऐसे (मंहिष्ठ-रातिं) अत्यधिक धनके देनेवाले (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (सु-अपस्यया धिया) शुभ कर्म करनेवाली बुद्धिसे (अह्वे) बुलाता हूँ, (हि) क्योंकि (सः) वह ही (अन्धसा पप्रिः) सोमरसरूपी अन्नसे पूर्ण होनेवाला है ॥ ३ ॥

१ सः हि द्वरिषु द्वरः— वह शत्रुओंका कट्टर शत्रु है।

२ (मित्रेभ्यः) चन्द्रबुध्नः— मित्रोंके लिए वह आह्लादकारक है।

[६१८] (सद्मबर्हिषः) यज्ञगृहमें आसनपर बैठे हुए स्तोता (दिवि यं) द्युलोकमें वर्तमान जिस इन्द्रको (सुभ्वः समुद्रं न) नदियां जैसे समुद्रको पूर्ण करती हैं, उसी प्रकार, (आ पृणन्ति) पूर्ण करते हैं, ऐसे (तं इन्द्रं) उस इन्द्रकी (स्वाः अभिष्टयः) सुख देनेवाले तथा इच्छित पदार्थको देनेवाले, (ऊतयः) संरक्षण करनेवाले (शुष्माः) बलवान् (अ-वाताः) शत्रुरहित (अ-ह्रुतप्सवः) शोभनरूपवाले मरुत् (वृत्रहत्ये) वृत्रको मारनेमें (अनु तस्थुः) सहायता करते हैं ॥४॥

भावार्थ—इस इन्द्रके पास सैंकडों उत्तमसे उत्तम घोडे हैं। इन घोडोंको अपने रथमें जोडकर वह यज्ञोंकी तरफ शीघ्रतासे आता है और इन्हीं घोडोंके कारण वह बडे बडे संग्रामोंमें भी पर्वतके समान अचल खडा रहता है और पानीको रोककर रखनेवाले वृत्रको मारकर जल प्रवाह बहाता है। यहां इन्द्रके घोडोंका वर्णन आलंकारिक है, इन्द्रके ये घोडे वस्तुतः सूर्यकी किरणें हैं। स्वयं इन्द्र सूर्य है और किरणें उसके घोडे हैं, इन किरणरूपी घोडों पर सवार होकर यह सूर्य सभी यज्ञोंमें आता है और अपनी इन किरणोंकी सहायतासे ही वह वृत्र अर्थात् मेघोंसे संग्राम करता है और मेघोंसे जल बरसाता है ॥ १–२ ॥

वह इन्द्र शत्रुओंका कट्टर शत्रु और मित्रोंको आनन्द देनेवाला है। वह बुद्धिमानोंको हर तरहसे बढाता है। ऐसे धनके दाता उस इन्द्रको उत्तम बुद्धिसे सब लोग बुलाते हैं। इसी तरह राजा भी शत्रुओंका विनाशक और मित्रोंको आनन्द देनेवाला हो तथा अपने राज्यमें रहनेवाले सभी बुद्धिमानोंको वह हर तरहसे प्रेरणा देकर बढाये ॥ ३ ॥

जब अहंकारसे मत्त होकर वृत्र पानी नहीं बरसाता, तब इन्द्र उसके साथ युद्ध करता है। उस समय इन्द्रकी सहायताके लिए मरुत् उसी प्रकार वेगसे आते हैं, जिस प्रकार ढालवाली जगह पर पानीका प्रवाह वेगसे बहने लगता है। तब मरुतोंकी सहायता पाकर इन्द्र वल आदि असुरोंका नाश करता है। मरुत् सैनिक हैं अतः सैनिकोंका कर्तव्य है कि वे युद्धमें अपने राजाकी हरतरहसे सहायता करें ॥ ४ ॥

६१९ अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद् वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥ ५ ॥

६२० परीं घृणा चरति तित्विषे शवो ऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥

६२१ ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [६१९] (मदे) उत्साहमें (सु-अ-वृष्टिं) उत्तम वृष्टि न करनेवाले असुरके साथ (युध्यतः) युद्ध करनेवाले (अस्य) इस इन्द्रकी सहायताके लिए (ऊतयः) संरक्षण करनेवाले मरुत् (रघ्वीः प्रवणे इव) जैसे नदियां समुद्रकी ओर बहती हैं, उसी प्रकार (अभि सस्रुः) गये। (अन्धसा धृषमाणः) सोमसे बलवान् होते हुए (वज्री इन्द्रः) वज्रधारी इन्द्रने (यद्) जब (वलस्य भिनद्) बलको मारा तब, (त्रितः परिधीन् इव) मानों तीनों सीमाओंको छेद डाला ॥ ५ ॥

[६२०] जब वृत्र (अपः वृत्वी) जलोंको रोककर (रजसः बुध्नं आशयत्) अन्तरिक्षके मूलमें सो गया था, तथा (यत्) जब (प्रवणे) जलोंको बहानेके लिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (दुर्गृभिश्वनः वृत्रस्य) मुश्किलसे मारे जानेवाले वृत्रके (हन्वोः) ठोडी पर (तन्यतुं नि जघन्थ) वज्रको मारा, तब (ईं परि घृणा चरति) इस इन्द्रके चारों ओर दीप्ति फैली और इसका (शवः तित्विषे) बल प्रकाशित हुआ ॥ ६ ॥

[६२१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव वर्धना) तुझे बढानेवाले (या नि ब्रह्माणि) जो स्तोत्र हैं वे (त्वा) तुझे (ऊर्मयः ह्रदं न) जैसे जल प्रवाह तालाबको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार (नि ऋषंति) प्राप्त होते हैं, (त्वष्टा चित्) त्वष्टाने भी (ते युज्यं शवः वावृधे) तेरे योग्य बलको बढाया, तथा (अभिभूति ओजसं) शत्रुको हरानेमें समर्थ तेरे (वज्रं) वज्रको भी (ततक्ष) तीक्ष्ण किया ॥ ७ ॥

१ त्वष्टा चित् ते युज्यं शवः वावृधे— त्वष्टाने भी तेरे योग्य बलको बढाया । और

२ अभिभूति-ओजसं वज्रं ततक्ष— शत्रुको हरानेमें समर्थ वज्रको तीक्ष्ण किया ।

भावार्थ— बल आदि असुर ये मेघ हैं, जो पानीको रोके रखते हैं, बरसने नहीं देते; उस समय मरुत् अर्थात् मरुतोंकी सहायतासे इन्द्र अर्थात् बिजली इन मेघोंपर आघात करता है तब पानी इतना बरसता है, कि उसकी कोई सीमा नहीं रहती ॥ ५ ॥

युद्धमें पकडनेके लिए कठिन वृत्रके हनु पर निम्न भागमें ही वज्र मारा, तब वज्रसे इन्द्रका तेज सब जगह फैला और उसका बल भी चमक उठा, पश्चात् जलको रोकनेवाला असुर भूमिके ऊपर गिर गया और मर गया । यह देखकर त्वष्टाने इन्द्रको बढाया और उसके लिए वज्र बनाकर भी दिया । तभीसे सारी स्तुतियां इन्द्रके पास पहुंचती हैं अर्थात् तबसे सभी लोग इन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ६-७ ॥

६२२ जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रत—विन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायस—मधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥

६२३ बृहत् स्वश्चन्द्रममवद् यदुक्थ्य१—मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

६२४ द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वना—दयोयवीद् भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद् बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥ १० ॥

अर्थ— [६२२] हे (संभृतक्रतो इन्द्र) हे उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने (मनुषे अपः गातुयन्) मनुष्यके लिए जलके मार्गको बनाते हुए (हरिभिः) घोडोंसे युक्त होकर (वृत्रं जघन्वान् उ) वृत्रको मारा, तथा अपने (बाह्वोः) भुजाओंमें (आयसं वज्रं अयच्छथाः) फौलादके वज्रको ग्रहण किया, तथा (दृशे) देखनेके लिए (सूर्यं दिवि अधारयः) सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया ॥ ८ ॥

[६२३] मनुष्योंने (यत्) जब (भियसा) वृत्रके डरसे (स्वः अमवत् चन्द्रं) सुखकारक, बलकारक आह्लादकारक तथा (दिवः रोहणं) स्वर्गको प्राप्त करानेवाले (बृहत् उक्थ्यं) बडे स्तोत्रको (अकृण्वत) किया, और (यत्) जब (मानुषप्रधनाः) मनुष्योंके हितके लिए संग्राम करनेवाले (नृषाचः) मनुष्योंकी सेवा करनेवाले तथा (स्वः ऊतय) द्युलोककी रक्षा करनेवाले (मरुतः) मरुतोंने (इन्द्रं अनु अमदन्) इन्द्रको आनन्दित किया ॥ ९ ॥

१ यत् मानुषप्रधनाः, नृषाचः, स्वः ऊतयः मरुतः इन्द्रं अनु अमदन्— जब मनुष्योंके संग्राम शुरु हुए तब मनुष्योंकी सेवा करनेवाले, तथा द्युलोककी रक्षा करनेवाले मरुतोंने इन्द्रकी सहायता की ।

[६२४] (यत्) जब हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुतस्य मदे) सोमके आनन्दमें (ते वज्रः) तेरे वज्रने (शवसा) बलसे (रोदसी बद्बधानस्य वृत्रस्य) द्युलोक और पृथिवी लोकको पीडित करनेवाले वृत्रके (शिरः अभिनत्) शिरको काट डाला, तब (अमवान् द्यौः चित्) बलवान् द्युलोक भी (अहेः स्वनाद् भियसा) वृत्रके शब्दके डरसे (अयोयवीत्) कांपने लगा ॥ १० ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाले इस इन्द्रने मनुष्योंके हितके लिए जलको बरसानेके लिए अपनी किरणोंसे वृत्रको मारा और अपनी भुजाओंमें वज्रको धारण किया, तब वृत्रको मारकर इन्द्रने सूर्यको आकाशमें चमकाया । यह आलंकारिक वर्णन वर्षाका है । वृत्र अर्थात् मेघ पानीको रोककर अन्तरिक्षमें पडा रहता है, पर जब इन्द्र–बिजली अपने वज्र अर्थात् गर्जनेकी शक्तिसे मेघ पर आघात करता है, तब वह टुकडा टुकडा होकर पृथ्वी पर गिर जाता है अर्थात् मेघोंके बरस जाने पर आकाश साफ हो जाता है तब सूर्य चमकने लगता है। इस प्रकार पानी बरसाना, आकाश साफ करना और सूर्यको चमकाना यह सब काम इन्द्रका ही है ॥ ८ ॥

जब मनुष्योंने देखा कि वृत्र–मेघ पानीको रोककर बैठ गया है तब अवर्षणसे डरकर मनुष्योंने सामगान करना शुरु किया अर्थात् यज्ञ करके सामोंका गान किया। तब प्रजाके हितके लिए युद्ध करनेवाले, रक्षक और प्रजाके साथ घुलमिल कर उनके सुख दुःखमें बराबर उनके साथ रहनेवाले सहायकोंने इन्द्रको प्रेरित किया और तब इन्द्रने वृत्रको मारा । यज्ञ करनेसे मरुत् अर्थात् वायु उत्पन्न होती है, यही वायु मेघ बनते हैं और इन्हीं मेघोंके टकरानेसे इन्द्र या बिजली उत्पन्न होती है, और यह इन्द्र–बिजली ही अपनी शक्ति अर्थात् वज्रसे वृत्रको मार कर पानी बरसाता है । इस प्रकार वर्षा होती है ॥ ९ ॥

जब इन्द्रने सोमके आनन्दमें आकर अपने वज्रसे वृत्रको मारा, तब उस वृत्रने गिरते समय जो गर्जना की, उससे सारा विश्व कांप उठा । वर्षाकालका आलंकारिक वर्णन इस मंत्रमें किया है, जब मेघ आपसमें टकराते हैं और जब बिजली गिरती है, उस समय मेघोंका गर्जन सुनकर मानों पृथ्वी भी कांपने लगती है । यही वृत्रका नाश है ॥ १० ॥

६२५ यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजि रहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥ ११ ॥

६२६ त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसो ऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥

६२७ त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥

अर्थ— [६२५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदा इत्) जब (पृथिवी दशभुजि) पृथ्वी दस गुणी हो जाए और (कृष्टयः) मनुष्य (विश्वा अहानि) सम्पूर्ण दिनोंको (ततनन्त) विस्तृत कर दें, तब हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ते सहः) तेरा बल (अत्राह विश्रुतं) यहां प्रसिद्ध हो तथा (शवसा बर्हणा) बल और पराक्रमसे (द्यां अनु भुवत्) द्यौ लोक भी पूर्ण हो जाए ॥ ११ ॥

[६२६] हे (धृषन्मनः) शत्रुओंको मारनेकी इच्छावाले इन्द्र ! (अस्य व्योमनः रजसः पारे) इस अन्तरिक्ष लोकके परे (स्वभूत्योजाः त्वं) अपने ऐश्वर्यसे बलशाली तूने (अवसे) संरक्षणके लिए (भूमिं चकृषे) भूमिको बनाया, तू (ओजसः प्रतिमानं) बलकी मूर्त्ति है, तथा तू ही (स्वः अपः दिवं परि भूः) सुखकारक अन्तरिक्ष तथा द्युलोकको व्याप्त करके (एषि) उन्हें प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

१ ओजसः प्रतिमानं— यह इन्द्र बलकी मूर्त्ति है ।

[६२७] हे इन्द्र ! (त्वं पृथिव्याः भुवः प्रतिमानं) तू विस्तृत भूमिका प्रतिनिधि है, तथा (ऋष्ववीरस्य बृहतः) महान् वीरोंसे युक्त विशाल द्युलोकका भी (पतिः भूः) स्वामी है, तू (महित्वा) अपने यशसे (विश्वं अन्तरिक्षं) सम्पूर्ण अन्तरिक्षको (आ प्रा) पूर्ण करता है. (सत्यं अद्धा) यह सत्य है, कि (त्वावान् अन्यः नकिः) तेरे जैसा और दूसरा नहीं ॥ १३ ॥

१ त्वं पृथिव्याः भुवः प्रतिमानम्— तू विस्तृत भूमिकी प्रतिमा है ।

२ ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिः— महान् वीरोंसे युक्त द्यौ का भी स्वामी है ।

३ महित्वा विश्वं अन्तरिक्षं आ प्रा— तू अपने यशसे सम्पूर्ण अन्तरिक्षको पूर्ण करता है ।

४ सत्यं अद्धा त्वावान् अन्यः न किः— यह सत्य है, कि तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है ।

भावार्थ— यदि यह भूमि दस गुनी बढ जाए और ये दिन भी अत्यन्त विस्तृत हो जाएं, तथा द्युलोक भी और अधिक विस्तृत हो जाए, तो भी इस इन्द्रकी महिमा इनमें समा नहीं सकती और न उसकी महिमाका वर्णन ही किया जा सकता है । इतना महिमाशाली इन्द्र है ॥ ११ ॥

इसी इन्द्रने अन्तरिक्ष लोकके अलावा भूमिका भी निर्माण किया, और इससे उसने सब प्राणियोंको रक्षा की । इस प्रकार वह इन्द्र भूमिका संरक्षक होनेसे वह इसका पालक है, वह द्युलोकका स्वामी है और सम्पूर्ण अन्तरिक्षको अपनी महिमासे भर देता है । इसलिए इस इन्द्र जैसा शूरवीर और महिमाशाली और कोई नहीं है ॥ १२-१३ ॥

६२८ न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १४ ॥
६२९ आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ ॥

[५३]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।)

६३० न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥

अर्थ— [६२८] (यस्य व्यचः द्यावा पृथिवी न अनु) जिसके विस्तारको द्युलोक और पृथिवी लोक नहीं पा सकते, तथा (रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः) लोक तथा नदियां भी जिसके अन्तको नहीं पा सकीं, (उत) और (मदे) उत्साहमें (सु अवृष्टिं) उत्तम वृष्टि न करनेवाले वृत्रके साथ (युध्यतः) युद्ध करनेवाले (अस्य) इसका अन्त वृत्र भी न पा सका, ऐसा हे इन्द्र ! तू (एकः) अकेला ही (अन्यत् विश्वं) अपनेसे भिन्न विश्वको (आनुषक् च कृषे) निश्चयसे बनाता है ॥ १४ ॥

१ यस्य व्यचः द्यावापृथिवी न अनु— जिसके विस्तारको द्युलोक और पृथ्वीलोक भी न पा सके ।
२ रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः— लोक तथा नदियां भी इसके अन्तको न पा सके ।
३ मदे सु-अ-वृष्टिं युध्यतः अस्य [वृत्रः अन्तं न आनशे]— उत्साहमें उत्तम-वृष्टि न करनेवाले वृत्रके साथ युद्ध करते हुए भी वृत्र इसके अन्तको न पा सका ।
४ एकः अन्यत् विश्वं चकृषे— यह अकेला ही विश्वको बनाता है ।

[६२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब (त्वं) तूने (भृष्टि मता वधेन) शत्रुको मारनेवाले वज्रको (वृत्रस्य आनं) वृत्रके मुख पर (प्रति जघन्थ) मारा, तब (अत्र) इस संग्राममें (मरुतः) मरुतोंने तेरी (अर्चन्) प्रशंसा की तथा (सस्मिन् आजौ) सभी संग्रामोंमें (विश्वे देवासः) सभी देवोंने (त्वा) तुझे (अमदन् नु) उत्साहित किया ॥ १५ ॥

१ इन्द्र ! यत् त्वं वधेन वृत्रस्य आनं प्रति जघन्थ— हे इन्द्र ! तूने जब वज्रको वृत्रके मुख पर मारा । तब
२ आजौ मरुतः विश्वे देवासः त्वा अमदन्— संग्राममें मरुतों और सभी देवोंने तुझे उत्साहित किया ।

[५३]

[६३०] हम (विवस्वतः सदने) विवस्वान्‌के यज्ञमें (महे इन्द्राय) शक्तिशाली इन्द्रके लिए (सु वाचं गिरः) उत्तम स्तुति तथा प्रशंसाओंको (नि उ प्र भरामहे) करते हैं, (हि) क्योंकि वह (रत्नं) रत्नोंको (ससतां इव) जैसे चोर सोते हुओंके धनको शीघ्र उठा ले जाता है, उसी प्रकार (नि चित् अविदन्) शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है, (द्रविणोदेषु दुस्तुतिः न शस्यते) धन देनेवालोंकी बुरी स्तुति प्रशंसित नहीं होती ॥ १ ॥

१ द्रविणोदेषु दु-स्तुतिः न शस्यते— धन देनेवालोंके बारेमें निन्दा प्रशंसित नहीं होती ।

भावार्थ— जब इन्द्रने अपने शत्रुनाशक वज्रसे वृत्रको मारा तब सब देवता खुश हो गए और मरुतोंने भी इसका बडा सत्कार किया और तभी इसकी विशाल महिमाका लोगोंको पता चला कि द्युलोक आदि लोक, अनन्त नदियां भी इसकी महिमाका पार न पा सकीं और यहां तक कि इसके साथ सदा युद्ध करनेवाला वृत्र भी इसकी महिमाका पार न पा सका, इतनी इसकी विशाल महिमा है ॥ १४-१५ ॥

इन्द्र सब रत्नोंको आसानीसे प्राप्त करता है और दानमें भी देता है, अतः उसकी हमेशा उत्तम स्तुति करनी चाहिए । क्योंकि जो उत्तम दान देता है उसको कभी बुराई या निन्दा नहीं करनी चाहिए । वह हमेशा उत्तम स्तुतिके ही योग्य होता है ॥ १ ॥

६३१ दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥
६३२ शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥
६३३ एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभि- र्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभि- र्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥

अर्थ— [६३१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (अश्वस्य दुरः असि) घोडोंका देनेवाला है, (गोः दुरः) गायोंका देनेवाला है (यवस्य दुरः) अन्नका देनेवाला है, तथा (वसुनः इनः) धनका स्वामी और (पतिः) सबका पालन करनेवाला है, तू (शिक्षानरः) दान देनेवालोंका नेता है, (प्र दिवः) विशेष तेजस्वी है, (अ-कामकर्शनः) तू संकल्पोंको नष्ट नहीं करता और (सखिभ्यः सखा) मित्रोंके लिए मित्र है, ऐसे (तं) उस इन्द्रकी (इदं गृणीमसि) इस तरह हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ वसुनः इनः— वह धनका स्वामी है ।
२ शिक्षानरः— वह दानियोंका नेता है ।
३ प्र-दिवः— विशेष तेजस्वी है ।
४ सखिभ्यः सखा— वह मित्रोंके लिए मित्र है ।

[६३२] हे (शचीवः, पुरु-कृत् द्युमत्तम इन्द्र) शक्तिमान्, बहुत कर्म करनेवाले, अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र ! जो (अभितः वसु) चारों ओर धन है, वह (तव इत्) तेरा ही है, यह (चेकिते) हम जानते हैं, (अतः) इसलिए (सं गृभ्य) धनको इकट्ठा करके (अभिभूते) शत्रुको मारनेवाले हमारे लिए (आ भर) भरपूर दे, (त्वायतः जरितुः) तुझको चाहनेवाले स्तोताकी (कामं) इच्छाको (मा ऊनयीः) मत नष्ट कर ॥ ३ ॥

ऊनयीः— नष्ट करना 'ऊन परिहाणे'
१ अभितः वसु तव इत्— चारों ओरका धन तुम्हारा अर्थात् इसी इन्द्रका है ।
२ अतः सं गृभ्य अभिभूते आ भर— इसलिए उनको इकट्ठा करके शत्रुको मारनेवालेको भरपूर दे ।

[६३३] हे इन्द्र ! तू (एभिः द्युभिः) इन तेजोंसे तथा (एभिः इन्दुभिः) इन सोम रसोंसे तृप्त होकर (गोभिः अश्विना) गायों और घोडोंसे हमारी (अ-मतिं) दरिद्रताको (निरुन्धानः) रोकता हुआ (सु-मनाः) उत्तम मनवाला हो, हम भी (इन्दुभिः) सोमरसोंसे तृप्त (इन्द्रेण दस्युं दरयन्तः) इन्द्रके द्वारा शत्रुको नष्ट करते हुए (युतद्वेषसः) शत्रु रहित होकर (इषा) अन्नसे (सं रभेमहि) अच्छी तरह आनन्दित हों ॥ ४ ॥

१ (इन्द्र) गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः सुमनाः— हे इन्द्र ! गायें और घोडोंसे हमारी दरिद्रताको रोकते हुए उत्तम मनवाला हो ।
२ इन्द्रेण दस्युं दरयन्तः युतद्वेषसः इषा सं रभेमहि— इन्द्रके द्वारा शत्रुको नष्ट करते हुए शत्रु रहित होकर अन्नसे अच्छी तरह हम आनन्दित होवें ।

भावार्थ— इस विश्वमें चारों ओर फैला हुआ धन इन्द्रका ही है, वह उन सबपर प्रभुत्व करता है, साथ ही वह दान देनेवालोंका नेता है अर्थात् दान देनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ है । पर वह अपना यह धन उन्हींको देता है, जो अपने शत्रुओंको नष्ट करते हैं । यह इन्द्र मित्रोंके लिए मित्र है, पर शत्रुओंके लिए बहुत भयंकर है । यह अपने भक्तोंके संकल्पोंको कभी नष्ट नहीं करता ॥ २-३ ॥

सोम उत्साहको देनेवाला है । इससे उत्साहित होकर इन्द्र उत्तम मनसे युक्त होता है और सज्जनोंकी दरिद्रताको रोकता है और उन्हें धनवान् बनाता है । और उसके भक्त भी इससे उत्साहित होकर अपने शत्रुओंको नष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

६३४ समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥
६३५ ते त्वा मदा अमदुन् तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत् कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
६३६ युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [६३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (राया, इषा) धन, अन्न तथा (पुरुः चन्द्रैः अभिद्युभिः वाजेभिः) बहुतोंको प्रसन्न करनेवाले, चारों ओरके तेजस्वी बलोंसे (सं सं सं रभेमहि) अच्छी तरह आनन्दित हों, तथा (वीर-शुष्मया) बलशाली पुत्रोंसे, (गो अग्रया) मुख्य गौवोंसे (अश्वावत्या) घोडोंसे तथा (देव्या प्रमत्या) तेजस्वी बुद्धिसे (सं रभेमहि) युक्त हों ॥ ५ ॥

[६३५] हे (सत्पते) सज्जनोंके पालनकर्ता इन्द्र ! तूने (यत्) जब (कारवे बर्हिष्मते) ऋत्विज तथा यज्ञकर्ताके लिए (वृत्रहत्येषु) युद्धोंमें (दश सहस्राणि वृत्राणि) दस हजार असुरोंको (अ-प्रति) पीछे न हटते हुए (निबर्हयः) मारा था, तब (त्वा) तुझे (ते मदाः अमदन्) उन मरुतोंने उत्साहित किया, (तानि वृष्ण्या) उन बलोंने तथा (ते सोमासः) उन सोमरसोंने भी तुझे उत्साहित किया ॥ ६ ॥

१ वृत्रहत्येषु दश सहस्राणि वृत्राणि अ-प्रति निबर्हयः— इस इन्द्रने युद्धोंमें दस हजार असुरोंको पीछे न हटते हुए मारा ।

[६३६] हे इन्द्र ! (धृष्णुया) शत्रुको मारनेवाला तू (युधा युधं उप इत् घ एषि) शत्रुके योद्धाओंसे सदा युद्ध करता है, तथा तूने (पुरा इदं पुरं) पहले इस महान् नगरको (ओजसा सं हंसि) बलसे तोडा है, (यत्) तथा (नम्या सख्या) नमनशील मित्रभूत वज्रसे (परावति) दूर देशमें (नमुचिं नाम मायिनं) नमुचि नामवाले मायावी असुरको (नि बर्हयः) मारा है ॥ ७ ॥

१ धृष्णुया ! युधा युधं उप घेदेषि— अपने पराक्रमसे तू शत्रुके योद्धाओंसे सदा युद्ध करता है ।
२ सख्या परावति नमुचिं नि बर्हयः— अपने मित्र वज्रसे दूर देशमें नमुचिको मारा है ।

भावार्थ— इस प्रकार शत्रुरहित होकर वे तेजस्वी बलोंसे अनेक तरहके पशुओंसे और उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होकर आनन्दसे जीवन व्यतीत करते हैं । यह सोम उत्तम बुद्धिका द्योतक है । जो उत्तम बुद्धिसे युक्त होते हैं, वे हमेशा आनन्दमें रहते हैं ॥ ४-५ ॥

राजा इतना धीर और वीर हो कि अनेक शत्रुओंसे लोहा लेते समय भी युद्धमें स्थिर रहे और इस प्रकार शत्रुओंको मारे । उसके इस पवित्र कार्यमें उसे सैनिक तथा अन्य विद्वान् भी उत्साहित करें । क्योंकि राजाको सदा शत्रुओंसे युद्ध करना पडता है, इसलिए वह और उसका राष्ट्र सदा वज्र जैसे हथियारोंसे सुसज्जित रहे ॥ ६-७ ॥

६३७ त्वं करंञ्जमुत पर्णयं वधी--स्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरो ऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥

६३८ त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशा--ऽबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥

६३९ त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभि--स्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

अर्थ--[६३७] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (अतिथिग्वस्य वर्तनी) अतिथिग्वके मार्गमें बाधक (करंजं उत पर्णयं) करंज तथा पर्णय नामके असुरोंको अपने (तेजिष्ठया) तीक्ष्ण शस्त्रसे (वधीः) मारा तथा (अन-अनुदः) सहायकके बिना ही (त्वं) तूने (ऋजिश्वना परिषूताः) ऋजिश्वके द्वारा घेरे गए (वंगृदस्य) वंगृदनामक असुरके (शता पुरः) सैकडों नगरोंको (अभिनत्) तोडा ॥ ८ ॥

१ अन-अनुदः ऋजिश्वना परिषूताः वंगृदस्य शता पुरः अभिनद्-- सहायकके बिना ही तूने ऋजिश्व-के द्वारा घेरे गए वंगृद असुरके सैकडों नगरोंको तोडा ।

[६३८] हे (श्रुतः त्वं) प्रसिद्ध इन्द्र ! तूने (अ-बन्धुना सुश्रवसा) भाई अर्थात् सहायक रहित सुश्रवस राजासे (उप जग्मुषः) लडनेके लिए गए हुए (द्विदश जन राज्ञः) बीस राजाओंको तथा उनके (एतान् षष्टिं नव नवतिं सहस्रा) इन साठ तथा निन्यानवे हजार सैनिकोंको (रथ्या दुष्पदा चक्रेण) रथके, कठिनाईसे पाने योग्य चक्रसे (अवृणक्) मार डाला ॥ ९ ॥

१ त्वं द्विदश जनराज्ञः षष्टिं नव नवतिं सहस्रा रथ्या चक्रेण अवृणक्-- तूने बीस राजा तथा उनके साठ तथा निन्यानवे हजार सैनिकोंको रथके पहिएसे मार डाला ।

[६३९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (तव ऊतिभिः) अपने संरक्षणोंसे (सु श्रवसं आ विथ) सुश्रवसकी रक्षा की, तथा (तव) अपने (त्रामभिः) पालनके साधनोंसे (तुर्वयाणं) तुर्वयाणकी रक्षा की, (त्वं) तूने (महे यूने अस्मै राज्ञे) महान्, तरुण इस राजाके लिए (कुत्सं, अतिथिग्वं, आयुं) कुत्स, अतिथिग्व और आयुको (अरन्धनायः) वशमें किया ॥ १० ॥

अरन्धनायः-- वशमें करना ' रध्यतिर्वशगमने ' (निरु. ६।३२)
त्रामः-- पालनके साधन ' त्रैङ् पालने '
कुत्-सः-- कुटिल गतिवाला ।
आतिथि-ग्वः-- अतिथिकी गायें ले आनेवाला ।

भावार्थ-- यह इन्द्र सज्जनोंका पालक एवं दुष्टोंका संहारक है । अतिथियोंका सत्कार करनेवालेके लिए इन्द्रने उसके इस पवित्र काममें बाधा डालनेवाले असुरोंको मारा, तथा बिना किसीकी सहायताके उसने शत्रुओंके अनेक नगरोंको तोडा और हजारों सैनिकोंसे केवल रथके चक्रसे युद्ध किया अर्थात् इन्द्र इतना वीर है कि वह किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता । इसी तरह राजाको भी वीर होना चाहिए ॥ ८-९ ॥

राजाको चाहिए कि वह हमेशा उत्तम यशवालोंकी सहायता करे तथा कुटिल गतिवाले, अतिथियोंको कष्ट देनेवाले और आलसी लोगोंको मारता है । इन्द्र अतिथिग्व, कुत्स आदि सज्जनोंकी रक्षा करता है, पर यदि वे ही बुरे कर्म करने लग जाएं तो उन्हें दण्ड भी देता है । राजा भी सज्जनोंका पालन करे, पर यदि वे ही कुमार्ग पर चलने लगें, तो उनको दण्डित करे ॥ १० ॥

६४० य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥

[५४]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ६, ८-१ ११ त्रिष्टुप् ।)

६४१ मा नो अस्मिन् मघवन् पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद् वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥ १ ॥
६४२ अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥

अर्थ— [६४०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवगोपाः) देवोंसे सुरक्षित (ये) जो हम (ते सखायः) तेरे मित्र हैं, वे (शिवतमाः असाम) अत्यन्त सुखवाले हों, हम (त्वया) तेरी कृपासे (सु-वीराः) उत्तम प्रजावाले होकर (द्राघीयः प्रतरं आयुः दधानाः) दीर्घ तथा उत्तम आयुको धारण करते हुए (उत्-ऋचि) यज्ञमें (त्वां स्तोषाम) तुझे सन्तुष्ट करते हैं ॥ ११ ॥

१ त्वया सु-वीराः द्राघीयः आयुः दधाना उत् ऋचि त्वां स्तोषाम— हम तेरी कृपासे उत्तम प्रजावाले तथा दीर्घ आयुवाले होकर यज्ञमें तुझे सन्तुष्ट करें ।

[५४]

[६४१] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र । (नः) हमें (अस्मिन् अंहसि) इस दुःखमें तथा (पृत्सु) युद्धोंमें (मा) मत डाल, (ते शवसः अन्तः नहि परीणसे) तेरे बलका अन्त नहीं पाया जा सकता, (रोरुवद्) स्वयं शब्द करते हुए तूने (नद्यः वना) नदियों तथा जलोंको (अक्रन्दयः) शब्द करते हुए गतियुक्त किया है, तब (क्षोणीः) ये लोक (भियसा) तेरे डरसे (कथा न सं आरत) कैसे न डरें ? ॥ १ ॥

१ मघवन् ! नः अस्मिन् अंहसि पृत्सु मा— हे इन्द्र ! हमें इस दुःख और युद्धोंमें मत डाल ।

२ ते शवसः अन्तः नहि परीणसे— तेरे बलका अन्त नहीं पाया जा सकता ।

[६४२] हे मनुष्यो ! (शचीवते) शक्तियोंके स्वामी, (शाकिने) बलवान् (शक्राय) इन्द्रका तुम (अर्च) सत्कार करो, (शृण्वन्तं इन्द्रं) स्तुतियोंको सुननेवाले इन्द्रकी (महयन्) प्रशंसा करते हुए (अभि स्तुहि) स्तुति करो, (यः धृष्णुना शवसा) जो इन्द्र शत्रुको मारनेवाले बलसे (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको (न्यृञ्जते) उत्तम रीतिसे बनाता है, वह (वृषा) बलवान् इन्द्र (वृषत्वा) अपने सामर्थ्यसे (वृषभः) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ २ ॥

१ यः शवसा उभे रोदसी न्यृञ्जते— वह इन्द्र अपने बलसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको उत्तम रीतिसे बनाता है ।

२ वृषा वृषत्वा वृषभः— वह बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे महा बलवान् है ।

भावार्थ— इन्द्रके मित्र हरतरहसे ऐश्वर्यसंपन्न होकर आनन्दसे रहते और उत्तम सन्तानोंके साथ सुखी जीवन व्यतीत करते हैं । इसी प्रकार राजाके मित्र भी उत्तम और सुखी जीवन गुजारें । उसके मित्र कभी भी दुःखी न हों । क्योंकि मित्रोंका बल राजाके लिए बडा आवश्यक होता है ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तू इतना शक्तिशाली है, कि तेरी शक्तिका पार कोई भी नहीं पा सकता । तूने ही अपनी वीरतासे नदियों और जलोंको बहाया । तेरी इस शक्तिको देखकर सारे लोक इन्द्रसे डरते हैं । हम तेरी स्तुति करते हैं अतः हे इन्द्र ! हमें तू दुःखमें मत डाल ॥ १ ॥

यह इन्द्र अपनी शक्तिसे बलवान् है अर्थात् इसे बलवान् और शक्तिमान होनेके लिए किसी दूसरेके सहायताकी आवश्यकता नहीं होती । यह अपनी शक्तिसे सारे लोकोंका निर्माण करता है । इसीलिए सब लोग इसकी स्तुति करते हैं । वह भी अपने स्तोताओंके प्राणोंकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

६४३ अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥ ३ ॥
६४४ त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयो ऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥ ४ ॥
६४५ नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद् वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि ॥ ५ ॥

अर्थ— [६४३] (धृषतः यस्य) शत्रुको पराजित करनेवाले जिस इन्द्रके (मनः स्वक्षत्रं) मन और बल (धृषत्) शत्रुको मारनेवाले हो गए हैं, ऐसे (दिवे) तेजस्वी तथा (बृहते) महान् इन्द्रके लिए (शूष्यं वचः अर्च) सुखकारी स्तुतियोंको कहो, (सः हि) वह इन्द्र (बृहत् श्रवा) महान् यशवाला, (असु-रः) प्राणोंका देनेवाला, (बर्हणा) शत्रुओंको मारनेवाला, (हरिभ्यां पुरः कृतः) घोडों द्वारा आगे किया गया (वृषभः) बलवान् तथा (रथः) गतिवाला है ॥ ३ ॥

१ सः हि बृहत् श्रवा, असु-रः, बर्हणा वृषभः— वह इन्द्र महान् यशवाला, प्राणोंका दाता, शत्रुओंका मारनेवाला तथा बलवान् है ।

[६४४] हे इन्द्र ! (यत्) जब तू (मायिनः व्रन्दिनः) मायावी असुरके सैन्य समूहको (मन्दिना धृषत्) उत्साहसे मारते हुए (शितां) तीक्ष्ण किये गये (गभस्ति अशनिं) हाथमें पकडे हुए वज्रका उनपर (पृतन्यसि) प्रहार करता है तब (त्वं) तू (बृहतः दिवः सानु) विशाल द्युलोकके ऊपरके प्रदेश पर (कोपयः) क्रोध करता है ऐसा दीखता है और (त्मना धृषता) अपने बलसे (शम्बरं अव भिनत्) शम्बरको मारता है ॥ ४ ॥

१ मायिनः व्रन्दिनः धृषत् शितां गभस्ति अशनिं पृतन्यसि— असुरके सैन्य समूहको मारते हुए तीक्ष्ण किए गए हाथमें पकडे हुए वज्रको उनपर मारता है ।

२ त्मना धृषता शम्बरं अव भिनत्— अपने बलसे शम्बरको मारता है ।

[६४५] हे इन्द्र ! (रोरुवत्) गर्जते हुए तूने (यत्) जब (व्रन्दिनः चित्) सेनाओंके होते हुए भी (श्वसनस्य शुष्णस्य) लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शुष्णके (मूर्धनि) सिर पर (वना निवृणक्षि) शस्त्रोंको मारा तब अपने (बर्हणावता मनसा) बल युक्त मनसे तू (प्राचीनेन अद्या चित्) प्राचीन कालसे लेकर आजतक वा ही काम (कृणवः) करता आ रहा है, अतः (त्वा परि कः) तेरे ऊपर कौन स्वामी है ? ॥ ५ ॥

१ रोरुवत् व्रन्दिनः चित् श्वसनस्य शुष्णस्य मूर्धनि वना नि वृणक्षि— गर्जते हुए इन्द्रने सेनाओंके होते हुए भी लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शुष्णके सिरपर शस्त्रोंको मारा ।

भावार्थ— शत्रुओंको मारना उसका स्वभाव हो गया है, इसलिए वह मन और बलसे शत्रुओंके नाशका ही विचार करता रहता है । इसी तरह राजाको भी चाहिए कि वह देशद्रोहियों पर कडी नजर रखे और हमेशा उनके नाश करनेका विचार किया करे ॥ ३ ॥

यह इन्द्र बडा निर्भीक है, यह अकेला ही असुरोंकी सारी सेनाओंको मार भगाता है । वह इतना वीर है कि सेनाओंके बीचमें स्थित शुष्णको भी उसने मारा अर्थात् वह सेनाओंको देखकर भी नहीं घबडाया । शत्रुओंको मारना यह उसका सनातन कर्तव्य है, यह प्राचीनकालसे ऐसे कामोंको करता आया है । इसलिए उसपर कोई दूसरा शासन नहीं कर सकता ॥ ४-५ ॥

६४६ त्वमविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६ ॥
६४७ स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥ ७ ॥
६४८ असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥

अर्थ— [६४६] हे (शतक्रतो) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तूने (धने कृत्व्ये) संग्रामके प्रारम्भ हो जाने पर (नर्यं तुर्वशुं यदुं आ विथ) नर्य, तुर्वश और यदुका संरक्षण किया, (त्वं वय्यं तुर्वीतिं) तूने वय्य कुलोत्पन्न तुर्वीतिकी रक्षा की, (त्वं) तूने (रथं एतशं) रथ और एतशकी रक्षा की, तथा (त्वं) तूने असुरके (नव नवतिं पुरः दम्भयः) निन्यानवे नगरोंको तोडा था ॥ ६ ॥

१ नव नवतिं पुरः दम्भयः— इन्द्रने असुरके निन्यानवे नगरोंको तोडा ।

[६४७] (यः) जो मनुष्य (प्रति) इन्द्रके लिए (रातहव्यः) हविको देता हुआ उसके (शासं इन्वति) शासनमें रहता है, (सः घ जनः) वही मनुष्य (राजा) तेजस्वी (सत्पतिः) सज्जनोंका पालनकर्ता तथा (शूशुवद्) समृद्धशाली होता है, (यः वा) और जो (राधसा उक्था) अन्नके साथ स्तोत्रोंको (अभि गृणाति) कहता है, (अस्मै) इसके लिए (दानुः) दानशील इन्द्र (दिवः) द्युलोकसे (उपरा पिन्वते) मेघोंका बरसाता है ॥ ७ ॥

उपरा-मेघ ' उपरा इति मेघनाम उपरः उपलः मेघो भवति उपरमन्तेऽस्मिन्न भ्राणि उपरता आप इति वा (निरु. २।२१)

१ यः शासं इन्वति सः जनः राजा सत्पतिः शूशुवद्— जो इन्द्रके शासनमें रहता है वह मनुष्य तेजस्वी सज्जनोंका पालक और समृद्धशाली होता है ।

[६४८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तेरा (क्षत्रं अ-समं) क्षात्र बल अतुलनीय है, (मनीषा असमा) बुद्धि भी अतुलनीय है, (ददुषः ये) हविको देनेवाले जो मनुष्य (ते महि क्षत्रं) तेरे महान् बलको, (स्थविरं वृष्ण्यं) महत्ताको, तथा सामर्थ्यको (वर्धयन्ति) बढाते हैं, (नेमे) ये (सोम-पाः) सोमको पीनेवाले मनुष्य (अपसा सन्तु) कर्मसे समृद्धि प्राप्त करें ॥ ८ ॥

१ ये ते क्षत्रं, स्थविरं वृष्ण्य वर्धयन्ति— जो तेरे बल, महत्ता और सामर्थ्यको बढाते हैं ।

२ नेमे अपसा सन्तु— ये कर्मोंसे समृद्धिशाली हों ।

भावार्थ—यह इन्द्र अनेकों उत्तम कर्म करता है, इसीलिए इसे शतक्रतु कहा जाता है । धनकी प्राप्ति करानेवाले संग्रामके शुरू हो जानेपर यह उत्तम नेता, अपने यशको फैलानेवाले प्रयत्न करनेवाले, गतिशील अर्थात् आलस्यरहित मनुष्यकी रक्षा करता है और शत्रुओंके अनेक नगरोंका नाश करता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य इस इन्द्रके शासनमें रहता है, अर्थात् इसके अनुकूल काम करता है, वही मनुष्य तेजस्वी सज्जनोंका पालक और समृद्धशाली होता है । जो इस इन्द्रकी मनःपूर्वक स्तुति करता है, उसके लिए वह इन्द्र पानी बरसाता है और हरतरहसे उसे ऐश्वर्यसम्पन्न बनाता है । अनुशासनमें रहनेसे मनुष्य श्रेष्ठ और ऐश्वर्य सम्पन्न होता है ॥ ७ ॥

इस इन्द्रका क्षात्रबल, बुद्धिबल अद्वितीय है । इन बलोंमें इसके समान और कोई नहीं है । अतः इस अद्वितीय इन्द्रकी जो स्तुति करता है, वह मनुष्य इस इन्द्रकी कृपा और अपने प्रयत्नोंसे समृद्धि प्राप्त करता है । समृद्धि प्राप्त करनेका एक उपाय प्रयत्न करना है । प्रयत्नोंसे मनुष्य हर तरहकी दुःसाध्यसे दुःसाध्य सम्पत्ति भी प्राप्त कर सकता है ॥ ८ ॥

६४९ तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥

६५० अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥ १० ॥

६५१ स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥ ११ ॥

अर्थ— [६४९] हे इन्द्र ! (एते बहुलाः, आद्रिदुग्धाः, चमूषदः) ये बहुतसे, पत्थरोंसे निचोडकर बर्तनोंमें रखे हुए (इन्द्रपानाः) इन्द्रके पीने योग्य (चमसाः) सोम (तुभ्य इत्) तेरे लिए ही हैं, अतः तू उनको (व्यश्नुहि) पी (अथ) और (एषां) इनको पीकर (कामं तर्पय) अपनी इच्छाको तृप्त कर, और (वसुदेयाय) धन देनेके लिए (मनः कृष्व) अपने मनको कर ॥ ९ ॥

[६५०] (धरुणह्वरं तमः) जलधाराओंको रोकनेवाला अन्धकार (पर्वतः वृत्रस्य) अनेकों पर्ववाले वृत्रके (जठरेषु अन्तः) पेटमें (अपां) जलोंको रोककर (अतिष्ठत्) बैठ गया, तब (इन्द्रः) इन्द्रने (वव्रिणा हिता) वृत्र द्वारा रोके हुए (अनु-स्थाः) अनुकूलतासे चलनेवाले (ईं विश्वाः नद्यः) इन सभी जल प्रवाहोंको (प्रवणेषु अभि जिघ्नते) नीचेके स्थानोंमें गिराया ॥ १० ॥

[६५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह तू (अस्मे) हममें (शेवृधं द्युम्नं) अमूल्य यशको (आ धाः) स्थापित कर, तथा (महि) प्रशंसनीय (जनाषाट्, तव्यं) शत्रुको पराजित करनेवाले महान् (क्षत्रं) बलको स्थापित कर. (नः मघोनः) हमें धनवाला बनाकर (रक्ष) हमारा पालन कर (सूरीन् पाहि) विद्वानोंकी रक्षा कर (च) और (सु अपत्यै) अच्छी सन्तानको प्राप्त करनेके लिए (नः) हमें (राये इषे च धाः) धनमें और अन्नमें स्थापित कर ॥ ११ ॥

१ अस्मे शेवृधं द्युम्नं, महि जनाषाट् तव्यं क्षत्रं आ धाः— हे इन्द्र ! हममें अमूल्य यश, महान्, शत्रुको पराजित करनेवाले प्रवृद्ध बलको स्थापित कर ।

भावार्थ— यह इन्द्र सोम पीकर उत्साहित होता है और उस समय वह अनेक कठिनसे कठिन भी काम आसानीसे कर देता है । उदाहरणार्थ- जब गाढ अंधकार अनेक परतोंवाले मेघोंमें पानी रोककर बैठ गया, तब इन्द्रने उत्साहित होकर उन मेघोंसे पानी बरसाया । जब काले बादल आते हैं, तब सर्वत्र भयंकर अन्धेरा छा जाता है, उस समय बिजली चमकती है और उसके कारण अन्धेरा हटकर सर्वत्र प्रकाश छा जाता है ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! तू हमें अमूल्य तेज और यश प्रदान कर, शत्रुओंको हरानेवाला महान् बल भी प्रदान कर, हमें धनवान् बनाकर हमारा पालन कर, विद्वानोंकी रक्षा कर तथा सन्तानोंका पालन अच्छी तरह करनेके लिए हमें उत्तम धन और अन्न दे । राजाका यह कर्तव्य है कि वह राष्ट्रमें अन्न और धनकी व्यवस्था इतनी उत्तम रखे कि राष्ट्रकी सारी प्रजायें सुखी और आनन्दित रहें ॥ ११ ॥

*

[५५]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती ।)

६५२ दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ;
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥ १ ॥
६५३ सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनस्यते ॥ २ ॥
६५४ त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥

[५५]

अर्थ—[६५२] (अस्य वरिमा) इस इन्द्रकी श्रेष्ठता (दिवः चित् वि पप्रथे) द्युलोकसे भी अधिक विस्तृत है, तथा (पृथिवी चन) पृथ्वी भी (मह्ना) अपने बलसे (इन्द्रं न प्रति) इन्द्रको हरा नहीं सकती, (भीमः तुविष्मान्) भयंकर, अत्यन्त बलवान्, तथा (चर्षणिभ्यः आतपः) शत्रुओंको पीडित करनेवाला इन्द्र (तेजसे) प्रहार करनेके लिए (वज्रं) वज्रको (वंसगः न) जैसे बैल लडनेके लिए अपने सींगोंको तेज करता है, उसी प्रकार (शिशीते) तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

१ अस्य वरिमा दिवः चित् वि पप्रथे— इस इन्द्रकी श्रेष्ठता द्युलोकसे भी ज्यादा फैली हुई है ।

२ पृथिवी चन मह्ना इन्द्रं न प्रति— पृथ्वी भी अपने बलसे इन्द्रको नहीं हरा सकती ।

[६५३] (सः) वह इन्द्र अपने (वरीमभिः) श्रेष्ठपनसे (विश्रिताः समुद्रियः नद्यः) सर्वत्र व्याप्त अन्तरिक्षके जल प्रवाहोंको (अर्णवः न) समुद्रके समान (प्रति गृभ्णाति) ग्रहण करता है, (इन्द्रः) इन्द्र (सोमस्य पीतये) सोमके पीनेके लिए (वृषायते) बहुत इच्छा करता है, (युध्मः सः) युद्ध करनेवाला वह इन्द्र (सनात्) प्राचीन कालसे ही (ओजसा पनस्यते) अपने बलके कारण प्रशंसित होता है ॥ २ ॥

१ युध्मः सः सनात् ओजसा पनस्यते— युद्ध करनेवाला वह इन्द्र प्राचीन कालसे ही अपने बलके कारण प्रशंसित होता है ।

[६५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (महः नृम्णस्य धर्मणां) महान् बलोंको धारण करनेवालोंपर भी (इरज्यसि) शासन करता है, अतः (भोजसे) अपने भोग करनेके लिए (तं पर्वतं न) उस मेघको नहीं बरसाता, यह (उग्रः) वीर इन्द्र (विश्वस्मै कर्मणे) सभी कर्मोंमें (पुरः हितः) आगे स्थापित किया जाता है, तथा वह (वीर्येण देवताति) अपने बलके कारण सब देवोंसे श्रेष्ठ (चेकिते) जाना जाता है ॥ ३ ॥

१ त्वं महः नृम्णस्य धर्मणां इरज्यसि— वह इन्द्र बडे बडे पौरुषोंको धारण करनेवालोंपर भी शासन करता है ।

२ उग्रः विश्वस्मै कर्मणे पुरः हितः— वह वीर इन्द्र सभी कार्योंमें आगे किया जाता है ।

भावार्थ— इस इन्द्रकी महिमा द्युलोकसे भी ज्यादा विस्तृत है। पृथ्वी भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकती । वह इन्द्र शत्रुओंके लिए भयंकर, अत्यन्त बलवान् तथा शत्रुओंको पीडित करनेवाला है, वह अपने शस्त्रास्त्रोंको सदा तीक्ष्ण रखता है । इसी प्रकार राष्ट्रके सैनिकों एवं राजाके शस्त्रास्त्र सदा तीक्ष्ण और सुसज्जित रहने चाहिए, ताकि हमलावरोंका किसी भी समय मुकाबला किया जा सके ॥ १ ॥

वह इन्द्र अपने बलके कारण प्राचीनकालसे प्रशंसित है, इसीलिए वह बडेसे बडे बलशाली पुरुषों पर भी शासन करता है, वह अपने स्वार्थके लिए प्रयत्न नहीं करता, उसके कर्म सर्वजनोंके लिए हितकारी होते हैं । इसीलिए वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ॥ २-३ ॥

६५५ स इद् वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥

६५६ स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद् दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ ॥

६५७ स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥

अर्थ— [६५५] (जनेषु इन्द्रियं प्रब्रुवाणः) मनुष्योंमें अपने बलको प्रकट करता हुआ (चारु) सुन्दर रूपवाला (सः इत्) वह इन्द्र ही (वने) जंगलमें (नमस्युभिः) स्तुति करनेकी इच्छावालों द्वारा (वचस्यते) प्रशंसित होता है, (यत्) जब (वृषा मघवा) बलवान् तथा धनवान् इन्द्र (क्षेमेण) सुखसे (धेनां इन्वति) स्तुतिको सुनता है, तब (वृषा) वह कामनाओंको पूर्ण करनेवाला इन्द्र (हर्यतः) धनकी कामना करनेवालोंको (छन्दुः भवति) प्रसन्न करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

१ जनेषु इन्द्रियं प्रब्रुवाणः— वह लोगोंमें अपनी शक्तिको प्रकट करता है ।

[६५६] (सः युध्मः) वह योद्धा इन्द्र (जनेभ्यः) स्तोताओंके हितके लिए (मज्मना ओजसा) अपने महान् बलसे (महानि समिथानि इत्) बडे बडे युद्धोंको भी (कृणोति) करता है । और (वधं वज्रं) अपने आयुध वज्रको शत्रुपर (निघनिघ्नते) मारता है, (अधा चन) उसके बाद लोग (त्विषीमते इन्द्राय) तेजस्वी इन्द्रपर (श्रद् दधति) श्रद्धा रखते हैं ॥ ५ ॥

१ सः युध्मः जनेभ्यः ओजसा महानि समिथानि कृणोति— वह योद्धा इन्द्र मनुष्योंके हितके लिए अपने बलसे बडे बडे युद्धोंको करता है ।

[६५७] (स हि) उस (श्रवस्युः) यशकी इच्छावाले तथा (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने (क्ष्मया ओजसा) शत्रुको मारनेवाले बलसे (कृत्रिमा सदनानि) शत्रुओंके निर्मित पुरोंको (विनाशयन्) नष्ट करते हुए, (वृधानः) बढते हुए, (ज्योतींषि अवृकाणि कृण्वन्) ज्योतियोंको सूर्यादिको आवरणरहित करते हुए (यज्यवे) यजमानके लिए (सर्तवे अपः) बहनेवाले जलोंको (अवसृजत्) बाहर निकाला ॥ ६ ॥

१ स सुक्रतुः कृत्रिमा सदनानि विनाशयन्— वह उत्तम कर्म करनेवाला वीर शत्रुके निर्माण किये नगरोंको विनष्ट करता है ।

भावार्थ— इन्द्र जब शत्रुओंसे युद्ध करके मनुष्योंकी रक्षा करता हुआ उनका हित करता है, मनुष्योंमें अपना बल प्रकट करता है और सब मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करता है, तभी लोग उस पर श्रद्धा रखते हैं । इसी प्रकार जो राजा राष्ट्रकी रक्षा करेगा, प्रजाकी समृद्धिका ख्याल करेगा, और उनका हित करेगा, और इस प्रकार बलशाली सिद्ध होगा, तभी प्रजायें उस पर श्रद्धा करेंगी ॥ ४–५ ॥

उस उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने अपने बलसे शत्रुओंके सारे नगरोंको नष्ट किया और वृत्रने आवरणके द्वारा जिन सारी सूर्यादि ज्योतियोंको ढक दिया था, उस आवरणको हटाकर उन सब ज्योतियोंको प्रकट किया और मनुष्योंके हितके लिए जलप्रवाहोंको बहाया । इसी प्रकार राजा भी राष्ट्रमें नहरबम्बों आदिके द्वारा जलके प्रवाहकी उत्तम व्यवस्था करे और प्रकाशकी भी योजना उत्तम हो ॥ ६ ॥

६५८ दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते ऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥ ७ ॥
६५९ अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयो रषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभि स्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ ॥

[५६]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती ।)

६६० एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषो ऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥

अर्थ— [६५८] हे (सोमपावन्) सोमको पीनेवाले इन्द्र ! (ते मनः दानाय अस्तु) तेरा मन दानके लिए हो, हे (वन्दनश्रुत्) स्तुतियोंको सुननेवाले इन्द्र ! अपने (हरी) घोडोंको (अर्वाञ्चा आ कृधि) हमारी ओर कर, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये ते सारथयः) जो तेरे सारथि हैं, वे (यमिष्ठासः) अच्छा नियंत्रण करनेवाले हैं, इसलिए, (केताः भूर्णयः) भयंकर शत्रु भी (त्वा न आ दभ्नुवन्ति) तुझे नहीं दबा सकते हैं ॥ ७ ॥

१ ते सारथयः यमिष्ठासः— इन्द्रके रथके सारथि घोडोंपर अच्छा नियंत्रण रखते हैं ।

२ केता भूर्णयः त्वा न आ दभ्नुवन्ति— प्रसिद्ध शत्रु भी तुझे दबा नहीं सकते ।

[६५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (हस्तयोः) अपने हाथोंमें (अप्रक्षितं) क्षयरहित (वसु) धनको (बिभर्षि) धारण करता है, तथा हे (श्रुतः) प्रसिद्ध इन्द्र ! (तन्वि) अपने शरीरमें (अषाळ्हं सहः) न दबाये जानेवाले बलको (दधे) धारण करता है, (ते तनूषु) तेरे शरीरोंमें (भूरयः क्रतवः) बहुतसे कर्म हैं, अतः तेरे शरीर (कर्तृभिः) कर्मोंसे (अवतासः न) जैसे कुएं मनुष्योंसे घिरे रहते हैं, उसी प्रकार (आवृतासः) घिरे हुए रहते हैं ॥ ८ ॥

१ इन्द्र ! हस्तयोः अ-प्रक्षितं वसु बिभर्षि— हे इन्द्र ! तू हाथोंमें क्षयरहित धनको धारण करता है ।

२ श्रुतः ! तन्वि अषाळ्हं सहः दधे— हे प्रसिद्ध इन्द्र ! अपने शरीरमें न दबाये जानेवाले बलको धारण करता है ।

३ ते तनूषु भूरयः क्रतवः— तेरे शरीरोंसे बहुतसे कर्म होते हैं ।

[५६]

[६६०] (भुर्वणिः) भरणपोषण करनेवाला (एषः) यह इन्द्र (तस्य) उस यजमानके (पूर्वीः चम्रिषः) बहुतसे सोमके पात्रोंसे (अत्यः योषां न) जैसे घोडा घोडीसे मिलता है, उसी प्रकार (अव उदयंस्त) मिलता है, यजमान भी (महे) बडे युद्धके लिए (हरियोगं) घोडोंसे जुडे हुए (ऋभ्वसं) चमकते हुए (हिरण्ययं रथं आवृत्य) सुनहरे रथको घेरकर बैठे हुए इस (दक्षं) बलवान् इन्द्रको (पाययते) सोम पिलाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रके सारथि घोडोंपर अच्छा नियंत्रण रखते हैं, इसलिए इन्द्र कभी भी युद्धोंमें पराजित नहीं होता, इसीके कारण वह भयंकरसे भयंकर शत्रुओंको भी दबा देता है । इसी प्रकार राजाके घोडे तैय्यार और हृष्टपुष्ट रहें, उसको अपने शासनमें रखनेवाले सारथि भी सुशिक्षित और अपने कार्यमें कुशल हों, इस प्रकार वह राजा अपने शत्रुओंपर अधिकार करनेवाला वीर हो ॥ ७ ॥

इस इन्द्रके पास कभी न क्षीण होनेवाले धन रहते हैं । वह अपने शरीरमें अप्रतिम बल धारण करता है । यह इन्द्र हमेशा कर्म करता रहता है, कभी भी निष्क्रिय या आलसी होकर नहीं बैठता । इसी प्रकार राजा भी हमेशा अत्युत्तम धन और ऐश्वर्यसे युक्त होकर बलशाली हो, तथा वह हमेशा राष्ट्रकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहे, कभी भी निष्क्रिय या आलसी होकर न बैठे ॥ ८ ॥

६६१ तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥
६६२ स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥
६६३ देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥

अर्थ— [६६१] (सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न) जैसे धनके चाहनेवाले, परदेश जानेके लिए समुद्रमें जाते हैं उसी प्रकार (नेमन्निषः) हविको ले जाते हुए (परीणसः) चारों तरफ जानेवाले (गूर्तयः) स्तोता (तं) उस इन्द्रके पास जाते हैं हे स्तोता ! (वेना गिरिं न) जैसे नदियां पहाडको घेरती हैं, उसी प्रकार (दक्षस्य विदथस्य) महान् यज्ञके स्वामी (सहः) बलवान् इन्द्रको (तेजसा) अपने तेजसे (अधि रोह) घेर लो ॥ २ ॥

१ सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न— धन चाहनेवाले परदेश जानेके लिए समुद्रमें जाते हैं। परदेशमें जाकर व्यापार आदि करके धन कमाते हैं।

[६६२] (सः) वह इन्द्र (तुर्वणिः) शत्रुओंको मारनेवाला तथा (महान्) श्रेष्ठ है। (आयसः, दुध्रः) लोहमय कवचवाला, शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र (मदे) उत्साहमें (येन) जिस बलसे (मायिनं शुष्णं) मायावी शुष्ण असुरको (आ भूषु) कारागृहोंमें (दामनि) रस्सियोंसे (रामयत्) बांधता है, वह उसका (अरेणु) अनिन्दनीय (तुजा शवः) शत्रुको मारनेवाला बल (पौंस्ये) संग्राममें (गिरेः भृष्टिः न) पहाडकी चोटीके समान (भ्राजते) प्रकाशित होता ॥ ३ ॥

१ आयसः दुध्रः मदे मायिनं शुष्णं आभूषु दामनि रामयत्— वह लोहेके कवचवाला, शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र उत्साहमें मायावी शुष्णको कारागृहोंमें रस्सियोंसे बांधता है।

२ तुजा शवः पौंस्ये भ्राजते— शत्रुको मारनेवाला बल संग्राममें चमकता है।

[६६३] (यः) जो इन्द्र (धृष्णुना शवसा) शत्रुको मारनेवाले बलसे (तमः बाधते) अन्धकारका नाश करता है, ऐसे (ऊतये त्वावृधा इन्द्रं) संरक्षणके लिए तेरे द्वारा बढाये गए इन्द्रसे (यदि) जब (देवी तविषी) दिव्य बल (सूर्यः उषसं न) उषासे सूर्यके समान (सिषक्ति) सम्बन्धित होता है, तब (अर्हरिष्वणिः) शत्रुओंको रुलानेवाला इन्द्र (बृहद् रेणुं गमयाति) बहुत धूलिको उडाता है ॥ ४ ॥

१ धृष्णुणा शवसा तमः बाधते— वह इन्द्र अपने बलसे अन्धकारका नाश करता है।

२ यदि इन्द्रं देवी तविषी सिषक्ति अर्हरिष्वणिः बृहद् रेणुं गमयति— जब इन्द्रसे दिव्य बल प्रकट होता है, तब वह इन्द्र बहुत धूलि उडाता है अर्थात् जब बलसे युक्त होने पर सेनाओंके साथ शत्रु पर हमला करता है, तब सेनाके चलनेसे बहुत धूलि उडती है।

भावार्थ— यह इन्द्र हमेशा सोमसे घिरा रहता है और उत्तम रथपर बैठकर यह चारों ओर घूमता है। जिस प्रकार धन चाहनेवाले व्यापार करनेकी इच्छासे परदेश जाते हुए समुद्रको पार करते हैं, अथवा जिस प्रकार नदियां चारों ओरसे पहाडको घेरे रहती हैं, उसी प्रकार सब स्तुतियां इस इन्द्रके पास जाकर उसे घेरती हैं ॥ १–२ ॥

यह ऐश्वर्यवान् देव शत्रुओंको मारते समय लोहेका कवच धारण करके उत्साहमें शत्रुओंका विनाश करता है, तब उसका तेज उसी तरह चमकता है, जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशमें पर्वतोंकी चोटियां चमकती हैं ॥ ३ ॥

यह शक्तिशाली इन्द्र अपनी शक्तिसे बादलोंद्वारा फैलाए गए अन्धकारका नाश करता है और अपने उत्तम बलसे युक्त होता है, तब वह उषासे संयुक्त हुए हुए सूर्यके समान चमकता है और शत्रुओंपर आक्रमण करते समय इसकी सेनाके कारण बहुत धूलि उडती है ॥ ४ ॥

६६४ वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजो ऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
६६५ त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्या रुजः ॥ ६ ॥

[५७]

(ऋषिः- सव्य आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती ।)

६६६ प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
६६७ अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥

अर्थ—[६६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बर्हणा) शत्रुको मारनेवाले तूने (यत्) जब (तिरः) वृत्र द्वारा ढके हुए (धरुणं अ-च्युतं रजः) सबको धारण करनेवाले, नष्ट न होनेवाले जलको (दिवः) द्युलोकसे (आतासु) सभी दिशाओंमें (अतिष्ठिपः) फैला दिया और (यत्) जब (मदे हर्ष्य) सोमसे हर्षित होते हुए (स्वमीळ्हे) युद्धमें (वृत्रं अहन्) वृत्रको मारा, तब (अपां अर्णवं) जलोंके समुद्रको (नि अब्जः) नीचे मुखवाला किया है ॥ ५ ॥

[६६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (माहिनः त्वं) महान् तूने (ओजसा) बलसे (धरुणं) जलको (पृथिव्याः सदनेषु) पृथिवीके सब स्थानोंमें (धिषः) फैलाया, (त्वं) तूने ही (सुतस्य मदे) सोमके उत्साहमें (अपः अरिणाः) जलको बहाया तथा तूने ही (समया पाष्या) घर्षणशील बलसे (वृत्रस्य अरुजः) वृत्रको मारा ॥ ६ ॥

[५७]

[६६६] (यस्य) जिस इन्द्रकी (प्रवणे अपां इव) नीचेकी तरफ बहनेवाले प्रवाहके समान (दुर्धरं रायः) कठिनतासे वशमें करने योग्य सम्पत्ति (विश्व आयु अपावृतं) सभी मनुष्योंके लिए खुली हुई है, ऐसे उस (प्र मंहिष्ठाय) अत्यन्त दानशील, (बृहते बृहद्रये) महान् बडे ऐश्वर्यवाले, (सत्यशुष्माय) सच्चे बलवाले (तवसे) अत्यन्त महान् इन्द्रकी (मतिं भरे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ यस्य रायः विश्व-आयु अपावृतम्— इस इन्द्रकी सम्पत्ति सभी मनुष्योंके लिए खुली हुई है ।

[६६७] (यत्) जब (इन्द्रस्य) इन्द्रका (श्नथिना) शत्रुको मारनेवाला (हर्यतः हिरण्ययः वज्रः) सुन्दर सुनहरा वज्र (पर्वते न सं अशीत) बादलको मारनेमें कमजोर नहीं रहा (अध) तब हे इन्द्र ! (विश्वं) सारा जगत् (ते) तेरे लिए (इष्टये अनु असत्) यज्ञ करने लगा और (आपः निम्ना इव) जैसे जल नीचेकी ओर बहता है, उसी प्रकार (हविष्मतः सवना) यज्ञकर्ताके सोम तेरे पास बहने लगे ॥ २ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने सोमरस पीनेके बाद उसके उत्साहमें आवरण करनेवाले वृत्रको मार कर उसके द्वारा रोककर रखे गए जलको पृथ्वीपर सब जगह बहाया ॥ ५-६ ॥

इस ऐश्वर्यवान् देवकी सम्पत्ति उसी प्रकार है, जिस प्रकार बहता हुआ पानी । अतः जिस प्रकार प्रवाहको इकट्ठा करना असंभव है, उसी प्रकार इसकी सम्पत्तिको इकट्ठा करना असंभव है, अथवा यदि किसी प्रकार पानी इकट्ठा कर भी लिया जाए तो वह सडने लगता है, उसी प्रकार इकट्ठा किया हुआ धन भी सडने लगता है अर्थात् निरुपयोगी हो जाता है । अतः धनका सदुपयोग मनुष्योंके हितकारी कामोंमें अवश्य होना चाहिए ॥ १ ॥

इस इन्द्रके शत्रुको मारनेवाला, सुन्दर और शक्तिशाली वज्र, सामर्थ्य और तेज लोगोंके हित करनेमें प्रयत्नशील रहते हैं । इस इन्द्रकी इस शक्तिको देखकर सारी प्रजा इस इन्द्रकी स्तुति करती है ॥ २ ॥

६६८ अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥

६६९ इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥

६७० भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६८] हे ! (शुभ्र उषः) हे तेजस्विनी उषे ! (यस्य) जिस इन्द्रकी (धाम) तेजस्वी (नाम) प्रसिद्ध (इन्द्रियं ज्योतिः) शक्ति और तेज लोगोंको (श्रवसे) अन्नादि देनेके लिए (हरितः न) घोडेके समान (अयसे अकारि) इधर उधर चलते हैं, ऐसे (अस्मै भीमाय) इस वीर तथा (पनीयसे) प्रशंसनीय इन्द्रके लिए (न) अब (अध्वरे) यज्ञमें (नमसा आ भर) नमस्कार करो ॥ ३ ॥

१ यस्य धाम नाम इन्द्रियं ज्योतिः श्रवसे अयसे अकारि— इस इन्द्रके तेजस्वी तथा प्रसिद्ध सामर्थ्य और तेज लोगोंको अन्नादि देनेके लिए प्रयत्नशील होते हैं ।

[६६९] हे (प्रभूवसो पुरुस्तुत इन्द्र) बहुत धनवाले, बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (ये) जो हम (त्वा आरभ्य) तेरा आश्रय लेकर (चरामसि) विचरण कर रहे हैं, वे (वयं) हम (ते) तेरे हैं, और (इमे) ये अन्य भी (ते) तेरे हैं, हे (गिर्वणः) हे वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्र ! (त्वत् गिरः) तेरी स्तुतिकी (अन्यः नहि सघत्) दूसरा कोई हिंसा नहीं कर सकता, अतः (नः तद् वचः) हमारे उस प्रार्थनाकी (क्षोणीः इव) अन्य मनुष्योंकी तरह (प्रति हर्य) इच्छा कर ॥ ४ ॥

सघत्— हिंसा करना ' षघ् हिंसायाम् '

१ त्वत् गिरः अन्यः नहि सघत्— इस इन्द्रके यशको दूसरा कोई नष्ट नहीं कर सकता ।

[६७०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते वीर्यं भूरि) तेरा बल महान् है, हम (तव स्मसि) तेरे हैं, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (अस्य स्तोतुः) इस स्तोताकी (कामं आ पृण) कामना पूर्ण कर, (बृहती द्यौः) महान् द्युलोक (ते वीर्यं अनु ममे) तेरे पराक्रमकी प्रशंसा करता है, (च) और (इयं पृथिवी) यह पृथिवी (ते ओजसे) तेरे बलके आगे (नेमे) झुकती है ॥ ५ ॥

ममे— शब्द करना, प्रशंसा करना, मापना " माङ् माने शब्दे च "

१ बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु ममे— महान् द्युलोक भी तेरे पराक्रमकी प्रशंसा करता है ।

२ इयं पृथिवी ते ओजसे नेमे— यह पृथिवी तेरे बलके आगे झुकती है ।

भावार्थ— इस प्रकार यह इन्द्र हर तरहसे लोगोंका हित करता है। इसीलिए इसकी सब ओरसे स्तुति होती है ॥३॥
जो बिना किसी छल कपटके आत्मसमर्पणके भावसे पूर्णतया इस इन्द्रकी शरणमें आते हैं, वे इस इन्द्रके ही हो जाते हैं। तब उस भक्तका कोई भी कुछ अहित नहीं कर सकता। क्योंकि यह बहुत सामर्थ्यशाली है। इसलिए इसके यशको भी कोई नष्ट नहीं कर सकता या कलंक नहीं लगा सकता। इतने उत्तम चरित्रवाला राजा हो ॥ ४ ॥
यह सत्य है कि इन्द्र ही सब तरहके बलोंको धारण करता है। वह वीर है क्योंकि वह भयानकसे भयानक शत्रुको भी आसानीसे मार देता है ॥ ५ ॥

६७१ त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥ ६ ॥

[५८]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती; ६-९ त्रिष्टुप् ।)

६७२ नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥ १ ॥
६७३ आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २ ॥

अर्थ— [६७१] हे (वज्रिन् इन्द्र) हे वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तूने (महां उरुं तं पर्वतं) महान् बलशाली उस मेघके (वज्रेण) अपने वज्रसे (पर्वशः चकर्तिथ) टुकडे टुकडे कर डाले और (निवृताः अपः) रुके हुए जलप्रवाहोंको (सर्तवै) बहनेके लिए (अवासृजः) बाहर निकाला, (केवलं) केवल तूही (विश्वं सहः) सब बलोंको (दधिषे) धारण करता है, यह (सत्रा) सत्य है ॥ ६ ॥

सत्रा, सत्य— सत्रा इति सत्य नाम 'सत्रा इत्था (निरु. ३।१०।१३) इति तन्नामसु पाठात्'
१ केवलं विश्वं सहः दधिषे— केवल वह इन्द्र ही सब बलोंको धारण करता है ।

[५८]

[६७२] (नू चित् सहो-जाः) निःसन्देह बलके साथ उत्पन्न हुआ (अमृतः) यह अमर अग्निदेव (नि तुन्दते) कभी व्यथित नहीं होता (यत् विवस्वतः दूतः अभवत्) जिस समय वह विवस्वान्का सहाय्यकारी हुआ (साधिष्ठेभिः पथिभिः) उस समय उत्तम सहाय्यक मार्गोंसे (रजः वि ममे) उसने अन्तरिक्ष-लोकमें गमन किया प्रकाश किया और (देवताता हविषा आ विवासति) देवताओंकी शक्ति फैलानेके कार्यमें हविके अर्पणसे देवोंका आदरातिथ्य भी किया ॥ १ ॥

[६७३] (अजरः) जरारहित अग्नि (स्वं अद्म युवमानः) अपने भक्ष्यके साथ मिलता हुआ (तृषु अविष्यन्) तुरन्त ही खाद्य खाकर (अतसेषु तिष्ठति) काष्ठोंपर जलता रहता है (प्रुषितस्य पृष्ठं) घी सिंचित होनेपर वह (अत्यः न) घोडेके समान (रोचते) शोभता है (दिवः सानु न) और द्युलोकके शिखरपर रहनेवाले मेघके समान (स्तनयन्) गर्जता हुआ (अचिक्रदत्) वारंवार शब्द करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— वह दयालु है, क्योंकि वह आत्मसमर्पणके भावसे आनेवाले अपने भक्तकी हर तरहसे सहायता करता है और उसे किसी भी प्रकारका दुःख नहीं होने देता । इसी प्रकार राजा भी अपने शरणागतोंकी हर तरहसे रक्षा करनेवाला हो ॥ ६ ॥

यह अग्नि बलसे उत्पन्न होता है । यह बलके पुत्र होनेसे कभी भी दुःखी नहीं होता । यही अग्नि अन्तरिक्षमें जाकर सूर्यको प्रकाशित करता है । अन्तरिक्षमें जाकर यह सबको प्रकाशित करता है । और सभी देवताओंकी यह सेवा करता है जो बलवान् है, उसको किसी तरहके कष्ट नहीं हो सकते । जो निर्बल है, वही सदा दुःखी होता है । इसलिए सुख प्राप्त करनेकी इच्छावालोंको बलवान् होना चाहिए ॥ १ ॥

अग्नि अपने खाने योग्य पदार्थोंको खाता हुआ बढता है और अपनी सुरक्षा करता है । उसी प्रकार जो अपने स्वास्थ्यके अनुकूल पदार्थोंको खाता है, वही अपनी सुरक्षा और अपनी वृद्धि कर सकता है । इस प्रकारसे बढा हुआ मनुष्य बहुत बलशाली होकर उच्चस्थानपर जाकर विराजमान होता है ॥ २ ॥

६७४ क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥
६७५ वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥
६७६ तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥
६७७ दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥

अर्थ— [६७४] (क्राणा, रुद्रेभिः वसुभिः पुरोहितः) कर्तृत्वशाली, रुद्रों और वसुओं द्वारा प्रमुख स्थानमें रखा हुआ (होता, अमर्त्यः रयिषाट् निषत्तः देवः) हवनकर्ता, अमर शत्रुके धनोंको जीतकर लानेवाला यहां विराजमान हुआ देव (रथः नः) रथकी तरह (विक्षु ऋञ्जसानः) प्रजाओंमें वर्णनीय होकर (आयुषु आनुषक्) सब लोगोंमें क्रमसे (वार्या वि ऋण्वति) स्वीकार करने योग्य धन लाता है ॥ ३ ॥

[६७५] (वात-जूतः) वायु द्वारा प्रेरित होकर (अतसेषु जुहुभिः सृण्या तुविष्वणिः) लकडियोंमें जब अपनी ज्वालाओंकी तेजस्वितासे साथ बडा शब्द करता हुआ (वृथा वि तिष्ठते) सहजहीसे रहता है (हे अजर रुशदूर्मे अग्ने) हे जरारहित तेजस्वी ज्वालाओंवाले अग्ने ! (यत् तृषु वनिनः वृषायसे) तब तत्काल वृक्षोंमें अपना बल प्रकट करते हुए (ते एम कृष्णं) तेरा मार्ग काला दिखाई देता है ॥ ४ ॥

[६७६] (वातचोदितः तपुर्जम्भः) वायु द्वारा प्रेरित हुआ ज्वालारूप दंष्ट्रावाला अग्नि (वने साह्वान्) वनमें बलसे (यूथे वंसगः न, अव वा वाति) गौसमुदायमें सांडकी तरह, घूमता है (अक्षितं रजः पाजसा अभि व्रजन्) जब यह अक्षय अन्तरिक्षमें अपने बलसे घूमता है, (पतत्रिणः स्थातुः चरथं भयते) तब सारे स्थावर जंगम इस पक्षीके समान वेगसे आनेवालेसे डरते हैं ॥ ५ ॥

[६७७] (अग्ने) हे अग्ने ! (मानुषेषु भृगवः) मनुष्योंमें भृगुओंने (दिव्याय जन्मने) देवत्वकी प्राप्तिके लिये (चारुं रयिं न) सुन्दर धनके समान (जनेभ्यः सुहवं, होतारं) मनुष्योंके द्वारा अच्छे प्रकारसे आवाहन करने योग्य (अतिथिं) अतिथिके समान पूज्य और (वरेण्यं, मित्रं न शेवं) वरण करने योग्य, मित्रके समान सुखकारी (त्वा आ दधुः) तुझको धारण किया ॥ ६ ॥

१ भृगवः मानुषेषु जनेभ्यः दिव्याय जन्मने वरेण्यं आ दधुः— भृगुओंने मनुष्योंके समाजमें सब मनुष्योंके कल्याण करने और उनके जन्मको दिव्य बनानेके लिए इस अग्रणीको स्थापित किया ।

२ सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः— यह अग्नि उत्तम प्रकारसे स्तुतिके योग्य, सुन्दर, देवोंको बुलानेवाला और अतिथिके समान पूजनीय है ।

भावार्थ— कर्ममें कुशल, उद्यमी, अमर, शत्रुका पराभव करनेवाला, दैवी सम्पत्तिसे युक्त यह नेता अग्नि अपनी उन्नतिके लिए हमेशा प्रयत्नशील और गतिशील रहता है । मनुष्योंमें सदा उत्तम धन देता है । इसी तरह मनुष्यको भी अपनी उन्नतिके लिए हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए । कभी अयोग्य वस्तुको स्वीकार नहीं करना चाहिए ॥ ३ ॥

यह अग्नि वायुसे प्रेरित होकर हमेशा बढता है । तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त होता है और वनोंपर अपना प्रभाव रखता है । जिधरसे यह अग्नि जाता है, वह मार्ग काला पड जाता है । उसी प्रकार मनुष्य अपने सहायकोंसे प्रेरणा पाकर आगे बढता जाए और मार्गोंपर अपने चिन्ह छोडता जाए ॥ ४ ॥

ज्वालारूपी जबडोंवाला यह अग्नि वनोंका पराभव करता है, अन्तरिक्षमें भ्रमण करता है । जब वनमें आग लगती है, तब इसकी ज्वालायें आकाशमें खूब ऊंची जाती हैं । इसके इस भयंकर रूपको देखकर सारे पशुपक्षी घबडा जाते हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपने शत्रुओंका पराभव करके अपने यशको चारों ओर फैलाये, ताकि शत्रु उसके यशको देखकर घबडायें ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तुझे मानवोंमें भृगु ऋषियोंने दिव्यत्वके रक्षणके लिये उत्तम रीतिसे स्थापित किया था । तथा श्रेष्ठ सम्माननीय अतिथिके समान और मित्रके समान पूज्य मानने लगे थे ॥ ६ ॥

६७८ होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥

६७९ अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥

६८० भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

अर्थ— [६७८] (सप्तजुह्वः) सात होता लोग और (वाघतः) तथा स्तुति करनेवाले ऋत्विक् लोग (अध्वरेषु) बडे बडे यज्ञोंमें (यजिष्ठं, होतारं) श्रेष्ठतम देवताओंको बुलानेवाले (यं वृणते) जिस अग्निका वरण करते हैं। उस (विश्वेषां वसूनां अरतिं) सम्पूर्ण धनोंको प्राप्त करानेवाले (अग्निं) अग्निकी (प्रयसा सपर्यामि) हवि अन्नादिसे मैं सेवा करता हूं । और उससे (रत्नं यामि) रत्नकी प्राप्ति भी करता हूँ ॥ ७ ॥

१ अध्वरेषु वाघतः— हिंसारहित अकुटिल कर्मोंमें इस अग्निकी प्रशंसा की जाती है ।

२ विश्वेषां वसूनां अरतिः— यह अग्रणी सब तरहके धनोंका दाता है ।

[६७९] (सहसः सूनो) हे बलसे उत्पन्न और (मित्रमहः) मित्रका महत्त्व बढानेवाले अग्ने ! (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तुति करनेवालोंके लिये (अद्य) आज इस कर्ममें (अछिद्रा शर्म यच्छ) छिद्रसे रहित सुख दे; क्योंकि हे (ऊर्जो नपात् अग्ने) बलको न गिरानेवाले अग्ने ! हम (गृणन्तं) स्तुति करनेवालोंकी जिस प्रकार (आयसीभिः पूर्भिः) लोहेके दृढ किलोंसे रक्षा करते हैं, उसी प्रकार तू (अंहसः उरुष्य) पापोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ८ ॥

१ मित्रमहः— मित्रकी महत्ता बढानेवाला ।

२ अच्छिद्रं शर्म यच्छ— यह अग्रणी अक्षय सुख देता है ।

३ आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं उरुष्य— लोहेकी नगरियोंसे स्तोताकी रक्षा कर । वैदिक समयमें नगरियोंका रक्षण लोहेके किलोंसे होता था । कई नगरियोंके चारों ओर लोहेके किले रहते थे ।

[६८०] (विभावः) हे प्रकाशसे युक्त अग्ने ! (गृणते) यजमानको तू (वरूथं भव) अनिष्टसे बचानेवाला हो । (मघवन्) हे धनसम्पन्न अग्ने ! तू (मघवद्भ्यः) धनयुक्त यजमानके लिये (शर्म) सुखकारी हो । (अग्ने) हे अग्ने ! (गृणन्तं, अंहसः उरुष्य) स्तुति करते हुये हमारी पापोंसे रक्षा कर । (धियावसुः) बुद्धिसे धन देनेवाला यह अग्नि (प्रातः मक्षू जगम्यात्) सवेरे शीघ्र ही आवे ॥ ९ ॥

भावार्थ— सात होता और ऋत्विज यज्ञोंमें श्रेष्ठ होता अग्निको स्वीकारते हैं । और सब धनोंको प्राप्त करते हैं। हविसे उस अग्निका सत्कार करते हैं और रमणीय धन प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! स्तुति करनेवालोंको तेजस्वितासे युक्त सुख दे । हे बल उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! स्तुति करनेवालोंको लोहेके किलोंके समान, पापोंसे दूर रख । उनको सुरक्षित रख ॥ ८ ॥

हे प्रकाशमान देव अग्ने ! सुरक्षित घरके समान तू हमारा उत्तम संरक्षण करनेवाला हो । हे धनवान् अग्ने ! यजमानको उत्तम सुख दे । जो स्तुति करते हैं उनको तू उत्तम आनंद दे तथा उनकी रक्षा पापसे कर ॥ ९ ॥

[५९]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- अग्निर्वैश्वानरः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८१ वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद् ययन्थ ॥ १ ॥

६८२ मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥

६८३ आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥

६८४ बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥

---

[५९]

अर्थ— [६८१] (अग्ने) हे अग्ने ! (अन्ये अग्नयः) दूसरे सब अग्नि (ते वयाः इत्) तेरी शाखाएं हैं (विश्वे अमृताः) सब देव (त्वे मादयन्ते) तेरे पाससे ही आनन्द पाते हैं (वैश्वानर) हे विश्वके नेता ! (क्षितीनां नाभिः असि) सब मानवों–प्राणियोंका–तू नाभि है (उपमित् स्थूणा इव) समीपस्थ स्तम्भके समान (जनान् ययन्थ) सब जनोंका तू आधार है ॥ १ ॥

[६८२] (अग्निः) यह अग्नि (दिवः मूर्धा) द्युलोकका सिर (पृथिव्याः नाभिः) और पृथ्वीकी नाभि है (अथ रोदस्योः अरतिः अभवत्) यह द्यावापृथ्वीका स्वामी है (तं त्वा देवं) उस तुझ देवको (देवासः अजनयन्त) सब देव प्रकट करते हैं । (वैश्वानर) हे विश्वके नेता ! (आर्याय ज्योतिः इत्) आर्योंके लिये तूने प्रकाशका मार्ग बताया है ॥ २ ॥

[६८३] (सूर्ये ध्रुवासः रश्मयः न) सूर्यमें जिस तरह स्थायी प्रकाश किरणें रहती हैं, (वैश्वानरे अग्नाः) उसी तरह इस विश्वके नेता अग्निमें (वसूनि आ दधिरे) सब धन रहते हैं । (या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु) जो पर्वतों, औषधियों, जलों (या मानुषेषु) तथा मानवोंमें संपत्तियाँ हैं (तस्य राजा असि) उसका तू राजा है ॥ ३ ॥

[६८४] (रोदसी सूनवे बृहती इव) द्यावापृथिवी इस पुत्ररूप विश्वनेताके लिए बडी भारी विस्तृत सी हो गयी है (मनुष्यः न) मनुष्यके समान (दक्षः होता) दक्ष होता (स्वर्वते सत्यशुष्माय नृतमाय वैश्वानराय) इस सामर्थ्यवान्, सत्य बलसे युक्त, मानवश्रेष्ठ विश्वनेताके लिये (पूर्वीः यह्वीः गिरः) प्राचीनकालसे चली आयी विशाल स्तुतियां गाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सभी प्राणियोंका केन्द्र है, उसीके सहारे सब प्राणी जीवित रहते हैं । जिस प्रकार गृह खंभोंके आधारपर खडे रहते हैं, उसी प्रकार सभी प्राणी इसीके सहारे रहते हैं । इसीलिए यह विश्वका नेता है । यह सारे विश्वका नाभि है । यह श्रेष्ठ सज्जनोंको प्रकाशका मार्ग दिखाता है ॥ १–२ ॥

जो कुछ भी पर्वतों, औषधियों, जलों और मानवोंमें है, अर्थात् जो कुछ इस विश्वमें है, उसका यह राजा है उस सबका स्वामी और अधिपति है । उसके यजनके लिए ही इन सब पदार्थोंका स्पष्टीकरण होना चाहिए । जिस प्रकार सूर्यकी किरणें सूर्यमें समाई रहती हैं, उसी प्रकार सभी विश्व इस अग्निमें समाया हुआ है । इसलिए इसका विशाल यश द्यु और पृथ्वीमें भी नहीं समा सकता ॥ ३–४ ॥

६८५ दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥
६८६ प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६ ॥
६८७ वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥

[६०]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८८ वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥

अर्थ— [६८५] हे (जातवेदः वैश्वानरः) वेदज्ञाता विश्वनेता ! (ते महित्वं) तेरी महिमा (बृहतः दिवः चित्) बडे द्युलोकसे भी (प्र रिरिचे) बडी है (मानुषीणां कृष्टीनां) मानवी प्रजाओंका (राजा असि) तू राजा है (युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) तू युद्धसे देवोंके लिये धन देता है ॥ ५ ॥

[६८६] (वृषभस्य महित्वं प्र वोचं नु) मैं बलवान् देवके महात्म्यका वर्णन करता हूं (पूरवः यं वृत्रहणं सचन्ते) सब नागरिकजन इस वृत्रनाशकके पास पहुंचते हैं (वैश्वानरः अग्निः) विश्वनेता अग्नि (दस्युं जघन्वान्) दस्युका वध करता है (काष्ठाः अधूनोत्) दिशाओंको हिला देता है (शम्बरं अव भेत्) और शम्बरका भेदन करता है ॥ ६ ॥

[६८७] (वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः) यह विश्वनेता अपनी महिमासे सब मानवका हितकारी है (भरद्वाजेषु यजतः विभावा) अन्नका दान करनेवालोंमें यह पूजनीय और वैभवशाली है, (शातवनेये पुरुणीथे) शतवनके पुत्र पुरुनीथके यज्ञमें (सूनृतावान् अग्निः शतनीभिः जरते) यह सत्यवचनी अग्निदेव सैकडों गानोंसे गाया जाता है ॥ ७ ॥

[६०]

[६८८] (वह्निं) हविको ढोनेवाले, (यशसं) कीर्तिसे युक्त (विदथस्य केतुं) यज्ञके झण्डेके समान, (सुप्राव्यं) अच्छी प्रकारसे रक्षा करने योग्य, (सद्यः अर्थं) शीघ्र धन प्राप्ति करानेवाला, (दूतं) देवताओंको हवि पहुँचानेके लिये दूत कार्य करनेके लिये नियुक्त, (द्विजन्मानं) एक द्युलोकमें दूसरे पृथ्वी लोकमें ऐसे दो लोकोंमें दो बार जन्म लेनेवाले, (रयिं इव) धनकी तरह (प्रशस्तं) श्रेष्ठ इस प्रकारके अग्निको (मातरिश्वा) वायुने (भृगवे रातिं भरत्) भृगुके लिये मित्र बनाया ॥ १ ॥

भावार्थ— मानवी प्रजाजनोंका यह राजा है । राष्ट्रका शासन प्रजाओं द्वारा ही हो, इसीका नाम स्वराज्य है । समाजका शासन समाज द्वारा समाजकी उन्नतिके लिए ही हो । समाजमें सभी देव हों । सभी दैवी सम्पत्तिसे युक्त हों । वे देव युद्धादि प्राप्त धनोंका उपयोग उत्तम कार्योंमें करें ॥ ५ ॥

नागरिक जन शत्रुका वध करनेवाले राजाकी ही सेवा करते हैं । सब जनोंका हित करनेवाला अग्रणी दस्युका वध करता है । दस्युओंको दण्ड देकर आर्योंकी सुरक्षा करनी चाहिए ॥ ६ ॥

अन्न दान करनेवालोंमें यही पूजनीय देव है । अन्न दान करनेमें सब जनोंकी सुस्थिति ही मुख्यतया देखनी होती है । यहां अग्निके रूपमें 'वैश्वा-नर' (सार्वमानुष) अग्निका विशेष वर्णन है । वैश्वानर- सर्व मानवसंघ अग्निका ही एक रूप है ॥ ७ ॥

यह अग्नि यश देनेवाला, धन देनेवाला और धनकी तरह प्रशंसनीय है । यह भरणपोषण करनेवालेका मित्र होता है ॥ १ ॥

६८९ अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होता ऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥
६९० तं नव्यसी हृद आ जायमान-मस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥
६९१ उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥
६९२ तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६८९] (हविष्मन्तः उशिजः) हविवाले, उन्नतिकी इच्छा करनेवाले याजक (ये च मर्ताः) और जो साधारण मानव हैं (उभयासः अस्य शासु सचन्ते) दोनों इसके शासनमें रहते हैं। (आपृच्छ्य वेधाः होता विश्पतिः) प्रशंसनीय, कर्मकुशल, हवनकर्ता और प्रजापालक यह अग्नि (दिवः चित् पूर्वः) दिनसे पूर्व ही (विक्षु नि असादि) प्रजाजनोंमें आकर स्थित हो जाता है ॥ २ ॥

१ उभयासः अस्य शासु सचन्ते— दोनों प्रकारके लोग इसके शासनमें रहते हैं।

२ आपृच्छ्यः दिवः पूर्वं न्यसादि— प्रशंसनीय यह अग्नि सूर्योदयके पूर्व ही अपना कर्तव्य करनेके लिए प्रजाओंमें आ जाता है। यज्ञमें जल्दी ही अग्निकी स्थापना की जाती है।

[६९०] (वृजने) संग्रामके प्राप्त होनेपर (प्रयस्वन्तः ऋत्विजः मानुषासः आयवः) अन्नसे युक्त, ऋतुके अनुसार कर्म करनेवाले, मननशील तथा प्रगति करनेवाले मनुष्य (यं जीजनन्त) जिस अग्रणीको उत्पन्न करते हैं, ऐसे (हृदः जायमानं) हृदयमें प्रकट होनेवाले (मधुजिह्वं तं) मधुरभाषी उस अग्रणीको (अस्मत् नव्यसी सुकीर्तिः अश्याः) हमारी नवीन और उत्तम कीर्ति प्राप्त हो ॥ ३ ॥

१ मधुजिह्वं अस्मत् सुकीर्तिः अश्याः— मधुरभाषी उस अग्रणीतक हमारी उत्तम कीर्ति पहुंचे।

[६९१] (उशिक्) कामना करने योग्य (पावकः) पवित्र करनेवाला, (वसुः) धनका स्वामी (वरेण्यः) श्रेष्ठ, (होता) हवनका कर्ता अग्नि (विक्षुः मानुषेषु आधायि) मनुष्यसमाजमें स्थापित किया जाता है। (दमूनाः) शत्रुका दमन करनेवाला, (गृहपतिः) घरोंका पालनकर्ता, (रयीणां रयिपतिः दमे आभुवत्) श्रेष्ठ सब धनोंका स्वामी (अग्निः) यह अग्नि यज्ञशालामें प्रकट होता है ॥ ४ ॥

[६९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (गोतमासः वयं) गोतमगोत्रोत्पन्न हम (वाजंभरं मर्जयन्तः आशुं न) अन्नको देनेवाले तुझे घोडेकी तरह पवित्र करते हुए ! (रयीणां पतिं त्वा) धनके स्वामी तेरी (मतिभिः प्रशंसामः) अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं। (धिया वसुः, प्रातः मक्षू जगम्यात्) कर्म और बुद्धिसे प्राप्त होनेवाला तू हमें प्रातःकालके समयमें शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— सभी तरहके प्राणी इस अग्निके शासनमें रहते हैं। यह हमेशा निरलस होकर अपना कार्य सबसे पूर्व कर डालता है। इसलिए यह अग्रणी प्रजाओंमें प्रशंसित होता है ॥ १ ॥

सब प्राणियोंके शरीरमें उष्णता रूप अग्निके रहनेतक ही उनके शरीर अपना अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं शरीरकी उष्णता दूर हुई तो शरीर मरता है। कार्य करनेमें असमर्थ होता है ॥ २ ॥

यह वीर अग्रणी संग्राममें अपने शौर्य दिखाकर अपना बल प्रकट करता है। अतः हम भी ऐसे उत्तमोत्तम कर्म करें कि हमारी कीर्ति भी इस अग्रणीतक पहुंचे ॥ ३ ॥

यह अग्नि पवित्र करनेवाला तथा धनवान् होनेके कारण मनुष्योंमें सबसे आगे स्थापित किया जाता है। इसी प्रकार सब मनुष्योंको चाहिए कि वे भी सब तरहके उत्तम धनोंके स्वामी होकर सबसे आगे रहें ॥ ४ ॥

पवित्र हुए हुए इस धनके स्वामी अग्रणीकी हम अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं। वह अग्रणी हमें प्रतिदिन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

[६१]

(ऋषिः— नोधा गौतमः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

६९३ अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओह—मिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥

६९४ अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

६९५ अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥

६९६ अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्ती—न्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥

---

[६१]

अर्थ— [६९३] (अस्मै इत् उ तवसे) इसही समर्थ शीघ्रकारी (तुराय माहिनाय ऋचीषमाय) वेगवान् महिमावाले, वर्णनीय गुणवाले (अध्रिगवे इन्द्राय) अप्रतिबंधगतिवाले इन्द्रके लिये मैं, (प्रयः न,) अन्नके दानके समान (ओहं स्तोमं राततमा ब्रह्माणि प्र हर्मि) मननीय स्तोत्र और दातृत्वकी जिनमें अधिक प्रशंसा है ऐसे मंत्र अर्पण करता हूं ॥ १ ॥

[६९४] (अस्मै इत् उ,) मैं इस इन्द्रके लिये (प्रयः इव) अन्न देनेके समानही (प्र यंसि) सोमरस देता हूं (बाधे सुवृक्ति) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्रके लिये (आङ्गूषं भरामि) उत्तम स्तोत्र अर्पण करता हूँ (प्रत्नाय पत्ये इन्द्राय) विश्वके पुराने रक्षक इन्द्रके लिये (हृदा मनसा मनीषा) हृदय, मन और बुद्धिसे (धियः मर्जयन्तः) विचारोंको शुद्ध करनेवाले अनेक स्तोत्र किये हैं ॥ २ ॥

[६९५] (मतीनां सुवृक्तिभिः) बुद्धिपूर्वक किये, उत्तम शत्रुभावनाशक शुभ वाणियोंद्वारा (मंहिष्ठं सूरिं वावृधध्यै) महान् विद्वान् इन्द्रकी महत्ता बढानेके लिये (अस्मै इत्) उसी इन्द्रको (उ त्यं उपमं स्वर्षां आंगूषं) उस उपमायोग्य धनप्रापक घोषको (आस्येन भरामि) अपने मुखसे मैं भर देता हूं, बोल देता हूं ॥ ३ ॥

[६९६] (त्वष्टा इव रथं न) जैसे कारीगर रथको बनाता है (अस्मै इत् उ तत्सिनाय गिर्वाहसे मेधिराय इन्द्राय) वैसे ही इस सब सिद्धि करनेवाले प्रशंसनीय बुद्धिमान् इन्द्रके लिये (स्तोमं गिरः विश्वं इन्वं च सुवृक्ति सं हिनोमि) मैं अपनी वाणियोंके द्वारा सबको उत्तेजित करनेवाले स्तोत्रको प्रेरित करता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र बड़ा ही सामर्थ्यवान्, शीघ्रतासे काम करनेमें प्रवीण, आनन्दपूर्ण, हर्षयुक्त, नित्य उत्साही, अन्योंको आनन्द देनेवाला, राज्य शासन करनेमें समर्थ, सभी विद्याओंमें निपुण और जिसकी सम्पत्ति कोई चुरा नहीं सकता ऐसा सामर्थ्यशाली है। इन सभी गुणोंसे राजाको युक्त होना चाहिए ॥ १ ॥

यह इन्द्र पुरातन प्रथा एवं उत्तम पद्धतियोंको सुरक्षित रखता है। वह सबका अधिपति है। उसके लिए की गई स्तुतियां हृदय, मन और विचारोंको शुद्ध करनेवाली हैं। प्राचीनत्वकी रक्षा राजाको अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि प्राचीन प्रथाओंमें राष्ट्रकी संस्कृति और सभ्यता निहित रहती है ॥ २ ॥

यह इन्द्र बहुत प्रशंसनीय दाता है, ज्ञानी, विद्वान् है सबसे श्रेष्ठ है। ऐसे उत्तम देवकी उत्तम मनसे हमेशा ऐसी स्तुति करनी चाहिए कि उसका उत्साह बढे और वह शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ हो। राजाओंको हमेशा अपने पास ऐसे कवि रखने चाहिए कि जो हमेशा अपनी कविताओंसे उसका उत्साह और जोश बढाते रहें ॥ ३ ॥

वह इन्द्र बलवान् है, प्रशंसनीय है और बुद्धि देनेवाला तथा ज्ञानका देनेवाला है। जैसे कारीगर रथको बनाता है, इसी प्रकार मैं अपनी स्तुतियोंसे इन्द्रको उत्साहित करता हूँ ॥ ४ ॥

६९७ अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्ये—न्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥
६९८ अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥
६९९ अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
७०० अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नी—रिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥

अर्थ— [६९७] (श्रवस्या) धनकी इच्छासे (अस्मै इत् इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए (अर्कं) स्तोत्रको (सप्तिं इव) जैसे घोडेको रथसे संयुक्त करते हैं, उसी प्रकार (जुह्वा) वाणीसे (समंजे) संयुक्त करता हूँ, उस (वीरं, दान-ओकसं) शूरवीर, दान देनेवाले (गूर्तश्रवसं) श्रेष्ठ यशवाले (पुरां दर्माणं) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रकी (वन्दध्यै) स्तुति करनेके लिये मैं बोलता हूँ ॥ ५ ॥

[६९८] (तुजन्) शत्रुकी हिंसा करते हुए (ईशानः) सबके स्वामी, (कियेधाः) अपरिमित बलवाले इन्द्रने (तुजता) शत्रुओंको मारते हुए (वृत्रस्य चित् मर्म) वृत्रके मर्म स्थानपर (येन विदद्) जिस वज्रसे प्रहार किया, उस (सु-अपस्तमं) उत्तम कर्म करनेवाले, (स्वर्यं) शत्रुपर उत्तमतासे फेंके जानेवाले (वज्रं) वज्रको (रणाय) युद्धके प्रयोजनसे (त्वष्टा) त्वष्टाने (अस्मै इत्) इस इन्द्रके लिए ही (तक्षत्) तैयार किया था ॥ ६ ॥

१ अस्मै इत् त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष— इसी इन्द्रके लिए त्वष्टाने उत्तम वेगवान् वज्रको तैय्यार किया।

[६९९] (मातुः) सबको बनानेवाले (महः अस्य इत्) महान् इस इन्द्रने (सवनेषु) यज्ञोंमें (पितुं चारु अन्ना) हविको और उत्तम सोमको (सद्यः पपिवान्) शीघ्र पिया, तथा (विष्णुः) सर्वव्यापक इन्द्रने शत्रुओंके (पचतं) पके हुए अन्नको (मुषायत्) चुराया, तथा (सहीयान्) शत्रुको मारनेवाले (अद्रिं अस्ता) वज्रको फेंकने-वाले इन्द्रने (तिरः) तिरछा करके (वराहं विध्यद्) मेघको मारा ॥ ७ ॥

[७००] (अहिहत्ये) अहिको मार देनेपर (अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए (ग्नाः चित्) गति करनेवाली (देवपत्नीः) देव पत्नियोंने (अर्कं ऊवुः) स्तुति की, उस इन्द्रने (उर्वी) विशाल (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोकको (जभ्रे) पकड लिया, अतः (ते) वे द्यावापृथिवी (अस्य महिमानं) इसकी महिमाका (न परि स्तः) पार नहीं पा सकीं ॥ ८ ॥

१ उर्वी द्यावापृथिवी जभ्रे, अस्य महिमानं न परि स्तः— उस इन्द्रने विशाल द्यावापृथ्वीको अपने अधीन किया, अतः वे द्यावापृथिवी इसकी महिमाका पार नहीं पा सके ।

भावार्थ— जिस प्रकार रथमें जुडे हुए उत्तम घोडे शत्रुओंसे लडनेवाले शूरवीरको युद्धमें उत्तमतासे ले जाते हैं, उसी प्रकार स्तुतियोंसे इस इन्द्रको प्रेरित करना चाहिए, ताकि यह शत्रुओंका वध कर सके ॥ ५ ॥

यह इन्द्र कितने ही असंख्य बलोंको धारण करता है । इसीलिए यह सबपर शासन करता है । यह जिस वज्रसे वृत्रासुरके मर्म स्थान पर आघात करता है, उस वज्रको त्वष्टाने इस इन्द्रके लिए विशेष रूपसे तैय्यार किया था । इसी प्रकार राष्ट्रके शत्रुओंको मारनेके लिए लोग तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र तैय्यार करें और राष्ट्रका संरक्षण करें ॥ ६ ॥

यह इन्द्र सब जगत्का निर्माण करनेवाला है, सबका पालन करनेवाला है । यह सर्वव्यापक है । यह बलशाली इन्द्र शत्रुओंके अन्नोंको नष्ट करके उनका विनाश करता है और वज्रके द्वारा शत्रुओंके नेता वृत्रको मारता है । राजा भी नये नये साम्राज्योंका निर्माण करनेवाला हो, उन साम्राज्योंकी प्रजाओंका उत्तम रीतिसे पालन करे ॥ ७ ॥

अहि नामक असुरको मारनेपर प्रसन्न होकर सभी देवपत्नियोंने इन्द्रकी स्तुति की । उसके कारण उसका यश इतना बढा कि उसका यश द्युलोक और पृथ्वीलोकमें भी नहीं समा सका । इसी तरह अध्यात्ममें जब जीवात्मा कामक्रोध आदि असुरोंको मार देता है, उन्हें विनष्ट कर देता है, तो सारी देवपत्नियां अर्थात् इन्द्रियोंकी शक्तियां आत्माके वशमें हो जाती हैं और तब उस महापुरुषका विस्तृत यश सर्वत्र फैलता है ॥ ८ ॥

७०१ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥
७०२ अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥
७०३ अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

अर्थ— [७०१] (अस्य इत् एव महित्वं) इस इन्द्रका यश (दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि) द्युलोक, पृथिवी, और अन्तरिक्षसे भी (प्ररिरिचे) अधिक है, (दमे स्वराट्) युद्धमें अपने बलसे प्रकाशित होनेवाला (विश्व-गूर्तः) सभी वीरोंमें श्रेष्ठ वीर, (सु-अरिः) उत्तम योद्धा (अमत्रः) अपरिमित बलवाला (इन्द्रः) इन्द्र (रणाय ववक्षे) युद्धके लिए जाता है ॥ ९ ॥

१ दमे स्वराट् विश्वगूर्तः इन्द्रः रणाय ववक्षे— युद्धमें अपने बलसे प्रकाशित होनेवाला श्रेष्ठ वीर इन्द्र युद्धके लिए हमेशा तैय्यार रहता है ।

२ अस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि— इस इन्द्रकी महिमा द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्षसे भी बडी है ।

[७०२] (स-चेताः इन्द्रः) उत्तम ज्ञानवाले इन्द्रने (अस्य इत् एव शवसा) अपने बलसे (शुषन्तं वृत्रं) शोषण करनेवाले वृत्रको (वज्रेण) वज्रसे (वि वृश्चत्) काट डाला, तथा (गाः न) गौवोंके समान (व्राणाः) वृत्र द्वारा रोके हुए (अवनीः) भूमिको (अमुंचद्) मुक्त किया, तथा (दावने) दानशील पुरुषके लिए (श्रवः अभि) अन्न दिया ॥ १० ॥

१ इन्द्रः शुषन्तं वृत्रं वज्रेण वि वृश्चत्— इन्द्रने शोषण करनेवाले वृत्रको वज्रसे काट डाला ।

२ व्राणाः अवनीः अमुंचत्— शत्रु द्वारा कब्जेमेंकी गई भूमिको इन्द्रने छुडाया ।

[७०३] (अस्य इत् त्वेषसा) इस इन्द्रके ही बलसे (सिन्धवः रन्तः) नदियां बहती हैं, (यत्) क्योंकि इसने ही उनको (वज्रेण सीं परि अयच्छत्) वज्रसे सीमित कर दिया, (ईशानकृत्) सब पर शासन करनेवाले तथा (तुर्वणिः) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रने (दाशुषे दशस्यन्) दानशीलके लिए धन देते हुए (तुर्वीतये) तुर्वीति ऋषिके लिए (गाधं कः) स्थानको बनाया ॥ ११ ॥

१ अस्य त्वेषसा सिन्धवः रन्तः— इस इन्द्रके बलसे नदियां बहती हैं ।

२ वज्रेण सीं परि अयच्छत्— वज्रसे इन्द्रने नदियोंको सीमित किया ।

३ तुर्वणिः तुर्वीतये गाधं कः— शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला इन्द्र शत्रुओंको विनष्ट करनेवालेकी ही सहायता करता है ।

भावार्थ— यह इन्द्र अपने शत्रुओंसे लडनेके लिए हमेशा सन्नद्ध रहता है, कभी भी असावधान नहीं रहता। इसीलिए इसके शत्रु भी सदा इससे डरते रहते हैं और इसका यश फैलता रहता है । इसी तरह हर राजा या सेनापतिको चाहिए कि वह युद्धके लिए हमेशा तैय्यार रहे शत्रुओंसे सावधान रहे । जो ऐसा हमेशा सावधान रहता है, वही देशकी अच्छी तरह रक्षा कर सकता है ॥ ९ ॥

उत्तम ज्ञानी इन्द्रने शोषण करनेवाले वृत्रको वज्रसे काट डाला और गायोंको मुक्त किया तथा वृत्रके हाथमें पडी हुई अपनी भूमिको भी छुडाया और इस प्रकार उस इन्द्रका यश फैला । इसी प्रकार राष्ट्रमें प्रजाओंका शोषण करनेवाले जो अधिकारी या अन्य व्यापारी आदि हों, उन्हें विनष्ट करे । राष्ट्रमें गायें स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करें, उन्हें बंधनमें न रखा जाए । शत्रुओं द्वारा जबर्दस्ती कब्जेमें की गई भूमिको राजा मुक्त करे । अर्थात् राष्ट्र अखण्ड रहे ॥ १० ॥

इस इन्द्रके बलके कारण ही नदियां बहती हैं । इसी इन्द्रने वज्रसे नदियोंको सीमित किया है । इसी प्रकार राजा भी बांध आदि बांध कर नदियोंको सीमित करे, अर्थात् नदियां उच्छृंखल होकर बाढ आदिके रूपमें राष्ट्रकी प्रजाओंको कष्ट न दें । यह इन्द्र स्वयं शत्रुओंका विनाशक है, इसलिए शत्रुओंके नाश करनेवाले वीरकी ही यह सहायता करता है ॥ ११ ॥

७०४ अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चे—ष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

७०५ अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधा—न्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

७०६ अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ळा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥

अर्थ—[७०४] हे इन्द्र! (तूतुजानः) शत्रुओंका हिंसक, (ईशानः) सबका स्वामी, (कियेधाः) अपरिमित बलको धारण करनेवाला वह तू (अस्मै वृत्राय) इस वृत्रपर (वज्रं प्रभर) वज्रका प्रहार कर तथा (अर्णांसि इष्यन्) जलोंको बहाते हुए (अपां चरध्यै) प्रवाहोंके बहनेके लिए इस वृत्रके (पर्व) अवयवको (तिरश्चा) वज्रसे (गोः न) जैसे बिजली पदार्थोंको काटती हैं, उसी प्रकार (विरद) काट ॥ १२ ॥

[७०५] हे मनुष्य ! (उक्थैः नव्यः) गुणोंसे प्रशंसनीय यह इन्द्र (यत्) जब (युधे) युद्धमें (आयुधानि इष्णानः) शस्त्रोंका प्रहार करता हुआ (ऋघायमाणः शत्रून्) हिंसक शत्रुओंको (निरिणाति) मारता है, तब (तुरस्य अस्य इत्) शीघ्रता करनेवाले इस इन्द्रके (पूर्व्याणि कर्माणि) पुराने कर्मोंका (प्र ब्रूहि) वर्णन कर ॥१३॥

१ युधे आयुधानि इष्णानः ऋघायमाणः शत्रून् निरिणाति— युद्धमें आयुधोंको शत्रुपर मारता है और हिंसक शत्रुओंको नष्ट करता है ।

२ उक्थैः नव्यः— वह इन्द्र अपने ही गुणोंके कारण सबसे प्रशंसनीय होता है ।

[७०६] (अस्य इत् भिया) इस इन्द्रके ही डरसे (गिर यः च दृळहाः) पर्वत स्थिर हैं, तथा (जनुषः) सबको उत्पन्न करनेवाले (द्यावा-भूमा च तुजेते) द्युलोक और पृथ्वीलोक कांपते हैं, (जोगुवानः नोधाः) गुणवर्णन करनेवाला नोधा ऋषि (वेनस्य ओणिं उप) इस सुन्दर रूपवाले इन्द्रके रक्षणमें रहकर (सद्यः) शीघ्र ही (वीर्याय भुवत्) बलवान् हो गया ॥ १४ ॥

१ अस्य इत् भिया गिरयः च दृळहा— इस इन्द्रके ही डरसे पर्वत स्थिर हैं ।

२ द्यावा-भूमा च तुजेते— द्युलोक और पृथ्वीलोक भी कांपते हैं ।

भावार्थ— अन्तरिक्षकी बिजली जिस प्रकार सभी पदार्थोंको काटती है, अर्थात् जिस पर यह बिजली गिरती है, वही पदार्थ नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार इन्द्रका वज्र जिस शत्रु पर पडता है, वही शत्रु नष्ट हो जाता है । इसी तरह राष्ट्रके राजाकी शक्ति हो । जिस शत्रु पर राजाके शस्त्रास्त्र गिरें वह शत्रु सर्वथा नष्ट हो जाए ॥ १२ ॥

यह इन्द्र बडा फुर्तीला और उत्साहवान् है, वह अपने ही गुणोंके कारण सर्वत्र प्रशंसनीय है । अर्थात् दूसरोंके गुणों और बलोंके आधार पर वह काम नहीं करता । वह अपने ही बलोंका आश्रय लेकर हिंसक शत्रुओंका विनाश करता है । इसी तरह हर राष्ट्रका स्वामी स्वावलम्बी हो, दूसरोंकी सहायताके बिना भी वह अपने बलके सहारे राष्ट्रके शत्रुओंका विनाश करे । इस प्रकार वह अपने गुणोंके कारण सर्वत्र प्रशंसनीय हो ॥ १३ ॥

इस इन्द्रके डरके कारण सभी पर्वत स्थिर हैं और सबको उत्पन्न करनेवाले द्युलोक और पृथ्वीलोक भी डरते हैं । इस सुन्दर रूपवाले इन्द्रकी उपासना करनेवाले तथा (नो-धा) इसकी स्तुतिका धारण करनेवाले जन शक्तिशाली होते हैं ॥१४॥

*

७०७ अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषा—मेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥

७०८ एवा ते हारियोजना सुवृक्ती—न्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

[६२]

(ऋषिः– नोधा गौतमः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

७०९ प्र मन्महे शवसानाय शूष—माङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियाया—ऽर्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥

अर्थ— [७०७] (एकः भूरेः ईशानः) अकेला ही बहुतसे धनोंका स्वामी यह इन्द्र (यत् वव्ने) जिस स्तोत्रकी इच्छा करता है, (त्यत्) उसको (एषां) ये स्तोतागण (अस्मै इत्) इस इन्द्रके लिए (अदायि) गान करते हैं। (इन्द्रः) इन्द्रने (सौवश्व्ये सूर्ये) स्वश्वके पुत्र सूर्यके साथ (पस्पृधानं) युद्ध करते हुए (सुष्विं) सोमयज्ञ करनेवाले (एतशं प्र आवत्) एतश ऋषिकी रक्षा की ॥ १५ ॥

१ एकः भूरेः ईशानः— यह इन्द्र अकेला ही बहुतसे धनोंका ईश्वर है।

[७०८] हे (हारियोजना इन्द्र) घोडोंको अपने रथमें जोडनेवाले इन्द्र! (गोतमासः) गौतमपुत्रोंने (ते एव) तेरे लिये ही इन (सुवृक्ति ब्रह्माणि) शत्रुको हटानेमें समर्थ स्तोत्रोंको (अक्रन्) किया है, अतः तू (एषु) इनमें (विश्वपेशसं धियं धाः) बहुत रूपवाली बुद्धियोंको लगा। वह (धियावसुः) बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र हमारे रक्षणके लिए (प्रातः) प्रातःकाल (मक्षू) शीघ्र ही (जगम्यात्) आवे ॥ १६ ॥

१ गोतमासः विश्वपेशसं धियं धाः— अत्यन्त प्रयत्न करनेवाले ही अत्यन्त सुन्दर रूपवाली बुद्धिको प्राप्त करते हैं।

[६२]

[७०९] हम (शवसानाय) अत्यन्त बलशाली (गिर्वणसे) वाणियोंसे प्रशंसनीय इन्द्रके लिए (अंगिरस्-वत्) अंगिरस् ऋषिके समान (शूषं आङ्गूषं) सुखकारी स्तोत्रका हम (प्र मन्महे) मनन करते हैं। (च) और (सुवृक्तिभिः स्तुवते ऋग्मियाय) शत्रुको हटानेमें समर्थ स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले ऋषिके लिए पूज्य तथा (विश्रुताय नरे) सुप्रसिद्ध नेता इन्द्रके लिए हम (अर्कं अर्चाम) स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अकेला ही सब तरहके ऐश्वर्योंपर शासन करता है, इसलिए यह जिस प्रकारकी स्तुतिकी इच्छा करता है, उसी तरहकी स्तुति वह प्राप्त करता है। सब तरहके ऐश्वर्यसे सम्पन्न मनुष्य हर तरहकी सुख और सुविधा प्राप्त कर सकता है ॥ १५ ॥

अत्यन्त परिश्रमी और प्रयत्नशील लोग ही शत्रुओंको हटानेमें समर्थ होते हैं और ऐसे ही लोग उत्तम रूपवाली बुद्धिको प्राप्त करनेमें सफल होते हैं। अर्थात् प्रयत्न करनेसे ही ज्ञान मिल सकता है ॥ १६ ॥

वाणियोंसे प्रशंसनीय तथा प्रसिद्ध अग्रणी अथवा नेता इन्द्रके लिए की जानेवाली स्तुतियोंपर उपासकको मनन करना चाहिए। यहां वेदोंके अर्थके बारेमें कहा है। वेदका मंत्र बोलनेके साथ उसके अर्थज्ञान पर विचार करना चाहिए ॥ १ ॥

७१० प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥
७११ इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥
७१२ स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३ नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४ ॥
७१३ गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि व॒रुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥

अर्थ— [७१०] (येन) जिस इन्द्रकी सहायतासे (नः पूर्वे पितरः) हमारे प्राचीन पितरोंने तथा (पदज्ञाः अङ्गिरसः) पदोंको जाननेवाले अङ्गिरसोंने (अर्चन्त) स्तुति करते हुए (गाः अविन्दन्) ज्ञानको प्राप्त किया। उस (शवसानाय) बलशाली (महे) महान् इन्द्रके लिए (वः) तुम (आङ्गूष्यं साम) स्तुतिके तथा सामके (महि नमः) महान् स्तोत्रको (प्र भरध्वम्) कहो ॥ २ ॥

१ येन नः पूर्वे पितरः गाः अविन्दन्, पदज्ञाः— इसी इन्द्रकी सहायतासे हमारे पूर्वजोंने ज्ञानको प्राप्त किया था और पदोंके ज्ञाता बने थे।

[७११] (इन्द्रस्य अंगिरसां च इष्टौ) इन्द्रके और अंगिरसोंके यज्ञमें (सरमा) सरमाने (तनयाय) अपने पुत्रके लिए (धासिं विदत्) अन्न प्राप्त किया, (बृहः-पतिः अद्रिं भिनत्) बडे बडे देवोंके स्वामी इन्द्रने मेघोंको मारा (गाः विदद्) जलको प्राप्त किया, तब (नरः) मनुष्य (उस्रियाभिः) गायोंसे (सं वावशन्तः) हर्षित होने लगे ॥ ३ ॥

[७१२] (नवग्वैः दशग्वैः) उत्तम गतिसे तथा अपनी रश्मियोंसे दशों दिशाओंमें (सरण्युभिः) जानेकी इच्छावाले (सप्त विप्रैः) सात ऋषियोंके द्वारा पूजित (स्वरेण सु-स्तुभा स्तुभा) स्वर युक्त उत्तम प्रशंसनीय वज्रसे (स्वर्यः) प्रशंसनीय (सः सः) उस हे (शक्र इन्द्र) सामर्थ्यशाली इन्द्र ! तूने (फलिगं वलं) जलमें स्थित बल असुरको (अद्रिं) तथा मेघको (रवेण) शब्द करते हुए (दरयः) मारा ॥ ४ ॥

नवग्वा— उत्तम गतिवाला — नवनीतगतयः । निरु. ११।१९

दशग्वा— अपनी किरणोंसे दशों दिशाओंमें गमन करनेवाला ।

[७१३] हे (दस्म इन्द्र) दर्शनीय इन्द्र ! तूने (अंगिरोभिः गृणानः) अंगिरा ऋषियोंसे प्रशंसित होते हुए (उषसा सूर्येण) उषा और सूर्यकी सहायतासे (गोभिः) किरणोंद्वारा (अन्धः विवः) अन्धकारका नाश किया, (भूम्याः सानु) भूमिके प्रदेशोंको (वि अ प्रथयः) विस्तृत किया तथा (दिवः रजः उपरं अस्तभायः) द्युलोकके लोकोंके मूल प्रदेशको थामा ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र महाज्ञानी है और समयसे अप्रभावित होनेके कारण गुरुओंका भी गुरु है। इसी ज्ञानी इन्द्रकी कृपासे हमारे पूर्वजोंने ज्ञान प्राप्त किया और पदोंके तथा अङ्गरसोंके जाननेवाले ऋषि बने। वह इन्द्र महाज्ञानी होनेके साथ साथ महाबलशाली भी है। अतः जो बल और ज्ञानकी दृष्टिसे अत्यन्त श्रेष्ठ होता है, वह महान् होता है ॥ २ ॥

सभी देवताओंके स्वामी इन्द्रने मेघोंपर प्रहार करके पानी बरसाया तब सब मनुष्य और गाय आदि पशु बरसात होते देखकर बहुत हर्षित हुए और तब इन्द्र और उसके सहायकोंके लिए लोग यज्ञ करने लगे और उस यज्ञसे बचे हुए अन्नसे कुत्तों आदि जानवरोंका पालन होने लगा ॥ ३ ॥

इन्द्रका वज्र एकबार फेंके जानेपर बडे वेगसे जाता है और इसकी चमक इतनी है कि इसकी किरणोंसे सभी दिशायें चमकती हैं, इसकी सभी प्रशंसा करते हैं। ऐसे वज्रसे वह मेघों और असुरोंको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

अङ्गिरा ऋषियोंसे प्रशंसित होते हुए इस इन्द्रने उषा और सूर्यकी सहायतासे अपनी किरणोंको विस्तृत करके अन्धकारको दूर किया। अन्धकारके दूर होते ही भूमिके प्रदेश दिखाई देने लगे। उषा और सूर्यके उगते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

७१४ तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥

७१५ द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद् रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥

७१६ सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भि- र्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥

अर्थ— [७१४] इस इन्द्रने (उपह्वरे) जमीनके प्रवेशमें (उपराः) बहनेवाली (चतस्रः नद्यः) चार नदियोंको (मधु-अर्णसः) मीठे पानीसे (अपिन्वत्) भर दिया यह (यत्) जो (अस्य दस्मस्य कर्म) इस दर्शनीय इन्द्रका कर्म है (तत् उ प्रयक्षतमं) वही अत्यधिक प्रशंसनीय है, वही (दंसः) कर्म (चारुतमं अस्ति) सबसे सुन्दर है ॥६॥

१. अस्य दस्मस्य कर्म प्रयक्षतमं चारुतमम्— इस दर्शनीय इन्द्रका कर्म अत्यधिक प्रशंसनीय और अत्यधिक सुन्दर है ।

[७१५] (अयास्यः स्तवमानेभिः अर्कैः) अयास्य ऋषिके प्रशंसाके योग्य स्तोत्रोंसे पूजित इन्द्रने (सनजा सनीळे) एक साथ उत्पन्न होनेवाले तथा समान स्थानवाले द्युलोकको (द्विता वि वव्रे) दो रूपमें विभक्त कर दिया तथा (सु-दंसा) उत्तम कर्मा इन्द्रने (मेने परमे व्योमन्) मानके योग्य उत्तम आकाशमें स्थित (भगः न) सूर्यके समान (रोदसी अधारयत्) द्युलोक और पृथिवी लोकको धारण किया ॥ ७ ॥

१ सु-दंसा रोदसी अधारयत्— उत्तम कर्मा इन्द्रने द्युलोक और पृथ्वी लोकको धारण किया ।

[७१६] (विरूपे) अनेक रूपोंवाली, (पुनः भुवा) बार बार उत्पन्न होनेवाली (युवती) दो युवतियां (स्वेभिः एवैः) स्वेच्छानुसार गतियोंसे (दिवं भूमा परि) द्युलोकसे लेकर भूमि तक (सनात्) बहुत समयसे चलती हैं, इनमें (अक्ता) रात्री (कृष्णेभिः) कृष्णवर्णसे युक्त होकर तथा (उषा) उषा (रुशद्भिः वपुर्भिः) देदीप्यमान किरणोंसे युक्त होकर (अन्या अन्या) एक दूसरेसे भिन्न होकर (आ चरतः) चलती हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र जो अपने कर्मोंसे मीठे पानीके स्रोतोंको बढाता है, यह उसका कर्म अत्यन्त प्रशंसनीय और सबसे सुन्दर है ॥ ६ ॥

सर्वप्रथम केवल एक ही लोक था, आगे जाकर इन्द्रने उस एक लोकके दो विभाग कर दिए और वे ही दोनों भाग द्युलोक और पृथ्वीलोकके नामसे प्रसिद्ध हुए । इस प्रकार दो भाग करके इन्द्र उन दोनों लोकोंके बीचमें स्थित हो गया और वहींसे वह दोनों लोकोंको धारण करने लगा । पृथ्वी और द्युलोकके बीचमें स्थित अन्तरिक्षलोकमें रहनेवाली बिजली अपने सामर्थ्यसे इन दोनों लोकोंको धारण करती है ॥ ७ ॥

इस विश्वमें दो स्त्रियां ऐसी हैं, जो निरन्तर चलती रहती हैं । इनका मार्ग पृथ्वीसे लेकर द्युलोकतक है । इनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता । इनमें एक स्त्री काले कपडे पहनकर घूमती है और दूसरी उजले और चमचमाते कपडे पहनकर घूमती है । दोनों एक साथ नहीं रहतीं । पहिलीके रहनेपर दूसरी नहीं रहती और दूसरीके रहनेपर पहली नहीं रहती । इस प्रकार ये दोनों परस्पर विरोधी हैं । इनमें पहिलीका नाम रात्री है और दूसरीका नाम उषा है ॥ ८ ॥

७१७ सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्कमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ॥ ९ ॥
७१८ सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० ॥
७१९ सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ॥ ११ ॥
७२० सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥

अर्थ— [७१७] (सु-अपस्यमानः) उत्तम कर्म करनेवाला (शवसा सूनुः) बलका पुत्र (सु-दंसाः) शोभन कर्मा वह इन्द्र स्तोताओंकी (सख्यं) मित्रताको (सनेमि) बहुत समयसे (दाधार) धारण करता है, हे इन्द्र ! तू (आमासु चित् अन्तः) अपरिपक्व गायोंमें भी (पक्वं पयः) पक्व दूधको (दधिषे) स्थापित करता है और (कृष्णासु रोहिणीषु) काली तथा लाल गायोंमें (रुशद्) सफेद दूधको स्थापित करता है ॥ ९ ॥

१ सु-अपस्यमानः शवसा सूनुः सख्यं सनेमि दाधार— उत्तम कर्म करनेवाला, बलका पुत्र वह इन्द्र स्तोताओंकी मित्रताको प्राचीनकालसे धारण करता है ।

[७१८] (सनात्) बहुत कालसे (सनीळाः) एक स्थान पर रहनेवाली (अ-वाता) स्थिर तथा (अ-मृताः) नष्ट न होनेवाली (अवनीः) अंगुलियां (सहोभिः) अपने बलसे (पुरू सहस्रा व्रता) बहुतसे हजारों कर्म (रक्षन्ते) करती हैं, तथा (स्वसारः) स्वयं चलनेवाली अंगुलियां (जनयः पत्नीः न) जैसे मनुष्य अपनी पत्नियोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार (अ-ह्रयाणं दुवस्यन्ति) प्रशस्तगमनवाले इन्द्रकी सेवा करती हैं ॥ १० ॥

[७१९] हे (दस्म) दर्शनीय तथा (अर्कैः नमसा नव्यः) स्तोत्रोंसे तथा नमस्कारोंसे पूज्य इन्द्र ! तेरे पास (सनायुवः वसूयवः) यज्ञ तथा धनकी कामना करनेवाले (मतयः) ज्ञानीजन (दद्रुः) जाते हैं, हे (शवसावन्) बलवान् इन्द्र ! उनकी (मनीषाः) स्तुतियां (त्वा) तुझे (उशन्तं पतिं उशतीः पत्नीः न) कामना करनेवाले पतिको जिस प्रकार कामना करनेवाली पत्नी प्राप्त होती है, उसी प्रकार (स्पृशन्ति) प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥

[७२०] हे (दस्म) दर्शनीय इन्द्र ! (सनात् एव) प्राचीनकालसे ही (तव गभस्तौ) तेरे हाथोंमें विद्यमान (रायः) धन (नः क्षीयन्ते) क्षीण नहीं होते और (न उप दस्यन्ति) नष्ट भी नहीं होते, हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (द्युमान्, क्रतुमान् धीरः असि) तेजस्वी, कर्म करनेवाला तथा वीर है, हे (शचीवः) सामर्थ्यशाली इन्द्र ! तू (तव शचीभिः) अपने सामर्थ्योंसे (नः) हमें (शिक्ष) धन दे ॥ १२ ॥

१ इन्द्र ! सनात् एव तव गभस्तौ रायः न क्षीयन्ते, न उप दस्यन्ति— हे इन्द्र ! प्राचीनकालसे ही तेरे हाथोंमें विद्यमान धन क्षीण नहीं होते, और नष्ट भी नहीं होते ।

भावार्थ— यह इन्द्रकी ही महिमा है कि अपरिपक्व गायोंसे भी पक्के दूधको प्राप्त किया जा सकता है और गायें काली, लाल, सफेद अर्थात् चाहे जिस रंगकी हों, दूध सफेद ही होता है । ऐसे ऐसे उत्तम कर्म करनेवाला बलका पुत्र इन्द्र सभीका मित्र है ॥ ९ ॥

यद्यपि हाथकी अंगुलियां बडी छोटी रहती हैं, पर कर्म करनेके समय एक होकर कर्म करती हैं तथा सगी बहिनोंकी तरह एक होकर इन्द्रकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार राष्ट्रकी प्रजायें बडी छोटी होनेपर भी राष्ट्रके हितकारी कार्योंमें एक मनवाली होकर प्रयत्न करें और एक मनसे राजाका हित करें ॥ १० ॥

जिस प्रकार पतिकी कामना करनेवाली स्त्री अपने पतिके पास जाती है, और उसे प्रसन्न करती है, उसी प्रकार यज्ञ तथा धनकी कामना करनेवाले ज्ञानीजन इस इन्द्रके पास जाकर उसे अपने स्तोत्रोंसे प्रसन्न करते हैं ॥ ११ ॥

यह इन्द्र तेजस्वी, परिश्रमी, वीर तथा दानशील है, अतः इसके पास रहनेवाला धन कभी क्षीण या नष्ट नहीं होता । इसी प्रकार जो मनुष्य तेजस्वी होकर परिश्रमसे धन कमायेगा और उसका सदुपयोग दानमें करेगा, उसका धन कभी भी नष्ट नहीं होता । दान करनेसे धनकी वृद्धि ही होती है ॥ १२ ॥

७२१ सनायते गोतम इन्द्र नव्य- मतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३ ॥

[६२]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७२२ त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मै- र्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥

७२३ आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वे- रा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥

अर्थ— [७२१] वह इन्द्र (सनायते) सनातनकालसे विद्यमान है, हे (शवसान) बलवान् इन्द्र ! (हरि-योजनाय, सु-नी थाय) अपने रथमें घोडोंको जोडनेवाले, उत्तम नेता तेरी स्तुतिके लिए (गोतमः नोधाः) अत्यन्त तेजस्वी स्तोत्रको धारण करनेवाले ऋषिने (नव्यं ब्रह्म) नये स्तोत्रको (नः) हमारे लिए (अतक्षत्) बनाया, वह (धियावसुः) कर्मसे धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र (प्रातः) प्रातःकाल (मक्षु) शीघ्र ही (जगम्यात्) आवे ॥ १३ ॥

[६२]

[७२२] (यः ह) जिस तूने (जज्ञानः) उत्पन्न होते ही (अमे द्यावापृथिवी) भयभीत द्युलोक और पृथ्वी-लोकको (शुष्मैः) अपने बलोंसे (धाः) धारण किया, और (यत् ह) क्योंकि (ते भिया) तेरे भयसे (विश्वा अभ्वाः गिरयः) सम्पूर्ण बडे बडे पर्वत (दृळ्हासः चित्) दृढ होते हुए भी (किरणाः न) किरणोंके समान (एजन्) कांपते हैं, इसलिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं महान्) तू महान् है ॥ १ ॥

१ जज्ञानः अमे द्यावापृथिवी शुष्मैः धाः— इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही भयभीत द्युलोक और पृथ्वी-लोकको अपने बलोंसे धारण किया ।

२ ते भिया विश्वा अभ्वा गिरयः दृळ्हासः चित् किरणाः न एजन्— इस इन्द्रके डरसे सभी बडे बडे पहाड दृढ होते हुए भी किरणोंके समान कांपते हैं ।

[७२३] हे (अविहर्यत क्रतो, पुरुहूत इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवाले, बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तू (यत्) जब अपने रथमें (विव्रता हरी) विविध कर्म करनेवाले घोडोंको (आवेः) जोडता है, तब तू (येन) जिस वज्रसे (अमित्रान्) शत्रुओंको तथा उनके (पूर्वीः पुरः इष्णासि) बहुतसे नगरोंको तोडता है। उस (वज्रं) वज्रको (जरिता) स्तोता (ते बाह्वोः आ धात्) तेरे हाथोंमें स्थापित करता है ॥ २ ॥

१ इन्द्र ! येन अमित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि वज्रं जरिता ते बाह्वोः आधात्— हे इन्द्र ! तू जिस वज्रसे शत्रुओंको और उनके बहुतसे नगरोंको तोडता है, उस वज्रको स्तोता तेरे हाथोंमें स्थापित करता है।

भावार्थ— यह इन्द्र सनातन कालसे विद्यमान है । अनादि और अनन्त है, यह न कभी उत्पन्न हुआ न कभी मरेगा। यह सदा कर्म करनेमें प्रवृत्त रहता है । और कर्म करके ही धन प्राप्त करता है । कर्ममें अमृत निहित है, अतः कर्म करते रहनेसे जीवनकी वृद्धि होती है और निष्क्रियतासे जीवन क्षीण होता है । साथ ही उस परमात्माकी पूजा भी आवश्यक है । इस प्रकार जो मनुष्य कर्म करता हुआ परमात्माकी उपासना करता है, वह चिरजीवि होता है ॥ १३ ॥

इन्द्रके कर्म आदर्शरूप हैं, इसने कांपते हुए द्यु और पृथ्वीलोकको धारण किया और दृढतासे खडे हुए पर्वतोंको कंपाया । अर्थात् इस इन्द्रके सामने जो विनीत होकर शुद्ध हृदयसे आया, उसकी इसने रक्षा की, पर जो अभिमानसे इन्द्रके सामने सिर ऊंचा करके खडा रहा उसका इस इन्द्रने नाश किया । इसी प्रकार राजा विनीत और पवित्र हृदयवाले सज्जनों-की रक्षा करे और उद्धत एवं अभिमानी दुष्टों एवं शत्रुओंका नाश करे ॥ १ ॥

जब जब यह इन्द्र युद्ध करनेके लिए रथमें घोडोंको जोडता है और शत्रुओंके नगरोंको तोडना चाहता है, तब स्तोता गण उसके हाथोंमें शस्त्रास्त्र देते हैं । इसी प्रकार प्राचीनकालमें शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए जाते समय राजाके लिए, ब्राह्मण स्वस्त्ययन करके उसके हाथोंमें शस्त्र देते थे ॥ २ ॥

७२४ त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
७२५ त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥
७२६ त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (सत्यः) सत्यका पालक है, (एतान् धृष्णुः) शत्रुओंको मारनेवाला है, (त्वं ऋभुक्षा नर्यः) तू ऋभुओंका स्वामी है, और नेता है (त्वं षाट्) तू सहनशील है, (त्वं) तूने (वृजने पृक्षे आणौ) शत्रुओंको मारनेवाले बडे युद्धमें (द्युमते यूने कुत्साय) तेजस्वी, तरुण कुत्सके लिए (सचा) सहायक होकर (शुष्णं अहन्) शुष्णको मारा ॥ ३ ॥

१ कुत्साय शुष्णं अहन्— बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षाके लिए इन्द्रने शोषण करनेवालेको मारा ।

[७२५] हे (वृषकर्मन्, शूर, वृषमणः वृथाषाट् वज्रिन् इन्द्र) शौर्यके कर्म करनेवाले, शूरवीर, कामनाओंके पूरक, अनायास ही शत्रुको जीतनेवाले, वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (यत्) जब तूने (वृत्रं उभ्नाः) वृत्रको मारा, और (यत् ह) जब (योनौ) युद्धमें (दस्यून्) असुरोंको (पराचैः अकृतः) पराङ्मुख कर दिया, तब (त्वं) तूने (सखा) मित्र होकर (त्यत् चोदीः) उस यशको फैलाया ॥ ४ ॥

[७२६] हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (त्वं) तू (मर्तानां अजुष्टौ) शत्रु मनुष्योंके क्रोधित होनेपर (त्यत् दृळ्हस्य) उस दृढसे दृढ शत्रुको भी (अरिषण्यन्) मार देता है, हे इन्द्र ! (अमित्रान्) शत्रुओंको (घना इव) हथौडेसे जैसे लोहेको मारते हैं, उसी प्रकार (श्नथि) मार और (अस्मद् अर्वते) हमारे घोडेके लिए (काष्ठाः वि आयः) दिशाओंको खोल दे ॥ ५ ॥

१ त्वं मर्तानां अ-जुष्टौ त्यत् दृळ्हस्य अरिषण्यन्— हे इन्द्र ! तू शत्रु मनुष्योंके क्रोधित होनेपर उस दृढसे दृढ शत्रुको भी मार देता है ।

भावार्थ— राजा सत्यमार्ग पर चलनेवाला सत्यका पालक हो, शत्रुओंका विनाशक हो, अपने राष्ट्रमें रहनेवाले ऋभुओं अर्थात् बढई, राज आदि कारीगरोंका रक्षक हो, उत्तम नेता हो, समय पडने पर कष्ट आदियोंको सहनेकी क्षमतावाला हो, तथा घमासान युद्धके शुरु होने पर शत्रुओंका नाश करते हुए आगे बढनेवाला हो, तथा राष्ट्रमेंसे बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनोंका रक्षक एवं प्रजाका शोषण करनेवाले दुष्टोंका संहारक हो ॥ ३ ॥

राजा शौर्यके काम करनेवाला, शूरवीर, सभीकी सदिच्छाओंको पूरा करनेवाला, बिना कठिनताके शत्रुओंको जीतनेवाला, वज्रके समान तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंको धारण करनेवाला शत्रुओंको हराकर तथा राष्ट्रमें उपद्रव करके प्रजाको पीडित करनेवाले चोर डाकू आदि दस्युओंको नष्ट करनेवाला तथा सज्जनोंका मित्र हो ॥ ४ ॥

जब कोई शत्रु मनुष्य क्रोधित होकर इन्द्रका मुकाबला करनेके लिए सामने आता है, तो उस समय इन्द्र दृढसे दृढ शत्रुको भी आसानीसे मार देता है । वह शत्रुओंको इसी प्रकार मारता है, जिस प्रकार घनसे लोहेको पीटा जाता है । इस प्रकार शत्रुरहित होकर वह सर्वत्र जाता है अर्थात् उस समय उसके मार्गमें कोई रुकावट नहीं डाल सकता ॥ ५ ॥

७२७ त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥
७२८ त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥
७२९ त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥
७३० अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥

अर्थ— [७२७] हे इन्द्र ! (अर्णसातौ, स्वर्मीळ्हे आजौ) धन प्राप्त करानेवाले, सुखके वर्षक संग्राममें (नरः) योद्धा मनुष्य (त्यद् त्वां) उस प्रसिद्ध तुझे ही सहायार्थ (हवन्ते) बुलाते हैं, हे (स्वधावः) अन्नवान् इन्द्र ! (वाजेषु समर्ये) बलकी परीक्षा होनेवाले संग्राममें (अतसाय्या) योद्धाओं द्वारा प्राप्त की जानेवाली (तव इयं ऊतिः) तेरी यह संरक्षण शक्ति (आ भूत्) हमें प्राप्त हो ॥ ६ ॥

१ वाजेषु अतसाय्या तव इयं ऊतिः आभूत्— बलकी परीक्षा होनेवाले संग्राममें सब लोग इस इन्द्रके रक्षाकी कामना करते हैं ।

[७२८] हे (राजन् वज्रिन् इन्द्र) तेजस्वी वज्रधारी इन्द्र ! (त्वं) तूने (युध्यन्) युद्ध करते हुए (त्यद् सप्त पुरः) शत्रुके उन सात नगरोंको (पुरुकुत्साय) पुरुकुत्सके लिए (दर्दः) तोडा, तथा तूने (सुदासे) सुदासके लिए (यत्) जिस धनको (बर्हिः न) घासके समान (वृथा) बिना परिश्रमके ही (अंहः वर्क्) अंह असुरसे छीन लिया, उस (वरिवः) धनको (पूरवे कः) पुरुके लिए दे ॥ ७ ॥

[७२९] हे (शूर इन्द्र देव) शूरवीर इन्द्र ! (त्वं) तू (यया) जिस शक्तिसे (त्मनं) जीवको शक्तिशाली करता है, वह शक्ति (विश्वधः क्षरध्यै ऊर्जं न) चारों ओर बहनेके लिए जैसे पानीको छोडता है, उसी प्रकार (अस्मभ्यं प्रति यंसि) हमें देता है, (त्यां चित्रां इषं) उस सुन्दर शक्तिको (परिज्मन्) सर्वत्र व्याप्त भूमिमें (आपः न) जैसे जलको बढाता है, उसी प्रकार (पीपयः) बढा ॥ ८ ॥

[७३०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरिभ्यां ते) घोडोंसे युक्त तेरे लिए (गोतमेभिः) गोतमके पुत्रोंने (नमसा ब्रह्माणि अकारि) नमस्कारोंसे युक्त स्तोत्रोंको बनाया, और (आ उक्ता) उनको गाया, हे इन्द्र ! (नः) हमारे लिए (सुपेशसं वाजं आ भर) उत्तम श्रेष्ठ बल दे, वह (धियावसुः) कर्मोंसे धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र (प्रातः) प्रातः काल (मक्षु) शीघ्र ही (जगम्यात्) आवे ॥ ९ ॥

भावार्थ— धन प्राप्त करानेवाले तथा सुख देनेवाले संग्राममें योद्धा इसी इन्द्रको बुलाते हैं और ऐसे संग्रामोंमें, जिनमें योद्धाओंके बलकी परीक्षा होती है, लोग इन्द्रके संरक्षणकी ही कामना करते हैं ॥ ६ ॥

इस इन्द्रने युद्ध करते हुए शत्रुओंके अनेक नगर तोडे, तथा बुराइयोंको दूर करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंकी रक्षा की तथा असुरोंके धनको छीनकर उत्तम पुरुषोंमें बांट दिया । इसी प्रकार राजा भी राष्ट्रमें उपद्रव करनेवाले दस्युओंके धनको छीन कर सज्जनोंका प्रतिपालन करे ॥ ७ ॥

यह इन्द्र आत्माकी शक्तिको बढाता है अर्थात् इन्द्ररूप उस परमात्माकी उपासनासे आत्माकी शक्ति बढती है। इन्द्रकी जिसके ऊपर कृपा होती है, उसकी आत्मशक्ति उसी प्रकार बढती है, जिस प्रकार जलसे अन्न बढता है ॥ ८ ॥

अन्धकारमें भी न रुकनेवाले अर्थात् सदा ही उन्नति करनेवाले ऋषियोंने इन्द्रके लिए स्तोत्रोंको बनाया और गाया। इस प्रकार इन्द्रने प्रसन्न होकर उनकी हर तरहसे रक्षा की और उन्नति की ॥ ९ ॥

[६४]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती, १५ त्रिष्टुप्)

७३१ वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥
७३२ ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥
७३३ युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥

[६४]

अर्थ— [७३१] हे (नोधः) काव्य करनेवाले ऋषे ! (वृष्णे) बल पानेके लिए, (सु-मखाय) यज्ञ भलीभाँति हों, इस हेतुसे, (वेधसे) अच्छे ज्ञानी होनेके लिए और (शर्धाय) अपना बल बढानेके लिए (मरुद्भ्यः) मरुतोंके लिए (सु-वृक्तिं प्र भर) उत्कृष्टतम काव्योंकी यथेष्ट निर्मिति करो, (धीरः) बुद्धिमान् तथा (सु-हस्त्यः) हाथ जोडकर मैं (मनसा) मनसे उनकी सराहना कर रहा हूँ और (विदथेषु आ-भुवः) यज्ञोंमें प्रभावयुक्त (गिरः) वाणियोंकी (अपः न) जलके समान (सं अञ्जे) वर्षा कर रहा हूं अर्थात् उनके काव्योंका गायन करता हूँ ॥ १ ॥

[७३२] (ते) वे (ऋष्वासः) ऊँचे, (उक्षणः) बडे (असु-राः) जीवनका दान करनेवाले, (अ-रेपसः) पापरहित, (पावकासः) पवित्रता करनेहारे, (सूर्याः इव शुचयः) सूर्यकी भांति तेजस्वी, (द्रप्सिनः) सोम पीनेवाले और (सत्वानः न घोर-वर्पसः) सामर्थ्ययुक्त लोगोंके जैसे बृहदाकार शरीरवाले (रुद्रस्य मर्याः) मानों रुद्रके मरणधर्मा वीर (दिवः) स्वर्गसे ही (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए ॥ २ ॥

[७३३] (युवानः) युवकदशामें रहनेवाले (अ-जराः) बुढापेसे अछूते (अ-भोक्-हनः) अनुदार कृपणोंको दूर करनेवाले (अध्रि-गावः) आगे बढनेवाले (पर्वताः इव) पहाडोंकी तरह अपने स्थानपर अटल रूपसे खडे रहनेवाले (रुद्राः) शत्रुओंको रुलानेवाले ये वीर लोगोंको सहायता (ववक्षुः) पहुँचाते हैं; (पार्थिवा) पृथ्वी पर पाये जानेवाले तथा (दिव्यानि) द्युलोकमें विद्यमान (विश्वा भुवनानि) सभी लोक (दृळ्हा चित्) कितने भी स्थिर हों, तो भी उन्हें ये (मज्मना) अपने बलसे (प्र च्यावयन्ति) अपदस्थ कर देते हैं, विचलित कर डालते हैं ॥ ३ ॥

१ पर्वताः इव (स्थिराः)— यदि शत्रु ही प्रारम्भमें आक्रमण कर बैठें तो भी अपने निर्धारित स्थानोंपर अटल भावसे खडे रहनेवाले अतएव शत्रुदलकी चढाईसे अपनी जगह छोडकर पीछे न हटनेवाले।

२ पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवना दृळ्हा चित् मज्मना प्र च्यावयन्ति— भूमिपरके तथा पर्वतशिखरोंपर विद्यमान सुदृढ दुर्गतकको अपने अद्भुत सामर्थ्यसे हिला देते हैं।

भावार्थ— बल, उत्तम कर्म, ज्ञान तथा सामर्थ्य अपनेमें बढे इसलिए वीर मरुतोंके काव्य रचने चाहिए और सार्वजनिक सभाओंमें उनका गायन करना चाहिए ॥ १ ॥

उच्च, महान्, विश्वके हितार्थ अपने प्राणोंका भी न झिझकते हुए बलिदान करनेवाले, निष्पाप, सभी जगह पवित्रता फैलानेवाले तेजस्वी, सोमपान करनेवाले, बलिष्ठ और प्रचंड देहधारी ये वीर मानों स्वर्गसे ही इस भूमंडल पर उतर पडे हों ॥ २ ॥

सदैव नवयुवक, बुढापा आनेपर भी नवयुवकोंके जैसे उमंगभरे, कंजूस तथा स्वार्थी मानवोंको अपने समीप न रहने देनेवाले, किसी भी रुकावटके सामने शीश न झुकाते हुए प्रतिपल आगे ही बढनेवाले, पर्वतकी तरह अपनी जगहपर अटल खडे हुए, शत्रुदलको विचलित करनेवाले ये वीर जनताकी संपूर्ण सहायता करनेके लिए हमेशा सिद्ध रहते हैं। पृथ्वी या स्वर्गमें पाये जानेवाली सुदृढ चीजोंको भी ये अपने बलसे हिला देते हैं, (तो फिर शत्रु इनके सामने थरथर काँपने लगें, तो कौन आश्चर्यकी बात है ?) ॥ ३ ॥

७३४ चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥
७३५ ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥
७३६ पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [७३४] (वपुषे) शरीरकी सुन्दरता बढानेके लिए (चित्रैः आञ्जिभिः) भाँति भाँतिके आभूषणोंद्वारा वे (वि अञ्जते) विशेष ढंगसे अपनी सुषमा वृद्धिंगत करते हैं । (वक्षःसु) छातियोंपर (शुभे) शोभाके लिए (रुक्मान्) सुवर्णके बनाये हारोंको (अधि येतिरे) धारण करते हैं । (एषां अंसेषु) इन मरुतोंके कंधोंपर (ऋष्टयः नि मिमृक्षुः) हथियार चमकते रहते हैं । (नरः) ये नेताके पदपर अधिष्ठित वीर (दिवः) द्युलोकसे (स्व-धया साकं) अपने बलके साथ (जज्ञिरे) प्रकट हुए ॥ ४ ॥

[७३५] (ईशान-कृतः) स्वामी तथा अधिकारीवर्गका निर्माण करनेवाले, (धुनयः) शत्रुदलको हिलानेवाले, (रिश-अदसः) हिंसामें निरत विरोधियोंका विनाश करनेवाले, (तविषीभिः) अपनी शक्तियोंसे (वातान्) वायुओं-को तथा (विद्युतः) बिजलियोंको (अक्रत) उत्पन्न करते हैं । (परि-ज्रयः) चतुर्दिक् वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले तथा (धूतयः) शत्रुसेनाको विकंपित करनेवाले ये वीर (दिव्यानि ऊधः) आकाशस्थ मेघोंका (दुहन्ति) दोहन करते हैं और (भूमिं पयसा पिन्वन्ति) यथेष्ट वर्षाद्वारा भूमिको तृप्त करते हैं ॥ ५ ॥

१ दिव्यानि ऊधः दुहन्ति भूमिं पयसा पिन्वन्ति— दिव्य स्तनोंका दोहन करके भूमंडल पर दूधकी वर्षा करते हैं ।

[७३६] (सु-दानवः) अच्छे दानी, (आ-भुवः) प्रभावशाली (मरुतः) वीर मरुतोंका संघ (विदथेषु) यज्ञों एवं युद्धस्थलोंमें (घृतवत् पयः) घीके साथ दूध तथा (अपः पिन्वन्ति) जलकी समृद्धि करते हैं, (अत्यं न) घोडेको सिखाते समय जैसे उसे घुमाते हैं, ठीक वैसे ही (वाजिनं) बलयुक्त मेघोंको (मिहे) वर्षाके लिए वे (वि नयन्ति) विशेष ढंगसे ले चलते हैं, चलाते हैं और तदुपरान्त (स्तनयन्तं उत्सं) गरजनेवाले उस झरनेका-मेघका (अ-क्षितं दुहन्ति) अक्षय रूपसे दोहन करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् गहनोंसे अपने शरीर सुशोभित करते हैं, वक्षःस्थलोंपर सोनेके हार पहनते हैं, कंधोंपर चमकीले आयुध धारण करते हैं । ऐसी दशामें उन्हें देखनेपर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानों वे स्वर्गमेंसे ही अपनी अतुलनीय शक्तियोंके साथ इस भूमंडलमें उतरे हों ॥ ४ ॥

राष्ट्रके शासनकी बागडोर हाथमें लेनेवाले, शासकोंके वर्गको अस्तित्वमें लानेवाले, शत्रुओंको विचलित करनेवाले, कष्ट देनेवाले शत्रुसैन्यको जड मूलसे उखाड देनेवाले, अपनी शक्तियोंसे चारों ओर बडे वेगसे दुश्मनों पर धावा करनेवाले तथा उन्हें नीचे धकेलनेवाले ये वीर वायुप्रवाह विद्युत एवं वर्षाका सृजन करते हैं । ये ही मेघोंको दुहकर भूमि पर वर्षारूपी दूधका सेचन करते हैं ॥ ५ ॥

उदारधी तथा प्रभावशाली ये वीर मरुत् यज्ञोंमें घृत, दुग्ध तथा जलकी यथेष्ट समृद्धि करते हैं और घोडोंको सिखाते समय जिस ढंगसे उन्हें चलाते हैं, वैसे ही अन्नके उत्पादनमें सहायता पहुँचानेवाले मेघवृंदको निश्चित राहसे चलाते हैं । इस मेघसमूहरूपी बृहदाकार जलकुंडसे पानीके प्रवाह अविरत रूपसे प्रवर्तित करते हैं ॥ ६ ॥

७३७ म॒हि॒षासो॑ मा॒यिन॑श्चि॒त्रभा॑नवो गि॒रयो॒ न स्वत॑वसो रघु॒ष्यद॑ः ।
मृ॒गा इ॑व ह॒स्तिन॑ः खादथा॒ वना॒ यदारु॑णीषु॒ तवि॑षी॒रयु॑ग्ध्वम् ॥ ७ ॥

७३८ सिं॒हा इ॑व नानदति॒ प्रचे॑तसः पि॒शा इ॑व सु॒पिशो॑ वि॒श्ववे॑दसः ।
क्षपो॒ जिन्व॑न्तः॒ पृष॑तीभिर्ऋ॒ष्टिभि॒ः समि॒त् स॒बाध॑ः शव॒साहि॑मन्यवः ॥ ८ ॥

७३९ रोद॑सी आ व॑दता गणश्रि॒यो॒ नृषा॑चः शू॒रा॒ः शव॒साहि॑मन्यवः ।
आ व॒न्धुरे॑ष्वम॒ति॒र्न द॑र्श॒ता वि॒द्युन्न त॑स्थौ मरु॒तो॒ रथे॑षु वः ॥ ९ ॥

अर्थ— [७३७] हे मरुतो ! (महिषासः) बडे, (मायिनः) निपुण कारीगर, (चित्र-भानवः) अत्यन्त तेजस्वी (गिरयः न) पर्वतोंके समान (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे स्थिर रहनेवाले, परन्तु (रघु-स्यदः) वेगपूर्वक जानेवाले तुम (हस्तिनः मृगाः इव) हाथियों एवं मृगोंके समान (वना खादथ) वनोंको खा जाते हो, तोडमरोड देते हो, (यत्) क्योंकि (आरुणीषु) लाल वर्णवाली घोडियोंमेंसे (तविषीः) बलिष्ठोंको ही (अयुग्ध्वं) तुम रथोंमें लगाते हो ॥ ७ ॥

[७३८] (प्र-चेतसः) ये उत्कृष्ट ज्ञानी वीर (सिंहाः इव) सिंहोंके समान (नानदति) गर्जना करते हैं। (पिशाः इव सु-पिशः) आभूषणोंसे युक्त पुरुषोंकी तरह सुहानेवाले, (विश्व-वेदसः) सब धनोंसे युक्त होकर (क्षपः) शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले, (जिन्वन्तः) लोगोंको संतुष्ट करनेवाले, (शवसा अ-हि-मन्यवः) बलयुक्त होनेके कारण जिनका उत्साह कभी घटता नहीं ऐसे वे वीर (पृषतीभिः) धब्बेवाली घोडियोंके साथ और (ऋष्टिभिः) हथियारोंके साथ (स-बाधः) पीडित जनताकी ओर उसकी रक्षा करनेके लिए (सं इत्) तुरन्त इकट्ठे होकर चले जाते हैं ॥८॥

१ पृषतीभिः ऋष्टिभिः स-बाधः सं इत्— (रक्षितुं गच्छन्ति) = सुशोभित आयुध साथ ले दुःखी जनताके निकट जाकर उनकी रक्षा करते हैं।

[७३९] हे (गण-श्रियः) समुदायके कारण सुहानेवाले, (नृ-साचः) लोगोंकी सेवा करनेवाले, (शूराः) वीर, (शवसा अ-हि-मन्यवः) अत्यधिक बलके कारण न घटनेवाले उत्साहसे युक्त (मरुतः) वीर मरुतो! (रोदसी आ वदत) भूतल एवं द्युलोकको अपनी दहाडसे भर दो, (वन्धुरेषु रथेषु) जिनमें बैठनेके लिए अच्छी जगह है, ऐसे रथोंमें (अमतिः न) निर्मल रूपवालोंके समान तथा (दर्शता विद्युत् न) दर्शन करनेयोग्य बिजलीके समान (वः) तुम्हारा तेज (आ तस्थौ) फैल चुका है ॥ ९ ॥

भावार्थ— ये वीर मरुत् बडे भारी कुशल, तेजस्वी, पर्वतकी भांति अपने सामर्थ्यके सहारे अपनी जगह स्थिर रहनेवाले, पर शत्रुओंपर बडे वेगसे हमला करनेवाले हैं और मतवाले गजराजकी भांति वनोंको कुचलनेकी क्षमता रखते हैं। लाल घोडियोंके झुंडमेंसे ये केवल बलयुक्त घोडियोंको ही अपने रथोंमें जोडनेके लिए चुनते हैं ॥ ७ ॥

ये ज्ञानी वीर सिंहकी भांति दहा... हुए घोषणा करते हैं: आभूषणोंसे बनेठने दीख पडते हैं। सब प्रकारके धन एवं सामर्थ्य बटोरकर और शत्रुदलकी धज्जियाँ उडाकर ये सज्जनोंका समाधान करते हैं। इनमें असीम बल विद्यमान है, इस लिए इनका उत्साह कभी घटता ही नहीं। भाँतिभाँतिके अनूठे हथियार साथमें रखकर पीडित प्रजाका दुःख हरण करनेके लिए ये वीर एकत्रित होकर अत्याचारी शत्रुओंपर चढाई करते हैं ॥ ८ ॥

वीर मरुत् जब गणवेश (वरदी) पहनते हैं, तो बडे प्रेक्षणीय जान पडते हैं। इनमें वीरता कूटकूटकर भरी होती है और जनताकी सेवा करनेका मानों इन्होंने ठेका लिया हुआ होता है। पर्याप्त रूपसे बलवान् हैं, अतः इनकी उमंग कभी घटती ही नहीं। जब वे अपने सुशोभित रथोंपर जा बैठते हैं, तो दामिनीकी दमककी भांति तेजस्वी दिखाई देते हैं ॥ ९ ॥

७४० विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्यो-रनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥

७४१ हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥

७४२ घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गण-मृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥

अर्थ— [७४०] (रयिभिः विश्व-वेदसः) अनेक धनोंसे युक्त होनेके कारण सर्व धनयुक्त, (सं-ओकसः) एक ही घरमें रहनेवाले, (तविषीभिः सं-मिश्लासः) भाँति भाँतिके बलोंसे युक्त, (वि-रप्शिनः) विशेष सामर्थ्यवान्, (अस्तारः) शत्रुसेनापर अस्त्र फेंकनेवाले, (अन्-अन्त-शुष्माः) असीम सामर्थ्यवाले, (वृष-खादयः) बडे बडे आभूषण धारण करनेवाले, (नरः) नेतृत्वगुणसे विभूषित वीर (गभस्त्योः) बाहुओंपर (इषुं दधिरे) बाण धारण कर रहे हैं ॥ १० ॥

[७४१] (पयो-वृधः) दूध पीकर पुष्ट बननेवाले, (मखाः) यज्ञ करनेवाले, (अयासः) आगे जानेवाले, (स्व-सृतः) स्वेच्छापूर्वक हलचल करनेवाले, (ध्रुव-च्युतः) अटल रूपसे खडे शत्रुओंको भी हिलानेवाले, तथा (दु-ध्र-कृतः) दूसरोंके द्वारा न घेरे जानेयोग्य अर्थात् अत्यन्त वीर (भ्राजत् ऋष्टयः) तेजस्वी हथियार साथ रखनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (आ-पथ्यः न) चलनेवाला जिस तरह राहमें पडा हुआ तिनका दूर फेंक देता है, ठीक वैसे ही (पर्वतान्) पहाडोंतकको (हिरण्ययेभिः पविभिः) स्वर्णमय रथोंके पहियोंसे (उत् जिघ्नन्ते) उडा देते हैं ॥ ११ ॥

१ पर्वतान् उत् जिघ्नन्ते— पहाडोंको ये नगण्य एवं अकिंचित्कर समझते हैं, इसलिए शत्रुदल पर चढाई करते समय अगर राहमें पहाडोंकी वजहसे कठिनाई प्रतीत हो, तो उन्हें भी तिनका मानकर पार कर जाते हैं और अपने गंतव्य स्थलको पहुंच जाते हैं ।

[७४२] (घृषुं) युद्धके संघर्षमें चतुर, (पावकं) पवित्रता करनेवाले, (वनिनं) जंगलोंमें घूमनेवाले, (वि-चर्षणिं) विशेष ध्यानपूर्वक हलचल करनेवाले, (रुद्रस्य सूनुं) महावीरके पुत्ररूपी इन वीरोंके समूहकी (हवसा) प्रार्थना करते हुए (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं; तुम (श्रिये) अपने ऐश्वर्यको बढानेके लिए (रजस्-तुरं) धूलि उडानेवाले अर्थात् अति वेगसे गमन करनेवाले, (तवसं) बलिष्ठ, (वृषणं) वीर्यवान् तथा (ऋजीषिणं) सोम पीनेवाले (मारुतं गणं) मरुत् समुदायको (सश्चत) प्राप्त हो जाओ ॥ १२ ॥

भावार्थ— विविध धन समीप रखनेवाले, एक ही घर या निवासस्थानमें रहनेवाले, विभिन्न शक्तियोंसे युक्त, शत्रुसेनापर अस्त्र फेंकनेवाले जो भारी गहने पहनते हैं, ऐसे वीर नेता कंधोंपर बाण तथा तरकस धारण करते हैं ॥ १० ॥

गोदुग्ध-सेवनसे पुष्टि पाकर अच्छे कार्य करते हुए शत्रुओंपर हमले करनेके लिए आगे बढनेवाले, स्थिर शत्रुओंको भी विचलित करनेवाले, आभापूर्ण हथियारोंसे सज्ज तथा जिन्हें कोई घेर नहीं सकता, ऐसे ये वीर पर्वतोंको भी नगण्य तथा तुच्छ मानते हैं ॥ ११ ॥

महासमरके छिड जानेपर चतुराईसे अपना कर्तव्य निभानेवाले, पवित्र आचरण रखनेवाले, वनस्थलोंमें संचार करनेवाले, अधिक सोचविचारपूर्वक हलचलोंका सूत्रपात करनेवाले ये वीर मरुत् हैं । हम इन्हीं वीरोंकी सराहना करनेके लिए काव्यगायन करते हैं । तुम लोग भी अपना वैभव बढानेके लिए शीघ्रतासे चढाई करनेवाले, बलिष्ठ, पराक्रमी एवं सोम पीनेवाले मरुतोंके निकट जाओ ॥ १२ ॥

७४३ प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभि—रापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥
७४४ चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥
७४५ नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्त—मृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥

[६५]

(ऋषिः– पराशरः शाक्त्यः । देवता– अग्निः । छन्दः– द्विपदा विराट् ।)

७४६ पश्वा न तायुं, गुहा चतन्तं नमो युजानं, नमो वहन्तम् १
७४७ सजोषा धीराः, पदैरनु ग्मन्—नुप त्वा सीदन्, विश्वे यजत्राः ॥ १ ॥ २

अर्थ— [७४३] हे (मरुतः !) मरुतो ! तुम (वः ऊती) अपनी संरक्षक शक्तिके द्वारा (यं वै आवत) जिसकी रक्षा करते हो, (सः मर्तः) वह मनुष्य (शवसा) बलमें (जनान् अति) अन्य लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होकर (तु तस्थौ) स्थिर बन जाता है । (अर्वद्भिः वाजं) वह घुडसवारोंके दलकी सहायतासे अन्न पाता है, (नृभिः धना भरते) वीरोंकी मददसे यथेष्ट मात्रामें धन इकट्ठा करता है और (पुष्यति) पुष्ट होता है । उसी प्रकार (आपृच्छ्यं क्रतुं) सराहनीय यज्ञकी ओर (आ क्षेति) चला जाता है, अर्थात् यज्ञ करता है ॥ १३ ॥

[७४४] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (मघ-वत्सु) धनिक तथा वैभवसंपन्न लोगोंमें (चर्कृत्यं) उत्तम कार्य करनेवाला, (पृत्सु दुस्-तरं) युद्धोंमें विजेता, (द्युमन्तं) तेजस्वी, (शुष्मं) बलिष्ठ, (धन-स्पृतं) धनसे युक्त, (उक्थ्यं) सराहनीय, (विश्व-चर्षणिं) सब लोगोंके हितकर्ता (तोकं) पुत्र एवं (तनयं) पौत्र (धत्तन) होते रहें । उसी प्रकार (शतं हिमाः पुष्येम) हम सौ वर्षतक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें ॥ १४ ॥

[७४५] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अस्मासु) हममें (स्थिरं वीर-वन्तं) स्थायी तथा वीरोंसे युक्त, (ऋतीषाहं) शत्रुओंका पराभव करनेवाले, (शतिनं सहस्रिणं) सैंकडों और सहस्रों तरहके, (शूशुवांसं) वर्धिष्णु (रयिं) धनको (नु धत्त) अवश्य ही स्थापित करो, (प्रातः) प्रातःकालके समय (धिया-वसुः) बुद्धि द्वारा कर्मोंका सम्पादन करके धन पानेवाले तुम (मक्षु जगम्यात्) शीघ्र हमारे निकट चले आओ ॥ १५ ॥

[६५]

[७४६] (गुहा चतन्तं) गुहामें रहनेवाले, (नमः युजानं) अन्नको सिद्ध करनेवाले, (नमः वहन्तं) अन्नको साथ रखनेवाले, (पश्वा तायुं न) पशुको (चोरी करके उसके साथ रहनेवाले) चोरको जैसे ॥ १ ॥

[७४७] (सजोषाः धीराः) मिलकर रहनेवाले धीर वीर लोग (पदैः अनु ग्मन्) उसके पावोंके चिन्होंसे पता लगाकर उसे प्राप्त करते हैं, (विश्वे यजत्राः त्वा उप सीदन्) वैसे सभी याजक तेरे समीप चारों ओर बैठते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर जिसकी रक्षा करते हैं, वह दूसरोंसे भी अपेक्षाकृत उच्च एवं श्रेष्ठ ठहरता है और अपने पैदल तथा घुडसवारोंके दलमें विद्यमान वीरोंकी सहायतासे यथेष्ट धनधान्य बटोरता हुआ हृष्टपुष्ट होकर भाँति भाँतिके यज्ञ करता रहता है ॥ १३ ॥

उत्साहसे कार्य करनेवाले, लडाइयोंमें सदैव विजयी बननेवाले, शक्ति तथा बलसे लबालब भरे हुए, धन बढानेवाले, सराहनीय, समूची जनताके हितके लिए बडी लगनसे प्रयत्न करनेवाले पुत्र एवं पौत्र धनाढ्य लोगोंके घरोंमें उत्पन्न हों और हम पूरी एक शताब्दि तक जीवित रह कर पुष्टि प्राप्त करें ॥ १४ ॥

हमें उस धनकी आवश्यकता है, जो चिरकाल तक टिक सके, जिससे वीरता बढे, शत्रुदलका निःपात करना सुगम हो कीर्ति फैल सके और जो सैंकडों एवं सहस्रों प्रकारका हो, या जिसकी गिनतीमें शतसंख्याका तथा सहस्र संख्याका उपयोग हो ॥ १५ ॥

७४८ ऋतस्यं देवा, अनुं व्रता गु — र्भुवत् परिंष्टिर्द्यौर्न भूमं । ३
७४९ वर्धन्तीमापंः, पुन्वा सुशिंश्वि — मृतस्य योना, गर्भे सुजातम् ॥ २ ॥ ४
७५० पुष्टिर्न रुण्वा, क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म, क्षोदो न शंभु ५
७५१ अत्यो नाज्मन्, त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥ ६
७५२ जामिः सिन्धूनां, भ्रातेव स्वस्रा — मिभ्यान्न राजा, वनान्यत्ति । ७
७५३ यद् वातंजूतो, वना व्यस्थाँ — दुग्निर्ह दाति, रोमां पृथिव्याः ॥ ४ ॥ ८

अर्थ— [७४८] (देवाः ऋतस्य व्रता अनु गुः) देवोंने सत्यके व्रतोंके अनुकूल गमन किया, व्रतोंका पालन किया। (परिष्टिः भुवत्,) बडी खोज चारों ओर हुई (द्यौः न भूम) भूमि स्वर्ग समान सुख देनेवाली बनायी गयी ॥ ३॥

[७४९] (ऋतस्य योना गर्भे सुजातं) सत्यके बीचमें उत्तम प्रकार उत्पन्न (पन्वा सुशिश्वि ईं) स्तुतिसे बढनेवाले इस देवको (आपः वर्धन्ति) जलप्रवाह बढा रहे हैं ॥ ४ ॥

[७५०] (पुष्टिः न रण्वा) पुष्टि जैसी रमणीय होती है, (क्षितिः न पृथ्वी) भूमि जैसी विस्तीर्ण होती है, (गिरिः न भुज्म) पर्वत जैसा भोजन देता है (क्षोदः न शंभु) जल जैसा हितकारी होता है ॥ ५ ॥

[७५१] (अत्यः न अज्मन् सर्गप्रतक्तः) घोडा जैसा युद्धके स्थानपर वीरद्वारा प्रेरित होता हुआ दौडता जाता है (सिन्धुः न क्षोदः) जैसी नदी किनारोंको तोडती हुई आगे बढती है वैसा ही यह अग्नि है (ईं कः वराते) इसको कौन रोक सकता है ? ॥ ६ ॥

[७५२] (सिन्धूनां जामिः) यह नदियोंका मित्र (स्वस्रां भ्राता इव) बहिनोंके लिए भाई जैसा हितकारी, (इभ्यान् न राजा) शत्रुओंका जैसा राजा नाश करता है वैसा यह (वनानि अत्ति) वनोंको खा जाता है ॥ ७ ॥

[७५३] (यत् वातजूतः वना वि अस्थात्) जब वायुसे प्रेरित होकर यह वनोंपर आक्रमण करता है, (अग्निः ह पृथिव्याः रोम दाति) तब यह अग्नि पृथ्वीके बालों-औषधियोंको काटता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— गुहामें रहनेवाले भक्तोंके नमस्कारका स्वीकार करनेवाले चोर जैसे सर्वत्र गुप्त या छिपकर रहनेवाले ईश्वरको ढूंढनेके लिए धीर वीर भक्तपदोंका अनुसंधान करके उस ईश्वरको प्राप्त करते हैं, और उसकी उपासना करनेके लिए वे सब यज्ञ करनेवाले साथ साथ बैठते हैं ॥ १-२ ॥

देवोंने सत्य और उत्तम व्रतोंका पालन किया इससे भूमि स्वर्गके समान रमणीय बन गई। तब सत्यके गर्भ या मध्यमें रहनेवाले तथा प्रशंसाके योग्य इस अग्निको लोग बढाते हैं। यह अग्नि सदा सत्यके द्वारा ही प्राप्य है ॥ ३-४ ॥

पुष्टि जैसी रमणीय होती है, उसी प्रकार यह अग्नि पोषक है और रमणीय भी है। यह भूमिके समान विस्तृत है और पर्वतके समान यह सबको भोजन देता है। जलके समान यह कल्याणकारी, जीवनदाता और हितकर्ता है। जैसे उत्तम घोडा अपने सवारसे प्रेरित होनेपर वेगसे दौडता जाता है और बीचमें रुकता नहीं, उसी प्रकार यह प्रभु भक्तिके शब्दोंसे प्रेरित होकर भक्तके पास सहायताके लिए जाता है। तथा जिस प्रकार नदीका प्रवाह वेगवान् होनेपर भूमिको काटते तथा अन्य विघ्नोंको पार करते हुए आगे बढता है, उसी प्रकार यह अग्नि भी अपने भक्तोंके पास पहुंचता है। उस समय इसको कोई रोक नहीं सकता ॥ ५-६ ॥

अग्निसे जलोंकी उत्पत्ति होनेके कारण यह अग्नि नदियोंका सम्बन्धी है। जैसे भाई बहिनोंका हित करता है, वैसे ही अग्नि सबका भरण-पोषण करता है। यह अग्नि बिजलीके रूपमें मेघोंमें स्थित होकर पानी बरसाता है और उसके द्वारा अन्न उत्पन्न होकर सबका पोषण होता है। इस प्रकार मानो अग्नि ही सबका पोषण करता है ॥ ७ ॥

वायुसे प्रेरित होकर अग्नि जब वनोंपर हमला करता है तब यह अग्नि भूमिके बालों अर्थात् वृक्षोंको काटता है और जिस प्रकार एक राजा शत्रुओंको नष्टभ्रष्ट करता है, उसी प्रकार यह अग्नि वनोंको अर्थात् लकडियोंको खा जाता है। यहां राजाका या क्षत्रियका कर्तव्य बताया है कि जैसे अग्नि लकडीको जलाकर भस्म कर देता है, उसी तरह क्षत्रिय वीर राजा अपने शत्रुओंका नाश करे ॥ ८ ॥

७५४ श्वसित्यप्सु, हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो, विशामुषर्भुत् । ९

७५५ सोमो न वेधा, ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा, विभुर्दूरेभाः ॥ ५ ॥ १०

[६६]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७५६ रयिर्न चित्रा, सूरो न संदृगायुर्न प्राणो, नित्यो न सूनुः १

७५७ तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः, शुचिर्विभावा ॥ १ ॥ २

७५८ दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो, जेता जनानाम् ३

७५९ ऋषिर्न स्तुभ्वा, विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो, वयो दधाति ॥ २ ॥ ४

अर्थ— [७५४-७५५] (उषः भुत् क्रत्वा विशां चेतिष्ठः) उषःकालमें जागनेवाला, अपने कर्मसे प्रजाओंको जगानेवाला (सोमः न वेधाः) सोमकी भाँति बढानेवाला (ऋतः प्रजातः) सत्यसे उत्पन्न (पशुः न शिश्वा विभुः दूरेभाः) पशुके समान चंचल, सर्वत्र व्यापक दूर तक प्रकाश फैलानेवाला यह अग्नि (हंसः न) हंसके समान (अप्सु सीदन्) जलोंमें बैठकर (श्वसिति) प्राण धारण करता है अर्थात् गति करता है ॥ ९-१० ॥

१ उषः भुत् क्रत्वा विशां चेतिष्ठः— यह अग्रणी उषःकालमें जागकर अपने कर्मसे अन्योंको भी जगानेवाला है ।

[६६]

[७५६-७५७] (रयिः न चित्रा) रमणीय धनके समान चाहने योग्य, (सूरः न संदृक्) ज्ञानीके समान सम्यक् द्रष्टा, (आयुः न प्राणः) जीवनके समान प्राणवान्, (नित्यः न सूनुः) सगे पुत्रके समान हित करनेवाला (तक्वा न भूर्णिः) अश्वके समान पोषण करनेवाला और (पयः न धेनुः) दूधको धारण करनेवाली गौके समान उपकारी यह अग्नि (शुचिः विभावा वना सिषक्ति) प्रज्वलित होकर अपने विशिष्ट प्रकाशसे वनोंको जला देता है ॥१-२॥

१ सूरः न संदृक्— ज्ञानीके समान यह अग्रणी सबको अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे देखता है ।

२ नित्यः सूनुः न— सगे पुत्रके समान हितकारी है ।

३ पयः न धेनुः— दूधसे भरपूर गायके समान हितकारी है ।

[७५८-७५९] (ओकः न रण्वः) गृहके समान रमणीय, (यवः न पक्वः) अन्नके समान परिपक्व यह अग्नि (क्षेमं दाधार) लोगोंके लिए कल्याण धारण करता है । (जनानां जेता) शत्रुओंको जीतनेवाला (ऋषिः न स्तुभ्वा) ऋषिके समान स्तुति करनेवाला है और (विक्षु प्रशस्तः) मनुष्योंके मध्यमें प्रशंसनीय, (प्रीतः वाजी न) प्रसन्न मनवाले वीरके समान (वयः दधाति) सबके हितके लिए अपना जीवन अर्पित करता है ॥ ३-४ ॥

१ रण्वः क्षेमं दधाति— यह रमणीय अग्रणी लोगोंका कल्याण करता है ।

२ विक्षु प्रशस्तः प्रीतः वयः दधाति— प्रजाजनोंमें प्रशंसित तथा प्रसन्न मनवाला यह अग्रणी नेता लोगोंके हितके लिए अपना जीवन अर्पित करता है । यह नेताका एक उत्तम लक्षण है ।

भावार्थ— हमेशा कर्म करनेवाला, बढानेवाला, सत्यकी वृद्धिके लिए प्रकट हुआ, चंचल यह अग्नि यज्ञ कर्मोंमें प्रकट होता है ॥ ९-१० ॥

यह अग्रणी देव चाहने योग्य, सम्यक् द्रष्टा, प्राणदाता, हितकारी, पोषक, उपकारी तथा तेजस्वी है ॥ १-२ ॥

रमणीय, उपभोगके योग्य पदार्थोंको देनेवाला, शत्रुओंका विजेता, मनुष्योंमें पूज्य, सदा प्रसन्न रहनेवाला यह अग्रणी नेता अपनी प्रजाओंकी भलाईके लिए अपना जीवन भी दे देता है ॥ ३-४ ॥

७६० दुरोकशोचिः, क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ५
७६१ चित्रो यदभ्राट्, छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी, त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥ ६
७६२ सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्, त्वेषप्रतीका ७
७६३ यमो ह जातो, यमो जनित्वं जारः कनीनां, पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥ ८
७६४ तं वश्चराथा, वयं वसत्यास्तं न गावो, नक्षन्त इद्धम् ९
७६५ सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्व१र्दृशीके ॥ ५ ॥ १०

अर्थ— [७६०-७६१] (दुरोकशोचिः) असह्य तेजवाला, (क्रतुः न नित्यः) नित्य शुभ कर्म करनेवालेके समान कर्मशील (योनौ जाया इव विश्वस्मै अरं) जिस प्रकार घरमें स्त्री सुख देती है, उसी तरह सबको पर्याप्त सुख देनेवाला (चित्रः) विचित्र दीप्ति युक्त यह अग्नि (यत् अभ्राट्) जब प्रकाशमान होता है, उस समय (श्वेतः न) शुभ्र वर्णवाले आदित्यके समान हो जाता है (विक्षु रथः न) प्रजाओंमें महारथी वीरके समान प्रशंसनीय यह अग्नि (समत्सु रुक्मी त्वेषः) संग्रामोंमें सुवर्णमय तेजसे पूरित होता है ॥ ५-६ ॥

१ योनौ जाया इव सर्वस्मै अरं— घरमें जिस प्रकार स्त्री सुखदायी होती है, उसी तरह यह अग्रणी सबको पर्याप्त सुख देता है ।

२ समत्सु रुक्मी त्वेषः— यह अग्रणी वीर युद्धोंमें और अधिक तेजस्वी हो जाता है ।

[७६२-७६३] (सृष्टा सेना इव) शत्रु पर भेजी गई सेनाकी तरह यह अग्नि (अमं दधाति) बलको धारण करता है । (अस्तुः न दिद्युत् त्वेषप्रतीका) वेगसे फेंके गए बिजलीके अस्त्रके समान वह भयंकर और दीप्तियुक्त मुखवाला है । (यमः ह जातः, यमः जनित्वं) जो उत्पन्न हुआ, या जो भविष्यमें उत्पन्न होगा, उन सबका नियामक अग्नि है । अग्नि (कनीनां जारः, जनीनां पतिः) अग्नि कन्याओंका कौमार्य समाप्त करनेवाला, तथा विवाहिताका पति है । (स्त्रियां गार्हपत्य अग्निकी पतिके साथ नित्य पूजन करती हैं इस दृष्टिसे उसको पति कहा गया है) ॥ ७-८ ॥

१ सृष्टा सेना इव अस्तुः दिद्युत् अमं दधाति— शत्रु पर प्रेरित की गई सेनाके समान और वेगसे फेंके गए अस्त्रके समान यह अग्रणी बलशाली है ।

२ कनीनां जारः— यह अग्नि कुमारियोंको कौमार्य समाप्त करता है । विवाहके समय अग्निमें लाजाकी आहुति पडनेके बाद कन्यापन समाप्त हो जाता है । (विवाहसमये अग्नौ लाजादिद्रव्यहोमे सति तासां कन्यात्वं निवर्तते । (सायण)

[विवाहमें लाजाकी आहुति दी जाती है, उसके पश्चात् कन्या पत्नी बन जाती है । अथवा ' लज्जा एव लाजा ' लज्जा ही लाजा है । विवाहोपरान्त पतिके विषयमें पत्नी लज्जा धारण नहीं करती । अथवा जिस स्त्रीकी लज्जा नष्ट हो जाये उसका कन्यात्व भी नष्ट हो जाता है ।]

[७६४-७६५] हे अग्ने ! (गावः) गौवें (अस्तं न,) जिस प्रकार सूर्यके अस्त होने पर घरको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (चराथा वसत्या वयं) पशु और मनुष्योंसे युक्त होकर हम (तं वः) उस प्रसिद्ध तुझको (नक्षन्ते) प्राप्त होते हैं । यह अग्नि (सिन्धुः न क्षोदः नीचीः प्र ऐनोत्) प्रवाहित जलके समान ज्वालाओंको प्रवाहित करता है । उसकी (दृशीके गावः) दर्शनीय किरणें (स्वः नवन्त) आकाशकी ओर ऊपरको उठती हैं ॥ ९-१० ॥

भावार्थ— यह अग्रणी अत्यन्त तेजस्वी, कर्मशील, सुखकारी प्रकाशमान् तथा महारथी है । युद्धमें भी अत्यन्त तेज एवं दृढताके साथ पराक्रम दिखाता है, इसलिए यह मनुष्योंमें प्रशंसनीय होता है ॥ ५-६ ॥

यह अग्रणी सेनाके समान बलशाली तथा शस्त्रके समान भयंकर है । संसारमें उत्पन्न हुए या उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थोंका यह अग्नि नियामक है । सभी पदार्थोंके अन्दर उष्णता रहती है और इसी कारण उनकी सत्ता भी रहती है ॥७-८॥

शामको अपने घरकी तरफ आनेवाली गायोंकी तरह हम भी इस अग्निकी ओर आते हैं । यह अग्नि जब अपनी ज्वालाओंको प्रकट करता है, तब इसकी ज्वालाएं आकाशमें फैलती हैं ॥ ९-१० ॥

[६७]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७६६ वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं, राजेवाजुर्यम् १

७६७ क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत् स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥ २

७६८ हस्ते दधानो, नृम्णा विश्वा—न्यमे देवान् धाद्, गुहा निषीदन् ३

७६९ विदन्तीमत्र, नरो धियंधा हृदा यत् तष्टान्, मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥ ४

७७० अजो न क्षां, दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां, मन्त्रेभिः सत्यैः ५

७७१ प्रिया पदानि, पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने, गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥ ६

---

[६७]

अर्थ— [७६६–७६७] (राजा अजुर्यं इव) जैसे राजा सर्व गुणसम्पन्न वीर पुरुषका वरण करता है वैसे ही (वनेषु जायुः) जंगलमें उत्पन्न, (मर्तेषु मित्रः) मनुष्योंमें मित्र, (क्षेमः न साधुः) रक्षकके समान हितकारी (क्रतुः न भद्रः) यज्ञके समान पूज्य (होता) देवोंको बुलानेवाला अग्नि भी प्रजाकी (श्रुष्टिं) सहायता करनेवालेको (वृणीते) स्वीकार करता है अर्थात् उसका सम्मान करता है। ऐसा (हव्यवाट्) हविको लेजानेवाला यह अग्नि हमारे लिये (स्वाधीः भुवत्) कल्याण करनेवाला हो ॥ १–२ ॥

१ मित्रः साधुः श्रुष्टिं वृणीते— सबका मित्र, सज्जनोंका हित करनेवाला यह अग्रणी प्रजाके कल्याण करनेवालेको अपना सहायक चुनता है।

[७६८–७६९] (विश्वानि नृम्णा) सम्पूर्ण धनोंको (हस्ते दधानः) हाथमें धारण कर (गुहा, निषीदन्) गुफामें रहते हुए इस अग्निने (देवान् अमे धात्) देवोंको बलमें स्थापित किया। (यत् हृदा तष्टान् मन्त्रान् अशंसन्) जब हृदयसे उत्पन्न मन्त्रोंसे स्तुति करते हैं तब (धियं धा नरः अत्र ईं विन्दन्ति) बुद्धिको धारण करनेवाले मनुष्य यहाँ इस अग्निको जानते हैं ॥ ३–४ ॥

[७७०–७७१] (अजः न क्षां दाधार) अजन्मा होकर इस अग्निने पृथ्वीको धारण किया, उसीने (पृथिवीं) अन्तरिक्षको धारण किया तथा (सत्यैः मन्त्रेभिः) सत्य संकल्पोंसे (द्यां तस्तम्भ) द्युलोकको भी स्थिर किया है। हे (अग्ने) अग्ने ! तू (पश्वः प्रिया पदानि निपाहि) पशुओंके प्रिय स्थानोंकी रक्षा कर। क्योंकि (विश्वायुः गुहा गुहं गाः) सब प्राणियोंका आयु रूप तू गुहाओंके अत्यन्त गुप्तस्थानोंमें प्रवेश करता है ॥ ५–६ ॥

भावार्थ— कल्याणकारी, पूज्य, सभीका मित्र यह अग्रणी [illegible]को अपना सहकारी चुनता है, जो प्रजाकी सहायता करता है। इसीलिए यह अग्नि सदा कल्याणके कामोंमें तत्पर [illegible] । १–२ ॥

जब लोग मंत्रोंसे इसकी प्रशंसा करते हैं, तब यह अग्रणी अपना बल प्रकट करता है और फिर अपने बलसे देवोंमें शक्ति बढाता है ॥ ३–४ ॥

यह अग्नि ही अपने सत्यके बलसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीनों लोकोंको धारण करता है। वह अत्यन्त गुप्त रहता है। पर हम सबका रक्षक है ॥ ५–६ ॥

अग्निरूपसे पृथिवीपर, विद्युद्रूपसे अन्तरिक्षमें और सूर्यादिके रूपमें द्युलोकमें अग्नि ही रहता है। और सर्वत्र अग्निके कार्य करता है।

७७२ य ईं चिकेत, गुहा भवन्त—मा यः ससाद, धारामृतस्य ७
७७३ वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद् वसूनि, प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥ ८
७७४ वि यो वीरुत्सु, रोधन्महित्वो—त प्रजा, उत प्रसूष्वन्तः ९
७७५ चित्तिरपां, दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः, संमाय चक्रुः ॥ ५ ॥ १०

[६८]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७७६ श्रीणन्नुप स्थाद्, दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत् १
७७७ परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद् देवो, देवानां महित्वा ॥ १ ॥ २

अर्थ— [७७२-७७३] (यः गुहा भवन्तं ईं चिकेत) जो गुफामें स्थित इस अग्निको जानता है । और (यः ऋतस्य धारां आ ससाद) जो यज्ञके धारक अग्निकी उपासना करता है । तथा (ये ऋता सपन्तः विचृतन्ति) जो लोग यज्ञमें अग्निकी स्तुति करते हैं, (आत् इत् अस्मै वसूनि प्र ववाच) तदनन्तर अग्नि उन सब स्तोतृ जनोंके लिये श्रेष्ठ धनोंकी प्राप्तिके मार्ग बतलाता है ॥ ७-८ ॥

१ यः आ ससाद अस्मै वसूनि प्र ववाच— जो इस अग्रणीकी उपासना करता है, उसे ही यह अग्नि धन-प्राप्तिके मार्ग बताता है ।

[७७४-७७५] (यः वीरुत्सु महित्वा विरोधत्) जो अग्नि औषधियोंमें अपना महत्व स्थापित करता है तथा (उत प्रजाः प्रसूषु अन्तः इति) पुष्प फलादि प्रकट करनेवाले वृक्षोंमें भी अपना महत्त्व स्थापित करता है । (धीरः) ज्ञानी पुरुष उस (चित्तिः अपां दमे विश्वायुः) ज्ञान देनेवाले तथा जलोंके मध्यमें स्थित अग्निकी, (सद्म इव) घरकी तरह (संमाय चक्रुः) पूजा करके अपने काम करते हैं ॥ ९-१० ॥

१ वीरुत्सु महित्वा विरोधत्— वृक्ष वनस्पत्यादियोंमें यह अपना महत्त्व प्रकट करता है ।

[६८]

[७७६-७७७] (भुरण्युः) हविको धारण करनेवाला अग्नि (स्थातुः चरथं श्रीणन्) स्थावर तथा जंगम वस्तुओंको परिपक्व कर (दिवं उपस्थातुः) आकाशको प्राप्त हुआ । उसीने (अक्तून् व्यूर्णोत्) सब रात्रियोंको अपने तेजसे प्रकाशित किया, (एषां विश्वेषां देवानां) इन सब देवोंका (यत् महित्वा) जो महात्म्य था, उस महात्म्यको (एकः देवः) एक अग्निने ही (परि भुवत्) सब ओरसे प्राप्त कर लिया ॥ १-२ ॥

१ विश्वेषां देवानां महित्वा परि भुवत्— सभी देवोंका महत्त्व इस अग्निने पा लिया । यह अग्रणी देव अन्य सब देवोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्ववाला है ।

भावार्थ— जो गुप्तस्थानमें छिपे हुए इस अग्निको जानकर इसकी प्रशंसा, उपासना व स्तुति करता है, वही धन प्राप्त करता है ॥ ७-८ ॥

सबसे प्रथम अग्निकी पूजा करनी चाहिए । इतना महत्त्व इस अग्निका है जो सर्वत्र उपस्थित है ॥ ९-१० ॥

यह अग्नि सब स्थावर और जंगमको जीवन देता हुआ द्युलोककी ओर बढता है । इसलिए यह देवोंमें सर्वाधिक महत्व शाली है । मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति आदियोंमें अग्निके कारण ही जीवनतत्त्व है ॥ १-२ ॥

७७८ आदित् ते विश्वे, क्रतुं जुषन्त शुष्काद् यद् देव, जीवो जनिष्ठाः ३
७७९ भजन्त विश्वे, देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो, अमृतमेवैः ॥ ४ ॥ ४
७८० ऋतस्य प्रेषा, ऋतस्य धीति- विश्वायुर्विश्वे, अपांसि चक्रुः ५
७८१ यस्तुभ्यं दाशाद्, यो वा ते शिक्षात् तस्मै चिकित्वान्, रयिं दयस्व ॥ ३ ॥ ६
७८२ होता निषत्तो, मनोरपत्ये स चिन्न्वासां, पती रयीणाम् ७
७८३ इच्छन्त रेतो, मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥ ८
७८४ पितुर्न पुत्राः, क्रतुं जुषन्त श्रोषन् ये अस्य, शासं तुरासः ९
७८५ वि राय औणोद्, दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं, स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ ॥ १०

अर्थ— [७७८–७७९] हे (देव) प्रकाशमान् अग्ने ! (यत् शुष्कात् जीवः जनिष्ठाः) जब तू सूखे काष्ठके घर्षणसे जलकर उत्पन्न हुआ, तो उसके (आत् इत्) अनन्तर ही (विश्वे ते क्रतुं जुषन्त) सब देव गण तेरे इस कर्तृत्वकी प्रशंसा करने लगे। (अमृतं, एवैः सपन्तः) मरण रहित इस प्रकारके तुझको प्राप्त होनेसे ही (विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्त) वे सब देव यश, सत्य और देवत्वको प्राप्त कर सके ॥ ३–४ ॥

१ अमृतं एव सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्ते— उस अमर अग्रणीकी उपासना करके सब लोग यश, सत्य और देवत्व प्राप्त करते हैं।

[७८०–७८१] यह अग्नि (ऋतस्य प्रेषाः) सत्यका प्रेरक और (ऋतस्य धीतिः) सत्यका रक्षक है (विश्वायुः, विश्वे अपांसि चक्रुः) यह सबको आयु प्रदान करनेवाला है; सब इसीके लिये यज्ञ कर्म करते हैं। (तुभ्यं यः दाशात्) हे अग्ने ! तेरे लिये जो हव्य प्रदान करता है; (यः वा ते शिक्षात्) और जो तुझसे ज्ञान प्राप्त करता है (तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व) तू उसकी योग्यता जानकर धन प्रदान कर ॥ ५–६ ॥

१ यः शिक्षात्, रयिं दयस्व— जो ज्ञान प्राप्त करता है, वही धन भी प्राप्त करता है।

[७८२–७८३] (मनोः अपत्ये होता निषत्तः) मनुष्योंमें होता रूपसे विद्यमान (सः चित् नु आसां रयीणां पतिः) यह अग्नि ही प्रजाओं और धनोंका स्वामी है। (तनूषु मिथः रेतः इच्छन्तः) आपसमें वीर्यके सम्बन्धकी इच्छा करते हुए (अमूराः स्वैः दक्षैः सं जानत) उन ज्ञानियोंने अपने सामर्थ्योंसे पुत्रप्राप्तिके मार्गको जाना ॥ ७–८ ॥

[७८४–७८५] (पितुः न पुत्राः) पिताका आदेश माननेवाले पुत्रोंके समान (ये अस्य शासं) जिन मनुष्योंने इस अग्निकी आज्ञाको (श्रोषन्, तुरासः क्रतुं जुषन्त) सुनकर शीघ्र ही कर्म प्रारंभ कर दिया, उनके लिये (पुरुक्षुः रायः दुरः वि औणोंत्) बहुत अन्न देनेवाले अग्निने धनके द्वार खोल दिये। (दमूनाः स्तृभिः नाकं पिपेश) संयमसे रहनेवाले इस अग्निने ही नक्षत्रोंसे आकाशको अलंकृत किया ॥ ९–१० ॥

१ ये अस्य शासं क्रतुं जुषन्त, रायः दुरः वि औणोंत्— जो मनुष्य इस अग्निके शासनमें रहकर कर्म करते हैं, उनके लिए यह अग्नि धनके द्वार खोल देता है।

भावार्थ— जब यह अग्नि प्रज्वलित होती है, तब इसकी सब उपासना करते हैं। इस अग्निकी उपासना करके ही यश और देवत्व प्राप्त किया जा सकता है ॥ ३–४ ॥

यह अग्रणी सत्यका पालक एवं रक्षक है, उसीकी प्रेरणासे सब कर्म करते हैं। जो इससे नम्रतासे ज्ञान प्राप्त करता है, वही धन भी प्राप्त करता है ॥ ५–६ ॥

यह अग्नि धनोंका स्वामी है। इसी अग्निकी प्रेरणासे मनुष्योंने सन्तानोत्पत्तिका क्रम चलाया ॥ ७–८ ॥

यह मनुष्य अपने शासनमें रहकर कर्म करनेवालोंको धन प्रदान करता है। यह स्वयं भी संयमी है। इसीके सामर्थ्यसे आकाशमें नक्षत्र स्थिर हैं ॥ ९–१० ॥

[६९]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७८६ शुक्रः शुशुक्वाँ, उषो न जारः पप्रा समीची, दिवो न ज्योतिः 1
७८७ परि प्रजातः, क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां, पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥ 2
७८८ वेधा अदृप्तो, अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां, स्वाद्मा पितूनाम् 3
७८९ जने न शेव, आहूर्यः सन् मध्ये निषत्तो, रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥ 4
७९० पुत्रो न जातो, रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो, विशो वि तारीत् 5
७९१ विशो यदह्वे, नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा, विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥ 6

[६९]

अर्थ—[७८६-७८७] (उषः जारः न शुक्रः शुशुक्वान्) उषा-प्रेमी सूर्यके समान शुभ्रवर्ण अग्नि सबका प्रकाशक है। तथा (दिवः न ज्योतिः समीची पप्रा) प्रकाशमान् सूर्यकी ज्योतिके समान अपने तेजसे द्यौ और पृथ्वीको एक साथ पूर्ण करता है। हे अग्ने ! तूने (प्रजातः क्रत्वा परि बभूथ) उत्पन्न होकर अपने कर्म अथवा प्रकाशसे सारे विश्वको व्याप्त कर लिया और (देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः) तू देवताओंका पुत्र होता हुआ भी उनका पिता हो गया ॥ १-२ ॥

१ शुक्रः समीची पप्रा— यह तेजस्वी अग्नि द्यु और पृथ्वीको अपने प्रकाशसे भर देता है।

२ देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः— देवोंका पुत्र होता हुआ भी यह अग्नि हवि आदि पहुंचाकर उनका पालन करता है।

[७८८-७८९] (वेधाः अदृप्तः) बुद्धिमान् और अहंकारसे रहित, (विजानन् अग्निः) कर्तव्याकर्तव्यको जानते हुये अग्नि, (गोनां ऊधः न) गौवोंके थनके दूधके समान (पितूनां स्वाद्म) अन्नोंको स्वादिष्ट करता है। और (जने नः शेवः) मनुष्योंमें हितैषी पुरुषकी तरह (मध्ये आहूर्यः सन्) यज्ञके मध्यमें आहूत होकर (दुरोणे निषत्तः रण्वः) यज्ञ गृहमें आकर शोभायमान होता है ॥ ३-४ ॥

१ वेधाः अदृप्तः गोनां ऊधः न पितूनां स्वाद्म— बुद्धिमान् होते हुए भी निरहंकारी यह अग्नि गायोंके दूधके समान पदार्थोंको स्वादिष्ट करता है।

[७९०-७९१] (दुरोणे पुत्रः न जातः रण्वः) घरमें उत्पन्न हुये पुत्रके समान सुखदायक अग्नि, (वाजी न प्रीतः विशः वि तारीत्) घोडेकी तरह हर्षान्वित होकर मनुष्योंको दुःखसे पार लगाता है। (यत् नृभिः) जब मनुष्योंके साथ मैं (सनीळाः विशः अह्वे) यज्ञमें समान स्थानवाले मनुष्योंका आह्वान करता हूं, तब (अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः) अग्नि देवोंके देवत्वभावको प्राप्त करता है ॥ ५-६ ॥

१ रण्वः प्रीतः वि तारीत्— यह सुखदायक अग्रणी प्रसन्न होनेपर भक्तको दुःखसे पार कराता है।

२ अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः— यह अग्रणी सारे देवभावोंको प्राप्त करता है।

भावार्थ—यह अग्नि अत्यन्त प्रकाशमान् होनेके कारण सभी लोकोंको अपने तेजसे भर देता है। यह अन्नादिसे देवों-विद्वानोंका पालन करता है ॥ १-२ ॥

यह अग्रणी बुद्धिमान् होते हुए भी निरहंकारी है। यही अग्नि अन्नको स्वादिष्ट बनाता है। यज्ञगृहमें यह आकर शोभायमान होता है ॥ ३-४ ॥

पुत्रके समान सुखदायक अग्नि प्रसन्न होकर मनुष्योंको दुःखसे पार कराता है और बुलाए जानेपर सभी उत्तम गुणोंको अपने साथ लेकर आता है ॥ ५-६ ॥

७९२ नकिष्ट एता, व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः, श्रुष्टिं चकर्थ ७
७९३ तत् तु ते दंसो, यदहन्त्समानै- र्नृभिर्यद् युक्तो, विवे रपांसि ॥ ४ ॥ ८
७९४ उषो न जारो, विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ९
७९५ त्मना वहन्तो, दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे, स्व१र्दृशीके ॥ ५ ॥ १०

[७०]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

७९६ वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको, विश्वान्यश्याः १
७९७ आ दैव्यानि, व्रता चिकित्वा- ना मानुषस्य, जनस्य जन्म ॥ १ ॥ २

अर्थ— [७९२-७९३] (यत् एभ्यः नृभ्यः) चूंकि तू नियममें रहनेवाले इन मनुष्योंको (श्रुष्टिं चकर्थ) सहायता करता है, इसलिए (ते एता व्रता नकिः मिनन्ति) तेरे इन नियमोंको कोई तोड नहीं सकता । (यत् अहन्) जो तूने शत्रुओंको मारा और (यत् समानैः नृभिः युक्तः रपांसि विवेः) जो साधारण मानवोंसे युक्त होकर तूने राक्षसोंको मार भगाया (तत् ते दंसः) वह तेरा पराक्रम प्रशंसनीय है ॥ ७-८ ॥

१ व्रता नकिः मिनन्ति— इस अग्रणीके नियमोंको कोई तोड नहीं सकता ।

२ समानैः नृभिः रपांसि विवेः— साधारण मनुष्योंकी सहायतासे अग्रणी वीरने शत्रुओंको मार भगाया । यह इतना वीर है ।

[७९४-७९५] (उषः जारः न विभावा) उषा प्रेमी सूर्यके समान विशेष तेजस्वी (उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत्) और प्रकाशयुक्त, प्रख्यात अग्नि इस मनुष्यको जाने । (त्मना वहन्तः) स्वयं हविको लेकर और (दुरः वि ऋण्वन्) यज्ञ गृहके द्वारको खोलकर (विश्वे) अग्निकी वे सारी किरणें (दृशीके, स्वः) दर्शनीय आकाशमें (नवन्त) चारों ओर जाती हैं ॥ ९-१० ॥

१ दुरः ऋण्वन् दृशीके स्वः विश्वे नवन्त— द्वारोंको खोलकर इस अग्निकी किरणें अनन्त आकाशमें फैल जाती हैं ।

[७०]

[७९६-७९७] जिससे हम (पूर्वीः वनेम) प्रभूत धन माँगते हैं वह (अग्निः) अग्नि (मनीषा, अर्यः सुशोकः) बुद्धिसे प्राप्त करने योग्य, श्रेष्ठ और उत्तमतासे तेजस्वी है । (विश्वानि, दैव्यानि व्रता) देवोंके सब कर्मोंको तथा (मानुषस्य जन्म) मनुष्यके जन्मको (चिकित्वान् आ अश्याः) जाननेवाला यह अग्नि सर्वत्र पूर्णरूपसे व्याप्त हो रहा है ॥ १-२ ॥

१ अग्निः मनीषा— वह अग्नि देव बुद्धिसे प्राप्त करने योग्य है ।

२ विश्वानि दैव्यानि व्रता मनुषस्य जन्म चिकित्वान्— वह देवोंके सम्पूर्ण कर्मों और मनुष्यके जन्मोंको जानता है ।

भावार्थ— यह अग्रणी उन मनुष्योंकी सहायता करता है जो इसके अनुशासनमें रहता है । वह ऐसे मनुष्योंकी सहायता लेकर शत्रुओंको खदेड देता है ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि देव तेजस्वी और प्रकाशयुक्त होनेके कारण सभीके द्वारा ज्ञात है । इसकी ज्वालायें बहुत ऊंची उठती हुई आकाशमें फैल जाती हैं ॥ ९-१० ॥

भरपूर धनको देनेवाला वह अग्नि श्रेष्ठ होनेके कारण बुद्धिसे जाना जा सकता है । वह सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण सब कुछ जानता है ॥ १-२ ॥

७९८ गर्भो यो अपां, गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां, गर्भश्चरथाम् ३
७९९ अद्रौ चिदस्मा, अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो, अमृतः स्वाधीः ॥ २ ॥ ४
८०० स हि क्षपावाँ, अग्नी रयीणां दाशद् यो अस्मा, अरं सूक्तैः ५
८०१ एता चिकित्वो, भूमा नि पाहि देवानां जन्म, मर्तांश्च विद्वान् ॥ ३ ॥ ६
८०२ वर्धान्यं पूर्वीः, क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ७
८०३ अराधि होता, स्वर्निषत्तः कृण्वन् विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥ ८
८०४ गोषु प्रशस्तिं, वनेषु धिषे भरन्त विश्वे, बलिं स्वर्णः ९
८०५ वि त्वा नरः, पुरुत्रा सपर्यन् पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥ १०

अर्थ—[७९८-७९९] (यः अपां गर्भः) जो अग्नि जलोंके बीचमें, (वनानां गर्भः) जंगलोंके बीचमें, (स्थातां गर्भः) स्थावरोंके बीचमें, (च चरथां गर्भः) और जंगम प्राणियोंके बीचमें विद्यमान है। (अमृतः स्वाधीः विश्वः विशां न) यह अमर और उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि सबको उसी प्रकार आधार देता है जिस प्रकार राजा अपनी प्रजाओंको। इसलिए लोग (अस्मै दुरोणे अद्रौ चित् अन्तः) इसे घरमें और पर्वतपर भी हवि देते हैं ॥ ३-४ ॥

१ अपां गर्भः— जलोंके बीच बाडवाग्नि या समुद्रकी अग्निके रूपमें।
२ वनानां गर्भः— वनोंमें दावाग्नि या जंगलकी अग्निके रूपमें।
३ स्थातां गर्भः— स्थावरोंकी अग्नि पत्थरादियोंमें।
४ चरथां गर्भः— मनुष्य या प्राणियोंमें जठराग्निके रूपमें।

[८००-८०१] (यः अस्मै सूक्तैः अरं) जो इस अग्निकी वेदमन्त्रोंसे पर्याप्त स्तुति करता है, उसे (स क्षपावान् अग्निः) वह रात्रीमें प्रदीप्त होनेवाला अग्नि (हि रयीणां दाशत्) निश्चयसे धनोंको प्रदान करता है। (चिकित्वः) हे सर्वज्ञाता अग्ने ! तू (देवानां च मर्तान् जन्म विद्वान्) देवों और मनुष्योंके जन्मोंको जानता है इसलिये (एता भूम निपाहि) समस्त प्राणियोंकी रक्षा कर ॥ ५-६ ॥

[८०२-८०३] (विरूपाः पूर्वीः क्षपः यं वर्धान्) विभिन्न रूपवाली उषायें और रात्रियां जिस अग्निको बढाती हैं। तथा (स्थातुः च रथं ऋतप्रवीतं) स्थावर वृक्षादि और जंगम मनुष्यादि भी सत्य रूपवाले अग्निको बढाते हैं। (स्वः निषत्तः) देवपूजाके स्थानमें बैठकर (होता, विश्वानि अपांसि सत्या कृण्वन् अराधि) देवोंका आह्वाता यह अग्नि सारे कर्मोंके फलोंको सत्य करता हुआ पूजित होता है ॥ ७-८ ॥

[८०४-८०५] हे अग्ने ! तू (वनेषु गोषु प्रशस्तिं धिषे) हमारे वनों और गौवोंमें प्रशंसाको स्थापित कर। (विश्वे नः स्वः बलिं भरन्त) सब मनुष्य हमारे लिये, ग्रहण करने योग्य धनको ले आवें। और (त्वा नरः पुरुत्रा विसपर्यन्) तुम्हारी मनुष्य विविध प्रकारकी पूजा करते हैं और जिस प्रकार (जिव्रेः पितुः न वेदः विभरन्त) पुत्र वृद्ध पितासे धन पाता है उसी प्रकार तुझसे धन प्राप्त करते हैं ॥ ९-१० ॥

भावार्थ— यह अग्नि सर्वत्र व्यापक होकर सबको आधार देता है, इसलिए सर्वत्र इसकी पूजा की जाती है ॥३-४॥
प्रशंसित होकर यह अग्नि स्तोताको धन देता है। यह सर्वज्ञ है अतः सभीके जन्मोंको जानता है और सारे प्राणियोंकी रक्षा करता है ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि सभी समय वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। सभी प्राणी इसे बढाते हैं। यह भी सभी प्राणियोंके कर्मोंके अनुसार फल देता है ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि सभी पदार्थोंको प्रशंसित बनाता है। इसी कारण यह सर्वत्र पूजा जाता है और यह भक्तोंको धन प्रदान करता है ॥ ९-१० ॥

८०६ साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥ ६ ॥ ११

[७१]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

८०७ उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ् चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥

८०८ वीळु चिद् दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥

८०९ दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

अर्थ— [८०६] यह अग्नि (साधुः न गृध्नुः) सत्पुरुषकी तरह सत्कारके योग्य (अस्ता इव शूरः) अस्त्र चलानेवालेके समान वीर, (याता इव भीमः) आक्रमणकारीके समान भयंकर और (समत्सु त्वेषः) युद्धक्षेत्रमें साक्षात् तेज है ॥ ११ ॥

[७१]

[८०७] (न उशतीः जनयः पतिं नित्यं उप प्रजिन्वन्) जैसे कामना करती हुई स्त्रियां अपने पतिको हमेशा अच्छी प्रकारसे प्रसन्न करती हैं, तथा (श्यावीं उच्छन्तीं अरुषीं) श्यामवर्णवाली, अन्धकारको दूर करनेवाली श्वेतवर्णवाली (उषसं) उषाको देखकर जिस प्रकार (गावः) गायें प्रसन्न होती हैं, उसी प्रकार (सनीळाः स्वसारः) एक स्थानमें रहनेवाली भगिनीरूप अंगुलियां (चित्रं उशन्तं अजुषून्) पूजनीय अभिलाषी अग्निको प्रसन्न करती हैं ॥ १ ॥

[८०८] (नः अङ्गिरसः पितरः) हमारे अङ्गिरानामक पितरोंने (उक्थैः विळु चित् दृळ्हा अद्रिं) मंत्र द्वारा बडे और सुदृढ पर्वतके किलेको (रवेण रुजन्) शब्दमात्रसे ही नष्ट कर दिया। उसके पश्चात् तब (बृहतः दिवः गातुं अस्मे चक्रुः) महान् आकाशके मार्गको हमारे लिए बनाया और (स्वः अहः) सुखकर दिवस, (केतुं, अस्राः विविदुः) सूर्य एवं गौवोंको उन लोगोंने प्राप्त किया ॥ २ ॥

१ आंगिरसः दृळ्हा अद्रिं रवेण रुजन्— अंगरसको जाननेवालोंने सुदृढ पहाडके किलेको भी शब्दमात्रसे तोड दिया।

[८०९] (ऋतं दधन्) सत्यको धारण करनेवाले मनुष्योंने (अस्य धीतिं धनयन्) इस अग्निके तेजको धनके समान धारण किया। (आत् इत्) उसके बाद ही (अर्यः दिधिष्वः) धनकी स्वामिनी, तेज धारण करनेवाली (विभृत्राः अतृष्यन्तीः) पोषण करनेवाली, तृष्णारहित (अपसः) कर्म करनेवाली प्रजाएं (प्रयसा) अन्नदानसे (देवान् जन्म वर्धयन्तीः) देवोंको और मनुष्योंको बढाती हुई (अच्छ यन्ति) इस अग्निके पास सीधी जाती हैं ॥ ३ ॥

१ अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः, अतृष्यन्तीः अपसः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः— राष्ट्रकी प्रजाएं धनकी स्वामिनी, तेज धारण करनेवाली, पोषण करनेवाली, तृष्णा रहित, कर्म करनेवाली तथा हविर्दान और अन्नदानसे देवों और मनुष्यको बढानेवाली हों।

भावार्थ— वह अग्नि सत्कारके योग्य, शूरवीर, भयंकर और अत्यन्त तेजस्वी है ॥ ११ ॥

यह अग्नि यज्ञमें जलाई जाती है, सब मनुष्य हवि आदि देकर इसे प्रसन्न करते हैं ॥ १ ॥

अंगरसको जाननेवालोंने पर्वत पर बने किलोंको नष्ट किया और आकाशके मार्गको बनाया जिससे मनुष्योंने धन प्राप्त किया ॥ २ ॥

पहले तेजस्वी बनना चाहिए, फिर उत्तम गुणोंसे युक्त होकर अग्निकी उपासना करनी चाहिए ॥ ३ ॥

८१० मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥

८११ महे यत् पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥

८१२ स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद् राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥

अर्थ— [८१०] (ईं यत् विभृतः मातरिश्वा मथीद्) इस अग्निको जब पोषण करनेवाले वायुने मथकर प्रकट किया तब यह अग्नि (श्येतः गृहे गृहे जेन्यः) शुभ्रवर्णवाला होकर घर-घरमें विजयी हुआ। (आत्, ईं भृगवाणः दूत्यं आ विवाय) फिर भृगुओंने इस अग्निको उसी प्रकार दूत बनाया, (न) जिस प्रकार (सचा सन् सहीयसे राज्ञे) मित्र हुआ हुआ कोई राजा दूसरे प्रबल राजाके पास दूत भेजता है ॥ ४ ॥

१ ईं मातरिश्वा मथीत्— इस अग्निको वायु मथकर पैदा करता है मनुष्य शरीरमें वायुरूप व्यान अग्निको प्रज्वलित रखता है। 'अग्नेर्मन्थनस्य व्यानवायुसाध्यत्वं' (सायण)। प्राण और अपानके मिले हुए रूपको व्यान कहते हैं।

२ गृहे गृहे जेन्यः— यह अग्नि प्रत्येक घर अर्थात् शरीरमें प्रकट होता है।

[८११] (यत्) जब मनुष्य (महे पित्रे दिवे) महान् और पोषण करनेवाले देवगणके लिए (ईं रसं) इस सोमरसको तैय्यार करता है, तब (कः पृशन्यः चिकित्वान्) कौन सज्जन और ज्ञानी पुरुष (अवत्सरत्) इसे चुराकर भाग सकता है ? क्योंकि (अस्ता) अस्त्र फेंकनेमें निपुण यह अग्नि (धृषता) अपने धनुषसे (अस्मै) इस चुरानेवालेपर (दिद्युं सृजत्) बाण फेंकता है। (देवः स्वायां दुहितरि) सूर्यदेव अपनी ही पुत्री उषामें (त्विषिं धात्) तेज स्थापित करता है ॥ ५ ॥

[८१२] हे (अग्ने) अग्ने (तुभ्यं स्वे दमे यः आ विभाति) तुझे अपने गृहमें जो मनुष्य प्रदीप्त करता है, और (अनुद्यून् उशतः नमः वा दाशात्) प्रतिदिन तेरी कामना करते हुये तुझे हविरूप अन्न प्रदान करता है, हे (द्विबर्हाः) दो स्थानोंमें वर्धित अग्ने ! (अस्य वयः वर्धः) तू उस मनुष्यकी आयु बढा। और (यं सरथं जुनासि) जिस पुरुषको रथके साथ युद्धमें प्रेरित करता है उसको (राया यासत्) धनसे युक्त कर ॥ ६ ॥

१ तुभ्यं स्वे दमे विभाति, अनुद्यून् नमः दाशात् वयः वर्धः, राया यासत्— इस अग्निको जो अपने घरमें प्रकाशित करता एवं प्रतिदिन हवि देता है, उसकी आयु बढती है और उसे धन प्राप्त होता है।

भावार्थ— वायुके मन्थनसे प्रकट होकर यह अग्नि प्रत्येक शरीरको धारण करता है और देवताओं अर्थात् इन्द्रियोंको रस पहुंचाता है ॥ ४ ॥

इस अग्रणी देवके सर्वव्यापक होनेसे कोई भी इससे छिपकर कुछ कर नहीं सकता। यह अग्नि प्रत्येकको यथायोग्य दण्ड देता है ॥ ५ ॥

घरों प्रतिदिन यज्ञ करनेसे आयु बढती है और धन प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

८१३ अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥

८१४ आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत् सूदयच्च ॥ ८ ॥

८१५ मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥

८१६ मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥

अर्थ— [८१३] (विश्वाः पृक्षः अग्निं अभिसचन्ते) सम्पूर्ण अन्न अग्निको उसी प्रकार प्राप्त होते हैं, (सप्त यह्वीः स्रवतः समुद्रं न) जिस प्रकार सात महान् नदियाँ बहती हुई समुद्रको प्राप्त होती हैं। (नः जामिभिः वयः न वि चिकिते) हमारे जातिवालोंको अन्न प्राप्त नहीं होता है अतः हे अग्ने! तू (देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् विदाः) देवोंमें उनकी उत्तम बुद्धिको या भक्तिको जानकर उन्हें अन्न प्रदान कर ॥ ७ ॥

[८१४] (यत् शुचिः द्यौः तेजः) जब शुद्ध, दीप्तिमान् तेज (नृपतिं इषे आनट् आ) अन्नके लिये मनुष्यके चारों ओर व्याप्त हुआ, तब (अग्निः अभीके निषिक्तं रेतः जनयत्) अग्निने पास ही स्थित जलसे भरे मेघको उत्पन्न किया और उससे (शर्धं अनवद्यं, युवानं स्वाध्यं सूदयत्) बलवान्, प्रशंसनीय, पुष्टिकारक तथा अन्नको उत्पन्न करनेवाले जलको (च सूदयत्) प्रेरित किया ॥ ८ ॥

[८१५] (मनो न) मनकी तरह शीघ्रगामी (यः सूरः एकः अध्वनः सद्यः एति) जो सूर्य अकेले ही दिव्य-मार्गोंसे शीघ्र जाता है, और (वस्वः सत्रा ईशे) और विविध धनपर शीघ्र अधिकार जमाता है; तथा (राजाना सुपाणी) शोभायमान सुन्दर भुजाओंवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण हमारी (गोषु प्रियं, अमृतं रक्षमाणा) गौवोंमें प्रीतिकर अमृततुल्य दूधकी जो रक्षा करते हैं, हे अग्ने! वह सब तेरा ही प्रभाव है ॥ ९ ॥

[८१६] हे (अग्ने) अग्ने! (पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठाः) पितरोंसे आई हुई हमारी मित्रता नष्ट न कर, क्योंकि तू (कविः सन् अभिविदुः) क्रान्तदर्शी होकर सब कुछ जाननेवाला है। (नभः न) जैसे मेघ सूर्यकी किरणोंको ढक लेते हैं वैसे (रूपं जरिमा मिनाति) रूपको बुढापा नष्ट कर देता है, (अभिशस्तेः तस्याः पुरा अधि इहि) अतः हे अग्ने! विनाश करनेवाले उस बुढापेके आनेके पहले ही उसे तू समाप्त कर दे ॥ १० ॥

भावार्थ— यह अग्नि सब तरहके अन्नोंका भण्डार है, इसलिए जो उसकी भक्ति करता है, वह अन्नसे युक्त होता है ॥ ७ ॥

यज्ञाग्निसे मेघ उत्पन्न होते हैं और उससे पुष्टिकारक तथा अन्नोत्पादक जल बरसता है ॥ ८ ॥

इसी अग्निके प्रभावके कारण सूर्य अकेले ही अपने विस्तृत मार्गपर चलता है और धनोंपर अधिकार करता है। मित्र और वरुण गायोंकी रक्षा करते हैं ॥ ९ ॥

यह अग्नि सर्वज्ञ है। अतः इस अग्निको प्रज्वलित करनेसे तेज बढता है और बुढापा जल्दी नहीं आता ॥ १० ॥

[७२]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८१७ नि काव्या वेधसः शश्वतस्क—र्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १ ॥

८१८ अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्द—न्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधा—स्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥

८१९ तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामि—च्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियान्य—सूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥

८२० आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वा—नग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४ ॥

---

[७२]

अर्थ— [८१७] (नर्या पुरूणि हस्ते दधानः) मनुष्योंके हितसाधक बहुतसे धनोंको हाथमें धारण करता हुआ यह अग्नि (शश्वतः वेधसः काव्या) नित्य ब्रह्माके मन्त्ररूप स्तोत्रोंको (नि कः) ग्रहण करता है, और अपने स्तुति करनेवालोंको (विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राणः) सम्पूर्ण सुवर्णोंको एक साथ प्रदान करता हुआ यह (अग्निः रयीणां रयिपतिः भुवत्) अग्नि सर्वोच्च धनोंमें भी सर्वश्रेष्ठ धनका स्वामी होता है ॥ १ ॥

[८१८] (विश्वे अमूराः अमृताः इच्छन्तः) सारे ज्ञानी देवगण इच्छा करते हुये भी (अस्मे वत्सं परिषन्तं न विन्दन्) हमारे प्रिय सर्वव्यापी अग्निको न पा सके । (पदव्यः श्रमयुवः धियंधाः) अग्निके अन्वेषणमें श्रम करनेवाले वे बुद्धिमान् लोग अन्तमें (अग्नेः चारु परमे पदे तस्थुः) अग्निके उस सुन्दर स्थानतक पहुंच गए ॥ २ ॥

१ विश्वे अमूरा अमृताः न विन्दन्— सब ज्ञानी और अमर देवगण भी अग्निको न पा सके ।
२ पदव्यः अग्नेः परमे पदे तस्थुः— फिर भी खोजनेवाले अग्निके उत्तम स्थानतक पहुंच ही गए ।

[८१९] हे (अग्ने) अग्ने ! (शुचिं त्वां इत्) पवित्र तुझको (शुचयः तिस्रः शरदः) दीप्तिमान् मनुष्योंने तीन वर्षोंतक (घृतेन यत् सपर्यान्) घृतसे जब प्रसन्न किया, तब (यज्ञियानि नामानि चित् दधिरे) उन्होंने प्रशंसनीय यशको धारण कर, (सुजातः तन्वः असूदयन्त) उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए उन्होंने अपने शरीरोंको पवित्र किया ॥ ३ ॥

[८२०] (यज्ञियासः बृहती रोदसी आ वेविदानाः) पूज्य याजकोंने महान् पृथ्वी और आकाशका ज्ञान कराते हुए (रुद्रिया प्रजभ्रिरे) अग्निके योग्य स्तोत्रोंको भेंट किया । (मर्तः नेमधिता परमे पदे) मनुष्योंने इन्द्रके साथ उत्तम स्थानमें (तस्थिवांसं) ठहरे हुये (अग्निं चिकित्वान् विदत्) अग्निको जानकर प्राप्त किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है और स्तोताओंकी धनसे सहायता करता है ॥ १ ॥

अग्निके रहस्यको पाना साधारण काम नहीं है । पर उसकी खोजमें पूर्ण परिश्रम किया जाए तो बुद्धिमान् इसके रहस्यको जान सकते हैं ॥ २ ॥

अग्निमें घृतादिकी आहुति डालनेसे हवा शुद्ध होती है, उससे शरीर शुद्ध होकर मनुष्योंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है ॥ ३ ॥

उन याजकोंने अग्निके रहस्यको जानकर इसके स्थानको प्राप्त कर लिया ॥ ४ ॥

८२१ संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन् ।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ ॥

८२२ त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत् पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥

८२३ विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८२१] हे अग्ने ! उन याजकोंने (संजानानाः) सम्यक् प्रकारसे जानकर, (पत्नीवन्तः, नमस्यं अभिज्ञु उपसीदन् नमस्यन्) अपनी पत्नियों सहित, नमस्कारके योग्य तेरे सम्मुख घुटनोंके बल बैठकर पूजा की। उस समय (स्वाः तन्वः रिरिक्वांसः कृण्वत) अपने शरीरोंको पवित्र करते हुए (रक्षमाणाः सखा सख्युः निमिषि) और तुमसे रक्षित होकर, मित्र देवोंने मित्रभावसे निमिषमात्रके लिये तुमको देखा ॥ ५ ॥

[८२२] हे अग्ने ! (यज्ञियासः) यज्ञ करनेवालोंने (त्रिः सप्त गुह्यानि यत् पदाः) इक्कीस संख्यावाले रहस्यसे भरे हुये जो पद (त्वे इत् निहिता अविदन्) तुममें स्थित हैं उनको जाना, (तेभिः अमृतं रक्षन्ते) वे उनसे अमृतकी रक्षा करते हैं। तू (सजोषाः पशून् च स्थातॄन् च चरथं पाहि) सब पर प्रीति युक्त होकर उनके पशुओंकी और स्थावरोंकी तथा जंगम प्राणियोंकी रक्षा कर ॥ ६ ॥

त्रिसप्त गुह्यानि पदा— तीन गुना सात अर्थात् इक्कीस प्रकारकी यज्ञकी विधियां हैं, जो मानवोंका हित करती हैं।

[८२३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे) मनुष्योंके व्यवहारोंका ज्ञाता और सम्पूर्ण विद्या युक्त है, अतः प्रजाओंके जीवन धारणके लिये (छुरुधः आनुषक् वि धाः) अन्नादिसे क्षुधा निवृत्ति कर। (अन्तः देवयानान् विद्वान् अध्वनः) द्युलोक और पृथ्वी लोकके मध्यमें जिस मार्गसे देवता लोग जाते हैं उसको जानकर (अतन्द्रः हविः वाट् अभवः) आलस्य रहित होकर दूत रूपसे हव्यका वहन करनेवाला हो ॥ ७ ॥

१ वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे छुरुधः आनुषक् विधाः— राष्ट्रमें अग्रणीको प्रजाका आचार विचार जानकर उनके जीवनके लिए अन्नकी प्राप्तिका प्रयत्न करना चाहिए।

भावार्थ— जो मनुष्य विनम्रभावसे इस अग्निकी पूजा करते हैं, वे अग्निसे रक्षित व पवित्र होकर उसका दर्शन करते हैं ॥ ५ ॥

यज्ञकी इक्कीस विधियोंको जानकर मनुष्योंका हित किया जा सकता है। राष्ट्रमें पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति आदि सभीकी सुरक्षा होनी चाहिए ॥ ६ ॥

अग्रणीको प्रथम प्रजाओंका आचार विचार जानना चाहिए, फिर उनके सुखका प्रबन्ध करना चाहिए। तथा आलस्य रहित होना चाहिए ॥ ७ ॥

८२४ स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद् गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥

८२५ आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥

८२६ अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन् दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ १० ॥

अर्थ— [८२४] (स्वाध्यः सप्त यह्वीः) शुभकर्मसे युक्त सात बडी बडी नदियां (दिवः आ) द्युलोकसे बह रही हैं। (ऋतज्ञाः रायः दुरः वि अजानन्) सत्यको जाननेवालोंने सम्पत्तिके दरवाजोंको खोलनेकी रीति जान ली। (गव्यं दृळ्हं ऊर्वं सरमा विदत्) गायोंमें होनेवाले बहुतसे अन्नको सरमाने जाना, (येन नु मानुषी विट् कं भोजते) जिसे आजकल मनुष्यकी प्रजाएं सुखसे खाती पीती हैं ॥ ८ ॥

१ ऋतज्ञाः रायः दुरः विदन्— सत्यको जाननेवालोंने ऐश्वर्यका मार्ग जान लिया।

२ स्वाध्यः सप्त यह्वीः— (सु+आ+धी) उत्तम प्रकार ध्यान धारणा जिनके किनारे होती है, ऐसी सात नदियां। नदियोंके किनारे और पर्वतोंकी गुफाओंमें ध्यान धारणा अच्छी प्रकार हो सकती है, ऐसा यजुर्वेद में कहा है— ' उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां। धिया विप्रो अजायत ॥ (यजु. २६।१५)

[८२५] (ये अमृतत्वाय) जो अमरत्व प्राप्तिके लिए (गातुं कृण्वानासः) मार्ग तैय्यार करते हैं, वे (विश्वा स्वपत्यानि) उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। (महद्भिः पुत्रैः) बडे वीर पुत्रोंसे युक्त (माता अदितिः) माता तथा खण्डनके अयोग्य (पृथिवी) पृथ्वी (धायसे मह्ना वि तस्थे) धारणपोषणके लिए अपनी महिमासे विस्तृत हुई। (वेः) यहीं हे अग्ने ! तू हवि खाता है ॥ ९ ॥

१ ये अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः विश्वा स्वपत्यानि आ तस्थुः— जो अमरत्वकी प्राप्तिका मार्ग तैय्यार करते हैं, वे उत्तम कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं।

[८२६] (दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन्) द्युलोकसे अमर देवोंने जब दो आंखें बनाईं तब (अस्मिन् चारु श्रियं अधि नि दधुः) उन्होंने इस अग्निमें सुन्दर और शोभायुक्त तेज स्थापित किया। (अध सृष्टाः सिन्धवः न) बादमें जिस प्रकार प्रेरित हुई नदियां फैलती हैं, उसी तरह (नीचीः अरुषीः क्षरन्ति) सभी दिशाओंमें इस अग्निके तेज फैलते हैं उन तेजोंसे हे अग्ने ! (प्रजाजन्) तेरा ज्ञान हुआ ॥ १० ॥

१ दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन् अस्मिन् चारु श्रियं नि दधुः— द्युलोकमें देवोंने जब दो आंखें अर्थात् सूर्य चन्द्र बनाये उसी समय उन्होंने इस अग्निमें तेज स्थापित किया।

भावार्थ— मनुष्य नदीके किनारे ध्यान करके सत्यको जानकर सभी सम्पत्ति प्राप्त कर सकता है। गायका दूध मनुष्योंके लिए एक उत्तम भोजन है ॥ ८ ॥

उत्तम कर्मोंके अनुष्ठानसे ही अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है। धारण पोषणके लिए ही यह पृथ्वी इतनी विस्तृत है। इसी पृथ्वी पर यज्ञ किए जाते हैं ॥ ९ ॥

सूर्य चन्द्रके साथ ही देवोंने इस अग्निका भी निर्माण किया। उसके बाद इसकी किरणें फूटीं और चारों ओर फैल गईं, उससे इस अग्निको लोगोंने जाना ॥ १० ॥

[७२]

(ऋषिः- पराशरः शाक्त्यः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्)

८१७ रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥ १ ॥

८१८ देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥ २ ॥

८१९ देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३ ॥

[७२]

अर्थ— [८२७] (यः) यह अग्नि (पितृवित्तः रयिः वयःऽधाः) पितासे प्राप्त सम्पत्तिकी तरह अन्नका देनेवाला, (चिकितुषः न शासुः सुप्रणीतः) ज्ञानी व्यक्तिके उपदेशकी तरह उत्तम मार्गपर ले जाता है, (स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः) सद्‌गृहस्थके घरमें आदरसे बैठाये हुये अतिथिकी तरह यह सुखदायी है, और (होता इव, विधतः सद्म वि तारीत्) होताके समान यजमानके घरको बढाता है ॥ १ ॥

१ स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः— सुखसे विश्राम करनेवाले अतिथिकी तरह सुख देनेवाला यह अग्नि है।

[८२८] (देवः सविता न) प्रकाशमान् सूर्यकी तरह (सत्यमन्मा, यः क्रत्वा विश्वा वृजनानि निपाति) यथार्थदर्शी जो अग्नि अपने कर्मों द्वारा सब पापोंसे रक्षा करता है। (पुरुप्रशस्तः अमतिः न सत्यः) अनेकोंसे प्रशंसित यह अग्नि प्रगति करनेवालेकी तरह सत्य मार्गपर चलता है। (आत्मा इव, शेवः, दिधिषाय्यः भूत्) आत्माकी तरह सुखकर और सबके द्वारा धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

१ यः सत्यमन्मा क्रत्वा विश्वा विजनानि नि पाति— जो सत्यमार्ग पर चलता है, वह अपने कर्मोंसे सारे पापोंसे सबको सुरक्षित रखता है।

२ अमतिः सत्यः— सत्य मार्गपर चलनेसे ही प्रगति या उन्नति हो सकती है।

[८२९] (यः देवः न विश्वधायाः) जो अग्नि प्रकाशमान् सूर्यकी तरह समस्त संसारको धारण करता है। (हितमित्रः न राजा) अनुकूल मित्रके सम्पन्न राजाकी तरह (पृथिवीं उपक्षेति) पृथिवीपर निवास करता है। (पुरःसदः, शर्मसदः न वीराः) लोग इसके सामने इस प्रकारसे बैठते हैं, जिस प्रकार पिताके घरमें पुत्र बैठता है। तथा यह (अनवद्या, पतिजुष्टा नारी इव) पतिसे सेवित पतिव्रता स्त्रीकी तरह विशुद्ध है ॥ ३ ॥

१ हितमित्रः पृथिवीं उपेक्षति— हितकारी मित्रोंसे युक्त व्यक्ति ही इस संसारमें सुखसे रह सकता है।

२ अनवद्या पति जुष्टा नारी विश्वधायाः— अनिन्दित पतिव्रता नारी ही संसारको धारण करती है।

भावार्थ— यह अग्नि अन्न देनेवाला, उत्तम मार्गसे ले चलनेवाला, सुखदायक और घरकी शोभा बढानेवाला है ॥ १ ॥

सत्य मार्गपर चलनेवाला उन्नतिशील अग्नि दूसरोंको भी सत्य मार्गपर चलाकर उनकी पापोंसे रक्षा करता है और उन्नत बनाता है। यह आत्माकी तरह सबका आश्रय स्थान है ॥ २ ॥

यह अग्नि सर्वथा पवित्र है इसीलिये यह पृथ्वीको धारण करता है और सबसे प्रशंसित होता है ॥ ३ ॥

८३० तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्ध—मग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन् भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ ४ ॥

८३१ वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्यु—र्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ ॥

८३२ ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥

८३३ त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः । ॥ ७ ॥

अर्थ— [८३०] हे (अग्ने) अग्ने! (तं त्वा ध्रुवासु, क्षितिषु) उस तुझको लोग उपद्रवशून्य स्थानोंपर (दमे नित्यं इद्धं, आ सचन्त) अपने घरमें सदा समिधाओंसे जलाकर तेरी सेवा करते हैं। साथ ही (अस्मिन्, भूरि द्युम्नं अधि नि दधुः) इस अग्निमें लोगोंने बहुत अन्नको प्रदान किया है। (विश्वायुः, रयीणां धरुणः भव) सबका प्राणरूप होकर तू हमारे लिये धनोंको देनेवाला हो ॥ ४ ॥

[८३१] हे (अग्ने) अग्ने! (मघवानः, पृक्षः वि अश्युः) धनशील यज्ञ करनेवाले अन्नोंको प्राप्त करें। और (सूरयः, ददतः विश्वमायुः वि) विद्वान् दाताओंको दीर्घ आयु प्राप्त हो तथा हम (श्रवसे देवेषु भागं दधानाः) यज्ञके निमित्त देवताओंको हवि देते हुये, (समिथेषु अर्यः वाजं सनेम) युद्धोंमें शत्रुके अन्नको प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[८३२] (स्मदूध्नीः, द्युभक्ताः, धेनवः, वावशानाः) नित्य दूध देनेवाली, तेजस्विनी गायें, पुनः पुनः कामना, करके (ऋतस्य हि पीपयन्त) यज्ञ स्थानमें प्राप्त अग्निको ही दुग्धपान कराती हैं। और (सिन्धवः, सुमतिं भिक्षमाणाः) बहनेवाली नदियां अग्निसे बुद्धिकी याचना करती हुई (अद्रिं समया परावतः विसस्रुः) पर्वतके समीप दूर देशसे प्रवाहित होती हैं ॥ ६ ॥

[८३३] हे (अग्ने) अग्ने! (यज्ञियासः सुमतिं भिक्षमाणाः) पूज्यजनोंने कल्याणकारी बुद्धिकी याचना करते हुये, (दिवि त्वे श्रवः दधिरे) तेजस्वी तुझमें हवि प्रदान की, उसके अनन्तर (उषसा च नक्ता विरूपे चक्रुः) उषा और रात्रीको विभिन्न रूपोंसे युक्त किया। (च कृष्णं वर्णं च अरुणं सं धुः) और रात्रीमें कृष्णवर्णको, तथा उषामें अरुण वर्णको भरा ॥ ७ ॥

१ सुमतिं भिक्षमाणाः यज्ञियासः श्रवः दधिरे— उत्तम बुद्धिकी कामना करनेवाले पूज्य जन अग्निमें हविकी आहुतियां देते हैं।

भावार्थ— हे अग्ने! लोग तुझे यज्ञ स्थानमें प्रदीप्त करके तेरी पूजा करते हैं। तुझमें बहुतसे अन्नकी हवि भी दी जाती है। अतः तू हमें पूर्ण दीर्घ आयु देकर धन दे ॥ ४ ॥

हे अग्ने! धनसम्पन्न यजमान अन्न प्राप्त करें, तथा ज्ञानी दाता दीर्घायु प्राप्त करें। यज्ञके लिए हम देवोंकी पूजा करते हुए शत्रुओंको हराकर उनके धन पर अधिकार करें ॥ ५ ॥

यज्ञकी सेवाकी इच्छा करनेवाली दूधसे भरे थनोंवाली, तेजयुक्त गायें यज्ञके लिए दूध देती हैं। साथ साथ नदियां भी पर्वतोंसे प्रवाहित होती हैं ॥ ६ ॥

उत्तम बुद्धिको चाहनेवालोंने यज्ञ प्रारंभ किया और यश प्राप्त किया। उनके यज्ञ उषःकाल और रात्रीमें भी चलते थे ॥ ७ ॥

८३४ यान् राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥
८३५ अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥
८३६ एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं ते ऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० ॥

[७४]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

८३७ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

अर्थ— [८३४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (यान् मर्तान् राये सुषूदः) जिन मनुष्योंको धनकी प्राप्तिके लिये प्रेरित करता है, (ते च वयं मघवानः स्याम) वे और हम धनवान् हों। तूने (रोदसी) आकाश-पृथ्वी और (अन्तरिक्षं आ पप्रिवान्) अन्तरिक्षको प्रकाशसे परिपूर्ण किया है; साथ ही (विश्वं भुवनं छाया इव सिसक्षि) सम्पूर्ण जगत् छायाकी तरह तेरे साथ संयुक्त है ॥ ८ ॥

[८३५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा ऊताः अर्वद्भिः अर्वतः) तुझसे रक्षित होकर हम अपने अश्वोंसे शत्रुओंके अश्वोंका (नृभिः नॄन् वीरैः वीरान् वनुयाम) अपने योद्धाओंके द्वारा शत्रुओंके योद्धाओंका और अपने पुत्रोंके द्वारा शत्रुओंके पुत्रोंका वध करें। (पितृवित्तस्य रायः ईशानासः) पैतृक सम्पत्तिके धनके स्वामी होकर (सूरयः नः शतहिमाः वि अश्युः) विद्वान् हमारे पुत्र सौ वर्षके जीवनका विशेष भोग करें ॥ ९ ॥

[८३६] हे (वेधः अग्ने) बुद्धिमान् अग्ने ! (एता उचथानि) ये हमारे स्तोत्र (ते मनसे हृदे च जुष्टानि सन्तु) तेरे मन और हृदयको प्रिय लगे, ताकि हम (देवभक्तं श्रवः अधि दधानाः) तेजस्विताको प्राप्त करानेवाले अन्नको प्राप्त करते हुए (सुधुरः ते रायः यमं शकेम) दारिद्र्यको नष्ट करनेवाले तेरे धनका नियंत्रण कर सकें ॥ १० ॥

१ एता उचथानि ते जुष्टानि सन्तु— हे अग्ने ! हमारे ये स्तोत्र तुझे प्रिय लगें।

२ सुधुरः राय यमं शकेम— दारिद्र्यको नष्ट करनेवाले तेरे उत्तम धनके हम स्वामी बनें।

[७४]

[८३७] (अध्वरं उपप्रयन्तः) यज्ञके समीप जाते हुये (आरे च अस्मे शृण्वते) दूरसे भी हमारी स्तुतियोंको सुननेवाले (अग्नये मन्त्रं वोचेम) अग्निकी हम मननशील स्तोत्रोंसे स्तुति करें ॥ १ ॥

१ अ-ध्वरं उपप्रयन्तः— हिंसा और कुटिलता रहित कार्यको ही मनुष्य करे।

२ शृण्वते मंत्रं वोचेम— सुननेवालेको ही हम उपदेश दें। जो सुनता न हो उसे कभी भी उपदेश न दें।

भावार्थ— इस अग्निके बताए मार्ग पर चल कर ही लोग धनवान् होते हैं। अग्निके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित है। जिस तरह प्रत्येक पदार्थके साथ उसकी छाया रहती है उसी तरह इस अग्निके साथ यह सारा जगत् रहता है ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तुझसे सुरक्षित होकर हम अपने घोडों, मनुष्यों और वीरोंसे शत्रुओंका नाश करें ताकि हमारे पुत्र अपने सम्पत्तिके स्वामी होकर अनेक वर्षोंतक उनका उपभोग करते रहें ॥ ९ ॥

इस अग्रणीके स्तोत्र द्वारा प्रसन्न करनेसे पुष्टिकारक अन्न और अपार धनकी प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तू हिंसा रहित कार्योंमें ही आ और समीप अथवा दूरसे मनुष्योंकी प्रार्थनाओंको सुन ॥ १ ॥

८३८ यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद् दाशुषे गयम् ॥ २ ॥
८३९ उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनंजयो रणेरणे ॥ ३ ॥
८४० यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत् कृणोष्यध्वरम् ॥ ४ ॥
८४१ तमित् सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो । जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥
८४२ आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये । हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥ ६ ॥
८४३ न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन । यदग्ने यासि दूत्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८३८] (यः पूर्व्यः) जो अग्नि चिरन्तनकालसे (स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु) हिंसक स्वभाववाले प्रजाओंके एकत्र होनेपर (दाशुषे गयं अरक्षत्) दान देनेवाले यजमानके धनकी रक्षा करता है, उसका हम स्तवन करें ॥ २ ॥

१ स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु दाशुषे गयं अरक्षत्— हिंसक मनुष्योंके एकत्रित होनेपर दाताके घरकी रक्षा करनी चाहिए ।

[८३९] (वृत्रहा रणे रणे धनंजयः) वृत्रको मारनेवाला तथा प्रत्येक संग्राममें शत्रुओंके धनको जीतनेवाला जो (अग्निः उत् अजनि) यह अग्नि प्रकट हुआ है, (जन्तवः ब्रुवन्तु) उस अग्निकी सब प्राणी स्तुति करें ॥ ३ ॥

[८४०] हे अग्ने ! तू (यस्य क्षये) जिस यजमानके य[illegible] (दूतः असि) दूत होता है और (हव्यानि वीतये वेषि) हव्योंको देवोंके निमित्त भक्षण करनेके लिये ले जात[illegible] उस समय तू (अध्वरं दस्मत् कृणोषि) यज्ञको सबके लिये [illegible]नीय बना देता है ॥ ४ ॥

१ अ-ध्वरं दस्मत् [illegible]— सब लोग हिंसा रहित कर्मको उत्तमतासे करें ।

[८४१] (सहसः यहो अङ्गिरः) बलके पुत्र अङ्गिरा नामवाले अग्ने ! तू (तं इत्) उसीको (सुहव्यं, सुदेवं, सुबर्हिषं) सुन्दरहविसे युक्त, सुन्दर देवताओंसे तथा सुन्दर यज्ञसे पूर्ण करता है ऐसा (जनाः आहुः) सारे मनुष्य कहते हैं ॥ ५ ॥

[८४२] हे (सुश्चन्द्र) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! (इह प्रशस्तये) इस यज्ञमें स्तुति ग्रहण करनेके लिये और (हव्या वीतये) हवि भक्षण करनेके लिए (तान् देवान् उप आ वहासि) उन दिव्यगुण सम्पन्न देवोंको हमारे समीप ले आ ॥ ६ ॥

[८४३] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् कत् चन दूतं यासि) जिस समय तू कभी भी देवोंका दूत बन कर जाता है उस समय (योः रथस्य अश्व्यः उपब्दिः) तेरे जाते हुये रथके घोडोंका शब्द भी (न शृण्वे) नहीं सुनाई देता ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह अग्नि आपत्तिके समय उदार चित्तवालोंके घरकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

संग्राममें शत्रुओंको मारकर उनके धनको जीतकर लानेवाले इस अग्निका लोग जयघोष करें ॥ ३ ॥

जिन लोगोंके सत्कर्ममें यह अग्नि सहायक होता है उनके उन कर्मोंका योग्य भाग विद्वानोंको मिलता है और उनके सभी सत्कार्य उत्तम और प्रशंसाके योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

विद्वानोंका यह कहना है कि सत्कर्म करनेवाला ही उत्तम हविसे, देवोंकी भक्ति और सुन्दर यज्ञसे युक्त होता है ॥ ५ ॥

यज्ञ-अग्नि यज्ञमें स्तुति और हविको ग्रहण करनेके लिए देवोंको बुलाकर लाता है ॥ ६ ॥

यह अग्नि जब भी दौत्यकर्म करने जाता है तो सारा काम बडी ही गुप्ततासे करता है कि उसके रथकी आवाज भी नहीं सुनाई देती ॥ ७ ॥

८४४ त्वोतो वाज्यह्रयो ऽभि पूर्वस्मादपरः । प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥ ८ ॥
८४५ उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि । देवेभ्यो देव दाशुषे ॥ ९ ॥

[७५]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

८४६ जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनि ॥ १ ॥
८४७ अथा ते अङ्गिरस्तमा-ऽग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २ ॥
८४८ कस्ते जामिर्जनाना-मग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३ ॥
८४९ त्वं जामिर्जनाना-मग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— [८४४] हे (अग्ने) अग्ने ! (दाश्वान् त्वोतः) दान करनेवाला तेरे द्वारा रक्षित होकर (वाजी अह्रयः) बलवान् बना और हीनताकी भावनासे मुक्त हुआ, तब (पूर्वस्मात् अपरः प्र अस्थात्) निकृष्ट अवस्थासे उच्च अवस्थाको प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥

१ दाश्वान् त्वा ऊतः वाजी अह्रयः पूर्वस्मात् अपरः अस्थात्— दाता अग्निसे सुरक्षित होकर बलवान् बनता और हीनताकी भावनासे छूटकर निकृष्ट अवस्थासे उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ।

[८४५] हे (देव अग्ने) दिव्यगुण युक्त अग्ने ! तू (देवेभ्यः दाशुषे) देवोंको हवि प्रदान करनेवालेके लिये (बृहत्, द्युमत्, सुवीर्यं उत विवाससि) बहुत, अतिशय दीप्तिमान् और वीर्यशाली धन देता है ॥ ९ ॥

[७५]

[८४६] हे अग्ने ! (आसनि हव्या जुह्वानः) मुखमें हवियोंको ग्रहण करता हुआ हमारे द्वारा (देवप्सरस्तमं सप्रथस्तमं वचः) देवताओंके अत्यन्त प्रख्यात स्तोत्रको (जुषस्व) स्वीकार कर ॥ १ ॥

[८४७] हे (अङ्गिरस्तम वेधस्तम अग्ने) अंग रसकी विद्या जाननेवालोंमें श्रेष्ठ और मेधावियोंमें वरिष्ठ अग्ने ! (अथ ते सानसि) अनन्तर हम तेरे ग्रहण करने योग्य, (प्रियं ब्रह्म वोचेम) प्रसन्नतादायक स्तोत्र कहें ॥ २ ॥

[८४८] (अग्ने जनानां ते कः जामिः) हे अग्ने ! मनुष्योंमें तेरा बन्धु कौन है ? (कः दाशु अध्वरः) दान पूर्वक तेरा यज्ञ कौन करता है ? (कः ह) तू कौन है ? तथा (कस्मिन् श्रितः असि) किसके आश्रित है ? ॥ ३ ॥

[८४९] हे (अग्ने त्वं जनानां जामिः असि) अग्ने ! तू सब मनुष्योंका बन्धु है । (प्रियः मित्रः) उनका प्रिय मित्र है, (सखिभ्यः ईड्यः सखा) और मित्रोंके लिए तू प्रशंसनीय मित्र है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि दाताओंको बलवान बनाकर अच्छी स्थितिमें पहुंचाता है ॥ ८ ॥

देवोंके लिए जो हविका अर्पण करते हैं उनको यह अग्नि सर्वश्रेष्ठ बनाता है । यज्ञ न करनेवाले तेज रहित हो जाते हैं ॥ ९ ॥

जो उत्तम अग्रणी हो वही जनतामें मुख्य रूपसे सत्कारके योग्य है । उसीकी सब प्रशंसा करें ॥ १ ॥

यह अग्रणी अंग प्रत्यंगोंमें जीवन रसकी समृद्धि करनेवाला तथा बुद्धिमानोंमें सर्वश्रेष्ठ है । ऐसे अग्रणीकी प्रशंसा अवश्य करनी चाहिए ॥ २ ॥

इस अग्रणीका भाई और मित्र आदि कौन है, कौन इसकी पूजा करता है । यह किसके सहारे रहता है ? इन सब बातोंका पता लगाना चाहिए ॥ ३ ॥

यह अग्रणी सबका हितकारी मित्र है, यह अपने अनुयायियोंपर स्नेह करता है अतः इसके मित्र भी इसकी भरपूर प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

९३

८५० यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् । अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥

[७६]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८५१ का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥

८५२ एह्यग्न इह होता नि षीदा—दब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥ २ ॥

८५३ प्र सु विश्वान् रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्या—मातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३ ॥

अर्थ— [८५०] हे (अग्ने नः मित्रावरुणा यज) अग्ने ! तू हमारे लिये मित्र और वरुण नामके देवोंकी पूजा कर । तथा (देवान् यज) इन्द्रादि देवोंकी पूजा कर । और (बृहत्, ऋतं, स्वं दमं यक्षि) विशाल यज्ञका सम्पादन कर और अपने गृहमें यज्ञ कर ॥ ५ ॥

[७६]

[८५१] (अग्ने ते मनसा वराय) हे अग्ने ! तेरे मनको प्रसन्न करनेका (का उपेतिः भुवत्) क्या उपाय है ? (का मनीषा शंतमा) कौनसी स्तुति तुझे सुख देगी ? (कः वा यज्ञैः दक्षं आप) कौन यजमान यज्ञसे तेरा बल प्राप्त कर सकता है ? (ते केन मनसा दाशेम) हम तुझे किस मनसे हव्य प्रदान करें ? ॥ १ ॥

[८५२] हे (अग्ने इह एहि होता निसीद) अग्ने ! इस यज्ञमें आ और होता रूपसे विराज । तू (नः अदब्ध पुर एता सु भव) हमारा आलस्यसे रहित होकर अग्रणी बन । (विश्वमिन्वे रोदसी त्वा अवतां) सर्व व्यापक आकाश और पृथ्वी तेरी रक्षा करें । तू (महे सौमनसाय देवान् यज) हमको महान् प्रसाद प्राप्त करानेके लिये देवोंकी पूजा कर ॥ २ ॥

१ महे सौमनसाय देवान् यज— उत्तम मनकी प्राप्तिके लिए देवोंके मार्गपर चलना ही एक मात्र उपाय है ।

[८५३] (अग्ने विश्वान् रक्षसः प्र सु धक्षि) हे अग्ने ! सम्पूर्ण राक्षसोंको अच्छी प्रकार जला दे । (यज्ञानां अभिशस्तिपावा भव) यज्ञको हिंसकोंसे चारों ओरसे बचा । (अथ सोमपतिं हरिभ्यां आवह) अनन्तर सोमका पान करनेवाले इन्द्रको अश्वों सहित इस यज्ञमें ले आ । हम (अस्मै सुदाव्ने आतिथ्यं चकृम) इस उत्तम दाता इन्द्रका आतिथ्य सत्कार करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— मित्र और वरणीय श्रेष्ठ जनोंका सत्कार करना चाहिए । उत्तम गुणोंसे युक्त विद्वानोंकी सेवा करनी चाहिए । इस प्रकार प्रथम अपने घरमें संघटनका कार्य करके राष्ट्रके संघटनका कार्य करना चाहिए ॥ ५ ॥

हे अग्रणी देव ! तू किस प्रकार हमपर प्रसन्न होगा । वह उपाय बता ॥ १ ॥

हमारा नेता हमेशा आगे रहकर सबका यथायोग्य संचालन करनेवाला हो तथा कभी किसीसे न दबे या आलस्य न करे ॥ २ ॥

यह अग्नि रक्षक है । सभी हिंसक वृत्तिवालोंको यह नष्ट कर देता है । यह इन्द्रको बुलाकर लाता है अतः यह सत्कार के योग्य है ॥ ३ ॥

८५४ प्रजावता वचसा वह्निरासा ऽऽ च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥
८५५ यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भि-र्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्या-ग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥

[७७]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८५६ कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत् कृणोति देवान् ॥ १ ॥
८५७ यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद् वेर्मर्ताय देवा-न्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

अर्थ— [८५४] (आसा वह्निः) मुख द्वारा हव्य ग्रहण करनेवाले अग्निको (प्रजावता वचसा आ च हुवे) पुत्रादियोंको देनेवाले स्तोत्रोंसे मैं बुलाता हूँ। हे (यजत्र ! इह देवैः नि सत्सि) यजनीय अग्ने ! तू इस यज्ञकर्ममें देवोंके साथ आकर बैठ (च होत्रं उत पोत्रं वेषि) और हवनके तथा पवित्रताके कामको कर। तू (वसूनां प्रयन्तः जनितः बोधि) धनोंका नियामक और जन्मदाता होकर हमें ज्ञानवान् कर ॥ ४ ॥

१ वसूनां प्रयन्तः जनितः बोधि— तू धनोंका नियामक और उत्पादक होकर हमें ज्ञानवान् कर।

[८५५] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कविभिः कविः सन्) मेधावियोंके साथ मेधावी बन कर, (विप्रस्य मनुषः हविर्भिः) ज्ञानी मनुष्यकी हवियोंसे (यथा देवान् अयजः) देवोंके समान पूजित हो (होतः सत्यतर, त्वं अद्य) होमके कर्ता, तथा सत्यस्वरूप अग्ने ! तू आज हमारे इस यज्ञ कर्ममें (मन्द्रया जुह्वा यजस्व) देवोंके आनन्ददायक चमचेसे आहुति ग्रहण कर और देवोंकी पूजा कर ॥ ५ ॥

१ कविः सन् कविभिः यजस्व— स्वयं ज्ञानी बनकर ज्ञानियोंके साथ प्रशस्त कर्म कर।

[७७]

[८५६] (यः) जो (अमृतः, ऋतावा, होता यजिष्ठः) अमर, सत्यवान्, देवोंको बुलानेवाला और यज्ञोंका सम्पादन करनेवाला है। जो (मर्त्येषु देवान् इत् कृणोति) मनुष्योंके बीच रहकर देवोंको हवियोंसे युक्त करता है। ऐसे (अस्मै अग्नये कथा दाशेम) इस अग्निके लिये हम हवि कैसे प्रदान करें ? अथवा (भामिने देवजुष्टा गीः का उच्यते) तेजस्वी, सब देवताओंसे पूजित अग्निके लिए कौनसी स्तुति कहें ? ॥ १ ॥

[८५७] (यः अध्वरेषु) जो अग्नि यज्ञोंमें (शंतमः, ऋतावा, होता) अत्यन्त सुखकारी, यथार्थदर्शी और देवोंका बुलानेवाला है; (तं उ नमोभिः आकृणुध्वं) उस अग्निका हे लोगो ! स्तोत्रोंसे सत्कार करो। (यत् अग्निः मर्ताय देवान् वेः) जब यह अग्नि मनुष्योंके हित करनेके लिये देवताओंके पास जाता है, उस समय (सः बोधाति च मनसा यजाति) वह सब कुछ जानता है, और जानकर मनसे उन देवोंकी पूजा करता है ॥ २ ॥

१ मर्ताय देवान् वेः— यह अग्रणी मनुष्योंका हित करनेके लिए दिव्य ज्ञानियोंकी सहायता लेता है।

भावार्थ— यह अग्नि सबके द्वारा बुलाया जाता है। आते हुए अपने साथ अन्य देवोंको भी बुलाकर लाता है। यह मनुष्योंको उत्पन्न कर उन्हें धन और ज्ञानसे युक्त करता है ॥ ४ ॥

ज्ञानियोंके साथ मिलकर हमेशा उत्तम कर्म ही करने चाहिए। तथा अपनी बुद्धिसे देवोंकी पूजा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

यह अग्नि मानव शरीरोंमें दिव्य देवों- इन्द्रियोंको लाकर बसाता है और इस शरीरमें अग्नि शतसांवत्सरिक यज्ञ शुरु करता है। ऐसे इस श्रेष्ठ अग्निकी पूजाका मार्ग क्या है, यह जानना चाहिए ॥ १ ॥

यह अग्रणी छल, हिंसा आदिसे रहित कामोंको पूर्ण करता है यह सर्वज्ञ है अतः मनुष्योंके मनकी बातोंको भी जानता हुआ उनकी सहायता करता है अतः यह सत्कारके योग्य है ॥ २ ॥

८५८ स हि क्रतुः स मर्यः स साधु- र्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्ती- र्विश उप ब्रुवते दुस्ममारीः ॥ ३ ॥
८५९ स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥
८६० एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत् स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥

[७८]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८६१ अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ १ ॥

अर्थ— [८५८] (स हि क्रतुः) वह अग्नि निश्चयसे कर्मशील है । (सः साधुः स मर्यः) वह संसारका उत्पादक और वही उपसंहारक है । (सः मित्रः न) वह मित्रकी तरह सहायक है (अद्भुतस्य रथीः भूत्) वह ही दिव्य रथपर चढनेवाला वीर है । (मेधेषु देवयन्तीः विशः) यज्ञोंमें देवाभिलाषी प्रजायें (तं दस्मं आरीः प्रथमं उप ब्रुवते) उस दर्शनीय अग्निके समीप जाकर उत्तम स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

१ मर्यः— संहारक ' मृङ् प्राणत्यागे ' ।

२ अद्भुतस्य रथीः— वह अग्नि इस शरीररूपी विचित्र रथका रथी स्वामी है ।

[८५९] (अग्निः नृणां नृतमः रिशादाः) अग्नि मनुष्योंके बीचमें उत्कृष्ट नेता और शत्रुओंका विनाशक है। (सः नः गिरः अवसा धीतिं वेतु) वह हमारी स्तुतिको स्वीकार करता हुआ अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर बुद्धिपूर्वक किए गए हमारे कर्मको जाने (च ये, तना मघवानः) और जो यजमान धनसे अत्यधिक धनशाली और (शविष्ठाः) बलशाली हैं तथा (वाजप्रसूताः, मन्म, इषयन्त) अन्नसे हवि प्रदान करके स्तुति करते हैं उनकी स्तुति सुने ॥ ४ ॥

१ सः अवसा धीतिं वेतु— वह हमारी रक्षा करके हमें उत्तम बुद्धि प्राप्त करावे ।

[८६०] (ऋतावा जातवेदाः अग्निः) सत्यनिष्ठ सर्वज्ञ अग्नि (विप्रेभिः गोतमेभिः अस्तोष्ट) मेधावी गौतमोंसे प्रशंसित हुआ । (सः एषु द्युम्नं पीपयत्) उसने उनमें बैठकर प्रकाशमान् सोमरसका पान किया । तथा (सः वाजं) उसने हवि युक्त अन्नका भी भक्षण किया । इस प्रकार (सः जोषं चिकित्वान् पुष्टिं याति) वह अग्नि हमारी सेवाओंको जानकर पुष्टिको प्राप्त करे ॥ ५ ॥

[७८]

[८६१] हे (जातवेदः विचर्षणे) सर्वज्ञ और सर्व द्रष्टा अग्ने । (गोतमाः त्वा गिरा अभि) गौतम वंशमें उत्पन्न हम तेरा वाणियोंसे (द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) और उज्ज्वल स्तोत्रोंसे बारबार सत्कार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— वह कर्मशील अग्नि इस संसारका उत्पादक एवं संहारक है । वह सब प्राणियोंका सहायक है । इसलिए सब प्रजाएं उसीकी स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

यह अग्नि उत्तम नेता तथा शत्रुओंका विनाशक है । अतः यह हमारी सुरक्षा करके हमें उत्तम बुद्धि दे ताकि हम सत्कर्म करते हुए इसकी स्तुति कर सकें ॥ ४ ॥

वह (गो-तम) उत्तम अर्थात संयमी इन्द्रियोंवाले ज्ञानियोंमें बैठ कर आनन्द प्राप्त करता है । अर्थात् संयमी लोगों के शरीरोंमें अग्नि चिरकाल तक आनन्दसे रहता है ॥ ५ ॥

इस सर्वज्ञ और सर्व द्रष्टा अग्निका सत्कार सबको करना चाहिए ॥ १ ॥

८६२ तमु॑ त्वा॒ गोत॑मो गि॒रा रा॒यस्का॑मो दुवस्यति । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ २ ॥
८६३ तमु॑ त्वा वाज॒सात॑म॒मङ्गिर॒स्वद्ध॑वामहे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ३ ॥
८६४ तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑मं॒ यो दस्यूँ॑रवधू॒नुषे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ४ ॥
८६५ अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑मद्व॒चः । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ५ ॥

[७९]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- १-३ अग्निः मध्यमोऽग्निर्वा; ४-१२ अग्निः ।
छन्दः- १-३ त्रिष्टुप्; ४-६ उष्णिक्, ७-१२ गायत्री ।)

८६६ हिर॑ण्यके॒शो रज॑सो विसा॒रेऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः ॥ १ ॥
८६७ आ ते॑ सुप॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवैः॑ कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम् ।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑माना॒भि॒राग॒त् पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा ॥ २ ॥

अर्थ— [८६२] हे अग्ने ! (रायस्कामः गोतमः त्वा) धनकी कामनासे गौतम तेरी (गिरा दुवस्यति) स्तोत्रों द्वारा सेवा करता है उस (तमु द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) तेरी उज्ज्वल स्तोत्रोंसे हम भी बारबार स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[८६३] (आङ्गिरस्वत्) अङ्गिराओंके समान (वाजसातमं त्वा हवामहे) बहुत सारा धन देनेवाले तेरा हम आह्वान करते हैं और (तमु द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) तेरी उज्ज्वल स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं ॥ ३ ॥

[८६४] हे अग्ने ! (यः दस्यून् अवधूनुषे) जो तू राक्षसोंको कँपाता है, (तं वृत्रहन्तमं) उस वृत्रके नाशक (त्वा) तेरी हम (द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) उज्ज्वल मन्त्रोंसे बारबार स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[८६५] (रहूगणाः) रहूगणके वंशमें उत्पन्न हमने (अग्नये मधुमद्वचः अवोचाम) अग्निके लिये मधुर स्तुतियाँ की, अब उसी अग्निकी (द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः) प्रकाशित मन्त्रोंसे बारबार स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[७९]

[८६६] (हिरण्यकेशः अहिः धुनिः) सुवर्णकेश अर्थात् तेजस्वी ज्वालावाला, हननशील मेघको कम्पित करनेवाला, (वातः इव ध्रजीमान्) वायुकी तरह शीघ्र गतिवाला तथा (शुचिभ्राजाः रजसः विसारे) शोभन दीप्तिसे युक्त यह अग्नि लोकोंके विस्तारमें निपुण है (यशस्वतीः अपस्युवः सत्याः न) पर यशसे युक्त, निज कार्य परायण और सरल स्वभाववाली स्त्री (उषसः न वेदाः) उषायें इस बातको नहीं जानतीं ॥ १ ॥

[८६७] हे अग्नि ! जब (ते सुपर्णाः एवैः आ अमिनन्त) तेरी सुन्दर और पतनशील किरणोंने अपनी शक्तियोंसे सब दिशाओंमें मेघोंको ताडित किया, तब (कृष्णः वृषभः नोनाव) कृष्ण वर्णवाले वर्षणशील मेघ गर्जने लगे । (यदि इदं, स्मयमानाभिः शिवाभिः न आ, आगत्) जब इस प्रकारका कार्य होता है, उस समय हास्य युक्त सुखरूप बिजलियोंसे युक्त होकर यह मेघ आता है तब (मिहः पतन्ति, अभ्रा स्तनयन्ति) जलकी बूंदें गिरती हैं, और बादलोंके समूह गर्जते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— धनकी इच्छा करनेवालोंको चाहिए कि वे अग्नि देवकी पूजा करें ॥ २ ॥

अंगरस अर्थात् शरीरके अंगोंमें प्रवाहित होनेवाले रसकी विद्याके ज्ञाता इस अग्निका महत्त्व जानकर इसकी सेवा करते हैं ॥ ३ ॥

यह अग्रणी इतना बलवान् है कि इससे डरकर शत्रु कांपते हैं । यह वृत्र अर्थात् रोगोंका भी नाशक है ॥ ४ ॥

रहु वंशमें उत्पन्न लोगोंने जिस प्रकार उसकी स्तुति की, उसी प्रकार सब मनुष्य उसकी स्तुति करें ॥ ५ ॥

यह अग्नि उषाओंके लिए अन्तरिक्षको विस्तृत करता है, उषायें इसको नहीं जानतीं ॥ १ ॥

इस अग्निकी शक्तिसे ताडित होकर मेघ गर्जता है, उसमें बिजलियोंके उत्पन्न होनेके कारण मुसलधार वृष्टि होती है । इसमें वृष्टि-विज्ञानका वर्णन है ॥ २ ॥

८६८ यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥ ३ ॥
८६९ अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥
८७० स इधानो वसुष्कविः अग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥
८७१ क्षपो राजन्नुत त्मना ऽग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥
८७२ अवा नो अग्न ऊतिभिः गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥
८७३ आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [८६८] (यत् ईं ऋतस्य पयसा पियानः) जिस समय मेघ वृष्टिके रससे संसारको पुष्ट करता हुआ (ऋतस्य रजिष्ठैः पथिभिः नयन्) जलको सरलतम मार्गसे ले जाता है, उस समय (अर्यमा, मित्रः, वरुणः परिज्मा) अर्यमा, मित्र, वरुण और चारों ओर जानेवाले मरुद्गण (उपरस्य, योनौ त्वचं पृञ्चन्ति) मेघकी उत्पत्ति स्थानमें उसकी त्वचाको जलसे भर देते हैं ॥ ३ ॥

[८६९] (सहसः यहो अग्ने) हे बलके पुत्र अग्ने ! तू (गोमतः वाजस्य ईशानः) गौसे युक्त अन्नका स्वामी है अतः (जातवेदः अस्मे महि श्रवः धेहि) हे सब उत्पन्न प्राणियोंका ज्ञाता ! तू हमें भरपूर अन्न प्रदान कर ॥ ४ ॥

१ सहसः यहुः— बलका पुत्र यह अग्रणी बलके कार्यके लिए जन्मा है ।

[८७०] (सः इधानः वसुः कविः अग्निः) वह प्रकाशमान् धनोंका ईश्वर, मेधावी अग्नि (गिरा ईळेन्यः) उत्तम वाणियोंसे स्तुतिके योग्य है । हे (पुर्वणीक अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि) बहुत ज्वालाओंवाले अग्ने ! हमें भरपूर धन देता हुआ तू प्रज्ज्वलित हो ॥ ५ ॥

[८७१] हे (राजन् तिग्मजम्भ अग्ने) हे प्रकाशमान् और तीक्ष्ण दाढवाले अग्ने ! (सः) वह प्रसिद्ध तू (क्षपः) शत्रुओंका नाश कर तथा (वस्तोः उत उषसः) रात्री दिवस और उषःकालमें (त्मना उत रक्षसः प्रति दह) स्वयं दैत्योंको भस्म कर ॥ ६ ॥

रक्षसः— क्षर-सः— शरीरको क्षीण करनेवाले रोग जन्तु ।

[८७२] हे (विश्वासु धीषु वन्द्य अग्ने) सम्पूर्ण बुद्धिके कर्मोंमें पूज्य अग्ने ! (गायत्रस्य प्रभर्मणि) हमारे द्वारा गायत्री स्तोत्र निवेदन करनेपर (ऊतिभिः नः अव) अपने रक्षाके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ७ ॥

गायत्री गायकं त्रायति इति गायत्री— यह अपने गानेवालेकी रक्षा करती है ।

[८७३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः) हमारे लिये (सत्रासाहं विश्वासु पृत्सु दुष्टरं) शत्रुओंके विनाशक, सम्पूर्ण संग्रामोंमें शत्रुओंसे जीतनेमें अशक्य और (वरेण्यं, रयिं) श्रेष्ठ धनको (आभर) सब ओरसे भरपूर प्रदान कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— मेघ अपने जलसे संसारको पुष्ट करते हैं और सरलतासे अपने जलोंको देते हैं अर्यमा, मित्र (सूर्य) और वरुण (समुद्र) तथा मरुद्गण (वायु) इससे मेघको फिर भर देते हैं ॥ ३ ॥

यह अग्रणी स्वयं अन्नका स्वामी होकर दूसरोंको भी अन्न प्रदान करता है ॥ ४ ॥

विशेष तेजस्वी और धनोंका स्वामी यह अग्रणी अपने धनोंको बांटता है, इसलिए यह प्रशंसाके योग्य है ॥ ५ ॥

उषःकाल तथा दिनके समय अग्निको जलाने अर्थात् हवन करनेसे शरीरको क्षीण करनेवाले सारे राक्षस जल जाते हैं ॥ ६ ॥

यह अग्रणी अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करता है ॥ ७ ॥

यह अग्रणी शत्रुओंके नाशके लिए अपने भक्तोंको धन देता है ॥ ८ ॥

८७४ आ नो॑ अग्ने सुचे॒तुना॑ र॒यिं वि॒श्वायु॑पोषसम् । मा॒र्डी॒कं धे॑हि जी॒वसे॑ ॥ ९ ॥
८७५ प्र पू॒तास्ति॒ग्मशो॑चिषे॒ वाचो॑ गोतमा॒ग्नये॑ । भर॑स्व सुम्न॒युर्गिर॑: ॥ १० ॥
८७६ यो नो॑ अग्नेऽभि॒दास॒त्य॑न्ति दू॒रे प॑दी॒ष्ट सः । अ॒स्माक॒मिद् वृ॒धे भ॑व ॥ ११ ॥
८७७ स॒ह॒स्रा॒क्षो विच॑र्षणि॒र॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति । होता॑ गृणीत उ॒क्थ्य॑: ॥ १२ ॥

[८०]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः (अथर्वा, मनुः दध्यङ् च) । छन्दः- पंक्तिः ।)

८७८ इ॒त्था हि सोम॒ इन्मदे॑ ब्र॒ह्मा च॒कार॒ वर्ध॑नम् ।
शवि॑ष्ठ वज्रि॒न्नोज॑सा पृथि॒व्या निः श॑शा॒ अहि॒मर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १ ॥

अर्थ— [८७४] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः जीवसे) हमारे दीर्घ जीवनके लिये (सुचेतुना मार्डीकं विश्वायुपोषसं) सुन्दर ज्ञानसे युक्त सुख देनेवाले और सम्पूर्ण आयुको पुष्ट करनेवाले (रयिं आ धेहि) धनको सब ओरसे प्रदान कर ॥ ९ ॥

[८७५] हे (गोतम) गोतम ! (सुम्नयुः तिग्मशोचिषे अग्नये) कल्याणकी इच्छा करनेवाला तू तीक्ष्णसे तीक्ष्ण आभावाले अग्निके लिये (पूताः वाचः गिरः प्रभरस्व) पवित्र वचनोंवाली स्तुतियाँ कह ॥ १० ॥

गो-तम— उत्तम इंद्रियोंवाला ।

[८७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः अन्ति, दूरे यः अभिदासति) हमारे समीपमें अथवा दूरमें रहकर जो शत्रु हमको अपना दास बनाना चाहे, (सः पदीष्टः) वह नाशको प्राप्त हो । (अस्माकं इत् वृधे भव) तू हमारी वृद्धि करनेवाला हो ॥ ११ ॥

[८७७] (सहस्राक्षः विचर्षणिः अग्निः) सहस्रों ज्वालाओंवाला और सबका द्रष्टा अग्नि (रक्षांसि सेधति) राक्षसोंको नष्ट करता है । वह (होता, उक्थ्यः गृणीत) देवोंको बुलानेवाला वह प्रशंसनीय अग्नि प्रशंसित हो रहा है ॥१२॥

[८०]

[८७८] (ब्रह्मा) ज्ञानीने (इत्था हि सोमे मदे) इस प्रकारके सोमके आनन्दमें (इत् वर्धनं चकार) इन्द्रके उत्साहका वर्धन किया । (शविष्ठ वज्रिन्) हे बल-सम्पन्न वज्रधारी इन्द्र ! (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) तूने, स्वराज्यका आदरसत्कार करते हुए (ओजसा) अपने पराक्रमसे (अहिं पृथिव्याः निः शशाः) शत्रुको पृथ्वी परसे नष्ट कर दिया ॥ १ ॥

भावार्थ— इस अग्रणीके द्वारा दिए गए धनसे आयु दीर्घ होती है शरीर पुष्ट होता है ॥ ९ ॥

उत्तम इन्द्रियोंवाला जितेन्द्रिय मनुष्य ही इस अग्निकी उपासना कर सकता है और कल्याण प्राप्त कर सकता है ॥१०॥

जो अग्रणीके उपासकों पर हमला करके उन्हें अपना दास बनाना चाहता है वह नाशको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

यह अग्रणी सर्वव्यापक होनेसे अपनी हजार आंखोंसे सबके कर्मोंको देखता है और जो राक्षसी कर्म करते हैं उन्हें नष्ट कर देता है । अपने इसी कर्मके कारण वह सर्वत्र प्रशंसित होता है ॥ १२ ॥

ज्ञानियोंने इन्द्रके बलको बढाया और इन्द्रने देशकी स्वतंत्रताको खतरेमें डालनेवाले शत्रुओंको नष्ट किया और स्वराज्यको सुदृढ बनाया । इसी प्रकार राष्ट्रके अन्दर ज्ञानी अपने राष्ट्रका बल बढानेका प्रयत्न करें, नाना साधनोंसे क्षात्र-शक्तिका संवर्धन करें । और क्षत्रिय भी देशद्रोहियोंको विनष्ट करके या उन्हें अपने अधिकारमें रखकर अपने देशकी स्वतंत्रताको अक्षुण्ण बनानेकी कोशिश करें ॥ १ ॥

८७९ स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येनां वृत्रं निरुद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसा ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥

८८० प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

८८१ निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपो ऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

८८२ इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नते ऽपः समीय चोदय-न्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [८७९] (वज्रिन्) हे वज्रधारी इन्द्र ! (सः श्येन-आभृतः) उस श्येन द्वारा लाये गये (सुतः वृषा मदः सोमः) कूट-छानकर निचोडे, बल बढानेवाले आनन्ददायक सोमने (त्वा अमदत्) तुझे आनंदित कर दिया (येन) जिससे तूने (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए (ओजसा) अपने बलसे (वृत्रं अत्-भ्यः निः जघन्थ) शत्रुको मारकर उसे जलसे बाहर निकाल दिया, जल-स्थानसे दूर भगा दिया ॥ २ ॥

[८८०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (प्र इहि) शत्रुके सम्मुख जा, (अभि इहि) उसे सब ओरसे घेर ले (धृष्णुहि) और उसका नाश कर दे । (ते वज्रः नि यंसते न) तेरा वज्र कभी पराभूत नहीं किया जा सकता । (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) तू अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए (वृत्रं हनः) शत्रुको मार (अपः जयाः) और जलोंको जीत (ते शवः नृम्णं हि) क्योंकि तेरा बल मानवोंका हित करनेवाला है ॥ ३ ॥

[८८१] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यका आदरसत्कार करते हुए (भूम्याः अधि) भूमिपर (दिवः) और दिव् लोकमें (वृत्रं निः निः जघन्थ) शत्रुको निःशेष होनेतक नष्ट कर । (इमाः । मरुत्वतीः जीवधन्याः अपः) तू इन वीरोंको अपने साथ रखनेवाले जीवन-धारक जलोंको (अव सृज) बहनेके लिये छोड दे ॥ ४ ॥

[८८२] (इन्द्रः हीळितः) इन्द्र क्रोधमें आकर (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी प्रेमसे पूजा करते हुए (दोधतः वृत्रस्य सानुं) प्रजाको कँपानेवाले शत्रुरूप वृत्रकी ठुड्डीपर (अभि-क्रम्य वज्रेण अव जिघ्नते) चारों ओरसे वज्रसे प्रहार करता है (समीय अपः चोदयन्) और बहनेके लिये जलोंको प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— राष्ट्रमें सोम अर्थात् सब तरहके धान्यका संग्रह भरपूर रहे । राष्ट्रमें सर्वत्र श्येन यज्ञ हों, श्येनयज्ञ धान्यका संवर्धक होता है, अथवा श्येन अर्थात् घोडों द्वारा राष्ट्रमें भरपूर धान्य लाया जाए । इस प्रकार राष्ट्रकी आन्तरिक स्थिति उत्तम हो, फिर बलसे युक्त होकर राष्ट्रको घेरनेवाले शत्रुओंको नष्ट किया जाए ॥ २ ॥

हे वीर ! आगे बढ, हमला कर, चारों ओरसे शत्रुको घेरकर युद्ध कर । तेरे वज्रको निष्प्रभ करनेकी शक्ति किसी भी शत्रुमें नहीं है । तेरे वज्रका नियमन कोई भी नहीं कर सकता । तेरे सामर्थ्यका उपयोग मानवोंके हित करनेमें ही हो, तू कभी उनपर अत्याचार मत कर ॥ ३ ॥

हे वीर ! अपने देशकी और अपनी स्वतंत्रताके महत्त्वको समझ और उसकी हर तरहसे रक्षा कर । तेरे देशको दास बनानेकी इच्छा करनेवाले जो भी शत्रु इस पृथ्वीपर हों, उन्हें तू नष्ट कर दे । और अपने प्रजाके प्राणोंका तू हर तरहसे रक्षा कर ॥ ४ ॥

हे वीर ! तेरी प्रजाओंपर अत्याचार करके उन्हें भयभीत करनेवाले शत्रुओंके उत्तम भाग पर तू आक्रमण कर और यदि शत्रुओंने तेरे देशमें बहनेवाली नदियोंके मार्गको बंद कर दिये हों, तो उन्हें तू खोल और इस प्रकार देशकी रक्षा कर ॥ ५ ॥

८८३ अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छ-त्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥
८८४ इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो ऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधी-रर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥
८८५ वि ते वज्रासो अस्थिर-न्नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत् त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हित-मर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥
८८६ सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवु-रिन्द्राय ब्रह्मोद्यत-मर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [८८३] (मन्दानः इन्द्रः) आनन्दित हुआ इन्द्र (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी सदा पूजा करते हुए (शत-पर्वणा वज्रेण) सैंकडों धाराओंवाले वज्रसे (सानौ अधि नि जिघ्नते) इस वृत्रके ठुड्डीपर प्रहार करता है (सखि-भ्यः) और मित्रोंके लिये (अन्धसः गातुं इच्छति) अन्नकी प्राप्तिका मार्ग ढूंढना चाहता है ॥ ६ ॥

[८८४] (अद्रि-वः वज्रिन् इन्द्र) हे पर्वतपर रहनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! (तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं) तेरा ही पराक्रम उत्कृष्ट है, (यत् ह त्वं) जिस कारण तूने (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए (तं उ त्यं मायिनं मृगं) ढूंढकर पकडे उसे कपटी शत्रुको (मायया अवधीः) कपटसे मारा ॥ ७ ॥

[८८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते वज्रासः) तेरे वज्र वृत्रसे घिरे हुए (नवतिं नाव्याः अनु वि अस्थिरन्) नब्बे नावसे तरने योग्य जलके समीपके विविध स्थानोंमें ठहरे हुए थे । (ते वीर्यं महत्) तेरा पराक्रम महान् है (ते बाह्वोः बलं हितं) और तेरी भुजाओंमें बहुत बल है । (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) इसलिये तू अपने स्वराज्यका सत्कार करते हुए उस जल-रोधक वृत्रका नाश कर ॥ ८ ॥

[८८६] हे मनुष्यो ! (सहस्रं साकं अर्चत) तुम सहस्रोंकी संख्यामें एक साथ मिलकर प्रभुकी प्रार्थना या पूजा करो । (विंशतिः परि स्तोभत) बीसों मिलकर उस इन्द्रकी प्रशंसा करो । (शता एनं अनु अनोनवुः) सैंकडों मिलकर इस प्रभुकी बारंबार प्रार्थना करो । (इन्द्राय ब्रह्म उत्-यतं) इन्द्रके लिये यह स्तोत्र तैयार किया है । हे इन्द्र ! (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए तू उसका सेवन कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सैंकडों धारोंवाले वज्रसे शत्रुके सिर पर आघात करके उसे घायल करता है और अपने अनुयायियोंके लिए पर्याप्त अन्न देनेके उपाय सोचता है । इस प्रकार सदा अपनी प्रजाके हित करनेके लिए मार्ग ढूंढता रहता है । इसी प्रकार देशका राजा भी सदा देशका हित साधक हो ॥ ६ ॥

यह इन्द्र इतना भयंकर शत्रुनाशक है कि जो इससे डरकर किसी जगह जाकर छिप भी जाए– तो भी यह उसे ढूंढकर मारता है । इसी प्रकार जो शत्रु माया या छल कपटसे इन्द्र पर अपना अधिकार जमाना चाहता है उस छली शत्रुको इन्द्र भी छलसे ही मारता है, इस प्रकार यह इन्द्र जैसेके साथ तैसेका व्यवहार करता है । यह शत्रुनाशके समय जो अपना पराक्रम दिखाता है, वह अद्वितीय होता है ॥ ७ ॥

इस इन्द्रका वज्र नौकासे जाने योग्य नब्बे नदियोंके समीपके देशोंमें स्थिर हो चुका है, प्रभावी हो गया है, अर्थात् यह इन्द्र शत्रुके नब्बे नगरोंपर हमला करके उन्हें अपने अधिकारमें रखता है । यह सब बातें यह इसीलिए कर पाता है क्योंकि उसकी भुजाओंमें बल है । अतः राष्ट्रके हर व्यक्तिको अपनी शक्ति बढानी चाहिए ॥ ८ ॥

हे मनुष्यो ! तुम सहस्रोंकी संख्यामें मिलकर प्रभुकी प्रार्थना करो । यदि सहस्रों नहीं तो सैंकडोंकी संख्यामें अवश्य सम्मिलित होओ, और यदि वह भी असंभव हो, तो बीसकी संख्यामें तो अवश्य ही संगठित होओ । इसमें मनुष्योंको संगठनका उपदेश दिया है । संगठनसे मनुष्योंके हृदय एक होते हैं और इस प्रकार देशकी सुरक्षा आसानीसे हो सकती है ॥ ९ ॥

*

८८७ इन्द्रो॑ वृ॒त्रस्य॒ तवि॑षीं॒ निर॑ह॒न्त्सह॑सा॒ सहः॑ ।
म॒हत् तद॑स्य॒ पौंस्यं॑ वृ॒त्रं ज॑घ॒न्वाँ अ॑सृज॒–द॒र्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १० ॥

८८८ इ॒मे चि॒त् तव॑ म॒न्यवे॒ वेपे॑ते भि॒यसा॑ म॒ही ।
यदि॑न्द्र वज्रि॒न्नोज॑सा वृ॒त्रं म॒रुत्वाँ॒ अव॑धी॒–र॒र्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ ११ ॥

८८९ न वेप॑सा॒ न त॑न्य॒ते–न्द्रं॑ वृ॒त्रो वि बी॑भयत् ।
अ॒भ्ये॑नं॒ वज्र॑ आय॒सः स॒हस्र॑भृष्टिराय॒ता–र्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १२ ॥

८९० यद् वृ॒त्रं तव॑ चा॒शनिं॒ वज्रे॑ण स॒मयो॑धयः ।
अहि॑मिन्द्र॒ जिघां॑सतो दि॒वि ते॑ बद्बधे॒ शवो॒ ऽर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १३ ॥

अर्थ— [८८७] (इन्द्रः) इन्द्रने (सहसा) बलसे (वृत्रस्य तविषीं सहः निः अहन्) वृत्रकी सेना और बलको नष्ट कर दिया। (अस्य तत् पौंस्यं महत्) इसका वह पौरुष बहुत ही बडा है। (स्व-राज्यं) उसने अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए (वृत्रं जघन्वान्) वृत्रको मारा (अनु अर्चन्) और जलोंको बहनेके लिये खुला छोड दिया ॥१०॥

[८८८] (वज्रिन् इन्द्र) हे वज्रधारी इन्द्र ! (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए (यत् मरुत्वान् ओजसा वृत्रं अवधीः) जब वीरोंको साथी बनानेवाले तूने अपने बलसे वृत्रका वध किया (इमे चित् मही) उस समय ये बडे दोनों लोक (तव मन्यवे भियसा वपेते) तेरे क्रोधके सम्मुख भयसे काँपने लगे ॥ ११ ॥

[८८९] (वृत्रः न वेपसा न तन्यता इन्द्रं वि बीभयत्) वृत्र न अपने कम्पन और नहीं अपनी गर्जनासे इन्द्रको डरा सका (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) इसके विपरीत, जो इन्द्र स्व-राज्यकी पूजा करनेमें लगा हुआ था (एनं) उसके द्वारा इस वृत्रकी ओर (आयसः सहस्र-भृष्टिः वज्रः अभि आयत) लोहेका सहस्रों धारोंवाला वज्र फेंका गया ॥ १२ ॥

[८९०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत् स्व-राज्यं अनु अर्चन्) जिस समय अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए तूने (वृत्रं अशनिं च तव वज्रेण सं-अयोधयः) वृत्र और उसके विद्युत् जैसे तीक्ष्ण शस्त्रपर अपने वज्रसे प्रहार किया (अहिं जिघांसतः ते शवः) उस समय वृत्रको मारनेकी इच्छावाले तुझ इन्द्रका बल (दिवि बद्बधे) प्रकाशमय लोकमें भी स्थिर हो गया ॥ १३ ॥

भावार्थ— इन्द्रने अपनी शक्तिसे शत्रुकी सेनाको नष्ट किया और उसके सामर्थ्यका नाश किया। अतः इन्द्रका सामर्थ्य बहुत बडा है। इन्द्रके समान ही राजा अपनी शक्तिसे शक्तिमान् बने। वह देशमें ही शस्त्रोंका उत्पादन करे। किसी दूसरे देशसे शस्त्र न मांगे इस प्रकार अपनी ही शक्तिसे शक्तिशाली देश चिरस्थायी रह सकता है ॥ १० ॥

यह इन्द्र स्वतंत्रताका पूजक है। उसकी वह इस तरहसे रक्षा करता है कि कोई भी शत्रु उसकी स्वतंत्रताको नष्ट नहीं कर सकता। यदि कोई शत्रु उसके स्वराज्यको नष्ट करनेका प्रयत्न करता है, तो यह इन्द्र इतना क्रोधित होकर उसका नाश करता है कि उसके क्रोधको देखकर पृथ्वी और द्युलोक भयसे कांपने लगते हैं। इसी प्रकार राजा अपने शत्रुओंका नाश करे ॥ ११ ॥

इन्द्र सौ धारोंवाले वज्रको शत्रु पर फेंक कर मारता है। इसी वज्रके कारण वह इतना निर्भीक है, कि वृत्र अपनी गर्जनासे और अपने वेगसे भी इन्द्रको भयभीत न कर सका। इसी प्रकार शत्रुके किसी भी प्रयत्नसे वीरोंको भय प्राप्त न होवे। अपने सब वीर निर्भय हों ॥ १२ ॥

जिस समय अपने स्वातंत्र्यका संरक्षण करते हुए इन्द्रने दास बनानेकी इच्छावाले शत्रु पर अपने वज्रसे प्रहार किया, तब उस इन्द्रका वास्तविक बल प्रकट हुआ और सब लोकोंमें उसका यश फैल गया ॥ १३ ॥

८९१ अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित् तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियाऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥

८९२ नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥

८९३ यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ— [८९१] (अद्रि-वः इन्द्र) हे पर्वतपर रहनेवाले इन्द्र (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) तू अपने स्वराज्यका सम्मान करते हुए वृत्रको मारता है। (यत् ते अभि-स्तने स्थाः जगत् च रेजते) जब तेरे गर्जनेपर स्थावर और जंगम लोकके दोनों प्रकारके पदार्थ काँप उठते हैं (त्वष्टा चित् भिया तव मन्यवे वेविज्यते) तब त्वष्टा भी भयसे तेरे सम्मुख काँपने लगता है ॥ १४ ॥

[८९२] (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) इन्द्र अपने स्वराज्यकी पूजा करता हुआ वृत्रको मारता है। (यात् नहि नु अधि-इमसि) उस सर्वत्र व्यापक इन्द्रको हम पूर्ण रूपसे नहीं जानते। (परः इन्द्रं वीर्या कः) हमसे बहुत दूर स्थानमें रहनेवाले इन्द्र और उसकी शक्तियोंको कौन जान सकता है? (देवाः) देवोंने (तस्मिन्) उस इन्द्रमें (ओजांसि नृम्णं उत क्रतुं सं दधुः) बल, धन और कार्यशक्ति स्थापित की ॥ १५ ॥

[८९३] इन्द्र (स्व-राज्यं अनु अर्चन्) अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए वृत्रको मारता है। (अथर्वा, पिता मनुः, दध्यङ्) अथर्वा पालनकर्ता मनु और दध्यङ्ने (यां धियं अत्नत) जिस बुद्धिको फैलाया (पूर्व-था) और पहलेकी भाँति उन्होंने (तस्मिन् इन्द्र ब्रह्माणि) उसी इन्द्रमें उन ज्ञानों (उक्था) और स्तोत्रोंको (सं अग्मत) सुसंगत कर दिया, उसीके कार्यमें लगा दिया ॥ १६ ॥

भावार्थ— हे पर्वतके किलोंमें रहनेवाले इन्द्र ! तू अपने स्वराज्यका संरक्षण करते हुए जब वृत्रको मारता है और उसे मारते समय तू जो गर्जना करता है, उस गर्जनको सुनकर स्थावर और जंगम सभी कांप उठते हैं। औरोंका तो कहना ही क्या, स्वयं त्वष्टा देव भी कांप उठते हैं ॥ १४ ॥

जब वृत्रको मारते समय इन्द्रमें शक्ति और उत्साह भर आता है, तब उसकी शक्ति और उत्साहका थाह कोई नहीं पा सकता। इसीलिए देवोंने उसे अपना नेता चुना और उसमें बल, वीर्य और कर्तृत्वशक्ति स्थापित की। इसी तरह हर मनुष्यको चाहिए कि वह शत्रुको परास्त करनेके लिए बल, वीर्य और कर्तृत्वशक्ति अपनेमें संगठित करे क्योंकि इन्हींसे शत्रु-का पराभव होता है ॥ १५ ॥

(अ-थर्वा) चंचल मनसे रहित अर्थात् अचंचल वृत्तिवाला, सबका पालनकर्ता, मननशील मनुष्य ही सर्वत्र उत्तम बुद्धिको फैला सकता है। यह उत्तम बुद्धि जिस कार्यमें लगाई जाती है, वह कार्य सदा सफल होता है। इसीलिए इन्द्र इस बुद्धिका उपभोग करता है ॥ १६ ॥

[८१]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- पंक्तिः ।)

८९४ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥

८९५ असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादृदिः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥

८९६ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥

---

[८१]

अर्थ— [८९४] (वृत्र-हा इन्द्रः) वृत्रनाशक इन्द्र (मदाय शवसे) आनन्द और बलके लिये (नृ-भिः वावृधे) मनुष्यों द्वारा बढाया जाता है। (तं इत्) हम उसी इन्द्रको (महत्-सु आजिषु उत ईं अर्भे) बडे युद्धोंमें और सभीको छोटे युद्धोंमें (हवामहे) बुलाते हैं। (सः वाजेषु नः प्र अविषत्) वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करे ॥ १ ॥

[८९५] (वीर) हे वीर ! (सेन्यः असि) तू सेनासे युक्त है। (भूरि परा-ददिः असि) बहुत धन दान देनेवाला है। (दभ्रस्य चित् वृधः असि) तू छोटेको भी बडा करनेवाला है। (यजमानाय शिक्षसि) तू यज्ञ करनेवालेके लिये धन देता है। (सुन्वते ते वसु भूरि) सोमयाग करनेवालेको देनेके लिये तेरे पास बहुत धन है ॥ २ ॥

[८९६] (यत् आजयः उत्-ईरते) जिस समय युद्ध छिड जाते हैं (धृष्णवे धना धीयते) तब तेरे द्वारा निडर वीरके लिये धन दिया जाता है। (इन्द्र) हे इन्द्र ! (मद-च्युता हरी युक्ष्व) तू अपने मद चुवानेवाले घोडोंको रथमें जोड। (कं हनः, कं वसौ दधः) तूने किसी दुष्टको मारा और किसीको धनके बीचमें रखा, धनवान् बना दिया। (अस्मान् वसौ दधः) तूने हमें धनके बीच रखकर धनवान् बनाया है ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र शत्रुओंका नाश करता है, इसलिए सब इन्द्रदेवताकी प्रशंसा करते हैं। बडे और छोटे युद्धोंमें लोग अपनी सहायताके लिए इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं। वह इन्द्र हमारी रक्षा करे। इन्द्रकी स्तुतिके मंत्रोंको पढनेसे मनुष्य अपना बल बढाने और शत्रुके नाशका उपाय जान सकता है और विजयी होनेका तरीका भी जान सकता है ॥ १ ॥

हे वीर ! तू सदा सेनासे युक्त है। वह वीर सेनाके साथ रहता है। वह छोटेको बडा करता है अर्थात् गिरे हुओंको ऊपर उठाता है। वह गरीबोंको दान देकर उन्हें श्रीसम्पन्न करता है। इसी तरह राजा भी गिरे हुओंको ऊंचा उठावे और उन्हें सम्पत्तिमान् बनावे ॥ २ ॥

जब युद्ध छिड जाते हैं, तब शत्रुओंका मुकाबला करनेके लिए निडर वीरको भरपूर धन देना चाहिए। ताकि वह वीर प्रसन्न हो और उस धनके उपयोगके लिए युद्धके साधनोंका भरपूर संग्रह कर सके। उस वीरके रथमें उत्तम उत्तम घोडे जोडे जायें। वह वीर भी श्रेष्ठ बुद्धिवाला हो और किसका वध किया जाए और किसे धनसे युक्त किया जाए, इसका विचार अच्छी तरह करे। ऐसा न हो कि मित्र तो मारा जाए और शत्रु धनवान् हो जाए ॥ ३ ॥

८९७ क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयो- र्नि शिप्री हरिवान् दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४ ॥
८९८ आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यते ऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५ ॥
८९९ यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥ ६ ॥
९०० मदेमदे हि नो ददि- र्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतो- भयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ७ ॥

अर्थ— [८९७] (क्रत्वा महान् भीमः) क्रियाशील होनेके कारण श्रेष्ठ और भयङ्कर प्रभाववान् इन्द्रने (अनु-स्वधं शवः आ ववृधे) योग्य अन्नके सेवनसे अपना बल बढाया । (ऋष्वः शिप्री हरि-वान्) उस दर्शनीय, शिरस्त्राणधारी, घोडेवाले इन्द्रने (उपाकयोः हस्तयोः) अपने समीपवर्ती दोनों हाथोंमें (श्रिये आयसं वज्रं नि दधे) श्रीकी प्राप्तिके लिये लोहेका बना हुआ वज्र धारण किया है ॥ ४ ॥

[८९८] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (पार्थिवं रजः आ पप्रौ) तूने अपनी व्यापकतासे पार्थिव लोकोंको पूरा भर दिया है । (दिवि रोचना बद्बधे) तूने दिव् लोकमें प्रकाशमय लोक स्थापित किये हैं । (कः चन त्वा-वान् न) कोई भी तेरे समान नहीं है । (न जातः) तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ था (न जनिष्यते) और न आगे उत्पन्न होगा (विश्वं अति ववक्षिथ) तू ही सम्पूर्ण विश्वको चला रहा है ॥ ५ ॥

[८९९] (यः अर्यः इन्द्रः) जो स्वामी इन्द्र (दाशुषे) दाताके लिये (मर्त-भोजनं परा-ददाति) मनुष्योंके भोगने योग्य धन देता है, (अस्मभ्यं शिक्षतु) वह हमारे लिये धनका दान करे (ते भूरि वसु वि भज) हे इन्द्र ! तू अपना विपुल धन हमें बाँट (तव राधसः भक्षीय) मैं तेरे धनका उपभोग करूँ ॥ ६ ॥

[९००] (ऋजु-क्रतुः) हे इन्द्र ! सरल कर्मवाला तू (गवां यूथा) गायोंके झुण्ड (मदे-मदे हि नः ददिः) प्रत्येक आनन्दके समय हमें देनेवाला है । (पुरु शता वसु उभयाहस्त्या सं गृभाय) तू बहुत सैंकडों प्रकारका धन दोनों हाथोंसे ग्रहण कर (रायः आ भर) तू वीरता करके ऐश्वर्यका सम्पादन कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— मनुष्य पुरुषार्थ करके भयंकर वीर हो सकता है अथवा पुरुषार्थ करनेवाला वीर होता है । इसके अलावा जो उत्तम उत्तम अन्न खाता है, वह भी उत्तम वीर होता है । ऐसा वीर शिरस्त्राण धारण करके शस्त्रास्त्र लेकर शत्रुओंका वध करता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र इतना महान् है कि अपनी शक्तिसे सब लोकोंमें व्याप्त है, सर्वत्र प्रकाशित होता है । अतः न इसके समान कोई उत्पन्न हुआ, न है और न आगे होगा ही । यह अद्वितीय और अकेला शाश्वतकालसे विश्वको चला रहा है ॥ ५ ॥

स्वामी दाताको मानवोंके योग्य भोजन देता है । स्वामी अपने सेवकोंके लिए जीवनवेतन देता है । जो ऐसा देता है, वही सच्चा और श्रेष्ठ स्वामी होता है अतः जिसके पास बहुत धन हो, उसे चाहिए कि वह उस धनको श्रेष्ठ मनुष्योंको दे ॥ ६ ॥

सरल भावसे कर्म करनेवाला गायोंके झुण्डोंका दान देवे । सैंकडों प्रकारका बहुत धन दोनों हाथोंमें लेकर लोगोंको देवे ताकि सज्जन मनुष्य उस धनका उपभोग कर सकें ॥ ७ ॥

९०१ माद॑यस्व सु॒ते सचा॒ शव॑से शूर॒ राध॑से ।
वि॒द्मा हि त्वा॑ पुरू॒वसु॒मुप॒ कामा॑न्त्ससृ॒ज्महे ऽथा॑ नोऽवि॒ता भ॑व ॥ ८ ॥
९०२ ए॒ते त॑ इन्द्र ज॒न्तवो॒ विश्वं॑ पुष्यन्ति॒ वार्य॑म् ।
अ॒न्तर्हि ख्यो जना॑नाम॒र्यो वेदो॒ अदा॑शुषां॒ तेषां॑ नो॒ वेद॒ आ भ॑र ॥ ९ ॥

[८२]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- पंक्तिः, जगती ।)

९०३ उपो॒ षु शृ॑णु॒ही गिरो॒ मघ॑व॒न् मात॑था इव ।
य॒दा नः॑ सू॒नृता॑वतः॒ कर॒ आद॒र्थया॑स॒ इद्योजा॒ न्वि॑न्द्र ते॒ हरी॑ ॥ १ ॥
९०४ अक्ष॒न्नमी॑मदन्त॒ ह्यव॑ प्रि॒या अ॑धूषत ।
अस्तो॑षत॒ स्वभा॑नवो॒ विप्रा॒ नवि॑ष्ठया म॒ती योजा॒ न्वि॑न्द्र ते॒ हरी॑ ॥ २ ॥

अर्थ— [९०१] (शूर) हे शूर (शवसे राधसे) बल और धनके लिये (सुते सचा मादयस्व) तू यज्ञस्थानमें एक साथ आनन्दित हो (त्वा पुरु-वसुं विद्म हि) हम तुझ विपुल सम्पत्तिवाले इन्द्रको निश्चय जानते हैं (कामान् उप ससृज्महे) तेरे सामने अपनी कामनाओंको रखते हैं (अथ नः अविता भव) अब तू हमारा रक्षक हो ॥ ८ ॥

[९०२] (इन्द्र) हे इन्द्र (एते जन्तवः ते विश्वं वार्यं पुष्यन्ति) ये सब प्राणी तेरे सम्पूर्ण वरणीय धनको बढाते हैं (अर्यः) सबका स्वामी इन्द्र तू (अदाशुषां जनानां) दान न करनेवाले लोगोंके (अन्तः वेदः ख्यः हि) गुप्त धन जनता ही है (तेषां वेदः नः आ भर) तू उनका धन हमें ला दे ॥ ९ ॥

[८२]

[९०३] (मघ-वन्) हे धनवाले इन्द्र! (गिरः उपो सु शृणुहि) तू हमारी प्रार्थनाओंको पास बैठकर सुन (अतथाः इव मा) परायेके समान मत हो (यदा नः सूनृता-वतः करः) जब तू हमें मीठी वाणीवाला करता है, (आत् अर्थयासे इत्) तब हमारा स्तोत्र चाहता ही है (इन्द्र) हे इन्द्र! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडे शीघ्र जोड और यहां हमारे पास शीघ्र आ ॥ १ ॥

[९०४] हे इन्द्र! (स्व-भानवः विप्राः अक्षन्,) अपने तेजसे तेजस्वी हुए बुद्धिमान् लोगोंने तेरा दिया अन्न खाया (अमीमदन्त हि) और वे बहुत आनन्दित हुए (प्रियाः अव अधूषत) उस आनन्दमें उन्होंने अपने प्रिय मस्तक तेरे आदरके लिये कँपाये (नविष्ठया मती अस्तोषत) फिर प्रशंसासे भरपूर स्तोत्रसे तेरी प्रशंसा की (इन्द्र) हे इन्द्र! (ते हरी योज नु) यज्ञमें आनेके लिये तू अपने घोडे शीघ्र जोड ॥ २ ॥

भावार्थ— बलको बढानेके लिए और धनकी वृद्धिके लिए अपने साथियोंके साथ आनंद प्रसन्नके समयोंमें सहभागी होते रहें। इस प्रकार संगठित होकर हम एक दूसरेके रक्षक हों ॥ ८ ॥

स्वामी कंजूस मनुष्योंके सुरक्षित रखे धनको जानता है, अर्थात् उसे प्राप्त करके सबकी भलाईके लिए प्रयुक्त करता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तू हमसे परायेके समान व्यवहार मत कर। तू हमें मीठी वाणीवाला कर। हम सदा एक दूसरेके साथ मधुरताका व्यवहार करें। इस प्रकार हम सब एक दूसरेको मित्र बनाकर संगठित होकर रहें। मीठी वाणी बोलनेसे सभी मित्रताका व्यवहार करते हैं ॥ १ ॥

बुद्धिमान् जन जिसका अन्न खाते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं, पर दुर्जन अपने अज्ञानतासे ही ईर्ष्या एवं द्वेष करते हैं ॥ २ ॥

९०५ सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥

९०६ स घा तं वृषणं रथ—मधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥

९०७ युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥

९०८ युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत् त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान् वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥ ६ ॥

अर्थ— [९०५] (मघ-वन्) हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्र ! (वयं) हम लोग (त्वा सु-संदृशं वन्दिषीमहि) तुझ, सुरूप इन्द्रकी वन्दना करते हैं । (नूनं पूर्ण-वन्धुरः) निश्चयसे धन-धान्यसे भरपूर रथवाला तू (स्तुतः) प्रशंसा प्राप्त करता हुआ (वशान् अनु प्र याहि) भक्तोंकी ओर जा । (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडोंको जोड ॥ ३ ॥

[९०६] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यः हारि-योजनं पूर्णं पात्रं चिकेतति) जो मनुष्य, जिसके पीनेपर रथमें घोडे जोडे जायँ ऐसा, भरा हुआ पात्र तुझे समर्पित करता है, (सः घा तं गो-विदं वृषणं रथं अधि तिष्ठाति) वही मनुष्य उस गौएँ प्राप्त करानेवाले सुखदायी रथपर बैठता है । (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडे रथमें शीघ्र जोड ॥ ४ ॥

[९०७] (शत-क्रतो) हे सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (ते दक्षिणः उत सव्यः युक्तः अस्तु) तेरा दाहिना और बायाँ घोडा रथमें जोडा हुआ हो, (तेन अन्धसः मन्दानः) उस रथसे तू अन्नसे तृप्त होकर (प्रियां जायां उप याहि) प्रिय पत्नीके पास जा (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते हरी योज नु) तू अपने घोडोंको शीघ्र जोड ॥ ५ ॥

[९०८] (वज्रिन्) हे वज्रधारी इन्द्र ! (ते केशिना हरी ब्रह्मणा युनज्मि) तेरे केशवाले घोडे मैं अपने स्तोत्रसे रथमें जोडता हूँ । (उप प्र याहि) तू अपने घर जा, (गभस्त्योः दधिषे) तू हाथोंमें घोडोंकी रस्सियाँ धारण करता है । (रभसा सुतासः) वेगसे बहनेवाले सोम-रसोंने (त्वा उत् अमन्दिषुः) तुझे तृप्त किया है (पूषण्-वान्) घरपर पुष्टिसे युक्त हुआ तू (पत्न्या सं उ अमदः) अपनी पत्नीके साथ सोमसे भली-भाँति तृप्त हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू अपने उत्तम घोडोंको रथमें जोड और उस रथमें अन्न एवं अन्य धन धान्यको भरकर अपने भक्तोंके पास जा और उन्हें अन्न देकर उनकी प्रशंसा प्राप्त कर ॥ ३ ॥

हे वीर ! हरएक मनुष्य तुझे एवं तेरे घोडोंको धान्य एवं जलसे भरे हुए पात्र अर्पित करता है । जो ऐसा करता है, वही तेरी कृपाका पात्र होकर तेरे साथ तेरे सुखदायी रथ पर बैठता है और गौवें प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने रथके द्वारा यज्ञमें आ, उसका अवलोकन कर, उसके बाद अपने घरमें आकर अपनी प्रिय पत्नीके पास आकर उससे मीठी मीठी बातें कर और अपने घरमें आनंदसे रह ॥ ५-६ ॥

[८३]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती ।)

९०९ अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥
९१० आपो न देवीरुप यन्ति होत्रिय-मवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥
९११ अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
९१२ आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजन-मश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥

---

[८३]

अर्थ—[९०९] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (तव ऊतिभिः सुप्र-अवीः मर्त्यः) तेरी सुरक्षाओं द्वारा सुरक्षित हुआ भक्त मनुष्य (अश्वावति गोषु प्रथमः गच्छति) बहुत घोडोंवाले और बहुत गौओंसे युक्त स्थान प्रथम प्राप्त करता है । जिस प्रकार (वि-चेतसः आपः अभितः सिन्धुं यथा) चित्तको प्रसन्न करनेवाले जल सब ओरसे जैसे समुद्रको पहुंचते हैं, (तं इत् भवीयसा वसुना पृणक्षि) वैसे ही तू उसी भक्तको श्रेष्ठ धनसे पूर्ण करता है ॥ १ ॥

[९१०] (देवासः देवीः आपः न होत्रियं उप यन्ति) हे इन्द्र ! दिव्य लोग, दिव्य जलोंके पास आनेके समान यज्ञके समीप जाते हैं । (वि-ततं रजः यथा अवः पश्यन्ति) वे फैले हुए विस्तृत यज्ञस्थानको देखते हैं (देव-युं प्राचैः प्र नयन्ति) देवोंकी भक्ति करनेवालेको वे पूर्वकी ओर ले जाते हैं (वराः इव ब्रह्म-प्रियं जोषयन्ते) और श्रेष्ठोंके समान ज्ञानसे प्रिय उपदेशका सेवन करते हैं ॥ २ ॥

[९११] (या मिथुना यत-स्रुचा सपर्यतः) जो दो जुडे हुए अन्नपात्र तेरी पूजाके लिये रखे हुए हैं (द्वयोः अधि उक्थ्यं वचः अदधाः) हे इन्द्र ! तूने उन दोनोंमें रखे अन्नको स्तुतिके वचनके साथ स्वीकार किया । (असं-यत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति) युद्धके लिये उद्यत न होनेवाला मनुष्य भी तेरे नियममें रहनेसे सुरक्षित रहता और पुष्ट भी होता है । (सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः) यज्ञ करनेवालेके लिये तेरी ओरसे मङ्गलकारी शक्ति दी जाती है ॥ ३ ॥

[९१२] (आत् ये इद्ध-अग्नयः अङ्गिराः) हे इन्द्र ! तब जिन अग्नि प्रज्वलित करनेवाले अङ्गिरा लोगोंने (सु-कृत्यया शम्या) अपने उत्तम यज्ञकर्मसे (प्रथमं वयः दधिरे) सबसे प्रथम हवि तुझे दी, (पणेः नरः) उन पणिके नेताओंने (सर्वं अश्व-वन्तं गो-मन्तं भोजनं पशुं आ सं अविन्दन्त) सारे घोडों और गायोंसे युक्त पशुरूप धन प्राप्त किये ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्रकी सुरक्षासे सुरक्षित हुआ मनुष्य घोडों और गायोंके झुण्ड प्रथम प्राप्त करता है । जिस प्रकार नदियोंका सभी जल समुद्रको ओर बढ़कर अन्तमें उसीमें जाकर मिल जाता है, उसी तरह सब तरहका धन इन्द्रसे सुरक्षित मनुष्यको मिलता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार उत्तम शुद्ध जलोंके पास लोग प्रेमसे जाते हैं उसी तरह तेजस्वी और दिव्य लोग यज्ञके पास जाते हैं । वे यज्ञ स्थानको जाते हैं, देवोंकी भक्ति करनेवाले हमेशा श्रेष्ठ और उत्तम होकर प्रथम रहते हैं और वे सदा उपदेश सुनकर उनका आचरण करते हैं ॥ २ ॥

जो सदा अन्नादिसे इस वीर इन्द्रकी सेवा करता है, वह युद्ध करनेके लिए उपयुक्त न होने पर भी अर्थात् निर्बल होने पर भी इन्द्रकी सुरक्षामें सुरक्षित रहकर पुष्ट होता जाता है । इस प्रकार यज्ञके द्वारा उसे मंगलकारी शक्ति मिलती है ॥ ३ ॥

अंगिरा ऋषियोंने अग्नि प्रदीप्त करके उत्तम यज्ञ करते हुए उसमें अन्नकी प्रथम आहुतियां दीं । इसके फलस्वरूप इन्द्रने उन्हें प्रसन्न होकर पणि आदि असुरोंसे उनकी गायें एवं धन छीनकर अंगिराओंको प्रदान किया ॥ ४ ॥

९१३ यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
९१४ बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते ऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥

[८४]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १-६ अनुष्टुप्; ७-९ उष्णिक्; १०-१२ पंक्तिः; १३-१५ गायत्री; १६-१८ त्रिष्टुप्; (प्रगाथः=) १९ बृहती; २० सतोबृहती ।)

९१५ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥
९१६ इन्द्रमिद्धरी वहतो ऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥

अर्थ— [९१३] (अथर्वा प्रथमः यज्ञैः पथः तते) अथर्वाने सर्व प्रथम यज्ञोंके द्वारा मार्गको फैलाया (ततः व्रत-पा वेनः सूर्यः आ अजनि) उसके पश्चात् व्रतके पालनकर्ता प्रिय सूर्यका उदय हुआ (काव्यः उशनाः सचा गाः आ आजत्) तत्पश्चात् कविके पुत्र उशनाने पणिके यहांसे एक साथ ही गौएँ बाहर हाँकीं (यमस्य जातं अमृतं यजामहे) हम उस शासन करनेके लिये उत्पन्न अमर इन्द्रकी पूजा करते हैं ॥ ५ ॥

[९१४] (यत् सु-अपत्याय बर्हिः वा वृज्यते) जिसके घरमें उत्तम कर्मके लिये कुश काटे जाते हैं, (अर्कः वा दिवि श्लोकं आ-घोषते) सूर्यके उदयके बाद उसके प्रकाशमें श्लोक पढे जाते हैं (यत्र उक्थ्यः कारुः ग्रावा वदति) जहां प्रशंसनीय कुशल कारीगर सोमसे कूटनेके पत्थरके शब्द करता है (इन्द्रः तस्य इत् अभि-पित्वेषु रण्यति) इन्द्र उसके ही यज्ञोंमें आनन्द मानता है ॥ ६ ॥

[८४]

[९१५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमः ते असावि) यह सोम तेरे लिये निचोडा गया है । (शविष्ठ धृष्णो) हे बलयुक्त शत्रु-नाशक इन्द्र (आ गहि) तू यहां आ । (इन्द्रियं) तेरे लिये बना हुआ (सूर्यः न रश्मिभिः रजः) यह सूर्य जैसे किरणोंसे आकाशको व्यापता है (त्वा आ पृणक्तु) वैसे तुझे यह सोमरस व्याप ले ॥ १ ॥

[९१६] (ऋषीणां च स्तुतीः) ऋषियोंके स्तोत्र (मानुषाणां च यज्ञं) और मनुष्योंके यज्ञके पास (अप्रति-धृष्टशवसं) अटूट बलवाले (इन्द्रं इत् हरी) इन्द्रहीको घोडे (उप वहतः) ले जाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— अथर्वा ऋषिने यज्ञोंके द्वारा सबसे प्रथम धर्मका यज्ञमार्ग फैलाया। अंगिराने अग्नि प्रदीप्त करके उसमें अन्नकी आहुतियां देकर यज्ञ करनेकी विद्या प्रथम सिद्ध की और अथर्वाने इस यज्ञका चारों ओर खूब प्रचार किया। तदनन्तर कवि पुत्र उशनाने यज्ञमें गौओंके घृत आदिका हवन करना, गोदुग्धका सोममें मिलाना आदि पद्धतियोंका प्रचार किया ॥ ५ ॥

यज्ञ करनेवालेके घरमें दर्भ काटकर उनके आसन बनाकर बिछाये जाते हैं । सूर्योदयके पश्चात् वेदमंत्रोंका घोष किया जाता है । वहां प्रशंसनीय कारीगर कुशलतासे यज्ञकर्म करता है, ऋषि मंत्रोंका गान करते हैं और सोम कूटनेके पत्थरोंका शब्द होता है । ॥ ६ ॥

इस इन्द्रको इसके घोडे यज्ञ स्थान पर ले जाते हैं और वहां यह इन्द्र सोम पीता है । तब जिस प्रकार सूर्यकी किरणें आकाशको व्याप्त करती हैं, उसी प्रकार इसके शरीरके प्रत्येक अवयवमें सोमकः उत्साह भर जाता है ॥ १-२ ॥

१४

*

९१७ आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥

९१८ इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥

९१९ इन्द्राय नूनमर्चतो-क्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥

९२० नकिष्ट्वद् रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

९२१ य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥

अर्थ— [९१७] (वृत्र-हन्) हे वृत्र-घातक इन्द्र ! (रथं आ तिष्ठ) तू रथपर चढकर बैठ (ब्रह्मणा ते हरी युक्ता) स्तोत्रके द्वारा तेरे घोडे रथमें जोड दिये गये हैं। (ग्रावा वग्नुना) ये सोम कूटनेके पत्थर अपनी वाणीसे (ते मनः अर्वाचीनं सु कृणोतु) तेरा मन इस ओर आकर्षित करें ॥ ३ ॥

[९१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमं सुतं ज्येष्ठं अमर्त्यं मदं पिब) तू इस निचोडे हुए सर्वोत्तम अमर आनन्द-कारक रसको पी। (ऋतस्य सादने) यज्ञके स्थानमें (शुक्रस्य धाराः) बलवर्धक सोमकी धाराएँ (त्वा अभि अक्षरन्) तेरी ओर बह रही हैं ॥ ४ ॥

[९१९] (नूनं इन्द्राय अर्चत) हे ऋत्विक् लोगो ! निश्चयसे तुम इन्द्रकी पूजा करो (उक्थानि च ब्रवीतन) और उसके लिये स्तोत्र पढो (सुताः इन्दवः अमत्सुः) ये निचोडे हुए सोम-रस इस इन्द्रको तृप्त करें (ज्येष्ठं सहः नमस्यत) तुम इस बडे बलधारी इन्द्रको नमस्कार करो ॥ ५ ॥

[९२०] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत् हरी यच्छसे) जिस कारण तू अपने घोडोंको उत्तमतासे चलाता है (त्वत् रथि-तरः नकिः) इस कारण तुझसे बडा रथी कोई नहीं (मज्मना त्वा अनु नकिः) बलद्वारा तेरी समानता करने-वाला कोई नहीं (सु-अश्वः नकिः आनशे) कोई दूसरा उत्तम घुडसवार भी तुझे नहीं पा सकता ॥ ६ ॥

[९२१] (यः ईशानः अप्रति-स्कुतः इन्द्रः) जिस शासकका शत्रु प्रतिकार कर नहीं सकते (अङ्ग) हे प्रिय ! (एकः इत्) वह इन्द्र शीघ्र अकेलाही (दाशुषे मर्ताय) दानी मनुष्यके लिये (वसु वि-दयते) धन देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे वृत्रके नाश करनेवाले इन्द्र ! तू रथ पर चढकर बैठ। इस रथमें जुडे हुए घोडे तुझे सोम यज्ञकी तरफ ले चलें और सोम कूटनेके पत्थरकी आवाज तुझे अपनी ओर आकर्षित करे। तब यज्ञमें जाकर तू अपनी तरफ बहकर आनेवाली सोमरसकी धाराओंको पी ॥ ३-४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रकी पूजा करो और उसके लिए स्तोत्र पढो, उस बलशाली इन्द्रको नमस्कार करो। क्योंकि यह इन्द्र बडा महारथी है। इसके बलकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है और न कोई घुडसवार ही है ॥ ५-६ ॥

यह इन्द्र अकेला ही शत्रुओंका मुकाबला करता है, पर सब शत्रु मिलकर भी इस एक इन्द्रकी शक्तिका मुकाबला नहीं कर सकते। ऐसा बलशाली यह इन्द्र शत्रुओंके धनको छीनकर वह धन दानशील लोगोंमें बांट देता है ॥ ७ ॥

९२२ कुदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कुदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥
९२३ यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥
९२४ स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥
९२५ ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [९२२] (इन्द्रः) वह इन्द्र (अराधसं मर्तं) अदाता कंजूस मनुष्यको (पदा क्षुम्पं इव) पाँवसे सूखे पत्तोंके समान (कदा स्फुरत्) कब नष्ट कर देगा ? (नः गिरः अङ्ग कदा शुश्रवत्) और हमारी बातोंको शीघ्रातिशीघ्र कब सुनेगा ? ॥ ८ ॥

इन्द्रः अराधसं मर्तं पदा स्फुरत्— इन्द्र दानरहित मनुष्यको पैरसे ठुकरा देता है ।

[९२३] हे इन्द्र ! (यः चित् हि सुत-वान्) जो सोम बनानेवाला (बहुभ्यः त्वा आ आ विवासति) बहुत देवोंमेंसे तेरीही विशेष परिचर्या करता है, (इन्द्रः अङ्ग तत् उग्रं शवः पत्यते) वह तू इन्द्र शीघ्र उसके लिये अपना वह तीक्ष्ण बल देता है ॥ ९ ॥

[९२४] (याः स्व-राज्यं अनु वस्वीः) जो अपने राज्यमें ही बसनेवाली (शोभसे इन्द्रेण स-यावरीः) शोभाके लिये इन्द्रके साथ चलनेवाली (वृष्णा मदन्ति) सुखदायी सोमसे आनन्दित होती हैं (गौर्यः) वे गौर वर्णवाली गायें (इत्था स्वादोः विषू-वतः मध्वः पिबन्ति) इस प्रकार साथ मिलकर मीठे और विशेष रीतिसे निचोडे गए सोमरसका पान करती हैं ॥ १० ॥

[९२५] (अस्य इन्द्रस्य) इस इन्द्रकी (ताः पृशना-युवः प्रियाः पृश्नयः धेनवः) वे स्पर्शकी कामनावालीं प्रिय नाना वर्णोंवाली गौएँ (सोमं श्रीणन्ति) इन्द्रके लिये अपने दूधको सोममें मिलाती हैं। (स्व-राज्यं अनु वस्वीः) वे अपने राज्यमें बसानेवालीं (सायकं वज्रं हिन्वन्ति) शत्रुपर प्राणान्त करनेवाले वज्रको भेजती हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र दान न देनेवालोंका बडा कट्टर शत्रु है, और वह उन्हें बहुत शीघ्र समाप्त कर देता है । तथा जो उदार हैं, उनकी प्रार्थना बडे ध्यानसे सुनता है । इसी प्रकार राजा अपने राष्ट्रमें अदानशीलता और कंजूसीको कभी न पनपने दे । प्रजाओंमें उदार मनोवृत्तिका उदय हो, इस बातका ध्यान राजा हमेशा रखे ॥ ८ ॥

यह इन्द्र देवोंमें सर्वतोपरि है, इसलिए यज्ञ करनेवाले देवोंके मध्यमें सदा इसीकी पूजा करते हैं । पूजित होकर यह इन्द्र भी यज्ञ करनेवालोंको सदा बलसे युक्त करता है ॥ ९ ॥

इन्द्रके राज्यमें सोमादिक वनस्पतियोंकी अत्यधिक विपुलता है । इसलिए इन वनस्पतियोंको खाकर गायें हृष्ट पुष्ट होती हैं । इन्द्र इन गायोंसे अत्यधिक सुशोभित होता है । इसी प्रकार राष्ट्रमें गायोंके लिए वनस्पतियोंकी कमी न रहे । राष्ट्रकी गायें हृष्ट पुष्ट हों । राजा इन हृष्ट पुष्ट गायोंके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो अर्थात् राष्ट्रमें सर्वत्र हृष्ट पुष्ट गायोंका संचार हो ॥ १० ॥

गायें इन्द्रका प्रेमपूर्ण स्पर्श पाकर बहुत पुलकित हो जाती हैं और उसे प्रेमसे अपना दूध देती हैं । इस प्रकार वे गायें राष्ट्रके शत्रुओंसे मुकाबला करनेके लिए और उन पर घातक वज्रको चलानेके लिए इन्द्रको तैय्यार करती हैं । अपने स्वामीका प्रेमपूर्ण स्पर्श पाकर गाय प्रसन्न मनसे ज्यादा दूध देती है । प्रसन्न मनसे दिए गए दूधको पीनेवाला अवश्य बलवान् होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ११ ॥

९२६ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
९२७ इन्द्रो दधीचो अस्थभि-र्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १३ ॥
९२८ इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥
९२९ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥
९३० को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ १६ ॥

अर्थ— [९२६] (ताः स्व-राज्यं अनु वस्वीः प्र-चेतसः) वे अपने राज्यको बसानेवाली और बुद्धिको बढानेवाली गौएँ (पूर्वचित्तये अस्य सहः नमसा सपर्यन्ति) सबसे प्रथम ज्ञानपूर्वक इस इन्द्रके बलकी अपने दूधरूपी अन्नसे सेवा करती हैं (अस्य पुरूणि व्रतानि सश्चिरे) उन्होंने इस इन्द्रके बहुत पराक्रमोंसे लाभ उठाया है ॥ १२ ॥

[९२७] (अप्रति-स्कुतः इन्द्रः) जिसके सामने शत्रु नहीं ठहर सकता, उस इन्द्रने (दधीचः अस्थभिः नव नवतीः वृत्राणि जघान) दध्यङ्की अस्थियोंके वज्रसे निन्यानवेको मार दिया ॥ १३ ॥

[९२८] (पर्वतेषु अप-श्रितं) इन्द्रने पर्वतोंमें पडे हुए (यत् अश्वस्य शिरः इच्छन्) घोडेके शिरको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके पश्चात् (तत् शर्यणावति विदत्) उस शिरको शर्यणावत् तालाबमें है ऐसा जान लिया ॥ १४ ॥

[९२९] (अत्र अह गोः चन्द्रमसः गृहे) इसी गतिशील चन्द्रमाके घरमें (इत्था त्वष्टुः अपीच्यं नाम अमन्वत) इस प्रकार सबके निर्माताके गुप्त प्रकाशको जाना ॥ १५ ॥

[९३०] (अद्य ऋतस्य धुरि) आज सत्यकी धुरामें (शिमी-वतः भामिनः दुः-हृणायून् आसन्-इषून् हृत्सु-असः मयः-भून् गाः कः युङ्क्ते) कार्यतत्पर, तेजस्वी, अत्यन्त क्रोधी, बाणोंको धारण करनेवाले और शत्रुके हृदयमें उन्हें छोडनेवाले सुखदायी गतिमान् वीरोंको कौन जोडता है ? (यः एषां भृत्यां ऋणधत्) जो इनके भरण-पोषणको करता है, (सः जीवात्) वह सदा जीता रहे ॥ १६ ॥

१ यः एषां भृत्यां ऋणधत्, सः जीवात्— जो इन देवोंकी उत्तम रीतिसे सेवा करता है, वही जीवित रहता है ।

भावार्थ— गायें राज्यको बसानेवाली होती हैं । गायोंके दूध द्वारा राष्ट्रकी प्रजायें बलवान् होती हैं और वे स्वराज्य या स्वातंत्र्यका संरक्षण करती हैं। अतः स्वराज्यके संरक्षणका मूल कारण गायें हैं। इनका दूध बुद्धिको बढानेवाला है, गौ दूध पीनेसे बुद्धि तीक्ष्ण होती है । इस प्रकार गायें प्रेमसे अपना दूध देकर इन्द्रको बलशाली बनाती हैं और इन्द्र भी अपने पराक्रमसे इन गायोंकी रक्षा करता है ॥ १२ ॥

इस इन्द्रने मनुष्योंको धारण करनेवाली शक्तिसे असंख्य शत्रुओंको मारा, और अनेक पर्वोंके मध्यमें रहनेवाली शीघ्रगामी बुद्धिको प्राप्त किया । तब बाहुशक्ति और बौद्धिक शक्तिसे युक्त होकर वह इन्द्र इतना बलशाली हो गया, कि उसका प्रतिकार करनेमें कोई समर्थ नहीं हुआ। इसी तरह बुद्धिबल और बाहुबलमें प्रवीण राजा अत्यधिक शक्तिशाली हो जाता है ॥ १३-१४ ॥

सदा गति करनेवाले चन्द्रमामें रहनेवाला प्रकाश बडा आनंददायी होता है । इसी प्रकार जो मनुष्य हमेशा प्रगति करता रहता है, वह तेजस्वी और प्रकाशमान् होता है ॥ १५ ॥

सदा सत्यमार्गपर चलनेवाले, कार्यमें तत्पर, तेजस्वी, अत्यन्त क्रोधी, तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले पर भक्तोंको सुख देनेवाले प्रगतिशील वीरोंको इन्द्रके सिवाय और कोई दूसरा अपने पास नहीं रख सकता । इसलिए जो इन्द्रकी सेवा करता है, वही जीवित रहता है । इन्द्रसे शत्रुता करनेवाला कभी जीवित नहीं रह सकता ॥ १६ ॥

९३१ क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत राये ऽधि ब्रवत् तन्वे३ को जनाय ॥ १७ ॥

९३२ को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥

९३३ त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥

९३४ मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसो ऽस्मान् कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥

अर्थ— [९३१] (कः ईषते तुज्यते) कौन भागता है ? कौन मारा जाता है ? (कः बिभाय) कौन भय खाता है ? (अन्ति सन्तं इन्द्रं कः कः मंसते) पासमें ठहरे हुए इन्द्रको कौन जानता है ? (कः तोकाय) कौन पुत्रके लिये, (कः इभाय उत राये) कौन हाथी और ऐश्वर्यके लिये, (तन्वे, कः जनाय अधि ब्रवत्) कौन शरीर-सुखके लिये और कौन मनुष्योंके सुखके लिये वक्तृत्व करता है ? ॥ १७ ॥

[९३२] (कः हविषा घृतेन अग्निं ईट्टे) कौन हवि और घीसे अग्निकी पूजा करता है ? (ध्रुवेभिः ऋतुभिः स्रुचा यजातै) सदा ऋतु और स्रुचासे कौन यज्ञ करता है ? (देवाः कस्मै होम आशु आ वहान्) देव किसके लिये मांगा हुआ धन शीघ्र ला देते हैं ? (कः वीति-होत्रः सु-देवः मंसते) कौन दाता तेजस्वी यजमान इन्द्रको जानता है ? ॥ १८ ॥

[९३३] (अङ्ग शविष्ठ) हे प्रिय और बहुत बलवाले इन्द्र ! (त्वं देवः मर्त्यं प्र शंसिषः) तू तेजस्वी है, अतः मनुष्यकी बात सुन (मघ-वन् इन्द्र) हे धनवाले इन्द्र ! (त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति) तुझसे भिन्न हमारा सुख-दाता दूसरा कोई नहीं है, (ते वचः ब्रवीमि) इसलिये मैं तेरी स्तुति करता हूं ॥ १९ ॥

१ त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति— तेरे सिवाय कोई दूसरा हमें सुख देनेवाला नहीं है ।

[९३४] (वसो) हे सबके निवासक इन्द्र ! (ते राधांसि) तेरे धन (ते ऊतयः) और तेरे रक्षासाधन (अस्मान् कदा चन मा मा दभन्) हमें कभी न छोडें (मानुष) हे मनुष्योंके हित करनेवाले इन्द्र ! (विश्वा च वसूनि चर्षणिभ्यः नः आ उप-मिमीहि) तू सारे धन दुष्ट लोगोंसे छीनकर हमारे समीप कर ॥ २० ॥

भावार्थ— इन्द्र जब युद्धमें अपनी कुशलता दिखाता है और अपने शस्त्रोंको चलाता है, तब कौन भाग रहा है, कौन छट रहा है, कौन डर रहा है, कुछ भी नहीं जान पडता है । उस समय तो केवल इन्द्र ही चारों ओर दिखाई पडता है । और उस समय सब लोग हाथी, ऐश्वर्य और शरीर सुखकी कामनाको छोडकर इन्द्रकी प्रसन्नताकी ही कामना करते हैं । इतना शक्तिशाली इन्द्र है ॥ १७ ॥

लोग हवि और घीसे इसी अग्रणी इन्द्रकी पूजा करते हैं । ऋतु और स्रुचासे भी इसी इन्द्रको हवि देते हैं । इस प्रकार जो यज्ञादि करते हैं, उन्हींको देव धन देते हैं और वही तेजस्वी इन्द्रको जानता है ॥ १८ ॥

हे सबको प्रिय लगनेवाले, शक्तिशाली ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू तेजस्वी है अतः हमारी प्रार्थना सुन । और हमें हर तरहका सुख दे । क्योंकि तेरे सिवाय और कोई सुख देनेवाला नहीं है ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! तेरी रक्षामें हम सदा रहें, क्योंकि तू ही श्रेष्ठ मनुष्योंका रक्षक है । अतः तू दुष्टोंसे धनको छीनकर हमें दे ॥ २० ॥

[८५]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः। देवता- मरुतः । छन्दः- जगती ५, १२ त्रिष्टुप् ।)

९३५ प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥

९३६ त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥

९३७ गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥

---

[८५]

अर्थ—[९३५] (ये) ये जो (सु-दंससः) अच्छे कार्य करनेवाले, (सप्तयः) प्रगतिशील, (रुद्रस्य सूनवः) महावीरके पुत्र वीर मरुत् (यामन्) बाहर जाते हैं, उस समय (जनयः न) महिलाओंके समान (प्र शुम्भन्ते) अपने आपको सुशोभित करते हैं। (मरुतः हि) मरुतोंने ही (वृधे) सबकी अभिवृद्धिके लिए (रोदसी चक्रिरे) द्युलोक एवं भूलोककी स्थापना की, तथा ये वीर (घृष्वयः वीराः) शत्रुदलको तहसनहस करनेवाले शूर पुरुष हैं और (विदथेषु मदन्ति) यज्ञोंमें या रणांगणोंमें हर्षित हो उठते हैं ॥ १ ॥

[९३६] (रुद्रासः) शत्रुदलको रुलानेवाले वीरोंने (दिवि) आकाशमें (सदः अधि चक्रिरे) अच्छा स्थान या घर बना रखा है। (अर्कं अर्चन्तः) पूजनीय देवकी उपासना करते हुए, (इन्द्रियं जनयन्तः) इंद्रियोंमें विद्यमान शक्तिको प्रकट करते हुए, (पृश्निमातरः) मातृभूमिके सुपुत्र ये वीर (श्रियः अधि दधिरे) अपनी शोभा एवं चारुता बढाते हैं। (ते उक्षितासः) वे अपने स्थानों पर अभिषिक्त होकर (महिमानं आशत) बडप्पनको पा सके ॥ २ ॥

[९३७] (शुभ्राः) तेजस्वी, (गो-मातरः) भूमिको माता समझनेवाले वीर (यत्) जब (अञ्जिभिः शुभयन्ते) अलंकारोंसे अपनेको सुशोभित करते हैं, तब वे (तनूषु) अपने शरीरोंपर (वि-रुक्मतः दधिरे) विशेष ढंगसे सुहानेवाले आभूषण पहनते हैं, वे (विश्वं अभिमातिनं) सभी शत्रुओंको (अप बाधन्ते) दूर हटा देते हैं, उनकी राहमें रुकावटें खडी कर देते हैं, इसलिए (एषां) इनके (वर्त्मानि) मार्गोंपर (घृतं अनु रीयते) घी जैसे पौष्टिक पदार्थ इन्हें पर्याप्त मात्रामें मिल जाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रगतिशील तथा शुभ कार्य करनेवाले ये पुरोगामी वीर बाहर निकलते समय महिलाओंकी तरह अपने आपको सँवारते हैं और खूब बन-ठनके प्रयाण करते हैं। सबकी प्रगतिके लिए यथेष्ट स्थान मिले, इसलिए पृथ्वी एवं आकाशका सृजन हुआ है। भू-चर शत्रुओंकी धज्जियाँ उडानेवाले ये वीर युद्धका अवसर उपस्थित होते ही अतीव उल्लसित एवं प्रसन्न हो उठते हैं। लडाईका मौका आनेपर इन वीरोंका दिल हराभरा हो जाता है ॥ १ ॥

सचमुच ये वीर युद्धमें विजयी बनकर स्वर्गमें अपना घर तैयार कर देते हैं। वे परमात्माकी उपासना करते हैं और अपनी शक्तिको बढाते हैं, तथा मातृभूमिके कल्याणके लिए धनवैभवकी वृद्धि करते हैं। वे अपनी जगह रहकर तथा उचित कार्य करके बडप्पन प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

गौ एवं भूमिको माता माननेवाले वीर आभूषणों तथा हथियारोंसे निजी शरीरोंको खूब सजाते हैं और चूँकि वे शत्रुदलोंका संहार करते हैं, अतएव उन्हें पौष्टिक अन्न पर्याप्त रूपसे मिलता है ॥ ३ ॥

९३८ वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥
९३९ प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥
९४० आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ ६ ॥
९४१ तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥

अर्थ-- [९३८] (ये सु-मखासः) जो तुम अच्छे यज्ञ करनेवाले वीर (ऋष्टिभिः) शस्त्रोंके साथ (वि भ्राजन्ते) विशेष रूपसे चमकते हो, तथा हे (मरुतः) मरुतो! (यत्) जब (मनो-जुवः) मनकी तरह वेगसे जानेवाले और (वृष-व्रातासः) सामर्थ्यशाली संघ बनानेवाले तुम (रथेषु) अपने रथोंमें (पृषतीः आ अयुग्ध्वं) रंगबिरंगी हिरनियाँ जोडते हो, तब (अ-च्युता चित्) न हिलनेवाले सुदृढ शत्रुओंको भी (ओजसा) अपनी शक्तिसे (प्रच्यावयन्तः) हिला देते हो ॥ ४ ॥

[९३९] हे (मरुतः) वीर मरुतो! (वाजे) अन्नके लिए (अद्रिं रंहयन्तः) मेघोंको प्रेरणा देते हुए, (यत्) जिस समय (रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वं) रथोंमें धब्बेवाली हिरनियाँ जोडते हो, (उत) उस समय (अ-रुषस्य धाराः) तनिक मटमैले दिखाई देनेवाले मेघकी जलधाराएँ (वि स्यन्ति) वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं और वे मेघ उन (उदभिः) जलप्रवाहोंसे (भूम) भूमिको (चर्म इव) चमडीके जैसे (वि उन्दन्ति) भीगी या गीली कर डालते हैं॥५॥

[९४०] (वः) तुम्हें (रघु-स्यदः सप्तयः) वेगसे दौडनेवाले घोडे इधर (आ वहन्तु) ले आयें, (रघु-पत्वानः) शीघ्र जानेवाले तुम (बाहुभिः) अपनी भुजाओंमें विद्यमान शक्तिको पराक्रमद्वारा प्रकट करते हुए इधर (प्र जिगात) आओ। हे (मरुतः) वीर मरुतो! (वः) तुम्हारे लिए (उरु सदः) बडा घर, यज्ञस्थान हम (कृतं) तैयार कर चुके हैं, (बर्हिः आ सीदत) यहाँ दर्भमय आसनपर बैठ जाओ और (मध्वः अन्धसः) मिठास भरे अन्नके सेवनसे (मादयध्वं) सन्तुष्ट एवं हर्षित बनो ॥ ६ ॥

[९४१] (ते) वे वीर (स्व-तवसः) अपने बलसे ही (अवर्धन्त) बढते रहते हैं। वे अपने (महित्वना) बडप्पनके फलस्वरूप (नाकं आ तस्थुः) स्वर्गमें जा उपस्थित हुए। उन्होंने अपने निवासके लिए (उरु सदः चक्रिरे) बडा भारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है। (यत् वृषणं) जिस बल देनेवाले तथा (मद-च्युतं) आनन्द बढानेवालेका (विष्णुः आवत् ह) व्यापक परमात्मा स्वयं ही रक्षण करता है, उस (प्रिये बर्हिषि अधि) हमारे प्रिय यज्ञमें (वयः न) पंछियोंकी तरह (सीदन्) पधार कर बैठो ॥ ७ ॥

भावार्थ— श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले, मनके समान वेगवान् तथा बलिष्ठ हो संघमय जीवन बितानेवाले वीर शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज बन रथपर चढ जाते हैं और सुदृढ शत्रुओंको भी जडमूलसे उखाड कर फेंक देते हैं ॥ ४ ॥

मरुत् मेघोंको गतिशील बना देते हैं, इसलिए वर्षाका प्रारम्भ हो जलसमूहसे समूची पृथ्वी आर्द्र हो उठती है ॥ ५ ॥

फुर्तीले घोडे तुम्हें इधर लायँ। तुम जैसे शीघ्रगामी अपने बाहुबलसे तेजस्वी बनकर इधर आओ। क्योंकि तुम्हारे लिए बडा विस्तृत स्थान यहाँ पर तैयार कर रखा है। इधर पधारकर तथा आसनोंपर बैठकर मिठाससे पूर्ण अन्न या सोमरसका सेवन कर हर्षित बनो ॥ ६ ॥

वीर अपनी शक्तिसे बडे होते हैं; अपनी कर्तृत्वशक्तिसे स्वर्गतक चढ जाते हैं और अपने बलसे विशाल जगह पर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं। ऐसे वीर हमारे यज्ञमें शीघ्र ही पधारें ॥ ७ ॥

९४२ शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥

९४३ त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥

९४४ ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥

अर्थ— [९४२] (शूराः इव इत्) वीरोंके समान लडनेकी इच्छा करनेवाले (युयुधयः न जग्मयः) योद्धाओंकी तरह शत्रु पर चढाई करनेवाले तथा (श्रवस्यवः न) यशकी इच्छा करनेवाले वीरोंके जैसे ये वीर (पृतनासु येतिरे) संग्रामोंमें बडा भारी पुरुषार्थ कर दिखलाते हैं। (राजानः इव) राजाओंके समान (त्वेष-संदृशः) तेजस्वी दिखाई देनेवाले ये (नरः) नेता वीर हैं, इसलिए (मरुद्भ्यः) इन मरुतोंसे (विश्वा भुवना भयन्ते) सारे लोक भयभीत हो उठते हैं ॥ ८ ॥

[९४३] (सु-अपाः) अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले (त्वष्टा) कारीगरने (यत् सु-कृतं) जो अच्छी तरह बनाये हुए, (हिरण्ययं) सुवर्णमय, (सहस्र-भृष्टिं वज्रं) सहस्र धाराओंसे युक्त वज्र इन्द्रको (अवर्तयत्) दिया, उस हथियारको (इन्द्रः) इन्द्रने (नरि) मानवोंमें प्रचलित युद्धोंमें (अपांसि कर्तवे) वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलानेके लिए (धत्ते) धारण किया और (अर्ण-वं वृत्रं अहन्) जलको रोकनेवाले शत्रुको मार डाला तथा (अपां निः औब्जत्) जलको जानेके लिए उन्मुक्त कर दिया ॥ ९ ॥

[९४४] (ते) उन वीरोंने (ओजसा) अपनी शक्तिसे (ऊर्ध्वं अवतं) ऊँची जगह विद्यमान तालाब या झीलके पानीको (नुनुद्रे) प्रेरित किया और कार्यके लिए (दादृहाणं पर्वतं चित्) राहमें रोडे अटकानेवाले पर्वतको भी (वि बिभिदुः) छिन्नविच्छिन्न किया। पश्चात् उन (सु-दानवः मरुतः) अच्छे दानी मरुतोंने (सोमस्य मदे) सोमपानसे उद्भूत आनन्दसे (वाणं धमन्तः) वाण बाजा बजा कर (रण्यानि चक्रिरे) रमणीय गानोंका सृजन किया ॥ १० ॥

भावार्थ— ये वीर सच्चे शूरोंकी भाँति लडते हैं, योद्धाओंके समान शत्रुसेनापर आक्रमण कर बैठते हैं, कीर्ति पानेके लिए लडनेवाले वीर पुरुषोंकी भाँति ये रणभूमिमें भारी पराक्रम करते हैं। जैसे राजालोग तेजस्वी दीख पडते हैं, ठीक वैसे ही ये हैं। इसलिए सभी इनसे अतीव प्रभावित होते हैं ॥ ८ ॥

अत्यन्त निपुण कारीगरने एक वज्र नामक शस्त्र तैयार किया, जिसकी सहस्र धाराएँ या नोक विद्यमान थे और जिस पर शोभाके लिए सुनहली पच्चीकारी की थी। इन्द्रने उस श्रेष्ठ आयुधको पाकर मानवजातिमें बारंबार होनेवाली लडाइयोंमें शूरताकी अभिव्यंजना करनेके लिए उसका प्रयोग किया। जलस्रोत पर प्रभुत्व प्रस्थापित करके ढकनेवाले तथा घेरनेवाले शत्रुका वध करके सबके लिए जलको उन्मुक्त कर दिया ॥ ९ ॥

ऊँचे स्थान पर पाये जानेवाले तालाबका पानी मरुतोंने नहर बनाकर दूसरी ओर पहुँचा दिया और नहरकी खुदाई करते समय राहमें जो पहाड रुकावटके रूपमें पाये गये थे, उन्हें काटकर पानीके बहावके लिए मार्ग बना दिया। इतना कार्य कर चुकने पर सोमरसको पीकर बडे आनन्दसे उन्होंने सामगायन किया ॥ १० ॥

९४५ जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
९४६ या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥

[८६]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

९४७ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
९४८ यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥

अर्थ--[९४५] वे वीर (अवतं) झीलका पानी (तया दिशा) उस दिशामें (जिह्मं) टेढी राहसे (नुनुद्रे) ले गये और (तृष्णजे गोतमाय) प्यासके मारे अकुलाते हुए गोतमके लिए (उत्सं असिञ्चन्) जलकुंडमें उस जलका झरना बहने दिया। इस भाँति वे (चित्र-भानवः) अति तेजस्वी वीर (अवसा ईं) संरक्षक शक्तियोंके साथ इसके पास (आ गच्छन्ति) आये और (धामभिः) अपनी शक्तियोंसे (विप्रस्य कामं) उस ज्ञानीकी लालसाको (तर्पयन्त) तृप्त किया ॥ ११ ॥

[९४६] हे (मरुतः) वीर मरुतो! (शशमानाय) शीघ्र गतिसे जानेवालोंको देनेके लिए (त्रि-धातूनि) तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे मिलनेवाले (वः या शर्म) तुम्हारे जो सुख (सन्ति) विद्यमान हैं और जिन्हें तुम (दाशुषे अधि यच्छत) दानीको दिया करते हो, (तानि) उन्हें (अस्मभ्यं वि यन्त) हमें दो। हे (वृषणः) बलवान् वीरो! (नः) हमें (सु--वीरं) अच्छे वीरोंसे युक्त (रयिं) धन (धत्त) दे दो ॥ १२ ॥

[८६]

[९४७] हे (वि-महसः मरुतः) विलक्षण ढंगसे तेजस्वी वीर मरुतो! (दिवः) अन्तरिक्षमेंसे पधारकर (यस्य हि क्षये) जिसके घरमें तुम (पाथ) सोमरस पीते हो, (सः) वह (सु-गो-पातमः जनः) अत्यन्त ही सुरक्षित मानव होता है ॥ १ ॥

[९४८] हे (यज्ञ- वाहसः मरुतः) यज्ञका गुरुतर भार उठानेवाले मरुतो! (यज्ञैः वा) यज्ञोंके द्वारा या (विप्रस्य मतीनां वा) विद्वान्की बुद्धिकी सहायतासे तुम हमारी (हवं शृणुत) प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ— इन वीरोंने टेढीमेढी राहसे नहर खुदवाकर झीलका पानी अन्य जगह पहुँचा दिया और ऋषिके आश्रममें पीनेके जलका विपुल संचय कर दिया, जिसके फलस्वरूप गोतमकी पानीकी आवश्यकता पूर्ण हुई। इस भाँति ये तेजःपुञ्ज वीर दलबलसमेत तथा शक्तिसामर्थ्यसे परिपूर्ण हो इधर पधारते हैं और अपने भक्तों तथा अनुयायियोंकी लालसाओंको तृप्त करते हैं ॥ ११ ॥

त्रिविध धारक शक्तियोंसे जो कुछ भी सुख पाये जा सकते हैं, उन्हें वे वीर श्रेष्ठ कार्योंको शीघ्रतासे निभानेवालोंके लिए उपभोगार्थ देते हैं। हमारी लालसा है कि, हमें भी वे सुख मिलें तथा उच्च कोटिके वीरोंसे रक्षित धन हमें प्राप्त हो। अभिप्राय इतना ही है कि, धन तो अवश्यमेव कमाना चाहिए और उसकी समुचित रक्षाके लिए आवश्यक वीरता पानेके लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए ॥ १२ ॥

तेजस्वी वीर लोग जिस मानवके घरमें सोमको ग्रहण करते हैं, वह अवश्यमेव सुरक्षित रहेगा, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं ॥ १ ॥

यज्ञोंके अर्थात् कर्मोंके द्वारा तथा ज्ञानी लोगोंकी सुमतियों याने अच्छे संकल्पोंके द्वारा जो प्रार्थना होती है, सो तुम सुनो ॥ २ ॥

*

९४९ उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥
९५० अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
९५१ अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित् सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥
९५२ पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥
९५३ सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥
९५४ शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥

अर्थ—[९४९] (उत वा) अथवा (यस्य वाजिनः) जिसके बलवान् वीर (विप्रं अनु अतक्षत) ज्ञानीके अनुकूल हों, उसे श्रेष्ठ बना देते हैं, (सः) वह (गो-मति व्रजे) अनेक गौओंसे भरे प्रदेशमें (गन्ता) चला जाता है, अर्थात् वह अनगिनती गौएँ पाता है ॥ ३ ॥

[९५०] (दिविष्टिषु) इष्टिके दिनमें होनेवाले (बर्हिषि) यज्ञमें, (अस्य वीरस्य) इस वीरके लिए, (सोमः सुतः) सोमका रस निचोडा जा चुका है । (उक्थं) अब स्तोत्रका गान होता है और सोमरससे उद्भूत (मदः च शस्यते) आनन्दकी प्रशंसा की जाती है ॥ ४ ॥

[९५१] (विश्वाः चर्षणीः) सभी मानवोंको तथा (सूरं चित्) विद्वान्को भी (इषः सस्रुषीः) अन्न मिले, इसलिए (यः अभि-भुवः) जो शत्रुका पराभव करता है, (अस्य) उसका काव्यगायन सभी वीर (आ श्रोषन्तु) सुनें ॥ ५ ॥

[९५२] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (चर्षणीनां अवोभिः) कृषकोंकी तथा मानवोंकी समुचित रक्षा करनेकी शक्तियोंसे युक्त (वयं) हम लोग (पूर्वीभिः शरद्भिः) अनेक वर्षोंसे (हि) सचमुच (ददाशिम) दान देते आ रहे हैं ॥ ६ ॥

[९५३] हे (प्र-यज्यवः मरुतः) पूज्य मरुतो ! (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-भगः अस्तु) अच्छे भाग्यवाला रहता है कि, (यस्य प्रयांसि) जिसके अन्नका (पर्षथ) सेवन तुम करते हो ॥ ७ ॥

[९५४] (सत्य-शवसः मरुतः) सत्यसे उत्पन्न बलसे युक्त मरुतो ! (शशमानस्य) शीघ्र गतिके कारण (स्वेदस्य) पसीनेसे भीगे हुए, तथा (वेनतः वा) तुम्हारी सेवा करनेवालेकी (कामस्य विद) अभिलाषा पूर्ण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— यदि वीर ज्ञानीके अनुकूल बनें, तो उस ज्ञानी पुरुषको बहुतसी गौएँ पानेमें कोई कठिनाई नहीं होती ॥ ३ ॥
जिन दिनोंमें यज्ञ प्रचलित रखे जाते हैं, तब सोमरसका सेवन तथा सामगानका श्रवण जारी रहता है ॥ ४ ॥

जो वीर पुरुष समूची मानवजातिको तथा विद्वन्मंडलीको अन्नकी प्राप्ति हो, इस हेतु शत्रुदलका पराभव करनेकी चेष्टा करके सफलता पाता है, उसी वीरके यशका गान लोग करते हैं और उस गुण-गरिमा-गानको सुनकर श्रोताओंमें स्फूर्तिका संचार हो जाता है ॥ ५ ॥

कृषकों तथा सभी मानवजातिकी रक्षा करनेके लिए जो आवश्यक गुण या शक्तियाँ हैं, उनसे युक्त बनकर हम पहलेसे ही दान देते आये हैं । या किसानों तथा अन्य लोगोंकी संरक्षणक्षम शक्तियोंके द्वारा सुरक्षित बन हम प्रथमतः दानी बन चुके हैं ॥ ६ ॥

वीर पुरुष जिसके अन्नका सेवन करते हैं, वह मनुष्य सचमुच भाग्यशाली बनता है ॥ ७ ॥

ये वीर सचाईके भक्त हैं, अतः बलवान् हैं । जो जल्दी चलनेके कारण पसीनेसे तर होते हैं या लगातार काम करनेसे थकमाँदे होते हैं, उनकी सेवा करनेवालोंकी इच्छाएँ ये वीर पूर्ण कर देते हैं ॥ ८ ॥

९५५ यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥
९५६ गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् । ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥

[८७]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती ।)

९५७ प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनो ऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभि र्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥
९५८ उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित् पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥

अर्थ—[९५५] हे (सत्य-शवसः) सत्यके बलसे युक्त वीरो ! (यूयं) तुम (तत्) वह अपना बल (आविः कर्त) प्रकट करो । उस अपने (विद्युता महित्वना) तेजस्वी बलसे (रक्षः विध्यत) राक्षसोंको मार डालो ॥ ९ ॥

[९५६] (गुह्यं) गुफामें विद्यमान (तमः) अँधेरा (गूहत) ढक दो, विनष्ट करो । (विश्वं अत्रिणं) सभी पेटू दुरात्माओंको (वि यात) दूर कर दो । (यत् ज्योतिः) जिस तेजको हम (उश्मसि) पानेके लिए लालायित हैं, वह हमें (कर्त) दिखा दो ॥ १० ॥

[८७]

[९५७] (प्र-त्वक्षसः) शत्रुदलको क्षीण करनेवाले, (प्र-तवसः) अच्छे बलशाली, (विरप्शिनः) बडे भारी वक्ता, (अन्-आनताः) किसीके सम्मुख शीश न झुकानेहारे, (अ-विथुराः) न बिछुडनेवाले अर्थात् एकतापूर्वक जीवन बितानेवाले (ऋजीषिणः) सोमरस पीनेवाले या सीधासादा तथा सरल बर्ताव रखनेवाले, (जुष्ट-तमासः) जनताको अतीव सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा (नृ-तमासः) नेताओंमें प्रमुख ये वीर (केचित् उस्राः इव) सूर्यकिरणोंके समान (स्तृभिः) वस्त्र तथा अलंकारोंसे युक्त होकर (वि आनज्रे) प्रकाशमान होते हैं ॥ १ ॥

[९५८] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वयः इव) पक्षीकी तरह (केन चित् पथा) किसी भी मार्गसे आकर (यत्) जब (उपह्वरेषु) हमारे समीप (ययिं) आनेवालोंको तुम (अचिध्वं) इकट्ठे करते हो, तब (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें विद्यमान (कोशाः) भंडार हम पर (उप श्चोतन्तिः) धनकी वर्षा करने लगते हैं और (अर्चते) पूजा करनेवाले उपासकके लिए (मधु-वर्णं) मधुकी भांति स्वच्छ वर्णवाले (घृतं) घी या जलकी तुम (आ उक्षत) वर्षा करते हो ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर सच्चे बलवान् हैं । इनका वह बल प्रकट हो और उसके फलस्वरूप सदैव कष्ट पहुँचानेवाले दुष्टोंका नाश हो ॥ ९ ॥

अँधेरा विनष्ट करके तथा कभी तृप्त न होनेवाले स्वार्थी शत्रुओंको हटाकर सभी जगह प्रकाशका विस्तार करना चाहिए ॥ १० ॥

• शत्रुओंको हलचल करनेवाले, बलसे पूर्ण, अच्छे वक्ता, सदैव अपना मस्तक ऊँचा करके चलनेहारे, एक ही विचारसे आचरण करनेवाले, सोमका सेवन करनेवाले, सेवनीय और प्रमुख नेता बन जानेकी क्षमता रखनेवाले वीर वस्त्रालंकारोंसे सजाये जाने पर सूर्यकिरणवत् सुहाते हैं ॥ १ ॥

जिस वक्त तुम किसी भी राहसे आकर हमारे निकट आनेवाले लोगोंमें एकता प्रस्थापित करते हो, संगठन करते हो, तब तुम्हारे रथोंमें रखे हुए धनभंडार हमें संपत्तिसे निहाल कर देते हैं, हम पर मानों धनकी सतत वृष्टिसी करते हैं । तुम लोग भी भक्त एवं उपासकको स्वच्छ जल एवं निर्दोष अन्न पर्याप्त मात्रामें देते हो ॥ २ ॥

९५९ प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥
९६० स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणो३ ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्यो ऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥
९६१ पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशता ऽऽदिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

अर्थ— [९५९] (यत् ह) जब सचमुच ये वीर (शुभे) अच्छे कर्म करनेके लिए (युञ्जते) कटिबद्ध हो उठते हैं, तब (एषां अज्मेषु यामेषु) उनके वेगवान् हमलोंमें (भूमिः) पृथ्वी तक (विथुरा इव) अनाथ नारीके समान (प्र रेजते) बहुतही काँपने लगती है । (ते क्रीळयः) वे खिलाडीपनके भावसे प्रेरित, (धुनयः) गतिशील, चपल (भ्राजत्-ऋष्टयः) चमकीले हथियारोंसे युक्त, (धूतयः) शत्रुको विचलित कर देनेवाले वीर (स्वयं) अपना (महित्वं) महत्त्व या बडप्पन (पनयन्त) विख्यात कर डालते हैं ॥ ३ ॥

[९६०] (सः हि गणः) वह वीरोंका संघ सचमुचही (युवा) यौवनपूर्ण, (स्व-सृत्) स्वयंप्रेरक (पृषत्-अश्वः) रथमें धब्बेवाले घोडे जोडनेवाला (तविषीभिः आवृतः) और भाँतिभाँतिके बलोंसे युक्त रहनेके कारण (अया ईशानः) इस संसारका प्रभु एवं स्वामी बननेके लिए उचित एवं सुयोग्य है । (अथ) और वह (सत्यः ऋणयावा) सचाईसे बर्ताव करनेवाला तथा ऋण दूर करनेवाला, (अनेद्यः) अनिंदनीय और (वृषा) बलवान् दीख पडनेवाला (गणः) यह संघ (अस्याः धियः) इस हमारे कर्म तथा ज्ञानकी (प्र अविता असि) रक्षा करनेवाला है ॥ ४ ॥

[९६१] (प्रत्नस्य पितुः जन्मना) पुरातन पितासे जन्म पाये हुए हम (वदामसि) कहते हैं कि, (सोमस्य चक्षसा) सोमके दर्शनसे (जिह्वा प्र जिगाति) जीभ-वाणी प्रगति करती है, अर्थात् वीरोंके काव्यका गायन करती है । (यत्) जब ये वीर (शमि) शत्रुको शान्त करनेवाले युद्धमें (ईं इन्द्रं) उस इन्द्रको (ऋक्वाणः) स्फूर्ति देकर (आशत) सहायता करते हैं, (आत् इत्) तभी वे (यज्ञियानि नामानि) प्रशंसनीय नाम- यश (दधिरे) धारण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिस समय ये वीर जनताका कल्याण करनेके लिए सुसज्ज हो जाते हैं, उस समय इनके शत्रुओं पर टूट पडनेसे मारे डरके समूची पृथ्वी थर थर काँप उठती है । ऐसे अवसर पर खिलाडी, चपल, तेजस्वी शस्त्रास्त्र धारण करनेवाले तथा शत्रुको विकंपित करनेवाले वीरोंकी महनीयता प्रकट हो जाती है ॥ ३ ॥

यह वीरोंका संघ युवा, स्वयंप्रेरक, बलिष्ठ, सत्यनिष्ठ, उऋण होनेकी चेष्टा करनेवाला, प्रशंसनीय तथा सामर्थ्यवान् है, इस कारणसे इस संसार पर प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकी क्षमता पूर्ण रूपेण रखता है । हमारी इच्छा है कि, इस भाँतिका यह समुदाय हमारे कर्मों तथा संकल्पोंमें हमारी रक्षा करनेवाला बने । अगर विश्वमें विजयी बननेकी एवं जगत् पर स्वामित्व प्रस्थापित करनेकी लालसा हो, तो उपर्युक्त गुणोंकी ओर ध्यान देना अतीव आवश्यक है ॥ ४ ॥

श्रेष्ठ परिवारमें उत्पन्न हुए हम इस बातकी घोषणा करना चाहते हैं कि, सोमकी आहुति देते समय मुँहसे अर्थात् जिह्वासे भी देवताओंकी सराहना करनी चाहिए । शत्रुदलको विनष्ट करनेके लिए जो युद्ध छेडने पडते हैं, उनमें इन्द्रको स्फूर्ति प्रदान करते हुए ये वीर सराहनीय कीर्ति पाते हैं । उन नामोंसे उनकी कर्तृत्वशक्ति प्रकट हुआ करती है ॥ ५ ॥

९६२ श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥

[८८]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप्; १, ६ प्रस्तारपंक्तिः; ५ विराड्रूपा)

९६३ आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥

९६४ तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान् पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥

अर्थ— [९६२] (ते) वे वीर मरुत् (कं श्रियसे) सबको सुख मिले इसलिए (भानुभिः रश्मिभिः) तेजस्वी किरणोंसे (सं मिमिक्षिरे) सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं। (ते) वे (ऋक्वभिः) कवियोंके साथ (सु-खादयः) उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे या अच्छे आभूषण धारण करनेवाले, (वाशी-मन्तः) कुल्हाडी धारण करनेवाले (इष्मिणः) वेगसे जानेवाले तथा (अ-भीरवः) न डरनेवाले (ते) वे वीर (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः) प्रिय मरुतोंके स्थानको (विद्रे) पाते हैं ॥ ६ ॥

[८८]

[९६३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (विद्युन्मद्भिः) बिजलीसे युक्त या बिजलीकी भांति अतितेजस्वी, (सु-अर्कैः) अतिशय पूज्य, (ऋष्टि-मद्भिः) हथियारोंसे सजे हुए तथा (अश्व-पर्णैः) घोडोंसे युक्त होनेके कारण वेगसे जानेवाले (रथेभिः) रथोंसे (आ यात) इधर आओ। हे (सु-मायाः) अच्छे कुशल वीरो ! तुम (वर्षिष्ठया इषा) श्रेष्ठ अन्नके साथ (वयः न) पंछियोंके समान वेगपूर्वक (नः आ पतत) हमारे निकट चले आओ ॥ १ ॥

[९६४] (ते) वे वीर (अरुणेभिः) रक्तिम दीख पडनेवाले तथा (पिशङ्गैः) भूरे बदामी वर्णवाले और (रथ-तूर्भिः) त्वरापूर्वक रथ खींचनेवाले (अश्वैः) घोडोंके साथ (शुभे) शुभकार्य करनेके लिए और (वरं कं) उच्च कोटिका कल्याण संपादन करनेके लिए, सुख देनेके लिए (आ यान्ति) जाते हैं। वह वीरोंका संघ (रुक्मः न) सुवर्णकी भाँति (चित्रः) प्रेक्षणीय तथा (स्वधिति-वान्) शस्त्रोंसे युक्त है। ये वीर (रथस्य पव्या) वाहनके पहियोंकी लौहपट्टिकाओंसे (भूम) समूची पृथ्वीपर (जंघनन्त) गति करते हैं, गतिशील बनते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर जनता सुखी बने इसलिए भूमिमें, पृथ्वी-मंडल पर बडा भारी यत्न करते हैं और यज्ञमें हविष्यान्नका भोजन करनेवाले, सुन्दर वीरोचित आभूषण पहननेवाले, कुठार हाथमें उठाकर शत्रुदल पर टूट पडनेवाले, निर्भयतासे पूर्ण वीर अपने प्रिय देशको पाकर उसकी सेवामें लगे रहते हैं ॥ ६ ॥

अपने शस्त्रास्त्र, रथ रण-चातुरीके द्वारा वीर पुरुष अच्छा अन्न प्राप्त करें और ऐसी आयोजना ढूँढ निकालें कि वह सबको यथावत् मिलें ॥ १ ॥

वीर पुरुष समूची जनताका श्रेष्ठ कल्याण करनेके लिए अपने रथोंको हथियारों तथा अन्य विशेष आयुधोंसे भलीभांति सज्ज करके सभी स्थानमें संचार करें ॥ २ ॥

९६५ श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशी॒र्मेधा वना॒ न कृ॑णवन्त ऊ॒र्ध्वा ।
यु॒ष्मभ्यं॒ कं म॑रुतः सुजाता॒स्तुविद्यु॒म्नासो॑ धनयन्ते॒ अद्रि॑म् ॥ ३ ॥
९६६ अहा॑नि॒ गृध्राः॒ पर्या॑ व॒ आगु॑रि॒मां धियं॑ वार्का॒र्यां॑ च दे॒वीम् ।
ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॒ गोत॑मासो अ॒र्कैरू॒र्ध्वं नु॑नुद्र उत्स॒धिं पिब॑ध्यै ॥ ४ ॥
९६७ एतत् त्यन्न योज॑नमचेति स॒स्वर्ह॒ यन्म॑रुतो॒ गोत॑मो वः ।
पश्य॒न् हिर॑ण्यचक्रा॒नयो॑दंष्ट्रान् वि॒धाव॑तो व॒राहू॑न् ॥ ५ ॥

अर्थ— [९६५] (श्रिये कं) विजयश्री तथा सुख पानेके लिए (वः तनूषु अधि) तुम्हारे शरीरोंपर (वाशीः) आयुध लटकते रहते हैं; (वना न) वनके वृक्षोंके समान अर्थात् वनोंमें पेड जैसे ऊँचे बढते हैं, उसी तरह तुम्हारे उपासक तथा भक्त अपनी (मेधा) बुद्धिको (ऊर्ध्वा) उच्च कोटिकी (कृणवन्ते) बना देते हैं। हे (सु-जाताः मरुतः !) अच्छे परिवारमें उत्पन्न वीर मरुतो ! (तुवि-द्युम्नासः) अत्यंत दिव्यमनसे युक्त तुम्हारे भक्त (युष्मभ्यं कं) तुम्हें सुख देनेके लिए (अद्रिं) पर्वतसे भी (धनयन्ते) धनका सृजन करते हैं, पर्वतोंपरसे सोमसदृश वनस्पति लाकर तुम्हारे लिए अन्न तैयार करते हैं ॥ ३ ॥

[९६६] हे (गोतमासः) गौतमो ! (गृध्राः वः) जलकी इच्छा करनेवाले तुम्हें अब (अहानि) अच्छे दिन (परि आ अगुः) प्राप्त हो चुके हैं। अब तुम (वार्-कार्यां च) जलसे करनेयोग्य (इमां देवीं धियं) इन दिव्य कर्मोंको (अर्कैः) पूज्य मन्त्रोंसे (ब्रह्म) ज्ञानसे पवित्र (कृणवन्त) करो। (पिबध्यै) पानी पानीके लिए मिले, सुगमता हो, इसलिए अब (ऊर्ध्वं) ऊपर रखे हुए (उत्सधिं) कुंडके जलको तुम्हारी ओर (नुनुद्रे) नहरद्वारा पहुँचाया गया है ॥ ४ ॥

[९६७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (हिरण्य-चक्रान्) स्वर्णविभूषित पहिये की आकृतिके हथियार धारण करनेवाले (अयो-दंष्ट्रान्) फौलादकी तेज दाढोंसे धाराओंसे युक्त हथियार लेकर (वि-धावतः) भाँतिभाँतिके प्रकारोंसे शत्रुओंपर दौडकर टूट पडनेवाले और (वर-आ-हून) बलिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले (वः) तुम्हें (पश्यन्) देखनेवाले (गोतमः) ऋषि गोतमने (यत् एतत्) जो यह तुम्हारी (योजनं) आयोजना-छन्दोबद्ध स्तुति (सस्वः ह) गुप्तरूपसे वर्णित की है, (त्यत्) वह सचमुच (न अचेति) अवर्णनीय है ॥ ५ ॥

भावार्थ— समरमें विजयी बननेके लिए और जनताका सुख बढानेके लिए भी वीर पुरुष अपने समीप सदैव शस्त्र रखें। अपनी विचारप्रणालीको भी हमेशा परिमार्जित तथा परिष्कृत रखें। मनमें दिव्य विचारोंका संग्रह बनाकर पर्वतीय एवं पार्थिव धनवैभवका उपयोग समूची जनताका सुख बढानेके लिए करें ॥ ३ ॥

निवासस्थलोंमें यथेष्ट जल मिले, तो बहुत सारी सुविधाएँ प्राप्त हुआ करती हैं, इसमें क्या संशय ? इस कारणसे इन वीरोंने गोतमके आश्रमके लिए जलकी सुविधा कर डाली। पश्चात् उस स्थानमें मानवी बुद्धि ज्ञानके कारण पवित्र हो, इस इच्छासे प्रभावित होकर ब्रह्मयज्ञसदृश कर्मोंकी पूर्ति कराई ॥ ४ ॥

वीरोंको चाहिए कि वे अपने तीक्ष्ण शस्त्र साथ लेकर शत्रुदलपर विभिन्न प्रकारोंसे हमला करें और उन्हें तितरबितर कर डालें। इस तरह शत्रुओंको जडमूलसे विनष्ट करना चाहिए। ऐसे वीरोंका समुचित बखान करनेके लिए कवि वीर गाथाओंका सृजन करें और चतुर्दिक् इन वीर गीतों तथा काव्योंका गायन शुरू हो ॥ ५ ॥

९६८ एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद् वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥

[८९]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- विश्वेदेवाः । (१-२, ८-१, देवाः, १० अदितिः ।)
छन्दः- जगती; ६ विराट्-स्थाना; ८-१० त्रिष्टुप् ।)

९६९ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो ऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥

९७० देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥

अर्थ— [९६८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम्हारे (गभस्त्योः) बाहुओंकी (स्व-धां अनु) धारक शक्तिको शूरताको ध्यानमें रख कर (स्या एषा) वही यह (अनु-भर्त्री) तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली (वाघतः वाणी) हम जैसे स्तोताओंकी वाणी (न) अब (वः प्रति स्तोभति) तुममेंसे प्रत्येकका वर्णन करती है। पहले भी (आसां) इन वाणियोंने (वृथा) किसी विशेष हेतुके सिवा इसी भांति (अस्तोभयत्) सराहना की थी ॥ ६ ॥

[८९]

[९६९] (भद्राः) कल्याणकारक (अदब्धासः) न दबनेवाले, (अपरीतासः) पराभूत न होनेवाले (उद्भिदः क्रतवः विश्वतः नः आ यन्तु) उच्चताको पहुंचानेवाले शुभ कर्म चारों ओरसे हमारे पास आयें । (अप्रायुवः) प्रगतिको न रोकनेवाले, (दिवेदिवे रक्षितारः देवाः) प्रतिदिन सुरक्षा करनेवाले देव (सदं इत् यथा वृधे असन्) हमारा सदा संवर्धन करनेवाले हों ॥ १ ॥

१ अ-प्रायुवः रक्षितारः देवाः सदं इत् वृधे असन्— प्रगतिको न रोकनेवाले तथा सुरक्षा करनेवाले देव हमारा सदा संवर्धन करें ।

[९७०] (ऋजूयतां देवानां भद्रा सुमतिः) सरल मार्गसे जानेवाले देवोंकी कल्याणकारक सुबुद्धि (देवानां रातिः) तथा देवोंकी उदारता (नः अभि नि वर्तताम्) हमें प्राप्त होती रहे । (वयं देवानां सख्यं उप सेदिम) हम देवोंकी मित्रता प्राप्त करें (देवाः नः आयुः जीवसे प्र तिरन्तु) देव हमें दीर्घ आयु हमारे दीर्घ जीवनके लिये देवें ॥२॥

१ ऋजूयतां सुमतिः भद्रा— सरल और सत्यके मार्ग पर चलनेवालोंकी उत्तम बुद्धि सबका कल्याण करनेवाली होती है ।

२ देवानां रातिः नः— देवोंका दान हमें सदा मिलता रहे ।

३ देवानां सख्यं उपसेदिम— देवोंकी मित्रतामें हम सदा रहें ।

४ जीवसे नः आयुः प्रतिरन्तु— उत्तम जीवन जीनेके लिए देव हमारी आयु दीर्घ करें ।

भावार्थ— वीर पुरुष जब युद्धभूमिमें असीम शूरता प्रकट करते हैं, तब अनेक काव्योंका सृजन बडी आसानीसे हो जाता है और ध्यानमें रखनेयोग्य बात है कि, सभी कवि उन काव्योंकी रचनामें स्वयंस्फूर्तिसे भाग लेते हैं। इसीलिए उन काव्योंके गायन एवं परिशीलनसे जनतामें बडी आसानीसे जोशीले भाव पैदा हो जाते हैं ॥ ६ ॥

कर्म ऐसे हों, जो निस्सन्देह कल्याण करनेवाले हों, उन्नत अवस्थाको पहुंचानेवाले हों । पर ये कर्म किसीके दबावमें आकर न किए जायें अपितु स्वयंस्फूर्तिसे किए जाएं । इन उत्तम कर्मोंके द्वारा मनुष्य अपनी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त करे । प्रगतिके मार्गमें किसी तरहकी रुकावट उत्पन्न न हो । प्रति समय सुरक्षा रहे । इसके अलावा दिव्य ज्ञानीजन उन्नतिके कार्यमें सहायक हों ॥ १ ॥

सत्य और सरल मार्गसे जानेवाले सज्जनोंकी सुबुद्धिकी सहायता मनुष्यको सदा मिलती रहे । सरल स्वभाववाले कभी भी प्रतिकूल न हों । मनुष्य भी ऐसा कर्म करे कि देवगण स्वयं भी उसकी सहायता करनेके लिए उत्सुक रहें । देव मित्र बनें और दीर्घ जीवनके लिए स्वास्थ्यपूर्ण दीर्घायु प्रदान करें ॥ २ ॥

९७१ तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥
९७२ तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुव-स्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥
९७३ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥
९७४ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥
९७५ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥

अर्थ— [९७१] (तान् पूर्वया निविदा वयं हूमहे) उन देवोंको प्राचीन मंत्रोंसे हम बुलाते हैं। (भगं, मित्रं, अदितिं, दक्षं, अस्रिधं, अर्यमणं, वरुणं, सोमं, अश्विना, सुभगा सरस्वती नः मयः करत्) भग, मित्र, अदिति, दक्ष, विश्वासयोग्य मरुतोंके गण, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार, भाग्ययुक्त सरस्वती हमें सुख देवे ॥ ३ ॥

[९७२] (वातः तत् मयोभु भेषजं नः वातु) वायु उस सुखदायी औषधको हमारे पास बहावे। (माता पृथिवी तत्) माता-भूमि उसको (पिता द्यौः तत्) पिता द्युलोक उस औषधको हमें देवे (सोमसुतः मयोभुवः ग्रावाणः तत्) सोमरस निकालनेवाले सुखकारी पत्थर वह औषध हमें देवें, (धिष्ण्या अश्विना) हे बुद्धिमान् अश्विदेवो! (युवं तत् शृणुतं) तुम वह हमारा भाषण सुनो ॥ ४ ॥

[९७३] (जगतः तस्थुषः पतिं) स्थावर और जंगमके अधिपति (धियंजिन्वं तं ईशानं) बुद्धिको प्रेरणा देनेवाले उस ईश्वरको (वयं अवसे हूमहे) हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। (पूषा नः वेदसां वृधे रक्षिता यथा असत्) इससे वह पोषणकर्ता देव हमारे ऐश्वर्यकी समृद्धि करनेवाला और सुरक्षा करनेवाला हो (अदब्धः स्वस्तये पायुः) वह अपराजित देव हमारा कल्याण करे और संरक्षक होवे ॥ ५ ॥

[९७४] (वृद्धश्रवाः इन्द्रः नः स्वस्ति) बहुत यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करे (विश्ववेदाः पूषा नः स्वस्ति) सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करे अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः नः स्वस्ति) जिसका रथचक्र अप्रतिहत चलता है, वह तार्क्ष्य हमारा कल्याण करे, (बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु) बृहस्पति हमारा कल्याण करे ॥ ६ ॥

[९७५] (पृषदश्वा) धब्बोंवाले घोडोंसे युक्त, (पृश्निमातरः) भूमिको माता माननेवाले, (शुभंयावानः) शुभ कर्म करनेके लिये जानेवाले (विदथेषु जग्मयः) युद्धोंमें पहुंचनेवाले (अग्निजिह्वा) अग्निके समान तेजस्वी जिह्वा (भाषण करने) वाले, (मनवः सूरचक्षसः मरुतः विश्वे देवाः) मननशील, सूर्यके समान तेजस्वी मरुतरूपी सब देव (नः इह अवसा आ गमन्) हमारे यहां अपनी सुरक्षाकी शक्तिके साथ आवें ॥ ७ ॥

भावार्थ— प्राचीन कालसे चले आनेवाले वेदमंत्रोंकी पद्धतिके अनुसार मनुष्य देवोंकी सहायता मांगे और देव भी प्रसन्न होकर मनुष्योंकी सहायता करें। वायु औषधियोंका गुण अपने साथ लावे, पृथ्वी अन्न देवे, द्युलोकसे सूर्य प्रकाश मिले, सोमसे रस सिद्ध होकर हमें पीनेके लिए मिले। अश्विदेव चिकित्सा द्वारा हमारे रोग दूर करें। इसी प्रकार भग, अदिति, मित्र, अर्यमा, मरुत, वरुण आदि देवगण भी हमारी सहायता करें ॥ ३-४ ॥

स्थावर जंगम जगत्का वही एक ईश्वर है। वही सबका पालन पोषण करता है। हम उसीकी उपासना करें। वह हमारी रक्षा करे, हमारा पोषण करे, कल्याण करे। वह बुद्धिको तृप्त करनेवाला है। जो उसकी उपासना करता है, उसकी बुद्धि सदा उत्तम मार्ग पर चलती है ॥ ५ ॥

अत्यन्त यशस्वी इन्द्र, समस्त विश्वको जाननेवाला पूषा, अप्रतिहत गतिसे युक्त रथवाला तार्क्ष्य, बृहस्पति तथा मातृभूमिकी सतत सेवा करनेवाले, शुभकर्म करनेवाले, अग्निके समान तेजस्वी, मननशील मरुद्गण भी हमारी रक्षा करें ॥ ६-७ ॥

९७६ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभि- र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥
९७७ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥
९७८ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्ष- मदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥

[९०]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- विश्वेदेवाः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

९७९ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १ ॥

अर्थ— [९७६] (देवाः) हे देवो ! (कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम) कानोंसे हम कल्याणकारक भाषण सुनें ! (यजत्राः) हे यज्ञके योग्य देवो ! (अक्षभिः भद्रं पश्येम) आंखोंसे हम कल्याणकारक वस्तु देखें । (स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः तुष्टुवांसः) स्थिर सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरोंसे युक्त हम तुम्हारी स्तुति करते हुए, (यत् आयुः देवहितं वि अशेम) जितनी हमारी आयु है, वहांतक हम देवोंका हित ही करें ॥ ८ ॥

[९७७] (देवाः) हे देवो ! (शरदः शतं अन्ति इत् नु सौ वर्षतक ही हमारे आयुष्यकी मर्यादा है (नः तनूनां जरसं यत्र चक्र) उसमें भी हमारे शरीरोंका बुढापा तुमने किया है, (यत्र पुत्रासः पितरः भवन्ति) तथा आज जो पुत्र हैं वेही आगे पिता होनेवाले हैं, (नः आयुः गन्तोः मध्या मा रीरिषत) इसलिये हमारी आयु बीचमें ही न टूट जाय ऐसा करो ॥ ९ ॥

[९७८] (अदितिः द्यौः) अदिति ही द्युलोक है, (अदितिः अन्तरिक्षं, अदितिः माता, सः पिता, सः पुत्रः, अदितिः विश्वे देवाः, अदितिः पञ्चजनाः, अदितिः जातं जनित्वं) अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सब देव, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद), जो बन चुका है और जो बननेवाला है, वह सब अदिति ही है ॥ १० ॥

[९०]

[९७९] (विद्वान् मित्रः वरुणः च) ज्ञानी मित्र और वरुण (नः ऋजुनीती नयतु) हमें सरल नीतिके मार्गसे ले जावें (देवैः सजोषाः अर्यमा च) देवोंके साथ उत्साही अर्यमा भी हमें वैसे ही सरल मार्गसे ले जावे ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य अपने कानोंसे अच्छे विचार सुने, आंखोंसे अच्छे दृश्य ही देखे, अवयव और शरीर सुदृढ रखे और उनके द्वारा अपनी सम्पूर्ण आयु तक देवों और विद्वानोंके लिए हितकारी कार्य ही करे । वह कभी कुकर्म न करे ॥ ८ ॥

मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी वेदोंमें प्रतिपादित है पर इसमें बाळपन और कुमारपनके १६ वर्ष सम्मिलित नहीं हैं । ये १०० वर्ष पुरुषार्थ करनेके हैं । हम अनेक प्रशस्ततम कर्म करते हुए सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करें । इन वर्षोंमें हमारे शरीरका बुढापा भी शामिल है । इसमें हमारे पुत्र भी पिता बनते हैं अर्थात् पौत्र, प्रपौत्र होने तक हम स्वस्थ एवं जीवित रहें । बीचमें ही हमारी आयु समाप्त न हो ॥ ९ ॥

द्यु, अन्तरिक्ष, माता-पिता, सूर्यचन्द्रादि, देव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद आदि, जो भूतकालमें हो चुका, जो हो रहा है और जो होगा वह सब अदिति अर्थात् एक अखण्डित सत्य है । यह एक तत्त्वदर्शन द्वारा सर्वत्र समभाव देखनेसे शान्ति मिलती है और परम कल्याण होता है ॥ १० ॥

मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव हमें सरल नीतिके मार्ग पर ले चलें । टेढे मार्गसे हमें कभी न ले जावें ॥ १ ॥

*

९८० ते हि वस्वो वसवाना—स्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥ २ ॥
९८१ ते अस्मभ्यं शर्म यंस—न्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥
९८२ वि नः पथः सुवितायं चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ॥ ४ ॥
९८३ उत नो धियो गोअग्राः पूषन् विष्णवेवयावः । कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ ॥
९८४ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥
९८५ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७ ॥
९८६ मधुमान्नो वनस्पति—र्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८ ॥

अर्थ—[९८०] (ते हि वस्वः वसवानाः) वे धनके स्वामी, (ते अप्रमूराः) वे विशेष ज्ञानी, (महोभिः विश्वाहा व्रता रक्षन्ते) अपने सामर्थ्योंसे सर्वदा अपने नियमोंकी सुरक्षा करते हैं ॥ २ ॥

[९८१] (द्विषः अपबाधमानाः अमृताः ते) दुष्टोंका नाश करनेवाले वे अमर देव (अस्मभ्यं मर्त्येभ्यः) हम मानवोंके लिये (शर्म यंसन्) शान्तिसुख देते हैं ॥ ३ ॥

[९८२] (वन्द्यासः इन्द्रः मरुतः पूषा भगः) वन्दनके योग्य इन्द्र, मरुत्, पूषा, भग (सुविताय नः पथः वि चियन्तु) कल्याण करनेके हेतु हमारे लिये मार्ग निश्चित करें ॥ ४ ॥

[९८३] (पूषन्) हे पूषा ! (विष्णो) हे विष्णो ! (एवयावः) हे गतिमान् मरुतो ! (नः धियः गोअग्राः कर्त) तुम हमारी बुद्धियोंको मुख्यतः गौओंका विचार करनेवाली बनाओ । (उत नः स्वस्तिमतः) और हमें कल्याणसे युक्त करो ॥ ५ ॥

[९८४] (ऋतायते वाताः मधु क्षरन्ति) सरल आचरण करनेवालेके लिये वायु माधुर्यको बहा कर लावे, (सिन्धवः मधु) नदियां मीठा रस बहाकर लावें, (ओषधीः नः माध्वीः सन्तु) औषधियां हमारे लिये मीठी हों ॥ ६ ॥

[९८५] (नक्तं नः मधु) रात्रि मधुरता देवे, (उत उषसः) उषाएं मधुरता लावें, (पार्थिवं रजः मधुमत्) पृथ्वी और अन्तरिक्ष मधुरता लावे, (पिता द्यौः मधु अस्तु) पिता द्युलोक मधुर होवे ॥ ७ ॥

[९८६] (वनस्पतिः नः मधुमान्) वनस्पतियां हमारे लिये मधुर हों, (सूर्यः मधुमान् अस्तु) सूर्य मधुरता देवे (गावः नः माध्वीः भवन्तु) गौवें हमारे लिये मधुर हों ॥ ८ ॥

भावार्थ— देव अपनी शक्तियोंसे व्रतोंको सुरक्षित रखते हैं। कभी भी नियमोंको नहीं तोडते, इसलिए नियमोंकी रक्षा करनेके कारण ही वे शक्तिशाली हैं। जो सुनीतिके नियमोंका पालन करेंगे, उनकी भी शक्ति बढेगी और वे श्रेष्ठ बनेंगे ॥ २ ॥

दुष्ट शत्रुओंको दूर करके राज्य व्यवस्थाको ठीक रखना चाहिए। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि कोई भी दुष्ट कुकर्मोंको न कर सके। स्वयं अमर बनकर दूसरोंको भी अमर बनानेका मार्ग बताना चाहिए। स्वयं ज्ञानी बनकर दूसरोंको भी ज्ञानी बनाना चाहिए। शक्तिमान् बनकर निर्बलोंकी सुरक्षा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

वन्दनके योग्य देव हमारी सुविधाका मार्ग हमें बतावें। हम देवोंके द्वारा बनाये गए मार्गसे चलकर उन्नत हों ॥ ४ ॥

तुम्हारी बुद्धिमें गौओंका अग्रस्थान प्राप्त हो। मानवी जीवनमें गौओंका स्थान मुख्य हो। गौको मानवी जीवनमें अग्रस्थान देनेसे मानवोंका कल्याण होगा ॥ ५ ॥

हमारे लिए हवायें मधुरता पूर्ण रस बहाकर लावें, नदियोंका पानी हमारे लिए मीठा तथा सारी वनस्पतियां भी हमारे लिए मधुरता प्रदान करें ॥ ६ ॥

दिन, रात्री, उषा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, वनस्पति, सूर्य, गायें ये सभी हमें मधुरता प्रदान करें ॥ ७-८ ॥

९८७ शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा ।
शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ ९ ॥

[९१]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ५-१६ गायत्री; १७ उष्णिक् ।)

९८८ त्वं सो॑म॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीराः॑ ॥ १ ॥
९८९ त्वं सो॑म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः ।
त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षाः॑ ॥ २ ॥
९९० राज्ञो॒ नु ते॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ बृ॒हद्ग॑भी॒रं तव॑ सोम॒ धाम॑ ।
शुचि॒ष्ट्वम॑सि प्रि॒यो न मि॒त्रो द॒क्षाय्यो॑ अर्य॒मेवा॑सि सोम ॥ ३ ॥

अर्थ— [९८७] (मित्रः नः शं) मित्र हमारे लिये शान्ति देवे (वरुणः शं, अर्यमा नः शं भवतु) वरुण और अर्यमा हमें शान्ति देनेवाले हों (बृहस्पतिः इन्द्रः नः शं) बृहस्पति और इन्द्र हमें शान्ति देवें, (उरुक्रमः विष्णुः नः शं) विशेष प्रगति करनेवाला विष्णु हमें शान्ति देवे ॥ ९ ॥

[९१]

[९८८] (सोम) हे सोम ! (त्वं मनीषा प्र चिकितः) तू बुद्धिमान् और विशेष ज्ञानीके रूपमें प्रसिद्ध है (त्वं रजिष्ठं पंथां अनुनेषि) तू सबको भूलोकपर सरल मार्गसे ले जाता है। (इन्दो) हे सोम ! (तव प्रणीती नः धीराः पितरः देवेषु रत्नं अभजन्त) तेरे मार्गदर्शनसे हमारे बुद्धिमान् पितरोंको देवोंमें भी रमणीय भोग प्राप्त हुए थे ॥ १ ॥

[९८९] (सोम) हे सोम ! (त्वं क्रतुभिः सुक्रतुः भूः) तू अनेक कर्म करनेसे उत्तम कर्मकर्ताके रूपमें प्रसिद्ध है (विश्ववेदाः त्वं दक्षैः सुदक्षः) तू सब जाननेवाला अनेक चतुरताओंसे युक्त होनेसे बडा चतुर कहा जाता है (त्वं वृषत्वेभिः महित्वा वृषा) तू अनेक शक्तियोंसे युक्त होनेसे बडा बलवान् है (नृचक्षाः द्युम्नेभिः द्युम्नी अभवः) तथा मानवोंका निरीक्षक तू अनेक धन पास रखनेके कारण धनी है ॥ २ ॥

[९९०] (सोम) हे सोम ! (राज्ञः वरुणस्य ते नु व्रतानि) राजा वरुणके ये सब नियम हैं (तव धाम बृहत् गभीरं) तेरा स्थान बडा विशाल और भव्य है । (सोम) हे सोम ! (त्वं शुचिः असि) तू शुद्ध है (प्रियः न मित्रः अर्यमा इव दक्षाय्यः असि) तू हमारा प्रिय मित्र और अर्यमाके समान चतुर कुशल है ॥ ३ ॥

भावार्थ— मित्र, वरुण, अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु आदि सभी देवगण हमें सब ओरसे कल्याण और सुख प्रदान करें । इसलिए ऋतका मार्ग मनुष्य अपने आचरणमें लावें । ऋतका अर्थ " सत्य, सरल, यज्ञ, अटल नियम " आदि है । सभी मानवी जीवनको सुखमय बनानेकी शक्ति इस ऋतमें है ॥ ९ ॥

सोमरस मस्तिष्कको उत्तेजित करनेवाला है, इसलिए उस रसको बुद्धिका ज्ञान बढानेवाला कहा है। यज्ञ कर्ममें सहायक होनेसे सन्मार्गसे चलाता है । सोम यागकी पद्धति धैर्यवानों तथा बुद्धिमानोंको रमणीय ऐश्वर्य प्रदान करती है ॥ १ ॥

यह सोम उत्तम रीतिसे यज्ञ सिद्ध करनेवाला, उत्तम चातुर्य बढानेवाला, बल बढानेवाला और तेज बढानेवाला है ॥ २ ॥

यह सोम पवित्र है, और सर्वत्र पवित्रता करनेवाला है । हितकारी और चातुर्यका बल अथवा कर्तृत्वशक्ति बढानेवाला है । यह सोम जहां उत्पन्न होता है, वह स्थान बहुत ऊंचा और बडा भव्य होता है ॥ ३ ॥

९९१ या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन् राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥

९९२ त्वं सोमासि सत्पति–स्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥

९९३ त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥

९९४ त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥

९९५ त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत् त्वावतः सखा ॥ ८ ॥

९९६ सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥

अर्थ— [९९१] (ते दिवि या धामानि, या पृथिव्यां, या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु) तेरे निवासस्थान जो आकाशमें, पृथ्वीमें, पर्वतमें, ओषधि तथा जो जलोंमें हैं । (सोम राजन्) हे राजा सोम ! (तेभिः विश्वैः सुमनाः अहेळन्) उन सब स्थानोंसे तू आनन्द प्रसन्न तथा विद्वेष न करता हुआ (नः हव्या प्रति गृभाय) हमारे हविष्यान्नोंको स्वीकार कर ॥ ४ ॥

[९९२] (सोम) हे सोम ! (त्वं सत्पतिः असि) तू उत्तम पालक है (उत त्वं राजा) तू राजा है, (वृत्रहा) तू वृत्रका नाश करता है, (त्वं भद्रः क्रतुः असि) तू सबका हित करनेवाला है ॥ ५ ॥

[९९३] (सोम) हे सोम ! (नः जीवातुं) हमारे दीर्घ जीवनके लिये (प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः) तू प्रशंसनीय औषधि है, (त्वं च वशः) तेरे अनुकूल होनेपर (न मरामहे) हम नहीं मरेंगे ॥ ६ ॥

[९९४] (सोम) हे सोम ! (त्वं महे ऋतायते) तू सत्यपालक बडे (यूने) तरुण भक्तको (जीवसे दक्षं भगं दधासि) दीर्घजीवनके लिये बल और भाग्य देता है ॥ ७ ॥

[९९५] (सोम राजन् !) हे राजा सोम ! (त्वं अघायतः विश्वतः नः रक्ष) तू हमारा पापियोंसे चारों ओरसे रक्षण कर (त्वावतः सखा न रिष्येत्) तेरे से सुरक्षित हुआ भक्त नाशको नहीं प्राप्त होगा ॥ ८ ॥

[९९६] (सोम) हे सोम ! (ते दाशुषे मयोभुवः याः ऊतयः सन्ति) दाताके लिये जो सुखदायक संरक्षण तेरे पास हैं, (ताभिः नः अविता भव) उनसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह सोम हिमालयके शिखर पर जलस्थानोंमें तथा पृथ्वी पर रहता है। हिमशिखर पर मिलनेवाला उत्तम और अन्यत्र मिलनेवाला मध्यम होता है । इसे जो पीता है, वह बहुत आनंद प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

सोम राजा अर्थात् औषधियोंका राजा है, उसका रस पीकर इन्द्र वृत्रका वध करता है । सोमसे होनेवाला यज्ञ उत्तम यज्ञ है ॥ ५ ॥

यह सोमरस दीर्घ जीवन देनेवाला है । इससे अपमृत्यु दूर किया जा सकता है । अपनी इसी योग्यताके कारण यह सोम बहुत प्रशंसित होता है ॥ ६ ॥

यह सोम सत्य नियमों और संयमादि व्रतोंमें चलनेवाले तरुणको तो दीर्घ जीवन और बल प्रदान करता ही है, पर वृद्धोंको भी दीर्घ जीवन और बल प्रदान करे ॥ ७ ॥

जिसे यह सोमरस मिलता है, वह क्षीण नहीं होता । बलशाली होनेके कारण पापसे भी मनुष्यको यह बचाता है ॥ ८ ॥

यह सोमरस सुखदायी और संरक्षण करनेवाला तथा रोगादि आपत्तियोंसे बचानेवाला है ॥ ९ ॥

९९७ इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥
९९८ सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥ ११ ॥
९९९ गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥ १२ ॥
१००० सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १३ ॥
१००१ यः सोम सख्ये तव रारणद् देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥ १४ ॥
१००२ उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥
१००३ आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य संगथे ॥ १६ ॥

अर्थ—[९९७] (सोम) हे सोम! (त्वं इमं यज्ञं इदं वचः जुजुषाणः) तू इस यज्ञको और इस स्तोत्रको स्वीकार करके (उप आगहि) हमारे पास आ (नः वृधे भव) और हमारा संवर्धन कर ॥ १० ॥

[९९८] (सोम) हे सोम! (वचोविदः वयं गीर्भिः त्वा वर्धयामः) स्तोत्र जाननेवाले हम अपनी वाणियोंसे तुझे बढाते हैं (नः सुमृळीकः आ विश) इसलिये हमारे पास सुखदायी होकर आ ॥ ११ ॥

[९९९] (सोम) हे सोम ! (नः गयस्फानः) तू हमारी वृद्धि करनेवाला (अमीवहा) रोग दूर करनेवाला (वसुवित् पुष्टिवर्धनः सुमित्रः भव) धन-दाता, पोषणकर्ता और उत्तम मित्र बन ॥ १२ ॥

[१०००] (सोम) हे सोम! (गावः न यवसेषु आ) गौवें जैसी जौके खेतमें (मर्यः इव स्वे ओक्ये) और मनुष्य जैसा अपने घरमें संतुष्ट होता है, (नः हृदि रारन्धि) उसी तरह हमारे हृदयमें संतोष उत्पन्न कर ॥ १३ ॥

[१००१] (देव सोम) हे सोम देव ! (तव सख्ये यः मर्त्यः रारणत्) तेरी मित्रतामें जो भक्त रमता है, (तं कविः दक्षः सचते) उसीको कवि और कुशल लोग चाहते हैं ॥ १४ ॥

[१००२] (सोम) हे सोम ! (नः अभिशस्तेः उरुष्यः) दुष्ट भाषणसे हमारा बचाव कर, (अंहसः नि पाहि) पापसे हमारी सुरक्षा कर (नः सुशेवः सखा एधि) और हमारा सेवा करनेयोग्य मित्र बन ॥ १५ ॥

[१००३] (सोम) हे सोम (आ प्यायस्व) तू बढ (ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु) तेरा बल चारों ओरसे बढे (वाजस्य संगथे भव) जहां बलोंका संमेलन हो, वहां तू रह ॥ १६ ॥

भावार्थ— हे सोम ! तू यज्ञको और हमारे स्तोत्रको स्वीकार कर और हमें उत्तम रीतिसे बढा ॥ १० ॥

हे सोम ! तू रोग दूर करनेवाला, पुष्टि बढानेवाला, उत्तम मित्रके समान सहायक है। इसीलिए हम तेरी स्तुति करते हैं, तू हमारे पास आ और हमें बढा ॥ ११–१२ ॥

जिस प्रकार गायें जौके खेतमें प्रविष्ट होकर आनंदित होती हैं अथवा जिसप्रकार मनुष्य घरमें प्रविष्ट होकर आनंदित होता है, उसी तरह यह सोमरस मनुष्यके हृदयको आनन्दसे भर देता है ॥ १३ ॥

हे सोम ! हमें तू पापोंसे बचा, हम कभी बुरे शब्द अपने मुंहसे न निकालें, इस प्रकार हमारा मित्र बनकर सब प्रकारसे हमारी रक्षा कर । क्योंकि हम यह जानते हैं कि जो तेरी मित्रतामें रहता है, वही सब लोगोंका प्रिय होता है ॥ १४–१५ ॥

यह रस जल, दूध या दही मिलाकर बढाया जाता है। इस प्रकार यह सोम स्वयं बढकर दूसरोंके बलोंको भी बढाता है ॥ १६ ॥

१००४ आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

१००५ सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ १८ ॥

१००६ या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो ऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥

१००७ सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० ॥

अर्थ—[१००४] (मदिन्तम सोम) हे आनन्द देनेवाले सोम (विश्वेभिः अंशुभिः आ प्यायस्व) सब अंशोंसे बढता रह (सुश्रवस्तमः नः वृधे सखा भव) तू अत्यंत कीर्तिमान् हमारी वृद्धि करनेवाला मित्र हो ॥ १७ ॥

[१००५] (सोम) हे सोम (अभिमातिषाहः ते पयांसि सं यन्तु) शत्रुओंको परास्त करनेवाले तेरे पास सब दूध आवें (वाजाः उ सं) सब अन्न तेरे पास आयें (वृष्ण्यानि सं) सब सामर्थ्य तेरे पास पहुंचें (अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व) हे सोम ! सब अमरपनोंका धारण पोषण करता हुआ तू द्युलोकमें उत्तम यश संपादन कर ॥ १८ ॥

[१००६] (सोम) हे सोम (ते या धामानि हविषा यजन्ति) तेरे जिन स्थानोंकी पूजा हवनसे की जाती है, (ता ते विश्वा यज्ञं परिभूः अस्तु) वे तेरे सब धाम यज्ञके चारों ओरही हों (गयस्फानः प्रतरणः सुवीरः) हमारा विस्तार करनेवाला, तारण करनेवाला, उत्तम वीर (अवीरहा दुर्यान् प्र चर) और शत्रुवीरोंका नाश करनेवाला हमारे घरोंके पास आ ॥ १९ ॥

[१००७] (यः ददाशत्) जो दान देता है, (अस्मै सोमः धेनुं ददाति) उसके लिये सोम गाय देता है, (सोमः आशुं अर्वन्तं) उसी तरह सोम वेगवान् घोडा भी देता है, (कर्मण्यं विदथ्यं सादन्यं सभेयं पितृश्रवणं वीरं ददाशत्) तथा कर्मकुशल, युद्धमें प्रवीण, घरकी दक्षता रखनेवाला, सभामें प्रमुख, पिताका यश बढानेवाला वीर पुत्र सोमकी कृपासे मिलता है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे सोम ! तू हरतरहसे बढता रह और हमें भी बढाता रह । तू हमारा मित्र होकर हमारी वृद्धि करता हुआ हमारा मित्र बनकर रह ॥ १७ ॥

यह सोम शत्रुका पराभव करनेवाला है । इसके पीने पर शक्ति बढती है और शत्रुका पराभव आसानीसे ही हो जाता है । इसमें दूध मिलाते हैं, उसमें अन्न भी मिलाया जाता है, जिससे यह उत्तम बल बढानेवाला अन्न होता है । अप-मृत्युको दूर करनेके लिए इसमें दूध भी मिलाया जाता है ॥ १८ ॥

यह इस मनुष्यको रोगादिकोंसे पार कराता है, उत्तम वीरता पैदा करता है और शत्रुओंका नाश करता है । जिस जगह सोमका यज्ञ किया जाता है, उस स्थानके चारों ओरका वातावरण स्वच्छ एवं पवित्र हो जाता है और वहां रोगादि उत्पन्न नहीं होते ॥ १९ ॥

यह सोम दानियोंकी हरतरहसे रक्षा करता है, उन्हें वह गायें देता है, घोडे देता है, युद्धमें भी उनकी हरतरहसे रक्षा करता है । और ऐसे उत्तम वीर पुत्र प्रदान करता है कि जो अपने पिताका यश बढाता है ॥ २० ॥

१००८ अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१ ॥

१००९ त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥

१०१० देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ ॥

[९२]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- उषाः, १६-१८ अश्विनौ । छन्दः- १-४ जगती; ५-१२ त्रिष्टुप्; १३-१८ उष्णिक् ।)

१०११ एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

अर्थ— [१००८] (सोम !) हे सोम ! (युत्सु अषाळ्हं,) युद्धोंमें अपराजित, (पृतनासु पप्रिं अप्सां, स्वर्षां) सेनाओंमें बल बढानेवाला, उदकोंकी वृष्टि करनेवाला (वृजनस्य गोपां) संकटके समय सुरक्षा करनेवाला, (भरेषु-जां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं,) ऐश्वर्योंमें प्रकट होनेवाला, उत्तम स्थानमें रहनेवाला, कीर्तिमान् और विजयी (त्वां मदेम) तुझको देखकर हम आनन्दित होते हैं ॥ २१ ॥

[१००९] (सोम) हे सोम ! (त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः) तूने ये सब औषधियाँ (त्वं अपः) तूने जल और (त्वं गाः अजनयः) तूने गायें उत्पन्न की हैं (उरु अन्तरिक्षं त्वं आ ततन्थ) तूने यह विशाल अन्तरिक्ष फैलाया है (त्वं ज्योतिषा तमः वि ववर्थ) और प्रकाशसे अन्धकारको दूर किया है ॥ २२ ॥

[१०१०] (देव सहसावन् सोम) हे शत्रुका दमन करनेवाले सोम देव ! (देवेन मनसा रायः भागं नः अभि युध्य) दिव्य मनसे धनका भाग हमें युद्ध करके भी दे (त्वा मा आ तनत्) तेरा प्रतिबंध कोई भी नहीं करेगा (उभयेभ्यः वीर्यस्य ईशिषे) दोनों प्रकारके सामर्थ्योंका तूही स्वामी है (गविष्टौ प्र चिकित्स) युद्धमें अपना प्रभाव बता ॥ २३ ॥

[९२]

[१०११] (एताः उ त्याः उषसः) ये वे उषाएं (केतुं अक्रत) प्रकाश प्रकट कर रही हैं । (रजसः पूर्वे अर्धे) अन्तरिक्षके पूर्व दिशाके अर्धभागमें (भानुं अञ्जते) ये प्रकाश प्रकट कर रही हैं । जिसप्रकार (धृष्णवः आयुधानि निष्कृण्वाना इव) प्रतापी वीर अपने शस्त्रोंको चमकदार बनाते हैं, उसी तरह (अरुषीः मातरः गावः प्रति यन्ति) सब विश्वको प्रकाशित करनेवाली लाल गोमाताएं-लाल सूर्यकिरणें प्रतिदिन आती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सोम युद्धोंमें पराजित न होनेवाला, सेनाओंमें बल बढानेवाला, पानी बरसानेवाला, संकटके समय सुरक्षा करनेवाला, ऐश्वर्योंमें प्रकट होनेवाला और अत्यन्त उत्तम कीर्तिवाला है ॥ २१ ॥

इसी सोमके कारण सब औषधियां एवं लोक रसयुक्त और बलयुक्त होते हैं । इसीने अन्तरिक्षका विस्तार किया और प्रकाश फैलाकर अन्धकारको दूर किया ॥ २२ ॥

हे सोम ! तू प्रसन्न मनवाला होकर हमें धन दे । हम पर कभी भी अप्रसन्न न हो । तू अत्यधिक बलशाली है, इसलिए तेरा कोई प्रतिबंध नहीं कर सकता । शारीरिक और मानसिक दोनों तरहके सामर्थ्योंका तू ही स्वामी है । इसलिए तू बडा प्रभावशाली है ॥ २३ ॥

जिस प्रकार ध्वजायें आकाशमें फहरती हैं, उसी प्रकार उषाकी किरणें आकाशमें फैल रही हैं । इसीके कारण सर्वप्रथम पूर्व दिशामें लाली फैलती है । जिस प्रकार शूरवीर युद्धके समय अपने शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करते हैं, उसी तरह यह उषा सूर्यकी किरणोंको तीक्ष्ण करती है और पूर्व दिशाको तेजस्विनी बनाती है । जिस प्रकार उषःकाल होते ही गायें चरनेके लिए खोल दी जाती हैं, उसी प्रकार उषा आकर सूर्यकी किरणोंको प्रकट करती है ॥ १ ॥

१०१२ उदंपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥
१०१३ अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
१०१४ अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा–पोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्यु१षा आवर्तमः ॥ ४ ॥

अर्थ—[१०१२] (अरुणाः भानवः वृथा उदपप्तन्) लाल रंगकी तेजस्वी किरणें सहजहीसे ऊपर आने लगी हैं। (सु-आयुजः अरुषीः गाः अयुक्षत) सहजहीसे इस ज्योतिको ऊपर लानेवाली लाल गौवें अथवा बैल रथमें जोते गये हैं। (उषासः पूर्वथा वयुनानि अक्रन्) ये उषाएँ पहलेके समान लोगोंसे कर्मोंको करवाती हैं और अब (अरुषीः रुशन्तं भानुं आशिश्रयुः) लाल रंगवाली उषाओंने अधिक तेजस्वी प्रकाश धारण किया है ॥ २ ॥

[१०१३] (अपसः नारीः न) कर्ममें कुशल स्त्रियोंके समान ये उषाएँ (समानेन योजनेन) एक ही आयोजनासे (आ परावतः) दूर प्रदेशतकके भागको (विष्टिभिः) किरणोंसे (अर्चन्ति) अलंकृत करती हैं। और (सुकृते सुदानवे) सदाचारी उत्तम दाता (सुन्वते यजमानाय) सोमयाजी यजमानके लिये (विश्वा इत् अह) प्रतिदिन सब प्रकारका (इषं वहन्तीः) अन्न लाती हैं ॥ ३ ॥

१ सुकृते सुदानवे विश्वा अह इषः वहन्तीः— उत्तम कर्म करनेवालेको तथा उत्तम दानीको यह उषा प्रतिदिन भरपूर अन्न देती है।

[१०१४] यह उषा (नृतूः इव) नर्तकीके समान (पेशांसि अधि वपते) विविध रूपोंको धारण करती है। यह उषा (उस्रा इव) गौके समान (बर्जहं वक्षः अप ऊर्णुते) दूधसे भरे अपने वक्षःस्थलको खुला करती है। (विश्वस्मै भुवनाय ज्योतिः कृण्वती) सब जगत्के लिये प्रकाश कर देती है, जिस तरह (गावः व्रजं न) गौवें व्रजको व्यापती हैं उसी तरह यह (उषाः तमः वि आवः) उषा अन्धकारको घेरकर प्रकाशको प्रकट करती है ॥ ४ ॥

भावार्थ— लाल रंगकी किरणें ऊपर आकाशमें प्रकट हो रही हैं, उनके कारण आकाश सुशोभित हुआ हुआ दीख रहा है। उषाके आते ही कृषक बैलोंको जोतने लगते हैं। इस मंत्रमें आया हुआ 'गाः' पद बैलका वाचक है, गायका नहीं। उषाके उदय होते ही लोग अपने कर्म करने लग जाते हैं ॥ २ ॥

उषा कर्म करनेमें कुशल है। इसलिए कर्म करनेमें कुशल स्त्रियोंके समान यह उषा स्वयं भी कर्म करती है और दूसरोंको भी प्रेरित करती है। बडे बडे आयोजन करके लोगोंको सम्मानित करती है, उत्तम कर्म करनेवालेको तथा उत्तम दानी कर्म कर्ताको भरपूर अन्न देती है। दान करनेमें कभी भी कंजूसी नहीं करती। इसी प्रकार स्त्रीमें भी योग्यता हो कि वह स्वयं भी उत्तम उत्तम कर्म करे तथा दूसरोंको भी प्रेरित करे। कर्म करनेवालोंको धन देनेमें कंजूसी न करे ॥ ३ ॥

यह उषा एक नर्तकीके समान बार बार अपने कपडे बदलती है। जैसे एक नर्तकी अपना भेष बदल कर अधिकाधिक सुन्दर दीखती है, उसी तरह यह उषा प्रतिक्षण अपने रंग बदल कर अधिकाधिक सुन्दर प्रतीत होती है। इस प्रकार सुन्दर बनकर वह सब भुवनोंको प्रकाशित करती है और अन्धकारको दूर करती है। इसी तरह स्त्रियां भी सुन्दर बनकर चारों ओर अपना तेज फैलायें। सौभाग्यवती स्त्रियां कभी भी मलिन न रहें ॥ ४ ॥

१०१५ प्रत्यर्ची रुशंदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ् चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥
१०१६ अतारिष्म तमसस्पारमस्यो-षा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥
१०१७ भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्या-नुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥
१०१८ उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥

अर्थ—[१०१५] (अस्याः रुशत् आर्चिः) इस उषाका तेजस्वी प्रकाश (प्रति अदर्शि) प्रतिदिन पूर्व दिशामें दीखता है। यह प्रकाश (वि तिष्ठते) सर्वत्र व्यापता है और (अभ्वं कृष्णं बाधते) महान् काले अन्धकारको दूर करता है (विदथेषु स्वरुं न पेशः अञ्जन्) यज्ञोंमें जैसे यूपको घीसे लीपकर सुशोभित करते हैं, उसी तरह (दिवः दुहिता) द्युलोककी पुत्री उषा (चित्रं भानुं अश्रेत्) विलक्षण प्रकाशको धारण करती है और अधिक सुंदर बनती है ॥ ५ ॥

[१०१६] (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) हम इस अन्धकारके पार हो गये हैं। (उच्छन्ती वयुना कृणोति) प्रकाशनेवाली उषा सबसे कर्मोंको करवाती है। (श्रिये छन्दः न) संपत्तिकी प्राप्तिके लिये धनीके साथ उसका छन्दानुवर्ती पुरुष जैसे हंसता है अथवा जिस तरह (विभाती) प्रकाशनेवाली (सुप्रतीका) सुन्दर स्त्री (सौमनसाय) पतिका मन प्रसन्न करनेके लिये हंसती है, वैसी यह उषा (स्मयते) हंसती है। उसने हम सबको (अजीगः) जगाया ॥ ६ ॥

[१०१७] (भास्वती) तेजस्विनी (सूनृतानां नेत्री) सत्य भाषणोंको प्रेरित करनेवाली (दिवः दुहिता) द्युलोककी पुत्री उषा (गोतमेभिः स्तवे) श्रेष्ठ गौतम ऋषियों द्वारा प्रशंसित हुई है। हे (उषः) उषा देवि ! तू (प्रजावतः नृवतः) सन्तानोंसे और वीरोंसे युक्त (अश्वबुध्यान् गो-अग्रान्) घोडों और गौवोंसे युक्त, ऐसे (वाजान् उप मासि) अन्नों, बलों और ऐश्वर्योंको हमें देती है ॥ ७ ॥

[१०१८] हे (उषः) उषा देवि ! (तं यशसं सुवीरं) उस यशस्वी वीरोंके साथ रहनेवाले (दासप्रवर्गं अश्वबुध्यं रयिं) सेवक वर्गसे और घोडोंसे युक्त धनको (अश्यां) हम प्राप्त करें। हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवाली उषा देवी ! (सुदंससा श्रवसा) उत्तम कर्मसे कीर्तिवाली (वाजप्रसूता) तथा अन्नकी वृद्धि करनेवाली होकर (या बृहन्तं विभासि) जिस बडे ऐश्वर्यको प्रकाशित करती है, वह धन भी हमें मिले ॥ ८ ॥

भावार्थ— इस उषाकी तेजस्वी ज्योति दीखने लगी है, उसका प्रकाश चारों ओर फैलने लगा है और काले विशाल अन्धकारको दूर करने लगा है। यह तरुणी उषा अपने घरमें प्रकाश करती है, अन्धकार दूर करती है, अपना रूप सुन्दर बनाकर दिखाती है और सबको ऐश्वर्यकी प्राप्तिका मार्ग दिखाती है। इसी तरह गृहस्वामिनी सर्वप्रथम उठकर घरमें प्रकाश करे, और घरको साफ सुथरा करके दर्शनीय बनाये ॥ ५ ॥

इस उषाकी सहायतासे लोग अन्धकारसे प्रकाशमें आते हैं। इसके आते ही सब उठकर अपने कामोंमें लग जाते हैं, इस प्रकार मानों उषाही लोगोंको कर्म करनेके लिए प्रेरणा देती है। इसी तरह तरुण स्त्री घरके लोगोंको जाग्रत कर उन्हें कर्मोंमें प्रेरित करे। अथवा जिस तरह एक धनीसे ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए उसके मतके अनुसार लोग कार्य करते हैं, उसी-तरह तेजस्वी तरुण सुन्दर स्त्री अपने पतिके मनको प्रसन्न करनेके लिए उषाके समान सदा खिलती और प्रसन्न रहे ॥ ६ ॥

जिस तरह यह उषा तेजस्विनी और सत्कर्मोंकी प्रेरिका होनेसे ऋषियों द्वारा प्रशंसित होती है, उसी तरह गृहिणी भी अपने शील स्वभावके कारण विद्वानोंसे प्रशंसित होवे। घर सदा हंसतासा नजर आवे। वह हमेशा उत्तम सन्तानों एवं पशुओं से भरपूर हो ॥ ७ ॥

हे उषे ! हमें यशस्वी पुत्रपौत्रोंवाला, सेवकवर्गसे युक्त एवं घोडोंसे युक्त धन प्राप्त हो। हीनता, दीनता और दरिद्रता हमारे पास कभी न फटके। उत्तम कर्म जिससे किए जा सकते हैं, जिससे यश मिलता है, जिससे पर्याप्त अन्न मिल सकता है, ऐसा विशाल धन हमारे लिए प्रकाशित कर ॥ ८ ॥

१०१९ विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥
१०२० पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥
१०२१ व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११ ॥
१०२२ पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥

अर्थ— [१०१९] (देवी) यह प्रकाशमान उषा (विश्वानि भुवना अभिचक्ष्य) सब भुवनोंको देखकर, (प्रतीची चक्षुः उर्विया विभाति) पश्चिम दिशामें विशेष प्रकाशसे प्रकाशती है । (विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती) सब जीवोंको कार्य करनेके लिये जगाती है । और (विश्वस्य मनायोः) सब मननपूर्वक कार्य करनेवाले मानवोंके (वाचं अविदत्) वाणीको प्राप्त होती है अर्थात् कवियोंको वर्णनकी स्फूर्ति देती है ॥ ९ ॥

[१०२०] (पुनः पुनः जायमाना) पुनः पुनः प्रतिदिन होनेवाली (पुराणी) प्राचीन होती हुई भी नवीन जैसी (समानं वर्णं अभि शुंभमाना) एक ही रूपको प्राप्त करके अत्यंत शोभनेवाली (देवी) यह उषा देवी (विजः कृत्नुः श्वघ्नी इव) पासोंको फेंकनेवाले कुशल जुआरीकी तरह (मर्तस्य आयुः जरयन्ती आमिनाना) मनुष्यकी आयुको क्षीण करती जाती है ॥ १० ॥

[१०२१] (दिवः अन्तान्) द्युलोकके अन्तभागोंको (वि ऊर्ण्वती) प्रकाशित करनेवाली उषा (अबोधि) जाग उठी है । यह (स्वसारं) अपनी रात्रीरूपी बहिनको (सनुतः अप युयोति) गुप्त प्रदेशोंमें प्रेरित करती है । (मनुष्या युगानि प्रमिनती) मानवी आयुष्यके युगोंको विनष्ट करती हुई (योषा जारस्य चक्षसा) यह उषारूपी स्त्री जाररूपी सूर्यके प्रकाशसे (वि भाति) विशेष प्रकाशती है ॥ ११ ॥

[१०२२] (चित्रा सुभगा) विलक्षण शोभासे शोभनेवाली यह उषा (पशून् न प्रथाना) पशुओंके समान चारों ओर फैलती है । यह (उर्विया व्यश्वैत्) बडी होकर विश्व भरमें उसी तरह व्यापती है, (सिन्धुः न क्षोदः) जिस तरह नदीकी बाढसे आया हुआ उदक सर्वत्र व्यापता है । (दैव्यानि व्रतानि अमिनती) देवताओंके कर्मोंका नाश यह कदापि नहीं करती और (सूर्यस्य रश्मिभिः दृशाना चेति) सूर्यकी किरणोंसे दीखती हुई यह सबको ज्ञात होती है ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह प्रकाशमान उषा सब भुवनोंको देखती हुई पश्चिमकी ओर अपनी नजर लगाये रहती है । सब जीवोंको अपने अपने कार्य करनेके लिए यह उषा जगाती है उसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरके लोगोंको जगाए। इस प्रकार अपने कर्तव्य तत्परतासे करनेवाली स्त्री सबसे प्रशंसित होती है ॥ ९ ॥

इस उषाके उदय होनेके साथ ही मनुष्यकी आयुके एक एक दिन घटते जाते हैं । इसलिए उषाको मनुष्यकी आयु क्षीण करनेवाली कहा है। जिस प्रकार पासे फेंकनेवाले जुआरीके धनको जुआ क्षीण कर कर देता है, उसीप्रकार उषा मनुष्यों की आयुको क्षीण करती है ॥ १० ॥

आकाश सभी छोरोंको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करनेवाली उषा अब जाग उठी है । वह जागते ही अपनी रात्रीरूपी बहिनको शीघ्र ही दूर कर देती है । इस प्रकार अपने आनेके साथ ही प्रतिदिन मनुष्यकी आयुके दिन रातको क्षीण करती है ॥ ११ ॥

जिस प्रकार बाढके आनेपर चारों ओर पानी ही पानी हो जाता है, अथवा जिस प्रकार सुबह होते ही पशु चारों ओर विचरने लगते हैं, उसी तरह उषाके आते ही उसका प्रकाश चारों ओर फैल जाता है । यह उषा दिव्य कर्मोंका नाश कभी नहीं करती । इसी प्रकार स्त्रियां उत्तम कर्मोंका नाश कभी न करें, इसके विपरीत उत्तम कर्मोंको वे बढाया देती रहें ॥१२॥

१०२३ उप॑स्त॒च्चि॒त्रमा भ॑रा॒॑स्मभ्यं॑ वाजिनीवति । येन॑ तो॒कं च॒ तन॑यं॒ च॒ धाम॑हे ॥ १३ ॥
१०२४ उषो॑ अ॒द्येह गो॑म॒त्यश्वा॑वति विभावरि । रे॒वद॒स्मे व्यु॑च्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥
१०२५ यु॒क्ष्वा हि वा॑जिनीव॒त्यश्वाँ॑ अ॒द्यारु॒णाँ उ॑षः । अथा॑ नो॒ विश्वा॒ सौभ॑गा॒न्या व॑ह ॥ १५ ॥
१०२६ अश्वि॑ना व॒र्तिर॒स्मदा गोम॑द्दस्रा॒ हिर॑ण्यवत् । अ॒र्वाग्रथं॒ सम॑नसा॒ नि य॑च्छतम् ॥ १६ ॥
१०२७ यावि॒त्था श्लोक॒मा दि॒वो ज्योति॒र्जना॑य च॒क्रथुः॑ । आ न॒ ऊर्जं॑ वहतमश्विना यु॒वम् ॥१७॥
१०२८ एह दे॒वा म॑यो॒भुवा॑ द॒स्रा हिर॑ण्यवर्तनी । उ॒ष॒र्बुधो॑ वहन्तु॒ सोम॑पीतये ॥ १८ ॥

अर्थ— [१०२३] हे (वाजिनीवति उषः) समृद्धियुक्त उषा देवि ! (अस्मभ्यं तत् चित्रं आ भर) हमारे लिये वह उत्तम वैभव भरपूर दे, (येन) जिससे हम (तोकं तनयं च धामहे) पुत्रपौत्रोंको धारण करनेमें समर्थ हों ॥ १३ ॥

[१०२४] हे (गोमति अश्वावति) गौओं और घोडोंवाली (विभावरि) तेजस्विनी (सूनृतावति) प्रिय तथा सत्य भाषण बोलनेवाली (उषः) उषा देवि ! (अद्य इह अस्मे) आज यहां हमारे लिये (रेवत् वि उच्छ) धनसे युक्त प्रकाश दे ॥ १ ॥

[१०२५] हे (वाजिनीवति उषः) अन्नवाली उषा देवि ! (अद्य अरुणान् अश्वान् युक्ष्व हि) आज तू लाल रंगवाले घोडे अपने रथमें जोड । (अथ) और (नः) हमारे लिये (विश्वा सौभगानि) सब प्रकारके भाग्ययुक्त ऐश्वर्य (आ वह) ले आ ॥ १५ ॥

[१०२६] हे (दस्रा समनसा) शत्रुनाशक और समान विचारवाले अश्विदेवो ! (गोमत् हिरण्यवत्) गोधन एवं सुवर्णसे युक्त होकर तुम (अस्मत् वर्तिः आ) हमारे घर आओ, (रथं अर्वाक्) रथको हमारी ओर (नि यच्छतं) रोककर रखो ॥ १६ ॥

[१०२७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इत्था यौ) इस भाँति जो तुम दोनों (श्लोकं ज्योतिः) वर्णनीय प्रकाशको (दिवः जनाय चक्रथुः) द्युलोकसे जनताके लिए प्रकट कर चुके हो, ऐसे (युवं नः) तुम दोनों हमारे लिए (ऊर्जं आवहतं) बलप्रद अन्न ढोकर लाओ ॥ १७ ॥

[१०२८] (उषर्बुधः) प्रातःकाल जागनेवाले देवगण (इह सोमपीतये) यहांपर सोमपान करनेके लिए (दस्रा देवा) शत्रु विनाशकर्ता, देवतारूपी (मयोभुवा हिरण्यवर्तनी) आरोग्य देनेवाले और सुवर्णमय रथवाले अश्विदेवोंको (आवहन्तु) पहुँचा दें ॥ १८ ॥

भावार्थ— हे वैभवयुक्त उषा ! जिससे पुत्रपौत्रोंका तारण कर सकें, इसलिए उत्तम वैभव हमें भरपूर दे ॥ १३ ॥

उषा गौओं और घोडोंसे युक्त है, वैभववाली और उत्तम भाषणवाली है । हमारा हित करनेके लिए वह धनके साथ प्रकाशित हो ॥ १४ ॥

हे उषे ! आज लाल रंगके घोडोंको अपने रथमें जोडो और हमें सब प्रकारके उत्तम भाग्य प्रदान करो ॥ १५ ॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करते और दोनों मिलकर एक मनसे कार्य करते हैं । वे गौवें और सुवर्णादि धन हमें दें । अपने रथमें बैठकर हमारे घर पर आयें । उसी तरह मनुष्य अपने शत्रुको दूर करें । सब मिलकर एक विचारसे अपना कर्तव्य करें । गौवें और धन अनुयायियोंको बांट दें । रथमें बैठकर अनुयायियोंके घर जाकर उनकी परिस्थितिका निरीक्षण करें ॥ १६ ॥

अश्विदेव द्युलोकसे उत्तम वर्णनीय प्रकाशको मनुष्योंके लिये यहां लाते हैं । वे हमें बलवर्धक अन्न पहुँचावें । नेता अपने अनुयायियोंको प्रकाशका मार्ग बतावें । बलवर्धक अन्न देकर अपने अनुयायियोंको हृष्टपुष्ट और बलिष्ठ करें ॥ १७ ॥

अश्विदेव शत्रुको दूर करते, प्रकाश देते, आरोग्य देते और अपने सुवर्णके रथपरसे वे आते हैं । प्रातःकाल जागनेवाले उनको यहां पहुंचा दें । शत्रुको दूर करें । अपने अनुयायियोंको सरल मार्ग बतावें, उनको नीरोग रखें, और सुखी रखें । प्रातःकाल ही उठकर अनुयायी लोग ऐसे नेताका स्वागत करें ॥ १८ ॥

[९३]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवता- अग्नीषोमौ । छन्दः १-३ अनुष्टुप्; ४-७, १२ त्रिष्टुप्;
८ जगती त्रिष्टुब्वा; ९-११ गायत्री ।)

१०२९ अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

१०३० अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

१०३१ अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥

१०३२ अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषो ऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥

१०३३ युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥

---

[९३]

अर्थ— [१०२९] (वृषणा अग्नीषोमौ) हे सामर्थ्यवान् अग्नि-सोमो! (इमं मे हवं सु शृणुतं) यह मेरी पुकार सुनो (सूक्तानि प्रति हर्यतं) इन स्तोत्रोंका स्वीकार करो (दाशुषे मयः भवतं) और दाताके लिये सुख देनेवाले होओ ॥ १ ॥

[१०३०] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो! (यः अद्य वां इदं वचः सपर्यति) जो आज तुमको यह स्तोत्र अर्पण करता है (तस्मै सुवीर्यं स्वश्व्यं गवां पोषं धत्तं) उसके लिये उत्तम वीर्य, उत्तम घोडे और उत्तम पुष्ट गौवें प्रदान करो ॥ २ ॥

[१०३१] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (यः आहुतिं वां दाशात्) जो आपको आहुति अर्पण करता है, (यः हविष्कृतिं) जो आपके लिये हवन करता है, (सः प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः व्यश्नवत्) वह प्रजाके साथ उत्तम वीर्य और पूर्ण आयु प्राप्त करे ॥ ३ ॥

[१०३२] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (वां तत् वीर्यं चेति) आपका वह पराक्रम उस समय प्रकट हुआ (यत् गाः अवसं पणिं अमुष्णीतं) कि जिस समय गौओंको रखनेवाले पणिसे सब गौओंका तुमने हरण किया । (बृसयस्य शेषः अवातिरतं) बृसयके शेष अनुचरोंको तितरबितर किया (ज्योतिः एकं बहुभ्यः अविन्दतं) और सूर्यकी एक ज्योति सबके लिये प्राप्त की ॥ ४ ॥

[१०३३] (सोम) हे सोम ! (अग्निः च सक्रतू) तू और अग्नि एक ही कर्म करनेवाले हैं । हे (अग्निसोमौ) अग्नि सोमो ! (युवं रोचनानि एतानि दिवि अधत्तं) तुमने ये नक्षत्रज्योतियाँ आकाशमें स्थापित की हैं (गृभीतान् सिन्धून्, अभिशस्तेः अवद्यात् अमुञ्चतं) हे अग्निसोमो ! प्रतिबंधित नदियोंको अमंगल निन्दासे मुक्त किया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे सामर्थ्यशाली अग्नि और सोम ! तुम दोनों मेरी इस प्रार्थनाको सुनो और जो तुम्हें उत्तम स्तोत्र अर्पण करता है, उसके लिए तुम सुख, उत्तम वीर्य, पराक्रम करनेका सामर्थ्य, पुष्ट गौवें, चपल घोडे, विपुल धन और पूर्ण आयु प्रदान करो, साथ ही उत्तम सन्तान और वीर पुत्र भी प्रदान करो ॥ १-३ ॥

इन्द्र सोम पीता है, अग्नि सब देवोंको पिलाता है, उससे सब देव बलवान् बनते हैं । इन्द्रके द्वारा पणियोंका पराभव होता है और वह हरी गई गायोंको वापस लाता है । अर्थात् पणि=अन्धकारका पराभव सूर्य करता है और रात्रीमें गायब हुई हुई गायों अर्थात् किरणोंको वापस लाता है, और तब शीतके कारण जमी हुई नदियां बहने लगती हैं ॥ ४-५ ॥

१०३४ आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥
१०३५ अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥
१०३६ यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद् देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥
१०३७ अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥
१०३८ अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ १० ॥

अर्थ— [१०३४] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (अन्यं मातरिश्वा दिवः आ जभार) तुममेंसे एक अग्निको वायु आकाशसे यहां लाया (अन्यं श्येनः अद्रेः परि अमथ्नात्) और दूसरे सोमको श्येन पर्वत-शिखरपरसे उखाडकर लाया है । (ब्रह्मणा वावृधानौ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः) स्तोत्रोंसे बढाते हुए तुम दोनोंने यज्ञके लिये बडा ही विस्तृत क्षेत्र बनाया है ॥ ६ ॥

[१०३५] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (प्रस्थितस्य हविषः वीतं) यहां रखे हविरन्नका स्वाद लो। (हर्यतं) और स्वीकार करो। (वृषा) हे बलवान् देवो ! (जुषेथां) इसका भक्षण करो (सुशर्माणा स्ववसा हि भूतं) तुम हमारा कल्याण करनेहारे और हमारी सुरक्षा करनेवाले होओ (अथ यजमानाय शं योः धत्तं) और यज्ञकर्ताको सुख देकर उसका दुःख दूर करो ॥ ७ ॥

[१०३६] (यः देवद्रीचा मनसा अग्नीषोमा हविषा सपर्यात्) जो देवोंकी भक्ति करनेवाले मनसे अग्निसोमोंको हवि अर्पण करता है, (यः घृतेन) और घीका हवन करता है (तस्य व्रतं रक्षतं) उसके जीवनव्रतको सुरक्षित रखो (अंहसः पातं) और उसे पापसे बचाओ (विशे जनाय महि शर्म यच्छतं) सब मानवोंके लिये बहुत सुख देवो ॥ ८ ॥

[१०३७] हे (अग्नीषोमौ) अग्निसोमो ! (सवेदसा) तुम एकसाथ सब जानते हो, इसलिए (सहूती गिरः वनतं) एक साथ की हुई हमारी प्रार्थना सुनो। (देवत्रा संबभूवथुः) यहां देवो तुम एकदम प्रकट हुए हो ॥ ९ ॥

[१०३८] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (वां यः अनेन घृतेन वां दाशति) जो तुम्हें इस घीका अर्पण करता है, (तस्मै बृहत् दीदयतं) उसे भरपूर धन दो ॥ १० ॥

भावार्थ— वायु आकाशसे अग्निको लाया । विद्युत् और वायु साथ साथ रहते हैं । आकाशसे अग्नि विद्युत्में आई और बिजलीके गिरनेसे वह पृथ्वीपर उत्पन्न हुई । सोमको पर्वतशिखरपरसे उखाडकर लाया गया । हिमालयके उच्च शिखरोंपर सोम होता है, जहांसे उखाडकर लाया जाता है । इस अग्नि और सोमने यज्ञका क्षेत्र विस्तृत बनाया, क्योंकि सभी यज्ञ अग्नि और सोमरससे ही बनते हैं ॥ ६ ॥

जो प्रीतिपूर्वक इन दोनों देवोंको हवि अर्पण करता है, और जिसकी हविको ये दोनों स्वीकार करते हैं, उसके जीवनव्रत सुरक्षित रहते हैं और वह पापोंसे बचा रहता है । तब वह अनन्त सुख प्राप्त करता है ॥ ७-८ ॥

ये दोनों देव सर्वज्ञ हैं, इसलिए हर एकके मनोभावोंको जानते हैं, अतः जो इनकी शुद्ध मनसे प्रार्थना करता है, उसे ये दोनों भरपूर धन देते हैं ॥ ९-१० ॥

१०३९ अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् । आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥
१०४० अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १२ ॥

[९४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः (जातवेदाः); ८ (त्रयः पादाः) देवाः, १६ उत्तरार्धस्य अग्निः, मित्रवरुणादितिसिन्धुपृथिवीद्यावो वा । छन्दः- जगती; १५-१६ त्रिष्टुप् ।)

१०४१ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥
१०४२ यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥

अर्थ— [१०३९] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (युवं नः इमानि हव्या जुजोषतं) तुम दोनों हमारे इन हवनोंको स्वीकार करो, (नः सचा उप आ यातं) तथा मिलकर हमारे पास आओ ॥ ११ ॥

[१०४०] (अग्नीषोमौ) हे अग्निसोमो ! (नः अर्वतः पिपृतं) हमारे घोडोंको पुष्ट करो । (हव्यसूदः उस्रियाः आ प्यायन्तां) हमारी दूध देनेवाली गौओंको पुष्ट करो । (मघवत्सु अस्मे बलानि धत्तं) हमारे धनवान् याजकोंको अनेक प्रकारके बल प्रदान करो । (नः अध्वरं श्रुष्टिमन्तं कृणुतं) हमारे यज्ञको यशस्वी बनाओ ॥ १२ ॥

[९४]

[१०४१] हम (अर्हते जातवेदसे रथं इव) पूजनीय, धनोत्पादक अग्निके लिये रथके समान (मनीषया इमं स्तोमं सं महेम) बुद्धिसे इस स्तोत्रको अर्पण करते हैं । (अस्य संसदि) इस अग्निके साथ रहनेसे (नः प्रमतिः भद्रा हि) हमारी बुद्धि कल्याणकारिणी होती है । (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) हे अग्ने ! तेरी मित्रतामें हम कभी दुःखी न हों ॥ १ ॥

१ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा— इस अग्रणीकी संगतिमें रहनेसे मनुष्योंकी बुद्धि कल्याणकारिणी बनती है ।

२ अग्ने सख्ये मा रिषाम— इस अग्रणीसे मित्रता करनेवाला कभी भी दुःखी नहीं होता ।

[१०४२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यस्मै त्वं आयजसे, सः साधति) जिसके लिये तू यज्ञ करता है वह अपनी सिद्धिको प्राप्त करता है । वह (अनर्वा क्षेति सुवीर्यं दधते) शत्रुसे हिंसित न होकर निवास करता है; और महान् शक्तिको धारण करता है । (सः तूताव, एनं अंहतिः न अश्नोति) वह वृद्धिको प्राप्त होता है और इसको दरिद्रता नहीं प्राप्त होती है । (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रतामें हम कभी भी दुःखी न हों ॥ २ ॥

१ यस्मै त्वं आयजसे सः साधति— जिसकी यह अग्रणी अपने ज्ञानसे सहायता करता है, वह सिद्धिको प्राप्त करता है ।

२ सः तूताव अंहतिः न अश्नोति— वह बढता है और दरिद्र नहीं होता ।

भावार्थ— हे अग्नि सोमो ! तुम दोनों हमारे पास मिलकर आवो, तथा हमारी दी हुई हवि स्वीकार करो । तथा प्रसन्न होकर हमारे पशुओंको पुष्ट करो, हमारे मनुष्योंको बलशाली बनाओ और हमारे कर्मोंको यशस्वी करो ॥ ११-१२ ॥

जो पूजनीय और उत्तम ज्ञानी है, उसका सत्कार करना चाहिए और उसकी संगतिमें रहना चाहिए, क्योंकि उससे मनुष्यकी बुद्धि उत्तम होती है और वह कभी दुःखी नहीं होता ॥ १ ॥

जिसकी यह अग्रणी ज्ञानसे सहायता करता है वही सिद्धिको पाता है, हिंसित नहीं होता हुआ बढता है और उत्तम सामर्थ्यवान् होता है, अतः उसकी मित्रता प्राप्त करनी चाहिए ॥ २ ॥

१०४३ शकेम त्वा समिधं साधया धिय—स्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यु१श्म—स्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥
१०४४ भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियो ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
१०४५ विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अ—स्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥
१०४६ त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्य—स्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥

अर्थ— [१०४३] क्योंकि (त्वे आहुतं हविः देवाः अदन्ति) तुझमें डाली हुई आहुतिको देवता लोग खाते हैं, इसलिए (अग्ने त्वा समिधं शकेम) हे अग्ने ! हम तुझे अच्छी तरह प्रदीप्त करनेमें समर्थ हों और तू हमारे (धियः साधय) कार्यको सिद्ध कर। (त्वं आदित्यान् आवह) तू आदित्योंको यहां ले आ, (तान् हि उश्मसि) उनकी ही हम इस समय कामना करते हैं। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ३ ॥

१ धियः साधय— यह ज्ञानी अग्रणी मनुष्योंकी बुद्धिशक्ति और कर्मशक्ति दोनोंको बढाता है।

[१०४४] हे (अग्ने) अग्ने ! तुझे चैतन्य करनेके लिये हम (इध्मं भराम) समिधाओंको इकट्ठा करें उसके पश्चात् (पर्वणा पर्वणा चितयन्तः) प्रत्येक पर्वमें तुझे प्रदीप्त करते हुए (ते हवींषि वयं कृणवाम) तेरे लिये हवियोंको हम दें। तू (जीवातवे धियः प्रतरं साधय) हमारी आयु वृद्धिके लिये हमारी बुद्धियोंको उत्तम बना। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ४ ॥

१ जीवातवे धियः प्रतरं साधय— दीर्घजीवनके लिये बुद्धिशक्तिको और कर्मशक्तिको उत्तम बनाना चाहिये।

[१०४५] (अस्य जन्तवः विशां गोपाः चरन्ति) इस अग्निसे उत्पन्न किरणें सब प्राणियोंकी रक्षा करती हुई विचरण करती हैं (अक्तुभिः यत् च द्विपत् उत् चतुष्पत्) इसकी किरणोंसे दो पैरवाले और चार पैरवाले प्राणी चलते फिरते हैं। हे (अग्ने) अग्ने ! (चित्रः प्रकेतः उषसः महान् असि) विचित्र तेजसे युक्त तू उषासे भी बडा है। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ५ ॥

१ अस्य विशां गोपाः जन्तवः द्विपत् चतुष्पत् अक्तुभिः चरन्ति— इस अग्निकी प्रजाकी रक्षा करनेवाली किरणें दुपायों और चौपायोंकी रातमें भी रक्षा करती हैं।

[१०४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अध्वर्युः उत पूर्व्यः होता) तू अध्वर्यु, प्राचीन होता, (प्रशास्ता, पोता, जनुषा पुरोहितः असि) शासन करनेवाला, पवित्र करनेवाला एवं जन्मजात पुरोहित है। तू (विश्वा आर्त्विज्या विद्वान्) सम्पूर्ण ऋत्विजोंके कर्मोंको जानता है। हे (धीर अग्ने) प्रज्ञावान् अग्ने ! तू हमें (पुष्यसि) पुष्ट करता है, अतः (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ६ ॥

१ अ-ध्वर-युः, प्रशास्ता, पोता, जनुषा पुरः हितः विश्वा आर्त्विज्या विद्वान्— यह अग्रणी हिंसा रहित कर्मोंका संयोजक, शासक, पवित्र करनेवाला, जन्मसे ही नगरका हित करनेवाला तथा सब ऋतुओंके अनुसार कर्मोंको करनेवाला है।

भावार्थ— यह अग्रणी सब देवताओंको हवि पहुंचानेवाला तथा सभी अमर देवोंको बुलाकर लानेवाला है। अतः हम इसे अच्छी तरह प्रज्वलित करें और इसके संरक्षणमें रहते हुए हम कभी भी दुःखी न हों ॥ ३ ॥

इस अग्निको अच्छी तरह प्रज्वलित करनेके लिए मनुष्य समिधाओंको तैयार करे और प्रत्येक पर्वमें अग्नि प्रज्वलित करे इससे बुद्धि बढेगी और आयु दीर्घ होगी तथा वह कभी भी दुःखी नहीं होगा ॥ ४ ॥

इस अग्निकी किरणें सभी प्राणियोंकी दिनरात रक्षा करती हैं। किरणोंके कारण अग्नि उषासे भी अधिक तेजस्वी दीखता है। ऐसे तेजस्वी अग्निके संरक्षणमें रहनेवाला कभी भी दुःखी नहीं होता ॥ ५ ॥

१०४७ यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित् सन्तळिदिवाति रोचसे ।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ७ ॥

१०४८ पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥

१०४९ वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ९ ॥

अर्थ—[१०४७] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः सुप्रतीकः विश्वतः सदृङ्ङसि) जो तू सुन्दर आदर्श है और सब ओरसे दर्शनीय है । तथा (दूरे चित् सन् तळित् इव अतिरोचसे) दूरस्थ होते हुये भी बिजलीके समान अति देदीप्यमान होता है । हे (देव) दिव्यगुणयुक्त अग्ने ! तू (राञ्याः चित् अन्धः अतिपश्यसि) रात्रीके भी अन्धकारको भी नष्ट करके अत्यधिक प्रकाशित होता है । अतः (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ७ ॥

१ राञ्याः चित् अन्धः अति पश्यति— यह अग्रणी रात्रीके अन्धकारमें भी बहुत प्रकाशता है ।
२ तळित्— पास, बिजली ।

[१०४८] हे (देवाः) देव गण ! (सुन्वतः रथः पूर्वः भवतु) सोमरस निकालनेवालेका रथ सबसे आगे रहे । (अस्माकं शंसः दूढ्यः अभि अस्तु) हमारा भाषण पाप-बुद्धिवालेको हरानेवाला हो । (तत् आजानीत उत वचः पुष्यत) तुम यह बात जान लो और हमारी वाक् शक्तिको बढाओ । हे (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) अग्ने ! तेरे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें ॥ ८ ॥

१ सुन्वतः रथः पूर्वः— सोम (स-उमा= शोभी) की (रथः-रंहतेर्गतिकर्मणः) गति सबसे तेज होती है ।

[१०४९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (दुःशंसान् दूढ्यः अत्रिणः) दुष्टों, बुद्धिविहीनों और भक्षक शत्रुओंको (ये के चित् दूरे वा अन्तिके) जो दूर हैं अथवा पास हैं, उनको (वधैः अपजहि) शस्त्रों द्वारा मार दे (अथ यज्ञाय गृणते सुगं कृधि) उसके अनन्तर यज्ञ करनेवाले उपासकके लिए मार्गको सरल कर, (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें ॥ ९ ॥

१ ये के चित् दूरे अन्तिके अत्रिणः दुःशंसान् दूढ्यः वधैः अप जहि— दूर या पास जो भी भक्षक शत्रु हैं उन्हें समाजमेंसे नष्ट कर देना चाहिये ।

भावार्थ— यह अग्रणी शासन करनेमें कुशल, युद्ध करनेवाला, शासन करनेवाला, जन्मसे ही नेता और ऋतु परिवर्तनके कारण होनेवाले रोगोंका नाश करके पुष्ट करनेवाला है, अतः हम उसकी मित्रतामें कभी भी दुःखी न हों ॥ ६ ॥

यह सब प्रकारसे दर्शनीय और आदर्श नेता है, यह बिजलीके समान तेजस्वी है, तथा आगे होनेवाली बातको भी यह अपने ज्ञानसे पहले जान लेता है ॥ ७ ॥

यज्ञ कर्ताका रथ सबसे आगे हो, उसका मान सबसे अधिक होना चाहिए । हमारा भी तेज ऐसा हो कि हमारे वचनोंसे ही शत्रुओंका पराभव हो जाए । तथा हम इस अग्निकी सेवा करते हुए सदा सुखी रहें ॥ ८ ॥

स्वार्थी, हिंसक और भक्षकोंका शस्त्रोंसे नाश कर देना चाहिए । इस कार्यमें यह अग्नि कुशल है, यह शत्रुओंको नष्ट करके उपासकोंके लिए मार्ग श्रेष्ठ करता है, इसलिए ऐसे अग्निका भक्त कभी दुःखी नहीं होता ॥ ९ ॥

१०५० यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १० ॥
१०५१ अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत् ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत् ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ११ ॥
१०५२ अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १२ ॥
१०५३ देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥

अर्थ— [१०५०] हे (अग्ने) अग्ने! (यत् अरुषा रोहिता, वातजूता रथे अयुक्थाः) जिस समय तू तेजस्वी, लोहितवर्ण और वायुके समान गतिवाले घोडोंको रथमें संयुक्त करता है उस समय (ते रवः वृषभस्य इव) तेरा शब्द बैलके समान गंभीर होता है। (आत् वनिनः धूमकेतुना इन्वसि) अनन्तर वनके सारे वृक्षोंको धुएंको 'पताका' द्वारा व्याप्त करता है। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें ॥ १० ॥

[१०५१] हे (अग्ने) अग्ने! (अध स्वनात्, पतत्रिणः बिभ्युः) जलानेके लिये वनमें प्रवेश करनेके अनन्तर तेरे शब्द सुनकर पक्षी भी भयभीत हो जाते हैं। (यत् ते द्रप्सा यवसादः व्यस्थिरन्) जिस समय तेरी ज्वालायें तिनकोंके समूहोंको जलाकर विस्तृत हो जाती हैं, (तत् ते तावकेभ्यः रथेभ्यः सुगं) उस समय वे सारे वन तेरे रथके लिये सुखपूर्वक जाने योग्य हो जाते हैं। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी हिंसित न हों ॥ ११ ॥

१ स्वनात् पतत्रिणः बिभ्युः— इस अग्रणीके गर्जनसे सारे पक्षी भी घबडाते हैं।

[१०५२] (अयं मित्रस्य, वरुणस्य धायसे) यह अग्नि मित्र और वरुणको धारण करनेमें सशक्त है (अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः) हमला करनेवाले मरुतोंका क्रोध भयानक है। (एषां मनः पुनः भूत्) इन मरुतोंका मन हमारे लिये प्रसन्न हो। हे (अग्ने नः सुमृळ, तव सख्ये वयं मा रिषाम) अग्ने! हमें सुखी कर, तेरे मित्र होकर हम कभी पीडित न हों ॥ १२ ॥

१ अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे— यह अग्रणी मित्र और वरणीय श्रेष्ठोंके भरणपोषणमें समर्थ है। नेता ऐसा हो कि जो श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषोंका पोषण कर सके।

२ अवयातां मरुतां हेळः अद्भुतः— शत्रुपर हमला करनेवाले वीरोंका क्रोध भयानक है।

[१०५३] (अग्ने देवः देवानां अद्भुतः मित्रः असि) हे अग्ने! दिव्यगुण युक्त तू सम्पूर्ण देवोंका अद्भुत मित्र है। तथा (अध्वरे चारुः वसूनां वसुः असि) यज्ञमें शोभायमान तू सब धनोंका निवासस्थान है। (तव सप्रथस्तमे शर्मन् स्याम) तेरे विस्तृत गृहमें हम रहनेवाले हों तथा (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्र होकर हम कभी पीडित न हों ॥ १३ ॥

१ देवः देवानां अद्भुतः मित्रः— यह उत्तम गुणोंसे युक्त अग्रणी उत्तम गुणवालोंसे ही मित्रता करता है।

२ अध्वरे चारुः वसूनां वसुः— यह प्रत्येक हिंसारहित कर्ममें उपस्थित होकर शोभित होता है तथा धनोंका स्थान है।

भावार्थ— यह अग्नि अपने तेजस्वी घोडोंको अपने रथमें जोडकर बडी गंभीर गर्जनाके साथ वनोंमें संचार करता है ॥ १० ॥

यह अग्रणी इतना तेजस्वी है कि इससे सारे प्राणी डरते हैं। यह स्वयं अपने लिए मार्ग बनाता है, ऐसा यह स्वावलम्बी है ॥ ११ ॥

यह अग्नि सभी श्रेष्ठ विद्वानोंको धारण करता है। इस अग्रणीके साथी मरुतोंका क्रोध बडा भयानक होता है, अतः मनुष्योंको ऐसा यत्न करना चाहिए कि उनका मन सदा प्रसन्न रहे ॥ १२ ॥

यह अग्रणी उत्तम गुणवालोंपर स्नेह करता है और उनका हर प्रकारसे हित करता है। अतः हम भी उसके आश्रयमें रहकर उसके मित्र बनें और कभी दुःखी न हों ॥ १३ ॥

१०५४ तत् ते॑ भ॒द्रं यत् समि॑द्धः॒ स्वे दमे॒ सोमा॑हुतो॒ जर॑से मृळ॒यत्त॑मः ।
दधा॑सि॒ रत्नं॒ द्रवि॑णं च दा॒शुषे॒ ऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥ १४ ॥

१०५५ यस्मै॒ त्वं सु॑द्रविणो॒ ददा॑शो॒ ऽना॒गा॒स्त्वम॑दिते स॒र्वता॑ता ।
यं भ॒द्रेण॒ शव॑सा चो॒दया॑सि प्र॒जाव॑ता॒ राध॑सा॒ ते स्या॑म ॥ १५ ॥

१०५६ स त्वम॑ग्ने सौभगत्व॒स्य॑ वि॒द्वा न॒स्माक॒मायुः॒ प्र ति॑रे॒ह दे॑व ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒ मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ १६ ॥

[९५]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः औषसोऽग्निर्वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०५७ द्वे विरू॑पे चरतः॒ स्वर्थे॒ अ॒न्यान्या॑ व॒त्समुप॑ धापयेते ।
हरि॑र॒न्यस्यां॒ भव॑ति स्व॒धावा॑ञ् छु॒क्रो अ॒न्यस्यां॑ ददृशे सु॒वर्चाः॑ ॥ १ ॥

अर्थ— [१०५४] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्वे दमे समिद्धः) अपने स्थान पर प्रज्ज्वलित होकर (सोमाहुतः) तथा सोमकी आहुतियां प्राप्त करनेवाला तू (जरसे मृळयत्तमः) उपासकको अत्यधिक सुख देता है, (ते तत् भद्रं) वह तेरा काम बहुत उत्तम है । तू (दाशुषे द्रविणं रत्नं च दधासि) दानशीलको धन और रत्न देता है, ऐसे (ते सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रतामें रहकर हम कभी भी दुःखी न हों ॥ १४ ॥

१ समिद्धः जरसे मृळयत्तमः— तेजस्वी होकर यह अग्नि उपासकको अत्यधिक सुख देता है ।

[१०५५] हे (सुद्रविणः अदिते) सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त और अखण्डनीय अग्ने ! (सर्वताता यस्मै) सब यज्ञोंमें वर्तमान जिस यजमानको (अनागास्त्वं त्वं ददाशः) पापसे रहित तू करता है तथा (यं भद्रेण शवसा चोदयासि) जिसको कल्याणकारी बलसे संयुक्त करता है, वह (प्रजावता) पुत्र पौत्रादिसे युक्त होता है । (ते राधसा स्याम) तेरे दिये हुये धनसे हम भी संयुक्त हों ॥ १५ ॥

१ सर्वताता अनागाः, भद्रेण शवसा— सभी हिंसारहित यज्ञोंको करनेवाला उपासक पापरहित और कल्याणकारी बलसे युक्त होता है ।

[१०५६] हे (देव अग्ने) दिव्यगुण युक्त अग्ने ! (सौभगत्वस्य विद्वान् सः त्वं, इह अस्माकं आयु प्रतिर) सर्व सौभाग्योंका ज्ञाता वह तू इस यज्ञकार्यमें हमारी आयुको बढा । (नः तत्) हमारी उस आयुकी (मित्रः वरुणः, अदितिः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और आकाश ये पूज्य देवता रक्षा करें ॥ १६ ॥

[९५]

[१०५७] (सु-अर्थे) उत्तम प्रयोजन सिद्ध करनेवाली (विरूपे द्वे) विरुद्ध रूपवाली दिन और रात ये दो स्त्रियां अपने मार्गसे (चरतः) चल रही हैं । इनके (वत्सं) बच्चेको (अन्या अन्या उप धापयेते) एक दूसरी अपना दूध पिलाती है । (अन्यस्यां हरिः) इनमेंसे एकका बच्चा सूर्य हरण कर्ता होनेसे (स्वधावान् भवति) अन्नयुक्त होता है, (अन्यस्यां) और दूसरीका बच्चा (शुक्रः सुवर्चाः ददृशे) वीर्यवान् और उत्तम तेजस्वी देखा जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी तेजस्वी होकर अपने उपासकोंका हित करता है और उन्हें ऐश्वर्य प्रदान करता है, ऐसे अग्निके उपासक होकर हम कभी भी दुःखी न हों ॥ १४ ॥

हिंसा रहित कर्मोंमें सदा तत्पर रहनेवाला मनुष्य पापरहित और श्रेष्ठ बलसे युक्त होता है । अतः हम भी उस अग्निके उपासक होकर प्रजासे युक्त धनको प्राप्त करें ॥ १५ ॥

यह अग्रणी ऐश्वर्य-प्राप्तिके मार्गको जानता है, वह आयु भी बढाता है । उस बढाई गई हमारी आयुकी सभी देवता रक्षा करें ॥ १६ ॥

१०५८ दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भ-मतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २ ॥
१०५९ त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवाना-मृतून् प्रशासद् वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥
१०६० क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्था-न्महान् कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१०५८] (अतन्द्रासः दश युवतयः) आलस्य छोडकर दस स्त्रियां–अंगुलियां (त्वष्टुः गर्भं जनयन्ति) दीप्तिके गर्भरूप अग्निको उत्पन्न करती हैं । (इमं विभृत्रं) इस भरण पोषण करनेवाले, (तिग्मानीकं) तीक्ष्ण तेजसे युक्त (स्वयशसं जनेषु विरोचमानं) अपने यशसे शोभित तथा जनोंमें प्रकाशमान अग्निको (सीं परि नयन्ति) लोग चारों ओर घुमाते हैं ॥ २ ॥

[१०५९] (अस्य) इस अग्निके (त्रीणि जाना परि भूषन्ति) तीन जन्म सजाये जाते हैं । (समुद्रे एकं) समुद्रमें वडवानलके रूपमें एक, (दिवि एकं) द्युलोकमें सूर्यके रूपमें एक और (अप्सु) अन्तरिक्षमें विद्युद्रूपमें एक। (ऋतून् अनु प्रशासत्) ऋतुओंकी व्यवस्था इसीने की है । (पार्थिवानां पूर्वां प्रदिशं) पृथ्वीपरके प्राणियोंकी व्यवस्थाके लिए पूर्वादि दिशाओंका भी (अनुष्ठु वि दधौ) सम्यक् रीतिसे इसीने निर्माण किया ॥ ३ ॥

[१०६०] (निण्यं इमं) गुप्त रहनेवाले इस अग्निको (वः कः आ चिकेत) तुममेंसे कौन जानता है ? (वत्सः) पुत्र होते हुए भी इस अग्निने (मातॄः) माताओंको (स्वधाभिः जनयत) अपनी धारक शक्तियोंसे प्रकट किया। (महान् कविः) बडा ज्ञानी (स्वधावान्) निज धारक शक्तिसे युक्त, (गर्भः) सबके अन्दर रहनेवाला सूर्य (बह्वीनां अपसां उपस्थात् चरति) बडे बडे जल प्रवाहोंके पाससे निकलकर संचार करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— सर्वथा विरुद्ध रूपोंवाली दिन और रातरूपी दो स्त्रियां प्राणियोंको प्रकाश देने और विश्राम देने रूप अपने नियत कर्म करनेके लिए हमेशा भ्रमण करती रहती हैं। इनमेंसे एक स्त्री (दिन) गौरवर्ण है और दूसरी (रात्रि) कृष्णवर्ण है । ये दोनों प्राणियोंके कार्यको सिद्ध करनेवाली हैं। दिनका कार्य प्रकाश देना है और रात्रिका कार्य विश्राम देना है। इनमेंसे एक स्त्री दूसरीके बच्चेका पालन पोषण करती है । दिनका बालक अग्नि और रात्रीका बालक सूर्य है । रात्रीके गर्भसे सूर्य उत्पन्न होता है पर उसका पोषण दिन करता है, इसी तरह दिनके गर्भसे अग्निका जन्म होता है, पर उसका पोषण रात्री करती है । हरि सूर्यका नाम है, क्योंकि वह रसोंका हरण करता है । दिनका पुत्र अग्नि अत्यन्त तेजस्वी है । इसी प्रकार सभी स्त्रियें परस्पर प्यारसे रहें । वे गृहस्थधर्मका पालन करती हुई भी जनताकी सेवा करें ॥ १ ॥

आलस्य छोडकर दस स्त्रियां अथवा दस अंगुलियां अरणियोंमेंसे इस अग्निको उत्पन्न करती हैं । उत्पन्न करनेके बाद सबका भरण पोषण करनेवाले, तीक्ष्ण शक्तिवाले अथवा तीक्ष्ण प्रकाशवाले यशस्वी लोग जनतामें तेजस्वी अग्निको चारों ओर घुमाते हैं । दोनों अरणियोंसे अग्निके सिद्ध हो जानेपर उसे अनेक यज्ञस्थानोंमें या स्थण्डिलोंमें ले जाकर उसे स्थापित करते हैं ॥ २ ॥

इस अग्निके तीन जन्म होते हैं । इसका एक जन्म समुद्रमें वडवानलके रूपमें है, दूसरा जन्म द्युलोकमें सूर्यके रूपमें है, तीसरा जन्म अन्तरिक्ष स्थानमें मेघोंमें बिजलीके रूपमें है । आकाशमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथ्वी पर अग्नि, ये तीन रूप एक ही अग्निके हैं । ये सब पृथक् नहीं हैं, एक ही अग्निके विभिन्न रूप हैं, यह एकत्ववादका सिद्धान्त इस अग्निके वर्णनसे बताया है ॥ ३ ॥

इस गुप्त अग्निको कौन जानता है ? अग्नि सभी पदार्थोंमें रहता है, पर दीखता नहीं । केवल ज्ञानी ही उसे जान सकता है । पुत्र होता हुआ भी यह अपनी माताओंको अपनी शक्तियोंसे प्रकट करता है । अग्निसे पृथ्वी प्रदीप्त होती है, विद्युत्से अन्तरिक्ष प्रकाशित होता है और सूर्यसे द्युलोक तेजस्वी होता है । पुत्र ऐसा श्रेष्ठ और सामर्थ्यशाली बने कि जिससे उसकी माताका नाम प्रसिद्ध हो । विद्युत् जलप्रवाहोंसे युक्त मेघसे निकलकर संचार करती है ॥ ४ ॥

१०६१ आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात् प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ ॥

१०६२ उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥

१०६३ उद् यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०६१] (आसु चारुः आविष्ट्यः वर्धते) इन पदार्थोंमें सुचारु रूपसे प्रविष्ट होकर यह बढता है। (जिह्मानां उपस्थे) कुटिल निम्न गतिसे जानेवाले जलोंके मध्यमें भी यह उपस्थित रहकर (स्वयशाः ऊर्ध्वः) अपने यशसे ऊर्ध्वगतिसे ऊपर चढता है। (उभे त्वष्टुः जायमानात् बिभ्यतुः) दोनों लोग इस तेजस्वी देवके उत्पन्न होनेसे डरते हैं। तथापि (सिंहं) सिंहके समान (प्रतीची प्रति जोषयेते) तेजस्वी देवकी फिरसे आकर सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

[१०६२] (उभे भद्रे) दोनों कल्याण करनेवाली (मेने) माननीय स्त्रियां (जोषयेते) सेवा करती हैं। (वाश्राः गावः न) रंभानेवाली गायोंकी तरह (एवैः उप तस्थुः) अपनी गतियोंसे वे इसीके पास आती हैं। (यं दक्षिणतः) जिसकी दक्षिण भागमें रहकर (हविर्भिः अंजन्ति) हवि द्वारा याजक पूजा करते हैं, (सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव) वही अग्नि सब बलवानोंमें भी अधिक बलिष्ठ है ॥ ६ ॥

[१०६३] (सविता इव बाहू उत् यंयमीति) सविताके समान यह अग्नि अपनी बाहुरूपी किरणोंको ऊपर उठाता है। और (भीमः उभे सिचौ ऋंजन् यतते) भयंकर होकर दोनों पिलानेवाली भाइयोंको अलंकृत करनेका यत्न करता है। (सिमस्मात् शुक्रं अत्कं उत् अजते) सबसे प्रकाशका कवच ऊपर उठाता है, और (मातृभ्यः नवा वसना जहाति) माताओंके लिए नये वस्त्र देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— जलप्रवाहोंसे युक्त मेघोंके अन्दर विद्युत् रूपसे प्रविष्ट होकर यह अग्नि बढता है। नदियोंके किनारों पर होनेवाले यज्ञोंमें यह अग्नि प्रदीप्त होकर बढता है। टेढी चालसे चलनेवाले शत्रुओंके समीप भी अपने यशसे उच्च बनकर यह ज्ञानी बढता रहता है। कुटिल गतिसे नीचेकी ओर जानेवाले नदियोंके पास यज्ञ स्थानमें रहनेवाला यह अग्नि अपने यशसे उच्च गतिसे बढता है। जलोंकी गति नीचेकी ओर और अग्निकी गति ऊपरकी ओर होती है, इसी प्रकार दुष्टोंकी गति भी नीचेकी ओर और सज्जनोंकी गति ऊपरकी ओर होती है। अग्निके प्रकट होनेपर पृथ्वी और द्युलोक दोनों भयभीत होते हैं ॥ ५ ॥

दिन और रात रूपी दोनों स्त्रियां लोगोंका कल्याण करनेवाली होनेके कारण सबके लिए माननीय हैं। इसी तरह स्त्रियें सबका कल्याण करनेवाली हों। जिस प्रकार गायें रंभाती हुई अपने बच्चोंके पास भाग जाती हैं, उसी प्रकार मातायें अपने बच्चोंसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें ॥ ६ ॥

अग्नि अपनी किरणोंको चारों ओर फेंकता है और भयंकर सामर्थ्यवाला हो जाता है, पश्चात् यह अग्नि दोनों द्यावा-पृथिवीको अलंकृत करता है। अग्नि प्रदीप्त होता है और उससे यज्ञादि सिद्ध होनेके कारण यह सबके लिए भूषण बनता है। सबको अपने तेजरूपी कवचसे ढक देता है अर्थात् सबको अपने प्रकाशसे घेर लेता है, यही मानों उसका सबको वस्त्र पहनाना है ॥ ७ ॥

१०६४ त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥
१०६५ उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धो ऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥
१०६६ धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते ऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १० ॥
१०६७ एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत् पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

अर्थ—[१०६४] (सदने) अपने घरमें यह (गोभिः अद्भिः संपृञ्चानः) गौओं और जलोंको मिलकर (त्वेषं उत्तरं रूपं) तेजस्वी उत्तर रूप (यत् कृणुते) जब धारण करता है, तब (कविः धीः) यह ज्ञानी और बुद्धिमान् अग्नि (बुध्नं परि मर्मृज्यते) अपने मूल स्थानको शुद्ध करता है। (सा देवताता समितिः बभूव) वही दिव्यताका फैलाव करनेवाली यज्ञसमिति होती है ॥ ८ ॥

[१०६५] (महिषस्य ते) महा बलवान् तुझ अग्निका (ज्रयः विरोचमानं उरु धाम) शत्रुका पराभव करनेवाला तेजस्वी विस्तृत स्थान (बुध्नं परि एति) आकाशमें फैला हुआ है। (अग्ने) हे अग्ने! (इद्धः) प्रदीप्त होकर तू (विश्वेभिः स्व यशोभिः) सब यशस्वी और (अदब्धेभिः पायुभिः) न दबाये जानेवाले सुरक्षाके साधनोंसे (अस्मान् पाहि) हमारी रक्षा कर ॥ ९ ॥

[१०६६] (धन्वन् गातुं स्रोतः ऊर्मिः कृणुते) निर्जल स्थानमें यह मार्ग बनाता है, जलप्रवाह और पानीके स्रोत उत्पन्न करता है। (शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अभि नक्षति) फिर यह जोरदार पानीकी तरंगोंसे पृथ्वीको भर देता है। (विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते) सब अन्नोंको प्राणियोंके पेटमें स्थापित करता है। (नवासु प्रसूषु अन्तः चरति) यह नूतन वृक्ष लताओंके अन्दर संचार करता है ॥ १० ॥

[१०६७] (पावक अग्ने) हे पवित्र करनेवाले अग्ने! (समिधा एव वृधानः) समिधाओंसे बढता हुआ (रेवत् नः श्रवसे विभाहि) धन देनेवाला होकर हमारे यशके लिए प्रकाशित हो। (नः तत्) हमारे इस मन्तव्यका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ये देव अनुमोदन करें ॥ ११ ॥

भावार्थ— घरमें बहुतसी गायें रहें, उनके गोबरसे और जलसे घरको लीपा पोता जाए, ताकि घरका रूप सुन्दर दीखे। उसी तरह इस शरीररूपी घरकी इन्द्रियांरूपी गौओंको स्नानादिसे पवित्र किया जाए, उससे शरीर सुन्दर और निर्दोष होता है। ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धिसे अपना आधार स्थान शुद्ध करता है, जिसपर रहकर वह आनन्दित एवं बलवान होता है। इस तरह पवित्र व्यक्तियोंका संघठन ही सच्ची समिति होती है, क्योंकि ऐसी समिति ही दिव्यभावोंका सब जगह विस्तार करती है ॥ ८ ॥

हे अग्ने! बलवान् होनेपर शत्रुको हरानेका तेरा सामर्थ्य सब तरफ फैल जाता है। सब जनतामें तेरा बल भर जाता है, तेरे सामर्थ्यसे सब राष्ट्र बलवान् हो जाता है। तू स्वयं तेजस्वी बनकर सब यशस्वी तथा न दबनेवाली रक्षाशक्तियोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ९ ॥

रेतीले निर्जल स्थानमें भी पुरुषार्थी वीर उत्तम मार्ग बना सकता है, तथा जल प्रवाह और जलकी नहरें या स्रोत निर्माण कर सकता है। बलवान् बनकर मनुष्य जलके प्रवाहोंसे निर्जल भूमिको भी जलसे भर सकता है और प्राणियोंके पेटके लिए हर तरहके अन्न भरपूर प्रमाणमें पैदा कर सकता है ॥ १० ॥

हे पवित्र करनेवाले अग्ने! तू समिधाओंसे प्रदीप्त होकर हमारे यशके लिए प्रकाशित हो और तेरे इस पुण्य कार्यमें मित्र, वरुण आदि देवता भी सहायक हों ॥ ११ ॥

[९६]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः, द्रविणोदा अग्निर्वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०६८ स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ १ ॥

१०६९ स पूर्वया निविदा कव्यतायो- रिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ २ ॥

१०७० तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

१०७१ स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टि- र्विदद् गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्यो- र्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥

---

[९६]

अर्थ— [१०६८] (सहसा जायमानः सः) बलके साथ उत्पन्न होनेवाला वह अग्नि (सद्यः प्रत्नथा) तत्काल ही पूर्वकी तरह (काव्यानि बट् अधत) सब काव्योंको ठीक रीतिसे धारण करता है (आपः च धिषणा च मित्रं साधन्) जीवन-जल और बुद्धिके द्वारा वह सबका मित्र होता है (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ १ ॥

[१०६९] (सः) इस अग्निने (आयोः पूर्वया निविदा कव्यता) आयुके स्तोत्ररूप काव्यसे सन्तुष्ट होकर (मनूनां इमाः प्रजाः अजनयत्) मनूकी इस सब प्रजाको उत्पन्न किया (विवस्वता चक्षसा) तेजस्वी प्रकाशसे (द्यां अपः च) द्युलोक और जलोंको व्याप्त किया। (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ २ ॥

[१०७०] (आरीः विशः) हे प्रगतिशील प्रजाओ ! (तं प्रथमं यज्ञसाधं) उस पहिले यज्ञके साधक (आहुतं) हवनसे संतुष्ट (ऋञ्जसानं ऊर्जः पुत्रं भरतं) प्रगतिशील, बलसे उत्पन्न हुए, सबका भरण-पोषण करनेवाले (सृप्रदानुं ईळत) दानशील अग्निदेवकी स्तुति करो। (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ३ ॥

[१०७१] (सः मातरिश्वा) वह अन्तरिक्षमें रहनेवाला (पुरुवारपुष्टिः) अनेकबार सबका पोषण करनेवाला (स्वर्वित्) आत्मप्रकाशका ज्ञाता (विशां गोपाः) प्रजाओंका संरक्षक (रोदस्योः जनिता) पृथिवीका उत्पादक है (तनयाय गातुं विदत्) उसने हमारे संतानोंके लिये उन्नतिका मार्ग ढूंढ निकाला है (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि बलके साथ प्रकट होता है, अर्थात् बलके कार्य करनेके लिए प्रकट होता है। इसी कारण यह सब तरहसे प्रशंसा प्राप्त करता है। वह जल बरसाकर सबका मित्रके समान हित करता है, इसलिए विद्वान् इस अग्निका पोषण करते हैं ॥ १ ॥

अग्नि स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर मननशील प्रजाको उत्पन्न करता है। तथा अपने तेजस्वी प्रकाशसे सूर्यके रूपमें द्युलोकको व्याप्त करता है और विद्युत्के रूपमें मेघोंमें रहनेवाले जलोंको व्याप्त करता है। ऐसे धनदाता अग्निका देवगण पालन करते हैं ॥ २ ॥

प्रजा प्रगति करनेवाली हो, अपनी उन्नतिके लिए सदा प्रयत्नशील रहे। प्रजाजनोंमें जो पहला, यज्ञको सम्पन्न करनेवाला, प्रगतिशील, सबका पोषणकर्ता और दाता हो, उसीकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

जो प्रजाका पोषण करता हो, आत्मज्ञानी हो, बाल-बच्चोंके सुधारका मार्ग जानता हो, प्रजाओंका संरक्षण करता हो, वही श्रेष्ठ है। सुप्रजा निर्माण करना प्रत्येक विवाहित स्त्रीपुरुषका कर्तव्य है ॥ ४ ॥

१०७२ नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् । ॥ ५ ॥
१०७३ रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥
१०७४ नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥
१०७५ द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥

अर्थ—[१०७२] (नक्तोषासा) रात्री और उषा (वर्णं आमेम्याने) ये दो परस्परकी कान्ति बदलनेवाली स्त्रियां (समीची एकं शिशुं धापयेते) एक स्थानपर रहकर एक ही अग्निरूपी बालकको दूध पिलाती हैं (रुक्मः द्यावाक्षामा अन्तः वि भाति) यह तेजस्वी अग्निदेव द्युलोक और पृथ्वीके मध्यमें विशेष प्रकाशता है (देवाः) देवोंने (द्रविणोदां अग्निं) ऐसे धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ५ ॥

[१०७३] (रायः बुध्नः) यह अग्नि धनका आधार, (वसूनां संगमनः) ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेवाला (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका ध्वज जैसा सूचक (वेः मन्म-साधनः) और प्रगतिशील मानवके लिये इष्ट सिद्धि देनेवाला है (अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः) अमृतत्वकी सुरक्षा करनेवाले (देवाः) देवोंने (एनं द्रविणोदां अग्निं) ऐसे इस धनदाता अग्निको (धारयन्) धारण किया है ॥ ६ ॥

[१०७४] (नू च पुरा च रयीणां सदनं) इस समय और पहिले भी जो संपत्तिका घर है (जातस्य च जायमानस्य च क्षां) जो उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होगा उसका निवास करता है (सतः च भवतः च भूरेः गोपां) जो है और होगा उन अनेक पदार्थोंका जो संरक्षक है, (देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन्) देवोंने ऐसे धनदाता अग्निको धारण किया है ॥ ॥ ७ ॥

[१०७५] (द्रविणोदाः) धनदाता अग्नि (तुरस्य द्रविणसः) जंगम ऐश्वर्यका (प्र यंसत्) हमें दान करे (द्रविणोदाः) ऐश्वर्यदाता अग्नि (सनरस्य) सेवन करनेयोग्य स्थावर ऐश्वर्यको हमें प्रदान करे (द्रविणोदाः) वैभव दाता अग्नि (वीरवतीं इषं नः) वीरोंसे युक्त अन्न हमें देवे (द्रविणोदाः) संपत्तिदाता अग्नि (दीर्घं आयुः रासते) हमें दीर्घ आयु देता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— रात्री और उषा ये दोनों स्त्रियां अत्यन्त तेजस्वी हैं। दोनों विरुद्ध वर्णवाली एवं विरुद्ध स्वभाववाली होनेपर भी मिलजुलकर रहती हैं और अग्निका पालन करती हैं। सूर्यके रूपमें उषा अग्निका पालन करती है और रात्री पार्थिव अग्निका पोषण करती है और अन्तरिक्ष स्थानीय विद्युत् अग्नि द्यु और पृथ्वी दोनों लोकोंके बीचमें प्रकाशित होता है। इसी तरह सभी स्त्रियां मिलजुलकर रहें और बच्चोंका पालन पोषण करें ॥ ५ ॥

इसी अग्निके समान मनुष्य भी धनका आधार अर्थात् अपने पास धनको रखनेवाला, धनोंको मिलकर प्राप्त करनेवाला, प्रगतिशील मानवके लिए मनन करनेयोग्य साधनोंको प्रस्तुत करनेवाला और अमरत्वकी सुरक्षा करनेवाला हो। वह सदा ऐश्वर्यकी प्राप्ति, मननयोग्य विचारोंका संग्रह और मोक्ष अथवा बंधन निवृत्तिके लिए प्रयत्नशील रहे ॥ ६ ॥

वह अग्नि संपत्तिका घर, उत्पन्न हुए और आगे भी उत्पन्न होनेवालेका निवास कर्ता, सबका आश्रय और भूतकालमें उत्पन्न हुए और भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले समस्त विश्वका संरक्षक है ॥ ७ ॥

वीरोंके पास जो धन रहता है, वह वीरता देनेवाला धन हमें मिले। जिससे निर्बलताका निर्माण हो ऐसा धन हमें नहीं चाहिए। वह अग्नि भी हमें वीरता उत्पन्न करनेवाला धन ही देवे ॥ ८ ॥

१०७६ एवा नो॑ अग्ने स॒मिधा॑ वृधा॒नो रे॒वत् पा॑वक॒ श्रव॑से॒ वि भा॑हि ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ९ ॥

[९७]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- अग्निः, शुचिरग्निर्वा । छन्दः- गायत्री ।)

१०७७ अप॑ न॒ः शोशु॑चद॒घ॒मग्ने॑ शुशु॒ग्ध्या र॒यिम् । अप॑ न॒ः शोशु॑चद॒घम् ॥ १ ॥
१०७८ सु॒क्षे॒त्रि॒या सु॑गातु॒या व॑सू॒या च॑ यजामहे । अप॑ न॒ः शोशु॑चद॒घम् ॥ २ ॥
१०७९ प्र यद् भन्दि॑ष्ठ ए॒षां॒ प्रास्माका॑सश्च सू॒रय॑ः । अप॑ न॒ः शोशु॑चद॒घम् ॥ ३ ॥
१०८० प्र यत् ते॑ अग्ने सू॒रयो॒ जाये॑महि॒ प्र ते॑ व॒यम् । अप॑ न॒ः शोशु॑चद॒घम् ॥ ४ ॥

अर्थ—[१०७६] (पावक अग्ने) हे पवित्रता करनेवाले अग्निदेव (समिधा एव वृधानः) समिधाओंसे बढता हुआ (रेवत्) और धन देनेवाला होकर (नः श्रवसे वि भाहि) हमारे यशके लिये प्रकाशित होओ (नः तत्) हमारे इस अभीष्टका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु देव अनुमोदन करें ॥ ९ ॥

[९७]

[१०७७] (अग्ने) हे अग्ने ! (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर कर (आ रयिं शुशुग्धि) और धनका प्रकाश हमारे ऊपर हो (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर हो ॥ १ ॥

[१०७८] (सुक्षेत्रिया) उत्तम देशमें रहनेकी इच्छा (सुगातुया) उत्तम मार्गसे जानेकी इच्छा (वसुया च) और उत्तम धन प्राप्त करनेकी इच्छा धारण करके हम (यजामहे) तुम्हारी पूजा कर रहे हैं, (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर हो ॥ २ ॥

[१०७९] (यत् एषां प्र भन्दिष्ठ) जो इनमें यह भक्त तुम्हारा वर्णन करता है (अस्माकासः च सूरयः) और हमारे सब विद्वान् तुम्हारी ही भक्ति करते हैं (नः अघं अप शोशुचत्) अतः हमारा पाप दूर करो ॥ ३ ॥

[१०८०] (अग्ने) हे अग्ने ! (यत् ते सूरयः वयं) हम सब विद्वान् तुम्हारे भक्त हुए हैं (ते प्र जायेमहि) और हम तुम्हारे ही हो गये हैं (नः अघं अप शोशुचत्) अतः हमारे पाप दूर करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि समिधाओंसे बढता हुआ हमें धन देनेवाला होकर हमें यशस्वी करे, और हमारी सहायतासे यह स्वयं भी प्रकाशित होता रहे । इस मेरी इच्छाका मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि सभी देवता अनुमोदन करें ॥ ९ ॥

पाप न करना, पापकी वासना दूर करना और शुभ कर्म करना ही उन्नतिका सत्य मार्ग है । अशुद्ध मार्गसे जाना बुरे कर्म करना ही पाप है । अतः मनुष्य कभी भी बुरे कर्म न करे । इस प्रकार पाप दुःखी होता हुआ हमसे दूर हो जावे ॥ १ ॥

मनुष्यमें तीन शुभेच्छायें स्थिर रूपसे रहें । (१) उत्तम देशमें रहना, (२) उत्तम मार्गसे जाना और (३) उत्तम धन प्राप्त करना । ये तीन इच्छायें मनुष्यके मनमें रहें । इनके साथ यज्ञ करनेकी इच्छा भी चाहिए, क्योंकि यज्ञ मनुष्यकी उन्नति करनेवाला है ॥ २ ॥

हमारे सभी विद्वान् ज्ञानी एवं सुविचारी हों । हमारे सम्बन्धियोंमें एक भी ऐसा न हो कि जो निर्बुद्ध और प्रमादी हो ॥ ३-४ ॥

१०८१ प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥
१०८२ त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥
१०८३ द्विषो नो विश्वतोमुखा—ति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥
१०८४ स नः सिन्धुमिव नावया—ति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥

[९८]

(ऋषिः– कुत्स आङ्गिरसः । देवता– अग्निः, वैश्वानरोऽग्निर्वा । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

१०८५ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

अर्थ— [१०८१] (यत् सहस्वतः अग्नेः) इस बलवान् अग्निकी (भानवः) किरणें (विश्वतः प्रयन्ति) चारों ओर फैल रही हैं (नः अघं अप शोशुचत्) ऐसा वह अग्नि हमारे पाप दूर करे ॥ ५ ॥

[१०८२] (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुखवाले अग्निदेव ! (त्वं हि विश्वतः) तू निःसंदेह चारों ओर (परिभूः असि) सब पर प्रभाव डालनेवाला है (नः अघं अप शोशुचत्) ऐसा तू हमारे पाप दूर कर ॥ ६ ॥

[१०८३] (विश्वतोमुख) हे सब ओर मुखवाले अग्निदेव ! (नावा इव) नौकासे समुद्रके पार होनेके समान (द्विषः नः अति पारय) सब शत्रुओंसे हमें पार ले जाओ (नः अघं अप शोशुचत्) और हमारे पाप दूर करो ॥ ७ ॥

[१०८४] (सः) वह तुम (नावया सिन्धुं इव) नौकासे समुद्रके या नदीके पार जानेके समान (स्वस्तये नः अति पर्ष) हमारे कल्याणके लिये हमें सब दुर्गतिसे पार ले जाओ (नः अघं अप शोशुचत्) हमारा पाप दूर हो ॥ ८ ॥

[९८]

[१०८५] (वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम) सब जनताका हित करनेवालेकी उत्तम मनोभावनामें सदा रहें (हि भुवनानां कं) निःसन्देह मानवोंको सुख देनेवाला (राजा अभिश्रीः) राजा ही बड़ा सामर्थ्यवान् होता है । (इतः जातः वैश्वानरः) यहां जन्मा हुआ सबका यह नेता (इदं वि चष्टे) सबको देखता है (सूर्येण यतते) वह सूर्यके साथ साथ यत्न करता रहता है ॥ १ ॥

भावार्थ— जो बलवान् होता है, उसका तेज चारों ओर फैलता है । यह अग्नि अत्यन्त बलवान् है, इसलिए इसके तेजका विस्तार बहुत ज्यादा होता है । इसलिए उन्नति चाहनेवालोंको चाहिए कि वे बल प्राप्त करें और उसे बढावें । यह 'सहस्वत्' पद दूसरे पर आक्रमणके लिए उपयोग किए जानेवाले बलका वाचक नहीं है, प्रत्युत शत्रुके हमले होनेपर स्वस्थान पर स्थिर रहनेका वाचक है ॥ ५ ॥

अग्रणीको विश्वतो मुख होना चाहिए अर्थात् उसकी नजर चारों ओर रहनी चाहिए । शत्रुओंपर अपनी नजर रखकर उन्हें अपने आधीन करना चाहिए । ईश्वर जैसे सब ओर मुखवाला होनेके कारण सबका योग्य निरीक्षण करता है, उसी तरह विजयी वीर चारों ओर दूतों द्वारा शत्रुके चारों ओर निरीक्षण करे और विजय सम्पादन करे ॥ ६ ॥

जिस तरह लोग नौका द्वारा समुद्रके पार जाते हैं, उसी तरह अपने बलकी नौका बनाकर वीर शत्रुरूपी समुद्रको पार करें । अन्तःकरणके शत्रु पापभाव हैं, समाजके शत्रु सामाजिक द्वेषभाव हैं, और राष्ट्रके शत्रु राष्ट्रमें द्वेषभाव फैलानेवाले शत्रु हैं, इन सबको दूर करना चाहिए ॥ ७–८ ॥

सब मानवोंके हित करनेके कार्यमें जो दत्तचित्त रहता है, उस नेताका शुभाशिर्वाद हमें प्राप्त हो । जो नेताके आदेशानुसार अपना नियत कर्तव्य करते जाते हैं और अपने नेताकी योजना सफल करते हैं, तो उस सफलताको देखकर नेता उस अनुयायीपर प्रसन्न होता है । मानवोंको सब प्रकारका सुख देनेवाला सब प्रकारसे शोभायमान होता है । मानवोंका सुख बढानेवाला ही सच्चा राजा होता है और वही शक्तिमान् और प्रभावशाली होता है । जैसे सूर्य निरलस होकर सबको प्रकाश देता है, वैसे ही नेता आलस्य छोडकर उन्नतिके कार्यमें दत्तचित्त रहे । जैसे सूर्य विश्वका मार्गदर्शक है, उसी तरह नेता मानवोंको मार्ग बतावे ॥ १ ॥

*

१०८६ पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥
१०८७ वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥

[९९]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवता- अग्निः जातवेदा अग्निर्वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०८८ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥

अर्थ— [१०८६] (वैश्वानरः अग्निः) सब जनताका हित करनेवाला (दिवि: पृष्टः) स्वर्गधाममें वर्णन करने योग्य है (पृथिव्यां पृष्टः) भूमिमें वर्णन करनेयोग्य है (विश्वाः ओषधीः पृष्टः आ विवेश) सब औषधियोंको वर्णनीय नेता प्राप्त हुआ है (सहसा पृष्टः) बलके कारण वर्णनीय माना हुआ (सः अग्निः) वह अग्नि (नः दिवा स नक्तं रिषः पातु) हम सबको दिनमें तथा रात्रिमें दुष्टोंसे बचावे ॥ २ ॥

[१०८७] (वैश्वानर) हे सब जनोंका हित करनेवाले नेता ! (तव तत् सत्यं अस्तु) तुम्हारा वह कार्य सफल हो (अस्मान् मघवानः रायः सचन्ताम्) हम सबको धनीलोग पर्याप्त धन देवें (नः तत्) हमारा यह मन्तव्य है (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्) इसका अनुमोदन मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव करें ॥ ३ ॥

[९९]

[१०८८] जो अग्नि (वेदः) सब कुछ जानता हुआ (अरातीयतः नि दहाति) शत्रुके समान आचरण करनेवाले सब द्वेष्टाओंको जला डालता है, उस (जातवेदसे) उत्पन्न हुए हुए सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्निके लिए हम (सोमं सुनवाम) सोमरस तैयार करें । (सः) वह अग्नि (नः विश्वा दुर्गाणि पर्षदति) हमारे कठिनसे कठिन दुःखोंको नष्ट करे और (नावा सिन्धुं इव) जिसप्रकार लोग नावसे समुद्रको पार करते हैं, उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि हमें (दुरिता अति) पापोंसे पार करे ॥ १ ॥

भावार्थ— सब मानवोंका सच्चा हित करनेवाला नेता सचमुच अग्नि है, वह नेता अग्निके समान जनतामें नव चैतन्यकी आग उत्पन्न करता है । जिस प्रकार अग्निके संसर्गमें आया हुआ पदार्थ अग्निवत् ही हो जाता है, उसी प्रकार इस नेताके संपर्कमें आकर हर मनुष्य उत्साही हो जाता है । अथवा जिस तरह रोग दूर करनेके कारण सब औषधियोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह यह नेता सभी राष्ट्रीय रोगोंकी चिकित्सा करता है और राष्ट्रको रोगमुक्त करता है । ऐसा प्रशंसनीय नेता राष्ट्रमें आवेश उत्पन्न करता है । ऐसा नेता दिनरात शत्रुओंसे हमारी रक्षा करे ॥ २ ॥

जनताके नेताका जो यह सामर्थ्य है, वह सदा सत्य रहे, कभी कम न हो, सत्य मार्गका ही यह अवलंब करे, कभी असत्य मार्गपर न जावे । वह हमें पर्याप्त धन दे और हमारी सभी योजना प्रभुकी कृपासे सफल होती रहे, इसमें कभी त्रुटि न हो ॥ ३ ॥

यह अग्नि सर्वव्यापक होनेसे सर्वज्ञ है, अर्थात् यह लोगोंके मनकी बातोंको भी अच्छी तरह जानता है, अतः यह मन से भी शत्रुके समान आचरण करनेवाले लोगोंको नष्ट कर डालता है और जिसप्रकार लोग नावोंकी सहायतासे बडे बडे समुद्रों-को भी लांघ जाते हैं, उसी प्रकार भक्तगण इस अग्निकी सहायतासे बडेसे बडे दुःखोंको भी पार कर जाते हैं और पाप रहित हो जाते हैं ॥ १ ॥

[१००]

(ऋषिः- वार्षागिराः ऋज्राश्वाऽम्बरीष-सहदेव-भयमान-सुराधसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०८९ स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥

१०९० यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवै र्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

१०९१ दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभि र्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥

१०९२ सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥

[१००]

अर्थ— [१०८९] (यः) जो (वृषा) बलवान् इन्द्र (वृष्ण्येभिः) बल बढानेवाले धनोंके साथ (सं-ओकाः) निवास करता है, वह (महः) बडे (दिवः) द्युलोक (पृथिव्याः च) और पृथिवीका (सं-राट्) बडा राजा है, वह (सतीन-सत्वा) जलोंका प्रेरक और (भरेषु) युद्धोंमें (हव्यः) सहायार्थ प्रार्थना करने योग्य है, (सः) वह (मरुत्वान्) मरुत् वीरोंसे युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) होवे ॥ १ ॥

[१०९०] (यस्य) जिस इन्द्रकी (यामः) गति (सूर्यस्य इव) सूर्यकी गतिके समान सबके लिए (अनाप्तः) अप्राप्त है, अर्थात् उससे अधिक कोई नहीं चल सकता । जो (वृत्र-हा) वृत्रनाशक इन्द्र (भरे-भरे) प्रत्येक युद्धमें असुरोंको भयसे (शुष्मः) सुखानेवाला (अस्ति) है । जो (स्वेभिः) अपने साथ (एवैः) आक्रमण करनेमें कुशल मरुत् रूपी (सखि-भिः) मित्रोंके साथ मिलकर (वृषन्-तमः) बडा बलिष्ठ होता है स (मरुत्वान्) मरुतोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ २ ॥

(१) वृत्र-हा भरे शुष्मः— वृत्रनाशक इन्द्रको देखकर बडे बडे युद्धमें भी शत्रुओंके प्राण सूख जाते हैं ।

[१०९१] (यस्य) जिस इन्द्रके (अपरि-इता) स्वाधीन (पन्थासः) मार्ग (दिवः न) सूर्यकी किरणोंके समान (रेतसः) जलको (दुघानाः) देनेवाले हैं और (शवसा) बलपूर्वक आगे (यन्ति) बढनेवाले हैं, वह अपने (पौंस्येभिः) पराक्रमोंसे (तरत्-द्वेषाः) द्वेषका नाश करनेवाला और (सासहिः) शत्रुका पराभव करनेवाला है वह (मरुत्वान्) मरुतोंसे युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) होवे ॥ ३ ॥

[१०९२] (सः) वह इन्द्र (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरा आदि ऋषियोंमें (अङ्गिरस्तमः) पूज्यतम (भूत्) हुआ है (सखिभिः) मित्रोंमें श्रेष्ठ (सखा) मित्र (सन्) होता हुआ (वृषभिः) बलवानोंमें अधिक (वृषा) बलवान् और (ऋग्मिभिः) प्रशंसनीयोंमें (ऋग्मी) अधिक प्रशंसाके योग्य और (गातुभिः) गमन करनेवालोंमें (ज्येष्ठः) श्रेष्ठ है । ऐसा (मरुत्वान्) मरुत् वीरोंके साथ रहनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र बहुत बडा धनी है । वह धनके घरमें रहता है, उसमें ही सब ऐश्वर्य रहते हैं । वह द्यु और पृथिवी लोकोंका राजा और वृत्रके बन्धनसे जलको छुडानेवाला है । यह इन्द्र सदा वीर मरुतोंको अपने साथ रखता है, इसीलिए लोग इसे युद्धोंमें सहायतार्थ बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्रसे अधिक कोई भी नहीं चल सकता । उसको देखते ही शत्रुओंके प्राण सूखने लगते हैं । वह बडा बलिष्ठ और उत्तम रक्षक है इसी तरह जिस वीरके रणक्षेत्रमें जाते ही शत्रुओंका रक्त सूखने लगे वही विजयी होता है ॥ २ ॥

इन्द्र अपने आने-जानेका मार्ग शत्रुओंके अधीन नहीं होने देता । उसीतरह राजा युद्धके समय यातायातका मार्ग शत्रुके हाथमें पडनेसे बचाये और उसके मार्ग पर अधिकार करके शत्रुको भोजन और युद्ध-सामग्री पहुँचाना रोक दे तब वह द्वेषियों पर विजय पा सकता है ॥ ३ ॥

इन्द्र ऋषियोंका पूज्य देव, बडा मित्र, श्रेष्ठ बलिष्ठ, स्तुतिके योग्य और चलनेमें अधिक वेगवान् है ॥ ४ ॥

१०९३ स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥
१०९४ स मन्युमीः समदनस्य कर्ता ऽस्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥
१०९५ तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥
१०९६ तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित् तमसि ज्योतिर्विदन् मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०९३] (सः) उस (सूनुभिः न) पुत्रोंके समान प्रिय और (रुद्रेभिः) मरुतोंसे युक्त (ऋभ्वा) महान् इन्द्रने (नृसाह्ये) वीरोंके द्वारा सहन करनेयोग्य युद्धमें (अमित्रान्) शत्रुओंको (सासह्वान्) पराजित किया (सनीळेभिः) एक ही घरमें रहनेवाले मरुतोंके साथ मिलकर (श्रवस्यानि) अन्नके बढानेवाले जलोंको (तूर्वन्) नीचे गिराता हुआ (मरुत्वान्) मरुतोंवाला वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ५ ॥

[१०९४] (सः) वह शत्रुओंके ऊपर (मन्युमीः) क्रोध करनेवाला, (स-मदनस्य) जहाँ मिलकर साथ विजयका आनन्द मनाते हैं ऐसे युद्धका (कर्ता) करनेवाला, (सत्-पतिः) सज्जनोंका पालक (पुरु-हूतः) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र (अस्मिन् अहन्) आजहीके दिन (अस्माकेभिः) हमारे (नृ-भिः) वीरोंके साथ मिलकर असुरसे छिपाये हुए (सूर्यम्) सूर्यको (सनत्) प्राप्त करे । वह (मरुत्वान्) मरुतोंको साथ रखनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र इस प्रकार (नः) हमारी (ऊती) रक्षाका करनेवाला (भवतु) हो ॥ ६ ॥

[१०९५] (ऊतयः) रक्षकोंने (शूर-सातौ) शूर जहाँ धन प्राप्त करते हैं ऐसे युद्धमें (तं) उस इन्द्रको (रणयन्) हर्षित किया । (क्षितयः) प्रजाओंने (तं) उसे (क्षेमस्य) रक्षा-योग्य धनका (त्रां) रक्षक (कृण्वत) बनाया । (सः) वह इन्द्र (एकः) अकेला ही (विश्वस्य) सम्पूर्ण (करुणस्य) उत्तम कर्मोंका (ईशे) शासक, संचालक है ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुतोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ७ ॥

१ सः एकः विश्वस्य करुणस्य ईशे— वह इन्द्र अकेला ही सब उत्तम कर्मोंका स्वामी है ।

[१०९६] (शवसः) बलशाली (नरः) वीरोंने (उत् सवेषु) उत्सवों या युद्धोंमें (तं) उस (नरं) वीर इन्द्रको (अवसे) रक्षा और (तं धनाय) धनके निमित्त (अप्सन्त) प्राप्त किया । (सः) उस वीर इन्द्रने (अन्धे) घोर (तमसि चित्) अन्धकारमें भी (ज्योतिः) प्रकाशको (विदत्) प्राप्त किया, ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुत्-युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ८ ॥

भावार्थ— रुद्रके पुत्र मरुत् , इन्द्रके साथ इस प्रकार फिरते रहते हैं, जिस प्रकार पिताके साथ पुत्र । वे इन्द्रकी ही सहायतासे जलको नीचे गिराते हैं, जिससे अन्न बढता है और उस अन्नसे मनुष्योंकी रक्षा होती है ॥ ५ ॥

यह इन्द्र युद्ध करता है और उसमें विजय प्राप्त कर आनंदित होता है और सज्जनोंका पालन करता है तथा सूर्यको पुनः प्रकाशित कर अपनी सृष्टिकी रक्षा करता है ॥ ६ ॥

मरुत्वीर अपने शब्दोंसे इन्द्रका उत्साह बढाते हैं और प्रजाएं उसे अपने अन्न-धनका रक्षक मानती हैं ॥ ७ ॥

यह इन्द्र इतना बलशाली है कि श्रेष्ठसे श्रेष्ठ वीर भी युद्धमें अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं । इस इन्द्रने घोर अन्धकारमें भी प्रकाशको प्राप्त किया अर्थात् रात्रीके बाद सूर्यको उत्पन्न करके सर्वत्र प्रकाश किया ॥ ८ ॥

१०९७ स सव्येन यमति व्राधतश्चित् स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित् सनिता धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥
१०९८ स ग्रामेभिः सनिता स रथेभि-र्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्ती-र्मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥
१०९९ स जामिभिर्यत् समजाति मीळ्हे ऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥
११०० स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १२ ॥

अर्थ— [१०९७] (सः) वह इन्द्र (सव्येन) बायें हाथसे (व्राधतः चित्) बडे शत्रुओंको भी (यमति) वशमें करता है । (सः) वह (दक्षिणे) दायें हाथमें (कृतानि) किये कर्मोंको (सं-गृभीता) ग्रहण करता है। (सः) वह (कीरिणा चित्) स्तुति मात्रसे प्रसन्न होकर उन्हें (धनानि) धन (सनिता) बाँटता है, ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुतोंका साथी (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ९ ॥

[१०९८] (सः) वह इन्द्र मरुतोंके (ग्रामेभिः) संघोंसे और (सः) वह (रथेभिः) रथों द्वारा धनका (सनिता) दाता है । वह (विश्वाभिः) सम्पूर्ण (कृष्टिभिः) प्रजाओंद्वारा (अद्य) आज (नु) ही (विदे) जाना जाता है अर्थात् आज उसे सारी प्रजायें जानती हैं । (सः) वह (पौंस्येभिः) बलोंसे (अशस्तीः) निन्द्य शत्रुओंको (अभि-भूः) पराभूत करनेवाला है ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुतोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १० ॥

[१०९९] (सः) वह (पुरु-हूतः) बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाया गया इन्द्र (यत्) जिस समय (जामिभिः) बन्धु (अजामिभिः वा) अथवा अबन्धु (एवैः) सैनिकोंके साथ (मीळ्हे) युद्धमें (सं-अजाति) जाता है, तब उन (अपां) बन्धुतुल्य वीरोंके (तोकस्य) पुत्र और (तनयस्य) पौत्रके (जेषे) विजयके लिये प्रयत्न करता है, ऐसा वह (मरुत्वान्) मरुत् वीरोंवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ ११ ॥

[११००] (सः) वह (वज्र-भृत्) वज्रधारी, (दस्यु-हा) दुष्टनाशक, (भीमः) भयङ्कर, (उग्रः) वीर, (सहस्र-चेताः) बहुत ज्ञानी, (शत-नीथः) सैकडों नीतियोंवाला (ऋभ्वा) महान्, (चम्रीषः न) पात्रमें एकत्रित हुएके समान (शवसा) बलसे (पाञ्च-जन्यः) पाँच प्रकारके मनुष्योंका हितकारी, (मरुत्वान्) मरुत्-युक्त (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १२ ॥

१ पञ्च-जन— देव, असुर, गन्धर्व, राक्षस और अप्सरा; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद; मनुष्य, पशु, पक्षी, सर्प और कृमि; राजा, प्रजा, सेनापति, सेना और पुरोहित ।

भावार्थ— शत्रुको वशमें करना इन्द्रके बायें हाथका खेल है । वह पुरुषार्थीके कर्म दायें हाथमें रखता और उनका यथायोग्य प्रतिफल देता है ॥ ९ ॥

प्रजाएँ इन्द्रके रथ और सेनाको देखकर उसके आनेका अनुमान करती हैं । क्योंकि वह रथपर बैठकर लोगोंको धन देने आता है, और बलसे अपने शत्रुओंको हटाता है ॥ १० ॥

इन्द्र अपने सैनिकोंके पुत्र-पौत्रोंतकका ध्यान रखता है चाहे वे सैनिक उसके वंशके हों या अन्य ॥ ११ ॥

शस्त्रधारी शत्रुनाशक, भयंकर वीर, ज्ञानी, अनेक प्रकारकी नीतियां काममें लानेवाला, बलवान्, पंचजनोंका हित करनेवाला है वह हमारी रक्षा करे ॥ १२ ॥

१९०१ तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥
११०२ यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद् रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥
११०३ न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५ ॥
११०४ रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामी र्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥

अर्थ— [११०१] (तस्य) उस इन्द्रका (वज्रः) वज्र (स्मत्) बहुत (क्रन्दति) शब्द करता है, गर्जता है। वह इन्द्र (स्वः-सा) स्वर्गका हित करनेवाला, (दिवः न) द्युमें रहनेवाले सूर्यके समान (त्वेषः) तेजस्वी (रवथः) व्याख्यान देनेवाला और (शिमीवान्) कर्ममें कुशल है। सर्वप्रकारके (सनयः) दान और सब प्रकारके (धनानि) धन (तं तं) उसके (सचन्ते) पास रहते हैं। ऐसा (मरुत्वान्) मरुतोंका साथी (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १३ ॥

[११०२] (यस्य) जिस इन्द्रका (उक्थं) प्रशंसनीय (मानं) बल अपनी (शवसा) शक्तिसे (रोदसी) दोनों लोकोंका (विश्वतः सीं) सब ओरसे (अजस्रं) निरन्तर (परि-भुजत्) पालन कर रहा है, (सः) वह (क्रतु-भिः) पुरुषार्थोंसे (मन्दसानः) हर्षित होनेवाला इन्द्र हमें दुःखसे (पारिषत्) पार करे और वह (मरुत्वान्) मरुतोंको साथ रखनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १४ ॥

[११०३] (यस्य) जिस इन्द्रके (शवसः) बलका (अन्तं) अन्त (देवता देवाः) दानशील एवं तेजस्वी देव, (मर्ताः) मनुष्य (आपः चन) और जल (न न आपुः) नहीं पा सके, (सः) वह इन्द्र अपनी (त्वक्षसा) सूक्ष्म शक्तिसे (क्ष्मः) पृथिवी (दिवः च) और द्युलोकसे (प्र-रिक्वा) आगे बढा हुआ है। ऐसा (मरुत्वान्) मरुतोंकी सेनावाला वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमारा (ऊती) रक्षक (भवतु) हो ॥ १५ ॥

[११०४] (रोहित्) लाल और (श्यावा) काले रंगवाली (सुमत्-अंशुः) उत्तम तेजस्वी (ललामीः) आभूषणोंसे युक्त (द्युक्षा) द्युलोकमें स्थित इन्द्रकी (मन्द्रा) आनन्ददायिनी अश्वशक्ति (ऋज्र-अश्वस्य) ऋज्राश्व ऋषिके (राये) ऐश्वर्यवर्धनके लिये (वृषण्वन्तं) बलवान् इन्द्रसे युक्त (रथं) रथको (धूः-सु) धुरोंमें लगाकर (बिभ्रति) खींचती हुई (नाहुषीषु) मानुषी (विक्षु) प्रजाओंमें (चिकेत) प्रकट हो रही है, दिखाई दे रही है ॥ १६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास धन बहुत हैं और दान भी उसीका विशेष गुण है। वह सबका हित करता है। वह उत्तम भाषण करता है ॥ १३ ॥

इन्द्र अपनी शक्तिसे दोनों लोकोंको पालता और प्रजाका कष्ट दूर करता है। ऐसा इन्द्र मरुत् वीरोंके साथ हमारी रक्षा करे और हमें सब दुःखोंसे पार करे ॥ १४ ॥

इन्द्रमें अनन्त शक्ति है। वह अपनी शक्तिसे पृथ्वी और द्युलोकसे इतना आगे बढ गया है कि मनुष्य क्या, उसका अन्त तेजस्वी देव भी नहीं पा सकते ॥ १५ ॥

जब इन्द्रके चित्र-विचित्र घोडे उसके रथको गर्दनपर संभाले द्युसे पृथिवीकी ओर उतरते हैं तब लोग दूरसे ही देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥

११०५ एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥
११०६ दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत् सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥
११०७ विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

अर्थ— [११०५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्राष्टि-भिः) समीप रहनेवाले ऋषियोंके साथ (ऋज्र अश्वः) ऋज्राश्व, (अम्बरीषः) अम्बरीष, (सहदेवः) सहदेव (भयमानः) भयमान और (सु-राधाः) सुराधस् ये सारे (वार्षागिराः) वृषागिरके पुत्र (ते) तुझ (वृष्णे) सामर्थ्यवान्के लिये (त्यत्) वह (एतत्) यह (राधः) निर्दोष (उक्थं) स्तोत्र (अभि गृणन्ति) गाते हैं ॥ १७ ॥

[११०६] (पुरु-हूतः) जिसे सभी लोग अपने यहां सहायार्थ बुलाते हैं ऐसे इन्द्रने (एवैः) सैनिकोंके साथ मिलकर (पृथिव्यां) पृथिवीपर रहनेवाले (दस्यून्) दुष्ट (शिम्यून् च) और हिंसकोंपर (हत्वा) प्रहार करके (शर्वा) हिंसक वज्रसे उनकी (नि बर्हीत्) जड उखाड दी। तब उस (सु-वज्रः) उत्तम वज्रवालेने (श्वित्न्येभिः) श्वेत वस्त्राभूषणवाले (सखिभिः) मित्रोंके साथ मिलकर (क्षेत्रं) भूमि (सनत्) प्राप्त की, (सूर्यं) सूर्य (सनत्) प्राप्त किया और (अपः) जल (सनत्) प्राप्त किये ॥ १८ ॥

[११०७] (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमें (अधि-वक्ता) उत्तम सलाह देनेवाला (अस्तु) हो। हम भी (अपरि-ह्वृताः) कुटिलता छोडकर उसे (वाजं) अन्न (सनुयाम) दें। (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरुण (अदितिः) अदिति (सिन्धुः) सिन्धु (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्यौ (नः) हमारी (तत्) इस बातको (मामहन्ताम्) बडी प्रेरणा दें ॥ १९ ॥

भावार्थ— सरल मार्गसे चलनेवाले घोडोंवाले, आकाशतक जिनका यश पहुंचा हुआ है, जो हमेशा देवोंके साथ रहते हैं, जो युद्धोंमें शत्रुओंको कंपाते हैं, जो उत्तम ऐश्वर्यवान् हैं, जो अपनी वाणीसे आनन्द बरसाते हैं, ऐसे श्रेष्ठ जन इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ १७ ॥

इन्द्रने जब युद्धमें विजय प्राप्त की और शत्रुओंको जडमूलसे नष्ट कर दिया, तब उसे अपना राज्य मिला, सूर्यप्रकाश मिला और जल प्रवाहित हुए ॥ १८ ॥

इन्द्र हमसे रुष्ट न हो, वह प्रसन्न होकर हमें उत्तम संमति देता रहे यही हमारी इच्छा है। इस प्रार्थनामें मित्र, वरुणादि देव भी हमारी पुष्टि करें ॥ १९ ॥

[१०१]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः। देवता- इन्द्रः (गर्भस्राविण्युपनिषद्)। छन्दः- जगती ८-११ त्रिष्टुप्।)

११०८ प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥

११०९ यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥

१११० यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद् यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

---

[१०१]

अर्थ— [११०८] हे मनुष्यो ! तुम (मन्दिने) उत्साह युक्त इन्द्रकी (पितुमत् वचः) अन्नादिसे युक्त वाणियोंसे (अर्चत) स्तुति करो, (यः) जिसने (ऋजिश्वना) ऋजिश्व राजाके साथ वृत्रकी (कृष्णगर्भाः) अन्धेरेमें छिपी नगरियोंको (निरहन्) नष्ट किया। (अवस्यवः) संरक्षणकी इच्छावाले हम (वृषणं) बलवान् (वज्रदक्षिणं) दाहिने हाथमें वज्रको धारण करनेवाले (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥१॥

[११०९] (यः) जिस इन्द्रने (जाहृषाणेन मन्युना) अत्यधिक क्रोधसे (वि-अंसं) कटे हुए कंधोंवाले असुरको (अहन्) मारा, (यः) जिसने (शम्बरं) शम्बरको मारा, तथा (यः) जिसने (अ-व्रतं, पिप्रुं) व्रतहीन पिप्रु असुरको मारा, तथा (यः इन्द्रः) जिस इन्द्रने (अशुषं शुष्णं नि अवृणक्) सर्व भक्षक शुष्ण असुरको मारा, उस (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ २ ॥

१ यः जाहृषाणेन मन्युना वि अंसं अहन्— इस इन्द्रने अत्यधिक क्रोधसे कंधोंसे रहित असुरको मारा।

[१११०] (यस्य महद् पौंस्यं) जिसके महान् बलका (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक अनुसरण करते हैं (वरुणः यस्य व्रते) वरुण जिस इन्द्रके व्रतमें रहता है, (सूर्यः यस्य) सूर्य जिसके नियममें रहता है, तथा (सिन्धवः) नदियां भी (यस्य इन्द्रस्य) जिस इन्द्रके (व्रतं सश्चति) नियममें चलती हैं, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

१ अस्य व्रते द्यावापृथिवी, वरुणः सूर्यः सिन्धवः सश्चति— इसके नियममें द्युलोक और पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां रहती हैं।

भावार्थ— वृत्र इन्द्रका शत्रु है। वह अपनी नगरीको सुरक्षित रखनेके लिए उसमें अंधेरा करता है। इस अन्धेरेके कारण उस नगरीपर इन्द्रका हमला नहीं हो सकता। आजकल भी युद्ध कालमें नगरियोंको अन्धेरेमें रखा जाता है, जिससे उनकी रक्षा होती है। इन्द्र हर तरहकी नीतिमें कुशल है, इसलिए वह असुरोंको तो मारता ही है, पर उनका वंश आगे न चल सके, उनका वंश निर्मूल हो जाए, इसलिए वह (कृष्णगर्भाः) असुरोंकी गर्भवती स्त्रियोंका भी नाश करता है। ऐसे इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिए सब लोग बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्रने पहले वृत्रके कंधोंको काट डाला, फिर धर्म और नियमोंका पालन न करनेवाले पिप्रुको भी इन्द्रने मारा, इसके अलावा जनताका शोषण करनेवाले शंबर और शुष्ण इन दोनों असुरोंका भी नाश किया, इस प्रकार सभी असुरोंका इन्द्रने नाश किया ॥ २ ॥

इसी बलशाली देव इन्द्र भगवान्के भयसे द्युलोक, पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां अपने अपने नियममें रहते हैं और अपना अपना काम करते हैं। सभी देव अपने नियममें रहते हैं, कोई भी अपने नियमका उल्लंघन नहीं करता। इसी तरह सभी मनुष्य अपने अपने नियमोंमें रहें और अपना कार्य करते जाएं ॥ ३ ॥

१११११ यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
१११२ यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पति-र्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
१११३ यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभि-र्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधु-र्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥

अर्थ— [११११] (यः अश्वानां) जो इन्द्र घोडोंका स्वामी है, (यः गवां गोपतिः) जो गौवोंका स्वामी है, (य वशी) जो सबको वशमें रखता तथा जो (कर्मणि कर्मणि) प्रत्येक कर्ममें (स्थिरः) अचल रहता हुआ (आरितः) प्रशंसित होता है, (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (वीळोः चित् असुन्वतः) नियमपूर्वक सोमयाग न करनेवाले शत्रुका (वधः) मारनेवाला है, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ वशी— वह इन्द्र सबको वशमें करनेवाला है, किसीके आधीन नहीं रहता ।

२ कर्मणि कर्मणि स्थिरः— वह प्रत्येक कर्ममें अचल रहता है ।

[१११२] (यः विश्वस्य प्राणतः) जो सारे प्राण लेनेवाले (जगतः) संसारका (पतिः) स्वामी है, (यः ब्रह्मणे प्रथमः गाः अविन्दत्) जिस इन्द्रने ब्राह्मणोंके लिए सबसे पहले गायोंको प्राप्त किया, (यः इन्द्रः) जिस इन्द्रने (दस्यून्) शत्रुओंको (अधरान्) नीचे करके (अवातिरन्) मारा, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंवाले इन्द्रको हम (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ५ ॥

१ यः विश्वस्य प्राणतः जगतः पतिः— वह इन्द्र सारे प्राण लेनेवाले जगत्का स्वामी है ।

२ दस्यून् अधरान् अवातिरन्— शत्रुओंको नीचे किया ।

[१११३] (यः शूरेभिः हव्यः) जो शूरवीरोंके द्वारा बुलानेयोग्य, (यः च भीरुभिः) और जो भीरुओं द्वारा भी बुलाने योग्य है, (यः धावद्भिः हूयते) जो युद्धमें भागते हुओंके द्वारा बुलाया जाता है (यः च) और जो (जिग्युभिः) जीतनेवालोंके द्वारा बुलाया जाता है, (यं इन्द्रं विश्वा भुवना) जिस इन्द्रको सारे भुवन (अभि संदधुः) आगे रखते हैं, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको हम (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ यं इन्द्रं विश्वा भुवना अभि संदधुः— इस इन्द्रको सारा संसार आगे रखता है ।

२ यः शूरेभिः भीरुभिः धावद्भिः जिग्युभिः हव्यः— जो इन्द्र शूरोंके द्वारा, भयभीतोंके द्वारा, युद्धमें भागनेवालोंके द्वारा तथा विजयी वीरोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है ।

भावार्थ— इन्द्र गौओंका पालन करता है, गौओंको अपने वशमें रखता है, घोडोंका पालन भी उत्तम रीतिसे करता है; घोडोंको उत्तम शिक्षा देकर सुशिक्षित करता है । इन्द्र यज्ञ न करनेवालोंका वध करता है । यज्ञ प्रजाको संगठित करनेका बडा उपयोगी कार्य है, जो इसे नहीं करता, उसे मारना ही चाहिए । यज्ञ द्वारा प्रजाको संगठित करना एक पवित्र कार्य है । इसी लिए इन्द्र इसका प्रचार करता है । इसी तरह राजा अपनी गौओं अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें रखे अर्थात् संयमी बने और प्रजाको संगठित करनेवाले उत्तम कार्योंको प्रोत्साहित करे ॥ ४ ॥

इन्द्र भगवान् चलनेवाले और प्राणधारी संपूर्ण विश्वका अधिपति है । सब विश्व इसके अधीन है । इन्द्र शत्रुओंको नीचे गिराकर परास्त करता है । इन्द्र ब्राह्मणके लिए गौवें देता है । ब्राह्मणके घर अनेक विद्यार्थी पढते हैं । ब्राह्मणका घर पाठशाला होता है, वहां बिना मूल्य पढाई होती है, इसलिए विद्यार्थियोंके परवरिशके लिए इन्द्र ब्राह्मणोंको गौवें प्रदान करता है ॥ ५ ॥

यह इन्द्र शूरोंद्वारा और भीरुओंद्वारा साहाय्यार्थ बुलाया जाता है, यही युद्धसे भागनेवालोंके द्वारा तथा विजय पानेवालोंके द्वारा भी रक्षा करनेके लिए बुलाया जाता है । इसी वीरताके कारण सब लोग इन्द्रके साथ अपना संबंध जोडते हैं । इसे सब अपना मित्र बनाना चाहते हैं । ऐसे मरुतोंसे युक्त इन्द्रको हम भी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१११४ रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥
१११५ यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद् वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥
१११६ त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
१११७ मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥

अर्थ— [१११४] जो (विचक्षणः) बुद्धिमान् इन्द्र (रुद्राणां प्रदिशा एति) मरुतोंकी दिशामें जाता है, तथा (रुद्रेभिः योषा) मरुतों और उषाके संयोगसे (पृथु ज्रयः तनुते) महान् तेजको फैलाता है, जिस (श्रुतं इन्द्रं) प्रसिद्ध इन्द्रकी (मनीषा अभि अर्चति) मनुष्योंकी मननीय वाणी स्तुति करती है, ऐसे (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

१ विचक्षणः पृथु ज्रयः तनुते— बुद्धिमान् इन्द्र महान् तेजको फैलाता है ।

[१११५] हे (मरुत्वः) मरुतोंसे युक्त इन्द्र ! तू (यद् वा) यदि (परमे सधस्थे) उत्तम घरमें (मादयासे) आनन्दित होता है, (यद् वा) अथवा (अवमे वृजने) छोटे घरमें आनन्दित होता है, (अतः) उस स्थानसे (नः अध्वरं अच्छ आ याहि) हमारे यज्ञमें सीधे आ, हे (सत्यराधः) स्थिर ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वाया) तुझे चाहनेवाले हम तेरे लिए (हविः चकृमा) यज्ञमें हवि देते हैं ॥ ८ ॥

[१११६] हे (सु-दक्ष इन्द्र) उत्तम बलवाले इन्द्र ! (त्वाया) तेरी कामनासे ही हम (सोमं सुषुम) सोमको तैय्यार करते हैं, हे (ब्रह्मवाहः) स्तोत्रोंसे प्राप्त होने योग्य इन्द्र ! (त्वाया) तेरी ही कामनासे हम (हविः चकृम) हवि देते हैं, (अध) अनन्तर हे (नियुत्वः) घोडोंवाले इन्द्र ! (स-गणः मरुद्भिः) मरुद्गणोंके साथ (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (बर्हिषि) आसन पर बैठ और (मादयस्व) आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[१११७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (हरिभिः मादयस्व) घोडोंके साथ आनंदित हो, तथा (ये ते शिप्रे) जो तेरे जबडे हैं, उन्हें (विष्यस्व) खोल और (धेने वि सृजस्व) वाणीको प्रकट कर (सु-शिप्र) सुन्दर शिरस्त्राणवाले इन्द्र ! (त्वा) तुझे (हरयः) घोडे (आवहन्तु) हमारे पास ले आवें, हे (उशन्) कामना करनेवाले इन्द्र ! (नः हव्यानि) हमारी हवियोंका (प्रति जुषस्व) प्रेमसे सेवन कर ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र सदा मरुतोंकी सहायता करता है और इस प्रकार अपने यशको फैलाता है। तब इसके यशको देखकर मनुष्योंके हृदयोंसे निकली हुई स्तुति उस इन्द्रके यशका गान करती है। ऐसे मरुतोंकी सहायतासे युक्त इन्द्रकी हम मित्रता चाहते हैं ॥ ७ ॥

इस इन्द्रको निश्चित रूपसे सिद्धि मिलती है, और इसका पराभव कभी नहीं होता। यह सबको समान दृष्टिसे देखता है, अतः जिस प्रकार बडे बडे श्रीमन्त लोगोंके यहां बुलानेपर जाता है, उसी प्रकार यह बुलानेपर छोटे लोगोंके यहां भी जाता है और वहां जाकर बडे प्रेमसे सोमरसका पान करता है ॥ ८ ॥

यह इन्द्र उत्तम बलवान् तथा दक्षता अर्थात् कुशलताके साथ काम करनेवाला सदा सावधानीसे रहनेवाला है, इसलिये यह विजय पाता है। यह ज्ञानका वाहक है, सब जगह ज्ञानको फैलाता है। यह सदा अपने अनुयायियोंके साथ रहता है। इसी प्रकार राजा भी अपने राष्ट्रमें सब जगह शिक्षाका प्रसार करे और सदा सावधानीसे कुशलता पूर्वक कर्म करते हुए विजय प्राप्त करे ॥ ९ ॥

यह इन्द्र उत्तम शिरस्त्राण धारण करता है तथा तेजस्वी होनेके कारण इसका मुख भी बहुत सुन्दर दीखता है। इन्द्रके रथमें जुडे हुए घोडे हमारे पास इन्द्रको ले आवें, क्योंकि हम इन्द्रको बहुत चाहते हैं ॥ १० ॥

१११८ मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता- मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

[१०२]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ११ त्रिष्टुप् ।)

१११९ इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत् त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहि- मिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥

११२० अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१११८] (मरुत् स्तोत्रस्य) मरुतों द्वारा स्तुतिके योग्य तथा (वृजनस्य) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रसे (गोपाः) संरक्षित (वयं) हम (इन्द्रेण वाजं सनुयाम) इन्द्रकी सहायतासे अन्नको प्राप्त करें, (तत्) इसलिये (मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) सहायता देवें ॥ ११ ॥

[१०२]

[१११९] हे इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (ते धिषणा) तेरी बुद्धि (अस्य) इस मेरे (स्तोत्रे) स्तुतिमें (आनजे) युक्त होती है, इसलिए (महः ते) महान् तेरे लिए (इमां महीं धियं) इस उत्तम स्तुतिको मैं (प्र भरे) करता हूँ । (देवासः) देव गण (प्र सवे उत् सवे च) धनोंको उत्पन्न करने और बढानेके लिए (सासहिं तं इन्द्रं) शत्रुको मारनेवाले उस इन्द्रको (शवसा ननु अमदन्) अपने उत्साहसे आनन्दित करते हैं ॥ १ ॥

[११२०] (अस्य श्रवः) इस इन्द्रके यशको (सप्त नद्यः बिभ्रति) सातों नदियां धारण करती हैं तथा इसके (दर्शतं वपुः) सुन्दर रूपको (द्यावाक्षामा पृथिवी) द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोक धारण करते हैं, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे अभिचक्षे) हमें प्रकाश देनेके लिए तथा (श्रद्धे) श्रद्धाके लिए (सूर्याचन्द्रमसा) सूर्य और चन्द्रमा दोनों (कं वितर्तुरं चरतः) सुखपूर्वक आने जानेकी गति करते हैं ॥ २ ॥

१ अस्य श्रवः सप्त नद्यः बिभ्रति— इस इन्द्रके यशको सातों नदियां धारण करती हैं ।

२ दर्शतं वपुः द्यावा क्षामा पृथिवी— इस इन्द्रके सुन्दर शरीरको तीनों लोक धारण करते हैं ।

३ श्रद्धे सूर्याचन्द्रमसा कं चरतः— सत्य ज्ञान देनेके लिए सूर्य और चन्द्रमा सुखपूर्वक विचरते हैं ।

भावार्थ— यह इन्द्र पाप, दुर्भाग्य और दुर्गतिका नाश करनेवाला है । इन्द्र संरक्षण करनेवाला है । ये इन्द्रके गुण हैं और ये ही एक वीरके गुण होने चाहिए । वीरकी इन गुणोंसे शोभा बढती है ॥ ११ ॥

इस इन्द्रकी महिमा बहुत बडी है । यह इन्द्र शत्रुको [illegible] उत्कर्ष और प्रकर्षको प्राप्त होता है । देव गण भी धनोंको प्राप्त करनेके लिए और प्राप्त किए धनको बढानेके लिए इस इन्द्रको आनंदित करते हैं ॥ १ ॥

सात नदियां इस इन्द्रके यशको धारण करती हैं । इसके सुन्दर तेजको तीनों लोक धारण करते हैं, इसी इन्द्रके तेजसे प्रकाशित होकर सूर्य और चन्द्रमा प्राणिमात्रको ज्ञान एवं प्रकाश देनेके लिए नियम पूर्वक गति करते हैं । इनकी गति इतनी नियमित होती है कि अत्यन्त वेगसे चलने पर भी वे कभी आपसमें टकराते नहीं । इसी तरह सभी मनुष्योंको चाहिए कि वे नियममें रहकर सुखपूर्वक गति करते रहें ॥ २ ॥

११२१ तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा स इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥

११२२ वयं जयेम त्वया युजा वृत- मस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥

११२३ नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥

अर्थ— [११२१] हे (नः मनसा पुरुस्तुत मघवन् इन्द्र) हमारी स्तुतिसे अनेक प्रकारसे प्रशंसित और ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! लोग (ते) तेरे (यं जैत्रं) जिस जयशील रथको (संगमे आजौ) सैनिकोंसे होनेवाले युद्धमें (अनुमदाम) उत्साहित करते हैं, (तं स्म रथं) उसी रथको (सातये) हमारी विजयके लिए (अव) प्रेरित कर और हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (त्वायद्भ्यः नः) तेरी कामना करनेवाले हमें (शर्म यच्छ) सुख दे ॥ ३ ॥

[११२२] हे (मघवन् इन्द्र) धनवान् इन्द्र ! (त्वया युजा) तेरी सहायतासे (वयं) हम (वृतं जयेम) घेरनेवाले शत्रुको जीतें, तू (भरे भरे) हर संग्राममें (अस्माकं अंशं उत् अव) हमारे भागकी रक्षा कर (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वरिवः) धनोंको (सु-गं कृधि) आसानीसे प्राप्त हो जानेवाला बना, (शत्रूणां वृष्ण्या रुज) तथा शत्रुओंके बलोंका नाश कर ॥ ४ ॥

१ इन्द्र ! त्वया युजा वयं वृतं जयेम— तेरी सहायतासे हम घेरनेवाले शत्रुको जीतें !
२ भरे भरे अस्माकं अंशं उत् अव— हर संग्राममें हमारे भागकी रक्षा कर ।
३ शत्रूणां वृष्ण्या रुज— शत्रुओंके बलोंका नाश कर ।
४ वरिवः सुगं कृधि— धन सुखसे मिले ऐसा कर ।

[११२३] हे (धनानां धर्तः इन्द्र) धनोंको धारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वा हवमानाः) तुझे बुलानेवाले (इमे विपन्यवः जनाः) ये स्तुति करनेवाले मनुष्य (नाना हि) अनेक हैं, इसलिए (सातये) धन प्राप्तिके लिए तू (अस्माकं स्म रथं आ तिष्ठ) हमारे ही रथ पर आकर बैठ, क्योंकि (तव निभृतं मनः) तेरा शांत मन (जैत्रं) जयशील है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस प्रशंसित इन्द्रका रथ जयशील है, अर्थात् वह जिस संग्राममें जाता है, वहां वह विजय प्राप्त करता ही है, कभी पराभूत नहीं होता । इसी कारण और भी सब सैनिक इस रथको प्रेरित करते हैं, उसी रथको हे इन्द्र ! हमारी ओर प्रेरित कर, और अपनी कृपा हम पर करके हमें सुख दे ॥ ३ ॥

हम घेरनेवाले शत्रुओंको जीतें अर्थात् कोई शत्रु हमें घेर कर परास्त न करे । हम इन्द्रकी सहायतासे हर संग्राममें विजय प्राप्त करें और अपने धनकी रक्षा करें । और इस प्रकार अपने शत्रुओंकी शक्तिका नाश करें, तथा अपने प्राप्त किए हुए धनका हम शत्रुरहित होकर सुखपूर्वक उपभोग करें ॥ ४ ॥

हे धनोंको धारण करनेवाले इन्द्र ! तुझे बुलानेवाले तथा तेरी स्तुति करनेवाले मनुष्य अनेक हैं, अतः तू किन किनकी प्रार्थना सुनेगा और धन देगा । इसलिए तू अपने शान्त और जयशील मनसे विचार कर और अच्छी तरह सोच विचार कर हमारे रथपर आकर बैठ और हमें धन दे ॥ ५ ॥

१११२४ गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसा- था जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
११२५ उत ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत सहस्राद् रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे म- ह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ॥ ७ ॥
११२६ त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजस- स्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथा- शत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥

अर्थ— [११२४] इस इन्द्रकी (बाहू) भुजायें (गोजिता) गायोंको जीतनेवाली हैं, वह (इन्द्रः) इन्द्र स्वयं भी (अमितक्रतुः) अपरिमित बलवाला, (सिमः) श्रेष्ठ (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक कर्ममें (शतं ऊतिः) सैंकडों प्रकारके संरक्षणके साधनोंको पास रखनेवाला (खजंकरः) संग्राम करनेवाला, (अकल्पः) अद्वितीय (ओजसा प्रतिमानं) बलकी मूर्ति है, (अथ) इसलिए (सिषासवः जनाः) धनकी इच्छावाले मनुष्य उसे (ह्वयन्ते) बुलाते हैं ॥ ६ ॥

१ (अस्य) बाहू गोजिता— इसकी भुजायें गायोंको जीतनेवाली हैं ।

२ इन्द्रः अमितक्रतुः खजंकरः अकल्पः— वह इन्द्र अपरिमित बलवाला, संग्राम करनेवाला और अद्वितीय वीर है ।

३ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतिः— प्रत्येक कर्ममें सैंकडों संरक्षणके साधन अपने पास रखनेवाला है ।

[११२५] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (कृष्टिषु) मनुष्योंमें जो (ते श्रवः) तेरा यश है, वह (शतात् उत्) सैंकडों रूपोंसे अधिक है, (भूयसः उत् च) और भी अधिक है और (सहस्राद् उत् रिरिचे) सहस्रोंसे भी अधिक बढ गया है, (अमात्रं त्वा) अपरिमित बलवाले तुझे (मही धिषणा) हमारी बडी स्तुति (तित्विषे) प्रकाशित करती है, हे (पुरंदर) शत्रुके नगरको तोडनेवाले इन्द्र ! (अधा) इसके बाद तू (वृत्राणि जिघ्नसे) शत्रुओंको मारता है ॥ ७ ॥

१ (अस्य) कृष्टिषु श्रवः शतात् उत् सहस्रात् उत् रिरिचे— इसका मनुष्योंमें यश सैंकडों तथा हजारों प्रकारोंसे भी अधिक है ।

[११२६] हे (नृपते इन्द्र) मनुष्योंके पालक इन्द्र ! तेरे (ओजसः) बलका (प्रतिमानं) परिमाण (त्रिविष्टिधातु) तीन गुना है, तू (तिस्रः भूमीः त्रीणि रोचना) तीन भूमियों और तीन तेजोंको तथा (इदं विश्वं भुवनं) इस सारे भुवनोंको (अति ववक्षिथ) संचालित कर रहा है, तू (सनात् जनुषा) प्राचीन कालसे जन्मसे ही (अ-शत्रुः असि) शत्रुरहित है ॥ ८ ॥

१ जनुषा अ-शत्रुः असि— वह इन्द्र जन्मसे ही शत्रुरहित है ।

२ ओजसः प्रतिमानं त्रिविष्टिधातु— उसके बलका प्रमाण तीन गुना है ।

भावार्थ— इस इन्द्रकी भुजायें गायोंको जीतनेवाली हैं । वह इन्द्र स्वयं भी अपरिमित बलवाला और श्रेष्ठ है । प्रत्येक कर्ममें वह अनेक तरहके सुरक्षाके साधन रखता है तथा सदैव कर्म करनेके कारण ही वह श्रेष्ठ है । जो सदैव उत्तम कर्म करता है, वह श्रेष्ठ होता है । इसी अपनी अतुलशक्तिके कारण वह किसी दूसरेको अपने बराबर भी माननेको तैय्यार नहीं ॥ ६ ॥

मनुष्योंमें इस इन्द्रका यश सैंकडों और हजारों रूपोंसे भी अधिक है अर्थात् अनेकों तरहसे इसका यश मनुष्योंमें बढ रहा है । इसके अतिरिक्त भी मनुष्योंकी स्तुति इस अपरिमित बलवाले इन्द्रका बल बढाती है तब वह शत्रुओंके किलोंको तोडकर वृत्रोंको मारता है ॥ ७ ॥

इन्द्रके बलका प्रमाण तीन गुना अधिक है । अर्थात् वह अपने बलसे तीन गुने अधिक बलवाले शत्रुका बडी वीरतासे सामना करता है । इसी अपने बलके सहारे वह इन्द्र तीनों लोकोंका संचालन करता है । यह जन्मसे ही शत्रुरहित है । जबसे यह जन्मा तभीसे इसने सारे शत्रुओंका विनाश करना शुरु किया, इसलिए इसका कोई शत्रु नहीं बचा ॥ ८ ॥

१११२७ त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिद--मिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
११२८ त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथा--र्भेष्वाजा मघवन् महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीम--स्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
११२९ विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अ--स्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता--मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

अर्थ— [११२७] हे इन्द्र ! हम (देवेषु प्रथमं त्वां) देवोंमें मुख्य तुझे (हवामहे) बुलाते हैं, (त्वं) तू (पृतनासु सासहिः) युद्धोंमें शत्रुको मारनेवाला (बभूथ) हो (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (नः प्रसवे) हमारे युद्धमें (इमं कारुं उपमन्युं उद् भिदं रथं) इस कलापूर्ण, अत्यन्त क्रोधयुक्त, शत्रुओंको खदेडनेवाले रथको (पुरः कृणोतु) आगे करे ॥ ९ ॥

१ देवेषु प्रथमः— सब देवोंमें यह इन्द्र पहिला है ।
२ पृतनासु सासहिः— युद्धोंमें शत्रुको पराजित करनेवाला है ।
३ कारुं रथं पुरः कृणोतु— कलापूर्ण रथको वह आगे करे

[११२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं जिगेथ) तू शत्रुओंको जीतता है, (धना न रुरोधिथ) और धनोंको रोकता नहीं, हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! हम (अर्भेषु महत्सु च आजौ) छोटे और बडे संग्राममें (अवसे) संरक्षणके लिए (उग्रं त्वां) शूरवीर तुझे (सं शिशीमसि) अधिक शक्तिशाली बनाते हैं, (अथ) इसलिए तू (नः) हमें (हवनेषु) युद्धोंमें (चोदय) प्रेरित कर ॥ १० ॥

१ त्वं जिगेथ, धना न रुरोधिथ— तू युद्धोंको जीतता है, पर धनोंको नहीं रोकता । वह युद्धोंको जीतता तो है, पर उसमें प्राप्त हुए धनोंको अपने पास नहीं रखता, अपितु अपने भक्तोंमें बांट देता है ।
२ अर्भेषु महत्सु आजौ अवसे उग्रं त्वां सं शिशीमसि— छोटे और बडे युद्धोंमें अपने संरक्षणके लिए तुझ उग्र वीरको बुलाते हैं ।

[११२९] (इन्द्रः) यह इन्द्र (विश्वाहा) सदा (नः अधिवक्ता अस्तु) हमारे पक्षमें बोलनेवाला हो, हम (अ-परिह्वृताः) कुटिलतासे रहित होकर (वाजं सनुयाम) अन्नादि प्राप्त करें, (तत्) इसलिए (मित्रः, वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) सम्पत्ति दें ॥ ११ ॥

१ अ-परिह्वृताः वाजं सनुयाम— हम कुटिलतासे रहित होकर अन्नको प्राप्त करें ।

भावार्थ— यह इन्द्र देवोंमें सबसे श्रेष्ठ और मुख्य है, यह युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला वीर है । यह सदा अपने उत्साहपूर्ण रथको आगे रखता है अर्थात् भयंकरसे भयंकर युद्धमें भी यह इन्द्र सदा आगे ही रहता है । इतना वीर और निडर यह इन्द्र है । इसी प्रकार राजा युद्धोंमें सबसे आगे रहे और अपने रथको प्रेरित करता रहे । इस प्रकार करनेसे उसकी सेना भी उत्साहित होकर शत्रुको हरानेमें समर्थ होगी ॥ ९ ॥

यह इन्द्र अनेक युद्धोंको करता है और उनमें प्राप्त हुए धनको अपने भक्तोंमें बांट देता है । यह कभी भी अपने पास धन जोडकर नहीं रखता । यह कभी कंजूसी नहीं करता । यह जो कुछ भी संग्रह करता है, वह स्वयंके उपभोगके लिए नहीं, अपितु दूसरोंकी उन्नति एवं हितके लिए धनादिका संग्रह करता है । इसी प्रकार राजा युद्धादिमें प्राप्त धनका कुछ अंश राज्यकोषमें रखकर बाकी धन सैनिकोंमें बांट दे । यह इन्द्र बहुत उदार चित्तवाला है, इसीलिए सब लोग इसे चाहते हैं ॥ १० ॥

यह इन्द्र जिसके पक्षमें होता है, वह पक्ष हमेशा विजयशील होता है, यह बात हम जानते हैं, इसलिए हम उससे यही प्रार्थना करते हैं कि वह सदा हमारे पक्षमें ही रहे, हमसे कभी क्रोधित न हो । हम भी इससे कुटिलतापूर्ण व्यवहार न करें । कुटिलतापूर्ण व्यवहारसे यह इन्द्र निश्चयसे क्रोधित होता है, अतः हम इसे कभी भी क्रोधित न करें । इस प्रकार यदि इन्द्र हमारे पक्षमें होगा, तो निश्चयसे मित्र, वरुण, सिन्धु आदि अन्य देवता भी हमारे पक्षमें रहकर हमारी सहायता करेंगे ॥ ११ ॥

[१०३]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११३० तत् त इन्द्रियं परमं पराचै ऽरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद् दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

११३१ स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन् व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥

११३२ स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद् वि दासीः ।
विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिमस्या ऽऽर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥

[१०३]

अर्थ— [११३०] हे इन्द्र ! (ते तत् इदं परमं इन्द्रियं) तेरे उस उत्तम बलको (कवयः) दूरदर्शी विद्वानोंने (पुरा) पहले (पराचैः) शत्रुको मारनेवाले कर्मोंके रूपमें (अधारयन्त) धारण किया था, (क्षमा अस्य इदं अन्यत्) पृथ्वी पर इस इन्द्रका यह बल और प्रकारका है और (दिवि अन्यत्) द्युलोकमें और तरहका है, (ईं) इसके ये दोनों बल (समना केतुः इव) जैसे संग्राममें ध्वज परस्पर मिलते हैं, उसी प्रकार (सं पृच्यते) परस्पर संयुक्त होते हैं ॥ १ ॥

[११३१] (सः) उस इन्द्रने (पृथिवीं धारयत्) पृथिवीको धारण किया (च पप्रथत्) और फैलाया, तथा वृत्रको (वज्रेण हत्वा) वज्रसे मार कर (अपः निः ससर्ज) जलोंको बहाया (अहिं अहन्) अहि असुरको मारा (रौहिणं अभिनत्) रोहिण असुरका वध किया तथा (मघवा) इस धनवान् इन्द्रने (शचीभिः) शक्तियोंसे (व्यंसं अहन्) व्यंस असुरको मारा ॥ २ ॥

१ सः पृथिवीं धारयत् पप्रथत् च— उस इन्द्रने पृथिवीको धारण किया और फैलाया ।

[११३२] (जातू-भर्मा) बिजलीके अस्त्रको धारण करनेवाला तथा (ओजः श्रद्दधानः) बल पर श्रद्धा रखनेवाला (सः) वह इन्द्र (दासीः पुरः विभिन्दन्) दस्युओंके नगरोंको तोडते हुए (वि अचरत्) विचरण करता है, हे (विद्वान् वज्रिन् इन्द्र) ज्ञानवान् तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (अस्य दस्यवे) इस स्तोताके शत्रु पर (हेतिं) आयुध फेंक तथा (आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय) श्रेष्ठ पुरुषके बल तथा यशको बढा ॥ ३ ॥

१ आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय— आर्योंका बल और तेज बढाओ ।

२ दासीः पुरः विभिन्दन्— शत्रुकी नगरियां तोडता है ।

३ अस्य दस्यवे हेतिं— इसके शत्रुपर शस्त्र फेंक ।

भावार्थ— इस इन्द्रके दो तरहके बल हैं, एक तो इस पृथ्वी पर प्रकाशित होता है और दूसरा द्युलोकमें सूर्यके रूपमें प्रकाशित होता है । ये दोनों बल यद्यपि अलग अलग स्थानों पर प्रकाशित होते हैं, परन्तु ये दोनों मिलते एक ही स्थान पर हैं । जिस प्रकार संग्राममें दो विरुद्ध दिशाओंसे आती हुई दो पताकायें एक निश्चित स्थान पर आकर मिल जाती हैं, उसी प्रकार द्युलोकसे आता हुआ और पृथ्वीपरसे जाता हुआ इन्द्रका बल अन्तरिक्षमें जाकर मिल जाते हैं। तब इस महान् बलका दूरदर्शी वीरगण शत्रुको मारनेके कार्यमें उपयोग करते हैं ॥ १ ॥

उस शूरवीर इन्द्रने अपनी शक्तिसे पृथ्वीका धारण पोषण किया और उसे समृद्धियुक्त करके उसका विस्तार भी किया । पृथ्वीका विस्तार करनेसे पहले यह इन्द्र, अहि, रोहिण, व्यंस आदि असुरोंको, जो नदी आदि पानीके मार्ग रोक कर इन्द्रकी प्रजाओंको कष्ट देते हैं, अपने वज्रसे मार देता है । इसी प्रकार जो अपने राज्यका विस्तार करना चाहे, उसे चाहिए कि वह सर्व प्रथम बाहरी और अन्दरके शत्रुओंका नाश करे । तभी उसका राज्य समृद्धिशाली और विस्तृत हो सकता है ॥ २ ॥

११३३ तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन् दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
११३४ तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत् सो अविन्ददश्वान् त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५ ॥
११३५ भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्
य आदृत्या परिपन्थीव शूरो ऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

अर्थ— [११३३] (सूनुः) बलके पुत्र (वज्री) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रने (श्रवसे) यशके लिए (दस्युहत्याय उप प्रयन्) शत्रुको मारनेके लिए उसके समीप जाते हुए (यत् नाम दधे) जिस यशको धारण किया था, (तत् कीर्तेन्यं नाम) उस प्रशंसाके योग्य यशको (मघवा) इन्द्रने (ऊचुषे) स्तोताके लिए (इमा मानुषा युगानि) इन मनुष्योंके युगोंतक (बिभ्रत्) धारण किया ॥ ४ ॥

[११३४] (सः गाः अविन्दत्) उस इन्द्रने गायें प्राप्त कीं, (सः अश्वान् अविन्दत्) उसने घोडोंको प्राप्त किया, (सः ओषधीः) उसने औषधी, (सः अपः) उसने जल, (सः वनानि) उसने धनोंको प्राप्त किया, अतः हे मनुष्यो ! (अस्य इन्द्रस्य) उस इन्द्रके (इदं भूरि पुष्टं पश्यत) इस अत्यधिक बलको देखो, और इसके (वीर्याय) पराक्रम पर (श्रद् धत्तन) श्रद्धा करो ॥ ५ ॥

१ अस्य इन्द्रस्य इदं भूरि पुष्टं पश्यत, वीर्याय श्रद् धत्तन— इस इन्द्रके इस अत्यधिक बलको देखो और इसके बल पर श्रद्धा करो ।

[११३५] (यः शूरः) जो शूर इन्द्र (आदृत्य) ज्ञानियोंका आदर करके (परिपन्थी इव अयज्वनः) लुटेरेके समान अपने पास धन जोडकर रखनेवाले तथा यज्ञ न करनेवाले असुरका (वेदः) धन छीनकर उसे ज्ञानियोंमें (विभजन्) बांटता हुआ (एति) जाता है, उस (भूरिकर्मणे) बहुतसे उत्तम कर्मोंको करनेवाले, (वृषभाय वृष्णे) बलवान् दाता और (सत्यशुष्माय) सत्य बलवाले इन्द्रके लिए (सोमं सुनवाम) हम सोम निचोडें ॥ ६ ॥

१ यः शूरः आदृत्य अयज्वनः वेदः विभजन् एति, सोमं सुनवाम— जो शूरवीर ज्ञानियोंका आदर करके यज्ञ न करनेवालोंके धनको छीनकर ज्ञानियोंमें बांट देता है, उसका लोग सत्कार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास रहनेवाले हथियारोंमें कुछ हथियार ऐसे भी हैं, जो बिजलीसे चलते हैं अथवा बिजलीके समान तीक्ष्ण वार करते हैं, ऐसे आयुधोंसे युक्त होकर इन्द्र अपने बलपर विश्वास रखकर अर्थात् आत्मविश्वासके साथ अपने शत्रुओंपर आक्रमण करता है और उनके नगरोंको तोडता है । और इस प्रकार अनार्योंके बलका नाश करते हुए आर्योंके बल और शक्तिको बढाता है । राष्ट्रमें आर्योंका बल बढे और अनार्योंकी शक्ति घटे ॥ ३ ॥

" यह इन्द्र बलका पुत्र है, शत्रुओंका विनाशक है, सज्जनोंका रक्षक है " इस प्रकारके यशको यह इन्द्र अनन्तकालसे धारण करता आ रहा है । इसका यह यश कभी भी नष्ट नहीं होता । अपने इस यशकी रक्षा वह इन्द्र हर तरहसे करता है । इसी कारण उसका यश आजतक चला आ रहा है ॥ ४ ॥

इस इन्द्रने अपने स्वयं अर्जित पराक्रमसे गायें प्राप्त कीं, घोडे प्राप्त किए तथा अन्य भी अनेकों तरहके ऐश्वर्य प्राप्त किए । हे लोगो ! इसके इन पराक्रमोंकी ओर देखो और इस इन्द्रके पराक्रम पर श्रद्धा रखो । अपने उपास्य पर हमेशा श्रद्धा रखनी चाहिए, तथा जिस प्रकार उसने अपने पराक्रमसे यशका सम्पादन किया है, उसी प्रकार स्वयं भी प्रयत्न करके पराक्रमका सम्पादन करना चाहिए ॥ ५ ॥

यह इन्द्र ज्ञानियोंका बहुत आदर करता है और लुटेरोंके समान अपने पास ही धनको इकट्ठा करके रखनेवाले और यज्ञ आदि उत्तम कर्मोंमें कभी भी धनका उपयोग न करनेवाले असुरोंका शत्रु है । इसीलिए वह ऐसे असुरोंसे धन छीनकर उस धनको ज्ञानियोंमें बांट देता है । इस प्रकार वह अपने राज्यमें हमेशा ज्ञानियोंको बढावा देता है । इसीलिए सब लोग इसका सम्मान करते हैं । इसी प्रकार राजाको चाहिए कि वह अपने राज्यमें ज्ञानियोंको अच्छी प्रकार उन्नत करे, तथा सब जगह समाजवादकी उन्नति हो, पूंजीवाद न बढने पाए ॥ ६ ॥

११३६ तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत् ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
११३७ शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[१०४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११३८ योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान् दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
११३९ ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित् तान् त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन् ते न आ वक्षन् त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥

अर्थ--- [११३६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (वज्रेण) वज्रसे (ससन्तं अहिं) सोते हुए अहिको (अबोधयः) जगाया, तथा (हृषितं) हर्षित हुए (त्वा) तुझे (पत्नीः) पत्नियोंने (अनु अमदन्) आनन्दित किया, तथा (वयः च विश्वे देवासः त्वा अनु अमदन्) गतिशील मरुतोंने तथा सभी देवोंने आनन्दित किया, (तत्) तब अपने (वीर्यं) बलको तूने (प्र इव चकर्थ) प्रकट किया ॥ ७ ॥

१ वीर्यं प्रचकर्थ— अपने बलको प्रकट किया ।

[११३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रं अवधीः) शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्रको मारा, तब (शम्बरस्य पुरः वि) शम्बरासुरके नगरोंको भी तोडा। (तत्) इसलिए (मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः) हमें (मामहन्तां) बढावें ॥ ८ ॥

[१०४]

[११३८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हमने इस (योनिः) स्थानको (ते निषदे अकारि) तेरे बैठनेके लिए बनाया है, इसलिए (प्रपित्वे) यज्ञ कालकी प्राप्ति पर (दोषावस्तोः वहीयसः) रात दिन ढोनेवाले (अश्वान्) घोडोंको (अवसाय) खोलकर तथा उनके (वयः) बन्धनोंको (विमुच्य) खोलकर (तं) उस स्थान पर (स्वानः अर्वा न) हिनहिनाते हुए घोडेके समान (आ निषीद) आकर बैठ ॥ १ ॥

[११३९] (त्ये नरः) वे मनुष्य (ऊतये) संरक्षणके लिए (इन्द्रं आ उ गुः) इन्द्रके पास आये, इन्द्रने (तान्) उन्हें (नु चित्) शीघ्र ही (सद्यः) उसी समय (अध्वनः जगम्यात्) उत्तम मार्गों पर चलाया, (देवासः दासस्य मन्युं श्चम्नन्) देव गण असुरके क्रोधको नष्ट करें, तथा (ते) वे देव (सुविताय) यज्ञके लिए (वर्णं) वरणीय इन्द्रको (नः आ वक्षन्) हमारे पास ले आवें ॥ २ ॥

१ नरः ऊतये इन्द्रं आ गुः— मनुष्य संरक्षणके लिए इन्द्रके पास आते हैं ।

२ तान् नु चित् सद्यः अध्वनः जगम्यात्— उन्हें शीघ्र ही वह अच्छे मार्गसे चलाता है ।

भावार्थ--- जब इन्द्रने सोते हुए अहि नामक असुर पर वज्रका प्रहार कर उसे जगाया अर्थात् उसका पराभव किया; तब सब देव और उनका पालन करनेवाली उनकी सब शक्तियां बहुत प्रसन्न हुईं और सबने इन्द्रकी स्तुति की ॥ ७ ॥

मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देवोंने जिस प्रकार शुष्ण आदि असुरोंको मारते और शम्बरासुरके नगरोंको तोडते समय इन्द्रकी सहायता कर उसका उत्साह बढाया था, उसी प्रकार हमें भी शत्रुके पराभवके लिए बढावें और उत्साहित करें ॥ ८ ॥

११४० अव॒ त्मना॑ भरते॒ केत॑वेदा॒ अव॑ त्मना॑ भरते॒ फेन॑मु॒दन् ।
क्षी॒रेण॑ स्नातः॒ कुय॑वस्य॒ योषे॑ ह॒ते ते स्या॑तां प्रव॒णे शिफा॑याः ॥ ३ ॥
११४१ यु॒योप॒ नाभि॒रुप॑रस्या॒योः प्र पूर्वा॑भिस्तिरते॒ राष्टि॒ शूरः॑ ।
अ॒ञ्ज॒सी कु॑लि॒शी वी॒रप॑त्नी॒ पयो॑ हिन्वा॒ना उ॒दभि॑र्भरन्ते ॥ ४ ॥
११४२ प्रति॒ यत् स्या नीथाद॑र्शि॒ दस्यो॒रोको॒ नाच्छा॒ सद॑नं जान॒ती गा॑त् ।
अध॑ स्मा नो मघवञ्चर्कृ॒तादिन्मा नो॑ म॒घेव॑ निष्ष॒पी परा॑ दाः ॥ ५ ॥

अर्थ- [११४०] (केतवेदाः) धनको जाननेवाला कुयव असुर (त्मना) स्वयं ही दूसरोंके धनका (अव भरते) अपहरण करता है, तथा (उदन्) उदय होते हुए वह (फेनं) झागयुक्त जलका (त्मना अव भरते) स्वयं अपहरण करता है, तब (कुयवस्य योषे) कुयवकी स्त्रियें (क्षीरेण स्नातः) उस पानीसे स्नान करती हैं (ते) वे दोनों स्त्रियें (शिफायाः प्रवणे) शिफा नदीके प्रवाहमें (हते स्यातां) डूबकर मर जायें ॥ ३ ॥

[११४१] (उपरस्य आयोः नाभिः) मेघमें रहनेवाले असुरका केन्द्र स्थान (युयोप) छुपा हुआ था, वह (पूर्वाभिः तिरते) जलोंसे बढता है, तथा (शूरः) शूरवीर होकर (राष्टि) तेजस्वी होता है उसे (पयः हिन्वानाः) जलको बहाती हुई (अञ्जसी, कुलिशी, वीरपत्नी) अञ्जसी, कुलिशी, वीर पत्नी नदियां (उदभिः भरन्ते) जलोंसे भर देती हैं ॥ ४ ॥

[११४२] हे इन्द्र ! (यत्) क्योंकि हमने (स्या नीथा अदर्शि) उस मार्गको देख लिया है, जो (दस्योः ओकः) दस्युके घरको (जानती सदनं न) जैसे जानती हुई गाय अपने स्थानको जाती है, उसी प्रकार (अच्छ गात्) सीधा जाता है, (अध स्म) इसलिए हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! असुरोंके (चर्कृतात्) उपद्रवसे (नः इत्) हमारी रक्षा कर, (निष्पपी मघा इव) जैसे स्त्री-व्यसनी पुरुष धनोंको फेंकता है, उस प्रकार (नः मा परा दाः) हमें दूर मत फेंक ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस समय यज्ञका समय होता है और जगह जगह यज्ञ शुरु होते हैं, उस समय इन्द्र अपने रथसे उतर कर यज्ञमें आकर बैठता है, तब मनुष्य इन्द्रके पास आकर रक्षा करनेकी प्रार्थना करते हैं। इसके उत्तरमें इन्द्र उन मनुष्यों-को उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है। इसका आशय यह है कि जब मनुष्य उत्तम मार्गसे चलता है, देवगण स्वयं ही उसकी हर तरहसे रक्षा करते हैं। फिर आत्मरक्षाके लिए उनकी प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं रहती। उसके कर्मोंसे आकर्षित होकर इन्द्र आदि देव उसकी रक्षाके लिए आते हैं और वे देवगण उस मनुष्यके शत्रुओंको उत्साहहीन कर देते हैं ॥ १–२ ॥

असुर या शत्रुगण दूसरोंके धनोंका अपहरण करते हैं। तथा दूसरोंके राज्यमें जानेवाली नदियोंको बांध आदि बांध कर रोक लेते हैं। इस प्रकार झागसे भरे हुए पानीका अपहरण करते हैं। और तब शत्रुकी स्त्रियां उस पानीमें खुश होकर नहाती हैं। पर जब शत्रुका यह मद बहुत अधिक हो जाता है, तब सारे शत्रुगणका विनाश होता है और उनकी स्त्रियां भी उन्हीं नदियोंमें डूब जाती हैं ॥ ३–४ ॥

हे इन्द्र ! जैसे एक गाय अपने मार्गको जानती हुई अपने निवास स्थान पर पहुंच जाती है, उसी प्रकार हमने दस्युके घरको सीधा जानेवाला मार्ग जान लिया, अतः अब तू असुरोंके स्थान पर जाकर उन्हें नष्ट कर और उन असुरोंके कारण बार बार होनेवाले कष्टोंसे हमारी रक्षा कर। जिस प्रकार एक स्त्रीव्यसनी मनमाने रूपसे धन लुटाता है, उसी प्रकार तू हमें कभी भी अपनेसे दूर मत कर अपितु हमें सदा अपनी ही रक्षामें रख ॥ ५ ॥

११४३ स त्वं न॑ इन्द्र सूर्ये॒ सो अ॒प्स्व॑नागास्त्व आ भ॑ज जीवशं॒से ।
मान्तरां भुजमा री॑रिषो नः श्रद्धि॑तं ते महत इन्द्रियाय॑ ॥ ६ ॥
११४४ अधा॑ मन्ये श्रत् ते॑ अस्मा अधायि॒ वृषा॑ चोदस्व महते धनाय॑ ।
मा नो॒ अकृ॑ते पुरुहूत योना॒विन्द्र क्षुध्य॑द्भ्यो वय॑ आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
११४५ मा नो॑ वधीरिन्द्र मा परा॑ दा मा नः॑ प्रिया भोज॑नानि प्र मो॑षीः ।
आण्डा मा नो॑ मघवञ्छक्र निर्भे॒न्मा नः॒ पात्रा॑ भेत् सहजा॑नुषाणि ॥ ८ ॥
११४६ अ॒र्वाङेहि सोम॑कामं त्वाहु॒रयं सु॒तस्तस्य॑ पिबा मदा॑य ।
उरुव्यचा॑ जठर आ वृ॑षस्व पि॒तेव॑ नः शृणुहि हूयमा॑नः ॥ ९ ॥

अर्थ— [११४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सूर्ये) सूर्य प्रकाशमें (आ भज) संयुक्त कर (सः) वह तू हमें (अप्सु) जलोंसे संयुक्त कर, तथा (जीवशंसे) जीवोंके द्वारा प्रशंसित (अनागाः त्वे) पापरहित कार्यमें संयुक्त कर (नः अन्तरां भुजं) अन्दर स्थित पालनके योग्य प्रजाको (मा रीरिषः) हिंसा मत कर, क्योंकि हमने (ते महते इन्द्रियाय) तेरे महान् बलपर (श्रत् हितं) श्रद्धा की है ॥ ६ ॥

१ नः जीवशंसे अनागास्त्वे— हे इन्द्र ! हमें जीवोंके द्वारा प्रशंसित पापरहित कार्यसे संयुक्त कर ।

[११४४] हे (वृषा पुरुहूत इन्द्र) बलवान् और बहुतों द्वारा प्रार्थना जिसकी होती है ऐसे इन्द्र ! मैं (अध) अब तेरा (मन्ये) सम्मान करता हूँ, (ते अस्मै श्रत् आधायि) तेरे इस बलके लिए मैं श्रद्धा रखता हूँ, हमें (महते धनाय चोदय) महान् ऐश्वर्यके लिए प्रेरित कर, (नः) हमें (अ-कृते योनौ) धन शून्य घरमें (मा) स्थापित मत कर, तथा (क्षुध्यद्भ्यः) भूखोंको (वयः आसुतिं दाः) अन्न और पीनेकी सामग्री दे ॥ ७ ॥

१ अ-कृते योनौ मा— हे इन्द्र ! हमें धन शून्य घरमें स्थापित मत कर ।

२ महते धनाय चोदय— बहुत धन प्राप्त करनेके लिए हमें प्रेरित कर ।

[११४५] हे (मघवन् शक्र इन्द्र) ऐश्वर्यवान् सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (नः मा वधीः) हमें मत मार, (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर (नः प्रिया भोजनानि मा प्रमोषीः) हमारे प्रिय भोजनोंका नाश न कर, (नः आण्डाः मा निर्भेः) हमारे गर्भोंको विनष्ट मत कर, तथा (न सह-जानुषाणि पात्रा मा भेत्) घुटनोंसे चलनेवाले हमारे सन्तानोंका नाश न कर ॥ ८ ॥

[११४६] हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे लोग (सोमकामं आहुः) सोमका इच्छुक कहते हैं, अतः तू (अर्वाङ् एहि) सामने आ । (अयं सुतः) यह सोम तेरे लिए निचोडा गया है, (मदाय) आनन्दके लिए (तस्य पिब) उसको पी, (उरुव्यचा) बहुत विशाल होकर (जठरे) अपने पेटको (आ वृषस्व) सोमसे भर ले, तथा (हूयमानः) बुलाया हुआ तू (नः) हमारी प्रार्थनाओंको (पिता इव) पिताके समान (शृणुहि) सुन ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमें सूर्यप्रकाश एवं जलसे संयुक्त कर। हम इन दोनों पदार्थोंसे कभी दूर न रहें। हम सभीके द्वारा प्रशंसित पापरहित मार्गमें हमेशा चलें। हमारे वर्तनसे प्रसन्न होकर तू हमारी और हमारी प्रजाओंकी रक्षा कर। हमें तेरे बलमें पूरी श्रद्धा है, हमने अपना सर्वस्व तुझे समर्पित कर दिया है अतः हमारी पूरी तरहसे रक्षा कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमें तेरे बल पर पूरी पूरी श्रद्धा है। हमें पूरा विश्वास है कि तू हमारी हर तरहसे रक्षा करेगा। इसीलिए मैं तेरा सम्मान करता हूँ। तू हमें महान् ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए प्रेरित कर। हमें कभी भी ऐसे स्थानमें मत रख, जो धनसे शून्य हो। हम सदा धन सम्पन्न रहें और धन सम्पन्न होकर भूखे प्यासे लोगोंकी सेवा करें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू सोम पीनेका बडा अभिलाषी है। इसीलिए हम तेरे लिए सोम तैयार करते हैं। तू सोम पीकर हमपर प्रसन्न हो, तथा हमारी प्रजा, गर्भ एवं घुटनोंसे चलनेवाली सन्तानोंकी रक्षा कर साथ ही हमारा भी संरक्षण कर ॥ ८–९ ॥

[१०५]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- पंक्तिः; ८ यवमध्या महाबृहती, १९ त्रिष्टुप् ।)

११४७ चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥
११४८ अर्थमिद् वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥
११४९ मो षु देवा अदः स्व१रव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥

[१०५]

अर्थ— [११४७] (अप्सु अन्तः चन्द्रमाः) अन्तरिक्षमें चन्द्रमा दौडता है (दिवि सुपर्णः आ धावते) द्युलोकमें सूर्य दौडता है, (हिरण्यनेमयः विद्युतः) सुवर्णके समान चमकनेवाली बिजलियां (वः पदं न विन्दन्ति) तुम्हारे स्थानको नहीं जानतीं । (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक (मे अस्य वित्तं) मेरी प्रार्थनाका भाव जानो ॥ १ ॥

[११४८] (अर्थिनः अर्थं इत् वै ऊ) इच्छा करनेवाले निस्सन्देह अपने प्राप्तव्यको प्राप्त करते हैं, (जाया पतिं आ युवते) पत्नी पतिके साथ मिलती है, तब वे दोनों पतिपत्नी मिलकर (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) बलवान् वीर्यको प्रेरित करते हैं, और वह पत्नी (रसं परिदाय) रसरूपी वीर्यको प्राप्त करके (दुहे) पुत्र प्रसव करती है । (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानो ॥ २ ॥

१ अर्थिनः अर्थं इत्— इच्छा करनेवाले अपने प्राप्तव्यको निस्सन्देह प्राप्त कर ही लेते हैं ।

[११४९] (देवाः) हे देवो ! (स्वः अदः दिवः परि) हमारा तेज द्युलोकके ऊपरसे (मो सु अव पादि) कभी न गिरे । (शं-भुवः सोम्यस्य शूने) आनन्द देनेवाले सोमसे रहित स्थानमें हम (कदाचन मा भूम) कभी भी न रहें (रोदसी) हे द्युलोक और भूलोक ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अन्तरिक्षमें चन्द्रमा और द्युलोकमें सूर्य विचरण करते हैं। पर बीचमें चमकनेवाली बिजलियोंका स्थान कोई नहीं जानता । यद्यपि सूर्य और चन्द्र दोनों गतिमान् हैं, तथापि इनका स्थान ज्ञानी जानते हैं, पर विद्युत् कहांसे चमकेगी, यह कोई नहीं जानता । यह सदा गुप्त रहती और एकदम अचानक चमक उठती है । इस विश्वमें सर्वत्र अग्नि व्याप्त है, पर वह सूर्य, चन्द्रमा अग्निके रूपोंमें प्रकट है और विद्युत्के रूपमें गुप्त है । मैं इसी तेजकी उपासना करता हूँ, आकाश और पृथ्वी रूप प्रभु मेरी इस प्रार्थनाके आशयको जानें ॥ १ ॥

इच्छा ही मानवमें एक मुख्य प्रेरकशक्ति है । यदि मानवमें किसी चीजको पानेकी बलवती हो, तो वह उसे प्राप्त कर ही लेता है । इच्छाशक्तिसे ही उन्नति होनेकी संभावना है । प्रबल इच्छा होनेसे तदनुकूल प्रयत्न होंगे और पुरुषार्थ तथा प्रयत्न योग्य रीतिसे होनेसे सिद्धि भी प्राप्त होगी । उदाहरणार्थ- पत्नी पति दोनों एक दूसरेके साथ मिलनेकी इच्छा करते हैं, फिर मिलते भी हैं, तब बलवर्धक वीर्यको प्रेरित करते हैं, तब पत्नी पुत्रको उत्पन्न करती है । यह गृहस्थाश्रमका कार्य पतिपत्नीकी प्रबल इच्छाशक्तिके कारण ही होता है । इसलिए मनमें सदा शुभ इच्छा ही धारण करनी चाहिए ॥ २ ॥

हमारा तेज स्वर्गसे नीचे न गिरे अर्थात् हमारा तेज सदा ऊंचा रहे । उच्च मार्गसे जाकर उच्च स्थान पर ही विराजे । हम उन्नत हों कदापि अवनत न हों तथा सुख उत्पन्न करनेके साधन जहां न हों, वहां हम कदापि न रहें । अपने पास सब तरहके सुखके साधन जमा करके हम आनंद प्रसन्न रहें ॥ ३ ॥

११५० यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद् दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥
११५१ अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुति- र्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥
११५२ कद् व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथा- ति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥

अर्थ— [११५०] (अवमं यज्ञं पृच्छामि) मैं समीपके यज्ञसे प्रश्न पूछता हूं (तत् सः दूतः विवोचति) उसका उत्तर वह दूत अग्नि देगा ही, (पूर्व्यं ऋतं क्व गतं) तुम्हारा वह प्राचीनकालसे चला आया सरल भाव कहां गया ? (कः नूतनः तत् बिभर्ति) किस नवीनने उसे धारण किया है ? (रोदसी) हे पृथ्वी और द्युलोक ! (मे अस्य वित्त) मेरी इस जिज्ञासाको समझो ॥ ४ ॥

[११५१] हे (देवाः) देवो ! (ये अमी त्रिषु स्थन) जो ये देव तीनों स्थानोंमें हैं (दिवः आ रोचने) वे द्युलोकके प्रकाशमें रहते हैं । (वः ऋतं कत्) आपकी सरलता कहां है ? (अनृतं कत्) आपका असत् कहां है ? (वः प्रत्ना आहुतिः क्व) आपको दी हुई पुरातन आहुति कहां है ? (रोदसी) हे द्युलोक एवं पृथ्वीलोक ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस जिज्ञासाको समझो ॥ ५ ॥

[११५२] (वः ऋतस्य धर्णसि कत्) आपका सत्यका धारण करना कहां है ? (वरुणस्य चक्षणं कत्) वरुणकी अमरदृष्टि कहां है ? (महः अर्यम्णः पथा कत्) बडे श्रेष्ठ अर्यमाका मार्ग कौनसा है (दूढ्यः अति क्रामेम) जिससे हम दुष्टोंका अतिक्रमण कर सकें ? (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) इस हमारी जिज्ञासाको समझो ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो कुछ पूछना हो समीपस्थ ज्ञानी पुरुषसे ही पूछना चाहिए, क्योंकि शंकासमाधान ज्ञानी ही उत्तम रीतिसे कर सकता है, वही प्रश्नोंका उत्तर उत्तम रीतिसे दे सकता है । प्राचीन वृद्ध किसतरहका आचरण करते थे और आजकलके तरुण किस तरहका आचरण कर रहे हैं, यह विचारणीय है । प्राचीन वृद्धोंके आचरणमें कितनी सरलता थी और आजके युवकोंमें कितनी सरलता है, यह भी द्रष्टव्य है । प्राचीन लोगोंकी सरलता, सचाई, सादगी हमारे व्यवहारमें भी आनी चाहिए । ये सद्गुण ही सबके मार्गदर्शक हों ॥ ४ ॥

तुम्हारा सत्य मार्ग और असत्य मार्ग कौन कौनसा है, यह विचारणीय है । जो लोग तीनों स्थानोंमें रहते हैं, वे द्युलोकके पवित्र प्रकाशमें रह सकते हैं । यदि वे सन्मार्गसे चलेंगे तो अवश्य ही वे पवित्र प्रकाशमें भी परमोच्च स्थानमें रहेंगे । प्रत्येक मनुष्यको ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए कि उसकी योग्यता उच्च हो । मनुष्यने भूतकालमें जो भी कुछ किया हो, उस पर विचार अवश्य करना चाहिए । अर्थात् भूतकालमें जो भी किया उससे जनताका हित हुआ या अहित, इसका विचार मनुष्य अवश्य करे । इसप्रकार पूर्वके आचरणके परिणाम पर विचार करके ही आगेके आचरण करने चाहिए ॥ ५ ॥

दुष्ट बुद्धिवालोंका अतिक्रमण करके हम सुबुद्धिवालोंकी संगतिमें रहें । हम दुष्टोंका दमन करते हुए आगे बढें । दुष्ट मानव सब समाजको कष्ट देते हैं, अतः उनका दमन करना चाहिए । वे समाजमें उपद्रव न कर सकें, ऐसी स्थितिमें उन्हें रखना चाहिए । सत्यका समर्थ आधार, वरिष्ठ द्रष्टाका निरीक्षण और उत्तम आर्यमनवालेके मार्गसे गमन ये तीन साधन हैं जिनसे दुष्टोंको दूर करके सज्जनोंका मार्ग निरुपद्रवी हो । अपना पक्ष सत्यके आश्रय पर स्थित हो । कार्यकर्ताओंपर भद्र और श्रेष्ठ पुरुषका निरीक्षण हो । मनुष्य सदा आर्य मार्गसे चले । इन तीन साधनोंसे मनुष्यकी उन्नति हो सकती है ॥ ६ ॥

११५३ अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥
११५४ सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥
११५५ अमी ये सप्त रश्मय— स्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद् वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥
११५६ अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतु— वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥

अर्थ— [११५३] (पुरा सुते) पुरातन समयमें सोमयागमें (यः अहं) जिस मैंने (कानि चित् वदामि) कई सूक्त पढे थे (सः अहं अस्मि) वही मैं हूँ (तं मा आध्यः व्यन्ति) उसी मुझको मानसिक व्यथाएं उसी प्रकार खा रहीं हैं (तृष्णजं मृगं वृकः न) जैसे तृषित मृगको भेडिया खाता है । (रोदसी !) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) मेरी इन व्यथाओंको समझो और दूर करो ॥ ७ ॥

[११५४] (पर्शवः मा अभितः) पसलियाँ मुझे चारों ओरसे (सपत्नीः इव संतपन्ति) पत्नियोंके समान संतप्त करती हैं (शतक्रतो) हे शतक्रतु (मूषः शिश्ना न) जिस तरह चूहे कांजी लगे तन्तुओंको खाते हैं, वैसीही (ते स्तोतारं मा) तेरी उपासना करनेवाले मुझे (आध्यः वि अदन्ति) ये व्यथाएं खा रही हैं (रोदसी) हे द्यावा-पृथिवी (मे अस्य वित्तं) मेरी इन व्यथाओंको समझो और दूर करो ॥ ८ ॥

[११५५] (ये अमी सप्त रश्मयः) जो ये सात किरणें हैं (तत्र मे नाभिः आतता) वहांतक मेरा घर फैला हुआ है (आप्त्यः त्रितः तत् वेद) आप्त्य त्रितको इसका ज्ञान है । (सः जामित्वाय रेभति) इसलिये वह प्रेममय बन्धुभावके लिये प्रार्थना करता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ ९॥

[११५६] (अमी ये पञ्च उक्षणः) ये वे पांच प्रबल बैल हैं (महः दिवः मध्ये तस्थुः) जो बडे द्युलोकके मध्यमें रहते हैं, (देवत्रा नु प्रवाच्यं) देवोंके संबंधके स्तोत्र पढते ही (सध्रीचीनाः नि वावृतुः) वे साथ ही निवृत्त हुए हैं (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्य भले ही कितना ही बडा विद्वान् हो, तथापि प्यासे हिरनको जैसे भेडिया कष्ट देता है, उसी प्रकार मानसिक व्यथायें उसे कष्ट देती ही हैं । विद्वत्ता प्राप्त करने पर भी उसका मन शान्त नहीं होता, भोगतृष्णा उसे सताती है, क्रोध उसे अशान्त करता है ॥ ७ ॥

स्तुति, प्रार्थना, उपासना और भजन करनेवालेको भी मानसिक शान्ति नहीं मिलती । उसे भी मनोव्यथायें उसी तरह खाती हैं, जिस तरह कांजी लगे हुए वस्त्रको चूहा खा जाता है । जिस तरह धागे पर कांजी लगानेसे उसे चूहे काट डालते हैं, उसी प्रकार मनुष्य पर प्रबल भोगेच्छाका लेप लगनेसे उसे कामक्रोधादि चूहे काटने लगते हैं । अथवा जैसी अनेक सौतें एक पतिको कष्ट देती हैं, उसी प्रकार अनेकों मनोव्यथायें मनुष्यको तंग करती हैं ॥ ८ ॥

जहां तक सूर्यकी किरणें फैलती हैं, वहां तक मनुष्यका कुटुम्ब हो और सारा विश्व मनुष्यका कुटुम्ब हो । आप्त पुरुषोंकी यही इच्छा होती है कि सर्वत्र बन्धुभावकी स्थापना हो, इसी भावनाका वह सर्वत्र उपदेश भी करता है । सभी मनुष्य संपूर्ण बन्धुभाव स्थापित करनेका प्रयत्न करें । विश्वमें सब जगह प्रेमका प्रसार करें ॥ ९ ॥

द्युलोकमें पांच बैल हैं । शरीरमें सिर द्युलोक है । इसमें आंख, नाक, कान, मुख और रसना ये पांच बहुत शक्तिशाली इन्द्रियें हैं । इन्हींको पंचवृषभ, पंचप्राण, पंच अग्नि आदि कहा जाता है । देवताओंकी उपासना प्रारंभ होते ही ये पांचों एकदम विषयोंसे निवृत्त होते हैं । मनके साथ साथ ये इन्द्रियें भी उपासनामें तल्लीन हो जाती हैं ॥ १० ॥

११५७ सुपर्णा एत आसते मध्यं आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥
११५८ नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥
११५९ अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान् यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥
११६० सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥
११६१ ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥

अर्थ— [११५७] (एते सुपर्णाः) ये सुन्दर पक्षी (आरोधने दिवः मध्ये) द्युलोकके मध्यभागमें (आसते) रहते हैं, (ते यह्वतीः अपः तरन्तं वृकं पथः) वे विस्तृत जलमें तैरनेवाले भेडियेको मार्गसे (सेधन्ति) हटा देते हैं (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ ११ ॥

[११५८] (देवासः) हे देवो ! (नव्यं उक्थ्यं सुप्रवाचनं तत् हितं) यह नवीन गाने योग्य उत्कृष्ट स्तोत्र हितकारक है (सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति) नदियाँ जलको ला रही हैं (सूर्यः सत्यं तातान) और सूर्यने यज्ञ फैलाया है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १२ ॥

[११५९] (अग्ने) हे अग्ने ! (तव त्यत् उक्थ्यं आप्यं) तेरा वह प्रशंसनीय बन्धुभाव (देवेषु अस्ति) देवोंके साथ है (सः विदुष्टरः) वह तू विशेष ज्ञानी (नः सत्तः) हमारे यज्ञमें (मनुष्वत्) मनुष्यके समान बैठकर (देवान् आ यक्षि) देवोंका यज्ञमें ला। (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १३ ॥

[११६०] (मनुष्वत् सत्तः होता) मनुष्यके समान यज्ञमें बैठनेवाला (विदुष्टरः देवः) ज्ञानी होता (देवेषु मेधिरः अग्निः) और देवोंमें अधिक बुद्धिमान् यह अग्निदेव (देवान् अच्छ हव्या सुषूदति) देवोंके प्रति हव्य पदार्थोंको पहुंचाता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १४ ॥

[११६१] (वरुणः ब्रह्म कृणोति) वरुण स्तोत्र करता है (तं गातुविदं ईमहे) उस मार्गदर्शक प्रभुकी हम प्रशंसा करते हैं (हृदा मतिं वि ऊर्णोति) हृदयसे बुद्धिको वही खोल देता है (नव्यः ऋतं जायताम्) इससे नवीन सत्य प्रकट होता है (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १५ ॥

भावार्थ— उत्तम पंखवाले पक्षी द्युलोकमें स्थित हैं, वे पक्षी वेगसे तैरनेवाले प्रवाहोंके मार्गमें आनेवाले भेडियेको दूर कर देते हैं। यहां ये पक्षी सूर्य किरणें हैं और भेडिया अन्धकार है। ये सूर्यकिरण अन्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग खोल देते हैं। अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करके प्रकाशके मार्गको प्राप्त करना दुःखसे मुक्त होनेका साधन है ॥ ११ ॥

नवीन स्तोत्र बार बार पढकर मनन करने योग्य और हितकारक है। जिस तरह नदियोंमें जल बहता है और जैसे सूर्यप्रकाश फैलता है, उसी प्रकार विद्यारूपी जल शान्ति और प्रकाश देकर सबका हित करता है ॥ १२ ॥

दैवी सम्पत्तिवाले विद्वानोंके साथ जो बंधुभाव होता है वही प्रशंसनीय होता है अर्थात् दुष्टोंके साथ अपना सम्बन्ध रखना उचित नहीं है। मनुष्यको चाहिए कि वह अत्यन्त ज्ञानी बनकर देवोंका-विद्वानोंका अपने घरमें सम्मान करे ॥ १३ ॥

अत्यन्त ज्ञानी बुद्धिमान् अग्नि जैसा तेजस्वी पुरुष दिव्य विद्वानोंका अन्नपानादि द्वारा सत्कार करता है ॥ १४ ॥

वरिष्ठ ज्ञानी ही उत्तम काव्य बनाता है। बिना ज्ञानके मार्गदर्शन असंभव है। अतः जो मार्गदर्शन कर सकता है, उसीको प्राप्त करना चाहिए। उसके मार्गदर्शनसे उन्नतिको प्राप्त करना चाहिए। वह ज्ञानी अपने हृदयसे सद्बुद्धिको प्रकट करके जनताका मार्गदर्शन करता है। नयी रीतिसे सत्यका मार्ग बताता है। इसीलिए सज्जनोंकी संगतिमें ही रहना चाहिए ॥ १५ ॥

११६२ असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६ ॥
११६३ त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥
११६४ अरुणो मा सकृद् वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥
११६५ एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥

अर्थ— [११६२] (यः असौ आदित्यः पन्थाः) यह जो आदित्यरूपी मार्ग (दिवि प्रवाच्यं कृतः) द्युलोकमें स्तुतिके लिये योग्य किया गया है (देवाः) हे देवो ! (सः न अतिक्रमे) उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। (मर्तासः) हे मानवो ! (तत् न पश्यथ) वह मार्ग तुम देख भी नहीं सकते (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तं) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १६ ॥

१ आदित्यः पन्थाः न अतिक्रमे— आदित्य मार्गका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए ।

२ मर्तासः तत् न पश्यथ— साधारण मनुष्य उस मार्गको देख भी नहीं सकते ।

[११६३] (कूपे अवहितः त्रितः) कूएमें पडे हुए त्रितने (ऊतये देवान् हवते) अपनी सुरक्षाके लिये देवोंकी प्रार्थना की । (बृहस्पतिः तत् शुश्राव) बृहस्पतिने वह सुनी (अंहूरणात् उरु कृण्वन्) और कष्टोंसे छूटनेके लिये विस्तृत मार्ग बना दिया । (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मे अस्य वित्तम्) मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ १७ ॥

[११६४] (अरुणः वृकः) लाल रंगके भेडियेने (मा सकृत् पथा यन्तं ददर्श हि) एक बार मुझे मार्गसे जाते हुए देखा । (पृष्ट्यामयी तष्टा इव) पीठमें दर्द होनेवाले बढईके समान (निचाय्य उत् जिहीते) उठकर वह मुझे चलाने लगा । (रोदसी) हे भूलोक और द्युलोको ! (मे अस्य वित्तम्) यह मेरी प्रार्थना जान लो ॥ १८ ॥

[११६५] (एना आंगूषेण) इस स्तोत्रसे (इन्द्रवन्तः सर्ववीराः) इन्द्रके सामर्थ्यसे युक्त होकर (वयं वृजने अभि ष्याम) हम सब वीर बनकर युद्धमें शत्रुको परास्त करें । (तत् नः) इस मेरी इच्छाका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ सब देव अनुमोदन करें ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह जो सूर्यका प्रकाश मार्ग द्युलोकमें प्रशंसित हुआ है, उसका उल्लंघन करना योग्य नहीं है । इस सूर्यके प्रकाश मार्गको सिर्फ ज्ञानी ही देख सकते हैं, पर साधारण मनुष्य इसे देख नहीं सकते । इस मार्गकी बहुत स्तुति गाई गई है । मनुष्योंको इसी सूर्य मार्गसे जाना चाहिए । इस मार्गसे जाकर वह सभी तरहके बंधनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १६ ॥

कूपमें पडे हुए त्रितने अपने उद्धारके लिए देवोंकी प्रार्थना की । बृहस्पतिने उसकी पुकार सुनी और उसे अधोगतिसे ऊपर उठाकर उन्नत किया । दुःखके अन्दर पडा हुआ मनुष्य दुःखसे मुक्त होनेके लिए ज्ञानियोंकी प्रार्थना करता है । तब ज्ञानी उसके आर्तनादको सुनकर उसके पास जाते हैं और उसका उद्धार करते हैं ॥ १७ ॥

लाल रंगका उदय होता हुआ सूर्य सब लोगोंका निरीक्षण करता चलता है । उदय होनेके साथ ही वह सबको अपने अपने कामोंमें प्रेरित करता है साथ ही यह भी देखता है कि मनुष्य अपने ठीक ठीक मार्ग पर चल रहे हैं या नहीं । तब वह अधोगतिकी ओर जानेवालोंका उद्धार करता है, उन्हें उन्नत करता है और दुःखसे मुक्त करता है ॥ १८ ॥

इस सूक्तके मननसे हम सब वीर बन कर युद्धमें सब शत्रुओंको परास्त करें और विजयी बनें । मित्र, वरुण आदि सब देव हमारे इस प्रस्तावका अनुमोदन करें और हमारी सहायता करें ॥ १९ ॥

[१०६]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- जगती; ७ त्रिष्टुप् ।)

११६६ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥
११६७ त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शंभुवः ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥
११६८ अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥
११६९ नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥

[१०६]

अर्थ— [११६६] (ऊतये इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं) हम सब अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि (मारुतं शर्धः) मरुतोंके संघ, (अदितिं हवामहे) तथा अदितिकी प्रार्थना करते हैं (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे, (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ १ ॥

[११६७] (आदित्याः देवाः) हे आदित्य देवो ! (ते) वे आप सब यहां हमारे (सर्वतातये) यज्ञके लिये (आ गत) आओ (वृत्रतूर्येषु) असुरोंके नाश करनेके कार्योंमें (शंभुवः भूत) सुख देनेवाले बनो। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ २ ॥

[११६८] (सुप्रवाचनाः पितरः) उत्तम प्रशंसाके योग्य सब पितर (नः अवन्तु) हमारी सुरक्षा करें (उत देवपुत्रे) और देवकन्याएँ (ऋतावृधा देवी) सत्यका संवर्धन करनेवाली देवियाँ हम सबकी सुरक्षा करें। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ३ ॥

[११६९] (नराशंसं वाजिनं) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित बलिष्ठ वीरका (वाजयन् इह) बल हम यहां बढाते (क्षयद्वीरं) जिसके पास वीर रहते हैं (पूषणं सुम्नैः ईमहे) ऐसे पूषाकी शुभ मनोभावनाओंसे हम प्रशंसा करते हैं। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हम अपनी सुरक्षाके लिए इन्द्र आदि देवोंकी प्रार्थना करते हैं । ये सब हमारे यज्ञमें आयें और असुरोंके नाश करनेके कार्यमें हमारी सहायता करें । तथा जिस प्रकार कठिन रास्तोंसे रथको सम्हालकर चलाते हैं, उसी प्रकार हमें सब संकटोंसे पार करायें ॥ १-२ ॥

हम बलिष्ठ वीरकी स्तुति करते हैं, और सदा वीरोंको अपने पास रखनेवाले पूषाकी भी हम प्रार्थना करते हैं, वे सब देवता, देवकन्या और अन्य देवियाँ मिलकर हमारी रक्षा करें ॥ ३-४ ॥

११७० बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत् ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥
११७१ इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद् वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥
११७२ देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७ ॥

[१०७]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११७३ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥

अर्थ— [११७०] (बृहस्पते) हे बृहस्पते ! (सदं इत् नः सुगं कृधि) सदा ही हमारे मार्ग सुगम कर (यत् ते मनुः हितं) जो तेरे पास मानवोंका हित करनेवाला (तत् शं योः ईमहे) सच्चा सुख और दुःख दूर करनेका साधन है, वही हम चाहते हैं। (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान करनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्मात् अंहसः) सब संकटों-से, (दुर्गात् रथं न) जिस तरह कठिन मार्गसे रथको संभालकर चलाते हैं, (नः निः पिपर्तन) उसी तरह हम सबको पार करो ॥ ५ ॥

[११७१] (काटे निबाळ्हः कुत्सः ऋषिः) कुवेंमें पडा हुआ कुत्स ऋषि (ऊतये) अपनी सुरक्षाके लिये (वृत्र-हणं शचीपतिं इन्द्रं अह्वत्) शत्रुनाशक तथा शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना करता रहा (सुदानवः वसवः) हे उत्तम दान देनेवाले वसु देवो ! (विश्वस्माद् अंहसः) सब संकटोंसे (दुर्गात् रथं न) जैसे कठिन मार्गसे रथ चलाते हैं (नः निः पिपर्तन) वैसे हम सबको पार करो ॥ ६ ॥

[११७२] (देवी अदितिः) देवी अदिति (देवैः) देवोंके साथ (नः नि पातु) हमारी सुरक्षा करे (त्राता देवः) संरक्षक देव (अप्रयुच्छन्) दुर्लक्ष्य न करता हुआ (त्रायतां) हमारी सुरक्षा करे (नः) हमारा (तत्) यह ध्येय (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्यौ आदि देव सिद्ध करनेमें सहायक हों ॥ ७ ॥

[१०७]

[११७३] (यज्ञः देवानां सुम्नं प्रति एति) यज्ञ देवोंकी शुभबुद्धि प्राप्त करता है (आदित्यासः) हे आदित्यो ! (मृळयन्तः भवत) तुम हमें सुख देनेवाले बनो। (वः सुमतिः अर्वाची आ ववृत्यात्) आपकी शुभ बुद्धि हमारे पास आवे (या अंहोः चित् वरिवो-वित्तरा असत्) जो संकटोंसे बचाती और उत्तम धन देती है ॥ १ ॥

भावार्थ— संकटोंके गर्तमें गिरे हुए कुत्सने सुरक्षाके लिए शक्तिशाली इन्द्रकी प्रार्थना की, तब इन्द्रने आकर उसकी सहायता की। बृहस्पति भी मानवोंका सच्चा हित करनेवाला है तथा सच्चा सुख देनेवाला है, वह हमारी सहायता करे ॥५-६॥

देवी और अखण्डनीय देवी हमारी रक्षा करे। तथा अन्य देव भी दुर्लक्ष्य न करते हुए हमारी सहायता करें, इसके साथ ही वरुण, अदिति आदि देव भी हमारी हरतरहसे सहायता करें ॥ ७ ॥

यज्ञसे सुबुद्धि प्राप्त होती है। यज्ञ अर्थात् सज्जनोंके साथ संगति करनेसे बुद्धि पवित्र एवं शुद्ध होती है। सुबुद्धिसे उत्तम सुख मिलता है। वह संकटोंसे बचाती है और उत्तम यश देती है ॥ १ ॥

११७४ उप॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑म॒न्त्वङ्गि॑रसां॒ साम॑भिः स्तू॒यमा॑नाः ।
इन्द्र॑ इन्द्रि॒यैर्म॒रुतो॑ म॒रुद्भि॑रादि॒त्यैर्नो॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ॥ २ ॥

११७५ तन्न॒ इन्द्र॒स्तद्वरु॑ण॒स्तद॒ग्नि॒स्तद॑र्य॒मा तत्स॑वि॒ता चनो॑ धात् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥ ३ ॥

[१०८]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११७६ य इ॑न्द्राग्नी चि॒त्रत॑मो॒ रथो॑ वा॒मभि विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि॒ चष्टे॑ ।
तेना या॑तं स॒रथं॑ तस्थि॒वांसाथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ १ ॥

११७७ याव॑दि॒दं भुव॑नं॒ विश्व॒मस्त्यु॑रु॒व्यचा॑ वरि॒मता॑ गभी॒रम् ।
ताव॑ाँ अ॒यं पात॑वे॒ सोमो॑ अ॒स्त्वर॑मिन्द्राग्नी॒ मन॑से यु॒वभ्या॑म् ॥ २ ॥

अर्थ— [११७४] (अङ्गिरसां सामभिः स्तूयमाना देवाः) अङ्गिरसोंके सामोंसे प्रशंसित हुए देव (अवसा) सुरक्षाके साधनोंसे युक्त होकर (नः उप आ गमन्तु) हमारे पास आवें। (इन्द्रः इन्द्रियैः) इन्द्र अपनी शक्तियोंके (मरुतः मरुद्भिः) मरुत् वीरोंके (अदितिः आदित्यैः) तथा अदिति आदित्योंके साथ (नः शर्म यंसत्) हम सबको सुख देवें ॥ २ ॥

[११७५] (तत् चनः नः) वह मधुर अन्न हम सबको (इन्द्रः, तत् वरुणः, तत् अग्निः, तत् अर्यमा, तत् सविता धात्) इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा, सविता देवे (तत् नः) और इस हमारी इच्छाका अनुमोदन (मित्रः वरुणः अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव करें ॥ ३ ॥

[१०८]

[११७६] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वां चित्रतमः यः रथः) आपका जो विलक्षण रथ है (विश्वानि भुवनानि अभि चष्टे) वह सब भुवनोंको देखता है। (तेन सरथं तस्थिवांसा) उस रथमें इकट्ठे बैठकर (आ यातं) तुम दोनों यहां आओ। (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमका निचोडा हुआ रस पीओ ॥ १ ॥

[११७७] (इदं विश्वं भुवनं) यह सब विश्व (यावत् उरुव्यचा वरिमता गभीरं अस्ति) जितना विस्तृत और उत्तम गंभीर है (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (युवभ्यां पातवे) तुम्हारे पीनेके लिए तैयार किया हुआ वह (सोमः) सोमरस (तावन्) वैसा ही है। (मनसे अरं अस्तु) यह तुम्हारी इच्छाके लिये यह पर्याप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ— अंगिरसोंके सामगानोंसे आकृष्ट होकर देव सुरक्षाके साधनोंके साथ, इन्द्र अपनी शक्तियों सहित, मरुत् अपने वीरोंके साथ और अदिति अपने आदित्योंके साथ आकर हमें सुख देवें, तथा वरुण, अग्नि, सिन्धु, पृथिवी आदि देव भी हमारी हर तरहसे सहायता करें ॥ २-३ ॥

हे वीर और ज्ञानी ! तुम दोनोंका रथ बहुत सुन्दर है, उस पर बैठनेवाला सब लोकोंका निरीक्षण करता है। उसी रथपर बैठकर तुम दोनों इधर आओ। इसी प्रकार वीर और ज्ञानी अपने राष्ट्रके सब देशों और प्रान्तोंका निरीक्षण करें। देशमें ज्ञान प्रसार और उसकी सुरक्षापर ध्यान दें ॥ १ ॥

१९७८ चक्राथे हि सध्र्य१ङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥

११७९ समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥

११८० यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ ॥

११८१ यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥

अर्थ— [११७८] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (नाम) तुम दोनोंका नाम (सध्र्यक् भद्रं चक्राथे) साथ साथ ही कल्याण करनेवाला है । (उत) और (वृत्रहणौ) हे वृत्रका वध करनेवालो ! (सध्रीचीना स्थः) तुम दोनों साथ रहते हो (हि वृषणा) हे बलवान् वीरो ! (तौ सध्र्यञ्चा निषद्य) वे तुम दोनों साथ बैठकर (वृष्णः सोमस्य आ वृषेथां) बलवर्धक सोमरससे बल बढाओ ॥ ३ ॥

[११७९] (अग्निषु समिद्धेषु) अग्नि प्रदीप्त होनेपर (आनजाना) जिनके लिये हवन हो रहे हैं, (यतस्रुचा) जिनके लिये चमस भरकर रखे हैं (बर्हिः उ तिस्तिराणा) आसन जिनके लिये फैलाये जा रहे हैं (इन्द्राग्नी) ऐसे हे इन्द्र और अग्नि ! (तीव्रैः परिषिक्तेभिः सोमैः) तीव्र सोमरस पानी मिलाकर तैयार होते ही (अर्वाक् सौमनसाय आयातं) आप हमारे पास सोमपानके लिये आईये ॥ ४ ॥

[११८०] (हे इन्द्राग्नी ! हे इन्द्र और अग्नि ! (यानि वीर्याणि चक्रथुः) जो वीरताके कर्म तुमने किये थे (यानि रूपाणि वृष्ण्यानि) और जो रूप बलोंके साथ तुमने प्रकट किये (वां प्रत्नानि शिवानि या सख्या) तथा तुम्हारे जो पुरातन कालसे चले आये कल्याण करनेवाले मित्रताके कर्म हैं (तेभिः सुतस्य सोमस्य पिबतं) उनका स्मरण करते हुए, इस सोमरसका पान करो ॥ ५ ॥

[११८१] (प्रथमं वां वृणानः) सबसे प्रथम तुम दोनोंकी प्राप्तिकी इच्छासे (यत् अब्रवं) मैंने कहा था (असुरैः अयं नः सोमः विहव्यः) कि, ' ऋत्विजोंने यह हमारा सोमरस आपको देनेके लिये ही तैयार किया है ' (सत्यां तां श्रद्धां अभि आ यातं) अतः इस मेरी सच्ची श्रद्धाके अनुसार तुम दोनों मेरे पास आओ (हि, अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और निचोडे सोमरसका पान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह विश्व इतना विस्तृत और गम्भीर है कि इसका अन्त पाना असंभव है । वीर गण इस विश्वकी गम्भीरता पर विचार करें और अधिक हो सके सबका कल्याण करें । वीरोंको चाहिए कि वे घेरनेवाले शत्रुओंका नाश करें और अपना नाम जनताके कल्याणके कार्यमें यशस्वी करें ॥ २-३ ॥

प्रदीप्त अग्निमें हवन करें । यह आत्मसमर्पणका पाठ है । जिस तरह अग्निमें हवि अर्पित की जाती है, उसी प्रकार वीर जनताके कल्याणके कामोंमें अपना जीवन समर्पित करें । ये वीर यथाशक्ति पराक्रम करें । क्योंकि पराक्रम करना ही वीरोंका स्वभाव है । ये वीर अपने शरीर सुदृढ और बलिष्ठ बनाते हैं । ऐसे बलवान वीरोंकी मित्रता स्थायी और कल्याण करनेवाली होती है ॥ ४-५ ॥

११८२ यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥
११८३ यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥
११८४ यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥
११८५ यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥
११८६ यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत् पृथिव्यां यत् पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यात-मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥

अर्थ— [११८२] (यजत्रा इन्द्राग्नी) हे यज्ञके योग्य इन्द्र और अग्नि ! (स्वे दुरोणे यत्) जो तुम अपने घरमें (यत् वा ब्रह्मणि) ज्ञानी भक्तके प्रवचनमें (राजनि) अथवा राजाके घरमें (मदथः) आनन्द मनाते होंगे (अतः परि) तो भी वहांसे (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (आयातं हि) इधर आजाओ, (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस निचोडे सोमरसका पान करो ॥ ७ ॥

[११८३] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् यदुषु, तुर्वशेषु, यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु स्थः) तुम दोनों यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु अथवा पुरुके यज्ञोंमें हो (अतः) तो वहांसे (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (परि आ यातं हि) इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमरस पीओ ॥ ८ ॥

[११८४] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् अवमस्यां) तुम निचले (मध्यमस्यां) बीचके (उत परमस्यां पृथिव्यां स्थः) और ऊपरके भूविभागमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और यह सोमरस पीओ ॥ ९ ॥ ॥

[११८५] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् परमस्यां) तुम ऊपरके (मध्यमस्यां) बीचके (अवमस्यां पृथिव्यां स्थः) और नीचेके भूविभागमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे इधर आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस सोमरसका पान करो ॥ १० ॥

[११८६] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (यत् दिवि) जो तुम दोनों द्युलोकमें (यत् पृथिव्यां) पृथ्वीपर (यत् पर्वतेषु) पर्वतोंमें (ओषधिषु) औषधियोंमें (अप्सु स्थः) अथवा जलोंमें हो (वृषणौ) तो हे बलवान् देवो ! (अतः परि आ यातं हि) वहांसे यहां आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और इस सोमरसका पान करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— वीरके मनमें श्रद्धा हो और वह श्रद्धा भक्तिसे देवोंकी उपासना करे । अश्रद्धासे दी गई हवि व्यर्थ होती है । इसलिए सदा श्रद्धासे ही अग्नि प्रज्वलित करें और श्रद्धापूर्वक ही उसमें हवि देवे । ये वीर अपने देशमें ज्ञानका प्रसार करके और उत्तम राज्यप्रबन्ध करके आनंदित होते हैं । प्रजाओंके आनन्दमें ही इनका आनन्द है ॥ ६–७ ॥

राष्ट्रके वीर अहिंसक, हिंसक शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले, देशद्रोहियोंको दूर करनेवाले, प्राणोंके बलसे युक्त और नगरोंमें रहनेवाले नागरिक इन पांच प्रकारके लोगोंकी रक्षा करते हैं और उनकी उन्नतिके लिए यत्न करते हैं । अथवा ये वीर पांचों वर्णोंके मानवोंका हित करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

पृथ्वीके निम्न, मध्य और ऊंचे प्रदेशमें ये वीर जाते हैं और वहांके जनोंका उद्धार करते हैं । ये सभी प्रदेशोंमें रहनेवाले मानवोंकी सेवा करते हैं ॥ ९–१० ॥

आकाश, पर्वत, पृथिवी, औषधि और जलस्थान आदिमें ये वीर जाते हैं । आकाशमें संचार विमानोंसे होता है । इन सब स्थानोंमें ये वीर जाते हैं और सब स्थानोंकी सुरक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

११८७ यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यात—मथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
११८८ एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥

[१०९]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११८९ वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छ—न्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
११९० अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्या—मिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥

अर्थ— [११८७] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (उदिता सूर्यस्य) सूर्यके उदय होनेपर (दिवः मध्ये) द्युलोकके मध्यमें (यत् स्वधया मादयेथे) अन्नसेवनका आनन्द लेते हों (अतः) तो भी (वृषणौ) हे बलवान् देवो ! (परि आ यातं हि) यहां आओ (अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं) और सोमके रसका पान करो ॥ १२ ॥

[११८८] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (सुतस्य एव पपिवांसा) सोमरसका पान करके (अस्मभ्यं विश्वा धनानि सं जयतं) हमें सब प्रकारके धन जीत कर दो (नः तत्) हमारी इस इच्छाको (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ आदि देव सहायक हों ॥ १३ ॥

[१०९]

[११८९] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वस्यः इच्छन्) अभीष्ट-प्राप्तिकी इच्छा करता हुआ मैं (ज्ञासः उत वा सजातान्) कोई ज्ञानी और जातिबांधव मिलेंगे ऐसा (मनसा वि हि अख्यं) मनसे विचार करके देख रहा हूं (मह्यं युवत् अन्या प्रमतिः न अस्ति) मेरे विषयमें तुम्हारी विभिन्न बुद्धि नहीं है (सः) वह मैं (वां वाजयन्तीं धियं अतक्षतं) तुम्हारे सामर्थ्यका वर्णन करनेवाला स्तोत्र बनाता हूं ॥ १ ॥

[११९०] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (विजामातुः उत वा स्यालात्) आप दामाद अथवा सालेसे भी (घ वां भूरिदावत्तरा अश्रवं हि) अधिक दान करनेवाले हैं ऐसा मैं सुनता हूं (अथ युवभ्यां सोमस्य प्रयती) तुम दोनोंके लिये सोमरसका अर्पण करके (नव्यं स्तोमं जनयामि) नवीन स्तोत्र निर्माण करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— सूर्यके उदय होनेपर सब वीर मिलकर सूर्यप्रकाशमें खाते पीते और आनन्द मनाते हैं। वीरोंका यह स्वभाव ही होता है कि जो भी आनंद वे मनाते हैं, सब मिलकर मनाते हैं। संघटन करनेका यह एक उत्तम मार्ग है। ये जो भी काम करते हैं, मिलकर करते हैं। ये सभी वीर मिलकर शत्रुओंपर चढाई करते हैं, मिलकर धन जीतते हैं और आपसमें बांटते हैं। [illegible] स्वयंसेवक इस प्रकार जनताकी सेवा करते हुए अपना जीवन यशस्वी बनाते हैं ॥ १२-१३ ॥

धनकी इच्छा करता हुआ मनुष्य ज्ञानी और सजातियोंको सहायताकी अपेक्षा करे। यह सब वीरोंकी सुरक्षामें रहते हुए ही हो सकता है। यदि धन प्राप्त करनेकी इच्छा हो, तो प्रथम ज्ञानियोंकी संगतिसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और सजातियोंकी सहानुभू[illegible] करनी चाहिए। बल बढानेवाली बुद्धि निर्माण करनी चाहिए। बुद्धि ऐसी चाहिए कि जिससे व्यक्ति और संघका बल [illegible] हो ॥ १ ॥

जामाता और सालेसे भी अधिक धन ये वीर देते हैं। जामाता जिस प्रकार अपनी पत्नीके लिए अथवा साला जिस प्रकार अपनी बहिनके लिए आनंददायी पदार्थ बहुत ज्यादा देता है, उससे भी अधिक धन ये वीर देते हैं। ऐसे दानियोंका सर्वत्र सत्कार होना चाहिए ॥ २ ॥

११९१ मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितृणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
११९२ युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
११९३ युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन् प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥
११९४ प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥

अर्थ—[११९१] (रश्मीन् मा छेद्म) 'हमारे संतानरूपी किरणोंका विच्छेद न हो' (इति नाधमानाः) ऐसी प्रार्थना करनेवाले (पितृणां शक्तीः अनुयच्छमानाः) तथा 'पितरोंकी शक्ति वंशजोंमें अनुकूलतासे रहे, ऐसी इच्छा करनेवाले (वृषणः) बलवान् (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र और अग्निकी कृपासे (कं मदन्ति) सुख आनन्दसे प्राप्त करते हैं, (हि अद्री धिषणायाः उपस्थे) इसलिये इन देवोंको सोमरस देनेके लिये ये दो पत्थर सोमपात्रोंके समीप ही रखे हैं ॥ ३ ॥

[११९२] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (युवाभ्यां मदाय) तुम्हारे संतोषके लिये (देवी उशती धिषणा) ये दिव्य सोमपात्र (सोमं सुनोति) सोमरस निकालकर भरकर रखे हुए हैं। (अश्विना) हे अश्विनौ ! (भद्रहस्ता) उत्तम हाथवाले (सुपाणी तौ) कल्याण करनेवाले तुम दोनों (आ धावतं) दौडते हुए इधर आओ (अप्सु मधुना पृङ्क्तं) और जलोंमें इस मधुर रसको मिला दो ॥ ४ ॥

[११९३] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (वसुनः विभागे) धनका बंटवारा करनेके समय (वृत्रहत्ये) तथा वृत्रका वध करनेके कार्यके समय (तवस्तमा युवां) आप दोनों सबसे अधिक वेग दर्शाते हैं (शुश्रव) ऐसा हम सुनते हैं, (चर्षणी) हे फूर्तीवाले देवो ! (तौ) वे आप दोनों (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य) इस यज्ञमें आसनपर बैठकर (सुतस्य प्र मादयेथां) सोमरससे आनन्द प्राप्त करो ॥ ५ ॥

[११९४] (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (पृतनाहवेषु चर्षणिभ्यः) युद्धार्थ आह्वान करनेवाले वीरोंकी अपेक्षा (महित्वा प्र रिरेचाथे) महत्त्वसे तुम अधिक श्रेष्ठ हो । (पृथिव्याः प्र) तथा पृथिवी (दिवः च, सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः) द्युलोक, नदियाँ, पर्वत (प्र, अन्या विश्वा भुवना) तथा जो अन्य भुवन होंगे, उनसे भी तुम प्रभावमें अधिक हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे वीरो ! किरणोंका विच्छेद न करो प्रकाशको मत हटाओ । सन्ततिका विच्छेद न करो । परम्पराको छिन्न भिन्न न करो । पितरोंकी जो शक्तियां हैं, वे शक्तियां सन्तानोंमें उतरें, वे बीचमें विच्छिन्न न हों । पितरोंकी अपेक्षा सन्तानोंमें अधिक शक्तियां हों । वंशमें उत्तरोत्तर शक्तियोंकी वृद्धि होती जाए, कभी शक्ति कम न हो ॥ ३ ॥

घुडसवार कल्याणके कर्म करनेवाले हों । वीर सदा ऐसे ही कर्म करें, जिनसे जनताका कल्याण ही हो । धनका दान करते समय तथा शत्रुपर आक्रमण करनेके समय वीरोंका वेग बढे । दान और शत्रुनाश ये दोनों कार्य अत्यन्त उत्साहसे करें ॥ ४-५ ॥

इन्द्र और अग्नि ये दोनों देव युद्धोंके समय जनताका हित करनेके लिए उत्साहसे भरपूर रहते हैं। युद्धके अवसर पर ये वीर कभी भी पीछे नहीं हटते । ऐसे जनहित करनेवाले वीरोंका महत्त्व द्युलोक, नदियां, पर्वत तथा अन्य भुवनोंसे भी अधिक है । क्योंकि इनसे मिलनेवाली सहायताकी अपेक्षा वीरोंकी सहायता अधिक महत्त्वपूर्ण है ॥ ६ ॥

११९५ आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥

११९६ पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ता—स्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥

[११०]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती; ५, ९ त्रिष्टुप् ।)

११९७ ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥

अर्थ— [११९५] (वज्रबाहू इन्द्राग्नी) वज्रके समान जिनके बाहु बलवान् हैं, ऐसे हे इन्द्र और अग्नि ! (आ भरतं) धन हमारे घरोंमें भर दो, (शिक्षतं) हमें सिखा दो (अस्मान् शचीभिः अवतं) और हमें सामर्थ्यसे सुरक्षित करो (येभिः नः पितरः सपित्वं आसन्) जिनके साथ हमारे पितर मिले रहे, (ते सूर्यस्य रश्मयः इमे नु) वेही सूर्यकी किरणें ये हैं ॥ ७ ॥

[११९६] (वज्रहस्ता पुरंदरा इन्द्राग्नी) हे हाथमें वज्र धारण करनेवाले, शत्रुके नगर तोडनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (शिक्षतं) हमें शिक्षित करो (भरेषु अस्मान् अवतं) युद्धोंमें हमें सुरक्षित करो (नः तत्) इस हमारी इच्छाको (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव सहायता करें ॥ ८ ॥

[११०]

[११९७] (ऋभवः) हे ऋभुदेवो ! (मे अपः ततं) मेरा कर्तव्य कर्म समाप्त हुआ है, (ततू उ पुनः तायते) वही फिरसे करूंगा (स्वादिष्ठा धीतिः) यह मीठी स्तुति (उचथाय शस्यते) देवोंका वर्णन करनेके लिये कही जाती है (अयं समुद्रः) यह सोमरसका समुद्र (इह विश्वदेव्यः) यहां सब देवोंके लिये रखा है (स्वाहाकृतस्य) स्वाहा कहनेपर (सं उ तृप्णुत) उससे तृप्त हो जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— धन भरपूर देना चाहिए, अनपढोंको ज्ञान देना चाहिए, शक्तियोंको बढाकर सबकी सुरक्षा करनी चाहिए । ज्ञान, धन और शक्ति इन तीनसे ही सुरक्षा होती है । इन वीरोंके संरक्षणका कार्य सूर्यकी किरणोंके समान है । जैसे सूर्यकिरणें अपने प्रकाश द्वारा रोग दूर करके सबकी सुरक्षा करती हैं, वैसे ही यह वीर सब शत्रुओंको दूर करके सबकी सुरक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले, वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले, बलवान् बाहुवाले वीर प्रजाको युद्ध विद्याकी शिक्षा देवें और युद्धोंके समय सबकी सुरक्षा करें ॥ ८ ॥

मेरा यह व्यापक कर्म फैल गया है, वही कर्म मैं पुनः फैलाऊँगा । " अपस् " का अर्थ सार्वदेशिक हितका कर्म है । वह कर्म कि जिसका परिणाम सब मनुष्य जातितक अच्छी तरह पहुंचता है, जिससे जनताका हित होता है, ऐसा यज्ञकर्म । देवपूजा, राष्ट्रमें प्रजाओंका संगठन और निर्बलोंको दान देकर सबल बनानेका काम मनुष्य बार बार करें ॥ १ ॥

१११९८ आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतना—पाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमना—गच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥

११९९ तत् सविता वोऽमृतत्वमासुव—दगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षण—मेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥

१२०० विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

अर्थ—[११९८] (अपाकाः प्राञ्चः मम आपयः) अत्यंत प्राचीन मेरे आप्त जैसे आप (के चित् आभोगयं इच्छन्तः) जब भोग करनेकी इच्छासे (यत् प्र ऐतन) आगे बढने लगे (सौधन्वनासः) तब हे सुधन्वाके पुत्रो ! (चरितस्य भूमना) अपने सुचरित्रके महत्त्वसे (दाशुषः सवितुः गृहं) उदार दानवीर सविताके घरपर (अगच्छत) आप पहुंच गये ॥ २ ॥

[११९९] (यत् अगोह्यं श्रवयन्तः ऐतन) जब गुप्त न रहनेवाले सविताका यशगान करते हुए आप वहां गये (तत् सविता वः अमृतत्वं आसुवत्) तब उस सविताने उसी समय आपको अमरत्व दिया (असुरस्य) जीवनशक्तिका प्रदान करनेवाले उस देवका (भक्षणं तं चमसं) भक्षण करनेका एकही चमस था (एकं चित् सन्तं चतुर्वयं अकृणुत) उस एक हीके आपने चार बना दिये ॥ ३ ॥

[१२००] (वाघतः शमी तरणित्वेन विष्ट्वी) उपासनाका कर्म शीघ्र कुशलतासे करनेवाले (मर्तासः सन्तः) ये मर्त्य होते हुए भी (अमृतत्वं आनशुः) अमरत्वको प्राप्त हुए । (सौधन्वनाः) ये सुधन्वाके पुत्र (सूरचक्षसः ऋभवः) सूर्यके समान तेजस्वी ऋभु (संवत्सरे धीतिभिः सं अपृच्यन्त) एकही वर्षके अन्दर स्तुतिस्तोत्रोंको भी प्राप्त हुए ॥ ४ ॥

१ मर्तासः अमृतत्वं आनशुः— मर्त्य मनुष्य भी देवत्व प्राप्त कर सकते हैं ।

भावार्थ— सभी मनुष्य उत्तम धनुषवाले हों, सभी वीर हों। युद्धके समय सभी शत्रुओंका मुकाबला करनेमें समर्थ हों। सभी प्राचीन पुरुषोंकी तरह आप्त अर्थात् श्रेष्ठ हों । सभी धार्मिक हों । सभीका चरित्र उत्तम और उदार हो। गरीबोंकी सहायता करनेवाले हों और दानवीर हों । इस प्रकार स्वयं उन्नत और श्रेष्ठ होकर दूसरोंको भी प्रेरणा देनेवाले हों ॥ २ ॥

ये ऋभुगण कुशल हैं । ये प्रथम मनुष्य थे, पर जब इन्होंने सबको प्रेरणा देनेवाले सविताकी प्रार्थना की, तो ये अमर हो गए । इसी प्रकार मनुष्य भी अपने प्रयत्नों और कुशलतासे अमर देव बन सकता है । अमर देव बननेके बाद ये सोमपानके अधिकारी बने और जीवनशक्ति प्राप्त की । यह सोम असुर अर्थात् प्राणशक्तिका दाता है । सोमरसमें जीवन सत्व अत्यधिक है इसलिए उसे असु-र कहा गया है । सोम यह ब्रह्मज्ञान है । ब्रह्मज्ञानी सर्वाधिक जीवनशक्तिवाला होता है। पर मनुष्य ब्रह्मज्ञानी तभी बन सकता है, जब वह देव बन जाए ॥ ३ ॥

ये ऋभु मर्त्य अर्थात् मरणशील होते हुए भी उपासना और अपनी कर्मकुशलताके द्वारा अमरत्वको प्राप्त हुए और अमरत्वको प्राप्त करके सूर्यके समान तेजस्वी होकर एक ही वर्षके अन्दर सबके द्वारा पूजे जाने लगे । इसी तरह मनुष्य मरणधर्म होनेपर भी भगवान्‌की उपासनासे अमरत्व प्राप्त कर सकता है और सूर्यके समान तेजस्वी होकर थोडे ही समयमें सबका पूज्य हो सकता है ॥ ४ ॥

१२०१ क्षेत्र॑मिव॒ वि म॑मु॒स्तेज॑नेनँ॒ एकं॒ पात्र॑मृ॒भवो॒ जेह॑मानम् ।
उप॑स्तुता उप॒मं नाध॑माना॒ अम॑र्त्येषु॒ श्रव॑ इ॒च्छमा॑नाः ॥ ५ ॥

१२०२ आ म॑नी॒षाम॒न्तरि॑क्षस्य॒ नृभ्यः॑ स्रु॒चेव॑ घृ॒तं जु॑हवाम वि॒द्मना॑ ।
त॒र॒णि॒त्वा ये पि॒तुर॑स्य सश्चि॒र ऋ॒भवो॒ वाज॑मरुहन् दि॒वो रजः॑ ॥ ६ ॥

१२०३ ऋ॒भुर्न॒ इन्द्रः॒ शव॑सा॒ नवी॑याऋ॒भुर्वाजे॑भि॒र्वसु॑भि॒र्वसु॑र्द॒दिः ।
यु॒ष्माकं॑ देवा॒ अव॒साह॑नि प्रि॒येऽ॒भि ति॑ष्ठेम पृत्सु॒तीरसु॑न्वताम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१२०१] (उपमं नाधमानाः) उपमा देनेयोग्य यशकी इच्छा करनेवाले (अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः) देवोंमें भी कीर्तिकी इच्छा करनेवाले (उपस्तुताः ऋभवः) प्रशंसाको प्राप्त हुए ऋभुओंने (जेहमानं एकं पात्रं) बार-बार बर्ते जानेवाले एक पात्रको, (क्षेत्रमिव) क्षेत्रके समान (तेजनेनं वि ममुः) तीक्ष्ण धारवाले शस्त्रसे नापा और बन दिया ॥ ५ ॥

[१२०२] (अन्तरिक्षस्य नृभ्यः) अन्तरिक्षमें रहनेवाले इन मानवरूपधारी ऋभुओंके लिये (स्रुचा इव घृतं) चमससे घृतकी आहुति (मनीषां विद्मना) मनःपूर्वककी स्तुतिके साथ (आ जुहवाम) हम अर्पण करेंगे। (ये ऋभवः) वे ऋभु (अस्य पितुः) इस विश्वके पिताके साथ (तरणित्वा सश्चिरे) सत्वर कार्य करनेके कारण रहने लगे (दिवो रजः वाजं अरुहन्) द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकपर बलके साथ आरोहण करने लगे ॥ ६ ॥

[१२०३] (शवसा नवीयान् ऋभुः नः इन्द्रः) बलसे युक्त होनेके कारण नवीन जैसा तरुण ऋभु हमारे लिये इन्द्र ही है (वाजेभिः वसुभिः ऋभुः वसुः ददिः) बलों और धनोंके साथ रहनेवाले ये ऋभु हमें धनोंके दाता ही हैं (देवाः) हे देवो ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारी सुरक्षासे सुरक्षित हुए हम (प्रिये अहनि) किसी प्रिय दिनमें (असुन्वतां पृत्सुतीः अभि तिष्ठेम) अयज्ञशील शत्रुओंकी सेनापर विजय प्राप्त करें ॥ ७ ॥

१ असुन्वतां पृत्सुतीः अभितिष्ठेम— यज्ञ न करनेवालोंकी सेनाका हम पराभव करें ।

भावार्थ— ऋभुओंने कुशलतासे पात्रको खेतके समान नाप कर उत्तम बनाया । ऋभु जो भी काम करते हैं, उत्तम रीतिसे करते हैं, इसीलिए वे देवोंमें भी यशके भागी होते हैं । प्रथम तो देव ही बनना मुश्किल, ऊपरसे देवोंमें भी यशस्वी होना तो और भी मुश्किल । पर जो मनुष्य ऋभुओंके समान कुशल होगा, वह अवश्य देवोंमें भी यशस्वी होगा । इस मंत्रमें खेतको नापनेकी उपमा दी है । वैदिक राज्यपद्धतिमें भी खेतोंकी लम्बाई चौडाईका परिमाण नापा जाता था । फिर नापकर उसपर कर आदि लगाये जाते थे ॥ ५ ॥

ये ऋभु मानवका रूप धारण कर अन्तरिक्षमें विचरते हैं । तथा अपने कार्य शीघ्रता एवं कुशलतासे करनेके कारण इस विश्वके पिता प्रजापतिके साथ रहते हैं तथा अपने बलसे बलशाली होकर द्युलोक और अन्तरिक्ष पर आरोहण करते हैं । जो मनुष्य अपने कार्योंको शीघ्रता एवं कुशलतासे करता है, तथा अपने बलसे बलशाली होता है, वह सभीके द्वारा प्रशंसित और पूज्य होता है ॥ ६ ॥

बलसे युक्त होनेके कारण ऋभु सदा नवीन तरुण जैसे दीखते हैं, इसलिए ये सदा इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं । ऐश्वर्यसम्पन्न होनेके साथ ही ये धन और बलका दान करके लोगोंकी सहायता करते हैं । उन ऋभुओंकी सहायता पाकर हम यज्ञ कार्य न करनेवाले अथवा यज्ञकार्यमें विघ्न डालनेवालोंका पराभव करें । राष्ट्रमें प्रजाओंके संगठनका कार्य अत्यन्त आवश्यक है, अतः इस पवित्र कार्यमें जो विघ्न डालते हैं, उनका पराभव अवश्य करना चाहिए ॥ ७ ॥

१२०४ निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ८ ॥
१२०५ वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥

[१११]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती; ५ त्रिष्टुप् ।)

१२०६ तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस स्तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वय स्तक्षन् वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥
१२०७ आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१२०४] (ऋभवः), हे ऋभुदेवो ! (चर्मणः गां निः अपिंशत) चर्मवाली अति कृश गौ तुमने सुंदर-रूपवाली बना दी (मातरं पुनः वत्सेन सं असृजत) तब उस गोमाताके साथ बछडेका संबंध भी तुमने करा दिया (सौधन्वनासः) हे सुधन्वाके पुत्रो ! (नरः) हे नेता वीरो ! (स्वपस्यया जिव्री पितरा) अपने प्रयत्नसे अति वृद्ध मातापिताओंको (युवाना अकृणोतन) तरुण बना दिया ॥ ८ ॥

[१२०५] (ऋभुमान् इन्द्र !) हे ऋभुओंके साथ इन्द्र ! (वाजसातौ वाजेभिः अविड्ढि) बलसे पराक्रम करनेके युद्धमें अपने सामर्थ्योंके साथ घुस जाओ (चित्रं राधः आदर्षि) विलक्षण धन हमें दो (नः तत्) वह हमारा प्रिय कार्य (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देवोंसे अनुमोदित होवे ॥ ९ ॥

[१११]

[१२०६] (विद्मनापसः) ज्ञानसे कुशल बने ऋभुदेवोंने (रथं सुवृतं तक्षन्) सुंदर रथ निर्माण किया । (इन्द्रवाहा: हरी वृषण्वसू तक्षन्) इन्द्रके रथमें जोडनेयोग्य घोडे भी बनाये (पितृभ्यां युवत् वयः ऋभवः तक्षन्) मातापिताओंके लिये तारुण्यकी आयु दी (वत्साय मातरं सचाभुवं तक्षन्) और बछडेके लिये माताको उसके साथ रहनेयोग्य बनाया ॥ १ ॥

[१२०७] (नः यज्ञाय) हमें यज्ञ करनेके लिये (ऋभुमत् वयः आ तक्षत) ऋभुओंके समान तेजस्वी आयु दो । (क्रत्वे दक्षाय) सत्कर्म करनेके लिये और बल बढानेके लिये (सुप्रजावतीं इषं) प्रजा बढानेवाला अन्न ही हमें दो (सर्ववीरया विशा) सब वीरोंके साथ और प्रजाके साथ (यथा क्षयाम) जिस तरह हम निवास कर सकें, (तत् इन्द्रियं) वैसा इन्द्रियसंबंधी बल (नः शर्धाय) हमारी संघटनाके लिये (सु धासथ) हममें उत्पन्न करो ॥ २ ॥

भावार्थ— ऋभुओंने ऐसी गौको, जिसपर केवल चर्म ही रह गया था और मांस पूरी तरहसे नष्ट हो चुका था, फिरसे सुन्दर अवयववाली और हृष्टपुष्ट बनाया । दुधारु बनाया, पश्चात् बछडेके साथ उसे संयुक्त किया । अपने प्रयत्नोंसे अत्यन्त वृद्ध मातापिताको भी तरुण बनाया । ऋभु कारीगरीमें तो कुशल हैं ही, पर चिकित्सामें भी पूरी तरह कुशल हैं ॥८॥

हे ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्र ! बलपूर्वक जिसमें पराक्रम किया जाता है, ऐसे युद्धमें अपने सामर्थ्यसे घुस जाओ और उसमें धनोंको जीतकर हमें दो । तुम्हारे साथ ही मित्र, वरुण आदि देवगण भी हमें धन प्रदान करें ॥ ९ ॥

अपने विज्ञान और कुशल कर्मसे सुन्दर रथ अच्छी तरह आच्छादित करके बनाया । 'विद्मना' पद विज्ञानका सूचक और 'अपस्' पद कुशल कर्मका द्योतक है । विज्ञान और कुशलतासे ही सब कर्म सिद्ध होते हैं । इन्होंने इन्द्रके रथके घोडे उत्तम रीतिसे सिखाकर तैय्यार किए, बलिष्ठ और हृष्टपुष्ट बनाये, तथा अपने पितरोंको तरुण बनाया ॥ १ ॥

१२०८ आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥
१२०९ ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून् वाजान् मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥
१२१० ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२०८] (नरः ऋभवः) हे नेता ऋभुवीरो ! (अस्मभ्यं सातिं आ तक्षत) हमें योग्य धन दो (रथाय सातिं) रथके लिये शोभा दो (अर्वते सातिं) घोडेके लिये बल दो (विश्वहा नः जैत्रीं सातिं सं महेत) सदा हमें विजय देनेवाला धन दो (पृतनासु जामिं अजामिं) युद्धोंमें हमारे संबंधी अथवा अपरिचित कोई भी सामने हो (सक्षणिं) हम उनका पराभव करें ॥ ३ ॥

[१२०९] (ऋभुक्षणं इन्द्रं ऊतये आ हुवे) ऋभुओंके साथ रहनेवाले इन्द्रको सुरक्षाके लिये बुलाते हैं। (ऋभून् वाजान् मरुतः उभा मित्रावरुणा अश्विना नूनं सोमपीतये) ऋभु, वाज, मरुत, दोनों मित्र और वरुण, दोनों अश्विदेव इन सबको सोमपानके लिये हम बुलाते हैं (नः सातये) हमें वे धनलाभके लिए (धिये जिषे हिन्वन्तु) बुद्धि और विजय प्रदान करें ॥ ४ ॥

[१२१०] (ऋभुः सातिं भराय सं शिशातु) ऋभु हमें धनदान भरपूर देवें (समर्यजित् वाजः) समरमें विजयी वाज (अस्मान् अविष्टु) हमें उत्साह देवे । (नः तत्) यह हमारी आकांक्षा (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्तां) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आदि देव परिपूर्ण करें ॥ ५ ॥

१ समर्यजित् वाजः अस्मान् अविष्टु— सब शत्रुओंपर विजय प्राप्त करानेवाला बल हममें बढे ।

भावार्थ— ऋभुओंका तेजस्वी जीवन यज्ञ कार्योंमें ही व्यतीत होता है । देवपूजा, संगठन और दानरूप शुभकर्मोंमें ही मनुष्यका सारा जीवन व्यतीत हो । सत्कर्म करने और बल बढानेके लिए ही मनुष्यका जीवन हो। मनुष्योंके संगठनके लिए ही इन्द्रियोंका बल हो। इस प्रकार संगठन शक्तिसे ही हम सब प्रजाओंके साथ रहें । ये ऋभु ऐसा अन्न तैय्यार करते थे जो बल बढानेवाला और सुसन्तानोत्पादक होता था । जिसका सेवन करनेसे निर्बल भी बलवान् और निस्सन्तान भी सन्तानवाले हो जाते थे । ये ऋभुओंकी कुशलताके कार्य थे ॥२॥

हमारे विजय देनेवाले वैभवका सदा सम्मान होता रहे । युद्धोंमें सदा, चाहे कोई हमारा सम्बन्धी हो या पराया हो, उन सबका हम पराभव करें और इस प्रकार हम नित्य विजय प्राप्त करें । ऋभुगण भी हमें शत्रुको हरानेके कार्यमें निपुण घोडे आदि धन देवें ॥ ३ ॥

स्तुति करनेवाले ऋभु मनुष्य होते हुए भी वे अमरत्व-देवत्वको प्राप्त हुए और एक ही वर्षमें उनकी स्तुतियां भी होने लगीं। इस तरह मनुष्य देवत्व प्राप्त करते थे। देवजाति तिब्बतमें रहती थी और मानवजाति आर्यावर्तमें रहती थी । आवश्यकतानुसार वीर तथा कुशल मानवोंको देवराष्ट्रमें रहनेका अधिकार मिलता था । इसी तरह ऋभु और मरुत् मानव होते हुए भी देवराष्ट्रमें रहनेके अधिकारी बने । इसी प्रकार सभी मनुष्य प्रयत्न करके देव बन सकते हैं । देव बनकर शत्रुओंको हरानेवाला बल प्राप्त कर सकते हैं । ऐसे प्रयत्नशील मनुष्यकी मित्र, वरुण आदि देवगण भी सहायता करते हैं ॥ ४–५ ॥

[११२]

(ऋषिः– कुत्स आङ्गिरसः । देवता– १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीयपादस्य), अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ, २–२५ अश्विनौ । छन्दः– जगती; २४–२५ त्रिष्टुप् ।)

१२११ ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये ऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथ स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥

१२१२ युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥

[११२]

अर्थ— [१२११] (यामन् इष्टये) पहिले ही समयमें यज्ञ करनेके लिए और (पूर्वचित्तये) प्रथम ही अपना चित्त लगानेके लिये (सुरुचं घर्मं) अच्छी दीप्तिवाले और गर्म (अग्निं द्यावा-पृथिवी ईळे) अग्नि और द्यावापृथिवीकी स्तुति मैं करता हूँ; हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (याभिः) जिनसे (कारं) कार्य कुशल पुरुषको (भरे अंशाय जिन्वथः) संग्राममें अपना हिस्सा पानेके लिये प्रेरित करते हो (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों भली भाँति हमारे पास आओ ॥ १ ॥

[१२१२] हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (सुभराः असश्चतः) उत्तम ढंगसे भरण पोषण करनेके इच्छुक अतएव इधर उधर भ्रमण न करनेवाले लोग (वचसं मन्तवे न) विद्वान्‌के पास उसकी सलाह पूछनेके लिये जैसे जाते हैं, वैसे (रथं युवोः दानाय आतस्थुः) तुम्हारे रथके पास तुम्हारा दान प्राप्त करनेके लिये खडे रहते हैं, (कर्मन् इष्टये) कर्म करनेके लिए और इष्टकी प्राप्तिके लिए (याभिः धियः अवथः) जिनसे उनकी बुद्धियोंका संरक्षण तुम दोनों करते हो, (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन्हीं रक्षाओंसे तुम दोनों ठीक तरह इधर आओ ॥ २ ॥

भावार्थ— मेरा यह यज्ञ सफल हो और इसमें मेरा चित्त लगे, इसलिये मैं द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा उसमें रहनेवाले अग्निकी स्तुति सबसे प्रथम करता हूँ । अश्विदेवो ! कुशल शूर पुरुषको युद्धमें अपना भाग प्राप्त कर लेनेके लिये जिन रक्षक शक्तियोंके साथ उसे तुम दोनों प्रेरित करते हो, उन संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमारी सुरक्षा करो । अपना सत्कर्म सफल बनानेकी इच्छासे मनुष्य देवताकी प्रार्थना करे । अपना न्याय्य भाग प्राप्त करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें जानेके लिये कुशलतासे युद्ध करनेवाले शूर पुरुषको नेता लोग प्रेरणा दें । नेता उनको हर प्रकारकी सुरक्षा और सहायताका प्रबंध करे ॥ १ ॥

जो लोग अपना भरण पोषण उत्तम प्रकारसे करना चाहते हैं, वे किसी अन्यके पास इधर उधर भ्रमण नहीं करते, वे सीधे अश्विदेवोंके रथके पास उसी प्रकार आते हैं और उनसे दान प्राप्त करते हैं; जिस तरह विद्वान्‌से संमति मांगनेके लिए उनके पास लोग आते हैं । जिन संरक्षक शक्तियोंसे अश्विदेव उनकी बुद्धियों और कर्मोंकी रक्षा करते हैं, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आवें और हमारी रक्षा करें । अनुयायी लोग अपने नेताके पास जायें, उनकी सलाह लें और उनसे आवश्यक सहायता माँगें । नेता लोग उनकी हर प्रकारसे सहायता करें । नेता अनुयायियोंकी बुद्धि विकसित करें और उनके शुभ कर्मोंकी रक्षा करके उनकी वृद्धि करें ॥ २ ॥

१२१३ युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥
१२१४ याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥
१२१५ याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२१३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (नरा) हे नेताओ ! (युवं दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना) तुम दोनों, द्युलोकमें उत्पन्न सोमरस रूपी अमृतके बलसे, (तासां विशां प्रशासने क्षयथः) उन प्रजाओंका राज्य शासन चलानेके लिए उनमें निवास करते हो (याभिः) जिनसे (अस्वं धेनुं) प्रसूत न हुई गौको (पिन्वथः) पुष्ट करके अधिक दुधारू बना दिया, (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षाओंसे युक्त होकर (उ) निश्चयसे हमारे पास (सु आगतं) अच्छी तरह आओ ॥ ३ ॥

[१२१४] (परिज्मा द्विमाता) चारों ओर जानेवाला दोनों माताओंसे युक्त (तनयस्य मज्मना) अपने पुत्रके बलसे (याभिः) जिनकी सहायतासे (तूर्षु तरणिः विभूषति) दौडनेवालोंमें आगे निकलनेवाला होकर अलंकृत होता है तथा (त्रिमन्तुः याभिः) तीन मनन साधनोंवाला जिनसे (विचक्षणः अभवत्) महा विद्वान् हो गया, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंसे युक्त होकर (अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! तुम दोनों (सु उ आगतं) ठीक प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ४ ॥

[१२१५] हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (निवृतं) पूर्णरूपसे जलमें डुबोये हुए और (सितं रेभं वन्दनं च) बँधे हुए रेभ और वन्दनको (याभिः) जिन साधनोंसे (अद्भ्यः) जलोंसे (स्वः दृशे उत् ऐरयतं) प्रकाशको दिखानेके लिए तुम दोनोंने ऊपर उठाया तथा (सिषासन्तं कण्वं) भक्ति करनेकी इच्छा करनेवाले कण्वको (याभिः प्र आवतं) जिन साधनोंसे तुम दोनोंने भलीभाँति सुरक्षित रखा था, (ताभिः ऊतिभिः उ) उन्हीं रक्षाओंके साधनोंसे युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) अच्छे प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे नेता अश्विदेवो ! तुम दोनों सोमरसका पान करनेसे बलवान् बने हो और उस बलके कारण इन सब प्रजाजनोंका राज्य शासन चलानेके लिये उनमें ही रहते हो । तुमने जिन चिकित्सा प्रयोगोंसे प्रसूत न होनेवाली गौको भी प्रसूत होने योग्य बनाकर दुधारूभी बना दिया, उन चिकित्साकी शक्तियोंसे सुसज्ज होकर हमारे पास आओ । नेता लोग औषधि रसोंका सेवन बलवान् बनें प्रजाजनोंका राज्य शासन चलानेके लिये प्रजाओंमें ही रहें, कभी प्रजाको छोड कर अन्य देशमें जा कर न रहें । गौको गर्भवती होने योग्य पुष्ट बनाने और दुधारू बनानेके चिकित्साके प्रयोग करके गौओंके दूधकी वृद्धि करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सर्वत्र गमन करनेवाला वायु, दो अरणीरूपी दो माताओंसे उत्पन्न हुए अपने पुत्रस्थानीय अग्निके बलसे युक्त होकर, जिन शक्तियोंसे गतिमानोंमें भी विशेष गतिमान होकर सर्वोपरि विराजता है, तथा त्रिमन्तु (कक्षीवान ऋषि) जिन साधनोंसे बडा विद्वान् बना, उन संरक्षणकी शक्तियोंसे सज्जित बनकर, हे अश्विदेवो ! तुम दोनों यहां हमारे पास आओ (और उनसे हमें लाभ पहुंचाओ) जिस तरह अग्नि और वायु परस्पर सहायक होते हैं और परस्परके बलसे परस्परकी उन्नति करते हैं, इसी तरह द्विजन्मा ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्परकी सहायता करके समूची जनताकी उन्नति करें । जिस तरह त्रिमन्तु विद्वान् हुआ, उसी तरह व्यक्ति, समाज, जनता इन तीनोंकी उन्नतिका मनन करनेवाले सभी युवक विद्वान् बनें । नेता लोग सब प्रकारकी संरक्षक शक्तियां अपने अनुयायियोंकी सहायतार्थ उपयोगमें लायें और उससे जनताकी उन्नति करें ॥ ४ ॥

अश्विदेवोंने जलमें डूबनेवाले और बँधे हुए रेभ और वन्दनको जलसे ऊपर उठाया और प्रकाशमें घूमने योग्य बनाया । इसी तरह उपासक कण्वको सुरक्षित किया । यह सब जिन साधनोंसे किया उन साधनोंके साथ वे देव हमारे पास आवें और उन शक्तियोंसे हमारी सहायता करें । कोई अनुयायी जलमें डूबता हो किसी शत्रुने उसे बंधनमें डाला हो अथवा डर बताया हो, तो उनको सुरक्षाके साधनोंसे तत्काल सहायता पहुंचानी चाहिये और अनुयायियोंको निर्भय बनाना चाहिये ॥५॥

१२१६ याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६ ॥
१२१७ याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ७ ॥
१२१८ याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—[१२१६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (आरणे जसमानं) गड्ढेमें पीडित (अन्तकं याभिः) अन्तकको जिनसे तुमने छुडाया था, (अव्यथिभिः याभिः) जिन अथक रक्षाओंसे (भुज्युं जिजिन्वथुः) तुम दोनोंने भुज्युको सुरक्षित किया था, (कर्कन्धुं वय्यं च) और कर्कन्धु तथा वय्यका (याभिः जिन्वथः) जिन रक्षाओंसे तुम दोनोंने संभाल किया, (ताभिः सु ऊतिभिः) उन सुन्दर रक्षाओंसे युक्त होकर (आ गतं) तुम दोनों हमारे पास आओ ॥ ६ ॥

[१२१७] हे (अश्विनौ !) अश्विदेवो ! (याभिः) जिन साधनोंसे (धनसां शुचन्तिं सुसंसदं) धन बांटनेवाले शुचन्तिको उत्तम रहने योग्य घर दिया और (तप्तं घर्मं) गर्म और तपे हुए कारागृहको (अत्रये ओम्यावन्तं) अत्रि ऋषिके लिए शान्त बना दिया, (पृश्निगुं पुरुकुत्सं) पृश्निगु और पुरुकुत्सको (याभिः आवतं) जिन रक्षाओंसे तुम दोनोंने बचाया, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंसे युक्त होकर (सु आगतं उ) तुम दोनों भलीभाँति इधर हमारे पास अवश्य ही आओ ॥ ७ ॥

[१२१८] हे (वृषणा अश्विना) बलवान् अश्विदेवो ! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (परावृजं) ऋषि परावृक्को (अन्धं) अन्धेको (चक्षसे) दृष्टिसंपन्न किया और (श्रोणं एतवे) लंगडे लूलेको चलने फिरने योग्य (प्रकृथः) बना दिया, तथा (ग्रसितां वर्तिकां) भेडियेके द्वारा मुखमें पकडी हुई चिडियाको (याभिः अमुञ्चतं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे तुम दोनोंने छुडाया; (ताभिः ऊतिभिः उ) उन संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ अवश्य (सु आगतं) तुम दोनों ठीक तरह हमारे पास आओ ॥ ८ ॥

भावार्थ—गड्ढेमें पडे और बहुत पीडित हुए अन्तकको अश्विदेवोंने गड्ढेसे बाहर निकाला, अथक परिश्रम करके भुज्युको सुरक्षित करनेके कारण प्रसन्न किया और कर्कन्धु तथा वय्यको संतुष्ट किया । यह जिन साधनोंसे किया उन साधनोंके साथ वे हमारे पास आएँ और हमारी सहायता करें । शत्रुने अपने अनुयायियोंको खाईमें गिरा दिया, अनेक प्रकारकी पीडा दी, समुद्रमें हमला किया अथवा अन्य प्रकारके दुःख दिये, तो नेता त्वरासे अनुयायियोंकी सहायता करें और उनके कष्ट दूर करें ॥ ६ ॥

[अत्रि ऋषिको स्वराज्यका आन्दोलन करनेके कारण असुरोंने कारावासमें रखा था और वहां अग्नि जला दी थी। अत्रिको उस गर्मीके कारण बडे क्लेश हो रहे थे, अतः] अत्रिको आराम देनेके लिए अश्विदेवोंने उस अग्निको शान्त किया। धन बांटनेवाले शुचन्तिको घर दिया, पृश्निगु और पुरुकुत्सको सुरक्षित किया । यह जिन साधनोंसे किया उनके साथ वे हमारे पास पधारें और हमारी सहायता करें । जनताके हितके लिये हलचल करनेके कारण जो कारावासमें पडे होते हैं, उनको आराम पहुंचानेके लिये नेताका प्रयत्न होना चाहिये । ज्ञानियोंकी ज्ञानवृद्धिके कार्यके लिये उनको धन और घर देना चाहिये, तथा गोपालकोंको सुरक्षित रखना चाहिये ॥ ७ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! परावृक् ऋषि अन्धा और लूला था, उसको तुम दोनोंने अच्छी दृष्टि दी और घूमने फिरने योग्य बना दिया । भेडियेने चिडियाको मुखमें पकडा था, उसके दांतोंसे वह घायल हुई थी, उसको उसके मुखसे छुडवाया और चिडियाको आरोग्ययुक्त किया । यह सब जिन शक्तियोंसे किया, उन शक्तियोंसे तुम दोनों हमारे पास आओ और हमारी सहायता करो । चिकित्साशास्त्रकी इतनी उन्नति करनी चाहिये कि, जिससे अन्धोंकी दृष्टि अच्छी हो सके, दृष्टि ठीक की जाय, लंगडे लूलोंके पांव अच्छे कर उन्हें चलने फिरने योग्य बनाया जाय और घायलको ठीक आरोग्यसंपन्न बनाया जाय । यह चिकित्सा जैसी मानवोंकी वैसी ही पशुपंछियोंकी भी होवे ॥ ८ ॥

१२१९ याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ९ ॥

१२२० याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १० ॥

१२२१ याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२१९] हे (अजरौ अश्विना) जराहीन अश्विनो ! (मधुमन्तं सिन्धुं) मीठे रससे युक्त नदीको (याभिः असश्चतं) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने प्रवाहित किया, (याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं) जिनसे वसिष्ठको तृप्त किया, (याभिः कुत्सं, श्रुतर्यं नर्यं आवतं) जिनसे कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्यका संरक्षण किया (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त होकर (सु आगतं) तुम दोनों ठीक प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

[१२२०] हे (अश्विना) अश्विनो ! (सहस्रमीळ्हे आजौ) सहस्रों लोग मिलकर जहाँ लडते हैं ऐसे युद्धमें (याभिः) जिन शक्तियोंसे (धनसां अथर्व्यं विश्पलां) धनका दान करनेहारी और स्थिर रूपसे युद्धमें खडी हुई अथवा अथर्व कुलमें उत्पन्न विश्पलाको (अजिन्वतं) तुम दोनोंने सहायता की, (याभिः) जिन शक्तियोंसे (प्रेणिं अश्व्यं वशं) प्रेरणकर्ता तथा अश्वके पुत्र वश नामक ऋषिको (आवतं) तुम दोनोंने सुरक्षित रखा, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी शक्तियोंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों ठीक तरह हमारे पास आओ ॥ १० ॥

[१२२१] हे (सुदानू अश्विना) अच्छे दान देनेहारे अश्विदेवो ! (औशिजाय दीर्घश्रवसे वणिजे) उशिक् पुत्र दीर्घश्रवा नामक व्यापारीके लिए (याभिः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (कोशः मधु अक्षरत्) शहदका भण्डार दिया और (स्तोतारं कक्षीवन्तं) स्तुति करनेहारे कक्षीवान्‌को (याभिः आवतं) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने सुरक्षित किया (ताभिः ऊतिभिः उ) उन्हीं रक्षाओंके साथ (सुआगतं) तुम दोनों ठीक प्रकार हमारे पास आओ ॥ ११ ॥

भावार्थ— अश्विदेव जराहीन हैं, नित्य तरुण हैं, इन्होंने मीठे जलवाली नदियोंको जलसे भरपूर करके बहाया। वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य और नर्यको शत्रुओंसे सुरक्षित रखा। जिन शक्तियोंसे यह किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आकर हमारी सहायता करें। जरावस्थाको दूर करना चाहिये, वृद्धावस्थामें भी तारुण्यका उत्साह रहना चाहिये। नदियोंको बन्ध आदि द्वारा ठीक तरह बहानेका प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे उनका खेती आदिमें उपयोग अधिकसे अधिक हो और प्रजाको किसी तरह क्लेश न पहुंचे। तथा ज्ञान प्रचार करनेवाले ऋषियोंको सुरक्षित रखना चाहिये, जिससे उनके ज्ञान प्रसारके कार्यमें कोई विघ्न न हो सके। अश्विदेव नदियोंसे नहर आदि निकाल देनेकी विद्या अच्छीतरह जानते थे ऐसा इस मन्त्रसे प्रतीत होता है ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंने युद्धमें आकर लडनेवाली विश्पलाकी सहायता की और अश्व पुत्र वशको संकटोंसे बचाया। यह जिन शक्तियोंसे इन्होंने किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें। नेता लोग युद्धमें लडनेवाले वीर नारियों और पुरुषोंकी सब प्रकारसे सहायता करें। अपने अनुयायियोंको संकटोंसे बचावें ॥ १० ॥

अश्विदेव उत्तम दान देते हैं। इन्होंने उशिक्‌पुत्र दीर्घश्रवाको मधुके भण्डार दानमें दिये और उपासक कक्षीवान्‌को शत्रुसे बचाया। यह जिन शक्तियोंसे इन्होंने किया उन शक्तियोंके साथ ये हमारे पास आ आयें और हमारी सहायता करें। नेता उदार और दाता होने चाहिये वे अपने अनुयायियोंको मधु जैसा पौष्टिक अन्न दें और अन्य प्रकारसे अपने अनुयायियोंको सुरक्षित रखें ॥ ११ ॥

१२२२ याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२ ॥
१२२३ याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३ ॥
१२२४ याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४ ॥

अर्थ—[१२२२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनोंने (रसां) नदीको (याभिः) जिन शक्तियोंसे (क्षोदसा उद्नः) तटोंको कुचलनेवाले जलसमूहसे (पिपिन्वथुः) परिपूर्ण कर डाला, (याभिः अनश्वं रथं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे घोडेसे रहित रथको (जिषे आवतं) जय पानेके लिए तुम दोनोंने सुरक्षित रीतिसे चलाया और (त्रिशोकः याभिः) त्रिशोक जिन शक्तियोंकी सहायतासे (उस्रियाः उदाजत) गौएँ पा सका, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षा शक्तियोंको साथ लेकर (सु आगतं) अच्छी तरह हमारे पास आओ ॥ १२ ॥

[१२२३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (परावति सूर्यं) दूरस्थानमें अवस्थित सूर्यके (याभिः परियाथः) चारों ओर तुम दोनों जिन शक्तियोंसे जाते हो, (क्षेत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं) क्षेत्रपतिके सम्बन्धमें करने योग्य कर्मोंमें मन्धाताकी रक्षा तुम दोनोंने की; और (याभिः) जिन शक्तियोंकी सहायता पाकर (विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं) तुम दोनोंने ज्ञानी भरद्वाजकी उत्कृष्ट रक्षा की, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंको साथ लिए हुए तुम दोनों (सु आगतं) अच्छी प्रकारसे हमारे पास आओ ॥ १३ ॥

[१२२४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (शम्बर-हत्ये) शम्बरका वध करनेके युद्धमें (याभिः) जिन रक्षाओंसे (अतिथिग्वं) अतिथिग्व (कशो-जुवं) कशो-जुव और (महां दिवोदासं) बडे दिवोदासकी (आवतं) तुम दोनोंने रक्षा की थी, (याभिः) जिनसे (त्रसदस्युं) दस्युओंको डरानेवाले नरेशको (पूर्भिद्ये आवतं) शत्रु नगरियोंको तोडनेके युद्धमें तुम दोनोंने सुरक्षित बना दिया था, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त बनकर (सु आगतं) तुम दोनों भली प्रकार हमारे पास आओ ॥ १४ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने अपनी शक्तियोंसे रसा नदीको जलसे भरपूर भर दिया, बिना घोडेके रथको वेगसे चला कर शत्रुको परास्त करके जय प्राप्त की और त्रिशोकको दुधारू गौवें दीं। जिन शक्तियोंसे यह हुआ, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आवें और हमारी सहायता करें। राष्ट्रमें नेता लोग जलके प्रवाहोंको इकट्ठा करके भरपूर जलके साथ नहरोंको बहावें, घोडे आदि प्राणियोंके जोतनेके बिना ही यंत्रकी शक्तिसे ही रथोंको वेगसे चलावें। तथा गौओंकी दुग्ध देनेकी क्षमता बढा कर वैसी गौवें अपने अनुयायियोंको प्रदान करें ॥ १२ ॥

अश्विदेव सूर्यके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं, इन दोनों देवोंने मन्धाताको क्षेत्रपतिके कर्तव्योंको निभानेमें बडी सहायता की, तथा विप्र भरद्वाजकी रक्षा भी की, यह जिन शक्तियोंसे किया गया था, उन शक्तियोंको साथ लेकर ये हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें। नेता लोग देश पालन करनेके विषयमें जो जो आवश्यक कर्तव्य होते हैं, उनके निभानेमें सब प्रकारकी सहायता कार्यकर्ताओंको दें, ज्ञानियोंकी रक्षा करें और उनके ज्ञानप्रसारका कार्य चलाते रहें। सबको भरपूर सूर्य प्रकाशमें विचरनेका अवसर दें, क्योंकि सूर्य ही जीवनका आदिस्रोत है, उसके प्रकाशसे जीवनशक्ति मिलती है ॥ १३ ॥

अश्विदेवोंने शम्बरका वध करनेके लिये किये गये युद्धमें अतिथिग्व, कशोयुज और दिवोदासकी रक्षा की और त्रसदस्युकी भी शत्रुके किले तोडनेके काममें सहायता की थी। यह काम जिन शक्तियोंसे किया था, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें। नेता लोग अपने वीरोंकी उचित सहायता युद्धके समय अवश्य करें। युद्धके समय किसी चीजकी न्यूनता सैनिकोंको न रहे। विजयके लिये इस तरहके प्रबंध करनेकी अत्यंत आवश्यकता है ॥ १४ ॥

*

१२२५ याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १५ ॥

१२२६ याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥

१२२७ याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १७ ॥

अर्थ-- [१२२५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (विपिपानं उपस्तुतं) सोमरसका विशेष पान करनेवाले, समीपस्थों द्वारा प्रशंसित (वम्रं) वम्र नामक ऋषिको तुम दोनोंने सुरक्षित किया, (याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः) जिन शक्तियोंसे विवाहित कलिकी सुरक्षा तुम दोनों करते हो, (उत) और (याभिः) जिनसे (व्यश्वं पृथिं आवतं) घोडेसे बिछुडे हुए पृथिकी रक्षा तुम दोनोंने की थी (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन रक्षाओंसे तुम दोनों ठीक प्रकारसे इधर हमारे पास आओ ॥ १५ ॥

[१२२६] हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (याभिः शयवे) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर शयुको मदद देनेके लिए, (याभिः अत्रये) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर अत्रि ऋषिको कारावाससे छुडानेके लिए, (याभिः मनवे) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर मनुके लिए (पुरा गातुं ईषथुः) प्राचीन कालमें दुःखसे छूट जानेका मार्ग तुम दोनोंने बतानेकी इच्छा की थी, तथा (स्यूमरश्मये) स्यूमरश्मिको सहायता देनेके लिए (याभिः शारीः आजतं) जिन शक्तियोंसे बाणोंको शत्रुदलपर तुम दोनोंने प्रेरित किया था, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी आयोजनाओंको साथ लिए हुए तुम दोनों (सु आगतं) भलीभाँति इधर हमारे पास आओ ॥ १६ ॥

[१२२७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इद्धः चितः) प्रज्वलित और समिधाओंके डालनेसे बढते हुए (अग्निः न) अग्निके तुल्य, (पठर्वा) पठर्वा नरेश (याभिः अज्मन्) जिन रक्षाओंसे मदद पाकर युद्धमें (जठरस्य मज्मना) अपने शारीरिक बलसे (आ अदीदेत्) पूर्णतया प्रदीप्त हो उठा था; (महाधने याभिः) अधिक संपत्ति पानेके लिए किये जानेवाले युद्धमें जिनसे (शर्यातं अवथः) तुम दोनोंने शर्यातकी रक्षा की थी, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे सुसज्ज होकर (सु आगतं) तुम दोनों हमारे समीप आओ ॥ १७ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने बहुत सोमरस पीनेवाले, प्रशंसित वम्र नामक ऋषिकी रक्षा की, कलिको उत्तम धर्मपत्नी देकर उसकी रक्षा की, पृथिके घोडे दूर होनेपर भी उसकी रक्षा की, वे अपनी सब शक्तियोंसे हमारे पास आ जायँ और हमारी रक्षा करें। नेता लोग अपने अनुयायियोंकी सुरक्षा सदा करते रहें, किसीको अन्नपान अधिक लगता हो तो उसे वह दें, किसीको धर्मपत्नी चाहिये तो उसके ब्याहका प्रबंध करें, घोडे बिछुडे जानेपर उसको वे पुनः मिलें ऐसा प्रबंध करें। अर्थात् अपनी शक्तियोंसे अनुयायियोंको असुरक्षित न रहने दें ॥ १५ ॥

जिन शक्तियोंसे अश्विदेवोंने शयु, अत्रि, मनु और स्यूम रश्मिकी सहायता की, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें। नेतालोग साधुओंका परित्राण करें और दुर्जनोंका नाश करें और सज्जनोंकी रक्षा करें ॥ १६ ॥

अश्विदेवोंकी शक्तियोंकी सहायतासे पठर्वा नरेश अपना सामर्थ्य बढानेके कारण युद्धमें बडा तेजस्वी सिद्ध हुआ, इसी तरह शर्यातकी भी अश्विदेवोंने महायुद्धमें रक्षा की, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आयें और हमारी रक्षा करें। नेता लोग अपने वीरोंकी युद्धके समय पूर्ण रूपसे सहायता करें और शत्रुका पराभव होनेतक मदद करते रहें ॥ १७ ॥

१२२८ याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १८ ॥
१२२९ याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १९ ॥
१२३० याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २० ॥

अर्थ— [१२२८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनोंने (मनसा) मनःपूर्वक किये (अङ्गिरः) अंगिरसोंके स्तोत्रसे संतुष्ट होकर (याभिः) जिन शक्तियोंसे उनको (निरण्यथः) सन्तुष्ट किया, तथा (गोअर्णसः विवरे) बन्द रखे हुए गौओंके झुंडको पानेके लिए गुहाके मुँहमें जानेके लिए (अग्रं गच्छथः) आगे चले जाते हो; और (शूरं मनुं) पराक्रमी मनुको (याभिः इषा सं आवतं) जिन शक्तियोंसे अन्न प्राप्त कराके तुम दोनोंने सुरक्षित किया, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) भलीभाँति इधर आओ ॥ १८ ॥

[१२२९] (अश्विना) हे अश्विदेवो (विमदाय) विमदके लिए उसके घर (याभिः) जिन शक्तियोंसे (पत्नीः नि ऊहथुः) उसकी धर्मपत्नीको तुम दोनोंने ठीक तरह पहुँचा दिया था, (याभिः वा) जिन शक्तियोंसे (अरुणीः घ) अरुण रंगकी घोडियोंको (आ अशिक्षतं) पूर्णतया सिखाया था और (याभिः सुदासे) जिनसे सुदासके घरमें (सुदेव्यं ऊहथुः) अच्छा देने योग्य धन तुम दोनोंने दिया था, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंके साथ तुम दोनों (सु आगतं) ठीक प्रकार हमारे पास आओ ॥ १९ ॥

[१२३०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ददाशुषे याभिः) दानी पुरुषके लिये जिन शक्तियोंसे तुम दोनों (शन्ताती भवथः) सुखदायक बनते हो, (याभिः भुज्युं) जिनसे भुज्युकी तथा (याभिः अध्रिगुं अवथः) जिनसे अध्रिगुकी रक्षा करते हो, उसी प्रकार जिनसे (सुभरां ओम्यावतीं) अच्छी पुष्टिकारक तथा सुखदायक अन्न सामग्री (ऋतस्तुभं) ऋतस्तुभको दे डालते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त तुम दोनों (सु आगतं) इधर अच्छी तरह हमारे पास आओ ॥ २० ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंकी स्तुति अंगिरसोंने की, उससे प्रसन्न होकर अश्विदेवोंने उनको सन्तुष्ट किया; जब गौओंको ढूंढनेके लिए गुहामें जानेका अवसर आया, उस समय अश्विदेव आगे बढे, शूर मनुको युद्धमें पर्याप्त अन्न सामग्री पहुंचाई । यह सब जिन शक्तियोंसे किया उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आजायँ और हमारी सहायता करें । नेता लोग अपने अनुयायियोंको आवश्यक सामग्री देकर संतुष्ट करें, शूरवीरताके कार्यमें सबसे आगे बढें । इस तरह अपने अनुयायियोंकी सुरक्षाके उत्तम प्रबंध रखें ॥ १८ ॥

अश्विदेवोंने जिन शक्तियोंसे विमदकी धर्मपत्नीको उसके घर पहुंचाया, लाल रंगकी घोडियोंको अच्छी तरह सिखाया और सुदासको बहुत धन दिया, उन शक्तियोंसे वे यहां हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें । नेता लोग अपने अनुयायियोंकी पत्नियोंको यत्नसे सुरक्षित रखें, घोडियोंको शिक्षित करें और दानमें धन दें और सब प्रकारसे जनताको प्रसन्न रखें ॥ १९ ॥

अश्विदेवोंने अपनी शक्तियोंसे दाताको सुख दिया, भुज्यु और अध्रिगुकी रक्षा की और ऋतस्तुभको पुष्टिकारक और सुखदायक अन्न दिया । जिन शक्तियोंसे उन्होंने यह किया है उन शक्तियोंसे वे यहां हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें । नेता लोग उदार दाताओंको सुख दें, जिनको आवश्यक है उनको पौष्टिक और आरोग्यवर्धक अन्न दें और अन्य अनुयायियोंकी उत्तम रक्षा करें ॥ २० ॥

१२३१ याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्य-स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २१ ॥

१२३२ याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वत-स्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २२ ॥

१२३३ याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २३ ॥

अर्थ— [१२३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (असने) युद्धमें (कृशानुं) कृशानुकी (याभिः दुवस्यथः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनों सहायता करते हो, (याभिः) जिनसे (यूनः अर्वन्तं) युवकके घोडेको (जवे आवतं) वेगपूर्वक दौडनेमें तुम दोनों बचा सके, और (यत् प्रियं मधु) जो प्यारा मधु (सरड्भ्यः भरथः) मधुमक्षिकाओंके लिए तुम दोनों उत्पन्न करते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतं) उन्हीं रक्षाओंके साथ तुम दोनों इधर हमारे पास आओ ॥२१॥

[१२३२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (गोषुयुधं नरं) गौओंके लिए लडनेवाले नेताको (नृषाह्ये) युद्धमें तथा (क्षेत्रस्य तनयस्य साता) खेतकी उपजका बँटवारा करते समय (जिन्वथः) तुम दोनों सुरक्षित करके सन्तुष्ट करते हो; (याभिः रथान्) जिनसे रथोंको, (याभिः अर्वतः अवथः) जिनसे घोडोंको सुरक्षित रखते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर (सु आगतं) सुन्दर प्रकारसे आओ ॥२२॥

[१२३३] (शतक्रतू अश्विना) हे सैंकडों कार्य करनेवाले अश्विदेवो ! (याभिः) जिनसे (आर्जुनेयं कुत्सं) अर्जुनीके पुत्र कुत्स, (तुर्वीतिं दभीतिं च) और तुर्वीति तथा दभीतिको तुम दोनों (प्र आवतं) प्रकर्षसे बचा चुके, (याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिं आवतं) जिनसे ध्वसन्ति और पुरुषन्तिको तुम दोनों बचा सके हो (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर (सु आगतं) तुम दोनों इधर हमारे पास आओ ॥ २३ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने युद्धमें कृशानुकी रक्षा की, दौडनेवाले घोडेको बचाया और मधुमक्षिकाओंको मधु दिया। यह जिन शक्तियोंसे किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी रक्षा करें। नेता लोग युद्धमें अपने वीरोंकी सुरक्षाका प्रबंध करें, घोडोंको उत्तम शिक्षित करें, जिससे वे लम्बी दौडमें भी बचे रहें। मधुका भी प्रदान करें क्योंकि मधु पुष्टिकारक अन्न है ॥ २१ ॥

गौओंकी सुरक्षा करनेके लिए होनेवाले युद्धोंमें लडनेवाले वीरोंको अश्विदेव सुरक्षित रखते हैं, खेतकी उपजका बँटवारा करनेके समय विरोध होने नहीं देते और रथों और घोडोंकी सुरक्षा करते हैं। ये देव जिन शक्तियोंसे यह करते हैं उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें। नेता लोग गौओंको सुरक्षित रखें, गौओंपर हमला करनेवाले शत्रुके साथ लडें, ऐसे युद्धोंमें लडनेवाले वीरोंके सुरक्षित रखनेका प्रबंध करें, खेतकी उपजका बंटवारा करनेके समय अनुयायियोंमें झगडा होने न दें, तथा अपने वीरोंके घोडो और रथोंको सुरक्षित रखें ॥ २२ ॥

अश्विदेव सैंकडों कर्म करनेवाले हैं, उन्होंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सकी, तथा तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति और पुरुषन्तिकी सुरक्षा की। जिन शक्तियोंसे यह किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आयँ और हमारी रक्षा करें। नेता लोग सैंकडों कर्म करनेमें कुशल बनें। अपने अनुयायियोंको वे अपनी आयोजनाओंसे बचावें ॥ २३ ॥

१२३४ अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥
१२३५ द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मा- नरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता- मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २५ ॥

[११३]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- १ उषाः (उत्तरार्धस्य) रात्रिश्च, २-२० उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१२३६ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागा- च्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

अर्थ— [१२३४] हे (दस्रा) शत्रुविनाशकर्ता ! (वृषणा अश्विना !) बलवान् अश्विदेवो ! (नः मनीषां) हमारी इच्छाको पूर्ण करो, (अस्मे) हमारी (अप्नस्वतीं वाचं कृतं) वाणीको कर्मयुक्त बनाओ, (वां) तुम दोनोंको (अद्यूत्ये) अंधेरेमें (अवसे निह्वये) रक्षाके निमित्त बुलाता हूं, (वाजसातौ च) और अन्नका दान करते समय (नः वृधे भवतं) हमारी वृद्धिके लिए प्रयत्नशील बनो ॥ २४ ॥

[१२३५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (द्युभिः अक्तुभिः) दिन और रात (अरिष्टेभिः सौभगेभिः) अक्षुण्ण अच्छे ऐश्वर्योंसे (अस्मान् परि पातं) हमारी पूर्णतया रक्षा करो, (तत्) इसका (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, भूलोक तथा द्युलोक (नः मामहन्तां) हमारे लिए अनुमोदन करें अर्थात् इनकी सहायतासे हमारी वह पूर्वोक्त इच्छा सफल हो ॥ २५ ॥

[११३]

[१२३६] (ज्योतिषां श्रेष्ठं इदं ज्योतिः) तेजस्वी पदार्थोंके तेजसे भी अधिक श्रेष्ठ उषाका यह तेज (आगात्) पूर्व दिशामें प्रकट हो रहा है, (चित्रः प्रकेतः विभ्वा अजनिष्ट) यह विलक्षण रमणीय प्रकाश फैलता हुआ प्रकट हो रहा है । (यथा रात्रिः सवितुः सवायं प्रसूता) जिस तरह रात्री सूर्यकी उत्पत्तिके लिये उत्पन्न हुई, (एवा) वैसी ही यह रात्री (उषसे योनिं आरैक्) उषाके जन्मके लिये भी स्थान खुला कर रही है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे शत्रुके नाशकर्ता शक्तिमान् अश्विदेवो ! हमारी यही एक इच्छा है । वह यह कि हमारे भाषण शुभ कर्मोंको बढानेवाले हों । अंधेरी रात्रीमें आपको रक्षा करनेके लिए बुलाते हैं । तुम दोनों हमारे पास आओ, इस अन्नके दान करनेके कार्यमें हमारी सहायता करो । इससे हमारी वृद्धि होती रहे । मनुष्य शत्रुका नाश करे, सामर्थ्यवान् बने । ऐसे भाषण करे कि जिनसे सत्कर्मोंकी समृद्धि हो । अन्धकारके समय सब अनुयायियोंको पर्याप्त अन्न दिया जाय । उनकी वृद्धि होती रहे, ऐसा प्रबंध सर्वदा करना योग्य है ॥ २४ ॥

दिन रात हमें अटूट ऐश्वर्य मिलता रहे और उससे हमारी रक्षा होती रहे । सब देव इस हमारी इच्छाकी सफलता होनेमें सहायक बनें । मनुष्य दिन रात ऐसे शुभ कर्म करे कि जिनसे उसको अपरिमित ऐश्वर्य मिले और उससे उसकी सुरक्षा हो । सब उसकी सहायता करें ॥ २५ ॥

हे मनुष्यो ! ज्योतियोंमें भी श्रेष्ठ ज्योतिरूप यह तेज उषाके रूपमें आकाशमें छा रहा है । यह तेज विलक्षण है, ज्ञान देनेवाला है । यह रात्री प्रसूत होकर सूर्यको उत्पन्न करती है । रात्रीके पेटसे सूर्यका जन्म होता है अर्थात् यह काली रात्री तेजस्वी सूर्यकी माता है । यह रात्री उषाके आनेके समय उसके लिए अपना स्थान खाली कर देती है । अर्थात् रात्रीसे ही उषा और सूर्य दोनों उत्पन्न होते हैं । ऐसी यह तेजस्वी उषा अपने साथ दिव्य ज्योति ला रही है । मनुष्यो ! इस उषाका दिव्य और आनंददायक तेज देखो; यह तेज सबको जगा रहा है ॥ १ ॥

१२३७ रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागा- दारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

१२३८ समानो अध्वा स्वस्रोरनन्त- स्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥

१२३९ भास्वती नेत्री सूनृताना- मचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्य- दुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१२३७] (रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्या) तेजस्वी बालकवाली तथा स्वयं भी तेजस्विनी गौरवर्ण उषा (आगात्) आगई है। (अस्याः) इस उषाके लिये (कृष्णा) काली रात्रीने (सदनानि अरैक् उ) रहनेके स्थान खुले करके रखे हैं। (समानबन्धू अमृते) जिनका बन्धु एक ही है ऐसी ये रात्री और उषा अमर हैं और (अनूची) क्रमसे आती हैं। ये दोनों (द्यावा) प्रकाशमान (वर्णं आमिनाने) और विश्वके रंगको बदलती हुई (चरतः) भ्रमण करती हैं ॥२॥

[१२३८] (स्वस्रोः अध्वा समानः) रात्री और उषा इन दोनों बहिनोंका मार्ग एक ही है और वह (अनन्तः) अन्तरहित है। (देवशिष्टे) ईश्वरकी आज्ञानुसार चलनेवाली ये दो बहिनें (अन्या अन्या तं चरतः) क्रमसे एकके पीछे दूसरी इस मार्गसे चलती हैं। ये दोनों (नक्तोषासा सुमेके) रात्री और उषा उत्तम स्नेह धारण करनेवाली (विरूपे समनसा) परस्पर विरुद्ध रंग रूपवाली होनेपर भी एक मनसे सब कार्य करनेवाली हैं (न तस्थतुः) ये दोनों कभी एक स्थानपर नहीं ठहरतीं, अथवा (न मेथेते) परस्परका कार्य भी नहीं बिगाडती ॥ ३ ॥

[१२३९] (भास्वती) प्रकाशमयी (सूनृतानां नेत्री) सत्कर्मोंकी संचालिका यह उषा (अचेति) दीखने लगी है। (चित्रा नः दुरः वि आवः) यह विलक्षण सुंदर उषा हमारे द्वारोंको खोलती है। (जगत् प्रार्प्य) जगत्को प्रकाशित करके यह उषा (रायः नः अख्यत् उ) धनोंको हमारे लिये प्रकाशित करती है, और यह (उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः) उषा अपने प्रकाशसे सब भुवनोंको निगल लेती है, अर्थात् सबको प्रकाशित करती है ॥ ४ ॥

भावार्थ— तेजस्वी बालक सूर्यको अपनी गोदमें लेकर यह उषा प्रकट हो रही है। इसको आता देखकर रात्री उसके लिए जगह खाली कर रही है। उषा एक आदर्श माता है, इसका पुत्र सूर्य है जो बहुत तेजस्वी है, जिसका पालन पोषण उषा बडे प्रेमसे करती है। ऐसी आदर्श माताका सम्मान समाजमें होना ही चाहिए। रात्री और उषा ये दोनों बहनें अमर धर्मवाली और एक ही बन्धुवाली हैं। इनका भाई दिन है। ये तीनों भाईबहिन क्रमशः एक दूसरेके पीछे चलते हैं। यह क्रम कभी बंद नहीं होता। ये सदा चलते रहते हैं, कभी विश्राम नहीं लेते। इसी तरह राष्ट्रकी स्त्रियोंको भी सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। वे हमेशा समाजके हितके काम करती रहें ॥ २ ॥

रात्री और उषाके संचार करनेका मार्ग अनन्त है, अतः इनका परिभ्रमण कभी समाप्त नहीं होता। ईश्वरके नियमानुसार ये दोनों एक दूसरीके पीछे अपना संचार करती रहती हैं। ये दोनों बहनें परस्पर विरुद्ध रंगरूपवाली होनेपर भी परस्पर स्नेहभावसे रहती हैं और एक मनसे कार्य करती हैं। उषा अपने सौन्दर्यपर घमण्ड नहीं करती और नाहीं कुरूप होनेके कारण रात्री उषासे द्वेष ही करती है। इसके विपरीत दोनों परस्पर प्रेमसे रहकर जगत्का हित करती हैं। इसी तरह समाज और राष्ट्रमें सब स्त्रियां हिलमिलकर रहें और सामाजिक हितके कार्य करें ॥ ३ ॥

तेजस्विनी, अपने तेजसे लोगोंको सन्मार्गमें प्रेरित करनेवाली उषा जाग उठी है, अपने घरके द्वार खोल रही है। यह उषा जगत्को प्रकाश देती है और प्रकट होकर सब लोगों एवं प्राणियोंको जगाती है। इसी तरह आदर्श स्त्री सर्व प्रथम उठकर घरके दरवाजों को खोले, घरको प्रकाशित करे तथा अन्योंको जागृत कर उन्हें अपने अपने कामोंमें प्रयुक्त करें ॥ ४ ॥

१२४० जिह्मश्ये॒३ चरि॑तवे म॒घोन्या॑भो॒गय॑ इ॒ष्टये॑ रा॒य उ॑ त्वम् ।
द॒भ्रं पश्य॑द्भ्य उर्वि॒या वि॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ५ ॥
१२४१ क्ष॒त्राय॑ त्वं॒ श्रव॑से त्वं म॒ही॒या इ॒ष्टये॑ त्व॒मर्थ॑मिव त्व॒मि॒त्यै ।
विस॑दृशा जीवि॒ताभि॑प्र॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ६ ॥
१२४२ ए॒षा दि॒वो दु॑हि॒ता प्रत्य॑दर्शि व्यु॒च्छन्ती॑ यु॒व॒तिः शु॒क्रवा॑साः ।
विश्व॒स्येशा॑ना॒ पार्थि॑वस्य॒ वस्व॒ उषो॑ अ॒द्येह सु॑भगे॒ व्यु॑च्छ ॥ ७ ॥
१२४३ प॒रा॒य॒ती॒नामन्वे॑ति॒ पाथ॑ आय॒ती॒नां प्र॑थ॒मा शश्व॑तीनाम् ।
व्यु॒च्छन्ती॑ जी॒वमु॑दी॒रय॑न्त्यु॒षा मृ॒तं कं च॒न बो॒धय॑न्ती ॥ ८ ॥

अर्थ— [१२४०] (जिह्मश्ये चरितवे) सोनेवालेको घुमानेके लिये (आभोगये) भोगोंको प्राप्त करनेके लिये (इष्टये राये) यज्ञ करनेके लिये तथा धन प्राप्त करनेके लिये (त्वं उ मघोनी) तू धनवाली उषा प्रकाशती है। (दभ्रं पश्यद्भ्यः विचक्षे) जिनको कम दीखता है उनको अधिक दिखानेके लिये (उर्विया उषाः) विशाल उषा (विश्वा भुवनानि अजीगः) सब भुवनोंको प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

[१२४१] (क्षत्राय त्वं) क्षत्रियके युद्धादि कर्मके लिये (श्रवसे त्वं) अन्नादिके अथवा कीर्तिके लिये (महीयै इष्टये त्वं) बडे यज्ञके लिये (अर्थं इव इत्यै त्वं) अपेक्षित अर्थके पास पहुंचनेके लिये (विसदृशा जीविता अभिप्रचक्षे) विविध प्रकारके जीवन साधन देखनेके लिये (उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः) तू उषा सब भुवनोंको जगाती अर्थात् प्रकाशित करती है ॥ ६ ॥

[१२४२] (एषा दिवः दुहिता) यह द्युलोककी पुत्री उषा (व्युच्छन्ती) अन्धकारको दूर करती हुई (प्रत्यदर्शि) दीखने लग गई है। (युवतिः) तरुणी (शुक्रवासाः) शुभ्र वस्त्र पहननेवाली (विश्वस्य पार्थिवस्य वस्य ईशाना) सब पृथ्वीपरके धनकी स्वामिनी है। हे (सुभगे, उषः) उत्तम भाग्यवाली उषा ! (अद्य इह व्युच्छ) आज यहां प्रकाश कर ॥ ७ ॥

[१२४३] यह उषा (परायतीनां पाथः अनु एति) भूतकालमें गई हुई उषाओंके मार्गसे आती है तथा (आयतीनां शश्वतीनां प्रथमा) आनेवाली अनेक उषाओंमें यह प्रथम उषा है। यह (उषाः) उषा (व्युच्छन्ती) प्रकाशती और (जीवं उदीरयन्ती) जीवितोंको उठाती है और (कं चन मृतं बोधयन्ती) किसी मृत जैसे सोनेवालेको भी जगाती है। ॥ ८ ॥

भावार्थ— सोनेवालोंको उठानेके लिए, भोगप्राप्तिकी इच्छा करनेवालोंको धन देनेके लिए, अल्पदृष्टिवालोंको उत्तम दृष्टि देनेके लिए यह विशाल उषा सब भुवनोंके पास आकर अपने प्रकाशसे सबको जगाती है। लोग सोते न रहें, उठें, और अपने कार्य करें, प्रयत्न करके भोग प्राप्त करें। अन्धेरेमें न पडे रहें, प्रकाशमें आकर अपना अभ्युदय सिद्ध करें ॥ ५ ॥

शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिए, यश प्राप्त करनेके लिए, अन्न प्राप्त करनेके लिए, महान् इष्ट करनेके लिए, पर्याप्त धन प्राप्त करनेके लिए तथा विविध प्रकारके जीवन साधन देखनेके लिए यह उषा प्रकाशती है और सब भुवनोंको जगाती है। शौर्य, कीर्ति, धन तथा भोग प्राप्त करनेके लिए मनुष्य उषःकालमें उठें ॥ ६ ॥

यह स्वर्गकन्या उषा अन्धकार दूर करती है। शुभ्र वस्त्र पहनकर यह तरुणी सी उषा पृथ्वी परके समस्त धनोंकी स्वामिनी है। इस उषाके अधीन सब धन हैं। वह सर्वत्र प्रकाशित होकर अन्धकार दूर करती है। इसी प्रकार राष्ट्रकी सभी तरुणियां शुभ्र वस्त्र पहन कर सदा आनन्दमग्न रहें और सर्वत्र आनंद फैलायें ॥ ७ ॥

आजकी उषासे भी पहले अनेकों उषायें आकर चली गई। जिस मार्गसे पूर्वकी उषायें आई थीं, उसी मार्गसे आजकी उषा भी आई है। आगे आनेवाली उषाओंमें आजकी उषा प्रथम है। यह आकर मरे हुओंके समान सोये हुए लोगोंको उठाती है, आलसियोंमें उत्साह भरती है। प्राचीन मार्ग उत्तम होता है। इस मार्ग पर चल कर अन्धकार दूर किया जा सकता है ॥ ८ ॥

१२४४ उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद् देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९ ॥
१२४५ कियात्या यत् समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥
१२४६ ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११ ॥
१२४७ यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥

अर्थ— [१२४४] हे (उषः) उषा ! तूने (अग्निं समिधे यत् चकर्थ) अग्निको प्रज्वलित करनेके लिये जो किया और (सूर्यस्य चक्षसा यत् वि आवः) सूर्यके प्रकाशसे जो तूने प्रकाश किया, और (यक्ष्यमाणान् मानुषान् यत् अजीगः) यज्ञ करनेवाले मनुष्योंको जगाया, (तत् अप्नः भद्रं) यह कल्याणकारक कर्म और (देवेषु चकृषे) देवोंके लिये प्रिय कर्म तूने किया है ॥ ९ ॥

[१२४५] (कियति समया यत् आ भवाति) कितने समयतक यह उषा यहां रहती है ? (याः व्यूषुः) जो प्रकाशित हो चुकी थीं, (याः च नूनं व्युच्छान्) और जो आनेवाली उषाएं हैं वे भी भला कितनी देर रहेंगी ? (पूर्वाः वावशानाः अनुकृपते) पूर्वकालमें गयी हुई उषाओंका स्मरण करानेवाली वर्तमान उषा प्रकाशनेमें समर्थ होती है, यह (प्रदीध्याना अन्याभिः) प्रकाशमान होनेवाली उषा अन्य उषाओंके (जोषं एति) साथ आती है ॥ १० ॥

[१२४६] (ये मर्तासः) जो मानव (व्युच्छन्तीं पूर्वतरां उषसं) प्रकाशनेवाली पूर्व समयकी उषाको (अपश्यन्) देख चुके (ते ईयुः) वे चले गये । (अस्माभिः नु प्रतिचक्ष्या अभूत्) हमारे द्वारा यह उषा देखी जा रही है, तथा (ये अपरीषु पश्यान्) जो आनेवाली उषाको देखेंगे, (ते यन्ति) वे सब जानेवाले हैं ॥ ११ ॥

[१२४७] (यावयत्-द्वेषाः) शत्रुओंको दूर करनेवाली, (ऋतपाः) सत्यका पालन करनेवाली, (ऋते-जाः) सत्यके लिये उत्पन्न हुई, (सुम्नावरी) सुख देनेवाली, (सूनृता ईरयन्ती) वाणीको प्रेरित करनेवाली (सुमंगलीः) उत्तम मंगल करनेवाली (देववीतिं बिभ्रती) देवोंके लिये यज्ञको धारण करनेवाली (श्रेष्ठतमा) अत्यंत श्रेष्ठ ऐसी तू, हे (उषः) उषा ! (इह अद्य व्युच्छ) यहां आज प्रकाशित हो ॥ १२ ॥

भावार्थ— हे उषे ! तूने उदय होनेके साथ ही अग्निको प्रज्वलित किया, सूर्यका प्रकाश फैलाया और यज्ञ करनेवालोंको सोनेकी अवस्थासे जगाया । अर्थात् उषाके उदय होते ही यज्ञ करनेवाले उठकर यज्ञ करने लगे और यज्ञके लिए उन्होंने अग्नि प्रज्वलित की । यह सब कार्य मानों उषा ही करती है। उषाका यह काम कल्याण करनेवाला है । क्योंकि उषाके उदय होनेपर याजक यज्ञ करेंगे और उससे विश्वका कल्याण होगा ॥ ९ ॥

जो पहले आचुकीं या आ रहीं हैं और आगे आनेवाली हैं, वे सब उषायें कबतक आती रहेंगी ? आनेवाली हर उषा पूर्व उषाका स्मरण कराती है और स्वयं भी प्रकाशती है । यह वर्णन बीचमें दिन होनेका वर्णन है । उत्तरीय ध्रुवमें एक उषाके पश्चात् ही दूसरी उषा आती है । तीस उषःकालोंके पश्चात् दिन दीखता है ॥ १० ॥

जो मनुष्य पूर्वकालमें प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते थे, वे चले गए । हम आज इस उषाको देख रहे हैं, तो हम भी चले जाएंगे । जो भविष्यमें आनेवाली उषाको देखेंगे, वे भी चले जायेंगे अर्थात् यहां कोई स्थायी रहनेवाला नहीं है । केवल उषा ही एक जैसी बार बार आती है ॥ ११ ॥

शत्रुको दूर करनेवाली, सत्यका पालन करनेवाली, सत्यके प्रचारके लिए प्रसिद्ध, सुख बढानेवाली, मीठी वाणी बोलनेवाली, मंगल कामनावाली, देवोंकी प्रीतिके लिए यज्ञ करनेवाली श्रेष्ठ उषा आज प्रकाशित हो रही है । प्रकाश होनेके कारण शत्रु तथा डाकू भाग जाते हैं । प्रकाश होनेसे सत्य दीखता है अन्धेरेमें छल, कपट और असत्यका व्यवहार चलता है । सूर्य प्रकाशसे सबका कल्याण होता है, दिनमें ही यज्ञ होते हैं, यह सब उषासे ही होता है । इस कारण उषा श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

१२४८ शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्य१थो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यू१नजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥
१२४९ व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौ१दप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वै१रोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥
१२५० आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥
१२५१ उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगा१दप प्रागात् तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्याया१गन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१२४८] (देवी उषाः पुरा शश्वत् वि उवास) दिव्य उषा पूर्व समयसे सदा प्रकाशती आयी है। (अथो अद्य मघोनी इदं व्यावः) और आज धनवाली यह उषा इस जगत्को प्रकाशित कर रही है। (अथो उत्तरान् द्यून् अनुव्युच्छात्) और आगेके भी दिनोंमें यह ऐसी ही प्रकाशती रहेगी। ऐसी यह (अजरा अमृता स्वधाभिः चरति) जरारहित और मरणरहित उषा अपनी धारक शक्तियोंके साथ चलती रहती है ॥ १३ ॥

[१२४९] (दिवः आतासु) द्युलोकको सब दिशाओंमें (अंजिभिः वि अद्यौत्) प्रकाश किरणोंसे यह प्रकाशती है। (देवी कृष्णां निर्णिजं अप आवः) यह दिव्य उषा काले अन्धकारको दूर करती है। (अरुणेभिः अश्वैः सयुजा रथेन) उत्तम रीतिसे लाल रंगवाले घोडोंके साथ जोते हुए रथसे (आ याति) यह आती है और (एषा प्रबोधयन्ती) यह उषा सबको जगाती है ॥ १४ ॥

[१२५०] (पोष्या वार्याणि आवहन्ती) पोषणके लिये आवश्यक धनोंको लानेवाली (चेकिताना) सबको प्रकाश दिखानेवाली यह उषा (चित्रं केतुं कृणुते) विलक्षण सुंदर प्रकाश फैलाती है। (ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा) गत उषाओंमें अन्तिम तथा (विभातीनां प्रथमा) आनेवाली उषाओंमें पहिली (उषाः) यह उषा (वि अश्वैत्) विशेष चमक रही है ॥ १५ ॥

[१२५१] हे मानवो ! (उदीर्ध्वं) उठो, (नः असुः जीवः आगात्) हमारा यह प्राण रूप प्रकाश आ गया है। (तमः अप प्रागात्) अन्धकार दूर हो गया है, (ज्योतिः आ एति) ज्योति आ रही है। (सूर्याय यातवे पन्थां आरैक्) सूर्यके गमनके लिये मार्ग खुला हो रहा है, (यत्र आयुः प्रतिरन्त अगन्म) जहां आयु बढती है वहां हम पहुंचें ॥ १६ ॥

भावार्थ— उषा पूर्व समयमें प्रकाशती रही, इस समय प्रकाश रही है और भविष्यमें भी प्रकाश देती रहेगी। ऐसी यह उषा तीनों कालोंमें प्रकाशनेके कारण अजर अमर है। यह अपनी धारकशक्तिसे प्रकाशित होती रहे ॥ १३ ॥

आकाशमें यह उषा चारों ओरसे प्रकाश रही है। इस दिव्य उषाने काले अन्धकारको दूर किया है। लाल घोडोंको अपने रथमें जोडे हैं। उस रथसे उषा आती है और सबको जगाती है ॥ १४ ॥

पोषण करनेवाले तथा स्वीकार करने योग्य धनोंको यह उषा लाती है, यह उषा सबको प्रकाश देती है और सुन्दर तेज फैला रही है। यह आजकी उषा गत उषाओंमें अन्तिम है और आनेवाली उषाओंमें पहली है। यह उत्तमतासे चमकती है ॥ १५ ॥

*

१२५२ स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघो॒न्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥
१२५३ या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत् सोमसुत्वा ॥ १८ ॥
१२५४ माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥
१२५५ यच्चित्रमप्न उषसो वहन्ती॒जानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता॒मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥

अर्थ— [१२५२] (वह्निः रेभः) स्तोत्र पाठ करनेवाला कवि (विभातीः उषसः स्तवानः) प्रकाशनेवाली उषाओंकी स्तुति करता हुआ, (स्यूमना वाचः उदियर्ति) जिसमें मन रमता है ऐसी स्तोत्रोंकी वाणी बोलता है। हे (मघोनि) धनवाली उषा ! (अद्य गृणते तत् उच्छ) आज स्तोताके लिये वह प्रकाश दे और (अस्मे प्रजावत् आयुः नि दिदीहि) इसके लिये पुत्र पौत्रोंके साथ रहनेवाला आयु रूपी धन दे ॥ १७ ॥

[१२५३] (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (गोमतीः सर्ववीराः या उषसः) गौवोंवाली और वीरोंसे युक्त ये उषायें (व्युच्छन्ति) प्रकाश रही हैं। (वायोः इव सूनृतानां उदर्के) वायुके समान शीघ्रगामी स्तुतिरूपी सत्यभाषणोंके प्रकाशित होनेपर (अश्वदाः ताः) घोडोंको देनेवाली वे उषायें (सोमसुत्वा अश्नवत्) सोमयाग करनेवालोंको प्राप्त होती हैं ॥ १८ ॥

[१२५४] हे उषा ! तू (देवानां माता) देवोंकी माता है, तू (अदितेः अनीकं) अदितिका मुख है। तू (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका ध्वज होकर (बृहती विभाहि) विशेष रीतिसे प्रकाशित हो। (नः ब्रह्मणे प्रशस्तिकृत् व्युच्छ) हमारे ज्ञानकी प्रशंसा करती हुई प्रकाशित हो। हे (विश्ववारे) सबके द्वारा आदरणीय उषा ! (नः जने जनय) हमें अपने लोकोंमें सन्मानके स्थानमें पहुंचा ॥ १९ ॥

[१२५५] (यत् चित्रं अप्नः उषसः वहन्ति) जो विलक्षण धन उषाएं धारण करती हैं। वह धन (ईजानाय शशमानाय भद्रं) यज्ञ करनेवाले याजकके लिये कल्याण करनेवाला होता है। (तत्) यह प्रार्थना (मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ ये देव (नः मामहन्तां) हमारे लिये सफल करें ॥ २० ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! उठो, जागो, प्राणके समान यह जीवन प्रकाश आ गया है। अन्धेरा दूर हो गया है। सूर्यके प्रकाशके लिए मार्ग खुल गया है। यहां हम अपनी आयुको बढाते हुए प्रगति करें। हे शोभावाली उषे ! आज तू प्रकाशित हो और हमें पुत्र पौत्रादिसे युक्त दीर्घायु दे। हमारी सन्तानें उत्तम हों और हमें दीर्घायु प्राप्त हो ॥ १६-१७ ॥

दाता मानवोंको गौवें, घोडे और वीर पुत्र देनेवाली उषायें प्रकशित हो रही हैं। तब सभी याजक स्तुति करते हैं, उन स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर उषा सोमयज्ञ करनेवालोंके पास आती है और उन्हें हर तरहके धन प्रदान करती है ॥ १८ ॥

देवोंकी माता, अदितिके मुखके समान तेजस्विनी तथा यज्ञके ध्वज जैसी यह विशाल उषा चमक रही है। हमारे ज्ञानकी चारों ओर प्रशंसा हो। इसी तरह यह उषा प्रकाशती रहे अर्थात् हम चिरकाल तक जीवित रहकर उषाको देखते रहें। हे उषे ! हमें उन्नतिके मार्गसे ले चलो ॥ १९ ॥

जो धन उषाके पास है, वे यज्ञ करनेवालोंको ही प्राप्त होता है, जो अयज्ञशील हैं, उन्हें नहीं मिलता, न उषा ही उनका कल्याण करती है। अर्थात् उषःकालमें उठकर यज्ञ करनेवालोंका यह उषा कल्याण करती है। यह उषा विलक्षण और कल्याणकारी धन हमारे पास लावे, तथा इस धनको मित्रादि देव बढावें ॥ २० ॥

[११४]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः । देवता- रुद्रः । छन्दः- जगती; १०-११ त्रिष्टुप् ।)

१२५६ इमा रुद्राय त॒वसे॑ कप॒र्दिने॑ क्ष॒यद्वी॑राय॒ प्र भ॑रामहे म॒तीः ।
य॒था शमस॑द् द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे॒ विश्वं॑ पु॒ष्टं ग्रामे॑ अ॒स्मिन्न॑नातु॒रम् ॥ १ ॥

१२५७ मृ॒ळा नो॑ रुद्रो॒त नो॒ मय॑स्कृधि क्ष॒यद्वी॑राय॒ नम॑सा विधेम ते ।
यच्छं च॒ योश्च॒ मनु॑राये॒जे पि॒ता तद॑श्याम॒ तव॑ रुद्र॒ प्रणी॑तिषु ॥ २ ॥

१२५८ अ॒श्याम॑ ते सुम॒तिं दे॑वय॒ज्यया॑ क्ष॒यद्वी॑रस्य॒ तव॑ रुद्र मीढ्वः ।
सु॒म्ना॒यन्निद्विशो॑ अ॒स्माक॒मा च॒रारि॑ष्टवीरा जुहवाम ते ह॒विः ॥ ३ ॥

---

[११४]

अर्थ— [१२५६] (यथा अस्मिन् ग्रामे) जिस प्रकार इस गांवमें (विश्वं पुष्टं अनातुरं असत्) सब प्राणिमात्र हृष्टपुष्ट और नीरोगी रहें (तथा द्विपदे चतुष्पदे शं) तथा द्विपद और चतुष्पादके लिये शान्ति प्राप्त हो (तवसे) उस प्रकार बलवान् (कपर्दिने) जटाधारी (क्षयद्वीराय रुद्राय) वीरोंको आश्रय देनेवाले रुद्रके लिये (इमाः मतीः प्रभरामहे) ये मंत्र हम गाते हैं ॥ १ ॥

[१२५७] (रुद्र) हे रुद्र ! (नः मृळ) हम सबको सुखी कर, (उत नः मयः कृधि) और हम सबको नीरोग कर (क्षयद्वीराय ते) वीरोंको आश्रय देनेवाले तेरा (नमसा विधेम) हम सब नमस्कारसे सत्कार करते हैं (मनुः पिता) मनुष्योंका पालक यह वीर (यत् शं च योः च आयेजे) शांति और रोगनिवारक शक्ति देता है (रुद्र) हे रुद्र ! (तव प्रणीतिषु) तेरी विशेष नीतिसे (यत् अश्याम) उसको हम सब प्राप्त करें ॥ २ ॥

[१२५८] (मीढ्वः रुद्र) हे सुखदायक रुद्रदेव ! (क्षयद्वीरस्य ते) वीरोंको आश्रय देनेवाले तेरी (सुमतिं अश्याम) उत्तम बुद्धिको हम सब प्राप्त हों । (अस्माकं विशः) हमारी प्रजाओंको (ते देवयज्यया सुम्नायन्) अपने देव-यजनसे सुख देता हुआ तू (इत् आचर) हमारे लिये अनुकूल आचरण कर (अरिष्टवीराः) हमारे वीरोंका नाश न हो (ते हविः जुहवाम) और हम सब तुम्हारे लिये अन्न अथवा दान अर्पण करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— रुद्र वैद्योंका नाम है। ग्राम, नगर आदिमें रहनेवाले मनुष्यों तथा इतर प्राणियोंको आरोग्यसम्पन्न रखकर हृष्टपुष्ट, सुदृढ और उत्साही रखना राज्यके आरोग्यविभागका कर्तव्य है। जो इस प्रकार नागरिक-आरोग्यकी व्यवस्था उत्तम प्रकारसे करता है अथवा नागरिक-आरोग्य ठीक करनेके प्रबन्धोंका उपदेश नगरवासियोंको देता है, उसीकी प्रशंसा करनी चाहिए। वैद्य अनुभवी और धैर्यशाली हो। औषधियों द्वारा बीमारीको दूर फेंकनेवाला हो, वीरोंको आश्रय देनेवाला हो अर्थात् हर नागरिकको वीर एवं हृष्टपुष्ट बनानेवाला हो ॥ १ ॥

(शं) नागरिकोंमें स्वास्थ्य, निरोगिता और मानसिक शान्ति हो, (योः) और वे बाहरसे आनेवाली आपत्तियोंको रोकनेमें समर्थ हों। मनुष्यको अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनी चाहिए और आगे रोगोंका उपद्रव न होने पाए, इसका भी प्रबन्ध करना चाहिए। शान्ति और रोगप्रतिरोधकशक्ति हरएकको प्राप्त करनी चाहिए। जो स्वयं अपनी रक्षा करता है और विचारपूर्वक अपना व्यवहार करता है, वह मनुष्य अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकता है। वैद्योंको भी चाहिए कि वे सबको स्वास्थ्य नीतिका उपदेश करें और मनुष्योंको भी चाहिए कि वे स्वास्थ्य नीतिके अनुसार अपना आचार व्यवहार करें ॥२॥

उदार वैद्योंकी सम्मतिके अनुसार सब लोग आचरण करें, क्योंकि स्वार्थी वैद्य अपने स्वार्थके कारण उचित परामर्श नहीं देगा। इस प्रकार उत्तम आचरण करता हुआ मनुष्य इन्द्रियों, विद्वानों और वातावरणको प्रसन्न रखे। क्योंकि मनुष्योंका कल्याण इन्द्रियों, विद्वानों तथा जलवायुकी प्रसन्नता पर ही निर्भर है। इस प्रकार उत्तमरूपसे स्वास्थ्य प्राप्त करके मनुष्य शत्रुओंका विनाशक हो और वैद्योंकी हर तरहसे सहायता करे ॥ ३ ॥

१२५९ त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद् दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद् वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
१२६० दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥
१२६१ इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥
१२६२ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१२५९] (त्वेषं) तेजस्वी (यज्ञसाधं) सत्कर्म साधक (वङ्कुं) चपळ, स्फूर्तियुक्त (कविं रुद्रं) ज्ञानी रुद्रको (वयं अवसे नि ह्वयामहे) हम सब संरक्षणके लिये प्रार्थना करते हैं (दैव्यं हेळः अस्मत् आरे अस्यतु) देवोंके संबंधी क्रोध हम सबसे दूर हो (अस्य सुमतिं इत् वृणीमहे) हम इसकी उत्तम मतिको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

[१२६०] (वराहं) उत्तम आहार लेनेवाले (अरुषं त्वेषं रूपं) तेजस्वी, सुंदर रूपयुक्त (कपर्दिनं) जटाधारी वीरको (दिवः नमसा नि ह्वयामहे) द्युलोकसे सत्कारपूर्वक हम सब बुलाते हैं (हस्ते वार्याणि भेषजा बिभ्रत्) वह अपने हाथोंमें रोगनिवारक औषधियां धारण करता है (अस्मभ्यं शर्म वर्म छर्दिः यंसत्) और हम सबको आंतरिक स्वास्थ्य, बाह्य दोषोंका प्रतिबंध तथा वमन विरेचन आदि देता है ॥ ५ ॥

[१२६१] (मरुतां पित्रे रुद्राय) मरणके लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक महावीरके लिये (स्वादोः स्वादीयः) मीठेसे मीठा (वर्धनं) और बधाई देनेवाला (इदं वचः उच्यते) यह स्तोत्र गाया जाता है (अमृत) हे, हे अमर! (नः मर्तभोजनं रास्व) तू हम सबके लिये मनुष्योंका भोजन दे, (त्मने तोकाय तनयाय मृळ) तथा मुझे तथा बालबच्चोंको सुखी रख ॥ ६ ॥

[१२६२] (रुद्र) हे रुद्र! (नः महान्तं मा वधीः) हमारेमें बडोंका वध न कर (नः अर्भकं मा) हमारे छोटोंका वध न कर (नः उक्षन्तं मा) हमारे बढनेवालेका वध न कर (उत नः उक्षितं मा) और हमारे बढे हुएका वध न कर (नः पितरं मा) हमारे पिताका वध न कर (उत नः मातरं मा) और हमारी माताका वध न कर (नः प्रियाः तन्वः मा रीरिषः) हम सबके प्रिय शरीरोंको कृश मत कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— आरोग्यके लिए क्रोध, द्वेष आदि विकारोंको दूर करना चाहिए। क्रोध आदि दुष्ट मनोविकार आरोग्यका सर्वथा घात करते हैं। क्रोधके कारण शीघ्र ही मनुष्य वृद्ध हो जाता है। अतः इन मनोविकारोंको दूर करना आवश्यक है। अनादर, अपमान, निर्बलता आदि सब बुरे भाव हैं अतः इन बुरे भावोंको त्याग कर सुमतिको मनमें स्थापित करनेसे आरोग्य प्राप्त होता है। वैद्य सत्कर्म करनेवाला, फुर्तीला और ज्ञानी हो ॥ ४ ॥

हर मनुष्य उत्तम भोजन प्राप्त करे। और सुअरके समान सुदृढ अंगोंवाला हो। वैद्य सुन्दर और सुस्वभावी हो, क्योंकि ऐसे वैद्यके दर्शनसे ही रोगी पर उत्तम प्रभाव पडता है। वैद्य भी अपने हाथमें रोगनिवारक औषधियां लेकर आए। मनको शांत रखना, बाहरसे आनेवाले विषोंको रोकना और शरीरमें समाये हुए विषोंको बाहर निकालना इन तीन प्रकारोंसे प्राणिमात्रका स्वास्थ्य ठीक रखना वैद्यका कर्तव्य है ॥ ५ ॥

वैद्य मरणशील मनुष्योंका पिता है। वह मनुष्योंका संरक्षण और पालन करता है। वैद्य रोगियोंको मनुष्योंके योग्य अन्न दे। मनुष्य फलभोजी, शाकाहारी तथा धान्यभोजी प्राणी है अतः उसको ऐसा ही पथ्य देना चाहिए, जो उसके लिए योग्य हो और इस प्रकारके योग्य अन्न द्वारा बालबच्चों और बडे मनुष्योंको भी आरोग्य प्राप्त करा कर सुखी करना चाहिए। मनुष्यको मृत्युसे दूर रखनेका कार्य वैद्यका है ॥ ६ ॥

१२६३ मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधी— र्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
१२६४ उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमा— था वयमव इत् ते वृणीमहे ॥ ९ ॥
१२६५ आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवा— धा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १० ॥
१२६६ अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता— मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२६३] (रुद्र) हे रुद्र! (नः तोके तनये) हम सबके बालबच्चोंमें (आयौ गोषु अश्वेषु) मनुष्य, गाय और घोडोंमें (मा रीरिषः) क्रूरता उत्पन्न न कर (भामितः नः वीरान् मा वधीः) क्रोधके कारण हमारे वीरोंका वध न कर (त्वा हविष्मन्तः सदं इत् हवामहे) तुझे अन्नदान करनेके लिए हम अपने घरमें बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[१२६४] (मरुतां पितः) हे मरनेके लिये सिद्ध हुए वीरोंके संरक्षक वीर! (पशुपा इव) पशुओंके पालक ग्वालियेके समान (अस्मे सुम्नं रास्व) हम सबके लिये उत्तम सुख दे। (ते स्तोमान् उप अकरं) हम सब तेरी प्रशंसा करते हैं। (हि ते सुमतिः मृळयत्तमा) क्योंकि तेरी उत्तम सम्मति अत्यंत सुख देनेवाली है। (अथ वयं ते अवः इत् वृणीमहे) इसलिये हम सब तुझसे संरक्षण प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

[१२६५] (क्षयद्वीर) हे वीरोंको आश्रय देनेवाले! (ते गोघ्नं उत पुरुषघ्नं आरे) तेरा गायका घातक और मनुष्यका घातक शस्त्र हमसे दूर रहे। (अस्मे ते सुम्नं अस्तु) हम सबके लिये तेरा उत्तम मन प्राप्त हो। (नः मृळः च) और हम सबको सुखी कर। (देव) हे देव! (च अधि ब्रूहि) हमें और उपदेश कर (द्विबर्हाः शर्म यच्छ) तथा दो तरहकी शक्तियोंवाला तू हम सबके लिये शांति प्रदान कर ॥ १० ॥

[१२६६] (अवस्यवः अवोचाम) रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम सब कहते हैं (अस्मै नमः) कि इस प्रकारके वीरके लिये हमारा नमस्कार है। (मरुत्वान् रुद्रः) मरनेतक लडनेवाले वीरोंके साथ रहनेवाला यह महावीर (नः हवं शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने। (मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक (नः तत्) इस प्रकार हमारी इस इच्छाका (मामहन्तां) अनुमोदन करें ॥ ११ ॥

भावार्थ— वैद्यके भूल, दोष, आलस्य, क्रोध और अज्ञानसे रोगी मर जाते हैं, इसलिए वैद्योंको हमेशा सावधान रहना चाहिए। वैद्य अपनी असावधानीसे किसीको कृश न करें और न किसीका घात करे। वैद्योंकी थोडीसी भूलसे रोगीका मृत्युमुखमें चला जाना सम्भव है अतः वैद्योंको सदा सावधान रहना चाहिए। वैद्य कभी मनके दोषोंके कारण दूसरोंका वध न करें। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, क्षोभ आदिके वशीभूत होकर वैद्य रोगीका घात न करे ॥ ७–८ ॥

गौवोंकी रक्षा करता हुआ ग्वाला जिस तरह गौवोंको बुरे मार्गसे बचाता है, उसी प्रकार योग्य वैद्य सब जनताको बीमारियोंसे योग्य उपदेश द्वारा बचावे। वैद्योंकी सम्मति ही सच्चा कल्याण करनेवाली है और वैद्योंकी सम्मतिके अनुसार चलकर ही मनुष्य रोगोंसे बच सकते हैं। अतः वैद्योंको चाहिए कि वे सबको आरोग्यके मार्गका उपदेश करें और लोगोंको भी चाहिए कि वे वैद्योंके उपदेशके अनुसार अपना व्यवहार करें ॥ ९–१० ॥

शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, आरोग्य आयुष्यके सम्बन्धमें मनुष्यमात्रकी उन्नति होनी चाहिए। उत्तम आचरण करके मैं हरतरहकी उन्नति अवश्य प्राप्त करूंगा ऐसे ही विचार हरएकको अपने मनमें धारण करने चाहिए ॥ ११ ॥

[११५]

(ऋषिः- कुत्स आङ्गिरसः। देवता- सूर्यः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

१२६७ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥

१२६८ सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥

१२६९ भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

---

[११५]

अर्थ— [१२६७] (देवानां अनीकं) देवोंका मुख्य तेज (मित्रस्य, वरुणस्य अग्नेः चित्रं चक्षुः) मित्र, वरुण और अग्निका विलक्षण नेत्ररूप सूर्य (उत् अगात्) उदय हो गया है। उसने (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं) द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षलोकको (आ अप्राः) व्याप लिया है। (सूर्यः) सूर्य (जगतः तस्थुषः च आत्मा) सूर्य जंगम और स्थावरका आत्मा है ॥ १ ॥

१ देवानां अनीकं चित्रं चक्षुः— यह सूर्य देवोंका तेज और विलक्षण आंख है।
२ सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा— सूर्य चराचर जगत्‌की आत्मा है।

[१२६८] (सूर्यः) सूर्य (देवीं रोचमानां उषसं) प्रकाशमान् और तेजयुक्त उषादेवीके (पश्चात् अभि एति) पीछे उसी प्रकार जाता है, जिस प्रकार (मर्यः योषां न) युवान पुरुष युवती स्त्रीके पीछे जाता है। (यत्र) जहां (देवयन्तः नराः) देवत्व प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य (युगानि) योग्य कर्म करते हैं, वहां (भद्रं प्रति भद्राय) उस कल्याणकारी पुरुषका कल्याण करनेके लिए यह सूर्य (वितन्वते) अपना प्रकाश फैलाता है ॥ २ ॥

१ भद्रं प्रति भद्राय— यह सूर्य कल्याणकारियोंका कल्याण करता है।

[१२६९] (सूर्यस्य अश्वाः भद्राः) सूर्यके अश्व अर्थात् किरणें कल्याण करनेवाली, (हरितः) जल हरण करनेवालीं, (चित्राः) विलक्षण (अनुमाद्यासः) आनन्द देनेवालीं (एतग्वाः) और सतत गतिमान् हैं। (नमस्यन्तः) पूजित होती हुई ,वे किरणें (दिवः पृष्ठं आ अस्थुः) द्युलोकके पृष्ठपर फैलती हैं। (द्यावापृथिवी) ये द्युलोक और पृथ्वीलोकपर (सद्यः परि यन्ति) तत्काल ही फैलती हैं ॥ ३ ॥

१ सूर्यस्य अश्वाः भद्राः अनुमाद्यासः— सूर्यकी किरणें कल्याण करनेवाली और आनंद देनेवाली हैं।

भावार्थ— उषाके पश्चात् सूर्यका उदय होता है। यह सूर्य देवोंकी आंख है, मानों देवगण इस आंखके द्वारा ही जगत्‌का सारा व्यवहार देखते हैं। इसके उदय होते ही सब प्राणियोंकी आंखोंको प्रकाशका मार्ग दीखने लगता है। सूर्य सब चराचर जगत्‌की आत्मा है। सूर्य न हो तो कुछ भी न रहे। सब प्रकारका जीवन सूर्यसे ही मिलता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, औषधि, तृण आदि सबका जीवन सूर्यके प्रकाशपर ही अवलम्बित है ॥ १ ॥

प्रथम उषा आती है, और उसके बाद सूर्य उदय होता है, इसलिए कविने रूपक दिया है कि मानों एक तरुण तरुणीके पीछे भाग रहा है। सूर्यप्रकाशसे ही सबका कल्याण होता है और उत्तम उत्तम कल्याणकारी यज्ञ सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य दूसरे मनुष्योंका कल्याण करते हैं, उनका कल्याण सूर्य करता है। अहितकारियोंका कभी हित नहीं होता ॥ २ ॥

सूर्यकी किरणें रोगबीजोंका नाश करके मानवोंको आरोग्य देती हैं, इसलिए कल्याणकारी हैं। जलका हरण करके अन्तरिक्षमें बादलोंका निर्माण करती और वृष्टि भी करती हैं। वे ही सब शुभ कर्मोंकी प्रेरणा देती हैं ॥ ३ ॥

१२७० तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था—दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥
१२७१ तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥
१२७२ अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता—मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१२७०] (सूर्यस्य तत् देवत्वं) सूर्यका वही देवपन और (तत् महित्वं) वही महत्त्व है कि वह (कर्तोः मध्या) मनुष्यके कामके बीचसे ही (विततं सं जभार) अपनी फैली हुई किरणोंको समेट लेता है अर्थात् अस्त हो जाता है । (यदा यत्) जब भी यह सूर्य (हरितः सधस्थात् अयुक्त) अपनी हरणशील किरणोंको भूलोकसे अपने रथमें जोडता है, (आत्) इसके बाद (रात्रीः वासः सिमस्मै तनुते) रात्री अपना काला वस्त्र सब विश्वपर फैलाती है ॥ ४ ॥

१ कर्तोः मध्या विततं सं जभार तत् सूर्यस्य देवत्वं महित्वं— काम करनेवालेका काम पूरा भी नहीं हो पाता कि यह सूर्य बीचमें ही अपनी किरणोंको समेट लेता है, यही इस सूर्यका देवत्व और महत्त्व है।

[१२७१] (तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे) वह मित्र और वरुणका रूप दीखे, इसलिए (द्योः उपस्थे सूर्यः रूपं कृणुते) द्युलोकके समीप सूर्य अपना रूप प्रकट करता है । (अस्य हरितः) इसकी किरणें (अनन्तं रुशत् अन्यत् पाजः सं भरन्ति) अनन्त तेजस्वी ऐसा एक प्रकारका रूप धारण करती हैं, (कृष्णं अन्यत्) और दूसरा काला रूप रात्रीके समय धारण करती हैं ॥ ५ ॥

[१२७२] (देवाः) हे देवो ! (अद्य सूर्यस्य उदिता) आज सूर्यके उदयके समय ही (अवद्यात् अंहसः नः निः पिपृत) तुम संकटसे और पापोंसे हमारी रक्षा करो । (नः तत्) हमारी इस इच्छाका मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ (मामहन्तां) अनुमोदन करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— सूर्य प्रकाशमें मनुष्य सब अच्छे कर्म करते हैं, पर यह सूर्य किसीके लिए ठहरता नहीं है । समयपर अपनी किरणें समेट लेता है और चला जाता है । सूर्यके अस्त हो जानेपर लोगोंको अपने कर्म बंद करने पडते हैं । इसलिए वे सूर्योदयतक विश्राम करते हैं । यह अपनी किरणोंको भूलोकसे समेट लेता है, तब रात्री अपने काले वस्त्रको सब विश्वपर ढक देती है । तब सर्वत्र अन्धकार छा जाता है ॥ ४ ॥

द्युलोकपर आकर सूर्य सर्वत्र प्रकाश करता है अतः अस्त होकर सर्वत्र अन्धकार फैलाता है । प्रकाशमय दिन और अन्धकारमयी रात्री ये दोनों रूप एक ही सूर्यके हैं । सूर्यसे होनेवाले ये कालखण्ड हैं ॥ ५ ॥

यह सूर्य मानवोंका संरक्षक है । वह संकटों आपत्तियों और रोगोंसे मानवोंकी सुरक्षा करता है, इसलिए वह सबका उपास्य है । सूर्य जैसे सबको प्रकाशका मार्ग दिखाता है, उसी तरह विद्वान् सबको सच्ची उन्नतिका मार्ग दिखावे । मानवके सम्मुख सूर्यका आदर्श देखने रखा है । सावित्रीकी उपासनाका यही तत्त्व है ॥ ६ ॥

[११६]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१२७३ नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥

१२७४ वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद् रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

१२७५ तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः । ॥ ३ ॥

[११६]

अर्थ— [१२७३] (यौ) जो दोनों अश्विदेव (सेनाजुवा रथेन) सेनाके साथ चलनेवाले रथपरसे, (अर्भगाय विमदाय) नवयुवक विमदके लिए (जायां नि ऊहतुः) पत्नीको पहुँचा आये, उन (नासत्याभ्यां) असत्यसे रहित अश्विदेवोंके लिए मैं (स्तोमान्) स्तोत्रोंको, (वातः अभ्रिया इव) पवन मेघमण्डलमें स्थित होकर जलोंको जैसे प्रेरित करता है, या आगे फैला देता है, वैसे (इयर्मि) मैं प्रेरित करता हूं, तथा (बर्हिः इव) कुशासनोंकी तरह (प्रवृञ्जे) विस्तारित करता हूं ॥ १ ॥

[१२७४] हे (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवो ! (वीळुपत्मभिः वा) आकाशमें वेगसे उडनेवाले, और (आशु हेमभिः) शीघ्रगतिसे जानेवाले, (देवानां जूतिभिः वा) देवोंकी गतिसे संचालित होनेवाले यानोंसे (शाशदाना) शीघ्र गतिसे जानेवाले तुम दोनों हो; तुम्हारे यानोंमें जोता हुआ (रासभः) रासभ (तत् सहस्रं) उस सहस्र संख्यावाले शत्रुदलको (यमस्य प्रधने आजा) यमके लिये ही प्रिय होनेवाले युद्धमें शत्रुको (जिगाय) जीत चुका ॥ २ ॥

[१२७५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (कश्चित् ममृवान्) कोई मरनेवाला (रयिं न) जिस प्रकार अपनी धनसम्पदाको छोड देता है, उसी प्रकार (उदमेघे) जलोंसे भरे प्रचण्ड समुद्रमें (तुग्रः भुज्युं ह) तुग्र नरेशने अपने पुत्र भुज्युको शत्रुपर हमला करनेके लिए (अवाहाः) छोड दिया; (तं) उसे (आत्मन्वतीभिः) निजशक्तियोंसे युक्त (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अन्तरिक्षमेंसे जानेवाली तथा (अपोदकाभिः) जलोंको दूर करके जलमें भी जानेवाली (नौभिः ऊहथुः) नौकाओंसे तुम दोनों ऊपरसे ढोकर आगे ले चले ॥ ३ ॥

भावार्थ— दोनों अश्विदेव अपनी सेनाके साथ शत्रुपर हमला करनेवाले रथमें बिठलाकर नवयुवक विमदकी पत्नीको उसके घर पहुंचा आये थे, उनके स्तोत्रोंको मैं फैलाता हूं, जैसे मेघोंको वायु और आसनोंको यज्ञकर्ता फैलाता है। जो वीर अपने वीरोंकी और उनके घरवालोंकी सुरक्षा करेंगे, उनकी प्रशंसा करना योग्य है ॥ १ ॥

सत्यका पालन करनेवाले दोनों अश्विदेव अतिवेगसे आकाशमें उडनेवाले, अति शीघ्र गतिसे जानेवाले और (विद्युत् आदि) देवताओंकी गतिसे दौडनेवाले यानोंसे अति शीघ्र गतिसे जाते हैं। इनके यानोंमें जुते हुए रासभने यमको आनन्द देनेवाले भयंकर युद्धमें सहस्रोंकी संख्यामें शत्रु सैनिकोंको जीत लिया था। जल, अग्नि, वायु, विद्युत आदि देवताओंकी शक्तिसे आकाश यान तथा अन्यान्य यान अतिशीघ्र गतिसे चलाना योग्य है। भयानक युद्धमें वीर ऐसा पराक्रम करें कि, जिससे शत्रुके सैनिक सहस्रोंकी संख्यामें मर जायें ॥ २ ॥

जैसे मरनेवाला मनुष्य अपने धनकी आशा छोड देता है, उसी तरह अपने पुत्रकी आशा छोडकर तुग्र नरेशने अपने भुज्यु नामक पुत्रको शत्रुपर हमला करनेके लिए बडे गहरे महासागरमें जानेकी आज्ञा दी। भुज्यु गया और उसका बेडा टूट गया तब उसे तुम दोनोंने अपनी अद्भुत शक्तिवाली, आकाशमें संचार करनेवाली और जलको तोडकर जलमें भी जानेवाली नौकाओंसे, उठाकर उसको पिताके पास पहुंचाया। राजा अपने सागरके परे रहनेवाले शत्रुका पराभव करनेके लिए अपने वीरोंको विशेष तैयारीके साथ भेजे। उन वीरोंकी सुरक्षाके लिये ऐसे यान रखे कि जो भूमिपर, जलमें तथा आकाशमें भी उत्तम गतिसे चल सकें ॥ ३ ॥

१२७६ तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भि-र्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥
१२७७ अनारम्भणे तदवीरयेथा-मनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥
१२७८ यमश्विना ददथुः श्वेतमश्व-मघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥
१२७९ युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१२७६] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (आर्द्रस्य समुद्रस्य) जलमय अगाध समुद्रके (पारे धन्वन्) परे रेताले मरुदेशसे (तिस्रः क्षपः) तीन रातें और (त्रिः अहा) तीन दिन न ठहरते हुए (अतिव्रजद्भिः) बराबर वेगसे जानेवाले, (शतपद्भिः) सौ पहियोंसे युक्त और (षट् अश्वैः) छह: अश्वशक्तिवाले यंत्रोंसे युक्त (पतङ्गैः) पक्षी जैसे उडते हुए जानेवाले (त्रिभिः रथैः) तीन यानोंसे (भुज्युं ऊहथुः) भुज्युको तुम दोनों साथ ले चले ॥ ४ ॥

[१२७७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अनास्थाने) स्थान रहित, (अनारम्भणे) आलम्बनशून्य (अग्रभणे समुद्रे) हाथसे जहां किसीको पकडना असंभव है, ऐसे अथाह समुद्रमें (शतारित्रां नावं) सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौकापर (आतस्थिवांसं भुज्युं) चढे हुए भुज्युको (यत् अस्तं ऊहथुः) जो तुम दोनोंने घर पहुंचाया, (तत्) वह कार्य (अवीरयेथां) सचमुच बडी ही वीरतासे पूर्ण था ॥ ५ ॥

[१२७८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अघाश्वाय) अघाश्व नरेशको (यं श्वेतं अश्वं ददथुः) जिस सफेद घोडेका दान तुम दोनोंने दिया (शश्वत् इत्) वह हमेशा ही (स्वस्ति) कल्याणकारक है; (वां तत् दात्रं) तुम दोनोंका वह दान (महि कीर्तेन्यं भूत्) बडा भारी वर्णन करने योग्य हुआ है (पैद्वः अर्यः वाजी) वह पेदुको दिया हुआ, शत्रु सेनापर चढाई करनेवाला घोडा भी (सदमित् हव्यः) सदैव समीप बुलानेयोग्य है ॥ ६ ॥

[१२७९] हे (नरा) नेतृत्वगुणसे युक्त अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (पज्रियाय कक्षीवते) उच्च कुलोत्पन्न कक्षीवान्‌को (पुरंधिं अरदतं) नगरका संरक्षण करनेकी क्षमता बढानेवाली बुद्धि दी (वृष्णः अश्वस्य शफात्) बलिष्ठ घोडेके खुरके समान (कारोतरात्) विशिष्ट बर्तनसे (सुरायाः शतं कुम्भान्) जलके सौ घडे (असिञ्चतं) तुम दोनोंने भरकर रखे ॥ ७ ॥

भावार्थ— अगाध समुद्रके परे जहां रेतीला प्रदेश है, वहांसे तीन दिन और तीन रात बराबर बीचमें किसी जगह न ठहरते हुए अतिवेगसे जानेवाले, सौ पहियोंसे युक्त, छः चालक कला यन्त्रोंसे युक्त पक्षी जैसे उडनेवाले तीन यानोंसे तुम दोनोंने भुज्युको उसके घर पहुंचाया। तीन अहोरात्र न ठहरते हुए चलनेवाले, पक्षी जैसे आकाशमें उडनेवाले सौ पहियों और छः वाहक यन्त्रोंसे चलाये जानेवाले आकाशयान बनाना योग्य है। इनका उपयोग दूर देशमें गये सैनिकोंकी सहायतार्थ करना उचित है॥ ४

जहां ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं है, जहां कोई आश्रय नहीं है और जहां पकडनेके लिये कोई पदार्थ ही नहीं है ऐसे अथाह महासागरमेंसे जो तुम दोनोंने सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौकापर बिठलाकर भुज्युको उसके घर पहुंचाया वह सचमुच बडा ही वीरताका कार्य है। असीम महासागरसे भी अपने वीरोंको बचानेका कार्य शूर पुरुषोंको करना चाहिये। यह कार्य नौकासे किया जाय अथवा आकाश यानसे किया जाय ॥ ५ ॥

अश्विदेवोंने अघाश्वको श्वेत घोडा दिया, और पेदुको चढाई करनेके कार्यमें निपुण घोडा दिया। ये दान प्रशंसाके योग्य हैं। घोडोंको विविध कार्योंमें उत्तम शिक्षित करके वीरोंको दानमें देना योग्य है ॥ ६ ॥

*

१२८० हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीत—मुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥

१२८१ परावतं नासत्यानुदेथा—मुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥

१२८२ जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रा—दित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥

अर्थ—[१२८०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (घ्रंसं अग्निं) धधकते हुए अग्निको (हिमेन अवारयेथां) तुम दोनोंने बर्फसे हटाया, (ऋबीसे अवनीतं अत्रिं) अँधेरे कारागृहमें औंधे मुँह पडे हुए ऋषि अत्रिको (सर्वगणं) उसके सभी अनुयायियोंके साथ (स्वस्ति उत् निन्यथुः) उत्तम रीतिसे ऊपर उठाया और (अस्मै) इसे (पितुमतीं ऊर्जं अधत्तं) पुष्टिकारक तथा बलप्रद अन्न दिया ॥ ८ ॥

[१२८१] हे (नासत्या) सत्यको न छोडनेवाले अश्विदेवो ! (अवतं परा अनुदेथां) कूंवेके जल प्रवाहको तुम दोनोंने बहुत दूरतक लेजाकर उसके (उच्चा बुध्नं जिह्मबारं चक्रथुः) तल भागको ऊंचा करके कुटिलमार्ग बनाये और (तृष्यते गोतमस्य पायनाय) प्यासे गोतमके पीनेके लिए (सहस्राय राये न) और सहस्र संख्याक धान्यरूप धन मिलानेके लिए उससे (आपः क्षरन्) जल धाराएँ बहा दीं ॥ ९ ॥

[१२८२] हे (दस्रा नासत्या) शत्रुनाशक तथा असत्यसे रहित अश्विदेवो ! (जुजुरुषः च्यवानात्) जराजीर्ण च्यवानसे (द्रापिं इव) कवचके तुल्य (वव्रिं प्र अमुंचतं) बुढापेकी चमडीको तुम दोनोंने उतार कर दूर किया, (उत) और उस (जहितस्य आयुः) परित्यक्तकी आयु (प्र अतिरतं) तुम दोनोंने दीर्घ बना दी, (आत् इत्) तदुपरान्त (कनीनां पतिं अकृणुतं) उसे तुम दोनोंने कमनीय नारियोंका पति भी बना दिया ॥ १० ॥

भावार्थ— उच्च कुलमें उत्पन्न कक्षीवानको, उनके द्वारा की तुम्हारी स्तुति समाप्त होते ही, तुम दोनों नेताओंने, नगरके संरक्षण करनेमें समर्थ बुद्धि और शक्तिको प्रदान किया। इसी तरह बलिष्ठ घोडेके खुरके समान आकारवाले विशेष बडे बर्तनमें शुद्ध जलके सौ घडे तुम दोनोंने भरकर रखे। नेता लोग नागरिकोंको ऐसी शिक्षा दें कि जिससे उनको अपने नगरका शत्रुके हमलेसे उत्तम संरक्षण करनेकी बुद्धि तथा शक्ति प्राप्त हो। तथा वे उत्तम शुद्ध वृष्टिजल बडे बडे पात्रोंमें भरकर रखें ॥ ७ ॥

स्वराज्यकी प्राप्तिकी हलचल करनेवाले अत्रि ऋषिको असुरोंने अन्धेरे कारागारमें अनुयायियोंके साथ बन्द करके रखा था और चारों ओर आग जला दी थी जिससे उनको बडे कष्ट हो रहे थे। अश्विदेवोंने जलसे उस अग्निको शान्त किया और कारागारको तोड कर अनुयायियोंके साथ अत्रिको मुक्त किया, तथा उस कृश बने ऋषिको पुष्टिकारक और बलवर्धक अन्न देकर हृष्टपुष्ट कर दिया। नेताओंको उचित है कि वे प्रजाहितके लिए हलचल करनेवाले कार्यकर्ताओंको कारावास आदि कष्ट होनेके समय, अनेक उपायों द्वारा उनको आराम देनेका यत्न करें और कार्यकर्ताओंके अनुयायियोंकी भी हरतरह सहायता करें ॥ ८ ॥

सत्यका पालन करनेवाले अश्विदेव एक स्थानसे कुंवेका जल बहुत दूरतक नहरके द्वारा ले गये, इसके लिये उन्होंने कुएँका जल ऊंचा बनाया और टेढे मार्गसे उससे जल प्रवाह बहा दिये और उस जलको गौतमके आश्रममें पहुंचाया, तब आश्रमवासियोंको पीनेके लिये जल मिला और सहस्रों प्रकारसे धान्यादिकी संपदा भी प्राप्त हुई। जहां पानी न हो वहां भी दूरसे पानी नहर आदि द्वारा ला कर, उत्तम रमणीय आश्रमस्थान बनाना चाहिये। इस कार्यके लिये नहर टेढे या वक्र मार्गसे लाना आवश्यक हो, तो भी वैसा लाना चाहिये। इससे न केवल आश्रमवासियोंको पीनेके लिये पानी ही मिले, बल्कि खेती, फलोंके वृक्ष तथा उद्यान भी अच्छी तरह बन सकें ॥ ९ ॥

शत्रुनाशक और सत्यपालक अश्विदेवोंने अतिवृद्ध अतएव सब संबंधियोंके द्वारा परित्यक्त च्यवन ऋषिके शरीरसे कवच उतार देनेके समान बुढापेकी चमडी या झुर्री उतार कर उसे तरुण बनाया और दीर्घायु बनाकर, अनेक सुन्दर स्त्रियोंका पति भी बना दिया ॥ १० ॥

१२८३ तद् वां नरा शंस्यं राध्यं चा—भिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद् विद्वांसा निधिमिवापगूळ्ह—मुद् दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥

१२८४ तद् वां नरा सनये दंस उग्र—माविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वा—मश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२ ॥

१२८५ अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥

अर्थ—[१२८३] हे (नरा नासत्या) नेता सत्यके पालक अश्विदेवो ! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (अभिष्टिमत्) वाञ्छनीय (वरूथं) स्वीकार करनेयोग्य कार्य (शंस्यं राध्यं च) प्रशंसनीय और आराधनीय है, (विद्वांसा) हे ज्ञानी अश्विदेवो ! (यत्) जो (अपगूळ्हं निधिं इव) छिपाये हुए खजानेके समान, (दर्शतात्) देखनेयोग्य गढेसे (वन्दनाय उत् ऊपथुः) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठाया ॥ ११ ॥

[१२८४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (यत् आथर्वणः दध्यङ्) जो अथर्व कुलोत्पन्न दधीची ऋषिने (अश्वस्य शीर्ष्णा ह) घोडेके सिरसे ही (वां) तुम दोनोंको (यत् ईं मधु) इस मधुविद्याका (प्र उवाच) प्रवचन करके उपदेश किया, (तत् वां उग्रं दंसः) तुम दोनोंके उस भीषण कार्यको, (तन्यतुः वृष्टिं न) गरजनेवाला मेघ जैसे वर्षाका आविष्कार करता है, वैसे ही (सनये आविः कृणोमि) जनसेवा हो जाए इसलिये मैं प्रकट करता हूँ ॥ १२ ॥

[१२८५] हे (पुरु भुजा) बहुतोंको भोजन देनेवाले (करा) कार्यशील और (नासत्या अश्विनौ) सत्यसे कभी न बिछुडनेवाले अश्विदेवो ! (महे यामन्) बडी भारी यात्रा करते समय (वां) तुम दोनोंको (पुरन्धिः अजोहवीत्) बहुत बुद्धिवाली नारीने बुलाया था; (तत् शासुः इव श्रुतं) उस पुकारको मानों शासकके कथनकी तरह तत्परतासे तुमने सुन लिया और पश्चात् (हिरण्यहस्तं) हिरण्यहस्त नामक पुत्र उस (वध्रिमत्ये अदत्तं) वध्रीमती नामक नारीको तुम दोनोंने दिया ॥ १३ ॥

भावार्थ— वन्दन ऋषि गहरे गढेमें पडा था, उसको अश्विदेवोंने, गुप्त स्थानसे धनको ऊपर उठानेके समान, ऊपर उठाया, यह अश्विदेवोंका कार्य बहुत ही प्रशंसा करने योग्य है ॥ ११ ॥

अथर्वकुलमें उत्पन्न दधीची ऋषिने घोडेका सिर धारण करके तुम दोनोंको मधुविद्या पढायी ! इस विषयमें जो तुमने कार्य किया वह सचमुच भयानक ही कार्य था। जिस तरह मेघ गर्जना करके वृष्टीकी सूचना देता है, उस तरह घोषणा करके मैं उस तुम्हारे कर्मका प्रचार करता हूं। इससे मुझसे जनसेवा हो यही मेरी इच्छा है। पृथ्वी, आप्, तेज, वायु, आदित्य, दिशा, चन्द्रमा, विद्युत, मेघ, आकाश, धर्म, सत्य, आत्मा (जीव) इनमें जो तेजस्विता है वही अमृत पुरुष है, और वही सब कुछ है ऐसा कहा है। एक ही आत्मतत्वका ज्ञान 'मधुविद्या' नामसे प्रसिद्ध है। दधीची ऋषिने यह विद्या अश्विदेवोंको पढायी, इस विद्याके जाननेसे वैदिक तत्वज्ञान विदित हो सकता है। इस विद्याका साक्षात्कार दधीची ऋषिने स्वयं किया और उस ऋषिने अश्विदेवोंको यह विद्या सिखाई ॥ १२ ॥

अश्विदेव अपने भिषक्कार्यमें प्रवीण अनेकोंका पालन पोषण करनेवाले और सत्यके पालक हैं। ये बडी यात्रामें गये थे, उस समय एक बुद्धिमति स्त्रीने इनकी प्रार्थना की, वह प्रार्थना इन्होंने राजाकी आज्ञा जैसी मानी और उस वन्ध्या स्त्रीको उत्तम पुत्र होने योग्य गर्भधारण समर्थ बनाया और उससे उसको उत्तम पुत्र हुआ ॥ १३ ॥

१२८६ आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥
१२८७ चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥
१२८८ शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥
१२८९ आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥

अर्थ— [१२८६] हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेता अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (अभीके) योग्य समयपर (वृकस्य आस्नः) भेडियेके मुँहसे (वर्तिकां अमुमुक्तं) चिडियाको छुडाया; हे (पुरु भुजा) बहुतोंको भोजन देनेवालो ! (उत) और (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चयपूर्वक (कृपमाणं कविं) कृपापूर्वक प्रार्थना करते हुए कविको (विचक्षे अकृणुतं) देखनेके लिए दृष्टिसे युक्त किया ॥ १४ ॥

[१२८७] (वेः पर्णं इव) पंछीका पंख जैसे गिर जाता है उसी प्रकार (आजा) युद्धमें (खेलस्य चरित्रं) खेल नरेशकी संबंधिनी स्त्रीका पैर (अच्छेदि हि) टूट गया तब (परितक्म्यायां) रात्रीके समयमें ही उस (विश्पलायै) विश्पलाके लिए (हिते धने सर्तवे) युद्ध शुरु होनेके बाद चढाई करनेके लिए (आयसीं जङ्घां) लोहेकी टाँग (सद्यः) तुरन्त ही (प्रत्यधत्तं) तुम दोनोंने बिठला दी ॥ १५ ॥

[१२८८] (वृक्ये) वृकीको (शतं मेषान्) सौ भेडोंको (चक्षदानं तं ऋज्राश्वं) खानेके लिए देनेके अपराधके कारण उस ऋज्राश्वको (पिता अन्धं चकार) उसके पिताने दृष्टिहीन बना डाला; (भिषजौ) वैद्यो ! हे (दस्रा नासत्या) शत्रु नाशक एवं सत्यको न छोडनेवाले अश्विदेवो ! (तस्मै) उस अँधेको (अनर्वन् अक्षी) प्रतिबंध रहित आँखें (विचक्षे आधत्तं) विशेष रूपसे देखनेके लिए तुम दोनोंने दीं ॥ १६ ॥

[१२८९] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (वां रथं) तुम दोनोंके रथपर, (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या, (अर्वता कार्ष्म जयन्ती इव) घोडेकी दौडसे अपने लक्ष्यको जीतती हुई सी, (आ अतिष्ठत्) आकर बैठ गई (विश्वे देवाः) सभी देवोंने (हृद्भिः अन्वमन्यन्त) अन्तःकरणसे उसे अनुमोदित किया, पश्चात (श्रिया सं सचेथे उ) तुम दोनों शोभासे युक्त बने ॥ १७ ॥

भावार्थ— नेता अश्विदेवोंने भेडियेके मुखसे चिडियाको निकालकर बचाया और बहुतोंको भोजन देनेवाले उन देवोंने प्रार्थना करनेवाले एक अन्धे कविको उत्तम देखनेके लिये दृष्टि दी ॥ १४ ॥

जिस तरह पक्षीका पर गिर जाता है उस तरह खेल राजाकी संबंधिनी विश्पला नामक स्त्रीका पैर युद्धमें कट गया और गिर गया था, आप दोनोंने उसके लोहेकी जांघ बिठलाई और युद्ध शुरु होनेपर शत्रुपर हमला करनेके लिए उसे चलने चलने फिरने योग्य बना दिया ॥ १५ ॥

ऋज्राश्वने अपने पिताकी सौ भेडोंको भेडियेके खानेके लिए सौंप दिया, इस अपराधके कारण उसके पिताने उसे अन्धा बनाया । वैद्य अश्विदेवोंने उसे कभी न बिगडनेवाली आँखें लगा दीं और दृष्टियान् कर दिया ॥ १६ ॥

सूर्यकी पुत्री, घुड दौडसे अन्तिम मर्यादाको पहुँचनेके समान, अश्विदेवोंके रथतक पहुँची और रथपर चढ बैठ गई । सब देवोंने इसका अनुमोदन किया । तब सूर्यकी पुत्रीसे अश्विदेव बडे शोभायुक्त दीखने लगे। प्रजापति सूर्यने राजा सोमको अपनी पुत्री देनेका संकल्प किया । सब देवोंने कहा कि जो घुड दौडमें पहिला होगा, उसे पुत्रीका प्रदान करना । अश्विदेव पहिले आये अतः उनके रथपर सूर्यकी कन्या चढकर बैठ गयी । सब देवोंने इनका अभिनंदन किया और अश्विदेव उस कन्याको प्राप्त करनेसे शोभायमान हुए । इस कथाका सूचक यह मन्त्र है । यह आलंकारिक कथा है । सूर्यकी पुत्री उषाका यह रूपक है । अश्वि तारकाएं पहिले उगती हैं, पश्चात् उषा आती है । अश्वि उषाका इस तरह सम्बन्ध होता है ॥ १७ ॥

१२९० यदयातं दिवोदासाय वर्ति—र्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥
१२९१ रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजै—स्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥
१२९२ परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ॥
१२९३ एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥

अर्थ— [१२९०] हे (हयन्ता) बुलाने योग्य अश्विदेवो ! (यत्) जब तुम (भरद्वाजाय दिवोदासाय) अन्न देनेवाले दिवोदासके (वर्तिः अयातं) घरपर गये, तब (सचनः) सेवनीय (रेवत् रथः) धनसे भरा हुआ रथ (वां उवाह) तुम दोनोंको ले गया और (वृषभः च शिंशुमारः च) बलवान् तथा शत्रुनाशक घोडे उस रथमें (युक्ता) जुते हुए थे ॥ १८ ॥

[१२९१] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (सुक्षत्रं) अच्छी क्षत्रियोचित वीरता (स्वपत्यं रयिं) अच्छी सन्तान युक्त धनसंपदा और (सुवीर्यं आयुः) अच्छी वीरतासे पूर्ण जीवनको (वहन्त) तुम दोनों अपने साथ लेकर (वाजैः) अन्नोंसे (अह्नः त्रिः भागं आदधतीं) दिनके तीनों विभागोंमें यजन करनेवाली (जह्नावीं) जन्हुकी प्रजाके समीप (समनसा) एक विचारसे (उप अयातं) गये थे ॥ १९ ॥

[१२९२] हे (अजरयू नासत्या) जराहीन तथा सत्यके पालक अश्विदेवो ! (विश्वतः परिविष्टं) सभी ओरसे शत्रुद्वारा घेरे हुए (जाहुषं) जाहुष नरेशको (सुगेभिः रजोभिः) सुगम रीतिसे गमन करने योग्य मार्गोंसे (नक्तं ऊहथुः) रात्रीके अवसरपर तुम दोनों दूरके स्थानपर ले गए; और अपने (विभिन्दुना रथेन) विशेष रीतिसे शत्रुका भेदन करनेवाले रथपर चढकर (पर्वतान् वि अयातं) पर्वतोंको भी पार कर तुम दोनों दूर चले गये ॥ २० ॥

[१२९३] हे (वृषणौ अश्विना) बलवान् अश्विदेवो ! (सहस्रा सनये) सहस्रों प्रकारके धनका लाभ करनेके लिए (वशं रणाय) वश नरेशको युद्धके लिए (एकस्या वस्तो आवतं) एक ही दिनमें तुम दोनोंने सुरक्षित बनाया और (पृथु श्रवसः) पृथुश्रवाके (दुच्छुनाः अरातीः) दुःख देनेवाले शत्रुओंको (इन्द्रवन्ता) तुम दोनोंने इन्द्रकी सहायता पाकर (निः अहतं) पूर्ण रूपसे विनष्ट किया ॥ २१ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! अन्नदाता दिवोदासके घरपर तुम दोनों गये थे, तब तुम्हारे रथमें बहुत ही धन भरकर रखा था और उस समय तुम्हारे रथको बलवान् और शत्रुनाशक घोडे जोडे गए थे। यह तुम्हारा ही विलक्षण सामर्थ्य है ॥ १८ ॥

जन्हुकी प्रजा दिनमें तीन बार अन्नोंका प्रदान करती है, तीनों सवनोंमें हविसे यजन करती है, इसलिए तुम दोनों उस प्रजाको उत्तम क्षात्र बल, उत्तम संतति, उत्तम ऐश्वर्य, और उत्तम पराक्रममय दीर्घ जीवन उनके पास जाकर देते हो नेता लोग ऐसा प्रबन्ध करें कि जिससे उनके अनुयायियोंको उत्तम वीरता, उत्तम संतान, श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अनुपम शौर्यके कर्म करनेमें समर्थ दीर्घ जीवन प्राप्त होकर वे विश्व विजयी हों ॥ १९ ॥

अश्विदेव सत्यके पालक और तरुणोंके समान कार्य करनेवाले हैं। जहुष राजा शत्रु सेनासे घेरा गया था उस समय अश्विदेवोंने रात्रीके समय उस राजाको उस घेरेमेंसे चुपचाप उठाया और गुप्त परन्तु सुगम मार्गसे उसको दूरके स्थानपर पहुंचाया। स्वयं अपने शत्रुके घेरेको तोड देनेवाले रथपर चढकर, शत्रुका घेरा तोडकर, वेगसे पर्वतोंके भी पार चले गये। शत्रुके द्वारा घेरे जानेके पश्चात् युक्ति विशेष करके, शत्रुका घेरा तोड कर, अथवा रात्रीके समय पूर्ण रीतिसे गुप्ततापूर्वक चुपचाप, शत्रुके घेरेसे बाहर निकल पडना योग्य है ॥ २० ॥

१२९४ शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभि—र्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥
१२९५ अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥
१२९६ दश रात्रीरशिवेना नव द्यू—नवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्त—मुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥

अर्थ—[१२९५] हे (नासत्या) सत्य युक्त अश्विदेवो ! (आर्चत्कस्य शरस्य) ऋचत्कके पुत्र शर नामवाले उपासकके (पातवे) पीनेके लिए (नीचात् अवतात् चित्) गहरे गढे या कुएमेंसे (वाः) जलको तुम दोनों (उच्चा आचक्रथुः) ऊपर लाये और (जसुरये शयवे) थके माँदे शयु ऋषिके लिए (स्तर्यं गां चित्) वन्ध्या गायको भी (शचिभिः पिप्यथुः) अपनी शक्तियोंसे तुम दोनोंने दुधारु बनाया ॥ २२ ॥

[१२९५] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (स्तुवते अवस्यते) स्तुति करनेवाले और अपनी रक्षाकी चाह करनेवाले (कृष्णियाय ऋजूयते विश्वकाय) कृष्णके पुत्र, सरल मार्गपरसे चलनेवाले विश्वकको (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे उसके विनष्ट हुए (विष्णाप्वं) विष्णाप्व नामक पुत्रको (नष्टं पशुं इव) मानों खोये हुए पशुकी भांति (दर्शनाय ददथुः) दर्शनके लिए तुम दोनोंने दिया ॥ २३ ॥

[१२९६] (अप्सु अन्तः) जलोंके भीतर (दश रात्रीः) दस रातों और (नव द्यून्) नौ दिन तक (अशिवेन अवनद्धं) अमंगलकारी शत्रु द्वारा जकडे हुए अतएव बढे (श्नथितं) पीडित, हुए (उदनि विप्रुतं) जलसे भीगे हुए, तथा (प्रवृक्तं रेभं) व्यथासे भरे हुए ऋषि रेभको, (स्रुवेण सोमं इव) जैसे स्रुवासे सोमरसको ऊपर उठा लेते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों (उत् निन्यथुः) ऊपर लिया लाये ॥ २२ ॥

भावार्थ— बलवान् अश्विदेवोंने वश नामक नरेशको सहस्रों प्रकारके धन प्राप्त हो इसलिए एक ही दिनमें सुरक्षित भी किया, तथा पृथुश्रवा नरेशके दुष्ट शत्रुओंको भी इन्द्रकी सहायता पाकर पूर्ण रूपसे नष्ट किया। नरेशोंको शत्रुके साथ युद्ध करनेकी उत्तम तैयारी करनी चाहिए और आवश्यकता होनेपर मित्र राजाओंसे सहायता भी प्राप्त करनी चाहिए। शत्रुका नाश करना ही सदा मुख्य ध्येय रहना चाहिये ॥ २१ ॥

सत्यके पालक अश्विदेव ऋचत्कके प्यासे पुत्र शरके पीनेके लिए गहरे कुवेसे पानी ऊपर लाये और उसे पीनेके लिये दिया। तथा शयु ऋषि अत्यन्त क्षीण हो गया था, उसको दूध पीनेके लिये मिले इसलिये प्रसूत न होनेवाली गौको प्रसूत होने योग्य बनाया और दुधारू भी बना दिया। गहरे कूवेसे पानी ऊपर निकालनेके लिए विशेष आयोजना करनी चाहिए। क्षीण पुरुषोंको परिपुष्ट करनेके लिए गौका यथेष्ट दूध पीनेके लिए देना चाहिये और गौओंको दुधारू बनाना चाहिये। गौके वंशका सुधार करना चाहिये। तथा जो गौ गर्भ धारण नहीं करती उसको गर्भधारणक्षम बनाना चाहिये ॥ २२ ॥

हे सत्य पालक अश्विदेवो ! सरल मार्गसे जानेवाले कृष्णपुत्र विश्वकका विष्णाप्व नामवाला पुत्र गुम हो गया था, उस पुत्रको ढूंढकर तुमने अपनी शक्तियोंसे प्राप्त किया और उसके पिताके पास पहुंचाया। राष्ट्रमें या नगरोंमें रक्षाका प्रबंध ऐसा उत्तम करना चाहिये कि किसीका पुत्र या कोई संबंधी खो जाय, तो वहांके विभागके प्रबंध कर्ताको खबर देनेसे वे उसकी खोज करके प्राप्त करें और उसको सुरक्षित घर पहुंचा दें। लापता हुआ पशु भी इस तरह प्राप्त होवे ॥ २३ ॥

रेभ नामक ऋषिको दुष्ट असुरोंने पाशरज्जूसे बांधकर जलमें फेंक दिया था। दस रात्री और नौ दिन व्यतीत होनेपर अश्विदेवोंको इसका पता लगा, तब उन्होंने तत्काल ही उस भीगे, त्रस्त हुए और पीडित बने ऋषिको ऊपर निकाल दिया और आरोग्य संपन्न बना दिया ॥ २४ ॥

१२९७ प्र वां दंसांस्यश्विनाववोच--मस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायु--रस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥

[११७]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१२९८ मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गी--रिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥

१२९९ यो वामश्विना मनसो जवीयान् रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१२९७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां दंसांसि) तुम दोनोंके कार्योंके बारेमें इस प्रकार मैं (प्र अवोचं) उत्कृष्ट ढंगसे वर्णन कर चुका हूँ इससे (सुगवः सुवीरः) अच्छी गायों एवं सुन्दर वीर पुत्रोंसे युक्त होकर मैं (अस्य पतिः स्यां) इस राष्ट्रका अधिपति बनूँ (उत) और (दीर्घं आयुः अश्नुवन्) दीर्घ जीवनका उपभोग लेता हुआ (पश्यन्) दर्शन आदि सभी शक्तियोंसे युक्त बनकर (अस्तं इव इत्) मानों निश्चयपूर्वक अपने ही घरमें प्रवेश करनेके समान मैं (जरिमाणं जगम्यां) बुढापेको प्राप्त होऊं ॥ २५ ॥

[११७]

[१२९८] (प्रत्नः होता) पुराने समयसे दान देनेवाला यह पुरुष (मध्वः सोमस्य मदाय) मीठे सोमरसके पीनेसे उत्पन्न हर्षका उपभोग तुम्हें देनेके लिए, हे (नासत्या अश्विना) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (वां आ विवासते) तुम दोनोंकी पूर्ण सेवा करना चाहता है; (गीः विश्रिता) मेरी स्तुतियां तुम्हारे पास पहुंची हैं और (रातिः बर्हिष्मती) तुम्हें देनेका दान यहाँ कुशासनपर रख दिया है, अतएव (वाजैः इषा उपयातं) अपने बलों तथा अन्नोंके साथ तुम दोनों हमारे समीप आओ ॥ १ ॥

[१२९९] हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंका (यः रथः स्वश्वः, मनसः जवीयान्) जो रथ अच्छे घोडोंसे युक्त, तथा मनसे भी वेगवान् है, और जो (विशः आ जिगाति) प्रजाजनोंके पास तुम्हें ले आता है, (येन) जिस रथ पर चढकर (सुकृतः दुरोणं गच्छथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों आते हो, (तेन) उस रथपर बैठकर (अस्मभ्यं वर्तिः यातं) हमारे घर आओ ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! आपके किये कर्मोंका मैंने इस तरह वर्णन किया है। इससे मैं उत्तम गायों और शूर पुत्रोंसे युक्त तथा इस राष्ट्रका अधिपति भी बनना चाहता हूं तथा दीर्घायु होकर, जिस तरह अपने निज घरमें प्रवेश करते हैं, उस तरह मैं बुढापेमें प्रवेश करना चाहता हूं अर्थात् अतिदीर्घ आयुतक जीवित रहना चाहता हूं। शूरवीर और कर्म कुशल पुरुषोंके श्रेष्ठ कर्मोंका इतिहास सुनते हुए, गौ आदि धनों और शूर पुत्रोंको प्राप्त करके, राष्ट्रका शासक बनकर, दीर्घ आयु प्राप्त करनी चाहिये ॥ २५ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! मैं पुरातन समयसे तुम्हारी सेवा करनेवाला तुम्हारा भक्त यहां सोमरस तुम्हें देनेके लिए तैयार करके ले आया हूं। मैंने जो स्तुति की वह तुमने सुनी है। इस आसनपर तुम्हें देनेके लिये यह सोमपात्र भरकर रखा है। अतः तुम दोनों अपने बलों और अन्नोंके साथ मेरे स्थानपर आओ और मेरी सहायता करो ॥ १ ॥

अश्विदेवोंका रथ मनसे भी वेगवान् है उसमें उत्तम शिक्षित घोडे जुडे रहते हैं, वह रथ उन्हें प्रजाजनोंके पास ले जाता है और उसमें बैठकर ही वे सत्कर्म कर्ताके घर जाते रहते हैं, उस रथपर चढकर वे हमारे घर आ जायें ॥ २ ॥

१३०० ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्य- मृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥
१३०१ अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवै- ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभि- र्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥
१३०२ सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखात- मुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥
१३०३ तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१३००] हे (वृषणा नरौ) बलिष्ठ एवं नेता अश्विदेवो ! (पाञ्चजन्यं ऋषिं अत्रिं) पंचविध मानव समाजके हितकर्ता अत्रि ऋषिको (अंहसः ऋबीसात्) कष्टदायक अँधेरे कारागृहसे उसके (गणेन मुञ्चथः) अनुयायियोंके समेत तुम दोनोंने छुडाया, तथा (मिनन्ता) तुम दोनों शत्रुका विनाश करनेवाले हो और (अशिवस्य दस्योः) अहितकारी शत्रुकी (मायाः) कुटिल चालबाजियोंको (अनुपूर्वं चोदयन्ता) एकके पीछे एक हटाते जाते हो ॥ ३ ॥

[१३०१] हे (वृषणा) बलवान् (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (दुरेवैः) दुष्ट कर्मकर्ताओंके द्वारा (अप्सु) जलोंमें (गूळ्हं) फेंके हुए (तं रेभं ऋषिं) उस ऋषि रेभको, जो (विप्रुतं) विशेष शिथिलसा दुर्बल बन चुका था, (दंसोभिः) अपने भैषजके कार्योंसे भलीभाँति (अश्वं न) घोडे जैसा (संरिणीथः) सुदृढ शरीरवाला बना दिया था, (वां) तुम दोनोंके ये (पूर्व्या कृतानि) पहले समयके कार्य (न जूर्यन्ति) कभी जीर्ण नहीं होते हैं। कभी भूले नहीं जाते ॥ ४ ॥

[१३०२] हे (दस्रा अश्विना) शत्रु विनाशक अश्विदेवो ! (तमसि क्षियन्तं) अँधेरेमें छिपे पडे हुए (सूर्यं न) सूर्यके तुल्य (निर्ऋतेः उपस्थे) भूमिपर (सुषुप्वांसं न) सोये हुएके समान, (निखातं शुभे दर्शतं रुक्मं न) जमीनके अन्दर गाडे हुए शोभाके लिये दर्शनीय सुवर्ण भूषणके समान (वन्दनाय) वन्दनके हितके लिये उसे (उत् ऊपथुः) तुम दोनोंने ऊपर उठाया ॥ ५ ॥

[१३०३] हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेताओ ! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (परिज्मन्) चारों ओर विख्यात हुआ कार्य है जो (पज्रियेण कक्षीवता) पज्र कुलमें उत्पन्न कक्षीवान्को (शंस्यं) प्रशंसित करना चाहिये। (यत् वाजिनः अश्वस्य) जो बलिष्ठ घोडेके (शफात्) खुर जैसे बडे पात्रसे (मधूनां शतं कुम्भान्) शहदके सौ घडोंको (जनाय असिञ्चतं) जनताके हितके लिए तुम दोनोंने भरे थे ॥ ६ ॥

भावार्थ— अश्विदेव बलिष्ठ हैं, नेता हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं। उन्होंने पंचजनोंके हितके लिये प्रयत्न करनेवाले अत्रि ऋषिको, कष्टदायक कारागृहसे, उसके अनुयायियोंके समेत, छुडा दिया था और शत्रुकी सब चालबाजियोंको पहिलेसे ही जानकर उनको दूर किया था। नेता लोग बलवान् हों एवं शत्रुका नाश करते रहें। पञ्चजनोंका हित करनेवाले राष्ट्र-सेवकोंको कारावासादि कष्टोंसे छुडाते रहें, अर्थात् उस कष्टके समय उनको यथोचित सहायता देते रहें। शत्रुके कपटोंको और चालबाजियोंको पहचान लें और उनकी युक्तिको असफल बना दें ॥ ३ ॥

दुष्ट असुरोंने रेभ ऋषिको बाँधकर जल प्रवाहमें फेंक दिया था, इस कारण वह अत्यंत दुर्बल बन गया था। उसको औषधादि उपचारोंसे आपने हृष्टपुष्ट बलिष्ठ बना दिया था। ये जो आपके पूर्व समयके कार्य हैं वे कभी भूले नहीं जाते ॥ ४ ॥

शत्रु विनाशक अश्विदेव कुवेमें पडे वन्दनको उसका कल्याण करनेके लिये ऊपर लाये, जिस तरह अन्धेरेमें पडे हुए उदयके पूर्व सूर्यको ऊपर लाते हैं, भूमि पर सोये पुरुषको ऊपर उठाते हैं अथवा सुन्दर सुवर्णके आभूषणको जिस तरह ऊपर धारण करते हैं, इसी तरह वन्दनको गड्ढेसे बाहर निकाला ॥ ५ ॥

अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न पज्र कुलके कक्षीवान् ऋषिके लिये वह तुम्हारा कर्म बडा ही प्रशंसा करने योग्य होता है कि जो तुम दोनों अश्विदेवोंने अपने बलिष्ठ घोडेके खुरके आकारके समान बडे आकारके पात्रसे मधुके सौ घडे सब लोगोंके पीनेके लिये भरकर रखे थे ॥ ६ ॥

१२०४ युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥
१२०५ युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥
१२०६ पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥
१२०७ एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद् वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१२०४] हे (नरा अश्विनौ) नेता अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (कृष्णियाय विश्वकाय) कृष्णके पुत्र विश्वकको (विष्णाप्वं) उसका विष्णाप्व नामक पुत्र (ददथुः) तुम दोनोंने दिया तथा (पितृषदे) पिताके (दुरोणे जूर्यन्त्यै) घरपर ही बूढी होनेवाली (घोषायै चित्) घोषाको भी तुम दोनोंने (पतिं अदत्तं) पति दिया ॥ ७ ॥

[१२०५] हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (श्यावाय युवं) श्यावको तुम दोनोंने (रुशतीं अदत्तं) तेजस्विनी सुन्दर नारी दी, (क्षोणस्य कण्वाय महः) दृष्टिविहीन कण्वको नेत्र ज्योतिका दान किया, (यत्) जो (नार्षदाय श्रवः अधि अधत्तं) नृषद पुत्रको श्रवण शक्तिका दान तुम दोनोंने दिया था (तत् वां) वह तुम दोनोंका (कृतं प्रवाच्यं) कार्य अत्यन्त वर्णन करने योग्य है ॥ ८ ॥

[१२०६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनों (पुरु वर्पांसि दधाना) अनेक रूप धारण करते हो, तुमने (पेदवे) पेदुको (अप्रतीतं) अजेय, (अहिहनं) शत्रुके वधकर्ता, (सहस्रसां श्रवस्यं) हजारों धनोंके दाता और यशस्वी, (तरुत्रं वाजिनं) संरक्षक बलिष्ठ और (आशुं अश्वं) शीघ्रगामी घोडेको (नि ऊहथुः) दिया था ॥ ९ ॥

[१२०७] हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! (वां एतानि) तुम दोनोंके ये कार्य (श्रवस्या) सुनने योग्य हैं । (आंगूषं ब्रह्म) तुम्हारे लिए घोषणीय स्तोत्र बना है, तथा (रोदस्योः सदनं) तुम दोनों द्युलोक एवं भूलोकमें दोनों स्थानोंपर रहते हो । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत् पज्रासः) चूंकि अंगिरस लोग (वां हवन्ते) तुम दोनोंको बुलाते हैं, अतः (इषा आ यातं च) अन्न साथ लिए हुए आओ और (विदुषे वाजं च) विद्वान्को अन्नका दान करो ॥ १० ॥

भावार्थ— कृष्ण पुत्र विश्वकका पुत्र विष्णाप्व गुम हो गया था, उसकी खोज अश्विदेवोंने की और उस पुत्रको पिताके पास पहुंचाया । तथा पिताके घर रोगी और वृद्ध होनेवाली घोषाको रोग मुक्त करके उसको तरुणी युवती बनाकर उसको सुयोग्य पति भी अश्विदेवोंने दिया ॥ ७ ॥

अश्विदेवोंने श्याव ऋषिको सुन्दर स्त्री दी, अन्धे कण्वको उत्तम दृष्टि दी और नृषदपुत्र बधिर था उसको श्रवण करनेकी शक्ति दी । ये कार्य बडे प्रशंसा करने योग्य हैं ॥ ८ ॥

अश्विदेव नाना प्रकारके रूप धारण करके भ्रमण करते हैं । इन्होंने पेदुको ऐसा घोडा दिया कि जो कभी युद्धसे पीछे नहीं हटता, शत्रुका वध करता, हजारों धनोंको प्राप्त करता, संरक्षण करता, बलिष्ठ तथा शीघ्र गतिसे दौडनेवाला था । नाना प्रकारके रूप धारण करके सब खबरें उचित रीतिसे प्राप्त करनी चाहिये । घोडोंको उत्तम शिक्षा देनी चाहिये । घोडा युद्धसे डरके मारे पीछे न हटे, शत्रुका वध अपनी लातोंसे करता जाय, युद्धमें विजय प्राप्त करके धनोंको लूट ले आवे, बलवान् हो, शीघ्रगामी हो । ॥ ९ ॥

१३०८ सुनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥
१३०९ कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥
१३१० युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥

अर्थ— [१३०८] हे (भुरणा) सबके पोषणकर्ता ! (नासत्या अश्विना) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (सूनोः मानेन गृणाना) पुत्रकी प्राप्तिके लिए मानसे स्तुति होनेपर उस (विप्राय वाजं रदन्ता) ज्ञानीके लिये तुमने वह बल दिया और (अगस्त्ये) अगस्त्यके (ब्रह्मणा वावृधानाः) स्तोत्रसे वृद्धिगत होकर तुम दोनोंने (विश्पलां सं अरिणीतं) विश्पलाको भली भाँति चंगा बना दिया ॥ ११ ॥

[१३०९] (दिवः नपाता) द्युको न गिरने देनेवाले (वृषणा) बलवान् ! (शयुत्रा अश्विना) शयुको बचानेवाले अश्विदेवो ! (काव्यस्य सुष्टुतिं) शुक्रकी स्तुति सुनकर तुम दोनों भला (कुह यान्ता) किधर जाते हो ? (दशमे अहन्) दसवें दिन (निखातं हिरण्यस्य कलशं इव) गडे हुए सुवर्ण कुम्भकी तरह (उत् ऊहथुः) उस रेभको तुम दोनोंने ऊपर उठाया । वह भी कहां रहता था ? ॥ १२ ॥

१ दिवः नपाताः =(दिवः न-पाता) द्युलोकको न गिरानेवाले, द्युलोकके आधार (दिवः नपाता) द्युके पडपोते, द्युका पुत्र सूर्य और सूर्यके पुत्र अश्विनौ ।

[१३१०] हे (नासत्या अश्विना) सत्य पालक अश्विदेवो ! (युवं शचीभिः) तुम दोनोंने अपनी शक्तियोंसे (जरन्तं च्यवानं) बूढे च्यवानको (पुनः युवानं चक्रथुः) फिरसे तरुण बनाया । तथा (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्याने (श्रिया सह) अपनी शोभाके साथ (युवोः रथं अवृणीत) तुम दोनोंके रथको चुना ॥ १३ ॥

भावार्थ— अश्विदेव दान देनेवाले हैं । उनके इन दानोंका यह बडा स्तोत्र बन गया है । वे द्युलोकमें तथा भूलोकमें भी रहते हैं । आंगिरस कुलमें उत्पन्न पज्र लोग अश्विदेवोंकी उपासना करते हैं । अतः जब वे आपको बुलावें तब अन्नोंके साथ आना और उनको यह दान दे देना । नेता लोग अनुयायियोंको अन्नादि देकर उचित सहायता करें और अनुयायी उनके कार्योंकी योग्य प्रशंसा करें, उनके कृतज्ञ बनें ॥ १० ॥

अश्विदेव सबका पोषण करते और सत्यपर स्थिर रहते हैं । मानने पुत्र प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की, उस ज्ञानीको पुत्र उत्पन्न होनेका बल दिया, अगस्तिके प्रार्थना करनेपर विश्पलाका टूटा पांव ठीक किया । नेता अपने अनुयायियोंका पोषण करें और सत्य मार्गपर स्थिर रहें । अपने पास ऐसे वैद्य रखें कि जो निर्बलको सबल बनाना और टांग टूटनेपर उसको ठीक करना जानते हों ॥ ११ ॥

अश्विदेव द्युको न गिरानेवाले हैं । उन्होंने शुक्रकी स्तुति कहां रहकर सुनी और पश्चात् वे कहां गये ? कुंवेमें पडे रेभको दसवें दिन ऊपर उठाया और पश्चात् वे कहां गये ? ॥ १२ ॥

अश्विदेवोंने अतिवृद्ध च्यवन ऋषिको फिर तरुण बना दिया था और सूर्यकी पुत्री इनके ही रथपर चढ बैठी थी । आयुर्वेदमें इतनी उन्नति करनी चाहिए कि या तो बुढापा ही न आवे और आये तो उसको दूर करके पुनः तरुण बनानेके प्रयोग सिद्ध स्थितिमें रहें । स्त्रियां स्वयंवरमें अपने पतिको चुन लिया करें ॥ १३ ॥

१३११ युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद् विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥
१३१२ अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥
१३१३ अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥
१३१४ शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७ ॥

अर्थ— [१३११] (युवानां युवं) तुम दोनों तरुण (तुग्राय) तुग्रके लिए तो (पूर्व्येभिः एवैः) पहले किये कर्मोंसे मान्य थे ही पर (पुनः मन्यौ अभवतं) फिर एक बार सम्माननीय बन गये, क्योंकि (युवं) तुम दोनोंने उसके पुत्र (भुज्युं) भुज्युको (अर्णसः समुद्रात्) अथाह समुद्रमेंसे, (विभिः) पक्षी जैसे उडनेवाले यानोंसे तथा (ऋज्रेभिः-अश्वैः) शीघ्रगामी अश्वोंसे (निः ऊहथुः) पूर्ण रीतिसे उठा कर पहुंचाया था ॥ १४ ॥

[१३१२] हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (समुद्रं प्रोळ्हः तौग्र्यः) समुद्र यात्रा करनेके लिए भेजा हुआ तुग्रका पुत्र (अव्यथिः जगन्वान्) किसी प्रकारकी पीडाको न प्राप्त होकर चला गया; (वां अजोहवीत्) जब उसने तुम दोनोंको सहायतार्थ बुलाया, तब (तं) उसे (मनोजवसा सुयुजा रथेन) मनके तुल्य वेगवान् तथा अच्छी तरह जोते हुए रथसे (स्वस्ति निः ऊहथुः) सकुशल तुम दोनोंने पिताके घर पहुंचा दिया ॥ १५ ॥

[१३१३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वर्तिका वां अजोहवीत्) वर्तिकाने तुम दोनोंको बुलाया, (यत्) जब (सीं) उसे (वृकस्य आस्नः) भेडियाके मुँहमेंसे (अमुञ्चतं) तुम दोनोंने छुडाया, (अद्रेः सानु) पहाडके शिखरको (जयुषा वि ययथुः) विजयी रथसे तुम दोनों लाँघकर आगे निकल गए और (विषेण) विषकी सहायतासे (विष्वाचः जातं अहतं) सभी ओर संचार करनेवाले शत्रुके सैनिकोंको तुम दोनोंने मार डाला ॥ १६ ॥

[१३१४] (वृक्ये शतं मेषान्) वृकीको सौ भेडें (मामहानं) प्रदान करनेवाले पुत्रको (अशिवेन पित्रा) अहितकारी पिताने (तमः प्रणीतं) अन्धा बना दिया; हे (अश्विना) अश्विदेवो ! उस (तस्मै ऋज्राश्वे अक्षी) ऋज्राश्वमें दोनों आँखोंको तुम दोनोंने (आ अधत्तं) धर दिया, अर्थात् उस (अन्धाय विचक्षे) अँधेको विशेष दृष्टि मिल जाये इसलिए तुम दोनोंने (ज्योतिः चक्रथुः) उसकी आंखोंका निर्माण किया ॥ १७ ॥

भावार्थ— अश्विदेव तो तुग्र नरेशके द्वारा पूर्व समयमें किये शुभ कर्मोंसे सम्मान देने योग्य थे ही, परन्तु अब जो उन्होंने उसके पुत्र भुज्युको अथाह महासागरसे बचा कर पक्षी जैसे उडनेवाले यानोंसे तथा वेगवान् अश्वोंसे उसके पिताके पास पहुंचाया, इससे तुग्रके लिए अधिक संमानके योग्य बन गये ॥ १४ ॥

तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको समुद्र पारके रेतीले प्रदेशमें रहनेवाले शत्रुपर हमला करनेके लिये भेजा था। वह वहां बिना कष्ट पहुंच गया, परन्तु वहां पहुंचनेपर उसका बेडा टूट गया, उसने अश्विदेवोंको संदेश भेजा। वे मनके समान वेगवाले उत्तम यानोंसे वहां पहुंचे और उस भुज्युको वहांसे उठाकर उनके पिताके घर पहुंचा दिया ॥ १५ ॥

अश्विदेवोंने भेडियेके मुखसे बटेरको छुडाया। वे अपने विजयी रथपर बैठकर पर्वतके शिखरको लांघकर परे पहुंचे, और उसको घेरनेवाले शत्रुके सैनिकोंको विषदिग्ध बाणोंसे मारा। राज प्रबन्धद्वारा केवल मानवोंकी ही नहीं अपितु पशु-पक्षियोंकी भी सुरक्षा करनी चाहिए। रथ ऐसे बनाने चाहिए कि जो पर्वतके शिखरोंको भी लांघकर परे जा सकें। शस्त्र विषसे भरे हों, जो शत्रुपर घाव होनेसे, शत्रु यदि घावसे न मरे, तो विषसे तो अवश्य ही मर जाय ॥ १६ ॥

ऋज्राश्वने वृकीको सौ भेडें खानेके लिये दीं, इसलिए क्रुद्ध होकर पिताने उसको अन्धा बना दिया। अश्विदेवोंने उसकी दोनों आखें ठीक कीं और उनमें अच्छी दृष्टि रख दी ॥ १७ ॥

१३१५ शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥
१३१६ ही वामूतिरश्विना मयोभू-रुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरंधि-रागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥
१३१७ अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ता-मपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥
१३१८ यवं वृकेणाश्विना वपन्ते-षं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तो-रु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

अर्थ— [१३१५] (सा वृकीः) वह वृकी इस (अन्धाय शुनं भरं) अन्धेको सुख मिले इसलिए (इति अह्वयत्) ऐसा पुकारने लगी कि, (वृषणा नरा अश्विना) हे बलिष्ठ नेता अश्विदेवो ! (कनीनः जारः इव) तरुण जार जिस तरह तरुणीको सर्वस्व दे देता है उसी तरह ऋज्राश्वने (शतं एकं च मेषान् चक्षदानः) एकसौ एक भेडें मुझे खानेके लिये दी हैं ॥ १८ ॥

[१३१६] हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् और (वृषणौ अश्विना) बलवान् अश्विदेवो ! (वां ऊतिः) तुम दोनोंकी योजना (मही मयोभूः) बडी सुखकारक है, (उत) और (स्रामं संरिणीथः) लंगडे लूलेको तुम दोनों भलीभाँति ठीक कर देते हो; (अथ युवां इत्) अब तुम दोनोंको ही (पुरंधिः अह्वयत्) एक बुद्धिमती महिलाने पुकारा था कि (अवोभिः आ गच्छतं) अपनी संरक्षण शक्तियोंके साथ तुम दोनों आओ ॥ १९ ॥

[१३१७] हे (दस्रा) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (स्तर्यं) गर्भवती न होनेवाली (विषक्तां अधेनुं गां) दुबली, दूध न देनेवाली गायको (शयवे) शयुका हित करनेके लिए (अपिन्वतं) तुम दोनोंने पुष्ट बना दिया । (युवं) तुम दोनोंने (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (पुरुमित्रस्य योषां) पुरुमित्रकी कन्याको (विमदाय जायां) विमदके लिए पत्नीके रूपमें (नि ऊहथुः) पहुंचा दिया ॥ २० ॥

[१३१८] हे (दस्रा) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (यवं वृकेण वपन्ता) जौको हलसे बोते हुए, (मनुषाय इषं दुहन्ता) मानवके लिए अन्न रसका दोहन करते हुए और (दस्युं बकुरेण धमन्ता) शत्रुको तीक्ष्ण हथियारसे विनष्ट करते हुए (आर्याय उरु ज्योतिः चक्रथुः) तुम दोनों आर्योंके लिए विशाल प्रकाशका स्थान बनाते आये हो ॥ २१ ॥

भावार्थ— जब ऋज्राश्व अन्धा हुआ, तब वह वृकी प्रार्थना करने लगी कि हे बलिष्ठ अश्विदेवो ! जिस तरह तरुण कामुक जार किसी स्त्रीको अपना सब धन देता है उस तरह इसने एक सौ एक भेडें मुझे खानेके लिये दीं जिससे यह अब अन्धा होकर पडा है ॥ १८ ॥

अश्विदेव बडे बुद्धिमान् और बलवान् हैं; उनकी संरक्षक शक्ति बडी सुखदायिनी है । वे लंगडे लूलेको भी ठीक कर देते हैं । रोगग्रस्ता स्त्री भी उनके उपचारोंसे नीरोग होती है । मनुष्य बुद्धिमान् और बलवान् बनें । अपना उत्तम संरक्षण करके अपना सुख बढावें । लंगडे लूलोंको ठीक करने और स्त्रियोंके रोगोंसे उनको मुक्त करनेकी विद्यामें वैद्य अपनी अधिकसे अधिक क्षमता प्राप्त करें ॥ १९ ॥

अश्विदेवोंने गर्भ धारण करनेमें असमर्थ दुर्बल, दूध न देनेवाली गौको, शयुको पुष्ट करनेके लिए, दुधारू बना दिया । पुरुमित्रकी कुमारिकाको विमदके लिए पत्नी रूपसे दिलवा दिया । दुर्बल गौको पुष्ट करने और दुधारू बनानेकी विद्या सिद्ध करनी चाहिए । उत्तम कुमारीका उत्तम पतिके साथ विवाह होवे । पुत्र और पुत्रीमें कुछ दोष हो तो उनको दूर करना योग्य है । निर्दोष स्त्री पुरुषोंका ही समागम होवे ॥ २० ॥

अश्विदेव जौ आदि धानको हलसे बोते हैं; मनुष्योंके लिए अन्नरस देते हैं, शत्रुका तीक्ष्ण शस्त्रसे वध करते हैं और आर्योंके लिए विस्तृत प्रकाश दिखाते हैं । नेता लोग भूमिपर अच्छी तरह हल चलाकर सब प्रकारका धान्य बो दें, जल तथा अन्नरस पर्याप्त प्रमाणमें मिलें ऐसा करें; शत्रुका नाश करनेके लिए तीक्ष्ण शस्त्रके प्रयोग करें और आर्योंको उन्नतिका मार्ग बतानेके लिये विस्तृत प्रकाश बतावें ॥ २१ ॥

१३१९ आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥
१३२० सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्त-मपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३ ॥
१३२१ हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्त-मुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥
१३२२ एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २५ ॥

अर्थ— [१३१९] हे (दस्रौ) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (आथर्वणाय दधीचे) अथर्ववंशोद्भव दधीची ऋषिके लिए (अश्व्यं शिरः) घोडेका शिर (प्रति ऐरयतं) तुम दोनोंने लगा दिया था, तब (स ऋतायन्) उस ऋषिने यज्ञ मार्गका प्रचार करते हुए (वां मधु प्रवोचत्) तुम दोनोंको इस मधु विद्याका उपदेश किया (यत्) और वैसी ही (वां) तुम दोनोंको (अपि कक्ष्यं त्वाष्ट्रं) अवयवोंको जोडनेकी विद्या, जो कि इन्द्रसे प्राप्त हुई थी वह भी, उसने तुमसे कह डाली ॥ २२ ॥

[१३२०] हे (नासत्या कवी अश्विना) सत्य पालक कवी अश्विदेवो ! (सदा) हमेशा (वां) तुम दोनोंसे (सुमतिं आचके) अच्छी बुद्धिकी प्राप्तिकी कामना करता हूँ, (मे) मेरी (विश्वाः धियः) सारी क्रियाओं तथा बुद्धियोंको (प्र अवतं) अच्छी तरह सुरक्षित रखो; (बृहन्तं) बडे भारी (अपत्यसाचं) सन्तान युक्त तथा (श्रुत्यं- रयिं) वर्णनीय धनसंपदाको तुम (अस्मे रराथां) हमें दो ॥ २३ ॥

[१३२१] (सुदानू) हे अच्छे दानी (रराणा) बहुत उदार (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! वध्रीमत्यै- हिरण्यहस्तं पुत्रं अदत्तं) वध्रीमतीको हाथमें सुवर्ण धारण करनेवाले पुत्रका दान तुम दोनोंने किया, (श्यावं त्रिधा- विकस्तं ह) श्याव, जो तीन स्थानोंमें खंडित हो चुका था, उसे (जीवसे) जीवित रहनेके लिए (उत् ऐरयतं) तुम दोनोंने उत्तम रीतिसे उपर उठाया ॥ २४ ॥

[१३२२] हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (वां एतानि) तुम दोनोंके ये (पूर्व्याणि वीर्याणि) पूर्वकालमें किये हुए पराक्रमके कार्य (आयवः प्र अवोचन्) सब मानव वर्णन करते आये हैं, (युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः) तुम दोनोंके लिए इस स्तोत्रकी रचना करते हुए (सुवीरासः) अच्छे वीर बनकर हम (विदथं आ वदेम) सभाओंमें उसका खूब प्रवचन करें ॥ २५ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने अथर्वकुलमें उत्पन्न दधीची ऋषिके घोडेका सिर लगा दिया, तब उसने उनको, यज्ञ मार्गके प्रचारके उद्देश्यसे, मधु विद्याका उपदेश दिया और टूटे अवयवोंको जोडनेकी विद्या भी सिखाई ॥ २२ ॥

हे सत्यके रक्षक कवी अश्विदेवो ! हमें उत्तम बुद्धि तथा उत्तम कर्म करनेकी शक्ति प्रदान करो, हमें उत्तम संतान और श्रेष्ठ प्रकारका धन मिलता रहे । मनुष्यको उत्तम रीतिसे निभानेकी शक्ति, उत्तम संतति तथा श्रेष्ठ धन संपदा प्राप्त करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अश्विदेव उत्तम दान देनेवाले और उत्तम नेता हैं । उन्होंने गर्भवती न होनेवाली स्त्रीको गर्भधारणक्षम बनाया, पश्चात् उसके उत्तम पुत्र हुआ और उस पुत्रके हाथमें सुवर्णालंकार धारण करने योग्य संपदा भी दी । श्याव तीन स्थान पर जखमी होकर पडा था उसको ठीक किया और उसे दीर्घायु भी बना दिया । वैद्यक शास्त्रकी इतनी उन्नती करनी चाहिए कि जिससे वन्ध्या स्त्रीको गर्भधारण करनेमें समर्थ, नपुंसकको वाजीकरण द्वारा पुरुषत्व शक्तिसे युक्त, और उनको सुसंतान प्राप्त करने तथा किसीके घायल होने और अवयवोंके टूटनेपर उनको ठीक करनेमें उत्तम सिद्धि प्राप्त हो ॥ २४ ॥

अश्विदेव बलवान् हैं । इस सूक्तमें वर्णन किये सब उनके पराक्रमके कर्म प्राचीन कालसे सब मानव वर्णन करते आये हैं । हमने यह स्तोत्र उनकी प्रसन्नताके लिए किया है । इससे हम उत्तम वीर बनें, हमें उत्तम वीर संतानें हों और हम युद्धोंमें यशस्वी और सभाओंमें उत्तम प्रभावी वक्ता बनें ॥ २५ ॥

[११८]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३२३ आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥

१३२४ त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

१३२५ प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

[११८]

अर्थ-- [१३२३] हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (वां यः) तुम दोनोंका जो (सुमृळीकः) बहुत सुख देनेवाला (स्ववान्) अपनी शक्तिसे युक्त (मर्त्यस्य मनसः जवीयान्) मानवके मनसे भी अति वेगवान् (वातरंहाः) वायुके तुल्य वेगवाला (श्येनपत्वा) बाज पंछीके समान वेगसे उडनेवाला (त्रिवन्धुरः रथः) तीन स्थानोंमें सुदृढतया बना हुआ रथ है, वह (अर्वाङ् आयातु) हमारे अभिमुख आ जाए ॥ १ ॥

[१३२४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (त्रिचक्रेण) तीन पहियोंसे युक्त, (त्रिवंधुरेण) तीन बंधनोंसे युक्त, (त्रिवृता सुवृता रथेन) तीन बाजूवाले तथा उत्तम रीतिसे आनेवाले रथपर चढकर (अर्वाक् आयातं) हमारे पास आओ । (नः गाः पिन्वतं) हमारी गौएँ दुधारु बनाओ, हमारे (अर्वतः जिन्वतं) घोडोंको गतिमान् करो, तथा (अस्मे वीरं वर्धयतं) हमारे लिए वीर संतानकी वृद्धि करो ॥ २ ॥

[१३२५] हे (दस्रौ) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (सुवृता) सुन्दर ढंगसे बनाये हुए (प्रवत् यामना रथेन) बहुत वेगसे आनेवाले रथसे आकर यहाँ (अद्रेः इमं श्लोकं शृणुतं) सोम कूटनेके पत्थरोंके इस काव्यको तुम दोनों सुनो । (अंग किं) भला क्या (पुराजाः विप्राः) पूर्वकालके ब्राह्मण (वां) तुम दोनोंको (अवर्तिं प्रति) दरिद्रताके मिटानेके लिये (गमिष्ठा आहुः) जानेवाले ही कहते थे न ? ॥ ३ ॥

भावार्थ-- बलवान् अश्विदेवोंका रथ बैठनेके लिए सुखकारक; अपनी बनावटके कारण सुदृढ, मनसे और वायुसे भी वेगवान्, पक्षीके समान आकाशमें उडनेवाला, तीन स्थानोंमें बंधा हुआ है, वह हमारे समीप आ जाय अर्थात् उस रथमें बैठकर वे हमारे पास आयें, कारीगर ऐसे यान बनावें कि जो अन्दर बैठनेके लिए सुख दें, सुदृढांग हों अर्थात् न टूटनेवाले हों, अतिवेगसे चलनेवाले हों, वे पक्षीके समान आकाशमें भी उड सकते हों । ऐसे यानोंमें बैठ कर लोग भ्रमण करें ॥ १ ॥

हे अश्विदेवो ! अपने तीन पहियोंवाले, तीन आसनोंवाले त्रिकोणाकृति उत्तम गतिवाले रथपर चढकर हमारे पास आओ, और हमारी गौओंको दुधारू बनानेकी तथा हमारे घोडोंको सुशिक्षासे शिक्षित करके उत्तम ढंगसे चलनेवाले बनाने की आयोजनाको बताओ तथा हम वीर संतानसे युक्त हों ऐसा भी मार्ग हमें बताओ । विद्वान् नेता अपने अनुयायियोंके घरपर जायें, उनकी गौओंको विशेष दुधारू बनानेके तथा घोडोंको उत्तम शिक्षित करके उत्तम गतिसे चलनेमें समर्थ बनाने के उपाय बतावें, तथा घरके बालबच्चोंको उत्तम वीर बनानेकी सुशिक्षा दें । (राजप्रबन्ध द्वारा ही यह सब होना चाहिए) ॥ २ ॥

शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेव अपने सुन्दर रथमें बैठकर यज्ञके स्थानपर जाते हैं और वहां सोमरस निकालनेके समयके मन्त्र गान सुनते हैं । ये वही अश्विदेव हैं कि, जिनके विषयमें प्राचीन कालके ज्ञानी बार बार कहते आये हैं कि, ' ये दारिद्र्य और दुःखका नाश करनेके लिये ही भ्रमण करते हैं । ' नेता शत्रुओंका नाश करें । शुभ कर्मोंके स्थानोंमें जायें और उन कर्मोंके करनेवालोंकी सहायता दें । अनुयायियोंके दारिद्र्य, दुःख, कष्ट, रोग, तथा न्यूनताको दूर करनेका उचित प्रबंध करें ॥ ३ ॥

१३२६ आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥
१३२७ आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥
१३२८ उद् वन्दनमैरतं दंसनाभि-रुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥
१३२९ युवमत्रयेऽवनीताय तप्त-मूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

अर्थ— [१३२६] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो! (ये) जो (गृध्राः न) गिद्धोंकी तरह (दिव्यासः) आकाशमें संचार करनेवाले (अप्तुराः) वेगसे जानेहारे पक्षी (प्रयः अभि) यज्ञ स्थानके प्रति तुम दोनोंको (वहन्ति) पहुंचाते हैं। (रथे युक्तासः) वे यानमें जोते हुए (आशवः) शीघ्रगामी, (श्येनासः पतङ्गाः वां) श्येन पक्षी तुम दोनोंको इधर (आवहन्तु) ले आवें ॥ ४ ॥

[१३२७] हे (नरा) नेताओ! (जुष्ट्वी युवतिः) आनन्दित हुई युवती (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (वां अत्र रथं) तुम दोनोंके इस रथपर (आतिष्ठत्) चढो। इस रथमें जोडे हुए (अश्वाः) घोडे (अरुषाः) लाल रंगवाले (वपुषः) शरीरके आकारसे (वयः पतङ्गाः) पक्षी जैसे उडनेवाले (वां अभीके परिवहन्तु) तुम दोनोंको यज्ञस्थानके समीप ले आयें ॥ ५ ॥

[१३२८] हे (वृषणा दस्रा) बलिष्ठ तथा शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो! (दंसनाभिः) अपने कौशल्यपूर्ण कर्मोंसे (वन्दनं उत् ऐरतं) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठाया था; (रेभं शचीभिः उत्) रेभको अपनी शक्तियोंसे तुमने ऊपर उठा लिया था; (तौग्र्यं) तुग्रके पुत्रको (समुद्रात् निः पारयथः) समुद्रमेंसे ठीक प्रकारसे पार कराया था; तथा (च्यवानं पुनः) च्यवानको फिरसे (युवानं चक्रथुः) युवा बना डाला था ॥ ६ ॥

[१३२९] हे (अश्विना) अश्विदेवो! (अवनीताय अत्रये) कारावासमें नीचे रखे गए अत्रिके लिए (युवं तप्तं) तुम दोनोंने गर्म कारागृहको शान्त किया और उसको (ओमानं ऊर्जं अधत्तं) सुखदायक बलवर्धक अन्न दिया (सुष्टुतिं जुजुषाणा) अच्छी स्तुतिको आदरपूर्वक ग्रहण करते हुए (युवं) तुम दोनोंने (कण्वाय अपिरिप्ताय) कण्वके लिए जो देखनेमें असमर्थ हो गया था, उसकी (चक्षुः प्रति अधत्तं) आँखोंके लिए प्रकाश बताया ॥ ७ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंके यानको अतिवेगसे जानेवाले श्येन पक्षी जोडे जाते थे। वे त्वरासे जानेवाले, गीधके समान पक्षी इनको यज्ञ स्थानमें ले जाते थे ॥ ४ ॥

अश्विदेव धर्मके नेता हैं, उनपर प्रीति करनेवाली सूर्यकी तरुणी कन्या उनके रथपर चढकर बैठी है। इस रथको जो घोडे जोते हैं, वे शरीरके आकारसे पक्षी जैसे आकाशमें उडनेवाले हैं, वे उस रथको इस यज्ञके समीप ले आवें ॥ ५ ॥

अश्विदेव बलिष्ठ हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं। उन्होंने अपने अद्भुत सामर्थ्यसे वन्दनको तथा रेभको कुंवेसे निकाला, तुग्रके पुत्र भुज्युको समुद्रमेंसे उठाकर घर पहुंचाया था और वृद्ध च्यवानको पुनः तरुण बनाया था ॥ ६ ॥

अश्विदेवोंने कारागृहके तलघरमें रखे अत्रि ऋषिको सुख देनेके लिए जलसे आगको शान्त किया, और उसको पुष्टिकारक तथा शक्तिवर्धक अन्न दिया। इसी तरह अन्धेरेमें रखे कण्वकी आंखोंको मार्ग बतानेके लिए उन्होंने प्रकाश दिखाया। इस कारण अश्विदेवोंकी सब प्रकारसे प्रशंसा होती है ॥ ७ ॥

१३३० युवं धेनुं शयवे नाधितायाऽपिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥

१३३१ युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

१३३२ ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

१३३३ आ श्येनस्य जवसा नूतनेनाऽस्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३३०) हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (पूर्व्याय नाधिताय शयवे) पूर्व समयमें याचना करनेवाले शयुके लिए (धेनुं अपिन्वतं) गायको पुष्ट किया, (वर्तिकां अंहसः) बटेरको कष्टसे (निः अमुंचतं) पूर्णतया छुडाया और (विश्पलाया जङ्घां प्रति अधत्तं) विश्पलाकी टाँग ठीक प्रकारसे बिठला दी ॥ ८ ॥

[१३३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (अहिहनं) अहिका नाश करनेहारे; (श्वेतं इन्द्रजूतं) सफेद रँगवाले, इन्द्रके द्वारा प्रेरित, (वीडु अंगं उग्रं) दृढ एवं बलिष्ठ अंगवाले, (अर्यः अभिभूतिं) शत्रुके पराभवकर्ता (जोहूत्रं) बार बार संग्राममें बुलाये जाने योग्य (सहस्रसां) हजार प्रकारका दान देनेवाले (वृषणं अश्वं) बलवान् घोडेको (पेदवे अदत्तं) पेदुके लिये दिया था ॥ ९ ॥

[१३३२] हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (सुजाता ता वां) अच्छे कुलमें उत्पन्न विख्यात तुम दोनोंकी (नाधमानाः) सहायतार्थ प्रार्थना करते हुए हम (सु-अवसे हवामहे) अच्छी रक्षाके लिये तुम्हें बुलाते हैं। (गिरः जुषाणा) हमारे भाषणोंको आदरपूर्वक सुनते हुए तुम दोनों (वसुमता रथेन) धन दौलतसे भरे हुए अपने रथपरसे (नः) हमारे समीप हमारी (सुविताय उप आयातं) भलाईके लिए आओ ॥ १० ॥

[१३३३] हे (नासत्या) सत्यके पालक देवो ! (सजोषाः) एक साथ कार्य करनेवाले तुम दोनों (श्येनस्य नूतनेन जवसा) श्येन पक्षीके नये वेगसे (अस्मे आयातं) हमारे पास आओ, हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (शश्वत्तमायाः उषसः व्युष्टौ) शाश्वत रहनेवाली उषाके प्रादुर्भाव हो चुकनेपर (रातहव्यः) हविर्भागको देकर मैं (वां हवे हि) तुम दोनोंको बुला रहा हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने प्रार्थना करनेवाले शयुके लिये गौको दुधारू बना दिया, बटेरको भेडियेके मुखसे छुडाया और विश्पलाकी टूटी टाँगके स्थानपर लोहे की टांग लगा दी ॥ ८ ॥

अश्विदेवोंने पेदुके लिए एक सफेद घोडा दिया था, जो शत्रुका वध करता था, इन्द्रने उसको सिखाया था, बडा सुदृढ अंगवाला था, देखनेमें उग्र था, शत्रुका पराभव करता था, युद्धमें बडा उपयोगी था और सहस्रों प्रकारके धन जीतता था ॥ ९ ॥

अश्विदेव उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं। वे हमारी सहयता करें, इसलिये हम उनकी प्रार्थना करते हैं, हमारा भाषण सुनते ही वे अपने रथमें उत्तम धन रखकर हमारे पास आयँ, और हमारी सहायता तथा सुरक्षा करें ॥ १० ॥

हे सत्यके पालनकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनों एक विचारसे अपने श्येन पक्षीको अधिक वेगसे दौडाते हुए मेरे पास आओ। बहुत देरतक टिकनेवाली उषाका उदय होते ही मैं हवि तैयार करके तुम दोनोंको बुला रहा हूं। तुम आओ और हवि लो ॥ ११ ॥

[११९]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती ।)

१३३४ आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥
१३३५ ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥
१३३६ सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥

[११९]

अर्थ— [१३३४] (वां) तुम दोनोंके (पुरुमायं मनोजुवं) अनेक कुशल कारीगरीसे पूर्ण, मनके तुल्य वेगवान, (यज्ञियं जीराश्वं) पूजनीय तथा वेगवान घोडोंसे युक्त, (सहस्र-केतुं) अनेक झंडेवाले (वरिवोधां) धनको धारण करनेवाले (शतद्वसुं) सौ ढंगके धन रखनेवाले, (श्रुष्टीवानं रथं) शीघ्र गतिसे युक्त रथको (प्रयः अभि) हविष्यान्नके प्रति (जीवसे आहुवे) जीवनको दीर्घ बनानेके लिए मैं बुलाता हूं ॥ १ ॥

[१३३५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अस्य प्रयामनि) इस रथके आगे बढनेपर (धीतिः ऊर्ध्वा शस्मन् अधायि) हमारी बुद्धि स्तुति कार्यके उच्चपदपर अधिष्ठित हो चुकी है, स्तुति करने लगी है (दिशः आ समयन्ते) चारों दिशाओंके लोग इकट्ठे होते हैं, (घर्मं स्वदामि) घृत आदि हविको स्वादु बना देता हूँ (ऊतयः प्रतियन्ति) रक्षाकी आयोजनाएँ फैल रही हैं, (वां रथं) तुम दोनोंके रथपर (ऊर्जानी आरुहत्) सूर्यकी तेजस्वी कन्या चढकर बैठी है ॥ २ ॥

[१३३६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत् शुभे रणे) जब लोककल्याणके लिए किये जानेवाले युद्धमें (अमिताः जायवः) असंख्य जयिष्णु (मखाः) महनीय वीरलोग (मिथः पस्पृधानासः) परस्पर स्पर्धा करते हुए (सं अग्मत) इकट्ठे हो जाते हैं, तब (युवोः रथः अह) तुम दोनोंका रथ भी (प्रवणे चेकिते) निम्न भागसे उतरता हुआ दीखता है, (यत्) जिसमें तुम (वरं सूरिं आवहथः) श्रेष्ठ धन ज्ञानीके पास ले आते हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंके कौशल्य युक्त विविध कर्मोंसे निर्माण हुए, वेगवान्, पवित्र, चपल घोडोंसे युक्त, अनेक ध्वजवाले, सुख देनेवाले, धनको धारण करनेवाले शीघ्रगामी रथको अपने यज्ञके प्रति मैं बुलाता हूं। वे यहां आयें और हमें दीर्घआयु दें ॥ १ ॥

प्रभात होते ही हमारी बुद्धि अश्विदेवोंकी प्रशंसा करने लगी है, सब दिशाओंके लोग इसमें शामिल हुए हैं। अब मैं घृतादि पदार्थ स्वादु बनाकर यज्ञके लिए तैयार रखता हूं। यज्ञसे होनेवाली सब प्रकारकी संरक्षण शक्तियाँ चारों ओर अपना प्रभाव दिखा रही हैं। अश्विदेवोंके रथपर सूर्यकी पुत्री चढकर बैठी है। प्रभात समयमें सब लोग तैयार रहें। चारों ओरके लोग भी आकर शामिल हों। घृतादि पदार्थ तैयार किये जायँ। सब लोग शुभ कर्ममें दत्तचित्त हों। हरएक सबकी सुरक्षा करनेके लिये कटिबद्ध हो। सब सुरक्षित रहें ॥ २ ॥

जनताका हित करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें जब अनेक जयिष्णु वीर परस्पर स्पर्धा करते हुए इकट्ठे होते हैं और लडने लगते हैं तब अश्विदेवोंका रथ शनैः शनैः नीचे आता हुआ दीखता है। इस रथमें वे विद्वान् याजकोंको देनेके लिये उत्तम प्रकारके धन अपने साथ ले आते हैं ॥ ३ ॥

१३३७ युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥

१३३८ युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥ ५ ॥

१३३९ युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥

१३४० युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१३३७] हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (स्वयुक्तिभिः) अपनी निजी युक्तियोंसे (विभिः) पक्षीसदृश उडनेवाले यानोंसे (भुरमाणं गतं) भ्रान्तिकी अवस्थाको पहुंचे (भुज्युं) तुग्रके पुत्र भुज्युको (पितृभ्यः निवहन्ता) मातापिताओंके निकट पहुँचाते समय (विजेन्यं वर्तिः आयासिष्टं) सुदूरवर्ती स्थानमें विद्यमान उसके घरतक तुम दोनों चले गये थे । (वां अवः) तुम दोनोंका वह संरक्षण (दिवोदासाय महि चेति) दिवोदासके लिये भी बडा ही महत्त्वपूर्ण था ॥ ४ ॥

[१३३८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवोः वपुषे) तुम दोनोंकी शोभा बढानेके लिए (युवायुजं रथं) तुम दोनोंके द्वारा जोते हुए रथको तथा, (अस्य शर्ध्यं) इसके बलको तुम्हारी (वाणी येमतुः) वाणी नियंत्रित कर चुकी है (सख्याय जग्मुषी) मित्रताकी इच्छा करनेवाली (जेन्या योषा) विजयसे प्राप्त करनेयोग्य स्त्री (वां पतित्वं आ) तुम दोनोंसे पतित्वकी कामना करनेवाली (युवां पती अवृणीत) तुम दोनोंको पतिके रूपमें स्वीकार कर चुकी है ॥५॥

[१३३९] (युवं) तुम दोनोंने (परिषूतेः) संकटसे (रेभं उरुष्यथः) रेभको बचाया, (अत्रये) अत्रिके लिए (परितप्तं घर्मं) अत्यन्त गर्म स्थानको (हिमेन) बर्फसे ठंडा बनाया, (शयोः गवि) शयुकी गौमें (युवं अवसं पिप्यथुः) तुम दोनोंने संरक्षणोपयोगी दूध पर्याप्त मात्रामें बढाया और (दीर्घेण आयुषा) दीर्घ जीवन देकर (वन्दनः तारि) वन्दनका तुमने तारण किया ॥ ६ ॥

[१३४०] हे (दस्रा करणा) शत्रुविनाशकर्ता एवं कार्य कुशल अश्विदेवो ! (जरण्यया निर्ऋतं वन्दनं) बुढापेसे पूर्णतया ग्रस्त वन्दनको (युवं) तुम दोनोंने (रथं न, समिन्वथः) जिस तरह पुराना रथ दुरुस्त करके नया सा बना देते हैं, उसीतरह, तरुण बना दिया । (विपन्यया) स्तुतिसे प्रसन्न होकर (विप्रं क्षेत्रात् आ जनथः) ज्ञानीको क्षेत्रसे उत्पन्न किया, अतः (वा दंसना) तुम दोनोंके ये कार्य (अत्र विधते) यहां कार्यकर्ताके लिए (प्र भुवत्) बडे प्रभावशाली हुए हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने अपनी निजी विलक्षण आयोजनाओंसे परिपूर्ण पक्षी जैसे उडनेवाले अपने यानोंमें, जीवितके विषयमें संदेहकी अवस्थामें पहुंचे तुग्रपुत्र भुज्युको बिठलाकर उसके मातापिताके अतिदूरवर्ती घर पहुंचा दिया, इसी तरह दिवोदास राजाको जो सहायता दी वह सारी उनके बडे ही महनीय कार्योंमें गिनने योग्य है ॥ ४ ॥

अश्विदेवोंने स्वयं अपना रथ जोता था, उस पर चढकर बैठनेसे वे बडे सुशोभित दीखने लगे, केवल शब्दोंके इशारेसे ही वे रथको चलाने लगे। पहुंचनेके स्थान पर सब देवोंसे पहिले वे पहुंचे। इसलिये सूर्यकी पुत्रीने स्वयंवरमें उनको पति रूपसे स्वीकार किया ॥ ५ ॥

अश्विदेवोंने रेभको संकटसे बचाया, अत्रिके कारावासकी गर्मीको हिम वृष्टिसे शान्त किया, शयुके लिये उसकी गौको दुधारू बना दिया और वन्दनको दीर्घायु किया ॥ ६ ॥

शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवोंने, जिस तरह बढई पुराना रथ दुरुस्त कर नया सा बना देता है, उसी तरह अत्यंत जीर्ण वन्दनको तरुण बनाया स्तुतिसे प्रसन्न होकर उस विप्रको, जैसे भूमिसे वृक्ष नया उगता है वैसे ही तरुण सा बना दिया। ये उनके कार्य यहांके कार्यकर्ताओंको बडे प्रभावशाली प्रतीत हुए हैं ॥ ७ ॥

१३४१ अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥
१३४२ उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥
१३४३ युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० ॥

[१२०]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- अश्विनौ (१२ दुःस्वप्ननाशनम्) ।
छन्दः- १ गायत्री, २ ककुप्, ३ का-विराट्, ४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-बृहती,
८ कृतिः, ९ विराट्, १०-१२ गायत्री ।)

१३४४ का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः । कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥

अर्थ— [१३४१] (स्वस्य पितुः त्यजसा) अपने ही तुग्र नामक पिताके त्याग देनेसे (नि बाधितं) पीडित हुए अतः (कृपमाणं) प्रार्थना करनेवाले भुज्युके समीप (परावति अगच्छतं) दूरवर्ती देशमें भी तुम दोनों चले गये थे (युवोः अह) तुम दोनोंकी ही ये (ऊतीः) संरक्षण योजनाएँ (इतः स्वर्वतीः) इस तरह तेजसे युक्त और (अभीके) तुरन्त (चित्राः अभिष्टयः अभवन्) अद्भुत अभिलषणीय हो चुकी हैं ॥ ८ ॥

[१३४२] जिस तरह (स्या मक्षिका) वह मधुमक्खी (वां मधुमत् अरपत्) तुम दोनोंके लिए मधुरस्वरसे कूजन करती है; (उत) उसी तरह (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (औशिजः हुवन्यति) उशिक्का पुत्र कक्षीवान तुम्हें बुलाता है । जब (दधीचः मनः) दध्यङ्का मन (युवं आ विवासथः) तुम दोनोंने सेवासे अपनी ओर आकर्षित कर लिया (अथ) तब (अश्व्यं शिरः वां प्रति अवदत्) घोडेके बनाये हुए सिरने तुम दोनोंको उपदेश दिया ॥ ९ ॥

[१३४३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (पुरुवारं अभिद्युं) बहुतों द्वारा स्वीकार करने योग्य, दीप्तिमान् (स्पृधां तरुतारं) स्पर्धा करनेवालोंको पार ले चलनेवाले, (शर्यैः पृतनासु दुस्तरं) योद्धाओंसे लडाइयोंमें अजेय, (इन्द्रं इव चर्षणीसहं) इन्द्रके समान शत्रुओंके पराभवकर्ता; (चर्कृत्यं श्वेतं) अत्यन्त कार्यशील और सफेद रँगवाले घोडेको (पेदवे दुवस्यथः) पेदु नरेशके लिए समर्पित करते हो ॥ १० ॥

[१२०]

[१३४४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंको (का होत्रा राधत्) किस तरहकी स्तुति प्रसन्न कर सकती है ? (उभयोः वां जोषे कः) तुम दोनोंको संतुष्ट करनेमें कौन सफल होगा ? (अप्रचेताः कथा विधाति) अज्ञानी तुम्हारी उपासना किस तरह करे ? ॥ १ ॥

भावार्थ— तुग्र नरेशने अपने पुत्र भुज्युको समुद्रमें नौकाओंमें बिठलाकर दूर देशमें भेज दिया था । वहां उसको कष्ट होने लगे, तब उसने प्रार्थना की, उसे सुनकर दोनों अश्विदेव वहां गये और उसको बचाया । ऐसी तुम्हारी संरक्षणकी आयोजनाएँ बडी अद्भुत तेजस्वी और सबके लिए वाञ्छनीय हैं ॥ ८ ॥

मधुमक्षिका जैसे मीठे स्वरसे गुंजन करती है, उसी तरह सोमपानके आनन्दमें उशिक्का पुत्र कक्षीवान मधुर स्वरसे तुम्हें अपनी सुरक्षाके लिये बुलाता है । दधीची ऋषिका मन तुमने अपनी सेवासे अपनी ओर आकर्षित किया था, पश्चात् तुमने उनके घोडेका सिर लगाया और उसके बाद उन्होंने तुम्हें मधुविद्याका उपदेश किया ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंने प्रशंसनीय, तेजस्वी, युद्धमें विजयी, शत्रु वीरोंसे अजिक्य, इन्द्र जैसे युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला, चपल श्वेत घोडा पेदु नरेशको दिया था ॥ १० ॥

इन अश्विनौको किस तरहकी स्तुति प्रसन्न कर सकती है, इन्हें सन्तुष्ट करनेमें कौन सफल होता है और जो कोई भी विधि नहीं जानता है, ऐसा अज्ञानी मनुष्य इन अश्विनौकी किस तरह उपासना करे, यह सब जाननेका प्रयत्न करना चाहिए ॥ १ ॥

१३४५ विद्वांसाविद् दुरः पृच्छे—दविद्वानित्थापरो अचेताः । नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥
१३४६ ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद् दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥
१३४७ वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान् वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥
१३४८ प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रैषयुर्न विद्वान् ॥५॥
१३४९ श्रुतं गायत्रं तकवानस्या—हं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् । आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१३४५] (अविद्वान्) अज्ञानी और (अपरः अप्रचेताः) दूसरा अप्रबुद्ध ये दोनों (इत्था) इस तरह (विद्वांसौ इत्) विद्वान् अश्विदेवोंसे ही (दुरः पृच्छेत्) मार्ग पूछ लिया करें । क्या कभी (मर्ते) मानवके विषयमें (अ-क्रौ) न करनेकी बात (नु चित् नु) वे कभी करेंगे ? [कभी नहीं ।] ॥ २ ॥

[१३४६] (ता वां) उन विख्यात तुम दोनों (विद्वांसा हवामहे) विद्वानोंको हम बुलाते हैं, (अद्य नः) आज हमें (ता विद्वांसा) वे दोनों विद्वान् अश्विदेव (मन्म वोचेतं) मननके योग्य उपदेश दें; (युवाकुः) तुम दोनोंके संपर्ककी इच्छा करता हुआ यह मानव (दयमानः प्र अर्चत्) हवि अर्पण करता हुआ तुम्हारी पूजा करता है ॥ ३ ॥

[१३४७] हे (दस्रा) शत्रुके विनाशकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनोंसे (वि पृच्छामि) मैं विशेष रूपसे पूछना चाहता हूं । (अद्भुतस्य वषट्कृतस्य सह्यसः च) विचित्र बल देनेहारे, वषट्कारपूर्वक किये हुए तथा बलके उत्पादक इस सोमरसका (युवं पातं) तुम दोनों सेवन करो, (नः रभ्यसः च) और हमें बडे कार्य करनेमें समर्थ बनाओ ॥ ४ ॥

[१३४८] (या) जो वाणी (घोषे भृगवाणे न) घोषाके पुत्र तथा भृगवाणऋषिमें (प्र शोभे) अत्यन्त सुशोभित हो रही है, और (विद्वान् इषयुः) ज्ञानी और अन्नको चाहनेवाले (पज्रियः न) अंगिरस कुलमें उत्पन्न ऋषिके समान (यया वाचा) जिस वाणीसे यह (वां यजति) तुम दोनोंकी पूजा करता है, वह वाणी मुझमें रहे ॥ ५ ॥

[१३४९] हे (शुभस्पती) शुभके अधिपति अश्विदेवो ! (तकवानस्य गायत्रं श्रुतं) प्रगति करनेवाले ऋषिका स्तोत्र तुम दोनोंने सुन लिया, (अक्षी आदन्) तुम दोनोंकी दी हुई नेत्र शक्तिका ग्रहण करता हुआ (अहं) मैं ही (वां चित् हि) तुम दोनोंकी यह (रिरेभ) प्रशंसा कर रहा हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—अज्ञानी अथवा अप्रबुद्ध ये दोनों अश्विदेवोंसे अपनी उन्नतिका मार्ग पूछ लिया करें, क्योंकि वे मनुष्यके लिये कुछ नहीं करेंगे ऐसा कुछ भी नहीं है अर्थात् मनुष्यके हितके लिए जितना भी कुछ हो सकता है, ये अश्विनौ अवश्य करते हैं ॥ २ ॥

हम सहायतार्थ विद्वान् अश्विदेवोंको बुलाते हैं । वे आकर हमें योग्य उपदेश दें । उनकी मित्रताकी इच्छा करनेवाला, मैं अन्नको प्रदान करता हुआ, उनकी पूजा करता हूँ । मनुष्य विद्वानोंकी सहायता लेवे । वे उनको योग्य मार्गका उपदेश करें । उसके बदले मनुष्य उन विद्वानोंका बडा आदर करे । इस तरह दोनों परस्परकी सहायता करके उन्नतिको प्राप्त करें ॥ ३ ॥

हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो । मेरी प्रार्थना तुमसे ही है, किसी अन्यसे नहीं । तुम्हीं इस मेरे तैयार किये सोमरसको स्वीकार करो और मुझे बडे कार्य करनेमें समर्थ बनाओ । राष्ट्रमें शिक्षाका ऐसा प्रबंध करना चाहिए कि जिससे बडे बडे कार्य करनेवाले महापुरुष निर्माण हों ॥ ४ ॥

घोषा ऋषिका पुत्र, भृगु ऋषि और पज्र कुलमें उत्पन्न अंगिरा ऋषि जिस तरहकी स्तुति करते रहे, उस तरहकी वर्णन शैली मेरी वाणीमें हो ॥ ५ ॥

हे शुभकारी अश्विदेवो ! प्रगति करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषिने यह गायत्र छन्दका सामगान किया था, वह आपने सुन लिया है । तुमने उसको दृष्टी दी, इसी तरह मैं भी तुम्हारा गुणगान करता हूं, मुझे भी शक्तिसंपन्न करो ॥ ६ ॥

१३५० युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥
१३५१ मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥
१३५२ दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥
१३५३ अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥
१३५४ अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३५०] हे (वसू) सबको बसानेवाले अश्विदेवो! (युवं हि) तुम दोनों सचमुच (महः रन् आस्तं) बड़ा भारी दान देते रहते हो और (यद्) जिसे (युवं) तुम दोनों (निः अततंसतं वा) चाहे तब पूर्णतया हटा भी लेते हो; (ता) ऐसे प्रसिद्ध तुम दोनों (नः सुगोपा स्यातं) हमारी अच्छी रक्षा करनेवाले बनो, (नः अघायोः वृकात् पातं) हमें पापी और भेडियेके तुल्य क्रोधीसे बचाओ ॥ ७ ॥

[१३५१] (कस्मै अमित्रिणे) किसी भी शत्रुके (अभि नः मा धातं) सम्मुख हमें न रखो, (नः) हमारी (स्तनाभुजः धेनवः) स्तनके दूधसे भरण पोषण करने हारी गौएं (अशिश्वीः) बछडोंसे वियुक्त होकर (गृहेभ्यः मा कुत्र गुः) घरोंसे कहीं न निकल जाएँ ॥ ८ ॥

[१३५२] (युवाकु) तुमसे संपर्क रखनेकी इच्छा करनेवाले लोग (मित्रधितये दुहीयन्) मित्रोंके भरण पोषणार्थ तुम दोनोंसे पर्याप्त संपत्तिका दोहन करते हैं, इसलिए (वाजवत्यै राये च धेनुमत्यै इषे च) बल युक्त धन और गोधन युक्त अन्न (नः मिमीतं) हमें दो ॥ ९ ॥

[१३५३] (वाजिनीवतोः) सेनासे युक्त अश्विदेवोंके (अनश्वं रथं) घोडोंके विना चलनेवाले रथको (असनं) मैं प्राप्त कर चुका हूं, (अहं) मैं (तेन भूरि चाकन) उससे बहुतसा यश प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं ॥ १० ॥

[१३५४] (अयं सुखः रथः) यह सुखप्रद रथ (समहः) धनसे युक्त है, (सोमपेयं) सोम पीनेके स्थानको (जनान् अनु ऊह्याते) याजक लोगोंके पास अश्विदेव इसपर बैठकर जाते हैं (मा तनु) वह मेरी वृद्धि करे। वह मेरा यश फैलावे ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो! तुम दोनों किसीको बडा दान देते भी हो और किसीसे धन हटा भी लेते हो। ऐसे आप दोनों हमारे रक्षक बनो और पापी तथा क्रोधीसे हमें बचाओ। योग्य मनुष्योंको दान देना चाहिए, तथा दुष्टोंको दण्ड भी देना चाहिए। लोगोंकी सुरक्षा करनी चाहिए। पापी और क्रोधियोंसे जनताको बचाना चाहिए ॥ ७ ॥

किसी भी प्रकारके शत्रुके सामने हमें न रखो। गौएँ हमारा पोषण अपने दूधसे करती हैं, अतः वे हमारे घरोंसे दूर न जायें। सदा हमारे घरमें ही रहें ॥ ८ ॥

हम तुम्हारे साथ अनुयायी होकर रहनेकी इच्छा करते हैं, अतः जिस तरह मित्रकी सहायता करते हैं, उसी तरह हमें बलवर्धक धन और गौओंसे प्राप्त होनेवाला दूध पर्याप्त परिमाणमें मिलता रहे ऐसा प्रबन्ध करो। राष्ट्रमें प्रजाओंको उत्तम धन और बलवर्धक और पोषक अन्न अर्थात् गायका दूध मिलता रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंसे घोडोंके विना चलनेवाला रथ मुझे मिला है, इससे बहुतसा यश मिलनेकी मुझे आशा है ॥ १० ॥

अश्विदेव सोमपानके स्थानके पास अपने सुखदायी रथमें बैठकर जाते हैं। उस रथमें बडा धन रहता है। वह रथ मेरा यश बढानेवाला हो ॥ ११ ॥

१३५५ अध स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥

[१२१]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- इन्द्रो विश्वे देवा वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३५६ कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद् गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्यो-रु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥

१३५७ स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषाय-दृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

अर्थ— [१३५५] (स्वप्नस्य) स्वप्नशीलको (अध) और (अभुञ्जतः रेवतः च) भोजन न देनेवाले धनिकको देखकर (निर्विदे) मुझे खिन्नता होती है । क्योंकि (ता उभा) वे दोनोंही (बस्रि नश्यतः) शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

१ स्वप्नस्य अभुञ्जतः उभा नश्यतः— सुस्तीमें पडे रहनेवाले आलसी और भोजन न देनेवाले मनुष्य नष्ट हो जाते हैं ।

[१२१]

[१३५६] (नॄन् पात्रं) मनुष्योंकी रक्षा करनेवाला इन्द्र (तुरण्यन्) शीघ्रता करते हुए (देवयतां अंगिरसां) देव बननेकी इच्छा करनेवाले अंगिरसोंकी (गिरः) स्तुतियोंको (इत्था कत् श्रवत्) इस प्रकार कब सुनेगा ? (यत्) जब सुन लेता है, तब (हर्म्यस्य विशः) घरमें रहनेवाली प्रजाओंके (अध्वरे उरु क्रंसते) यज्ञमें शीघ्रतासे जाता है और (यजत्रः आनट्) पूज्य होकर वह इन्द्र यज्ञको व्याप्त कर लेता है ॥ १ ॥

[१३५७] (स द्यां स्तम्भीत् ह) निश्चयसे उसी सूर्यरूपी इन्द्रने द्युलोकको थाम रखा है । (गोः नरः ऋभुः) किरणोंको प्रकाशित करनेवाले तेजस्वी यह इन्द्र (वाजाय) अन्नको उत्पन्न करनेके लिए (द्रविणं धरुणं) बहनेवाले जलको (प्रुषायत्) बरसाता है । (महिषः) वह महान् सूर्य (स्वजां व्रां अनुचक्षत) अपनी पुत्री उषाके बाद प्रकाशित होता है और (अश्वस्य मेनां) शीघ्र गतिसे दौडनेवाले चन्द्रमाकी स्त्री रात्रिको (गोः मातरं परि) प्रकाश किरणोंकी माता बनाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— गरीबोंको भोजन न देनेवाले धनिकोंको देख कर तथा सुस्तीसे पडे रहनेवालोंको देखकर मुझे बडा खेद होता है, क्योंकि ये निःसन्देह शीघ्र नाशको प्राप्त होनेवाले हैं । सुस्तीसे नाश होता है, अतः मनुष्य उद्यमी बने । धनका उपयोग गरीबोंकी सहायतार्थ करना चाहिये, जो वैसा नहीं करते वे नष्ट होते हैं अतः मनुष्य अपने पासके धनसे असहायोंकी सहायता करें ॥ १२ ॥

देव बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंकी स्तुतियोंको यह कब सुनाता है, यह कुछ पता नहीं चलता । पर जब सुन लेता है, तब उनके यज्ञमें शीघ्रतासे जाता है और उनके कर्मोंको पूर्ण करवाता है तथा उन्हें हर तरहके ऐश्वर्य देता है ॥ १ ॥

सूर्य द्युलोकमें रहकर उसे स्थिर करता है और सर्वत्र अन्न उत्पन्न करनेके लिए पानीको बरसाता है । इस सूर्यसे उषा उत्पन्न होती है अतः यह सूर्यकी पुत्री है । लोकमें प्रथम पिता प्रकाशित होता है और पश्चात् पुत्री । पर यहां प्रथम पुत्री उषा प्रकाशित होती है तत्पश्चात् पिता सूर्य । यह सूर्य चन्द्रमाकी स्त्री रात्रीको किरणोंकी माता बनाता है । चन्द्रमा और रात्री दोनों सहचर होनेके कारण दोनों पतिपत्नी हैं । रात्रीके बाद सूर्यकिरणें प्रकाशित होती हैं, अतः रात्री सूर्यकिरणोंकी माता है ॥ २ ॥

१३५८ नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद् वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥

१३५९ अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥

१३६० तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत् ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥

अर्थ—[१३५८] (अनु द्यून्) प्रतिदिन (अंगिरसां विशां) अंगरसोंको जाननेवाले मनुष्योंको (तुरः) उत्तम कर्मोंमें प्रेरित करनेवाला सूर्य (अरुणीः राट्) उषाओंको प्रकाशित करता हुआ (पूर्व्यं हवं नक्षत्) उत्तम प्रशंसाओंको प्राप्त होता है । (नियुतं वज्रं तक्षत्) शत्रुओंके विनाश करनेवाले वज्रको तीक्ष्ण करता है, तथा (नर्याय, द्विपदे, चतुष्पदे) मनुष्य, दोपाये और चौपायोंके लिए वह (द्यां तस्तम्भ) द्युलोकको थामता है ॥ ३ ॥

[१३५९] हे इन्द्र ! (अस्य मदेः) इन स्तुतियोंसे हर्षित होकर तूने (ऋताय) यज्ञके लिए (स्वर्यं) प्रकाशको देनेवाले (अपीवृतं) छिपे हुए (उस्रियाणां अनीकं) किरणोंके समूहको (दाः) दिया (यत्) जब यह (त्रिककुप्) तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ इन्द्र (प्रसर्गे नि वर्तत्) युद्धमें स्थिर हो जाता है, तब (द्रुहः मानुषस्य) द्रोह करनेवाले मनुष्यके (दुरः अपवः) द्वारोंको खोल देता है ॥ ४ ॥

[१३६०] (यत्) जब मनुष्य (रेक्णः) देनेवाले (सबर्दुघायाः उस्रियायाः) अत्यन्त दुधारु गायके (शुचि पयः) पवित्र दूधसे (ते अयजन्त) तेरी पूजा करते हैं, तब हे इन्द्र ! (तुरणे तुभ्यं) शीघ्रतासे कार्य करनेवाले तेरे लिए (भुरण्यू पितरौ) धारण पोषण करनेवाले तथा पालन करनेवाले दोनों द्यावापृथिवी (राधः सुरेतः पयः) ऐश्वर्यदायक और उत्तम उत्पादक शक्तिसे युक्त पानीको (आनीतं) लाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— श्रेष्ठ पुरुषोंको सूर्य उत्तम कर्मोंमें प्रेरित करता है। जैसे ही सूर्योदय होता है, वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष उत्तम कर्म करने लग जाते हैं, इसप्रकार मानों सूर्य ही उन्हें उत्तम कर्म करनेके लिए प्रेरणा देता है। उषाओंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके उदय होते ही लोग उसकी स्तुतियां करने लग जाते हैं । उदय होनेके बाद सूर्य अपनी किरणोंको तेज करता है और समस्त प्राणिमात्रके हितके लिए द्युलोकको प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

प्रातःकालमें लोगोंके द्वारा की जानेवाली स्तुतियोंके बाद यह सूर्य रात्रिमें छिपी हुई प्रकाशमय किरणोंको प्रकट करता है और तब यज्ञ शुरु होते हैं । सज्जनोंकी रक्षा करता है, पर जो द्रोह करते हैं उनके लिए अवनतिके द्वार खोल देता है । अर्थात् जो सूर्यकिरणोंका उत्तम उपयोग किरणस्नान आदिके द्वारा करते हैं, उनको स्वास्थ्य प्रदान करके यह उनकी रक्षा करता है, पर जो इन किरणोंसे द्रोह करता है, कभी इनका लाभ नहीं उठाता है, उसके लिए रोगोंके द्वार हमेशा खुले रहते हैं । रोगोंसे दूर रहनेके लिए सूर्यकिरण चिकित्सा एक उत्तम साधन है ॥ ४ ॥

जब मनुष्य अग्निमें उत्तम दुधारु गायके पवित्र घृत दूध आदिका हवन करते हैं, तब वह सूर्यकी किरणोंके सहारे द्युलोकमें जाता है, तब उन्हीं किरणोंके द्वारा पृथ्वी परका पानी ऊपर आकाशमें ले जाया जाता है, जहां वे बादल बनते हैं । ये बादल द्यावापृथिवीके बीचमें फैले और पानीसे भरपूर रहते हैं । ये पानी बरसाकर अन्न उत्पन्न करते हैं अतः इन पानियोंमें उत्पादनशक्ति भी भरपूर रहती है । इनसे उत्पन्न अन्नोंको प्राप्त कर प्राणिमात्र ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ५ ॥

१३६१ अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥

१३६२ स्विध्मा यद् वनधितिरपस्यात् सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

१३६३ अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत् ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१३६१] (तरणिः) दुःखोंसे तारनेवाला वह इन्द्र (अध प्र जज्ञे) प्रकट हो गया है वह (अस्याः उषसः) इस उषाके पास (सूरः न) सूर्यके समान (प्र रोचि) प्रकाशित हो रहा है । (स्वेदुहव्यैः यैः) उत्तम मधुर पदार्थकी आहुति देनेवाले जिन इन लोगोंके द्वारा (जरणा इन्दुः) स्तुतिके योग्य सोम (स्रुवेण) स्रुवाके द्वारा (धाम) यज्ञस्थानमें (आष्ट) इस इन्द्रको खिलाया जाता है, उस सोमसे (सिञ्चन्) सिंचित होता हुआ यह इन्द्र (ममत्तु) आनन्दित हो ॥ ६ ॥

[१३६२] यह (सूरः) सूर्य (यत्) जब (स्विध्मा वनधितिः) चमकनेवाली मेघमालाओंको (अपस्यात्) बरसाता है, तब (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (गोः परि रोधनाः) गायें आकर इकट्ठी हो जाती हैं। तब (अनर्विशे) अन्नरहित (पश्विषे) पशुओंकी इच्छा करनेवाले तथा (तुराय) प्रयत्नशील पुरुषके लिए (अनुद्यून्) प्रतिदिन (कृत्व्यान् प्रभासि) उत्तम कर्मोंको प्रकाशित करता है ॥ ७ ॥

[१३६३] हे इन्द्र ! यज्ञशील मनुष्य (यत्) जब (ते वृधे) तेरी वृद्धिके लिए (हरिं मन्दिनं) स्वादिष्ट, आनन्ददायक (गोरभसं वाताप्यं) गायके दूधसे युक्त और वीर्यशाली सोमको (अद्रिभिः दुक्षन्) पत्थरोंसे कूट पीस कर तैय्यार करते हैं, तब (महः दिवः अष्टा) महान् द्युलोकको व्याप्त करनेवाले (हरी) तेरे अश्व (इह) यहां आकर (आदः) भक्षण करें और तू (योधानः) युद्ध करते हुए (द्युम्नासाहं उत्सं) तेजस्वी जलकी धाराको (अभि) चारों ओरसे बरसा ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार सूर्य प्रकाशित होता है, उसी तरह यह इन्द्र भी उषाओंके समीप प्रकाशित होता है । इस इन्द्रके प्रकाशित होते ही सभी यज्ञशील इसके लिए सोम प्रदान करते हैं, उस सोमसे सिंचित होता हुआ वह इन्द्र आनंदित होता है ॥ ६ ॥

इस सूर्यकी किरणोंसे जब पानी बरसता है, तब वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं । उन्हें खाकर गायें हृष्टपुष्ट होती हैं, तब उनकी सन्ततियोंका विस्तार होता है । फिर उनके दुग्ध घृतादिका उपयोग हिंसारहित यज्ञमें होता है, अतः सब गायें यज्ञस्थानपर लाई जाती हैं । वर्षाके अभावमें जो अन्नरहित, पशुरहित और प्रयत्नरहित हो गए थे, पानीके बरसने पर वे पुनः अन्न और पशुओंकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन कर्म करने लग जाते हैं । इस प्रकार मानों सूर्य ही जल बरसा कर उन्हें काममें नियुक्त करता है ॥ ७ ॥

जब यज्ञशील मनुष्य उत्तम आनन्ददायक और शक्तिदायक सोमरसका यज्ञ करते हैं, तब सूर्यकी किरणें इस पृथ्वीपर आकर अग्निके साथ मिलती हैं और उस सोम हविका भक्षण करती हैं । हवि सूक्ष्म होकर सूर्य किरणों द्वारा द्युलोकमें जाती है और उन किरणोंकी सहायतासे वह सूक्ष्म हवि बादलोंमें आकर पानीमें मिल जाती है । फिर सूर्यकिरणें जब बादलोंको प्रेरित करती हैं, तब वही हवि वर्षाके द्वारा इस पृथ्वीपर आती है और चारों ओर पानी हो जाता है ॥ ८ ॥

१३६४ त्वमा॑य॒सं प्रति॑ वर्तयो॒ गो-र्दि॒वो अश्मा॑न॒मुप॑नीत॒मृभ्वा॑ ।
कुत्सा॑य॒ यत्र॑ पुरुहूत व॒न्व-ञ्छुष्ण॑मन॒न्तैः प॑रि॒यासि॑ व॒धैः ॥ ९ ॥

१३६५ पु॒रा यत् सूर॒स्तम॑सो॒ अपी॑ते॒-स्तम॑द्रिवः फ॒लि॒गं हे॒तिम॑स्य ।
शुष्ण॑स्य चि॒त् परि॑हितं॒ यदोजो॑ दि॒वस्परि॒ सुग्र॑थितं॒ तदादः॑ ॥ १० ॥

१३६६ अनु॑ त्वा म॒ही पाज॑सी अ॒च॒क्रे द्या॑वा॒क्षामा॑ मदता॒मिन्द्र॒ कर्म॑न् ।
त्वं वृ॒त्रमा॒शया॑नं सि॒रासु॑ म॒हो वज्रे॑ण सिष्वपो व॒राहु॑म् ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३६४] (यत्र) जब हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! तू (कुत्साय) कुत्सकी रक्षा करनेके लिए (शुष्णं) शुष्ण असुरको (अनन्तैः वधैः) अनेकों शस्त्रोंसे (वन्वन्) मारता हुआ (परियासि) चारों ओर घूमता है, तब (गोः) उस आक्रमणकारीको मारनेके लिए (त्वं) तू (ऋभ्वा दिवः आनीतं) ऋभुके द्वारा द्युलोकसे लाए गए (अश्मानं आयसं) पत्थर और लोहेसे बने हुए अस्त्रको (प्रतिवर्तयः) फेंकता है ॥ ९ ॥

[१३६५] हे (अद्रिवः) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (पुरा) पहले (यत्) जब (फलिगं हेतिं) बादलोंको विदीर्ण करनेवाले शस्त्रको (अस्य तमसः) इस अन्धकारपर फेंका, तब (सूरः अपीतेः) सूर्य इस अन्धकारसे मुक्त हुआ । (शुष्णस्य) शोषण करनेवाले असुरका (यत् ओजः) जो तेज (दिवः परि परिहितं सुग्रथितं) द्युलोकतक फैला हुआ तथा अत्यन्त सुदृढ था, (तत् चित् आ अदः) उसको भी नष्ट किया ॥ १० ॥

[१३६६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा) विशाल, बलसे युक्त, सर्वत्र व्याप्त द्युलोक और पृथ्वीलोकने (कर्मन् त्वा अनु मदतां) तेरे कार्यका अनुमोदन किया, तब उत्साहित होकर (महः वज्रेण) महान् वज्रके द्वारा (त्वं) तूने (वराहुं आशयानं) पानीको घेरकर सोनेवाले (वृत्रं) वृत्रको (सिरासु) जलोंमें ही (सिष्वपः) सुला दिया ॥ ११ ॥

भावार्थ— बुराइयोंको दूर करके उत्तमताको फैलानेवाले सज्जनकी रक्षाके लिए इन्द्र प्रजाओंका शोषण करनेवाले दुष्टोंका नाश करता है । वह अपने लोहेके अस्त्रोंसे आक्रमणकारियोंका नाश करता है । इसी तरह राजा राष्ट्रमें बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनोंकी रक्षा करे और प्रजाका शोषण करनेवाले दुष्टोंका नाश करे, तथा वह हमेशा अपने पास सुदृढ शस्त्रास्त्रोंको रखे ॥ ९ ॥

बादलोंको फाडकर जलको बरसानेवाली किरणें जब अन्धकारपर प्रहार करती हैं, तब वह अन्धकार नष्ट हो जाता है, और सूर्य उदय हो जाता है । अर्थात् किरणोंके द्वारा अन्धकारके नष्ट होनेपर सूर्य प्रकट होता है । वर्षाके न होनेपर उसका प्रभाव द्युलोकपर पडता है । अकाल या अवर्षण प्राणिमात्रका शोषण करता है । सूर्य पानी बरसाकर शोषण करनेवाले इस अवर्षणरूपी असुरको नष्ट करता है ॥ १० ॥

अवर्षणके कारण सन्तप्त द्युलोक और पृथ्वीने जब सूर्यको चमकते देखा, तो बहुत प्रकाशित हुए । तब सूर्यने पानीको रोककर सोनेवाले बादलोंको अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे शिथिल किया और उन्हें जलमें सुला दिया अर्थात् बादल जब सब पानी रोककर बैठ गया, तब सूर्यकिरणोंसे तप्त होकर बादल पानी बनकर बरस पडा । ग्रीष्म ऋतुमें सूर्य बहुत चमकता है, पर वर्षामें वह अपनी किरणोंके द्वारा जल बरसाता है, उससे द्यु और पृथ्वी दोनों लोक प्रसन्न होते हैं ॥ ११ ॥

*

१३६७ त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन् तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥ १२ ॥

१३६८ त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन् भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्याना मपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥ १३ ॥

१३६९ त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान् रथ्यो अश्वबुध्या निषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥ १४ ॥

अर्थ—[१३६७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (काव्यः उशना) कविके पुत्र उशनाने (ते) तुझे (मन्दिनं वृत्रहणं पार्यं वज्रं) आनन्ददायी, वृत्रको मारनेवाले तथा शत्रु पर आक्रमण करनेवाले वज्रको (दात्) दिया और उसे (ततक्ष) तीक्ष्ण किया तब (नर्यः त्वं) मनुष्योंका हित करनेवाला तू (वहिष्ठान्) ढोनेमें अत्यन्त कुशल (सुयुजः) रथमें अच्छी तरहसे जुड जानेवाले (वातस्य) वायुके समान गतिशील (यान्) जो घोडे हैं उनपर (आ तिष्ठ) बैठ और (नॄन् अवः) मनुष्योंका हित करनेवालेकी रक्षा कर ॥ १२ ॥

[१३६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं एतशः सूरः न) इस तेजस्वी सूर्यके समान (त्वं) तू (नॄन्) मनुष्योंके हित करनेवाली (हरितः) रसोंका हरण करनेवाली किरणोंको (रामयः) प्रकट करता है । (चक्रं) तेरे रथका चक्र (भरत्) हमेशा चलता रहता है । (नाव्यानां नवतिं) नावोंसे पार करने योग्य नब्बे नदियोंके (पारं) पार (अयज्यून् प्रास्य) यज्ञ न करनेवालोंको फेंक कर (कर्तं अपि अवर्तयः) तूने बहुत बडा काम किया है ॥ १३ ॥

१ नवतिं पारं अयज्यून् प्रास्य कर्तं अपि अवर्तयः— नब्बे नदियोंके पार यज्ञ न करनेवालोंको फेंककर इस इन्द्रने बडा काम किया ।

[१३६९] हे (वज्रिवः इन्द्र) वज्रधारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तू (नः) हमारी (दुर्हणायाः अस्याः) कठिनाईसे नष्ट करने योग्य इस दुर्गतिसे (पाहि) सुरक्षा कर । (दुरितात्) पापसे हमें बचा । (अभीके) संग्राममें हमारी रक्षा कर । तथा (नः) हमें (रथ्यः अश्वबुध्यान् वाजान्) रथ और घोडोंसे युक्त धनोंको (इषे श्रवसे सूनृतायै) बल, यश और उत्तम सत्यपूर्ण व्यवहारके लिए (प्र यन्धि) प्रदान कर ॥ १४ ॥

भावार्थ— ज्ञानीके पुत्र और ऐश्वर्यकी कामना करनेवालेने इस इन्द्रको जो शत्रुनाशक वज्र दिया है, उसे यह इन्द्र तीक्ष्ण करता है । फिर रथमें अच्छी तरह जुडनेवाले तथा वायुके समान गतिशील घोडोंवाले रथमें बैठकर वह मनुष्योंका हित करनेवालेकी रक्षा करता है ॥ १२ ॥

प्रकाशमान् सूर्यकी तरह यह इन्द्र भी मनुष्योंका हित करनेवाली और रसोंका हरण करनेवाली किरणोंसे प्रकाशित होता है । इन्द्रके रथका चक्र हमेशा चलता रहता है । यह यज्ञ न करनेवालोंका कट्टर शत्रु है, अतः वह ऐसे अयज्ञशीलोंको बहुत दूर कर देता है अर्थात् अपने पास नहीं रखता ॥ १३ ॥

हे वज्रधारण करनेवाले इन्द्र ! कठिनाईसे नष्ट करने योग्य इस दुर्गति एवं पापसे हमें बचा; हमारी रक्षा कर, तथा यश, बल और सत्ययुक्त व्यवहारके लिए हमें हर तरहका ऐश्वर्य दे । तुझसे ऐश्वर्य प्राप्त करके हम सदा सत्ययुक्त व्यवहार ही करें, कभी किसीसे छल कपट न करें ॥ १४ ॥

१३७० मा सा ते॑ अ॒स्मत् सु॑म॒तिर्वि द॑सद् वाज॑प्रमहः॒ समिषो॑ वरन्त ।
आ नो॑ भज मघवन् गोष्व॒र्यो मंहि॑ष्ठास्ते सध॒मादः॑ स्याम ॥ १५ ॥

[१२२]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५-६ विराड्रूपा ।)

१३७१ प्र वः॒ पान्तं॑ रघुमन्यवोऽन्धो॑ य॒ज्ञं रु॒द्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑ भरध्वम् ।
दि॒वो अ॑स्तो॒ष्यसु॑रस्य वी॒रै-रि॑षु॒ध्येव॑ म॒रुतो॒ रोद॑स्योः ॥ १ ॥

१३७२ पत्नी॑व पू॒र्वहू॑तिं वावृ॒धध्या॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ पुरु॒धा विदा॑ने ।
स्त॒रीर्नात्कं॒ व्यु॑तं॒ वसा॑ना॒ सूर्य॑स्य श्रि॒या सु॒दृशी॒ हिर॑ण्यैः ॥ २ ॥

अर्थ— [१३७०] हे (वाजप्रमहः) बलोंके द्वारा प्रशंसनीय इन्द्र ! (सा ते सुमतिः) वह तेरी उत्तम बुद्धि (अस्मत् मा वि दसत्) हमारे अन्दर नष्ट न हो। इसके विपरीत (इषः) सब तरहके अन्न (सं वरन्त) हमें वरण करें। हे (मघवन् अर्यः) ऐश्वर्यशालिन् श्रेष्ठ इन्द्र ! (नः गोषु आ भज) हमें गायोंसे संयुक्त कर, (ते मंहिष्ठाः) तुझे बहुत बढानेवाले हम (सधमादः स्याम) एक साथ रहकर आनंदित हों ॥ १५ ॥

१ सुमतिः अस्मत् मा वि दसत्— उत्तम बुद्धि हमारे अन्दरसे कभी नष्ट न हो ।

२ सधमादः स्याम— एक साथ रहकर आनंदित हों ।

[१२२]

[१३७१] हे (रघुमन्यवः) शत्रुओंपर क्रोध करनेवाले मनुष्यो ! (वः) तुम (मीळ्हुषे रुद्राय) आनन्द देनेवाले रुद्रके लिए (पान्तं यज्ञं अन्धः) पालन करनेवाले, प्रशंसनीय हविको (भरध्वं) दो । (इषुध्या इव) जिस प्रकार धनुर्धारी बाणोंसे शत्रुओंको नष्ट करता है, उसी प्रकार (दिवः असुरस्य) द्युलोकसे असुरोंको नष्ट करनेवाले (रोदस्योः वीरैः) द्युलोक और पृथ्वीलोकके बीचमें वीरोंके साथ रहनेवाले (मरुतः अस्तोषि) मरुतोंकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१३७२] (पत्नी इव) पत्नी जिस प्रकार अपने पतिकी हर तरहसे वृद्धि करती है, उसी तरह (पुरुधा विदाने) उन्नतिके अनेक मार्गोंको जाननेवाली (उषासानक्ता) उषा और रात्री (पूर्वहूतिं) हमारी पहलेकी प्रार्थनाओंको सुनकर (वावृधाध्यै) हमें उन्नत करने एवं बढानेके लिए आवें। (स्तरीः न) अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यकी तरह (हिरण्यैः व्युतं अत्कं वसाना) सुनहरे कपडोंको पहने हुई (सूर्यस्य श्रिया) सूर्यकी शोभासे युक्त हुई हुई तथा (सुदृशी) दीखनेमें अत्यन्त रूपवती उषा हमें उन्नत करनेके लिए हमारे पास आवे ॥ २ ॥

१ पत्नी हिरण्यैः व्युतं अत्कं वसाना सुदृशी वावृधाध्यै— पत्नी सोनेके कपडोंको पहनकर तथा रूपवती होकर अपने पतिको उन्नत करे ।

भावार्थ— हम इन्द्रके विषयमें सदा अच्छे विचार ही रखें। उसके विषयमें कभी भी हमारे बुरे विचार न हों। हमारी उत्तम बुद्धि हमें न छोडे । उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर हम अन्न और धनोंको प्राप्त करें। गायें आदि ऐश्वर्य प्राप्त करके हम एक साथ रहकर आनन्दित हों । संगठित समाजमें रहनेसे मनुष्यकी सुरक्षा होती है और सबके साथ रहनेसे आनन्द आता है ॥ १५ ॥

शत्रुओंको रुलानेके कारण देवका नाम रुद्र है । यह वीर मरुतोंके साथ रहता हुआ असुरोंका नाश करता है । मरुत् वे देव हैं, जो मरनेतक शत्रुओंसे लडते हैं । रुद्र राजा है और मरुत् सैनिक हैं । राजा स्वयं भी शूर हो, तभी उसके सैनिक भी शूरवीर हो सकते हैं । राजा और उसके सैनिक मिलकर असुरों और दुष्टोंका नाश करें । इस प्रकार शत्रुओंका नाश करके राजा प्रजाओंको आनंद देनेवाला हो ॥ १ ॥

१३७३ मुमत्तुं नः परिज्मा वसुर्हा मुमत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं न्स्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥
१३७४ उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥
१३७५ आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१३७३] (वसर्हा) अन्धकारका नाश करके दिनका उदय करानेवाला तथा (परिज्मा) चारों ओर जानेवाला सूर्य (नः ममत्तु) हमें आनंदित करे । (अपां वृषण्वान् वातः) जलोंको बरसानेवाला वायु (ममत्तु) हमें आनंद देवे । (इन्द्रापर्वता) इन्द्र और मेघ (युवं नः) तुम्हें और हमें (शिशीतं) उन्नत करें, (तत्) इसी प्रकार (विश्वे देवाः) सभी देव (नः वरिवस्यन्तु) हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ ३ ॥

[१३७४] (औशिजः) उशिक्‌का पुत्र मैं (मे यशसा) अपनी कीर्ति और अन्नको बढानेके लिए तथा (श्वेतनायै) तेज प्राप्त करनेके लिए (व्यन्ता) सर्वत्र गमन करनेवाले (पान्ता) पालन करनेवाले अश्विनौकी (हुवध्यै) प्रार्थना करता हूँ । हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अपां नपातं) कर्मोंको नष्ट न करनेवाले अग्निके लिए (प्र कृणुध्वं) उत्तम स्तुति करो तथा (रास्पिनस्य आयोः) कलकल शब्द करते हुए बहनेवाले जलोंके (मातरा) मातापितारूप द्यावपृथिवीकी भी (प्र) स्तुति करो ॥ ४ ॥

[१३७५] हे देवो ! (घोषा इव) जैसे बिजली गरजती है, उसी प्रकार (अर्जुनस्य नंशे) अपने दुःखोंके नाशके लिए (औशिजः) उशिक्‌का पुत्र मैं (वः हुवध्यै) तुम्हें बुलानेके लिए (रुवण्यु शंसं) शब्दसे युक्त स्तोत्रोंको (आ वोचेय) बोलता हूँ । (वः) तुम्हारे साथ रहनेवाले तथा (दावने) धन देनेवाले (पूष्णे) पूषा देवकी भी (आ) स्तुति करता हूँ । तथा (अग्नेः वसुतातिं आ) अग्निके धनसंग्रहका भी वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

भावार्थ— पत्नी जिस प्रकार अपने पतिको सदा उन्नतिशील देखना चाहती है और उन्नतिके कार्यमें उसकी सहायता सदा किया करती है, उसी प्रकार उन्नतिके अनेक मार्गोंको जाननेवाली उषा और रात्री हमें उन्नत करें । उषा और रात्रीमें उषा सदा सोनेके कलाबत्तूवाले कपडे धारण करती है और सूर्यकी शोभासे युक्त रहती है । उषाकी सुनहली किरणें ही उसके कपडे हैं और उसके बाद उदय होनेवाला सूर्य उषाको अपनी शोभा प्रदान करता है । इसी तरह पत्नी अपने पतिकी सदा सहायता करे तथा स्वयं भी उत्तम वस्त्र पहन कर शोभासे युक्त बनी रहे और पतिके साथ संयुक्त होकर पतिकी शोभासे सुशोभित हो ॥ २ ॥

अन्धकारका नाश करने और दिन लानेवाला सर्वत्र संचारी सूर्य हमें सब सुख प्रदान करे । वायु जल बरसाकर हमें आनंद देवे । इन्द्र और मेघ हमें उन्नत करें तथा सभी देवगण हमें हर तरहसे सुखी रखें । मनुष्योंको अपने जीवन सुखमय बनानेके लिए देवोंकी सहायता अवश्य प्राप्त करनी चाहिए ॥ ३ ॥

अनेक प्रकारकी कामना करनेवाले मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी इच्छाओंको प्राप्त करनेके लिए सब देवोंके शरणमें जाए और उनकी प्रार्थना करे । अश्विनौ सब जगह जाकर लोगोंका पालन करनेवाले हैं । अग्नि कर्मोंका प्रेरक है । द्युलोक और पृथिवी जल बरसाते हैं, इस प्रकार सभी देव मनुष्योंकी सहायता करते और उसे यश एवं अन्नादि ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥

देवोंकी श्रद्धापूर्वक स्तुति करनेसे हर प्रकारका दुःख दूर होता है । ये देव धन देनेवाले और पोषण करनेवाले हैं । इनके पास धनका बहुत बडा संग्रह है । पर इनका धन संग्रह दान करनेके लिए ही है । इसी तरह मनुष्य धन संग्रह अवश्य करे, पर उनका धन संग्रह अपने स्वार्थके लिए न होकर निर्धनोंको दान करनेके लिए हो । धनकी उत्तम उपयोगिता दानमें ही है ॥ ५ ॥

१३७६ श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमो॒त श्रुतं सद॑ने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥

१३७७ स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥ ७ ॥

१३७८ अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥

अर्थ—[१३७६] (मे हवं, मित्रावरुणा श्रुतं) मेरी प्रार्थनाको हे मित्रावरुणो ! तुम दोनों सुनो, (उत) और (सदने) गृहमें भी (विश्वतः सीं श्रुतं) चारों ओरसे होनेवाली इस स्तुतिको सुनो । (श्रोतुरातिः) जिसका दान सुप्रसिद्ध है, ऐसा (सुश्रोतुः सिन्धुः) प्रार्थनाओंको ध्यान देकर सुननेवाला सिन्धु (अद्भिः सुक्षेत्रा) जलोंसे उत्तम खेतोंको सींचता हुआ (नः श्रोतु) हमारी प्रार्थना सुने ॥ ६ ॥

[१३७७] (वरुण मित्र) हे वरुण और मित्र ! (वां स्तुषे) मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं । (पृक्षया मेषु) जहां घोडे बहुत तेज दौडाये जाते हैं, ऐसे संग्रामोंमें (पज्रे) शक्तिशालीको ही (गवां शता) अनेक गायोंका (सा रातिः) वह दान प्राप्त होता है । मित्रादि देव भी (श्रुतरथे प्रियरथे) उस प्रसिद्ध एवं उत्तम रथवाले शूरमें (सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासः) शीघ्र ही पुष्टि स्थापित करते हुए (अग्मन्) जाते हैं ॥ ७ ॥

१ पृक्षयामेषु पज्रः शता गवां— जहां घोडे द्रुत दौडाये जाते हैं, ऐसे संग्रामोंमें शूरवीर ही गौओंको प्राप्त कर सकता है ।

[१३७८] (यः वाजिनीवान् जनः) जो बलवान् मनुष्य (अश्वावतः रथिनः पज्रेभ्यः) घोडों और रथोंवाले शूरवीरोंको (मह्यं सूरिः) मेरी सुरक्षाके लिए प्रेरित करता है, (अस्य महिमघस्य राधः स्तुषे) ऐसे इस महिमायुक्त ऐश्वर्यवालेके धनकी मैं प्रशंसा करता हूं । (सुवीराः नहुषः) उत्तम वीरतासे युक्त हम सब मनुष्य (सचा सनेम) एक साथ संगठित हों ॥ ८ ॥

१ यः वाजिनीवान् जनः अस्य महिमघस्य राधः स्तुषे— जो बलवान् होता है, उस महान् ऐश्वर्यवाले मनुष्यके धनकी सब प्रशंसा करते हैं ।

२ सुवीराः नहुषः सचा सनेम— उत्तम वीरतासे युक्त मनुष्य संगठित हों ।

भावार्थ— मित्रके समान हितकारी और वरणीय देव हमारी प्रार्थना सुनें तथा यज्ञगृहमें चारों ओरसे होनेवाली स्तुति भी सुनें । जलके देवता सिन्धुका दान सर्वत्र सुप्रसिद्ध है । वह जल बरसाकर जलदान द्वारा लोगोंपर जो उपकार करता है, वह सर्वत्र सुप्रसिद्ध है । वह हमारी प्रार्थना सुने और खेतोंको यथासमय जलसे सींचकर हमारे खेतोंको उपजाऊ बनावे ॥६॥

भयानक संग्रामोंमें केवल वही विजय प्राप्त कर सकता है, जो वीर हो और देवोंका भक्त हो । वही जय प्राप्तकर अनेकों ऐश्वर्य प्राप्तकर सकता है । तथा देव भी उन्हींकी सहायता करते हैं जो श्रुतरथ और प्रियरथ हो, अर्थात् जिसका रथ प्रसिद्ध हो और जो अपने रथको प्यार करते हो अर्थात् जो बहुत संग्रामशील और वीर हो, उसीकी देवगण भी सहायता करते हैं और उसीको बलशाली तथा पुष्ट बनाते हैं ॥ ७ ॥

जो बलवान् वीर अपने अनुयायियोंकी रक्षा करता है, उसके बलकी सर्वत्र सब लोग प्रशंसा करते हैं । बलका उपयोग कमजोरोंकी और अनुयायियोंकी सुरक्षाके लिए ही हो । तभी उसका बल सर्वत्र प्रशंसित होता है । सभी मनुष्य संगठित होकर अपना बल बढावें । संगठनमें रहनेसे मनुष्योंपर कोई भी शत्रु सहसा आक्रमण नहीं कर सकता । यदि कोई करता भी है तो संगठनशक्तिके द्वारा उसका मुकाबला किया जा सकता है । अतः सभी मनुष्य संगठित होकर अपनी शक्ति बढावें ॥ ८ ॥

१३७९ जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥ ९ ॥
१३८० स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥
१३८१ अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३७९] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! (यः जनः) जो मनुष्य (अभिध्रुक्) तुमसे द्रोह करता है, (अक्ष्णयाध्रुक्) टेढे मार्ग पर चलता हुआ तुमसे द्रोह करता है । अथवा (वां) तुम दोनोंके लिए (अपः न सुनोति) सोमरस नहीं निचोडता, (सः) वह (हृदये स्वयं यक्ष्मं नि धत्ते) अपने हृदयमें अनेक तरहके रोगोंको धारण करता है । पर (यत् ऋतावा) जो सत्यमार्ग पर चलने वाला मनुष्य (होत्राभिः ईं) मंत्रों द्वारा यज्ञको करता है, वह (आप) आपकी कृपा प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

१ यः जनः अभि ध्रुक्, अक्ष्णयाध्रुक्, अपः न सुनोति, हृदये यक्ष्मं नि धत्ते— जो मनुष्य देवोंसे द्रोह करता है, टेढेमार्गसे चलता है और यज्ञ नहीं करता, वह अनेक तरहके रोगोंको अपने हृदयमें धारण करता है ।

२ यत् ऋतावा होत्राभिः ईं आप— जो सत्य मार्ग पर चलता हुआ मंत्रोंसे यज्ञ करता है, वह देवोंकी कृपा प्राप्त करता है ।

[१३८०] हे देवो ! जो तुम्हारी भक्ति करता है (सः) वह (दंसुजूतः) उत्तम अश्वोंसे प्रेरित होकर (नरां शर्धतरः) शत्रुओंको बहुत मारनेवाला (गूर्तश्रवाः) अत्यन्त तेजस्वी (विसृष्टरातिः) याचकोंको दान देनेवाला, और (शूरः) शूरवीर होकर (विश्वासु पृत्सु) सभी संग्रामोंमें (व्राधतः नहुषः) बडेसे बडे शत्रुओंको भी (बाळ्हसृत्वा) बुरी तरह विनष्ट करता हुआ (सदं इत् याति) हमेशा आगे बढता है ॥ १० ॥

[१३८१] (नभोजुवः) आकाशको व्यापनेवाले देवो ! (यत्) जब तुम (महिना) अपनी शक्तिसे (निरवस्य राधः) लोगोंका अहित करनेवाले दुष्टका धन (प्रशस्तये रथवते) प्रशंसनीय और उत्तम रथवाले वीरको देते हो, तब हे (राजानः मन्द्राः) तेजस्वी और आनन्दमय देवो ! तुम (अमृतस्य सूरेः नहुषः) अमृतरूपी यज्ञको प्रेरणा देनेवाले मनुष्यकी (हवं श्रोत) प्रार्थना सुनो (अध) इसके बाद (ग्मन्त) जाओ ॥ ११ ॥

१ निरवस्य राधः प्रशस्तये रथवते— प्रजाका अहित करनेवाले दुष्टका धन छीनकर प्रशंसनीय और उत्तम रथवाले वीरको देना चाहिए ।

भावार्थ— ये देव सबका हित करते हैं, फिर भी जो इनसे निष्कारण द्वेष करता है, टेढे मार्गसे चलता है और यज्ञ नहीं करता, वह अनेक मानसिक रोगोंसे ग्रस्त होता है । ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि मानसिक चिन्ताओंसे वह सदा पीडित रहता है । वह अपनेसे बडोंसे ईर्ष्या करता है, अपने समानस्तरवालोंसे द्वेष करता है और अपने निम्नस्तरके लोगों पर क्रोध करता है । पर जो भगवान्का भजन करते हैं और हमेशा सत्यमार्ग पर चलते हैं, वे हमेशा आनंद और प्रसन्नतामें रहता हुआ मानसिक चिन्ताओं और रोगोंसे परे रहता है ॥ ९ ॥

जो देवोंकी भक्ति करता है वह अश्वादियोंसे युक्त होकर भयंकर शत्रुओंका भी विनाशक होता है । वह याचकोंकी उदार-[illegible] करता है तथा सभी संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करता हुआ आगे बढता जाता है । देवोंका भक्त कभी भी डरपोक और पीछे हटनेवाला नहीं होता । क्योंकि देव सदा उसकी सहायता करते हैं । इसलिए बडेसे बडे और भयंकरसे भयंकर शत्रु भी उसके सामने नहीं ठहर सकते ॥ १० ॥

आकाशको भी अपने सामर्थ्यसे ढक देनेवाले अर्थात् अत्यन्त सामर्थ्यशाली, तेजस्वी तथा आनन्द फैलानेवाले वीरोंको चाहिए कि वे अपने धनके घमंडमें आकर प्रजाका अहित और उन पर अत्याचार करनेवाले दुष्टोंका सारा धन छीनकर प्रजाओंके हित करनेवाले तथा उनकी रक्षा करने वीरको देवें । तथा यज्ञ करनेवालोंकी प्रार्थना सुनकर उनकी रक्षा करनेके लिए आएं ॥ ११ ॥

१३८२ एतं शर्धं धाम यस्य सूरे- रित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥ १२ ॥
१३८३ मन्दामहे दशतयस्य धासे- र्द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥
१३८४ हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्ण- स्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरो- स्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥
१३८५ चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्व- स्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१३८२] (यस्य सूरेः) जिस विद्वान्‌के द्वारा (दशतयस्य नंशे) अन्नको लानेके लिए हम बुलाये गए हैं, (एतं शर्धं धाम) उसे हम बलवान् बनायें (इति अवोचन्) इस प्रकार देवोंने कहा । (येषु) जिन देवोंमें (द्युम्नानि वसुतातिः रारन्) तेजस्वी ऐश्वर्य रमते हैं, (विश्वे) वे सब देव (प्रभृथेषु) यज्ञोंमें (वाजं सन्वन्तु) अन्न प्रदान करें ॥ १२ ॥

[१३८३] (यत्) क्योंकि (द्विपंच अन्ना बिभ्रतः) दस तरहके अन्न लेकर (यन्ति) मनुष्य आते हैं, अतः (दशतयस्य धासेः मन्दामहे) उन दस प्रकारके अन्नोंकी हम प्रशंसा करते हैं । (इष्टाश्वः इष्टरश्मिः एते ईशानासः) जो इच्छानुसार घोडोंको काबूमें रख सकते हैं, ऐसे (तरुषः नॄन्) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले नेताओंका (किं ऋंजते) कोई क्या अहित कर सकता है ? ॥ १३ ॥

[१३८४] (विश्वे देवाः) सभी देव (नः) हमें (हिरण्यकर्णं मणिग्रीवं अर्णः) कानोंमें सोनेके आभूषण पहने हुए तथा गलेमें मणियोंको पहने हुए सुन्दर रूपवाले पुत्रको (वरिवस्यन्तु) देवें । (अर्यः) ये श्रेष्ठ देव (जग्मुषीः गिरः) मुखसे निकलनेवाली स्तुतियोंकी तथा (उस्राः) घृतादि हवियोंकी (अस्मे उभयेषु) हमारे दोनों यज्ञोंमें (सद्यः चाकन्तु) शीघ्र ही इच्छा करें ॥ १४ ॥

[१३८५] (जिष्णोः मशर्शारस्य) विजयशील तथा शत्रुओंको मच्छरके समान मारनेवाले वीरके (चत्वारः) चार (शिश्वः) पुत्र तथा (आयवसस्य राज्ञः त्रयः) अन्नके स्वामी राजाके तीन पुत्र (मा) मुझे कष्ट देते हैं, इसलिए (मित्रावरुणा) हे मित्रावरुणो ! (वां) तुम दोनोंका (दीर्घ अप्साः स्यूमगभस्तिः रथः) विस्तृत रूपवाला तथा सुखकारक किरणोंवाला रथ (सूरः न) सूर्यके समान (अद्यौत्) प्रकाशित हो ॥ १५ ॥

भावार्थ— देव जिसके यहां रमते हैं और आनंदित होते हैं, उसे ये देव बलवान् और ऐश्वर्यवान् बनाते हैं । इन्हीं देवोंमें सब तरहके तेजस्वी ऐश्वर्य रहते हैं । ये देव प्रत्युपकारी हैं । इनका जो हित करता है, उसका भी हित ये देव अवश्य करते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्य अपने सामने जो भी अन्न आए, उसे प्रशंसा करते हुए खाए । मनुष्य कभी भी अन्नकी निंदा न करे, क्योंकि अन्न मुख्य देव है और वही जीवनका आधार है । अतः सदा प्रसन्न चित्तसे प्रशंसा करता हुआ अन्नका भक्षण करे । जो घोडों और लगामोंपर अच्छी तरह नियंत्रण करना जानते हैं, ऐसे शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले नेताओंका कोई क्या अहित कर सकता है ? अर्थात् जो शत्रुओंकी हिंसा करते हैं, उनकी सभी वीर सहायता करते हैं, कभी भी उनका अहित नहीं करते ॥ १३ ॥

सभी देव हमें उत्तम रूपवान् और सभी अलंकारोंसे युक्त सन्तानोंको देवें । तथा ये देव हमारे द्वारा बोली जानेवाली स्तुतियों और घृतादि हवियोंको स्वीकार करें ॥ १४ ॥

[१२३]

(ऋषिः— कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । देवता— उषाः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

१३८६ पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यै— नं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहाया— श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥
१३८७ पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद् युवतिः पुनर्भू— रोषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥
१३८८ यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥

[१२३]

अर्थ— [१३८६] (दक्षिणायाः पृथुः रथः अयोजि) इस दक्ष उषाका विस्तीर्ण रथ जोतकर तैयार हो चुका है। (एनं अमृतासः देवासः आ अस्थुः) इस रथपर अमर देव बैठ गये हैं । (विहायाः अर्या) विशेष श्रेष्ठ यह उषा (मानुषाय क्षयाय चिकित्सन्ती) मनुष्योंके सुखपूर्वक निवासके लिये यत्न करती हुई (कृष्णात् उत् अस्थात्) अत्यंत काले अन्धकारसे ऊपर उठी है, प्रकाशित हुई है ॥ १ ॥

[१३८७] (विश्वस्मात् भुवनात् पूर्वा अबोधि) सब प्राणियोंके पहिले यह उषा जागृत होती है, यह उषा (बृहती सनुत्री वाजं जयन्ती) बडा दान करनेवाली तथा धन जीतनेवाली है । वह (युवति) तरुणी (पुनः भूः) पुनः पुनः होनेवाली (पूर्वहूतौ प्रथमा उषाः) प्रथम हवन करनेके समय प्रथम यजनीय उषा (आ अगन्) आयी और (उच्चा व्यख्यत्) उच्च स्थानसे देखने लगी है ॥ २ ॥

[१३८८] हे (सुजाते देवि उषः) उत्तम कुलीन दिव्य उषा ! (मर्त्यत्रा) मनुष्योंका पालन करनेवाली तू (अद्य यत् भागं नृभ्यः विभजासि) आज जो धनका भाग मनुष्योंको देती है (अत्र) उस समय (दमूना सविता देवः) दान देनेवाला जगत्का उत्पन्न करनेवाला देव (नः सूर्याय अनागसः वोचाति) हम निष्पाप हैं ऐसा सूर्यके सामने कहे ॥ ३ ॥

भावार्थ— विजयशील तथा शत्रुओंको मच्छरोंके समान मारनेवाला वीर तथा अन्नका स्वामी राजा एवं उनके पुत्र प्रजाओंको कष्ट न दें । यदि कभी ये राजा एवं उनकी सन्तानें प्रजाओंपर अत्याचार करने लगें, तो मित्रवत् प्रजाओंका हित करनेवाला तथा लोगों द्वारा वरणीय राजाका सुन्दर और सुखकारक रथ इन अत्याचारी राजाओंको कुचलता जाए, तथा सूर्यके समान प्रकाशित हो । यह प्रजातंत्र है । वैदिककालीन प्रजातंत्रीय शासनमें अत्याचारी राजाको पदच्युत करके उसकी जगह उत्तम और श्रेष्ठ राजाको बिठानेका प्रजाको पूरा अधिकार था ॥ १५ ॥

सब कार्य दक्षतासे करनेवाली उषाका विस्तृत और विशाल रथ तैय्यार हो गया है, और उस पर अमर देव आकर बैठ गए हैं । यह श्रेष्ठ उषा मानवोंके सुखदायी निवासके लिए ज्ञानपूर्वक यत्न करती है । उसने अपने आपको अन्धकारसे ऊपर उठाया है । यही मनुष्योंका कर्तव्य है, वे अज्ञानान्धकारसे अपने आपको ऊपर उठावें । विपत्तिसे ऊपर उठकर सम्पत्तिको प्राप्त करें और दूसरोंका निवास सुखपूर्वक हो ऐसा प्रयत्न करें ॥ १ ॥

यह उषा सब प्राणियोंसे पूर्व उठती है । यह बहुत दान करनेवाली उषा अन्न, बल तथा धनको जीत लेती है । सबसे पूर्व उठकर अपने कार्यमें लगनेसे अन्न प्राप्त होता है, बल बढता है और प्रयत्न करनेसे धन मिलता है । यह बारबार आनेवाली तरुणी सी उषा सबसे प्रथम स्थानमें विराजमान होती है और उच्च स्थानसे सबको देखती है ॥ २ ॥

हे कुलीन उषा देवी ! मनुष्योंका तारण करती हुई तू मनुष्योंके लिए जिस समय धनका भाग देती है, उस समय देव सूर्यके सामने हमें निष्पाप दर्शावें । मनुष्योंका तारण करनेके लिए उन्हें धनका योग्य भाग देना चाहिए । आवश्यक भोग साधनोंके अभावमें मनुष्य सुखसे नहीं रह सकेंगे इस प्रकार धनका बंटवारा ही मनुष्योंको सुखी और निष्पाप बना सकता है । आवश्यक भोगके न मिलने पर मनुष्य पापमें प्रवृत्त होता है ॥ ३ ॥

१३८९ गृहंगृंहमहना यात्यच्छा दिवेदिंवे अधि नामा दधाना ।
सिषांसन्ती द्योतना शश्वदागा-दग्रंमग्रमिद् भंजते वसूंनाम् ॥ ४ ॥

१३९० भगंस्य स्वसा वरुंणस्य जामि-रुषः सूनृते प्रथमा जंरस्व ।
पश्चा स दंघ्या यो अघस्यं धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥ ५ ॥

१३९१ उदीरतां सूनृता उत् पुरंन्धी-रुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूंनि तमसापंगूळ्हा-विष्कृंण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥

१३९२ अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेंति विषुंरूपे अहंनी सं चंरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाक-रद्यौदुषाः शोशुंचता रथेन ॥ ७ ॥

अर्थ—[१३८९] (अहना दिवे दिवे) उषा प्रतिदिन (गृहं गृहं अच्छ याति) घर घर जाती है और (नाम अधिदधाना) यश अधिक धारण करती है । (सिषासन्ती द्योतना शश्वत् आगात्) हविर्भागका सेवन करनेवाली यह प्रकाशती हुई उषा प्रतिदिन आती है और (वसूनां अग्रं अग्रं इत् भजते) धनोंमें श्रेष्ठ भागका सेवन करती है ॥ ४ ॥

[१३९०] (सूनृते उषः) उत्तम भाषण करनेवाली उषा ! तू (भगस्य स्वसा) भग देवताकी बहिन और (वरुणस्य जामिः) वरुणकी बहिन है ऐसी तू (प्रथमा जरस्व) पहिले स्तुत होनेवाली हो । (पश्चा) इसके नंतर (यः अघस्य धाता) जो पापका धारण करनेवाला पापी शत्रु है (स दध्या) वह पकडा जावे और (तं दक्षिणया रथेन जयेम) उसे तेरी दक्षतासे तथा रथसे हम पराजित करें ॥ ५ ॥

[१३९१] (सूनृता उदीरतां) स्तोत्र कहे जायें, (पुरंधीः उत्) विशाल बुद्धियां कार्यमें लगें, (अग्नयः-शुशुचानासः) अग्नि प्रदीप्त होकर (उत् अस्थुः) जलती जायें । (विभातीः उषसः) प्रकाशती उषाएँ (तमसा अप गूळ्हा) अन्धकारमें ढके (स्पार्हा वसूनि) स्पृहणीय धन (आविष्कृण्वन्ति) प्रकट करती रहें ॥ ६ ॥

[१३९२] (विषुरूपे अहनी संचरेते) विरुद्ध रूपवाली रात्री और उषा क्रमसे संचार कर रही हैं । (अन्यत् अप एति) रात्रीका अन्धकार चला जाता है और (अन्यत् अभि एति) दिनका प्रकाश आ जाता है । (परिक्षितोः अन्या) इन घूमनेवालोंमेंसे एक रात्री (तमः गुहा अकः) अन्धकारसे सबको आच्छादित करती है, और दूसरी उषा (शोशुचता रथेन अद्यौत्) तेजस्वी रथसे प्रकाशती है ॥ ७ ॥

भावार्थ— हविर्भाग लेने उषा प्रतिदिन आती है । कीर्तिको धारण करती है, स्तुति सुनती है और घर घर पहुंचती है, घरे घरमें प्रकाश करती है । धनोंमें श्रेष्ठ धन प्राप्त करती है स्त्री भी प्रतिदिन हवन करे, यश कमावे, घरमें प्रकाश करे ॥ ४ ॥

हे उत्तम भाषण करनेवाली उषा ! तू भगकी और वरुणकी बहिन है । तू सब देवोंमें पहिली है, तू स्तुति प्रारंभ कर । बादमें जो पापी हैं उसे दक्षतापूर्वक चलनेवाले रथसे उसे पकडें । स्त्री उत्तम और मीठा भाषण करे, सौभाग्यवाली हो, दिव्य भाववालोंमें पहिली हो, ईश्वरकी भक्ति करे, जो पापी हो उसे पकड कर दण्ड दिया जाए ॥ ५ ॥

मनुष्य सदा सत्यवाणी ही बोलें । अग्नि प्रदीप्त करें । हवन करें । तब उनके लिए तेजस्वी उषा अन्धकारमें छिपे हुए धन प्रकट करेगी । उषःकाल स्वास्थ्यदायक है । अतः इस समय उठकर हवन करना चाहिए ॥ ६ ॥

विरुद्ध रूपरंगवाली रात्री और उषा क्रमसे संचार करती हैं एक चली जाती है, तब दूसरी आती है । इन दोनोंमेंसे एक अन्धकारसे सबको ढक देती है और दूसरी अपने तेजसे सबको प्रकाशित करती है ॥ ७ ॥

22

१३९३ सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं संचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजना–न्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥
१३९४ जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामा–हरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥
१३९५ कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्ता–दाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥
१३९६ सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा–विस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत् ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥

अर्थ— [१३९३] (अद्य सदृशीः) आज भी ये समान हैं और (श्वः उ सदृशीः इत्) कल भी ये उषाएं समान ही होंगी । (वरुणस्य दीर्घं धाम) वरुणके विस्तीर्ण स्थानकी (अनवद्याः सचन्ते) ये शुद्ध उषायें सदा सेवा करती हैं । (एका एका) एक एक उषा (त्रिंशतं योजनानि) तीस योजन (सद्यः क्रतुं परियन्ति) तत्काल ही कर्म प्रवर्तक सूर्यके आगे चलती हैं ॥ ८ ॥

[१३९४] (अह्नः प्रथमस्य नाम जानती) दिनके प्रथम भागका यश जाननेवाली (शुक्रा श्वितीची) शुद्ध और तेजस्विनी उषा (कृष्णात् अजनिष्ट) रात्रीके काले अन्धकारमेंसे प्रकट होती है । यह (योषा) स्त्री उषा (ऋतस्य धाम न मिनाति) सत्यके व्रतको तोडती नहीं और (अहः अहः निष्कृतं आचरन्ती) प्रतिदिन नियत स्थानपर आती और नियमपूर्वक रहती है ॥ ९ ॥

[१३९५] हे (देवी) उषा देवी ! (तन्वा शाशदाना कन्या इव) शरीरको स्पष्ट दिखानेवाली कन्याके समान (इयक्षमाणं देवं एषि) इष्ट सुख देनेवाले पति देवके पास तू जाती है । (युवतिः संस्मयमाना) तरुणी स्त्री हंसती हुई और (पुरस्तात्) पतिके सन्मुख (विभाति) चमकती हुई (वक्षांसि आविः कृणुसे) अपनी छाती प्रकटरूपसे दिखाती है ॥ १० ॥

[१३९६] (मातृमृष्टा योषा इव) माता द्वारा पवित्र बनी तरुणी स्त्रीके समान (सुसंकाशा) तेजस्विनी तू (कं तन्वं दृशे आविः कृणुषे) अपने सुन्दर शरीरको लोगोंको दिखानेके लिये प्रकट करती है । हे (उषः) उषा ! (त्वं भद्रा वितरं व्युच्छ) तू कल्याण करनेवाली होकर दूरतक प्रकाशती रह । (ते तत् अन्याः उषसः न नशन्त) तेरा वह तेज अन्य उषाएं प्राप्त नहीं कर सकेंगी ॥ ११ ॥

भावार्थ— जैसी उषा आज आई है, वैसी ही कल भी आएगी । यह अनिन्द्य उषा वरुणके दीर्घ स्थानकी सेवा करती है । एक एक उषा तीस योजनोंकी परिक्रमा करती है । ये उषायें सूर्यके आगे आगे चलती हैं ॥ ८ ॥

प्रथम दिनको जाननेवाली गौरवर्णा शुभ्र उषा काली रात्रिके काले अन्धकारसे उत्पन्न हुई है । चूंकि रातके बाद उषा आती है अतः मानों उषा रात्रिमेंसे उत्पन्न होती है । यह उषा नियमानुसार चलती है । सत्यव्रतका यह उषा उल्लंघन नहीं करती और प्रतिदिन निश्चित समयपर आती है ॥ ९ ॥

हे दिव्य उषा ! तू अपने शरीरको सुन्दर बनाकर और सजा धजा कर सुन्दर कन्याके समान अपने पूजनीय पति देवके पास जाती है । हंसती हुई तरुण स्त्री अपने पतिके साथ प्रसन्न रहती है । यह एक तरुण स्त्रीका वर्णन है, जो रंगरूपसे सुंदर है शरीरसे हृष्टपुष्ट है, सजी हुई है, अपने पति पर प्रेम करती है । साथ ही पूज्य भाव भी धारण करती है ॥ १० ॥

मातासे परिशुद्धकी गई तरुणीके समान सुन्दर बनी हुई यह तरुणी उषा अपने शरीरके अवयवोंको बतानेके लिए प्रकट– करती है । हे उषा ! तू मनुष्योंका कल्याण करती हुई अधिक प्रकाशित हो । अन्य उषायें तेजस्वितामें इसकी बराबरी नहीं कर सकतीं । रात्री माता है जो अपनी पुत्री उषाको सजा धजाकर उसके प्रिय पति सूर्यके पास भेजती है ॥ ११ ॥

१३९७ अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥
१३९८ ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥

[१२४]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३९९ उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥
१४०० अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

अर्थ— [१३९७] (अश्वावतीः गोमतीः) घोडोंसे और गौओंसे युक्त (विश्ववाराः) सबके द्वारा स्वीकारने योग्य (सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानाः) सूर्यकी किरणोंसे अन्धकार दूर करनेके लिए यत्न करनेवालीं (भद्रा नाम वहमाना उषासः) कल्याण करनेका यश धारण करनेवाली उषाएं (परा च यन्ति) दूर जाती हैं और (पुनः आयन्ति च) फिर आती हैं ॥ १२ ॥

[१३९८] हे (उषः) उषा ! (ऋतस्य रश्मिं अनुयच्छमाना) सूर्यकी किरणोंके अनुकूल रहनेवाली तू (अस्मासु भद्रं भद्रं क्रतुं धेहि) हमारे अन्दर कल्याणकारक कर्म करनेकी बुद्धि स्थापित कर। तू (सुहवा नः अच्छ व्युच्छ) बुलानेपर हमारे सामने प्रकाशती रह । (अस्मासु मघवत्सु च रायः स्युः) हमारे और धनिकोंमें पर्याप्त धन रख ॥ १३ ॥

[१२४]

[१३९९] (समिधाने अग्नौ) प्रज्वलित अग्नि होनेपर (उषा उच्छन्ती) उषा अन्धकार दूर करती है और (उद्यन् सूर्यः) उदित हुए सूर्यके समान (उर्विया ज्योतिः अश्रेत्) विशाल तेज धारण करती है । (अत्र सविता देवः नः अर्थं) यहां सूर्य देव हमारे लिए आवश्यक धन तथा (द्विपत् चतुष्पद्) द्विपाद और चतुष्पादोंको (इत्यै प्र प्र असावीत्) गमन करनेके लिए मार्ग कर देवे ॥ १ ॥

[१४००] (दैव्यानि व्रतानि अमिनती) दिव्य व्रतोंका नाश न करनेवाली, परंतु (मनुष्या युगानि प्रमिनती) मनुष्योंके आयुका नाश करनेवाली (ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा) सदा आती रही उषाओंके अन्तमें आनेवाली तथा (आयतीनां प्रथमा) आनेवाली उषाओंमें पहिली यह (उषा व्यद्यौत्) प्रकाशती है ॥ २ ॥

भावार्थ— घोडोंवाली और गौओंवाली तथा सबके द्वारा आदर करने योग्य यह उषा सूर्य किरणोंके साथ खेलती है, अन्धेरेको दूर करती है । यह कल्याण करनेवाली उषा दूर जाती सी दिखाई देती है, पर फिरसे उसी स्थान पर आ जाती है ॥ १२ ॥

सूर्य किरणोंको देनेवाली, हमारे कल्याणकारी यज्ञका सम्पादन करनेवाली यह उषा प्रकाशित होती रहे और वह हमें धन प्रदान करे ॥ १३ ॥

अग्निके प्रज्वलित होनेपर उषा आती है और अन्धकारको दूर करती है । सूर्य अधिक तेजस्वी होता है । यह सविता देव हमें धन प्राप्त करने और द्विपाद् और चतुष्पादोंको जानेके लिए मार्ग बतावे । अर्थात् उषाके आनेके बाद हमारे मनुष्यों, गौओं और घोडोंको आनेजानेका मार्ग खुला हो जाए । बर्फके पडनेसे मार्ग बंद हो जाता है और उषःकालमें सूर्योदयके होने पर वह बर्फ पिघल जाती है और आने जानेके लिए मार्ग साफ हो जाता है ॥ १ ॥

यह उषा प्रतिदिन आकर मनुष्योंकी आयु कम करती है, अर्थात् प्रतिदिन इसके उदयके साथ ही मनुष्यकी आयुके एक एक दिन घटते जाते हैं । इसी लिए उषाको यहां मानवी आयुकी हिंसा करनेवाली बताया है । यह उषा गत उषाओंमें अन्तिम और आनेवाली उषाओंमें प्रथम है ॥ २ ॥

१४०१ एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥
१४०२ उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥
१४०३ पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥
१४०४ एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४०१] (एषा दिवः दुहिता) यह द्युलोककी पुत्री (ज्योतिः वसाना समना) ज्योतिरूप वस्त्र पहननेवाली उत्तम मनवाली (पुरस्तात् प्रति अदर्शि) पूर्व दिशामें दीखने लगी है। यह उषा (ऋतस्य पन्थां साधु) सत्यके मार्गसे ठीक तरह जैसी (प्रजानती इव अनु एति) विदुषी स्त्री जाती है वैसी जाती है। तथा (दिशः न मिनाति) दिशाओंमें यह किसी तरह बाधा नहीं डालती ॥ ३ ॥

[१४०२] (शुन्ध्युवः वक्षः न) शुद्ध स्वच्छ छातीके समान (उपो अदर्शि) समीपसे ही उषा दीखती है। उस उषाने (नोधा इव प्रियाणि आविः अकृत) नवीन वस्तुका धारण करनेवालेके समान अपने प्रिय हेतु प्रकट किये हैं। (अद्मसत् न ससतः बोधयन्ती) घरमें रहनेवाली स्त्री जैसी सोनेवालोंको जगाती है, वैसी वह उषा (आ ईयुषीणां शश्वत्तमा) आनेवालोंमें निश्चयसे प्रथम आनेवाली (पुनः आ अगात्) पुनः आगयी है ॥ ४ ॥

[१४०३] (अप्त्यस्य रजसः पूर्वे अर्धे) व्यापक अन्तरिक्ष लोकके पूर्व अर्धमें (गवां जनित्री केतुं प्र अकृत) किरणोंको प्रकट करनेवाली उषाने प्रकाश किया है। (पित्रोः उपस्था) द्यावा पृथिवीके समीप रहकर (उभा आपृणन्ती) इन दोनों लोकोंको प्रकाशसे भरपूर भरनेवाली उषा (वितरं वरीयः विप्रथते उ) विशेष श्रेष्ठ प्रकाशसे आकाशको भर देती है ॥ ५ ॥

[१४०४] (एषा एव इत्) यह उषा (पुरुतमा) विस्तीर्ण होती हुई (कं दृशे) सुखके अनुभूतिके लिये जिस तरह (अजामिं न परि वृणक्ति) विजातीयको त्यागती नहीं वैसी ही (न जामिं) स्वजातीयको भी नहीं छोडती। दोनोंको प्रकाशित करती है। (अरेपसा तन्वा शाशदाना) निष्पाप शरीरसे प्रकाशित होती हुई यह उषा (न अर्भात् ईषते) न छोटेसे दूर भागती है और (न महः) न बडेको त्यागती है, पर दोनोंको (विभाती) प्रकाशित करती है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह स्वर्गीय कन्या उषा प्रकाशका रंगीन वस्त्र पहनती है और प्रतिदिन पूर्व दिशासे ऊपर आती हुई दिखाई देती है। यह हमेशा सत्यमार्गसे जाती है। जैसे विदुषी स्त्री उत्तम मार्गसे जाती है, उसी तरह दिशाओंमें किसी तरहसे बाधा न पहुंचाती हुई यह उषा आ रही है। जिसप्रकार यह उषा सत्यमार्गसे जाती हुई प्रकाशित होती है, उसी तरह स्त्रियां भी सत्यमार्ग पर चलती हुई तेजसे युक्त हों। सत्यमार्गसे चलने पर तेजकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

शुद्ध और स्वच्छ की हुई छाती जैसी सुन्दर यह उषा दीखती है अथवा जैसे एक सुन्दर गायक अपने आलापोंके सभी अवयवोंको स्पष्ट करता है, उसी तरह यह उषा अपने सुन्दर अवयवोंको प्रकट कर रही है। जैसे एक सुन्दरी तरुणी अपना सौन्दर्य प्रकट कर रही है, उसी तरह यह उषा अपनी प्रभा दिखा रही है। जिस प्रकार घरमें रहनेवाली स्त्री सोते हुए घरवालोंको जगाती है, उसी तरह उषा सबको जगाती है ॥ ४ ॥

व्यापक अन्तरिक्षलोकके पूर्व दिशाके भागमें किरणोंको उत्पन्न करनेवाली उषाने अपना ध्वज फहराया है। द्यावापृथिवी रूपी दोनों मातापिताओंके पास रहकर यह उषा श्रेष्ठ प्रकाशको अन्तरिक्षमें भरपूर भर देती है। अन्तरिक्षका सब स्थान उषाके प्रकाशसे भर जाता है ॥ ५ ॥

विस्तृत होनेवाली उषा स्वकीय या परकीयका भेद नहीं करती, सभी पर अपना प्रकाश समान रूपसे डालती है और सबके सामने अपनी सुन्दरता प्रकट करती है। सब पर अपना प्रकाश डालती है और उसे सुन्दर बनाती है। जो उसके सामने आता है, उसे सुन्दर बनाती है। निर्दोष शरीरसे प्रकाशित होनेवाली उषा छोटे या बडे अर्थात् किसीका भी त्याग नहीं करती। संपूर्ण विश्व बिना किसी भेद भावके प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

१४०५ अभ्रातेवं पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥
१४०६ स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥
१४०७ आसां पूर्वासामहंसु स्वसृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१४०५] (अभ्राता इव प्रतीची पुंसः एति) भ्रातृविहीन स्त्री जैसे पीछे हटकर अपने पितादिके पास जाती है, (धनानां सनये गर्तारुक् इव) धनोंकी प्राप्तिके लिये कोई स्त्री जैसे न्यायालयमें जाती है, (उशती सुवासा जाया पत्ये इव) पतिकी इच्छा करनेवाली उत्तम वस्त्र धारण करनेवाली स्त्री जैसे पतिके पास जाती है, यह (उषा) उषा (हस्रा इव अप्सः नि रिणीते) हंसती हुई स्त्रीके समान अपनी सुंदरताको प्रकट करती है ॥ ७ ॥

[१४०६] (स्वसा) एक बहन (ज्यायस्यै स्वस्रे) अपनी श्रेष्ठ बहनके लिये (योनिं आरैक्) स्थान खुला करती है। (अस्याः प्रतिचक्ष्य इव अप एति) इसके देखते ही वह स्वयं हट जाती है। (सूर्यस्य रश्मिभिः व्युच्छन्ती) सूर्यकी किरणोंसे अन्धेरेको दूर करती हुई यह उषा (समनगा इव व्राः अञ्जि अंक्ते) मिलकर जानेवाले विद्युत समूहके समान रूपसे प्रकाशती है ॥ ८ ॥

[१४०७] (आसां पूर्वासां स्वसृणां) इन पूर्व समयके बहिनोंमें (अहसु अपरा) दिनोंके मध्यसे एक (पश्चात् पूर्वां अभि एति) पीछेसे आकर दूसरीके पीछेसे जाती है। (ताः उषासः प्रत्नवत् नव्यसीः) वे उषाएं पुरातनके समान नवीन भी (नूनं अस्मे रेवत् सुदिना उच्छन्तु) निश्चयपूर्वक हमारे लिये धन युक्त शुभ दिन प्रकाशित करती रहें ॥ ९ ॥

भावार्थ— भ्रातृहीन स्त्री जिस प्रकार निराश्रित होनेपर वापस अपने मातापिताके पास चली जाती है, अथवा जिस प्रकार कोई विधवा धन प्राप्त करनेके लिए न्यायालय चढकर जाती है, उसी तरह सुन्दर वस्त्र पहन कर पतिकी इच्छा करनेवाली यह उषा हंसती हुई अपनी सुन्दरताको प्रकट करती है। दिनके होते ही यह उषा समाप्त हो जाती है, अतः यह कभी दिन रूपी अपने भाईके साथ नहीं रहती। इसलिए दिन रूपी भाईके न होनेसे यह उषा अपने पिता द्युलोकके पास चली जाती है ॥ ७ ॥

छोटी बहिन अपनी बडी बहिनके आनेपर अपनी जगह खाली कर देती है। यहां रात्री छोटी बहिन और उषा बडी बहिन है। उषाके आते ही रात्री जगह खाली कर देती है। इस उषाको देखते ही रात्री दूर चली जाती है। सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशनेवाली यह उषा अच्छीतरह चलनेवाली किरणसमूहके समान सुरूपताको समानतया व्यक्त करती है ॥ ८ ॥

जो उषायें इससे पूर्व आ चुकी हैं, उनमेंसे अन्तिम उषाके पीछेसे एक एक नयी उषा क्रमसे आती है। इसलिए पूर्वकी तरह ये आनेवाले नये दिन अर्थात् नयी उषायें हमारे लिए पर्याप्त धन ले आयें और उस धनके साथ ये उषायें प्रकाशती रहें ॥ ९ ॥

१४०८ प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥
१४०९ अवेयमश्वैद् युवतिः पुरस्ताद् युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥
१४१० उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
१४११ अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

अर्थ—[१४०८] हे (मघोनि उषः) धनवती उषा ! तू (पृणतः प्रबोधय) दाताओंको जगा । (अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु) अज्ञानी दान न देनेवाले कंजूस बनिये सो जांये । हे (मघोनि) धनवाली उषा ! (मघवद्भ्यः रेवत् उच्छ) धनवानोंके लिये धनके साथ प्रकाश दे । हे (सूनृते) उत्तम रीतिसे बोलनेवाली उषा ! (जारयन्ती) सब प्राणियोंकी आयु कम करती हुई तू (स्तोत्रे रेवत् उच्छ) स्तोताके लिये धनके साथ प्रकाशित हो ॥ १० ॥

[१४०९] (इयं युवतिः पुरस्तात् अव अश्वैत्) यह तरुण स्त्री उषा पूर्व दिशामें बढ रही है । यह (अरुणानां गवां अनीकं युंक्ते) लाल रंगके घोडोंके समूहको अपने रथमें जोतती है । यह उषा (नूनं वि उच्छात्) निश्चयसे प्रकाशती है और (असति प्र केतुः) अन्धेरेमें प्रकाश करती है । (अग्निः गृहं गृहं उपतिष्ठाते) अग्नि घर घरमें प्रदीप्त होता है ॥ ११ ॥

[१४१०] (ते व्युष्टौ) तेरा प्रकाश होनेपर (वयः चित् वसतेः उत् अपप्तन्) पक्षिगण ऊपर भी उड जाते हैं । (ये नरः च पितुभाजः) जो मनुष्य हैं वे अन्नकी इच्छासे भ्रमण करते हैं । हे (देवि उषः) उषा देवी ! (अमा सते) घरमें रहनेवाले (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (भूरि वामं वहसि) तू बहुत धन देती है ॥ १२ ॥

[१४११] हे (स्तोम्याः) प्रशंसनीय उषाओ ! (मे ब्रह्मणा अस्तोढ्वं) मेरे स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति हो रही है । हे (उषासः) उषाओ ! (उशतीः अवीवृधध्वं) उन्नतिकी इच्छा करनेवाली हम सब प्रजाजनोंकी वृद्धि करें । हे (देवीः) दिव्य उषाओ ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे संरक्षणसे (सहस्रिणं च शतिनं च वाजं सनेम) सहस्रों और सैकडों प्रकारके धन अन्न और बलको हम प्राप्त करें ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे धनवाली उषे ! दाताओंको जगाओ । न जागनेवाले, सोते रहनेवाले कंजूस बनिये सोते रहें, उन्हें लाभ न मिले, क्योंकि वे दान नहीं करते । हे धनवाली उषा ! जो धनका दान करते हैं, जो अपने धनका यज्ञ करते हैं । उनके लिए धनके साथ प्रकाश दो । हे शुभ भाषण करनेवाली उषा ! प्राणियोंकी आयु कम करनेवाली तू स्तोत्रपाठ करनेवालेके लिए धनके साथ प्रकाश दे ॥ १० ॥

यह तरुणी स्त्री उषा पूर्व दिशासे प्रकाशित हो रही है । इसने लालरंगके घोडे अपने रथमें जोडे हुए हैं । यह उषा अब विशेष रूपसे प्रकाशित होती हुई आएगी । और तब उसके प्रकाशका ध्वज फहरेगा । और इसका ध्वज फहरनेके साथ ही घर घरमें यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित होगी ॥ ११ ॥

उषाके प्रकाशके प्रकट होते ही पक्षी अपने घोंसलोंसे बाहर उडने लगते हैं । जिनके पास अन्न है, वे भी यज्ञ करने लगते हैं । यह सब कार्य उषाके उदयके पश्चात् ही होता है । हे उषा ! अपने घरमें रहकर यज्ञ और दान करनेवाले मनुष्यके लिए तू बहुतसा धन लाकर दे ॥ १२ ॥

हे प्रशंसनीय उषाओ ! मेरे इस स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति हो रही है, क्योंकि तुम स्तुतिके योग्य हो । हे उषाओ ! तुम हमारी उन्नति करनेकी इच्छासे हमारी उन्नति करो । तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर हम सैकडों और हजारों तरहके धन और अन्न प्राप्त करें ॥ १३ ॥

[१२५]

(ऋषिः– कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। देवता– स्वनयस्य दानस्तुतिः। छन्दः– त्रिष्टुप्, ४–५ जगती।)

१४१२ प्राता रत्नं प्रातुरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

१४१३ सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥

१४१४ आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

[१२५]

अर्थ— [१४१२] सूर्य (प्रातः प्रातः इत्वा) सवेरे सवेरे आकर लोगोंको (रत्नं दधाति) रत्न देता है। बुद्धिमान् (तं चिकित्वान्) उस रत्नकी महत्ताको जानकर (प्रतिगृह्य नि धत्ते) उसे लेकर अपने पास रख लेता है। तब (तेन) उससे मनुष्य (आयुः प्रजां वर्धयमानः) अपनी आयु और सन्तानोंको बढाता हुआ (रायःपोषेण सचते) धन और पुष्टिसे संयुक्त होता है ॥ १ ॥

१ प्रातः इत्वा रत्नं दधाति— सूर्य सवेरे आकर लोगोंको रत्न देता है।

२ चिकित्वान् तं प्रतिगृह्य नि धत्ते— पर केवल बुद्धिमान् ही उस रत्नको लेकर अपने पास रखता है।

[१४१३] (यः प्रातः इत्वः) जो मनुष्य सवेरे उठकर (आयन्तं त्वा) आते हुए किसी याचकको (वसुना) धनसे (मुक्षिजया पदं इव) रस्सीसे पैरको बांधनेके समान (उत् सिनाति) बांध देता है, वह दानी पुरुष (सुगुः सुहिरण्यः सुअश्वः) उत्तम गौओं, उत्तम सोने और उत्तम घोडेसे युक्त (असत्) होता है, तथा (अस्मै इन्द्रः बृहत् वयः दधाति) इसे इन्द्र अत्यन्त उत्तम अन्न देता है ॥ २ ॥

१ यः प्रातः आयन्तं वसुना उत् सिनाति, सुगुः सुहिरण्यः, सुअश्वः असत्— जो मनुष्य सवेरे आते हुए याचकको धनसे बांध देता है, वह उत्तम गौ, सोने और घोडेसे युक्त होता है।

[१४१४] हे देव ! मैं (अद्य प्रातः) आज सवेरे (वसुमता रथेन) धनयुक्त रथसे (इष्टेः पुत्रं सुकृतं इच्छन्) यज्ञके रक्षक तथा उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको पानेकी इच्छासे तेरे पास (आयं) आया हूँ। तू (मत्सरस्य अंशोः सुतं पायय) आनन्द देनेवाले सोमके निचोडे हुए रसको पी और (क्षयद्वीरं सूनृताभिः वर्धय) वीरोंको आश्रय देनेवाले मुझे अपने उत्तम आशीर्वादोंसे बढा ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रातःकालीन सूर्य अपनी किरणोंमें अनेक स्वास्थ्यप्रद पोषणतत्त्वरूपी तत्त्व लाकर मनुष्योंको प्रदान करता है। पर जो विद्वान् इस बातको जानते हैं वे ही सूर्योदयसे पूर्व उठकर सूर्यप्रकाशमें निहित पोषणतत्त्वोंको प्राप्त करते हैं, पर जो मूर्ख इस बातको नहीं जानते, वे सूर्योदय होनेपर भी सोते रहते हैं और इस कारण वे इन पोषणतत्त्वोंको पानेमें असमर्थ रहते हैं। जो इन पोषणतत्त्वोंसे लाभ उठाता है, उसकी आयु बढती है, वीर्य बढता है और वह पुष्ट होकर समस्त ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥ १ ॥

जो दानी मनुष्य सवेरे उठकर याचकोंको धन दान करता है, उसे उत्तम गौवें, धन और घोडे आदि मिलते हैं और इन्द्र भी इसे उत्तम अन्न प्रदान करता है। जो धनका दान करता है, उसकी सब देव सहायता करते हैं, पर जो इकट्ठा करके रखता है, उसका धन नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

जो सवेरे उठकर देवके पास जाता है उसे हर तरहका धन और उत्तम कर्म करनेवाली सन्तान प्राप्त होती है, तथा देवके उत्तम आशीर्वादसे वह बढता है। दानशील पुरुष धन भी प्राप्त करता है और उत्तम सन्तानें भी प्राप्त करता है और ईश्वरकी कृपासे वह हर तरहसे बढता है ॥ ३ ॥

१४१५ उप॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वो मयो॒भुव॑ ई॑जा॒नं च॑ य॒क्ष्यमा॑णं च धे॒नव॑: ।
पृ॒णन्तं॑ च॒ पपु॑रिं च श्रव॒स्यवो॑ घृ॒तस्य॒ धारा॒ उप॑ यन्ति वि॒श्वत॑: ॥ ४ ॥
१४१६ नाक॑स्य पृ॒ष्ठे अधि॑ तिष्ठति श्रि॒तो यः पृ॒णाति॒ स ह॑ दे॒वेषु॑ गच्छति ।
तस्मा॒ आपो॑ घृ॒तम॑र्षन्ति॒ सिन्ध॑व॒स्तस्मा॑ इ॒यं दक्षि॑णा पिन्वते॒ सदा॑ ॥ ५ ॥
१४१७ दक्षि॑णावता॒मिदि॒मानि॑ चि॒त्रा दक्षि॑णावतां दि॒वि सूर्या॑सः ।
दक्षि॑णावन्तो अ॒मृतं॑ भजन्ते॒ दक्षि॑णावन्तः॒ प्र ति॑रन्त॒ आयु॑: ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४१५] (ईजानं च यक्ष्यमाणं च) जो मनुष्य अब यज्ञ कररहे हैं, और जो आगे भी यज्ञ करेंगे, उनके लिए (मयोभुवः सिन्धवः) सुख देनेवाली नदियाँ (क्षरन्ति) बहती हैं। (पृणन्तं पपुरिं च) सबको सुख करने वाले तथा धनसे पूर्ण करनेवालेको (श्रवस्यवः धेनवः) अन्नकी इच्छा करती हुई गायें (घृतस्य धारा उपयन्ति) घीकी धारायें प्राप्त कराती हैं ॥ ४ ॥

१ ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः घृतस्य धाराः उपयन्ति— इस समय यज्ञ करनेवाले तथा आगे भी यज्ञ करनेवालोंको गायें घीकी धारायें प्राप्त कराती हैं ।

[१४१६] (श्रितः यः प्रिणाति) अपने आश्रितोंको जो धनधान्यसे पूर्ण करता है, वह (नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति) स्वर्गमें जाकर रहता है, (सह देवेषु गच्छति) वह देवोंमें जाकर विराजमान होता है। (सिन्धवः आपः) बहनेवाले जलप्रवाह (तस्मै) उसके लिए (घृतं क्षरन्ति) तेजस्वी जल बहाते हैं, (तस्मै) उसके लिए (इयं दक्षिणा) यह पृथ्वी (सदा पिन्वते) सदा ही भरपूर अन्न देती है ॥ ५ ॥

१ श्रितः यः प्रिणाति नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति— जो अपने आश्रितोंको तृप्त करता है, वह सदा सुखमें रहता है ।
२ सह देवेषु गच्छति— वह देवोंमें जाकर बैठता है ।
३ सिन्धवः आपः तस्मै घृतं क्षरन्ति— जलप्रवाह उस दानीके लिए तेजस्वी जल बहाते हैं ।
४ दक्षिणा तस्मै सदा पिन्वते— यह पृथ्वी उसके लिए सदा ही अन्नसे भरपूर रहती है ।

[१४१७] (इमानि चित्रा) ये सुन्दर सुन्दर समृद्धियाँ (दक्षिणावतां) दक्षिणा देनेवालोंके लिए ही हैं। (दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः) दक्षिणा देनेवालोंके लिए द्युलोकमें ये सूर्य हैं (दक्षिणावन्तः अमृतं भजन्ते) दक्षिणा देनेवाले अमर होते हैं (दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त) दक्षिणावाले ही अपनी आयु बढाते हैं ॥ ६ ॥

१ दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त— दक्षिणावालोंकी आयु बढती है ।

भावार्थ— यज्ञ करना एक श्रेष्ठतम कर्म है। जो यज्ञ सदा करते हैं, उनके लिए सभी नदियां सुख देती हैं। जो धनका दान करके सबको पूर्ण करते हैं और सबको सम्पन्न बनाकर प्रसन्न करते हैं, उनके लिए गायें घीकी धारायें प्रदान करती हैं। जो दान करता है, वह हर प्रकारसे ऐश्वर्य सम्पन्न होता है। ऐश्वर्य एवं सुखको प्राप्त करनेका यज्ञ और दान उत्तम साधन हैं ॥ ४ ॥

जो अपने आश्रितों या याचकोंको धनधान्य देकर तृप्त करता है, वह हर तरहके सुख प्राप्त करता है। वह देवके समान होकर उनमें जाकर विराजता है। जलप्रवाह उस दानीके लिए तेजस्वी जल देते हैं और यह पृथ्वी भी उसके लिए सदा धान्यसे भरी रहती है। उसे चारों ओरसे हर तरहके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

जो लोगोंको धनका दान करते हैं, अपने आश्रितोंको धनधान्यसे समृद्ध करते हैं, उन्हें भी सब तरहके ऐश्वर्य मिलते हैं। द्युलोकमें भी सूर्य उन्हींके लिए हर तरहके स्वास्थ्य प्रदान करता है। वे दीर्घकालतक जीवित रहते हुए उस अमरतत्व की उपासना करते हैं, तथा अपनी आयु बढाते हैं। धनके दानसे लोग प्रसन्न होकर दानीके प्रति अपनी शुभ कामनायें रखते हैं, इससे उस दानीकी आयु बढती है ॥ ६ ॥

१४१८ मा पृणन्तो दुरितमेन आरन् मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चि- दपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥

[१२६]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः, ६ स्वनयो भावयव्यः, ७ रोमशा । देवता- १-५ स्वनयो भावयव्यः, ६ रोमशा, ७ स्वनयो भावयव्यः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ६-७ अनुष्टुप् ।)

१४१९ अमन्दान् त्स्तोमान् प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवा- नतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

१४२० शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ् छतमश्वान् प्रयतान् त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥

अर्थ— [१४१८] (पृणन्तः) मनुष्योंको दानसे तृप्त करनेवाले (दुरितं एनः मा आरन्) दुःख और पापको न प्राप्त हों, (सूरयः सुव्रतासः मा जारिषुः) विद्वान् और उत्तम व्रतोंका आचरण करनेवाले वृद्ध न हों । (तेषां अन्यः) उनसे अलग (कश्चित् परिधिः अस्तु) जो कोई पापोंको धारण करनेवाला हो, उस (अपृणन्तं) देवोंको हवियोंसे तृप्त न करनेवाले अयज्ञशीलको (शोकाः सं यन्तु) शोक प्राप्त हों ॥ ७ ॥

१ पृणन्तः दुरितं एनः मा आरन्— देवों और मनुष्योंको तृप्त करनेवालेको दुःख और पाप नहीं प्राप्त होते ।

२ सूरयः सुव्रतासः मा जारिषुः— विद्वान् और उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्य वृद्ध न हों ।

३ अपृणन्तं शोकाः सं यन्तु— देवोंको हवियोंसे तृप्त न करनेवालेको शोक प्राप्त हों ।

[१२६]

[१४१९] (यः अतूर्तः राजा) जिस अहिंसित राजाने (श्रवः इच्छमानः) यशकी इच्छा करते हुए (मे) मेरे लिए (सहस्रं सवान् अमिमीत) हजार यज्ञ किये, उस (सिन्धौ अधिक्षियतः भाव्यस्य) समुद्र या नदीके किनारे पर रहनेवाले भाव्यके लिए मैं (मनीषा) बुद्धिपूर्वक (अमन्दान् स्तोमान् प्र भरे) ज्ञानसे भरे हुए स्तोत्रोंको कहता हूँ ॥ १ ॥

[१४२०] (नाधमानस्य असुरस्य राज्ञः) प्रार्थना करनेवाले तथा धनोंको देनेवाले राजाके (शतं निष्कान्) सौ सोनेके सिक्कोंको (कक्षीवान् सद्य आदं) मुझ कक्षीवान्ने ग्रहण किया है, (शतं प्रयतान् अश्वान्) सौ वेगवान् घोडे भी उससे मैंने प्राप्त किए हैं (शतं गोनां) सौ उत्कृष्ट बैल भी लिए हैं । इस प्रकार दान करके उस राजाने (दिवि) द्युलोकमें (अजरं श्रवः) अपना कभी न नष्ट न होनेवाला यश (आततान) फैलाया है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो अपने धनसे देवोंको हवि देकर और मनुष्योंको दान देकर तृप्त करते हैं, वे कभी दुःखी और पापी नहीं होते । जो विद्वान् सदा उत्तम व्रतोंका आचरण करते हैं, वे शीघ्र वृद्ध नहीं होते । यमनियमादि व्रतोंके आचरण करनेसे मनुष्य शीघ्र वृद्ध नहीं होता । पर जो पापी होता है और जो यज्ञ द्वारा देवोंको तृप्त नहीं करता अथवा लोगोंको दान देकर अपने धनका सदुपयोग नहीं करता, वह सदा ही मानसिक चिन्ताओं और शोकसे पीडित रहता है ॥ ७ ॥

राजा ऐसा वीर और पराक्रमी हो कि कोई भी शत्रु उसकी हिंसा न कर सके । ऐसा शूर राजा अपने यशको बढानेके लिए यज्ञोंको करे । यज्ञोंको करनेसे यश फैलता है । यज्ञोंका विस्तार नदियोंके किनारेपर किया जाए, और उन यज्ञोंमें बुद्धिपूर्वक ज्ञानसे भरे स्तोत्रोंका गायन किया जाए ॥ १ ॥

जो तेजस्वी पुरुष लोगोंके प्राणोंकी रक्षा करता है, देवोंकी प्रार्थना करता है और लोगोंको भरपूर दान देता है, उसका यश कभी नष्ट नहीं होता और वह सर्वत्र फैल जाता है ॥ २ ॥

१४२१ उप॑ मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात् सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ ३ ॥
१४२२ चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥
१४२३ पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन् युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥
१४२४ आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४२१] (स्वनयेन दत्ताः) स्वनयके द्वारा दिए गए (श्यावाः) उत्तम वर्णोंके घोडोंसे युक्त (वधूमन्तः) उत्तम वधुओंसे युक्त (दश रथासः) दस रथ (मा उप आगात्) मेरे पास आये हैं । (कक्षीवान्) कक्षीवान् (अन्हां अभिपित्वे) दिनके शुरु होनेपर (षष्टि सहस्रं गव्यं अनु सनत्) साठ हजार गायोंको प्राप्त करे ॥ ३ ॥

[१४२२] (सहस्रस्य) हजारों सेवकोंसे युक्त (दशरथस्य श्रेणिं) दस रथोंकी पंक्तिको (चत्वारिंशत् शोणाः) चालीस घोडे (अग्रे नयन्ति) आगे ले जाते हैं । (मदच्युतः) शत्रुओंके घमण्डको चूर चूर करनेवाले (कृशनावतः प्रजाः अत्यान्) सोनेके अलंकारोंसे युक्त घास आदि खाकर हृष्टपुष्ट तथा वेगवान् घोडोंको (कक्षीवन्तः) सेवक (उत् अमृक्षन्त) वशमें करें ॥ ४ ॥

[१४२३] हे (सुबन्धवः) उत्तम आचरणवाले बन्धुओ ! (पूर्वां प्रयतिं अनु) पहलेके समान उपासकोंका पोषण करनेवाले (त्रीन् अष्टौ अरिधायसः गाः) तीन और आठकी संख्यामें श्रेष्ठ मनुष्योंका धारण पोषण करनेवाले बैलोंको (वः आ ददे) तुम्हारे लिए मैंने स्वीकार किया है । (ये विश्याः इव व्राः) जो एक घरमें रहनेवाले मनुष्योंकी तरह परस्पर प्रेम करते हैं, ऐसे तुम सब (पज्राः) हृष्टपुष्ट होकर तथा (अनस्वन्तः) रथादियोंसे युक्त होकर (श्रवः ऐषन्त) यशकी इच्छा करो ॥ ५ ॥

[१४२४] (याशूनां यादुरी) प्रयत्नशीलोंको उन्नतिके मार्गमें प्रेरित करनेवाली नीति (आगधिता) अच्छी तरहसे प्रयुक्त होकर (परिगधिता) उत्तम गुणोंसे युक्त होकर (जंगहे) राष्ट्रको धारण करनेमें समर्थ होती है तथा (कशीका इव) शत्रुओंको चाबुकके समान दण्ड देनेमें भी समर्थ होती है । ऐसी नीति (मह्यं भोज्या ददाति) मुझे अनेक तरहके भोग्य पदार्थ देती है ॥ ६ ॥

भावार्थ— राजा सब प्रजाओंको अपनी उत्तम नीतिके अनुसार चलानेवाला हो । उसकी प्रजाओंके पास उत्तम वर्णवाले घोडे, उत्तम और सुन्दर स्त्रियें और सुन्दर सुन्दर रथ हों। उत्तम ज्ञानीके पास अनन्त गायें हों और वह घृत आदिका उपभोग करे ॥ ३ ॥

रथोंमें उत्तम घोडे जोडे जाएँ । घोडे भी शत्रुओंको हरानेवाले, सोनेके अलंकारोंसे सजे हुए तथा घास आदि खाकर हृष्टपुष्ट हों । ऐसे उत्तम घोडोंको वशमें रखकर उन्हें उत्तम रीतिसे शिक्षित किया जाए । आनन्द देनेवाले दस साधनोंका स्वामी आत्मा दशरथ है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारोंसे दस इन्द्रियोंको संयुक्त करना ही चालीस अश्व हैं । इन्हींसे सहस्रों तरहके सुख प्राप्त किए जा सकते हैं । विद्वान् ही इन इन्द्रियरूपी अश्वोंको वशमें कर सकते हैं ॥ ४ ॥

सब बन्धुओंके समान परस्पर प्रेमभावसे रहें । सभी मनुष्य हृष्टपुष्ट होकर रथादियोंके स्वामी हों अर्थात् सभी धनवान् बनें तथा यश प्राप्त करनेकी इच्छा करें। यह शरीर जीवनसे युक्त रथ है । उसको धारण करनेवाले " पज्र " प्राण हैं । ये सभी प्राण इस शरीरमें एकत्र होनेसे परस्पर भाई हैं और परस्पर एक दूसरेसे बंधे हुए हैं । आत्मा जैसे श्रेष्ठ तत्व को धारण करनेके कारण ये प्राण " अरिधायस् " हैं । इस देहमें गति प्रदान करनेवाले सत्व गौ हैं । सात प्राण और आठवीं वाक् तथा आत्मा, मन, बुद्धि इन तीन प्रमुख तत्वोंको सदा सन्मार्गमें प्रेरित करना चाहिए ॥ ५ ॥

राजाकी नीति प्रयत्न करनेवालोंको उन्नत करनेवाली तथा उत्तम गुणोंसे युक्त हो, ऐसी नीति राष्ट्रको धारण करनेमें समर्थ होती है । ऐसी नीति सज्जनोंका संरक्षण करती है और दुष्टोंको चाबुकके समान दण्ड देनेमें भी समर्थ होती है। ऐसी नीति पर चलनेसे राष्ट्रकी प्रजाओंको सभी तरहके भोग्य पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं ॥ ६ ॥

१४२५ उपौप मे परा मृश मा मे दुभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥

[१२७]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- अग्निः । छन्दः- अत्यष्टिः, ६ अतिधृतिः ।)

१४२६ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा ऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥
१४२७ यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभि- र्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥

अर्थ— [१४२५] हे पति ! (मे उप उप परा मृश) मेरे पास आकर मेरी सलाह ले, (मे दभ्राणि मा मन्यथाः) तू मेरे कामोंको छोटा मत समझ । (गंधारीणां अविका इव) गांधार देशकी भेडके समान (सर्वा अहं रोमशा अस्मि) मैं सब जगह रोमवाली हूँ अर्थात् मैं छोटी नहीं हूँ प्रौढबुद्धिवाली हूँ ॥ ७ ॥

[१२७]

[१४२६] (यः सुअध्वरः देवः) जो हिंसारहित यज्ञोंको प्रेरणा देनेवाला तेजस्वी देव अग्नि (ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा) अत्यन्त श्रेष्ठ देवकी कृपासे (आजुह्वानस्य सर्पिषः घृतस्य विभ्राष्टिं) चारों ओरसे डाले जानेवाले तेजस्वी घीके तेजको (शोचिषा अनु वष्टि) अपनी ज्वालासे ग्रहण करना चाहता है, ऐसे (होतारं) देवोंको बुलाकर लानेवाले (वसुं दास्वन्तं) धनोंको प्रदान करनेवाले (सहसः सूनुं) बलके पुत्र (जातवेदसं अग्निं) सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थोंको जाननेवाले अग्निका (जातवेदसं विप्रं न) वेदोंको जाननेवाले ब्राह्मणके समान (मन्ये) मैं सम्मान करता हूँ ॥ १ ॥

[१४२७] (द्यां परिज्मानं इव) द्युलोकमें सर्वत्र जानेवाले सूर्यके समान (चर्षणीनां होतारं) मनुष्योंको उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करनेवाले (शोचिष्केशं) तेजस्वी ज्वालाओंवाले (वृषणं यं) बलवान् जिस अग्निको (विशः इमाः विशः) कामना करनेवाली ये प्रजायें (जूतये) अपने इच्छित पदार्थको पानेके लिए (प्रावन्तु) तृप्त करती हैं, ऐसे हे (विप्र शुक्र) ज्ञानी, तेजस्वी अग्ने ! (यजिष्ठं अंगिरसां ज्येष्ठं) अत्यन्त पूज्य और अंगिराओंमें सर्वश्रेष्ठ (त्वा) तुझे (मन्मभिः) साधारण स्तोत्रोंसे तथा (विप्रेभिः मन्मभिः) ज्ञानसे युक्त स्तोत्रोंसे (यजमानाः हुवेम) हम यज्ञ करनेवाले बुलाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— पुरुष जहांतक हो वहांतक गृहकार्योंमें अपनी पत्नीकी सलाह अवश्य ले । अपनी पत्नीके विषयमें पति क्षुद्र विचार न रखे ॥ ७ ॥

यह अग्नि अपनी ज्वालाओंसे घीका भक्षण करके और अधिक तेजस्वी होता है । अग्नि देवोंको बुलाकर लानेवाला, उपासकोंको धन देनेवाला, अरणीसे बलपूर्वक मथने पर उत्पन्न होनेवाला है । ऐसे अग्निका उसी प्रकार सम्मान करना चाहिए, जिस प्रकार एक वेदज्ञ ब्राह्मणका किया जाता है ॥ १ ॥

द्युलोकमें चारों ओर गमन करता हुआ सूर्य सबको स्वास्थ्य प्रदान करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अपनी किरणोंसे सबको स्वास्थ्य प्रदान करता है । यह अत्यन्त पूज्य और अंगरसकी विद्या जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ है । इसीलिए सब इसकी ज्ञानयुक्त स्तुतियोंसे उपासना करते हैं ॥ २ ॥

१४२८ स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहंतरः परशुर्न द्रुहंतरः ।
वीळु चिद् यस्य समृतौ श्रुवद् वनेव यत् स्थिरम् ।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

१४२९ दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसे ऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद् वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४२८] (यस्य समृतौ) जिसके पास आकर (वीळु चित् श्रुवत्) दृढसे दृढ पदार्थ भी खण्ड खण्ड हो जाता है (यत् स्थिरं) जो स्थिर है, वह भी (वना इव) जलोंके समान चलायमान हो जाता है जो (निस्सहमानः यमते) शत्रुओंको पराजित करता हुआ उनपर शासन करता है, जो (न अयते) कभी शत्रुके सामनेसे भागता नहीं अपितु (धन्वासहा न) धनुषधारीकी तरह जो (अयते) आगे बढता चला जाता है, ऐसा (विरुक्मता ओजसा) देदीप्यमान ज्वालाओंरूपी बलसे (पुरु दीद्यानाः) अत्यन्त तेजस्वी होता हुआ (सः हि) वह अग्नि (द्रुहन्तरः परशुः न) पेड या लकडीको काटनेवाले फरसेके समान (द्रुहन्तरः भवति) द्रोह करनेवाले शत्रुओंको काटनेवाला होता है ॥३॥

[१४२९] (यथा विदे दुः) जिस प्रकार ज्ञानियोंको धन दिया जाता है, उसी तरह (दृळ्हा चित् अवसे अस्मै अनु दाष्टि) बलवान्से बलवान् पुरुष भी अपने रक्षणके लिए इस अग्निको आहुतियां देते हैं और यह अग्नि भी (तेजिष्ठाभिः अरणिभिः) तेजस्वी अरणियोंसे उत्पन्न होकर उन्हें (दाष्टि) ऐश्वर्यादि प्रदान करता है। (यः पुरूणि वना प्रगाहते तक्षत्) यह अग्नि जिस प्रकार बहुतसे वनोंमें प्रविष्ट होकर उन्हें नष्ट कर देता है, (इव) उसी प्रकार (ओजसा स्थिराणि नि रिणाति) अपने तेजसे स्थिर शत्रुओंको भी नष्ट कर देता है, तथा (ओजसा अन्ना चित्) अपने तेजसे कठिनसे कठिन अन्नको भी पका देता है ॥ ४ ॥

१ दृळ्हा चित् अवसे अस्मै दाष्टि— बलवान्से बलवान् पुरुष भी अपनी रक्षाके लिए इस अग्निकी प्रार्थना करता है।

२ ओजसा स्थिराणि नि रिणाति— अपने तेजसे यह अग्रणी सुदृढ शत्रुओंको भी नष्ट कर देता है।

भावार्थ— प्रजाओंका अग्रणी नेता ऐसा है कि जिसके सामने आकर दृढसे दृढ तथा स्थिर रहनेवाले शत्रु भी विचलित हो जायें और उसी तरह सूख जायें, जिस तरह अग्निके संयोगसे पानी सूख जाता है। वह शत्रुओंको पराजित करके उन पर शासन करनेवाला हो। जो युद्धमेंसे पीठ दिखाकर न भागे, अपितु हाथमें धनुष लेकर आगे बढता चला जाए। ऐसा तेजस्वी वीर पुरुष ही लकडियोंको काटनेवाले फरसेके समान द्रोह करनेवाले शत्रुओंको काटनेवाला होता है ॥ ३ ॥

यह अग्रणी बहुत बलशाली है, इसलिए इसकी निर्बल और बलवान् सभी प्रार्थना करते हैं। अपने उपासकोंको सब ऐश्वर्य प्रदान करता है। तथा शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

१४३० तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरा—दप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद् वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥

१४३१ स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणि—रप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददि—र्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥

१४३२ द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४३०] (यः नक्तं दिवातरात् सुदर्शतरः) जो रात्रीमें दिनसे भी अधिक दर्शनीय हो जाता है उस (अस्य उपरासु पृक्षं धीमहि) अग्निके लिये यज्ञोंमें हम हवि स्थापित करते हैं । (दिवातरात् अप्रायुषे) दिनकी अपेक्षा अधिक तेजस्वी रहनेवाले (अस्य आयुः ग्रभणवत्) इस अग्निके लिए उसी प्रकार हवि प्रदान करनी चाहिए जिस प्रकार (सूनवे वीळु शर्म) पुत्रके लिये पिता सुखकर घर देता है । (अग्नयः भक्तं अभक्तं व्यन्तः अवः) अनेक प्रकारके अग्नि भक्त और अभक्त दोनोंका विवेक करके भक्तोंकी रक्षा करते हैं और (व्यन्तः अजराः) ये अग्नि रक्षण करनेवाले और अजर हैं ॥ ५ ॥

१ नक्तं दिवातरात् सुदर्शतरः— यह अग्रणी दिनकी अपेक्षा रातमें सुन्दर दिखाई देता है । अग्रणी नेताकी सच्ची परीक्षा सुख (दिन) की अपेक्षा आपत्ति या दुःख (रात्री या अन्धकार) में होती है ।

२ अग्नयः अभक्तं व्यन्तः भक्तं अवः— अग्रणी लोग शत्रुओंको दूर या नष्ट करते हुए उपासकोंकी रक्षा करते हैं ।

[१४३१] (इष्टनिः सः) पूजाके योग्य वह अग्नि (अप्नस्वतीषु उर्वरासु आर्तनासु) यज्ञ कर्मोंमें, उपजाऊ भूमियोंमें और युद्धोंमें (शर्धः मारुतं न) बलशाली वायुके समान (तुविष्वणिः) बहुत जोरसे गर्जना करता है । वह (इष्टनिः) पूज्य अग्नि (हव्यानि आदत्) हवियोंको खाता है तथा वह (आददिः) हवियोंको स्वीकार करनेवाला (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका चिह्न और (अर्हणा) पूज्यतम है । (हर्षतः हृषीवतः) दूसरोंको हर्षित करनेवाले एवं स्वयं भी हर्षित होनेवाले (अस्य) इस अग्निके (पंथां) मार्ग पर (शुभे) कल्याणकी प्राप्तिके लिए (विश्वे देवाः जुषन्त स्म) सारे देव उसी प्रकार चलते हैं, जिस प्रकार (नरः न पंथां) मनुष्य कल्याणकी प्राप्तिके लिए उत्तम मार्ग पर चलते हैं ॥ ६ ॥

[१४३२] (यत् दाशा भृगवः) जब उपासनाके लिए भृगु (मथ्नन्तः) इस अग्निको मथकर उत्पन्न करते हैं, तब (कीस्तासः अभिद्यवः नमस्यन्तः) स्तुति करनेवाले, तेजस्वी तथा विनयशील (भृगवः) वे भृगु (ईं द्विता उपवोचन्त) इसकी दो प्रकारसे स्तुति करते हैं । वह (शुचिः धर्णिः मेधिरः) पवित्र, धारण कर्ता और ज्ञानी अग्नि (एषां वसूनां ईशे) इन धनोंपर शासन करता है और (प्रियान् अपि-धीन्) प्रेमपूर्वक समर्पित की गई स्तुतियोंको (वनिषीष्ट) स्वीकार करता है, (मेधिरः आ वनिषीष्ट) निश्चयसे वह ज्ञानी उन स्तुतियोंको स्वीकार करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी प्रकाशकी अपेक्षा अन्धकारमें और अधिक तेजस्वी होता है । वह अपने सहायकोंकी रक्षा और शत्रुओंको दूर करता है ॥ ५ ॥

यह पूजनीय अग्नि सभी स्थलोंमें वायुके समान गर्जना करता है । कल्याणकी प्राप्तिके लिए सभी देव इसीके बताए हुए मार्गपर चलते हैं ॥ ६ ॥

जब भृगुकुलमें उत्पन्न लोगोंने मथकर इस अग्निको प्रकट किया और इसकी उपासना की, तब इसने प्रेमपूर्वक समर्पित की गई हवियोंको ही स्वीकार किया ॥ ७ ॥

१४३३ विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दंपतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥
१४३४ त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥
१४३५ प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१४३३] (विश्वासां विशां पतिं) सम्पूर्ण प्रजाओंके रक्षक (सर्वासां समानं दम्पतिं) सब मनुष्योंके साथ समानरूपसे व्यवहार करनेवाले, गृहपालक, (सत्यगिर्वाहसं मानुषाणां अतिथिं) सत्यवाणीका व्यवहार करनेवाले मनुष्योंके लिये अतिथिके समान पूज्य अग्निको (भुजे हवामहे) भोग प्राप्तिके लिये हम बुलाते हैं। (यस्य आसया) जिसके समीपमें (अमी विश्वे अमृतासः) यह सारे प्रसिद्ध देवता लोग भी (वयः आ) हवि भक्षण करनेके लिए उसी प्रकार आते हैं (पितुः न वयः) जिस प्रकार पुत्र पिताके पास अन्नके लिए आते हैं। (देवेषु हव्या आ) मनुष्य भी देवोंके लिए हवियोंका अर्पण करते हैं ॥ ८ ॥

१ सर्वासां समानं— यह अग्रणी सबके साथ समानताका व्यवहार करनेवाला है, यह पक्षपाती नहीं है।

२ दम्पतिः— (दम-पतिः) 'दम इति गृहनाम तस्य पालकः' दम अर्थात् घरका पालक।

३ सत्यगिर्वाहसः— यह अग्रणी सदा सत्यवाणीका ही उपयोग करता है।

[१४३४] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वं सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमः जायसे) तू बलसे शत्रुओंको बुरी तरह हरानेवाला और अतिशय तेजस्वी उत्पन्न हुआ है (देवतातये रयिः न देवतातये) जैसे देवोंके यज्ञके लिये धन उत्पन्न होता है उसी प्रकार तेरा जन्म यज्ञोंकी रक्षा करनेके लिए हुआ है। (ते मदः शुष्मिन्तमः उत क्रतुः द्युम्निन्तमः) तेरा आनन्द अत्यन्त बलका देनेवाला और तेरा कर्म अत्यन्त तेजस्वी होता है। हे (अजर) जरारहित अग्ने! तू (अध ते स्म श्रुष्टीवानः न परिचरन्ति) इस कारणसे तेरी सब लोग दूतकी तरह सेवा करते हैं ॥ ९ ॥

१ सहसा सहन्तमः द्युम्निन्तमः— यह अग्नि अपने बलसे अत्यन्त बलवान् और अत्यन्त तेजस्वी है।

[१४३५] हे मनुष्यो! (वः स्तोमः) तुम्हारी स्तुतियां (महे सहसा सहस्वते) महान्, अपने बलसे शत्रुओंको हरानेवाले (उषर्बुधे अग्नये) उषःकालमें जागनेवाले अग्निको (प्र बभूतु) उसी प्रकार प्रसन्न करें, जिस प्रकार (अग्नये पशुषे न) तेजस्वी तथा पशुओंको देनेवाले मनुष्यकी लेनेवाले मनुष्यों द्वारा की गई स्तुतियां प्रसन्न करती हैं। (हविष्मान्) यज्ञ करनेवाला (विश्वासु क्षासु) सभी स्थानोंमें (ईं प्रति जोगुवे) इसीको लक्ष्य करके स्तुति करता है। (जूर्णिः होता) स्तुति करनेमें कुशल होता (ऋषूणां अग्रे जरत) आनेवाले देवोंमें सर्व प्रथम इस अग्निकी उसी तरह प्रशंसा करता है जिस प्रकार (ऋषूणां रेभः न) धनवानोंकी भाट स्तुति करता है ॥ १० ॥

भावार्थ— यह अग्रणी सबके साथ समान व्यवहार करनेवाला पूज्य, सत्यपालक और घरोंकी रक्षा करनेवाला है। सारे देव हवि भक्षणके लिए इसके पास आकर इकट्ठे होते हैं, देवोंके हवि भक्षणके लिए अग्नि मुख रूप है ॥ ८ ॥

यह अग्रणी अपने बलसे ही बलवान् होकर शत्रुओंको हराता और यश प्राप्त करता है इसे किसी दूसरेकी सहायताकी जरूरत नहीं पडती। यह हमेशा उत्साहसे भरपूर रहता है। इसीलिए सब इसकी सेवा करते हैं ॥ ९ ॥

यह अग्रणी अत्यन्त बलवान् तेजस्वी तथा पशुओंको देनेवाला है, इसलिए सभी स्थानोंमें उसकी स्तुति सर्वप्रथम की जाती है ॥ १० ॥

१४३६ स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भरा॒ग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ ॥

[१२८]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- अग्निः । छंदः- अत्यष्टिः ।)

१४३७ अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रत॒मग्निः स्वमनु व्रतम् ।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४३६] हे (अग्ने) अग्रणी ! (नः नेदिष्ठं ददृशानः) हमें पाससे भी तेजस्वी दीखनेवाला (सः) वह तू (देवेभिः सचनाः) देवोंके द्वारा सत्कारको प्राप्त होता है । (सुचेतुना महः रायः आभर) तू प्रसन्न मनसे हमें उत्कृष्ट धन भरपूर दे । हे (शविष्ठ) बलवान् अग्ने ! (संचक्षे अस्यै भुजे) दीर्घायु प्राप्तिके लिए और इस पृथ्वीका उपभोग करनेके लिए (नः महि कृधि) हमें महान् यशवाला कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् अग्ने ! तू (स्तोतृभ्यः महि सुवीर्यं) स्तोताओंको उत्तम बल दे तथा (उग्रः न शवसा मथीः) वीरके समान अपने बलसे शत्रुओंको नष्ट कर ॥ ११ ॥

१ संचक्षे अस्यै भुजे— दीर्घायु प्राप्तिके लिए ही संसारका उपभोग करें, अपना उपभोग सीमातीत न होकर दीर्घायु प्राप्तिमें सहायक हो ।

[१२८]

[१४३७] (होता यजिष्ठः अयं अग्निः) देवोंको बुलानेवाला अतीव यज्ञशील यह अग्नि (उशिजां व्रतं स्वव्रतं अनु मनुषः जायत) फलोंकी कामना करनेवालोंके सोमयागादिरूप कर्म और अपने व्रतोंको उद्देश्यमें रखकर मनुष्यसे अरणियों द्वारा उत्पन्न होता है । (सखीयते विश्वश्रुष्टिः श्रवस्यते रयिः इव) वह अपने साथ मैत्रीकी इच्छा करनेवालेको सब कुछ देता है और धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह धनके समुद्रके समान ही है । (अदब्धः होता परिवीतः इळस्पदे धरीमणि इळस्पदे निषदत्) कभी पीडित न होनेवाला, होतारूपसे ऋत्विजोंसे घिरा हुआ यह अग्नि व्यवस्थित वेदीमें विराजता है (इळस्पदे निषीदत्) वह निश्चयसे वेदीमें जाकर विराजता है ॥ १ ॥

१ सखीयते विश्वश्रुष्टिः— अपने साथ मैत्री करनेवालेको यह सब तरहके उपभोगके पदार्थ देता है ।
२ श्रवस्यते रायः इव— धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह मानों धनका सागर ही है ।

भावार्थ— यह अग्रणी पाससे भी देदीप्यमान दीखता है, अतः सत्कारके योग्य है, यह अग्नि हमें उत्कृष्ट धन दे और हम उस धनका उत्तम उपयोग कर दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११ ॥

अपने कर्मोंको पूरा करनेके लिए यह अग्नि उत्पन्न होता है । यह अन्योंके भी कर्मोंको पूर्ण करता है यह अपने उपासकोंके लिए हर तरहके पदार्थ एवं धन देता है ॥ १ ॥

१४३८ तं यज्ञसाधमपि वातयाम—स्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स नं ऊर्जामुपाभृ—त्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥

१४३९ एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद् दधद् रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभि—र्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानु—ष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥

१४४० स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे ऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४३८] हम लोग (ऋतस्य पथा हविष्मता नमसा हविष्मता देवताता) सत्यके मार्गसे, आहुतियोंसे नम्रतासे और हव्यवाले यज्ञसे (यज्ञसाधं तं अपि वातयामसि) यज्ञके साधक उस अग्निकी सेवा करते हैं (यं देवं मातरिश्वा मनवे परावतः परावतः भाः) जिस अग्निको मातरिश्वा वायुने मनुके लिये बहुत दूरसे लाकर प्रदीप्त किया था। (सः नः उर्जां उपाभृति अया कृपा न जूर्यति) वह अग्नि हमारे अन्नको स्वीकार करके भी अपने सामर्थ्यसे कभी भी क्षीण नहीं होता ॥ २ ॥

१ ऋतस्य पथा नमसा तं वातयामसि— सत्यके मार्गसे तथा नम्रतासे उस अग्रणीकी हम सेवा करते हैं।

२ देवं मातरिश्वा मनवे परावतः परावतः भाः— इस देवको वायु मनुष्योंके हितके लिए बहुत दूरसे लाया था।

[१४३९] (शतं अक्षभिः वनेषु चक्षाणः) सैंकडों आंखों अर्थात् ज्वालाओंसे वनोंमें प्रकाशित होता हुआ (उपरेषु सानुषु परेषु सानुषु) पासके और दूरके पर्वत शिखरों पर (सदः दधानः) अपना स्थान बनाता हुआ (मुहुः गीः वृषभः रेतः दधत् कनिक्रदत्) सदा प्रशंसित होनेवाला, बलवान्, वीर्यको धारण करनेवाला तथा गर्जना करनेवाला (तुर्वणिः देवः अग्निः) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला यह देव अग्नि (एवेन सद्यः पार्थिवं परि एति) सरल मार्गसे शीघ्र ही पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है ॥ ३ ॥

[१४४०] (सुक्रतुः पुरोहितः स अग्निः) शोभनकर्मवाला, आगे रहनेवाला वह अग्रणी (दमे दमे अध्वरस्य यज्ञस्य चेतति) घरघरमें नाश रहित यज्ञके कर्ममें प्रज्वलित होता है। (क्रत्वा यज्ञस्य चेतति) शोभनकर्म द्वारा यज्ञके कर्तव्यमें प्रज्वलित होता है। (क्रत्वा वेधाः इषूयते) प्रकृष्ट कर्मसे यह बुद्धिमान् अग्नि अन्नकी इच्छा करनेवालोंके लिए (विश्वा जातानि पस्पशे) सब तरहके पदार्थोंको प्रदान करता है (यतः घृतश्रीः अतिथिः अजायत) क्योंकि यह घृत खानेवाला अतिथिके रूपमें पूज्य होकर उत्पन्न हुआ है। और (वह्निः वेधाः अजायत) यह हविको वहन करनेवाला तथा बुद्धिमान् भी है ॥ ४ ॥

भावार्थ— सत्यके मार्ग पर चलनेसे और नम्रतापूर्वक व्यवहार करनेसे ही यह अग्रणी प्रसन्न रहता है। यह सदा सामर्थ्ययुक्त रहता है कभी क्षीण नहीं होता ॥ २ ॥

यह सर्वत्र प्रकाशित होता हुआ बलवान् अग्नि सभी जगह अपना निवास स्थान बनाता है ॥ ३ ॥

यह अग्नि घरघरमें प्रज्वलित होता है। इसके जलनेसे यज्ञका ज्ञान होता है। यह बुद्धिमान् तथा उत्तम कर्म करनेवाला है ॥ ४ ॥

१४४१ क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चते ऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्ये—षिराय न भोज्या ।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५ ॥

१४४२ विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथ—च्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत् सुकृते वारमृण्व—त्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥

१४४३ स मानुषे वृजने शंतमो हितो ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणा—मिळा कृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्ते—र्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४४१] (यत्) जिस कारण उपासक (मरुतां न) मरुतोंको अर्पित करनेके समान (अस्य अग्नेः तविषीषु) इस अग्निकी ज्वालाओंको (क्रत्वा अवेन) बुद्धिपूर्वक और आदरपूर्वक (भोज्या पृंचते) आहुति देते हैं अथवा (इषिराय भोज्या न) याचकको भोजन देनेके समान इस अग्निको हवि देते हैं, इस कारण (स मज्मना वसूनां दानं इन्वति) वह अग्नि अपने बलसे उपासकोंको धनका दान करता है। वह हमें (अभिह्रुतः दुरितात्) पराभव और पापसे (त्रासते) बचाता है तथा वह हमें (शंसात्) शापोंसे (अभिह्रुतः) पराभवसे (अघात्) पापसे बचावे ॥५॥

[१४४२] (विश्वः विहाया अरतिः अग्निः) विश्वव्यापी, महान् और सम्पन्न अग्नि (तरणिः न दक्षिणे हस्ते वसुः दधे) सूर्यकी तरह दाहिने हाथमें यजमानको देने योग्य धन धारण करता है। उसका वह हाथ (श्रवस्यया) यशाभिलाषियोंको धन देनेके लिये (शिश्रथत्) खुला रहता है। (न शिश्रथत्) दुर्जनोंके लिए नहीं खुला रहता है। हे अग्ने! (देवत्रा इषुध्यते विश्वस्मै हव्यं ओहिषे) दिव्यगुणोंसे युक्त तू हविकी कामना करनेवाले सब देवोंके लिए हविका वहन करता है। तथा (विश्वस्मै सुकृते वारं ऋण्वति, द्वारा व्यृण्वति) सब उत्तम और श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये वरण करने योग्य धनको प्रदान करता है और धनके द्वारको उनके लिये खोल देता है ॥ ६ ॥

१ सुकृते वारं ऋण्वति, द्वारा विऋण्वति— उत्तम कर्म करनेवालोंके लिए यह धन देता है, उनके लिए यह धनके द्वार खोल देता है।

[१४४३] (सः अग्निः) वह अग्नि (मानुषे वृजने, यज्ञेषु) मनुष्योंके पाप दूर करनेके निमित्त भूत कार्योंमें और यज्ञोंमें (शंतमः हितः) अत्यन्त सुख देनेवाला और हितकारी है, तथा (जेन्यः न विश्पतिः यज्ञेषु विश्पतिः प्रियः) विजयी राजाकी तरह यज्ञोंमें प्रजाओंका पालक और प्रिय है। वह अग्नि (मानुषाणां हव्या इळा कृतानि) यजमानोंके हविको स्वीकार करनेके उद्देश्यसे आता है। (सः वरुणस्य धूर्तेः नः त्रासते) वह यज्ञमें बाधा पहुंचानेवाले धूर्तोंसे हमारी रक्षा करे; तथा (महः देवस्य धूर्तेः) महान् देवकी हिंसासे हमारा उद्धार करे ॥ ७ ॥

भावार्थ— हम बुद्धिपूर्वक और आदरसे अग्निको आहुतियां देते हैं, अतः वह हमें हर तरहके संकटोंसे बचावे ॥ ५ ॥

यह अपने हाथमें सदा धनको धारण किए रहता है, पर वह धन यशाभिलाषी उत्तम कर्म करनेवालोंको ही देता है, दुष्टों और दुराचारियोंको नहीं ॥ ६ ॥

वह अग्रणी संघटनके कार्योंमें सहायता देकर सुख बढाता है, वह राजाकी तरह प्रजाका पालन करता है, तथा यज्ञोंमें विघ्न करनेवाले धूर्तोंसे बचाता है ॥ ७ ॥

१४४४ अ॒ग्निं होता॑रमीळते॒ वसु॑धितिं॒ प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिं न्ये॑रिरे ह॑व्य॒वाहं॒ न्ये॑रिरे ।
वि॒श्वायुं॑ वि॒श्ववे॑दसं॒ होता॑रं यज॒तं क॒विम् ।
दे॒वासो॑ र॒ण्वमव॑से वसू॒यवो॑ गी॒र्भी र॒ण्वं व॑सू॒यवः॑ ॥ ८ ॥

[१२९]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः, ६ इन्दुः । छन्दः-अत्यष्टिः; ८-९ अतिशक्वर्यौ; ११ अष्टिः ।)

१४४५ यं त्वं रथ॑मिन्द्र मे॒धसा॑तये ऽपा॒का सन्त॑मिषिर प्र॒णय॑सि॒ प्रान॑वद्य॒ नय॑सि ।
स॒द्यश्चि॒त्तम॒भिष्ट॑ये॒ करो॒ वश॑श्च वा॒जिन॑म् ।
सास्माक॑मनवद्य तूतुजान वे॒धसा॑मि॒मां वाचं॒ न वे॒धसा॑म् ॥ १ ॥

१४४६ स श्रु॑धि॒ यः स्मा॒ पृत॑नासु॒ कासु॑ चिद् द॒क्षाय्य॑ इन्द्र॒ भर॑हूतये॒ नृ॒भि॒रसि॒ प्रतू॑र्तये॒ नृ॒भिः॑ ।
यः शूरैः॒ स्व१ः सनि॑ता॒ यो विप्रै॒र्वाजं॒ तरु॑ता ।
तमी॑शा॒नास॑ इरधन्त वा॒जिनं॑ पृ॒क्षमत्यं॒ न वा॒जिन॑म् ॥ २ ॥

अर्थ— [१४४४] (वसुधितिं चेतिष्ठं अरतिं प्रियं होतारं अग्निं) धनधारक सुबुद्धि दाता, प्रेरणा देनेवाले सबके प्रिय होता रूप अग्निकी मनुष्य (ईळते न्येरिरे) स्तुति करते हैं एवं उससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उन्होंने प्रयत्नसे (हव्यवाहं, विश्वायुं, विश्ववेदसं होतारं यजतं कविं न्येरिरे) हव्यको ले जानेवाले, सबके प्राणरूप, सब कुछ जाननेवाले, देवोंको बुलानेवाले, पूजाके योग्य और मेधावी अग्निको पूर्णरूपसे प्रदीप्त किया । इस कारण (देवासः वसूयवः अवसे) ऋत्विक् लोग अर्थाभिलाषी होकर अपनी रक्षाके लिये (रण्वं गीर्भिः) उस रमणीय अग्निकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[१२९]

[१४४५] हे (इषिर) प्रेरक (इन्द्र) इन्द्र ! (मेध-सातये) यज्ञकी प्राप्तिके लिये (त्वं) तू (यं) जिस (अपाका) अपरिपक्व (सन्तं) के पास (रथं) रथ (प्र नयसि) ले जाता है, हे (अनवद्य) पाप-रहित ! तू उसे (प्र नयसि) आगे बढाता है । तू (तं) उसे (सद्यः चित्) शीघ्र ही (अभिष्टये) अभीष्ट पदार्थके देनेके योग्य (करः) बना देता है (वाजिनं च) और उस अन्नवालेको तू (वशः) चाहता है । हे (अनवद्य) पाप-रहित और (तूतुजान) शीघ्र कार्य करनेवाले इन्द्र ! (सः) वह तू (वेधसां) विद्वानोंकी (वाचं न) वाणीके समान (अस्माकं) हम (वेधसां) ज्ञाताओंकी (इमां) यह वाणी सुन ॥ १ ॥

१ अपाका सन्तं रथं प्र नयसि, प्र नयसि— जो भक्त अपरिपक्व बुद्धिवाला होता है, उसके पास इन्द्र रथ ले जाता है, और उसे आगे बढाता है ।

[१४४६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः स्म) जो तू (कासु चित्) किसी भी (पृतनासु) संग्रामोंमें (नृ-भिः) वीरोंके साथ (भर-हूतये) भरण-पोषण निमित्त हुए युद्ध और उन्हीं (नृ-भिः) वीर मनुष्योंके साथ (प्र-तूर्तये) शत्रु-नाशके काममें (दक्षाय्यः) कुशल (असि) है। (सः) वह तू हमारी बात (श्रुधि) सुन । (यः) जो (शूरैः) शूर (स्वः) स्वयं (सनिता) प्राप्त करनेवाला और (यः) जो (विप्रैः) बुद्धिमानोंके साथ मिलकर (वाजं) धन (तरुता) बाँटनेवाला है (वाजिनं अत्यं न) जिस प्रकार वीर बलशाली घोडेका सहारा लेते हैं, उसी प्रकार (ईशानासः) समर्थ लोग (पृक्षं वाजिनं) पूर्ण करनेवाले तथा बलवान् इस इन्द्रका (इरधन्त) आश्रय करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी बुद्धिदाता प्रेरणा देनेवाला सबका प्रिय है, उसीसे सब मनुष्य प्रेरणा प्राप्त करते हैं । उसी रमणीय अग्निकी सब स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

जो साधक अपरिपक्व बुद्धिवाला होते हुए भी इन्द्र पर श्रद्धा रखता है, उस साधककी वह इन्द्र सहायता करता है और उसे आगे बढाता है । तथा अभीष्ट पदार्थकी प्राप्तिके लिए इन्द्र उसे आगे बढाता है ॥ १ ॥

१४४७ दुस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद् यावीरररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद् दिवे तद् रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

१४४८ अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥

१४४९ नि षू नमातिमतिं कयस्य चित् तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभि–रुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुराऽनेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्नि–रासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥

अर्थ—[१४४७] हे इन्द्र ! तू (दस्मः हि) दर्शनीय है (वृषणं) वर्षा करनेवाले (त्वचं) आवरक मेघको जलसे (पिन्वसि) पूर्ण करता है । हे (शूर) शूर ! तू ही (कंचित्) प्रसिद्ध (अररुं) कष्ट पहुँचानेवाले (मर्त्यं) मरने योग्य, असुरको (यावीः) दूर भगाता और ऐसे (मर्त्यं) शत्रुको (परि-वृणक्षि) काटता है । (उत) और हे (इन्द्र) इन्द्र ! मैं (तुभ्यं) तुझे, (दिवे) तेजके लिये (स्व-यशसे) अपने यशके लिए (रुद्राय) रुद्रके लिए (मित्राय) मित्रके लिए और (सु-मृडीकाय) सुख देनेवाले (वरुणाय) वरुणके लिये (तत् तत्) वह (स-प्रथः स-प्रथः) विस्तारसे युक्त वचन (वोचं) कहता हूँ ॥ ३ ॥

१ शूर ! अररुं मर्त्यं यावीः, परिवृणक्षि— यह शूर इन्द्र कष्ट पहुंचानेवाले, इसीलिए मारने योग्य असुरको दूर करता और काटता है ।

[१४४८] हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे (अस्माकं) और हमारे (सखायं) मित्र (विश्व-आयुं) पूरी आयु देनेवाले (प्र-सहं) शत्रु-नाशक (युजं) सहयोगी (इन्द्रं) इन्द्रको हम (इष्टये) यज्ञमें आनेके लिये (उश्मसि) चाहते हैं । हे इन्द्र ! तू हमारी (ऊतये) रक्षाके लिये (कासु चित्) सभी (पृत्सुषु) युद्धोंमें (अस्माकं) हमारे (ब्रह्म) ज्ञानकी (अव) रक्षा कर । (यं यं) जिस (विश्वं शत्रुं) शत्रु-समुदायको तू (स्तृणोषि स्तृणोषि) नष्ट करता है वह (शत्रुः) शत्रु (त्वा) तुझे (नहि) नहीं (स्तरते) मार सकता ॥ ४ ॥

१ यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि शत्रुः त्वा नहि स्तरते— यह इन्द्र सारे शत्रुओंको मारता है, पर सारे शत्रु मिलकर भी इस अकेले इन्द्रको नहीं मार सकते ।

[१४४९] हे (उग्र) वीर इन्द्र ! तू (तेजिष्ठाभिः) प्रज्वलित (अरणि-भिः) समिधाओंके (न) समान तेजस्वी (ऊति-भिः) रक्षा-साधनों और (उग्राभिः) वीर्ययुक्त (ऊति-भिः) रक्षणों द्वारा इस (कयस्य चित्) प्रसिद्ध शत्रुके (अति-मतिं) अभिमानको (नि सु नम) अत्यन्त नीचा कर दे । हे (शूर) शूर ! तू (अनेनाः) निष्पाप (मन्यसे) माना जाता है । (पुरा यथा) पहलेके समान (नः) हमें (नेषि) आगे ले चल । (वह्निः) आगे चलनेवाला तू (पूरोः) मनुष्योंके (विश्वानि) सारे दुर्गुण (अप पर्षि) दूर कर दे । तू (नः) हमारे (अच्छ) सम्मुख (आसा) समीप ही सब साधन (वह्निः) प्राप्त करानेवाला है ॥ ५ ॥

१ उग्राभिः ऊतिभिः कयस्य चित् अति मतिं नम— यह इन्द्र शक्तिशाली रक्षण साधनोंसे भयंकर शत्रुके अभिमानको भी झुका देता है ।

२ अनेनाः मन्यसे— शत्रुओंको मारने पर भी यह इन्द्र निष्पाप माना जाता है ।

भावार्थ— यह इन्द्र बडा सामर्थ्यशाली है । अतः भरणपोषणके साधन अन्नके लिए किए जानेवाले युद्धोंमें यह इन्द्र वीर मरुतोंके साथ मिलकर शत्रुनाशका कार्य बडी ही कुशलतासे करता है । इसीलिए समर्थ लोग भी इस इन्द्रका आश्रय उसी प्रकार लेते हैं, जिस प्रकार वीरगण युद्धमें बलवान् घोडेका आश्रय लेते हैं ॥ २ ॥

यह इन्द्र मेघोंको जलसे पूर्ण करता है । कष्ट देनेवाले असुरको मारता है । यह इन्द्र शत्रुओंके लिए रुद्रके समान भयंकर रूपवाला, भक्तके लिए मित्रके समान हित करनेवाला, उत्तम सुख देनेवाला, तथा सबके द्वारा वरणीय है ॥ ३ ॥

१४५० प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतर-मव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥

१४५१ वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभि-रेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभि-र्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४५०] (यः) जो (इष-वान्) गतिमान् (हव्यः न) प्रशंसाके योग्य इन्द्रके समान (मन्म) स्तुतिके योग्य (रेजति) होता है, जो (रक्षः-हा) दुष्टोंका नाशक होनेके कारण (मन्म) स्तुतिके योग्य (रेजति) होता है उस (भव्याय) उत्तम (इन्दवे) सोमके लिए मैं (तत्) यह स्तोत्र (प्रवोचेयं) बोलूं। (सः) वह (निदः) निन्दकोंको (स्वयं) स्वयं (अस्यत्) हमसे दूर (आ) करें, (वधैः) मारनेके साधनोंसे (दुः-मतिं) दुष्ट बुद्धिवाले असुरको (अजेत) दूर हटा दे। तब (अघ-शंसः) पापकी कामनावाला असुर (अव-तरं) बहुत नीचे (अवस्रवेत्) गिर जाय, (क्षुद्रं-इव) थोडेसे जलके समान (अव स्रवेत्) नीचेके स्थानमें पडा रहे ॥ ६ ॥

१ इषवान् हव्यः न मन्मः— प्रयत्न और प्रगति करनेवाला मनुष्य प्रशंसाके योग्य इन्द्रके समान स्तुति योग्य होता है।

[१४५१] हे (रयि-वः) धनवाले इन्द्र ! हम (चितन्त्या) उत्साह बढानेवाली (होत्रया) वाणीसे (तत्) उस धनको (वनेम) प्राप्त करें। हम (सु-वीर्यं) उत्तम बलयुक्त (रयिं) धनको (वनेम) प्राप्त करें। (रण्वं) रमणीय, साथ (सन्तं) रहनेवाले, (सु-वीर्यं) शक्तिसे भरपूर धनका लाभ करें। (सुमन्तु-भिः) उत्तम मननीय विचारोंसे (इषा) अन्नसे (ईं) इस (दुः-मन्मानं) जाननेके लिये कठिन तुम इन्द्रको (आ पृचीमहि) युक्त करें। (सत्याभिः) सच्ची (द्युम्नहूतिभिः) ऐश्वर्यवर्धक स्तुतियोंसे तुम (इन्द्रं) इन्द्रको (आ) प्रशंसित करें। (द्युम्नहूतिभिः) यशोवर्धक स्तुतियोंसे (यजत्रं) यजनीय इन्द्रको युक्त करें ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सभी मनुष्योंका मित्रके समान हित करनेवाला है। मनुष्यको पूर्ण आयु प्रदान करता है। यह इतना वीर है कि यह अकेला ही अनेक शत्रुओंको मार सकता है, पर सब शत्रु मिलकर भी इसे नहीं मार सकते ॥ ४ ॥

प्रज्वलित समिधाओंके समान तेजस्वी यह इन्द्र अपने शक्तिशाली संरक्षणके साधनोंसे शत्रुके अभिमानको ठंडा कर देता है और अपने भक्तोंको आगे ले चलता है। बहुतसे शत्रुओंको मारने पर भी यह इन्द्र निष्पाप ही बना रहता है। शत्रुओंसे मार खाना पाप है, पर उन्हें मारना पाप नहीं है ॥ ५ ॥

जो मनुष्य अपने प्रयत्नोंसे प्रगति करता है वह इन्द्रकी तरह स्तुतिके योग्य और प्रशंसनीय होता है। वह दुष्टोंका नाशक होनेके कारण भी सबके द्वारा प्रशंसित होता है। वह निन्दकोंको, दुष्ट बुद्धिवालोंको, दुष्टवचन बोलनेवालोंको बहुत नीचे गिरा देवे। जैसे थोडासा जल बहुत जल्दी सूख जाता है, उसी प्रकार शत्रुओंको शीघ्र ही सुखा देवे ॥ ६ ॥

वाणी सदा उत्साह बढानेवाली हो। सभी ऐसी उत्तम वाणी बोलें कि जिससे सुननेवाले और बोलनेवाले दोनोंका उत्साह बढे। धन शक्ति बढानेवाला हो। सदा सुविचारोंसे युक्त रहें ॥ ७ ॥

१४५२ प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

१४५३ त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥

१४५४ त्वं न इन्द्र राया तरूषसो--ग्रं चित् त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद् रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥

अर्थ— [१४५२] (इन्द्रः) इन्द्र (स्वयशोभिः) अपने यश बढानेके साधनोंसे (दुः-मतीनां) दुष्टोंके (परिवर्गे) दूर भगाने और उन (दुः-मतीनां) दुर्बुद्धियोंके (दरीमन्) नाश करनेमें (वः) तुम्हारा और (अस्मे) हमारा (प्र प्र) विशेष (ऊती) रक्षक होता है । (नः) हमें (रिषयध्यै) नष्ट करनेके लिये (उप-ईषे) समीप पहुँचनेके लिये (या) जो (जूर्णिः) वेगवती सेना (अत्रैः) भक्षक असुरों द्वारा (क्षिप्ता) भेजी गई है (सा) वह (स्वयं) स्वयं (हता ईं) मर ही (असत्) जाये । वह हमारे पास (न) न (वक्षति) पहुँचे, (न) बिल्कुल न (वक्षति) पहुँचे ॥ ८ ॥

[१४५३] हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वं) तू (परीणसा) सब ओरसे (राया) धनके साथ (अनेहसा) पाप-रहित (पथा) मार्गसे (नः) हमारे पास (याहि) आ । (अरक्षसा) राक्षस रहित मार्गसे (पुरः) आगे (याहि) आ । (नः) हमें (पराके) दूर स्थानमें (आ सचस्व) प्राप्त हो और (अस्त- ईके) समीपके स्थानमें (आ सचस्व) प्राप्त हो । (दूरात्) दूर और (आरात्) निकटसे (अभिष्टि-भिः) इच्छापूर्ति द्वारा (नः) हमें (पाहि) बचा । (अभिष्टि-भिः) योग्य वस्तुओंके दानसे (सदा) सदा हमें (पाहि) बचा ॥ ९ ॥

१ राया अनेहसा पथा याहि— धन होने पर भी मनुष्य पापरहित मार्गसे ही चले ।

[१४५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (तरूषसा) तारनेवाले (राया) धनसे (नः) हमें दुःखोंसे तार । अपने (महिमा) यशकी (अवसे) रक्षाके लिए हम (त्वा) तुझ (उग्रं चित्) उग्रके ही (सक्षत्) पास रहें । (मित्रं न) सूर्यके समान (महे अवसे) बडी रक्षाके लिए तेरे पास रहें । हे (ओजिष्ठ) ओजसे पूर्ण (त्रातः) पालक (अवितः) रक्षक और (अमर्त्य) अमर देव इन्द्र ! तू (कं चित्) किसी (रथं) रथपर चढकर आ । हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (अस्मत्) हमसे (अन्यं) भिन्न (कं चित्) किसीके ऊपर (रिरिषेः) क्रोध कर, हे (अद्रि-वः) वज्रधारी ! (रिरिक्षन्तं चित्) हिंसकके ऊपर क्रोध कर ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्रसे रक्षित मनुष्योंके पास दुष्टोंकी सेना नहीं पहुँच सकती ॥ ८ ॥

मनुष्य धन प्राप्त करके अभिमानी न हो । वह सदा नम्र रहकर पापसे रहित मार्ग पर ही चले । धनके बल पर लोगों पर अत्याचार न करे । उत्तम मार्गसे चलनेवाला व्यक्ति हमेशा उपद्रवोंसे रहित होकर आगे ही बढता जाता है । यह इन्द्र सर्व व्यापक होनेसे पास भी है और दूर भी है इसलिए वह सब जगहसे अपने भक्तोंकी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

इन्द्र हिंसक दुष्ट जनपर ही क्रोध करता और उसे ही मारता है । सज्जनको नहीं । वह अपने भक्तोंके यशकी रक्षा करता और मित्रके समान उसका हित करता है ॥ १० ॥

१४५५ पाहि नं इन्द्र सुष्टुत स्रिधो॑ऽवयाता सदमिद् दु॒र्मती॒नां॑ दे॒वः सन् दु॒र्मती॒नाम् ।
हन्ता पापस्य॑ र॒क्षस॑स्त्रा॒ता विप्र॑स्य॒ माव॑तः ।
अधा॒ हि त्वा॑ ज॒नि॒ता जीज॑नद् वसो रक्षो॒हणं॑ त्वा जीज॑नद् वसो ॥ ११ ॥

[१३०]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अत्यष्टिः; १० त्रिष्टुप् ।)

१४५६ इन्द्रं॒ या॒ह्युप॑ नः परा॒वतो॒ नाय॒मच्छा॑ वि॒दथा॑नीव॒ सत्प॑ति॒रस्तं॒ राजे॑व॒ सत्प॑तिः ।
हवा॑महे त्वा व॒यं प्रय॑स्वन्तः सु॒ते सचा॑ ।
पु॒त्रासो॒ न पि॒तरं॒ वाज॑सातये॒ मंहि॑ष्ठं॒ वाज॑सातये ॥ १ ॥

१४५७ पिबा॒ सोम॑मिन्द्र सु॒वा॒नमद्रि॑भिः॒ कोशे॑न सि॒क्तम॑व॒तं न वंस॑ग॒स्तातृ॒षा॒णो न वंस॑गः ।
मदा॑य हर्य॒ताय॑ ते तु॒विष्ट॑माय॒ धाय॑से ।
आ त्वा॑ यच्छन्तु ह॒रितो॒ न सूर्य॒मह॒ा विश्वे॑व॒ सूर्य॑म् ॥ २ ॥

अर्थ— [१४५५] हे (सु-स्तुत) भलीभाँति स्तुतिके योग्य (इन्द्र) इन्द्र ! (स्रिधः) पापसे (नः) हमें (पाहि) बचा । तू (दुः-मतीनां) दुर्बुद्धि जनोंको (सदं इत्) सदा ही (अव-याता) नीचे ले जानेवाला है। (देवः) देव (सन्) होकर (दुः-मतीनां) दुष्ट बुद्धिवालोंको नीचे ले जानेवाला है । तू (पापस्य) पापी (रक्षसः) राक्षसका (हन्ता) घातक और (मा-वतः) मेरे जैसे (विप्रस्य) ज्ञानीका (त्राता) पालक है। (अध हि) इसी लिए हे (वसो) निवास देनेवाले ! (जनिता) उत्पन्न करनेवालेने (त्वा) तुझे (जीजनत्) प्रकट किया, हे (वसो) सबके आश्रय ! जनिताने (रक्षः हनं) दुष्ट विनाशक (त्वा) तुझ इन्द्रको (अजिनत्) प्रकट किया ॥ ११ ॥

१ पापस्य रक्षसः हन्ता विप्रस्य त्राता— यह इन्द्र पापी राक्षसोंका विनाशक और ज्ञानियोंका रक्षक है।

[१३०]

[१४५६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं न) इस अग्निके समान (सत्-पतिः) श्रेष्ठपालक तू अन्य (विदथानि इव) यज्ञोंके समान (परा-वतः) दूर देशसे (नः उप) हमारे समीप (अच्छ) सामने (आ याहि) आ । (राजा-इव) राजाके समान (सत्-पतिः) श्रेष्ठोंका पालक तू हमारे (अस्तं) घर आ । (पुत्रासः न) पुत्र जैसे (पितरं) पिताको बुलाते हैं वैसे (वाज-सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (वयं) हम (प्रयस्वन्तः) अन्नवाले यजमान (सुते) यज्ञमें (सचा) साथ मिलकर (त्वा) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं। (वाज-सातये) अन्न-लाभके लिये तुझ (मंहिष्ठ) दानीको बुलाते हैं ॥ १ ॥

[१४५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वंसगः) बैल (अवतं न) जैसे कुएँके जलको पीता है वैसे तू (कोशेन) जलसे (सिक्तं) सिंचे और (अद्रि-भिः) पत्थरोंसे कूट कर (सुवानं) निचोडे हुए (सोमं) सोमको (पिब) पी । (तातृषाणः) प्यासे (वंसगः) बैलके (न) समान उसे तू पी । (ते) तेरे (हर्यताय) चाहने योग्य (मदाय) मद और (तुविः-तमाय) बहुत बडे (धायसे) कर्मके लिये, (हरितः न) जैसे किरणें (सूर्यं) सूर्यको और (विश्वा इव) जैसे सारे (अहा) दिन भी (सूर्यं) सूर्यको ले जाते हैं, वैसे घोडे (त्वा) तुझे यज्ञ-स्थानमें (आ यच्छन्तु) ले जायें ॥ २ ॥

भावार्थ — यह इन्द्र अपनी प्रशंसा करनेवालोंकी पापसे रक्षा करता है और दुष्ट बुद्धियोंसे युक्त मनुष्योंका नाश करता है । यह इन्द्र पापी राक्षसोंका घातक और ज्ञानियोंका रक्षक है । इसी कामके लिए उत्पन्न करनेवालेने इस इन्द्रको प्रकट किया है और इसी कारण इन्द्र राक्षसोंके हन्ताके नामसे प्रसिद्ध हुआ है । इसी प्रकार राजा राक्षसोंका नाश और ज्ञानियोंकी रक्षा करे । प्रजा भी इन गुणोंसे युक्त व्यक्तिको ही राजा बनावे ॥ ११ ॥

जैसे पुत्र पिताको बुलाते हैं वैसे यजमान इन्द्र देवको बुलाते हैं । बुलाये जानेपर यह दूर देशसे भी अपने भक्तके घर जाकर उसे बहुत दान देता है ॥ १ ॥

यह इन्द्र श्रेष्ठ कर्मोंको करनेवाला है । इसके घोडे भी इसे उत्तम कर्मोंकी तरफ ही प्रेरित करते हैं। यह अपने घोडोंके द्वारा यज्ञोंमें जाकर सोम पीता है । इसी प्रकार राजा सदा श्रेष्ठ कर्म करे, तथा यज्ञोंमें जाकर सोम अर्थात् ब्रह्मज्ञानियोंसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश ले ॥ २ ॥

१४५८ अविन्दद् दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

१४५९ दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

१४६० त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१४५८] (आङ्गिरः- तमः) अङ्गिरोंमें श्रेष्ठ (दिवः वज्री) तेजस्वी वज्रधारी इन्द्रने (सिषासन्) बाँटनेकी इच्छा करते हुए, (गवां इव) जैसे गौओंके (व्रजं) स्थानको और (अश्मनि) पहाडमें (परि- वीतं) छिपे (वेः) पक्षीके (गर्भं) बच्चेको, (अनन्ते) अन्तरहित (अश्मनि) पहाडके (अन्तः) भीतर ढूंढनेवाले प्राप्त करते हैं वैसे (गुहा) गुप्त-स्थानमें (नि-हितं) रखे हुए (निधिं) धनको (अविन्दत्) प्राप्त किया। उस (इन्द्रः) इन्द्रने (परी-वृताः) गुप्त (इषः) धन-द्वारोंको (अप अवृणोत्) खोल दिया, (इषः) धनके (परी-वृताः) छिपे हुए (द्वारः) द्वारोंको खोल दिया ॥ ३ ॥

[१४५९] (इन्द्रः) इन्द्र (गभस्त्योः) हाथोंमें (तिग्मं वज्रं) तीक्ष्ण वज्रको (दादृहाणः) दृढतासे पकडते हुए उसे शत्रु पर (असनाय) फेंकनेके लिये (क्षद्म-इव) जलकी तीव्र धाराके समान (सं श्यत्) और तेज करता है (अहि-हत्याय) असुरको मारनेके लिये (सं श्यत्) शस्त्रको तीक्ष्ण बनाता है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (ओजसा) बलसे (सं-विव्यानः) युक्त होता हुआ (शवोभिः) बलसे और (मज्मना) सामर्थ्यसे (तष्टा इव) जैसे बढई (वनिनः) वनके (वृक्षं) वृक्षको काटता है, उसी तरह (निवृश्चसि) शत्रुओंको काटता है, (परश्वा इव) कुल्हाडेके समान शत्रुको (नि वृश्चसि) काटता है ॥ ४ ॥

[१४६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (रथान् इव) रथोंके समान, (नद्यः) नदियोंको (समुद्रं अच्छ) समुद्रकी ओर (सर्तवे) बहनेके लिये (वृथा) सहज ही (असृजः) छोड दिया। (वाज-यतः) बल बढानेवाले (रथान् इव) रथोंके समान प्रवाहोंको चलनेके लिये छोड दिया। (धेनूः इव) गायोंके समान (विश्वदोहसः) सम्पूर्ण कामना दुहनेवाली (ऊतीः) रक्षा करनेवाला नदियोंने (इतः) इस स्थानसे (मनवे) मनुष्यके लिए (अक्षितं) अक्षय, सबको (समानं) समान (अर्थं) इष्ट जलको (अयुञ्जत) जोडा। (विश्व-दोहसः) सब कुछ देनेवाली नदियोंने (जनाय) मनुष्यके लिये जल दिया ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिसप्रकार ढूंढनेवाले गायोंके बाडेको ढूंढ निकालते हैं अथवा बहुत बडे पहाडके अन्दर भी छिपा कर रखे हुए पक्षियोंके बच्चोंको ढूंढ निकालते हैं, उसी प्रकार सूर्यने अन्त रहित बादलोंमें छिपे हुए पानीके संग्रहको खोज निकाला और उसे बरसाकर इन्द्रने मानों मनुष्योंके लिए अन्नके द्वार ही खोल दिए। पानी बरसनेसे अन्न बहुत उत्पन्न होता है, यह स्पष्ट ही है ॥ ३ ॥

इन्द्र अपने वज्रको रगड कर तीक्ष्ण बनाता और जैसे जलकी धारा वृक्षको उखाडती या कुल्हाडेसे वृक्षोंको काटते हैं वैसे शत्रुको काटता है ॥ ४ ॥

इन्द्र नदियोंके (जलप्रवाह) को मुक्त करता और चलाता है तब वे प्रजाके पास पहुँचती हैं। वे जलप्रवाह कामदुघा गायके समान प्रजाओंकी हर कामनाओंको पूर्ण करते हैं। इसी तरह राजा अपने देशमें नहरों द्वारा प्रजाओंके पास पानी पहुंचाकर अन्नके द्वारा उन्हें सुखी और समृद्ध बनाये ॥ ५ ॥

१४६१ इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥

१४६२ भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥

१४६३ इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत्।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥

अर्थ— [१४६१] हे इन्द्र ! (सु-अपाः) अच्छे कर्म करनेवाले (धीरः) धीर तथा (वसु-यन्तः) धनकी इच्छा करते हुए (आयवः) मनुष्योंने (रथं न) जैसे रथको बनाते हैं वैसे (ते) तेरे लिये (इमां) इस (वाचं) वाणीको (अतक्षिषुः) बनाया, स्तुति की। हे (विप्र) ज्ञानी इन्द्र ! (सुम्नाय) सुख, (शवसे) बल और (धना) धनोंको (सातये) देनेके लिए तुझे (शुम्भन्तः) प्रसन्न करनेवाले स्तोताओंने (अत्यं इव) घोडेके सदृश (वाजेषु) युद्धमें (वाजिनं) बलवान् (त्वां) तुझे (अतक्षिषुः) बनाया। (विश्वा) सम्पूर्ण (धनानि) धनोंको (सातये) देनेके लिये तुझे बनाया ॥ ६ ॥

[१४६२] हे (नृतो) नाचनेवाले, आनन्दसे उछलनेवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (पूरवे) प्रजारूप (महि) महान् (दाशुषे) दानी (दिवः-दासाय) दिवोदासके लिए तूने (नवतिं) नब्बे (पुरः) नगर (भिनत्) तोडे। हे (नृतो) नृत्य करनेवाले ! तूने (दाशुषे) दानी वीरके लिए (वज्रेण) वज्रसे शत्रुके नगर तोडे। (उग्रः) उग्र वीर तूने (ओजसा) बलसे (महः) बडे (धनानि) धन (दयमानः) देते हुए (गिरेः) मेघके पास अतिथिग्वाय) अतिथिग्वके लिए (शम्बरं) शम्बरका (अव अभरत्) नाश किया। (ओजसा) बलसे (विश्वा) सब (धनानि) धन देते हुए शत्रुका नाश किया ॥ ७ ॥

१ दिवः दासः— तेजस्वी धनोंका दान करनेवाला ' दाश् दाने। '

२ अतिथिग्व— अतिथियोंके पास जाकर उनका सत्कार करनेवाला।

[१४६३] (शतं-ऊतिः) सैकडों रक्षाओंसे युक्त (इन्द्रः) इन्द्रने (समत्-सु) मिलकर लडे जानेवाले (विश्वेषु) सारे (आजिषु) युद्धोंमें (आर्यं) श्रेष्ठ (यजमानं) यजमानकी (प्र आवत्) रक्षा की। (स्वः-मीळ्हेषु) सुखको प्राप्त करानेवाले (आजिषु) युद्धोंमें रक्षा की। (मनवे) ज्ञानी मनुष्यके लिये (अव्रतान्) नियम तोडनेवालेको (शासत्) दण्ड दिया और (कृष्णां त्वचं) काले वर्णवालोंको (अरन्धयत्) विनष्ट किया। वह (दक्षत् न) जलाते हुए अग्निके समान (विश्वं) सारे (ततृषाणं) हिंसकोंको (ओषति) जला देता है (अर्शसानं) हिंसा करनेवालोंको (नि ओषति) सर्वथा जला देता है ॥ ८ ॥

१ विश्वेषु आजिषु आर्यं आवत्— इन्द्र सब युद्धोंमें केवल श्रेष्ठ मनुष्यकी ही रक्षा करता है।

२ मनवे अव्रतान् शासत्— मननशील पुरुषके लिए नियम तोडनेवालोंपर शासन करता है।

३ दक्षत् न विश्वं ततृषाणं ओषति— इन्द्र जलनेवाली अग्निके समान सारे हिंसकोंको जला देता है।

भावार्थ— जैसे विद्वान् लोग रथको उत्तम कार्यके योग्य बनाते हैं वैसे स्तोता लोग इन्द्रके योग्य स्तोत्र कहते हैं। जैसे सारथि बलवान् घोडेको और अधिक बलवान् और विजयके योग्य बनाते हैं वैसे स्तोता धन पानेके लिये इन्द्रमें अधिक उत्साह भरते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र युद्धमें उत्साहसे जाता है और तेजस्वी धनोंका दान करनेवाले तथा अतिथिका सत्कार करनेवालोंके जयके लिए शम्बर आदिका नाश करता है तथा उन्हें अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ७ ॥

१४६४ सूर॑श्च॒क्रं प्र वृ॑ह॒ज्जा॒त ओज॑सा प्रपि॒त्वे वाच॑मरु॒णो मु॑षायती॒--शा॒न आ मु॑षायति ।
उ॒शना॒ यत् प॑रा॒वतो ऽज॑गन्नू॒तये॑ कवे ।
सु॒म्नानि॒ विश्वा॒ मनु॑षेव तु॒र्वणि॒--रहा॒ विश्वे॑व तु॒र्वणिः ॥ ९ ॥
१४६५ स नो॒ नव्ये॑भिर्वृषकर्मन्नु॒क्थैः पुरां॑ दर्तः पा॒युभिः॑ पाहि श॒ग्मैः ।
दि॒वो॒दा॒सेभि॑रिन्द्र॒ स्तवा॑नो वावृ॒धीथा॒ अहो॑भिरिव॒ द्यौः ॥ १० ॥

[१३१]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१४६६ इन्द्रा॑य॒ हि द्यौरसु॑रो॒ अन॑म्न॒ते--न्द्रा॑य म॒ही पृ॑थि॒वी वरी॑मभि--र्द्यु॒म्नसा॑ता॒ वरी॑मभिः ।
इन्द्रं॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सो दे॒वासो॑ दधिरे पु॒रः ।
इन्द्रा॑य॒ विश्वा॒ सव॑नानि॒ मानु॑षा रा॒तानि॑ स॒न्तु मानु॑षा ॥ १ ॥

अर्थ— [१४६४] यह (सूरः) प्रेरक इन्द्र (जातः) प्रकट होकर अपने (ओजसा) बलसे अपना (चक्रं) चक (प्र बृहत्) ऊपर उठाता है। वह (अरुणः) तेजस्वी इन्द्र (प्रपित्वे) पास जाकर शत्रुकी (वाचं) वाणीको (मुषायति) छीन लेता है अर्थात् समीप जानेपर शत्रु चुप हो जाते हैं। वह (ईशानः) सबका स्वामी उनकी वाणीको मानो (आ मुषायति) चुरा लेता है। हे (कवे) मेधावी इन्द्र ! (यत्) जब तू (उशना) उशनाकी (ऊतये) रक्षाके लिए (परा वतः) दूरसे (अजगन्) पास पहुँचता है तब (मनुषाः इव) मनुष्यके समान उसे (विश्वा) सब (सुम्नानि) सुख (तुर्वणिः) बाँटनेवाला बन। (विश्वा इव अहा) सारा ही दिन दान करनेके समान सदा (तुर्वणिः) दाता बन ॥ ९ ॥

[१४६५] हे (वृषकर्मन्) बलके कर्म करनेवाले और (पुरां) नगरोंके (दर्तः) तोडनेवाले इन्द्र ! (सः) वह तू हमारे (नव्येभिः) नये (उक्थैः) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर (पायुभिः) रक्षक, (शग्मैः) सुखकारक साधनोंसे (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कर। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दिवोदासेभिः) दिवोदासके पुत्रोंसे (स्तवानः) प्रशंसित होकर (अहोभिः इव) जैसे दिनोंसे (द्यौः) सूर्य, वैसे ही तू भी (वावृधीथाः) बढ ॥ १० ॥

[१३१]

[१४६६] (असुरः) शक्तिशाली असुर (द्यौः) द्यौ (इन्द्राय हि) इन्द्रके सामने (अनम्नत) नम्र हो गई। (मही) बडी (पृथिवी) पृथिवी अपने (वरीमभिः) श्रेष्ठ वस्तुओंके साथ (इन्द्राय) इन्द्रके सामने नम्र हो गई (द्युम्नसाता) धनकी प्राप्तिके युद्धमें (वरीमभिः) उत्तम साधनोंसे युक्त शत्रु भी नम्र हो गए। (विश्वे) सारे (सजोषसः) समान उत्साहवाले (देवासः) देवोंने (इन्द्रं) इन्द्रको सबसे (पुरः) आगे (दधिरे) स्थापित किया। (विश्वा) सारे (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धी (सवनानि) सवन और (मानुषा) मनुष्योंके दिये हुए (रातानि) दान (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (सन्तु) हों ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र सब युद्धोंमें केवल श्रेष्ठ मनुष्यकी ही रक्षा करता है, तथा ऐसे मननशील श्रेष्ठ मनुष्योंको तंग करनेवाले दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देकर अपने शासनमें रखता है। पर जब हिंसक बहुत ज्यादा उपद्रव करने लग जाते हैं, तब यह इन्द्र उन्हें उसी प्रकार भस्म कर देता है, जिस प्रकार अग्नि पदार्थोंको भस्म कर देती है। राजा भी सदा श्रेष्ठ मनुष्योंकी ही सहायता करे, तथा इसका ध्यान रखे कि उपद्रवकारी हिंसक ऐसे मननशील ज्ञानियोंको कभी तंग न करें। यदि तंग करें तो उन्हें दण्ड देकर नियंत्रणमें रखे, या फिर विनष्ट कर दे ॥ ८ ॥

यह शूरवीर तथा अन्य वीरोंको प्रेरणा देनेवाला इन्द्र शस्त्र हाथमें लेकर शत्रुओंके पास जाता है, तब वह शत्रुओंको चुप करा देता है। उसके भयसे शत्रु-दलमें सन्नाटा छा जाता है। तब वह इन्द्र अपने चाहनेवाले भक्तोंकी रक्षा करता है और ऋषि और मनुष्योंमें सुखोंका विभाग करता है ॥ ९ ॥

बलके कर्म करनेवाला यह इन्द्र स्तुतिसे प्रसन्न होकर सुखदायी पदार्थ देता है और दिन जैसे सूर्यका प्रकाश बढाते हैं वैसे स्तोत्र इन्द्रकी शक्ति बढाते हैं ॥ १० ॥

१४६७ विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥
१४६८ वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥
१४६९ विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४६७] तुझे (वृष-मन्यवः) दानी माननेवाले (पृथक्) पृथक् पृथक् (विश्वेषु हि) सारे ही (सवनेषु) यज्ञोंमें (त्वा) तुझ (एकं) एक (समानं) समानरूपसे पूज्य इन्द्रको अन्नादि (तुञ्जते) देते हैं। (स्वः) स्वर्गकी (सनिष्यवः) प्राप्तिके अभिलाषी (पृथक्) पृथक् पृथक तुझे देते हैं। (यज्ञैः) यज्ञोंसे तुझे (चितयन्तः) जगानेवाले हम (आयवः) मनुष्य (पर्षणिं) सागरसे पार करानेवाली (नावं न) नावके समान (तं) उस (त्वा) तुझ (इन्द्रं न) इन्द्रको ही (शूषस्य) बलके (धुरि) धुरेमें (धीमहि) स्थापित करते हैं। हम (आयवः) स्तोता लोग (स्तोमेभिः) स्तोत्रोंसे तुझ (इन्द्रं) इन्द्रको धारण करते हैं ॥ २ ॥

[१४६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तू (वृषणं) बलयुक्त तथा (सचा-भुवं सचा-भुवं) सदा साथ रहनेवाले (वज्रं) वज्रको (आविः करिक्रत्) प्रकट करते हुए (स्वः) स्वर्ग जाने और (गव्यन्ता) गाय प्राप्त करनेकी इच्छावाले (द्वा) दोनों (जना) पति-पत्नियोंको वहां (सं-ऊहसि) ले जाता है तब हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गव्यस्य) गायोंके (व्रजस्य) समूहकी (साता) प्राप्तिके युद्धमें तुझे (निः सृजः) प्रेरित करनेवाले, स्वयं (सक्षन्तः) जानेवाले और तुझे (निः-सृजः) ले जानेवाले (अवस्यवः) रक्षाके अभिलाषी (मिथुनाः) पत्नी सहित यजमान (त्वा) तेरे निमित्त यज्ञका (वि ततस्रे) विस्तार करते हैं ॥ ३ ॥

[१४६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने शत्रुके (शारदीः) शरद्में निवास करने योग्य (पुरः) नगरोंको (अव अतिरः) नष्ट किया, उन्हें (सासहानः) दबाते हुए (अव अतिरः) नष्ट किया, तब (पूरवः) प्रजाओंने (ते) तेरे (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रमको (विदुः) जाना। हे (शवसः पते) बलके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (तं) उस (अयज्युं) यज्ञरहित (मर्त्यं) मनुष्यको (शासः) दण्डित किया और उससे (महीं) विशाल (पृथिवीं) पृथिवी और (इमाः) इन (अपः) जलोंको (अमुष्णाः) छीना। (मन्दसानः) हर्षके साथ (इमाः) इन (अपः) जलोंको छीना ॥ ४ ॥

भावार्थ— द्यौ और पृथिवी युद्धमें इन्द्रकी सहायता करते हैं और देव इसे अपना नेता चुनकर उसे अन्न पहुँचाते हैं। सभी समान उत्साहवाले देव इस इन्द्रको आगे स्थापित करते हैं, अर्थात् इन्द्र युद्धोंमें सबसे आगे रहता है। इसीलिए इस इन्द्रकी शक्तिका कोई मुकाबला नहीं कर सकता ॥ १ ॥

इन्द्र सबका समान पूज्य है। स्तोता लोग बलके कार्योंमें उसे ही लगाते हैं। सुखकी अभिलाषा करनेवाले उस इन्द्रकी उपासना करते हैं ॥ २ ॥

पत्नी और पति मिलकर इन्द्रके लिये यज्ञ रचाते हैं। वे दोनों जन स्वर्ग जाने और गौ आदि पशु प्राप्त करनेकी अभिलाषासे इन्द्रको हर तरहसे प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥

असुर जल और पृथिवीको घेर कर अपने अधीन रखते हैं। इन्द्र उनका घेरा तोडकर पृथिवी और जलको मुक्त करता है यह इन्द्रका बडा पराक्रम है। यह यज्ञ न करनेवालेको दण्ड देता है ॥ ४ ॥

१४७० आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन् मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥
१४७१ उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥
१४७२ त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयु१रमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मति१र्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४७०] हे (वृषन्) बलवान इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (मदेषु) उत्साहके समय तूने (उशिजः) भक्तोंकी (आविथ) रक्षा की, (यत्) जिस कारण (सखीयतः) मित्रता चाहनेवालोंकी (आविथ) रक्षा की (आत् इत्) इस कारण (ते) तेरे (अस्य) इस (वीर्यस्य) पराक्रमको उन्होंने (चर्किरन्) चारों ओर फैलाया। तूने (पृतनासु) युद्धोंमें धन (प्र वन्तवे) बाँटनेके लिये (एभ्यः) इनको प्रसन्न करनेवाला (कारं) कार्य (चकर्थ) किया। (ते) उन्होंने (अन्यां-अन्यां) एक दूसरेके (नद्यं) धनको (सनिष्णत) प्राप्त कराया, (श्रवस्यन्तः) धनकी इच्छा करते हुए (सनिष्णत) प्राप्त कराया ॥ ५ ॥

[१४७१] (उतो) और वह इन्द्र (नः) हमारे (अस्याः) इस (उषसः) उषःकालका (जुषेत हि) सेवन करे। हे इन्द्र ! तू हमारी (हवीमभिः) पुकारों द्वारा इस (अर्कस्य) स्तुति और (हविषः) हविको (बोधि) जान, (स्वः-साता) सुख प्राप्तिके युद्धमें (हवीमभिः) स्तुतियों द्वारा जान। हे (वज्रिन्) वज्रधारी (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जिस कारण (वृषा) दाता तू (मृधः) हिंसकोंको (हन्तवे) मारनेके लिये (चिकेतसि) जागता रहता है अतः (अस्य) इस (नवीयसः) नये (वेधसः) ज्ञानी, (नवीयसः) नये ज्ञान रखनेवाले (मे) मुझ स्तोताकी (मन्म) स्तुति (आ श्रुधि) सुन ॥ ६ ॥

१ वृषा मृधः हन्तवे चिकेतति— यह बलवान् इन्द्र हिंसकोंको मारनेके लिए हमेशा सावधान रहता है।

[१४७२] हे (तुवि-जात) बहुत प्रसिद्ध (शूर) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (नः) हमारे साथ (अघायति) पाप करना चाहता है, (त्वं) तू (वावृधानः) बढते और (अस्मयुः) हमें चाहते हुए (तं) उस (अमित्र-यन्तं) अमित्रसा व्यवहार करनेवाले (मर्त्यं मर्त्यं) प्रत्येक मनुष्यको (वज्रेण) वज्रसे (जहि) मार। (सुश्रवः तमः) सुननेमें श्रेष्ठ तू हमारी पुकार (शृणुष्व) सुन। (दुः-मतिः) दुष्ट बुद्धिवाला शत्रु (रिष्टं न) टूटे हुए वस्तुके समान हमारे (यामन्) मार्गमेंसे (अप भूतु) दूर हो। (विश्वा) सारी (दुः-मतिः) दुष्ट बुद्धि (अप भूतु) दूर हो ॥ ७ ॥

१ अमित्रयन्तं मर्त्यं जहि— अमित्र या दुश्मनकासा व्यवहार करनेवाले मनुष्यको यह इन्द्र मारता है।

भावार्थ— जो इन्द्रको चाहता और उससे मित्रता जोडता है वह उसकी रक्षा करता और उसके लिये आनन्दसे लडता है। वह हमेशा अपने मित्रोंके अनुकूल ही कार्य करता है, और उन्हें पर्याप्त धन देता है ॥ ५ ॥

जब यज्ञोंमें स्तोत्र द्वारा इन्द्रको पुकारते हैं तब वह आकर स्तुति और हवि प्राप्त करता है और शत्रुओंको मारनेके लिये नवीन स्तोताओंकी पुकार भी सुनता है। यह शत्रुओंको मारनेके कार्यमें हमेशा सजग रहता है, कभी भी वह शत्रु-दलनके काममें असावधान नहीं रहता। इसी तरह राजा भी शत्रुदलनके कार्यमें सदा सावधान रहे ॥ ६ ॥

इन्द्र दुर्बुद्धि और दुष्ट विचारवालेको प्रजाके बीच नहीं रहने देता। वह अपने भक्तोंसे दुश्मनकासा व्यवहार करने-वालोंको मारता है। तथा उन्हें मार्गसे दूर करता है ॥ ७ ॥

[१३२]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः, ६ (१ अर्धर्चस्य) इन्द्रापर्वतौ । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१४७३ त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन् यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १ ॥
१४७४ स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २ ॥
१४७५ तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन् यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद् वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

---

[१३२]

अर्थ— [१४७३] हे (मघ-वन्) धनसम्पन्न इन्द्र ! (त्वया) तुझ (इन्द्रत्वा-ऊताः) इन्द्रसे रक्षित (वयं) हम लोग (पूर्व्ये) पहले (धने) युद्धमें ही (पृतन्यतः) युद्धकी इच्छावाले शत्रुओंको (सासह्याम) दबा दें । (वनुष्यतः) हिंसाकी इच्छावालोंको (वनुयाम) मार दें । (अस्मिन्) इस (नेदिष्ठे) समीपके ही (अहनि) दिन में तू (सुन्वते) सवनकर्ताको (अधिवोच नु) कह । हम (भरे) युद्धमें उत्तम कार्य (कृतं) करनेवाले तुझे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञमें (वि चयेम) चुनें । हम (वाज-यन्तः) बलवान् बनते हुए (भरे कृतं) युद्धके नेताको ग्रहण करें ॥ १ ॥

[१४७४] (स्वः-जेषे) सुखको प्राप्त करानेवाले (भरे) युद्धमें (आप्रस्य) श्रेष्ठ मनुष्यके (वक्मनि) रास्तेमें (उषः-बुधः) प्रातः जागनेवालेके (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) प्रत्यक्ष व्यवहारमें तथा (क्राणस्य) उत्तम कर्म करनेवालेके (स्वस्मिन्) अपने (अञ्जसि) नित्य कर्ममें विघ्न डालनेवाले शत्रुको (इन्द्रः) इन्द्रने (यथा विदे) ज्ञानके अनुसार (अहन्) मारा और वह (शीर्ष्णा-शीर्ष्णा) प्रत्येक शिरसे, मनुष्यसे (उप-वाच्यः) स्तुतिके योग्य हुआ । हे इन्द्र ! (ते) तेरे (रातयः) दान (अस्म-त्रा) हमारी (सध्र्यक्) ओर आनेवाले (सन्तु) हों, तुझ (भद्रस्य) मङ्गलमय स्वामीके (रातयः) दान हमारे लिये (भद्राः) मङ्गलकारी हों ॥ २ ॥

[१४७५] (यस्मिन्) जिस (यज्ञे) यज्ञमें (वारं) उत्तम (क्षयं) स्थान (अकृण्वत) बनाया गया है, वहाँ (प्रत्न-था) पूर्वके समान (ते) तेरे लिये (तत् तु) वही (शुशुक्वनं) तेजस्वी (प्रयः) अन्न प्राप्त हो । तू (ऋतस्य) सत्यका (क्षयं) स्थान (वाः) प्राप्त करानेवाला (असि) है । तू (तत्) उस स्थानका (वि वोचेः) वर्णन कर । (अध) और (रश्मिभिः) किरणोंसे (द्विता अन्तः) दोनों लोकोंके बीच सारे लोग उसे ही (पश्यन्ति) देखते हैं । (सः घ) वही (गो-एषणः) गौवें प्राप्त करानेवाला (इन्द्रः) इन्द्र सत्यका स्थान (अनुविदे) जानता है । (गो-एषणः) गायोंका ढूँढनेवाला इन्द्र (बन्धुक्षिद्भ्यः) बन्धुके साथ रहनेवालोंके लिये गाय आदि प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य क्षयं वाः असि— यह इन्द्र सत्यका स्थान प्राप्त करानेवाला है ।

भावार्थ— स्तोता इन्द्रके सहायसे शत्रुको पहले आक्रमणमें ही जीत लेना चाहते हैं और थोडे दिनोंमें अपनी अभीष्ट सिद्धि करना चाहते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र प्रत्येक व्यवहारमें बाधक शत्रुको मारता और अपना दान यजमानोंकी ओर प्रेरित करता है । उसके दान सदा कल्याण करनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

केवल इन्द्र ही उस सत्यके स्थानको जानता है और वही विद्वानोंके सामने उस सत्य स्थानका वर्णन करता है । तब ज्ञानीजन उस स्थानको देखते हैं, उसका साक्षात्कार करते हैं । अतः इन्द्रको उस सत्य स्थानका प्राप्त करानेवाला कहा है ॥ ३ ॥

१४७६ नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशाऽस्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥

१४७७ सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥

१४७८ युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तंतमिद्धतं वज्रेण तंतमिद्धतम् ।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥

अर्थ—[१४७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जो तूने (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गिरा लोगोंके लिये (व्रजं) गायोंके समूहको (अप अवृणोः) खुला किया, उन्हें (शिक्षन्) देते हुए (व्रजं) गायोंके निकलनेके मार्गको (अप) खोला। (एभ्यः) इन्हींके (समान्या) समान (दिशा) ढंगसे तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये भी धनादि (आ जेषि) जीतता (योत्सि च) और लडता है। तू (कंचित्) किसी भी (अव्रतं) व्रत रहितको (सुन्वद्भ्यः) यज्ञ करनेवालेके लिए (रन्धय) नष्ट कर, (हृणायन्तं चित्) क्रोध करनेवाले (अव्रतं) पापीको वशमें कर। (नु) शीघ्र (इत्था) इसप्रकार (पूर्व-था च) पहलेके समान ही (ते) तेरा कार्य (प्र-वाच्यं) कहने योग्य, सुनाने योग्य हो ॥ ४ ॥

[१४७७] (यत्) जब (शूरः) शूर इन्द्रने अपने (क्रतु-भिः) कामोंके साथ (जनान्) भक्त मनुष्योंकी (सं) ओर (ईक्षयत्) देखा, तब उन (श्रवस्यवः) अन्नके अभिलाषी लोगोंने (धने) युद्धके (हिते) छिड जाने पर शत्रुओंको (तरुषन्त) मारा, (श्रवस्यवः) यशके अभिलाषी जनोंने उस इन्द्रकी (प्र यक्षन्त) विशेष पूजा की। उन्होंने (ओजसा) बलसे शत्रुओंको (बाधे) नष्ट करनेके लिये (तस्मै) उसको (प्रजावत्) प्रजायुक्त (इत्) ही (आयुः) अन्न (अर्चन्ति) समर्पित किया। वे (धीतयः धीतयः) कर्म-कुशल मनुष्य (देवान् अच्छ न) देवोंके समान (इन्द्रे) इन्द्रमें अपना (ओक्यं) निवास (दिधिषन्त) धरते हैं, बनाते हैं ॥ ५ ॥

[१४७८] हे (पुरः युधा) आगे होकर लडनेवाले (इन्द्रा-पर्वता) इन्द्र और पर्वत ! (यः) जो (नः) हमारे साथ (पृतन्यात्) युद्ध करे। (युवं) तुम दोनों (तं) उसे मारो। (तं-तं इत्) उन सबको ही (अप-हतं) मारो। (वज्रेण) वज्रसे (तं-तं इत्) उन सबको ही (हतं) मारो। (यः) जो शत्रुओंको (दूरे) दूर (चत्ताय) फेंकनेकी (छन्त्सत्) इच्छा करता है वह (यत्) जो (गहनं) गुप्त स्थान है उसे भी (इनक्षत्) प्राप्त कर लेता है। हे (शूर) शूर इन्द्र ! (अस्माकं) हमारे (शत्रून्) शत्रुओंको (विश्वतः) सब ओरसे (परि) दबा दे। शत्रुओंको (दर्मा) फाड देनेवाला तू उन्हें (विश्वतः) सब ओरसे (दर्षीष्ट) चीर फाड दे ॥ ६ ॥

भावार्थ—इन्द्र शत्रुओंको जीत कर अङ्गिरा लोगोंकी गायें छुडा लाता है। व्रतहीनोंको व्रती लोगोंके अधीन रखता है। उनके क्रोधको भी दूर करता है ॥ ४ ॥

इन्द्रके पराक्रमसे ही उसके भक्तोंमें बल आ जाता है। वे इन्द्रसे रक्षित उसीकी आज्ञामें रहना चाहते हैं। इन्द्रके देखने मात्रसे लोगोंमें बलका संचार होने लगता है और वे हिंसकोंको विनष्ट करने लग जाते हैं। उत्तम कर्म करनेवाले जन इन्द्रको ही अपना आश्रय स्थान बनाना चाहते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र वज्रसे शत्रुको मारता है। वह इस कार्यमें पर्वतको साथी बनाता है। वज्रमें कई पर्व होनेके कारण उसे पर्वत कहा जाता है। यह इन्द्रका शस्त्र है। इन्द्र और उसका वज्र ये दोनों मिलकर शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ६ ॥

[१३३]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ त्रिष्टुप्, २-४ अनुष्टुप्, ५ गायत्री, ६ धृतिः, ७ अष्टिः ।)

१४७९ उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥ १ ॥

१४८० अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

१४८१ अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

१४८२ यासां तिस्रः पञ्चाशतो ऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत् सु ते मनायति तकत् सु ते मनायति ॥ ४ ॥

[१३३]

अर्थ— [१४७९] मैं (ऋतेन) यज्ञके बलसे (उभे) दोनों (रोदसी) लोकोंको (पुनामि) पवित्र करता हूँ । (अनिन्द्राः) इन्द्रके विरोधी सारे (महीः) बडे (द्रुहः) शत्रुओंको (सं दहामि) जलाता हूँ । (यत्र) जहाँ (अमित्राः) शत्रु (अभि-व्लग्य) लडते हुए (हताः) मारे गये, (तृळ्हाः) मरे हुए वे सब (वैल-स्थानं परि) श्मशान स्थानपर (अशेरन्) सो गये ॥ १ ॥

[१४८०] हे (अद्रि-वः) वज्रवाले इन्द्र ! तू (यातुमतीनां) हिंसावाले शत्रुओंके (शीर्षा) शिर पर (अभि-व्लग्य चित्) पहुँच कर अपने (वटूरिणा) विशाल (पदा) पाँवसे (महा-वटूरिणा) अपने अत्यधिक विशाल (पदा) पाँवसे उन्हें (छिन्धि) नष्ट कर दे ॥ २ ॥

[१४८१] हे (मघ-वन्) धनवाले इन्द्र ! तू (अर्मके) कुत्सित (वैल-स्थानके) मरे लोगोंके स्थानमें एवं (अर्मके) घृणित (महा-वैलस्थे) बडे श्मशानोंमें (आसां) इन (यातुमतीनां) हिंसा करनेवाली सेनाओंका (शर्धः) बल (अव जहि) नष्ट कर ॥ ३ ॥

[१४८२] हे इन्द्र ! (यासां) जिन शत्रुकी सेनाओंके (तिस्रः) तीन (पञ्चाशतः) पचास अर्थात् डेढसौ लोगोंको अपने (अभि-व्लङ्गैः) घेरनेवाली चालोंसे तूने (अप-अवपः) मार दिया, भक्त-वर्ग (ते) तेरे (तत्) उस कर्मकी (सु मनायति) बडी प्रशंसा करता है, (ते) तेरे (तकत्) उस कर्मकी (सु) बहुत (मनायति) प्रशंसा करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्रके सभी विरोधी मारे जाते हैं । जब शत्रु अधिक मारे जाते हैं तब उनके मृत देहोंसे युद्ध-क्षेत्र श्मशान दिखाई पडता है ॥ १ ॥

इन्द्रके पाँव बहुत बडे हैं अर्थात् इन्द्रमें आक्रमण करनेकी शक्ति बहुत है, अतः वह इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुओंको चूर-चूर कर देता है ॥ २ ॥

युद्धमें मृतकोंका ढेर लग जाता है और वह स्थान भयानक और बहुत बुरा दिखाई देता है इन्द्र ऐसे श्मशानके समान भयानक स्थानोंमें शत्रुओंको बडी संख्यामें मारता है ॥ ३ ॥

इन्द्रने इस युद्धमें डेढ सौ असुरोंको मारा, उसका यह कर्म प्रशंसाके योग्य है । इन्द्र शत्रुओंको किस प्रकार घेरा जाए, इस विद्यामें बहुत प्रवीण है इसलिए वह शत्रुओंको आसानीसे मार देता है ॥ ४ ॥

१४८३ पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

१४८४ अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभि-र्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभि-स्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

१४८५ वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पिशङ्गभृष्टिं) कुछ लाल रंगके शस्त्र धारण करनेवाले (अम्भृणं) महान्, विशाल शरीरधारी (पिशाचिं) दुष्टको (सं मृण) मार दे। तू (सर्वं) सारे (रक्षः) राक्षसोंको (नि बर्हय) नष्ट कर दे ॥ ५ ॥

[१४८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू उस (महः) बडे असुरको (अवः) नीचा करके (दादृहि) नष्ट कर दे । तू (नः) हमारी पुकार (श्रुधि) सुन । हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (द्यौः) द्यौ (क्षाः न) पृथिवीके समान (भीषा) भयसे (शुशोच हि) शोक करने लगी। हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (घृणात् न) जैसे अग्निसे पदार्थ जलने लगते हैं, वैसे (भीषा) भयसे जलने लगी। (शुष्मिभिः) बलवान् पुरुषोंसे युक्त (शुष्मिन्तमः हि) श्रेष्ठ वीरों वाला तू (उग्रेभिः) कठोर (वधैः) शस्त्रोंसे युक्त होकर शत्रुओंके पास (ईयसे) जाता है। हे (अप्रति-इतः) पीछे न लौटनेवाले (शूर) शूर ! (अपुरुष-घ्नः) अपने वीरोंको नाशसे बचानेवाला तू (सत्व-भिः) वीरोंके साथ जाता है। हे (शूर) वीर इन्द्र ! तू (त्रि-सप्तैः) इक्कीस (सत्वभिः) वीरोंके साथ जाता है ॥ ६ ॥

[१४८५] यजमान (सुन्वन्) सवन करता हुआ (क्षयं) घर (वनोति हि) प्राप्त करता है। वह (सुन्वानः हि स्म) यज्ञ कराते हुए ही (परीणसः) सब ओर फैले हुए (द्विषः) द्वेषियोंको (अव यजति) दूर करता है। (देवानां) देवोंके (द्विषः) द्वेषियोंको (अव) दूर भगाता है। वह शत्रुके (अवृतः) घेरेमें न आनेवाला (वाजी) बलवान् इन्द्र (सुन्वानः इत्) याजकोंको ही (सहस्रा) सहस्रों धन (सिषासति) देना चाहता है, तब (इन्द्रः) इन्द्र (सुन्वानाय) सवन करनेवालेके लिये (आ भुवं) धन (ददाति) देता है। वह यजमानको (आ-भुवं) भक्तके योग्य (रयिं) धन (ददाति) देता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्रके शत्रु भयंकर और रंग-बिरंगे शस्त्रास्त्रवाले होते हैं। उनको वह मारता है ॥ ५ ॥

जब राक्षस और दुष्ट बहुत बढ जाते हैं और वे सर्वत्र अत्याचार करने लगते हैं, तब उनके अत्याचारोंको देखकर पृथ्वी कांपने लगती है और उसी तरह द्युलोक भी कांपने लगता है, तब इन्द्र इन अत्याचारियोंपर आक्रमण करता है और अपने शस्त्रास्त्रोंसे उन्हें मारता है ॥ ६ ॥

इन्द्रका भक्त द्वेष नहीं करता और दूसरोंके द्वेषको भी दूर हटा देता है। जो इन्द्रको सहस्रों धनतक दे सकता है वही उसका सच्चा भक्त है और उसे ही स्थिर धन प्राप्त होता है। जो इन्द्रको हवि देता है, उसे ही इन्द्र धन प्रदान करता है ॥ ७ ॥

[१३४]

(ऋषिः– परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता– वायुः । छन्दः– अत्यष्टिः, ६ अष्टिः ।)

१४८६ आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

१४८७ मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो ऽस्मत् क्राणासः सुकृता अभिद्यवो
गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २ ॥

[१३४]

अर्थ— [१४८६] हे (वायो) विद्वान्! (इह सोमस्य) इस संसारमें औषधी आदि पदार्थोंको (पूर्वपीतये) अगले सज्जनोंके पीनेके समान (पूर्वपीतये) जो पीना है, उसके लिए (जुवः) वेगवान् (रारहाणाः) दौडनेवाले पवन (त्वा) तुझे (प्रयः) प्रीतिपूर्वक (अभि–आ–वहन्तु) चारों ओरसे पहुंचावें, हे (वायो) ज्ञानवान् पुरुष! जिस (ते) आपकी (ऊर्ध्वा) उन्नतियुक्त अति उत्तम (सूनृता) प्रियवाणी (जानती) और ज्ञानवती हुई स्त्री (मनः अनुतिष्ठतु) मनके अनुकूल स्थित हो। सो आप (मखस्य) यज्ञके सम्बन्धमें (दावने) दान करनेवालेके लिए, जैसे वैसे (दावने) दान देनेके लिए (नियुत्वता) जिसमें बहुत घोडे विद्यमान हैं, उस (रथेन) रमण करने योग्य यानसे (आ याहि) आओ ॥१॥

१ रारहाणाः— अतिशय गतिवाले, चपल। (रहि गतौ)
२ प्रयः— अन्न, यज्ञ, आनन्द।
३ सूनृता— सत्यनिष्ठ, वाणी।

[१४८७] हे (वायो) वायो! (त्वा) तुमको (अस्मत्) हमारे द्वारा (सुकृताः) अच्छी तरहसे तैयार किए (क्राणासः) उत्साह बढानेवाले (अभिद्यवः) देदीप्यमान तथा (गोभिः) गौके दूधसे मिलाये गए (इन्दवः) प्रसन्नताको देनेवाले ये सोमरस (मन्दन्तु) आनन्दित करें। (क्राणाः) कर्मशील पुरुषार्थी (ऊतयः) रक्षाके इच्छुक मनुष्य (दक्षं) बलको (इरध्यै) प्राप्त करनेके लिए (सचन्ते) उद्योग करते हैं। तथा (धियः) सभी बुद्धिमान् पुरुष (सध्रीचीनाः) एक साथ प्रयत्नशील तथा (नियुताः) संघटित होकर (धियः) अपनी बुद्धिके द्वारा (दावने) दानके लिए तुम्हारा ही (उपब्रुवत ईं) स्तवन करते हैं ॥ २ ॥

१ क्राणासः— क्रियाशील। "क्राणाः कुर्वाणाः" (नि. ३।५।१)
२ इरध्यै— प्राप्तिके लिए, "इर गतौ"
३ क्राणाः ऊतयः दक्षं इरध्यै सचन्ते— कर्मशील पुरुषार्थी, रक्षाके इच्छुक मनुष्य बलको प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं।
४ धियः सध्रीचीनाः नियुतः धियः दावने उपब्रुवत— बुद्धिमान् पुरुष एक साथ प्रयत्नशील तथा संघटित होकर अपनी बुद्धिके द्वारा दानके लिए तुम्हारा ही स्तवन करते हैं।

भावार्थ— विद्वानोंकी सलाहके अनुसार लोग औषधिरसोंका पान करके उत्तम हृष्टपुष्ट हों। वे हमेशा उत्तम और सत्यसे युक्त वाणी ही बोलें। उनकी पत्नी सदा उनके अनुकूल वर्ताव करे तथा वे ऐश्वर्यशाली होकर दान करते रहें। संसारके चार सुख इस मंत्रमें बताये हैं– [१] हृष्टपुष्ट होकर स्वस्थ रहना, [२] इन्द्रियोंसे उत्तम व्यवहार करना, [३] पत्नीकी अनुकूलता, [४] ऐश्वर्यशाली होकर दानमें तत्पर होना ॥ १ ॥

१४८८ वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥
१४८९ तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४८८] (वायुः) वायु (वोळहवे) भार ढोनेके लिये (वहिष्ठा) भार ढोनेमें समर्थ (अजिरा) तरुण (रोहिता अरुणा) लाल तथा अरुण वर्णवाले दो घोडोंको (रथे धुरि) अपने रथकी धुरामें (युंक्ते) जोडता है । हे वायो ! (जारः आ ससतीं पुरंधिं इव) जैसे जार पुरुष सोती हुई स्त्रीको जगाता है, उसी प्रकार तुम भी मनुष्योंको (प्रबोधय) जगाओ, तथा (रोदसी) इस द्यावा पृथिवीको (प्रचक्षय) प्रकाशित करो, तथा (श्रवसे) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए (उषसः वासय) उषाको प्रकाशित करो (उषसः वासय) निश्चयसे उषाको प्रकाशित करो ॥ ३ ॥

[१४८९] हे वायो ! (शुचयः) शुद्ध (उषासः) उषाएँ (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (परावति) दूर देशोंमें (दंसु) दर्शनीय (नव्येषु) नवीन (रश्मिषु) किरणोंपर (चित्रा) अनेक प्रकारके (भद्रा) कल्याणकारी (वस्त्रा) वस्त्रोंको (तन्वते) बुनती हैं । तथा (सबर्दुघा) दूधरूपी अमृतको देनेवाली (धेनुः) गाय (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (विश्वा) सम्पूर्ण (वसूनि) दूधरूपी धनोंको (दोहते) दुहती है, प्रदान करती है तथा (अ-जनयः) न उत्पन्न होनेवाले (मरुतः) ये वायु (वक्षणाभ्यः) नदियोंसे जल खींचकर (दिवः) अन्तरिक्षसे फिर (वक्षणाभ्यः) नदियोंको जल मिले इसलिए जलका (आ) चारों ओर वृष्टिसे फैलाव करते हैं ॥ ४ ॥

१ सबर्दुघा— अमृतको दुहनेवाली, दूध देनेवाली गौ । " सबरिति अमृतनाम, तस्य दोग्ध्री "
२ उषासः भद्रा वस्त्रा तन्वते— उषाएँ हितकारी वस्त्र बुनती हैं ।
३ सबर्दुघा धेनुः विश्वा वसूनि दोहते— दूधरूपी अमृत देनेवाली गौ सब धन देती है ।
४ वक्षणाभ्यः दिवः वक्षणाभ्यः आ— नदियोंसे जल आकाशमें जाता है, और आकाशसे जल फिर नदियोंमें आता है ।

भावार्थ— कर्मशील और पुरुषार्थी मनुष्य अपनी रक्षाके लिए तथा बल प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं । सतत पुरुषार्थ करनेसे हर तरहकी शक्ति प्राप्त होती है और उन शक्तियोंसे मनुष्यकी रक्षा होती है । ऐसे शक्तिशाली मनुष्य प्रयत्नशील और संघटित होकर बुद्धिपूर्वक वायुका स्तवन करते हैं । वायु देव सतत पुरुषार्थ और शक्तिका प्रतीक है । वह सदा गति करता रहता है, इसीलिए वह शक्तिमान् है ॥ २ ॥

वायु अपने रथमें उत्तम घोडोंको जोडता है और गति करता हुआ मनुष्योंको जगाता है । वही द्युलोक और उषाको प्रकाशित करता है । वायुके समान मनुष्य सदा प्रयत्नशील होकर दूसरोंको भी जाग्रत करे तथा उन्हें प्रयत्नशील बनाए ॥३॥

यह वायु सदा कर्म करता है, इसीलिए उषायें इसके लिए वस्त्र बुनती हैं अर्थात् अपनी किरणों द्वारा इस वायुमें जीवनशक्ति स्थापित करती हैं । उषःकालकी वायु जीवनशक्तिसे भरपूर होती है । इस समय गायें जो दूध दुहती हैं, वह मानों अमृत ही होता है । इन्हीं हवाओंके कारण नदियोंमें पानी ऊपर आकाशमें जाता है और बरसकर फिर नदियोंमें आता है, अर्थात् वृष्टिका कारण भी यह वायु ही है ॥ ४ ॥

२४

१४९० तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद् भुवनात् पासि धर्मणाऽसुर्यात् पासि धर्मणा ॥ ५ ॥

१४९१ त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत् ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥

[१३५]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- १-३, ९ वायुः; ४-८ इन्द्रवायू । छन्द- अत्यष्टिः; ७-८ अष्टिः ।)

१४९२ स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन् मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९०] हे वायो ! (तुभ्यं) तुमको (शुक्रासः) कान्तिमान (शुचयः) शुद्ध (तुरण्यवः) अत्यन्त त्वराशील (उग्राः) तीव्र सोमरस (भुर्वणि) ऐश्वर्यदायक (मदेषु) यज्ञादि शुभ अवसरोंमें (इषणन्तः) चाहते हैं । तथा (अपां भुर्वणि) जलोंके धारण तथा आहरण करनेके कार्यके लिये भी तुमको (इषन्त) चाहते हैं। तथा हे वायो ! (भगं) भक्ति करनेके योग्य (त्वां) तुम्हारी (त्सारी) अत्यन्त भयभीत तथा (दसमानः) निर्बल मनुष्य (तक्ववीये) कष्ट तथा आपत्तियोंके नाशके लिए (ईट्टे) स्तुति करता है । क्योंकि (त्वं) तुम ही (धर्मणा) धर्मसे (विश्वस्मात्) संपूर्ण (आसुर्यात्) आसुरी (भुवनात्) जगत्से (पासि) रक्षा करते हो ॥ ५ ॥

१ शुक्रासः शुचयः तुरण्यवः उग्रा भुर्वणि मदेषु इषणन्त— बलवान्, शुद्ध त्वरासे कार्य करनेवाले उग्रवीर भरणपोषण करनेवाले आनन्दके समय तुमको चाहते हैं ।

२ भगं त्सारी दसमानः तक्वीये ईट्टे— भाग्यवान्को भयभीत और निर्बल मनुष्य दुःख निवारणके लिए प्रशंसा करता है ।

३ धर्मणा विश्वस्मात् असुर्यात् भुवनात् पासि— धर्मसे सब दुष्ट मनुष्योंसे तुम रक्षण करते हो ।

[१४९१] (अपूर्व्यः) अपूर्व गुणवाले वायो ! (त्वं) तुम (नः) हमारे द्वारा (सुतानां) निचोडे गए (एषां सोमानां) इन सोमके रसको (प्रथमः) सबसे पहले (पीतिं अर्हसि) पीनेके योग्य हो । जैसे (विश्वाः) समस्त (धेनवः) गायें (आशिरं) दूध और (घृतं) घीको (ते) तुम्हारे लिए (दुहूते) दुहती हैं, उसी प्रकार तुम भी (आशिरं) दूधको (दुह्र) दुहो । (उत उ) तथा (ववर्जुषीणां) पापोंसे रहित तथा (विहुत्मतीनां) यज्ञशील (विशां) मनुष्योंकी हविको स्वीकार करो ॥ ६ ॥

[१३५]

[१४९२] हे वायो ! (नः) हमारे द्वारा (बर्हिः) दर्भासन (स्तीर्णं) बिछाया है । अतः तुम (सहस्रेण) सहस्रों (नियुतः) घोडोंसे (वीतये) हविका ग्रहण करनेके लिए (उप याहि) पास आओ । (शतिनीभिः) सैंकडों (नियुत्वते तुभ्यं) घोडोंवाले तुझ (देवाय) देवके लिए (देवाः) देवोंने ये सोम (येमिरे) नियुक्त किये हैं । (क्रत्वे यज्ञमें (सुतासः निचोडे गए (मधुमन्तः) मीठे सोमरस (ते) तुम्हारी (मदाय) प्रसन्नताके लिए (अस्थिरन्) सामने रखे हुए हैं ॥ १ ॥

१ नियुत— घोडे 'नियुत' ये वायुके घोडोंके नाम हैं । (नियुतः वायोः' नि. १।१५।१०) ।

भावार्थ— बलवान्, शुद्ध पवित्र भावनाओंवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले जन इस वायुकी स्तुति करते हैं । जो भयभीत और निर्बल हैं, वे भी इस वायुकी शरणमें जाते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यह वायु दुष्टोंसे धार्मिकोंका संरक्षण करता है ॥ ५ ॥

१४९३ तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयु-र्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
१४९४ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥
१४९५ आ वां रथो नियुत्वान् वक्षदवसे ऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गत-मिन्द्रश्च राधसा गतम् । ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४९३] हे (वायो) वायो! (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (अद्रिभिः) पहाडोंपरके पत्थरोंसे निचोडकर (परिपूतः) शुद्ध किया हुआ तथा (स्पार्हा) स्पृहणीय तेजोंको (वसानः) धारण करता हुआ (अयं सोमः) यह सोम (कोशं) पात्रमें (परि अर्षति) भरा हुआ है । ऐसा (शुक्राः वसानः) निर्मल दीप्तिवाला यह सोम (तव भागः) तुम्हारा भाग है। (आयुषु) मनुष्योंमें तुम ही (देवेषु) सब देवताओंसे प्रथम (हूयते) बुलाये जाते हो। हे वायो ! तुम (नियुतः) घोडोंसे (याहि) जाओ तथा (वह) अन्योंको भी ले आओ । तथा स्वयं भी (जुषाणः) इच्छा करते हुए (अस्मयुः) हमारे पास आनेकी इच्छा करते हुए (याहि) जाओ ॥ २ ॥

[१४९४] हे (वायो) वायो ! तुम (नः अध्वरं) हमारे यज्ञमें (वीतये) हवि ग्रहण करनेके लिए तथा (हव्यानि वीतये) हविको स्वीकार करनेके लिए (शतिनीभिः सहस्रिणीभिः नियुद्भिः) सैंकडों तथा हजारों घोडि-योंसे (उप आ याहि) आओ । (तव) तुम्हारे लिए (अयं भागः) यह सोमका भाग (ऋत्वियः) ऋतुके योग्य ही है । ये सोमरस (सरश्मिः) किरणोंसे तप्त होकर (सूर्ये सचा) सूर्यके समान तेजस्वी हुए हैं । हे वायो ! ये सोम रस (अध्वर्युभिः) अध्वर्यु आदि ऋत्विजोंके द्वारा (भरमाणाः) भरे गए (अयंसत) हैं तथा (शुक्राः अयंसत) ये सोमरस अत्यन्त वीर्यवान हैं ॥ ३ ॥

[१४९५] हे (वायो) वायु ! (नियुत्वान् रथः) घोडोंसे युक्त रथ (सुधितानि प्रयांसि वीतये) उत्तम प्रकारसे तैय्यार किए गए अन्नोंको खानेके लिए तथा (हव्यानि वीतये) हवियोंको खानेके लिए तथा (अवसे) हमारी रक्षाके लिए (वां वक्षत्) तुम्हें और इन्द्रको ले आवे । तथा (वां हितं) तुम दोनोंके लिए रखे हुए (पूर्वपेयं) सबसे पहले पीने योग्य (मध्वः अन्धसः पिबतं) मीठे सोमरसको पीओ । (वायो) हे वायो ! (चन्द्रेण राधसा आ गतं) आनन्ददायक धनसे युक्त होकर आओ, (इन्द्रः च राधसा आ गतं) इन्द्र भी ऐश्वर्यसे युक्त होकर आवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह वायु अत्यन्त श्रेष्ठ होनेके कारण सोमरसोंको पीनेके लिए प्रथम अधिकारी है । समस्त गौवें इसके लिए अपने दूधको देती हैं । पापोंसे रहित तथा यज्ञशील मनुष्यकी हविको ही वायु स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

हे वायु ! तुम्हारे लिए यह यज्ञ चल रहा है, इसलिए अपने रथ पर बैठकर तुम आओ और यहां आकर तुम सोमरस पिओ ॥ १ ॥

सोमरस पत्थरोंसे कूटकर शुद्ध करके तैय्यार किया जाता है । यह रस निर्मल दीप्तिवाला और अनेक तेजोंको धारण करता है । वायु इस सोमरसका भाग सबसे प्रथम ग्रहण करता है ॥ २ ॥

हे वायो ! तुम हमारे यहां सोमरसको पीनेके लिए अनेकों घोडोंसे आओ । यह ऋतुके अनुसार सोमरस तैय्यार किया गया है । ये सोमरस सूर्यके सम्पर्कमें आनेके कारण सूर्यके समान तेजस्वी हो गया है । इसलिए यह वीर्यवान् है ॥ ३ ॥

इन्द्र और वायु दोनों हमारी रक्षा करनेके लिए आवें और हमारे पास आकर हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको पीवें और प्रसन्न होकर आनन्ददायक ऐश्वर्य हमें प्रदान करें ॥ ४ ॥

१४९६ आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपे—ममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनं—माशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥

१४९७ इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहा—ध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

१४९८ अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृत—मा पूर्णया नियुता याथो अध्वर—मिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ७

अर्थ— [१४९६] हे इन्द्र और वायु ! (वां धियः) तुम दोनोंकी बुद्धियां (अध्वरान् उप ववृत्युः) सदा यज्ञोंके पास रहें । (आशुमत्यं वाजिनं न) जिसप्रकार वेगवान् घोडेको साफ करते हैं, उसी प्रकार (वाजिनं इमं इन्दुं) बलदायक इस सोमरसको हम तुम्हारे लिए (मर्मृजन्त) तैय्यार करते हैं । हे (इन्द्रवायू) इन्द्र वायु ! तुम दोनों (ऊत्या) रक्षणके साधनों सहित (इह नः आगन्तं) यहां हमारे पास आओ और (तेषां पिबतं) उन सोमरसोंको पीओ । (युवं) तुम दोनों (अद्रिभिः सुतानां) पत्थरोंसे कूटकर निचोडे गए सोमरसोंको (मदाय) आनंदके लिए पीओ क्योंकि (युवं वाजदा) तुम दोनों शक्तियोंको देनेवाले हो ॥ ५ ॥

[१४९७] (अप्सु सुताः) यज्ञोंमें निचोडे गए (अध्वर्युभिः भरमाणाः) अध्वर्युओंके द्वारा ले जाए जाते हुए (इमे सोमाः) ये सोम (वां अयंसत) तुम दोनोंके पास पहुंचे । हे (वायो) वायु ! (शुक्राः अयंसत) ये तेजस्वी सोमरस तुम्हारे पास पहुंचे । (एते आशवः) ये बहनेवाले सोमरस (वां) तुम्हारे लिए (तिरः पवित्रं) तिरछे होकर बर्तनमें (अभि असृक्षत) भरे जाते हैं । (युवायवः सोमासः) तुम दोनोंकी इच्छा करनेवाले सोमरस (अव्यया रोमाणि अति) न टूटे हुए बालोंमेंसे होकर छनते हैं, और (अति अव्यया) ये सोमरस अत्यन्त रक्षक हैं ॥ ६ ॥

[१४९८] हे (वायो) वायु ! (ससतः शश्वतः अति याहि) तू सोते हुए मनुष्योंको पार कर जा, उनके पास मत ठहर । तुम दोनों (यत्र ग्रावा वदति) जहां सोम कूटनेके पत्थरोंका शब्द हो रहा है, (तत्र गच्छतं) वहां जाओ (इन्द्रः च) इन्द्र और तुम (गृहं गच्छतं) यज्ञगृहको जाओ । जहां (सूनृता ददृशे) वेदमंत्र सुनाई दे रहे हों, (घृतं आ रीयते) घी बह रहा हो, वहां (पूर्णया नियुता) पुष्ट घोडोंके द्वारा (अध्वरं याथः) यज्ञको जाओ, (इन्द्रः च अध्वरं याथः) इन्द्र और तुम दोनों यज्ञको जाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन इन्द्र और वायुकी बुद्धियां यज्ञोंको प्रेरित करें, ताकि हम इन दोनोंके लिए सोमरस तैय्यार करें। उन सोमरसोंको ये दोनों देव हमारे पास आकर पीवें ॥ ५ ॥

ये तेजस्वी सोमरस कूटपीस कर निकाले जाते हैं और छानकर उत्तम बर्तनोंमें भरे जाते हैं । इन रसोंको छाननेकी छलनी भेडके बालोंकी बनी हुई होती है । इन बालोंमें छनकर यह रस शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

जो मनुष्य सोते रहते हैं, उनके पास यह वायु नहीं जाता । अर्थात् जो सोते हैं, वे वायुसे लाभ नहीं उठा सकते । इन्द्र और वायु दोनों हमेशा ऐसी जगह ही जाते हैं, जहां सोम कूटनेके पत्थरोंकी आवाज हो रही हो, जहां वेदमंत्र बोले जा रहे हों और यज्ञ चल रहा हो । जो सवेरे उठकर यज्ञ करते हैं, वे ही वायुसे जीवनशक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

१४९९ अत्राह तद् वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ८
१५०० इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः ।
धन्वञ्चिद् ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥

[१३६]

(ऋषिः– परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता– १–५ मित्रावरुणौ, ६–७ लिङ्गोक्ताः । छन्दः– अत्यष्टिः; ७ त्रिष्टुप् ।)

१५०१ प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९९] हे इन्द्र और वायु ! (अत्र अह) यहीं पर (मध्वः तत् आहुतिं) मिठाससे भरपूर उस हवि द्रव्य सोमको (वहेथे) ले आओ, (यं) जिस (अश्वत्थं) पर्वतोंमें मिलनेवाले सोमको (जायवः उपतिष्ठन्त) जयशील लोग प्राप्त करते हैं । (अस्मे ते जायवः सन्तु) इस सोमको पानेमें वे जयशील लोग समर्थ हों । (गावः साकं सुवते) ये गायें एक साथ तुम्हारे लिए दूध देती हैं, (यवः पच्यते) तुम्हारे लिए जौ आदि अन्न पकाया जाता है, हे (वायो) वायु ! (ते धेनवः न उप दस्यन्ति) तेरी वे गायें क्षीण न हों, (धेनवः न अप दस्यन्ति) गायें चुराई न जायें ॥८॥

[१५००] हे (सु–वायो) शोभन वायो ! (ते इमे बाहु ओजसः) तुम्हारे ये बलशाली बाहुओंवाले तथा (उक्षणः) युवा घोडे (ते नदी अन्तः) उन द्यावापृथिवीके बीचमें (पतयन्ति) जाते हैं, तथा (ते) तुम्हारे (उक्षणः) बलवान् घोडे (महि व्राधन्तः) सहज ही बढ़ जाते हैं । तथा (ये) जो (धन्वन् चित्) मरुभूमिमें भी (अ–नाशवः) नाशरहित हैं, (जीराः चित्) अत्यन्त वेगवाले है (अ–गिरा–ओकसः) वाणीसे इनके स्थानका वर्णन नहीं किया जा सकता, तथा (सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यकी किरणोंके समान (दु–र्नियन्तवः) नियन्त्रित नहीं हो सकते, तथा (हस्तयोः दु–र्नियन्तवः) हाथोंसे भी नहीं रोके जा सकते ॥ ९ ॥

[१३६]

[१५०१] हे मनुष्यो ! (निचिराभ्यां) नित्य, (मृळयद्भ्यां) सुख देनेवाले, (स्वादिष्ठं मृळयद्भ्यां) अत्यन्त सुख देनेवाले इन मित्रावरुणोंको (ज्येष्ठं बृहत् नमः) उत्तम और श्रद्धायुक्त नमस्कार करो, (हव्यं मतिं भरत) प्रशंसनीय बुद्धिसे उनकी स्तुति करो । (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (सम्राजा) अत्यन्त तेजस्वी (घृतासुती) घृतका भक्षण करनेवाले, (यज्ञे यज्ञे उपस्तुता) प्रत्येक यज्ञमें स्तुतिके योग्य हैं । (अथ) इसलिए (एनोः क्षत्रं कुतः चन न आधृषे) इन दोनोंकी क्षात्रशक्तिको कोई भी कहींसे भी कम नहीं कर सकता, (देवत्वं नु चित् आधृषे) देवत्वको भी कम नहीं कर सकता ॥ १ ॥

भावार्थ— इस सोमको जयशील लोग ही पानेमें सफल होते हैं । यह सोम पर्वतोंमें बहुत ऊंचे स्थलोंपर प्राप्त होता है, अतः इतनी ऊंचाई पर सर्वसाधारण जन नहीं जा सकते, जो अत्यधिक साहसी और उद्योगशील ही प्राप्त कर पाते हैं । इस सोमरसमें गायका दूध मिलाया जाता है । तब देवोंको दिया जाता है ॥ ८ ॥

वायुके घोडे बहुत तेज और शक्तिशाली हैं कहीं भी इनकी गति रुकती नहीं । मरुभूमिमें भी ये उतने ही वेगसे भागते हैं । जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंको कोई नियंत्रित नहीं कर सकता, उसी तरह वायुकी गतिको भी कोई रोक नहीं सकता । वायु सदा बहता रहता है । इसी तरह वीरोंकी गति ऐसी हो कि जिसे कोई रोक न सके ॥ ९ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी और प्रत्येक यज्ञमें उपासना करनेके योग्य हैं । सभी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इन दोनोंकी स्तुति करते हैं, इसलिए इनका देवत्व और शक्ति इतनी बढ जाती है कि उसे कोई भी शत्रु कहींसे भी कम नहीं कर पाता ॥ १ ॥

१५०२ अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभि- श्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।
द्युक्षं मित्रस्य सादन- मर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः ॥ २ ॥

१५०३ ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनो ऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

१५०४ अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५०२] (गातुः वरीयसी) अत्यन्त गति करनेवाली उषा (उरवे) यज्ञका विस्तार करनेके लिए (अदर्शि) प्रकट हुई है । (ऋतस्य पन्थाः) सूर्यका मार्ग (रश्मिभिः सं अयंस्त) किरणोंसे युक्त हो गया है, (भगस्य रश्मिभिः) ऐश्वर्यवान् सूर्यकी किरणोंसे (चक्षुः) आंखें संयुक्त हो गई हैं । (मित्रस्य अर्यम्णः वरुणस्य च सदनं द्युक्षं) मित्र, अर्यमा और वरुणका घर तेजस्वी हो गया है, (अथ) इसीलिए वे सब देव (बृहदुक्थ्यं वयः) बहुत प्रशंसनीय अन्न और (उपस्तुत्यं बृहत् वयः) प्रशंसनीय महान् बल (दधाते) धारण करते हैं ॥ २ ॥

[१५०३] (ज्योतिष्मतीं अदितिं स्वर्वतीं क्षितिं धारयत्) तेजसे युक्त, टुकडे टुकडे न करनेके योग्य तथा सुख देनेवाली भूमिको धारण करते हुए (दिवे दिवे जागृवांसा) प्रतिदिन जाग्रत रहनेवाले दोनों देव मित्र और वरुण (आ सचेते) आपसमें संयुक्त होते हैं । (दिवे दिवे ज्योतिष्मत् क्षत्रं आशाते) प्रतिदिन तेजस्वी शक्तिको प्राप्त करते हैं । (आदित्या) अदितिके पुत्र (दानुनः पती) दान देने योग्य धनोंके स्वामी (मित्रः वरुणः तयोः) मित्र और वरुण दोनों (जनः यातयत्) मनुष्योंको सन्मार्गमें प्रेरित करता है, (अर्यमा जनः यातयत्) अर्यमा भी मनुष्योंको सन्मार्गमें प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

[१५०४] (अवपानेषु आ भगः) पीने योग्य पदार्थोंमें सर्वोत्तम तथा (देवेषु आ भगः) देवोंमें सबसे ज्यादा ऐश्वर्यसम्पन्न (अयं सोमः) यह सोम (मित्राय वरुणाय शंतमः भूत्) मित्र और वरुणके लिए अत्यन्त सुख देनेवाला हो (अद्य) आज (सजोषसः विश्वे देवासः) एक समान विचारवाले सभी देव (तं जुषेरत) इस सोमका सेवन करें । (राजाना) हे तेजस्वी मित्र और वरुण ! (यत् ईमहे) हम जो मांगते हैं, (तथा करथः) उन्हें पूर्ण करो, हे (ऋतावाना) सत्कर्मोंको प्रेरित करनेवाले देवो ! (यत् ईमहे) जो हम मांगते हैं, उन्हें पूरा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— अत्यन्त तेजीसे गमन करनेवाली उषा लोगोंको यज्ञ करनेके लिए प्रेरणा देते हुए प्रकट होती हुई दिखाई देतीहै । सूर्यका मार्ग भी किरणोंसे युक्त हो गया है अर्थात् उषाके उदय होते ही सूर्यका मार्ग भी प्रकाशित हो जाता है सूर्यके उदय होते ही लोगोंको दीखने लगता है तब सभी यज्ञ करते हैं और ये सभी देव आहुतिरूपी प्रशंसनीय अन्न धारण करते हैं ॥ २ ॥

मित्रके समान हित करनेवाले तथा वरणीय श्रेष्ठ देव इस पृथ्वीको धारण करते हैं । यह पृथ्वी अत्यन्त तेजसे युक्त है, इसीलिए वह अहिंसनीय है । ये दोनों देव प्रतिदिन आकर मनुष्योंको जगाकर उन्हें उत्तम कर्मोंमें प्रेरित करते हैं ॥ ३ ॥

सोम सबसे ज्यादा ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी है । स-उमा अर्थात् ब्रह्मज्ञानसे जो युक्त होता है, वह महा तेजस्वी और ऐश्वर्यसे युक्त होता है, वही सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करनेके कारण वरणीय होता है, अर्थात् सभी प्रजाएं उसको चाहती हैं । वही ब्रह्मज्ञानी सभी प्रजाओंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है और उत्तम सुख देता है ॥ ४ ॥

१५०५ यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो ऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः ।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् । ॥ ५ ॥

१५०६ नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

१५०७ ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५०५] (यः जनः मित्राय वरुणाय अविधत्) जो मनुष्य मित्र और वरुणकी सेवा करता है, (यः एनोः व्रतं) जो इन दोनोंके कर्मको (उक्थैः परिभूषति) अपनी प्रशंसाओंसे अलंकृत करता है, (स्तोमैः व्रतं आभूषति) अपनी वाणीसे इनके कर्मोंका वर्णन करता है, (तं अनर्वाणं) उस द्वेष न करनेवालेकी ये दोनों देव (अंहसः परिपातः) पापसे रक्षा करें। (तं दाश्वांसं ऋजूयन्तं अनुव्रतं) उस दानशील, सरल और सत्यके मार्गसे जानेवाले तथा उत्तम व्रतोंका आचरण करनेवाले मनुष्यकी (अर्यमा अंहसः अभि रक्षति) अर्यमा पापों और दुःखोंसे रक्षा करता है ॥ ५ ॥

१ अनर्वाणं अंहसः परिपातः— जो किसीसे शत्रुता नहीं रखता, ऐसे मनुष्यकी मित्रावरुण दुःखोंसे रक्षा करते हैं। (भ्रातृव्यो हि अर्वा— शत्रुका नाम अर्वा है- तै. सं. ६।३।८।४)

२ दाश्वांसं, ऋजूयन्तं अनुव्रतं अर्यमा अंहसः अभि रक्षति— दान देनेवाले, सरल और सत्य मार्गपर से चलनेवालेकी अर्यमा दुःखोंसे रक्षा करता है।

[१५०६] (बृहते दिवे) महान् द्युलोकके लिए, (रोदसीभ्यां) द्युलोक और पृथिवीलोकके लिए (मीळ्हुषे मित्राय) सुख देनेवाले मित्रके लिए तथा (सुमृळीकाय मीळ्हुषे वरुणाय) अत्यन्त सुख और आनन्द प्रदान करनेवाले वरुणके लिए मैं (नमः वोचं) नमस्कार कहता हूँ। हे मनुष्य ! तू (इन्द्रं अग्निं, द्युक्षं अर्यमणं भगं उपस्तुहि) इन्द्र, अग्नि, तेजस्वी अर्यमा और भगकी उपासना कर। हम (ज्योक् जीवन्तः) चिरकालतक जीवित रहकर (प्रजया सचेमहि) प्रजाओंसे युक्त हों, (सोमस्य ऊती सचेमहि) सोमकी रक्षासे युक्त हों ॥ ६ ॥

[१५०७] (स्वयशसः मरुद्भिः इन्द्रवन्तः वयं) अपने यश और शक्तियोंसे ऐश्वर्यवाले हम (देवानां ऊती मंसीमहि) देवोंकी सुरक्षाओंको प्राप्त करें। (अग्निः मित्रः वरुणः शर्म यंसन्) अग्नि, मित्र और वरुण हमें सुख देवें, (मघवानः च वयं तत् अश्याम) और ऐश्वर्यसे सम्पन्न हुए हुए हम उस सुखको प्राप्त करें ॥ ७ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य किसीसे शत्रुता नहीं करता, किसीसे द्वेष नहीं करता, ऐसे उत्तम मनुष्यकी श्रेष्ठ पुरुष सब ओरसे रक्षा करता है। इसी तरह जो दान द्वारा निर्बलोंकी सेवा करता है, सदा सत्यमार्गपर चलता है और उत्तम व्रतोंका पालन करता है, उसकी देव सब ओरसे रक्षा करते हैं और उसे कभी भी दुःखमें नहीं डालते ॥ ५ ॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक, मित्र और वरुण ये सभी देव अत्यन्त सुख और आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। उन सभी देवोंकी कृपासे सभी मनुष्य दीर्घायुवाले होकर प्रजाओंसे युक्त हों और सभी तरहसे सुरक्षित हों ॥ ६ ॥

हम सब देवोंके द्वारा दिए गए सुखको प्राप्त करें, तथा अपने यश और बलोंसे युक्त होकर देवोंके द्वारा सुरक्षित हों ॥ ७ ॥

[१३७]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- अतिशक्वरी ।)

१५०८ सुषुमा यातमद्रिभि॒र्गोश्री॑ता मत्स॒रा इ॒मे सोमा॑सो मत्स॒रा इ॒मे ।
आ राजाना दिविस्पृशा ऽस्मत्रा गन्तमुप नः
इ॒मे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥

१५०९ इ॒म आ यातमिन्दवः सोमा॑सो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उ॒त वामुषसो बुधि सा॒कं सूर्यस्य र॒श्मिभिः ।
सु॒तो मि॒त्राय॒ वरु॑णाय पी॒तये॒ चारु॑र्ऋ॒ताय॒ पी॒तये॑ ॥ २ ॥

१५१० तां वां धे॒नुं न वा॑स॒रीमं॒शुं दु॑ह॒न्त्यद्रि॑भि॒ः सोमं॑ दुह॒न्त्यद्रि॑भिः ।
अ॒स्म॒त्रा गन्तमुप नो ऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अ॒यं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥

[१३७]

अर्थ— [१५०८] (मित्रावरुणा) हे मित्र और वरुण ! (गोश्रीताः मत्सराः इमे) गायके दूधमें मिले हुए आनन्ददायक इन सोमरसोंको हम (अद्रिभिः सुसुम) पत्थरोंसे कूटकर निचोडते हैं, (इमे सोमासः मत्सराः) ये सोम निश्चयसे आनंद देनेवाले हैं, इसलिए तुम दोनों (नः आ यातं) हमारे पास आवो । (राजाना दिविस्पृशा) अत्यन्त तेजस्वी तथा द्युलोकको छूनेवाले तुम दोनों (अस्मत्रा नः उप आ गन्तं) हमारे पालनपोषण करनेवाले होकर हमारे पास आओ । हे मित्र और वरुण ! (वां) तुम्हारे लिए तैय्यार किए गए (गवाशिरः) गायके दूधमें मिले हुए तथा (गवाशिरः) पानीमें मिले हुए (इमे सोमाः) ये सोमरस (शुक्राः) तेजस्वी हैं ॥ १ ॥

[१५०९] हे मित्र और वरुण ! (इमे इन्दवः दध्याशिरः दध्याशिरः) ये तेजस्वी दही दूधमें मिले हुए (सोमासः सुतासः) सोमरस निचोडकर तैय्यार किए गए हैं, अतः (आ यातं) तुम दोनों आवो । (वां) तुम्हारे लिए (उषसः बुधि) उषाके उदयकी बात मालूम होते ही (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यकी किरणोंके साथ ही ये रस निचोडे गए हैं । (मित्राय वरुणाय पीतये) मित्र और वरुणके पीनेके लिए (चारुः ऋताय पीतये) सत्यज्ञानको पानेके लिए (सुतः) ये सोमरस निचोडे गए हैं ॥ २ ॥

[१५१०] हे मित्रावरुण ! यज्ञ करनेवाले (वां) तुम्हारे लिए (वासरीं धेनुं न) दुधारु गाय जैसे दूध देती है, उसी प्रकार (अद्रिभिः अंशुं दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर सोमको निचोडते हैं, (अद्रिभिः सोमं दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर सोमको दुहते हैं । (अस्मत्रा) हमारी रक्षा करनेवाले तुम दोनों (सोम-पीतये) सोम पीनेके लिए (नः अर्वाञ्चा उप आ गन्तं) हमारी तरफ आओ । (मित्रावरुणा) हे मित्रावरुणो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (नृभिः) यज्ञ करनेवालोंके द्वारा (अयं सुतः) यह सोमरस निचोडा गया है, (पीतये सोमः आ सुतः) तुम्हारे पीनेके लिए यह सोमरस निचोडा गया है ॥ ३ ॥

भावार्थ— सोमरस अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण इसके पीनेवालेको भी तेज प्रदान करते हैं । मित्र और वरुण इन दोनों देवोंका यश द्युलोकको छूता है, अर्थात् ये दोनों ही अत्यन्त यशस्वी हैं ॥ १ ॥

तेजस्वी सोम दहीमें मिलाकर पीये जाते हैं । उषःकालमें सूर्यकिरणोंके प्रकट होनेके साथ ही सोमरसोंका निचोडना शुरु हो जाता है । ऐसे समय इन रसोंको पीनेसे बुद्धि तीव्र होती है और ज्ञानकी प्राप्ति सरलतासे हो सकती है ॥ २ ॥

यह सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है फिर उसका रस पीया जाता है । यह रस गायके दूधके समान ही बलदायक होता है । यज्ञ करनेके समय यह रस निचोडा जाता है और उस समय सब देवगण आकर इसका पान करते हैं ॥ ३ ॥

[१३८]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता- पूषा । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१५११ प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

१५१२ प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत् त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान् द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥

१५१३ यस्य ते पूषन् त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित् सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥

---

[१३८]

अर्थ— [१५११] (तुविजातस्य पूष्णः) बलके साथ उत्पन्न हुए हुए इस पूषा देवकी (महित्वं प्र शस्यते) महिमाकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, (अस्य तवसः न तन्दते) इसके बलको कोई दबा नहीं सकता, (अस्य स्तोत्रं न तन्दते) इसके स्तोत्रको कोई बिगाड नहीं सकता । (सुम्नयन् अहं) सुखकी इच्छा करनेवाला मैं (यः विश्वस्य मखः मनः आयुयुवे) जो सभी यज्ञ करनेवालोंके मनको संगठित करता है, (देवः मखः आयुयुवे) जो तेजस्वी यज्ञोंको संगठित करता है, ऐसे (अन्त्यूतिं मयोभुवं) संरक्षणके साधनोंको अपने पास रखनेवाले सुखकारी पूषाकी (अर्चामि) स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१५१२] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यामनि अजिरं न) जिस प्रकार युद्धमें उत्तम वेगवान् घोडेकी प्रशंसा होती है, अथवा (यथा मृधः ऋणवः) जिस प्रकार संग्रामोंकी तरफ जानेवाले उत्तम वीरोंकी प्रशंसा होती है, उसी तरह (त्वा स्तोमेभिः कृण्वे) मैं तुझे अपने स्तोत्रोंसे बढाता हूँ, तू (उष्ट्रः न) ऊंट जिस प्रकार यात्रियोंको रेगिस्तानसे पार करा देता है, उसी तरह (मृधः पीपरः) हिंसकोंसे हमें पार करा। (मर्त्यः) मरणशील मैं (सख्याय) मित्रताके लिए (मयोभुवं त्वा देवं) सुख देनेवाले तुझ देवको (हुवे) पुकारता हूँ। तू (अस्माकं आंगूषान्) हमारी वाणियोंको (द्युम्निनः कृधि) तेजस्वी बना, (वाजेषु द्युम्निनः कृधि) संग्रामोंमें हमें तेजस्वी बना ॥ २ ॥

[१५१३] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यस्य ते) जिस तेरी (सख्ये सन्तः) मित्रतामें रहकर (विपन्यवः) बुद्धिमान् (क्रत्वा अवसा) अपने पुरुषार्थ और तुम्हारी रक्षासे (बुभुज्रिरे) सारे भोग प्राप्त करते हैं, (इति क्रत्वा बुभुज्रिरे) वे सब इस प्रकार अपने पुरुषार्थसे भोग प्राप्त करते हैं। (तां नवीयसीं अनु) उस प्रशंसनीय बुद्धिके अनुकूल रहकर हम (त्वा नियुतं रायः ईमहे) तुझसे अनन्त ऐश्वर्य मांगते हैं । हे (उरुशंस) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाले पूषा देव ! (अहेळमानः सरी भव) प्रत्येक युद्धमें हमारी तरफ आ ॥ ३ ॥

१ विपन्यवः क्रत्वा बुभुज्रिरे— बुद्धिमान जन अपने पुरुषार्थसे भोगोंको भोगते हैं ।

भावार्थ— सबके पोषण करनेवाले देवकी महिमा बहुत बडी है । पोषण करनेवालेकी शक्ति बहुत बडी होती है । इसीलिए इस देवकी शक्तिको कोई दबा नहीं सकता, अथवा इसके स्तोत्रको भी कोई बिगाड नहीं सकता। यह देव यज्ञकर्ताओंके मनोंको आपसमें संगठित करता है, इसीलिए वे सब एक मनवाले होकर यज्ञ करते हैं ॥ १ ॥

जिस प्रकार मनुष्य वेगवान् घोडेकी प्रशंसा करके उसका उत्साह बढाते हैं अथवा जैसे संग्राममें वीरकी प्रशंसा करके उसका उत्साह बढाया जाता है, उसी प्रकार सभी पोषण करनेवालोंका उत्साह बढाना चाहिए । इस पोषक देवके साथ मित्रता करनी चाहिए, क्योंकि यह देव अपने उपासकोंको युद्धोंसे उसी तरह तारता है, जिस तरह एक ऊंट रेगिस्तानसे। ऐसे उत्तम वक्ताकी वाणी बडी ओजस्विनी होती है ॥ २ ॥

१५१४ अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥

[१३९]

(ऋषिः- परुच्छेपो दैवोदासिः । देवता-१ विश्वे देवाः, २ मित्रावरुणौ, ३-५ अश्विनौ, ६ इन्द्रः, ७ अग्निः, ८ मरुतः, ९ इन्द्राग्नी, १० बृहस्पतिः, ११ विश्वे देवाः । छन्दः- अत्यष्टिः, ५ बृहती, ११ त्रिष्टुप् ।)

१५१५ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा संदायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥

अर्थ— [१५१४] हे (अजाश्व) पूषा देव ! (अस्याः सातये) इस ऐश्वर्यकी प्रगतिके लिए (अहेळमानः ररिवान्) क्रुद्ध न होता हुआ और दानशील होकर (नः उप भुवः) हमारे पास उपस्थित हो, (अजाश्व) हे पूषा ! (श्रवस्यतां) अन्नकी इच्छा करनेवाले हमारे पास उपस्थित हो। हे (दस्म) दर्शनीय पूषा ! हम (साधुभिः स्तोमेभिः) उत्तम स्तोत्रोंसे (त्वा सु ववृतीमहि) तेरी उत्तम सेवा करते हैं, हे (पूषन्) पोषक तथा (आघृणे) जल वर्षानेवाले देव ! (त्वा नहि अति मन्ये) तेरा मैं अपमान नहीं करता और (ते सख्यं न अपन्हुवे) तेरी मित्रताको भी नहीं तोडता ॥ ४ ॥

[१३९]

[१५१५] (पुरः) पहले (धिया अग्निं आ दधे) बुद्धिसे मैंने अग्निको धारण किया, (आ नु) इसके बाद हम अग्निसे (तत् दिव्यं शर्धः वृणीमहे) उस दिव्य शक्तिको मांगते हैं। (इन्द्रवायू वृणीमहे) इन्द्र और वायुको वरण करते हैं। (यत् ह) क्योंकि (विवस्वति नाभा) तेजयुक्त यज्ञमें मैंने (नव्यसी क्राणा संदायि) प्रशंसनीय कर्म किए हैं, इसलिए (नः धीतयः) हमारी स्तुतियां (देवान् उप सु यन्तु) देवोंके पास जाएं, (नः धीतयः) हमारी पुकार (देवान् अच्छ) देवोंके पास सीधी जाए ॥ १ ॥

भावार्थ— बुद्धिमान् और वीर पुरुष अपने पुरुषार्थ और पोषक देवकी मित्रतासे भोगोंको प्राप्त करते और भोगते हैं अर्थात् भोगोंको प्राप्त करनेके लिए वे किसी मनुष्यकी दयाके पात्र नहीं बनते। वे हमेशा अपनी उत्तम बुद्धिके अनुकूल ही रहकर धन चाहते हैं, कभी दुर्बुद्धि या कुमार्गसे धन प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करते। तब ऐसे मनुष्योंपर पोषक देव कभी क्रुद्ध नहीं होता, अपितु उनकी सहायता करके उन्हें सम्पन्न और समृद्ध बनाता है ॥ ३ ॥

हे पोषक देव ! तू हम पर क्रुद्ध न हो, तथा हमें दान दे। हम भी तेरी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं। हम तेरा अपमान नहीं करते और तेरी मित्रताको दूर नहीं करते ॥ ४ ॥

शरीरमें अग्निको अच्छी तरह धारण करनेसे शारीरिक बल बढता है। बलके बढनेसे मनुष्य यज्ञमें उत्तम उत्तम कर्म करता है और तब उसकी प्रार्थना देवोंतक सीधी पहुंचती है अर्थात् उत्तम कर्म करनेवालेकी प्रार्थना देवगण बडे ध्यानसे सुनते हैं ॥ १ ॥

१५१६ यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥
१५१७ युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाऽऽश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३यवः ।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥
१५१८ अचेति दस्रा व्यु१ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥

अर्थ—[१५१६] (यत् ह) क्योंकि हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण! तुम (स्वेन मन्युना) अपने बलसे (ऋतात् अनृतं अधि आ ददाथेः) सत्यशीलके द्वारा असत्यशीलोंपर शासन करवाते हो, तथा (दक्षस्य स्वेन मन्युना) बलवान्‌की अपनी शक्तिसे शासन करवाते हो, (इत्था) इसलिए (युवोः हिरण्ययं) तुम दोनोंका सोने जैसा चमकीला तेज हम (धीभिः मनसा स्वेभिः अक्षभिः) अपनी बुद्धि, मन और इन्द्रियोंसे तथा (सोमस्य अक्षभिः) ज्ञानकी आंखोंसे (सद्मसु अपश्याम) घरोंमें देखते हैं ॥ २ ॥

[१५१७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (देवयन्तः आयवः) देवोंकी भक्ति करनेवाले मनुष्य (युवां आश्रावयन्त इव) तुम दोनोंको सुनाते हुए (स्तोमेभिः श्लोकं) स्तोत्रों द्वारा तुम्हारे यशको गाते हैं। (आयवः) भक्तजन (युवां हव्या) तुम दोनोंको पुकारते हैं। हे (विश्ववेदसा) सर्वज्ञ अश्विदेवो! (विश्वाः श्रियः पृक्षः च) सम्पूर्ण सम्पत्तियां और अन्न (युवोः) तुम दोनोंमें निहित हैं। हे (दस्रा) सुन्दर देवो! (हिरण्यये हिरण्यये रथे) सुन्दर सोनेके रथमें (पवयः) रथकी नाभियां (वां प्रुषायन्ते) तुम दोनोंको ले जाती हैं ॥ ३ ॥

१ पवी— रथकी नाभि। "पवी रथनेमिः भवति, यद्विपुनाति भूमिम्" (निरु. ५।५)

[१५१८] हे (दस्रा) सुन्दर अश्विनौ ! तुम दोनों (नाकं ऋण्वथः) स्वर्गको जाते हो, और (रथयुजः) रथको जोडनेवाले सारथी (वां दिविष्टिषु अध्वस्मानः) द्युलोकके मार्गोंपर दौडनेवाले घोडोंको (युञ्जते) जोडते हैं, यह बात (अचेति) सब जानते हैं। (दस्रा) हे सुन्दर अश्विनौ ! हम (वां) तुम दोनोंको (हिरण्यये वन्धुरे रथे) सुनहले और अच्छी तरहसे बंधे हुए रथमें (अधि स्थाम) बिठलाते हैं। तुम दोनों (अञ्जसा) अपने बलसे (रजः शासता) लोकोंपर शासन करते हुए (रजः अनुशासता) जलोंपर नियंत्रण रखते हुए (पथा इव यन्तौ) अपने अपने मार्गोंसे जाते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— ये मित्रके समान स्नेह करनेवाले, तथा श्रेष्ठ देव सत्यमार्गका संरक्षण करते हैं और असत्यका नाश करते हैं, इसलिए इनकी सहायतासे सत्यके अनुयायी असत्य भाषण करनेवालों पर शासन करते हैं। ज्ञानीजन अपनी बुद्धि, मन और ज्ञानके द्वारा इन देवोंके तेजका साक्षात्कार करते हैं ॥ २ ॥

दोनों अश्विदेव सर्वज्ञ हैं। सभी सम्पत्तियां इनमें निहित हैं। सुन्दर और सुनहले रथपर चढकर ये सर्वत्र जाते हैं। इसीलिए सब इनकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

अश्विनौ अन्तरिक्ष मार्गसे सबका निरीक्षण करते चलते हैं। इनके रथके घोडे बडे ही वेगवान् और रास्तेको शीघ्रतासे काटते हुए चलते हैं। ये सभी लोकोंपर शासन करते चलते हैं ॥ ४ ॥

१५१९ शचींभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत् कदा चना-स्मद् रातिः कदा चन ॥ ५ ॥

१५२० वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिद-स्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

१५२१ ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः ।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५१९] (शचीवसू) पुरुषार्थसे धन प्राप्त करनेवाले अश्विदेवो ! (शचीभिः) हमारे कर्मोंसे प्रसन्न होकर तुम (नः दिवा नक्तं दशस्यतं) हमें रातदिन धन दो । (वां रातिः) तुम्हारा यह दान (कदाचन मा उपदसत्) कभी भी क्षीण न हो, (अस्मत् रातिः कदाचन मा) हमारे दान भी कभी कम न हों ॥ ५ ॥

[१५२०] हे (वृषन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (इमे) ये (अद्रि-सुतासः) पत्थरसे कूटे हुए (वृष-पाणासः) बलके लिये पीने योग्य (उत् भिदः) ऊपर उठे हुए (इन्दवः) सोम (सुताः) निचोडे गये हैं । ये (उत्-भिदः) ऊपर उठे हुए सोम (तुभ्यं) तेरे लिये (सुतासः) तैय्यार किए गये हैं । (ते) वे (महे) बडे (चित्राय) विचित्र (राधसे) धनके (दावने) देनेके लिये (त्वा) तुझ (मन्दन्तु) आनन्दित करें । हे (गिर्वाहः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (गीः-भिः) वाणीसे (स्तवमानः) स्तुति प्राप्त करता हुआ तू (आ गहि) आ । (सु-मृळीकः) सुप्रसन्न होता हुआ तू (नः) हमारे पास (आ गहि) आ ॥ ६ ॥

[१५२१] हे (अग्ने) अग्रणी देव ! (न ईळितः त्वं ओ सु शृणुहि) हमसे प्रशंसित हुआ हुआ तू हमारी प्रार्थना सुन और (यज्ञियेभ्यः यज्ञियेभ्यः राजभ्यः देवेभ्यः) अत्यन्त पूज्य प्रकाशमान देवोंसे (ब्रवसि) तू कह, (यत् ह देवाः) कि हे देवो ! (त्यां धेनुं अंगिरोभ्यः अदत्तन) तुमने जो गाय अंगिराओंको दी थी (तां अर्यमा) उस गायको अर्यमाने (सचा कर्तरि वि दुह्रे) संघटनाके कार्यके समय दुहा । (तां एषः मे सचा वेद) उस गायको अर्यमा और मैं दोनों जानते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये अश्विनौ अपने पुरुषार्थसे ही धन प्राप्त करते हैं। तथा पुरुषार्थीको ही धन देते भी हैं। अतः जो इनकी तरह पुरुषार्थ करेगा, वही इनसे धन प्राप्त कर सकेगा, आलसी कभी नहीं। इनके दान कभी कम नहीं होते, इसी प्रकार मनुष्य-के दान भी कभी क्षीण न हों। देवोंसे धन पाकर मनुष्य संचित न करे अपितु दूसरोंको दान देकर उनकी उन्नति करे ॥ ५ ॥

सोम विशेषतः इन्द्रके पीनेके निमित्त बनाये जाते हैं। इनसे इन्द्रको आनन्द मिलता है। ये सोमरस उत्साहदायक होते हैं; इसलिए इसका पान करनेवाले सदा उन्नति करते हैं ॥ ६ ॥

प्रथम इस शरीरमें अग्निने गायों अर्थात् इन्द्रियोंको दुहा अर्थात् उनमें शक्ति स्थापित की, फिर उन गायोंके रस अर्थात् इन्द्रियशक्तिको (अर्यमा) श्रेष्ठ आत्माने दुहा, इस बातको अर्यमा और ज्ञानी दोनों जानते हैं ॥ ७ ॥

१५२२ मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषु--रस्मत् पुरोत जारिषुः।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥
१५२३ दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदु--स्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः ।
तेषां देवेष्वायति--रस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरे--न्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥
१५२४ होता यक्षद् वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥

अर्थ-- [१५२२] हे (मरुतः) मरुत् वीरो! (वः तानि) वे तुम्हारे (सना) प्राचीनकालसे पराक्रम करनेवाले (पौंस्या) सामर्थ्य (अस्मत्) हमसे (मा सु अभिभुवन्) कभी भी दूर न हों। (उत) उसी तरह हमारे (द्युम्नानि) यश (मा जारिषुः) कभी क्षीण न हों। (उत) और (अस्मत् पुरा-जारिषुः) हमारे नगर नष्ट न हों। (वः यत्) तुम्हारा जो (चित्रं नव्यं अमर्त्यं) आश्चर्यकारक, प्रशंसनीय और अमर ऐसे (घोषात् तत्) गोशालासे लेकर मनुष्यतक जो धन हैं, वे सब (युगे युगे) प्रत्येक युगमें (अस्मासु) हमारे अन्दर स्थिर हों। (यत् च दुस्तरं, यत् च दुस्तरं) जो धन कठिनतासे मिलने योग्य और अजिक्य है वे भी तुम हमें (दिधृत) दो ॥ ८ ॥

[१५२३] (दध्यङ्) दध्यङ् (पूर्वः अंगिराः) सनातनकालसे अंगरसकी विद्या जाननेवाले (प्रियमेधः) मेधा जिनको प्रिय है, ऐसे (कण्वः) ज्ञानी (अत्रिः) तीनों दुःखोंसे रहित (मनुः) मननशील ऐसे ज्ञानी (मे जनुषं विदुः) मेरे जन्मको जानते हैं, (ते मनुः) वे मननशील ज्ञानी (मे पूर्वे विदुः) मेरे पूर्वजोंको जानते हैं। (तेषां देवेषु आयति) उन ज्ञानियोंका देवोंके साथ सम्बन्ध रहता है। (तेषु अस्माकं नाभयः) उन देवोंमें हमारी शक्ति है। (तेषां पदेन) उन देवोंके कदमोंपर चलकर मैं (गिरा) वाणीसे (महि आ नमे) उनको नमस्कार करता हूँ (गिरा इन्द्राग्नी आ नमे) वाणीसे मैं इन्द्र और अग्निकी स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

१ प्रियमेधः-- मेधा जिसको प्रिय है "प्रिया अस्य मेधा" (निरु. ३।१७)

२ अत्रिः-- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखोंसे रहित "अत्रिः न त्रयः" (निरु. ३।१७)

[१५२४] (होता यक्षत्) यज्ञ करनेवाला यज्ञ करे, तथा (वनिनः वार्यं वन्त) अभिलाषी जन अपनी अभिलाषाओंको प्राप्त करें। (वेनः बृहस्पतिः) हितकी कामना करता हुआ वाणीका स्वामी ज्ञानी (उक्षभिः पुरुवारेभिः उक्षभिः यजति) बलयुक्त और अनेकोंके द्वारा चाहने योग्य सोमके द्वारा यज्ञ करता है। हम (दूर आदिशं) दूरकी दिशासे आती हुई (अद्रेः श्लोकं) सोम कूटनेके पत्थरकी आवाज (त्मना जगृभ्म) स्वयं सुनते हैं। (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला यह यज्ञीय मनुष्य (अररिन्दानि अधारयत्) जलोंको धारण करता है। (सुक्रतुः सद्मानि) श्रद्धायुक्त मनसे यज्ञ करनेवाला मनुष्य अनेक घरोंको धारण करता है ॥ १० ॥

भावार्थ-- वीर सदा पराक्रम करें। उसी तरह पराक्रम करनेका सामर्थ्य हमें मिले। उसके कारण हमारे यश बढें। हमारे नगर समृद्ध हों। वीरोंका सामर्थ्य हमेशा प्रकट हो। हमें ऐसे धन प्राप्त हों कि जिन्हें शत्रु भी कभी जीत न सकें ॥ ८ ॥

तीनों तरहके दुःखोंसे रहित अत्यन्त मननशील ज्ञानी मनुष्योंके सभी जन्मोंको जानते हैं वे देवोंके अत्यन्त निकट रहते हैं और साधारण मनुष्य देवोंसे ही अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं, इसलिए देव ही उनके केन्द्र होते हैं ॥ ९ ॥

यज्ञ करनेवाला मनुष्य अनेक तरहकी कामनाओंको प्राप्त करता है। वह सदा जल तथा अन्नादिसे भरपूर रहता है और अनेक घरोंको धारण करता है अर्थात् सदा धन और ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है ॥ १० ॥

१५२५ ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ ११ ॥

[१४०]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, १० त्रिष्टुब्वा, १२-१३ त्रिष्टुप् ।)

१५२६ वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

१५२७ अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥ २ ॥

१५२८ कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥

अर्थ—[१५२५ । हे (देवासः) देवो ! (दिवि महिना) द्युलोकमें अपनी शक्तिसे (ये एकादश स्थ) जो तुम ग्यारह हो (पृथिव्यां अधि एकादश स्थ) पृथ्वीमें ग्यारह हो, (अप्सुक्षितः एकादश स्थ) अन्तरिक्षमें ग्यारह हो, (देवासः) हे देवो ! (ते) वे सब तुम (इमं यज्ञं जुषध्वं) इस यज्ञका सेवन करो ॥ ११ ॥

[१४०]

[१५२६] हे अध्वर्यो ! (प्रियधामाय वेदिषदे सुद्युते अग्नये) प्रिय स्थानवाले, उत्तम वेदीपर बैठनेवाले, प्रकाशमान् अग्निके लिए (धासिं इव योनिं प्रभर) अन्नके समान ही स्थानको विशेषरूपसे तैयार कर । और (शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनं) पवित्र रथके समान ज्योतिर्मय, दीप्तिमान् और अंधकारके विनाशक अग्निको (मन्मना) स्तोत्रोंसे (वस्त्रेण इव वासय) किसी वस्त्रसे ढकनेके समान ढक दो ॥ १ ॥

[१५२७] (द्विजन्मा त्रिवृत् अन्नं अभि ऋज्यते) दो काष्ठोंके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि तीन तरहके अन्नोंको प्राप्त करता है । किन्तु (ईं जग्धं संवत्सरे पुनः वावृधे) अग्निके द्वारा भक्षण किया गया अन्न वर्षमें ही फिर बढ जाता है । (वृषा आसा जिह्वया अन्यस्य जेन्यः) बलवान् अग्नि (जाठराग्नि) मुख और जिह्वाकी सहायतासे अन्नके द्वारा बढता है, तथा (अन्येन वारणः वनिनः निमृष्टः) दूसरे प्रकारके रूपसे (दावाग्नि) सबको दूर करके वन वृक्षोंको जला देता है ॥ २ ॥

१ त्रिवृत् अन्नं— आज्य, पुरोडाश और सोम (सायण) सत्व, रज और तम ।

[१५२८] (अस्य कृष्णप्रुतौ सक्षितौ) इस अग्निकी काली और एक साथ रहनेवाली (उभा मातरौ) दोनों अरणीरूप मातायें (वेविजे) मन्थनसे कम्पित होती हैं । इसके पश्चात् वे (प्राचाजिह्वं, ध्वसयन्तं तृषुच्युतं) उत्तम गतिशील ज्वालाओंरूपी जिह्वावाले, अन्धकारके नाशक, शीघ्र उत्पन्न होनेवाले, (साच्यं, कुपयं पितुः वर्धनं) सहवास करने योग्य, बहुत प्रयत्नसे रक्षा करने योग्य, पालन करनेवालोंके लिए समृद्धि देनेवाले (शिशुं अभितरेते) शिशु अग्निको उत्पन्न करती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों लोकोंमें ग्यारह-ग्यारह देव रहते हैं, इसप्रकार इन तीनों लोकोंमें कुल तैंतीस देव रहते हैं । ये सब देव अपनी शक्तिसे ही इन स्थानोंमें रहते हैं अर्थात् उनके रहनेके लिए उन्हें किसी दूसरेके शक्तिकी आवश्यकता नहीं रहती । इसी तरह मनुष्यको चाहिए कि वह अपने ही सामर्थ्यसे स्थिर रहे । दूसरेकी शक्तिके आधारपर प्राप्त की गई स्थिरता ज्यादा समय तक टिकती नहीं ॥ ११ ॥

हर मनुष्यको चाहिए कि वह अन्धकारके विनाशक, तेजस्वी अग्निकी स्तुतियोंसे उपासना करे ॥ १ ॥

अग्निके द्वारा खाया जानेवाला अन्न हर वर्ष फिर बढ जाता है । उसी अन्नको यह अग्नि जाठराग्निके रूपमें खाता है और दावाग्नि रूपमें जंगलोंका नाश करता है ॥ २ ॥

अरणियोंके मन्थनसे अग्नि प्रकट होती है, फिर वह अन्धकारको दूर करती है और अपने पालन करनेवाले याजकोंको बढाती है ॥ ३ ॥

१५२९ मुमुक्ष्वो३ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥
१५३० आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत् सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन् त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥
१५३१ भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥
१५३२ स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद् वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५२९] (मुमुक्ष्वः रघुद्रुवः कृष्णसीतासः) मोक्ष प्रदान करनेवालीं, तीव्र गतिवालीं, काले मार्गसे जानेवालीं (जुवः असमनाः अजिरासः रघुस्यदः वातजूताः) वेगवालीं, विभिन्न वर्णवालीं, जल्दी जानेवालीं, वायुसे प्रेरित होनेवालीं और (आशवः मनवे मानवस्यते उप युज्यन्ते) सर्वत्र व्याप्त होनेवालीं अग्निकी ज्वालाएं मनस्वी मनुष्यके लिए यज्ञमें उपयोगी होती हैं ॥ ४ ॥

[१५३०] (यत् स्तनयन् अभिश्वसन् नानदत्) जिस समय अग्नि गर्जन करता हुआ श्वास लेता हुआ गंभीर शब्दसे आकाशको गुंजाता हुआ और (महीं अवनिं सीं प्र अभि मर्मृशत् एति) विस्तीर्ण पृथ्वीको सब ओरसे स्पर्श करता हुआ जाता है (आत् अस्य ते ध्वसयन्तः कृष्णं अभ्वं) उसके अनन्तर ही उसकी वे ज्वालायें अंधकारका विनाश करके अन्धकारपूर्ण जानेके मार्गको (महि वर्पः करिक्रतः वृथा ईरते) बडे प्रकाशसे प्रकाशित करके बिना परिश्रमके ही सब ओर फैल जाती हैं ॥ ५ ॥

[१५३१] (यः बभ्रूषु भूषन् न अधि नम्नते) जो अग्नि पीले वर्णवाले औषधियोंमें मानों उनको भूषित करते हुए प्रवेश करता है, और (वृषा इव रोरुवत् पत्नीः अभि एति) गायकी ओर भागनेवाले बैलके समान शब्द करता हुआ औषधि-वनस्पतियोंकी ओर भागता है। और (ओजायमानः तन्वः च शुम्भते) अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीरको चमकाता है, तथा (दुर्गृभिः भीमः न शृङ्गा दविधाव) दुर्धर्ष रूप धारण करके भयंकर पशुकी तरह सींग अर्थात् ज्वालाओंको घुमाता है ॥ ६ ॥

[१५३२] (स संस्तिरः विस्तिरः सं गृभायति) वह अग्नि कभी छिपकर कभी विस्तीर्ण होकर औषधियोंको व्याप्त करता है। (जानन् एव नित्यः जानतीः आशये पुनः वर्धन्ते) ज्ञानवान् अग्नि अविच्छिन्न होकर ज्वालाओंका आश्रय लेता है तब ज्वालाएं बढती हैं और (देव्यं अपि यन्ति) द्युलोककी तरफ बढती हैं। उसके पश्चात् (सचा पित्रोः अन्यत् वर्पः कृण्वते) वे ज्वालाएं अपने पितारूप अग्निके साथ पृथ्वी और आकाशमें दूसरा रूप धारण करती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— अग्निकी ज्वालाएं मुक्ति प्रदान करनेवालीं, तीव्र गतिवालीं, सबको अपने कामोंमें प्रेरणा देनेवालीं और सर्वत्र व्याप्त होनेवाली हैं इनके कारण ही यज्ञका कार्य होता है ॥ ४ ॥

जब यज्ञीय अग्नि प्रज्वलित की जाती है तब सारा अन्धकार छंट जाता है और चारों ओर इसका प्रकाश फैल जाता है ॥ ५ ॥

प्रथम यह अग्नि औषधियोंमें प्रविष्ट होता है, फिर वहां प्रकट होकर अपने पालन करनेवाली (पत्नी) ओषधियों-वृक्षादियोंको ही खाने लगता है, तब उसकी चमकनेवाली ज्वालाएं चारों ओर फैलती हैं ॥ ६ ॥

यह अग्नि कभी छिपकर कभी प्रकट रूपसे वनस्पतियोंमें व्याप्त रहता है। प्रकट रूपमें इसकी ज्वालाएं ऊंची होकर द्युलोककी तरफ चलती हैं, तब यह अग्नि द्युलोक और पृथ्वी लोकमें सूर्य, बिजली, अग्नि, दावाग्नि आदि विविध रूप धारण करता है ॥ ७ ॥

१५३३ तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानद—दसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
१५३४ अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत् पद्वते रेरिहत् सदा—ऽनु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
१५३५ अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदि—ह्यध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदे—र्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥
१५३६ इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत् ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [१५३३] (केशिनीः अग्रुवः तं सं रेभिरे) लम्बी ज्वालायें उस अग्निका सब ओरसे आलिङ्गन करती हैं। वे ज्वालाएं (हि मम्रुषीः आयवे पुनः ऊर्ध्वाः प्रतस्थुः) निश्चयसे मृतप्राय: होती हुई भी अग्निके लिए फिर ऊपरकी ओर मुख करके उठ जाती हैं। अग्नि (तासां जरां प्रमुञ्चन्) उन ज्वालाओंके बुढापेको दूर करता हुआ (परं असुं अस्तृतं जीवं जनयन् नानदत् एति) उत्कृष्ट सामर्थ्य और अखंडनीय जीवनको उत्पन्न करके गर्जन करते हुए जाता है ॥८॥

[१५३४] यह अग्नि (मातुः अधीवासं परि रिहन्) पृथ्वीमाताके ऊपरके वस्त्र स्थानीय तृणगुल्मादिको चारों ओरसे चाटते हुए, (अह तुविग्रेभिः सत्वभिः ज्रयः वियाति) प्रसिद्ध प्रभूत शब्द करनेवाले प्राणियोंके साथ वेगसे जाता है, और (पद्वते वयः दधत्) पैरवाले पशुओंको अन्न देता है। अग्नि (सदा रेरिहत् अनु वर्तनीः) सर्वदा तृणादिको जलाता हुआ क्रमशः जिस मार्गसे जाता है उस मार्गको पीछेसे (श्येनी सचते अह) श्यामवर्णसे युक्त करता जाता है यह प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

[१५३५] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अस्माकं मघवत्सु दीदिहि) हमारे समृद्ध घरमें प्रकाशित हो। (अधः वृषभः दमूनाः श्वसीवान् शिशुमतीः अवास्य) उसके अनन्तर बलवान् शत्रुओंको दबानेवाला श्वास लेता हुआ तू बचपन छोडकर (युत्सु वर्म इव परिजर्भुराणः अदीदेः) संग्रामके कवचकी तरह बार बार हमारे शत्रुओंको दूर करके विशेष दीप्तिसे देदीप्यमान हो उठ ॥ १० ॥

[१५३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (इदं) यह हमारा स्तोत्र (ते दुर्धितात् मन्मनः) तेरे बुरे स्तोत्रकी अपेक्षा तो (अधि सुधितं) उत्तम हो ही हो, पर (प्रियात् उ चित् प्रेयः अस्तु) प्रिय स्तोत्रसे भी प्रिय और उत्तम हो। (यत् ते तन्वः शुचि शुक्रं) जब तेरे शरीरका पवित्र तेज (रोचते) चमकता है (तेन अस्मभ्यं त्वं आ रत्नं वनसे) तब उस तेजसे तू हमें रत्न दे ॥ ११ ॥

१ इदं दुर्धितात् सुधितं प्रियात् उ प्रेयः— यह हमारा स्तोत्र अबतक इस अग्रणीके लिए किए गए बुरे और अच्छे सब स्तोत्रोंकी अपेक्षा उत्तम हो।

भावार्थ— अग्नि सबमें प्राण फूंकनेवाला है। वृद्धमें भी यदि अग्निशक्ति बढ जाए तो उसमें भी उत्कृष्ट सामर्थ्य आ सकता है और उसे अखण्डनीय जीवन प्राप्त हो सकता है ॥ ८ ॥

यह अग्नि सारे वनोंको खाता हुआ वेगसे शब्द करता हुआ जाता है। जहां जहांसे यह जाता है, वहां वहांका स्थान काला पड जाता है ॥ ९ ॥

यह अग्नि जब अपना बचपन अर्थात् छोटा रूप छोडकर यौवनका रूप धारण करता है, तब वह बडे बडे शत्रुओंको भी नष्ट कर देता है ॥ १० ॥

हमारे द्वारा किया गया अग्निका स्तोत्र हर प्रकारके स्तोत्रोंकी अपेक्षा अच्छा हो इस स्तोत्रसे अग्निका तेज बढे और वह हमें रत्न देवे ॥ ११ ॥

१५३७ रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२ ॥
१५३८ अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥

[१४१]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, १२-१३ त्रिष्टुप् ।)

१५३९ बळित्था तद् वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥
१५४० पृक्षो वपुः पितुमान् नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

अर्थ— [१५३७] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः गृहाय, उत रथाय नित्यअरित्रां पद्वतीं नावं रासि) हमारे घरके लिये और रथके लिये सुदृढ डाँड और अच्छे पैरेंवाली नौका प्रदान कर; (उत या अस्माकं वीरान् मघोनः च जनान् पारयात्) जो नौका, हमारे वीरों, धनाढ्यों और अन्य लोगोंको भी पार लगा सके, (च या शर्म) तथा जो हमको उत्तम सुख दे सके ॥ १२ ॥

[१५३८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू हमारे (उक्थं अभि जुगुर्याः) स्तोत्रकी सम्यक् प्रशंसा कर। (द्यावाक्षामा सिन्धवः च स्वगूर्ताः) आकाश, पृथ्वी तथा स्वयं बहनेवाली नदियाँ हमें (गव्यं, यव्यं यन्तः) गौसे उत्पन्न दुग्धादि और अन्नादि पदार्थ प्रदान करें । इसके अलावा (अरुण्यः दीर्घा अहा वरं इषं वरन्त) अरुण वर्णवाली उषायें सर्वदा हमको रमणीय अन्न और बल प्राप्त करानेवाली हों ॥ १३ ॥

[१४१]

[१५३९] (देवस्य दर्शतं तत् भर्गः इत्था वपुषे धायि) अग्निके उस दर्शनीय तेजको लोग शरीरमें धारण करते हैं, (यतः सहसः जनि) क्योंकि वह तेज बलसे उत्पन्न हुआ है (यत् ईं मतिः उपह्वरते साधते) इस प्रसिद्ध लोकोपकारी अग्निके तेजके पास हमारी बुद्धि प्राप्त होती है वह हमारे अभीष्टको सिद्ध करती है। इसीलिये (ऋतस्य धेनाः सस्रुतः अनयन्त) अग्निके पास सब प्राणियोंकी स्तुतियां पहुंचती हैं ॥ १ ॥

१ देवस्य दर्शतं भर्गः वपुषे धायि— दिव्य अग्निका वह दर्शनीय तेज शरीरकी सुदृढताके लिए लोग धारण करते हैं ।

[१५४०] प्रथम प्रकारका अग्नि (नित्यः पृक्षः वपुः पितुमान् आशये) नित्यरूपसे अन्नको पकानेवाला, शरीरको बढानेवाला होकर (पृथ्वीमें) निवास करता है । (द्वितीयं, सप्तशिवासु मातृषु आशये) दूसरा अग्नि सात लोकोंके कल्याणकारी मातृरूपी जलोंमें व्याप्त होता है । (अस्य वृषभस्य तृतीयं दोहसे) इस बलवान् अग्निका तीसरा रूप सब रसोंका दोहन करनेवाले सूर्यमें है । (दशप्रमतिं योषणः जनयन्त) ऐसे दसों दिशाओंमें उत्तम बुद्धिमान् इस अग्निको अंगुलियां घर्षण द्वारा प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

माता— माता, लक्ष्मी, दुर्गा, पृथ्वी, आकाश ।
दोहा— दोहन करनेवाला, सब रसोंका दोहन करनेवाला होनेके कारण सूर्य दोहा है, ' आदत्ते रसान् ' ।

भावार्थ— हे अग्ने ! हमें सब प्रकारसे पार ले जानेवाली तथा सुख देनेवाली अच्छे साधनोंवाली नाव दे ॥ १२ ॥

हमारे स्तोत्र प्रशंसनीय हों तथा आकाश पृथ्वी आदि हमें अन्न प्रदान करें तथा उषायें भी हमें बलसे युक्त करें ॥ १३ ॥

इस अग्निके कारण ही यह शरीर सुदृढ और कार्यक्षम रहता है । यह अग्नि स्वयं बलसे उत्पन्न होता है और लोगोंको बलवान् बनाता है इसलिए सभी प्राणी इसकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

१५४१ निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥
१५४२ प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद् यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ॥ ४ ॥
१५४३ आदिन्मातॄराविशद् यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥
१५४४ आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान् यत् क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥

अर्थ— [१५४१] (ईं यत् महिषस्य बुध्नात्) इस अग्निको जब बलयुक्त अरणिके मूल स्थानसे (वर्पसः ईशानासः सूरयः शवसा निः क्रन्तः) सुन्दर रूपवाले समर्थ विद्वान् बलसे उत्पन्न करते हैं तथा (यत् प्रदिवः मध्वः आधवे) जब पहलेके समान ही सोमको आहुति देनेके लिए (गुहा सन्तं ईं मातरिश्वा अनु मथायति) गुहामें स्थित इस अग्निको मातरिश्वा मथकर प्रकट करता है, तब इसकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

[१५४२] (यत् परमात् पितुः प्र परिनीयते) जब उत्तम पालक होनेके कारण यह अग्नि चारों ओर ले जाया जाता है तब उस समय (पृक्षुधः दंसु वीरुधः आरोहति) अत्यन्त सूखे इस अग्निकी ज्वालारूपी दांतोंपर वृक्षादि चढ जाते हैं, और (यत् उभा अस्य जनुषं इन्वतः) जब दोनों अरणियां इस अग्निकी उत्पत्तिके लिये प्रयत्न करती हैं (आदित् शुचिः घृणा यविष्ठः अभवत्) तब प्रकट होकर पवित्र अग्नि तेजस्वी होकर बलवान् हो जाता है ॥ ४ ॥

[१५४३] (आदित् आ शुचिः मातॄः आ अविशत्) तदनन्तर ही दीप्त होकर यह अग्नि उत्पन्न करनेवाली दसों दिशाओंमें सर्वत्र व्याप्त हो गया । तथा (यासु अहिंस्यमानः उर्विया वि वावृधे) उन दिशाओंमें हिंसा रहित होकर अत्यधिक वृद्धिको प्राप्त हुआ (यत् सनाजुवः अनुपूर्वा अरुहत्) जो वनस्पतियाँ चिरकालसे दृढ थीं उन सबोंके ऊपर अग्नि चढ गया । और अब (नव्यसीषु अवरासु नि धावते) नई नई उत्पन्न हुई बलहीन वनस्पतियोंकी ओर दौड रहा है ॥ ५ ॥

[१५४४] (आदित्) अनन्तर, (पपृचानासः) हवन करनेवाले सारे मनुष्य (दिविष्टिषु होतारं वृणते) यज्ञोंमें होम सम्पादक अग्निको वरण करते हैं, और (भगं इव ऋञ्जते) ऐश्वर्यसम्पन्न राजाकी तरह उसे प्रसन्न करते हैं, (यत् पुरुष्टुतः क्रत्वा मज्मना) इस कारणसे बहुतोंसे प्रशंसित हुआ हुआ यह अग्नि सामर्थ्य और शारीरिक बलसे युक्त है । वह (देवान् शंसं, मर्तं धायसे वेति) देवोंको स्तुति करनेवाले मनुष्यके पास हविके लिए ले जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— अग्निके तीन रूप हैं, पहला भौतिक अग्नि अन्नको पकाता और प्राणियोंके शरीरोंको धारण करता है । दूसरा अग्नि मेघोंमें बिजलीके रूपसे विद्यमान् है । तीसरा अग्नि सब रसोंका दोहन करनेवाले सूर्यके रूपमें है । ऐसे इस अग्निको दश अंगुलियां मथकर प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

प्रथम यह अग्नि अरणियोंमें अप्रकट रूपसे रहता है, तब इसकी प्रशंसा नहीं होती । पर जब विद्वान् सोमयागके लिए इसको मथकर प्रकट करते हैं, तब सब इसकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

यह अग्नि सबका पालन करनेवाला होनेके कारण सब इसे प्रज्वलित करते व इसकी उपासना करते हैं । यह प्रकट होकर तेजस्वी और बलवान् होता है ॥ ४ ॥

यह अग्नि प्रदीप्त होकर चारों ओर फैलता है और बढता है । यह वनमें प्रदीप्त होकर पुराने और नये वृक्षोंको खा जाता है ॥ ५ ॥

यज्ञ करनेवाले सभी मनुष्य इस अग्निका वरण करते और उसे प्रसन्न करते हैं । ऐसे मनुष्योंके यज्ञोंमें यह अग्नि हवि भक्षणके लिए देवोंको बुलाकर लाता है ॥ ६ ॥

१५४५ वि यदस्थाद् यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन् दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥
१५४६ रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥
१५४७ त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत् सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुरराञ्च नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥
१५४८ त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन् वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥ १० ॥

अर्थ— [१५४५] (अनाकृतः वक्वा जरणा ह्वारः न) न रोके जाने योग्य, बहुत बोलनेवाला, स्तुति आदि मन्त्रोंसयुक्त वचनोंसे जिस प्रकार विदूषक सब स्थानको हँसीसे व्याप्त कर देता है उसी प्रकार (वातचोदितः यजतः वि यद्, अस्थात्) वायु द्वारा परिचालित यजनीय अग्नि जब चारों ओर व्याप्त हो जाता है तब (दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनः व्यध्वनः) सबको जलानेवाले, जानेके पश्चात् अपने मार्गको काला करनेवाले, पवित्र जन्मवाले तथा अनेक मार्गोंसे जानेवाले (तस्य पत्मन् रजः आ) उस अग्निके मार्गपर सारे लोक चलते हैं ॥ ७ ॥

[१५४६] (शिक्वभिः कृतः यातः रथः न) निपुणकारीगरोंके द्वारा बनाए गए और चलाए गए रथकी तरह यह अग्नि (अरुषेभिः अङ्गेभिः द्यां ईयते) गमनशील ज्वालाओंसे द्युलोककी ओर जाता है। (आत् अस्य ते सूरयः कृष्णासः दक्षि) गमन करनेके अनन्तर इसका वह गमन मार्ग काले वर्णवाला हो जाता है क्योंकि यह काष्ठोंको जलाता है। और (शूरस्य इव त्वेषथात् वयः ईषते) वीरकी तरह इसके देदीप्यमान तेजसे पक्षी आदि भाग जाते हैं ॥ ८ ॥

[१५४७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वया हि वरुणः धृतव्रतः) तेरे कारण ही वरुण अपना व्रत धारण करता, (मित्रः शाशद्रे, अर्यमा सुदानवः) मित्र अन्धकार दूर करता और अर्यमा दानशील होता है। (यत् सीं क्रतुना विश्वथा विभुः परिभूः अनु अजायथाः) इस कारणसे हे अग्नि ! तू सर्वत्र कर्म द्वारा, विश्वात्मक, सर्वव्यापी और सबका पराभवकारी होकर उत्पन्न होता है। तथा (अरान् नेमिः न) जैसे रथका पहिया अरोंको व्याप्त करके रहता है उसी प्रकार तू भी सबको व्याप्त करके रहता है ॥ ९ ॥

१ त्वया वरुणः धृतव्रतः, मित्रः शाशद्रे, अर्यमा सुदानवः— हे अग्ने ! तेरे कारण वरणीय देव व्रतोंको धारण करता, सूर्य अन्धकार हटाता है और श्रेष्ठ पुरुष उत्तम प्रकारसे दान देता है।

[१५४८] हे (यविष्ठ अग्ने) अत्यन्त युवा अग्ने ! (त्वं शशमानाय सुन्वते रत्नं देवतातिं इन्वसि) तू स्तुति करनेवाले और सोम निष्पन्न करनेवाले यजमानके लिये वैभव योग्य श्रेष्ठ धन देता है। हे (सहसः युवन् महिरत्न) बलके पुत्र तरुण और रमणीय धन अग्ने ! (नव्यं तं त्वा वयं) सदा स्तुतिके योग्य तेरी हम सब (भगं न कारे नु धीमहि) राजाकी तरह स्तुति कालमें स्तोत्रोंसे उपासना करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— जब अग्नि वायुकी सहायतासे चारों ओर फैलता है, तब सारे लोक इसका अनुसरण करते हैं, इसकी उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

निपुण कारीगरों द्वारा बनाए गए रथकी तरह यह अग्नि ज्वालाओंके साथ द्युलोककी ओर तेजीसे दौड़ता तथा काष्ठोंको जलाकर यह अपना मार्ग काला करता जाता है। इसकी ज्वालाओंको देखकर सारे पक्षी डर कर भाग जाते हैं ॥ ८ ॥

इस अग्निके कारण ही सब देव अपना अपना कार्य करते हैं। यह सर्वत्र व्याप्त है इसलिए सबका नियमन करता है ॥९॥

यह सोमयाग करनेवालेको श्रेष्ठ धन देता है, अतः सब इसकी उपासना करते हैं ॥ १० ॥

१५४९ अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥ ११ ॥
१५५० उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरो ऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२ ॥
१५५१ अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥

[१४२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- (आप्रीसूक्तं)= १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ नराशंसः, ४ इळाः, ५ बर्हिः, ६ देवीः द्वारः, ७ उषासानक्ता ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा-भारत्यः, १० त्वष्टा, ११ वनस्पतिः, १२ स्वाहाकृतयः, १३ इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

१५५२ समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

अर्थ— [१५४९] हे अग्ने ! तू (अस्मे न स्वर्थं दमूनसं रयिं पपृचासि) हमारे लिये जिस प्रकार अत्यन्त प्रयोजनीय और घरके लिए उपयोगी धनको देता है, उसी प्रकार (भगं दक्षं न धर्णसिं) ऐश्वर्यसे सम्पन्न, अत्यन्त उत्साही और सहायकारीको भी प्रदान कर, क्योंकि (यः) जो तू अपने (उभे जन्मनी रश्मीन् इव यमति) जन्म देनेवाले आकाश और पृथ्वी दोनोंको रासोंके समान वशमें रखता है, ऐसा (च सुक्रतुः ऋते देवानां शंसं आ) उत्तम कर्म करनेवाला तू यज्ञमें विद्वानोंकी प्रशंसा प्राप्त कर ॥ ११ ॥

[१५५०] (सुद्योत्मा जीराश्वः होता) तेजस्वी, वेगवान् अश्वसे युक्त, देवोंको बुलानेवाला (मन्द्रः चन्द्ररथः अमूरः वस्यः अग्निः) आनन्दमय सोनेके रथवाला, अप्रतिहत शक्तिवाला और प्रसन्न स्वभाववाला अग्नि (नः उत शृणवत्) हमारी प्रार्थना सुनेगा क्या ? तथा (सः नेषतमैः नः वामं सुवितं अच्छ नेषत्) वह कर्म द्वारा हमको सौभाग्यकी ओर भली प्रकारसे ले जाएगा क्या ? ॥ १२ ॥

[१५५१] (साम्राज्याय प्रतरं दधानः अग्निः) साम्राज्यके लिए उत्तम तेजको धारण करनेवाला अग्नि (शिमी-वद्भिः अर्कैः अस्तावि) प्रभावोत्पादक स्तोत्रोंसे प्रशंसित होता है । (सूरः मिहं न) जिसप्रकार सूर्य मेघोंको गर्जाता है, उसी प्रकार (अमी च वयं च ये मघवानः) ये ऋत्विक्, हम तथा और दूसरे सम्पत्तिमान् हैं, वे सब (अति निष्टतन्युः) जोर जोरसे अग्निकी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

२ साम्राज्याय प्रतरं दधानः अस्तावि— साम्राज्यको उत्तमतासे धारण करनेवाला राजा प्रजाओं द्वारा प्रशंसित होता है ।

[१४२]

[१५५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (समिद्धः) प्रज्वलित होकर तू (अद्य) आज (देवान् आ वह) देवोंको हमारे पास ला और (यतस्रुचे सुतसोमाय दाशुषे) आहुति देनेके लिए स्रुवाको उठाये हुए, सोमको तैयार करनेवाले दानी यजमानके लिए (तन्तुं तनुष्व) अपनी किरणोंको फैला ॥ १ ॥

भावार्थ— वह अग्रणी हमें गृहस्थ जीवनके लिए उपयोगी सम्पत्ति तथा सन्तान आदि देवे । यह अग्नि सभी लोकोंपर अपना अधिकार चलाता है । और उत्तम कर्म करके विद्वानोंकी प्रशंसा प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

अनेकगुणोंसे विभूषित वह अग्नि भला हमारी प्रार्थना सुनेगा ? और हमें सौभाग्यकी ओर ले जाएगा ? ॥ १२ ॥

साम्राज्यको धारण करनेवाला तेजस्वी सबसे प्रशंसित होता है ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! तू प्रज्वलित होकर देवोंको बुलाकर ला और यज्ञ एवं दान करनेवाले मनुष्यके लिए अपनी ज्वालाओंको फैला और उसका हित कर ॥ १ ॥

१५५३ घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥
१५५४ शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥
१५५५ ईळितो अग्न आ वहे—न्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममा—च्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥
१५५६ स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तम—मिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१५५३] हे (तनूनपात्) शरीरको न गिरने देनेवाले अग्ने ! (शशमानस्य दाशुषः) तेरी प्रशंसा करनेवाले तथा दान देनेवाले (मावतः विप्रस्य) मुझ जैसे ज्ञानी मनुष्यके (मधुमन्तं घृतवन्तं यज्ञं) मधुरतासे युक्त तथा तेजस्वी यज्ञके (उप मासि) पास आकर बैठ ॥ २ ॥

[१५५४] (देवेषु यज्ञियः) देवोंमें पूजनीय (शुचिः पावकः) स्वयं पवित्र रहकर दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला (अद्भुतः देवः) अद्भुत और तेजस्वी (नराशंसः) मनुष्योंसे प्रशंसित देव (यज्ञं) यज्ञको (दिवः मध्वा त्रिः आ मिमिक्षति) द्युलोकके मधुर रससे तीनबार सींचता है ॥ ३ ॥

[१५५५] हे (अग्ने) तेजस्वी देव ! (ईळितः) प्रशंसित होकर तू (चित्रं प्रियं इन्द्रं) आश्चर्यकारक कर्म करनेवाले तथा प्रिय इन्द्रको (इह आ वह) यहां हमारे पास ले आ । हे (सुजिह्व) सुन्दर ज्वालाओंवाले अग्ने ! (इयं मम मतिः) यह मेरी बुद्धि (त्वा अच्छ वच्यते) तेरी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

[१५५६] (सु अध्वरे यज्ञे] उत्तम और हिंसारहित यज्ञमें (बर्हिः स्तृणानासः यतस्रुचः) आसनोंको फैलानेवाले तथा आहुति देनेके लिए स्रुवाको उठाये हुए मनुष्य (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (देवव्यचस्तमं सप्रथः शर्म) देवोंके लिए योग्य और सुविस्तृत स्थानको (वृञ्जे) तैय्यार करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि या गर्मी जबतक शरीरमें रहती है, तबतक यह शरीर स्वस्थ रहता है। इसीलिए अग्निको तनूनपात् कहा गया है । जबतक इस शरीरमें मानवजीवनरूप यज्ञ चलता रहता है, तबतक अग्नि इस शरीरमें बैठा रहता है ॥ २ ॥

यह नरोंसे प्रशंसित देव पूज्य पवित्र तथा दूसरोंको पवित्र करनेवाला अद्भुत और तेजस्वी है । यह देव द्युलोकमें रहकर वर्षाजलरूपी मधुर रसको उत्पन्न करता है और उससे पृथ्वीको सींचता है । मनुष्योंको दिनमें तीनबार यज्ञ करनेका विधान है अर्थात् दिनमें तीनबार मनुष्य घृत और मधुर रसोंसे यज्ञको सींचे ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तू आश्चर्यकारक कर्म करनेवाले और सबका हित करनेवाले इन्द्रको हमारे पास ला । ताकि मैं अपनी श्रद्धा एवं भक्तिसे युक्त होकर तुम्हारी स्तुति कर सकूं ॥ ४ ॥

यज्ञ उत्तम और हिंसारहित हो । देवपूजा संगठन और दान इत्यादिके जो भी काम किए जाएं, वे किसीपर अत्याचार करके न किए जाएं । समझा बुझाकर प्रजाओंको संगठित किया जाए । इसी तरह किसीसे मारपीटकर जबर्दस्ती दान न करवाया जाए । इसी प्रकार देवपूजा भी हिंसारहित हो । इन सभी उत्तम कामोंमें राजा या राष्ट्रके अधिपतिको उत्तम स्थान प्रदान किया जाए ॥ ५ ॥

१५५७ वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥

१५५८ आ मन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥

१५५९ मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥

१५६० शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥

अर्थ—[१५५७] (ऋतावृधः) यज्ञको बढानेवाली (महीः) महिमासे युक्त (पावकासः पुरुस्पृहः) पवित्र करनेवाले, इसी कारण बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य तथा (असश्चतः) अलग अलग रहनेवाले (देवीः द्वारः) दिव्य द्वार (देवेभ्यः प्रयै) देवत्वको प्राप्त करानेके लिए (वि श्रयन्तां) यहां रहें ॥ ६ ॥

[१५५८] (मन्दमाने) स्तुतिको प्राप्त होकर (सुपेशसा) उत्तम रूपवाली, (यह्वी) महान् (ऋतस्य मातरा) यज्ञको सिद्ध करनेवाली (उपाके , आपसमें मिलकर रहनेवाली (नक्तोषासा) रात्रि और उषा (सुमत्) हमारे विषयमें उत्तम विचारोंको धारण कर (बर्हिः आ सीदतां) हमारे यज्ञमें आकर बैठें ॥ ७ ॥

[१५५९] (मन्द्रजिव्हा) सुन्दरवाणीवाले (जुगुर्वणी) उच्चस्वरसे स्तुति करनेवाले (कवी) ज्ञानी (दैव्या होतारा) दिव्य होता (अद्य) आज (नः इमं सिध्रं दिविस्पृशं यज्ञं) हमारे इस सिद्धि प्रदान करनेवाले द्युलोकको छूनेवाले यज्ञमें आकर (यक्षतां) पूजा करें ॥ ८ ॥

[१५६०] (शुचिः) पवित्र (देवेषु मरुत्सु अर्पिता) देवोंमें और मरुतोंमें पूज्य (होत्रा) होत्रा (भारती) भारती तथा (मही यज्ञियाः सरस्वती इळा) महान् और पूज्य सरस्वती और इळा (बर्हिः सीदन्तु) यज्ञमें विराजें ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह शरीर एक यज्ञशाला है, जिसमें जीवनका एक यज्ञ चल रहा है । इस यज्ञशालामें आंख, नाक, कान, मुंह, गुदद्वार और जननेन्द्रिय द्वार ये नौ द्वार हैं, जो अलग अलग कार्य करते रहते हैं । इन द्वारोंमेंसे शरीरका मल बाहर निकलता है, अतः ये शरीरको पवित्र करते हैं । ये सभी द्वार शक्तिशाली हों, यह सभी मनुष्य चाहते हैं । इन सभी द्वारोंको जो अपने नियंत्रणमें रखता है, वह देव बनता है । अच्छी तरह नियंत्रित हुई ये इन्द्रियां मनुष्यको देवत्व प्राप्त कराती हैं ॥ ६ ॥

उषा और रात्रि दोनों सुन्दर रूपवाले हैं, जिस समय उषा और रात्रि दोनों मिलती हैं, वह काल नक्तोषस् काल है । ऐसे समय यज्ञ शुरु होते हैं । इसीलिए नक्तोषस्को यज्ञ की माता कहा है । ये हमेशा साथमें मिलकर रहती हैं । इसी तरह स्त्रियां भी आपसमें मिलकर रहें ॥ ७ ॥

यज्ञ करनेवाले होता उत्तम वाणीवाले हों, सदा मीठी वाणी बोलें तथा स्तोत्र बोलनेमें प्रवीण हों और यज्ञ कर्मोंका अच्छा ज्ञान हो । ऐसे होताओं द्वारा किया जानेवाला यज्ञ सिद्धिको देनेवाला होता है ॥ ८ ॥

मातृभाषा, मातृसंस्कृति और मातृभूमि ये तीनों मनुष्योंमें सदा जागृत रहें । देवों और मरुतोंमें इनके प्रति अभिमान रहे ॥ ९ ॥

१५६१ तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय विष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥
१५६२ अवसृजन्नुप त्मना देवान् यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
१५६३ पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥
१५६४ स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥

[१४३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती, ८ त्रिष्टुप् ।)

१५६५ प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥

अर्थ— [१५६१] (त्वष्टा) त्वष्टा देव (अस्मयुः) हमें चाहते हुए (नः पोषाय राये) हमारी पुष्टि और धनके लिए (तत् तुरीपं) उस शीघ्रतासे बहनेवाले (पुरुवारं) बहुतोंसे चाहने योग्य (अद्भुतं) अद्भुत जलको (नाभा) अन्तरिक्षसे (त्मना) स्वयं (विस्यतु) बरसावे ॥ १० ॥

[१५६२] हे (वनस्पते) वनके स्वामिन् ! तू (त्मना अवसृजन्) स्वयं कर्मोंमें प्रेरित होकर (देवान् यक्षि) देवोंका यजन कर । (मेधिरः देवः अग्निः) बुद्धिमान् देव अग्नि (देवेषु हव्या सुषूदति) देवोंमें हवियोंको प्रेरित करता है ॥ ११ ॥

[१५६३] (पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय) पूषा और मरुतोंसे युक्त सभी देवोंके लिए (वायवे) वायुके लिए (गायत्रवेपसे इन्द्राय) स्तुति करनेवालेके रक्षकके रूपमें प्रसिद्ध इन्द्रके लिए (हव्यं) प्रशंसनीय (स्वाहा कर्तन) आत्मसमर्पण करो ॥ १२ ॥

[१५६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्वाहाकृतानि हव्यानि वीतये) आत्मसमर्पणपूर्वक दी गई हवियोंको खानेके लिए तू (उप आ गहि) पास आ । (अध्वरे त्वां हवन्ते) यज्ञमें मनुष्य तुझे बुला रहे हैं, (हवं श्रुधी) उनकी प्रार्थना सुन और (आ गहि) आ ॥ १३ ॥

[१४३]

[१५६५] (सहसः सूनवे) जो बलका पुत्र (अपां नपात् प्रियः) जलका रक्षक, सबका प्यारा (होता ऋत्वियः यः वसुभिः सह) होमका सम्पादक ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाला जो अग्नि धनोंके साथ (पृथिव्यां न्यसीदत्) पृथ्वीके ऊपर यज्ञ वेदी पर बैठता है; (अग्नये तव्यसीं नव्यसीं धीतिं वाचः मतिं प्रभरे) उस अग्निके लिये मैं अतिशय बढानेवाली नवीनतम और धारण करनेयोग्य स्तुतियोंको बुद्धिपूर्वक कहता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— यह त्वष्टा सबका निर्माण करनेवाला देव है। इसीलिए यह अन्तरिक्षसे जल बरसाकर सबको पुष्टि और ऐश्वर्यप्रदान करता है ॥ १० ॥

वृक्षोंकी समिधासे जब यज्ञाग्नि प्रज्वलित होती है, तब उसमें हवियां डाली जाती हैं, और तब अग्निमें वे हवियां भस्मीभूत होकर देवोंके पास पहुंचती हैं ॥ ११ ॥

जो गायत्रीका गान करता है और देवताओंकी स्तुति करता है, उस उपासककी इन्द्र रक्षा करता है। उपासकको चाहिए कि वह इन्द्र और अन्य देवोंके लिए आत्मसमर्पण करे, अर्थात् अपना सब कुछ देवोंको समर्पित कर दे ॥ १२ ॥

श्रद्धा भक्तिसे अपने इष्ट देवके चरणोंमें सभी कुछ समर्पित कर देना उपासकका कर्तव्य है। आत्मसमर्पण भावसे जो भगवान्‌को पुकारता है, भगवान् उसकी सुनते हैं और उसकी सहायता करते हैं ॥ १३ ॥

१५६६ स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥
१५६७ अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३ ॥
१५६८ यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
१५६९ न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून् त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥

अर्थ— [१५६६] (सः शोचिः अग्निः) वह तेजस्वी अग्नि (परमे व्योमनि जायमानः) उत्कृष्ट आकाशमें उत्पन्न होकर (मातरिश्वने आविः अभवत्) मातरिश्वा वायुके लिये सबसे प्रथम प्रकट हुआ । अनन्तर (समिधानस्य अस्य मज्मना क्रत्वा) अच्छीतरह प्रज्ज्वलित हुए इस अग्निके बल और सामर्थ्यसे (द्यावा पृथिवी प्र अरोचयत्) द्युलोक तथा पृथ्वीलोक प्रकाशित हुए ॥ २ ॥

[१५६७] (अस्य त्वेषाः अजराः) इस अग्निका दीप्त तेज बुढापेसे रहित है । (सुप्रतीकस्य अस्य भानवः सुसंदृशः सुद्युतः) शोभन मुखवाले इसकी किरणें सब ओर व्याप्त और प्रकाशमान हैं । (अग्नेः भात्वक्षसः अक्तुः अति सिन्धवः) अग्निकी देदीप्यमान् बलवाली तथा रात्रीके अन्धकारको नष्ट करनेवाली (अससन्तः अजराः न रेजन्ते) सदा जाग्रत और जरारहित किरणें कम्पित नहीं होती हैं ॥ ३ ॥

१ सु प्रतीकस्य भानवः अजराः— शुभ मुखवाले मनुष्यका तेज चारों ओर फैलता है ।

[१५६८] (यः वरुणः न वस्वः एकः राजति) जो अग्नि वरुणके समान सब धनोंका एकमात्र स्वामी है तथा (भृगवः आ भुवनस्य) भृगुओंने सब संसारके उत्पन्न प्राणियोंके लिए (मज्मना पृथिव्याः विश्ववेदसं यं ईरिरे) बलसे पृथ्वीके ऊपर धनशाली जिस अग्निको स्थापित किया, तू भी (तं अग्निं स्वे दमे गीर्भिः आ हिनुहि) उस अग्निको अपने घरमें ले आकर स्तुतियों द्वारा अच्छी प्रकारसे प्रज्ज्वलित कर ॥ ४ ॥

१ यः वरुणः न वस्वः एकः राजति— यह अग्नि वरुणके समान धनोंका एकमात्र स्वामी है ।

[१५६९] (यः अग्नि) जो अग्नि (मरुतां स्वनः इव) मरुतोंकी गर्जनाके समान, (सृष्टा सेना इव) आक्रमण करनेवाली प्रबल सेनाकी तरह तथा (दिव्या अशनिः यथा) आकाशके वज्रके समान किसीसे भी (न वराय) हटाया नहीं जा सकता है । वह (योधः न तिगितैः जम्भैः शत्रून् अत्ति) शूरवीरोंकी तरह तीखे दांतोंसे अर्थात् अपनी तीव्र ज्वालाओंसे शत्रुओंका भक्षण कर जाता है, (भर्वति, वना नि ऋञ्जते) उनका विनाश कर देता है तथा वनोंको निःशेष रूपसे जला देता है ॥ ५ ॥

१ मरुतां स्वनः इव सृष्टा सेना इव दिव्या अशनिः इव न वारय— मरुतोंके गर्जनके समान, आक्रमण करनेवाली सेनाके समान तथा आकाशके वज्रके समान बलशाली इस अग्निको कोई हटा नहीं सकता ।

भावार्थ— वह अग्नि बलका पुत्र, जलोंको धारण करनेवाला, सबको प्रिय तथा ऋतुओंके अनुसार यज्ञ करनेवाला है ऐसे अग्निकी हम बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

वह अग्नि सर्व प्रथम प्रकट होकर वायुके साथ संयुक्त हुआ । उससे अग्नि और अधिक प्रदीप्त हुआ और उसका प्रकाश चारों ओर फैल गया ॥ २ ॥

इस अग्निका बल कभी क्षीण नहीं होता । इसकी किरणें अन्धकारका नाश करके हमेशा जाग्रत रहती हैं ॥ ३ ॥

सब प्रकारके धनोंके एक मात्र स्वामी इस अग्निको भृगुवंशियोंने इस पृथ्वीपर स्थापित किया ॥ ४ ॥

यह अग्नि बहुत बलवान् है अतः इसके साथ कोई मुकाबला नहीं कर सकता । क्योंकि यह अपने शत्रुओंको अपनी ज्वालाओंसे उसी प्रकार नष्ट कर देता है, जिस प्रकार वनोंको ॥ ५ ॥

१५७० कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद् वसुष्कुविद् वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित् तुतुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
१५७१ घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षद- मग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्य- च्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥
१५७२ अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे ऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥

[१४४]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती ।)

१५७३ एति प्र होता व्रतमस्य मायायो- र्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १ ॥

अर्थ— [१५७०] (अग्निः नः उचथस्य कुवित् वीः असत्) अग्नि हमारे स्तोत्रकी बारम्बार कामना करनेवाला हो, तथा (वसुः वसुभिः कामं कुवित् आवरत्) सबको वास देनेवाला वह धनके द्वारा हमारी इच्छाको प्रचुर रूपसे पूर्ण करे। (धियः चोदः सातये कुवित् तुतुज्यात्) वह हमारे कर्मोंका प्रेरक होकर लाभके लिये हमें पुनः पुनः प्रेरित करे। मैं (शुचिप्रतीकं तं अया धिया गृणे) शोभन ज्वालावाले उस अग्निकी अपनी इस निर्मल बुद्धिसे स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

[१५७१] (वः ऋतस्य धूर्षदं घृतप्रतीकं अग्निं) तुम्हारे लिए यज्ञके निर्वाहक और घीसे प्रदीप्त अग्निको (मित्रं न समिधानः ऋञ्जते) मित्रकी तरह प्रदीप्त करके विभूषित किया जाता है। वह (इन्धानः अक्रः विदथेषु दीद्यत्) सम्यक् प्रकाशमान, ज्वालाओंसे युक्त, यज्ञोंमें प्रदीप्त होकर (नः शुक्रवर्णां धियं उदु यंसते) हमारी विशुद्ध बुद्धिको प्रबुद्ध करता है ॥ ७ ॥

नः शुक्रवर्णां धियं उत् यंसते— वह अग्नि हमारी निर्मल बुद्धिको प्रेरित करता है।

[१५७२] हे (अग्ने) अग्ने ! (अप्रयुच्छन्, अप्रयुच्छद्भिः शिवेभिः शग्मैः पायुभिः नः पाहि) आलस्य न करते हुए अनवधान रहित, कल्याणरूप एवं सुखकर रक्षाओंके उपायोंसे तू हमारी रक्षा कर। हे (इष्टे) सबके पूज्य देव अग्ने ! तू (अदब्धेभिः अदृपितेभिः अनिमिषद्भिः) हिंसारहित होकर बिना किसी क्लेशके और आलस्य रहित होकर (नः जाः परिपाहि) हमारी सन्तानोंकी सब ओरसे रक्षा कर ॥ ८ ॥

[१४४]

[१५७३] (मायया होता ऊर्ध्वां शुचिपेशसं धियं दधानः) बहुत बुद्धिमान् होता अपनी उच्च और निर्मल बुद्धिको धारण किए हुए (यस्य व्रतं प्र एति) इस अग्निके बताए गए व्रतनियमोंपर चल रहा है। यह होता (दक्षिणावृतः स्रुचः क्रमते) आहुति देनेमें चतुर स्रुचाको धारण करता है। (याः प्रथमं अस्य धाम ह निंसते) जो स्रुचा सबसे पहले इसके स्थानको ही चूमती है ॥ १ ॥

भावार्थ— अग्नि हमारे स्तोत्रोंकी इच्छा तथा हमारी इच्छाओंको पूर्ण करे। इस प्रकार हमारी स्तुतिसे वह प्रसन्न होकर हमें लाभके लिए सदैव उत्तम कामोंमें प्रेरित करे ॥ ६ ॥

यज्ञके सम्पादक और घीसे प्रदीप्त अग्निको हर तरहसे प्रज्वलित करनेपर वह मनुष्योंकी निर्मल बुद्धियोंको उत्तम कर्मोंकी तरफ प्रेरित करता है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! आलस्यरहित होकर कल्याणकारक एवं सुखकारक संरक्षणके साधनोंसे हमारी एवं हमारी सन्तानोंकी रक्षा कर ॥ ८ ॥

×

१५७४ अमीमृतस्यं दोहना अनूषत योनौं देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावस दधं स्वधा अंधयुद् याभिरीयते ॥ २ ॥
१५७५ युयूंषतः सवयसा तदिद् वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन् त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥
१५७६ यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५७४] (ऋतस्य दोहनाः) जलकी धारायें (योनौ देवस्य सदने परीवृताः) अग्निके उत्पत्ति स्थान सूर्यलोकमें अग्निको चारों ओर घेरकर उस अग्निकी (अभि अनूषत) स्तुति करती हैं। (यत् अपामुपस्थे विभृतः आवसत्) जब जलकी गोदमें अग्नि सुखपूर्वक रहता है (अध स्वधा अधयत्) तब ही लोग अमृतमय जलपान करते हैं। और (याभिः ईयते) जलके साथ ही यह अग्नि विद्युत् रूपमें मिल जाता है ॥ २ ॥

[१५७५] (तत् इत् सवयसा वितरित्रता) उस समयमें समान सामर्थ्यवाले अच्छी प्रकार स्थापित (समानं अर्थं मिथः वपुः युयूषतः) एक ही अर्थकी सिद्धिके लिए परस्पर एक दूसरेके शरीरका आलिंगन करते हैं। (आदीं हव्यः अस्मत् आ आसमयंस्त) उसके अनन्तर ही आहवनीय अग्नि हमारी दी हुई घृतधाराको सब ओरसे इसी प्रकार स्वीकार करता है जिस प्रकार (भगः न सारथिः वोळ्हुः) जैसे पूजनीय भग देव अपनी हविको ग्रहण करता है अथवा जिस प्रकार सारथी घोडोंकि लगामको ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

१ सवयसा समाने अर्थे मिथः वपुः युयूषतः— सामर्थ्यवाली दो अरणियां अग्निको प्रकट करनेके रूप समान अर्थकी सिद्धिके लिए अपने शरीरको परस्पर रगडती हैं।

[१५७६] (द्वा सवयसा समाने योना) दो समान अवस्थावाले, एक ही स्थानमें रहनेवाले (मिथुना समोकसा यमीं) एक कार्यमें नियुक्त एक ही घरमें रहनेवाले दम्पती जिस अग्निकी (दिवा न नक्तं सपर्यतः) दिनरात सर्वदा पूजा करते हैं, उनसे पूजित हुआ अग्नि (पलितः युवा अजनि) वृद्ध होता हुआ भी तरुण है तथा (मानुषा युगा पुरु चरन् अजरः) अनेकों मानवीय युगोंसे बहुत संचार करता हुआ भी कभी बूढा नहीं होता और हमेशा अजर बना रहता है ॥ ४ ॥

पलितः युवा अजनि— यह अग्नि अत्यन्त प्राचीन होता हुआ भी तरुण ही है।
मानुषा युगा पुरुचरन् अजरः— अनेकों युगों अर्थात् अनन्त कालतक बहुत संचार करता हुआ भी यह अग्नि कभी बूढा नहीं होता, सदा तरुण ही बना रहता है।

भावार्थ— प्रथम होता निर्मल बुद्धिसे सत्य नियमोंपर चलता है फिर शुद्ध होकर अग्निमें आहुति देनेके लिए स्रुचाको उठाता है ॥ १ ॥

द्युलोकमें पानीकी धारायें अर्थात् मेघ इस अग्निको घेर लेते हैं, तब यह अग्नि अपनी किरणोंसे पानी बरसाता है और लोग इस धाराको आनन्दसे पीते हैं ॥ २ ॥

समान सामर्थ्यवाली दो अरणियां अग्निको प्रकट करनेके लिए परस्पर रगड खाती हैं, उसके बाद अग्नि प्रकट होकर हव्य ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार यह अग्नि अनन्तकालसे सदा पूजित होता आ रहा है और बहुत प्रकाशित होनेपर भी बूढा नहीं होता, उसी प्रकार अग्रणी नेताको भी सदा उत्साहसे युक्त रहना चाहिए ॥ ४ ॥

१५८१ तमित् पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदपितः ॥ २ ॥

१५८२ तमिद् गच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद् वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥

१५८३ उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५८१] (तम् इत् पृच्छन्ति सिमः न वि पृच्छति) उस अग्निसे विद्वान् ही प्रश्न पूछते हैं क्योंकि सब लोग उससे नहीं पूछ सकते । (धीरः स्वेन इव मनसा) धीर व्यक्ति जो अपने मनसे ही (यत् अग्रभीत्) जो काम करनेका निश्चय कर लेता है (प्रथमं) उसे पहले ही कर डालता है (अपरं न) बादमें नहीं, क्योंकि वह (वचः न मृष्यते) किसीके कहनेको सहन नहीं करता, इसलिये ही (अप्रदपितः अस्य क्रत्वा सचते) दम्भविहीन मनुष्य अग्निके बलको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

१ धीरः स्वेन मनसा यत् अग्रभीत् प्रथमं, न अपरं— धीर बुद्धिमान् मनुष्य जो मनसे निश्चय कर लेता है, उसे पहले ही कर डालता है बादमें नहीं, क्योंकि—

२ वचः न मृष्यते— वह किसीका कहना सुनना पसन्द नहीं करता ।

३ अप्रदपितः अस्य क्रत्वा सचते— गर्व हीन मनुष्य ही इस अग्निके बलसे युक्त होता है ।

[१५८२] (जुह्वः तं इत् गच्छन्ति) सब चमस उस अग्निको ही लक्ष्य करके जाते हैं और (अर्वतीः तं) स्तुतियाँ भी इसके ही लिये हैं, वह (एकः मे विश्वानि वचांसि शृणवत्) अकेले ही मेरे सम्पूर्ण स्तोत्रवचनोंको सुनता है । (पुरु प्रैषः ततुरिः यज्ञसाधनः) बहुतोंका प्रेरक, दुःखसे पार करानेवाला, यज्ञका साधक (अच्छिद्रोतिः) निर्दोष संरक्षक शक्तिसे युक्त है (शिशुः, संरभः, आदत्त) शिशुकी तरह प्रियकारी यह अग्नि हवियोंको स्वीकार करता है ॥ ३ ॥

[१५८३] (यत् उपस्थायं चरति) जब यजमान अग्निकी सेवा करता है तब यह (सद्यः जातः सं आरत) शीघ्र उत्पन्न होकर सर्वत्र जाता है । और उत्पन्न होकर तुरन्त (युज्येभिः तत्सार) अपनी ज्वालाओंसे सर्वत्र प्रकाशित होता है । और (यत् अपिष्ठितं ईं उशतीः गच्छन्ति) जब सर्वत्र व्याप्त इस अग्निकी ओर कामना करती हुई आहुतियां जाती हैं, उस समय यह अग्नि (नान्द्य श्वान्तं मुदे अभि मृशते) आनन्दवर्धक कर्ममें थके हुये यजमानको सन्तोष देनेके लिये अभीष्ट फल देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी बुद्धिमान् ज्ञानी सर्वत्र और सर्वव्यापक है, वही सबका स्वामी है, वही सब जगत् पर शासन कर रहा है इसलिए वही शरणमें जाने योग्य है ॥ १ ॥

यह अग्रणी ज्ञानी है, इसलिए सब इसीसे अपनी समस्यायें पूछते हैं । बुद्धिमान् मनुष्य अपने मनके निश्चयके अनुसार कार्य करते हैं सभी इसके पास विनयसे जाते हैं, इसके बलसे युक्त होते हैं ॥ २ ॥

सारे कर्म उसी अग्रणीको लक्ष्य करके किए जाते हैं । यह अग्रणी अपने उपासकोंको प्रेरणा देनेवाला, दुःखोंसे पार करानेवाला, उनका संरक्षक और प्रिय करनेवाला है ॥ ३ ॥

मंथन कर्मसे प्रकट होकर यह अग्नि शीघ्र ही सब ओर फैलने लग जाता है और तभी इसमें घृतकी आहुतियां पड़नी शुरु हो जाती हैं, और यह अग्नि उपासकोंको इष्ट फल देता है ॥ ४ ॥

१५८४ स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद् वयुना मर्त्येभ्यो ऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः । ॥ ५ ॥

[१४६]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१५८५ त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषे ऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १ ॥
१५८६ उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ २ ॥

अर्थ-- [१५८४] (मृगः अप्यः वनर्गुः स ईं) खोजनेके और प्राप्त करनेके योग्य तथा वनमें जानेवाला वह अग्नि (उपमस्यां त्वचि उप नि धायि) सुन्दर ईंधनके बीचमें स्थापित किया जाता है । स्थापित होनेके पश्चात् (विद्वान्, ऋतचित्, सत्यः अग्निः) सर्वज्ञ, यज्ञका ज्ञाता, यथार्थवादी अग्नि, (हि मर्त्येभ्यः वयुना वि अब्रवीत्) निश्चयसे मनुष्योंके लिये ज्ञानका उपदेश देता है ॥ ५ ॥

१ मृगः आप्यः— यह अग्नि खोजने और प्राप्त करनेके योग्य है, ' मृगो मार्ष्टेर्गतिकर्मणः ' (निरु. १।२०)
२ मर्त्येभ्यः वयुना वि अब्रवीत्— यह अग्रणी मनुष्योंको ज्ञानका उपदेश देता है। अग्नि ज्ञानोपदेशक है ।

[१४६]

[१५८५] (पित्रोः उपस्थे, निषत्तं त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं) पिता माता रूप द्यु और पृथ्वीके गोदके मध्यमें अवस्थित, सवनत्रय रूप तीन मस्तकसे युक्त, सप्त छन्दरूप सात रश्मियोंसे सम्पन्न, (अनूनं आ पप्रिवांसं अग्निं गृणीषे) और न्यूनतासे रहित अर्थात् पूर्ण और सबको पूर्ण करनेवाले इस अग्निकी स्तुति कर । (दिवः अस्य विश्वा रोचना) द्युलोकसे आया हुआ इस अग्निका सम्पूर्ण तेज समूह (ध्रुवस्य, चरतः) सभी स्थावर और जंगम पदार्थोंमें व्याप्त हो रहा है ॥ १ ॥

१ त्रिमूर्धानं, सप्तरश्मिं— प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन ये तीन सवन ही अग्निके तीन सिर हैं और त्रिष्टुप् , जगती, बृहती, अनुष्टुभ्, उष्णिक्, पंक्ति और गायत्री ये सात छन्द ही सात रश्मियां हैं अथवा काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता ये सात ज्वालाएं ।

[१५८६] (उक्षा महान्) समर्थ और महान् अग्नि (एने अभि ववक्षे) इस द्यावा और पृथ्वीको चारों ओरसे व्याप्त किये हुए है । यह (अजरः ऋष्वः इतऊतिः तस्थौ) बुढापेसे रहित, पूज्य, रक्षा साधनोंसे युक्त होकर स्थित है । तथा (उर्व्याः सानौ पदः निदधाति) विस्तृत भूमिके प्रदेशपर अपने पैरको रखता है । (अस्य अरुषासः ऊधः रिहन्ति) इसकी उज्ज्वल ज्वालायें अन्तरिक्षरूपी स्तनको चाटती हैं ॥ २ ॥

भावार्थ-- यह अग्रणी सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य है क्योंकि यह ज्ञानी है, सत्यका पालक और सबको सत्यके मार्गपर प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

द्यु और पृथ्वीके बीचमें स्थित यह अग्नि अपनी सात तरहकी ज्वालाओंसे सबको व्याप लेता है। यही स्थावर और जंगममें व्याप्त है ॥ १ ॥

यह अग्नि महान् और सामर्थ्यशाली है । सदा तरुण रहनेवाला अग्नि सदा संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहता है। इसकी प्रदीप्त ज्वालाएं आकाशमें सर्वत्र फैलती हैं ॥ २ ॥

१५८७ समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके । •
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥ ३ ॥

१५८८ धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धु—माविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥

१५८९ दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥

[१४७]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१५९० कथा ते अग्ने शुचयन्त आयो—र्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

अर्थ--[१५८७] (समानं वत्सं संचरन्ती) एक ही बछडेकी तरफ जानेवाली, (अध्वनः अन्- अपवृज्यान् मिमाने) मार्गोंको प्रकाशसे युक्त कर उन्हें जाने योग्य बनाती हुई (विश्वान् केतान् महः अधि दधाने) सभी तरहके ज्ञानोंको अत्यधिक धारण करती हुई (सुमेके धेनू विष्वक् चरतः) सुन्दर दर्शनीय दो गायें चारों ओर घूमती हैं ॥ ३ ॥

[१५८८] (धीरासः कवयः) धैर्यशाली तथा ज्ञानी मनुष्य इस अग्निकी (नाना हृदा रक्षमाणाः) अनेक प्रकारके साधनों द्वारा हृदय लगाकर रक्षा करते हुए (अजुर्यं पदं नयन्ति) नष्ट न होनेवाले स्थान पर ले जाते हैं । तब (सिन्धुं सिषासन्तः) नदी अर्थात् पानीकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंने (परि अपश्यन्त) पानीको चारों ओर देखा (एभ्यः नॄन्) ऐसे मनुष्योंके लिए (सूर्यः आविः अभवत्) सूर्य प्रकट हुआ ॥ ४ ॥

[१५८९] अग्नि (परि काष्ठासु दिदृक्षेण्यः जेन्यः ईळेन्य :) सम्पूर्ण दिशाओंमें दर्शनीय, सदा जयशील और स्तुतिके योग्य है । वह (महः अर्भाय जीवसे) बडे और छोटे अर्थात् सबको जीवन प्रदान करनेवाला है (यत् अह मघवा विश्वदर्शतः) इस कारण अनेक तरहसे धनवान् और दर्शनीय यह अग्नि (पुरुत्रा एभ्यः गर्भेभ्यः सूः अभवत्) इन गर्भस्थ पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाला है ॥ ५ ॥

[१४७]

[१५९०] हे (अग्ने) अग्ने ! (शुचयन्तः आशुषाणाः ते) शुद्ध करनेवाली और सर्वत्र प्रकाशित होनेवाली तेरी ज्वालाएं (कथा वाजेभिः आयोः ददाशुः) कैसे अन्नके साथ आयु प्रदान करती हैं ? (यत् तोके तनये उभे दधानाः) जिससे पुत्र और पौत्रादिके लिये अन्न और आयु प्राप्त कर (देवाः ऋतस्य सामन् रणयन्त) उत्तम गुणवाले मनुष्य यज्ञके सामगानमें रमते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ-- एक ही अग्नि रूप पुत्रको उत्पन्न करनेवाली, मार्गोंको प्रकाशित करनेवाली, दो अरणीरूप गायें चारों ओर मथी जाती हैं ॥ ३ ॥

ज्ञानी जन इस अग्निकी हर तरहसे रक्षा करते हैं, ऐसे यज्ञीय मनुष्योंको हर तरहका सुख प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

सभी दिशाओंमें व्याप्त होनेके कारण एवं सदा विजय होनेके कारण यह अग्नि स्तुतिके योग्य है । वह छोटे बडे सबको जीवनशक्ति देता है और वही सबका उत्पादक है ॥ ५ ॥

जिस अन्नसे हर तरहका पोषण होता है वह अग्निके द्वारा किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, वह मार्ग जानना चाहिए ॥ १ ॥

१५९१ बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥
१५९२ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान् सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥
१५९३ यो नो अग्ने अररिवाँ अघायु- रराती॒वा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५९१] हे (यविष्ठ) अत्यन्त बलवान् ! हे (स्वधावः) बलवान् अग्ने ! तू (मे मंहिष्ठस्य, प्रभृतस्य) मेरे आदरके योग्य और भली प्रकारसे सम्पादित (अस्य वचसः बोध) इस स्तुति रूप वचनोंको सुन । हे (अग्ने) अग्ने ! संसारमें (त्वः पीयति, त्वः अनुगृणाति) एक मनुष्य तुझको पीडा पहुँचाता है, और दूसरा मनुष्य तेरी स्तुति करता है, मैं तो (ते वन्दारुः, ते तन्वं वन्दे) तेरा उपासक हूँ इसलिये तेरे स्वरूपकी वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

१ त्वः पीयति, त्वः अनुगृणाति— एक मनुष्य इस प्रकाश स्वरूप परमात्मा पर विश्वास नहीं करता और दूसरा इस परमात्मा पर बडी श्रद्धा रखता है ।

[१५९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते ये पायवः) तेरे जिन प्रसिद्ध पालक रश्मियोंने (मामतेयं अन्धं पश्यन्तं) ममताके पुत्रको अन्धेपनेसे युक्त देखकर (दुरितात् अरक्षन्) अन्धेपनेके दुःखसे उसकी रक्षा की, अतः (तान् सुकृतः विश्ववेदाः ररक्ष) उन पुण्यशालियोंकी सबको जाननेवाले तूने रक्षा की, पर (दिप्सन्त इत् रिपवः अह न देभुः) दम्भ करनेवाले शत्रुगण भी तुझे दबानेमें समर्थ नहीं हुए ॥ ३ ॥

१ तान् सुकृतः विश्ववेदाः ररक्ष— यह अग्नि पुण्यशालियोंकी रक्षा करता है ।
२ दिप्सन्तः रिपवः न देभुः— दम्भी या अभिमानी शत्रु भी इसे नहीं दबा सकते ।

[१५९३] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः अघायुः नः अररिवान् अराती वा) जो पापी हमें दान देनेसे रोकता है और स्वयं भी दान नहीं करता है तथा (द्वयेन मन्त्रः मर्चयति) कपट युक्त उपायसे हमें दुःखी करता है, उसका (सः अस्मै पुनः गुरुः अस्तु) वह कपट उपाय उसके स्वयंके लिए भारी पड जाए । और दूसरे (दुरुक्तैः तन्वं अनु मृक्षीष्ट) दुर्वाक्य अर्थात् निन्दनीय शब्दोंसे वह स्वयं अपने शरीरका नाश कर ले ॥ ४ ॥

१ अघायुः अररिवान् अरातिः मृक्षीष्ट— पापी, दान देनेसे रोकनेवाला तथा स्वयं भी दान न देनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाए ।
२ दुरुक्तैः तन्वं मृक्षीष्ट— दूसरोंको बुरे शब्द बोलनेवालेका ही शरीर क्षीण हो जाए ।

भावार्थ— कुछ नास्तिक लोग इस परमात्माकी हँसी उडाते हैं, जब कि दूसरे आस्तिक लोग इस पर बडी श्रद्धा रखते हैं । इन दोनोंमें परमात्माका उपासक उत्तम है ॥ २ ॥

इस अग्निने अपनी शक्तिसे अन्धत्व दूर किया और पुण्यवानोंकी रक्षा की । यह अभिमानियोंपर कृपा नहीं करता ॥ ३ ॥

जो स्वयं न देकर दूसरोंको भी दान देनेसे रोकता है, वह पापी स्वयं नष्ट हो जाता है । दूसरोंको गालियां देनेवाला स्वयं ही पहले मानसिक रूपसे क्षीण हो जाता है । गालियोंके उच्चारणके पहले ही गाली देनेवालेका मन कुविचारोंसे ग्रस्त हो जाता है ॥ ४ ॥

१५९४ उत वा यः सहस्य प्रविद्वान् मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्त—मग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥

[१४८]

(ऋषिः– दीर्घतमा औचथ्यः । देवता– अग्निः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

१५९५ मथीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥
१५९६ ददानमिन्न ददभन्त मन्मा—ग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मो—पस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥
१५९७ नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टा—वश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥

अर्थ-- [१५९४] (उत वा) अथवा (सहस्य अतः) बलके पुत्र हे अग्ने ! (यः मर्तः प्र विद्वान् द्वयेन मर्तं मर्चयति) जो मनुष्य जानबूझकर छलकपटसे हमको पीडित करना चाहता है, उससे तू (स्तुवन्तं पाहि) स्तुति करनेवाले मेरी रक्षा कर । हे (स्तवमान अग्ने) प्रशंसित होनेवाले अग्ने ! (नः दुरिताय माकिः धायीः) हमको दुःखरूपी पापमें मत फेंक ॥ ५ ॥

[१४८]

[१५९५] (यत् होतारं, विश्वाप्सुं, विश्वदेव्यं ईं) जब देवोंको बुलानेवाले, विविध रूपवाले, सारे देवोंके कार्य करनेमें निपुण इस अग्निका (मातरिश्वा, विष्टः मथीत्) अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले वायुने सर्वत्र व्यापक होकर मंथन किया । और (स्वः न चित्रं विभावं यं) सूर्यके समान विलक्षणतासे युक्त, तेजस्वी जिस अग्निको (मनुष्यासु विक्षु वपुषे नि दधुः) मनुकी प्रजाओंमें शरीरकी पुष्टिके लिए स्थापित किया उस अग्निकी मैं पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

[१५२६] अग्निकी (मन्म ददानं इत् न ददभन्त) स्तुति करनेवाले मुझे शत्रु नहीं दबा सकते, क्योंकि (अग्निः तस्य मम वरूथं चाकन्) अग्नि मेरे श्रेष्ठ स्तोत्रकी अत्यन्त कामना करता है । (स्तुतिं भरमाणस्य कारोः) स्तुति करनेवाले मुझ इस स्तोताके (विश्वानि कर्म उप जुषन्त) सम्पूर्ण कर्मोंका सारे देव सेवन करते हैं ॥ २ ॥

[१५९७] (यज्ञियासः यं) याज्ञिक जिस अग्निको (नित्ये चित् सदने नु जगृभ्रे) नित्य अग्निगृहमें शीघ्रता से ले जाते हैं, और ले जाकर (प्रशस्तिभिः दधिरे) प्रशंसनीय स्तुतियोंसे स्थापित करते हैं । इस अग्निको (रारहाणाः रथ्यः अश्वासः न) शीघ्रगामी रथमें जुते घोडेकी तरह (इष्टौ गृभयन्तः प्र सू नयन्त) यज्ञमें ले जाकर वे याज्ञिक सुन्दर रूपसे बढाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! जो छलकपटसे हमें मारना चाहते हैं, उससे हमारी रक्षा कर और हमें कभी भी दुःखोंमें मत डाल ॥ ५ ॥

मातरिश्वा वायुके मंथनसे यह अग्नि प्रकट हुआ है और तदनन्तर यह अग्नि मनुकी प्रजाओंमें स्थित होकर प्राणियोंके शरीरोंको धारण करने लगा ॥ १ ॥

जो अग्निकी उपासना करता है, वह किसी भी शत्रुसे नहीं दबता और उसकी स्तुतियोंको सब देवता ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

याज्ञिक जन इसे यज्ञ गृहमें ले जाकर अच्छी तरह प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

१५९८ पुरूणि दुस्मो नि रिणाति जम्भै—राद् रोचते वन आ विभावा ।
आर्दस्य वातो अनु वाति शोचि—रस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥
१५९९ न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥

[१४९]

(ऋषिः— दीर्घतमा औचथ्यः । देवता— अग्निः । छन्दः— विराट् ।)

१६०० महः स राय एषते पतिर्द—न्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥
१६०१ स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥

अर्थ— [१५९८] (दस्मः पुरूणि जम्भैः) विनाशक अग्नि सब प्रकारके वृक्षोंको अपने दांतोंसे (निरिणाति आत्) बिलकुल नष्ट कर देता है, जलानेके अनन्तर (वने विभावा आ रोचते) जंगलमें विशेष तेजसे युक्त होकरके चारों ओर प्रकाशमान होता है । (आत् न अस्तुः असनां शर्यां) उसके पश्चात् जिस प्रकार बाण चलानेवालेके पाससे बाण वेगके साथ जाता है, उसी प्रकार (अस्य शोचिः) इस अग्निकी किरणें इसके पाससे (अनुद्यून् वातः वाति) प्रतिदिन वायुका अनुकरण करती हुई वेगसे जाती हैं ॥ ४ ॥

[१५९९] (गर्भे सन्तं) अरणिके गर्भमें अवस्थित (यं रिपवः न रेषयन्ति) जिस अग्निको शत्रुगण दुःख नहीं दे सकते हैं, तथा (अन्धाः, अपश्याः अभिख्याः न दभन्) नेत्ररहित अथवा ज्ञानशून्य जन, एवं विद्वान् होकर भी न जाननेवाले लोग जिसके चारों ओर फैले हुए महात्म्यको नष्ट नहीं कर पाये हैं, ऐसे (ईं) इस अग्निकी (नित्यासः प्रेतारः अरक्षन्) प्रतिदिन तृप्त करनेवाले मनुष्य रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

१ अन्धाः, अपश्याः अभिख्याः न दभन्— अन्धे अथवा अज्ञानी पुरुष इस अग्निके महत्वको नहीं जान सकते ।

[१४९]

[१६००] (सः महः रायः पतिः दन् आ ईषते) वह अत्यन्त ऐश्वर्यवान्, धनका स्वामी, धन देनेके लिये हमारी ओर आता है; (इनस्य इनः वसुनः पदे आ) स्वामियोंका स्वामी अग्नि धनके स्थान प्राप्त करता है, उस समय (अद्रयः उपध्रजन्तं विधन् इत्) सोम कूटनेके पत्थर पास आनेवाले उस अग्निके लिये रस तैयार करते हैं ॥ १ ॥

[१६०१] (नरां वृषा न) मनुष्योंमें बलवान् मनुष्यकी तरह (यः रोदस्योः श्रवोभिः अस्ति) जो अग्नि दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकमें अपने यशोंसे विद्यमान है, (यः) जो (जीवपीतसर्गः) प्राणियोंके द्वारा उपभोग करने योग्य संसारकी उत्पत्ति करता है । (सस्राणः सः) प्रकट होकर वह (योनौ शिश्रीत) अपने स्थानपर आ जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सर्वभक्षक है । यह अपनी दाढोंसे सब खा जाता है और अनुकूल वायु पाकर और विशेष तेजस्वी होता है ॥ ४ ॥

गुप्त रहनेवाले और प्रकट हुए हुए अग्निको कोई नष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि नित्य प्रति इस अग्निको तृप्त करनेवाले मनुष्य इसकी हर तरहसे रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

यह अग्नि सब तरहके धनों और ऐश्वर्योंका स्वामी है, इसलिए वह हमेशा धनके स्थानोंपर ही रहता है । वह जब धन देनेके लिए जाता है, तब लोग उसका सोमके द्वारा स्वागत करते हैं ॥ १ ॥

मनुष्योंमें बलवान् जिस प्रकार अपने बलके कारण सर्व श्रेष्ठ होता है, उसी तरह यह अग्नि अपनी शक्तिसे इन द्युलोक और पृथ्वीलोकमें सर्वश्रेष्ठ है । यही सारे संसारको उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

×

१६०२ आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥

१६०३ अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

१६०४ अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥

[१५०]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अग्निः । छन्दः- उष्णिक् ।)

१६०५ पुरु त्वा दाश्वान् वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

अर्थ-- [१६०२] (यः) जिस अग्निने (नार्मिणीं पुरं) अविनश्वर आत्माकी इस नगरी-शरीरको (आ अदीदेत्) चारों ओरसे प्रकाशित किया और जो (नभन्यः अर्वा न अत्यः) आकाशके वायुके समान और शीघ्रगामी घोडेके समान वेगवान् है, वह (कविः) ज्ञानी अग्नि (शतात्मा सूरः न) सैंकडों किरणवाले सूर्यके समान (रुरुक्वान्) तेजस्वी है ॥ ३ ॥

१ नार्मिणी— नष्ट न होनेवाला, अविनश्वर ।

२ यः नार्मिणीं पुरं आ अदीदेत्— यह अग्नि इस अविनश्वर आत्माकी नगरी इस शरीरको चारों ओरसे प्रकाशित करता है ।

[१६०३] (द्विजन्मा, त्री रोचनानि अभि शुशुचानः) दो अरणियोंसे उत्पन्न अग्नि तीनों लोकोंको सब ओरसे प्रकाशित करता है; तथा (विश्वा रजांसि) सारे लोकोंको भी प्रकाशित करता है । यह (होता यजिष्ठः अपां सधस्थे अस्थात्) देवोंको बुलानेवाला तथा यज्ञका कर्ता अग्नि जलोंके बीचमें भी रहता है ॥ ४ ॥

[१६०४] (यः द्विजन्मा) जो अग्नि दो अरणियोंसे जन्म लेता है (सः होता) वह ही देवोंको बुलानेवाला है । (अयं विश्वा वार्याणि दधे) यह सम्पूर्ण वरण करने योग्य धनोंको धारण करता है । (यः मर्तः अस्मै) जो मनुष्य इस अग्निके लिये (श्रवस्या ददाश, सुतुकः) पवित्र अन्नादि देता है उसको यह उत्तम पुत्र प्रदान करता है ॥ ५ ॥

[१५०]

[१६०५] (दाश्वान्) मैं दान देता हुआ (त्वा पुरु वोचे) तेरी अनेक तरहसे प्रार्थना करता हूँ । हे (अग्ने) अग्ने ! (महस्य-तोदस्य इव) जिस प्रकार एक महान् यज्ञशीलके शरणमें सब लोग आते हैं, उसी प्रकार (तव अरिः स्वित् शरणे आ) तेरा शत्रु भी तेरी शरणमें आता है ॥ १ ॥

भावार्थ-- अग्निके कारण ही इस शरीरमें तेजस्विता रहती है, इस उष्णताके निकल जानेपर शरीर निस्तेज हो जाता है ॥ ३ ॥

इसी अग्निके कारण तीनों लोक और सारा विश्व प्रकाशित होता है । पृथ्वीपर अग्निके रूपमें, अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें, द्युलोकमें सूर्यके रूपमें और जलमें जलाग्निके रूपमें अग्नि रहता है ॥ ४ ॥

द्विजन्मा यह अग्नि देवोंको बुलानेवाला है, यही सब धनोंको धारण करता है । जो इसकी उपासना करता है, वह पुत्र पौत्रोंसे युक्त होता है ॥ ५ ॥

यह अग्नि बहुत बलशाली है इसलिए शत्रु भी इसकी शरणमें जाते हैं ॥ १ ॥

१६०६ अ॒यं नि॒नस्य॑ ध॒निनः॑ प्र॒हो॒षे चि॒दर॑रुषः । क॒दा च॒न प्र॒जिग॑तो॒ अदे॑वयोः ॥ २ ॥
१६०७ स च॒न्द्रो वि॑प्र॒ मर्त्यो॑ म॒हो व्राध॑न्तमो दि॒वि । प्रप्रेत् ते॑ अग्ने व॒नुषः॑ स्याम ॥ ३ ॥

[१५१]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- १ मित्रः, २-९ मित्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।)

१६०८ मि॒त्रं न यं शिम्या॒ गोषु॑ ग॒व्यवः॑ स्वा॒ध्यो॑ वि॒दथे॑ अ॒प्सु जीज॑नन् ।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी॒ पाज॑सा गि॒रा प्रति॑ प्रि॒यं य॑ज॒तं ज॒नुषा॒मवः॑ ॥ १ ॥
१६०९ यद्ध॒ त्यद् वां॑ पुरुमी॒ळ्हस्य॑ सो॒मिनः॒ प्र मि॒त्रासो॒ न द॑धि॒रे स्वा॒भुवः॑ ।
अध॒ क्रतुं॑ विदतं गा॒तुमर्च॑त उ॒त श्रु॑तं वृषणा प॒स्त्याव॑तः ॥ २ ॥

अर्थ— [१६०६] हे अग्नि ! मैं तुझसे यह (वि) विशेष रूपसे निवेदन करता हूँ कि (अनिनस्य, धनिनः प्रहोषे चित् अररुषः) तुझे अपना स्वामी न माननेवाले, धनी होते हुए भी श्रेष्ठ यज्ञमें दक्षिणा नहीं देनेवाले और (कदाचन प्रजिगतः अदेवयोः) कभी देवोंकी स्तुति न करनेवाले, देवोंको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंके पास तू मत जा ॥ २ ॥

[१६०७] हे (विप्र अग्ने) हे मेधावी अग्ने ! जो (मर्त्यः, सः दिवि चन्द्रः) मनुष्य तुम्हारी उपासना करता है वह द्युलोकमें चन्द्रमाके समान सबको आनन्द देता है; तथा (महः व्राधन्तमः) महान्से भी सबसे अधिक महान् होता है । इसलिये हे अग्ने ! (ते प्रप्र इत् वनुषः स्याम) तेरे हम विशेष भक्त हों ॥ ३ ॥

[१५१]

[१६०८] (प्रियं यजतं यं) प्रिय और पूज्य जिस अग्निको (जनुषां अवः) मनुष्योंकी रक्षाके लिए (गोषु गव्यवः सु-आध्यः) गायोंकी इच्छा करनेवाले तथा उत्तम ज्ञानी लोग (शिम्या) अपने कर्मसे (विदथे अप्सु) यज्ञमें तथा अन्य कर्मोंमें भी (मित्रं न जीजनन्) मित्रके समान उत्पन्न करते हैं, उस अग्निके (गिरा पाजसा) शब्द और बलसे (रोदसी अरेजेतां) द्युलोक और पृथ्वीलोक कांपने लगते हैं ॥ १ ॥

[१६०९] हे (वृषणा) बलवान् मित्रावरुण ! (यत् ह) चूंकि (वां) तुम दोनोंके लिए (मित्रासः न) मित्रोंके समान हित करनेवाले जन (सु आभुवः पुरुमीळ्हस्य सोमिनः) अपनी शक्तिसे सत्तावान्, अनेक सुखोंको देनेवाले (सोमिनः) सोमरसकी आहुतियोंको (दधिरे) धारण करते हैं, (अध) इसलिए (अर्चते) तुम्हारी स्तुति करनेवालेके (क्रतुं गातुं विदतं) कर्म और आचारविचारको जानो, तथा (पस्त्यावतः उत श्रुतं) गृहपतिकी प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥

भावार्थ— जो ईश्वरको अपना स्वामी नहीं मानता, धनवान् होते हुए भी यज्ञ यागादि करके धनदान नहीं करता, तथा देवोंको स्तुति नहीं करता, ऐसे नास्तिकोंका कल्याण नहीं होता ॥ २ ॥

जो इस तेजस्वी अग्निकी उपासना करता है, वह चन्द्रमाके समान सबको सुख देनेवाला होता है, तथा वह सबसे महान् होता है ॥ ३ ॥

ज्ञानी जन मनुष्योंकी रक्षाके लिए इस अग्निको यज्ञमें उत्पन्न करते हैं, अर्थात् हर कामके प्रारंभमें इस अग्निका आधान करते हैं । यह अपने जनोंका मित्रके समान कल्याण करता है । इस अग्निकी स्तुति सब काममें मंगलकारी होती है । जब यह अग्नि खूब प्रज्वलित हो जाती है, तब यह इतना भयंकर हो जाता है कि इसको देखकर सभी लोक कांपने लग जाते हैं ॥ १ ॥

सोम अपने स्वयं की शक्तिसे सत्तावान् है । यह अनेक तरहके सुखोंको देनेवाला है । इसे पीकर सभी देव आनंदित होते हैं । मित्र और वरुणको जब सोमकी आहुतियां दी जाती हैं, तब ये देव अपने उपासकको उत्तम कर्मोंकी तरफ प्रेरित करते हैं ॥ २ ॥

१६१० आ वां भूषन् क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
१६११ प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
१६१२ मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥
१६१३ आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६१०] हे (वृषणा) बलवान् मित्रावरुण ! (वां रोदस्योः प्रवाच्यं जन्म) तुम दोनोंके द्यावा-पृथिवीसे प्रशंसनीय जन्मकी (क्षितयः) मनुष्य (महे दक्षसे) महान् बलकी प्राप्तिके लिए प्रशंसा करते हैं और तुम दोनोंको (आभूषन्) अलंकृत करते हैं । (यत् ऋताय ईं भरथः) क्योंकि तुम दोनों इस अपने सच्चे उपासकको बलसे भरपूर करते हो और (यत् अर्वते) पशुओंसे युक्त उपासकको भी बलसे परिपूर्ण करते हो । (होत्रया शिम्या अध्वरं वीथः) तुम पुकारने तथा कर्मोंसे आकृष्ट होकर लोगोंके यज्ञको जाते हो ॥ ३ ॥

[१६११] हे (असुरा) बलवान् मित्र वरुण ! (या महि प्रिया) जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय है, (सा क्षितिः प्र) वह भूमि अत्यधिक विस्तृत हो, (ऋतावानौ) हे यज्ञके पालक देवो ! तुम दोनों (बृहत् ऋतं आ घोषथः) इस महान् सत्यकी घोषणा करो । (बृहतः दिवः) महान् देवोंके उपकारके लिए (युवं) तुम दोनों (दक्षं आभुवं अपः) बलकारी तथा हितदायक कर्ममें उसी तरह (उपयुंजाथे) जुड जावो, जिसप्रकार (धुरि गां न) जुएमें बैल जुड़ते हैं ॥ ४ ॥

१ बृहत् ऋतं आ घोषथः— जो सत्य हो, उसकी घोषणा करनी चाहिए ।

[१६१२] हे मित्रावरुण ! तुम (मही अत्र) इस विशाल पृथ्वी पर (महिना) अपनी शक्तिसे (वारं ऋण्वथः) ग्रहण करनेयोग्य धनको देते हो, (अरेणवः तुजः धेनवः) पापरहित और दुधारु गायें (सद्मन् आ) घर आती हैं । (उपरताति) आकाशके मेघसे युक्त होने पर (ताः) वे गायें (निम्रुचः उषसः) सभी उषःकालोंमें (सूर्यं स्वरन्ति) सूर्यके लिए उसी प्रकार चिल्लाती हैं, जिसतरह (तक्ववीः इव) मनुष्य चोरको देखकर चिल्लाते हैं ॥ ५ ॥

[१६१३] हे (मित्रवरुण) मित्र और वरुण ! (यत्र गातुं अर्चथः) जिस प्रदेशमें तुम्हारी स्तुति होती है, वहां (केशिनीः) अग्निकी ज्वालायें (ऋताय) यज्ञके लिए (वां अनूषत) तुम दोनोंकी सेवा करती हैं । तुम दोनों (त्मना अवसृजतं) स्वयं हमें शक्तिप्रदान करो, तथा (धियः पिन्वतं) हमारी बुद्धियोंको पुष्ट करो, (युवं) तुम दोनों (विप्रस्य मन्मनां) ज्ञानीके स्तोत्रोंके (इरज्यथः) स्वामी हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— मित्र अर्थात् अग्नि और वरुण अर्थात् सूर्य इन दोनोंका जन्म पृथिवी और द्युलोकसे होता है । इनके उत्पन्न होते ही अन्धकार नष्ट होकर सर्वत्र प्रकाश छा जाता है, इसलिए सर्वत्र इनके जन्मकी प्रशंसा होती है । ये दोनों अपने सच्चे उपासकको बलसे युक्त करते हैं ॥ ३ ॥

ये दोनों मित्र और वरुण बहुत बलवान् हैं । इन्हें यज्ञकी भूमि अत्यन्त प्रिय है । यह हमेशा सत्यके मार्ग पर निर्भीक होकर चलते हैं और सत्यकी निर्भीकतासे घोषणा करते हैं । ये दोनों हितकारी काम ही करते हैं, क्योंकि हितकारी कामोंसे देवोंका उपकार होता है । मनुष्य सदा निर्भीक होकर सत्यके मार्ग पर चले तथा सत्य बात निर्भीक होकर कहे ॥ ४ ॥

जिसके घर गायें रहती हैं, उसके यहां सभी तरहके ऐश्वर्य निवास करते हैं, देवगण भी गौपालकको धन देते हैं । जिस समय आकाशमें मेघ आते हैं, उस समय गायें सूर्यकी प्रार्थना करती हैं, ताकि सूर्य बादलोंसे पानी बरसाये तथा उन गायोंको खूब घास प्राप्त हो ॥ ५ ॥

जहां पर भी ये मित्र और वरुण जाते हैं, वहां यज्ञमें इनकी स्तुति होती है । ये दोनों बुद्धियोंको पुष्ट करनेवाले हैं । इसलिए मनुष्य अपनी बुद्धियोंसे इन्हींकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

१६१४ यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

१६१५ युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥

१६१६ रेवद् वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६१४] (यः खलु) जो मनुष्य (यज्ञैः शाशमानः) यज्ञके द्वारा स्तुति करता हुआ (वां) तुम दोनोंको (दाशति) हवि देता है, (मन्मसाधनः कविः होता) स्तुतिसे युक्त होकर ज्ञानी होता (यजति) यज्ञ करता है, हे मित्रावरुण ! तुम दोनों (अह) प्रतिदिन (तं उप गच्छथः) उस यज्ञकर्ताके समीप जाते हो, उसके (अध्वरं वीथः) यज्ञकी कामना करते हो। (अस्मयू) हमारे पास आनेकी इच्छा करनेवाले तुम दोनों (गिरः सुमतिं) हमारी स्तुति और उत्तम बुद्धिकी तरफ (अच्छ आ गन्तं) सीधे आते हो ॥ ७ ॥

[१६१५] हे (ऋतावाना) यज्ञ युक्त मित्रावरुण ! (प्रयोक्तिषु मनसः न) इन्द्रियोंमें जिसप्रकार मन मुख्य होता है, उसी प्रकार (प्रथमा युवां) देवोंमें मुख्य तुम दोनोंको यज्ञ करनेवाले (यज्ञैः गोभिः) यज्ञ और दूध घी आदि के द्वारा (अंजते) युक्त करते हैं। (संयता मन्मना) संयमित और मननशील बुद्धिके द्वारा (वां गिरः भरन्ति) तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तुम भी (अदृप्यता मनसा) अपना शक्तिशाली मनसे उन्हें (रेवत् आशाथे) धन प्रदान करते हो ॥ ८ ॥

[१६१६] हे मित्रावरुण ! (रेवत् वयः) ऐश्वर्ययुक्त अन्न (दधाथे) धारण करते हो, हे (नरा) नेताओ ! (मायाभि इतः ऊति) शक्तियोंसे हमारी रक्षा करते हुए (माहिनं रेवत् आशाथे) महत्त्वपूर्ण धनको देते हो। (वां देवत्वं मघं) तुम दोनोंके देवत्व और ऐश्वर्यको (द्यावः न आनशुः) द्युलोक नहीं प्राप्त कर सके, (उत अहभिः न) दिन रात भी नहीं पा सके, (सिन्धवः न) नदियां भी नहीं पा सकीं (पणयः न) और पणि भी नहीं पा सके ॥ वा

१ वां देवत्वं मघं द्यावः अहभिः सिन्धवः पणयः न आनशुः— इन मित्रावरुणके देवत्व और ऐश्वर्यको द्युलोक, दिन रात, नदियां और पणि भी नहीं पा सके।

भावार्थ— जो ज्ञानी और यज्ञ करनेवाला स्तोता यज्ञके द्वारा हवि प्रदान करता हुआ इन मित्र और वरुणकी स्तुति करता है, उसके यज्ञमें ये दोनों आते हैं और उसके द्वारा की जानेवाली स्तुतिको बड़े ध्यानसे सुनते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रियोंमें मन सर्वश्रेष्ठ होता है क्योंकि मनसे प्रेरित होकर ही इन्द्रियां अपने अपने व्यापारमें प्रयुक्त होती हैं। उसी प्रकार देवोंमें ये मित्र और वरुण श्रेष्ठ हैं। इनकी सभी स्तुति करते हैं, तब ये प्रसन्न होकर स्तोताको अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

मित्र और वरुण दोनों अपनी शक्तियोंसे भक्तोंकी रक्षा करते हैं और उन्हें ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। ये दोनों देव इतने ऐश्वर्यवान् और दिव्य तेजसे युक्त हैं कि इनके जैसे ऐश्वर्य और दिव्य तेजको द्युलोक, दिन, रात, नदियां और यहां तक कि पणि नामक असुरगण भी नहीं पा सके। देवगण अत्यन्त तेजस्वी होते हैं, अतः उनके तेजका पार पाना असंभव है ॥ ९ ॥

[१५२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६१७ युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥

१६१८ एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥

१६१९ अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥

[१५२]

अर्थ-- [१६१७] हे (मित्रावरुणा) मित्रावरुण ! (युवं) तुम दोनों (पीवसा) पुष्ट होकर (वस्त्राणि वसाथे) वस्त्रोंको ढकते हो, (युवोः सर्गाः) तुम दोनोंके द्वारा उत्पन्न किए गए पदार्थ (अच्छिद्राः मन्तवः) दोष रहित और मनन करनेयोग्य हैं, तुम दोनों (विश्वा अनृतानि अव अतिरतम्) सम्पूर्ण असत्योंको नष्ट करते हो और (ऋतेन सचेथे) मनुष्यको सत्यसे संयुक्त करते हो ॥ १ ॥

१ विश्वा अनृतानि अव अतिरतं, ऋतेन सचेथे-- ये मित्र और वरुण असत्यभाषण करनेवालोंको नष्ट करके मनुष्योंको सत्यसे संयुक्त करते हैं ।

[१६१८] (एषां) इन दोनों मित्र और वरुणमें (त्वः चन) एक ही (सत्यः मंत्रः कविशस्तः ऋघावान्) सत्यशील, बुद्धिमान्, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसनीय और सामर्थ्यशाली है, (एतत् वि चिकेतत्) वह इस बातको अच्छी तरह जानता है । वह (उग्रः) वीर (त्रिरश्रिं चतुरश्रिः हन्ति) तीन धारवाले तथा चार धारवाले हथियारोंको धारण करनेवाले शत्रुओंको मार देता है (देवनिदः प्रथमाः अजूर्यन्) देवोंकी निन्दा करनेवाले प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें क्षीणशक्तिवाले हो जाते हैं ॥ २ ॥

१ देवनिदः प्रथमा अजूर्यन्-- देवोंकी निन्दा करनेवाले प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें शक्तिहीन हो जाते हैं ।

[१६१९] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (पद्वतीनां प्रथमा) पैरोंसे युक्त प्राणियोंसे भी पहले जागृत होनेवाली उषा (अ-पात्) पैरोंसे रहित होनेपर भी (एति) सर्वत्र संचार करती है (वां तत् कः चिकेत) तुम दोनोंके उस सामर्थ्यको कौन जानता है । (गर्भः) तुम दोनोंका गर्भ अर्थात् बच्चा सूर्य (अस्य भारं भरति) संसारके पालनपोषणरूप भारको ढोता है, (ऋतं पिपर्ति) सत्यको परिपूर्ण करता है और (अनृतं नि तारीत्) असत्यका नाश करता है ॥ ३ ॥

१ पद्वतीनां प्रथमा अपात् एति-- मनुष्योंमें प्रथम जागृत होनेवाली उषा पैरोंसे रहित होने पर भी सब जगह संचार करती है

२ गर्भः अस्य भारं भरति-- गर्भ रूप सूर्य इस जगत्का पालन पोषण करता है ।

३ मित्र-वरुण-दिन रात " अहोरात्रे वै मित्रावरुणौ " (तै. सं. २।४।१०।१)

भावार्थ-- ये दोनों मित्रावरुण अत्यन्त पुष्ट हैं और सदा उत्तमोत्तम वस्त्र पहनते हैं । ये दोनों सदा सत्यको प्रोत्साहन देते हैं और असत्य या अनृतका नाश करते हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी हृष्टपुष्ट होकर उत्तमोत्तम वस्त्र पहनें और सदा सत्यके मार्ग पर चलते हुए असत्यवादियोंका नाश करें ॥ १ ॥

मित्र और वरुण इन दोनोंमेंसे अकेला देव भी बहुत बुद्धिमान् और वीर है, वह सभी शस्त्रोंको धारण करनेवाले शत्रुओं को भी आसानीसे मार देता है । जब अकेला देव ही इतना शक्तिशाली है, तो दोनों जब मिल जाते हैं, तब तो उनकी शक्तिका अन्दाजा भी लगाना कठिन हो जाता है । ऐसे शक्तिशाली इन दोनों देवोंकी जो निंदा करता है, वह भले ही पहले कितना भी सामर्थ्यवान् हो, बादमें जाकर शक्तिहीन होकर नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

१६२० प्रयन्तमित् परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
१६२१ अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥
१६२२ आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन् त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६२०] (अनवपृग्णा वितता वसानं) चारों ओर फैलनेवाले अत्यन्त विस्तृत तेजोंको धारण करनेवाले, (मित्रस्य वरुणस्य प्रियं धाम) मित्र और वरुणके प्रिय स्थान (कनीनां जारं) सुन्दर रूपवाली उषाओंको नष्ट करनेवाले सूर्यको (परि प्रयन्तं इत् पश्यामसि) चारों तरफ सदा चलते हुए ही देखते हैं, (न उपनिपद्यमानं) उसे कभी बैठा हुआ नहीं देखते ॥ ४ ॥

[१६२१] (अनश्वः अनभीशुः) घोडे और लगाम आदिसे रहित होनेपर भी यह सूर्य (अर्वा) शीघ्र गतिसे जाता है। (जातः) उदय होनेके बाद (कनिक्रदत्) गर्जना करता हुआ (ऊर्ध्वसानुः पतयत्) सभी उच्च शिखरोंपर अपनी किरणें फेंकता है । (मित्रे वरुणे धाम गृणन्तः) मित्र और वरुणके तेजकी प्रशंसा करते हुए (युवानः) तरुण उपासक इस सूर्यके लिए (अचित्तं ब्रह्म जुजुषुः) अत्यन्त गंभीर स्तोत्रोंको करते हैं ॥ ५ ॥

[१६२२] (ब्रह्मप्रियं) उपासना प्रिय (मामतेयं) अत्यधिक ममतावाले मनुष्यको (धेनवः) गायें (अवन्तीः) सबकी रक्षा करती हुई (सस्मिन् ऊधन्) अपने सभी थनोंसे (आ पीपयन्) पुष्ट करें । (वयुनानि विद्वान्) सभी मार्गोंको जाननेवाला ज्ञानी (आसा पित्वः भिक्षेत) अपने मुंहसे तुमसे खाने पीनेके पदार्थ मांगे । (आ विवासन् अदितिं उरुष्येत्) तुम्हारी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर करे ॥ ६ ॥

१ मामतेयं धेनवः अस्मिन् ऊधन् आ पीपयन्— गायोंसे अत्यधिक ममता या प्रेम रखनेवालेको गायें अपने सभी थनोंसे दूध देकर पुष्ट करती हैं ।

२ आ विवासन् अदितिं उरुष्येत्— मित्रावरुणकी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर कर सकता है।

भावार्थ— मित्र और वरुण ये क्रमशः दिन और रात हैं। इन्हींकि सामर्थ्यसे उषा सर्वप्रथम आती है और पैरोंसे रहित होकर भी सब जगह घूमती है । यह सब दिन और रातका सामर्थ्य है । पर इस तथ्यको सब नहीं जान पाते । इन्हींका गर्भरूप अर्थात् दिन और रातके संयोगसे उत्पन्न हुआ हुआ शिशुरूप सूर्य जगत्का पालनपोषण करता है । सूर्य इस जगत्की आत्मा है । उसीके आधार पर वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं और उससे जगत्का पोषण होता है । वह सूर्य असत्यरूप अन्धकारका नाश करके सत्यरूप प्रकाशको फैलाता है ॥ ३ ॥

सूर्य सुन्दर रूपवाली उषाओंका जार है अर्थात् सूर्यके उदय होते ही उषायें नष्ट हो जाती हैं, ऐसा यह तेजस्वी सूर्य सदा चलता रहता है, कभी बैठता नहीं । यह सूर्य चूंकि सदा पुरुषार्थ करता रहता है, अतः वह सदा तेजसे युक्त रहता है और उसका तेज चारों ओर फैला हुआ होता है । इसी तरह जो मनुष्य सदा पुरुषार्थ करेगा, कभी आलसी होकर बैठेगा नहीं, वह तेजस्वी होगा और उसका यश चारों ओर फैलेगा ॥ ४ ॥

इस सूर्यके पास न घोडे हैं, और न उनको नियंत्रणमें रखनेके लिए उसके पास लगाम ही हैं, पर फिर भी अपने प्रयत्नसे वह सर्वत्र संचार तीव्रगतिसे करता है, इसीलिए वह सर्वत्र प्रशंसित होता है । इसी तरह जो मनुष्य साधनोंकी भी परवाह न करते हुए उनके अभावमें भी अपने प्रयत्नोंके द्वारा अपने लक्ष्यकी तरफ बढता चला जाता है, वह सर्वत्र प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

१६२३ आ वां मित्रावरुणा हव्यजुंष्टिं नमसा देवावर्वसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥

[१५३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६२४ यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद् वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥

१६२५ प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्ति-रयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद् वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥

अर्थ— [१६२३] हे (देवौ मित्रावरुणा) तेजस्वी मित्र और वरुण ! मैं (नमसा अवसा) नमस्कारों एवं स्तोत्रोंसे (वां) तुम दोनोंको (ववृत्यां) अपनी ओर झुकाता हूँ । (अस्माकं हव्यजुष्टिं ब्रह्म) हमारे हविसे युक्त स्तोत्र (पृतनासु सह्या) युद्धोंमें हमें विजय प्राप्त करावें । (दिव्या वृष्टिः अस्माकं सुपारा) दिव्य बरसात हमें अकाल और दारिद्र्यसे पार करे ॥ ७ ॥

[१५३]

[१६२४] (घृतस्नू सजोषा मित्रावरुणौ) अत्यन्त तेजस्वी एवं परस्पर प्रीतिसे रहनेवाले मित्र और वरुण देवो ! (यत्) चूंकि (वां) तुम्हारे लिए (अस्मे अध्वर्यवः) हमारे अध्वर्यु (धीतिभिः भरन्ति) स्तोत्र कहते हैं, (अध) इसलिए हम भी (महः वां) महान् तुम दोनोंकी (हव्येभिः नमोभिः) प्रशंसनीय स्तोत्रोंके द्वारा (यजामहे) पूजा करते हैं ॥ १ ॥

[१६२५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! मैं (वां प्रस्तुतिः) तुम दोनोंकी स्तुति करता हूँ, (सुवृक्तिः) बोलनेमें प्रवीण मैं (धाम न) घरके समान (प्रयुक्तिः अयामि) तुम्हारा ध्यान करता हूँ । (वृषणा) हे बलवान् मित्र वरुण ! (इयक्षन् सूरिः होता) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला विद्वान् होता, (यत् वां विदथेषु अनक्ति) चूंकि तुम दोनोंकी यज्ञोंमें स्तुति करता है, इसलिए (वां सुम्नं) वह तुम दोनोंसे सुख मांगता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य अपनी गायोंसे अत्यधिक प्रेम करता है, उसे गायें भी अपने दूधसे पुष्ट करती हैं । गायोंमें भी प्रेमकी भावना होती है । दूध दुहनेके समय यदि गायसे प्रेमपूर्वक व्यवहार किया जाए, तो वह ज्यादा दूध देती है । देवोंकी उपासना एक उत्तम साधन है । इनकी उपासना द्वारा मृत्युको भी दूर किया जा सकता है ॥ ६ ॥

हमारे विनम्र भावसे किए गए स्तोत्रोंको सुनकर ये मित्र और वरुण हमारे पास आवें । तथा हमारी प्रार्थनाओंसे प्रेरित होकर हमें संकटोंसे बचावें, तथा पानी बरसाकर हमें अकाल एवं दारिद्र्यसे पार करें ॥ ७ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी और परस्पर प्रेमसे रहते हैं । इसलिए सब इनकी पूजा करते हैं ॥ १ ॥

जिस तरह गृहस्वामी अपने घरकी देखभाल बड़े ही ध्यानसे करता है, उसी प्रकार विद्वान् मनुष्य मित्र और वरुणकी स्तुति बड़े ध्यानसे करता है । इस मित्र और वरुणका तेज बड़ा ही सुखकारक है ॥ २ ॥

१६२६ पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद् वां विदथे सपर्यन् त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥

१६२७ उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन् वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ ॥

[१५४]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१६२८ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥

अर्थ— [१६२६] (यत्) जब (रातहव्यः मानुषः होता) हविको देनेवाला मननशील होता (सपर्यन्) तुम्हारी पूजा करता हुआ (विदथे वां हिनोति) यज्ञमें तुम्हें आहुति देता है, तब हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! उस (ऋताय हविर्दे जनाय) सत्य मार्गपर चलनेवाले तथा हविप्रदान करनेवाले मनुष्यको (अदितिः धेनुः पीपाय) न काटे जाने योग्य गाय तृप्त करे ॥ ३ ॥

१ ऋताय हविर्दे जनाय अदितिः धेनुः पीपाय— सत्यमार्गपर चलनेवाले तथा हवि देनेवाले मनुष्यको न काटे जाने योग्य गायें तृप्त करती हैं ।

[१६२७] हे मित्र वरुण ! (वां) तुम दोनों (अन्धः देवीः गावः आपः च) अन्न, दिव्य गायें और जल (सभी (मद्यासु विक्षु) आनन्दित प्रजाओंमें सबको (पीपयन्त) तृप्त करें, (उत) और (नः अस्य पूर्व्यः पतिः) हमारे इस यज्ञका प्राचीन स्वामी (दन्) हमें ऐश्वर्य प्रदान करे । तुम दोनों (वीतं) यज्ञीय अन्नका भक्षण करो, (उस्रियायाः पयसः पातं) गायका दूध पीओ ॥ ४ ॥

[१५४]

[१६२८] (यः पार्थिवानि रजांसि वि ममे) जिसने पृथ्वीके लोकोंको बनाया, तथा (उरुगायः यः) बहुतोंसे प्रशंसित जिस देवने (त्रेधा विचक्रमाणः) तीन प्रकारसे चलते हुए (उत्तरं सधस्थं) अत्यन्त विस्तृत द्युलोकको (अस्कभायत्) थाम रखा है, उस (विष्णोः) व्यापक देवके (वीर्याणि कं प्रवोचं) पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— जब हविको देनेवाला मननशील मनुष्य इन मित्र और वरुणको यज्ञमें हवि प्रदान करता है, तब सत्यशील और हवि प्रदान करनेवालेको गायें हर तरहका सुख प्रदान करती हैं । अर्थात् यज्ञ करनेवालेके पास अनेकों गायें रहती हैं, जो उसे अपने दूध आदि देकर हर तरहसे तृप्त करती हैं ॥ ३ ॥

ये मित्र वरुण, गायें, अन्न और जल ये सभी मनुष्योंका हित और कल्याण करें, उन्हें आनन्दित करें । अग्नि भी ऐश्वर्य प्रदान करे । फिर सभी यज्ञशील मनुष्य ऐश्वर्यशाली होकर देवोंको हवि प्रदान करें ॥ ४ ॥

विष्णु यह सूर्य देव है । यही सूर्य इस पृथ्वीपरके अनेक लोकोंको बनाता है, प्रकट करता है । इसी सूर्यके कारण द्युलोक इतना विस्तृत होनेपर भी स्थिर है । सारे लोक इसी विष्णुपर आधारित हैं और इसीके कारण टिके हुए हैं । ऐसे पराक्रमोंसे युक्त यह विष्णु है । इसके पराक्रमोंका वर्णन एवं उनका अनुकरण करना चाहिए ॥ १ ॥

×

१६२९ प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥

१६३० प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित् पदेभिः ॥ ३ ॥

१६३१ यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१६२९] (यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु) जिसके अत्यन्त विस्तृत तीन कदमोंमें (विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति) सारे भुवन रहते हैं, (तत् विष्णुः) वह व्यापक देव (वीर्येण) अपने पराक्रमके कारण (कुचरः गिरिष्ठाः भीमः मृगः न) हिंसादि बुरे कर्म करनेवाले, गुफाओंमें रहनेवाले भयंकर सिंहके समान (प्रस्तुवते) सब जगह स्तुत होता है ॥ २ ॥

१ यस्य विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति, तत् विष्णुः वीर्येण स्तवते— जिसके आधार पर सारे भुवन रहते हैं, वह विष्णु अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र प्रशंसित होता है ।

[१६३०] (यः एकः) जिसने अकेले ही (त्रिभिः पदेभिः इत्) केवल तीन कदमोंसे (इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं) इस लम्बे और चौडे द्युलोकको (विममे) नापा, उस (गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे) मेघोंमें रहनेवाले, बहुतोंसे प्रशंसित, जल बरसानेवाले विष्णुके पास (शूषं मन्म एतु) हमारे बलसे युक्त स्तोत्र पहुंचे ॥ ३ ॥

१ एकः इत् इदं दीर्घं आयतं सधस्थं वि ममे— यह विष्णु अकेला ही इस लम्बे और चौडे द्युलोकको नाप देता है ॥ ३ ॥

[१६३१] (यस्य) जिस विष्णुके (मधुना पूर्णा त्री पदानि) अमृतसे भरपूर तीन कदम (अक्षीयमाणा कभी नष्ट न होते हुए (स्वधया मदन्ति) अपनी धारण शक्तिसे युक्त होकर आनन्दित होते हैं, (यः) जो (त्रिधातु तीन धातुओं, (पृथिवीं उत द्यां) पृथिवी और द्युलोक तथा (विश्वा भुवनानि एकः दाधार) सम्पूर्ण भुवनोंको अकेला ही धारण करता है ॥ ४ ॥

१ मधुना पूर्णा पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति— इस विष्णुके अमृतसे भरपूर कदम कभी नष्ट न होते हुए अपनी धारणशक्तिसे हर्षित होते हैं ।

भावार्थ— यह व्यापक देव अपने तीन कदमोंसे सारे भुवनोंको व्याप लेता है । उदयके समय वामन रूप विष्णु भगवान् अर्थात् सूर्य अपनी किरणोंसे द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकोंको व्याप लेता है अर्थात् प्रकाशित कर देता है । इसः सूर्यके आधार पर सारा विश्व रहता है । सारा विश्व सूर्यसे ही प्राणशक्ति प्राप्त करता है, इसलिए सूर्यको विश्वका आत्मा कहा है । यह अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र इसी प्रकार प्रशंसित होता है, जिस प्रकार गुफाओंमें रहनेवाला भयंकर सिंह ॥ २ ॥

उदय होते ही सूर्य इस लम्बे चौडे द्युलोकको अपने कदमोंसे नाप देता है अर्थात् अपनी किरणोंसे द्युलोकको प्रकाशित कर देता है । यह सूर्य बादलोंमें रह कर बादलोंमें छिपे हुए पानीको बरसाता है । इसलिए सब इस सूर्यकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

प्रातः, मध्याह्न और सायं ये सूर्यके तीन कदम हैं । इन कदमोंसे वह सर्वत्र संचार करता है । उसकी प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन और सायंकालीन किरणें अमृतसे भरपूर होती हैं । वह अपनी किरणोंसे मानों अमृत लुटाता चलता है । वह सूर्य सत्व, रज और तमो रूप तीन धातुओं, पृथिवी द्यु आदि लोकों और सारे विश्वोंको धारण करता है । सूर्यकी ये किरणें अपनी शक्तिसे सर्वत्र प्रसन्नता फैलाती हैं ॥ ४ ॥

१६३२ तद॑स्य प्रि॒यम॒भि पाथो॑ अश्यां॒ नरो॒ यत्र॑ देव॒यवो॒ मद॑न्ति ।
उ॒रु॒क्र॒मस्य॒ स हि बन्धु॑रि॒त्था विष्णोः॑ प॒दे प॑र॒मे मध्व॒ उत्सः॑ ॥ ५ ॥

१६३३ ता वां॒ वास्तू॑न्युश्मसि॒ गम॑ध्यै॒ यत्र॒ गावो॒ भूरि॑शृङ्गा अ॒यासः॑ ।
अत्राह॒ तदु॑रुगा॒यस्य॒ वृष्णः॑ प॒र॒मं प॒दमव॑ भाति॒ भूरि॑ ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६३२] (देवयवः नराः यत्र मदन्ति) देवोंके उपासक मनुष्य जहां जाकर आनन्दित होते हैं, ऐसे (अस्य) इस विष्णुके (तत् प्रियं पाथः अश्यां) उस प्रिय स्थानको प्राप्त करें। (इत्था) ऐसा यह विष्णु (उरुक्रमस्य बन्धुः) बहुत पराक्रम करनेवालेका भाई होता है, (विष्णोः परमे पदे) विष्णुके उस उत्तम स्थानमें (मध्वः उत्सः) अमृतका झरना बहता है ॥ ५ ॥

१ देवयवः नराः यत्र मदन्ति, अस्य तत् प्रियं पाथः अश्यां— देवत्वको प्राप्त करनेवाले मनुष्य जहां आनन्द करते हैं, विष्णुके उस प्रिय स्थानको हम भी प्राप्त करें।

२ उरुक्रमस्य बन्धुः— यह विष्णु पराक्रम करनेवाले उद्योगियोंका भाई अर्थात् सहायक होता है।

३ विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः— विष्णुके उस उत्तम स्थानमें अमृतका झरना बहता है।

[१६३३] हे दम्पती ! (वां) तुम दोनोंके (गमध्यै) चलने फिरने या निवासके लिए हम (ता वास्तूनि उश्मसि) ऐसे घर चाहते हैं, (यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः) जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य किरणें जा सकें। क्योंकि (अत्र अह) ऐसे ही घरोंमें (उरुगायस्य वृष्णः) अनेकों उपासकोंद्वारा प्रशंसित बलवान् विष्णुका (तत् परमं पदं) वह उत्तम स्थान (भूरि अवभाति) बहुत प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

१ वां गमध्यै ता वास्तूनि, यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः— हे दम्पती ! तुम्हारे निवासके लिए घर ऐसे हों, जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्य किरणें प्रविष्ट हो सकें अथवा घर ऐसे हों जहां उत्तम सींगोंवाली गायें रह सकें।

२ अत्र अह वृष्णः परमं पदं अवभाति— ऐसे ही उत्तम घरोंमें बलवान् विष्णुका वह श्रेष्ठ स्थान प्रकाशित होता है।

भावार्थ— दो लोक होते हैं सूर्यलोक और चन्द्रलोक। सूर्यलोकमें केवल वही जा सकते हैं जो देवत्वको पा लेते हैं। इसी लोकको मोक्ष कहते हैं। इस लोकको प्राप्त होनेवाला व्यक्ति मोक्षानन्द या ब्रह्मानन्दको प्राप्त करता है। चन्द्रलोक साधारण लोग जाते हैं और समय पर वे फिर संसारमें सुख दुःख भोगते हैं। अतः मनुष्योंको चाहिए कि वे प्रयत्न करके सूर्यलोकके मार्ग पर ही चलें, चन्द्रलोकके नहीं। जो इस प्रकार उद्योग करता है, उसकी सहायता विष्णु अर्थात् व्यापक देव स्वयं करते हैं। विष्णुलोकमें अमृतका कोष है, अतः ईश्वरकी कृपा और अपने उद्योगोंसे जो विष्णु लोकको प्राप्त कर लेता है, वह अमर हो जाता है। वह मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

मनुष्योंके रहनेके घर ऐसे विस्तृत और खुले हुए हों कि जहां सूर्यकी किरणें स्वच्छन्दतासे आ सकें। जहां सूर्यकी किरणें प्रविष्ट होती हैं, उस घरमें रहनेवालोंका स्वास्थ्य उत्तम रहता है, क्योंकि सूर्यकिरणोंमें रोग जन्तुओंको नष्ट कर स्वास्थ्यप्रदान करनेकी शक्ति रहती है। घरोंमें गायोंके रहनेका प्रबन्ध भी उत्तम हो। जिस घरमें गायें रहती हैं, उस घरके निवासी गोदुग्धघृत आदिके कारण हृष्टपुष्ट और स्वस्थ रहते हैं। इस प्रकार जिन घरोंमें सूर्यकी किरणें आ जा सकती हैं और गायें रहती हैं, वहांके लोग स्वस्थ एवं हृष्टपुष्ट होते हैं और प्रयत्नशील और उद्योगी होते हैं। ऐसी ही जगह व्यापक देव विराजते हैं ॥ ६ ॥

[१५५]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः, १-३ इन्द्राविष्णू । छन्दः- जगती ।)

१६३४ प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥

१६३५ त्वेषमित्था समरणं शिमीवतो-रिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥

१६३६ ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितु-र्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

[१५५]

अर्थ— [१६३४] (या) जो (अ-दाभ्या महः) शत्रुओंसे कभी न हारनेवाले तथा महान् इन्द्र और विष्णु (साधुना अर्वता इव) उत्तम घोडेके समान (पर्वतानां सानुनि तस्थतुः) पहाडोंकी चोटी पर रहते हैं। उनमें (धियायते महे शूराय विष्णवे) बुद्धियोंके तृप्त करनेवाले महान् शूरवीर विष्णुकी (वः) तुम (पान्तं अन्धसः अर्चत) पीने योग्य अन्नसे पूजा करो ॥ १ ॥

[१६३५] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्तुः कृशानोः) शत्रुओंके विनाशक अग्निकी (प्रतिधीयमानं असनां इत्) धारण करने योग्य ज्वालाको और अधिक (उरुष्यथः) विस्तृत करते हो, उन (शिमीवतोः वां) शक्तिशाली तुम दोनोंके (समरणं त्वेषं) सब जगह फैलनेवाले तेजको (सुतपा उरुष्यति) सोमरस पीनेवाला विस्तृत करता है ॥ २ ॥

[१६३६] (ताः) वे स्तुतियां (अस्य) इस विष्णुके (महि पौंस्यं वर्धन्ति) महान् सामर्थ्यको और ज्यादा बढाती हैं, तब वह विष्णु अपने सामर्थ्यको (रेतसे भुजे) शक्ति और भोगके लिए (मातरा नि नयति) द्यु और पृथ्वी रूप दो माताओंके बीचमें स्थापित करता है। जैसे (पुत्रः) पुत्र (पितुः परं अवरं तृतीयं नाम) अपने पिताके श्रेष्ठ, अधम और मध्यम गुणोंको धारण करता है, उसी तरह यह विष्णु अपने सभी तरहके सामर्थ्योंको (दिवः रोचने दधाति) द्युलोकके मण्डलमें स्थापित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— विष्णु- सूर्य और इन्द्र- बिजली ये दोनों अत्यन्त शक्तिशाली हैं। उत्तम घोडा जिस प्रकार पर्वतकी चोटीपर आसानीसे चढ जाता है, उसी प्रकार ये दोनों पर्वतकी चोटियोंपर आसानीसे चढ जाते हैं। सूर्योदय होनेके साथ ही सूर्यकी किरणें बहुत ऊंचे होनेके कारण पर्वतोंपर सबसे प्रथम पडती हैं और वर्षाकालमें बिजली भी पहाडोंपर अधिकतर गिरती है। इन दोनोंमें सूर्य अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली है ॥ १ ॥

इन्द्र और विष्णु दोनों देव अग्निके तेजको और अधिक तीव्र करते हैं। सूर्य और बिजली इन दोनोंमें अग्नितत्व प्रकृष्टरूपमें है। इसलिए सूर्य और बिजलीके रूपमें मानों अग्नि ही अपने रूपका विस्तार करता है। सोम यज्ञ करनेवाले मनुष्य यज्ञके द्वारा इन्द्र और विष्णुके तेजको बढाते हैं ॥ २ ॥

स्तुतियां जब सूर्यके पास पहुंचती हैं, तब इसका सामर्थ्य और भी बढ जाता है, तब यह अपने सामर्थ्यसे जल बरसाता है। जलसे अन्नादि उत्पन्न होते हैं, जिन्हें खाकर प्रजायें शक्तिशाली और प्रजोत्पादनमें समर्थ होती हैं। जिस तरह एक पुत्र अपने पिताके उत्तम, मध्यम और अधम अर्थात् सभी तरहके गुणोंको धारण करता है, उसी तरह द्युलोक भी इस विष्णुके सभी तरहके गुणोंको धारण करता है ॥ ३ ॥

१६३७ तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसी—नस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभि—रुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
१६३८ द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो ऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
१६३९ चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभि—श्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभि—र्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[१६३७] (यः) जिस विष्णुने (उरुगायाय जीवसे) अपने मार्गको विस्तृत करनेके लिए तथा प्राणशक्ति प्रदान करनेके लिए (उरु पार्थिवानि) सभी विस्तीर्ण लोकोंको (त्रिभिः विगामभिः इत्) तीन ही कदमोंसे (क्रमिष्ट) नाप दिया, ऐसे (त्रातुः अवृकस्य मीळ्हुषः इनस्य अस्य) संरक्षण करनेवाले, शत्रुओंसे रहित एवं सुख देनेवाले तथा सबके स्वामी इस विष्णुके (तत् तत् पौंस्यं गृणीमसि) उस उस पराक्रमका वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

[१६३८] (मर्त्यः) मनुष्य (स्वर्दृशः अस्य द्वे इत् क्रमणे) तेजस्वी दृष्टिवाले इस विष्णुके दो पैरको ही (अभिख्याय) चारों ओर प्रशंसा करके उसका (भुरण्यति) ज्ञान प्राप्त कर सकता है । पर (अस्य तृतीयं) इसके तीसरे कदमको (न किः आ दधर्षति) कोई भी हरा नहीं सकता, यहांतक कि (पतयन्तः पतत्रिणः वयः चन) आकाशमें उडनेवाले सुन्दर पंखोंवाले पक्षी भी नहीं हरा सकते ॥ ५ ॥

[१६३९] यह विष्णु (व्यतीन् चतुर्भिः साकं नवतिं च) बीतनेवाले चार सहित नब्बे अर्थात् चौरानवे कालके अवयवोंको (नामभिः) अपनी प्रेरणासे (वृत्तं चक्रं न) गोल चक्रके समान (अवीविपत्) घुमाता है । तब (बृहत् शरीरः) बडे शरीरवाला (युवा अकुमारः) सदा तरुण होनेके कारण कभी भी कुमार न होनेवाला यह विष्णु (विमिमानः) कालको नापता हुआ (ऋक्वभिः) स्तुतियोंसे आकर्षित होकर (आहवं प्रति एति) यज्ञकी तरफ आता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह विष्णु सबका रक्षक है, शत्रुसे रहित है और सब पदार्थोंका स्वामी है तथा सबको सुख देनेवाला है । यह उदय होते ही अपनी किरणोंसे सब लोकोंको नाप देता है अर्थात् प्रकाशित कर देता है । ऐसे विष्णुकी प्रशंसा सब करते हैं ॥ ४ ॥

इस विष्णु- सूर्यके तीन कदम हैं, जो क्रमशः द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोकमें रहते हैं । मनुष्य उनमें पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकमें रहनेवाले कदमोंका तो वर्णन कर सकता है अर्थात् पृथ्वी और अन्तरिक्षमें रहनेवाले प्रकाशका तो थोडा बहुत वर्णन कर सकता है, पर द्युलोकमें रहनेवाले प्रकाशके विषयमें वह कुछ नहीं जानता । द्युलोकमें सूर्य इतना तेजस्वी है कि उसके तेजके अन्तका पता लगाना मनुष्यके लिए असंभव है । यहां तक कि सुन्दर पंखवाले पक्षी भी उसको जान नहीं सकते ॥ ५ ॥

कालके चौरानबे (९४) अवयव होते हैं, जो इस प्रकार हैं— १ संवत्सर, २ अयन (उत्तरायण– दक्षिणायन) ५ ऋतु, १२ मास, २४ पक्ष (शुक्ल एवं कृष्ण), ३० दिनरात, ८ याम, १२ मेषवृश्चिकादि राशियां = ९४ । इन सभी अवयवोंको सूर्य घुमाता है । जिस प्रकार गोल चक्र घूमता रहता है, उसी तरह सूर्यकी प्रेरणासे ये सभी कालावयव स्वयं घूमते रहते हैं । इसप्रकार यह सूर्य कालका नियामक है । यह सूर्य सदा तरुण रहता है, यद्यपि यह समयका नियन्ता है, पर समयका प्रभाव इसपर कभी नहीं पडता । इसलिए इसकी शक्ति न कभी क्षीण हुई थी और न होगी । ऐसा यह सूर्य ऋचाओं द्वारा स्तुत होकर यज्ञको प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

[१५६]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- विष्णुः । छन्दः- जगती ।)

१६४० भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुति- विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥

१६४१ यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥

१६४२ तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥

[१५६]

अर्थ— [१६४०] (विष्णो) हे विष्णो ! (घृतासुतिः) जल उत्पन्न करनेवाला, (विभूतद्युम्नः) अत्यन्त तेजस्वी (एवयाः सप्रथाः) सर्वत्र गति करनेवाला तथा अत्यन्त विस्तृत तू (मित्रः न) मित्रके समान (शेव्यः भव) हमें सुख देनेवाला हो। हे विष्णो ! (अध) इसके बाद (विदुषा ते स्तोमः अर्ध्यः) विद्वान् मनुष्यके द्वारा की गई तेरी स्तुति प्रशंसनीय है । (हविष्मता यज्ञश्च राध्यः) हविसे युक्त मनुष्यके द्वारा किया गया यज्ञ भी प्रशंसनीय है ॥ १ ॥

[१६४१] (यः) जो मनुष्य (पूर्व्याय) अत्यन्त प्राचीन (वेधसे) ज्ञानी (नवीयसे) स्तुतिके योग्य (सुमत् जानये) उत्तम बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले (विष्णवे) विष्णुके लिए (यः ददाशति) जो हवि देना चाहता है (यः) जो (महतः अस्य) महान् इस विष्णुके (महि जातं) प्रशंसनीय जन्मका (ब्रवत्) वर्णन करता है, (सः इत्) वही (श्रवोभिः युज्यं चित् अभि असत्) यशसे परिपूर्ण उस स्थानको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[१६४२] हे (स्तोतारः) स्तुति करनेवालो ! (ऋतस्य गर्भं) यज्ञके केन्द्र (पूर्व्यं) अत्यन्त प्राचीन (तं) उस विष्णुको (यथा विद) जैसा भी तुम जानते हो, उसी रीतिसे (जनुषा पिपर्तन) स्तुतियोंसे तृप्त करो । (अस्य नाम जानन्तः चित्) इसके यश या पराक्रमको जानते हुए तुम (विवक्तन) उसका वर्णन करो। हे (विष्णो) व्यापक देव ! (महः ते) महान् तुम्हारी (सुमतिं भजामहे) उत्तम बुद्धिको हम प्राप्त करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह सूर्य जलको उत्पन्न करनेवाला है । पृथ्वीपरके जलोंको सूर्य अपनी किरणोंसे भाप बनाकर उनको बादलके रूपमें बदल देता है, इसप्रकार बादल बरसकर फिर पानी बन जाते हैं । इसीलिए सूर्यको जलको उत्पन्न करनेवाला कहा है । वह सूर्य मित्र है, क्योंकि वह लोगोंका हित करता है । अतः वह हमारे लिए सुख देनेवाला हो ॥ १ ॥

यह सूर्य अनन्तकालसे इसी प्रकार जगको प्रकाश देता आ रहा है, पर फिर भी सदा तरुण जैसा नवीन रहता है । इतने समयके पश्चात् भी वह वृद्ध नहीं होता । यह उत्तम बुद्धिको प्राप्त कराता है । जो इस सूर्यका निरन्तर ध्यान करता है, वह यशस्वी होकर उत्तम स्थानको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

हे स्तोताओ ! तुम जो कुछ भी इस सूर्यके बारेमें जानते हो, उतना सब वर्णन इस सूर्यका तुम करो । इसने जो भी पराक्रम आजतक किए हैं, उनका भी वर्णन तुम करो । हे व्यापक देव ! हम तुम्हारी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करें ॥ ३ ॥

१६४३ तम॑स्य राजा॒ वरु॑ण॒स्तम॒श्विना॒ क्रतुं॑ सचन्त॒ मारु॑तस्य वे॒धसः॑ ।
दा॒धार॒ दक्ष॑मुत्त॒मम॑ह॒र्विदं॑ व्र॒जं च॒ विष्णुः॒ सखि॑वाँ अपोर्णु॒ते ॥ ४ ॥

१६४४ आ यो वि॒वाय॑ स॒चथा॑य॒ दैव्य॒ इन्द्रा॑य॒ विष्णुः॑ सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः ।
वे॒धा अ॑जिन्वत् त्रिषध॒स्थ आर्य॑मृ॒तस्य॑ भा॒गे यज॑मान॒माभ॑जत् ॥ ५ ॥

[१५७]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती; ५-६ त्रिष्टुप् ।)

१६४५ अबो॑ध्य॒ग्निर्ज्म उदे॑ति॒ सूर्यो॒ व्यु१॒॑षाश्च॒न्द्रा म॒ह्यावो॑ अ॒र्चिषा॑ ।
आयु॑क्षाताम॒श्विना॒ यात॑वे॒ रथं॒ प्रासा॑वीद् दे॒वः स॑वि॒ता जग॒त् पृथ॑क् ॥ १ ॥

अर्थ— [१६४३] (मारुतस्य वेधसः अस्य) देवोंके साथ रहनेवाले तथा ज्ञानयुक्त इस विष्णुके (तं क्रतुं) उस कर्मके अनुसार (राजा वरुणः) तेजस्वी वरुण और (अश्विना सचन्ते) अश्विनी देव चलते हैं। (सखिवान् विष्णुः) मित्रोंसे युक्त विष्णु (अहर्विदं उत्तमं दक्षं) दिनको प्रकट करनेवाले उत्तम बलको (दाधार) धारण करता है, (व्रजं च अप ऊर्णुते) और मेघोंके आवरणको छिन्न भिन्न कर देता है ॥ ४ ॥

[१६४४] (यः दैव्यः) जो द्युलोकमें रहनेवाला तेजस्वी (सुकृत्तरः) उत्तम कर्म करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ (विष्णुः) विष्णु (सुकृते इन्द्राय सचथाय) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रकी सहायता करनेके लिए (आ विवाय) आगे आता है। (त्रिषधस्थः वेधाः) तीनों लोकोंमें रहनेवाला बुद्धिमान् यह विष्णु (आर्यं अजिन्वत्) श्रेष्ठ पुरुषको तृप्त करता है और (ऋतस्य भागे यजमानं आ भजत्) यज्ञके समय पर यज्ञ करनेवालेके पास आता है ॥ ५ ॥

१ वेधाः आर्यं अजिन्वत्— बुद्धिमान् विष्णु श्रेष्ठ पुरुषको हर तरहसे उत्तम बनाता है।

[१५७]

[१६४५] (अग्निः ज्मः अबोधि) अग्नि भूमिपर जागृत हो चुका है, (सूर्यः उदेति) सूर्य उदय हो चुका है। (मही उषाः) बडी उषा (अर्चिषा चन्द्रा वि आवः) अपने तेजसे लोगोंको आल्हाद देनेवाली होकर फैल चुकी है, इस समय अश्विदेवोंने (यातवे) यात्रा करनेके लिए अपने (रथं आयुक्षातां) रथको तैयार किया है तब (सविता देवः) सूर्य देवने (जगत् पृथक्) संसारको अलग अलग ढंगसे (प्र असावीत्) उत्पन्न किया है। अर्थात् सब संसारको जाग्रत करके कर्मोंमें लगाया है ॥ १ ॥

भावार्थ— तेजस्वी वरुण और अश्विनी आदि सभी देव इस विष्णुके द्वारा बताये गए मार्गसे चलते और उसके बतायेके अनुसार कर्म करते हैं अर्थात् सभी देव इसी विष्णुके अधीन होकर अपना अपना कार्य करते हैं। यह विष्णु अपनी शक्तिसे दिनको प्रकट करता है और मेघोंको छिन्न भिन्न करके पानी बरसाता है ॥ ४ ॥

द्युलोकमें रहनेवाला यह तेजस्वी सूर्य वर्षाके समय बिजलीकी सहायता करता है। यह सूर्य ही बिजलीको प्रेरित करके पानी बरसाता है। यह सूर्य पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु तीनों लोकोंमें रहकर प्रकाशित करता है। यह विष्णु श्रेष्ठ पुरुषकी और यज्ञ करनेवाले पुरुषकी हर तरहसे सहायता और रक्षा करता है ॥ ५ ॥

अग्नि प्रज्वलित हुई है, उषा अपने तेजके साथ फैल गयी है, अश्विदेवोंने अपना रथ तैयार किया है, सूर्यने उदय होकर सब लोगोंको अपने अपने कार्योंमें लगा दिया है। रात्रीके समय अग्निको जलाते रखना चाहिए, उषःकालमें उजाला होगा, अश्विदेव उदित होंगे, पश्चात् सूर्य उदय होगा तब सभी लोगोंको अपने कार्योंमें लगना चाहिए ॥ १ ॥

१६४६ यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
१६४७ अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
१६४८ आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
१६४९ युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६४६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत् वृषणं रथं युञ्जाथे) चूँकि तुम दोनों अपने बलवान् रथको तैयार कर रहे हो, इसलिए हम तुमसे विनती करते हैं कि, (मधुना घृतेन) मीठे शहदसे तथा घीसे (नः क्षत्रं उक्षतं) हमारी क्षात्रसेनाको पुष्ट करो, तथा (पृतनासु अस्माकं ब्रह्म जिन्वतं) युद्धोंमें हमारे ज्ञानको यशसे युक्त करो (शूरसाता वयं) जहां शूर लोग धनके लिए युद्ध करते हैं उस युद्धमें हम (धना भजेमहि) धनोंको प्राप्त करें ॥ २ ॥

[१६४७] (त्रिचक्रः) तीन पहियोंसे युक्त (जीराश्वः सुष्टुतः) वेगवान् घोडोंसे युक्त, भलीभाँति प्रशंसित (अश्विनोः रथः) अश्विदेवोंका रथ (मधुवाहनः अर्वाङ् यातु) मिठाससे पूर्ण अन्नको ढोता हुआ हमारे पास आवे, (त्रिवन्धुरः विश्वसौभगः) वह तीन बैठकोंसे युक्त और सभी सौंदर्योंसे युक्त (मघवा) ऐश्वर्यसम्पन्न रथ (नः द्विपदे चतुष्पदे) हमारे मानवों तथा चौपायोंको (शं आवक्षत्) सुख पहुँचाये ॥ ३ ॥

[१६४८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं नः ऊर्जं आवहतं) तुम दोनों हमारे लिए अन्न ले आओ, (नः मधुमत्या कशया मिमिक्षतं) हमें शहदसे पूर्ण पात्रमें संयुक्त करो; (आयुः प्रतारिष्टं) हमारी आयुको सुदीर्घ बनाओ, (रपांसि नि मृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया मिटा दो, (द्वेषः सेधतं) द्वेषको हटा दो और (सचाभुवा भवतं) हमारे सहायक बनो ॥ ४ ॥

[१६४९] हे (वृषणौ) बलवान् अश्विदेवो ! (जगतीषु युवं ह) जगतियोंमें, या गौओंमें तुम दोनोंही (गर्भं धत्थः) गर्भको रख देते हो तथा (विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) सारे प्राणियोंके भीतर (युवं) तुम दोनों गर्भ स्थापित करते हो, (अग्निं च अपः च) अग्निको तथा जलोंको और (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंको (युवं ऐरयेथां) तुम दोनों प्रेरित करते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुमने शहद लानेके लिये अपना बलवान् रथ जोड कर रखा है, इसलिए हमारी प्रार्थना है कि शहद और घीसे हमारे क्षत्रियोंको बलवान् बनाओ, युद्धोंमें हमारा ज्ञान यशस्वी हो और जहां शूर ही लडते हैं, उस युद्धमें हमें विजय प्राप्त हो । क्षत्रियोंको शहद और घी पर्याप्त मात्रामें मिले, उसके सेवनसे वे पुष्ट और बलिष्ठ बनें, वे युद्धोंमें विजयी हों और बहुत धन प्राप्त करें ॥ २ ॥

तीन पहियोंसे युक्त, वेगवान् घोडोंसे जोता हुआ, अश्विदेवोंका रथ शहद लेकर हमारे पास आवे । तीन आसनोंवाला अतिसुन्दर तथा ऐश्वर्यवान् रथ हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंको सुख देवे ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो ! हमें विपुल अन्न दो, शहदसे भरे पात्र हमें दो, हमारी आयु दीर्घ करो, हमारे दोष दूर करो, द्वेषभावको दूर करो और सदा हमारे सहायक बनो । विपुल अन्न तथा शहद सेवन करके आयुको बढाना चाहिए, दोषोंको दूर करके द्वेषभावको मिटाकर परस्परकी सहायता करनी चाहिए ॥ ४ ॥

गौओंमें तथा सब प्राणियोंकी स्त्रियोंमें गर्भका पालन पोषण करना अश्विदेवोंका कार्य है । अग्नि, जल और वनस्पतियोंको मनुष्योंके लिये ही अश्विदेव प्रेरित करते हैं ॥ ५ ॥

१६५० युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभि- रथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान् मनसा ददाश ॥ ६ ॥

[१५८]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।)

१६५१ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद् रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत् सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥

१६५२ को वां दाशत् सुमतये चिदस्यै वसू यद् धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥

अर्थ— [१६५०] (भेषजेभिः युवं) औषधियोंको साथ रखनेके कारण तुम दोनों ही (भिषजा ह स्थः) निश्चय पूर्वक वैद्य हो, (अथ) उसी प्रकार (राथ्येभिः) रथको जोतनेयोग्य घोडोंके कारण (रथ्याः ह स्थः) रथी भी हो, (अथ) और तुम स्वयं हे (उग्रा) उग्रस्वरूपवाले अश्विदेवो ! (यः) जो (हविष्मान्) हवि आदि चीजें (मनसा वां ददाश) मनःपूर्वक तुम दोनोंको अर्पण करता है, उसे तुम (क्षत्रं अधि धत्थः) क्षत्रियोचित वीरता देते हो ॥ ६ ॥

[१५८]

[१६५१] हे (वृषणौ दस्रा) बलवान् शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (वसू रुद्रा) तुम दोनों बसानेवाले, शत्रुओंको रुलानेहारे, (पुरुमन्तू वृधन्ता) बहुत ज्ञानवाले, बढते हुए और (अभिष्टौ) वाञ्छनीय दान (नः दशस्यतं) हमें दो, (यद्) क्योंकि (औचथ्यः रेक्णः वां) उचथ्यका पुत्र धनके लिए तुम दोनोंसे जब प्रार्थना करता है, (यत्) तब (अकवाभिः ऊती) अनिन्दनीय संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ (प्र सस्राथे ह) तुम दोनों दौडते हुए आते हो ॥ १ ॥

[१६५२] हे (वसू) बसानेहारे अश्विदेवो ! (यत्) चूँकि (गोः पदे) इस भूमिपर (नमसा) नमस्कार करनेपर (धेथे) तुम दोनों दान देते हो, (अस्यै वां सुमतये चित्) इस तुम्हारी अच्छी बुद्धिको प्रसन्न करनेके लिए (कः दाशत्) कौन और क्या देनेमें समर्थ होगा ? (कामप्रेण इव मनसा चरन्ता) इच्छा पूर्ण करनेकी अभिलाषा मनमें रख कर संचार करनेवाले तुम दोनों (अस्मे) हमें (रेवतीः पुरन्धीः) धनके साथ गौवें (जिगृतं) दे दो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम दोनों अपने पास उत्तम औषधियां रखनेके कारण उत्तम वैद्य हो, उत्तम घोडे अपने रथको जोतनेके कारण उत्तम रथी हो, तुम स्वयं उग्रवीर हो, अतः क्षत्रियोचित सहायता करते हो, जो तुम्हें मनःपूर्वक हवि अर्पण करता है उसकी तुम सहायता करते हो। अपने पास उत्तम औषधियाँ रखकर वैद्य रोगियोंकी उत्तम चिकित्सा करें। वीरता प्राप्त करके अन्योंकी रक्षा करनी चाहिए। अपने अनुयायियोंकी सहायता करनी चाहिए ॥ ६ ॥

अश्विदेव बलवान्, शत्रुका नाश करनेवाले, सबको यथायोग्य बसानेवाले, दुष्टोंको रुलानेवाले, ज्ञानी और बडे हैं। वे हमें यथेष्ट दान दें। उचथ्यके पुत्र दीर्घतमाने जब धनके लिये उनसे प्रार्थना की तब वे दौडते हुए आये थे ॥ १ ॥

हे सबको ठीक तरह बसानेवाले अश्विदेवो ! इस भूमिपर जो तुम्हें नमन करता है उसको तुम दान देते हो, ऐसी तुम्हारी उत्तम बुद्धि है। इस तुम्हारी सुबुद्धिको और अधिक प्रसन्न करनेके लिये भला कौन और अधिक क्या कर सकता है ? तुम तो सबकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए ही सर्वत्र संचार करते हो, इसलिए हमें धनके साथ पोषक दुधारू गौवें दो ॥ २ ॥

१६५३ युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥

१६५४ उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥ ४ ॥

१६५५ न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६५३] (वां पेरुः) तुम दोनोंका वह पार ले चलनेवाला रथ (यत्) जब (तौग्र्याय युक्तः ह) तुग्रके पुत्रको बचानेके लिए तैयार हो चुका तब उसे (अर्णसः मध्ये) समुद्रके मध्य (पज्रः वि धायि) बलसे तुमने खडा रखा; (पतयद्भिः एवैः) वेगपूर्वक जानेवाले गति साधनोंसे (शूरः अज्म न) वीर पुरुष जैसे युद्धमें प्रवेश करता है उसी प्रकार (वां उप) तुम दोनोंके समीप (अवः शरणं गमेयं) संरक्षण तथा आश्रयके लिए मैं भी जाऊं ॥ ३ ॥

[१६५४] (औचथ्यं) उचथके पुत्रको अर्थात् मुझको (उपस्तुतिः उरुष्येत्) तुम दोनोंके समीप जाकर की गई स्तुति सुरक्षित रखे, (इमे पतत्रिणी) सूर्यसे बने दिन तथा रात (मां) मुझको (मा वि दुग्धां) निस्सार न बना डाले; (दशतयः चितः एधः) दस गुनी समिधाएँ डालकर प्रदीप्त की गई यह अग्नि (मां मा धाक्) मुझे न जला डाले (यत्) जिसने (वां बद्धः) तुम दोनोंके भक्तको बांधा था (त्मनि क्षां खादति) वही अब भूमिपर धूल खाता पड़ा है ॥ ४ ॥

[१६५५] (यत् ईं) जब इस मुझ उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको (सुसमुब्धं) भली भाँति जकडकर और बांध कर (दासाः अव अधुः) दासोंने नीचे मुख करके फेंक दिया, तब भी (मातृतमाः नद्यः) मातृतुल्य उन नदियोंने (मा) मुझे (न गरन्) नहीं डुबोया (यत् अस्य शिरः) जब मेरा सिर (त्रैतनः दासः) त्रैतन नामक दास (स्वयं वि तक्षत्) स्वयं काटने लगा और (उरः अंसौ अपि ग्ध) छाती तथा कंधोंको तोडने लगा । तब भी आपकी कृपासे बच गया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विनो ! तुम्हारा रथ संकटोंसे बचानेवाला है । तुग्रके पुत्र भुज्युको बचानेके लिए तुमने उस रथको समुद्रमें वेगवान् गतिसाधनोंसे, शूर जैसे युद्धमें जाता है, वैसे चलाया था । अब मैं भी तुम्हारे पास अपनी सुरक्षाके लिए आता हूं ॥ ३ ॥

उचथ्यका पुत्र दीर्घतमा कहता है कि— हे अश्विदेवो ! तुम्हारी स्तुति मेरी रक्षा करे, आकाशमें पक्षीके समान जाने-वाले सूर्यसे निर्माण हुए दिन रात मुझे निःसार न बनावें, दशगुनी लकडियां डाल कर प्रदीप्त हुई यह अग्नि मुझे न जला दे । जिसने तुम्हारे इस भक्तको, मुझ उचथ्यको, बांधकर जलमें फेंक दिया था, वही अब यहां भूमिपर पडा धूल खाता है, यह आपके सामर्थ्यका प्रभाव है ॥ ४ ॥

उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको दासोंने बांधकर नदीमें फेंक दिया और त्रैतन नामक दासने तो उसका सिर, छाती और कंधे काटनेका यत्न किया, पर ऐसा हुआ कि ऋषि तो बच गया और दासके ही अवयव कट गये ! यह अश्विदेवोंकी ही कृपा है । दूसरेको नदीमें डुबाना, उसका सिर तथा कंधोंको काटना आदि करनेका परिणाम यही हुआ कि अपकार कर्ताका ही नाश हुआ । दूसरेका नाश करनेके लिये यत्न करनेपर अपना ही नाश होता है ॥ ५ ॥

१६५६ दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः । ॥ ६ ॥

[१५९]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- जगती ।)

१६५७ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससे—त्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥

१६५८ उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतु—रुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [१६५६] (मामतेयः दीर्घतमाः) ममताका पुत्र दीर्घतमा नामक ऋषि (दशमे युगे) दसवें युगमें (जुजुर्वान्) वृद्ध होने लगा, (यतीनां अपां अर्थं) संयमसे किये जानेवाले कर्मोंसे प्राप्तव्य अर्थके लिए वह (ब्रह्मा सारथिः भवति) ब्रह्मा ज्ञानी पुरुष बनकर सबको चलानेवाला सारथि बनता है ॥ ६ ॥

[१५९]

[१६५७] (ये देवपुत्रे) जो देवोंकी पुत्रियां द्यावापृथ्वी (देवेभिः) देवोंके साथ मिलकर (सुदंससा धिया) उत्तम कर्म और बुद्धिसे (इत्था वार्याणि प्रभूषतः) इसप्रकार ऐश्वर्योंसे अलंकृत करती हैं, ऐसे (ऋतावृधा) यज्ञोंको बढानेवाले (मही) बडे (विदथेषु प्रचेतसा) यज्ञोंमें ज्ञान प्रदान करनेवाले (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवीकी (यज्ञैः स्तुषे) स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१६५८] मैं (अद्रुहः पितुः मातुः) द्रोह न करनेवाले पिता और माताके (स्वतवः महि तत् मनः) शक्तिसे पूर्ण तथा महान् उस मनको (हवीमभिः उत मन्ये) अपनी स्तुतियोंसे मैं प्रसन्न करता हूँ। (सुरेतसा पितरा) उत्तम वीर्यवान् माता पिताओंने (प्रजायाः) प्रजाकी (वरीमभिः) रक्षणोंके द्वारा (चक्रतुः) उन्नति की, यह उनका (अमृतं) सर्वश्रेष्ठ काम (भूम उरु) बहुत विस्तृत है ॥ २ ॥

१ अद्रुहः पितुः मातुः मनः हविमभिः मन्ये— द्रोह न करनेवाले माता पिताका मन अपनी स्तुतियोंसे प्रसन्न करना चाहिए ।

भावार्थ— ममताका पुत्र दीर्घतमा ऋषि दशम युगमें अर्थात् १११ वें वर्षके अनंतर वृद्ध होने लगा। उसने जो संयमपूर्वक उत्तम कर्म किये थे, उनसे प्राप्त होनेवाले धर्म-अर्थ-काम मोक्षरूपी पुरुषार्थको प्राप्त करके, वह महाज्ञानी हुआ, सबका संचालन करनेवाले सारथीके समान सुयोग्य संचालक वह बन गया। १२० वर्षोंकी पूर्ण आयुतक मनुष्य जीवित रहे, ११० वर्षोंके पश्चात् वृद्ध बने, इस तरह अपना जीवन् व्यतीत करे, अकालमें अपमृत्युसे न मरे, संयमपूर्वक सब कर्म करे, उनके फल प्राप्त करे, ज्ञानी बने और सारथीके समान सबको उत्तम रीतिसे चलावे। अर्थात् स्वयं समर्थ बने और दूसरोंका मार्गदर्शक बने ॥ ६ ॥

ये द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों देवोंकी रक्षा करनेके कारण उनकी पुत्रियोंके समान हैं। ये दोनों अपने कर्मों और बुद्धियोंसे सबको उत्तमोत्तम ऐश्वर्योंसे भूषित करती हैं ॥ १ ॥

पुत्रका कर्तव्य है कि वह अपने माता पिताके मनको अपने उत्तम आचरणोंसे हमेशा प्रसन्न रखे। और माता पिताको भी चाहिए कि वे अपने पुत्रसे द्रोह न करें। अपनी रक्षणशक्तियों द्वारा प्रजाकी उन्नति करनी चाहिए और उन्हें हर प्रकारसे बढाना चाहिए ॥ २ ॥

१६५९ ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जंज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥
१६६० ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥
१६६१ तद् राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥

[१६०]

(ऋषिः– दीर्घतमा औचथ्यः । देवता– द्यावापृथिवी । छन्दः– जगती ।)

१६६२ ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥

अर्थ—[१६५९] (सु अपसः सुदंससः ते सूनवः) उत्तम कर्म करनेवाले तथा दर्शनीय वे पुत्र (पूर्वचित्तये) प्रथम ज्ञान प्राप्त करनेके लिए (मही मातरा जज्ञुः) इन दोनों बडी माताओंको जानते हैं। (स्थातुः च जगतः च) स्थावर और जंगमरूप (अद्वयाविनः पुत्रस्य) कुटिलता रहित पुत्रके (धर्मणि) रक्षणके लिए (सत्यं पदं पाथः) सच्चा पद प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१६६०] (दिवि समुद्रे अन्तः) द्युलोकरूपी समुद्रके अन्दर स्थित सूर्यकी (कवयः सुदीतयः) ज्ञानसे युक्त तथा अत्यन्त तेजस्वी किरणें (नव्यं नव्यं तन्तुं) प्रशंसनीय तानेबानेको (तन्वते) बुनती है, वे (सुप्रचेतसः मायिनः) उत्तम ज्ञानी और शक्तिशाली किरणें (जामी सयोनी मिथुना सं ओकसः) बहिनके रूपमें एक स्थानसे उत्पन्न, सदा एक साथ रहनेवाली तथा एक ही घरमें रहनेवाली इन द्यावापृथिवीको (ममिरे) मापती है ॥ ४ ॥

[१६६१] (वयं अद्य) हम आज (प्रसवे) उत्तम कर्मोंको करनेके लिए (सवितुः देवस्य) सब जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले उस देवसे (तत् वरेण्यं राधः मनामहे) उस श्रेष्ठ ऐश्वर्यको मांगते हैं। (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथ्वीलोक (सुचेतुना) अपनी उत्तम बुद्धिसे (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वसुमन्तं शतग्विनं) निवास करानेवाले तथा अनेकों पशुओंसे युक्त (रयिं धत्तं) ऐश्वर्यको प्रदान करें ॥ ५ ॥

[१६०]

[१६६२] (विश्वशंभुवा) संसारको सुख देनेवाली (ऋतावरी) यज्ञोंको सम्पन्न करनेवाली (रजसः) पानी बरसानेवाली (धारयत् कवी) ज्ञानियोंकी रक्षा करनेवाली (सु जन्मनी) उत्तम जन्मवाली (धिषणे) बुद्धिसे युक्त (देवी द्यावापृथिवी) तेजस्वी द्यावापृथिवीके (अन्तः) बीचमें (शुचिः देवः सूर्यः) पवित्र करनेवाला तेजस्वी सूर्य (धर्मणा ईयते) अपनी धारणशक्तिसे युक्त होकर चलता है ॥ १ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाले गुणवान् पुत्र अपने माता पिताको हर तरहसे प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करते हैं। ये द्युलोक एवं पृथ्वीलोक स्थावर और जंगमरूप अपने सभी पुत्रोंका हर तरहसे पालन पोषण और रक्षण करते हैं ॥ ३ ॥

द्युलोकमें बैठा हुआ सूर्य मानों एक जुलाहा है, जो अपनी किरणरूपी ताने बानेसे प्रकाशरूपी वस्त्र बुनता रहता है। इस वस्त्रसे वह द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनोंको ढंक देता है ये दोनों द्यावापृथिवी पृथक् पृथक् होते हुए भी एक स्थानपर सगी बहिनोंके समान रहती हैं। इसी प्रकार सभी स्त्रियां परस्पर मिलजुलकर रहें ॥ ४ ॥

भगवान् सवितासे हम जो धन प्राप्त करें, उसका उपयोग हम उत्तम कामोंमें ही करें। देवोंसे प्राप्त किए गए धनका उपयोग हम कभी भी बुरे कामोंमें न करें। सभी देव हमें प्रसन्न होकर धन दें, ताकि उस उत्तम धनसे हम अपना जीवन सुचारु रूपसे चला सकें ॥ ५ ॥

ये द्यावापृथिवी दोनों संसारको सुख देनेवाली, जल बरसानेवाली, ज्ञानियोंको धारण करनेवाली हैं। इन दोनोंके बीचमेंसे सूर्य चलता है। यह सूर्य सबको पवित्र करता है और संसारको धारण करता है ॥ १ ॥

१६६३ उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत् सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
१६६४ स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३ ॥
१६६५ अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया ऽजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
१६६६ ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६६३] (यत् पिता) क्योंकि पितारूपी द्यु अर्थात् सूर्य (रूपैः) अपने प्रकाशोंसे मनुष्योंको (सीं अभि अवासयत्) चारों ओरसे वास कराता है, इसलिए (सुधृष्टमे रोदसी) अत्यन्त शक्तिशाली ये द्यावापृथिवी (वपुष्ये न) पुष्टिकारक हैं। (उरुव्यचसा) अत्यन्त विस्तीर्ण (महिनी असश्चता पिता माता च) महान् और पृथक् पृथक् रूपवाले सूर्य और पृथ्वी (भुवनानि रक्षतः) लोकोंकी रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

[१६६४] (पित्रोः पुत्रः) मातापितारूप द्युलोक और पृथ्वीलोकका पुत्र (वह्निः) हविका वाहक (पवित्रवान्) पवित्र करनेहारा (धीरः) बुद्धिमान् (सः) वह सूर्य (मायया) अपनी शक्तिसे (भुवनानि पुनाति) सभी लोकोंको पवित्र करता है। वह (अस्य) अपनी शक्तिसे (विश्वाहा) सब दिन (पृश्निं धेनुं सुरेतसं वृषभं) दुधारु गायों और वीर्यवान् बैलोंको पुष्ट करनेके लिए (शुक्रं पयः दुक्षतः) शुद्ध जल दुहता है ॥ ३ ॥

[१६६५] (यः विश्वशंभुवा रोदसी जजान) जिस देवने विश्वको सुख पहुंचानेवाले द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, (यः) जिसने (सुक्रतूयया) उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे (रजसी वि ममे) दोनों द्यावापृथिवीको मापा, तथा (अजरेभिः स्कंभनेभिः सं आनृचे) मजबूत आधारोंसे दोनों लोकोंको दृढ कर दिया, ऐसा (अयं) यह देव (अपसां देवानां अपस्तमः) उत्तम कर्म करनेवाले देवोंके बीचमें सर्वश्रेष्ठ कर्म करनेवाला है ॥ ४ ॥

[१६६६] (नः गृणाने) हमसे प्रशंसित हुई हुई (ते महिनी द्यावापृथिवी) वे विशाल द्यावापृथिवी हमारे लिए (महि श्रवः बृहत् क्षत्रं धासथः) बहुत सा अन्न और बहुत सारी शक्ति प्रदान करें, (येन) जिससे हम (कृष्टिः अभि ततनाम) प्रजाओंका विस्तार करें। ये दोनों (विश्वहा) प्रतिदिन (अस्मे) हमारे अन्दर (पनाय्यं ओजः सं इन्वतं) प्रशंसनीय बलको प्रेरित करें ॥ ५ ॥

भावार्थ— सूर्यके अन्दर जीवनशक्ति है, उससे जीवनशक्ति लेकर प्राणी जीवित रहते हैं, यदि सूर्य न हो तो सारे संसारका विनाश हो जाए। इसी प्रकार पृथ्वी सबको आधार देकर अन्नादि देकर उनको पुष्ट करती है। इस प्रकार ये दोनों सब संसारको बसानेवाले हैं। इन दोनोंका विस्तार अत्यधिक है. अर्थात् इनका अन्त कहीं नहीं है ॥ २ ॥

द्यावापृथिवीके मध्यमें यह सूर्य संचार करता है, अतः यह इन दोनोंका पुत्रस्थानीय है। यह अपनी किरणोंसे सब लोकोंको पवित्र करता हुआ चलता है, तथा आकाशसे पानी बरसा कर गायों बैलों अर्थात् प्राणिमात्रको पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

इस सूर्यने द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, उनको सुदृढ किया। इसीलिए उत्तम कर्म करनेवाले देवोंके बीचमें यह अग्रगण्य है और सर्वश्रेष्ठ कर्मका करनेवाला है ॥ ४ ॥

ये दोनों द्यावापृथिवी हमसे स्तुत होकर हमें शक्ति प्रदान करें, ताकि हम [illegible] विस्तारके कार्यमें समर्थ हों, अर्थात् हम मनुष्योंको उन्नत करनेके कार्यमें समर्थ हों। इस उत्तम क[illegible]के लिए [illegible]म [illegible]दिन उत्तम प्रेरणा मिलती रहे ॥ ५ ॥

[१६१]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः। देवता- ऋभवः। छन्दः- जगती; १४ त्रिष्टुप्।)

१६६७ किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् किमीयते दूत्यं१ कद् यदूचिम।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद् भूतिमूदिम ॥ १ ॥

१६६८ एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद् वो देवा अब्रुवन् तद् व आगमम्।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥

१६६९ अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

[१६१]

अर्थ—[१६६७] (नः आजगन्) जो हमारे पास आया है, वह (किं उ श्रेष्ठः) क्या श्रेष्ठ है (किं यविष्ठः) अथवा छोटा है, (किं दूत्यं इयते) यह किसका दूत होकर आया है, (कत् यत् ऊचिम) हम किसका वर्णन करें। हे (भ्रातः अग्ने) भरणपोषण करनेहारे अग्ने! (यः महाकुलः) जो श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुआ है, ऐसे (चमसं न निन्दिम) चावल आदिकी निन्दा नहीं करते, अपितु (द्रुणः भूतिं इत् ऊदिम) शत्रुओंको झुकानेवाले इस अन्नके ऐश्वर्यका ही वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

१- महाकुलं चमसं न निन्दिम, भूतिं इत् ऊदिम— उत्तम जमीनपर होनेवाले अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु उसकी प्रशंसा ही करनी चाहिए।

[१६६८] हे (सौधन्वनाः) हे सुधन्वाके पुत्रो! तुम (एकं चमसं चतुरः कृणोतन) एक अन्नके चार भाग करो, (तत् वः देवाः अब्रुवन्) ऐसा तुमसे देवोंने कहा है, (तत् वः आगमं) उसीको तुमसे कहनेके लिए मैं आया हूँ। (यदि एवा करिष्यथ) यदि तुम ऐसा करोगे, तो (देवैः साकं यज्ञियासः भविष्यथ) देवोंके साथ ही तुम भी पूजनीय हो जाओगे ॥ २ ॥

[१६६९] हे ऋभुओ! तुमने (दूतं अग्निं प्रति) दूतका कर्म करनेवाले अग्निसे (यत् अब्रवीतन) जो यह कहा कि (अश्वः कर्त्वः) घोडेको हृष्टपुष्ट बनाना है, (उत इह रथः कर्त्वः) और यहां रथ भी तैयार करना है, (धेनुः कर्त्वा) गायको हृष्टपुष्ट करना है, (द्वा युवशा कर्त्वा) दोनों वृद्धोंको तरुण बनाना है, (तानि कृत्व्या) उन सब कामोंको करके हे (भ्रातः) भाई अग्ने! (वः अनु एमसि) हम तुम्हारे पीछे आते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— घरमें कोई अतिथि आवे तो प्रथम यह देखना चाहिए कि वह बडा है या छोटा। ताकि उससे यथायोग्य व्यवहार किया जा सके। फिर उससे प्रेमपूर्वक पूछना चाहिए कि तुम कहांसे आये हो, किसीका सन्देश लेकर आए हो, इत्यादि। इसके बाद उसे अन्न देवे। अतिथि भी गृहस्थ द्वारा दिए गए अन्नकी कभी निन्दा न करे। अन्न एक देव है जिसकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु सदा प्रसन्न मनसे उसकी प्रशंसा करते हुए उसे खाना चाहिए ॥ १ ॥

गृहस्थियोंको चाहिए कि वे अपने अन्नके चार भाग करें, (१) घरवालोंके लिए, (२) अतिथियोंके लिए, (३) नौकर चाकरोंके लिए, (४) पशु पक्षियोंके लिए इसप्रकार चार भाग करें। यह देवोंकी आज्ञा है। जो इसप्रकार करता है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

घोडोंको और गायोंको हृष्टपुष्ट बनाना चाहिए, रथोंको भी उत्तम रीतिसे तैय्यार करना चाहिए। गायोंके हृष्टपुष्ट होनेसे, जो वृद्ध होंगे, वे भी उनका दूध घी खाकर तरुणके समान शक्तिशाली और उत्साहपूर्ण हो सकेंगे ॥ ३ ॥

१६७० चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद् यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित् त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥
१६७१ हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान् कन्याइ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥
१६७२ इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६७०] (चकृवांसः ऋभवः तत् अपृच्छत) प्रयत्नशील ज्ञानियोंने यह पूछा कि (यः दूतः स्य नः आजगन्) जो दूत होकर हमारे पास आया, वह (क्व इत् अभूत्) वह कहां उत्पन्न हुआ था ? (यदा) जब (त्वष्टा) त्वष्टाने (चतुरः कृतान् चमसान्) चार तरहसे किए गए अन्नोंको (अव अख्यत्) प्रकाशित किया, (आत् इत्) उसके बाद ही वह दूत (ग्नासु अन्तः नि आनजे) आने योग्य भूमियोंमें सर्वत्र संचार करने लगा ॥ ४ ॥

[१६७१] (त्वष्टा अब्रवीत् यत्) त्वष्टाने कहा है कि (ये देवपानं चमसं अनिन्दिषुः) जो देवोंके द्वारा खाने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, (एनान् हनाम) उन्हें हम मारें। (सचा सुते) परस्पर मिलकर सोम निचोडने पर इसके (अन्या नामानि कृण्वते) दूसरे भी अनेक नाम होते हैं, तब (कन्या) सुन्दर स्त्रियां (एनान् अन्यैः नामभिः स्परत्) इन्हें दूसरे नामोंसे सम्बोधित करती हैं ॥ ५ ॥

१ ये देवपानं अनिन्दिषुः एनान् हनाम, त्वष्टा अब्रवीत्— जो देवोंके द्वारा भक्षण करने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, उन्हें हम मारें, ऐसा त्वष्टाने कहा ।

[१६७२] (इन्द्रः हरी युयुजे) इन्द्रने घोडोंको जोड दिया है, (अश्विना रथं) अश्विनौने रथको तैय्यार कर दिया है, (बृहस्पतिः विश्वरूपां उप आजत) बृहस्पतिने अनेकरूपोंवाली वाणीका बोलना शुरु कर दिया है, अतः हे (ऋभुः विभ्वा वाजः) ऋभु विभ्वा और वाज ! तुम (देवान् अगच्छत) देवोंके पास जाओ और (सु-अपसः यज्ञियं भागं ऐतन) उत्तम कर्म करनेवाले होकर तुम सब यज्ञके भागको प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

१ सु-अपसः यज्ञियं भागं ऐतन— उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त कर सकते हैं।
२ ऋभुः विभ्वा वाजः देवान् अगच्छत— ज्ञानी, तेजस्वी और बलवान् ही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं।

भावार्थ— दूत देशका सम्मान्य प्रतिनिधि होता है, अतः उसका अपमान देशका अपमान माना जाता है। इसीलिए दूतका हर तरहसे सम्मान करना चाहिए। जब वह आवे तब हरतरहके अन्नोंसे उसको आनन्दित करना चाहिए, ताकि वह भूमिपर सर्वत्र सुखपूर्वक संचार कर सके ॥ ४ ॥

जो देवोंके द्वारा खाने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, जो देवोंकी, हवियोंकी, यज्ञोंकी और अन्नकी निन्दा करते हैं, या उनका अपमान करते हैं, उनको मारना चाहिए। जो अन्नको मारते हैं, उन्हें अन्न मार देता है, अतः अन्नकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए। सोम जब तैय्यार हो जाता है, तब उसके नाम भी अनेक हो जाते हैं और तब वह अनेक नामोंसे संबोधित होता है ॥ ५ ॥

इन्द्र अपने घोडे जोडकर, अश्विनौ अपने रथ तैयार करके यज्ञको जानेके लिए तैयार हो गए हैं, बृहस्पतिने भी स्तोत्रोंका गान शुरु कर दिया है। पर ऐसे देवोंके पास वही जा सकते हैं, जो ज्ञानी, तेजस्वी और शक्तिशाली होते हैं। और उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त कर सकते हैं ॥ ६ ॥

१६७३ निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥

१६७४ इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

१६७५ आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६७३] हे (सौधन्वनाः) सुधन्वाके पुत्रो ! तुमने (धीतिभिः) अपने प्रयत्नोंसे (निश्चर्मणः गां अरिणीत) चर्मसे रहित गायको भी पुष्ट किया । (या जरन्ता) जो बूढे हो गए थे (ता) उन माता पिताको (युवशा अकृणोतन) फिरसे तरुण बनाया । (अश्वात् अश्वं अतक्षत) एक घोडेसे दूसरा घोडा पैदा किया, फिर (रथं युक्त्वा) उन घोडोंको अपने रथमें जोडकर (देवान् उप अयातन) देवोंके पास गए ॥ ७ ॥

१ निश्चर्मणः गां अरिणीत— चर्मसे भी रहित अर्थात् अत्यन्त कमजोर गायको हृष्टपुष्ट किया ।

[१६७४] हे (सौधन्वनाः) सुधन्वाके पुत्रो ! (इदं उदकं पिबत) इस पानीको पीओ (इदं मुंजनेजनं पिबत) इस मौञ्जवान् पर्वतसे लाए गए सोमरसको पीओ (इति अब्रवीतन) ऐसा तुमने कहा था । (यदि तत् न एव हर्यथ) यदि उसको पीनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो (तृतीये सवने घ मादयाध्वै) तीसरे समय तो निश्चयसे उसे पीकर आनन्दित होओ ॥ ८ ॥

[१६७५] (आपः भूयिष्ठाः) जल सर्वश्रेष्ठ है, (इति एकः अब्रवीत्) ऐसा एकने कहा, (अग्निः भूयिष्ठः इति अन्यः अब्रवीत्) अग्नि श्रेष्ठ है, ऐसा दूसरेने कहा, (एकः वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्र अब्रवीत्) तीसरेने भूमिको सर्वश्रेष्ठ बतलाया, इसप्रकार (ऋता वदन्तः) सत्य बोलते हुए सभीने (चमसान् अपिंशत) ऐश्वर्यका विभाग किया ॥ ९ ॥

वधर्यन्ती– " भूमि वर्धं आत्मनः इच्छन्तीं भूमिं " (सायणः)

भावार्थ— राष्ट्रमें ऐसी विद्याका प्रचार हो जिसके द्वारा कमजोरको हृष्टपुष्ट और वृद्धोंको तरुण बनाया जा सके । सुधन्वाके पुत्रोंने जिसके शरीरपर केवल चमडी ही रह गई थी, ऐसी कमजोर गायको भी फिरसे हृष्टपुष्ट बनाया और वृद्धोंको फिरसे तरुण बनाया ॥ ७ ॥

यदि कोई वीर पुरुष अतिथिके रूपमें आवे, तो उससे प्रेमपूर्वक कहना चाहिए कि ' आप पानी पीयें अथवा सोमरस ही पीयें अथवा यदि आपको इस समय पीना अच्छा न लगता हो तो शामको तो अवश्य पीकर आप आनन्दित हों ।' तात्पर्य यह कि घरमें आया हुआ अतिथि अप्रसन्न होकर न जाए । गृहस्वामी अतिथिको खुश करनेका भरसक प्रयत्न करे । अतिथिका अप्रसन्न होकर घरसे जाना गृहस्वामीके लिए पापका कारण बनता है ॥ ८ ॥

कहीं जलको सर्वश्रेष्ठ बताया है, कहीं अग्निको सर्वश्रेष्ठ कहा है, तो कहीं भूमिको सर्वश्रेष्ठ बताया है । ये बातें यद्यपि ऊपरसे विरुद्ध प्रतीत होती हैं, पर हैं ये सभी सत्य ही, क्योंकि परमात्माने इन सभी तत्त्वोंमें ऐश्वर्यका विभाग किया है । यदि जल न हो तो जीवन न हो, अग्नि न हो तो शरीर न रहे और यदि भूमि न हो तो सब आधारहीन होकर नष्ट हो जाए, अतः इन सभी तत्त्वोंमें ऐश्वर्य विद्यमान है । जलमें जीवनतत्त्वोंको पुष्ट करनेवाला ऐश्वर्य है । अग्निमें शरीरमें उष्णता पैदा करके उसे उत्साहपूर्ण बनानेका ऐश्वर्य है और भूमिमें सभी तरहके ऐश्वर्य हैं । इस तरह इन तीनों तत्त्वोंमें ऐश्वर्य भरपूर है, इसलिए ये तीनों ही श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥

१६७६ श्रोणामेकं उदुकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत् किं स्वित् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥
१६७७ उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदुद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥
१६७८ संमील्य यद् भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित् तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत् प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥

अर्थ— [१६७६] (एकः) एक पुत्र (श्रोणां गां उदकं अव अजति) पुष्ट गायको पानीकी तरफ ले जाता है, (एकः सूनया आभृतं मांसं पिंशति) दूसरा पुत्र उत्तम रीतिसे लाए गए चारेको खिलाकर गायके शरीरको मांसयुक्त बनाकर उसे रूपवान् बनाता है, (एकः) तीसरा पुत्र (निम्रुचः) सूर्यास्तके समय (शकृत् अप अभरत्) गायके गोबरको उठा कर फेंकता है, ऐसे उत्तम (पुत्रेभ्यः) पुत्रोंसे (पितरा किंस्वित् उप अवतुः) माता पिता और किस बातकी अपेक्षा रखें ? ॥ १० ॥

[१६७७] (ऋभवः नरः) हे तेजस्वी मनुष्यो ! (सु अपस्यया) अपने उत्तम कर्मोंसे (उत् वत्सु अस्मै तृणं अकृणोतन) ऊंचे प्रदेशोंमें इस गाय आदि पशुके लिए घास आदि पैदा करो, तथा (निवत्सु अपः) निचले प्रदेशोंमें पानीको सुरक्षित रखो । (यत्) जबतक तुम (अगोह्यस्य गृहे असस्तन) गायके रहने न योग्य घरमें रहोगे, (तत् अद्य) तबतक तुम (इदं न अनुगच्छथ) इस ऐश्वर्यको नहीं पा सकते ॥ ११ ॥

१ यत् अ-गोह्यस्य गृहे असस्तन तत् इदं न अनु गच्छथ— जबतक मनुष्य गायके न रहने योग्य घरमें रहेंगे, तबतक वे ऐश्वर्यको नहीं पा सकते ।

[१६७८] हे ऋभुओं-सूर्यकिरणो ! तुम (यत्) जब (तात्या भुवना संमील्य परि असर्पत) मेघोंसे लोकोंको आच्छादित करके चारों ओर विचरते हो, तब (वः पितरा क्व स्वित् आसतुः) तुम्हारे मातापितारूप सूर्य चन्द्र कहां रहते हैं ? (यः वः करस्नं आददे) जो तुम्हारे हाथोंको रोकता है, उसे (अशपत) शाप दो, (यः प्र अब्रवीत्) जो तुम्हारी स्तुति करता है, (तस्मै प्र अब्रवीतन) उसके लिए तुम आशीर्वाद दो ॥ १२ ॥

१ ऋभुः-सूर्य किरण " आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते " (निरु· ११।१६)

भावार्थ— सूर्यास्तके समय जब गाय वनसे लौटती है, तब गृहस्वामीका एक पुत्र उसे पानी पिलाता है, दूसरा उत्तम चारा आदि खिलाकर उसे मांसल एवं रूपवान् बनाता है, तीसरा उसके गोबरको उठाकर दूर फेंकता है और गायके रहनेके स्थानको साफ रखता है, ऐसे उत्तम गौसेवी जिसके पुत्र हों, उन्हें और किस बातकी कमी है, अर्थात् जिस घरमें सौभाग्यकी प्रतीक गायकी ऐसी उत्तम सेवा होती है, वह घर हमेशा ऐश्वर्यसे भरापूरा रहता है ॥ १० ॥

हे मनुष्यो ! जो ऊंचे प्रदेश हों अर्थात् जहां पानी न रह सकता हो, वहां गाय आदि पशुके लिए घास आदि उत्पन्न करो और जो नीचे प्रदेश हों, अर्थात् जहां पानी रह सकता हो, वहां गायोंके पीनेके लिए पानी इकट्ठा करो । गाय ऐश्वर्यको देनेवाली है, इसमें सब ऐश्वर्य बसते हैं, अतः जिस घरमें गाय नहीं रहती, वह घर ऐश्वर्यहीन होता है । अतः जबतक मनुष्य ऐसे घरमें रहेंगे कि जिसमें गायें नहीं रह सकतीं, तबतक वे ऐश्वर्यहीन ही रहेंगे ॥ ११ ॥

जब आकाशमें बादल छा जाते हैं, तब किरणोंके पालक सूर्य चन्द्र छिप जाते हैं । उनको लोग देख नहीं पाते । जो मनुष्य इन किरणोंको रोकना चाहता है अर्थात् सूर्यकिरणोंको अपने घरमें आने नहीं देता और स्वयं भी सूर्यकिरणोंमें विचरता नहीं, वह अनेक रोगोंसे ग्रस्त होकर विनष्ट हो जाता है । सूर्यकिरणोंमें रोग जन्तुओंको नष्ट करनेका गुण है । अतः जो इन किरणोंका उपयोग करता है, उनसे भरपूर लाभ उठाता है, उसे यह किरणें स्वस्थ बनाती हैं ॥ १२ ॥

×

१६७९ सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छता—गोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत् संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥
१६८० दिवा यान्ति मरुतो भूम्याऽग्नि—रयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रै—र्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥

[१६२]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्वः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ३, ६ जगती ।)

१६८१ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायु—रिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद् वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥
१६८२ यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद् विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥

अर्थ— [१६७९] हे (ऋभवः) सूर्यकिरणो ! (सुषुप्वांसः) सोते हुए तुमने सूर्यसे (तत् इदं अपृच्छत) इस सब बातको पूछा कि हे (अगोह्य) न छिपनेवाले सूर्य ! (नः कः अबूबुधत्) हमें किसने जगाया है, (बस्तः) सबको निवास करानेवाले सूर्यने (बोधयितारं) तुम्हें जगानेवाला (श्वानं अब्रवीत्) वायु बताया । तुमने (संवत्सरे अद्य इदं आ व्यख्यत) एक वर्षके बाद आज इस जगत्को प्रकाशित किया है ॥ १३ ॥

[१६८०] हे (शवसः नपातः) बलको न गिरने देनेवाले ऋभुओ ! (युष्मान् इच्छन्तः) तुम्हें पानेकी इच्छा करते हुए (मरुतः दिवा यान्ति) मरुद्गण द्युलोकसे जाते हैं, (भूम्या अग्निः) भूमिसे अग्नि जाता है, (अयं वातः अन्तरिक्षेण याति) यह वायु अन्तरिक्षसे जाता है । तथा (समुद्रैः अद्भिः वरुणः याति) बहनेवाले जलप्रवाहोंसे वरुण जाता है ॥ १४ ॥

[१६२]

[१६८१] (यत्) जो हम (देवजातस्य वाजिनः सप्तेः) देवोंसे उत्पन्न हुए बलशाली घोडेके (विदथे) संग्राममें किए गए (वीर्याणि) पराक्रमोंका (प्रवक्ष्यामः) वर्णन करते हैं, इसलिए (मित्रः वरुणः अर्यमा आयुः ऋभुक्षा मरुतः) मित्र, वरुण, अर्यमा, वायु, ऋभुक्षा और मरुत् (नः मा परि ख्यन्) हमारी निन्दा न करें ॥ १ ॥

[१६८२] (यत्) जब वीर (निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य) रूप और धनसे भरपूर घोडेके (मुखतः) शक्तिसे (गृभीतां रातिं नयन्ति) प्राप्त किए गए ऐश्वर्यको पाते हैं, तब (विश्वरूपः अजः) अनेकों रूपोंवाला नेता घोडा (सुप्राङ् मेम्यत्) सेनाके आगे रहकर शत्रुओंको मारता हुआ (इन्द्रापूष्णोः प्रियं पाथः अपि एति) इन्द्र और पूषाके स्नेहको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— वर्षाकालमें आकाशमें चारों ओर बादल छा जाते हैं, इसलिए सूर्यकी किरणें छिप जाती हैं, तब वे मानों सो जाती हैं । पर जब बहुत जोरकी हवा चलती है तब सारे बादल छट जाते हैं अर्थात् उड जाते हैं, तब किरणें फिर फैल जाती हैं, यही मानों उनका जगना है । वर्षाकालमें बहुत समयके बाद सूर्यका दर्शन होता है ॥ १३ ॥

इन सूर्यकी किरणोंसे प्रेरित होकर द्युलोकमें मरुत् चलते हैं । भूमिपर अग्नि अपना काम करती है, हवा अन्तरिक्षमें चलती है और जलप्रवाह चलते हैं । सारे देव उसीकी प्रेरणासे कार्य करते हैं ॥ १४ ॥

कोई भी जीव हो, यदि वह उत्तम कर्म करे, तो उसकी प्रशंसा अवश्य करनी चाहिए । घोडेको सिखाकर उसे कुशल और युद्धके लिए निपुण बनाना चाहिए ॥ १ ॥

वे ही वीर संग्राममें ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हैं, जिनके घोडे बहुत हृष्टपुष्ट और शक्तिशाली होते हैं । ये घोडे सेनाके आगे रहकर संग्राममें शत्रुओंको मारते काटते आगे बढते हैं, तब ये घोडे इन्द्र और पूषाके प्रेमको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

१६८३ एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत् पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥

१६८४ यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

१६८५ होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६८३] (पूष्णः भागः) पूषाका भाग (विश्वदेव्यः) सब गुणोंसे युक्त (एषः छागः) यह निष्क्रिय घोडा (वाजिना अश्वेन पुरः) बलवान् घोडेके साथ आगे आगे (नीयते) ले जाया जाता है, तब (त्वष्टा) त्वष्टा (अर्वता) बलवान् घोडेके साथ रहनेवाले (एनं अभिप्रियं पुरोडाशं) इस प्रिय और आगे रहनेवाले घोडेको (सौश्रवसाय) उत्तम यशकी प्राप्तिके लिए (जिन्वति) तृप्त करता है ॥ ३ ॥

छागः— निष्क्रिय घोडा— " यश्छिन्नगमनोऽश्वः स छागः । छिदेर्गमेश्च छागशब्दः प्रसिद्धः "
(ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य ६।८।३१)

[१६८४] (मानुषाः) मनुष्य (यत्) जब (हविष्यं देवयानं) हविके योग्य और देवोंके पास पहुंचानेवाले (अश्वं) अश्वको (ऋतुशः) ऋतुओंके अनुसार (त्रिः परि नयन्ति) तीन बार चारों ओर घुमाते हैं, (अत्र) तब (पूष्णः भागः) पूषाका भाग तथा (अजः) नेतारूप यह घोडा (देवेभ्यः यज्ञं प्रतिवेदयन्) देवोंको यज्ञका ज्ञान कराता हुआ (प्रथमः एति) सबसे पहले जाता है ॥ ४ ॥

[१६८५] (ग्रावग्राभः) सोमकूटनेके प... ...को स्तुति करनेवाला (शंस्ता) स्तोत्र बनानेवाला तथा (सुविप्रः) उत्तम ज्ञानी (होता) देवोंको बुलानेवाला तथा (आवया) श्रद्धापूर्वक हवि देनेवाला (अध्वर्युः) अध्वर्यु (अग्निं इन्धः) अग्निको प्रज्ज्वलित करता है । हे मनुष्यों ! तुम सब (तेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन यज्ञेन) उस अलंकृत और उत्तम प्रकारसे आहुतिसे युक्त यज्ञके द्वारा (वक्षणाः आ पृणध्वं) नदियोंको भर दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— एक निष्क्रिय घोडेको जब युद्धादि कला सिखानी होती है, तब उसे एक बलशाली घोडेसे संयुक्त करते हैं, इस प्रकार वह घोडा उस निष्क्रिय घोडेको भी युद्धकला सिखा देता है। तब वह निष्क्रिय घोडा भी राजाका स्नेहपात्र बन जाता है और वह राजा उस घोडेको यश प्राप्त करनेकी इच्छासे पुष्ट बनाता है ॥ ३ ॥

अश्वमेधके अवसर पर ऋत्विगगण यज्ञके पशु घोडेको अग्निके चारों ओर तीनबार घुमाते हैं, तीनबार अग्निकी परिक्रमा करवानेसे वह यज्ञीय हो जाता है और तब वह देवत्वको प्राप्त करानेवाला होता है। वह पोषण करनेवाले राजाका मुख्य भाग होता है अर्थात् उस अश्वकी सेवा राजाको भी करनी पडती है । तब वह यज्ञका ज्ञान कराता हुआ भूमि पर सर्वत्र विचरता है । वह सबसे आगे रहता है और पीछे उसकी संरक्षक सेना रहती है । जिधर जिधर घोडा जाता है, उधर उधर सेनाको भी जाना पडता है ॥ ४ ॥

हे मनुष्यो ! उत्तम ज्ञानी यह होता अध्वर्यु यज्ञको प्रज्ज्वलित करता है, और तुम सब इस यज्ञमें उत्तम उत्तम आहुतियां देकर नदियोंको भर दो । यज्ञमें आहुति देनेसे यज्ञके धुंएसे बादलोंका निर्माण होता है । उसका नाम " पर्जन्येष्टि " है । इस पर्जन्येष्टिसे बादलोंका निर्माण होकर पानी बरसता है और तब सारी नदियां भर आती हैं ॥ ५ ॥

१६८६ यूपव्रस्का उत ये यूपवाहा—श्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं संभर—न्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥
१६८७ उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥
१६८८ यद् वाजिनो दाम संदानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद् वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥
१६८९ यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद् वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६८६] (ये यूपव्रस्काः) जो यूपके लिए वृक्षको काटते हैं (उत) और (यूपवाहाः) जो यूपके लिए लकडीको ढोकर लाते हैं, (ये अश्वयूपाय चषालं तक्षति) जो घोडेको बांधनेके खम्भोंके अग्रभागको तेज करते हैं, (उत) और (ये अर्वते पचनं संभरन्ति) जो घोडेके लिए घास आदि अन्न लाते हैं, (तेषां अभिगूर्तिः नः इन्वतु) उनके उत्तम विचार हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

[१६८७] (मे सुमत् मन्म अधायि) मैंने उत्तम बुद्धियोंसे बनाये गए स्तोत्रको धारण किया है, इसलिए (वीतपृष्ठः) सुन्दर पीठवाला यह घोडा (देवानां आशाः) देवताओंकी आशाओंको पूरा करनेके लिए (उप प्र अगात्) पास आवे । (एनं सुबन्धुं) इस उत्तम प्रकारसे बंधे हुए घोडेको (देवानां पुष्टे) देवोंके पोषणके लिए (चकृम) पुष्ट करते हैं । (विप्राः ऋषयः) ज्ञानी ऋषि भी (अनु मदन्ति) इसे हर्षित करें ॥ ७ ॥

[१६८८] (वाजिनः यत् संदानं दाम) इस बलशाली घोडेको जो पैरोंमें बांधनेवाली रस्सी है, (या शीर्षण्या रज्जुः) जो सिरमें बांधनेवाली रस्सी, (अस्य अर्वतः रशना) और इस घोडेके जो लगाम हैं, (वा) अथवा (अस्य आस्ये यत् प्रभृतं तृणं) इसके मुंहमें बहुत सारी जो घास है, हे अश्व ! (ते ता सर्वा) तेरे वे सभी पदार्थ (देवेषु अस्तु) देवोंके लिए समर्पित हो ॥ ८ ॥

[१६८९] (क्रविषः अश्वस्य) शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले यज्ञीय घोडेको (मक्षिका आश) मक्खी खाती हो, (वा) अथवा (स्वरौ स्वधितौ) शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले तथा उत्तम शक्तिको धारण करनेवाले इस घोडेमें (यत् रिप्तं अस्ति) जो मैल आदि लिपटा हुआ हो, (शमितुः हस्तयोः यत्) यज्ञ करनेवालेके हाथमें जो मैल हो, (नखेषु यत्) उसके नाखूनोंमें जो मैल हो, (ता सर्वा अपि) वे सब (देवेषु) देवोंके यज्ञमें (अस्तु) शुद्ध किए जाएं ॥ ९ ॥

भावार्थ— यज्ञीय अश्वको बांधनेके लिए जो स्तंभ तैयार किया जाता है, उसके लिए जो लकडी काटता है, जो उस लकडीको ढोकर यज्ञ स्थानतक लाता है और जो उस स्तम्भको उत्तम रीतिसे तैय्यार करता है, तथा जो उस अश्वके लिए उत्तम घास आदि लाता है, ऐसे श्रेष्ठ मनुष्योंके उत्तम विचार हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

सुन्दर पीठवाला और अनेक तरहसे सजाया गया अश्वमेधका घोडा देवोंकी आशाओंको पूर्ण करनेवाला है अर्थात् यज्ञमें आकर देवगण हवियोंसे तृप्त होते हैं, इसलिए यह घोडा ही मानों उनकी आशाओंको तृप्त करता है । इस यज्ञीय पशु अश्वको सब तरहसे पुष्ट करना चाहिए ॥ ७ ॥

अश्वमेधके लिए चुना हुआ घोडा यज्ञयूपपर लाकर बांध दिए जाने तथा सभी संस्कारोंसे संस्कृत हो जानेपर साधारण अश्व न रहकर एक उत्कृष्ट देव बन जाता है, अतः उस समय उसे जो भी पदार्थ दिए जाते हैं, वे मानों देवको ही दिए जाते हैं, अतः उस यज्ञीय पशुको जो भी पदार्थ दिए जाएं, वे उत्तम ही हों ॥ ८ ॥

यज्ञका घोडा उत्तम और हृष्टपुष्ट हो । उसे हर प्रकारसे साफ रखा जाए, ताकि उसके शरीरपर मक्खियां न बैठें । यज्ञ करनेवालोंके हाथ और नाखून भी हर तरहसे साफ रहें । इस प्रकार हर तरहसे शुद्ध और पवित्र हाथोंसे ऋत्विग्गण यज्ञमें देवोंको हवि प्रदान करें ॥ ९ ॥

१६९० यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥
१६९१ यत् ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद् भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥
१६९२ ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥
१६९३ यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [१६९०] (क्रविषः उदरस्य) आक्रमणशील घोडेके पेटसे (यत् ऊवध्यं अपवाति) जो शौच बाहर गिरे और (आमस्य यः गन्धः अस्ति) उस अपक्व पदार्थका जो गंध फैले, (शमितारः तत् सुकृता कृण्वन्तु) यज्ञ करनेवाले उस सबको साफ करें, (उत) और (शृतपाकं मेधं पचन्तु) पके हुए यज्ञ पदार्थको और अच्छी तरह पकायें ॥ १० ॥

[१६९१] हे अश्व ! (निहतस्य ते) निरन्तर गति करनेवाले तेरे (अग्निना पच्यमानात् गात्रात्) क्रोधाग्निसे पकनेवाले शरीरसे निकला हुआ (यत् शूलं) जो शस्त्र (अवधावति) शत्रुकी तरफ दौडता है, (तत् भूम्यां मा आ श्रिषत्) वह भूमिपर न गिरे, (मा तृणेषु) घासोंमें न गिरे, अपितु (उशद्भ्यः देवेभ्यः रातं अस्तु) इच्छा करनेवाले दिव्य वीरोंको धन वह देनेवाला हो ॥ ११ ॥

[१६९२] (ये अर्वतः मांसभिक्षां उपासते) जो घोडेको मांसल बनानेके लिए उसकी सेवा करते हैं, (उत) और (ये इति आहुः) जो यह कहते हैं कि (ई सुरभिः निर्हर) इस घोडेके लिए उत्तम गंधवाले अन्न ले आओ, और इस प्रकार (ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति) जो घोडेको हृष्टपुष्ट देखते हैं, (तेषां अभिगूर्तिः नः इन्वतु) उनकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ १२ ॥

[१६९३] (मांस्पचन्याः उखायाः यत् नीक्षणं) फलोंके गूदेको पकानेवाले पात्रको देखनेका जो साधन और (यूष्णः आसेचनानि या पात्राणि) रसको परोसे जानेवाले जो पात्र हैं, (ऊष्मण्या अपिधाना) भापको रोके रखनेवाले ढक्कन (चरूणां अंकाः सूनाः) चरुओंको काटनेके साधन छुरी आदि (अश्वं परिभूषन्ति) घोडेको भूषित करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— यज्ञस्तूपमें बंधा हुआ यज्ञका पशु यज्ञस्थानमें शौचादि करके इस स्थानको गंदा करे तो यज्ञ करनेवाले इस स्थानको झाडपोंछकर साफ रखें और यज्ञमें दी जानेवाली हविको अच्छी तरह पकायें । जहां पशु बंधा रहेगा, वहां गन्दगी और दुर्गन्धीका होना स्वाभाविक है । पर यज्ञ करनेवालोंको चाहिए कि वे उस स्थानको साफ करते हुए शुद्ध रखें ॥ १० ॥

वेगसे दौडनेवाले उत्तम और हृष्टपुष्ट अश्वकी पीठपर बैठा हुआ वीर जब गुस्सेमें आकर शत्रुओंपर अपना शस्त्र फेंके, तो उसका वह शस्त्र भूमिपर अथवा घासपर गिरकर व्यर्थ न हो, अपितु वह शत्रुओंपर गिरकर उनका संहार करे और विजयकी इच्छा करनेवाले वीरोंको धन दो, अर्थात् वीरोंके हाथसे छूटे हुए शस्त्रास्त्र शत्रुओंका संहार करें और शत्रुओंका धन वीरोंको प्राप्त हो ॥ ११ ॥

जो उत्तम गंधसे युक्त घास आदि चारा देकर अश्वको हृष्टपुष्ट और मांसल बनाते हैं, उनकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो अर्थात् पशुसेवा करनेकी उत्तम बुद्धि सभीको मिले, सभी पशुसेवा करें और उन्हें हृष्टपुष्ट बनावें ॥ १२ ॥

अश्वमेधके अवसर पर आनेवाले अतिथियोंको खिलानेके लिए शाकके गूदेको पकानेवाले बर्तन, रस आदि रखनेके लिए पात्र, ढक्कन तथा काटनेके लिए छुरी आदि साधन यज्ञस्थानमें होते हैं । ये सब साधन अश्वमेधके कारण ही एकत्रित किए जाते हैं, इसलिए मानों ये घोडेको ही भूषित करते हैं ॥ १३ ॥

१६९४ निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

१६९५ मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥

१६९६ यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
संदानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥

१६९७ यत् ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥

अर्थ— [१६९४] (अर्वतः यत् निक्रमणं) यज्ञीय घोडेका चलना, (निषदनं) बैठना (विवर्तनं) तथा अन्य चेष्टायें करना, (च पड्बीशं) तथा पैरोंका बन्धन है, (यत् च पपौ) जो कुछ घोडेने पिया (यत् घासिं च जघास) जो कुछ आहार उसने खाया, हे अश्व ! (ते ता सर्वा) तेरी वे सब क्रियायें (देवेषु अस्तु) देवोंके लिए समर्पित हो ॥ १४ ॥

[१६९५] हे अश्व ! (धूमगन्धिः अग्निः) धुंवेसे व्याप्त अग्नि (त्वा मा ध्वनयीत्) तुझसे शब्द न करवाये। (जघ्रिः भ्राजन्ती उखा) सुगंधसे भरी हुई तपती हुई थाली (मा अभिविक्त) तुझे भयभीत न करे। ऐसे (इष्टं वीतं अभिगूर्तं वषट्कृतं तं अश्वं) चाहनेयोग्य, सुन्दर, उद्यमी और संस्कारसे सम्पन्न उस घोडेको (देवासः प्रति गृभ्णन्ति) देवगण स्वीकार करते हैं ॥ १५ ॥

[१६९६] जो (अश्वाय) यज्ञीय अश्वके लिए (यत् अधीवासं) जो ओढनेके योग्य है, ऐसा (वासः उपस्तृणन्ति) कपडा उढाते हैं, जो (अस्मै) इसे (या हिरण्यानि) जो सोनेके अलंकार हैं, उन सजाते हैं, ये सब पदार्थ तथा (अर्वन्तं पड्बीशं संदानं) घोडेके पैरोंको बांधे जानेवाली रस्सी (प्रिया) ये सभी प्रिय साधन मनुष्यको (देवेषु आ यामयन्ति) देवोंके पास पहुंचाते हैं ॥ १६ ॥

[१६९७] हे अश्व ! (यत्) जो (महसा शूकृतस्य) वेगसे दौडनेके कारण हांपनेवाले (ते सादे) तेरे बैठ जानेपर (पार्ष्ण्या वा कशया तुतोद) कीलसे अथवा चाबुकसे दुःखी किया हो, तो (अध्वरेषु) यज्ञोंमें (ते ता सर्वा) तेरे उन सभी दुःखोंको मैं (ब्रह्मणा सूदयामि) स्तोत्रोंसे उसी प्रकार दूर करता हूँ (हविषाः स्रुचा इव) जिस प्रकार हवियोंको स्रुवासे डाला जाता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— यज्ञका अश्व एक देव है, अतः वह जो कुछ चेष्टायें करता है, वह एक देवकी चेष्टायें होती हैं। इसलिए उसे जो कुछ पीनेके लिए या खानेके लिए दिया जाता है, वह मानो एक देवके लिए ही समर्पित किया जाता है ॥ १४ ॥

अश्वमेधके समय यज्ञ कुण्डमें अग्नि जलती रहती है और घोडा पासमें ही बंधा हुआ होता है। वह घोडा ऐसी धुवेंसे युक्त अग्निको देखकर शब्द न करे। यज्ञके मध्यमें घोडेके शब्द करने पर ऋत्विजोंके लिए प्रायश्चित्तका विधान है। तपे हुए बर्तनोंको देखकर घोडा न डरे। जो ऐसा उत्तम, निर्भीक, परिश्रमी और उत्तम संस्कारी घोडा होता है, उसे ही देव गण अपनाते हैं अर्थात् अश्वमेधके लिए ऐसा ही उत्तम घोडा चुनना चाहिए ॥ १५ ॥

जो यज्ञीय घोडेको वस्त्रोंसे सुसज्जित करता है, या सोनेके अलंकारोंसे उसे सजाता है अथवा उसके लिए रस्सी आदि अन्य पदार्थ देता है, वह मानों ये सभी पदार्थ देवको ही देता है ॥ १६ ॥

यज्ञीय अश्वको कभी कष्ट नहीं देना चाहिए, उसे कभी चाबुक या कीलसे मारना नहीं चाहिए। वह देवता है अतः देवताको कष्ट देना योग्य नहीं ॥ १७ ॥

१६९८ चतु॑स्त्रिंशद् वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति ।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ॥ १८ ॥
१६९९ एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ ऋ॒तुः ।
या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ ॥ १९ ॥
१७०० मा त्वा॑ तपत् प्रि॒य आ॒त्मापि॒यन्तं॒ मा स्वधि॑तिस्त॒न्व१॒ आ ति॑ष्ठिपत् ते ।
मा ते॑ गृ॒ध्नुर॑विश॒स्तादि॒हाय॒ छि॒द्रा गात्रा॑ण्य॒सिना॒ मिथू॑ कः ॥ २० ॥
१७०१ न वा उ॑ ए॒तन्म्रि॑यसे॒ न रि॑ष्यसि दे॒वाँ इदे॑षि प॒थिभिः॑ सु॒गेभिः॑ ।
हरी॑ ते॒ युञ्जा॒ पृष॑ती अभूता॒मुपा॑स्थाद् वा॒जी धु॒रि रास॑भस्य ॥ २१ ॥

अर्थ— [१६९८] (देवबन्धोः वाजिनः) देवोंको प्रिय घोडेके (चतुस्त्रिंशत् वङ्क्रिः) दोनों तरफ चौंतीस हड्डियां होती हैं, ऐसे (अश्वस्य स्वधितिः सं एति) घोडेके शस्त्रास्त्र शत्रुओंकी तरफ जाते हैं। हे मनुष्यो ! (गात्रा अच्छिद्रा वयुना कृणोत) घोडेके अंग प्रत्यंगोंको दोषरहित और दर्शनीय बनाओ। ताकि (अनुघुष्य) हिनहिनाते हुए वह (परुः परुः विशस्त) शत्रुओंके अंगोंको काटे ॥ १८ ॥

[१६९९] (ऋतुः अश्वस्य त्वष्टुः) शीघ्र गतिसे सर्वत्र संचार करनेवाले घोडेको (एकः विशस्ता) एक ही मारनेवाला होता है (तथा द्वा यन्तारा भवतः) तथा दो उसे वशमें करनेवाले होते हैं। हे अश्व ! (ते गात्राणां) तेरे अंग प्रत्यंगोंके मध्यमेंसे (या ऋतुथा कृणोमि) जिन अंगोंको ऋतुके अनुसार पुष्ट करता हूँ (पिण्डानां) शरीरमेंसे (ताता अग्नौ जुहोमि) उन उन अंगोंको अग्निमेंसे निकालता हूँ ॥ १९ ॥

[१७००] हे अश्व ! (अपियन्तं त्वा) देवोंकी तरफ जानेवाले तुझे (प्रियः आत्मा) तेरी प्रिय आत्मा (मा तपत्) दुःख न दे। (ते तन्वः) तेरे शरीर पर (स्वधितिः मा अतिष्ठिपत्) शस्त्र न बैठे। (गृध्नुः अविशस्ता) लालची और दुष्ट मनुष्य (अतिहाय) तेरे कष्टकी चिन्ता न करते हुए (मिथू) व्यर्थ ही (असिना) अपने शस्त्रसे (ते गात्राणि छिद्रा मा कः) तेरे शरीरमें छेद न करे ॥ २० ॥

[१७०१] हे वीर ! (एतत् उ) यह निश्चय है कि तू (न म्रियसे) मरेगा नहीं, (न रिष्यसि) तू हिंसित भी नहीं होगा, अपितु (सुगेभिः पथिभिः देवान् इत् एषि) उत्तमता और सुखपूर्वक जानेयोग्य मार्गोंसे तू देवोंके पास जाएगा। (ते हरी युंजा) तेरे रथमें दो घोडे जोते गए हैं। (पृषती अभूतां) वे घोडे हिरणके समान वेगवान् हैं। (रासभस्य धुरि वाजी अस्थात्) गर्जना करनेवाले तेरे रथकी धुरामें बलवान् अश्व विद्यमान है ॥ २१ ॥

भावार्थ— घोडेके दोनों बगलोंमें चौंतीस हड्डियां होती हैं। यहां प्राणिविज्ञान वेदमंत्र बताता है। इसके सभी अंग दोषरहित और देखने योग्य हों। वह शब्द करते हुए शत्रुओं पर आक्रमण करे और उस पर बैठे हुए वीर अपने शस्त्रोंसे शत्रुओंके मर्मों पर प्रहार करके उन्हें काटें ॥ १८ ॥

जब वेगवान् घोडा रथमें जोडा जाता है, तब एक सारथि ही उसे मारता है और दो लगाम उसे वशमें करनेवाले होते हैं। जब ऋतुके अनुसार घोडेको खिला पिलाकर पुष्ट किया जाता है, तब उसे संग्रामकी अग्निमें तपाकर परिपक्व करना चाहिए, अर्थात् उसे संग्राममें भेजकर युद्धकी कला और नीतियोंमें निपुण बनाना चाहिए ॥ १९ ॥

मांसके लालचसे कोई भी दुष्ट मनुष्य घोडेको न मारे, न काटे, उस पर कोई शस्त्र प्रहार न करे और इस प्रकार अश्वकी प्रिय आत्माको उससे वियुक्त करके दुःख न दे ॥ २० ॥

हे वीर ! तेरे रथमें हिरणके समान वेगवान् और अत्यन्त बलवान् दो घोडे जोते गए हैं, और तू स्वयं भी गर्जना करनेवाला है। इसलिए तू डर मत, न तू मरेगा और न शत्रुओंसे मारा ही जाएगा। अतः तू निर्भीक होकर युद्धमें जा। इस प्रकार वीरता दिखाकर तू देवोंके पास जाने योग्य हो सकेगा, अथवा यदि तू युद्धमें मर भी जाएगा, तो भी तू स्वर्गको प्राप्त होकर देवोंके पास जा सकेगा ॥ २१ ॥

१७०२ सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

[१६३]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- अश्वः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१७०३ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥

१७०४ यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

अर्थ— [१७०२] (वाजी) बलवान् वह घोडा (नः पुंसः) हम मनुष्योंको (पुत्रान्) पुत्र (उत) और (सुगव्यं सु अश्व्यं) उत्तम गाय और घोडोंसे युक्त (विश्वापुषं रयिं) सबका पोषण करनेवाला धन प्रदान करे । (अदितिः) न मारे जाने योग्य यह घोडा (नः अनागास्त्वं कृणोतु) हमें पापसे रहित करे । (हविष्मान् अश्वः) तेजस्वी घोडा (नः क्षत्रं वनतां) हमें क्षात्रशक्तिसे संयुक्त करे ॥ २२ ॥

[१६३]

[१७०३] हे (अर्वन्) अश्व ! (समुद्रात् प्रथमं जायमानः) समुद्रसे सर्वप्रथम उत्पन्न होता हुआ तथा (उत वा) अथवा (पुरीषात् उद्यन्) पानीमेंसे ऊपर आता हुआ तू (यत् अक्रन्दः) जो गरजा, (ते महि जातं उपस्तुत्यं) तेरा वह महान् जन्म प्रशंसनीय है । तेरे (पक्षा) दोनों पक्ष (श्येनस्य) बाजके समान हैं और (बाहू हरिणस्य) बाहुएं हिरणके समान हैं ॥ १ ॥

[१७०४] (यमेन दत्तं एनं) यमके द्वारा दिए गए इस अश्वको (त्रितः अयुनक्) त्रितने अपने रथमें जोडा, (प्रथमः इन्द्रः एनं अधि अतिष्ठत्) मुख्य और श्रेष्ठ इन्द्रने इसपर अधिकार किया । (गन्धर्वः अस्य रशनां अगृभ्णात्) गन्धर्वने इसके लगाम पकडे और (वसवः) वसुओंने (सूरात्) सूर्यसे (अश्वं निरतष्ट) इस घोडेको उत्तम रीतिसे बनाया ॥ २ ॥

भावार्थ— यह यज्ञीय बलवान् घोडा हमें हर तरहके धन, पुत्र तथा गाय, घोडे आदि पशु प्रदान करे । हमें प्राप्त धनसे सभीका पोषण हो । यह घोडा मारे जाने योग्य नहीं है । हम कभी ऐसा पाप न करें । यह तेजस्वी घोडा हमें क्षात्र शक्तिसे युक्त करे ॥ २२ ॥

सर्वत्र व्यापनेवाला यह सूर्य द्युलोकसे वा जलके मध्यमेंसे उदय होता हुआ प्रकाशित होता है, इसके पंख और बाहु अर्थात् किरणें बाजकी तरह शक्तिशाली और हिरणकी तरह वेगवान् हैं ॥ १ ॥

सर्व नियन्ताके द्वारा उत्पन्न किए गए इन किरणोंको तीनों लोकोंमें गमन करनेवाले सूर्यने अपने रथमें जोडा अर्थात् वह किरणोंसे युक्त हुआ । उसकी शक्ति सबसे प्रथम बिजलीने प्राप्त की, तब बिजलीकी शक्तिको अब धारण करनेवाले बादलोंने पाई, बादल ही बिजलीके नियामक हैं । पानी बरसनेके बाद बादलोंके छंट जानेपर किरणें फिर सूर्यको प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

१७०५ असि॑ य॒मो अस्या॑दि॒त्यो अ॑र्व॒न्नसि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑ ।
अ॒सि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्त आ॒हुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि ॥ ३ ॥
१७०६ त्रीणि॑ त आहुर्दि॒वि बन्ध॑नानि॒ त्रीण्य॒प्सु त्रीण्य॒न्तः स॑मु॒द्रे ।
उ॒तेव॑ मे॒ वरु॑णश्छन्त्स्यर्व॒न् यत्रा॑ त आ॒हुः प॑र॒मं ज॒नित्र॑म् ॥ ४ ॥
१७०७ इ॒मा ते॑ वाजिन्नव॒मार्ज॑नानी॒मा श॒फानां॑ सनि॒तुर्नि॒धाना॑ ।
अत्रा॑ ते भ॒द्रा र॑श॒ना अ॑पश्यमृ॒तस्य॒ या अ॑भि॒रक्ष॑न्ति गो॒पाः ॥ ५ ॥
१७०८ आ॒त्मानं॑ ते॒ मन॑सा॒राद॑जानाम॒वो दि॒वा प॒तय॑न्तं पत॒ङ्गम् ।
शिरो॑ अपश्यं प॒थिभि॑ः सु॒गेभि॑रेर॒णुभि॒र्जेह॑मानं पत॒त्रि ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७०५] हे (अर्वन्) गतिशील अश्व ! तू (यमः असि) सबका नियन्ता है, (आदित्यः असि) तू सब रसोंका आदान करनेवाला है, (गुह्येन व्रतेन त्रितः असि) तू अपने गोपनीय कर्मोंसे त्रित है। तू (सोमेन समया) सोमके साथ (विपृक्तः असि) अच्छी तरह संयुक्त है, (ते दिवि त्रीणि बन्धनानि आहुः) तेरे द्युलोकमें तीन बंधन हैं, ऐसा कहते हैं ॥ ३ ॥

[१७०६] हे (अर्वन्) अश्व ! (दिवि ते त्रीणि बंधनानि आहुः) द्युलोकमें तेरे तीन बंधन हैं, (अप्सु त्रीणि) जलोंमें तीन बंधन हैं, (समुद्रे अन्तः त्रीणि) अन्तरिक्षमें तीन बन्धन हैं (यत्र ते परमं जनित्रं आहुः) जहां तेरा उत्तम जन्म हुआ है, ऐसा कहते हैं, उसे (वरुणः) वरणीय तू (मे छन्त्सि) मुझे कह ॥ ४ ॥

[१७०७] हे (वाजिन्) यज्ञीय अश्व ! (ते इमा अवमार्जनानि) तेरे ये शरीरशुद्धिके स्थान हैं, (सनितुः) यज्ञसे सम्बन्ध रखनेवाले तेरे ये (शफानां निधाना) खुरोंके रखनेके स्थान हैं। (या गोपाः ऋतस्य अभि रक्षन्ति) जो रक्षा करनेवाले यज्ञकी रक्षा करते हैं, ऐसे (ते भद्राः रशनाः) तेरे कल्याणकारी लगाम मैंने (अत्र अपश्यं) यहां देखे हैं ॥ ५ ॥

[१७०८] हे अश्व ! (पतयन्तं पतंगं) उडते हुए पक्षीकी तरह (दिवा अवः) द्युलोकसे नीचे आनेवाले (ते आत्मानं) तेरी आत्माको (आरात्) दूरसे ही (मनसा अजानां) प्रसन्न मनसे मैंने जान लिया है। (पतत्रि) पक्षीके समान (अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिः) पापरहित और सुखसे जानेयोग्य मार्गोंसे (जेहमानं ते शिरः अपश्यं) जानेवाले तेरे सिरको मैंने देखा है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह गतिशील सूर्य सब जगत्का नियन्ता है अर्थात् सारे संसारको यह सूर्य चलाता है, सब रसोंको ग्रहण करनेवाला होनेसे वह आदित्य है, अपनी किरणोंसे वह पृथ्वीपरके सब रसोंको ग्रहण करता है। वह अपने कर्मोंसे तीनों लोकोंमें संचार करता है। वह चन्द्रमाके साथ अच्छी तरह संयुक्त होता है, चन्द्रमामें सूर्यकी किरणें ही प्रकाशित होती हैं। द्युलोकमें इस सूर्यके तीन बन्धन हैं, वसु, आदित्य और द्यु ये तीन उसके बन्धन हैं ॥ ३ ॥

वसु, आदित्य और द्यु ये तीन बंधन द्युलोकमें इस सूर्यके हैं, पृथ्वीपर अन्न, स्थान और बीज ये तीन बंधन हैं, अन्तरिक्षमें मेघ, विद्युत् और वायु ये तीन बंधन हैं। इन तीन स्थलोंमें इस सूर्यका उत्तम जन्म है, अर्थात् यह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

यज्ञीय पशुके शरीरशुद्धिके स्थान तथा उसके रहनेके स्थान सभी साफ और पवित्र हों। वह यज्ञकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

जिस तरह आकाशमें पक्षी उडते हैं, उसी तरह द्युलोकसे नीचे आती हुई सूर्यकी किरणोंको दूरसे ही देखकर मनुष्य बहुत प्रसन्न होता है। उस सूर्यकी किरणें पापरहित मार्गोंसे इस पृथ्वीपर आती हैं, अर्थात् जहां जहां सूर्यकी किरणें आतीं हैं, वहांका स्थान शुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

१७०९ अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानु-ळादिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥
१७१० अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्व-न्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयु-रनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥
१७११ हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन् यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
१७१२ ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥

अर्थ— [१७०९] (गोः पदे) पृथ्वीके स्थानमें (इषः जिगीषमाणं) अन्नको खानेकी इच्छा करनेवाले (ते उत्तमं रूपं अत्र अपश्यं) तेरे उत्तम रूपको मैंने देखा है। हे अश्व! (यदा) जब (ग्रसिष्ठः ओषधीः अजीगः) भक्षण करनेवाले तूने औषधियोंको खाया, (आत् इत्) उसके बाद ही (ते मर्तः) तेरे उपासक मनुष्यने (भोगं अनु आनट्) ऐश्वर्यादि भोगोंको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

[१७१०] हे (अर्वन्) गतिशील अश्व! (त्वा अनु रथः) तेरे पीछे रथ चलता है, (मर्यः अनु) मनुष्य तेरे पीछे चलता है, (गावः अनु) गायें तेरे पीछे चलती हैं, (कनीनां भगः अनु) कन्याओंका सौभाग्य भी तेरे पीछे चलता है, (व्रातासः अनु तव सख्यं ईयुः) व्रतशील मनुष्य भी तेरे पीछे चलते हुए तेरी मित्रताकी कामना करते हैं (देवाः अनु) देवगण भी तेरे पीछे चलते हुए (ते वीर्यं ममिरे) तेरी शक्तिका मापन करते हैं ॥ ८ ॥

[१७११] यह घोडा (हिरण्यशृंगः) सोनेके कानोंवाला है, (अस्य पादाः अयः) इसके पैर लोहेके समान दृढ हैं, (यः अर्वन्तं प्रथमः अध्यतिष्ठत्) जिस घोडेपर सर्वप्रथम चढा था, वह (मनोजवाः इन्द्रः अवरः आसीत्) मनसे भी वेगवान् इन्द्र भी इस घोडेके सामने नीचा हो गया, (देवाः इत्) देवगण भी (अस्य हविरद्यं) इसकी हवि खानेके लिए (आयन्) आते हैं ॥ ९ ॥

[१७१२] (ईर्मान्तासः) पुष्टजघनभागवाले, (सिलिकमध्यमासः) तथा पतली कमरवाले (शूरणासः दिव्यासः अत्याः अश्वाः) चलनेमें तेज, उत्तम गुणवाले, हमेशा गति करनेवाले घोडे, (यत्) जब (दिव्यं अज्म) उत्तम मार्गपर (आक्षिषुः) चलते हैं, तब (हंसाः इव) हंसोंके समान (श्रेणिशः यतन्ते) एक पंक्तिमें रहकर चलते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— पृथ्वीमें अन्न खानेकी इच्छा करनेवाले इस यज्ञीय पशुके उत्तम रूपको देखकर सभी खुश होते हैं। जब उपासक मनुष्यके द्वारा दिए गए उत्तम उत्तम वनस्पतियोंको यह घोडा खुश होकर खाता है, तब उसका उपासक उसकी कृपासे सभी ऐश्वर्यों और भोगोंको प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

यज्ञके पश्चात् जब अश्वमेधका घोडा छोडा जाता है और वह नगरके बाहर जाने लगता है, तब उसकी रक्षाके लिए रथ और सैनिक पीछे चलते हैं, उसकी और राजाकी मंगल कामना करतीं हुईं सुवासिनी कन्यायें उसके पीछे चलती हैं। शकुनको प्रकट करनेवाली गायें भी उसके पीछे चलती हैं और वेदज्ञ विद्वान्गण स्वस्त्ययन आदि मङ्गलस्तोत्रोंका पाठ करते हुए उसकी शक्ति बढाते हुए उसके पीछे पीछे चलते हैं ॥ ८ ॥

इस यज्ञीय घोडेके कान सोनेके आभूषणोंसे सजाये जाते हैं और पैरोंमें लोहेकी नाल भी लगाई जाती है, ताकि सर्वत्र संचार करनेवाले इस घोडेको चलने फिरनेमें कष्ट न हों। जब यह घोडा यज्ञ आदिसे सुसंस्कृत हो जाता है, तब इसके तेजके सामने इन्द्र भी फीका हो जाता है अर्थात् संस्कारके कारण इस घोडेका तेज बहुत बढ जाता है। तब सभी देव इस घोडेको दिए जानेवाले हविकी कामना करते हैं ॥ ९ ॥

घोडे वे अच्छे होते हैं कि जिनकी जांघे या पीछेका भाग पुष्ट और बीचका भाग पतला हो। ऐसे घोडे चलनेमें तेज और उत्तम गुणवाले होते हैं। ऐसे घोडे जब मार्गपर एक कतारमें दौडते हैं, तब वे ऐसे सुन्दर प्रतीत होते हैं, जिस प्रकार आकाशमें उडती हुईं हंसोंकी श्रेणियां ॥ १० ॥

१७१३ तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न् तव॑ चि॒त्तं वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रा ऽर॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ ११ ॥
१७१४ उप॒ प्रागा॒च्छस॑नं वा॒ज्यर्वा॑ देव॒द्रीचा॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नः ।
अ॒जः पु॒रो नी॑यते॒ नाभि॑र॒स्या ऽनु॑ प॒श्चात् क॒वयो॑ यन्ति रे॒भाः ॥ १२ ॥
१७१५ उप॒ प्रागा॑त् प॒रमं॒ यत् स॒धस्थ॒ मर्वाँ॒ अच्छा॑ पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ।
अ॒द्या दे॒वाञ्जुष्ट॑तमो॒ हि ग॒म्या अथा शास्ते॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ १३ ॥

अर्थ—[१७१३] हे (अर्वन्) अश्व ! (तव शरीरं पतयिष्णु) तेरा शरीर उडनेवाला है, (तव चित्तं वातः इव ध्रजीमान्) तेरा मन वायुके समान वेगवान् है। (तव शृंगाणि पुरुत्रा विष्ठिता) तेरे सींग अर्थात् अयाल बहुत प्रकारसे रहते हैं, और (जर्भुराणा अरण्येषु चरन्ति) मनोहर वे अयाल जंगलोंमें विचरते हैं ॥ ११ ॥

[१७१४] (वाजी अर्वा) बलवान् घोडा (देवद्रीचा मनसा दीध्यानाः) अपने दिव्य मनसे ध्यान करता हुआ (शसनं उप प्र अगात्) शत्रुओंको काटनेके लिए आगे चलता है। (नाभिः अजः पुरः नीयते) शक्तियोंका केन्द्र यह नेता-अश्व आगे ले जाया जाता है, (अस्य अनु पश्चात्) इसके पीछे पीछे (रेभाः कवयः यन्ति) स्तुति करनेवाले ज्ञानी जन जाते हैं ॥ १२ ॥

[१७१५] (यत् परमं सधस्थं) जो सर्वोत्कृष्ट स्थान है, वहां (अर्वान्) यह घोडा (मातरं पितरं अच्छा उप प्रागात्) माता पिताके पास सीधा जाता है। हे अश्व ! तू (अद्य) आज (जुष्टतमः) अत्यन्त प्रसन्न होकर (देवान् गम्याः)देवोंके पास जा (अथ) और (शास्ते दाशुषे वार्याणि) स्तुति करनेवाला तथा दानशीलके लिए वरणीय धन प्राप्त हों ॥ १३ ॥

भावार्थ— इस सूर्यका प्रकाश द्युलोकसे उडकर इस पृथ्वीतक आता है, इसकी गति वायुसे भी तेज है। इसकी किरणें अनेक रंगोंवाली हैं और वे सब अन्धकारोंमें विचरती हैं। घोडा भी बहुत ऊंची कुदान मारनेवाला है, इसका मन हमेशा प्रसन्न रहकर वेगवान् हो। उसके अयाल सुन्दर हों, ऐसे सुन्दर अयालोंवाला घोडा सर्वत्र विचरता रहे ॥ ११ ॥

उत्तम गुणोंसे युक्त बलवान् घोडा हमेशा अपने स्वामीके हितका ध्यान करता हुआ शत्रुओंके विनाशके लिए संग्राममें जाता है। ऐसा घोडा संग्राममें लडता भिडता हुआ भी सदा अपने स्वामीके हितका ही ध्यान रखता है। ऐसा लोगोंको आगे ले जानेवाला घोडा आगे आगे जाता है और इसके पीछे पीछे ज्ञानी जन स्तोत्र गाते हुए चलते हैं ॥ १२ ॥

यह घोडा इतना वेगवान् है कि यह मानों अपनी गतिसे द्युलोक पर चढ जाना चाहता है। अर्थात् ऐसा उत्तम और श्रेष्ठ घोडा हो, जिसके मनमें बहुत उत्साह हो। वह प्रसन्न होकर तेजस्वी मनुष्योंकी हरतरहसे सहायता करे और उन्हें धनादि प्रदान करे ॥ १३ ॥

[१६४]

(ऋषिः- दीर्घतमा औचथ्यः । देवता- १-४१ विश्वे देवाः; ४२ आद्यर्धर्चस्य वाक्, द्वितीयस्य आपः;
४३ आद्यर्धर्चस्य शकधूमः, द्वितीयस्य सोमः; ४४ केशिनः [अग्निः सूर्यो वायुश्च] ४५ वाक्;
४६-४७ सूर्यः; ४८ संवत्सरकालचक्रम्; ४९ सरस्वती; ५० साध्याः; ५१ सूर्यः; पर्जन्याग्नयो
वा; ५२ सरस्वान्, सूर्यो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्; १२, १५, २३, २९, ३६, ४१ जगती;
४२ प्रस्तारपंक्तिः; ५१ अनुष्टुप् ।)

१७१६ अस्य वामस्य पलितस्य होतु- स्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्या- त्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

१७१७ सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्र- मेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

१७१८ इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

[१६४]

अर्थ— [१७१६] (अस्य वामस्य पलितस्य होतुः) इस सुन्दर और पालन करनेवाले तथा सब रसोंका हरण करनेवाले सूर्यका (मध्यमः भ्राता) मझला भाई (अश्नः अस्ति) सर्वत्र व्याप्त है। (अस्य तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठः) इसका तीसरा भाई तेजस्वी पीठवाला या घृतसे युक्त पीठवाला है । (अत्र) यहां मैंने (सप्तपुत्रं विश्पतिं अपश्यं) सात पुत्रोंसे युक्त प्रजाके पालन करनेवालेको देखा है ॥ १ ॥

[१७१७] (एकं चक्रं रथं सप्त युञ्जंति) एक चक्रवाले रथमें सात घोडे जुडे हुए हैं, (सप्तनामा एकः अश्वः वहति) सात नामोंवाला एक ही घोडा इस रथको खींचता है। (त्रिनाभि चक्रं) इस रथका तीन नाभियोंवाला चक्र (अजरं अनर्वं) अजर और अशिथिल है, (यत्र इमा विश्वा भुवनानि तस्थुः) जिसमें ये सारे भुवन स्थित हैं ॥२॥

[१७१८] (ये सप्त इमं रथं अधि तस्थुः) जो सात किरणें इस रथपर आश्रित होकर बैठी हैं, (सप्तचक्रं) सातचक्रवाले इस कालरूपी सूर्यको (सप्त अश्वाः वहन्ति) सात घोडे ढोते हैं। (यत्र गवां सप्तनाम निहिता) जहां वाणीके सात नाम छिपे हुए हैं, ऐसी (सप्त स्वसारः अभि सं नवन्ते) सात बहिनें इस सूर्यकी चारों ओरसे स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— सूर्य, वायु और अग्नि ये तीन भाई हैं। द्युलोकस्थ सूर्य ज्येष्ठ, अन्तरिक्षस्थ वायु मध्यम और पृथिवीस्थ अग्नि कनिष्ठ है। द्यु और पृथिवी इन तीनोंके पिता माता हैं। इनमें ज्येष्ठ भाई सूर्य सात रंगकी किरणोंसे युक्त होनेके कारण सात पुत्रोंवाला है । वह सब प्राणिमात्रका पालक होनेसे विश्पति है । यदि सूर्य न हो तो जगत्का नाश हो जाए । उसका मझला भाई वायु सर्वत्र व्याप्त है । वायुसे रहित कोई भी स्थान नहीं है । तथा सूर्यका तीसरा भाई अग्नि तेजस्वी पीठवाला है, उसकी पीठरूपी ज्वालायें अत्यधिक तेजस्वी हैं अथवा वह घीसे युक्त पीठवाला है, यज्ञमें अग्निकी ज्वालाओंमें घीकी आहुतियां दी जाती हैं, इसलिए उसे घृतपृष्ठ कहा गया है ॥ १ ॥

आदित्यमण्डलरूपी गतिशील रथका सूर्यरूपी एक ही चक्र है । उस रथमें सात रंगकी किरणरूपी सात घोडे जुते हुए हैं, जो उस सूर्यको सब जगह ले जाते हैं । यद्यपि किरण एक ही है, पर रंगोंके विभिन्न होनेसे वे सात किरणें अलग अलग हो जाती हैं, अतः किरणरूपी एक ही घोडेके रंगोंके कारण सात नाम हो जाते हैं । सूर्यका यह कालरूपी रथ तीन नाभियों- वाला है, उस कालकी शरद, वर्षा और ग्रीष्म ये तीन नाभियां हैं, और यह कालरूपी रथ हमेशा चलता रहता है, इसकी गति कभी बंद या धीमी नहीं होती । इसी कालके अन्तर्गत सारे लोक रहते हैं। इस कालके प्रभावसे मुक्त कोई भी नहीं है ॥२॥

इस सूर्यमें सातरंगकी किरणें आश्रित रहती हैं। यह सूर्य कालका निर्माता होनेसे स्वयं भी कालरूप है । ऐसे इस कालरूपी सूर्यके अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात और मुहूर्त ये सात चक्र हैं, जिन्हें सात किरणरूपी सात घोडे खींचते हैं । इस सूर्यके प्रभावसे कोई भी मुक्त नहीं है । इसका प्रभाव अमित है । इसीलिए सात नाम अर्थात् सात स्वरों और सात बहिनों अर्थात् सात छन्दोंवाली वेदवाणी इसी सूर्यकी स्तुति करती है ॥ ३ ॥

१७१९ को ददर्श प्रथमं जायमान— मस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥
१७२० पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥
१७२१ अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजां— स्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७१९] (यत् अनस्था अस्थन्वन्तं बिभर्ति) जो हड्डीरहित होते हुए भी हड्डियोंसे युक्त प्राणियोंको धारण करता है, (जायमानं प्रथमं कः ददर्श) उसे उत्पन्न होते हुए सर्वप्रथम किसने देखा ? (भूम्याः असुः असृक् आत्मा क्व स्वित्) भूमिके प्राण, रक्त और आत्मा ये सब कहां थे ? (एतत् प्रष्टुं) यह पूछनेके लिए (कः विद्वांसं उप गात्) कौन विद्वान्के पास गया ? ॥ ४ ॥

[१७२०] (पाकः) अपरिपक्व बुद्धिवाला मैं (अविजानन्) कुछ न जानता हुआ (देवानां निहिता एना पदानि) देवोंके गुप्त इन स्थानोंको (मनसा पृच्छामि) श्रद्धापूर्वक पूछता हूँ । (बष्कये वत्से) देखनेके लिए निवास करनेके लिए तथा (ओतवै) विस्तार करनेके लिए (कवयः) ज्ञानी जन (सप्त तन्तून् वितत्निरे) सात धागोंको बुनते हैं ॥ ५ ॥

[१७२१] (यः इमा षट् रजांसि तस्तम्भ) जिसने छहों लोक थाम रखे हैं, (अजस्य रूपे) उस अजन्मा प्रजापतिके रूपमें (एकं किं स्वित्) वह एक तत्व किस प्रकारका है, यह बात (अचिकित्वान्) न जाननेवाला मैं (चिकितुषः कवयः) जाननेवाले ज्ञानियोंसे (विद्मने) जाननेके लिए (पृच्छामि) पूछना चाहता हूँ, क्योंकि (न विद्वान्) मैं यह गुप्त विद्या नहीं जानता ॥ ६ ॥

भावार्थ— सृष्टिके पूर्वावस्थाका वर्णन है । जिस समय कुछ भी पदार्थ अस्तित्वमें नहीं था, उस समय भी एक तत्व ऐसा विद्यमान था, जो सब सृष्टिका निरीक्षण कर रहा था और उत्पन्न होते हुए पदार्थोंको देख रहा था, वह तत्व कः अर्थात् प्रजापति था । आज भी वह प्रजापति स्वयं हड्डीसे रहित अर्थात् शरीरसे रहित होते हुए भी शरीरसे युक्त प्राणियोंका पालनपोषण करता है । सृष्टिके पूर्व इस भूमिके लिए प्राणरूप वायु, रक्तरूप जल तथा आत्मारूप सूर्य अर्थात् भूमि, वायु, जल और सूर्य ये कुछ भी पदार्थ नहीं थे । वायु पृथ्वीका प्राण, जल रक्त और सूर्य आत्मा है । उस समय जब ये कुछ भी पदार्थ नहीं थे, तो इनके बारेमें कौन किससे पूछने जाता ? उस समय तो केवल प्रजापति था, जो सब कुछ देख रहा था ॥ ४ ॥

इस विश्वमें अनेक देवता कार्य करते हैं । वे अनेक लोकोंमें रहते हैं, पर उनका मूलस्थान अर्थात् जहांसे वे उत्पन्न हुए, रहस्यमय या गुप्त है । यह बात एक अपरिपक्व बुद्धिवाला श्रद्धालु जिज्ञासु जानना चाहता है । ये ज्ञानयुक्त देवगण उत्पन्न होकर मन, प्राण, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश (पंचभूत) इन सात तत्वरूपी सात सूतोंसे ताना बाना डालकर यह संसाररूपी वस्त्र बुनते हैं अर्थात् इस संसारको उत्पन्न करते हैं । तब यह संसार विस्तृत होकर देखने और रहने योग्य होता है । देवगण जुलाहे हैं, जो मन, प्राण और पंचमहाभूतरूपी सात सूतोंको लेकर संसाररूपी वस्त्र बुना करते हैं ॥ ५ ॥

जिसने ये छहों लोक स्थिर किए हुए हैं, वह अजन्मा एक तत्व किस तरहका है, उसका स्वरूप क्या है ? यह कुछ निश्चित नहीं है, पर वह कुछ है इतना तो ज्ञात है, पर उसके निश्चित स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करना कठिन है । उसी तत्वके प्रभावसे ये सभी लोक स्थिर हैं । उस तत्वके निश्चित स्वरूपका परिज्ञान ज्ञानियोंसे पूछकर ही प्राप्त किया जा सकता है । पर इसके लिए भी जिज्ञासुके ये भाव हों कि " मैं कुछ नहीं जानता, अतः मैं ज्ञानियोंसे पूछता हूँ । " अर्थात् वह जिज्ञासु भावसे विनम्र होकर ज्ञानियोंके पास जाए । उनके ज्ञानकी परीक्षाके लिए नहीं ॥ ६ ॥

१७२२ इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदाऽस्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥

१७२३ माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

१७२४ युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

अर्थ-- [१७२२] (यः अस्य वामस्य वेः) जो इस सुन्दर और गतिशील सूर्यके (पदं) स्थानको (वेद) जानता है, वह (इह ईं ब्रवीतु) यहां आकर इस रहस्यको स्पष्ट रूपसे कहे। (शीर्ष्णः अस्य) सर्वश्रेष्ठ इस सूर्यकी (गावः) किरणें (क्षीरं दुह्रते) पानी दुहती हैं और वे ही (वव्रिं वसाना) अत्यन्त तेजस्वी रूपको धारण करके (पदा उदकं आपुः) पैरोंसे पानीको पीती हैं ॥ ७ ॥

[१७२३] (माता धीती) माताने अपने कर्मसे (ऋते) जलके लिए (पितरं आ बभाजे) पिताका सेवन किया, (अग्रे) इसके बाद (मनसा सं हि जगमे) पिता प्रीतिपूर्वक मनसे मातासे संयुक्त हुआ, (सा बीभत्सुः) वह गर्भको धारण करनेकी इच्छावाली माता (गर्भरसा निविद्धा) गर्भको उत्पन्न करनेवाले रससे युक्त हुई, तब (नमस्वन्तः उप वाकं ईयुः) अन्नकी इच्छा करनेवाले स्तुति करते हुए इसके पास पहुंचे ॥ ८ ॥

[१७२४] (दक्षिणायाः धुरि) सूर्यकी धारणाशक्ति पर (माता युक्ता आसीत्) पृथ्वी माता आश्रित रहती है (त्रिषु योजनेषु) तीनों लोकोंमें (विश्वरूप्यं गां अपश्यत्) अनेक रूपोंवाली गायको जब देखा, तब (वत्सः अनु अमीमेत्) उसका बछडा चिल्लाने लगा, और तब (वृजनीषु अन्तः गर्भः अतिष्ठत्) बलकी शक्तियोंसे परिपूर्ण पृथ्वीके अन्दर गर्भ स्थापित हुआ ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह सूर्य कहांसे उत्पन्न होता है, कहां रहता है और उसका क्या स्वरूप है? यह सभी बातें हर कोई नहीं जान सकता। ज्ञानी ही जान सकते हैं। वर्षाकालमें इस सूर्यकी जो गायें अर्थात् किरणें पानी बरसाती हैं, वे ही ग्रीष्मकालमें तेज होकर अपने अग्रभागसे पृथिवीपरके पानीको पीती हैं-- सोखती हैं। पानीका सोखना और बरसना ये सूर्यके कार्य सभी जानते हैं, पर उस सूर्यका मूलस्थान केवल ज्ञानी ही जानते हैं ॥ ७ ॥

ग्रीष्मकालमें संतप्त हुई पृथ्वीमाताको पानीकी आवश्यकता होती है, तब सूर्य जल बरसाता है। इस जलके माध्यमसे पृथ्वीरूपी माता और सूर्यरूपी पिताका संयोग होता है। तब पितारूपी सूर्य वर्षारूपी वीर्यको मातारूपी पृथ्वीमें स्थापित करता है। जब वह पृथ्वी वर्षाजलसे सिंचित होकर गर्भ धारण कर गर्भरूपी अन्नादिकको प्रसूत करनेमें समर्थ होती है, तब अन्नको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले कृषक आदि उस पृथ्वीके पास आते हैं ॥ ८ ॥

सूर्य सब विश्वको धारण करता है, अतः उस पर पृथ्वी भी आश्रित रहती है। सूर्यसे पृथ्वीको जीवन मिलता है। इस सूर्यकी किरणोंके द्वारा बादलोंका निर्माण होता है अतः सूर्यकी किरणें गायें हैं और उसके द्वारा उत्पन्न हुए हुए बादल उसके बछडे हैं, जब बादल इन किरणोंसे संयुक्त होता है, तब वह गरजता है और पानी बरसाता है। उस पानीरूपी वीर्यके कारण यह पृथ्वी गर्भवती अर्थात् अन्नादिको प्रसूत करनेमें समर्थ होती है ॥ ९ ॥

१७२५ तिस्रो मातृस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेकं ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवं ग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥

१७२६ द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥

१७२७ पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥

अर्थ— [१७२५] (एकः) यह प्रजापति अकेला ही (तिस्रः मातृः) तीन माताओं और (त्रीन् पितॄन्) तीन पिताओंको (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (ऊर्ध्वः तस्थौ) सबसे ऊपर विराजमान है। वे सभी (ईं न अव ग्लापयन्ति) इसको दुःखी नहीं करते। (विश्वविदं) समस्त विश्वको जाननेवाली तथापि (विश्वमिन्वां) समस्त विश्वसे परे रहनेवाली (अमुष्य वाचं) इस प्रजापतिकी वाणीके बारेमें वे सब (दिवः पृष्ठे मन्त्रयन्ते) द्युलोककी पीठपर विचार करते हैं॥ १० ॥

[१७२६] (ऋतस्य द्वादशारं चक्रं) सूर्यका बारह अरोंवाला चक्र (द्यां परि वर्वर्ति) द्युलोकके चारों ओर घूमता है और (तत् जराय नहि) वह कभी जीर्ण नहीं होता। हे (अग्ने) अग्ने! (सप्त शतानि विंशतिः च) सातसौ बीस (मिथुनासः पुत्राः) जोडे पुत्र (आ तस्थुः) हमेशा रहते हैं॥ ११ ॥

[१७२७] (पंचपादं द्वादशाकृतिं पुरीषिणं पितरं) पांच पैरोंवाला, बारह आकृतियोंवाला तथा जलसे युक्त पिता (दिवः परे अर्धे आहुः) द्युलोकके दूसरे आधे भागमें रहता है, ऐसा कहते हैं (अथ) और (इमे अन्ये) ये दूसरे जन (विचक्षणं) इस बुद्धिमान्को (षळरे सप्तचक्रे उपरे अर्पितं आहुः) छै अरोंवाले और सात चक्रोंवाले रथ पर चढा हुआ कहते हैं॥ १२ ॥

भावार्थ— यह प्रजापति पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्युलोकरूपी तीन माताओं और अग्नि, वायु और सूरूपी तीन पिताओंका भरणपोषण करता हुआ उन सबसे परे रहता है अर्थात् इन सबमें रहता हुआ भी इनमें लिप्त नहीं होता, इसीलिए ये उसे दुःखी नहीं करते। शब्द आकाशका गुण होनेसे वाणी आकाशका ही रूप है, और आकाश ब्रह्मका रूप है अतः वाक् भी ब्रह्मका रूप है। यह ब्रह्म सारे विश्वको जानता है और इस विश्वसे भी परे है। सभी देव इस ब्रह्मकी शक्तिका विचार करते हैं॥ १० ॥

इस सूर्यका बारह मासवाला चक्र इस विश्वके चारों ओर निरन्तर घूमता रहता है, इतनी गति करनेके बावजूद भी वह चक्र कभी टूटता या शिथिल नहीं होता। बारह मासोंका चक्र हमेशा चलता रहता है। अग्निरूप सूर्यके दिनरातरूपी सातसौ बीस जोडे पुत्र अर्थात् ३६० दिन और ३६० रात ये हमेशा कार्य करते रहते हैं। ३६० दिन और ३६० रात इस प्रकार ७२० जुडवें पुत्र हमेशा कार्यमें रत रहते हैं॥ ११ ॥

अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन और रात इन पांच पैरोंवाला तथा बारह महीनेरूप बारह आकृतिवाला, तथा जलको बरसानेवाला सूर्य द्युलोकके आधे भागमें रहता है, अर्थात् पृथ्वीकी अपेक्षासे वह अन्तरिक्षसे परे रहता है। यह सूर्य संवत्सररूपी रथपर चढा हुआ है, इस संवत्सर-रथके छै ऋतुरूपी छै अरे हैं और अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात तथा मुहूर्त इन सात चक्रोंवाला है। सूर्य ही अयन मास आदि काल विभागोंको बनाता हुआ अपना एक परिभ्रमण एक संवत्सर अर्थात् एक वर्षमें पूरा करता है॥ १२ ॥

१७२८ पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥

१७२९ सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

१७३० साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥

अर्थ— [१७२८] (परिवर्तमाने तस्मिन् पंचारे चक्रे) घूमनेवाले उस पांच अरोंवाले चक्रमें (विश्वा भुवनानि आ तस्थुः) सारे लोक आकर रहते हैं। (भूरिभारः तस्य अक्षः न तप्यते) बहुत बोझ होनेपर भी उस रथका अक्ष गरम नहीं होता, (सनाभिः सनात् एव) निरन्तर रूपसे अनन्तकालसे गति करते रहनेपर भी (न शीर्यते) वह टूटता नहीं ॥ १३ ॥

[१७२९] (सनेमि अजरं चक्रं वि वावृते) नेमिसे युक्त तथा कभी न टूटनेवाला यह जगत्‌रूपी चक्र हमेशा घूमता रहता है। (उत्तानायां दश युक्ताः वहन्ति) अत्यन्त विस्तृत प्रकृतिके उत्पन्न होनेपर इसे दस घोडे मिलकर खींचते हैं। (सूर्यस्य चक्षुः रजसा आवृतं एति) सूर्यका प्रकाश जलसे आच्छादित होकर चलता है। (तस्मिन् विश्वा भुवनानि अर्पिता) उसीमें सारे लोक स्थित हैं ॥ १४ ॥

[१७३० | (साकंजानां सप्तथं एकजं आहुः) एकसाथ उत्पन्न होनेवाले सात तत्त्वोंको एकसे उत्पन्न होनेवाला कहते हैं। इनमें (षट् इत् यमाः) छै जुडवें हैं (ऋषयः देवजाः) ये ऋषि हैं और देवोंसे उत्पन्न होनेवाले हैं। (तेषां इष्टानि धामशः विहितानि) उनके यज्ञ उनके अपने अपने स्थानोंपर चल रहे हैं, (रूपशः विकृतानि स्थात्रे रेजन्ते) रूपसे विभिन्न होनेपर भी एक ही तत्त्वपर आश्रित होकर गति करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ— अयनमास आदि पांच अरोंवाले रथरूपी इस संवत्सर अर्थात् कालमें सारे लोक हैं। इस कालसे बाहर या इससे परे कोई लोक नहीं है। इतने लोकोंका भार ढोते रहनेपर भी इस रथका अक्ष न गरम होता है और न ही टूटता है। यह काल अनन्तकालसे चलता आ रहा है, पर इस कालकी समाप्ति कभी होने नहीं आती ॥ १३ ॥

यह जगत्‌रूपी चक्र हमेशा चलता रहता है, इसकी नेमि निरन्तर चलते रहनेपर भी नहीं टूटती। प्रजापति इस जगत्‌का नेमि है। वही इस जगत्‌का केन्द्र है, उसीपर आश्रित होकर यह जगत् गति करता है। वह प्रजापति अविनाशी है। जब प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है, तब प्रकृतिको बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और आत्मा ये दस घोडे ले जाते हैं। अर्थात् जब प्रकृतिमें क्रिया उत्पन्न होती है, तब उससे ये नौ तत्त्व अस्तित्वमें आते हैं। आत्मा अविनाशी होनेसे पूर्वसे विद्यमान है। इन दस तत्त्वोंसे सारा जगत् बनता है। जब जगत् उत्पन्न हो जाता है, तब सूर्यका प्रकाश द्युलोकमें घूमता है, और उसी सूर्यके आधारपर सारे लोक स्थित हैं ॥ १४ ॥

विश्वमें भूः, भुवः, स्वः, महः जनः, तपः, सत्यं ये सात लोक उस एक ही प्रजापतिसे उत्पन्न होते हैं। इनमें भूः-भुवः, स्वः-महः, और जनः-तपः ये जुडवें हैं और सत्यं यह अकेला है, ये सभी ऋषि हैं और देवोंसे उत्पन्न होनेवाले हैं। इनका अपनी अपनी जगह यज्ञ चल रहा है। यद्यपि इनके रूप अलग अलग हैं, पर ये सब एक प्रजापतिके आधारसे रहते हैं। इसी प्रकार शरीरमें आंख, नाक, कान और रसना ये इन्द्रियां हैं। इनमें दो आंखें, दो नाक और दो कान ये जुडवें हैं और रसना यह अकेली है। ये सात ऋषि है (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) और देवोंसे पैदा हुए हैं सूर्यदेवसे आंख, दिशाओंसे कान, अश्विनी देवोंसे नाक, और जलसे रसना बनी है। ये सभी इन्द्रियें अपनी अपनी जगह मानव जीवनरूपी यज्ञ रचा रही हैं। यद्यपि ये रूपोंमें पृथक् पृथक् हैं, पर सभी एक आत्माके आश्रयसे इस शरीरमें रह रहीं हैं ॥ १५ ॥

१७३१ स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
१७३२ अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥
१७३३ अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥

अर्थ—[१७३१] (स्त्रियः सतीः तां पुंसः) स्त्रियां होती हुई भी वे पुरुष हैं, ऐसा (मे आहुः) मुझसे कहते हैं। इस बातको (अक्षण्वान् पश्यत्) आंखोंवाला ही देख सकता है, (अन्धः न विचेतत्) अन्धा इसे नहीं जान सकता। (यः कविः पुत्रः) जो ज्ञानी पुत्र है, (सः ई आ चिकेत) वही इसे जान सकता है, (यः ताः विजानात्) जो इन्हें जानता है, (सः पितुः पिता असत्) वह पिताका भी पिता हो जाता है ॥ १६ ॥

[१७३२] (परेण अवः) द्युलोककी अपेक्षासे नीचे तथा (एना अवरेण परः) इस पृथ्वीकी अपेक्षासे ऊपरके स्थानमें (पदा) अपने पैरसे (वत्सं बिभ्रती) बछडेको धारण करती हुई (गौः उत् अस्थात्) गाय ऊपर स्थित है। (कद्रीची सा) अनजान लक्ष्यकी तरफ गति करती हुई वह गाय (कं अर्धं स्वित् परा अगात्) किस अर्ध भागके परे चली जाती है ? और (क) किस स्थानपर (सूते) अपने बछडेको उत्पन्न करती है ? क्योंकि (न हि यूथे अन्तः) वह इस अपने झुण्डमें तो वत्सको पैदा नहीं करती ॥ १७ ॥

[१७३३] (परेण अवः) द्युलोककी अपेक्षा नीची (अस्य पितरं यः अनुवेद) इस पृथ्वीके पालक अग्निको जो जानता हो, तथा (एना अवरेण परः) इस पृथ्वीकी अपेक्षा ऊंचे द्युलोकके पालक सूर्यको जानता हो, तथा (देवं मनः कुतः अधि प्रजातं) यह दिव्य मन कहांसे उत्पन्न हुआ, यह जो जानता हो (कवीयमानः कः) ऐसा ज्ञानी कौन है ? वह (इह प्रवोचत्) यहां आकर हमें बतावे ॥ १८ ॥

भावार्थ— हर स्त्रीमें आधा पुरुषत्व और हर पुरुषमें आधा स्त्रीत्व होता है। यह आधुनिक शरीरशास्त्रका भी मत है। इसीके आधारपर अर्धनारीश्वरकी कल्पना की है। इसलिए स्त्रियोंमें स्त्रीत्व रहते हुए भी उनमें पुरुषत्व भी रहता है। स्त्री और पुरुषमें कुछ इन्द्रियोंको छोडकर बाकीकी इन्द्रियें समान हैं, इसलिए भी स्त्री पुरुष ही है। दूसरे पक्षमें सूर्यकी रश्मियां यद्यपि स्त्रीलिंगी होनेसे स्त्री हैं, तथापि वे वृष्टिजलरूपी वीर्यका सेचन करके पृथ्वीको गर्भवती करनेके कारण पुरुष हैं। इस रहस्यको केवल वही जान सकता है, जो ज्ञानरूपी आंखोंसे युक्त है, जो स्थूल दृष्टिवाला है, जो इस रहस्यकी गहराईमें नहीं उतर सकता, वह इस रहस्यको नहीं जान सकता। जो इस रहस्यको जान लेता है, वह पालन करनेवाले पिताके समान आदरणीय हो जाता है ॥ १६ ॥

विराज् अथवा प्रकृति यह गाय है जो द्युलोक और पृथ्वीलोकमें समान रूपसे रहती है। पैरोंसे चलनेके कारण पैर गतिके प्रतीक हैं, वह प्रकृति पदा पैरसे अर्थात् गति करती हुई सूर्यरूपी बछडेको पैदा करती है। वह प्रकृति निरन्तर गति कर रही है। पर उसकी यह गति किस कारण है, उसकी गतिका निश्चित लक्ष्य क्या है, अथवा वह किस लक्ष्यकी तरफ इतनी तीव्र गतिसे, भागी जा रही है, यह ज्ञात नहीं है, उसका लक्ष्य अज्ञात है। वह सूर्यको किस जगह पैदा करती है, यह भी कोई नहीं जानता। पर इतना तो निश्चित है कि वह उसे पृथ्वीपर तो पैदा नहीं करती है, ॥ १७ ॥

इस पृथ्वीके पालक अग्निके तथा द्युलोकके पालक सूर्यके रहस्यको जो जानता हो, तथा दिव्य मनको जो जानता हो वह आकर हमें बतावे। तात्पर्य यह कि अग्नि और सूर्य इतने रहस्यमय हैं कि उन्हें पूर्णतया कोई नहीं जान सकता। इसी तरह चेतन, अचेतन, अर्धचेतन स्तरोंसे युक्त मन तो इतना रहस्यमय है कि उसके अन्तका पाना असंभव है। मन दिव्य है अर्थात् उत्तम भावोंसे उत्पन्न हुआ है। वह देव है ॥ १८ ॥

×

१७३४ ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहु — र्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

१७३५ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्व — त्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥

१७३६ यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भाग — मनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥

अर्थ— [१७३४] (ये अर्वाचः) जो पास है (तां पराचः आहुः) उसे लोग दूर कहते हैं, (ये पराञ्चः) जो दूर हैं (तां अर्वाचः आहुः) उसे पास कहते हैं, (सोम इन्द्रः च) हे सोम ! तूने और इन्द्रने (या चक्रथुः) जो मण्डल बनाये हैं (तानि) वे मण्डल (धुरा युक्ताः न) रथकी धुरामें जोडे गए घोडोंकी तरह (रजसः वहन्ति) लोकोंको खींचते हैं ॥ १९ ॥

[१७३५] (सयुजा सखाया द्वा सुपर्णा) हमेशा साथ रहनेवाले तथा अत्यन्त मित्र दो उत्तम पंखवाले पक्षी (समानं वृक्षं परि ष्वजाते) एक ही वृक्षका आलिंगन किए हुए हैं (तयोः अन्यः) उनमें एक (स्वादु पिप्पलं अत्ति) उस पेडके मीठे मीठे फलोंको खाता है, (अन्यः) और दूसरा (अनश्नन्) उन फलोंको न खाता हुआ (अभि चाकशीति) केवल प्रकाशित होता है ॥ २० ॥

[१७३६] (यत्र) जिस वृक्षपर बैठकर (सुपर्णाः) उत्तम पंखवाले पक्षीगण (अमृतस्य भागं) अमृतके भाग-की (विदथा अनिमेषं अभिस्वरन्ति) अपनी वाणियोंसे निरन्तर स्तुति करते हैं । (अमृतस्य भुवनस्य इनः गोपाः) सम्पूर्ण लोकोंका स्वामी और रक्षक (सः धीरः) वह ज्ञानवान् (अत्र पाकं मा विवेश) मुझ अज्ञानीके अन्दर प्रविष्ट हो गया ॥ २१ ॥

भावार्थ— समय और सृष्टिका चक्र तेजीसे घूम रहा है, इस कारण जिसे हम पहले क्षणमें पासकी कहते हैं, दूसरे क्षणमें वही दूर हो जाती है और प्रथम क्षणमें जिसे हम दूरकी कहते हैं, अगले क्षणमें वही पास आ जाती है, इसप्रकार दूरकी चीज पास और पासकी दूर होती रहती है । जो जगत् इस समय है, आगे आनेवाले कालमें वह इसी तरह बदल जाता है । इस जगत्के अन्तर्गत सोम और इन्द्ररूपी जोडेने जो मण्डल बनाये हैं, वे लोकोंको धारण करते हैं । सोम मादाका प्रतीक है और इन्द्र नरका । ये नरमादा अपने चारों ओर जिस सन्तानरूपी मण्डलका निर्माण करते हैं, उसीके कारण ये लोक चलते हैं । यदि नरमादा न हों या सन्तानोत्पत्ति न हो, तो सभी लोकोंका उच्छेद हो जाए ॥ १९ ॥

जीवात्मा और परमात्मा ये दो सुपर्ण हैं अर्थात् उत्तम शक्तिसे युक्त हैं । पर्ण-पंख शक्तिके प्रतीक हैं । ये दोनों हमेशा साथ साथ रहते हैं और परस्पर गाढ मित्र हैं । परमात्मा जीवात्माके पास सदा रहता है और हरदम मित्रवत् उसकी सहायता करता है । ये दोनों जीवात्मा एवं परमात्मारूपी सुपर्ण प्रकृतिरूपी वृक्षपर बैठे हुए हैं । इन दोनोंमें जीवात्मा सुपर्ण इस प्रकृतिरूपी वृक्षके फलोंको खाता है अर्थात् संसारमें आसक्त होकर सुखदुःखरूपी फल भोगता है । जब कि परमात्मा इस संसारसे निर्लिप्त रहकर केवल प्रकाशित होता है ॥ २० ॥

इस प्रकृतिरूपी वृक्षपर बैठे हुए अर्थात् संसारमें लिप्त मरणधर्मा जीवात्मायें उस अमृतरूप परमात्माकी अपने शब्दों में स्तुति करती हैं । आत्मायें इस शरीरके साथ संयुक्त होकर जीवात्मा बनती हैं और शरीरसे वियुक्त होकर फिर आत्मा बन जाती हैं, इसीलिए जीवात्माको मरणशील कहा है, आत्मा अमर है । ऐसी जीवात्मायें इस प्रकृतिरूपी वृक्षके फलोंको खाती हुई परमात्माकी स्तुति करती हैं । तब इन भुवनोंका स्वामी और रक्षक परमात्मा अज्ञानसे युक्त इस जीवात्माके अन्दर ज्ञान भरता है ॥ २१ ॥

१७३७ यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥

१७३८ यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥

१७३९ गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

अर्थ— [१७३७] (यस्मिन् वृक्षे) जिस वृक्षपर (मध्वदः सुपर्णाः) मधुको पीनेवाले सुपर्ण पक्षी (निविशन्ते) बसेरा करते हैं और (सुवते) प्रजा उत्पन्न करते हैं (तस्य विश्वे अग्रे अधि) इस वृक्षके सबसे ऊपर (स्वादु पिप्पलं) मीठे मीठे फल हैं, पर (यः पितरं न वेद) जो पिताको नहीं जानता, वह (तत् न उन्नशत्) उन मीठे फलोंको नहीं पा सकता ॥ २२ ॥

[१७३८] (यत् गायत्रे अधि गायत्रं आहितं) गायत्रीके ऊपर गायत्री स्थित है, (त्रैष्टुभात् वा त्रैष्टुभं निरतक्षतं) त्रैष्टुभसे त्रैष्टुभकी रचना हुई; (यत् वा जगति जगत् पदं आहितं) जगतीपर जगत्पद रखा गया है (यः इत् तत् विदुः अमृतत्वं आनशुः) जो इस बातको जानते हैं, वे अमृतको प्राप्त करते हैं ॥ २३ ॥

[१७३९] (गायत्रेण अर्कं प्रति मिमीते) गायत्रसे अर्कको नापा जाता है, (अर्केण साम) अर्कसे सामको नापा जाता है, (त्रैष्टुभेन वाकं) त्रिष्टुभसे वाकको नापा जाता है (वाकेन वाकं) वाणीसे वाणीको नापा जाता है। (द्विपदा चतुष्पदा अक्षरेण) दो पाद और चार पादोंवाले अक्षरसे (सप्त वाणीः मिमते) सात प्रकारकी वाणी नापी जाती है ॥ २४ ॥

१ प्राणो वा अर्कः— (शत. १०।४।१।२३)
२ ऋक् एव अर्कः—

भावार्थ— इस संसाररूपी वृक्षपर मधु अर्थात् प्राण रसको पीनेवाले पक्षी— जीवात्मायें रहती हैं। जब आत्मायें शरीरके साथ संयुक्त होती हैं, तब वे जीवात्मायें बनकर प्राणरूपी मधुरसका पान करती हैं, (प्राणो वै मधुः प्राण ही मधु है- शतपथ १४।१।३।३०) । इस संसार वृक्षमें सबसे ऊपर मीठे मीठे फल लगे हुए हैं, जो इस संसारमें सर्वश्रेष्ठ बनता है, वही उन मीठे मीठे फलोंको खा सकता है। पर जो उस सर्वपालक परमात्माको नहीं जनता, वह उन फलोंको नहीं पा सकता। परमात्माको जाने बिना श्रेष्ठ बनना और श्रेष्ठ बने बिना उन मीठे फलोंको पा सकना असंभव है ॥ २२ ॥

गायत्री भूमि है, उसपर अग्निकी स्थापना की जाती है। (गायत्रोऽग्निः तै. सं. २.२.५.५) । त्रैष्टुभ अन्तरिक्ष है, उसपर वायुकी स्थापना की जाती है। जगत् द्यु है उसपर आदित्यकी स्थापना की जाती। अग्नि भूमिका प्राण है, वायु अन्तरिक्षका प्राण है और सूर्य द्युलोकका प्राण है। जो इस विद्याको जानते हैं, वे ही अमृतको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २३ ॥

गायत्र अर्थात् उस परमेष्ठी प्राणसे वैय्यक्तिक प्राणकी रचना हुई। ऋचासे सामकी रचना हुई, (या ऋक् तत् साम), पादबद्धव्यवस्थावाले मंत्रोंसे गानकी रचना हुई। स्तोत्रसे वाणीकी रचना हुई। परमेष्ठी वाणीसे साधारण वाणीकी रचना हुई और दो पाद या चार पादवाले अक्षरोंसे सात प्रकारके छन्दोंका निर्माण हुआ। उस परमेष्ठी प्रजापतिसे ही प्राणिमात्रके प्राण और वाणीकी रचना हुई है ॥ २४ ॥

१७४० जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहु—स्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥

१७४१ उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो ऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥ २६ ॥

१७४२ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥

अर्थ— [१७४०] (जगता) अत्यन्त गति करनेवाले सूर्यके द्वारा प्रजापतिने (दिवि सिन्धुं अस्तभायत्) द्युलोकमें सिन्धुको स्थिर किया। (रथन्तरे सूर्यं परि अपश्यत्) पृथ्वीसे संयुक्त होते हुए सूर्यको देखा गया! (गायत्रस्य समिधः तिस्रः आहुः) गायत्रीकी तीन समिधायें हैं, ऐसा कहते हैं। (ततः मन्हा महित्वा प्ररिरिचे) तब उनके बल और महत्त्वसे वह सुशोभित हुआ ॥ २५ ॥

१ प्राणो वै सिन्धुश्छन्दसः (शत. ६।५।२।४)

२ इयं पृथिवी रथन्तरं (ऐत. ब्रा. ८।१)

[१७४१] (एतां सुदुघां धेनुं उपह्वये) इस उत्तम रीतिसे दूध देनेवाली गायको मैं बुलाता हूँ, (उत) और (एनां सुहस्तः गोधुक् दोहत्) इस गायको उत्तम हाथोंसे युक्त दूध दुहनेवाला दुहे। (सविता) सविता (नः श्रेष्ठं सवं साविषत्) हमें श्रेष्ठ दूध प्रदान करे, (घर्मः अभीद्धः) भट्टी गरम है, (तत् उ सु प्रवोचं) इस बातको मैं कहता हूँ ॥ २६ ॥

[१७४२] (वसूनां वसुपत्नी) आठ वसुओं और ऐश्वर्योंको धारण एवं उनका पोषण करनेवाली धेनु (हिंकृण्वती) रंभाती हुई तथा (मनसा वत्सं इच्छन्ती) मनसे अपने बछडेको प्यार करती हुई (अभि आगात्) आई है। (इयं अघ्न्या) यह न मारे जाने योग्य गाय (अश्विभ्यां पयः दुहां) अश्विदेवोंके लिए दूध दुहे। तथा (महते सौभगाय सा वर्धतां) महान् सौभाग्यके लिए वह बढे ॥ २७ ॥

१ इयं अघ्न्या महते सौभगाय वर्धतां— यह न मारे जाने योग्य गाय महान् सौभाग्यके लिए बढे।

भावार्थ— अत्यन्त गति करनेवाले सूर्यके अन्दर प्राणशक्ति विद्यमान है, जो सारे द्युलोकमें फैली हुई है। जब वृष्टिके माध्यमसे सूर्य पृथ्वीसे संयुक्त होता है, तब सूर्य और द्युलोकके अन्दर निहित प्राण उस वृष्टिजलसे इस पृथ्वी पर आती है। ऐसे सूर्यके द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी ये तीन पाद होते हैं। उस परमेष्ठी प्रजापतिके तेजसे ही ये सूर्यादि तत्त्व शक्तिशाली होते हैं ॥ २५ ॥

यह कामधेनु गाय महा प्रकृति है, इसका वत्स प्राणरूप सूर्य है और यह संसार उस गायरूपी प्रकृतिका दूध है। इस दूधको वही दुह सकता है जो ज्ञानी है, अर्थात् ज्ञानी ही इस प्रकृति और संसारकी वास्तविकताको जान सकता है। सविता यह मन और प्राण है, (मनो वै सविता, शत. ६।३।१।१३; प्राणो वै सविता), यह प्राण शरीरमें जीवन रसका संचार करता है यह शरीर एक भट्टी है, जो सदा तपती रहती है और इसमें प्राणके द्वारा उत्पन्न जीवन रस पकता रहता है ॥ २६ ॥

गाय मन, प्राण, अपान और पंचभूत इन आठ वसुओंका पालन करती है अर्थात् यह गाय सारे संसारका पालन करती है। वह प्यारकी मूर्ति है। यह मारे जाने योग्य नहीं है, अतः इसकी हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसके विपरीत इसे हरतरहसे बढाना चाहिए। गायोंको समृद्ध करना ऐश्वर्योंको बढाना है, क्योंकि गायोंमें हरतरहके ऐश्वर्य बसते हैं ॥ २७ ॥

१७४३ गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥

१७४४ अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥

१७४५ अनच्छये तुरगातु जीव- मेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभि- रमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥

अर्थ – [१७४३] (मिषन्तं वत्सं अनु गौः अमीमेत्) आंखें बंद किए हुए बछडेके पास जाकर गाय शब्द करती है, और (मूर्धानं मातवै हिङ् अकृणोत्) उस बछडेके सिरको चाटनेके लिए रंभाती है, (अभि वावशाना) शब्द करती हुई वह (सृक्वाणं घर्मं अभि) बछडेके मुखको अपने गरम गरम थनोंके पास ले जाती है, (मायुं मिमाति) रंभाती जाती है और (पयोभिः पयते) दूधसे उस बछडेको तृप्त करती जाती है ॥ २८ ॥

[१७४४] (येन गौः अभीवृता) जिस मेघने किरणोंको चारों ओरसे घेर लिया है, (अयं सः शिङ्क्ते) वह यह मेघ शब्द करता है । (ध्वसनौ अधिश्रिता) उन मेघोंमें आश्रित यह विद्युत् (मायुं मिमाति) गर्जना करती है । (सा चित्तिभिः मर्त्यं नि चकार) वह अपने कर्मोंसे मनुष्योंको उत्पन्न करती है, और तदनन्तर (विद्युत् भवन्ती प्रति वव्रिं औहत) चमकीली होकर अपना सुन्दर रूप प्रकाशित करती है ॥ २९ ॥

[१७४५] (तुरगातु अनत् जीवं) शीघ्रगतिसे गति करनेवाला तथा श्वसन करनेवाला यह जीव, (एजत्) निकल जाता है, और यह शरीर (पस्त्यानां मध्ये ध्रुवं शये) गृहमें निश्चल पडा रहता है । (मृतस्य) मरे हुएका (मर्त्येन सयोनिः) मर्त्यके साथ रहनेवाला (अमर्त्यः जीवः) अविनाशी आत्मा (स्वधाभिः चरति) अपनी धारण-शक्तियोंसे युक्त होकर घूमता रहता है ॥ ३० ॥

भावार्थ— गाय दूरसे ही बछडेको देखकर रंभाने लग जाती है और बछडा भी प्यारसे आंखें बंद करके बैठा रहता है, तब गाय बछडेके पास जाकर उसके सिरको प्यारसे चाटती और उसके मुंहके पास अपने थनोंको ले जाती है ताकि वह दूध पीले । जब बछडा दूध पीने लगता है, तब वह गाय अपने बछडेको दूध भी पिलाती जाती है; चाटती भी जाती है और प्यारसे शब्द भी करती है । प्यारका स्वाभाविक वर्णन है ॥ २८ ॥

बादल शब्द करते हुए आते हैं और सूर्य किरणोंको ढक लेते हैं, तब उन बादलोंमें स्थित बिजली गरजती है, तब वह पानी बरसाती है, तब मनुष्य उत्पन्न होते हैं (जलसे अन्न, अन्नसे वीर्य और वीर्यसे पुरुष उत्पन्न होते हैं), जब पानी बरसने लगता है, तब उसका रूप और प्रकाशमान हो जाता है ॥ २९ ॥

यह आत्मा सतत घूमती रहती है। एक शरीरको छोडकर दूसरेमें जाना इसका स्वभाव है । यह प्राणका आधार आत्मा जब शरीरसे निकल जाती है, तब यह शरीर गृहमें ही खम्भेके समान निश्चल पडा रहता है । शरीरके साथ यह आत्मा रहती है, पर शरीर मरणशील है और आत्मा अविनाशी है । शरीर इस आत्माके आश्रित रहती है, पर यह आत्मा किसी दूसरे पर आश्रित नहीं रहती, अपितु अपनी ही शक्तियोंसे युक्त होकर सर्वत्र घूमती रहती है ॥ ३० ॥

१७४६ अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥

१७४७ य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥

१७४८ द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

अर्थ— [१७४६] (अनिपद्यमानं) कभी भी न गिरनेवाले (आ च परा च पथिभिः चरन्तं) पासके और दूरके मार्गोंसे चलनेवाले (गोपां) तथा रक्षण करनेवाले इस सूर्यको (अपश्यं) मैंने देखा है । (सः सध्रीचीः) वह एक साथ चलनेवाले तथा (सः विषूचीः वसानः) वह चारों ओर फैलनेवाले तेजको धारण करता हुआ (भुवनेषु अन्तः आ वरीवर्ति) संसारमें विराजमान होता है ॥ ३१ ॥

[१७४७] (यः ईं चकार) जिसने यह सृष्टि बनाई (सः अस्य न वेद) वह भी इसे नहीं जानता । (यः ईं ददर्श) जिसने इसे देखा, (तस्मात् हिरुक् इत् नु) उससे यह छिप गया । (स मातुः योना अन्तः परिवीतः) वह माताके गर्भके अन्दर चारों ओरसे वेष्टित है, (बहु प्रजाः निर्ऋतिं आ विवेश) वह बहुत प्रजावाला होकर मृत्युमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ ३२ ॥

[१७४८] (द्यौः मे जनिता) द्यु मुझे उत्पन्न करनेवाला तथा (पिता) पालक भी है, (बन्धुः) वह मेरा भाई भी है और (अत्र नाभिः) यहां मेरा केन्द्र भी है । (इयं मही पृथिवी मे माता) यह विशाल पृथ्वी मेरी माता है । (उत्तानयोः चम्वोः योनिः अन्तः) ऊपरकी ओर उठे हुए दो पात्रोंके स्थानमें रहता हुआ (पिता दुहितुः गर्भं आधात्) पिता दुहितामें गर्भ स्थापित करता है ॥ ३३ ॥

दुहिता— दुः हिता, दूरे हिता, दोग्धेर्वा (निरु.)

भावार्थ— यह सूर्य निरन्तर चलता तो रहता है, पर कभी गिरता नहीं, यह पासके और दूरके मार्गोंसे सदा चलता रहता है और सारे संसारकी रक्षा करता है। वह चारों ओर फैलनेवाले तेजसे युक्त रहता है और सारे भुवनोंमें संचार करता है ॥ ३१ ॥

यह विश्व इतना विस्तृत और अनन्त है, कि जिसने यह विश्व बनाया है, वह भी इसे पूरी तरह जानता है, या नहीं, कौन कह सकता है । जब उसके कर्ताके बारेमें भी यह संशय है, तो इस अल्पज्ञ आत्माके बारेमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है । क्योंकि जब यह आत्मा इस विश्वको देखनेकी कोशिश करती है, तब यह विश्व उससे छिप जाता है, अर्थात् यह अल्पज्ञ आत्मा इस विश्वके अनन्तत्वकी कल्पना भी नहीं कर सकती । यह आत्मा माताके गर्भके अन्दर आकर प्रसूत होती है, फिर वह भी अनेक प्रजाओंको उत्पन्न करके अन्तमें मृत्युके मुखमें चली जाती है । यद्यपि आत्मा अविनाशी है, पर शरीरके संयोगके कारण शरीरके धर्म उसपर आरोपित होते हैं ॥ ३२ ॥

द्युलोक सूर्यका उपलक्षण है । सूर्य सब संसारको पैदा करता है, उसका पालन करता है, और उसकी सहायता करता है । सारे संसारका केन्द्र यह सूर्य है । पृथ्वीलोक और द्युलोक ये दो पात्र हैं, जो एक दूसरेकी तरफ मुंह किए हुए हैं । इन दोनोंके बीचमें स्थित सूर्य अपनेसे दूर स्थित पृथ्वीमें वृष्टिजल द्वारा गर्भ स्थापित करता है अर्थात् वह पृथ्वीको अन्नादि प्रसूत करनेके कार्यमें समर्थ बनाता है ॥ ३३ ॥

१७४९ पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

१७५० इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥

१७५१ सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥

अर्थ— [१७४९] (पृथिव्याः परं अन्तं त्वा पृच्छामि) इस पृथ्वीका आखिरी अन्त तुमसे पूछता हूँ । (यत्र भुवनस्य नाभिः पृच्छामि) सब भुवनके केन्द्रके विषयमें मैं पूछता हूँ । (वृष्णः अश्वस्य रेतः त्वा पृच्छामि) बलवान् अश्वके वीर्यके विषयमें मैं पूछता हूँ । (वाचः परमं व्योम पृच्छामि) वाणीका परम आकाश अर्थात् उत्पत्ति स्थान मैं पूछता हूँ ॥ ३४ ॥

[१७५०] (इयं वेदिः पृथिव्याः परः अन्तः) यह वेदि पृथ्वीका अन्तिम छोर है (अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः) यह यज्ञ संसारका केन्द्र है । (अयं सोमः वृष्णः अश्वस्य रेतः) यह सोम बलवान्का वीर्य है और (अयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योम) यह ब्रह्मा वाणीका परम उत्पत्ति स्थान है ॥ ३५ ॥

[१७५१] (भुवनस्य रेतः) संसारका सार (सप्त अर्धगर्भाः) अर्ध भागके सात पुत्रोंमें है, जो (विष्णोः प्रदिशा विधर्मणि तिष्ठन्ति) व्यापक देवकी आज्ञासे अपने अपने धर्ममें स्थित हैं । (ते विपश्चितः ते परिभुवः) वे बुद्धिमान् और सर्वव्यापक होकर (धीतिभिः मनसा विश्वतः परिभवन्ति) अपनी बुद्धि और मनसे सब ओरसे घेरते हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थ— इस पृथ्वीका अन्तिम भाग कौनसा है ? सम्पूर्ण जगत्का केन्द्र कौनसा है ? बलवान् अश्वका वीर्य कौनसा है ? और वाणीका परम उत्पत्ति स्थान कौनसा है ? ये चार प्रश्न इस मंत्रमें पूछे गए हैं, जिनका उत्तर अगले मंत्रमें दिया गया है ॥ ३४ ॥

पृथ्वी माताका प्रतीक है । यह वेदि अर्थात् प्रसवस्थान ही मातृत्वकी पराकाष्ठा है । मातृत्वसे बढकर और कोई तत्त्व नहीं । माता सबसे बडी होती है । इसलिए मातृत्व अन्तिम पराकाष्ठा है । स्त्रीपुरुषका संयोगरूपी यज्ञ ही इस संसारका केन्द्र है । यदि स्त्रीपुरुष संयोगरूपी यज्ञ न हो तो संसारका उच्छेद हो जाए । सोम अर्थात् सन्तान ही बलवान् और शक्तिशाली पुरुषका रेत है । जबतक सन्तान न हो, तबतक वीर्यकी सार्थकता नहीं होती । किसी पुरुषके वीर्यके बलवान् होनेका प्रमाण उसकी सन्तान है । निर्बल वीर्यके सन्तान नहीं होती । यह आत्मा ही वाणीका उत्पत्ति स्थान है । आत्मा कुछ अभिप्राय व्यक्त करनेकी इच्छासे इन्द्रियोंके साथ संयुक्त होकर वाणी उत्पन्न करती है ॥ ३५ ॥

परमेष्ठीके दो भाग हैं, एक परार्ध और दूसरा अवरार्ध । परार्ध प्रजापति है और अवरार्ध प्रकृति । इस अवरार्ध प्रकृतिके मन, प्राण और पंचभूतरूपी सात पुत्र हैं, जिनसे यह सारा विश्व बनता है । ये सभी तत्त्व व्यापक प्रजापतिकी आज्ञासे अपना अपना काम करते हैं । तथा सारे विश्वको घेरे रहते हैं । विश्वमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो मन, प्राण और पंचभूतोंसे रहित हो ॥ ३६ ॥

१७५२ न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥

१७५३ अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥

१७५४ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥

१७५५ सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ४० ॥

अर्थ— [१७५२] (न विजानामि यत् इव इदं अस्मि) मैं नहीं जानता कि मैं किसके सदृश हूँ । (निण्यः सन्नद्धः मनसा चरामि) अन्दर बंधा हुआ मैं मनसे चलता हूँ । (यदा ऋतस्य प्रथमजाः मा आगन्) जब सत्यका प्रथम प्रवर्तक मेरे समीप आया, (आत् इत् अस्याः वाचः भागं अश्नुवे) उसी समय इसके वाणीके भागको मैंने प्राप्त किया ॥ ३७ ॥

[१७५३] (अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः) अमर आत्मा मरण धर्मवाले शरीरके साथ एक उत्पत्तिस्थानमें प्राप्त होकर (स्वधया गृभीतः अपाङ् प्राङ् एति) अपनी धारणा शक्तिसे युक्त होकर नीचे तथा ऊपर जाता है । (ता शश्वन्ता विषूचीना) वे दोनों शाश्वत रहनेवाले और विविध गतिवाले तथा (वियन्ता) विरुद्ध गतिवाले हैं। लोग उनमेंसे (अन्यं निचिक्युः) एकको जानते हैं (अन्यं न निचिक्युः) दूसरेको नहीं जानते ॥ ३८ ॥

[१७५४] (परमे व्योमन् ऋचः अक्षरे) परम आकाशके समान व्यापक और ऋचाओंके अक्षरके समान अविनाशी परमात्मा है, (यस्मिन् विश्वे देवाः अधि निषेदुः) जिसमें सम्पूर्ण देवगण स्थित हैं, (यः तत् न वेद) जो उस परब्रह्मको नहीं जानता, (किं ऋचा करिष्यति) वह इन वेदमंत्रोंसे क्या करेगा, (यः इत् तत् विदुः) जो उस परमतत्त्वको जानते हैं, (ते इमे सं आसते) वे ये विद्वान् उत्तम स्थानमें बैठते हैं ॥ ३९ ॥

[१७५५] हे (अघ्न्ये) न मारे जाने योग्य गौ ! तू (सु-यवसाद् भगवती भूयाः) उत्तम घास खानेवाली और भाग्यशालिनी हो । (अथ) और (वयं भगवन्तः स्याम) हम सब भी भाग्यवान् हों, (विश्वदानीं तृणं अद्धि) सर्वदा तृण भक्षण कर और (आचरन्ती शुद्धं उदकं पिब) और भ्रमण करती हुई शुद्ध जल पी ॥ ४० ॥

भावार्थ— यह आत्मा किसके समान है, यह विदित नहीं । यह आत्मा इस शरीरमें बद्ध होकर रहती हुई भी मनसे बड़ी हलचल करती है । जिस समय यह आत्मा सत्यके पहले प्रवर्तक परमात्माको प्राप्त होती है, उसी समय इस दिव्य मंत्रकी वाणीका भाग्य इसे प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

यह आत्मा अमर है, तथापि मरण धर्मवाले शरीरके साथ रहनेके कारण यह विविध योनियोंमें जाती है । यह अपनी धारणशक्तिके साथ ही इस शरीरमें आती और शरीरसे पृथक् होती है । ये दोनों शरीर और आत्मा शाश्वत और गतिमान् हैं। पर दोनोंकी गतियोंमें अन्तर है । इनमें प्रथम शरीरको तो प्रत्यक्ष देखते हैं इसलिए इसके बारेमें जानते हैं, पर आत्मा अप्रत्यक्ष होनेके कारण उसके बारेमें नहीं जानते ॥ ३८ ॥

वह परब्रह्म आकाशके समान व्यापक और वेदमंत्रोंके अक्षरोंके समान अविनाशी है। जिस प्रकार परमात्मामें सब देवगण निवास करते हैं, उसी प्रकार उसकी वाणी वेदमंत्रोंके अक्षर समूहोंमें देवगण निवास करते हैं । जो मनुष्य उस परमात्माकी सत्तामें विश्वास नहीं करता, जो नास्तिक है, वह इन वेदमंत्रोंका क्या सदुपयोग कर सकेगा ? पर जो परमात्मापर श्रद्धा करते हैं, वे इन मंत्रोंका मनन करके परमस्थान मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥ ३९ ॥

गाय न मारी जाये । वह सर्वत्र तृण भक्षण करती हुई भाग्यशालिनी हो और उसके साथ हम सब भाग्यशाली हों । यह गाय शुद्ध घास खाती हुई और शुद्ध जल पीती हुई सर्वत्र संचार करे । गाय सौभाग्यकी प्रतीक है, उसकी सर्वत्र सुरक्षा हो ॥ ४० ॥

१७५६ गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्ष॒त्येक॑पदी द्वि॒पदी॒ सा चतु॑ष्पदी ।
अ॒ष्टाप॑दी॒ नव॑पदी बभू॒वुषी॑ स॒हस्रा॑क्षरा पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ४१ ॥
१७५७ तस्याः॑ समु॒द्रा अधि॒ वि क्ष॑रन्ति॒ तेन॑ जीवन्ति प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ।
ततः॑ क्षरत्य॒क्षरं॒ तद् विश्व॒मुप॑ जीवति ॥ ४२ ॥
१७५८ श॒कम॒यं धू॒ममा॒राद॑पश्यं विषू॒वता॑ प॒र ए॒नाव॑रेण ।
उ॒क्षाणं॒ पृश्नि॑मपचन्त वी॒रास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ॥ ४३ ॥
१७५९ त्रयः॑ के॒शिन॑ ऋतु॒था वि च॑क्षते संवत्स॒रे व॑पत॒ एक॑ एषाम् ।
विश्व॒मेको॑ अ॒भि च॑ष्टे॒ शची॑भि॒र्ध्राजि॒रेक॑स्य ददृ॒शे न रू॒पम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—[१७५६] (गौरीः सलिलानि तक्षत्) गौ निश्चयसे जलोंको हिलाती हुई (मिमाय) शब्द करती है। (सा एकपदी द्विपदी चतुष्पदी) वह एक पादवाली, दो पादवाली, चारपादवाली (अष्टापदी नवपदी बभूवुषी) आठपादोंवाली, नौ पादोंवाली तथा बहुत होनेकी इच्छा करनेवाली यह वाक् (सहस्राक्षरा) हजारों अक्षरोंवाली होकर (परमे व्योमन्) परम व्योममें व्याप्त रहती है ॥ ४१ ॥

[१७५७] (तस्याः समुद्राः अधि विक्षरन्ति) उस गौसे समुद्र बहते हैं, (तेन चतस्रः प्रदिशः जीवन्ति) उस कारण चारों दिशायें जीवित रहती हैं, (ततः अक्षरं क्षरति) उससे पानी बरसता है, (तत् विश्वं उप जीवति) उससे सारा विश्व जीता है ॥ ४२ ॥

[१७५८] (विषूवता परः आरात् अवरेण) अनेक रूपोंसे बहुत दूर और पास भी (एना शकमयं धूमं अपश्यं) इस शक्तिवाले धूमको मैंने देखा । वहां (वीराः उक्षाणं पृश्निं अपचन्त) वीर शक्तिदायक सोमको पका रहे हैं । (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे धर्म प्रथम थे ॥ ४३ ॥

[१७५९] (त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते) तीन किरणवाले पदार्थ ऋतुके अनुसार दिखाई देते हैं। (एषां एकः संवत्सरे वपते) इनमेंसे एक वर्षभरमें एक बार उपजता है, (एकः शचीभिः विश्वं अभिचष्टे) दूसरा शक्तियोंसे विश्वको प्रकाशित करता है, (एकस्य ध्राजिः ददृशे) एककी गति दीखती है, परन्तु उसका (रूपं न) रूप नहीं दीखता ॥ ४४ ॥

भावार्थ— यह वाक्रूपी गौ अर्थात् काव्यमयी वाक् एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदोंवाले छन्दोंमें विभक्त हुई है, वह अनेक प्रकारकी है, हजार अक्षरोंतक इसकी सीमा है। वह सारे आकाशमें व्याप्त है। शब्द आकाशका गुण है, इसलिए वाणी भी आकाशका गुण ही है ॥ ४१ ॥

उस गौ अर्थात् सूर्यरश्मियोंसे जल प्रवाह बहते हैं, अर्थात् उन सूर्यरश्मियोंके कारण जल बरसता है, और उस वृष्टिके कारण जलप्रवाह बहते हैं। उस जलसे सारी दिशायें प्रसन्न रहती हैं। जल बरसनेके बाद चारों ओर हरियाली छा जाती है। उस जलसे सारा विश्व जीता है। इस वृष्टि जलके साथ सूर्यमें स्थित प्राण या जीवनशक्ति इस पृथ्वी पर आती है, उस जीवनशक्तिसे सारा विश्व जीवित रहता है ॥ ४२ ॥

पास और बहुत दूर भी मैंने धुंवेको देखा और उससे अग्निका अनुमान किया। उस अग्निपर वीरगण शक्तिदायक सोमको पकाते हैं। ये सब यज्ञ कर्मके प्रारम्भमें होते थे ॥ ४३ ॥

तीन किरणवाले पदार्थ अग्नि, आदित्य और वायु हैं। अग्नि वर्षभरमें एक बार यज्ञमें प्रज्वलित होती है। अर्थात् वर्षारंभमें एक बार यज्ञाग्नि प्रज्वलित की जाती है, और वह सतत प्रज्वलित रहती है, उसी अग्निसे प्रतिदिनका यज्ञ निष्पन्न होता है। दूसरा सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त संसारको प्रकाशित करता है। तीसरा वायु है। उसकी गति तो ज्ञात होती है, पर इसका रूप देखनेमें नहीं आता ॥ ४४ ॥

१७६० चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥
१७६१ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु–रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वद–न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥
१७६२ कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन् त्सदनादृतस्या–दिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥
१७६३ द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवो ऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८ ॥

अर्थ— [१७६०] (वाक् चत्वारि पदानि परिमिता) वाणीके चार स्थान नापे गए हैं। (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः) जो ज्ञानी ब्राह्मण हैं, वे (तानि विदुः) उनको जानते हैं। उनमेंसे (त्रीणि गुहा निहिता) तीन वाणियोंके स्थान गुप्त हैं, वे (न इंगयन्ति) प्रकट नहीं होते। (मनुष्याः वाचः तुरीयं वदन्ति) मनुष्य वाणीके चतुर्थ रूपको बोलते हैं ॥ ४५ ॥

[१७६१] (एकं सत्) एक सत् वस्तु है, उसीका (विप्राः बहुधा वदन्ति) ज्ञानी लोग अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं। उसीको (इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निं आहुः) इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं। (अथ) और (सः दिव्यः सुपर्णः गरुत्मान्) वह दिव्य सुपर्ण और गरुत्मान् है ॥ ४६ ॥

[१७६२] (अपः वसानाः) जलको अपने साथ लेती हुई (सुपर्णाः हरयः) उत्तम गतिशील सूर्यकिरणें (कृष्णं नियानं दिवं) सबका आकर्षण करनेवाले यानरूप सूर्यपर (उत्पतन्ति) चढती हैं। (ते ऋतस्य सदनात्) वे जलके स्थानरूप अन्तरिक्षसे (आववृत्रन्) नीचे आती हैं. (आत् इत् घृतेन पृथिवी वि उद्यते) इसके बाद ही जलसे भूमि भीग जाती है ॥ ४७ ॥

[१७६३] (एकं चक्रं) एक चक्रको (द्वादश प्रधयः) बारह घेरे रहते हैं, उस चक्रको (त्रीणि नभ्यानि) तीन नाभियां हैं, (कः उ तत् चिकेत) कोई विद्वान् ही उन्हें जानता है। (तस्मिन्) उस चक्रमें (चलाचलासः) अत्यन्त गति करनेवाली (त्रिशता षष्टि शंकवः अर्पिताः) तीनसौ साठ खूंटियां लगी हुई हैं ॥ ४८ ॥

भावार्थ— परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी ये वाणीके चार रूप हैं। इनमें परा वाणीका स्थान मूलाधार है। वहांसे यह प्रकट होकर हृदयमें पहुंचती है, उस हृदयस्थानीय वाणीको पश्यन्ति कहते हैं, वहांसे गुजरती हुई वाणी बुद्धिमें पहुंचती है, उस बुद्धिस्थानीय वाणीका नाम मध्यमा है। उस बुद्धिमेंसे निकलकर वाणी कण्ठ और मुखमें प्रकट होती है। यही वैखरी वाणी है। इनमें मूलाधारकी परा, हृदयस्थानीया पश्यन्ति, बुद्धिस्थानीया मध्यमा ये तीन वाणियां गुहा अर्थात् गुप्तस्थानोंमें छिपी हुई होनेके कारण योगी जन ही इसे जान सकते हैं और जो कण्ठस्थानीया चौथी वाणी है, उसे सभी मनुष्य बोलते हैं और सभी जानते हैं ॥ ४५ ॥

यद्यपि परमात्मा एक ही सत् तत्त्व है, पर उसका वर्णन ज्ञानी जन अनेक तरहसे करते हैं। ऐश्वर्यवान् होनेसे वही इन्द्र, हितकारी होनेसे वही मित्र, श्रेष्ठ होनेसे वरुण, प्रकाशक होनेसे अग्नि, उत्तम होनेसे सुपर्ण गरुत्मान् है ॥ ४६ ॥

सूर्य किरणें अपने साथ जलको उठाती हैं, वह जल उनके साथ ऊपर मेघमंडलमें पहुंचता है, वहांसे वह फिर वृष्टि द्वारा नीचे आता है और भूमिको भिगाता है ॥ ४७ ॥

संवत्सररूपी चक्र है, जिसमें बारह मासरूपी अरे लगे हुए हैं। ग्रीष्म, शरद्, वर्षा रूपी तीन नाभियां हैं और ३६० दिनरूपी कीलें उस चक्रमें लगी हुई हैं। ये दिनरूपी कीलें हमेशा चल हैं अर्थात् हमेशा गति करती रहती हैं ॥ ४८ ॥

१७६४ यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभू- र्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥

१७६५ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा- स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ ५० ॥

१७६६ समानमेतदुदक- मुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥ ५१ ॥

१७६७ दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्त- मपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ ५२ ॥

अर्थ— [१७६४] हे (सरस्वति) सरस्वती ! (यः स्तनः ते शशयः) जो स्तन तेरे शरीरमें वर्तमान है, (यः मयोभूः) जो सुखकारक है (येन विश्वा वार्याणि पुष्यसि) जिससे सभी वरणीय धनोंको तू पुष्ट करती है, (यः रत्नधा वसुवित्) जो रत्नोंको धारण करनेवाला तथा धनोंको प्राप्त करानेवाला है, (यः सुदत्रः) जो कल्याणकारी दान करनेवाला है, (तं धातवे इह कः) तू उस स्तनको हमारे पीनेके लिए इधर कर ॥ ४९ ॥

[१७६५] (देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) देवगण यज्ञसे यज्ञ पुरुषकी पूजा करते हैं, (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे धर्म उत्कृष्ट हैं । (ते महिमानः नाकं सचन्ते) वे महत्व प्राप्त करते हुए उस सुखपूर्ण लोकको प्राप्त करते हैं, (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहां पूर्वके साधनसम्पन्न देव रहते हैं ॥ ५० ॥

[१७६६] (एतत् समानं उदकं) यह एक ही जल (अहभिः उच्चै एति) दिनमें ऊपर जाता है और (अव) नीचे आता है । (पर्जन्याः भूमिं जिन्वन्ति) मेघ भूमिको तृप्त करते हैं और (दिवं अग्नयः जिन्वन्ति) द्युलोकको अग्नियां तृप्त करती हैं ॥ ५१ ॥

[१७६७] मैं (दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तं) द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले, उत्तम गतिवाले, निरन्तर गति करनेवाले महान्, (अपां गर्भं ओषधीनां दर्शतं) जलोंके केन्द्र, औषधियोंको पुष्ट करनेवाले (वृष्टिभिः अभीपतः तर्पयन्तं) वृष्टि होनेके कारण चारों ओरसे बहनेवाले जलप्रवाहोंसे भूमिको तृप्त करनेवाले (सरस्वन्तं) इस सूर्यको (अवसे जोहवीमि) अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ ॥ ५२ ॥

भावार्थ— सरस्वतीका स्तन अर्थात् प्यार सुखकारक, धनोंको पुष्टकारक, रत्नोंको धारण करनेवाला, धनोंको प्राप्त करानेवाला तथा कल्याणकारक है, वह प्यार सभी प्राप्त करें ॥ ४९ ॥

श्रेष्ठ याजक अपनी आत्माके योगसे परमात्माकी उपासना करते हैं । यह मानसोपासनाकी यज्ञविधि सबसे श्रेष्ठ और मुख्य है । इस प्रकारकी उपासना करनेवाले श्रेष्ठ उपासक ही इस सुखपूर्ण स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं जहां पूर्वकालके ऐश्वर्यवान् देव रहते थे ॥ ५० ॥

जल एक ही है, वही जल गर्मीके दिनोंमें सूर्यकिरणोंसे संतप्त होकर बाष्परूपमें ऊपर जाता है और वही जल वर्षाऋतुमें नीचे आता है । उस नीचे आनेवाले जल अर्थात् वर्षासे भूमि तृप्त होती है और अग्नियोंमें दी जानेवाली आहुतियोंसे द्युलोक तृप्त होता है । अग्निमें दी जानेवाली आहुतियां सूक्ष्म होकर द्युलोकमें जाती हैं ॥ ५१ ॥

यह सूर्य उत्तम और निरन्तर गति करनेवाला है । सूर्यप्रकाशके कारण ही ओषधियोंमें रस आता है और वे पुष्ट होती हैं । इसीलिए सूर्यको जगत्की आत्मा कहा है । उसीके कारण वृष्टि होती है । सूर्यकिरणें बादलोंको प्रेरित करती हैं और तब बादल पानी बनकर बरसते हैं और उस वर्षाके कारण बहनेवाले जलप्रवाह भूमिको तृप्त करते हैं ॥ ५२ ॥

[१६५]

(ऋषिः- १, २, ४, ६, ८, १०-१२ इन्द्रः; ३, ५, ७, ९ मरुतः; १३-१५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः।
देवता- मरुत्वानिन्द्रः। छन्दः-त्रिष्टुप्।)

१७६८ कया॑ शुभा॒ सव॑यसः॒ सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः ।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒ते ऽर्च॑न्ति॒ शुष्मं॒ वृष॑णो वसू॒या ॥ १ ॥

१७६९ कस्य॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः॒ को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त ।
श्ये॒नाँ इ॑व॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे॒ केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम ॥ २ ॥

१७७० कुत॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ इ॒त्था ।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ अ॒स्मे ॥ ३ ॥

१७७१ ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शं सु॒तासः॒ शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रिः॑ ।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्यन्त्यु॒क्थेमा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑ ॥ ४ ॥

[१६५]

अर्थ— [१७६८] (सवयसः सनीळाः) एक समान आयुवाले, एक घरमें रहनेवाले (मरुतः) मरुत् गण (कया शुभा समान्या) किस शुभ जलसे (सं मिमिक्षु) सींचते हैं। (कया मती) किस बुद्धिसे युक्त होकर तथा (कुतः एतासः) कहांसे आकर (एते वृषणः) ये बलशाली मरुत् (वसूया शुष्मं अर्चन्ति) धनकी इच्छासे बलकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

[१७६९] (युवानः) सदा तरुण रहनेवाले ये मरुत् (कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः) किसके स्तोत्रोंका सेवन करते हैं? इन (मरुतः) मरुतोंको (कः अध्वरे ववर्त) कौन अपने यज्ञकी ओर मोडता है। (श्येनाः इव अन्तरिक्षे ध्रजतः) श्येन पक्षिके समान अन्तरिक्षमें जानेवाले इन मरुतोंको (केन महा मनसा रीरमाम) किस बडे मनसे प्रसन्न करें? ॥ २ ॥

[१७७०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं माहिनः सन्) तू महान् होता हुआ भी (एकः कुतः यासि) अकेला ही कहां जाता है? (सत्पते) हे उत्तम सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते इत्था किं) तेरी यह दशा क्यों है? (समराणः सं पृच्छसे) हमारे साथ चलते हुए तुझसे हम पूछते हैं। हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! (अस्मे ते यत्) हमसे तुझे जो कुछ भी कहना हो, (तत् नः) वह हमसे (शुभानैः वोचेः) मीठी वाणीसे कह ॥ ३ ॥

१ यत्, तत् शुभानैः वोचेः— जो कुछ भी कहना हो, वह मीठी और शुभ वाणीमें ही बोला जाए।

[१७७१] (ब्रह्माणि, मतयः सुतासः) स्तोत्र, बुद्धियां एवं सोम (मे शं) मेरे लिए सुखकारक हों (मे शुष्मः अद्रिः) मेरा शक्तिशाली वज्र (प्रभृतः इयर्ति) प्रेरित होकर शत्रुओंपर जाता है। (इमा उक्था प्रति हर्यन्ति आ शासते) ये स्तोत्र मेरी तरफ आते हैं और मेरी प्रशंसा करते हैं। (ता हरि नः अच्छ वहतः) वे दोनों घोडे हमें लक्ष्यकी तरफ सीधे ले आएं ॥ ४ ॥

भावार्थ— ये मरुत् एक समान आयुवाले, एक घरमें हिलमिलकर रहनेवाले शुभ जलसे इस पृथ्वीको सींचते हैं और उत्तम बुद्धिसे बलकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

सदा तरुण रहनेवाले ये मरुत् उसीके यज्ञमें आते हैं और उसीके स्तोत्र सुनते हैं, जिसका मन विशाल होता है। जो संकुचित मनोवृत्तिवाला है, उसकी प्रार्थना कोई भी नहीं सुनता ॥ २ ॥

इन्द्र बहुत महान् है, वह इस योग्य है, कि उसके पीछे अनुचर चलें, पर फिर भी वह हर कामके लिए अकेला ही चल पडता है, वह दूसरेपर आश्रित नहीं रहता। इसी तरह सब अपने बलपर भरोसा रखें और आत्मविश्वाससे सब कार्य करें। जो भी आपसमें कुछ कहना या बोलना हो, मीठी वाणीसे ही बोलें, कभी भी बातचीतमें कटुता पैदा न करें ॥ ३ ॥

ज्ञान और बुद्धियां मेरे लिए सुखकारक हों। ज्ञान और उत्तम बुद्धियोंवाला हमेशा सुखी रहता है। वीर मनुष्योंके शस्त्रास्त्र शत्रुओंके विनाशके लिए हमेशा तैय्यार रहें। ऐसे वीरोंकी सभी प्रशंसा करें ॥ ४ ॥

१७७२ अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्यु॒जा॒नाः स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्व१॒ः शुम्भ॑मानाः ।
महो॑भि॒रेताँ॒ उप॑ युज्महे॒ न्विन्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑ ॥ ५ ॥
१७७३ क्व१॒ स्या वो॑ मरुतः स्व॒धासी॒द् यन्मामेक॑ स॒मध॑त्ताहि॒हत्ये॑ ।
अ॒हं ह्यु१॒ग्रस्त॑वि॒षस्तुवि॑ष्मा॒न् विश्व॑स्य॒ शत्रो॒रन॑मं वध॒स्नैः ॥ ६ ॥
१७७४ भूरि॑ चकर्थ॒ युज्ये॑भिर॒स्मे स॑मा॒नेभि॑र्वृषभ॒ पौंस्ये॑भिः ।
भूरी॑णि॒ हि कृ॒णवा॑मा शविष्ठे॒न्द्र॒ क्रत्वा॑ मरुतो॒ यद्व॒शाम॑ ॥ ७ ॥
१७७५ वधीं॑ वृ॒त्रं म॑रुत इन्द्रि॒येण॒ स्वेन॒ भामे॑न तवि॒षो ब॑भू॒वान् ।
अ॒हमे॒ता मन॑वे वि॒श्वश्च॑न्द्राः सु॒गा अ॒पश्च॑कर वज्र॑बाहुः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१७७२] (अतः वयं) इसलिए हम (स्वक्षत्रेभिः अन्तमेभिः युजानाः) अत्यन्त बलशाली घोडोंसे युक्त होकर तथा (महोभिः तन्वः शुंभमानाः) तेजोंसे अपने शरीरोंको सजाकर (एतान् उपयुज्महे) इन शक्तियोंका उपयोग शत्रुविनाशके लिए करते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (न स्वधां नः अनुबभूथ) अपनी धारणशक्तिको हमारे अनुकूल करो ॥ ५ ॥

[१७७३] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः स्या स्वधा क्व आसीत्) तुम्हारी वह शक्ति कहां थी (यत् एकं मां अहिहत्ये सं अधत्त) जिसे तुमने अकेले मुझमें शत्रुनाशके अवसरपर स्थापित की थी। (अहं हि उग्रः तविषः तुविष्मान्) मैं वीर, बलवान् और शक्तिशाली हूँ, मैंने (वधस्नैः विश्वस्य शत्रोः अनमं) शस्त्रास्त्रोंसे सभी शत्रुओंको झुका दिया ॥ ६ ॥

[१७७४] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! तूने (अस्मे युज्येभिः समानेभिः पौंस्येभिः) हमारे उपयोगी और अपने सदृश बलोंसे युक्त होकर (भूरि चकर्थ) बहुत काम किए हैं। हे (शविष्ठ इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (भूरीणि हि कृणवाम) हमने भी बहुतसे वीरताके काम किए हैं। हम (मरुतः) मरुद्‌गण (यत् वशाम) जो कुछ भी चाहते हैं (क्रत्वा) उद्योगोंसे प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

१ यत् वशाम, क्रत्वा— जो कुछ भी मनुष्य चाहे, उद्योग करके उसे प्राप्त कर ले।

[१७७५] हे (मरुतः) मरुतो ! मैंने (इन्द्रियेण वृत्रं वधीं) अपनी शक्तिसे वृत्रको मारा और (स्वेन भामेन तविषः बभूवान्) अपनी ही शक्तिसे मैं शक्तिशाली हुआ। (वज्रबाहुः अहं) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले मैंने (मनवे) मनुष्योंके हितके लिए (विश्वाः चन्द्राः सुगाः एताः अपः चकर) सबको आनंद देनेवाले और आसानीसे बहनेवाले इन जलोंको प्रकट किया ॥ ८ ॥

१ स्वेन भामेन तविषः बभूवान्— मनुष्यको चाहिए कि वह अपने बलसे ही बलवान् बने।

भावार्थ— सबके पास उत्तमोत्तम पशु हों, सबके शरीर तेजस्वी हों। इन तेजों और शक्तियोंका उपयोग लोग अपने शत्रुओंका विनाश करनेके लिए करें। इन्द्रकी शक्ति भी ऐसे वीरोंके अनुकूल हो। इन्द्रकी शक्ति यदि प्रतिकूल हो जाए, तो जीवनका नाश हो जाए। शरीरमें आत्मा इन्द्र है और उसकी शक्तियां इन्द्रियें हैं, यदि ये इन्द्रियें और आत्मा मनुष्यके प्रतिकूल हो जाए तो मनुष्यका नाश निश्चित है। जो अपने शरीरको तेजस्वी बनाता है, अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करता है, उसकी आत्मा व इन्द्रियें उसके अनुकूल रहती हैं ॥ ५ ॥

यह इन्द्र इतना वीर है कि वह समय पडनेपर बिना मरुतोंकी सहायता लिए ही शत्रुओंका नाश कर देता है। वह अपने शस्त्रास्त्रोंसे भयंकरसे भयंकर शत्रुओंको भी झुका देता है ॥ ६ ॥

मरुतोंके उपयोगी और इन्द्रके शक्तिके समान ही शक्तियोंसे युक्त होकर इन्द्र अनेकों वीरताके काम कर लेता है। इन्द्रके अलावा भी मरुत् बहुत काम करते हैं। वे जो कुछ भी पाना चाहते हैं, अपने उद्योगोंसे प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य जो कुछ भी पाना चाहे, उसके लिए उद्योग करे, बिना उद्योगके कुछ भी पाना मुश्किल है ॥ ७ ॥

१७७६ अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥

१७७७ एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा ।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥ १० ॥

१७७८ अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१७७६] हे (मघवन् ! ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ते अनुत्तं न किः) तुझसे प्रेरित न हुआ हुआ ऐसा कुछ भी नहीं है । (त्वावान् विदानः देवता न अस्ति) तेरे जैसा विद्वान् देवता और कोई नहीं है । हे (प्रवृद्ध) महान् इन्द्र ! (यानि करिष्या कृणुहि) जिन कर्तव्योंको तुम करते हो, उसे (न जातः नशते न जायमानः) न पहले उत्पन्न हुआ कोई देव व्याप सकता है और न आगे होनेवाला ही व्याप सकता है ॥ ९ ॥

१ ते अनुत्तं नकिः— इस इन्द्रसे अप्रेरित ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है ।

२ यानि करिष्या कृणुहि, न जातः नशते न जायमानः— जिन कर्तव्योंको यह करता है, उसका अन्त पानेवाला न कोई हुआ है और न होगा ।

[१७७७] (या नु दधृष्वान्) जिन कर्मोंको मैं करना चाहता हूं, उन्हें (मनीषा कृणवै) मन लगाकर करता हूँ, इसलिए (एकस्य मे) अकेले मेरा ही (ओजः विभुः अस्तु) बल चारों ओर फैलता है । हे (मरुतः) मरुतो ! (हि अहं उग्रः विदानः) क्योंकि मैं वीर और विद्वान् हूँ, इसलिए (इन्द्रः) मैं इन्द्र (यानि च्यवं) जिनकी तरफ जाता हूँ, (एषां इत् ईशे) उनका ही स्वामी बन जाता हूँ ॥ १० ॥

१ या नु दधृष्वान् मनीषा कृणवै— जिन कर्मोंको इन्द्र करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है, इसी लिए—

२ मे ओजः विभुः— उसका यश चारों ओर फैलता है

३ अहं उग्रः विदानः— यह इन्द्र वीर और विद्वान् है । इसलिए—

४ यानि च्यवं एषां इत् ईशे— यह जिनकी तरफ जाता है, उनका स्वामी बन जाता है ।

[१७७८] हे (नरः सखायः मरुतः) नेता तथा मित्र मरुतो ! तुमने (मे) मेरे लिए (यत् श्रुत्यं ब्रह्म चक्र) जो प्रसिद्ध स्तोत्र बनाया, (स्तोमः मा अत्र अमन्दत्) उस स्तोत्रने मुझे यहां बहुत आनन्दित किया । वह स्तोत्र (इन्द्राय वृष्णे सुमखाय) ऐश्वर्यवान् , बलवान् , उत्तम यज्ञ करनेवाले (सखायः तनूभिः) मित्र तथा शक्तियोंसे युक्त (मह्यं तन्वे) मेरे पोषणके लिए हो ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपनी शक्ति ही से शक्तिशाली है, किसी दूसरेकी शक्तिका आश्रय लेकर यह वीरता नहीं दिखाता । यह इन्द्र अपनी शक्तिका उपयोग मनुष्योंका हित करनेके लिए करता है । इसीने मनुष्योंके हितके लिए जलप्रवाहोंको प्रकट किए । इसी प्रकार मनुष्य भी अपनी शक्तिका आश्रय लेकर ही वीरता दिखाये । दूसरेकी शक्तिपर घमंड न करे । शक्ति प्राप्त करके वह अपनी शक्तिका सदुपयोग मनुष्योंकी भलाईमें करे अर्थात् शक्ति पाकर वह मनुष्योंपर अत्याचार न करे अपितु उनकी सदा भलाई ही करे ॥ ८ ॥

इस विश्वमें ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जिसे इन्द्र प्रेरित न करता हो । उस इन्द्र जैसा विद्वान् कोई भी देवता नहीं है । वह इन्द्र अद्वितीय विद्वान् है । अपनी विद्वत्तासे वह जो कुछ कार्य करता है, वह इतना विशाल होता है कि उसका पार पानेवाला अभीतक न कोई हुआ है न कोई होगा ॥ ९ ॥

यह इन्द्र जिन कामोंको करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है और उन कामोंको पूर्णतातक ले जाता है इसी लिए वह सर्वत्र यशस्वी होता है । सर्वत्र यशस्वी होनेका एक उत्तम साधन है कि जिस कामको भी मनुष्य हाथमें ले, उसे मन लगाकर करे और पूरा होनेतक उसे न छोडे । यह इन्द्र वीर और विद्वान् है, इसलिए वह जिस पदार्थकी तरफ जाता है, उसका स्वामी बन जाता है । इसी प्रकार मनुष्य भी विद्वान् और वीर बने । ऐसा मनुष्य जिस पदार्थको भी चाहेगा, उसका वह स्वामी बनकर उपभोग करेगा ॥ १० ॥

मरुतोंने इस इन्द्रके लिए जो स्तोत्र बनाये, उन स्तोत्रोंसे वह बहुत आनंदित हुआ । यह इन्द्र ऐश्वर्यवान् , बलवान् और उत्तम यज्ञ करनेवाला है । तथा शक्तिशाली इस इन्द्रके शरीरको यह स्तोत्र पुष्ट करनेवाला हो ॥ ११ ॥

१७७९ एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२ ॥
१७८० को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखींरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ १३ ॥
१७८१ आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारु—रस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छे—मा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥
१७८२ एष वः स्तोमो मरुत इयं गी—र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१७७९] हे (मरुतः) मरुतो ! (एव इत्) इसी प्रकार (मा प्रति रोचमानाः) मुझपर प्रेम रखते हुए (अनेद्यः इषः श्रवः दधानाः) प्रशंसनीय धन और अन्नको धारण करते हुए (चन्द्रवर्णाः) आनन्ददायक रूपोंवाले (एते) ये तुम (मे संचक्ष्य) मुझे लक्ष्य करके (मे अच्छान्त आ छदयाथ) मुझे यशसे ढक दो ॥ १२ ॥

[१७८०] हे (मरुतः) मरुतो ! (अत्र वः कः मामहे) यहां तुम्हारी कौन पूजा करता है ? हे (सखायः) मित्रो ! (सखीन् अच्छ प्र यातन) मित्रके समान अपने हित करनेवालोंके पास तुम आओ। हे (चित्राः) सुन्दर मरुतो ! (मन्मानि अपिवातयन्त भूत) स्तोत्रोंको सम्पूर्ण करनेवाले होओ और (मे ऋतानां एषां) मेरे द्वारा किए जानेवाले इन सत्य स्तोत्रोंको (नवेदाः) जाननेवाले होओ ॥ १३ ॥

[१७८१] हे (मरुतः) मरुतो ! (दुवस्यात् दुवसे) स्तोत्रोंसे स्तुति करनेके लिए (मान्यस्य कारुः मेधा) सम्मानके योग्य स्तोताकी बुद्धि (अस्मान् आ चक्रे) हमें प्राप्त हो। (यत्) चूंकि (जरिता) स्तुति करनेवाला (इमा ब्रह्माणि वः अर्चत्) इन स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करता है, इसलिए (विप्रं अच्छ आ वर्त) उस ज्ञानीकी तरफ तुम घूमो ॥ १४ ॥

[१७८२] हे (मरुतः) मरुतो ! (एषः स्तोमः वः) यह स्तोत्र तुम्हारे लिए है, (इयं गीः) यह वाणी तुम्हारे लिए है, अतः तुम (मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः) आनन्द देनेवाले तथा सम्मानके योग्य स्तोताके (तन्वे) शरीर की पुष्टिके लिए (आ यासीष्ट) आओ और (वयां) हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और जय दिलानवाले धनको प्राप्त करें ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे मरुतो ! मुझपर प्रेम रखो, तथा मेरे लिए धनादि धारण करो। मुझे यशसे युक्त करो। जो मनुष्य इन मरुतोंको प्रसन्नता प्राप्त करता है, वह धन, अन्न और यशसे युक्त होता है ॥ १२ ॥

हे सैनिको ! यहां तुम्हारी कौन पूजा करता है और कौन तुमसे द्वेष करता है, यह अच्छी तरह जानकर मित्रके समान तुम्हारा जो हित करता है, उसके पास जाओ और वे जिस प्रकारकी पूजा करें, उस पूजाको तुम पूर्ण करो और वह जिसके स्तोत्र कर रहा है, वह उसका उद्देश्य पूर्ण करो ॥ १३ ॥

हे मरुतो ! हमें ऐसी उत्तम बुद्धि प्राप्त हो कि जिससे हम तुम्हारी उत्तम स्तुति कर सकें। वह स्तुति करनेवाला स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति करता है, इसलिए उस ज्ञानीकी तरफ तुम घूमो अर्थात् उसपर अपनी कृपाकी दृष्टि डालो ॥ १४ ॥

हे मरुतो ! इस स्तोत्र और श्रेष्ठ वाणीका उच्चारण तुम्हारे लिए किया जा रहा है। यह वाणी तुम्हें आनन्द देने-वाली हो। तुम्हारी दयासे हम सम्मानके योग्य हों। तुम हमारी तरफ आवो, ताकि हम अन्न, बल आदि प्राप्त कर सकें ॥ १५ ॥

[१६६]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती; १४-१५ त्रिष्टुप् ।)

१७८३ तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन् मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १ ॥

१७८४ नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २ ॥

१७८५ यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३ ॥

[१६६]

अर्थ— [१७८३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (रभसाय जन्मने) पराक्रम करनेके लिए सुयोग्य जीवन प्राप्त हो, इसलिए और (वृषभस्य केतवे) बलिष्ठोंके जैसा बननेके लिए (तत्) उस तुम्हारे (पूर्वं) प्राचीन कालसे चले आ रहे (महित्वं) महत्त्वका (नु वोचाम) हम ठीक ठीक वर्णन रहे हैं। हे (तुविष्वनः) गरजनेवाले तथा (शक्राः) समर्थ वीरो ! (युधा इव) युद्धवेलाके समानही (यामन्) शत्रुदल पर चढाई करते हुए (ऐधा इव) धधकते हुए अग्निकी तरह (तविषाणि कर्तन) शत्रुओंकी सेनाको काटो ॥ १ ॥

[१७८४] (नित्यं सूनुं न) पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्रको खाद्यवस्तु देता है, वैसे ही सबके लिए (मधु बिभ्रतः) मिठास भरे रसको धारण करनेवाले (घृष्वयः) युद्धसंघर्षमें निपुण और (क्रीळाः) क्रीडासक्त मनोवृत्तिवाले ये वीर (विदथेषु उप क्रीळन्ति) युद्धोंमें, मानों खेलकूदमें लगे हुए हों, इस भाँति कार्य करना शुरू करते हैं। (रुद्राः) शत्रुको रुलानेवाले ये वीर (नमस्विनं) उपासकोंको (अवसा नक्षन्ति) स्वकीय शक्तिसे सुरक्षित रखते हैं। (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे युक्त ये वीर (हविस्-कृतं) हविष्यान्न देनेवालेको (न मर्धन्ति) कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ॥२॥

[१७८५] (ऊमासः) रक्षण करनेवाले, (अ-मृताः) अमर वीर मरुतोंने (यस्मै हविषा ददाशुषे) जिस हविष्यान्न देनेवालेको (रायः पोषं) धनकी पुष्टि (अरासत) प्रदानकी-बहुतसा धन दिया (अस्मै) उसके लिए (हिताः इव) कल्याणकारक मित्रोंके समान (मयो-भुवः) सुख देनेवाले ये वीर (रजांसि) हल चलाई भूमि पर (पुरु पयसा) बहुत जलसे (उक्षन्ति) वर्षा करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हम सामर्थ्यवान् बनें और नेताके पद पर बैठ सकें, इसीलिए हम वीरोंके काव्यका गायन तथा पठन करते हैं। युद्ध छिड जानेके मौके पर जिस तरह तुम्हारी हलचलें या तैयारियाँ हुआ करती हैं, उन्हें वैसे ही अक्षुण्ण बनाये रखें। उन तैयारियोंमें तनिक भी ढीलापन न रहने पाये, ऐसी सावधानी रखनी चाहिए ॥ १ ॥

जिस तरह पिता अपने पुत्रको खानेकी चीजें देता है, उसी प्रकार वीरोंको चाहिए कि वे भी सभी लोगोंको पुत्रवत् माने, उन्हें खानपानकी वस्तुएँ प्रदान करें। ये वीर हमेशा खिलाडीपनसे पारस्परिक बर्ताव करें और धर्मयुद्धमें कुशलतापूर्वक अपना कार्य करते रहें। शत्रुओंको हटाकर साधु जनोंका संरक्षण करना चाहिए और दानी उदार लोगोंको किसी प्रकारका कष्ट न देकर सुख पहुँचाना चाहिए ॥ २ ॥

सबके संरक्षणका तथा उदार दानी पुरुषोंके भरणपोषणका बीडा वीरोंको उठाना पडता है। चूँकि वीर समूची जनताके हितकर्ता हैं, अतएव वे सबको सुख पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

१७८६ आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४ ॥

१७८७ यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान् दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन् भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ ॥

१७८८ यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनाऽरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥

अर्थ--[१७८६] (ये एवासः) जो तुम वेगवान् वीर (तविषीभिः) अपने सामर्थ्यों तथा बलोंद्वारा (रजांसि अव्यत) सब लोगोंका संरक्षण करते हो, तथा (स्व-यतासः) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाले तुम जब शत्रुपर (प्र अध्रजन्) वेगपूर्वक दौड जाते हो और जब (प्र-यतासु वः ऋष्टिषु) अपने हथियारोंको आगे धकेलते हो, उस समय (विश्वा भुवनानि) सारे भुवन, (हर्म्या) बडे बडे प्रसाद भी (भयन्ते) भयभीत हो उठते हैं, क्योंकि (वः यामः) तुम्हारी यह हलचल (चित्रः) सचमुच आश्चर्यजनक है ॥ ४ ॥

[१७८७] (त्वेष-यामाः) वेगपूर्वक चढाई करनेवाले ये वीर (यत्) जब (पर्वतान् नदयन्त) पहाडोंको शब्दायमान बना डालते हैं, (वा) उसी प्रकार (नर्याः) जनताका हित करनेवाले ये वीर जब (दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः) अन्तरिक्षके पृष्ठभाग परसे जाने लगते हैं, उस समय हे वीरो ! (वः अज्मन्) तुम्हारी इस चढाईके फलस्वरूप (विश्वः वनस्पतिः) सभी वृक्ष (भयते) भयव्याकुल हो जाते हैं और सभी (ओषधिः) औषधियाँ भी (रथीयन्ती इव) रथ पर बैठी हुई महिलाके समान (प्र जिहीते) विकंपित हुआ करती हैं ॥ ५ ॥

[१७८८] (सु-धिता इव) अच्छे प्रकार पकडे हुए (बर्हणा) हथियारके समान (यत्र) जिस समय (वः) तुम्हारा (क्रिविर्-दती) तीक्ष्ण रूपसे दंदानेदार और (दिद्युत्) चमकीली तलवार (रदति) शत्रुदलके टुकडे टुकडे कर डालती है, तथा (पश्वः रिणाति) जानवरोंको भी मार डालती है, उस समय हे (उग्राः मरुतः) शूर तथा मनमें भय पैदा करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (सुचेतुना) उत्तम अन्तःकरणपूर्वक (अ-रिष्ट-ग्रामाः) गाँवोंका नाश न करते हुए (नः सु-मतिं) हमारी अच्छी बुद्धिको बढाते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ये वीर सबकी रक्षामें दत्तचित्त हुआ करते हैं और जब अपना नियंत्रण स्वयं ही करते हैं तथा शत्रुदल पर टूट पडते हैं, तब स्वयं स्फूर्तिसे यह सब कुछ होता है, इसलिए सभी लोग सहम जाते हैं, क्योंकि इनका आक्रमण कोई साधारणसी बात नहीं है । इन वीरोंकी चढाईमें भीषणता पर्याप्त मात्रामें पाई जाती है ॥ ४ ॥

जब हमले करनेवाले शूर लोग शत्रुदल पर चढाई करनेके लिए पहाडोंमें तथा अन्तरिक्षमें बडे जोरसे आक्रमण कर देते हैं, तब वृक्षवनस्पति सभी विचलित हो जाते हैं ॥ ५ ॥

वीर लोग ही अन्य सज्जनोंको आश्रय देते हैं, अपने धनवैभवका भली प्रकार संरक्षण करते हैं, शत्रुओंका विनाश करते हैं और सोमरसका सेवन करके युद्धोंमें अपना प्रभाव दर्शाते हैं तथा परमात्माकी उपासना भी करते हैं । ऐसे वीर ही अन्य वीरोंकी शक्तियोंकी यथोचित जाँच करनेकी क्षमता रखते हैं ॥ ६ ॥

×

१७८९ प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो ऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
१७९० शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
१७९१ विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयो ऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥
१७९२ भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान् व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥

अर्थ— [१७८९] (स्कम्भदेष्णाः) आश्रय देनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई छीन नहीं सकता ऐसे, (अल-आ-तृणासः) शत्रुओंका पूरा पूरा विनाश करनेहारे तथा (सु-स्तुताः) अत्यन्त सराहनीय ये वीर (विदथेषु) युद्धस्थलों तथा यज्ञोंमें (मदिरस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिए (अर्कं प्र अर्चन्ति) पूजनीय देवताकी भली भाँति पूजा करते हैं। क्योंकि वही (वीरस्य) वीरोंके (प्रथमानि) प्रथम श्रेणीमें परिगणनीय (पौंस्या विदुः) बल तथा पुरुषार्थ जानते हैं ॥ ७ ॥

[१७९०] हे (उग्राः) शूर, (तवसः) बलिष्ठ और (वि-रप्शिनः) समर्थ (मरुतः) वीर मरुतो ! (यं) जिसे (अभिह्रुतेः) विनाशसे और (अघात्) पापसे तुम (आवत) सुरक्षित रखते हो, (यं जनं) जिस मनुष्यको (तनयस्य पुष्टिषु) वह अपने बालबच्चोंका भरणपोषण कर ले, इस लिए (शंसात्) निन्दासे (पाथन) बचाते हो, (तं) उसे (शतभुजिभिः) सैकडों उपभोगके साधनोंसे युक्त (पूर्भिः) दुर्गोंसे (रक्षत) रक्षित करो ॥ ८ ॥

[१७९१] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (विश्वानि भद्रा) सभी कल्याणकारक वस्तुएँ रखी हुई हैं। (वः अंसेषु आ) तुम्हारे कंधोंपर (मिथः स्पृध्या इव) मानों एक दूसरेसे स्पर्धा करनेवाले (तविषाणि) बलयुक्त हथियार (आहिता) लटकाये हुए हैं। (प्र-पथेषु) सुदूर मार्गोंमें यात्रा करनेके लिए (खादयः) खानेपीनेकी चीजोंका संग्रह पर्याप्त है। (वः अक्षः चक्रा) तुम्हारे रथके पहियोंको जोडनेवाला डंडा तथा उसके चक्र (समया वि वावृते) उचित समयपर घूमते हैं ॥ ९ ॥

[१७९२] (नर्येषु) जनताका हित करनेवाले इन वीरोंकी (बाहुषु) भुजाओंमें (भूरीणि भद्रा) यथेष्ट कल्याणकारक शक्ति विद्यमान है, (वक्षःसु रुक्माः) उनके वक्षःस्थलोंपर मुहरोंके हार तथा (अंसेषु) कन्धोंपर (एताः) विभिन्न रंगवाले, (रभसासः) सुदृढ (अञ्जयः) भूषण हैं, उनके (पविषु अधि) वज्रोंपर (क्षुराः) तीक्ष्ण धाराएँ हैं, (वयः पक्षान् न) पंछी जिस तरह डैने धारण करते हैं, उसी प्रकार (अनुश्रियः वि धिरे) भाँति भाँतिकी शोभाएँ वे धारण करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— अपने तीक्ष्ण हथियारोंसे वीर सैनिक शत्रुका विनाश कर देते हैं, इतना ही नहीं अपितु शत्रुके पशुओंका भी वध कर डालते हैं। हे वीरो ! अपने शुभ अंतःकरणसे हमारी सुबुद्धि बढाओ और हमारे ग्रामोंका विनाश मत करो ॥ ७ ॥

जो बलवान् तथा वीर होते हैं, वे जनताको नाश तथा पापकृत्यों एवं निंदासे बचानेकी चेष्टामें सफलता पाते हैं। इन वीरोंके भुजबलके सहारे जनता सुरक्षित और अकुतोभय होकर अच्छी नगरीमें निवास करती है और वहाँपर अपने पुत्रपौत्रोंका संरक्षण करती है ॥ ८ ॥

वीरोंके रथोंपर सभी आवश्यक युद्धसाधनोंका संग्रह रहता है। वे अपने शरीरोंपर हथियार धारण करते हैं। दूरकी यात्राके लिए सभी जरूरी खानेपीनेकी चीजें रथोंपर इकट्ठी की जाती हैं और उनके रथोंके पहिये भी उचित वेळामें जैसे घूमने चाहिए, वैसे ही फिरते हैं ॥ ९ ॥

१७९३ महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥
१७९४ तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२ ॥
१७९५ तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३ ॥

अर्थ— [१७९३] (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (मह्ना) अपनी महत्ताके कारण (महान्तः) बडे (विभ्वः) सामर्थ्यवान (विभूतयः) ऐश्वर्यशाली, तथा (स्तृभिः) नक्षत्रोंसे युक्त (दिव्याः इव) स्वर्गीय देवतागणकी भांति सुहानेवाले, (दूरेदृशः) दूरदर्शी, (मन्द्राः) हर्षित और (सुजिह्वाः) अच्छी जीभ रहनेके कारण अपने (आसभिः) मुखोंसे (स्वरितारः) भलीभाँति बोलनेवाले हैं। वे (इन्द्रे संमिश्लाः) इन्द्रको सहायता पहुंचानेवाले हैं, अतः (परिस्तुभः) सभी प्रकारसे सराहनीय हैं ॥ ११ ॥

[१७९४] हे (सु जाताः मरुतः) कुलीन वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारा (तत् महित्वनं) वह बडप्पन सचमुच प्रसिद्ध है । (अदितेः इव दीर्घं व्रतं) भूमिके विस्तृत व्रतके समान ही (वः दात्रं) तुम्हारी उदारता बहुत बडी है, (यस्मै) जिस (सु-कृते) पुण्यात्मा (जनाय) मानवको तुम (त्यजसा) अपनी त्यागवृत्तिसे जो (अराध्वं) दान देते हो, (तत्) उसे (इन्द्रः चन वि ह्रुणाति) इन्द्र भी विनष्ट नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥

[१७९५] हे (अ-मृतासः मरुतः) अमर वीर मरुद्गण ! (वः तत् जामित्वं) तुम्हारा वह भाईपन बहुत प्रसिद्ध है, (यत्) जिस (परे युगे) प्राचीन कालमें निर्मित (शंसं) स्तुतिको सुनकर तुम हमारी (पुरु आवत) बहुत रक्षा कर चुके हो और उसी (अया धिया) इस बुद्धिसे (मनवे) मनुष्यमात्रके लिए (साकं नरः) मिलजुलकर पराक्रम करनेवाले नेता बने हुए तुम (दंसनैः) अपने कर्मोंसे (श्रुष्टिं आव्य) ऐश्वर्यकी रक्षा करके उसमें विद्यमान (आ चिकित्रिरे) दोषोंको दूर हटाते हो ॥ १३ ॥

भावार्थ— जनताका हित करनेके लिए वीरोंके बाहु प्रस्फुटित होने तथा आगे बढने लगते हैं और उनकी छातीपर एवं कंधोंपर विभिन्न वीरभूषण चमकते हैं । उनके शस्त्र तीक्ष्ण धाराओंसे युक्त होते हैं । पंछी जिस भाँति अपने डैनोंसे सुहाने लगते हैं, उसी प्रकार ये वीर इन सभी आभूषणों एवं आयुधोंसे बडे भले प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

वीरोंमें श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं, इसी कारणसे वे महान् तथा ऊँचे पदपर विराजमान होते हैं और वे अत्यधिक सामर्थ्यवान, ऐश्वर्यवान्, दूरदर्शी, तेजस्वी, उल्लसित, अच्छे भाषण करनेहारे और परमात्माके कार्यका बीडा उठानेके कारण सभीके लिए प्रशंसनीय हैं ॥ ११ ॥

वीर पुरुष बडी भारी उदारतासे जो दान देते हैं, उसीसे उनका बडप्पन प्रकट होता है । पृथ्वीके समान ही ये बडे विशालचेता एवं उदार हुआ करते हैं । शुभ कर्म करनेवालेको इनसे जो सहायता मिलती है, वह अप्रतिम तथा बेजोड ही है । एक बार ये वीर अगर कुछ कार्यकर्ताको दे डालें, तो कोई भी इस दानको छीन नहीं सकता। वीरोंकी देनको छीन लेनेकी मजाल भला किसमें होगी ? विशेषतया जब सुयोग्य कार्यकर्ता उस दानको पानेके अधिकारी हों ॥ १२ ॥

तुम वीरोंका भ्रातृप्रेम सचमुच अवर्णनीय है । अतीतकालमें तुम भलीभाँति हमारी रक्षा कर ही चुके हो, लेकिन आगामी युगमें उसी उदार मनोवृत्तिसे सारे मानवोंकी रक्षाके लिए तुम सभी वीर मिलजुलकर एक दिलसे अपने कर्मों द्वारा जिस रक्षणके गुरुतर कार्यको उठाना चाहते हो, वह भी पूर्णतया त्रुटिहीन एवं अविकल है ॥ १३ ॥

१७९६ येन॑ दी॒र्घं म॑रुतः शू॒शवा॑म यु॒ष्माके॑न॒ परी॑णसा तुरासः ।
आ यत् त॒तन॑न् वृ॒जने॒ जना॑स ए॒भिर्य॒ज्ञेभि॒स्तद॒भीष्टि॑मश्याम् ॥ १४ ॥
१७९७ ए॒ष वः॒ स्तोमो॑ मरुत इ॒यं गी॒र्मा॑न्दा॒र्यस्य॑ मा॒न्यस्य॑ का॒रोः ।
एषा या॑सीष्ट त॒न्वे॑ व॒यां वि॒द्यामे॒षं वृ॒जनं॑ जी॒रदा॑नुम् ॥ १५ ॥

[१६७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- १ इन्द्रः; २-११ मरुत । छन्दः- त्रिष्टुप्; (१० पुरस्ताज्ज्योतिः) ।)

१७९८ स॒हस्रं॑ त इन्द्रो॒तयो॑ नः स॒हस्र॒मिषो॑ हरिवो गू॒र्ततमाः ।
स॒हस्रं॒ रायो॑ माद॒यध्यै॑ सह॒स्रिण॒ उप॑ नो यन्तु॒ वाजाः ॥ १ ॥
१७९९ आ नोऽवो॑भिर्म॒रुतो॑ या॒न्त्वच्छा॒ ज्येष्ठे॑भिर्वा बृ॒हद्दि॑वैः सुमा॒याः ।
अध॒ यदे॑षां नि॒युतः॑ पर॒माः स॑मु॒द्रस्य॑ चिद्धनय॑न्त पा॒रे ॥ २ ॥

अर्थ— [१७९६] हे (तुरासः मरुतः) वेगवान् वीर मरुतो ! (येन युष्माकेन परीणसा) जिस तुम्हारे ऐश्वर्यके सहयोगसे हम (दीर्घं) बडे बडे कार्य (शूशवाम) करते हैं और (यत्) जिससे (जनासः) सभी लोग (वृजने) संग्रामोंमें (आ ततनन्) चतुर्दिक् फैल जाते हैं- विजयी बन जाते हैं- (तत् इष्टिं) उस तुम्हारी शुभ इच्छाको हम (एभिः यज्ञेभिः) इन यज्ञकर्मोंसे (अभि अश्यां) प्राप्त हों ॥ १४ ॥

[१७९७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) संमानार्ह (कारोः) कारीगर या कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है । यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (आ यासीष्ट) प्राप्त हो उसी प्रकार (वयां) हमें (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त हो ॥ १५ ॥

[१६७]

[१७९८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः ऊतयः) हमारी रक्षा करनेके लिए (ते सहस्रं) तेरे हजारों साधन हैं, हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! तेरे (गूर्ततमाः सहस्रं इषः) प्रशंसाके योग्य हजारों तरहके अन्न तथा (मादयध्यै सहस्रं रायः) हमें आनन्दित करनेके लिए हजारों तरहके धन तथा (सहस्रिणः वाजाः) हजारों तरहके बल (नः उप यन्तु) हमें प्राप्त हों ॥ १ ॥

[१७९९] (सु-मायाः) ये अच्छे कौशलसे युक्त (मरुतः) वीर मरुत्गण अपने (अवोभिः) संरक्षणक्षम शक्तियोंके साथ और (ज्येष्ठेभिः) श्रेष्ठ (बृहत्-दिवैः वा) रत्नोंके साथ (नः अच्छ आ यान्तु) हमारे निकट आ जाएँ । (अध यत्) और तदुपरान्त (एषां परमाः नियुतः) इनके उत्तम घोडे (समुद्रस्य पारे चित्) समुद्रके भी परे जाकर (धनयन्त) धन लानेका प्रयत्न करें ॥ २ ॥

भावार्थ— तुम्हारी महान् सहायता पाकर ही हम बडे बडे कर्म कर सके हैं और उसी तुम्हारी सहायतासे सभी लोग भाँति भाँतिके युद्धोंमें विजयी बन सके हैं । हमारी यही लालसा है कि, अब शुरू किये जानेवाले कर्मोंमें वही तुम्हारी पुरानी सहायता हमें मिले ॥ १४ ॥

उच्च कोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हो और हमें अन्न सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ १५ ॥

इस इन्द्रके हजारों तरहके रक्षाके साधन हमें प्राप्त हों, अनेकों तरहके प्रशंसनीय अन्न, अनेक तरहके आनन्ददायक धन तथा हजारों तरहके बल हमें प्राप्त हों ॥ १ ॥

निपुण वीर अपनी संरक्षणक्षम शक्तियोंके साथ हमारी रक्षा करें और दिव्य रत्न प्रदान करके हमारी संपत्ति बढावें । उसी प्रकार इनके घोडे भी समुद्रपार जाकर वहाँसे संपत्ति लावें और हममें वितीर्ण करें ॥ २ ॥

१८०० मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥
१८०१ परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥
१८०२ जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात् त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥
१८०३ आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान् गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८००] (सु-धिता) भली भाँति सुदृढ ढंगसे पकडी हुई, (घृताची) तेज बनाई हुई (हिरण्यनिर्णिक्) सुवर्णकी तरह चमकनेवाली (ऋष्टिः) तलवार (उपरा न) मेघमण्डलमें विद्यमान बिजलीके समान (येषु) जिन वीरोंके निकट (सं मिम्यक्ष) सदैव रहा करती है, वह (गुहा चरन्ती) परदेमें संचार करती हुई (मनुषः योषा न) मानवकी नारीके समान कभी अदृश्य रहती है और कभी कभी (विदथ्या इव वाक्) यज्ञसभाकी वाणीकी भाँति (सभा-वती) सभासदोंमें प्रकट हुआ करती है ॥ ३ ॥

[१८०१] (शुभ्राः) तेजस्वी, (अयासः) शत्रु पर हमला करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (साधारण्या इव) सामान्य नारीके साथ जैसे लोग बर्ताव रखते हैं, उसी तरह (यव्या) जौ उत्पन्न करनेवाली धरती पर (परा मिमिक्षुः) बहुत वर्षा कर चुके हैं। (घोराः) उन्हें देखते ही मनमें तनिक भय उत्पन्न करनेवाले मरुतोंने (रोदसी) आकाश एवं धरतीको (न अप नुदन्त) दूर नहीं हटा दिया। अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि (देवाः) प्रकाशमान उन मरुतोंने (सख्याय) सबसे मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए ही (वृधं) बडप्पनका (जुषन्त) अंगीकार किया है ॥ ४ ॥

[१८०२] (असु-र्या) जीवन देनेहारी और (नृ-मनाः) वीरों पर मन रखनेवाली (रोदसी) धरती या विद्युत् (तत् ईं) जो इनके (सचध्यै) सहवासके लिए (जोषत्) उनकी सेवा करती है। वह (वि-सित-स्तुका) केश सँवारकर ठीक बांधे हुए (त्वेषप्रतीका) तेजस्वी अवयववाली (सूर्या इव) सूर्यासावित्रीके समान (विधतः रथं) विधाताके रथपर (नभसः इत्या न) सूर्यकी गतिके समान विशेष गतिसे (आ गात्) आ पहुँची ॥ ५ ॥

[१८०३] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यत्) जब (अर्कः) पूजनीय, (हविष्मान्) हविष्यान्न समीप रखनेवाला और (सुत-सोमः) जिसने सोमरस निचोड रखा है, वह (वः दुवस्यन्) तुम वीरोंकी पूजा करनेहारा उपासक (विदथेषु) यज्ञोंमें (गाथं) स्तोत्रका (आ गायत्) गायन करता है, तब (युवानः) तुम युवक वीर (नि-मिश्लां) नित्य सहवासमें रहती हुई (पज्रां) बलशाली (युवतिं) नवयौवना-स्वपत्नीको (शुभे) अच्छे मार्गमें, यज्ञमें (अस्थापयन्त) प्रस्थापित करते हो, ले आते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीरोंकी तलवार श्रेष्ठ फौलादकी बनी हुई होती है और वह तीक्ष्ण एवं स्वर्णवत् चमकीली दीख पडती है। वीर लोग उसे बहुत मजबूत तरहसे हाथमें पकडे रहते हैं। तथापि वह मानवी महिलाके समान कभी कभी मियानमें छिपी पडी रहती है और यज्ञिय मंत्रघोषके समान वह किन्हीं अवसरोंपर युद्धके जारी रहनेपर बाहर अपना स्वरूप दर्शाती है ॥ ३ ॥

जो शूर तथा वीर हैं, वे उर्वरा भूमिको बडे परिश्रमपूर्वक जोतते हैं और मेघ भी ऐसी धरती पर यथेष्ट वर्षा करते हैं। जिस प्रकार सामान्य नारीसे कोई भी सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार ये वीर भी भूलोक एवं द्युलोकमें विद्यमान सब चीजोंसे मित्रतापूर्वक सम्पर्क प्रस्थापित करते हैं। इसीसे इन वीरोंको बडप्पन प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥

वीरोंकी पत्नी वीरों पर असीम प्रेम करती है और वह खूब सँवारकर तथा बन-ठनके यों साजसिंगार करके जैसे सावित्री पतिके घर जानेके लिए विधाताके रथ पर बैठ गयी थी वैसे ही पतिगृह पहुँचनेके लिए वह भी वीरोंके रथ पर चढ जाती है ॥ ५ ॥

जब उपासक वीरोंकी प्रशंसा करते हैं, तब वीरोंकी धर्मपत्नी सन्मार्ग पर चलती हुई अपने पतिका यश बढाती है ॥ ६ ॥

१८०४ प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥
१८०५ पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
१८०६ नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शुशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥
१८०७ वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥

अर्थ— [१८०४] (एषां मरुतां) इन वीर मरुतोंका (यः वक्म्यः) जो वर्णनीय एवं (सत्यः) सच्चा (महिमा अस्ति) बडप्पन है (तं प्र विवक्मि) उसका मैं भलीभाँति बखान करता हूँ । (यत् ईं) यह इस तरह कि यह (स्थिरा चित्) अटल धरती भी (सचा) इनका अनुसरण करनेवाली (वृष-मनाः) बलवानोंसे मनःपूर्वक प्रेम करनेहारी पर वीरपत्नी बननेकी (अहं-युः) अहंकार धारण करनेवाली और (सु-भागाः) सौभाग्य युक्त (जनीः) प्रजा (वहते) धारण करती है, उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

[१८०५] हे (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (मित्रा-वरुणौ) मित्र एवं वरुण (अवद्यात्) निंदनीय दोषोंसे (ईं पान्ति) रक्षण करते हैं । (अर्यमा उ) अर्यमा ही (अ-प्रशस्तान्) निंदा करनेयोग्य वस्तुओंको (चयते) एक ओर कर देता है और (उत) उसी प्रकार (अ-च्युता) न हिलनेवाले तथा (ध्रुवाणि) दृढ शत्रुओंको भी (च्यवन्ते) अपने पदोंपरसे हटा देते हैं, (ईं) यह तुम्हारा (दाति-वारः) दानका वर हमेशा (ववृधे) बढता जाता है। तुम्हारी सहायता अधिकाधिक मिलती रहती है ॥ ८ ॥

[१८०६] हे (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (वः शवसः) तुम्हारे सामर्थ्यकी (अन्तं) चरम सीमा (अन्ति) समीपसे या (आरात्तात् चित्) दूरसे भी (अस्मे) हमें (नहि नु आपुः) सचमुच प्राप्त नहीं हुई है। (ते धृष्णुना शवसा) वे वीर आवेशयुक्त बलसे (शुशुवांसः) बढनेवाले, अपने (धृषता) शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले बलसे (द्वेषः) शत्रुओंको (अर्णः न) जलके समान (परि स्थुः) घेर लेते हैं ॥ ९ ॥

[१८०७] (अद्य वयं) आज हम (इन्द्रस्य प्र-इष्ठाः) इन्द्रके अतीव प्रिय बने हैं (वयं) हम (श्वः) कल भी उसी तरह उसके प्यारे बनेंगे। (पुरा वयं) पहले हम (नः) हमें (महि च) बडप्पन मिल जाय इसलिए (द्यून् अनु) प्रतिदिन (स-मर्ये) युद्धोंमें (वोचेमहि) घोषित कर चुके हैं– प्रार्थना कर चुके (तत्) कि (ऋभु-क्षाः) वह इन्द्र (नरां) सब मानवोंमें (नः) हमें (अनु स्यात्) अनुकूल बने ॥ १० ॥

भावार्थ— वीरोंकी महिमा इतनी अवर्णनीय है कि, धरतीमातातक उनकी शूरता पर लुब्ध होकर अच्छी भाग्यशाली प्रजाका धारणपोषण करती है। इन वीरोंकी महिलाएँ भी इनके पराक्रमसे संतुष्ट होकर अच्छे गुणोंसे युक्त संतानको जन्म देती हैं ॥ ७ ॥

उपासकको मित्र, वरुण तथा अर्यमा दोषोंसे और निंदासे बचाते हैं। उसी प्रकार ये वीर सुस्थिर शत्रुओंको भी पदभ्रष्ट करके सारी प्रजाको प्रगतिशील बननेमें सहायता पहुँचाते हैं। सहायता करनेका गुण इनमें प्रतिपल बढता ही रहता है ॥ ८ ॥

पराक्रम कर दिखलानेकी जो शक्ति वीरोंमें अंतर्निगूढ बनी रहती है, उसकी चरम सीमाका ज्ञान अभीतक किसीको भी नहीं। चूँकि उन वीरोंमें यह सामर्थ्य छिपा पडा है कि, उनके शत्रुओंको तुरन्त पराभूत तथा हतबल कर डाले, अतः वे प्रतिपल वर्धिष्णु ही बने रहते हैं। इसी दुर्दम्य शक्तिके सहारे वे शत्रुको घेरकर उसे विनष्ट कर देते हैं ॥ ९ ॥

हम प्रभुसे प्रार्थना करते हैं कि, अतीत वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालोंमें वह हम पर कृपादृष्टि रखे जिससे हमें बडप्पन मिले और स्पर्धामें उसकी मददसे विजयी बनें ॥ १० ॥

१८०८ एष वः स्तोमो मरुत इयं गी--र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१६८]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती; ८-१० त्रिष्टुप् ।)

१८०९ यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणि--र्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्यो--र्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥

१८१० वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

अर्थ— [१८०८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) सम्मानके योग्य (कारोः) कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है। यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (अयासिष्ट) प्राप्त हो, इसी प्रकार (वयां) हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीरदानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१६८]

[१८०९] (यज्ञा-यज्ञा) हर कर्ममें (वः) तुम्हारा (स-मना) मनका समभाव (तुतुर्वणिः) सेवा करनेमें त्वरा करनेवाला है; तुम अपना (धियं धियं) हर विचार (देव-याः उ) दैवी सामर्थ्य पानेकी इच्छासे ही (दधिध्वे) धारण करते हो । (रोदस्योः) आकाश एवं पृथ्वीकी (सुविताय) सुस्थितिके लिए तथा (महे अवसे) सबके पूर्ण रक्षणके लिए (सु-वृक्तिभिः) अच्छे प्रशंसनीय मार्गोंसे (वः) तुम्हें (अर्वाचः) अपनी ओर (आ ववृत्यां) आकर्षित करता हूँ ॥ १ ॥

[१८१०] (ये) जो (वव्रासः न) सुरक्षित स्थानोंके समान सबको सुरक्षित रखते हैं और जो (स्व-जाः) अपनी निजी स्फूर्तिसे कार्य करते हैं और (स्व-तवसः) अपने बलसे युक्त होनेके कारण (धूतयः) शत्रुओंको हिला देते हैं वे (इषं) अन्नप्राप्ति तथा (स्वः) स्वप्रकाशके लिए ही (अभिजायन्त) सब तरहसे जन्मे होते हैं, वे (अपां ऊर्मयः न) जलकी तरंगोंके समान (सहस्रि-यासः) हजारों लोगोंको प्रिय होते हैं; वेही (वन्द्यासः गावः उक्षणः न) पूज्य गौ तथा बैलोंके समान (आसा) हमारे समीप रहें ॥ २ ॥

भावार्थ— उच्च कोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हो और हमें अन्न, सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ ११ ॥

वीरोंके मनकी संतुलित दशा ही उन्हें हर शुभ कार्यमें प्रेरित करती है, स्फूर्ति प्रदान करती है। वे खयाल करते हैं कि, दैवी शक्ति पाकर सब लोगोंकी सुस्थिति एवं सुरक्षाके लिए ही उसका उपयोग करना चाहिए। इसीलिए ऐसे महान् वीरोंको अपने अनुकूल बनाना चाहिए ॥ १ ॥

स्वयं प्रेरणासे ही वीर सैनिक जनताका संरक्षण करनेके लिए आगे आते हैं। अपनी शक्तिसे शत्रुओंका नाश करके वे जनताको भयमुक्त करते हैं। वे मानों लोगोंको अन्न एवं तेजस्विता देनेके लिए ही जन्मे हों। पानीके समान सभी लोग उन्हें चाहते हैं और सबकी यही इच्छा है कि, गाय बैल जैसे वे अपने समीप सदैव रहें ॥ २ ॥

१८११ सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥
१८१२ अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
१८१३ को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ॥ ५ ॥
१८१४ क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८११] (सुताः) निचोडे हुए (पीतासः) पिये हुए (हृत्सु) हृदयमें जाकर (तृप्त-अंशवः) तृप्ति करनेवाले (सोमासः न) सोमरसके समान, (दुवसः न) पूज्य मानवोंके समानही जो वीर पुरुष राष्ट्रमें (आसते) रहते हैं (एषां अंसेषु) उनके कंधों पर (रम्भिणी इव) लाठियोंको ले चढाई करनेवाली सेनाके समान हथियार (आ रारभे) विद्यमान हैं। उसी प्रकार उनके (हस्तेषु खादिः) हाथोंमें अलंकार तथा (कृतिः च) तलवार भी (सं दधे) भली प्रकार धरे हुए हैं ॥ ३ ॥

[१८१२] (स्व-युक्ताः) स्वयं ही कर्ममें निरत होनेवाले वे वीर (दिवः) द्युलोकसे (वृथा) अनायासही (अव आ ययुः) नीचे आये हुए हैं। हे (अ-मर्त्याः) अमर वीरो ! (त्मना) तुम अपने (कशया) कोडेसे घोडोंको (चोदत) प्रेरित करो। ये (अ-रेणवः) निर्मल (तुवि-जाताः) बलके लिए प्रसिद्ध तथा (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (दृळ्हानि चित्) सुदृढोंको भी (अचुच्यवुः) हिला देते हैं ॥ ४ ॥

[१८१३] हे (ऋष्टि-विद्युतः मरुतः) आयुधोंसे विराजमान वीर मरुतो ! तुम (इषां) अन्नके लिए (पुरु-प्रैषाः) बहुत प्रेरणा करनेहारे हो। (धन्व-च्युतः न) धनुष्यसे छोडे हुए बाणकी तरह (अ-हन्यः) जिसे मारनेकी कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे (एतशः न) सिखाये हुए घोडेके समान (वः अन्तः) तुममें (त्मना) स्वयं ही (जिह्वया) जीभके साथ-वाणी सहित (हन्वा इव) ठुड्डी जैसे हिलती है, वैसे ही (कः रेजति) कौन भला प्रेरणा करता है ? ॥ ५ ॥

[१८१४] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यस्मिन्) जहाँसे (आयय) तुम आते हो, (अस्य महः रजसः) उस प्रसिद्ध विस्तृत अंतरिक्षलोकके (परं क्व स्वित्) उस ओरका छोर कौनसा है ? (अवरं क्व) और इस ओरका भी कौन है ? (यत्) जब कि तुम (सं-हितं) इकट्ठे हुए मेघोंको तथा शत्रुओंको (च्यावयथ) हिला देते हो, उस समय (अद्रिणा) वज्रसे (वि-थुरा इव) निराश्रितके समान (त्वेषं अर्णवं) उन तेजस्वी मेघों या शत्रुओंको तुम (वि पतथ) नीचे गिरा देते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सोमरसके सेवनके उपरान्त जैसे हर्ष एवं उमंगमें वृद्धि होती है उसी प्रकार जो वीर जनतामें कर्म करनेका उत्साह बढाते हैं उनके कंधों पर हथियार और हाथमें ढाल तलवार दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥

अपनी ही इच्छासे कार्य करनेवाले ये वीर दिव्यस्वरूपी हैं और निष्काम भावसे विविध कार्योंमें जुट जाते हैं। इन निर्मल एवं तेजस्वी वीरोंमें इतनी क्षमता है कि, प्रबल शत्रुओंमें भी क्या मजाल कि इनके सामने खडे रह सके ॥ ४ ॥

वीर सैनिक अन्नकी वृद्धिके लिए बहुत प्रयत्न करते हैं। धनुष्यसे छोडा हुआ तीर जैसे ठीक पहुँच जाता है, या भली भाँति सिखाया हुआ घोडा जैसे ठीक चलता रहता है, वैसे ही तुम जो कार्यभार उठाते हो, उसे अच्छी तरह निभाते हो। भला इसमें तुम्हें अन्तःप्रेरणा कैसे मिलती होगी ? ॥ ५ ॥

महान् तथा असीम अंतरिक्षमेंसे तुम आते हो और बादलों तथा दुश्मनोंको विचलित करते हो। एवं निराधारोंके समान उन्हें नीचे गिरा देते हो। (इस मंत्रमें बादल और शत्रुओंके बारेमें समान भाव व्यक्त किये हैं।) ॥ ६ ॥

१८१५ सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
१८१६ प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥
१८१७ असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्व—मादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
१८१८ एष वः स्तोमो मरुत इयं गी—र्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१८१५] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः सातिः न) तुम्हारी देनके समान ही (वः रातिः) तुम्हारी कृपा भी (अम-वती) बलवान्, (स्वर्-वती) सुख देनेवाली, (त्वेषा) तेजस्वी, (वि-पाका) विशेष फल देनेवाली, (पिपिष्वती) शत्रुदलको चकनाचूर करनेवाली तथा (भद्रा) कल्याणकारक है; (पृणतः दक्षिणा न) जनताको संतुष्ट करनेवाले धनाढ्य पुरुषकी दी हुई दक्षिणाके समान (पृथु-ज्रयी) विशेष दिखानेवाली और (असुर्या इव) दैवी शक्तिके समान (जञ्जती) शत्रुसे जूझनेवाली है ॥ ७ ॥

[१८१६] (यत्) जब ये वीर (पविभ्यः) रथके पहियोंसे (अभ्रियां वाचं) मेघसदृश गर्जना (उदीरयन्ति) प्रवर्तित कर देते हैं, तब (सिन्धवः) नदियाँ (प्रति स्तोभन्ति) चौखला उठती हैं (यदि) जिस समय (मरुतः) वीर मरुत् (घृतं) जल (प्रुष्णुवन्ति) बरसाने लगते हैं तब (पृथिव्यां) धरती पर (विद्युतः) बिजलियाँ मानों (अव स्मयन्त) हँसती हैं, ऐसा जान पडता है ॥ ८ ॥

[१८१७] (पृश्निः) मातृभूमिने (महते रणाय) बडे भारी संग्रामके लिए (अयासां मरुतां) गतिमान् वीर मरुतोंका (त्वेषं अनीकं) तेजस्वी सैन्य (असूत) उत्पन्न किया। (ते सप्सरासः) वे इकट्ठे होकर हलचल करनेवाले वीर (अभ्वं अजनयन्त) बडी शक्ति प्रकट कर चुके। (आत् इत्) तदुपरान्त उन्होंने (इषि-रां स्व-धां) अन्न देनेवाली अपनी धारक शक्तिको ही (परि अपश्यन्) चतुर्दिक् देख लिया ॥ ९ ॥

[१८१८] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्तिके तथा (मान्यस्य) सम्मानके योग्य (कारोः) कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह स्तोम यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए हैं। वह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्नके साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीरकी वृद्धि करनेके लिए तुम्हें (अयासिष्ट) प्राप्त हो, उसी प्रकार (वयां) हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल तथा (जीरदानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त करें ॥ १० ॥

भावार्थ— वीरोंका दान तथा दयालुता शक्ति, सुख, तेजस्विता और कल्याण प्रदान करनेवाली है ही, पर उसीसे शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य भी मिल जाता है ॥ ७ ॥

(आधिभौतिक अर्थ—) इन वीरोंका रथ चलने लगे, तो मेघोंकी दहाडसी सुनाई पडती है और नदियोंको पार करते समय जलप्रवाहमें भारी खलबली मच जाती है। (आधिदैविक अर्थ—) जब वायुप्रवाह बहने लगते हैं, तब मेघगर्जना हुआ करती है, दामिनीकी दमक दीख पडती है और मूसलाधार वर्षाके फलस्वरूप नदियोंमें महान् बाढ आती है ॥ ८ ॥

शत्रुसे जूझनेके लिए मातृभूमिकी प्रेरणासे वीरोंकी प्रचंड सेना अस्तित्वमें आ गयी। एकत्रित बनकर शत्रु पर टूट पडनेवाले इन वीरोंने युद्धमें बडी भारी शक्ति प्रकट की और उन्होंने देखा कि, उस शक्तिमें अन्नका सृजन करनेकी क्षमता थी ॥ ९ ॥

उच्चकोटिके कविका बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरोंका उत्साह बढानेके लिए उन्हें प्राप्त हों और हमें अन्न, सामर्थ्य तथा विजय मिले ॥ १० ॥

30 ×

[१६९]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, चतुष्पदा विराट् ।)

१८१९ महश्चित् त्वमिन्द्र यत एतान् महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान् त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥

१८२० अयुञ्जन्त इन्द्र विश्वकृष्टी- र्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥

१८२१ अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वा- नापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥

१८२२ त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥

[१६९]

अर्थ— [१८१९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यतः) जिस कारण (त्वं) तू (एतान्) इन (महः चित्) महान् देवोंकी रक्षा करता है अतः इन (महः चित्) महान् (त्यजसः) त्यागियोंका (वरूता) रक्षक (असि) है । (सः) वह (वेधः) ज्ञानी इन्द्र ! तू हमें (चिकित्वान्) जानता हुआ (मरुतां) मरुतोंके और (तव हि) अपने (प्रेष्ठा) बहुत प्रिय (सुम्ना) सुख-साधनोंको (नः) हमें (वनुष्व) दे ॥ १ ॥

[१८२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! जिन (मरुतां) मरुतोंकी (पृत्सुतिः) सेना (स्वः-मीळ्हस्य) सुख प्राप्ति वाले (प्र-धनस्य युद्धके) (सातौ) समय आने पर बहुत (हासमाना) प्रसन्न होती है, (ते) वे (विश्व-कृष्टीः) सब जनोंके (विदानासः) ज्ञाता, शत्रुओंको (निः-षिधः) दूर भगानेवाले मरुत् (मर्त्य-त्रा) मनुष्योंमें अन्योंको छोडकर तुझसे ही (अयुञ्जन्) जुडे हैं ॥ २ ॥

[१८२१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा) वह (ऋष्टिः) तलवार (अस्मे) हमें (अम्यक्) प्राप्त हो । हमारी सहायताके लिये समीप आये । ये (मरुतः) मरुत (सनेमि) सदा (अभ्वं) जलको (जुनन्ति) प्रेरित करते हैं । (अतसे) काठमें (शुशुक्वान्) प्रदीप्त (अग्निः चित् हि स्म) अग्नि जैसे लोगोंको और (आपः न) जल जैसे (द्वीपं) द्वीपको रस देते हैं वैसे मरुत् तुझ इन्द्रको (प्रयांसि) अन्न (दधति) देते हैं ॥ ३ ॥

[१८२२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (याः) जो धन (स्तुतः) स्तुतिको प्राप्त कर (ते) तुझ (वायोः) गतिशील, इन्द्रका (चकनन्त) कामना करते हैं और (वाजैः) अन्नसे, (मध्वः) मीठा दूध (स्तनं न) जैसे स्तनको बढाता है, वैसे ही तुझे (पीपयन्त) बढाते हैं (त्वं तू) तू तो, (ओजिष्ठया) ओज-भरी (दक्षिणया इव) दक्षिणासे जैसे (रातिं) दान करते हैं, वैसे (तं) वह (रयिं) धन (नः) हमें (दाः) दे ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र मरुतों तथा अन्य महान् देवोंकी भी रक्षा करता है । मरुत् भी बडे त्यागी हैं, वे अपने प्राणोंका मोह छोडकर इन्द्रके साथी बन कर लडते हैं । तब उन्हें विजयमें उत्तम धन प्राप्त होता है । वह इन्द्र और मरुत् हमारी भी रक्षा करके हमें अपने प्रिय तथा सुखको बढानेवाले साधनोंसे हमें सुख दें ॥ १ ॥

ये मरुत् युद्ध करनेसे घबराते नहीं अपितु युद्धका अवसर आने पर प्रसन्न होते हैं । ये मरुत् दूसरोंको अपना साथी नहीं बनाते । वे तो इन्द्रको ही साथी मानते और उसीके साथ रहते हैं । इसी तरह मनुष्य भी युद्धके समय घबरायें नहीं अपितु उत्साहसे डटकर शत्रुओंसे लोहा लें । मनुष्य सदा श्रेष्ठ वीरको ही अपना साथी बनायें, ताकि समय आने पर वह वीर अपने साथियोंकी रक्षा कर सके ॥ २ ॥

अग्निसे प्रकाश और गर्मी मिलती है चारों ओरका जल टापूको शीतल रखता है ऐसे ही मरुतोंका दान भी इन्द्रको प्रसन्न रखता है ॥ ३ ॥

इन्द्रका धन है । उससे इन्द्रकी शक्ति बढती है । स्तोता उसे ही अधिक मात्रामें चाहते हैं । इस इन्द्रको हमेशा बढाना चाहिए ॥ ४ ॥

१८२३ त्वे रायं इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्यं चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥
१८२४ प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन् महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एता--स्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
१८२५ प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमै--र्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
१८२६ त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवै--र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

अर्थ-- [१८२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे) तुझमें (कस्य चित्) किसी भी (ऋता-योः) यज्ञकी इच्छावाले यजमानके (प्र-नेतारः) प्रेरक और (तोश-तमाः) अत्यन्त आनन्द-दायक (रायः) धन हैं । हे इन्द्र ! (ये स्म) जो (देवाः) देव (पुरा) पूर्वकालसे (गातुयन्ति इव) यज्ञमें जानेके मानो अभ्यासी हैं (ते) वे (मरुतः) मरुत् (नः) हमें (सु मृडयन्तु) बहुत सुखी करें ॥ ५ ॥

[१८२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (महः) बडे और (मीळ्हुषः) वर्षा करनेवाले (नॄन्) अग्रगामी मरुतोंके (प्रति) पास (प्र याहि) जा । और (पार्थिवे) पृथिवीके (सदने) स्थानोंमें (यतस्व) पराक्रम दिखा । (अध) तब (यत्) जोकि (एषां) इन मरुतोंके (पृथु-बुध्नासः) मोटी पीठवाले ये (एताः) रंग-बिरंगे घोडे, (अर्यः) स्वामीकी (पौंस्यानि) सेनायें (तीर्थे न) जैसे उतरके जानेके मार्गोंमें खडी रहती हैं, वैसे (तस्थुः) खडे हैं, उन पर बैठ ॥ ६ ॥

[१८२५] (ये) जो मरुत् (पृतना-यन्तं) युद्ध करनेकी इच्छावाले (मर्त्यं) मनुष्यको अपने (ऊमैः) रक्षा-साधनोंसे, (सर्गैः) रस्सीसे बांधकर गिरा देते हैं। जैसे (ऋणा-वानं) ऋण लेनेवाले अपराधीको वैसे ही (पतयन्त) गिराते हैं, उन (घोराणां) भयंकर (एतानां) शीघ्र-गामी, (अयासां) आक्रमण करने और (आयतां) घेरनेवाले (मरुतां) मरुतोंका (उपब्दिः) शब्द (प्रति शृण्वे) सुनाई देता है ॥ ७ ॥

[१८२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (मरुत्-भिः) मरुतोंके साथ मिलकर अपनी (विश्वजन्या) विश्वको उत्पन्न करनेवाली शक्तिसे (मानेभ्यः प्रतिष्ठाके लिये (गो-अग्राः) गायोंको आगे रखनेवाली (शुरुधः) शोषक शत्रु-सेनाओंको (रद) काट दे । हे (देव) देव ! तेरी (स्तवानेभिः) स्तुति करनेवाले (देवैः) देवोंसे (स्तवसे) स्तुति होती है । हम तेरी कृपासे (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) जयके साधनको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ८ ॥

१ मानेभ्यः शुरुधः रद-- अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए शत्रुओंका संहार करना चाहिए ।

भावार्थ-- इन्द्रके पास ऐसा धन है जो यजमानोंको सन्तुष्ट करके उन्हें यज्ञ-कार्यमें प्रेरित करता है । वैसे ही इन्द्रके साथी मरुत् भी यज्ञके प्रेरक हैं । क्योंकि वे सदा यज्ञमें जाकर यजमानोंको सुखी करते हैं ॥ ५ ॥

मरुत् पानी बर्षाते हैं । इन्द्र उनकी सहायता करता है और उनके घोडोंकी पंक्तिका निरीक्षण करता है ॥ ६ ॥

जिस प्रकार ऋणी मनुष्य साहुकारका धन नहीं देता तो उसे रस्सीसे बांध कर गिरा देते हैं। उसी प्रकार इन्द्रके साथी मरुत् भी असुरोंको शस्त्रोंसे जकड देते हैं और जकड कर नीचे गिरा देते हैं। यह मरुत् बहुत उत्साही हैं। ये भयंकर, शीघ्रगामी, आक्रमण करनेवाले और शत्रुओंको घेरनेवाले हैं। ये प्रसन्न होकर ऐसे गरजते हैं, कि इनका शब्द दूर देने लगता है ॥ ७ ॥

इन्द्र गायें चुरानेवाले शत्रुओंका नाश कर ऋषियोंको धनादि देता है । अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए इन्द्र शत्रुओंका संहार करता है । उसका वृत्रहन्ताके रूपमें बडा मान है अतः इन्द्र भी शत्रुओंको मार कर अपना मान बनाये रखता है । मान प्राणकी अपेक्षा भी महत्त्वपूर्ण है । अतः मनुष्यको भी चाहिए कि वह अपने मानको बचानेके लिये शत्रुओंका संहार करे ॥ ८ ॥

[१७०]

(ऋषिः- १, ३, ४ इन्द्रः, ४ अगस्त्यो वा; २, ५ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ बृहती, २-४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।)

१८२७ न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद् वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥

१८२८ किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥

१८२९ किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥

१८३० अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥

---

[१७०]

अर्थ— [१८२७] जो आज प्राप्त होना चाहिये वह (नूनं) तो आज (न) नहीं मिल रहा (अस्ति) है, वह (श्वः) कल भी (नो) नहीं मिलनेवाला है। तब (यत्) जो अभी (अद्भुतं) अभूत, संकल्पमें भी नहीं आया, (तत्) उसे (कः) कौन (वेद) जानता है। (अन्यस्य) दूसरेका, (चित्तं) चित्त (अभि सं-चरेण्यं) चलायमान होता है (उत) और (आ-धीतं) संकल्पित विचार भी (वि नश्यति) नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

[१८२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (किं) क्यों (जिघांससि) मारना चाहता है ? (मरुतः) मरुत् (तव) तेरे (भ्रातरः) भाई हैं। (तेभिः) उनसे (साधु-या) उत्तम व्यवहार (कल्पस्व) कर। तू (नः) हमें (सं अरणे) युद्धमें (मा वधीः) मत मार ॥ २ ॥

[१८२९] हे (भ्रातः) भाई (अगस्त्य) अगस्त्य ! तू हमारा (सखा) मित्र (सन्) होता हुआ (नः) हमारा (किं) क्यों (अति मन्यसे) अनादर करता है ? (ते) तेरा (मनः) मन (यथा) जैसा है उसे हम (विद्म हि) खूब जानते हैं तू हमारा भाग (अस्मभ्यं) हमें (इत्) तो (न) नहीं (दित्ससि) देना चाहता ॥ ३ ॥

[१८३०] हे इन्द्र ! ऋत्विक् लोग (वेदिं) वेदीको (अरं कृण्वन्तु) अलंकृत करें, सजायें। उसमें (पुरः) सर्व प्रथम (अग्निं) अग्निको (सं इन्धतां) प्रदीप्त करें। तब (तत्र) वहां मैं और तू दोनों (ते) तेरे लिये (अमृतस्य) अमरताको (चेतनं) जगानेवाले (यज्ञं) यज्ञका (तनवावहै) प्रारम्भ करें ॥ ४ ॥

१ अमृतस्य चेतनं यज्ञं— यज्ञ अमरताको जगानेवाला है।

भावार्थ— आज मुझे अपना भाग नहीं मिला, कल भी नहीं मिलेगा। कब मिलेगा यह कौन जानता है क्योंकि वह अभी संकल्पमें भी नहीं आया। दूसरेका चित्त स्थिर नहीं होता अतः वह संकल्प करेगा तो भी बदल सकता है। जिस मनुष्यका चित्त स्थिर नहीं होता, वह कभी भी संकल्प नहीं कर सकता। उसके विचार हमेशा बदलते रहते हैं। अतः संकल्प करनेके लिए प्रथम चित्तको स्थिर करना आवश्यक है ॥ १ ॥

भाई भाईके लाभ पर ईर्ष्या नहीं करता क्योंकि उसे अपनेसे भिन्न नहीं मानता। हे इन्द्र ! मैं अपराधी नहीं हूँ, मुझे मारनेकी इच्छा मत कर। नेता सभीसे समानतापूर्वक व्यवहार करे। वह किसीसे भी द्वेष न करे ॥ २ ॥

इन्द्रने कहा अगस्त्य ! तू हमारा मित्र है फिर भी हमें हमारा भाग नहीं देना चाहता। अब मैं तेरे मनको जान गया। तू अब मुझे मनसे नहीं चाहता। तेरे चित्तमें परिवर्तन आ गया है। प्रजा भी राजाका भाग ईमानदारीसे दे देवे। तथा नेताका अनादर कभी न करे ॥ ३ ॥

जिस यज्ञमें अग्निको प्रज्वलित करके उसमें श्रद्धा भक्तिपूर्वक आहुति दी जाती है, ऐसा श्रद्धा और भक्तिसे किया जानेवाला यज्ञ अमरताको प्रदान करता है ॥ ४ ॥

१८३१ त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥

[१७१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः; ३-६ मरुत्वानिन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८३२ प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥

१८३३ एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः ॥ २ ॥

१८३४ स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शंभविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८३१] हे (वसु-पते) धनोंके स्वामी इन्द्र ! (त्वं) तू (वसूनां) धनोंका (ईशिषे) स्वामित्व करता है । हे (मित्र-पते) मित्रोंके रक्षक ! (त्वं) तू (मित्राणां) मित्रोंका (धेष्ठः) बडा धारक, आधार है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ (सं वद) प्रेमसे बोल (अध) और (ऋतुथा) ऋतुके अनुसार, उनके साथ, हमारे दिये (हवींषि) हवियोंको (प्र अशान) खा ॥ ५ ॥

[१७१]

[१८३२] हे (मरुतः) मरुतो ! (अहं एना नमसा) मैं इस नमनसे तथा (सूक्तेन) सूक्तसे (वः प्रति एमि) तुम्हारे समीप आता हूँ । (तुराणां) वेगसे जानेवाले तुम वीरोंकी (सुमतिं) अच्छी बुद्धिकी मैं (भिक्षे) याचना करता हूँ । (वेद्याभिः) इन जानने योग्य स्तुतियोंसे (रराणता) आनन्दित हुए मनसे तुम अपना (हेळः नि धत्त) द्वेष एक ओर धर दो, तथा (अश्वान्) अपने रथके घोडोंको (वि मुचध्वं) मुक्त करो ॥ १ ॥

[१८३३] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (एषः) यह (नमस्वान्) नम्रतासे तथा (हृदा तष्टः) मनःपूर्वक रचा गया (वः स्तोमः) तुम्हारा काव्य (मनसा धायि) मन लगाकर सुनो । हे (देवाः) तेजस्वी वीरो ! (मनसा ईं) मनसे यह हमारा काव्य (जुषाणाः) स्वीकार कर तुम (उप आयात) हमारी ओर आओ । (यूयं हि) क्योंकि तुम (नमसः इत्) सत्कर्मोंकी ही (वृधासः) समृद्धि करनेवाले हो ॥ २ ॥

१ मरुतः नमसः इत् वृधासः— मरुत् वीर उत्तम कर्मोंको ही बढावा देते हैं ।

[१८३४] (स्तुतासः मरुतः नः मृळयन्तु) स्तुत होकर मरुत् हमें सुखी करें (उत) और (शंभविष्ठः मघवा स्तुतः) सबके लिए सुखी होनेवाला ऐश्वर्यवान् इन्द्र भी स्तुत होकर हमें सुखी करे । हे (मरुतः) मरुतो ! (जिगीषा नः विश्वा अहानि) आगे आनेवाले हमारे सब दिन (ऊर्ध्वा) उन्नत तथा (कोम्या वनानि) स्पृहणीय और सबके द्वारा चाहे जाने योग्य (सन्तु) हों ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम यज्ञ करते हैं, उनमें तू हविका ग्रहण कर । अग्निमें यदि ऋतुके अनुसार सामग्री डालकर यज्ञ किया जाए तो वह अनेक तरहसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला होता है ॥ ५ ॥

मैं इन वीरोंकी उपासना करना चाहता हूँ इनके निकट जाकर रहना चाहता हूँ और प्रयत्न करना चाहता हूँ कि उनकी अच्छी बुद्धिसे मैं लाभ उठा सकूं । वे हमपर कभी क्रोध न करें और वे प्रसन्नचित्त हो सतत हमारे पास रहें । यही मेरी अभिलाषा है ॥ १ ॥

हे वीरो ! हमने बडी भक्तिसे ये तुम्हारे स्तोत्र बनाये हैं, अतः मन लगाकर इसे सुनो । तथा हमारे सत्कर्मोंकी उन्नति करो । राष्ट्रमें सदा सत्कर्मोंको ही बढावा मिलना चाहिए । उसीसे राष्ट्र उन्नत हो सकता है ॥ २ ॥

मरुत और इन्द्र दोनों हमसे स्तुत होकर हमें भी सुखी करें और इनकी कृपासे हमारे आगे आनेवाले दिन उन्नत और हमें सुख देनेवाले हों ॥ ३ ॥

१८३५ अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥
१८३६ येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥
१८३७ त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७२]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

१८३८ चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥

अर्थ—[१८३५] हे (मरुतः) मरुतो ! (अस्मात् तविषात् इन्द्रात् अहं) इस बलवान् इन्द्रसे मैं (भिया ईषमानः रेजमानः) डर कर भागता और कांपता हूँ । इसी डरके कारण (युष्मभ्यं) तुम्हारे लिए (हव्या निशितानि आसन्) हवियां तैय्यार करके रखी गई थीं, (तानि आरे चकृम) उन्हें हमने दूर कर दिया, इसलिए (नः मृळत) हमें सुखी करो ॥ ४ ॥

[१८३६] हे इन्द्र (येन शवसा) जिस तेरे बलसे (मानासः उस्राः) प्रकटकी गई किरणें (शश्वतीनां व्युष्टिषु) अनेक उषाओंके प्रकाशित होने पर (चितयन्ते) चमकने लगती हैं । हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (उग्रः उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः सः) वीर, शक्तियोंसे सर्वश्रेष्ठ तथा बल देनेवाला वह तू (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ मिलकर (नः श्रवः धाः) हमें अन्न दे ॥ ५ ॥

[१८३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (सहीयसः नॄन् पाहि) शत्रुओंका नाश करनेवाले नेताओंकी रक्षा कर और (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ रहनेवाला तू (अवयात हेळाः भव) गुस्सेसे रहित हो । (सुप्रकेतेभिः) उत्तम तेजोंसे युक्त तथा (सासहिः) शत्रुओंको नष्ट करनेवाले बलको तू (दधानः) धारण करनेवाला हो । हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और शीघ्र दानके स्वभावको प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७२]

[१८३८] हे (सुदानवः) अच्छे दानशूर और (अ-हि-भानवः) न घटनेवाले तेजसे युक्त (मरुतः) मरुतो ! (वः यामः चित्रः) तुम्हारी गति आश्चर्यकारक है तथा तुम्हारी (ऊती) संरक्षणक्षम शक्ति भी (चित्रः अस्तु) विलक्षण हो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे मरुतो ! इस बलवान् इन्द्रके डरके कारण हम भयसे कांपते हुए उधर इधर भागनेके कारण असावधानीसे तुम्हारे लिए दी जानेवाली हवियोंकी तरफ ध्यान नहीं दे सके, इसलिए तुम हम पर नाराज न हो अपितु हमें सुखी करो ॥ ४ ॥

इसी इन्द्रकी शक्तिसे प्रेरित होकर किरणें उषःकालमें प्रकाशित होती हैं । ऐसे वीर और वीरताके कारण ही सबसे श्रेष्ठ इस इन्द्रकी कृपासे हम हर तरहका अन्न प्राप्त करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको नष्ट करनेवाले नेताओंकी रक्षा कर और हम पर तू क्रोधित मत हो । क्रोधको दूर करके तू हमारे पास आ । तू उत्तम तेज धारण कर । हम भी अन्न और बल आदि धारण करें ॥ ६ ॥

शत्रुदल पर चढाई करनेकी वीरोंकी योजना प्रशंसनीय है और रक्षण करनेकी शक्ति भी बहुत बडी है ॥ १ ॥

१८३९ आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥

१८४० तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः । ऊर्ध्वान् नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥

[१७३]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ४ विराट्स्थाना, विषमपदा वा ।)

१८४१ गायत् साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद् वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत् सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥

१८४२ अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥

अर्थ—[१८३९] हे (सु-दानवः मरुतः) भलीभांति दान देनेवाले वीर मरुतो! (सा वः) वह तुम्हारा (ऋंजती) वेगसे शत्रुदल पर टूट पडनेवाला (शरुः) शस्त्र हमसे (आरे) दूर रहे। (यं अस्यथ) जिसे तुम शत्रुपर फेंकते हो, वह (अश्मा) वज्र भी हमसे (आरे) दूर ही रहे ॥ २ ॥

[१८४०] हे (सुदानवः) अच्छे दानशूर वीरो! (तृणस्कन्दस्य) तिनकेके समान आसानीसे नष्ट होनेवाले (विशः) इन प्रजाजनोंका नाश (नु) शीघ्र ही (परि वृङ्क्त) दूर हटा दो अर्थात् उन प्रजाओंकी रक्षा करो। (नः जीवसे) हमारे बहुत दिनोंतक जीवित रहनेके लिए हमें (ऊर्ध्वान् कर्त) उच्च कोटिका बनाओ ॥ ३ ॥

[१७३]

[१८४१] (यत्) जब (धेनवः) इच्छा पूर्ण करनेवाली (अदब्धाः) न दबनेवाली (गावः) गौवें (बर्हिषि) यज्ञमें (सद्मानं) बैठे (दिव्यं) दिव्य इन्द्रकी (विवासान्) सेवा करती हैं तब तू (यथा) जैसा (वेः) जानता है, वैसा (नभन्यं) शत्रु-हिंसक (साम) साम (गायत्) गा। हम भी (तत्) वही (स्वः-वत्) सुख-दायी और (वावृधानं) उन्नतिकारक साम इन्द्रके लिये (अर्चाम) कहते हैं ॥ १ ॥

[१८४२] (यत्) जब (अश्नः) खानेकी इच्छावाला इन्द्र, (मृगः) हरिणके (न) समान, (अति जुगुर्यात्) बहुत इच्छा करता है तब (वृषा) बलवान् यजमान (वृष-भिः) बलोंसे युक्त (स्वेदु-हव्यैः) अपने हव्य पदार्थोंसे इन्द्रकी (अर्चत्) पूजा करता है। हे (गूर्त) उद्यमी इन्द्र! (मन्दयुः) स्तुति करनेवाला, (मर्यः) पुरुष, (यजत्रः) यज्ञकर्ता (होता) होता तेरे लिये (मनां) स्तुतिको (मिथुना) हवि आदिसे युक्त करके (प्र भरते) बोलता है ॥ २ ॥

भावार्थ— शत्रुपर फेंका जाकर उनका विनाश करनेवाला मरुतोंका शस्त्र हमसे दूर रहे, अर्थात् हमपर वह शस्त्र आकर न गिरे ॥ २ ॥

जो जनता तिनकेके समान नष्ट होती हो, उसे सुरक्षित करके उच्च पदतक ले जाओ और दीर्घायु सम्पन्न करो ॥ ३ ॥

इन्द्रके निमित्त उत्साहवर्धक साम गाया जाता है। तब यज्ञमें बैठे हुए इन्द्रकी गायें अपना दूध आदि देकर सेवा करती हैं अर्थात् यज्ञमें इन्द्रके लिए दूध घृतादि पदार्थ दिए जाते हैं ॥ १ ॥

जब इन्द्र हवि चाहता है तब ऋत्विज् लोग उसे दिया करते हैं। यह हवि स्वयं भी बलसे युक्त होकर दूसरोंको भी बलसे युक्त करती है ॥ २ ॥

१८४३ नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन् भरद् गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद् गौ- रन्तर्दूतो न रोदसी चरद् वाक् ॥ ३ ॥
१८४४ ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥
१८४५ तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान् ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥
१८४६ प्र यदित्था महिना नृभ्यो अ- स्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८४३] वह (होता) दाता इन्द्र (मिता) निश्चित (सद्म) यज्ञगृहकी (परि यन्) ओर आनेपर हविर्भाग (नक्षत्) प्राप्त करता है। (शरदः) शरद् ऋतु और (पृथिव्याः) पृथिवीके (गर्भं) गर्भको (आ भरत्) भर देता है, पुष्ट करता है। उसे यज्ञकी तरफ (नयमानः) ले चलता हुआ (अश्वः) घोडा (क्रन्दत्) शब्द करता है और उसे आता देखकर (गौः) गाय (रुवत्) रंभाती है। वह (वाक्) स्तुतिको ग्रहण करता हुआ (रोदसी) दोनों लोकोंके (अन्तः) बीच (दूतः न) दूतके समान (चरत्) घूमता है ॥ ३ ॥

[१८४४] (देव-यन्तः) देवोंको चाहनेवाले ऋत्विक् इन्द्रको जो (च्यौत्नानि) शत्रु-नाशक हवि (प्र भरन्ते) देते हैं (ता) वे (अपतरा) बहुत उपयोगी हवि हम (अस्मै) इसके लिये (कर्म) देते हैं। वह (दस्म-वर्चाः) दर्शनीय तेज और (सुग्म्यः) उत्तम गतिवाला, (रथे-स्थाः) रथपर बैठा हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (नासत्या-इव) अश्विदेवोंके समान हमारा हवि (जुजोषत्) सेवन करे ॥ ४ ॥

[१८४५] (यः ह) जो इन्द्र (सत्वा) शत्रु-नाशक (यः) जो (शूरः) शूर, जो (मघ-वा) धनवान्, (यः) जो (रथे-स्थाः) रथपर बैठनेवाला (प्रतीचः चित्) बहुत विरोधियोंसे भी डट कर (योधीयान्) लडनेवाला (वृषण्-वान्) अनेक बलोंसे युक्त और (ववव्रुषः चित्) आवेष्टन करनेवाले (तमसः) अन्धकारका (वि-हन्ता) नाशक है (तं) उस (उ) ही (इन्द्रं) इन्द्रकी (स्तुहि) स्तुति कर ॥ ५ ॥

[१८४६] (यत्) जो इन्द्र (इत्था) इस प्रकार अपनी (महिना) महत्तासे (नृ-भ्यः) मनुष्योंका (प्र अस्ति) प्रभु है। (कक्ष्ये) कक्षके समान (रोदसी) दोनों लोक (अस्मै) इस इन्द्रके रहनेके लिये (अरं न) पर्याप्त नहीं हैं। वह (इन्द्रः) इन्द्र अपने (वृजनं न) बलके समान (भूम) भूमिको भी अपने भीतर (सं विव्ये) समेटता है। वही (स्वधा-वान्) अपनी धारकशक्तिसे युक्त इन्द्र, जैसे बैल (ओपशं-इव) सींगको, वैसे (द्यां) द्यौको (भर्ति) धारण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— जैसे राजदूत कभी स्थिर नहीं बैठता वैसे इन्द्र भी जहां यज्ञ होते हैं वहां जाता है। इस इन्द्रसे सभी प्रेम करते हैं। उसे देखकर पशु भी अपना प्रेम जताते हैं। घोडा उसे यज्ञकी तरफ ले चलता हुआ प्रेमसे शब्द करता है और गाय भी उसे आता देखकर प्रेमसे रंभाती है ॥ ३ ॥

इन्द्रको जो हवि दी जाती है वह बहुत बलकारी है। उससे इन्द्रमें शत्रुओंको गिरानेकी शक्ति आती है ॥ ४ ॥

इन्द्र बहुत वीर है। अपने असंख्य विरोधियोंसे भी निर्भीक होकर लडता है। वह उत्तम रथी है, अनेक बलोंसे युक्त है तथा अन्धकार फैलानेवालेको नष्ट करता है। इसी तरह राजा भी राष्ट्रमें अज्ञान अन्धकारको फैलानेवालेको नष्ट करे ॥ ५ ॥

इन्द्र द्यौ और भूमिका धारक है। इसीलिये वही सबका स्वामी है। वह इतना विशाल है कि द्युलोक और पृथ्वीलोक भी इसके रहनेके लिए छोटे पडते हैं ॥ ६ ॥

१८४७ समत्सु त्वा शूर सुतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद् ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥

१८४८ एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत् त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद् गौः सूरींश्चिद् यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८ ॥

१८४९ असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

१८५० विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥

अर्थ— [१८४७] (ये) जो (स-जोषसः) उत्साहसे युक्त लोग (मदे) आनंदमें (वाजैः) अन्नोंसे तुम (सूरिं) ज्ञानी (इन्द्रं) इन्द्रको (क्षोणीः) मरुतोंके साथ (अनु-मदन्ति) प्रसन्न करते हैं, वे हे (शूर) शूर! (सतां) श्रेष्ठोंमें (उराणं) श्रेष्ठ (प्रपथिन्तमं) उत्तम मार्ग-दर्शक (त्वा) तुझ इन्द्रको (समत्-सु) युद्धोंमें भी (परि-तंसयध्यै) श्रेष्ठ स्थानपर रखते हैं ॥ ७ ॥

[१८४८] (यत्) जिस समय (देवीः) आकाशस्थानीय (आपः) जल (समुद्रे) समुद्रमें तथा (आसु) इन स्थानोंमें बरसानेके लिये (ते) तुझे (मदन्ति) आनंदित करते हैं, (एव हि) तब (ते) तेरे लिये ये (सवना) सवन (शं) सुखकारक होते हैं। तू (यदि) जब (सूरीन् चित्) ज्ञानी (जनान्) मनुष्योंको (धिषा) बुद्धिसे (वेषि) जानता है, तब उनकी (विश्वा) सारी (गौः) वाणी (ते) तेरे लिये (अनु जोष्या) सेवन करने योग्य (भूत्) होती है ॥ ८ ॥

[१८४९] हे (इन) स्वामी इन्द्र! (नरां न) लोगोंके समान (शंसैः) स्तोत्रोंसे हम लोक (यथा) जिस प्रकार तेरे (सु-सखायः) उत्तम मित्र और (सु-अभिष्टयः) उत्तम धनवाले (असाम) हो सकें। (उक्था) स्तोत्रोंसे, (तुरः न) शीघ्र कार्य करनेवालेके समान (कर्म) कार्य (नयमानः) पूरा करता हुआ (इन्द्रः) इन्द्र (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारी (वन्दने-स्थाः) वन्दनामें रहनेवाला (असत्) हो, वैसा ही करो ॥ ९ ॥

[१८५०] हम (नरां न) यज्ञ करनेवालोंके समान (शंसैः) स्तोत्रोंसे (वि-स्पर्धसः) स्पर्धा करते हैं कि जिससे (वज्र-हस्तः) हाथमें वज्र रखनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (अस्माक) हमारा (असत्) हो जाये। (मध्या-युवः) मध्यस्थ लोग (सु-शिष्टौ) उत्तम शिष्टताके समय (मित्रा-युवः न) मित्रता चाहनेवालोंके समान ही (पूः-पतिं) राष्ट्रके रक्षक इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (उप शिक्षन्ति) दान दिया करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र मरुतोंके साथ सारी सेनाका नेतृत्व करता है। तब उत्साही वीर गण आनन्दसे भरकर अन्नोंसे इस ज्ञानी इन्द्रको प्रसन्न करते हैं। यह इन्द्र उत्तम मार्गदर्शक है अतः यह हमेशा सेनाके आगे रहता है ॥ ७ ॥

आकाशमें घिरे हुए जल नीचे गिरनेके लिये इच्छा करते हैं और प्रजा भी वृष्टिके लिये यज्ञ रचाती है उस समय ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करते हैं और इन्द्र उन्हें इष्ट फल देता है ॥ ८ ॥

इन्द्र स्तोताओंका उत्तम मित्र और अभीष्ट पूरक है। वह उनकी प्रार्थना पर ध्यान देता है। वह एक बार जिस काममें हाथ डाल देता है, उस कामको पूरा करके ही छोडता है ॥ ९ ॥

जो शत्रुओंका नाश करता है वह इन्द्रका मित्र बनता है, यह देख कर दूसरे लोग भी इन्द्रकी मित्रताके लिये यज्ञ करते हैं। वह इन्द्र राष्ट्रका रक्षक है, इसलिए वह सबके लिए मित्रके समान है। ऐसे गुणवान् इन्द्रको अपना बनानेके लिए ज्ञानी जन स्पर्धा करते हैं ॥ १० ॥

१८५१ यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्ध — ञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥

१८५२ मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवै — रस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद् यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥

१८५३ एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥

[१७४]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८५४ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन् पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्र — स्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

अर्थ— [१८५१] (कः चित्) हरकोई (यज्ञः हि स्म) यज्ञ (इन्द्रं) इन्द्रको (ऋन्धन्) बढाता है, (जुहुराणः चित्) कुटिलतासे किया गया कर्म तो इन्द्रके (मनसा) मनसे (परि-यन्) दूर चला जाता है । (तीर्थे न) जैसे तीर्थमें (अच्छ) समीपका (ओकः) घर (तातृषाणं) प्यासेको प्रसन्न करता है वैसे यज्ञ इन्द्रको प्रसन्न करता है । (दीर्घः) लम्बा (अध्वा न) मार्ग जैसे कष्ट पहुँचाता है वैसे कुटिल यज्ञ (सिध्रं) कुटिल फल (आ कृणोति) करता है ॥ ११ ॥

[१८५२] (यस्य) जिसकी (यव्या) जोडनेवाली (गीः) वाणी (महः चित्) बडे (मीढुषः) सुख दायक (हविष्मतः) हविसे युक्त (मरुतः) मरुतोंकी भी (वन्दते) वन्दना करती है (अव-याः) वह स्तुति हे (शुष्मिन्) बलवाले इन्द्र ! (ते) तेरे लिये भी (अस्ति हि स्म) है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अत्र) इस (पृत्-सु) युद्धमें (देवैः) देवोंके साथ तू (नः) हमें (मो सु) मत छोड ॥ १२ ॥

[१८५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे) हमारा (एषः) यह (स्तोमः) स्तोम (तुभ्यं) तेरे लिये है । हे (हरि-वः) घोडोंसे युक्त ! तू (एतेन) इससे (नः) हमारे यज्ञके (गातुं) मार्गको (विदः) जान । हे (देव) देव ! धनादि (सुविताय) देनेके लिए (नः) हमारे साथ (आ ववृत्याः) कार्य कर, जिससे हम (जीर-दानुं) विजय देनेवाले वीर, (वृजनं) बल और (इषं) अन्नको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ १३ ॥

[१७४]

[१८५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू सबका (राजा) राजा है । (ये च) जो (देवाः) देव हैं उनके साथ मिलकर तू (नॄन्) मनुष्योंकी (रक्ष) रक्षा कर । हे (असुर) बलवान् ! (त्वं) तू (अस्मान्) हमारी (पाहि) रक्षा कर । (त्वं) तू (सत्-पतिः) श्रेष्ठोंका पालक है । तू (मघ-वा) धनसे युक्त (नः) हमारा (तरुत्रः) तारनेवाला है । (त्वं) तू (सत्यः) सच्चा (वसवानः) आश्रय-दाता और (सहः दाः) बल-दाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यज्ञमें कपट रखकर नहीं है वह तो लम्बे मार्गके समान बहुत कष्ट देनेवाला है । इसके विपरीत सत्य यज्ञ मनुष्यके लिए उसी प्रकार आनंददायक होता है, जिस प्रकार मार्गमें जानेवाले प्यासे पथिकको पासमें ही घर दीखने पर होता है ॥ ११ ॥

इन्द्र और मरुत् साथ साथ रहते हैं, इन्द्र राजा है और मरुत् उसके सहकारी सैनिक हैं । इसलिए मरुतोंकी उन्नति देखकर इन्द्र प्रसन्न होता है । और इसी कारण जो स्तुतियां मरुतोंकी होती हैं, उन्हींसे इन्द्र भी प्रसन्न होता है । स्वामी भी अपने सहकारियोंकी उन्नति देखकर खुश हों ॥ १२ ॥

इन्द्र स्तुतिसे प्रसन्न होकर स्तोताके साथ कार्य करता और उसे धनादि देता है ॥ १३ ॥

इन्द्र सबका राजा है । वह सबको शत्रुओंसे बचाता है । वही धन, घर और बलका दाता है । वह सज्जनोंका पालक है ॥ १ ॥

१८५५ दनो विशं इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
१८५६ अजा वृतं इन्द्र शूरपत्नी—र्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
१८५७ शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद् युधा गा—स्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥
१८५८ वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन् त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ऽभि स्पृधो यासिषद् वज्रबाहुः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१८५५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तूने (सप्त) सात (शारदीः) शरद् ऋतुके योग्य (पुरः) शत्रुके नगरोंके (शर्म) घरोंको (दर्त्) नष्ट किया, उसी समय (मृध्र-वाचः) दुःखानेवाली वाणी बोलनेवाले (विशः) शत्रुके सैनिकोंको भी (दनः) नष्ट कर दिया। हे (अनवद्य) निन्दा-रहित इन्द्र ! तूने (अर्णाः) बहनेवाले (अपः) जलोंको (ऋणोः) बहाया और (यूने) जवान (पुरु-कुत्साय) पुरुकुत्सके लिये (वृत्रं) वृत्रका (रन्धीः) नाश किया ॥ २ ॥

[१८५६] हे (पुरु-हूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नूनं) निश्चयसे (येभिः) जिन भक्तोंके साथ युद्धके लिये (द्यां च) द्युलोकको जाता है उनसे मिलकर (शूर-पत्नीः) वीरोंसे रक्षित होकर तू (वृतः) शत्रुकी दीवारोंको (अज) नष्ट कर देता है और हमारे (दमे) घरमें (अपांसि) जलोंको (वस्तोः) स्थिरताके लिये (सिंहः न) सिंहके समान वीरतासे इस (अशुषं) सुखानेवाले (तूर्वयाणं) वेगवान् (अग्निं) अग्निकी (रक्षः) रक्षा कर ॥ ३ ॥

[१८५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) वे असुर तेरा (प्र-शस्तये) महत्त्व बढानेके लिये (पवीरवस्य) वज्रके (मह्ना) प्रतापसे (सस्मिन्) उसी (योनौ) युद्ध-स्थलमें (शेषन् नु) सो गये। (यत्) जब तूने (अर्णांसि) जलोंको (अव सृजत्) बहाया और (युधा) युद्ध करते हुए शत्रुके पास (गाः) गया, उस समय तू अपने (हरी) दोनों घोडों पर (तिष्ठत्) बैठा। तू अपने (धृषता) धर्षक, शत्रु-नाशक बलसे (वाजान्) वीरोंको (मृष्ट) पवित्र बना ॥ ४ ॥

[१८५८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (यस्मिन्) जिसके यज्ञमें हवि (चाकन्) चाहता है, (स्यूमन्यू) सुखके अभिलाषी (ऋज्रा) सीधा चलनेवाले (वातस्य) वायुके समान वेगवाले (अश्वा) घोडोंको, (कुत्सं) कुत्सकी ओर (वह) ले जा। (सूरः) सूर्य उसके (अभीके) समीप अपना (चक्रं) चक्र (प्रवृहतात्) चलावे और (वज्र-बाहुः) हाथमें वज्र धारनेवाला इन्द्र (स्पृधः) शत्रुओंको (अभि) ओर (यासिषत्) जावे ॥ ५ ॥

भावार्थ— शत्रुके नगर कई प्रकारके हैं उनमें कुछ शरद् ऋतुके लिये भी हैं। इन्द्र उनको नष्ट कर वृत्र और उसके साथियोंको मारता है ॥ २ ॥

अग्नि सुखाता और शीघ्र चलता है। अग्निसे ही घरके सारे काम होते हैं। इन्द्र इस अग्निकी रक्षा करता है। और शत्रुके किलोंकी दीवारोंको तोडता है। शरीरमें अग्नि रोगजन्तुओंको सुखाकर उन्हें नष्ट करता है और शरीरको स्वस्थ बनाकर उसे चलने फिरने योग्य बनाता है ॥ ३ ॥

जब शत्रु मरकर पृथिवी पर गिरते हैं तो उससे इन्द्रका गौरव बढता है क्योंकि शत्रुको मारना वीरका ही काम है। वह अपने बलसे अपने वीरोंको भी दोष-रहित रखता है ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने घोडोंको यज्ञमें ले जा। कुत्सके युद्धमें सूर्य सहायता करता है और इन्द्र शत्रुकी ओर दौडता है। इसी प्रकार यदि राजा सम्मान चाहे तो वह राष्ट्रसे (कु-त्स) बुराईको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षा करे और उसे ही हर प्रकारकी सहायता प्रदान करे ॥ ५ ॥

१८५९ जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
१८६० रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥
१८६१ सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत् पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
१८६२ त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८५९] हे (हरि-वः) घोडोंवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (चोद-प्रवृद्धः) उत्साहसे वृद्धिको प्राप्त हुए तूने (मित्रेरून्) मित्रोंके वैरी (अदाशून्) अदानी शत्रुओंको (जघन्वान्) मारा (ये) जिन्होंने (आयोः) उसके (सचा) साथ तुझ (अर्यमणं) दानीको (प्र पश्यन्) देखा, वे (अपत्यं) सन्तानको (वहमानाः) प्राप्त करते हुए (त्वया) तेरे द्वारा (शूर्ताः) वीर बनाये गये ॥ ६ ॥

१ मित्रेरून् अदाशून् जघन्वान्— इन्द्रने मित्रके समान हित करनेवाले सज्जनोंके वैरी और दान न देनेवालोंको मारा ।

[१८६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कविः) कविने (अर्क-सातौ) स्तुति करनेके समय तेरी (रपत्) प्रशंसा की। तूने (क्षां) पृथिवीको (दासाय) शत्रुके लिये (उप-बर्हणीं) शय्या (कः) बना दी– शत्रुको मारा। (मघवा) धनी इन्द्रने (तिस्रः) तीनों स्थानोंको (दानु-चित्राः) देने योग्य पदार्थोंसे सुशोभित (करत्) कर दिया। (दुर्योणे) दुर्योणके (मृधि) युद्धमें (कुयवाचं) कुयवाचको (नि श्रेत्) नष्ट किया ॥ ७ ॥

[१८६१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नव्याः) नये ऋषियोंने (ते) तेरे (ता) उन (सना) सनातन स्तोत्रोंको फिर (आ अगुः) गाया। तूने (अवि-रणाय) युद्ध रोकनेके लिये (पूर्वीः) पुरानी (नभः) हिंसक शक्तियोंको (सहः) दबाया है। शत्रुके (पुरः न) नगरोंके समान उनके (अदेवीः) आसुरी (भिदः) भेदक बलोंको भी तूने (भिनत्) तोड दिया। (अदेवस्य) असुर (पीयोः) हिंसक शत्रुके (वधः) शस्त्रास्त्रोंको भी (ननमः) तूने नीचा कर दिया ॥ ८ ॥

[१८६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू शत्रुओंको (धुनिः) कँपानेवाला है, इन (स्रवन्तीः) बहती हुई (सीराः न) नदियोंके समान तटको (धुनि-मतीः) तोडनेवाले (अपः) जलोंको (ऋणोः) तूने प्रवाहित कर दिया है। हे (शूर) पराक्रमी इन्द्र ! (यत्) जब तू (समुद्रं) समुद्रको जलसे (प्र अति पर्षि) पूरा भर देता है तब (तुर्वशं) तुर्वश और (यदुं) यदुको (स्वस्ति) कुशलतासे (पारय) पार कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्रके बहुतसे मित्र हैं। जो लोग उनसे शत्रुता करते हैं, इन्द्र उन्हें मारता है। जो उस इन्द्रको भज देता है, इन्द्र उसे पुत्र और वीरता देता है ॥ ६ ॥

स्तुतिके स्थानमें इन्द्रका स्तोत्र गाया जाता है। वह इन्द्र शत्रुको मारकर पृथिवी पर सुला देता है। भागोंके स्थानों में भरपूर दान करता और दुर्योणके मित्र कुयवाचको मारता है। जो बुरे स्थान पर रहता है, वह दुर्योण और जो बुरवाणी बोलता है वह कुयवाच है। इन दोनोंको इन्द्र मारता है ॥ ७ ॥

इन्द्र शत्रुओंको मार कर युद्ध रोकता है। तब उसके पराक्रमकी प्रशंसा करनेके लिए ऋषि उसके स्तोत्र गाते हैं॥८॥

इन्द्र रुके हुए जल प्रवाहित करता, समुद्रको भरता और तुर्वश आदिका पालन करता है। जब वह जलोंका प्रवाह छोड देता है, तब नदियां अपने किनारोंको तोडकर बहने लगती हैं, वे नदियां समुद्रको भरती हैं ॥ ९ ॥

१८६३ त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

[१७५]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- स्कंधोग्रीवी बृहती; २-५ अनुष्टुप, ६ त्रिष्टुप ।)

१८६४ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

१८६५ आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

१८६६ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (विश्व-ध) सर्वदा (अस्माकं) हमारा (अवृक-तमः) बहुत कपटरहित (नरां नृ-पाता) प्रजा-रक्षक है । (सः) वह तू (नः) हमारी (विश्वासां) सारी (स्पृधां) सेनाओंका (सहः-दाः) बल बढानेवाला बन, जिससे हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) दीर्घ जीवन (विद्याम) प्राप्त कर सकें ॥ १० ॥

१ अवृकतमः नृपाता— यह इन्द्र छल कपटसे रहित मनुष्योंका पालक है ।

[१७५]

[१८६४] हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! (ते) तेरा (महः) महान् सोम तेरे द्वारा (अपायि) पिया गया है, तू उससे (मत्सि) तृप्त हो । यह (मदः) आनंद देनेवाला सोम अन्य (पात्रस्य इव) पात्रोंमें रखे सोमोंके समान ही (मत्सरः) आनंदकारक है । (ते) तुझ (वृष्णे) दानशील इन्द्रके लिये यह (वाजी) बल बढानेवाला (सहस्र-सातमः) सहस्रोंकी संख्यामें धन प्राप्त करानेमें श्रेष्ठ (वृषा) बलवर्धक (इन्दुः) सोम है ॥ १ ॥

[१८६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः) हमारा (वृषा) बलवर्धक (मत्सरः) आनन्ददायक (वरेण्यः) उत्तम (सहवान्) शत्रु-नाशक शक्तिसे युक्त (सानसिः) दानशील (पृतनाषाट्) शत्रुसेनाको परास्त करनेवाला (अमर्त्यः) अमर (मदः) सोम (ते) तेरे पास (आगन्तु) आवे ॥ २ ॥

[१८६६] हे इन्द्र ! (त्वं हि) तू ही (शूरः) वीर, धनोंका (सनिता) दाता है । तूने ही (मनुषः) मनुष्यके (रथं) रथको (चोदयः) प्रेरणा दी है । (सहवान्) बलसे युक्त तू अपने (शोचिषा) तेजसे, आग पर चढे (पात्रं न) बर्तनके समान, (अव्रतं) व्रतहीन (दस्युं) असुरको (ओषः) जला दिया ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्र कपट रहित होकर प्रजाकी रक्षा करता है । और सारी सेनाओंको बल प्रदान करता है ॥ १० ॥

सोम उत्साहवर्धक होता है, इन्द्र जिसे पीकर तृप्त होता और असंख्य धन जीतता है ॥ १ ॥

सोम इन्द्रमें उपर्युक्त सारे गुण बढाता है सोम स्वयं भी आनन्ददायक उत्तम और शत्रुनाशक शक्तिसे युक्त है ॥२॥

यह इन्द्र मनुष्यके रथको प्रेरित करता है और शत्रुओंको उसी प्रकार सुखा देता है, जिस प्रकार चूल्हे पर चढे हुए बर्तनको अग्नि । शरीरमें यह इन्द्र-आत्मा इस मनुष्य शरीररूपी रथको प्रेरित करता है, यदि यह इन्द्र न हो तो रथ न चले ॥ ३ ॥

१८६७ मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

१८६८ शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

१८६९ यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७६]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप्; ६ त्रिष्टुप् ।)

१८७० मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

अर्थ—[१८६७] हे (कवे) मेधावी इन्द्र! सबके (ईशानः) स्वामी तूने अपने (ओजसा) बलसे (सूर्य) सूर्यका (चक्रं) चक्र (मुषाय) छीन लिया । तू (वातस्य) वायुके (अश्वैः) घोडों द्वारा (शुष्णाय) शुष्णके मारनेके लिये (कुत्सं) कुत्सके पास अपना (वधं) मारक वज्र (वह) ले जा ॥ ४ ॥

[१८६८] हे इन्द्र ! (ते) तेरा (मदः) आनन्द (शुष्मिन्तमः) उत्तम बलकारक है (उत) और तेरा (क्रतुः) कर्म (द्युम्निन्तमः) बहुत अन्न देनेवाला है । (अश्वसातमः) घोडे देनेवालोंमें प्रसिद्ध तू हमारे लिये (वृत्र-घ्ना) वृत्रको मारनेवाले और (वरिवः-विदा) धन देनेवाले शस्त्रोंको (मंसीष्ठाः) दे ॥ ५ ॥

[१८६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) पहले (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिये, (तृष्यते) प्यासेके लिये (आपः न) जलके समान और दुःखीके लिये (मयः इव) सुखके समान आनन्दप्रद (बभूथ) हुआ, मैं उस (त्वा) तुझ इन्द्रको (तां) वह पुरानी (नि-विदं) स्तुति (अनु जोहवीमि) बार-बार कहता हूँ । हम (इषं) अन्न (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) दीर्घजीवन (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७६]

[१८७०] हे इन्द्र ! तू (नः) हमें (वस्यः-इष्टये) धनकी प्राप्तिके लिये (मत्सि) आनंदित कर । तथा हे (इन्दो) सोम ! (वृषा) बलवाला तू (इन्द्रं) इन्द्रके देहमें (आ विश) प्रवेश कर । शत्रुओंको (ऋघायमाणः) मारते हुए देवोंके देहमें (इन्वसि) तू व्याप्त होता है और (शत्रुं) शत्रुको (अन्ति) समीप (न) नहीं (विन्दसि) आने देता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र कुत्सकी रक्षाके लिये उसे वज्रकी सहायता पहुँचाता है ॥ ४ ॥

इन्द्र कर्मसे फल और अन्न-धन प्राप्त करता है । उसका आनन्द भी सबको बल देनेवाला होता है ॥ ५ ॥

प्यासेको जल और दुःखीको सुख मिलनेके समान इन्द्र स्तोताओंका आनन्ददाता और प्रिय है । उसकी कृपासे हम अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

इन्द्रादि देव सोम पीकर शत्रुओंको बहुत दूर भगा देते हैं। शरीरमें यह इन्द्र-आत्मा काम-क्रोधादि शत्रुओंको मारते हुए देवों अर्थात् इन्द्रियोंमें प्रविष्ट होता है अर्थात् उन्हें शक्ति प्रदान करता है ॥ १ ॥

१८७१ तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद् वृषा ॥ २ ॥

१८७२ यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग् दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

१८७३ असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥

१८७४ आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१८७१] (यः) जो इन्द्र सारी (चर्षणीनां) प्रजाओंका (एकः) अकेला स्वामी है, (यं अनु) जिसके (स्वधा) बल (उप्यते) दिया जाता है, जो (वृषा) बलवान् इन्द्र शत्रुओंको यव (यवं न) के समान (चर्कृषत्) काट डालता है; तू (तस्मिन्) उसमें अपनी (गिरः) स्तुतियोंको (आ वेशय) प्रविष्ट करा। उसकी स्तुति कर ॥ २ ॥

[१८७२] हे इन्द्र! (पञ्च) पांचों प्रकारकी (क्षितीनां) प्रजाओंका (विश्वानि) सारा (वसु) धन (यस्य) जिस तुझ इन्द्रके (हस्तयोः) हाथोंमें है, वह तू (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही है, उसे (स्पाशयस्व) पराजित कर और (दिव्या अशनिः इव) आकाशसे गिरनेवाली बिजलीके समान उसका (जहि) नाश कर दे ॥ ३ ॥

[१८७३] हे इन्द्र! (यः) जो (ते) तेरे लिये (मयः) सुख (न) नहीं देता, उस (समं) सारे (दुःणाशं) कठिनतासे नष्ट होनेवाले, (असुन्वन्तं) यज्ञ न करनेवालेको (जहि) मार। (अस्य) इसका (वेदनं) धन (अस्मभ्यं) हमें (दद्धि) दे, क्योंकि वह धन (सूरिः) ज्ञानी (चित्) ही (ओहते) प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[१८७४] (अर्केषु) स्तोत्र पढे जाते समय (सानुषक्) सदैव (असत्) विद्यमान रहते हुए तूने (यस्य) जिस (द्वि-बर्हसः) दो प्रकारसे यज्ञको करनेवाले यजमानकी (आवः) रक्षा की, उसीके समान हे (इन्दो) सोम! (आजौ) युद्धमें (इन्द्रस्य) इन्द्रकी तथा दूसरे (वाजेषु) युद्धोंमें अन्य (वाजिनं) वीरकी (प्र आवः) रक्षा कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— स्तोता उसकी स्तुति करते हैं जो सबका एक शासक और शत्रुओंका नाश करनेवाला है। वह शत्रुओंको उतनी ही आसानीसे काटता है जितनी आसानीसे किसान जौकी फसलको काटते हैं ॥ २ ॥

संसारका सारा धन इन्द्रके हाथमें है। वह धन जो छीनता है उसका इन्द्र नाश कर डालता है। इन्द्रके उपासकोंसे जो द्रोह करता है, वह नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

जो इन्द्रको आनन्द नहीं देता अथवा यज्ञ नहीं करता, वह धनका भागी नहीं है। इन्द्र उसे मारता और उसका धन यज्ञकर्ताको देता है ॥ ४ ॥

सोमने युद्धमें इन्द्रका रक्षण किया। सोम पीनेसे इन्द्रका उत्साह बढा और उससे इन्द्र विजयी हुआ ॥ ५ ॥

१८७५ यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१७७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८७६ आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥

१८७७ ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥

१८७८ आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८७५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (यथा) जिस प्रकार तू (पूर्वेभ्यः) पहले (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिए (तृष्यते आपः न) प्यासेके लिए जलके समान और दुःखीके लिए (मयः इव) सुखके समान आनन्दप्रद (बभूथ) हुआ, मैं उस (त्वा) तुझ इन्द्रको (तां निविदं) वह पुरानी स्तुति (अनु जोहवीमि) बार बार कहता हूँ । हम (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१७७]

[१८७६] तू (इन्द्रः) इन्द्र (चर्षणि-प्रा) प्रजाका रक्षक (जनानां वृषभः) मनुष्योंमें बलवान् (कृष्टीनां) प्रजाओंका (राजा) स्वामी और (पुरुहूतः) बहुतोंसे सहायतार्थ प्रार्थित (आ) है । तू (स्तुतः) प्रशंसित होकर हमारे लिये (श्रवस्यन्) यश चाहता हुआ (अवसा) रक्षाके साथ (उप मद्रिक्) हमारी ओर, (वृषणा) बलवान् (हरी) घोडे रथमें (युक्त्वा) जोड कर (अर्वाङ्) हमारे समीप (आ याहि) आ ॥ १ ॥

[१८७७] हे (इन्द्रः) इन्द्र ! (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (वृषभासः) सामर्थ्यवान् (ब्रह्म-युजः) शब्दके इशारेसे रथमें जुडनेवाले (वृषरथासः) उत्तम सामर्थ्ययुक्त रथमें जुडनेवाले (अत्याः) घोडे हैं (तान्) उन पर (आ तिष्ठ) बैठ । (तेभिः) उनके द्वारा (अर्वाङ्) हमारी ओर (आ याहि) आ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमे) सोमके (सुते) बनाने पर हम (त्वा) तुझे (हवामहे) बुलाते हैं ॥ २ ॥

[१८७८] हे इन्द्र ! तू (वृषणं) बलवर्धक (रथं) रथ पर (आ तिष्ठ) बैठ । (ते) तेरे लिये (वृषा) बलवर्धक (सोमः) सोम (सुतः) निचोडा गया है और उसमें (मधूनि) मीठे पदार्थ (परिसिक्ता) मिलाये गये हैं । हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! तू (वृषभ्यां) बलवान् (हरिभ्यां) घोडोंसे रथको (युक्त्वा) जोडकर उस (प्र-वता) विशेष गतिवाले रथसे अपनी (क्षितीनां) प्रजाओंके (मद्रिक्) पास (उप याहि) जा ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्यासेको जल और दुःखीको सुख मिलनेसे जो आनन्द होता है, उसीके समान इन्द्र स्तोताओंको आनन्द-दाता और प्रिय है । उसकी कृपासे हम भी अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

इन्द्र प्रजापालक, बलवान्, तेजस्वी, बहुत प्रतिष्ठित और प्रजाओंका स्वामी है, क्योंकि उसे यश पानेके लिये सभी लोग बुलाते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र अपने बलवान् घोडे रथमें जोडकर आता है । उसके घोडे बलवान्, शक्तिशाली और शब्दके इशारेसे रथमें जुड जानेवाले हैं । ऐसे सुशिक्षित घोडे इन्द्रके हैं ॥ २ ॥

इन्द्रके लिये सोममें मीठे पदार्थ मिलाये जाते हैं, जिन्हें पीनेके लिये वह स्तोताओंके पास आता है ॥ ३ ॥

१८७९ अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥
१८८० ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

[१७८]

(ऋषिः– अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

१८८१ यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥
१८८२ न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥

अर्थ— [१८७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं) यह (देवयाः) देवोंको प्राप्त होनेवाला (यज्ञः) यज्ञ, (अयं) यह (मियेधः) पवित्र दूध देनेवाला पशु, (इमा) ये (ब्रह्माणि) स्तोत्र और (अयं) यह (सोमः) सोम तेरे लिये है । (बर्हिः) आसन (स्तीर्णं) बिछा हुआ है, हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तू (आ प्र याहि तु) समीप आ इस पर (नि-सद्य) बैठ कर सोम (पिब) पी और (इह) यहां ही अपने (हरी) घोडे (विमुच) खोल ॥ ४ ॥

[१८८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सु-स्तुतः) भली भाँति स्तुति किया हुआ तू (मान्यस्य) प्रतिष्ठा योग्य (कारोः) स्तोताके (ब्रह्माणि उप) स्तोत्रोंके समीप हमारे (अर्वाङ्) यहां (आ-उ याहि) आ । हम (वस्तोः) प्रत्येक दिन तेरी (अवसा) रक्षासे तेरी (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए धनादिको (विद्याम) प्राप्त करें और (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीरदानुं) विजयशील दान (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७८]

[१८८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् ह) जो कि (ते) तेरा (स्या) वह (श्रुष्टिः) धन है (यया) जिससे तू (जरितृभ्यः) स्तोताओंका (ऊती) रक्षक (बभूथ) हुआ है वह हमें दे । (नः) हमारी (महयन्तं) बढती हुई (कामं) कामनाको (मा धक्) नष्ट मत कर । मैं (ते) तेरे (आयोः) मानवके योग्य (विश्वा) सारे (आपः) धनोंको (परि अश्यां) सब ओरसे भोगूं ॥ १ ॥

[१८८२] हमारी (स्वसारा) अंगुलियोंने (या नु) जिन कार्योंको (योनौ) यज्ञ-स्थानमें (कृणवन्त) किया, (नः) हमारे उन कार्योंको (राजा) तेजस्वी (इन्द्रः) इन्द्र, (न घ) मत (आ दभत्) नष्ट करे । (आपः चित्) जल भी (अस्मै) इसके लिये (सु-तुकाः) अच्छी गतिवाले होकर (अवेषन्) प्राप्त हों । (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमें (सख्या) मित्रता (वयः च) और अन्न (गमत्) दे ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्रके लिये यज्ञ रचाया जाता है, वहाँ सोम बनता और आसन बिछाया जाता है जिस पर बैठ कर यह सोम पीता है ॥ ४ ॥

इन्द्र स्तुतिके स्थान पर आता और स्तोताओंको धनादि देता है । यह इन्द्र प्रतिष्ठाके योग्य है, सभी इसका मान करते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र स्तोताकी इच्छाको वीचमें ही नष्ट नहीं करता, उसे बढाता है । हे इन्द्र ! जिस धनसे तू स्तोताओंकी रक्षा करता है, उसे हमें दे । मैं तेरे सभी धनोंका उपभोग करूं ॥ १ ॥

हमारी उंगलियोंने जिस यज्ञ रूप कर्मको शुरु किया है, राजा इन्द्र उसे बीचमें नष्ट न कर दे । उसे हम बड़े प्रेमसे हम प्रदान करते हैं । अतः यह प्रसन्न होकर हमें उत्तम अन्न प्रदान करे ॥ २ ॥

१८८३ जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥
१८८४ एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
१८८५ त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥

[१७९]

(ऋषिः- १-२ लोपामुद्रा; ३-४ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः; ५-६ अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी ।
देवता- रतिः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५ बृहती ।)

१८८६ पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥

अर्थ- [१८८३] (शूरः) पराक्रमी (इन्द्रः) इन्द्र (पृत्-सु) युद्धोंमें (नृभिः) सैनिकोंके साथ शत्रुका (जेता) जीतनेवाला; (नाधमानस्य) याचना करते हुए (कारोः) स्तोताकी (हवं) पुकारको (श्रोता) सुननेवाला; (दाशुषः) दानशील यजमानके (उपाके) समीप (रथं) रथको (प्र-भर्ता) ठहरानेवाला (यदि च) और यदि यजमान (त्मना) मनसे स्तुति करनेवाला (भूत्) हो तो उसकी (गिरः) वाणियोंको (उत्-यन्ता) ऊपर उठानेवाला होता है ॥ ३ ॥

[१८८४] (सु-श्रवस्या) उत्तम कीर्तिवाला (इन्द्रः) इन्द्र (एव) इस प्रकार (नृभिः) वीरोंके साथ (मित्रिणः) मित्रके (पृक्षः अभि) अन्नको (प्र-खादः) खानेवाला (भूत्) होता है । स्तोताकी इच्छाको (सत्रा करः) सत्य करनेवाला और (यजमानस्य) यजमानका (शंसः) हितैषी इन्द्र (वि-वाचि) जहाँ वीर एक दूसरेके विरुद्ध बोलते हैं ऐसे (स-मर्ये) युद्धमें (इषः) अन्नोंकी (स्तवते) स्तुति करता है ॥ ४ ॥

[१८८५] हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम लोग (महतः) बडे (मन्यमानान्) घमण्डी (शत्रून्) शत्रुओंको (त्वया) तेरे साथ मिल कर (अभि स्याम) दबा दें । (त्वं) तू हमारा (त्राता) रक्षक और (त्वं उ) तू ही (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि, उन्नतिका कारण (भूः) बन । जिससे हम (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) जीवन (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७५]

[१८८६] (पूर्वीः शरदः) अनेकों वर्षोंतक (दोषा वस्तोः दिन रात और उषसः) उषाओंमें काम करती हुई अब (जरयन्तीः) वृद्ध हो जानेके कारण (अहं शश्रमाणा) मैं थक गई हूँ । अब (जरिमा) बुढापा (तनूनां श्रियं मिनाति) मेरे अंगोंकी शोभाको नष्ट कर रहा है, इसलिए (वृषणः पत्नीः जगम्युः) तरुण और वीर्यवान् व्यक्ति ही पत्नियोंके समीप जावें ॥ १ ॥

भावार्थ- इन्द्र वीरोंका साथी, विपदामें पडे हुओंका सच्चा सहायक और भक्तिका-उपकारका सच्चा फल देनेवाला है ॥ ३ ॥

यजमानकी इच्छा पूर्ण करता और उसे युद्धमें अन्न-धन प्राप्त कराता है । वह इन्द्र सदा अपने मित्रके अन्नको ही खाता है । और जहां वीर परस्पर आह्वान करते हैं, ऐसे युद्धमें यह इन्द्र अपने मित्रकी रक्षा करता है ॥ ४ ॥

इन्द्रके सहायक बनने पर बडे-बडे घमण्डियोंका शिर नीचा हो जाता है । हे इन्द्र । तू ही हमारा रक्षक और उन्नति करनेवाला बन । हम दूसरेके पास न जावें ॥ ५ ॥

अनेकों वर्षोंतक दिन रात लगातार काम करनेके कारण स्त्री बुढापा आने पर थक जाती है, और उस समय वह बुढापा उस स्त्रीकी सारी सुन्दरता और शोभा हर लेता है और उस समय उसमें प्रजनन शक्ति भी नहीं रह जाती, इसलिए सन्तान प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले स्त्री पुरुषोंको चाहिए कि वे तारुण्यावस्थामें ही सन्तान प्राप्तिके लिए प्रयत्न करें ॥ १ ॥

१८८७ ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन् त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥
१८८८ न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत् स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
१८८९ नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥
१८९० इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१८८७] (ये चित् हि) जो भी (पूर्वे ऋतसापः आसन्) पहले सत्यबोलनेवाले ऋषि थे, वे (देवेभिः साकं ऋतानि अवदन्) देवोंके साथ सत्य बोलते थे, वे भी (अव असुः) वीर्य सिंचन करते थे, (न हि अन्तं आपुः) वे भी ब्रह्मचर्यका अन्त नहीं पा सके । (पत्नीः वृषभिः आ जगम्युः) पत्नियां उन बलवान् और वीर्य सिंचनमें समर्थ अपने पतियोंसे जाकर मिलीं ॥ २ ॥

[१८८८] (न मृषा श्रान्तं) हमारा परिश्रम व्यर्थ ही नहीं है, (यत् देवाः अवन्ति) क्योंकि देवगण हमारी रक्षा करते हैं । इसीलिए हमने (विश्वा इत् स्पृधः अभ्यश्नवाव) सारे संग्राम जीत लिए हैं । (यत्) यदि (सम्यंचा मिथुनौ) परस्पर प्रेमपूर्वक रहनेवाले हम दम्पती (अभ्यजाव) पुत्र उत्पन्न करें, तो (अत्र शतनीथं आजिं जयाव) इस संसारमें सैंकडों प्रकारके भोग साधनोंसे युक्त संग्रामको जीतें ॥ ३ ॥

[१८८९] (रुधतः नदस्य) रोकी हुई नदीके पानीके समान (इतः अमुतः कुतश्चित् आजातः) इधरसे, उधरसे, कहींसे और चारों ओरसे उत्पन्न (कामः आगत्) काम आ गया है, (लोपामुद्रा वृषणं निरिणाति) लोपामुद्रा बलशालीके साथ संयुक्त होती है, और (अधीरा) चंचल मनवाली वह (श्वसन्तं धीरं धयति) दीर्घ सांस लेनेवाले धीरका उपभोग करती है ॥ ४ ॥

[१८९०] (हृत्सु पीतं) मनःपूर्वक पीए गए (इमं सोमं अन्तितः) इस सोमके पास जाकर (उप ब्रुवे) मैं प्रार्थना करता हूँ, (यत्) कि (यत् सीं आगः चकृम) हमने जो कुछ भी पाप किया हो, (तत् सु मृळतु) उसे सोम सुखी करे । (हि) क्योंकि (पुलुकामो मर्त्यः) मनुष्य अनेकों कामनाओंवाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— कामका प्रभाव इतना तीव्र है कि इसके प्रभावसे कोई भी अछूता नहीं रहा । बडे बडे महर्षि भी ब्रह्मचर्यको पालन करनेमें असमर्थ रहे । तब साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? उन समर्थ ऋषियोंसे उनकी पत्नियां मिलीं ॥ २ ॥

दम्पतियोंका परिश्रम वृथा नहीं होता, क्योंकि उनकी देवगण रक्षा करते हैं । यदि परस्पर प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाले तथा उत्तम मार्गसे जानेवाले दम्पती उत्तम पुत्र पैदा करें, तो उस उत्तम पुत्रके कारण वे दोनों इस संसारमें हर तरहके कठिनाइयोंको जीत सकते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार रोक दी गई नदीका पानी इधर उधर अर्थात् चारों ओर फैल जाता है, उसी तरह मनुष्यमें काम सभी ओर फैलता है । उस समय की पुरुषका मन चंचल हो जाता है और उनका सांस तेज होने लगती है और हृदयकी धडकन भी तेज हो जाती है । तब स्त्री धैर्यशाली पुरुषके साथ संयुक्त होती है ॥ ४ ॥

मनुष्यकी कामनायें अनेक होती हैं, और उन कामनाओंको पूर्ण करनेके लिए वह अनेक तरहके पाप भी कर सकता है । अतः यदि कोई पाप वह कर भी दे, तो स्वामी उसे क्षमा करें ॥ ५ ॥

१८९१ अ॒गस्त्यः॒ खन॑मानः ख॒नित्रैः॑ प्र॒जाम॑प॒त्यं बल॑मि॒च्छमा॑नः ।
उ॒भौ वर्णा॒वृषि॑रु॒ग्रः पु॑पोष स॒त्या दे॒वेष्वा॒शिषो॑ जगाम ॥ ६ ॥

[१८०]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८९२ यु॒वो रजां॑सि सु॒यमा॑सो अश्वा॒ रथो॒ यद् वां॒ पर्यर्णां॑सि॒ दीय॑त् ।
हि॒र॒ण्यया॑ वां प॒वयः॑ प्रुषाय॒न् मध्वः॒ पिब॑न्ता उ॒षसः॑ सचेथे ॥ १ ॥

१८९३ यु॒वमत्य॒स्याव॑ नक्षथो॒ यद् विप॑त्मनो॒ नर्य॑स्य॒ प्रय॑ज्योः ।
स्वसा॒ यद् वां॑ विश्वगूर्ती॒ भरा॑ति॒ वाजा॒येट्टे॑ मधुपावि॒षे च॑ ॥ २ ॥

अर्थ—[१८९१] (अगस्त्यः) अगस्त्यने (खनित्रैः खनमानः) कुदाल आदिसे खोदते हुए (प्रजां अपत्यं बलं इच्छमानः) उत्तम सन्तानकी कामना की । (उग्रः ऋषिः) उस वीर ऋषिने (उभौ वर्णौ पुपोष) दोनों वर्णोंको पुष्ट किया और (देवेषु सत्याः आशिषः जगाम) देवोंमें उत्तम आशीर्वादोंको प्राप्त किया ॥ ६ ॥

[१८०]

[१८९२] (यत् वां रथः) जब तुम दोनोंका रथ (अर्णांसि परि दीयत्) समुद्रमें या अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है तब (युवोः अश्वाः) तुम दोनोंके घोडे (रजांसि सुयमासः) अन्तरिक्षमें नियमपूर्वक चलते हैं तब (वां हिरण्ययाः पवयः) तुम्हारे सुवर्णमय पहियोंके अरे (प्रुषायन्) गीले होने लगते हैं, (उषसः) उषःकालमें (मध्वः पिबन्ता सचेथे) मीठे सोमरसको पीते हुए तुम दोनों इकट्ठे होकर आते हो ॥ १ ॥

[१८९३] हे (विश्व-गूर्ती) सबसे प्रशंसनीय तथा (मधुपौ) मधु पीनेवाले अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (यत् अत्यस्य) जब गतिशील (विपत्मनः) आकाशमें संचार करनेवाले (नर्यस्य प्रयज्योः) मानवोंके हितकारी और अत्यन्त पूजनीय सूर्यके (अव नक्षथः) पूर्व ही पहुंचे हो (यत् वां स्वसा) तब तुम्हारी बहन उषा (भराति) तुम्हारा पोषण करती है और (वाजाय इषे च) बल तथा अन्न पानेके लिए तुम्हारा ही (ईट्टे) स्तवन मानव करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— प्रजा उत्पन्न करनेके बाद उनके भरण पोषणके लिए अगस्त्यने अन्नादि उत्पन्न करके अपने सन्तानोंको पुष्ट किया और इस प्रकार देवोंका आशीर्वाद उसने प्राप्त किया । प्रजाको उत्पन्न करके उनका अच्छी प्रकार पालन पोषण करना चाहिए । तभी देव प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो ! जब तुम्हारा रथ समुद्रमें अथवा अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है, तब उस रथको चलानेवाले अश्व संज्ञक गति साधन भी अन्तरिक्षमें अपने नियमानुसार चलने लगते हैं । तुम्हारे रथके सुवर्ण जैसे चमकनेवाले पहिये भी अन्तरिक्षस्थ मेघमण्डलके जलसे भीगने लगते हैं तथा समुद्रमें जलसे भीगते हैं । तुम दो मधुर सोमरस पीकर उषःकालमें ही संचार करने लगते हो ॥ १ ॥

सर्वदा प्रशंसनीय तथा मधुर सोमरसका पान करनेवाले अश्विदेवो ! सतत गतिमान, आकाश संचारी, मानवोंका हितकारी पूजायोग्य सूर्यके आनेके पूर्वही तुम दोनों आते हो । तब उषा तुम्हारी सहायता करती है और यज्ञमें यजमान बल बढाने और अन्न मिलनेके लिए तुम दोनोंकी प्रशंसा करते हैं। सूर्य मनुष्योंका हित करता है । उसके आनेके पूर्व उठो, उषः-कालमें तैयार रहो । अपना बल बढानेके लिए तथा पर्याप्त अन्न कमानेके लिए बलवान् हो जाओ ॥ २ ॥

१८९४ युवं पयं उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद् वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥
१८९५ युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद् वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥
१८९६ आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥
१८९७ नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८९४] हे (ऋतप्सू) सत्यस्वरूप अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (उस्रियायां पयः) गौमें दूध (अधत्तं) रखा है तथा (गोः अमायां) अपरिपक्व गौमें भी (पक्वं पूर्व्यं अव) परिपक्व दूध पहिलेसे ही रखा है। (यत् वां) तुम दोनोंके लिए, (वनिनः अन्तः) जंगलोंके भीतर (ह्वारः न) सांपके तुल्य अत्यन्त सावधान रहकर (हविष्मान् शुचिः यजते) हविर्द्रव्य साथ रखनेवाला पवित्र यजमान उस दूधका यज्ञ करता है ॥ ३ ॥

[१८९५] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (एषे अत्रये) सुख चाहनेवाले अत्रिके लिए (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चयपूर्वक (घर्मं) गर्मीको (अपः क्षोदः न) जलके प्रवाहके समान (मधुमन्तं अवृणीतं) मिठास युक्त कर दिया। गर्मीका निवारण करके शीत बनाया । (तत्) इसलिये (वां) तुम दोनोंके समीप (पश्वइष्टिः मध्वः) यज्ञ और मधुसंभार (रथ्या चक्रा इव) रथके पहियोंके समान (प्रति यन्ति) चले जाते हैं ॥ ४ ॥

[१८९६] हे (दस्रा) शत्रुविनाशक तथा (यजत्रा) पूजनीय अश्विदेवो ! (जिव्रिः) विजयका इच्छुक (तौग्र्यः न) तुग्रका पुत्र जैसे (गोः ओहेन) वाणीसे प्रशंसा द्वारा (वां दानाय) तुम दोनोंसे दान ले लेनेके लिए प्रवृत्त हुआ वैसा (आ ववृतीय) मैं तुम्हारी ओरसे दान लेनेके लिए प्रवृत्त होजाऊं; (वां माहिना) तुम दोनोंकी महिमासे तो (अपः क्षोणी सचते) अन्तरिक्ष और भूलोक व्याप्त हुए हैं, मैं इस कारण (जूर्णः) वृद्ध होता हुआ भी (वां) तुम दोनोंकी कृपासे (अंहसः) जरारूपी कष्टसे मुक्त हो (अक्षुः) दीर्घजीवी बनूं। इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ॥ ५ ॥

[१८९७] हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! (यत्) जब (नियुतः नि युवेथे) घोडोंको रथमें जोतते हो, तब (पुरन्धि) बहुतोंको धारण करनेवाली बुद्धिको (स्वधाभिः उप सृजथः) अन्नोंसे संयुक्त कर डालते हो; (सुव्रतः न) अच्छे कार्य करनेहारोंके समान (सूरिः) विद्वान् पुरुष (महे) महत्वके लिए (वाजं आ ददे) अन्नका ग्रहण करता है, (प्रेषत्) तुम्हें तृप्त करता है और (वातः न) वायुके समान (वेषत्) तुम्हें शीघ्र प्राप्त हो जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ — सत्य पालक अश्विदेवो ! तुमने गौमें दूध उत्पन्न किया है । अपक्व गायमें भी उत्तम परिपक्व दूध उत्पन्न किया है । इसी दूधसे, जंगलके अन्दर सांप जैसा सावधान रहता है, वैसा सावधान रहकर, शुचि होकर यजमान अश्विदेवोंके उद्देश्य सेही यज्ञ करता है ॥ ३ ॥

हे नेता अश्विदेवो ! अत्रि ऋषिको सुख देनेके लिए तुम दोनोंने गर्मीको जलके समान शीतल और मिठासके समान सुखकारक बना दिया । तब तुम्हारे लिये वह यज्ञ किया जाता है । चक्रके समान बारंबार चलकर यज्ञ तुम्हारे पास आता है । अनुयायियोंको सुख देनेके लिये नेता यत्न करे, और अनुयायी भी नेताका हित करें ॥ ४ ॥

हे शत्रुविनाशक पूजायोग्य अश्विदेवो ! जिस तरह विजयकी इच्छा करनेवाला तुग्रका पुत्र भुज्यु तुम्हारी स्तुति करनेसे मृत्युसे बच गया, ऐसी तुम्हारी महिमा तो सब द्यावापृथिवीमें प्रसिद्ध है । इसलिए अति वृद्ध हुआ मैं तुम्हारी कृपासे बुढापेको दूर करके दीर्घायु बनना चाहता हूं ॥ ५ ॥

१८९८ वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥

१८९९ युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥ ८ ॥

१९०० प्र यद् वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्यं उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८९८] हे (वृषणौ) बलवान् (अनिन्द्या) अनिन्दनीय अश्विदेवो ! (वयं) हम (सत्या) सच्चे होकर (वां चित् हि जरितारः) तुम दोनोंकी ही प्रशंसा करनेकी इच्छासे (वि पन्यामहे) बहुत स्तुति करते हैं, परन्तु (हितावान् पणिः वि) धनसंग्रह करनेवाला व्यापारी यज्ञसे विरुद्ध हो रहा है। (अधा चित्) अब (अन्ति देवं) देवताके देने योग्य सोम (पाथः हि स्म) को ही तुम दोनों पीते हो ॥ ७ ॥

[१८९९] हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (नृषु नरां) मानवों और नेताओंमें (प्रशस्तः अगस्त्यः) प्रशंसनीय अगस्त्य ऋषि (अनु द्यून्) प्रति दिन (वि-रुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ) विशेष गर्जना करनेवाले जलप्रवाहको पानेके लिए (युवां चित् हि) तुम दोनोंकी ही (काराधुनी इव) बडी ध्वनि करनेवाले वाद्यके समान (सहस्रैः चितयत्) सहस्रों श्लोकोंसे स्तुति करता है ॥ ८ ॥

[१९००] हे (नासत्या स्पन्द्रा) सत्यपालक और गतिशील अश्विदेवो ! (यत्) जो (रथस्य महिना) रथकी महनीयताके कारण (प्रवहेथे) तुम दोनों उत्कृष्ट वेगसे आगे बढते हो, (मनुषः होता न) मानवोंमें हवनकर्ताके समान तुम दोनों (प्रयाथः) यात्रा करते हो, ऐसे तुम (सूरिभ्यः वा) विद्वानोंको भी (सु अश्व्यं धत्तं) सुन्दर घोडोंसे पूर्ण धन दो (उत रयिषाचः स्याम) और हम भी धनसे युक्त हों ॥ ९ ॥

भावार्थ— अच्छा दान देनेवाले हे अश्विदेवो ! तुम दोनों जब घोडोंको अपने रथमें जोतते हो तब बहुतोंका पालन पोषण करनेकी बुद्धि विपुल अन्नोंके साथ अपने भक्तोंमें उत्पन्न करते हो। सत्कर्म करनेवाला विद्वान् इस महत्वपूर्ण कार्यके लिए जब अन्न प्राप्त करता है, तब उसके दानसे वह तुम्हें तृप्त करता है और वायुके गतिसे वह तुम्हें प्राप्त होता है। नेता स्वयं बहुत दान करे, और अपने अनुयायियोंको पर्याप्त अन्न देकर उनमें बहुतोंका पालन पोषण करनेकी उदार बुद्धि उत्पन्न करे। विद्वान् लोग इस तरह बहुतोंके पालन पोषण करनेके शुभ कर्म करें और अपनी उदारतासे देवत्वको प्राप्त हों ॥ ६ ॥

हे बलवान् अनिन्दनीय अश्विदेवो ! हम तुम्हारे सच्चे भक्त हैं अतः तुम्हारे गुणोंका वर्णन करते हैं। परन्तु यह पूंजी-पति धनका केवल संग्रह करता है, परन्तु यज्ञ करता ही नहीं ! आप तो यज्ञकर्ताके पास जाते हैं और देवोंके ही पीने योग्य सोमरसका पान करते हैं। अर्थात् उस अयाजक धनाढ्यके पास तुम जाते भी नहीं। जो यज्ञ नहीं करता, उस धनाढ्यके धनका कोई उपयोग नहीं है अतः जो धन अपने पास हो उसको यज्ञमें समर्पण करना चाहिये ॥ ७ ॥

मनुष्यों और नेताओंमें सुप्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि प्रति दिन विशेष वेगवान् जल प्रवाहको प्राप्त करनेके लिए, बांसुरी कुशलतासे बजानेवालेके समान, कोमल ध्वनिसे सहस्रों आलापोंसे तुम्हारी ही स्तुति गाता है ॥ ८ ॥

हे सत्यके पालनकर्ता और सर्वत्र संचार करनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनों अपने उत्तम रथके वेगसे यज्ञकर्ताके पास मनुष्य-लोकमें गमन करते हो, अतः जो उत्तम विद्वान् है, उसको उत्तम घोडे और धन दो और हमें भी धन दो ॥ ९ ॥

१९०१ तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

[१८१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९०२ कदु प्रेष्ठाविषां रयीणा-मध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १ ॥

१९०३ आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥

१९०४ आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान् त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीया-नहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९०१] हे (अश्विना) अश्विनौ ! (अद्य सुविताय) आज सुविधाके लिये (वां तं नव्यं) तुम दोनोंके उस नये, (द्यां परि इयानं) द्युलोकके चारों ओर जानेवाले (अरिष्टनेमिं रथं) न बिगडनेवाली नेमिसे युक्त रथको (स्तोमैः) स्तोत्रोंकी सहायतासे (वयं हुवेम) हम इधर बुलाते हैं, (जीर-दानुं) शीघ्र दानको (इषं वृजनं) अन्न तथा बलको (विद्याम) हम प्राप्त करें ॥ १० ॥

[१८१]

[१९०२] हे (जनानां अवितारा) जनोंके रक्षक तथा (वसुधिती) धनोंको देनेहारे अश्विदेवो ! (अयं यज्ञः) यह यज्ञ (वां प्रशस्तिं अकृत) तुम दोनोंकी सराहना कर चुका है; (अध्वर्यन्ता प्रेष्ठौ) हे अध्वरमें जानेहारे अत्यन्त प्यारे अश्विदेवो ! (यत्) जो (अपां रयीणां इषां) जलोंको, धन संपदाओंको और अन्नोंको (उत् निनीथः) तुम दोनों ले चलते हो (कत् उ) वह कार्य अब किस समय शुरू होनेवाला है ? ॥ १ ॥

[१९०३] हे अश्विदेवो ! (शुचयः) विशुद्ध, (दिव्यासः,) दिव्य श्रेष्ठ, (अत्याः) गमनशील, (वात-रंहसः) वायुके तुल्य वेगवाले (पयः-पाः) दूध पीनेवाले, मनो-जुवः) मनके समान वेगयुक्त, (वृषणः) बलिष्ठ (वीत-पृष्ठाः) चमकीले पीठवाले (स्व-राजः अश्वासः) और स्वयं तेजस्वी घोडे (वां) तुम दोनोंको (इह आ वहन्तु) इधर ले आयँ ॥ २ ॥

[१९०४] हे (धिष्ण्या) ऊँचे स्थानपर रहनेयोग्य (स्थातारा) अपने पदपर रहनेवाले अश्विदेवो ! (वां यः) तुम दोनोंका जो (वृष्णः मनसः जवीयान्) प्रबल और मनसे भी अधिक वेगवान् (यजतः) पूजनीय, (सृप्रबन्धुरः) सुन्दर अग्रभागवाला, (अवनिः न) भूमिके तुल्य (प्रवत्वान्) अति विस्तृत, (अहंपूर्वः रथः) अहमहमिकासे आगे बढनेवाला रथ है वह (सुविताय आ गम्याः) भलाईके लिए हमारे पास आ जाय ॥ ३ ॥

भावार्थ— अश्विदेवो ! आज ही हमें सुखकी प्राप्ति हो, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारा कभी न बिगडनेवाला रथ हमारे पास आ जाय और हमें अन्न, बल तथा धन प्राप्त हो ॥ १० ॥

हे जनोंके संरक्षक और उनको धन देनेहारे देवो ! यह यज्ञ हम तुम्हारे लिये ही करते हैं । हे यज्ञमें जानेवाले और प्रेमसे उसकी पूर्णता करनेवाले देवो ! जो तुम जल, धन और अन्नका दान करते हो वह कार्य तुम कब करोगे ? हम उससे लाभ प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १ ॥

अश्विदेवोंके घोडे विशुद्ध, दिव्य, गमनशील, वायुके तुल्य वेगवान् , बलिष्ठ और तेजस्वी होते हैं। वे उनको हमारे यज्ञमें ले आवें ॥ २ ॥

अश्विदेवोंका मनसे भी वेगवान् , पूज्य भूमिके समान विस्तृत और अहमहमिकासे आगे बढनेवाला रथ हमारे यज्ञके समीप आ जाय ॥ ३ ॥

१९०५ इहेह जाता समवावशीतां अरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
१९०६ प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥
१९०७ प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥
१९०८ असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

अर्थ— [१९०५] (अरेपसा तन्वा) दोषरहित शरीरसे तथा (स्वैः नामभिः जाता) अपनेही नामोंसे प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (इह-इह सं अवावशीतां) इधर ही भली भाँति प्रशंसित हो चुके हो; (वां अन्यः) तुम दोनोंमेंसे एक (जिष्णुः सुमखस्य सूरिः) जयिष्णु और श्रेष्ठ यज्ञका प्रेरक है, (अन्यः) दूसरा (सुभगः) अच्छे ऐश्वर्यवाला, (दिवः पुत्रः ऊहे) द्युलोकका पुत्र जैसा और सब कार्यको निभाता है ॥ ४ ॥

[१९०६] हे अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंमेंसे एकका (पिशङ्गरूपः) पीतवर्णवाला अर्थात् सुनहरा और (निचेरुः) सभी जगह जानेवाला रथ (वशान् ककुहः अनु) वशीभूत दिशाओंमें स्थित (सदनानि प्र गम्याः) यज्ञस्थानोंमें चला जावे, (अन्यस्य हरी) दूसरेके घोडे (मथ्रा) बिलोडनेसे उत्पन्न (वाजैः) अन्नोंसे तथा (घोषैः) घोषणाओंसे (रजांसि वि पीपयन्त) लोकोंको विशेष ढंगसे पुष्ट करते हैं ॥ ५ ॥

[१९०७] (वां) तुम दोनोंमेंसे एक (शरद्वान् वृषभः न) पुरातन, बलवान्, जैसा वीर (निष्षाट्) शत्रु-दलको हटानेवाला है और (मध्वः इष्णन्) मीठे सोमको चाहता हुआ (पूर्वीः इषः प्रचरति) बहुतसी अन्न सामग्रियोंको साथ लेकर संचार करता है । (अन्यस्य) दूसरेके (एवैः) गमनशील (वाजैः) अन्नोंके साथ (वेषन्तीः) फैलती हुई (ऊर्ध्वाः) ऊपरकी ओर बढनेवाली (नद्यः) नदियाँ सबको (पीपयन्त) पुष्ट करती हैं वे (नः आ अगुः) हमारे समीप आ जायँ ॥ ६ ॥

[१९०८] हे (वेधसा) कार्यकर्ता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (स्थविरा गीः) प्राचीन वाणी-स्तुति (त्रेधा क्षरन्ती) तीन प्रकारसे तुम्हें प्राप्त होती हुई (बाळ्हे असर्जि) बल बढानेके लिए उत्पन्न हुई है । (मे हवं) मेरी प्रार्थनाको (यामन् अयामन्) गमनके समय या गमन न करनेके समय तुम (शृणुतं) सुन लो । और (उपस्तुतौ) प्रशंसित होनेपर इस (नाधमानं अवतं) भक्तकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— अश्विदेव निर्दोष होनेके कारण प्रसिद्ध हैं । इस लोकमें भी उनकी प्रशंसा हुई है । इनमेंसे एक विजयी यज्ञका प्रेरक है और दूसरा अन्य सब कार्य निभाता रहता है ॥ ४ ॥

अश्विदेव दो हैं । उनमेंसे एकका रथ सुनहरा है जो दिशाउपदिशाओंके यज्ञस्थानोंमें जाता है । दूसरेके घोडे बिलोडनेसे उत्पन्न घृतादि अन्नोंको साथ लेकर सबको पुष्ट करते हुए चलते हैं ॥ ५ ॥

अश्विदेवोंमेंसे एक पुरातन वीर शत्रुको परास्त करता है और मीठा अन्नरस अपने साथ लेकर सर्वत्र संचार करता है। दूसरा अन्नोंको बढानेवाली नदियोंको वेगसे बहाता है । एक अन्नमें मीठे रसकी उत्पत्ति करता है और दूसरा नदियोंको महापूरसे भरपूर कर देता है ॥ ६ ॥

हे रचनाकार्यमें कुशल अश्विदेवो ! यह प्राचीनकालसे चली आयी स्तुति तीन प्रकारोंसे बल प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे पास पहुंचती है । मेरी की हुई इस प्रार्थनाको तुम सुन लो और प्रसन्नचित्त होकर मेरी रक्षा करो ॥ ७ ॥

१९०९ उत स्या वां रुशतो वप्ससो गी-स्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥
१९१० युवां पूषेवाश्विना पुरंधि-रग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद् वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥

[१८२]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती; ६-८ त्रिष्टुप् ।)

१९११ अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥

अर्थ— [१९०९] (उत वां) और तुम दोनोंके (रुशतः वप्ससः) चमकवाले स्वरूपका वर्णन करनेवाली (स्या गीः) वह वाणी (नॄन्) मानवोंको (त्रि बर्हिषि सदसि) तीन कुशासनोंसे युक्त यज्ञस्थानमें (पिन्वते) पुष्ट करती है । हे (वृषणा) बलशाली अश्विदेवो ! (वां वृषा मेघः) तुम दोनोंके लिये वृष्टि करनेवाला मेघ (मनुषः दशस्यन्) मानवोंको जल देता हुआ (गोः सेके न) गौके दूधके सेचन करनेके समान ही (पीपाय) पोषण करता है ॥ ८ ॥

[१९१०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (पुरन्धिः पूषा इव) बहुतोंका धारण करनेवाला पूषा जिस प्रकार पोषण करता है वैसे ही (हविष्मान्) हवि साथ रखनेवाला यजमान (युवां) तुम दोनोंकी (उषां अग्निं न) उषा तथा अग्निके समान (जरते) स्तुति करता है, (यत् वां वरिवस्या) जो मैं तुम दोनोंकी सेवा करता हुआ (गृणानः हुवे) स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ, वह इसलिए कि हम लोग (जीरदानुं वृजनं इषं) शीघ्र दान द्वारा बल तथा अन्नको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[१८२]

[१९११] हे (मनीषिणः) मननशील विद्वानो ! (इदं वयुनं अभूत्) यह ज्ञान हमें हुआ है कि अश्विदेवोंका (वृषण्वान् रथः) बलवान् रथ हमारे पास आ पहुंचा है, इसलिए (मदत) आनन्दित होओ (सु-भूषत) भलीभाँति अलंकृत होओ, क्योंकि वे दोनों अश्विदेव (शुचिव्रता) निर्दोष व्रतका अनुष्ठान करनेवाले (दिवः न-पाता) द्युलोकका पतन न होने देनेवाले, (धिष्ण्या) प्रशंसनीय (विश्पलावसू) विश्पलाको यश देनेवाले; (सुकृते धियंजिन्वा) अच्छे कर्म करनेवालेको सुबुद्धि देनेवाले हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंका वर्णन करनेवाली यह स्तुति यज्ञस्थानमें मनुष्योंकी शक्ति बढाती है। तुम्हारी प्रेरणासे वृष्टि करनेवाला यह मेघ मनुष्योंके लिये जल देकर, गौ दूध देकर पुष्ट करनेके समान, पोषण करता है ॥ ८ ॥

हे अश्विदेवो ! हविष्यान्न साथ लेकर यजमान यज्ञ करता हुआ तुम्हारी प्रार्थना करता है । इससे हमें अतिशीघ्र अन्न, बल और धन प्राप्त हो ॥ ९ ॥

हे मननशील विद्वानो ! हमें पता लगा है कि, अश्विदेवोंका सुदृढ रथ हमारे यज्ञस्थानके पास आ पहुंचा है, उसे देखकर आनन्दित होवो, अच्छी तरह अलंकृत बनो । वे दोनों अश्विदेव शुद्ध कर्म करनेवाले, द्युलोकको आधार देनेवाले, विश्पलाकी सहायता करनेवाले, अच्छे कार्यकर्ताको शुभमति देनेवाले, एवं प्रशंसनीय हैं। अपने घर कोई बडा वीर आवे तो उत्तम वेषभूषा धारण करके उसका स्वागत करना योग्य है। बडा उसको कहते हैं कि जो उत्तम कर्म करता है, अनाथकी सहायता करता है, सद्बुद्धि देता है और सबको आधार देता है ॥ १ ॥

१९१२ इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥
१९१३ किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥
१९१४ जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृत- मुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥
१९१५ युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लव- मात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१९१२] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! तुम दोनों (धिष्ण्या) स्तुतिके योग्य, (इन्द्रतमा मरुत्तमा) इन्द्र एवं मरुतोंके अत्यन्त शुभ गुणोंको धारण करनेवाले, (दंसिष्ठा) अत्यन्त कार्यशील, (रथ्या रथीतमा हि) रथमें बैठनेवाले और अतीव श्रेष्ठ रथी हो, इसमें संशय नहीं; (मध्वः आचितं) मधुसे भरे हुए (पूर्णं रथं वहेथे) परिपूर्ण रथको लिए हुए तुम दोनों आगे बढते हो और (दाश्वांसं) दानीके प्रति (तेन उपयाथः) उसी रथके साथ आते हो ॥ २ ॥

[१९१३] हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! (अत्र किं कृणुथः) इधर भला क्या करते हो ? (किं आसाथे) क्यों यहां बैठे हो ? (यः कश्चित्) जो कोई (जनः अहविः महीयते) पुरुष यज्ञ न करता हुआ बडा बन बैठा है, उसे (अति क्रमिष्टं) छोडकर आगे बढो और (पणेः असुं जुरतं) कृपण लोभी व्यापारीके प्राणोंको नष्ट करो, तथा (वचस्यवे विप्राय) स्तुति करनेके इच्छुक ज्ञानी पुरुषके लिए (ज्योतिः कृणुतं) प्रकाश करो ॥ ३ ॥

[१९१४] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (शुनः रायतः) कुत्तेके सदृश काटनेको आनेवालोंको (अभितः जम्भयतं) चारों ओरसे तुम विनष्ट करो, (मृधः हतं) लडनेवालोंको मार डालो, (तानि विदथुः) उन्हें तुम दोनों जानते हो, (जरितुः) स्तुतिकर्ताके (वाचं वाचं) प्रत्येक भाषणको (रत्निनीं कृतं) धनयुक्त करो और (उभा) दोनों (मम शंसं अवतं) मेरे प्रशंसाके भाषणकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

[१९१५] (एतं आत्मन्वन्तं) इस निजी शक्तिसे युक्त, (पक्षिणं) पंछीके तुल्य उडनेवाले, (प्लवं) नौकाको (सिन्धुषु) समुद्रमें (तौग्र्याय) तुग्रपुत्रके लिए (कं चक्रथुः) सुखकारक ढंगसे बना चुके, (येन) जिससे (सुपप्तनी) अच्छे ढंगसे उडनेवाले तुम दोनों (मनसा) मनःपूर्वक (देवत्रा) देवोंके मध्य (निः ऊहथुः) ऊपर ऊपर ले चले और (महः क्षोदसः पेतथुः) बडे भारी जलसमूहके बीच आ गये ॥ ५ ॥

भावार्थ— शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनों प्रशंसायोग्य तथा इन्द्र और मरुतोंके सब शुभगुणोंको धारण करते हो । तुम सदा शुभ कार्योंमें तत्पर, रथ चलानेमें तत्पर, उत्तम रथियोंमें श्रेष्ठ हो । तुम रथपर शहदके घडे भरकर रखते हो और यज्ञकर्ताके समीप उनके साथ पहुंचकर उसका दान करते हो ॥ २ ॥

हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! तुम इधर उधर न जाओ, विशेषतः यज्ञ न करनेवालेके पास न जाओ, उस लोभीके प्राण जाने दो । तुम सदा यज्ञकर्ताको प्रकाशका मार्ग बताओ । जो सहायता पहुंचानी हो वह श्रेष्ठ सज्जनको ही प्रथम देनी योग्य है । धर्मशील सन्मार्गवर्तियोंको ही प्रकाशका सरल मार्ग बताना योग्य है ॥ ३ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विदेवो ! कुत्तेके समान हिंसकोंको नष्ट करो, जो हमपर हमला करते हैं उनको मार डालो, इन सबको तुम जानते हो । तुम्हारी स्तुति करनेवालेको प्रत्येक स्तुतिके लिये उसे धन प्राप्त होता रहे, तथा मुझ भक्तकी भी सुरक्षा करो ॥ ४ ॥

तुग्रके पुत्र भुज्युकी रक्षा करनेके लिये तुमने निजशक्तिसे चलनेवाले, पक्षीके समान उडनेवाले नौका जैसे वाहनोंको बनाया और मनके वेगसे महासागरके मध्यमें जा पहुंचे और भुज्युको बचाया ॥ ५ ॥

१९१६ अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥
१९१७ कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥
१९१८ तद् वां नरा नासत्यावनु ष्याद् यद् वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१८३]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९१९ तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥

अर्थ— [१९१६] (अप्सु अन्तः) जलोंके मध्य (अवविद्धं) गिराये हुए (अनारम्भणे तमसि) आश्रयरहित अंधेरेमें (प्रविद्धं तौग्र्यं) पीड़ित हुए तुग्रके पुत्रको (जठलस्य जुष्टाः) समुद्रके मध्यतक पहुंची हुई और (अश्विभ्यां इषिताः) अश्विदेवोंसे प्रेरित हुई (चतस्रः नावः) चार नौकाएँ (उत् पारयन्ति) ऊपर उठाकर पार पहुंचा देती हैं ॥ ६ ॥

[१९१७] (अर्णवः मध्ये) जलके बीच (कः स्वित् वृक्षः निष्ठितः) भला कौनसा वृक्ष अर्थात् वृक्षसे निर्मित रथ स्थिर रहा है (यं) जिसे (नाधितः तौग्र्यः) प्रार्थना करता हुआ तुग्रका पुत्र भुज्यु (पर्यषस्वजत्) लिपटने लगा, आश्रित होने लगा; (पतरोः मृगस्य आरभे) पतनशील मृगके आलंबनके लिए (पर्णा इव) पत्तों या पंखोंके समान (अश्विनौ श्रोमताय) अश्विदेव कीर्ति पानेके लिए (कं) सुखकारक ढंगसे उसको (उत् ऊहथुः) ऊपर उठा चुके ॥ ७ ॥

[१९१८] हे (नासत्यौ नरा) सत्यके पालक, नेता अश्विदेवो ! (यत् मानासः) जो सम्माननीय लोग (वां) तुम दोनोंके लिए (उचथं अवोचन्) स्तोत्र कह चुके, (तत् वां अनु स्यात्) वह तुम्हें अनुकूल हो, (अद्य) आज (अस्मात् सोम्यात् सदसः) इस सोमयागके यज्ञस्थानसे (जीरदानुं वृजनं) विजयी, दान, बल और (इषं विद्याम) अन्नको हम प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[१८३]

[१९१९] हे (वृषण !) बलवान् अश्विदेवो ! (यः त्रिचक्रः) जो तीन पहियोंवाला (त्रिवन्धुरः) तीन बैठनेके युक्त रथ है, (यः) जो (मनसः जवीयान्) मनसे भी अधिक वेगवान् है, (तं युञ्जाथां) उसे जोड़कर तैयार करो; (येन त्रिधातुना) जिस तीन धातुओंसे बनाये रथवरसे (सुकृतः दुरोणं उपयाथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों चले जाते हो, और (विः पर्णैः न) पंछी डैनोंसे जिस प्रकार उड़ता है, वैसेही (पतथः) तुम अन्तराळमें उड़ने लगते हो ॥ १ ॥

भावार्थ— समुद्रके बीचमें आश्रयरहित और अंधेरे जलस्थानमें पड़े तुग्रपुत्र भुज्युको छुड़ानेके लिये अश्विदेवोंने चार नौकाएँ चलाईं और उसको समुद्रके पार पहुंचा दिया ॥ ६ ॥

अश्विदेवोंका सुदृढ रथ समुद्रके बीचमें खड़ा रहा, इसपर तुग्रका पुत्र भुज्यु चढने लगा। जिस तरह गिरनेवाले पक्षीको पंखोंका सहारा मिल जाय, उस तरह भुज्युको उस रथका आश्रय मिला और उसी समय अश्विदेवोंने भुज्युको अच्छी तरह ऊपर उठाया और रथमें बिठाया। इससे अश्विदेवोंकी कीर्ति बहुत हुई ॥ ७ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! स्तोता लोगोंने जो तुम्हारे स्तोत्र गाये हैं उससे तुम प्रसन्न हो जाओ और इस यज्ञसे विजय देनेवाला धन, बल और अन्न हमें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! तुम्हारा तीन पहियोंवाला, तीन बैठकोंके स्थानोंवाला, अत्यंत वेगवान् रथ जोड़कर तैयार करो, इस तीन धारक शक्तियोंसे युक्त रथपर बैठकर यज्ञकर्ताके घरपर आओ। तुम जो पक्षियोंके समानही आकाशसे उड़कर जाते हो ॥ १ ॥

१९२० सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत् तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥
१९२१ आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥
१९२२ मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४ ॥
१९२३ युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[१९२०] (क्रतुमन्ता) कार्यसे युक्त हुए तुम दोनों (पृक्षे अनु) हविष्य अन्नके पीछे जानेके लिए (यत् तिष्ठथः) जहां ठहरते हो, वह (क्षां यन्) पृथ्वीपर घूमनेवाला तुम्हारा (सुवृत् रथः) सुन्दर रथ (अभि वर्तते) यज्ञभूमिके पास जाता है, (वपुष्या इयं गीः) यह सुंदर रसमयी स्तुतिरूपी वाणी (वपुः सचतां) तुम्हारी रसमयी तृप्तिको प्राप्त हो जाए– तुम्हें आनंद देवे (दिवः दुहित्रा उषसा) द्युलोककी कन्या उषासे (सचेथे) तुम दोनों युक्त होते हो ॥ २ ॥

[१९२१] हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेता अश्विदेवो ! (यः हविष्मान् रथः) जो हविर्भागसे पूर्ण रथ (वां) तुम दोनोंको (व्रतानि वर्तते) कार्योंको चलानेके लिए ले जाता है, उस (सुवृतं आतिष्ठतं) सुन्दर वाहनपर चढकर बैठो; (येन) जिसपरसे (तनयाय त्मने च) पुत्रको और उसको (इषयध्यै) यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये ही उनके (वर्तिः याथः) घर चले जाते हो ॥ ३ ॥

[१९२२] हे (दस्रौ) शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग रखा है, (इयं गीः) यह स्तुति तैयार है, (मधूनां इमे निधयः) शहदोंके ये भण्डार (वां) तुम्हारे लिए हैं; (मा परि वर्क्तं) हमें न छोड दो (उत) और (मा अति धक्तं) न हमसे अन्य दूसरेको दान दो, (वां) तुम्हारी कृपासे (मा वृकीः मा वृकः) मुझे वृकियाँ तथा भेडिया न (आ दधर्षीत्) आक्रान्त करें ॥ ४ ॥

[१९२३] हे (दस्रा नासत्या) शत्रुविनाशक और सत्यसे युक्त अश्विदेवो ! (हविष्मान्) हवि साथ लेकर (गोतमः अत्रिः पुरुमीळ्हः) गोतम, अत्रि और पुरुमीळ्ह (अवसे) रक्षाके लिए (युवां हवते) तुम दोनोंको बुलाते हैं, (ऋजूया इव यन्ता) सरल मार्गसे जानेवाला जैसे (दिष्टां दिशं न) दर्शायी हुई दिशाकी ओर जाता है वैसेही (मे हवं) मेरी पुकार सुनकर मेरे (उप यातं) समीप आ जाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम सदा सत्कर्ममें तत्पर रहते हो तुम हवनके यज्ञस्थानपर आनेके लिये अपने सुन्दर रथपर चढते हो और यह रथ यज्ञके स्थानपर चला जाता है । तुम्हारा वर्णन करनेवाली यह स्तुति सुननेसे तुम्हें आनन्द हो, तुम तो उषाके साथ ही अर्थात् सबेरेही रथपर चढते हो ॥ २ ॥

हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! हविर्द्रव्योंसे भरपूर भरा हुआ तुम्हारा रथ तुम दोनोंको अपने कार्य करनेके लिये ले जाता है, उसपर तुम बैठो और यजमानको तथा उसके बालबच्चोंको यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये उनके यज्ञस्थानके प्रति जाओ ॥ ३ ॥

हे शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! आपके लिये यह हविर्भाग रखा हुआ है, यह स्तुति तुम्हारे लिये ही है, ये शहदके पात्र तुम्हारे लिये ही तैयार रखे हैं, तुम हमें न छोडो, न दूसरेके पास जाओ । भेडी या भेडिया हमारे ऊपर हमला न करें ॥ ४ ॥

हे शत्रुविनाशक सत्यके पालक अश्विदेवो ! हवि लेकर गोतम, अत्रि और पुरुमीढ ये ऋषि अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । सरल मार्गसे जानेवाला इष्ट स्थानको सहज हीसे पहुंचता है; उस तरह मेरी प्रार्थना सुनकर सरल मार्गसे शीघ्र ही मेरे पास पहुंच जाओ । मनुष्य अपनी सुरक्षाका यत्न करे । सरल मार्गसे चले और निर्विघ्न इष्ट स्थानको पहुंचे ॥ ५ ॥

१९२४ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानै- र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१८४]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९२५ ता वामद्य तावपरं हुवेमो- च्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित् सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥
१९२६ अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथा- मुत् पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीना- मेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥
१९२७ श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥

अर्थ- [१९२४] (अस्य तमसः) इस अँधेरेके (पारं अतारिष्म) पार हम चले गये, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि) स्तोत्र तैयार कर दिया है, (देवयानैः पथिभिः) देवतागण जिस परसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (इह आयातं) इधर आओ (जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम) शीघ्र विजय अन्न तथा बल हमें मिले ॥ ६ ॥

[१८४]

[१९२५] हे (दिवः न पाता) द्युलोकको न गिरानेवाले (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (अद्य) आज (ता वां) उन विख्यात तुम दोनोंको (अपरं) दूसरे दिन भी (तौ हुवेम) उन्हें ही तुम्हें, हम बुलाते हैं, (उच्छन्त्यां उषसि) अँधियारी हटानेवाली उषावेलाके समीप आनेपर (उक्थैः वह्निः) स्तोत्रोंका पाठ करते करते अग्नि प्रज्वलित किया है, (कुह चित् सन्तौ) कहीं भी तुम विद्यमान रहो, पर (सुदास्तराय) उत्तम दानीके पास इधर आओ, ऐसी (अर्यः) प्रगतिशील मानवकी प्रार्थना है ॥ १ ॥

[१९२६] हे (नरा वृषणा) नेता तथा बलवान् अश्विदेवो ! (अस्मे उ) हमें ही (सु मादयेथां) भली भाँति हर्षित करो । (ऊर्म्या मदन्ता) सोमपानसे आनन्दित होते हुए तुम (पणीन् उत् हतं) पणियोंका समूल वध करो, और (मे अच्छोक्तिभिः) मेरी निर्मल उक्तियोंसे उत्पन्न (मतीनां) मननीय स्तोत्रोंको (कर्णैः श्रुतं) अपने कानोंसे सुनलो, क्योंकि तुम दोनों (एष्टा निचेतारा च) ढूँढनेवाले और संग्रह करनेवाले हो ॥ २ ॥

[१९२७] हे (देवा) दानी ! (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (हे पूषन्) पोषणकर्ता ! (सूर्यायाः वहतुं) सूर्यकन्याको रथपर बिठाकर (श्रिये) यश-पानेके लिए तुम दोनों (इषुकृता इव) बाणकी तरह सीधे चले जाते हो; (अप्सु जाताः) सागरसे प्राप्त या उत्पन्न (ककुहाः) घोडे (भूरेः वरुणस्य) अत्यन्त विशाल वरुणके (जूर्णा इव युगा) प्राचीन समयके रथोंके समान ही (वां वच्यन्ते) तुम दोनोंके भी प्रशंसित होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ- इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके । तुम्हारे लिये यह स्तवन किया है । देवोंके आनेके मार्गसे यहां हमारे पास आओ । हमें विजय, अन्न तथा बल मिले । अन्धेरेका मार्ग शीघ्र समाप्त करो, प्रकाशमें शीघ्र आओ । जिन मार्गोंसे श्रेष्ठ लोग आते जाते हैं, उन मार्गोंसे ही आओ । शीघ्र ही विजय अन्न और बल प्राप्त करो ॥ ६ ॥

हे द्युलोकको आश्रय देनेवाले अश्विदेवो ! हम तुम्हें जैसा आज बुलाते हैं वैसे कल भी बुलावेंगे । हम प्रातःकालमें अग्निको प्रदीप्त करते हैं और तुम्हारे स्तोत्र गाते हैं । श्रेष्ठ पुरुष, तुम कहीं भी रहो तो, तुम्हें ही अपने पास बुलावेगा ॥ १ ॥

हे बलवान् नेता अश्विदेवो ! तुम हम सबको सुखी करो । तुम सोमपानसे आनंदित होकर पणियोंका नाश करो । मेरी स्तुतिका श्रवण करो । तुम अच्छे मनुष्यको ढूंढते हैं और उसीको अपना आश्रय देते हो ॥ २ ॥

हे दानी सत्यपालक, पोषणकर्ता अश्विदेवो ! सूर्यकी पुत्रीको अपने रथपर चढाके यश प्राप्त करनेके लिये बाणके वेगसे तुम दोनों गये । इस समय समुद्रसे प्राप्त महान् वरुणदेवके प्राचीन रथके घोडोंके समान ही तुम्हारे घोडोंकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

१९२८ अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद् वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥
१९२९ एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥
१९३० अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

[१८५]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९३१ कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥

अर्थ— [१९२८] हे (सुदानू माध्वी) अच्छे दान देनेवाले मधुर सोमरस पीनेवाले अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंकी (सा रातिः) वह देन (अस्मे अस्तु) हमारे लिए ही रहे, (मान्यस्य कारोः) माननीय और कार्यशीलके (स्तोमं हिनोतं) स्तोत्रको चारों ओर तुम प्रेरित करो, (यत्) निश्चयसे (वां अनु) तुम दोनोंके अनुकूलतामें रहकर (श्रवस्या) यश पानेके लिए (चर्षणयः) सब लोग (सुवीर्याय मदन्ति) उत्तम पराक्रम करनेके लिये ही आनंदित होते हैं ॥ ४ ॥

[१९२९] हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न ! सत्यपालक अश्विदेवो ! (एषः) यह (वां स्तोमः) तुम दोनोंका स्तोत्र (सुवृक्ति अकारि) भलीभाँति तैयार किया है, इसलिए (तनयाय त्मने च) पुत्रके एवं अपने लाभके लिए (मदन्ता) हर्षित होते हुए (अगस्त्ये) अगस्त्यके (वर्तिः यातं) घर आओ ॥ ५ ॥

[१९३०] (अस्य तमसः) इस अंधेरेके (पारं अतारिष्म) पार हम चले गए । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि) स्तोत्र तैय्यार कर दिया है । (देवयानैः पथिभिः) देवतागण जिसपरसे चलते हैं, ऐसे मार्गोंसे (इह आयातं) इधर आओ । (जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम) शीघ्र विजय, अन्न, तथा बल हमें मिले ॥ ६ ॥

[१८५]

[१९३१] (अयोः) इन द्यावापृथ्वीमें (कतरा पूर्वा कतरा अपरा) कौन पहले और कौन बादमें हैं, (कथा जाते) ये दोनों किस प्रकार उत्पन्न हुईं, हे (कवयः) ज्ञानी जन ! (कः वि वेद) इन बातोंको कौन जानता है ? (यत् ह) चूंकि ये दोनो (त्मना) अपनी शक्तिसे (विश्वं नाम बिभृतः) सभी विश्वको धारण करती हैं, अतः (अहनी) दिन रातको बनानेवाली ये दोनों (चक्रिया इव) चक्रके समान (वि वर्तेते) घूमती रहती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे उत्तम दान देनेवाले, मधुर रस पीनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनोंका दान हमें प्राप्त होता रहे । सम्माननीय कुशल कारीगरका या कविका स्तोत्र सुनो और उसका यश चारों ओर बढाओ । सब लोग तुम्हारी सहायतासे उत्तम पराक्रम करके श्रेष्ठ यश पानेकी ही आनंदसे इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥

हे ऐश्वर्यसंपन्न और सत्यपालक अश्विदेवो ! तुम्हारा स्तोत्र मैंने किया है । इससे आनंदित होकर तुम दोनों मुझ अगस्त्यके घर आओ और मेरे पुत्रोंका तथा मेरा भला करो ॥ ५ ॥

इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके । तुम्हारे लिए यह स्तवन किया है । देवोंके आनेके मार्गसे यहां हमारे पास आओ । हमें विजय, अन्न तथा बल मिले ॥ ६ ॥

ये दोनों द्यु और पृथ्वी लोक कहांसे और किस प्रकार पैदा हुए और इन दोनोंमें कौन पहले पैदा हुआ और कौन बादमें पैदा हुआ, यह कौन जानता है । यह सब रहस्यमय है । पर इतना अवश्य ज्ञात होता है कि ये दोनों लोक सभी संसारको धारण कर रहे हैं और इन्हींके कारण दिन रात उत्पन्न होते हैं, तथा चक्रके समान घूम रहे हैं ॥ १ ॥

१९३२ भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥
१९३३ अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद् रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥
१९३४ अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥
१९३५ संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१९३२] (द्वे अपदी अचरन्ती) ये दोनों द्यावापृथिवी बिना पैरोंके तथा न चलनेवाली होती हुई भी (भूरिं चरन्तं पद्वन्तं गर्भं दधाते) बहुतसे चलनेवाले और पैरोंवाले प्राणियोंका धारण करती हैं। (पित्रोः उपस्थे सूनुं नित्यं न) जिस प्रकार मातापिताके पास रहनेवाले पुत्रकी ये दोनों हमेशा रक्षा करते हैं, उसी तरह (द्यावा पृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यु और पृथ्वी हमारी बडे बडे संकटोंसे रक्षा करें ॥ २ ॥

१ अपदी अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं दधाते— पैरोंसे रहित व न चलनेवाली ये द्यावापृथ्वी चलनेवाले व पैरवाले प्राणियोंको धारण करती हैं।

[१९३३] (अदितेः) अदितिके (अनेहः अनर्वं) पापसे रहित, क्षीण न होनेवाले (स्वर्वत् अवधं नमस्वत् दात्रं) तेजस्वी, अहिंसनीय और नम्रता प्रदान करनेवाले धनको (हुवे) मैं मांगता हूँ। (तत्) उस धनको (रोदसी) द्यावा पृथिवी (जरित्रे जनयतं) स्तोताके लिए उत्पन्न करें (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथ्वीलोक (अभ्वात् नः रक्षतं) पापसे हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

[१९३४] (देवपुत्रे रोदसी) देवोंको उत्पन्न करनेवाले द्यावा पृथ्वी (अतप्यमाने) पीडित न होते हुए (अवसा अवन्ती) अपने रक्षणके साधनोंसे लोगोंकी रक्षा करती हैं। (देवानां अन्हां उभयेभिः) दिव्य दिन और रातके साथ हम (उभे अनु स्याम) इन दोनोंके अनुकूल रहें और (द्यावापृथिवी अभ्वात् नः रक्षतं) द्यावा पृथिवी पापसे हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

[१९३५] (संगच्छमाने) साथ साथ चलनेवाली (युवती) तरुणियां (समन्ते स्वसारा) एक दूसरेके साथ सम्बद्ध, बहिनें तथा (जामी) एक दूसरेकी सहायता करनेवाली ये द्यावापृथ्वी (पित्रोः उपस्थे) पिताके समीप रहकर (भुवनस्य नाभिं अभि जिघ्रन्ती) भुवनकी नाभिको सूंघती हैं। ऐसी (द्यावा पृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावा पृथ्वी हमारी पापसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

भावार्थ— स्वयं यद्यपि पैरोंसे रहित होनेके कारण चलनेमें असमर्थ हैं, फिर भी पैरोंसे युक्त होनेके कारण चलने फिरनेमें समर्थ प्राणियोंको धारण करती हैं। ये दोनों प्राणियोंकी इसी तरह रक्षा करती है जिस प्रकार पिता पासमें बैठे हुए अपने पुत्रकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

इस अखण्डनीय पृथ्वीसे पापसे रहित, अहिंसनीय तेजस्वी और नम्रता प्रदान करनेवाला धन मांगते हैं। धन उत्तम मार्गसे कमाया जाए, छल कपटसे कमाया गया धन पापका होता है। उत्तम रीतिसे कमाया गया धन नम्रता प्रदान करनेवाला होता है। धन पाकर मनुष्य घमंडी और उद्धत न हो, अपितु नम्र ही रहे ॥ ३ ॥

ये द्यावापृथिवी देवोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, इसीलिए इन्हें कोई कष्ट नहीं दे सकता। जितने भी देव इस ब्रह्माण्डमें हैं, वे सब द्यु और पृथ्वीके बीचमें हैं, इसलिए इन दोनोंको देवोंकी माता कहा है। जो इन दोनोंके अनुकूल आचरण करता है, उसकी ये हर तरहसे रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥

ये द्यावापृथ्वी सदा साथ साथ रहते हैं, एक दूसरेकी सहायता करते हैं और सारे संसारका पोषण करते हैं ॥ ५ ॥

१९३६ उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥
१९३७ उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥
१९३८ देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८ ॥
१९३९ उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१९३६] (ये सुप्रतीके) जो उत्तम रूपवाली द्यावापृथ्वी (अमृतं दधाते) अमृतको धारण करती हैं, उन (उर्वी) विस्तीर्ण (सद्मनी) निवासके आधार भूत (बृहती) महान् (जनित्री) सबको उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथ्वीको (देवानां अवसा) देवोंके संरक्षणके लिए (ऋतेन हुवे) सत्यवाणीसे बुलाता हूं (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथ्वी हमें पापोंसे सुरक्षित रखें ॥ ६ ॥

[१९३७] (ये सुभगे सु प्रतूर्ती दधाते) जो सुन्दर रूपवाली और उत्तम दान देनेवाली द्यावापृथ्वी सबको धारण करते हैं, ऐसे (उर्वी, पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते) विशाल, विस्तृत अनेकों आकारवाले तथा जिनका अन्त बहुत दूर है अर्थात् अनन्त ऐसे द्यावापृथ्वीको मैं (अस्मिन् यज्ञे नमसा उप ब्रुवे) इस यज्ञमें स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करता हूँ । वे (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथिवी हमें पापसे सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

[१९३८] (देवान् यत् कच्चित् आगः चकृम) देवोंके प्रति कोई पाप यदि हमने किया हो, (सखायं वा) मित्रके प्रति पाप किया है (सदं इत् जास्पतिं) अथवा इन सब उत्पन्न हुए पदार्थोंके स्वामी प्रभुके प्रति पाप किया हो, तो (एषां अवयानं) उन पापोंको नष्ट करनेके लिए (इयं धीः भूयाः) यह बुद्धि समर्थ हो और (द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं) द्यावापृथ्वी भी हमारी पापसे रक्षा करें ॥ ८ ॥

[१९३९] (शंसा नर्या) प्रशंसनीय तथा मनुष्योंका हित करनेवाली (उभा) दोनों द्यावापृथ्वी (मा अविष्टां) मुझे सुरक्षित करें । (ऊती उभे) संरक्षण करनेवाली दोनों द्यावापृथ्वी हमें (अवसा सचेतां) संरक्षणके साधनोंसे संयुक्त करें । हे (देवाः) देवो (अर्यः) श्रेष्ठ हम (इषा मदन्तः) अन्नसे आनन्दित होते हुए (सुदास्तराय) उत्तम दान देनेके लिए (भूरि चित् इषयेम) बहुतसा धन चाहते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— द्यावापृथ्वी दोनों उत्तम रूपवाले और जलको धारण करनेवाले हैं । ऐसे विशाल और सबको निवास करानेवाले सबके उत्पादक द्यावापृथ्वीको मैं यज्ञमें बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

मैं सुन्दर रूपवाले विशाल विस्तृत और अनन्त द्यावापृथ्वीको यज्ञमें बुलाता हूँ, वे आकर हमारी पापोंसे रक्षा करें ॥७॥

यदि हमने कभी प्रमादवश देव विद्वानोंके प्रति, मित्रके प्रति और समस्त उत्पन्न जगत्के स्वामी प्रभुके प्रति कोई पाप किया हो, तो उस पापको हम अपनी उत्तम बुद्धिसे विनष्ट करनेमें समर्थ हों और द्यावापृथ्वी भी हमें सब पापोंसे सुरक्षित रखें ॥ ८ ॥

द्यावापृथ्वी दोनों संरक्षणके अनेक तरहके साधनोंसे युक्त हैं, अतः वे हमें हर तरहसे सुरक्षित रखें । हम भी श्रेष्ठ बनकर अन्नसे आनन्दित होकर उत्तम रूपसे दान देनेके लिए बहुतसे धनको प्राप्त करें ॥ ९ ॥

१९४० ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद् दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥
१९४१ इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभि–र्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८६]

(ऋषिः– अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता– विश्वे देवाः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

१९४२ आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ १ ॥
१९४३ आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥

अर्थ– [१९४०] (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिवाला मैं (पृथिव्या दिवे अभिश्रावाय) पृथिवी और द्युलोकको सुनानेके लिए (प्रथमं तत् ऋतं) सर्वश्रेष्ठ उस ऋतको (अवोचं) बोलता है । (अभीके) पासमें रहनेवाले वे दोनों (अवद्यात् दुरितात् पातां निन्दनीय पापोंसे हमारी रक्षा करें । (पिता माता च) पालन करनेवाला द्युलोक और उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी (अवोभिः रक्षतां) संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

[१९४१] हे (पितः मातः) पिता और माता द्यु एवं पृथिवी ! (वां) तुम दोनोंके लिए (इह) इस यज्ञमें (यत् उप ब्रुवे) जो स्तुति करता हूँ, हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (इदं सत्यं अस्तु) वह यह स्तुति सत्य हो। (देवानां अवमे) हम विद्वानोंके पास तुम दोनों (अवोभिः भूतं) संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर रहो, हम भी (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१८६]

[१९४२] (विश्वानरः सविता देवः) सबका कल्याण करनेवाला सवितादेव (सुशस्ति) अच्छी तरह प्रशंसित होकर (नः विदथे) हमारे यज्ञमें (इळाभिः आ एतु) अन्नसे युक्त होकर आवे । (युवानः) हे तरुणो ! (अभिपित्वे) हमारे यज्ञमें आकर तुम (मनीषा) अपनी कृपासे (नः विश्वं जगत् अपि) हमें और सम्पूर्ण विश्वको भी (यथा) जैसे हो वैसे (मत्सथः) आनन्दित करो ॥ १ ॥

[१९४३] (सजोषाः मित्रः वरुणः अर्यमा) परस्पर प्रीति करनेवाले मित्र, वरुण और श्रेष्ठ अर्यमा ये (विश्वे आस्क्राः देवाः) सभी शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले देव (नः आगमन्तु) हमारे पास आवें और (यथा) जिस प्रकार हो सके उस प्रकार (विश्वे नः वृधासः भुवन्) वे सब हमें बढानेवाले हों तथा (सुषाहा) शत्रुओंको हरानेकी शक्तिसे युक्त होकर वे (शवः विथुरं न करन्) हमारी शक्तिको नष्ट न करें ॥ २ ॥

भावार्थ– उत्तम बुद्धिवाला मैं द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपनी सर्वश्रेष्ठ ऋचा सुनाता हूँ । वे मेरी स्तुतिसे प्रसन्न होकर निन्दनीय पापोंसे हमारी सुरक्षा करें ॥ १० ॥

द्यावापृथ्वीके लिये यज्ञमें हम जो स्तुति करते हैं, वह कभी व्यर्थ न हो अर्थात् उसका श्रेष्ठ फल हमें अवश्य मिले और दोनों हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमारी हर तरहसे रक्षा करें । हम भी सुरक्षित होकर अन्न, बल आदि प्राप्त करें ॥ ११ ॥

सब लोकोंका कल्याण करनेवाला देव हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमारे यज्ञमें अन्नसे युक्त होकर आवे । सभी देव तरुण हैं, वे कभी वृद्ध नहीं होते । वे सभी देव अपनी कृपासे हमें तथा सम्पूर्ण विश्वको आनन्दित करें ॥ १ ॥

हित एवं स्नेह करनेवाले वरणीय श्रेष्ठ देव शत्रुको विनष्ट करते हुए हमारे पास आवें और हमें हर तरहसे बढावें और कभी भी हमारी शक्तिको क्षीण न करें ॥ २ ॥

१९४४ प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषे ऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
अस॒द् यथा नो वरुणः सुकीर्ति- रिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥ ३ ॥

१९४५ उप व एषे नमसा जिगीषो- षासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन् विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥ ४ ॥

१९४६ उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥

१९४७ उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रा- स्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१९४४] जो (तुर्वणिः सजोषाः) शत्रुओंका विनाशक और सबके साथ प्रेमपूर्वक रहनेवाला है, ऐसे (वः प्रेष्ठं अतिथिं अग्निं) तुम्हारे अत्यन्त प्रिय और अतिथिके समान पूज्य अग्निकी (शस्तिभिः) स्तोत्रोंसे (गृणीषे) स्तुति करता हूँ। (यथा वरुणः नः सुकीर्तिः असत्) जिस प्रकार वरुण हमें उत्तम कीर्तिको देनेवाला हो तथा (अरिगूर्तः सूरिः शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला और विद्वान् वह वरुण (इषः च पर्षत्) हमें अन्नसे पूर्ण करे ॥ ३ ॥

[१९४५] (सस्मिन् ऊधन् विषुरूपे पयसि) सभी थनोंसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके दूधमें (समाने अहन् अर्कं विमिमानः) सभी दिन तेजको देखता हुआ मैं हे देवो ! (जिगीषा) शत्रुओंको जीतनेकी शक्तिको पानेकी इच्छासे (वः उप) तुम्हारे पास (नमसा) नम्रतापूर्वक (उषासानक्ता) दिन और रातके समय (एषे) उसी प्रकार आता हूँ, जिस प्रकार सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दुधारु गाय दिन और रातके समय ग्वालेके पास आती है ॥ ४ ॥

[१९४६] (उत) और (अहिर्बुध्न्यः) अहिर्बुध्न्य देव (नः मयः कः) हमें सुखी करे, और (शिशुं न) जिस प्रकार माता अपने बच्चेको तृप्त करती है, उसी प्रकार (पिप्युषी सिन्धुः वेति) जलसे तृप्त करनेवाली नदी हमारे पास आवे। (मनोजुवः वृषणः यं वहन्ति) मनके समान वेगवान् तथा बलशाली घोडे जिसे ले जाते हैं, ऐसे (अपां नपातं) जलोंको न गिरानेवाले अग्निकी (येन जुनाम) जिससे हम सेवा कर सकें ॥ ५ ॥

[१९४७] ईं अभिपित्वे) इस यज्ञमें आकर (सूरिभिः सजोषा) विद्वानोंके साथ प्रेमसे मिलकर रहनेवाला (त्वष्टा) त्वष्टा देव (नः अच्छ आ गन्तु स्मत्) हमारे पास सीधे आवे। (उत) और (चर्षणिप्राः तुविष्टमः वृत्रहा इन्द्रः) मनुष्योंको तृप्त करनेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (नः नरां इह आ गम्याः) हम मनुष्योंके इस कर्ममें आवे ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि शत्रुओंका नाशक होने और सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेके कारण अतिथिके समान पूज्य है। उसकी हम हर तरहसे स्तुति करते हैं। वरुण हमें उत्तम यश प्रदान करे और अन्नसे पूर्ण करे ॥ ३ ॥

सभी थनोंसे निकलनेवाले गायके दूधमें सभी तरहका अन्न और तेज रहता है। दूध एक उत्तम अन्न है, जो उत्तम तेज प्रदान करता है। ऐसे उत्तम तेजसे युक्त होकर मैं शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे नम्रतापूर्वक देवोंके पास जाता हूं ॥ ४ ॥

यह अग्नि बिजलीका रूप धारण कर मेघोंमें जलोंको इकट्ठा करता है। इसकी किरणें मनसे भी वेगवान् है और जल बरसानेवाली हैं। यह विद्युत् रूप अग्नि अन्तरिक्षमें रहकर अहि अर्थात् मेघका विनाशक है। मेघोंको मारकर पानी बरसाता है, उससे पानी पृथ्वी पर आता है और नदियां जलसे भरपूर होकर बहने लगती हैं और वे नदियां तब अन्नादि उत्पन्न करके मनुष्योंको तृप्त करती हैं ॥ ५ ॥

विद्वानोंसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करनेवाला यह त्वष्टा देव तथा मनुष्योंको तृप्त करनेवाला तथा शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला इन्द्र हमारे पास आकर हमारे कार्योंमें सहायक हों ॥ ६ ॥

१९४८ उत नं ईं मृतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥

१९४९ उत नं ईं मरुतों वृद्धसेनाः स्मत् रोदसी सर्मनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥

१९५० प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥

१९५१ प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥ १० ॥

अर्थ— [१९४८] (नः अश्वयोगाः मतयः) हमारी चारों ओर गति करनेवाली बुद्धियां (ईं तरुणं रिहन्ति) इस तरुण इन्द्रको उसी तरह प्यार करती हैं, ((गावः शिशुं न) जिस प्रकार गायें अपने बछडोंको प्यारसे चाटती हैं । (उत) और (तं सुरभिस्तमं ईं) उस अत्यन्त यशस्वी इस इन्द्रको (नः नरां गिरः) हम मनुष्योंकी वाणियां (नसन्तः) उसी तरह घेरती हैं, (जनयः पत्नीः न) जिस प्रकार सन्तानको उत्पन्न करनेवाली स्त्रियां पतियोंको ॥ ७ ॥

[१९४९] (रथाः अवनयः न रिशादसः) रथों पर बैठे हुए रक्षकगणोंकी तरह शत्रुओंको खा जानेवाले (मित्रयुजः न देवाः) मित्रके समान सबसे मिलजुल कर रहनेवाले, तेजस्वी (पृषदश्वासः) चित्र विचित्र घोडोंवाले (समनसः) समान मनो भावोंवाले (वृद्धसेनाः) महती शक्तियोंवाले (मरुतः) मरुत् तथा (रोदसी) द्यावापृथ्वी (नः ईं सदन्तु) हमारे इस यज्ञमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

[१९५०] (यत्) जब (सुवृक्ति) उत्तम स्तुति होने पर (ते) वे मरुद्गण (प्रयुजः युंजते) घोडोंको अपने रथमें जोडते हैं, (अध) इसके बाद (सुदिने शरुः न) मेघसे रहित दिनमें जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाशसे सब स्थानोंको सींचता है, उसी प्रकार (एषां सेनाः) इन मरुतोंकी सेना (विश्वं इरिणं प्रुषायन्तः) सभी ऊसर जमीनको जलसे सींचते हैं, तब (एषां महिना प्र चिकित्रे) इनकी कीर्ति और बढ जाती है ॥ ९ ॥

[१९५१] (अश्विनौ) अश्विनोंकी (पूषणं) पूषाकी, (स्वतवसः हि सन्ति) जो देव अपनी शक्तिसे सम्पन्न है, (अद्वेषः विष्णुः) जो द्वेष न करनेवाला विष्णु है, (वातः) वायु है (ऋभुक्षा) सबका पति इन्द्र है, उन सबकी (अवसे) अपने रक्षणके लिए (प्र कृणुध्वं) अच्छीतरह स्तुति करो । मैं भी (सुम्नाय) सुख पानेके लिए (देवान् अच्छ ववृतीय) इन देवोंकी अच्छीतरह प्रशंसा करूं ॥ १० ॥

भावार्थ— जिस प्रकार गायें अपने बछडोंको प्यारसे चाटती हैं, उसी प्रकार हमारी बुद्धियां इस इन्द्रको प्यार करती हैं और उससे हमारी स्तुतियां उसी तरह संयुक्त होती हैं, जिस प्रकार सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छावाली स्त्री अपने पतिसे संयुक्त होती है ॥ ७ ॥

रथों पर बैठे हुए रक्षकगणोंकी तरह शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले तथा मित्रोंके समान परस्पर स्नेहपूर्वक रहनेवाले तथा समान मनवाले ये मरुत् तथा द्यावापृथ्वी हमारे यज्ञमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

मरुद्गण वायु हैं, जब ये शक्तिका उपयोग करते हैं तब मेघोंसे जल बरसाते हैं । और उन जलोंसे ये ऊसर जमीनको भी सींचकर उपजाऊ बनाते हैं । यह काम इन मरुतोंकी कीर्तिको बढानेवाला है ॥ ९ ॥

अश्विना, पोषण करनेवाले, अपनी शक्तिके आश्रयसे रहनेवाले, किसीसे द्वेष न करनेवाले व्यापक देव, वायु और इन्द्र इन सब देवोंकी मनःपूर्वक स्तुति करनी चाहिए । इनकी स्तुति करनेसे हर तरहके सुख मिलते हैं ॥ १० ॥

१९५२ इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयु- विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

[१८७]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अन्नम् । छन्दः- १ अनुष्टुब्गर्भा उष्णिक्; ३,५-७, ११ अनुष्टुप्,
११ बृहती वा; २, ४, ८-१० गायत्री ।)

१९५३ पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥

१९५४ स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥ २ ॥

१९५५ उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥

अर्थ--- [१९५२] हे (यजत्राः) पूजाके योग्य देवो ! (वसूयुः या देवेषु यतते) ऐश्वर्यको प्राप्त करानेवाली जो दीप्ति देवोंको प्रेरित करती है, (सा वः अपिप्राणी सदनी) वह तुम्हारी मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा उनको निवास करानेवाली (सा दीधितिः) वह दीप्ति (अस्मे भूयाः) हमारे अन्दर हो, ताकि हम (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१८७]

[१९५३] (यस्य ओजसा) जिसके ओजसे (त्रितः) तीनों लोकोंमें यशस्वी इन्द्रने (वृत्रं विपर्वं) वृत्रके अंग प्रत्यंग काट काटकर (अर्दयत्) उसे मार दिया, उस (महः धर्माणं तविषीं) महान्, सबको धारण करनेवाले तथा शक्तिशाली (पितुं नु स्तोषं) पालक अन्नकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[१९५४] हे (स्वादो पितो) स्वादयुक्त पालक तथा (मधो पितो) मधुर रसके पोषक देव ! (वयं त्वा ववृमहे) हम तेरी सेवा करते हैं, (अस्माकं अविता भव) तू हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ २ ॥

[१९५५] हे (पितो) पालक अन्न ! तू (शिवः मयोभुः अद्विषेण्यः) मंगलकारक, सुखकारक, किसीसे भी द्वेष न करनेवाला, (सखा सुशेवः अद्वयाः) मित्रके समान हितकारी, अच्छी तरह सेवनीय और छल कपटसे रहित है, अतः तू (शिवाभिः ऊतिभिः नः उप चर) कल्याणकारक संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥ ३ ॥

भावार्थ--- देवोंके अन्दर जो तेज है वह विद्वानोंको उत्तम कामोंमें प्रेरित करता है और वह मनुष्योंकी सब कामनाओंको पूर्ण करके उनका जीवन उत्तम और श्रेष्ठ बनानेवाला है। उसे प्राप्त करनेवाला मनुष्य उत्तम अन्न, उत्तम बल और दीर्घायुसे युक्त होता है ॥ ११ ॥

इस अन्नके बलसे इन्द्रने वृत्रके सब अंग काट काटकर उसे नष्ट किया । अन्नरूप इन्द्र अर्थात् सूर्यने प्रकाशको ढकनेवाले अन्धकारका नाश किया । यह अन्न महान् और धारक होनेसे तनूनपात् अर्थात् शरीरको न गिरानेवाला है अर्थात् शरीरको शक्तिशाली बनाता है ॥ १ ॥

यह अन्न स्वादिष्ट और मधुर रसोंका पोषक है, यह मनुष्योंको पुष्ट करता है और इस प्रकार उनकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

इस मंत्रका देवता इळः अर्थात् अन्न है । यह अन्न कल्याणकारक, सुखकारक सबको समान रूपसे पुष्ट करनेवाला और हितकारी है, इसीलिए इस अन्नका आदर करना चाहिए ॥ ३ ॥

१९५६ तव॒ त्ये पि॑तो॒ रसा॒ रजां॒स्यनु॒ विष्ठि॑ताः । दि॒वि वाता॑ इव श्रि॒ताः ॥ ४ ॥

१९५७ तव॒ त्ये पि॑तो॒ दद॑त॒स्तव॑ स्वादिष्ठ॒ ते पि॑तो ।
प्र स्वा॒द्मानो॒ रसा॑नां तुवि॒ग्रीवा॑ इवेरते ॥ ५ ॥

१९५८ त्वे पि॑तो म॒हानां॑ दे॒वानां॒ मनो॑ हि॒तम् ।
अका॑रि॒ चारु॑ के॒तुना॒ तवाहि॒मव॑सावधीत् ॥ ६ ॥

१९५९ यद॒दो पि॑तो॒ अज॑गन् वि॒वस्व॒ पर्व॑तानाम् ।
अत्रा॑ चिन्नो मधो पि॒तो ऽरं॑ भ॒क्षाय॑ गम्याः ॥ ७ ॥

१९६० यद॒पामोष॑धीनां परिं॒शमा॑रि॒शाम॑हे । वाता॑पे॒ पीव॒ इद्भ॑व ॥ ८ ॥

अर्थ— [१९५६] हे (पितो) पालक अन्न ! (तव त्ये रसाः) तेरे वे रस (रजांसि अनु विष्ठिताः) लोकोंमें उसी तरह प्रतिष्ठित हैं, जिस तरह (दिवि श्रिताः वाताः इव) अन्तरिक्षमें वायु प्रतिष्ठित हैं ॥ ४ ॥

[१९५७] हे (पितो) पालक अन्न ! (तव त्ये ददतः) तेरे वे उपासक तेरा दान करते हैं, हे (स्वादिष्ठ पितो) मधुरतासे परिपूर्ण पिता अन्न देव ! (ते तव) वे तेरा पोषण ही करते हैं । (रसानां स्वाद्मानः) अन्नके रसोंको खानेवाले (तुविग्रीवाः इव ईरते) मोटी गर्दनवाले होकर चलते हैं ॥ ५ ॥

[१९५८] हे (पितो) सबके पालक अन्न देव ! (महानां देवानां मनः) बडे बडे देवोंका मन भी (त्वे हितं) तुझमें लगा रहता है । इन्द्रने (तव चारु केतुना) तेरे उत्तम बल एवं (अवसा) रक्षणशक्तिसे युक्त होकर (अहिं अवधीत्) अहि राक्षसको मारा और यह बडा कार्य (अकारि) किया ॥ ६ ॥

[१९५९] हे (पितो) पालक अन्न ! (यत्) जब (विवस्व पर्वतानां) जलयुक्त मेघोंका (अदः) यह शुभ जल (अजगन्) तेरे पास पहुंचता है, तब (मधो पितो) हे स्वादिष्ट अन्न ! (अत्र चित्) इस संसारमें (भक्षाय अरं गम्याः) हमारे खानेके लिए तू हमें पर्याप्त प्राप्त हो ॥ ७ ॥

[१९६०] (यत्) जब हम (अपां ओषधीनां) जलों औषधियोंसे उत्पन्न (परिंशं) चारों ओरसे सुखकारक अन्नको (आरिशामहे) खाते हैं, तब (वातापे) हे शरीर ! तू (पीवः इत् भव) मोटा– हृष्टपुष्ट हो ॥ ८ ॥

वातापिः— शरीर- '' वातेन प्राणेन आप्नोति स्वनिर्वाहं– जो प्राणसे अपना निर्वाह चलाता है । सायण)

भावार्थ— जिस प्रकार अन्तरिक्षमें अनेक तरहके वायु संचार करते हैं, उसी प्रकार इस अन्नके सभी तरहके रस इन लोकोंमें प्रतिष्ठित हैं अथवा रज अर्थात् धूलीसे भरी इस पृथ्वीमें सभी तरहके रस विद्यमान हैं ॥ ४ ॥

अन्नका दान करना ही अन्नका पोषण है । जो अकेला ही खाता है, वह पाप खाता है और अन्नकी हिंसा करता है, अतः हमेशा अन्नका दान करके ही खाना चाहिए । जो इस प्रकार अन्नका दान करते हुए खाते हैं, वे मोटी गर्दनवाले अर्थात् हृष्टपुष्ट शरीरवाले होकर सर्वत्र विचरते हैं ॥ ५ ॥

यह अन्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि बडे बडे देव भी अमृतको छोडकर अन्न प्राप्त करनेकी कोशिश करते हैं । इस अन्नकी शक्तिसे परिपुष्ट होकर राजागण अपने शत्रुविनाशरूपी बडे बडे कार्योंको करते हैं ॥ ६ ॥

जब पानीसे भरे हुए बादलोंका शुभ जल अन्नके पास पहुंचता है अर्थात् जब जलवृष्टिके कारण फसल अच्छी होती है, तब मनुष्योंके खानेके लिए अन्न पर्याप्त मात्रामें मिलता है ॥ ७ ॥

जलसे औषधियां उत्पन्न होती हैं और ओषधिसे अन्न । अतः जब जल और ओषधियोंसे उत्पन्न अन्नका हम भक्षण करेंगे, तब हमारा शरीर हृष्टपुष्ट होगा ॥ ८ ॥

१९६१ यत् ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद् भव ॥ ९ ॥
१९६२ करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद् भव ॥ १० ॥
१९६३ तं त्वा वयं पितो वचोभि--र्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमाद--मस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥

[१८८]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- आप्रीसूक्तं= [१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः] । छन्दः- गायत्री ।)

१९६४ समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥
१९६५ तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥

अर्थ— [१९६१] हे (सोम) सुखकारक अन्न ! (यत्) जब (गवाशिरः यवाशिरः ते भजामहे) गौके दूध घृतादिसे मिश्रित एवं जौ गेहूं आदिसे युक्त अन्न खाते हैं, तब (वातापे पीवः इत् भव) हे शरीर ! तू हृष्ट पुष्ट हो ॥९॥

[१९६२] हे (करंभ ओषधे) पके हुए अन्न ! तू (पीवः वृक्कः उदारथिः भव) पुष्टिकारक, रोगोंका नाशक एवं इन्द्रियोंको उन्नत करनेवाला हो । हे (वातापे पीवः इत् भव) शरीर तू पुष्ट हो ॥ १० ॥

[१९६३] हे (पितो) पालक अन्न ! (देवेभ्यः सधमादं) देवोंको आनन्द देनेवाले तथा (अस्मभ्यं सधमादं) हमें आनन्द देनेवाले (तं त्वां) उस तुझे (वचोभिः सुषूदिम) स्तुतियोंके सहित उसी प्रकार निचोडते हैं, जिस तरह (गावः हव्या न) गायें हविके योग्य घी दूधको निचोडती हैं ॥ ११ ॥

[१८८]

[१९६४] हे (सहस्रजित्) हजारों शत्रुओंको जीतनेवाले अग्ने ! (देवैः समिद्धः देवः) देवोंके द्वारा प्रज्वलित तेजस्वी तू (अद्य राजसि) आज प्रदीप्त हो रहा है । (दूतः कविः) दूत और ज्ञानी तू (हव्या वह) हमारी हवियोंको देवोंके पास पहुंचा ॥ १ ॥

[१९६५] (तनूनपात् यज्ञः) शरीरको न गिरानेवाला पूज्य यह अग्नि (सहस्रिणीः इषः दधत्) हजारों तरहके अन्नोंको धारण करता हुआ (ऋतं यते) यज्ञमें जाता है और वहां (मध्वा समज्यते) मधुर हवियोंसे संयुक्त होता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जब अन्नमें जौ आदि पदार्थ एवं गायके दूध, घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाये जाते हैं, तब शरीर पुष्ट होता है ॥ ९ ॥

हमेशा पका हुआ अन्न ही खाना चाहिए । ऐसा अन्न पुष्टिकारक, रोगोंका नाशक और इन्द्रियोंके लिए पोषक होता है । कच्चा अन्न अनेक रोगोंका कारण होता है । पके अन्न खानेसे शरीर पुष्ट होता है ॥ १० ॥

यह अन्न देवोंको और मनुष्योंको आनन्द देते हैं । जिस प्रकार एक ग्वाला बडे प्रेमसे मीठे वचन बोलता हुआ गायका दूध दुहता है उसी तरह बडे प्रेमसे अन्नका रस निकालना चाहिए । इस प्रकार प्रेमसे निकाला गया एवं प्रेमसे खाया गया अन्न रस पोषक होता है ॥ ११ ॥

अन्य देवों द्वारा प्रदीप्त किया गया अग्नि अत्यन्त तेजस्वी दिखाई देता है । यह अनेकों अन्नोंको धारण करता है और यज्ञमें मधुर हवियोंसे संयुक्त होता है ॥ १-२ ॥

१९६६ आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥
१९६७ प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
१९६८ विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥
१९६९ सुरुक्मे हि सुपेशसा ऽधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥
१९७० प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥
१९७१ भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥

अर्थ— [१९६६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (सहस्रसा असि) हजारों तरहके ऐश्वर्यसे युक्त है, इसलिए (ईड्यः) पूज्य तू (नः आजुह्वानः) हमारे द्वारा बुलाया जाता हुआ (यज्ञियान् देवान् आ वक्षि) पूजाके योग्य देवोंको ले आ ॥ ३ ॥

[१९६७] (प्राचीनं सहस्रवीरं बर्हिः) प्राचीन और हजारों वीर जिस पर बैठते हैं ऐसे आसनको मनुष्य (ओजसा) अपने बलसे (अस्तृणन्) बिछाते हैं। हे (आदित्याः) सूर्यके समान तेजस्वी वीरो ! (यत्र विराजथ) जहां तुम बैठते हो ॥ ४ ॥

[१९६८] (विराट् सम्राट् विभ्वीः) विशेष तेजस्वी, अच्छी तरहसे प्रकाशित अनेक प्रकारके (प्रभ्वीः बह्वीः भूयसीः च याः दुरः) विशेष शोभायमान् अनेकों जो द्वार हैं, वे (घृतानि अक्षरन्) पानी बहाते हैं ॥ ५ ॥

[१९६९] (सुरुक्मे सुपेशसा) उत्तम तेजवाले तथा उत्तम रूपवाले उषा और रात्रि (अधि श्रिया विराजतः) और अधिक शोभासे युक्त होते हैं। हे (उषसौ) उषा और रात्रि ! तुम दोनों (इह सीदतां) यहां आकर बैठो ॥ ६ ॥

[१९७०] (प्रथमा सुवाचसा) मुख्य श्रेष्ठ उत्तम वाणीसे युक्त (दैव्या कवी होतारा) तेजस्वी और ज्ञानी होता (नः इमं यज्ञं यक्षतां) हमारे इस यज्ञको सम्पूर्ण करें ॥ ७ ॥

[१९७१] हे (भारति इळे सरस्वति) भारति, इळा और सरस्वती ! (याः वः सर्वाः उप ब्रुवे) जिन तुम सबको मैं बुलाता हूँ, (ताः) वे तुम सब (नः श्रिये चोदयत) हमें ऐश्वर्यकी तरफ प्रेरित करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि हजारों तरहके ऐश्वर्य धारण करता है। अतः हम उसकी प्रार्थना करते हैं, वह अनेकों देवोंको हमारे यज्ञमें बुलाकर लावे ॥ ३ ॥

यज्ञमें हजारों वीर जिस पर बैठ सकते हैं, ऐसे आसन बिछाते हैं, जिस पर सूर्यके समान तेजस्वी जन बैठते हैं ॥ ४ ॥

यज्ञके द्वार अनेक तरहसे सजाए जानेके कारण विशेष तेजस्वी दीख पडते हैं और यज्ञमें अनेकों द्वार बनाये जाते हैं, वे सब द्वार मानों तेजस्वी पदार्थ प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

उषा और रात्रि ये दोनों प्रथम ही उत्तम तेजस्वी और सुन्दर रूपवाली हैं, पर जब इन कालोंमें यज्ञ किए जाते हैं, तब ये दोनों और ज्यादा तेजसे युक्त हो जाती हैं ॥ ६ ॥

दिव्य और उत्तम श्रेष्ठ ज्ञानी होता उषासानक्ता हमारे इस यज्ञको सम्पूर्ण करें। दिन और रात्रिमें यज्ञ होनेके कारण ये दोनों होता हैं, जो यज्ञको पूर्ण करते हैं ॥ ७ ॥

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति इन तीनोंकी सदा उपासना करनी चाहिए। इन तीनोंका सदा सम्मान करना चाहिए, क्योंकि ये सदा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली होती हैं। जो इनकी उपासना करता है, वह ऐश्वर्यशाली होता है ॥ ८ ॥

१९७२ त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान् त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥
१९७३ उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥
१९७४ पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥

[१८९]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९७५ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १ ॥

अर्थ— [१९७२] (त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः) त्वष्टादेव रूपोंको बनानेमें समर्थ है, वही (विश्वान् पशून् समानजे) सम्पूर्ण पशुओंको प्रकट करता है । हे त्वष्टादेव ! तू (नः) हमारे लिए (तेषां स्फातिं आ यज) उन पशुओंको समृद्ध कर ॥ ९ ॥

[१९७३] हे (वनस्पते) वनस्पते ! तू (त्मन्या) स्वयंकी शक्तिसे (देवेभ्यः पाथः उप सृज) देवोंके लिए अन्न तैय्यार कर, तब (अग्निः हव्यानि सिष्वदत्) अग्नि हव्योंको खाये ॥ १० ॥

[१९७४] (देवानां पुरोगा अग्निः) देवोंके आगे रहनेवाला अग्नि (गायत्रेण समज्यते) गायत्री मंत्रसे संयुक्त होता है और फिर (स्वाहाकृतीषु रोचते) स्वाहाकारपूर्वक दी गई आहुतियोंके कारण प्रदीप्त होता है ॥ ११ ॥

[१८९]

[१९७५] हे (देव अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! (राये अस्मान् सुपथा नय) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए हमें उत्तम मार्गसे ले चल, तू (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) हमारे सब कार्योंको जाननेवाला है, अतः (अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि) हमसे इस कुटिल पापको दूर कर, (ते भूयिष्ठां नमः उक्तिं विधेम) तुझे हम बार बार नमस्कारके वचनोंको कहें ॥ १ ॥

१ हे अग्ने राये अस्मान् सुपथा नय— हे तेजस्वी देव ! ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हमें तू उत्तम मार्गसे ही ले चल ।
२ विश्वानि वयुनानि विद्वान्— वह देव हमारे सभी कर्मोंको जानता है ।
३ अस्मत् जुहुराणं एनः युयोधि— हम कुटिल पापोंसे दूर रहें ।
४ भूयिष्ठां नमः उक्तिं विधेम— प्रतिदिन इस देवकी भक्ति करनी चाहिए । पापसे बचनेका एकमात्र उपाय परमात्माकी उपासना है ।

भावार्थ— त्वष्टा देव इस संसारके सभी मनुष्यों एवं पशुओंको बनाता है, वही सब प्राणियोंमें अलग अलग रूपोंका निर्माण करता है और वही सभी पशुओंको बढाता है ॥ ९ ॥

यज्ञकी समिधायें अग्निको प्रज्वलित करती हैं, उस प्रज्वलित अग्निमें हवि डाली जाती है और वह हवियां देवोंका भोजन तैय्यार करती हैं ॥ १० ॥

यह अग्नि हमेशा देवोंके आगे रहता है । इसीलिए इसे अग्नि कहा है । यज्ञमें अग्निके प्रज्वलित होनेपर गायत्री छन्दके मंत्रोंका पाठ किया जाता है और अन्तमें " स्वाहा " शब्दके साथ उस अग्निमें आहुतियां दी जाती हैं, जिनसे अग्नि और अधिक प्रज्वलित होता है ॥ ११ ॥

धन भी हमेशा उत्तम मार्गसे ही प्राप्त करना चाहिए । क्योंकि वह सर्वव्यापक प्रभु हमारे सब कर्मोंको जानता है उसकी प्रतिदिन प्रार्थना करनेसे मनुष्य पापकर्मसे दूर रहता है ॥ १ ॥

१९७६ अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान् स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥ २ ॥
१९७७ अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥
१९७८ पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१९७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं नव्यः) तू अत्यन्त नवीन अथवा स्तुत्य है तू (स्वस्तिभिः अस्मान् विश्वा दुर्गाणि अति पारय) इन कल्याणकारी मार्गोंसे हमें सारे दुर्गम पापोंसे पार लगा । (नः पृथ्वी च पूः बहुला उर्वी भव) हमारी पृथ्वी और नगर प्रशस्त हों । तू हमारे (तोकाय तनयाय शं योः भव) सन्तानोंके लिये तथा पुत्रोंके लिये सुख प्रदान करनेवाला हो ॥ २ ॥

१ स्वस्तिभिः अस्मान् विश्वा दुर्गाणि पारय— कल्याणकारी मार्गोंसे हम सब तरहके दुर्गम पापों एवं दुःखोंसे पार हों ।

२ पृथ्वीः पूः च उर्वी भव— यह पृथ्वी और नगर हमारे लिए विस्तृत और उत्तम हों ।

[१९७७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अस्मत् अमीवाः युयोधि) तू हमारे पाससे रोगोंको दूर कर, (अन-ग्नित्राः कृष्टीः अभि अमन्त) अग्निहोत्र न करनेवाले मनुष्य चारों ओरसे रोगी होते हैं । (पुनः अस्मभ्यं सुविताय देवः) फिर हमारे कल्याणके लिए दिव्यगुण युक्त तू (विश्वेभिः अमृतेभिः क्षां यजत्र) सम्पूर्ण, मरण रहित देवताओंके साथ पृथ्वी पर संघटित होकर आ ॥ ३ ॥

१ अन्-अग्नित्राः, कृष्टीः अभि अमन्त— अग्निकी उपासना न करनेवाले अर्थात् नास्तिक मनुष्य रोगी होते हैं ।

[१९७८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अजस्रैः पायुभिः नः पाहि) सतत अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर, (उत प्रिये सदने आ शुशुकान्) और हमारे प्रिय यज्ञगृहमें आकर सर्वत्र प्रकाशित हो । हे (यविष्ठ) सदा तरुण रहनेवाले अग्ने ! (ते जरितारं नूनं भयं मा विदत्) तेरी स्तुति करनेवालेको किसी प्रकारका भय प्राप्त न हो, तथा हे (सहस्वः) बलसे उत्पन्न ! (अपरं मा) दूसरे समयमें भी भयसे भयभीत न हो ॥ ४ ॥

१ ते जरितारं भयं अपरं मा विदत्— इस अग्निकी उपासना करनेवालेको आज या कल कभी भी भय प्राप्त नहीं होता ।

भावार्थ— हम सदा कल्याणमय मार्ग पर चलते हुए सारे दुःखोंसे पार हो जाएं और यह सारा विश्व हमारे लिए सुखदायक हो ताकि हम अपने पुत्र पौत्रादिकोंके साथ आनन्दसे रह सकें ॥ २ ॥

अग्निमें प्रतिदिन हवन करनेसे सारे रोग दूर हो जाते हैं, पर जो हवन नहीं करता वह रोगी रहता है । इसलिए हवन कल्याणकी प्राप्तिका एक मुख्य साधन है ॥ ३ ॥

यह सदा उत्साहसे भरपूर अग्नि अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करता है, इसीलिए वे कभी भी भयभीत नहीं होते ॥ ४ ॥

१९७९ मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाऽविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन् परा दाः ॥ ५ ॥
१९८० वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद् गृणानो अग्ने तन्वे वरूथम् ।
विश्वाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सो- रभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥ ६ ॥
१९८१ त्वं ताँ अग्न उभयान् वि विद्वान् वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भू- र्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥
१९८२ अवोचाम निवचनान्यस्मिन् मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१९७९] हे (सहसावन् अग्ने) महाबली अग्ने ! (नः अघाय अविष्यवे दुच्छुनायै) हमको पाप करनेवाले, अधर्मसे अन्नको खानेवाले, सुखके नाश करनेवाले (रिपवे मा अवसृजः) शत्रुओंके हाथमें मत सौंप । और (नः दत्वते दशते मा) हमें दांतोंसे युक्त डसनेवाले सर्पादिके अधीन मत कर तथा (अदते मा रिषते मा परा दाः) हिंसकों एवं तस्कर राक्षसादिके हाथोंमें भी कभी मत दे ॥ ५ ॥

[१९८०] हे (ऋतजात अग्ने) यथार्थ उत्पन्न अग्ने ! (तन्वे वरूथं गृणानः त्वावान्) शरीर पुष्टिके लिये तुझ वरणीयकी स्तुति करता हुआ तेरा उपासक (विश्वात् रिरिक्षोः उत वा निनित्सोः वि घ यंसत्) सब हिंसक एवं निन्दक व्यक्तियोंसे अपनेको बचाता है । हे (देव) दिव्यगुण युक्त ! तू (अभिह्रुतां हि विष्पट् असि) सामनेसे कुटिल आचरण करनेवाले दुष्टोंका निश्चयसे दमन करनेवाला है ॥ ६ ॥

१ तन्वे वरूथं गृणानः त्वावान् रिरिक्षोः निनित्सोः वि यंसत्— अपने शरीरकी पुष्टि करनेके लिए तुझ वरणीय स्तुति करनेवाला तेरा उपासक हिंसक और निन्दकोंसे दूर रहता है ।

[१९८१] हे (यजत्र अग्ने) यजनीय अग्ने ! (त्वं तान् उभयान् विद्वान्) तू उन दोनों प्रकारके मनुष्योंको जानकर (प्रपित्वे मनुषः वेषि) प्रातःकाल मनुष्योंके पास जाता है । (अक्रः मनवे अभिपित्वे शास्यः भूः) आक्रमण करनेवाला तू मनुष्योंको यज्ञकालमें उसी प्रकार शिक्षा दे, जिस प्रकार (मर्मृजेन्यः उशिग्भिः) यजमान ऋत्विजों द्वारा शिक्षित होता है ॥ ७ ॥

१ उभयान् विद्वान्— यह अग्नि यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले अथवा देव और मनुष्य दोनोंको जानता है।

[१९८२] (मानस्य सूनुः सहसाने अस्मिन् अग्नौ) यज्ञके उत्पादक और शत्रुनाशक इस अग्निके लिए हम (निवचनानि अवोचाम) सारे स्तोत्रोंको कहते हैं । (वयं ऋषिभिः सहस्रं सनेम) हम ऋषियोंके साथ असंख्य धनोंका उपभोग करें तथा (इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम) अन्न, बल और दीर्घ आयुसे युक्त हों ॥ ८ ॥

१ मानं— यज्ञ; मापन करके यज्ञ वेदि बनाई जाती है ।

भावार्थ— यह अग्नि दुष्ट शत्रु एवं हिंसक प्राणियोंसे अपने उपासकोंकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

अग्निकी उपासना करनेवाला शरीरसे पुष्ट होकर हिंसक और निन्दक व्यक्तियोंको दूर करता है । वह कुटिल आचरण से सर्वदा दूर रहता है ॥ ६ ॥

यह दोनों तरहके मनुष्योंको जानकर केवल सत्कर्मियोंका ही पक्ष लेता है । यह सब मनुष्योंका गुरु है और उन्हें सन्मार्ग पर चलनेकी शिक्षा देता है ॥ ७ ॥

यज्ञके पालक इस अग्निके लिए सब स्तुति करते हैं । हम इन इन्द्रियरूपी ऋषियोंको बलवान् कर अनेक प्रकारके धन को प्राप्त करें । इन्द्रियोंको बलवान् अपने शरीरमें प्राणाग्निको बलवान् बनाकर ही किया जा सकता है ॥ ८ ॥

[१९०]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- बृहस्पतिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१९८३ अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥

१९८४ तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत् समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥

१९८५ उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत् सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥

---

[१९०]

अर्थ—[१९८२] (सु-रुचः नवमानस्य यस्य) सुन्दर तेजस्वी प्रशंसनीय ऐसे जिसके (गाथान्यः) वचनोंको (देवाः मर्ताः आ शृण्वन्ति) देवगण और मनुष्य श्रद्धासे सुनते हैं, ऐसे उस (अन-अर्वाणं, वृषभं, मन्द्रजिह्वं नव्यं बृहस्पतिं) अद्वेष्य, बलवान्, मधुर भाषण करनेवाले स्तुतिके योग्य बृहस्पतिको (अर्कैः आ वर्धय) स्तोत्रोंसे बढाओ ॥ १ ॥

१ सु-रुचः नवमानस्य यस्य गाथान्यः देवाः मर्ताः आ शृण्वन्ति— सुन्दर कान्तिवाले, प्रशंसनीय, जिस विद्वान्के भाषणोंको देव और मनुष्य ध्यानपूर्वक सुनते हैं।

[१९८४] (ऋत्वियाः वाचः तं उप सचन्ते) ऋतुके अनुसार बोली गई वाणियां उसकी समीपसे सेवा करती हैं। (यः सर्गः नः देवयतां असर्जि) जिसने नवरचनाके समान देव बननेकी इच्छा करनेवालोंको उत्पन्न किया। (अंजः मातरिश्वा सः हि बृहस्पतिः) प्रगति करनेवाले वायुके समान वह बृहस्पति (ऋते) यज्ञमें (वरांसि विभ्वा सं अभवत्) श्रेष्ठ वस्तुओंके साथ अपनी व्यापक शक्तिसे उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

[१९८५] यह बृहस्पति (उपस्तुतिं) समीपसे की गई स्तुतिको (नमसः उत् यतिं च) नमनके लिए ऊपर हाथ जोडनेको और (श्लोकं) श्लोकको (सविता बाहू इव) सूर्यके बाहू फैलानेके समान (प्र यंसत्) प्रयत्नपूर्वक स्वीकार करे। (यः) जो (अ-रक्षसः अस्य क्रत्वा) क्रूरतारहित इसके अपने कर्तृत्वसे (अहन्यः) दिनके प्रकाशके समान (भीमः मृगः न) भयंकर सिंहके समान (तुविष्मान् अस्ति) बलवान् है ॥ ३ ॥

भावार्थ—उत्तम तेजस्वी और शास्त्रज्ञानसे पूर्ण उत्तम विद्वान्का भाषण विद्वान् और साधारण मनुष्य सभी श्रद्धा एवं भक्तिसे सुनते हैं। वह शास्त्रज्ञानी सबसे प्रेम करनेवाला, मधुरभाषण करनेवाला होनेसे सबके द्वारा पूजाके योग्य होता है ॥ १ ॥

ऋतुके अनुकूल कही गई वाणियां उसकी सेवा करती हैं। उसकी स्तुति करती हैं। जिसने नवरचनाके समान देव बननेकी इच्छा करनेवालोंको उत्पन्न किया स्वच्छ वायुके समान वह बृहस्पति यज्ञमें श्रेष्ठ वस्तुओंके साथ अपनी व्यापकशक्तिके साथ उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥

जो राक्षसभावरहित इसके अपने कर्तृत्वसे भयंकर सिंहके समान बलवान् है वह बृहस्पति समीपसे की गई स्तुतिको तथा नमस्कारके लिए ऊपर किए हाथ जोडनेको तथा श्लोकोंको सूर्यके बाहु फैलानेके समान स्वीकार करे ॥ ३ ॥

१९८६ अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्या — मत्यो न यंसद् यक्षभृद् विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४ ॥
१९८७ ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत् पियारुम् ॥ ५ ॥
१९८८ सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नो ऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥
१९८९ सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्त — र्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१९८६] (अस्य श्लोकः दिवि पृथिव्यां ईयते) इस बृहस्पतिका यश द्युलोक और पृथिवीलोकमें फैलता है। (अत्यः न) शीघ्र चलनेवाले घोडेके समान (यक्षभृत् वि-चेताः यंसत्), यजनीयका भरणपोषण करनेवाला, विशेष बुद्धिमान् यह बृहस्पति प्रयत्न करता है। (मृगाणां हेतयः न) मृगोंको मारनेवाले शस्त्रोंके समान (बृहस्पते इमाः) बृहस्पतिके ये शस्त्र (द्यून्) दिनमें (अहिमायान् अभि यन्ति) छली कपटी असुरोंकी ओर जाते हैं। उनको मारते हैं ॥ ४ ॥

[१९८७] हे (देव) देव! (ये पज्राः पापाः) जो धनवान् पापी (भद्रं त्वा) कल्याण करनेवाले तुझको (उस्रिकं मन्यमानाः उप-जीवन्ति) बूढे बैल जैसा निर्वीर्य मानकर तेरे पास जाकर जीवित रहते हैं, तुम (दूढ्ये) उन दुष्ट बुद्धिवालोंको (वामं न अनुददासि) धन नहीं देते हो। हे (बृहस्पते) बृहस्पति देव! तुम (पियारुं इत् चयसे) सोमपान करनेवालेको ही चुनते हो ॥ ५ ॥

[१९८८] बृहस्पति (सु-प्र-एतुः सु-यवसः पन्थाः न) उत्तम रीतिसे जानेवाले, तथा उत्तम अन्नवालेके लिए उत्तम मार्गके समान है, तथा (दुःनियन्तुः) कठिनतासे रोके जानेवाले मनुष्यके लिए (परि-प्रीतः न) चारों ओरसे प्रेम करनेवाले मित्रके समान है। (अन्-अर्वाणः ये) पापसे रहित जो मनुष्य (नः अभि चक्षते) हमारे सामने दृष्टि फेंकते हैं, वे (अपीवृताः अप ऊर्णुवन्तः अस्थुः) अज्ञानसे ढके होनेपर अज्ञानको हटाकर ज्ञानवाले होते हैं ॥ ६ ॥

[१९८९] (यं स्तुभः) जिस बृहस्पतिको स्तोत्र (अवनयः न) भूमियोंके समान (स्रवतः रोधचक्राः समुद्रं न) तथा बहती हुई अनेक भंवरोंवाली नदियाँ जैसे समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार (सं यन्ति) प्राप्त होते हैं। (गृध्रः सः विद्वान् बृहस्पतिः) सुखोंको चाहनेवाला वह विद्वान् बृहस्पति (उभयं अन्तः) दोनोंके बीचमें बैठा हुआ (तरः आपः च चष्टे) नाव और जल दोनोंको देखता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— इस बृहस्पतिका यश द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैलता है। घुडदौडके घोडेके समान विद्वानोंका भरण-पोषण करनेवाला विशेष बुद्धिमान् यह बृहस्पति लोकोंकी सहायता करनेका प्रयत्न करता है। मृगोंको मारनेके शस्त्रोंके समान बृहस्पतिके ये शस्त्र दिनोंमें छली शत्रुओंकी ओर जाते हैं। उनको मारते हैं ॥ ४ ॥

हे देव! जो धनवान् पापी जन हैं वे कल्याण करनेवाले तुझको बूढा बैल अर्थात् निर्वीर्य मानकर निरुपद्रवी मानकर तेरे पास जाते हैं, और जीवित रहते हैं। ऐसे दुष्ट बुद्धिवालोंको तुम धन नहीं देते हो। हे बृहस्पते! तुम सोमपान करनेवालेको ही चुनते हो ॥ ५ ॥

यह बृहस्पति उत्तम रीतिसे जानेवाले तथा उत्तम अन्नवालेके लिए उत्तम मार्गके समान है। कठिनतासे रोके जानेवाले मनुष्यके लिए चारों ओरसे प्रेम करनेवाले मित्रके समान है। निष्पाप होकर जो मनुष्य हमारे सामने दृष्टी फेंकते हैं, वे अज्ञानसे ढके रहनेपर भी अज्ञानको हटाकर ज्ञानवाले होते हैं ॥ ६ ॥

जिस बृहस्पतिको स्तोत्र, भूमियोंके समान तथा समुद्रको प्राप्त होनेवाली बहती हुई; अनेक भंवरोंवाली नदियोंके समान प्राप्त होते हैं। सुखोंको चाहनेवाला वह विद्वान् बृहस्पति दोनोंके बीचमें बैठा हुआ नाव और जल दोनोंको देखता है ॥ ७ ॥

१९९० एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥

[१९१]

(ऋषिः- अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । देवता- अप्तृणसूर्याः (विषघ्नोपनिषद्) । छन्दः- अनुष्टुप्; १०-१२ महापंक्तिः, १३ महाबृहती ।)

१९९१ कङ्कतो न कङ्कतो ऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥

१९९२ अदृष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥

१९९३ शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९९०] (महः, तुवि-जातः, तुविष्मान्) महान्, बहुतोंमें प्रसिद्ध, बलवान् (वृषभः बृहस्पतिः देवः) सुखोंके वर्षक बृहस्पति देवकी (एव आ धायि) इस प्रकार स्तुति की जाती है । (सः स्तुतः) वह पूजित होकर (नः वीरवद् गोमद् , धातु) हमें वीर पुत्रोंवाला, गायोंवाला धन देवे, हम (एषं वृजनं, जीरदानुं विद्याम) इच्छा करने योग्य बलवान् , तेज देनेवाले देवको जानें ॥ ८ ॥

[१९१]

[१९९१] (कंकतः न कंकतः) विषैले तथा विषरहित तथा (सतीनकंकतः) जलादिमें रहनेवाले थोडे विषवाले (द्वौ प्लुषी अदृष्टा) विषैले और विषरहित दोनों तरहके प्राणी दाह उत्पन्न करनेवाले और न दिखाई देनेवाले हैं, वे (अलिप्सत) मेरे शरीरको विषसे व्याप्त लेते हैं ॥ १ ॥

[१९९२] (आयती अदृष्टान् हन्ति) आती हुई न दीखनेवाले सांपोंको मारती है, (अथ परायती हन्ति) और जाती हुई मारती है, (अथ अवघ्नती हन्ति) और उन्हें कूटती जाती हुई मारती है (अथ) तथा (पिंषती पिनष्टि) पीसी जाती हुई उन सांपोंको पीसती है ॥ २ ॥

[१९९३] कुछ सांप (शरासः) सरकण्डोंमें रहते हैं, कुछ (कुशरासः) छोटे सरकण्डोंमें रहते हैं, कुछ (दर्भासः) कुशाघासमें रहते हैं, (उत सैर्याः) और कुछ नदियों, तालाबोंके किनारेके घासमें छिपे रहते हैं, कुछ (मौञ्जा) कुछ मुंजमें रहते हैं और कुछ (वैरिणा अदृष्टाः) वीरण नामक घासमें छिपे हुए बैठे रहते हैं, ऐसे (सर्वे साकं न्यलिप्सत) सभी सांप लिपटनेवाले होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— बहुतोंमें प्रसिद्ध, बलवान् सुखोंके वर्षक देवकी इस प्रकार स्तुति की जाती है वह पूजित होकर हमें वीर पुत्रोंवाला, धन देवे हम प्राप्त करने योग्य बलवान् तेज देनेवाले देवको जानें ॥ ८ ॥

कुछ सांप अत्यन्त विषैले और कुछ सांप विषरहित होते हैं, कुछ जलमें रहनेवाले सांप रहते हैं । पर जब विषैले या विषरहित अथवा जलीय या स्थलीय सांप काटते हैं, तो शरीरमें दाह उत्पन्न करते हैं और वह दाह सारे शरीरमें फैल जाता है ॥ १ ॥

यह औषधि आती हुई और जाती हुई सांपोंको मारती है और उन्हें पूरी तरह विषरहित कर देती है ॥ २ ॥

सांप कई स्थानों पर रहते हैं, कुछ सरकण्डोंमें, कुछ कुशामें, कुछ नदी तालाबोंके किनारों पर उत्पन्न होनेवाली घासमें, कुछ मुंजमें और कुछ वीरणमें बैठे रहते हैं, जो मनुष्यको देखकर उसके शरीरसे लिपट जाते हैं ॥ ३ ॥

१९९४ नि गावो गोष्ठे असदन् नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥
१९९५ एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥
१९९६ द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥
१९९७ ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥
१९९८ उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

अर्थ—[१९९४] (गावः गोष्ठे नि असदन्) गायें बाडेमें बैठ जाती हैं, (मृगासः नि अविक्षत) पशु भी अपने स्थानोंमें विश्राम लेते हैं, (जनानां केतवः नि) मनुष्योंकी इन्द्रियां भी जब विश्राम लेने लगती हैं, तब (अदृष्टाः नि अलिप्सत) न दीखनेवाले ये सांप लिपट जाते हैं ॥ ४ ॥

[१९९५] (प्रदोषं तस्कराः इव) रात्रिके समय चोरोंके समान (त्ये एते प्रति अदृश्रन्) वे ये सांप दीखने लगते हैं । (अदृष्टाः विश्वदृष्टाः) दिनमें न दीखनेवाले ये रातको सबके द्वारा दीखने लग जाते हैं, इसलिए हे मनुष्यो ! (प्रतिबुद्धाः अभूतन) तुम सब सावधान रहो ॥ ५ ॥

[१९९६] हे सर्पो ! (वः पिता द्यौः) तुम्हारा पिता द्युलोक है, (पृथिवी माता) पृथिवी माता है (सोमः भ्राता) सोम भाई है, (अदितिः स्वसा) अदिति बहिन है, (अदृष्टाः विश्वदृष्टाः) तुम स्वयं अदृश्य रहते हुए भी सबको देखनेवाले हो, अतः हे सर्पो ! तुम (तिष्ठत) स्थिर रहो और (सु कं इळयत) आनन्दपूर्वक विचरो ॥ ६ ॥

[१९९७] (ये अंस्याः) जो पीठके बल चलनेवाले हैं, (ये अंग्याः) जो पैरोंके बल चलनेवाले हैं, (सूचीकाः) जो सुईके समान छेदनेवाले हैं, (ये प्रकंकता) जो महाविषैले हैं, (किं च) और जो (इह अदृष्टाः) यहां न दीखनेवाले हैं, ऐसे (वः सर्वे) तुम सब (साकं नि जस्यत) एक साथ हमें छोड दो ॥ ७ ॥

[१९९८] (विश्वदृष्टः अदृष्टहा) सबको देखनेवाला तथा न दीखनेयोग्य जन्तुओंको नष्ट करनेवाला (सूर्यः) सूर्य (अदृष्टान् सर्वान् जंभयन्) न दीखनेवाले सभी जन्तुओंको मारता हुआ तथा (सर्वाः च यातुधान्यः) सभी राक्षसियोंको मारता हुआ (पुरस्तात् उत् एति) पूर्व दिशामें उदय हो रहा है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब गायें बाडेमें और पशु अपने अपने स्थानोंमें सो जाते हैं, तथा जब मनुष्योंकी इन्द्रियां भी आराम करने लग जाती है और मनुष्य भी सो जाते हैं तब ये रेंगनेवाले सांप बाहर आते हैं । प्रसिद्ध है कि रातको ओस चाटनेके लिए सांप बिलोंसे बाहर आते हैं ॥ ४ ॥

जिस प्रकार चोर दिनभर छिपे रहते हैं, और रात्रिके समय बाहर निकलते हैं, उसी तरह दिनमें छिपे रहनेके कारण न दिखाई देनेवाले ये सांप रातके समय बाहर निकलते हैं और सबको दिखाई देने लगते हैं अतः मनुष्योंको चाहिए कि रातके समय सावधानीसे चलें फिरें ॥ ५ ॥

हे सर्पो ! तुम्हारा पिता द्युलोक, माता पृथिवी, सोम भाई और अदिति बहिन है अर्थात् इतने ऊंचे कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है, अतः तुम किसीको भी कष्ट न देते हुए सुखपूर्वक विचरो ॥ ६ ॥

कुछ जन्तु पीठके बल सरकते है, जैसे सांप आदि, कुछ पैरोंके बल चलते हैं, जैसे कानखजूरा आदि और कुछ सुईके समान छेदते हैं, जैसे बिच्छु आदि, वे सभी बहुत विषैले होते हैं । वे सभी मनुष्योंको दुःखी न करें ॥ ७ ॥

१९९९ उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥
२००० सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥
२००१ इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥
२००२ त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामाऽऽरे अस्य
योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥

अर्थ—[१९९९] (अदृष्टहा विश्वदृष्टः) न दीखनेवाले जन्तुओंका नाश करनेवाला सर्वद्रष्टा (आदित्यः असौः सूर्यः) रसोंका हरण करनेवाला यह सूर्य (विश्वानि पुरु जूर्वन्) सभी जन्तुओंको विनष्ट करते हुए (पर्वतेभ्यः उत् अपप्तत्) पर्वतोंसे उदय होता है ॥ ९ ॥

[२०००] (सुरावतः गृहे दृतिं) शराबीके घरमें जिस प्रकार पात्र रखा जाता है, उसी प्रकार मैं (सूर्ये विषं आ सजामि) सूर्यमें विषको रखता हूँ । (सः चित् नु न मराति) उस विषसे न वह मरे (न वयं मराम) न हम ही मरें, क्योंकि (हरिष्ठाः) सुनहले घोडोंवाला यह सूर्य (अस्य आरे योजनं) इस विषको दूर रखता है। (मधुला त्वा मधु चकार) मधुला तुझे मीठा बनाती है ॥ १० ॥

[२००१] (इयत्तिका शकुन्तिका) इतनी छोटीसी चिडिया (ते विषं जघास) तेरे विषको खा जाती है, (सः चित् नु न मराति) वह भी न मरे (न वयं मराम) न हम मरें । (हरिष्ठाः) सुनहले घोडोंवाला सूर्य (अस्य आरे योजनं) इस विषको दूर स्थापित करता है, (मधुला त्वा मधु चकार) मधुला तुझे अमृत बनाये ॥ ११ ॥

[२००२] (त्रिःसप्त विष्पुलिंगकाः) इक्कीस तरहकी छोटी छोटी चिडियायें (विषस्य पुष्पं अक्षरन्) विषके फूलको खा जाएं । (ताः चित् नु न मरन्ति न वयं मराम) न वे चिडियां मरें न हम मरें । (हरिष्ठाः अस्य आरे योजनं) सुनहले घोडोंवाले सूर्यने इसे दूर स्थापित किया, (मधुला त्वा मधु चकार) मधुलाने तुझे मीठा बनाया ॥१२॥

भावार्थ— यह सूर्य सभीका निरीक्षण करता है, तथा सभी रोगजन्तुओंको नष्ट करता है । वह सभी दीखने और न दीखनेवाले जन्तुओंको मारता हुआ उदय होता है ॥ ८ ॥

अनेक न दीखनेवाले जन्तुओंको विनष्ट करता हुआ यह सर्वद्रष्टा सूर्य अनेक पर्वतोंवाले द्युलोकमें उदय होता है । इसके उदय होते ही सभी अनिष्टकारी जन्तु गायब हो जाते हैं ॥ ९ ॥

इस विषको सूर्यमें स्थापित करता हूँ । इस विषसे न सूर्य मरे, न हम ही मरें । सूर्य इसे दूर कर देता है अथवा मधुला औषधि इस विषको अमृत बनाती है ॥ १० ॥

कपिंजली नामक चिडिया इस विषको खा जाए । कपिंजल यह मादा चातक है, अथवा इसे तित्तरी भी कहते हैं । यह विषको खाने पर भी नहीं मरती । सूर्य इस विषको दूर करे और मधुला औषधी इस विषको अमृत बनावे ॥ ११ ॥

इक्कीस तरहकी ऐसी छोटी छोटी चिडियां हैं, जो विषके फूलोंको खा जाती हैं, पर फिर भी मरती नहीं । उनपर विषका कोई प्रभाव नहीं पडता । मधुला औषधी विषको भी अमृत बना देती है ॥ १२ ॥

२००३ नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामाऽऽरे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥
२००४ त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥
२००५ इयत्तकः कुषुम्भक-स्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥
२००६ कुषुम्भकस्तदब्रवीद् गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विष-मरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६ ॥

॥ इति प्रथमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [२००३] (विषस्य रोपुषीणां) विषको नष्ट करनेवाली (नवतीनां नवानां सर्वासां नाम अग्रभं) सभी निन्यानवे औषधियोंका नाम मैं लेता हूं। (हरिष्ठाः अस्य आरे योजनं) सुनहले घोडोंवाला सूर्य इसे दूर स्थापित करे और (मधुला त्वा मधु चकार) मधुला तुझे अमृत बनाये ॥ १३ ॥

[२००४] (त्रिः सप्त मयूर्यः) इक्कीस मोरनियां (स्वसारः ताः सप्त अग्रुवः) स्वयं बहनेवाली वे सात नदियां (ते विषं वि जभ्रिरे) तेरे विषको उसी प्रकार हर लें जिस प्रकार (कुंभिनीः उदकं इव) घडेवाली स्त्रियां पानी हरकर ले जाती हैं ॥ १४ ॥

[२००५] (इयत्तकः कुषुम्भकः) इतना छोटासा यह विषैला कीडा है, ऐसे (तकं) मेरी तरफ आते हुए छोटेसे कीडेको भी (अश्मना भिनद्मि) पत्थरसे मार देता हूं और (ततः) तब उसके (विषं) विषको (पराचीः) पीछेकी तरफ (संवतः अनु) सब दिशाओंमें छोड देता हूं ॥ १५ ॥

[२००६] (गिरेः प्रवर्तमानकः) पहाड परसे आनेवाले (कुषुम्भकः तत् अब्रवीत्) कुषुम्भकने यह कहा कि (वृश्चिकस्य विषं अरसं) बिच्छुका विष रसहीन है, हे (वृश्चिक) बिच्छु! (ते विषं अरसं) तेरा विष रसहीन है ॥ १६ ॥

भावार्थ— ९९ प्रकारकी औषधियां हैं, जो विषको दूर करती हैं। उनका उपयोग करनेसे हर तरहका विष दूर हो जाता है। उनमें मधुला नामकी एक औषधी विषको भी अमृत बना देती है ॥ १३ ॥

इक्कीस तरहकी मोरनियां और सात नदियां विषको हर लें ॥ १४ ॥

कोई विषैला कीडा, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, पत्थरसे मार देना चाहिए। यदि वह काट खाए, तो उसके विषको नष्ट करनेकी कोशिश करनी चाहिए ॥ १५ ॥

पहाड परसे आनेवाले एक औषधिको जाननेवालेने कहा है कि बिच्छुका विष रसहीन अर्थात् बेकार किया जा सकता है ॥ १६ ॥

॥ प्रथम मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

इस प्रथम मण्डलमें कुल १९१ सूक्त हैं। इन सूक्तोंमें २००६ मंत्र हैं। इन मंत्रोंमें सर्वाधिक मंत्र इन्द्र देवताके हैं और ऋषियोंमें सबसे ज्यादा मंत्र दीर्घतमा औचथ्यके हैं। सर्वाधिक सूक्त अगस्त्य मैत्रावरुणिके हैं। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ऋषि, सूक्त, मंत्र और देवताओंकी संख्या इसप्रकार है—

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त
१ दीर्घतमा औचथ्यः	२५
२ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	२७
३ कुत्स आंगिरसः	२०
४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	१०
५ मेधातिथिः काण्वः	१२
६ जेता माधुच्छन्दसः	१
७ आजिगर्तिः शुनःशेपः	७
८ हिरण्यस्तूप आंगिरसः	५
९ कण्वो घौरः	८
१० प्रस्कण्वः काण्वः	७
११ सव्य आंगिरसः	७
१२ नोधा गौतमः	७
१३ गोतमो राहूगणः	२०
१४ पराशरः शाक्त्यः	९
१५ कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः	११
१६ वार्षागिरः ऋज्राश्वः	१
१७ परुच्छेपो दैवोदासिः	१३
१८ कश्यपो मारीचः	१
	१९१

ऋषिवार मंत्र संख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
दीर्घतमा औचथ्यः	२४२
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	२२०
कुत्स आंगिरसः	२१२
गोतमो राहूगणः	२०४
कक्षीवान् दैर्घतमसः औशिजः	१५१
मेधातिथिः काण्वः	१४३
मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः	१०२
परुच्छेपो दैवोदासिः	१००
आजिगर्तिः शुनःशेपः	९७
कण्वो घौरः	९६
पराशरः शाक्त्यः	९१

ऋषि	मंत्रसंख्या
प्रस्कण्व: काण्व:	८२
नोधा गौतम:	७४
सव्य आंगिरस:	७२
हिरण्यस्तूप आंगिरस:	७१
वार्षागिर: ऋज्राश्व:	१९
इन्द्र:	११
जेता माधुच्छन्दस:	८
मरुत:	४
लोपामुद्रा	२
अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी	२
कश्यपो मारीच:	१
स्वनयो भावयव्य:	१
रोमशा	१
	२००६

देवतावार मंत्रसंख्या

देवता	मंत्र
इन्द्र:	४६९
अग्नि:	४०७
अश्विनौ	२१३
विश्वेदेवा:	१५१
मरुत:	१३५
उषा:	८४
सूर्य:	३९
मित्रावरुणौ	३७
ऋभव:	३६
आप्री-सूक्तं	३६
अश्व:	३५
वरुण:	३१
सोम:	२८
मरुत्वानिन्द्र:	२४
द्यावापृथिव्यौ	२३
इन्द्राग्नी	२२
विष्णु:	२०
रुद्र:	१७
पूषा	१७
सविता	१७
वायु:	१४
अग्निषोमौ	१२
अन्नम्	११
ब्रह्मणस्पति:	११
इन्द्रवायू	१०
बृहस्पति:	९
इन्द्रावरुणौ	९
अग्निर्मरुत:	९
आप:	८
वरुणमित्रार्यमण:	७
स्वनयस्य दानस्तुति:	७
स्वनयो भावयव्य:	६
रति:	६
इन्द्राग्नी	६
सदसस्पति:	४
सरस्वती	४
द्रविणोदा:	४
इन्द्राविष्णू	३
आदित्या:	३
इन्द्रो ब्रह्मणस्पति: सोम:	२
देव्य:	२
यूपो वा	२
क. (प्रजापति:)	२
उलूखल	२
उलूखलमुसले	२
वाक्	२
साध्या:	१
संवत्सरकालचक्रम्	१
केशिन:	१
रोमशा	१
इन्दु:	१
त्वष्टा	१
पृथिवी	१
	२००६

इन सभी देवताओंके मंत्रोंके द्वारा ऋग्वेदके ऋषियोंने मनुष्योंको मानवजीवनकी उन्नतिके लिए बोधप्रद उपदेश दिये हैं। इन देवताओंके मार्फत मनुष्योंको क्या उपदेश मिलते हैं, उनका विचार हम यहां करेंगे।

जिसप्रकार किसी प्रजातंत्रीय राष्ट्रमें शासन चलता है और राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रीगण अपने कर्तव्यका पालन दक्षतासे करते हैं, उसी प्रकार विश्व-राज्यका यह प्रजातंत्रीय शासन विश्वराज्यके पदाधिकारियों-के निरीक्षणमें चल रहा है। उन पदाधिकारियोंमें परब्रह्म-राष्ट्रपति; परमात्मा-प्रधानमंत्री; अदितिः- परमात्माकी शक्ति; सदसस्पतिः- विश्वराज्यके उपराष्ट्रपति एवं राज्य-सभाके अध्यक्ष; क्षेत्रपतिः- लोकसभाके अध्यक्ष; अग्नि-शिक्षामंत्री, इन्द्र-रक्षामंत्री आदि मुख्य हैं (विशेष विवरणके लिए मेरी पुस्तक " विश्वराज्यमें देवताओंका कार्य " देखें) ये सभी पदाधिकारीगण अपना अपना कर्तव्य पालन करते हैं।

ऋग्वेदका प्रारंभ अग्निकी स्तुतिसे प्रारंभ हुआ है। अतः हम प्रथम " अग्नि " पर ही विचार करते हैं।

अग्नि

यह अग्नि कौन है? इस शब्दकी व्युत्पत्ति करते हुए निरुक्तकार यास्क कहते हैं- ' अग्निः कस्मात् अग्रणीः भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते ' यह अग्नि अग्रणी होता है अर्थात् हर काममें आगे रहता है अथवा यज्ञोंमें सर्वप्रथम इस अग्निका आधान किया जाता है। हर वैदिक देवता तीन क्षेत्रोंमें अपने अर्थ प्रकट करता है, वे क्षेत्र हैं, (१) आध्यात्मिक, (२) आधिदैविक और (३) आधिभौतिक, इनमें शरीरके अन्दर होनेवाले कार्य आध्यात्मिक क्षेत्रके अन्तर्गत आते हैं। उपनिषद्में इस शरीरको ही अध्यात्म कहा है " अथ अध्यात्मं शरीरम्। " आध्यात्मिक क्षेत्रमें यह प्राण ही अग्नि है, क्योंकि शरीरमें प्राण ही अग्रणी या नेताका काम करता है। यह शरीर एक मन्दिर है, जिसमें सभी देवता निवास करते हैं, उनमें अग्नि मुखमें प्रविष्ट होकर वाणीको प्रेरित करता है (अग्निर्वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत्)। अब हम यह देखते हैं कि ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इस अग्निकी क्या विशेषतायें बताई हैं। प्रारंभका मंत्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम् ॥ (१।१।१)

" मैं अग्रभागमें रहनेवाले, यज्ञ के प्रकाशक, ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, हवन करनेवाले अथवा देवताओंको बुलानेवाले और रत्नोंको धारण करनेवाले अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं ऐसे अग्निके गुणका वर्णन करता हूं। "

यह अग्नि प्रकाश देता है, उष्णता देता है और गति करता है। जो प्रकाश देकर उत्तम मार्ग बताता है, जो उष्णता देकर उत्साह बढाता है, और जो सबको प्रगति करता है, वह वर्णनके योग्य है। मनुष्य भी अन्य जनोंको प्रकाश बताकर सन्मार्ग बतावे, जनतामें उत्साह बढावे और उनको उत्तम रीतिसे उन्नति करे। जो ऐसा करता है वही समाजमें तेजस्वी धुरीण होता है। यह अग्निका आधिभौतिक पहलू है। जिसप्रकार शरीरमें प्राण अग्रणी होनेसे अग्नि है, उसी प्रकार समाजमें नेता या समाज सुधारक अग्रणी होनेसे अग्नि है। यह अग्नि या नेता प्रजाको अन्तिम सिद्धितक पहुंचानेवाला हो। बीच मंझधारमें ही प्रजाको न छोड दे। ऐसे अग्रणीके पीछे पीछे जानेवाला समाज निस्सन्देह उन्नति करता है। जो अग्रणी आपत्कालमें भी सबसे आगे रहकर अपने अनुयायियोंको संकटोंसे बचाता हो, वही प्रशंसाके योग्य होता है। जो स्वयं पीछे रहकर अपने अनुयायियोंको संकटोंमें ढकेल दे, वह प्रशंसाके योग्य नहीं होता।

यह यज्ञका देव है। यज्ञ वह कर्म है जिसमें देवपूजा-संगतिकरण और दानरूप त्रिविध शुभकार्य होते हैं। श्रेष्ठोंका सत्कार, समाजमें सबका संगठन, परस्परका मेल-मिलाप तथा सुपात्रोंको दान यह यज्ञरूप कर्म सबका कर्तव्य है। यह प्रशस्ततम कर्म है, यही श्रेष्ठतम कर्म है। ऐसे कर्मोंका प्रकाशक यह अग्रणी होता है।

सभी मनुष्य ऋतुके अनुसार व्यवहार करनेवाले हों। ऋतुचर्याके अनुसार चलनेवाला नीरोग, सुदृढ और दीर्घायु होता है। ऋतुके अनुकूल अपना व्यवहार रखनेवाला आदर्श पुरुष होता है। यह अग्रणी होता अर्थात् अपने राष्ट्रमें देवताओंको बुलाकर लानेवाला हो। राष्ट्रमें देवों अर्थात् विद्वानोंको बुलाकर उनका सत्कार करना चाहिए। उत्सवों, पुण्य दिनों और यज्ञोंमें विद्वानोंको बुलाकर उनका सत्कार करना, उनके साथ मित्रता करना और उनको अपने धनका समर्पण भी करना चाहिए।

अग्रणी " रत्नधातम " हो। अग्रणी अपने पास रमणीय धनों और रत्नोंको धारण करनेवाला हो। पर यह देव है और देवका अर्थ है " दानशील " अतः यह जो अपने पास रत्नादि ऐश्वर्योंको रखता है वह अपने भोगके लिए नहीं अपितु जनताके हितके लिए ही वह ऐश्वर्योंको अपने पास रखता है। वह अपने पासके धनोंका दान अपने अनुयायियोंको करता है, यह अपने अनुयायियोंके हितोंको सिद्ध करता है।

आधिदैविक क्षेत्र यह विश्व है, इस विश्वमें यह परब्रह्म या परमात्मा है। वा. य. ३२।१ में कहा है कि " तत् एव अग्निः " वह ब्रह्म ही अग्नि है। वह परमात्मा यद्यपि एक है, पर भिन्न भिन्न नामोंसे वह सम्बोधित होता है।

एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति (ऋ. १।१६४।४६) यह परमात्म सत्तत्व एक होते हुए भी उसे ज्ञानी अनेक नामोंसे पुकारते हैं। इस तरह यह अग्नि ब्रह्मका अथवा परमेश्वरका रूप है। यह अग्नि परमेश्वरका मुख है, (अग्निं यज्ञस्य आस्यं। अथर्व. १०।७।३३) अतः परमात्माका स्वरूप समझ कर ही अग्निको ओर देखना चाहिए।

यह परमात्मस्वरूप अग्नि अपने उपासकोंको मुक्तिरूप अन्तिम सिद्धितक ले जाता है। सबसे आगे रहकर वह मनुष्योंका पूर्ण हित करता है। हरएक यज्ञको सिद्ध करता है। ऋतुओंके अनुसार प्रकृतिका परिवर्तन करता है। परमात्मा भी इस विश्वरूपी यज्ञको सतत कालसे करता चला आ रहा है, जिसमें वह ऋतुओंके अनुसार हवि देता रहता है। ग्रीष्म वर्षा आदि षड्ऋतु उस यज्ञके साधक हैं। वह सूर्यादि नाना रमणीय और अमूल्य तत्वोंको अपने पास धारण करता है, जिससे वह सब प्राणियोंका हित करता है। इसीलिए प्राचीन और नवीन ऋषि अर्थात् मन्त्रद्रष्टा ज्ञानी इस अग्निकी प्रशंसा करते हैं, इसकी स्तुति करते हैं। वह अग्नि देवोंको बुलाकर लानेवाला है। विश्वमें परमात्मा रूप अग्नि सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवोंका शासक है। शरीरमें प्राणरूप अग्नि नेत्र, कर्ण, मुंह, नाक आदि देवोंकी शक्तियों पर शासन करता है और समाजमें ब्राह्मणरूपी अग्नि विद्वानों, शूरवीरों, धनिकों और कर्मवीरों पर शासन करता है।

अग्रणी अपनी प्रजाको वीरतासे परिपूर्ण यशस्वी और पुष्टिकारक धनको प्रदान करे। धन ऐसा हो कि जो राष्ट्रकी प्रजाओंमें वीरता भरनेवाला हो। ऐश्वर्य प्राप्त करके प्रजा विलासी या कायर न बन जाए। वीरता रहित धन किस कामका? यदि धन मिल भी जाए, तो वीरताके अभावमें उस धनकी रक्षा किस प्रकार होगी? अतः प्रजा वीर हो। सब पुष्ट हों। वह पुष्टि भी वीरतापूर्ण हो। धनवानोंकी तरह चर्बीवाली पुष्टि न हो। वह धन यश देनेवाला हो। लोग धनका संचय अपने भोगोंके लिए ही न करें। दूसरोंके हितके लिए ही धनका संचय किया जाए, दान देकर यश प्राप्त किया जाए। वेदमें कहा है कि जो स्वयंके लिए ही भोगोंका संचय करता है, वह मानों केवल पापोंका ही संचय करता है। अतः मनुष्य जो कुछ भी संचित करे वह देशहितके लिए ही करे और इस प्रकार यश का सम्पादन करे। अतः अग्रणी इसी तरहका धन राष्ट्रमें सुरक्षित रखे, जो धन प्रजाको वीरता, पुष्टि और यश प्रदान करनेवाला हो।

इस अग्रणीका यज्ञ या कर्म (अध्वरं) हिंसा, कुटिलता कपट और छलसे रहित होता है। इस अग्निके यज्ञमें कायिक, वाचिक और मानसिक कुटिलता जरा भी नहीं रहती। इसीलिए यह अग्रणी उन्हीं कर्मोंको सफल बनाता है, जो हिंसा और छल कपटसे रहित होते हैं।

यह " परि-भू " है। " परि-भूः " के अर्थ हैं शत्रुका पराभव करना, उसपर विजय प्राप्त करना, शत्रुका नाश करना, शत्रुको चारों ओरसे घेरना आदि। यह अग्रणी शत्रुका पराभव करके अपने हिंसारहित यज्ञकर्मको सफल करता है। यह भाव यहां " परि-भू " शब्द में है। ऐसा कुटिलता रहित श्रेष्ठ कर्म देवोंतक जाकर पहुंचता है। अर्थात् देवों को लक्ष्य करके किए जानेवाला कर्म छल, कपट, हिंसा आदियोंसे रहित ही होना चाहिए।

यह अग्नि " कविक्रतुः " है। यह पद ज्ञान और शक्ति का बोधक है। " कवि " पद ज्ञानका और " क्रतु " पद कर्म का द्योतक है। इसप्रकार " ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला कविक्रतुः " कहलाता है। मनुष्य को प्रथम ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और फिर उस ज्ञानका उपयोग करके सुयोग्य कर्म करना चाहिए।

इसी अग्निको अंगिरा कहा है। यही अंगिरस भी है। इस शरीरमें एक प्रकारका रस बहता रहता है, जो शरीरको उत्साहसे और चैतन्यसे भरपूर बनाये रखता है। इसे जीवनरस भी कह सकते हैं। इस जीवन रसको शरीरमें उत्पन्न करने और उसे अंग प्रत्यंगोंमें प्रवाहित करनेवाला अग्नि ही है। इसलिए इसे अंगिरस कहा है। पेटमें जाठराग्नि है, जो पेटमें पड़े हुए पदार्थोंको पचाकर उसका रस बनाती है और फिर उस रसका सारे शरीरमें संचार होता है। यह जीवन रस जिसके शरीरमें जितना उत्तम होगा, उतना ही मनुष्यका शरीर फुर्तीला और उत्साहमय होगा। ऐसे इस अंगिरस अग्निका यह व्रत है कि जो इसे दान करता है, उसका यह अग्नि कल्याण करता है। उदाहरणार्थ,

जो इस जाठराग्निको उत्तम उत्तम पदार्थ प्रदान करता है, उसके शरीरको पुष्ट बनाकर यह जाठराग्नि उसका कल्याण करती है। यह इस अग्निका व्रत है जो कभी टूटता नहीं। उत्तम पदार्थोंके खानेसे जो अंगरस बनता है, उससे मनुष्यका शरीर सुन्दर, बलवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी, दीर्घजीवी, उत्साही, कार्यक्षम और ओजस्वी बनता है।

इसी तरह समाज या राष्ट्रमें भी अग्रणी दानियोंका कल्याण करे। जो देश या समाजके हितके लिए अपना धन, मन और तन अर्पण करते हैं, उनका हर तरहसे कल्याण करना चाहिए।

यह देव ऐसा है कि जो हिंसारहित, कुटिलतारहित और शुभ कर्मोंका ही अधिपति होता है। ऋत नामक जो अटल सत्य नियम हैं, उनका यह संरक्षण करता है। यह स्वयं प्रकाशमान् है। इस अग्निकी उपासना करता हुआ मनुष्य हिंसारहित, छलकपटरहित, कुटिलतारहित कर्म करता जाए, स्वभावसे ही वह कर्म करे, सत्यका पालन और संरक्षण करे, प्रकाशित होवे, तेजस्वी बने अपने स्थानमें, घरमें और देशमें बढता रहे।

यह अग्रणी परमात्मा हम मनुष्योंके लिए पिताके समान है। जिस तरह पुत्रके लिए पिता सुप्राप्य है अथवा पुत्रको पितासे मिलनेमें कोई अडचन नहीं पडती, उसी प्रकार मनुष्यके लिए भी परमात्मा सुप्राप्य है। यह जब चाहे परमात्माका सहवास प्राप्त कर सकता है। केवल आवश्यकता है लगनकी, मनुष्यमें यदि लगन हो, तो परमात्मा उसके लिए सहज ही सुप्राप्य होता है। जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रका कल्याण करनेके लिए उसका मार्गदर्शक बनता है, उसी प्रकार परमात्मा इस मनुष्यका मार्गदर्शक है। इसीतरह समाजमें भी नेता अपनी प्रजाका पुत्रवत् पोषण करे, उसे उत्तम मार्गसे ले जाए।

इसप्रकार प्रथम सूक्तमें मधुच्छन्दा ऋषिने अग्निके रूपमें एक आदर्श ब्राह्मणके जो आदर्श रखे हैं, वे संक्षेपमें इसप्रकार हैं- ब्राह्मण (१) पौरोहित्य, ऋत्विक्कर्म और हवनकर्ममें प्रवीण बने, (२) अंगरसकी विद्या-चिकित्साशास्त्रमें प्रवीण हो, (३) सत्यका पालन करे, (४) हिंसारहित कर्म करे, (५) स्वयं ज्ञानी बनकर प्रज्ञाके द्वारा श्रेष्ठतम कर्म करे, (६) अपने स्थानमें श्रेष्ठ बने, (७) धन, पोषण और वीरोंका यश प्राप्त करे, (८) श्रेष्ठ बने और श्रेष्ठोंके साथ रहे, (९) उदार दानीका कल्याण करे (१०) सबका हित करनेका यत्न करे, (११) जैसे पिता पुत्रका सम्बन्ध प्रेमका होता है, वैसे ही प्रेमका सम्बन्ध निर्माण करे। कभी द्वेष न करे, (१२) प्रतिदिन सुबहशाम नम्र होकर ईश्वरोपासना करे।

आदर्श राजदूत

यह अग्नि " देवानां दूतः " भी है। यह मनुष्यों द्वारा, दी गई हविको देवों तक पहुंचाता है। लोकमें एक राज्यसे दूसरे राज्यमें जो जाता है और अपने राजाओंका सन्देश दूसरे राज्यके अधिकारियोंको उत्तम रीतिसे पहुंचाता है और अपने राजाका कार्य जो उत्तम रीतिसे करता है, वह उत्तम राजदूत कहाता है। ऐसा राजदूत " अग्नि " है—

अग्निर्देवानां दूत आसीत्

उशना काव्योऽसुराणाम्। (तै. सं. २।५।८।७)

" अग्नि देवोंका और काव्य उशना असुरोंका दूत है, " ऐसा तैत्तिरीयसंहितामें कहा है। इस उत्तम दूत रूपी अग्निके गुण इस प्रकार हैं-

१ विश्ववेदः (१११)- यह सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त है, इसके पास सभी प्रकारके धन हैं। उसी प्रकार दूत भी हरतरहके ज्ञान और धनसे युक्त हो।

२ यज्ञस्य सुक्रतुः (१११)- वह अपने ऊपर सौंपे गए कार्यको उत्तम रीतिसे निभाता है। पर वह हमेशा उत्तम कार्योंको ही करता है।

३ पुरुप्रियः (११२)- वह सबको प्रिय है।

४ ईड्यः (११३)- प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाला है।

५ जुह्वास्यः (११६)- अग्निकी ज्वालाके समान तेजस्वी भाषण करनेवाला हो।

६ प्राविताः (११८) उत्तम संरक्षण करनेकी शक्ति उसमें हो। इन गुणोंसे युक्त यह अग्नि देवोंका श्रेष्ठतम दूत है।

रोगनिवारक अग्नि

अग्निको " विश्व शंभुवं " कहा है अर्थात् यह हरतरहका कल्याण करता है। जिसके शरीरमें यह अग्नि उत्तम रीतिसे कार्य करती है वह मनुष्य रोगोंसे प्रभावित नहीं होता। उसके शरीरमें रोगप्रतिबन्धक शक्ति अच्छी होती है, इसलिए वह कभी रोगी नहीं होता।

अमीवचातनः (११७) बिना पचे अन्नका " आंव " पेटमें बनता है। अन्नके न पचनेसे पेटमें कब्ज हो जाती है। यही " आम " अर्थात् बेपचा अन्न नाना रोगोंको उत्पन्न

करता है। इसीलिए रोगोंको वेदमें " अमीव " कहा है। यह अग्नि " अमीव " अर्थात् रोगोंको " चातन " अर्थात् नष्ट करनेवाला है। यह रोगोंका समूल उच्चाटन करता है। जिस मनुष्यकी जाठराग्नि प्रदीप्त होती है, उसका सारा भोजन आसानीसे पच जाता है और उसके शरीरमें किसी प्रकारका रोग उत्पन्न नहीं होता।

इसीप्रकार बाहर भी अग्नि जलाकर उसमें यदि उत्तम उत्तम और आरोग्यदायक पदार्थोंकी हवि दी जाए, तो उससे वायुमें स्थित रोगजन्तु जल जाते हैं और वायु शुद्ध होकर सर्वत्र नीरोगता फैलती है। इसलिए कहा है–

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते
ऋतुसंधिषु यज्ञाः क्रियन्ते ॥ (गोपथ- २।१९)

' जब एक ऋतुके खतम होनेपर दूसरी आनेको होती है, तब उन दोनों ऋतुओंके बीचके कालको सन्धिकाल कहते हैं। हर ऋतुका अपना अपना प्रभाव होता है। प्रथम ऋतुके परिणाम कुछ और होते हैं और आनेवाली ऋतुके परिणाम कुछ और होते हैं। ऐसी अवस्थामें जब मनुष्य एक ऋतुसे एकदम दूसरी ऋतुमें प्रवेश करता है, तो स्वभावतः ही वह अस्वास्थ्य अनुभव करने लगता है। ऐसे समय यदि यज्ञ किए जाएं और उन यज्ञोंमें ऋत्वनुकूल सामग्री की आहुतियां दी जाएं, तो उन उन ऋतुओंके कारण उत्पन्न होनेवाले रोग बीज नष्ट हो जाते हैं और इन सन्धिकालोंमें भी सर्वत्र नीरोगता बनी रहती है। रामायणमें ऐसे वर्णन मिलते हैं कि प्राचीनभारतमें नगरोंके हर चौराहोंपर यज्ञशालायें बनी हुई होती थीं और उनमें प्रतिदिन यज्ञ किए जाते थे। इससे वायु शुद्ध होकर प्रजाओंका स्वास्थ्य बना रहता था। इसलिए इस अग्निको " पावक " सर्वत्र पवित्र करनेवाला, " रक्षसः दहः " राक्षसरूपी रोगबीजोंको जलानेवाला कहा गया है।

मर्त्य और अमर्त्य

ऋग्वेदके (१।२६।९) एक मंत्रमें प्रार्थना की गई है–

अथा न उभयेषाममृतमर्त्यानाम्।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥

" हे अमर देव ! (तुम अमर हो) हम मर्त्य अर्थात् मरणशील हैं, अतः हम दोनोंके परस्पर प्रशंसायुक्त भाषण होते रहें। " सभी उपासक जन मरणशील हैं, पर यह अग्निरूप परमात्मा अमर है। अतः उपासक मनुष्य और उपास्य अग्निका जो सम्बन्ध है, वह एक मर्त्य और अमर्त्यका सम्बन्ध है। उपासक अपनी भक्तिसे अपने उपास्य देवको प्रसन्न करे और उपास्य देव उपासक पर अपनी कृपा बरसाकर उसे सर्वदा उन्नत करते रहें। इसी भावको भगवान्ने गीतामें इसप्रकार व्यक्त किया है—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
(गीता. ३।११)

" हे उपासको ! इस यज्ञसे तुम देवोंको खुश करो और देव तुम्हें प्रसन्न करें। इसप्रकार तुम और देव दोनों परस्पर एक दूसरेकी सहायता करते हुए श्रेयका सम्पादन करो। "

श्रेष्ठ प्रभुकी उपासना

यह अग्निदेव बलके विविध कार्य करनेके लिए ही प्रकट हुआ है। वह सर्वत्र गमन भी करता है। यह देव हमें वीर्य आयु देता है। वह सब स्थानोंसे हमें पापी मनुष्योंके कपट जालसे बचावे। वह हमें सब प्रकारके बल प्रदान करे। हम सब प्रकारके धन प्राप्त करें। जिस पर इस प्रभुकी दया होती है, उसे अक्षय धन प्राप्त होते हैं। वह सब पर शासन कर सकता है। उसे कोई घेर नहीं सकता। उसकी शक्ति बडी विशाल होती है। वह देव सब मानवोंका हित करता है। वह अपरिमित बलवाला देव हमें बुद्धि और बल बढानेके कार्योंमें प्रेरित करे। वह प्रजा-पालन करता है, दिव्य सामर्थ्यसे युक्त है। बालक, तरुण और वृद्ध ये सब उसी देवके रूप हैं। यह अग्नि ही सब पदार्थोंमें विविधरूप धारण करके प्रकट होता है। कठोपनिषदमें कहा है–

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ उ. २।५।९)

" अग्नि जैसे भुवनमें प्रविष्ट होकर प्रत्येक रूपमें उसके आकारवाला होकर रहता है। उसीप्रकार एक ही सब भूतोंका अन्तरात्मा है जो प्रत्येक रूपमें प्रतिरूप भी है और बाहर भी है। " अग्नि जिसप्रकार सब पदार्थोंमें सबके रूपोंको धारण करके रहता है, उसीप्रकार यह सर्वभूतान्तरात्मा सबमें व्याप्त है।

परम पिताका यशगान

यह अग्नि वस्तुतः परमात्माका तेजस्वी रूप है। इसलिए कई सूक्तोंमें अग्निके बहाने उस प्रभुकी ही उपासना की है। वह अग्नि—

१ अंगिराः अग्निः देवः (३५१)- प्रत्येक अंग और अवयवोंमें रहनेवाला है।

२ प्रथमः ऋषिः देवानां शिवः सखा (३५१)- पहिला ज्ञानी और देवोंका शुभ मित्र है।

३ यस्य कवयः विद्मनापसः (३५१)- उस अग्निके नियमानुसार जो चलते हैं, वे अतीन्द्रिय ज्ञानी बनकर सब कार्य विधिपूर्वक करते हैं।

४ विश्वस्मै भुवनाय मेधिरः (३५१)- सब प्राणियोंको बुद्धिका दान करता है।

५ मनवे द्यां अ-वाशयः (३५४)- मनुष्यके हितके लिए आकाशको शब्द गुणयुक्त बनाया।

६ पुरु-रवसे सुकृते सुकृत्तरः (३५४)- बहुत ज्ञानी और शुभ कर्म करनेवालेके लिए यह अधिक शुभ कर्म करता है।

७ नः पिता, वयं जामयः ३६०) अग्नि हमारा पिता है और हम सब मनुष्य परस्पर भाई हैं।

८ अनिमेषं रक्षमाणः तोकस्य तनये गवां च त्राता (३६२)- यह सतत पलकोंको भी न मूंदते हुए पुत्रों, पौत्रों और गायोंकी रक्षा करता है।

९ विदुष्टरः पाकं दिशः प्र शास्सि (३६४)- हे अग्ने ! तू अधिक ज्ञानी है, इसलिए अज्ञानीको उन्नतिकी दिशाएं बताता है।

१० सोम्यानां मर्त्यानां आपिः, पिता, प्रमतिः, भूमिः ऋषिकृत् असि (३६६)- शान्त मनवाले मानवोंका यह अग्नि भाई, पिता, सद्बुद्धिदाता, संचालक और उसे मंत्रद्रष्टा बनानेवाला है।

११ नवेन अपसा कर्म ऋध्याम् (३५८ - नवीन प्रयत्न करके कर्मकी सिद्धि प्राप्त करें।

१२ मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन् (३६१)- मानवोंके राज्यशासनके लिए नीति नियम बनाये।

१३ पितुः यत् पुत्रः जायत, (सः) ममकस्य (३६१)- पिताका जो पुत्र होता है, उस पर उसका ममत्व रहता है।

इसप्रकार अग्निकी उपासनाके रूपमें मनुष्योंको उत्तम बोधप्रद उपदेश दिए हैं। इसके अलावा भी मनुष्योंके लिए अनेक बोधप्रद उपदेश ऋषियोंने दिए हैं जैसे—

१४ यः स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्, जीवयाजं यजते, सः दिवः उपमा (३६५)- जो अपने घरमें मीठे अन्न पकाकर अपने घर आए अतिथियोंको प्रसन्न करता है, जो जीवोंके लिए यज्ञ करता है, उसको स्वर्गकी उपमा है, वह घर मूर्तिमान् स्वर्ग ही है।

शक्तियोंका संगठन करनेवाला अग्नि

अग्नि उत्तम संगठनकर्ता है। शरीरमें जबतक इस अग्निकी गर्मी है, तबतक शरीरके सब अंग प्रत्यंग परस्पर संगठित होकर उत्तम रीतिसे कार्य करते हैं। इस शरीरमें तेंतीस देव रहते हैं, उन सभी देवोंका संगठन अग्नि इस शरीरमें करता है। ये देव परस्पर विरोधी हैं, जल अग्निको बुझा देता है और अग्नि जलको सुखा देता है। इसीप्रकार मेघ सूर्यको चमकने नहीं देता और सूर्य मेघको बरसाता है। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध स्वभाव होनेपर भी सब देवगण इस अग्निके कारण इस शरीरमें संगठित होकर रहते हैं। जब-तक इस शरीरमें गर्मी रहती है, तबतक ये सभी देव संगठित होकर रहते हैं, पर अग्निके शरीर छोड देनेके साथ ही देव-गण भी तितरबितर होकर इस शरीरको छोड जाते हैं।

राष्ट्रमें भी अग्निकी सहायतासे होनेवाले यज्ञ जनताका संगठन करते हैं। बडे बडे यज्ञोंमें बहुत संख्यामें मनुष्य आकर संगठित होते हैं। नरमेधमें वस्तुतः मनुष्यका वध नहीं किया जाता, अपितु उस यज्ञमें मानव संगठित होते हैं, इसीलिए उसे नरमेध कहते हैं। इस अग्निसे यज्ञ होते हैं और यज्ञोंसे प्रजा संगठित होती है, इसलिए अग्निको संगठनका देव कहा है।

अग्निके विशेषणों पर विचार

१ सहो-जाः (६७९)- बलसे उत्पन्न, बलके लिए उत्पन्न। दो अरणियोंका घर्षण करनेके लिए बडा बल लगता है। इस घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है। इसलिए अग्निको बलसे उत्पन्न होनेवाला कहा है।

२ सहोजाः अमृतः नि तुन्दते (३७२)- बलके साथ उत्पन्न हुआ अमर अग्नि कभी व्यथित नहीं होता। जो बलवान् है और जो मरनेवाला नहीं है, उसे किसी तरहके कष्ट नहीं हो सकते। क्योंकि जो निर्बल है और जिसको मृत्युका भय है, वही सदा दुःखी होता है। इसलिए सुख प्राप्त करनेकी यदि इच्छा हो, तो बल प्राप्त करना चाहिए और अपनी आत्मशक्तिका साक्षात्कार करना चाहिए।

३ विक्षु ऋञ्जसानः (६७४)– मनुष्योंमें जो अपने ध्येयकी सिद्धिके लिए प्रयत्न करता है, उसकी यह अग्नि सहायता करता है।

विश्वका संचालक

अग्निका एक विशेषण वैश्वानर भी है। इसका अर्थ है, "विश्वका नेता" या "विश्वका संचालक"। यह विश्वानर अपनी महिमासे सब प्राणियोंका रूप धारण करता है। यह वैश्वानरका स्वरूप है। यही जनता जनार्दन है। यही नारायण है। नरोंका समूह ही नारायण है। इसी विश्वानरका वर्णन "पुरुषसूक्त" में किया गया है। और इसीकी महिमा गीताके ११ वें अध्यायमें स्वयं भगवान् कृष्णने गाई है। जो कुछ भूतकालमें हुआ और जो कुछ आगे होगा वह सब इस पुरुषकी ही महिमा है।

"इसी विश्वानरके मुखसे ब्राह्मण हुए, क्षत्रियसे बाहु हुए, उरुओंसे वैश्य हुए और पांवोंसे शूद्र बने।"

१ या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु मानुषेषु तस्य राजा (६८३)– जो कुछ भी पर्वतोंमें, औषधियोंमें, जलोंमें और मनुष्योंमें है, उस सबका वह राजा है।

२ मानुषीणां कृष्टीनां राजा (६८५)– मानवी प्रजाजनोंका यह राजा है।

३ आर्याय ज्योतिः (६८२)– आर्योंके लिए यह वैश्वानर प्रकाशका मार्ग दिखाता है। असुरोंका नाम "निशाचर" है, क्योंकि उनका मार्ग अन्धेरेका है। इसी लिए अनार्योंके आधीन राज्य प्रबन्ध नहीं रहना चाहिए। जो आर्य हैं, उन्हींके अधीन राज्य प्रबन्ध, सब धन और सब बल रहना चाहिए।

४ पूरवः वृत्रहणं सचन्ते। वैश्वानरः अग्निः दस्युं जघन्वान् (६८६)– नागरिकजन शत्रुका वध करनेवालेकी ही सेवा करते हैं।

५ स्वर्वते सत्यशुष्माय वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः गिरः (६८४)– आत्मज्ञानी, सत्य बलवाले अत्यन्त श्रेष्ठ नेताकी विशेष प्रशंसा करनी चाहिए। सब मानवोंका समुदाय ही वैश्वानर है। सभी मानव प्रभुके रूप हैं। पर इस जनसमूहका नेतृत्व किसके हाथमें हो, इसका वर्णन इस मंत्र भागमें है। सब मनुष्योंका नेतृत्व करनेवाला मनुष्य ज्ञानी हो, सत्यनिष्ठाका बल उसके पास हो, वह सार्वजनिक हितमें तत्पर हो और सब मानवोंमें श्रेष्ठ हो।

६ वैश्वानरः नाभिः क्षितीनां (६८१)– सार्वजनिक हित करनेवाला यह श्रेष्ठ पुरुष ही सब मानवोंका, सब जनताका केन्द्र अथवा मध्यबिन्दु है।

७ स्थूणा इव जनान् उपमित् ययन्थ (६८१)– जिसप्रकार खम्भा सब घरके लिए आधार होता है, उसी तरह यह विश्वानर सब मानवोंका आधार होता है।

८ अग्ने अग्नयः ते वया इत् (६८१)– अन्य अग्नियां इसकी शाखायें हैं। यह नेता वृक्ष है और अन्य मानव उसकी शाखायें हैं। सब मिलकर एक ही अखण्ड वृक्ष है। इसीप्रकारका सम्बन्ध नेताका जनताके साथ होना चाहिए।

९ विश्वे अमृताः ते मादयन्ते (६८१)– सब देव तुझमें आनंद प्राप्त करते हैं। सार्वजनिक हितमें ही आनन्द मानना देवत्वका लक्षण है।

१० दिवः मूर्धा, पृथिव्याः नाभिः, रोदस्योः अरतिः (६८२)– यह वैश्वानर द्युलोकका सिर, पृथ्वीका केन्द्र और दोनों लोकोंका स्वामी है। अरतिका अर्थ स्वामी भी होता है।

११ देवासः वैश्वानरं अजनयन्त (६८२)– सब देवोंने वैश्वानरको प्रकट किया। सब विद्वान् मिलकर जनताका नेता चुनें।

इसप्रकार यह वैश्वानर अग्नि सब जगत्को चलाता है।

१२ यत् पूरुभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ, ते एता व्रता नकिः मिनन्ति (६८५)– जो नियम तुमने मानवोंकी उन्नतिके लिए बनाये, उन नियमोंका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता।

मनुष्योंकी उन्नति

मनुष्योंकी उन्नति किसप्रकार हो सकती है, उसके भी कुछ नियम ऋग्वेदके अग्नि सूक्तोंमें बताये गए हैं। जो यहां मननीय हैं–

१ अर्हते जातवेदसे मनीषया स्तोमं सं महेम (१०४१)– जो पूजनीय है, जो उत्तम ज्ञानी है उसीकी प्रशंसा हम मननपूर्वक करेंगे। जो सत्कारके योग्य हो, उसीकी प्रशंसा करनी चाहिए। अयोग्यकी झूठी प्रशंसा करनेसे मनुष्यकी गिरावट होती है जो उत्पन्न हुए पदार्थोंको यथावत् जानता है, जो ज्ञान विज्ञान सम्पन्न है, वही सत्कारके योग्य है।

२ अस्य संसदि नः प्रमतिः भद्रा (१०४१)- इस ज्ञानीकी संगतिमें रहनेसे हमारी पहलेसेही उत्कृष्ट बुद्धि और कल्याणकारिणी बन जाती है।

३ यस्मै त्वं सु यजसे, सः साधति (१०४२)- जिस मानवके लिए ऐसा सुयोग्य ज्ञानी सत्पुरुष अन्तःकरणपूर्वक अपने ज्ञानके यज्ञसे सहायता करता है, वही मानव सिद्धिको प्राप्त होता है।

४ सः तूताव, एनं अंहतिः न अश्नोति (१०४२)- वह ज्ञानी बढता है, उन्नत होता है,। इसको कोई आपत्ति नहीं सताती।

५ ये के चित् दूरे वा अन्ति वा अत्रिणः, वधैः दुःशंसान् दूढ्यः अप जहि (१०४९)- जो कोई खाऊ दुष्ट दुर्जन दूर या समीपमें रहते हैं, उन दुष्टोंका शस्त्रोंसे वध कर, उनको समाजमें न रहने दे।

६ यज्ञाय सुगं कृधि (१०४९)- यज्ञ करनेवाले उदार धर्मात्माके लिए सुगम मार्ग कर। इसका मार्ग निष्कण्टक हो।

७ दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधाति (१०५४)- दाताके लिए धन और रत्न दिया जावे।

८ सर्वताता अनागास्त्वं ददाशः (१०५५)- सब प्रकारसे यज्ञीय जीवन व्यतीत करनेवालेके लिए निष्पाप जीवन प्राप्त हो।

९ भद्रेण शवसा चोदयासि, प्रजावता राधसा स्याम (१०५५)- सबका कल्याण करनेवाले सामर्थ्यसे जो कर्मोंकी प्रेरणा मिलती है, उससे शुभ सन्तान होती है और उत्तम धन मिलता है।

अग्निके तीन जन्म

इस अग्निके तीन जन्म बताये हैं। इस अग्निका एक जन्म (समुद्रे एकं) समुद्रमें बडवानल रूपसे है। (दिवि एकं) द्युलोकमें सूर्यरूप दूसरी अग्नि है। सूर्य अग्निका ही रूप है। (अप्सु एकं) अन्तरिक्षमें मेघाशयमें विद्युत्‌रूपी तीसरी अग्नि है।

आकाशमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथ्वी पर अग्नि ये तीन रूप एक ही अग्निके हैं। वास्तवमें सूर्य, विद्युत और अग्नि ये तीन पदार्थ पृथक् पृथक् दिखाई देते हैं, पर एक ही अग्निके ये तीन रूप हैं।

यहां समुद्रपद पृथ्वी स्थानका वाचक है। पृथ्वीमें भयानक प्रखर अग्नि है। पृथ्वीमें सब पदार्थ इस अग्निके कारण उबलते रसके रूपमें विद्यमान हैं। यह अग्नि सभी पदार्थोंमें गुप्तरूपसे विद्यमान है। सबमें व्याप्त है, पर दीखता नहीं। ज्ञानी ही उसको जानता है। इस अग्निके यद्यपि पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकसे उत्पन्न होनेके कारण ये लोक इस अग्निकी मातायें हैं, पर यह अग्नि पुत्र होते हुए भी पृथ्वीको, बिजली अन्तरिक्षको और सूर्य द्युलोकको प्रकाशित करता है।

(महान् कविः स्वधावान् गर्भः बह्वीनां अपसां उपस्थात् निश्चरति) (१०६०) सामर्थ्यवान् होकर यह पुत्र रूप गर्भ अर्थात् बडा ज्ञानी अग्नि बहुत जल प्रवाहोंके सामनेसे निकलकर संचार करता है। विद्युत् रूप अग्नि वृष्टिके प्रवाहोंके मध्यमें प्रकट होता है।

(आसु चारुः आविष्टयः वर्धते) (१०६१) इन जल प्रवाहोंके अन्दर इन मेघोंके अन्दर विद्युद्रूपसे प्रविष्ट होकर यह अग्नि बढती है।

सब मानवोंका सहायक नेता

जो सबको सुयोग्य मार्गसे चलाता है, नेता बनकर जो अपने अनुयायियोंको उन्नतिके मार्गसे चलाता है तथा स्वयं भोगोंमें न फंसता हुआ अनासक्त होकर जो श्रेष्ठ कार्योंमें तत्पर रहता है, वह नेता- " वैश्वा-नर " है।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम (१०८५) सब मानवोंके हित करनेके कार्यमें जो दत्तचित्त रहता है, ऐसे नेताकी उत्तम बुद्धिमें सब प्रजा रहें। सब मानव ऐसे उत्तम जन हितकारी कार्य करें जिससे सन्तुष्ट होकर नेता उन पर सदैव अपनी कृपावृष्टि रखें। इससे यह बोध मिलता है कि जनताका नेता सब मानवोंको उन्नतिके मार्गपर योग्य रीतिसे चलावे, स्वयं भोगोंमें न फंसे, जनताको सन्मार्ग पर चलावे, और अनुयायी भी ऐसे हों कि जो नेताके आदेशानुकूल अपना नियत कर्तव्य करते जाएं और अपने नेताकी आयोजना सफल करें।

(इतः जातः वैश्वानरः इदं वि चष्टे) (१०८५)- इसी समाजसे उत्पन्न हुआ यह नेता जनताका अग्रणी है। नेता होनेके बाद वह इसी समाजकी परिस्थितिका विशेष रीतिसे निरीक्षण करे।

(सूर्येण यतते) (१०८५) यह नेता सूर्यके साथ यत्न करता है। जिस प्रकार सूर्य निरलस रहकर सबको प्रकाश बताता है, उसी प्रकार यह नेता आलस्य छोडकर उन्नतिके कार्यमें दत्तचित्त रहता है। जिस प्रकार सूर्य विश्वका मार्गदर्शक है, उसी तरह यह नेता मानवोंको मार्ग बताता है। यह नेता अपने सामने सूर्यका आदर्श रखता है।

(वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका सच्चा हित करनेवाला नेता सचमुच अग्नि है। अग्निके समान जनतामें यह नवचैतन्यकी आग उत्पन्न करता है। जैसे अग्निमें पड़ा हुआ पदार्थ अग्निरूप बन जाता है, उसी तरह इस अग्निकी संगतिमें आया हुआ मनुष्य इसके सदृश ही उत्साही होता है। वैश्वानरके विषयमें निरुक्तकार यास्क लिखते हैं- " वैश्वानरः कस्मात् ? विश्वान् नरान् नयति, विश्वे एनं नरा नयन्तीति वा अपि वा विश्वानर एव स्यात् (नि० ७।६।२१)- यह अग्नि सब मानवोंको ठीक तरह ले जाता है अथवा सब मानव इसको साथ रखते हैं अथवा यह सबका नेता है।

इसप्रकार प्रथम मण्डलमें अग्निके बारेमें ऋषियोंके विचार प्रगट हुए हैं। उपरोक्त सभी वर्णनोंमें अग्निको एक ज्ञानी नेताके रूपमें वैदिक ऋषियोंने प्रस्तुत किया है। यह अग्नि विश्वसमाजके ब्राह्मणत्वका प्रतिनिधित्व करता है।

अब इसके बाद इन्द्र पर विचार करते हैं।

इन्द्र

इन्द्र विश्वराज्यमें संरक्षणमंत्री और क्षत्रियसमाजका प्रतिनिधि है। इन्द्र राष्ट्रके शत्रुओंका मर्दन करके सज्जनोंकी रक्षा करके राष्ट्रको हरतरहसे सुरक्षित रखता है। इन्द्रके सैनिक मरुत् हैं, ये सैनिक इन्द्रकी हरतरहसे सहायता करते हैं। इनका नाम ही मरुत् या " मर-उत् " है। अर्थात् ये मरनेतक उठ उठकर शत्रुओंसे लड़ते हैं। ऐसे शूरवीर सेनाओंका सेनापति यह इन्द्र है। यह संरक्षणमंत्रीपदके बिलकुल योग्य है। अब हम यह देखते हैं कि ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें इसके बारेमें क्या कुछ लिखा है।

पालक इन्द्र

यह इन्द्र सज्जनोंका पालन करता है और उन्हें हरतरहसे आनन्दित रखता है।

१ पुरुतमः- इसके पास अनन्त धन है। जो सबका पालन पोषण करता है, वह " पुरु " है। वह इन्द्र पालन पोषणका कार्य अत्यन्तपूर्ण रीतिसे करता है, इसीलिए वह " पुरु-तम " है।

२ पुरूणां वार्याणां ईशानः (४२)- अत्यन्त धनोंका स्वामी, जिसके पास जनताके पालनपोषण करनेवाले सब प्रकारके पर्याप्त धन है।

३ शतक्रतुः (४८)- सैंकडों प्रकारकी युक्तियां जिसके पास हैं।

४ अक्षित-ऊतिः (४१)- जिसके पासके संरक्षणके साधन कभी न्यून नहीं होते। जिसके पास सदा ही पर्याप्त सुरक्षाके साधन रहते हैं।

५ स योगे राये पुरन्ध्यां आ भुवत् (४३)- वह इन्द्र साधन, धन और सुबुद्धि देता है।

६ समत्सु शत्रवः यस्य न वृण्वते (४४)- युद्धोंमें शत्रु जिसको घेर नहीं सकते।

७ अक्षितोतिः इन्द्रः विश्वानि पौंस्या, सहस्रिणं वाजं सनेत् (४९)- अक्षय रक्षा साधनोंसे सम्पन्न इन्द्र अनेक बल और सहस्रोंका पालन करनेवाला अन्न देता है।

८ ईशानः वधं यावय (५०)- यह इन्द्र परिस्थितिका स्वामी बनकर मृत्युको दूर करता है। इसीतरह मनुष्य भी परिस्थितियोंका स्वामी बने, कभी भी उनका दास न बने। और इसप्रकार सशक्त होकर वह मृत्युको दूर करे।

यह इन्द्र निर्भीक, सदा प्रसन्न और प्रकाशमान्-तेजस्वी है। यह—

९ अकेतवे केतुं कृण्वन् (५१)- अज्ञानीको ज्ञान देता है।

१० अपेशसे पेशः कुर्वन् (५२)- रूपहीनको सुरूप बनाता है।

११ अविभ्युषा संजग्मानः (५७)- यह निर्भीक व्यक्तियोंके साथ सदा रहता है।

मनुष्य सदा अज्ञानियोंको ज्ञान देता रहे। यह राष्ट्रमें ज्ञानप्रसारका कार्य हर मनुष्यको करना चाहिए। इन्द्र क्षत्रिय होते हुए भी इस ज्ञानप्रसारके कार्यकी तरफ बहुत सावधान रहता और ध्यान देता रहता है। इसीप्रकार राष्ट्रका राजा भी शिक्षाकी तरफ ध्यान दे और सभी प्रजाको सुशिक्षित बनाये। इन्द्र हमेशा ऐसे मनुष्योंके साथ रहता है जो निर्भीक होते हैं, जो कठिनसे कठिन समय पर भी उसका साथ देते हैं। राजा भी ऐसे निर्भीक वीरोंको अपना सहायक बनाये।

यह इन्द्र महान् है। (दाशुषे ऊतयः सद्यः सन्ति) दान दाताके संरक्षणके लिए इसके आयुध हमेशा तैयार रहते हैं। इसीलिए इस वज्रधारी शूर इन्द्रका महत्त्व सर्वत्र विख्यात है।

वीरतावाला धन

१ सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आभर (७१)- स्वीकार करने योग्य, विजयशील, शत्रुके

नाश करनेमें समर्थ और श्रेष्ठ धन सुरक्षाके लिए हमें भरपूर मिले । मनुष्योंको मिलनेवाला धन (वर्षिष्ठं रयिं) श्रेष्ठ धन हो । वह उत्तम धन (सानसिं) सेवन या उपभोग करनेके योग्य हो । धनका संचय उपभोगके लिए किया जाए (सजित्वानं) जो धन शूरवीरोंके साथ रहता हो, वही धन हमें प्राप्त हो । जो कायर, डरपोक और दुष्ट लोगोंके पास धन हो, वह हमें न मिले । शूरवीरोंवाला धन शत्रुओंका नाश करता है । अतः वेदने यहां केवल वही धन मांगा है, जो " सेवन करने योग्य, वीरोंके साथ रहनेवाला और शत्रुको पराजित करनेके श्रेष्ठ सामर्थ्यसे युक्त हो । "

२ वरेण्यं चित्रं विभु प्रभु राधः (६५) - धन विविध प्रकारका, विशेष प्रभावी और सिद्धि तक पहुंचाने वाला हो ?

३ गोमत् वाजवत् पृथु बृहत् विश्वायु अक्षितं श्रव (८७ - गौओंके साथ रहनेवाला, विस्तृत, बड़ा, पूर्ण आयुतक जीवित रखनेवाला, अजय और यश देनेवाला हो ।

४ वसुः ८९)- जो मनुष्योंके सुखपूर्वक निवासका हेतु होता हो, ऐसा धन हो ।

ऐसा उत्तम धन संचित होनेके बाद उसका दान हजारों मनुष्योंको करना चाहिए । धन किसी अकेलेके भोगके लिए नहीं होता । इसलिए उसे सहस्रोंके पालन पोषण और संवर्धनमें ही लगाना चाहिए ।

सत्यभाषण

पक्वा शाखा न । विरप्शी गोमती मही सूनृता (७९)- जिस तरह उत्तम मधुर फलवाले वृक्षकी परिपक्व फलोंसे भरपूर शाखा जिस तरह लाभदायक होती है, उसी प्रकार मनुष्यकी वाणी हो । मनुष्यकी वाणी शुष्क शाखाके समान शुष्क और रसहीन न हो, अपितु रसदार फलोंसे लदी हुई शाखाके समान रसीली, मधुर और श्रवण करनेके योग्य हो । मनुष्यकी वाणी (वि-रप्शी) विशेष सुन्दर स्वरालापों से युक्त मधुर और कोमल हो । (गोमती) प्रगतियुक्त हो (मही) महत्ववाली और बड़ी श्रेष्ठ विचारोंसे युक्त और (सूनृता) उत्तम मानवता प्रकट करनेवाली हो । वाणीसे मनुष्यत्वका विकास हो । ऐसी वाणी मनुष्योंको बोलनी चाहिए । जिस राष्ट्रके नागरिक ऐसी उत्तम मीठी वाणी बोलते हों, वह राष्ट्र निस्सन्देह उन्नतिशील होगा ।

युद्धनीति

वृषायुधः वध्रयः न - हमारे सैनिक तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग करनेवाले हों ।

२ निरष्टाः चितयन्तः प्रवद्भिः आयन् - शत्रुके सैनिक अपना पराभव मानकर नीचेके मार्गसे दूर भाग जावें ।

३ रुदतः जक्षतः रजसः पारे अयोधयः, दस्युं आ अव अदहः - शत्रु रोते रहें या आनन्दमें रहें, उन्हें अपने स्थानसे दूर करके भगा दो, या उन्हें जला दो ।

३ स्पशः परि अदधात् - शत्रुके गुप्तचरोंको चारों ओरसे पकड़ना चाहिए ।

४ अमन्यमानान् दस्यून् मन्यमानैः नि अधमः - अपनी बात न माननेवाले शत्रुओंको बात माननेवाले मित्रोंसे दूर करना चाहिए ।

५ सध्रीचीनेन मनसा ओजिष्ठेन हन्मना तं अहन् - वीरोंको चाहिए कि वे धैर्ययुक्त मनसे, शान्तचित्तसे, परन्तु अधिक तीक्ष्ण शस्त्रसे शत्रुओंपर हमला करें । युद्धके समय वीर अपना मन बहुत शान्त रखें, वे अशान्त न हों, पर लड़ते समय तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र लेकर लड़ें ।

६ इलीबिशस्य दृळ्हा नि अविध्यत् - अपनी मातृभूमिपर खड़े हुए शत्रुओंके मजबूत किलोंको तोड़ देना चाहिए ।

इन्द्रके मानव हितकारी कर्म

यह इन्द्र सदा मनुष्योंके लिए हितकारी कर्म ही किया करता है ।

१ यस्य मानुषा, द्यावः न, विचरन्ति - जिस इन्द्रके मनुष्योंका हित करनेके लिए किए जानेवाले कर्म सूर्यकिरणोंके समान चारों ओर फैले हुए हैं ।

२ शतक्रतुः - सैकड़ों तरहके मानव हितकारी कर्म करनेवाला ।

३ सुक्रतुः - जनताके लिए उत्तम और हितकर कर्म करनेवाला ।

४ संभृतक्रतुः - मनुष्योंके भरणपोषणके कार्य करनेवाला ।

५ मानुषप्रधनाः ऊतयः नृपाह्यः मरुतः स्वः इन्द्रं अनु अमदन् - मनुष्योंके हितार्थ युद्ध करनेवाले संरक्षक संघटित वीरोंने स्वयं तेजस्वी इन्द्रको अनुकूल शक्ति प्रदान करके आनंदित किया ।

इस इन्द्रने अंगिराओंके लिए गौओंकी रक्षा की। अत्रिको कारागृहसे बाहर निकाला। विमदको धन धान्य प्रदान किया। वम्रसानको युद्धमें सुरक्षित किया। पिप्रु असुरके नगरोंका नाश किया। आर्योंके लाभके लिए दस्युओं-दुष्टोंको नष्ट करता है। नियमके अनुसार न चलनेवालोंको नियमशीलोंके लिए विनष्ट करता है। शक्तिमान् होकर यज्ञकर्मोंको प्रेरित करता है। मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा मातृभूमिके विरोधकोंको नष्ट करवाता है।

इस प्रकार वह इन्द्र मनुष्योंके लिए हितकारी कर्म करता है। यह इन्द्र (वीर्येण अति प्ररोचिते) अपने पराक्रमके कारण बहुत तेजस्वी दीखता है। यह (विश्वस्मै कर्मणे पुरोहितः) सब उत्तम कर्मोंका नेता है। इसीलिए (सः जनेषु इन्द्रियं चारु प्रब्रुवाणः चक्रस्यते) वह इन्द्र सब मानवोंमें विशेष प्रभाव दिखानेके कारण प्रशंसित होता है।

शवसे अपावृतं यस्यै विश्वायुः राधः दुर्धरं- शक्तिके लिए जिसको सब आयुभर प्रसिद्धि है, वह सचमुच दुर्धर बलवाला और अजिक्य सामर्थ्यवाला है।

इन्द्रकी युद्ध विद्या

१ आजौ अद्रिं नर्तयन् - युद्धमें पर्वतके समान कठोर वज्रको नचाता रहता है।

२ मायिनः मायाभिः अप अधमः- इसने कपटी शत्रुओंको कपटोंसे ही मारा।

३ सः दूरिषु दूरः- वह इन्द्र घेरनेवाले शत्रुओंको भी घेर लेता है।

४ त्वष्टा ते युज्यं शवः वबृधे, अभिभूति ओजसं वज्रं ततक्ष- त्वष्टाने तेरे योग्य बल बढाया और शत्रुको हरानेवाले वज्रका निर्माण किया।

५ युध्यतः अस्य (अन्तं) न (आनशुः) - युद्ध करते समय इस इन्द्रकी शक्तिका पार कोई भी न पा सका।

६ स युध्मः मज्मना ओजसा जनेभ्यः महानि समिधानि कृणोति, इन्द्राय (जनाः) श्रत् दधति- वह योद्धा इन्द्र अपने शुद्ध बलसे जनताका हित करनेके लिए बडे युद्ध करता है, इसके लिए सब लोग इस इन्द्र पर श्रद्धा रखते हैं।

स्वराज्यकी पूजा

ऋग्वेदका (१।८०) सूक्त " स्वराज्यसूक्त " है। वेदमें स्वराज्यका अर्थ बडा विशाल है। अपने ऊपर स्वयं शासन करनेको स्वराज्य कहते हैं। अपने शरीर, इन्द्रियां, मन, बुद्धि पर पूर्णरूपसे स्वाधीनता प्राप्त करना स्वराज्य है। ऐसे स्वयंशासक लोगोंके द्वारा जो राज्यशासन चलाया जाता है, वह स्वराज्य है। स्वयंशासित एवं संयमी, जितेन्द्रिय लोगोंके द्वारा जो शासन चलाया जाता है, वही वैदिक स्वराज्य है। जो सर्वोपरि श्रेष्ठ राज्यशासन है। इसमें मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और व्यापक दृष्टिवाले स्वयंशासक ही राज्यशासन करते हैं।

ऐसे स्वराज्यकी (अनु अर्चन्) अर्चना, पूजा करनी चाहिए। ऐसे उत्तम राज्यशासनका आदर एवं इसे चिरस्थायी बनानेके लिए क्या करना चाहिए, वह इस सूक्तमें बताया है—

१ ओजसा अहिं पृथिव्याः निः शशा (१) अपने बलसे शत्रुको पृथ्वी परसे निःशेष कर देना चाहिए। दुष्टोंको ऐसे नियंत्रणमें रखना चाहिए कि वे प्रजाजनोंको कष्ट देनेमें समर्थ न हों। दुष्टोंकी दुष्टता दूर करनेके लिए उनका नियमन करना ही उत्तम उपाय है।

२ ब्रह्मा वर्धनं चकार- ज्ञानीने इस बलका वर्धन किया था। जिस बलसे ये स्वराज्यके चालक, पालक और शत्रुके नियामक हो सके। राष्ट्रके अन्दर ज्ञानी बल बढानेका प्रयत्न करें और नाना साधनोंसे नाना क्षेत्रोंमें शक्तिका संवर्धन करें।

३ ओजसा वृत्रं नि जगन्थ (२)- बलसे घेरनेवाले शत्रुको मारा।

४ प्रेहि अभीहि, धृष्णुहि (३)- आगे बढो, हमला करो, चारों ओरसे घेर कर शत्रुओंका पराभव करो।

५ न ते वज्रः नि यंसते- युद्ध करते समय इस इन्द्रके वज्रको कोई रोक नहीं सकता।

६ मायिनं मृगं मायया अवधीः- कपटी, छली शत्रुको कपट और छलसे ही मारता है।

७ सैंकडों और सहस्रोंकी संख्यामें इकट्ठे होकर प्रभुकी उपासना करो और स्वराज्यकी अर्चना करो।

८ इन्द्रः सहसा वृत्रस्य तविषीं सहः च नि अहन्- इन्द्रने अपने बलसे शत्रुकी सेना और उसके सब सामर्थ्यका नाश किया।

९ इस इन्द्रकी गर्जनासे स्थावर और जंगम जगत् कांपता है और त्वष्टा भी उसके सामने कांपता है।

१० देवाः तस्मिन् ओजांसि नृम्णं उत क्रतुं संदधुः- सब देवोंने इस इन्द्रमें बल, वीर्य और कर्तृत्वकी शक्ति स्थापित की।

इस प्रकार स्वराज्यकी पूजा किस तरह हो सकती है, [illegible] इस सूक्तमें बताई है। प्रथम राष्ट्रमें ज्ञानकी वृद्धि करनी चाहिए। शस्त्रास्त्र भरपूर प्रमाणमें तैय्यार रहने चाहिए। वीरोंका निर्माण करना चाहिए। ये वीर शत्रु पर हमला करके उनका पराभव करें। कपटी शत्रुका नाश कण्टसे ही करें।

इस प्रकार इन्द्र देवताका वर्णन इस मण्डलमें है। इन्द्र देवताके सूक्तोंमें प्रायः वीररसके ही वर्णन होते हैं। इसके सूक्त या आदर्श राष्ट्रमें वीरतोत्पादक हैं।

अश्विनौ देवता

ये देवता सदा दोकी संख्यामें रहनेके कारण ये हमेशा द्विवचनमें ही प्रयुक्त होते हैं। ये विश्वराज्य मंत्रीमण्डलमें आरोग्यमंत्री हैं। ये देवता कौन हैं, इस विषयमें अनेक वचन ब्राह्मणग्रंथोंमें उपलब्ध हैं। यथा (१) सबका भक्षण करनेसे द्यावापृथिवी " अश्विनौ " हैं। (२) दोनों कान, (३) दोनों नाक, (४) दोनों आंख अश्विनौ हैं (५) दोनों अध्वर्यु अश्विनी हैं। (६) ये दोनों देवोंके वैद्य हैं। वेदमंत्रोंमें " देवानां भिषजौ " (ऐ० ब्रा० १। १८) के रूपमें दोनोंका वर्णन है। कथा है कि वैद्य होनेके कारण इन दोनोंको देवोंके साथ बैठकर सोम पीनेका अधिकार नहीं था। पर शर्याति राजाकी कन्या सुकन्याकी आराधना पर इन्होंने उसके बूढे और अन्धे पति च्यवनको तरुण और दृष्टिसे युक्त बनाया। उसके बदलेमें च्यवनने अश्विनौको देवोंके साथ बैठकर सोम पीनेका अधिकारी बनाया। इन दोनोंमें एक शल्यचिकित्सामें कुशल है और दूसरा औषधि चिकित्सामें। ये उत्तम चिकित्साके लिए अत्यन्त कुशल साधन अपने पास रखते हैं।

अश्विनौ वैद्य हैं

युवं ह स्थ भिषजा भेषजेभिः (१।१५७।६)

इन्होंने कायाकल्पका प्रयोग करके बूढेको तरुण बनाया था।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुंचतं
द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्
पतिमकृणुतं कनीनाम् । (ऋ० १।११६।१०)

" हे अश्विदेवो ! तुमने च्यवनकी चमडीको कवचके समान उतार दिया, उसकी आयु बढाई और उसे कई कमनीय स्त्रियोंका पति बनाया। "

जिस प्रकार सांप अपने शरीरसे केंचुलीको उतार कर फिर तरुण बन जाता है, उसी प्रकार कायाकल्पकी पद्धतिसे जीर्णशीर्ण चमडीको उतार कर मनुष्य फिर तरुण बन सकता है। इस कायाकल्पका प्रयोग अश्विनौ किया करते थे।

युवं च्यवानं जरसं... पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः
(ऋ० १।११७।१३)

हे अश्विनौ ! तुमने बूढे च्यवानको अपने सामर्थ्योंसे फिर तरुण बनाया।

इसी प्रकार एक वन्दन नामक व्यक्तिको भी उत्तम बनाया।

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः।
(ऋ० १।११९।७)

उद् वन्दनं ऐरयतं स्वर्दृशे। (ऋ० १।११२।५)

" हे अश्विनौ ! तुमने बुढापेके कारण अत्यन्त बुरी अवस्थावाले वन्दनको उत्तम बनाया और देखनेके लिए उसे आंखें प्रदान कीं। "

इन अश्विनौने घायलको व्रणरहित किया।

त्रिधा ह श्यावं विकस्तं उज्जीवसे ऐरयतं।
(ऋ० १।११७।२४)

" तीन स्थानपर कटे और जख्मी हुए श्यावको पुनः जीवन देकर चलने फिरने योग्य बनाया। "

अन्धेको आंखें दीं

याभिः शचीभिः वृषणा परावृजं
प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः। (ऋ० १।११२।८)

अपनी अनेक शक्तियोंसे परावृजका अन्धत्व दूर करके उसे देखने योग्य बनाया। इसी प्रकार—

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं ऋज्राश्वं
तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त...
(१।११६।१६-१७)

" ऋज्राश्वने एकसौ एक भेडें भेडियेको खानेके लिए दे दीं। यह देखकर क्रोधित हुए पिताने उसे अन्धा बना दिया। परन्तु अश्विनौने उसकी दूसरी आंखें लगाकर उसे आंखवाला बनाया। " इसी प्रकार अश्विनौने " दृष्टि पानेकी इच्छासे प्रार्थना करनेवाले कविको उत्तम आंखें दीं। "
(ऋ० १।११६।१४)

लोहेकी टांग लगाना

खेल राजाकी पुत्री विश्पला युद्ध करने गई। युद्ध करते करते उसकी एक टांग कट गई। उस स्थानपर अश्विनौने एक लोहेकी टांग लगाई।

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा
खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् । (ऋ० १।११६।१५)
प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तम् (ऋ० १।११८।८)
युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः (ऋ० १०।३९।८)

" खेल राजाकी पुत्री विश्पला युद्धमें गयी । युद्धमें उसकी एक टांग टूट गई । उसकी जगह अश्विनोंने एक लोहेकी टांग लगा दी । जिससे वह चलने योग्य बन गई । "

अश्विनोंने कारागृहमें पडे बन्दी रेभका उद्धार किया (ऋ० १।११२।५; ११६।२४; ११७।४) । वंध्या गौको दुधारु बनाया, (१।११२।३; ११७।२०; ११९।६)

अश्विनोंका रथ

अश्विनोंका रथ पक्षीके समान आकाशसे उडता था ।

" जब आपका रथ पक्षियोंके समान आकाशमें उडता है, तब आपके घोडे अन्तरिक्षमें गमन करते हैं । " इनके आकाशगामी रथोंमें पक्षी जोडे जाते थे ।

आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु
रथे युक्तासः आशवः पतंगाः (१।११८।४)

" अश्विनौ ! आपके रथ-आकाशयानमें शीघ्रगामी पक्षी जोडे गए हैं ।

इनके जमीनपर चलनेवाले रथ भी थे, जो बिना घोडोंके ही दौडा करते थे—

अनश्वं यामी रथमावृतं जिषे (१।११२।१२)
अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ।
(१। १२०।१०)

" जिसमें घोडे नहीं जोडे गए हैं, ऐसे अश्वरहित रथ अश्विनोंके हैं ।

उडनेवाली नौका-विमान

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवं
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः
सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः । (ऋ० १८२।५)

" तुमने तुग्रपुत्रके लिए अपने सामर्थ्यसे पंखयुक्त नौका महासागरमें बनाई । वह पक्षीके समान थी । उस नौकासे उत्तम प्रकार उडनेवाले तुम दोनों सहजहीसे समुद्रसे उडकर ऊपर चले गए । "

अश्विनोंकी वह नौका जलमें तो चलती ही थी, पर आकाशमें भी उडती थी ।

तुग्रनामक सम्राट्का भुज्यु नामक पुत्र बडा वीर था । वह एक बार शत्रुओंसे लडने गया और समुद्रके पार रेगिस्तानमें जाकर वह घिर गया । उसने अश्विनोंकी आराधना की, तब अश्विनोंने अपने विमानों द्वारा उसका उद्धार किया ।

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां
वा जूतिभिः शाशदाना । (१।११६।२)

" बडे वेगसे उडनेवाले, त्वरासे दौडनेवाले, दैवी शक्तियोंसे प्रेरित होनेवाले यानोंसे अश्विदेव बडा पराक्रम करते हैं । "

तमूहथुः नौभिरात्मन्वतीभिः
अन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः । (१।११६।३)

" भुज्युको अश्विनोंने सामर्थ्यवाली तथा आकाशमें उडनेवाली नौकाओं द्वारा, जो जलमें चलती थीं, घर पहुंचाया । "

अश्विनोंके जहाज जल-थल-आकाश तीनों स्थलोंमें आसानीसे चलनेवाले थे ।

तिस्रः क्षपः त्रिरहाति व्रजद्भिः
नासत्या भुज्युं ऊहथुः पतंगैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे
त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः (ऋ० १।११६।४)

" तीन रात्रि और तीन दिन तक अतिवेगसे दौडनेवाले पक्षीसदृश यानोंसे भुज्युको आकाशमार्गसे वहन किया । जल मय समुद्रके परे रेतीले प्रदेशमेंसे उसे तीन रथोंसे उसके घर पहुंचाया । उन रथोंमें सैकडों चक्र और घोडे लगे हुए थे ।

अनारंभणे तदवीरयेथां अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुः भुज्युमस्तं
शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् । (१।११६।५)

" जिसके आदि-अन्तका पता नहीं, जिसकी थाहका भी पता नहीं लग सकता, ऐसे अगाध समुद्रमेंसे सौ बल्लियोंवाली नौकाकी सहायतासे भुज्युको अपने घर पहुंचाया । "

युवं भुज्युं अर्णसो निः समुद्रात्
विभिरूहथुः ऋज्रेभिरश्वैः । (१।११७।१४)

" अश्विनौ ! तुमने बडे महासागरमेंसे बडे वेगवाले अपने पक्षिसदृश वाहनोंसे ऊपर उठाया ।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं
स्वयुक्तिभिः निवहन्ता पितृभ्य आ। (१।११९।४)

" तुम जलमें डूबनेवाले भुज्युको उडनेवाले पक्षी जैसे यानोंसे उठाकर अपनी खास युक्तियोंसे पिताके पास लाये। "

इस प्रकार अश्विनी देव सर्वत्र नीरोगता उत्पन्न करते हैं, रोगियोंके रोग दूर करते हैं, आरोग्यका संरक्षण करते हैं, आरोग्यके संरक्षणका मार्ग बताते है।

उषा

उषा देवताके सूक्तोंमें साधारणतया प्राभातिक दृश्यका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। इस देवताके द्वारा ऋषियोंने स्त्रियोंको उत्तम उत्तम बोध दिए हैं। उषाके मंत्रोंमें आर्थिक सम्पन्नता प्राप्त करनेका मार्ग बताया है। उषाका माहात्म्य निम्न मंत्रोंमें वर्णित है—

१ ज्योतिः कृणोति सूनरी। (१।४८।८)
२ ज्योतिः विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती
उषः तमः वि आवः (१।९२।४)
३ अपः प्रागात् तम आ ज्योतिरेति। (१।११३।१६)

यह भलीभांति ले चलनेवाली उषा प्रकाशका सृजन करती है। समूचे संसारके लिए उजालेका निर्माण करती हुई उषा अन्धेरा दूर करती है। अन्धेरा दूर हो गया और अब उजाला आ रहा है।

इस प्रकार उषा अन्धकारको दूर करके उजाला फैलाती हुई आती है और सभी सोये हुए प्राणियोंको जगाकर उन्हें अपने अपने कामोंमें नियुक्त करती है।

सूनरी उषा आयाति, पद्वत् ईयते,
पक्षिणः उत्पातयति। (१।४८।५)
उत्ते वयश्चित् वसतेरपप्तन् नरश्च...व्युष्टौ।
(१।१२४।१२)
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ। (१।४८।६)

" सुन्दरी उषा जब प्रकट होती है, तब पैरोंवाले प्राणी चलने लगते हैं, और पक्षी उडने लगते हैं। हे उषे! तेरे प्रकट होनेपर पक्षी भी अपना घोंसला छोड छोडकर उडने लगते हैं और मनुष्य भी अपने कामोंमें लग जाते हैं। हे उषे! तेरे आजाने पर कोई पक्षी घोंसलेमें बैठा नहीं रहता। "

विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती (१।९२।९)
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं
त्वे वि यदुच्छसि सूनरी। (१।४८।१०)
ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्। (१।१२४।४)

" यह उषा अपना अपना कार्य करनेके लिए सारे प्राणियोंको जगाती है। यह उषा जब उठती है। तबसारे विश्वकी प्राणशक्ति और जीवनशक्ति इस उषा पर निर्भर रहती है। यह उषा सोते हुओंको उठाती हुई आती है। यह उषा ऐश्वर्योंको भी प्रदान करनेवाली है।

दिवः दुहितः रथेभिः वाजेभिः आगहि,
रयिं अस्मे नि धारय।
वामेन सह बृहता द्युम्नेन राया
सह नः वि व्युच्छ। (१।४८।१)
सा अस्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यं
उषो वाजं सुवीर्यम्। (१।४८।१२)
उषो अद्येह ... रेवदस्मे व्युच्छ। (१।९२।१४)

" हे उषे! तू सुन्दर सुन्दर धनोंके साथ हमारे पास आ और हमें ऐश्वर्यसम्पन्न बना। "

इस प्रकार उषा सोते हुओंको जगाकर उन्हें ऐश्वर्यसम्पन्न बनाती है। इसी भांति घरकी स्त्रियां घरमें उठकर उजाला करें, सोते हुओंको जगायें और उन्हें हरतरहसे सुखी बनावें। घरकी स्त्रियां सदा उषाकी भांति सजी सजाई और प्रफुल्ल चेहरेवाली रहें। यह बोध उषादेवताके सूक्तोंसे मिलता है।

इस प्रकार प्रथम मण्डलमें देवताओंसे बोध प्राप्त होता है। इन देवताओंके अलावा मरुत् ब्रह्मणस्पति, बृहस्पति आदि अनेक देवताओंके वर्णन हैं, जो मनुष्योंको विविध प्रकारके बोध देते हैं। पर इन बोधोंसे मनुष्य तभी लाभ उठा सकता है, कि जब वह देवोंके द्वारा बताये गए मार्गोंपर चले। " यत् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि " जो देवोंने किया वही मैं भी करूं। " देव मनुष्योंके लिए आदर्श हैं, इसीलिए देव मनुष्योंके लिए उपास्य हैं। अग्नि अपने प्रकाशसे जगत्का कल्याण करता है, उसी तरह विद्वान् गण अपने ज्ञानके प्रकाशसे जगत्का कल्याण करें। इन्द्र वीर है, स्वराज्यका संरक्षक है। उसी तरह वीरगण निर्भीक होकर स्वराज्यका संरक्षण करें। इसीतरह अन्यान्य देवोंसे भी मनुष्योंको बोध प्राप्त होता है। देवोंके द्वारा दिए गए बोधोंके अनुसार आचरण करके उस ज्ञानको आत्मसात् करना मानवमात्रका कर्तव्य है। देवोंने तो अपने कार्योंसे आदर्श सामने रखे, अब उन आदर्शोंको अपनाना मनुष्य पर निर्भर है।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

सुभाषित

१ पुरोहितं यज्ञस्य देवं होतारं अग्निं ईळे (१)– अग्रस्थानमें रहनेवाले, समाजमें संगठनका काम करनेवाले, तेजस्वी तथा देवोंको बुलानेवाले अग्रणीकी स्तुति करता हूं।

२ अग्निः पूर्वेभिः उत नूतनैः ऋषिभिः ईड्यः (२) – संगठन करनेवाला यह अग्रणी प्राचीन और नवीनोंके द्वारा प्रशंसित होता है

३ अग्निना दिवे दिवे पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिं अश्नवत् (३)– इस अग्रणीकी सहायतासे मनुष्य प्रतिदिन पुष्टिकारक यशस्वी और वीरतासे युक्त ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

४ अग्ने अध्वरं यज्ञं विश्वतः परि भूः असि (४) – हे अग्रणी ! तू शत्रुका पराभव करके अहिंसामय शुभ कर्मको सफल बनाता है।

५ अग्ने ! दाशुषे भद्रं करिष्यसि (६)– हे अग्ने ! तू दान देनेवालेका कल्याण करता है।

६ अग्ने ! सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व (७)– जिस प्रकार पिता पुत्रका कल्याण करता है उसी प्रकार, हे अग्ने ! तू हमें भी कल्याणसे युक्त कर।

७ सरस्वती नः पावका...धियावसुः यज्ञं वष्टु (२८)– सरस्वती हमें पवित्र करे और बुद्धिसे प्राप्त होनेवाले अनेक प्रकारके धन देनेवाली यह विद्या हमारे यज्ञको सफल करे।

८ सूनृतानां चोदयित्री सुमतीनां चेतन्ती सरस्वती यज्ञं दधे (२९)– सत्य कर्मोंको प्रेरणा देनेवाली, उत्तम बुद्धियोंको बढानेवाली विद्याकी देवी शुभ कर्मको धारण करती है, उन्हें सफल करती है।

९ सरस्वती केतुना महः अर्णः प्र चेतयति, विश्वाः धियः वि राजति (३०)– यह विद्या अपने ज्ञानसे संसाररूपी महासागरका ज्ञान प्राप्त कराती है और सब प्रकारकी बुद्धियोंको प्रकाशित करती है।

१० इन्द्रस्य शर्मणि स्याम उत अरिः कृष्टयः नः सुभगान् वोचेयुः (३६)– हम इन्द्रकी शरणमें रहें ताकि शत्रु तथा अन्य दूसरे मनुष्य भी हमें सौभाग्यशाली कहें।

११ यः रायः महान् अवनिः सुपारः सुन्वतः सखा (४०)– जो धनका महान् रक्षक दुःखोंसे पार करानेवाला और यज्ञ करनेवालोंका मित्र है, उस इन्द्रकी स्तुति करो।

१२ अक्षितऊतिः इन्द्रः इमं सहस्रिणं वाजं सनेत्, यस्मिन् विश्वानि पौंस्या (४९)– संरक्षण करनेके सामर्थ्यसे युक्त वीर सहस्रों प्रकारके बल बढानेवाले अन्नका सेवन करे, जिसमें सभी तरहके बल निहित हैं।

१३ मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन् (५०)– शत्रुके मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह न करें अर्थात् हमारे शरीरोंको क्षतविक्षत न करें।

१४ मर्याः ! अ-केतवे केतुं कृण्वन् अपेशसे पेशः उषद्भिः सं अजायथाः (५३)- अज्ञानीके लिए ज्ञान देता हुआ तथा रूपरहितको रूप प्रदान करता हुआ यह सूर्य उषाओंके साथ उदय हुआ है।

१५ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे दिवि सूर्यं आरोहयत्, गोभिः अद्रिं वि ऐरयत् (६३)- इन्द्रने विशेष प्रकाश करनेके लिए द्युलोकमें सूर्यको चढाया और उसीने अपनी किरणोंसे मेघोंको प्रेरित किया।

१६ वयं महाधने अर्भे इन्द्रं हवामहे (६५)- हम बडे युद्धमें और छोटी लडाईमें भी इन्द्रको ही बुलाते हैं।

१७ इन्द्रः महान् परः च, वज्रिणे महित्वं, द्यौः न प्रथिना शवः अस्तु (७५)- इन्द्र बडा और श्रेष्ठ है, उस वज्रधारी वीरको महत्त्व प्राप्त हो और द्युलोकके समान विस्तृत बल प्राप्त हो।

१८ ये नरः समोहे आशत, तोकस्य वा सनितौ, धियायवः वा विप्रासः (७६)- जो नेता युद्धमें लगे रहते हैं, जो पुत्रकी देखभालमें व्यस्त रहते हैं, अथवा जो बुद्धिमान् ज्ञानी ज्ञान प्रचारमें लगे रहते हैं, वे सब आदरणीय हैं।

१९ दाशुषे ऊतयः सद्यः चित् सन्ति (७९)- दाताके लिए सुरक्षायें तत्काल प्राप्त हो जाती हैं।

२० इन्द्र ! रभस्वतः यशस्वतः राये चोदय (८६) - हे इन्द्र ! प्रयत्न करनेवाले तथा यशस्वी लोगोंको ही धनके लिए प्रेरित कर अर्थात् प्रयत्न करनेवाले ही धन प्राप्त कर सकते हैं।

२१ इन्द्र अस्मे बृहत् पृथु श्रवः अक्षितं विश्वायुः धेहि (८७)- हे इन्द्र ! हमें तू महान् यश और सम्पूर्ण आयु प्रदान कर। सभी मनुष्य यशस्वी और स्वास्थ्यपूर्ण दीर्घायुवाले हों।

२२ शतक्रतो ! ब्रह्माणः त्वा वंशं इव उत् येमिरे (९१) - हे सैंकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! ज्ञानी जन तुझे बांसके समान उन्नत करते हैं।

२३ ऋघायमाणं त्वा उभे रोदसी नहि इन्वतः (९८)- शत्रुका नाश करनेवाले तेरे (इन्द्रके) सामर्थ्यको दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक भी नहीं पा सकते।

२४ नव्यं आयुः प्रसू तिर ऋधि सहस्रसां कृधि (१०१)- हे इन्द्र ! नवीन आयु हमें दो और ज्ञानीको हजारों तरहके धनोंसे युक्त करो।

२५ शवसः पते इन्द्र ! वाजिनः ते सख्ये मा भेम, जेतारं अपराजितं त्वा प्र नोनुमः (१०४)- हे सब तरहके बलोंके स्वामी इन्द्र ! बलशाली तेरी मित्रतामें रहते हुए हम किसीसे न डरें। शत्रुओंको जीतनेवाले पर स्वयं शत्रुओंसे पराजित न होनेवाले इन्द्रको हम बारबार प्रणाम करते हैं।

२६ इन्द्रस्य रातयः पूर्वीः (१०५)- इन्द्रके दान अनेक तरहके होते हैं।

२७ यत् ईं स्तोतृभ्यः मघं मंहते, ऊतयः न वि दस्यन्ति (१०५)- जो भी स्तोताओंके लिए धनका दान देते हैं, उनके लिए संरक्षण कभी कम नहीं होते।

२८ इन्द्रः पुरां भिन्दुः युवा कविः अमितौजाः विश्वस्य कर्मणः धर्ता वज्री पुरुष्टुतः (१०६)- इन्द्र शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाला, तरुण, ज्ञानी, अत्यन्त तेजस्वी, सभी उत्तम कर्मोंका कर्ता, वज्र धारण करनेवाला और सभीके द्वारा पूजित होता है।

२९ इन्द्र ! त्वं मायिनं शुष्णं मायाभिः अवातिरः (१०९)- हे इन्द्र ! तूने कपट करनेवाले शुष्णको कपटोंसे ही मारा। कपट करनेवाले शत्रुके साथ कपटका प्रयोग करके ही उसका पराभव करना चाहिए।

३० विश्ववेदसं अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं अग्निं वृणीमहे (१११)- सब भले बुरे कर्मोंको जाननेवाले, इस यज्ञ अर्थात् समाजमें संगठनके कार्यको करनेवाले अग्रणीको हम एकमतसे अपना नेता स्वीकार करते हैं।

३१ पुरुप्रियं अग्निं विश्पतिं सदा हवन्ते (११२)- प्रजाओंके प्रिय और तेजस्वी प्रजापालक राजाकी सदा प्रशंसा होती है।

३२ अग्ने त्वं रक्षस्विनः रिषतः दह (११५)- हे अग्ने ! तू राक्षसी स्वभाववाले हिंसक शत्रुओंको जला दे।

३३ अग्निः कविः युवा जुह्वास्यः (११६)- अग्नि ज्ञानी, तरुण और तेजस्वी मुखवाला है।

३४ अग्ने ! यः त्वा दूतं सपर्यति, तस्य प्र अविता भव (११८)- हे अग्रणी ! जो दूत कर्म करनेवाले तेरी सेवा करता है, उसको तू रक्षा करनेवाला हो।

३५ यः देववीतये अग्निं आ विवासति, पावक तस्मै मृळय (११९)- जो मनुष्य श्रेष्ठ होनेके लिए इस अग्रणीकी सेवा करता है, हे पवित्र करनेवाले अग्ने ! तू उसे सुखी कर।

३६ हे अग्ने ! (त्वं) मनुः हितः होता असि (१२६) - हे अग्ने ! तू मनुष्योंका हित करनेवाला और होता है।

३७ इळा सरस्वती मही तिस्रः देवीः मयोभुवः (१३१)– मातृभूमि, मातृसंस्कृति और मातृभाषा ये तीनों देवियां सुख देनेवाली हैं।

३८ (त्वष्टा) केवलः अस्माकं अस्तु (१३२)- यह सबका निर्माण करनेवाला प्रभु केवल हमारा ही होकर रहे।

३९ विप्र (अग्ने) ! ते धियः गृणन्ति (१३६)- हे ज्ञानी अग्ने ! तेरे ज्ञानपूर्वक कर्मोंकी सब प्रशंसा करते हैं। ज्ञानपूर्वक किए गए कर्मोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

४० अग्ने ! यजमान् ऋतावृधः पत्नीवतः कृधि (१४१)– हे अग्ने ! यज्ञ करनेवाले तथा सत्यकी वृद्धि करनेवाले मनुष्योंको तू पत्नियोंसे युक्त करता है।

४१ द्रविणोदा नः वसूनि ददातु, ता देवेषु वनामहे (१५४)– धन देनेवाला देव हमें धन प्रदान करे और हम उन धनोंको देवोंको प्रदान करें।

४२ गार्हपत्येन ऋतुना यज्ञनीः (१५८)– गृहस्थाश्रममें रहनेवाला ऋतुके अनुसार रहकर ही शुभकर्म करनेमें प्रवृत्त होता है।

४३ देवयते देवान् यज (१५८)– देवत्व पानेकी इच्छा करनेवालोंको ज्ञानियोंका सत्कार करना चाहिए।

४४ इमा धाना घृतस्नुवः (१६०)- यज्ञमें डाली जानेवालीं ये लाजायें (खीलें) घीमें भीगी हुई हों।

४५ अयं स्तोमः अग्रियः हृदिस्पृक् शंतमः अस्तु (१६५)– यह स्तोत्र श्रेष्ठ, हृदयको छूनेवाला और शांति देनेवाला हो।

४६ शचीनां हि युवाकु, सुमतीनां युवाकु, वाजदाव्नां भूयाम (१७१)– हमारी शक्तियोंका संघटन हो, हमारी उत्तम बुद्धियोंमें एकता हो अर्थात् हम सभी एकमतवाले होकर चलें, ताकि हम सभी बलशालियोंमें मुख्य हों।

४७ यस्मात् ऋते विपश्चितः चन यज्ञः न सिध्यति सः धीनां योगं इन्वति (१८३)– जिसके बिना विद्वानोंका भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता, उन उत्तम बुद्धियोंसे मनुष्य सम्पन्न हो।

४८ विश्वे देवासो अद्रुहः (१८८)- सभी देवगण कभी किसीसे द्रोह नहीं करते।

४९ सत्यमंत्राः ऋजूयवः ऋभवः पितरा पुनः युवाना अक्रत (१९८)- सत्य विचारवाले सरल स्वभावी ऋभुओंने अपने मातापिताको फिरसे तरुण बना दिया।

५० ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्षः उब्जताम् (२०७)– वे महान् और मनुष्योंके समाजोंके स्वामी इन्द्र (राजा) और अग्नि (ब्राह्मण विद्वान्) दुष्टोंको सरल स्वभाववाला बना दें।

५१ तस्य व्रतानि उष्मसि (२१४)– हम सब उस सूर्यके नियमोंका पालन करें।

५२ राधांसि दाता शुम्भति (२१६)– सिद्धियोंके प्रदाता सूर्यदेव सब प्रकाशित हो रहे हैं। उदय होता हुआ सूर्य स्वास्थ्य आदि अनेक सिद्धियोंका देनेवाला है।

५३ पृथिवि ! स्योना अनृक्षरा निवेशनी भव, सप्रथः शर्म नः यच्छ (२२३)- हे पृथ्वी ! तू सुखदायिनी, कष्टकरहित और हमारा निवास करानेवाली बन, और हमें विस्तृत सुख दे।

५४ विष्णुः इदं विचक्रमे ! त्रेधा पदं नि दधे। अस्य पांसुरे समूढं (२२५)- विष्णुने यह विक्रम किया। उसने तीन प्रकारसे अपने पद रखे। पर इसका एक पद धूली प्रदेशमें (अन्तरिक्षमें) गुप्त है।

५५ अदाभ्यः गोपा विष्णुः धर्माणि धारयन् अतः त्रीणि पदा वि चक्रमे (२२६)– न दबनेवाला, सबका रक्षक विष्णु सब धर्मोंको धारण करता हुआ यहांसे तीन पद रखनेका विक्रम करता है।

५६ विष्णोः कर्माणि पश्यत, यतः व्रतानि पस्पशे, इन्द्रस्य युज्यः सखा (२२७)– विष्णुके ये कर्म देखो। उनसे ही हम अपने व्रतोंको किया करते हैं। यह विष्णु इन्द्रका सुयोग्य मित्र है।

५७ विष्णोः तत् परमं पदं दिवि आततं चक्षुः इव सूरयः सदा पश्यन्ति (२२८)- विष्णुका वह परम स्थान द्युलोकमें फैले हुए प्रकाशके समान ज्ञानी सदा देखते हैं।

५८ विष्णोः यत् परमं पदं, तत् विपन्यवः जागृवांसः विप्रासः सं इन्धते (२२९)– विष्णुका जो पद है, उसे कर्मकुशल और जाग्रत रहनेवाले ज्ञानी सम्यक् प्रकाशित हुआ देखते हैं।

५९ ता मित्रावरुणा ऋतेन ऋतावृधौ ऋतस्य ज्योतिषः पती (२३४)– ये दोनों मित्र और वरुण सरलतासे सन्मार्गकी वृद्धि करनेवाले और सन्मार्गकी ज्योतिके पालनकर्ता हैं।

६० अप्सु अन्तः अमृतं, अप्सु भेषजं, उत अपां प्रशस्तये देवाः वाजिनः भवतः (२४८)– जलके भीतर अमृत है, जलमें औषधिके गुण हैं। ऐसे जलोंकी प्रशंसा करनेके लिए, हे देवो ! तुम उत्साही बनो।

६१ सोमः मे अब्रवीत्, अप्सु अन्तः विश्वानि भेषजा, विश्वशंभुवं अग्निं, विश्वभेषजीः आपः च (२४९)– सोमने मुझसे कहा कि जलोंके अन्दर सब औषधियां हैं, सबको सुख देनेवाला अग्नि है और जल सब तरहकी दवाइयां देता है।

६२ आपः! मम तन्वे वरूथं भेषजं पृणीत, ज्योक् च सूर्यं दृशे (२५०)– हे जलो ! मेरे शरीरके लिए संरक्षक औषधि दो, जिससे निरोग होकर मैं बहुत कालतक सूर्यको देखूं।

६३ मयि यत् किं च दुरितं, यत् वा अहं अभि दुद्रोह यत् वा शेपे उत अनृतं इदं आपः प्र वहत (२५१)– मुझमें जो दोष हो, जो मैंने द्रोह किया हो, जो असत्य भाषण किया हो, ये सब दोष ये जल मेरे शरीरसे बाहर बहाकर ले जावें और मैं शुद्ध बन जाऊं।

६४ सः (अग्निः) नः मह्यै अदितये पुनः दात् पितरं मातरं च दृशेयं (२५५)– वह अग्नि मुझ बड़ी अदितिके पास पुनः दे, ताकि मैं पिता और माताको देख सकूं।

६५ पतयन्तः अमी वयः चन ते क्षत्रं न हि आपुः, सहः न, मन्युं न (२५९)– हे वरुण देव ! ये उड़नेवाले पक्षी तेरे पराक्रमका अन्त नहीं पा सकते, तेरा बल तथा उत्साह भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६६ अनिमिषं चरन्तीः इमाः आपः न, ये वातस्य अभ्वं प्रमिनंति न (२५९)– हमेशा चलनेवाले ये जल-प्रवाह भी तेरी गतिको नहीं जान सकते और जो वायुके वेगको रोकते हैं, वे भी तेरे सामर्थ्यको नहीं लांघ सकते हैं।

६७ पूतदक्षः राजा वरुणः वनस्य स्तूपं अबुध्ने ऊर्ध्वं ददते (२६०)– पवित्र कार्य करनेके लिए अपने बलका उपयोग करनेवाला राजा वरुण वनके स्तंभको आधार रहित आकाशमें ऊपर ही ऊपर धारण करता है। अर्थात् जलके आधारभूत सूर्यको ऊपर आकाशमें स्थिर करता है।

६८ नीचीनाः स्थुः एषां बुध्नः उपरि, अस्मे अन्तः केतवः निहिताः स्युः (२६०)– इस सूर्यकी शाखायें नीचेकी ओर हैं, और मूल ऊपर द्युलोकमें हैं, द्यु और पृथ्वीके मध्यमें किरणें फैली रहती हैं।

६९ राजा वरुणः सूर्याय पन्थां अनु- एतवै उ उरुं चकार हि (२६१)– राजा वरुणने सूर्यके मार्गको उसके गमनके लिए विस्तृत बनाया।

७० अपदे पादा प्रतिधातवे अकः (२६१)– स्थानरहित अन्तरिक्षमें पांव रखनेके लिए इस वरुणने स्थान भी बना दिया।

७१ अमी ऋक्षाः उच्चा निहितासः ये नक्तं ददृश्रे, दिवा कुहचित् ईयुः, अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशत् चन्द्रमा नक्तं एति (२६३)– ये नक्षत्र ऊपर आकाशमें उच्च भागमें रखे हुए हैं, ये रात्रीके समय दीखते हैं। विशेष रूपसे चमकता हुआ चन्द्रमा रात्रिमें आता है, वरुण राजाके ये सभी नियम अटूट हैं।

७२ उरुशंस वरुण ! अहेळमानः बोधि, नः आयुः मा प्रमोषीः (२६४)– हे बहुतों द्वारा प्रशंसित देव वरुण ! क्रोधित न होता हुआ तू हमारी प्रार्थना सुन, हमारी आयुको मत घटा।

७३ राजन् वरुण ! ते हेळः नमोभिः अव, कृतानि एनांसि शिश्रथः (२६७)– हे तेजस्वी वरुण ! तेरे क्रोधको हम अपने नमस्कारोंसे दूर करते हैं, तू हमारे लिए पापोंको शिथिल करके विनष्ट कर।

७४ वरुण ! उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय, अधमं अव श्रथाय, मध्यमं वि श्रथाय, आदित्य ! अथ वयं तव व्रते अनागसः स्याम (२६८)– हे वरुण ! हमारे सत्वगुणरूपी उत्तम पाशको ढीला करो, तमोगुणरूपी अधम पाशको ढीला करो, तथा रजोगुणरूपी मध्यम पाशको ढीला करो। हे अदितिपुत्र वरुण ! हम तुम्हारे व्रतमें रहते हुए पापरहित हों।

७५ जिहीळानस्य हत्नवे वधाय नः मा रीरधः (२७०)– अपना निरादर करनेवालेका वध करनेके लिए ऊपर उठाये हुए अस्त्रसे हमारी हिंसा मत कर।

७६ दाशुषे वसूनि क्षरसि (३०५)– हे देव ! दाताको पुन तत्काल धन देते हो।

७७ अग्ने ! पृत्सु यं मर्त्यं अवाः, यं वाजेषु जुनाः, सः शश्वतीः इषः यन्ता (३०६)– हे अग्निदेव ! युद्धमें जिस मनुष्यकी तुम रक्षा करते हो, जिसको तुम रणोंमें जानेके लिए उत्साहित करते हो, वह शाश्वत अन्नोंका नियामक होता है।

७८ शूर ! त्या अरातयः ससन्तु, रातयः बोधन्तु (३२५)– हे शूरवीर ! हमारे वे शत्रु सोये रहें, और मित्र जागते रहें ।

७९ दस्रौ अश्विना ! वां रथः समानयोजनः अमर्त्यः हि समुद्रे ईयते (३४६)– हे शत्रुनाशको अश्विदेवो ! तुम दोनोंका एक साथ जोते जानेवाला रथ विनाशरहित है, जो समुद्रमें चलता है ।

८० अग्ने ! त्वं प्रथमः अंगिराः ऋषिः अभवः, देवानां देवः शिवः सखा अभवः (३५१)– हे अग्ने ! तू सबसे पहला अंगिरा नामक ऋषि हुआ था, तू देवोंका देव और कल्याणकारक मित्र हुआ ।

८१ विभुः विश्वस्मै भुवनाय मेधिरः (३५२)– व्यापक यह अग्नि सभी प्राणियोंको बुद्धि प्रदान करनेवाला है ।

८२ सुक्रत्या विवस्वते आविर्भव, रोदसी अरेजेतां (३५३)– उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे युक्त होकर यह अग्निदेव मनुष्योंके हितके लिए प्रकट हुआ । इसके डरसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक कांपते हैं ।

८३ अग्ने ! त्वं मनवे द्यां अवाशयः (३५४)– हे अग्ने ! तूने मनुष्योंके हितके लिए आकाशको शब्दगुण युक्त बनाया ।

८४ अग्ने ! त्वं वृषभः पुष्टिवर्धनः, एकायुः विशः आ विवासासि (३५५)– हे अग्ने ! तू बडा बलिष्ठ और पुष्टि देकर सबको बढानेवाला है । पूर्णायु देकर मनुष्योंको बसाता है ।

८५ त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन् विदथे पिपर्षि, शूरसातौ दभ्रेभिः चित् भूयसः हंसि (३५६) – हे अग्ने ! तू कुमार्गगामी मनुष्यको भी अपने साथ रहने पर युद्धमें सहायता करता है और शूरवीरोंके युद्धमें थोडेसे वीरोंको लेकर भी बहुतसे शत्रुओंको मार देता है ।

८६ अग्ने ! त्वं तं मर्तं उत्तमे अमृतत्वे दधासि (३५७)– हे अग्ने ! तुम इस उत्तम मनुष्यको अमरत्व प्रदान करते हो ।

८७ अग्ने ! त्वं धनानां सनये नः यशसं कारुं कृणुहि (३५८)– हे अग्ने ! तू धनोंके दानके लिए हमें यश देनेवाली कारीगरीकी विद्या प्रदान कर ।

८८ अनवद्य ! देवः देवेषु जागृविः (३५९)– हे निन्दाके अयोग्य अग्ने ! तेजस्वी तू देवोंमें हमेशा जागता रहता है ।

८९ व्रतानां सुवीरं सहस्रिणः रायः यन्ति (३६०) – नियमके पालन करनेवाले तथा उत्तम पुत्रवाले मनुष्यको अनेक प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ।

९० त्वां देवाः प्रथमं आयुं नहुषस्य विश्पतिं अकृण्वन्, मनुषस्य शासनीं इळां अकृण्वन् । यत् ममकस्य पितुः पुत्रः जायते (३६१)– हे अग्ने ! तुझे देवोंने प्रथम आयु दी, पश्चात् उन्होंने मानवोंके लिए प्रजापालक राजाका निर्माण किया । तब मनुष्योंकी व्यवस्थाके लिए धर्मनीतिका निर्माण किया, जैसे पितासे ममत्वरूप पुत्रका जन्म होता है, वैसे ही आत्मीयतासे राजा प्रजाका पुत्रवत् पालन करे ।

९१ देव अग्ने ! त्वं तव पायुभिः मघोनः नः तन्वः च रक्ष (३६२)– तू अपनी संरक्षणशक्तिसे हमें धनवान् बनाकर हमारे शरीरोंकी सुरक्षा कर ।

९२ हे अग्ने ! त्वं यज्यवे पायुः (३६३)– हे अग्ने ! तू यज्ञ करनेवालेका संरक्षक है ।

९३ अ-वृकाय धायसे रातहव्यः (३६३)– किसीको हिंसा न करनेवाले और दूसरोंके पोषण करनेवालेको तू अन्न देता है ।

९४ अग्ने ! त्वं उरुशंसाय वाघते स्पार्हं परमं यत् रेक्णः तत् वनोषि (३६४)– तू श्रद्धासे स्तुति करनेवाले भक्तको उत्तम और श्रेष्ठ धन प्रदान करता है ।

९५ आध्रस्य चित् प्रमतिः पिता उच्यसे (३६४) हे अग्ने ! दुर्बलको भी उत्तम बुद्धि प्रदान करनेके कारण तुझे सब पिता कहते हैं ।

९६ विदुष्टरः दिशः प्रशास्सि (३६४)– यह अग्रणी अज्ञानियोंको ज्ञान और उन्नतिकी दिशा दिखाता है ।

९७ अग्ने ! त्वं प्रयतदक्षिणं नरं विश्वतः परि पासि (३६५)– हे अग्ने ! तू प्रयत्नसे उत्तम कर्म करनेवालेके लिए जो योग्य दक्षिणा देता है, उस मनुष्यकी तू हरतरहसे रक्षा करता है ।

९८ स्वादुक्षद्मा वसतौ स्योनकृत्, यः जीवयाजं यजते स दिवः उपमा (३६५)– जिस घरमें अतिथियोंके लिए हमेशा स्वादिष्ट पदार्थ तैय्यार रहते हैं, तथा जीवोंके हितके लिए यज्ञ किया जाता है, वह घर स्वर्गकी उपमाके योग्य है ।

९९ सोम्यानां मर्त्यानां पिता असि (३६६)– हे अग्ने ! तू शान्त और अकुटिल स्वभाववालोंका पालक है ।

१०० वज्री यानि प्रथमानि वीर्याणि चकार इन्द्रस्य नु प्र वोचं (३६१)- वज्रधारी इन्द्रने जो पहले पराक्रम किए थे, इन्द्रके उन्हीं पराक्रमोंका हम वर्णन करते हैं।

१०१ अहिं अहन्, अनु अपः ततर्द, पर्वतानां वक्षणा प्र अभिनत् (३६९) - इन्द्रने अहि असुरका वध किया, पश्चात् जल-प्रवाहोंको मुक्त किया, और पर्वतोंमेंसे नदियोंका मार्ग खोलकर विशाल किया।

१०२ इन्द्र ! यत् अहीनां प्रथमजां अहन् आत् मायिनां मायाः प्र अमिनाः (३७२)- हे इन्द्र ! जब तूने अहियोंमेंसे प्रमुख वीरका नाश किया, तब कपटियोंके कपटपूर्ण षड्यंत्रका भी नाश किया।

१०३ आत् द्यां उपासं सूर्यं जनयन् तादीत्ना शत्रुं न विवित्से किल (३७२)- पश्चात् आकाशमें उषा और सूर्यको प्रकट किया, तब तुम्हारे (इस इन्द्रके) लिए कोई भी शत्रु निस्सन्देह नहीं रहा।

१०४ इन्द्रः महता वधेन वज्रेण वृत्रतरं वृत्रं अहन् (३७३)- इन्द्रने बडे घातक शस्त्रसे बडे घेरनेवाले वृत्रका वध किया।

१०५ दुर्मदः अयोद्धा इव महावीरं तुविबाधं ऋजीषं आ जुह्वे हि अस्य वधानां समृतिं न अतारीत् (३७४) - महा घमण्डी और अपनेको अप्रतिम योद्धा समझनेवाले वृत्रने महावीर और बहुतसे शत्रुओंका प्रतिबन्ध करनेवाले शत्रुनाशक इन्द्रको आह्वान देकर युद्धके लिए बुलाया, पर बादमें इस इन्द्रके आघातोंका सामना वह नहीं कर सका।

१०६ इन्द्र ! अहन्तुः ते हृदि यत् भीः अगच्छत् अहेः यातारं कं अपश्यः (३८२)- हे इन्द्र ! वृत्रका वध करते समय तुम्हारे हृदयमें यदि भय उत्पन्न हो जाता, तब तुमने अहिका वध करनेके लिए किस दूसरे वीरको देखा होता अर्थात् तुम्हें छोडकर कोई दूसरा वीर मिलना संभव ही नहीं था।

१०७ सर्वसेनः इषुधीन् नि असक्त (३८६)- सब सेनाओंका सेनापति इन्द्र तरकसोंको अपनी पीठ पर धारण करता है।

१०८ प्रवृद्ध ! असत् अधि पणिः मा भूः (३८६) - हे श्रेष्ठ इन्द्र ! तू हमें धन देनेके बारेमें बनियों जैसा व्यवहार मत कर अर्थात् धन देनेमें कंजूसी मत कर।

१०९ अ-यज्वानः सनकाः प्र-इतिं ईयुः (३८७) - यज्ञ न करनेवाले दानव मृत्युको ही प्राप्त होते हैं।

११० यज्वभिः स्पर्धमानाः अयज्वानः परा चित् ववृजुः (३८८)- यज्ञ करनेवालोंके साथ शत्रुता करनेवाले अयज्ञशील जन परास्त होकर दूर भाग गए।

१११ मनीषिभिः अश्व्यायं सेव्या भवतं (३९९)- मननशील लोगोंको तुम दोनों, हे अश्विनौ ! सहज हीसे प्राप्त होते रहो।

११२ कृष्णेन रजसा वर्तमानः अमृतं मर्त्यं च निवेशयन् सविता देवः भुवनानि पश्यन् हिरण्ययेन रथेन आ याति (४१२)- अन्धकारसे युक्त अन्तरिक्षलोकमेंसे परिभ्रमण करनेवाले अमर्त्य और मर्त्यको विश्राम देनेवाले सविता देव सब भुवनोंको देखते हुए सुवर्णके रथसे आते हैं।

११३ सविता देवः विश्वा दुरिता अपबाधमानः परावतः आ याति (४१३)- ये सविता देव सब पापों या दुष्टभावोंको दूर करते हुए दूर देशसे आते हैं।

११४ द्यावः तिस्रः द्वा सवितुः उपस्था, एका यमस्य भुवने विराषाट् (४१६)- तीन दिव्य लोक हैं, उनमेंसे दो लोक सवितादेवके पास हैं और एक अर्थात् तीसरा लोक यमके भुवनमें वीरोंके लिए रहनेका स्थान देता है।

११५ जनासः सहोवृधं अग्निं दधिरे (४२३)- लोग बल बढानेवाली इस अग्निको धारण करते हैं। यह अग्नि शारीरिक शक्तियोंको बढाती है, अंगोंमें रसका संचार करती है।

११६ इह सुमनाः अविता (४२३)- यहां उत्तम मनवाला ही संरक्षक हो। रक्षा करनेवाला उत्तम मनवाला ही हो।

११७ महः सतः अर्चयः विचरन्ति, भानवः दिवि स्पृशन्ति (४२४)- जो महात्मा सत्यनिष्ठ होते हैं, उनका तेज चारों ओर फैलता है और उनका तेज आकाश तक पहुंचता है।

११८ यः मर्त्यः ददाश स विश्वं धनं जयति (४२४) - जो मनुष्य दान करता है, वह धन प्राप्त करता है।

११९ सुमनाः सुवीर्यान् देवान् यक्षि (४२७)- उत्तम मनसे वीरों और विद्वानोंकी पूजा करनी चाहिए।

१२० नमस्विनः स्वराजं उपासते (४२८)- शस्त्रधारी पुरुष ही स्वराज्यकी उपासना कर सकते हैं।

१२१ यविष्ठ्य ! राक्षसः, अराव्णः, धूर्तेः रिषतः जिघांसतः नः पाहि (४३६)- राक्षसों, कंजूसों, धूर्तों घातकों और हिंसकोंसे हमें बचाओ।

१२२ यः अस्म-ध्रुक् मर्त्यः अप्तुभिः अति शिशीते सः रिपुः नः मा ईशत (४३७)– जो द्रोह करनेवाला हमारा शत्रु हमारे घातका विचार करता है, वह कभी हम पर शासन न करे।

१२३ अग्निः सुवीर्यं वस्ते, सौभगं, मित्रा प्रावत् (४३८)– अग्निदेव उत्तम पराक्रम करता है, सौभाग्य देता है और मित्रोंकी रक्षा करता है।

१२४ अग्ने ! ज्योतिः त्वां शश्वते जनाय मनुः नि दधे (४४०)- हे अग्ने ! ज्योतिस्वरूप तुमको शाश्वत-कालसे मानवोंके हितके लिए मनुने स्थापित किया।

१२५ अग्नेः अर्चयः त्वेषासः अमवन्तः भीमासः प्रति ईतये न (४४१)- अग्निकी ज्वालायें प्रकाशित, बलशाली और भयंकर हैं, इसलिए इनका विरोध नहीं किया जा सकता।

१२६ नरः दिवः च ग्मः च धूतयः (४४७)- नेतृत्व गुणसे सम्पन्न मरुद्गण द्युलोकको एवं भूलोकको भी कंपित कर देते हैं।

१२७ वः वर्षिष्ठः कः (४४७)– हे मरुतो ! तुम्हारी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और दूसरा कौन है, अर्थात् कोई नहीं।

१२८ एषां जानं स्थिरं हि (४५०)– इन वीर मरुतोंकी जन्मभूमि सचमुच अटल है अर्थात् इनकी जन्मभूमि पर कोई शत्रु आक्रमण नहीं कर सकता।

१२९ पृश्निमातरः मर्तासः स्तोता अमृतः स्यात् (४६०)- मातृभूमिको ही अपनी माता माननेवाला स्तोता अमर होता है।

१३० जरिता अजोष्यः मा भूत्, यमस्य पथा मा उप गात् (४६१)– अग्निकी स्तुति करनेवाला अप्रिय और यमलोकको राह पर न चले।

१३१ दुर्हणा निर्ऋतिः नः मा सु वधीत् (४६२)– विनाश करनेमें बहुत ही कठिन यह दुर्दशा हमारा विनाश न करे।

१३२ वः आयुधाः पराणुदे स्थिरा उत प्रतिष्कभे वीळू सन्तु। युष्माकं तविषी पनीयसी अस्तु मायिनः मर्त्यस्य मा (४७३) तुम्हारे हथियार शत्रुदलको हटानेके लिए अटल तथा सुदृढ रहें और शत्रुओंकी राहमें रुकावट खडी करनेके लिए भी अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्तिसम्पन्न हों। तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य अतीव प्रशंसनीय हो, कपटी लोगोंका बल न बढे।

१३३ रिशादसः ! अधि द्यवि वः शत्रुः नहि विविदे, भूम्यां न (४७५)– हे शत्रुको खा जानेवाले वीरो ! द्युलोकमें तो तुम्हारा शत्रु नहीं पाया जाता और भूमंडल पर भी नहीं दीखता।

१३४ सर्वया विशा प्र आरत (४७६)– हे मरुतो ! तुम समूची जनताके साथ मिलकर प्रगति करते चलो।

१३५ ऋषिद्विषे परिमन्यवे द्विषं सृजत (४८१)– ऋषियोंसे द्वेष करनेवाले क्रोध करनेवाले शत्रु पर दूसरे शत्रुको छोड देना चाहिए अर्थात् उसे किसी दूसरे शत्रुसे भिडा देना चाहिए।

१३६ यो वाघते सुनरं वसु ददाति सः अक्षिति श्रवः धत्ते (४८५)– जो यज्ञकर्ताको उत्तम धन देता है वह अक्षय यश प्राप्त करता है।

१३७ इमां वाचं प्रतिहर्यथ विश्वा इत् वामा अश्नवत् (४८७)– जो वेदरूपी वाणीकी प्रशंसा करता और तदनुसार आचरण करता है, वह सभी तरहके सुन्दर सुख प्राप्त करता है।

१३८ ब्रह्मणस्पतिः क्षत्रं उप पृंचीत, राजभिः हन्ति भये चित् सुक्षितिं दधे (४८९) - ज्ञानका स्वामी ब्रह्मणस्पति क्षात्र बलका संचय करता है और राजाओंकी सहायतासे वह शत्रुओंको मारता है, महाभयके उपस्थित होनेपर भी वह उत्तम धैर्यको धारण करता है।

१३९ प्रचेतसः वरुणः मित्रः अर्यमा यं रक्षन्ति, सः जनः नू चित् दभ्यते (४९०)– उत्तम ज्ञानी, तरुण मित्र और अर्यमा जिसकी रक्षा करते हैं, उस मानवको भला कौन दबा सकता है ?

१४० यं पान्ति सः अरिष्टः एधते (४९१)– ज्ञानी जिस मानवको हिंसक शत्रुसे बचाते हैं, वह सब प्रकारसे अहिंसित होता हुआ बढता है।

१४१ ऋतं यते पन्थाः सुगः अनृक्षरः च (४९३) – सत्यके मार्गसे जानेवालेके लिए इस विश्वमें सुगम और कष्टरहित मार्ग मिलता है।

१४२ देवयन्तं घ्नन्तं शपन्तं मा प्रति वोचे (४९७)– देवत्वको पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जनकी हिंसा करनेवाले अथवा उसको गाली देनेवाला भी हमारे साथ बात न करे।

१४३ द्युम्नैः इत् वः आ विवासे (४९७)– शुभ संकल्पोंके द्वारा ही हम सबको तृप्त करें।

१४४ दुरुक्ताय न स्पृहयेत् (४९८)– दुष्ट भाषण करनेकी इच्छा कोई न करे ।

१४५ चतुरः ददमानात् आ निधातोः बिभीयात् (४९८) - चारों पुरुषार्थोंको धारण करनेवाले मनुष्यसे विरोध करनेसे मनुष्य डरे ।

१४६ देव ! अंहः वि नः पुरः प्र सक्ष्व (४९९)– हे देव ! हमें पापसे पार कराकर उन्नतिके मार्ग पर आगे बढाओ ।

१४७ यः अघः वृकः दुःशेवः नः आदिदेशति, तं पथः अप जहि (५००)– जो पापी क्रूर और सेवाके अयोग्य दुष्ट हमें अपनी आज्ञामें चलाना चाहता हो, उसे मार्गसे दूर करो ।

१४८ सश्चतः नः अति नय, नः सुगा सुपथा कृणु (५०५)- बाधा या कष्ट देनेवाले दुष्टोंसे हमें पार ले जाओ, हमें उत्तम मार्गसे ले चलो ।

१४९ पूषन् सु यवसं अभि नय (५०६)– हे पोषक देव ! उत्तम जौवाले प्रदेशमें हमें ले चलो ।

१५० सुवीर्यं बृहत् श्रवः अस्मे धेहि (५१९)- उत्तम वीर्य सामर्थ्य और अन्न हमें दो ।

१५१ त्रातारं अहं स्तविष्यामि (५२२)– रक्षककी मैं प्रशंसा करता हूं । जो वीर निर्बलोंकी रक्षा करता है, उसकी प्रशंसा होनी ही चाहिए ।

१५२ दैव्यं जनं नमस्य (५२३)– दिव्य अर्थात् उत्तम गुणवालोंकी हमेशा पूजा करनी चाहिए ।

१५३ विश्ववेदसं विशः सं इन्धते (५२४)– सर्वज्ञ इस अग्निको सब प्रजायें प्रदीप्त करती हैं ।

१५४ उषर्बुधः स्वर्दृशः देवान् (५२६)– उषःकालमें जागनेवाले तथा आत्मसाक्षात्कारी ज्ञानियोंको " देव " कहते हैं ।

१५५ ग्रामेषु अविता असि (५२७)– यह अग्रणी नेता अपने ग्रामका रक्षक होता है । हर अग्रणी नेताको अपने अपने ग्रामकी रक्षा करनी चाहिए ।

१५६ जनं यज (५३२)- मनुष्यमात्रके हितके लिए यज्ञ करना चाहिए ।

१५७ विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टिवानो हि (५३३)– विशेष ज्ञानसम्पन्न देव दाताको उत्तम फल देते ही हैं ।

१५८ पारं एतवे ऋतस्य पन्थाः साधुया (५५२) – दुःखसे पार होनेके लिए सत्यका मार्ग ही सर्वोत्तम मार्ग है ।

१५९ ऋतावृधा युवं याभिः अभिष्टिभिः कण्वं प्र अवतं, ताभिः अस्मान् सु अवतं (५६१)– हे ऋतको बढानेवाले अश्विनी देवो ! तुम दोनोंने जिन शक्तियोंसे कण्वकी अच्छी तरह रक्षा की थी, उन्हीं शक्तियोंसे हमारी भी भली प्रकार रक्षा करो ।

१६० ये सूरयः मनः दानाय प्र युंजते, एषां नृणां कण्वः कण्वतमः (५७०) - जो विद्वान् अपना मन धनादिके दान करनेमें लगा देते हैं, उन मनुष्योंमें कण्व सबसे अधिक बुद्धिमान् है ।

१६१ उषाः सूनरी योषा इव प्रभुंजती, पद्वत् ईयते, पक्षिणः उत्पातयति (५७१)– यह उषा उत्तम गृहिणी स्त्रीके समान विशेष रीतिसे सबका पालन करती है, पांववालोंको चलाती और पक्षियोंको उडाती है ।

१६२ ओदती समनं विसृजति, अर्थिनः वि पदं न वेति (५७२)– जीवन देनेवाली यह उषा मननशील पुरुषोंको कार्य करनेके लिए प्रेरित करती है, धन पानेकी इच्छावालोंको प्रेरित करती है और यह स्वयं भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती ।

१६३ मघोनी दिवः दुहिता उषाः स्रिधः द्वेषः अप उच्छत् (५७४)– ऐश्वर्यवाली स्वर्गीय कन्या यह उषा हिंसक शत्रुओंको दूर करती है ।

१६४ सूनरी ज्योतिः कृणोति, अस्याः चक्षसे नानाम (५७४)– यह उत्तम संचालन करनेवाली उषा प्रकाश करती है, इसलिए सब जगत् इस उषाको देखते ही नमस्कार करता है ।

१६५ उत्तमं ज्योतिः देवत्रा देवं सूर्यं उत् अगन्म (५९६)- हम अत्यन्त श्रेष्ठ ज्योति और देवोंमें भी सर्वश्रेष्ठ देव सूर्यको प्राप्त करें ।

१६६ सूर्य ! अद्य उद्यन् मम हृद्रोगं हरिमाणं च नाशय (५९७)– आज उदय होते हुए मेरे हृदयके रोग अर्थात् क्षय आदि तथा पीलिया आदि रोगोंको नष्ट कर ।

१६७ द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् आदित्यः विश्वेन सहसा सह उत् अगात् (५९९)– द्वेष करनेवाले शत्रुओंको हमारे अधिकारमें करता हुआ यह सूर्य अपने सम्पूर्ण तेजके साथ उदय हो गया है ।

१६८ यस्य मानुषाः वि चरन्ति, त्यं इन्द्रं गीर्भिः मदत (६००)- जिसके गुप्तचर सब जगह घूमते हैं, ऐसे उस इन्द्रको स्तुतियोंसे आनंदित करो ।

१६९ त्वं अंगिरोभ्यः गोत्रं अप वृणोः (६०२) हे इन्द्र ! तूने अंगिराओंके लिए गौसमूहको बाहर निकाला।

१७० शतदुरेषु अत्रये गातुवित् (६०२)- सैकड़ों द्वारवाले भवनमें कैद किए गए अत्रिके लिए मार्गको ढूंढा।

१७१ अद्रिं नर्तयन् आजौ वावसानस्य (६०२)- वज्रको नचाते हुए संग्राममें स्थित लोगोंकी रक्षा की।

१७२ इन्द्र ! यत् शवसा वृत्रं अहिं अवधीः, आत् इत् दृशे सूर्यं दिवि आरोहयः (६०३)- हे इन्द्र ! जब तूने बलसे आच्छादन करनेवाले अहिको मारा, उसके बाद ही देखनेके लिए सूर्यको द्युलोकमें चढाया, अर्थात् जब बादल हट गए, तो सूर्य चमका।

१७३ ये स्वधाभिः जुह्वौ अधि अजुह्वत, मायिनः त्वं मायाभिः अप अधमः (६०४)- जो अन्न आदिका अपने मुंहमें ही हवन करते हैं अर्थात् अपने लिए ही जो अन्नादि पकाते हैं, उन मायावियोंको तू मायाओंसे ही मार।

१७४ त्वं शुष्णहत्येषु कुत्सं आ विथ (६०५)- हे इन्द्र ! तूने शुष्णासुरको मारनेवाले युद्धमें कुत्स अर्थात् समाजमेंसे बुराइयोंको दूर करनेवाले मनुष्यकी रक्षा की।

१७५ अतिथिग्वाय शम्बरं अरन्धयः (६०५)- तूने अतिथिग्व अर्थात् अतिथियोंका सत्कार करनेवाले सज्जनके लिए शम्बरको मारा।

१७६ सनात् एव दस्युहत्याय जज्ञिषे (६०५) - हे इन्द्र ! प्राचीनकालसे ही तू असुरोंको मारनेके लिए पैदा हुआ है।

१७७ त्वे विश्वा तविषी सध्र्यक् हिता (६०६)- हे इन्द्र ! तुझमें सब बल एक साथ स्थित हैं।

१७८ आर्यान् वि जानीहि, ये च दस्यवः, अव्रतान् शासत् बर्हिष्मते रन्धय (६०७)- हे इन्द्र ! तू आर्योंको जान और जो राक्षस हैं, उन्हें भी जान, व्रतहीनों पर शासन करते हुए उन्हें यज्ञकर्ताओंके लिए नष्ट कर।

१७९ इन्द्रः अनुव्रताय अपव्रताय रन्धयत् (६०८) - इन्द्र व्रत करनेवालोंके लिए व्रतहीनोंका नाश करता है।

१८० आभूभिः अनाभुवः श्नथयन् (६०८)- यह इन्द्र मातृभूमिके भक्तोंके द्वारा देशद्रोहियोंको नष्ट करवाता है।

१८१ यत् उशना सहसा ते सहः तक्षत्, शवः मज्मना रोदसी वि बाधते (६०९)- जब उशना ऋषिने अपने बलसे तेरे बलको तीक्ष्ण किया, तो तेरे बलने अपनी तीक्ष्णतासे द्युलोक और पृथ्वीलोकको डराया।

१८२ इन्द्रः यत् मन्दिष्ट धंक्षु वंकुतरं अधि तिष्ठति (६१०)- यह इन्द्र जब आनंदित होता है, तब अत्यन्त कुटिल शत्रुपर भी शासन करता है।

१८३ अनर्वाणं श्लोकं आरोहसे (६११)- यह इन्द्र अपने कर्मोंके कारण स्थिर यशको प्राप्त होता है।

१८४ इन्द्रः सुध्यः निरेके अश्रायि (६१३)- इन्द्र उत्तम बुद्धिवालोंकी दारिद्र्यमें सहायता करता है।

१८५ इन्द्रः रायः क्षयति (६१३)- इन्द्र सब धनों पर शासन करता है।

१८६ अस्मिन् वृजने सर्ववीराः तव (इन्द्रस्य) शर्मन् स्याम (६१४)- इस संग्राममें हम सब वीरोंके साथ तेरे अर्थात् इन्द्रके आश्रयमें रहें।

१८७ धरुणेषु पर्वतः न, स तविषीषु अच्युतः (६१६)- जिस प्रकार जलप्रवाहोंमें पर्वत स्थिर रहता है, उसीप्रकार यह इन्द्र संग्रामोंमें स्थिर रहता है।

१८८ स हि द्वरिषु द्वरः, (मित्रेभ्यः) चन्द्रबुध्नः (६१७)- वह इन्द्र शत्रुओंका कट्टर शत्रु है, पर मित्रोंके लिए चन्द्रके समान आल्हादकारक है।

१८९ अपः वृत्वीः रजसः बुध्नं आशयत्, प्रवणे इन्द्र दुर्गृभिश्वनः वृत्रस्य हन्वोः तन्यतुं निजघन्थ, ईं परि घृणा चरति, शवः तित्विषे (६२०)- जब वृत्र जलोंको रोककर अन्तरिक्षके मूलमें सो गया था, तब जलोंको बहानेके लिए, हे इन्द्र ! तूने मुश्किलसे मारे जानेवाले वृत्रकी ठोडी पर वज्रको मारा, तब इस इन्द्रका तेज चारों ओर फैल गया और इसका बल सर्वत्र प्रकाशित हुआ।

१९० त्वष्टा चित् ते युज्यं शवः वावृधे, अभिभूति ओजसं वज्रं ततक्ष (६२१)- त्वष्टाने भी तेरे योग्य बलको बढाया और शत्रुको हरानेमें समर्थ वज्र तीक्ष्ण किया।

१९१ यत् इन्द्र शवसा रोदसी बद्बधानस्य वृत्रस्य शिरः अभिनत्, अमवान् द्यौः चित् अहेः स्वनात् भियसा अयोयवीत् (६२४)- जब, हे इन्द्र ! तूने बलसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको पीडित करनेवाले वृत्रके सिरको काट डाला, तब बलवान् द्युलोक भी वृत्रके चिल्लाहटको सुनकर कांपने लगा।

१९२ इन्द्र ! यदा इत् पृथिवी दशभुजिः कृष्टयः विश्वा अहानि ततनन्त, ते सहः अत्राह विश्रुतं शवसा बर्हणा द्यां अनु भुवत् (६२५)- हे इन्द्र ! जब पृथ्वी दसगुनी हो जाए और मनुष्य सम्पूर्ण दिनोंको विस्तृत

कर दें, तब तेरा बल इनमें समा सकता है, तथा तेरे बल और पराक्रमसे द्युलोक भी पूर्ण हो जाए।

१९३ धृषन्मनः ओजसः प्रतिमानं (६२६)- हे शत्रुओंको मारनेकी इच्छावाले इन्द्र! तू बलकी साक्षात् मूर्ति है।

१९४ त्वं पृथिव्याः भुवः प्रतिमानं (६२७)- तू विस्तृत भूमिकी प्रतिमा है।

१९५ ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिः (६२७)- यह इन्द्र महान् वीरोंसे युक्त द्योका भी स्वामी है।

१९६ महित्वा विश्वं अन्तरिक्षं आ प्रा (६२७)- तू अपने यशसे सम्पूर्ण अन्तरिक्षको पूर्ण करता है।

१९७ सत्यं अद्धा त्वावान् अन्यः न किः (६२७)- यह सत्य है कि तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है।

१९८ यस्य व्यचः द्यावापृथिवी न अनु (६२८) - जिसके विस्तारको द्युलोक और पृथ्वीलोक भी न पा सके।

१९९ रजसः सिन्धवः अन्तं न आनशुः (६२८) - लोक तथा नदियां भी इस इन्द्रके अन्तको न पा सकीं।

२०० एकः अन्यत् विश्वं चकृषे (६२८)- यह अकेला ही विश्वको बनाता है।

२०१ द्रविणोदेषु दुस्तुतिः न शस्यते (६३०)- धन देनेवालोंकी निन्दा करना ठीक नहीं।

२०२ वसुनः इनः, शिक्षानरः, प्र दिवः, सखिभ्यः सखा (६३१)- यह इन्द्र धनका स्वामी है, वह दानियोंका नेता है, विशेष तेजस्वी है, वह मित्रोंके लिए मित्र है।

२०३ अभितः वसु तव इत् (६३२)- चारों ओरका धन इसी इन्द्रका है।

२०४ गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः सुमनाः (६३३)- इन्द्र! गायों और घोडोंसे हमारी दरिद्रताको रोकते हुए उत्तम मनवाला हो।

२०५ वृत्रहत्येषु दश सहस्राणि वृत्राणि अ-प्रति निबर्हय (६३५)- इस इन्द्रने युद्धोंमें दस हजार असुरोंको पीछे न हटते हुए मारा।

२०६ सख्या परावति नमुचिं नि बर्हयः (६३६) - अपने मित्र वज्रसे दूर देशमें नमुचिको मारा।

२०७ वृषा वृषत्वा वृषभः (६४२)- यह बलवान् इन्द्र अपने सामर्थ्यसे ही बलवान् है।

२०८ सः हि वृहत् श्रवाः असु-रः, बर्हणा वृषभः (६४३)- यह इन्द्र महान् यशवाला, प्राणोंका दाता, शत्रुओंको मारनेवाला तथा बलवान् है।

२०९ मायिनः क्रन्दिनः धृषत् शितां गभस्तिं अशनिं पृतन्यसि (६४४)- असुरके सैन्यसमूहको मारते हुए तीक्ष्ण किए गए हाथमें पकडे हुए वज्रको उन पर मारता है।

२१० रोरुवत् क्रन्दिनः चित् श्वसनस्य शुष्णस्य मूर्धनि वना नि वृणक्षि (६४५)- गर्जते हुए इन्द्रने सेनाओंके होते हुए भी लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले शुष्णके सिर पर शस्त्रास्त्रोंको मारा।

२११ यः शासं इन्वति सः जनः राजा सत्पतिः शशुवत् (६४७)- जो इन्द्रके शासनमें रहता है, वह मनुष्य तेजस्वी सज्जनोंका पालक और समृद्धशाली होता है।

२१२ ये ते क्षत्रं, स्थविरं वृष्ण्यं वर्धयन्ति, नेमे अपना सन्तु (६४८)- जो तेरे बल, महत्ता और सामर्थ्यको बढाते हैं, वे कर्मोंसे समृद्धशाली हों।

२१३ अस्मे वोवृधं द्युम्नं, महि जनाषाट् तव्यं क्षत्रं आ धाः (६५१)- हे इन्द्र! हममें अमूल्य यश, महान्, शत्रुको पराजित करनेवाले प्रवृद्ध बलको स्थापित कर।

२१४ अस्य वरिमा दिवः चित् वि पप्रथे (६५२) - इस इन्द्रकी श्रेष्ठता द्युलोकसे भी ज्यादा फैली हुई है।

२१५ पृथिवी चन मह्ना इन्द्रं न प्रति (६५२)- पृथ्वी भी अपने बलसे इन्द्रको नहीं हरा सकती।

२१६ युध्मः सः सनात् ओजसा पनस्यते (६५३) - युद्ध करनेवाला यह इन्द्र प्राचीनकालसे ही अपने बलके कारण प्रशंसित होता है।

२१७ त्वं महः नृम्णस्य धर्मणां इरज्यसि (६५४) - तू इन्द्र बडे बडे पौरुषोंको धारण करनेवालोंपर भी शासन करता है।

२१८ उग्रः विश्वस्मै कर्मणे पुरः हितः (६५४) - वह वीर इन्द्र सभी कार्योंमें आगे किया जाता है।

२१९ जनेषु इन्द्रियं प्रब्रुवाणः (६५५) - वह लोगोंमें अपनी शक्ति प्रकट करता है।

२२० सः युध्मः जनेभ्यः ओजसा महानि समिथानि कृणोति (६५६)- वह योद्धा इन्द्र मनुष्योंके हितके लिए अपने बलसे बडे बडे युद्धोंको करता है।

२२१ सः सुक्रतुः कृत्रिमा सद्मानि विनाशयन् (६५७)- वह उत्तम कर्म करनेवाला वीर शत्रुके निर्माण किए नगरोंको विनष्ट करता है।

२२२ ते सारथयः यमिष्ठासः (६५८)- इस इन्द्रके सारथी घोडों पर अच्छा नियंत्रण रखते हैं।

२२३ केताः भूर्णयः त्वा न आ दभ्नुवन्ति (६५८) - प्रसिद्ध शत्रु भी तुझे नहीं दबा सकते।

२२४ इन्द्र ! हस्तयोः अ-प्रक्षितं वसु बिभर्षि (६५९) - हे इन्द्र ! तू हाथोंमें क्षयरहित धनको धारण करता है।

२२५ ते तनूषु भूरयः क्रतवः (६५९) - तेरे शरीरोंसे बहुतसे कर्म होते हैं।

२२६ सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न (६६१) - जैसे धनके चाहनेवाले परदेश जानेके लिए समुद्रमें जाते हैं। परदेशमें जाकर व्यापार आदि करके धन कमाते हैं।

२२७ आयसः तुग्रः मदे मायिनं शुष्णं आ भूषु दामनि रामयत् (६६२) - वह लोहेके कवचवाला, शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र उत्साहमें मायावी शुष्णको कारागृहोंमें रस्सियोंसे बांधता है।

२२८ तुजा शवः पौंस्ये भ्राजते (६६२) - शत्रुको मारनेवाला बल संग्राममें चमकता है।

२२९ धृष्णुना शवसा तमः बाधते (६६३) - वह इन्द्र अपने बलसे अन्धकारका नाश करता है।

२३० यदि इन्द्रं देवी तविषी सिषक्ति, अर्हरिष्वणिः बृहद् रेणुं गमयति (६६३) - जब इन्द्रको विश्व बल सींचता है, तब वह इन्द्र बहुत धूलि उड़ाता है अर्थात् जब बलसे युक्त होनेपर सेनाओंके साथ शत्रुपर हमला करता है, तब सेनाके चलनेसे बहुत धूली उडती है।

२३१ यस्य रायः विश्वायुः अपावृतं (६६६) - इस इन्द्रका धन सभी मनुष्योंके लिए खुला हुआ है।

२३२ प्रवणे अपां इव, रायः दुर्धरं (६६६) - जिस प्रकार नीचेकी तरफ वेगसे बहनेवाले धनको रोकना मुश्किल है, उसीप्रकार इस इन्द्रके धनको एक जगह रोकना कठिन है।

२३३ यस्य धाम नाम इन्द्रियं ज्योतिः श्रवसे श्रयसे अकारि (६६८) - इस इन्द्रके तेजस्वी तथा प्रसिद्ध सामर्थ्य और तेज लोगोंको अन्नादि देनेके लिए प्रयत्नशील करते हैं।

२३४ त्वत् गिरः अन्यः नहि सघत् (६६९ - इस इन्द्रके यशको दूसरा कोई नष्ट नहीं कर सकता।

२३५ महान् द्यौः ते वीर्यं अनु ममे (६७०) - महान् द्युलोक भी तेरे पराक्रमको प्रशंसा करता है।

२३६ इयं पृथिवी ते ओजसे नेमे (६७०) - यह पृथ्वी तेरे बलके आगे झुकती है।

२३७ केवलं विश्वं सहः दधिषे (६७१) - केवल वह इन्द्र ही सब बलोंको धारण करता है।

२३८ सहो-जाः अमृतः हविषा आ विवासति (६७२) - बलके साथ उत्पन्न हुआ अमर यह अग्नि हविसे देवोंका सत्कार करता है।

२३९ भृगवः मानुषेषु जनेभ्यः दिव्याय जन्मने वरेण्यं आ दधुः (६७७) - भृगुओंने मनुष्योंके समाजमें सब मनुष्योंके कल्याण करने और उनके जन्मको दिव्य बनानेके लिए इस अग्रणीको स्थापित किया।

२४० अध्वरेषु वाघतः (६७८) - हिंसारहित अकुटिल कर्मोंमें इस अग्निकी प्रशंसा की जाती है।

२४१ क्षितीनां नाभिः असि (६८१) - यह अग्नि सब प्राणियोंकी नाभि अर्थात् केन्द्र है।

२४२ वैश्वानर ! आर्याय ज्योतिः इत् (६८२) - हे विश्वके नेता ! तूने आर्योंके लिए प्रकाशका मार्ग बताया।

२४३ सूर्ये रश्मयः न विश्वानरे अग्ना वसूनि आ (६८३) - जिसप्रकार सूर्यमें सभी किरणें रहती हैं, उसी प्रकार इस विश्वके नेता अग्निमें सभी तरहके धन रहते हैं।

२४४ उभयासः अस्य शासु सचन्ते (६८९) - चर तथा अचर दोनों तरहके लोग इस अग्निके शासनमें रहते हैं।

२४५ अस्मै इत् त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष (६९८) - इसी इन्द्रके लिए त्वष्टाने उत्तम वेगवान् वज्रको तैय्यार किया।

२४६ उर्वी द्यावापृथिवी जभ्रे, अस्य महिमानं न परिस्तः (७००) - उस इन्द्रने विशाल द्यावापृथिवीको अपने अधीन किया, अतः वे द्यावापृथिवी इसकी महिमाका पार न पा सके।

२४७ दमे स्वराट् विश्वगूर्तः इन्द्रः रणाय ववक्षे (७०१) - युद्धमें अपने बलसे प्रकाशित होनेवाला श्रेष्ठ वीर इन्द्र युद्धके लिए हमेशा तैय्यार रहता है।

२४८ अस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि (७०१) - इस इन्द्रकी महिमा द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्षसे भी बड़ी है।

२४९ श्राणाः अवनिः अमुंचत् (७०२) - शत्रु द्वारा कब्जेमें की गई भूमिको इन्द्रने छुडाया।

२५० अस्य त्वेषसा सिन्धवः रन्तः (७०३)- इस इन्द्रके बलसे नदियां बहती हैं।

२५१ वज्रेण सीं परि अयच्छत् (६०३)- बलसे इन्द्रने नदियोंको सीमित किया।

२५२ तुर्वणिः तुर्वीतये गाधं कः (७०३)- शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाला इन्द्र शत्रुओंको विनष्ट करनेवालेकी ही सहायता करता है।

२५३ उक्थैः नव्यः (७०५)- यह इन्द्र अपने ही गुणोंके कारण सबसे प्रशंसनीय होता है।

२५४ एकः भूरेः ईशानः (७०७)- यह इन्द्र अकेला ही बहुतसे धनोंका ईश्वर है।

२५५ गोतमासः विश्वपेशसं धियं धाः (७०८)- अत्यन्त प्रयत्न करनेवाले ही अत्यन्त सुन्दर रूपवाली बुद्धिको प्राप्त करते हैं।

२५६ येन नः पूर्वे पितरः गाः अविन्दन्, पदज्ञाः (७१०)- इसी इन्द्रकी सहायतासे हमारे पूर्वजोंने ज्ञानको प्राप्त किया था और पदोंके ज्ञाता बने थे।

२५७ अस्य दस्मस्य कर्म प्रयक्षतमं चारुतमं (७१४) - इस दर्शनीय इन्द्रका कर्म अत्यधिक प्रशंसनीय और अत्यधिक सुन्दर है।

२५८ सु-अपस्यमानः शवसा सूनुः सख्यं सनेमि दाधार (७१७)- उत्तम कर्म करनेवाला बलका पुत्र इन्द्र अपने मित्रोंका प्राचीनकालसे धारण पोषण करता आ रहा है।

२५९ जज्ञानः अमे द्यावापृथिवी शुष्मैः धाः (७२२) - इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही भयभीत द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपने बलोंसे धारण किया।

२६० ते भिया विश्वाः अभ्वाः गिरयः दृळ्हासः चित् किरणाः न एजन् (७२२)- इस इन्द्रके डरसे सभी बडे बडे पहाड दृढ होते हुए भी किरणोंके समान कांपते हैं।

२६१ कुत्साय शुष्णं अहन् (७२४)- इस इन्द्रने बुराइयोंको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षाके लिए शोषण करनेवालेको मारा।

२६२ त्वं मर्तानां अ-जुष्टौ त्यत् दृळहस्य अरिषण्यन् (७२६)- हे इन्द्र! तू शत्रु मनुष्योंके कोधित होकर सामने आनेपर उस दृढसे दृढ शत्रुको भी मार देता है।

२६३ वाजेषु अतसाय्या तव इयं ऊतिः आभूत् (७२७)-बलकी परीक्षा होनेवाले संग्राममें सब लोग इस इन्द्रके रक्षा की कामना करते हैं।

२६४ पर्वताः इव पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवना दृळ्हा चित् मज्मना प्र च्यावयन्ति (७३३)- पर्वतके समान अटल भावसे अपनी जगह पर स्थिर रहनेवाले मरुत्-गण भूमि परके तथा पर्वत शिखरोंपर विद्यमान सुदृढ दुर्गतकको अपने अद्भुत सामर्थ्यसे हिला देते हैं।

२६५ दिव्यानि ऊधः दुहन्ति, भूमिं पयसा पिन्वन्ति (७३५)- ये मरुद्गण द्युलोकमें स्थित धनों अर्थात् बादलोंका दोहन करके भूमण्डल पर वर्षा जलरूपी दूधकी वर्षा करते हैं।

२६६ पयोवृधः ध्रुव-च्युतः भ्राजत्-ऋष्टयः, आपथ्यः न, पर्वतान् उत् जिघ्नन्ते (७४१)- दूध पीकर पुष्ट बननेवाले, अचल रूपसे खडे हुए शत्रुओंको भी अपनी जगहसे हिला देनेवाले और तेजस्वी हथियार पासमें रखनेवाले वीर मरुत्, जिसप्रकार चलनेवाला राहमें पडे हुए तिनकेको दूर फेंक देता है उसीप्रकार, पहाडोंतकको आसानीसे उडा देते हैं।

२६७ शतं हिमाः पुष्येम (७४४)- हम सौ वर्षतक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें।

२६८ देवाः ऋतस्य व्रता अनु गुः द्यौः न भूम (७४८)- देवोंने सत्यव्रतोंके अनुकूल आचरण किया और भूमि स्वर्गके समान सुख देनेवाली बनाई गई।

२६९ उषः भुत् क्रत्वा विशां चेतिष्ठः (७५४)-यह अग्रणी उषःकालमें जागकर अपने कर्मसे अन्योंको भी जगानेवाला है।

२७० सूरः न संदृक्, नित्यः सूनुः न, पयः धेनुः न (७५६-७५७)- ज्ञानीके समान यह अग्रणी सबको अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे देखता है। यह सगे पुत्रके समान हितकारी है और दूधसे भरपूर गायके समान हित कारी है।

२७१ रण्वः क्षेमं दधाति (७५८)- यह रमणीय अग्रणी लोगोंका कल्याण करता है।

२७२ विक्षु प्रशस्तः प्रीतः वयः दधाति (७५९)- प्रजाजनोंमें प्रशंसित तथा प्रसन्न मनवाला यह अग्रणी नेता लोगोंके हितके लिए अपना जीवन अर्पित करता है।

२७३ योनो जाया इव सर्वस्मै अरं (७६०)- घरमें जिसप्रकार स्त्री सुखदायी होती है, उसी तरह यह अग्रणी सबको पर्याप्त सुख देता है।

२७४ समत्सु रुक्मी त्वेषः (७६१)- यह अग्रणी वीर युद्धोंमें और अधिक तेजस्वी हो जाता है।

२७५ सृष्टा सेना इव अस्तुः दीद्युत् अमं दधाति (७६२)- शत्रु पर प्रेरित की गई सेनके समान और वेगसे फेंके गए अस्त्रके समान यह अग्रणी बलशाली है।

२७६ राजा अजुर्यं इव मित्रः साधुः श्रुष्टिं वृणीते (७६६-७६७)- जिसप्रकार कोई राजा सर्वगुणसम्पन्न वीरको अपना सहायक चुनता है, उसीप्रकार सबका मित्र और सज्जनोंका हित करनेवाला यह अग्रणी प्रजाके कल्याण करनेवालेको अपना सहायक चुनता है।

२७७ यः आ ससाद अस्मै वसूनि प्र ददाश (७७२-७७३)- जो इस अग्रणीकी उपासना करता है, उसे ही यह अग्नि धन प्राप्तिके मार्ग बताता है।

२७८ विश्वेषां देवानां महित्वा परि भुवन् (७७६-७७७)- सभी देवोंका महत्त्व इस अग्निने पा लिया। यह अग्रणी देव अन्य सब देवोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्ववाला है।

२७९ अमृतं एव सपन्तः विश्वे नाम ऋतं देवत्वं भजन्ते (७७८-७७९)- इस अमर अग्निकी उपासना करके सब लोग यश, सत्य और देवत्व प्राप्त करते हैं।

२८० यः शिक्षात्, रयिं दयस्व (७८१)- जो ज्ञान प्राप्त करता है, वही धन भी प्राप्त करता है।

२८१ ये अस्य शासं ऋतुं जुषन्त, रायः दुरः वि और्णोत् (७८४-७८५)- जो मनुष्य इस अग्निके शासनमें रहकर कर्म करते हैं, उनके लिए यह अग्नि धनके द्वार खोल देता है।

२८२ देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः (७८७)- देवोंका पुत्र होता हुआ भी यह अग्नि उनका पिता है, अर्थात् देवोंके द्वारा उत्पन्न होकर भी यह अग्नि हवि आदि पहुंचाकर उनका पालन करता है।

२८३ वेधाः अदृप्तः (७८९)- बुद्धिमान् होते हुए भी यह अग्नि निरहंकारी है।

२८४ रण्वः प्रीतः वि तारीत् (७९०)-यह सुखदायक अग्रणी प्रसन्न होनेपर भक्तको दुःखसे पार कराता है।

२८५ अग्निः विश्वानि देवत्वा अश्याः (७९१)- यह अग्रणी सारे देवभार्योंको प्राप्त करता है।

२८६ व्रता नकिः मिनन्ति (७९२)- इस अग्रणीके नियमोंको कोई तोड नहीं सकता।

२८७ दुरः ऋण्वन् दृशिके स्वः विश्वे नवन्त (७९५) - द्वारोंको खोलकर इस अग्निकी किरणें अनन्त आकाशमें फैल जाती हैं।

२८८ अग्निः मनीषा (७९६)- यह अग्नि देव बुद्धिसे प्राप्त करने योग्य है।

२८९ विश्वानि दैव्यानि व्रता मनुष्यस्य जन्म चिकित्वान् (७९७)- यह अग्नि देवोंके सम्पूर्ण कर्मों और मनुष्योंके जन्मोंको जानता है।

२९० अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः अतृष्यन्तीः प्रयसा देवान् जन्म वर्धयन्तीः (८०९)- राष्ट्रकी प्रजायें धनकी स्वामिनी, तेज धारण करनेवाली, पोषण करनेवाली, तृष्णा रहित, कर्म करनेवाली, हविदान और अन्नदानसे देवों और मनुष्योंको बढानवाली हों।

२९१ तुभ्यं स्वे दमे विभाति, अनुद्यून् नमः दाशात् वयः वर्धः राया यासत् (८१२)- इस अग्निको जो अपने घरमें प्रकाशित करता एवं प्रतिदिन हवि देता है, उसकी आयु बढती है और उसे धन प्राप्त होता है।

२९२ अग्ने ! कविः सन् अभिविदुः, पित्र्याणि सख्या मा प्र मर्षिष्ठाः (८१६)- हे अग्ने ! तू कान्तदर्शी होनेके कारण सब कुछ जाननेवाला है, अतः तू पितरोंसे आई हुई हमारी मित्रता नष्ट न कर।

२९३ रूपं जरिमा मिनाति, अभिशस्तेः तस्याः पुरा अधि इति (८१६)- रूपको बुढापा नष्ट कर देता है, अतः हे अग्ने ! विनाश करनेवाले इस बुढापेके आनेके पहले ही उस बुढापेको तू समाप्त कर दे।

२९४ पद्व्यः अग्नेः परमे पदे तस्थुः (८१८)- खोजनेवाले ज्ञानी अग्निके उत्तम स्थानतक पहुंच ही जाते हैं।

२९५ वयुनानि विद्वान् क्षितीनां जीवसे शुरुधः आनुषक् विधाः (८२३)- राष्ट्रमें अग्रणीको प्रजाका आचार विचार जानकर उनके जीवनके लिए और उनकी भूख मिटानेके लिए अन्नकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

२९६ ऋतज्ञाः रायः दुरः विदन् (८२४)- सत्यको जाननेवालोंने ऐश्वर्यका मार्ग जान लिया।

२९७ दिवः अमृताः यत् अक्षी अकृण्वन् अस्मिन् चारु श्रियं नि दधुः (८२६)- द्युलोकमें देवोंने जब दो आंखें अर्थात् सूर्यचन्द्र बनाये, उसी समय उन्होंने इस अग्निमें सुन्दर तेज स्थापित किया।

२९८ स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः (८२७)- सुखसे विश्राम करनेवाले अतिथिकी तरह सुख देनेवाला यह अग्नि है।

२९९ यः सत्यमन्मा कृत्वा विश्वा विजनानि नि पाति (८२८)– जो सत्यमार्ग पर चलता है, वह अपने कार्यसे सारे पापोंसे सबको सुरक्षित रखता है।

३०० हित मित्रः पृथिवीं उपेक्षति (८२९)– हितकारी मित्रोंसे युक्त व्यक्ति ही इस संसारमें सुखसे रह सकता है।

३०१ अनवद्या पतिजुष्टा नारी विश्वधायाः (८२९) – अनिन्दित और पतिव्रता नारी ही संसारको धारण करती है।

३०२ सूरयः ददतः विश्वमायुः वि (८३१)– विद्वान् दाताओंको दीर्घआयु प्राप्त हो।

३०३ शृण्वते मंत्रं वोचेम (८३७)– सुननेवालेको ही हम उपदेश दें। जो सुनता न हो उसे कभी भी उपदेश न दें।

३०४ दाश्वान् त्वा ऊतः वाजी अह्रयः पूर्वस्मात् अपरः अस्थात् (८४४)– दाता अग्निसे सुरक्षित होकर बलवान् बनता और हीनताकी भावनासे छूटकर निकृष्ट अवस्थासे उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है।

३०५ महे सौमनसाय देवान् यज (८५२)– उत्तम मनकी प्राप्तिके लिए देवोंकी पूजा करनी चाहिए, अर्थात् उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलना ही एकमात्र उपाय है।

३०६ कविः सन् कविभिः यजस्व (८५५)– मनुष्योंको चाहिए कि वह स्वयं ज्ञानी बनकर ज्ञानियोंके साथ प्रशस्त कर्म करे।

३०७ मर्ताय देवान् वेः (८५७)- यह अग्रणी मनुष्योंका हित करनेके लिए दिव्य ज्ञानियोंकी सहायता लेता है।

३०८ अद्भुतस्य रथीः (८५८)– वह अग्नि इस शरीररूपी रथका रथी अर्थात् स्वामी है।

३०९ अग्निः नृणां नृतमः रिशादाः (८५९)– अग्नि मनुष्योंके बीच उत्कृष्ट नेता और शत्रुओंका विनाशक है।

३१० इन्द्र ! प्र इहि, अभि इहि, धृष्णुहि, ते वज्रः न नियंसते (८८०)– हे इन्द्र ! शत्रुके सम्मुख जा, उसे सब ओरसे घेर ले और उसका नाश कर दे, तेरा वज्र कभी पराभूत नहीं किया जा सकता।

३११ स्वराज्यं अनु अर्चन् वृत्रं हनः, ते शवः नृम्णं हि (८८०)– स्वराज्यका सत्कार करते हुए, हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको मार। तेरा बल मनुष्योंका हित करनेवाला है।

३१२ इन्द्र ! तुभ्यं इत् वीर्यं अनुत्तं, यत् ह त्वं स्वराज्यं अनु अर्चन् त्यं मायिनं मृगं मायया अवधीः (८८४)– हे इन्द्र ! तेरा ही पराक्रम उत्कृष्ट है, क्योंकि तूने अपने स्वराज्यकी पूजा करते हुए उस कपटी शत्रुको कपटसे ही मारा।

३१३ स्वराज्यं अनु अर्चन् ते वीर्यं महत्, ते बाह्वोः बलं हित (८८५)– स्वराज्यकी अर्चना करनेवाले इन्द्रका पराक्रम महान् है, उसकी भुजाओंमें बहुत बल है।

३१४ दभ्रस्य चित् वृधः असि (८९५) यह इन्द्र छोटेको भी बड़ा बना देता है।

३१५ कश्चन त्वावान् न, न जातः, न जनिष्यते (८९८)– कोई भी तेरे समान नहीं है, तेरे समान न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा।

३१६ अतथाः इव मा (९०३)– हे इन्द्र ! तू परायेके समान मत हो।

३१७ तव ऊतिभिः सु प्रावीः मर्त्यः अश्वावतिः गोषु प्रथमः गच्छति (९०७)– तेरी सुरक्षाके साधनोंसे सुरक्षित हुआ भक्त मनुष्य बहुत घोडोंवाले और बहुत गौओंसे युक्त प्रथम स्थान प्राप्त करता है।

३१८ सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः (९११)– यज्ञ करनेवालेके लिए इस इन्द्रकी ओरसे मंगलकारी शक्ति दी जाती है।

३१९ असंयत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति (९११)– असंयमसे रहनेवाला भी तेरे (इन्द्रके) व्रत-नियममें रहकर पुष्ट हो जाता है।

३२० इन्द्रः अराधसं मर्तं पदा स्फुरत् (९२२) इन्द्र दानरहित मनुष्यको पैरसे ठुकरा देता है।

३२१ अप्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचः अस्थभिः नवनवतीः वृत्राणि जघान (९२७)– जिसके सामने शत्रु नहीं ठहर सकता, उस इन्द्रने दधीचिकी अस्थियोंके वज्रसे निन्यानवे शत्रुओंको मार दिया।

३२२ यः एषां भृत्यां ऋणधत्, सः जीवात् (९३०) – जो इन देवोंकी उत्तम सेवा करता है, वही जीवित रहता है।

३२३ ते उक्षितासः महिमानं आशत (९३६)- वे वीर अपने स्थानों पर अभिषिक्त होकर बड़प्पनको पा सके। उसी प्रकार मनुष्य भी अपने स्थान पर रहकर ही महत्ताको प्राप्त कर सकता है।

३२४ शुभ्राः गो-मातरः विश्वं अभिमातिनं अप बाधन्ते, एषां वर्त्मानि घृतं अनु रीयते (९३७)–

तेजस्वी मातृभूमिको अपनी माता समझनेवाले वीर जब सारे शत्रुओंको दूर हटा देते हैं, तब उनके आने योग्य रास्तों पर घी की धारायें बहने लगती हैं। सभी प्रजायें उन वीरोंको पौष्टिक पदार्थ प्रदान करके उनका सत्कार करती हैं।

३२५ राजानः इव त्वेष- संदृशः नरः मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते (९४२)- राजाओंके समान तेजस्वी दिखाई देनेवाले नेता वीर हैं, इसलिए इन मरुतोंसे सारे लोक भयभीत हो उठते हैं।

३२६ विश्वं आत्रिणं वि यात यत् ज्योतिः उश्मसि कर्त (९५६)- (हम वीर मरुतोंकी सहायतासे राष्ट्रमेंसे) सभी पेटू दुरात्माओंको दूर कर दें और जिस तेजको हम पानेके लिए लालायित हैं, वह हम प्राप्त करें।

३२७ यत् ह शुभे युंजते, एषां अज्मेषु यामेषु भूमिः विथुरा इव प्र रेजते (९५९)- जब सचमुच ये वीर अच्छे कर्म करनेके लिए कटिबद्ध हो जाते हैं, तब उनके वेगवान् हमलोंसे पृथ्वी भी अनाथ नारीके समान थर थर कांपने लगती है।

३२८ श्रिये कं वः तनूषु अधि वाशीः (९६५)- विजयश्री तथा सुख पानेके लिए तुम्हारे शरीरोंपर शस्त्रास्त्र लटकते रहते हैं, किसी पर अत्याचार करनेके लिए नहीं।

३२९ भद्राः अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः क्रतवः विश्वतः नः आ यन्तु (९६९)- कल्याणकारक, न दबनेवाले, पराभूत न होनेवाले, उच्चताको पहुंचानेवाले शुभ कर्म चारों ओरसे हमारे पास आवें।

३३० अप्रायुवः रक्षितारः देवाः सदं इत् वृधे असन् (९६९)- प्रगतिको न रोकनेवाले तथा सुरक्षा करनेवाले देव हमारा सदा संवर्धन करें।

३३१ ऋजूयतां सुमतिः भद्राः (९७०)- सरल और सत्य मार्ग पर चलनेवालोंकी उत्तम बुद्धि सबका कल्याण करनेवाली होती है।

३३२ देवानां रातिः नः (९७०)- देवोंका दान सदा मिलता रहे।

३३३ देवानां सख्यं उपसेदिम (९७०)- देवोंकी मित्रतामें हम सदा रहें।

३३४ जीवसे नः आयुः प्र तिरन्तु (९७०)- उत्तम जीवन जीनेके लिए देव हमारी आयु दीर्घ करें।

३३५ जगतः तस्थुषः पतिं धियं जिन्वं तं ईशानं वयं अवसे हूमहे (९७३)- स्थावर और जंगमके अधिपति बुद्धिको प्रेरणा देनेवाले उस ईश्वरको हम अपनी सुरक्षाके लिए बुलाते हैं।

३३६ पूषा नः वेदसां वृधे रक्षिता यथा असत् (९७३)- वह पोषक देव हमारे ऐश्वर्यको समृद्धि करनेवाला हो, अदब्धः स्वस्तये पायुः। वह आलस्यरहित देव हमारा कल्याण करे और संरक्षक होवे।

३३७ वृद्धश्रवाः इन्द्रः, विश्ववेदाः पूषा, अरिष्टनेमिः तार्क्ष्यः, बृहस्पतिः नः स्वस्ति दधातु (९७४) बहुत यशस्वी इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, निरन्तर चलनेवाले रथसे युक्त तार्क्ष्य और बृहस्पति हमारा कल्याण करे।

३३८ कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम (९७६)- कानोंसे हम कल्याणकारी भाषण सुनें।

३३९ अक्षभिः भद्रं पश्येम (९७६)- आंखोंसे हम कल्याणकारक वस्तु देखें।

३४० स्थिरैः अंगैः तनूभिः तुष्टुवांसः यत् आयुः देवहितं वि अशेम (९७६)- स्थिर तथा सुदृढ अवयवोंसे युक्त शरीरोंसे हम देवोंकी स्तुति करते हुए जितनी हमारी आयु है, वहांतक हम देवोंका हित ही करें।

३४१ शरदः शतं अन्ति इत् नु (९७७)- सौ वर्ष तक ही हमारे आयुष्यकी मर्यादा है।

३४२ नः तनूनां जरसं यत्र चक्र (९७७)- उसमें ही हमारे शरीरकी वृद्धावस्था शामिल है।

३४३ नः आयुः गन्तोः मध्या मा रीरिषत (९७७) - हमारी आयु बीचमें ही न टूटे।

३४४ विद्वान् मित्रः वरुणः अर्यमा नः ऋजुनीती नयतु (९७९)- ज्ञानी मित्र, वरुण और अर्यमा हमें सरल नीतिके मार्गसे ले जावें।

३४५ ऋतायते वाता मधु, सिन्धवः मधु क्षरन्ति (९८४)- सरल और सत्य आचरण करनेवालेके लिए वायु और नदियां मीठे रससे भरपूर होकर बहती हैं।

३४६ न जीवातुं (सोमः) प्रियस्तोत्रः वनस्पतिः (९९३)- हमारे दीर्घजीवनके लिए सोम प्रशंसनीय वनस्पति है।

३४७ त्वं च वशः न मरामहे (९९३)- इस सोमके अनुकूल रहने पर हम नहीं मरेंगे।

३४८ त्वावतः सखा न रिष्येत् (९९५)- इस सोमसे रक्षित हुआ भक्त नाशको प्राप्त नहीं होता।

३४९ सः हृदि रारन्धि (१०००)-- हे सोम ! हमारे हृदयमें शान्ति एवं सन्तोष उत्पन्न कर।

३५० सुकृते सुदानवे विश्वा अह इषः वहन्ती (१०१३)- उत्तम कर्म करनेवालेको तथा उत्तम दानीको यह उषा प्रतिदिन भरपूर अन्न देती है।

३५१ देवी मर्तस्य आयुः प्रमिनती आमिमाना (१०२०)- यह उषा देवी मनुष्यकी आयुको क्षीण करती जाती है।

३५२ दैव्यानि व्रतानि अमिनती (१०२२)- यह उषा देवोंके कार्योंका कभी नाश नहीं करती।

३५३ ज्योतिः एकं बहुभ्यः (१०३२)- सूर्यकी यह एक ज्योति बहुतों अर्थात् सभीके लिए है।

३५४ अस्य संसदि अस्य प्रमतिः भद्रा (१०४१)- इस अग्रणीकी संगतिमें रहनेसे मनुष्योंकी बुद्धि कल्याणकारिणी बनती है।

३५५ अग्ने ! सख्ये मा रिषाम (१०४१)- इस अग्निकी मित्रतामें जो रहता है, वह कभी दुःख नहीं पाता।

३५६ यस्मै त्वं आ यजसे सः साधति (१०४२) जिसकी यह अग्रणी ज्ञानसे सहायता करता है, वह सिद्धिको प्राप्त करता है।

३५७ स तूताव, अंहतिः न अश्नोति (१०४२)- वह सदा बढता रहता है, कभी दरिद्र नहीं होता।

३५८ जीवातवे धियः प्रतरं साधय (१०४४)- दीर्घजीवनके लिए बुद्धिशक्तिको और कर्मशक्तिको उत्तम बनाना चाहिए।

३५९ अस्य विशां गोपाः जन्तवः द्विपत् चतुष्पत् अक्तुभिः चरन्ति (१०४५)- इस अग्निकी प्रजारक्षक किरणें दुपायों और चौपायोंकी रातमें भी रक्षा करती हैं।

३६० अध्वर्युः, प्रशास्ता, पोता, जनुषा पुरोहितः विश्वा आर्त्विज्या विद्वान् (१०४६)- यह अग्रणी देव हिंसारहित कर्मोंका संयोजक, शासक, पवित्र करनेवाला, जन्मसे ही उत्तम कर्मोंमें आगे रहनेवाला तथा ऋतुओंके अनुसार कर्म करनेवाला विद्वान है।

३६१ रात्र्याः चित् अन्धः अति पश्यति (१०४७) - यह अग्नि रात्रीके अन्धकारमें भी बहुत प्रकाशता है।

३६२ ये के चित् दूरे अन्तिके अत्रिणः वधैः अप जहि (१०४९)- हे अग्ने ! पास अथवा दूर जितने भी खाऊ शत्रु हैं अथवा मनुष्य शरीरको खानेवाले रोगजन्तु हैं उन्हें तू अपने शस्त्रोंसे मार।

३६३ अत्रयातां मरुतां हेळः अद्भुतः (१०५२)- शत्रुपर हमला करनेवाले मरुत् वीरोंका क्रोध भयानक है।

३६४ देवः देवानां अद्भुतः मित्रः (१०५३)- यह उत्तम गुणोंसे युक्त अग्रणी उत्तम गुणवालोंसे ही मित्रता करता है।

३६५ समिद्धः जरसे मृळयत्तमः (१०५४)- तेजस्वी होकर यह अग्नि उपासकको अत्यधिक सुख देता है।

३६६ सर्वताता अनागाः, भद्रेण शवसा (१०५५)- सभी हिंसारहित यज्ञोंको करनेवाला उपासक पापरहित और कल्याणकारी बलसे युक्त होता है।

३६७ सा समितिः देवतातौ (१०६४)- यज्ञकी समिति दिव्यताका फैलाव करनेवाली होती है।

३६८ धन्वन् गातुं स्रोतः ऊर्मिं कृणुते (१०६६) - निर्जल स्थानमें यह अग्नि मार्ग बनाता और जलप्रवाह तथा पानीके स्रोत उत्पन्न करता है।

३६९ शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अभि नक्षति (१०६६)- वह तेजस्वी पानीकी तरंगोंसे पृथ्वीको भर देता है।

३७० विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते (१०६९)- सब अन्नोंको प्राणियोंके पेटमें स्थापित करता है।

३७१ रायः बुध्नः, वसूनां संगमनः, यज्ञस्य केतुः वेः मन्मसाधनः (१०७३)- यह अग्नि धनका आधार, ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेवाला, यज्ञका ज्ञान करानेवाला और प्रगतिशील मानवके लिए इष्ट सिद्धि देनेवाला है।

३७२ नू च पुरा च रयीणां सदनं (१०७४)- यह अग्नि इस समय और पहले भी अर्थात् सनातन रूपसे सम्पत्तिका घर है।

३७३ द्रविणोदाः दीर्घं आयुः रासते (१०७५)- सम्पत्ति दाता यह अग्नि दीर्घ आयु प्रदान करता है।

३७४ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम (१०८५)- सब जनताका हित करनेवालेकी उत्तम मनोभावनामें सदा रहें।

३७५ वैश्वानरः अग्निः दिवि पृष्टः, पृथिव्यां पृष्टः (१०८६)- सब प्रजाके हित करनेवाले अग्रणी नेताका यश स्वर्गके निवासी और भूलोकके निवासी सभीके द्वारा गाया जाता है।

३७६ सः अग्निः सहसा पृष्टः (१०८६)- वह अग्रणी अपने बलके कारण सर्वत्र प्रशंसित होता है।

३७७ वेदः अरातीयतः नि दहाति (१०८८) यह अग्नि सब कुछ जानता हुआ शत्रुके समान आचरण करनेवालेको जला देता है।

३७८ अग्निः दुरिता अति (१०८८)— अग्नि हमें सब पापोंसे पार करे।

३७९ वृत्र-हा भरे भरे शुष्म अस्ति (१०९०) - वृत्र-नाशक इन्द्र प्रत्येक युद्धमें असुरोंको भयसे सुखानेवाला है।

३८० पौंस्येभिः तरत्-द्वेषाः सासहिः (१०९१) — वह अपने पराक्रमोंसे द्वेषका नाश करनेवाला और शत्रुओंका पराभव करनेवाला है।

३८१ सः एकः विश्वस्य करुणस्य ईशे (१०९५) — वह इन्द्र अकेला ही सब उत्तम कर्मोंका स्वामी है।

३८२ दिवः न त्वेषः रवथः शिमीवान् (११०१)- वह इन्द्र सूर्यके समान तेजस्वी ध्यारुयान देनेवाला और कर्ममें कुशल है।

३८३ यस्य शवसः अन्तं देवता देवाः मर्ताः आपः चन न आपुः, सः त्वक्षसा क्ष्मः दिवः च प्र रिक्वा (११०३)— जिस इन्द्रके बलका अन्त दानशील एवं तेजस्वी देव, मनुष्य और जल भी नहीं पा सके, ऐसा वह इन्द्र अपनी सूक्ष्म शक्तिसे पृथ्वी और द्युलोकसे आगे बढा हुआ है।

३८४ इन्द्रः विश्वाहा नः अधि वक्ता अस्तु, अपरिह्वृताः वाजं सनुयाम (११०७)— यह इन्द्र सब दिन हमें उत्तम सलाह देनेवाला हो और हम भी कुटिलताको छोडकर उसे अन्न प्रदान करें।

३८५ अस्य व्रते द्यावापृथिवी, वरुणः, सूर्यः सिन्धवः सश्चति (१११०)— इस इन्द्रके नियममें द्युलोक, पृथ्वीलोक, वरुण, सूर्य और नदियां रहती हैं।

३८६ यः वशी कर्माणि कर्मणि स्थिरः (११११)— वह इन्द्र सबको अपने वशमें रखता हुआ प्रत्येक कर्ममें स्थिर रहता है।

३८७ यः विश्वस्य प्राणतः जगतः पतिः (१११२)— वह इन्द्र सारे प्राणके आधार पर जीवित रहनेवाले जगत्का स्वामी है।

३८८ यं इन्द्रं विश्वा भुवना अभि सं दधुः (१११३) — इस इन्द्रको सारा संसार आगे रखता है।

३८९ यः शूरेभिः भीरुभिः धावद्भिः जिग्युभिः हव्यः (१११३)— जो इन्द्र शूरोंके द्वारा, भयभीतोंके द्वारा, युद्धमें भागनेवालोंके द्वारा और विजयी वीरोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है।

३९० विचक्षणः पृथुज्रयः तनुते (१११४)— बुद्धिमान् मनुष्य ही अपने विस्तृत तेजको सब जगह फैला सकता है।

३९१ अस्य श्रवः सप्त नद्यः बिभ्रति (११२०)— इस इन्द्रके यशको सातों नदियां धारण करती हैं।

३९२ दर्शतं वपुः द्यावाक्षामा पृथिवी (११२०)— इस इन्द्रके सुन्दर शरीरको तीनों लोक धारण करते हैं।

३९३ श्रद्धे सूर्याचन्द्रमसा कं चरतः (११२०)— सत्य ज्ञान देनेके लिए सूर्य और चन्द्रमा सुखपूर्वक विचरते हैं।

३९४ (अस्य) बाहू गोजितौ (११२४)— इस इन्द्रकी भुजाएं गायोंको जीतनेवाली हैं।

३९५ इन्द्रः अमितक्रतुः समंकरः अकल्पः (११२४) — वह इन्द्र अपरिमित बलवाला, संग्राम करनेवाला और अद्वितीय वीर है।

३९६ कर्मन् कर्मन् शतं ऊतिः (११२४)— प्रत्येक कर्ममें सैंकडों संरक्षणके साधन अपने पास रखनेवाला है।

३९७ (अस्य) ज्यायः श्रवः शतात् उत् सहस्रात् उत् रिरिचे (११२५)— इस इन्द्रका मनुष्योंमें यश सैंकडों तथा हजारों प्रकारोंसे भी अधिक है।

३९८ जनुषा अशत्रुः आसि (११२६)- यह इन्द्र जन्मसे ही शत्रुरहित है।

३९९ त्वं जिगेथ, धना न रुरोधिथ (११२८)— यह इन्द्र युद्धोंको जीतता तो है, पर धनोंको रोक नहीं रखता। युद्धमें प्राप्त धनोंको अपने पास नहीं रखता अपितु अपने भक्तोंमें बांट देता है।

४०० आर्ये सहः द्युम्नं वर्धय (११३२)— आर्योंको बल और तेज बढाना चाहिए।

४०१ अस्य इन्द्रस्य इदं भूरि पुष्टं पश्यत, वीर्याय श्रद् धत्तन (११३४)— इस इन्द्रके इस अत्यधिक बलको देखो और इसके बल पर श्रद्धा करो।

४०२ यः शूरः आदृत्य अयज्वनः वेदः विभजन् एति, सोम सुनवाम (११३५)— जो शूरवीर ज्ञानियोंका आदर करके यज्ञ न करनेवालोंके धनको छीनकर ज्ञानियोंमें बांट देता है, उसका हम सत्कार करें।

४०३ नः जीवशंसे अनागास्त्वे (११४३)— हे इन्द्र ! हमें जीवोंके द्वारा प्रशंसित और पापरहित कार्यमें संयुक्त कर।

४०४ अकृते यानौ मा (११४४)— हे इन्द्र ! हमें धनशून्य घरमें स्थापित मत कर।

४०५ अर्थिनः अर्थं इत् (११४८)— इच्छा करनेवाले अपने प्राप्तव्यको निस्सन्देह प्राप्त कर ही लेते हैं।

४०६ शंभुवः सोम्यस्य शूने कदाचन मा भूम

११४९)– आनन्द देनेवाले सोमसे रहित स्थानमें हम कभी भी न रहें।

४०७ यः असौ आदित्यः पन्थाः, स न अतिक्रमे (११६२)– यह जो आदित्यका मार्ग है, उसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

४०८ मर्तासः तत् न पश्यथ (११६२)– साधारण मनुष्य उस मार्गको देख भी नहीं सकते।

४०९ यत् ते मनुः हितं तत् शं योः ईमहे (११७०) – जो तेरे पास मानवोंका हित करनेवाला सच्चा सुख देने और दुःख दूर करनेका साधन है, वही हम मांगते हैं।

४१० रश्मीन् मा छत्स्म (११९१)– हमारे सन्तानरूपी किरणोंका विच्छेद न हो।

४११ पितॄणां शक्तीः अनुयच्छमानाः (११९१)– पितरोंकी शक्ति वंशजोंमें अनुकूलतासे रहे।

४१२ मे अपः ततं तत् उ पुनः तायते (११९७)– मेरा कर्म समाप्त हुआ है, वही कर्म मैं फिरसे करूंगा।

४१३ मर्तासः सन्तः अमृतत्वं आनशुः (११९७) – मरणशील मनुष्य भी देवत्व और अमरत्व प्राप्त कर सकते हैं।

४१४ असुन्वतां पृत्सुतीः अभितिष्ठेम (१२०३)– यज्ञ न करनेवालोंकी सेनाका हम पराभव करें।

४१५ तप्तं घर्मं अत्रये ओम्यावन्तं (१२१७)– अश्विनौने गर्म और तपे हुए कारागृहको अत्रि ऋषिके लिए ठण्डा बना दिया।

४१६ शचीभिः अन्धं परावृजं चक्षसे, श्रोणं एतवे प्रकृथः (१२१७ – अश्विनोंने अपनी शक्तियोंसे अन्धे ऋषि परावृजको देखनेके लिए दृष्टिसंपन्न किया और लंगडेको चलनेके लिए टांगसे युक्त किया।

४१७ याभिः विमदाय पत्नीः ऊहथुः (१२२९)– अश्विनौने अपनी शक्तियोंसे विमदको धर्मपत्नीको उसके पास पहुंचाया।

४१८ अरुणीः घ आ अशिक्षतं (१२२९)- अरुण रंगकी घोडियोंको अश्विनौने पूर्णतया शिक्षित किया।

४१९ ज्योतिषां श्रेष्ठं इदं ज्योतिः आगात् (१२३६) तेजस्वी पदार्थोंके तेजसे भी अधिक श्रेष्ठ उषाका यह तेज पूर्व दिशामें प्रकट हो रहा है।

४२० यथा रात्रिः सवितुः सवाय प्रसूता एवा उषसे योनिं आरैक् (१२३६)– जिस तरह रात्री सूर्यकी उत्पत्तिके लिए उत्पन्न हुई, वैसी ही यह रात्री उषाके जन्मके लिए भी स्थान खुला कर रही है।

४२१ स्वस्रोः अध्वा समानः अनन्तः (१२३८)– रात्री और उषा इन दोनों बहिनोंका मार्ग एक ही है और वह अन्तरहित है।

४२२ देवशिष्टे अन्या अन्या तं चरतः (१२३८) – ईश्वरकी आज्ञानुसार चलनेवाली ये दो बहिनें क्रमसे एकके पीछे दूसरी इस मार्गसे चलती हैं।

४२३ नक्तोषासा सुमेके विरूपे समनसा (१२३८) – ये दोनों रात्री और उषा उत्तम स्नेह धारण करनेवाली परस्पर विरुद्ध रूपरंगवाली होनेपर भी एक मतसे कार्य करनेवाली हैं।

४२४ जिह्मश्ये चरितवे आभोगये राये मघोनी (१२४०)– सोनेवालेको घुमानेके लिए, भोगोंको प्राप्त करनेके लिए तथा धन प्राप्त करनेके लिए धनवाली यह उषा प्रकाशित होती है।

४२५ ये मर्तासः व्युच्छन्तीं पूर्वतरां उषसं अपश्यन, ते ईयुः, अस्माभिः नु प्रतिचक्ष्या अभूत्, ये अपरीषु पश्यान् ते यन्ति (१२४६)– जो मानव प्रकाशनेवाली पूर्वसमयकी उषाको देख चुके, वे चले गए। हमारे द्वारा यह उषा देखी जा रही है और आगे भी जिनके द्वारा देखी जाएगी, वे भी चले जायेंगे।

४२६ उदीर्ध्वं, नः असुः जीवः आगात्, ज्योतिः आ एति, यत्र आयुः प्रतिरन्त अगन्म (१२५१)– हे मनुष्यो! उठो, हमारा यह प्राणरूप प्रकाश आ गया है, ज्योति प्रकट हो रही है, अतः इस प्रकाशमें अपनी आयु बढाते हुए हम आगे बढें।

४२७ ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरं असत्, द्विपदे चतुष्पदे शं (१२५६)– गांवमें सब प्राणिमात्र हृष्टपुष्ट और निरोगी रहें तथा द्विपद और चतुष्पादके लिए शान्ति प्राप्त हो।

४२८ मीढ्वः रुद्र! ते सुमतिं अश्याम (१२५८)– हे सुखदायक रुद्रदेव! तेरी उत्तम बुद्धिको हम सब प्राप्त करें।

४२९ देवानां अनीकं चित्रं चक्षुः (१२६७)– यह सूर्य देवोंका तेज और विलक्षण आंख है।

४३० सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा (१२६७)– यह सूर्य चराचर जगत्‌की आत्मा है।

४३१ यत्र देवयन्तः नराः युगानि, भद्रं प्रति भद्राय वितन्वते (१२६८)– जहां देवत्व प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य योग्य कर्म करते हैं, वहां उस कल्याणकारी पुरुषका कल्याण करनेके लिए यह सूर्य अपना प्रकाश फैलाता है।

४३२ सूर्यस्य अश्वाः भद्राः अनुमाद्याः (१२६९) – सूर्यकी किरणें कल्याण करनेवाली और आनंद देनेवाली हैं।

४३३ कर्तोः मध्या विततं सं जभार तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं (१२७०) – काम करनेवालेका काम पूरा भी नहीं हो पाता कि यह सूर्य बीचमें ही अपनी फैली हुई किरणोंको समेट लेता है, यही सूर्यका देवत्व और महत्त्व है।

४३४ नासत्या वीळुपत्मभिः आशु हेमभिः देवानां जूतिभिः शाशदाना (१२७४) – असत्यसे दूर रहनेवाले दोनों अश्विनौ आकाशमें वेगसे उडनेवाले, शीघ्रगतिसे जानेवाले देवोंकी गतिसे संचालित होनेवाले यानोंसे शीघ्रगतिसे जानेवाले हैं।

४३५ आत्मन्वतीभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः नौभिः भुज्युं ऊहथुः (१२७५) – निजशक्तियोंसे युक्त अन्तरिक्षमेंसे जानेवाली तथा जलप्रवाहोंको चीरती हुई जलमें भी जानेवाली नौकाओंसे तुमने भुज्युको ऊपर उठाया।

४३६ नासत्या! आर्द्रस्य समुद्रस्य पारे धन्वन् तिस्रः क्षपः त्रि अहा अतिव्रजद्भिः शतपद्भिः षड् अश्वैः पतंगैः त्रिभिः रथैः भुज्युं ऊहतुः (१२७६) – हे सत्यपालक अश्विनौ! तुमने जलमय अगाध समुद्रके परे रेतीले मरुदेशसे तीन रातें और तीन दिन न ठहरते हुए बराबर वेगसे जानेवाले सौ पहियोंसे युक्त और छै अश्व शक्तियोंवाले यंत्रोंसे युक्त पक्षी जैसे उडते हुए जानेवाले तीन यानोंसे भुज्युको तुम ले चले।

४३७ अश्विना! अनास्थाने अनारंभणे अग्रभणे समुद्रे शतारित्रां नावं आतस्थिवांसं भुज्युं यत् अस्तं ऊहथुः, तत् अवीरयेथां (१२७७) – हे अश्विनौ! स्थानरहित, आलम्बन शून्य, हाथसे जहांसे किसीको पकडना असंभव है, ऐसे अथाह समुद्रमें सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौका पर चढे हुए भुज्युको जो तुम दोनोंने घर पहुंचाया, यह कार्य सचमुच बडी ही वीरतासे पूर्ण था।

४३८ नासत्या! जुजुरुषः च्यवानात् द्रापिं इव वव्रिं अमुंचतं उत जहितस्य आयुः प्रतिरतं कनीनां पतिं अकृणुतं (१२८२) – हे अश्विनौ! तुमने जराजीर्ण च्यवानके शरीरसे कवचके तुल्य बुढापेकी चमडीको उतार कर दूर कर दिया, स्वजनों द्वारा त्याग दिए गए उस च्यवानकी आयु दीर्घ कर दी और उसे अनेक सुन्दर नारियोंका पति बनाया।

४३९ अश्विनौ! वध्रिमत्यै हिरण्यहस्तं अदत्तं (१२८५) – हे अश्विनौ! तुमने वन्ध्या स्त्रीको हिरण्यहस्त नामक पुत्र प्रदान किया।

४४० वेः पर्णं इव आजा खेलस्य चरित्रं अच्छेदि हि, परितक्म्यायां विश्पलायै हिते धने सर्तवे आयसीं जंघां सद्यः प्रत्यधत्तं (१२८७) – पंछीका पंख जिस प्रकार टूट जाता है, उसी प्रकार युद्धमें खेल नरेशकी सम्बन्धिनी स्त्रीका पैर टूट गया, तब रात्रीके समय ही उस विश्पलाके लिए युद्ध शुरु होनेके बाद चलने फिरनेके लिए लोहेकी टांग तुरन्त ही तुम दोनोंने बिठला दी।

४४१ ऋज्राश्वं पिता अन्धं चकार, तस्मै अनर्वन् अक्षी विचक्षे अधत्तं (१२८८) – ऋज्राश्वको उसके पिताने अन्धा बना दिया था, तब तुमने उस अन्धेको रोगरहित आंखें देखनेके लिए विशेष रूपसे दीं।

४४२ स्तर्यं गां चित् शचीभिः पिप्यथुः (१२९४) – वन्ध्या गायको भी अपनी शक्तियोंसे तुम दोनोंने दुधारु बनाया।

४४३ विप्रुतं रेभं ऋषिं दंसोभिः अश्वं न सं रिणीथः (१३०१) – हे बलवान् अश्विदेवो! अत्यन्त शिथिल और दुर्बल रेभ ऋषिको तुमने अपने चमत्कारी कार्योंसे भलीभांति घोडे जैसा सुदृढ शरीरवाला बना दिया था।

४४४ वां पूर्व्या कृतानि न जूर्यन्ति (१३०१) – तुम्हारे द्वारा किए गए ये पहलेके कार्य कभी जीर्ण या नष्ट नहीं होते।

४४५ पितृषदे दुरोणे जुरन्त्यै घोषायै चित् पतिं आदत्तं (१३०४) – अश्विनौने पिताके घरमें ही बूढी हो जानेवालीको तरुणी बनाकर उसे पति प्रदान किया।

४४६ विषेण विष्वाचः जात अहतं (१३१३) हे अश्विनौ! तुम दोनोंने विषकी सहायतासे सभी ओर संचार करनेवाले शत्रुके सैनिकोंको मार डाला।

४४७ स्वपतस्य अभुंजतः रेवतः निविदे, ता उभा क्षिप्रं नश्यतः (१३५५) – सोते हुए अर्थात् आलसी और भोजन न देनेवाले कंजूस धनीको देखकर मुझे दुःख होता है, क्योंकि ये दोनों ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

४४८ अयज्यून् नवतिं पारं प्रास्य कर्तं अपि अवर्तयः (१३६८) – इस इन्द्रने यज्ञ न करनेवालोंकी नब्बे नदियोंके पार फेंककर बडा भारी काम किया।

४४९ पृक्षयामेषु पज्रः दाता मघानि रातिः (१३७७) – जहां घोडे बहुत दौडाये जाते हैं, ऐसे संग्रामोंमें शूरवीरको ही गौओंका दान प्राप्त होता है।

४५० यः वाजिनीवान् जनः अस्य मंहिमघस्य

राधः स्तुवे (१३७८)– जो बलवान् होता है, उस महान् ऐश्वर्यवाले धनकी सब प्रशंसा करते हैं।

४५१ सुवीरासः मनुष्याः सन्तु (१३७८)– उत्तम वीरतासे सब मनुष्य संघटित हों।

४५२ यः जनः अभि ध्रुक् अक्रमया ध्रुक्, अपः न सुनोति, हृदये यक्ष्मं नि धत्ते (१३७९) जो मनुष्य देवोंसे या मनुष्योंसे द्रोह करता है, टेढेमेढे मार्गसे चलता है और यज्ञ नहीं करता, वह अनेक तरहके रोगोंको अपने हृदयमें धारण करता है।

४५३ यत् ऋतायाः हव्याभिः, ई आपः (१३७९)– जो सत्यमार्ग पर चलता हुआ मंत्रोंसे यज्ञ करता है, वह देवोंकी कृपा प्राप्त करता है।

४५४ नभोजुवः! महिना निरवस्य राधः प्रशस्तये रथयते (१३८१) आकाशको व्यापनेवाले देवो! तुम अपनी शक्तिसे लोगोंका अहित करनेवाले दुष्टका धन प्रशंसनीय और उत्तम रथवाले वीरको देते हो।

४५५ यस्य सूरेः दशतयस्य नंशे. एतं दार्धं धाम, इति अवोचन् (१३८२)– जिस विद्वान्के अन्नको हम खाते हैं, उसे हम बलवान् बनायें, इस प्रकार वे सब कहते हैं।

४५६ योषा ऋतस्य धाम न मिनाति, अहः अहः निष्कृतं आचरन्ती (१३९४)– यह स्त्री उषा सत्यके व्रतको नहीं तोडती और प्रतिदिन नियत स्थान पर जाती और नियमपूर्वक रहती है।

४५७ उषः! ऋतस्य रश्मिं अनुयच्छमाना अस्मासु भद्रं क्रतुं धेहि (१३९८)– हे उषा! सूर्यकी किरणोंके अनुकूल रहनेवाली तू हमारे अन्दर कल्याणकारक कर्म करनेकी बुद्धि स्थापित कर।

४५८ अदेपमा तन्वा शाशदाना न अर्भात् ईषते, न महः, विभाती (१४०४) निष्पाप शरीरसे प्रकाशित होती हुई यह उषा न छोटेसे दूर भागती है और न बडेसे दूर भागती है अपितु सब पर समान रूपसे प्रकाशती है।

४५९ उषः! पृणतः प्रबोधय, अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु (१४०८)– हे उषा! तू दाताओंको जगा, अज्ञानी और दान न देनेवाले कंजूस बनिये सो जाएं।

४६० प्रातः इत्वा रत्नं दधाति (१४१२) सूर्य सवेरे आकर लोगोंको रत्न देता है।

४६१ चिकित्वान् तं प्रतिगृह्य नि धत्ते (१४१२)– पर केवल बुद्धिमान् ही उस रत्नको लेकर अपने पास रखता है।

४६२ यः प्रातः आयन्तं वसुना उत् सिनाति, नृवीरः सुहिरण्यः, सु अश्वः असत् (१४१३)– जो मनुष्य सवेरे आते हुए याचकको धनसे बांध देता है, वह उत्तम गौ, सोने और घोडेसे युक्त होता है।

४६३ ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः घृतस्य धाराः उप यन्ति (१४१५)– इस समय यज्ञ करनेवाले तथा आगे भी यज्ञ करनेवालोंको गायें घी की धारायें प्राप्त कराती हैं।

४६४ श्रितः यः प्रिणाति नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति (१४१६)– जो अपने आश्रितोंको तृप्त करता है, वह सदा सुखमें रहता है।

४६५ सः देवेषु गच्छति (१४१६)– वह देवोंमें जाकर बैठता है।

४६६ सिन्धवः आपः तस्मै घृतं क्षरन्ति (१४१६)– जलप्रवाह उस दानीके लिए तेजस्वी जल बहाते हैं।

४६७ दक्षिणा तस्मै सदा पिन्वते (१४१६)– यह पृथ्वी उसके लिए सदा ही अन्नसे भरपूर रहती है।

४६८ दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त (१४१७)– दक्षिणावालोंकी आयु बढती है।

४६९ पृणन्तः दुरितं एनः मा आरन् (१४१८)– देवों और मनुष्योंको तृप्त करनेवालेको दुःख और पाप नहीं प्राप्त होते।

४७० सूरयः सुव्रतासः मा जारिषुः। अपृणन्तं शोकाः सं यन्तु (१४१८)– विद्वान् और उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले मनुष्य वृद्ध न हों। देवोंको तृप्त न करनेवालेको शोक प्राप्त हों।

४७१ संचक्षे अस्यै भुजे (१४३६)– दीर्घायु प्राप्तिके लिए ही संसारका उपभोग करें। मनुष्यका भोग सीमातीत न होकर दीर्घायु प्राप्तिमें सहायक हो।

४७२ रक्षीयसे विश्वश्रुष्टिः, श्रवस्यते रयिः इव (१४३७) वह अग्नि अपने साथ मैत्रीकी इच्छा करनेवालेको सब कुछ देता है और धनकी इच्छा करनेवालेके लिए यह धनके समुद्रके समान ही है।

४७३ ऋतस्य पथा नमसा तं आ विवासेम (१४३८) – सत्यके मार्गसे तथा नम्रतासे उस अग्रणीकी हम सेवा करते हैं।

४७४ सुकृते वार्यं ऋण्वति, द्वारा वि ऋण्वति (१४४२)– उत्तम कर्म करनेवालोंके लिए वह धन देता है, उनके लिए वह धनके द्वार खोल देता है।

४७५ सः वृकणस्य धूर्तेः न आससे (१४४३)– वह अग्नि यज्ञमें बाधा पहुंचानेवाले धूर्तोंसे हमारी रक्षा करे।

४७६ अपाका सन्तं रथं प्र नयसि प्र नयसि (१४४५)– जो भक्त अपरिपक्व बुद्धिवाला होता है, उसके पास इन्द्र अपना रथ ले जाता है और उसे आगे बढ़ाता है।

४७७ शूर! अरह मर्त्यं शाचीः, परि वृणक्षि (१४४७)– यह शूर इन्द्र कष्ट पहुंचानेवाले, इसीलिए मारे जाने योग्य असुरको दूर करता और काटता है।

४७८ विश्वं शत्रुं स्तृणोषि शत्रुः त्वा नहि स्तरते (१४४८)– यह इन्द्र सारे शत्रुओंको मारता है, पर सब शत्रु मिलकर भी उस अकेले इन्द्रको नहीं मार सकते।

४७९ उग्र! ऊतिभिः कयस्य चित् अति मतिं वि सु नम (१४४९)– हे वीर! अपने रक्षणोंके प्रकारसे प्रसिद्ध शत्रुके अभिमानको नीचा कर दे।

४८० अनेनाः मन्यसे (१४४९)– हे इन्द्र! शत्रुओंको मारने पर भी तू निष्पाप ही माना जाता है।

४८१ परीणसा राय, अंहूरया पथा याहि (१४५३) – सब ओरसे धन होनेपर भी पापरहित मार्गसे जाना चाहिए।

४८२ पापस्य रक्षसः हन्ता विप्रस्य त्राता (१४५५) – यह इन्द्र पापी राक्षसोंका विनाशक और ज्ञानियोंका रक्षक है।

४८३ विश्वेषु आजिषु आर्यं आवत् (१४६३)– इन्द्र सब युद्धोंमें केवल मनुष्यकी ही रक्षा करता है।

४८४ मनवे अव्रतान् शासत् (१४६३)– मननशील पुरुषके लिए नियम तोडनेवालों पर शासन करता है।

४८५ (इन्द्रः) अयज्युं मर्त्यं दाजः, महीं पृथिवीं अमुष्णाः (१४६९)– इन्द्रने यज्ञसे हीन मनुष्यको दण्डित किया और विशाल पृथ्वीको उससे छीना।

४८६ वृषा मृधः हन्तवे चिकेतति (१४७१)– यह बलवान् इन्द्र हिंसकोंको मारनेके लिए हमेशा सावधान रहता है।

४८७ (इन्द्र) ऋतस्य क्षयं वाः असि (१४७५)– हे इन्द्र! तू सत्यका स्थान प्राप्त करनेवाला है।

४८८ क्षाणाः ऊतयः दक्षं इरध्ये सचन्ते (१४८७) – कर्मशील पुरुषार्थी और रक्षाके इच्छुक मनुष्य बलको प्राप्त करनेके लिए उद्योग करते हैं।

४८९ उषासः भद्रा वस्त्रा तन्वते (१४९९)– उषायें हितकारी वस्त्र बुनती हैं।

४९० सबर्दुघा धेनुः विश्वा वसूनि दोहते (१४८९) – दूध रूपी अमृत देनेवाली गौ सब धन देती है।

४९१ शुभ्रासः शुचयः तुरण्यवः उग्रा भुर्वणि मदेषु दूषणन्त (१४९०)– बलवान्, शुद्ध, त्वरासे काम करनेवाले उग्रवीर, भरण पोषण करनेवाले आनन्दके समय तुमको चाहते हैं।

४९२ अनर्वाणं अंहसः परिपातः (१५०५)– जो किसीसे शत्रुता नहीं रखता, ऐसे मनुष्यकी मित्रावरुण दुःखोंसे रक्षा करते हैं।

४९३ दाश्वांसं, ऋजूयन्तं अनुव्रतं अर्यमा अंहसः अभि रक्षति (१५०५)– दान देनेवाले, सरल और सत्य-मार्गपरसे चलनेवालेकी अर्यमा दुःखोंसे रक्षा करता है।

४९४ विपन्यवः क्रत्वा बुभुज्रिरे (१५१३)– बुद्धि-मान् जन अपने पुरुषार्थसे भोगोंको भोगते हैं।

४९५ देवस्य दर्शतं भर्गः वपुषे धायि (१५३९)– दिव्य अग्निका वह दर्शनीय तेज शरीरकी सुदृढताके लिए लोक धारण करते हैं।

४९६ साम्राज्याय प्रतरं दधानः अस्ताचि (१५५१) – साम्राज्यको उत्तमतासे धारण करनेवाला राजा प्रजाओं द्वारा प्रशंसित होता है।

४९७ सु प्रतीकस्य भानवः अजराः (१५६७)– शुभ मुखवाले मनुष्यका तेज चारों ओर फैलता है।

४९८ मरुतां स्वनः इव सृष्टा सेना इव दिव्या अशनिः इव न वारय (१५६९)– मरुतोंके गर्जनके समान, आक्रमण करनेवाली सेनाके समान तथा आकाशके वज्रके समान बलशाली इस अग्निको कोई हटा नहीं सकता।

४९९ न शुक्रवर्णां धियं उत् यंसते (१५७१)– वह अग्नि हमारी निर्मल बुद्धिको प्रेरित करता है।

५०० मानुषा युगा पुरुचरन् अजरः (१५७६)– अनेकों मानवी युगोंतक अर्थात् अनन्तकालतक बहुत संचार करता हुआ भी यह अग्नि कभी बूढा नहीं होता, सदा तरुण ही बना रहता है।

५०१ धीरः स्वेन मनसा यत् अग्रभीत्, प्रथमं न अपरं, वचः न मृष्यते (१५८२)– धीर बुद्धिमान् मनुष्य जो मनसे निश्चय कर लेता है, उसे पहले ही कर डालता है, बादमें नहीं, क्योंकि वह किसीका कहना सुनना पसन्द नहीं करता।

५०२ अप्रदृपितः अस्य क्रत्वा सचते (१५८१)– गर्वहीन मनुष्य ही इस अग्निके बलसे युक्त होता है।

५०३ मर्त्येभ्यः वयुना वि अब्रवीत् (१५८४)– यह अग्रणी अग्नि मनुष्योंको ज्ञानका उपदेश देता है।

५०४ त्वः पीयति, त्व अनु गृणाति (१५९१)– एक

मनुष्य इस देवको पीडा पहुंचाता है, तो दूसरा मनुष्य इस देवकी स्तुति करता है।

५०५ तान् सुकृतः विश्ववेदाः ररक्ष (१५९२)- यह अग्नि पुण्यशालियोंकी रक्षा करता है।

५०६ अघायुः अररिवान् अरातिः मृक्षीष्ट (१५९३) — पापी, दान देनेसे रोकनेवाला तथा स्वयं भी दान न देनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है।

५०७ दुरुक्तैः तन्वं मृक्षीष्ट (१५९३) दूसरोंको बुरे शब्द बोलनेवालेका ही शरीर क्षीण हो जाए।

५०८ यः नार्मिणीं पुरं आ अदीदेत् (१६०२)- यह अग्नि इस अविनश्वर आत्माकी नगरी इस शरीरको चारों ओरसे प्रकाशित करता है।

५०९ बृहत् ऋतं आ घोषथः (१६११)– जो सत्य हो उसकी घोषणा करनी चाहिए।

५१० विश्वा अनृतानि अव अतिरतं, ऋतेन सचेथे (१६१७)- ये मित्र और वरुण असत्य भाषण करनेवालोंको नष्ट करके मनुष्योंको सत्यसे संयुक्त करते हैं।

५११ देवनिदः प्रथमा अजूर्यन् (१६१८) देवोंकी निन्दा करनेवाला प्रथम शक्तिशाली होते हुए भी बादमें शक्तिहीन हो जाते हैं।

५१२ मामतेयं धेनवः तस्मिन् ऊधन् पीपयन् (१६२२)– गायोंसे अत्यधिक ममता या प्रेम रखनेवालोंको गायें अपने सभी थनोंसे दूध देकर पुष्ट करती हैं।

५१३ (मित्रावरुणौ) आ विवासन् अदितिं उरुष्येत् (१६२२)– मित्रावरुणकी उपासना करते हुए मनुष्य मृत्युको दूर कर सकता है।

५१४ ऋताय हविर्दे जनाय अदितिः धेनुः पीपाय (१६२६)– सत्यमार्ग पर चलनेवाले तथा हवि देनेवाले मनुष्यको न काटे जाने योग्य गायें तृप्त करती हैं।

५१५ यस्य विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति, तत् विष्णुः वीर्येण स्तवते (१६२९)– जिसके आधार पर सारे भुवन रहते हैं वह विष्णु अपने पराक्रमके कारण सर्वत्र प्रशंसित होता है।

५१६ एकः इत् इदं दीर्घं आयतं सधस्थं वि ममे (१६३०)– यह विष्णु अकेला ही इस लम्बे और चौडे द्युलोकको नाप लेता है।

५१७ मधुना पूर्णा पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति (१६३१)– इस विष्णुके अमृतसे भरपूर कदम कभी नष्ट न होते हुए अपनी धारण शक्तिसे हर्षित होते हैं।

५१८ देवयवः नरः यत्र मदन्ति, तस्य तत् प्रियं पाथः अश्यां (१६३२)– देवत्वको प्राप्त करनेवाले मनुष्य जहां आनंद करते हैं, विष्णुके उस प्रिय स्थानको हम भी प्राप्त करें।

५१९. उरुक्रमस्य बन्धुः (१६३२)–यह विष्णु पराक्रम करनेवाले उद्योगियोंका भाई अर्थात् सहायक होता है।

५२० विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः (१६३२)– विष्णुके उस उत्तम स्थानमें अमृतका झरना बहता है।

५२१ वां गमध्यै ता वास्तूनि यत्र भूरिशृंगाः गावः अयासः (१६३३)- हे दम्पती! तुम्हारे निवासके लिए घर ऐसे हों, जहां अत्यन्त तीक्ष्ण सूर्यकिरणें प्रविष्ट हो सकें, अथवा घर ऐसे हों, कि जहां उत्तम सींगोंवाली गायें रह सकें।

५२२ अत्र अह वृष्णः परमं पदं अवभाति (१६३३) — ऐसे ही उत्तम घरोंमें बलवान् विष्णुका वह श्रेष्ठ स्थान प्रकाशित होता है।

५२३ मर्त्यः स्वर्दृशः अस्य द्वे इत् क्रमणे भुरण्यति (१६३८)– मनुष्य तेजस्वी दृष्टिवाले इस विष्णुके दो पैर का ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

५२४ अस्य तृतीयं न किः आ दधर्षति (१६३८) — इस विष्णुके तीसरे कदमको कोई भी हरा नहीं सकता।

५२५ विष्णो! महः ते सुमतिं भजामहे (१६४२)– हे व्यापक देव! महान् तुम्हारी उत्तम बुद्धिको हम प्राप्त करें।

५२६ वेधाः आर्यं अजिन्वत् (१६४४)– बुद्धिमान् विष्णु श्रेष्ठ पुरुषको हरतरहसे उत्तम बनाता है।

५२७ यत् वां वज्रः त्मनि क्षां खादति (१६५४)- जिसने तुम दोनोंके भक्तको बांधा, वही अब भूमि पर धूल खाता पडा है।

५२८ अद्रुहः पितुः मातुः मन हविभिः मन्ये (१६५८)– द्रोह न करनेवाले माता पिताका मन अपनी स्तुतियोंसे प्रसन्न करना चाहिए।

५२९ सु-अपसः सुदंससः ते सूनवः पूर्वचित्तये मही मातरा जज्ञुः (१६५९)– उत्तम कर्म करनेवाले तथा दर्शनीय वे पुत्र प्रथम ज्ञान प्राप्त करनेके लिए इन दोनों बडी माताओं अर्थात् द्यावापृथिवियोंको जानते हैं।

५३० स सूर्यः मायया भुवनानि पुनाति (१६६४) — वह सूर्य अपनी शक्तिसे सभी लोकोंको पवित्र करता है।

५३१ महाकुलं यमसं न निन्दिम, भूतिं इत् ऊदिम (१६६७)– उत्तम जमीन पर होनेवाले अन्नकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, अपितु उसकी प्रशंसा ही करनी चाहिए।

५३२ य देवपालं अनिन्दिषुः एनान् हनाम, त्वष्टा अब्रवीत् (१६७१)– जो देवोंके द्वारा भक्षण करने योग्य अन्नकी निन्दा करते हैं, उन्हें हम मारें, ऐसा त्वष्टाने कहा।

५३ · सु-अपस भागं ऐतन (१६७२)– उत्तम कर्म करनेवाले ही यज्ञके भागको प्राप्त करते हैं।

५३४ ऋभुः विभ्वा वाजः देवान् अगच्छत (१६७२) – ज्ञानी, तेजस्वी और बलवान् ही देवत्व प्राप्त कर सकते हैं।

५३५ यत् अ-गोह्यस्य गृहे असस्तन, तत् इदं नु अनु गच्छथ (१६७७)– जबतक मनुष्य गायके न रहने योग्य घरमें रहेंगे, जबतक वे ऐश्वर्यको नहीं पा सकते।

५३६ यत्, तत् शुभाभिः वोचेः (१७७०)– जो कुछ भी करना हो, वह मीठी और शुभ वाणीमें ही बोला जाए।

५३७ यत् वशाम, कत्वा (१७७४)– हम जो भी प्राप्त करना चाहें, उसे उद्योगसे ही प्राप्त करें।

५३८ स्वेन भामेन तविषः बभूवान् (१७७५)– मनुष्योंको चाहिए कि वह अपने बलसे ही बलवान् बने।

५३९ ते अनुत्तं न किः (१७७६) – इस इन्द्रसे अप्रेरित ऐसा कोई पदार्थ नहीं है।

५४० यानि करिष्या कृणुहि, न जातः नशते न जायमानः (१७७६)– जिन कर्तव्योंको यह इन्द्र करता है, उसका अन्त पानेवाला न कोई हुआ है और न होगा।

५४१ या नु दधृष्वान् मनीषा कृणवे मे ओजः विभुः (१७७७)– जिन कर्मोंको यह इन्द्र करना चाहता है, उन्हें मन लगाकर करता है, इसीलिए उसका यश चारों ओर फैलता है।

५४२ अहं उग्रः वि दानः यानि च्यवं पर्वा इत् ईशे (१७७७)– यह इन्द्र वीर और विद्वान् है, इसलिए यह जिनकी तरफ जाता है, उनका स्वामी बन जाता है।

५४३ मानेभ्यः शुरुधः रद (१८२६)– अपने मानकी प्रतिष्ठाके लिए शत्रुओंका संहार करना चाहिए।

५४४ अमृतस्य चेतनं यज्ञं (१८३०)– यज्ञ अमरताको जगानेवाला है।

५४५ मरुतः उमसः इत् वृधासः (१८३३)- मरुत् वीर उत्तम कर्मोंको हा बढावा देते हैं।

५४६ सुदानवः मरुतः ! सा वः शरुः आरे, अश्मा आरे (१८३९)– हे उत्तम दान देनेवाले मरुतो ! वह तुम्हारा शस्त्र और वज्र हमसे दूर रहे।

५४७ मित्रेरून् अदाशान् जघन्वान् १८५९)- इन्द्रने मित्रके समान हित करनेवाले सज्जनोंके शत्रु और दान न देनेवालोंको मारा।

५४८ अद्रुक्समः नृपाता (१७५३)– यह इन्द्र छल-कपटसे रहित मनुष्योंका पालक है।

५४९ न ऋते श्रान्तस्य देवाः अवन्ति १८८८)– झूठ-मूठमें थक जानेका ढोंग दिखानेवालेका देव रक्षा नहीं करते अर्थात् जो प्रयत्न करके सचमुच थक जाता है उसीकी देवता रक्षा करते हैं।

५५० हे अग्ने ! राये अस्मान् सु पथा नय (१९७५) – हे तेजस्वी देव ! ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हमें तू उत्तम मार्गसे ही ले चल।

५५१ विश्वानि वयुनानि विद्वान् (१९७५)– यह अग्निदेव हमारे सभी कर्मोंको जानता है।

५५२ अस्मात् जुहुराणं एनः युयोधि (१९७५)– हम कुटिल पापोंसे दूर रहें।

५५३ भूयिष्ठां नमः उक्तिं विधेम (१९७५) हम प्रतिदिन इस देवकी भक्ति करें। पापसे बचनेका एकमात्र उपाय परमात्माकी उपासना है।

५५४ स्वस्तिभिः अस्मान् विश्वा दुर्गाणि पारय (१९७६)– कल्याणकारी मार्गोंसे हम सब तरहके दुर्गम पापों एवं दुःखोंसे पार हों।

५५५ पृथ्वीः पूः च उर्वी भव (१९७६)– यह पृथ्वी और नगर हमारे लिए विस्तृत और उत्तम हों।

५५६ अन्-अग्नित्राः कृष्टीः अभि अमन्त (१९७७) अग्निकी उपासना न करनेवाले अर्थात् नास्तिक मनुष्य रोगी होते हैं।

५५७ ते जरितारं भयं अपरं मा विदत् (१९७८)- इस अग्निकी उपासना करनेवालेको आज या कल कभी भी भय प्राप्त नहीं होता।

५५८ नः अघाय अविष्यवे दुच्छुनायै रिपवे मा अवसृज (१९७९)– हे अग्ने ! हमको पाप करनेवाले, अधर्मसे अन्नको खानेवाले, सुखके नाश करनेवाले शत्रुओंके हाथमें मत सौंप।

५५९ त्वावान् रिरिक्षो निनित्सोः वि यंसत् (१९८० – तेरा उपासक हिंसक और निन्दकोंसे दूर रहता है।

५६० अस्य श्लोकः दिवि पृथिव्यां ईयते १९८६) – इस बृहस्पतिका यश द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैलता है।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

प्रथम मण्डल

मन्त्रवर्णानुक्रमसूची

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः १,६३,९
अक्षन्नमीमदन्त १, ८२, २
अक्षितोतिः सनेदिमं १, ५, ९
अगच्छतं कृपमाणं परावति
१, ११९, ८
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः
१, १७९, ६
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतना
१, १६१, ३
अग्निं दूतं वृणीमहे १, १२, १
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः १, ७१, ७
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं
१, १२७, १
अग्निं होतारमीळते वसुधितिं
१, १२८, ८
अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः १, १, २
अग्निना रयिमश्नवत् १, १, ३
अग्निनाग्निः समिध्यते १, १२, ६
अग्निना तुर्वशं यदुं १, ३६, १८
अग्निमग्निं हवीमभिः १, १२, २
अग्निमीळे पुरोहितं १, १, १
अग्निर्जज्ञे सुवीर्यं १, [illegible], १७
अग्निर्होता कविक्रतुः १, १, ५
अग्ने त्वमस्मद् युयोध्यमीवा
१, १८९, ३
अग्ने त्वं पारया नव्यो १, १८९, २
अग्ने नय सुपथा राये, १, १८९, १
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य १, १४४, ७
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं १, १०५, १३
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो १, १२, ३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया १, १५, ४
अग्ने पत्नीरिहा वह १, २२, ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो
१, ४४, १०
अग्ने यं यज्ञमध्वरं १, १, ४
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां १, २४, २
अग्ने वाजस्य गोमत १, ७९, ४
अग्ने विवस्वदुषसः [illegible], ४४, १
अग्ने शुक्रेण शोचिषा १, १२, १२
अग्ने सुखतमे रथे १, १३, ४
अग्नीषोमाविमानि नो १, ९३, ११
अग्नीषोमावनेन वां १, ९३, १०
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य
१, ९३, ७
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न
१, ९३, १२
अग्नीषोमा सवेदसा १, ९३, ९
अग्नीषोमाविमं सु मे १, ९३, १
अग्नीषोमा य आहुतिं १, ९३, ३
अग्नीषोमा चेति तद् वीर्यं १, ९३, ४
अग्नीषोमा यो अद्य १, ९३, २
अच्छा वदा तना गिरा १, ३८, १३
अच्छिद्रा सूनो सहसो १, ५८, ८
अचेति दस्रा व्युनाकमृण्वथो
१, १३९, ४
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र
१, १६४, ६
अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैः
१, १७३, २
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः
१, ९२, ३
अजो न क्षां दाधार १, ६७, ५
अजोहवीन्नासत्या करा वां
१, ११६, १३
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां
१, ११७, १५
अजोहवीदश्विना वर्तिका वां
१, ११७, १६
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीः १,१७४,३
अतः परिज्मन्ना गहि १, ६, ९
अतप्यमाने अवसावन्ती १, १८५, ४
अत्यो नाज्मन् सर्गः [illegible] उक्तः
१, ६५, [illegible]
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं १, १६३, ७
अत्राह गोरमन्वत १, ८४, १५

अत्राह तद् वहेथे मध्व १, १३५, ८
अतारिष्म तमसस्पारमस्यो १, ९२, ६
अतारिष्म तमसस्पारमस्य १,१८३,६
अतारिष्म तमसस्पारमस्य १,१८४,६
अति नः सश्चतो नय १, ४२, ७
अति वायो ससतो याहि १, १३५, ७
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां १,३२,१०
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः १,१६५,५
अतो देवा अवन्तु नो १, २२, १६
अतो विश्वान्यद्भुता १, २५, ११
अथा ते अंगिरस्तम १, ७५, २
अथा ते अन्तमानां १, ४, ३
अथा न उभयेषां १, २६, ९
अर्थमिद् वा उ अर्थिन १, १०५, २
अददा अर्भां महते वचस्यवे १, ५१, १३
अथा दूतं वृणीमहे १, ४४, ३
अथा देवा उदिता सूर्यस्य १, ११५,६
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी १,१३६,२
अद्रौ चिदस्मा १, ७०, ४
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षं १,८९,१०
अदृश्रमस्य केतवो १, ५०, ३
अदृष्टान् हन्त्याय १, १९१, २
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः १, १२२, ११
अध ते विश्वमनु हासदिष्टये १, ५७, २
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु १, १२१, ६
अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो १, ९४, ११
अध स्वनान्मरुतां १, ३८, १०
अध स्वप्नस्य निर्विदे १, १२०, १२
अधा नो विश्वसौभग १, ४२, ६
अधा मन्ये श्रत् ते अस्मा १, १०४, ७
अधारयन्त वन्हयो १, २०, ८
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं १, ८३, ३
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा १, ९२, ४
अधि श्रियं नि दधुः १, ७२, १०
अधि सानौ नि जिघ्नते १, ८०, ६
अधीवासं परि मातू रिहन्नह १, १४०, ९
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ता १, ११७, २०
अनच्छये तुरगातु जीवम् १,१६४,३०
अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं १,१९०,१
अनवद्यैरभिद्युभिः १, ६, ८
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा १,१५२,५
अनारम्भणे तदवीरयेथां १, ११६,५
अनुकामं तर्पयेथां १, १७, ३
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु १, १६५, ९
अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे १, १२१, ११
अनु त्वा रथो अनु मर्यो १, १६३, ८
अनुप्रत्नस्यौकसो १, ३०, ९
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतान् १,५१,९
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्या १, ३३, ११
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं १, १८५, ३
अप त्ये तायवो यथा १, ५०, २
अप त्यं परिपन्थिनं १, ४२, ३
अप नः शोशुचदघम् १, ९७, १
अपश्यं गोपामनिपद्यमानम् १, १६४, ३१
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे १, ११२, २४
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोः १, ५५, ८
अप्स्वन्तरमृतं १, २३, १९
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने १,१४३,८
अप्सु मे सोमोऽब्रवीत् १, २३, २०
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो १, १६४, ३८
अपां नपातमवसे १, २२, ६
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र १, ३२, ७
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति १, १२३, ७
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां १,१५२,३
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमो १,५४,१०
अपो देवीरुप ह्वये १, १३, १८
अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य १,२४,७
अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो १,१५७,१
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची १,१२४,७
अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियं १,५१,१
अभि त्वा गोतमा गिरा १, ७८, १
अभि त्वा देव सवितः १, २४, ३
अभि त्वा पूर्वपीतये १, १९, ९
अभि द्विजन्मा त्रिवृदन् १, १४०, २
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि १, १४९, ४
अभि नो देवीरवसा १, २२, ११
अभिमवन्वन्स्वभिष्टि १, ५१, २
अभि यज्ञं गृणीहि नो १, १५, ३
अभिव्लग्या चिदद्रिवः १, १३३, २
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून् १, ३३, १३
अभि सूयवसं नय १, ४२, ८
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो १, ५२, ५
अभिष्टने ते अद्रिवो १, ८०, १४
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या १, १४०, १३
अभीमृतस्य दोहना १, १४४, २
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं १, ३५, ४
अभूदिदं वयुनमो षु भूषता १,१८२,१
अभूदु पारमेतवे १, ४६, ११
अभूदु भा उ अंशवे १, ४६, १०
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र १, १६५, ११
अमन्दान्त्स्तोमान् प्र भरे १,१२६,१
अम्बयो यन्त्यध्वभिः १, २३, १६
अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे १, १६९, ३
अमिनती दैव्यानि व्रतानि १,१२४,२
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चैः १, २४, १०
अमी ये देवाः स्थन १, १०५, ५
अमी ये पञ्चोक्षणो १, १०५, १०
अमी ये सप्त रश्मयः १, १०५, ९
अमूर्या उप सूर्ये १, २३, १७

अयमु ते समुतसि १, ३०, ४
अयं आयत मनुषो घरीमणि १,१२८,१
अयं देवानामपसामपस्तमो १,१६०,४
अयं देवाय जन्मने १, २०, १
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे १, ९४, १२
अयं मित्राय वरुणाय शंतमः १,१३६,४
अयं मे स्तोमो अग्रियो १, १६, ७
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध १, १७७, ४
अयं वां मधुमत्तमः १, ४७, १
अयं समह मा तनू १, १२०, ११
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता १, १६४, २९
अयं स होता यो द्विजन्मा १,१४९,५
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः १, ५०, ९
अयुयुत्सन्त इन्द्र विश्वकृष्टीः १,१६९,२
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनां १, ३३, ६
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे १,३२. ६
अराधि होता स्वर्निषत्तः १, ७०, ८
अरित्रं वा दिवस्पृथु १, ४६, ८
अरुणो मा सकृद् वृकः १, १०५, १८
अरं कृण्वन्तु वेदिं १, १७०, ४
अर्चा दिवे बृहते १, ५४, ३
अर्चा शक्राय शाकिने १, ५४, २
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो १, ७३, ९
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो १,१५७,३
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहु १,१०४,९
अर्वाचं दैव्यं जनं १, ४४, १०
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो १, ४७, ८
अव त्मना भरते केतवेदा १,१०४,३
अव ते हेळो वरुण नमोभिः १,२४,१४
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना १, १०६, ३
अवः परेण पर एनावरेण १,१६४,१७
अवः परेणं पितरं यो अस्या १, १६४, १८
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः १, १३३, ६
अवसृजन्नुप त्मना १, १४२, ११
अव सृजा वनस्पते १, १३, ११
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय १, ११६, २३
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा १,१६८,४
अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्त १, १८२, ६
अवा नो अग्न ऊतिभिः १, ७९, ७
अवासां मघवञ्जहि १, १३३, ३
अविन्दद् दिवो निहितं गुहा १,१३०,३
अवेयमश्वैद् युवतिः १, १२४, ११
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः १, ११४, ११
अवोचाम निवचनान्यस्मिन् १, १८९, ८
अवोचाम रहूगणा १. ७८, ५
अषाळ्हं युत्सु पृतनासु १, ९१, २१
अष्टा महो दिव आदो हरी इह १, १२१, ८
अष्टौ व्यख्यत् ककुभः १, ३५, ८
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया १, ११४, ३
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैः १,११७,४
अश्वं न त्वा वारवन्तं १, २७, १
अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति १, ८३, १
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा १, १२३, १२
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो १, ४८, २
अश्विना पिबतं मधु १, १५, ११
अश्विना पुरुदंससा १, ३, २
अश्विना मधुमत्तमं १, ४७, ३
अश्विना यज्वरीरिषो १, ३, १
अश्विना वर्तिरस्मदा १, ९२, १६
अश्विनोरसनं रथमनश्वं १,१२०,१०
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र १ ३२,१२
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां १,१०९,२
असमं क्षत्रमसमा मनीषा १, ५४, ८
असर्जि वां स्थविरा वेधसा १,१८१,७
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः १. १४१, १३
अस्ति हि ष्मा मदाय १, ३७, १५
अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दधे १, १३९, १
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे १, १२४, १३
अस्मा इदु ग्नाश्चित् १, ६१, ८
अस्मा इदु त्यदनु १, ६१, १५
अस्मा इदु त्यमुपमं १, ६१, ३
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षत् १, ६१, ६
अस्मा इदु प्र तवसे १, ६१, १
अस्मा इदु प्रय इव १, ६१, २
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो १, ६१, १२
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्ये १, ६१, ५
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि १,६१,४
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये १,१२९,४
अस्माकं शिप्रिणीनां १, ३०, ११
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिहि १, १४०, १०
अस्मादहं तविषादीषमाण १,१७१,४
अस्मान्त्सु तत्र चोदय १, ९, ६
अस्मे ऊ षु वृषणा १, १८४, २
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् १, ९, ८
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं १, १४१, ११
अस्मे वत्सं परिषन्तं १, ७२, २
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु १, १८४, ४
अस्मे सोम श्रियमधि १, ४३, ७
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर १, ५७, ३
अस्य त्वेषा अजरा १. १४३, ३
अस्य पीत्वा शतक्रतो १, ४, ८
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋताय १,१२१,४
अस्य वामस्य पलितस्य १, १६४.१
अस्य वीरस्य बर्हिषि १, ८६, ४
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो १, ८६, ५
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते १, ६०, २
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः १,१२२,८

अस्य यशो नक्षः कृष्ण बिभ्रति
१, १०२, २
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्याम्
१, १९०, ४
अस्या ऊ षु ण उप सातये १,१३८,४
अस्येदु त्वेषसा रन्त १, ६१, ११
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि १, ६१, १३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृह्ळा
१, ६१, १४
अस्येदुः मातुः सवनेषु सद्यः १,६१,७
अस्येदेव प्र रिरिचे १,६१, ९
अस्येदेव शवसा शुषन्तं १, ६१, १०
अक्षाम यथा सुषखाय एन १, १७३,९
अक्षाम्योजो बिभृथा सु दानवः
१, ३९, १०
असामि हि प्रयज्यवः १, ३९, ९
असावि सोम इन्द्र ते १, ८४, १
असि यमो अस्यादित्यो १,१६३,३
असि हि वीर सेन्यः १, ८१, २
असुन्वन्तं समं जहि १, १७६, ४
असूत पृश्निर्महते रणाय १,१६८,९
असृग्रमिन्द्र ते गिरः १, ९, ४
असौ यः पन्था आदित्यो १, १०५,१६
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसं १, ३२, ५
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं १, ३२, २
अहं सो अस्मि यः पुरा १,१०५,७
अहानि गृध्राः पर्या व १, ८८, ४
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र १, ३२, १४
आकीं सूर्यस्य रोचनात् १, १४, ९
आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो १,३५,२
आ ग्ना अग्न इहावसे १, २२, १०
आगधिता परिगधिता १, १२६, ६
आ घ त्वावान् त्मनाप्तः १,३०,१४
आ घा गमद्यदि श्रवत् १, ३०, ८
आ घा योषेव सूनर्युषा १, ४८, ५
आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां १,१७०,१
आ च वहासि तां इह १, ७४, ६
आजुह्वानो न ईड्यो १, १८८, ३
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः
१, १११, २
आ तत् ते दस्रमन्तुम १, ४२, ५
आत्मानं ते मनसाराद्जानाम्
१, १६३, ३
आ त्वा कण्वा अहूषत १, १४, २
आ त्वा जुवो रारहाणा अभि
१, १३४, १
आ त्वा वहन्तु हरयो १, १६, १
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः १, ४५, ८
आ त्वा विशन्त्वाशवः १, ५, ७
आ त्वेता नि षीदत १, ५, १
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते १,१७७,३
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं १, ८४, ३
आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो १, १८३, ३
आ तू न इन्द्र कौशिक १, १०, ११
आ ते धामानि हविषा यजन्ति
१, ९१, १९
आ ते सुपर्णा अमिनन्त १, ७९, २
आथर्वणायाश्विना दधीचे १,११७,२२
आदस्य ते ध्वसयन्तो १, १४०, ५
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वयो
१, ८३, ४
आदह स्वधामनु १, ६, ४
आदारो वां मतीनां १, ४६, ५
आदित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्
१, १३१, ५
आदित्ते विश्वे १, ६८, ३
आदिन्मातॄराविशद् यास्वा १,१४१,५
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु
१, १४१, ६
आदृध्नोति हविष्कृतिं १, १८, ८
आ दैव्यानि व्रता १, ७०, २
आ धेनवो मामतेयमवन्ती १,१५२,६
आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति
१, १८६, १
आ न ऊर्जं वहतमश्विना १,१५७,४
आ नस्ते गन्तु मत्सरो १, १७५, २
आ नं दिवो मातरिश्वा १, ९३, ६
आ नासत्या गच्छतं हूयते हविः
१, ३४, १०
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह
१, ३४, ११
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं
१, १३५, ३
आ नो अग्ने रयिं भर १, ७९, ८
आ नो अग्ने सुचेतुना १, ७९, ९
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेन
१, ३४, १२
आ नो नावा मतीनां १, ४६, ७
आ नो बर्हीं रिशादसो १, २६, ४
आ नो भज परमेष्वा १, २७, ५
आ नो भद्राः क्रतवो १, ८९, १
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः
१, १११, २
आ नोऽश्वोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा
१, १६७, २
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु
१, १८६, २
आ पप्रौ पार्थिवं रजो १, ८१, ५
आप्यायस्व मदिन्तम १, ९१, १७
आ प्यायस्व समेतु ते १, ९१, १६
आ पूषञ्चित्रबर्हिषम् १, २३, १३
आपो अद्यान्वचारिषं १, २३, २३
आपो न देवीरुपयन्ति १, ८३, २
आपः पृणीत भेषजं १, २३, २१
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीत्
१, १६१, ९
आ बन्दमाने उपाके १, १४२, ७
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू १,१०९,७
आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः
१, ११०, ६
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतना
१, ११०, २
आयजी वाजसातमा १, २८, ७
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् १,७१,८
आ यद् दुवः शतक्रत १, ३०, १५
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता १, ६३, २
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः
१, ५२, ४
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छ १, १२५,३
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदे १, १४९, ३
आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारुः
१, १६५, १४

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिः १, १९, ८
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत १, १६६, ४
आ यो विवाय सचथाय १, १५६, ५
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः १, ७२, ९
आर्चन्न त्र मरुतः सस्मिन्नाजौ १, ५२, १५
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं १, ११४, १०
आरे सा वः सुदानवो १, १७२, २
आ रोदसी बृहती वेविदानाः १, ७२, ४
आ व इन्द्रं क्रिविं यथा १, ३०, १
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिन् चाकन् १, ३३, १४
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु १,३३,१५
आवहन्ती पोष्या वार्याणि १, ११३, १५
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा १, १८०, ५
आ वां धियो ववृत्युरध्वरां १,१३५,५
आ वां भूषन् क्षितयो १, १५१, ३
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा १, १८१, २
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं १, १५२, ७
आ वामृताय केशिनीरनूषत १, १५१, ६
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य १,११६,१७
आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं १, ११९, १
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र १,११८,५
आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा १, ११८, १
आ वां रथो नियुत्वान् १, १३५, ४
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान् १, १८१, ३
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु १, ११८, ४
आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः १, ८८, १
आविष्टयो वर्धते चारुरासु १,९५,५
आ यो मक्षू तनाय कं १, ३९, ७
आवो यस्य द्विबर्हसो १, १७६, ५
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै १, १२२, ५
आ वो वहन्तु सप्तयो १, ८५, ६
आ श्येनस्य जवसा नूतनेना १, ११८, ११
आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं १, १०, ९
आश्विनावश्वावत्येषा १, ३०, १७
आस्थापयन्त युवतिं युवानः १, १६७, ६
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके १, ११६, १४
आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि १, ५१, १२
आ स्वमद्म युवमानो १, ५८, २
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणा १,१२४,९
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो १,५९,३
आ हि ष्मा सूनवे १, २६, ३
इच्छन्त रेतो मिथः १, ६८, ८
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः १, ८४, १४
इत्था हि सोम इन्मदे १, ८०, १
इतो वा सातिमीमहे १, ६, १०
इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि १, १४०, ११
इदमापः प्रवहत १, २३, २२
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतन १,१६१,८
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु १, १८५, ११
इदं नमो वृषभाय स्वराजे १,५१,१५
इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः १, ११४, ६
इदं विष्णुर्विचक्रमे १, २२, १७
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् १, ११३, १
इन्द्र इद्धर्योः सचा १, ७, २
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा १, २३, ८
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा १, १८२,२
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो १, ८०, ७
इन्द्र त्वोतास आ वयं १, ८, ३
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहत् १, ७, १
इन्द्रमिद्धरी वहतो १, ८४, २
इन्द्रमीशानमोजसा १, ११, ८
इन्द्र वाजेषु नोऽव १, ७, ४
इन्द्रवायू इमे सुता १, २, ४
इन्द्रवायू बृहस्पतिं १, १४, ३
इन्द्रवायू मनोजुवा १, २३, ३
इन्द्रः सहस्रदाव्नां १, १७, ५
इन्द्र सोमं पिब ऋतुना १, १५, १
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं १, ३२, १
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ १, ६२, ३
इन्द्राय नूनमर्चतो १, ८४, ५
इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नत १, १३१, १
इन्द्रा याहि चित्रभानो १, ३, ४
इन्द्रा याहि तूतुजान १, ३, ६
इन्द्रा याहि धियेषितो १, ३, ५
इन्द्रावरुण नू नु वां १, १७, ८
इन्द्रावरुण वामहं १, १७, ७
इन्द्रावरुणयोरहं १, १७, १
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो १, ९, १
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे १, ६, ७
इन्द्रो अश्राय सुध्यो निरेके १,५१,१४
इन्द्रो दधीचो अस्थभिः १, ८४, १३
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस १, ७, ३
इन्द्रो मदाय वावृधे १, ८१, १
इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं १, ८०, १०
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः १, ८०, ५
इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा १,३२,१५
इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना १,१६१,६
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं १, १०६, ६
इन्द्रं प्रातर्हवामहे १, १६, ३
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः १, १६४, ४६
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये १, १०६, १
इन्द्रं वयं महाधने १, ७, ५

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् १, ११, १
इन्द्रं वो विश्वतस्परि १, ७, १०
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं १,१३०,८
इम आ यातमिन्दवः १, १३७, २
इममिन्द्र सुतं पिब १, ८४, ४
इमम् षु स्यमस्माकं १, २७, ४
इमं नु सोममन्तितो १, १७९, ५
इमं मे वरुणश्रुधी १, २५, १९
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः १,१६४,३
इमं यज्ञमिदं वचो १, ९१, १०
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे १, ९४, १
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानि
१, १६३, ५
इमा धाना घृतस्नुवो १, १६, २
इमामग्ने शरणिं मीमृषो न १,३१,१६
इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने १,११४,१
इमां ते धियं प्र भरे महो महीं
१, १०२, १
इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो
१, १३०, ६
इमे चिन् तव मन्यवे १, ८०, ११
इमे त इन्द्र ते वयं १, ५७, ४
इमे ये ते सुवायो बाह्वोजसो
१, १३५, ९
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता १,१३५,६
इमे सोमास इन्दवः १, १६, ६
इयत्तकः कुषुम्भकः १, १९१, १५
इयत्तिका शकुन्तिका १, १९१, ११
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या
१, १६४, ३५
इयं सा वो अस्मे दीधितिः १,१८६,११
इह त्वष्टारमग्रियं १, १३, १०
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेद १,१६४,७
इहेन्द्राग्नी उपह्वये १, २१, १
इहेन्द्राणीमुपह्वये १, २२, १२
इहेव शृण्व एषां १, ३७, ३
इहेह जाता समवावशीताम्
१, १८१, ४
इळा सरस्वती मही १, १३, ९
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः
१, १६३, १०
ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन् १,११३,११
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो १,६४,५
ईळते त्वामवस्यवः १, १४, ५
ईळितो अग्न आ वह १, १४२, ४
ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये १,११२,१
उक्थमिन्द्राय शंस्यं १, १०, ५
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू १, ४७, १०
उक्षा महाँ अभि ववक्ष १, १४६, २
उग्रा सन्ता हवामहे १, २१, ४
उच्छिष्टं चम्वोर्भर १, २८, ९
उत त्यं चमसं नवं १, २०, ६
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै १,१२२,४
उत द्युमत्सुवीर्यं १, ७४, ९
उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा १,१८६,६
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः १,१८६,७
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः १,१८६,८
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो १,१४१,१२
उत नः सुभगाँ अरिः १, ४, ६
उत नो धियो गोअग्राः १, ९०, ५
उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः १, १८६,५
उत ब्रुवन्तु जन्तवः १, ७४, ३
उत ब्रुवन्तु नो निदो १, ४, ५
उत मन्ये पितुरद्रुहो १, १५९, २
उत यो मानुषेष्वा १, २५, १५
उत वा यः सहस्य १, १४७, ५
उत वा यस्य वाजिनो १, ८६, ३
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो १, १५३, ४
उत स्म ते वनस्पते १, २८, ६
उत स्या वां मधुमन् १, ११९, ९
उत स्यां वां रुशतो वप्ससो १,१८१,८
उतो नो अस्या उषसो जुषेत
१, १३१, ६
उतो स मह्यमिन्दुभिः १, २३, १५
उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते १, ४०, १
उत् ते वयश्चिद् वसतेर १,१२४,१२
उत् ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस
१, १०२, ७
उत् पुरस्तात् सूर्य एति १, १९१, ८
उदगादयमादित्यो १, ५०, १३
उदपप्तदसौ सूर्यः १, १९१, ९
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा १,९२,२
उदीरतां सूनृता उत् पुरन्धीः
१, १२३, ६
उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगात्
१, ११३, १६
उदुत्तमं मुमुग्धि नो १, २५, २१
उदु त्यं जातवेदसं १, ५०, १
उदु त्ये सूनवो गिरः १, ३७, १०
उदुत्तमं वरुणपाशमस्मत् १,२४,१५
उद्यन्नद्य मित्रमह १, ५०, ११
उद् यंयमीति सवितेव बाहू १,९५,७
उद्वयं तमसस्परि १, ५०, १०
उद्वन्दनमैरतं दंसनाभि १, ११८, ६
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति १, ४०, ८
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव
१, १२५, ४
उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरं
१, ११४, ९
उप त्मन्या वनस्पते १, १८८, १०
उप त्वाग्ने दिवे दिवे १, १, ७
उप नः पितवा चर १, १८७, ३
उप नः सवना गहि १, ४, २
उप नः सुतमा गहि १, १६, ४
उप नो देवा अवसा गमन् १,१०७,२
उप प्र जिन्वन्नुशती १, ७१, १
उप प्रयन्तो अध्वरं १, ७४, १
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा
१, १६३, १२
उप प्रागात् परमं यत् सधस्थं
१, १६३, १३
उप प्रगात् सुमन्मेऽधायि १, १६२, ७
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता
१, १२६, ३
उप व एषे नमसा जिगीषो १,१८६,४
उपस्तिच्चित्रमा भयस्मभ्यं १,९२,१३
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च १, १९०, ३

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन् १, १५८, ४
उपप्रयन्‍तो चरति यत् १, १४५, ४
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां १,१६४,२६
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं १, ८७, २
उपेदहं धनदामप्रतीतं १, ३३, २
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो १, १२४, ४
उपोप मे परा मृश १, १२६, ७
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं १, ३९, ६
उपो षु शृणुही गिरः १, ८२, १
उभा देवा दिविस्पृशा १, २३, २
उभा पिबतमश्विना १, ४६, १५
उभा शंसा नर्या मामविष्टाम् १, १८५, ९
उभे पुनामि रोदसी ऋतेन १,१३३,१
उभे भद्रे जोषयेते न मेते १, ९५,६
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं १, ९५, ९
उरु व्यचसा महिनी असश्चता १, १६०, २
उरुष्या णो अभिशस्ते १, ९१, १५
उरुं हि राजा वरुणश्चकार १,२४,८
उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन १,१८५,६
उवासोषा उच्छाच्च नु १, ४८, ३
उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु १,६०,४
उष आ भाहि भानुना १, ४८, ९
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं १, ९२, ८
उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना १, १२४, १
उषो अद्येह गोमत्य १, ९२, १४
उषो न जारो १, ६९, ९
उषो भद्रेभिरागहि १, ४९, १
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ १,११३,९
उषो यदद्य भानुना १, ४८, १५
उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते १,४८,४
उषो वाजं हि वंस्व १, ४८, ११
ऊती देवानां वयमिन्द्र व न्तो १, १३६, ७
ऊर्ध्व ऊ षु ण १, ३६, १३
ऊर्ध्वस्तिष्ठान ऊतये १, ३०, ६
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयाम १,११९,२
ऊर्ध्वो न पाह्यंसो १, ३६, १४
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त १, ८५, १०
ऊर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते १,१८५,७
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् १,१६४,३९
ऋजुनीती नो वरुणो १, ९०, १
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुः १, ६५, ३
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य १, ६८, ५
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना १, १२३, १३
ऋतस्य हि धेनवो वावशाना: १, ७३, ६
ऋतेन मित्रावरुणा १, २, ८
ऋतेन यावृतावृधा १, २३, ५
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या १, १८५, १०
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुवं ऊतय १,१११,४
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीया १,११०,७
ऋभुर्भराय सं शिशातु साति १, १११, ५
ऋषिनं स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो १,६६,४
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यम् १, ११७, ३
एकं चमसं चतुरः कृणोतन १,१६१,२
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता १, १६२, १९
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो १, १६५, १०
एकस्या वस्तोरावतं रणाय १, ११६, २१
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् १, १९१, ५
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां १, १५२, २
एतत् त्यत् त इन्द्र वृष्ण उक्थं १, १००, १७
एतत् त्यन्न योजनं १, ८८, ५
एता उ त्या उषसः केतुमक्रत १,९२,१
एता चिकित्वो भूमा १, ७०, ६
एता ते अग्ने उचथानि वेधो १,७३,१०
एतानि वामश्विना वीर्याणि १, ११७, २५
एतानि वां श्रवस्या सुदानू १, ११७, १०
एतायामोप गव्यन्त इन्द्र १, ३३, १
एति प्र होता व्रतमस्य १, १४४, १
एते त इन्द्र जन्तवो १, ८१, ९
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व १,३१,१८
एतं शर्धं धाम यस्य सूरे १,१२२,१२
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तो १, १०५, १९
एन्द्र याह्युप नः परावतो १,१३०,१
एन्द्र सानसिं रयिं १, ८, १
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभि: १, ५३, ४
एमाशुमाशवे भर १, ४, ७
एमेनं सृजता सुते १, ९, २
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो १, ९५, ११
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या १,१७८,४
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो १, ९६, ९
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् १, १९०, ८
एवा हि ते विभूतय १, ८, ९
एवा हि ते श सवना समुद्र १,१७३,८
एवा ह्यस्य काम्या १, ८, १०
एवा ह्यस्य सूनृता १, ८, ८
एवेदेते प्रति मा रोचमाना १,१६५,१२
एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं १,१२४,६
एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं १,१२८,३
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य १, १०८, १३
एष च्छागः पुरो अश्वेन १, १६२, ३
एष प्र पूर्वी रव तस्य चम्रिषो १,५६,१
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीः १, १६५, १५
एष वः स्तोमो मरुत इयं १,१६६,१५
एष वः स्तोमो मरुत इयं १,१६७,११
एष वः स्तोमो मरुत इयं १,१६८,१०
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान् १, १७१, २
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे १,१७३,१३

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि १, १८४, ५
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योति-
र्वसाना १, १२४, ३
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि
व्युच्छन्ती युवतिः १,११३,७
एषायुक्त परावतः १, ४८, ७
एषा स्या वो १, ८८, ६
एषो उषा अपूर्व्या १, ४६, १
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा १, ७७, ५
एवा ते हरियोजना १, ६१, १६
एह देवा मयोभुवा १, ९२, १८
एहि स्तोमाँ अभि स्वरा १, १०, ४
एह्यग्न इह होता १, ७६, २
ऐभिरग्ने दुवो गिरो १, १४, १
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये १, १०४, २
ओमासश्चर्षणीधृतो १, ३, ७
ओ षू णो अग्ने शृणुहि १, १३९,७
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वा १,१७७,५
क इमं वो निण्यमा चिकेत १,९५,४
क ईषते तुज्यते को बिभाय १,८४,१७
कङ्कतो न कङ्कतो १, १९१, १
कतरा पूर्वा कतरापरायोः १,१८५,१
कथा ते अग्ने शुचयन्त १, १४७, १
कथा दाशेमाग्नये १, ७७, १
कथा राधाम सखायः १, ४१, ७
कदा क्षत्रश्रियं नरं १, २५, ५
कदा मर्तमराधसं १, ८४, ८
कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां १,१२१,१
कदु प्रेष्ठाविषां रयीणाम् १,१८१,१
कद्धनूनं कधप्रियः १, ३८, १
कद्रुद्राय प्रचेतसे १, ४३, १
कद् व ऋतस्य धर्णसि १, १०५, ६
कन्येव तन्वा शाशदानाँ १,१२३,१०
कया शुभा सवयसः १, १६५, १
करम्भ ओषधे भव १, १८७, १०
कविमग्निमुपस्तुहि १, १२, ७
कवी नो मित्रावरुणा १, २, ९
कस्त उषः कधप्रिये १, ३०, २०
कस्ते जामिर्जनानां १, ७५, ३
कस्य नूनं कतमस्यामृतानां १,२४,१
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः १, १६५, २
कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये १, १८२, ७
का त उपेतिर्मनसो १, ७६, १
का राधद्धोत्राश्विना वां १,१२०,१
किं न इन्द्र जिघांससि १, १७०, २
किं नो भ्रातरगस्त्य १, १७०, ३
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे १, १८२, ३
किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन् १, १६१, १
कियात्या यत् समया भवाति १, ११३, १०
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन् १,१६५,३
कुविन्नो अग्निरुचथस्य १, १४३, ६
कुषुम्भकस्तदब्रवीद् १, १९१, १६
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य १, ११७, १२
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य १,१४०,३
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा १, १६४, ४७
केतुं कृण्वन्नकेतवे १, ६, ३
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन १,८४,१८
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा १, ८४, १६
को ददर्श प्रथमं जायमानम् १,१६४,४
को देवयन्तमश्नवत् १, ४०, ७
को न्वत्र मरुतो मामहे वः १,१६५,१३
को वां दाशत् सुमतये १, १५८, २
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो १, १६८, ५
को वो वर्षिष्ठ आ नरो १, ३७, ६
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं १, ८१, ४
क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चते १, १२८, ५
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः १, ५८, ३
क्रीळं वः शर्धो मारुतं १, ३७, १
क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य १,३४,९
क्व नूनं कद् वो अर्थं १, ३८, २
क्व वः सुम्ना नव्यांसि १, ३८, ३
क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद् १, १६५, ६
क्व स्विदस्य रजसो महस्परं १, १६८, ६
क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया १, ११३, ६
क्षपो राजन्नुत त्मना १, ७९, ६
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनं १,११०,५
क्षेमो न साधुः १, ६७, २
गन्तारा हि स्थोऽवसे १, १७, २
गर्भो यो अपां १, ७०, ३
गवस्फानो अमीवहा १, ९१, १२
गाथपतिं मेधपतिं १, ४३, ४
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कम् १, १६४, २४
गायन्ति त्वा गायत्रिणो १, १०, १
गायत् साम नभन्यं यथा वे १,१७३,१
गार्हपत्येन सन्त्य १, १५, १२
गूहता गुह्यं तमो १, ८६, १०
गृणानो अंगिरोभिः दस्म १, ६२, ५
गृहंगृहमहना यात्यच्छा १, १२३, ४
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः १, १०२, ६
गो मातरो यच्छुभयन्ते १, ८५, ३
गोषु प्रशस्तिं वनेषु १, ७०, ९
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं १,१६४,२८
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत् १, १६४, ४१
घनेव विष्वग्वि जहि १, ३६, १६
घृतपृष्ठा मनोयुजः १, १४, ६
घृतप्रतीकं व ऋतस्य १, १४३, ७
घृतवन्तमुप मासि १, १४२, २
घृताहवन दीदिवः १, १२, ५
घृताहवन सन्त्येमा १, ४५, ५
घृषुं पावकं वनिनं १, ६४, १२
घ्नन्तो वृत्रमतरन् १, ३६, ८
चक्रवांस ऋभवस्तदपृच्छत् १, १६१, ४
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या १,३३,८

चक्राथे हि सध्न्यङ्नाम भद्रं १,१०८,३
चक्रश्चित् ददमानाह १, ४१, ९
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः १, १५५, ६
चतुस्त्रिंशद् वाजिनो १, १६२, १८
चत्वारि वाक् परिमिता पदानि १, १६४, ४५
चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः १, १२६, ४
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वः १, १२२, १५
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा १, १०५, १
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्ण १, ११६, १५
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं १,६४,१४
चित्तिरपां दमे १, ६७, १०
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे १, ६४, ४
चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु १, ६६, ६
चित्रो वोऽस्तु याम १, १७२, १
चित्रं देवानामुदगादनीकं १, ११५, १
चोदयित्री सूनृतानां १, ३, ११
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् १, १६४, २५
जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरून् १, १७४, ६
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रत १,५२,८
जनासो अग्निं दधिरे १, ३६, २
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रु १, १२२, ९
जने न शेवः १, ६९, ४
जम्भयन्नभितो रायतः शुनो १, १८२, ४
जयतामिव तन्यतुः १, २३, ११
जराबोध तद् विविड्ढि १, २७, १०
जातवेदसे सुनवाम सोम १, ९९, १
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम १, १२३, ९
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रा १, ६५, ७
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया १, ८५, ११
जिह्मश्ये चरितवे मघोन्या १,११३,५
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं १,११६,१०
जुषस्व सप्रथस्तमं १, ७५, १
जुष्टो हि दूतो असि १, ४४, २
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः १,१७८,३
जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै १,१६७,५
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत् १, १३६, ३
त आदित्या आ गता सर्वतातये १, १०६, २
त उक्षितासो महिमान १, ८५, २
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति १,६६,२
तक्षत् यत् उशना सहसा सहो १, ५१, १०
तक्षन् नासत्याभ्यां १, २०, ३
तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस १, १११, १
ततं मे अपस्तदु तायते पुनः १, ११०, १
तत् त इन्द्रियं परमं पराचै १,१०३,१
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसी १, १५५, ४
तत्तदिदश्विनोरवो १, ४६, १२
तत् ते दंसो १, ६९, ८
तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते १, १३२, ३
तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे १, ९४, १४
तत् राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं १, १५९, ५
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः १, २४, ११
तत् सविता वोऽमृतत्वमासुव १, ११०, ३
तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं १, ११५, ४
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां १, १५४, ५
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं १,१०३,५
तदित् समानमाशाते १, २५, ६
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ १, १०३, ७
तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुः १,२४,१२
तदु प्रयक्षतममस्य कर्म १, ६२, ६
तदूचुषे मानुषेमा युगानि १,१०३,४
तद्विप्रासो विपन्यवः १, २२, २१
तद्विष्णोः परमं पदं १, २२, २०
तद् वो जामित्वं मरुतः परे युगे १, १६६, १३
तद् वः सुजाता मरुतो महित्वनं १, १६६, १२
तद् वां नरा नासत्यावनु १, १८२, ८
तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण १,११७,६
तद् वां नरा शंस्यं राध्यं १,११६,११
तद् वां नरा सनये दंस उग्रम १, ११६, १२
तथा तदस्तु सोमपाः १, ३०, १२
तनूनपादृतं यते १, १८८, २
तन्न इन्द्रस्तद् वरुणस्तदग्निः १, १०७, ३
तन्नस्तुरीपमद्भुतं १, १४२, १०
तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने १, १६६, १
तन्नो वातो मयोभु १, ८९, ४
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे १, ११५, ५
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो १, ५८, ५
तमग्रुवः केशिनीः सं हि १, १४०, ८
तमप्सन्त शवस उत्सवेषु १, १००, ८
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि १, १२७, १
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना १, १५६, ४
तमिद् गच्छन्ति जुह्वः १, १४५, ३
तमित् पृच्छन्ति न सिमो १,१४५,२
तमिद् वोचेमा विदथेषु १, ४०, ६
तमित् सखित्व ईमहे १, १०, ६
तमित् सुहव्यमङ्गिरः १, ७४, ५
तमीशानं जगतः १, ८९, ५
तमीं हिन्वन्ति धीतयो १, १४४, ५
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं १, ९६, ३

तमु त्वा गोतमो गिरा १, ७८, २
तमु त्वा वाजसातम १, ७८, ३
तमु त्वा वृत्रहन्तमं १, ७८, ४
तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा १,१७३,५
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद
१, १५६, ३
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ १,१००,७
तयोरित् घृतवत्पयो १, २२, १४
तयोरिद्वसा वयं १, १७, ६
तरणिर्विश्वदर्शतो १, ५०, ४
तव त्ये पितो ददत १, १८७, ५
तव त्ये पितो रसा १, १८७, ४
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन् १,१६३,११
तवाहं शूरराातिभिः १, ११, ६
ता वां रथं वयमद्या हुवेम १,१८०,१०
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः १,५६,२
तं घेमित्था नमस्विन १, ३६, ७
तं त्वा नरो दम आ १, ७३, ४
तं त्वा वयं पतिमग्ने १, ६०, ५
तं त्वा वयं पितो वचोभिः
१, १८७, ११
तं त्वा वाजेषु वाजिनं १, ४, ९
तं त्वा वय विश्ववारा १, ३०, १०
तं नव्यसी हृद आ जायमान १,६०,३
तं पृच्छता स जगामा १, १४५, १
तं यज्ञसाधमपि वातयाम १,१२८,२
तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान्
१, १८३, १
तं वश्चराथा वयं वसत्या १, ६६, २
तं स्मा रथं मघवन् प्राव १,१०२,३
तस्मिन्ना वेशया गिरो १, १७६, २
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत् स्वर्षा
१, १००, १३
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति
१, १६४, ४२
ता अस्य पृशनायुवः १, ८४, ११
ता अस्य मनसा सह १, ८४, १२
तां उशतो वि बोधय १, १२, ४
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं १,१५५,३
ता कर्माषतरास्मै १, १७३, ४
तान् पूर्वया निविदा १, ८९, ३
तान् यजत्रां ऋतावृधो १, १४, ७
ता नो अद्य वनस्पती १, २८, ८
ता महान्ता सदस्पती १, २१, ५
ता मित्रस्य प्रशस्तय १, २१, ३
ता यज्ञेषु प्रशंसते १, २१, २
तां वां धेनुं न वासरीम् १, १३७, ३
ता वामद्य तावपरं हुवेमो १,१८४,१
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
१, १५४, ६
ता विद्वांसा हवामहे वां १, १२०, ३
ता वां नरा स्ववसे सुजाता
१, ११८, १०
ता सुजिह्वा उप ह्वये १, १३, ८
तीव्राः सोमास आ गहि १, २३, १
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिः
१, ११६, ४
तिस्रो द्यावा सवितुः १, ३५, ६
तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् १,१६४,१०
तिस्रो यदग्ने शरदः १, ७२, ३
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे १, ७, ७
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघ १,११६,३
तुभ्यदेतं बहुला अद्रिदुग्धाः १,५४,९
तुभ्यमुषासः शुचयः परावति
१, १३४, ४
तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां
१, १२१, ५
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो
१, १३४, ५
तुभ्यायं सोमः परिपूतो १, १३५, २
तुणस्कन्दस्य नु विशः १, १७२, ३
ते अस्मभ्यं शर्म १, ९०, ३
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास १, ६४, २
ते त्वा मदा अमदन् १, ५३, ६
तेन नासत्या गतं १, ४७, ९
तेन सत्येन जागृतं १, २१, ६
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः
१, १६०, ५
ते नो रत्नानि धत्तन १, २०, ७
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो
१, १५९, ४
तेऽरुणेभिर्वरमा १, ८८, २
तेऽवर्धन्त स्वतवसो १, ८५, ७
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो १, १५९, ३
ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव
१, १६०, १
ते हि वस्वो वसवान १, ९०, २
त्मना वहन्तो दुरो १, ६९, १०
त्ये विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता
१, ५१, ७
त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं १, ३७, ११
त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं १, ५२, १
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते
१, १६४, ४४
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे १,३४,२
त्रितः कूपेऽवहितो १, १०५, १७
त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषे
१, १४६, १
त्रिरश्विना सिन्धुभिः १, ३४, ८
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा
१, ३४, ६
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवे दिवे
१, ३४, ७
त्रिर्नो रयिं वहमश्विना युवं १,३४,५
त्रिर्वर्तियातं त्रिरनुव्रते जने १,३४,४
त्रिवधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा १,४७,४
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन १,११८,२
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा १,४७,२
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजस
१, १०२, ८
त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा
१, ३४, १
त्रिः सप्त मयूर्यः १, १९१, १४
त्रिः सप्त यद् गुह्यानि १, ७२, ६
त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका १,१९१,१२
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य १,९५,३
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि
१, १६३, ४
त्रीणि पदा वि चक्रमे १, २२, १८
त्वमंग प्र शंसिषो १, ८४, १९
त्वमग्न उरुशंसाय वाघते १,३१,१४

त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषि: १,३१,१
त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तम: १, ३१, २
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन १,३१,३
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि न: १, ३१, १०
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नर १, ३१,१५
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशय: १, ३१,४
त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरा १,३१,१३
त्वमग्ने वसूँरिह १, ४५, १
त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नर १, ३१,६
त्वमग्ने वृषभ पुष्टिवर्धन: १,३१,५
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते १, १४१, १०
त्वमग्ने सहसा सहन्तम: १,१२७,९
त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्य: १,९४,६
त्वमपामपिधानावृणो: १, ५१, ४
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या १, १७४, १०
त्वमस्य पारे रजसो व्योमन: १, ५२, १२
त्वमायसं प्रति वर्तयो गो १,१२१,९
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं १,५४,६
त्वमाविथ सुश्रवसं १, ५३, १०
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन् १, १२१, १२
त्वमिमा ओषधी: सोम १, ९१, २२
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां १, १७०,५
त्वमृत्विया उप वाय: सचन्ते १, १९०, २
त्वमेतांजनराज्ञो १, ५३, ९
त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च १, ३३, ७
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रून् १, १७८, ५
त्वया वयं मघवन् पूर्व्ये धन १,१३२,१
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो १,१४१,९
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृत हिरण्ययं १, ८५, ९
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभु: १, १८८, ९
त्वां चित्रश्रवस्तम १, ४५, ६
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे १, १०२, ९
त्वामग्ने प्रथममायुमायवे १, ३१, ११
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र १, ४०, २
त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष १, १०१, ९
त्वां स्तोमा अवीवृधन् १, ५, ८
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ १, ६३, ६
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा १,७३,७
त्वे इदग्ने सुभगे १, ३६, ६
त्वे पितो महानां १, १८७, ६
त्वे राय इन्द्र तोशतमा: १,१६९,५
त्वेयमित्था समरणं शिमीवतो १, १५५, २
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत् १,९५,८
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं १, ११४,४
त्वेषासो अग्ने रमवन्तो १, ३६, २०
त्वोतो वाज्यह्रयो १, ७४, ५
त्वं करंजमुत पर्णयं वधी: १, ५३, ८
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येषु आविथ १,५१,६
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्यो १, ५१, ३
त्वं च सोम नो वशो १, ९१, ६
त्वं जामिर्जनानां १, ७५, ४
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथा १, १०२, १०
त्वं त ब्रह्मणस्पते १, १८, ५
त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे १, ३१, ७
त्वं तमिन्द्र पर्वतं १, १३०, ६
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे १,५७,३
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयु १, १३१, ७
त्वं तस्य द्वयाविनो १, ४२, ४
त्वं ताँ अग्न उभयान् वि १,१८९,७
त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा १,१६९,४
त्वं त्यान इन्द्र देव १, ६३, ८
त्वं त्येभिरा गहि १, ३०, २२
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा १, ५६, ६
त्वं दिवो बृहत: सानु कोपयो १,५४,४
त्वं द्युनिरिन्द्र द्युनिमती: १, १७४, ९
त्वं न इन्द्र राया तरूषयो १,१२९,१०
त्वं न इन्द्र राया परीणसा १,१२९,९
त्वं न: सोम विश्वतो १, ९१, ८
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभि: १, ३१, १२
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ १,३१,९
त्वं नो अग्ने सनये धनानां १,३१,८
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणाया: १, १२१, १४
त्वं नो वाय्वेषामपूर्व्य: १, १३४, ६
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् १,१७१,६
त्वं भुव: प्रतिमान पृथिव्या: १, ५२, १३
त्वं मही इन्द्र यो ह १, ६३, १
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या १, १६९ ८
त्वं मायाभिरनवद्य मायिनोऽश्रम: १,५१,५
त्वं राजेन्द्र ये च देवा १, १७४, १
त्वं वरुण उत मित्रो १, ११, ५
त्वं विश्वस्य मेधिर: १, २५, २०
त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवे १, १३०, ५
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् १, ६३, ३
त्वं सुतस्य पीतये १, ५, ६
त्वं शूर हरितो रामयो नॄन् १, १२१, १३
त्वं सोम क्रतुभि: सुक्रतुर्भू: १, ९१, २
त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा १,९१,१
त्वं सोम महे भगं १, ९१. ७
त्वं सोमासि सत्पति १, ९१, ५
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदी: १, ६३, ४
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् १,६३,७
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् १, ६३, ५
त्वं हि विश्वतोमुख १, ९७, ६
त्वं हि शूर: सनिता १, १७५, ३
त्वं होता मनुर्हितो १, १४, ११
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य १, १४४, ६
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा १, १२५, ६
ददानमिन्न ददभन्त मन्मा १,१४८,२
दधन्नृतं धनयन्नस्य १, ७१, ३
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा १,५८,६
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो १, १३९, ९

दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः १,१७४,२
दर्शं नु विश्वदर्शतं १, २५, १८
दश रात्रीरशिवेना न द्यू १,११६,२४
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भम् १,९५,२
दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि
१, १२९, ३
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैः
१, १००, १८
दस्रा युवाकवः सुता १, ३, ३
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः
१, १३०, ४
दाधार क्षेममोको न रण्वो १,६६,३
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु १,५५,७
दासपत्नी रहिगोपा अतिष्ठन्
१, ३२, ११
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं १, १६४, ४८
द्वादशारं नहि तज्जराय १,१६४,११
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया १,१६४,२०
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु १, १४६, ५
दिविश्चित् ते बृहतो जातवेद १,५९,५
दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ १,५५,१
दिवस्कण्वास इन्दवो १, ४६, ९
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति १, ३८, ९
दिवा यान्ति मरुतो भूम्या १,१६१,१४
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः
१, १००, ३
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं १,११४,५
दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तम्
१, १६४, ५२
द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो
१, १२७, ७
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे १,६२,७
द्विषो नो विश्वतो मुखा १, ९७, ७
दीर्घतमा मामतेयो १, १५८, ६
दूरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि
१, ५३, २
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो १, ६६, ५
दुहीयन् मित्रधितये युवाकु १,१२०,९
दृहळा चिदस्मा अनु दुर्यथा १,१२७,४
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मा
१, ११२, २५
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र
१, १६४, ३३
द्यौः पिता पृथिवी माता १,१९१,६
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः १, ५२, १०
द्रविणोदा ददातु नो १, १५, ८
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य १, ९६, ८
द्रविणोदा द्रविणसो १, १५, ७
द्रविणोदाः पिपीषति १, १५, ९
देवयन्तो यथामतिं १, ६, ६
देवान् वा यच्चकृमा कच्चिदागः
१, १८५, ८
देवानां भद्रा सुमतिः १, ८९, २
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो १, ३६, ४
देवी यदि तविषी १, ५६, ४
देवेन नो मनसा देव १, ९१, २३
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु १, १०६, ७
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो
१, ९४, १३
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया १,७३,३
देवो न यः सविता १, ७३, २
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशो १, १५५, ५
द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे १, ९५, १
धन्वन्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं
१, ९५, १०
धीरासः पदं कवयो १, १४६, ४
नकिरस्य सहन्त्य १, २७, ८
नकिष्ट एना व्रता १, ६९, ७
नकिष्ट्वद् रथीतरो १, ८४, ६
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने १, ९६, ५
नक्तोषासा सुपेशसा १, १३, ७
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् १, १२१, ३
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्
१, १७३, ३
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो १,१७८,२
नदं न भिन्नममुया शयानं १, ३२, ८
नदस्य मा रुधतः काम १, १७९, ४
न ननमस्ति नो श्वः १, १७०, १
न पूषणं मेथामसि १, ४२, १०
न मा गरन् नद्यो मातृतमा १,१५८,५
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति १, १७९,३
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां १,१३६,६
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो
१, २७, १३
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो १, २५, १४
न यं रिपवो न रिषण्यवो १,१४८,५
न यस्य देवा देवता न मर्ता
१, १००, १५
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो
१, ५२, १४
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः
१, ३३, १०
न योरुपब्दिरश्व्यः १, ७४, ७
न यो वराय मरुतामिव १,१४३,५
नराशंसं सुधृष्टमं १, १८, ९
नराशंसमिह प्रियं १, १३, ३
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह १,१०६,४
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि
१, १६२, २१
नवानां नवतीनां १, १९१, १३
न वि जानामि यदिवेदमस्मि
१, १६४, ३७
न वेपसा न तन्यते १, ८०, १२
नव्यं तदुक्थ्यं हितं १, १०५, १२
नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं १,२४,६
नहि त्वा रोदसी उभे १, १०, ८
नहि देवो न मर्त्यो १, १९, २
नहि नु यादधीमसि १, ८०, १५
नहि वः शत्रुर्विविदे १, ३९, ४
नहि वामस्ति दूरके १, २२, ४
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे १,१६७,९
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति १,१२५,५
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे
१, १०२, ५
नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे
१, ११६, १
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध १,३२,१३
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं १,१६२,१४
नि काव्या वेधसः शश्वतः १, ७२, १
नि गावो गोष्ठे असदन् १, १९१, ४
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप
१, १६६, २

निरये चिन्तु यं सदने १, १४८, ३
नि ध्वासन्ने मनुर्दधे १, ३६,१९
नि त्वा यज्ञस्य साधनं १, ४४, ११
नि त्वा होतारमृत्विजं १, ४५, ७
नि नो होता वरेण्यः १, २६, २
नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य १, ५४, ५
नि यद् युवेथे नियुतः १, १८०, ६
निरिन्द्र भूम्या अधि १, ८०, ४
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस १, १४१, ३
नि वेन मुष्टिहत्यया १, ८, २
नि वो यामाय मानुषो १, ३७, ७
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत १, ११०, ८
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः १, १६१, ७
नि षसाद धृतव्रतो १, २५, १०
नि षू नमातिमतिं कयस्य १,१२९,५
निष्वापया मिथूदृशा १, २९, ३
नि सर्वसेन इषुधींरसक्त १, ३३, ३
नीचावया अभवत् वृत्रपुत्रेन्द्रो १, ३२, ९
नू इत्था ते पूर्वथा च १, १३२, ४
नू च पुरा च सदनं रयीणां १,९६,७
नू चित् सहोजा अमृतो १, ५८, १
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तं १,६४,१५
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि १, ३०, १९
न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा १, ३३, १२
न्यूषु वाचं प्र महे भरामहे १, ५३, १
पञ्चपादं पितरं द्वादशा १,१६४,१२
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने १,१६४,१३
पताति कुण्डृणाच्या १, २९, ६
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने १, ४४, ९
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या १,१२२,२
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्र १,३३,५
परा मे यन्ति धीतयो १, २५, १६
परायती नामन्वेति पाथ १, ११३, ८
परावतं नासत्यानुदेथाम् १, ११६, ९
परा शुभ्रा अयासो यव्या १, १६७,४
परा ह यत् स्थिरं हथ १, ३९, ३
परा हि मे विमन्यवः १, २५, ४
परि त्वा गिर्वणो गिर १, १०, १२
परि प्रजातः क्रत्वा १, ६९, २
परि यदिन्द्र रोदसी उभे १, ३३, ९
परि यदेषामेको विश्वेषां १, ६८, २
परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं १, ११६, २०
परीं घृणा चरति तित्विषे शवो १, ५२, ६
परेहि विग्रमस्तृत १, ४, ४
पशुर्न चित्रा सुभगा प्रथाना १,९२,१२
पश्वा न तायुं १, ६५, १
पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् १, १६४, ५
पान्ति मित्रावरुणाववद्यात् १, १६७, ८
पावका नः सरस्वती १, ३, १०
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधो १,१२९,११
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैः १, १८९, ४
पाहि नो अग्ने रक्षसः १, ३६, १५
पितुं नु स्तोषं १, १८७, १
पितुर्न पुत्राः क्रतुं १, ६८, ९
पितुः प्रत्नस्य जन्मना १, ८७, ५
पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः १, ६४, ६
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः १, १३०, २
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं १, १३३, ५
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय १, १५३, ३
पुत्रो न जातो रण्वो १, ६९, ५
पुनःपुनर्जायमाना पुराणी १, ९२, १०
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्ता १,१०९,८
पुरां भिन्दुर्युवा कविः १, ११, ४
पुरा यत् सूरस्तमसो अपीते १, १२१, १०
पुरु त्वा दाश्वान् वोचे १, १५०, १
पुरूतमं पुरूणामीशानं १, ५, २
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना १,११७,९
पुरूणि दस्मो नि रिणाति १,१४८,४
पुरोगा अग्निर्देवानां १, १८८, ११
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी १,६५,५
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे १, १२६, ५
पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि १, १२३, २
पूर्वीभिर्हि ददाशिम १, ८६, ६
पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा १,१७९,१
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो १, ११, ३
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य १, १२४, ५
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथो १,९४,८
पूर्व्यं होतरस्य नो १, २६,५
पूषण्वते मरुत्वते १, १४२, १२
पूषा राजानमाघृणिः १, २३, १४
पृक्षो वपुः पितुमान् नित्य आ १, १४१, २
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः १, १६४, ३४
पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं १, १२३, १
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः १,८९,७
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां १, ९८, २
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु १, १०९,६
प्रजावता वचसा वह्निरासा १,७६,४
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां १, १६७, ७
प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण १,१५४,२
प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे १,१२९,६
प्र तव्यसीं नव्यसीं १, १४३, १
प्रति घोराणामेतानामयासां १,१६९,७
प्रति त्यं चारुमध्वरं १, १९, १
प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो १, १६९, ६
प्रति यत् स्या नीथादर्शि १, १०४, ५
प्रति व एना नमसाहमेमि १,१७१,१
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः १, १६८, ८
प्रत्यङ् देवानां विशः १, ५०, ५
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि १, ९२, ५
प्रत्वक्षसः प्रतवसो १, ८७, १
प्र त्वा दूतं वृणीमहे १, ३६, ३

प्रथमा हि सुवाचसा १, १८८, ७
प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी १, १५९, १
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे १,१८६,९
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः १, ४०, ५
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं १,५९,६
प्र नू स मर्तः शवसा १, ६४, १३
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे १, ७९, १०
प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते
१, १३८, १
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती
१, १२९, ८
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन् १,१२४,१०
प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो १,१०१,१
प्र मन्महे शवसानाय शूषं १, ६२, १
प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये १,५७,१
प्र यदग्नेः सहस्वतो १, ९७, ५
प्र यदित्था परावतः १, ३९, १
प्र यदित्था महिना नृभ्यो १,१७३,६
प्र यत् ते अग्ने सूरयो १, ९७, ४
प्र यत् पितुः परमान् १, १४१, ४
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां १, ९७, ३
प्र यद् रथेषु पृषतीः १, ८५, ५
प्र यद् वहेथे महिना रथस्य १,१८०,९
प्रयन्तमित् परिजारं १, १५२, ४
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे १,१२०,५
प्र यात शीभमाशुभिः १, ३७, १४
प्र ये शुम्भन्ते जनयो १, ८५, १
प्रवद्यामना सुवृता रथेन १, ११८, ३
प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो १,१२२,१
प्र वः पान्तमन्धसो धियायते १,१५५,१
प्र वः शर्धाय घृष्वये १, ३७, ४
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचम्
१, ११६, २५
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ १,१८१,५
प्र वामश्नोति सुष्टुतिः १, १७, ९
प्र वां शरद्वान् वृषभो न १,१८१,६
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म १, १५४, ३
प्र वेपयन्ति पर्वतान् १, ३९, ५
प्र वो क्रियन्त इन्दवो १, १४, ४
प्र वो महे नमो १, ६२, २
प्र वो महे सहसा सहस्वत
१, १२७, १०
प्र वो यह्वं पुरूणां १, ३६, १
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं १, ३७, ५
प्र सा क्षितिरसुर या महि १,१५१,४
प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां १, १३६, १
प्र सु विश्वान् रक्षसो १, ७६, ३
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसो
१, १६६, ७
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिः १,१५३,२
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि
१, १३८, २
प्राचीनं बर्हिरोजसा १, १८८,४
प्रातर्याव्णः सहस्कृत १, ४५, ९
प्रातर्युजा वि बोधय १, २२,१
प्राता रत्नं प्रातरित्वा १, १२५, १
प्रियमेधवदत्रिवत् १, ४५, ३
प्रिया पदानि पश्वो १, ६७, ६
प्रियो नो अस्तु विश्पतिः १, २६, ७
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं १,१८६,१०
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः १, ४०, ३
प्रैषामज्मेषु विथुरेव १, ८७, ३
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषे १, १८६, ३
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि १, ८०, ३
बळित्था तद् वपुषे धायि १,१४१,१
बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय १, ८४, १
बिभ्रद्रापिं हिरण्ययं १, २५, १३
बोधा मे अस्य वचसो १, १४७, २
बृहत् स्वश्चन्द्रममवत् १, ५२, ९
बृहती इव सूनवे रोदसी १, ५९, ४
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि
१, १०६, ५
ब्रह्मा कृणोति वरुणो १, १०५, १५
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः
१, १६५, ४
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः १, १५, ५
भजन्त विश्वे देवत्वं १, ६८, ४
भगभक्तस्य ते वयं १, २४, ५
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः
१, १२३, ५
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम १, ८९, ८
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य १,११५,३
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते १,९४,४
भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिः
१, १५६, १
भवा वरूथं गृणते विभावो १,५८,९
भारतीळे सरस्वति १, १८८, ८
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवःस्तवे
१, ९२, ७
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति
१, ११३, ४
भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे
१, १३०, ७
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे १,१०३,६
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे १,१६५,७
भूरि त इन्द्र वीर्यं १, ५७, ५
भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं १,१८५,२
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु १,१६६,१०
मथन् न योऽधि बभ्रुषु १,१४०,६
मक्षू नो वस्य इष्टय १, १७६, १
मत्स्यपायि ते महः १, १७५, १
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः १, ९, ३
मथीद् यदीं विभृतो १, ७१, ४
मथीद् यदीं विष्टो मातरिश्वा
१, १४८, १
मदेमदे हि नो ददिः १, ८१, ७
मधु नक्तमुतोषसो १, ९०,७
मधुमन्तं तनूनपात् १, १३, २
मधुमान्नो वनस्पतिः १, ९०, ८
मधु वाता ऋतायते १, ९०, ६
मध्वः सोमस्याश्विना मदाय
१, ११७, १
मनुष्वदग्ने अंगिरस्वदंगिरो १,३१,१७
मनो न योऽध्वनः १, ७१, ९
मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवो
१, १३४, २
मन्दामहे दशतयस्य धासे १,१२२,१३
मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ १,५१,११
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी १, १४२, ८
मन्द्रो होता गृहपति १, ३६, ५
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा १,१२२,३

मरुत: पिबत ऋतुना १, १५, २
मरुत्वन्तं हवामहे १, २३, ७
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा
१, १०१, ११
मरुतो यद्ध वो बलं १, ३७, १२
मरुतो यस्य हि क्षये १, ८६, १
मरुतो वीळुपाणिभि: १, ३८, ११
महश्चित् त्वमिन्द्र यत् १, १६९, १
मह: स राय एषते १, १४९, १
महाँ इन्द्र: परश्च नु १, ८, ५
महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो
१, १६६, ११
महिकेरव ऊतये १, ४५, ४
महिषासो मायिन: चित्रभानवो
१, ६४, ७
मही अत्र महिना वारम् १,१५१,५
मही द्यौ: पृथिवी च न १, २२, १३
मही वामूतिरश्विना मयोभू:
१, ११७, १९
महे यत्पित्र ईं रसं १, ७१, ५
महो अर्ण: सरस्वती १, ३, १२
मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो
१, १२०, ८
मा च्छेद रश्मीँरिति नाधमाना:
१, १०९, ३
माता देवानामदितेरनीकं
१, ११३, १९
माता पितरमृत आ बभाज १,१६४,८
मा ते राधांसि १, ८४, २०
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धि:
१, १६२, १५
मा त्वा तपत् प्रिय आत्मा
१, १६२, २०
मादयस्व सुते सचा १, ८१, ८
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र १,१०१,१०
मा नस्तोके तनये मा न आयौ
१, ११४, ८
मा न: शंसो अररुषो १, १८, ३
मा न: सोमपरिबाधो १, ४३, ८
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि
१, ७१, १०
मा नो अस्मिन् मघवन् १, ५४, १
मा नो अग्नेऽव सृजो अघाया
१, १८९, ५
मा नो मर्ता अभिद्रुहन् १, ५, १०
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं
१, ११४, ७
मा नो मित्रो वरुणो अर्यमा १,१६२,१
मा नो वधाय हत्नवे १, २५, २
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा
१, १०४, ८
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्
१, १२५, ७
मायाभिरिन्द्रमायिनं १, ११, ७
मा वां वृको मा वृकीरा १,१८३,४
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं १, ४१, ८
मा वो मृगो न यवसे १, ३८, ५
मा सा ते अस्मत् सुमतिर्वि दसद्
१, १२१, १५
मित्रं न यं शिम्या गोषु १, १५१, १
मित्रं वयं हवामहे १, २३, ४
मित्रं हुवे पूतदक्षं १, २, ७
मिमीहि श्लोकमास्ये १, ३८, १४
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची
१, १६७, ३
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते १,१४०,४
मुषाय सूर्यं कवे १, १७५, ४
मूर्धा दिवो नाभिरग्नि: १, ५९, २
मूळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि
१, ११४, २
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवै:
१, १७३, १२
मो षु ण: परापरा १, ३८, ६
मो षु देवा अद: स्व १, १०५, ३
मो षु वो अस्मदभि तानि १,१३९,८
य इन्द्राय वचोयुजा १, २०, २
य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो १,१०८,१
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् १, १९, ७
य ईं चकार न सो अस्य १,१६४,३२
य ईं चिकेत गुहा १, ६७, ७
य उग्रा अर्कमानृचु: १, १९, ४
य एक इद् विदयते १, ८४, ७
य एकश्चर्षणीनां १, ७, ९
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्ती
१, ११३, २०
यच्चिद्धि ते विशो यथा १, २५, १
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृहे १, २८, ५
यच्चिद्धि शश्वता तना १, २६, ६
यच्चिद्धि सत्यसोमपा १, २९, १
यजा नो मित्रावरुणा १, ७५, ५
यजामहे वां मह: सजोषा १,१५३,१
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम १,१२७,२
यज्ञं पृच्छाम्यवमं १, १०५, ४
यज्ञायज्ञा व: समना तुतुर्वणि:
१, १६८, १
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा: १,१६४,५०
यज्ञैरथर्वा प्रथम: पथस्तते १,८३,५
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो १, ८६, २
यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्न १,१०७,१
यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धन्
१, १७३, ११
यत् ते गात्रादग्निना पच्यमाना
१, १६२, ११
यत् ते सादे महसा १, १६२, १७
यत् ते सोम गवाशिरो १, १८७, ९
यत्वा तुरीयमृतुभि: १, १५, १०
यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्
१, १६६, ५
यत्र ग्रावा पृथुबुध्न: १, २८, १
यत्र द्वाविव जघना १, २८, २
यत्र नार्यपच्यवं १, २८, ३
यत्र मंथां विबध्नते १, २८, ४
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
१, १६४, २१
यत्सानो: सानुमारुहत् १, १०, २
यथा नो अदिति: करत् १, ४३, २
यथा नो मित्रो वरुणो १, ४३, ३
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र
१, १७५, ६
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र १,१७६,६
यथा विप्रस्य मनुषो १, ७६, ५

य पदृचीन्द्र देवगोपाः १, ५३, ११
यदक्रन्दः प्रथमं जायमान १, १६३, १
यदंग दाशुषे त्वं १, १, ६
यदद्य त्विषो अजगन् १, १८७, ७
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य १, १२३, ३
यदपामोषधीनां १, १८७, ८
यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो १, १०८, ६
यदयातं दिवोदासाय वर्तिः
१, ११६, १८
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे
१, ९४, १०
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश
१, १६२, ९
यदश्वाय वास उपस्तृणन् १, १६२, १६
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां
१, १०८, ९
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य
१, १०८, १२
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्
१, १०८, ११
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां
१, १०८, १०
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे
१, १०८, ७
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु १, १०८, ८
यदिन्द्राहन् प्रथमजा महीनां १, ३२, ४
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजि १, ५२, ११
यदीमृतस्य पयसा पियानो १, ७९, ३
यदुदीरत आजयो १, ८१, ३
यद्वक्षामुदरस्यापवाति १, १६२, १०
यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं
१, १६४, २३
यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितो
१, ४४, १२
यद्ध त्यद् वां पुरुमीळ्हस्य १, १५१, २
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृताद १, १३९, २
यद्ध यान्ति मरुतः १, ३७, १३
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं १, १६२, ४
यद्ध त्वा त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति
१, १७८, १
यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना १, १५७, २
यद् यूयं पृश्नि मातरो १, ३८, ४
यद्वातजूतो वना व्यस्थात् १, ६५, ८
यद् वाजिनो दाम संदानमर्वतो
१, १६२, ८
यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे
१, १०१, ८
यद्धृष तव चार्दानि १, ८०, १३
यन्नासत्या परावति १, ४७, ७
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य
१, १६२, २
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखायाः
१, १६२, १३
यमग्नि मेध्यातिथिः १, ३६, ११
यमग्ने पृत्सु मर्त्यं १, २७, ७
यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वम्
१, ११६, ६
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः १, १४४, ४
यमेन दत्तं त्रित एनमायुन १, १६३, २
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं १, १४३, ४
यमो ह जातो यमो जनित्वं १, ६६, ८
यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं
१, ११७, २१
यश्चिद्धि त इत्था भगः १, २४, ४
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य १, ८४, ९
यस्तुभ्यं दाशात् १, ६८, ६
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूः
१, १६४, ४९
यस्त्वामग्ने हविष्पतिः १, १२, ८
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत
१, १६६, ३
यस्मादृते न सिध्यति १, १८, ७
यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा
१, १६४, २२
यस्मै त्वमायजसे स साधत्य १, ९४, २
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो १, ९४, १५
यस्य ते पूषन् त्सख्ये विपन्यवः
१, १३८, ३
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्
१, १५४, ४
यस्य दूतो असि क्षये १, ७४, ४
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्
१, १०१, ३
यस्य विश्वानि हस्तयोः १, १७६, ३
यस्य संस्थे न वृण्वते १, ५, ४
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थ
१, १००, १४
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो १, १००, २
यस्याः कशन्तो अर्चयः १, ४८, १३
यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये १, १२९, १
यं त्वा देवासो मनवे १, ३६, १०
यं बाहुतेव पिप्रति १, ४१, २
यं यज्ञं नयथा नर १, ४१, ५
यं रक्षन्ति प्रचेतसो १, ४१, १
यः कुक्षिः सोमपातमः १, ८, ७
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे १, १५६, २
यः शुक्र इव सूर्यो १, ४३, ५
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिः
१, १०१, ६
यः सोम सख्ये तव १, ९१, १४
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः १, ७४, २
या गोमती उषसः सर्ववीरा
१, ११३, १८
याति देवः प्रवता १, ३५, ३
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां
१, ९१, ४
या दस्रा सिन्धु मातरा १, ४६, २
या नः पीपरदश्विना १, ४६, ६
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि
१, १०८, ५
यान् राये मर्तान् सुषूदो १, ७३, ८
याभिः कण्वमभिष्टिभिः १, ४७, ५
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू
१, ११२, २३
याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो
१, ११२, २१
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना
१, ११२, १७
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुः
१, ११२, १९

याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना १, ११२, ४
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथो १, ११२, १८
याभिरन्तकं जसमानमारणे १, ११२, ६
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये १,११२,२२
याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये १, ११२, १६
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं १ ११२, १४
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं १, ११२, १५
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं १, ११२, १०
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं १, ११२, ९
याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे १, ११२, ११
याभिः सूर्यं परियाथः परावति १, ११२, १३
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं १, ११२, ८
याभिः शंताती भवथो ददाशुषे १, ११२, २०
याभिः शुचन्ति धनसां सुषंसदं १, ११२, ७
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुः १, ११२, १२
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य १, ११२, ५
यामथर्वा मनुष्पिता १, ८०, १६
यावदिदं भुवनं विश्वम० १,१०८,२
यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः १, ११३, १२,
या वः शर्म शशमानाय १, ८५, १२
या वां कशा मधुमत्यश्विना १,२२,३
यावित्था श्लोकमादिवो १, ९२, १७
यासां तिस्रः पञ्चाशतो १, १३३, ४
या सुरथा रथीतमोभा १, १२, २
यास्ते प्रजा अमृतस्य १, ४३, ९
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण १, ८२, ५
युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया १, १६४, ९
युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय १,१५८,३
युक्ष्वा हि केशिना हरी १, १०, ३
युक्ष्वा हि वाजिनीव १, ९२, १५
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे १, १४, १२
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं १, ६, १
युञ्जन्त्यस्य काम्या १, ६, २
युधा युधमुप घेदेषि १, ५३, ७
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना १, ८२, ६
युयोप नाभिरुपरस्यायोः १,१०४,४
युयूषतः सवयसा तदिद् १, १४४, ३
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं १, ११७, १३
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा १,१३२,६
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने १,११२,३
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः १, ११७, १४
युवं दक्षं धृतव्रत १, १५, ६
युवं धेनुं शयवे नाधितायां १,११८,८
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय १,११७,७
युवं नरा स्तुवते पज्रियाय १,११६,७
युवं पय उस्रियायामधत्तं १, १८०, ३
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना १,११९,१०
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं १, ११९, ४
युवमत्यस्याव नक्षथो १, १८०, २
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तम् १,११८,७
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु १, १८२, ५
युवमेतानि दिवि रोचना १, ९३, ५
युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो १,११९,६
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया १, ११९, ७
युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे १, १५२, १
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं १,११७,८
युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूत १, ११८, ९
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये १,१८०,४
युवं ह गर्भं जगतीषु १, १५७, ५
युवं ह स्थो भिषजा १, १५७, ६
युवं ह्यास्तं महो रन १, १२०, ७
युवाकु हि शचीनां १, १७, ४
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिः १, १८३, ५
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु १,१८०,८
युवाना पितरा पुनः १, २०, ४
युवानो रुद्रा अजरा १, ६४, ३
युवां पूषेवाश्विना पुरंधिः १,१८१,९
युवाभ्यां देवी धिषणा मदाय १, १०९, ४
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे १, १०९, ५
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत १, १५१, ८
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो १, १३९, ३
युवो रजांसि सुयमासो अश्वा १, १८०, १
युवोरश्विना वपुषे युवायुजं १,११९,५
युवोरुषा अनु श्रियं १, ४६, १४
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो १, ११२, २
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित १,३९,८
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहा १,१६२,६
यूयं तत् सत्यशवसः १, ८६, ९
यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना १,१६६,६
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुः १, १६४, १९
ये अंस्या ये अङ्ग्याः १, १९१, ७
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये १,४८,१४
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन् १, १७९, २
ये ते पन्थाः सवितः १, ३५, ११
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र १,१७७,२
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः १, १९०, ५
ये देवासो दिव्येकादश स्थ १,१३९,११
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम १,१६६,१४
येन मानासश्चितयन्त उस्रा १,१७१,५
ये नाकस्याधि रोचने १, १९, ६
ये पायवो मामतेयं ते १, १४७, ३

येना पावक चक्षसा १, ५०, ६
ये पृषतीर्ऋष्टिभिः १, ३७, २
ये महो रजसो विदुः १, १९, ३
ये यजत्रा य ईड्या १, १४, ८
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं
१, १६२, १२
ये शुभ्रा घोरवर्पसः १, १९, ५
येषामज्मेषु पृथिवी १, ३७, ८
यो अग्निं देववीतये १, १२, ९
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्
१, ९३, ८
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा १,७७,२
यो अर्यो मर्तभोजनं १, ८१, ६
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी
१, १०१, ४
योगे योगे तवस्तरं १, ३०, ७
यो नः पूषन्नघो वृको १, ४२, २
योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि १,१०४,१
यो नो अग्ने अररिवाँ १, १४७, ४
यो नो अग्नेऽभिदासति १, ७९, ११
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो
१, १३६, ५
यो रायोऽवनिर्महान् १, ४, १०
यो रेवान् यो अमीवहा १, १८, २
यो वाघते ददाति सूनरं १, ४०, ४
यो वामश्विना मनसो जवीयान्
१, ११७, २
यो वां यज्ञैः शशमानो १, १५१, ७
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि
१, ९४, ७
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः
१, १०१, ५
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना १,१०१,२
रथाय नावमुत नो गृहाय १,१४०,१२
रथो न यातः शिक्वभिः १,१४१,८
रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ १, १७४, ७
रयिर्न चित्रः सूरो न संदृक् १,६६,१
रयिर्न यः पितृवित्तो १, ७३, १
रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः १,११६,१९
राजन्तमध्वराणां १, १, ८
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि १,९१,३
रायस्पूर्धि स्वधावः १, ३६, १२
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां १,९६,६
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो
१, १०१, ७
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागा १, ११३, २
रेवतीर्नः सधमाद १, ३०, १३
रेवद् वयो दधाथे १, १५१, ९
रोदसी आ वदता गणश्रियो १,६४,९
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामी
१, १००, १६
वच्यन्ते वां ककुहासो १, ४६, ३
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ १, ३३, ४
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण १,१६५,८
वर्धैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि १,९४,९
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या १,१२९,७
वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा १, ७०, १
वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो १, ६७, १
वनोति हि सुन्वन् क्षयं १, १३३, ७
वन्दस्व मारुतं गणं १, ३८, १५
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा १, १६७, १०
वयं चिद्धि वां जरितारः १, १८०, ७
वयं जयेम त्वया युजा वृतम् १,१०२,४
वयं शूरेभिरस्तृभिः १, ८, ४
वयश्चित्ते पतत्रिणो १, ४९, ३
वयं हि ते अमन्मह्य १, ३०, २१
वया इदग्ने अग्नयस्ते १, ५९, १
वरुणः प्राविता भुवन् १, २३, ६
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विं १,६५,४
वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो १, ७०, ७
वश्रासो न ये स्वजाः १, १६८, २
वसिष्वा हि मियेध्य १, २६, १
वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता १,१५८,१
वसोरिन्द्रं वसुपतिं १, ९, ९
वह् कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्
१, १७४, ५
वह्निं यशसं विदथस्य १, ६०, १
वाय उक्थेभिर्जरन्ते १, २, २
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृ
१, ११०, ९
वायवा याहि दर्शते १, २, १
वायविन्द्रश्च चेतथः १, २, ५
वायविन्द्रश्च सुन्वतः १, २, ६
वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा
१, १३४, ३
वायो तव प्रपृञ्चती १, २, ३
वावसाना विवस्वति १, ४६, १३
वाश्रेव विद्युन्मिमाति १, ३८, ८
वि घं त्वाकं भूतजात १, १८९, ६
वि जानाह्यार्यान् १, ३५, ५
वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो १,५१,८
वि ते वज्रासो अस्थिरन् १, ८०, ८
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो
१, १३१, ३
वि त्वा नरः पुरुत्रा १, ७०, १०
विदन्तीमत्र नरो १, ६७, ४
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो १, ४१, ३
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः १,१३१,४
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं १, १०, १०
वि द्यामेषि रजस्पृथु १, ५०, ७
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां १,७२,७
विद्वांसाविद् दुरः पृच्छेद् १,१२०,२
वि नः पथः सुविताय १, ९०, ४
वि पृक्षो अग्ने मघवानो १, ७३, ५
वि पृच्छामि पाक्या न देवान्
१, १२०, ४
विभक्तारं हवामहे १, २२, ७
विभक्तासि चित्रभानो १, २७, ६
वि मृळीकाय ते मनो १, २५, ३
वि यत्तिरो धरुणमच्युतं १, ५६, ५
वि यदस्थाद् यजतो १, १४१, ७
वि या सृजति समनं व्यर्थिनः १,४८,६
वि ये भृजन्त्यृता १, ६७, ८
वि ये भ्राजन्ते सुमखासः १, ८५, ४
वि यो वीरुत्सु १, ६७, ९
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीः
१, १८८, ५
वि राय और्णोद् १, ६८, १०
वि वातजूतो अतसेषु १, ५८, ४
विशां गोपा अस्य चरन्ति १, ९४, ५
विशो यदह्वे नृभिः १, ६९, ६
वि श्रयन्तामृतावृधः १, १४२, ६
वि श्रयन्तामृतावृधो १, १३, ६

विश्वमस्या नानाम चक्षसे १, ४८, ८
विश्वमित्सवनं सुतं १, १६, ८
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः १, ६४, १०
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं ते १,४८,१०
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या १, ९२, ९
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो १, १६६, ९
विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतये १, ४८, १२
विश्वान् देवान् हवामहे १, २३, १०
विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे १, १२७, ८
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अ १, १०२, ११
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो १,१००,१९
विश्वे देवासो अप्तुरः १, ३, ८
विश्वे देवासो अस्रिधः १, ३, ९
विश्वेभिरग्ने अग्निभिः १, २६, १०
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्ने १,१४,१०
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु १, १३१, २
विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे १, १२८, ६
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो १, ११०, ४
विष्णोः कर्माणि पश्यत १, २२, १९
विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं १, १५४, १
विष्वञ्चो नरां न शंसैः १,१७३,१०
वि सुपर्णो अन्तरिक्षाणि १, ३५, ७
वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छ १,१०९,१
वीळु चिदारुजत्नुभिः १, ६, ५
वीळु चिद् दृळ्हा पितरो १, ७१, २
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा १,११६,२
वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव १,१३९,६
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं १, ३२, ३
वृषा यूथेव वंसगः १, ७, ८
वृष्णे शर्धाय सुमखाय १, ६४, १
वेद मासो धृतव्रतो १, २५, ८
वेद वातस्य वर्तनिं १, २५, ९
वेदा यो वीनां पदं १, २५, ७
वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते १,१४०,१
वेधा अदृप्तो अग्निः १, ६९, ३
वैश्वानर तव तत् सत्यम् १, ९८, ३
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम १, ९८, १
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टि १, ५९, ७
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौ १, ११३, १४
व्यनिनस्य धनिनः १, १५०, २
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिः १, ४९, ४
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ १, ९२, ११
शकमयं धूम मारादपश्यं १,१६४,४३
शकेम त्वा समिधं साधया धिय १, ९४, ३
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च १, ४२, ९
शचीभिर्नः शचीवसू १, १३९, ५
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम १,५३,३
शतं ते राजन् सहस्रं १, २४, ९
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् १, १६६, ८
शतमिन्नु शरदो १, ८९, ९
शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानम् १, ११६, १६
शतं मेषान् वृक्ये मामहानं १, ११७, १७
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान् १, १२६, २
शतं वा यः शुचीनां १, ३०, २
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा १, ११६, २२
शरासः कुशरासो १, १९१, ३
शशमानस्य वा नरः १, ८६, ८
शश्वत् पुरोषा व्युवास देव्य १, ११३, १३
शश्वदिन्द्र पोप्रुथद्भिर्जिगाय १, ३०, १६
शं नः करत्यर्वते १, ४३, ६
शं नो मित्रः शं वरुणः १, ९०, ९
शिप्रिन् वाजानां पते १, २९, २
शुकेषु ते हरिमाणं १, ५०, १२
शुक्रः शुशुक्वाँ १, ६९, १
शुचिः पावको अद्भुतो १, १४२, ३
शुचिर्देवेष्वर्पिता १, १४२, ९
शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा १, ११७, १८
शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतः १,२४,१३
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र १,१०३,८
शुष्मिन्तमो हि ते मदो १, १७५, ५
शूरा इवेद् युयुधयो १, ८५, ८
श्रुण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवः १, ४४, १४
शोचन् नु त इन्द्र सस्मिन् १,१७४,४
श्रियसे कं भानुभिः १, ८७, ६
श्रिये कं वो अधि १, ८८, ३
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा १, १८४, ३
श्रीणन्नुप स्थाद् १, ६८, १
श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं १ १२०,६
श्रुतं मे मित्रावरुण हवेमोत १,१२२,६
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः १, ४४, १३
श्रुष्टिवानो हि दाशुषे १, ४५, २
श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं १, ४४, ४
श्रोणामेक उदकं गामवाजति १, १६१, १०
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् १, ६५, ९
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते १,५५,४
स इधानो वसुष्कविः १, ७९, ५
स इन्महानि समिथानि १, ५५, ५
स ईं मृगो अप्यो वनर्गु १, १४५, ५
सखाय आ निषीदत १, २२, ८
सख्ये त इन्द्र वाजिनो १, ११, २
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिः १, १००, १०
स घा तं वृषणं रथं १, ८२, ४
स घा नो योग आभुवत् १, ५, ३
स घा नः सूनुः शवसा १, २७, २
स घा राजा सत्पतिः १, ५४, ७
स घा वीरो न रिष्यति १, १८, ४
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो १, १५०, ३
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः १,१०३,३

स जामिभियत् समजातिमीह्ळे १, १००, ११
स जायमानः परमे १, १४३, २
सजोषा धीराः पदैरनुग्मन् १, ६५, २
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये १, ५६, ३
स त्तो होता मनुष्वदा १, १०५, १४
सख्यं त्वेषा ऊमवन्तो १, ३८, ७
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्व १, १०४, ६
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वान् १, ९४, १६
स त्वामददद् वृषा मदः १, ८०, २
सदसस्पतिमद्भुतं १, १८, ६
सदा कवी सुमतिमा चके वां १, ११७, २३
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो १, १२३, ८
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च १, १०३, २
स न पितवे सूनवेऽग्ने १, १, ९
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः १, १७४, ८
सनात् दिवं परि भूमा विरूपे १, ६२, ८
सनात् सनीळा अवनीरवाता १, ६२, १०
सनादेव तव रायो गभस्तौ १, ६२, १२
सनायते गोतम इन्द्र १, ६२, १३
सनायुवो नमसा नव्यो १, ६२, ११
सनेमि चक्रमजरं वि वावृतं १, १६४, १४
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः १, ६२, ९
स नो दूराच्चासाच्च १, २७, ३
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः १, १३०, १०
स नो नृणां नृतमो रिशादा १, ७७, ४
स नो नेदिष्ठं ददृशान आ १, १२७, ११
स नो महाँ अनिमानो १, २७, ११
स नो विश्वाहा सुक्रतुः १, २५, १२
स नो वृषन्नमुं चरुं १, ७, ६
स नः पावक दीदिवो १, १२, १०
स नः सिन्धुमिव नावया १, ९७, ८
स नः स्तवान आ भर १, १२, ११
स पर्वतो धरुणेष्वच्युतः १, ५२, २
स पूर्वया निविदा कव्यतायो १, ९६, २
सप्त त्वा हरितो रथे १, ५०, ८
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम् १, १६४, २
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः १, १६४, ३६
स प्रत्नथा सहसा जायमानः १, ९६, १
स ब्राधतो नहुषो दंसुजूतः १, १२२, १०
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं १, १७३, ७
स मन्युमीः समदनस्य कर्ता १, १००, ६
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिः १, ९६, ४
समानयोजनो हि वां १, ३०, १८
समानं वत्समभि संचरन्ती १, १४६, ३
समानमेतदुदकम् १, १६४, ५१
स मानुषे वृजने शंतमो १, १२८, ७
समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना १, ३४, ३
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तः १, ११३, ३
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना १, १०८, ४
समिद्धो अग्न आ वह १, १४२, १
समिद्धो अद्य राजसि १, १८८, १
समिन्द्र गर्दभं मृण १, २९, ५
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि १, ५३, ५
समोहे वा य आशत १, ८, ६
स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोकाः १, १००, १
स यो वृषो नरां न रोदस्योः १, १४९, २
स रत्नं मर्त्यो वसु १, ४१, ६
स रेवाँ इव विश्पतिः १, २७, १२
सर्वं परिक्रोशं जहि १, २९, ७
स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः १, १००, १२
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् १, १६०, ३
स वाजं विश्वचर्षणिः १, २७, ९
सवितारमुषसमश्विना १, ४४, ८
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे १, ५४, ११
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु १, १२९, २
स संस्तिरो विष्टिरः सं १, १४०, ७
ससन्तु त्या अरातयो १, २९, ४
स सव्येन यमति व्राधतश्चित् १, १००, ९
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमे १, १२८, ४
स सुष्टुभा स स्तुभा १, ६२, ४
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा १, १००, ५
सहस्रं त इन्द्रोतयो नः १, १६७, १
सहस्रं साकमर्चत १, ८०, ९
सह वामेन न उषो १, ४८, १
सहस्राक्षो विचर्षणिः १, ७९, १२
स हि क्रतुः स मर्यः १, ७७, ३
स हि क्षपावाँ अग्नी १, ७०, ५
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि १, ५२, ३
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता १, १२७, ३
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा १, ५५, ६
स हि शर्धो न मारुतं १, १२७, ६
स हि स्वसृत् पृषदश्वो १, ८७, ४
संगच्छमाने युवती समन्ते १, १८५, ५
सं गोमदिन्द्र वाजवत् १, ९, ७
सं चोदय चित्रमर्वाग् १, ९, ५
संजानाना उपसीदन्नभिज्ञु १, ७२, ५
सं ते पयांसि समु १, ९१, १८
सं नु वोचावहै पुनः १, २५, १७
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा १, ४८, १६
सं पूषन्नध्वनस्तिर १, ४२, १
सं माग्ने वर्चसा सृज १, २३, २४
सं मा तपन्त्यभितः १, १०५, ८
संमील्य यद् भुवना पर्यसर्पत १, १६१, १२
सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर १, १३२, ५
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत १, ११९, ३
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति १, १९०, ७
सं यन्मदाय शुष्मिणः १, ३०, ३
सं वो मदासो अग्मत १, २०, ५
सं सीदस्व महाँ असि १, ३६, ९
साकं जानां सप्तथमाहुरेकजं १, १६४, १५

सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती १,१६८,७
साधुर्न गृध्नुरस्तेव १, ७०, ११
सिन्धुर्नक्षोदः प्रनीचीरैनो १,६६,१०
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः १,६४,८
सुक्षेत्रिया सुगातुया १, ९७, २
सुगः पन्था अनृक्षर १, ४१, ४
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं १,१६२,२२
सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो १,१२५,२
सुतपाव्ने सुता इमे १, ५, ५
सुते सुते न्योकसे १, ९, १०
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे १,४७,६
सुपर्णा एत आसते १, १०५, ११
सुपेशसं सुखं रथं १, ४९, २
सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था १, १९०, ६
सुभगः स प्रयज्यवो १, ८६, ७
सुरुक्मे हि सुपेशसा १, १८८, ६
सुरूपकृत्नमूतये १, ४, १
सुविवृतं सुनिरजं १, १०, ७
सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि १,१८३,२
सुशंसो बोधि गृणते १, ४४, ६
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छता
१, १६१, १३
सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे १,११७,५
सुषुमा यातमद्रिभिः १, १३७, १
सुसमिद्धो न आ वह १, १३, १
सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा
१, १२३, ११
सुसंदृशं त्वा वयं १, ८२, ३
सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना
१, ११७, ११
सूयवसाद् भगवती हि भूया
१, १६४, ४०
सूरश्चक्रं प्र बृहज्जात ओजसा
१, १३०, ९
सूर्ये विषमा सजामि १, १९१, १०
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां १,११५,२
सेनेव सृष्टामं दधाति १, ६६, ७
सेमं नः काममा पृण १, १६, ९
सेमं नः स्तोम मा गहि १, १६, ५
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्
१, १००, ४
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः १,५५,२
सोम गीर्भिष्ट्वा वयं १, ९१, ११
सोम यास्ते मयोभुवः १, ९१, ९
सोम रारन्धि नो हृदि १, ९१, १३
सोमानं स्वरणं कृणुहि १, १८, १
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो
१, १६८, ३
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं
१, ९१, २०
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः १,६५,१०
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषाय
१, १२१, २
स्तविष्यामि त्वामहं १, ४४, ५
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तू १,१७१,३
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिः
१, १२२, ७
स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि १, १३५, १
स्तृणानासो यतस्रुचो १, १४२, ५
स्तृणीत बर्हिरानुषक् १, १३, ५
स्तोत्रं राधानां पते १, ३०, ५
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस १,१६४,१६
स्थिरं हि जानमेषां १, ३७, ९
स्थिरा वः सन्तु नेमयो १, ३८, १२
स्थिरा वः सन्त्वायुधा १, ३९, २
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः
१, ११३, १७
स्योना पृथिवि भव १, २२, १५
स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति
१, ७१, ६
स्वग्नयो हि वार्यं १, २६, ८
स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन् १,१३२,२
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै १, १२४, ८
स्वस्ति न इन्द्रो १, ८९, ६
स्वादो पितो मधो पितो १, १८७, २
स्वादोरित्था विषूवतो १, ८४, १०
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वीः १,७२,८
स्वाहा कृतान्या ग १, १४२, ११
स्वाहा यज्ञं कृणोतन १, १३, १२
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्
१, १२१, ७
हत वृत्रं सुदानवः १, २३, ९
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीत्
१, १६१, ५
हविषा जारो अपां १, ४६, ४
हस्काराद् विद्युतस्परि १, २३, ११
हस्ते दधानो नृम्णा १, ६७, ३
हिरण्यकेशो रजसो विसारे १,७९,१
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां
१, १६४, २७
हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां १,११६,८
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णः
१, १२२, १४
हिरण्यपाणिमूतये १, २२, ५
हिरण्यपाणिः सविता १, ३५, ९
हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृधः
१, ६४, ११
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा
१, १६३, ९
हिरण्य हस्तमश्विना रराणा
१, ११७, २४
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः १,३५,१०
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो
१, १६२, ५
होता निषत्तो मनोरपत्ये १, ६८, ७
होता यक्षद् वनिनो वन्त १,१३९,१०
होतारं विश्ववेदसं १, ४४, ७
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं १,५८,७
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो १,५२,७
ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये १,३५,१

Visit **Dwarkadheeshvastu.com** For

FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

****

All Music is also available in **CD** format. **CD Cover** can also be print with your Firm Name

****

We also provide this whole Music and Data in **PENDRIVE** and **EXTERNAL HARD DISK.**

Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

RIGVED KA SUBODH BHASHYA

PART-2

ऋग्वेद का सुबोध-भाष्य

प्रस्तावना

ॐ नमः पूर्वजेभ्यः ऋषिभ्यः पथिकृद्भ्यः

हमारे पूर्वज ऋषि "**पथिकृत्**" के नामसे अभिहित हैं। उन्होंने अपने ज्ञानके द्वारा लोगोंको सन्मार्ग का दर्शन कराया। उनका ध्येय वाक्य था- "**मा प्रगाम पथो वयं,**" हम सन्मार्गसे कभी विचलित न हों। यह सन्मार्ग कौनसा है ? उसपर किस तरह चला जा सकता है ? उस पर चलनेका क्या फल है ? ये सभी बातें उन्होंने ईश्वरीय ज्ञानकी सहायता से स्वयं समझीं और दूसरोंको भी समझायीं। यह ईश्वरीय ज्ञान ही "वेदों" की संज्ञासे अभिहित होता है।

वेदोंका स्थान आज भी भारतमें महत्वपूर्ण है। हिन्दुओंके परिवारोंमें जितने भी संस्कार होते हैं, वे सभी संस्कार वेदमंत्रोंके द्वारा ही होते हैं, इसलिए हिन्दुओंमें जबतक ये संस्कार अक्षुण्ण रहेंगे, तबतक वेदोंका महत्त्व भी अक्षुण्ण ही रहेगा।

वेदोंने मानव मात्र को अमूल्य उपदेश दिए हैं। पर उपदेश देनेकी वैदिकपद्धति विलक्षण है। चारों वेदोंमें विधि निषेध के मंत्र बहुत ही थोडे हैं। वैदिक ऋषियोंने बाइबिलके "मैं तुमसे कहता हूँ" की पद्धति कभी नहीं अपनाई। "मैं तुमसे कहता हूँ" में एक प्रकारकी अनिवार्यता है, जबर्दस्ती है और उपदेशकके घमण्डका भी दर्शन होता है। "मैं तुमसे अधिक ज्ञानी हूँ, इसलिए मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ, तुम मेरे उपदेशके अनुसार चलो" इस प्रकारकी अहंकारकी भावना "मैं तुमसे कहता हूँ" इस वाक्यमें छिपी हुई है। यह अहंकारकी भावना ऋषियोंके लिए अभीप्सित नहीं थी। उनके हर शब्दोंसे विनम्रता प्रकट होती है। वेदों में अमूल्य ज्ञान हैं, पर इस ज्ञानके रचयिता कहलानेकी ऋषियोंने कभी धृष्टता नहीं की। अपितु उस ज्ञानके आविष्कारका सारा श्रेय ऋषियोंने परमात्माको दे दिया। इतनी विनम्रता उन ऋषियोंमें थी। इसीलिए "मैं तुमसे कहता हूँ" की अभिमानात्मक भावनाको उन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया।

मानवको देव, नरको नारायण, जीवको शिव बनानेका ऋषियोंका एकमात्र ध्येय था। इस ध्येयके लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक पद्धतिका सहारा लिया। यह मनोवैज्ञानिक पद्धति थी देवताओंके गुण वर्णन करनेकी। किसीको कुमार्गसे हटाकर सुमार्गमें प्रवृत्त करनेके दो ही तरीके हैं- (१) उससे जोर जबर्दस्ती करके कुमार्गसे परावृत्त करके सुमार्गमें प्रवृत्त किया जाए। यह मार्ग वैदिकेतर सम्प्रदायोंका है। (२) दूसरा उपाय है कि कुमार्ग पर चलनेसे होनेवाली हानियों और सुमार्ग पर चलनेसे होनेवाले लाभोंका विश्लेषण करके मनुष्यको सुमार्गमें चलनेके लाभोंको आकर्षक रीतिसे बताया जाए, तो वह स्वयं कुमार्गको छोडकर सुमार्गमें प्रवृत्त हो जाएगा। किसी जुआरी पर "तुम जुआ खेलना छोड दो" यह कथन इतना प्रभावशाली नहीं हो सकता, क्योंकि यह कथन उसके अन्तर्मन पर प्रभाव नहीं डालता पर यदि उसके सामने जुएसे होनेवाली हानियोंको बतलाया जाए, तो शीघ्र ही उसका उसके मनपर प्रभाव पडेगा। इसी तरह एक बालकसे "तुम दूध पीओ" यह कहनेकी अपेक्षा उसके सामने दूध पीनेसे होनेवाले लाभोंका वर्णन

किया जाए, तो वह शीघ्र ही उस बालमन पर प्रभाव डाल सकता है। वैदिकऋषि इस मनोवैज्ञानिक तथ्यसे भलीभांति परिचित थे, इसीलिए उन्होंने वेदोंमें "सत्य बोलो, धर्म करो, दान करो, देव बनो" आदि विध्यात्मक आज्ञायें देनेके बजाए देवोंके गुणोंका वर्णन आकर्षक शब्दोंमें किया कि मनुष्योंके मनपर उन गुणोंकी छाप अनायास ही पड़ जाए। यही कारण है कि वेदोंमें विधिनिषेध न होकर देवोंके गुणवर्णन ही अधिक हैं। ऋषियोंकी यह मनोवैज्ञानिक पद्धति विलक्षण थी।

वेदार्थ के क्षेत्र

प्राय: सभी वैदिक ऋचाओंके अर्थ **अधिभूत, अधिदेव, अधियज्ञ, अध्यात्म** आदि अनेकों क्षेत्रोंमें लगता है। अधिभूत अर्थ वह है कि जो समाज या राष्ट्र के बारेमें किया जाता है। अधिदेव अर्थ वह है जो विश्वके बारेमें किया जाता है। यज्ञसम्बन्धी अर्थको अधियज्ञ कहा जाता है तथा शरीर सम्बन्धी अर्थकी संज्ञा अध्यात्म है। इन सभी क्षेत्रोंमें देवताओंका अर्थ भी बदल जाता है, यथा- अधिभूतमें अग्नि तथा इन्द्र क्रमश: ज्ञानी तथा क्षत्रिय के प्रतीक हैं। अधिदेवमें भौतिक अग्नि तथा विद्युत्‌के निदर्शक है, अध्यात्ममें प्राण और जीवके प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार इन देवताओं तथा वैदिक ऋचाओंके भिन्न भिन्न अर्थ हो सकते हैं और ये सभी अर्थ अपने अपने क्षेत्रमें संगत हैं।

वेदोंके विषय

वेदोंके विषयके बारे में अनेक मतभेद हैं, कुछ विद्वान् वेदोंका विषय ज्ञान मानते हैं कुछ कर्म मानते हैं, तो कुछ उपासना मानते है। पर उपासना तथा कर्मकी पृष्ठभूमिमें ज्ञानका आधार न हो तो वे दोनों ही व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए वैदिक संस्कृतिमें ज्ञानको मुख्यता दी गई है। इसीकारण ज्ञानकाण्डात्मक ऋग्वेद भी चारों वेदोंमें मुख्य माना गया है।

ऋग्वेद पर हमारे द्वारा किए जानेवाले हिन्दी सुबोध भाष्य का प्रथम भाग (प्रथम मंडल) इससे पूर्व प्रकाशित हो ही चुका है। उसी मालाका यह दूसरा पुष्परूप दूसरा भाग प्रस्तुत है। इस भागमें दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवां इस प्रकार चार मण्डल हैं। इन चारों मण्डलोंमें ऋषि तथा देवता अनेक हैं। इस भागमें देवताओंके जो वर्णन आए हैं, वे इस प्रकार हैं-

अग्नि

ऋग्वेदमें अग्नि ज्ञानका प्रतिनिधित्व करता है। ज्ञानकी मुख्यता होनेके कारण ऋग्वेदमें केवल आठवें और नौवें मंडलको छोडकर बाकी सभी मंडलोंकी शुरुआत अग्निसे ही की गई है। उदाहरणार्थ-

अग्निमीळे पुरोहितं	**(प्रथम मंडल)**
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणि:	**(द्वितीय मंडल)**
सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने	**(तृतीय मंडल)**
त्वमग्ने सदमित् समन्यवो	**(चतुर्थ मंडल)**
अबोध्यग्नि: समिधा जनानां	**(पंचम मंडल)**
त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता	**(षष्ठ मंडल)**
अग्निं नरो दीधितिभि:	**(सप्तम मंडल)**
अग्निर्भानुना रुशता	**(दशम मंडल)**

इसप्रकार उपर्युक्त सभी मंडलोंका प्रारंभ अग्निकी प्रार्थनासे हुआ है। अग्निके सूक्तोंके बाद इन्द्रके सूक्त हैं। इन्द्र कर्मशक्तिका प्रतिनिधि है। संभवत: सूक्तोंकी इस व्यवस्थामें ऋषियोंकी यह मनीषा रही हो कि कर्मशक्तिका आधार ज्ञानशक्ति हो। कर्म ज्ञानसे ही प्रेरित हो। क्योंकि ज्ञानसे प्रेरित कर्म ही शिवका उत्पादक होता है। केवल कर्म या ज्ञानहीन कर्म उद्धतताका जनक होकर समाज या राष्ट्रमें अराजकता या अव्यवस्थाका कारण बनता है। इसलिए इन्द्रशक्तिको अग्निशक्तिसे नियंत्रित करनेके लिए ही ऋग्वेदमें अग्निसूक्तोंको प्राथमिकता दी गई है।

अग्निके गुण

इन मंडलोंमें अग्निके अनेक गुण बताये गए हैं- जैसे-

१ नृणां नृपति:- यह अग्नि सभी मनुष्योंका स्वामी है। समाज या राष्ट्रमें सच्चा राजा तो अग्नि अर्थात् ज्ञानी ब्राह्मण ही होता है। क्षत्रिय राजा तो ब्राह्मण-मंत्रीकी सलाहसे राज्यशासन करनेवाला होता है। राज्यशासककी अपेक्षा राज्यनिर्माताका स्थान मुख्य होता है। इसलिए राष्ट्रमें शासककी अपेक्षा ज्ञानीका स्थान श्रेष्ठ होता है और वही सच्चा राजा होता है।

२ अग्ने! पोत्रं तव- हे अग्ने ! पवित्रता करनेका काम तेरा है। राष्ट्रमें सर्वत्र ज्ञानका प्रचार हो, सभी ज्ञानी हों, अज्ञानका नामोंनिशान न हो, इस कामकी जिम्मेदारी राष्ट्रके ज्ञानियों पर है। वह अपने उपदेशों तथा प्रवचनोंसे प्रजाओंकी बुद्धिको पवित्र बनाये। उन्हें अच्छे मार्गमें प्रेरित करके देशमें सत्पुरुषोंकी संख्या अधिक बढाये। देशमें एक भी अविद्वान् न रहे, यह देखनेका काम ज्ञानीका है।

इसी तरह भौतिक अग्नि भी घरमें पवित्रता करती है। अग्निमें सुगंधित तथा रोगनाशक पदार्थोंका हवन करनेसे सारे रोगजन्तु नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अग्नि भी जल-वायुको पवित्र बनानेवाला है। प्राचीनकालमें प्रत्येक चौराहों पर बडी-बडी यज्ञशालायें होती थीं और उन यज्ञशालाओंमें प्रतिदिन यज्ञ किए जाते थे, इससे सारे नगरके रोगजन्तु नष्ट हो जाते थे और नगरका स्वास्थ्य बना रहता था। ब्राह्मण-ग्रंथोंके कालमें तो घर-घरमें हवन होते थे, ऐसा महाराज अश्वपतिकी घोषणासे व्यक्त होता है। महाराज अश्वपतिके राज्यमें कोई भी यज्ञ न करनेवाला (अनाहिताग्नि) नहीं था। इसीलिए उस समयके लोगोंका स्वास्थ्य अक्षुण्ण रहता था।

शरीरमें अग्नि प्राणरूप है। शरीरको शुद्ध करना प्राणोंका काम है। श्वासोच्छ्वासके रूपमें प्राण ही फेफडोंमें जाकर अशुद्ध रक्तको शुद्ध करनेका काम करता है। नसनाडियोंमें भी यही प्राण संचार करता है और रक्त प्रवाहको वेग प्रदान करता है। यदि रक्त प्रवाहमें वेग न हो तो रक्त नसोंमें ही जम जाए और मनुष्यकी मृत्यु हो जाए। इसको एक उदाहरणसे स्पष्ट किया जा सकता है- "मनुष्यके शरीरमें चोट लगती है और चोट लगनेके साथ ही शरीरका रक्त उधरकी तरफ दौडने लगता है, वहांकी क्षतिको पूरा करने के लिए और बाह्यतत्त्वोंसे युद्ध करनेके लिए। उस समय जो रक्त प्रवाहमें साधारण स्थितिकी अपेक्षा ज्यादा वेगसे आता है और रक्त उस क्षतिग्रस्त भागकी तरफ दौडने लगता है, उसका कारण प्राण ही है। इस प्रकार प्राण शरीरमें सर्वत्र संचार करके शरीरगतमलको मलमूत्र, पसीने आदिके द्वारा निकाल कर शरीरको स्वच्छ और पवित्र बनाये रखता है। इसीलिए इस शरीरस्थ प्राणकी संज्ञा "प्राणाग्नि" है। इस प्राणाग्निको प्राणायामके द्वारा बढाया और बलवान् बनाया जा सकता है। यह प्राण बलवान् होकर पवित्रता करनेका कार्य और ज्यादा अच्छी तरह कर सकता है। इसीलिए वेदमें अग्निको "पोत्र" कहा है।

३ होत्रं तव- यह अग्नि होता भी है। होताका अर्थ है आह्वाता अर्थात् बुलानेवाला। समाजमें ज्ञानी इतर विद्वानोंकी सभायें बुलाकर उन सभाओंमें समाजकी उन्नतिके बारेमें विचार करे, उनके द्वारा समाजमें ज्ञानप्रसारका कार्य करवाये। अग्निको "देवोंको बुलाकर" लानेवाला कहा है। देवोंका अर्थ है विद्वान्। अतः जो विद्वानोंको बुलाकर लाता है, वही अग्नि है।

शरीरमें देव इन्द्रियां हैं। प्राणरूपी अग्नि जबतक शरीरमें रहती है, तभी तक ये इन्द्रियां इस शरीरमें रहती हैं। जब एक भ्रूणके शरीरमें प्राण प्रवेश करता है, उसी समय इतर देव भी उसकी इन्द्रियोंमें प्रवेश करके शरीरको चेतनता प्रदान करते हैं। इस प्रकार इस शरीररूपी घरका सच्चा स्वामी तो अग्निही है, इसीलिए उसे "**गृहपति**" भी कहा है।

अग्निमें इतर देवोंका रूप

एकही अग्नि अनेक देवोंके रूप धारण करके अनेक कार्य करता है-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविश्य।
रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव॥ उपनिषद्

अग्निही इस पृथ्वीमें प्रविष्ट होकर सब पदार्थोंका रूप धारण करती है। इसी बातको द्वितीय मंडलकी एक ऋचामें इस प्रकार कहा गया है-

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि
त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते
त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या ॥२।१।३

१ हे अग्ने ! त्वं सतां वृषभः इन्द्रः- यह अग्नि सज्जनोंमें सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इन्द्र है। यह देवोंमें सर्वाधिक ऐश्वर्यवान् होनेके कारण इन्द्र है। यही अग्नि-

२ उरुगायः विष्णुः-सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु है। यही सबसे बृहत् होनेके कारण "**ब्रह्मा**" है और नाना तरहकी बुद्धियोंसे युक्त होने के कारण "**मेधावी**" है। व्रतोंको धारण करके उनका पालन करनेवाला होनेके कारण

"वरूण" है। सज्जनोंका पालन करनेवाला होनेके कारण **"अर्यमा"** है। यह सबको प्राणोंको प्रदान करनेवाला होनेके कारण **"असु-र"** है।

३ आदित्यासः आस्यं- (१३) वह अग्निदेवोंका मुख है। यज्ञाग्निमें डाली गई आहुति आदित्यमें जाती है। अथवा अग्निमें डाली गई हवि देवों के पास पहुंचती है। देवगण इसी अग्निके द्वारा हविका भक्षण करते हैं। इसलिए अग्निको देवोंका मुख बताया है।

४ शुचय : जिव्हां- (१३) इस अग्नि की किरणें जिह्वा को पवित्र करनेवाली है। अग्निके प्रज्वलित होनेपर वेदोंकी ऋचायें बोली जाती हैं और उन ऋचाओंके उच्चारणसे बोलनेवाली जीभ; मन और बुद्धि सभी पवित्र हो जाते हैं। इसलिए अग्निको जीभको पवित्र करनेवाला कहा गया है।

५ सुदंससं देवाः बुध्ने एरिरे- (१९) उत्तमकर्म करनेवाली अग्निको देवगण सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं। अग्निदेव सब देवोंमें इसलिए श्रेष्ठ माने जाते हैं कि वे सदा उत्तम कर्म करते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य उत्तम कर्म करते हैं, वे सदा उत्तम स्थान पर रहते हैं। उत्तम कर्म करनेवालेको विद्वान् सदा सम्मानित करके श्रेष्ठ बनाते हैं।

शरीरका रक्षक अग्नि

१ देवासः प्रियं मानुषीषु विक्षु क्षेष्यन्तः मित्रं न धुः- (४३) देवोंने प्रिय और हितकारी अग्निको मानवी प्रजाओंमें उसी प्रकार स्थापित किया, जिस प्रकार प्रवास पर जानेवाला मनुष्य अपने घरकी रक्षाके लिए किसी अपने मित्रको रख जाता है।

मनुष्यके समाजमें जब तक अग्निरूपी ज्ञानी रहता है, तभी तक समाजमें चैतन्य रहता है। ज्ञानी ही अपने ज्ञान-रसकी धारासे सभी मनुष्योंमें स्फूर्ति और उत्साह भरा करता है। यही स्फूर्ति और उत्साह समाजको चेतना प्रदान करता है। यही चेतना समाजकी रक्षा करती है। जिस समाजमें क्रियाशून्यता है, निरूत्साहता है, चैतन्यका अभाव है, वह समाज मृतवत् हो जाता है। इसलिए समाजकी उन्नति या रक्षा ज्ञानी ही कर सकते हैं।

इसी तरह शरीरमें अग्नि उष्णताका निर्माण करता है और यही उष्णता शरीरको बनाये रखती है। जिसके शरीरमें यह प्राणाग्निकी उष्णता जितनी अधिक होगी, इतना ही उत्साह और चैतन्य उस शरीरमें होगा। यह उष्णताका अभाव होना ही मृत्यु है। मरे हुए मनुष्यके लिए कहा ही जाता है- "वह तो ठंडा हो गया।" यह ठंडा होना ही प्राणाग्निका बुझ जाना है। इसलिए शरीरमें स्थित उष्णता ही शरीरका रक्षक है।

आधिदैविक या विश्वके क्षेत्रमें भी उष्णता अनिवार्य तत्त्व है सूर्य प्रतिदिन उदय होकर समस्त विश्वके प्राणि, ओषधि वनस्पतियोंको उष्णता प्रदान करता है। इसी उष्णतासे ओषधि वनस्पतियां तथा वृक्षके फल पककर खाने योग्य बनते हैं। इसी उष्णताके कारण समस्त भूततत्त्व प्राण धारण करते हैं। इसीलिए उष्णताको जीवन बताया है। ऋग्वेदमें सूर्यको चराचर जगत्की आत्मा (सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च) कहा है।

इस प्रकार अग्नितत्त्व ही सर्वत्र व्याप्त होकर जगत्को धारण करता है।

अग्निके व्रत

१ अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान् वया इव अनुरोहते- (५३) इस अग्निके अटल नियमोंमें रहनेवाला विद्वान् पेडोंकी शाखाओंकी तरह प्रतिदिन बढता ही रहता है।

अग्निकी उपासना करनेसे मनुष्य उन्नति करता जाता है। उपासनाका अर्थ केवल किसी देवके गुणोंका गान करना ही नहीं है, अपितु उस देवके गुणों को धारण करके तद्वत् बनना ही उस देवकी सच्ची उपासना है। इसी तरह अग्निकी उपासनाका अर्थ है उसके नियमोंके अनुसार आचरण करके उन्नतिशील बननेकी कोशिश करना। अब अग्निके नियम कौन कौनसे हैं, यह बताते हैं-

१ शुचिः- (५३) अग्नि शुद्ध रहता है। अग्निकी स्वयं शुद्धता निर्विवाद है। जल अशुद्ध हो सकता है, वायु अशुद्ध हो सकता है, अन्न अशुद्ध हो सकता है, पर अग्नि कभी अशुद्ध नहीं हो सकता। वह सदा शुद्ध रहता है, इतना ही नहीं, उसमें जो भी पदार्थ डाले जाते हैं, वे भी शुद्ध बन जाते हैं। इस प्रकार अग्निका यह पहिला नियम है- **"स्वयंशुद्ध रहकर अन्योंको भी शुद्ध बनाना।"** मनुष्य स्वयं शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक

रूप से शुद्ध बनकर अन्योंको भी शुद्ध तथा पवित्र करे।

२ प्रशास्ता- यह अग्नि उत्तम शासक है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त होकर सब पदार्थों पर नियंत्रण रखता है। वह अपने शासनको उत्तम रीतिसे चलाता है। यह दूसरा नियम है- **"दूसरों पर उत्तम रीतिसे शासन करना।"**

३ शुचि क्रतुः- यह तीसरा नियम है। वह सब पर शासन तो करता है, पर स्वयं भी शासन के अन्तर्गत रहकर उत्तम कर्म करता है। उस अग्नि के कर्म सदा शुद्ध रहते हैं। वह स्वयं भी शुद्ध कर्म करता हुआ दूसरोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है। इस प्रकार तीसरा नियम बना- **"स्वयं उत्तम कर्म करते हुए इतरोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देना!"**

४ ऊर्ध्वशोचिः- अग्निका उर्ध्वज्वलन प्रसिद्ध ही है। अग्निकी ज्वालायें सदा ऊपरकी ओर ही उठती हैं। उसी तरह मनुष्य सदा ऊपर उठनेका ही प्रयत्न करे। संकटके समयमें भी उसका प्रयत्न सदा उन्नतिकी तरफ ही रहे। अथर्ववेदका एक मंत्र है-

"उद्यानं ते पुरुष नावयानं" ८।१।६

"हे पुरुष। उन्नति ही तेरा लक्ष्य है अवनति नहीं। इस प्रकार अग्नि का चौथा नियम है- **"सदा उन्नतिके लिए प्रयत्न करना।"**

५ सर्वतः शोचि- यों अग्निकी शिखायें सदा ऊपर की तरफ ही जलती है, पर उसका तेज चारों ओर फैलता है। वह अपने चारों ओर के अन्धकारको हटाती हुई जलाती है। इसी प्रकार मनुष्य सदा उन्नतिकी ओर प्रयत्न करे, पर अपने तेजसे अपने चारों ओरके अन्धकारको दूर करता हुआ उन्नति करे।

६ मित्रः इव जन्यः- यह अग्नि सबका मित्र है अर्थात् सबका हित करनेवाला है। मनुष्य भी उसी तरह सबका हित करे।

७ अदब्धव्रतः- अग्नि अपने नियमोंका पालन करनेमें कभी भी आलस्य नहीं करता। इसीलिए उसके नियमोंको कोई तोड नहीं सकता।

इस प्रकार अग्नि देव के नियम हैं। इन नियमोंके अनुसार चलनेवाला भी अग्निके समान तेजस्वी और दीप्तिमान बनता है।

अग्निका स्थान

मनुष्य शरीर में प्राणाग्निका स्थान हृदय है, ऐसा ऋग्वेदका कथन है। प्राण हृदयमें रहता हुआ हृदयकी गतिको नियमित करता है। इस प्रकार सारे शरीरको धारण करता है। वह-

१ अन्तः इयते- (६४) लोगोंके हृदयोंमें विचरता है। इसीलिए प्राणको "हृदयमें सन्निविष्ट" बताकर उसे "हृदय गुहाका अधिपति" कहा है। अग्निसे अधिष्ठित होनेके कारण हृदयको केन्द्र बताया गया है। इसीतरह समाजमें ज्ञानी केन्द्रस्थान हो।

शोभाओंका धारक

१ अत्रि स्वराज्यं अग्निं अनु विश्वाः श्रियः अधि दधे- (७६) शत्रुओंका विनाशक तथा स्वयं प्रकाशक अग्नि संपूर्ण शोभाओंका धारक है। शोभाको वही मनुष्य धारण कर सकता है जो शत्रुओंका विनाशक हो तथा स्वयं प्रकाशमान् है। समाजमें जबतक शत्रु रहेंगे, तबतक न वह समाज उन्नतिशील हो सकता है, न तेजस्वी ही हो सकता है। अतः समाजमें रहनेवाले विद्वानोंको चाहिए कि वे समाजकी अवनतिमें कारण बननेवाले शत्रुओंका विनाश करके समाजको तेजस्वी बनायें, इस प्रकार स्वयं भी तेजस्वी होकर स्वराज्यकी स्थापना करें।

ऋषियोंका आविष्कार

दूसरे मंडलके पहले मंत्रमें एक चरणको देखनेसे ऋषियोंकी वैज्ञानिकताका पता चलता है। वह मंत्रचरण यह है।

हे अग्ने! त्वं अद्भयः अश्मनः वनेभ्यः परि- (१) हे अग्ने! तू जलों, पत्थरों और वृक्षोंसे उत्पन्न होता है।

ऋषिगण इस बातसे सम्यक् परिचित थे कि पत्थरमें अग्नि है और पत्थरोंके द्वारा अग्नि उत्पन्न की जा सकती है। आधुनिक पुरातत्त्ववेत्ता यह जो कहते हैं कि आगका आविष्कार बहुत बादमें हुआ और वैदिक ऋषि अग्निके आविष्कारकी पद्धतिसे अनभिज्ञ थे, उनकी मान्यता इस मंत्र भाग से खंडित हो जाती है। पत्थरसे आगको उत्पन्न करनेकी रीति वे जानते थे।

इसी तरह वे लकडियोंसे भी अग्नि उत्पन्न करना जानते थे। प्राचीन कालमें यज्ञके लिए वही अग्नि पवित्र मानी जाती थी कि जो अग्नि पत्थरको घिसकर अथवा अरणियोंको मथकरे उत्पन्न की जाती थी। एक अधरारणि होती थी, उस अरणीके बीचोबीच एक छोटासा गड्ढा होता था, उसमें एक दण्ड, जिसे उत्तरारणि कहा जाता था, डालकर मंथन करते थे। उन दोनों अरणियोंके रगड खानेसे आगकी चिनगारियां प्रकट होती थीं और उन चिनगारियों से यज्ञाग्नि प्रकट की जाती थी। इसी तरह दो पत्थरके टुकडोंको आपसमें टकराने पर चिनगारियां प्रकट होती थीं और उनसे यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती थी। इस प्रकार पत्थरों तथा लकडियोंके द्वारा अग्नि प्रकटानेकी विद्यासे ऋषिगण अच्छी तरह परिचित थे। पत्थर और लकडीसे तो अग्नि प्रकटानेकी बात तो समझमें आ सकती है, पर **"अद्भयः परि"** अर्थात् जलसे अग्नि प्रकटानेकी बात समझमें नहीं आती, जलसे अग्नि प्रकट करनेकी रीति ऋषियोंने नहीं बताई। आज तो हम जलसे बिजलीरूपी अग्नि प्रकट करनेकी विद्यासे भलीभांति परिचित हैं। आज जलविद्युत् की अग्निसे भोजन पकाना आदि सभी काम कर सकते हैं। पर वैदिक कालमें ऋषिगण किस प्रकार जलसे अग्नि उत्पन्न करते थे, यह संशोधनीय है। संभवतः आजकी ही पद्धति किसी और दूसरे रूपमें रही हो। बहरहाल वह निश्चित है कि ऋषियोंने उस समयतक अग्निका आविष्कार कर लिया था और उसका उपयोग करना वे जान गए थे।

इस भागमें इस प्रकार अग्निका वर्णन किया है, इस वर्णनको देखकर मनुष्य अग्निके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके अग्निके समान बननेका प्रयत्न करें। अब हम इन्द्रका वर्णन देखेंगे-

इन्द्रकी महिमा

वेदोंमें अग्नि ज्ञानीका प्रतिनिधित्व करता है, इसीलिए उसके मंत्रोंमें ज्ञानकी महिमा अधिक गाई गई है। इन्द्र क्षत्रिय या राजाका प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसके मंत्रोंके द्वारा ऋषियोंने राजा तथा क्षत्रियवीरोंके लिए उपयुक्त बोधपाठ दिए हैं। अब उन बोधोंको हम देखेंगे-

देवोंका राजा

पुराणों तथा अन्य प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथोंमें इन्द्रको देवोंका राजा कहा है। यह पद इसने किस तरह प्राप्त किया, इसका वर्णन ऋग्वेदकी एक ऋचा इस तरह करती है-

१ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः- (१११) अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है। वह बहुत बलशाली है, इसीलिए वह इन्द्र बना।

इन्द्रकी व्युत्पत्ति है- **इन् + द्र** अर्थात् जो शत्रुओंको भगाता है। इन्द्रने शत्रुओंका विनाश करके देवोंकी रक्षा की, इसलिए देवोंने उसे अपना राजा चुना। इसी तरह जो वीर शत्रुओंका विनाश करके प्रजाकी रक्षा करेगा, उसे ही प्रजा अपना राजा चुनेगी। वह वीर इतना बलशाली है कि-

२ शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्-(१११) उसके बलको देखकर द्यु और पृथ्वीलोक भी कांपते हैं।

३ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषयत्- (१११) मनस्वी इन्द्रने पैदा होते ही अपने कर्मोंसे देवोंको प्रसन्न किया।

जो वीर अपने शौर्यके कर्मोंसे राष्ट्रके लोगोंको प्रसन्न करता है, प्रजायें उसे ही अपना राजा मानती हैं।

वीरका लक्ष्य

१ यः दासं अधरं अकः, लक्षं जिगीवान्- **(११४)** इस इन्द्रने दासको नष्ट किया और अपने लक्ष्यको जीत लिया। दास नामक एक असुर था, देवोंको दास बनाना ही उसका काम था। इन्द्रने उस दासको मारकर स्वातंत्र्य प्राप्तिरूप अपने लक्ष्यको जीत लिया अर्थात् दासको मारकर उसने सारे देवोंको स्वतंत्र बनाया। इसीतरह राष्ट्रके वीरका लक्ष्य अपने देशकी स्वतंत्रता ही होनी चाहिए। जो शत्रु देशके नागरिकोंको दास बनाना चाहते हैं, उन शत्रुओंको राजा नष्ट करे। देशमें दासप्रथा न रहे, इस बातकी तरफ ध्यान देना वीरका कर्तव्य है।

२ सः इन्द्रः अर्यः पुष्टीः आ मिनाति- (११५) वह शत्रुओंकी धन सम्पत्तिको नष्ट कर देता है। वीर अपने शत्रुओंकी धन सम्पत्तिको नष्ट कर दे। इस प्रकार उनकी आर्थिक स्थितिको कमजोर कर दे।

३ अच्युतच्युत् स इन्द्रः- (११९) जो वीर अपने स्थान पर दृढतासे खडा होनेके कारण हिलाया नहीं जा सकता, उसे भी जो हिला देता है, वह इन्द्र है। वही वीर ऐश्वर्यवान् हो सकता है।

४ द्यावापृथिवी अस्मै नमेते- (१२३) द्युलोक और पृथ्वीलोक भी इस इन्द्र के सामने झुकते हैं।

मनुष्योंका रक्षक

१ सः नरां पाता- (१९९) वह इन्द्र मनुष्योंका रक्षक है।

२ त्वायतः जनान् अभिष्टिपा असि- (१९८) इस इन्द्रकी शरणमें जानेवालेकी वह रक्षा करता है।

३ देवः श्रुतः नाम दस्मतमः इन्द्रः मनुषे ऊर्ध्वः भुवत्- (२०२) तेजस्वी, प्रसिद्ध, यशस्वी और सुन्दर इन्द्रकी रक्षा करनेके लिए हमेशा तैय्यार रहता है।

यह इन्द्र अपनी शक्तिका उपयोग सदा लोगोंकी रक्षा करनेके कार्यमें ही करता है। उसीतरह वीर भी अपनी शक्तिका उपयोग प्रजाओंकी रक्षा करनेके कार्यमें ही करे।

गायोंका रक्षक

इन्द्रके लिए ऋग्वेदमें "गोपा" शब्द आया है, "गो-पा" का अर्थ है "गायों की रक्षा करनेवाला।" इन्द्र गायों के रक्षणकर्ताके रूपमें ऋग्वेदमें प्रसिद्ध है। कथा है कि एक बार पणियोंने देवोंकी सब गायें चुराकर एक गुहामें बंद कर दीं, तब इन्द्रने उन गायों का पता लगाकर पणियोंका संहार करके उन गायोंको मुक्त किया। इन्द्रने गायों को इसीलिए उत्पन्न किया कि मानव उन गायोंका दूध पीयें।

१ उस्त्रियायां यत् स्वाद्मं संभृतं सीं विश्वं भोजनाय अदधात्- (२७२) गौओंमें जो मीठा दूध है, वह सबके भोजनके लिए है। दूध स्वयंमें एक भोजन है। वह अन्न है। अन्नमें जितनेभी कुछ शक्तिप्रदायक तत्त्व हैं, वे सभी तत्त्व दूधमें हैं। इसीलिए दूधको भोजन कहा है। वेदोंमें सर्वत्र गौका उल्लेख है और गोदुग्ध पीनेका ही आदेश है। "राष्ट्रमें सर्वत्र हृष्टपुष्ट गायें विचरें, हरी हरी घास खायें और शुद्ध पानी पियें" ऐसा वर्णन वेदोंमें है। राष्ट्रकी प्रजायें गोदुग्ध पीकर हृष्टपुष्ट हों और शत्रुओंसे राष्ट्रकी रक्षा करके देशको उन्नत करें।

"**गो-पा**" का एक दूसरा भी अर्थ है गाय अर्थात् इन्द्रियोंका रक्षक। **गच्छति इति गौः** इस व्युत्पत्तिके अनुसार विषयोंमें अत्यधिक विचरनेके कारण इन्द्रियोंकी एक संज्ञा "गौ" भी है। इन गायोंकी रक्षा करनेवाला शरीरस्थ जीवात्मा है। जीव इन्द्र है और उसकी शक्ति चक्षु आदि इन्द्रियां हैं इन इन्द्रियों की रक्षा इन्द्र करता है। जबतक आत्मा शरीरमें रहती है, तभी तक इन इन्द्रियोंकी शक्ति भी अक्षुण्ण रहती है। तथा आत्माके अदृश्य होनेके साथ ही इन्द्रियोंकी शक्ति भी समाप्त हो जाती है।

इन इन्द्रियोंमेंसे एक प्रकारका रस चूता रहता है, इस रसको पचानेसे यह शरीर स्वस्थ बनता है। यह रस ही इन इन्द्रियरूपी गायोंका दूध है। इस दूध की रक्षा इन्द्र करता है और शरीरको पुष्ट बनाता है।

१ स अर्कैः हव्यैः उस्त्रियाः असृजत्- (२९१) उस इन्द्रने पूज्य तत्त्वोंसे संपन्न गायोंको उत्पन्न किया। गायोंमें निहित तत्त्व पूज्य होते हैं। आज भी हिन्दुधर्ममें पंचगव्य (गायके दूध, दही, घी, मूत्र, गोबर) को अत्यन्त पूज्य माना जाता है, और पवित्र होनेका एक सर्वोत्तम साधनके रूपमें इनकी प्रतिष्ठा है। इस प्रकार गायमें पूज्य तत्त्व सन्निहित हैं।

इसी तरह गौरूपी इन्द्रियोंमें भी उत्तम तत्त्व हैं। इन्द्रियोंके भीतर अपारशक्ति छिपी हुई है। इनमें उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनों तरहकी शक्तियां हैं। यदि निकृष्ट शक्तियों को प्रोत्साहन मिला तो मनुष्य राक्षस बन जाता है और उत्कृष्ट शक्तियोंको प्रोत्साहन मिलने पर देव भी बन सकता है, और इन्हीं शक्तियोंके कारण वह पूज्य भी बन सकता है। इसप्रकार ये इन्द्रियें पूज्य तत्त्वोंसे सम्पन्न हैं। इन्हीं पूज्य तत्त्वोंके कारण ये इन्द्रियां भी पूज्य हैं। पर ये ही पूज्य इन्द्रियां जब विषयोंकी ओर दौडती हैं, तो स्वयं भी अपूज्य बनकर मनुष्यको भी अवनत करके उसे समाजमें तिरस्कृत बना देती हैं। विषयोंकी ओर भागना इनका स्वभाव ही है। उपनिषद्का एकवचन है-

पराञ्च खानि व्यतृणत् स्वयंभू
तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मा।
कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्
आवृत्तचक्षुरमृतत्त्वमिच्छन् ॥ उप. ॥

स्वयंभू विधाताने इन इन्द्रियों को बाहर अर्थात् विषयोंकी ओर दौडनेवाली ही बनाया, इसलिए ये बाहरकी ओर ही दौडती हैं अन्दरकी तरफ नहीं। पर कोई बुद्धिमान जब

इन्द्रियोंको आत्माकी तरफ दौडा देता है, तब उसे अमृतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है।

इन इन्द्रियोंमें शक्तिका अनन्त सागर है, पर जब तक ये सांसारिक विषयवासनाओंकी और दौडती हैं, तब तक उनकी शक्ति रिसरिस कर व्यर्थ होती जाती है, पर जब उनके मुख अन्दरकी ओर मोड दिए जाते है, तब वही शक्ति अन्दर संचित होने लगती है, और मनुष्य बहुत शक्तिशाली हो जाता है।

आर्योंके लिए भूमिदान

इन्द्र सदा आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंकी ही रक्षा करता है। उन्हें हर तरहसे सुखी करता है, इन्द्रकी प्रतिज्ञा है-

१ अहं भूमिं आर्याय अददां- (४।२६।२) मैंने यह भूमि आर्योंके लिए ही दी है।

इस भूमिपर शासन करनेका अधिकार आर्योंका ही है। वेदोंमें आर्य और दस्यु शब्द किसी विशेष जाति या धर्मावलम्बी लोगोंके वाचक नहीं हैं, अपितु आर्यका अर्थ है श्रेष्ठ पुरुष और दस्युका अर्थ है दुष्ट। जो स्वयं भी श्रेष्ठ नियमोंके अधीन रहकर लोगोंको उत्तम रीतिसे सुख पहुंचाये, वह आर्य है, और जो स्वयं भी उद्धत तथा उच्छृंखल होकर लोगोंको सताये, वह दुष्ट है। आर्योंकी शक्ति लोगोंकी रक्षा करनेके लिए है तो दस्युओंकी शक्ति लोगोंको पीडा देनेके लिए। आर्योंमें यह शक्ति विनम्रता पैदा करती है, तो दस्युओंमें घमंड। इसी कारण वेदमें कहा है कि आर्य ही इस पृथ्वीपर शासन करें। जब आर्य और दस्युओंके बीच युद्ध होता है तो उस युद्धमें इन्द्र आर्योंकी ही सहायता करता है और दस्युओंका नाश करता है। आर्य और दस्यु तो हमेशासे होते आए है और आगे भी होते रहेंगे। इनमें परस्पर युद्ध भी होते रहे हैं, और होते रहेंगे। पर वीरोंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे राष्ट्रपर दस्युओंका शासन कभी न होने दें। वीर इस बातको ध्यानमें रखें कि राष्ट्रमें आर्योंकी ही संख्या ज्यादा हो। वे सत्पुरुषोंकी दुष्टोंसे रक्षा करें।

२ अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं- (४।२६।२) यह इन्द्र दानशील मनुष्योंको हर तरहके सुख प्रदान करता है। राष्ट्रमें दान कर्मको बढावा मिलना चाहिए। देशमें कोई दुःखी या दीन न हों, सभी सुखी हों। देशवासियोंकी दीनता और गरीबी दानके द्वारा ही दूर की जा सकती है। इसलिए राजा स्वयं भी दान करे और प्रजाओं को भी दानकर्मकी तरफ प्रेरित करे।

इस प्रकार ऋग्वेदमें इन्द्रके गुणोंका वर्णन है। इन्द्र के गुण वीरों और राजाओंके लिए आदर्शरूप हैं। राष्ट्रके सैनिकोंके लिए आदर्शरूप देव **मरुत्** हैं। ये सभी मरुत् समान हैं, न इनमें कोई बड़ा है, न छोटा है। सभी उत्तम वस्त्रोंसे और शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित रहते हैं। अपने निवासस्थानोंमें सभी भाइयोंके समान रहते हैं, आदि वर्णन मरुतोंके है। इन गुणोंको अपनाकर सैनिक मरुत् देवोंके समान बने।

इसी प्रकार **अश्विनौ** देवोंके गुण राष्ट्रके वैद्योंके लिए आदर्शरूप है। जिस तरह अश्विनौ देव देवोंके घर घरमें जाकर उनकी पूछताछ तथा चिकित्सा करके देवोंका स्वास्थ्य उत्तम रखते हैं, उसी प्रकार वैद्य भी प्रजाओंके घर घर जाकर उनके स्वास्थ्यकी परीक्षा करें और उत्तम चिकित्सा करके राष्ट्रकी प्रजाओंके स्वास्थ्यको उत्तम रखें।

उषा स्त्रियोंके लिए आदर्शरूप है। वह सबेरे शीघ्र उठकर सारे विश्वको प्रकाशित करती है, साफ करती है और स्वयं भी उत्तम उत्तम वर्ण धारण करके आकर्षक बनती है। इसी तरह राष्ट्रकी स्त्रियां मुंह सबेरे उठकर घरमें उजाला करें, साफसफाई करके घरको उत्तम बनायें। घरके बच्चोंको साफ रखें, इस प्रकार सब स्वच्छ करनेके बाद स्वयं भी रंगबिरंग वस्त्र पहनकर आकर्षक बनें।

इस तरह वेदोंने देवताओंके गुण वर्णनके बहाने मनुष्योंके लिए अनेक उत्तम उपदेश दिएं हैं। इन गुणोंके अनुसार यदि राष्ट्रकी प्रजायें अपना जीवन बनायें तो वह देश स्वर्ग बन सकता है। वेदोंका उपदेश एकदेशी नहीं है अपितु सर्वदेशी है अर्थात् वेदोंके उपदेश केवल भारतवासियोंके लिए ही हो, यह बात नहीं है अपितु, वे सारे संसारके लिए है। वेदोंकी दृष्टिमें हिन्दु, मुसलमान, ईसाई आदि भेद नहीं हैं, उसके लिए तो विश्वके सभी मानव उसी एक अमृत पिताके अमृत पुत्र हैं, फिर चाहे कोई हिन्दु हो, या मुसलमान या ईसाई। वेदोंके उपदेशोंके अनुसार चलकर कोई भी अपने जीवनको उन्नत कर सकता है और आर्य बन सकता है। इस दृष्टिसे वेदोंका अध्ययन करना चाहिए।

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

द्वितीय-मण्डल

[१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- अग्निः। छन्दः- जगती।]

१ त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ १ ॥
२ तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ- [१] हे (**नृणां नृपते अग्ने**) मनुष्योंके स्वामी अग्ने! (**त्वं द्युभिः जायसे**) तू तेजोंसे युक्त होकर उत्पन्न होता है। (**त्वं आशुशुक्षणिः शुचिः**) तू शीघ्र सर्वत्र दीप्तिमान् और सबको शुद्ध करनेवाला है। (**त्वं अद्भ्यः अश्मनः परि**) तू जल और पत्थरसे उत्पन्न होता है। (**त्वं वनेभ्यः, त्वं ओषधीभ्यः**) तू वनोंसे और औषधियोंसे उत्पन्न होता है ॥१॥

[२] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**होत्रं तव**) होताका काम तेरा है, (**पोत्रं तव**) पवित्रताका काम तेरा है, और (**ऋत्वियं नेष्ट्रं तव**) ऋत्विक् नेष्टाका काम भी तेरा है। (**त्वं अग्नित्**) तू अग्निध्र है, जिस समय तू (**ऋतायतः**) यज्ञकी इच्छा करता है उस समय (**प्रशास्त्रं तव**) प्रशास्ताका भी काम तेरा है, (**त्वं अध्वरीयसि**) तू अध्वर्यु है, (**ब्रह्मा असि**) ब्रह्मा है (**च नः दमे गृहपतिः**) और हमारे घरका स्वामी है ॥२॥

भावार्थ- यह अग्रणी तेजस्वी और प्रकाशमान होनेके कारण सबको शुद्ध करनेवाला है, यह जल, पत्थर, वन और औषधियोंसे उत्पन्न होता है ॥ ॥१॥

अग्नि ही होता, पोता, (पवित्र करनेवाला) नेष्टा, अग्निध्र, प्रशास्ता (शासन करनेवाला) अध्वर्यु, ब्रह्मा और यजमान है। इस मंत्रमें ८ ऋत्विजोंके नाम बताए हैं ॥२॥

३ त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या ॥ ३ ॥
४ त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥ ४ ॥
५ त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥ ५ ॥

अर्थ- [३] हे (**अग्ने त्वं सतां वृषभः**) अग्ने ! तू श्रेष्ठोंका बलवान् नेता (**इन्द्रः असि**) इन्द्र है। (**त्वं विष्णुः उरुगायः नमस्यः**) तू व्यापक होनेसे विष्णू और बहुतोंसे स्तुत्य है। हे (**ब्रह्मणस्पते, त्वं रयिवित् ब्रह्मा**) वेदके पालक अग्ने ! तू धनका वेत्ता ब्रह्मा है। हे (**विधर्तः पुरंध्या सचसे**) धारण करनेवाले अग्ने ! तू विविध प्रकारकी बुद्धियोंसे युक्त मेधावी है ॥३॥

१ **सतां वृषभः इन्द्रः**- यह अग्नि सज्जनोंमें बलवान् नेता होने के कारण इन्द्र है।

२ **उरुगायः विष्णुः**- यह अग्नि सर्व व्यापी होनेसे विष्णु है।

३ **रयिवित् ब्रह्मा**- यह अग्नि ज्ञानादि ऐश्वर्योंसे युक्त होनेके कारण ब्रह्मा है। और

४ **पुरंध्या सचते**- नाना प्रकारकी बुद्धियोंसे युक्त होनेके कारण मेधावी है।

[४] हे (**अग्ने ! त्वं धृतव्रतः वरुणः राजा**) अग्ने ! तू व्रतका धारण करनेवाला वरुण राजा है। तू (**दस्मः ईड्यः मित्रः**) सुन्दर और स्तुतिके योग्य मित्र है। (**त्वं सत्पतिः अर्यमा भवसि यस्य संभुजं**) तू सज्जनोंका पालक अर्यमा है जिसका दान सर्वव्यापी है। (**त्वं अंशः, देव विदथे भाजयुः**) तू सूर्य है, अतः दिव्य गुणयुक्त अग्ने ! यज्ञमें अभीष्ट फल दे ॥४॥

१ **धृतव्रतः वरुणः**- नियमोंमें चलनेवाला मनुष्य ही वरणीय होता है।

२ **सत्पतिः अर्यमा** -सज्जनोंका पालक ही श्रेष्ठ आर्य होता है।

[५] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**त्वं विधते सुवीर्यं त्वष्टा**) तू अपनेको धारण करनेवाले को उत्तम वीर्य देनेवाला त्वष्टा है। (**ग्नावः तव**) सम्पूर्ण स्तुतियाँ तेरी ही हैं। हे (**मित्रमहः**) हितकारी तेजवाले ! तू (**सजात्यं**) हमारा बन्धु है और हमको (**त्वं आशुहेमा स्वश्व्यं ररिषे**) तू शीघ्र उत्तम कर्मोंमें प्रोत्साहित करता तथा श्रेष्ठ अश्वयुक्त धन देता है। हे (**पुरूवसुः त्वं नरां शर्धः असि**) प्रभूत धनवाले अग्ने ! तू ही मनुष्योंका वास्तविक बल है ॥५॥

१ **विधते सुवीर्यं**-जो मनुष्य इस अग्निको अच्छी तरह धारण करता है, वह उत्तम वीर्यसे युक्त होकर पराक्रमी होता है।

२ **नरां शर्धः अस्ति**- यह अग्नि ही वास्तवमें मनुष्योंका बल है। जिस मनुष्यमें अग्नि जितना बलवान् रहता है, उतना ही बलवान् मनुष्य भी होता है।

भावार्थ- यह अग्नि ही विविध गुणोंके कारण इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और मेधावीके नामसे पुकारा जाता है ॥३॥

यह अग्नि नियमानुकूल चलनेवाला, वरणीय, सुन्दर, सबसे प्रेम करनेवाला, सज्जनोंका पालक, सर्व श्रेष्ठ और प्रकाशमान् है ॥४॥

जो इस अग्निको अच्छी तरह धारण करता है वह उत्तम वीर्यसे युक्त होकर सदा उत्साहित रहता है और अपने शत्रुओंको जीतकर अनेक प्रकारके धनैश्वर्य प्राप्त करता है इसलिए वह अग्नि ही वास्तवमें बल है ॥५ ॥

६ त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिव—स्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शंगय—स्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥ ६ ॥
७ त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥ ७ ॥
८ त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विश—स्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥ ८ ॥
९ त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नर—स्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥ ९ ॥

अर्थ- [६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं महः दिवः असु-रः रुद्रः) तू द्युलोकसे प्राणोंको देनेवाला रुद्र है। (त्वं मारुतं शर्धः) तू मरुतोंका बल है तथा (पृक्षः ईशिषे) अन्नका स्वामी है। (त्वं वातैः अरुणैः शंगयः यासि) तू वायुके समान शीघ्रगामी लोहित वर्णवाले आंखोंके द्वारा कल्याणकारीके घर जाता है। एवं (त्वं पूषा नु) तू सबका पोषण करनेवाला है (त्मना विधतः पासि) इसलिये शीघ्र कृपा करके स्वयं मनुष्योंकी हर प्रकारसे रक्षा करता है ॥६॥

१ असु-रः- (असून् प्राणान् राति-ददाति)- प्राणोंको देनेवाला प्राणदाता।

२ महः दिवः असु-रः- महान् द्युलोकसे प्राणको देनेवाली वायु नीचे उतरकर प्राणियोंको जीवन देती है।

[७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अरंकृते द्रविणोदाः) तू अपनी सेवा करनेवालेको धन देता है (त्वं देवः सविता रत्न-धा असि) तू रत्नोंको धारण करनेवाला सविता है। हे (नृपते) मनुष्योंके पालक ! (त्वं भगः वस्वः ईशिषे) तू भग देवके रूपमें धनोंका स्वामी है (यः दमे ते अविधत्, त्वं पाहि) जो अपने गृहमें तेरी सेवा करता है, उसकी तू रक्षा कर ॥७॥

[८] हे (अग्ने) अग्ने ! (विश्पतिं, त्वां विशः दमे आ) प्रजाओंके पालक तुझको प्रजायें अपने गृहमें प्राप्त करती हैं। और प्राप्त करके (राजानं सुविदत्रं त्वां ऋञ्जते) प्रकाशमान् और शोभन ज्ञान से युक्त तुझको प्रसन्न करती हैं। (सु अनीक ! त्वं विश्वानि पत्यसे) हे सुन्दर ज्वाला युक्त अग्ने ! तू विश्वका स्वामी है, तथा (त्वं दश शता सहस्राणि प्रति) तू दसों, सैकडों और हजारों फलोंको देनेवाला है ॥८॥

[९] हे (अग्ने) अग्ने ! (नरः) मनुष्य (पितरं त्वां) सबका पालन करनेवाले तुझे (इष्टिभिः) यज्ञोंसे तृप्त करते हैं और (भ्रात्राय) तेरा स्नेह पाने के लिए (तनूरुचं त्वां) शरीरको तेजस्वी बनानेवाले तुझे (शम्या) कर्मसे प्रसन्न करते हैं। (यः ते अविधत्) जो तेरी सेवा करता है, उसके लिए (त्वं पुत्रः भवसि) तू दुःखोंसे पार करानेवाला होता है। तू (सखा सुशेवः आ धृषः पासि) मित्र, सुखरूप और वीर होकर लोगोंकी रक्षा करता है ॥९॥

भावार्थ - यह अग्नि ही प्राणदाता रुद्र है, मरुतोंमें बल भी इसी अग्निके कारण ही है, यह अपनी ज्वालाओंसे सबका पोषण करके सबकी रक्षा करता है ॥६॥

जो अग्निकी अपने घरमें सेवा करता है वह धन प्राप्त करता है और अग्नि भी उसकी हर तरहसे रक्षा करता है ॥७॥

इस उत्तम ज्ञानसे युक्त अग्निको लोग अपने घरोंमें प्रज्वलित करते हैं। यह सारे संसारका स्वामी है ॥८॥

यह अग्नि पिताके समान पूजा करनेवाले के लिए पिता रूप, भाईके समान पूजा करनेवालेके लिए भाईरूप, पुत्रके समान प्यार करनेवालेके लिए पुत्ररूप और मित्रके समान स्नेह करनेवाले के लिए मित्ररूप होता है ॥९ ॥

१० त्वमग्न ऋभुराके नमस्य१स्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥ १० ॥
११ त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥ ११ ॥
१२ त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥ १२ ॥
१३ त्वामग्न आदित्यास आस्यं१ त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥ १३ ॥

अर्थ- [१०] हे (अग्ने) अग्ने ! (**त्वं ऋभुः आके नमस्यः**) तू अत्यन्त तेजस्वी होता हुआ भी पाससे स्तुतियों के योग्य है। (**त्वं क्षुमतः वाजस्य रायः ईशिषे**) तू सर्वत्र प्रसिद्ध अन्न और धनका स्वामी है। (**त्वं दक्षि विभासि**) तू काष्ठोंको जलाता और प्रकाशित होता है, (**त्वं दानवे यज्ञं आतनिः विशिक्षुः असि**) तू दानशीलके यज्ञको विस्तृत करके उसे पूर्ण करनेवाला है ॥१०॥

१ **त्वं ऋभुः आके नमस्यः**- यह अग्नि बहुत तेजस्वी होता हुआ भी पाससे प्रणाम करने योग्य है।

[११] हे (अग्ने) अग्ने ! हे (देव) देव ! (**त्वं दाशुषे अदितिः**) तू दान देनेवालेके लिये अदिति है। (**त्वं होत्रा भारती, गिरा वर्धसे**) तू होता और वाणी है इसलिये स्तुति द्वारा बढता है। (**त्वं शतहिमा इळा दक्षसे**) तू सैंकडों वर्षोंकी भूमि है इसलिये दान करनेमें समर्थ है। हे (**वसुपते**) धनके पालक ! तू (**वृत्रहा, सरस्वती**) वृत्रका मारनेवाला और सरस्वती है ॥११॥

[१२] हे (अग्ने) अग्ने ! (**सुभृतः त्वं उत्तमं वयः**) अच्छे ढंगसे पोषित हुआ हुआ तू श्रेष्ठ अन्न है। (**तव स्पार्हे संदृशि वर्णे श्रियः आ**) तेरे स्पृहणीय और सम्यक् दर्शनीय वर्णमें ऐश्वर्य रहता है। (**त्वं वाजः प्रतरणः, बृहन् असि**) तू अन्नकी समृद्धि देनेवाला पापसे बचानेवाला और महान् है; तथा (**त्वं रयिः बहुलः विश्वतः पृथुः**) तू धन एवं ऐश्वर्यकी बहुलतासे सर्वत्र विस्तीर्ण है ॥१२॥

१ **तव स्पार्हे संदृशि वर्णे श्रियः आ**- इस अग्निकी सुन्दर और दर्शनीय ज्वालाओंके वर्णमें ऐश्वर्य रहता है।

[१३] हे (अग्ने) अग्ने ! (**आदित्यासः त्वां आस्यं**) आदित्योंने तुझे अपना मुख बनाया । हे (**कवे**) दूरदर्शी ! (**शुचयः त्वां जिह्वां चक्रिरे**) पवित्र देवताओंने तुझको अपनी जीभ बनाई। (**रातिषाचः अध्वरेषु त्वां सश्चिरे**) दान देनेवालोंमें उत्तम देवगण यज्ञमें तेरा आश्रय लेते हैं, और (**त्वे आहुतं हविः देवाः अदन्ति**) तुझमें आहुति रूपसे दिये गये हव्यको देवतालोग खाते हैं ॥१३॥

१ **आदित्यासः आस्यं**- यह अग्नि आदित्योंका मुख रूप है।

२ **शुचयः जिव्हां**- पवित्र करनेवाले देवोंका यह अग्नि जीभ रूप है।

भावार्थ- यह अग्नि अत्यन्त तेजस्वी होता हुआ भी प्रिय लगता है। यह अत्यन्त प्रकाशमान् अग्नि दानशीलके यज्ञको विस्तृत कर उसे पूर्ण करता है ॥१०॥

वही अग्नि अदिति, होता, भारती, इळा, वृत्रको मारनेवाला और सरस्वती है ॥११॥

अच्छी तरह पोषित होकर यह अग्नि हर तरहके ऐश्वर्यको प्रदान करता है, क्योंकि इसकी ज्वालामें हर तरहका ऐश्वर्य रहता है ॥१२॥

यह अग्नि सब देवोंका मुख रूप है अतः यज्ञमें देवगण इसी अग्निका आश्रय लेते हैं और इस अग्निमें दी गई आहुतियोंको खाते हैं ॥१३ ॥

१४ त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥ १४ ॥
१५ त्वं तान् त्सं च प्रति चासि मज्मनाऽग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुव–दनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥ १५ ॥
१६ ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशस–मग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ ॥

[२]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- अग्निः। छन्दः- जगती।]

१७ यज्ञेन वर्धत जातवेदस–मग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥ १ ॥

अर्थ- [१४] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**विश्वे अमृतासः, अद्रुहः देवाः**) सब अमर, द्रोह न करनेवाले देवगण (**त्वे आसा, आहुतं हविः अदन्ति**) तेरे मुखसे ही हविको खाते हैं। (**मर्तासः त्वया आसुतिं स्वदन्ते**) मनुष्य भी तेरे कारण ही अन्नादिका आस्वादन करते हैं। (**वीरुधां गर्भः शुचिः त्वं जज्ञिषे**) लता आदिके मध्य अवस्थित होकर पवित्र तू अन्नादिको उत्पन्न करता है ॥१४॥

[१५] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**त्वं मज्मना तान् सं च असि च प्रति**) तू अपने बलसे उन प्रसिद्ध देवोंसे मिल भी जाता है और पुनः उनसे पृथक् भी हो जाता है, (**च सुजात देव महिना प्ररिच्यसे**) तथा उत्तम प्रकारसे उत्पन्न दिव्य गुण युक्त हे अग्ने! अपनी महिमाके कारण उन सबोंसे भी अधिक श्रेष्ठ है। (**यत् अत्र पृक्षः ते वि भुवत्**) जो कुछ भी अन्न यहां तुझमें डाला जाता है, यह (**रोदसी उभे द्यावा पृथिव्यौ अनु**) विस्तृत द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनोंके बीचमें फैल जाता है ॥१५॥

१ **यत् पृक्षः ते अत्र वि भुवत् द्यावापृथिव्यौ अनु-** जो भी अन्न इस यज्ञ में तेरे अन्दर डाला जाता है, वह द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैल जाता है।

[१६] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**ये सूरयः स्तोतृभ्यः**) जो मेधावी लोग स्तोताओंको (**गो अग्रां अश्वपेशसं रातिं**) प्रमुख गौ और घोडे आदि पशुओंको (**उपसृजन्ति**) दान देते हैं (**तान् च अस्मान् वस्यः आ प्र हि नेषि**) उन दानियोंको तथा हमको श्रेष्ठ स्थानमें शीघ्र ले चल। (**सुवीराः विदथे बृहद् वदेम**) वीर सन्तानसे युक्त हुये हम यज्ञमें श्रेष्ठ स्तुतियां करें ॥१६॥

[२]

[१७] हे यज्ञ करनेवालो! तुम (**जातवेदसं समिधानं**) उत्पन्न हुए पदार्थोंको जाननेवाले, समिधासे प्रदीप्त होनेवाले (**सुप्रयसं स्वर्ण-रं द्युक्षं होतारं**) उत्तम अन्नसे युक्त, सोनेको देनेवाले तेजस्वी देवोंको बुलानेवाले (**वृजनेषु धूर्षदं**) युद्धोंमें बलको देनेवाले (**अग्निं यज्ञेन वर्धत**) अग्निको यज्ञसे बढाओ तथा (**हविषा तना गिरा यजध्वं**) हवि और स्तुतियोंसे उसकी पूजा करो ॥१॥

भावार्थ- इसी अग्निके आश्रयसे देव गण और मनुष्य अपना अपना अन्न खाते हैं। यह अग्नि सब वृक्ष वनस्पतियोंके अन्दर रहकर अपनी उष्णतासे उनको बढाता है ॥१४॥

यह अग्नि देवोंके बीचमें रहता हुआ भी अपने महत्वके कारण सर्वश्रेष्ठ होकर उनसे ऊपर ही रहता है। इस यज्ञमें जो कुछ डाला जाता है, वह द्यु और पृथ्वीमें फैल जाता है ॥१५॥

हे अग्ने! स्तोताओंको गौ आदि पशु देनेवाले दानियोंको उच्च स्थानमें ले जा। और हम भी पुत्र पौत्रादियोंसे युक्त होकर यज्ञमें इस अग्निकी स्तुति करें ॥१६ ॥

१८ अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥
१९ तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥
२० तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥ ४ ॥
२१ स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद् द्यौर्न स्तृभिश्चितयद् रोदसी अनु ॥ ५ ॥

अर्थ- [१८] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**स्वसरेषु धेनवः न वत्सं**) गौशालामें गायें जैसे अपने बछडेकी इच्छा करती है उसी प्रकार (**अभि नक्तीः उषसः त्वा ववाशिरे**) मनुष्य रात्री और दिनमें तेरी इच्छा करते हैं। (**पुरुवार, संयतः दिवः इव इत् अरतिः**) अनेकोंके द्वारा माननीय तू संयत होकर द्युलोककी तरह विस्तृत होता है, (**मानुषा, युगा, क्षपः आ भासि**) मनुष्य सम्बन्धी युगोंमें तू हमेशा वर्तमान है तथा रात्रिमें भी सर्वत्र प्रदीप्त होता है ॥२॥

[१९] (**सुदंससं दिवः पृथिव्योः अरतिं**) उत्तम कर्मवाले, द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैली हुई ज्वालाओंवाले, (**रथं इव वेद्यं**) रथके समान सब ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले (**शुक्रशोचिषं**) तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त (**क्षितिषु मित्रं न प्रशस्यं**) प्रजाओंमें मित्र के समान प्रशंसनीय (**तं**) उस अग्निको (**देवाः**) देवगण (**रजसः बुध्ने नि एरिरे**) लोकोंके श्रेष्ठ स्थानमें स्थापित करते हैं ॥३॥

१ **सुं दंससं देवाः बुध्ने एरिरे-** उत्तम कर्म करनेवालेको विद्वान् सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं।

[२०] (**रजसि उक्षमाणं**) अन्तरिक्षमें जल गिरानेवाले (**चन्द्रं इव सुरुचं**) चन्द्र के समान आनन्ददायक (**पृश्न्याः पतरं**) पृथ्वीपर सर्वत्र गमन करनेवाले (**अक्षभिः चितयन्तं**) ज्वालाओंसे ज्ञात होनेवाले (**पाथः न पायुं**) जलके समान रक्षा करनेवाले (**उभे जनसी अनु**) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकमें व्याप्त (**तं**) उस अग्निको लोग (**स्वे दमे ह्वारे आ दधुः**) अपने घरमें एकान्त स्थानपर स्थापित करते हैं ॥४॥

१ **चन्द्रं न सुरुचम्-** चन्द्र के समान आनन्ददायक, सोनेके समान तेजस्वी।

[२१] (**सः होता, विश्वं अध्वरं परिभूतु**) वह अग्नि होम निष्पादक होकर सारे यज्ञको सब ओर से व्याप्त करता है। (**उ तं मनुषः हव्यैः गिरा ऋञ्जते**) उसको मनुष्य हव्य और स्तुति द्वारा अलंकृत करते हैं। (**हिरिशिप्रः वृधसानासु जर्भुरत्**) तेजस्वी ज्वालाओंवाला अग्नि बढती हुई औषधियोंके बीचमें पुनः पुनः जलकर (**स्तृभिः द्यौः न, रोदसी अनुचितयत्**) जैसे नक्षत्रोंसे आकाश प्रकाशित होता है, उसी प्रकार अपने प्रकाशसे द्यावापृथ्वीको प्रकाशित करता है ॥५॥

भावार्थ- हे याजको ! तुम ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले, समिधा प्रदीप्त होनेवाले, सोने आदि ऐश्वर्य को देनेवाले, युद्धोंमें बलशाली अग्निको प्रज्जवलित करो ॥१॥

यह अग्रणी मनुष्यों द्वारा वरणीय है, क्योंकि यह महान् और सदा तेजस्वी है ॥२॥

उत्तम कर्म करनेवाले, ऐश्वर्यदायक प्रजाओंके मित्र इस अग्निको सब विद्वान मिलकर उत्तम स्थान पर स्थापित करते हैं ॥३॥

वह अग्नि अन्तरिक्षसे वृष्टिको गिरानेवाला, पृथ्वीमें स्थित, सर्व रक्षक और आनन्द देनेवाला है, उसे सब लोग अपने घरमें स्थापित करते हैं ॥४॥

यह अग्नि यज्ञको पूरा करनेवाला होकर यज्ञको व्याप्त करता है, अतः मनुष्य उसे सुशोभित करते हैं। वह अपनी ज्वालाओंसे लोकोंको उसी तरह प्रकाशित करता है, जिस प्रकार नक्षत्र आकाशको ॥५॥

२२ स नो रेवत् समिधानः स्वस्तये संददस्वान् रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥ ६ ॥

२३ दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्व१र्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥ ७ ॥

२४ स इधान उषसो राम्या अनु स्व१र्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥ ८ ॥

२५ एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥ ९ ॥

अर्थ- [२२] हे (**देव अग्ने**) देव अग्ने ! (**सः, नः स्वस्तये रेवत् रयिं अस्मासु**) वह तू हमारे कल्याणके लिये, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले धनको हम लोगोंमें (**संददस्वान् दीदिहि**) सम्यक् प्रकारसे देकर दीप्तमान् हो तथा (**रोदसी नः सुविताय आ कृणुष्व**) द्यावापृथ्वीको हमारे लिये, सुख देनेवाला बना और (**मनुषः हव्या वीतये**) मनुष्यों द्वारा दी गई हवियां देवताओंको प्राप्त करा ॥६॥

[२३] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**नः बृहतः दाः**) हमें बहुत सम्पत्ति दे, (**सहस्रिणः दाः**) हजारों तरहके धन दे, (**श्रुत्यै वाजं दुरः नः अपा वृधि**) कीर्तिके लिये अन्नके द्वारको हमारे लिये खोल दे। (**ब्रह्मणा द्यावापृथिवी प्राची कृधि**) ब्रह्मसे अर्थात् ज्ञानसे इस द्युलोक और पृथ्वी लोकको हमारे अनुकूल कर, क्योंकि (**स्वः न शुक्रं उषसः वि दिद्युतः**) आदित्य के समान प्रकाशमान् तुझको उषायें प्रकाशित करती हैं ॥७॥

[२४] (**राम्यां उषसः अनु सः इधानः**) रमणीय उषाके पश्चात् वह अग्नि प्रज्जवलित होकर (**अरुषेण भानुना स्वः न दीदेत्**) अपने प्रकाशमान् उज्जवल तेजसे आदित्यकी तरह प्रकाशित होता है और (**मनुषः होत्राभिः**) मनुष्योंकी स्तुति द्वारा प्रशंसित होकर (**स्वध्वरः, विशां राजा अग्निः आयवे चारुः अतिथिः**) उत्तम यज्ञवाला, प्रजाओंका स्वामी, यह अग्नि मनुष्योंके लिये प्रिय अतिथिकी तरह पूज्य होता है ॥८॥

[२५] हे (**बृहत् दिवेषु अमृतेषु पूर्व्य अग्ने**) अत्यधिक तेजस्वी देवोंमें सर्व श्रेष्ठ अग्ने ! (**मानुषा**) मनुष्योंके बीचमें (**नः धीः एव पीपाय**) हमारी स्तुति ही तुझे तृप्त करती है। (**दुहाना धेनुः वृजनेषु कारवे**) पयस्विनी धेनुके समान तू यज्ञमें कर्म करनेवालेको (**त्मना, शतिनं, पुरुरूपं इषणि**) स्वयं असंख्य विविध प्रकारके धनोंको दे ॥९॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू हमें सब तरह के ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला धन दे। तथा दोनों द्यावापृथिवियोंको हमारे लिए सुखकारक बना दे ॥६॥

हे अग्ने ! उषाओं द्वारा प्रज्जवलित होकर तू हमें अनेक तरहकी सम्पत्ति और धन दे ॥७॥

उषःकालमें प्रदीप्त होकर यह अग्नि अत्यधिक प्रकाशित होता है। प्रजाओंका पालक यह अग्नि सबके लिए अतिथिवत् पूज्य है ॥८॥

हे अग्ने ! तू अत्यधिक तेजस्वी देवोंमें भी सर्वाधिक तेजस्वी है, ऐसे तुझे हमारी स्तुतियां तृप्त करती हैं। तू भी उत्तम कर्म करनेवालोंको विविध प्रकारका धन दे ॥९॥

२६ वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥ १० ॥
२७ स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥ ११ ॥
२८ उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥ १२ ॥
२९ ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥

अर्थ- [२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (**वयं अर्वता वा, ब्रह्मणा वा सुवीर्यं**) हम कुशल घोडोंसे तथा ज्ञानसे यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके (**जनान् अति चितयेम**) सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ बन जाय। (**अस्माकं उच्चा दुस्तरं द्युम्नं**) हमारी अनन्त और दूसरोंके लिये अप्राप्य धन राशि (**स्वः न पञ्च कृष्टिषु शुशुचीत**) सूर्यकी तरह पाँचों वर्णोंमें प्रकाशित हो ॥१०॥

१ **अर्वता ब्रह्मणा सुवीर्यं जनान् अति चितयेम** - घोडों एवं ज्ञानसे उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त कर हम सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ बन जाएं।

२ **अस्माकं उच्चा दुस्तरं द्युम्नं पञ्च कृष्टिषु शुशुचीत**- हमारी श्रेष्ठ और दूसरोंके लिए अप्राप्य सम्पत्ति पंच जनोंमें अत्यधिक प्रकाशित हो। **पंचकृष्टि** -ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद।

[२७] हे (**सहस्य अग्ने**) बलवान् अग्ने ! (**यस्मिन्**) जिस तुझमें (**सुजाताः सूरयः**) उत्तम कुलमें उत्पन्न विद्वान (**इषयन्त**) अन्नकी कामना करते हुए यज्ञ करते है, तथा (**यज्ञं दीदिवांसं यं**) पूजनीय और तेजस्वी जिस तुझको (**वाजिनः**) धन सम्पन्न मनुष्य (**स्वे दमे उपयन्ति**) अपने घरमें प्रज्वलित करते हैं (**सः प्रशस्यः**) वह प्रशंसनीय तू (**नः बोधि**) हमारी इच्छाओंको जान ॥११॥

[२८] हे (**जातवेदः अग्ने**) ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! (**स्तोतारः च सूरयः उभयासः ते शर्मणि स्याम**) स्तोत्रगान करनेवाले और मेधावी हम दोनों सुख प्राप्तिके लिये तेरे आश्रित हों (**नः**) हमारे लिए तू (**वस्वः पुरुश्चन्द्रस्य, भूयस प्रजावतः, रायः सु अपत्यस्य**) निवासके स्थान अतिशय आह्लादप्रद, अधिक भूत्यादि भोगपदार्थोंसे युक्त धन धान्यसे सम्पन्न और श्रेष्ठ पुत्रके द्वारा अलंकृत सम्पत्ति (**शग्धि**) तू प्रदान कर ॥१२॥

[२९] (**ये सूरयः**) जो बुद्धिमान मनुष्य (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करनेवालोंको (**गो अग्राम्**) उत्तम उत्तम गाएं (**अश्वपेशसम्**) बलयुक्त घोडे तथा (**रातिं**) धन आदि (**उपसृजन्ति**) प्रदान करते हैं, तू (**तान् अस्मान् च**) उन्हें और हमें (**वस्यः नेषि**) सम्पत्तिके मार्ग पर ले चल, (**सु वीराः**) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम (**विदथे बृहत् वदेम**) यज्ञमें तेरी अच्छी तरह प्रशंसा करें ॥१३॥

भावार्थ- हम उत्कृष्ट सामर्थ्यसे युक्त होकर सबसे श्रेष्ठ बनें और हमारी सम्पत्ति भी सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ हो ॥१०॥

हे बलसे उत्पन्न अग्ने ! तेरी उत्तम कुलोत्पन्न बुद्धिमान् अन्नकी कामनासे स्तुति करते हैं और कुछ मनुष्य पुत्रकी कामनासे स्तुति करते हैं, इसलिए हे अग्ने ! तू हमारी भी इच्छाओंको जानकर उन्हें पूर्ण कर ॥११॥

हे ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! स्तुति करनेवाले हम बुद्धिमान सुखकी प्राप्ति के लिए तेरा ही आश्रय लेते हैं, अतः तू हमें हर तरह की सम्पत्ति दे ॥१२॥

जो स्तोताओंको उत्तम घोडे, गाय और धन देता है, उसकी अग्नि सहायता करता है ॥१३ ॥

[३]

(ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- आप्रीसूक्तं=१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ७ जगती ।)

३० समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन् ॥ १ ॥
३१ नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन् मूर्धन् यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ २ ॥
३२ ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन् देवान् यक्षि मानुषात् पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युत-मिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥ ३ ॥

अर्थ- [३०] (**पृथिव्यां निहितः**) पृथ्वीमें स्थापित (**समिद्धः अग्निः**) भलीभांति प्रज्वलित अग्नि (**विश्वानि भुवनानि प्रत्यङ् अस्थात्**) सब भुवनोंके सामने स्थित होता है। (**होता पावकः प्रदिवः सुमेधाः**) हवि ग्रहण करनेवाला, पवित्र करनेवाला, अत्यन्त तेजस्वी और उत्तम बुद्धिवाला यह (**देवः अग्निः**) देव अग्नि (**अर्हन् देवान् यजतु**) स्वयं पूज्य होता हुआ देवोंकी पूजा करे ॥१॥

[३१] (**नराशंसः**) मनुष्योंसे प्रशंसित तथा (**सु-अर्चिः**) उत्तम ज्वालाओंवाला यह अग्नि (**तिस्रः दिवः धामानि**) तीनों तेजस्वी लोकोंको (**मह्ना प्रति अंजन्**) अपने सामर्थ्यसे प्रकट करता हुआ। (**घृतप्रुषा मनसा**) स्नेहयुक्त मनसे (**हव्यं उन्दन्**) हविको स्वीकार करता हुआ (**यज्ञस्य मूर्धन् देवान् सं अनक्तु**) यज्ञ के श्रेष्ठ स्थानमें अन्य देवोंके साथ संयुक्त हो ॥२॥

[३२] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**अर्हन् ईळितः**) पूजाके योग्य तू हमारे द्वारा पूजित होकर (**नः**) हमारे हितके लिए (**अद्य मानुषात् पूर्वः**) आज साधारण मनुष्योंसे पहले (**मनसा**) उत्तम मनसे (**देवान् यक्षि**) देवोंकी पूजा कर। तथा (**सः**) वह तू (**मरुतां शर्धः अच्युतं इन्द्रं**) मरुतोंके सामर्थ्य और अपने स्थानसे न हटनेवाले इन्द्रको (**आ वह**) हमारे पास ले आ। (**नरः**) हे मनुष्यो ! (**बर्हिसदं यजध्वं**) यज्ञमें बैठनेवाले अग्निका तुम यजन करो ॥३॥

भावार्थ- जब यह अग्नि यज्ञकी वेदीमें भलीभांति प्रज्वलित होता है, तब सभी लोक इस अग्निकी तरफ अपना मुंह कर लेते हैं, अर्थात् सभी प्राणी इस यज्ञमें सम्मिलित होते हैं। यह अग्नि हवि ग्रहण करनेवाला, जलवायु एवं वातावरणको पवित्र करनेवाला, अत्यन्त तेजस्वी, उत्तम बुद्धिवाला तथा दिव्य है। यह स्वयं लोगोंसे पूजित होता हुआ देव अर्थात् विद्वानोंकी पूजा करता है ॥१॥

यह अग्नि उत्तम ज्वालाओंसे युक्त होने के कारण सभी मनुष्योंके द्वारा प्रशंसित है। यह अपने प्रकाश करनेके सामर्थ्यसे सभी लोकोंको प्रकट करता है। पहले जो लोक अन्धकारमें छिपे हुए थे, उन्हें यह अग्नि अपने प्रकाशसे व्यक्त करता है। उसी समय सर्वत्र यज्ञ शुरु होते हैं और उनमें धृतमिश्रित हवियां डाली जाती हैं। इन हवियोंसे सन्तुष्ट होकर यह अग्नि सूर्य, वायु आदि अन्य देवताओंके साथ संयुक्त होता है ॥२॥

इस अग्निकी जो पूजा करता है, उसके लिए यह अग्नि हित करता है। यों तो वह सभीका हित करता है, पर उसके उपासक चाहते यही हैं कि वह अग्नि अन्य साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा पहले ही उनका हित करे। वह भी साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा विद्वानों की पूजा प्रथम करता है। अतः मनुष्योंको चाहिए कि वह अग्निकी पूजा करें ॥३॥

३३ देवं बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥ ४ ॥
३४ वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥ ५ ॥
३५ साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥ ६ ॥

अर्थ- [३३] हे (**देवबर्हिः**) दिव्य यज्ञ! तू (**राये**) हमें धन प्राप्त करानेके लिए (**अस्यां वेदी**) इस वेदी अर्थात् यज्ञ कुण्डमें (**वर्धमानं**) बढते हुए (**सुवीरं**) हमें उत्तम सन्तान प्रदान करते हुए (**सुभरं**) हमारा उत्तम रीतिसे भरण पोषण करते हुए (**स्तीर्णं**) विस्तृत हो। हे (**वसवः यज्ञियासः आदित्याः विश्वे देवाः**) सबको बसानेवाले, पूजनीय आदित्यों तथा सम्पूर्ण देवों! तुम सब (**घृतेन अक्तं इदं सीदत**) घीसे सिंचित इस यज्ञमें आकर बैठो ॥४॥

[३४] (**उर्विया**) अत्यन्त विस्तृत (**सु प्र अयनाः**) आने जाने के लिए सुखकारक (**नमोभिः हूयमानाः**) तथा नमस्कारपूर्वक बुलाये जाने योग्य जो (**देवीः द्वारः**) दिव्य द्वार हैं, उनका (**वि श्रयन्तां**) मनुष्य आश्रय ले, और (**व्यचस्वताः अजुर्याः**) परस्पर संयुक्त होनेवाले तथा कभी न टूटनेवाले ये द्वार (**वर्णं पुनानाः**) यजमानके रूपको पवित्र करते हुए (**सुवीरं यशसं**) तथा उसे उत्तम सन्तान और यश प्रदान करते हुए (**वि प्रथन्तां**) विशेष रीतिसे विस्तृत हों ॥५॥

[३५] (**नः साधु अपांसि सनता**) हमारे उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देनेवालीं (**उक्षिते**) पूजित (**वय्या इव रण्विते**) बाजे बजानेमें कुशल लोगोंके समान स्तुत होती हुई (**ततं तन्तुं सं वयन्ती**) फैले हुए धागोंको बुनती हुई (**समीची**) उत्तम प्रकारसे गति करनेवाली, (**सुदुघे**) सभी प्रकारकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली तथा (**पयस्वती**) जल आदि तत्वोंसे परिपूर्ण (**उषासानक्ता**) दिन और रात ये दोनों देवियां (**यज्ञस्य पेशः**) यज्ञके रूपको सुन्दर बनाती हैं ॥६॥

भावार्थ- यज्ञ समृद्धि का एक उत्तम साधन है, यज्ञको करनेवाला मनुष्य हमेशा उत्तम सन्तान एवं उत्तम धनधान्यसे युक्त होता है। जिस यज्ञको उत्तम घीसे सींचा जाता है, उस यज्ञमें सभी देव आकर बैठते हैं। इसीलिए यज्ञको सदा फैलाना चाहिए ॥४॥

यज्ञशालाके द्वार सभीके लिए सुखकारक हों। जो यजमान यज्ञ करता है, उसे हर तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों। यह शरीर भी एक यज्ञशाला है, जिसमें दो नाक, दो आंख, दो कान, मुख, उपस्थ और जननेन्द्रिय ये नौ द्वार हैं, जो देवी हैं और इन द्वारोंसे देवगण प्रवेश करके इस शरीरमें रहते हैं। मनुष्य इन दिव्य द्वारोंकी अच्छी तरह सुरक्षा करे ॥५॥

उषा और नक्ता ये दोनों देवियां दिन और रातकी प्रतीक हैं। ये दोनों देवियां मनुष्योंके उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देती हैं। ये दोनों देवियां बुननेमें भी कुशल हैं। क्षण, मिनट आदि काल विभाग चारों ओर फैले हुए हैं, ये कालविभाग ही मानों फैले हुए धागे हैं, इनसे ये दोनों देवियां मनुष्य के जीवन रूपी वस्त्रको बुनती हैं। ये देवियां यद्यपि परस्पर विरुद्ध हैं, तथापि परस्पर मिलकर चलती हैं। ये दोनों देवियां मानव जीवनरूपी वस्त्रको बुनती हुई मनुष्यजीवनके यज्ञको उत्तम रूपसे युक्त करती हैं ॥६ ॥

३६ दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान् यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥
३७ सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥
३८ पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९ ॥

अर्थ- [३६] (दैव्या होतारा) दिव्य गुणसे युक्त तथा देवोंको बुलानेवाले (प्रथमा विदुष्टरा वपुष्टरा) सबसे प्रथम पूजनीय अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान और सुन्दर रूपवान् दो देव (ऋचां ऋजु सं यक्षतः) ऋचाओंसे सरलतापूर्वक पूजा करते हैं। (ऋतुथा) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले दोनों देव (देवान् यजन्तौ) अन्य देवोंकी उपासना करते हुए (त्रिषु सानुषु) तीनों ही सवनोंमें (पृथिव्या नाभा) पृथिवीकी नाभि वेदिमें (सं अञ्जतः) अच्छी तरह संयुक्त हों ॥७॥

[३७] (नः धियं साधयन्ती) हमारी बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करती हुई (सरस्वती) सरस्वती (देवी इळा) दिव्य गुणसे युक्त इळा तथा (विश्वतूर्तिः भारती) सबको तृप्त करनेवाली भारती (तिस्रः देवीः) ये तीनों देवियां (इदं शरणं निषद्य) इस यज्ञ गृहमें बैठकर (स्वधया) अपनी धारणा शक्तिसे (इदं बर्हिः अच्छिद्रं पान्तु) इस यज्ञकी पूर्ण रूपसे रक्षा करें ॥८॥

[३८] (पिशंगरूपः) उत्तम सोनेके सा रंगवाला, (सुभरः) उत्तम हृष्टपुष्ट (वयः धाः) उत्तम अन्न और दीर्घायुको धारण करनेवाला, (श्रुष्टी) अत्यन्त बुद्धिमान् (वीरः) वीर तथा (देवकामः) विद्वानोंकी इच्छा करनेवाला पुत्र (त्वष्टा देवकी कृपासे) (जायते) उत्पन्न होता है। (त्वष्टा) त्वष्टा देव (अस्मे नाभिं प्रजां वि स्यतु) हमारे वंशके केन्द्र प्रजाको हमें प्रदान करे (अथ) और वह पुत्र (देवानां पाथः अपि एतु) देवोंके द्वारा बताये गए रास्ते पर चले ॥९॥

१ त्वष्टा अस्मे नाभिं प्रजां वि स्यतु- त्वष्टा देव हमें हमारे वंशको आगे चलानेवाले पुत्रको प्रदान करे।
२ अथ देवानां पाथः अपि एतु- वह पुत्र देवों या विद्वानोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चले।

भावार्थ- स्त्री पुरुष ये दो दिव्य देव हैं, जो गृहस्थाश्रममें रहते हुए, विद्वान और सुन्दर रहते हुए ऋचाओंसे यज्ञ करते हैं। ये आदर्श गृहस्थी हैं। सब गृहस्थियोंको ऋतुके अनुसार कर्म करने चाहिए। अपनी आयुके तीन सवनोंमें ये दोनों अच्छी तरह संयुक्त होकर यज्ञ करते रहें ॥७॥

सरस्वती बुद्धिकी देवी होनेसे सबकी बुद्धियोंको पवित्र करते हुए उत्तम मार्गमें प्रेरित करती है। इला अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त है तथा भारती या उत्तम वाणी सबको तृप्त करनेवाली है। इस प्रकार ये तीनों देवियां इस यज्ञगृह-रूपी शरीरमें बैठकर इस मानव जीवनरूपी यज्ञको हर प्रकारसे सुरक्षित रखें ॥८॥

त्वष्टा देवकी कृपासे प्राप्त पुत्र उत्तम सुन्दर, हृष्टपुष्ट, अन्न और दीर्घायु धारण करनेवाला, अत्यन्त बुद्धिमान, वीर और विद्वानोंकी संगतिमें रहनेवाला होता है। जो त्वष्टा द्वारा दिया गया पुत्र हमेशा विद्वानोंके द्वारा प्रदर्शित उत्तम मार्ग पर चलता है ॥९॥

३९ वनस्पतिरवसृजन्नुप स्था-दग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥ १० ॥
४० घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनि-र्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ११ ॥

[४]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४१ हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद् देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥
४२ इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३यो: ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निरतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥

अर्थ- [३९] (वनस्पतिः) वनोंका स्वामी अग्नि (अवसृजन) अपने प्रकाशको चारों ओर फैलाता हुआ (उपस्थात्) हमारे पास बैठे। (अग्निः धीभिः हविः सूदयाति) अग्नि अपनी शक्तिसे हविको तैयार करता है। (दैव्यः शमिता) दिव्यगुणयुक्त शान्त स्वभावी अग्नि (त्रिधा समक्तं हव्यं) तीन प्रकारसे तैयार की गई हविको (प्रजानन्) जानता हुआ (देवेभ्यः उप नयतु) उस हविको देवोंके पास ले जाए ॥१०॥

[४०] (अस्य योनिः घृतं) इस अग्निका मूल स्थान घी है, इसलिए (घृतं मिमिक्षे) इस अग्निको घीसे सींचता हूँ! यह अग्नि (घृते श्रितः) घी पर ही आश्रित है, (अस्य धाम घृतं) इसका तेज भी घी है। (वृषभ) हे बलवान् अग्ने ! (अनुष्वधं आ वह) हविको सब देवोंके पास पहुंचा, और उन्हें (मादयस्व) प्रसन्न कर, (स्वाहाकृतं हव्यं वक्षि) स्वाहाकार पूर्वक दी गई हविको देवों तक ले जा ॥११॥

[४]

[४१] हे मनुष्यो ! (यः देवः जातवेदाः) जो दिव्यगुण युक्त, सब भूतोंका ज्ञाता अग्नि (मित्रः इव, आदेवे जने दिधिषाय्यः भूत्) सूर्य के समान मनुष्योंसे लेकर देवोंतकका धारक है, ऐसे (वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं) तुम्हारे लिये अत्यन्त दीप्तिसे युक्त, निष्पाप (विशां अतिथिं सु प्रयसं अग्निं) प्रजाओंके लिए अतिथि स्वरूप, शोभन हवि लक्षण युक्त अन्नसे सम्पन्न अग्निको मैं (हुवे) बुलाता हूं ॥१॥

[४२] (इमं विधन्तः भृगवः) इस अग्निकी सेवा करनेवाले भृगुओंने इसे (अपां सधस्थे, आयोः विक्षु द्विता अदधुः) जलके निवासस्थान अन्तरिक्ष और मनुष्योंके बीच इस प्रकार दो स्थानोंमें स्थापित किया। (देवानां अरतिः जीराश्वः एषः अग्निः) समस्त देवोंका स्वामी और शीघ्रगामी घोडोंवाला यह अग्नि (भूमा विश्वानि अभ्यस्तु) हमारे समस्त विरोधी शत्रुओंको पराभूत करे ॥२॥

भावार्थ- यह अग्नि अपने चारों ओर प्रकाश फैलाता है, तथा अपनी शक्तिसे हवि तैयार करके उसे यह अग्नि देवोंके पास पहुंचाता है ॥१०॥

इस अग्निका मूल स्थान, सेचक द्रव्य आश्रय और तेज सभी कुछ घी है। इसी घीसे प्रज्वलित होकर यह अग्नि हविको देवोंके पास पहुंचाता है और उन्हें प्रसन्न करता है ॥११॥

जिस प्रकार सूर्य सब संसारका आधार है, उसी प्रकार यह अग्नि देवों और मनुष्यका आधार है ॥१॥

भृगुओंने अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन दो स्थानोंमें अग्निका स्थापन किया। यह अग्नि तेजस्वी होकर हमारे सभी शत्रुओंको पराभूत करे ॥२॥

४३ अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥
४४ अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥ ४ ॥
४५ आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥ ५ ॥
४६ आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥

अर्थ- [४३] (**देवासः**) देवोंने (**प्रियं**) प्रिय और हितकारी अग्निको (**मानुषीषु विक्षु**) मानवी प्रजाओंमें (**धुः**) इसी प्रकार स्थापित किया जिस प्रकार (**क्षेष्यन्तः मित्रं न**) प्रवास पर जानेवाला मनुष्य अपने घरकी रक्षाके लिए किसी अपने मित्रको रख जाता है। (**यः दास्वते**) जो दानशीलके हित करने लिए (**दमे आ हितः**) उसके घरमें स्थापित किया गया, (**दक्षाय्यः सः**) दक्षतासे युक्त वह अग्नि (**उशतीः ऊर्म्याः आ दीदयत्**) सुन्दर ज्वालाओंसे युक्त होकर चारों ओर प्रकाशित होता है ॥३॥

[४४] (**स्वस्य पुष्टिः इव अस्य रण्वा**) अपने शरीरकी पुष्टि के सदृश इस अग्निकी रमणीयता होती है। (**हियानस्य दक्षोः अस्य संदृष्टिः**) समृद्धि को प्राप्त हुए हुए और काष्ठादिको भस्म करनेवाले इस अग्निकी तेजस्विता भी रमणीय होती है। (**यः ओषधीषु जिह्वां वि भरिभ्रत्**) जो अग्नि वृक्षवनस्पतियोंपर अपनी ज्वालारूपी जीभको अत्यधिक घुमाता है, उस समय वह ऐसा दिखाई देता है (**न रथ्यः अत्यः वारान् दोधवीति**) जैसे रथमें जुडा हुआ घोडा अपनी पूँछके बालको बार बार कँपाता है ॥४॥

१ **स्वस्य पुष्टिः रण्वा-** अपने शरीरकी स्वस्थता सबके लिए आनन्ददायक होती है।

[४५] (**मे वनदः यत् अभ्वं आ पनन्तः**) मेरे सम्बन्धित स्तोता लोग, चूंकि अग्निके महत्त्वकी चारों ओर स्तुति करते है इसलिए (**सः उशिग्भ्यः वर्णं न अमिमीत**) वह अग्नि कामना करनेवाले स्तोताओंके लिये अपने जैसा तेज प्रदान करता है। तथा (**रंसु चित्रेण भासा चिकिते**) रमणीय आहुतिके दिए जानेपर कान्तिसे युक्त होकर प्रकट होता है। और (**यः जुजुर्वान् मुहुः आ युवा भूत्**) जो वृद्ध होकर भी पुनः पुनः तरुण होता रहता है ॥५॥

१ **चित्रेण भासा जुजुर्वान् मुहुः युवा भूत्-** विचित्र तेजसे युक्त वृद्ध भी तरुण ही होता है।

२ **अभ्वं आ पनन्त वर्णं अमिमीत-** इस अग्निकी स्तुति करनेवाले स्तोता इसके तेजसे युक्त होते है।

[४६] (**वना तातृषाणः न यः आ भाति**) जिस प्रकार एक प्यासा जल्दी जल्दी पानी पी जाता है उसी प्रकार वनोंको शीघ्र जलाकर जो सब ओर प्रकाशित होता है और जो (**पथा वाः न रथ्या इव स्वानीत्**) ढालकी तरफ वेगसे जानेवाला जलकी तरह और रथवाहक अश्वकी तरह शब्द करता है वह (**कृष्ण अध्वा तपुः रण्वः**) अपने काले मार्गसे जानेवाला तापक और रमणीय अग्नि (**नभः अभिः स्मयमानः द्यौः इव चिकेत**) नक्षत्रोंसे प्रकाशमान द्युलोककी तरह शोभायमान होता है ॥६॥

भावार्थ- यह अग्नि रात्रीमें प्रकाशित होकर घरोंका संरक्षण करता है और इस प्रकार वह सब मनुष्योंका मित्रके समान हित करता है ॥३॥

वृद्धिको प्राप्त इस अग्निको तेजस्विता और पुष्टि बहुत आनन्ददायक होती है। यह वृक्षवनस्पतियों पर अपनी ज्वालाओंको फैलाता है, और उस समय वह बहुत तेजस्वी होता है ॥४॥

जो इस अग्निकी उपासना (उप-आसन पासमें बैठना) अर्थात् यज्ञ करता है, वह अग्निके ही उत्तम तेजसे युक्त होता है। और इस तेजसे युक्त होकर वृद्ध भी तरूणोंके समान क्रियाशील हो जाता है ॥५॥

जिस प्रकार एक प्यासा जल्दी जल्दी पानी पीता है उसी तरह वह अग्नि जंगलोंको क्षण भरमें जला देता है। और ढालकी तरफ बहते पानीकी तरह यह अग्नि शब्द करता है। ऐसा धुंएके द्वारा जाना जानेवाला यह अग्नि उसी प्रकार प्रकाशित होता है, जिस तरह नक्षत्रोंसे आकाश ॥६॥

४७ स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन् कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥ ७ ॥
४८ नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥
४९ त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद् वयो धाः ॥ ९ ॥

[५]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५० होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥ १ ॥

अर्थ- [४७] (**यः वि अस्थात्**) जो विविधरूपोंमें सर्वत्र व्याप्त है (**उर्वी अभि दक्षत्**) विस्तृत पृथ्वीको और अधिक विस्तृत बनाता है ऐसा वह (**शोचिष्मान् कृष्णव्यथिः**) तेजस्वी दुष्टोंको पीडित करनेवाला (**अग्निः**) अग्नि (**भूम अतसानि**) बहुतसे वृक्ष वनस्पतियोंको (**उष्णन्**) जलाकर (**अस्वदयन्**) उन्हें खाता हुआ (**अ-गोपाः पशुः इव**) रक्षकहीन पशुके समान (**स्वयुः एति**) अपनी इच्छासे इधर उधर जाता है ॥७॥

[४८] हे अग्ने ! तेरे (**पूर्वस्य अवसः अधीतौ**) पहले किए गए रक्षणको याद करके (**नु तृतीये विदथे ते मन्म शंसि**) आज हम तृतीय सवनमें तेरे लिये मनोहर स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं। हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**अस्मे बृहन्तं क्षुमन्तं**) हमें महान् कीर्तिमान् (**वाजं रयिं सु संयत् वीरं अपत्यं दाः**) उत्तम धन और श्रेष्ठ तथा संयमी वीर संतान प्रदान कर ॥८॥

[४९] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**गुहा वन्वन्तः गृत्समदासः त्वया यथा**) गुफामें बैठे हुये तेरी स्तुति करनेवाले अहंकाररहित लोगोंने तेरी कृपासे जिस प्रकार रक्षित होकर, (**सुवीरासः अभिमातिषाहः उपरान् अभिस्युः**) उत्तम पुत्रादिको प्राप्त कर और शत्रुओंको पराजित करके उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया। (**तत् सूरिभ्यः गृणते स्मत् वयः धाः**) उसी प्रकारसे तू मेधावी स्तुति करनेवाले हमारे लिये वरणीय धनोंको प्रदान कर ॥९॥

१ **गृत्समदः-** अहंकाररहित।

[५]

[५०] (**होता, चेतनः, पिता, पितृभ्यः ऊतये अजनिष्ट**) होमनिष्पादक, चेतना देनेवाला, पालक अग्नि पितरोंकी रक्षाके निमित्त उत्पन्न हुआ। हम भी (**वाजिनः प्रयक्षं जेन्यं यमं**) बलशाली होकर, पूज्य, विजेता और रक्षासाधन सम्पन्न (**वसु शकेम**) धन प्राप्त करनेमें समर्थ होवें ॥१॥

भावार्थ- यह अग्नि इस विश्वमें अनेक रूप धारण करके सब जगह व्याप्त है। इस प्रकार दुष्टोंको नष्ट करनेवाला वह अग्रणी अपनी इच्छानुसार सब जगह जाता है उसे रोकनेवाला कोई नहीं है ॥७॥

हे अग्ने ! तेरे द्वारा पहले भी हमारी रक्षा हो चुकी है, इस बातको याद करके हम आज भी तेरी उपासना करते हैं। हे अग्ने ! तू हमें बहुत धन और संयमी श्रेष्ठ वीर पुत्र प्रदान कर ॥८॥

हे अग्ने ! तूने जिस प्रकार अहंकाररहित ऋषियोंको पुत्र पौत्रादि प्रदान करके उनकी शत्रुओंसे रक्षा की, उसी प्रकार हमें भी उत्तम धन देकर हमारी रक्षा कर ॥९॥

शरीरमें स्फूर्ति देनेवाला यह अग्नि हमारी रक्षाके लिए उत्पन्न हुआ है, अतः हम भी इससे सुरक्षित होकर उत्तम धन प्राप्त करें ॥१ ॥

५१ आ यस्मिन् त्सप्त रश्मय—स्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद् दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥ २ ॥
५२ दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥ ३ ॥
५३ साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ॥ ४ ॥
५४ ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित् तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ५ ॥
५५ यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ ६ ॥

अर्थ- [५१] (**यज्ञस्य नेतरि यस्मिन्**) यज्ञके नायक जिस अग्निमें, (**सप्तरश्मयः आ तताः**) सात रश्मियां सर्वत्र व्याप्त हैं, (**तत् पोता मनुष्वत्**) वह पवित्र करनेवाला अग्नि मनुष्यकी तरह (**दैव्यं अष्टमं विश्वं इन्वति**) यज्ञका आठवें स्थानीय होकर पूर्ण रूप से व्याप्त होता है ॥२॥

[५२] (**वा, ई अनु यत् दधन्वे**) अथवा इस यज्ञमें अग्निको लक्ष्य करके जो हव्यादि धारण किया जाता है, तथा (**ब्रह्माणि वोचत् तत् वेरु**) वेदमन्त्रोंको पढा जाता है, उन सबोंको अग्नि जानता है। और (**नेमिः चक्रं इव**) जिस प्रकार धुराके चारों ओर चक्र होते हैं, उसी प्रकार (**विश्वानि काव्या परि अभवत्**) सारी स्तुतियां इस अग्निके चारों ओर ही घूमती हैं ॥३॥

[५३] (**शुचिः प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं हि अजनि**) पवित्र, अच्छे ढंगसे शासन करनेवाला अग्नि शुद्ध करनेवाले कर्मोंके साथ ही उत्पन्न हुआ। (**अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान्**) इस अग्निके अटल नियमों को जाननेवाला (**वया इव अनुरोहते**) पेडोंकी शाखाओंके समान प्रतिदिन बढता ही रहता है ॥४॥

१ **शुचिः प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं अजनि-** शुद्ध और उत्तमतासे शासन करनेवाला यह अग्नि शुद्ध करनेवाले गुणोंके साथ ही पैदा हुआ।

२ **अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान् वया इव अनुरोहते** - इस अग्निके अटल नियमोंमें रहनेवाला विद्वान् पेडोंकी शाखाओंकी तरह प्रतिदिन बढता ही रहता है।

[५४] (**याः इदं ययुः**) जो यह कर्म करती हैं, (**ताः आयुवः धेनवः**) वे मनुष्योंको तृप्त करनेवाली (**स्वसारः**) बहिनें-अंगुलियां (**नेष्टुः तिसृभ्यः**) इस नेता अग्निके तीनों रूपोंके (**वरं वर्णं**) सुन्दर तेजको (**सचन्ते**) बढाती हैं ॥५॥

[५५] (**यत्**) जब (**स्वसा घृतं भरन्ति**) बहिन रूपी अंगुलियां घीको भरती हैं और (**मातुः उप अस्थित**) माता रूपी वेदिके पास आती है, तब (**तासां आगतौ**) उन अंगुलियोंके पास आनेपर (**अध्वर्युः मोदते**) अध्वर्यु अग्नि उसी प्रकार खुश होता है, जिस प्रकार (**वृष्टी यवः इव**) वर्षाको पाकर अन्न ॥६॥

भावार्थ- वह सात रश्मियोंसे युक्त अग्नि इस सारे संसारमें व्याप्त है ॥२॥

सब आहुति और प्रार्थनाएं इसी अग्निको लक्ष्य करके की जाती हैं। यही सब विश्वका केन्द्र है ॥३॥

इस अग्निके अन्दर स्थित सबको शुद्ध करनेका गुण उसका जन्मजात गुण है। इसलिए जो इसके नियमोंमें रहता है, वह शुद्ध होकर प्रतिदिन बढता जाता है ॥४॥

कर्मको करनेवाली अंगुलियां इस नेता अग्निको प्रज्जवलित करके तेजस्वी बनाती हैं ॥५॥

जब अंगुलियों द्वारा वेदिमें घीकी आहुति दी जाती है, तब अग्नि प्रसन्न होता है ॥६ ॥

५६ स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥ ७ ॥
५७ यथा विद्वाँ अरं करद् विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥

[६]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

५८ इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ १ ॥
५९ अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥
६० तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥
६१ स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषांसि ॥ ४ ॥

अर्थ- [५६] (ऋत्विक् स्वाय स्वः ऋत्विजं कृणुतां) ऋत्विक् रूप होकर यह अग्नि अपनी पुष्टिके लिये अपने आप ऋत्विक्के कर्मको करे। (वयं आत्) हम भी उसके अनन्तर ही (स्तोमं च यज्ञं अरं वनेम ररिम) स्तोत्र और यज्ञको अधिक करें और हविको भी दें ॥७॥

[५७] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा विद्वान् विश्वेभ्यः यजतेभ्यः अरं करत्) जिस प्रकार विद्वान् सब देवोंकी तृप्ति भलीभाँति करता है। उसी प्रकार (वयं यं यज्ञं चकृम अयं त्वे अपि) हम भी जिस यज्ञको करें वह तेरी तृप्तिके लिए ही है ॥८॥

[६]

[५८] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे इमां, समिधं, इमां उपसदं वनेः) मेरी इस समिधा और इस आहुतिको स्वीकार कर। तथा मेरे (इमा उ गिरः सु श्रुधि) इस स्तोत्रको भी अच्छी प्रकारसे सुन ॥१॥

[५९] हे (ऊर्जः नपात् अश्वं इष्टे सुजात) बलको कम न करनेवाले, व्यापक यज्ञवाले तथा उत्तम जन्मवाले अग्ने ! हम (अया एना सूक्तेन) इस स्तुति और इस सूक्तसे (ते विधेम) तेरी सेवा करें ॥२॥

[६०] हे (द्रविणोदः) धनके दाता अग्ने ! (गिर्वणसं द्रविणस्युं तं) स्तुति करने योग्य तथा धन प्रदान करनेवाले तेरी (सपर्यवः, गीर्भि सपर्येम) तेरे सेवक हम स्तुतियोंसे आदर सत्कार करें ॥३॥

[६१] (वसुदावन् वसुपते) हे धन प्रदान करनेवाले धनके स्वामी अग्ने ! (मघवा सूरिः सः) धनवान् और विद्वान् वह तू हमारी इच्छाओंको जान तथा (अस्मत् द्वेषांसि युयोधि) जो हमसे द्वेष करनेवाले शत्रु हैं उनको भगा दे ॥४॥

भावार्थ- यह अग्नि अपने पोषण और शक्ति के लिए ऋत्विक् होकर ऋत्विजोंका काम करे। उसके बाद हम भी उसकी स्तुति करके उसको आहुति प्रदान करें ॥७॥

जिस प्रकार सभी विद्वान् देवोंकी तृप्ति के लिए कर्म करते हैं, उसी प्रकार हम भी इस अग्निकी तृप्तिके लिए ही यज्ञ करें ॥८॥

हे अग्ने ! तू हमारे उत्तम कार्योंकी प्रशंसा कर और हमारी प्रार्थनाओंको सुन ॥१॥

हम नित्यप्रति अग्निकी स्तुति और सूक्तोंसे सेवा करें ॥२॥

यह अग्नि स्तुति के योग्य और धनको देनेवाला है, अतः इसका उत्तम रीतिसे सत्कार करना चाहिए ॥३॥

हे अग्ने ! तू सब चीजोंका जाननेवाला है, अतः हमारी इच्छाओंको भी जान और हमसे शत्रुओंको दूर हटा ॥४॥

६२ स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥ ५ ॥
६३ ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥ ६ ॥
६४ अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥ ७ ॥
६५ स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् । आ चास्मिन् त्सत्सि बर्हिषि ॥ ८ ॥

[७]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

६६ श्रेष्ठं यविष्ठ भारता ऽग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥ १ ॥
६७ मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥

अर्थ- [६२] (सः नः दिवः परि वृष्टि) वह अग्नि हमारे लिये अन्तरिक्षसे वर्षा करे। (सः नः अनर्वाणं वाजं) वह हमको महान् बल प्रदान करें, तथा (सः नः सहस्रिणीः इषः) वह हमें सहस्रों प्रकारके अन्नोंको भी देनेवाला हों ॥५॥

[६३] हे (यविष्ठ दूत) बलवान् दूत, (यजिष्ठः होतः) अतिशय यजनीय, देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (अवस्यवे नः गिरा) तेरे संरक्षणकी इच्छा करते हुए अपनी स्तोत्ररूपी वाणीसे (ईळानाय, आगहि) पूजन करनेवाले मेरे पास तू आ ॥६॥

[६४] हे (कवे अग्ने) मेधावी ! हे अग्ने ! तू (अन्तः हि ईयसे) मनुष्योंके हृदय अन्दर विचरता है तथा उनके (उभया जन्म विद्वान्) दोनों जन्मोंको भी जानता है। तू (मित्र्यः दूतः इव जन्यः) मित्रके समान व्यवहार करनेवाले दूतके समान मनुष्योंका हित करनेवाला है ॥७॥

१ **अन्तः ईयते-** यह अग्नि लोगोंके हृदयोंमें विचरता है।

२ **मित्र्यः इव जन्यः-** मित्रके समान सबका हितकारी है।

[६५] हे अग्ने ! (विद्वान् सः आ पिप्रयः) वह ज्ञानी तू हमारी कामनायें पूर्ण कर। (च चिकित्वः आनुषक् यक्षि) और तू चेतनावान् है इसलिए यथाक्रमसे देवताओंको हवि पहुंचा। (च अस्मिन् बर्हिषि आ सत्सि) तथा इस यज्ञमें विराजमान हो ॥८॥

[७]

[६६] हे (यविष्ठ) अत्यन्त बलशाली और (भारत, वसो) सबके पालक सबको बसानेवाले अग्ने ! तू (श्रेष्ठं, द्युमन्तं पुरुस्पृहं रयिं आ भर) श्रेष्ठ, तेजस्वी और बहुतों द्वारा इच्छित धनोंको हमें भरपूर दे ॥१॥

[६७] हे अग्ने ! (देवस्य च मर्त्यस्य) देवता और मनुष्यका (अरातिः नः मा ईशत) शत्रु हमपर शासन न करे। (उत तस्याः द्विषः पर्षि) अपितु उन शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर ॥२॥

भावार्थ- वह अग्नि द्युलोकसे पानी बरसा कर हमें अन्न प्रदान करता है और उस अन्नके द्वारा हमें पुष्ट भी करता है ॥५॥
हे बलवान् और पूज्य अग्ने ! मैं तेरे संरक्षणकी इच्छासे तेरी स्तुति करता हूँ अतः तू मेरे पास आ ॥६॥
यह अग्नि सब प्राणियोंके हृदयोंमें विचरता है और उनके सभी जन्मोंको जानता हुआ उनका हर तरह से हित करता है ॥७॥
हे अग्ने ! तू सर्वज्ञ है, अतः हमारी कामनायें पूर्ण कर और सब देवोंको हवि पहुंचा तथा हमारे यज्ञको सुशोभित कर ॥८॥
हे अत्यन्त बलशाली, सबका भरणपोषण करनेवाले तथा सबको बसानेवाले अग्ने ! हमें तेज और धन भरपूर दे ॥१॥
हे अग्ने ! देव और मनुष्यके शत्रु हम पर शासन न करें, तू हमें सदैव ऐसे शत्रुओंसे सुरक्षित रख ॥२॥

६८ विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥ ३ ॥
६९ शुचिः पावक वन्द्यो ऽग्ने बृहद् वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४ ॥
७० त्वं नो असि भारता ऽग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥ ५ ॥
७१ द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६ ॥

[८]

(ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अग्निः
छन्दः- गायत्री; ६ अनुष्टुप्)

७२ वाजयन्निव नू रथान् योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥ १ ॥
७३ यः सुनीथो ददाशुषे ऽजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥ २ ॥

अर्थ- [६८] हे अग्ने ! (**त्वया**) तुझसे सुरक्षित होकर (**उदन्याः धारा इव**) जलकी धाराकी तरह (**वयं विश्वाः द्विषः**) हम सम्पूर्ण द्वेष करनेवाले शत्रुओंको (**उत अति गाहेमहि**) भी लाँघ जायें ॥३॥

[६९] हे (**पावक अग्ने**) पवित्रता करनेवाले अग्ने ! (**शुचिः वन्द्यः त्वं**) पवित्र और वन्दनीय तू (**घृतेभिः आहुतः बृहत् विरोचसे**) घृतकी आहुतियां पाकर अत्यन्त प्रकाशमान होता है ॥४॥

[७०] हे (**भारत अग्ने**) भरण पोषण करनेवाले अग्ने ! (**त्वं नः वशाभिः उक्षभिः अष्टपदीभिः**) तू हमारी गौवों, सोम और गर्भिणी धेनुओं द्वारा (**आहुतः असि**) आराधित हुआ है ॥५॥

१ **वशभिः**- गाय, गायका दूध:, २ **उक्षाभिः** - सोमरस।

[७१] (**द्रु-अन्नः सर्पिः आसुतिः प्रत्नः होता, वरेण्यः**) समिधा जिसका अन्न है, जिसमें घृत सिंचन होता है, जो पुरातन होमनिष्पादक और वरणीय है ऐसे गुणोंसे युक्त (**सहसः पुत्रः अद्भुतः**) बलका पुत्र यह अग्नि अतीव रमणीय है ॥६॥

[८]

[७२] हे मनुष्य ! तू (**यशस्तमस्य मीळ्हुषः अग्ने**) अत्यन्त महान् यशवाले और सबको सुख देनेवाले अग्निकी (**वाजयन् योगान् रथान् इव**) धनधान्यको पानेकी इच्छा करनेवाले जुडे हुए रथोंकी जिस प्रकार स्तुति करते हैं, उसी प्रकार (**उप स्तुति**) स्तुति कर ॥१॥

[७३] (**यः सुनीथः अजुर्यः चारुप्रतीकः**) जो अग्नि उत्तम मार्गसे ले जानेवाला उत्तम नेता, नित्य जरारहित और मनोहर गतिवाला है, ऐसा (**ददाशुषे अरिं जरयन् आहुतः**) दान देनेवालेके लिए शत्रुओंका नाश करनेवाला वह अग्नि चारों ओरसे बुलाया जाता है ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! जिस प्रकार जलकी धारा बडी बडी चट्टानों और गड्ढोंको लांघ जाती है, उसी तरह हम भी तुझसे सुरक्षित होकर बडे से बडे शत्रुको भी पार कर जाएं ॥३॥

हे सर्वत्र पवित्रता करनेवाले अग्ने ! तू शुद्ध और पूज्य होकर आहुतियोंके द्वारा बढता है ॥४॥

हे अग्ने ! हम गौवोंके दूध और सोमरससे तेरी सेवा करते हैं, तुझे तृप्त करते हैं। वेदोंमें अंशभागके लिए संपूर्णका प्रयोग होता है, जैसे दूध के लिए गाय, धनुषके लिए वृक्ष आदि ॥५॥

यह अग्नि समिधारूपी अन्नको खानेवाला, घी पीनेवाला और सनातन होने के कारण बहुत तेजस्वी है ॥६॥

यह अग्नि सबको सुख देनेके कारण अत्यन्त यशस्वी है, इसलिए जिस प्रकार धन धान्यादि पानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य रथोंको उत्तम रीतिसे तैयार करते हैं, उसी प्रकार इस अग्निकी स्तुति करके उसे अच्छी तरह प्रज्जवलित करना चाहिए ॥१॥

वह अग्नि उत्तम नेता बुढापेसे रहित और सुन्दर है, वह दानियोंका सहायक है, इसलिए उसे मनुष्य अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥२ ॥

७४ य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥
७५ आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥
७६ अत्रिमनु स्वराज्य— मग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥ ५ ॥
७७ अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्य— भि ष्याम पृतन्यतः ॥ ६ ॥

[९]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

७८ नि होता होतृषदने विदान— स्त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ १ ॥

अर्थ- [७४] (यः उ श्रिया दमेषु-आ) जो अग्नि उत्तम ज्वालाओंसे युक्त होकर घरोंमें प्रतिष्ठित होता है, जो (दोषा उषसि प्रशस्यते) रात्री एवं दिनमें लोगोंसे प्रशंसित होता है, तथा (यस्य व्रतं न मीयते) जिसके नियमका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता, वह पूज्य है ॥३॥

[७५] (स्वः भानुना न) जिस तरह द्युलोक सूर्यसे प्रकाशित होता है, उसी प्रकार (अजरैः यः चित्रः) अपनी ज्वालाओंके कारण जो चित्र विचित्र है, ऐसा वह अग्नि (अर्चिषा अंजानः) अपनी ज्वालासे प्रकट होकर (आ विभाति) चारों ओर प्रकाशित होता है ॥४॥

[७६] (अत्रिं स्वराज्यं अग्निं अनु) शत्रुओंके विनाशक स्वयमेव प्रकाशमान् अग्निको (उक्थानि अनु वावृधुः) स्तुतियां हैं वह अग्नि (विश्वाः श्रियः अधि दधे) सम्पूर्ण शोभा धारण किये हुये है ॥५॥

[७७] (वयं) हम (अग्नेः इन्द्रस्य सोमस्य, देवानां) अग्नि, इन्द्र, सोम आदि अन्य देवोंकी (अतिभिः सचेमहि) रक्षाओंसे सुरक्षित हैं, इसलिये (अरिष्यन्तः) नष्ट न होते हुए हम (पृतन्यतः अभिष्याम) शत्रुओंको पराजित करें ॥६॥

[९]

[७८] (अग्निः, होता, विदानः त्वेषः दीदिवान्) यह अग्नि देवोंको बुलानेवाला, विद्वान्, प्रज्ज्वलित होनेवाला, दीप्तिमान्, (सुदक्षः अदब्धव्रतः प्रमतिः) बिना आलस्यके नियमोंका पालन करनेवाला तथा बुद्धिवाला (वसिष्ठः सहस्रंभरः, शुचिजिह्वः) निवास दाता, अनेक प्रकारसे भरण पोषण करनेवाला और पवित्र जिव्हायुक्त है। ऐसे गुणोंवाला वह अग्नि (होतृसदने नि असदत्) होता के भवनमें उत्तम आसन पर विराजमान् होता है ॥१॥

भावार्थ- यह अग्नि आलस्यरहित होकर अपने नियमोंपर चलनेवाला है, तथा अन्य भी अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त है अतः वह उत्तम आसन पर बैठता है ॥१॥

वह अपनी तेजस्वी ज्वालाओंके कारण सर्वत्र पूजा जाता है। उसके नियम बडे पक्के होते हैं, इसलिए उसके नियमका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ॥३॥

द्युलोकको जिस प्रकार सूर्य प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अनेक रंगवाला अग्नि इस पृथ्वीको अपनी ज्वालासे प्रकाशित करता है ॥४॥

सभी स्तुतियां उस शत्रु विनाशक, स्वयं प्रकाशक समस्त शोभाको धारण करनेवाले अग्निकी बढाती है ॥५॥

अग्नि, इन्द्र, सोम आदि देवों से सुरक्षित मनुष्य कभी भी नष्ट नहीं होता, इसके विपरीत वह अपने शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥६॥

यह अग्नि आलस्यरहित होकर अपने नियमोंपर चलनेवाला है, तथा अन्य भी अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त है अतः वह उत्तम आसन पर बैठता है ॥१॥

७९ त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः ॥ २ ॥

८० विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद् योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥

८१ अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥ ४ ॥

८२ उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥

अर्थ- [७९] हे (**वृषभ अग्ने**) बलवान् अग्ने! (**त्वं दूतः त्वं उ नः परस्याः**) तू हमारा दूत हो, तू हमको आपत्तियोंके भयसे बचा (**त्वं वस्यः आ प्रणेता**) तू धनका देनेवाला है (**अप्रयुच्छन् दीद्यत् नः तोकस्य तने**) प्रमाद रहित होकरके तथा दीप्तिशाली बन करके हमारे एवं हमारे पुत्रोंके कुलका विस्तार कर तथा हम सबोंके (**तनूनां गोपाः**) शरीरकी रक्षा कर और तू स्वयं भी (**बोधि**) अच्छी प्रकारसे प्रज्ज्वलित हो ॥२॥

[८०] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**परमे जन्मन् ते विधेम**) उत्कृष्ट स्थान द्युलोकमें स्थित तेरी स्तुतियोंसे सेवा करें (**अवरे सधस्थे स्तोमैः विधेम**) द्युलोकसे नीचे अन्तरिक्ष लोकमें स्थित तेरी स्तोत्रोंसे पूजा करें। और (**यस्मात् योनेः उत् आरिथ तं यजे**) नीचेका स्थान पृथ्वीलोक, जिससे तू प्रादुर्भूत हुआ उस पृथ्वीलोकमें स्थित तेरी पूजा करें। (**त्वे सं इद्धे हवींषि प्रजुहुरे**) तेरे यज्ञमें प्रज्जवलित होने पर लोग हवियोंकी आहुति देते हैं ॥३॥

[८१] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**यजीयान् हविषा यजस्व**) श्रेष्ठ यज्ञकर्ता है अतः हव्य द्वारा यज्ञ कर। (**देष्णं राधः श्रुष्टी अभि गृणीहि**) हमको दिये जाने योग्य धन शीघ्र ही दे। (**त्वं हि रयीणां रयिपतिः असि**) तू निश्चयसे श्रेष्ठ धनका स्वामी है तथा (**त्वं शुकस्य वचसः मनोता**) तू हमारी तेजस्वी वाणियों पर मननपूर्वक विचार करता है ॥४॥

[८२] हे (**दस्म अग्ने**) दर्शनीय अग्ने! (**दिवे दिवे जायमानस्य ते उभयं वसव्यं न क्षीयते**) प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाले तेरे दिव्य और पार्थिव दोनों तरह के धन नष्ट नहीं होते, अतः तू (**जरितारं क्षुमन्तं कृधि**) स्तोत्रकर्ता को कीर्तिसे युक्त कर। और उसका (**सु आपत्यस्य रायः पतिं**) सुन्दर अपत्यवाले धनका स्वामी बना ॥५॥

१ **दिवे दिवे जायमानस्य ते उभयं वसव्यं न क्षीयते** -प्रतिदिन नये उत्साहसे उत्पन्न होनेवाले इस अग्रणीका दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्य नष्ट नहीं होता।

भावार्थ- यह अग्नि दूत, संकटोंसे बचानेवाला, धन देनेवाला, प्रमाद रहित, तेजस्वी तथा सबका रक्षक है ॥२॥

उत्कृष्ट स्थान द्युलोक, मध्यम स्थान अन्तरिक्ष लोक और पृथ्वीमें स्थित यह अग्नि सबके लिए उपास्य है ॥३॥

हे अग्ने ! तू स्वयं यज्ञमय है अतः दूसरोंको भी यज्ञमय बना और तू हमारी वाणियों पर मननपूर्वक विचार कर हमें शीघ्र धन दे ॥४॥

यह अग्नि प्रतिदिन नया उत्पन्न होता है, इसलिए यह कभी बूढा नहीं होता और सदा उत्साहसे भरपूर रहता है ॥५ ॥

८३ सेनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद् दिदीहि ॥ ६ ॥

[१०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

८४ जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत् समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥ १ ॥
८५ श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥
८६ उत्तानायामजनयन् त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥

अर्थ- [८३] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः) वह तू अपने (एना अनीकेन अस्मे सुविदत्रः) इन तेजस्वी ज्वालाओंसे हमें उत्तम धन धान्यसे युक्त कर। तू (देवान् यष्टा, आयजिष्ठः अदब्धः) देवताओंका पोषक उत्तम यागका कर्ता किसीसे भी तिरस्कृत न होनेवाला (गोपाः उत नः परस्पाः) रक्षक ओर हमें पापोंसे पार लगानेवाला है। तू (द्युमत् उत रेवत् स्वस्ति दिदीहि) कान्तिमान् और धनयुक्त होकर कल्याणके लिए सर्वत्र प्रकाशित हो ॥६॥

[१०]

[८४] (यत् मनुषा इळः पदे समिद्धः) जो मनुष्यसे यज्ञ स्थानमें प्रज्वलित होता है वह (अग्निः प्रथमः जोहूत्रः पिता इव) अग्नि सबसे मुख्य और पूज्य और पिताके समान सबका पालक है। (सः श्रियं वसानः अमृतः विचेताः) वह शोभा को धारण करनेवाला, मरणधर्म रहित, विशेष प्रज्ञायुक्त, (श्रवस्यः वाजी मर्मृजेन्यः) अन्नवान्, बलवान् और सबके द्वारा सेवा करने योग्य हैं। ॥ १ ॥

१ अग्निः प्रथमः जोहूत्रः पिता इव- वह अग्नि मुख्य, पूज्य और पिताके समान सबका पालक है।

[८५] (अमृतः विचेताः चित्रभानुः अग्निः) मरणधर्म रहित, विशेष प्रज्ञावाला, विचित्र तेजसे युक्त अग्नि (मे विश्वाभिः गीर्भिः हवं श्रूयाः) मेरी सब प्रार्थनाओंसे निकलनेवाली पुकारको सुने। (श्यावा वा रोहिता उत् अरुषा रथं वहतः) श्याम वर्णवाले दो घोडे, अथवा लाल वर्णवाले अथवा शुक्लवर्णवाले घोडे अग्निके रथको खींचते हैं। उससे वह अग्नि (विभृत्रः चक्रे) नाना स्थानोंमें विचरण करता है ॥२॥

[८६] लोगोंने (उत्तानायां सुषूतं अजनयन्) ऊर्ध्वमुख अरणिमें अच्छे प्रकारसे प्रेरित अग्निको उत्पन्न किया। वह (अग्निः पुरुपेशासु गर्भः भुवत्) अग्नि विविध रूपवाली औषधियोंमें गर्भरूपसे व्याप्त होता है। और (शिरिणायां अक्तुना अपरिवृतः प्रचेताः महोभिः वसति) रात्रीमें भी अन्धकारसे आच्छादित न होकर प्रकृष्ट बुद्धिवाला वह अग्नि अपने महान् तेजसे युक्त होकर वास करता है ॥३॥

१ शिरिणायां अक्तुना अ-परिवृतः महोभिः वसति- रात्रीमें भी अन्धकारमें न छिपकर अपने तेजसे सर्वत्र प्रकाशित होता रहता है। इसी प्रकार अग्रणी नेताको भी आपत्तियोंमें घिरकर भी अपने तेजसे प्रकाशित होना चाहिए।

भावार्थ- हे अग्ने ! तू अपनी इन तेजस्वी ज्वालाओंसे हमारे परिवारको उत्तम तेजस्वी बना। तू देवोंको हवि पहुंचाकर उनका पोषण करता है। और कभी भी किसीसे दबाता नहीं। इसीलिए तू अपने तेजसे सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥६॥

सबका पालक वह अग्नि सब पूज्य देवताओंके मध्यमें मुख्य है। वह शोभाको धारण करनेवाला, अमर और बहुत बुद्धिमान है इसलिए वह सबके द्वारा पूज्य भी है ॥१॥

सर्व गुणोंसे युक्त यह अग्नि हमारी प्रार्थनाओंको सुने। इस अग्निके रथमें अनेक रंग के घोडे जुडे हुए है, जो इसे अनेक जगहोंपर ले जाते हैं। अग्निकी अनेक रंगकी ज्वालाएं ही उसके घोडे हैं। इन्हीं ज्वालाओंके कारण वह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥२ ॥

८७ जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानं ॥ ४ ॥
८८ आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ ५ ॥
८९ ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद् वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥ ६ ॥

[११]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः ।
छन्दः- विराट् स्थाना; २१ त्रिष्टुप् ।]

९० श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥

अर्थ- [८७] (विश्वा भुवनानि प्रतिक्षियन्तं) सम्पूर्ण भुवनोंमें निवास करनेवाले **(पृथुं, तिरश्चा वयसा बृहन्तं)** महान्, टेढी ज्वालाओंवाले, तेजसे बढे हुए **(अन्नैः व्यचिष्ठं रभसं दृशानं अग्निं)** अन्न द्वारा बलवान् और सुन्दर दर्शनीय अग्निको मैं **(हविषा घृतेन जिघर्मि)** हव्य और घृतसे प्रदीप्त करता हूँ ॥४॥

[८८] (विश्वतः प्रत्यञ्चं आजिघर्मि) सर्वव्यापी अग्निको मैं घृत द्वारा सब ओरसे प्रदीप्त करता हूँ। वह **(अरक्षसा मनसा तत् जुषेत)** शान्त चित्तसे उस घृतकी आहुतिका सेवन करे। **(मर्यश्रीः, स्पृहयद्वर्णः अग्निः)** मनुष्योंके द्वारा पूजनीय, प्रशंसनीय वर्णवाला अग्नि जब अपने **(तन्वा जर्भुराणः)** तेजसे पूर्ण प्रदीप्त होता है, तब उसे कोई भी **(नाभिमृशे)** स्पर्श नहीं कर सकता है ॥५॥

[८९] हे अग्ने! **(वरेण सहसानः भागं ज्ञेयाः)** अपने तेज बलसे शत्रुओंको पराजित करनेवाला तू हमारी स्तुतियोंको समझ। **(त्वादूतासः मनुवत् वदेम)** तेरे दूत होनेपर हम मनुकी तरह तेरी स्तुति करते हैं। **(अनूनं मधुपृचं अग्निं)** सब ओरसे पूर्ण और मधुरतासे भरपूर इस अग्निको, **(धनसाः)** धनका संभक्त करनेवाला मैं **(जुह्वा वचस्या जोहवीमि)** घृतकी चमससे स्तुतिपूर्वक आहुति प्रदान करता हूँ ॥६॥

[११]

[९०] हे **(इन्द्र)** इन्द्र! तू हमारी **(हवं)** पुकार **(श्रुधि)** सुन हम पर **(मा रिषण्यः)** क्रोध मत कर। हम **(वसूनां)** धनों के **(दावने)** दान देते समय **(ते) (स्याम)** हो कर रहें। **(इमाः हि)** ये **(वसु-यवः)** धनकी इच्छासे बनाये गये **(ऊर्जः)** रस **(क्षरन्तः)** झरते हुए **(सिन्धवः)** जलके **(न)** समान **(त्वां)** तुझे **(वर्धयन्ति)** बढाते हैं ॥१॥

१ **हवं श्रुधि, मा रिषण्यः-** हे इन्द्र! तू हमारी पुकार सुन, हम पर तू क्रोध मत कर।
२ **वसूनां दावने ते स्याम-** दान देते समय हम तेरे होकर रहें।

भावार्थ- यह अग्नि वनस्पतियोंमें गुप्त रूप से जबतक रहता है, तबतक इसका तेज अन्धकारको नहीं भगा पाता, पर जब वही अग्नि अरणियों से प्रकट हो जाता है, तब गाढे अन्धकारमें भी वह प्रकाशित होता रहता है और अन्धकार उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल पाता ॥३॥

सर्वत्र निवास करनेवाला महान् तेजसे प्रवृद्ध, बलवान् और दर्शनीय यह अग्नि घी द्वारा प्रदीप्त होता है ॥४॥

यह कोमल अग्नि घृतसे प्रदीप्त होकर इतना भयंकर हो जाता है कि इसे कोई छू नहीं सकता ॥५॥

मैं इस अग्निकी उसी तरह स्तुति करता हूँ, जिस तरह कोई सेवक अपने स्वामीकी और इसे आहुति द्वारा प्रसन्न करता हूँ ॥६ ॥

९१ सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमान-मवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥

९२ उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन् स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥

९३ शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४ ॥

अर्थ- [९१] हे (शूर) वीर (इन्द्र) इन्द्र ! (अहिना) अहि असुरसे (परि-स्थिताः) घिरे (याः) जिन (पूर्वीः) श्रेष्ठ जलों को (अपिन्वः) पुष्टिकारक बनाया और उन (महीः) प्रशंसनीय जलोंको तूने अव (सृजः) मुक्त किया। (उक्थैः) स्तोत्रोंसे (वावृधानः) बढते हुए तूने (मन्यमानं) घमण्डी (अमर्त्यं चित्) न मरनेवाले (दासं) दासको भी (अव अभिनत्) तोड दिया नष्ट कर दिया ॥२॥

[९२] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! तू (यासु) जिन स्तुतियोंमें (मन्दसानः) आनन्दित होता है, (येषु) जिन (उक्थेषु इत् नु) उक्थोंमें (रुद्रियेषु च) और रुद्र सम्बन्धी (स्तोमेषु) स्तोत्रोंमें (चाकन्) प्रेम रखता है (तुभ्य इत्) तुझ (वायये) बलधारी इन्द्रके लिये (एताः) ये (शुभ्राः न) उत्तम स्तुतियां (प्र सिस्रते) बोली जाती हैं ॥३॥

१ रुद्रः- रुलानेवाला, बारह प्राण "रोदयतीति रुद्रः ।"

२ वायुः- गति युक्त करनेवाला "वा गति गन्धनयोः ।"

[९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (नु) तत्काल (ते) तेरे (शुभ्रं) कलंक-रहित (शुष्मं) बलको (वर्धयन्तः) बढानेवाले और तेरे (बाह्वोः) हाथोंमें (शुभ्रं) चमकीला (वज्रं) वज्र (दधानाः) धारण करानेवाले बनें। (शुभ्रः) पाप-रहित (त्वं) तू (ववृधानः) बढता हुआ, (सूर्येण) प्रेरक वज्र से (अस्मे) हमारी (दासीः) असुरोंवाली (विशः) प्रजाओंको (सह्याः) नष्ट कर दे ॥४॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! हमारी पुकार सुन और उसे सुनकर तू हम पर क्रोध मत कर। दान देते समय तू हमारा विशेष ध्यान रख, क्योंकि हम तेरे ही हैं। दान देनेके समय मनुष्य इन्द्रके समान उदार बने और उदारतापूर्वक दान दें। मनुष्योंके द्वारा प्रेमसे दिए रस इन्द्रकी शक्तिको बढाते हैं, उसी प्रकार अन्योंके द्वारा कहे गए प्रेमके वचन दानियोंकी शक्ति बढावें ॥१॥

अहि यह मेघ है, जो जलको सदा रोके रखता है, बरसने नहीं देता। इन्द्र विद्युत् है, जो जलकी शक्ति इतनी प्रबल कर देता है कि वह अहिके बन्ध तोड़कर बाहर आकर बरसने लगता है। वर्षाका यह जल सूर्य किरणोंसे सदा तृप्त होने के कारण सूर्यकी सभी शक्तियोंसे युक्त होता है इसलिए वह पुष्टिकारक होता है ॥२॥

इन्द्रका एक रूप रुद्र भी है। रुद्र रुलानेवालेको कहते हैं। इस शरीरमेंसे यह आत्मारूपी इन्द्र निकलता है, तब वह सबको रुलाता है, इसीलिए यह आत्मा या इन्द्र रुद्र कहलाता है। अतः रुद्र के रूप में की जानेवाली स्तुति भी इसी इन्द्रकी होती है। यही इन्द्र वायु है, क्योंकि यही शरीरको गतिमान् करता है ॥३ ॥।

इन्द्रका बल और वज्र पापसे रहित है उससे कभी पाप या अन्याय नहीं होता। इन्द्र स्वयं पाप रहित है। वह शक्तिमान् होकर भी पाप नहीं करता। वह केवल असुरोंकी सेनाको ही मारता है ॥४ ॥

९४ गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्व—पीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांस—महन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥
९५ स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महा—न्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥
९६ हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टा—ऽरंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥ ७ ॥
९७ नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन् त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन् नि ॥ ८ ॥

अर्थ- [९४] हे (शूर) शूर इन्द्र ! तूने (गुहा) गुफामें (हितं) छिपे हुए (गुह्यं) गुप्त (अप्सु) जलोंमें (गूळ्हं) डूबे जलको (अपि-वृतं) रोक रखनेवाले (मायिनं) माया-युक्त (क्षियन्तं) सोये (उत) और (अपः) जल तथा (द्यां) द्यौको (तस्तभ्वांसं) बांध रखनेवाले (अहिं) अहि असुरको अपने (वीर्येण) पराक्रमसे (अहन्) मारा ॥५॥

[९५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (ते) तेरे (पूर्व्या) पूर्व (महानि) उत्तम कर्मोंका (स्तव नु) गुणगान करें (उत) और (नूतना) नवीन (कृतानि) कार्योंकी भी (स्तवाम) प्रशंसा करें। (बाह्वोः) हाथोंमें रखे तेरे (उशन्तं) प्यारे (वज्रं) वज्रकी (स्तव) प्रशंसा करें। (सूर्यस्य) सूर्यकी (केतू) किरणोंके समान सुन्दर, तेरे (हरी) घोडोंकी हम (स्तव) प्रशंसा करें ॥६॥

[९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे (वाजयन्तौ) वेगवान् (हरी) घोडोंने (नु) शीघ्र (घृत-श्चुतं) पानी बरसानेवाले मेघके (स्वारं) शब्दको (अस्वार्ष्टं) गर्जाया। (भूमिः) पृथिवी (समना) सब ओरसे (वि अप्रथिष्ट) फैल गई। (पर्वतः चित्) पर्वत भी (सरिष्यन्) सरकता हुआ (अरंस्त) रूक गया ॥७॥

[९७] (पर्वतः) मेघ आकाशमें (अप्रयुच्छन्) प्रमाद-रहित होता हुआ (नि सादि) स्थित था। वह (मातृभिः) जलोंके साथ (वावशानः) गर्जता हुआ, (अक्रमीत्) घूम रहा था। स्तोता लोगोंने उस (वाणीं) वाणीको (दूरे पारे) बहुत दूर, अन्तरिक्षके भी पार (वर्धयन्तः) बढाते हुए (इन्द्र-इषितां) इन्द्रसे प्रेरित उस (धमनिं) वाणी-शब्दको और भी (नि पप्रथन्) फैलाया ॥८॥

भावार्थ- अहि असुर जलको रोक रखता और द्यौ पर चढाई करके उसे घेर लेता है। देवोंके जीवनके लिये ये दोनों आवश्यक हैं अतः इन्द्र इस असुरको मारकर दोनोंको मुक्त करता है ॥५॥

इन्द्रने पहले जो भी काम किए, अथवा इस समय भी वह जो कुछ काम करता है, वह उसके सभी काम प्रशंसनीय हैं। उसके हाथोंमें स्थित वज्र भी बहुत प्रशंसनीय है। उसके घोडे भी बहुत चमकीले एवं बलवान् हैं ॥६॥

इन्द्रके बलवान् घोडे अर्थात् विद्युत्की किरणें जब संचार करती हैं, तब पानीको बरसानेवाले मेघ गर्जने लगते हैं और पानी बरसने लगता है, उसमें पृथ्वी गर्भवती होकर धान्यादिको उत्पन्न करके विस्तृत हो जाती है, पुत्रके रूपमें माता विस्तृत होती है अथवा पुत्रको उत्पन्न करके मानों माता अपना ही विस्तार करती है। इसी प्रकार वृष्टि जलको पाकर धान्यादि उत्पन्न करके अपना विस्तार करती है। और तब इधर उधर भागनेवाले पर्वत, बादल भी पानी बरसाकर स्थिर हो जाते हैं। पानीसे भरे बादल इधर उधर भागते हैं, पर पानीसे रिक्त होकर वे ही बादल स्थिर हो जाते हैं ॥७॥

सबका पालन पोषण करनेके कारण वृष्टिको माता कहा है। उन जलोंसे भरा हुआ मेघ जब घूमता रहता है, बरसता नहीं, तब स्तोता गण अपने मंत्रोंसे उस बादलमें गर्जना उत्पन्न करते हैं और विद्युत्को प्रेरित करके पानी बरसवाते हैं। इस मंत्र में वर्षणेष्टिका प्रकार बताया गया है। यज्ञसे पानी बरसाया जा सकता है ॥८॥

९८ इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९ ॥

९९ अरोरवीद् वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत् पपिवान् त्सुतस्य ॥ १० ॥

१०० पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वि—त्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥

१०१ त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥ १२ ॥

अर्थ- [९८] (इन्द्रः) इन्द्रने (सिन्धुं) जलमें (आशयानं) सोये हुए (महां) बहुत बडे (मायाविनं) कपट नीति-कुशल (वृत्रं) वृत्रको (निःअस्फुरत्) मार दिया। उस समय (अस्य) इस (वृष्णः) बलधारी इन्द्रके (कनिक्रदत्) सनसनाते हुए (वज्रात्) वज्रसे (भियाने) डरे हुए (रोदसी) दोनों लोक (अरेजेतां) काँपने लगे ॥९॥

[९९] (यत्) जब (मानुषः) प्रजाके हितैषी इन्द्रने (आमनुषं) प्रजाका अहित करनेवाले वृत्रको (निजूर्वात्) मारा, तब (अस्य) इस (वृष्णः) बलशाली इन्द्रका (वज्रः) वज्र (अरोरवीत्) भयानक शब्द करने लगा। (सुतस्य) सोमके (पपिवान्) पीनेवाले इन्द्रने इस (मायिनः) कपट करनेवाले (दानवस्य) दानवकी (मायाः) कपटोको (निः अपादयत्) बहुत दूर कर दिया ॥१०॥

१ मानुषः - अमानुषं नि जूर्वात्- प्रजाका हित करनेवाले वीर प्रजाका अहित करनेवालेको मारे।

[१००] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र! तू यह (सोमं) सोम (पिब-पिब) अवश्य पी, (इत्) अवश्य पी। ये (सुतास) निचोडे गए (मन्दिनः) आनन्दकारक सोमरस (त्वा) तुझे (मन्दन्तु) प्रसन्न करें। वे (ते) तेरे (कुक्षी) पेटको (पृणन्तः) भरते हुए तुझ (इन्द्र) इन्द्रको (वर्धयन्तु) बढायें। (सुतः) बनाया हुआ सोमरस (पौरः) प्रजाओंकी (इत्था) इस प्रकार (आव) रक्षा करे ॥११॥

[१०१] हे (इन्द्र) इन्द्र! हम (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (त्वे अपि) तुझमें ही (अभूम) रहा करें। (ऋतया) यज्ञकी कामनासे तेरी (सपन्तः) सेवा करते हुए तेरी (धियं) बुद्धिको (वनेम) प्राप्त करें। (अवस्यवः) रक्षाकी कामनावाले हम लोग तेरे (प्रशस्तिं) प्रशंसनीय गुणोंको (धीमहि) धारण करें, इस प्रकार हम (सद्यः) शीघ्र ही (ते) तेरे (रायः) धनके (दावने) दानके अधिकारी (स्याम) हों ॥१२॥

१ विप्राः सपन्तः धियं वनेम- हम बुद्धिमान जन इन्द्रकी सेवा करते हुए उसकी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करें।
२ अवस्यवः प्रशस्तिं धीमहि- रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्रके प्रशंसनीय गुणोंको धारण करें।

भावार्थ- वृत्र जलका मार्ग रोक कर उसीमें लेटा हुआ था। जिस समय इन्द्रने उस पर वज्र फेंका उस समय उससे द्यौ और पृथिवीको कँपानेवाला शब्द हुआ ॥९॥

यह इन्द्र मननशील मनुष्यों अर्थात् बुद्धिमानोंका हित करनेवाला है, अतः जो उनका अहित करता है, उनको यह इन्द्र नष्ट कर देता है। उस समय वह इतना क्रोधित हो जाता है कि उसके द्वारा फेंका हुआ वज्र बहुत भयंकर शब्द करता हुआ शत्रु पर गिरता है और इस प्रकार छल कपट करनेवाले दानवकी माया भी नष्ट हो जाती है ॥१०॥

स्तोता लोग इन्द्रको पेट-भर सोम-रस पिलाते हैं। यह सोमरस इन्द्रको शक्तिशाली बनाते हैं और तब इन्द्र प्रजाकी रक्षा करता है। इस प्रकार मानों सोमरस ही प्रजाओंकी रक्षा करता है ॥११॥

जो बुद्धिमान जन इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं और उसकी सेवा करते हुए उसकी उत्तम बुद्धि एवं प्रशंसनीय गुणोंको धारण करते हैं, वे ही उसके दानके अधिकारी होते हैं अर्थात् उत्तम आचरण करनेवालोंको ही इन्द्र धन देता है ॥१२॥

१०२ स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवा—ऽस्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥ १३ ॥

१०३ रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥ १४ ॥

१०४ व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसान—स्तृपत् सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान् त्सु पृत्स्वा तरुत्रा—ऽवर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥ १५ ॥

१०५ बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रो—क्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत् त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥

अर्थ- [१०२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अवस्यवः) रक्षा चाहनेवाले (ये) जो हम (ते) तेरी (ऊर्जं) तेज (वर्धयन्तः) बढाते हैं, इसलिये (ते) वे हम (ते ऊती) तेरी रक्षामें (स्याम) सदा रहें। हे (देव) देव ! हम (यं) जिस (शुष्मिन्तमं) बडे बलकारी धनको (चाकनाम) चाह रहे हैं, तू (अस्मे) हमें वह (वीरवन्तं) वीरोंसे युक्त (रयिं) धन (रासि) दे ॥१३॥

[१०३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! जो (सजोषसः) समान प्रीति वाले (ये च) और जो (मन्दसानाः) प्रसन्न होकर युद्ध की ओर (वायवः) जानेवाले मरुत् (अग्रनीतिं) अपनेको आगे ले जानेवाले नेता की (प्र पान्ति) रक्षा करते हैं, (नः) हमें उन (मारुतं) मरुतोंका (शर्धः) बल (रासि) दे। हमें रहनेका (क्षयं) घर (रासि) दे और (अस्मे) हमें (मित्रं) मित्र (रासि) दे ॥१४॥

१ सजोषसः मन्दसानाः वायवः अग्रनीतिं प्र पान्ति- एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले उत्तम रीतिसे शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले सैनिक आगे ले जानेवाले नेताकी उत्तम प्रकारसे रक्षा करें।

[१०४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (येषु) जिन यज्ञोंमें तू (मन्दसानः) आनन्दित हुआ, उनमें (द्रह्यत्) दृढ होकर (तृपत्) तृप्त करनेवाले (सोमं) सोमको (पाहि) पी। वे स्तोता भी (नु) शीघ्र उसे (व्यन्तु इत्) सेवन करें। हे (तरुत्र) तारक ! तू हमारे (बृहत् भिः) बडे (अर्कैः) स्तोत्रोंसे (पृत्सु) युद्धोंमें (अस्मान्) हमें और (द्यां) द्यौको (सु आ अवर्धयः) भली प्रकार बढाता है ॥१५॥

[१०५] हे (तरुत्र) शत्रु-नाशक (इन्द्र) इन्द्र ! (ये) जो (बृहन्तः इत्) बडे उद्देश्यवाले स्तोता (नु) तत्काल, (उक्थेभिः वा) स्तोत्रसे, (ते) तेरी (सुम्नं) सदिच्छाको (आ-विवासान्) सेवा द्वारा मांगते हैं, (बर्हिः) दर्भ आसन (स्तृणानासः) बिछानेवाले (त्वा ऊताः इत्) तुझसे रक्षा पाये हुए वे (पस्त्यवत्) गृह सहित (वाजं) अन्न (अग्मन्) प्राप्त किया करते हैं ॥१६॥

भावार्थ- जो इन्द्रके तेजको बढाते हैं, वे सदा इन्द्रकी रक्षामें रहते हैं और वे ही वीर पुत्रोंसे युक्त धनको प्राप्त करते हैं ॥१३॥

सैनिक ऐसे हों कि जो एक साथ रहें और सदा आनन्दयुक्त रहें और उत्तम गति अथवा शत्रुओंपर उत्तम रीतिसे आक्रमण करनेवाले हों, ये सैनिक अपने नेताकी हर तरह से रक्षा करें। ऐसे शूर सैनिक अपने देशकी प्रजाओंको सशक्त बनायें और उनके मित्र बनकर उनकी रक्षा करें ॥१४॥

इन्द्र सोम और स्तोत्रसे प्रसन्न होकर स्तोता और उनके कार्योंको बढाता है ॥१५॥

जो केवल, इन्द्रकी स्तुति-मात्र करते हैं, वे भी अन्न और घर प्राप्त करते हैं ॥१६ ॥

१०६ उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसान—स्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥ १७ ॥

१०७ धिष्वा शवः शूर येन वृत्र—मवाभिनद् दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥ १८ ॥

१०८ सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूप—मरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ १९ ॥

१०९ अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥

अर्थ- [१०६] हे (शूर) वीर (इन्द्र) इन्द्र ! (उग्रेषु इत नु) जो बहुत बल देनेवाले हैं ऐसे (त्रि-कद्रकेषु) त्रिपात्रमें तू (मन्दसानः) हर्ष मनाता हुआ। (सोमं) सोमको (पाहि) पा। तू वहाँ (प्रीणानः) प्रसन्न होकर (श्मश्रुषु) दाढी के बालोंपर (प्र-दोधुवत्) कम्पन देते हुए, उन्हें हिलाते हुए अपने (हरिभ्यां) घोडों द्वारा हमारे (सुतस्य) सोमक (पीति) पान स्थान पर (याहि) जा ॥१७॥

[१०७] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र ! तू वह (शवः) बल (धिष्व) धारण कर (येन) जिसके द्वारा (और्णवाभं) मकडीके जालके समान फैले हुए (दानु) असुर (वृत्रं) वृत्रका तूने (अवं अभिनत्) टुकडे टुकडे किये। (आर्याय) आर्यके लिये (ज्योतिः) प्रकाश (अप अवृणोः) खोला और बलसे (दस्युः) दुष्ट असुर (सव्यतः) उलटी दिशामें (नि सादि) बिठा दिया गया, मारा गया ॥१८॥

१ आर्याय ज्योतिः अपावृणोः- यह इन्द्र श्रेष्ठ पुरुषके लिए प्रकाशका मार्ग दिखाता है।

[१०८] हे इन्द्र ! तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (आर्येण) आर्यकी सहायतासे तथा (विश्वाः) सारी (स्पृधः) शत्रुनेताओं और (दस्यून्) दुष्टोंको (तरन्तः) पार करते हुए (ये) जो हम (ते) तेरे भक्त है वे धन (सनेम) प्राप्त करें। तूने (त्रिताय) त्रितको (साख्यस्य) मित्रताके लिये (तत्) उस (त्वाष्ट्रं) त्वष्टाके पुत्र (विश्व-रूपं) विश्वरूपको (अस्मभ्यं) हमारे (अरन्धयः) वशमें किया। मार दिया ॥१९॥

[१०९] इन्द्रने स्वयं (ववृधानः) बढते हुए (अस्य) इस (सुवानस्य) यज्ञकर्ता और (मन्दिनः) आनन्दयुक्त (त्रितस्य) त्रितंक शत्रु (अर्बुदं) अर्बुदका (नि अस्तः) मारा। (सूर्यः न) सूर्यके समान अपने रथके (चक्रं) चक्रको (अवर्तयत्) फिराया और उस (अङ्गिरस्वान्) अंगिराके साथी (इन्द्रः) इन्द्रने (वलं) वल असुरको (भिनत्) मारा ॥२०॥

भावार्थ- इन्द्र तीन पात्रोंमें रखा सोम पीता और दाढी के बालोंमें लगा हुआ सोम झाडते हुए याग की ओर जाता है ॥१७॥

इन्द्र अपने बलसे शत्रुको नीचा दिखाता और आर्यको प्रकाश देता है ॥१८॥

भक्तगण इन्द्रके द्वारा सुरक्षित होकर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकी सहायता पाकर शत्रुओंको नष्ट करके उनका धन प्राप्त करते हैं ॥१९॥

इन्द्र रथ घुमाकर त्रित ऋषिके शत्रु अर्बुद और वलको मारता है ॥२०॥

११० नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २१ ॥

[१२]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

१११ यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

११२ यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

अर्थ- [११०] हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते) तेरी (सा) वह (मघोनी) ऐश्वर्यसे भरी (दक्षिणा) दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिये (वरं) श्रेष्ठ धन (प्रति दुहीयत्) प्राप्त करती है। तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोता लोगोंके लिये (शिक्ष) दे। हमें (मा अति धक्) छोडकर मत दे अर्थात् देते समय हमारा त्याग मत कर। तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो। हम (सु-वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोता लोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिये (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥२१॥

[१२]

[१११] हे (जनासः) मनुष्यो ! (यः) जिस (मनस्वान्) मनस्वी (देवः) देवने (प्रथमः) पहले पहल (जातः एव) उत्पन्न होते ही अपने (क्रतुना) कर्मसे सारे (देवान्) देवोंको (परि अभूषत्) भूषित कर दिया, (यस्य) जिसके (शुष्मात्) बलसे (रोदसी) दोनों लोक (अभ्यसेतां) काँप उठे, अपने (नृम्णस्य) बलके (मह्ना) प्रभावसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध यही (सः) वह (इन्द्र) इन्द्र है ॥१॥

१ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषयत्- मनस्वी मनुष्य पैदा होते ही अपने कर्मसे देवों अर्थात् विद्वानोंको प्रसन्न करता है।

२ शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्- इस इन्द्रके बलके डरसे पृथ्वी और द्यौ दोनों लोक कांप उठते हैं।

३ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः- अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है।

[११२] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिसने (व्यथमानां) कांपनेवाली (पृथिवीं) पृथिवीको (अदृंहत्) दृढ किया, (यः) जिसने (प्र-कुपितान्) क्रोधित (पर्वतान्) पर्वतोंको (अरम्णात्) स्थिर किया, (यः) जिसने (वरीयः) विस्तृत (अन्तरिक्षं) आकाशको (वि-ममे) माप लिया और (यः) जिसने (द्यां) द्यौको (अस्तः भ्नात्) थामा (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥२॥

भावार्थ- इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है। वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है। वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे-बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥२१॥

पराक्रममें इन्द्रकी समता करनेवाला कोई देव नहीं। वह अपनी शक्तिसे दोनों लोकोंको वशमें रखता है। वह अपने बलके कारण ही इन्द्र है। दूसरोंके बलपर वह इन्द्र नहीं बनता ॥१॥

इन्द्र पृथिवीको बसने योग्य करता, पर्वतोंको रमणीय करता, वह इतना विस्तृत है कि वह विस्तृत आकाश को भी नाप देता है और द्यौको व्यवस्थित रखता है। वही इन्द्र है ॥२॥

११३ यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
११४ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
११५ यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥
११६ यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥

अर्थ- [११३] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिसने (अहिं) मेघको (हत्वा) मार कर (सप्त) सात (सिन्धून्) नदियोंको (अरिणात्) बहाया, (यः) जिसने (वलस्य) वल असुरकी (अप-धा) छिपाई हुई (गाः) गायोंको (उत्-आजत्) वहाँसे प्रेरित किया (यः) जिसने (अश्मनोः) दो पत्थरोंके (अन्तः) बीच (अग्निं) अग्निको (जजान) उत्पन्न किया और जो (समत्सु) युद्धोंमें शत्रुका (संवृक्) नाशक होता है (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥३॥

[११४] हे (जनासः) लोगो ! (येन) जिसने (इमा) ये (विश्वा) सारे लोक (च्यवना) हिलनेवाले (कृतानि) बनाये हैं, (यः) जिसने (दासं) दास (वर्णं) वर्णको (अधरं) नीचे (गुहा) गुप्त स्थानमें (अकः) कर दिया है, (यः) जिसने अपने (लक्षं) अभीष्टको (जिगीवान्) जीत लिया और (श्वघ्नी-इव) कुत्तों द्वारा शिकार करनेवाले व्याधके समान जिसने (अर्यः) शत्रुके (पुष्टानि) पुष्टिकारक पदार्थोंको (आदत्) छीन लिया है, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥४॥

१ यः लक्षं जिगीवान् सः इन्द्रः- जो अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है, वही ऐश्वर्यवान् हो सकता है।

[११५] लोग (यं स्म) जिस (घोरं) भयदायक इन्द्रको (पृच्छन्ति) पूछते हैं कि (सः) वह (कुह इति) कहाँ है ? (उत) ओर (एनं ईं) इस उस इन्द्र को (आहुः) कहते हैं कि (एषः) यह (न अस्ति इति) नहीं है। (सः) वह इन्द्र (विजः-इव) वीरके समान उन इन्द्र के न माननेवाले (अर्यः) शत्रुओंकी (पुष्टीः) पुष्टी देनेवाली सम्पत्तियोंको (आ मिनाति) नष्ट करता है। हे (जनासः) लोगो ! (अस्मै) इसके लिए (श्रत्) श्रद्धाका भाव (धत्त) धारण करो, (सः) वह सबसे बडा यह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥५॥

१ सः इन्द्रः अर्यः पुष्टीः आ मिनाति- वह इन्द्र शत्रुओंकी धन सम्पत्तिको नष्ट कर देता है।

[११६] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जो (रध्रस्य) धन-सम्पन्न और (यः) जो (कृशस्य) दरिद्रका, तथा (यः) जो (ब्रह्मणः) ज्ञानी (नाधमानस्य) भक्त (कीरेः) कविका (चोदिता) प्रेरक है। (यः) जो (सु शिप्रः) सुन्दर शिरस्त्राण धारण करनेवाला (युक्त ग्राव्णः) पत्थर तैयार रख कर (सुत सोमस्य) सोम बनानेवाले यजमानका (अविता) रक्षक है (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥६॥

भावार्थ- इन्द्र अहि असुरको मारके जल बहाता और वल को मार कर उसकी अधीनतासे गायोंको छुडाता है, वही अग्निका उत्पादक है ॥३॥

इन्द्र इन सारे लोकोंको बनानेवाला और असुरको नीची दशामें पहुँचानेवाला है। वह एक बार जो अपना उद्देश्य निश्चित कर लेता है, उसे वह प्राप्त कर ही लेता है ॥४॥

असुर लोग इन्द्रको नहीं मानते, न उसकी पूजा करते हैं, इसलिये वह उन अविश्वासियोंका धन और बल नष्ट कर देता है। उस लिए मनुष्योंको चाहिए कि वे इन्द्र पर श्रद्धा रखें ॥५॥

इन्द्र अपने स्तोताका प्रेरक और सोमयाग बनानेवालेका रक्षक है। वह अपने साथियोंका सदा ध्यान रखता है ॥६ ॥

११७ यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः ।
यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां ने॒ता स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ७ ॥
११८ यं क्रन्द॑सी संय॒ती वि॒ह्वये॑ते॒ परेऽव॑र उ॒भया॑ अ॒मित्राः॑ ।
स॒मा॒नं चि॒द् रथ॑मातस्थि॒वांसा॒ नाना॑ हवेते॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ८ ॥
११९ यस्मा॒न्न ऋ॒ते वि॒जय॑न्ते॒ जना॑सो॒ यं युध्य॑माना॒ अव॑से॒ हव॑न्ते ।
यो विश्व॑स्य प्रति॒मानं॑ ब॒भूव॒ यो अ॑च्युत॒च्युत् स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ९ ॥
१२० यः शश्व॑तो॒ मह्येनो॒ दधा॑ना॒नम॑न्यमाना॒ञ्छर्वा॑ ज॒घान॑ ।
यः शर्ध॑ते॒ नानु॒ददा॑ति शृ॒ध्यां यो दस्यो॑र्ह॒न्ता स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ १० ॥

अर्थ- [११७] हे (**जनासः**) लोगो ! (**यस्य**) जिसकी आज्ञामें (**अश्वासः**) घोडे, (**यस्य**) जिसकी आज्ञामें (**गावः**) गायें, (**यस्य**) जिसकी आज्ञामें (**ग्रामाः**) ग्राम और (**यस्य**) जिसकी आज्ञामें (**विश्वे**) सारे (**रथासः**) रथ हैं। (**यः**) जिसने (**सूर्यं**) सूर्य और (**यः**) जिसने (**उषसं**) उषाको (**जजान**) उत्पन्न किया तथा (**यः**) जो (**अपां**) जलोंका (**नेता**) चलानेवाला अर्थात् संचालक है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) इन्द्र ही है ॥७॥

१ **इन्द्रः सूर्यं उषसं अपां नेता-** यह इन्द्र सूर्य, उषा और जलोंका संचालक है।

[११८] हे (**जनासः**) लोगो ! (**संयती**) साथ-साथ चलनेवाली (**क्रन्दसी**) द्यौ और पृथिवी (**यं**) जिसको (**विह्वयेते**) सहायार्थ बुलाती हैं। (**परे**) उत्तम और (**अवरे**) निकृष्ट (**उभयाः**) दोनों प्रकारके (**अमित्राः**) शत्रु भी जिसे युद्धके लिये बुलाते हैं। (**समानं चित्**) एकसे (**रथं**) रथ पर (**आतस्थिवांसा**) बैठे दो वीर जिसे (**नाना**) पृथक् पृथक् रूपसे सहाय्यार्थ (**हवेते**) बुलाते हैं (**सः**) वह (**इन्द्रः**) इन्द्र है ॥८॥

[११९] हे (**जनासः**) लोगो ! (**जनासः**) वीर लोग (**यस्मात्**) जिसकी सहायताके (**ऋते**) बिना (**न विजयन्ते**) विजय नहीं पाते, (**युध्यमानाः**) लडनेवाले वीर अपनी (**अवसे**) रक्षाके लिये (**यं**) जिसे (**हवन्ते**) पुकारते हैं, (**यः**) जो (**विश्वस्य**) सबका (**प्रतिमानं**) यथावत् जाननेवाला (**बभूव**) हुआ था और (**यः**) जो (**अच्युतच्युत्**) अटल-शक्तिवाले शत्रुको भी नष्ट कर देता है (**सः**) वह (**इन्द्रः**) इन्द्र है ॥९॥

१ **जनासः यस्मात् ऋते न विजयन्ते-** वीर लोग इस इन्द्रकी सहायताके बिना विजय नहीं पा सकते।

२ **यः अच्युतच्युत् स इन्द्रः-** जो अपने स्थानसे न हटनेवाले वीरको हटा देता है, वही इन्द्र है।

[१२०] हे (**जनासः**) लोगो ! (**यः**) जिसने, (**महि**) बडे (**एनः**) पाप (**दधानान्**) धारक (**शश्वतः**) अनेक (**अमन्यमानान्**) विरोधि शत्रुओंको अपने (**शर्वा**) हिंसक वज्रसे (**जघान**) मारा, (**यः**) जो (**शर्धते**) अहंकारी मनुष्यको (**शृध्यां**) गर्वका अवसर (**न**) नहीं (**अनुददाति**) देता और (**यः**) जो (**दस्योः**) दस्युका (**हन्ता**) नाशक है, (**सः**) वह (**इन्द्रः**) इन्द्र है ॥१०॥

१ **यः शर्धते न अनुददाति-** यह इन्द्र अहंकारीको कुछ भी नहीं देता।

भावार्थ- इन्द्रके अधीन घोडे, गायें, अनेक ग्राम और असंख्य रथ हैं। वही सूर्य और उषाको प्रकाशित करता है। वही जलको बहाता है ॥७॥

द्यौ और पृथिवी ये दोनों लोक साथ-साथ रहते हैं, परन्तु दोनों ही पृथक् पृथक् इन्द्रका यश गाते हैं। शत्रु इन्द्रको वीर मानकर गर्वसे उसे बुलाते हैं। यदि दो वीर साथ-साथ हों तो वे इन्द्रको सबसे प्रथम अपने पास बुलाते हैं ॥८॥

कोई वीर इन्द्रकी सहायताके बिना विजय नहीं पा सकता। लडनेवाले वीर रक्षार्थ उसे ही बुलाते हैं। वह सारे संसारकी माप-तोल रखता है अर्थात् सब पदार्थोंका गुण-धर्म ठीक-ठीक जानता है। वह बडे से बडे बलवान्को भी गिरा देता है, पछाड देता है ॥९॥

इन्द्र ऐसे बडे अपराधियोंको मार देता है जो उसे न मानकर उसकी आज्ञाका भङ्ग करते हैं। अभिमानियोंका अभिमान तोडता और दुष्ट कर्मवालेको दण्ड देता है ॥१०॥

१२१ यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥
१२२ यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मा—नवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहु—र्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
१२३ द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहु—र्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥
१२४ यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥

अर्थ- [१२१] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिसने (पर्वतेषु) पर्वतोंमें (क्षियन्तं) छिपे (शम्बरं) शम्बरको (चत्वारिंश्यां) चालीसवें (शरदि) शरद्में, (अनु-अविन्दत्) ढूंढ लिया, (यः) जिसने (ओजायमानं) बल दिखानेवाले, (शयानं) सोये हुए (दानुं) दानव (अहिं) अहिको (जघान) मारा, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥११॥

[१२२] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिस (सप्त-रश्मिः) सात किरणोंवाले (वृषभः) बलवान् और (तुविष्मान्) ओजस्वीने (सर्तवे) बहनेके लिये (सप्त) सात (सिन्धून्) सिन्धुओंको (अव-असृजत्) बहाया (यः) जिस (वज्रबाहुः) हाथमें वज्र रखनेवालेने (द्यां) द्यौ पर (आरोहन्तं) चढते हुए (रौहिणं) रौहिणको (अस्फुरत्) नष्ट कर दिया, (सः) वह (इन्द्रः) है ॥१२॥

[१२३] हे (जनासः) लोगो ! (द्यावा) द्यौ (पृथिवी चित्) और पृथिवी (अस्मे) इस इन्द्रके लिये (नमेते) झुकती हैं। (पर्वतः) पर्वत (अस्य) इसके (शुष्मात् चित्) बलसे (भयन्ते) डरते हैं। (यः) जो (सोमपाः) सोम पीनेवाला, शरीरसे (निचितः) बलवान और (वज्रबाहुः) वज्रके समान भुजावाला है, (यः) जो (वज्रहस्तः) हाथमें वज्र रखता है, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥१३॥

१ द्यावा पृथिवी अस्मै नमेते- द्युलोक और पृथ्वीलोक इस इन्द्रकी शक्तिके आगे झुक जाते हैं।

[१२४] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जो सोम (सुन्वन्तं) निचोडनेवालेकी, (यः) जो सोम (पचन्तं) पकानेवालेकी, (यः) जो (शंसन्तं) स्तोत्र बोलनेवाले और (यः) जो (शशमानं) उत्तम वाणीका प्रयोग करनेवाले की, अपने (ऊती) रक्षा साधनोंसे (अवति) रक्षा करता है। (यस्य) जिसका (ब्रह्म) स्तोत्र, (यस्य) जिसका (सोमः) सोम और (यस्य) जिसका (इदं) वह (राधः) धन (वर्धनं) बढ़ानेका साधन है, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥१४॥

भावार्थ- इन्द्रके भयसे भाग कर शम्बर पर्वतमें छिपा था, वह चालीस वर्षके बाद पकडा गया। वृत्र जलको रोककर सोया था, उसे इन्द्रने मारा ॥११॥

इन्द्रने सात नदियोंको बहाया और द्यौको घेरनेवाले रौहिणको नष्ट किया। इन्द्रमें सात रश्मियां है ॥१२॥

इन्द्र द्यौ, पृथिवी और पर्वतोंका भी स्वामी है। सभी लोक इसकी शक्तिको देखकर डरकर उसके सामने झुक जाते हैं। वह हाथमें सदा वज्र रखता है ॥१३॥

इन्द्र सोमके सोता, पाचक और अपने स्तोताकी रक्षा करता है। स्तोत्र, सोम और दूसरे प्रकारके दान इन्द्रकी शक्तिको बढाते है ॥१४॥

१२५ यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १५ ॥

[१२]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इंद्रः । छन्दः- जगती; १३ त्रिष्टुप् ।]

१२६ ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद् यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयो ऽंशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ १ ॥
१२७ सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥

अर्थ- [१२५] (यः) जो (दुध्रः) अत्यन्त शक्तिशाली तू इन्द्र सोमका (सुन्वते) यज्ञ करनेवाले और उसे (पचंते चित्) पकानेवालेको (वाजं) धन (आ दर्दर्षि) दान करता है (सः किल) निश्चय वह तू (सत्यः) सत्य (असि) है, सत्य व्यवहार करनेवाला है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम (सुवीरासः) उत्तम वीरोंवाले तेरे (प्रियासः) प्रिय जन (विश्वहा) सब-दिन (ते) तेरी (विदथं) कीर्तिको (आ वदेम) बोला करें ॥१५॥

[१३]

[१२६] वर्षा (ऋतुः) सोमकी (जनित्री) माता है। सोम (तस्याः) उस वर्षासे (जातः) उत्पन्न होकर, (यासु) जिन जलोंमें (वर्धते) बढता है, उसने उन्हीं (अपः परि) जलोंमें (मक्षु) शीघ्र (आ अविशत्) प्रवेश किया। (आहनाः) कूटी जानेवाली वह लता (तत्) उस (पयः) जलको (पिप्युषी) बढानेवाली (अभवत्) बनी। उर (अंशोः) सोमका जो (प्रथमं) श्रेष्ठ (पीयुषं) रस है, (तत्) वह इन्द्रकी (उक्थ्यं) प्रशंसनीय हवि है ॥१॥

[१२७] (ई) ये (सध्री) अनुकूल बहनेवाली नदियाँ (पयः) जल (परि बिभ्रतीः) धारण करती हुई (आ) सब ओरसे (यन्ति) आती हैं। ये (विश्व प्स्न्याय) सब प्रकारके जलोंके आश्रय समुद्रके लिये (भोजनं) भोजन (प्र भरन्त) देती हैं। इन (प्रवतां) बहनेवाली नदियोंका (अनुस्यदे) बहनेके लिये, (अध्वा) मार्ग (समानः) एक ही दिशामें जाता है। हे इन्द्र ! (यः) जिस तूने, उन नदियोंके बहनेके लिये (ता) वे प्रसिद्ध कार्य अ से (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किये हैं, (सः) वह तू उन कामोंके कारण (उक्थ्यं) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥२॥

१ यः ता प्रथमं अकृणोः, सः उक्थ्यः- जिस कारण इन्द्रने उन उत्तम कर्मोंको प्रथम किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय होता है।

भावार्थ- इन्द्र सत्य है, उसकी सत्ता है, "वह नहीं है" ऐसा नहीं कह सकते। उसका व्यवहार भी सत्य रूप है। वह स्तोताओं और याज्ञिकोंको सदा धन दिया करता है ॥१५॥

सोम वर्षा ऋतुमें उत्पन्न होता है। वह जलसे बढता है। जब उसे जलमें भिगोकर कूटते हैं और जलमें या दूधमें निचोडते हैं तब उससे जल रसरूपमें बढता है। यह रस इन्द्रका उत्तम पेय है ॥१॥

इन्द्र अपने पराक्रमसे जल बहाता है। वही जल समुद्रको भरता है। जल सदा समुद्रकी ओर ही बढता है। इन उत्तम कर्मोंको इन्द्रने किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय होता है ॥२॥

१२८ अन्वेको वदति यद् ददाति तद् रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥
१२९ प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥
१३० अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन् त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥
१३१ यो भोजनं च दयसे च वर्धन-मार्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ- [१२८] (एकः) एक (यत्) जो कुछ (ददाति) देता है (तत्) उसे (अनु वदति) बोलता जाता है। (तत् अपाः) उस कर्मसे युक्त (एकः) एक (रूपा) रूपोंका (मिनन्) भेद करता (ईयते) जाता है। ब्रह्मा (एकस्य) एकके (विश्वाः) सारे (वि नुदः) हटाने योग्य कर्मोंको (तितिक्षते) दूर करता है। हे इन्द्र ! (यः) जिस तूने उनके लिये (ता) उन कर्मोंको (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किया, (सः) वह तू (उक्थ्यं) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥३॥

[१२९] देव लोग (प्रजाभ्यः) प्रजाओंके लिये (आयते) आनेवाले अतिथिके लिये (पृष्ठं) जीवन धारक, पालनमें (प्र भवन्तं) समर्थ (रयिं इव) धनके समान, (पुष्टिं) पुष्टिकर अन्न (वि भजन्तः आसते) बांटते रहते हैं (दंष्ट्रैः) दांतोंसे (पितुः) पालक अन्नका (भोजनं) भोजन (अत्ति) खाता है। हे इन्द्र ! (यः) जिस तूने इन देवों और मनुष्योंके (ता) उन हितकर कार्योंको सबसे (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किया है (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥४॥

[१३०] हे (अहिहन्) अहिके मारनेवाले इन्द्र ! (यः) जिस तूने (धौतीनां) नदियोंके (पथः) मार्गोंको (अरिणक्) खोला (अध) और (संदृशे) देखनेके लिये (दिवे) सूर्यके प्रकाशमें (पृथिवीं) पृथिवीको (अकृणोः) स्थापित किया। (देवाः) देवोंने, (उदभिः न) जैसे जलसे धोकर (वाजिनं) घोडेको वेगवान् बनाते हैं, वैसे, (तं) उस (त्वा) तुझ (देवं) देवको (स्तोत्रेभिः) स्तोत्रोंसे (अजनन्) बलवान् बनाया। (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥५॥

१ धौती- कंपनेवाली, नदी, धारा।

[१३१] हे इन्द्र ! (यः) जो तू यजमानके लिए (भोजनं च) भोजन और (वर्धनं च) वृद्धिका साधन (दयसे) प्रदान करता है और (आर्द्रात्) गीले वृक्षादिसे (शुष्कं) सूखा (मधु-मत्) मीठा फल (आ दुदोहिथ) दुहता, उत्पन्न करता है। (सः) वह तू (विवस्वति) यजमानके घरमें (शेवधिं) धन (नि दधिषे) स्थापित करता है। जो तू (एकः) अकेला (विश्वस्य) समस्त जगत्का (ईशिषे) स्वामित्व करता है (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥६॥

भावार्थ- इन्द्रके निमित्त यज्ञमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा अपना अपना काम करते हैं। इनमें ब्रह्मा यज्ञके दोषोंको दूर करता है ॥३॥

यज्ञसे इन्द्रकी शक्ति बढ़ती है। वह बलवान् होकर वृष्टि करता, इससे अन्न होता है और उस अन्नको खाकर प्राणी जीते हैं ॥४॥

इन्द्र अहिको मारकर जलको प्रवाहित करता है और वृत्रका अन्धकार मिटाकर सूर्यके प्रकाशमें पृथिवीको स्थापित करता है। जैसे मनुष्य घोडेको मलकर पानीसे धोकर उसमें स्फूर्ति भर देते हैं वैसे देव स्तुति द्वारा इस इन्द्रको प्रोत्साहित कर देते हैं। उत्साह से भर देते हैं ॥५॥

१३२ यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणा ऽधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७ ॥

१३३ यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥

१३४ शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ- [१३२] हे इन्द्र! (यः) जिसने (दाने अधि) खेतमें (पुष्पिणीः च) फल उत्पन्न करनेवाली (अवनीः) संरक्षक औषधियोंको उनके (धर्मणा) गुणोंसे युक्त करके (वि अधारयः) विविध रूपोंमें स्थापित किया, (यः च) और जिसने (दिवः) चमकते हुए सूर्यसे (असमाः) समानता रहित अनेक गुणोंवाली (दिद्युतः) किरणें (अजनः) उत्पन्न कीं, जिस (उरुः) महान्ने (अभितः) सब और (ऊर्वान्) दूर तक फैले हुए पर्वतोंको उत्पन्न किया, (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥७॥

[१३३] हे (पुरुकृत्) अनेक कार्योंके कर्ता इन्द्र! (यः) जिस तूने (सह-वसुं) धनसे सम्पन्न (नार्मरं) नार्मरको (निहन्तवे) मारनेके लिये, (पृक्षाय च) अन्नकी प्राप्ति तथा (दासवेशाय) दस्यु लोगोंके विनाशके लिये अपनी (ऊर्जयन्त्याः) बलवाली वज्रकी धारके (अपरिविष्टं) निर्मल (आस्यं) मुखको (उत एव अध) ठीक आज, उसी समय उस शत्रुपर (अवहः) फेंका (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (असि) है ॥८॥

१ नार्मर (नृ-मर्-अण्)- मनुष्योंकी हत्या करनेवाला नृमर और उसका पुत्र नार्मर, असुर, मेघ, दुष्टका पुत्र, दुष्ट।

[१३४] हे इन्द्र! (यत् ह) जब कि तूने (एकस्य) एकबार (श्रुष्टौ) सुखके निमित्त (चोदं) दाता यजमानकी (आविथ) रक्षा की, (यस्य) जिसके रथको (दश) दस (शतं वा) सौ घोडे एक (साकं) साथ खींचते हैं, जो तू सबका (आ अद्यः) भोज्य है, जिसने (दभीतये) दभीति ऋषिके लिये, (अरज्जौ) रस्सीसे बांधे विना ही (दस्यून्) दुष्टोंको (सं उनप्) नष्ट कर दिया और उस दभीतिका (सुप्र-अव्यः) उत्तम साथी (अभवः) बना, (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥९॥

भावार्थ- इन्द्र यजमानको धन देता और उसके खेतको फूल-फलसे सम्पन्न करता है। इस प्रकार अपने यजमानको हर तरह से समृद्ध बनाता है। उसका यह काम सचमुच प्रशंसनीय है ॥६॥

खेतोंमें फूल फलसे लदे जौ-गेहूं आदि दिखाई देते हैं, ये इन्द्रके स्थापित किये हुए हैं। इन औषधियोंमें अनेक शक्तियां हैं ये ही इनके धर्म हैं। सूर्यका प्रकाश भी एक प्रकारका नहीं, उसमें अनेक रंग और अनेक गुण हैं। ये सब प्रकाश किरण तथा पर्वतादि इन्द्रकी रचना हैं ॥७॥

इन्द्रके वज्रकी धारा तीक्ष्ण है। उस धारका मुंह चमचमाता है। इस वज्रसे ही नार्मरका वध होता है। इसी वज्रसे वह दासका वध करके अन्न प्रदान करता है ॥८॥

इन्द्र जिसके यहां एक बार भी आनन्द प्राप्त करता है, उसकी सदा रक्षा करता है। उस इन्द्रके रथको एक हजार घोडे खींचते हैं। वह सबका सेव्य है। दुष्टोंको दूर से ही नष्ट कर देता है। उसके उपासक उसके पास निर्भय होकर जा सकते हैं। क्योंकि वह उनका मित्र और साथी है ॥९ ॥

१३५ विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ १० ॥
१३६ सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥ ११ ॥
१३७ अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन् त्सास्युक्थ्यः ॥ १२ ॥
१३८ अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥

अर्थ- [१३५] (विश्वा इत्) सारी ही (रोधनाः) नदियां (अस्य) इस इन्द्रके (पौंस्यं) पराक्रमके (अनु) अनुकूल चलती हैं। यजमान (अस्मै) इसके लिये हवि (ददुः) देते है, उन्होंने इस (कृत्नवे) क्रियावान्के लिये (धनं) धन (दधिरे) एकत्र किया है। हे इन्द्र! तूने (षट्) छः (विस्तिरः) विस्तृत पदार्थोंको (अस्तभ्नाः) स्तम्भन कर रखा है, तू (पञ्च) पांच प्रकारके (संदृशः) देखनेवाली प्रजाओंका (परि) सब ओरसे (परः अभवः) पालक हुआ है। (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥१०॥

[१३६] हे (वीर) वीरतासे पूर्ण इन्द्र! (यत्) जिस कारण तू (एकेन) एक बारके (क्रतुना) प्रयत्नसे ही अभीष्ट (वसु) धन (विन्दसे) प्राप्त कर लेता है, इस कारण (तव) तेरा वह (वीर्य) पराक्रम (सुप्रवाचनं) प्रशंसनीय है। तू (सहस्वतः) बलधारी (जातूस्थिरस्य) जातूष्ठिरका (वयः) अन्न (प्र) स्वीकार करता है। हे (इन्द्र) इन्द्र! तूने (या) जिन (विश्वा) समस्त उत्तम कर्मोंको (चकर्थ) किया है, उनके कारण (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥११॥

[१३७] हे इन्द्र! तूने (तूर्वीत्ये च) तुर्वीति ओर (वय्याय च) वय्यको (कं) सुखपूर्वक (सरपसः) जलसे (तराय) पार करनेके लिये जलोंके (स्रुतिं) प्रवाहको (अरमयः) नियममें रखा, शान्त किया। जलकी (नीचा) गहराईमें (सन्तं) पड़े हुए (परावृजं) परावृक् ऋषिको जलसे (उत् अनयः) ऊपर किया। अपनी (श्रवयन्) कीर्तिको बढ़ाते हुए तूने (अन्धं) अन्धे और (श्रोणं) पङ्गुको (प्र) उत्तम आंख और पांव दान किये। (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥१२॥

[१३८] हे (वसौ) धन-सम्पन्न (इन्द्र) इन्द्र! (ते) तेरे पास (वसव्यं) धन (बहु) बहुत है। तू (तत्) वह (राधः) धन (दानाय) दान करनेके लिये (अस्मभ्यं) हमें (सं अर्थयस्व) दे। (यत्) जो तेरा (चित्रं) बहुत योग्य धन है, उसे तू (अनु द्यून्) प्रतिदिन (श्रवस्याः) देनेकी इच्छा कर। हम (सु-वीराः) उत्तम वीरोसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें, सभामें तेरे सामने (बृहत्) बृहत् साम (वदेम) बोलें ॥१३॥

भावार्थ- इन्द्र जलको बहाता, यजमानोंका दान स्वीकार करता, सब पदार्थोंको वश में रखता और सब प्रजाओंको पालता है ॥१०॥

इन्द्रका प्रयत्न कभी विफल नहीं जाता। उसने एक नहीं, अनेक उत्तम कार्य किये हैं जिससे उसकी प्रशंसा हो रही है। वह स्वयं भी बलवान् है इसलिए वह बलवान् लोगोंके द्वारा दिए गए अन्नको ही स्वीकार करता है, कायरोंका नहीं ॥११॥

इन्द्र पार करनेके लिये जलकी गहराई कम करता, जलमें डूबे हुओंको बचाता, अन्धेको आंख और पङ्गुको पांव देता है ॥१२॥

इन्द्र के पास असंख्य धन है। स्तोता उसी धनको प्राप्त कर देवोंके निमित्त यज्ञका प्रबन्ध करते हैं ॥१३॥

[१४]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।]

१३९ अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोम—मामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ १ ॥
१४० अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥
१४१ अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वात—मिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥
१४२ अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४ ॥

अर्थ- [१३९] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोगो ! (**इन्द्राय**) इन्द्रके लिये (**सोमं**) सोम (**भरत**) भरपूर हो। (**अमत्रेभिः**) पात्रोंसे इसके लिये (**मद्यं**) आनन्ददायक (**अन्धः**) अन्न (**आ सिञ्चत**) दो। यह (**वीरः**) वीर इन्द्र (**अस्य**) इस सोमके (**पीतिं**) पानको (**सदं**) सदा (**कामी हि**) चाहनेवाला है। इस (**वृष्णे**) सुखकी वर्षा करनेवाले के लिये (**तत् इत्**) उसीका (**जुहोत**) हवन करो। (**एषः**) यह इन्द्र उसे (**वष्टि**) चाहता है ॥१॥

[१४०] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोगो ! (**यः**) जिस इन्द्रने (**अशन्या इव**) जैसे बिजली (**वृक्षं**) वृक्षको मार देती है वैसे ही वज्रसे, (**अपः**) जलको (**वव्रिवांसं**) रोकनेवाले (**वृत्रं**) वृत्रको (**जघान**) मार दिया है, (**तत् वशाय**) इच्छावाले (**तस्मै**) उस इन्द्र के लिये (**एतं**) यह सोम (**भरत**) दो। (**एषः**) यह (**इन्द्र**) इन्द्र (**अस्य**) इस सोमके (**पीतिं**) पीनेकी (**अर्हति**) योग्यता रखता है ॥२॥

[१४१] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोगो ! (**यः**) जिसने (**दृभीकं**) दृभीकका (**जघान**) वध किया, (**यः**) जिसने (**गाः**) गौएं (**उत् आजत्**) प्रकट कीं और (**वलं**) वलको (**अप वः हि**) अनावरण कर दिया- वलके घेरेको तोड दिया, (**अन्तरिक्षे न वातं**) जैसे आकाशमें अर्थात् वायुको स्थापित करते हैं वैसे (**तस्मै**) उस इन्द्रके लिये (**एतं**) यह सोम स्थापित करो। (**जूः न वस्त्रैः**) जैसे निर्बल मनुष्य वस्त्रसे अपने अंगोंको ढकता है, वैसे (**सोमैः**) सोमसे (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**आ ऊर्णुत**) आच्छादित कर दो ॥३॥

१ दृभीकं- (**सर्वान् विदारयति भियं करोतीति दृभीको नामासुरः -सायणः**)- जो सबको मारता और भय उत्पन्न करता है उसका नाम दृभीक है, असुर मेघ।

[१४२] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोगो ! (**यः**) जिसने (**उरणं**) उरणको (**जघान**) मारा, उसकी (**नव**) नौ (**चख्वांसं**) आंखों और (**नवतिं**) नब्बे (**बाहून् च**) भुजाओंको नष्ट किया, (**यः**) जिसने (**अर्बुदं**) अर्बुदको (**नीचा**) नीचेकी ओर (**अव बबाधे**) गिरा दिया (**सोमस्य**) सोमके (**भृथे**) यज्ञकी ओर (**तं इन्द्रं**) उस इन्द्रको (**हिनोत**) प्रेरित करो ॥४॥

भावार्थ- इन्द्र सोमकी इच्छा करता है। यह सोम उसका आनन्द और उत्साहवर्धक अन्न है ॥१॥

इन्द्र वृत्रको नष्ट करता है, इसलिये वह सोम पीनेका अधिकारी है। वृत्र अन्धकारका प्रतीक है और सोम ब्रह्मज्ञानका प्रतीक है। जो वृत्ररूपी अज्ञानान्धकारको नष्ट करता है, वही ब्रह्मज्ञान पानेका अधिकारी होता है ॥२॥

इन्द्र दृभीक और वल असुरोंका नाश करता है। वलके बन्धनसे गौओंको छुडाता है, इसलिये अध्वर्यु लोग उसका पेट सोम-रससे पूर्ण कर देते हैं ॥३॥

जो इन्द्र अनेक असुरोंका वध करता है, वही सोम पीनेका अधिकारी है ॥४॥

१४३ अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥
१४४ अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥
१४५ अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान् न्यावृणग् भरता सोममस्मै ॥ ७ ॥
१४६ अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

अर्थ- [१४३] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (अश्नं) अश्नको (सु जघान) मारा, (यः) जिसने (अशुषं) न मरने योग्य परन्तु दूसरोंके प्राणशोषक (शुष्ण) शुष्णको, (यः) जिसने (वि अंस) बाहु रहित अहिको, (यः) जिसने (पिप्रुं) पिप्रुको (नमुचिं) नमुचिको और (यः) जिसने (रुधिक्रां) रुधिक्राको मारा, (तस्मै) उस (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (अन्धसः) अन्नका (जुहोत) हवन करो ॥५॥

१ अश्न- पराया धन खानेवाला।

२ नमुचि- न छोडनेवाला, अत्यागी।

३ रुधिक्रा- दूसरोंकी सीमा या घरमें घुसनेवाला, डाकू, चोर, असुर, दुष्ट।

[१४४] हे ! (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगों ! (यः) जिसने (अश्मना इव) पत्थरके समान कठोर वज्रसे (शम्बरस्य) शम्बरके (पूर्वीः) पुराने (शतं) सौ (पुरः) नगर (बिभेद) तोड दिये, (यः) जिस (इन्द्रः) इन्द्रने (वर्चिनः) वर्चीके (शतं सहस्रं) सैंकडों सहस्रों वीर भूमिपर (अप अवपत्) गिरा दिये, (अस्मै) इस इन्द्रके लिये (सोमं) सोम (भरत) दो ॥६॥

[१४५] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिस (जघन्वान्) घातकने (भूम्यः) भूमिके (उपस्थे) ऊपर (शतं) सैंकडों और (सहस्रं) सहस्रों असुरोंको मारकर (आ अवपत्) चारों ओर बिछा दिया, जिसने (कुत्सस्य) कुत्स, (आयोः) आयु और (अतिथिग्वस्य) अतिथिग्वके (वीरान्) वीरोंको (नि अवृणक्) नीचा दिखाया, (अस्मै) इस इन्द्रके लिये, (सोमं) सोम (भरत) जुटाओ ॥७॥

[१४६] हे (नरः) नेता (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगों ! तुम (यत्) जो कुछ (कामयाध्वे) चाहो, (इन्द्रे) इन्द्रके निमित्त (श्रुष्टी) शीघ्र हवि (वहन्तः) देते हुए (तत्) उस वस्तुको (नशथ) प्राप्त करो। हे (यज्यवः) (गभस्तिपूतं) अंगुलियोंसे छाने हुए (सोमं) सोमको (श्रुताय) कीर्तिमान् (इन्द्राय) इन्द्रके आगे (भरत) भरपूर दो और उसकी अग्निमें (जुहोत) हवन करो ॥८॥

१ नरः ! यत् कामयाध्वे, इन्द्रे हवन्तः तत् नशथ- हे मनुष्यो ! तुम जो चाहते हो, उसे इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर लो।

भावार्थ - यह इन्द्र पराये धनको खानेवाले, दूसरोंके रक्त को चूसनेवाले, सर्पवत् कुटिल व्यवहार करनेवाले आदि दुष्टोंको मारता है और तब वह सोम प्राप्त करनेका अधिकारी बनता है, उसी प्रकार राजा भी दुष्टोंका विनाश करे, तभी वह प्रजाके आदरका पात्र हो सकेगा ॥५॥

इन्द्र शत्रुके बडे-बडे गढोंको तोड देता और असंख्य वीरोंको भूमिपर सुला देता है ॥६॥

इन्द्र अपने पक्षके राजा और ऋषियोंकी सहायता करके उनके शत्रुओंका नाश करता है और इसके फल-स्वरूप उनसे सोम प्राप्त करता है ॥७॥

मनुष्य जो कुछ चाहता है, उस वह हवि देकर इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर सकता है। इन्द्र सर्वैश्वर्यवान् है अतः वह इस प्रकारसे अपने भक्तोंकी सहायता करता है ॥८ ॥

१४७ अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥

१४८ अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद् दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥

१४९ अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥

१५० अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्धयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १२ ॥

अर्थ- [१४७] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोगो ! (**अस्मै**) इस इन्द्रके निमित्त (**श्रुष्टिं**) सुखकर सोम यज्ञ (**कर्तन**) करो। (**वने**) लकडीके वर्तनमें (**निपूतं**) छाने हुए सोमको (**तने**) लकडीके पात्रमें रखकर इन्द्र के (**उत् नयध्वं**) आगे ले जाओ। सोमको (**जुषाणः**) सेवन करनेवाला इन्द्र (**वः**) तुम्हारे (**हस्त्यं**) हाथके बनाये हुए सोमको (**अभि वावशे**) बहुत चाहता है। इसलिये (**इन्द्राय**) इन्द्रके लिये (**मदिरं**) आनंदकारी (**सोमं**) सोमका (**जुहोत**) हवन करो ॥९॥

[१४८] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोगो ! (**यथा**) जिस प्रकार (**गोः**) गायका (**ऊधः**) थन (**पयसा**) दूधसे भरा रहता है, उसी प्रकार (**ईं**) इस (**भोजं**) भोजनदाता (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**सोमभिः**) सोमोंसे (**पृणत**) पूर्ण करो। (**अहं**) मैं (**मे**) मेरे (**अस्य**) इस सोमके (**एतत्**) इस (**निभृतं**) गुप्ततत्त्वको (**वेद**) जानता हूं। (**यजतः**) पूजनीय इन्द्र (**दित्सन्तं**) देनेकी इच्छावाले यजमानको (**भूयः**) और अधिक (**चिकेत**) देता है ॥१०॥

१ **यजतः दित्सन्तं भूयः चिकेत-** यह पूज्य इन्द्र दान करनेकी इच्छावाले मनुष्यको और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है।

[१४९] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोगो ! (**यः**) जो इन्द्र (**दिव्यस्य**) द्युलोकमें उत्पन्न (**यः**) जो (**पार्थिवस्य**) अन्तरिक्षमें उत्पन्न और (**क्षम्यस्य**) पृथ्वीपर उत्पन्न (**वस्वः**) धनका (**राजा**) स्वामी है (**यवेन**) जौ आदि अन्नसे (**ऊर्दरं न**) जैसे कोठेको भरते हैं वैसे (**तं**) उस (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**सोमेभिः**) सोमोंसे (**पणत**) पूर्ण करो। (**वः**) तुम्हारा (**तत्**) वह (**अपः**) कार्य सदा (**अस्तु**) बना रहे ॥११॥

[१५०] हे (**वसौ**) धन-सम्पन्न (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**ते**) तेरे पास (**वसव्यं**) धन (**बहु**) बहुत है। तू (**तत्**) वह (**राधः**) धन (**दानाय**) दान करनेके लिये (**अस्मभ्यं**) हमें (**सं-अर्धयस्व**) दे। (**यत्**) जो तेरा (**चित्रं**) चाहने योग्य धन है, उसे तू (**अनु द्यून**) प्रतिदिन (**श्रवस्यां**) देनेकी इच्छा कर। हम (**सु-वीराः**) उत्तम वीरोंसे युक्त होकर (**विदथे**) यज्ञमें, सभामें तेरे सामने (**बृहत्**) बृहत् साम (**वदेम**) बोलें ॥१२॥

भावार्थ- इन्द्रको पात्रमें आनंदकारी वर्धक सोम दिया जाता है ॥९॥

जिस प्रकार गायके थनोंमें दूध भरा रहता है उसी प्रकार इन्द्रको सोमरससे भरपूर करो। यह पूज्य इन्द्र दानियोंका हर तरहसे संरक्षण करनेवाला है। दानी जितना दान करता है, उससे अधिक ही यह इन्द्र उन दानियोंको प्रदान करता है ॥१०॥

इन्द्र द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवीके धनोंका स्वामी है, अध्वर्यु उसे सोमसे तृप्त करके धन प्राप्त करते है ॥११॥

इन्द्रके पास असंख्य धन है। स्तोता उसी धनको प्राप्त कर देवोंके निमित्त यज्ञका प्रबन्ध करते है ॥१२॥

[१५]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

१५१ प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम्।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥
१५२ अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्।
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥
१५३ सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम्।
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥
१५४ स प्रवोळ्हॄन् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ।
सं गोभिरश्वैरसृजद् रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥

अर्थ- [१५१] (सत्यस्य) सत्यस्वरूप (अस्य) इस (महतः) महान् इन्द्रके सर्वदा (सत्या) स्थिर (महानि) महान् (करणानि) कर्मोंको मैं (प्र घ नु वोचं) भली-भांति कहता हूं। (इन्द्रः) इन्द्रने (त्रिकद्रुकेषु) तीन पात्रोंमें (सुतस्य) सोमका (अपिबत्) पान किया और उसने (अस्य) इस सोमके (मदे) उत्साहमें (अहिं) अहिको (जघान) मारा ॥१॥

[१५२] इन्द्रने (द्यां) द्यौलोकको (अवंशे) बिना बासके ऊपर (अस्तभायत्) स्थिर किया। (बृहन्तं) बडे (अन्तरिक्षं) आकाश और (रोदसी) दोनों लोकोंको अपनी सत्तासे (अपृणत्) पूर्ण कर दिया। (सः) उसने (पृथिवीं) पृथ्वीको (धारयत्) धारण किया और उसे (पप्रथत्) फैलाया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कार्य (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥२॥

[१५३] इन्द्रने (मानैः) माप-तोलके अनुसार नदियोंको (सद्म इव) गृहके समान (प्राचः) पूर्वकी ओर चलनेवाली (वि मिमाय) बनाया। अपने (वज्रेण) वज्रसे उन (नदीनां) नदियोंके (खानि) मार्गोंको (अतृणत्) खोदा। उन्हें (दीर्घयाथैः) दूरतक जाने योग्य (पथिभिः) मार्गोंसे (वृथा) सहज ही (असृजत्) बहा दिया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥३॥

[१५४] (सः) उस इन्द्रने (दभीतेः) दभीतिके (प्र वोळ्हॄन्) अपहरण करनेवाले असुरोंको (परिगत्य) चारों ओरसे घेरकर उनके (विश्वं) सारे (आयुधं) शस्त्र-अस्त्र (इध्मे) प्रदीप्त हुई (अग्नौ) अग्निमें (अधाक्) जला दिये। उसे दभीतिको (गौभिः) गाय, (अश्वैः) घोडे और (रथेभिः) रथोंसे (सं असृजत्) संयुक्त किया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) आनन्दमें (चकार) किये ॥४॥

भावार्थ- इन्द्रके कार्य महान् और स्थिर है। वह सोमके प्रभावमें अहि आदिका नाश करता है। उसके महान् कर्मोंका इनका गुणगान करना चाहिए ॥१॥

निराधार आकाशमें द्यौको इन्द्रने स्थिर किया, विशाल अन्तरिक्ष और द्युमें उसकी महिमा भरी हुई है उसीके कारण यह भूमि स्थिर है। यह सभी काम वह सोमके उत्साहसे करता है ॥२॥

नदियोंको इन्द्रने पूर्व दिशाकी तरफ बहनेवाली बनाया। पूर्व दिशा मुख्य है। उसी दिशाकी ओर द्वार रखकर घर बनानेका विधान है। सभी नदियां पूर्वकी तरफ प्रवाहित होती हैं। यह मस्तिष्क भाग पुरोभाग होनेसे पूर्व है, जो सभी नाडी रूप नदियोंका केन्द्र है। सभी नाडियां इसी मस्तिष्कको तरफ प्रवाहित होती हैं। इन्द्र आत्मा अपनी शक्तिसे इन नाडियोंके जानेके मार्ग बनाता है ॥३॥

इन्द्र असुरोंको और उनके शस्त्रास्त्रोंको अग्निमें जला देता और दभीतिको गौ घोडे आदिसे सम्पन्न करता है ॥४॥

१५५ स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥

१५६ सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन् त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥

१५७ स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७ ॥

१५८ भिनद् वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥

अर्थ- [१५५] (**सः**) उस इन्द्रने ऋषियोंको पार (**एतोः**) जानेके लिये (**ईं**) इस (**महीं**) बडी (**धुनिं**) नदीको (**अरम्णात्**) धीमा किया। (**सः**) उसने (**अस्नातॄन्**) पार जानेमें असमर्थोंको (**स्वस्ति**) कुशलपूर्वक नदीके (**अपारयत्**) पार कर दिया। (**ते**) वे ऋषिलोग नदीको (**उत् स्नाय**) तर कर (**रयिं**) धनके स्थानकी ओर (**अभि प्र तस्थुः**) चले। (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**ता**) वे सब कर्म (**सोमस्य**) सोमके (**मदे**) उत्साहमें (**चकार**) किये ॥५॥

१ **धुनि**- तटको नष्ट करनेवाली नदी जल-प्रवाह।

[१५६] (**सः**) उस इन्द्रने अपने (**महित्वा**) बलसे (**सिन्धुं**) नदीको (**उदञ्चं**) उत्तरकी ओर (**अरिणात्**) बहाया। उसने अपनी (**जवनीभिः**) वेगवाली सेनाओं द्वारा (**अजवसः**) निर्बल सेनाओंको (**विवृश्चन्**) नष्ट करते हुए (**वज्रेण**) वज्रसे (**उषसः**) उषाकी (**अनः**) गाडीको (**सं पिंपेष**) तोड-फोड दिया। (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**ता**) वे सब कर्म (**सोमस्य**) सोमके (**मदे**) उत्साहमें (**चकार**) किये ॥६॥

[१५७] (**सः**) वह (**परावृक्**) परावृक् ऋषि (**कनीनां**) सुन्दरी स्त्रियोंके (**अपगोहं**) न दीखनेके कारणको (**विद्वान्**) जानकर, इन्द्रकी कृपासे, पुनः (**आविः भवन्**) प्रकाशित होता हुआ उनके (**उत् अतिष्ठत्**) सम्मुख हुआ। (**श्रोणः**) षङ्गु ऋषि पांव प्राप्त कर उनके पास (**प्रति स्थात्**) गया। (**अनक्**) नेत्रहीन ऋषि नेत्र प्राप्त कर (**वि अचष्टे**) पूर्णतया देखने लगा। (**इन्द्रः**) इन्द्र ऊपर कहे हुए (**ता**) वे कर्म (**सोमस्य**) सोमके (**मदे**) उत्साहमें (**चकार**) किये ॥७॥

१ **कनी**- (**कन्-दीप्ति**) कमनीय, कन्या, सुन्दरी स्त्री।

२ **परा-वृक्**- दूर फेंका हुए, जिसे कोई न चाहे परन्तु वह किसीको चाहे।

[१५८] (**अङ्गिरोभिः**) अङ्गिरा लोगोंसे (**गृणानः**) प्रशंसित होकर इन्द्रने (**वलं**) वलको (**भिनत्**) तोड दिया। (**पर्वतस्य**) पर्वतके (**दृंहितानि**) सुदृढ द्वारोंको (**वि ऐरत्**) खोल दिया। (**एषां**) इन असुरोंकी (**कृत्रिमाणि**) रची हुई (**रोधांसि**) बाडोंको (**रिणक्**) दूर हटा दिया। (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**ता**) ये सब कर्म (**सोमस्य**) सोमके (**मदे**) उत्साहमें (**चकार**) किये ॥८॥

भावार्थ- इन्द्र ऋषियोंकी सहायता करता है। एकबार कुछ ऋषि कहीं जा रहे थे कि बीचमें वेगवती नदी पडी, तब इन्द्रने आकर नदीके प्रवाहको धीमा किया। इस प्रकार वे ऋषिगण उस नदीको पार करके अपने अभीष्ट स्थान पर गए। यह सब काम इन्द्र अपने सोमके उत्साहमें करता है ॥५॥

इन्द्र आवश्यकता पडने पर नदियोंका प्रवाह बदल देता है। वह सुदृढ रथोंको भी तोड देता है ॥६॥

परावृक् स्त्रियोंकी इच्छा करता था। पङ्गु और नेत्रहीन होनेके कारण कुमारियां उसे नहीं चाहती थीं। इन्द्रने परावृक्को पांव और नेत्र देकर उसकी इच्छा पूर्ण की ॥७॥

इन्द्र अङ्गिरा आदि स्तोताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वल आदि असुरोंको मारता है, सोमके उत्साहमें वह किसी भी विघ्न की परवाह नहीं करता। असुरोंके द्वारा बनाये गए बाडोंको भी तोडकर वह आगे बढ जाता है ॥८॥

१५९ स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥

१६० नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १० ॥

[१६]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इंद्रः । छन्दः- जगती; ९ त्रिष्टुप् ।]

१६१ प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद् युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥

अर्थ- [१५९] हे इन्द्र! तूने (दस्युं) दुष्ट (चुमुरिं) चुमुरि (धुनिं च) और धुनिको (स्वप्नेन) निद्रासे (अभि-उप्य) युक्तकर (जघन्थ) मार दिया और (दभीतिं) दभीतिकी (प्र आवः) रक्षा की। (रम्भी चित्) दण्डधारीने (अत्र) यहां पर (हिरण्यं) धन (विविदे) प्राप्त किया। (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥९॥

१ रम्भी- दण्डवाला, दण्ड लेकर रक्षा करनेवाला, द्वारपाल।

[१६०] (इन्द्र) इन्द्र। (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है। तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे। (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर। तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो। हम (सु-वीराः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥१०॥

[१६]

[१६१] हे यजमानो! मैं (वः) तुम्हारी रक्षाके निमित्त (सतां ज्येष्ठतमाय) सज्जनोंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्रके लिये (सं इधाने) खूब प्रज्जवलित (अग्नौ हविः इव) अग्निमें हवि देनेके समान (सु-स्तुतिं) सुन्दर स्तुति (प्र भरे) देता हूं। कभी (अजुर्यं) नष्ट न होनेवाले, पर शत्रुओंको (जरयन्तं) नष्ट करनेवाले सोमसे (उक्षितं) तृप्त किये गये (सनात्) सनातन और सदा (युवानं) शक्ति सम्पन्न (इन्द्रं) इन्द्रको हम तुम्हारी (अवसे) रक्षाके लिये (हवामहे) पुकारते हैं ॥१॥

भावार्थ- इन्द्र अपने मोहनेवाले अस्त्रसे शत्रुओंको सुला देता और उन्हें इसी अवस्थामें मार देता है। शत्रुसे जीते हुए धनमेंसे योग्य भागको बांटता है ॥९॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है। वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है। वह स्तोताको ही प्राप्त होती है, दूसरेको नहीं, क्योंकि वह इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलता है ॥१०॥

जलती हुई आगमें जिस प्रकार घी आदि सामग्री डालते हैं, इन्द्रके लिये भी उसी प्रकार प्रेमसें हवन करना चाहिए। वह इन्द्र स्वयं कभी नष्ट न होते हुए शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है ॥१॥

१६२ यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥
१६३ न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
१६४ विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४ ॥
१६५ वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥

अर्थ- [१६२] (**यस्मात्**) जिस (**बृहतः**) बडे (**इन्द्रात्**) इन्द्रके (**ऋते**) बिना और (**किं चन ई**) कोई भी बडा नहीं है (**अस्मिन् अधि**) इसमें ही (**विश्वानि**) सब (**वीर्या**) पराक्रम (**सं भृता**) भरे हुए हैं। इन्द्र (**जठरे**) पेटमें (**सोमं**) सोम, (**तन्वि**) शरीरमें (**महः**) बडा (**सहः**) बल, (**हस्ते**) हाथमें (**वज्रं**) वज्र और (**शीर्षणि**) शिरमें (**क्रतुं**) ज्ञान (**भरति**) धारण करता है ॥२॥

१ **जठरे सोमं तन्वि महः हस्ते वज्रं शीर्षणि क्रतुं भरति-** वह इन्द्र पेटमें सोमको, शरीरमें महान् शक्तिको, हाथमें वज्रको और मस्तिष्कमें ज्ञानको धरण करता है।

[१६३] (**यत्**) जब तू अपने (**आशुभिः**) शीघ्रगामी घोडों द्वारा (**पुरु**) बहुत (**योजना**) योजनाओंतक (**पतसि**) जाता है, उस समय (**तेरा**) तेरा (**इन्द्रियं**) बल, (**क्षोणीभ्यां**) दोनों लोकोंसे (**न**) नहीं (**परिभ्वे**) रुकता, थमता। हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**ते**) तेरा (**रथः**) रथ (**समुद्रैः**) समुद्रों और (**पर्वतैः**) पहाडों द्वारा (**न**) नहीं रोका जा सकता। (**कः चन**) कोई भी वीर (**ते**) तेरे (**वज्रं**) वज्रको (**न**) नहीं (**अनु अश्नोति**) रोक सकता ॥३॥

१ **यत् आशुभिः पुरु योजना पतसि ते इन्द्रयं क्षोणीभ्यां न परिभ्वे-** जब यह इन्द्र शीघ्रगामी घोडोंके द्वारा अनेकों योजन तय कर जाता है, उस समय इसके वेगको द्यु और पृथ्वी लोक भी नहीं रोक सकते।

२ **ते रथः समुद्रैः पर्वतैः न-** तेरा रथ समुद्रों और पर्वतोंसे भी नहीं रोका जा सकता।

[१६४] (**विश्वे हि**) सारे लोग (**अस्मै**) इस (**यजताय**) पूजनीय, शत्रुके (**धृष्णवे**) नाशक, (**वृषभाय**) बलवान्, तथा स्तोताओंके यहां (**सश्चते**) रहनेवाले इन्द्रके लिये (**क्रतुं**) यज्ञको (**भरन्ति**) आरम्भ करते हैं। हे यजमान् ! देवोंको (**विदुष्टरः**) भली भाँति जाननेवाला और उनके लिये सोम आदि (**वृषा**) देनेवाला तू इन्द्रको (**हविषा**) हविसे (**यजस्व**) पूज। हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तू (**वृषभेण**) बलवान् (**भानुना**) तेजके साथ (**सोमं**) सोमको (**पिब**) पी ॥४॥

[१६५] देवोंको (**वृष्णः**) तृप्त करनेवाले सोमका (**कोशः**) रस और (**मध्वः**) मीठे सोमकी (**ऊर्मिः**) धारा (**वृषभ-अन्नाय**) बलवर्धक अन्नवाले (**वृषभाय**) बलवान् इन्द्रके (**पातवे**) पीनेके लिये (**पवते**) झरती है। (**वृषणा**) तृप्त करनेवाले (**अध्वर्यू**) दो अध्वर्यु तथा (**वृषभासः**) बलवाले (**अद्रयः**) पत्थर (**वृषभाय**) बलवान् इन्द्रके निमित्त (**वृषणं**) बलकारक (**सोमं**) सोम (**सुष्वति**) बनाते हैं ॥५॥

भावार्थ- इन्द्रसे बडा कोई नहीं। यह सब बलोंका भण्डार और ज्ञानका मूल-स्थान है। ज्ञानका प्रकाश वही किया करता है। इसके शरीरमें शक्ति, हाथमें वज्र और मस्तिष्कमें ज्ञान है अर्थात् यह शत्रुओंपर ज्ञानपूर्वक आक्रमण करके अपनी शक्ति से शस्त्रोंकी सहायतासे उन्हें मारता है। शक्तिके साथ साथ ज्ञान भी हो ॥२॥

इन्द्रके बल, रथ और वज्रको रोकनेका किसीमें भी सामर्थ्य नहीं है। इसलिये वह बिना रुके दूरतक चला जाता है ॥३॥

सब लोग इन्द्रके निमित्त यज्ञ करते और उसमें इन्द्र तथा उसके साथियों को सोम पिलाते हैं ॥४॥

यह सोमरस देवोंको तृप्त करता है अतः जब अध्वर्यु मिलकर पत्थर पर कूट पीसकर इसे छानकर तैय्यार करते है, तब उसे इन्द्र पीता है और आनन्दित होता है ॥५ ॥

१६६ वृषा ते वज्रं उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥ ६ ॥
१६७ प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७ ॥
१६८ पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥
१६९ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

अर्थ- [१६६] हे (वृषभ) बलशाली (इन्द्र) इन्द्र! (ते) तेरा (वज्रः) वज्र (वृषा) शक्तिशाली है (उत) और (ते) तेरा (रथः) रथ भी (वृषा) शक्तिसे भरा हुआ है। तेरे (हरी) घोडे (वृषणा) बलवान् और तेरे (आयुधा) हथियार भी (वृषभाणि) शक्तिसे भरपूर हैं। (त्वं) तू (वृष्णः) बलसे भरे (मदस्य) मदका (ईशिषे) स्वामित्व करता है, अतः इस (वृषभस्य) बलसम्पन्न (सोमस्य) सोमसे (तृप्णुहि) तृप्त हो ॥६॥

[१६७] शत्रुओंको (दाधृषिः) मिटा देनेवाला मैं, (नावं न) नावके समान, (समने) युद्धमें (वचस्युवं) स्तुतिको प्राप्त करनेवाले (ते) तेरे पास (सवनेषु) यज्ञोंमें (ब्रह्मणा) स्तुति द्वारा (प्र यामि) आता हूँ। वह इन्द्र (नः) हमारी (अस्य) इस (वचसः) वाणीको (कुवित्) बहुत बार (नि बोधिषत्) जाने। हम (उत्सं न) कुँएके समान, (वसुनः) धनके भण्डार (इन्द्रं) इन्द्रको सोमसे (सिचामहे) सींचते हैं ॥७॥

[१६८] हे (शत-क्रतो) सैंकडों कर्मोंके करनेवाले इन्द्र! (यवसस्य) घास खाकर (पिप्युषी) मोटी बनी हुई (धेनुः) गाय (न) जैसे (वत्सं) बछडेके पास दूध पिलाने पहुंच जाती है, वैसे तू (संबाधात्) आपत्ति आनेसे (पुरा) पहले ही (नः) हमारे पास (अभि आ ववृत्स्व) पहुँचा जा। (पत्नीभिः) पत्नीयों द्वारा (न) जैसे (वृषणः) समर्थ पति पास बुलाये जाते हैं, वैसे (ते) तेरी (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियोंसे हम (सकृत्) एक बार (सं सु नसीमहि) उत्तम बुद्धियोंसे संयुक्त हों ॥८॥

१ यवसस्य पिप्युषी धेनुः वत्सं न संबाधात् पुरा नः अभि आ ववृत्स्व- हे इन्द्र! घास खाकर पुष्ट बनी हुई गाय जिस प्रकार बछडे के पास दूध पिलाने के लिए पहुंच जाती है, उसी प्रकार तू हम पर आपत्ति आने से पहले ही हमारे पास पहुंच जा।

२ ते सुमतिभिः सकृत् सं सु नसीमहि- तेरी उत्तम बुद्धियोंसे हम एक बार संयुक्त हों।

[१६९] हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है। तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे। (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर। तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो। हम (सु-वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोता लोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोले ॥९॥

भावार्थ- इन्द्रके रथ, वज्र, घोडे, सोम और शस्त्र सभी शक्तिवाले हैं, इसीसे इन्द्रका बल बढा हुआ है ॥६॥
इन्द्र युद्धके समय स्तोताओंकी पुकार सुनता है। स्तोता स्तुति द्वारा उसके समीप जाते और उसे सोमसे तृप्त करते हैं ॥७॥
इन्द्र हमें कष्ट आनेसे पहले ही सहायता दे उसकी कृपा हम पर सदा बनी रहे। हम हमेशा उसकी उत्तम बुद्धिके अनुसार चलें ॥८॥
इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है। वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है। वह स्तोताको ही प्राप्त होती है, दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे-बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥९॥

[१७]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ८-९ त्रिष्टुप् ।]

१७० तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दंहितान्यैरयत् ॥ १ ॥
१७१ स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥ २ ॥
१७२ अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद् यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥ ३ ॥
१७३ अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत् प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद् रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत् सीव्यन् तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥ ४ ॥

अर्थ- [१७०] (**यत्**) जिस कारण (**अस्य**) इस इन्द्रकी (**शुष्माः**) शक्तियाँ (**प्रत्नथा**) पूर्व कालके समान ही (**उत्-ईरते**) बढ रही हैं, (**यत्**) क्योंकि उस इन्द्रने (**सोमस्य**) सोमके (**मदे**) प्रभावमें शत्रुओं द्वारा (**दृंहितानि**) सुदृढ और (**परीवृता**) घिरे हुए (**विश्वा**) सम्पूर्ण (**गोत्रा**) गढ अपने (**सहसा**) बलसे (**ऐरयत्**) गिरा दिये हैं (**तत्**) उस लिये (**अस्मै**) इसके निमित्त (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरा लोगों के स्तोत्रोंके समान उत्तम (**नव्यं**) स्तोत्र (**अर्चत**) पढो ॥१॥

[१७१] (**यः ह**) जिस इन्द्रके (**प्रथमाय**) प्रथम वार (**धायसे**) पीनेके लिये (**ओजः**) बल (**मिमानः**) संचित करते हुए अपने (**महिमानं**) बलको (**आ**) और भी (**अतिरत्**) बढाया, (**सः**) वह सदा बलवान् (**भूतु**) हो। (**यः**) जिस (**शूरः**) पराक्रमी इन्द्रके (**युत्सु**) युद्धोंमें अपने (**तन्वं**) शरीर पर कवच (**परि-व्यत**) धारण किया, उसने अपने (**महिना**) सामर्थ्यसे (**शीर्षणि**) शिरके स्थानमें (**द्यां**) द्यौको (**प्रति अमुञ्चत**) स्थापित किया ॥२॥

[१७२] हे इन्द्र ! (**यत्**) जब कि तूने (**अस्य**) इस स्तोताके (**अग्रे**) सम्मुख (**ब्राह्मणा**) स्तोत्रके बलसे इस शत्रुके (**शुष्मं**) बलको (**ऐरथः**) हिला दिया (**अध**) तो तूने वह सबसे (**प्रथमं**) पहला (**महत्**) बडा (**वीर्यं**) पराक्रम (**अकृणोः**) किया। इस कारण (**जीरयः**) नाश करनेवाले, तुझ (**रथे रथेन**) रथ पर बैठे (**हरिअश्वेन**) लाल घोडोंवाले इन्द्रसे, (**विच्युताः**) नीचे गिराये हुए असुर (**सध्यक्**) एक साथ मिले हुए भी भयसे (**पृथक्**) पृथक् पृथक् (**प्र सिस्रते**) भागते हैं ॥३॥

[१७३] (**अध**) और (**यः**) जिस (**ईशानकृत्**) स्वामित्व देनेवाले (**प्रवयाः**) उत्कृष्ठ अन्नवाले इन्द्रने अपने (**मज्मना**) बलसे (**विश्वा**) सारे (**भुवना**) भुवनोंको (**अभि अवर्धत**) बढाया। (**आत्**) फिर उस (**वह्निः**) आगे बढानेवालेने (**ज्योतिषा**) तेजसे (**रोदसी**) दोनों लोकोंको (**आ अतनोत्**) व्याप्त किया और (**दुधिता**) दुःखके स्थानमें रखे हुए (**तमांसि**) अन्धकारोंको और भी (**सीव्यन्**) बढाते हुए (**सं अव्ययत्**) चारों ओरसे घेर लिया ॥४॥

भावार्थ- इस इन्द्रकी शक्तियां सोम पीने के बाद बढती ही जाती हैं। तब वह उन शक्तियोंके कारण शत्रुओंके सम्पूर्ण विघ्नोंको विध्वस्त कर देता है ॥१॥

इन्द्र सोम पीने के प्रथम समयमें ही बहुत पराक्रम दिखाता है। वह युद्धमें शरीर पर कवच धारण करता और द्यु आदि लोकोंको ठीक स्थान पर रखता है ॥२॥

असुर इन्द्र के पराक्रमसे डर कर, उसे देखते ही इधर-उधर भाग जाते हैं ॥३॥

इन्द्र अपने बलसे लोकोंकी शक्ति बढाता है। फिर अपने तेजसे सभी लोकोंको व्याप्त कर देता है। पर जो दुष्ट है उन्हें वह गाढ अन्धकारमें स्थापित करता है ॥४ ॥

१७४ स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसा ऽधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायस-मस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥

१७५ सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद् विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः ॥ ६ ॥

१७६ अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ॥ ७ ॥

१७७ भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥

अर्थ- [१७४] (सः) उस इन्द्रने (प्राचीनान्) हिलनेवाले (पर्वतान्) पर्वतोंको अपने (ओजसा) बलसे (दृंहत्) स्थिर किया। उसने (अपां) जलोंके बहाव रूप (अपः) कर्मको (अधराचीनं) नीचेकी ओर (अकृणोत्) प्रवाहित किया। (विश्वधायसं) सबको धारनेवाली (पृथिवीं) पृथिवीको (अधारयत्) धारण किया और अपने (मायया) सामर्थ्य द्वारा (द्यां) द्यौको (अवस्रसः) नीचे गिरनेसे (अस्तभ्नात्) रोका ॥५॥

१ प्राचीन (प्र-अञ्च्)- इधर उधर चलनेवाले।

[१७५] (पिता) पालन करनेवाले इन्द्रने (यं) जिस वज्रको (विश्वस्मात् जनुषः वेदसः परि आ अकृणोत्) सभी जन्मधारी पदार्थों एवं धनोंसे उत्कृष्ट बना दिया तथा (येन वज्रेण) जिस वज्रसे (तुविष्वणिः) अत्यन्त गर्जना करनेवाले इन्द्रने (पृथिव्यां शयध्यै) पृथ्वी पर सोनेके लिए (क्रिविं हत्वी नि अवृणक्) क्रिविको मारकर नष्टकर दिया, (सः) वह वज्र (अस्मै) इस इन्द्रको (बाहुभ्यां अरं) भुजाओंसे समर्थ करे ॥६॥

[१७६] (पित्रोः) मातापिता के (सचा) साथ (सती) रहती हुई पिताके (अमाजूः इव) घरमें बूढी हो जानेवाली कन्याके समान (समानात्) एक ही (सदसः) स्थानसे (त्वा) तुझसे (भगं) धन (आ इये) माँगता हूँ। तू हमारे लिये (प्र केतं) उत्तम अन्न (कृधि) कर दे। तू (उप मासि) धनका दाता है, हमारे पास धन (आ भर) ले आ। (येन) जिस धनसे तू स्तोताओंको (मामहः) बडा बनाता है, (तन्वः) शरीरके लिए उपयोगी वह (भागं) धन हमें (दद्धि) दे ॥७॥

१ अमा-जूः- घरमें जीर्ण होनेवाली।

[१७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम लोग (त्वां) तुझ (भोजं) पालक स्वामीको (हुवेम) बार बार बुलाते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (अपांसि) कर्मों और (वाजान्) अन्नोंका (ददिः) दाता है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू अपने (चित्रया) अद्भुत (ऊती) रक्षाके साधनोंसे (नः) हमारी (अविड्ढि) रक्षा कर। हे कामनाओंके (वृषन्) वर्षकदाता (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (वस्यसः) धनवान् (कृधि) कर दे ॥८॥

भावार्थ- इन्द्र मेघोंको एकत्र कर जल बरसाता और पृथिवी तथा द्यौको अपने-अपने स्थान पर स्थिर रखता है। ये चलते हुए भी अपनी कक्षाको नहीं त्यागते। द्यौ निराधार होते हुए भी इसी इन्द्र के कारण स्थिर है ॥५॥

इन्द्रके लिए वज्रका मूल्य बहुत है। उसे वह सभी धनोंसे उत्तम मानता है, क्योंकि वह वज्रकी सहायतासे सभी शत्रुओंको मारता है वह वज्र इन्द्रको शक्तिशाली बनाता है ॥६॥

जैसे अविवाहिता लडकी पिताके घरमें बैठी पतिकी इच्छा करती है वैसे धनार्थी स्तोता धन की ॥७॥

इन्द्र अपने स्तोताओंकी रक्षा करता और उन्हें धनवान् बना देता है ॥८ ॥

१७८ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[१८]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१७९ प्राता रथो नवो योजि सस्नि- श्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥

१८० सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीय- मुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥

१८१ हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योज- मायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ॥ ३ ॥

अर्थ- [१७८] (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है। तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (आ शिक्ष) दे। (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर। तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो। हम (सु वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥९॥

[१८]

[१७९] हे इन्द्र ! तेरा यह (नवः) नया (सस्निः) दानशील, (चतुर्युगः) चार जुओंवाला, (त्रिकशः) तीन कोडे, (सप्तरश्मिः) सात लगाम (दश अरित्रः) दश चक्रवाला, (मनुष्यः) मनुष्योंके लिये उपयोगी (स्वः-साः) स्वर्गतक पहुंचानेवाला (रथः) रथ (प्रातः) प्रातःकाल (योजि) जोडा गया है। (सः) वह (इष्टिभिः) यज्ञोंमें और (मतिभिः) स्तोत्रों द्वारा (रंह्य) गतिमान् (भूत्) हो ॥१॥

[१८०] (सः सः) वह (मनुषः) मनुष्योंकी इच्छाओंका (होता) प्राप्त करानेवाला रथ (अस्मै) इस इंद्रके लिए (प्रथमं) प्रथम, प्रातःकाल यज्ञको पहुँचानेमें (अरं) समर्थ होता है (सः) वह (द्वितीयं) द्वितीय (उतो) और (तृतीयं) तृतीय यज्ञमें ले जाने में भी समर्थ होता है। यहाँ (अन्ये उ) दूसरे ही (अन्यस्याः) दूसरोंके (गर्भं) गर्भको (जनन्त) बनाते हैं। (सः) वह (जेन्यः) जयशील (वृषा) बलवान् इन्द्र (अन्येभिः) दूसरोंके साथ (सचते) संयुक्त होता है ॥२॥

[१८१] मैंने (इन्द्रस्य) इन्द्र के (रथे) रथमें, (कं) सुख-पूर्वक (आयै) आने-जाने के लिये, (नवेन) नये (सु उक्तेन) उत्तमतासे बोले गए (वचसा) इशारे से (हरी नु) दोनों घोडोंको (योजं) जोड दिया है। (अत्र) इस यज्ञमें, हे इन्द्र ! (अन्ये) दूसरे (बहवः हि) बहुतसे (विप्राः) बुद्धिमान् (यजमानासः) यजमान (त्वां) तुझे (मो सु) मत (नि रीरमन्) प्रसन्न कर सकें ॥३॥

भावार्थ- इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है। वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है। वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥९॥

हे इन्द्रके रथमें चार जूए, तीन चाबुक, सात लगाम, दश चक्र लगे हुए हैं। वह स्तोताओंके हित के लिये इन्द्रको स्वर्ग तक पहुँचाता और नीचे लाता है ॥१॥

इन्द्र अपने रथसे तीनों यज्ञोंमें पहुँचता है। कुछ स्तोता स्तुतियोंकी रचना करते हैं मानो वे गर्भ बनाते हैं। इन्द्र उन्हीं स्तोताओंके साथ मेल करता है ॥२॥

इन्द्र के रथमें उसके घोडे इशारेसे जोडे जाते हैं। यजमान इससे इतना प्रेम करते हैं कि इन्द्रका दूसरोंके यज्ञोंमें आना उन्हें सह्य नहीं होता ॥३ ॥

१८२ आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र या—ह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेय—मयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥
१८३ आ विंशत्या त्रिंशता या—ह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा ऽऽ षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ ॥
१८४ आशीत्या नवत्या या—ह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥
१८५ मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथा—स्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७ ॥
१८६ न म इन्द्रेण सख्यं वि यो—दस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥

अर्थ- [१८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हमारे द्वारा (हूयमानः) बुलाया गया तू इस (सोमपेयं) सोम पीनेके स्थानपर (द्वाभ्यां) दो (हरिभ्यां) घोडोंके द्वारा (आ याहि) आ। (चतुर्भिः) चार और (षड्भिः) छः घोडों द्वारा (आ) आ। (सुमख) उत्तम यज्ञवाले ! तेरे लिये (अयं) यह सोम (सुतः) तैयार है, तू इसे पी। मेरी (मृधः) हिंसा (मा कः) मत कर ॥४॥

[१८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (विंशत्या) बीस और (त्रिंशता) तीस घोडों द्वारा हमारे (अर्वाङ्) पास (आ याहि) आ। (चत्वारिंशता) चालीस (हरिभिः) घोडोंसे (युजानः) युक्त तू हमारे पास (आ) आ। (पञ्चशताः) पचास (षष्ट्या) साठ और (सप्तत्या) सत्तर (सुरथेभिः) रथके योग्य उत्तम, घोडोंसे (सोम पेयं) सोमरस पीनेके लिये (आ) आ ॥५॥

[१८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वाया) तेरे (मदाय) आनन्दके लिये (शुनहोत्रेषु) सुन्दर पात्रोंमें (ते) तुझे (अयं हि) यह (सोमः) सोम (परिसिक्तः) डाला गया है। तू (आशीत्या) अस्सी (नवत्या) नब्बे और (शतेन) सौ (हरिभिः) घोडोंसे (उह्यमानः) ढोये जाकर हमारे (अर्वाङ्) सम्मुख (आ आ याहि) आ ॥६॥

[१८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (मम) मेरे (ब्रह्म) स्तोत्रकी (अच्छ) ओर (याहि) जा। इसके लिये (रथस्य) रथके (धुरि) जूएमें अपने (विश्वा) सारे (हरी) घोडोंको (धिष्व) जोड। तू (पुरुत्रा) बहुत स्थानोंमें (वि हव्यः) निमंत्रित (बभूथ) हुआ है, हे (शूर) शूर इन्द्र ! तू हमारे (अस्मिन्) इस (सवने) यज्ञमें (मादयस्व) आनन्द मना ॥७॥

[१८६] (इन्द्रेण) इन्द्रके साथ (मे) मेरी (सख्यं) मित्रता (न वि योषत्) न टूटे। (अस्य) इस इन्द्रका (दक्षिणा) दान (अस्मभ्यं) हमको (दुहीत) प्राप्त होता रहे। हम उसके (वरूथे) उत्तम (ज्येष्ठे) दाहिने (गभस्तौ) हाथके (उप) समीप रहा करें। इसकी कृपासे हम (प्राये प्राये) प्रत्येक युद्धमें (जिगीवांसः) विजयी (स्याम) हों ॥८॥

१ वरूथे ज्येष्ठे गभस्तौ उप- हम उस इन्द्रके उत्तम और श्रेष्ठ हाथोंके समीप रहें अर्थात् हम पर इन्द्रका वरदहस्त सदा रहे।

भावार्थ- इन्द्रके रथमें अनेक घोडे जोडे हैं। यह हमेशा उत्तम यज्ञ अर्थात् उपकार आदि उत्तम कर्म करनेवाला है। वह जिस यजमानका सोम पीता है, उसकी हर तरह से सहायता करता है ॥४॥

इन्द्र अपने अनेक घोडोंसे युक्त रथपर इधर उधर जाता है ॥५॥

इन्द्र सौ घोडों के रथपर सवार होकर सोम पीने जाता है ॥६॥

इन्द्र रथमें घोडे जोड कर यज्ञोंमें आता और वहाँ सोम पीकर तृप्त होता है ॥७॥

१८७ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनीं ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[१९]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१८८ अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १ ॥

१८९ अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तो ऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद् वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥

अर्थ- [१८७] (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**ते**) तेरी (**सा मघोनी दक्षिणा**) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (**नूनं**) निश्चयसे (**जरित्रे**) स्तोताके लिए (**वरं प्रति दुहीयत्**) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है। तू एसी दक्षिणा हम (**स्तोतृभ्यः**) स्तोताओंके लिए (**शिक्ष**) दे। (**मा अति धक्**) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर। तेरी कृपासे (**नः**) हमें (**भगः**) ऐश्वर्य प्राप्त हो। हम (**सु वीरः**) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (**विदथे**) यज्ञमें तेरे लिए (**बृहत्**) बढा स्तोत्र (**वदेम**) बोलें ॥९॥

[१९]

[१८८] (**यस्मिन्**) जिस (**प्र दिवि**) प्रकाशमें (**वावृधानः**) बढते हुए (**इन्द्रः**) इन्द्र (**ब्रह्मण्यन्तः च**) और ज्ञानवान् (**नरः**) नेताओंने (**ओकः**) निवास (**दधे**) किया, (**अस्य**) इस उस (**अन्धसः**) अन्नके (**मदाय**) आनंद के लिये इन्द्र द्वारा इस (**मनीषिणः**) बुद्धिमान् (**सुवानस्य**) यजमानका (**प्रयसः**) सोम (**अपायि**) पिया गया है ॥१॥

१ ब्रह्मण्यन्तः नरः दिवि ओकः दधे- ज्ञानी मनुष्य हमेशा प्रकाशमें निवास करते हैं।

[१८९] (**यत्**) जब (**नदीनां**) नदियोंकी (**प्रयांसि च**) धारायें, (**वयः न**) पक्षी जैसे अपने (**स्वसराणि अच्छ**) घोंसलोंकी ओर जाता है वैसे, (**प्र चक्रमन्त**) बहने लगी, उस समय ही (**अस्य**) इस (**मध्वः**) सोमके रससे (**मन्दानः**) प्रसन्न (**वज्रहस्तः**) हाथमें वज्र धारण किये (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**अर्णः वृतं**) जलको रोक रखनेवाले (**अहिं**) अहिको (**वि वृश्चत्**) छिन्न-भिन्न किया ॥२॥

भावार्थ- जो इन्द्रका मित्र रहता है, उसका दान प्राप्त करता और उसके समीप रहा करता है वह प्रत्येक युद्धमें विजयी होता है। उसपर इन्द्रकी हमेशा कृपा रहती है ॥८॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है। वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है। वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥९॥

इन्द्र पुराने कालोंकी भांति इन कालोंमें भी यज्ञों से तृप्त होता है। ज्ञानी जन सदा प्रकाशमें निवास करते हैं ॥१॥

इन्द्र वृत्रका घेरा तोडकर जलको बहा देता है। उस समय, जिस प्रकार शाम के समय पक्षीगण अपने घोंसलोंकी तरफ उडते हैं, उसी प्रकार पानी के प्रवाह बहने लगे ॥२॥

१९० स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत् सूर्यं विदद् गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३ ॥
१९१ सो अप्रतीनि मनवे पुरूणी—न्द्रो दाशद् दाशुषे हन्ति वृत्रम् ।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत् पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥ ४ ॥
१९२ स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा ऽऽ देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद् रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ ॥

अर्थ- [१९०] (माहिनः अहि-हा सः इन्द्रः) पूजनीय तथा अहिको मारनेवाले उस इन्द्रने (अपां अर्णः) जलके प्रवाहोंको (अच्छ समुद्रं प्रैरयत्) सीधे समुद्रकी ओर बहाया, (सूर्यं अजनयत्) सूर्यको प्रकट किया, (गाः विदद्) गायोंको प्राप्त किया अथवा किरणोंको प्रकट किया तथा (अक्तुना) अपने तेजसे (अह्नां वयुनानि साधत्) दिनमें होनेवाले कर्मोंकी साधना की ॥३॥

[१९१] (यः) जो इन्द्र (सूर्यस्य सातौ) सूर्यको प्राप्त करनेकी (पस्पृधानेभ्यः नृभ्यः) स्पर्धा करनेवाले वीरोंके लिए (सद्यः अतसाय्यः भूत्) शीघ्र ही आश्रय करने योग्य है, ऐसा (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (दाशुषे मनवे) दान देनेवाले मनुष्यके लिए (पुरूणि अप्रतीनि दाशद्) बहुतसे उत्तम धनोंको देता है और (वृत्रं हन्ति) वृत्रको मारता है ॥४॥

१ दाशुषे पुरूणि अप्रतीनि दाशत्- दान देनेवालेको वह अप्रतिम धन देता है।
२ पस्पृधानेभ्यः नृभ्यः सद्यः अतसाय्यः भूत्- स्पर्धा करनेवाले वीरों के द्वारा वह तत्काल आश्रय करने योग्य है।

[१९२] (यत्) जब (दशस्यन् एतशः) दान देनेवाले एतशने (अस्मै) इस इन्द्रके लिए (गुहद् अवद्यं रयिं) गुप्त और प्रशंसनीय धनको (अंशं न) जैसे पिता पुत्रको अपने धनका अंश देता है, उसी प्रकार (भरत्) दिया, तब (स्तवान् देवः सः इन्द्रः) प्रशंसित और तेजस्वी उस इन्द्रने (सुन्वते मर्त्याय) यज्ञ करनेवाले मनुष्यके लिए (सूर्यं आ रिणक्) सूर्यको प्रकाशित किया ॥५॥

१ स देवः इन्द्रः सुन्वते मर्त्याय सूर्यं आरिणक्- उस इन्द्र देवने यज्ञ करनेवाले याजकके लिये सूर्यको प्रकाशित किया। सूर्योदयके पश्चात् यज्ञ होते हैं।

भावार्थ- मेघको तोडनेवाले इन्द्रने जलप्रवाहोंको समुद्रतक पहुंचाया। सूर्य मेघोंमें छिपा हुआ था, वह मेघ दूर होनेसे प्रकट हुआ। सूर्यकी किरणें प्रकाशने लगी। प्रकाशसे दिनके कार्य होने लगे ॥३॥

युद्ध करनेवाले वीर जब युद्ध करनेके लिए जाते हैं, तब सब इसीका आश्रय लेकर जाते हैं और तब यह इन्द्र उस युद्धमें उन्हींकी रक्षा करके बहुत धन प्रदान करता है, जो स्वयं दूसरोंको धन देकर गरीबोंकी सेवा करते हैं ॥४॥

यह इन्द्र दानियोंको अपने धनका भाग उसी प्रकार देता है जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रको। इस प्रकार धन देता हुआ इन्द्र यज्ञ करनेके लिए सूर्यको प्रकाशित करता है। जिस समय सूर्य प्रकाशित होता है, उस समय यज्ञ किए जाते हैं ॥५॥

१९३ स रन्धयत् सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६ ॥
१९४ एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत् साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७ ॥
१९५ एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८ ॥
१९६ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

अर्थ- [१९३] (**सदिवः सः**) तेजस्वी उस इन्द्रने (**सारथये कुत्साय**) सारथि कुत्सके लिए (**शुष्णं, अशुषं, कुयवं**) शुष्ण, अशुष और कुयवं नामक असुरोंको (**रन्धयत्**) मारा, तथा (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**दिवोदासाय**) दिवोदासके लिए (**शम्बरस्य**) शम्बरासुरके (**नव नवतिं पुरः वि ऐरयत्**) निन्यानवे नगरोंको तोडा ॥६॥

[१९४] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**श्रवस्याः वाजयन्तः**) अन्न तथा बलको इच्छा करने वाले हम (**त्मना**) स्वयं ही (**ते**) तेरे लिए (**एव**) ही (**न उचयं अहेम**) अभी स्तोत्र पहुंचाते है। तेरी (**तत् साप्तं अश्याम**) उस मित्रताको प्राप्त करें, तूने (**अदेवस्य पीयोः**) देवोंका न माननेवाले तथा हिंसा करनेवाले दुष्टक (**वधः ननमः**) शस्त्रको दूर किया ॥७॥

१ तत् साप्तं अश्याम- तेरी मित्रताको हम प्राप्त करें। 'साप्तपदीनं सख्यम्' (सायण)

२ अ-देवस्य पीयोः वधः ननमः- तूने देवोंको कुछ भी न समझनेवाले तथा हिंसा करनेवाले शत्रुके शस्त्रको दूर किया "णमु प्रह्वत्वे"

[१९५] हे (**शूर इन्द्र**) शूरवीर इन्द्र ! (**ते**) तेरे लिए (**गृत्समदाः**) बुद्धिमान् गृत्समदेने (**मन्म**) स्तोत्रोंको (**अवस्यवः वयुनानि न**) जिस प्रकार अपनी सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले लोग कर्मोंको करते है उसी प्रकार (**तक्षुः**) बनाया (**नवीयः ते**) नये स्तोता (**ब्रह्मण्यन्तः**) ब्रह्मज्ञानी (**सुक्षितिं, इषं, ऊर्जं, सुम्नं अश्युः**) उत्तम निवास, अन्न, बल और सुख प्राप्त करते हैं ॥८॥

१ **अवस्यवः वयुनानि तक्षुः**- ज्ञानी अपनी सुरक्षाके लिये उत्तम कर्म करते हैं।

२ **ब्रह्मण्यन्तः सुक्षितिं इषं ऊर्जं सुम्नं अश्युः**- ज्ञानी उत्तम निवास स्थान अन्न, बल और सुख प्राप्त करते हैं।

[१९६] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**सा ते दक्षिणा**) वह तेरी दक्षिणा (**जरित्रे मघोनी**) स्तोताके लिए धन देनेवाली है। और (**वरं प्रति दुहीयत्**) वरणीय पदार्थोंको भी दे। ऐसी दक्षिणा तू (**स्तोतृभ्यः शिक्ष**) स्तोताओंको दे, (**भगः**) ऐश्वर्यवान् तू (**नः मा अति धक्**) हमें छोडकर और किसीको न दे, (**सु-वीराः विदथे बृहद् वदेम**) उत्तम सन्तानवाले हम यज्ञमें उत्तम स्तोत्र बोलें ॥९॥

भावार्थ- तेजस्वी इन्द्र (कुत्स) बुराईको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षा करनेके लिए (शुष्ण) प्रजाओंका शोषण करनेवाले (अशुष) स्वयं कभी शोषित न होनेवाले (कुयव) धान्यको नष्ट करनेवाले असुरोको मारता है। उसी प्रकार देवोके दास अर्थात् भक्त के लिए शम्बरको मारता है और इस प्रकार दुष्टों का संहार करके सज्जनोंकी रक्षा करता है ॥६॥

कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो देव को कुछ भी नहीं समझते और सबकी हिंसा करने के लिए तत्पर रहते हैं, ऐसे दुष्टोंको इन्द्र नष्ट करता है। एसे इन्द्र की मित्रता अवश्य प्राप्त करनी चाहिए ॥७॥

निरहंकारी ब्रह्मज्ञानीजन अपनी सुरक्षाके लिए इन्द्रकी स्तुति करते हैं और ऐसे ज्ञानी जन हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥८॥

हे इन्द्र ! वह तेरा दान स्तुति कर्ताको धन देनेवाला है। वह तेरा दान श्रेष्ठ पदार्थोंको देवे। तू धनवान् हमें छोडकर किसी दूसरेको दान न दे। यज्ञमें उत्तम स्तोत्र गायें और युद्धमें उत्तम वीर बनकर हम शत्रुको अच्छा उत्तर दें ॥९॥

[२०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ३ विराड्रूपा ।]

१९७ वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥
१९८ त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २ ॥
१९९ स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥ ३ ॥

[२०]

अर्थ- [१९७] (विपन्यवः) स्तुति करनेवाले (मनीषा दीध्यतः) बुद्धिसे तेजस्वी होकर (त्वावतः सुम्नं इयक्षन्तः) तुझसे सुखकी इच्छा करके (वयं) हम, हे इन्द्र! (ते वयः) तेरे लिए हविक (वाजयुः रथं न) अन्न की इच्छा करनेवाले जिस प्रकार रथको अन्नसे भरते हैं, उसी प्रकार (प्रभरामह) हम भरपूर भर देते हैं, (नः विद्धि) हमारा यह कार्य जान ॥१॥

१ विपन्यवः मनीषा दीध्यतः- ज्ञानी बुद्धिको धारण करते हैं।

२ सुम्नं इयक्षन्तः- अपना मन उत्तम हो ऐसा चाहते हैं।

[१९८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं त्वाभिः ऊती नः) तू अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर, क्योंकि (त्वायतः जनान् अभिष्टिपा असि) तेरे पास आनेवाले मनुष्योंकी तू चारों ओरसे रक्षा करनेवाला है, (यः त्वा नक्षात्) जो तेरी सेवा करता है, ऐसे (दाशुषः त्वं इनः) दानशीलका तू संरक्षक है तथा (वरूता) उसके शत्रुओं का निवारक है तथा तू (इत्था-धीः) इस प्रकार बुद्धिमान् है ॥२॥

१ त्वं त्वाभिः ऊती नः- तू अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारा रक्षण कर।

२ त्वायतः जनान् अभिष्टि-पा असि- अपने पास आनेवाले जनों का तू रक्षण करता है।

३ यः त्वा नक्षति, दाशुषः त्वं इनः- जो तुझे देता है उसकी तू रक्षा करता है।

[१९९] (यः शंसन्तं) जो वर्णन करनेवाले (यः शशमानं) तथा जो प्रशंसा करनेवाले, (पचन्तं) हवि पकानेवाले (स्तुवन्तं च) स्तुति करनेवाले यजमानको (ऊती) अपने संरक्षणसे (प्रनेषत्) दुःखोंसे पार ले जाता है, ऐसा (युवा जोहूत्रः सखा शिवः सः इन्द्रः) तरुण, सहायार्थ पास बुलाये जाने योग्य, मित्र तथा सुखदायी वह इन्द्र (नः नरां पाता अस्तु) हम प्रजाओंका रक्षा करनेवाला हो ॥३॥

१ स्तुवन्तं ऊती प्रनेषत्- स्तुति करनेवालेको अपने संरक्षणों द्वारा दुःखों से पार ले जाता है।

२ युवा जोहूत्रः सखा शिवः- तरुण, पास बुलाने योग्य, मित्र और कल्याण करनेवाला है।

३ स नरां पाता- वह इन्द्र मनुष्योंका रक्षक है।

भावार्थ- परमात्माकी उपासना करनेवाले भक्त हमेशा उत्तम बुद्धि प्राप्त करते हैं और उस बुद्धि से वे ऐसे कर्म करते हैं कि जिससे उन्हें सुख प्राप्त होता है। य बुद्धिमान् व्यक्ति सदा इन्द्रको हवि से तृप्त करते रहते हैं ॥१॥

जो समर्पणकी भावना लेकर इन्द्र के पास जाता है, इन्द्र उस भक्त की हर तरह से रक्षा करता है। वह ऐसे मनुष्योंकी ही सेवा करता है, जो मनुष्योंकी दान आदि देकर सेवा करते हैं। संचय करनेवालोंका वह शत्रु है ॥२॥

यह शक्तिशाली इन्द्र स्तुति करनेवालेकी रक्षा करता है और उसे हर तरह के दुःखोंसे पार करता है। वह सदा तरूण रहता है। सबका हित करता है और इसीलिए सब उसकी उपासना करते हैं ॥३॥

२०० तमुं स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन् पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥
२०१ सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥
२०२ स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद् दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥

अर्थ- [२००] (**यस्मिन्**) जिस इन्द्रके आश्रयमें रहकर मनुष्य (**पुरा वावृधुः**) पहले बढे और उन्होंने अपने शत्रुओंको (**शाशदुः**) मारा, ऐसे (**तं इन्द्रं स्तुषे**) उस इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ (**तं गृणीषे**) उस इन्द्रका गुण वर्णन करता हूँ (**इयानः सः**) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होता हुआ वह इन्द्र (**ब्रह्मण्यतः नूतनस्य आयोः**) ज्ञानी तथा नवीन आयुवाले तरुण मनुष्यके (**वस्वः कामं**) धनकी इच्छाको (**पीपरत्**) पूर्ण करे ॥४॥

१ **यस्मिन् वावृधुः शासदुः तं स्तुषे-** मनुष्य जिसके आश्रयसे बढे और उन्होंने शत्रुको दूर किया, उस इन्द्रकी स्तुति करता हूँ।

२ **सः ब्रह्मण्यतः आयोः वस्वः कामं पीपरत्-** वह ज्ञानी मनुष्यकी धनेच्छाको पूर्ण करता है।

[२०१] (**सः इन्द्रः**) वह इन्द्र (**अंगिरसां उचथा जुजुष्वान्**) अंगिरसोंकी स्तुतियोंको सुनता है, और उन्हें (**गातुं इष्णान्**) अच्छे मार्गपर जानेके लिए प्रेरित करता है तथा उनके (**ब्रह्म**) ज्ञानको (**तुतोत्**) बढाता है, (**स्तवान्**) प्रशंसित होता हुआ वह इन्द्र (**सूर्येण उषसः मुष्णान्**) सूर्यके पाससे उषाओंको चुराता हुआ (**अश्नस्य पूर्व्याणि शिश्नथत्**) अश्नासुर के पुराने नगरोंको गिराता है ॥५॥

१ **अश्न-** बहुत खानेवाला, दूसरोंको न देकर स्वयं खानेवाला।

[२०२] (**देवः श्रुतः नाम दस्मतमः इन्द्रः**) तेजस्वी, यशस्वी, प्रसिद्ध, अत्यन्त सुन्दर इन्द्र (**मनुषे ऊर्ध्वः भुवत्**) विचारशील मनुष्यके रक्षणके लिए हमेशा तैयार रहता है, (**साह्वान् स्वधावान्**) शत्रुओंको हरानेवाले बलवान् इन्द्रने (**अर्शसानस्य दासस्य**) लोगोंको कष्ट देनेवाले दास नामक असुरके (**प्रियं शिरः अव भरद्**) प्रिय सिरको काट डाला ॥६॥

१ **देवः श्रुतः नाम दस्मतमः इन्द्रः मनुषे ऊर्ध्वः भुवत्-** तेजस्वी प्रसिद्ध यशस्वी सुन्दर इन्द्र मानवके लिये तैयार रहता है।

२ **साह्वान् स्वधावान् दासस्य प्रियं शिरः अवभरत्-** शत्रुओंका पराभव करनेवाले बलवान् इन्द्रने शत्रुका प्रिय सिर काटा।

भावार्थ- इस इन्द्रके अनुकूल रहकर मनुष्य बढते और शक्तिशाली होते हैं। वे इसीके आसरे रहते हैं। जो मनुष्य इस इन्द्रके आगे आत्मसमर्पण कर देता है, उसकी हर तरह की सुरक्षा यह इन्द्र करता है ॥४॥

इन्द्र ज्ञानियोंकी प्रार्थना सुनता है और उन्हें उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है। उनके ज्ञानको बढाता है। यह इन्द्र सूर्यके उदय होते ही उषाओंको नष्ट कर देता है और सबको खाजानेवाले अश्नासुरको नष्ट करता है। सूर्यके उदय होते ही उषाओंका लोप हो जाता है। अश्नासुर रात्रि है, जो सबको खा जाती है, रात के समय अन्धकारमें सब विलीन हो जाता है, यही उसका खाना है। इस रात्रिको सूर्य नष्ट कर देता है ॥५॥

यह तेजस्वी और प्रसिद्ध यशस्वी इन्द्र विचारशील बुद्धिमान् मनुष्यकी रक्षा करनेके लिए हमेशा तैय्यार रहता है। जो शत्रु है, जो लोगोंको नष्ट करता है अथवा जो दूसरोंको दास बनाना चाहता है, उसे यह इन्द्र काट डालता है। बुद्धिमानों की रक्षा और दुष्टोंका निर्दलन आवश्यक है ॥६ ॥

२०३ स वृ॒त्र॒हेन्द्रः॑ कृ॒ष्णयो॑नीः पु॒रं॒द॒रो दासी॑रैरय॒द् वि ।
अज॑नय॒न् मन॑वे॒ क्षाम॒पश्च॑ स॒त्रा शंसं॒ यज॑मानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥
२०४ तस्मै॑ तव॒स्य१॒॑मनु॑ दायि स॒त्रेन्द्रा॑य दे॒वेभि॒रर्ण॑सातौ ।
प्रति॒ यद॑स्य॒ वज्रं॑ बा॒ह्वोर्धु॒र्ह॒त्वी दस्यू॒न् पुर॒ आय॑सी॒र्नि ता॑रीत् ॥ ८ ॥
२०५ नू॒नं सा ते॒ प्रति॒ वरं॑ जरि॒त्रे दु॑ही॒यदि॑न्द्र॒ दक्षि॑णा म॒घोनी॑ ।
शिक्षा॑ स्तो॒तृभ्यो॒ माति॑ ध॒ग्भगो॑ नो बृ॒हद् व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ९ ॥

अर्थ- [२०३] (**सः वृत्र-हा पुरं-दरः इन्द्रः**) उस वृत्रको मारनेवाले तथा शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रने (**कृष्णयोनीः दासीः वि ऐरयद्**) कृष्णासुरकी सभी स्त्रियोंको मार डाला, (**मनवे क्षां अपः च अजनयत्**) मनुष्यके लिए भूमि और जलको उत्पन्न किया, ऐसा इन्द्र (**यजमानस्य सत्रा शंसं तूतोत्**) यजमानके प्रशंसनीय कर्मको बढावे ॥७॥

१ **वृत्रहा पुरंदरः इन्द्रः दासीः वि ऐरयत्**- वृत्रनाशक और शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रने सब दासस्त्रियोंको मारा। इससे दासोंका वंश नष्ट हुआ।

२ **मनवे क्षां अपः च अजनयत्**- मनुष्योंके लिये भूमि और जलका निर्माण किया।

[२०४] (**अर्णसातौ**) युद्धमें (**तस्मै इन्द्राय**) उस इन्द्रको (**देवेभिः सत्रा तवस्यं अनु दायि**) देवोंने संगठित होकर बल प्रदान किया, (**यत् अस्य बाह्वोः**) जब इसकी भुजाओंने (**वज्रं प्रति धुः**) वज्रको धारण किया, तब इन्द्रने (**दस्यून् हत्वी**) दस्युओंको मारकर उनके (**आयसीः पुरः नि तारीत्**) लोहेसे बने हुए नगरोंको भी नष्ट किया ॥८॥

१ **अर्णसातौ इन्द्राय देवेभिः सत्रा तवसं अनुदायि**- युद्धमें इन्द्रके लिये देवोंने संघटित होकर सामर्थ्य दिया।

२ **बाह्वोः वज्रं प्रति धुः**- बाहुओंने वज्रको धारण किया।

३ **दस्यून् हत्वी**- दुष्टोंको मारा।

४ **आयसीः पुरः नितारीत्**- लोहेके नगरोंको तोडा।

५ **आयसीः पुरः**- पत्थर और लोहेसे बने नगर, मजबूत दिवारों के नगर, किले।

[२०५] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**ते सा दक्षिणा**) तेरी वह दक्षिणा (**जरित्रे मघोनी**) स्तोताके लिए धन देनेवाली है (**वरं प्रति दुहीयद्**) और श्रेष्ठताको देती है, ऐसी दक्षिणा तू (**स्तोतृभ्यः शिक्ष**) स्तोताओंको दे (**भगः नः मा अति धक्**) ऐश्वर्य हमें न छोडे, हम (**सुवीरा विदथे बृहद् वदेम**) उत्तम वीर सन्तानवाले होकर यज्ञमें स्तोत्र बोले ॥९॥

१ **भगः नः मा अति धक्**- धन हमें न छोडे, धन हमारे पास सदा रहे।

२ **विदथे सुवीराः बृहत् वदेम**- युद्धमें उत्तम वीर बनकर हम शत्रुको बडा उत्तर दें।

भावार्थ- जो दुष्ट शत्रु है, उनका समूलनाश करना चाहिए। उनके वंशमें कोई भी नहीं रहे, इसलिए उस वंशको आगे चलानेवाली स्त्रियोंका भी नाश करना चाहिए। इन्द्र बडा बुद्धिमान् है, वह यह बात जानता है, इसीलिए वह दासकी स्त्रीओंको भी नष्ट करता है और मानवोंकी रक्षा करता है ॥७॥

जब इन्द्र असुरोंसे युद्ध करनेके लिए जाता है, तब सभी देव संघटित होकर उसकी सहायता करते हैं, उसे बल प्रदान करते हैं और इन्द्र भी देवोंके उस संघटित बलसे युक्त होकर असुरोंके लोहे के समान सुदृढ किलोंको भी तोड डालता है। इसी प्रकार जब राजा शत्रुओंपर आक्रमण करे, तब सभी विद्वान् और प्रजायें परस्पर संघटित होकर उस राजाकी सहायता करें। उस समय पारस्परिक कलहोंसे दूर रहें। उस बलसे युक्त होकर राजा इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह सुदृढ से सुदृढ शत्रुका भी मुकाबला आसानीसे कर सकता है और उनके किलोंको नष्ट कर सकता है। वैदिक् समयके शत्रुके नगर लोहे और पत्थरोंके मजबूत शक्तिशाली नगर थे। जिनको आर्य तोडते थे और शत्रुको परास्त करते थे, और उन नगरोंपर अपना अधिकार जमाते थे ॥८॥

हे इन्द्र ! वह तेरा धन हमें कभी न छोडे, ऐश्वर्य से भी हम कभी हीन न हों। ऐसी दक्षिणा अर्थात् धन और चतुरताके बल से सम्पन्न होकर हम युद्धमें शत्रुओंको अच्छा उत्तर दें अर्थात् शत्रुओंको परास्त करें ॥९॥

[२१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- इन्द्रः।
छन्दः- जगती; ६ त्रिष्टुप्।]

२०६ विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ १ ॥

२०७ अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

२०८ सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥ ३ ॥

२०९ अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥

---

[२१]

अर्थ- [२०६] हे मनुष्य! तुम (**विश्वजिते, धनजिते, स्वः-जिते**) विश्वको जीतनेवाले, शत्रुओंके धनको जीतनेवाले, सुखोंको जीतनेवाले, (**सत्राजिते, नृ-जिते उर्वराजिते**) संगठित होकर जीतनेवाले, वीर मनुष्योंको जीतनेवाले, भूमिको जीतनेवाले, (**अश्वजिते, गोजिते, अप्-जिते**) घोडे, गाय और पानीको जीतनेवाले (**यजताय इन्द्राय**) पूजनीय इन्द्र के लिए (**हर्यतं सोमं भर**) तेजस्वी सोमको दो ॥१॥

[२०७] (**अभिभुवे अभिभंगाय**) शत्रुओंको हरानेवाले तथा उन्हें तोडनेवाले (**वन्वते अषाळ्हाय**) धन लूटनेवाले, शत्रुओंके लिये असह्य (**सहमानाय वेधसे**) स्वयं शत्रुओंके आक्रमणोंको सहनेवाले, ज्ञानी (**तुविग्रये वह्नये**) मोटी गर्दनवाले, आगे ले जानेवाले (**दुः-तरीतवे सत्रासाहे**) शत्रुओंके लिए जिसको हराना अशक्य है, संगठित होकर लडनेवाले (**इन्द्राय नमः वोचत**) इन्द्रके लिए नमस्कार कहो, उसका गुण वर्णन करो ॥२॥

[२०८] (**सत्रासाहः जनभक्षः**) संगठित होकर लडनेवाला, मनुष्योंका हित करनेवाला, (**जनंसहः च्यवनः**) शत्रुजनोंको हरानेवाला, शत्रुको अपने स्थानसे हटानेवाला (**युध्मः जोषं अनु उक्षितः**) योद्धा, प्रीतिपूर्वक सोम पीनेवाला, (**वृतंचयः सहुरिः**) घेरनेवाले शत्रुको मारनेवाला, तेजस्वी यह इन्द्र (**विक्षु आरितः**) प्रजाओमें सहायार्थ बुलाया जाता है, ऐसे (**इन्द्रस्य कृतानि वीर्या प्र वोचं**) इन्द्रके द्वारा किये गए पराक्रमोंका वर्णन करता हूँ ॥३॥

[२०९] (**अनानुदः**) दान देनेमें जिससे आगे कोई नहीं निकल सकता, ऐसे (**वृषभः**) बलवान् (**दोधतः वधः**) संसारको कंपानेवाले शत्रुको मारनेवाले (**गम्भीरः**) गम्भीर (**ऋष्वः**) महान् (**असमष्टकाव्यः**) असाधारण कुशल, (**रध्रचोदः**) समृद्धियोंके प्रेरक (**श्नथनः**) शत्रुओंको मारनेवाले (**वीळितः**) दृढ अंगोंवाले (**पृथुः**) प्रसिद्ध तथा (**सु-यज्ञः**) उत्तम कर्म करनेवाले (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**उषसः स्वः जनत्**) उषाओंको और सूर्यको प्रकट किया ॥४॥

भावार्थ- यह इन्द्र सभी प्रकारके ऐश्वर्योंको जीतनेवाला होकर हर तरह के सुख प्राप्त करता है। यह अपने बलके कारण समस्त विश्वका स्वामी है। ऐसे इन्द्रका हर तरह से सत्कार करना चाहिए ॥१॥

यह इन्द्र शत्रुओंको हरानेवाला, उन्हें नष्ट करनेवाला पर स्वयं शत्रुओंके लिए असह्य और ज्ञानी है। वह हमेशा संगठित होकर लडता है। ऐसे इन्द्रकी पूजा करनी चाहिए ॥२॥

यह इन्द्र प्रथम अपनी सेनाओंको संगठित करता है, फिर मानवोंका हित करने के लिए शत्रुओंसे युद्ध करता है। तब लोग उसके पराक्रमोंका वर्णन करते हैं। इसी प्रकार राजा प्रथम अपनी सेनाओंको संगठित करके अपनी प्रजाओं और उत्तम मनुष्योंका हित करनेके लिए शत्रुओंसे युद्ध करता है, तब लोग उस राजाकी प्रशंसा करते हैं ॥३॥

यह इन्द्र दान देने में सर्वश्रेष्ठ बलवान्, शत्रुका नाशक और असाधारण ज्ञानी है। इसका शरीर सुदृढ है, यह उत्तम कर्म करनेवाला है। यह अपने सामर्थ्यसे उषाओं और सूर्यको प्रकट करता है ॥४॥

२१० यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
२११ इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥

[२२]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ अष्टिः; २-३ अतिशक्करी; ४ अष्टिः अतिशक्करी वा ।]

२१२ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

अर्थ- [२१०] (धियः हिन्वानाः) स्तुतियोंको करते हुए (उशिजः) समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा (असुरः) शीघ्रतासे कर्म करनेवाले (मनीषिणः) बुद्धिमानोंने (यज्ञेन) यज्ञके द्वारा (गातुं विविद्रिरे) योग्य मार्गको जाना, तथा (इन्द्रे गाः हिन्वानाः) इन्द्रके लिए स्तुतियां करते हुए (अवस्यवः) अपने रक्षणकी इच्छा करनेवालोंने (अभिस्वरा निषदा) इन्द्रकी स्तुति के द्वारा तथा उसके पास रहकर (द्रविणानि आशत) धनोंको प्राप्त किया ॥५॥

१ उशिजः असुरः मनीषिणः यज्ञेन गातुं विविद्रिरे- समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले बुद्धिमान यज्ञ के द्वारा योग्य मार्गका पता लगाते हैं.

[२११] हे इन्द्र! हमें (श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि) श्रेष्ठ धन दे तथा (अस्मे दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं) हमें बलकी प्रसिद्धि तथा सौभाग्य दे, (रयीणां पोषं तनूनां अरिष्टिं) धनोंका पोषण तथा शरीरकी नीरोगता (वाचः स्वाद्मानं अह्नां सुदिनत्वं) वाणीमें मधुरता तथा दिनोंकी उत्तमता प्रदान कर ॥६॥

१ श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि- हमें श्रेष्ठ धन दे।
२ दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं अस्मे धेहि- बलका विचार और सौभाग्य हमें दे।
३ रयीणां पोषं, तनूनां अरिष्टिं- धनोंकी वृद्धि और शरीरोंकी नीरोगिता दे।
४ वाचः स्वाद्मानं अह्नां सुदिनत्वं- वाणीकी मधुरता और दिनोंकी उत्तमता दे।

[२२]

[२१२] (महिषः) पूज्य (तुविशुष्मः) बहुत बलशाली (तृपत्) तृप्त करनेवाले इन्द्रने (विष्णुना) विष्णुके साथ (त्रिकद्रुकेषु सुतं) लकडीके बर्तनोंमें निचोड कर रखे गए (यवाशिरं) जौके आटे तथा दूधसे युक्त (सोमं यथावशत् अपिबद्) सोमको जी भरकर पिया (सः) उसने (महां उरूं) बहुत प्रसिद्ध इसे (महि कर्म कर्तवे) बडे बडे काम करनेके लिए (ममाद) उत्साहित किया, (सः सत्यः देवः इन्दुः) उस अविनाशी चमकनेवाले सोमने (सत्यं देवं इन्द्रं सश्चद्) अविनाशी और तेजस्वी इन्द्रको उत्साहित किया ॥१॥

१ सः महि कर्म कर्तवे ममाद- उस सोमने बडा कार्य करने के लिये उस इन्द्रको उत्साहित किया।

भावार्थ- समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कर्मोंको करनेवाले बुद्धिमान् जन यज्ञ के द्वारा उत्तम मार्गोंका पता लगाते हैं और उस पर चलकर इन्द्रकी मित्रता प्राप्त करते हैं। उत्तम मार्गोंपर चलनेवालों से ही इन्द्र मित्रता करता है ॥५॥

जिस मनुष्यकी वाणीमें मधुरता होती है, जो लोगोंसे मीठी वाणीसे बोलता है उसके सभी दिन सुखसे बीत जाते हैं, उसका कोई शत्रु नहीं होता, उसे हर तरह के धन प्राप्त होते हैं, उस धनसे उत्तम सौभाग्य मिलता है, उस सौभाग्यके कारण वह हमेशा प्रसन्न मनवाला होता है, और जिसका मन प्रसन्न होता है, उसका शरीर भी हृष्टपुष्ट होता है। अतः वाणी की मधुरता ही सब सुखोंका मूल है ॥६॥

इन्द्र विष्णुके साथ सोम पीता है और सोमपानसे उत्साहित होकर वह इन्द्र अनेक तरहके श्रेष्ठ कर्म करता है, इसी लिए वह पूजनीय होता है ॥१॥

२१३ अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभव—दा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत . सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

२१४ साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

२१५ तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद् देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद् विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ४ ॥

अर्थ- [२१३] (अध) सोम पीनेके बाद (त्विषीमान्) तेजस्वी इन्द्रने (ओजसा) बलसे (**क्रिविं युधा अभि अभवत्**) क्रिवि नामक असुरको युद्धसे मारा, तथा वह (**प्रवावृधे**) वृद्धिको प्राप्त हुआ, फिर इन्द्रने (**अस्य मज्मना**) अपने बलसे (**रोदसी आ अपृणद्**) द्यावापृथिवीको भर दिया। इन्द्रने सोमके दो भाग करके (**अन्यं जठरे अधत्त**) एक भागको पेटमें डाल लिया तथा (**ई**) दूसरे भागको (**प्र अरिच्यत**) देवोंके लिए रख दिया, (**सः सत्यः देवः इन्दुः**) वह अविनाशी चमकनेवाला सोम (**एवं सत्यं देवं इन्द्रं सश्चद्**) इस अविनाशी तेजस्वी इन्द्रको उत्साहित करता है ॥२॥

[२१४] हे इन्द्र ! तू (**क्रतुना साकं जातः**) बुद्धिके साथ उत्पन्न हुआ, (**ओजसा साकं ववक्षिथ**) बलके साथ तू सब स्थान पर गया, (**वीर्यैः साकं वृद्धः**) पराक्रमसे तू बढा, (**मृधाः सासहिः**) शत्रुओंको तूने मारा, तथा तू ही (**विचर्षणिः**) सबको देखनेवाला है, तू ही (**स्तुवते**) स्तोताके लिए (**राधः**) सम्पत्ति तथा (**काम्यं वसुः**) इच्छित धनको (**दाता**) देनेवाला है। (**सः सत्यः देवः इन्दुः**) वह अविनाशी और चमकनेवाला सोम (**एनं सत्यं एवं इन्द्रं सश्चद्**) इस अविनाशी और तेजस्वी देवको उत्साहयुक्त करता है ॥३॥

१ **क्रतुना साकं जातः**- वह इन्द्र बुद्धि के साथ उत्पन्न होता है।

२ **वीर्यैः साकं वृद्धः**- पराक्रमसे बढता है।

[२१५] हे इन्द्र ! (**यत्**) जो तूने (**शवसा**) बलसे (**देवस्य असुं रिणन्**) देवोंके मारनेवाले असुरके प्राणोंको निकालते हुए (**अपः प्रारिणाः**) पानियोंको बहाया, हे (**नृत**) नेता इन्द्र ! (**तव**) तेरे द्वारा (**कृतं त्यत् प्रथमं पूर्व्यं**) किया गया वह प्रसिद्ध तथा अद्भुत (**नर्यं**) और मनुष्योंका हितकारी (**अपः**) कर्म (**दिवि प्रवाच्यं**) द्युलोकमें प्रशंसनीय है, इस इन्द्रने (**विश्वं अदेवं ओजसा अभिभुवत्**) सारे असुरोंको अपने बलसे जीता, (**ऊर्जं विदात्**) अन्न प्राप्त किया तथा (**शतक्रतुः**) सैंकडों काम करनेवाले उस इन्द्रने (**इषं विदात्**) अन्न प्राप्त किया ॥४॥

भावार्थ- सोम प्रकाशमान्, तेजस्वी और उत्साह देनेवाला है। यह सोम पीनेके बाद इन्द्र और अधिक तेजस्वी होकर युद्धमें असुरोंको मारता है और अपने यशका विस्तार करता है ॥२॥

यह इन्द्र बुद्धिसे सम्पन्न होकर जन्म लेता है। अपने ओज और तेजके कारण सर्वत्र जाता है और पराक्रम के कारण बढता है अर्थात् इसके पराक्रम के कारण इसकी कीर्ति चारों ओर फैलती है। यह सर्वद्रष्टा है, इससे कुछ भी नहीं छिपाया जा सकता ॥३॥

इस इन्द्रने शत्रुओंको मार कर जलों को बहाया, यह इसका कर्म अत्यन्त प्रशंसनीय है। इस नेताका यह कर्म बहुत अद्भुत और मनुष्योंके लिए हितकारी है ॥४ ॥

[२३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । देवता-बृहस्पतिः; १, ५, ९, ११, १७, १९ ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः- जगती; १५, १९ त्रिष्टुप् ।]

२१६ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ १ ॥
२१७ देवाश्चित् ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥
२१८ आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठति ।
बृहस्पते भीममभित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥

---

[२३]

अर्थ- [२१६] हे (**ब्रह्मणस्पते**) ज्ञानके अधिपति देव! हम (**गणानां गणपतिं**) गणोंके गणपति (**कवीनां कविं**) दूरदर्शियोंके भी दूरदर्शी (**उपमश्रवः तमं**) अत्यंत उपमा देनेवाले यशसे युक्त (**ज्येष्ठराजं**) श्रेष्ठ तेजस्वी (**ब्रह्मणां**) मंत्रोंके स्वामी (**त्वा**) तुमको (**हवामहे**) बुलाते है। (**नः शृण्वन् ऊतिभिः सादनं आ सीद**) हमको सुनते हुए रक्षण साधनोंके साथ हमारे घरमें आकर हमारी सहायता करनेके लिये बैठो ॥१॥

[२१७] हे (**असुर्य बृहस्पते**) बलवान् बृहस्पते! (**प्रचेतसः देवाः चित्**) विशेष ज्ञानवाले देवोंने भी (**ते यज्ञियं भागं आनशुः**) तेरे यज्ञके भागको प्राप्त कर लिया। (**ज्योतिषा महः सूर्यः उस्राः इव**) तेजसे महान् सूर्य जैसे किरणोंको उत्पन्न करता है, वैसे ही तू (**विश्वेषां ब्रह्मणां इत् जनिता असि**) सम्पूर्ण ज्ञानोंको प्रकाशित करनेवाला है ॥२॥

१ **असुर्य बृहस्पते प्रचेतसः देवाः चित् ते यज्ञियं भागं आनशुः**- हे बलवान् बृहस्पते! प्रकृष्ट ज्ञानवाले देवोंने भी तेरे यज्ञके भागको प्राप्त कर लिया।

२ **ज्योतिषा महः सूर्यः उस्राः इव, विश्वेषां ब्रह्मणां इत् जनिता असि**- अपने तेजसे, महान् सूर्य जैसे किरणोंको फैलाता है, उसी प्रकार बृहस्पति सारे ज्ञानोंका प्रसार करता है। प्रकाशमें लाता है।

[२१८] (**बृहस्पते**) हे बृहस्पति देव! (**परिरापः तमांसि च आ विबाध्य**) चारों ओरसे दुःख देनेवालोंका और अन्धकारोंको प्रतिबन्ध करके (**ऋतस्य ज्योतिष्मन्तं, भीमं**) यज्ञके प्रकाश करनेवाले, भयंकर (**अ-मित्र-दम्भनं, रक्षः हनं**) शत्रुओंको दबानेवाले, राक्षसोंको मारनेवाले (**गोत्रभिदं स्वःविदं**) पर्वतीय किलोंको तोडनेवाले और सुखको देनेवाले (**रथं आतिष्ठसि**) रथ पर बैठते हो ॥३॥

भावार्थ- हे ब्रह्मणस्पते! ज्ञानियोंमें भी विशेष ज्ञानी गणोंके गणपति, दूरदर्शियोंके भी दूरदर्शी, अनुपमेय, श्रेष्ठ, तेजस्वी तुझको हम सहायतार्थ बुलाते हैं। हमारी स्तुतिको सुनते हुए रक्षण साधनोंके साथ हमारे घरमें सहायतार्थ आकर बैठो ॥१॥

उत्तम ज्ञानवाले सभी विद्वान् यज्ञके भागी होते हैं। देवगण इस बृहस्पति अर्थात् ज्ञानके स्वामीका आश्रय लेकर उत्तम कर्म करते हैं। यह बृहस्पति ज्ञानका स्वामी होनेसे सर्वत्र ज्ञानको उसी प्रकार फैलाता है, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंको। ज्ञानका प्रकाश सर्वत्र फैले ॥२॥

हे बृहस्पते! तुम दुःख देनेवालोंका और अन्धकारोंका बाध करके यज्ञके प्रकाश करनेवाले भयंकर, शत्रुओंको दबानेवाले, राक्षसोंको मारनेवाले, पर्वतीय किलोंको तोडनेवाले, सुखको देनेवाले रथ पर बैठते हो। बृहस्पति ज्ञानी होनेके साथ साथ शूरवीर भी है। इसी प्रकार राष्ट्रके सभी ज्ञानी शूरवीर भी हों ॥३॥

२१९ सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत् ते महित्वनम् ॥ ४ ॥
२२० न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥

अर्थ- [२१९] हे (**बृहस्पते**) बृहस्पते ! (**यः तुभ्यं दाशात्**) जो तुम्हें हवि देता है, उस (**जनं सुनीतिभिः नयसि त्रायसे**) जनको अच्छी नीतिके मार्गसे ले जाते हो, और उसकी रक्षा करते हो (**तं अंहः न अश्नवत्**) उसको पाप नहीं लगता। तुम (**ब्रह्म-द्विषः तपनः मन्यु-मीः असि**) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंको तपानेवाले तथा शत्रुके क्रोधके नाशक हो। (**ते तत् महि महित्वनं**) तुम्हारी उस प्रकार बडी महिमा है ॥४॥

१ **बृहस्पते ! यः तुभ्यं दाशात्, जनं सु-नीतिभिः नयसि, त्रायसे-** हे बृहस्पते ! जो तुम्हें हवि देता है, उसे तुम अच्छे मार्गोंसे ले जाते हो, और उसकी रक्षा करते हो।

२ **तं अंहः न अश्नवत्-** उसको पाप नहीं लगता।

३ **ब्रह्म-द्विषः तपनः मन्यु-मीः असि-** ज्ञानके द्वेष करनेवालोंको तपानेवाले, तथा शत्रुके क्रोधके नाश करनेवाले हो।

४ **ते तत् महि महित्वनम्-** तुम्हारी वह बडी महिमा है।

[२२०] (**ब्रह्मणस्पते**) ज्ञानके अधिष्ठाता देव ! (**सु-गोपा यं रक्षसि**) अच्छी तरह पालन करनेवाले तुम जिसकी रक्षा करते हो, (**अस्मात् इत् विश्वां ध्वरसः वि बाधसे**) उससे सम्पूर्ण हिंसकोंको तुम दूर करते हो, इसी प्रकार (**तं अंहः न दुरितं न**) उसको पाप और बुरे कर्म दुःख नहीं देते, (**अरातयः कुतश्चन न तितिरुः**) शत्रु भी कहींसे भी उसको कष्ट नहीं पहुंचाते (**द्वयाविनः न**) और वंचक भी ठग नहीं सकते ॥५॥

१ **ब्रह्मणस्पते ! सुगोपा यं रक्षसि, अस्मात् इत् विश्वाः ध्वरसः वि बाधसे-** हे ब्रह्मणस्पते ! उत्तम पालना करनेवाले तुम जिसकी रक्षा करते हो, इससे संपूर्ण हिंसक दूर करते हो।

२ **तं अंहः न, दुरितं न, अरातयः कुतश्चन न तितिरुः, द्वयाविनः न-** पाप, बुरे कर्म, शत्रु भी कहींसे उसकी हिंसा नहीं कर सकते, न ठग ही ठग सकते हैं।

३ **द्वयाविन्-** दो प्रकारके व्यवहार करनेवाला, अन्दर एक और बाहर एक, ठग।

४ **अ-रातिः-** अदानशील व्यक्ति। कंजूस।

भावार्थ- यह बृहस्पति दानशील मनुष्योंकी हर तरहसे रक्षा करता है, वह जिसकी रक्षा करना चाहता है, उसे वह उत्तम मार्गोंमे ले जाता है। जब वह उत्तम मार्ग में चलता हुआ उत्तम कर्म करता है, तब उससे कोई भी पापकर्म नहीं होता। इस प्रकार वह कभी पापी नहीं होता ॥४॥

यह ब्रह्मणस्पति जिस मनुष्यकी रक्षा करता है, उसका पाप कुछ नहीं बिगाड सकते। हिंसक भी उससे दूर रहते हैं और दो प्रकारका व्यवहार करनेवाले अर्थात् अन्दरसे कुछ और बाहर से कुछ और ही व्यवहार करनेवाले भी उसे कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते ॥५ ॥

२२१ त्वं नो॑ गो॒पाः प॑थि॒कृद् वि॑चक्ष॒ण — स्तव॑ व्र॒ताय॑ म॒तिभि॑र्जरामहे ।
बृह॑स्पते॒ यो नो॑ अ॒भि ह्वरो॑ द॒धे स्वा तं म॑र्मर्तु दु॒च्छुना॒ हर॑स्वती ॥ ६ ॥
२२२ उ॒त वा॒ यो नो॑ म॒र्चया॒दना॑गसो ऽराती॒वा मर्तः॑ सानु॒को वृकः॑ ।
बृह॑स्पते॒ अप॒ तं व॑र्तया प॒थः सु॒गं नो॑ अ॒स्यै दे॒ववी॑तये कृधि ॥ ७ ॥
२२३ त्रा॒तारं॑ त्वा त॒नूनां॑ हवाम॒हे ऽव॑स्पर्तरधिव॒क्तार॑मस्म॒युम् ।
बृह॑स्पते देव॒निदो॒ नि ब॑र्हय॒ मा दु॒रेवा॒ उत्त॑रं सु॒म्नमुन्न॑शन् ॥ ८ ॥

अर्थ- [२२१] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (त्वं नः गोपाः पथि-कृत्) तुम हमारे रक्षक तथा हमारे मार्ग दर्शानेवाले हो। हम (वि-चक्षणः तव व्रताय मतिभिः जरामहे) बुद्धिमान् तुम्हारे नियमोंके अनुसार चलनेके लिए अपनी बुद्धियोंसे स्तुति करते हैं। (यः नः ह्वरः अभिदधे) जो हमारे प्रति कुटिलता धारण करते है, (तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु) उसको उसकी अपनी ही दुर्बुद्धि शीघ्र ही मार दे, नष्ट कर दे ॥६॥

१ बृहस्पते ! त्वं नः गोपाः पथि-कृत्- हे देव ! तुम हमारे रक्षक तथा हमारे लिए उत्तम मार्गके बनानेवाले हो।
२ वि-चक्षणः तव व्रताय मतिभिः जरामहे- हम बुद्धिमान् तुम्हारे व्रतके लिए अपनी बुद्धियोंसे स्तुति करते हैं।
३ यः नः ह्वरः अभि दधे- जो हमारे प्रति कुटिलता धारण करता है।
४ तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु- उसको उसकी अपनी ही दुर्बुद्धि शीघ्र मार दे। उसको नष्ट कर दे।

[२२२] (बृहस्पते) हे बृहस्पति देव ! (उत वा अरातीवा मर्तः) अथवा शत्रुके समान आचरण करनेवाला मनुष्य (स-अनुकः वृकः वा) अथवा क्रोधित भेडियेके समान क्रूर (अन् आगसः नः मर्चयात्) निष्पाप रहनेवाले हमको पीडित करे, (तं पथः आप वर्तय) उसको हमारे मार्गसे दूर कर। (अस्यै देववीतये नः सुगं कृधि) इस देवत्व प्राप्तिकी ओर जानेका मार्ग हमारे लिए सुगम बना ॥७॥

१ बृहस्पते ! उत वा अरातीवा मर्तः, स-अनुकः, वृकः अन्-आगसः नः मर्चयात्- बृहस्पते ! शत्रु मनुष्य या क्रोधित भेडियेके समान क्रूर मनुष्य निष्पाप रहनेवाले हमको पीडित करे।
२ तं पथः अपवर्तय- तो उसको हमारे मार्गसे दूर कर।
३ अस्यै देववीतये नः सुगं कृधि- इस देवत्व प्राप्ति के मार्ग को हमारे लिए सुगम बना।

[२२३] (अवः पर्तः बृहस्पते) रक्षणोंसे पार करनेवाले बृहस्पते ! हम (तनूनां त्रातारं, अधि वक्तारं अस्मयुं, त्वा हवामहे) शरीरोंके रक्षक, सबसे ऊपर रहकर बोलनेवाले, हमारे पास आनेवाले तुझको बुलाते हैं, (देवनिदः नि-बर्हय) देवोंके निन्दकोंका नाश कर, (दुरेवाः उत्तरं सुम्नं मा, उत् नशन्) दुर्बुद्धिवाले शत्रु उत्तम सुखको न प्राप्त करें, अपितु वे नष्ट हो जायें ॥८॥

१ अवः पर्तः बृहस्पते ! तनूनां त्रातारं, अधिवक्तारं अस्मयुं त्वा हवामहे- रक्षणोंसे पार कराने वाले बृहस्पते ! हमारे शरीरोंके रक्षक, सबसे ऊपर रहकर बोलनेवाले, हमारी सहायता करनेवाले तुझको हम अपने सहायार्थ बुलाते हैं।
२ देव-निदः नि-बर्हय- देवनिन्दकोंका तू नाश कर।
३ दुरेवाः उत्तरं सुम्नं मा, उत् नशन्- दुष्ट शत्रु उत्तम सुखको न प्राप्त हों, अपितु वे नष्ट हो जायें।

भावार्थ- परमात्माके द्वारा बताये गये उत्तम मार्ग पर चलने और उसके द्वारा बताये गये नियमों पर चलनेके लिए परमात्माकी उपासना करनी चाहिए। परमात्माकी भक्ति करनेसे मनुष्य सदा उत्तम आचरण ही करता है। तब ऐसे परमात्मभक्त के प्रति जो कुटिलता का व्यवहार करता है, वह कुटिल मनुष्य अपने ही कामोंसे स्वयं मारा जाता है ॥६॥

हे बृहस्पति देव ! यदि कोई शत्रु अथवा क्रोधित भेडियेके समान क्रूर मनुष्य निष्पाप हमको दुःख दे, तो हमारी उनसे रक्षा कर और जिससे हम देवत्व की प्राप्ति कर सकें, ऐसा सरल मार्ग हमें बता ॥७॥

२२४ त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९ ॥
२२५ त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥

अर्थ- [२२४] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानाधिपते ! (त्वया सु-वृधा स्पार्हा वसु वयं मनुष्या आददीमहि) तुझसे उत्तम प्रकार बढनेवाले स्पृहणीय धनको हम मनुष्योंके लिए प्राप्त करना चाहते है। (याः दूरे याः तळितः) जो दूर और जो पास (अरातयः) शत्रु (नः अभि सन्ति) हमारे चारों तरफ है, (ताः अन्-अप्नसः जम्भय) उन कर्महीनोंको नष्ट करो ॥९॥

१ **ब्रह्मणस्पते ! त्वया सु-वृधा स्पार्हा वसु वयं मनुष्या आददीमहि-** ज्ञानाधिपते ! तूझसे उत्तम प्रकार बढनेवाले स्पृहणीय धनको हम मनुष्योंके लिए प्राप्त करना चाहते हैं।

२ **याः दूरे याः तळितः अरातयः नः अभि सन्ति ताः अन्-अप्नसः जम्भय-** जो दूर तथा जो पास शत्रु हमारे चारों ओर हैं, उन कर्महीनोंका विनाश करो।

[२२५] हे (बृहस्पते) वाणीके स्वामी देव! (पप्रिणा, सस्निना, युजा त्वया वयं) पूर्णता करनेवाले प्रेमी तुझ जैसे सहायकसे मिलकर हम (उत्तमं वयः धीमहे) उत्तम बलको प्राप्त करें। (दुःशंसः अभि-दिप्सुः नः मा ईशत) अपकीर्तीवाला, हमें दबानेकी इच्छा करनेवाला, हमारे ऊपर स्वामित्व न करे। (सु-शंसाः मतिभिः प्र तारिषीमहि) प्रशंसनीय रहकर हम अपनी बुद्धियोंसे दुःखके पार हो जावें ॥१०॥

१ **बृहस्पते ! पप्रिणा सस्निना युजा त्वया वयं उत्तमं वयः धीमहे-** हे वाणीके स्वामी देव ! कामनाओंके पूरक, शुद्ध सहायक, तेरे द्वारा हम उत्तम अन्नको या बलको प्राप्त करें।

२ **दुःशंसः, अभि-दिप्सुः नः मा ईशत-** अपकीर्तीवाला, हमें दबानेकी इच्छा करनेवाला हमारा स्वामी न हो।

३ **सु-शंसाः मतिभिः प्र तारिषीमहि-** उत्तम प्रशंसित हम अपनी बुद्धियोंके द्वारा दुःखसे पार हो जावें।
पप्रिन्- पूरक-"**पॄ पालनपूरणयोः**"

भावार्थ- वह बृहस्पति अपनी रक्षाके साधनोंसे अपने भक्तोंको दुःखोंसे पार करता है, वह मनुष्योंकी सहायता करता है, इसलिए उसे सभी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं। वह देवनिन्दकों अर्थात् नास्तिकोंको कभी सुख नहीं देता, उन्हें वह पूर्णतया नष्ट कर देता है ॥८॥

हम देवोंसे धन मनुष्योंका हित करनेके लिए ही प्राप्त करें। जो भी धन हमारे पास हो उससे हम अपने स्वार्थकी पूर्ति कभी न करें अपितु समाजकी उन्नति में ही उस धनका व्यय करें। समाजमें कोई निष्क्रिय होकर परावलम्बी न हो, क्योंकि जो कर्महीन होते हैं, ब्रह्मणस्पति उन्हें नष्ट कर देता है। कर्महीन मनुष्य समाजके शत्रु हैं, अतः ऐसोंका नाश अवश्य होना चाहिए ॥९॥

बृहस्पति वाणीका स्वामी है। वह अपने उपासकों की हर कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसकी सहायता प्राप्त करके हम उत्तम अन्न प्राप्त करें। उस अन्नसे हम इतना पुष्ट हों कि हमें कोई भी अपना दास न बना सके और हम अपनी बुद्धियोंके द्वारा हर दुःख से पार हो जायें ॥१०॥

२२६ अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद् दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ११ ॥
२२७ अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक् तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२ ॥
२२८ भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव ॥ १३ ॥
२२९ तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत् कृष्व यदसत् त उक्थ्यं बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४ ॥

अर्थ- [२२६] हे (**ब्रह्मणस्पते**) ज्ञानके स्वामी! तुम (**अन् अनु-दः**) तुम्हारे जैसा दूसरा दाता नहीं है। (**वृषभः, आहवं जग्मिः**) तुम बलवान्, संग्राममें जानेवाले (**शत्रुं नि तप्ता, पृतनासु सासहिः**) शत्रुको तपानेवाले, युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाले (**ऋण-या, वीळुहर्षिणः उग्रस्य चित् दमिता सत्यः असि**) ऋणको दूर करनेवाले, उत्तम हर्षवाले, शत्रुके वीरका भी दमन करनेवाले और सत्य हो ॥११॥

[२२७] (**यः अदेवेन मनसा रिषण्यति**) जो आसुरीवृत्तिवाले मनसे हमें पीडित करता है जो (**उग्रः मन्यमानः शासां जिघांसति**) निर्दयी, अपनेको बहुत समर्थ मानता हुआ स्तोताओंको मारता है, (**बृहस्पते**) हे बृहस्पते! (**तस्य वधः नः मा प्रणक्**) उनका शस्त्र हमारे ऊपर न आ जाये (**दुरेवस्य शर्धतः मन्यु नि कर्म**) दुष्ट मार्गसे जानेवाले, स्पर्धा करनेवालेके क्रोधको हम दूर करते हैं ॥१२॥

१ **यः अदेवेन मनसा रिषण्यति-** जो आसुरी मनसे हमें दुःख देता है।

२ **उग्रः मन्यमानः शासां जिघांसति-** जो भयंकर, अपनेको बहुत बडा मानता हुआ स्तोताओंको मारना चाहता है।

३ **बृहस्पते! तस्य वधः नः मा प्रणक्-** हे बृहस्पते! उसका शस्त्र हमारे ऊपर न आ पडे।

४ **दुरेवस्य शर्धतः मन्युं नि-कर्म-** दुष्ट मार्गसे चलनेवाले बलशालीके क्रोधको हम निकम्मा करते हैं।

[२२८] (**भरेषु हव्यः**) संग्रामोंमें सहायार्थ बुलाने योग्य (**नमसा उप सद्यः**) नमस्कार करके समीप बैठने योग्य (**वाजेषु गन्ता**) संग्रामोंमें जानेवाले (**धनं धनं सनिता**) धनोंके दाता (**अर्यः बृहस्पतिः**) श्रेष्ठ बृहस्पति (**अभि-दिप्स्वः विश्वा इत् मृधः**) दबानेकी इच्छा करनेवाले सम्पूर्ण हिंसक शत्रुओंको (**रथान् इव**) रथोंके समान (**वि आ ववर्ह**) विशेष रूपसे निर्बल कर देता है ॥१३॥

[२२९] (**बृहस्पते**) वाणीके देव! (**ये दृष्टवीर्यं त्वा**) जिसका पराक्रम स्पष्ट दीखता है ऐसे तुम्हारी जो (**निदे दधिरे**) निन्दा करते हैं उन (**रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तप**) राक्षसोंको अत्यधिक तापदायक तेजसे तपा। (**ते उक्थ्यं यत् असत्**) तुम्हारा प्रशंसनीय जो पराक्रम है, (**तत् आविष्कृष्व**) उसको प्रकट करो, (**परिरापः वि अर्दय**) चारों ओर से बाधा करनेवाले शत्रुओंका वध करो ॥१४॥

१ **दृष्टवीर्यं त्वा ये निंदे दधिरे, रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तप-** हे बृहस्पते! जिसका पराक्रम स्पष्ट दीखता है वैसे तुम्हारी जो निन्दा करते हैं, उनको अपने तापदायक तेजसे तपाओ, उनको कष्ट पहुंचाओ।

भावार्थ- ज्ञानाधिपति देव! तुम्हारे जैसा दाता अन्य कोई नहीं है, तुम बलवान्, युद्धमें जानेवाले, शत्रुको तापना देनेवाले, युद्धोंमें शत्रुको जीतनेवाले, ऋणसे छुडानेवाले, उत्तम हर्षयुक्त, शत्रु वीरका भी दमन करनेवाले और सच्चे हो ॥११॥

जो समर्थ न होते हुए भी स्वयं को बहुत समर्थ मानता है, ऐसे आसुरीवृत्तिवाले मनुष्य हमें नष्ट न कर पायें। ऐसे शत्रुओंके शस्त्रास्त्र हमारे पास न आवें। अर्थात् इनके द्वारा प्रयुक्त किए गए शस्त्र हमें नुकसान न पहुंचाये। इसके विपरीत हममें ऐसी आत्मशक्ति दो कि हम अपने शत्रुके सभी बलोंको बेकार कर दें ॥१२॥

संग्रामोंमें सहायार्थ बुलाने योग्य, नमस्कार करके पास जाने योग्य, संग्रामोंमें जानेवाले, धनोंके दाता, श्रेष्ठ बृहस्पतिने, हमें दबानेकी इच्छा करनेवाली सम्पूर्ण हिंसक शत्रु सेनाको रथोंके समान, विशेष रूपसे निर्बल कर दिया ॥१३॥

जो देवोंकी निन्दा करता है, उनका अपमान करता है, उन्हें देवगण अपनी शक्तिसे अत्यधिक पीडित करते हैं ॥१४॥

२३० बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद् दीदयच्छवसा ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १५ ॥
२३१ मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥
२३२ विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत् साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ १७ ॥

अर्थ- [२३०] (ऋत-प्र-जात बृहस्पते) सरलताके लिए प्रसिद्ध बृहस्पते ! (अर्यः यत् अति अर्हात्) ज्ञानी जिस धनका अधिक सत्कार करता है, जो (जनेषु द्यु-मत्, क्रतु-मत् विभा-ति) मनुष्योंमें तेजस्वी और कर्म करनेवाला होकर प्रकाशित होता है, (यत् शवसा दीदयत्) जो बलसे प्रकाशित होता है (तत् चित्रं द्रविणं अस्मासु धेहि) वह विलक्षण धन हमें दो ॥१५॥

[२३१] हे (बृहस्पते) बृहस्पति देव ! (ये अभि द्रुहः पदे नि-रामिणः रिपवः) जो द्रोह करनेमें नित्य आनन्द माननेवाले शत्रु (अन्नेषु जागृधुः) अन्नोंकी प्राप्तिकी इच्छा रखते हैं और (हृदि देवानां व्रयः वि आ ओहते) हृदयमें देवताओंका निरादर करते हैं, (साम्नः परः न विदुः) और केवल शान्त वचन बोलने से अधिक कुछ नहीं जानते, उन (स्तेनेभ्यः नः मा) चोरोंसे हमें डर न हो ॥१६॥

१ ये अभि द्रुहः पदे नि-रामिणः रिपवः अन्नेषु जागृधुः- जो द्रोह करनेमें नित्य आनन्द मनानेवाले शत्रु अन्नोंको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं।
२ हृदि देवानां व्रयः वि आ ओहते - हृदयमें देवताओंका विरोध करते हैं।
३ साम्नः परः न विदुः- शान्त वचन बोलनेके सिवाय जो कुछ और नहीं जानते हैं।
४ स्तेनेभ्यः नः मा-ऐसे चोरोंसे हमें डर न हो।

[२३२] (त्वष्टा त्वा विश्वेभ्यः भुवनेभ्यः परि अजनत्) प्रजापतिने तुझको सम्पूर्ण लोकोंसे श्रेष्ठ बनाया, अतः तुम (साम्नः साम्नः कविः) प्रत्येक सामके कवि हो। (सः ब्रह्मणस्पतिः महः ऋतस्य धर्तरि ऋणचित्) वह ब्रह्मणस्पति महान् यज्ञके धारण कर्ताका ऋण चुकानेवाला (ऋण-या) ऋणसे छुडानेवाला और (द्रुहः हन्ता) द्रोहिको मारनेवाला है ॥१७॥

१ त्वष्टा त्वा विश्वेभ्यः भुवनेभ्यः परि अजनत्- त्वष्टाने तुमको सम्पूर्ण प्राणियोंसे श्रेष्ठ बनाया है।
२ साम्नः साम्नः कविः- तुम सम्पूर्ण सामोंके कवि हो।
३ सः ब्रह्मणस्पतिः महः ऋतस्य धर्तरि ऋणचित्, ऋणया, द्रुहः हन्ता- वह ब्रह्मणस्पति बडे यज्ञके धारणकर्ताका ऋण चुकानेवाला, और उसे ऋणसे मुक्त करनेवाला, तथा शत्रुको मारनेवाला है।

भावार्थ- हे सरलतासे कार्य करनेके लिये ही जो उत्पन्न हुआ है ऐसे बृहस्पते ! ज्ञानी जिस धनका अत्यधिक आदर करते हैं, जो जनोंको तेजस्वी करके उनसे शुभ कर्म कराता है, वह धन हममें प्रकाशित होता रहे। हमारे पास रहे। जो अपने बलसे लोगोंको तेजस्वी करता है, उस विलक्षण धनको हमें दो ॥१५॥

जो सदा देवभक्तोंसे द्रोह करते हैं, तथा उन्हें पीडा देनेमें ही जो आनन्द मानते हैं, इसके बावजूद भी जो अन्न प्राप्त करना चाहते हैं तथा जो हमेशा मीठी वाणी बोला करते हैं अर्थात् मीठी वाणी बोल बोलकर दूसरोंको ठगा करते हैं, ऐसे छिपे हुए चोरों और दुष्टोंसे भी हमें कोई भय न हो ॥१६॥

ब्रह्मणस्पति ज्ञानका अधिपति देवता है। देवोंमें यह सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि प्रजापतिने ही इसे सर्वश्रेष्ठ बनाया है। इसी लिए यह सम्पूर्ण ऋचाओंका ज्ञानी है, सभी ज्ञान इसमें रहते हैं। यह देव यज्ञ करनेवालों को ऋणसे मुक्त करके उन्हें सम्पन्न बनाता है ॥१७॥

२३३ तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥

२३४ ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १९ ॥

[२४]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । देवता- ब्रह्मणस्पतिः, १,१० बृहस्पतिः, १२ इन्द्राब्रह्मणस्पती । छन्दः- जगती; १२, १६ त्रिष्टुप् ।]

२३५ सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा ।
यथा नो मीढ्वान् स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥ १ ॥

अर्थ- [२३३] (**अङ्गिरः बृहस्पते**) हे अंगिर बृहस्पते ! (**गवां पर्वतः**) गौओंसे युक्त पर्वत (**तव श्रिये वि अजिहीत**) तुम्हारे आश्रयमें गए, और (**यद् गोत्रं उत् असृजः**) जब गोरक्षकको ऊपर भेजा, तब तुमने (**इन्द्रेण युजा**) इन्द्रकी सहायतासे (**तमसा परीवृतं**) अन्धकारसे घिरे हुए (**अपां अर्णवं**) जलोंके समुद्रको (**निर् औब्जः**) नीचे मुखवाला किया अर्थात् पानी बरसाया ॥१८॥

[२३४] (**यन्ता ब्रह्मणस्पते**) नियामक ब्रह्मणस्पते ! (**त्वं अस्य सूक्तस्य बोधि**) तुम इस सूक्तको जानो। (**तनयं च जिन्व**) हमारे पुत्रको पुष्ट करो। (**देवाः यत् अवन्ति तत् विश्वं भद्रं**) देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, उसका उत्तम कल्याण होता है (**सु-वीराः विदथे बृहद् वदेम**) उत्तम सन्तान वाले हम यज्ञमें बडी महिमाका वर्णन करेंगे ॥१९॥

१ **देवाः यत् अवन्ति, तत् विश्वं भद्रम्-** देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सब प्रकारसे कल्याण होता है।

[२४]

[२३५] हे (**बृहस्पते**) बृहस्पति देव ! (**यः ईशिषे**) जो तुम शासन करते हो (**सः इमां प्रभृतिं अविड्ढि**) वह तुम इस यज्ञको अपने विचारमें लो। हम (**अया नवया महा गिरा विधेम**) इस नवीन बडी स्तुतिसे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, (**उत नः मीढ्वान्**) और हममें जो स्तोता (**तव सखा यथा स्तवते**) तुम्हारे मित्रके समान तुम्हारी स्तुति करता है, (**स नः मतिं सीषध**) वह हमारी बुद्धिको उत्तम करे ॥१॥

भावार्थ- अंगरस विद्याके ज्ञाता बृहस्पते ! गौओंवाले पर्वत तुम्हारे आश्रयमें गए। और जब गौओंके रक्षकोंको तुमने ऊपर भेज दिया, तब तुमने इन्द्रकी सहायतासे अन्धकारसे घिरे हुए समुद्रको-मेघोंको नीचे मुखवाला किया, अर्थात् पानी बरसाया ॥१८॥

यह बृहस्पति स्तोत्रोंको समझकर अपने भक्तोंके पुत्रोंको हर तरह से पुष्ट करता है। देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका हर तरह से कल्याण होता है, उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड सकता। अतः हम भी यज्ञमें इस देवकी महिमाका गान करें ॥१९॥

जो तुम शासन करते हो, वह तुम इस उत्तम यज्ञको अपने विचारमें ले लो। हम इस नवीन बडी स्तुतिसे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं और हमारे बीचमें स्तुति करनेवाला तुम्हारा मित्र जिस प्रकार तुम्हारी स्तुति करता है। वह हमारी बुद्धिको उत्तम करे ॥१ ॥

२३६ यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद् वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥ २ ॥
२३७ तद् देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन् दृळ्हाव्रदन्त वीळिता ।
उद् गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वलमगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥ ३ ॥
२३८ अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥ ४ ॥
२३९ सना ता का चिद् भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद् या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

अर्थ- [२३६] (**यः ब्रह्मणस्पतिः**) जिस ब्रह्मणस्पतिने (**नन्त्वानि ओजस्य नि अनमत्**) नमनके योग्य शत्रुओंको अपने बलसे नम्र किया (**उत**) और (**मन्युना शम्बराणि वि अदर्दः**) क्रोधसे शम्बरोंको फाड डाला। (**अ-च्युता प्र अच्यवयत्**) न हिलनेवालोंको हिला दिया, (**वसुमन्तं पर्वतं च वि अविशत्**) और धनवाले पर्वतमें घुस गया ॥२॥

[२३७] (**देवानां देवतमाय तत् कर्त्वम्**) देवोंमें सबसे अधिक दिव्यशक्तिवाले ब्रह्मणस्पतिका वह कर्म है, कि उसने (**दृळ्हा अश्रथ्नन्**) दृढ किलोंका शिथिल कर दिया। (**वीळिता अव्रदन्त**) सुदृढ शत्रुको नरम बना दिया। (**गाः उत् आजत्**) गायोंको बाहर निकाला, (**ब्रह्मणा वलं अभिनत्**) ज्ञान द्वारा बल असुरको मारा, (**तमः अगूहत्**) अन्धकारको दूर किया (**स्वः वि अचक्षयत्**) सूर्यको प्रकाशित किया ॥३॥

१ देवानां देवतमाय तत् कर्त्वम्- देवोंमें अत्यधिक दिव्यशक्तिवाले ब्रह्मणस्पतिका वह पराक्रम है।

[२३८] (**ब्रह्मणस्पतिः**) ज्ञानके अधिपति देवने (**अश्म-आस्यं यं मधु-धारं ओजसा अभि अतृणत्**) पत्थर जैसे मुखवाले हौज जैसे मीठी धारावाले मेघको बलसे तोडा। (**तं एव विश्वे स्वः- दृशः पपिरे**) उसीको सम्पूर्ण सूर्यकी किरणोंने पीया और उससे (**उत्सं उद्रिणं साकं बहु सिसिचुः**) हौज जैसे पानीवाले मेघको एक साथ बहुत सींचा ॥४॥

[२३९] (**ब्रह्मणस्पतिः या वयुना चकार**) ब्रह्मणस्पतिने जिन कर्मोंको किया। (**सना ता का चित्त भवीत्वा भुवना दुरः माद्भिः शरिद्भः वः वरन्त**) सनातन रूप उनको तथा हुए और होनेवाले मेघोंके द्वारोंको मास और वर्षोंसे तुम्हारे लिए खोला है। (**अ-यतन्ता अन्यत् अन्यत् इत् चरतः**) विना प्रयत्नके ही दोनों लोग परस्पर व्यवहारसे जलोंका उपभोग करते हैं ॥५॥

भावार्थ- जिस ब्रह्मणस्पतिने नमनके योग्य शत्रुको अपने बलसे नम्र किया। और अपने क्रोधसे शम्बरोंको फाड डाला, न हिलने वाले शत्रुओंको हिला दिया। धनवाले पर्वतमें घुस गया। धनके खजानेको प्राप्त किया। वह ब्रह्मणस्पति पूज्य है ॥२॥

ब्रह्मणस्पति बडा ही पराक्रमी है, वह उसीका पराक्रम है कि उसने दृढ बन्धनोंको शिथिल कर दिया, सुदृढ किलोंको नरम बना दिया, गायों को बाहर निकाला, वज्रसे वलासुरको मारा, अन्धकारका नाश किया, और आदित्यको प्रकाशित किया ॥३॥

ब्रह्मणस्पतिने पत्थर जैसे मुखवाले मेघोंको तोडा और तोडकर पानी बरसाया, जब वह पानी बरसकर पृथ्वी पर पडा तब उस पानीको सूर्य किरणोंने पिया अर्थात् वह पानी सूर्य किरणोंके द्वारा सोख लिया गया, तब वह भाप बनकर ऊपर गया और फिर मेघ पानीसे भर गया ॥४॥

ब्रह्मणस्पति अपने कर्मोंसे मेघोंको जलसे भर देता है, और उन जलसे भरे हुए मेघोंको वर्ष भरमें एक बार खोल देता है अर्थात् ढके हुए जलों के द्वारोंको वह वर्ष में एक बार खोल देता है, तब पानीका प्रवाह बह निकलता है, इस जलोंसे सभी लोकोंका हित होता है और सभी इन जलोंका उपभोग करते हैं ॥५ ॥

२४० अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशु—र्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुन—र्यत उ आयन् तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥

२४१ ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुन—रात आ तस्थुः कवयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥ ७ ॥

२४२ ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पति—र्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥ ८ ॥

अर्थ- [२४०] (**अभि-नक्षन्तः ये पणीनां गुहां-हितं तं परमं निधिं अभि आनशुः**) चारों तरफ जाते हुए जिन देवोंने पणियों द्वारा गुहामें रखे हुए उस उत्तम गौरूपी खजानेको उत्तमतासे प्राप्त किया। (**ते विद्वांसः अन्-ऋता प्रति-चक्ष्य, आ-विशं यतः उ आयन् तत् इत् पुनः ईयुः**) विद्वान देव यज्ञके विरोधी उस स्थानको देखकर, उसमें घुसनेके लिए, जिस स्थानसे आये थे, उसी स्थानको दुबारा चले गए ॥६॥

[२४१] (**ऋतावानः कवयः अन्-ऋता प्रतिचक्ष्य**) सत्यवादी और दूरदर्शी देव मायाको देखकर (**अतः पुनः महः पथः आ तस्थु**) वहांसे फिर महान् मार्ग पर खडे हो गये। (**आ-रणः सः नकिः अस्ति**) प्रगति न करनेवाला वहां नही था। उस (**बाहुभ्यां धमितं अग्निं अश्मनि ते हि जहुः**) बाहुओंसे उत्पन्न की गई अग्निको पर्वतमें उन्होंने छोड दिया ॥७॥

१ **ऋतावानः कवयः अन्-ऋता प्रति-चक्ष्य अतः पुनः महः पथः आ तस्थुः-** सत्यवाले, दूरदर्शी देवगण मायाको देखकर उस स्थानसे फिर महान् मार्गपर स्थिर हो गए।

२ **सः अरणः नकि-** ऐसा माया या छलकपट करनेवाला व्यक्ति कभी भी उन्नति नहीं कर सकता।

[२४२] (**ऋतज्येन क्षिप्रेण धन्वना**) सरल डोरीवाले जलदी चलनेवाले धनुषके द्वारा (**ब्रह्मणस्पतिः यत्र वष्टि तत् प्र अश्नाति**) ज्ञानका देव जहां चाहता है वहां पहुंच जाता है। (**तस्य कर्णयोनयः साध्वीः इषवः**) उसके पास कानोंतक खींचे जानेवाले उत्तम बाण हैं, (**याभि नृचक्षसः दृशये**) जिनसे शत्रुके मनुष्योंको देखनेके लिए (**अस्यति**) वह फेंकता है ॥८॥

भावार्थ- यह ब्रह्मणस्पतिका ही पराक्रम है कि उसने पणि अर्थात् मेघोंके द्वारा छुपाये गए सूर्य किरणरूप खजानेको प्रकट किया। जब मेघोंके आनेके कारण सूर्य छिप जाता है, तब यही ब्रह्मणस्पति उन मेघों को फोडकर पानी बहाता है और उन बादलोंके छंट जाने पर सूर्य निकल आता है। उस समय सूर्य के निकलने पर भी जो मनुष्य यज्ञ नहीं करता, उस मनुष्य के पास देवगण कभी भी नहीं जाते, वे वापस अपने स्थान पर चले जाते हैं ॥६॥

देवगण हमेशा दूरदर्शी और सत्यके मार्गपर चलनेवाले हैं, वे कभी भी छल और कपट को पसन्द नहीं करते। इसलिए जो छलकपटका व्यवहार करते हैं, उनसे देवगण सदा दूर रहते हैं। ऐसे मायावियोंमें कोई भी प्रगति या उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे लोग अपनी आत्माकी उन्नति नहीं कर सकते ॥७॥

इस ब्रह्मणस्पतिके पास बुद्धिरूपी एक उत्तम धनुष है, जिससे वह ज्ञानरूपी बाणोंको बुद्धिमानोंके कानोंतक पहुंचाता है। इस अपनी बुद्धि अपने मित्र और शत्रुका पता लगाकर अपने ज्ञानके द्वारा अपने शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥८॥

२४३ स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद् वाजं भरते मती धना ऽऽदित् सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥ ९ ॥

२४४ विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥ १० ॥

२४५ योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥ ११ ॥

अर्थ- [२४३] (**सः सु-स्तुतः सः पुरोहितः सः ब्रह्मणस्पतिः**) वह उत्तम प्रकारसे प्रशंसित, वह सबसे आगे स्थित वह ब्रह्मणस्पति (**युधि सः सं-नयः वि-नयः**) युद्धमें वह ही उत्तम प्रकारसे संगठन और आक्रमण करता है। (**यत् चाक्ष्मः वाजं मती धना भरते**) जब सर्वद्रष्टा ब्रह्मणस्पति बल और प्रशस्त धनको धारण करता है (**आत् इत् तप्यतुः सूर्य वृथाः तपति**) उसके बाद ही तापक सूर्य बिना परिश्रम ही दीप्त होता है ॥९॥

१ **सः सु-स्तुतः पुरोहितः, ब्रह्मणस्पतिः युधि सं-नयः वि-नयः-** वह भली प्रकार प्रशंसित सबसे आगे खडा रहनेवाला ब्रह्मणस्पति युद्धमें अपनी सेनाका संगठन और शत्रुसेनाका विघटन करता है।

२ **यत् चाक्ष्मः वाजं मती धना भरते, आत इत् तप्यतुः सूर्य वृथा तपति-** जब सर्वद्रष्टा ब्रह्मणस्पति बल और प्रशस्त धनको धारण करता है, तब ही तापक सूर्य बिना परिश्रमके ही प्रकाशित होता है।

[२४४] (**विभु प्रभु**) व्यापक सामर्थ्य देनेवाले (**प्रथमं सु-विदत्राणि**) प्रथम उत्तमतासे जानने योग्य (**राध्या इमा सातानि**) सिद्धि देनेवाले ये धन (**वेन्यस्य वाजिनः मेहनावतः बृहस्पतेः**) वर्णनीय बलवान् वर्षा करनेवाले बृहस्पतिके हैं। (**येन उभये जनाः विशः भुंजते**) जिससे दोनों प्रकारकी मानवी प्रजायें भोग करतीं हैं ॥१०॥

[२४५] (**विश्वथा विभुः रण्वः ब्रह्मणस्पतिः**) - सर्वत्र व्यापक, आनंद देनेवाला ऐसा, जो ब्रह्मणस्पति (**अवरे वृजने महां उ शवसा ववक्षिथ**) छोटे युद्धमें भी अपनी महत्ताको अपने बलसे प्रकट करता है। (**सः देवः देवान् प्रति पृथु पप्रथे**) वह देव अन्य देवोंसे बहुत विशाल होकर (**ता विश्वा इत उ परिभूः**) उन सभीके चारो ओर रहता है। ॥११॥

१ **विश्वथा विभु रण्वः ब्रह्मणस्पतिः अवरे वृजने महां शवसा ववक्षिथ -** सर्वत्र व्याप्त, और आनंद देनेवाला वह ब्रह्मणस्पति छोटे युद्धमें भी अपने महत्त्वको अपने बलसे प्रकट करता है।

२ **सः देवः देवान् प्रति पृथु पप्रथे-** इस कारण वह देव ब्रह्मणस्पति अन्य देवोंसे अत्यधिक विशाल हुआ है।

भावार्थ- ब्रह्मणस्पति एक उत्तम नेता है, वह युद्धमें हमेशा आगे रहता है, अपनी नीतिके द्वारा वह अपनी सेनाका संगठन और शत्रुओंकी सेनामें फूट करता है। वह सर्वद्रष्टा है, उसीका यह बल है कि यह सूर्य प्रदीप्त हो रहा है ॥९॥

व्यापक और सामर्थ्य प्रदान करनेवाले, प्रथम उत्तमतासे जानने योग्य, सम्यक् प्रकारसे सिद्ध होनेवाले ये धन वर्णनीय, बलवान् और वर्षा करनेवाले बृहस्पतिके हैं। इस धनका ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकारकी मानवी प्रजायें भोग करती हैं ॥१०॥

वह सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मणस्पति छोटे छोटे युद्धोंमें भी अपने पराक्रमको प्रकट करता है, इसीलिए वह अन्य देवोंसे श्रेष्ठ सर्वत्र संचार करता है ॥११ ॥

२४६ विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥ १२ ॥
२४७ उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥
२४८ ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाभजन् महीव रीतिः शवसासरत् पृथक् ॥ १४ ॥
२४९ ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥ १५ ॥

अर्थ- [२४६] हे (मघवाना इन्द्रा-ब्रह्मणस्पती) ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र और ब्रह्मणस्पति (युवोः इत् विश्वं सत्यं) तुम दोनोंके सभी व्रत सत्य होते हैं, इसीलिए (वां व्रतं) तुम दोनोंके नियमको (आपः चन प्रमिनन्ति) किसी प्रकार के भी कर्म नहीं तोड सकते। तुम दोनों (नः हविः अन्नं) हमारी हवि और अन्नकी तरफ (युजा वाजिना इव) जुएमें जोडे हुए घोडोंके समान (अच्छ जिगातं) सीधे चले आओ ॥१२॥

[२४७] (उत आशि-स्थाः वन्हयः अनु शृण्वन्ति) और शीघ्रगामी घोडे सुनते हैं। (सभेयः विप्रः मती धना भरते) सभ्य ज्ञानी प्रशस्त धनको धारण करता है। (वीळुद्वेषाः वशा ऋणं आददिः) बलवान् शत्रुओंका द्वेष करनेवाला वह ऋणसे उर्ऋण करे (सः ह ब्रह्मणस्पतिः समिथे वाजी) वह ब्रह्मणस्पति युद्धमें बलवान् है॥१३॥

१ सभेयः विप्रः मती धना भरते- सभामें जाने योग्य ज्ञानी प्रशंसित धनोंको धारण करता है।

२ वीळुद्वेषाः वशा ऋणं आददिः- बलवान् शत्रुओंका द्वेष करनेवाला वह ब्रह्मणस्पति हमें मातृऋणसे उर्ऋण कर।

३ वशा- स्त्री, पत्नी, पुत्री, वन्ध्यागाय, वन्ध्यास्त्री।

[२४८] (महि कर्म, करिष्यतः ब्रह्मणस्पतेः) महान् कर्म करनेवाले ब्रह्मणस्पतिका (मन्युः यथावशं सत्यः अभवत्) क्रोध उसकी इच्छानुसार सफल हुआ। (यः गाः उत् आजत्) जिसने गायें बाहर निकालीं (सः दिवे वि अभजत्) उसीने उनको प्रकाशके लिए विभक्त कर दिया, वे गायें (मही रीतिः इव शवसा पृथक् असरत्) बडी पद्धतिके अनुसार अपने सामर्थ्यसे पृथक् पृथक् चलाई गई ॥१४॥

[२४९] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके अधिष्ठाता देव! हम (सु-यमस्य वयस्वतः विश्व-हा रथ्यः स्याम) उत्तम प्रकारसे नियमित, अन्नयुक्त, धनके सर्वदा स्वामी हों। (नः वीरेषु वीरान् उप पृङ्धि) हमारे वीरोंसे वीरोंका जन्म होता रहे, (ईशानः त्वं ब्रह्मणा मे हवं वेषि) सबके ईश्वर तुम ज्ञानपूर्वक मेरी पुकारको सुनो ॥१५॥

भावार्थ- इन्द्र और ब्राह्मणस्पतिके नियम इतने दृढ हैं कि इनके नियमको कोई भी नहीं तोड सकता। इसीलिए इनके हर एक नियम सत्य होते हैं ॥१२॥

ब्रह्मणस्पतिकी कृपासे बुद्धि सर्वत्र संचार करने लगती है और ऐसा उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य सभामें जानेके योग्य होकर सब तरह के ऐश्वर्योंको प्राप्त करता है और वह सभी तरह के ऋणोंसे मुक्त हो जाता है ॥१३॥

महान् कर्म करने वाले ब्रह्मणस्पतिका उत्साह उसकी इच्छानुसार सत्य ही हुआ। जैसा वह चाहता था, वैसा उसने किया। जिस ब्रह्मणस्पतिने गायें बाहर निकालीं, उसीने उन्हें प्रकाशमें विभक्त कर दीं और वे गायें बडे मार्गके अनुसार अपने बलसे पृथक् पृथक् चलायीं गई ॥१४॥

हे ज्ञानके अधिपति देव! हम उत्तम प्रकार से नियममें चलनेवाले, अन्नसे युक्त होकर धनके सर्वदा स्वामी हों। हमारे वीर पुत्रोंके साथ वीर पुत्रोंको मिला दो। हमारे बहुतसे वीर पुत्र हों। सबके ईश्वर तुम ज्ञानपूर्वक मेरी प्रार्थना को सुनो ॥१५॥

२५० ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ ॥

[२५]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः- जगती ।]

२५१ इन्धानो अग्निं वनवद् वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद् रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥

२५२ वीरेभिर्वीरान् वनवद् वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २ ॥

अर्थ- [२५०] (यन्ता ब्रह्मणस्पते) हे नियामक ब्रह्मणस्पते ! (त्वं अस्य सूक्तस्य बोधि) तुम इस सूक्तको जानो (तनयं च जिन्व) हमारे पुत्रको पुष्ट करो। (देवाः यत् अवन्ति तत् विश्वं भद्रं) देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, उसका उत्तम कल्याण होता है। (सुवीराः विदथे बृहद् वदेम) उत्तम सन्तानवाले हम यज्ञमें बडी महिमाका वर्णन करें ॥१६॥

[२५]

[२५१] (यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बना लेता है। (सः अग्निं इन्धानः वनुष्यतः वनवत्) वह अग्निको प्रज्जवलित करते हुए हिंसकोंको मारता है। और वह (कृतब्रह्मा रातहव्या शूशुवद्) ज्ञानी बनकर हवि देनेवाला होकर बढता है। (जातेन जातं अति प्र सर्सृते) उत्पन्न हुए पुत्रसे होनेवाले पौत्र द्वारा वह बहुत विस्तृत होता है ॥१॥

१ यं यं ब्रह्मणस्पति युजं कृणुते- जिस जिसको ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बना लेता है।

२ सः अग्निं इन्धानः वनुष्यतः वनवत्- वह अग्निको प्रज्जवलित करते हुए हिंसकोंको मारता है।

३ जातेन जातं अति प्रसर्सृते- उत्पन्न हुए पुत्रसे, होनेवाले पौत्र द्वारा वह बहुत विशाल होता है।

[२५२] (यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है, वह (वीरेभिः वनुष्यतः वीरान् वनवत्) अपने वीरोंसे शत्रुके वीरोंको मारता है। (गोभिः रयिं पप्रथद्) गायोंसे धनका विस्तार करता है। (त्मना बोधति) स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है और ब्रह्मणस्पति (तस्य तोकं च तनयं च वर्धते) उसके पुत्र पौत्रोंको बढाता है ॥२॥

भावार्थ- यह बृहस्पति स्तोत्रोंको समझकर अपने भक्तोंके पुत्रोंको हरतरहसे पुष्ट करता है। देव जिसकी रक्षा करते हैं उसका हर तरहसे कल्याण होता है, उसका कोई भी कुछ भी नहीं बिगाड सकता। अतः हम भी यज्ञमें इस देवकी महिमाका गान करें ॥१६॥

जिसको यह ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बना लेता है, वह हमेशा यज्ञ करता हुआ अपने शत्रुओंको नष्ट करता है, वह ज्ञान प्राप्त करता है और हवि देता है। ऐसा व्यक्ति पुत्र और पौत्रोंसे समृद्ध होकर बहुत समृद्ध होता है ॥१॥

ब्रह्मणस्पति जिसे अपना मित्र बना लेता है वह अपने वीरोंसे शत्रुके वीरोंको मारता है। गायोंसे धनका विस्तार करता है। स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है। उसके पुत्र पौत्रादि बढते हैं ॥२ ॥

२५३ सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥
२५४ तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥
२५५ तस्मा इद् विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

अर्थ- [२५३] **(यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते)** जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है, वह **(शिमीवान्)** कर्मशील वीर **(ओजसा)** बलसे **(क्षोदः सिन्धुः न)** क्षुब्ध हुए समुद्रके समान **(वध्रीन् वृषा इव)** निवीर्य बैलोंको बलशाली बैलके समान **(ऋघायतः अभि वष्टि)** हिंसक शत्रुओंको चारों ओर से मार देता है। और **(अग्नेः प्रसितिः इव अह न वर्तवे)** अग्निकी ज्वालाके समान निश्चय ही उसका निवारण कोई नहीं कर सकता ॥३॥

१ **शिमीवान् ओजसा, क्षोदः सिन्धुः न, वध्रीन् वृषा इव, ऋघायतः अभि वष्टि-** कर्मशील वीर अपने बलसे, जैसे तूफानोंसे क्षुब्ध सागर नौकाओंका नाश करता है, अथवा जैसे निर्वीर्य किए गए बैलोंको वीर्यवान् बेल मार देता है, उसी प्रकार हिंसक शत्रुओंको चारोंसे ओरसे मार देता है।
२ **अग्नेः प्रसितिः इव अह न वर्तवे-** अग्निकी ज्वालाके समान वह किसीसे नहीं रोका जा सकता।
३ **अह-** निश्चयसे।
४ **वध्रि-** निर्वीर्य किया गया बैल।

[२५४] **(यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते)** जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बनाता है, **(तस्मै अ-सश्चतः दिव्याः अर्षन्ति)** उसके लिए, बिना रोके हुए दैवी सामर्थ्य प्राप्त होते हैं। **(सः सत्वभिः प्रथमः गोषु गच्छति)** वह सत्यवान् परिजनों सहित सर्वप्रथम गायोंमें जाता है। **(अनिभृष्ट-तविषिः ओजसा हन्ति)** अपराजित रहकर वह अपने बलसे शत्रुओंको मारता है ॥४॥

१ **तस्मै अ-सश्चतः दिव्याः अर्षन्ति-** ब्रह्मणस्पतिके मित्रको बिना रुकावटके दैवी शक्तियां प्राप्त होती हैं।
२ **सः सत्वभिः प्रथमः गोषु गच्छति-** वह बलवान् परिजनों सहित सबसे प्रथम गौवोंमें जाता है, अर्थात् गौ आदियोंको प्राप्त करता है।
३ **अनि-भृष्टतविषिः ओजसा हन्ति-** अपराजित रहकर बलवाला वह बलसे शत्रुको मारता है।

[२५५] **(यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते)** जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है। **(तस्मै इत् विश्वे सिन्धवः धुनयन्त)** उसीके सहायतार्थ सारी नदियां बहती हैं **(अ-च्छिद्रा पुरूणि शर्म दधिरे)** छिद्ररहित अनेक सुखको वह प्राप्त करता है। **(सु-भगः सः देवानां सुम्ने एधते)** उत्तम भाग्यवाला वह देवोंके सुखमें बढता जाता है ॥५॥

१ **तस्मै इत् विश्वे सिन्धवः धुनयन्तः-** ब्रह्मणस्पति जिसे मित्र बनाता है उसीके हितके लिए सारी नदियां बहती हैं।
२ **अ-च्छिद्रा पुरूणि शर्म दधिरे-** छिद्ररहित अनेक सुखोंको वह धारण करता है।
३ **सु-भगः सः देवानां सुम्ने एधते-** उत्तम ऐश्वर्यवाला वह देवोंके सुखमें बढता जाता है।

भावार्थ- ब्रह्मणस्पति जिसे अपना मित्र बना लेता है, वह बहुत शक्तिशाली बन जाता है वह क्षुब्ध हुए समुद्रके समान उत्साहपूर्ण हो जाता है और मस्त बैलके समान बलवान् हो जाता है और वह अपने शत्रुओंका नाश करता है। तब वह अग्निके समान किसीसे नहीं रोका जा सकता ॥३॥

ब्रह्मणस्पति जिसे अपना मित्र बनाता है उसे अनेक दैवीशक्तियां प्राप्त होती हैं, वह परिजनोंके साथ हर तरहकी समृद्धि प्राप्त करता है और बलसे युक्त होकर अपने शत्रुओंको मारता है ॥४॥

जिसे ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बनाता है उसीके लिए सभी नदियां बहती हैं, वह सुखोंको प्राप्त करता है और ऐश्वर्य सम्पन्न होकर वह सुखमें ही बढता है ॥५ ॥

[२६]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- ब्रह्मणस्पतिः। छन्दः- जगती।]

२५६ ऋजुरिच्छंसो वनवद् वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद् वनवत् पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥ १ ॥

२५७ यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥ २ ॥

२५८ स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥

---

[२६]

अर्थ- [२५६] **(ऋजुः शंसः इत् वनुष्यतः)** सीधा सरल स्तोता ही हिंसकोंको मारता है। **(देवयन् इत् अ-देवयन्तं अभि असत्)** देवका पूजक ही देवको न पूजनेवाले को मारता है। **(सु-प्राविः इत् पृत्सु दुः-तरं वनवत्)** उत्तम प्रकारसे रक्षण करनेवाला ब्रह्मणस्पति युद्धमें कठिनतासे पार करने योग्य शत्रुओंको मारता है। **(यज्वा इत् अयज्योः भोजनं वि भजाति)** यज्ञ करनेवाला मनुष्य ही यज्ञ न करनेवालेके भोगसाधनका उपभोग करता है ॥१॥

१ **ऋजुः शंसः इत् वनुष्यतः वनवत्** - सीधा सरल स्तोता ही हिंसकोंको मारता है।
२ **देवयन् इत् अ-देवयन्तं अभि असत्** - देवका पूजक ही देवके न पूजनेवालेको मारता है।
३ **यज्वा इत् अ-यज्योः भोजनं वि भजाति** - यज्ञ करनेवाला ही यज्ञ न करनेवाले के भोगसाधनका उपभोग करता है।

[२५७] हे **(वीर)** वीर मनुष्य! **(यजस्व)** यज्ञकर, **(मनायतः प्र विहि)** अभिमानी शत्रुओंका नाश कर **(वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व)** संग्राममें मनको कल्याण करनेवाले विचारसे युक्त कर **(हविः कृणुष्व)** हविको तैय्यार कर **(यथा सु-भगः अससि)** जिससे उत्तम भाग्यवान् हो, हम भी **(ब्रह्मणस्पतेः अवः आ वृणीमहे)** ब्रह्मणस्पतिके रक्षणको स्वीकार करना चाहते हैं ॥२॥

१ **वृत्रतूर्ये भद्रं मनः कृणुष्व**- संग्राममें मनको हमेशा कल्याण करनेवाले विचारोंसे युक्त करना चाहिए।
२ **ब्रह्मणस्पतेः अव आ वृणीमहे**- ब्रह्मणस्पतिके रक्षणको हम स्वीकार करना चाहते हैं।

[२५८] **(यः श्रद्धामनाः देवानां पितरं ब्रह्मणस्पतिं आ विवासति)** जो श्रद्धायुक्त मनवाला देवोंके पालनेवाले ब्रह्मणस्पतिकी हवि द्वारा सेवा करता है। **(सः इत् जनेन, सः विशा, सः जन्मना, सः पुत्रैः वाजं भरते)** वह ही जनके द्वारा, वह ही प्रजा द्वारा, वह ही पुत्रों द्वारा बलको धारण करता है। और **(नृभिः धना)** और मनुष्योंसे धनोंको प्राप्त करता है ॥३॥

भावार्थ- सीधे और सरल मार्गपर चलनेवाला, देवोंकी पूजा करनेवाला और यज्ञशील ही ब्रह्मणस्पतिका मित्र होता है और वही कुटिल मार्गसे चलनेवाले, देवोंको न माननेवाले और यज्ञोंको न करनेवालोंको नष्ट करता है ॥१॥

हे वीर! यज्ञ कर अभिमानी शत्रुओंको नष्ट कर। संग्राममें कल्याण करनेवाले विचारोंवाला मन बना। हविको कर, जिससे उत्तम ऐश्वर्यवाला तू बने ॥२॥

जो श्रद्धासे युक्त होकर देवोंके रक्षक ब्रह्मणस्पतिकी हवि द्वारा सेवा करता है। वह ही मनुष्यसे, प्रजासे, जन्मसे, बल और मनुष्यों द्वारा धन प्राप्त करता है ॥३॥

२५९ यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत् प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥

[२७]

[ऋषिः- कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । देवता- आदित्याः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२६० इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ १ ॥

२६१ इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥

अर्थ- [२५९] (**यः अस्मैः घृतवद्भिः अविधत्**) जो इस ब्रह्मणस्पति के लिये घृतसे युक्त हवियोंसे यज्ञ करता है। (**ब्रह्मणस्पतिः तं प्राचा प्र नयति**) ब्रह्मणस्पति उसे आगे बढाता है। (**ईं अंहसः उरुष्यती**) इसको पापसे बचाता है, (**रिषः रक्षति**) हिंसकोंसे रक्षण करता है और (**अंहोः चित्**) पापमय दारिद्र्यसे रक्षण करता है और (**अद्भुतः अस्मै उरु चक्रिः**) अद्भुत ब्रह्मणस्पति इसको महान् बनाता है ॥४॥

[२७]

[२६०] मैं (**आदित्येभ्यः इमाः घृतस्नूः गिरः**) आदित्योंके लिए इन स्नेहसे भरी हुई वाणियों-स्तुतियोंको बुलाता हूँ। (**राजभ्यः जुह्वा सनात् जुहोमि**) इन तेजस्वी देवोंके लिए वाणीसे प्राचीनकालसे मैं हवि देता आया हूँ। अतः (**मित्रः अर्यमा भगः**) मित्रके समान हित करनेवाला, शत्रुओंपर शासन करनेवाला, ऐश्वर्यवान (**तुविजातः वरुणः**) अत्यधिक बलके साथ उत्पन्न हुआ हुआ श्रेष्ठ तथा (**दक्षः अंशः**) सामर्थ्यशाली अंश आदि देव (**नः शृणोतु**) हमारी प्रार्थना सुने ॥१॥

१ **आदित्येभ्यः इमाः घृतस्नूः गिरः**- मैं इन आदित्य देवोंके लिये ये स्नेहसे और तेजसे भरी हुई वाणियां बोलता हूँ।

[२६१] (**शुचयः धारपूताः**) शुद्ध तथा घृतकी धारा से पवित्र हुए हुए (**अवृजिनाः अनवद्याः अरिष्टाः**) कुटिलता न करनेवाले, निन्दनीय पाप कर्म न करनेवाले, कभी भी हिंसा न करनेवाले और स्वयं भी कभी हिंसित न होनेवाले तथा (**सक्रतवः**) एक साथ मिलकर कर्म करनेवाले (**आदित्यासः**) आदित्य गण तथा (**मित्रः वरुणः अर्यमा**) मित्र, वरुण और अर्यमा (**मे इमं स्तोमं अद्य जुषन्त**) मेरे इस स्तोत्रको आज सुनें ॥२॥

भावार्थ- जो इस ब्रह्मणस्पति के लिए घी युक्त हवियोंसे यज्ञ करता है। ब्रह्मणस्पति उसे प्रमुखमार्गसे उन्नतिके प्रति ले जाता है। इसकी पाप, हिंसक और दारिद्र्य से रक्षा करता है। इसको महान् बनाता है ॥४॥

सभी देव मित्रके समान हितकारी, शत्रुओंके विनाशक, तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ तथा सामर्थ्यशाली हैं, अतः इनसे हमेशा स्नेहसे भरी हुई वाणी ही बोलनी चाहिए। इनकी स्तुति सदा प्रेमसे की जाए ॥१॥

ये सभी आदित्य अर्थात् देवगण शुद्ध, पवित्र, कुटिलव्यवहार न करनेवाले, निन्दनीय कर्म न करनेवाले तथा बिना कारण किसीकी हिंसा न करनेवाले, मित्रके समान स्नेह करनेवाले, श्रेष्ठ और शत्रुओं पर शासन करनेवाले हैं। इन देवोंका अनुकरण करके मनुष्य भी देवोंके समान बननेका प्रयत्न करें ॥२ ॥

२६२ त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥

२६३ धारयन्त आदित्यासो जगत् स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ४ ॥

२६४ विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन् भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [२६२] (**ते आदित्यासः**) वे आदित्यदेव (**उरवः**) महान् (**गभीराः**) गंभीर (**अदब्धासः**) शत्रुओंसे कभी न दबाये जानेवाले (**दिप्सन्तः**) स्वयं शत्रुओं को दबानेवाले तथा (**भूरि अक्षः**) हजारों आंखोंवाले हैं। इसलिए वे (**अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति**) सबके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता देखते हैं उन (**राजभ्यः**) राजाओंके लिए (**सर्व परमा चित् अन्ति**) सब कुछ दूर होते हुए भी पास है ॥३॥

१ **भूर्यक्षः अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति-** ये आदित्य अनेकों आंखोंसे युक्त होने के कारण मनुष्यके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता सभी कुछ देखते हैं।

२ **राजभ्यः सर्वे परमा चिद् अन्ति-** इन तेजस्वी देवोंके लिए सभी चीजें दूर होती हुई भी पास हैं।

[२६३] (**देवाः आदित्यासः**) ये देव आदित्य (**जगत् स्था धारयन्तः**) जंगम अर्थात् चलनेवाले और स्था अर्थात् स्थिर रहनेवाले प्राणियोंको धारण करते है ये (**विश्वस्य भुवनस्य गोपाः**) ये सभी संसारके रक्षक हैं। (**दीर्घा-धियः**) विशाल बुद्धिवाले ये देवगण (**असुर्य रक्षमाणाः**) प्राण देनेवालेकी रक्षा करते है और (**ऋतावानः**) सत्यके मार्ग पर चलनेवाले हैं तथा (**ऋणानि चयमानाः**) स्तोताओंके ऋणोंको दूर करनेवाले हैं ॥४॥

[२६४] हे (**आदित्याः**) आदित्यो ! (**भये आ**) किसी प्रकारका भय प्राप्त होनेपर (**यत् वः मयोभु**) जो तुम्हारा सुख देनेवाला संरक्षण है, (**अस्य अवसः विद्यां**) उस संरक्षणको मैं प्राप्त करूं। हे (**अर्यमन् मित्रा वरुणा**) अर्यमा और मित्र तथा वरुण ! (**युष्माकं प्रणीतौ**) तुम्हारे द्वारा बताये मार्गपर चलता हुआ मैं (**दुरितानि**) पापोंको (**परि वृज्यां**) उसी प्रकार छोड दूं (**श्वभ्रा इव**) जिस प्रकार मनुष्य गड्ढोंसे भरी हुई ऊबड खाबड जमीनको छोड देते हैं ॥५॥

१ **भये आ मयोभु अवसः विद्याम्-** भयके प्राप्त होनेपर इन आदित्योंके सखकारक संरक्षणको मैं प्राप्त करूँ।

२ **प्रणीतौ दुरितानि परि वृज्यां-** उत्तम मार्ग पर चलते हुए मैं पापोंको छोड दूं।

भावार्थ- ये आदित्यगण बहुत महान् और गंभीर हैं, इनकी गहराईका कोई पता नहीं लगा सकता। ये अनेकों आंखोंवाले हैं, इसलिए ये मनुष्योंके अन्दरकी बातें भी जानते हैं, मनुष्य अपने हृदयमें भले बुरे विचार करे, तो वह भी इन आदित्योंसे छिपा नहीं रहता। ये आदित्य सर्वत्र व्याप्त है अतः इनके लिए कुछ न दूर है न पास है ॥३॥

ये आदित्य जंगम और स्थावर दोनों तरह के प्राणियोंको धारण करनेवाले हैं, सारे संसारकी रक्षा करते हैं। इनकी बुद्धि बहुत विशाल है और ये हमेशा महान कर्म ही करते हैं। जो दूसरे जीवोंपर दया करता है उनके प्राणोंकी रक्षा करता है उसके प्राणोंकी रक्षा ये आदित्य करते हैं। ये सदा सत्यके मार्ग पर ही चलते हैं। इसी तरह सब मनुष्य सत्यके मार्गपर चलें ॥४॥

किसी भी प्रकारका भय आ पडे तो मैं इन आदित्योंके सुख देनेवाले संरक्षणको प्राप्त करूं और मित्र, वरुण और अर्यमा आदि देवों के द्वारा बताये गए उत्तम मार्ग पर चलते हुए मैं पापोंको उसी प्रकार छोड दूं, जिस प्रकार मनुष्य गड्ढोंसे भरी हुई उबड खाबड जमीनको छोड देते हैं, और उसपर रहना पसन्द नहीं करते ॥५॥

२६५ सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥
२६६ पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राऽति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥ ७ ॥
२६७ तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥ ८ ॥

अर्थ- [२६५] हे (**अर्यमन् मित्र वरुण**) अर्यमा, मित्र और वरुण ! (**वः पन्थाः अनृक्षरः सुगः साधुः अस्ति**) तुम्हारा रास्ता कांटों अर्थात् विघ्नोंसे रहित, सुगमतासे जाने योग्य और सरल है, (**तेन**) उस मार्गसे हमें ले चलो। हे (**आदित्याः**) आदित्यो ! (**नः अधि वोचत**) हमें उत्तम उपदेश दो तथा (**नः दुष्परिहन्तु शर्म यच्छत**) हमें नष्ट न होनेवाला सुख दो ॥६॥

१ **वः पन्थाः अनृक्षरः सुगः साधुः अस्ति-** देवोंका मार्ग कांटोंसे रहित, आसानीसे जाने योग्य और उत्तम है।

२ **आदित्याः नः अधिवोचत-** हे आदित्यो ! हमें उत्तम उपदेश दो।

[२६६] (**राजपुत्राः अदितिः**) तेजस्वी पुत्रोंवाली अदिति तथा (**अर्यमा**) अर्यमा (**नः**) हमें (**सुगेभिः**) आसानीसे जाने योग्य मार्गोंसे (**द्वेषांसि अति**) राक्षसोंके पार पहुंचाये, तथा (**पिपर्तु**) हमें हर तरहसे पूर्ण करे। हम (**पुरुवीराः अरिष्टाः**) बहुतसे वीर पुत्रोंसे युक्त होकर तथा हिंसित न होकर (**मित्रस्य वरुणस्य**) मित्र और वरुणके (**बृहत् शर्म उप स्याम**) महान् सुखको प्राप्त करूं ॥७॥

[२६७] ये आदित्य (**तिस्रः भूमीः धारयन्**) तीन भूमियों अर्थात् लोकोंको धारण करते हैं (**उत**) और (**त्रीन् द्यून्**) तीन तेजस्वी लोकोंको धारण करते है, (**एषां विदथे अन्तः व्रता**) इन लोकोंके कामोंके बीचमें नियमोंका संचालन करते हैं। (**आदित्याः**) हे आदित्यो ! (**वः महित्वं ऋतेन महि**) तुम्हारी महिमा सत्य और सरलताके कारण ही बढी है। (**अर्यमन्, मित्र, वरुण तत् चारु**) हे अर्यमा, मित्र और वरुण देवो ! तुम्हारा वह महत्व बहुत सुन्दर है ॥८॥

१ **एषां विदथे अन्तः व्रता-** ये आदित्य इन लोकोंके कामोंमें नियमोंका संचालन करते हैं।

२ **वः महित्वं ऋतेन महि-** इन आदित्योंकी महिमा सत्य और सरलताके कारण ही बडी है।

भावार्थ- देवोंके द्वारा बताया हुआ मार्ग कांटोंसे रहित अर्थात् किसी भी तरहके विघ्नोंसे रहित, आसानीसे जाने योग्य होनेके कारण उत्तम है। अतः देवोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर ही मनुष्योंको सदा चलना चाहिए। आदित्यगणोंसे मनुष्य उत्तम उत्तम उपदेश प्राप्त करें और उन उपदेशोंपर आचरण करके मनुष्य शाश्वत सुख प्राप्त करें।

तेजस्वी पुत्रोंवाली अदिति तथा शत्रुओंका नाशक देव हमारी हर तरहसे रक्षा करे। हमें ऐसे मार्गसे ले जाए, ताकि राक्षस हमें कष्ट या दुःख न दे सकें। हम भी अनेकों वीर पुत्रोंसे युक्त हों तथा किसीसे भी हिंसित न होकर महान् सुख प्राप्त करें ॥७॥

ये आदित्य, अर्यमा, मित्र और वरुण आदि देव इन तीनों तेजस्वी लोकोंको धारण करते हैं। इन लोकोंमें जो नियम चल रहे हैं। इन आदित्यों के निरीक्षणमें ही सारे लोक अपने अपने नियमोंमें चल रहे हैं। सरल और सत्य व्यवहार करने के कारण इन देवोंकी महिमा बहुत बडी है। सरल एवं सत्य मार्ग पर चलनेसे यशकी प्राप्ति होती है ॥८॥

२६८ त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥

२६९ त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥ १० ॥

२७० न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद् वसवो धीर्या चिद् युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ ११ ॥

अर्थ- [२६८] (**हिरण्ययाः शुचयः धारपूताः**) सोनेके समान तेजस्वी, शुद्ध और पवित्र तथा निर्मल (**अस्वप्नजः अनिमिषाः**) कभी न सोनेवाले, कभी पलक न मारनेवाले (**अदब्धाः उरुशंसाः**) हिंसाके अयोग्य और बहुत यशवाले आदित्य (**ऋजवे मर्त्याय**) सरल अर्थात् छलकपटसे रहित मार्गपर चलनेवाले मनुष्यके लिए (**दिव्या त्री रोचना धारयन्त**) अत्यन्त प्रकाशमान् तीन तेजस्वी पदार्थोंको धारण करते हैं ॥९॥

[२६९] हे (**असु-र वरुण**) प्राणोंके रक्षक वरुण ! (**ये च देवाः ये च मर्ताः**) जो देव और जो मरणशील मनुष्य हैं (**विश्वेषां**) उन सबका (**त्वं राजा असि**) तू राजा है, (**विचक्षे नः शतं रास्व**) विशेष रूप से देखनेके लिए हमें सौ वर्ष प्रदान कर, (**सुधितानि पूर्वा आयूंषि अश्याम**) अमृतके समान उत्तम आयुको हम प्राप्त करें ॥१०॥

१ **ये च देवाः ये च मर्ताः विश्वेषां राजा-** जो देव और जो मनुष्य है, उन सभीका यह वरुण देव राजा है।

२ **विचक्षे सुधितानि आयूंषि अश्याम-** संसारको अच्छी तरह देखनेके लिए अमृतके समान आयुको प्राप्त करें।

[२७०] हे (**आदित्याः**) आदित्यो। (**दक्षिणा न वि चिकिते**) मेरे दक्षिण दिशामें क्या है, मैं नहीं जानता, (**न सव्या**) बायीं तरफ भी नहीं जानता, (**न प्राचीनं**) आगे भी नहीं जानता, (**उत न पश्चा**) और पीछे भी क्या है, नहीं जानता। फिर भी, हे (**वसवः**) सबको निवास करानेवाले आदित्यो ! मैं (**पाक्या धीर्या चित्**) अपरिपक्व बुद्धिवाला तथा शक्तिहीन होते हुए भी (**युष्मानीतः**) तुम्हारे द्वारा ले जाया जाकर (**अभयं ज्योतिः अश्यां**) भयसे रहित ज्योतिको प्राप्त करूं ॥११॥

१ **पाक्या धीर्या चित् युष्मानीतः अभयं ज्योतिः अश्याम-** अपरिपक्व बुद्धिवाला तथा शक्तिहीन होनेपर भी मैं आपके द्वारा बताये मार्ग पर चलकर भयरहित ज्योति प्राप्त करूं।

भावार्थ- ये आदित्य सोनेके समान तेजस्वी, शुद्ध और पानीकी धारके समान निर्मल, कभी न सोनेवाले अर्थात् हमेशा सावधान रहनेवाले और कभी पलक न मारनेवाले हैं। ये छल कपटसे रहित होकर सरलताका व्यवहार करनेवाले मनुष्यके लिए प्रकाशका मार्ग दिखाते हैं ॥९॥

यह वरुण राजा असु-र अर्थात् प्राणोंकी रक्षा करनेवाला या प्राणोंको देनेवाला है, इसीलिए वह देवों और मनुष्योंका अर्थात् सम्पूर्ण संसारका स्वामी है। वह मनुष्योंको विशेष दर्शनके लिए अर्थात् संसारमें रहकर अभ्युदय करनेके लिए सौ वर्षकी पूर्ण और अमृतमय दीर्घायु प्रदान करे। आयु अमृतमय हो। सभी इन्द्रियें स्वस्थ एवं प्रसन्न रहकर अमृत रस को दुहती रहें ॥१०॥

मनुष्य बहु अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान् होता है, अतः वह अपने दायें, बांयें, आगे और पीछे स्थित संसारकी सभी चीजोंको नहीं जान सकता, अथवा सदोष और निर्दोष मार्गको नहीं जानता। अतः उसे चाहिए कि वह देवों या विद्वानोंके द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर उस अमर ज्योतिको प्राप्त करे ॥११॥

२७१ यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥
२७२ शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद् य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥
२७३ अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद् वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥ १४ ॥

अर्थ- [२७१] (**यः राजभ्यः ऋतनिभ्यः ददाश**) जो तेजस्वी और यज्ञके करनेवालोंको धन देता है, (**नित्या पुष्टयः च यं वर्धयन्ति**) सदा प्राप्त होनेवाले पुष्टिकारक पदार्थ जिसे बढाते हैं, (**सः रेवान् वसुदावा**) वह धनवान् और धनोंको देनेवाला तथा (**प्रशस्तः**) प्रशंसाके योग्य मनुष्य (**विदथेषु**) सभी कर्मोंमें (**रथेन प्रथमः याति**) रथसे सबसे आगे चलता है ॥१२॥

१ **यः राजभ्यः ऋतनिभ्यः ददाश, पुष्टयः वर्धयन्ति** - जो तेजस्वी यज्ञ करनेवालोंको धन देता है, उसे सभी पुष्टिकारक पदार्थ बढाते हैं।

२ **स वसुदावा विदथेषु प्रथमः याति**- वह धनोंको देनेवाला सभी तरहके कर्मोंमें सबसे आगे रहता है।

[२७२] (**आदित्यानां प्रणीतौ भवति**) जो आदित्योंके बताये मार्ग पर चलता है, वह (**शुचिः**) पवित्र (**अदब्धः**) किसीसे नष्ट न होकर (**वृद्धवयाः**) दीर्घायु और (**सुवीरः**) उत्तम पुत्रोंवाला होकर (**सुयवसाः अपः उप क्षेति**) उत्तम अन्न और उत्तम कर्मोंको प्राप्त करता है और (**तं अन्तितः न किः घ्नन्ति**) उसे पाससे कोई नहीं मार सकता और (**न दूरात**) दूरसे भी कोई नहीं मार सकता ॥१३॥

१ **यः आदित्यानां प्रणीतौ भवति, शुचिः अदब्धः वृद्धवयाः अपः क्षेति** -जो आदित्योंके बताये गए मार्गमें चलता है, वह शुद्ध अहिंसनीय और दीर्घायुयुक्त होकर उत्तम कर्म करता है।

२ **तं दूरात् अन्तितः नकिः घ्नन्ति**- उसे दूरसे या पाससे कोई भी नहीं मार सकता।

[२७३] हे (**अदिते, मित्र उत वरुण**) अदिति, मित्र और वरुण ! (**यत् वयं वः कच्चित् आगः चकृम**) यद्यपि हम तुम्हारे प्रति कोई अपराध भी कर दें, तो भी हमें (**मृळ**) सुखी करो। हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् देव ! मैं (**उरु अभयं ज्योतिः अश्यां**) विस्तीर्ण और भयसे रहित ज्योति प्राप्त करूं। तथा (**दीर्घाः तमिस्राः नः मा अभिनशन्**) दीर्घ अन्धकार हमें व्याप्त न करें ॥१४॥

१ **यत् वयं वः कच्चित् आगः चकृम मृळ**- यद्यपि हम तुम्हारे प्रति कोई अपराध कर भी दें, तो भी हे देवो ! तुम हमें सुखी करो।

२ **उरु अभयं ज्योतिः अश्याम**- मैं विस्तीर्ण और भयसे रहित ज्योतिको प्राप्त करूं।

३ **दीर्घाः तमिस्राः नः मा अभिनशन्**- दीर्घ अन्धकार हमें कभी व्याप्त न करें।

भावार्थ- जो मनुष्य तेजस्वी और ऋत अर्थात् यज्ञको (नयति) आगे ले जानेवालोंको धन देता है, वह हर तरहके पदार्थों से पुष्ट होता है। ऐसा धनोंका दाता मनुष्य यशस्वी होकर सभी तरह के कर्मों में सबसे आगे रहता है ॥१२॥

जो आदित्योंके द्वारा ले जाया जाता है अर्थात् उनके बताये हुए मार्ग पर चलता है, वह हर तरह से पवित्र और दीर्घायु वाला होकर हर तरह के उत्तम अन्नको प्राप्त करता है और उत्तम कर्मोंको करता है। ऐसे व्यक्तिको पाससे या दूरसे कोई भी नहीं मार सकता, आदित्योंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चलनेवाला अहिंसनीय या अवध्य हो जाता है ॥१३॥

हे देवो ! यद्यपि हम तुम्हारे प्रति अपराध कर भी दें, तो भी हमें सुखी करो, उन अपराधोंके लिए हमें दण्ड न दो। उन देवोंकी कृपासे हम ज्योतिको प्राप्त करके भयरहित हों तथा कभी भी हमें अंधकार व्याप्त न करें। हम सदा प्रकाशके मार्गमें ही चलते रहें, कभी भी अन्धकारके मार्गमें कदम न रखें ॥१४॥

२७४ उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन् याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥ १५ ॥

२७५ या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन् त्स्याम ॥ १६ ॥

२७६ माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १७ ॥

अर्थ- [२७४] **(अस्मै उभे समीची पीपयतः)** इस उत्तम मनुष्यको दोनों द्यावापृथ्वी पुष्ट करती हैं। **(सुभगः नाम)** उत्तम ऐश्वर्यवाला यह **(दिवः वृष्टिं पुष्यन्)** द्युलोककी वृष्टिसे पुष्टि प्राप्त करता है, **(पृत्सु आजयन् उभा क्षयौ याति)** ऐसा वीर मनुष्य युद्धमें शत्रुओंको जीतकर दोनों लोकोंको जाता है। **(अस्मै उभौ अर्धौ साधू भवतः)** इसके लिए दोनों आधे अर्थात् चराचरात्मक जगत् उपकारक होते हैं ॥१५॥

१ **पृत्सु आजयन् उभा क्षयौ याति-** वीर पुरुष युद्धोंमें शत्रुओंको जीतकर इहलोक और परलोक दोनोंको प्राप्त करता है।

२ **अस्मै उभौ साधू भवतः-** इस पुरुषके लिए दोनों चराचरात्मक जगत् उपकारक होते हैं।

[२७५] हे **(यजत्राः आदित्या)** पूज्य आदित्यो ! **(वः)** तुम्हारी **(याः मायाः पाशाः अभिद्रहे रिपवे विचृत्ताः)** जो माया और बन्धन द्रोह करनेवाले शत्रुओंपर फैले हुए हैं **(तान् रथेन अति येषं)** उन पाशोंको मैं रथपर बैठकर उसी तरह पारकर जाऊं, **(अश्वी इव)** जिस प्रकार घुडसवार कठिन मार्गोंको पार कर जाते हैं। तथा **(अरिष्टाः)** शत्रुओंसे अहिंसित होकर **(उरौ शर्मन् स्याम)** हम विस्तृत घरमें रहें ॥१६॥

१ **मायाः पाशाः अभिद्रहे रिपवे विचृत्ताः-** इस आदित्यकी माया एवं बन्धन द्रोह करनेवाले शत्रुओंपर ही फैले रहते हैं।

[२७६] हे **(वरुण)** वरुण ! **(अहं)** मैं **(मघोनः प्रियस्य)** ऐश्वर्यवान्, प्रिय **(भीरिदाव्नः आपेः)** बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी **(शूनं मा आ विदं)** वृद्धिकी निन्दा न करूं। हे **(राजन्)** तेजस्वी देव ! **(सुयमात् रायः मा अवस्थाम्)** उत्तम उपभोगके योग्य धन पाकर मैं अभिमानी न हो जाऊं, अपितु **(सुवीराः)** उत्तम सन्तानोंसे युक्त होकर हम **(विदथे)** यज्ञमें **(बृहद् वदेम)** देवोंकी अच्छी स्तुति करें ॥१७॥

१ **अहं भूरिदाव्नः शूनं मा आ विदं-** मैं बहुत दान देनेवाले तथा कर्म करनेवाले मनुष्यकी वृद्धिकी निन्दा न करूं।

२ **सुयमात् रायः अवस्थाम्-** उत्तम धन पाकर मैं दूसरोंके ऊपर न रहूँ अर्थात् दूसरोंको नीचा न समझूं।

भावार्थ- जो देवोंके बताये मार्ग पर चलता है, उसे द्यावापृथिवी दोनों पुष्ट करते हैं, द्युलोक से गिरनेवाली वृष्टि भी उसे पुष्ट करती है। ऐसा वीर मनुष्य युद्धमें यदि जीतता है, तो इहलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करता है और यदि मारा जाता है, तो स्वर्गको प्राप्त करता है। ऐसे वीरकी सहायता दोनों चराचरात्मक जगत् अर्थात् सारा संसार करता है ॥१५॥

जो द्रोह करनेवाले शत्रु हैं, उन्हें ये आदित्य छल या कपटसे बन्धनमें डाल देते हैं, वे बांध दिए जाते हैं, पर जो सज्जन हैं, वे इन बन्धनोंको उसी प्रकार पारकर जाते हैं, जिस प्रकार एक घुडसवार कठिन मार्गोंको पारकर जाते हैं और वे विशाल घरोंमें सुखसे रहते हैं, अर्थात् वे बन्धनसे रहित होकर सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं ॥१६॥

जो बहुत दान देनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऐश्वर्यशालीके ऐश्वर्यवृद्धिकी निन्दा न करूं अर्थात् उसकी वृद्धि देखकर ईर्ष्या न करूं। तथा मैं भी धन पाकर दूसरोंको नीचा न समझुं और अभिमान न करूं, अपितु उत्तम वीर सन्तानों एवं धनोंसे युक्त होकर देवोंकी हम स्तुति करें ॥१७ ॥

[२८]

[ऋषिः- कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा। देवता- वरुणः (१० दुःस्वप्ननाशिनी)। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

२७७ इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥ १ ॥
२७८ तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥
२७९ तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥ ३ ॥

अर्थ- [२७७] (कवेः स्वराजः आदित्यस्य) दूरदर्शी अपनी शक्तिसे प्रकाशमान आदित्यके लिए (इदं) यह स्तोत्र है। यह आदित्य (मह्ना) अपनी शक्तिसे (विश्वानि सांति अभि अस्तु) सभी विनाशोंको दूर करे। (यः देवः) जो देव (यजथाय अति मन्द्रः) यज्ञ करनेवालोंको अत्यन्त सुख प्रदान करता है, उस (भूरेः वरुणस्य) भरणपोषण करनेवाले वरुणकी (सुकीर्तिं भिक्षे) उत्तम कीर्तिको मैं मांगता हूँ॥१॥

१ मह्ना विश्वानि सान्ति अभि अस्तु- यह आदित्य अपनी शक्तिसे सभी विनाशकारक पदार्थोंको दूर करे।

२ वरुणस्य सुकीर्तिं भिक्षे- मैं वरुण देवके उत्तम यशको मांगता हूँ।

[२७८] हे (वरुण) वरुण! (सु-आध्यः) उत्तम स्वाध्याय करनेवाले (तुष्टुवांसः) स्तुति करनेवाले हम (तव व्रते सुभगासः स्याम) तेरे नियममें चलते हुए उत्तम भाग्यवाले हों, तथा (गोमतीनां उषसां उपायने) किरणोंसे युक्त उषाओंके आनेके समय (अनु द्यून् जरमाणाः) प्रतिदिन स्तुति करते हुए हम (अग्नयः न) अग्नियोंके समान तेजस्वी हों॥२॥

१ सु-आध्यः तव व्रते सुभगासः स्याम- उत्तम स्वाध्याय करनेवाले हम तेरे नियममें रहकर उत्तम भाग्यवाले हों।

२ गोमतीनां उषसां उपायने जरमाणाः अग्नयः न- किरणोंसे युक्त उषाओंके आने पर स्तुति करते हुए हम अग्निके समान तेजस्वी हों।

[२७९] हे (प्रणेतः वरुण) उत्तम नेता वरुण! (उरुशंसस्य पुरुवीरस्य तव) अनेकों के द्वारा प्रशंसनीय तथा अनेकों वीरोंसे युक्त तेरे (शर्मन् स्याम) शरणमें या सुखकारक आश्रयमें हम रहें। (अदितेः अदब्धाः पुत्राः देवाः) अदितिके अवध्य पुत्र देवो! (यूयं) तुम सब (युज्याय नः अभि क्षमध्वं) तुम्हारी मित्रताको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हमारे अपराधों और पापोंको क्षमा करो॥३॥

भावार्थ- यह आदित्य दूरदर्शी और स्वराट् है, यह अपनी शक्तिसे तेजस्वी है, अपनी तेजस्विताके लिए यह किसी दूसरेकी शक्ति नहीं लेता। यह स्वयं शक्तिमान् आदित्य विनाशकारक पदार्थों को हमसे दूर करे, हमारे पास विनाशको न आने दे। वरुण देव यज्ञ करनेवालेको बहुत सुख प्रदान करता है, अतः उससे मैं उत्तम यश मांगता हूँ। यज्ञ करनेसे उत्तम सुख और यशकी प्राप्ति होती है॥१॥

उत्तम ग्रंथोंका स्वाध्याय करनेवाले तथा उस वरणीय प्रभुके नियमोंमें चलनेवाले मनुष्य उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं। तथा उषःकालमें जो प्रभुकी स्तुति करते हैं, वे अग्नि के समान तेजस्वी होते हैं॥२॥

यह वरुण एक उत्तम नेता होने के कारण सभीके द्वारा प्रशंसनीय है, इस वरुणमें अनेकों वीरोंकी शक्तियां भरी पडी हैं, अ-दिति अर्थात् न मारे जाने योग्य माता के पुत्र होने के कारण ये देव भी अवध्य हैं। जो इनके सुखकारक आश्रयमें रहता है, वह सभी तरहके पापोंसे युक्त हो जाता है॥३॥

२८० प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥ ४ ॥

२८१ वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥ ५ ॥

२८२ अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत् सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद् वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥

अर्थ- [२८०] (**विधर्ता आदित्यः**) सभीका धारण पोषण करनेवाले अदितिके पुत्र वरुणने (**ऋतं प्र सीं असृजत्**) पानीको चारों ओरसे प्रवाहित किया। इसी (**वरुणस्य**) वरुणकी शक्तिसे (**सिन्धवः यन्ति**) नदियां बहती हैं। (**एते न श्राम्यन्ति**) ये नदियां कभी थकती नहीं, (**न वि मुचन्ति**) न ये कभी अपना प्रवाह बन्द करती हैं, अपितु (**वयः न**) पक्षीके समान (**रघुया**) तेजीसे (**परिज्मन् पप्तुः**) पृथ्वीपर घूमती रहती हैं ॥४॥

[२८१] हे (**वरुण**) वरुण तू (**मत्**) मुझसे (**आगः**) पापको (**रशनां इव श्रथाय**) रस्सीके समान ढीला कर, (**ऋतस्य ते खां ऋध्याम**) ऋत मार्गमें चलनेवाले तेरी इन्द्रियोंकी शक्तिको प्राप्त करें। (**धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदि**) कामोंके ताने बाने बुनते हुए मेरे तन्तुओंको बीचमेंसे ही मत तोड, (**ऋतोः अपसः पुरा**) ऋतमार्गमें चलनेवाले मेरे कामोंसे पूर्व ही (**मात्रा मा शारि**) मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर ॥५॥

१ **मत् आगः रशनां इव श्रथय-** हे वरुण। मेरे पापोंको रस्सीके समान मुझसे शिथिल कर।

२ **ऋतस्य ते खां ऋध्याम-** ऋतके मार्गपर चलनेवाले तुझसे इन्द्रियोंकी शक्तियोंको हम प्राप्त करें।

३ **धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदि-** कामका ताना बाना बुनते हुए मेरे धागोंको बीचमें ही न तोड।

४ **अपसः पुरा मात्रा मा शारि-** काम पूर्ण होनेसे पहले मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर।

[२८२] हे (**वरुण**) वरुण! (**मत् भियसं सु अपः क्षम्य**) मुझसे डरको अच्छी तरह दूर कर। (**सम्राट् ऋतावः**) अच्छी तरह तेजस्वी और ऋतके रक्षक वरुण! (**मा अनु गृभाय**) मुझे स्वीकार कर। (**वत्सात् हि दाम इव**) जिस प्रकार बछडेसे रस्सीको दूर करते हैं, उसी तरह (**अंहः मुमुग्धि**) मुझसे पापोंको दूर कर। (**त्वदारे**) तेरे अलावा और कोई (**निमिषः चन नहि ईशे**) आंखोंकी पलक पर भी प्रभुत्व नहीं कर सकता ॥६॥

भावार्थ- यह धारण पोषण करनेवाला वरुण चारों ओरसे जलके प्रवाहोंको प्रेरित करता है। यह वरुणका ही प्रभाव है कि ये नदियां बह रही हैं। ये नदियां न कभी थकती हैं और न कभी अपना प्रवाह ही बन्द करती हैं, अपितु पक्षीके समान वेगसे इस पृथ्वी पर चारों ओर घुमा करती हैं ॥४॥

हे वरणीय प्रभो। जिस प्रकार बन्धनोंको ढीला करते हैं, उसी प्रकार मुझसे पापोंको दूर कर। यह वरुण हमेशा ऋतके मार्गपर चलता है, अतः उसकी शक्तियां कभी नष्ट नहीं होतीं, इसी प्रकार हम उत्तम मार्ग पर चलकर अपनी इन्द्रियोंको शक्तिसे युक्त करते रहें। हम जो कामोंका वस्त्र बुन रहे हैं, वह बीचमेंसे ही न टूट जाए अर्थात् कामके बीचमें ही हमारा जीवन नष्ट न हो जाए। तथा कामोंको पूरा करनेके पूर्व ही हमारी इन्द्रियोंकी शक्तियां समाप्त न हो जाएं ॥५॥

हे वरुण देव! हमसे डरको दूर कर, हम निडर और निर्भीक हों। तू हमें अपना बना ले और जिस प्रकार रस्सी खोलकर बछडेको स्वतंत्र करते हैं, उसी प्रकार हमें पापोंसे मुक्त कर। तू ही सबका स्वामी है। तेरे ही आदेशपर संसार चल रहा है, इसलिए तुझे छोडकर और कोई भी आंखकी पलकके समान छोटे से पदार्थ पर भी शासन नहीं कर सकता ॥६॥

२८३ मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ ७ ॥
२८४ नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८ ॥
२८५ परं ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥ ९ ॥

अर्थ- [२८३] हे (असु-र वरुण) प्राण रक्षक वरुण ! (ये ते इष्टौ) जो शस्त्र तेरे यज्ञके कार्यमें (एनः कृण्वन्तं भ्रीणन्ति) पाप या अपराध करनेवालेको मारते हैं, उन (वधैः) शस्त्रोंसे (न मा) हमें मत मार। हम (ज्योतिषः प्रवसथानि मा गन्म) प्रकाशसे दूर न जायें, (नः जीवसे मृघः वि सु शिश्रथः) हमारे जीनेके लिए हिंसकोंको अच्छी तरह नष्ट कर ॥७॥

१ वरुण ! ये ते इष्टो एनः कृण्वन्तं भ्रीणन्ति वधैः न मा- हे वरुण ! जो तेरे यज्ञमें पाप करनेवालेको मारते है, उन शस्त्रोंसे हमें न मार।

२ ज्योतिषः प्रवसथानि मा गन्म- हम प्रकाशसे दूर न जाएं।

[२८४] हे (दुळभ तुविजात वरुण) अवध्य और अनेक शक्तियोंके साथ उत्पन्न वरुण ! (हि) क्योंकि (पर्वते न) जिस प्रकार पर्वतमें सभी तरह की औषधियां रहती हैं, उसी प्रकार (त्वे) तुझमें (अच्युतानि व्रतानि श्रितानि) न टूटनेवाले नियम आश्रित हैं, इसलिए हमने (पुरा ते नमः) पहले भी तुझे नमस्कार किया (उत नूनं) और आज भी करते हैं (उत अपरं) और आगे भी करेंगे ॥८॥

[२८५] हे (वरुण) वरुण ! (अध) और (मत्कृतानि ऋणा परा सावीः) मेरे द्वारा किये गए ऋणोंको दूर कर, हे (राजन्) तेजस्वी वरुण ! (अहं) मैं (अन्यकृतेन मा भोजं) दूसरेके द्वारा कमाये गए धनसे उपभोग न करूं। (भूयसीः उषासः) जो बहुतसी उषायें (अव्युष्टाः इत् नु) अभीतक प्रकाशित नहीं हुई हैं, (तासु) उन उषाओंमें (नः जीवान् आ शाधि) हमारे जीवनोंको उत्तम बना ॥९॥

१ मत्कृतानि ऋणा परा सावीः- मेरे द्वारा किए गए ऋणोंको दूर कर।

२ अहं अन्यकृतेन मा भोजम्- मैं दूसरेके द्वारा कमाये गए धनसे उपभोग न करूं।

भावार्थ- हे प्राणोंकी रक्षा करनेवाले वरणीय प्रभो ! तुम्हारे यज्ञके काममें जो विघ्न डालता है, उसे जिन शस्त्रोंसे मारते हो, उन शस्त्रोंसे हमें न मारो। हम यज्ञके काममें कभी विघ्न न डालें। हम प्रकाशसे कभी दूर न जायें, और हम दीर्घकाल तक जी सकें, इसलिए हमारे शत्रुओंको मार। राष्ट्रमें प्रजाओंके संगठनके कार्यमें जो विघ्न डालें, उन्हें विनष्ट करना चाहिए ॥७॥

जिस प्रकार इस वरुणमें सभी तरह के व्रत या नियम हैं और ये नियम उसके कभी टूटते नहीं। वरुण भी इन नियमोंमें बंधा हुआ है, अतः वह भी इन नियमोंको तोड नहीं सकता, इसीलिए सदा लोग इसे नमस्कार करते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य नियमोंमें चलेगा, उसकी भी सदा पूजा होगी ॥८॥

मनुष्य कभी भी ऋणी न हो, यदि हो भी जाए तो उसे यथाशीघ्र दूर करके अनृणी हो जाए। मनुष्य स्वयं प्रयत्नशील हो और स्वयं कमाए गए धनसे पदार्थोंका उपभोग करे, दूसरेके धनपर आश्रित होकर न रहे और न दूसरोंके धनपर पदार्थोंका उपभोग हो करे। जो ऋणी रहता है और दूसरों पर आश्रित होकर जीवन व्यतीत करता है उसके लिए उषायें कभी नहीं प्रकाशित होतीं, वह मनुष्य चिन्ताके कारण हमेशा जागता रहता है, अतः उसके लिए रात दिन आदि कुछ भी नहीं होते। अतः उसे चाहिए कि वह स्वावलम्बी बनकर आगे आनेवाली उषाओंमें उत्तम जीवन व्यतीत करे ॥९॥

२८६ यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद् वरुण पाह्यस्मान् ॥ १० ॥

२८७ माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ११ ॥

[२९]

[ऋषिः- कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । देवता- विश्वेदेवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८८ धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत् कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥ १ ॥

अर्थ- [२८६] हे (**राजन् वरुण**) तेजस्वी वरुण ! (**मे यः युज्यः वा सखा वा**) मेरा जो साथी या मित्र (**भीरवे मह्यं**) डरनेवाले मुझे (**स्वप्ने भयं आह**) सोते हुए भय दिखाता है, (**यः स्तेनः वा वृकः वा नः दिप्सति**) अथवा जो चोर या भेडियेके समान दुष्ट मनुष्य हमें मारना चाहता है, (**त्वं तस्मात् अस्मान् पाहि**) तू उनसे हमें बचा ॥१०॥

[२८७] हे (**वरुण**) वरुण ! (**अहं**) मैं (**मघोनः प्रियस्य**) ऐश्वर्यवान्, प्रिय (**भूरिदाव्नः आपेः**) बहुत दान देनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी (**शूनं मा आ विदं**) बुद्धिकी निन्दा न करूं। हे (**राजन्**) तेजस्वी देव ! (**सुयमात् रायः मा अव स्थाम्**) उत्तम उपभोगके योग्य धन पाकर मैं अभिमानी न हो जाऊं, अपितु (**सुवीराः**) उत्तम सन्तानोंसे युक्त होकर हम (**विदथे**) यज्ञमें (**बृहद् वदेम**) देवोंकी अच्छी स्तुति करें ॥११॥

१ **अहं भूरिदाव्नः आपेः शूनं मा आ विदं**- मैं बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी वृद्धिकी निन्दा न करूं।

२ **सुयमात् रायः अव स्थाम्**- उत्तम धन पाकर मैं दूसरों के ऊपर न रहूँ अर्थात् दूसरोंको नीचा न समझूं।

[२९]

[२८८] (**धृतव्रताः इषिराः आदित्याः**) हे व्रतोंको धारण करनेवाले तथा सर्वत्र गमन करनेवाले आदित्यो ! (**रहसूः इव**) जिस प्रकार कोई व्यभिचारि स्त्री अपने बच्चेको दूर छोड जाती है, उसी प्रकार (**आगः मत् ओर कर्त**) पापको मुझसे दूर करो। (**वरुण मित्र देवाः**) हे वरुण और मित्र देवो ! (**वः भद्रस्य विद्वान्**) तुम्हारे कल्याणको जानता हुआ मैं (**शृण्वतः वः अवसे हुवे**) प्रार्थनाओंको सुननेवाले तुम्हें अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ॥१॥

भावार्थ- हे वरुण जो मेरा सम्बन्धी या मित्र डरनेवाले मुझको सोते समय डराता है अथवा कोई चोर या दुष्ट मनुष्य सोचे हुए हमको मारना चाहता है, उनसे हमारी रक्षा कर, हमें बचा अर्थात् सोते समय भी हम सुरक्षित रहें ॥१०॥

बहुत दान देनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऐश्वर्यशालीके ऐश्वर्यवृद्धिकी निन्दा न करूं अर्थात् उसकी वृद्धि देखकर ईर्ष्या न करूं। तथा मैं भी धन पाकर दूसरोंको नीचा न समझूं और अभिमान न करूं, अपितु उत्तम वीर सन्तानों एवं धनोंसे युक्त होकर देवोंकी हम स्तुति करें ॥११॥

ये आदित्य व्रतोंको धारण करनेवाले तथा सर्वव्यापक होनेके कारण सर्वत्र गमन करनेवाले हैं। जिस प्रकार कोई व्यभिचारिणी स्त्री किसी एकान्त और दूर स्थलमें अपने गर्भको प्रसूत करके चली जाती है, उसी प्रकार पाप हमसे दूर और एकान्त स्थानमें चले जायें, हे देवो ! मैं तुम्हारे कल्याण करनेवाले स्तोत्रोंके बारेमें अच्छी तरह जानता हूँ, अतः उन स्तोत्रोंके द्वारा मैं तुम्हें बुलाता हूँ ॥१ ॥

२८९ यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥ २ ॥
२९० किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥ ३ ॥
२९१ हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥ ४ ॥
२९२ प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥ ५ ॥

अर्थ- [२८९] हे (**देवाः**) देव ! (**यूयं प्रमतिः**) तुम उत्तम बुद्धिवाले हो, (**यूयं ओजः**) तुम ओजस्वी हो, (**यूयं सनुतः द्वेषांसि युयोत**) तुम छिपकर द्वेष करनेवाले शत्रुओंको बाहर प्रकट करते हो, (**अभिक्षत्तारः**) शत्रुओंको चारों ओर से नष्ट करनेवाले तुम (**च अभि क्षमध्वं**) शत्रुओंको हर तरहसे मारो, तथा (**नः अद्य अपरं च मृळयत**) हमें आज और आनेवाले दिनोंमें भी सुखी करो ॥२॥

[२९०] हे (**वसवः**) निवास करानेवाले देवो ! हम (**सनेन आप्येन**) अपने प्राचीन कर्मसे (**वः किं नु कृणवाम**) तुम्हारा क्या कल्याण करें, (**अपरेण किं**) तथा दूसरे उपायसे भी क्या कल्याण करें, इसके विपरीत हे (**मित्रा वरुणा अदिते इन्द्रामस्तः**) मित्र, वरुण, अदिति, इन्द्र और मरुद्गणो ! (**यूयं**) तुम्हीं (**नः स्वस्ति दधात**) हमारे लिए कल्याणको धारण करो ॥३॥

[२९१] (**हये देवाः**) हे देवो ! (**यूयं इत् आपयः स्थ**) तुम्हीं हमारे बन्धु बान्धव हो, अतः (**ते**) वे तुम (**नाधमानाय मह्यं मृळत**) तुम्हारी स्तुति करनेवाले मुझे सुखी करो, (**वः रथः ऋते मध्यमवाट् मा भूत्**) तुम्हारा रथ हमारे यज्ञकी तरफ आते हुए मन्दगतिवाला न हो और हम भी (**युष्मावत्सु आपिषु मा श्रमिष्म**) तुम जैसे बन्धुओंकी सेवा करते हुए न थकें ॥४॥

१ **देवाः ! यूयं इत् आपयः स्थ-** हे देवो ! तुम्हीं हमारे भाई हो।

२ **युष्मावत्सु आपिषु मा श्रमिष्म-** तुम जैसे भाइयोंकी सेवा करते हुए हम कभी न थकें।

[२९२] (**पिता कितवं इव**) पिता जिस प्रकार बच्चेको उपदेश देता है, उसी प्रकार (**यत् मा शशास**) चूंकि तुमने मुझे उपदेश दिया है, इसलिए (**वः**) तुम्हारे भक्त मैंने (**एकः**) अकेले (**भूरि आगः मिमय**) बहुतसे पापोंको नष्ट कर दिया है। हे (**देवोः**) देवो ! (**पाशा आरे**) पाश मुझसे दूर रहें, (**अघानि आरे**) पाप मुझसे दूर रहें तथा (**पुत्रे अधि विं इव**) जिस प्रकार शिकारी पुत्रके देखते देखते पिताको पकड ले जाता है, उसी प्रकार (**मा मा ग्रभीष्ट**) मुझे मत पकडो ॥५॥

१ **यत् मा शशास एकः भूरि आगः मिमय-** चूंकि इन देवोंने मुझे उपदेश दिया, इसलिए मैंने अकेले ही बहुतसे पापोंको नष्ट कर दिया।

भावार्थ- देवोंकी बुद्धि बहुत उत्कृष्ट है, वे बडे ओजस्वी हैं। इनसे कोई भी चीज बची नहीं रहती, जो छिपकरके भी द्वेष करते हैं, उन्हें भी ये देव अच्छी तरह जानते हैं। ये देव सभी शत्रुओंको दूर करके अपने उपासकोंको हर तरहसे सुखी रखते हैं ॥२॥

हे देवो ! हम मनुष्य अत्यन्त अल्पशक्तिमान् होनेके कारण तुम्हारी क्या भलाई कर सकते हैं। देव सर्वशक्तिमान् हैं और मनुष्य अल्प शक्तिमान्, अतः मनुष्यके द्वारा देवोंका कुछ कल्याण नहीं हो सकता, इसके विपरीत देव ही मनुष्योंका कल्याण कर सकते हैं ॥३॥

देवगणही मनुष्यके सच्चे भाई बन्धु हैं, वे मनुष्यको हर तरहसे सुखी करते हैं। जिस प्रकार देवगण मनुष्योंके सुखकी चिन्ता करते हैं, उसी प्रकार मनुष्यको चाहिए कि वह भी बन्धुओंके समान प्यार करनेवाले इन देवोंकी सतत सेवा करता रहे, उनकी सेवा करते हुए वह कभी न थके ॥४॥

२९३ अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥ ६ ॥
२९४ माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ७ ॥

[३०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इंद्रः, ६ इन्द्रसोमौ, ८ (पूर्वाऽर्धर्चस्य) सरस्वती, ९ बृहस्पति, ११ मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ११ जगती ।]

२९५ ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥ १ ॥

अर्थ- [२९३] हे (**यजत्राः**) पूजा के योग्य देवो ! (**अद्य अर्वाञ्चः भवतः**) आज हमारी तरफ आनेवाले होओ, तथा (**भयमानः**) डरता हुआ मैं (**वः हार्दिः आ व्ययेयं**) तुम्हारे हृदयमें स्थित प्रेमको प्राप्त करूं। (**देवाः**) हे देवो ! तुम (**नः वृकस्य निजुरः त्राध्वं**) हमारी दुष्ट मनुष्यके शस्त्रोंसे रक्षा करो, हे (**यजत्राः**) पूज्य देवो ! (**अवपदः कर्तात् त्राध्वं**) आपत्तियों या कष्टोंको देनेवालोंसे हमारी रक्षा करो ॥६॥

[२९४] हे (**वरुण**) वरुण ! (**अहं**) मैं (**मघोनः प्रियस्य**) ऐश्वर्यवान्, प्रिय (**भूरिदाव्नः आपेः**) बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी (**शूनं मा आ विदं**) बुद्धिकी निन्दा न करूं। हे (**राजन्**) तेजस्वी देव ! (**सुयमात् रायः मा अव स्थाम्**) उत्तम उपभोगके योग्य धन पाकर मैं अभिमानी न हो जाऊं, अपितु (**सुवीराः**) उत्तम सन्तानोंसे युक्त होकर हम (**विदथे**) यज्ञमें (**बृहद् वदेम**) देवोंकी अच्छी स्तुति करें ॥७॥

१ **अहं भूरिदाव्नः आपेः शूनं मा आविदं-** मैं बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिकी निन्दा न करूं।

२ **सुयमात् रायः अव स्थाम्-** उत्तम धन पाकर मैं दूसरोंके ऊपर न रहूँ अर्थात् दूसरोंको नीचा न समझूं।

[३०]

[२९५] (**ऋतं कृण्वते**) जलको प्रेरित करनेवाले, (**देवाय सवित्रे**) तेजस्वी तथा सबको प्रेरित करनेवाले (**अहिघ्ने**) अहिको मारनेवाले (**इन्द्राय**) इन्द्रके लिए (**आपः न रमन्ते**) ये यज्ञादि कर्म कभी नहीं बन्द होते, (**अपी अक्तुं अहरहः याति**) इन कर्मोंका करनेवाला प्रतिदिन प्रयत्न करता है, (**आसां प्रथमः सर्गः कियति आ**) इन कर्मोंका सर्वप्रथम प्रचलन कब हुआ ? ॥१॥

भावार्थ- ये देवगण जिसको उपदेश देते हैं, वह अकेला होते हुए भी अनेकों पापों या पापियोंसे मुकाबला करके उन्हें नष्ट कर सकता है। उन्हींकी कृपासे पाश और पाप दूर रहते हैं। हे देवो ! तुम हमारी आयु कम मत करो, जिस तरह शिकारी पक्षीको पकडकर ले जाता है, उसी तरह हमें न पकडो अर्थात् कार्यके बीचमें ही हमारा नाश न करो ॥५॥

हे पूजाके योग्य देवो ! आज तुम हमारी तरफ आओ, ताकि डरनेवाला मैं तुम्हारे हृदयमें स्थित प्यारको प्राप्त कर निडर हो जाऊं। तुम दुष्ट मनुष्योंके शस्त्रास्त्रोंसे हमें बचाओं तथा जो मनुष्य हमें कष्ट देता है, उससे भी हमारी रक्षा करो ॥६॥

जो बहुत दान देनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऐश्वर्यशालीके ऐश्वर्यवृद्धिकी निन्दा न करूं अर्थात् उसकी वृद्धि देखकर ईर्ष्या न करूं। तथा मैं भी धन पाकर दूसरोंको नीचा न समझूं और अभिमान न करूं, अपितु उत्तम वीर सन्तानों व धनोंसे युक्त होकर देवोंकी हम स्तुति करें ॥७॥

जल प्रेरित करनेवाले, तेजस्वी तथा सबको प्रेरित करनेवाले, अहिनामक असुरको मारनेवाले इन्द्रके लिए यज्ञके कर्म कभी बन्द नहीं होते, इन्द्र को प्रसन्न करनेके लिए इन यज्ञके कर्मोंको यज्ञकर्ता हमेशा करता रहता है। पर इन यज्ञों सर्वप्रथम प्रचलन कब हुआ, कौन जानता है ? ॥१॥

२९६ यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥
२९७ ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षे ऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत् तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥ ३ ॥
२९८ बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ ४ ॥
२९९ अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य साता तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [२९६] (यः) जो (वृत्राय अत्र सिनं अभरिष्यत्) वृत्रके लिए अन्न दिया करता था, (तं जनित्री विदुषे उवाच) उसका नाम सबको उत्पन्न करनेवाली माताने विद्वान इन्द्रको बता दिया। (अस्मै अनु जोषं पथं रदन्तीः) इस इन्द्रको इच्छाके अनुसार मार्गोंको बनाती हुई (धुनयः) नदियां (दिवे दिवे अर्थं यन्ति) प्रतिदिन समुद्रकी तरफ बढती चली जाती है ॥२॥

[२९७] (हि) क्योंकि यह वृत्र (अन्तरिक्षे अधि ऊर्ध्वः अस्थात्) अन्तरिक्षमें बहुत ऊपर स्थित था, (अध) इसलिए (वृत्राय वधं प्र जभार) इन्द्रने वृत्रके प्रति वज्रको फेंका, तब वह भी (मिहं वसानः) मेघको ओढकर वृत्र (ईं उप अदुद्रोत) इस इन्द्रकी तरफ दौडा, तब (तिग्मायुधः इन्द्रः शत्रुं अजयत्) तीक्ष्ण शस्त्रवाले इन्द्रने शत्रुको जीता ॥३॥

[२९८] हे (बृहस्पते) बडे वीरोंका पालन करनेवाले इन्द्र। (तपुषा) अपने शत्रुको ताप देनेवाले वज्रसे (अश्ना इव) विद्युतके समान (वृक-द्वरसः असुरस्य वीरान्) द्वारोंको बंद करनेवाले असुरके वीर पुत्रोंको (विध्य) वींध, ताडन कर। हे इन्द्र! (यथा पुरा) जैसे प्राचीन समयमें (धृषता जघन्थ) वज्रसे शत्रुको जीत लिया था (एव चित्) वैसे ही (अस्माकं शत्रु जहि) हमारे शत्रुको आज भी मार ॥४॥

[२९९] हे इन्द्र! (मन्दसानः) उत्साह युक्त होते हुए तूने (येन शत्रुं निजूर्वाः) जिस वज्रसे शत्रुको मारा था, उस (अश्मानं) वज्रको (उच्चादिवः) ऊंचे द्युलोकसे (अवक्षिप) हमारे शत्रुओंपर फेंक, (भूरेः तोकस्य तनयस्य सातौ) भरणपोषणके योग्य पुत्र पौत्रोंको पालने के लिए तथा (गोनां) गौओंको पालनेके लिए (अस्मान् अर्धं कृणुत) हमें समृद्धि युक्त कर ॥५॥

१ तोकस्य तनयस्य सातो अस्मान् अर्धं कृणुत- पुत्र और पौत्रोंको पालनेके लिए हम समृद्धि युक्त हों।

भावार्थ- जो शत्रुके लिए अन्न आदि पहुंचाता है, वह देशका शत्रु है, उसे भी शत्रुके साथ ही नष्ट कर देना चाहिए। इस इन्द्र०के द्वारा प्रेरित हुई नदियां इसके इच्छानुसार बहती हुई समुद्रकी तरफ जाती हैं ॥२॥

अन्तरिक्षमें बहुत ऊंचे स्थानपर यह वृत्र स्थित था, इसलिए इन्द्रने वृत्रपर वज्र फेंककर मारा, तब वृत्र भी मेघोंका वस्त्र ओढकर इस इन्द्रकी तरफ चढ दौडा, तब तीक्ष्ण वस्त्रको धारण करनेवाले इन्द्रने इस वृत्रको जीत लिया ॥३॥

हे इन्द्र! तू वीरोंका पालन करनेवाला है, स्वयं भी वीर है, इसलिए द्वारोंको बन्द करनेवाले अर्थात् अच्छे कामोंमें विघ्न डालनेवालेको तू मारता है। तू जिस प्रकार पहले शत्रुओंको जीतता था, उसी प्रकार अब भी जीत ॥४॥

हे इन्द्र! उत्साहसे युक्त होकर तूने अपने जिस वज्रसे अपने शत्रुओंको मारा था, उसी वज्रसे हमारे शत्रुओंको भी मार। तथा पुत्र और पौत्रोंका पालन करनेके लिए हमें समृद्धि युक्त कर। हम समृद्धि युक्त होकर पुत्र और पौत्रोंका पालन करें अर्थात् कंजूस न बनें ॥५ ॥

३०० प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्ट—मस्मिन् भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥ ६ ॥
३०१ न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्र—न्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद् यो ददद् यो निबोधाद् यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥ ७ ॥
३०२ सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाण—मिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥ ८ ॥
३०३ यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नु—रभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून् द्रुहे रिषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥

अर्थ- [३००] (**इन्द्रासोमौ**) हे इन्द्र और सोम! (**यं वनुथः**) तुम दोनों जिसके शत्रुको मारते हो, तथा (**रध्रस्य यजमानस्य चोदौ स्थः**) तुम्हारी आराधना करनेवाले यजमानको प्रेरणा देनेवाले हो, उसके (**क्रतुं प्र हि वृहथः**) यज्ञको तुम उन्नत करते हो। (**अस्मिन् भयस्थे युवां अस्मान् अविष्टं**) इस भयवाले स्थानमें तुम दोनों हमारी रक्षा करो, तथा (**लोकं कृणुतं**) लोकोंको भयरहित करो ॥६॥

[३०१] (**यः मे पृणाद्**) जो इन्द्र मेरी अभिलाषाओंको पूर्ण करता है, (**यः ददत्**) जो धन देता है, (**यः निबोधाद्**) जो हमें ज्ञान देता है, तथा (**यः सुन्वन्तं मा गोभिः उप आयत्**) जो सोम तैय्यार करनेवाले मेरे पास गायोंके साथ आता है, वह इन्द्र (**मा न तमत्**) मुझे दुःखी न करे, (**न श्रमत्**) मुझे न थकावे (**न तन्द्रत्**) मुझे आलस्य युक्त भी न करे और हम भी उसके लिए (**मा सुनोत**) सोम रस मत तैय्यार करो (**इति**) ऐसा लोगोंसे (**मा वोचाम**) न कहें ॥७॥

[३०२] हे (**सरस्वति**) सरस्वती देवी! (**त्वं अस्मान् अविड्ढि**) तू हमारी रक्षा कर, तथा (**मरुत्वती धृषती शत्रून् जेषि**) मरुतोंसे युक्त होकर तथा अत्यन्त बल युक्त होकर शत्रुओंको जीत, यह (**इन्द्रः**) इन्द्र भी (**शर्धन्तं**) सहनशक्तिसे युक्त (**तविषीयमाणं**) अत्यधिक बलशाली (**शण्डिकानां वृषभं**) शाण्डवंशमें अत्यधिक बलवान् (**त्वं हन्ति**) उस असुरको मारता है ॥८॥

[३०३] (**बृहस्पते**) हे ज्ञानके पति! (**यः नः सनुत्यः**) जो हमारा गुप्त शत्रु (**उत वा जिघत्नुः**) अथवा वध करनेवाला है, (**तं अभिख्याय तिगितेन विध्य**) उसको कहकर तीक्ष्ण अस्त्रसे बींध दो तथा (**आयुधैः शत्रून् जैषि**) शस्त्रोंसे शत्रुओंको जीतो, अतः हे (**राजन्**) तेजस्विन्! (**द्रहे रिषन्तं परि धेहि**) द्रोह करनेवाले पर हिंसक अस्त्र फेंको। ॥९॥

१ **बृहस्पते! यः नः सनुत्यः उत वा जिघत्नुः तं अभि-ख्याय तिगितेन विध्य-** हे बृहस्पते! जो हमारा गुप्त शत्रु अथवा हमें मारनेवाला है, उसको कह करके तीक्ष्ण शस्त्रसे बींध दो।

भावार्थ- हे इन्द्र और सोम! तुम दोनों जिस यजमानके शत्रुको नष्ट करते हो, तथा जिसे प्रेरणा देते हो, उसके यज्ञ को भी तुम उन्नत करते हो, तुम भयसे युक्त स्थानमें हमारी रक्षा करो, तथा हमारे लिए लोकोंको भयसे रहित करो ॥६॥

वह इन्द्र हमें धन और ज्ञान आदि देखकर पूर्ण करता है, हमारी हर तरहसे वह रक्षा करता है, अतः वह हमें कभी निर्बल और आलस्य युक्त न करे और इस प्रकार वह हमें कभी दुःखी न करे। हम भी दूसरोंसे यह न कहें कि तुम इन्द्रकी पूजा मत करो। इसके विपरीत हम सभीको इन्द्रकी पूजा करनेके लिए प्रेरित करें ॥७॥

सरस्वती तथा इन्द्र दोनों मिलकर हमारी रक्षा करें। सरस्वती हमें ज्ञानसे युक्त करें और इन्द्र हमें बलसे युक्त करे और असुरोंको मारे। सरस्वतीके पूजक ज्ञानी ब्राह्मणगण राष्ट्रमें ज्ञानका प्रसार करके प्रजाओंको ज्ञानी बनायें और इन्द्रके पूजक क्षत्रियगण राष्ट्रमें प्रजाओंको शक्तिशाली बनाकर उन्हें समर्थ बनायें और राष्ट्रमें शत्रुओंको मारकर राष्ट्रकी रक्षा करें ॥८॥

हे बृहस्पते! जो हमारा शत्रु हमारा वध करना चाहता है, उसे सावधान करके उसे मारो। सच्ची वीरता शत्रुको असावधानीमें मारनेमें नहीं है, अपितु उसे सावधानीमें मारनेमें ही है। शस्त्रोंसे शत्रुओंको जीतना चाहिए ॥९॥

२०४ अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरै- र्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥
२०५ तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरो- प ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

[३१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- विश्वे देवाः ।
छन्दः- जगती; ७ त्रिष्टुप् ।]

२०६ अस्माकं मित्रावरुणावतं रथ- मादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद् वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥ १ ॥
२०७ अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥

अर्थ- [३०४] हे (**शूर**) शूर इन्द्र! तू (**अस्माकेभिः सत्वभिः शूरैः**) हमारे बलवान् शूरवीरोके साथ रहकर (**यानि ते कर्त्वानि**) जो तेरे द्वारा करने योग्य हैं उन (**वीर्या कृधि**) पराक्रमोंको कर, तथा जो शत्रु (**ज्योग्**) बहुत समय से (**अनुधूपितासः अभूवन्**) घमण्डी रहे हैं, उन्हें (**हत्वी**) मार कर (**तेषां वसूनि नः आ भर**) उनके धनोंको लाकर हमें भरपूर दे ॥१०॥

१ अनुधूपितासः- घमण्डी, अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाले।

[३०५] (**वः**) तुम्हारे (**दैव्यं जनं मारुतं शर्धं**) उस तेजस्वी प्रकट हुए वीर मरुतोंके बलकी (**सुम्नयुः**) मैं सुखको चाहनेवाला, (**नमसा गिरा**) नमनसे और वाणीसे (**उप ब्रुवे**) सराहना करता हूँ। (**यथा**) इस उपायसे हम (**सर्व-वीरं**) सभी वीरोंसे युक्त (**अपत्यसाचं**) पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त तथा (**श्रुत्यं**) कीर्तिसे युक्त (**रयिं**) धनको (**दिवे दिवे नशामहै**) प्रतिदिन प्राप्त करें ॥११॥

[३१]

[३०६] हे (**मित्रावरुणौ**) मित्र और वरुण! (**आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः सचाभुवा**) आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ साथ रहनेवाले तुम (**अस्माकं रथं अवतं**) हमारे रथकी रक्षा करो। (**यत्**) क्योंकि (**श्रवस्यन्तः हृषीवन्तः वनर्षद वयः न**) अन्नकी इच्छा करनेवाले, हर्षसे युक्त तथा पेडोंपर रहनेवाले पक्षियोंकी तरह हमारे घोडे (**वस्मनः परि प्र पप्तन्**) अपने स्थानसे दौडते हैं ॥१॥

[३०७] (**सजोषसः देवासः**) हे साथ साथ साथ रहनेवाले देवो! (**अध**) अब (**नः वाजयुं रथं**) हमारे अन्नके अभिलाषी रथको (**विक्षु अभि उत् अवत**) प्रजाओंकी तरफ प्रेरित करो। (**यत् आशवः पद्याभिः रजः तित्रतः**) जब शीघ्रगामी घोडे पैरोंसे मार्गोंको पार करते हैं तब वे (**पाणिभिः**) अपने पैरोंसे (**पृथिव्याः सानौ जंघनन्त**) पृथिवीके ऊपर आघात करते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र! हमारे बलवान् शूरवीरोंके साथ अर्थात् उनकी सहायता लेकर जो पराक्रम के कार्य करने योग्य हैं, उन्हें कर, जो घमण्ड मारनेवाले शत्रु हैं, उन्हें भी मार। घमण्ड करना दुर्गुण है, अभिमानी हमेशा इन्द्रका शत्रु होता है और अन्तमें वह नष्ट हो जाता है ॥१०॥

मैं वीरोंके बलकी प्रशंसा करता हूँ। इससे हम सभीको वीरतायुक्त धन मिलता रहे। वह धन इस भांति मिले कि उसके साथ शूरता, वीरता, धीरज, वीर सन्तान एवं यश भी प्राप्त हो। अगर शूरता आदि स्पृहणीय गुणोंसे रहित धन हो, तो हमें वह नहीं चाहिए ॥११॥

हे मित्र और वरुण! तुम आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ रहकर सब कार्य करते हो। हम जब अपने घोडोंको अन्नकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं, तब तुम पक्षियोंके समान उडनेवाले घोडोंसे युक्त हमारे रथकी रक्षा करो ॥१ ॥

३०८ उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणि—र्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥
३०९ उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणि—स्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद् रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरंधिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥
३१० उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशो—षासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद् वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥
३११ उत वः शंसमुशिजामिव श्म—स्यहिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥

अर्थ- [३०८] (**विश्वचर्षणिः सुक्रतुः स्यः इन्द्रः**) सबको देखनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाला वह इन्द्र (**मारुतेन शर्धेन**) मरुतोंके बलसे युक्त होकर (**महे सनये वाजसातये**) महान् धन और अन्नकी प्राप्तिके लिए (**अवृकाभिः ऊतिभिः**) सरल संरक्षणकी शक्तिसे सम्पन्न होकर (**दिवः नु**) द्युलोकसे आकर (**नः रथं अनु स्थाति**) मारे रथ पर बैठे ॥३॥

[३०९] (**उत**) और (**भुवनस्य सक्षणि**) सभी लोकोंके द्वारा उपास्य (**सजोषाः**) सभीसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करनेवाला (**स्यः देवः त्वष्टा**) वह तेजस्वी त्वष्टा अपनी (**ग्नाभिः**) शक्तियोंसे (**रथं जूजुवद्**) रथको प्रेरित करे । उसी तरह (**इळां**) इडा (**बृहद्दिवा भगः**) अत्यन्त तेजस्वी भग (**उत रोदसी**) और द्यावापृथिवी (**पुरंधिः पूषा**) ज्ञानसे युक्त पूषा और (**पती अश्विना**) सबका पालक करनेवाले अश्विनी हमारे रथको प्रेरित करें ॥४॥

[३१०] (**उत**) और (**त्ये देवी सुभगे मिथूदृशा उषासानक्ता**) के तेजस्वी, उत्तम ऐश्वर्यवाली और परस्पर देखनेवाली उषा और रात्री (**जगतां अपी जुवा**) जगत् को प्रेरणा देनेवाली है । हे (**पृथिवि**) द्यावापृथिवि ! (**यत्**) जब (**वां नव्यसा वचः स्तुषे**) तुम दोनोंकी मैं नवीन स्तोत्रसे स्तुति करता हूँ, तब तुम्हारे लिए (**स्थातुः च त्रिवयाः वयः**) भूमिसे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी हविको (**उपस्तृणे**) सर्मपित करता हूँ ॥५॥

[३११] (**उशिजां इव**) जिस प्रकार कामना करनेवाली स्त्रीकी पुरुष कामना करता है, उसी प्रकार हे देवो ! (**वः शंसं श्मसि**) हम तुम्हारी स्तुति करना चाहते हैं । (**अहिर्बुध्न्यः अजः एकपात्**) अहिर्बुध्न्य, अज एकपात् (**त्रितः ऋभुक्षाः**) विस्तृत ऋभुक्षा देव (**सविता अपां नपात्**) सविता तथा जलोंसे उत्पन्न होनेवाला अग्नि (**शमि**) यज्ञकर्ममें (**धिया**) हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमें (**चनः दधे**) अन्न प्रदान करें ॥६॥

भावार्थ- हे साथ साथ रहनेवाले देवो ! हमारे रथको प्रजाओंकी तरफ प्रेरित करो, ताकि हमें अन्नकी प्राप्ति हो । जब शीघ्रगामी घोडे पैरोंसे मार्गको पार करते हैं अर्थात् मार्गपर दौडते हैं, तब वे अपनी टापोंसे पृथ्वीपर आघात करते हैं ॥२॥

यह इन्द्र सबको देखनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाला है। ऐसा वह इन्द्र हमें उत्तम धन एवं अन्न प्राप्त कराने के लिए हमारे रथकी रक्षा करे। उसके संरक्षणमें हम शत्रुओंपर आक्रमण करके धन और अन्नको प्राप्त करें ॥३॥

सभी लोकोंके द्वारा सेवनीय और सभीसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करनेवाले त्वष्टा, इडा, भग, पूषा, द्यावापृथिवी, भग और अश्विनौ आदि देव अपनी शक्तियोंसे हमारे रथ को प्रेरित करें ॥४॥

उषा और रात्री ये दोनों देवियां अत्यन्त तेजसे युक्त, ऐश्वर्य सम्पन्न और हमेशा साथ साथ दिखाई देती हैं। ये दोनों ही सारे जगत् को प्रेरित करती हैं। इन्हींके कारण सारे प्राणी अपने अपने कार्य करते हैं ॥५॥

जिस प्रकार कामनायुक्त स्त्रीकी पुरुष मनसे कामना करता है, उसी प्रकार हम भी मनसे देवोंकी स्तुति करें। (अहिर्बुध्न्य) अन्तरिक्षमें रहनेवाली विद्युत, (अजः एकपात्) सूर्य, (ऋभुक्षा) ऋभुओं अर्थात् मरुतोंको बसानेवाला देव इन्द्र सविता और अग्नि आदि देव हमारे स्तुतिरूप कर्म से प्रसन्न होकर हमें अन्न प्रदान करें ॥६॥

३१२ एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥ ७ ॥

[३२]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- १ द्यावापृथिवी, २-३ इन्द्रस्त्वष्टा वा, ४-५ राका, ६-७ सिनीवाली, ८ लिङ्गोक्ताः । छन्दः- जगती; ६-८ अनुष्टुप् ।]

३१३ अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥

३१४ मा नो गुह्या रिप आयोरहन् दभन् मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत् त्वेमहे ॥ २ ॥

अर्थ- [३१२] हे (यजत्रां) पूजनीय देवो ! (वः) तुम्हारे (एता उत् यता वश्मि) इन उन्नतिकारक कर्मोंको मैं चाहता हूं। (आयवः नव्यसे सं अतक्षन्) मनुष्य यश प्राप्त करनेके लिए उत्तम कर्म करते हैं। (श्रवस्यवः) यशकी अभिलाषा करनेवाले तथा (वाजं चकानाः) बलकी कामना करनेवाले मनुष्य (रथ्यः सप्तिः न) रथमें जुडे हुए घोडे की तरह (धीतिं अश्याः) कर्मको करते रहें ॥७॥

१ एता उत् यता वश्मि- देवोंके इन उन्नतिकी ओर ले जानेवाले कर्म मैं करना चाहता हूँ।

२ आयव नव्यसे सं अतक्षन्- मनुष्य यश प्राप्त करने के लिए उत्तम कर्म करते हैं।

३ श्रवस्यवः रथ्यः सप्तिः न धीतिं अश्याः- यशकी इच्छा करनेवाले रथमें जुडे हुए घोडे की तरह हमेशा काममें व्यस्त रहें।

[३२]

[३१३] (ऋतायतः सिषासतः अस्य मे) सत्यधर्मके अनुसार चलनेवाले तथा तुम्हारी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले इस मेरी (वचसः) वाणीकी, हे (द्यावा पृथिवी) द्यु और पृथिवी ! (अवित्री भूतं) रक्षा करनेवाली होओ। (ययोः आयुः प्रतरं) जिनका बल उत्तम है, ऐसे (ते-पुरः) उन दोनों के आगे (वसुयुः) धन पानेकी इच्छा करनेवाला मैं (इदं उप स्तुते) यह प्रार्थना करता हूँ। (वां महः दधे) तुम दोनोंको मैं बहुत श्रेष्ठ मानता हूँ ॥१॥

१ ऋतायतः सिषासतः आयुः प्रतरम् - सत्यमार्गपर चलनेवाले तथा देवोंकी सेवा करनेवालेकी आयु और बल बढता है।

[३१४] हे इन्द्र ! (आयोः गुह्याः रिपः) शत्रुकी छिपी हुई मायायें (अहन्) दिन या रातमें (नः मा दभन्) हमें नष्ट न करें। तू भी (नः) हमें (आभ्यः दुच्छुनाभ्यः मा रीरधः) इन दुःखदायक सेनाओंसे हिंसित मत कर। (नः सख्या मा वि यौः) हमें अपनी मित्रतासे दूर मत कर। (नः तस्य सुम्नायता मनसा विद्धि) हमारी उस मित्रताको तू अपने उत्तम मनसे जान। (त्वा तत् ईमहे) तुझसे हम उस मित्रताको चाहते हैं ॥२॥

१ आयोः गुह्यां रिपः नः मा दभन्- शत्रु मनुष्यकी छिपी हुई मायायें हमें नष्ट न करें।

२ नः सख्या मा वि यौः- हे इन्द्र ! हमें अपनी मित्रतासे दूर मत कर।

भावार्थ- मनुष्य सदा देवोंके उन्नतिकारक कर्मोंको ही करें। क्योंकि बिना उत्तम कर्म किए यश प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए यशको और बलको प्राप्त करनेकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्यको चाहिए कि वह रथमें जुडे हुए घोडेकी तरह सदा कर्ममें संलग्न रहे ॥७॥

मैं द्यावापृथिवीको बहुत श्रेष्ठ मानता हूं, अतः उनसे मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे धन दें। उनका बल बहुत उत्तम है, अतः वे सत्यमार्गपर चलनेवाले तथा देवोंकी सेवा करनेवाले मेरी वाणीकी रक्षा करें ॥१॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी छिपी हुई मायायें हमें नष्ट न करें, तथा तू भी हमें मत मार, न हमें अपनी मित्रतासे दूर ही कर। हम तुझसे कितनी मित्रता करते हैं, यह अपने उत्तम मनसे जान, क्योंकि हम तुझसे तेरी मित्रता ही चाहते हैं। मनुष्य हमेशा उत्तम मनसे मित्रता करे, किसी स्वार्थसे नहीं ॥२ ॥

३१५ अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥
३१६ राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥
३१७ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥
३१८ सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥

अर्थ- [३१५] हे **(पुरुहूत)** बहुतोंके द्वारा बुलाये जाने योग्य इन्द्र! **(अहेळता मनसा)** क्रुद्ध न होते हुए मनसे तू **(श्रुष्टिं दुहानां पिप्युषीं असश्चतं धेनुं आ वह)** सुख देनेवाली, दुधारु, वृद्धि करनेवाली तथा उत्तम अवयवों वाली गाय हमें दे, तथा **(पद्याभि: आशुं)** पैरोंसे मार्गको शीघ्रतापूर्वक पार करनेवाले **(वचसा)** कहने मात्रसे रथमें जुड जानेवाले **(वाजिनं)** घोडेको **(विश्वहा हिनोमि)** सब दिन में प्राप्त करूं ॥३॥

[३१६] **(अहं)** मैं **(सुहवां राकां)** उत्तम प्रकारसे बुलाये जाने योग्य राका देवीको **(सुस्तुती हुवे)** उत्तम स्तुतिसे बुलाता हूँ। **(सुभगा नः श्रृणोतु)** उत्तम ऐश्वर्यवाली वह हमारी प्रार्थना सुने और सुनकर **(त्मना बोधतु)** अपने मनसे समझे। **(अच्छिद्यमानया सूच्या अप: सीव्यतु)** न टूटनेवाली सुईसे हमारे कर्मोंको सीये तथा **(उक्थ्यं शतदायं वीरं ददातु)** प्रशंसाके योग्य तथा बहुत धन देनेवाले वीर पुत्रको प्रदान करे ॥४॥

१ **अच्छिद्यमानया सूच्या अप: सीव्यतु-** न टूटनेवाली सुईसे हमारे कर्मों को सीये।

[३१७] हे **(सुभगे राके)** उत्तम ऐश्वर्यशालिनि राका देवी! **(ते याः सुपेशसः सुमतयः)** तेरी जो उत्तम रूपवाली उत्तम बुद्धियां हैं, **(याभि: दाशुषे वसूनि ददासि)** जिनसे तू दाताको अनेक प्रकारके धन देती है, **(ताभि: सहस्रपोषं रराणा)** हजारों तरहके पुष्टिकारक अन्न प्रदान करती हुई **(नः अद्य सुमना उप आगहि)** हमारे पास आज उत्तम मनसे आ ॥५॥

१ **सुमतयः दाशुषे वसूनि ददासि-** उत्तम बुद्धियोंके द्वारा राका देवी दाताको धन प्रदान करती है।

[३१८] **(पृथुष्टुके सिनीवालि)** हे विस्तृत रूपवाली सिनीवाली! **(या देवानां स्वसा असि)** जो तू देवोंकी बहिन है, वह तू **(आहुतं हव्यं जुषस्व)** अग्निमें दी गई आहुतिका सेवन कर, और हे **(देवी)** देवी! **(नः प्रजां दि दि ड्ढि)** हमें प्रजा प्रदान कर ॥६॥

भावार्थ- हे इन्द्र! प्रसन्न मनसे हमें गाय और घोडा दे। गाय सुखदायक, दुधारु, पुष्ट करनेवाली तथा सुन्दर और पुष्ट अवयवोंवाली हो। घोडे वेगवान् तथा इशारा समझनेवाले और बलवान् हों ॥३॥

राका पूर्णिमाकी अधिष्ठात्री देवी है। यह उत्तम ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाली है। वह हमारी प्रार्थना सुने और सुनकर उसे हृदय में धारण करें। यह रात और दिन हमारे कर्मों को न टूटनेवाली सुईसे सीया करें। यह मनुष्य जीवन एक वस्त्र है, जिसे कर्मरूपी सुईसे सिया जाता है। रात और दिन सीनेवाले हैं। यह कर्मरूपी सुई बीचमें ही न टूट जाए अर्थात् मनुष्यके कर्म बीचमें ही समाप्त न हो जाएं, मनुष्य पूर्णायुका उपभोग करे और निरन्तर कर्म करता रहे ॥४॥

हे ऐश्वर्यशालिनी राका देवी ! जिन उत्तम बुद्धियोंसे तू दानदाताको उत्तम धन देती है, उन्हीं उत्तम बुद्धियों से हमें पुष्टिकारक अन्न देती हुई उत्तम मनवाली होकर हमारे पास आ ॥५॥

सिनीवाली आमावस्याकी अधिष्ठात्री देवी है, अथवा शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको सिनीवाली है। इस दिनसे चन्द्रमाकी कलायें बढती हैं। यह देवोंकी बहिन है। यह देवोंको तेजस्वी बनाती है ॥६ ॥

३१९ या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥

३२० या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥

[३३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- रुद्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३२१ आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥

३२२ त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥

अर्थ- [३१९] (या) जो सिनीवाली (**सुबाहुः सु-अंगुरिः सुषूमा बहुसूवरी**) उत्तम बाहुओंवाली, उत्तम अंगुलियोंवाली, उत्तम पदार्थ उत्पन्न करनेवाली तथा अनेक प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाली है, (**तस्यै विश्पत्न्यै सिनीवाल्यै**) उस प्रजाओंका पालन करनेवाली सिनीवालीके लिए (**हविः जुहोतन**) हवि प्रदान करो ॥७॥

[३२०] (**या गुंगूः सिनीवाली या राका या सरस्वती**) जो गुंगू, जो सिनीवाली, जो राका, जो सरस्वती आदि देवियां हैं, उन्हें (**ऊतये अह्वे**) अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ, उसी प्रकार (**इन्द्राणीं**) इन्द्राणीको बुलाता हूँ (**वरुणानीं स्वस्तये**) तथा वरुणानीको भी कल्याणके लिए बुलाता हूँ ॥८॥

[३३]

[३२१] हे (**मरुतां पितः**) मरुतोंके पालक रुद्र! (**ते सुम्नं आ एतु**) तेरा सुख हमें प्राप्त हो, (**नः सूर्यस्य संदृशः मा युयोथाः**) हमें सूर्यकी उत्तम दृष्टि से दूर मत करो। (**नः वीरः**) हमारे वीर (**अर्वति अभि क्षमेत**) युद्धमें शत्रुओंको परास्त करें। हे (**रुद्र**) रुद्र! (**प्रजाभिः प्र जायेमहि**) प्रजाओंसे हम विस्तृत हों ॥१॥

[३२२] हे (**रुद्र**) रुद्र! (**त्वादत्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः**) तेरे द्वारा दिए गए सुखकारक औषधोंसे (**शतं हिमाः अशीय**) मैं सो वर्ष कर्म करता रहूँ। (**अस्मत् द्वेषः वितर**) हमसे द्वेष भावोंको दूर कर, (**अंहः वि**) पापको दूर कर ओर (**विषूचीः अमीवाः चातयस्व**) सारे शरीरमें व्याप्त होनेवाले रोगोंको हमसे दूर करके नष्ट कर ॥२॥

१ **त्वादत्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः शतं हिमाः अशीय-** हे रुद्र! तेरे द्वारा दिए गए सुखकारक औषधोंसे सौ वर्षतक मैं कर्म करता रहूँ।

२ **अस्मत् द्वेषः अंहः विषूचीः अमीवाः चातयस्व-** हमसे द्वेष, पाप तथा सब शरीरमें व्याप्त होनेवाले रोगोंको दूर कर।

भावार्थ- यह सिनीवाली देवी उत्तम किरणोंवाली होनेके कारण अनेक तरहके उत्तम उत्तम पदार्थोंको उत्पन्न करती है, और इस प्रकार उन पदार्थोंके द्वारा प्रजाओंका पालन करती है ॥७॥

मैं (गुंगू) शुक्ल प्रतिपदाके चन्द्रमा, आमावास्या, पूर्णिमा, सरस्वती, इन्द्राणी और वरुणानी आदि देवियोंको अपनी रक्षा एवं कल्याणके लिए बुलाता हूँ ॥८॥

हे मरुतोंके पालक रुद्र! तेरा सुख हमें प्राप्त हो। तेरे बताये हुए मार्ग पर चलकर हम सुखी हों। हम सूर्य के प्रकाशसे कभी दूर न हों। हमें कभी अन्धकारमें न रख। हमारे वीर और पुत्रादि युद्धमें शत्रुओंको परास्त करें तथा ऐसे वीर पुत्रोंके द्वारा हम अपने वंशका विस्तार करते रहें ॥१॥

हे रुद्र! तेरे द्वारा दिए गए औषधोंसे मैं बलवान् बनकर सौ वर्षतक कर्म करता रहूँ। मैं अन्न आदि खाकर पुष्ट होऊं और उत्तम कर्म करता रहूँ। और इस प्रकार हर तरहके रोगोंसे मैं दूर रहूँ, तथा द्वेष और पाप आदि दुर्भावनाओंसे भी दूर रहूँ ॥२॥

३२३ श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३ ॥
३२४ मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभि—र्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभि—र्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥
३२५ हवीमभिर्हवते यो हविर्भि—रव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥

अर्थ- [३२३] हे (**रुद्र**) रुद्र ! तू (**श्रिया**) अपने ऐश्वर्यसे (**जातस्य श्रेष्ठः असि**) सभी उत्पन्न हुए पदार्थोंमें श्रेष्ठ है। हे (**वज्रबाहो**) हाथोंमें शस्त्र धारण करनेवाले रुद्र ! (**तवसां तवस्तमः**) बलवानोंमें सबसे अधिक बलवान् है। (**नः अंहसः पारं स्वस्ति पर्षि**) हमें पापोंसे पार कल्याणपूर्वक ले जा तथा (**रपसः विश्वाः अभीती युयोधि**) पापकी तरफ जानेवाले सभी मार्गोंको हमसे दूर करूं ॥३॥

१ **श्रिया जातस्य श्रेष्ठः असि-** रुद्र अपने ऐश्वर्यके कारण ही उत्पन्न हुए प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

२ **तवसां तवस्तमः-** बलशालियोंमें बलशाली है।

३ **रपसः विश्वाः अभीतीः युयोधि-** पापकी तरफ जानेवाले सभी मार्ग हमसे दूर हों।

[३२४] हे (**रुद्र**) रुद्र ! (**त्वा नमोभिः मा चुक्रुधाम**) हम तुझे झूठे नमस्कारोंसे कोधित न करें, हे (**वृषभ**) बलवान् इन्द्र ! (**दुष्टुती मा**) बुरी स्तुतियोंसे भी तुझे क्रोध युक्त न करें, (**सहूती मा**) अन्य साधारण लोगोंसे बुलाकर तुझे क्रोधित न करें। (**भेषजेभिः नः वीरान् उत् अर्पय**) औषधियोंसे हमारी सन्तानोंको बलयुक्त कर, (**त्वां भिषजां भिषक्तमं श्रृणोमि**) तुझे मैं वैद्योंमें उत्तम वैद्य सुनता हूँ ॥४॥

१ **त्वा नमोभिः दुस्तुती मा चुक्रुधाम-** हे रुद्र ! हम तुझे झूठे नमस्कार करके तथा बुरी स्तुतियोंसे कभी भी क्रोधित न करें।

२ **त्वां भिषजां भिषक्तमं श्रृणोमि-** तुझे हम वैद्योंमें उत्तम वैद्य समझते हैं।

[३२५] (**यः**) जो रुद्र (**हविर्भिः हवीमभिः हवते**) हवियों और स्तुतियोंसे बुलाया जाता है, (**रुद्रं**) उस रुद्रको (**स्तोमेभिः अव दिषीय**) स्तोत्रोंसे शान्त करूं। (**क्रदूदरः सुहवः**) कोमल हृदयवाला, उत्तम प्रकारसे बुलाये जाने योग्य, (**बभ्रुः सु शिप्रः**) धारण पोषण करनेवाला तथा उत्तम रीतिसे रक्षण करने वाला रुद्र (**अस्यै मनायै**) इस ईर्ष्या के हाथोंमें देकर (**नः मा रीरधत्**) हमारी हिंसा न करे ॥५॥

१ **ऋदूदरः अस्यै मनायै नः मारीरधत्-** कोमल हृदयवाला यह रुद्र ईर्ष्या के हाथोंमें हमें सौंपकर हमारी हिंसा न करे। **"ऋदूदरो मृदूदरः"** (निरु. ६/४)

भावार्थ- यह रुद्र अपने ऐश्वर्यके कारण सबसे श्रेष्ठ है। जो अपनी शक्तिसे ही ऐश्वर्यवान् बनता है, वही सर्वश्रेष्ठ बन सकता है। वही बलवानोंमें बलवान् बन सकता है तथा जो पापकी तरफ जानेवाले मार्ग पर कदम ही नहीं रखता वही पापोंसे पार जा सकता है ॥३॥

हे रुद्र ! हम कभी भी दिखावे के लिए तुझे प्रणाम न कर, अथवा बुरे मनसे कभी स्तुति न करें और इस प्रकार तुझे क्रोधित न करें। ढोंगसे स्तुति करनेपर ईश्वर नाराज होता है, इसलिए परमात्माकी स्तुति हमेशा शुद्ध और पवित्र मनसे ही करनी चाहिए। तब वह रुद्र स्तोता एवं उपासकके पुत्रपौत्रादिकोंकी हर तरह से रक्षा करता है। परमात्मा सभी वैद्योंसे उत्तम वैद्य है, अतः अपनी रक्षाके लिए उसीकी शरणमें जाना चाहिए ॥४॥

जो अनेक प्रकारकी हवियोंके द्वारा और स्तुतियोंके द्वारा बुलाया जाता है, उस रुद्रके क्रोधको मैं शान्त करूं। वह बहुत कोमल हृदयवाला है, अतः जो भी शुद्ध और पवित्र मनसे उसकी प्रार्थना करता है, उसपर प्रसन्न हो जाता है। ऐसा पवित्र हृदयवाला मनुष्य कभी भी ईर्ष्या के वशमें नहीं होता। ईर्ष्या एक ऐसा मानसिक रोग है, जो मनुष्यकी हिंसा कर देता है, पर परमात्माका उपासक कभी भी ईर्ष्याके वशमें नहीं होता, इसलिए वह कभी भी नष्ट नहीं होता ॥५॥

३२६ उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान् त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया ऽऽ विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥
३२७ क्व१ स्य ते रुद्र मृळयाकु र्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्या भी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥
३२८ प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभि र्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥
३२९ स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरे र्न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ- [३२६] (वृषभः मरुत्वान्) बलवान् और मरुतोंसे युक्त रुद्र (नाधमानं मा) मांगनेवाले मुझे (त्वक्षीयसा वयसा) तेजस्वी अन्न से (उत् ममन्द) तृप्त करे, तथा (घृणि छायां इव) जिस प्रकार धूपसे पीडित व्यक्ति छायाका आश्रय लेता है, उसी प्रकार मैं भी (अरपाः) पापसे रहित होकर (रुद्रस्य सुम्नं अशीय) रुद्रके सुखको प्राप्त करूं और (आ विवासेयं) रुद्रकी सेवा करूं ॥६॥

१ अरपाः रुद्रस्य सुम्नं अशीय- पापसे रहित होकर रुद्रके सुखको प्राप्त करूं।

[३२७] हे (रुद्र) रुद्र ! (ते यः) तेरा जो (भेषजः जलाषः मृळयाकुः हस्तः) रोग दूर करके जीवन देनेवाला तथा सुखकारक हाथ है, (स्यः क्व) वह कहां है ? हे (वृषभ) बलवान् ! (दैव्यस्य रपसः अपभर्ता) देवोंके द्वारा लाई गई आपत्तियोंको दूर करनेवाला तू (मा अभि चक्षमीथाः) मेरे अपराधोंको क्षमा कर ॥७॥

१ भेषजः जलाषः मृळयाकुः हस्तः- रुद्रका हाथ रोग दूर करनेवाला, जीवन देनेवाला तथा सुख देनेवाला है।

२ दैव्यस्य रपसः अपभर्ता- दैवी आपत्तियोंको यह दूर करनेवाला है।

[३२८] (बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे) सबका धारण पोषण करनेवाला, बलवान् और तेजस्वी पदार्थोंमें व्याप्त रहनेवाला रुद्रके लिए (महः महीं सुस्तुतिं प्र ईरयामि) बडी से बडी स्तुति करता हूं। (कल्मलीकिनं नमोभिः नमस्य) तेजसे प्रदीप्त होनेवाले इस रुद्रको नमस्कारोंसे प्रसन्न करो। हम भी (रुद्रस्य त्वेषं नाम गृणीमसि) रुद्रके उस तेजस्वी नामकी स्तुति करते है ॥८॥

[३२९] (स्थिरेभिः अंगैः) दृढ अंगोंसे युक्त, (पुरुरूपः) अनेक रूपोंसे युक्त (उग्रः बभ्रुः) तेजस्वी और धारणपोषण करनेवाला रुद्र (शुक्रेभिः हिरण्यैः पिपिशे) पवित्र तेजोंसे प्रदीप्त होता है। (अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात्) इस भुवनका भरणपोषण करनेवाले तथा सबपर शासन करनेवाला (रुद्रात्) रुद्रसे (असुर्यं न वा उ योषत्) असुरोंको मारनेवाला बल अलग नहीं होता ॥९॥

१ अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात् असुर्यं न योषत्- इस भुवनका पालन करनेवाले सबके शासक रुद्रसे असुरोंका विनाशक बल कभी अलग नहीं होता।

भावार्थ- वह बलवान् रुद्र अन्नको मांगनेवाले मुझे तेजस्वी अन्न देकर तृप्त करे। तथा जिस प्रकार कोई धूपसे पीडित मनुष्य छायामें बैठकर सुख प्राप्त करता है, उसी प्रकार मैं पापसे रहित होकर रुद्रकी कृपासे सुख प्राप्त करूं और रुद्र की सेवा करूं। मनुष्य सुख या ऐश्वर्य प्राप्त करके घमण्डी न हो जाए, अपितु उस समय भी वह पवित्र मनसे भगवान्‌की भक्ति करे ॥६॥

रुद्रका हाथ रोगोंको दूर करनेवाला, जीवन देनेवाला तथा सुखकारक है। रुद्र भगवानकी जिस पर कृपा होती है, वह कभी भी रोगी नहीं होता, अपितु उत्तम जीवन बिताता हुआ सुखसे रहता है। दैवी आपत्तियां भी उसका कुछ बिगाड नहीं सकतीं। वह अपने उपासकके अपराधोंको क्षमा कर देता है ॥७॥

सबका धारण पोषण करनेवाले, बलवान् तथा तेजस्वी पदार्थोंमें व्याप्त होनेवाले रुद्रको बडी से बडी स्तुतिसे प्रसन्न करना चाहिए। वह नमस्कारोंसे प्रसन्न होता है। वह अग्निके समान तेजस्वी है। उसके नामोंका ध्यान करना चाहिए ॥८ ॥

३३० अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वाऽर्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ १० ॥
३३१ स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥ ११ ॥
३३२ कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥
३३३ या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३ ॥

अर्थ- [३३०] हे रुद्र ! (**अर्हन्**) योग्य तु (**सायकानि धन्वा बिभर्षि**) बाणों और धनुषको धारण करता है। (**अर्हन्**) योग्य तू (**याजतं विश्वरूपं निष्कं**) पूजाके योग्य और अनेक रूपोंवाले सोनेको धारण करता है। (**अर्हन्**) योग्य तू (**इवं विश्वं अभ्वं दयसे**) इस सारे विस्तृत जगत्की रक्षा करता है। हे (**रुद्र**) रुद्र ! (**त्वत् ओजीयः न अस्ति**) तुझसे अधिक तेजस्वी और कोई नहीं है ॥१०॥

१ **अर्हन् इदं विश्वं अभ्वं दयसे-** यह योग्य रुद्र इस सारे विस्तृत विश्वकी रक्षा करता है।

२ **त्वत् ओजीयः न अस्ति-** इस रुद्रसे ज्यादा तेजस्वी और कोई नहीं है।

[३३१] हे मनुष्य ! तू (**श्रुतं, गर्तसदं**) प्रसिद्ध, रथमें बैठनेवाले (**युवानं**) तरुण (**मृगं न भीमं**) सिंहके समान भयंकर (**उपहत्नुं उग्रं**) शत्रुको मारनेवाले और वीर रुद्रकी (**स्तुहि**) स्तुति कर। है (**रुद्र**) रुद्र ! (**स्तवानः**) स्तुत होता हुआ तू (**जरित्रे मृळ**) स्तुति करनेवाले को सुखी कर और (**ते सेनाः**) तेरी सेनायें (**अस्मत् अन्यः नि वपन्तु**) हमसे भिन्न जा दूसरे शत्रु हों, उन्हेंही मारें ॥११॥

१ **ते सेनाः अस्मत् अन्यः नि वपन्तु-** तेरी सेनायें हमसे भिन्न जो दूसरे शत्रु हैं, उन्हें ही मारें।

[३३२] (**रुद्र**) रूद्र ! (**वन्दमानं पितरं कुमारः चित्त**) जिस प्रकार बन्दनाके योग्य पिताको पुत्र प्रणाम करता है उसी तरह (**उपयन्तं प्रति नानाम**) समीप आनेवाले तुझे प्रणाम करते हैं। (**भूरेः दातारं सत्पतिं गृणीषे**) अत्याधिक दान देनेवाले तथा सज्जनोंके स्वामी रुद्रकी मैं स्तुति करता हूं, (**स्तुतः स्वं अस्मे भेषजा रासि**) स्तुत होकर तू हमें औषधियां दे ॥१२॥

[३३३] हे (**मरुतः**) मरुतो ! (**वः या शुचीनि भेषजा**) तुम्हारी जो शुद्ध और पवित्र औषधियां हैं, तथा हे (**वृषणः**) बलवान मरुतो ! (**या शंतमा या मयोभु**) जो कल्याण करनेवाले तथा जो सुख देनेवाले औषध हैं, (**यानि**) जिन औषधियोंको (**नः पिता मनुः अवृणीत**) हमारे पिता मनुने स्वीकार किया था, (**ता रुद्रस्य च शं च योः वश्मि**) उन रुद्रके कल्याण करनेवाले तथा रोगोंको दूर करनेवाले औषधोंको मैं चाहता हूँ ॥१३॥

भावार्थ- दृढ अंगोंवाला अनेक रूपोंवाला तथा तेजस्वी रुद्र अपने पवित्र तेजोंके कारण और अधिक तेजस्वी होता है। वह रुद्र इस भुवनका पालन करनेवाला तथा शासक है, अतः उसमें सदा शक्ति रहती है ॥९॥

यह रुद्र बहुत योग्य है, वह धनुष बाण धारण करके धन प्राप्त करता है और अनेक रूपोंवाले सोनेको प्राप्त करता है। वह सारे विस्तृत विश्वकी रक्षा करता है। इसलिए उससे बढकर तेजस्वी और कोई नहीं है ॥१०॥

यह रुद्र सर्वत्र प्रसिद्ध, रथमें बैठनेवाला तरुण और सिंहके समान भयंकर है। यह शत्रुको मारनेवाला और वीर है, इसकी लोग स्तुति करते हैं और यह भी स्तुत होता हुआ स्ताताका सुखी करता है। ऐसा रुद्र हमें कभी न मारे, इसके विपरीत जो हमारे शत्रु हैं, उन्हें नष्ट करे ॥११॥

जिस प्रकार कोई पुत्र वन्दनाके योग्य पिताकी वन्दना करता है, उसी प्रकार हम रुद्रकी प्रार्थना करते हैं, वह रुद्र बहुत धन देनेवाला तथा सज्ज्नोका पालन करनेवाला है, स्तुतिको प्राप्त करके वह रुद्र हमें हर तरहकी औषधियां देवे ॥१२॥

मरुतो ! तुम्हारे जो पवित्र, कल्याणकारी और सुखदायक औषध है, जिन्हें मननशील विद्वान् अपने उपयोगमें लाते हैं, उन कल्याणकारी तथा रोगोंको दूर करनेवाली औषधोंको मैं चाहता हूँ ॥१३॥

३३४ परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥ १४ ॥
३३५ एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

[३४]

(ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । देवता- मरुत् । छन्दः- जगती; १५ त्रिष्टुप् ।)

३३६ धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥

अर्थ- [३३४] (रुद्रस्य) रुद्रके (हेतिः नः परि वृज्यां) शस्त्रास्त्र हमें छोड दें तथा (त्वेषस्य) उस तेजस्वी (मही दुर्मतिः) महान् क्रोधवाली बुद्धि (परि गात्) दूसरी जगह चली जाए। हे (मीढ्वः) सुख देनेवाले रुद्र। (स्थिरा) दृढ रहनेवाले अपने धनुषोंको (मघवद्भ्यः अव तनुष्व) ऐश्वर्यसे युक्त जनोंके लिए शिथिल कर दे तथा (तोकाय तनयाय मृळ) हमारे पुत्र और पौत्रोंको सुखी कर ॥१४॥

१ रुद्रस्य हेतिः नः परि वृज्याः- रुद्रके शस्त्रास्त्र हमें छोड दें।

२ त्वेषस्य मही दुर्मतिः परि गात्- उस तेजस्वी रुद्रको क्रोधित करनेवाली बुद्धि हमें छोडकर दूर चली जाए।

[३३५] (बभ्रो वृषभ चेकितान देव) जगत्का धारणपोषण करनेवाले, बलवान्, सर्वज्ञ, तेजस्वी तथा (हवन श्रुत् रुद्र) प्रार्थनाओंको सुननेवाले रुद्र! (यथा एव न हृणीषे न च हंसि) जिस प्रकार तू क्रुद्ध न हो और न हमें मारे, वह उपाय (नः इह बोधि) यहां तू हमें बता। हम भी (सुवीराः) उत्तम पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें (बृहत् वदेम) तेरी उत्तम स्तुति करें ॥१५॥

[३४]

[३३६] (धारा-वराः) युद्धके मोर्चे पर श्रेष्ठ प्रतीत होनेवाले, (धृष्णु-ओजसः) शत्रुको पछाडनेके बलसे युक्त, (मृगाः न भीमाः) सिंहकी भांति भीषण, (तविषिभिः) निज बलसे (अर्चिनः) पूजनीय ठहरे हुए, (अग्नयः न) अग्निके जैसे (शुशुचानाः) तेजस्वी, (ऋजीषिणः) वेगसे जानेवाले या सोमरस पीनेवाले और (भृमिं) वेगको (धमन्तः) उत्पन्न करनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (गाः) किरणोंको (या गौओंको) शत्रुके कारागृहसे (अप अवृण्वत) रिहा कर देते हैं ॥१॥

भावार्थ - रुद्रके शस्त्रास्त्र हमारी हिंसा न करें, वे हमसे दूर ही रहें तथा जिसके कारण रुद्र क्रोधित न हो, वह बुद्धि भी हमसे दूर ही रहे। हम कोई भी काम ऐसा न करें, कि जिससे रुद्र क्रोधित हो। इस प्रकार वह हमें मारनेके लिए कभी भी अपने धनुषको तैय्यार न करे अपितु हमारे प्रति उसके धनुष हमेशा शिथिल ही रहें और उस रुद्रके आश्रयमें हमारे पुत्रपौत्र सदा सुखी रहें ॥१४॥

हे जगत् को धारण करनेवाले, बलवान्, तेजस्वी, सर्वज्ञ तथा पुकारको सुननेवाले रुद्र! हमें यह उपाय या मार्ग बता, ताकि तू हम पर कभी की क्रुद्ध न हो और न हमारी हिंसा ही कर। हम भी अपने परिवारोंके साथ मिलकर तेरी उत्तम और महती स्तुति किया करें ॥१५॥

ये वीर घमासान लडाईके मोर्चेपर श्रेष्ठता सिद्धकर दिखाते हैं और वीरतापूर्ण कार्य करके बतलाते हैं। वे शत्रुको पछाड देते हैं। अपने निजी बलसे उच्च कोटिके कार्य निष्पन्न करके वंदनीय बन जाते हैं। शत्रुदल को हराकर अपहरण की हुई गौओंको छुडा लाते हैं ॥१ ॥

३३७ द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य1भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद् वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥ २ ॥

३३८ उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥ ३ ॥

३३९ पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥ ४ ॥

३४० इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभि रध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५ ॥

अर्थ- [३३७] (**स्तृभिः नः**) नक्षत्रोंसे जिस प्रकार (**द्यावः**) द्युलोक शोभित होता है उसी प्रकार (**खादिनः**) कँगनधारी वीर इन आभूषणोंसे (**चितयन्त**) सुहाते हैं। (**वृष्टयः**) बलकी वर्षा करनेहारे वे वीर (**अभ्रियाः न**) मेघमें विद्यमान बिजलीके समान (**वि द्युतयन्त**) विशेष ढंगसे द्योतमान होते हैं। (**यत्**) क्योंकि हे (**रुक्म-वक्षसः**) उरोभागपर सोनेके हार पहननेवाले (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**वः**) तुम्हें (**वृषा रुद्रः**) बलिष्ठ रुद्रने (**पृश्न्याः**) भूमिके (**शुक्रे ऊधनि**) पवित्र उदरमेंसे (**अजनि**) निर्माण किया है ॥२॥

[३३८] (**अत्यान् इव**) घुडदौडके घोडोंके समान अपने (**अश्वान्**) घोडोंको भी ये वीर (**उक्षन्ते**) बलिष्ठ करते हैं। वे (**नदस्य कर्णैः**) नाद करनेवाले, हिनहिनानेवाले (**आशुभिः**) शीघ्रगामीके सहित (**आजिषु**) युद्धोंमें चढाईके समय (**तुरयन्ते**) वेगसे चले जाते हैं। हे (**हिरण्य-शिप्राः**) सोनेके शिरस्त्राण पहने हुए (**स-मन्यवः**) उत्साही (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**दवि-ध्वतः**) शत्रुओंको हिलानेवाले तुम (**पृषतीभिः**) धब्बेवाली हिरनियोंसहित (**पृक्षं याथ**) अन्नके समीप जाते हो ॥३॥

[३३९] (**जीर-दानवः**) शीघ्र विजय पानेवाले, (**पृषत्-अश्वासः**) धब्बेवाले घोडे समीप रखनेवाले, (**अन्अवभ्र-राधसः**) जिनका धन कोई भी छीन नहीं सकता, ऐसे और (**ऋजिप्यासः न**) सीधी राहसे उन्नतिको जानेवालेके समान (**वयुनेषु**) सभी कर्मोंमें (**धूर्-सदः**) अग्रभागमें बैठनेवाले ये वीर (**पृक्षे**) अन्नदानके समय (**मित्राय सदं दा**) मित्रोंको स्थान देनेके समान (**ता विश्वा भुवना**) उन सब भुवनोंको (**आ ववक्षिरे**) आश्रय देते हैं ॥४॥

[३४०] हे (**स-मन्यवः**) उत्साही, (**भ्राजत्-ऋष्टयः**) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**इन्धन्वभिः**) प्रज्वलित, तेजस्वी (**रप्शत्-ऊधभिः**) स्तुत्य और महान् थनोंसे युक्त (**धेनुभिः**) गौओंके साथ (**अध्वस्मभिः**) अविनाशी (**पथिभिः**) मार्गोसे (**मधोः मदाय**) सोमरसजन्य आनन्दके लिए इस यज्ञके समीप (**हंसासः स्व-सराणि न**) हंस जैसे अपने निवास स्थानके समीप जाते हैं, उसी प्रकार (**आ गन्तन**) आओ ॥५॥

भावार्थ - वीरोंके आभूषण पहनने पर ये वीर बहुत भले दिखाई देते हैं और वे बिजलीके समान चमकने लगते हैं। मातृभूमिकी सेवाके लिए ही ये अस्तित्वमें आ चुके हैं ॥२॥

वीर मरुत् अपने घोडोंको पुष्टिकारक अन्न देकर, उन्हें बलवान् बना देते हैं और हिनहिनानेवाले घोडोंके साथ शीघ्र ही रणभूमिमें तुरन्त जा पहुँचते हैं। शत्रुओंको परास्त कर विपुल अन्न पाते हैं ॥३॥

ये वीर उदारचेता, अश्वारोही, धनसम्पन्न, सरलमार्गसे उन्नत बननेवालोंके समान सभी कार्य करते समय अग्रगन्ता बननेवाले हैं। अन्नका प्रदान करते समय जैसे वे मित्रोंको स्थान देते हैं उसी प्रकार सभी प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं ॥४॥

विपुल दूध देनेवाली गौओंके साथ सोमरस पीनेके लिए ये अच्छे सुघड मार्गों परसे इस यज्ञकी ओर आ जायँ ॥५॥

३४१ आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६ ॥
३४२ तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद् दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥ ७ ॥
३४३ यद् युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसो ऽश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८ ॥
३४४ यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ ९ ॥

अर्थ- [३४१] हे (**स-मन्यवः मरुतः**) उत्साही मरुतो ! (**नरां शंसः न**) शूरोंमें प्रशंसनीय वीरोंके समान (**नः ब्रह्माणि सवनानि**) हमारे ज्ञानमय सोमसत्रकी ओर (**आ गन्तन**) आ जाओ। (**अश्वां इव**) घोडीके समान हृष्टपुष्ट (**धेनुं**) गौको (**ऊधनि**) दुग्धाशयमें (**पिप्यत**) पुष्ट करो। (**जरित्रे**) उपासकको (**वाज-पेशसं**) अन्नसे भली प्रकार सुरूपता देनेका (**धियं कर्त**) कर्म करो ॥६॥

[३४२] हे (**मरुतः !**) वीर मरुतो ! हमें (**रथे वाजिनं**) रथमें बैठनेवाला वीर और (**दिवे दिवे**) हरदिन (**आपानं ब्रह्म चितयत्**) प्राप्तव्य ज्ञानका संवर्धन करनेवाला ज्ञानी पुत्र दो, तथा इस भाँति (**तं इषं**) वह अभिष्ट अन्न भी (**स्तोतृभ्यः नः दात**) हम उपासकोंको दो। (**वृजनेषु कारवे**) युद्धोंमें पराक्रम करनेहारे वीर को धनकी (**सनिं**) देन (**मेधां**) बुद्धि तथा (**अ-रिष्टं**) अविनाशी एवं (**दुस् तरं**) अजेय (**सहः**) सहनशक्ति भी दो ॥७॥

[३४३] (**यत् सु-दानवः**) जब दानशूर एवं (**रुक्म-वक्षसः मरुतः**) वक्षःस्थलपर स्वर्णसे बना हार धारण, करनेवाले वीर मरुत् (**भगे**) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए अपने (**अश्वान्**) घोडोंको (**रथेषु आ युञ्जते**) रथोंमें जोड देते हैं तब वे, (**धेनुः शिश्वे न**) जैसे गौ अपने बछडेके लिए दूध देती है ही उसी प्रकार (**रातहविषे जनाय**) हविष्यान्न देनेवाले लोगोंके लिए (**स्वसरेषु**) अनेक अपने घरोंमें ही (**मही इषं पिन्वते**) बडी भारी अन्नसमृद्धि पर्याप्त मात्रामें प्रदान करते हैं ॥८॥

[३४४] हे (**वसवः मरुतः**) बसानेवाले वीर मरुतो ! (**यः मर्त्यः**) जो मानव (**वृकताति**) भेडियेके समान क्रूर बन (**नः रिपुः दधे**) हमारे लिए शत्रु होकर बैठा हो, उस (**रिषः**) हिंसकसे (**रक्षत**) हमारी रक्षा करो (**तं**) उसे (**तपुषा**) संतापदायक (**चक्रिया**) पहिये जैसे हथियारसे (**अभि वर्तयत**) घेर डालो, हे (**रुद्राः**) शत्रुको रुलानेवाले वीरो ! (**अशसः**) अत्यधिक खानेवाले (**वध्यः**) हननीय शत्रुका (**आ हन्तन**) बध करो ॥९॥

भावार्थ- शूर सैनिकोंमें जो सबसे अधिक शूर होते है, उनका अनुकरण अन्य वीरोंको करना चाहिए इस भाँति अधिक पराक्रम करके वे सदैव सत्कर्मोंमें अपना हाथ बँटाये। परिपुष्ट घोडीके समान गौएँ भी चपल तथा पुष्ट रहें। गौओंको अधिक दुधारु बनानेकी चेष्टा करें। अन्नसे बल बढाकर शरीर प्रमाण बद्ध रहे, इसलिए भाँति भाँतिके प्रयोग करने चाहिए ॥६॥

हमें शूर, ज्ञानी, रथी तथा सत्यनिष्ठ पुत्र मिले। हमें पर्याप्त अन्न मिले। लडाईमें धीरतापूर्ण कार्यकर दिखलानेवालेको मिलने वाली देन, बुद्धिकी प्रबलता, अविनाशी और अजेय शक्ति भी हमें मिले ॥७॥

वीर युद्ध के लिये रथपर चढकर जाते हैं और उधर भारी विजय पाकर धन साथ ले आते है। पश्चात् उदार पुरुषोंको वही धन उचित मात्रामें विभक्त करके बाँट देते हैं ॥८॥

जो मनुष्य क्रूर बनकर हमसे शत्रुतापूर्ण व्यवहार करता हो, उससे हमें बचाओ। चारों ओरसे उस शत्रुको घेरकर नष्ट कर डालो ॥९॥

३४५ चित्रं तद् वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद् वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥
३४६ तान् वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥ ११ ॥
३४७ ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥ १२ ॥
३४८ ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ १३ ॥

अर्थ- [३४५] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**वः तत् चित्रं**) तुम्हारा वह आश्चर्यजनक (**याम**) हमला (**चेकिते**) सबको विदित है, (**यत्**) क्योंकि सबसे (**आपयः**) मित्रता करनेवाले तुम (**पृश्न्याः अपि ऊधः**) गौके दुग्धाशयका (**दुहुः**) दोहन करके दूध पीते हो। (**यत्**) उसी प्रकार हे (**अ-दाभ्याः**) न दबनेवाले (**रुद्रियाः !**) महावीरो ! (**नवमानस्य**) तुम्हरे उपसाकको (**निदे**) निंदा करनेहारे तथा (**त्रितं**) त्रित नामवाले ऋषिको (**जुरतां**) मारनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंके (**जराय वा**) विनाशके लिए तुम ही प्रयत्नशील हो, यह बात विख्यात है ॥१०॥

[३४६] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**एव याव्नः**) वेगसे जानेवाले (**महः**) तथा महत्त्वयुक्त ऐसे (**तान् वः**) तुम्हें हमारे (**विष्णोः**) व्यापक हितकी (**एषस्य**) इच्छाकी (**प्रभृथे**) पूर्तिके लिए (**हवा महे**) हम बुलाते हैं। (**ब्रह्मण्यन्तः**) ज्ञानकी इच्छा करनेहारे तथा (**यत-स्रुचः**) पुण्य कर्मके लिए कटि बद्ध हो उठनेवाले हम (**हिरण्यवर्णान्**) सुवर्णवत् तेजस्वी एवं (**ककुहान्**) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐसे इन वीरोंके समीप (**शस्यं राधः**) सराहनीय धनकी (**ईमहे**) याचना करते हैं ॥११॥

[३४७] (**दश-ग्वाः**) दश मास तक यज्ञ करनेवाले तथा (**प्रथमाः**) अद्वितीय ऐसे (**ते**) उन वीरोंने (**यज्ञं ऊहिरे**) यज्ञ किया। (**ते**) वे (**नः**) हमें (**उषसः व्युष्टिषु**) उषःकालके प्रारंभमें (**हिन्वन्तु**) प्रेरणा दें। (**उषाः न**) उषा जिस प्रकार (**अरुणैः**) रक्तिम किरणोंसे (**रामीः**) अँधेरी रात्रीको आच्छादित करती है, वैसे ही वे वीर (**महः**) बडे (**शुचता**) तेजस्वी (**गो अर्णसा**) किरणोंके तेजसे (**ज्योतिषा**) प्रकाशसे सारा संसार (**अप ऊर्णुत**) ढक देते हैं ॥१२॥

[३४८] (**रुद्राः ते**) शत्रुओंको रुलानेवाले वे वीर (**क्षोणीभिः**) चकनाचूर किये हुए (**अरुणेभिः न**) केसरियाके समान पीतवर्णवाले (**अञ्जिभिः**) वस्त्रालंकारोंसे युक्त होकर (**ऋतस्य**) उदकयुक्त (**सदनेषु**) घरोंमें (**वावृधुः**) बढे। उसी प्रकार (**नि-मेघमानाः**) पूर्णतया स्नेहपूर्वक मिलकर कार्य करनेवाले वे (**अत्येन पाजसा**) अपने वेगयुक्त बलसे (**सु चन्द्रं**) अत्यन्त आह्लाददायक एवं (**सु-पेशसं**) अति सुन्दर (**वर्णं**) कान्तिका (**दधिरे**) धारण करते हैं ॥१३॥

भावार्थ- वीर सैनिक शत्रुदल पर जब धावा करते हैं, तो उस चढाईको देखकर प्रेक्षक अचम्भेमें आते हैं। ये वीर गोदुग्धको पीते हैं और अपने अनुयायिओंकी रक्षा करते हैं, अतः वे शत्रुओं तथा निन्दकोंसे बिलकुल नहीं डरते हैं ॥१०॥

वीरोंको बुलानेमें हमारा यही अभिप्राय है कि वे हमारे सार्वजनिक हितकी जो अभिलाषाएं हैं उन्हें पूर्ण करनेमें सहायता दें। हम ज्ञान पानेकी अभिलाषा करते हैं और एतदर्थ हम प्रयत्नशील भी हैं इसलिए हम इन श्रेष्ठ वीरोंके निकट जाकर उनसे प्रशंसनीय धन माँग रहे है। वे हमारी इच्छा पूर्ण करें ॥११॥

ये वीर वर्षमें दस महीने यज्ञकर्म करनेमें बिताते हैं। ये हमें प्रतिदिन सत्कर्मकी प्रेरणा दें अर्थात् इनके चारित्र्यको देखकर हमारे दिलमें प्रति पल सत्कर्मकी प्रेरणा होती रहे। ये वीर अपने पवित्र तेजसे द्योतमान रहते हैं ॥१२॥

इन वीरोंके वस्त्राभूषण पीले रंगमें रँगे हुए हैं। जिधर जल विपुलतया मिलता हो, उधर ही ये रहते हैं। प्रीतिपूर्वक मिलकर रहनेवाले ये अपने वेग एवं बलसे वीरताके कार्य करते रहते हैं, इसलिए बहुत तेजस्वी दीख पडते हैं ॥१३॥

३४९ ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान् पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥ १४ ॥

३५० यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊति—रो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥

[३५]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । देवता- अपांनपात् । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३५१ उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥ १ ॥

अर्थ- [३४९] (**यान् अवरान्**) जिन अत्यन्त श्रेष्ठ (**पंच होतॄन्**) पांच याजकों तथा वीरोंको (**चक्रिया**) चक्की शक्लवाले हथियारसे (**अवसे**) रक्षण करनेके लिए (**अभीष्टये न**) तथा अभीष्ट पूर्तिके लिए (**त्रितः**) ऋषि (**आववर्तत्**) अपने पास बुलाया था, (**तान्**) उनके समीप (**ऊतये**) संरक्षणके लिए (**महि वरूथं**) बडा त्रितने आश्रयस्थान (**इयानः**) मांगनेवाले हम (**एना नमसा**) इस नमस्कारसे (**उप इत्**) समीप जाकर उनकी (**गृणीमसि**) प्रशंसा करते हैं ॥१४॥

[३५०] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**यया**) जिसकी सहायतासे तुम (**रध्रं**) उपासकको (**अंहः**) पापके (**अति पारयथ**) पार ले जाते हो, (**यया**) जिससे (**वन्दितारं**) वन्दन करनेवालेको (**निदः मुंचथ**) निन्दा करनेवालेसे छुडाते हो, (**या वः ऊतिः**) जो इस भांति तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्ति है, (**सा अर्वाची**) वह हमारी ओर आवे और तुम्हारी (**सुमतिः**) अच्छी बुद्धि (**वाश्रा इव**) रंभानेवाली गौके समान (**ओ सु जिगातु**) अच्छी तरह हमारे पास आए ॥१५॥

[३५]

[३५१] (**वाजयुः**) अन्न और बलकी इच्छा करनेवाला मैं (**ईं वचस्यां उप असृक्षि**) इस स्तुतिको प्रकट करता हूँ। वह (**नाद्यः आशु हेमा अपांनपात्**) नदियोंसे उत्पन्न तथा शीघ्र जानेवाला अपांनपात् देव (**मे गिरः कुवित् जोषिषत्**) मेरी स्तुतियोंको अनेक बार सुनता हुआ (**चनं दधीत**) अन्नको धारण करे तथा (**सः सुपेशसः करति**) वह देव हमें उत्तम रूपवान करे ॥१॥

भावार्थ- ये मरुत् वीर स्वयं यज्ञ करनेवाले हैं और अपने अनुयायियोंकी रक्षाका भार अपने उपर लेनेवाले हैं। हम उनसे अपनी रक्षाकी अपेक्षा करते हैं, इसलिए हम उन्हें नमन करके उनकी प्रशंसा करते हैं ॥१४॥

हे मरुतो ! तुममें विद्यमान जिन संरक्षण शक्तियोंकी सहायतासे तुम उपासकोंको पापोंसे बचाते हो, निन्दक लोगोंसे बचाते हो, उस तुम्हारे संरक्षणकी छत्रछायामें हम रहें और उत्तम बुद्धिसे लाभ उठायें ॥१५॥

मैं इस अपांनपात्की स्तुति करता हूँ, वह हमें अन्नादि देकर तथा पुष्ट करके हमें रूपवान् करे। यह अपांनपात् अग्निका ही एक रूप है। क्योंकि जलसे औषधियां उत्पन्न होती हैं और औषधियोंसे अग्नि उत्पन्न होती है, इस प्रकार अग्नि जलका नाती है ॥१॥

३५२ इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥
३५३ समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमु शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥
३५४ तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥
३५५ अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [३५२] मैं (**अस्मै**) इस अपांनपात् देवके लिए (**हृदः सुतष्टं**) हृदयसे बनाये गए (**इमं मंत्रं वोचेम**) इस मंत्रका गान करूं, वह (**अस्य कुवित् वेदत्**) इस हमारे मंत्रको अच्छी तरह जाने। (**अर्यः अपांनपात्**) सबके स्वामी इस अपांनपात्ने (**असुर्यस्य मह्ना**) असुरोंको नष्ट करनेवाली अपनी शक्तिकी महिमासे (**विश्वानि भुवना जजान**) सभी भुवनोंको उत्पन्न किया ॥२॥

१ **असुर्यस्य मह्ना विश्वानि भुवना जजान-** इस अपांनपात् देवने असुरोंको नष्ट करनेवाली अपनी शक्तिकी महिमासे सभी लोकोंको पैदा किया।

[३५३] (**अन्याः सं यन्ति**) दूसरे प्रकारके जल पास आते हैं और (**अन्याः उप यन्ति**) दूसरे प्रकारके जल दूर चले जाते हैं और तब (**नद्यः समानं ऊर्वं पृणन्ति**) नदियां मिलकर समुद्रको भरती हैं। (**शुचयः आपः**) वे शुद्ध और पवित्र जल (**तं शुचिं दीदिवांसं अपां नपातं परि तस्थुः**) उस पवित्र और तेजस्वी अपांनपात् देवको चारों ओरसे घेर लेते हैं ॥३॥

[३५४] जिस प्रकार (**अस्मेराः युवतयः युवानं**) अभिमानसे रहित युवतियां तरुण पुरुषको सजाती है, उसी प्रकार (**तं मर्मृज्यमानाः आपः**) उस अपां नपात् देवको शुद्ध करनेवाले जल (**परि यन्ति**) चारों ओर बहते हैं। (**घृतनिर्णिक् सः**) तेजस्वी रूपवाला वह देव (**अप्सु अनिध्मः दीदाय**) जलोंमें ईंधनसे रहित होकर भी तेजस्वी होता है। वह (**शुक्रेभि) शिक्वभिः**) प्रदीप्त तेजोंसे (**अस्मे रेवत्**) हमें धन प्रदान करे ॥४॥

१ **सः अप्सु अनिध्मः दीदाय-** वह अपां नपात् देव जलोंमें इंधनसे रहित होकर भी प्रदीप्त होता रहता है।

[३५५] (**नारीः तिस्रः देवीः**) आगे ले जानेवाली तीन देवियां (**अव्यथ्याय अस्मै देवाय**) दुःख न देनेवाले इस अपांनपात् देवके लिए (**अन्नं दिधिषन्ति**) अन्नको धारण करती हैं। (**अप्सु कृताः इव उप प्रसर्स्रे**) पानीमें चलने के समान ये देवियां आगे चलती है और (**पूर्वसूनां**) पहलेसे उत्पन्न जलोंके (**पीयूषं**) अमृतको (**सः धयति**) वह अपां नपात् देव पीता है ॥५॥

भावार्थ- मैं इस अपांनपात् देवकी हृदयसे स्तुति करता हूँ, वह इस स्तुतिको अच्छी तरह जाने। वह सब लोकोंका स्वामी है और वह अपनी शक्तिसे लोकोंको प्रकट करता है ॥२॥

दूसरे प्रकारके जल अर्थात् बरसातका पानी ऊपरसे गिरकर भूमिसे संयुक्त होता है और दूसरे प्रकारका जल भाप बनकर इस पृथ्वीसे ऊपर चला जाता है, फिर वहांसे गिर कर वह पानी नदियोंमें चला जाता है और वे नदियां समुद्रको भरती रहती हैं। वे जल पवित्र और तेजस्वी हैं और वे सब अपां नपात् देवको चारों ओरसे घेरे रहते हैं ॥३॥

जिस प्रकार सेवा करनेवाली युवतियां किसी तरुणको अलंकृत करती हैं, उसी प्रकार जल भी अपां नपात् देवको शुद्ध और अलंकृत करते हैं। वह देव जलोंमें ईंधनसे रहित होकर भी प्रदीप्त होता है। वह देव अपने तेजोंसे हमें ऐश्वर्य प्रदान करे ॥४॥

आगे ले जानेवाली इडा, सरस्वती और भारती ये तीन देवियां दुःख न देनेवाले इस अपां नपात् देवको अन्न देती हैं और जिस प्रकार कोई पदार्थ जलके प्रवाहमें पडकर आसानीसे आगे बढ जाता है, उसी प्रकार ये तीनों देवियां भी आगे बढती हैं और अपां नपात् जलोंके सारभूत पीयूष या अमृतको पीता है ॥५॥

३५६ अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्व१र्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६ ॥
३५७ स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ७ ॥
३५८ यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥
३५९ अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥ ९ ॥

अर्थ- [३५६] (**अत्र अश्वस्य जनिम**) इस अपां नपात् देवसे ही घोडेका जन्म होता है, (**अस्य स्वः च**) इसीसे सुख भी प्राप्त होता है। ऐसा वह देव (**रिषः द्रुहः संपृचः सूरीन् पाहि**) हिंसकों और द्रोह करनेवाले के सम्बन्धसे विद्वानोंकी रक्षा करे। (**आमासु पूर्षु परः**) कच्चे जल जिसमें भरे रहते हैं, ऐसे मेघोंके उसपार रहनेवाले (**अप्रमृष्यं**) न मार जानेवाले देवको (**अरातयः न नशन्**) शत्रु नहीं मार सकते तथा (**अनृतानि न**) झूठ बोलनेवाले भी नहीं मार सकते ॥६॥

[३५७] जो (**अपां नपात् स्वे दमे आ**) अपां नपात् देव अपने स्थानमें रहता है, (**यस्य धेनुः सुदुघा**) जिसकी गाय आसानीसे दुही जा सकती है, वह देव (**स्वधां पीपाय**) अन्नकी वृद्धि करता है, तथा (**सुभु अन्नं अत्ति**) उस उत्तम अन्नको खाता भी है। (**सः अप्सु अन्तः ऊर्जयन्**) वह जलोंके बीचमें बल प्रकट करता हुआ (**विधते वसुदेयाय वि भाति**) सेवा करनेवालेको धन प्रदान करनेके लिए विशेष रूपसे प्रकाशित होता है ॥७॥

[३५८] (**अप्सु**) जलोंमें रहनेवाला (**ऋतावा**) जलोंको धारण करनेवाला (**अजस्र**) अविनाशी तथा (**उर्विया**) अत्यन्त विस्तृत यह देव (**शुचिना दैव्येन**) पवित्र ओर दैवी तेजसे (**आ वि भाति**) चारों ओर प्रकाशित होता है। (**अस्य अन्या भुवनानि वया इत्**) इसके दूसरे लोक शाखाओंके समान हैं। (**प्रजाभिः वीरुधः प्र जायन्ते**) प्रजाओंके साथ वनस्पतियां इसीसे उत्पन्न होती हैं।

[३५९] यह (**अपां नपात्**) अपां नपात् देव (**विद्युतं वसानः**) विद्युत्से आच्छादित होकर (**जिह्मानां ऊर्ध्वः उपस्थं ह्यस्थात्**) कुटिल गतिसे चलनेवाले जलोंके ऊपर अन्तरिक्षमें रहता है। (**यह्वीः हिरण्यवर्णाः**) बडी बडी नदियां (**तस्य ज्येष्ठं महिमानं**) उस देवकी बडी महिमाको (**वहन्ती**) ढोती हुई (**परि यन्ति**) चारों ओर बहती हैं ॥९॥

भावार्थ- अपांनपात् अर्थात् अग्नि देव जिसके शरीरमें उत्तम रीतिसे रहते हैं, वह मनुष्य अत्र अर्थात् घोडेके समान शक्तिशाली होता है और वही जीवनका सुख प्राप्त कर सकता है। वह देव विद्वानोंको द्रोह करनेवाले और हिंसकोंसे बचाता है। वही अपांनपात् देव बिजलीके रूप मेघमण्डलमें रहता है, उसका कोई नाश नहीं कर सकता ॥६॥

यह अपांनपात् देव विद्युतके रूपमें अन्तरिक्षमें रहता है और इस विद्युत्की किरणोंसे पानीको आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है, उस वृष्टिसे अन्नकी वृद्धि होती है और उस अन्नको मनुष्यके शरीरमें जठराग्नि के रूपमें स्थित यह अपांनपात् देव खाता है। जलोंके बीचमें स्थित यह देव स्तोताके लिए जल बरसाकर अनेक तरहके धन प्रदान करता है ॥७॥

जलोंमें रहनेवाला, जलोंको धारण करनेवाला अविनाशी तथा अत्यन्त विस्तृत यह देव पवित्र और दैवी तेजसे चारों ओर प्रकाशित होता है। दूसरे सभी भुवन इस देवकी शाखायें हैं और सभी वनस्पतियां इसी देवसे उत्पन्न होती हैं और उस अन्नसे प्रजायें उत्पन्न होती हैं ॥८॥

यह अपां नपात् देव विद्युत्से आच्छादित होकर कुटिल गतिसे चलनेवाले जलोंके ऊपर अन्तरिक्षमें रहता है। वह जब जल बरसाता है, तब उससे बडी बडी नदियां प्रवाहित होती हैं और सोने के समान तेजसे युक्त नदियां इस देवकी महान् महिमाको गाती हुई बहती हैं ॥९ ॥

३६० हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात् सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात् परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥ १० ॥
३६१ तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥ ११ ॥
३६२ अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥
३६३ स ईं वृषाजनयत् तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष । ॥ १३ ॥

अर्थ- [३६०] (**सः अपां नपात् हिरण्यरूपः**) वह अपां नपात् देव सोनेके समान रूपवाला, (**हिरण्यसंदृक्**) सोनेके समान आंखोंवाला तथा (**हिरण्यवर्णः**) सोनेके समान वर्णवाला है, वह (**हिरण्ययात् योनेः परिनिषद्य**) सोनेके समान तेजस्वी स्थानपर बैठकर प्रज्वलित होता है, तथा (**हिरण्यदाः अस्मैअन्नं ददति**) सोनेको देनेवाले मनुष्य इस देवके लिए अन्न प्रदान करते है ॥१०॥

[३६१] (**अस्य अपां नप्तुः**) इस अपां नपात् देवकी (**तत् अनीकं**) वे किरणें (**उत**) और (**नाम चारु**) नाम सुन्दर हैं, वह (**अपीच्यं वर्धते**) मेघमें रहकर बढता है। (**यं हिरण्यवर्णं इत्था**) जिसके सोनेके समान तेजस्वी वर्णवाले देवको इस प्रकार (**युवतयः सं इन्धते**) युवतियां प्रज्जवलित करती हैं, (**अस्य अन्नं घृतं**) उस देवका अन्न घी है ॥११॥

[३६२] (**बहूनां अवमाय**) बहुतोंमें श्रेष्ठ (**सख्ये**) मित्रके समान हितकारी (**अस्मै**) इस अपां नपात्‌की हम (**यज्ञैः नमसा हविभिः विधेम**) यज्ञोंसे, नमस्कारोंसे और हवियोंसे सेवा करते हैं। (**सानु सं मार्ज्मि**) वेदिमें इसे शुद्ध करता हूँ (**बिल्मैः दिधिषामि**) समिधाओंसे प्रदीप्त करता हूँ, (**अन्नैः दधामि**) अन्नोंसे धारण करता हूं और (**ऋग्भिः परि वन्दे**) ऋचाओंसे इस देवकी वन्दना करता हूँ ॥१२॥

[३६३] (**सः ईं वृषा**) वह यह बलवान् अपां नपाते देव (**तासु गर्भं अजनयत्**) उन मेघस्थ पानियोंमें गर्भ स्थापित करता है, (**सः ईं शिशुः धयति**) वह यह बच्चा उसे पीता है, (**तं रिहन्ति**) उसे फिर यह जल चाटते हैं। (**सः अपां नपात्**) वह अपां नपात् देव (**अनभिम्लातवर्णः**) अत्यन्त प्रदीप्त वर्णवाला होकर (**इह अन्यस्य इव तन्वा विवेष**) यह इस भूमिपर दूसरे शरीरके रूपमें व्याप्त होता है ॥१३॥

भावार्थ- यह अपां नपात् रूप अग्नि सोनेके समान तेजस्वी शरीरवाला, सोनेके समान तेजस्वी इन्द्रियोंवाला तथा सोनेके समान तेजस्वी रंगवाला है। यह स्वर्णके समान तेजस्वी स्थान वेदीमें बैठकर प्रज्जवलित होता है और सोनेको दानमें देनेवाला धनी मनुष्य इसे घी रूपी अन्न प्रदान करता है ॥१०॥

इस देवकी किरणें और नाम सुन्दर हैं। चमकीली किरणें तथा "न गिरानेवाला" यह नाम दोनों ही सुन्दर हैं। यह देव विद्युत् रूपमें बादलोंके अन्दर रहकर बढता रहता है। युवतियां अर्थात् उंगलियां इस देवको बढाती हैं, उस देवका भोजन घी है ॥११॥

यह अपां नपात् देव अनेकों देवोंमें बहुत मुख्य है और मित्रोंके समान यह हित करनेवाला है, अतः यज्ञों, नमस्कारों और हवियोंके द्वारा यह पूज्य है ॥१२॥

वीर्य सेवनमें समर्थ वह अपां नपात् देव सूर्यके रूपमें इन मेघोंमें जलरूपी वीर्य स्थापित करके उन्हें पानीसे भरपूर करके मानों उन्हें गर्भसे युक्त बनाता है। तब उन मेघोंके परस्पर संघर्षसे उनका पुत्र रूप विद्युत् रूपी अग्नि उत्पन्न होता है, और वह पुत्र अर्थात् विद्युत् मेघोंमें रहकर पानी पीता रहता है, और जल भी उस विद्युत्‌का चारों ओरसे घेरे रहते हैं। यही अपां नपात् देव दूसरा रूप धारण करके अर्थात् भौतिक अग्नि बनकर इस पृथ्वीमें व्याप्त होता है ॥१३॥

३६४ अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांस—मध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥ १४ ॥

३६५ अयांसमग्ने सुक्षितिं जनाया—यांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

[३६]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- ऋतुदेवताः- १ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नभश्च ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च । छन्दः- जगती ।]

३६६ तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपो ऽधुक्षन् त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥ १ ॥

अर्थ- [३६४] (**यह्वीः आपः**) महान् जल (**अत्कैः**) अपने हमेशा बहनेवाले रूपोंसे (**नप्त्रे**) इस अपां नपात् देवके लिए (**घृतं अन्नं वहन्तीः**) जलरूपी अन्नको ढोती हुई या ले जाती हुई (**अस्मिन् परमे पदे तस्थिवांसं**) इस उत्तम स्थानपर बैठे हुए (**अध्वस्मभिः विश्वहा दीदिवांसं**) अपने अविनाशी तेजोंसे सदा प्रदीप्त होनेवाले इस देवके (**परि दीयन्ति**) चारों ओर चलते हैं ॥१४॥

[३६५] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**सुक्षितिं अयांसं**) उत्तम रीतिसे निवास करनेवाले तेरे पास मैं आता हूँ, (**मघवद्भ्यः सुवृक्ति अयांसं**) ऐश्वर्यशालियोंसे उत्तम व्यवहार प्राप्त करूं, (**यत् देवाः अवन्ति**) जिसकी देवगण रक्षा करते हैं, (**तत् विश्वं भद्रं**) वह सभी कल्याण हमें प्राप्त हों, तथा हम भी (**सुवीराः**) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त होकर (**विदथे**) यज्ञमें (**बृहत् वदेम**) इन देवोंका गुणगान करें ॥१५॥

१ **मघवद्भ्यः सुवृक्ति अयांसं-** ऐश्वर्यवानोंसे मैं उत्तम व्यवहार प्राप्त करूं।

२ **यत् देवाः अवन्ति तत् विश्वं भद्रं-** जिसकी देवगण रक्षा करते हैं, वह सभी कल्याण हमें प्राप्त हों।

[३६]

[३६६] (**तुभ्यं हिन्वानः**) तुझे प्रेरणा देता हुआ यह सोम (**गाः अपः वसिष्ट**) गौ और जलोंसे अच्छादित होता है। (**नरः**) यज्ञ करनेवाले (**सीं अद्रिभिः**) इस सोमको पत्थरोंसे कूटकर (**अविभिः अधुक्षन्**) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे (**अधुक्षन्**) छानते हैं। हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**यः ईशिषे**) क्योंकि सबपर शासन करता है, इसलिए (**प्रथमः**) सबसे पहले तू ही (**स्वाहा प्रहुतं**) स्वाहाके शब्दके साथ अग्निमें डाले गए, (**वषट्कृतं**) वषट्कारपूर्वक समर्पित किए गए (**सोमं**) सोमको (**होत्रात् आ पिब**) यज्ञमें आकर पी ॥१॥

भावार्थ- ये महान् जल इस देवके लिए हमेशा जलरूपी भोजन प्रदान करते हैं। तथा उत्तम स्थानमें स्थित तथा तेजोंसे युक्त इस देवके चारों ओर बहते रहते हैं ॥१४॥

हे अग्ने ! मैं सदा तेरी शरणमें आता हूं। तेरी कृपासे ऐश्वर्यशाली भी मुझसे अच्छा व्यवहार करें और देवगणभी जिसकी रक्षा करते हैं, उन सभी कल्याणोंको हम प्राप्त करें। उत्तम सन्तानोंसे युक्त होकर हम यज्ञमें देवोंका गुणगान करें ॥१५॥

पत्थरोंसे कूटकर और भेडके बालोंकी छलनीसे छना गया यह सोम पानी और गाय के दूधमें मिलाया जाता है, तब वह इन्द्रको उत्साहित करता है। इस सोमको पीनेका सबसे पहला अधिकारी इन्द्र ही है, क्योंकि वही सबपर शासन करता है ॥१॥

३६७ यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभि—र्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥

३६८ अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धस—स्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥

३६९ आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चो—शन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४ ॥

३७० एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृत—स्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥ ५ ॥

अर्थ- [३६७] (**यज्ञैः संमिश्लाः**) यज्ञ जैसे उत्तम कार्यमें सहायता देनेवाले (**पृषतीभिः यामन्**) चितकबरी घोडियोंसे सर्वत्र जानेवाले (**ऋष्टिभिः शुभ्रासः**) शस्त्रास्त्रोंसे सुशोभित (**उत अञ्जिषु प्रियाः**) आभूषणोंसे प्रेम करनेवाले, (**भरतस्य सूनवः**) भरणपोषण करनेवाले देवके पुत्र तथा (**दिवः नरः**) तेजस्वी नेता मरुतो ! (**बर्हिः आसद्य**) यज्ञमें बैठकर (**पोत्रात् सोमं आ पिबत**) बर्तनसे सोमको पीओ ॥२॥

[३६८] (**सु हवाः**) हे उत्तम रीतिसे बुलाये जाने योग्य मरुतो ! तुम (**अमा इन नः गन्तन**) बलसे युक्त होकर हमारे पास आओ, (**बर्हिषि नि सदतन**) इन आसनोंपर बैठो और (**रणिष्टन**) आनन्दसे शब्द करो। हे (**त्वष्टः**) त्वष्टा देव ! तू (**सुमत् गणः**) उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर (**जनिभिः देवेभिः**) सबको पैदा करनेवाले देवोंके साथ (**अन्धसः जुजुषाणः**) सोमरूपी अन्नको खाता हुआ (**मन्दस्व**) आनन्दित हो ॥३॥

[३६९] हे (**विप्र**) विद्वान् अग्ने ! तू (**देवान् इह वक्षि**) देवोंको इस यज्ञमें बुला ला और (**यक्षि च**) उनकी पूजा कर, हे (**होतः**) यज्ञ करनेवाले अग्ने ! (**उशन्**) हमारे यज्ञकी इच्छा करता हुआ तू (**त्रिषु योनिषु नि सद**) तीनों लोकोंमें प्रतिष्ठित हो, (**प्रस्थितं सोम्यं प्रति वीहि**) तैय्यार किए गए सोमरसकी तू इच्छा कर और (**आग्नीध्रात् मधु पिब**) यज्ञके पात्रसे मीठे सोमको पी तथा (**तव भागस्य तृप्णुहि**) अपने भागसे तू तृप्त हो ॥४॥

[३७०] हे इन्द्र ! (**एषः स्यः**) यह सोम (**ते तन्वः नृम्णवर्धनः**) तेरे शरीर और बलको बढानेवाला है, इसी सोमके कारण (**प्रदिवि बाह्वोः सहः ओजः हितः**) अत्यन्त तेजस्वी तेरी बाहुओंमें बल और ओज स्थित है। हे (**मघवन्**) इन्द्र ! यह सोम (**तुभ्यं सुतः**) तेरे लिए निचोडा गया है और (**तुभ्यं आभृतः**) तेरे लिए ही लाया गया है, (**त्वं ब्राह्मणात् अस्य पिब**) तू ज्ञानीके द्वारा प्रदान किए गए इस सोमको पी और (**तृपत्**) तृप्त हो ॥५॥

भावार्थ- यह मरुत यज्ञ जैसे उत्तम कामोंमें ही मनुष्यकी सहायता करते हैं, ये हमेशा धब्बेवाली चितकबरी घोडियोंपर बैठकर सर्वत्र घूमते हैं, शस्त्रास्त्रोंको सदा धारण किए रहते हैं, आभूषणोंसे इन्हें प्रेम है, ये संसारका भरणपोषण करनेवाले देवके पुत्र हैं और तेजस्वी नेता हैं ॥२॥

हे उत्तम रीतिसे बुलाये जाने योग्य मरुतो ! तुम बलके सहित इस आसनपर बैठकर आनन्दित होओ और त्वष्टा भी उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर सोमको पीकर आनन्दित हो ॥३॥

हे ज्ञानवान् अग्ने ! तू देवोंको इस यज्ञमें बुलाकर उनका सत्कार कर और तू भी इसमें सोमपान करनेकी इच्छा करता हुआ इस मीठे सोमको पी ॥४॥

इस सोमके कारण इन्द्रके शरीरमें बल रहता है और उसकी भुजाओंमें तेज, ओज और बल भी रहता है। वह इस सोमरस को पीकर तृप्त होता है ॥५ ॥

३७१ जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥

[३७]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- ऋतुदेवताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनौ ऋतवश्च, ६ अग्निः ऋतुश्च । छन्दः- जगती ।]

३७२ मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसो ऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥

३७३ यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥

अर्थ- [३७१] हे (**राजाना**) अत्यन्त तेजस्वी मित्र और वरुण तुम दोनों (**यज्ञं जुषेथां**) यज्ञका सेवन करो, (**हवस्य बोधतं**) हमारी प्रार्थना को समझो, (**मे होता**) मेरा होता (**सत्तः**) यज्ञमें बैठकर (**पूर्व्याः निविदः अनु**) उत्तम उत्तम स्तोत्रोंका गान करता है। हे देवो! (**आवृतं नमः**) दूधसे अच्छी तरह घिरा हुआ यह सोमरूपी अन्न (**अच्छ एति**) तुम्हारी तरफ आ रहा है, तुम दोनों (**प्रशास्त्रात्**) उत्तम स्तुति करनेवालेके द्वारा दिए गए (**मधु सोम्यं आ पिबतं**) मधुर सोमको पीओ ॥६॥

[३७]

[३७२] हे (**द्रविणोदः**) धन प्रदान करनेवाले देव! तू (**होत्रात्**) होताके द्वारा दिए गए इस (**अन्धसः अनु जोषं**) सोमरसरूपी अन्नको प्रसन्नतापूर्वक पीकर (**मन्दस्व**) आनन्दित हो, हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्युगण! (**सः**) वह द्रविणोदा देव (**पूर्णां आ सिचं वष्टि**) पूरी तरह भरी हुई आहुतिको चाहता है, अतः (**तस्मै एतं भरत**) उसके लिए यह सोमरस प्रदान करो, (**तत् वशः**) सोमकी इच्छा करनेवाला वह देव भी तुम्हें (**ददिः**) धन देगा। हे देव! (**होत्रात्**) होताके द्वारा दिए गए इस (**सोमं**) सोमरसको (**ऋतुभिः पिब**) ऋतुओंके साथ मिलकर पी ॥१॥

[३७३] (**यं उ पूर्वं अहुवे**) जिस देवकी मैंने पहले प्रार्थना की थी, (**इदं तं हुवे**) अब भी उसकी प्रार्थना करता हूँ। (**यः नाम ददिः**) जो निश्चयसे भक्तोंको धन देनेवाला है, (**स इत् उ हव्यः**) वही प्रार्थना के योग्य होता है। (**पत्यते**) उसी रक्षण करनेवाले देवके लिए (**अध्वर्युभिः मधु सोम्यं प्रस्थितं**) अध्वर्युओंके द्वारा मीठा सोम तैय्यार किया गया है, हे (**द्रविणोदः**) धन देनेवाले देव! तू (**पोत्रात् सोमं ऋतुभिः पिब**) पोत्रसे सोमको ऋतुओंके साथ पी ॥२॥

१ **यं उ पूर्वं अहुवे, इदं तं हुवे-** जिसकी मैंने पहले प्रार्थना की थी, उसकी प्रार्थना अब भी करता हूँ।

२ **यः नाम ददिः सः इत् हव्यः-** जो धनको देनेमें उदार है, उसीकी प्रार्थना करनी चाहिए।

भावार्थ- हे तेजस्वी मित्र और वरुण! तुम दोनोंके लिए मेरा होता यज्ञमें बैठकर स्तुति करता है, तुम्हारे लिए वह गायके दूधसे मिश्रित सोम प्रदान करता है, उसे पीकर तुम तृप्त होओ ॥६॥

हे धन प्रदान करनेवाले देव! तू इस सोमरसको पीकर आनन्दित हो और सोम प्रदान करनेवालेको हर तरहके धन प्रदान कर ॥१॥

यह धनको देनेवाला देव सनातन है, अतः पहले भी मैं इसी देवकी प्रार्थना करता था और आज भी उसकी प्रार्थना करता हूँ। जो धन देनेमें उदार देव हो उसीसे मांगना चाहिए, उसीकी स्तुति करनी चाहिए, कंजूससे मनुष्य कभी धन न मांगे, न उसकी स्तुति करें ॥२॥

३७४ मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे ऽरिषण्यन् वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥
३७५ अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥
३७६ अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥
३७७ जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन् देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥

अर्थ- [३७४] हे **(द्रविणोदः)** धनके प्रदाता देव ! **(यैः ईयसे)** जिनसे तुम जाते हो, **(ते मेद्यन्तु)** वे तुम्हारे घोडे तृप्त हों। हे **(वनस्पते)** वनस्पतियोंके देव ! **(अरिषण्यन् वीळयस्व)** तू हमारी हिंसा न करते हुए हमें शक्तिशाली बना। हे **(धृष्णो)** शत्रुओंके नाशक देव ! **(त्वं आयूय)** तू आकर और **(अभिगूर्त्य)** खडा होकर **(नेष्ट्रात्)** यज्ञ कर्ताके द्वारा दिए गए **(सोमं)** सोमको **(ऋतुभिः पिब)** ऋतुओंके साथ पी ॥३॥

[३७५] **(द्रविणोदाः)** जिस धनके प्रदाता देवने **(होत्रात् अपात्)** होत्रसे **(हितं प्रयः)** हितकारक अन्नको पिया, **(उत पोत्रात् अमत्त)** पोत्रसे पीकर आनन्दित हुआ और **(नेष्ट्रात् अजुषत)** नेष्ट्रसे सोमको पिया, वह **(द्राविणोदसः)** द्रविण अर्थात् धन देनेवाला देव **(अमृक्तं अमर्त्यं तुरीयं पात्रं)** अच्छी तरह छाने गए अमरता देनेवाले चौथे पात्रमें रखे हुए सोमको **(पिबतु)** पीवे ॥४॥

[३७६] हे अश्विनौ ! **(अद्य)** आज **(यय्यं)** वेगसे जानेवाले **(नृवाहनं)** तुम जैसे नेताको ले जानेवाले **(इह वां विमोचनं)** यहां इस यज्ञमें तुम्हें छोडनेवाले **(रथं)** रथको **(अर्वाचं युंजाथां)** हमारी तरफ आनेके लिए जोडो और **(आ गतं)** आ जाओ तथा आकर **(हवींषि मधुना पृंक्त)** हमारी हवियोंको मिठाससे युक्त कर दो। तथा **(वाजिनीवसू)** हे बलकारक अन्न देवकर सबको बसानेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनों **(सोमं पिबतं)** सोम पियो ॥५॥

[३७७] हे **(अग्ने)** प्रकाशक देव ! **(समिधं जोषि)** हमारे द्वारा दी गई समिधाओंका सेवन कर, **(आहुतिं जोषि)** आहुतियोंका सेवन कर, **(जन्यं ब्रह्म जोषि)** मनुष्योंका हित करनेवाले ज्ञानका सेवन कर तथा **(सुष्टुतिं जोषि)** उत्तम स्तुतिका सेवन कर। हे **(वसो)** सबको बसानेवाले अग्ने ! तू **(उशतः महः विश्वान् देवान्)** सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले बडे बडे सभी देवोंको **(हविः पायय)** सोम पिला और **(उशन्)** सोम पीने की इच्छा करते हुए स्वयं भी **(ऋतुना विश्वेभिः)** ऋतुके और सम्पूर्ण देवताओंके साथ पी ॥६॥

भावार्थ- हे धनके प्रदाता देव ! तुझे ले जानेवाले घोडे भी तृप्त हों, तू हमारी हिंसा न करते हुए हमें शक्तिशाली बना और दृढ कर। तथा तू भी आनन्दित हृदयसे सोम पी ॥३॥

इस धनको प्रदान करनेवाले देवने सभी तरहका सोम पिया। वह देव अमरता देनेवाले सोमको पीनेके कारण ही शक्तिशाली है ॥४॥

हे अश्विनौ ! वेगसे जानेवाले तथा उत्तम मार्गसे जानेवाले अपने रथको जोडकर हमारी तरफ आओ और हमारी हवियोंको मिठाससे युक्त करो और तुम भी हमारे द्वारा दिए गए सोम पीकर तृप्त होओ ॥५॥

हे अग्ने ! तू हमारे द्वारा दी गई समिधाओं और ज्ञानपूर्वक किए गए स्तोत्रोंका सेवन कर। जो बडे बडे देव गण सोम पीनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें तू पिला और स्वयं भी तू सोम पी ॥६॥

[३८]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । देवता- सविता । छन्दः- त्रिष्टुप्] ।

३७८ उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्न- मथाभजद् वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ॥

३७९ विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन् ॥ २ ॥

३८० आशुभिश्चिद्यान् वि मुचाति नून- मरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्या- मनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥

---

[३८]

अर्थ- [३७८] (तत् अपाः) वह कर्म करनेवाला (वह्निः) सब जगत्को धारण करनेवाला (स्यः देवः सविता) वह तेजस्वी देव सविता (सवाय) सबको कर्मकी तरफ प्रेरित करनेके लिए (शश्वत्तमं अस्थात्) प्रतिदिन उदय होता है। वह (नूनं) निश्चयसे (देवेभ्यः रत्नं वि धाति) देवोंके लिए रत्न धारण करता है। (अथ) इसलिए वह (स्वस्तौ) कल्याण करनेके लिए (वीतिहोत्रं अभजत्) इस यज्ञका सेवन करे ॥१॥

१ स्यः देवः सविता सवाय शश्वत्तमं अस्थात्- वह तेजस्वी सविता सूर्यदेव प्रत्येकको कर्मकी तरफ प्रेरित करनेके लिए प्रतिदिन उदय होता है।

२ देवेभ्यः रत्नं वि धाति- वह सविता देव विद्वानोंके लिए रत्नों अर्थात् धनोंको धारण करता है।

[३७९] (पृथुपाणिः देवः) विस्तृत हाथोंवाला यह तेजस्वी सविता देव (विश्वस्य श्रुष्टये) सम्पूर्ण जगत् के सुखके लिए (ऊर्ध्वः) उदय होकर (बाहवा प्र सिसर्ति) अपनी बाहुओंको फैलाता है। (निमृग्राः आपः चित्) अत्यन्त पवित्र करनेवाले ये जल भी (अस्य व्रते आ) इसी सविता देवके नियममें बहते हैं, (अयं वात चित् परिज्मन्) यह वायु भी चारों ओर बहुता हुआ (रमते) आनन्दित होता है ॥२॥

१ पृथुपाणिः देवः विश्वस्य श्रुष्टये बाहवा प्र सिसर्ति- बडे बडे हाथों अर्थात् किरणोंवाला यह तेजस्वी सूर्य सारे संसारके सुखके लिए अपनी किरणरूपी हाथोंको प्रसारित करता है।

२ निमृग्राः आपः चित् अस्य व्रते आ- पवित्र करनेवाले जल भी इसके नियममें रहकर बहते हैं।

[३८०] (यान्) अस्त होता हुआ सविता देव (आशुभिः नूनं वि मुचाति) शीघ्र चलनेवाली किरणोंसे मुक्त हो जाता है, तब वह देव (अतमानं चित्) हमेशा चलनेवाले यात्रीको भी (एतोः अरीरमत्) चलनेसे रोक देता है। (अह्यर्षूणां चित् अविष्यां न्ययान्) शत्रुओंका नाश करनेवाले वीरोंके आक्रमणकी इच्छाको भी नियंत्रित कर देता है, (सवितुः व्रतं अनु मोकी आ अगात्) सविता देवके कर्म समाप्त हो जानेके बाद रात आती है ॥३॥

भावार्थ- स्वयं भी कर्म करनेमें कुशल वह सविता सूर्यदेव प्रतिदिन उदय होता है, उसके उदय होते ही सभी प्राणी जागकर अपने-अपने कामोंमें लग जाते हैं, इस प्रकार मानों सूर्य ही उदय होकर लोगोंको कर्ममें प्रवृत्त करता है। यह सूर्य विद्वानोंके लिए धन धारण करता है। विद्वान् जन इस सूर्यसे भरपूर लाभ उठाकर शक्तिशाली होते हैं। उसके उदय होते ही यज्ञ शुरु हो जाते हैं, और उस यज्ञसे जनताका कल्याण होता है। इस प्रकार सूर्य यज्ञके द्वारा भी प्राणियोंका कल्याण करता है ॥१॥

लम्बी लम्बी किरणोंरूपी हाथोंवाला तेजस्वी देव उदय होते हुए समस्त संसारके सुखके लिए अपनी किरणोंको फैलाता है। सूर्यके उदय होनेपर समस्त संसारको जीवन प्राप्त होता है और इस जीवनसे उसे सुख मिलता है। यह जल और वायु भी सूर्यके निकलनेसे पवित्र हो जाते हैं ॥२॥

३८१ पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत् संहायास्थाद् व्यृ१तूँरदर्धर्—रमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥

३८२ नानौकांसि दुर्यो विश्वमायु—र्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधा—दन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥ ५ ॥

३८३ समाववर्ति विष्ठितो जिगीषु—र्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागा—दनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥

अर्थ- [३८१] (वयन्ती) अन्धकारको बुनती हुई रात्री (विततं पुनः समव्यत्) फैले हुए प्रकाशको फिर घेर लेती है, तब (धीरः) बुद्धिमान् मनुष्य (शक्म कर्तोः मध्या न्यधात्) किए जाने योग्य कर्म को भी बीचमें ही छोड देता है। तदनन्तर फिर जगत् (संहाय उत् अस्थात्) निद्राको छोडकर उठ खडा होता है, क्योंकि (अरमतिः देवः सविता) कभी न रुकनेवाला देव सूर्य (आगात्) उदय हो जाता है और (ऋतून् अदर्धः) ऋतुओंका विभाग करता है ॥४॥

[३८२] (दुर्यः प्रभवः अग्नेः शोकः) घरमेंही उत्पन्न होनेवाला अत्यधिक अग्निका तेज (नाना ओकांसि विश्वं आयुः वि तिष्ठते) अनेक घरों और सभी आयुओं पर अपना अधिकार चलाता है। (माता) माता (सवित्रा इषितं) सविता देवके द्वारा दिए गए (अस्य केतं) इस अग्निके प्रज्ञापक चिन्ह (ज्येष्ठं भागं) श्रेष्ठ भागको (सूनवे आधात्) अपने पुत्रके लिए धारण करती है ॥५॥

[३८३] (दैव्यस्य सवितुः व्रतं अनु) तेजस्वी सूर्यके अस्तरूपी कर्मके हो जाने पर (जिगीषुः विस्थितः सं आववर्ति) शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाला वीर अपने आक्रमणको रोक देता है। (विश्वेषां चरतां अमा कामः अभूत्) सभी चलनेवाले प्राणियोंमें घर जानेकी इच्छा पैदा हो जाती है, (शश्वान्) हमेशा काम करनेवाला भी (विकृतं अपः हित्वी आ अगात्) आधे किए हुए कामको छोडकर घर आ जाता है ॥६॥

भावार्थ- अस्त होता हुआ सूर्य अपनी शीघ्रगामी किरणोंको समेट लेता है, उससे अन्धेरा होने लगता है, अन्धेरा हो जानेके कारण, जो यात्री दिन भर चलते रहते हैं, वे भी चलना बन्द कर देते हैं, तथा जो वीर शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए उनपर आक्रमण करना चाहते हैं, वे भी अन्धेरेको देखकर आकमण नहीं करते। जब सूर्यदेवके कर्म समाप्त हो जाते हैं, तब उसके बाद रात्रीका आगमन होता है ॥३॥

अन्धकाररूपी कपडेको बुनती हुई रात्री चारों ओर फैले हुए प्रकाशको घेर लेती है, चारों और अन्धेरा फैल जाता है, अन्धेरा फैलनेके साथ ही बुद्धिमान् मनुष्य किए जाने योग्य कामको भी बीचमें ही समाप्त कर देता है। फिर अगले दिन जब फिर सूर्य उदय होता है, तब वह बुद्धिमान् फिर अपनी नींदको छोडकर काम करने लग जाता है। उदय होता हुआ यह सूर्य ऋतुओंका निर्माण करता है।

अग्निके तेजका हर घरों और मनुष्यों पर अधिकार रहता है। जिस मनुष्यके शरीरमें अग्नि स्वस्थ होगी, वह मनुष्य भी स्वस्थ होगा। यह अग्नि सूर्यका एक भाग है और सूर्य अग्निका चिन्ह है। सूर्य भी प्रकाशक होनेसे अग्नि ही है। सूर्यको उत्पन्न करनेवाली उषा जब सूर्यको पैदा करती है, तब मानों वह अग्निको ही प्रकट करती है ॥५॥

जब सविता देव अस्त हो जाते हैं, तब शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाला वीर अपने आक्रमणको रोक देता है, रात्रिके समय वह शत्रुओं पर आक्रमण नहीं करता। जो सभी चलनेवाले या उडनेवाले प्राणी हैं, वे घर जानेकी इच्छा करने लगते हैं और तब दिन भर काम में लगा रहनेवाला मनुष्य अपने काम को अधूरा ही छोडकर घर चला जाता है ॥६॥

३८४ त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७ ॥

३८५ याद्राध्यं१ वरुणो योनिमप्य१मनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात् स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८ ॥

३८६ न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥

अर्थ- [३८४] हे सविता देव ! (अप्सु) अन्तरिक्षमें (**त्वया हितं अप्यं भागं**) तेरे द्वारा स्थापित जलके भागको (**धन्व अनु मृगयासः वितस्थुः**) रेगिस्तानके प्रदेशोंमें प्राणी प्राप्त करते हैं। तथा तूने ही (**विभ्यः वनानि**) पक्षियोंके लिए जंगल दिए। (**अस्य देवस्य सवितुः**) इस तेजस्वी सविता देवके (**तानि व्रता**) उन कर्मोको (**न किः मिनन्ति**) कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥७॥

[३८५] (**निमिषि**) सूर्यके आंखें मूंद लेने पर अर्थात् अस्त हो जाने पर (**वरुणः**) वरुण (**यात् राध्यं अप्यं अनिशितं योनिं**) चलनेवालोंके द्वारा चाहने योग्य, प्राप्त करने योग्य और सुखदायक स्थानको प्रदान करता है। (**जर्भुराणः**) दिन भर उडनेवाले (**विश्वः मार्ताण्डः**) सब पक्षी भी (**आ गात्**) वापस आ जाते हैं, (**विश्वः पशुः व्रजं आ**) सब जानवर भी अपने बाडेमें आ जाते है, इस प्रकार (**सविता**) यह सूर्यदेव (**जन्मानि**) सभी प्राणियोंको (**स्थशः वि आ अकः**) हर स्थानमें अलग अलग कर देता है ॥८॥

[३८६] (**यस्य व्रतं**) जिसके नियमको (**न इन्द्रः वरुणः न मित्रः न अर्यमा रुद्रः मिनन्ति**) न इन्द्र, वरुण न मित्र, न अर्यमा और न रुद्र ही तोड सकते है और (**नः अरातयः**) न शत्रु ही तोड सकते है, (**तं देवं सवितारं**) उस तेजस्वी सविता देवको (**स्वस्ति**) अपने कल्याणके लिए (**इदं नमोभिः हुवे**) अब नमस्कारोंसे बुलाता हूँ ॥९॥

१ **यस्य व्रतं इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा रुद्रः अरातयः न मिनन्ति-** इस सविता देवके नियमको इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, रुद्र और शत्रु तोड नहीं सकते ॥९॥

भावार्थ- यह सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा मेघोंमें पानी स्थापित करता है और वे जल वृष्टिके रूपमें रेगिस्तानोंमें बरसते हैं, जहां उस जलको जन्तु पीते हैं। इसी प्रकार जंगलोंमें उत्पन्न होनेवाले वृक्षों और फलोंमें यह सूर्य रस स्थापित करता है और उन रससे भरे फलोंको पक्षी खाते हैं और वृक्षों पर रहते हैं। ये सविता देवके काम कभी भी नष्ट नहीं होते ॥७॥

दिनभर प्रयत्न करनेके बाद जब मनुष्य थक जाते हैं, तब सूर्यके अस्त हो जानेके बाद श्रेष्ठ देव सबको अत्यन्त सुखदायक स्थान प्रदान करता है। सभी मनुष्य अपने स्थानों पर जाकर निद्राका सुख लेते हैं, उस समय दिन भर उडने वाले पक्षी भी अपने अपने घोंसलोंमें वापस आ जाते हैं और पशु भी अपने बाडेमें आ जाते हैं। दिन भर मनुष्य, पशु और पक्षी एक जगह मिलकर काम करते हैं, पर शाम होते ही सब अलग अलग हो जाते हैं, इन सबको पृथक् पृथक् करनेका काम सूर्य ही करता है ॥८॥

इस सविता देवके नियमको इन्द्र, वरुण आदि मित्र तो तोड ही नहीं सकते, पर उसके जो शत्रु हैं, वे भी नहीं तोड सकते। नियमके अनुसार चलनेवालोंका वह देव कल्याण करता है ॥९ ॥

३८७ भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ १० ॥

३८८ अस्मभ्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्या-स्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवा-त्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥ ११ ॥

[३९]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३८९ ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥

अर्थ- [३८७] (**भगं धियं पुरन्धिं**) सेवाके योग्य, ध्यान किए जानेके योग्य तथा बुद्धिमान् सविताको (**वाजयन्तः नः**) अन्न देनेवाले हमारी (**नराशंसः ग्नास्पतिः**) मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय तथा छन्दोंका स्वामी सविता देव (**अव्याः**) रक्षा करे। (**वामस्य रयीणां आये संगथे**) उत्तम धन और ऐश्वर्योंके प्राप्त होने और उनसे युक्त होनेपर भी हम (**सवितुः देवस्य प्रियाः स्याम**) सविता देवके प्रिय हों ॥१०॥

१ **वामस्य रयीणां आये सवितुः देवस्य प्रियाः स्याम**- उत्तम धन और ऐश्वर्योंके प्राप्त होनेपर भी हम सविता देवके प्रिय बने रहें।

[३८८] हे (**सवितः**) सविता देव ! (**यत्**) क्योंकि (**त्वया दत्तं राधः**) तेरे द्वारा दिया गया धन (**स्तोतृभ्यः आपये उरुशंसाय जरित्रे**) स्तोताओं, उनके बन्धुओं और बहुत प्रशंसनीय स्तुति करनेवालेके लिए (**शं भवाति**) कल्याणकारी होता है, (**तत् काम्यं**) वह चाहने योग्य धन (**दिवः अद्भ्यः पृथिव्याः अस्मभ्यं आ गात्**) द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोकसे हमें प्राप्त हों ॥११॥

[३९]

[३८९] तुम दोनों (**ग्रावाणा इव**) दो पत्थरोंकी तरह (**तत् अर्थं इत्**) उस एक ही वस्तुके प्रति जाकर (**जरेथे**) उसकी स्तुति करते हो, (**वृक्षं गृध्रा इव**) पेड के समीप जैसे दो गिद्ध जाते हैं वैसे ही तुम (**निधिमन्तं अच्छ**) निधि अपने पास रखनेवालेके प्रति जाते हो, (**विदथे**) यज्ञमें (**ब्रह्माणा इव**) दो ब्राह्मणोंके समान तुम (**उक्थशासा**) स्तोत्र कहनेवाले हो और (**जन्या दूता इव**) जनताके हित लिये भेजे दो दूतोंके समान तुम दोनों (**पुरुत्रा हव्या**) विविध स्थानोंमें बुलाने योग्य हो ॥१॥

भावार्थ- वह सविता उत्तम बुद्धिमान् मनुष्योंसे प्रशंसनीय और छन्दोंका स्वामी है। छन्दोंमें गायत्री बहुत श्रेष्ठ माना जाता है, उस गायत्री मंत्रका देवता यह सविता है, इसी कारण सविताको छन्दोंका स्वामी कहा है। वह सविता हम स्तुति करनेवालोंकी रक्षा करे और हम भी धनोंके प्राप्त होनेपर भी इस देवके प्रिय बने रहें अर्थात् कभी अभिमानी न हों ॥१०॥

सविता देवके द्वारा दिया गया धन स्तुति करनेवालोंका कल्याण करता है। ऐसा वह धन हमें चारों ओर से प्राप्त हो ॥११॥

हे अश्विनौ ! जैसे दो पत्थर एक ही सोमवल्लीको कूटते हुए शब्द करते हैं, उस तरह तुम दोनों एक ही विषयकी चर्चा करते हो। जैसे दो पक्षी एक ही फलोंसे लदे वृक्षके पास जाते है वैसे तुम दोनों धनधान्यसम्पन्न यजमानके पास जाते हो। यज्ञमें जैसे दो ब्राह्मण स्तोत्रपाठ करते हैं वैसे तुम भी करते हो। जैसे जनता के हित करनेके लिए राजाके द्वारा भेजे दो दूत बहुत मनुष्यों द्वारा करनेके योग्य समझे जाते हैं, वैसा ही तुम्हारा आदर होता है ॥१॥

३९० प्रातर्यावाणा रथ्येव वीरा ऽजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने दंपतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥
३९१ शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा ऽर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
३९२ नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥
३९३ वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥

अर्थ- [३९०] हे अश्विनौ ! तुम दोनों (**जनेषु**) जनताके मध्य (**दम्पती इव**) पतिपत्नी के समान (**क्रतुविदा**) कार्य जाननेवाले हो, (**मेने इव**) दो महिलाओंके समान (**तन्वा शुंभमाने**) अपने शरीरोंकी सजावट करते हो, (**रथ्याइव वीरा**) महारथियोंके समान वीर हो, (**प्रातः यावाणा**) प्रातःकाल ही उठकर यात्रा करनेवाले और (**अजा इव यमा**) दो बकरोंके समान युगल मूर्ति हो। तुम (**वरं आ सचेथे**) श्रेष्ठके पास जाते हो ॥२॥

[३९१] (**तरोभिः**) वेगोंसे (**शफौ इव जर्भुराणा**) घोडेके खुरके समान खूब चलनेवाले (**नः अर्वाक् गन्तं**) हमारे पास आओ ! (**शृंगा इव प्रथमा**) किसी पशुके सींगोंके समान पहले ही हमारे पास चले आओ, (**प्रति वस्तोः**) हरदिन (**चक्रवाका इव**) चक्रवाकचक्रवाकीके समान हमारे पास आओ (**उस्रा शक्रा**) शत्रुओंको हटानेवाले और शक्ति संपन्न तुम दोनों (**रथ्या इन अर्वाञ्चा यातं**) रथारूढ वीरोंके समान हमारे पास चले आओ। ॥३॥

[३९२] (**नः**) हमें (**नावा इव**) नौकाओंके समान, (**युगा इव**) रथके झंडोंके समान, (**नभ्या इव**) पहियोंके केन्द्रमें रखे लट्टोंके समान, (**उपधी इव**) चक्कके पार्श्वमें रखे तख्तोंके तुल्य, (**प्रधी इव**) चक्रके वृत्तके समान संकटोंसे (**पारयतं**) पार ले चलो, (**श्वाना इव**) कुत्तोंके समान (**नः तनूनां**) हमारे शरीरोंकी (**अरिषण्या**) अहिंसक होकर रक्षा करो, (**अस्मान्**) हमें (**खृगला इव**) कवचके समान (**विस्रसः पातं**) जरासे बचाओ ॥४॥

[३९३] (**वाता इव अजुर्या**) वायुप्रवाहके तुल्य जीर्ण न होनेवाले, (**नद्या इव रीतिः**) नदियोंके समान सदा आगे बढनेवाले, (**अक्षी इव चक्षुषा**) आँखोंके तुल्य दृष्टिशक्तिसे युक्त तुम दोनों (**अर्वाक् आयातं**) हमारे पास आओ, (**तन्वे हस्तौ इव शंभविष्ठा**) शरीरके लिए हाथोंके समान सुख देनेवाले तुम दोनों (**नः**) हमें (**वस्यः अच्छ**) श्रेष्ठ धनके प्रति (**पादा इव नयतं**) पैरोंके समान ले चलो ॥५॥

भावार्थ- तुम जनतामें पतिपत्नीके समान अपने कर्तव्यमें तत्पर, स्त्रियोंके समन शोभायमान वीर और युगल भाई जैसे हो। वे तुम श्रेष्ठ यजमानके पास जाते हो ॥२॥

वेगसे घोडोंके समान दौडते हुए हमारे पास आओ। पशुके सींग जैसे पहिले पहुंचते हैं वैसे तुम भी हमारे पास पहिले पहुंचो। चक्रवाक पक्षियोंके समान शीघ्र ही हमारे पास आओ। शत्रुको परास्त करनेवाले शक्तिमान् वीरोंके समान तथा महारथियोंके समान तुम हमारे पास शीघ्र आ पहुंचो। ॥३॥

नौकाके समान तथा रथके अंगोंके समान हमें सब संकटोंसे पार ले चलो। कुत्तोंके समान हमारी रक्षा करो और कवचोंके समान हमें सुरक्षित रखो, नाशसे बचाओ ॥४॥

वायुके समान क्षीण न होनेवाले, नदियोंके समान आगे बढते रहनेवाले, आंखोंके समान देखनेवाले तुम दोनों हमारे पास आओ। हाथोंके समान शरीरके लिए सुखदायक होओ और पावोंके समान हमें अच्छे धनके पास ले चलो। इसी प्रकार मनुष्य वायुके समान जीवन देनेवाला, नदियोंके समान आगे बढनेवाला, आंखोंके समान देखनेवाला बने, पावोंके समान उत्तम स्थानके पास पहुंचे और हाथोंके समान सुख दे ॥५ ॥

३९४ ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥

३९५ हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥ ७ ॥

३९६ एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥

[४०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- सोमापूषणौ, ६ (अन्त्यार्धर्चस्य) अदितिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३९७ सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ १ ॥

अर्थ- [३९४] (आस्ने) मुँहके लिए (ओष्ठौ इव) होठोंके तुल्य (मधु वदन्ता) मिठास भरा वचन कहते हुए तुम दोनों (नः जीवसे) हमारे जीवनके लिए हमें (स्तनौ इव पिप्यतं) स्तनोंके समान पुष्ट करते रहो, (नासा इव) नासापुटके तुल्य (नः तन्वः रक्षितारा) हमारे शरीरोंके संरक्षक बनो और (अस्मे) हमारे लिए (कर्णौ इव) कर्णेन्द्रियके समान (सुश्रुता भूतं) भली भाँति सुननेवाले बनो ॥६॥

[३९५] (नः हस्ता इव) हमें हाथोंके समान (शक्तिं अभि संददी) बल ठीक प्रकार दो, (क्षामा इव) द्यावापृथिवीके समान (नः रजांसिः सं अजतं) हमें पर्याप्त स्थान भलीभाँति दो, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इमाः) इन (युष्मयन्तीं गिरः) तुम्हारी कामना करनेवाले हमारे वचनोंको (स्वधितिं क्ष्णोत्रेण इव) कुल्हाडीको सानसे जिस तरह तीक्ष्ण करते हैं, वैसे ही (सं शिशीतं) अच्छी तरह तेजसे-प्रभावशाली कर दो ॥७ ॥

[३९६] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां वर्धनानि) तुम्हारे यशकी वृद्धि करनेवाले (एतानि) ये (ब्रह्म स्तोमं) ज्ञानदायक स्तोत्र (गृत्समदासः अक्रन्) गृत्समदोंने बनाये हैं, (तानि जुजुषाणा) उनको स्वीकार करते हुए तुम दोनों (उप यातं) हमारे समीप आओ, (विदथे) यज्ञमें (सुवीराः) अच्छे वीरोंसे युक्त बनकर हम (बृहत् वदेम) महान् यशका गान करें ॥८॥

[४०]

[३९७] हे (सोमापूषणा) सोम और पूषा ! तुम दोनों (रयीणां जनना) धनोंके उत्पादक (दिवः जनना पृथिव्याः जनना) द्युलोकके उत्पादक और पृथिवीके उत्पादक हो। (जातौ) उत्पन्न होते ही तुम दोनों (विश्वस्य भुवनस्य गोपौ) सारे भुवनोंके रक्षक हुए। तुम्हें (देवाः) देवोंने (अमृतस्य नाभिं अकृण्वन्) अमृतका केन्द्र बनाया ॥१॥

१ जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ- सोम और पूषा देव उत्पन्न होते ही सारे भुवनोंके रक्षक बनाये गए।

२ देवाः अमृतस्य नाभिं अकृण्वन्- देवोंने इन्हें अमृतका केन्द्र बनाया।

भावार्थ- मुखके लिये जैसे होंठ वैसे तुम मीठा भाषण करो, स्तनोंके समान दीर्घ जीवनके लिये पोषक रससे हमें पुष्ट करो, नासिकासे जैसे प्राणके द्वारा संरक्षण होता है वैसी हमारी सुरक्षा करो, कानोंके समान हमारे कथनका श्रवण करो। इसी प्रकार मनुष्य भी मीठा भाषण करे, पोषक अन्नपानसे पोषण करे, दीर्घायु बने, सबके कथनोंको सुने, बहुश्रुत बने ॥६॥

हाथोंके समान हमें शक्ति दो, द्यावापृथिवीके समान हमें पर्याप्त स्थान दो, ये तुम्हारी स्तुतियाँ, शस्त्रको सानसे तीक्ष्ण करती है, उसी तरह तेजस्वी हों ॥७॥

हे नेता अश्विदेवो ! तुम्हारा वर्णन करनेवाले ये स्तोत्र गृत्समद ऋषियोंने बनाये हैं। तुम इनको सुनकर हमारे पास आओ और जब तुम आओगे, तब हम उत्तम वीर बनकर तुम्हारी बहुत स्तुति करें ॥८ ॥

३९८ इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ २ ॥
३९९ सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥ ३ ॥
४०० दिव्य१न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥ ४ ॥
४०१ विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥ ५ ॥

अर्थ- [३९८] (इमो देवौ) सोम और पूषा इन दोनों देवोंकी (जायमानौ) उत्पन्न होते ही (जुषन्त) सब देव सेवा करने लगे। (इमौ अजुष्टा तमांसि गूहतां) ये दोनों देव न चाहने योग्य अन्धकारको नष्ट करते हैं, (आभ्यां सोमापूषभ्यां) इन सोम और पूषाकी सहायतासे (इन्द्रः) इन्द्रने (आमासु उस्त्रियासु) अपक्व गायोंमें (पक्कं जनयत्) पक्क दूधको उत्पन्न किया ॥२॥

[३९९] (सोमपूषणा) सोम और पूषा दोनों देवो ! (रजसो विमानं) लोकोंको नापनेवाले (विषूवृतं) सर्वत्र व्याप्त (अविश्वमिन्वं) जगत्से विशाल (सप्तचक्रं) सात चक्रोंवाला (मनसा युज्यमानं) इच्छासे जोडे जानेवाला (पंचरश्मिं रथं) पांच लगामोंवाले रथको (जिन्वथः) हमारी तरफ प्रेरित करो ॥३॥

[४००] (अन्यः) उनमें एकने (उच्चा दिवि सदनं चक्रे) ऊंचे द्युलोकमें रहनेका स्थान बना रखा है, (अन्यः) दूसरा (अन्तरिक्षे पृथिव्यां अधि) अन्तरिक्ष और पृथिवीमें रहता है। (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यं) हमारे लिए (पुरुवारं) बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य (पुरुक्षुं) बहुत यशस्वी (रायः पोषं) ऐश्वर्य और पुष्टि (वि स्यतां) प्रदान करें तथा (अस्मे नाभिं) हमें सन्तान प्रदान करें ॥४॥

[४०१] (अन्यः) उनमेंसे एक (विश्वानि भुवना जजान) सम्पूर्ण भुवनोंको उत्पन्न करता है, (अन्यः) दूसरा (विश्वं अभिचक्षाण एति) सब लोकोंको देखता हुआ जाता है। हे (सोमापूषणा) सोम और पूषा। (मे धियं अवतं) मेरे कर्म और बुद्धिकी तुम रक्षा करो, (युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम) तुम दोनोंकी सहायतासे हम सब शत्रुओंको जीतें ॥५॥

भावार्थ- सोम और पूषा देव धनोंके, द्युलोकके और पृथिवीके उत्पादक हैं। ये ही सब भुवनोंके रक्षक और अमृतका केन्द्र भी यही हैं ॥१॥

सोम और पूषा इन दोनों देवोंकी सभी देव सेवा करते हैं। क्योंकि ये उत्पन्न होते ही अन्धकारका नाश करते हैं। यह इन्होंकी महिमा है कि ये अपक्व गायोंमें पक्व दूधको उत्पन्न करते हैं ॥२॥

हे सोम और पूषा ! तुम सारे संसारको नापनेवाले, सर्वत्र व्याप्त जगत्से भी विशाल सात पहियोंवाले तथा इच्छनुसार जड जानेवाले पांच लगामवाले रथको हमारी ओर प्रेरित करो ॥३॥

सोम और पूषा इन दोनों देवोंमें एक देव अर्थात् पूषा ऊंचे द्युलोकमें रहता है और दूसरा सोम अन्तरिक्षमें चन्द्रके रूपमें और पृथिवीमें सोम औषधिके रूपमें रहता है। ये दोनों देव हमें उत्तम ऐश्वर्य और पुष्टि प्रदान करें तथा सन्तानोंसे हमें बढावें ॥४॥

इन दोनों देवोंमें एक देव सोम सभी लोकोंको उत्पन्न करता है और दूसरा देव पूषा या आदित्य सभी भुवनोंका निरीक्षण करता हुआ जाता है। ये दोनों देव मेरे कर्म और बुद्धिकी रक्षा करें और इनकी सहायतासे हम शत्रुओंको जीतें ॥५॥

४०२ धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ६ ॥

[४१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- १-२ वायुः, ३ इंद्रवायू, ४-६ मित्रावरुणौ, ७-९ अश्विनौ, १०-१२ इन्द्रः, १३-१५ विश्वे देवाः, १६-१८ सरस्वती, १९-२१ द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा । (१९ तृतीयपादस्य अग्निर्वा) । छन्दः- गायत्रीः १६-१७ अनुष्टुप्, १८ बृहती ।]

४०३ वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान् त्सोमपीतये ॥ १ ॥

४०४ नियुत्वान् वायवा गह्यं शुक्रो अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

४०५ शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः ।
आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥

अर्थ- [४०२] (**विश्वं इन्वः**) सबको तृप्त करनेवाला (**पूषा**) पोषण कर्ता आदित्य (**धियं जिन्वतु**) हमारी बुद्धियों को तृप्त करे। (**रयिपतिः सोमः**) ऐश्वर्योंका स्वामी सोम (**रयिं दधातु**) हमें ऐश्वर्य प्रदान करे। (**अनर्वा देवी अदितिः**) प्रतिकूल व्यवहार न करनेवाली तेजस्वी अदिति (**अवतु**) हमारी रक्षा करे, हम भी (**सुवीराः**) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त होकर (**विदथे बृहद् वदेम**) यज्ञमें उत्तम गुणगान करें ॥६॥

[४१]

[४०३] हे (**वायो**) वायुदेव ! (**ये ते सहस्रिणः रथासः**) जो तेरे हजारों रथ हैं, (**तेभिः**) उनसे (**नियुत्वान्**) घोडोंसे युक्त तू (**सोमपीतये आ गहि**) सोम पीनेके लिए आ ॥१॥

[४०४] हे (**वायो**) वासुदेव ! तू (**नियुत्वान्**) नियुत नामक घोडों से युक्त होकर (**आ गहि**) हमारे पास आ, (**अयं शुक्रः ते अयामि**) यह तेजस्वी सोमरस तेरे लिए तैय्यार कर रहा हूँ, तू भी (**सुन्वतः गृहं गन्ता असि**) सोम निचोडनेवालेके घरमें जानेवाला है ॥२॥

[४०५] (**नरा इन्द्रवायू**) उत्तम रीतिसे ले जानेवाले इन्द्र और वायु ! (**अद्य**) आज (**नियुत्वतः**) घोडोंके द्वारा (**गवशिरः शुक्रस्य**) गौदुग्धसे मिले हुए तेजस्वी सोमको पीनेके लिए (**आयातं**) आओ और (**पिबतं**) पीओ ॥३॥

भावार्थ-सबको तृप्त करनेवाला पोषणकर्ता आदित्य हमारी बुद्धियोंको तृप्त करे और ऐश्वर्योंका स्वामी हमें ऐश्वर्य प्रदान करे। प्रतिकूल व्यवहार न करनेवाली देवी अदिति हमारी रक्षा करे, तथा हम भी वीर सन्तानोंसे युक्त होकर यज्ञमें देवोंका उत्तम गुणगान करें ॥६॥

हे वायु ! तेरी जो हजारों लहरें हैं, उन लहरोंसे युक्त होकर तू हमें प्राण दे और हमारे द्वारा प्रदत्त सोमको तू पी ॥१॥

हे वायो ! चूंकि तू हमेशा सोम निचोडनेवालेके घर जानेवाला है, इसलिए मैं भी तेरे लिए ये तेजस्वी सोमरस तैय्यार कर रहा हूँ अतः तू घोडोंके द्वारा हमारे पास आ ॥२॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों उत्तम नेता हो, मनुष्योंको उत्तम मार्ग से ले जानेवाले हो, अतः तुम दोनों आओ और हमारे द्वारा दिए गए गौदुग्धसे मिश्रित सोमरस को पीओ ॥३ ॥

४०६ अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
४०७ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आसाते ॥ ५ ॥
४०८ ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥
४०९ गोमद् ऊ षु नासत्या ऽश्वावद् यातमश्विना ।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥
४१० न यत् परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू ।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥

अर्थ- [४०६] हे (ऋतावृधा मित्रावरुणा) ऋतको बढानेवाले मित्र और वरुण ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं सोमः सुतः) यह सोम निचोडकर तैयार किया गया है, अतः (इह) यहां आकर (मम हवं श्रुतं इत्) मेरी प्रार्थनाको अवश्य सुनो ॥४॥

[४०७] (राजाना) अत्यन्त तेजस्वी (अन् अभिद्रुहा) किसीसे द्रोह न करनेवाले ये मित्र और वरुण (सहस्रस्थूणे उत्तमे ध्रुवे सदसि) हजार खम्भोंवाले उत्तम और दृढ घरमें (आसति) बैठते हैं ॥५॥

[४०८] (सम्राजा) अत्यन्त तेजस्वी (घृतासुती) घृतकी आहुति स्वीकार करनेवाले (आदित्या) रसका आदान करनेवाले (दानुनः पती) दान देनेवालोंके पालन करनेवाले (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (अनवह्वरं सचेते) कुटिलता रहित मनुष्यके पास जाते हैं ॥६॥

१ ता अनवह्वरं सचेते- वे दोनों मित्र और वरुण देव कुटिलतासे रहित उपासकके पास जाते हैं।

[४०९] हे (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले (नासत्या) सत्यपालक (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनों (गोमत् अश्वावत्) गायों और घोडोंसे पूर्ण (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे पालन करनेयोग्य घरके पास (सु यातं) भलीभाँति जाओ ॥७॥

[४१०] (यत्) जिसे (वृषण्वसू) हे धनकी वर्षा करनेवाले अश्विनौ ! (दुः शंसः रिपुः) बुरी बातें कहनेवाला शत्रुभूत (मर्त्यं) मानव (न परः न अन्तरः) न पराया न अन्दरका हमारे ऊपर (आदधर्षत्) आक्रान्त करनेका साहस कर सके ॥८॥

भावार्थ- अत्यन्त तेजस्वी और किसीसे भी द्रोह न करनेवाले ये मित्र और वरुण ऐसे यज्ञ मण्डपमें बैठते हैं, जो हजार खम्भोंवाला, उत्तम और दृढ होता है। ऐसे यज्ञ मण्डपमें बैठकर ये दोनों सोम पीते हैं और उपासककी प्रार्थनाको सुनते हैं ॥४-५॥

ये दोनों देव मित्र और वरुण अत्यन्त तेजस्वी रस देनेवाले और दानियां का पालन करनेवाले हैं। वे दोनों देव कुटिलतासे रहित मनुष्यके पास ही जाते हैं, कपटीके पास नहीं जाते ॥६॥

हे शत्रुको रुलानेवाले सत्यके रक्षक अश्विदेवो ! तुम दोनों गौओं और घोडोंसे युक्त तथा वीरों द्वारा पालन करनेयोग्य हमारे घरके पास आओ। जिससे, हे धन देनेवाले देवो ! हमारे अन्दरका अथवा बाहरका कोई भी दुष्ट शत्रु हम पर आक्रमण करनेके लिये समर्थ नहीं होगा ॥७-८॥

४११ ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥

४१२ इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥

४१३ इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥

४१४ इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १२ ॥

४१५ विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ १३ ॥

अर्थ- [४११] हे (**धिष्ण्या अश्विना**) उच्चपदके योग्य अश्विदेवो ! (**नः**) हमारे लिए (**वरिवोविदं**) धनको बढानेहारे (**पिशंगसंदृशं**) सुवर्णयुक्त होनेके कारण पीले रंगवाली (**रयिं**) सम्पत्तिको (**ता आ वोळ्हं**) वे तुम दोनों इधर ले आओ ॥९॥

[४१२] हे (**अंग**) प्रिय ! (**स्थिरः विचर्षणिः सः इन्द्रः**) युद्धमें स्थिर रहनेवाला, बुद्धिमान् वह इन्द्र (**अभीषत्**) शत्रुओंको भयभीत करता है और उनके (**महद् भयं अप चुच्यवत्**) बडे भयको दूर करता है ॥१०॥

[४१३] यदि (**इन्द्रः नः मृळयाति**) इन्द्र हमें सुखी करे, तो (**नः पश्चात् अघं न नशत्**) हमें पीछेसे पाप नष्ट न करे और (**पुरः नः भद्रं भवाति**) आगेसे हमें कल्याण प्राप्त हो ॥११॥

१ **इन्द्रः नः मृळयाति** - यदि इन्द्र हमें सुखी करे तो-

२ **नः पश्चात् अघं न नशत्**- हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता, तथा

३ **पुरः नः भद्रं भवाति**- हमें सदा कल्याण प्राप्त हो सकता है।

[४१४] (**शत्रून् जेता विचर्षणिः इन्द्रः**) शत्रुओंको जीतनेवाला, बुद्धिमान् इन्द्र हमें (**सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि**) सब दिशाओंसे (**अभयं करत्**) निर्भय करे ॥१२॥

१ **इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः अभयं करत्**- इन्द्र सभी दिशाओंसे हमें निर्भय करे।

[४१५] हे (**विश्वे देवासः**) सम्पूर्ण देवो ! (**आ गत**) आओ (**इदं बर्हिः आ नि षीदत**) इस यज्ञमें आकर बैठो और (**मे इमं हवं आ श्रृणुत**) मेरी इस प्रार्थनाको सुनो ॥१३॥

भावार्थ- हे प्रशंसाके योग्य अश्विनौ ! तुम दोनों हमें ऐसी सम्पत्ति दो कि जिसमें सुवर्ण बहुत हो और जो धन बढानेमें समर्थ हो ॥९॥

युद्धमें सदा स्थिर रहनेवाला बुद्धिमान् वह इन्द्र शत्रुओंको भयभीत करता है और उनके द्वारा होनेवाले भयको दूर करता है ॥१०॥

जिस उपासककी रक्षा इन्द्र करता है, उसे पाप नष्ट नहीं कर सकते, वह सदा कल्याण प्राप्त करता है ॥११॥

वह इन्द्र शत्रुओंको जीतनेवाला, बुद्धिमान् है। वह हमें उपासकोंको सब दिशाओंसे भयरहित करे ॥१२ ॥

४१६ तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।
एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥

४१७ इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥

४१८ अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥

४१९ त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥

अर्थ- [४१६] (**शुनहोत्रेषु**) पवित्र करनेवाले यज्ञोंमें (**मत्सरः**) आनन्द देनेवाला (**अयं तीव्रः मधुमान्**) यह तीक्ष्ण और मीठा सोमरस (**वः**) तुम्हारे लिए तैय्यार किया गया है, तुम सब (**एतं**) आओ और (**काम्यं पिबत**) इच्छनुसार पीओ ॥१४॥

[४१७] (**पूषरातयः**) पुष्टिको देनेवाले (**इन्द्रज्येष्ठाः मरुद्गणाः**) इन्द्रको बडा माननेवाले मरुत् और दूसरे (**देवासः**) देवगणो ! (**विश्वे**) तुम सब (**मम हवं श्रुत**) मेरी प्रार्थना सुनो ॥१५॥

[४१८] (**अम्बितमे**) हे अत्यन्त श्रेष्ठ माता (**नदीतमे**) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करनेवाली तथा (**देवितमे**) अत्यन्त तेजस्विनि (**अम्ब सरस्वति**) माता सरस्वती ! हम (**अप्रशस्ता इव स्मसि**) अत्यन्त निन्दनीयके समान हैं, इसलिए (**नः प्रशस्तिं कृधि**) हमें यशसे युक्त कर ॥१६॥

१ **अम्ब सरस्वति ! अप्रशस्ता स्मसि, नः प्रशस्तिं कृधि**- हे माता सरस्वती ! हम निन्दनीय है अतः तू हमें प्रशंसाके योग्य कर।

[४१९] हे (**सरस्वति**) सरस्वती ! (**देव्यां त्वे**) तेजसे युक्त तुझमें (**विश्वा आयूंषि श्रिता**) सब आयु आश्रित है, तू (**शुनहोत्रेषु मत्स्व**) पवित्रकारक यज्ञोंमें आनन्दित हो, हे (**देवि**) देवि सरस्वति ! तू (**नः प्रजां दिदिड्ढि**) हमें प्रजा दे ॥१७॥

१ **देव्यां विश्वा आयूंषि श्रिता**- इस देवी सरस्वतीमें सभी आयु आश्रित हैं।

भावार्थ- हे विश्वे देवो ! इस यज्ञमें आओ और तुम्हारे लिए निचोडे गए इस मीठे और आनन्ददायक रसको इच्छनुसार पीओ और हमारी प्रार्थनाओंको सुनो ॥१३-१४॥

मरुद्गण और अन्य देवगण इन्द्र को ही सबसे बडा मानते हैं। इन्द्र सबसे वीर और श्रेष्ठ होनेके कारण सब देव इसकी आज्ञामें चलते हैं। ये सब देव मेरी प्रार्थना सुनें ॥१५॥

यह सरस्वती देवी अत्यन्त श्रेष्ठ निर्माता है। मनुष्यको उत्तम बनाती है। इसके उपासकको अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होता है और वह तेजस्वी होता है। यह सरस्वती सबकी माता है। दुष्ट मनुष्य भी सरस्वतीकी कृपा पाकर सज्जन और विद्वान् बन जाता है ॥१६॥

इस सरस्वती देवीमें सभी तरहके अन्न और आयु आश्रित हैं। जो सरस्वती देवीकी उपासना करता है, वह हर तरहके अन्नोंसे समृद्ध होता है और उन अन्नोंको खाकर वह दीर्घायु प्राप्त करता है, जो सरस्वती की उपासना करते हैं वे दीर्घायुसे युक्त होते हैं और उत्तम सन्तान प्राप्त करते हैं ॥१७॥

४२० इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥
४२१ प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥
४२२ द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥
४२३ आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥

[४२]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- शाकुन्तः (= कपिञ्जलरूपीन्द्रः) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४२४ कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥

अर्थ- [४२०] (**वाजिनीवति ऋतावरि सरस्वति**) अन्न व जलसे युक्त तथा सत्यके मार्गपर चलनेवाली सरस्वती देवी ! (**गृत्समदा**) निरभिमानी उपासक (**देवेषु प्रिया या मन्म**) देवोंको प्रिय लगनेवाले जिन स्तोत्रोंको (**ते जुह्वति**) तेरे लिए समर्पित करते हैं, (**इमा ब्रह्म जुषस्व**) उन इन स्तोत्रोंको तू सुन ॥१८॥

[४२१] हे (**शंभुवा**) कल्याण करनेवाली द्यावा और पृथिवी देवियों ! हम (**युवां हव्यवाहनं अग्निं च**) तुम दोनों और हविको ले जानेवाले अग्निकी (**आ वृणीमहे**) कामना करते हैं, तुम दोनों (**यज्ञस्य प्र एतां**) हमारे यज्ञकी तरफ आओ ॥१९॥

[४२२] (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी दोनों देवियां (**अद्य**) आज (**सिध्रं दिविस्पृशं**) सुखके साधक और आकाशको छूनेवाले (**नः इमं यज्ञं**) हमारे इस यज्ञको (**देवेषु यच्छतां**) देवोंतक पहुंचायें ॥२०॥

[४२३] (**अद्रुहा**) हे द्रोह न करनेवाली द्यु और पृथिवी देवियो ! (**अद्य इह**) आज यज्ञमें (**सोमपीतये**) सोम पीनेके लिए (**यज्ञियाः देवाः**) पूजाके योग्य (**वां उपस्थं आ सीदन्तु**) हमारे पास ही आकर बैठें ॥२१॥

[४२]

[४२४] (**कनिक्रदत्**) बार बार शब्द करता हुआ तथा (**जनुषं प्रब्रुवाणः**) मनुष्यको उपदेश देता हुआ यह शकुनि (**वाचं इयर्ति**) उत्तम वाणीको उसी प्रकार प्रेरित करता है, जिस प्रकार (**अरिता नावं इव**) मल्लाह नावको । हे (**शकुने**) पक्षी ! (**सुमंगलश्च भवासि**) तू कल्याणकारक हो, (**काचित् अभिभा**) कोई आक्रमणकारी शत्रु (**त्वा विश्व्या मा विदत्**) तुझे चारों ओरसे न घेरे ॥१॥

१ **जनुषं प्रब्रुवाणः वाचं इयर्ति-** परिव्राजक मनुष्योंको उपदेश देता हुआ वेदवाणीका सर्वत्र प्रचार करता है।

भावार्थ- यह सरस्वती अन्न और बलसे युक्त तथा अपने उपासकोंको सत्य मार्ग पर चलानेवाली है। निरभिमानी व्यक्ति की उपासनासे यह देवी प्रसन्न होती है ॥१८॥

द्यु और पृथिवी तथा अग्नि सब कल्याण करनेवाले हैं। सब इनको चाहते हैं। हमारे बुलाये जानेपर ये हमारे यज्ञमें आवें ॥१९॥

हे द्यु और पृथिवी ! आज इस यज्ञमें सोम पीनेके लिए पूजनीय देव तुम्हारे पास ही बैठें और तुम भी इस सुख प्राप्त करानेवाले यज्ञको देवोंतक पहुंचाओ ॥२०-२१ ॥

४२५ मा त्वा श्येन उद् वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
४२६ अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

[४३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः । देवता- शकुन्तः (= कपिञ्जलरूपीन्द्रः)। छन्दः- जगती; २ अतिशक्वरी अष्टिर्वा ।]

४२७ प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥ १ ॥

अर्थ- [४२५] हे शकुने ! (त्वा) तुझे (श्येनः मा उत् वधीत्) श्येन पक्षी न मारे (त्वा सुपर्णः मा) तुझे सुपर्ण न मारे, (अस्ता इषुमान् वीरः) अस्त्र फेंकनेवाला धनुर्धारी कोई वीर भी (त्वा मा विदत्) तुझे प्राप्त न करे। (पित्र्यां प्रदिशं अनु) पितरोंकी दिशामें (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (सु मंगलः भद्रवादी इह वद) कल्याण करनेवाला तथा कल्याणकारक वाणीका उच्चारण करनेवाला तू यहां कल्याणकारक वचनोंको ही बोल ॥२॥

१ सुमंगलः भद्रवादी इह वद- कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही यहां उपदेश दे।

[४२६] हे (शकुन्ते) पक्षी (सुमंगलः भद्रवादी) कल्याणकारक और कल्याणमय वचनोंको बोलनेवाला तू (गृहाणां दक्षिणतः अव कन्द) घरोंके दाहिनी बाजूमें बैठकर बोल। (नः स्तेनः मा ईशत) हम पर कोई चोर प्रभुत्व न करे, (अघशंसः मा) पापसे युक्त वचनोंको बोलनेवाला भी हम पर शासन न करे, हम (सुवीराः) उत्तम पुत्र पौत्रोंसे युक्त होकर (विदथे बृहत् वदेम) यज्ञमें इस शकुनिकी बडी प्रशंसा करें ॥३॥

[४३]

[४२७] (शकुन्तयः) ये पक्षी (ऋतुथा) ऋतुओंके अनुसार (वयः वदन्तः) अन्नकी सूचना देते हुए (कारवः) स्तोताओंके समान (प्रदक्षिणित् अभि वदन्ति) दायीं बाजू पर बैठकर बोलें। (सामगा इव) सामको गानेवालेके समान यह पक्षी भी (गायत्रं त्रैष्टुभं उभे वाचौ) गायत्री और त्रिष्टुप् छन्दसे युक्त दोनों वाणियोंको (वदति) बोलता है (च अनु राजति) और शोभित होता है ॥१॥

भावार्थ- इस मंत्रमें परिव्राजकको शकुनि या पक्षी मानकर कहा है कि परिव्राजक ! तू बार बार बोलता हुआ सब मनुष्योंको उत्तम उपदेश दे और इस प्रकार उत्तम वेदवाणीका सर्वत्र प्रचार करता जा। तू सबका कल्याण करनेवाला हो, तेरा कोई शत्रु न हो, यदि हो तो भी वह तुझे कष्ट न दे ॥१॥

इस परिव्राजकको श्येनके समान दुष्टता करनेवाला कोई मनुष्य न मारे तथा सुपर्णके समान बलशाली तथा शस्त्रास्त्रधारी मनुष्य भी न मारे। पितरोंकी दिशा अर्थात् संकटोंकी अवस्थामें भी परिव्राजक कल्याणकारक वचन ही बोले। कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही मनुष्योंकी सभामें उपदेश दे॥ २॥

हे पक्षी ! तू हमारे घरोंकी दायीं तरफ बैठकर शब्द कर। घरके दायीं तरफ बैठकर पक्षीका शब्द करना शकुन माना जाता है। परिव्राजक भी घरके मनुष्योंके अनुकूल होकर व्यवहार करे और वह हमेशा कल्याणकारक वचनोंको ही बोले। कोई चोर या अकल्याणकारक वचनोंको बोलनेवाला मनुष्य हम पर कभी शासन न करे। ऐसे उत्तम परिव्राजकका हम गुणगान करें ॥३॥

जिस प्रकार पक्षी आनेवाले ऋतुओंकी सूचना देते हैं उसी प्रकार यह परिव्राजक समय के अनुसार उपदेश दे। ऐसा उत्तम उपदेशक गायत्री और त्रिष्टुप् दोनों छन्दोंसे युक्त वेदमंत्रोंका घोष करता है और इस प्रकार वह सभामें सुशोभित होता है ॥१ ॥

४२८ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद ।
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥
४२९ आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

अर्थ- [४२८] हे (**शकुने**) पक्षी ! तू (**उद्गाता इव**) उद्गाता अर्थात् मंत्रोंके उच्चारण करनेवाले समान (**साम गायसि**) सामका गान करता है और (**ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि**) ब्रह्माके पुत्रके समान यज्ञोंमें स्तोत्रोंका उच्चारण करता है। (**वृषा वाजी शिशुमतीः अपि इत्य इव**) जिस प्रकार एक बलवान् अश्व घोडीके पास जाकर शब्द करता है उसी प्रकार हे (**शकुने**) पक्षी ! तू (**सर्वतः न भद्रं आ वद**) चारों ओरसे हमारे कल्याण करनेवाले वचन बोल और हे (**शकुने**) पक्षी ! (**विश्वतः नः पुण्यं आ वद**) चारों ओरसे हमारे लिए पुण्यकारक वचन बोल ॥२॥

[४२९] हे (**शकुने**) पक्षी (**यत्**) जब तू (**उत्पतन्**) ऊपर उठते हुए (**कर्करिः यथा**) कर्करि बाजेके समान (**वदसि**) बोलता है, तब (**आवदन् त्वं**) बोलता हुआ तू (**भद्रं आ वद**) उत्तम कल्याणकारक वचन ही बोल। (**तुष्णीं आसीनः**) शान्त बैठे रहनेपर भी तू (**नः सुमतिं चिकिद्धि**) हमारी उत्तम बुद्धियोंको प्रेरित कर। हम भी (**सुवीराः**) उत्तम वीर पुत्रों और पौत्रोंसे युक्त होकर (**विदथे बृहत् वदेम**) यज्ञमें उत्तम रीतिसे गुणगान करें ॥३॥

भावार्थ- जिस प्रकार उद्गाता और ब्रह्मा यज्ञोंमें वेदमंत्रोंको बोलता है, उसी प्रकार, हे उपदेशक ! तू उपदेश दे। तू हमारे चारों ओर से कल्याणकारक और पुण्यकारक वचनोंको बोल ॥२॥

हे परिव्राजक ! उन्नति करता हुआ तू हमेशा उत्तम कल्याणकारक वचन बोल और जब शान्त बैठा हो तब भी हमारी उत्तम बुद्धियोंको उत्तम मार्गकी तरफ प्रेरित कर ॥३॥

॥ इति द्वितीयं मण्डलम् ॥

ऋग्वेद का सुबोध-भाष्य

द्वितीय मण्डल

सुभाषित

१ नृणां नृपते अग्ने! त्वं द्युभिः जायसे- (१) हे मनुष्योंके पालक ज्ञानी! तू तेजोंसे युक्त होकर उत्पन्न होता है।

२ अग्ने! पोत्रं तव- (२) हे ज्ञानी! सर्वत्र पवित्रता करनेका काम तेरा है।

३ सतां वृषभः इन्द्रः- (३) यह अग्नि सज्जनोंमें बलवान् नेता होने के कारण इन्द्र है।

४ उरुगायः विष्णुः- (३) सर्वव्यापी होनेसे यह अग्नि विष्णु है।

५ रयिवित् ब्रह्मा- (३) ज्ञानादि ऐश्वर्योंसे युक्त होनेके कारण यह अग्नि ब्रह्मा है।

६ पुरंध्या सचते- (३) नाना प्रकारकी बुद्धियोंसे युक्त होनेके कारण यह मेधावी है।

७ धृतव्रतः वरुणः- (४) व्रतोंको धारण करनेवाला या नियमोंमें चलनेवाला मनुष्यही वरणीय होता है।

८ सत्पतिः अर्यमा- (४) सज्जनोंका पालन करनेवाला ही श्रेष्ठ आर्य होता है।

९ विधते सुवीर्यं- (५) जो मनुष्य इस अग्निको धारण करता है, वह बहुत बलशाली होता है।

१० अरंकृते द्रविणोदाः- (७) जो सेवा करना जानता है वह धन प्राप्त करता है।

११ आदित्यासः आस्यं- (१३) यह अग्नि आदित्यों-देवोंका मुखरूप है।

१२ यत् पृक्षः ते अत्र विभुवत् द्यावापृथिव्यौ अनु- (१५) जो भी अन्न इस अग्निमें डाला जाता है, वह द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैल जाता है।

१३ सुदंससं देवाः बुध्ने एरिरे- (१९) उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यको विद्वान् सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं।

१४ ब्रह्मणा सुवीर्यं जनान् अति चितयेम- (२६) ज्ञानसे उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके हम सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ बन जायें।

१५ अस्माकं उच्चा दुस्तरं द्युम्नं पंच कृष्टिषु शुशुचीत- (२६) हमारी श्रेष्ठ और दूसरोंके लिए अप्राप्य संपत्ति सभी मनुष्योंमें अत्यधिक प्रकाशित हो।

१६ सु वीराः विदथे बृहत् वदेम- (२९) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम यज्ञमें इस अग्निकी उत्तम स्तुति करें।

१७ त्वष्टा अस्मे नाभिं प्रजां वि स्यतु - (३८) सब जगत्‌को बनानेवाला देव हमें हमारे वंशको आगे चलानेवाले पुत्रको प्रदान करे।

१८ अथ देवानां पाथः अपि एतु- (३८) वह हमारा पुत्र देवों या विद्वानोंके द्वारा बताये गये मार्ग पर चले।

१९ स्वस्य पुष्टिः रण्वा- (४४) अपने शरीरकी स्वस्थता सब मनुष्योंके लिए आनन्ददायक होती है।

२० चित्रेण भासा जुजुर्वान् मुहुः युवा भूत्- (४५) विचित्र या सुन्दर तेजसे युक्त वृद्धभी तरुण ही होता हैं।

२१ अभ्वं आ पनन्त वर्णं अभिमीत- (४५) इस अग्निकी स्तुति करनेवाले स्तोता इसके तेजसे युक्त होते है।

२२ अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान् वया इव अनुरोहते- (५३) इस अग्निके अटल नियमोंमें रहनेवाला विद्वान् पेडोंकी शाखाओंकी तरह प्रतिदिन बढता ही रहता है।

२३ शुचिः प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं अजनि- (५३) शुद्ध और उत्तमतासे शासन करनेवाला वह ज्ञानी शुद्ध और पवित्र करनेवाले गुणोंके साथ ही उत्पन्न हुआ है।

२४ वसुपते अस्मत् द्वेषांसि, युयोधि- (६१) हे धनोंके स्वामी ! जो हमसे द्वेष करनेवाले शत्रु हैं, उन्हें तू भगा दे।

२५ अन्तः ईयते- (६४) यह अग्नि सबके हृदयोंमें विचरता है।

२६ मित्र्यः इव जन्यः- (६४) वह अग्नि मित्रके समान सबका हितकारी है।

२७ देवस्य मर्त्यस्य च अरातिः न मा ईशत- (६७) देवोंका शत्रु अर्थात् देवनिन्दक नास्तिक तथा मानवताका शत्रु मनुष्य हम पर शासन न करे।

२८ त्वया वयं विश्वाः द्विषः अति गाहेमहि- (६८) हे अग्ने! तुझसे सुरक्षित होकर हम सभी शत्रुओंसे आगे निकल जायें।

२९ दिवे दिवे जायमानस्य ते उभयं वसव्यं न क्षीयते- (८२) प्रतिदिन नये उत्साहसे उत्पन्न होनेवाले इस अग्निका दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्य नष्ट नहीं होता।

३० अग्निः प्रथमः जोहूत्रः पिता इव- (८४) वह अग्नि सबसे श्रेष्ठ, पूज्य और पिताके समान पालक है।

३१ मानुषः अमानुषं नि जूर्वात्- (९९) प्रजाका हित करनेवाला वीर प्रजाका अहित करनेवालेको मारे।

३२ विप्राः सपन्तः धियं सनेम- (१०१) हम ज्ञानीजन अपनेसे श्रेष्ठ ज्ञानियों की सेवा करते हुए उत्तम बुद्धि प्राप्त करें।

३३ अवस्यवः प्रशस्तिं धीमहि- (१०१) रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम प्रशंसनीय गुणोंको धारण करें।

३४ सजोषसः मन्दसानाः वायवः अग्रनीतिं प्र पान्ति- (१०३) एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले और उत्तम रीतिसे शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले वीर सैनिक आगे चलनेवाले अपने नेताकी हर तरहसे रक्षा करें।

३५ आर्याय ज्योतिः अपावृणोः- (१०७) यह इन्द्र श्रेष्ठ पुरुषके लिए प्रकाशका मार्ग दिखाता है।

३६ ऊतिभिः- आर्येण विश्वाः स्पृधः दस्यू तरन्तः- (१०८) हम इन्द्रसे रक्षित होकर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकी सहायता प्राप्त करके सभी शत्रुओं और दुष्टों को जीत जाएं।

३७ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्य भूषयत्- (१११) मनस्वी मनुष्य पैदा होते ही अपने उत्तम कर्मोंसे देवों और विद्वानोंको प्रसन्न करता है।

३८ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः- (१११) अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है।

३९ यः लक्षं जिगीवान् सः इन्द्रः- (११४) जो अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है, वही ऐश्वर्यवान् होता है।

४० जनासः यस्मात् ऋते न विजयन्ते- (११९) वीर लोग भी इस इन्द्रकी सहायताके बिना विजय नहीं पा सकते।

४१ यः अच्युतच्युत् सः इन्द्रः- (११९) जो अपने स्थानसे न हटनेवाले वीरको भी हटा देता है, वह इन्द्र या राजा हो सकता है।

४२ यः शर्धते न अनु ददाति- (१२०) जो मनुष्य अहंकार करता है, उसे यह इन्द्र कुछ भी नहीं देता।

४३ द्यावापृथिवी अस्मै नमेते- (१२३) द्युलोक और पृथ्वीलोक भी इस इन्द्रकी शक्तिके सामने झुक जाते हैं।

४४ ता प्रथमं अकृणोः, स उक्थ्यः- (१२७) इन्द्रने उन श्रेष्ठ कर्मोंको प्रथम किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय हुआ।

४५ नरः! यत् कामयाध्वे इन्द्रे हवन्तः तत् नशथः- (१४६) हे मनुष्यो ! तुम जो चाहते हो, उसे इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर लो।

४६ यजतः दित्सन्तं भूयः चिकेत- (१४८) यह पूज्य इन्द्र दान करनेकी इच्छावाले मनुष्यको और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है।

४७ ते रथः समुद्रैः पर्वतैः न- (१६३) इस इन्द्रका वेग या गति समुद्रों और पर्वतोंसे भी नहीं रोकी जा सकती।

४८ संबाधात् पुरा नः अभि आ ववृत्स्व- (१६८) हे इन्द्र ! हम पर आपत्ति आनेसे पहले ही तू हमारे पास पहुंच जा।

४९ ते सुमतिभिः सु नसीमहि- (१६८) हे इन्द्र ! तेरी उत्तम बुद्धियोंसे हम संयुक्त हों।

५० इन्द्रेण मे सख्यं न वि योषत्- (१८६) इन्द्रके साथ मेरी मित्रता न टूटे।

५१ वरूथे ज्येष्ठे गभस्तौ उप- (१८६) हम उस इन्द्रके उत्तम और श्रेष्ठ हाथोंके समीप रहें। हम पर इन्द्रका वरदहस्त सदा रहे।

५२ ब्रह्मण्यन्तः नरः दिवि ओकः दधे- (१८८) ज्ञानी मनुष्य हमेशा प्रकाशमें रहते हैं।

५३ पस्पृधानेभ्यः नृभ्यः सद्यः अतसाय्यः भूत्- (१९१) युद्ध करनेवाले वीरोंके द्वारा वह तत्काल आश्रय करने योग्य है।

५४ दाशुषे पुरूणि अप्रतीनि दाशत्- (१९१) दान देनेवाले मनुष्यको वह अप्रतिम धन देता है।

५५ अवस्यवः वयुनानि तक्षुः- (१९५) ज्ञानी अपनी सुरक्षाके लिए उत्तम कर्म करते हैं।

५६ ब्रह्मण्यन्तः सुक्षितिं इषं ऊर्जं सुम्नं अश्युः- (१९५) ब्रह्मज्ञानी उत्तम निवास, अन्न, बल और सुख प्राप्त करते हैं।

५७ विपन्यवः मनीषा दीध्यतः- (१९७) ज्ञानी बुद्धिको धारण करते हैं।

५८ सुम्नं इयक्षतः- (१९७) अपना मन उत्तम हो ऐसा चाहते हैं।

५९ सः नरां पाता- (१९९) वह इन्द्र मनुष्योंका रक्षक है।

६० अर्णसातौ इन्द्राय देवेभिः सत्रा तवसं अनुदायि- (२०४) युद्धमें इन्द्रके लिए देवोंने संघटित होकर सामर्थ्य प्रदान किया।

६१ भगः नः मा अति धक्- (२०५) ऐश्वर्य हमारा त्याग न करे।

६२ उशिजः असुरः मनीषिणः यज्ञेन गातुं विविद्रिरे- (२१०) समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले बुद्धिमान् यज्ञके द्वारा योग्य मार्ग का पता लगाते हैं।

६३ श्रेष्ठानि द्रविणानि, दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं रयीणां पोषं, तनूनां अरिष्टिं, वाचः स्वाद्मानं अह्नां सुदिनत्वं धेहि- (२११) हे इन्द्र ! तू हमें श्रेष्ठ धन, बलका विचार, सौभाग्य, ऐश्वर्यकी वृद्धि, शरीरोंकी नीरोगता, वाणीमें मिठास और उत्तम दिन प्रदान कर।

६४ स महि कर्म कर्तवे ममाद- (२१२) उस सोमने बडा काम करनेके लिए उस इन्द्रको उत्साहित किया।

६५ क्रतुना साकं जातः- (२१४) वह इन्द्र उत्तम कर्तृत्व शक्तिसे युक्त होकर जन्मा था।

६६ वीर्यैः साकं वृद्धः- (२१४) मनुष्य पराक्रमसे बढता है।

६७ प्रचेतसः देवाः ते यज्ञियं भागं आनशुः- (२१७) बुद्धिशाली ज्ञानीजन बृहस्पतिके यज्ञीय भागके अधिकारी होते हैं।

६८ विश्वेषां ब्रह्मणां इत् जनिता असि- (२१७) वाणीका स्वामी अर्थात् ज्ञानी सर्वत्र ज्ञानका प्रसार करता है।

६९ बृहस्पते यः तुभ्यं दाशात्, जनं सु-नीतिभिः नयसि त्रायसे-(२१९) हे बृहस्पते अर्थात् ज्ञानी ! जो तुम्हें धन आदि देता है, उसे तुम उत्तम मार्गोंसे ले जाकर उसकी रक्षा करते हो। ज्ञानीकी हर तरहसे सहायता करनी चाहिए।

७० तं अंहः न अश्नवत्- (२१९) ऐसे मनुष्यको पाप कभी नहीं खाता।

७१ ब्रह्मद्विष् तपनः मन्यु-भीः असि- (२१९) यह बृहस्पति ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको दुःख देता है, और शत्रुके क्रोधको नष्ट करनेवाला है।

७२ ब्रह्मणस्पते! सुगोपा यं रक्षसि, अस्मात् इत् विश्वाः ध्वरसः वि बाधसे- (२२०) हे ब्रह्मणस्पते ! उत्तम पालन करनेवाले तुम जिसकी रक्षा करते हो, उसे सभी हिंसकोंसे दूर ही रखते हो।

७३ तं अंहः न, दुरितं न, अरातयः न, द्वयाविनः न तितिरुः- (२२०) ब्रह्मणस्पतिसे सुरक्षित मनुष्यकी पाप, बुरे कर्म और शत्रु भी कहीं हिंसा नहीं कर सकते और न ठग ही उसे ठग सकते हैं।

७४ बृहस्पते! त्वं नः गोपाः पथिकृत्- (२२१) हे बृहस्पते ! तुम हमारे रक्षक तथा हमारे लिए उत्तम मार्गके बनानेवाले हो।

७५ यः नः ह्वरः अभि दधे, तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु- (२२१) जो हम ज्ञानियोंके प्रति कुटिलता धारण करता है वह अपनी कुटिल बुद्धिसे मारा जाए।

७६ बृहस्पते! अरातीवा मर्तः स-अनुकः,अन्आगसः नः मर्चयात्, तं पथः अपवर्तय -(२२२) हे बृहस्पते ! शत्रु मनुष्य या क्रोधित भेडियेके समान क्रूर मनुष्य निष्पाप रहनेवाले हमको पीडित करे, तो उसे हमारे मार्गसे दूर कर।

७७ अस्यै देववीतये नः सुगं कृधि- (२२२) इस देवत्व की प्राप्तिके लिए हमारे मार्गको सुगम बना।

७८ तनूनां त्रातारं अधिवक्तारं अस्मयुं त्वा हवामहे- (२२३) हमारे शरीरोंके रक्षक, सबसे ऊपर रहकर बोलनेवाले, हमारी सहायता करनेवाले तुझको हम अपने सहायार्थ बुलाते हैं।

७९ देवनिदः नि बर्हय- (२२३) देवनिन्दकोंका नाश करना चाहिए।

८० दुरेवाः उत्तरं सुम्नं मा, उत् नशन्- (२२३) दुष्ट शत्रु उत्तम सुखको न प्राप्त हों, अपितु वे नष्ट हो जायें।

८१ स्पार्हा वसु वयं मनुष्या आददीमहि- (२२४) स्पृहणीय धन हम मनुष्योंका हित करनेके लिए ग्रहण करें।

८२ याः दूरे याः तळितः अरातयः सन्ति, ताः अन्-अप्नसः जम्भय- (२२४) जो शत्रु हमारे पास हों, या दूर हों, उन कर्महीन शत्रुओंको तुम नष्ट करो। काम न करनेवाले-कर्महीन मनुष्य राष्ट्रके शत्रु हैं, ऐसे शत्रुओंको नष्ट करना चाहिए।

८३ दुःशसः अभि-दिप्सुः नः माईशत- (२२५) आपकीर्तिवाला अर्थात् बदनाम और हमें दबाकर रखनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य हमारा स्वामी न हो।

८४ मतिभिः प्र तारिषीमहि- (२२५) हम अपनी उत्तम बुद्धिओंसे हर तरहके संकटोंसे पार हो जायें।

८५ यः अदेवेन मनसा रिषण्यति, उग्रः मन्यमानः शासां जिघांसति, तस्य वधः नः मा प्रणक्- (२२६) जो आसुरी मनसे युक्त होकर हमें दुःख देना चाहता है, जो अपनेको बहुत बडा मानता हुआ स्तोताओंको मारना चाहता है, उसके शस्त्र हम पर आकर न गिरें।

८६ दुरेवस्य शर्धतः मन्युं नि कर्म- (२२६) दुष्ट मार्गसे चलनेवाले बलशालीके क्रोधको हम निकम्मा करते हैं।

८७ दृष्टवीर्यं त्वा ये निदे दधिरे, रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तपः- (२२९) पराक्रमको स्पष्ट देखनेके बावजूदभी जो नास्तिक ईश्वरकी निन्दा करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

८८ ये अभिद्रुहः पदे निरामिणः हृदि देवानां व्रयः वि आ ओहते साम्नः परः न विदुः स्तेनेभ्यः नः माः - (२३१) जो दूसरेसे द्रोह करनेमें ही आनन्द मानते है, हृदयमें देवताओंका विरोध करते हैं तथा मधुरवाणी बोलकर दूसरोंको ठगा करते है, ऐसे चोरोंसे हमें डर न हो।

८९ देवाः यत् अवन्ति, तत् विश्वं भद्रं -(२३४) देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सब तरहसे कल्याण होता है।

९० देवानां देवतमाय तत् कर्त्वम्- (२३७) देवोंमें सर्वश्रेष्ठ देव ब्रह्मणस्पतिका पराक्रम प्रशंसनीय है।

९१ सः अरणः नकिः- (२४१) छलकपट करनेवाला मनुष्य कभी भी उन्नति नहीं कर सकता।

९२ सः पुरोहितः ब्रह्मणस्पतिः युधि सं नयः वि नयः (२४३) देवोंका पुरोहित ब्रह्मणस्पति युद्धमें अपनी सेनाका संघटन और शत्रुसेनाका विघटन करता है। राष्ट्रके पुरोहितमें युद्ध संचालनकी क्षमता होनी चाहिए।

९३ यत् चाक्षमः वाजं भरते आत् इत् सूर्यः वृथा तपति- (२४३) जब सर्वद्रष्टा ब्रह्मणस्पति शक्ति भरता है, तभी सूर्य बिना परिश्रमके प्रकाशित होता है।

९४ रण्वः ब्रह्मणस्पतिः अवरे वृजने महां शवसा ववक्षिथ, स देवः देवान् प्रति पप्रथे- (२४५) आनन्द प्रदान करनेवाला ब्रह्मणस्पति छोटे युद्धमें भी अपने बलको प्रकाशित करता है, इसलिए वह देवोंमें अत्यधिक महान् है।

९५ सभेयः विप्रः धना भरते- (२४७) सभामें बैठनेकी योग्यतावाला ज्ञानी धनोंको प्राप्त करता है।

९६ वीळुद्वेषा वशा ऋणं आददिः- (२४७) बलवान् शत्रुओंसे द्वेष करनेवाला ब्रह्मणस्पति हमें मातृऋणसे उऋण करे।

९७ यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते सः वनुष्यतः वनवत्, जातेन जातं अति प्रसर्सृते- (२५१) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है, वह हिंसकोंको मारता है और अपने उत्पन्न हुए पुत्रसे होनेवाले पौत्रद्वारा वह बहुत विशाल होता है ।

९८ यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते, त्मना बोधति, तस्य तोकं तनयं च वर्धते- (२५२) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है, वह स्वयं अपने प्रयत्नोंसे ज्ञान प्राप्त करता है और उसके पुत्र और पौत्र बढते है ।

९९ शिमीवान् ओजसा ऋघायतः अभिवष्टि- (२५३) कर्मशील वीर अपने बलसे हिंसक शत्रुओंको चारों ओरसे मार देता है।

१०० अग्नेः प्रसितिः इव अह न वर्तवे- (२५३) अग्निकी ज्वालाके समान वह किसीसे नहीं रोका जा सकता।

१०१ तस्मै असश्चतः दिव्याः अर्षन्ति- (२५४) ब्रह्मणस्पतिके मित्रको बिना रूकावटके दैवी शक्तियां प्राप्त होती हैं।

१०२ ऋजुः शंस इत् वनुष्यतः वनवत् -(२५६) सीधा और सरल स्तोता ही हिंसकोंको मारता है।

१०३ देवयन् इत् अदेवयन्तं अभि असत्- (२५६) देवका पूजक ही देवकी पूजा न करनेवालेको मारता है।

१०४ यज्वा इत् अयज्वोः भोजनं वि भजाति- (२५६) यज्ञ करनेवाला ही यज्ञ न करनेवालेके भोग-साधनका उपभोग करता हैं।

१०५ वृत्रतूर्ये भद्रं मनः कृणुष्वः- (२५७) संग्राममें मनको सदा कल्याणकारी विचारोंसे ही युक्त करना चाहिए।

१०६ इमाः गिरः घृतस्नू - (२६०) ये वाणियां स्नेह और तेजसे भरी होनी चाहिए।

१०७ भूर्यक्षः अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति- (२६२) देवगण अनेकों आंखोंसे युक्त होनेके कारण मनुष्यके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता सभी कुछ देखते हैं।

१०८ राजभ्यः सर्वं परमा चिद् अन्ति- (२६२) इन तेजस्वी देवोंके लिए सभी चीजें दूर होती हुई भी पास हैं।

१०९ भये मयोभु अवसः विद्याम्- (२६४) भयके प्राप्त होने पर इन देवोंके सुखकारक संरक्षणको मैं प्राप्त करूं।

११० प्रणीतौ दुरितानि परि वृज्यां- (२६४) उत्तम मार्ग पर चलते हुए मैं पापोंको छोड दूं।

१११ वः पन्थाः अनृक्षरः सुगः साधुः अस्ति- (२६५) देवोंका मार्ग कांटोंसे रहित, आसानीसे जाने योग्य और उत्तम है।

११२ एषां विदथे अन्तः व्रता- (२६७) देवगण इन लोकोंमें नियमोंका संचालन करते हैं।

११३ वः महित्वं ऋतेन महि- (२६७) इन देवोंकी महिमा सत्य और सरलताके कारण ही बडी है।

११४ ये च देवाः ये च मर्ताः विश्वेषां राजा- (२६९) जो देव और मनुष्य हैं, उन सभीका यह वरुण देव राजा है।

११५ विचक्षे सुधितानि आयूंषि अश्याम- (२६९) संसारको अच्छी तरह देखनेके लिए अमृतके समान आयुको प्राप्त करें।

११६ पाक्या धीर्या चित् युष्मानीतः अभयं ज्योतिः अश्याम- (२७०) अपरिपक्व बुद्धिवाला तथा शक्तिहीन होने पर भी मैं आपके द्वारा बताये मार्ग पर भयरहित ज्योति प्राप्त करूं।

११७ यः राजभ्यः ऋतनिभ्यः ददाश, पुष्टयः वर्धयन्ति- (२७१) जो मनुष्य तेजस्वी यज्ञ करनेवालोंको दान देता है, उसे सभी पुष्टिकारक पदार्थ बढाते हैं।

११८ वसुदावा विदथेषु प्रथमः याति- (२७१) धनका दान करनेवाला मनुष्य सभी तरहके कर्मोंमें सबसे आगे रहता है।

११९ यः आदित्यानां प्रणीतौ भवति, शुचिः अदब्धः वृद्धवयाः अप क्षेति- (२७२) जो देवोंके बताये गए मार्ग पर चलता है, वह पवित्र, अहिंसनीय और दीर्घायुयुक्त होकर कर्म करता है।

१२० तं दूरात् अन्तितः नकिः घ्नन्तिः- (२७२) उस उत्तम कर्म करनेवालेको पाससे या दूरसे कोई नहीं मार सकता।

१२१ यत् वयं वः कच्चित् आगः चकृम, मृळ- (२७३) यदि हम तुम्हारे प्रति कोई अपराध कर भी दें, तो भी हे देवो ! तुम हमें सुखी करो।

१२२ उरु अभयं ज्योतिः अश्याम- (२७३) मैं विस्तृत और भयसे रहित ज्योति प्राप्त करूं।

१२३ दीर्घाः तमिस्राः नः मा अभिनशन्- (२७३) दीर्घ अन्धकार हमें कभी व्याप्त न करें।

१२४ पृत्सु आजयन् उभा क्षयौ याति- (२७४) वीर पुरुष युद्धोंमें शत्रुओंको जीतकर इहलोक और परलोक दोनोंको प्राप्त करता है।

१२५ अस्मै उभौ साधू भवतः- (२७४) इस पुरुषके लिए दोनों चराचरात्मक जगत् उपकारक होते हैं।

१२६ मायाः पाशाः अभिद्रुहे रिपवे विचृत्ताः- (२७५) इन देवोंकी माया और फांसे द्रोह करनेवाले शत्रुओं पर ही फैले रहते हैं।

१२७ अहं भूरिदाव्नः शूनं मा आ विदं- (२७६) मैं बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी वृद्धिकी निन्दा न करूं।

१२८ सुयमात् रायः मा अवस्थाम्- (२७६) उत्तम धन पाकर मैं दूसरोंके ऊपर न होऊं अर्थात् अपने धन पर अभिमान करता हुआ मैं दूसरोंको नीचा न समझूं।

१२९ सु आध्यः तव व्रते सुभगासः स्याम- (२७८) उत्तम स्वाध्याय करनेवाले हम देवोंके नियममें रहकर उत्तम भाग्यवाले हों।

१३० मत् आगः रशनां इव श्रथय- (२८१) हे वरुण ! मेरे पापोंको रस्सीके समान मुझसे शिथिल कर।

१३१ ऋतस्य ते खां ऋध्याम- (२८१) ऋत अर्थात् नैतिकताके मार्गपर चलनेवाले वरुणसे हम इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्राप्त करें।

१३२ धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदि- (२८१) कामका ताना बाना बुनते हुए मेरे धागोंको बीचमें ही न तोड।

१३३ अपसः पुरा मात्रा मा शारि- (२८१) काम पूर्ण होने से पहले ही मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर।

१३४ वरुण! ये ते इष्टौ एनः कृण्वन्तं श्रीणन्ति, वधैः न मा- (२८३) हे वरुण ! जो शस्त्र तेरे यज्ञमें पाप करनेवालेको मारते हैं, उन शस्त्रोंसे हमें न मार।

१३५ ज्योतिषः प्रवसथानि मा गन्म- (२८३) हम प्रकाशसे दूर न जायें।

१३६ मत्कृतानि ऋणा परा सावीः- (२८५) मेरे द्वारा किए गए ऋणोंको दूर कर।

१३७ अहं अन्यकृतेन मा भोजम्- (२८५) मैं दूसरेके द्वारा कमाये गए धनसे भोग न करूं।

१३८ देवा! यूयं इत् आपयः स्थ- (२९१) हे देवो ! तुम्हीं हमारे भाई हो।

१३९ युष्मावत्सु आपिषु मा श्रमिष्म- (२९१) हे देवो ! तुम जैसे भाईयोंकी सेवा करते हुए हम कभी न थकें।

१४० तोकस्य तनयस्य सातौ अस्मान् अर्ध कृणुत- (२९९) पुत्र और पौत्रोंका पालन करनेके लिए हम समृद्धियुक्त हों।

१४१ अनुधूपितासः हत्वी तेषां वसूनि नः आभर- (३०४) हे देव ! जो घमण्डी हैं और अपनी झूठी प्रशंसा करते हैं, उन्हें मारकर उनके धन हमें प्रदान कर।

१४२ एता उत् यता वश्मि- (३१२) उन्नतिकी ओर ले जानेवाले उत्तम कर्म मैं करना चाहता हूं।

१४३ आयवः नव्यसे सं अतक्षन्- (३१२) मनुष्य यश प्राप्त करनेके लिए उत्तम कर्म करते हैं।

१४४ श्रवस्यवः रथ्यः सप्तिः न धीतिं अश्याः- (३१२) यशप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य रथमें जुडे हुए घोडेकी तरह सदा उत्तम काम करनेमें ही व्यस्त रहें।

१४५ ऋतायतः सिषासतः आयुः प्रतरं- (३१३) सत्य मार्गपर चलनेवाले तथा देवोंको सेवा करनेवालेकी आयु दीर्घ होती है।

१४६ त्वा दत्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः शतं हिमाः अशीय- (३२२) हे रुद्र ! तेरे द्वारा दिए गए सुखकारक औषधियोंसे मैं सौ वर्ष तक सुकर्म करने योग्य होऊं।

१४७ अस्मत् द्वेषः अंहः विषूचीः अमीवा चातयस्व- (३२२) हे रुद्र ! हमसे द्वेष, पाप तथा सब शरीरमें व्याप्त होनेवाले रोगोंको दूर कर।

१४८ श्रिया जातस्य श्रेष्ठः असि -(३२३) रुद्र अपने ऐश्वर्यके कारण ही उत्पन्न हुए प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

१४९ त्वा नमोभिः दुस्तुती मा चुक्रुधाम- (३२४) हे रुद्र ! हम तुझे झुठे नमस्कार करके तथा बुरी स्तुतियोंसे कभी भी क्रोधित न करें।

१५० भिषजां भिषक्तमः- (३२४) यह रुद्र ! सभी वैद्योंमें उत्तम वैद्य है।

१५१ ऋदूदरः अस्यै मनाय नः मा रीरधत्- (३२५) कोमल ह्रदयवाला यह रुद्र ईर्ष्याके हाथोंमें हमें न सौंपकर हमारी हिंसा न करे।

१५२ भेषजः जलाषः मृळयाकुः हस्तः- (३२७) रुद्रका हाथ रोग दूर करनेवाला, जीवन देनेवाला तथा सुख देनेवाला है।

१५३ दैव्यस्य रपसः अपभर्ता- (३२७) दैवी आपत्तियोंको यह रुद्र दूर करनेवाला है।

१५४ अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात् असुर्यं न योषत्- (३२९) इस भुवनका पालन करनेवाले सबके शासक रुद्रसे असुरोंका विनाशक बल कभी अलग नहीं होता।

१५५ अर्हन् इदं विश्वं अभ्वं दयसे- (३३०) यह श्रेष्ठ रुद्र सारे संसार पर दया करता है।

१५६ त्वत् ओजीयः न अस्ति- (३३०) इस रुद्रसे अधिक तेजस्वी और कोई नहीं है।

१५७ त्वेषस्य मही दुर्मतिः परि गात्- (३३४) उस तेजस्वी रुद्रको क्रोधित करनेवाली बुद्धि हमें छोडकर दूर चली जाए।

१५८ असुर्यस्य मह्ना विश्वानि भुवना जजान- (३५२) देवने असुरोंको नष्ट करनेवाली अपनी शक्तिकी महिमासे सभी लोकोंको पैदा किया।

१५९ सः अप्सु अनिध्मः दीदाय- (३५४) वही ईश्वर जलोंमें बिना ईंधनके भी प्रदीप्त हो रहा है।

१६० मघवद्भ्यः सुवृक्तिं अयांसं- (३६५) ऐश्वर्यशालियोंसे मैं उत्तम व्यवहार करूं।

१६१ यः नाम ददिः स इत् हव्यः- (३७३) जो धन देनेमें उदार है, उसीकी प्रार्थना करनी चाहिए।

१६२ स्यः देवः सविता सवाय शश्वत्तमं अस्थात् = (३७८) वह तेजस्वी सवितादेव-सूर्यदेव प्रत्येकको कर्मकी तरफ प्रेरित करनेके लिए प्रतिदिन उदय होता है।

१६३ पृथुपाणिः देवः विश्वस्य श्रुष्ट्ये बाहवा प्र सिसर्ति- (३७९) बडे बडे हाथों अर्थात् किरणोंवाला यह तेजस्वी सूर्य सारे संसारके सुखके लिए अपनी किरणरूपी हाथोंको प्रसारित करता है।

१६४ निमृग्राः आपः चित् अस्य व्रते आ- (३७९) पवित्र करनेवाले जल भी इस सूर्यके आदेशानुसार चलते हैं।

१६५ यस्य व्रतं इन्द्रः वरुणः अर्यमा रुद्रः अरातयः न मिनन्ति- (३८६) इस सवितादेवके नियम को इन्द्र, वरुण, अर्यमा, रुद्र और शत्रु भी नहीं तोड सकते।

१६६ वामस्य रयीणां आये देवस्य प्रियाः स्यमा- (३८७) सुन्दर धनको प्राप्त करके भी हम देवोंके प्रिय बने रहें।

१६७ जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ- (३९७) सोम और पूषा ये दोनों देव उत्पन्न होते ही सभी भुवनोंके पालक एवं रक्षक बनाये गए।

१६८ देवाः अमृतस्य नाभिं अकृण्वन्- (३९७) देवोंने सोम और पूषाको अमृतका केन्द्र बनाया।

१६९ ता अनवह्वरं सचेते- (४०८) सोम और पूषा ये दोनों देव कुटिलतासे रहित उपासकके पास जाते हैं।

१७० इन्द्रः नः मृळयाति, नः अघं न नशत्, पुरः नः भद्रं भवाति- (४१३) यदि इन्द्र हमें सुखी करे, तो हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता, तथा सदा कल्याण प्राप्त हो सकता है।

१७१ इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः अभयं करत्- (४१४) इन्द्र हमें सभी दिशाओंसे भय रहित करे।

१७२ अम्ब सरस्वति! अप्रशस्ता स्मसि, नः प्रशस्तिं कृधि- (४१८) हे माता सरस्वती ! हम निन्दनीय है, अतः तू हमें प्रशंसाके योग्य कर।

१७३ देव्यां विश्वा आयूंषि श्रिता- (४१९) इस देवी सरस्वतीमें सभी आयु आश्रित हैं।

१७४ जनुषं प्रब्रुवन्तः वाचं इयर्ति- (४२४) परिव्राजक विद्वान् मनुष्योंको उपदेश करता हुआ सर्वत्र वेदवाणीका प्रचार करता है।

१७५ सुमंगलः भद्रवादी इह वद- (४२५) कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही इस सभामें उपदेश करे।

१७६ शकुने! सर्वतः नः भद्रं पुण्यं आ वद- (४२८) हे परिव्राजक विद्वान् ! तू चारों ओरसे हमारा कल्याण करनेवाले तथा पुण्य देनेवाले वचन कह। हमें ऐसा उपदेश दे कि हम अपना कल्याण करके पुण्य प्राप्त कर सकें।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

द्वितीय मण्डल

द्वितीय मंडलमें कुल ४३ सूक्त है। इन सूक्तोंमें ४२९ मंत्र है। इन मंत्रोंमें सर्वाधिक मंत्र इन्द्र देवताके हैं और ऋषियोंमें सबसे ज्यादा मंत्र गृत्समदगोत्रीय भृगुपुत्र शौनकके हैं। द्वितीयमंडलके ऋषि, सूक्त, मंत्र और देवताओंकी संख्या इस प्रकार है-

ऋषिवार सूक्तसंख्या

	ऋषि	सूक्त संख्या
१	गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः	३६
२	सोमाहुतिर्भार्गवः	४
३	कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा	३
		४३

ऋषिवार मंत्रसंख्या

	ऋषि	मंत्रसंख्या
१	गृत्समदो भार्गवः शौनहोत्रः	३६३
२	कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा	३५
३	सोमाहुतिर्भार्गवः	३१
		४२९

देवतावार मंत्रसंख्या

	देवता	मंत्रसंख्या
१	इन्द्रः	१३६
२	अग्निः	७८
३	ब्रह्मणस्पतिः	२८
४	विश्वेदेवाः	१७
५	आदित्याः	१७
६	बृहस्पतिः	१६
७	मरुत्	१६
८	रुद्रः	१५
९	अपांनपात्	१५
१०	ऋतवः	१२
११	सविता	११
१२	अश्विनौ	११
१३	आप्रीसूक्त	११
१४	वरुणः	११
१५	सोमापूषणौ	६
१६	शकुन्तः	६
१७	सरस्वती	४
१८	द्यावापृथिवी	४
१९	सिनीवाली	३
२०	मित्रावरुणौ	३
२१	इन्द्रस्त्वष्टा	२
२२	राका	२
२३	वायुः	२
२४	इन्द्रवायू	१
२५	इन्द्राब्रह्मणस्पतिः	१
२६	इन्द्रासोमौ	१
		४२९

ऋग्वेदमें **"ऐसा करो, ऐसा न करो"** आदि विध्यात्मक और निषेधात्मक वाक्य नहीं हैं। ऋग्वैदिक ऋषियोंने लोगोंके सामने देवताओंका आदर्श प्रस्तुत किया है, वह भी इसी द्रष्टिसे कि मनुष्य इन देवताओंके आदर्श पर चलें और स्वयं भी देवोंके समान बनकर अन्योंके लिए आदर्शरूप बनें। इस प्रकार आदर्शात्मक रीतिसे ऋग्वेद मनुष्योंको उत्तम मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा देता है। ऋषियोंकी यह रीति मनुष्योंकी अन्तःप्रेरणा पर अवलम्बित है। विधि या निषेधमें एक प्रकारकी जो जबर्दस्ती है, वह ऋषियोंकी रीतिमें नहीं है। यहां तो स्वेच्छा पर निर्भर है। जो स्वेच्छया इन देवोंके गुणकर्मोंको अपनायेगा, जो उनके बताये मार्ग पर अपनी अन्तःप्रेरणासे चलेगा, वह देववत् ही होगा। इसीलिए ऋषियोंने सर्वत्र देवोंके गुणोंका ही वर्णन किया है।

नेताके गुण

मनुष्योंमें जिस प्रकार नेता सबसे आगे रहता है, उसी प्रकार अग्नि देवोंमें सबसे अग्रणी रहता है। अग्रणी होनेके नाते ही वह अग्नि है। अग्निके द्वारा ऋग्वेदने नेताके गुणोंका वर्णन किया है। जो इस प्रकार है-

१ नृणां नृपतिः- (१) वह अग्नि मनुष्योंका स्वामी है। अग्नि प्राणके रूपमें सभी प्राणियोंमें वास कर रहा है, प्राण होने के नाते ही भूत प्राणी कहाते हैं। इसीलिए प्राणको सबका स्वामी कहा गया है। प्राणके रहने तक ही मनुष्यके सब क्रियाकलाप चलते हैं। प्राणके अभावमें सभी कुछ निस्सार है। इसी तरह किसी राष्ट्रके नेता उस राष्ट्रके प्राणरूप होते हैं। उत्तम नेताके कारण ही राष्ट्र और जागृत रहता है। उत्तम नेताके अभावमें राष्ट्र मृतवत् हो जाता है। वह नेता भी-

२ द्युभिः जायसे (ते) (१) तेजोंसे उत्पन्न हुआ हो। अरणिमें गुप्त अग्नि मथे जाने पर जब अपनी ज्वालाओंके द्वारा अपने तेजको फैलाकर प्रकट होती है तभी मनुष्य कहते हैं कि अग्नि उत्पन्न हुई। अरणिमें निहित अग्नि सबके लिए **"दाभ्य"** दबाये जाने लायक है, पर उत्पन्न होकर वही **"अ-दाभ्य"** न दबने योग्य हो जाती है। इसी तरह जब तक मनुष्य अपने तेजोंको नहीं फैलाता, तब तक वह प्रकाशमें नहीं आता, और ऐसे मनुष्यको हर कोई आसानीसे दबा लेता है, पर जब वही मनुष्य तेजस्वी बनकर अपने तेजोंको प्रकट करने लगता है, तब वह **"अ-दाभ्य"** बन जाता है। कोई भी शत्रु उसे अपने वशमें नहीं कर पाता। इसलिए नेताको तेजस्वी होना चाहिए।

३ पोत्रं तव- (२) अग्रणीका काम राष्ट्रमें पवित्रता रखनेका भी है। घरमें यदि अग्नि रोज जला करे, और उसमें उत्तम उत्तम पदार्थोंका होम हो, तो उस घरका वातावरण, हवा आदि पदार्थ पवित्र हो जाते हैं। इसी प्रकार अग्रणी या नेता भी अपने राष्ट्रमें सर्वत्र पवित्रता करनेवाला हो। वह इस बातकी देखभाल करे कि राष्ट्रमें कहीं भी कूडा कचरा न हो। राष्ट्रभरमें उत्तम वातावरण और उत्तम वायुमण्डल रहे, ताकि प्रजाका स्वास्थ्य उत्तम रहे। इस प्रकार नेताका काम पवित्रता करना भी है।

४ सतां वृषभः इन्द्रः- (३) अग्रणी नेता सज्जनोंकी कामनाओंका पूरक है तथा स्वयं भी ऐश्वर्यवान् है। नेता इस बातमें सदा दक्ष रहे कि राष्ट्रके सत्पुरुष सुरक्षामें रहें, दुष्ट उन्हें सताने न पायें। सत्पुरुषोंकी हर इच्छा पूर्ण होवे, ताकि राष्ट्रमें सर्वत्र सज्जनोंकी संख्या अधिक हो। एक नेता सत्पुरुषोंकी इच्छा तभी पूरी कर सकता है, जब कि वह स्वयं ऐश्वर्यवान् हो। इसलिए नेता प्रथम स्वयं ऐश्वर्यवान् बने फिर दुष्टोंका दमन करके सत्पुरुषोंकी रक्षा करे और उन्हें ऐश्वर्यसे सम्पन्न करे। तभी वह अग्रणी **उरुगायः** (३) सर्वत्र प्रशंसित होता है। ऐसे नेताकी सभी लोग प्रशंसा करेंगे, इसमें सन्देह क्या?

ऐसा नेता **पुरंध्या सचते** (४) उत्तम बुद्धिसे युक्त होता है। नेताको उत्तम बुद्धिसे युक्त होना चाहिए। उसकी बुद्धि संकटके समयमें भी डगमगानेवाली न हो, ऐसी बुद्धिके बलपर ही यह नेता **पुरं-धी (पुरं धीयते धार्यते यया)** नगर या राष्ट्रको धारण कर सकता है। राष्ट्रको शक्तिशाली बना सकता है।

५ धृतव्रतः वरुणः- (४) व्रतोंको अर्थात् नियमोंको धारण करनेके कारण ही मनुष्य वरुण अर्थात् वरणीय या पूजनीय हो सकता है। राष्ट्रका नेता नियमोंके अनुसार चलनेवाला हो, वह स्वयं अनुशासनबद्ध हो और प्रजाओंको

भी अनुशासनबद्ध करे। वह सदा सावधान रहे कि उसके द्वारा किसी नियमका उल्लंघन न हो, नहीं तो प्रजा भी उसका अनुकरण करेगी और राष्ट्रमें सर्वत्र अनुशासनहीनता का साम्राज्य छा जाएगा। अतः नेता धृतव्रत हो। क्योंकि-

६ सुदंससं देवाः बुध्ने एरिरे- (१९) ऐसे उत्तम कर्म करनेवाले नेताको राष्ट्रके विद्वान मनुष्य सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं। ऐसे उत्तम मनुष्यको ही विद्वान जन राष्ट्रका राजा या शासक बनाते हैं। राजाकी नियुक्ति गुणोंके आधार पर हो, वंशके आधार पर राजाकी नियुक्ति न हो, तथा कोई मनुष्य राजा होने योग्य है या नहीं, इसकी परीक्षा विद्वान ब्राह्मणजन ही करें। इस प्रकार राष्ट्रका शासन वस्तुतः विद्वान् ब्राह्मणोंके हाथोंमें हो, राजा भी इन ब्राह्मणोंकी आज्ञामें रहकर राष्ट्रका शासनसूत्र चलाये। इस मंत्रभागमें प्रजातंत्रात्मक शासनकी तरफ संकेत किया गया है। ऐसे प्रजातंत्रमें भी मत देनेका अधिकार उन्हींको हो, जो विद्वान् हों और गुणोंको पहचाननेवाले हों। आयुके आधारपर मतदानकी प्रणाली न हो। ऐसा होनेपर उत्तम कर्म करनेवाला ही राजा बन सकेगा और राष्ट्रकी उन्नति और समृद्धि हो सकेगी।

ज्ञानका महत्त्व

१ ब्रह्मणा सुवीर्य जनान् अति चितयेम- (२६) हम अपने उत्कृष्ट ज्ञानसे लोगोंसे श्रेष्ठ बनें। ज्ञानसे उच्चता प्राप्त करना दैवी सम्पत्ति है और बलसे श्रेष्ठता प्राप्त करना आसुरी सम्पत्ति है। दैवी सम्पत्ति शाश्वत उन्नतिका कारण है और आसुरी सम्पत्ति क्षणिक उन्नति पर शाश्वत विनाशका कारण है, इसलिए वेद हमें ज्ञान या दैवी सम्पत्तिके द्वारा ही उन्नति करनेका उपदेश देता है।

२ अस्माकं उच्चा दुस्तरं द्युम्नं पंचकृष्टिषु शुशुचीत- (२६) हमारा ऊंचा या उन्नत ऐश्वर्य अजेय होकर सभी मनुष्योंमें प्रकाशित हो। ज्ञानके द्वारा प्राप्त किया गया ऐश्वर्य अजेय होता है, उसे कोई जीत नहीं सकता, उसे चुरा या छीन नहीं सकता और उस ज्ञानकी सभी मनुष्योंमें प्रशंसा होती है।

३ शुचि प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं अजनि- (५३) शुद्ध और उत्तमतासे शासन करनेवाला यह ज्ञानी शुद्ध और पवित्र करनेवाले ज्ञानके साथ ही उत्पन्न हुआ है। ज्ञान मन और बुद्धिको शुद्ध और पवित्र करके ज्ञानीको भी शुद्ध बनाता है। ज्ञानसे मन शुद्ध होता है, मनकी शुद्धतासे बुद्धि शुद्ध होती है और शुद्ध बुद्धिसे किए गए काम भी शुद्ध और पवित्र होते हैं।

शरीरका स्वास्थ्य

१ स्वस्य पुष्टिः रण्वा- (४४) अपने शरीरकी स्वस्थता सभी मनुष्योंके लिए आनन्ददायक होती है। मनुष्य स्वस्थ हो, तो उसे सारा जग आनन्दमय दीखता है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन रहता है।

२ चित्रेण भासा जुजुर्वान् मुहुः युवा भूत्- (४५) उत्तम तेजसे युक्त मनुष्य वृद्ध होने पर भी तरुणके समान दीखता है। स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मनसे युक्त मनुष्यके पास बुढापा शीघ्र नहीं आता। ऐसा मनुष्य वृद्धावस्थामें भी तरुणके समान तेजस्वी और कार्य करनेमें उत्साही होता है। उसके चेहरे पर तरुणों जैसा तेज होता है। ऐसा वृद्ध मनुष्य भी अपने पुत्रपौत्रोंके बीचमें रहकर गृहस्थाश्रमका आनन्द भोगता है।

३ सुवीराः विदथे बृहत् वदेम- (२९) हम सब उत्तम वीरपुत्रोंसे युक्त होकर हर पवित्र कार्यमें देवोंकी प्रशंसाका गान करें। जीवनका सच्चा सुख देवोंका गुण गानेमें है। जो मनुष्य सदा देवोंका गुणगान करता रहेगा, उसका मन भी सदा देवोंमें रमे रहनेके कारण दैवी मन बन जाएगा। उसका मन भी दिव्य हो जाएगा, मनके दिव्य होते ही उसकी इन्द्रियां भी दिव्य हो जाएंगी, इस प्रकार उसका सारा जीवन ही दिव्य हो जाएगा ।

पुत्र कैसा हो?

१ त्वष्टा अस्मे नाभिं प्रजां वि ष्यतु- (३८) सब जगत्को बनानेवाला देव हमें हमारे वंशको आगे चलानेवाला पुत्र प्रदान करे। सब जगत्का निर्माण करनेवाला प्रभु हमें ऐसा पुत्र प्रदान करे कि जिससे हमारा कुल चमके। हजार मूर्खपुत्रोंकी अपेक्षा एक ही गुणवान् और ज्ञानवान् पुत्र बेहतर हैं। सो पुत्रोंके होने पर भी यदि वे सब निकम्मे निकल जायें, तो कुल डूब जाता है, पर गुणी और ज्ञानी एक ही पुत्र हो, तो उस इकलौते पुत्रसे भी कुलका उद्धार हो जाता है। सगरकुलका उद्धार उसके साठ हजार पुत्र भी

नहीं कर सके, पर अकेले भगीरथने सगरकुलको अमर कर दिया। इसीलिए भगवान्से केवल एक ही कुलोद्धारक, ज्ञानी और गुणी पुत्र प्रदान करनेकी प्रार्थना की गई। पुत्र कैसा हो, इस विषयमें और भी आगे कहते है-

२ अथ देवानां पाथः अपि एतु- (३८) वह हमारा पुत्र देवों और विद्वानोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चले। पुत्र इकलौता हो, पर यदि वह ज्ञानियोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर नहीं चलेगा, तो अज्ञानी और मूर्ख ही रह जाएगा। ऐसा मूर्ख पुत्र भाररूप ही होता है। इसलिए पुत्र ऐसा हो कि विद्वानोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चलकर स्वयं विद्वान् बने और उत्तम हो। ऐसे पुत्रसे ही वंशका उद्धार होता है। ऐसे ही पुत्रोंसे राष्ट्रका भी उद्धार होता है।

देवनिन्दकोंका नाश हो

१ देवस्य मर्त्यस्य च अरातिः नः मा ईशत- (६७) देवोंका शत्रु अर्थात् देवोंकी निन्दा करनेवाला नास्तिक तथा मानवताका शत्रु मनुष्य हम पर शासन न करे। देवोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक होते है, ऐसे मनुष्योंको राजा कभी नहीं बनाना चाहिए। ऐसे नास्तिक यदि देशके राजा बनेंगे, तो सारा देश नास्तिक हो जाएगा और वाममार्गियोंका राज्य हो जाएगा और उससे सारा देश नष्ट हो जाएगा। इसलिए देशका शासक आस्तिक ही हो। देशमें जो भी नास्तिक या देवनिन्दक हों, उनका नाश राजा करे। इसी तरह मानवताका शत्रु भी हम पर शासन न करे। जो मनुष्यकी उन्नतिके कार्यमें बाधा उपस्थित करते है, वे मानवताके शत्रु है। जो राष्ट्रमें अव्यवस्था पैदा करते हैं, राष्ट्रकी प्रजाओंको कष्ट देते हैं, वे भी मानवताके शत्रु हैं, ऐसे शत्रुओंको भी नष्ट करना शासकका कर्तव्य है।

२ पशुपते अस्मत् द्वेषांसि युयोधि- (६१) हे धनके स्वामी राजन्! तू हमसे द्वेष करनेवालोंका नाश कर। राष्ट्रमें जो आस्तिकों, मनुष्यका हित करनेवालों तथा सज्जनोंसे द्वेष करनेवाले हों, उन्हें नष्ट करना चाहिए। राजाका यह कर्तव्य है कि वह ऐसे दुष्टोंको कठोरतम दण्ड दे।

३ त्वया वयं विश्वाः द्विषः आति गाहेमहि- (६८) हे अग्रणी! तुझसे सुरक्षित होकर हम सभी शत्रुओंसे आगे निकल जायें। अग्रणी-नेतासे सुरक्षित होकर राष्ट्रकी प्रजायें अपने अन्य शत्रु राष्ट्रकी अपेक्षा अधिक समृद्ध हों। राष्ट्रकी बाहरी सीमाओंकी जब रक्षा होती है, तभी राष्ट्रके अन्दर प्रजायें उन्नति कर सकती हैं। इसलिए नेता प्रथम राष्ट्रकी बाहरी रक्षापंक्तिको सुदृढ बनाये।

४ मानुषः अमानुषं नि जूर्वात्- (९९) मनुष्योंका हित करनेवाला अग्रणी मनुष्यका अहित करनेवालेको मारे। राष्ट्रका नेता स्वयं प्रजाका हित करे तथा जो दुष्ट प्रजाका अहित करते हैं, उन्हें नष्ट करे।

५ सजोषसः मन्दसानाः वायवः अग्रनीतिं प्र पान्ति (१०३) एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले और उत्तम रीतिसे शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले वीर सैनिक आगे चलनेवाले अपने नेताकी अच्छीतरह रक्षा करते हैं। जिस तरह नेता अपनी प्रजाओंकी रक्षा करता है, उसी तरह प्रजाओंको भी चाहिए कि वे अपने राजाकी रक्षा करें। इस प्रकार राजा द्वारा प्रजाकी और प्रजा द्वारा राजाकी सुरक्षा होनेसे दोनोंकी उन्नति होती है।

ऐश्वर्य-प्राप्तिका उपाय

ऋग्वेदने इहलोकमें ऐश्वर्यप्राप्तिके पक्ष पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। ऐश्वर्यप्राप्तिके उपायके बारेमें ऋग्वेदका कथन है-

१ यः लक्षं जिगीवान् सः इन्द्रः- (११४) जो मनुष्य अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है। वह ऐश्वर्यवान् होता है। ऐश्वर्यप्राप्तिका यह सर्वोत्तम उपाय है। मनुष्यको अपने सामने कोई न कोई लक्ष्य अवश्य रखना चाहिए। मनुष्य अपना एक लक्ष्य निर्धारित करके उसकी तरफ बढता चला जाए और उस तक पहुंच जाए, तो वह ऐश्वर्यशाली बन सकता। लक्ष्यहीन मनुष्य अपार समुद्रमें भटकती हुई नावके समान है। अतः हर मनुष्यको अपना एक लक्ष्य निश्चित करना चाहिए।

२ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषयत्- (१११) मनस्वी मनुष्य पैदा होते ही अपने उत्तम कर्मोंसे देवों और विद्वानोंको प्रसन्न करता है। जो अपने लक्ष्यका निर्धारण करके मनुष्य आगेकी तरफ बढता जाता है, उसका आत्मबल बहुत उच्च हो जाता है। जिसका मन शक्तिशाली होता है, उसे ही मनस्वी कहते हैं। ऐसा मनस्वी पुरुष

अपने उत्तम कर्मोंसे देवोंको प्रसन्न करता है। देवोंको प्रसन्न करना ऐश्वर्यप्राप्तिका दूसरा उपाय है। जिस पर देवगुण प्रसन्न हो जाते हैं, वह हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है। पर देवगण मनुष्यके कर्मसे ही प्रसन्न होते हैं। उन्हें खुशामदके द्वारा प्रसन्न नहीं किया जा सकता। वे तो पुरुषप्रयत्नसे प्रसन्न होनेवाले हैं। ऋग्वेदके एक अन्य मंत्रमें ही **"न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः"** अर्थात् देवगण भी बिना परिश्रम किए मनुष्यसे मित्रता नहीं करते, ऐसा कहा है। जो सदा प्रयत्नशील रहते हैं, उन्हें ही देवगण ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।

इन्द्रकी महिमा

इन्द्र सब देवोंका राजा है, और सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् है। **"इदि-परमैश्वर्ये"** इस धातुसे इन्द्र शब्द बना है। अतः इन्द्रका अर्थ ऐश्वर्यशाली है। द्वितीय मण्डल में इन्द्रकी बहुत महिमा गाई गई है। वह इन्द्र क्यों और कैसे बना, इसका कारण बताते हुए लिखा है-

१ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः- (१११) अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है। बल और शक्तिके कारण ही मनुष्य प्रभावशाली होता है। यह इन्द्र सभी युद्धोंमें अपना बल प्रदर्शित करता है, इसीलिए यह सब देवोंका राजा है। इसी प्रकार जो मनुष्य शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है, वही राजा होने योग्य है।

२ जनासः यस्मात् ऋते न विजयन्ते- (११९) मनुष्य इस इन्द्रकी सहायता के बिना विजय नहीं प्राप्त कर सकते। यह इन्द्र मनुष्योंकी भी सहायता करता है और उन्हें यद्धोंमें विजयी बनाता है।

३ यः अच्युतच्युत् सः इन्द्रः (११९) जो अपने स्थानसे न हटनेवाले शत्रुको भी विचलित कर देता है, वह इन्द्र है। राजाको चाहिए कि वह इतना शूरवीर हो कि उसके सामने दृढ से दृढ शत्रु भी स्थिर न रहने पायें।

४ द्यावापृथिवी अस्मै नमेते- (१२३) इस इन्द्रकी शक्तिके आगे द्युलोक और पृथ्वीलोक भी झुक जाते हैं।

५ ते रथः समुद्रैः पर्वतैः न (१६३) इस इन्द्रका वेग या गति समुद्रों और पर्वतोंसे भी नहीं रोकी जा सकती।

इन्द्रका दान

इन्द्रका दान महान् है। पर यह दान सबको नहीं मिल पाता अपितु किसी किसीको ही मिलता है। इन्द्रके दानके अधिकारी एवं अनधिकारीके बारे में ऋग्वेदमें कहा है-

१ यः शर्धते न अनु ददाति- (१२०) जो मनुष्य अहंकार करता है, उसे यह इन्द्र कुछ भी नहीं देता। अहंकारी मनुष्य इन्द्रका कभी प्रिय नहीं हो सकता। घमण्ड करनेवाला मनुष्य परमात्मासे हमेशा दूर रहता है। अहंकार परमात्मासे मिलनेके मार्गमें सबसे बडा रोडा है। अतः जो अहंकारको छोडकर सरल मनसे परमात्माके शरणमें जाता है वो-

२ वरूथे ज्येष्ठे गभस्तौ उप- (१८६) वह मनुष्य उस इन्द्रके उत्तम और श्रेष्ठ हाथोंके समीप रहता है। ऐसे मनुष्य पर परमात्माका वरदहस्त हमेशा रहता है।

३ यजतः दित्सन्तं भूयः चिकेत- (१४८) वह पूज्य इन्द्र दान करनेकी इच्छावाले मनुष्यको और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है। जो मनुष्य दानकी महिमा समझता है और वेदभगवान्की आज्ञाके अनुसार हजारों हाथोंसे धनका दान करता है, उसे परमात्मा और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है।

४ दाशुषे पुरूणि अप्रतीनि दाशत्- (१९१) दान देनेवाले मनुष्यको वह अप्रतिम धन देता है।

५ श्रेष्ठानि द्रविणानि, दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं, रयीणां पोषं, तनूनां अरिष्टिं, वाचः स्वाद्मानं, अह्नां सुदिनत्वं देहि- हे इन्द्र! तू हमें श्रेष्ठ धन, बलका विचार, सौभाग्य, ऐश्वर्यकी वृद्धि, शरीरोंकी नीरोगता, वाणीमें मिठास और उत्तम दिन प्रदान कर।

कर्मोंसे महत्ताकी प्राप्ति

१ ता प्रथमं अकृणोः, स उक्थ्यः- (१२७) इन्द्रने उन श्रेष्ठ कर्मोंको प्रथम किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय हुआ।

२ अवस्यवः वयुनानि तक्षुः- (१९५) ज्ञानी अपनी सुरक्षाके लिए उत्तम कर्म करते हैं।

३ उशिजः असुरः मनीषिणः यज्ञेन गातुं विविद्रिरे- (२१०) समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले बुद्धिमान् यज्ञके द्वारा योग्य मार्गका पता लगाते हैं।

४ क्रतुना साकं जातः- (२१४) वह इन्द्र उत्तम कर्तृव्यशक्तिसे युक्त होकर जन्मा था।

५ वीर्यैः साकं वृद्धः- (२१४) मनुष्य अपने कर्मोंके कारण बढता जाता है।

इस प्रकार कर्मकी महिमा गाई गई है। उत्तम कर्म करनेसे मनुष्य बहुत ऊंचा उठ सकता है। देवगण अपने कर्मोंके कारण ही सबसे श्रेष्ठ हुए।

पापसे बचनेका उपाय

२ बृहस्पते जनं सुनीतिभिः नयसि, तं अंहः न अश्नवत्- (२१९) हे बृहस्पते ! जिस मनुष्यको तू उत्तम मार्गोंसे ले जाता है, उसे पाप नहीं खाता। पापसे बचनेका एकमात्र उपाय है, उत्तम मार्गपर चलना। जो मनुष्य बृहस्पति अर्थात् वाणीके स्वामी या ज्ञानी मनुष्यके द्वारा बताये गए उत्तम मार्गपर चलता है, उसे कभी भी पाप नहीं लगता। उत्तम मार्ग पर चलनेसे मनुष्य खराब काम नहीं करता, इसलिए उसे कोई पाप भी नहीं लगता। पर जो ज्ञानसे द्वेष करते हैं अर्थात् ज्ञानियोंके द्वारा बताये मार्गसे उल्टा आचरण करता है, वह पापी होता है और-

२ ब्रह्मद्विषः तपनः मन्यु-मीः असि- (२१९) यह बृहस्पति ऐसे ज्ञानसे द्वेष करनेवाले मनुष्योंको दुःख देता है और ऐसे ज्ञानद्वेष्टा शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है।

३ सुगोपाः यं रक्षसि, अस्मात् इत् विश्वाः ध्वरसः वि बाधसे- (२२०) उत्तम रक्षा करनेवाला बृहस्पति जिसकी रक्षा करता है, वह सभी हिंसकोसे सुरक्षित रहता है। ज्ञानी जिसकी रक्षा करता है, जो ज्ञानके मार्ग पर चलता है, वह हमेशा सत्कर्म ही करता है, अतः प्रथम तो उसका कोई शत्रु होता ही नहीं, और यदि कोई होता भी है, तो वह शत्रु ऐसे सदाचरणी व्यक्तिका कुछ बिगाड नहीं सकता।

४ तं अंहः न, दुरितं न, अरातयः, द्वयाविनः न तितिरुः- (२२०) ज्ञानीसे सुरक्षित मनुष्यकी पाप, बुरे कर्म और शत्रु भी कहीं हिंसा नहीं कर सकते और न चालबाज ठग ही उसे ठग सकते हैं। ऐसे ज्ञानियोंको कोई नहीं मार सकता, पर यदि कोई पापबुद्धिसे प्रेरित होकर उसे मारनेके लिए उपाय रचता है, तो-

५ यः नः ह्वरः अभि दधे तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु- (२२१) जो इन ज्ञानियोंके प्रति कुटिल बुद्धिका उपयोग करता है, वह दुष्ट अपनी ही कुटिल बुद्धिसे मारा जाता है।

६ मतिभिः प्र तारिषीमहि- (२२५) हम अपनी उत्तम बुद्धियोंसे हर संकटोंको पर कर जाएं। कुटिल बुद्धिवाला कोई शत्रु यदि हम ज्ञानियों पर आक्रमण कर भी दे, तो हम अपनी उत्तम बुद्धियोंसे उन दुष्टोंके कारण आये हुए संकटोंसे पार हो जाएं। उत्तम बुद्धि हर संकटोंसे मनुष्यको पार करा देती है।

७ दृष्टवीर्यं त्वा ये निदे दधिरे, रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तपः- (२२९) जो इस परमात्माके पराक्रम को चारों तरफ देखकर भी उसकी निन्दा करते हैं, वे राक्षस हैं, वे परमात्माके ही तेजसे जल जाते हैं। परमात्माका प्रताप चारों ओर फैल रहा है, इस विश्वके अणु-अणुमें परमात्माके तेज हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि सभी ग्रहोंमें उसी परमात्माका तेज चमक रहा है। इस प्रकार एक आस्तिकको तो सर्वत्र परमात्माका ही तेज दीखता है, पर एक नास्तिक परमात्माके तेजको सर्वत्र देखता हुआ भी कहता है कि परमात्मा कहां है? परमात्मा कहीं नहीं है। इस प्रकार कहता हुआ वह परमात्माका तिरस्कार करता है। आस्तिक मनुष्य परमात्माकी रक्षासे रक्षित होकर उत्तरोत्तर समृद्ध होता जाता है। जब कि नास्तिक अपनी नास्तिकताके कारण ही मारा जाता है।

८ ये अभिद्रुहः पदे निरामिणः, हृदि देवानां व्रयः वि ओहते, स्तेनभ्यः नः मा- (२३१) जो दूसरोंसे द्रोह करनेमें ही आनन्द मानते हैं. हृदयमें देवताओंका विरोध करते हैं, ऐसे चोरोंसे हमें डर न हो। जो दूसरोंसे द्रोह करते हैं, अथवा दूसरोंसे शत्रुता करनेमें ही जो आनंद मानते हैं, हृदयसे परमात्माका तिरस्कार करते हैं वे चोर हैं, वे देशके लिए घातक हैं। अतः राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था हो कि सत्पुरुषोंको ऐसे चोरोंसे जरा भी डर न रहे।

९ अरणः नकिः- (२४१) छल कपट करनेवाला मनुष्य कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। छल कपटसे समृद्ध होनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य भले ही प्रथम दृष्टिमें समृद्ध होता दीखता है, पर अन्तमें उसका समूल विनाश होता है। ऐसे ही लोगोंके बारेमें मनुजीने कहा है-

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति।

एक अधर्मशील मनुष्य प्रथम अधर्मसे बढता है, इसके बाद अपने चारों तरफ समृद्धि देखता है, उसके बाद अपने शत्रुओंको जीतता है, अन्तमें समूल नष्ट हो जाता है। ऐसे छली मनुष्यका अन्तमें वंश ही नष्ट हो जाता है। अतः मनुष्यको चाहिए कि वह कभी भी छल कपटसे समृद्ध होनेका प्रयत्न न करे।

देवोंकी सर्वद्रष्टा आंखें

जो मनुष्य यह सोचकर कि मुझे कोई नहीं देख रहा है, पाप कर्म करनेमें प्रवृत्त होता है, वह भूल करता है। वह भले ही मनुष्यकी आंखोंसे बच जाए, पर उस परमदेवकी आंखोंसे बचना असंभव है। उसकी आंखें विश्वके एक एक अणुमें विराज रही हैं, यहां तक कि मनुष्य अपने मनमें जो विचार करता है, वह भी उस सर्वद्रष्टाकी आंखोंसे बच नहीं पाता। इसलिए मनुष्य कभी भी कुटिलताका व्यवहार न करे-

१ भूर्यक्षः अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति- (२६२) देवगण अनेकों आंखोंसे युक्त होने के कारण मनुष्यके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता सभी कुछ देखते हैं। ये देव सर्वत्र हैं और सर्वत्र विचरनेवाले हैं, अतः इन देवोंके लिए कोई पदार्थ या स्थान न पास है न दूर है-

२ राजभ्यः सर्वं परमा चित् अन्ति- (२६२) इन तेजस्वी देवोंके लिए सभी स्थान दूर होते हुए भी पास हैं। इसलिए मनुष्य सदा सावधान रहकर व्यवहार करे और यथासाध्य ऐसा व्यवहार करे कि उसकी किसी भी इन्द्रियसे कुकर्म न हो। इन इन्द्रियोंसे जितना सत्कर्म किया जाएगा, उतनी ही ये तेजसे युक्त होंगी।

३ इमाः गिरः घृतस्नूः- (२६०) ये हमारी वाणियां अर्थात् वाक् उपलक्षक सभी इन्द्रियां तेजसे युक्त हों। वेदोंमें वाक् सभी इन्द्रियोंका उपलक्षक है। अतः यहां वाणीका अर्थ हमने सभी इन्द्रियां ऐसा किया है।

४ ऋतस्य ते खां ऋध्याम- (२८१) ऋत अर्थात् नैतिकताके मार्ग पर चलनेवाले वरुणसे हम इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्राप्त करें। नैतिकताके मार्ग पर चलनेसे इन्द्रियां शक्तिसम्पन्न होती हैं।

कामोंका ताना बाना

जिस प्रकार एक जुलाहा खड्डी पर ताना बाना डालकर वस्त्र बुनता है, उसी तरह मनुष्य अपने जीवनकी खड्डी पर बैठकर अपने कर्मोंके ताने बाने डालकर वस्त्र बुनता है, और यही वस्त्र वह अपने अगले जन्ममें जाकर पहनता है। यह आलंकारिक वर्णन है, मनुष्य जो भी कुछ कर्म करता है, उसका फल संचित होता रहता है, और वह फल वह अपने अगले जन्ममें भोगता है। अतः मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियोंको शक्तिसम्पन्न बनाकर दीर्घकाल तक सत्कर्म करता रहे। वह अकाल मृत्युसे ग्रस्त न हो, और उसके कर्मोंका ताना बाना बीचमें ही न टूट जाए। मनुष्यको १००-१२५ वर्षतक जीनेका अधिकार है, अर्थात् उसके इतने वर्षतक तो अवश्य ही जीवित रहना चाहिए। इससे अधिक जिन्दा रहे तो अच्छी ही बात है, पर १००-१२५ वर्ष कमसे कम जीना ही चाहिए। इससे पूर्व ही यदि मृत्यु हो जाए, तो वह अकाल मृत्यु है। इस द्रष्टिसे तो आजकल क्वचित् ही कोई काल मृत्युसे मरता है, नहीं तो सभी अकाल मृत्युके भोग बनते हैं। मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह १००-१२५ वर्षतक शक्तिशाली होकर जीए और उतने वर्षतक वह अपनी इन्द्रियोंसे भरपूर काम करता रहे, अपने कर्मोंके ताने बाने रूप वस्त्रो को पूरा बुनकर ही यहांसे जाए। इसके लिए वह परमात्मासे भी प्रार्थना करे।

१ धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदिः- (२८१) कामका ताना बाना बुनते हुए मेरे धागोंको बीचमें ही तोड।

२ अपसः पुरा मात्रा मा शारि- (२८१) काम पूर्ण होने से पूर्व ही मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर। काम तो अमर है। वही कभी समाप्त नहीं होता। सारा संसार खत्म हो जाय, पर काम खत्म होने में नहीं आता। अतः मनुष्यको अपना एक उद्देश्य निश्चित कर लेना चाहिए, और उस उद्देश्यकी पूर्तिमें वह सर्वतोमना लग जाए। अपने जीवनमें वह उस उद्देश्य तक पहुंच जाए, यही उसका

काम पूर्ण होना है। अपने उद्देश्य तक पहुंचने तक वह अपने शरीर तथा इन्द्रियोंको शक्तिशाली बनाये रखे। उद्देश्य-प्राप्तिके बाद जानेमें बडा ही सन्तोष एवं समाधान होता है।

३ अहं अन्यकृतेन मा भोजम्- (२८५) मैं दूसरे के द्वारा कमाये गए धनका भोग न करूं। पराश्रित रहना संसारमें सबसे बडा दुःख है। पराश्रित रहते रहते उसकी आत्मा भी हीन बन जाती है। इसीलिए मनुजीने परवशताको सबसे बडा दुःख माना है-

सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखम्।

दूसरे के अधीन रहना ही दुःख है और स्वाधीन रहना ही सुख है। इसलिए वेदमें भी स्वाधीन रहकर इस संसारके भोग भोगनेके लिए कहा है।

परिव्राजकके कर्तव्य

द्वितीय मंडलके अन्तिम दो सूक्तोंमें कपिंजल पक्षीके रूपमें इन्द्रका वर्णन किया गया है। बाह्यद्रष्टिसे देखने पर सूक्तोंसे किसी पक्षीका वर्णन प्रतीत होता है, पर यह वस्तुतः एक ऐसे परिव्राजक उपदेशकका वर्णन है कि जो सारे देशमें घूम घूमकर सत्य सिद्धान्तोंका प्रचार करता है। जिस तरह एक शकुनि अर्थात् पक्षी किसी एक पेड पर नहीं बैठती, हमेशा इस पेड पर से उस पेड पर इस प्रकार सर्वत्र घूम घूमकर प्रचार करे। वह उपदेशक कैसा हो, यह इस प्रकार बताया है-

२ जनुषः प्रब्रुवन्तः वाचं इयर्ति- (४२४) परिव्राजक विद्वान् मनुष्योंको उपदेश देता हुआ सर्वत्र वेद-वाणीका प्रचार करता है। विद्वान् देशमें सर्वत्र घूम घूमकर वेदवाणीका प्रचार करके वैदिकधर्मकी उत्कृष्टता सिद्ध करे। वैदिकधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करके देशकी प्रजाओंको सत्यमार्ग पर चलाये और उन्हें उन्नत करे।

२ सुमंगलः भद्रवादी इह वद- (४२५) कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही इस सभामें उपदेश करे। मनुष्योंकी सभामें उपदेशक सदा ही कल्याणमय वचन बोले। ऐसे भाषण देवे कि जिससे श्रोताओंकी उन्नति हो।

३ सर्वतः पुण्यं आ वद- (४२८) विद्वान् सर्वत्र पुण्यदायी वचन ही बोले। श्रोताओंको पुण्यमार्ग पर ही ले जानेवाला भाषण देवे। उन्हें गुमराह करनेवाला भाषण न दे। ऐसे उत्तम उपदेशकसे ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है।

इस प्रकार इस द्वितीय मण्डलमें अनेक उत्तम उपदेश दिए गए हैं, जिन पर आचरण करके मनुष्य उन्नत हो सकता है।

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

द्वितीय मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अग्निं देवासो मानुषीषु	४३
अग्ने यजस्व हविषा	८१
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य	७७
अत्रिमन् स्वराज्यं	७६
अदिते मित्र वरुणोत	२७३
अदेवेन मनसा यो	२२७
अध त्विषीमां अभ्योजसा	२१३
अध स्मा न उदवता	३०७
अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे	१३०
अधाकृणोः प्रथमं	१७२
अधा यो विश्वा भुवनाभि	१७३
अध्वर्यवः कर्तना	१४७
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा	१४८
अध्वर्यवो भरतेन्द्राय	१३९
अध्वर्यवो य उरणं	१४२
अध्वर्यवो यन्नरः	१४६
अध्वर्यवो यः शतं	१४४
अध्वर्यवो यः शतमा	१४५
अध्वर्यवो यः स्वश्नं	१४३
अध्वर्यवो यो अपो	१४०
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य	१४९
अध्वर्यवो यो दृभीकं	१४१
अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं	२२६
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो	२०९
अन्तर्ह्यग्न ईयसे	६४
अन्वेको वदति यद्	१२८
अपाद्धोत्रादुत पोत्रात्	३७५
अपां नपादा ह्यस्थात्	३५९
अपाय्यस्यान्धसो मदाय	१८८
अपो सु म्यक्ष वरुण	२८२
अभि त्वा नक्तीरुषसो	१८
अभिनक्षन्तो अभि ये	२४०
अभिभुवेऽभिभङ्गाय	२०७
अमाजूरिव पित्रोः	१७६
अमेव नः सुहवा आ	३६८
अम्बितमे नदीतमे	४१८
अयं वा मित्रावरुणा	४०६
अया ते अग्ने विधेमोः	५९
अयांसमग्ने सुक्षितिं	३६५
अरमयः सरपसस्तराय	१३७
अरोरवीद् वृष्णो	९९
अर्वाञ्चमद्य यय्यं	३७६
अर्वाञ्चो अद्या भवता	२९३
अर्हन् बिभर्षि सायकानि	३३०
अव क्रन्द दक्षिणतो	४२६
अव क्षिप दिवो अश्मानं	२९९
अवंशे द्यामस्तभायद्	१५२
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिः	२३८
अश्वस्यात्र जनिमास्य	३५६
अस्मभ्यं तद दिवो	३८८
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय	१३८,१५०
अस्माकेभिः सत्वभिः	३०४
अस्माकं मित्रावरुणावतं	३०६
अस्मिन् पदे परमे	३६४
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय	३५५
अस्मै बहूनामवमाय	३६२
अस्य मन्दानो मध्वो	१८९
अस्य मे द्यावापृथिवी	३१३
अस्य रण्वा स्वस्येव	४४
अस्य सुवानस्य मन्दिनः	१०९
अहेळता मनसा	३१५
आ ते पितर्मरुतां	३२१
आ द्वाभ्यां हरीभ्यां	१८२
आ नो ब्रह्माणि मरुतः	३४१
आ यन्मे अभ्वं वनदः	४५
आ यस्मिन्त्सप्त	५१
आ यः स्वर्ण भानुना	७५
आ यो वना तातृषाणो	४६
आ वक्षि देवां इह	३६९
आवदंस्त्वं शकुने	४२९
आ वामुपस्थमद्रुहा	४२३
आ विबाध्या परिरापः	२१८
आ विंशत्या त्रिंशत्या	१८३
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं	८८

आशुभिश्चिद्यान् वि ३८०
आशीत्या नवत्या १८४
इदं कवेरादित्यस्य २७७
इन्द्र आशाभ्यस्परि ४१४
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा ४१७
इन्द्रश्च मृळयाति नो ४१३
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि २११
इन्द्रो अङ्ग महद् भयं ४१२
इन्द्रो महां सिन्धुम् ९८
इन्धन्वभिर्धेनुभी ३४०
इन्धानो अग्नि वनवद् २५२
इमं विधन्तो अपां सधस्थे ४२
इमं स्तोमं सक्रतवो २६१
इमं स्वस्मै हृद आ ३५२
इमा गिर आदित्येभ्यो २६०
इमा ब्रह्म सरस्वति ४२०
इमां मे अग्ने समिधं ५८
इमां देवो जायमानौ ३९८
ईळतो अग्ने मनसा ३२
ईलानायावस्यवे ६३
उक्थेष्विन्नु शूर येषु ९२
उक्षन्ते अश्वां अत्यां ३३८
उग्रेष्विन्नु शूर १०६
उत्तानायामजनयन् ८६
उत त्ये देवी सुभगे ३१०
उत वः शंसमुशिजां ३११
उत वा यो नो मर्चयात् २२२
उत स्य देवो भुवनस्य ३०९
उत स्य न इन्द्रो ३०८
उताशिष्ठा अनुशृण्वन्ति २४७
उदु ष्य देवः सविता ३७८
उद्गातेव शकुने ४२८
उन्मा ममन्द वृषभो ३२६
उपेमसृक्षि वाजयुः ३५१
उभयं ते न क्षीयते ८२
उभयासो जातवेदः २८
उभे अस्मै पीपयतः २७४
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्य २९७
ऋजुरिच्छंसो वनवद् २५६
ऋतं देवाय कृण्वते २९५
ऋतज्येन क्षिप्रेण २४२
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता २४१
ऋतुर्जनित्री तस्या १२६
एतानि वामश्विना ३९६
एता वो वश्म्युद्यता ३१२
एवा त इन्द्रोचथमहेम १९४
एवा ते गृत्समदाः १९५
एवा नो अग्ने अमृतेषु २५
एवा बभ्रो वृषभ ३३५
एष स्य ते तन्वो ३७०
ओष्ठाविव मध्वास्ने ३९४
कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण ४२४
किमू नु वः कृणवाम २९०
कुमारश्चित् पितरं ३३२
क्व स्य ते रुद्र मळयाकुः ३२७
गणानां त्वा गणपति २१६
गुहा हितं गुह्यं ९४
गोमदू षु नासत्या ४०९
ग्रावाणेव तदिदर्थं ३८९
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य ४०
चित्रं तद् वो मरुतो ३४५
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन ८७
जुषेथां यज्ञं बोधतं ३७१
जोष्यग्ने समिधं ३७७
जोहूत्रो अग्निः प्रथमः ८४
शेया भागं सहसानो ८९
त आदित्यास उरवो २६२
तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत १७०
तदस्यानीकमुत चारु ३६१
तद् देवानां देवतमाय २३७
तमस्मेरा युवतयो ३५४
तमुक्षमाणं रजसि २०
तमु स्तुष इन्द्रं तं २००
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप २१५
तव व्रते सुभगासः २७८
तव श्रिये व्यजिहीत २३३
त स्याम पुरुववीरस्य २७९
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं २
तस्मा अर्षन्ति दिव्या २५४
तस्मा इद् विश्वे २५५
तस्मै तवस्य मनु दायि २०४
ता अस्य वर्णमायुवो ५४
ता न आ वोळ्हमश्विना ४११
तान् वो महो मरुत ३४६
तां इयानो महि वरूथं ३४९
ता सम्राजा घृतासुती ४०८
तिस्रो भूमीर्धारयन् २६७
तीव्रो वो मधुमां ४१६
तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट ३६६
ते क्षोणीभिररुणेभिः ३४८
तेजिष्ठया तपनी २२९
ते दशग्वाः प्रथमा ३४७
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं ६०
तं देवा बुध्ने रजसः १९
तं वः शर्धं मारुतं ३०५
तं नो दात मरुतो ३४२
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहे २२३
त्रिकद्रुकेषु महिषो २१२
त्रीं रोचना दिव्या २६८
त्वमग्न इन्द्रो वृषभः ३
त्वमग्न ऋभुराके १०
त्वमग्ने अदितिर्देव ११
त्वमग्ने त्वष्टा विधते ५
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः १
त्वमग्ने द्रविणोदा ७
त्वमग्ने राजा वरुणो ४
त्वमग्ने रुद्रो असुरो ६
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं १२
त्वयमग्ने अर्वता वा २६
त्वया यथा गृत्समदासो ४९
त्वया वयं सुवृधा २२४
त्वया वयमुत्तमं धीमहे २२५
त्वया हितमप्यमप्सु ३८४
त्वादत्तेभी रुद्र ३२२
त्वामग्न आदित्यास १३
त्वामग्ने दम आ विश्पतिं ८
त्वामग्ने पितरमिष्टिभिः ९

त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो १४
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा १०१
त्वे विश्वा सरस्वति ४१९
त्वं तान्त्सं च प्रति १५
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पाः ७९
त्वं न इन्द्र त्वाभिः १९८
त्वं नो असि भारता ७०
त्वं नो गोपाः पथिकृद् २२१
त्वं विश्वेषां वरुणासि २६९
दधन्वे वा यदीमनु ५२
दा नो अग्ने बृहती २३
दिव्यन्यः सदनं चक्र ४००
देव बर्हिवर्धमानं सुवीरं ३३
देवाक्षित् ते असुर्य २१७
दैव्या होतारा प्रथमा ३६
द्यावा चिदस्मै पृथिवी १२३
द्यावा नः पृथिवी इमं ४२२
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त ३३७
द्रवत्रः सर्पिरासुतिः ७१
धारयन्त आदित्यासो २६३
धारावरा मरुतो ३३६
धियं पूषा जिन्वतु ४०२
धिष्वा शवः शूर येन १०७
धृतव्रता आदित्या २८८
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे १६३
न तमंहो न दुरितं २२०
न दक्षिणा वि चिकिते २७०
न म इन्द्रेण सख्यं १८६
नमः पुरा ते वरुणोत २८४
न मा तमन्न श्रमत् ३०१
न यत् परो नान्तर ४१०
न यस्येन्द्रो वरुणो ३८६
नराशसः प्रति धामान् ३१
नानौकांसि दुर्ये ३८२
नावेव नः पारयतं ३९२
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन् ९७
नियुत्वान् वायवा ४०४
नि होता होतृषदने ७८
नू ते पूर्वस्यावसो ४८
नूनं सा ते प्रति वरं
११०,१६०,१६९
१७८, १८७, १९६, २०५
पर ऋणा सावीरध २८५
परि णो हेती रुद्रस्य ३३४
पिपर्तु नो अदिती २६६
पिबापिबेदिन्द्र शूर १००
पिषङ्गरूपः सुभरो ३८
पुनः समव्यद् विततं ३८१
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व १६८
पृक्षे ता विश्वा भुवना ३३९
प्र धा न्वस्य महतो १५१
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त १२९
प्र ते नावं न समने १६७
प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति ४२७
प्र बभ्रवे वृषभाय ३२८
प्र व एको मिमय २९२
प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय १६१
प्र सीमादित्यो असृजद् २८०
प्र हि क्रतुं बृहथो ३००
प्रातर्यावाणा रथ्येव ३९०
प्राता रथो नवो योजि १७९
प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा ४२१
बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रो १०५
बृहस्पते अति यदर्यो २३०
बृहस्पते तपुषाश्नेव २९८
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य २३४
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता २५०
ब्रह्मणस्पतेरभवद् २४८
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य २४९
भगं धियं वाजयन्तः ३८७
भरेषु हव्यो नमसो २२८
भिनद् वलमङ्गिरोभिः १५८
भोजं त्वामिन्द्र वयं १७७
मन्दस्व होत्रादनु ३७२
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा १८५
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा ३२४
मा त्वा श्येन उद् ४२५
मा नो वरातिरीशत ६७
मा नो गुह्या रिप ३१४
मा नो वेधैर्वरुण ये २८३
मा नः स्तेनेभ्यो ये २३१
माहं मंघोनो वरुण २७६, २८७, २९४
मेद्यन्तु ते वह्नयो ३७४
य उ श्रिया दमेष्वा ७४
यजस्व वीर प्र विहि २५७
यज्ञेन गातुमप्सुरो २१०
यज्ञेन वर्धत जातवेदसं १७
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिः ३६७
यद् युञ्जते मरुतो ३४३
यथा विद्वां अरं ५७
यदी मातुरुप स्वसा ५५
यमु पूर्वमहुवे तमिदं ३७३
यया रथं पारयथात् ३५०
यस्मादिन्द्राद् बृहतः १६२
यस्मान्न ऋते विजयन्ते ११९
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य ११७
यं क्रन्दसी संयती ११८
यं स्मा पृच्छन्ति कुह ११५
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च १३२
यः पृथिवीं व्यथमानाम् ११२
यः शम्बरं पर्वतेषु १२१
यः शश्वतो मह्येनो १२०
यः सप्तरश्मिर्वृषभः १२२
यः सुनीथो यदाशुषे ७३
यः सुन्वतमवति यः १२४
यः सुन्वते पचते दुध्र १२५
या गुङ्गूर्या सिनीवाली ३२०
याद्राध्यंवरुणो योनिं ३८५
या वो भेषजा मरुतः ३३३
या वो माया अभिद्रुहे २७५
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः ३१९
यास्ते राके सुमतयः ३१७
यूयं देवाः प्रमतिः २८९
येनेमा विश्वा च्यवना ११४
ये स्तोतृभ्यो गोअग्राम १६,२९
यो अप्स्वा शुचिना ३५८

यो अस्मै हर्व्यघृतवद्भिः	२५९
यो जात एव प्रथमो	१११
यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसो	२३६
यो नः सनुत्य उत	३०३
यो नार्मर सहवसुं	१३३
यो नो मरुतो वृकताति	३४४
यो भोजनं च दयसे	१३१
यो मे राजन् यूज्यो	२८६
यो रध्रस्य चोदिता	११६
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो	२७१
योऽवरे वृजने विश्वथा	२४५
यो वृत्राय सिनं	२९६
यो हत्वाहिमरिणात्	११३
राकामहं सुहवां	३१६
राजानावनभिद्रुहा	४०७
रासि क्षयं रासि मित्रं	१०३
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थात्	३९
वयं ते वय इन्द्र	१९७
वाजयन्निव नू स्थान्	७२
वातेवाजुर्या नद्येव	३९३
वायो ये ते सहस्त्रिणो	४०३
विद्यामादित्या अवसो	२६४
विधेम ते परमे	८०
विभु प्रभु प्रथमं	२४४
वि मच्छ्रथाय रशनां	२८१
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना	३४
विश्वजिते धनजिते	२०६
विश्वस्य हि श्रुष्टये	३७९
विश्वा उत त्वया वयं	६८
विश्वान्यन्यो भुवना	४०१
विश्वेदनु रोधना अस्य	१३५
विश्वे देवास आ गत	४१५
विश्वेभ्यो हि त्वा	२३२
विश्वे ह्यस्मै यजताय	१६४
विश्वं सत्यं मघवाना	२४६
वृषा ते वज्र उत	१६६
वृष्णः कोशः पवते	१६५
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानः	१०४
शतं वा यस्य दश	१३४
शुक्रस्याद्य गवाशिरं	४०५
शुचिः पावक वन्द्यो	६९
शुचिरपः सूयवसा	२७२
शुभ्रं नु ते शुष्मं	९३
श्रृङ्गे व नः प्रथमा	३९१
श्रुधी हवमिन्द्र मा	९०
श्रया अग्निश्चित्र भानुः	८५
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र	३२३
श्रेष्ठं यविष्ठ भारता	६६
स इज्जनेन स विशा	२५८
स इधान उषसो	२४
स ईं महीं धुनिं	१५५
स ईं वृषाजनयत्	३६३
सत्रासाहो जनभक्षो	२०८
सध्रीव प्राचो वि	१५३
सध्रीमा यन्ति परि	१२७
सना ता का चिद् भुवना	२३९
सनेम ये त ऊतिभिः	१०८
स नो बोधि सहस्य	२७
स नो युवेन्द्रो	१९९
स नो रेवत् समिधानः	२२
स नो वृष्टिं दिवस्परि	६२
स प्रवोळ्हन् परिगत्या	१५४
स प्राचीनान् पर्वतान्	१७४
स बोधि सूरिर्मघवा	६१
स भुतु यो ह प्रथमाय	१७१
समन्या यन्त्युप	३५३
समाववर्ति विष्ठितो	३८३
स माहिन इन्द्रो	१९०
समिद्धो अग्निर्निहितः	३०
स यो व्यवस्थादभि दक्षदुर्वी	४७
स रन्धयत् सदिवः	१९३
सरस्वति त्वमस्माँ	३०२
सरस्वती साधयन्ती धियं	३७
स विद्वाँ अपगोहं	१५७
स विद्वाँ आच पिप्रयो	६५
स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनीः	२०३
स सुन्वत इन्द्रः	१९२
स संनयः स विनयः	२४३
स ह श्रुत इन्द्रो	२०२
स होता विश्वं परि	२१
साकं जातः क्रतुना	२१४
साकं हि शुचिना	५३
साध्वपांसि सनता न	३५
सास्मा अरं प्रथमं स	१८०
सास्मा अरं बाहुभ्यां	१७५
सिनीवालि पृथुष्टुके	३१८
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवां	२५३
सुगो हि वो अर्यमन्	२६५
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे	२१९
सुप्रवाचनं तव वीर	१३६
सृजो महीरिन्द्रः या	९१
सेनानीकेन सुविदत्रो	८३
सेमांमविड्ढि प्रभृतिं	२३५
सो अङ्गिरसानुचथा	२०१
सो अप्रतीनि मनवे	१९१
सोदञ्चं सिन्धुं	१५६
सोमापूषणा जनना	३९७
सोमापूषण रजसो	३९९
स्तवा नु त इन्द्र	९५
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं	३३१
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप	३२९
स्याम ते त इन्द्र ये	१०२
स्व आ दमे सुदुघा	३५७
स्वः स्वाय धायसे	५६
स्वप्नेनाभ्युप्या चमुरिं	१५९
हये देवा यूयं	२९१
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य	१८१
हरी नु त इन्द्र	९६
हवीमभिर्हवते यो	३२५
हस्तेव शक्तिमभि	३९५
हिरण्यरूपः स हिरण्यसं	३६०
हुवे वः सुद्योत्मानं	४१
होताजनिष्ट चेतनः	५०

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

तृतीय-मण्डल

[१]

[ऋषिः- (गाथिनो विश्वामित्रः)। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्]

१ सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद् युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ १ ॥

२ प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित् तवसे गातुमीषुः ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ- [१] हे (अग्ने) अग्ने! तूने (विदथे यजध्यै सोमस्य वह्निं चकर्थ) यज्ञमें, यज्ञ करनेके लिये मुझे सोमका वाहक बनाया है इसलिए मुझे (तवसं वक्षि) बल भी दे। हे (अग्ने) बलके पुत्र! मैं (दीद्यत् देवान् अच्छ) प्रकाशमान् होकर देवोंको लक्ष्य कर (अद्रिं युञ्जे, शमाये, तन्वं जुषस्व) पत्थरको जोडता हूँ और स्तुति करता हूँ तू अपने शरीरकी पुष्टिके लिए इस सोमरसका सेवन कर ॥१॥

[२] (समिद्भिः नमसा अग्निं दुवस्यन्) समिधाओंसे और हव्यसे अग्निको प्रसन्न करते हुए हमने (प्राञ्चं यज्ञं चकृमः गीः वर्धतां) भलीभाँति यज्ञ किया है अतः हमारी वाणी वृद्धिको प्राप्त हो। (दिवः कवीनां विदथा शशासुः) स्तोताओंको यज्ञ करना सिखाया है अतः (गृत्साय तवसे गातुं ईषुः चित्) स्तुतिके योग्य तथा बलवान् इस अग्निका यश स्तोतालोग गानेकी इच्छा करते हैं ॥२॥

भावार्थ- यह अग्नि जिसको यज्ञमें सोम निचोडनेके लिए तैय्यार करता है, उसे बलवान् भी बनाता है, फिर उस तैय्यार किए गए सोमका सेवन करता है ॥१॥

उत्तम मनसे समिधाओं और हव्योंके द्वारा अग्निको प्रसन्न करते हुए यज्ञ करनेसे मनुष्यकी वाणीमें उत्साह बढता है और वह शुद्ध होती है। क्योंकि यज्ञोंमें स्तोत्र बोले जाते हैं और स्तोत्र देवोंके और दूरदर्शी विद्वानोंके होते हैं ॥२॥

३ मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥ ३ ॥

४ अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ ४ ॥

५ शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान्क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥ ५ ॥

६ वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥ ६ ॥

अर्थ- [३] यह अग्नि (**मेधिरः पूतदक्षः जनुषा सुबन्धुः**) मेधावान् पवित्र बलशाली एवं जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु है तथा (**दिवः पृथिव्याः मयः दधे**) द्युलोक और भूमिमें सुख स्थापित करता है। (**देवासः**) देवोंने (**स्वसृणां अप्सु अन्तः**) बढनेवाली नदियोंके जलमें गुप्तरूपसे स्थित उस (**दर्शतं अग्निं**) दर्शनीय अग्निको (**अपसि अविन्दन्**) अपने कार्यके लिये प्राप्त किया ॥३॥

[४] (**सुभगं श्वेतं महित्वा अरुषं**) उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त, उज्जवल, महिमावान् प्रदीप्त अग्निके (**जज्ञानं सप्त यह्वीः अवर्धयन्**) उत्पन्न होते ही, उसे सात नदियोंने संवर्धित किया। (**न अश्वाः जातं शिशुं अभ्यारुः**) जिस प्रकार घोडी नव जात शिशुकी ओर दौडती है उसी प्रकार (**देवासः अग्निं जनिमन् वपुष्यन्**) देवोंने अग्निको उत्पन्न होते ही दीप्तिमान् किया ॥४॥

[५] (**शुक्रेभिः अङ्गै रजः आततन्वान्**) शुभ्रवर्ण तेजके द्वारा लोकोंको व्याप्त कर यह अग्नि (**क्रतुं**) कर्म करनेवाले भक्तको अपनी (**कविभिः पवित्रैः पुनानः**) बुद्धि और पवित्र तेजके द्वारा पवित्र करके, तथा (**शोचिः परिवसानः**) ज्वालाओंके कपडोंको पहनकर (**अपां, आयुः बृहतीः अनूनाः श्रियः मिमीते**) स्तोताको अन्न, प्रभूत और सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥५॥

[६] (**अन्-अदतीः**) हिंसा न करनेवाले (**अ-दब्धाः**) तथा स्वयं भी हिंसित न होनेवाले जलोंको यह अग्नि (**सीं वव्राज**) चारों ओरसे घेर लेता है। (**अ-वसानाः अ-नग्नाः**) वस्त्र न पहनने पर जो नग्न नहीं रहती हैं, ऐसी (**सनाः युवतयः**) प्राचीनकालसे यौवनावस्थामें रहनेवाली (**सयोनीः**) एक ही स्थानमें रहनेवाली (**दिवः वाणीः**) दिव्यशब्दोंसे युक्त (**सप्त यह्वीः**) सात नदियां (**एकं गर्भं दधिरे**) एक अग्निके गर्भको धारण करती हैं ॥६॥

भावार्थ- यह अग्नि सबका भाई है अतः प्राणियोंके लिए सर्वत्र सुख देता है। यह प्रथम जलमें गुप्त रूपसे विद्यमान था, पश्चात् देवोंने इसे अपने कामके लिए ढूंढ निकाला ॥३॥

उत्पन्न होते ही इस अग्निको सातों नदियां बढाती हैं और देवगण इसे प्रकाशित करते हैं।

सप्त नदियां- पंच ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि।

अग्नि- प्राणाग्निं, **देव-** इन्द्रियें ॥४॥

यह अग्नि उत्पन्न होकर सभी लोगोंको प्रकाशित कर देता है, तथा अपने पवित्रताके गुणसे सब जगह पवित्र करता है, तथा अपने भक्तोंको सब तरहका ऐश्वर्य देता है ॥५॥

अग्नि चारों ओरसे जलोंको घेरे रहता है। तथा जल भी इस अग्निको गर्भमें धारण करते हैं। बिजली मेघोंको चारों ओरसे घेरे रहती है और उनके बीचमें चमकती है ॥६॥

७ स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥ ७ ॥
८ बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद् दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८ ॥
९ पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥ ९ ॥
१० पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये नि पाहि ॥ १० ॥

अर्थ- [७] (**मधूनां स्रवथे, घृतस्य योनौ**) जलके बरसनेपर, जलके उत्पत्तिस्थान अन्तरिक्षमें (**अस्य संहतः विश्वरूपाः स्तीर्णाः अस्थुः**) इस अग्निकी इकट्ठी हुई हुई नानावर्णोंवाली, सर्वत्र फैली हुई किरणें ठहरी रहती हैं। उस समय (**अत्र पिन्वमानाः धेनवः**) यहाँ इस पृथ्वीपर सबको पूर्ण करनेवाले तथा प्रसन्नता देनेवाले जल बरसते हैं। इस (**समीची, दस्मस्य, मही मातरा**) सुन्दर और दर्शनीय अग्निके पृथ्वी और आकाश माता पिता हैं ॥७॥

[८] (**सहसः सूनो बभ्राणः**) बलके पुत्र और सबको धारण करनेवाले अग्ने ! तू (**शुक्रा रभसा वपूंषि दधानः व्यद्यौत्**) उज्जवल वेगवान् किरणें धारण करके प्रकाशित होता है। (**वृषा यत्र काव्येन वावृधे**) बलवान् अग्नि जब स्तोत्रोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है, तब (**मधुनः घृतस्य धाराः श्चोतन्ति**) अत्यन्त मधुर घृतकी धारायें इसपर गिरती हैं ॥८॥

[९] अग्निने (**पितुः ऊधः जनुषा विवेद**) अन्तरिक्षके स्तनस्थानीय जलप्रदेशको अपने जन्मसे ही जान लिया। और (**अस्य धाराः धेनाः वि असृजत्**) इसके अन्तरिक्षकी जलकी धारा अर्थात् वृष्टिने बिजलीको गिराया। (**शिवेभिः सखिभिः दिवः, यह्वीभिः गुहा चरन्तं**) अपने शुभकर्ता मित्रों और द्युलोककी जलधाराओंके साथ (**गुहा चित् न बभूव**) गुहामें स्थित उस अग्निको कोई भी नहीं प्राप्त कर सका ॥९॥

[१०] यह अग्नि (**पितुः च जनितुः गर्भं बभ्रे**) पिता और माता के गर्भका पोषण करता है। (**च एकः पूर्वीः पीप्यानाः अधयत्**) और वही एक वृद्धिको प्राप्त औषधियोंका भक्षण करता है। (**सपत्नी मनुष्ये उभे**) एक पतिवाली तथा मनुष्योंका हित करनेवाली दोनों द्यावापृथिवी (**वृष्णे अस्मै शुचये सबन्धू**) बलवान् इस पवित्र अग्निके बन्धु सदृश हैं। हे अग्ने ! तू आकाश और पृथ्वीकी (**नि पाहि**) अच्छी प्रकारसे रक्षा कर ॥१०॥

भावार्थ- जिस समय अन्तरिक्षमें अग्निकी किरणें बिजली के रूपमें चमकती हैं, तब इस पृथ्वी पर पानी बरसता है। इस जलका पिता द्यु अर्थात् सूर्य और माता पृथ्वी है। क्योंकि सूर्य पानीको खींचकर मेघ बनाता है और पृथ्वी उस जलको धारण करती है ॥७॥

जब इस अग्निको घीकी धाराओंसे उत्तम प्रकारसे प्रज्जवलित करके स्तोत्रोंसे बढाया जाता है, तब यह अग्नि अपनी वेगवान् किरणोंसे सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥८॥

जन्मते ही अग्निने अन्तरिक्षमें संग्रहीत जलोंको जान लिया और उन जलोंको वर्षाके रूपमें नीचे गिराया। पर इस वर्षाके गिरानेवालेको कोई पा न सका ॥९॥

यह अग्नि द्यु और पृथ्वीलोकके गर्भरूप जलोंका पोषण करता है। फिर उन्हीं जलोंसे पुष्ट हुए हुए वन वृक्षोंको खा जाता है। एक सूर्य ही जिनका पति है, ऐसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक इस अग्निकी रक्षा करते हैं और अग्नि भी उन दोनोंकी रक्षा करता है ॥१०॥

११ उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धाऽऽपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद् दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥ ११ ॥
१२ अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजानाऽपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ १२ ॥
१३ अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥ १३ ॥
१४ बृहन्त इद् भानवो भाऋजीक—मग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्त—रपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥ १४ ॥

अर्थ- [११] (**महान् अनिबाधे उरौ ववर्ध**) यह महान् अग्नि, बाधारहित विस्तारवाली पृथ्वीमें बढता है। वहाँ (**हि पूर्वीः यशसः आपः, अग्निं संवर्धयन्ति**) बहुत यशवाले घृत अग्निको भली प्रकार बढाते हैं। (**ऋतस्य योनौ अग्निः**) यज्ञके गर्भ स्थानमें वास करनेवाला अग्नि (**जामीनां स्वसॄणां अपसि दमूनाः अशयत्**) परस्पर बहनरूप अंगुलियों द्वारा किए जानेवाले कार्यमें शान्तिपूर्वक रहता है ॥११॥

[१२] (**यः अग्निः जनिता, अपां गर्भः नृतमः**) जो अग्नि सबका पिता, जलके अन्दर रहनेवाला, मनुष्योंमें सर्व श्रेष्ठ, (**यह्वः समिथे अक्रः न महीनां बभ्रिः**) महान् संग्राममें अपराजित अपनी महती सेनाका भरणपोषण करनेवाला, (**दिदृक्षेयः भाऋजीकः**) सबके देखने योग्य तथा अपने तेजसे प्रकाशित है, उसने ही (**सूनवे उस्रियाः उत् जजान**) अपने पुत्रवत् प्रिय भक्तोंके लिये प्रकाश उत्पन्न किया ॥१२॥

१ **अग्निः समिथे अक्रः महीनां बभ्रिः उस्रियाः जजान-** यह अग्नि संग्राममें अपराजित, बडी बडी सेनाओंका भरणपोषण करनेवाला है, इसीने प्रकाशको पैदा किया।

[१३] (**सुभगा वना दर्शतं विरूपं**) सौभाग्यशाली अरणीने दर्शनीय विविध रूपवान् तथा (**अपां ओषधीनां गर्भं जजान**) जल और औषधियोंके गर्भमें रहनेवाले अग्निको उत्पन्न किया। (**देवासः चित् पनिष्ठं तवसं जातं**) सारे देवता लोग भी स्तुतिके योग्य, बलशाली और तुरन्त उत्पन्न अग्निके पास (**मनसा सं जग्मुः**) मनसे होकर पहुँचे और (**हि दुवस्यन्**) उन्होंने अग्निकी सेवा की ॥१३॥

१ **उत्तरारणि -** पिता। २ **अधरारणि-** माता।
३ **अग्नि-** पुत्र या प्राणाग्नि। ४ **देव-** इन्द्रियें।
५ **जल** -वीर्य।

[१४] (**विद्युतः न शुक्राः**) विद्युत्‌के समान अत्यन्त कान्तियुक्त (**बृहन्तः इत् भानवः अपारे ऊर्वे अन्तः**) महान् किरणें अगाध समुद्रके बीचमें (**अमृतं दुहानाः गुहा इव**) अमृतका मन्थन करके गुहा के समान (**स्वे सदसि अन्तः वृद्धं भाऋजीकं, सचन्त**) अपने घर अन्तरिक्षमें बढते हुये, प्रकाशमान अग्निका आश्रय प्राप्त करती हैं ॥१४॥

भावार्थ- यह अग्नि पृथ्वीमें अनेक स्थलोंपर बढता है और घृतकी धारायें इसे बढाती हैं। अंगुलियों द्वारा किए जानेवाले यज्ञके मध्यमें यह पडा रहता है ॥११॥

अग्नि जलके अन्दर रहते हुए सबका भरणपोषण करता है, और अपने तेजसे उपासकोंके लिए प्रकाश उत्पन्न करता है ॥१२॥
अरणियोंने जलोंके अन्दर रहनेवाले अग्निको पैदा किया, तब सब देवता इसके पास पहुंचकर इसकी सेवा करने लगे ॥१३॥
अत्यन्त प्रकाशमान किरणें समुद्रके अन्दर रहती हुई भी अन्तरिक्षस्थ अग्निको हर तरहसे बढाती हैं ॥१४॥

१५ ईळे च त्वा यजमानो हविर्भि-रीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥ १५ ॥

१६ उपक्षेतारस्तव सुप्रणीते ऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥ १६ ॥

१७ आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि साधन् ॥ १७ ॥

१८ नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौ-दग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥ १८ ॥

अर्थ- [१५] हे अग्ने! मैं (**यजमानः हविर्भिः त्वा ईळे**) यजमान हवियोंके द्वारा तेरी स्तुति करता हूँ। (**च, सुमतिं निकामः सखित्वं ईळे**) और अच्छी बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला मैं तेरे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ। तू (**देवैः जरित्रे अवः मिमीहि**) देवोंके साथ मुझ स्तोताकी रक्षा कर। (**च दम्येभिः अनीकैः नः रक्ष**) और दुर्दम्य तेजसे हमारी रक्षा कर ॥१५॥

१ **सुमतिं निकामः सखित्वं-** उत्तम बुद्धिको चाहनेवाला ही इस अग्निकी मित्रता कर सकता है।

[१६] हे (**सुप्रणीते अग्ने**) उत्तम नेता अग्ने! (**तव उपक्षेतारः**) तेरे पास रहनेवाले हम (**विश्वानि धन्या दधानाः तुञ्जमानाः**) सम्पूर्ण धनोंको धारण करते हुए तेरे द्वारा पालित पोषित होते हुए हम (**सुरेतसा श्रवसा अदेवान् पृतनायून् अभिष्याम**) पुष्टिदायक अन्नसे युक्त होकर देवविरोधी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें ॥१६॥

[१७] हे (**अग्ने**) अग्ने! तू (**देवानां केतुः आ मन्द्रः अभवः**) देवताओंका प्रज्ञापक तू सब प्रकारसे रमणीय है, (**विश्वानि काव्यानि विद्वान्**) सम्पूर्ण स्तोत्रोंका ज्ञाता तू (**मर्तान् दमूना अवासयः**) मनुष्योंको उनके अपने अपने घरोंमें बसानेवाला है, तथा (**रथिरः साधन् देवान् अनुयासि**) उत्तम रथवाला तू देवताओंका हित करते हुए उनका अनुसरण करता है ॥१७॥

१ **देवानां केतुः मन्द्रः-** यह अग्नि देवोंका प्रज्ञापक और रमणीय है।

[१८] (**अमृतः राजा विदथानि साधन्**) अमर और तेजस्वी अग्नि यज्ञ करता हुआ (**मर्त्यानां दुरोणे नि ससाद**) मनुष्योंके घरमें विराजता है। यह (**विश्वानि काव्यानि विद्वान्**) सम्पूर्ण स्तोत्रोंका ज्ञाता है। (**घृतप्रतीकः, उर्विया अग्निः वि अद्यौत्**) घृतके द्वारा प्रदीप्त शरीरवाला विस्तीर्ण अग्नि प्रकाशित होता है ॥१८॥

भावार्थ -हे अग्ने! मैं तेरी स्तुति करता हूँ ताकि मुझे उत्तम बुद्धि, तेरा बन्धुत्व और तेरा संरक्षण मिले ॥१५॥

यह उत्तम नेता अग्नि अपने भक्तोंका हर तरहका धन देकर पालन करनेवाला है। इसके दिए हुए अन्नसे पुष्ट होकर भक्त नास्तिकों पर विजय प्राप्त करते हैं ॥१६॥

यह देवोंका दूत है, और मनुष्योंका निवासक है। यह देवों अर्थात् विद्वानोंका हित करता है ॥१७॥

कभी नष्ट न होनेवाला यह अग्नि यज्ञोंको सिद्ध करता और मनुष्योंके घरों में रहता है। घृतसे प्रदीप्त होकर यह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥१८॥

१९ आ नो गहि सख्येभिः शिवेभि-र्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥

२० एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मन्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०॥

२१ जन्मन्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या-ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥

२२ इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२॥

अर्थ- [१९] (**सरण्यन् महान्**) सर्वत्र जानेवाले महान् अग्ने ! तू अपनी (**शिवेभिः सख्येभिः महीभिः ऊतिभिः नः आ गहि**) मंगलकारी मैत्रीसे और महती रक्षाशक्तियोंसे युक्त होकर हमारे पास आ। (**अस्मे बहुलं संतरूत्रं**) हमारे लिये विस्तीर्ण, उपद्रव रहित, (**सुवाचं भागं यशसं, रयिं कृधि**) शोभन स्तुतियुक्त भजनीय और कीर्तिशाली धनको प्रदान कर ॥१९॥

[२०] (**अग्ने**) अग्ने ! (**पूर्व्याय ते सनानि, नूतनानि एता जनिमाप्र वोचं**) पुरातन तेरी सनातन और नवीन सब स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं। (**जातवेदाः**) सर्वज्ञ तू (**जन्मन् जन्मन् निहितः**) सब मनुष्योंके बीचमें स्थापित किया गया है, (**वृष्णे इमा महान्ति सवना कृता**) बलवान् तेरे लिये हमने इन बडे बडे यज्ञोंको किया है ॥२०॥

[२१] (**जन्मन् जन्मन् निहिताः जातवेदाः**) सारे मनुष्यों में स्थापित हुआ हुआ सर्वज्ञ अग्नि (**विश्वामित्रेभिः अजस्रः इध्यते**) विश्वामित्रों द्वारा सदा ही प्रदीप्त किया जाता है। (**वयं तस्यं यज्ञियस्व**) हम उस यजनीय अग्निके (**भद्रे सौमनसे अपि स्यां**) उत्तम मनके अनुकूल रहें ॥२१॥

१ **वयं यज्ञियस्य भद्रे सौमनसे स्याम-** हम उस पूजनीय अग्निके कल्याणकारी बुद्धिके अनुकूल रहे.

[२२] हे (**सहसावन् सुक्रतो**) बलवान्, शोभन कर्म करनेवाले अग्ने ! (**त्वं रराणः न इमं यज्ञं देवत्रा धेहि**) तू आनन्दित होता हुआ हमारे इस यज्ञको अन्य देवताओं तक ले जा। हे (**होतः**) देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (**बृहतीः इषः नः प्रयंसि**) अत्यधिक अन्न हमें प्रदान कर। तथा हे (**अग्ने महि द्रविणं आयजस्य**) अग्ने ! महान् पश्वादि युक्त उत्तम धन भी हमें दे ॥२२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू मंगलकारी मित्रता और रक्षाशक्तिसे युक्त होकर हमारे पास आ, तथा उपद्रव रहित और कीर्ति देनेवाले धनको प्रदान कर ॥१९॥

यह अग्नि सबसे प्राचीन है, इसलिए सब इसकी स्तुति करते हैं और सब इसे अपने घरमें स्थापित करते हैं और इसमें यज्ञ करते हैं ॥२०॥

प्रत्येक मनुष्यमें स्थित यह अग्नि सज्जनों द्वारा प्रदीप्त किया जाता है। हम भी उस अग्निकी श्रेष्ठ बुद्धिके अनुसार चलें ॥२१॥

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञको तू देवताओं तक पहुंचा और सब तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर ॥२२॥

२३ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ २३ ॥

[२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- जगती ।]

२४ वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥ १ ॥

२५ स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥ २ ॥

अर्थ- [२३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र और पौत्र वंशकी वृद्धि करनेवाले हों। हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥२३॥

१ **हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गोसनिं इळाम्-** हे अग्ने ! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे।

२ **सा ते सुमतिः अस्मे भूत्-** वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो।

[२]

[२४] (ऋतावृधे वैश्वानराय अग्नये) यज्ञकी वृद्धि करनेवाले तथा सबको आगे ले जानेवाले अग्निके लिए हम (घृतं न पूतं) घीके समान पवित्र (धिषणां जनामसि) स्तुतिको प्रकट करते हैं। (मनुषः वाघतः च) मनुष्य तथा अन्य उपासक (द्विता होतारं) दो प्रकारसे विभक्त तथा देवोंको बुलानेवाले अग्निको (धिया) अपनी बुद्धिसे (सं ऋण्वति) उसी प्रकार संवारते है जिस प्रकार (कुलिशः रथं न) बढई रथको ॥१॥

[२५] (सः) वह अग्नि (जनुषा) जन्म लेते ही (उभे रोदसी रोचयत्) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको प्रकाशित करता है, (सः मात्रोः) वह अग्नि द्यु और पृथ्वीरूप अपनी दोनों माताओंका (ईड्यः पुत्रः अभवत्) प्रशंसनीय पुत्र है। वह अग्नि (हव्यवाट्) हविको ले जानेवाला (अ-जरः) जीर्णतासे रहित (चनः हितः) अन्नका भण्डार (दूळभः) अवध्य (विभावसुः) प्रदीप्त किरणोंवाला तथा (विशां अतिथिः) प्रजाओंका अतिथि है ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू देवोंकी पूजा करनेवाले को हरतरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी और उपजाऊ भूमि दे। साथ ही उत्तम बुद्धि भी प्रदान कर ॥२३॥

यह अग्नि यज्ञका साधक और सबका नेता है। सबको उतम मार्गकी तरफ ले जाता है। मनुष्य उसकी पवित्र स्तुति करें। जिस प्रकार घी पवित्र एवं तेजस्वी होता है, उसी प्रकार स्तुति भी पवित्र एवं तेजस्वी हो। स्तोतागण भौतिक और आध्यात्मिक रूपसे दो भागोंमें विभक्त इस अग्निको प्रदीप्त करके सुशोभित करते हैं ॥१॥

यह अग्नि द्यौ और पृथ्वीरूप अपने पिता माता का योग्य और प्रशंसनीय पुत्र है, इसलिए यह जन्म लेते ही उनके यशको फैलाता है। इसी प्रकार सब अपने जीवनमें श्रेष्ठतम कर्म करके अपने मातापिता के यशको फैलायें। वह अग्नि अजर अवध्य, प्रदीप्त किरणोंसे युक्त और प्रजाओंमें अतिथिके समान पूज्य है ॥२॥

२६ क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥ ३ ॥
२७ आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥ ४ ॥
२८ अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [२६] (**तरुषः दक्षस्य विधर्मणि**) अत्यन्त पराक्रमी और चतुर मनुष्यके यज्ञमें (**देवासः**) देवगण अपने (**क्रत्वा चित्तिभिः**) कर्म और ज्ञानसे (**अग्निं जनयन्त**) अग्निको उत्पन्न करते हैं। (**भानुना ज्योतिषा रुरुचानं**) अत्यन्त तेजस्वी तेजसे शोभित होनेवाले (**महां**) इस महान् अग्निकी (**वाजं सनिष्यन्**) अन्न और बलकी कामना करता हुआ मैं (**अत्यं न उप ब्रुवे**) घोडेके समान स्तुति करता हूँ॥३॥

१ **तरुषः दक्षस्य विधर्मणि देवासः क्रत्वा चित्तिभिः अग्निं जनयन्त-** पराक्रमी और कुशल मनुष्यके यज्ञमें ही देवगण अपने पराक्रम और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं।

[२७] (**मन्द्रस्य**) पूजाके योग्य इस अग्निके, (**वरेण्यं अह्रयं ऋग्मियं वाजं**) चाहने योग्य, लज्जासे रहित और प्रशंसा के योग्य अन्नको (**सनिष्यन्तः**) प्राप्त करने की इच्छावाले हम (**भृगूणां रातिं**) भृगुओंको ऐश्वर्य देनेवाले, (**उशिजं**) कामना करनेवाले (**कविक्रतुं**) उत्तम ज्ञान और कर्म करनेवाले (**दिव्येन शोचिषा राजन्तं**) अत्यन्त दिव्य तेजसे प्रकाशित उस अग्निको (**आ वृणीमहे**) हम अपनाते हैं, स्वीकार करते हैं॥४॥

१ **अह्रयं वाजं ऋग्मियं-** लज्जासे रहित मार्गसे कमाया गया अन्नही प्रशंसा के योग्य होता है।

[२८] (**वृक्तबर्हिषः यतस्रुचः जनाः**) आसनको बिछाये हुए और स्रुचाओंको हाथमें लिए हुए याजक (**सुम्नाय**) अपने सुखके लिए (**वाजश्रवसं**) बल और अन्नसे सम्पन्न (**सुरुचं**) उत्तम तेजस्वी (**विश्वदेव्यं**) सभी विद्वानोंका हित करनेवाले (**रुद्रं**) शत्रुओंको रुलानेवाले (**यज्ञानां अपसां इष्टिं साधत्**) श्रेष्ठतम कर्मों एवं यज्ञोंको पूर्ण करनेवाले (**अग्निं**) अग्निको (**इह पुरः दधिरेः**) यहां इस यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं॥५॥

१ **सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां अपसां अग्निं इह पुरः दधिरे-** उत्तम तेजस्वी, सभी विद्वानोंका हित करनेवाले, शत्रुओंको रुलानेवाले, श्रेष्ठतमको करनेवाले अग्निको यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं।

भावार्थ- देवगण केवल उसी मनुष्यके यज्ञमें इस अग्निको प्रकट करते हैं, जो पराक्रमी और कुशल होता है। देव अर्थात् विद्वान् ऐसे ही मनुष्यके यज्ञमें जाते हैं और उस यज्ञमें जाकर वे अपने श्रेष्ठ कर्मों और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं। विद्वान ज्ञानी ब्राह्मण अपने राष्ट्रमें अपने कर्मों और ज्ञानसे नेताका निर्माण करते हैं, राष्ट्रके यज्ञमें नेताको उत्पन्न करते हैं, तब उस नेताको देखकर सारी प्रजायें बल प्राप्त करनेकी इच्छासे उस नेताकी प्रशंसा करता है, जिस प्रकार कोई वीर उत्तम घोडेको देखकर उसकी प्रशंसा करता है॥३॥

जो नेता हो, वह ऐसे ही मार्गसे धन कमाये कि जिसमें लज्जा न रहे, जिस धनको कमाकर उसे छिपाना न पडे। ऐसा ही अन्न प्रशंसनीय है। ऐसे ही अन्नकी प्रजायें भी कामना करें अर्थात् प्रजायें भी उत्तम मार्गसे ही धनको प्राप्त करें। वह अग्रणी उत्तम ज्ञान और कर्म करनेवाला होकर उत्तम दिव्य तेजसे सम्पन्न हों, ऐसे ही अग्रणीको प्रजायें अपनाती हैं, अपना नेता स्वीकार करती हैं॥४॥

प्रजायें बल और अन्न देनेवाले, तेजस्वी, सभी विद्वानोंका हित करनेवाले, पर शत्रुओंको रुलानेवाले तथा श्रेष्ठतम कर्मोंको करनेवाले और प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अग्रणीको अपने सुखके लिए हर काममें आगे स्थापित करती है। ऐसे उत्तम नेताका सत्कार करनेके लिए प्रजायें हमेशा आसन बिछाये रहती हैं॥५॥

२९ पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्य—मुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥ ६ ॥
३० आ रोदसी अपृणदा स्वर्मह—ज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कवि—रत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७ ॥
३१ नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणि—रग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥ ८ ॥
३२ तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनो ऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुज—मु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ९ ॥

अर्थ- [२९] हे (**पावकशोचे होतः अग्ने**) पवित्र ज्वालाओंवाले तथा देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (**यज्ञेषु परिवृक्तबर्हिषः**) यज्ञोंमें चारों ओर आसन बिछाये हुए तथा (**दुवः इच्छमानासः नरः**) तेरी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (**आप्यं तव क्षयं उपासते**) अत्यन्त श्रेष्ठ तेरे यज्ञगृहमें बैठे हुए हैं, (**तेभ्यः द्रविणं धेहि**) उन्हें तू धन दे ॥६॥

[३०] (**यत् जातं एनं अपसः अधारयन्**) जब उत्पन्न हुए इस अग्निको कर्म करनेवालोंने धारण किया, तब इस अग्निने अपने तेजसे (**रोदसी आ अपृणत्**) द्यु और पृथ्वीलोकको भर दिया (**महत् स्वः**) महान् अन्तरिक्षको भी भर दिया, (**सः चनोहितः कविः**) वह अन्नसे सम्पन्न तथा ज्ञानी अग्नि (**अध्वराय वाजसातये**) हिंसारहित यज्ञमें (**अत्यः न परि नीयते**) घोडे के समान चारों ओर ले जाया जाता है ॥७॥

[३१] (**रथीः**) उत्तम गति करनेवाला (**बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः**) महान् यज्ञका द्रष्टा वह (**अग्निः**) अग्नि (**देवानां पुरोहितः अभवत्**) देवोंका पुरोहित हुआ। ऐसे (**हव्यदातिं**) हविको ग्रहण करनेवाले (**सु-अध्वरं**) उत्तम यज्ञको पूर्ण करनेवाले (**दम्यं**) शत्रुओंका दमन करनेवाले (**जातवेदसं नमस्यत दुवस्यत**) जातवेदा अग्निको प्रणाम करो, उसकी सेवा करो ॥८॥

१ **रथीः बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः देवानां पुरोहितः अभवत्-** उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंको देखनेवाला ही देवोंका पुरोहित हो सकता है।

[३२] (**उशिजः अमृत्यवः**) कामना करनेवाले अमरणशील देवोने (**यह्वस्य परिज्मनः अग्नेः**) महान् और चारों और जानेवाले अग्निक (**समिधः तिस्र अपुनन्**) अत्यन्त तेजस्वी तीन शरीरों या रूपोंको पवित्र किया। (**तासां एकं भुजं**) उनमेंसे एक सर्वभक्षक रूपको (**मर्त्ये अदधुः**) मर्त्यलोकमें स्थापित किया, (**द्वे ऊ**) बाकी दो शरीर या रूप (**जामिं लोकं ईयतुः**) दो परस्पर सम्बन्धित लोकोंमें चले गऐ ॥९॥

भावार्थ- हे शुद्ध और पवित्रकारी ज्वालाओंसे युक्त अग्ने ! यज्ञके चारों ओर तेरे निवास स्थान यज्ञगृहमें बैठे हुए मनुष्य तेरी सेवा करनेकी अभिलाषा करते हैं, इसी अभिलाषासे वे यज्ञगृहमें बैठे हुए हैं, उन्हें तू धन दे ॥६॥

जब यज्ञ कर्म करनेवालोंमें इस अग्निको और अधिक प्रदीप्त किया, तब इसके प्रकाशसे द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों लोक भर गए। यह हिंसारहित यज्ञमें चारों ओर ले जाया जाता है, जिस प्रकार घोडा चारों ओर घुमाया जाता है ॥७॥

उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंका निरीक्षण करनेवाला ही देवों अर्थात् विद्वानोंका पुरोहित हो सकता है। ऐसे शत्रुओंका दमन करनेवाले तथा उत्तम यज्ञको पूर्ण करनेवाले तथा सभी तरहके धनसे सम्पन्न अग्रणीको सब प्रजायें प्रणाम करती हैं और उसकी सेवा करती हैं ॥८॥

मृत्युसे रहित देवोंने महान् और सर्वव्यापक अग्निको पार्थिव, अन्तरिक्ष और दिव्य इन तीन रूपोंमें विभक्त किया। उनमें एक भौतिक अग्नि थी, जो सब पदार्थों को खा जाती थी, उसे पृथ्वी पर स्थापित किया, बाकी दोमेंसे एकको अन्तरिक्षमें विद्युत् के रूपमें दूसरीको सूर्यके रूपमें द्युलोकमें स्थापित किया ॥९॥

३३ विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत् स गर्भमेषु दीधरत् ॥ १० ॥
३४ स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान् वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो नि दाशुषे ॥ ११ ॥
३५ वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद् दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥ १२ ॥
३६ ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३ ॥

अर्थ- [३३] (**इषः मानुषीः**) अन्नकी इच्छा करनेवाली मानवी प्रजायें (**विशां विश्पतिं कविं सीं**) प्रजाके पालक और ज्ञानी इस अग्निको (**तेजसे**) तीक्ष्ण बनानेके लिए (**स्वधितिं न**) तलवारके समान (**सं अकृण्वन्**) उत्तम बनाते हैं। (**सः**) वह अग्नि (**उद्धतः निवतः वेविषत् याति**) ऊंचे और नीचे प्रदेशोंको व्याप्त करता हुआ जाता है, (**सः एषु भुवनेषु गर्भं दीधरत्**) वह अग्नि इन लोकोंमें गर्भ स्थापित करे ॥१०॥

[३४] (**पृथुपाजाः**) अत्यन्त बलवान् (**अमर्त्यः**) न मरनेवाला, (**दाशुषे वसु रत्ना वि दयमानः**) दानशीलको धन और रत्नोंको देनेवाला, (**प्रजज्ञिवान् वृषा**) अत्यन्त ज्ञानवान और बलवान् (**सः वैश्वानरः**) वह वैश्वानर अग्नि (**जठरेषु जिन्वते**) मनुष्योंके जठरमें बढता है और (**सिंहः न**) सिंहके समान (**चित्रेषु नानदत्**) अनेक प्रकारके वनोंमें गर्जता है ॥११॥

[३५] (**प्रत्नथा वैश्वानरः**) प्राचीन वैश्वानर अग्नि (**सुमन्मभिः भन्दमानः**) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रशंसित होता हुआ (**नाकं**) अन्तरिक्षमें होता हुआ (**दिवः पृष्ठं आरुहत्**) द्युलोककी पीठपर चढ जाता है। (**पूर्ववत्**) पहलेके समान ही (**जन्तवे धनं जनयन्**) मनुष्य या प्राणीमात्रके लिए धारण करनेवाले पदार्थोंको उत्पन्न करता हुआ (**जागृविः सः**) सदा जाग्रत रहनेवाला वह अग्नि (**समानं अज्मं पर्येति**) उत्तम मार्गसे चारों ओर जाता है ॥१२॥

[३६] (**ऋतावानं**) ऋतका पालन करनेवाले (**यज्ञियं**) पूजनीय (**विप्रं उक्थ्यं**) ज्ञानी और प्रशंसनीय (**दिवि क्षयं**) द्युलोकमें रहनेवाले (**यं**) जिस वैश्वानर अग्निको (**मातरिश्वा आ दधे**) वायु धारण करता है, (**चित्र यामं**) अनेक तरहसे जानेवाले (**हरिकेशं**) तेजस्वी ज्वालाओंवाले (**सुदीतिं**) उत्तम दीप्तिवाले (**तं अग्निं**) उस अग्निको (**नव्यसे सुविताय**) प्रशंसाके योग्य तथा उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले धनको प्राप्त करनेके लिए (**ईमहे**) चाहते हैं ॥१३॥

भावार्थ- अन्नको चाहनेवाले मानवी प्रजायें प्रजाओंके पालक तथा ज्ञानी इस अग्निको तीक्ष्ण करनेके लिए उसी प्रकार उत्तम बनाते हैं, जिस प्रकार एक तलवारको तेज करते हैं। प्रदीप्त हुई अग्नि ऊंचे और नीचेके प्रदेशोंको अपने प्रकाशसे व्याप्त करती हुई चलती है। वह अग्नि इस पृथ्वीमें उत्पादक शक्ति स्थापित करे। पृथ्वीमें अग्नि ही उत्पादक शक्ति बढाती है ॥१०॥

अत्यन्त बलवान् और मरणधर्मसे रहित यह अग्नि दानशीलको अनेक रत्न और धन प्रदान करता है, वही अग्नि मनुष्योंके उदरोंमें जठराग्निके रूप में बढता है और दावाग्निके रूप में वही अनेक वनोंमें गरजता हुआ बढता है ॥११॥

यज्ञमें प्रदीप्त होनेपर इस अग्निका प्रकाश अन्तरिक्षमें होता हुआ द्युलोकमें जाता है। यह अग्नि संसारमें प्राणीमात्रको धारण करनेवाले पदार्थोंको उत्पन्न करता है और हमेशा जागृत रहता हुआ उत्तम मार्गसे चारों ओर जाता है ॥१२॥

ऋत अर्थात् नियमोंका पालन करनेवाले, पूज्य ज्ञानी और प्रशंसनीय तथा द्युलोकमें रहनेवाली इस वैश्वानर अग्निको वायु अन्तरिक्षमें धारण करता है। ऐसे अनेक तरहसे गमन करनेवाले तेजस्वी इस अग्निको हम प्रशंसनीय तथा उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करनेवाले धनको प्राप्त करनेके लिए चाहते हैं ॥१३॥

३७ शुचिं न याममिषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥ १४ ॥
३८ मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद् राय ईमहे ॥ १५ ॥

[३]

[ऋषिः- ११ गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- जगती ।]

३९ वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥ १ ॥

अर्थ- [३७] (शुचिं) शुद्ध पवित्र (यामन् इषिरं) यज्ञमें जानेवाले (स्वर्दृशं) सबको देखनेवाले (दिवः केतुं) द्युलोकके पताकास्वरूप (रोचनस्थां उषर्बुधं) सदा तेजमें ही प्रतिष्ठित रहनेवाले, उषःकालमें उठनेवाले (दिवः मूर्धानं) द्युलोकके ऊंचे भागपर रहनेवाले (अप्रतिष्कुतं) प्रतिबन्ध रहित गतिवाले (वाजिनं) बलवान् (बृहत् तं) महान् उस अग्निको (नमसा ईमहे) नमस्कारोंसे प्रसन्न करते हैं ॥१४॥

[३८] (मन्द्रं होतारं शुचिं) आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलानेवाले, शुद्ध पवित्र, (दमूनसं उक्थ्यं विश्वचर्षणिं) शत्रुओंका दमन करनेवाले, प्रशंसनीय, सारे संसारको देखनेवाले (रथं न चित्रं) रथके समान सुन्दर (वपुषाय दर्शतं) शरीरसे सुन्दर (मनुर्हितं) मनुष्योंका हित करनेवाले उस अग्निसे (रायः सदं इत् ईमहे) हमेशा धन मांगते हैं ॥१५॥

[३]

[३९] (विप्रः) ज्ञानी मनुष्य (गातवे) उत्तम मार्गपर जानेके लिए (धरुणेषु) यज्ञोंमें (पृथुपाजसे वैश्वानराय) विशाल बलवाले विश्वानर अग्निकी (विधन्त) सेवा करते हैं और (रत्ना) रत्न प्राप्त करते हैं। (अमृतः अग्निः) मरणरहित अग्नि (देवान् दुवस्यति) देवोंकी सेवा करता है, (अथ) इसीलिए (सनता धर्माणि) प्राचीन धर्म (न दुदूषति) दूषित नहीं होते ॥१॥

१ विप्रः गातवे पृथुपाजसे वैश्वानराय विधन्त - ज्ञानी जन उत्तम मार्गपर जाने के लिए विशाल बलवाले वैश्वानरकी सेवा करते हैं।

२ अमृतः अग्निः देवान् दुवस्यति- मरणधर्मसे रहित अग्नि भी अन्य देवोंकी सेवा करता है।

३ अथ सनता धर्माणि न दुदूषति- इसलिए प्राचीन धर्म दूषित नहीं होते।

भावार्थ- शुद्ध पवित्र, यज्ञमें जानेवाले, प्रकाशके मार्ग, द्युलोककी पताका रूप, उषःकालमें उठनेवाले, द्युलोकमें सबसे ऊंचे स्थानपर रहनेवाले इस अग्निको हम नमस्कारोंसे प्रसन्न करते हैं ॥१४॥

आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलानेवाले, शुद्ध पवित्र, शत्रुओंका दमन करनेवाले, प्रशंसनीय समस्त संसारका निरीक्षण करनेवाले, सुन्दर ज्वालाओंवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले अग्निसे हम सदा धन मांगते हैं ॥१५॥

ज्ञानी जन उत्तम मार्ग पर जानेके लिए अग्निकी सेवा करते हैं और रत्न आदि धन प्राप्त करते हैं और अमर अग्नि भी अन्य देवोंकी सेवा करता है। निःस्वार्थ सेवाकी यह परम्परा अखण्ड चली आती है। सेवाकी इस परम्पराके कारण ही धर्म दोषरहित रहता है, जब सेवामें स्वार्थ प्रविष्ट हो जाता है, तब सेवा भी खण्डित हो जाती है - साथ ही धर्म भी दूषित हो जाता है। ॥१॥

४० अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥
४१ केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥ ३ ॥
४२ पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥ ४ ॥

अर्थ- [४०] (**दस्मः होता**) सुन्दर और होता तथा (**दूतः**) देवोंका दूत यह अग्नि (**रोदसी अन्तः**) द्यु और पृथ्वी लोकके अन्दर व्यापक होकर (**ईयते**) चलता है। (**देवेभिः इषितः**) देवोंके द्वारा भेजा गया तथा (**धियावसुः**) ज्ञानसे निवास करानेवाला यह अग्नि (**मनुषः पुरोहितः निषत्तः**) मनुष्यके पुरोहित के रूप में बैठा हुआ (**द्युभिः**) अपने तेजोंसे (**बृहन्तं क्षयं परि भूषति**) महान् यज्ञगृहको अलकृंत करता है ॥२॥

१ **मनुषः पुरोहितः निषत्तः द्युभिः बृहन्तं क्षयं परि भूषति-** मनुष्योंका पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि वह अपने तेजोंसे यज्ञगृहको प्रकाशित करे।

[४१] (**विप्रासः**) ज्ञानी जन (**यज्ञानां केतुं**) यज्ञोंकी पताका रूप और (**विदथस्य साधनं**) और यज्ञके साधनरूप (**अग्निं**) अग्निकी (**चित्तिभिः महयन्त**) अपने ज्ञानोंसे पूजा करते है। (**गिरः**) ज्ञानियोंने (**यस्मिन् अपांसि अधि संदधुः**) जिसमें कर्म स्थापित किए, (**तस्मिन् यजमानः सुम्नानि आ चके**) उसीमें यज्ञ करनेवाला सुखोंको पाना चाहता है ॥३॥

१ **यस्मिन् अपांसि, तस्मिन् सुम्नानि-** जहां पर कर्म है, वहीं पर सुख है।

[४२] यह अग्नि (**यज्ञानां पिता**) यज्ञोंका पालक (**विपश्चितां असु-रः**) ज्ञानियोंके लिए प्राणदाता और (**वाघतां वयुनं विमानं**) स्तोताओंके मार्गको नापनेवाला है। वह अग्नि अपने (**भूरिवर्पसा**) अनेक रूपोंसे (**रोदसी आ विवेश**) द्यु और पृथ्वीलोकमें प्रविष्ट हुआ है। वह (**पुरुप्रियः कविः**) बहुतोंका प्रिय और ज्ञानी अग्नि (**धामभिः भन्दते**) अपने तेजोंसे प्रकाशित होता है ॥४॥

१ **यज्ञानां पिता विपश्चितां असु-रः वाघतां वयुनं विमानं-** वह अग्नि यज्ञोंका पालक, ज्ञानियोंके लिए प्राणदाता या बल देनेवाला और स्तोताओंको उत्तम मार्ग दिखानेवाला है।

भावार्थ- सुन्दर और देवोंका आह्वाता अग्नि द्यु और पृथ्वी दोनों लोकोंमें व्याप्त होकर चलता है, यह अग्नि देवोंका दूत है, इसलिए वह देवोंके द्वारा इस पृथ्वी पर भेजा जाता है और वह आकर देवों का पुरोहित बनता है। मनुष्य हर काममें इस अग्निको ही आगे स्थापित करे हैं। तब वह अग्नि अपने प्रकाशसे विशाल यज्ञगृहको प्रकाशित करता है ॥२॥

यह अग्नि यज्ञकी पताका है, अर्थात् इस अग्निके प्रदीप्त होनेपर लोगोंको यज्ञ होनेका पता चलता है, इस अग्निसे यज्ञ सिद्ध होते हैं, इसलिए यह यज्ञका साधन है। यज्ञ करनेवाला ज्ञानी उसी सुखको पाना चाहता है, जिसमें कर्म हों। कर्म करनेमें ही जीवनका सुख है, आलस्यमें जीवनका नाश है ॥३॥

इस अग्निसे यज्ञोंकी सिद्धि होती है, इसलिए यह यज्ञोंका पालक है, ज्ञानियोंकी प्राणशक्तिको बलवान् बनाता है और स्तुति करनेवालोंको उत्तम मार्ग दर्शाता है। वह सूर्य और भौतिक अग्निके रूपमें द्युलोक और पृथ्वीलोकमें व्याप्त होता है। ऐसा वह ज्ञानी अग्नि तेजोंसे सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥४॥

४३ चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥ ५ ॥

४४ अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभि स्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभि र्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥ ६ ॥

४५ अग्ने जरस्व स्वपत्य आयु न्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥ ७ ॥

४६ विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८ ॥

अर्थ- [४३] (**चन्द्रं**) चन्द्रके समान तेजस्वी रथवाले (**हरिव्रतं**) तेजस्वी कर्मवाले (**अप्सुषदं**) जलोंमें निवास करनेवाले (**स्वर्विदं**) सर्वज्ञ (**विगाहं**) सर्वत्र व्याप्त (**तूर्णिः**) शत्रुओंके विनाशक (**तवषीभिः आवृत्तं**) बलोंसे घिरे हुए (**भूर्णि**) भरणपोषण करनेवाले (**सुश्रियं**) उत्तम शोभावाले (**वैश्वानरं**) वैश्वानर अग्निको (**देवासः इह दधुः**) देवगण यहां इस यज्ञमें स्थापित करते हैं ॥५॥

[४४] (**साधदिष्टिभिः जन्तुभिः**) यज्ञ करनेमें कुशल ऋत्विजोंके द्वारा चलाए गए (**मनुषः यज्ञं**) मनुष्यके यज्ञको (**धिया तन्वानः**) अपने कर्मसे विस्तृत करते हुए (**रथीः**) सर्वत्र गति करनेवाला (**जीरः**) शीघ्रतासे काम करनेवाला (**दमूनाः**) दयासे युक्त चित्तवाला, (**अभिशस्तिचातनः**) शत्रुओंका विनाशक (**अग्निः**) अग्नि (**अन्तः ईयते**) दोनों लोकोंमें व्याप्त होकर चलता है ॥६॥

[४५] हे मनुष्य (**आयुनि सु-अपत्ये**) दीर्घ आयुवाले उत्तम पुत्रसे लिए (**जरस्व**) अग्निकी स्तुति कर। हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**ऊर्जा पिन्वस्व**) ओजसे हमें पूर्ण कर, (**नः इषः सं दिदीहि**) हमें अन्न प्रदान कर। हे (**जागृवे**) सदा जागृत रहनेवाले अग्ने ! (**बृहतः**) स्तुति करनेवालेकी (**वयांसि जिन्व**) आयुको दीर्घ कर। (**सुक्रतुः**) उत्तम कर्म करनेवाला तू (**विपां देवानां उशिक् असि**) ज्ञानियों और देवोंका प्रिय है ॥७॥

१ **आयुनि सु अपत्ये जरस्व-** दीर्घायुवाले उत्तम सन्तानके लिए अग्निकी स्तुति करनी चाहिए।

[४६] (**नरः**) मनुष्य (**वृधे**) अपनी समृद्धि के लिए (**विश्पतिं**) प्रजाओंके पालक (**यह्वं**) महान् (**अतिथिं**) अतिथिके समान पूज्य (**धीनां यन्तारं**) बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले (**वाघतां उशिजं**) स्तोताओंको अत्यन्त प्रिय (**अध्वराणां चेतनं**) यज्ञोंके जीवन (**जातवेदसं**) जातवेदा अग्निकी (**तमसा जूतिभिः प्रशंसन्ति**) नमस्कारों और स्तुतियोंसे प्रशंसा करते हैं ॥८॥

भावार्थ- यह अग्नि चन्द्रमाके समान आनन्ददायक, तेजस्वी किरणोंवाला, उत्तम कर्म करनेवाला, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त शत्रुओंका विनाशक, बलसे युक्त और भरणपोषण करनेवाला है। ऐसे देवको अन्य सभी देव यज्ञमें स्थापित करते हैं ॥५॥

सर्वत्र गति करनेवाला यह अग्नि अपने उत्तम कर्मसे मनुष्योंके द्वारा चलाए गए यज्ञको और विस्तृत करता है। यह अग्नि दयासे युक्त चित्तवाला, शत्रुओंका विनाशक है ॥६॥

हे मनुष्य ! लम्बी उम्रवाले पुत्रको प्राप्त करनेके लिए तू अग्निकी स्तुति कर। वह अग्नि भी तेरे वीर्यको पुष्ट करे, अन्न प्रदान करे। तू दीर्घायु हो। शरीरके अन्दरकी अग्निकी जो उपासना करता है, उससे वह अग्नि प्रबुद्ध होकर खाये हुए अन्नको पचा डालती है, अन्नके पचनेसे शरीरमें वीर्य उत्पन्न होता है, और वह वीर्य पुष्ट होने पर उसकी उत्तम और दीर्घायुवाली सन्तानें उत्पन्न होती हैं ॥७॥

मनुष्य अपनी समृद्धि के लिए अतिथि के समान पूज्य, प्रजाओंके पालक बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले, स्तुति करनेवालोंको अत्यन्त प्रिय अग्निकी प्रशंसा करते हैं ॥८॥

४७ विभावा देवः सुरणः परि क्षिती—रग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वय—मुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥ ९ ॥
४८ वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥ १० ॥
४९ वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृह—दरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायता—ग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥ ११ ॥

अर्थ- [४७] (**सुरणः**) उत्तम आनन्द देनेवाला (**समुद्रथः**) उत्तम रथवाला (**विभावा देवः अग्नि**) तेजस्वी और उत्तम गुणोंवाला अग्नि (**शवसा**) अपने बलसे (**क्षितीः परि बभूव**) मनुष्योंके चारों ओर व्याप्त है। (**भूरिपोषिणः दमे**) बहुतसे मनुष्योंको पुष्ट करनेवालेके घरमें बैठकर (**वयं**) हम (**तस्य व्रतानि**) उस अग्निके कर्मोंको (**सुवृक्तिभिः**) अपने उत्तम वचनोंसे (**उप आ भूषेम**) और अलंकृत करें ॥९॥

[४८] हे (**विचक्षण वैश्वानर**) बुद्धिमान् अग्ने ! (**येभिः स्वर्विद् अभवः**) जिनसे तू स्वर्गको प्राप्त करनेवाला हुआ, (**तव धामानि**) तेरे उन तेजोंको (**आ चके**) मैं चाहता हूँ। हे (**अग्ने**) अग्ने ! तूने (**जातः**) उत्पन्न होकर ही (**रोदसी भुवनानि आ पृणो**) द्यु, पृथ्वी एवं अन्य लोकोंको अपने प्रकाशसे भर दिया। (**ता विश्वा**) उन सब लोकोंको तू (**त्मना**) अपनी शक्तिसे ही (**परि भूः असि**) व्याप्त करता है ॥१०॥

१ **विचक्षण ! येभिः स्वर्विद् अभवः, तव धामानि आ चके-** हे बुद्धिमान् अग्ने ! जिनसे तूने स्वर्ग प्राप्त किया उन तेरे तेजोंको हम चाहते हैं।

[४९] (**वैश्वानरस्य दंसनाभ्यः**) वैश्वानरके समान कर्म करनेसे (**बृहत्**) महान् धन प्राप्त होता है। तब (**एकः कविः**) एक ज्ञानी (**सु-अपस्यया अरिणात्**) उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे दान कर देता है। (**अग्निः**) यह अग्नि (**भूरिरेतसा**) अपने अत्यधिक बलसे (**उभा पितरा महयन्**) दोनों मातापिताकी पूजा करता हुआ (**अजायत**) प्रकट हुआ ॥११॥

१ **वैश्वानरस्य दंसनाभ्यः बृहत्-** वैश्वानर अग्निकी तरह कर्म करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है।
२ **कविः सु-अपस्यया अरिणात्-** ज्ञानी उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे उस धनका दान कर देता है।

भावार्थ- उत्तम रीतिसे आनन्द देनेवाला यह तेजस्वी देव अग्नि मनुष्योंके चारों ओर व्याप्त रहता है। मनुष्य भी अपने उत्तम वचनोंसे इस अग्निके कर्मका वर्णन करें ॥९॥

अग्नि जिन तेजोंके कारण सुख एवं आनन्द प्राप्त करता है, उन तेजों को प्राप्त करनेका प्रयत्न मनुष्यको करना चाहिए। यह उत्पन्न होते ही सारे लोकोंको प्रकाशसे भर देता है। उसी तरह मनुष्य भी अपने तेजसे सर्वत्र अपना यश फैलाकर जितने भी लोक हैं, उन सबको यह अग्नि अपनी शक्तिसे व्याप लेता है। उसी तरह मनुष्य भी अपनी ही शक्तिसे चारों ओर यश फैलाए ॥१०॥

सबके नेता अग्रणीके समान उत्तम कर्म करनेसे सबको बहुतसा धन मिल सकता है। ज्ञानीजन उस धनको प्राप्त करके उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे दूसरोंको दे डालते हैं, जब कि अज्ञानी दूसरोंको न देकर स्वयं उपभोग करते हैं। यह अग्नि अपने बलसे माता पृथ्वी और पिता द्युकी पूजा करता हुआ प्रकट होता है ॥११॥

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः। देवता- आप्रीसूक्तं [=१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा-भारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः]। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

५० समित्समित् सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः।
आ देव देवान् यजथाय वक्षि सखा सखीन् त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १ ॥
५१ यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी न स्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥ २ ॥
५२ प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान् यक्षदिषितो यजीयान् ॥ ३ ॥

अर्थ- [५०] हे अग्ने! (**समित्समित्**) समिधाओंसे अच्छी तरह प्रदीप्त होकर (**सुमनाः**) उत्तम मनवाला तू (**अस्मे बोधि**) हमें जागृत कर, (**शुचाशुचा**) अत्यन्त पवित्र और तेजस्वी तेजसे युक्त होकर हमें (**वस्वः सुमतिं रासि**) धनके विषयमें उत्तम बुद्धि प्रदान कर। हे (**देव**) अग्ने! (**देवान् यजथाय वक्षि**) देवोंको यज्ञके लिए बुला ला। हे (**अग्ने**) अग्ने! (**सखा**) मित्रके समान हितकारी (**सुमनाः**) उत्तम मनवाला होकर (**सखीन्**) मित्र देवोंका (**यक्षि**) सत्कार कर ॥१॥

१ **वस्वः सुमतिं रासि-** धनके बारेमें हमें उत्तम बुद्धि दे।

[५१] (**वरुणः मित्रः अग्निः देवासः**) वरुण, मित्र, अग्नि आदि देव (**यं**) जिस तनूनपात् देवकी (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**अहन् त्रिः**) दिनमें तीन बार (**आ यजन्ते**) पूजा करते हैं। (**सः तनूनपात्**) वह तनूनपात् देव तू (**नः**) हमारे (**घृतयोनिं**) घीसे जीवन प्राप्त करनेवाले (**विधन्तं**) देवोंकी सेवा करनेवाले (**इमं यज्ञं**) इस यज्ञको (**मधुमन्तं कृधि**) मधुरतासे पूर्ण कर ॥२॥

१ **नः इमं यज्ञं मधुमन्तं कृधि-** हमारे इस यज्ञको मधुरतासे पूर्ण कर।

[५२] (**विश्ववारा दीधितिः**) सारे संसारके द्वारा वरणीय तथा प्रकाश करनेवाली (**इळः**) बुद्धि (**प्रथमं यजध्यै**) सबसे प्रथम पूजा करनेके लिए (**होतारं प्र जिगाति**) होता अग्निके पास जाती है। (**वृषभं**) उस बलवान् अग्निकी (**वन्दध्यै**) वन्दना करनेके लिए हम (**नमोभिः अच्छ**) नमस्कार करते हुए उसके पास जाएं, (**इषित सः**) हमारे द्वारा प्रेरित होकर वह अग्नि भी (**यजीयान् देवान् यक्षत्**) पूजनीय देवोंकी पूजा करे ॥३॥

भावार्थ- हे अग्ने! समिधाओंसे प्रज्ज्वलित होकर तू हमें जागृत कर, तू हमें धनके बारेमें उत्तम बुद्धि दे, हम धन पाकर अभिमानी न हो जाएं। धन पाकर भी हम उदार और उत्तम बुद्धिसे युक्त रहें। तू उत्तम मनवाला होकर यज्ञ करनेके लिए, दोनोंको बुला ला और उनका सत्कार कर ॥१॥

इस तनूनपात् देवकी पूजा सभी देव प्रतिदिन, वह भी प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवनके रूपमें दिनमें तीन बार करते हैं। हे तनूनपात् देव! घीसे जीवन प्राप्त करनेवाले तथा देवोंकी सेवा करनेवाले हमारे इस यज्ञको मधुरतासे युक्त करो ॥२॥

बुद्धि इतनी उत्तम हो कि वह सारे संसारको उन्नत करनेवाली और सर्वत्र ज्ञानका प्रकाश फैलानेवाली हो। उस बुद्धिसे युक्त होकर हम बलवान् अग्निकी पूजा करें और हमारे द्वारा पूजित होकर वह अग्नि भी अन्य देवोंकी पूजा करे ॥३॥

५३ ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥ ४ ॥
५४ सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥ ५ ॥
५५ आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोष-दिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥ ६ ॥
५६ दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहु-रनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७ ॥

अर्थ- [५३] (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (ऊर्ध्वः गातुः अकारि) हमने उन्नतिशील मार्गका ही आश्रय लिया है, हे बर्हि और अग्ने! (वां) तुम दोनोंकी (शोचींषि) ज्वालायें (रजांसि ऊर्ध्वा प्रस्थिता) अन्तरिक्ष आदि लोकोंमें बहुत ऊपर चली गई है। (होता) होता (दिवः नाभा नि असादि) तेजस्वी यज्ञके केन्द्रमें बैठ गया है, हम भी (देवव्यचा) देवोंसे व्याप्त (बर्हिः-स्तृणीमहि) आसनको बिछाते हैं ॥४॥

१ अध्वरे ऊर्ध्वः गातुः अकारि- हिंसारहित यज्ञमें उन्नतशील मार्गको ही हमने पकडा है।

[५४] (मनसा वृणानाः) मनसे हमारे यज्ञको चाहते हुए तथा (ऋतेन विश्वं इन्वन्तः) ऋतसे विश्वको तृप्त करते हुए देवगण (सप्त होत्राणि प्रतियन्) सात होताओंसे युक्त यज्ञोंकी तरफ जाते हैं। (विदथेषु प्रजाताः) यज्ञोंमें उत्पन्न (नृपेशसः) मनुष्यके रूपवाले (पूर्वीः) बहुतसे देवता (इमं यज्ञं अभिविचरन्ति) इस यज्ञके चारों ओर घूमते हैं ॥५॥

[५५] (भन्दमाने) प्रशंसित होते हुए (विरूपे उपाके) विरुद्ध रूपोंवाली होने पर भी एक साथ रहनेवाली (उषसा) उषा और रात्री (तन्वा स्मयेते) अपने शरीरसे प्रकाशित होती है। (यथा) जिस प्रकार (मित्रः वरुणः उत मरुत्वान् इन्द्रः नः जुजोषत्) मित्र, वरुण और मरुतोंसे युक्त इन्द्र हमपर प्रसन्न रहें, उस प्रकार (महोभिः) तेजोंसे हमें तेजस्वी करें ॥६॥

[५६] मैं (प्रथमा) सब देवोंमें मुख्य (दैव्या होतारा) दिव्य होताओंको (न्यृंजे) प्रसन्न करता हूँ। (सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति) सात होता भी इन दोनोंको अन्नसे आनन्दित करते हैं। (ऋतं शसन्तः) स्तुति करते हुए (व्रतपाः दीध्यानाः) व्रतका पालन करनेवाले तथा तेजस्वी (ते) वे होता (ऋतं अनु व्रतं इति आहुः) सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है ऐसा कहते हैं ॥७॥

१ ऋतं अनु व्रतं इति आहुः- सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है ऐसा कहते हैं।

भावार्थ- मनुष्य जब यज्ञमें दीक्षित हो जाए तब वह सदा कर्म ही करे, ऐसे ही कर्म करे कि जिससे उनकी उन्नति हो। इस प्रकार उत्तम कर्म करते हुए वह यज्ञाग्निको प्रदीप्त करे और उसकी ज्वालायें अन्तरिक्षतक पहुंचे। यज्ञके केन्द्रमें अग्नि स्थापित करनेके बाद आसन बिछाये जाएं ॥४॥

हमारे यज्ञको मनसे चाहते हुए तथा नियमोंके अनुसार सारे विश्वको तृप्त करते हुए देवगण यज्ञकी तरफ आएं और इस यज्ञकी चारों ओरसे रक्षा करें ॥५॥

उषा और रात्री दोनों विरुद्ध रूपवाली हैं, उषा उज्जवल है और रात्री कृष्ण, फिर भी दोनों मिलकर रहती हैं और प्रकाशित होती हैं। ये दोनों देवियां हमें तेजसे युक्त करें, ताकि मित्र, वरुण आदि देव भी हम पर प्रसन्न हों ॥६॥

मैं देवोंमें सबसे मुख्य दिव्य होताओंको प्रसन्न करता हूँ। अन्य भी स्तोता अन्नसे इन्हें तृप्त करते हैं। सत्यमार्ग पर चलना ही सर्वश्रेष्ठ व्रत है ॥७॥

५७ आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
५८ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
५९ वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥
६० आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥

अर्थ- [५७] (**भारती भारतीभिः सजोषाः**) हमारी वाणी दूसरे लोगोंकी वाणियोंके साथ मिल जाए, (**मनुष्येभिः दैवैः इडा**) मनुष्योंकी और देवोंकी बुद्धि एक हो (**अग्निः च**) तेज भी एक हो (**सरस्वती सारस्वतेभिः**) हमारा ज्ञान अन्य लोगोंके ज्ञानके साथ मिले, इस प्रकार (**तिस्रः देवी**) वाणी, बुद्धि और ज्ञानरूपी तीनों देवियां (**अर्वाक्**) हमारे पास आकर (**इदं बर्हिः सदन्तु**) इस आसन पर बैठें ॥८॥

१ **भारती भारतीभिः सजोषाः-** (**देशमें**) एककी वाणी अन्योंकी वाणियोंके अनुकूल हो।

२ **मनुष्येभिः दैवैः इडा-** साधारण मनुष्योंकी बुद्धि विद्वानोंकी बुद्धिके अनुसार चले।

३ **सरस्वती सारस्वतेभिः-** एकका ज्ञान अन्योंके ज्ञान के अनुकूल हो।

[५८] (**देव त्वष्टः**) हे त्वष्टा देव ! (**रराणः**) आनन्दित होता हुआ तू (**नः**) हमें (**तुरीपं पोषयित्नु**) बलकारक और पुष्टिकारक (**तत्**) वह अन्न (**विस्यत्व**) प्रदान कर, (**यतः**) ताकि (**वीरः**) वीर (**कर्मण्यः**) कर्म करनेवाला, (**सुदक्षः**) चतुर (**युक्तग्रावा**) यज्ञ करनेवाला और (**देवकामः**) देवत्व प्राप्तकी इच्छा करनेवाला पुत्र (**जायते**) उत्पन्न हो ॥९॥

[५९] हे (**वनस्पते**) वनके स्वामिन् ! तू (**देवान् अव उप सृज**) देवोंको हमारे समीप कर। (**शमिता अग्निः**) शान्ति देनेवाला अग्नि देव (**हविः सूदयाति**) हविको परिपक्क करे, (**यथा**) चूंकि वह अग्नि (**देवानां जनिमानि वेद**) देवोंके कर्मोंको जानता है, इसलिए (**सत्यतर सः इत् उ होता**) अत्यन्त सत्यशील वह अग्नि होता ही (**यजाति**) देवोंकी पूजा करे ॥१०॥

[६०] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**समिधानः**) अच्छी तरह प्रदीप्त होता हुआ (**इन्द्रेण**) इन्द्रके साथ और (**तुरेभिः देवैः**) बलशाली देवोंके साथ (**सरथं**) एक रथपर बैठकर (**अर्वाक् आ याहि**) हमारी तरफ आ। (**सुपुत्रा अदितिः**) उत्तम पुत्रोंवाली अदिति (**नः बर्हिः आस्तां**) हमारे आसनपर बैठे, तथा (**स्वाहा**) उत्तम रीतिसे दी गई हविसे (**अमृताः देवाः मादयन्तां**) अमर देव आनन्दित हों ॥११॥

भावार्थ- देशके सभी लोग आपसमें प्रेमसे बोले, सबको वाणियां परस्पर अनुकूल हों, विरोधी न हों। सबकी बुद्धियां एक सी हों, सब विद्वानोंके बताये मार्गपर चलें और सब मनुष्योंका ज्ञान भी परस्पर अनुकूल हो ॥८॥

मनुष्य सदा बलकारक और पुष्टिकारक अन्नका ही सेवन करे, उस अन्नसे वीर्यवान् होकर वीर, कर्मशील, चतुर, यज्ञशील और देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करे ॥९॥

हे वनस्पते ! देवोंको हमारे समीप कर और शान्तिदायक अग्नि हविको परिपक्क कर। वह अग्नि ही देवोंके जन्म एवं कर्मोंको जानता है और वही सत्यका पालन करनेवाला है, इसलिए वही देवोंकी पूजा करे ॥१०॥

यह अग्नि अच्छी तरह प्रदीप्त होकर इन्द्र तथा अन्य देवोंके साथ हमारी तरफ आवे। अदिति भी हमारे आसनपर बैठे तथा अमर देव भी हमारे द्वारा उत्तम मनसे दी गई आहुतिको लेकर आनन्दित हों ॥११॥

[५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

६१ प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानो ऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धो ऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १ ॥
६२ प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥
६३ अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व१पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥ ३ ॥
६४ मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

अर्थ- [६१] (**अग्निः उषसः चेकितानः**) उषाओंका ज्ञाता (**विप्रः कवीनां पदवीः अग्निः प्रति अबोधि**) मेधावी क्रान्तदर्शी विद्वानोंके मार्ग पर जानेवाला यह अग्नि चैतन्य होता है। (**पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धः वह्निः**) अत्यन्त तेजस्वी और देवताभिलाषी व्यक्तियों द्वारा प्रदीप्त किया हुआ यह अग्नि (**तमसः द्वारा अप आवः**) अन्धकारके द्वारोंको खोल देता है ॥१॥

१ **उषसः चेकितानः कवीनां पदवीः अबोधि**- उषःकालमें उठनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर जानेवाला ही ज्ञानवान् होता है।

[६२] (**नमस्यः अग्निः**) पूज्य अग्नि (**स्तोतॄणां गीर्भिः उक्थैः स्तोमेभिः प्र इत् वावृधे**) स्तुति करनेवालों के वाणी, मन्त्र और गायनोंसे बढता है। वह (**दूतः पूर्वीः ऋतस्य संदृशः चकान्**) देवताओंका दूत अग्नि बहुत आदित्योंके समान प्रकाशित होता हुआ (**उषसः विरोके इत् उ सं अद्यौत्**) प्रातः उषःकालमें विशेष रूपसे प्रकाशित होता है ॥२॥

[६३] मनुष्योंका (**मित्रः ऋतेन साधन् अपां गर्भः अग्निः**) मित्र, यज्ञसे अभिलाषाको पूर्ण करनेवाला, जलके गर्भमें रहनेवाला अग्नि (**मानुषीषु विक्षु अधायि**) मनुष्यकी प्रजाओंमें स्थापित किया जाता है। (**हर्यतः यजतः सानु आ अस्थात्**) स्पृहणीय और पूजनीय अग्नि उन्नत स्थानपर बैठता है, और (**विप्रः मतीनां हव्यः अभूत**) मेधावी है इसलिए स्तुति करनेवालोंके द्वारा पूजाके योग्य है ॥३॥

[६४] (**यत् अग्निः समिद्धः मित्रः भवति**) जिस समय अग्नि पूर्ण रूपसे प्रकाशमान होता है उस समय सखा भावसे युक्त होता है। वही (**मित्रः होता जातवेदाः वरुणः**) मित्र, होता और सबको जाननेवाला वरुण होता है। तथा वही (**मित्रः दमूनाः अध्वर्युः**) मित्र भाववाला, दानमय स्वभाव युक्त, अध्वर्यु एवं (**इषिरः**) प्रेरणा देनेवाला वायु रूप होता है। (**उत् सिन्धूनां पर्वतानां मित्रः**) और वही नदियों और पर्वतोंका भी मित्र होता है। ॥४॥

भावार्थ- उषःकालमें चैतन्य होनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलनेवाला अग्रणी जागृत होता है और जागृत होकर अन्धकार-अज्ञानके द्वारोंके खोल देता है ॥१॥

यह अग्नि स्तोताओंके स्तोत्रोंसे बहुत बढता है। वह बहुतसे आदित्योंके प्रकाशसे युक्त होकर उषःकालमें प्रकाशित होता है ॥२॥

मनुष्योंका हर तरहसे हित करनेवाला यह अग्रणी मानवी प्रजाओंको उन्नत करनेके लिए प्रजाओंकी उन्नतिके लिए उनके बीचमें जाकर कार्य करता है, तब प्रजा उसे ऊंचा स्थान देती है और उसकी आराधना करती है ॥३॥

प्रज्ज्वलित होकर अग्नि अपने कार्योंसे वरुण, होता, जातवेद, अध्वर्यु, वायु और नदी तथा पर्वतोंका मित्र होता है ॥४॥

६५ पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ ५ ॥
६६ ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत् पदं वे--स्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥
६७ आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात् पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥ ७ ॥
६८ सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥ ८ ॥

अर्थ- [६५] (**ऋष्वः अग्निः**) दर्शनीय अग्नि (**वेः, रिपः, प्रियं, अग्रं, पदं पाति**) सर्व व्याप्त पृथ्वीके प्रिय और श्रेष्ठ स्थानकी रक्षा करता है। (**यह्वः सूर्यस्य चरणं पाति**) महान् सूर्यके घूमनेके स्थानकी रक्षा करता है। तथा (**नाभा सप्तशीर्षाणं पाति**) अन्तरिक्षके मध्यमें मरुत्‌गणोंका पालन करता है, एवं (**देवानां उपमादं पाति**) देवताओंके प्रसन्न करनेवाले यज्ञको पुष्ट करता है ॥५॥

[६६] (**वेः ससस्य चर्म घृतवत्**) व्याप्त तथा सुप्त रहने पर भी जिसका रूप चमकता रहता है। ऐसा (**ऋभुः विश्वानि, वयुनानि विद्वान् देवः**) महान् सम्पूर्ण कर्मोंको जाननेवाला दिव्य गुण युक्त अग्नि (**ईडयं चारु नाम चक्रे**) प्रशंसनीय और सुन्दर जलको उत्पन्न करनेवाला है तथा वही (**अग्निः तत् अप्रयुच्छन् रक्षति**) अग्नि उस जलकी सावधानीसे रक्षा करता है ॥६॥

[६७] (**उशानः अग्निः**) इच्छा करता हुआ अग्नि (**घृतवन्तं पृथुप्रगाणं, उशन्तं योनिं आ अस्थात्**) तेजस्वी लोगोंसे प्रशंसित तथा प्रिय स्थान पर बैठता है और (**दीद्यानः शुचिः ऋष्वः पावकः**) दीप्तिशाली, शुद्ध महान् और पवित्र अग्नि अपने (**मातरा पुनः पुनः नव्यसीकः**) माता पिता अर्थात् पृथ्वी और द्युलोकको बारम्बार नवीनता प्रदान करता है ॥७॥

१ **अग्निः घृतवन्तं पृथुप्रगाणं योनिं आ अस्थात्-** तेजस्वी मनुष्य सदा तेजयुक्त और प्रशंसित स्थान पर ही बैठता है।

[६८] (**सद्यः जातः यदि औषधीभिः ववक्षे**) जन्म लेते ही अग्नि जब औषधियों द्वारा धारण किया जाता है तब (**प्रवता आपः इव**) मार्गमें बहते हुये जलके समान (**शुम्भमानाः**) शोभित औषधियां (**घृतेन वर्धन्ति प्रस्वः**) जलके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होती हैं और फलोंको प्रदान करती हैं। (**पित्रोः उपस्थे अग्निः उरुष्यत्**) पृथ्वी और द्युलोकके बीचमें बढता हुआ अग्नि हमारी रक्षा करे ॥८॥

भावार्थ- यह अग्नि पृथ्वीके श्रेष्ठ स्थानकी, महान् सूर्यके स्थानकी, मरुतोंकी और यज्ञोंकी रक्षा करता है ॥५॥

गुप्त रहनेपर भी महान् अग्रणीका तेज चमकता रहता है। यह अग्नि जलोंको उत्पन्न कर उनकी बडी सावधानीसे रक्षा करता है ॥६॥

तेजस्वी अग्नि लोगोंसे प्रशंसित प्रिय स्थान पर बैठता है, और द्युलोक एवं पृथ्वीलोकको बार बार नया नया बनाता है ॥७॥

जन्म लेते ही अग्निको औषधियां धारण करके घृतसे बढाती हैं और स्वयं भी फल उत्पन्न करती हैं। वह अग्नि स्वयं भी बढते हुए हमारी भी रक्षा करे ॥८॥

६९ उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद् वर्ष्मन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा ऽऽ दूतो वक्षद् यजथाय देवान् ॥ ९ ॥
७० उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वोऽ ग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥ १० ॥
७१ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

[६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्]

७२ प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥

अर्थ- [६९] (स्तुतः समिधा यह्वः अग्निः) हमारे द्वारा स्तुत्य और दीप्ति द्वारा महान् अग्नि (पृथिव्याः नाभा दिवः वर्ष्मन् उत् अद्यौत्) पृथ्वीके बीचमें प्रतिष्ठित होकर द्युलोककी ऊंचाई तक प्रकाशित हुआ। वह अग्नि सबका (मित्रः ईड्यः मातरिश्वा) सबका सुहृद, स्तुति योग्य मातरिश्वा है। ऐसे गुणोंवाला वह (दूतः यजथाय देवान् आ वक्षत्) देवताओंका दूत होकर हमारे यज्ञके लिये सब देवोंको सब ओरसे बुलावे ॥९॥

[७०] (यदि मातरिश्वा भृगुभ्यः) जब मातरिश्वाने भृगुओंके निमित्त (गुहा सन्तं हव्यवाहनं समीधे) गुहामें स्थित हव्य वाहक अग्निको प्रज्ज्वलित किया, उस समय वह (रोचनानां उत्तमः भवन्) शोभायमान तेजोंके मध्यमें सबसे उत्कृष्टतम तेजस्वी हुआ। और उस (ऋष्वः अग्निः समिधा नाकं उदस्तम्भीत्) महान् अग्निने अपने महान् तेज द्वारा सूर्यको भी स्तब्ध कर दिया ॥१०॥

[७१] हे अग्ने ! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकाल तक उत्तम रहनेवाली अनेक उपायोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥११॥

१ हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गो-सनिं इळां- हे अग्ने ! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक उत्तम अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे।

२ सा ते सुमतिः अस्मे भूत्- वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो।

[६]

[७२] (कारवः) स्तोताओ (देवयन्तः मनना वच्यमानाः) देवत्वकी इच्छा करते हुए तुम सब स्तोत्रोंसे प्रेरित होकर (देवद्रीचीं प्र नयत) देवोंकी ओर जानेवाली स्रुचाको ले चलो। (दक्षिणावाड्) दक्षिण दिशासे लाई गई (वाजिनी) अन्न और बल प्रदान करनेवाली (प्राची) श्रेष्ठ (हविः भरन्ती) हविसे भरी हुई तथा (घृताची) घृतसे परिपूर्ण यह स्रुचा (अग्नये एति) अग्निकी ओर जाती है ॥१॥

भावार्थ- प्रज्ज्वलित होकर अग्नि अपनी ज्वालायें द्युलोक तक पहुंचाता है। वह ही मित्र स्तुत्य और मातरिश्वा वायु है। ऐसा वह अग्नि हमारे यज्ञमें सब देवोंको बुलाकर लाए ॥९॥

जब गुहारूपमें स्थित इस अग्निको प्रज्ज्वलित किया गया, तब वह सबसे अधिक तेजवाला हुआ और उसने तेजसे सूर्यको भी निस्तेज कर दिया ॥१०॥

हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥११॥

हे स्तोताओ ! देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करते हुए तुम बल प्रदान करनेवाली स्रुचाको घीसे भर कर अग्निको दो ॥१॥

७३ आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥ २ ॥

७४ द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥

७५ महान् त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो ऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥

७६ व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमान—स्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [७३] हे (**अग्ने**) अग्ने! तू (**जायमानः रोदसी आ अपृणाः**) जन्म लेनेके साथ ही द्यावापृथ्वीको सब ओरसे पूर्ण कर देता है और (**प्रयज्यो, महिना, दिवः चित् पृथिव्या प्ररिक्थाः**) पूजा के योग्य अग्ने! अपनी महिमा द्वारा तू द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीलोकसे भी उत्तम हो गया है (**ते सप्तजिह्वाः वन्हयः नु वच्यन्तां**) तेरी सात ज्वालाओंसे युक्त किरणें प्रशंसित हों ॥२॥

[७४] (**यदि मानुषी विशः देवयन्तीः प्रयस्वतीः**) जिस समय मनुष्यकी प्रजायें देवत्व प्राप्तिकी इच्छासे हव्ययुक्त होकर (**त्वा होतारं शुक्रं अर्चिः ईळते**) तुझ होता रूप अग्निके तेजस्वी ज्वालाकी स्तुति करती है उस समय (**द्यौः च पृथिवी यज्ञियासः दमाय निसादयन्ते**) द्युलोक, पृथ्वी और देवता घरकी सुरक्षाके लिये तेरी स्थापना करते हैं ॥३॥

[७५] (**महान् हर्यमाणः द्यावा अन्तः**) श्रेष्ठ, भक्तोंकी उन्नतिकी इच्छा करनेवाला अग्नि आकाशपृथ्वीके बीच, (**माहिने सधस्थे ध्रुवः आ निषत्तः**) महिमावाले अपने स्थानपर अचल होकर विराजमान है। (**आस्क्रे सपत्नी, अजरे अमृक्त सबर्दुधे**) आपसमें जुडी हुई, एक पतिवाली, जरारहित, अहिंसित और अमृतको उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथ्वी (**उरुगायस्य धेनू**) बहुतों द्वारा प्रशंसित अग्निकी गायें हैं ॥४॥

[७६] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**महतः**) सर्वश्रेष्ठ (**ते व्रता महानि**) तेरे कर्म भी महान् हैं (**तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ**) तेरे पराक्रमसे ही द्यावा-पृथ्वी विस्तारको प्राप्त हुई हैं। (**त्वं दूतः अभवः**) तू देवोंका दूत है। हे (**वृषभ**) बलवान् अग्ने! (**त्वं जायमानः चर्षणीनां नेता**) तू उत्पन्न होनेके साथ ही मनुष्योंका नायक हो जाता है ॥५॥

भावार्थ- जन्म लेते ही यह अग्नि द्युलोक और पृथ्वीलोकको घेर लेता है और अपने सामर्थ्यसे वह इन दोनों लोकोंसे श्रेष्ठ है। अतः उसकी किरणें सर्वत्र पूजी जाती हैं ॥२॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्य देवोंने इस अग्निके घरकी सुरक्षाके लिए स्थापित किया, अतः सारी मानवी प्रजाएं इस अग्निकी आराधना करती हैं और देवत्व प्राप्त करती हैं ॥३॥

श्रेष्ठ अग्नि द्यु और पृथ्वीके बीचमें अचल होकर स्थित है। आपसमें एकतासे रहनेवाली, अजर अमर ये द्यु और पृथ्वी अग्निका पालन करती हैं ॥४॥

इस महान् अग्निके कर्म भी महान् हैं, इसीके सामर्थ्यसे द्यावाभूमि विस्तृत हुई और अपने ही सामर्थ्यसे यह अग्नि सब मनुष्योंका नेता बना ॥५॥

७७ ऋतस्य वा केशिना योग्याभि-र्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान् देव विश्वान् त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ६ ॥

७८ दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥

७९ उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥ ८ ॥

८० ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवा-ननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥

अर्थ- [७७] हे (देव) दिव्यगुणयुक्त अग्ने ! (केशिना, योग्याभिः, घृतस्नुवा रोहिता वा) प्रशस्त केशोंवाले, रज्जुओंसे युक्त, तेजसे परिपूर्ण तथा लाल रंगके अपने दोनों घोडोंको (ऋतस्य धुरि धिष्व) यज्ञकी धुरामें जोडा। (अथ विश्वान् देवान् आवह) उसके अनन्तर सम्पूर्ण देवोंको बुला। हे (जातवेदः सु अध्वरा कृणुहि) सर्वज्ञ अग्ने ! तू सबको सुन्दर यज्ञसे युक्त कर ॥६॥

[७८] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् वनेषु अपः उशधक्) जब तू जंगलोंमें जलोंको सुखा देता है उस समय (ते रोकाः, दिवः चित् आ रुचयन्त) तेरा प्रकाश सूर्यसे भी अधिक सब ओर प्रकाशित होता है। तू (विभातीः पूर्वीः उषः अनु भासि) सुन्दर कान्तियुक्त, बहुतसी उषाओंके पीछे प्रकाशित होता है। (देवाः मन्द्रस्य होतुः पनयन्त) विद्वान् आनन्दसे युक्त तथा देवोंको बुलानेवाले तेरी स्तुति करते हैं ॥७॥

[७९] (ये देवाः उरौ अन्तरिक्षे मदन्ति) जो देवगण विस्तृत अन्तरिक्षमें आनन्दसे रहते है, (ये दिवः रोचने सन्ति) जो देवता प्रकाशमान आकाशमें वास करते है और (ये ऊमाः यजत्राः सुहवासः आ येमिरे) जो उत्तम मित्र तथा यजनीय विद्वान् भलीभाँति बुलाये जाते हैं, उन सबोंको हे (अग्ने) अग्ने ! तेरे (रथ्यः अश्वाः) रथके घोडे लाने में समर्थ है ॥८॥

[८०] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (एभिः सरथं वा नानारथं) उन सभी देवताओंके साथ एक रथ अथवा बहुतसे रथों पर बैठ कर (आ याहि) हमारे पास आ। तेरे (अश्वाः विभवः) घोडे समर्थ हैं। (त्रिंशतं त्रीन् च देवान् पत्नीवतः अनुष्वधं) तैंतीस देवोंको उनकी पत्नियों सहित बलदायक सोमपानके लिये (आ वह) यहां बुला ला और (मादयस्व) उन्हें आनन्दित कर ॥९॥

भावार्थ- हे अग्ने ! लम्बे लम्बे बालोंवाले अपने लाल रंगके घोडे इस यज्ञरूपी रथमें जोडकर उनके द्वारा देवोंको यहां बुला ला और सभी मनुष्योंको यज्ञसे युक्त कर ॥६॥

जब यह अग्नि वृक्षोंके अन्दर स्थित जलको सुखाकर उन्हें जलाना शुरु करता है, तब इसकी ज्वालायें बहुत ऊंची जाती है और इसका प्रकाश चारों ओर फैलता है, तब विद्वान इसकी स्तुति करते हैं ॥७॥

विस्तृत अन्तरिक्षमें आनन्दसे रहनेवाले आकाशमें रहनेवाले देव, उत्तम मित्र अन्य पूजनीय विद्वानोंको यह अग्नि बुलाकर लाता है ॥८॥

यह अग्नि सभी देवताओंको अपने साथ बुलाकर लाता है और उन्हें सोम देकर तृप्त करता है ॥९॥

८१ स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥ १० ॥
८२ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

[७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

८३ प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥
८४ दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥ २ ॥

अर्थ- [८१] (उर्वी रोदसी यज्ञं यज्ञं) विशाल आकाश और पृथ्वीके प्रत्येक यज्ञमें (यस्य वृधे अभि गृणीतः, स होता) जिसकी समृद्धिके लिये स्तुतियाँ की जाती हैं, वह देवोंका होता अग्नि है। (सुमेके, ऋतावरी, सत्ये) सुन्दर रूपवाली, जलसम्पन्न, सत्यस्वरूप, द्यावापृथ्वी, (अध्वरा इव ऋतजातस्य, प्राची तस्थतुः) यज्ञके समान, सत्य द्वारा प्रकट उस अग्निके अनुकूल होकर रहती हैं ॥१०॥

[८२] हे अग्ने ! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवाले के लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकाल तक उत्तम रहनेवाली, अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥११॥

१ हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गो-सनिं इळां- हे अग्ने ! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक उत्तम अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे।

२ सा ते सुमतिः अस्मे भूत्- वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो।

[७]

[८३] (शितिपृष्ठस्य धासेः ये प्र आरुः) उज्जवल पीठवाले, सबके धारक अग्निकी जो लपटें ऊपरकी तरफ उठती हैं वे (मातरा, सप्तवाणीः आ विविशुः) आकाश-पृथ्वीरूप माता पिता और सात वाणियोंमें सर्वत्र फैल जाती हैं। (परिक्षिता पितरा सं चरेते) चारों ओर वर्तमान आकाश-पृथ्वी इस अग्निके साथ सर्वत्र संचरण करते हैं। और वे दोनों (प्रयक्षे दीर्घमायुः प्र सर्स्राते) उत्तम रूपसे यज्ञ करनेके लिये अग्निको दीर्घजीवन प्रदान करते हैं ॥१॥

[८४] (वृषणः दिवक्षसः अश्वाः धेनवः) इस बलशाली अग्निके द्युलोकको व्यापनेवाले घोडे सबको तृप्त करते हैं। और वह (मधुमत्, वहन्तीः देवीः आ तस्थौ) मधुरजलको बहानेवाली दिव्य नदियोंमें निवास करता है। हे अग्ने ! (ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं) सत्यके घरमें रहनेवाले और (वर्तनिं) अपनी ज्वालाओंको फैलानेवाले (त्वा एका गौः परिचरति) तेरी एक गौ वाक् सेवा करती है ॥२॥

१ ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं गौः परिचरति- सत्य बोलनेवालेकी वाणी चारों ओर फैलती है।

भावार्थ- यह अग्नि देवोंको बुलानेवाला है, इसलिए प्रत्येक यज्ञमें इसकी स्तुति की जाती है, उत्तम रूपवाली ये द्यावापृथ्वी भी इस अग्निके अनुकूल होकर ही कार्य करती हैं। इसके विरुद्ध कार्य कभी नहीं करतीं ॥१०॥

हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी और उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥११॥

इस तेजस्वी अग्निकी लपटें आकाशमें सर्वत्र फैलती हैं। तब द्युलोक और पृथ्वीलोक इस अग्निकी ज्वालाओंको शक्तिशाली करते हैं ॥१॥

८५ आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान् रयिविद् रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासे—स्ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

८६ महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥

८७ जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवं—मुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥ ५ ॥

अर्थ- [८५] **(रयीणां रयिवित् चिकित्वान् पतिः)** धनों के बीचमें श्रेष्ठ धनोंका स्वामी, ज्ञानवान् पालनकर्ता अग्नि, **(सीं सुयमाः भवन्तीः)** सब तरह से काबूमें रहनेवाली अपनी घोडियोंपर **(आ अरोहत्)** चढ जाता है। **(नीलपृष्ठः पुरुधप्रतीकः)** नीले पृष्ठवाला तथा नाना रूपवाला अग्नि **(अतसस्य धासेः)** सतत गमन करनेके लिये और पालन पोषणके लिए **(ताः प्र अवासयत्)** उन घोडियोंको अपने पास रखता है ॥३॥

१ **सुयमाः भवन्तीः पतिः रयीणां रयिवत्-** उत्तम प्रकारसे अनुशासित तथा गुणवाली स्त्रीका पति ही श्रेष्ठ धनोंका स्वामी होता है।

[८६] **(अर्जयन्तीः वहतः)** बलकारिणी और बहनेवाली नदियाँ, **(महि, त्वाष्ट्रं, अजुर्यं स्तभूयमानं, वहन्ति)** महान्, त्वष्टाके पुत्र, जरारहित, सारे संसारको धारण करनेवाले अग्निको धारण करती है। **(एकां इव सधस्थे अङ्गेभिः दिद्युतानः)** जिस प्रकार युवा पुरुष एक पत्नीके निकट जाता है, उसी प्रकार निकट ही प्रकाशित होनेवाला तथा तेजस्वी अवयवोंवाला अग्नि **(रोदसी आ विवेश)** आकाश-पृथ्वीमें व्याप्त होता है ॥४॥

[८७] **(वृष्णः अरुषस्य शेवं जानन्ति)** कामनाओंके वर्धक और अहिंसक अग्निके सुखको लोग जानते हैं, **(उत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति)** और श्रेष्ठ अग्निके शासनमें आनन्दसे रहते हैं। **(येषां माहिना इळा गीः गण्या)** जिन स्तोताओंकी स्तुतियोग्य वाणी महत्त्वपूर्ण होती है, वे **(दिवः रुचः, सु रुचः, रोचमानाः)** आकाशको प्रकाशित करनेवाले सुशोभित होकर स्वयं भी प्रकाशमान होते हैं ॥५॥

१ **ब्रध्नस्य शासने रणन्ति-** उस महान् अग्निके शासनमें मनुष्य सुखी रहते हैं।

२ **येषां गीः गण्या, सुरुचः रोचमानाः-** जिनकी स्तुति महत्त्वपूर्ण होती है, वे तेजस्वी होकर प्रकाशमान होते हैं।

भावार्थ- बलशाली अग्निकी किरणें सबको तृप्त करती हैं। और सत्य बोलनेकी वाणी अमोघ होती है। वह सब जगह जाती है, उसे कोई रोक नहीं सकता ॥२॥

उत्तम धनोंका स्वामी यह अग्नि उत्तम घोडियों अर्थात् किरणोंपर चलकर सब जगह जाता है और उनका अच्छी तरह पालन पोषण भी करता है ॥३॥

बल प्रदान करनेवाली नदियां इस जरारहित और संसारको धारण करनेवाले अग्निको धारण करती हैं। अग्नि भी तेजस्वी होकर द्यावापृथ्वीमें सर्वत्र फैलता है ॥४॥

इस अग्निके शासनमें रहनेसे बहुत सुख मिलते हैं, इसीलिए सब आनन्दित होते हैं। जो हृदयसे इस अग्निकी स्तुति करते हैं, वह तेजस्वी होकर सर्वत्र प्रकाशित होते हैं ॥५॥

८८ उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तो—रनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥
८९ अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥
९० दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहु—रनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ८ ॥
९१ वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वी—र्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान् महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥ ९ ॥

अर्थ- [८८] मनुष्योंने (**उतो महः महद्भ्यां पितृभ्यां**) महान्‌से भी महान् पितृ-मातृ स्थानीय आकाश-पृथ्वीके (**प्रविदा अनु घोषं**) ज्ञानसे ऊँचे स्वरसे की गई स्तुतिसे प्राप्त होनेवाले (**शूषं**) सुखको (**अनयन्त**) प्राप्त किया। (**उक्षा**) जल सिंचन करनेमें समर्थ अग्नि (**अक्तोः परिधानं स्वं धाम**) रात्रीमें प्रकाशित अपने तेजको (**जरितुः ह अनुववक्ष**) स्तुति करनेवालेके प्रति प्रेरित करता है ॥६॥

१ **शूषं प्रविदा-** सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है।

[८९] (**पञ्चभिः अध्वर्युभिः सप्त विप्राः**) पाँच अध्वर्युके साथ सात होता (**वेः निहितं प्रियं पदं रक्षन्ते**) गमनशील अग्निके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। (**प्राञ्चः अजुर्याः उक्षणः देवाः मदन्ति**) पूर्वकी ओर मुखवाले, परिश्रमसे न हारनेवाले, सोमरसपान करनेवाले स्तोता लोग प्रसन्न होते हैं और (**देवानां व्रता हि अनु गुः**) देवताओंके नियमोंके अनुकूल चलते हैं ॥७॥

१ **देवानां व्रता अनु गुः मदन्ति-** देवताओंके नियमोंके अनुसार चलनेवाले ही आनन्दमें रहते हैं।

[९०] (**दैव्या होतारा प्रथमा निऋञ्जे**) दिव्य होता स्वरूप दो अग्नियोंमें मुख्य रूपसे प्रज्वलित करता हूं। (**सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति**) सप्त होता सोमपानसे प्रसन्न होते हैं। (**व्रतपाः दीध्यानाः ते ऋतं शंसन्तः आहुः**) नियमोंका पालन करनेवाले दीप्तिशाली वे होता लोग स्तुति करते हुए कहते हैं कि (**व्रतं अनु ऋतं इत्**) नियमसे रहनेवाला यह अग्नि ही ऋत है ॥८॥

१ **व्रतपाः दीध्यानाः ऋतं आहुः-** नियममें चलनेवाले तेजस्वी पुरुष ही सत्यभाषण करते हैं।

[९१] हे (**देव, होतः**) देदीप्यमान् और देवोंको बुलानेवाले अग्ने! (**महे, अत्याय, चित्राय वृष्णे**) महान्, सबको अतिक्रमण करनेवाले, नानाविध वर्णोंवाले और बलवान् तुझे (**पूर्वीः, सुयामाः रश्मयः वृषायन्ते**) बहुतसी अतिशय विस्तृत, सर्वत्र व्याप्त ज्वालायें बलवान् बनाती हैं (**मन्द्रतरः चिकित्वान्**) हर्षयुक्त एवं ज्ञानवान् तू (**महः देवान् रोदसी इह आ वक्षि**) पूज्य देवोंको और द्यावापृथ्वीको हमारे पास यहां बुला ला ॥९॥

भावार्थ- इन महान् द्यावापृथ्वीके ज्ञानसे मनुष्योंको सुख प्राप्त होता है। वह अग्नि भी ऐसे मनुष्योंकी ओर अपना तेज प्रेरित करता है।

सभी यज्ञ करनेवाले इस अग्निके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं और ये याजक सोमपानसे तथा नियमोंके अनुशासनमें रहकर आनन्दित होते हैं ॥७॥

अग्नियोंको प्रज्वलित करनेके बाद याजक सोमपान करके प्रसन्न होते हैं। तब वे नियममें रहनेके कारण तेजस्वी होकर सत्यभाषी होते हैं ॥८॥

महान् तथा अनेक रूपोंवाले अग्निको उसकी ज्वालायें बलवान् बनाती हैं। हे अग्ने! तू हमारे पास सब देवोंको बुला ला ॥९॥

९२ पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥ १० ॥

९३ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

[८]

[ऋषिः- ११ गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- यूपः, ६-१० यूपाः, ८ विश्वे देवा वा, ११ व्रश्चनः ।
छन्दः- त्रिष्टुप्; ३, ७ अनुष्टुप्]

९४ अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद् यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १ ॥

अर्थ- [९२] हे (**द्रविणः**) धनसम्पन्न अग्ने! तेरी प्रेरणासे (**पृक्षप्रयजः**) बहुतसे अन्नको प्राप्त करनेवाली, (**सुवाचः**) स्तुति आदि उत्तम वाणियोंसे युक्त (**सुकेतवः**) उत्तम किरणोंवाली (**उषसः**) उषायें (**रेवत् ऊषुः**) हमें धन देती हुई प्रकाशित होती हैं। अतः हे (**अग्ने**) अग्ने! तू भी (**पृथिव्याः महिना**) अपनी विशाल महिमासे (**महे कृतं एनः**) उपासकके द्वारा किए गए पापको (**सं दशस्य**) नष्ट कर दे ॥१०॥

[९३] हे अग्ने! तू (**हवमानाय**) यज्ञ करनेवालेके लिए (**शश्वत्तमं पुरुदंसं**) चिरकाल तक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (**गो-सनिं इळां**) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (**नः सूनुः तनयः विजावा**) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (**अग्ने**) अग्ने! (**सा ते सुमतिः अस्मे भूत**) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥११॥

१ **हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गो-सनिं इळां-** हे अग्ने! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक उत्तम अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे।

२ **सा ते सुमतिः अस्मे भूत्-** वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो।

[८]

[९४] हे (**वनस्पते**) वनस्पते! (**देवयन्तः**) देव बननेकी इच्छा करनेवाले जन (**अध्वरे**) यज्ञमें (**त्वां**) तुझे (**दैव्येन मधुना**) दिव्य मधुसे (**अंजन्ति**) सींचते हैं। तू (**यत् ऊर्ध्वः तिष्ठा**) चाहे ऊपर खडा हो, (**यत् वा**) अथवा (**अस्याः मातुः उपस्थे क्षये**) इस पृथ्वी माताकी गोदमें पडा हुआ हो, (**इह द्रविणा धत्तात्**) इस यज्ञमें धन प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ- हे अग्ने! तेरी ही प्रेरणासे उषायें मनुष्योंको धन देती हैं, अतः हे अग्ने! तू भी अपनी महिमासे भक्तोंके पापोंको क्षीण कर ॥१०॥

हे अग्ने! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥११॥

यज्ञ स्थानमें एक यूप गाडा जाता है, यह यूप लकडीका होता है, इस यूपको दिव्य घृत आदिसे सींचा जाता है। यह यूप यज्ञमें अत्यन्त आवश्यक है ॥१ ॥

९५ समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥

९६ उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥

९७ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥

९८ जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [९५] हे यूप! (**समिद्धस्य पुरस्तात् श्रयमाणः**) प्रदीप्त हुई अग्निके आगे विद्यमान होकर (**अजरं सुवीरं ब्रह्म वन्वानः**) अत्यन्त श्रेष्ठ और वीरता के उत्पादक स्तोत्रको सुनते हुए (**अस्मत् अमतिं आरे बाधमानः**) हमारी दुर्बुद्धिको दूरसे ही नष्ट करते हुए (**महते सौभगाय**) हमारे महान् सौभाग्य के लिए तू (**उत् श्रयस्व**) ऊंचा खडा रह ॥२॥

[९६] हे (**वनस्पते**) वनस्पतिके यूप! तू (**पृथिव्याः अधि**) पृथ्वीके ऊपर (**वर्ष्मन् उत्-श्रयस्व**) उत्तम स्थानमें ऊंचा खडा रह, तू (**सुमिती मीयमानः**) अपने उत्कृष्ट नापनेके साधनसे यज्ञस्थानको नापता हुआ (**यज्ञवाहसे वर्चः धाः**) यज्ञ करनेवालेको तेज दे ॥३॥

[९७] (**युवा सुवासाः परिवीतः**) तरुण, उत्तम वस्त्रोंसे लिपटा हुआ यह (**आगात्**) आ गया है। (**सः**) वह (**जायमानः श्रेयान् भवति**) उत्पन्न होते हुए बहुत उत्तम दिखलाई देता है। (**देवयन्तः धीरासः**) देवोंके समान बननेकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् तथा (**सु आध्यः**) उत्तम अध्ययनशील (**कवयः**) ज्ञानी जन (**मनसा तं उन्नयन्ति**) मनसे उसे उन्नते करते हैं ॥४॥

[९८] (**जातः**) उत्पन्न हुआ यह यूप (**समर्ये विदथे वर्धमानः**) मनुष्योंसे भरे हुए यज्ञमें बढता हुआ (**अन्हां सुदिनत्वे जायते**) दिनोंको उत्तम बनाता है, (**अपसाः धीराः**) यज्ञ कर्म करनेवाले बुद्धिमान् जन (**मनीषा पुनन्ति**) बुद्धिपूर्वक उसे पवित्र करते हैं, (**देवया विप्रः**) देवोंकी पूजा करनेवाला ज्ञानी (**वाचं उत् इयर्ति**) स्तुतियोंका उच्चारण करता है ॥५॥

भावार्थ- हे यूप! प्रदीप्त अग्निके सामने विद्यमान होकर उत्तम और उत्साहदायक स्तुतियोंको सुनते हुए और हमारी दुष्ट बुद्धियोंको नष्ट करते हुए हमारा सौभाग्य बढाओ ॥२॥

हे यूप! तू पृथ्वीके उत्तम स्थानपर ऊंचा खडा रह और यज्ञस्थानको नापता हुआ यजमानको उत्तम अन्न और तेज दे ॥३॥

मजबूत और दृढ रस्सियोंसे बंधा हुआ यूप यज्ञस्थानमें लाया जाता है। इस यूपको तब बुद्धिमान् तथा अध्ययनशील ज्ञानी मनःपूर्वक धरतीमें गाडकर ऊंचा करते हैं ॥४॥

उत्पन्न होने के बाद यह यूप मनुष्योंसे भरे हुए यज्ञस्थानमें लाया जाता है और वहां ज्ञानियोंके द्वारा जलादिसे पवित्र किया जाता है और उसी समय स्तोतागण इस यूपकी स्तुति करते हैं ॥५॥

९९ यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥ ६ ॥

१०० ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ७ ॥

१०१ आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८ ॥

१०२ हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद् देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥ ९ ॥

अर्थ- [९९] हे (**वनस्पते**) वनस्पतिसे बने हुए यूपो ! (**यान् वः**) जिन तुमको (**देवयन्तः नरः**) देवोंके समान बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंने (**निमिम्युः**) नापा, (**वा**) अथवा (**स्वधितिः ततक्ष**) फरसेने तुम्हें बनाया, (**ते देवासः स्वरवः तस्थिवांसः**) वे दिव्यगुणयुक्त, सूर्यके समान तेजस्वी तथा ऊंचे खडे हुए यूप (**अस्मे**) इस यज्ञकर्ताको (**प्रजावत् रत्नं दिधिषन्तु**) प्रजाओंसे युक्त रत्न प्रदान करें ॥६॥

[१००] (**वृष्णासः ये**) फरसेके द्वारा काटे छांटे गए जो यूप (**यतस्रुचः**) ऋत्विजोंके द्वारा (**क्षमि अधि निमितासः**) पृथ्वीमें गाडे गए हैं। (**ते क्षेत्रसाधसः**) वे यज्ञको सिद्ध करनेवाले यूप (**देवत्रा**) इस यज्ञमें (**नः वार्यं व्यन्तु**) हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥७॥

[१०१] (**सुनीथाः**) उत्तम मार्गसे ले जानेवाले (**आदित्याः**) आदित्य (**रुद्राः वसवः**) रुद्र, वसु (**पृथिवी द्यावाक्षामा**) विस्तीर्ण द्युलोक और पृथ्वी तथा (**अन्तरिक्षं**) अन्तिरक्ष आदि (**सजोषसः देवाः**) परस्पर प्रीतिसे रहनेवाले देवगण (**यज्ञं अवन्तु**) यज्ञकी रक्षा करें, और (**अध्वरस्य केतुं**) यज्ञके प्रज्ञापक इस यूपको (**ऊर्ध्वं कृण्वन्तु**) ऊंचा करें ॥८॥

[१०२] (**शुक्राः वसानाः**) तेजोंको धारण करनेके कारण (**स्वरवः**) सूर्यके समान चमकनेवाले ये यूप (**हंसाः इव श्रेणिशः यतानाः**) हंसके समान पंक्तियोंमें गाडे जाकर (**नः आगुः**) हमें दिखाई देते हैं। (**पुरस्तात्**) यज्ञके आगे (**कविभिः उत् नीयमानाः देवाः**) ज्ञानियोंके द्वारा खडे किये जानेपर ये तेजस्वी यूप (**देवानां पाथः यन्ति**) देवोंके मार्ग अन्तरिक्षमें जाते हैं ॥९॥

भावार्थ- हे यूपो ! तुम्हें श्रेष्ठ मनुष्योंने नाप कर फरसेसे काटा और इस यज्ञस्थानमें गाडा है। तभी तुम सूर्यके समान तेजस्वी हुए हो। तुम यज्ञकर्ताको उत्तम सन्तानोंसे युक्त रत्न आदि धन दो ॥६॥

फरसेके द्वारा काटे छांटे गए ये यूप स्तम्भ पृथ्वीमें गाडे गए हैं। वे यज्ञको सिद्ध करनेवाले यूप हमें धन प्रदान करें ॥७॥

आदित्य, रुद्र, वसु, द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्ष आदि सभी देवगण इस यज्ञकी रक्षा करें और यज्ञकी सूचना देनेवाले इस यूप को ऊंचा करें ॥८॥

तेजोंको धारण करनेके कारण सूर्यके समान चमकनेवाले ये यूप जब पंक्तियोंमें गाडे जाते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि मानों हंसकी पंक्तियां आकाशमें उडी जा रही हों, यज्ञके स्थानमें ये यूप इतने ऊंचे गाडे जाते हैं, कि इनकी चोटियां अन्तरिक्षको छूती है ॥ ९॥

१०३ शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥ १० ॥

१०४ वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥ ११ ॥

[९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- बृहती, ९ त्रिष्टुप् ।]

१०५ सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १ ॥

१०६ कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभवः ॥ २ ॥

अर्थ- [१०३] (स्वरवः) सूर्यके समान चमकनेवाले तथा (चषालवन्तः) किनारेपर लोहेकी पट्टीसे सुदृढ किए गए ये यूपस्तंभ (पृथिव्यां) पृथिवीमें गाडे जानेपर (शृंगिणां शृंगाणि इव) पशुओंके सींगके समान (सं ददृश्रे) दिखाई देते हैं। (वा) अथवा (विहवे वाघद्भिः श्रोषमाणाः) यज्ञमें स्तोताओंके द्वारा बोले जानेवाली स्तुतियोंको सुनते हुए ये यूप (पृतनाज्येषु अस्मान् अवन्तु) संग्रामोंमें हमारी रक्षा करें ॥१०॥

[१०४] (अयं तेजमानः स्वधितिः) इस अत्यन्त तीक्ष्ण फरसेने (महते सौभगाय) महान् सौभाग्यके लिए (यं त्वां प्रणिनाय) जिस तुझे बनाया, हे (वनस्पते) वनस्पते ! वह तू (शतवल्शः विरोह) सैकडों शाखाओंवाला होकर उत्पन्न हो और (वयं) हम भी (सहस्रवल्शाः) हजारों शाखाओंसे युक्त होकर (वि रुहेम) उन्नति करें ॥११॥

[९]

[१०५] हे अग्ने ! (अपां नपातं, सुभगं, सुदीदितिं) जलको न गिरानेवाले, शोभन धन युक्त, दीप्तिमान् होनेवाले (सुप्रतूर्तिं, अनेहसं) सुखपूर्वक दुःखोंसे पार करानेवाले, उपद्रव रहित (त्वा देवं ऊतये ववृमहे) तुझ देवको अपनी रक्षाके लिये हम वरण करते हैं, क्योंकि हम तेरे (सखायः मर्तासः) मित्रभूत मनुष्य हैं ॥१॥

[१०६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वना कायमानः) तू जंगलोंकी इच्छा करता हुआ (यत् मातॄः अपः अजगन्) जब अपने मातारूप जलोंके पास गया, तो (तत् ते निवर्तनं) वह तेरा निवृत्त हो जाना (न प्रमृषे) हमसे सहा नहीं गया, (यत् दूरे सन् इह अभवः) इस कारणसे दूर रहकर भी यहाँ हमारे पास ही रहता है ॥२॥

भावार्थ- ये यूपस्तम्भ सूर्यके समान चमकते हैं और इनके दोनों किनारे लोहेके गोल चक्र चढाये हुए होते हैं, जब ये यज्ञस्थानमें ऊंचे खडे किये जाते हैं, तब दूरसे ये पशुओंके सींगके समान दिखाई देते हैं ॥१०॥

हे वनस्पते ! तू तेजधारवाले फरसेके द्वारा बनाया गया है, ऐसा तू अनेक तरहसे समृद्ध होता हुआ हमें भी अनेकों प्रकारसे समृद्ध कर ॥११॥

हम सब दुःखोंसे पार करानेवाले तेजस्वी, अहिंसित अग्निकी अपनी रक्षाके लिए स्तुति करते हैं, वह हमारी मित्रवत् रक्षा करे ॥१॥

यह अग्नि जंगलोंको जलानेकी इच्छा करता हुआ जलोंमें जाकर शान्त हो जाता है। पर फिर वही अग्नि अरणियों द्वारा पुनः प्रकट होता है ॥२॥

१०७ अति तृष्टं ववक्षिथा ऽथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥ ३ ॥

१०८ ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहो ऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४ ॥

१०९ ससृवांसमिव त्मना ऽग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ ॥

११० तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान् यद् यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥ ६ ॥

अर्थ- [१०७] हे अग्ने! तू (**तृष्टं अति ववक्षिथ, अथ एव त्वं सुमना असि**) बहुत उत्साहसे शब्द करता है इसीलिए तू सदा प्रसन्न रहता है। तू (**येषां सख्ये श्रितः असि**) तू जिनके साथ मित्रतासे रहता रहता है उनमेंसे (**अन्ये प्रयन्ति**) कुछ आगे बढ जाते हैं और (**अन्ये परि आसते**) कुछ उपासना करते हैं ॥३॥

१ **तृष्टं ववक्षति सुमना अस्ति-** जो हमेशा उत्साहसे भरा रहता है, वही सदा प्रसन्न रहता है।

२ **येषां सख्ये श्रितः प्रयन्ति अन्ये आसते-**यह अग्नि जिनसे मित्रता करता है वे आगे बढ जाते हैं, जब कि दूसरे नास्तिक बैठे रह जाते हैं।

[१०८] (**अ-द्रुहः निचिरासः**) द्रोह न करनेवाले तथा अमर देवोंने (**स्रिधः शश्वतीः सश्चतः अति**) शत्रुकी महान् सेनाको परास्त करनेवाले तथा (**सिंहं इव अप्सु श्रितं**) शेर के समान जलमें छिपे हुए (**ईयिवांसं ईं**) प्रगति करनेवाले इस अग्निको (**अनु विन्दन्**) ढूंढ कर प्राप्त किया ॥४॥

[१०९] (**ससृवांसं इव**) जिस प्रकार स्वेच्छाचारी पुत्रको पिता बलसे खींच लाता है, (**इत्था त्मना तिरोहितं**) वैसे ही स्वेच्छासे घुसकर छिपे हुये (**एनं अग्निं, मातरिश्वा**) इस अग्निको मातरिश्वा नामक वायु (**परिमथितं परावतः देवेभ्यः आनयत्**) अच्छी प्रकार मथन कर दूर देशसे देवताओंके लिये ले आया ॥५॥

[११०] हे (**मानुष, यविष्ठ्य**) मनुष्योंके हितैषी और सदा तरुण रहनेवाले अग्ने! तू (**यत् तव क्रत्वा विश्वान् यज्ञान् अभिपासि**) क्योंकि अपनी शक्तिसे संपूर्ण यज्ञोंका पालन करता है। (**हव्यवाहन**) इस कारण, हे हव्यको वहन करनेवाले अग्ने! (**मर्ताः तं त्वा देवेभ्यः अगृभ्णत्**) मनुष्योंने उस तुझे देवताओंके निमित्त स्वीकार किया ॥६॥

भावार्थ- हे अग्ने! तू सदा उत्साह युक्त रहता है, इसीलिए सदा प्रसन्न रहता है। जिनपर तू प्रसन्न होता है, उन्हें उन्नत कर देता है और आगे बढाता है और नास्तिकोंकी सहायता नहीं करता ॥३॥

अत्यन्त शूर पर गुहामें स्थित सिंहके समान जलमें छिपे हुए उन्नति करनेवाले इस अग्निको देवोंने ढूंढ निकाला ॥४॥

जिस प्रकार स्वेच्छाचारी पुत्रको पिता उत्तम मार्गपर लाता है, उसी प्रकार स्वयं अपनी इच्छासे अरणियोंमें छिपे हुए अग्निको मातरिश्वाने मथ कर प्रकट किया ॥५॥

क्योंकि यह अग्नि अपने पराक्रमसे सब यज्ञोंका पालन करता है, अतः मनुष्योंने इसे देवोंको प्रसन्न करनेके लिए स्वीकार किया। इस अग्निमें आहुति देनेसे देवता प्रसन्न होते हैं ॥६॥

१११ तव भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥ ७ ॥
११२ आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८ ॥
११३ त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ९ ॥

[१०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- उष्णिक् ।]

११४ त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ १ ॥
११५ त्वां यज्ञेष्वृत्विज—मग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥

अर्थ- [१११] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**तव तत् भद्रं दंसना**) तेरा वह कल्याणकारी कर्म (**पाकाय चित् छदयति**) बालककी तरह अज्ञको भी पूजा करनेके लिए प्रेरित करता है। (**यत् शर्वरे त्वं सं इद्धं**) जब रात्रीमें तू प्रदीप्त होता है उस समय (**पशवः अपि समासते**) सारे पशु भी तेरी उपासना करते हैं ॥७॥

१ **तत् भद्रं पाकाय चित् छदयति-** अग्निका वह उत्तम पराक्रम अज्ञानीको भी पूजा की ओर प्रेरित करता है।

२ **शर्वरे सं इद्धं पशवः अपि समासते-** रात्रीमें अग्निके प्रदीप्त होनेपर पशु भी इस अग्निकी उपासना करते हैं।

[११२] हे मनुष्यो! (**पावकशोचिषं शीरं सुअध्वरं आ जुहोत**) पवित्र तेजवाले, सर्वत्र सोये हुये, यज्ञकी शोभा बढानेवाले अग्निको आहुतियाँ प्रदान करो। तथा (**आशुं, दूतं, अजिरं, प्रत्नं, ईड्यं, देवं, श्रुष्टी सपर्यत**) व्याप्त दूतस्वरूप, शीघ्रगामी, पुरातन, स्तुतियोग्य दीप्तिमान् अग्निका शीघ्र पूजन करो ॥८॥

[११३] (**त्री सहस्राणि, त्रीणि शता, त्रिंशत् च, नव च देवाः**) तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवताओंने (**अग्निं असपर्यन्**) अग्निको पूजा, (**घृतैः औक्षन्**) घृतसे सींचा और (**अस्मै बर्हिः अस्तृणन्**) इसके लिये कुशासन बिछाया। (**आत् इत् होतारं नि असादयन्त**) फिर उन सबोंने अग्निको होता रूपमें वरण कर उस कुशासन पर प्रतिष्ठित किया ॥९॥

[१०]

[११४] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**मनीषिणः मर्तासः**) बुद्धिमान् मनुष्य (**चर्षणीनां, सम्राजं, त्वां देवं**) प्रजाओंके अधिपति तुझ देवको (**अध्वरे सं इन्धते**) यज्ञमें सम्यक् रूपसे प्रदीप्त करते हैं ॥१॥

[११५] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**त्वां होतारं ऋत्विजं यज्ञेषु ईळते**) तुझे होता और ऋत्विजकी लोग स्तुति करते हैं। तू (**ऋतस्य गोपाः स्वे दमे दीदिहि**) यज्ञका रक्षक होकर अपने गृहमें प्रकाशित हो ॥२॥

भावार्थ- अग्नि अज्ञानी बालकको भी उत्तम कर्मकी ओर प्रेरित करता है, यही कारण है कि रात्रीके समय अग्निके जलनेपर पशु भी इस अग्निकी उपासना करते हैं ॥७॥

हे मनुष्यो! पवित्र तेजवाले सर्वत्र व्याप्त, यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले अग्निकी पूजा करो ॥८॥

तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवोंने इस अग्निकी पूजा की और उसे घीसे सींचा, इसके लिए कुशासन बिछाया फिर उसे उस आसनपर होताके रूपमें बिठलाया ॥९॥

बुद्धिमान् मनुष्य मनुष्योंके अधिपति इस देवको यज्ञमें अच्छी तरह प्रदीप्त करते हैं ॥१-२॥

११६ स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥
११७ स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् । अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥ ४ ॥
११८ प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥
११९ अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥
१२० अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥
१२१ स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥
१२२ तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥

अर्थ- [११६] हे **(अग्ने)** अग्ने ! **(यः ते जातवेदसे समिधा ददाशति)** जो तुझ जातवेदके लिये समिधायें प्रदान करता है, **(स घ सुवीर्यं धत्ते)** वह निश्चयसे शोभन सामर्थ्ययुक्त पुत्रको प्राप्त करता है, और **(स पुष्यति)** वह पशु, पुत्र ऐश्वर्यादि द्वारा समृद्ध होता है ॥३॥

[११७] **(अध्वराणां केतुः स अग्निः)** यज्ञोंका प्रज्ञापक वह अग्नि **(सप्त होतृभिः अञ्जानः)** सात होताओं द्वारा घृतसे सिक्त होकर, **(हविष्मते देवेभिः आ गमत्)** यजमानोंके पास देवताओंके साथ आया है ॥४॥

[११८] हे ऋत्विजो ! तुम लोग, **(विपां ज्योतींषि बिभ्रते)** मेधावी व्यक्तियोंके तेजोंको धारण करनेवाले, **(वेधसे होत्रे अग्नये)** संसारके विधाता, देवोंको बुलानेवाले अग्निके लिये **(बृहत् पूर्व्यं वचः प्र भरत न)** महान् और प्राचीन स्तोत्र वाक्योंको कहो ॥५॥

[११९] **(महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः)** महान् अन्न और धनके लिये अग्नि दर्शन करने योग्य है। **(यतः उक्थ्यः जायते)** जिन वाणियोंसे उसकी प्रशंसा होती है **(नः गिरः)** हमारी वही स्तुतिरूप वाणियाँ **(अग्निं वर्धन्तु)** अग्निको वर्धित करें ॥६॥

[१२०] हे **(अग्ने)** अग्ने ! तू **(अध्वरे यजिष्ठः)** यज्ञकर्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ है। **(देवयते देवान् यज)** दिव्य और उत्तम कर्म करनेके लिए विद्वानोंको संगठित कर। तू **(होता मन्द्रः स्रिधः अति विराजसि)** होता, हर्षदाता और शत्रुओंको पराजित कर सुशोभित होता है ॥७॥

[१२१] **(नः पावक)** हमारे पापोंके शोधक हे अग्ने ! **(सः अस्मे द्युमत् सुवीर्यं दीदिहि)** वह हमारे लिये अत्यन्त तेजयुक्त पराक्रम युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। तथा **(स्तोतृभ्यः स्वस्तये अन्तमः भव)** स्तोताओंके मंगल करनेके लिये उनके अत्यन्त पास जा ॥८॥

[१२२] **(हव्यवाहं, अमर्त्यं सहः वृधं तं त्वा)** हविवाहक, मरणरहित, बलसे बढे हुये उस तुझ अग्निको **(विप्राः जागृवांसः विपन्यवः सं इन्धते)** विद्वान लोग, प्रबुद्ध रहनेवाले, मेधासम्पन्न स्तोता जन भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं ॥९॥

भावार्थ- जो इस जातवेद अग्निको प्रतिदिन प्रज्ज्वलित करता है, वह पुत्र प्राप्त कर ऐश्वर्यवान् होता है ॥३॥

यज्ञको चलानेवाला वह अग्नि घृतसे तेजस्वी होकर उपासकोंके पास देवताओंको लेकर आवे ॥४॥

जिस प्रकार सब बुद्धिमान् इस तेजस्वी संसारको बनानेवाले अग्निकी स्तुति करते हैं, उसी प्रकार हम भी इस दर्शनीय अग्निकी स्तुति करें ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि सभीमें श्रेष्ठ है, उत्तम कर्मके लिए सबको संगठित करनेवाला है। तथा सब शत्रुओंको पराजित कर सुशोभित होता है ॥७॥

हे अग्ने ! विद्वान्, सदा जागृत रहनेवाले बुद्धिमान् स्तोता तुझे प्रदीप्त करते हैं अतः तू उन्हें हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर और उनका कल्याण करनेके लिए उनके पास जा ॥८-९॥

[११]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

१२३ अग्निर्होता पुरोहितो ऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥
१२४ स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २ ॥
१२५ अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ३ ॥
१२६ अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥ ४ ॥
१२७ अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥ ५ ॥
१२८ साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ६ ॥

---

[११]

अर्थ- [१२३] (होता, पुरोहितः अध्वरस्य विचर्षणिः) देवोंको बुलानेवाला, सब कार्योंमें आगे रहनेवाला, यज्ञका विशेष द्रष्टा **(सः अग्निः)** वह अग्नि, **(आनुषक् यज्ञं वेद)** क्रमसे यज्ञको जानता है ॥१॥

[१२४] (हव्यवाट् अमर्त्यः उशिक् दूतः चनोहितः) हव्यवाहक, मरणधर्मरहित, सबके द्वारा चाहने योग्य देवताओंका दूत और अन्नोंसे सबका हितकारी **(सः अग्निः)** वह अग्नि **(धिया सं ऋण्वति)** बुद्धिसे समन्वित है, अर्थात् अत्यन्त मेधावी है ॥२॥

[१२५] (यज्ञस्य केतुः पूर्व्यः स अग्निः) यज्ञका प्रज्ञापक, प्राचीन वह अग्नि **(धिया चेतति)** अपनी बुद्धिसे सब कुछ जानता है। **(अस्य अर्थं हि तरणि)** इसके द्वारा दिया हुआ धन दुःखोंसे तारनेवाला है ॥३॥

१ **सस्य अर्थं तरणि-** इसके द्वारा दिया हुआ धन उपासकको दुःखोंसे पार करानेवाला होता है।

[१२६] (सहसः सूनुं, समश्रुतं, जातवेदसं अग्निं) बलके पुत्र, प्राचीनकालसे प्रसिद्ध, संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्निको **(देवाः वह्निं अकृण्वत)** देवताओंने अपना हव्यवाहक बनाया ॥४॥

[१२७] (मानुषीणां विशां पुरएता) मानवी प्रजाओंका अग्रणी नेता, **(तूर्णिः)** शीघ्रतासे कार्य करनेवाला **(रथः सदा नवः अग्निः)** प्रगति करनेवाला तथा सदा नवीन अग्नि किसीसे भी **(अदाभ्यः)** हिंसित नहीं होता ॥५॥

१ **रथः-** प्रगति करनेवाला **'रंहतेर्गतिकर्मण'**।

२ **वशा पुरएता रथः सदा नवः अदाभ्यः-** प्रजाओंका नेता हमेशा प्रगति करनेवाला होनेके कारण उत्साहसे सदा नया ही रहता है, इसीलिए उसे कोई दबा नहीं सकता।

[१२८] (अभियुजः विश्वाः साह्वान्) शत्रुकी समस्त सेनाको अपने बलसे पराजित करनेवाला **(अमृक्तः, देवानां क्रतुः अग्निः)** अहिंसित देवताओंको प्रेरणा देनेवाला अग्नि, **(तुविश्रवस्तमः)** अन्न राशियोंसे युक्त है ॥६॥

भावार्थ- अमर, देवताओंका दूत, सबका हितकारी यह अग्नि उत्तम बुद्धिसे युक्त होता है, अतः संगठनके कार्यको उत्तम रीतिसे करता है ॥१-२॥

प्राचीनकालसे प्रसिद्ध यह अग्नि अपनी बुद्धिसे सब कुछ जानता है, इसलिए इसे देवोंने अपना हृदयवाहक बनाया। इससे प्राप्त किया हुआ धन उपासकको दुःखसे तारनेवाला होता है ॥३-४॥

प्रजाओंका नेता यह अग्नि सदा ऊपरकी ओर ही चलता है इसलिए हमेशा नया ही रहता है और किसीसे दबता नहीं ॥५॥

दानी मनुष्य इस अग्निकी कृपासे पुष्टिदायक अन्न और घर प्राप्त करता है ॥६-७॥

१२९ अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥ ७ ॥
१३० परि विश्वानि सुधिता ऽग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥
१३१ अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥

[१२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री ।]

१३२ इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥
१३३ इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥
१३४ इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥
१३५ तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥

अर्थ- [१२९] (**दाश्वान् मर्त्यः**) दान देनेवाला मनुष्य (**वाहसा प्रयांसि अभि अश्नोति**) हव्यवाहक अग्नि द्वारा समस्त अन्नोंको चारों ओरसे प्राप्त करता है। तथा (**पावकशोचिषः क्षयं**) पवित्र करनेवाली किरणोंसे युक्त अग्नि घरसे भी प्राप्त करता है ॥७॥

[१३०] (**जातवेदसः विप्रासः**) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले, मेधावी हम (**अग्नेः मन्मभिः**) अग्निके स्तोत्रों द्वारा (**विश्वानि, सुधिता, परि अश्याम**) संपूर्ण उत्तम अमृतको चारों ओरसे प्राप्त करें ॥८॥

१ **सुधिता-** अमृत।

[१३१] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**देवासः त्वं एरिरे**) देवताओंने तुझसे ही प्रेरणा प्राप्त की, अतः हम भी तुझसे प्रेरित होकर (**वार्या विश्वानि वाजेषु**) वरण करने योग्य सम्पूर्ण धनोंको युद्धोंमें (**सनिषा महे**) प्राप्त करें ॥९॥

[१२]

[१३२] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्ने! तुम दोनों (**गीर्भिः**) स्तुतियोंसे आहूत होकर (**सुतं वरेण्यं**) निचोडे गए और पीने योग्य इस सोमरसके प्रति (**नभः आगतं**) आकाशसे आओ, और (**इषिता**) प्रेरित होकर (**अस्य धिया पातं**) इसे इच्छानुसार पीओ ॥१॥

[१३३] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्ने! (**जरितुः सचा**) स्तोताकी सहायता करनेवाला (**यज्ञः**) पूज्य तथा (**चेतनः**) उत्साह देनेवाला यह सोम (**जिगाति**) तुम्हारी ओर जा रहा है। (**अया**) हमारी इस प्रार्थनासे प्रेरित होकर तुम दोनों (**इमं सुतं पातं**) इस निचोडे हुए सोमरसको पीओ ॥२॥

[१३४] (**यज्ञस्य जूत्या**) सोमयज्ञसे प्रेरीत होकर मैं (**कविच्छदा इन्द्रं अग्निं वृणे**) ज्ञानीको आनन्द देनेवाले इस इन्द्र और अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूँ, (**ता**) वे दोनों (**इह**) यहां आकर (**सोमस्य तृम्पतां**) सोम पीकर तृप्त हों ॥३॥

[१३५] (**तोशा**) शत्रुओंके विनाशक (**वृत्रहणा**) वृत्रासुरको मारनेवाले (**सजित्वाना**) शत्रुओंको जीतनेवाले पर (**अपराजिता**) स्वयं अपराजित तथा (**वाजसातमा**) अत्यन्त श्रेष्ठ बलवाले इन (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्निको (**हुवे**) मैं बुलाता हूँ ॥४॥

भावार्थ- प्रत्येक पदार्थ को जाननेवाले बुद्धिमान् हम स्तोत्रोंके द्वारा अमरताको प्राप्त करें ॥८॥

देवगण भी इस अग्निसे ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं, अतः हम भी इससे प्रेरित होकर हरतरहका धन युद्धोंमें प्राप्त करें ॥९॥

हे इन्द्र अग्ने! स्तोताओंकी सहायता करनेवाले और उत्तम इस सोमरसको हमने तैयार किया है। यह उत्साह देनेवाला है। तुम दोनों हमारी प्रार्थना सुनकर द्युलोकसे आकर इसे इच्छानुसार पीओ ॥१-२॥

इन्द्र वृत्रका और अग्नि अन्धकारका नाश करनेवाला है, दोनों ही बलशाली, शत्रुओंके विजेता और स्वयं अपराजित हैं। मैं उन्हें बुलाता हूँ वे दोनों आकर सोमपान करें ॥३-४॥

१३६ प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ५ ॥
१३७ इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ६ ॥
१३८ इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या अनु ॥ ७ ॥
१३९ इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ८ ॥
१४० इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद् वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ॥

[१२]

[ऋषिः- ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप् ।]

१४१ प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद् देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १ ॥

अर्थ- [१३६] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्नि ! (**नीथाविदः जरितारः उक्थिनः**) श्रेष्ठ मार्गको जाननेवाले, स्तुति और प्रार्थना करनेवाले (**वां प्र अर्चन्ति**) तुम दोनोंकी पूजा करते हैं, मैं भी (**इषे आ वृणे**) अन्न प्राप्तिके लिए तुम्हारी पूजा करता हूँ ॥५॥

[१३७] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनोंने (**साकं**) साथ मिलकर (**ऐकेन कर्मणा**) एकबारके पराक्रम से शत्रुओंके (**नवतिं पुरः**) नब्बे नगरों और (**दासपत्नीः**) दासकी पत्नियोंको (**अधूनुतां**) नष्ट कर दिया था ॥६॥

[१३८] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्ने ! (**अपसः धीतयः**) उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानीजन (**ऋतस्य पथ्याः अनु**) सत्यके मार्गके अनुकूल (**उप परि प्र यन्ति**) हमेशा चलते हैं ॥७॥

१ **अपसः धीतयः ऋतस्य पथ्याः अनु यन्ति-** कर्म करनेवाले ज्ञानीजन सत्यमार्गके अनुकूल चलते हैं।

[१३९] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्ने ! (**वां**) तुम दोनोंके (**तविषाणि प्रयांसि च**) बल और अन्न (**सधस्थानि**) प्रतिष्ठादायक हैं, (**युवोः**) तुम दोनोंमें (**असूर्यं हितं**) वृष्टि करनेका सामर्थ्य निहित है ॥८॥

[१४०] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्ने ! (**दिवः रोचना**) द्युलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम दोनों (**वाजेषु परि भूषथः**) संग्रामोंमें चारों ओरसे अलंकृत होते हो, (**तत् वीर्यं**) वह तुम्हारा पराक्रम (**वां प्रचेति**) तुम दोनोंको प्रसिद्ध करता है ॥९॥

[१३]

[१४१] हे स्तोताओ ! (**वः अस्मै देवाय अग्नये**) तुम इस दिव्यगुणवाले अग्निकी (**बर्हिष्ठं प्र अर्च**) उत्तम स्तुति करो। जिससे (**सः देवेभिः नः आगमत्**) वह देवताओंके साथ हमारे पास आवे और (**यजिष्ठः बर्हिः आ सदत्**) अत्यन्त श्रेष्ठ वह अग्नि इस यज्ञमें विराजमान होवे ॥१॥

१ **यजिष्ठः बर्हिः आ सदत्-** सबसे पूजनीय ही यज्ञमें सबसे मुख्य स्थान पर बैठता है।

भावार्थ- हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनोंने साथ मिलकर पराक्रमसे शत्रुओंके नब्बे नगर और उन असुरोंकी सहायता करनेवाली सेनाको मार दिया, इसलिए सब मनुष्य तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५-६॥

हमेशा उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानी और बुद्धिमान् जन हमेशा सत्यमार्ग पर चलते हैं, वे कभी असत्यका व्यवहार नहीं करते ॥७॥

हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों द्युलोकको प्रकाशित करनेवाले एवं संग्रामोंको जीतनेवाले हो, तुम्हारा वह बल तुम्हें प्रतिष्ठा प्रदान करता है और तुम्हारा पराक्रम तुम्हे सर्वत्र प्रसिद्ध करता है ॥८-९॥

हे स्तोताओ ! इस दिव्यगुणसे युक्त अग्निकी आराधना करो, ताकि वह इस यज्ञमें हमारे पास आकर बैठे ॥१॥

१४२ ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥
१४३ स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३ ॥
१४४ स नः शर्माणि वीतये ऽग्निर्यच्छतु शंतमा ।
यतो नः प्रुष्णवद् वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥
१४५ दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [१४२] (यस्य रोदसी) जिस अग्निके यज्ञमें आकाश-पृथ्वी है **(ऊतयः दक्षं सचन्ते)** रक्षा करनेवाले देवगण भी जिसकी शक्तिसे समर्थ होते हैं **(तं)** ऐसे उस अग्निकी **(ऋतावा, हविष्मन्तः, ईळते)** सत्य संकल्पवाले तथा हवि देनेवाले स्तुति करते हैं। और **(सनिष्यन्तः तं अवसे)** धनकी इच्छा करनेवाले अपने संरक्षणके लिए उसका ग्रहण करते हैं ॥२॥

१ **ऊतयः दक्षं सचन्ते-** रक्षण करनेवाले देव भी इसी अग्निके सामर्थ्यसे समर्थ होते हैं।

[१४३] (विप्रः सः एषां यन्ता) मेधावी वह अग्नि इन मनुष्योंका नियामक है। **(अथः सः ही यज्ञानां)** और वही निश्चयसे यज्ञोंका भी नियन्ता है। **(दाता सः मघं वनिता)** दाता वह श्रेष्ठ धनोंका देनेवाला है। अतः हे मनुष्यो ! **(वः तं अग्निं दुवस्यत)** तुम सब उस अग्निकी सेवा करो ॥३॥

१ **विप्रः एषां यन्ता-** ज्ञानी ही इन मनुष्योंका शासक हो सकता है।

[१४४] (सः अग्निः नः शंतमा वीतये यच्छतु) वह अग्नि हमारे लिये अतीव सुखकर गृह उत्तम कर्म करनेके लिये प्रदान करे। और **(यत् प्रुष्णवत् दिवि अप्सु)** जो पोषणकारक धन द्युलोक और अन्तरिक्षलोकमें है, वह सब **(वसु)** श्रेष्ठ धन **(क्षितिभ्यः आ)** मनुष्योंको सब ओरसे प्राप्त हो ॥४॥

[१४५] (ऋक्वाणः) स्तोतालोग **(दीदिवांसं, अपूर्व्यं, होतारं, विशां विशपतिं अग्निं)** तेजस्वी, प्रतिक्षण नवीन, देवोंको बुलानेवाले, प्रजाओंके पालक अग्नि को **(अस्य वस्वीभिः धीतिभिः इन्धते)** इसकी प्रशस्त बुद्धियोंसे प्रदिप्त करते हैं ॥५॥

भावार्थ- ये विशाल द्युलोक एवं पृथ्वीलोक भी इसी अग्निके वशमें हैं और सभी देव भी इसी अग्निके सामर्थ्यसे समर्थ हैं। उसी अग्निकी सब सत्यपालक उपासना करते हैं और अपने संरक्षणके लिए उसका सहारा लेते हैं ॥२॥

ज्ञानी अग्नि सब मनुष्यों और यज्ञोंका नियामक है, वही सब श्रेष्ठ धनोंका दाता है, अतः उस श्रेष्ठ अग्निकी सेवा करनी चाहिए ॥३॥

वह अग्नि उत्तम कर्म करनेके लिए हमें उत्तम घर देवे तथा द्यु और अन्तरिक्षलोकमें जो पोषणकारक धन है, उसे सब मनुष्योंके पोषणके लिए देवे ॥४॥

सब स्तोतागण इस तेजस्वी, अपूर्व तथा प्रजाओंके पालक इस अग्निको अपनी उत्तम बुद्धियोंसे प्रदीप्त करते हैं ॥५॥

१४६ उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधो ऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ६ ॥
१४७ नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥

[१४]

[ऋषिः- ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१४८ आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥ १ ॥
१४९ अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥ २ ॥

अर्थ- [१४६] (उत) और भी हे (अग्ने) अग्ने! (ब्रह्मन् नः अविषः) स्तुतिके समय हमारी रक्षा कर। (देवहूतमः उक्थेषु) देवोंको बुलानेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ तू यज्ञमें भी हमारी रक्षा कर। (मरुत् वृधः सहस्रसातमः नः शं शोचः) मरुद्गणोंके द्वारा वर्धित तथा सहस्रों धनोंको देनेवाला तू हमारे सुखकी वृद्धि कर ॥६॥

[१४७] हे अग्ने तू (नः) हमको (तोकवत्, पुष्टिमत्, द्युमत् सुवीर्यं) पुत्रपौत्रादि सहित, पुष्टिकारक, दीप्तिमान्, सामर्थ्यशाली, (वर्षिष्ठं, अनुपक्षितं सहस्रवत् वसु नु रास्व) अत्यधिक श्रेष्ठ, क्षीण न होनेवाला, सहस्र संख्यक धन शीघ्र प्रदान कर ॥७॥

[१४]

[१४८] (होता, मन्द्रः सत्यः कवितमः) देवोंको बुलानेवाला, सुख बढानेवाला, सत्यका पालक अतिशय मेधावी, (यज्वा, वेधाः सः अग्निः विदथानि आ अस्थात्) यज्ञकारी, ज्ञानी वह अग्नि हमारे किये जानेवाले यज्ञोंमें आता है, (विद्युद्रथः, शोचिष्केशः सहसः पुत्रः) प्रकाशमान् रथवाला, ज्वालामय केशोंसे युक्त बलका पुत्र वह अग्नि (पृथिव्यां पाजः अश्रेत्) इस पृथ्वीपर अपना तेज प्रकट करता है ॥१॥

[१४९] हे (ऋतावः) यज्ञयुक्त अग्ने! मैं (ते नम उक्तिं अयामि) तुझसे नमस्कारपूर्वक भाषण करता हूँ। (सहस्वः, चेतते, तुभ्यं जुषस्व) शक्तिशाली अग्ने! ज्ञानवान् तेरे लिए किए गए स्तुतिको तू स्वीकार कर। तू (विद्वान्, विदुषः आवक्षि) विद्वान् है अतः विद्वानोंको सब ओरसे अपने साथ ले आ। हे (यजत्र) यजनीय अग्ने! (ऊतये, बर्हिः मध्ये आनि षत्सि) हमारी रक्षाके लिये बिछे हुये इस कुशासनपर विराजमान् हो ॥२॥

१ नमः उक्तिं अयति- सबसे प्रणामपूर्वक अर्थात् विनम्रतापूर्वक भाषण करना चाहिए।
२ विद्वान् विदुषः आ वक्षि- विद्वान् ही अपने साथ विद्वानोंको ला सकता है।

भावार्थ- हे अग्ने! स्तुतिके समय यज्ञोंमें तू हमारी रक्षा कर, तथा मरुतोंके द्वारा स्वयं भी पुष्ट होकर तू हजार तरह के धन देकर हमारे सुखोंको बढा ॥६॥

हे अग्ने! तू हमें पुष्टिकारक, तेजस्वी, सामर्थ्य देनेवाले, अत्यधिक श्रेष्ठ तथा क्षीण न होनेवाला धन हजारोंकी संख्यामें दे ॥७॥

देवोंको बुलानेवाला सुखकारी, अत्यन्त ज्ञानी वह अग्नि हमारे यज्ञोंमें लाता है। तेजस्वी रथपर चढनेवाला, तेजस्वी तथा बलका पुत्र वह अग्नि इस पृथ्वीपर अपना तेज फैलाता है ॥१॥

हे यज्ञके योग्य अग्ने! मैं विनम्रतापूर्वक तेरी स्तुति करता हूँ। तू विद्वान् है अतः अपने साथ विद्वानोंको हमारे यज्ञमें ला, तथा स्वयं भी इस कुशासन पर बैठ ॥२॥

१५० द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भि रा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥ ३ ॥

१५१ मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वो ऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन् त्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥

१५२ वयं ते अद्य ररिमा हि काम मुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवा नस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ५ ॥

१५३ त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वी र्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नो ऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६ ॥

अर्थ- [१५०] हे **(अग्ने)** अग्ने ! **(वाजयन्ती, उषसा ते द्रवतां)** अन्न देनेवाली उषा और रात्री तुझको लक्ष्य करके जाती हैं। तू **(वातस्य पथ्याभिः अच्छ)** वायुके मार्गसे आ। **(यद् पूर्व्यं हविर्भि, सीं अञ्जन्ति)** क्योंकि पुरातन ऋत्विक् लोग हवि द्वारा तुझे भलिभांति सींचते हैं। **(बन्धुरा इव, दुरोणे आ तस्थतुः)** जुओंकी तरह आपसमें मिली हुई उषा और रात्री हमारे घरमें आ कर रहें ॥३॥

[१५१] हे **(सहस्वः अग्ने)** बलवान् अग्ने ! **(मित्रः वरुणः च विश्वे मरूतः)** मित्र, वरुण और समस्त मरुत्‌गण **(तुभ्यं सुम्नं अर्चन्)** तेरे लिये स्तोत्रका उच्चारण करते हुये पूजा करते हैं, **(यत् सहसः पुत्र सूर्यः)** क्योंकि हे बलके पुत्र अग्ने ! सबका प्रेरक तू **(क्षितीः नॄन् अभि प्रथयन् शोचिषा तिष्ठाः)** मनुष्योंके पथप्रदर्शक अपनी किरणोंको सम्मुख फैलाकर अपने तेजसे स्थित हो ॥४॥

[१५२] हे **(अग्ने)** अग्ने ! **(अद्य उत्तानहस्ताः वयं कामं ते ररिम)** आज ऊँचे हाथोंवाले हम शोभन हव्य तुझको प्रदान करते हैं। **(विप्रः, नमसा उपसद्य यजिष्ठेन मनसा)** मेधावी तू हमारे नमस्कारसे प्रसन्न होकर अपने उत्तम मनसे **(अस्रेधता मन्मना देवान् यक्षि)** प्रभूत स्तोत्रोंके द्वारा देवोंकी पूजा कर ॥५॥

[१५३] हे **(सहसः पुत्र अग्ने)** बलके पुत्र अग्ने ! **(त्वत् पूर्वीः ऊतयः देवस्य वि यन्ति)** तुझसे अत्यधिक विघ्नोंको दूर करनेवाली रक्षण शक्तियाँ, दिव्य मनुष्योंके पास जाती हैं, और **(वाजाः हि वि)** विविध प्रकारके अन्न भी निश्चयसे उन्हें प्राप्त होते हैं। हे अग्ने ! **(त्वं)** तू **(अद्रोघेण वर्चसा सत्यं)** द्रोहसे रहित, पापसे शून्य, भाषणसे प्राप्त होनेवाले अविनाशी **(सहस्रिणं रविं नः देहि)** सहस्र संख्यक धनको हमें दे ॥६॥

१ **त्वत् पूर्वीः ऊतयः देवस्य यन्ति-** इस अग्निसे अनेक तरहकी रक्षण शक्तियां दिव्य मनुष्योंके पास जाती हैं।
२ **अद्रोघेण वचसा रयिः सत्यं-** पापरहित कथनसे प्राप्त होनेवाला धन ही टिकता है।

भावार्थ- अन्नसे युक्तमें उषा और रात्री भी इस अग्निकी सेवा करती हैं। यह अग्नि वायुके द्वारा प्रेरित होता है, इसलिये मानों वह वायु के मार्ग से ही सर्वत्र जाता है। प्राचीन ऋषिमुनिकी पूजा करते आए हैं ॥३॥

यह अग्नि सबका प्रेरक एवं अपने प्रकाशसे सबके मार्गोंको प्रकाशित करता है। वह स्वयं अपने तेजसे स्थित है, अतः सब देवगण उसकी पूजा करते हैं ॥४॥

हे अग्ने ! हम आज हाथ ऊँचा करके उत्तम हवि तुझे देते हैं, वह हवि तू उत्तम मनसे देवोंको पहुंचा और अनेक स्तोत्रोंसे उनकी पूजा कर ॥५॥

इन अग्निकी अनेक तरहकी संरक्षणकी शक्तियां दिव्य मनुष्योंकी रक्षा करती हैं और उन्हें हर तरहसे समृद्ध बनाती हैं। हे अग्ने ! तू हमें ऐसा धन दे, जो पापरहित और सत्यमार्गसे कमाया गया हो ॥६॥

१५४ तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥ ७ ॥

[१५]

[ऋषिः- काक्ष्य उत्कीलः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१५५ वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्या मग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ १ ॥

१५६ त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥ २ ॥

१५७ त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥ ३ ॥

अर्थ- [१५४] हे (दक्ष, कविक्रतो देव) समर्थ, सर्वज्ञ, प्रकाशमान् अग्ने! हम (मर्तासः अध्वरे तुभ्यं यानि इमा अकर्म) मनुष्य लोग यज्ञमें तेरे लिए जो इन हवियोंको देते हैं। हे! (अमृत अग्ने) मरणरहित अग्ने! तू (इह तत् सर्वं स्वद) इस यज्ञमें दिये हुये उन सब हव्योंका आस्वादन कर तथा (त्वं सुरथस्य, विश्वस्य बोधि) तू सुन्दर रथ पर बैठे हुए अर्थात् समृद्ध सभी मनुष्योंकी रक्षा के लिये जागृत हो ॥७॥

[१५]

[१५५] हे अग्ने! (पृथुना पाजसा शोशुचानः) विस्तीर्ण तेजके द्वारा अतीव प्रकाशमान् तू (द्विषः अमीवाः रक्षसः वि बाधस्व) द्वेष करनेवाले शत्रुओं, तथा सामर्थ्ययुक्त राक्षसोंका विनाश कर। (सुशर्मणः बृहतः सुहवस्य अग्नेः) उत्कृष्ट सुख देनेवाले, महान् और आसानीसे बुलाये जाने योग्य अग्निके (प्रणीतौ शर्मणि अहं स्यां) सुखकारक मैं रहनेवाला होऊँ ॥१॥

१ सुशर्मणः प्रणीतौ शर्मणि अहं स्याम्- उत्तम सुखदायक अग्निके संरक्षणमें मैं होऊँ।

[१५६] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वं अस्याः उषसः व्युष्टौ सूरे उदिते) तू इस उषाके प्रकट होनेके पश्चात् और सूर्यके उदय होनेपर (नः गोपाः बोधि) हमारी रक्षाके लिये जाग्रत हो, (तन्वा सुजातः त्वं) स्वयं अपनी ज्वालाओंसे प्रकट होनेवाला तू (मे स्तोमं नित्यं जुषस्व) मेरे स्तोत्रको रोज उसी प्रकार सुन, जिस प्रकार (जन्म तनयं इव) पिता पुत्रकी सुनता है ॥२॥

१ त्वं उषसः सूरे उदिते नः गोपाः- हे अग्ने! तू उषा और सूर्यके उदय होने पर हमारी रक्षा कर।

[१५७] हे (वृषभः अग्ने) बलवान् अग्नि! (नृचक्षाः) मनुष्योंके शुभ और अशुभ कर्मोंको देनेवाला (कृष्णासु अरुषः अनुपूर्वीः वि भाहि) अन्धेरी रातोंमें भी प्रकाशित होनेवाला तू बहुत ज्वालाओंसे चमक। हे (वसो) निवास देनेवाले अग्ने! हमको (नेषि, च अंहः अति पर्षि) दुःखोंसे पार ले जा और पापोंसे हमें पार करा। (च यविष्ठ नः राये उशिजः कृधि) तथा हे तरुण अग्ने! हमको धनसे सम्पन्न कर ॥३॥

भावार्थ- हे समर्थ और सर्वज्ञ अग्ने! हम यज्ञमें जो हवियां देते है, उनका तू सेवन कर और उत्तम उत्तम मनुष्योंकी रक्षा कर ॥७॥

वह अग्नि अपने तेजके कारण सर्वत्र प्रकाशित और सभी रोगों एवं शत्रुओंको दूर करनेवाला है। अतः हम इसके सुखदायक संरक्षणमें रहें ॥१॥

हे अग्ने! तू सबेरे शाम अर्थात् हमेशा हमारी रक्षा कर तथा हमारी प्रार्थनाओंको प्रेमपूर्वक सुन ॥२॥

मनुष्योंके सब कर्मोंपर नजर रखनेवाला यह अग्ने अन्धेरी रात्रीयोंमें भी चमकता है। यह उत्तम अग्नि मनुष्योंको दुःखों और पापोंसे पार कराकर उन्हें धन सम्पन्न बनाता है ॥३॥

१५८ अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायो—र्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥ ४ ॥
१५९ अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाज—मग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥ ५ ॥
१६० प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजा—नग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥ ६ ॥
१६१ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ७ ॥

अर्थ- [१५८] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**अषाळ्हः**) अपराजित तथा (**वृषभः विश्वाः पुरः सौभगा संजिगीवान् दिदीहि**) बलवान् तू शत्रुओंकी सब नगरी और उत्तम धनोंको जीत करके सर्वत्र अपनी ज्वालासे प्रकाशित हो हे (**सुप्रणीते जातवेदः**) अच्छे प्रकारसे ले चलनेवाले सर्वज्ञ अग्ने ! (**बृहतः पायोः प्रथमस्य यज्ञस्य नेता**) महान् और शरण देनेवाले मुख्य यज्ञका नेता है ॥४॥

[१५९] हे (**जरितः**) स्तोता अग्ने ! (**सुमेधाः दीद्यानः**) शोभान ज्ञानसे युक्त और अपने तेजसे दीप्तिमान् तू (**देवान् अच्छ शर्म पुरूणि अछिद्रा**) देवोंको लक्ष्य करके सुखक साधनभूत अनेक उत्तम कर्मोंको कर। हे (**अग्ने त्वं**) अग्ने ! तू (**सस्निः रथः न, नः वाजं वक्षि**) यही ठहर कर रथकी तरह देवोंके निमित्त हमारे हव्यको ले जा। तथा (**रोदसी, सुमेके**) द्यावापृथ्वीको अच्छी प्रकार प्रकाशित कर ॥५॥

[१६०] हे (**वृषभ अग्ने**) बलवान् अग्ने ! (**त्वं नः प्र पीपय**) तू हमें पूर्ण कर। तथा (**वाजान् जिन्व**) अनेक प्रकारके अन्नोंको हमें प्रदान कर। (**सुरुचा रुचानः देव**) शोभन दीप्तिसे तेजस्वी तथा दिव्य गुणोंवाले अग्ने ! तू (**देवेभिः रोदसी सुदोघे**) देवोंके साथ द्यावापृथ्वीको उत्तम फल देनेवाला कर। तथा (**मर्तस्य दुर्मतिः नः मा परिस्थात्**) मनुष्योंकी दुर्बुद्धि कभी भी हमारे निकट न आवे ॥६॥

१ **मर्तस्य दुर्मतिः नः मा परि स्थात्-** मनुष्योंकी दुर्बुद्धि हमारे पास कभी भी न आवे।

[१६१] हे अग्ने ! (**हवमानाय**) यज्ञ करनेवालेके लिए (**शश्वत्तमं पुरुदंसं**) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (**गो-सनिं इळां**) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (**नः सूनुः तनयः विजावा**) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**सा ते सुमतिः अस्मे भूत्**) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥७॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू अपराजित और बलवान् होकर शत्रुओंकी सभी नगरियों और धनोंको जीतकर सर्वत्र प्रकाशित हो तथा हमारे उत्तम यज्ञोंको पूर्ण कर ॥४॥

हे स्तोता अग्ने ! तू उत्तम ज्ञानसे युक्त होकर उत्तम कार्यको कर, एवं हमारी हवियोंको देवोंतक पहुंचा और द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपने तेजसे प्रकाशित कर ॥५॥

हे अग्ने ! हमें सब ओर से पूर्ण तथा समृद्ध कर, तू सब देवों और द्युलोक तथा पृथ्वीको उत्तम फल देनेवाला बना। इससे युक्त होकर हम कभी भी बुरी बुद्धिवाले न हों ॥६॥

हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें उच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥७॥

[१६]

[ऋषिः- कात्य उत्कीलः । देवता- अग्निः । छन्दः- प्रगाथः (= १, ३, ५ बृहती; २, ४, ६ सतोबृहती ।]

१६२ अयमग्निः सुवीर्यस्ये—शे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ १ ॥

१६३ इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन् रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥ २ ॥

१६४ स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतो ऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥

१६५ चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहि—श्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥ ४ ॥

---

[४१]

अर्थ- [१६२] (अयं अग्निः) यह अग्नि **(सुवीर्यस्य महः सौभगस्य ईशे)** उत्तम सामर्थ्य और महान् सौभाग्यका स्वामी है। **(गोमतः सु अपत्यस्य रायः ईशे)** गो आदि पशुओंसे युक्त तथा उत्तम पुत्रसे युक्त धनका स्वामी है और **(वृत्रहथानां ईशे)** वृत्रका वध करनेवालोंका ईश्वर है ॥१॥

[१६३] (ये पृतनासु) जो संग्रामोमें **(दूढ्यः)** अपराजित **(शत्रुं विश्वाहा आदभुः)** शत्रुओंके सदा ही संहारक है, ऐसे हे **(मरुतः)** मरुद्गण ! **(नरः वृधं इमं सश्चत)** तुम मनुष्योंके नायकरूपसे सौभाग्यके बढानेवाले इस अग्निको प्रसन्न करो **(यस्मिन् शेवृधासः रायः अभि सन्ति)** जिस अग्निमें सुखके बढानेवाले धन चारों ओरसे विद्यमान है ॥२॥

[१६४] हे **(तुविद्युम्न, मीढ्वः अग्ने)** बहुधनशाली और उदार अग्ने ! **(सः त्वं नः)** वह प्रसिद्ध तू हमको **(रायः वर्षिष्ठस्य प्रजावतः)** धनोंसे, प्रभूत सन्तानोंसे एवं **(अनमीवस्य शुष्मिणः सुवीर्यस्य शिशीहि)** आरोग्यतादायक, शक्ति और सामर्थ्यसे युक्त अन्नसे समृद्ध बना ॥३॥

[१६५] (यः चक्रिः, विश्वा भुवना अभि) जो अग्नि संसारका कर्ता है और सम्पूर्ण विश्वमें प्रविष्ट हो रहा है। **(चक्रिः, सासहिः दुवः देवेषु आ)** वह सबका रचयिता हव्यको ढोनेवाला होकर हमारे दिये हुये अन्नको देवोंके पास पहुंचाता है तथा **(देवेषु आ यतते)** दिव्य मनुष्योंको प्रेरणा देता है। वह **(उत, नृणां, शंसे, सुवीर्ये आ)** नेताओंके यज्ञमें तथा शोभन युद्धमें जाता है ॥४॥

भावार्थ- यह अग्नि उत्तम सामर्थ्य, महान् सौभाग्य तथा गौ आदि उत्तम पशुओं तथा वृत्रका वध करनेवाले वीरोंका स्वामी है ॥१॥

इस अग्निमें सुखकारक धन चारों ओरसे विद्यमान है, अतः यह मनुष्योंके सुखको सदा बढता रहता है इस अग्निकी संग्राममें शत्रुओंको हरानेवाले मरुद्गण भी उपासना करते है ॥२॥

हे अतिशय धनवान् और उदार अग्ने ! तू हमें उत्तम धन, उत्तम सन्तान, आरोग्यदायक अन्न एवं सामर्थ्यसे समृद्ध बना ॥३॥

वह अग्नि सारे संसारको रचकर उनमें व्याप्त हो जाता है। वही देवोंको हव्य पहुंचाता है और यज्ञोंमें और युद्धोंमें प्रेरणा देता है ॥४॥

१६६ मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदे ऽप द्वेषांस्या कृधि ॥ ५ ॥

१६७ शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतो ऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥ ६ ॥

[१७]

[ऋषिः- कतो वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१६८ समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥ १ ॥

१६९ यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान् मनुष्वद् यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २ ॥

अर्थ- [१६६] हे (**सहसस्पुत्र अग्ने**) बलके पुत्र अग्ने! (**नः अमतये मा रीरधः**) हमें दरिद्रताको मत सौंप। (**अवीरतायै मा**) पुत्रोंसे रहित न कर। (**अगोतायै, निदे मा**) गवादि पशुओंसे शून्य और निन्दासे युक्त मत होने तथा हमसे (**द्वेषांसि अप आ कृधि**) द्वेषकी भावनाको दूर कर ॥५॥

[१६७] हे (**सुभग अग्ने**) शोभन ऐश्वर्यसम्पन्न अग्ने! तू (**अध्वरे बृहतः प्रजावतः वाजस्य शग्धि**) यज्ञमें सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्योंका स्वामी हो। हे (**तुविद्युम्न**) महान् धनोंसे युक्त अग्ने! तू हमें (**मयोभुना, यशस्वता भूयसा, रायः सं सृज**) सुखकर यशोवर्धक प्रभूत धनोंको प्रदान कर ॥६॥

[१७]

[१६८] (**धर्म अग्निः शोचिष्केषः विश्ववारः**) धर्मको धारण करनेवाले अग्नि, ज्वालारूप केशसे संयुक्त, सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य, (**समिध्यमानः घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञः**) सम्यक् प्रज्वाल्यमान, घृतसे तेजस्वी, पवित्र करनेवाला और सत्कर्मोंका कर्ता है। वह अग्नि (**प्रथमा अनु समिध्यमानः**) यज्ञके प्रारम्भमें क्रमशः प्रज्जवलित होकर (**देवान् यजथाय अक्तुभिः सं अज्यते**) देवोंके यज्ञके लिये घृतादियोंके द्वारा अच्छे प्रकारसे सिद्ध होता है ॥१॥

[१६९] हे (**अग्ने**) अग्ने! तूने (**यथा पृथिव्याः होत्रं अयजः**) जिस प्रकार पृथ्वीको हव्य प्रदान किया था। तथा हे (**जातवेदः**) सर्वज्ञ, अग्ने! (**चिकित्वान्**) विद्वान् तूने (**यथा दिवः**) जिस प्रकार आकाशको हव्य प्रदान किया था, (**एव**) उसी प्रकार (**अनेन हविषा देवान् यक्षि**) हमारे इस हव्यके द्वारा देवताओंका यजन कर। तथा हमारे इस यज्ञको (**मनुष्वत् प्रतिर**) मनुके यज्ञके समान ही सम्पन्न कर ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने! तू हमें दरिद्री, पुत्रोंसे रहित, पशुओंसे शून्य, निन्द्य मत बना तथा हमेशा हमसे द्वेषकी भावनाको दूर कर ॥५॥

सौभाग्यशाली अग्ने! तू हमें यज्ञोंमें सुसन्तानयुक्त ऐश्वर्यका स्वामी बना तथा अनेक तरहके सुखकारक यशोवर्धक धनोंको प्रदान कर ॥६॥

धारक अग्नि ज्वालाओंसे युक्त होकर घृतसे तेजस्वी बनकर मनुष्योंको शुद्ध और पवित्र होता है। वह अग्नि प्रज्जवलित होकर घीसे अच्छी तरह सिंचित होता है ॥१॥

हे अग्ने! जिस प्रकार तूने पृथिवीकी और द्युलोककी पूजा की थी, उस प्रकार तू देवोंकी भी पूजा कर और उनकी सहायतासे हमारे यज्ञको पूर्ण कर ॥२॥

१७० त्रीण्यायूंषि तव जातवेद---स्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वा---नथा भव यजमानाय शं योः ॥ ३ ॥
१७१ अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ४ ॥
१७२ यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः ।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वो ऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥ ५ ॥

[१८]

[ऋषिः- कतो वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१७३ भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १ ॥

अर्थ- [१७०] हे (**जातवेदः अग्ने**) सर्वज्ञ अग्ने ! (**तव त्रीणि आयूंषि**) तेरे तीन प्रकारके अन्न हैं (**तिस्रः, उषसः ते आजानीः**) तीन उषाएं तेरी माताएं हैं। तू (**ताभिः अवः देवानां यक्षि**) उनकी सहायतासे हव्य देवताओंको प्रदान कर। (**अथ विद्वान् यजमानाय शं योः भव**) उसके अनन्तर सब कुछ जाननेवाला तू यजमानके लिये सुख और कल्याणका देनेवाला हो ॥३॥

१ **त्रीणि आयूंषि-** घृत, औषधि, सोमरूप तीन तरहके अन्न।

[१७१] (**सुदीतिं, सुदृशं ईड्यं**) शोभन दीप्तिसे युक्त, देखनेयोग्य स्तुति योग्य (**अरतिं हव्यवाहं त्वां अग्निं देवाः दूतं अकृण्वन्**) देवताओंने गतिमान् ज्वालाओंवाले और हव्यवाहक तुझ अग्निको दौत्य कर्ममें नियुक्त किया। तथा (**जातवेदः**) पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! (**अमृतस्य नाभिं त्वां**) अमृतकी नाभि तेरी हम लोग (**गृणन्तः**) स्तुति करते हैं ॥४॥

[१७२] हे (**चिकित्वः अग्ने**) सर्वज्ञ अग्ने ! (**त्वत् पूर्वः यः यजीयान् होता**) तेरे पहले जो यज्ञकर्ता होता (**द्विता स्वधया सत्ता शंभुः**) मध्यम और उत्तम नामक दो स्थानोंपर, सोमके साथ बैठकर सुखी हुये थे, उनके (**अनु धर्म प्र यज**) धर्मको लक्ष्य करके विशेषरूपसे यज्ञ कर। (**अथ नः अध्वरं देववीतौ धाः**) उसके अनन्तर हमारे इस यज्ञको देवोंकी प्रसन्नताके लिये धारण कर ॥५॥

[१८]

[१७३] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**सखा इव सख्ये, पितरा इव**) जैसे मित्र मित्रके प्रति और माता-पिता अपने पुत्रके प्रति हितैषी होते हैं, उसी प्रकार तू (**नः उप इतौ सुमनाः साधुः भव**) हमारे सम्मुख आनेपर प्रसन्न होकर हितैषी बन। इस संसारमें (**जनानां प्रति क्षितयः हि पुरुद्रुहः**) मनुष्योंके प्रति मनुष्य अत्यधिक द्रोह करनेवाले हैं, इसलिये तू हमारे (**प्रतीची, अरातीः, प्रति दहतात्**) विरुद्धाचारी शत्रुओंको उनके प्रतिकूल होकर भस्म कर दे ॥१॥

१ **सखा इव पितरा इव साधुः भव-** मित्र अथवा पिता-माताके समान हितैषी हो।
२ **जनानां प्रति क्षितयः पुरुद्रुहः-** मनुष्यसे दूसरे मनुष्य बहुत द्वेष करते हैं अतः **प्रति दहतात्** ऐसे विद्वेषी मनुष्योंको जला देना चाहिए।

भावार्थ- हे अग्ने ! तीन उषाओं द्वारा जन्मा हुआ तू घी, औषधि और सोम इन तीन अन्नसे प्रदीप्त होकर देवोंको हव्य पहुंचा और यजमानका कल्याण करनेवाला हो ॥३॥

सुन्दर, देखने योग्य, स्तुति योग्य इस अग्निको देवताओंने अपना दूत बनाया। यह अग्नि अमृतका केन्द्र है, इसलिए सब उसकी स्तुति करते हैं ॥४॥

१७४ तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥ २ ॥

१७५ इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥

१७६ उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद् वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥

१७७ कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत् सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥

अर्थ- [१७४] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**अन्तरान् अमित्रान् सु तप**) हमारे समीपवर्ती शत्रुओंको भलीभाँति संताप दे। जो तुझको (**अररुषः, परस्य शंसं तप**) हव्य प्रदान नहीं करता है ऐसे उन शत्रुओंकी अभिलाषाको व्यर्थ कर। हे (**वसो चिकितानः**) सबके निवास दाता अग्ने ! सर्वज्ञ तू (**अचित्तान् तप**) चंचल चित्तवाले मनुष्योंको संतप्त कर (**ते अजराः अयासः वि तिष्ठन्तां**) तेरी जरारहित किरणें सर्वत्र फैलें ॥२॥

[१७५] हे (**अग्ने**) अग्ने ! मैं (**इच्छमानः तरसे बलाय इध्मेन घृतेन**) धनाभिलाषी होकर तेरे वेग और सामर्थ्यके लिये समिधा और घृतके साथ (**हव्यं जुहोमि**) हव्यको प्रदान करता हूँ। (**ब्रह्मणा वन्दमानः, यावत् ईशे**) स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हुआ बहुतसे धनोंका मैं स्वामी होऊं। तू तेरी (**इमां धियं शतसेयाय देवीं**) इस बुद्धिको अपरिमित धनदानके लिये प्रकाशमान बना ॥३॥

[१७६] हे (**सहसः पुत्र अग्ने**) बलके पुत्र अग्ने ! तू अपनी (**शोचिषा उत**) दीप्तिसे दीप्तमान् हो, तथा (**स्तुतः शशमानेषु विश्वामित्रेषु**) स्तुत होकरके स्तुति करनेवाले विश्वामित्रके गोत्रमें उत्पन्न उनके वंशधरोंको (**रेवत् बृहत वयः धेहि**) धनसे युक्त करे और प्रभूत अन्न दे। तथा उनको (**शं योः**) आरोग्य और निर्भयता प्रदान कर। हे (**कृत्वः**) कर्मकारक अग्ने ! हम लोग (**ते तन्वं भूरि मर्मृज्म**) तेरे शरीरको शुद्ध करते हैं ॥४॥

[१७७] (**सुसनितः अग्ने**) उदारदाता अग्ने ! (**धनानां रत्नं कृधि**) धनोंके बीचमें श्रेष्ठ धन हमें प्रदान कर। (**यत् समिद्धः स घेत् भवसि**) जब तू अच्छी प्रकार दीप्त होता है उसी समय वह तू प्रदान करता है। तू (**सुभगस्य स्तोतुः दुरोणे सृप्रा वपूंषि करस्ना रेवत् दधिषे**) भाग्यवान् स्तोताके घर पर फैले हुए रूपवान् दोनों हाथोंको धन देने के लिये हमारी ओर बढा ॥५॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तुझसे पूर्व जो यज्ञ करनेवाले जिस धर्मपर चलकर सुखी हुए थे, उसी धर्म पर हमें प्रेरित कर, ताकि उस हमारे यज्ञसे देव प्रसन्न हों ॥५॥

हे अग्ने ! तू मित्र अथवा पिताके समान हमारा हितकारी हो तथा जो हमसे द्वेष करनेवाले हों उनको तू जला दे ॥१॥

हे अग्ने ! तू हमारे पासमें रहनेवाले नास्तिक लोगोंकी इच्छाओंको नष्ट करके उन्हें भी नष्ट कर दे, फिर अपनी तेजस्वी ज्वालाओंको सर्वत्र फैला ॥२॥

हे अग्ने ! धनकी इच्छासे तुझे सामर्थ्यवान् बनानेके लिएं मैं हवि देता हूँ। इस स्तुतिसे मैं बहुत धन प्राप्त करूं इसलिए इस स्तुतिको तू प्रकाशित कर ॥३॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! तू तेजस्वी होकर विश्वामित्र गोत्रमें उत्पन्न हुए हमको बहुत अन्न और आरोग्य दे। हम भी तेरे शरीरको शुद्ध करें ॥४॥

हे अग्ने ! धनोंमें उत्तम धन तू हमें दे तथा अपने सुन्दर हाथ हमें धन देने के लिए बढा ॥५॥

[१९]

[ऋषिः- गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१७८ अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् राये वाजाय वनते मघानि ॥ १ ॥
१७९ प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥ २ ॥
१८० स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥
१८१ भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीका ऽग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥ ४ ॥

[१९]

अर्थ- [१७८] (गृत्सं, कविं, विश्वविदं, अमूरं होतारं अग्निं) देवोंके स्तोता, मेधावी, सर्वज्ञ, प्रज्ञावान् और होम निष्पादक अग्निको मैं (मियेधे प्र वृणे) इस यज्ञमें विशेष रूपसे वरण करता हूं। (सः यजीयान् नः देवताता यक्षत्) वह पूजनीय अग्नि हमारे लिये देवताओंका यजन करे। तथा (राये वाजाय मघानि वनते) और अन्न देने के लिये हमारे हव्यको ग्रहण करे ॥१॥

[१७९] हे (अग्ने) अग्ने ! मैं (हविष्मती, सुद्युम्नां रातिनीं, घृताचीं) हव्ययुक्त, तेजस्वी, हव्यदाता और घृतसे भरे हुए चमसेको (ते अच्छ इयर्मि) तेरी तरफ प्रेरित करता हूँ। (देवतातिं उराणः) देवताओंका सम्मान करनेवाला वह अग्नि (रातिभिः वसुभिः प्रदक्षिणित् सं अश्रेत्) देने योग्य धनोंसे युक्त होकर कुशलतासे यज्ञमें सम्मिलित हो ॥२॥

[१८०] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा ऊतः, स तेजीयसा, मनसा) तुझसे रक्षित जो है, वह अत्यन्त तेजस्वी अन्तःकरणसे युक्त होता है। (उत सु अपत्यस्य शिक्ष) और तू उसे उत्तम अपत्यवाला धन प्रदान कर। हे अग्ने ! (रायः शिक्षोः नृतमस्य ते प्रभूतौ) धन देनेवाले और उत्तम नेता तेरे उत्तम और अत्यधिक वैभवमें हम रहें तथा (सुष्टुतयः वस्वः भूयां) तेरी स्तुति कर हम धनाधिपति होवें ॥३॥

१ ऊतः तेजीयसा मनसा- इस अग्निसे रक्षित हुआ मनुष्य तेजोयुक्त अन्तःकरणवाला होता है।

२ नृतमस्य प्रभूतौ- हम उत्तम नेताके संरक्षणमें रहें।

[१८१] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवस्य यज्यवः जनासः त्वे भूरीणि अनीका हि दधिरे) देवोंकी पूजा करनेवाले जनोंने तुझमें बहुतसी ज्वालायें उत्पन्न की हैं। (सः यविष्ठः यत् अद्य) वह अत्यन्त युवा तू चूँकि आज इस वर्तमान यज्ञमें (दिव्य शर्धः यजासि) स्वर्गीय तेजकी पूजा करता है इसलिए (देवतातिं आ वह) पूजाके योग्य देवताओंको इस यज्ञमें बुला ॥४॥

भावार्थ- मेधावी, सर्वज्ञ तथा ज्ञानी उस अग्निको मैं वरण करता हूँ। वह हमारे लिये देवोंको प्रसन्न करे तथा धन और अन्न देने के लिए हमारी हवि को ग्रहण करे ॥१॥

मैं प्रतिदिन घी और हविसे भरे हुए चमसको अग्निकी ओर प्रेरित करता हूँ अर्थात् मैं प्रतिदिन यज्ञ करता हूँ। अतः वह अग्नि भी सब धनोंसे युक्त होकर मेरे यज्ञमें प्रसन्नतासे आवे ॥२॥

इस अग्निके संरक्षणमें रहनेवाला मनुष्य उत्तम मनसे युक्त होता है, अतः हम भी उसके संरक्षणमें रहें और उसकी स्तुति करते हुए वैभवके स्वामी हों ॥३॥

यह अग्नि सदा स्वर्गीय तेजकी पूजा करता है और यज्ञमें देवोंको बुलाकर लाता है, इसलिए उपासक भी इसमें बहुत सी ज्वालायें उत्पन्न करते हैं ॥४॥

१८२ यत् त्वा होतारमनजन् मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥ ५ ॥

[२०]

[ऋषिः- गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः १, ५ विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१८३ अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥ १ ॥

१८४ अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ २ ॥

१८५ अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥ ३ ॥

अर्थ- [१८२] हे (अग्ने) अग्ने! (यत् यजथाय निषादयन्तः देवाः) चूंकि यज्ञके लिये बैठे हुये दीप्तिशाली ऋत्विक् गण (मियेधे होतारं त्वा अनजन्) यज्ञमें होम निष्पादक तुझको सिक्त करते हैं, इसलिये (त्वं इह नः अविता बोधि) तू इस यज्ञमें हमारे संरक्षणके लिये जाग्रत हो। तथा (नः तनूषु श्रवांसि अधि धेहि) हमारे पुत्रोंको अन्न अधिक मात्रामें प्रदान कर ॥५॥

[२०]

[१८३] (वह्निः) जीवन वाहक देव। (व्युष्टिषु) दिनके प्रारंभमें (अग्निं उषसं अश्विना दधिक्रां) अग्नि, उषा, अश्विनौ और दधिक्रा देवताओंको (उक्थैः हवते) स्तोत्रोंसे बुलाता है। (नः अध्वरं वावशानाः) हमारे यज्ञकी कामना करनेवाले (सुज्योतिषः) उत्तम तेजसे सम्पन्न तथा (सजोषसः देवाः) साथ साथ प्रेमसे रहनेवाले देव (शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥१॥

[१८४] हे (अग्ने) अग्ने! (ते त्री वाजिना) तेरे तीन प्रकारके अन्न हैं और (त्री षधस्था) तीन वास स्थान है। हे (ऋतजात) यज्ञसे उत्पन्न अग्ने! (ते पूर्वीः तिस्रः जिह्वाः) तेरी सनातन तीन जिह्वायें है। (ते देववाताः तिस्रः उ तन्वः) तेरे देवों द्वारा अभिलषित तीन प्रकार के शरीर हैं। तू (अप्रयुच्छन् ताभिः नः गिरः पाहि) सावधान होकर अपने उन शरीरोंसे हमारे स्तोत्रोंका रक्षक बन ॥२॥

[१८५] हे (देव जातवेदः स्वधावः अग्ने) द्युतिमान् और सर्वज्ञ-अन्नवान् अग्ने ! (तव अमृतस्य भूरीणि नाम) तुझ मरणरहितकी अनेक प्रकारकी विभूतियां हैं (विश्वमिन्व, पृष्ठबन्धो मायिनां पूर्वीः याः मायाः च त्वे संदधुः) संसारके तृप्तिकर्ता तथा स्तोताओंके बन्धु हे अग्ने ! मायावी असुरोंकी प्राचीन जिन मायाओंका तुझमें प्रयोग किया, उन्हें तू जानता है ॥३॥

१ अमृतस्य भूरीणि नाम- इस अमर अग्निकी अनेक विभूतियां हैं।

भावार्थ- हे अग्ने ! तेजस्वी ऋत्विक तुझे घीसे सींचते हैं, इसलिए तू हमारी रक्षा कर और हमारी सन्तानोंको उत्तम और बहुत सारा अन्न दे ॥५॥

जीवनको चलानेवाले यज्ञमें मनुष्य अग्नि, उषा आदि देवोंको प्रेमपूर्वक बुलाता है। यज्ञमें आनेकी इच्छा करनेवाले, उत्तम तेजस्वी तथा एक साथ मिलकर रहनेवाले देव उसकी प्रार्थनाको सुनें ॥१॥

इस अग्निके घी, औषधि और सोम ये तीन तरहके अन्न हैं, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु ये तीन स्थान हैं, तीन जिह्वायें हैं तीन शरीर है। उन शरीरोंसे अग्नि हमारे स्तोत्रोंकी रक्षा करे ॥२॥

हे तेजस्वी और सर्वज्ञ अग्ने ! तेरी विभूतियां अनेक हैं अतः तुझसे जो माया या छलकपट करता है, वह सब तू जानता है ॥३॥

१८६ अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद् विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥ ४ ॥

१८७ दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून् रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥ ५ ॥

[२१]

[ऋषिः- गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः । छन्दः- १ त्रिष्टुप् । २-३ अनुष्टुप् , ४ विराड्रूपा, ५ सतोबृहती ।]

१८८ इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ १ ॥

१८९ घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २ ॥

अर्थ- [१८६] (ऋतुपा भगः इव अग्निः) ऋतुओंकी पालना करनेवाले ऐश्वर्यशाली सूर्यकी तरह यह अग्नि (क्षितीनां दैवीनां नेता) मनुष्यों और देवोंका नेता है। वह (ऋतावा, वृत्रहा सनयः विश्ववेदाः देव) सत्यकर्म करनेवाला, वृत्रहन्ता, सनातन, सर्वज्ञ और द्युतिमान् है। (सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अतिपर्षत्) वह अग्नि स्तोताको सम्पूर्ण पापोंसे पार करे ॥४॥

१ भगः इव अग्निः क्षितीनां दैवीनां नेता- सूर्यकी तरह वह अग्नि मनुष्यों और देवोंका नेता है।

२ सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अतिपर्षत्- वह अपने उपासकको सभी पापोंसे पार करता है।

[१८७] मैं (दधिक्रा अग्निं देवीं उषसं) दधिक्रा, अग्नि, तेजस्वी उषा, (बृहस्पतिं देवं सवितारं च) बृहस्पति और सविता देव (अश्विना मित्रावरुणा भगं च) अश्विनौ, मित्र, वरुण और भग (वसून् रुद्रान् आदित्यान् इह हुवे) वसुओं, रुद्रों और आदित्योंको इस यज्ञमें बुलाता हूं ॥५॥

[२१]

[१८८] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्ने ! (नः इमं यज्ञं अमृतेषु धेहि) हमारे इस यज्ञको मरणधर्मरहित इन देवोंको समर्पित कर। तथा हमारे (इमा हव्या जुषस्व) इन हव्योंका सेवन कर। हे (होतः अग्ने) होता रूप अग्ने ! तू (निषद्य प्रथमः मेदसः घृतस्य स्तोकानां अशान) यज्ञमें बैठकर सबसे प्रथम हवि और घृतके बिन्दुओंको भलीभांति खा ॥१॥

[१८९] हे (पावक) पवित्र अग्ने ! (स्वधर्मन्, घृतवन्तः मेदसः स्तोकाः) इस साङ्ग यज्ञसे घृतसे युक्त हविके थोडे थोडे भाग (ते देववीतये श्चोतन्ति) तेरे और देवताओंके भक्षणके लिये गिर रहे हैं। इसलिये (नः वार्यं श्रेष्ठं धेहि) हमको वरणीय और उत्तम धन प्रदान कर ॥२॥

भावार्थ- यह अग्नि सूर्यकी तरह सभी जगत्का नेता है। सत्कर्म करनेवाला, वीर तथा सर्वज्ञ वह अग्नि अपने उपासकको सभी पापोंसे दूर करता है ॥४॥

मैं दधिक्रा, उत्तम मार्गमें ले जानेवाले अग्नि, प्रकाशसे युक्त उषा, वाणीके स्वामी बृहस्पति, उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करनेवाले सविता, अश्विनौ, मित्र, श्रेष्ठ वरुण, ऐश्वर्योंके स्वामी भग, निवास करानेवाले वसु, शत्रुओंको रुलानेवाले रुद्र और रसोंको प्रदान करनेवाले आदित्य आदि देवोंको यज्ञमें बुलाता हूं ॥५॥

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञको देवोंके पास पहुंचा, तथा स्वयं भी हमारी हवियोंका सेवन कर ॥१॥

हे अग्ने ! इस सर्वांग यज्ञमें घृतकी बूंदें चू रही हैं, उनको तू खा और हमें उत्तम उत्तम धन दे ॥२॥

१९० तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो ऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ३ ॥

१९१ तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४ ॥

१९२ ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ॥ ५ ॥

[२२]

[ऋषिः- गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः, ४ पुरीष्या अग्नयः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।]

१९३ अयं सो अग्निर्यस्मिन् त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान् त्सन् त्स्तूयसे जातवेदः ॥ १ ॥

अर्थ- [१९०] हे (सन्त्य अग्ने) यज्ञकर्ताओंके द्वारा संभजनीय अग्ने ! (घृतश्चुतः स्तोकाः विप्राय तुभ्यं) घृतकी टपकती हुई बूँदें तुझ मेधावीके लिये हैं। तू (ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे) अतीन्द्रियार्थदर्शी, प्रशंसनीय और घृतादिसे सम्यक् प्रज्जवलित होता है। तू हमारे (यज्ञस्य प्राविता भव) यज्ञका पालन करनेवाला हो ॥३॥

[१९१] हे (अध्रिगो शचीवः अग्ने) सतत गमनशील, शक्तिशाली अग्ने ! (तुभ्यं मेदसः घृतस्य स्तोकासः श्चोतन्ति) तेरे लिये हव्य और घृतके सब बिन्दु गिरते है, अतः (कविशस्तः) ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित तू (बृहता भानुना आगा) अपने प्रभुत तेजके साथ आ और (मेधिर) हे ज्ञानी अग्ने ! (हव्या जुषस्व) हमारे हव्यका सेवन कर ॥४॥

[१९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (वयं उद्भृतं ओजिष्ठं भेदः मध्यतः ते प्र ददामहे) हम सब अतीव सार युक्त हव्य मध्य भागमें तुझको प्रदान करते हैं। (वसो) निवासदाता अग्ने ! तेरी (ते त्वचि अधि स्तोकाः श्चोतन्ति) ज्वालाके उपर घृत मिश्रित बिन्दुओंका समूह गिरता है (तान् देवशः प्रति विहि) उनको तू हरएक देवताकी ओर ले जा ॥५॥

[२२]

[१९३] (वावशानः इन्द्रः यस्मिन् जठरे) सोमकी कामना करनेवाले इन्द्रने, जिस अग्निरूप उदरमें (सुतं, सोमं दधे) संस्कारसे युक्त निचोडे हुये सोमको धारण किया था, (स अयं अग्निः) वह यह अग्नि ही है। हे (जातवेदः सहस्रिणं अत्यं सप्तिं न वाजं) सर्वज्ञ अग्ने ! नानारूपोंसे सम्पन्न वेगवान् घोडेकी तरह हव्यरूप अन्नको (ससवान्) सेवन करनेवाला होता (सन् स्तूयसे) हुआ तू प्रशंसित होता है ॥१॥

भावार्थ- हे अग्ने ! ये घीकी बूंदें तेरे लिए चू रही हैं, इन्हीं बूंदोंसे तू प्रज्जवलित होकर हमारे यज्ञकी रक्षा कर ॥३॥

हे शक्तिमान् अग्ने ! तेरे लिए ये घीकी बूंदें चू रही हैं, अतः ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित तू अपने सम्पूर्ण तेजके साथ यहां आ और हमारे हव्यका सेवन कर ॥४॥

हे अग्ने ! हम तुझे सारयुक्त उत्तम हवि देते हैं, तेरी ज्वालाओंपर घीकी बूंदें टपक रही हैं, उन्हें तू देवोंकी ओर पहुंचा ॥५॥

सोमकी कामना करनेवाले इन्द्रने अपनी जाठराग्निमें सोमको धारण किया था। ऐसा यह अग्नि हव्यका सेवन करता हुआ सर्वत्र प्रशंसित होता है ॥१॥

१९४ अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ २ ॥

१९५ अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ३ ॥

१९६ पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहो अनमीवा इषो महीः ॥ ४ ॥

१९७ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥

अर्थ- [१९४] हे (**यजत्र अग्ने**) यजनीय अग्ने ! (**ते यत् वर्चः**) तेरा जो तेज (**दिवि पृथिव्यां ओषधीषु, यत् अप्सु**) आकाश, पृथ्वी, औषधियों और -जो जलोंमें व्याप्त है (**येन अन्तरिक्षं उरु आ ततन्थ**) तथा जिस तेजके द्वारा अन्तरिक्ष भी विस्तृत हुआ है, (**सः त्वेषः भानुः नृचक्षाः अर्णवः**) वह तेरा तेज सूर्यके समान प्रकाशित मनुष्योंके लिये दर्शनीय और समुद्रके समान गंभीर है ॥२॥

[१९५] हे अग्ने ! तू (**दिवः अर्णं अच्छ आ जिगासि**) द्युलोकके जलको चारों ओरसे व्याप्त करता है (**धिष्ण्याः देवान् अच्छ ऊचिषे**) स्तुतिके योग्य देवगणकी स्तुति करता है (**सूर्यस्य परस्तात् रोचने अवस्तात् याः च आपः उपतिष्ठन्ते**) सूर्यके उपर 'रोचन' नामके लोकमें एवं सूर्यके नीचे जो जल ठहरे हुये हैं उन जलोंको तू ही प्रेरित करता है ॥३॥

[१९६] (**पुरीष्यासः अग्नयः**) पालनपोषण करनेवाली अग्नियाँ (**सजोषसः प्रावणेभिः यज्ञं जुषन्तां**) परस्पर अनुकूल होकर उत्तम मार्गोंसे हमारे यज्ञका सेवन करें। तथा (**अद्रुहः अनमीवाः महीः इषः**) द्रोहरहित, रोगादि शून्य महान् अन्नोंको प्रदान करें ॥४॥

[१९७] हे अग्ने ! (**हवमानाय**) यज्ञ करनेवालेके लिए (**शश्वत्तमं पुरुदंसं**) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (**नः सूनुः तनयः विजावा**) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**सा ते सुमतिः अस्मे भूत्**) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थ- हे पूजनीय अग्ने ! तेरा जो तेज, पृथ्वी, आकाश, वृक्षों और अन्तरिक्षमें फैला हुआ है, वह तेरा तेज बहुत प्रकाशमान्, सर्वद्रष्टा और गंभीर है ॥२॥

हे अग्ने ! तू ही इन जलोंको द्युलोककी ओर प्रेरित करता है। फिर द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकमें संचित जलोंको पृथ्वी पर बरसता है ॥३॥

पालनपोषण करनेवाली अग्नियां परस्पर संगठित होकर हमारे इस यज्ञमें आवें और प्रसन्न होकर हमें रोगरहित अन्न प्रदान करें ॥४॥

हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हरतरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥५॥

[२३]

[ऋषिः- देवश्रवा देववातश्च भारतौ । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्, २ सतोबृहती ।]

१९८ निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १ ॥
१९९ अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥
२०० दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥ ३ ॥
२०१ नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥

---

[२३]

अर्थ- [१९८] (निर्मथितः सधस्थे आ सुधितः) मंथन द्वारा उत्पन्न अपने स्थानपर अच्छी प्रकार स्थित **(युवा अध्वरस्य प्रणेता, कविः जातवेदाः)** तरुण, यज्ञका नायक, दूरदर्शी सब विषयोंका ज्ञाता **(वनेषु जूर्यत्सु, अजरः अग्निः)** जंगलोंमें सब काष्ठोंको जलाने पर भी स्वयं जरारहित अग्नि **(अत्र अमृतं आ दधे)** यहां अमृतको पूर्णरूपसे धारण करनेवाला है ॥१॥

१ **जूर्यत्सु, अजरः अमृतं आ दधे-** विनाशी विश्वमें जो जरारहित होकर रहता है, वही अमृतको प्राप्त करता है।

[१९९] (भारता देवश्रवाः देववातः) भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात इन दोनोंने **(सुदक्षं, रेवत् अग्निं अमन्थिष्टां)** शोभन सामर्थ्यसे युक्त और धन सम्पन्न अग्निको मंथन द्वारा उत्पन्न किया। हे **(अग्नि)** अग्ने! तू **(बृहता राया अभि वि पश्य)** प्रभूत धनोंके साथ हमारी ओर कृपा की दृष्टिसे देख और **(अनुद्यून् नः इषां नेता भवतात्)** प्रतिदिन हमारे लिये अन्न प्राप्त करानेवाला हो ॥२॥

[२००] (दश क्षिपः पूर्व्यं सीं अजीजनन्) दश अङ्गुलियोंने प्राचीन इस अग्निको उत्पन्न किया। हे **(देवश्रवः)** देवश्रवा! **(मातृषु सुजातं, प्रियं, दैववातं, अग्निं स्तुहि)** अरणिरूप माताओंके बीचमें अच्छे प्रकारसे उत्पन्न, प्रिय, देववातसे मथित होनेपर प्रकाशित उस अग्निकी स्तुति कर। **(यः जनानां वशी असत्)** जो अग्नि स्तुति करनेवालोंके ही वशीभूत होता है ॥३॥

१ **जनानां वशी असत्-** यह अग्नि उत्तम मनुष्योंके वशमें रहनेवाला है।

[२०१] हे **(अग्ने)** अग्ने! **(इळयाः पृथिव्याः वरे पदे अह्नां सुदिनत्वे)** अन्नयुक्त पृथ्वीके उत्कृष्ट स्थानमें और उत्तम दिवसके शोभन समयमें **(त्वा आ निदधे)** तुझको मैं विशेष रूपसे स्थापित करता हूं। तू **(दृषद्वत्यां मानुषे आपयायां सरस्वत्यां)** पत्थरोंवाली नदीके स्थानमें और मनुष्योंके संरक्षण योग्य नदीके स्थानमें और सरस्वती स्थानमें **(रेवत् दिदीहि)** धनयुक्त होकर प्रकाशित हो ॥४॥

भावार्थ- मंथनसे उत्पन्न यज्ञका सम्पादक, दूरदर्शी सर्वत्र यह अग्नि सब वनोंको जलाकर भी स्वयं जरारहित बनता रहता है और अमृतको धारण करता है ॥१॥

भरतवंशीय देवश्रवा और देववातके द्वारा उत्पन्न अग्ने! तू उत्तम धनसे युक्त होकर हमपर कृपा कर और प्रतिदिन हमें अन्न दे ॥२॥

हे मनुष्यो! अरणियों द्वारा उत्पन्न तथा दिव्य मनुष्योंके द्वारा प्रज्ज्वलित इस अग्निकी स्तुति करो। क्योंकि यह अग्नि स्तुतिसे ही वशमें होता है ॥३॥

हे अग्ने! तुझे मैं अन्न देनेवाली इस पृथ्वीके ऊंचे स्थानपर प्रतिष्ठित करता हूँ, तू अनेक नदियोंके किनारे अच्छी तरह प्रज्ज्वलित हो ॥४॥

२०२ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥

[२४]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री; १ अनुष्टुप् ।]

२०३ अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नराती- र्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥
२०४ अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥ २ ॥
२०५ अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ३ ॥
२०६ अग्ने विश्वेभिरग्निभि- र्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥ ४ ॥
२०७ अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ५ ॥

अर्थ- [२०२] हे अग्ने ! (**हवमानाय**) यज्ञ करनेवालेके लिए (**शश्वत्तमं पुरुदंसं**) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली, अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (**गो-सनिं इळां**) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे । (**नः सूनुः तनयः विजावा**) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों । हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**सा ते सुमतिः अस्मे भूत्**) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥५॥

[२४]

[२०३] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**पृतना सहस्व**) शत्रुसेनाको हरा और (**अभिमातिः अपास्य**) विघ्न करनेवालों को भगा तथा (**दुस्तरः**) शत्रुओं द्वारा न हटाया जानेवाला तू (**अरातीः तरन् यज्ञवाहसे वर्चः धाः**) अपने शत्रुओंको जीतकर यज्ञ करनेवालेके लिये वर्च प्रदान कर ॥१॥

[२०४] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**वीतिहोत्रः, अमर्त्यः**) यज्ञमें प्रीति रखनेवाला और मरणरहित तू (**इळा समीध्यसे**) समिधासे प्रज्ज्वलित होता है । ऐसा तू (**नः अध्वं सु जुषस्व**) हमारे इस यज्ञका भली प्रकारसे सेवन कर ॥२॥

[२०५] हे (**जागृवे सहसः सूनो आहुत अग्ने**) सदा जागरुक रहनेवाले, बलके पुत्र तथा आदरसे बुलाये जानेवाले अग्ने ! (**द्युम्नेन मम इदं बर्हिः आ सदः**) सम्पत्तिके साथ मेरे इस यज्ञमें आकर बैठ ॥३॥

[२०६] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**यज्ञेषु ये चायवः**) यज्ञोंमें जो पूजक प्रार्थना करते है, उनकी (**गिरः**) स्तुतियोंको (**विश्वेभिः देवेभिः अग्निभिः**) सभी तेजस्वी ज्वालाओंसे (**महय**) उत्तम बना ॥४॥

[२०७] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**दाशुषे वीरवन्तं परीणसं रयिं दाः**) दाताके लिये वीर पुत्रोंसे युक्त प्रभूत धन प्रदान कर । तथा (**सूनुमतः नः शिशीहि**) श्रेष्ठ सन्तानोंवाले हमको तेजस्वी बना ॥५॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर । उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम सन्तान एवं उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥५॥

हे शत्रुओंको पराजित करनेवाले पर स्वयं कभी भी पराजित न होनेवाले अग्ने ! तू यज्ञ करनेवालोंको वर्चस्वी बना ॥१॥

हे अग्ने ! तू यज्ञमें प्रीति रखता है, और समिधासे प्रज्ज्वलित होकर सदा जागरूक रहता है । अतः तू मेरे यज्ञमें आकर बैठ और उसका सेवन कर ॥२-३॥

हे अग्ने ! जो मनुष्य तेरी उपासना करते हैं, उन दाताओंकी वाणियोंको तेजस्वी बनाकर उन्हें पुत्र धनैश्वर्यादिसे समृद्ध बना ॥४-५॥

[२५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः, ४ अग्नीन्द्रौ । छन्द- विराट् ।]

२०८ अग्ने॒ दि॒वः सू॒नुर॑सि॒ प्रचे॑ता॒ स्तना॑ पृथि॒व्या उ॒त वि॒श्ववे॑दाः ।
ऋध॑ग्दे॒वाँ इ॒ह य॑जा चिकित्वः ॥ १ ॥

२०९ अ॒ग्निः स॑नोति वी॒र्या॑णि वि॒द्वान् त्स॒नोति॒ वाज॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न् ।
स नो॑ दे॒वाँ एह व॑हा पुरुक्षो ॥ २ ॥

२१० अ॒ग्निर्द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वज॑न्ये॒ आ भा॑ति दे॒वी अ॒मृ॒ते॒ अमू॑रः ।
क्षय॒न् वाजैः॑ पुरुश्च॒न्द्रो नमो॑भिः ॥ ३ ॥

२११ अग्न॒ इन्द्र॑श्च दा॒शुषो॑ दु॒रो॒णे सु॒ताव॑तो य॒ज्ञमि॒होप॑ यातम् ।
अम॑र्धन्ता सोम॒पेया॑य देवा ॥ ४ ॥

२१२ अग्ने॑ अ॒पां समि॑ध्यसे दु॒रो॒णे नित्यः॑ सूनो सहसो जातवेदः ।
स॒धस्था॑नि म॒हय॑मान ऊ॒ती ॥ ५ ॥

---

[२५]

अर्थ- [२०८] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**विश्ववेदाः प्रचेताः, दिवः सूनुः असि**) सम्पूर्ण विषयोंका ज्ञाता, प्रकृष्टबुद्धिवाला और द्युलोकका पुत्र है । (**उत पृथिव्याः तना**) और पृथ्वीका विस्तार करनेवाला है । हे (**चिकित्वः**) चेतनावान् अग्ने ! तू (**इह ऋधक् देवान् यज**) इस यज्ञमें पृथक् पृथक् रूपसे देवोंका यजन कर ॥१॥

[२०९] (**विद्वान् अग्निः वीर्याणि सनोति**) ज्ञानवान् अग्नि उपासकोंको सामर्थ्य प्रदान करता है । वह सबको (**भूषन् अमृताय वाजं सनोति**) विभूषित करके, मरणधर्मसे रहित देवोंको अन्न प्रदान करता है । हे (**पुरुक्षो**) बहुविध अन्नवाले ! (**सः नः देवान् इह आ वह**) वह शक्तिसम्पन्न तू हमारे लिये देवोंको इस यज्ञमें ले आ ॥२॥

[२१०] (**अमूरः क्षयन् पुरुः चन्द्रः**) ज्ञानी, सब प्राणियोंको बसानेवाला, तेजसे सम्पन्न, (**वाजैः नमोभिः, अग्निः**) बल और अन्नसे युक्त अग्नि, (**विश्वजन्ये, देवी, अमृते, द्यावापृथिवी आ भाति**) संसारके उत्पन्न करनेवाले, तेजसे युक्त और मरण-रहित, द्यावा और पृथ्वीको सब ओरसे प्रकाशित करता है ॥३॥

[२११] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**च इन्द्रः देवा**) और इन्द्र दोनों देव (**अमर्धन्ता**) यज्ञकी रक्षा करते हुये, (**सुतावतः दाशुषः इह दुरोणे**) सोम तैय्यार करनेवाले तथा हवि देनेवाले मनुष्य के इस घरमें (**यज्ञं सोमपेयाय उपयातं**) यज्ञकी तरफ सोमपानके लिये आओ ॥४॥

[२१२] हे (**सहसः सूनो**) बलके पुत्र (**जातवेदः अग्ने**) और सर्वत्र अग्ने ! (**नित्यः**) अविनाशी तू (**ऊती, सधस्थानि महयमानः**) अपनी रक्षण शक्तिद्वारा घरोंको अलंकृत करते हुये, (**अपां दुरोणे समिध्यसे**) जलके स्थान अन्तरिक्षमें सम्यक् रूपसे दीप्तिमान् होता है ॥५॥

भावार्थ- यह अग्नि सम्पूर्ण विषयोंका ज्ञाता और उत्तम बुद्धिवाला तथा पृथ्वीको विस्तृत करनेवाला है, इसीके कारण सारे देवोंका यजन किया जाता है ।

यह ज्ञानवान् अग्नि अपने भक्तोंको सामर्थ्य और अन्न प्रदान करता है और यज्ञमें देवोंको बुलाता है । इस अग्निके प्रज्ज्वलित होनेपर ही सब देव यज्ञमें आते हैं ॥२॥

ज्ञानी, सबका निवासयिता, तेजस्वी बलसम्पन्न अग्नि ही द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको प्रकाशित करता है ॥३॥

हे अग्ने ! तू और इन्द्र दोनों यज्ञकी रक्षा करते हुए सोम तैय्यार करनेवालेके घरमें सोम पीने के लिए आओ ॥४॥

यह अग्नि अपने सामर्थ्यसे सब घरोंका संरक्षण करता है और अन्तरिक्षमें प्रकाशित होता है ॥५॥

[२६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः; ७ आत्मा। देवता- १-३ वैश्वानरोऽग्निः, ४-६ मरुतः, ७-८ आत्मा (अग्निर्वा), ९ विश्वामित्रोपाध्यायः। छन्दः- १-६ जगती, ७-९ त्रिष्टुप्।]

२१३ वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम्।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥ १ ॥
२१४ तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम्।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥ २ ॥
२१५ अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥ ३ ॥
२१६ प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥ ४ ॥

---

[२६]

अर्थ- [२१३] (हविष्मन्तः) हवि प्रदान करनेवाले (वसूयवः कुशिकासः) धन चाहनेवाले हम कुशिकगण (अनु सत्यं स्वर्विदं) सत्यमार्ग पर चलनेवाले, सुखको प्राप्त करानेवाले (सुदानुं रथिरं) उत्तम दान देनेवाले, वेगपूर्वक जानेवाले, (रण्वं वैश्वानरं अग्निं) सुन्दर वैश्वानर अग्निको (मनसा निचाय्य) मनसे ज्ञानकर (गीर्भिः हवामहे) स्तुतियोंसे बुलाते हैं ॥१॥

[२१४] हम (मनुषः देवतातये अवसे) मननशील पुरुषके यज्ञकी रक्षाके लिये (तं शुभ्रं मातरिश्वानं) उस शुद्ध, अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले (उक्थ्यं) प्रशंसाके योग्य (बृहस्पतिं) वाणीके स्वामी (विप्रं) ज्ञानी (श्रोतारं) प्रार्थनाओंको सुननेवाले (अतिथिं) अतिथिके समान पूज्य (रघुष्यदं) शीघ्र जानेवाले (वैश्वानरं अग्निं) वैश्वानर अग्निको (हवामहे) बुलाते हैं ॥२॥

[२१५] (क्रन्दन् वैश्वानरः) शब्द करता हुआ विश्वानर अग्नि (कुशिकेभिः युगे युगे सं इध्यते) कुशिकाओंके द्वारा प्रतिदिन उसी प्रकार उत्पन्न किया जाता है, (जनिभिः अश्वः न) जिस प्रकार घोडियोंके द्वारा घोडे। (अमृतेषु जागृविः) अमर देवोंमें सदा जागृत रहनेवाला (सः अग्निः) वह अग्नि (सु अशव्यं सुवीर्यं) सुन्दर घोडों और पराक्रमसे युक्त (रत्नं) रत्नादि धन (नः दधातु) हमें प्रदान करे ॥३॥

१ अमृतेषु जागृविः सः अग्निः युगे युगे सं इध्यते- अमर देवोंमें सदा जागृत रहनेवाला वह अग्नि प्रतिदिन प्रदीप्त किया जाता है।

[२१६] (संमिश्लाः पृषतिः) साथ साथ मिलकर रहनेवाली घोडियां (शुभे अयुक्षत) उत्तम रथमें जोड दी गई हैं, तब (तविषीभिः) बलसे युक्त (वाजाः) वेगवाली वे घोडियां (अग्नयः प्र यन्तु) यज्ञके प्रति जावें। उस समय (बृहदुक्षः विश्ववेदसः अदाभ्याः मरुतः) जल सींचनेवाले, सब जाननेवाले तथा किसीसे न दबनेवाले मरुत (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतों या मेघोंको कंपाते हैं ॥४॥

भावार्थ- हवि देनेवाले तथा धनकी इच्छा करनेवाले, कुशाओंका प्रयोग करनेवाले उसी नेताकी प्रशंसा करते हैं कि जो सत्यका अनुकरण करनेवाला, सुख प्राप्त करनेवाला, उत्तम दान देनेवाला और उत्तम रीतिसे गति करनेवाला होता है ॥१॥

हम मननशील सज्जन पुरुषकी रक्षाके लिए शुद्ध, अन्तरिक्षमें संचार करनेवालें, वाणी के स्वामी, ज्ञानी, अतिथिके समान पूज्य तथा सबको श्रेष्ठमार्गसे ले जानेवाले अग्निको बुलाते हैं ॥२॥

अमर देवोंमें सदा जाग्रत रहनेवाला वह अग्नि यज्ञ करनेवालोंके द्वारा प्रतिदिन प्रदीप्त किया जाता है। वह अग्नि हमें उत्तम रत्न आदि धन प्रदान करे ॥३॥

जब यज्ञ प्रज्जवलित होते हैं, तब उसमें प्रज्वलित अग्निकी किरणें आकाशमें जाकर मेघका निर्माण करती है, तब वायु चलने लगती है और उस वायुके चलनेसे वे मेघ कांपने लगते हैं और तब पानी बरसता है ॥४॥

२१७ अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५॥

२१८ व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६॥

२१९ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

२२० त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८॥

अर्थ- [२१७] (ते मरुतः) वे मरुत (अग्नि) अग्निके सहारे रहनेवाले, (विश्वकृष्टयः) सारे संसारको सींचनेवाले (स्वानिनः) शब्द करनेवाले (रुद्रिया) रुद्रके अनुयायी (वर्षनिर्णिजः) वर्षाका रूपवाले (सिंहाः न हेषक्रतवः) सिंहके समान गर्जनेवाले (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले है। (वयं) हम उनके (उग्रं त्वेषं) उत्तम तेजको (अव ईमहे) अपनी रक्षा के लिए मांगते हैं ॥५॥

[२१८] मरुत् (पृषदश्वासः) बलशाली घोडोंवाले (अनवभ्रराधसः) सम्पूर्ण धनवाले (धीराः) बुद्धिमान् और (विदथेषु यज्ञं गन्तारः) युद्धों और यज्ञोंमें जानेवाले है। ऐसे (व्रातं व्रातं गणं गणं) हर कर्म तथा हर समूहमें रहनेवाले (मरुतां) मरुतोंके और (अग्नेः भामं ओजः) अग्निके प्रकाशित ओजको हम (सुशस्तिभिः ईमहे) उत्तम मंत्रोंसे चाहते हैं ॥६॥

[२१९] मैं (जन्मना जातवेदा अग्निः अस्मि) जन्मसे ही सब उत्पन्न हुए पदार्थोंको जाननेवाला अग्नि हूं (घृतं मे चक्षुः) प्रकाश मेरी आंख है और (अमृतं मे आसन्) अमृत मेरे मुंह में है। (अर्कः) मैं प्राण हूं (त्रिधातू) मैं तीन प्रकारसे धारक हूँ, मैं (रजसः विमानः) अन्तरिक्षको मापनेवाला हूँ, (अजस्रः धर्मः) सतत प्रकाशित होनेवाला हूँ, (हविः नाम अस्मि) हवि संज्ञावाला हूँ ॥७॥

[२२०] बुद्धिमान् मनुष्य (हृदा) अपने हृदयमें (मतिं ज्योतिः अनु प्रजानन्) मननीय परमात्मज्योतिको जानकर (पवित्रैः त्रिभिः) पवित्र करनेवाले तीनोंसे (अर्कः अपुपोत् हि) पूजाके योग्य आत्माको पवित्र करता है। तब वह (स्वधाभिः) अपनी शक्तियोंसे (वर्षिष्ठं रत्नं अकृत) अपनी आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ और सुन्दर बनाता है (आत् इत्) उसके बाद ही (द्यावापृथिवी परि अपश्यत्) द्यु और पृथ्वीको सब ओरसे देखता है ॥८॥

१ हृदा मतिं ज्योति प्रजानन्- बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम अपने हृदयमें परमात्मज्योतिको प्रत्यक्ष करता है।
२ पवित्रैः त्रिभिः अर्क अपुपोत्- फिर पवित्र हुए हुए मन, वाणी और कर्म इन तीनसे अपनी अर्चनीय आत्माको पवित्र करता है।
३ स्वधाभिः वर्षिष्ठं अकृत- अपनी शक्तियोंसे आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाता है।
४ आत् इत् द्यावापृथिवी परि अपश्यत्- इसके बाद द्यु और पृथ्वीको देखता है।

भावार्थ- वे मरुत अग्निके सहारे रहनेवाले सारे संसारको वर्षाके जलसे सींचनेवाले, गर्जनेवाले तथा वर्षाके जलके रूपमें ही सर्वत्र प्रत्यक्ष होनेवाले और सिंहके समान शब्द करनेवाले और उत्तम तेजस्वी हैं ॥५॥

ये सभी मरुत हर तरहके धनसे युक्त तथा युद्धोंमें जाननेवाले है। वे हमेशा समूहमें रहते हैं। ऐसे मरुतोंके ओजको हम मांगते हैं ॥६॥

परमात्मा जन्मसे ही अर्थात् प्रारंभसे ही सर्वज्ञ है, प्रकाशक सूर्य और चन्द्र ही उसके नेत्र हैं। अमृत सदा उसके मुंहमें बना रहता है, वही सबका प्राण है। वही सूर्य बनकर, वायु बनकर अन्तरिक्षको और अग्नि बनकर पृथ्वीको धारण करता है। वही सब लोकोंको मापता है वही प्रकाशका स्रोत है और वही हवि है ॥७॥

२२१ शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥ ९ ॥

[२७]

[ऋषिः- गाधिनो विश्वामित्रः । देवता:- अग्निः, १ ऋतवो वा । छन्दः- गायत्री ।]

२२२ प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥ १ ॥
२२३ ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ २ ॥
२२४ अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥ ३ ॥
२२५ समिध्यमानो अध्वरेऽग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ- [२२१] हे (**गेदसी**) द्यु और पृथ्वी ! (**शतधारं उत्सं**) सैकडों धाराओंवाले झरनेके समान (**अक्षीयमाणं**) कभी नष्ट न होनेवाले (**वक्त्वानां पितरं**) वाणियोंके पालक (**मेळिं**) संघटक (**पित्रोः उपस्थे मदन्तं**) माता पिताके पास आनन्दित होनेवाले (**सत्यवाचं तं विपश्चितं**) सत्य वाणी बोलनेवाले उस विद्वान् को (**पिपृतं**) सब तरह पूर्ण करो ॥९॥

[२७]

[२२२] हे मनुष्यो ! (**वाजाः अभिद्यवः**) बलवान् और तेजस्वी देव (**घृताच्या**) घीसे भरपूर गौवोंके साथ (**हविष्मन्तः वः प्र**) हवि देनेवाले तुम्हारी ओर आते हैं । तथा (**सुम्नयुः देवान् जिगाति**) सुखकी इच्छा करनेवाला देवोंकी ओर जाता है ॥१॥

[२२३] (**विपश्चितं, यज्ञस्य साधनं, श्रुष्टीवानं, धितावानं अग्निं**) मेधावी, यज्ञके साधन, सुखकारक और धनवान् अग्निकी मैं (**गिरा इळे**) उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ ॥२॥

[२२४] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**वाजिनः वयं**) बलवान् हम उस (**देवस्य ते**) दिव्यगुणयुक्त तुझे (**यमं शकेम**) अपने पास रखनेमें समर्थ हों और (**द्वेषांसि अति तरेम**) शत्रुओंसे पार हों ॥३॥

[२२५] जो (**अग्निः अध्वरे सं इध्यमानः**) अग्नि यज्ञमें प्रज्ज्वलित होनेवाला, (**शोचिष्केशः पावकः ईड्यः**) ज्वालायुक्त केशसे सम्पन्न, पवित्रकर्ता और पूजनीय है, (**तं ईमहे**) उससे हम सुख माँगते हैं ॥४॥

भावार्थ- साधक मनुष्य अपने हृदयमें परमात्माकी ज्योतिका अनुभव करता है । उससे उसका मन, वाणी और कर्म पवित्र हो जाते हैं । मन वाणी और कर्मके पवित्र होनेसे उसकी आत्मा भी पवित्र हो जाती है । आत्माके पवित्र होनेसे उसके अन्दर शक्तियां उत्पन्न होती हैं, ये शक्तियां स्व-धा अर्थात् आत्माको धारण करनेवाली होती हैं, इन स्वधाशक्तियोंके कारण आत्मा अत्यन्त श्रेष्ठ और सुन्दर बन जाती है, तब वह सारे संसारको देखता है । उसके लिए सारे लोक हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं ॥८॥

विद्वान् सैंकडों धाराओंवाले झरनेकी तरह कभी भी क्षीण होनेवाला न हो, वाणियोंका पालक हो, सब मनुष्योंको संघटित करनेवाला हो, हमेशा सत्य बोलनेवाला हो । ऐसे ही विद्वानको द्यावापृथ्वीको सब तरहसे पूर्ण करते हैं ॥९॥

बलवान् और तेजस्वी देव हवि देनेवालेकी ओर जाते हैं और हवि देनेवाला सुखकी प्राप्तिके लिये देवोंकी ओर जाता है ॥१॥

हे अग्ने ! हम दिव्य गुणोंसे युक्त तेरी उत्तम स्तुति करें, एवं तुझे हम अपने पास सदा रखें और तेरी सहायतासे शत्रुओंको हटावें ॥२-३॥

यह अग्नि अत्यन्त तेजस्वी, अमर, पूज्य, पवित्र करनेवाला तथा यज्ञकी हविको देवताओंतक पहुंचानेवाला है ऐसे अग्निसे हम सुखकी इच्छा करते हैं ॥४-५॥

२२६ पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥
२२७ तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥ ६ ॥
२२८ होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥ ७ ॥
२२९ वाजी वाजेषु धीयते ऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८ ॥
२३० धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥ ९ ॥
२३१ नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥ १० ॥
२३२ अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥ ११ ॥

अर्थ- [२२६] (**पृथुपाजाः अमर्त्यः**) प्रभूततेजवाला, मरणरहित (**घृतनिर्णिक्, स्वाहुतः अग्निः**) अत्यन्त तेजस्वी, सम्यक् पूजित अग्नि (**यज्ञस्य हव्यवाट्**) यज्ञकी हविको हवन करनेवाला है ॥५॥

[२२७] (**सबाधः यज्ञवन्तः**) यज्ञ विघ्नविनाशक, यजनीय हवियोंसे युक्त तथा (**यतस्रुचः इत्था**) आगे बढाई हुई स्रुचावाले ऋत्विजोंने इस प्रकार (**धिया तं अग्निं ऊतये आ चक्रुः**) स्तुति द्वारा उस अग्निको अपनी रक्षाके लिये अपनी तरफ किया ॥६॥

[२२८] (**होता, अमर्त्यः देवः**) यज्ञ-सम्पादक, मरणरहित, दिव्यगुण युक्त अग्नि (**विदथानि प्रचोदयन्**) सभी उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देता हुआ अपने (**मायया पुरस्तात् एति**) ज्ञानसे युक्त होकर सबसे आगे चलता है ॥७॥

[२२९] (**वाजी वाजेषु धीयते**) बलवान् अग्नि युद्धमें सबके आगे स्थापित किया जाता है और (**अध्वरेषु प्रणीयते**) यज्ञोंमें भी सबसे मुख्य स्थानमें प्रतिष्ठित किया जाता है । वह (**विप्रः यज्ञस्य साधनः**) प्रज्ञावान् और यज्ञकार्यका सम्पादनकर्ता है ॥८॥

[२३०] (**धिया चक्रे वरेण्यः**) ज्ञानपूर्वक कर्मोंको करनेके कारण वरण करने योग्य यह अग्नि (**भूतानां गर्भं आ दधे**) स्थावर जंगमादि प्राणियोंके गर्भको धारण करता है । उसी (**पितरं**) सब जगत्के पालक अग्निको (**दक्षस्य तना**) दक्ष प्रजापतिकी पुत्री 'यज्ञभूमि' धारण करती है ॥९॥

१ **धिया चक्रे वरेण्यः**- बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला ही लोगोंके द्वारा वरण करने योग्य होता है ।

[२३१] हे (**सहस्कृत अग्ने**) बलसे उत्पन्न अग्ने ! (**सुदीतिं, उशिजं, वरेण्यं**) उत्कृष्ट दीप्तिसे युक्त, हव्याभिलाषी और वरण करने योग्य (**त्वा दक्षस्य इळा निदधे**) तुझको बुद्धिमान् मनुष्यकी इलाने धारण किया ॥१०॥

[२३२] (**वनुषः विप्राः**) कर्मसिद्धिकी इच्छासे मेधावी लोग, (**यन्तुरं अप्तुरं अग्निं ऋतस्य योगे**) संसारके नियामक, जलके प्रेरक अग्निको यज्ञके निमित्त (**वाजैः समिन्धते**) हविरूप अन्नोंसे भलीभांति प्रदीप्त करते हैं ॥११॥

भावार्थ- यज्ञमें आनेवाले सब विघ्नोंको दूर करनेवाले अग्निको यज्ञ करनेवाले अपनी रक्षाके लिए स्तुति द्वारा बुलाते हैं और वह अमर तथा दिव्य अग्नि सभी उत्तम कर्मोंमें प्रेरणा देता हुआ उनकी तरफ आता है ॥६-७॥

यह अग्नि बलवान्, बुद्धिमान् तथा यज्ञको सिद्ध करनेवाला होनेके कारण इसे युद्धों और यज्ञोंमें सबसे आगे स्थापित किया जाता है ॥८॥

ज्ञानपूर्वक कार्य करनेवाला यह अग्नि सारे प्राणियों और वृक्षवनस्पतियोंको धारण करता है और इसे यज्ञभूमि धारण करती है ॥९॥

बलसे उत्पन्न इस अग्निको बुद्धिमान्की उत्तम बुद्धिने धारण किया है अर्थात् यह अग्नि ज्ञान और स्तुतिसे प्रज्जवलित किया जाता है ॥१०॥

धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य सब संसारके नियामक इस अग्निको यज्ञके लिए प्रज्जवलित करते हैं और फिर बलको क्षीण न करनेवाले, द्युलोकतक प्रकाशनेवाले दूरदर्शी इस अग्निकी स्तुति की जाती है ॥११-१२॥

२३३. ऊर्जो नपा॑तमध्व॒रे दी॑दि॒वांस॒मुप॒ द्यवि॑ । अ॒ग्निमी॑ळे क॒विक्र॑तुम् ॥ १२ ॥
२३४ ई॒ळेन्यो॑ नम॒स्य॑स्ति॒रस्तमां॑सि द॒र्श॒तः । सम॒ग्निरि॑ध्यते॒ वृषा॑ ॥ १३ ॥
२३५ वृषो॑ अ॒ग्निः समि॑ध्य॒तेऽश्वो॒ न दे॑व॒वाह॑नः । तं ह॒विष्म॑न्त ईळते ॥ १४ ॥
२३६ वृष॑णं त्वा व॒यं वृ॑ष॒न् वृष॑णः॒ समि॑धीमहि । अग्ने॒ दीद्य॑तं बृ॒हत् ॥ १५ ॥

[२८]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- १-२, ६ गायत्री, ३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ जगती ।]

२३७ अग्ने॑ जु॒षस्व॑ नो ह॒विः पु॑रो॒ळाशं॑ जातवेदः । प्रा॒तः॒सा॒वे धि॑यावसो ॥ १ ॥
२३८ पु॒रो॒ळा अ॑ग्ने पच॒तस्तुभ्यं॑ वा घा॒ परि॑ष्कृतः । तं जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥
२३९ अग्ने॑ वी॒हि पु॑रो॒ळाश॒माहु॑तं ति॒रोअ॑ह्न्यम् । सह॑सः सू॒नुर॑स्यध्व॒रे हि॒तः ॥ ३ ॥

अर्थ- [२३३] (ऊर्जः नपातं, उपद्यवि दीदिवांसं) बलको क्षीण न करनेवाले, द्युलोकतक प्रकाशित होनेवाले (कविक्रतुं अग्निं) मेधावी अग्निकी (अध्वरे ईळे) इस यज्ञमें मैं स्तुति करता हूं ॥१२ ।

[२३४] (ईळेन्यः नमस्यः दर्शतः) पूजनीय, नमस्कारके योग्य, दर्शनीय, (वृषा, तमांसि तिरः अग्निः) बलवान् और अन्धकारको स्व प्रकाशसे दूर करता हुआ अग्नि (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हो रहा है ॥१३॥

[२३५] (अश्वः न देववाहनः वृषो अग्निः सं इध्यते) घोडेके समान देवोंको लानेवाला यह बलवान् अग्नि प्रज्जवलित होता है । (हविष्मन्तः तं ईळते) हविको देनेवाले यजमानगण उस अग्निकी स्तुति करते हैं ॥१४॥

[२३६] हे (वृषन् अग्ने) अभीष्टवर्षी अग्ने ! (वृषणः वयं) बलवान् हम (वृषणं दीद्यतं बृहत् त्वां) बलवान् और महान् तुझको (सं इधीमहि) सम्यक्रूपसे प्रदीप्त करते हैं ॥१५॥

[२८]

[२३७] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ और (धियावसो अग्ने) ज्ञानरूपी धनवाले अग्ने ! तू (प्रातःसावे नः पुरोळाशं हविः जुषस्व) प्रातःसवनमें हमारे पुरोडाश और हव्यका सेवन कर ॥१॥

[२३८] हे (यविष्ठ्य अग्ने) अत्यन्त युवा अग्ने ! (तुभ्यं वा घ परिष्कृतः पुरोळा पचतः) तेरे लिये अच्छे प्रकारसे सुसंस्कृत पुरोडाश तैयार किया गया है, तू (तं जुषस्व) उसका सेवन कर ॥२॥

[२३९] हे (अग्ने) अग्ने (तिरः अह्न्यं आहुतं पुरोळाशं वीहि) दिनान्तमें उत्तम रीतिसे दिए गए पुरोडाशका भक्षण कर । तू (सहसः सूनुः अध्वरे हितः असिः) बलका पुत्र और यज्ञमें कल्याणप्रद है ॥३॥

भावार्थ- स्तुतियोग्य, देखनेमें सुन्दर, बलवान् और अपने प्रकाशसे अन्धकारको दूर करनेवाला यह अग्नि सर्वत्र प्रदीप्त किया जाता है ॥१३॥

घोडा जिस प्रकार सामान ढोकर लाता है उसी प्रकार देवोंको बुलाकर लानेवाला यह तेजस्वी अग्नि प्रदीप्त किया जाता है ॥१४-१५॥

ज्ञानवान् अग्ने ! यह पुरोडाश तेरे लिए तैय्यार किया गया है, अतः तू यज्ञमें आकर इसका सेवन कर ॥१-२॥

हे अग्ने ! दिनके अन्तमें तैयार किया गया यह पुरोडाश खा और हमारे लिए कल्याण करनेवाला हो ॥३॥

२४० माध्यंदिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥
२४१ अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥
२४२ अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥ ६ ॥

[२९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः, ५, ऋत्विजो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्;
१, ४, १०, १२ अनुष्टुप्; ६, ११, १४, १५ जगती ।]

२४३ अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥
२४४ अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ २ ॥

अर्थ- [२४०] हे (कवे जातवेदः अग्ने) मेधावी संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! (इह माध्यंदिने सवने पुरोळाशं जुषस्व) यहाँ इस माध्यन्दिन सवनमें पुरोडाशका सेवन कर । (विदथेषु धीराः यह्वस्य तव भागधेयं न प्रमिनन्ति) यज्ञमें कर्म करनेमें कुशल अध्वर्यु महान् तेरे भागको नष्ट नहीं करते हैं ॥४॥

[२४१] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न अग्ने ! तू (तृतीये सवने पुरोडाशं आहुतं कानिषः) तीसरे सवनमें दिये गये पुरोडाशकी आहुतिकी कामना कर । (अथ अध्वरं रत्नवन्तं जागृविं) फिर यज्ञके अनन्तर अविनाशी, रत्नवान्, जागरणकारी सोमको (विपन्यया अमृतेषु देवेषु हि धाः) स्तुतिके साथ अमर देवोंके पासमें प्रतिष्ठित कर ॥५॥

[२४२] हे (जातवेदः अग्ने) विज्ञानी अग्ने ! (वृधानः तिरः अह्न्यं) बढनेवाला तू दिनके अन्तमें (आहुतिं जुषस्व) पुरोडाशरूप आहुतिका सेवन कर ॥६॥

[२९]

[२४३] (इदं अधि मन्थनं अस्ति) यह अरणी मंथन करनेका साधन है । और इसने ही (प्रजननं कृतं अस्ति) अग्निको उत्पन्न किया है । (विश्पत्नीं एतां आ भर) संसारका पालन करनेवाली इस अरणीको ले आ, उससे (पूर्वथा अग्निं मन्थाम) पहलेकी तरह हम अग्निको मंथन द्वारा प्रकट करें ॥१॥

[२४४] (जातवेदाः गर्भिणीषु गर्भः इव) सब विषयोंका ज्ञाता अग्नि गर्भिणी स्त्रियोंमें गर्भ की तरह (सुधितः अरण्योः निहितः) अच्छी प्रकारसे दोनों अरणियोंमें निहित है । (हविष्मद्भिः जागृवद्भिः मनुष्येभिः) हविसे युक्त और अपने कर्ममें जागरूक रहनेवाले मनुष्योंके द्वारा (अग्निः दिवे दिवे ईड्यः) यह अग्नि प्रतिदिन स्तुति किए जाने योग्य है ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! मध्याह्नके समय दिए हुए इस पुरोडाशको खा । क्योंकि याजक लोग तेरे भागको नष्ट नहीं करते ॥४॥

हे अग्ने ! उपासकोंको बढानेवाला तू तीसरे सवनमें और दिनके अन्तमें दिए गए इस पुरोडाशको खा और उत्साह पैदा करनेवाले सोमको देवोंके लिए प्रदान कर ॥५-६॥

मथनेके साधन अरणिसे अग्निको प्रकट किया जाता है । इस अग्निसे यज्ञ किया जाता है और उस यज्ञसे संसारका पालन होता है । अतः यहां अरणीको संसारका पालक बताया है ॥१॥

यह अग्नि अरणियोंमें उसी तरह गुप्त रीतिसे रहता है जिस प्रकार गर्भिणीमें गर्भ । इन अरणियोंमें रहनेवाले अग्निकी मनुष्य स्तुति करते हैं ॥२॥

२४५ उत्तानायामव भरा चिकित्वान्   सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज   इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट   ॥ ३ ॥
२४६ इळायास्त्वा पदे वयं   नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीम—ह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे   ॥ ४ ॥
२४७ मन्थता नरः कविमद्वयन्तं   प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्ता—दग्निं नरो जनयता सुशेवम्   ॥ ५ ॥
२४८ यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचते   ऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः   परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन्   ॥ ६ ॥

अर्थ- [२४५] हे मनुष्य ! (**चिकित्वान् उत्तानायं अव भर**) ज्ञानवान् तू ऊर्ध्वमुखवाली अरणी पर नीचे मुखवाली अरणी रख और (**प्रवीता सद्यः वृषणं जजान**) गर्भयुक्त वह अरणी तत्काल कामनाओंकी वर्षा करनेवाले अग्निको उत्पन्न करे । (**अस्य पाजः रुशत्**) इसका तेज चमकीला है । (**अरुषस्तूपः इळयाः पुत्रः वयुने अजनिष्ट**) उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त, इलाका पुत्र अग्नि अरणीसे उत्पन्न हुआ ॥३॥

[२४६] हे (**जातवेदः अग्ने**) सर्वज्ञ अग्ने ! (**वयं पृथिव्याः अधि**) हम पृथ्वीके ऊपर (**इळयाः नाभा पदे त्वा**) वेदिके नाभि स्थानमें तुझको (**हव्याय वोळ्हवे निधीमहि**) हविवहन करनेके निमित्त स्थापित करते हैं ॥४॥

[२४७] हे (**नरः**) मनुष्यो ! (**कविं अद्वयन्तं प्रचेतसं**) क्रान्तदर्शी, कुटिलता रहित, श्रेष्ठ ज्ञानी (**अमृतं सुप्रतीकं अग्निं मन्थत**) अविनाशी ज्वालाओंसे सुन्दर शरीरवाले अग्निको अरणि मंथनसे प्रकट करो । तुम (**नरः**) मनुष्यका नेतृत्व करनेवाले हो, अतः (**यज्ञस्य केतुं प्रथमं सुशेवं पुरस्तात् जनयत**) यज्ञसूचक, प्रथमपूज्य, सुख देनेवाले अग्निको सबसे प्रथम उत्पन्न करो ॥५॥

[२४८] (**यदि बाहुभिः मन्थन्ति**) जिस समय मनुष्य अपने हाथोंसे अरणियोंका मंथन करते हैं, उस समय (**वनेषु वाजी अश्वः न अरुषः आ विरोचते**) जंगलोंमें शीघ्रगामी घोडेके समान यह तेजस्वी अग्नि चारों ओर प्रकाशित होता है । तथा (**अश्विनोः यामन् चित्रः न**) अश्विनीकुमारोंके शीघ्रगामी रथकी तरह शोभाको धारण करता है और (**अनिवृतः अश्मनः तृणा दहन् परि वृणक्ति**) जिसके गमनको कोई नहीं रोक सकता ऐसा अग्नि पत्थरों और तृणोंको जलाता हुआ दग्ध किये स्थानको छोडता हुआ आगे बढ जाता है ॥६॥

१ **बाहुभिः वाजी अरुषः रोचते-** अपनी भुजाओंसे बलवान् होनेवाला ही तेजस्वी होता है ।

२ **अनिवृतः अश्मनः परि वृणक्ति-** ऐसा आदमी अनिर्बन्ध शक्तिवाला होकर चट्टानोंको भी पार कर जाता है ।

भावार्थ- नीचेवाली अरणीपर ऊपरकी अरणि रखकर मथनेसे अग्नि प्रकट होता है । उत्पन्न होकर वह अग्नि अन्धकारको दूर करता है । इस मंत्रमें सन्तानोत्पादनकी रीति भी दूसरे शब्दोंमें बताई है ॥३॥

यज्ञमें दी गई हविको देवोंतक पहुंचाने के लिए ही अग्निको यज्ञकी वेदिमें स्थापित किया जाता है ॥४॥

हे मनुष्यो ! तुम दूरदर्शी कुटिलतारहित श्रेष्ठज्ञानी अग्निको मंथनसे प्रकट करो । यज्ञके सूचक इस अग्निको सबसे प्रथम उत्पन्न करो ॥५॥

अपनी भुजाओंसे शत्रुओंको मथनेवाला बलवान् वीर ही चारों ओर से तेजस्वी होता है । वह हमेशा कियाशील रहता है । ऐसा अनिर्बन्ध शक्तिवाला मनुष्य चट्टानों और बडे गहन जंगलोंको भी पार कर जाता है ॥६॥

२४९ जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥

२५० सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान् त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजा—स्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः ॥ ८ ॥

२५१ कृणोत धूमं वृषणं सखायो ऽस्त्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥

२५२ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ सीदा—था नो वर्धया गिरः ॥ १० ॥

अर्थ- [२४९] (**देवासः ईड्यं विश्वविदं**) देवताओंने पूजनीय और सर्वज्ञ तथा (**अध्वरेषु हव्यवाहं यं अदधुः**) हविको हवन करनेवाले जिस अग्निको यज्ञोंमें नियुक्त किया (**जातः अग्निः चेकितानः वाजी विप्रः**) वह अग्नि उत्पन्न होते ही अपने कर्मोंमें विज्ञ बलवान् और विद्वान् होता है, इसी कारणसे (**कविशस्तः सुदानुः रोचते**) मेधावीजनोंसे प्रशंसित और उत्तम दाने देनेवाला वह अग्नि शोभित होता है ॥७॥

[२५०] हे (**होतः अग्ने**) होम निष्पादक अग्ने ! तू (**स्वे लोके उ सीद**) अपने स्थानपर विराजमान हो । तू (**चिकित्वान् यज्ञं सुकृतस्य योनौ सादय**) सबको जाननेवाला है, यज्ञके कर्ताको पुण्यलोकमें स्थापित कर । (**देवावीः हविषा देवान् यजासि**) देवोंका रक्षक तू हवि द्वारा देवोंकी पूजा कर (**यजमाने बृहत् वयः धाः**) और यजमानको बहुत अन्न प्रदान कर ॥८॥

[२५१] हे (सखायः) मित्रो ! (**धूमं वृषणं कृणोत**) धूमयुक्त बलवान्को उत्पन्न करो । फिरसे (**अस्त्रेधन्तः वाजं अच्छ इतन**) सबल होकरके युद्धके सम्मुख उपस्थित होओ । (**अयं अग्निः सुवीरः पृतनाषाट्**) यह अग्नि शोभन सामर्थ्यसे युक्त और शत्रु सेनाका विजेता है (**येन देवासः दस्यून् असहन्त**) जिसकी सहायता प्राप्त करके देवताओंने असुरोंको परास्त किया ॥९॥

[२५२] हे (**अग्ने**) अग्ने । (**ऋत्वियः अयं ते योनिः**) सब ऋतुओंमें पैदा होनेवाली यह अरणि तेरा उत्पत्ति स्थान है । (**यतः जातः अरोचथाः**) जिससे उत्पन्न हो तू शोभाको प्राप्त करता है । (**तं जानन् आसीद**) उस अरणिको जानकर उसमें बैठ जा और (**अथ नः गिरः वर्धय**) उसके अनन्तर हमारी स्तुतिको बढा ॥१०॥

भावार्थ- यह अग्रणी उत्पन्न होते ही अपने उत्तरदायित्वोंको जानकर उन्हें सम्हाल लेता है, इसीलिए वह ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित होता है । ऐसे सर्वज्ञ और पूजनीय अग्निको यज्ञोंमें नियुक्त किया जाता है ॥७॥

हे अग्ने ! तू अपने स्थान पर विराजमान हो और यज्ञ करनेवालोंको पुण्य स्थानपर बिठला । देवोंका रक्षक तू देवोंकी पूजा कर और यजमानको बहुत अन्न दे ॥८॥

हे मित्रो ! प्रथम तुम धूमयुक्त बलवान् अग्निको उत्पन्न करो, फिर उसके बलसे युक्त होकर युद्ध करो, वह अग्नि बलशाली है, उसीकी सहायतासे देवताओंने असुरोंको परास्त किया ॥९॥

अग्निकी उत्पत्ति स्थान अरणि सभी ऋतुओंमें अनुकूल होता है, इससे उत्पन्न होकर अग्नि शोभाको प्राप्त करता है ॥१०॥

२५३ तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद् विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि ॥ ११ ॥

२५४ सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥

२५५ अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥ १३ ॥

२५६ प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥ १४ ॥

अर्थ- [२५३] (गर्भः तनूनपात् उच्यते) गर्भस्थ अग्निको 'तनूनपात्' कहते हैं (यत् आसुरः विजायते नाराशंसः भवति) जिस समय यह बलशाली होता है तब वह नाराशंस या मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय होता है। (यत् मातरि अमिमीत, मातरिश्वा) जब अन्तरिक्षमें अपने तेजको फैलाता है तब 'मातरिश्वा' होता है। इसके (सरीमणि वातस्य सर्गः अभवत्) इसके शीघ्र चलने पर वायुकी उत्पत्ति होती है ॥११॥

[२५४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कविः सुनिर्मथा निर्मथिताः सुनिधा निहितः) मेधावी शोभन मथनीके द्वारा मंथनसे उत्पन्न हुआ हुआ लोगों द्वारा सर्वोत्तम स्थानपर स्थापित किया गया है। हमारे (सु अध्वरः कृणु) हिंसारहित श्रेष्ठ यज्ञको उत्तम बना। तथा (देवयते देवान् यज) देवाभिलाषी मनुष्योंके लिये देवोंकी पुजा कर ॥१२॥

[२५५] (मर्त्यासः अमृतं अस्रेमाणं) मनुष्योंने अमर, क्षयरहित (वीलुजम्भं तरणिं अजीजनन्) दृढ दांतोंवाले पापतारक अग्निको उत्पन्न किया। उस समय जिस प्रकार (पुमांसं जातं स्वसारः दश अग्रुवः) मनुष्य अपने पुत्रके उत्पन्न होने पर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अग्निके उत्पन्न होनेपर भगिनी स्वरूप दसों अंगुलियाँ (समीचीः अभि सं रमन्ते) परस्पर मिलकर अत्यधिक प्रसन्न होकर शब्द करती हैं ॥१३॥

[२५६] (सनकात् सप्तहोता प्र अरोचत) प्राचीन अग्नि सात होताओंवाला होकर प्रदीप्त होता है। यह (यत् मातुः उपस्थे ऊधनि अशोचत् सुरणः) जब माता पृथ्वीकी गोदमें दुग्ध-स्थानके पास शोभायमान होता है, तब देखनेमें बहुत रमणीय लगता है। वह (दिवे दिवे न नि मिषति) प्रतिदिन अर्थात् कभी भी निद्रा नहीं लेता। (यत् असुरस्य जठरात् अजायत) क्योंकि वह बलवान् उदरसे उत्पन्न हुआ है ॥१४॥

भावार्थ- अरणिमें छिपा हुआ अग्नि 'तनूनपात्' कहलाता है, तथा वही बलशाली होकर 'नाराशंस' कहाता है जब वह अन्तरिक्षमें संचार करता है, तब वह 'मातरिश्वा' कहाता है, यही मातरिश्वा अग्नि अपनी गतिसे वायुको उत्पन्न करता है ॥११॥

हे अग्ने ! तू ज्ञानी उत्तम मथन द्वारा उत्पन्न हुआ हुआ सर्वश्रेष्ठ स्थानपर स्थापित है। अतः तू हमारे यज्ञोंको पूर्ण कर और देवत्व पानेकी इच्छा करनेवालोंको देवत्व प्रदान कर ॥१२॥

मनुष्योंने अमर, क्षयरहित दृढ ज्वालाओंवाले अग्निको उत्पन्न किया। उस समय दसों अंगुलियां उसी तरह प्रसन्न हुई, जिस प्रकार पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिता प्रसन्न होता है ॥१३॥

यह सनातन अग्नि सात होताओं द्वारा प्रदीप्त किया जाता है। जब वह पृथ्वीमें प्रज्वलित किया जाता है, उस समय वह बहुत सुन्दर लगता है। वह अग्रणी बलशालीके पेटसे उत्पन्न होता है, इसलिए वह हमेशा जाग्रत रहता है ॥१४॥

२५७ अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद् विदुः ।
द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥ १५ ॥
२५८ यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १६ ॥

[३०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२५९ इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनाना मिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १ ॥
२६० न ते दूरे परमा चिद् रजां स्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ २ ॥

अर्थ- [२५७] अग्नि (**मरुतां प्रयाः इव अभित्रायुधः**) मरुतोंकी सेनाके समान शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाले (**ब्रह्मणः प्रथमजाः कुशिकासः विश्वं विदुः इत्**) ब्रह्मासे प्रथम उत्पन्न कुशीकगोत्रवाले ऋषिगण विश्वको जानते हैं, वे अपने (**द्युम्नवत् ब्रह्म एरिरे**) तेजस्वी स्तोत्रोंसे अग्निकी स्तुति करते हैं । तथा (**एकएकः दमे अग्निं समीधिरे**) अकेले अकेले भी अपने अपने घरोंमें अग्निको प्रदीप्त करते हैं ॥१५॥

[२५८] हे (**होतः चिकित्वः**) यज्ञ सम्पन्न करनेवाले सर्वज्ञाता अग्ने ! (**अद्य प्रयति अस्मिन् यज्ञे त्वा अवृणीमहि**) आज चलनेवाले इस यज्ञमें हम तेरा वरण करते हैं (**यत् इह ध्रुवमया ध्रुवं उत अशमिष्ठाः**) इस कारणसे तू यहीं स्थिरतासे रह और सर्वत्र शान्ति स्थापित कर । हे (**विद्वान्**) सब कुछ जाननेवाले अग्ने ! (**सोमं प्रजानन् उपयाहि**) सोमको सिद्ध हुआ जानकर उसके समीप आ ॥१६॥

[३०]

[२५९] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**सोम्यासः सखायः**) सोमयज्ञ करनेवाले तेरे मित्र (**त्वा इच्छन्ति**) तेरी इच्छा करते हैं, तथा तेरे लिए (**सोमं सुन्वन्ति**) सोम तेय्यार करते हैं, और (**प्रयांसि दधति**) अन्न धारण करते हैं, (**जनानां अभिशस्ति सहन्ते**) शत्रुओंके आक्रमणको सहते हैं, अतः हे इन्द्र ! (**त्वत् प्रकेतः कश्चन**) तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है ? ॥१॥

१ **त्वत् प्रकेतः कः चन-** हे इन्द्र ! तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है ?

[२६०] हे (**हरि-वः**) घोडोंवाले इन्द्र ! (**परमा चित् रजांसि**) दूरके लोक भी (**ते दूरे न**) तेरे लिए दूर नहीं हैं, क्योंकि तू (**हरिभ्यां तु प्रयाहि**) घोडोंसे सभी जगह जाता है, (**स्थिराय वृष्णे**) युद्धमें स्थिर रहनेवाले बलवान् ऐसे तेरे लिए (**इमा सवना कृता**) ये यज्ञ किये गए हैं, जहां पर (**अग्नौ समिधाने**) अग्निके प्रदीप्त होनेपर (**ग्रावाणः युक्ताः**) सोम पीसनेके पत्थर तैय्यार रहते हैं ॥२॥

१ **परमाचित् रजांसि दूरे न-** दूरके लोक भी इस इन्द्रके लिए दूर नहीं हैं ।

भावार्थ- ब्रह्मासे पहले उत्पन्न हुए हुए तथा शत्रुओंसे युद्ध करनेवाले कुशिक ऋषि अपने अपने घरोंमें अग्निको प्रज्ज्वलित कर उसकी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥१५॥

हे सर्वज्ञ अग्ने ! इस यज्ञमें हम तेरा वरण करते हैं, अतः तू यहीं स्थिर होकर शान्ति स्थापित कर और सोमका पान कर ॥१६॥

यह इन्द्र ही सबसे अधिक बुद्धिमान् है, इसलिए सब इसीकी इच्छा करते हैं, और इसीके लिए सोम तैय्यार करते हैं और अन्न देते हैं । तब तेरे द्वारा दी गई शक्तिसे शत्रुओंके आक्रमणका मुकाबला करते हैं ॥१॥

यह इन्द्र हमेशा वेगवान् घोडोंसे सर्वत्र जाता है, इसलिए दूरके लोक भी इसके लिए नजदीक ही हैं । युद्धमें स्थिर रहनेवाले इसके लिए यज्ञ किए जाते हैं । अग्निके प्रदीप्त होनेपर इसके लिए सोमकी आहुति दी जाती है ॥२॥

२६१ इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥ ३ ॥
२६२ त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युता-न्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासो ऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥
२६३ उताभये पुरुहूत श्रवोभि-रेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत् संगृभ्णा मघवन् काशिरित् ते ॥ ५ ॥
२६४ प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ ६ ॥

अर्थ- [२६१] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सु-शिप्रः) उत्तम शिरस्त्राणवाले (मघवा) धनवान् (तरु-त्रः) शत्रुओंको त्रास देनेवाले (महाव्रातः) महान् व्रतवाले (तुविकूर्मिः) बहुत कर्म करनेवाले (ऋघावान्) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले (उग्रः) वीर तूने (बाधितः) शत्रुओंद्वारा पीडित होने पर (मर्त्येषु) शत्रुओंमें (यत् धाः) जो पराक्रम दिखाया था, (ते) तेरे वे (वीर्याणि) पराक्रम (क्व) कहां गए ? ॥३॥

१ तरु-त्रः- त्वरासे रक्षण करनेवाला, शत्रुओंको त्रास देनेवाला ।

[२६२] हे इन्द्र ! (त्वं अच्युतानि च्यावयन् स्म) तू अपने स्थानसे न हिलनेवाले शत्रुओंको हिला देता है तथा (वृत्रा जिघ्नमानः) वृत्रोंको मारते हुए (एकः चरसि) तू अकेला ही सब जगह विचरता है। (द्यावापृथिवी पर्वतासः) द्युलोक, पृथिवीलोक और पर्वत (तव व्रताय) तेरे व्रतके लिए (निमिताः इव अनु तस्थुः) निश्चलके समान अनुकूल रहते हैं ॥४॥

१ अच्युतानि च्यावयन् स्म- यह इन्द्र अपने स्थानसे न हिलनेवालोंको भी हिला देता है ।
२ द्यावापृथिवी पर्वतासः तव व्रताय निमिताः इव तस्थुः- द्यु, पृथ्वी और पर्वत इस इन्द्रके नियममें निश्चल रहते हैं ।

[२६३] हे (पुरुहूत मघवन् इन्द्र) बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (श्रवोभिः एकः) बलसे युक्त अकेले ही (वृत्र-हा सन्) वृत्रको मारनेवाले होकर तूने (अभये अवदः) जो अभयकारक बात कही, वह (दृळ्हं) सत्य है। (अपारे चित्) दूर होते हुए भी तूने (यत्) जो (इमे रोदसी संगृभ्णा) इन द्युलोक और पृथ्वीलोक पर अधिकार किया, वह (ते) तेरा पराक्रम (काशिः इत्) प्रसिद्ध ही है ॥५॥

[२६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरिभ्यां ते) दो घोडोंसे युक्त तेरा रथ (प्रवता सु प्र एतु) उत्तम मार्गसे आगे चले, तथा (ते वज्रः) तेरा वज्र (शत्रून् प्रमृणन्) शत्रुओंको मारता हुआ (प्र) आगे बढे । (प्रतीचः अनूचः पराचः जहि) तू सामनेसे आनेवाले, पीछेसे आनेवाले और दूरसे आनेवाले शत्रुओंको मार, (विश्वं सत्यं कृणुहि) और सबको सुखी कर, (विष्टं अस्तु) यह सामर्थ्य तुझमें प्रविष्ट हो ॥६॥

भावार्थ- ऐश्वर्यशाली, उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाला, शत्रुओंको कष्ट देनेवाला महान् कर्म करनेवाला यह इन्द्र शत्रुओंसे पीडित होनेपर पराक्रम दिखाता है। उसका वह पराक्रम कभी भी क्षीण या नष्ट नहीं होता ॥३॥

यह इन्द्र इतना वीर है कि यह बलशालीसे बलशाली वीरको भी अपने स्थानसे हिला देता है। वृत्रासुर आदि शत्रुओंको मारते हुए यह सर्वत्र अकेला ही निर्भय होकर विचरता है। सारे लोक इसके नियममें चलते हैं, कोई भी इसके नियमका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥४॥

यह इन्द्र जिसको अभयदान दे देता है, उसकी हर तरहसे रक्षा करता है, यह जो भी बात कहता है, सत्य ही कहता है। दूर रहते हुए भी यह द्यावापृथ्वीको आधार देता है, उन्हें रोके रहता है ॥५॥

हे इन्द्र ! घोडोंसे युक्त तेरा रथ उत्तम मार्गसे आगे चले। आगे, पीछे तथा दूरसे आनेवाले शत्रुओंको पीसता हुआ तेरा वज्र आगे बढे। शत्रुओंको मारकर तू सबको सुखी कर। तू हमेशा सामर्थ्यशाली बना रह ॥६॥

२६५ यस्मै धायुरदधा मर्त्याया—भक्तं चिद् भजते गेह्यं१ सः ।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७ ॥
२६६ सहदानुं पुरुहूत क्षियन्त—महस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारु—मपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८ ॥
२६७ नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्ष—मर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥ ९ ॥

अर्थ- [२६५] हे **(पुरुहूत इन्द्रः)** बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जाने योग्य इन्द्र ! **(धायुः)** ऐश्वर्यको धारण करनेवाला तू **(यस्मै मर्त्याय अदधाः)** जिस मनुष्यके लिए यह ऐश्वर्य देता है **(सः अभक्तं चित् गेह्यं भजते)** वह पहलेसे अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है । हे **(घृताची इन्द्र)** हवियोंको खानेवाले इन्द्र ! **(ते सुमतिः भद्रा)** तेरी बुद्धि कल्याण देनेवाली है, तथा **(रातिः सहस्र-दाना)** तेरा दान बहुत ऐश्वर्य देनेवाला है ॥७॥

१ **गेह्यं-** घरमें रहनेवाले धनके समान ।

२ **धायुः यस्मै मर्त्याय अदधाः स अभक्तं चित् गेह्यं भजते-** ऐश्वर्यको धारण करनेवाला तू जिस मनुष्यको ऐश्वर्य देता है, वह पहलेसे अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है ।

३ **ते सुमतिः भद्रा-** तेरी उत्तम बुद्धि कल्याण करनेवाली है ।

४ **रातिः सहस्र-दाना-** तेरा दान बहुत ऐश्वर्य देनेवाला है ।

[२६६] **(पुरुहूत इन्द्र)** हे बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जाने योग्य इन्द्र ! तू **(सह-दानुं क्षियन्तं)** दानवोंके साथ रहनेवाले **(कुणारुं)** गर्जना करनेवाले असुरको **(अ-हस्तं सं पिणक्)** बिना हाथवाला बनाकर पीस डाला, मार डाला । हे इन्द्र ! तूने ही **(वर्धमानं पियारुं वृत्रं)** बढनेवाले और हिंसा करनेवाले वृत्रको **(अ-पादं)** पैरोंसे रहित करके **(तवसा अभि जघन्थ)** बलपूर्वक मारा था ॥८॥

१ **कुणारुः-** शब्द करनेवाला, गर्जना करनेवाला "कुण शब्दने" ।

२ **पिणक्-** पीसना "पिष्लृ संचूर्णने"

[२६७] हे **(इन्द्र)** इन्द्र ! **(महीं अपारां)** बडी, विस्तृत **(सामनां इषिरां)** समानतावाली तथा, अन्न देनेवाली **(भूमिं)** पृथ्वीको तूने ही **(सदने नि ससत्थ)** अपने स्थान पर स्थिर किया । **(वृषभः)** उस बलवान् इन्द्रने **(अन्तरिक्षं द्यां अस्तभ्नात्)** अन्तरिक्ष और द्युलोकको स्थिर किया, हे इन्द्र ! **(त्वया प्रसूताः आपः)** तेरे द्वारा उत्पन्न किए गए जलप्रवाह **(इह अर्षन्तु)** यहां बहें ॥९॥

१ **सामना -**समान, जो ऊबड खाबड नहीं ।

२ **इषिरा-** चलनेवाली, "इष गतौ", अन्नवाली ।

३ **महीं अपारां सामनां इषिरां भूमिं सदने नि ससत्थ-** बडी, विस्तृत और समान तथा अन्न देनेवाली भूमिको इसी इन्द्रने स्थिर किया ।

भावार्थ- यह उत्तमसे उत्तम ऐश्वर्य धारण करता है, अतः जिस पर इसकी कृपा होती है, वह अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है । वह इसकी उत्तम बुद्धिके अनुसार चलकर कल्याण प्राप्त करता है । इसका दान अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥७॥

हे इन्द्र ! दानवोंके साथ रहनेवाले और गर्जना करनेवाले असुरको भी हाथसे रहित करके मार डाला, तूने ही हिंसा करनेवाले वृत्रको हाथ पैरसे रहित करके नष्ट कर दिया ॥८॥

यह विस्तृत, समान और अन्नवाली पृथ्वी पहले चलायमान थी । तब इन्द्रने ही उसे निश्चल किया और उसीने द्यु और अन्तरिक्ष को स्थिर किया और उसीने जलप्रवाह बहाये ॥९॥

२६८ अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥ १० ॥
२६९ एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥ ११ ॥
२७० दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वै- र्विमोचनं कृणुते तत् त्वस्य ॥ १२ ॥
२७१ दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तो- र्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागा- दिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥ १३ ॥

अर्थ- [२६८] हे इन्द्र ! (गोः व्रज) गायोंके बाडों पर अधिकार करनेवाला (अलातृणः वलः) कंजूस वलासुर (पुराहन्तोः भयमानः वि आर) पहले तेरे वज्रसे डरकर ही मर गया, बादमें (गाः निरजे) जलोंके बहनेके लिए (पथः सुगान् अकृणोत्) रास्तोंको सुगम बनाया । तब (वाणीः) स्तुतिके योग्य जलप्रवाह (धमन्तीः) शब्द करते हुए (पुरुहूतं प्र आवन्) बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाले इस इन्द्रकी ओर बहने लगे ॥१०॥

[२६९] (इन्द्रः) यह इन्द्र (एकः) अकेला ही (समीची, वसुमती) परस्पर अनुकूल रहनेवाली, धनवाली, (पृथिवीं उत द्यां द्वे) पृथिवी और द्युलोक दोनोंको (आ पप्रौ) अपने तेजसे भर देता है, हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (रथीः) उत्तम रथवाला तू (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षमें (इषः सयुजः वाजान्) वेगसे दौडनेवाले, साथ साथ अनुकूलतासे रहनेवाले घोडोंको (नः समीके अभि) हमारी तरफ प्रेरित कर ॥११॥

१ इन्द्रः एकः वसुमतीं पृथिवीं आ पप्रौ- इन्द्र अकेला ही धनसे भरी हुई पृथ्वीको अपने तेजसे भर देता है।

[२७०] (सूर्यः) सूर्य (हर्यश्वप्रसूताः) इन्द्रके द्वारा उत्पन्न की गई (प्रदिष्टाः) तथा निश्चित की गई (दिशः) दिशाओंका (न मिनाति) उल्लंधन नहीं करता, अपितु (दिवेदिवे) प्रतिदिन उन्हींसे जाता है । वह (यत्) जब (अश्वै, अध्वनः आनट्) घोडोंसे मार्ग पर जाता है, (आत् इत्) तभी (विमोचनं कृणुते) अपने घोडोंको खोल देता है, (अस्य तत् तु) इसका वह काम प्रसिद्ध ही है ।.१२॥

१ सूर्यः हर्यश्वप्रसूताः प्रदिष्टाः दिशः न मिनाति- यह सूर्य भी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न व निर्दिष्ट की गई दिशाओंका उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् सदा उन्हीं पर चलता है ।

[२७१] (विश्वे) सभी मनुष्य (अक्तोः विवस्वत्याः उषसः) रात्रीको समाप्त करनेवाली उषाके (यामन्) उदय होनेपर उस (महि चित्रं अनीकं दिदृक्षन्तः) महान् और अद्भुत [सूर्य के] तेजको देखनेकी इच्छा करते हैं । (यत् आगात्) जब उषा आ जाती है, तब मनुष्य (इन्द्रस्य सुकृता महिना पुरूणि कर्म) इन्द्रके कल्याणकारी, बडे बडे बहुतसे कर्मोंको (जानन्ति) जानते हैं ॥१३॥

१ उषसः यामन् महि चित्रं अनीकं दिदृक्षन्तः- उषाके उदय होनेपर लोग महान् और अद्भुत सूर्यके तेजको देखनेकी इच्छा करते हैं ।

भावार्थ- यह इन्द्र इतना भयंकर है कि असुरगण इसके वज्रसे डरकर पहले ही मर जाते हैं, अर्थात् उन्हें मारनेकी भी जरूरत नहीं रहती । इन असुरोंको मारकर इन्द्र जलोंको बहनेके लिए मार्ग बनाता है । तब जलप्रवाह बहने लगते हैं ॥१०॥

यह इन्द्र अकेला ही धनसे भरपूर द्यु और पृथ्वीको अपने तेजसे भर देता है । हे इन्द्र ! तू अपने घोडोंको हमारी तरफ प्रेरित कर ॥११॥

यह सूर्य इन्द्र के द्वारा उत्पन्न एवं निर्दिष्ट किए गए मार्ग पर ही सदा चलता है, कभी भी उन मार्गोंका उल्लंघन नहीं करता। जब सूर्य इन्द्र के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना शुरु करता है, तब वह अपने घोडोंको खोल देता है अर्थात् अपनी किरणोंको चारों ओर फैलाना शुरु करता है ॥१२॥

२७२ महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत् सीमिन्द्रो अदधाद् भोजनाय ॥ १४ ॥
२७३ इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन् यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥ १५ ॥
२७४ सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद् वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व ॥ १६ ॥

अर्थ- [२७२] (इन्द्रः) इन्द्रने (वक्षणासु) गायोंमें (महि ज्योतिः निहितं) महान् तेजको रखा, (आमा गौः पक्वं बिभ्रती चरति) सद्यःप्रसूता गाय पके हुए दूधको धारण करती हुई विचरती है, (उस्त्रियायां यत् स्वाद्म संभृतं) गायोंमें जो कुछ स्वादिष्ट दूध आदि है, (सीं विश्वं भोजनाय अदधात्) वह सब इन्द्रने भोजनके लिए रखा है ॥१४॥

१ आमा गौ पक्वं बिभ्रती चरति- प्रसूत गौ पके दूधको धारण करके विचरती है ।

२ उस्त्रियायां यत् स्वाद्मं संभृतं सीं विश्वं भोजनाय अदधात्- गौमें जो मीठा दूध है वह सब भोजनके लिये है ।

[२७३] हे (इन्द्र दृह्य) इन्द्र ! तू दृढ हो, क्योंकि (यामशोकाः अभूवन्) राक्षस उत्पन्न हो गए हैं । तू (यज्ञाय गृणते सखिभ्यः शिक्ष) यज्ञ करनेवाले और स्तुति करनेवाले मित्रोंको भरपूर धन दे । (दुःमायवः दुरेवाः) शस्त्रोंको हमपर फेंकनेवाले, बुरे मार्गसे जानेवाले, (निषंगिणः रिपवः मर्त्यासः हन्त्वासः) बाण आदि शस्त्र अपने पास रखनेवाले शत्रु मनुष्य तेरे द्वारा मारने योग्य हैं ॥१५॥

१ दुर्मायवः दुरेवाः निषंगिणः रिपवः हन्त्वासः- दुष्ट कपटी दुर्जन बाण धारण करके जो शत्रु आते हैं वे मारने योग्य हैं ।

[२७४] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (अवमैः अमित्रैः) समीप स्थित शत्रुओं द्वारा छोडे गए शस्त्रका (घोषः सं शृण्वे) शब्द सुनाई देता है, उस (तपिष्ठां अशनिं) तपानेवाले वज्रको (एषु जहि) उन्हीं शत्रुओंपर मार, (ईं अधस्तात् वृश्च) इन शत्रुओंको जडसे ही काट डाल, (वि रुज) दुःखी कर (सहस्व) इन्हें जीत (रक्षः जहि) राक्षसोंको मार (रन्धयस्व) उनकी हिंसा कर ॥१६॥

भावार्थ- रात्रीके समाप्त होनेपर जब उषा उदय होती है, तब सभी उस महान् और अद्भुत सूर्यके तेजको देखना चाहते हैं । जब उषाका उदय हो जाता है, तब यह इन्द्र अद्भुत कर्म करता है और तब इसके अद्भुत कर्मोको लोग आश्चर्यसे देखते हैं ॥१३॥

इन्द्रने गायमें उत्तम तेज स्थापित किया, गायके दूधमें उत्तम तेज होता है । यह एक पक्व अन्न ही है । गायका दूध एक उत्तम पौष्टिक अन्न है । इसमें वे सभी गुण और पौष्टिकता मौजूद है, जो अन्न या भोजनमें होते हैं, इसलिए इन्द्रने इस दूधमें सब तरहका भोजन स्थापित किया है ॥१४॥

सज्जनोंपर शस्त्र फेंकनेवाले, बुरे मार्गसे जानेवाले दुष्ट, शस्त्र अपने पास रखनेवाले हिंसक, शत्रु मनुष्य मारने योग्य हैं। जब ऐसे शत्रु उत्पन्न हो जायें, तब सज्जनोंकी हर तरहसे रक्षा करनी चाहिए ॥१५॥

हे इन्द्र ! पासमें ही शत्रुओंकी गर्जना सुनाई देती है, अतः तू उन्हें मार, पीस और उनका विनाश कर ॥१६॥

२७५ उद् वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ १७ ॥
२७६ स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामाऽस्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥ १८ ॥
२७७ आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥ १९ ॥
२७८ इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ २० ॥

अर्थ- [२७५] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**रक्षः सहमूलं उद् वृह**) राक्षसोंको जडसहित उखाड डाल, (**मध्यं वृश्च**) उनके मध्यभागको काट डाल (**अग्रं प्रति शृणीही**) उनके आगेके भागको भी काट डाल, (**सललूकं कीवतः आ चकर्थ**) लोभी मनुष्यको दूर कर । (**ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य**) ज्ञानसे द्वेष करनेवाले पर इस दुःख देनेवाले शस्त्रको फेंक ॥१७॥

१ **सललूकं-** लोभी 'सललूकं संलुब्धं भवति पापकमिति नैरुक्ताः (नि. ६/३)
२ **रक्षः सहमूलं उत् वृह-** राक्षसोंको जडके साथ नष्ट कर ।
३ **ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य-** ज्ञानके द्वेषी पर दुःख देनेवाले शस्त्र फेंक ।

[२७६] हे (**प्रणेतः इन्द्र**) उत्तम नेता इन्द्र ! (**स्वस्तये**) कल्याणके लिए हमें (**वाजिभिः सं**) घोडोंसे युक्त कर, (**यत् आसत्सि**) जब तू हमारे पास बैठता है, तब (**महीः इषः**) हम बहुत अन्नोंके तथा (**बृहत् रायः**) बहुतसे धनोंके (**वन्तारः स्याम**) स्वामी होते हैं, (**अस्मे प्रजावान् भगः अस्तु**) हमारे लिए प्रजाओंसे युक्त ऐश्वर्य हो ॥१८॥

[२७७] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**द्युमन्तं भगं नः आ भर**) तेजस्वी ऐश्वर्यको हमें भरपूर दे, (**देष्णस्य ते**) दान देनेवाले तेरे (**प्ररेके धीमहि**) अत्यधिक दानको हम धारण करें । (**अस्मे कामः**) हमारी अभिलाषा (**ऊर्वः इव पप्रथे**) वडवानलके समान बहुत बढ गई है, हे (**वसूनां वसुपते**) धनपतियोंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्र ! (**तं आ पृण**) उस हमारी अभिलाषाको पूर्ण कर ॥१९॥

[२७८] हे इन्द्र ! (**इमं कामं मन्दय**) हमारी इस अभिलाषाको पूर्ण कर तथा हमें (**गोभिः अश्वैः चन्द्रवता राधसा च पप्रथः**) गाय, घोडे और आनन्ददायक ऐश्वर्यसे बढा । (**स्वः यवः विप्रां कुशिकासः**) सुखको चाहनेवाले और बुद्धिमान् कुशिक ऋषि (**तुभ्यं इन्द्राय**) तुझ इन्द्रके लिए (**मतिभिः**) बुद्धिपूर्वक (**वाहः अक्रन्**) स्तोत्र बनाते हैं ॥२०॥

चन्द्र- आनन्ददायक "चदि आह्लादने"

भावार्थ- हे इन्द्र ! जो राक्षस हों उन्हें जड सहित विनष्ट कर दे, जो लोभी हों, उन्हें दूर कर और ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको शस्त्रसे नष्ट भ्रष्ट कर ॥१७॥

हे उत्तम रीतिसे आगे ले जानेवाले इन्द्र ! हमारा कल्याण करनेके लिए हमें घोडोंसे युक्त कर, और हम बहुत अन्न एवं धनके स्वामी हों ॥१८॥

हे इन्द्र ! हमें तेजस्वी ऐश्वर्य भरपूर दे । तेरे धनको हम प्रसन्नतासे धारण करें । हमारी जो बढती हुई कामनायें हैं, उन्हें तू पूरा कर ॥१९॥

हे इन्द्र ! हमारी इस कामनाको पूरा कर और हमें आनन्ददायक ऐश्वर्यसे बढा । सुखको चाहनेवाले बुद्धिमान् जन तेरे लिए बुद्धिपूर्वक स्तोत्रोंकी रचना करते हैं ॥२०॥

२७९ आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ २१ ॥

२८० शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

[३१]

[ऋषिः- कुशिक ऐषीरथिः, गाथिनो विश्वामित्रो वा । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८१ शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन् त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १ ॥

अर्थ- [२७९] हे (गो-पते) गायोंके पालनेवाले इन्द्र ! (गो-त्रा) गौओंका रक्षक होकर तू (नः गाः दर्दृहि) हमें गायें दे, (सनयः वाजाः अस्मभ्यं यन्तु) खाने योग्य अन्न हमें प्राप्त हों, (वृषभ) हे बलवान् इन्द्र ! तू (दिवक्षा सत्यशुष्मः असि) द्युलोकको व्यापनेवाला और यथार्थ बलवाला है, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गो-दाः) ज्ञानको देनेवाला तू (अस्मभ्यं सु बोधि) हमें उत्तम ज्ञान दे ॥२१॥

[२८०] (अस्मन् वाजसातौ भरे) इस संग्रामके शुरु होनेपर हम (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (शुनं) सुखदायक, (नृतमं मघवानं) सर्वोत्तम नेता, ऐश्वर्यवान् (शृण्वन्तं) प्रार्थनाओंको सुननेवाले, (उग्रं) वीर (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले और (धनानां संजितं इन्द्रं हुवेम) धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको बुलाते हैं ॥२२॥

[३१]

[२८१] (शासद् विद्वान् वन्हिः) शास्त्रोंको जाननेवाला विद्वान् पिता (ऋतस्य दीधिति सपर्यन्) वीर्यको धारण करनेवाले जामाताका सत्कार करता हुआ (दुहितुः नप्त्यं गात्) अपनी लडकीके लडकेको स्वीकार करता है, (यत्र) जब (पिता दुहितुः सेकं ऋंजन्) पिता पुत्रीको वीर्य धारण करनेके लिए समर्थ बना देता है अर्थात् विवाह कर देता है, तब (शग्म्येन मनसा सं दधन्वे) सुखकारी मनसे शान्तिको धारण करता है ॥१॥

१ वन्हिः- पुत्रहीन पिता जब पुत्रीको दूसरेके कुलमें भेजता है, तब वह "वन्हि" कहाता है ।

२ यत्र पिता दुहितुः सेकं ऋञ्जन्, शग्म्येन मनसा सं दधन्वे- जब पिता पुत्रीको वीर्य धारण करनेके लिए समर्थ बना देता है, अर्थात् उसे बडी बनाकर उसका विवाह कर देता है, तब वह अपने मनमें शान्ति धारण करता है ।

भावार्थ- हे गायोंके पालक इन्द्र ! गौओंका रक्षक होकर तू हमें गायें दे । खाने योग्य अन्न हमें मिलें । तू द्युलोकको व्यापनेवाला और यथार्थ बलवाला है । ज्ञानको देनेवाला तू हमें उत्तम ज्ञान दे ॥२१॥

युद्धके शुरु होने पर अपने संरक्षणके लिए हम सुखदायक, सर्वोत्तम नेता, ऐश्वर्यवान्, वीर और युद्धोंमें शत्रुओंको मार कर शत्रुओंको जीतनेवाले इन्द्रको बुलाते हैं ॥२२॥

शास्त्रोंको जाननेवाला विद्वान् पिता अपने वीर्यशाली दामादका सत्कार करके अपनी लडकीके पुत्रको अपने पुत्रके रूपमें स्वीकार करता है । जो अपनी पुत्रीके पुत्रको अपने पुत्रके रूपमें स्वीकार करता है उसे 'वह्नि' कहते हैं । जब ऐसा विद्वान् पिता अपनी पुत्रीको पाल पोसकर वीर्य धारण करनेके योग्य अर्थात् उसका विवाह कर देता था, तब उस पिताके मनको शान्ति होती थी ॥१॥

२८२ न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥

२८३ अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३ ॥

२८४ अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥

अर्थ- [२८२] (**तान्वः**) पुत्र (**जामये**) अपनी बहिनको (**रिक्थं न आरैक्**) पिताके धनका भाग नहीं देता, इसे (**सनितुः गर्भं निधानं चकार**) इसका उपभोग करनेवाले पतिके गर्भको धारण करने योग्य बना देता है, (**यदी**) यद्यपि (**मातरः**) मातापिता (**वन्हिं जनयन्त**) पुत्र और पुत्रीको उत्पन्न करते हैं, पर उनमेंसे (**अन्यः**) एक पुत्र (**सुकृतोःकर्ता**) उत्तम कर्मोंका करनेवाला होता है, (**अन्यः ऋन्धन्**) और दूसरी पुत्री अलंकारको धारण करनेवाली होती है ॥२॥

१ **तान्वः जामये रिक्थं न आरैक्-** पुत्र अपनी बहिनको पिताके धनका भाग नहीं देता ।

२ **अन्यः सुकृतोः कर्ता-** पुत्र कर्म करता है ।

३ **अन्यः ऋन्धन्-** दूसरी लडकी अलंकारोंसे सजती है ।

[२८३] हे इन्द्र ! (**अरुषस्य**) तेजस्वी तेरे (**प्रयक्षे**) यज्ञके लिए (**जुह्वा रेजमानः अग्निः**) ज्वालाओंसे कांपती हुई अग्निने (**महः पुत्रान् जज्ञे**) बहुतसे पुत्रों-किरणोंको उत्पन्न किया, (**एषां गर्भः महान्**) इन अग्निकी किरणोंका गर्भ महान् है, (**जातं मही**) इनकी उत्पत्ति भी महान् है, (**हर्यश्वस्य यज्ञैः प्रवृत् मही**) इन्द्रके यज्ञके कारण इनकी प्रवत्ति भी बडी है ॥३॥

[२८४] (**जैत्रीः**) जय प्राप्त करनेवाले मरुत (**स्पृधानं अभि असचन्त**) युद्ध करनेवाले इन्द्र के साथ आकर मिल गए, और उन्होंने (**तमसः**) अन्धकारसे (**महि ज्योतिः निरजानन्**) महान् ज्योतिको प्रकट किया, (**तं जानतीः उषासः उदायन्**) उसको जानती हुई उषायें भी उदयको प्राप्त हुई, उन सभी (**गवां**) किरणोंका (**इन्द्रः एकः पतिः अभवत्**) इन्द्र अकेला ही स्वामी हुआ ॥४॥

भावार्थ- पुत्र अपनी बहिनको पैतृकधनका भाग नहीं देता, अपितु वह अपनी बहिनको पालपोसकर बडा बना देता और उसका विवाह कर देता है । माता पिता यद्यपि पुत्र और पुत्रीको पैदा करते हैं, पर उनमें पुत्र ही सब पैतृक कर्म करनेका अधिकारी होता है और दूसरी अर्थात् पुत्री केवल अलंकारको धारण करनेवाली होती है, अर्थात् उसका अधिकार केवल इतना ही है कि पिता के घरमें सज सजाकर पुष्ट होती रहे, वह कोई भी पैतृक काम नहीं कर सकती ॥२॥

हे इन्द्र ! अत्यधिक तेजस्वी तेरे लिए यज्ञ करनेके समय ज्वालाओंसे कांपती हुई अग्नि बहुतसी किरणोंको उत्पन्न करती है । इन किरणोंके कारण अग्निका स्वरूप बहुत विशाल होता है, इन किरणोंकी उत्पत्ति भी महान् है । इस यज्ञके कारण इन किरणोंकी प्रवृत्ति भी बडी है ॥३॥

विजयशील मरुद्गण युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आकर मिल जाते हैं और अन्धकारमें सूर्यरूपी महान् ज्योतिको प्रकट करते हैं । जब यह ज्योति प्रकट होती है, तब उससे पूर्व उषायें प्रकट होती हैं । उस समय जितनी किरणें प्रकट होती हैं, उन सबका स्वामी इन्द्र है ॥४॥

२८५ वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन् प्राचाहिन्वन् मनसा सप्त विप्राः ।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥ ५ ॥
२८६ विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रे-र्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणा-मच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥
२८७ अगच्छदु विप्रतमः सखीय-न्नसूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्य-न्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥
२८८ सतःसतः प्रतिमानं पुरोभू-र्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन् त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥

अर्थ- [२८५] (धीराः विप्राः सप्त) धैर्यशाली, और बुद्धिमान् सात ऋषियोंने (विळौ सतीः अभि अतृन्दन्) पर्वतोंमें रखी गई गायोंको देख लिया, तथा (प्राचा मनसा अहिन्वन्) और आगे ले जानेवाली बुद्धिके द्वारा उन्हें बाहर निकाला और इस प्रकार (ऋतस्य पथ्यां विश्वां अविन्दन्) यज्ञके साधनभूत सारी गायोंको उन्होंने प्राप्त कर लिया, (ताः प्रजानन्) ऋषियोंके उन कर्मोंको जानता हुआ इन्द्र (नमसा विवेश) स्तोत्रके द्वारा सब जगह यज्ञमें प्रविष्ट हुआ ॥५॥

[२८६] (यदी) जब (सरमा) सरमाने (अद्रेः रुग्णं विदद्) पर्वतके टूटे हुए भागको जान लिया, तब इन्द्रने (पूर्व्यं) सबसे पहले (सध्र्-यक् महि पाथः कः) एक सीधा और बडा रास्ता बनाया, तब (सुपदी) उत्तम पैरोंवाली सरमा इन्द्रको (अग्रं नयत्) आगे ले गई, और (अक्षराणां रवं प्रथमा जानती) न नष्ट होनेवाली गायोंके शब्दको प्रथम सुनकर फिर उन गायोंको (गात्) प्राप्त किया ॥६॥

[२८७] (विप्रतमः सखीयन् अगच्छत्) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्र मित्रताकी इच्छा करते हुए [पर्वतके पास] गया, तब (अद्रिः सुकृते गर्भं असूदयत्) पर्वतने उत्तम कर्म करनेवाले इस इन्द्र के लिए अपने गर्भमें छिपी हुई गायों को प्रकट किया, (युवभिः मखस्यन्) मरुतोंकी सहायतासे युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले तथा (मर्यः) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रने (ससान) गायोंको प्राप्त किया । (अथ) इसके बाद (अंगिराः सद्यः अर्चन् अभवत्) अंगिराने शीघ्र ही इन्द्रकी पूजा की ॥७॥

[२८८] जो (सतः सतः प्रतिमानं) प्रत्येक उत्पन्न हुए पदार्थोंका प्रतिनिधि है, (पुरोभूः) आगे रहनेवाला नेता होकर जो (विश्वा जनिमा वेद) सब उत्पन्न हुए पदार्थोंको जानता है, तथा जो (शुष्णं हन्ति) शुष्णासुरको मारता है, ऐसा (पद-वीः गव्युः) पदों-मार्गोंको जाननेवाला, गायोंकी इच्छा करनेवाला (अर्चन्) पूजा जाता हुआ (सखा) मित्र (दिवः) द्युलोकसे आकर (नः सखीन्) हम मित्रोंको (अवद्यात् निः अमुंचत्) पापसे छुडावे ॥८॥

भावार्थ- धैर्य धारण करनेवाले आंख, कान, नाक और मुंह ये सात ऋषि हृदयगुहाके अन्दर अवस्थित आत्माको देखते है और बुद्धिके द्वारा आत्माका दर्शन होता है । इस प्रकार एक महान् यज्ञ शुरु होता है, ऋषियोंके इन कर्मोंको जानता हुआ इन्द्र या परमेश्वर इस यज्ञमें प्रविष्ट होता है ॥५॥

जब सरमाने पर्वतके टूटे हुए भागको जान लिया और वहां जाकर गायों को देखा, तब उसने इन गायोंका पता इन्द्रको बताया तब इन्द्र सरमाके पीछे पीछे गया, और उसने गायोंके शब्दोंको पहचानकर उन गायोंको प्राप्त किया ॥६॥

अत्यन्त श्रेष्ठ और ज्ञानी इन्द्रने मित्रताकी इच्छा करते हुए पर्वतकी उपासना की, तब पर्वतने प्रसन्न होकर उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रके लिए गुहाके अन्दर बन्द गायोंका पता बता दिया । तब मरुतोंकी सहायतासे इन्द्रने गायोंको प्राप्त किया और तब ऋषियोंने इन्द्रकी पूजा की ॥७॥

जो प्रत्येक उत्पन्न हुए पदार्थोंका प्रतिनिधि है, जो सबसे आगे रहनेवाला है, जो उत्पन्न हुए सब पदार्थोंको जानता है, जो असुरोंको मारनेवाला है, वह सबके द्वारा पूजा जाता है, ऐसा वह इन्द्र हमें पापोंसे छुडाये ॥८॥

२८९ नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥
२९० संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद् घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥ १० ॥
२९१ स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद् भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥
२९२ पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत् सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥ १२ ॥

अर्थ- [२८९] अंगिराऋषि **(गव्यता मनसा)** ज्ञानको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली बुद्धिसे और **(अर्कैः)** स्तोत्रोंसे **(अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः)** अमरताके लिये मार्ग बनाते हुए **(नि सेदुः)** यज्ञमें बैठे, **(इदं)** यह यज्ञ **(एषां)** इन अंगिराओंका **(भूरि सदनं)** बहुत बडा बैठनेका स्थान है, **(येन ऋतेन)** जिस यज्ञके द्वारा इन्होंने **(मासान् असिषासन्)** महीनोंको पानेकी इच्छा की ॥९॥

ऋतेन मासान् असिषासन्- यज्ञके साधनसे उन ऋषियोंने महिनोंको जाना । यज्ञ करते हुए उन्होंने जाना कि इतने महिने हुए ।

[२९०] (स्वं अभी संपश्यमानाः) अपनी गायोंको सामने देखकर तथा **(प्रत्नस्य रेतसः पयः दुधानाः)** प्राचीन कालसे वीर्य बढानेवाला दूध दुहते हुए अंगिरा ऋषि **(अमदन्)** बहुत प्रसन्न हुए, **(एषां घोषः)** इनकी हर्षयुक्त गर्जना **(रोदसी)** द्युलोक और पृथ्वीलोकमें **(अतपत्)** व्याप्त हो गई, इन्होंने **(जाते)** सबको उत्पन्न करनेवाले इन्द्रमें **(निष्ठां अदधुः)** श्रद्धा रखी और **(गोषु वीरान्)** गायोंकी रक्षा पर वीरोंको रखा ॥१०॥

गोषु वीरान् - गायोंकी सुरक्षाके कार्यमें वीरोंको रखा । वीर गो रक्षाका कार्य करें ।

[२९१] (सः जातेभिः वृत्रहा) वह इन्द्र मरुतोंकी सहायतासे वृत्रको मारता है, **(सः इत् उ)** उसने ही **(अर्कैः हव्यैः)** पूज्य हविके लिए **(उस्रियाः असृजत्)** गायोंको उत्पन्न किया, **(घृतवत् भरन्ती)** घी देनेवाले दूधको धारण करनेवाले **(उरूची)** अत्यन्त पूजनीय तथा **(जेन्या)** प्रशंसनीय **(गौः)** गायने **(अस्मै मधु स्वाद्म दुदुहे)** इसके लिए मधुर और स्वादिष्ट दूधको दुहा ॥११॥

१ **स अर्कैः हव्यैः उस्रियाः असृजत्-** उस इन्द्रने पूज्य हविर्द्रव्योंसे युक्त गौओंको उत्पन्न किया । गौमें दूध घी होता है वही हवन करने योग्य है ।

[२९२] (सुकृतः) उत्तम कर्म करनेवाले अंगिरसोंने **(पित्रे अस्मै)** पालन करनेवाले इस इन्द्रके लिए **(महित्विषीमत् सदनं चित्)** विस्तृत और प्रकाश युक्त स्थान **(चक्रुः)** बनाया, तथा वहां **(वि ख्यन्)** वे प्रार्थना करने लगे, **(आसीनाः)** उस यज्ञमें बैठे हुए अंगिरसोंने **(जनित्री)** सबको उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथिवीको **(स्कंभनेन विष्कभ्नन्तः)** आधार देकर थामते हुए **(रभसं)** वेगवान् इस इन्द्रको **(ऊर्ध्वं वि मिन्विन्)** द्युलोकमें स्थापित किया ॥१२॥

भावार्थ- यज्ञ ज्ञान प्राप्त करने और अमरता प्राप्त करनेके लिए एक उत्तम मार्ग है । यज्ञमें अनेक ऋषि आकर बैठते है । इसी यज्ञके द्वारा ऋषियोंने महीनोंको जाना ॥९॥

गायका दूध वीर्य बढानेवाला है । ऐसे वीर्य बढानेवाले दूधसे युक्त गायोंको देखकर ऋषि बहुत प्रसन्न होकर उसका दूध दुहने लगे । दूध दुहते समय इन ऋषियोंका गर्जन दोनों लोकोंमें सुनाई देता है ॥१०॥

वह इन्द्र मरुतोंकी सहायतासे वृत्रको मारता है । उसीने हवनके लिए घी और दूध देनेवाली गायोंको उत्पन्न किया । तब गायें इस इन्द्रके लिए मधुर और स्वादिष्ट दूध उत्पन्न करती हैं ॥११॥

ऋषियोंने इस पालन करनेवाले इन्द्रके लिए विस्तृत और प्रकाशयुक्त स्थानको निर्मित किया । तब उस उत्तम स्थानमें बैठकर ऋषियोंने यज्ञ किया और उस यज्ञके द्वारा इन्द्रको द्युलोकमें स्थापित किया ॥१२॥

२९३ मही यदि धिषणा शिश्नथे धात् सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीची—र्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥ १३ ॥
२९४ मह्या ते सख्यं वश्मि शक्ती—रा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरे—रस्माकं सु मघवन् बोधि गोपाः ॥ १४ ॥
२९५ महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वा—नादित् सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद् दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥ १५ ॥
२९६ अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद् विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रै—र्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥ १६ ॥

अर्थ- [२९३] (रोदस्योः शिश्नथे) द्यावापृथिवीको पृथक् पृथक् करनेके लिये (यदि) जब (महि धिषणा) विशाल स्तुति (सद्योवृधं विभ्वं) सदा वृद्धिको प्राप्त होनेवाले, सबको धारण करनेवाले इन्द्रको (धात्) प्राप्त हुई, तथा (यस्मिन्) जिस इन्द्रमें जब (अनवद्याः गिरः) प्रशंसनीय स्तुतियां (समीचीः) प्राप्त हुई, तब (विश्वाः तविषी) सारे बल (इन्द्राय अनुत्ताः) इन्द्रके वशमें हो गए ॥१३॥

[२९४] हे इन्द्र ! (ते सख्यं महि शक्तीः आ वश्मि) तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको पानेकी मैं इच्छा करता हूं, (वृत्रघ्ने) वृत्रको मारनेवाले तुझे (पूर्वीः नियुतः) बहुतसी घोडियां (आ यन्ति) प्राप्त होती हैं, (सूरेः) विद्वान् तेरे (स्तोत्रं) स्तोत्रको हम तेरे पास (अव आगन्म) पहुंचाते हैं, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (गो-पाः) विद्याका रक्षक होकर (अस्माकं बोधि) हमें ज्ञान दे ॥१४॥

गोपाः- गायोंका रक्षक, मातृभूमिका रक्षक, वाणीका रक्षक, विद्याका रक्षक

ते सख्यं महि शक्तीः आ वश्मि- हे इन्द्र ! तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको पानेकी मैं इच्छा करता हूँ।

[२९५] जिस (विविद्वान्) उत्तम विद्वान् इन्द्रने (सखिभ्यः) अपने मित्रोंके लिए (महि क्षेत्रं पुरुः चन्द्रं) विस्तृत भूमि और चमकनेवाले धनको दिया, (आत् इत्) उसके बाद (चरथं सं ऐरत्) चलनेवाली गायोंको दिया, उस (दीद्यानः इन्द्रः) तेजस्वी इन्द्रने (नृभिः साकं) मरुतोंकी सहायतासे (सूर्यं, उषसं, अग्निं) सूर्य, ऊषा अग्निको तथा (गातुं) उनके जानेके लिए मार्गको (अजनत्) बनाया ॥१५॥

विविद्वान् सखिभ्यः महि क्षेत्रं पुरुः चन्द्रं- उत्तम विद्वान् अपने मित्रोंके लिए विस्तृत भूमि और चमकनेवाले धन देता है।

[२९६] (दमूनाः एषः) शत्रुओंका दमन करनेवाले इन्द्रने (विभ्वः सध्रीचीः विश्वशचन्द्राः) व्याप्त, इकट्ठे होकर रहनेवाले, और सबको आनन्द देनेवाले (अपः असृजत्) जलोंको उत्पन्न किया। वे (धनुत्रीः) अन्न उत्पन्न करनेवाले जलप्रवाह (कविभिः पवित्रैः पुनानाः मध्वः) ज्ञानियों द्वारा पवित्र [चलनी] से शुद्ध किए गए मीठे सोमरसोंको (द्युभिः अक्तुभिः) दिन रात (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं ॥१६॥

धनुत्रीः- अन्न उत्पन्न करनेवाले जल प्रवाह "धन धान्ये"

हिन्वन्ति- प्रेरित करते हैं, "हि गतौ"

भावार्थ- ऋषियोंने जब इन्द्रके लिए उत्तम उत्तम स्तुतियां कीं, तब वे स्तुतियां इन्द्रसे जाकर संयुक्त हुई और सब सारे बल इन्द्रके वशमें हो गए ॥१३॥

हे इन्द्र ! तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको मैं प्राप्त करना चाहता हूं। तेरी सब ऋषि स्तुति करते हैं। तू विद्याका रक्षक होकर हमें ज्ञान दे ॥१४॥

विद्वान् इन्द्र अपने मित्रके लिए विस्तृत भूमि और तेजस्वी धन देता है, साथ ही वह गायोंको भी देता है। वह मरुतोंकी सहायतासे सूर्य, उषा, अग्नि आदि देवोंके लिए जानेका मार्ग बनाता है ॥१५॥

शत्रुओंके नाशक इन्द्रने इकट्ठे होकर बहनेवाले और सबको आनन्द देनेवाले जलोंको उत्पन्न किया। वे जलप्रवाह पवित्र किए जाकर सोमरसोंमें मिलाए जाते हैं। तब सोमरस पीनेके लायक होते हैं ॥१६॥

२९७ अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत् ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥ १७ ॥

२९८ पतिर्भव वृत्रहन् स्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥ १८ ॥

२९९ तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन् नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन् त्सातये धाः ॥ १९ ॥

अर्थ- [२९७] हे इन्द्र ! **(यत् ते महिमानं)** जिस तेरे बलको **(ऋजिप्याः काम्याः सखायः)** सरल मार्गसे आगे बढनेवाले, सुन्दर, मित्र मरुत **(वृजध्यै परि)** शत्रुओंको मारनेके लिए प्राप्त करते हैं, उस **(सूर्यस्य)** सबको प्रेरणा देनेवाले तेरी **(मंहना)** महिमाके कारण ही **(वसुधिती यजत्रे उभे कृष्णे)** धन धारण करनेवाले, पूजनीय दोनों दिन रात **(अनु जिहाते)** एक दूसरे के पीछे चलते हैं ॥१७॥

१ **ऋजि+प्या** - सरल मार्गसे आगे बढनेवाले **"ओप्यायी वृद्धौ"**

२ **जिहाते** - जाना, **"ओहाङ्गतौ"**

३ **ते महिमानं ऋजिप्याः सखायः वृजध्यै परि** - इस इन्द्रके बलको सरल मार्गसे जानेवाले मित्र ही प्राप्त कर सकते हैं ।

[२९८] हे इन्द्र ! **(विश्वायुः वृषभः वयोधाः)** अविनाशी, बलवान्, अन्नको धारण करनेवाला तू हमारी **(सूनृतानां गिरां पतिः भव)** सत्य तथा आनन्ददायक वाणियोंका स्वामी हो । **(महान्)** महान् तू **(सरण्यन्)** यज्ञकी ओर जाते हुए **(महीभिः शिवेभिः ऊतिभिः)** महान् और कल्याणकारी संरक्षणोंसे तथा **(सख्येभिः)** मित्रताके भावोंसे युक्त होकर **(नः आ गहि)** हमारी ओर आ ॥१८॥

१ **विश्वायुः वृषभः वयोधाः सूनृतानां गिरां पतिः भव-** तू पूर्णायु बलवान् और अन्नका धारण करनेवाला हो और सच्चा भाषण करनेवाला हो ।

२ **सरण्यन् विश्वेभिः ऊतिभिः नः आ गहि-** आगे बढता हुआ संपूर्ण संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आ । हमारा पूर्ण रक्षण कर ।

[२९९] हे इन्द्र ! मैं **(अंगिरस्-वत्)** अंगिराके समान **(तं नमसा सपर्यन्)** उस तेरी नमनसे पूजा करता हूँ, **(पुराजां सन्यसे)** अत्यन्त प्राचीन तुझे प्राप्त करनेके लिए **(नव्यं कृणोमि)** नये नये स्तोत्र बनाता हूं, तू **(अदेवीः बहुलाः द्रुहः वि याहि)** दिव्य गुणोंसे रहित बहुतसे शत्रुओंको हमसे दूर कर, तथा हे **(मघवन्)** इन्द्र ! अपने **(स्वः)** धनको **(नः सातये धाः)** हमारे उपभोगके लिए दे ॥१९॥

१ **अदेवीः बहुलाः द्रुहः वि याहि-** दिव्य गुणोंसे रहित बहुत शत्रुओंको दूर कर ।

२ **स्वः नः सातये धाः-** धन हमारे उपभोगके लिये दे ।

भावार्थ- सरल मार्गसे जानेवाले तथा सुन्दर और मित्रके समान व्यवहार करनेवाले ही इन्द्रसे बल प्राप्त करते हैं और उसका उपयोग शत्रुनाशके लिए करते हैं ॥१७॥

मनुष्य ऐसी ही वाणियोंका उपयोग करे कि जो अविनाशी, बलवान्, अन्न देनेवाली, सत्य और आनन्ददायक हो । सब मनुष्य परस्पर महान् और कल्याणकारी संरक्षणोंसे तथा मित्रताके भावोंसे युक्त होकर ही व्यवहार करें ॥१८॥

हे इन्द्र ! हम अत्यन्त सनातन तुझे प्राप्त करनेके लिए तेरी हर प्रकारसे स्तुति करते हैं । तू भी हम पर कृपा करके उत्तम गुणोंसे रहित लोगोंको हमसे दूर कर और धनको हमारे उपभोगके लिए दे ॥१९॥

३०० मिहः पावकाः प्रतता अभूवन् स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥ २० ॥
३०१ अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ २१ ॥
३०२ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

अर्थ- [३००] हे इन्द्र ! (**पावकाः मिहः प्रतता अभूवन्**) पवित्र करनेवाले तथा सींचनेके साधन जल सब जगह फैल गए हैं, (**नः**) हमें (**आसां पारं स्वस्ति**) इनके पार कल्याण पूर्वक पहुंचा और (**पिपृहि**) हमारा पालन कर । (**रथिरः त्वं**) रथवाला तू (**रिषः नः पाहि**) हिंसकोंसे हमारी रक्षा कर, तथा (**नः**) हमें (**मक्षूमक्षू**) बहुत शीघ्र ही (**गोजितः कृणुहि**) गायोंको जीतनेवाला बना ॥२०॥

१ **रिषः नः पाहि-** शत्रुओंसे हमारा रक्षण कर ।

२ **नः गोजितः कृणुहि-** हमें गायोंको जीत कर प्राप्त करनेवाला कर ।

[३०१] (**वृत्रहा गोपतिः**) वृत्रको मारनेवाला तथा गो-इन्द्रियोंका स्वामी इन्द्र (**गाः अदेदिष्ट**) हमें भी इन्द्रियोंकी शक्ति देवे, तथा (**अन्तः**) अन्दर रहनेवाले सारे (कृष्णान्) शत्रुओंको अपने (**अरुषैः धामभिः गात्**) चमकनेवाले तेजोंसे नष्ट कर दे, तथा (**ऋतेन सूनृता दिशमानः**) ऋतसे हमारी वाणियोंको प्रेरित करता हुआ (**स्वाः विश्वाः दुरः अप अवृणोत्**) हमारे सारे दुर्गुणोंको दूर करे ॥२१॥

१ **गो-** गौ, वाणी, भूमि ।

२ **अन्तः कृष्णान् अरुषैः धामभिः गात्-** आन्तरिक शत्रुओंको तेजस्वी स्थानोंसे दूर कर ।

३ **ऋतेन दिशमानः स्वाः विश्वाः दूरः अप अवृणोत्-** सत्यसे प्रेरित होकर अपने सब दोष दूर कर ।

[३०२] हम (**अस्मिन् भरे वाजसातौ**) इस भरे हुए युद्धमें (**शुनं नृतमं शृण्वन्तं**) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले, (**उग्रं**) वीर (**समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं**) युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले तथा (**धनानां सं जितं**) धनोंको जीतनेवाले (**मघवानं इन्द्रं**) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (**ऊतये**) अपने संरक्षणके लिए (**हुवेम**) बुलाते हैं ॥२२॥

१ **अस्मिन् भरे नृतमं उग्रं इन्द्रं ऊतये हुवेम-** इस युद्धमें उत्तम नेता उग्रवीर इन्द्रको अपने संरक्षणके लिये बुलाते हैं ।

भावार्थ- पवित्र करनेवाले तथा सींचनेके साधन जलप्रवाहोंकी व्यवस्था सर्वत्र हो । इन जल प्रवाहोंके द्वारा हम दुःखोंसे पार उतर जाएं । हमारा रीतिसे पालन हो । हे उत्तम रथवाले इन्द्र ! तू हिंसकोंसे हमारी रक्षा कर और हम शीघ्र ही गायोंके विजेता बनें ॥२०॥

इन्द्रियों पर अधिकार करके अपनी शक्ति बढानेवाला इन्द्र हमारी इन्द्रियोंको बलसे युक्त करे । हमारे शत्रुओंको अपने चमकनेवाले तेजोंसे नष्ट कर दे । और ऋतसे हमारी वाणियोंको प्रेरित करता हुआ हमारे सब दोषोंको दूर करे ॥२१॥

हम इस जीवन संग्राममें युद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले, वीर और युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाले तथा धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥२२॥

[३२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

३०३ इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंदिनं सवनं चारु यत् ते ।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन् विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥

३०४ गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥

३०५ ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यंदिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥ ३ ॥

---

[३२]

अर्थ- [३०३] हे (**सोमपते इन्द्र**) सोमके स्वामिन् इन्द्र ! (**इमं सोमं पिब**) इस सोमको पी, (**यत्**) क्योंकि यह (**चारु माध्यन्दिनं सवनं ते**) यह सुन्दर मध्याह्नकालीन यज्ञ तेरे लिए ही किया जा रहा है, हे (**मघवन् ऋजीपिन्**) ऐश्वर्यवान् और सोम प्रिय इन्द्र ! अपने (**हरी इह विमुच्य**) दोनों घोडोंको यहां छोडकर तथा उनके (**शिप्रे प्रप्रुथ्य**) मुखपरके थैलेको घाससे पूर्ण करके उन्हें (**मादयस्व**) हर्षयुक्त कर ॥१॥

१ **प्रप्रुथ्य-** पूर्ण करना "प्रोथृ पर्याप्तौ"

२ **शिप्रे-** घोडोंके मुखपर दानोंसे भरा थैला रखते है ।

३ **ऋजीषी-** सोमवल्लीका रस निकालने पर जो शेष रहता है वह जिसको दिया जाता है ।

[३०४] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**मन्थिनं गवाशिरं शुक्रं सोमं पिब**) अच्छी तरह कूटकर निकाले गए, गायके दूधमें मिलाये गए, चमकनेवाले सोम रसको पी, हम (**ते मदाय ररिम**) तेरे आनन्दके लिए सोम देते हैं, तू (**ब्रह्मकृता मारुतेन गणेन**) तेरी स्तुति करनेवाले मरुतोंके गणके साथ और (**रुद्रैः**) रुद्रोंके साथ (**सजोषा**) संयुक्त होकर (**तृपत्**) सोमसे तृप्त होता हुआ (**आ वृषस्व**) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला हो ॥२॥

[३०५] (**ये मरुतः ते शुष्मः**) जिन मरुतोंने तेरे बलको (**ये तविषीं**) जिन मरुतोंने तेरी सेनाको तथा (**ते ओजः**) तेरे ओजको तेरी (**अर्चन्तः अवर्धन्**) स्तुति करते हुए बढाया है, (**वज्रहस्त**) वज्रके समान मजबूत हाथोंवाले तथा (**सु-शिप्र इन्द्र**) सुन्दर ठोडीवाले इन्द्र ! उन (**रुद्रेभिः सगणः**) शत्रुओंको रुलानेवाले मरुतोंके साथ (**माध्यन्दिने सवने पिब**) इस मध्याह्नकालीन यज्ञमें सोम पी ॥३॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! यह यज्ञ तेरे लिए ही किया जा रहा है, अतः अपने घोडोंको हमारी ओर कर और हमारे पास आकर इन घोडोंको खोल दे और हमारे यज्ञमें बैठकर सोमपान कर ॥१॥

हे इन्द्र ! यह सोमरस अच्छी तरह कूटकर निकाला गया और गायके दूधमें मिलाया गया है । इस कारण ये सोमरस तेजस्वी हो गए हैं । ये रस तुझे आनन्द देनेवाले हैं । अतः तू मरुतों और रुद्रोंके साथ यहां आकर सोमसे तृप्त हो और हमारी कामनाओंको तृप्त कर ॥२॥

हे इन्द्र ! जिन मरुतोंने तेरे बलको बढाया तेरी सेनाको बढाया और स्तुतिके द्वारा तेरे तेजको बढाया, उन मरुतोंके साथ तू हमारे यज्ञमें आकर सोमपान कर ॥३॥

३०६ त इन्न्वस्य मधुमद् विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदाऽमर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥
३०७ मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥ ५ ॥
३०८ त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥
३०९ यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥ ७ ॥

अर्थ- [३०६] ये (**मरुतः इन्द्रस्य शर्धः आसन्**) जो मरुत इन्द्रके सैनिक थे, (**ते इत्**) उन्होंने ही (**अस्य मधुमद् विविप्र**) इस इन्द्रको मीठे शब्दोंमें प्रेरित किया, (**येभिः इषितः**) जिनसे प्रेरित होकर इन्द्रने (**अमर्मणः**) जिसके मर्मको कोई नहीं जान सकता था ऐसे और (**मन्यमानस्य**) अपनेको बहुत बडा माननेवाले (**वृत्रस्य मर्म विवेद**) वृत्रके मर्मको जान लिया ॥४॥

[३०७] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तू (**मनुः वत्**) मनुके यज्ञके समान मेरे (**सवनं जुषाणः**) यज्ञका सेवन करते हुए (**शश्वते वीर्याय**) अविनाशी बलको पानेके लिए (**सोमं पिब**) सोमको पी । हे (**हरि-अश्व**) हरि नामक घोडोंके स्वामी इन्द्र ! (**यज्ञैः सरण्युभिः**) पूजनीय और गति करनेवाले मरुतोंके साथ (**सः**) वह तू यज्ञमें (**आ ववृत्स्व**) आ तथा (**अपः अर्णा सिसर्षि**) जलोंके प्रवाहको छोडे ॥५॥

[३०८] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**त्वं यत्**) तूने जब (**देवीः अपः वव्रिवांसं**) तेजस्वी जलोंको रोक कर बैठे हुए (**अ देवं**) उत्तम गुणोंसे रहित (**शयानं**) सोते हुए (**वृत्रं**) वृत्रको (**चरता वधेन जघन्वान्**) वेगसे चलनेवाले वज्रसे मारा, तब (**आजौ**) युद्धमें जलोंको (**सतंवै**) बहनेके लिए (**अत्यान् इव**) घोडोंके समान (**प्र असृजः**) मुक्त कर दिया ॥६॥

[३०९] (**यज्ञियस्य यस्य**) पूजाके योग्य जिस इन्द्रकी (**महिमानं**) महिमाको (**प्रिये रोदसी**) प्रिय द्युलोक व पृथ्वीलोक (**न ममतुः**) नहीं माप सके और (**ममाते**) ना ही कभी माप सकते हैं, ऐसे (**बृहन्तं, ऋष्वं, अजरं**) महान्, श्रेष्ठ, कभी बूढे न होनेवाले, (**युवानं, वृद्धं इन्द्रं**) सदा तरुण रहनेवाले तथा गुणोंमें सबसे बडे इन्द्रका हम (**नमसा इत् यजामः**) नमस्कारसे पूजन करते हैं ॥७॥

भावार्थ- मरुत इन्द्रके सैनिक हैं, वे इन्द्रको मीठे पर ओजस्वी शब्दोंमें प्रेरित करते हैं । इससे प्रेरित होकर इन्द्र ऐसे वृत्रके मर्मको भी जान लेता है कि जिसका मर्म जानना बडा कठिन काम है ॥४॥

हे इन्द्र ! तू मनुके यज्ञके समान ही मेरे यज्ञका भी सेवन कर और अविनाशी बलको प्राप्त करनेके लिए सोम पी । तू मरुतोंके साथ यज्ञमें आकर जलप्रवाहोंको मुक्त कर ॥५॥

हे इन्द्र ! तूने तेजस्वी जलोंको रोक कर बैठे हुए और उत्तम गुणोंसे रहित वृत्रको वेगवान् वज्रसे मारा, और युद्धमें वृत्रको मारकर रोके हुए जल प्रवाहोंको बहनेके लिए घोडोंके समान मुक्त कर दिया ॥६॥

पूजाके योग्य इस इन्द्रकी महिमाको प्रिय द्युलोक और पृथ्वीलोक नहीं माप सके और न कभी माप ही सकेंगे । ऐसे महान् और सदा युवान रहनेवाले इन्द्रको हम प्रणाम करते हैं ॥७॥

३१० इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥ ८ ॥
३११ अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥ ९ ॥
३१२ त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥ १० ॥
३१३ अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥ ११ ॥

अर्थ- [३१०] (सु-दंसाः यः) उत्तम कर्म करनेवाले जिस इन्द्रने (इमां पृथिवीं उत द्यां) इस पृथिवीको तथा द्युलोकको (दाधार) धारण किया, तथा जिसने (सूर्यं, उषसं जजान) सूर्यको और उषाको उत्पन्न किया, ऐसे (इन्द्रस्य) इन्द्रके (कर्म, सुकृता, पुरूणि व्रतानि) कर्म, उत्तम कर्म और बहुतसे व्रतोंको (विश्वे देवाः न मिनन्ति) सब देव भी नष्ट नहीं कर सकते ॥८॥

[३११] हे (अ-द्रोघ) द्रोह न करनेवाले इन्द्र ! तूने (जातः सद्यः) उत्पन्न होते ही (यत् सोमं अपिबः) जो सोम पिया, तथा (तवसः ते ओजः) तेरे बलवान् ओजको जो (द्याव न वरन्तः) द्यु आदि लोक हटा नहीं सकते (न अहा) दिन नहीं रोक सकते (मासाः न) महीने नहीं रोक सकते, तथा (शरदः न) शरद आदि ऋतुयें नहीं रोक सकती, (तत् तव महित्वं) वह तेरी महत्ता (सत्यं) यथार्थ ही है ॥९॥

[३१२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जातः सद्यः) उत्पन्न होते ही (परमे व्योमन्) परम आकाशमें रहकर (त्वं मदाय सोमं अपिबः) तूने आनन्दके लिये सोम पिया, (यत्) जिससे तू (द्यावापृथिवी आ विवेशीः) द्युलोक और पृथ्वी लोकमें प्रविष्ट हुआ, और (अथ) बादमें (पूर्व्यः) प्राचीन तू (कारुधायाः अभवः) स्तोताओंका सहायक हुआ ॥१०॥

१ कारू-धायाः- स्तोताओंका सहायक

[३१३] हे (तुविजात) अनेक पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र ! (तव्यान्) बलशाली तूने (अर्णः परिशयानं) पानीको चारों ओरसे घेरकर सोनेवाले तथा (ओजायमानं) बलशाली (अहिं अहन्) अहि असुरको मारा । (यत्) जब तूने (अन्यया स्फिरया क्षां अवस्थाः) अपने एक बाजूसे पृथिवीको थामा, (अध) तब (ते महित्वं) तेरे उस महत्वको (द्यौः न अनुभूद्) द्युलोकने अनुभव नहीं किया ॥११॥

भावार्थ- उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने इस पृथ्वी और द्युलोकको धारण किया और उसीने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया, ऐसे इन्द्रके उत्तम कर्मों और व्रतोंका उल्लंघन कोई भी देव नहीं कर सकता ॥८॥

इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही सोम पिया, और उससे जो इन्द्रका ओज बढा, उस ओजको, द्यु आदि लोक, दिन, मास, और ऋतुएं भी नष्ट नहीं कर सकीं, क्योंकि उस इन्द्रकी महिमा यथार्थ ही है ॥९॥

हे इन्द्र ! उत्पन्न होते ही तूने परम आकाशमें रहकर सोम पिया, और उससे आनन्दित हुआ । इससे वह अपने सामर्थ्यसे द्युलोक और पृथिवीलोकमें प्रविष्ट हुआ । यहां इन्द्र बिजली है, जो अन्तरिक्षमें रहकर मेघस्थ जल रूपी सोमको पीती रहती है, और फिर उस बिजलीका तेज वर्षाजलके द्वारा इस पृथ्वी पर आता है । वही जल पृथिवीमें प्रविष्ट होता है ॥१०॥

इस इन्द्रने पानीको घेरकर सोये हुए मेघरूपी बलशाली इन्द्रको मारा । उससे जलकी वर्षा हुई और वह पृथ्वी पर आकर गिरा, उससे पृथ्वीका स्तम्भन हुआ, पर वह वर्षाका जल द्युलोकमें नहीं जाता, इसलिये द्युलोक इन्द्रकी महिमाको नहीं जान पाया ॥११॥

३१४ यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भू—दुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥
३१५ यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वा—गैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभि—र्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥ १३ ॥
३१६ विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद् यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४ ॥
३१७ आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ १५ ॥

अर्थ- [३१४] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**यज्ञः ते वर्धनः भूत्**) यज्ञ तुझे बढानेवाला हुआ, (**उत**) और (**मियेधः**) हवनके योग्य (**सुतसोमः**) तेय्यार किया गया सोम (**प्रियः**) तुझे प्रिय हो गया है ! तू (**यज्ञियः सन्**) पूज्य होता हुआ (**यज्ञेन यज्ञं अव**) संगठनके द्वारा इस यज्ञकी रक्षा कर, और यह (**यज्ञः**) यज्ञ (**अहिहत्ये**) अहिको मारनेवाले युद्धमें (**ते वज्रं आवत्**) तेरे वज्रकी रक्षा करे ॥१२॥

[३१५] (**यः पूर्व्येभिः स्तोमेभिः वावृधे**) जो प्राचीन ऋषियोंके स्तोत्रोंसे बढा, (**यः मध्यमेभिः**) जो मध्यकालीन ऋषियोंके स्तोत्रोंसे बढा, तथा जो (**नूतनेभिः**) नये ऋषियोंके स्तोत्रोंसे बढा, ऐसे (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**अवसा यज्ञेन**) संरक्षण करनेवाले यज्ञसे स्तोता (**अर्वाक् चक्रे**) अपने समीप ले आया, मैं भी (**नव्यसे सुम्नाय**) नवीन सुखके लिए (**ववृत्याम्**) इन्द्रको अपने पास लाता हूं ॥१३॥

[३१६] (**यत् मा धिषणा जजान विवेष**) जब मेरे अन्दर इच्छा उत्पन्न होती है और मेरे अन्दर व्याप्त हो जाती है, तब मैं (**पार्यात् अह्नः पुरा स्तवै**) युद्धके दिनके पहले इन्द्रकी स्तुति करता हूं (**यथा**) जिससे वह (**नः**) हमें (**अंहसः पीपरत्**) पापोंसे पार कर देता है । (**नावा यान्तं इव**) जिस प्रकार नावसे जानेवालेको दोनों किनारोंके मनुष्य बुलाते हैं, उसी प्रकार इस इन्द्रको (**उभये हवन्ते**) सुखी और दुःखी दोनों तरहके मनुष्य बुलाते हैं ॥१४॥

१ **नः अंहसः पीपरत्-** हमें पापसे पार कर देता है ।
२ **नावा यान्तं इव उभये हवन्ते-** जिस प्रकार नावसे जानेवालेको दोनों किनारोंके मनुष्य बुलाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रको सुखी और दुःखी दोनों मनुष्य बुलाते हैं ।

[३१७] (**आपूर्णः कलशः अस्य पिबध्यै**) सोमसे भरा हुआ यह कलश इस इन्द्रके पीनेके लिए है, इससे मैं (**सेक्ता कोशं इव**) जैसे सींचनेवाला खेतको सींचता है, उसी प्रकार इन्द्रको (**सु + आहा सिसिचे**) समर्पण पूर्वक सींचता हूं। (**प्रियाः सोमासः**) प्रिय सोम (**मदाय**) आनन्द के लिए (**इन्द्रं प्रदक्षिणित् अभि आववृत्रन्**) इन्द्रके पास अच्छी तरह पहुंचें ॥१५॥

भावार्थ- प्राचीन, मध्यकालीन और नवीन ऋषियोंके स्तोत्रोंसे यह इन्द्र वृद्धिको प्राप्त हुआ, यज्ञ करनेवाले स्तोता गण इसे अपने समीप बुलाते हैं, इसलिए सुखको चाहनेवाला मैं भी अपनी रक्षाके लिए इन्द्रको अपने पास बुलाता हूं ॥१२॥

जब उपासक इन्द्र पर श्रद्धा रखता है और श्रद्धापूर्वक वह इन्द्रकी स्तुति करता है, तब इन्द्र उपासकको पापोंसे पार कर देता है । जिस प्रकार नदी को पार करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य दोनों किनारोंसे मल्लाहको आवाज देते हैं, उसी प्रकार सुखी और दुःखी दोनों तरहके मनुष्य इस इन्द्रको बुलाते हैं ॥१३॥

जब मनुष्य आनन्दमें होता है और इन्द्रकी स्तुति करता है, तब वह इन्द्र आकर उसकी रक्षा करता है । वह सभी तरहके मनुष्योंका रक्षक है, सुखी और दुःखी सभी प्रकारके जन उससे अपनी रक्षाकी प्रार्थना करते हैं ॥१४॥

मैं यह सोमसे भरे हुए पात्र इन्द्रके लिए आनन्दसे समर्पित करता हूं, इस सोमको उत्तम रीतिसे पिए ॥१५॥

३१८ न त्वा॑ ग॒भीरः॑ पुरुहूत॒ सिन्धु॒—र्नाद्र॑यः॒ परि॒ षन्तो॑ वरन्त ।
इ॒त्था सखि॑भ्य इषि॒तो यदि॒न्द्रा—ऽऽदृ॒ळ्हं चि॒दरु॑जो॒ गव्य॑मू॒र्वम् ॥ १६ ॥

३१९ शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑—म॒स्मिन् भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ ।
शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ सं॒जितं॒ धना॑नाम् ॥ १७ ॥

[३३]

[ऋषिः- गाधिनो विश्वामित्रः; ४, ६, ८, १० नद्यः ऋषिकाः । देवता- नद्यः; ५, ८, १० विश्वामित्रः; ६, ७ इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।]

३२० प्र पर्व॑तानामुश॒ती उ॒पस्था॒—दश्वे॑ इव॒ विषि॑ते॒ हास॑माने ।
गावे॑व शु॒भ्रे मा॒तरा॑ रिहा॒णे विपा॑ट्छुतु॒द्री पय॑सा जवेते ॥ १ ॥

अर्थ- [३१८] हे इन्द्र ! (**इत्था**) इस प्रकार (**यत्**) जब तूने (**सखिभ्यः इषितः**) मित्रोंसे प्रेरित होकर (**दृळ्हं चित् गव्यं ऊर्वं**) बहुत शक्तिशाली तथा किरणोंको छिपानेवाले मेघको (**आ अरुजः**) फोडा, तब (**त्वा**) तुझे (**गभीरः सिन्धुः**) गंभीर समुद्र-अन्तरिक्ष भी (**न**) नहीं रोक सका तथा (**परि सन्तः अद्रयः न वरन्तः**) चारों ओर स्थित पर्वत भी नहीं रोक सके ॥१६॥

ऊर्वः- मेघ, बडवानल,

[३१९] हम (**अस्मिन् भरे वाजसातौ**) इस बडे संग्राममें (**शुनं, नृतमं, शृण्वन्तं**) शुद्ध करनेवाले, अत्यन्त कुशल नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (**उग्रं**) वीर (**समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं**) युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाले (**संजितं धनानां**) धनोंको जीतनेवाले (**मघवानं इन्द्रं**) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (**ऊतये**) अपने संरक्षणके लिए (**हुवेम**) बुलाते हैं ॥१७॥

[३३]

[३२०] (**विषिते हासमाने अश्वे इव**) बन्धनसे मुक्त होनेके कारण प्रसन्नतासे हिनहिनाती हुई दो घोडियोंकी तरह अथवा (**रिहाणे शुभ्रे मातरा गावा इव**) अपने बछडोंको चाटनेवाली दो सफेद वर्णवाली माता गायोंके समान (**विपाट् शुतुद्री**) विपाट् और शुतुद्री ये दोनों नदियां (**पर्वतानां**) पहाडके (**उपस्थात्**) पाससे निकलकर (**उशती**) समुद्रसे मिलनेकी इच्छा करती हुई (**पयसा जवेते**) पानीसे भरपूर होकर वेगसे बही जाती हैं ॥१॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! जब तूने मित्रोंसे प्रेरित होकर अत्यन्त शक्तिशाली और किरणोंको अदृश्य करनेवाले मेघको तोडा, तब तेरी शक्तिका मुकाबला न अन्तरिक्ष ही कर सका और न पर्वत ही ॥१६॥

हम इस बडे जीवन संग्राममें वीर, श्रेष्ठ नेता और प्रार्थनाको सुननेवाले, शत्रुको मारनेवाले धन विजेता इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥१७॥

यह सूक्त संवादात्मक है । कुशिल पुत्र विश्वामित्र घूमते घामते विपाट् और शुतुद्री नदियोंके किनारे पहुंचे । उन नदियोंमें अगाध जल था । अतः नदियोंको पार करनेकी इच्छा करनेवाले विश्वामित्रने नदियोंसे प्रार्थना की । प्रथमके तीन मंत्रों द्वारा विश्वामित्र नदियोंकी स्तुति करते हैं । विपाट् (आधुनिक व्यास) और शुतुद्री (आधुनिक सतलज) ये दोनों नदियां पहाडसे निकलकर पानीसे भरपूर होकर वेगसे समुद्रकी तरफ उसी प्रकार दौडी जा रही हैं, जिस प्रकार दो घोडियां बन्धनसे मुक्त होने पर प्रसन्नताके कारण हिनहिनाती हुई इधर उधर वेगसे भागती हैं, अथवा दो गायें अपने बछडोंकी तरफ वेगसे दौडती हैं ॥१॥

३२१ इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥
३२२ अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वी सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥
३२३ एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥
३२४ रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा ऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ५ ॥

अर्थ- [३२१] हे नदियो ! (**इन्द्रेषिते**) इन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर (**सं आराणे**) एक दूसरेके अनुकूल चलती हुई तथा (**ऊर्मिभिः पिन्वमाने**) अपनी लहरोंसे आसपासके प्रदेशोंको तृप्त करती हुई तथा (**प्रसवं भिक्षमाणे**) उन उपजाऊ प्रदेशोंमें धान्यकी उत्पत्तिको उत्तम बनाती हुई (**शुभ्रे**) तेजस्वी तुम दोनों (**रथ्या इव**) रथसे जानेवाले रथियोंके समान (**समुद्रं अच्छा याथः**) समुद्रकी तरफ सीधी जाती हो । (**वां**) तुममेंसे (**अन्या**) एक (**अन्यां अपि एति**) दूसरीसे मिलती है ॥२॥

[३२२] जिस प्रकार (**मातरा वत्सं रिहाणे इव**) दो गायें बछडेको चाटती है, उसी प्रकार ये दोनों नदियां (**समानं योनिं अनु संचरन्ती**) एक ही उद्दिष्ट स्थान समुद्रकी तरफ दौडती जाती है । इनमें मैं (**मातृतमां सिन्धुं अच्छ अयासं**) अत्यन्त प्यारसे युक्त तथा समुद्रकी तरफ बहनेवाली शुतुद्रीके पास गया और (**उर्वी सुभगां**) अति विशाल और उत्तम ऐश्वर्यवाली (**विपाशं अगन्म**) विपाशाके पास भी गया ॥३॥

[३२३] (**वयं**) हम नदियां (**एना पयसा**) इस पानीसे (**पिन्वमानाः**) प्रदेशोंको तृप्त करती हुई (**देवकृतं**) देवके बताये गए (**योनिं अनु चरन्तीः**) स्थानकी तरफ चली जा रही हैं । (**सर्गतक्तः प्रसवः न वर्तवे**) बहनेके काममें रत रहनेवाली हम अपने उद्योगसे कभी विराम नहीं लेती फिर (**विप्रः**) यह ब्राह्मण (**नद्यः**) हम नदियोंकी (**किं युः जोहवीति**) क्यों स्तुति कर रहा है? ॥४॥

[३२४] (**अवस्युः**) अपनी रक्षाकी इच्छा करनेवाला (**कुशिकस्य सूनुः**) कुशिकका पुत्र मैं (**बृहती मनीषा**) उत्तम स्तुतिसे (**सिन्धुं अच्छे अह्वे**) नदियोंकी प्रार्थना करता हूं ! हे (**ऋतावरीः**) जलसे भरपूर नदियो (**मे सोम्याय वचसे**) मेरी नम्र प्रार्थनाको मानकर (**एवैः**) अपनी गतिको (**मुहूर्तं उप रमध्वं**) थोडेसे क्षणके लिए रोक दो ॥५॥

भावार्थ- इन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर ये दोनों नदियां आपसमें मिलकर बहती हैं और अपने जलसे आसपासके प्रदेशोंको उपजाऊ बनाती हुई चलती हैं, और इन नदियोंके कारण उन प्रदेशोंमें धान्यकी उत्पत्ति बहुत होती है । इस प्रकार प्रदेशोंको उर्वरा बनाती हुई ये नदियां समुद्रकी तरफ दौडती चली जाती हैं ॥२॥

जिस प्रकार दो गायें अपने बछडेको प्रेमसे चाटनेके लिए उसकी तरफ भागती हैं, उसी तरह ये दोनों नदियां अपने एक ही उद्दिष्ट स्थान समुद्रकी तरफ भागती हैं । ये दोनों ही माता के समान लोगोंका पालन करती हैं, विशाल और ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं ॥३॥

ये नदियां अपने जलसे आसपासके प्रदेशको उर्वरा बनाती हुई परमात्माके द्वारा उद्दिष्ट स्थान समुद्रकी तरफ बहती चली जाती हैं, ये हमेशा बहती रहती हैं, इनका बहना कभी बन्द नहीं होता । ये कभी विश्राम नहीं लेती ॥४॥

इस मंत्रमें विश्वामित्र नदियोंसे अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए प्रार्थना करते हैं -हे नदियो ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं । मैं पार उतरना चाहता हूं, अतः तुम मेरी नम्र प्रार्थनाको सुनो और थोडी देरके लिए बहना बन्द कर दो ताकि मैं पार उतर जाऊं ॥५॥

३२५ इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहु—रपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत् सविता सुपाणि—स्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥ ६ ॥
३२६ प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं१ त—दिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघाना—ऽऽयन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७ ॥
३२७ एतद् वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत् ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ ८ ॥
३२८ ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

अर्थ- [३२५] (नदियोंने कहा) हे विश्वामित्र ! (वज्रबाहुः इन्द्रः अस्मान् अरदत्) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले इन्द्रने हमें खोदा, तथा (नदीनां परिधिं) नदियोंको सीमित करनेवाले (वृत्रं) वृत्रको (अपाहन्) मारा। (सविता सु-पाणिः देवः) सबको उत्पन्न करनेवाला, उत्तम हाथवाला, तेजस्वी इन्द्र हमें (अनयत्) आगे ले गया, अतः (वयं) हम (तस्य प्रसवे) उसकी आज्ञामें (उर्वीः) पानीसे परिपूर्ण होकर (याम) जाती हैं ॥६॥

अरदत्- खोदा, "रदतिः खनतिकर्मा:"

[३२६] (यत् अहिं विवृश्चत्) इन्द्रने जो अहि राक्षसको मारा, (इन्द्रस्य तत् कर्म वीर्यं) इन्द्रका वह कर्म और बल (शश्वधा प्रवाच्यं) अनेक तरहसे वर्णन करने योग्य है। जब इन्द्रने (वज्रेण) अपने वज्रसे (परिसदः) चारों ओर स्थित असुरोंको (विजघान) मारा, तब (आपः) जल प्रवाह (अयनं इच्छमानाः) अपने स्थान समुद्रकी इच्छा करते हुए (आयन्) बहने लगे ॥७॥

[३२७] हे (जरितः) स्तोता ! (ते एतत् वचः) अपनी यह स्तुति (मा अपि मृष्ठाः) कभी भूलना मत। (यत्) क्योंकि (उत्तरा युगानि) आगे आनेवाले समयमें (घोषान्) यह स्तुति प्रसिद्ध होगी। हे (कारो) स्तुति करनेवाले ! (उक्थेषु नः प्रति जुषस्व) यज्ञोंमें हमारी प्रशंसा कर, (पुरुषत्रा) पुरुषोंके द्वारा प्रवर्तित कर्मोंमें (नः मा नि कः) हमारा अनादर मत कर। (ते नमः) तुझे नमस्कार है ॥८॥

[३२८] हे (स्वसारः सिन्धवः) भगिनी रूप नदियो ! तुम (सु शृणोत) मेरी बात अच्छी तरह सुनो, मैं (वः) तुम्हारे पास (दूरात् अनसा रथेन ययौ) बहुत दूरसे गाडी और रथसे आया हूं, अतः तुम (कारवे) स्तुति करनेवाले मेरे लिये (स्त्रोत्याभिः नि सु नमध्वं) अपने प्रवाहोंके साथ अच्छी तरह झुक जाओ, (सुपाराः) आसानीसे पार होने योग्य हो जाओ, (अधो अक्षां) रथकी धुरासे भी नीचे हो जाओ ॥९॥

भावार्थ- विश्वामित्रकी प्रार्थना सुनकर नदियां कहती हैं -हे विश्वामित्र ! हमें तो इन्द्रने खोदकर बहाया है उसीने हमारा मार्ग निश्चित किया है। वृत्रने हमें सीमित करनेका प्रयत्न किया था, पर इन्द्रने उसे मारकर फिर हें प्रवाहयुक्त बनाया। हम उसीकी आज्ञामें बह रही हैं, अतः हमारी गति कैसे रुक सकती है ? ॥६॥

जब असुरोंने नदियोंको सीमित कर दिया, तब नदियोंका प्रवाह रुक गया, तो इन्द्रने नदियोंको सीमित करनेवाले असुरोंको मारा और जलप्रवाहोंको समुद्रकी तरफ बहनेके लिए छोड दिया, यह उसका कर्म प्रशंसनीय है। अतः जब इन्द्र हमारे रुकनेके विरुद्ध है, तो उसकी आज्ञामें रहनेवालीं हम तुम्हारे लिए किस तरह अपनी गति रोक सकती हैं? ॥७॥

नदियां कहती हैं -हे विश्वामित्र ! हमारे इस संवादको भूलना मत, क्योंकि आगे आनेवाले समयमें यह संवाद प्रसिद्ध होगा, यज्ञमें हमारी स्तुति करना, कभी अनादर मत करना। नदियोंका अनादर नहीं करना चाहिए ॥८॥

विश्वामित्र कहते हैं- हे नदियो ! मैं बहुत दूरसे गाडी और रथ पर बैठकर तुम्हारे पास आया हूँ, अतः तुम नीची हो जाओ, इतनी झुक जाओ कि तुम्हारे प्रवाह मेरे रथकी नाभिसे नीचे हो जाए, ताकि मैं आसानीसे तुम्हें पारकर जाऊं ॥९॥

३२९ आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥
३३० यदुङ्ग त्वा भरताः संतरेयु र्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ ११ ॥
३३१ अतारिषुर्भरता गव्यवः स मभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२ ॥
३३२ उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसा ऽघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ १३ ॥

अर्थ- [३२९] हे (कारो) स्तोता ! (ते वचांसि श्रृणवाम) हम तेरी प्रार्थनाओंको सुनती हैं, कि तुम (दूरात्-अनसा रथेन आ ययाथ) दूरसे गाडी और रथसे आए हो । इसलिये जिस प्रकार (पीप्याना योषा इव) बच्चेको दूध पिलानेवाली माता नम्र हो जाती है, अथवा (कन्या मर्याय शश्वचै) कोई कन्या पुरुषको आलिंगन देनेके लिये नम्र हो जाती है, उसी प्रकार हम (ते नि नंसै) तेरे लिए झुक जाती हैं ॥१०॥

[३३०] हे (अंग) प्रिय नदियों ! (यत्) जब (भरताः) भरणपोषण करनेवाले मनुष्य (त्वा सन्तरेयुः) तुम्हें पार करना चाहें, तब (गव्यन् इषितः) तुम्हें पार करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर अथवा (इन्द्रजूतः) इन्द्रसे प्रेरित होकर (ग्रामः) उन मनुष्योंका समूह (अहः) प्रतिदिन (सर्गतक्तः प्रसवः) बहनेवाले प्रवाहको (अर्षात्) पार कर जाए । मैं (यज्ञियानां वः सुमतिं आ वृणे) पूजाके योग्य तुम्हारी उत्तम बुद्धिको मांगता हूँ ॥११॥

[३३१] (गव्यवः भरताः अतारिषुः) पार जानेकी इच्छावाले तथा भरणपोषण करनेवाले मनुष्य नदियोंके पार उतर गए, (विप्रः नदीनां सुमतिं स अभक्त) ज्ञानी विश्वामित्रने नदियोंकी उत्तम बुद्धिको भी प्राप्त कर लिया। अब, हे नदियो ! (इषयन्तीः सु राधाः) उत्तम अन्नोंको पैदा करके उत्तम ऐश्वर्य बढानेवाली तुम (वक्षणाः आ पिन्वध्वं) नहरोंको पानीसे भरपूर भर दो, (आ पृणध्वं) अच्छी तरह पूर्ण कर दो और (शीभं यात्) वेगसे बहो ॥१२॥

[३३२] हे नदियों ! (वः ऊर्मिः शम्याः हन्तु) तुम्हारी लहरें यज्ञस्तम्भसे टकराती रहें, (आपः योक्त्राणिमुंचत) तुम्हारे जल बैलेके जुओंको मुक्त करते रहें और इस प्रकार हे (अदुष्कृतौ वि एनसा अघ्न्यौ) कभी दुष्ट कर्म न करनेवाली, पाप रहित और हिंसाके अयोग्य नदियो ! तुमसे (शूनं अरतां) समृद्धि दूर न जाये ॥१३॥

भावार्थ- नदियां कहती हैं -हे स्तोता ! हमने तेरी प्रार्थनाओंको सुन लिया है, हम यह भी जानती हैं कि तुम दूरसे गाडी और रथसे आए हो, इसीलिए जिस प्रकार बच्चेको दूध पिलानेवाली माता नम्र हो जाती है, अथवा जैसे कोई कन्या पुरुषको आलिंगन देनेके लिए नम्र होती है, उसी प्रकार हम तेरे लिए झुक जाती हैं ॥१०॥

विश्वामित्र कहते हैं -हे नदियो ! जब भरणपोषण करनेवाले मनुष्य तुम्हें पार करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर और इन्द्रसे प्रेरित होकर तुम्हें पार करना चाहें, तब वे तुम्हारे प्रवाहों को पार कर लें । तुम सभी पूजाके योग्य हो, अतः मैं तुमसे तुम्हारी उत्तम बुद्धियोंको मांगता हूँ ॥११॥

पार जानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य पार हो गए हैं और ज्ञानी विश्वामित्र भी तुम्हारी उत्तम बुद्धियोंको प्राप्त कर चुके हैं। अतः हे नदियों ! अब तुम उत्तम अन्नोंको उत्पन्न करके लोगोंके ऐश्वर्योंको बढाती हुई बहो और नहरोंको पानीसे अच्छी तरह भरकर उन्हें पूर्ण कर दो और वेगसे बहती रहो ॥१२॥

हे नदियो ! तुम्हारी लहरें यज्ञस्तंभसे टकराती रहें, अर्थात् तुम्हारे किनारों पर सदा यज्ञ चलते रहे, तुम्हारे जल बैलके जुओंको मुक्त करते रहें, अर्थात् तुम्हारे किनारे पर कृषक खेती करते रहें, तुम निष्पाप होकर हमेशा समृद्धिको प्राप्त होओ । नदियोंकी हिंसा नहीं होनी चाहिए, उनके पानीका दुरुपयोग करना ही उनकी हिंसा है ॥१३॥

[३४]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३३३ इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कै--र्विदद् वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥ १ ॥

३३४ मखस्य ते तविषस्य प्र जूति--मियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥

३३५ इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वने--ष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥ ३ ॥

---

[३४]

अर्थ- [३३३] (**पूः भित्**) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले तथा (**विदद् वसुः**) शत्रुके धनोंको प्राप्त करनेवाले (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**शत्रून् वि दयमानः**) शत्रुओंको मारते हुए (**दासं**) दास नामक असुरको भी (**अर्कैः**) अपने तेजोंसे (**आतिरद्**) मार डाला । तब (**ब्रह्मजूतः तन्वा वावृधानः**) स्तुतियोंये प्रेरित होकर, शरीरसे बढते हुए (**भूरिदात्रः**) बहुतसे धनोंको धारण करनेवाले इन्द्रने (**उभे रोदसी आपृणद्**) दोनों द्युलोक व पृथ्वीलोक को पूर्ण किया ॥१॥

[३३४] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! मैं तुझे (**भूषन्**) अलंकृत करता हुआ, (**मखस्य ते विषस्य ते**) पूजनीय और बलशाली तुझे (**जूतिं वाचं**) प्रेरणा देनेवाली स्तुतिको (**अमृताय इयर्मि**) अमृतकी प्राप्तिके लिए बोलता हूं । तू (**मानुषीनां क्षितीनां**) मानवी प्रजाओंके (**उत**) और (**दैवीनां विशां**) दैवी प्रजाओंके (**पूर्वयावा असि**) आगे चलनेवाला है ॥२१॥

[३३५] (**शर्धनीतिः इन्द्रः**) उत्साहको बढानेवाली नीतिसे युक्त इन्द्रने (**वृत्रं अवृणोत्**) वृत्रको रोका, (**वर्पणीतिः**) कुशलतासे कार्य करनेवाले इन्द्रने (**मायिनां अमिनात्**) माया करनेवाले असुरोंको भी मारा, (**उशधक्**) शत्रुको मारनेकी इच्छा करते हुए इन्द्रने (**वनेषु**) पर्वतोंमें छिपे हुए असुरोंके (**वि-अंसं**) अंगको काटकर उन्हें (**अहन्**) मारा तथा (**राम्याणां धेनाः**) अन्धकारमें छिपाई गई गायोंको (**आविः अकृणोद्**) प्रकट किया ॥३॥

रम्यां - रात्री ।
शर्ध - उत्साह ।

भावार्थ- शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाले तथा उनके धनोंको प्राप्त करनेवाले इन्द्रने शत्रुओंका मारते हुए दास नामक असुरको भी अपने तेजसे नष्ट कर डाला ॥१॥

यह इन्द्र एक उत्तम नेता होने के कारण सब मानवी प्रजाओं और दैवी प्रजाओंके आगे चलता हुआ उनकी हर तरहसे रक्षा करता है। इसलिए वह पूजनीय और बलशाली होनेके कारण स्तुतिका अधिकारी है। उसकी स्तुति अमृतको प्रदान करनेवाली है ।

इन्द्रकी नीति और व्यवहार उत्साहको बढानेवाला है, इस उत्साहसे युक्त होकर वह वृत्रासुरको मारता है। वह माया करनेवाले असुरोंको भी मारता है । वह शत्रुओंको समूल नष्ट करता है ॥ ३॥

३३६ इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

३३७ इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

३३८ महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान् त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

अर्थ- [३३६] (स्वर्षाः इन्द्रः) सुखको देनेवाले इन्द्रने (अहानि जनयन्) दिनोंको उत्पन्न करते हुए (उशिग्भिः) युद्धकी इच्छा करनेवाले मरुतोंके साथ (पृतनाः) शत्रुकी सेनाको (अभिष्टिः) घेरकर (जिगाय) उन्हें जीता । बादमें (मनवे) मनुके लिए (अन्हां केतुं) दिनोंको बतानेवाले सूर्यको (प्र आ रोचयत्) प्रकाशित किया, तथा (बृहते रणाय) महान् संग्रामके लिए (ज्योतिः अविन्दत्) तेज प्राप्त किया ॥४॥

[३३७] (इन्द्रः) इन्द्र (पुरूणि नर्या दधानः) बहुतसे पराक्रमोंको धारण करते हुए (नृवत्) नेताके समान (बर्हणाः तुजः) बहुत बढे हुए हिंसकोंकी सेनामें (आ विवेश) घुस गया, तथा उसने (जरित्रे) स्तुति करनेवालेके लिए (इमाः धियः) इन बुद्धियोंको (अचेतयत्) सचेत किया और (आसां) इन बुद्धियोंके (इमं शुक्रं वर्णं) इस तेजस्वी वर्णको (अतिरत्) और बढाया ॥५॥

१ इन्द्रः पुरूणि नर्या दधानः नृवत् बर्हणा तुजः आविवेश- इन्द्र बहुत पराक्रम करके, नेताके समान, बढी शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट हुआ ।

२ इमाः धियः अचेतयत्- बुद्धियोंको सचेत किया ।

३ शुक्रं वर्णं अतीतरत्- शुद्ध तेजको बढाया ।

[३३८] (अस्य महः इन्द्रस्य) इस महान् इन्द्रके (पुरूणि महानि सुकृता कर्म) बहुतसे बडे बडे कर्म (पनयन्ति) प्रशंसित होते हैं, (अभिभूति-ओजाः) शत्रुको हरानेमें समर्थ इस इन्द्रने (वृजनेन) अपने बलसे (मायाभिः) कुशलतापूर्वक (वृजिनान् दस्यून् सं पिपेष) दूर रखे जाने योग्य दस्युओंको अच्छी तरह पीस दिया ॥६॥

१ महः इन्द्रस्य महानि सुकृता कर्म- बडे इन्द्रके बडे उत्तम कर्म प्रसिद्ध हैं ।

२ अभिभूति-ओजाः वृजनेन मायाभिः वृजिनान् दस्यून् सं पिपेष- सामर्थ्यवान् नेताने अपने बलसे और कुशलतासे दुष्ट शत्रुओंको मारा ।

भावार्थ- इन्द्र सुखका देनेवाला, दिनोंको उत्तम बनानेवाला और मरुतोंकी सहायतासे शत्रुसेनाको मारनेवाला है । वही इन्द्र मनुष्यके कल्याणके लिए सूर्यको उत्पन्न करता है और तेजस्वी होता है ॥४॥

यह इन्द्र अत्यन्त पराक्रमी होने के कारण उत्तम नेताके समान शत्रुओंकी सेनामें घुसकर उन्हें नष्टभ्रष्ट करता है । वह मानवी बुद्धियोंको ज्ञानसे युक्त करता है । और उन्हें तेजसे युक्त करता है ॥५॥

इस इन्द्रके सभी कर्म महान् होनेके कारण प्रशंसनीय होते हैं । यह अभिभवन शील है, वीरसे वीर शत्रु पर भी आक्रमण करके उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर देता है ॥६॥

३३९ युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥
३४० सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमा—मिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥
३४१ ससानात्याँ उत सूर्यं ससाने—न्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥
३४२ इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचो ऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

अर्थ- [३३९] (चर्षणि प्राः, सत् पतिः इन्द्रः) मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, सज्जनोंके पालक इन्द्रने (मह्ना) अपने बलसे (युधा) युद्धके द्वारा (वरिवः) शत्रुओंके धनको (देवेभ्यः चकार) देवोंका मिले ऐसा किया (विप्राः कवयः) बुद्धिमान् स्तोता (विवस्वतः सदने) यजमानके घरमें (अस्य तानि) इस इन्द्रने उन कर्मोंकी (उक्थेभिः) स्तोत्रों द्वारा (गृणन्ति) प्रशंसा करते हैं ॥७॥

१ इन्द्रः चर्षणिप्राः सत्पतिः- इन्द्र मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और सज्जनोंका पालक है।

[३४०] (यः) जिस इन्द्रने (इमां द्यां उत पृथिवीं) इस द्युलोक व पृथ्वीलोकको (ससान) दान दिया, उस (सत्रासाहं) शत्रुओंको जीतनेवाले, (वरेण्यं) वरण करने योग्य, (सहो दां) बल देनेवाले, (देवीः अपः) उत्तम कर्मोंको करके (स्वः ससवांसं) सुख प्राप्त करनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रको (धी-रणासः) बुद्धिके साथ रमण करनेवाले विद्वान् (अनुमदन्ति) आनन्दित करते हैं ॥८॥

[३४१] (इन्द्रः) इन्द्रने (अत्यान् ससान) घोडे दानमें दिये (सूर्यं ससान) सूर्यको दिया, (पुरुभोजसं गां ससान) बहुत अन्न देनेवाली गाय प्रदान की, (हिरण्ययं उत भोगं ससान) अनेक प्रकार सोनेके अलंकार और भोग प्रदान किए, तथा (दस्यून् हत्वी) दस्युओंको मारकर (आर्यं वर्णं प्र आवत्) श्रेष्ठ वर्णोंकी रक्षा की ॥९॥

१ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्र आवत्- दुष्टोंको मारकर आर्योंकी उत्तम रक्षा की । दस्यु और आर्य ये दो प्रकार के लोग थे, इनमेंसे दस्युओंको मारा और आर्योंकी सुरक्षा की ।

[३४२] (इन्द्रः) इन्द्रने (ओषधीः असनोत्) ओषधियां प्रदान कीं, (अहानि) दिन प्रदान किए (वनस्पतीः असनोत्) वनस्पतियां प्रदान कीं और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष को प्रदान किया । बादमें (वलं बिभेद) वलासुरको मारा, (वि वाचः नुनुदे) बहुत ज्यादा बकबक करनेवालोंको दूर किया, (अथ) और वह (अभिक्रतूनां) घमण्ड करनेवालोंका (दमिता) दमन करनेवाला हुआ ॥१०॥

१ विवाचः नुनुदे- निरर्थक बकवास करनेवालोंको दूर किया ।
२ अभिक्रतूनां दमिता- घमण्डी लोगोंका दमन किया ।

भावार्थ- इन्द्र मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण, करनेवाला और सज्जनोंका पालक है । यह अपने बलसे युद्धमें शत्रुओंको मारकर उनके धनको विद्वानों देवोंको देता है । उसके इस कर्मकी प्रशंसा हर बुद्धिमान् जन करता है ॥७॥

ऐश्वर्यवान् देवने मनुष्योंके हितके लिए उन्हें यह द्युलोक और पृथ्वीलोक प्रदान किए । इन दोनोंसे प्राणियोंका भरण पोषण होता है । बुद्धिमान् जन उसके इस माहात्म्यको देखकर कृतज्ञतापूर्वक उसकी स्तुति करते हैं ॥८॥

इन्द्रने दुष्टोंको मारकर आर्योंकी रक्षा की । राष्ट्रमें दुर्जनोंका नाश और श्रेष्ठोंकी रक्षा अवश्य होनी चाहिए । इन्द्रने दुष्टोंको मारकर आर्योंकी गाय, स्वर्ण और अन्य अनेक प्रकार के भोग प्रदान किए । इस प्रकार श्रेष्ठ वर्णोंकी रक्षा की ॥९॥

इन्द्रने प्राणियोंके हितके लिए ओषधियां प्रदान कीं, दिन प्रदान किए, वनस्पतियां प्रदान कीं, अन्तरिक्ष बनाया, वलासुरको मारा, बकवास करनेवालोंको नष्ट किया, और घमण्डियोंका दमन किया ॥१०॥

३४३ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

[३५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३४४ तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥ १ ॥
३४५ उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद् यथा संभृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २ ॥
३४६ उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥ ३ ॥

अर्थ- [३४३] (**अस्मिन् भरे वाजसातौ**) इस बडे संग्राममें हम (**शुनं नृतमं, शृण्वन्तं**) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (**उग्रं, समुत्सु वृत्राणि ध्नन्तं**) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले (**धनानां संजितं**) धनोंको जीतनेवाले (**मघवानं इन्द्रं**) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (**ऊतये**) अपने संरक्षणके लिए (**हुवेम**) बुलाते हैं ॥११॥

[३५]

[३४४] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**हरी युज्यमाना**) दो घोडे जिसमें जुते हुए हैं ऐसे (**रथे**) रथमें (**नियुतः वायुः न**) नियुत नामक घोडोंवाले वायुके समान (**आ तिष्ठ**) बैठ, और (**नः अच्छ आयाहि**) हमारे पास सीधा आ, (**अस्मे अभिसृष्टः**) हमारे द्वारा दिए गए (**अन्धः पिबासि**) सोमरूपी अन्नको पी, हम इस सोमको (**ते मदाय**) तेरे आनन्दके लिए (**स्वाहा ररिम**) समर्पणपूर्वक देते हैं ॥१॥

[३४५] (**पुरुहूताय**) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रके लिए उसके (**रथस्य**) रथकी (**धूर्षु**) धुरामें (**अजिरा, सप्ती हरी**) वेगसे दौडनेवाले, वेगवाले दो घोडोंको उस प्रकार (**उप युनज्मि**) जोडता हूं, (**यथा**) जिससे वह रथ (**द्रवत्**) भागे । वे घोडे (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**विश्वतः चित्**) चारों ओरसे (**इमं सभृतं यज्ञं**) इस अच्छी तरह सामग्रीसे भरे यज्ञकी ओर (**आ वहात**) ले आवें ॥२॥

[३४६] हे (**वृषभ, स्वधावः**) बलवान् और अन्नवान् इन्द्र ! तू (**वृषणा तपुः-पा**) बलवान् और शत्रुओंसे रक्षा करनेवाले घोडोंको (**उप नयस्व**) पास ले आ, (**उत**) और (**ई अव**) इस यजमानकी रक्षा कर । अपने (**शोणा अश्वा**) लाल रंगके घोडोंको (**इह वि मुंच**) यहां इस यज्ञ स्थानमें खोल दे और वे (**ग्रसेतां**) घास खावें, और तू भी (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**सदृशीः धानाः अद्धि**) उत्तम भोजन खा ॥३॥

भावार्थ- इस गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥११॥

हे इन्द्र ! हम इस उत्साहप्रद सोमरसको तेरे लिए निचोडते हैं, इसलिए तू अपने रथपर बैठकर हमारे पास वेगपूर्वक आ और हमारे द्वारा दिए गए इस सोमरसको पी ॥१॥

मैं बहुतोंके द्वारा स्तुत्य इन्द्रके रथमें वेगसे दौडनेवाले घोडोंको जोडता हूँ, ताकि वह रथ शीघ्रतासे भाग सके । वे घोडे इन्द्रको उत्तम सामग्रीसे भरपूर हमारे यज्ञकी तरफ ले आवें ॥२॥

इन्द्र स्वयं भी बलवान् और अन्नवान् है और उसके घोडे भी बलशाली और पुष्ट हैं, उन घोडोंसे युक्त रथपर बैठकर वह यजमानके पास जाकर उनकी रक्षा करे ॥३॥

३४७ ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ ४ ॥

३४८ मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वयं ते ऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥ ५ ॥

३४९ तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥

३५० स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥

अर्थ- [३४७] हे इन्द्र ! (**ब्रह्मयुजा**) मंत्रसे जुड जानेवाले (**सधमादे आशू**) यज्ञकी तरफ तेजीसे जानेवाले (**सखाया**) आपसमें मित्रभावसे रहनेवाले (**हरी**) दो घोडोंसे (**ते**) तेरे रथमें (**ब्रह्मणा युनज्मि**) मंत्रसे जोडता हूँ, हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**स्थिरं सुखं रथं अधितिष्ठन्**) सुदृढ और सुखदायी रथमें बैठकर (**प्रजानन् विद्वान्**) सब कुछ जानता हुआ विद्वान् तू (**सोमं उपयाहि**) सोमके पास आ ॥४॥

[३४८] हे इन्द्र ! (**ते**) तेरे (**वृषणा वीतपृष्ठा हरी**) बलवान् और सुन्दर पीठवाले घोडे (**अन्ये यजमानासः**) दूसरे यजमानोंको (**मा रीरमन्**) आनन्दित न करें, क्योंकि (**वयं**) हम (**सुतेभिः सोमैः**) तैय्यार किए गए सोम रसोंके द्वारा (**ते अरं कृणवाम**) तुझे समर्थ करते हैं, अतः तू (**शश्वतः अति आयाहि**) बहुतसे यजमानोंको छोडकर यहां आ ॥५॥

[३४९] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**अयं सोमः तव**) यह सोम तेरे लिये है, (**त्वं अर्वाङ् एहि**) तू हमारी तरफ आ, और (**सुमनाः**) उत्तम मनवाला होकर (**अस्य शश्वत्तमं पाहि**) इसे अत्यधिक पी । (**यज्ञे**) यज्ञमें (**अस्मिन् बर्हिषि निषद्य**) इस आसन पर बैठकर (**इमं इन्दुं जठरे दधिष्व**) इस सोमको पेटमें धारण कर ॥६॥

[३५०] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**ते बर्हिः स्तीर्णः**) तेरे लिये आसन बिछाया है, और (**सोमः सुतः**) सोम निचोडकर तैय्यार किया है, तथा (**ते हरिभ्यां अत्तवे**) तेरे घोडोंके खानेके लिए (**धानाः कृताः**) धान्य तैय्यार किया हुआ है, (**तत् ओकसे**) यज्ञशाला ही जिसका घर है ऐसे (**पुरुशाकाय**) बहुत सामर्थ्यवान् (**वृष्णे**) कामनाओंको पूर्ण करनेवाले (**मरुत्वते**) मरुतोंके साथ रहनेवाले (**तुभ्यं**) तेरे लिए (**हवींषि राता**) हवियां दी गई हैं ॥७॥

भावार्थ- इन्द्रके घोडे इतने सुशिक्षित हैं कि वे केवल कहने मात्र से रथकी धुरामें जुड जाते है। वे परस्पर मित्र भावसे रहते हैं। इन्द्र स्वयं भी विद्वान् और ज्ञानवान् है और उसका रथ भी सुदृढ ओर सुखदायी है। उस रथ पर बैठकर वह सर्वत्र जाता और सबका संरक्षण करता है ॥४॥

यह इन्द्र केवल उन्हीं यज्ञ करनेवालोंको आनन्दित करता है, जो श्रद्धा और भक्तिसे इसकी पूजा अर्चा करते हैं ॥५॥

हे इन्द्र ! यह सोम तेरे लिये है, तू हमारी तरफ आ और आनन्द युक्त मनवाला होकर यज्ञमें इस रसको पी ॥६॥

हे इन्द्र ! यह आसन तेरे लिये बिछा हुआ है, रस भी तैय्यार है। तू यज्ञमें आनेवाला, सामर्थ्यशाली, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, इसलिए हम तुझे यह रस श्रद्धापूर्वक देते हैं ॥७॥

३५१ इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्या अनु स्वाः ॥ ८ ॥

३५२ याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन् गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानोऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥ ९ ॥

३५३ इन्द्र पिब स्वधया चित् सुतस्याऽग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥ १० ॥

३५४ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

अर्थ- [३५१] हे **(इन्द्र)** इन्द्र ! **(नरः, पर्वताः आपः सं)** ऋत्विज, पत्थर और जल इन सबने मिलकर **(तुभ्यं)** तेरे लिए **(इमं)** इस सोमको **(गोभिः)** गायके दूधके साथ मिलाकर **(मधुमन्तं अक्रन्)** मधुर बनाया है, हे **(ऋष्व)** महान् इन्द्र ! **(पथ्याः प्रजानन्)** पथ्यको जानते हुए तथा **(स्वाः विद्वान्)** अपने सुखको जानते हुए **(आगत्य)** यहां आकर तू **(सुमना अस्य पिब)** उत्तम मनसे इसे पी ॥८॥

[३५२] हे इन्द्र ! **(यान् मरुतः)** जिन मरुतोंको तू **(सोमे आभजः)** सोम यज्ञमें लाया **(ये त्वां अवर्धन्)** जिन्होंने तुझे बढाया, तथा जो **(ते गणः अभवन्)** तेरे सहायक हुए, **(तेभिः सजोषाः)** उनसे युक्त होकर **(वावशानः)** पीनेकी इच्छा करता हुआ तू **(अग्नेः जिह्वया)** अग्निकी जीभसे **(एतं सोमं पिब)** इस सोमको पी ॥९॥

[३५३] हे इन्द्र ! **(स्वधया चित् सुतस्य पिब)** अपने बलसे सोमको पी **(या)** अथवा हे **(यजत्र)** पूजनीय इन्द्र ! **(अग्नेः जिह्वया पाहि)** अग्निके जीभके द्वारा सोम पी, **(वा)** अथवा **(अध्वर्योः हस्तात्)** अध्वर्युके हाथसे इस **(प्रयतं)** पवित्र रसको पी, **(वा)** अथवा **(होतुः हविषः यज्ञं जुषस्व)** होताके हविसे युक्त यज्ञका सेवन कर ॥१०॥

[३५४] **(अस्मिन् भरे वाजसातौ)** इस महासंग्राममें हम **(शुनं नृतमं शृण्वन्तं)** शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थना सुननेवाले **(उग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं)** वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले, **(जनानां संजितं)** धनोंको जीतनेवाले **(मघवानं इन्द्रं)** ऐश्वर्यवान् इन्द्रको **(ऊतये)** अपने संरक्षणके लिए **(हुवेम)** बुलाते हैं ॥११॥

भावार्थ- ऋत्विग्गण प्रथम सोमवल्लीको सिलबट्टे पर पीसकर उसका रस निकालते हैं, फिर उसे छानकर उसमें मधुरता लानेके लिये गौका दूध मिलाते हैं । इस रसको इन्द्र पीकर बहुत आनन्दित होता है और सुख प्राप्त करता है ॥८॥

यज्ञमें प्रदीप्त अग्नि देवोंकी जिह्वा मानी गई है । इस अग्निमें सोमरसकी आहुति दी जाती है, और उसे देवतागण ग्रहण करते हैं । इस अग्निमें इन्द्रके लिए विशेष आहुतियां दी जाती हैं जिन्हें वह अपने सहायक मरुतोंके साथ आकर पीता है ॥९॥

हे इन्द्र ! तू भले ही अपने सामर्थ्यसे इस सोमरसको पी, अथवा अग्निमें दी गई आहुतिको पी, अथवा अध्वर्युके द्वारा दी गई आहुतिको ले, पर इस सोमको आहुति लेकर आनन्दित होकर हमें समृद्ध कर ॥१०॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धों वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥११॥

[३६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः, १० घोर आङ्गिरसाः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३५५ इमाम् षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभि—र्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

३५६ इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान् प्रति षू गृभाये—न्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥ २ ॥

३५७ पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥ ३ ॥

३५८ महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यु—ग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४ ॥

---

[३६]

अर्थ- [३५५] हे इन्द्र ! (ऊतिभिः शश्वत् शश्वत् यादमानः) संरक्षणके साधनोंसे हमेशा युक्त रहनेवाला तू (इमां सु प्रभृतिं) इस उत्तम स्तुतिको (सातये धाः) हमें अन्नादि देनेके लिये धारण कर । (यः) जो इन्द्र (महद्भिः कर्मभिः) महान् कर्मोंसे (सुश्रुतः भूत्) प्रसिद्ध हुआ, वह (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (वर्धनेभिः वावृधे) बढानेवाले पदार्थोंके द्वारा बढता है ॥१॥

१ महद्भिः कर्मभिः सुश्रुतः- मनुष्य अपने श्रेष्ठ और महान् कर्मोंसे ही प्रसिद्ध होता है ।

[३५६] (इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये हम (दिवः) द्युलोकसे (सोमाः प्र विदानाः) सोम प्राप्त करते हैं, (येभिः) जिनसे वह (वृषपर्वा विहायाः) बलवान् संधियोंवाला तथा महान् इन्द्र (ऋभुः) तेजस्वी होता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू इस (वृषधूतस्य) बलवान् शत्रुको भी कंपा देनेवाले तथा (वृष्णः) बल देनेवाले सोमको (पिब) पी, तथा (प्रयम्यमानान्) नियमन करने योग्य शत्रुओंको (प्रति सु गृभाय) अच्छी तरह पकड अर्थात् उन पर अधिकार कर ॥२॥

पर्व- परत, संधि, त्योहार,

[३५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू सोम (पिब) पी और (वर्धस्व) बढ । (तव) तेरे लिये (घ) ही ये (प्रथमाः उत इमे) पुराने और नये सोम (सुतासः) निचोड कर रखे गए हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (पूर्व्यान् सोमान् यथा अपिबः) पूर्वसमयमें सोमरसोंको जिस प्रकार पिया, (एव) उसी प्रकार (अद्य) आज (पन्यः नवीयान् पाहि) प्रशंसनीय इन नये सोमरसोंको पी ॥३॥

[३५८] यह (महान् वृजने अमत्रः) महान्, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला, (विरप्शी) शक्तिशाली इन्द्र अपने (उग्रं शवः) तेजस्वी बलको तथा (धृष्णुः ओजः) शत्रुओंका घर्षण करनेवाले ओजको (पत्यते) सर्वत्र फैलाता है । (यत्) जब (सोमासः) सोम इस (हर्यश्वं अमन्दन्) इन्द्रको आनन्दित करते हैं तब (एवं पृथिवी न अह विव्याच) इसे पृथ्वी धारण नहीं कर सकी ॥४॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तेरे पास रक्षा करनेके उत्तम से उत्तम साधन हैं इनसे युक्त होकर तथा हमारी स्तुति से प्रेरित होकर तू हमारी रक्षा करनेके लिये आ । यह इन्द्र अपने महान् कर्मोंके कारण ही प्रसिद्ध होता है और महान् होकर समृद्ध होता है ॥१॥

सोम द्युलोकमें उत्पन्न होता है और इस सोमको पीकर वह इन्द्र तेजस्वी होता है तथा उत्साहित होकर जब संग्राम करता है, तब बलवान् से बलवान् शत्रु भी कांप जाता है ॥२॥

इन्द्र ! तू सोम पीकर उत्साहित होकर बढ । ये सोम प्रशंसनीय और स्तुत्य हैं ॥३॥

३५९ महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥ ५ ॥
३६० प्र यत् सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान् यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥ ६ ॥
३६१ समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥ ७ ॥
३६२ ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानाः समीं विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥ ८ ॥

अर्थ- [३५९] यह (**महान् उग्रः**) महान् और वीर इन्द्र (**वीर्याय वावृधे**) पराक्रमके कार्योंके करने के लिए बढता है । वह (**वृषभः भगः इन्द्रः**) बलवान् और ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**काव्येन समाचक्रे**) स्तुतिसे प्रशंसित होता है । (**अस्य गावः वाजदाः प्रजायन्ते**) इसकी गायें अन्नको देनेवाली होती हैं । (**अस्य दक्षिणाः पूर्वीः**) इसके दान भी पूर्वकालसे प्रसिद्ध हैं ॥५॥

महान् उग्र वीर्याय वावृधे- यह महान् और वीर इन्द्र पराक्रमके कार्य करनेके लिए ही बढता है ।

[३६०] (**यथा**) जिस प्रकार (**सिन्धवः**) नदियां (**प्रसवं आयन्**) अपने उत्पत्तिस्थान समुद्रमें जाकर मिलती हैं, अथवा जैसे (**आपः**) जल भी (**समुद्रं रथ्या इव जग्मुः**) समुद्रको रथके समान जाते हैं, उसी प्रकार (**दुग्धः अंशुः सोमः**) दूधसे मिश्रित सोम (**ई पृणति**) इस इन्द्रको पूर्ण करता है, (**अतः चित्**) इसीलिए (**इन्द्रः**) यह इन्द्र (**सदसः वरीयान्**) द्यु लोकसे भी श्रेष्ठ है ॥६॥

[३६१] (**समुद्रेण यादमानाः सिन्धवः**) समुद्रके साथ संयुक्त होनेवाली नदियां जिस प्रकार समुद्रको भर देती हैं, उसी प्राकर (**हस्तिनः**) हाथोंवाले अध्वर्यु (**इन्द्राय सु सुतं सोमं भरन्तः**) इन्द्रके लिये तैय्यार किया गया सोम भरपूर देनेके लिये (**अंशुं दुहन्ति**) सोमसे रस निकालते हैं, तथा (**भरित्रैः**) अपनी भुजाओंसे (**पवित्रैः**) और छलनीके द्वारा (**धारया**) एक धारासे (**मध्वः पुनन्ति**) मधुर सोमरसको छानते हैं ॥७॥

[३६२] इस इन्द्रके (**सोमधानाः कुक्षयः ह्रदाः इव**) सोमको धारण करनेवाले कोख तालाबके समान हैं । (**ईं पुरूणि सवना**) इस इन्द्रको बहुतसे सोमरस (**विव्याच**) भरते हैं । (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**यत् प्रथमा अन्ना वि आश**) जब प्रथम सोमरूपी अन्नोंको खाया, तब (**वृत्रं जघन्वान्**) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने (**सोमं अवृणीत**) सोमको स्वीकार किया ॥८॥

भावार्थ- महान् और शत्रुनाशी इन्द्र अपने बल, तेज और ओजको सर्वत्र फैलाता है । जब यह इन्द्र सोम पीकर आनन्दसे युक्त होता है, वह इसकी महानताको पृथ्वी भी धारण नहीं कर सकती । तब यह पृथ्वीसे भी महान् हो जाता है ॥४॥

यह महान् इन्द्र अपने बलका उपयोग उत्तम और महान् कार्यों को करनेमें ही करता है । इस कारण वह ऐश्वर्यवान्, बलवान् और प्रशंसनीय होता है ॥५॥

जिस प्रकार सभी नदियां और जल समुद्रकी ओर ही जाती हैं और उसे भरती हैं उसी प्रकार सभी सोमकी आहुतियां इन्द्रकी तरफ जाती हैं और उसके उत्साहको बढाती हैं ॥६॥

जिस प्रकार नदियां समुद्रको भरती हैं, उसी प्रकार अध्वर्युगण सोमको कूट छानकर उसके रससे इन्द्रको आनन्दसे भरते हैं ॥७॥

सोम इन्द्रका प्रथम और मुख्य अन्न है । यह उत्साहप्रद है । जब भी इन्द्र वृत्रको मारना चाहता है, तब तब सोम पीकर वह उत्साहसे युक्त होता है ॥८॥

३६३ आ तू भर माकिरेतत् परि ष्ठाद् विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत् ते माहिनं दत्रम- स्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ९ ॥
३६४ अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषि- न्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥
३६५ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र- मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

[३७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, ११ अनुष्टुप् ।]

३६६ वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
३६७ अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अर्थ- [३६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (तु) शीघ्र ही हमें (भर) भरपूर धन दे, (एतत् मा किः परिष्ठात्) इस धन पर दूसरा कोई अधिकार न करे, (त्वा) तुझे हम (वसूनां वसुपतिं विद्म) उत्तम धनोंके स्वामीके रूपमें जानते हैं । (ते) तेरा (यत् माहिनं दत्रं अस्ति) जो प्रशंसनीय धन है, हे (हर्यश्व) घोडोंवाले इन्द्र ! (तत् अस्मभ्यं प्र यन्धि) वह धन तू हमें दे ॥९॥

[३६४] हे (मघवन्, ऋजीषिन्, शिप्रिन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, सरलमार्गसे जानेवाले तथा सुन्दर ठोढीवाले इन्द्र ! (विश्ववारस्य भूरे रायः) सभीके द्वारा चाहने योग्य ऐसे बहुतसे धनोंको (अस्मे प्र यन्धि) हमें दे, तथा (जीवसे अस्मे शतं शरदः धाः) जीनेके लिए हमें सौ वर्ष दे, और (अस्मे शश्वत् वीरान्) हमें बहुतसे पुत्र दे ॥१०॥

[३६५] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस बडे संग्राममें हम (शुनं, नृतमं, शृण्वन्तं) शुद्ध, उत्तमनेता प्रार्थनाको सुननेवाले (उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले और (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥११॥

[२]

[३६६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (त्वा) तुझे (वार्त्रहत्याय, शवसे, पृतनाषाह्याय च) वृत्रको मारनेके लिए, बलके लिए तथा शत्रुओंको हरानेके लिए (वर्तयामसि) प्रेरित करते हैं ॥१॥

[३६७] हे (शतक्रतो) सैंकडों प्रकारके कर्म करनेवाले इन्द्र ! (वाघतः) स्तोतागण (ते सु मनः उत चक्षुः) तेरे उत्तम मन और आंखको (अर्वाचीनं कृणवन्तु) हमारी तरफ करें ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! हमें यह मालूम है कि तू श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, इसलिए हम प्रार्थना करते हैं कि तू हमें भरपूर धन दे और इस श्रेष्ठ धनपर किसी दुष्टका अधिकार न हो । यह तेरा धन प्रशंसा के योग्य है ॥९॥

हे सरलमार्गसे जानेवाले इन्द्र ! तू हमें उत्तम और सभीके द्वारा चाहने योग्य धन दे, हमें लम्बी आयु दे और हमारा घर भी सन्तानोंसे भरापूरा हो ॥१०॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥११॥

हे शतक्रतु इन्द्र ! स्तोतागण तेरे मनको हमारी तरफसे उत्तम बनायें और हम भी तुझे वृत्रको तथा अन्य शत्रुओंको मारनेके लिए बलसे युक्त करके प्रेरित करते हैं ॥१-२॥

३६८ नामा॑नि ते शतक्रतो विश्वा॑भिर्गी॒र्भिरी॑महे । इन्द्रा॑भिमाति॒षाह्ये॑ ॥ ३ ॥
३६९ पु॒रु॒ष्टु॒तस्य॒ धाम॑भिः श॒तेन॑ महयामसि । इन्द्र॑स्य चर्षणी॒धृतः॑ ॥ ४ ॥
३७० इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे पुरुहू॒तमुप॑ ब्रुवे । भरे॑षु॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥
३७१ वाजे॑षु सास॒हिर्भ॑व॒ त्वामी॑महे शतक्रतो । इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे ॥ ६ ॥
३७२ द्यु॒म्नेषु॑ पृत॒नाज्ये॑ पृ॒त्सु॒तूर्षु॒ श्रवः॑सु च । इन्द्र॒ साक्ष्वा॒भिमा॑तिषु ॥ ७ ॥
३७३ शु॒ष्मिन्त॑मं न ऊ॒तये॑ द्यु॒म्निनं॑ पाहि॒ जागृ॑विम् । इन्द्र॒ सोमं॑ शतक्रतो ॥ ८ ॥
३७४ इ॒न्द्रि॒याणि॑ शतक्रतो या ते॒ जने॑षु प॒ञ्चसु॑ । इन्द्र॒ तानि॑ त॒ आ वृ॑णे ॥ ९ ॥

अर्थ- [३६८] हे (**शतक्रतो इन्द्र**) सैंकडों तरहके कर्म करनेवाले इन्द्र ! (**अभिमातिषाह्ये**) युद्धमें (**ते नामानि**) तेरे बलोंको हम (**विश्वाभिः गीर्भिः ईमहे**) सम्पूर्ण प्रार्थनाओंके सूक्तों द्वारा मांगते हैं ॥३॥

[३६९] (**पुरुष्टुतस्य**) बहुतोंके द्वारा प्रशंसनीय (**शतेन धामभिः**) सैंकडों तेजोंसे युक्त (**चर्षणीधृतः**) मुष्योंको धारण करनेवाले (**इन्द्रस्य**) इन्द्रकी हम (**महयामसि**) स्तुति करते हैं ॥४॥

[३७०] (**पुरुहूतं इन्द्रं**) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको (**भरेषु वाजसातये**) युद्धोंमें अन्नकी प्राप्तिके लिए तथा (**वृत्राय हन्तवे**) वृत्रको मारनेके लिए मैं (**उपब्रुवे**) बुलाता हूँ ॥५॥

[३७१] हे (**शतक्रतो इन्द्र**) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (**वाजेषु सासहिः भव**) युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाले हो, (**वृत्राय हन्तवे त्वां ईमहे**) हम वृत्रको मारनेके लिए तुझे चाहते हैं ॥६॥

[३७२] हे इन्द्र ! (**अभिमातिषु पृतनाज्ये**) शत्रुओंको हरानेवाले युद्धमें (**द्युम्नेषु श्रवःसु च**) तेजस्वी अन्न जिनमें प्राप्त होते हैं ऐसे युद्धोंमें तथा (**पृत्सुतूर्षु**) अन्य युद्धोंमें तू शत्रुओंको (**साक्ष्व**) मार ॥७॥

[३७३] (**शुष्मिन्तमं द्युम्निनं जागृविं**) बल युक्त, तेजस्वी और चेतना देनेवाले (**सोमं**) सोमको हे (**शतक्रतो इन्द्र**) सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (**नः ऊतये**) हमारे संरक्षणके लिए (**पाहि**) पी ॥८॥

[३७४] हे (**शतक्रतो**) सैंकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! (**पंचसु जनेषु**) पांच जनोंमें (**या ते इन्द्रियाणि**) जो तेरी शक्ति है, (**ते तानि आ वृणे**) तेरी उन शक्तियोंको मैं स्वीकार करता हूँ ॥९॥

भावार्थ- यह इन्द्र अनेकोंके द्वारा स्तुत, तेजोंसे युक्त और मनुष्योंको धारण करनेवाला है, ऐसे इन्द्रसे हम युद्धमें अपनी रक्षाके लिए उसकी स्तुति करके बल मांगते हैं ॥३-४॥

हे इन्द्र ! तू युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाला है, अतः वृत्रको मारकर उसका धन प्राप्त करनेके लिए हम तुझसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं ॥५-६॥

हे इन्द्र ! तू कठिनसे कठिन युद्धमें भी शत्रुओंका संहार करता है, इसलिए बलशाली, तेजस्वी और चेतनाप्रद सोमरस तुझे देकर तुझसे हम संरक्षण चाहते हैं ॥७-८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांच जनोंमें क्रमशः ज्ञान, शौर्य, धन, सेवा और निर्भयताकी शक्ति रहती है, इन सबमें इन्द्रकी शक्ति ही विविध रूपसे प्रकट होती है । ये सभी शक्तियां समाज एवं राष्ट्रके समुत्थानके लिए आवश्यक हैं ॥९॥

३७५ अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ १० ॥

३७६ अर्वावतो न आ ग॒ह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ११ ॥

[३८]

[ऋषिः- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा, तावुभावपि वा गाथिनो विश्वामित्रो वा ।
देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३७७ अभि तष्टेव दीधया मनीषा॒मत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत् पराणि कवीँरिच्छामि संदृशे सुमेधाः ॥ १ ॥

३७८ इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥ २ ॥

अर्थ- [३७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बृहत् श्रवः) यह महान् अन्न तेरे पास (अगन्) जाए, तथा तू (दुस्तरं द्युम्नं दधिष्व) शत्रुओं द्वारा कठिनतासे पार करने योग्य और तेजस्वी इस सोमको धारण कर, हम (ते शुष्मं तिरामसि) तेरा बल बढाते हैं ॥१०॥

[३७६] हे (अद्रिवः इन्द्र) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! तू (अर्वावतः नः आगहि) पासके देशसे हमारे पास आ, (अथ) तथा (परावतः) दूर देशसे भी आ, तथा (ते यः लोकः) तेरा जो लोक है, (ततः इह आगहि) उस लोकसे यहां आ ॥११॥

[३८]

[३७७] हे मनुष्य ! (तष्टा इव) जैसे बढई लकडीको उत्तम बनाता है उसी प्रकार (मनीषां अभि दीधय) तू उत्तम स्तोत्र बना । जिस प्रकार (सु-धुरः वाजी अत्यः न) उत्तम धुरामें जुडा हुआ वेगवान् घोडा भागता जाता है, उसी प्रकार (जिहानः) उत्तम कर्म करता हुआ तथा (पराणि प्रियाणि मर्मृशत्) उत्तम और इन्द्रको प्रिय लगनेवाली स्तुति करता हुआ (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिवाला मैं (कवीन् संदृशे इच्छामि) कवियोंको देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥१॥

जिहानः कवीन् संदृशे इच्छामि- उत्तम कर्म करता हुआ ही मैं ज्ञानियोंकी संगतिकी इच्छा करूं ।

[३७८] हे इन्द्र ! जिन (मनोधृतः सुकृतः) मनःशक्तिको धारण करनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले विद्वानोंने (द्यां तक्षत) द्युलोकको बनाया द्युलोकका वर्णन किया, ऐसे (कवीनां जनिमा) कवियोंके जन्मोंके विषयमें तू (इना पृच्छ) इन श्रेष्ठोंसे पूछ । (अध) बादमें (धर्मणि) इस यज्ञमें (ते प्रण्यः वर्धमानाः मनोवाताः इमाः) तुझे प्रसन्न करनेवाली तथा बढानेवाली मनके समान वेगवाली ये स्तुतियां (नु ग्मन्) शीघ्रही तेरे पास जायें ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू पास और दूरके देशसे हमारे पास आ, तथा अन्य लोकोंसे भी हमारे पास आ, ताकि हम तुझे उत्तम और प्रशंसनीय अन्न-सोमरस देकर तेरा आनन्द और बल बढा सकें ॥१०-११॥

मनुष्य उत्तम कर्म करता हुआ सन्मार्ग पर चले । उत्तम कर्म एवं सन्मार्गको जाननेके लिए वह उत्तम एवं सज्जन पुरुषोंकी संगति करे । यही इन्द्रको प्रिय है । इसीसे वह प्रसन्न रहता है ॥१॥

यह द्युलोक इतना विस्तृत एवं विशाल है कि मनःशक्तिको धारण करनेवाले तथा उत्तम कम करनेवाले विद्वान ही इस विशाल द्युलोकका वर्णन कर सकते हैं । विद्वान योगी ही इस द्युलोक को पार करके सूर्यलोकको जाते हैं । ऐसे योगी विद्वानोंके विषयमें विद्वान जन ही जान सकते हैं । अतः उन्हींके पास जाकर ऐसे विद्वानोंके बारे में जिज्ञासा करनी चाहिए ॥२॥

३७९ नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३ ॥
३८० आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामाऽऽ विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ४ ॥
३८१ असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥ ५ ॥
३८२ त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥

अर्थ- [३७९] विद्वानोंने **(अत्र सीं इत्)** यहां चारों ओर से **(गुह्या दधानाः)** गूढ कर्मोंको करते हुए **(क्षत्राय)** बलके लिए **(रोदसी समंजन्)** द्यावापृथिवीको परस्पर मिलाया तथा **(मात्राभिः सं ममिरे)** उन्हें मापनेके साधनोंसे मापा, **(समृते उर्वी मही येमुः)** आपसमें मिले हुए विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको नियंत्रित किया, तथा उन दोनोंके **(अन्तः)** बीचमें **(धायसे)** उन्हें धारण करनेके लिए अन्तरिक्षको **(धुः)** बनाया ॥३॥

[३८०] **(विश्वे)** सब विद्वान् **(आ तिष्ठन्तं)** रथमें बैठे हुए इन्द्रको **(परि अभूषन्)** विभूषित करते हैं। वह इन्द्र **(स्व-रोचिः)** अपने तेजसे तेजस्वी होकर **(श्रियः वसानः)** कान्तिको धारण करता हुआ **(चरति)** सब जगह विचरता है । **(वृष्णः असुरस्य नाम महत्)** बलशाली तथा प्राणोंके दाता इन्द्रका यश महान् है, वह **(विश्वरूपः)** सब रूपोंवाला होकर **(अमृतानि तस्थौ)** जलों पर अधिकार करता है ॥४॥

[३८१] **(वृषभः पूर्वः ज्यायान्)** बलवान्, प्राचीन और श्रेष्ठ इन्द्रने **(असूत)** पानियोंको उत्पन्न किया। **(अस्य पूर्वीः इमाः)** इसके द्वारा उत्पन्न बहुतसे जल **(शुरुधः सन्ति)** तृषाको दूर करनेवाले हैं । **(दिवः नपाता)** द्युलोकको न गिरानेवाले **(राजाना)** तेजस्वी इन्द्र और वरुण **(प्रदिवः विदथस्य)** विशेष तेजयुक्त वीरकी **(धीभिः क्षत्रं दधाथे)** बुद्धियोंके द्वारा धन धारण करते हैं ॥५॥

[३८२] हे **(राजाना)** इन्द्रावरुणो ! तुम **(विदथे)** यज्ञमें **(त्रीणि)** तीन अथवा **(पुरूणि विश्वानि सदांसि)** बहुतसे स्थानोंको **(परिभूषथः)** अलंकृत करो । हे इन्द्र ! तू **(जगन्वान्)** यज्ञमें आ गया है क्योंकि **(अत्र व्रते)** इस यज्ञमें **(वायुकेशान् गन्धर्वान्)** वायुसे हिलनेवाले अयालसे युक्त घोडोंको मैने **(मनसा अपश्यम्)** मनसे देख लिया है ॥६॥

भावार्थ- विद्वान् देवोंके कर्म बडे ही गुप्त और रहस्यमय होते हैं, आदिमें उन देवोंने द्यावापृथ्वीको संयुक्तरूपमें बनाया, फिर उन्हें नापा, तत्पश्चात् इन दोनोंको विस्तृत करनेके लिए इन्हें अलग अलग किया । सृष्टिके आदिमें द्युलोक और पृथ्वीलोकमें कोई अन्तर नहीं था, पृथक् पृथक् लोक नहीं थे, बादमें देवोंने इन दोनों लोकोंको नाप कर पृथक् पृथक् किया और बीचमें अन्तरिक्षलोक बनाया । इस प्रकार दोनों लोकोंको विस्तीर्ण बनाया ॥३॥

सब विद्वान् रथमें बैठे हुए इन्द्रको विभूषित करते हैं । वह अपने तेजसे तेजस्वी होता हुआ कान्तिको धारण करके सर्वत्र विचरता है । बलशाली तथा प्राणोंके दाता इन्द्रका यश महान् है । वह अनेक रूपोंवाला होकर अमर होता है ॥४॥

बलवान् और श्रेष्ठ इन्द्रने पानियोंको उत्पन्न किया, ये जल प्राणियोंकी तृषा बुझानेवाले हुए । द्युलोकको आधार देनेवाले तेजस्वी इन्द्र और वरुण उत्तम बुद्धियोंके द्वारा धनको धारण करते हैं ॥५॥

ये इन्द्र और वरुण देव सभी स्थानोंको अलंकृत करते हैं । इन्द्रके आगमनकी सूचना उसके सुन्दर आयालवाले घोडोंसे मिलती है ॥६॥

३८३ तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनो—रा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥

३८४ तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥ ८ ॥

३८५ युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद् दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥ ९ ॥

३८६ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १० ॥

अर्थ- [३८३] (**अस्य वृषभस्य**) इस बलवान् इन्द्रके लिए (**नामभिः**) यशोंसे (**गोः धेनोः**) गायके (**सक्म्यं ममिरे**) दूधको विद्वानोंने दुहा, (**मायिनः**) बुद्धिमानोंने (**अन्यत् अन्यत् असुर्यं वसनाः**) नये नये बलको धारण करते हुए (**अस्मिन् रूपं ममिरे**) इस इन्द्रमें रूपको पाया ॥७॥

[३८४] (**सवितुः अस्य मे**) सबको उत्पन्न करनेवाले इस मेरे (**तत् हिरण्ययीं अमतिं**) उस सोनेके समान चमकनेवाले तेजको (**न किः**) कोई नष्ट नहीं कर सकता, (**यां अशिश्रेत्**) जिस मेरी दीप्तिको जो स्वीकार करता है, वह (**सु-स्तुति**) अच्छी तरह प्रशंसित होकर (**विश्वमिन्वे रोदसी**) सबको तृप्त करनेवाली द्यावापृथिवीको (**योषा जनिमानि इव**) जैसे स्त्री अपने पुत्रोंको स्वीकार करती है, उसी प्रकार (**वव्रे**) वरण करता है ॥८॥

[३८५] हे इन्द्र और वरुण ! (**युवं**) तुम दोनों (**प्रत्नस्य**) स्तोताके लिए (**यत् महः दैवी स्वस्तिः**) जो महान् और दैवी कल्याण (**साधथः**) करते हो, तुम दोनों (**नः परि स्यातं**) हमारे चारों तरफ रहो । (**विश्वे मायिनः**) सब बुद्धिमान् लोग (**गोपाजिह्वस्य**) रक्षण करनेवाली वाणीसे युक्त तथा (**तस्थुषः**) स्थिर रहनेवाले इस इन्द्रके (**विरूपा कृतानि**) अनेक तरहके काम (**पश्यन्ति**) देखते हैं ॥९॥

[३८६] (**अस्मिन् भरे वाजसातौ**) इस भरपूर संग्राममें हम (**शुनं नृतमं शृण्वन्तं**) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता तथा प्रार्थनाओंको सुननेवाले (**उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं**) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले, (**धनानां संजितं**) धनोंको जीतनेवाले तथा (**मघवानं इन्द्रं**) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (**ऊतये हुवेम**) अपनी सुरक्षाके लिए बुलाते हैं ॥१०॥

भावार्थ- विद्वान् गण इस इन्द्रको बलशाली बनाने के लिए यशस्वी गायको दुहते हैं । इन्द्रभी अनेक रूपोंको धारण करके प्रकाशित होता है । संसारके इन विविध रूपोंमें इन्द्रकाही रूप प्रकाशित होता है ॥७॥

इन्द्रका सोनेके समान चमकनेवाला तेज समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाला है, उसके इस तेजको कोई नष्ट नहीं कर सकता । इस इन्द्रके तेजको जो प्राप्त कर लेता है, वह द्युलोक और पृथ्वीलोकमें प्रसिद्ध हो जाता है ॥८॥

इन्द्र और वरुण दोनों स्तोताका महान् कल्याण करते हैं । ये दोनों चारों ओर व्याप्त हैं । सब बुद्धिमान् गण स्थिर रहनेवाले इस इन्द्रके अनेक तरहके काम देखते हैं ॥९॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥१०॥

[३९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३८७ इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमाना ऽच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमाने न्द्र यत् ते जायते विद्धि तस्य ॥ १ ॥
३८८ दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥ २ ॥
३८९ यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥
३९० नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावा नुद् गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥ ४ ॥

---

[३९]

अर्थ- [३८७] (स्तोमतष्टा) स्तोताओं द्वारा (हृदः वच्यमाना) हृदयसे की गई (मतिः) स्तुति (पतिं इन्द्रं) पालन करनेवाले इन्द्रके पास (अच्छ जिगाति) सीधी पहुंचती है (या जागृविः) जो तुझे जगानेवाली मेरी स्तुति (विदथे शस्यमाना) यज्ञमें प्रशंसित होती है, तथा (यत् ते जायते) जो स्तोत्र तेरे लिए किया जाता है, (तस्य विद्धि) उन्हें तू जान ॥१॥

[३८८] (दिवः चित् पूर्व्या) दिनसे पहले ही (जायमाना) उत्पन्न हुई (जागृविः) सबको जगानेवाली (विदथे शस्यमाना) यज्ञमें प्रशंसित होनेवाली (भद्रा अर्जुना वस्त्राणि) कल्याणकारी, तथा शुभ्र तेजोंको (वसाना) धारण करनेवाली (सा इयं धीः) वह यह हमारी स्तुति (पित्र्या सनजा) हमारे पिताकी अपेक्षा भी पुरानी है ॥२॥

[३८९] (यमसूः) यम (अश्विनौ) को उत्पन्न करनेवाली उषाने (अत्र) इस समय (यमा असूत) यम (अश्विनौ) उत्पन्न कर दिए हैं, अब (जिह्वायाः अग्रं पतत् आ अस्थाद्) जीभका अगला भाग चंचल होने लगा है । (तपुषः बुध्ने) दिनके पहले (जाता) उत्पन्न हुए (तमोहना) अन्धकारका नाश करनेवाले (एता मिथुना) ये जोडे अश्विनौ (वपूंषि सचेते) स्तोत्रोंके साथ युक्त होते हैं ॥३॥

[३९०] (ये गोषु योधाः) जो युद्धोंमें अच्छे योद्धा (अस्माकं पितरः) हमारे पितर हैं (एषां) इनकी (मर्त्येषु) हम मनुष्योंमें (निन्दिता नकिः) निन्दा करनेवाला कोई नहीं है । (महिनावान् उत् दंसनावान् इन्द्रः) महिमासे युक्त तथा उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र (एषां दृंहिता) इन्हें दृढ करता है, उसने इनके लिए (गोत्राणि ससृजे) गायोंको उत्पन्न किया ॥४॥

भावार्थ- स्तोताओं द्वारा हृदयसे की गई स्तुति पालनपोषण करनेवाले इन्द्रके पास सीधी जाती है । वह स्तुति यज्ञमें प्रशंसित होती है । इन्द्र इन स्तुतियों को अच्छी तरह जानता है ॥१॥

मनुष्योंकी स्तुति दिनसे पहले ही अर्थात् सूर्योदयसे पूर्व ही उत्पन्न हुई हो, सबको जगानेवाली हो, यज्ञमें प्रशंसा प्राप्त करे। कल्याणकारी तथा शुभ्र तेजोंको धारण करनेवाली हो ॥२॥

उषा जुडवें अश्विनौको उत्पन्न करनेवाली है। वह प्रातःकाल आकर अश्विनौको उत्पन्न करती है, उनके उत्पन्न होते ही जिह्वाका अग्रभाग हिलने लगता है, अर्थात् स्तुतियां शुरु हो जाती हैं । ये दोनों अश्विनौ अन्धकारका नाश करनेवाले हैं, इसलिए इनकी स्तुति होती है ॥३॥

हमारे पूर्वज युद्धोंमें अच्छे योद्धा थे, इसलिए मनुष्योंमें इनकी निन्दा करनेवाला कोई नहीं है । महिमाशाली तथा उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र इन योद्धाओंको बल प्रदान करके और दृढ करता है । वही इन वीरोंके लिए गायें उत्पन्न करता है ॥४॥

३९१ सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वै—रभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥ ५ ॥
३९२ इन्द्रो मधु संभृतमुस्रियायां पद्वद् विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६ ॥
३९३ ज्योतिर्वृणीत तमसो विजान—न्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥ ७ ॥
३९४ ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्या—दारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥ ८ ॥

अर्थ- [३९१] (यत्र) जब (सखा) मित्र इन्द्र (गाः अभिज्ञ्वा) गायोंको जानकर (नवग्वैः सत्वभिः सखिभिः) नौ घोडोंसे जानेवाले बलवान् मित्रोंके साथ (अनुगमन्) पीछे चला, (तत्) तब (दशग्वैः दशभिः) दश घोडोंसे जानेवाले दस मित्रोंके साथ (इन्द्रः) इन्द्रने (तमसि क्षियन्तं सत्यं) अन्धकारमें निवास करनेवाले (सूर्यं विवेद) सूर्यको जाना ॥५॥

[३९२] (इन्द्रः) इन्द्रने (उस्रियायां संभृतं मधु) गायोंमें रखे हुए मधुर दूधको (विवेद) प्राप्त किया, तो (पद्वत् शफवत् गोः) पंखोंवाले पक्षी तथा खुरोंवाले भी जानवरोंको प्राप्त किया तथा (नमे) शत्रुको नम्र किया । (दक्षिणावान्) दान देनेवाले इन्द्रने (गुहाहितं गुह्यं अप्सु गूळ्हं) गुहामें रखे हुए तथा जलोंमें छिपाये गए गुप्त धनको (दक्षिणे हस्ते दधे) दाहिने हाथमें धारण किया ॥६॥

[३९३] इन्द्रने (विजानन्) जानते हुए (तमसः ज्योतिः वृणीत) अन्धकारसे ज्योतिको प्राप्त किया । हम (दुरितात् आरे) पापसे दूर होकर (अभीके स्याम) भयरहित स्थानमें रहें । (सोमपाः सोमवृद्ध इन्द्र) हे सोमको पीनेवाले तथा सोमसे बढनेवाले इन्द्र ! (पुरुतमस्य कारोः) अत्यंत श्रेष्ठ ऐसे इस स्तोताकी (इमाः गिरः जुषस्व) इन स्तुतियोंको सुन ॥७॥

१ विजानन् तमसः ज्योतिः वृणीत- ज्ञानसे युक्त होकर ही मनुष्य अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त करता है ।

२ दुरितात् आरे अभीके स्याम- पापसे दूर होकर हम भयरहित स्थानमें रहें ।

[३९४] (ज्योतिः) सूर्य (यज्ञाय) यज्ञके लिए (रोदसी अनुष्यात्) द्यावापृथिवीके पीछेसे आता है, हम (भूरेः दुरितस्य आरे स्याम) बडे पापोंसे दूर रहें । हे (सु-पारासः वसवः) दुःखोंसे अच्छी तरह पार करानेवाले वसुओ ! तुम (तुजतः मर्त्यस्य) भक्ति करनेवाले मनुष्यको (भूरि बर्हणावत्) बहुत धन देते हो ॥८॥

भावार्थ- जब मित्र के समान हित करनेवाले इन्द्रने असुरोंके द्वारा छिपाई गई गायोंके पदचिन्होंको जानकर अपने मित्रोंके साथ उन गायोंका पीछा किया, तब उसने अन्धकारमें छिपे हुए सूर्यको प्रकट किया ॥५॥

गायोंको प्राप्त करनेके बाद इन्द्रने उनके मधुर दुग्ध को प्राप्त किया । इसके साथ ही पंखोंवाले और खुरोंवाले हर तरहके जानवरोंको प्राप्त किया । दान देनेवाले इन्द्रने बहुत छिपाकर रखे हुए धनको भी जान लिया ॥६॥

इन्द्रने ज्ञानके द्वारा ही अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त किया । अन्धकारको पार करने और ज्योतिको प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय ज्ञान ही है । इस ज्योतिको प्राप्त करके मनुष्य पापसे दूर होकर भयरहित स्थानमें रहता है ॥७॥

यज्ञकी सम्पन्नताके लिए सूर्य द्यावापृथ्वीके पीछे से उदय होता है । दुःखोंसे अच्छी तरह पार करानेवाले तथा निवास करानेवाले वसुगण भक्ति करनेवाले मनुष्यको बहुतसा धन देते हैं ॥८॥

३९५ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ९ ॥

[४०]

[ऋषि— गाथिनो विश्वामित्रः । देवता— इन्द्रः । छंन्द— गायत्री ।]

३९६ इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
३९७ इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
३९८ इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥
३९९ इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥
४०० दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥
४०१ गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥

अर्थ- [३९५] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस महा संग्राममें हम (शुनं, नृतमं शृण्वन्तं) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धों में वृत्रोंको मारनेवाले (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये हुवेम) अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं ॥९॥

[४०]

[३९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम (वृषभं त्वा) बलवान् तुझे (सोमे सुते) सोमको तैय्यार करके (हवामहे) बुलाते हैं । (सः) वह तू (मध्वः अन्धसः) मीठे अन्नरूपी सोमकी (पाहि) रक्षा कर ॥१॥

[३९७] हे (हर्य पुरुष्टुत इन्द्र) घोडोंवाले तथा बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाले इन्द्र ! तू (वृषस्य) बलवान् हो और (तातृपिं) तुझ बलवान् को तृप्त करनेवाले (क्रतु-विदं सुतं सोमं) यज्ञको जाननेवाले और निचोडे गए सोमको (पिब) पी ॥२॥

[३९८] हे (स्तवान् विश्पते इन्द्र) प्रशंसित होनेवाले तथा प्रजाओंके पालक इन्द्र ! तू (विश्वेभिः देवेभिः) सब देवोंसे युक्त होकर (नः धितावानं यज्ञं) हमारे इस धनोंसे भरपूर यज्ञको (तिर) बढा ॥३॥

[३९९] हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (इमे इन्दवः चन्द्रासः) ये चमकनेवाले तथा आनन्द दायक (सुताः सोमाः) निचोडे गए सोम (तव क्षयं प्रयन्ति) तेरे स्थानकी तरफ जाते हैं ॥४॥

[४००] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव) तेरे ये सोम (द्यु-क्षासः इन्दवः) द्युलोकमें रहनेवाले तथा तेजस्वी हैं । ऐसे (वरेण्यं सुतं सोमं) ग्रहण करने योग्य निचोड गए सोमको (जठरे दधिष्व) अपने पेटमें धारण कर ॥५॥

[४०१] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतियोंसे प्रशंसनीय इन्द्र ! (नः सुतं पाहि) हमारे सोमको पी, तू (मधोः धाराभिः अज्यसे) सोमकी धारासे सींचा जाता है । (त्वा आदातं यशः इत्) तेरे द्वारा शुद्ध किया गया अन्न हमें मिले ॥६॥

आ दातं -चारों ओरसे शुद्ध किया गया । "दैप् शोधने"

भावार्थ- इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥९॥

हे बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाले इन्द्र ! हम सोमरसको तैय्यार करके तुझे बुलाते हैं, तू इन्हें आकर पी, क्योंकि ये तुझे तृप्त करनेवाले और यज्ञको जाननेवाले हैं ॥१-२॥

हे सज्जनों तथा प्रजाओंके पालक इन्द्र ! हमारे द्वारा तैय्यार किए गए आनन्ददायक सोम तेरी तरफ बहे जा रहे हैं, इसलिए तू सब देवोंके साथ हमारे यज्ञमें आकर इसको बढा ॥३-४॥

हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तू इस सोमरसको पी, ये सोमरस द्युलोकमें रहनेवाले तथा तेजस्वी हैं ॥५-६॥

४०२ अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥
४०३ अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥
४०४ यदन्तरा परावत—मर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

[४१]

[ऋषिः— गाथिनो विश्वामित्रः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— गायत्री ।]

४०५ आ तू न इन्द्र मद्र्य—ग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
४०६ सत्तो होता न ऋत्विय—स्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥
४०७ इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥
४०८ रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

अर्थ- [४०२] (वनिनः) प्रशंसनीय यजमानकी (अक्षिता द्युम्नानि) नष्ट न होनेवाली, तेजस्वी हवियां (इन्द्रं सचन्ते) इन्द्रसे मिलती हैं । वह (सोमस्य पीत्वी वावृधे) सोमको पीकर बढता है ॥७॥

[४०३] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (अर्वावतः नः आगहि) पासके स्थानसे हमारे पास आ (च) और (परावतः) दूरके स्थानसे भी हमारे पास आ, तथा (नः इमाः गिरः जुषस्व) हमारी इन स्तुतियोंको सुन ॥८॥

[४०४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जो तू (परावतं अर्वावतं अन्तरा च) दूर देशसे, पासके देशसे तथा बीचके देशसे (हूयसे) बुलाया जाता है, अतः (ततः) उस स्थानसे तू (इह आगहि) यहां यज्ञमें आ ॥९॥

[४१]

[४०५] हे (अद्रि-वः इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (हुवानः) बुलाया जाता हुआ तू (मद्र्यक्) हमारी तरफ (सोमपीतये) सोम पीनेके लिये (हरिभ्यां आयाहि) घोडोंसे आ ॥१॥

[४०६] हे इन्द्र ! (नः) हमारे यज्ञमें (ऋत्वियः होता) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाला होता (सत्तः) बैठ गया है, तथा उसने (आनुषक्) एक साथ (बर्हिः तितिरे) आसन बिछा दिए हैं, तथा (प्रातः) सबेरे सबेरे उसने (अद्रयः अयुज्रन्) पत्थर आपसमें मिलाये हैं ॥२॥

[४०७] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (ब्रह्मवाहः इमा ब्रह्म क्रियन्ते) स्तोता इन स्तुतियोंको करते हैं, इसलिए तू (बर्हिः आसीद) इस आसन पर बैठ, तथा (पुरोळाशं वीहि) पुरोडाशको खा ॥३॥

[४०८] हे (गिर्वणः वृत्रहन् इन्द्र) स्तुतियोंसे प्रशंसनीय तथा वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (नः) हमारे (एषु सवनेषु) इन यज्ञोंमें (स्तोमेषु) स्तोत्रोंमें तथा (उक्थेषु) मंत्रोंमें (रारन्धि) रमण कर ॥४॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू दूरके और पासके देशोंसे हमारे द्वारा बुलाया जाता है, इसलिए तू सब जगहसे आकर हमारी प्रार्थना सुन और सोमको पीकर बढ ॥७-९॥

हे इन्द्र ! सूर्योदय के बाद तेरे लिए यज्ञ किए जाते हैं, ये सभी यज्ञ ऋतुओंके अनुसार होते हैं । इन यज्ञोंमें तेरे लिए सोमरस तैय्यार किया जाता है, इसलिए तू हमारी तरफ आ ॥१-२॥

हे इन्द्र ! तू हमारे इन यज्ञोंमें आकर आनन्दित हो और हमारे द्वारा दी गई आहुतियोंको खाता हुआ हमारी स्तुतियां सुन ॥३-४॥

४०९ मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥
४१० स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
४११ वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
४१२ मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
४१३ अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

[४२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।]

४१४ उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
४१५ तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥

अर्थ- [४०९] (मतयः) ये हमारी स्तुतियां **(सोमपां उरुं)** सोमको पीनेवाले, महान् तथा **(शवसः पतिं इन्द्रं)** बलोंके स्वामी इन्द्रको **(मातरः वत्सं न)** जैसे गायें अपने बछडोंको चाटती हैं, उसी प्रकार **(रिहन्ति)** प्रेम करती हैं ॥५॥

[४१०] हे इन्द्र ! **(सः)** वह तू **(महे राधसे)** बहुत धन देने के लिए **(अन्धसः)** सोमरूपी अन्नसे तथा **(तन्वा)** पुष्ट शरीरसे **(मन्दस्व)** आनन्दित कर । तथा **(स्तोतारं न निदे करः)** स्तोताको निन्दाका पात्र न बना ॥६॥

[४११] हे **(वसो इन्द्र)** सबको बसानेवाले इन्द्र ! **(हविष्मन्तः त्वायवः वयं)** हविसे युक्त तथा तेरी इच्छा करनेवाले हम **(जरामहे)** तेरी स्तुति करते हैं, **(उत)** और **(त्वं अस्मयुः)** तू हमारे ऊपर कृपा करनेवाला हो ॥७॥

[४१२] हे **(स्वधा-वः हरिप्रिय इन्द्र)** अन्नोंको धारण करनेवाले तथा घोडोंको प्रिय लगनेवाले इन्द्र ! **(अर्वाङ् आयाहि)** तू हमारे पास आ और **(अस्मत् आरे मा वि मुमुचः)** अपने घोडोंको हमसे दूर जाकर न खोल, अपितु तू **(इह मत्स्व)** यहां हमारे पास ही आनन्दित हो ॥८॥

[४१३] हे **(इन्द्र)** इन्द्र ! **(घृतस्नू केशिना)** पसीनेसे युक्त तथा उत्तम अयालवाले घोडे **(त्वा)** तुझे **(अवाचं)** हमारी तरफ **(बर्हिः आसदे)** आसन पर बैठनेके लिए **(सुखे रथे आ वहताम्)** सुखदायक रथमें ले आवें ॥९॥

[४२]

[४१४] हे इन्द्र ! **(अस्मयुः)** हमें चाहनेवाला तथा **(हरिभ्यां)** दो घोडोंसे युक्त **(यः ते)** जो तेरा रथ है उससे **(नः सुतं)** हमारे द्वारा निचाडे गये **(गवाशिरं सोमं)** गौ दुग्धसे मिश्रित सोमके **(उप)** पास **(आ गहि)** आ ॥१॥

[४१५] हे **(इन्द्र)** इन्द्र ! तू **(ग्रावभिः सुतं)** पत्थरोंसे पीसे गए **(बर्हिःष्ठां)** यज्ञमें स्थापित **(मदं आ गहि)** इस आनन्द दायक सोमकी तरफ आ, तथा **(कुवित् अस्य)** बहुत बार इसे पीकर **(तृष्णवः)** तृप्त हो ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! ये हमारी स्तुतियां, जिस प्रकार बछडेको उसकी मां चाटती है और प्रेम करती है, उसी तरह, तुझसे प्रेम करती हैं, इसलिए तू पुष्ट शरीरसे बहुत धन देने के लिए हमारे पास आ और हम स्तोताओंको निन्दाका पात्र मत बना ॥५-६॥

हे उत्तम घोडोंको पालन करनेवाले इन्द्र ! तू हमारे पास आ, हमसे दूर मत जा, हम तेरी स्तुति करते हैं, अतः तू हम पर कृपा कर । तेरे उत्तम बालोंवाले घोडे भी तुझे हमारे पास ले आवें ॥७-९॥

हे इन्द्र ! हमसे प्रेम करनेवाला तू घोडोंसे युक्त होकर हमारे पास आ, तथा हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमको अनेकबार पीकर आनन्दित हो ॥१-२॥

४१६ इन्द्रमित्था गिरो ममाऽच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
४१७ इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥
४१८ इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥
४१९ विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥
४२० इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
४२१ तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
४२२ त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥

[४३]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४२३ आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठाऽस्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रियां सखाया वि मुचोप बर्हिऽस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥ १ ॥

अर्थ- [४१६] हे इन्द्र ! (इषिताः मम गिरः) प्रेरित की हुई मेरी स्तुतियां (इत्था) इस प्रकार तुझे (सोमपीतये आवृते) सोमपानार्थ लोटा लाने के लिए (इतः) यहांसे तेरे पास (अच्छ अगुः) सीधी जाएं ॥३॥

[४१७] हम (सोमस्य पीतये) सोमको पीनेके लिए (इन्द्रं) इन्द्रको (इह) यहां इस यज्ञमें (स्तोमैः हवामहे) स्तोत्रोंसे बुलाते हैं, क्योंकि वह (उक्थेभिः) स्तोत्रोंके द्वारा पहले भी (कुवित् आगमत्) बहुत बार आया है ॥४॥

[४१८] हे (वाजिनीवसो, शतक्रतो इन्द्र) बलशाली धनसे युक्त, अनेक शुभ कर्म करने हारे इन्द्र ! तेरे लिए (इमे सोमाः सुताः) ये सोम तैय्यार करके रखे गए हैं, (तान् जठरे दधिष्व) उन्हें पेटमें धारण कर ॥५॥

[४१९] हे (कवे) दूरदर्शी इन्द ! हम (त्वा) तूझे (वाजेषु) युद्धोंमें (दधृषं धनंजयं) शत्रुओंको हराने वाले तथा धनोंको जीतनेवाले के रूपमें (हि विद्म) अच्छी तरह जानते हैं, (अध) इसलिए हम (ते) तुझसे (सुम्नं ईमहे) धन मांगते हैं ॥६॥

[४२०] हे इन्द्र ! तू (वृषभिः आगत्य) बलवान् घोडोंके द्वारा आकर (नः सुतं) हमारे द्वारा निचोडे गए (इमं) इस (गवाशिरं यवाशिरं च पिब) गौ के दूधसे मिले हुए तथा जौ के आटेसे मिश्रित सोमको पी ॥७॥

[४२१] हे इन्द्र ! (तुभ्यं पीतये) तेरे पीनेके लिए मैं (स्वे ओक्ये) अपने यज्ञस्थानमें (सोमं चोदामि) सोमको प्रेरित करता हूँ। (एषः ते हृदि रारन्तु) यह सोम तेरे हृदयमें रमण करे ॥८॥

[४२२] हे इन्द्र ! (अवस्यवः कुशिकासः) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम कुशिक ऋषिके पुत्र (सुतस्य पीतये) सोमको पीनेके लिए (प्रत्नं त्वां हवामहे) अत्यन्त प्राचीन तुझे बुलाते हैं ॥९॥

[४३]

[४२३] हे इन्द्र ! (वन्धुरे-स्थाः) रथमें बैठनेवाला तू (अर्वाङ् उप याहि) हमारे पास आ, तथा (प्रदिवः सोमपेयं) द्युलोकसे लाये गए सोमको पीनेके लिए (तव) अपने (प्रिया सखाया) प्रिय मित्र घोडोंको (बर्हिः उप) यज्ञके पास (वि मुच) खोल, क्योंकि (इमे हव्यवाहः) ये स्तोतागण (त्वां हवन्ते) तुझे बुलाते हैं ॥१॥

भावार्थ- हम सोम पीने के लिए इन्द्रको इस यज्ञमें बुलाते हैं। वे हमारी स्तुतियां सोमपानके लिए इन्द्रको लौटा लावें ॥३-४॥

हे ज्ञानवान् इन्द्र ! तुझे हम युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाले तथा उनके धनोंको जीतनेवाले के रूपमें ही जानते हैं, इसीलिए तुमसे हम संरक्षण और धन मांगते हैं। तुझे हम सोमरस समर्पित करते हैं। उन्हें तू पी ॥५-६॥

हे इन्द्र ! सब ज्ञानीजन अपनी संरक्षणकी इच्छासे तुझे सोम पीनेके लिए बुलाते हैं। मैं भी अपने यज्ञमें तुझे सोम समर्पित करता हूँ। इस सोममें तरह तरह के अन्न मिले हुए हैं, तू इन्हें पी और आनन्दित हो ॥७-९॥

४२४ आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥ २ ॥
४२५ आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥ ३ ॥
४२६ आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद् वन्दनानि ॥ ४ ॥
४२७ कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद् राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥ ५ ॥

अर्थ- [४२४] हे इन्द्र! तू (**पूर्वीः चर्षणीन्**) बहुतसी प्रजाओंको (**अति आ याहि**) पार करके तू यहां आ, (**नः आशिषः**) हमारी यह प्रार्थना है कि (**अर्यः हरिभ्यां उप**) सबका स्वामी तू घोडोंसे हमारे पास आ। (**सख्यं जुषाणाः**) तेरी मित्रताकी इच्छा करनेवाली (**स्तोमतष्टाः**) स्तोताओंके द्वारा दी गई (**इमाः स्तुतयः**) ये स्तुतियां (**त्वा हवन्ते**) तुझे बुलाती हैं ॥२॥

[४२५] हे (**देव इन्द्र**) तेजस्वी इन्द्र! तू (**सजोषाः**) प्रीतियुक्त होकर (**नः नमोवृधं यज्ञं**) हमारे अन्नको बढानेवाले यज्ञके पास (**हरिभिः तूयं आ याहि**) घोडोंसे शीघ्र ही आ। (**मधूनां सधमादे**) सोमोंके यज्ञमें (**घृतप्रयाः अहं**) घी की हविसे युक्त मैं (**मतिभिः त्वा जोहवीमि**) स्तुतियोंके द्वारा तुझे बुलाता हूँ ॥३॥

[४२६] हे इन्द्र! (**त्वां**) तुझे (**वृषणा सुधुरा सु अंगा**) बलवान्, अच्छी धुरामें जुडे हुए, मजबूत अंगोंवाले (**सखाया एता हरी**) तेरे मित्र ये घोडे (**आ वहातः**) हमारे पास ले आवें। (**सखा इन्द्रः**) मित्र इन्द्र (**धानावत् सवनं जुषाणः**) अन्नसे युक्त यज्ञका सेवन करते हुए अपने (**सख्युः वन्दनानि शृणवत्**) मित्र स्तोता की प्रार्थनाओंको सुने ॥४॥

[४२७] हे (**ऋजीषिन् मघवन्**) सरल मार्गसे जानेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तू (**मा**) मुझे (**कुवित्**) बहुत बार (**गोपां करसे**) गायोंका पालनेवाला बना, (**कुवित्**) बहुत बार (**जनस्य राजानं**) मनुष्योंका राजा बना, तथा (**मा**) मुझे (**कुवित्**) बहुत बार (**सुतस्य पपिवांसं ऋषिं**) सोमको पीनेवाला ऋषि बना तथा (**कुवित्**) बहुत बार (**मे अमृतस्य वस्वः शिक्ष**) मुझे क्षय रहित धन दे ॥५॥

भावार्थ- हे इन्द्र! रथमें बैठनेवाला तू हमारे पास आ, तथा द्युलोकसे लाये गए सोमको पी। अपने घोडोंको यज्ञके पास खोल, क्योंकि ये स्तोतागण तुझे बुलाते हैं ॥१॥

हे इन्द्र! बहुतसी प्रजाओंको छोडकर तू हमारे पास आ और हमें आशिर्वाद दे। हम तेरी मित्रता प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए हम तुझे बुलाते हैं ॥२॥

हे तेजस्वी इन्द्र! तू हम पर प्रेम करता हुआ हमारे यज्ञके पास आ। सोम यज्ञमें घी की आहुति देनेवाला मैं तुझे बुलाता हूँ ॥३॥

हे इन्द्र! तुझे अच्छे और बलवान् घोडे हमारे पास लावें। तू अन्नसे युक्त यज्ञोंका सेवन करता हुआ अपने मित्रकी प्रार्थना सुन ॥४॥

हे सरल मार्गसे जानेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तू मुझे अनेकबार गायोंका स्वामी बना, अनेक बार मनुष्योंका राजा बना, अनेक बार सोम पीने वाला ऋषि बना और मुझे क्षय रहित धन दे ॥५॥

४२८ आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥ ६ ॥

४२९ इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥ ७ ॥

४३० शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ८ ॥

[४४]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता-- इन्द्रः । छन्दः- बृहती ।]

४३१ अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १ ॥

अर्थ- [४२८] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**बृहन्तः युजानाः सधमादः**) बडे, रथमें जुडे हुए, साथ साथ आनन्दित होनेवाले (**हरयः**) घोडे (**त्वा अर्वाक् आ वहन्तु**) तुझे हमारी तरफ ले आवें। (**वृषभस्य भूराः**) बलवान् इन्द्रके शत्रुओंको मारनेवाले, (**सु संमृष्टासः**) अच्छी तरह थपथपाते गए ये घोडे (**दिवः आताः**) द्युलोककी दिशाओंमें (**द्विधा**) दो प्रकारसे (**ऋजन्तिः**) जाते हैं ॥६॥

[४२९] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**उसते ते**) सोमकी कामना करनेवाले तेरे लिए (**यं**) जिस सोमको (**श्येनः आ जभार**) श्येन ले आया, उस (**वृषधूतस्य वृष्णः पिब**) पत्थरोंसे पीसे गए बलवर्धक सोमको तू पी। (**यस्य मदे प्रकृष्टीः च्यावयसि**) जिसके उत्साहमें तू शत्रुके वीरोंको उखाडता है ॥७॥

[४३०] (**अस्मिन् भरे वाजसातौ**) इस भरपूर संग्राममें हम (**शुनं, नृतमं, शृण्वन्तं**) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (**उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं**) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले, (**धनानां संजितं**) धनोंको जीतनेवाले (**मघवानं इन्द्रं**) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (**ऊतये**) अपने संरक्षणके लिए (**हुवेम**) बुलाते हैं ॥८॥

[४४]

[४३१] (**हरिभिः सुतः**) ऋत्विजों द्वारा निचोडा गया (**हर्यतः**) सुन्दर तथा (**जुषाणः**) सेवन करने योग्य (**अयं सोमः**) यह सोम (**ते अस्तु**) तेरे लिए हो। हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तू (**हरिभिः हरितं रथं तिष्ठ**) घोडोंसे युक्त हरे रंगके रथपर बैठ और (**नः आगहि**) हमारी तरफ आ ॥१॥

भावार्थ- बडे बडे रथमें जुडे हुए घोडे तुझे हमारी तरफ ले आवें। इन्द्रके ये शत्रुविनाशी घोडे द्युलोककी सभी दिशाओंमें जाते हैं ॥६॥

हे इन्द्र ! सोमकी कामना करनेवाले तेरे लिए बलवर्धक सोमको देते हैं। इस सोमके उत्साहमें तू शत्रुओंको नष्ट कर ॥७॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥८॥

ऋत्विजों द्वारा निचोडा गया तथा सेवन करने योग्य यह सोम तेरे लिए हो। तू सोम पीने के लिए उत्तम घोडोंवाले रथपर बैठकर आ ॥१॥

४३२ हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान् हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥

४३३ द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥ ३ ॥

४३४ जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुध—मा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४ ॥

४३५ इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुत—मुद् गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥

अर्थ- [४३२] हे (**हर्यश्व इन्द्र**) घोडोंवाले इन्द्र! तूने (**हर्यन्**) पूजे जाते हुए (**उषसं अर्चयः**) उषाको चमकाया तथा (**हर्यन्**) पूजे जाते हुए तूने (**सूर्यं अरोचयः**) सूर्यको प्रकाशित किया, (**विद्वान् चिकित्वान्**) विद्वान् और सब कुछ जाननेवाला तू हमारी (**विश्वाः श्रियः अभिवर्धसे**) सभी सम्पत्तिको बढाता है ॥२॥

[४३३] (**ययोः हरितोः**) जिन तेजस्वी द्यावापृथिवीके बीच में (**भूरि भोजनं**) बहुतसा भोजन प्राप्त होता है, तथा (**ययोः अन्तः हरिः चरत्**) जिन दोनोंके मध्यमें सूर्य विचरता है, ऐसे (**हरिधायसं द्यां**) किरणोंको धारण करनेवाले द्युलोकको तथा (**हरिवर्पसं पृथिवी**) हरी औषधियोंसे युक्त पृथिवीको उस (**इन्द्रः अधारयत्**) इन्द्रने धारण किया ॥३॥

[४३४] (**वृषा हरितः हर्यश्वः**) बलवान्, तेजस्वी तथा हरिनामक घोडोंवाला इन्द्र (**जज्ञानः**) उत्पन्न होकर (**विश्वं रोचनं आभाति**) सब लोकोंको प्रकाशित करता है, (**हरितं आयुधं धत्ते**) चमकीले रंगके शस्त्रको धारण करता है, तथा (**बाह्वोः हरिं वज्रं आ**) भुजाओंमें चमकीले रंगके वज्रको धारण करता है ॥४॥

१ **बाह्वोः हरितं आयुधं वज्रं धत्ते-** इन्द्र अपने हाथोंमें चमकीले रंगके शस्त्र और वज्र धारण करता है। उसके शस्त्रोंपर सोनेका काम हुआ होता है, इसलिए वे चमकीले दीखते हैं।

[४३५] (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**हर्यन्तं अर्जुनं**) सुन्दर, शुभ्र (**शुक्रैः अभीवृतं**) तेजसे चारों ओरसे युक्त (**वज्र**) वज्रको (**अपावृणोत्**) खोल दिया, तब (**हरिभिः**) घोडोंकी सहायतासे (**हरिभिः अद्रिभिः सुतं**) चमकीले पत्थरोंसे पीसे गए सोमको (**उत्**) और (**गाः आजत**) गायोंको प्राप्त किया ॥५॥

भावार्थ- हे पूजाके योग्य इन्द्र! तूने उषाओंको प्रकाशित किया, सूर्यको चमकाया। तू बुद्धिमान और ज्ञानवान् है, तू ही हमारे ऐश्वर्यको बढाता है ॥२॥

द्युलोकमें सूर्य घूमता है और पृथ्वीपर हरी ओषधियां उत्पन्न होती हैं। ऐसे तेजस्वी द्युलोक और पृथ्वीको इन्द्र धारण करता है ॥३॥

यह तेजस्वी और बलवान् इन्द्र उत्पन्न होकर सब लोकोंको प्रकाशित करता है। चमकीले शस्त्रको धारण करनेवाला यह इन्द्र अपने हाथोंमें तेजस्वी वज्रको धारण करता है ॥४॥

जब इन्द्रने सफेद और तेजस्वी वज्रको खोला तब उसने गायोंको प्राप्त किया। जब असुरोंने गायोंका अपहरण करके उन्हें छिपा दिया, तब इन्द्रने अपने वज्रको उठाकर असुरोंका नाश किया और वे गायें प्राप्त कीं ॥५॥

[४५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- बृहती ।]

४३६ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभि—र्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥
४३७ वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥ २ ॥
४३८ गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३ ॥
४३९ आ नस्तुजं रयिं भरा—ंशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुही—न्द्र संपारणं वसु ॥ ४ ॥

[४५]

अर्थ- [४३६] हे इन्द्र। तू (मन्द्रैः) आनन्द देनेवाले तथा (मयूररोमभिः) मोरके रंगके समान बालवाले (हरिभिः आ याहि) घोडोंसे आ। (पाशिनः विं) जिस प्रकार जाल लिए हुए शिकारी पक्षियोंको पकडते हैं उस प्रकार (त्वा केचिन् मा नियमन्) तुझे कोई न पकडे तथा (धन्वा इव) जिस प्रकार यात्री मरुस्थलको पार करता है, उसी प्रकार (तान् इहि) उन्हें पार करके तू यहां आ ॥१॥

[४३७] यह (इन्द्रः) इन्द (वृत्रखादः वलंरुजः) वृत्रको खा जानेवाला, वलासुरको मारनेवाला (पुरां दर्मः अपामजः) शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला, पानियोंको प्रेरित करनेवाला, (हर्योः अभिस्वरे) घोडोंको हांकनेके समय (रथस्य स्थाता) रथपर बैठनेवाला (दृळ्हा चित् आरुजः) दृढ से दृढ शत्रुओंको भी नष्ट करनेवाला है ॥२॥

[४३८] हे इन्द्र ! (गंभीरान् उदधीः इव) गहरे समुद्रके समान तथा (सु-गोपा गाः इव) जैसे उत्तम गोपाल गायोंको पुष्ट करता है, उसी तरह तू (क्रतुं पुष्यसि) यज्ञको पुष्ट करता है। (धेनवः यवसं यथा) जैसे गायें जौ खाती हैं, उसी तरह तू सोम पीता है, वे सोम (कुल्याः ह्रदं इव) जिस प्रकार छोटी छोटी नदियां बडे जलाशयमें जाती हैं, उसी प्रकार ये सोम तुझे (आशत) प्राप्त होते हैं ॥३॥

[४३९] हे इन्द्र ! (प्रतिजानते अंशं न) जिस प्रकार पिता अपने ज्ञानवान् पुत्रको अपने धनका भाग देता है, उसी प्रकार तू (नः तुजं रयिं आ भर) हमें शत्रुओंको प्रतिबन्ध करनेवाले धन दे। जिस प्रकार मनुष्य (पक्वं फलं वृक्षं) पके हुए फलवाले वृक्षको (अंकी इव) हंसिया लेकर हिलाता है, उसी तरह तू हमें (संपारणं वसु) हमारी इच्छा पूर्ण करनेवाले धन (धूनुहि) दे ॥४॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू मोरके समान सुन्दर रंगके अयालोंसे युक्त अपने घोडोंसे, जिस प्रकार यात्री रेगिस्तानको छोडकर हरे भरे प्रदेशमें आते हैं, उसी प्रकार अन्य मनुष्योंको छोडकर हमारे पास आ। जिस प्रकार चिडीमार चिडियोंको पकडते हैं, उस प्रकार तुझे कोई न पकडे ॥१॥

यह इन्द्र वृत्रको खानेवाला, वलासुरको मारनेवाला, शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाला, असुरों द्वारा रोके गए पानीको बहनेके लिए प्रेरित करनेवाला, उत्तम रथी और बलवान् से बलवान् शत्रुओंको भी नष्ट करनेवाला है ॥२॥

यह इन्द समुद्रके समान विशाल और गंभीर है। जिस प्रकार एक ग्वाला गायोंको पुष्ट करता है उसी तरह यह यज्ञको पुष्ट करता है। जिस प्रकार छोटी छोटी नदियां समुद्रकी तरफ बहती है, उसी प्रकार सोम इन्द्रकी तरफ प्रवाहित होते हैं ॥३॥

हे इन्द्र ! तू हमारा पिता है, पालक है, अतः जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रको अपनी सम्पत्तिका भाग देता है, उसी तरह तू भी हमें उत्तम धन दे। अथवा जिस प्रकार हिलाये जानेपर वृक्षसे पके पके फल गिरते हैं और उन्हें खाकर मनुष्य पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार तू हमें उत्तम पदार्थ देकर पुष्ट कर ॥४॥

४४०. स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मदिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ ॥

[४६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४४१ युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणी-न्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १ ॥
४४२ महाँ असि महिष वृष्ण्येभि-र्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २ ॥
४४३ प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३ ॥

अर्थ- [४४०] हे इन्द्र ! (तू स्वयुः) धनवान् है, (स्व-राट्) अपने तेजसे तू तेजस्वी है, (स्मदिष्टिः) अनुशासित तथा (स्व-यशस्तरः असि) बहुत बडी कीर्तिवाला है। हे (पुरुष्टुत) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (सः) वह तू (ओजसा वावृधानः) ओजसे बढता हुआ (नः सु श्रवस्तमः भव) हमारे लिए उत्तम यशसे युक्त हो ॥५॥

१ स्वै-राट् यशस्तरः- जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है, वही अत्यधिक यशवाला होता है।

[४६]

[४४१] हे इन्द्र ! (युध्मस्य, वृषभस्य) उत्तम योद्धा, बलवान् (स्वराजः उग्रस्य) धनके स्वामी, वीर, (यूनः स्थविरस्य) तरुण, सबसे बडे, (धृष्वेः) शत्रुओंको मारनेवाले (अजूर्यतः) वृद्ध न होनेवाले (वज्रिणः) वज्र धारण करनेवाले (श्रुतस्य) प्रसिद्ध (महतः) महान् (ते) तेरे (वीर्याणि महानि) पराक्रम भी महान् हैं ॥१॥

[४४२] हे (महिष उग्र) बलवान् और वीर इन्द्र तू (महान् असि) महान् है, (धनस्पृत्) धनोंसे तृप्त करनेवाला तू (वृष्ण्येभिः अन्यान् सहमानः) अपने पराक्रमों से शत्रुओंको हराता है, (विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा) सम्पूर्ण लोकोंका अकेलाही राजा (सः) वह तू (योधय) युद्ध कर (च) और (जनान् क्षयय) शत्रुजनोंको नष्ट कर ॥२॥

[४४३] (रोचमानः विश्वतः अ-प्रति-इतः ऋजीषी) तेजस्वी, किसीसे भी न हरनेवाला, सरल मार्गसे जानेवाला इन्द्र (मात्राभिः प्र रिरिचे) मापनेवाले साधनोंसे भी बडा है, (देवेभिः मज्मना प्र) देवोंके बलसे भी वह बडा है, (दिवः पृथिव्याः प्र) द्यु और पृथिवीसे भी वह बडा है तथा (उरोः महो अन्तरिक्षात्) विस्तृत और महान् अन्तरिक्षसे भी वह बडा है ॥३॥

भावार्थ- यह इन्द्र अपने ही तेजसे तेजस्वी है, अपने ही बलसे धनवान् है, इसीलिए वह उत्तम यशवाला है। वह स्वयं अनुशासनमें रहकर दूसरोंको भी अनुशासनमें रखता है। वह स्वयं भी तेजसे बढता हुआ मनुष्योंको भी बढाता है ॥५॥

उत्तम योद्धा, बलवान्, धनके स्वामी, वीर, तरुण, सबसे बडे, शत्रुओंको मारनेवाले, वृद्ध न होनेवाले, वज्र धारण करनेवाले और प्रसिद्ध इस इन्द्रके पराक्रम भी महान् हैं ॥१॥

हे इन्द्र ! तू बलवान् और वीर होने के कारण महान् है। धनोंसे तृप्त करनेवाला तू अपने पराक्रमसे शत्रुओंको हराता है। तू सम्पूर्ण भुवनोंका एक ही राजा है। तू भुवनोंकी रक्षा करनेके लिए शत्रुओंको मार ॥२॥

तेजस्वी, किसीसे भी न हारनेवाला तथा सरल मार्गसे जानेवाला इन्द्र बहुत महान् है, इसलिए उसे मापा नहीं जा सकता। देवोंके बलसे भी उसका बडा बल है अर्थात् उसे देव भी नहीं पा सकते, द्यु और पृथ्वी से भी वह बडा है और विस्तृत और महान् अन्तरिक्षसे भी वह बडा है ॥३॥

४४४ उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥ ४ ॥
४४५ यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्य—ध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ ॥

[४७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४४६ मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ १ ॥
४४७ सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वा—ऽथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥

अर्थ- [४४४] (**उरुं गभीरं**) महान्, गंभीर (**जनुषा उग्रं**) जन्मसे वीर (**विश्वव्यचसं**) विश्वको व्यापनेवाले (**मतीनां अवतं**) बुद्धियोंके भण्डार (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**प्रदिवि सुतासः सोमासः**) द्युलोकमें निचोडे गए सोम (**स्रवतः समुद्रं न**) नदियां जिस तरह समुद्रको प्राप्त होती है, उसी तरह (**आ विशन्ति**) प्राप्त होते हैं ॥४॥

[४४५] हे इन्द्र ! (**त्वाया**) तेरी कामनासे (**द्यावापृथिवी**) द्यावापृथिवी (**यं सोमं**) जिस सोमको (**माता गर्भं न**) जिस तरह माता गर्भको धारण करती है, उसी प्रकार (**बिभृतः**) धारण करते हैं, हे (**वृषभ**) बलवान् इन्द्र ! (**तं**) उस सोमको (**ते पातवै**) तेरे पीनेके लिए (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु (**हिन्वन्ति**) कूटते हैं और (**मृजन्ति**) शुद्ध करते हैं ॥५॥

[४७]

[४४६] हे इन्द्र ! (**मरुत्वान् वृषभः**) मरुतोंसे युक्त तथा बलवान् तू (**रणाय, मदाय**) रणके लिए और आनन्दके लिए (**सोमं अनुष्वधं पिब**) सोमको इच्छानुसार पी। (**मध्वः ऊर्मिं जठरे आ सिंचस्व**) सोमकी लहरको पेटमें डाल। (**त्वं**) तू (**दिवः सुतानां**) द्युलोकके सोमोंका (**राजा असि**) राजा है ॥१॥

[४४७] हे (**वृत्रहा, शूर, विद्वान् इन्द्र**) वृत्रको मारनेवाले, शूर तथा विद्वान् इन्द्र ! (**सगणः मरुद्भिः सजोषाः**) गणोंके साथ तथा मरुतोंसे युक्त होकर तू (**सोमं पिब**) सोम पी। (**शत्रून् जहि**) शत्रुओंको मार, (**मृधः अपनुदस्व**) शत्रुओंको दूर कर तथा (**नः**) हमें (**विश्वतः अभयं कृणुहि**) सब ओरसे भयरहित कर ॥२॥

भावार्थ- यह इन्द्र महान्, गंभीर, जन्मसे ही वीर, सर्वव्यापक, बुद्धियोंका भण्डार है ॥४॥

इन्द्रके द्वारा अभिलषित सोमको द्युलोक और पृथ्वीलोक उसी प्रकार धारण करते हैं, जिस प्रकार माता गर्भको धारण करती है। सोमको अध्वर्युगण कूट पीसकर शुद्ध करके उसका रस तैय्यार करते हैं ॥५॥

हे इन्द्र ! मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाला तू युद्ध करनेके लिए और आनन्दके लिए सोम पी। यह सोम द्युलोकका राजा है ॥१॥

हे वृत्रको मारनेवाले शूरवीर इन्द्र ! तू मरुतोंके साथ सोम पी, उत्साहित होकर शत्रुओंको मार, शत्रुओंको दूर कर और हमें सब ओरसे भयरहित कर ॥२॥

४४८ उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोम-मिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वा-ऽन्वहन् वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥
४४९ ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन् ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ४ ॥
४५० मरुत्वन्तं वृषभं वावृधान-मकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायो-ग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥

[४८]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४५१ सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥ १ ॥

अर्थ- [४४८] हे (**ऋतुपाः इन्द्र**) ऋतुओंके पालन करनेहारे इन्द्र ! तू (**सखिभिः देवेभिः**) अपने मित्र देवोंके साथ तथा (**ऋतुभिः**) मरुतोंके साथ (**नः सुतं पिब**) हमारे सोमको पी। (**यान् मरुतः आभजः**) जिन मरुतोंकी सहायता तूने प्राप्त की, (**ये त्वा अनु**) जिन्होंने तेरी सहायता की, तथा (**वृत्रं अहन्**) वृत्रको तूने मारा, ऐसे मरुतोंने (**तुभ्यं ओजः अदधुः**) तुझमें ओज स्थापित किया ॥३॥

[४४९] हे (**मघवन् इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**ये**) जिन्होंने (**त्वा**) तुझे (**अहिहत्ये**) अहिको मारनेवाले युद्धमें (**अवर्धन्**) बढाया है, (**हरिवः**) घोडोंवाले इन्द्र ! (**शाम्बरे**) शम्बरके साथ होनेवाले युद्धमें तुझे बढाया तथा (**ये विप्राः**) जो बुद्धिमान् मरुत (**त्वा**) तुझे (**गविष्टौ**) गाय सम्बन्धी होनेवाले युद्धमें (**अनुमदन्ति**) उत्साहित करते हैं, उन (**सगणः मरुद्भिः**) गणोंके साथ तथा मरुतोंके साथ तू (**सोमं पिब**) सोम पी ॥४॥

[४५०] (**मरुत्वन्तं वृषभं**) मरुतोंसे युक्त, बलवान्, (**वावृधानं अकवारिं**) बढनेवाले, अवर्णनीय, (**दिव्यं शासं**) दिव्यशासक (**विश्वासाहं**) सब शत्रुओंको हरानेवाले, (**उग्रं सहोदां**) वीर तथा बलको देनेवाले (**इन्द्रं**) उस इन्द्रको हम (**नूतनाय अवसे**) नये रक्षणके लिए (**इह हुवेम**) यहां बुलाते हैं ॥५॥

[४८]

[४५१] (**सद्यः जातः वृषभः कनीनः ह**) उत्पन्न होते ही यह तत्कालही महाबलवान् और सुन्दर और उत्साही तरुण जैसा हुआ। (**सुतस्य अन्धसः प्रभर्तुं आवत्**) सोमरसरूपी अन्नको दान करनेवालेका उसने तत्काल रक्षण किया, हे इन्द्र ! (**प्रतिकामं**) इच्छा होते ही (**यथा ते**) जैसी तेरी इच्छा होगी उस प्रकार (**सोम्यस्य साधोः रसाशिरः**) सोमरसके अन्दर मिलाये गौके दुग्धके उत्तम मिश्रणका (**प्रथमं पिब**) सबसे प्रथम पान कर ॥१॥

१ **सद्यः जातः वृषभः कनीनः**- प्रकट होते ही बलवान् और उत्साही तरुण जैसा पुरुषार्थी बनो। निरुत्साही, मंद अथवा हताश बनना योग्य नहीं है।

भावार्थ- हे ऋतुओंका पालन करनेवाले इन्द्र ! तू अपने मित्र देवों और मरुतोंके साथ सोम पी। मरुतोंने ही तुझमें तेज स्थापित किया है ॥३॥

हे इन्द्र ! जिन मरुतोंने अहिके साथ होनेवाले संग्राममें तेरी शक्ति बढाई, शम्बरासुरके साथ होनेवाले संग्राममें तुझे बढाया, गायोंको प्राप्त करनेवाले युद्धमें तुझे बढाया, उन मरुतोंके साथ तू सोम पी ॥४॥

मरुतोंकी सहायताको प्राप्त करनेवाले, बलवान्, बढनेवाले, अवर्णनीय, दिव्यशासक, शत्रुओंको हरानेवाले, बल देनेवाले इन्द्रको हम अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं ॥५॥

इन्द्र प्रकट होते ही बलवान् और उत्साही तरुण जैसा पुरुषार्थी बना और वह सोमरस देनेवालोका संरक्षण करने लगा। हे इन्द्र ! यह सोमरस गौका दूध मिलाकर तैय्यार किया है। जिस समय इच्छा हो उस समय अपनी इच्छानुसार इसका पान कर ॥१॥

४५२ यज्जायथास्तदहरस्य कामेँऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥ २ ॥

४५३ उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान् महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

४५४ उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयाऽऽमुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥ ४ ॥

अर्थ- [४५२] हे इन्द्र ! (**यत् जायथाः**) जब तू प्रकट हुआ (**तत् अहः**) उसी दिन (**कामे**) पीनेकी इच्छा होनेपर (**अस्य अंशोः गिरिष्ठां पीयूषं अपिबः**) इस सोमका पर्वतपर रहनेवाला यह अमृत तूने पिया था। (**ते जनित्री योषा माता**) तेरी जननी स्त्री माता (**महः पितुः दमे**) तेरे बडे पिताके घरमें, प्रसूति गृहमें (**अग्रे परि आसिचत्**) सबसे प्रथम तेरे मुखमें उस सोमरसको थोडा थोडा डालती थी ॥२॥

[४५३] वह इन्द्र (**मातरं उपस्थाय**) माताके पास जाकर (**अन्नं ऐट्ट**) अन्न मांगने लगा। तब उसने (**ऊधः तिग्मं सोमं अपश्यत्**) अपनी माताके स्तनोमें तीक्ष्ण सोमको ही देखा। यह (**गृत्सः**) इन्द्र आगे (**अन्यान् प्रच्यावयत् अचरत्**) अन्य शत्रुओंको स्वस्थानसे उखाडने लगा और स्वयं आगे बढने लगा। पश्चात् (**पुरुधप्रतीकः**) अनेक रूपोंको धारण करनेवाले उसी इन्द्रने (**महानि चक्रे**) बडे बडे महत्वके पराक्रमके कर्म किये ॥३॥

[४५४] (**एषः उग्रः**) यह इन्द्र उग्रवीर है, (**तुरा-षाट् अभिभूति-ओजाः**) शीघ्रतासे शत्रुका पराभव करनेवाले और शत्रुका नाश करनेके अद्भुत सामर्थ्यसे युक्त है। वह (**यथावशं तन्वं चक्रे**) इच्छाके अनुसार शरीरके रूप धारण करता है। इस इन्द्रने अपने (**जनुषा**) जन्मके सामर्थ्यसे ही (**त्वष्टारं अभिभूय**) त्वष्टाका पराभव किया और (**चमूषु सोमं आ-मुष्य**) पात्रोंमें रखा सोम अपने पास चुपकेसे लेकर (**अपिबत्**) पीया ॥४॥

भावार्थ- इस मंत्रमें इन्द्रके बालपन तथा जन्म दिवसका वर्णन है। जिस दिन (**कश्यपके घरमें**) इन्द्रका जन्म हुआ, उसी (**तत् अहः**) प्रथम दिन स्तनपान करनेके पूर्व इन्द्रकी माताने (**अदितिने**) इस बालकके मुखमें पर्वतपर उत्पन्न हुए इस सोमरसरूपी अमृतको थोडा थोडा डाल दिया था। इस तरह जन्मने पर पहिले ही दिन दूसरा कुछ पान करनेके पूर्व ही इन्द्रने प्रथम सोमरसका पान किया था। अर्थात् वैदिक समयमें बालकके मुखमें सबसे प्रथम सोमरस थोडा थोडा डाला जाता था ॥२॥

इन्द्र बडा हुआ। उसको भूख लगी। वह अन्न मांगने लगा। उसने माताके स्तनोंमें सोमकोही दूधके रूपमें देखा। इन्द्रने उस दूधका पान किया। इससे उसकी शक्ति बढ गई। उस इन्द्रने अन्य शत्रुओंका भगाया, स्वस्थानसे उखाडकर फेंक दिया और स्वयं प्रगति करने लगा। और आगे जाकर इसने बडे बडे पराक्रम किये ॥३॥

यह इन्द्र दीखनेमें बडा उग्र भयंकर वीरसा दीखता है। यह त्वरासे शत्रुका पराभव करता है, शत्रुपर आक्रमण करनेका सामर्थ्य इसका बडा भारी है। अपनी इच्छाके अनुसार यह अपने शरीरको बनाता है, अनेकरूप धारण करके यह अनेक कार्य करता है। जन्मते ही इसने त्वष्टाका पराभव किया और वहां यज्ञमें अनेक पात्रोंमें भरा हुआ सोम चुपके से अपने ताबेमें लेकर उस सोमरसको उसने तत्काल ही पिया ॥४॥

४५५ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

[४९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४५६ शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

४५७ यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥

अर्थ- [४५५] (**अस्मिन् वाजसातौ भरे**) इस अन्नकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले संग्राममें (**शुनं**) सुखकारी, उत्साही (**मघवानं नृतमं इन्द्रं**) धनवान् उत्तम नेता इन्द्रको (**ऊतये**) हम अपनी सहायताके लिये (**हुवेम**) बुलाते हैं। वह (**श्रृण्वन्तं उग्रं**) सबकी बातें सुननेवाला उग्रवीर है। वह (**समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं**) युद्धोंमें वृत्रोंको, असुरोंका वध करता है, और (**धनानां संजितं**) धनोंको जीतता है ॥५॥

[४९]

[४५६] (**यस्मिन्**) जिस इन्द्रके पास (**विश्वाः सोम-पाः कृष्टयः**) सब सोम पीनेवाली प्रजायें (**कामं अव्यन्**) अभिलाषाकी पूर्तिके लिए जाती हैं, तथा (**धिषणे देवाः**) धारण करनेवाली द्यावापृथिवी तथा सब देव (**यं सुक्रतुं, विभ्वतष्टं**) जिस उत्तम कर्म करनेवाले, अत्यन्त रूपवान् तथा (**वृत्राणां घनं**) वृत्रोंको मारनेवाले इन्द्रको (**जनयन्त**) प्रसन्न करते हैं उस (**महां इन्द्रं शंस**) महान् इन्द्रकी स्तुति करो ॥१॥

१ **विश्वाः कृष्टयः कामं अव्यन्**- सारी प्रजायें अपने मनोरथकी पूर्तिके लिए इसी इन्द्रके पास जाती हैं।

[४५७] (**पृतनासु**) युद्धोंमें (**यं स्वराजं**) जिस तेजस्वी, (**नृतमं हरिष्ठां**) उत्तम नेता तथा घोडोंके रथमें बैठनेवाले इन्द्रसे कोई भी (**द्विता नकिः तरति**) अपने दुहरे व्यवहार के द्वारा पार नहीं पा सकता, (**इनतमः पृथुज्रयाः यः**) उत्तम स्वामी और संग्रामकी तरफ वेगसे जानेवाले जो इन्द्र अपने (**स्तवभिः शूषैः**) सत्वगुणवाले बलोंसे (**दस्योः आयुः अभिनात्**) दस्युकी आयुको कम करता है ॥२॥

१ **इनतमः पृथुज्रयाः सत्वभिः शूषैः दस्योः आयुः अभिनात्**- श्रेष्ठ स्वामी, संग्राममें जानेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे दुष्टकी आयु नष्ट करता है। दुष्टोंको मारता है।

भावार्थ- इस मंत्रमें (शुनं) सुखदायी, (मघवा) धनवान्, (नृतमः) मानवोंमें श्रेष्ठ नेता (उग्रः) उग्रवीर, (वृत्राणि घ्नन्) असुरोंका वधकर्ता, (धनानां संजितः) धनोंको जीतनेवाला ये इन्द्रके विशेषण राजाके भी गुण हैं। ये गुण मानवोंको भी अपने अन्दर धारण करने योग्य हैं ॥५॥

यह इन्द्र सोमपान करनेवाली अर्थात् यज्ञमें सोमकी आहुति देनेवाली प्रजाओंकी हर अभिलाषाको पूर्ण करता है। यह इन्द्र उत्तम कर्म करनेवाले, रूपवान् और शत्रुओंका संहार करनेवाला है इसलिए सभी लोक और देव इस इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ॥१॥

युद्धोंमें अपने तेजको प्रकट करनेवाले श्रेष्ठ नेता इस इन्द्रसे अन्दरसे कुछ और बाहरसे कुछ और इस प्रकार दो तरहका व्यवहार करनेवाला मनुष्य अपना बचाव नहीं कर सकता। क्योंकि अपने श्रेष्ठ बलोंसे युक्त यह इन्द्र ऐसे दुष्टोंकी आयु कम कर देता है अर्थात् उन्हें मृत्युकी तरफ भेज देता है ॥२॥

४५८ सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥
४५९ धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥ ४ ॥
४६० शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

[५०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४६१ इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नै—रास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥ १ ॥

अर्थ- [४५८] वह इन्द्र (सहावा) बलवान् (पृत्सु अर्वा तरणिः) संग्रामोंमें घोडेके समान शत्रुओंको पार कर जानेवाला, (रोदसी व्यानशिः) द्यावापृथिवीको व्यापनेवाला, (मेहनावान्) अत्यन्त धनवान् (कारे भगः न हव्यः) यज्ञमें भग देवताके समान बुलाने योग्य (मतीनां पिता इव) बुद्धियोंका पिताके समान पालन करनेवाला, (सु-हवः वयो-धाः) उत्तम प्रकारसे सहाय्यार्थ बुलाया जानेवाला तथा अन्नको धारण करनेवाला है ॥३॥

१ सहा-वा- शत्रुका पराभव करनेवाले बलसे युक्त।
२ पृत्सु तरणिः- युद्धोंमें शत्रुओंको पार करके जानेवाला।
३ मतीनां पिता- बुद्धियोंका रक्षक।

[४५९] वह इन्द्र (दिवः रजसः धर्ता) द्युलोक और अन्तरिक्षको धारण करनेवाला, (पृष्ट) व्यापक, (रथः न ऊर्ध्वः वायुः) रथके समान ऊपरकी तरफ गति करनेवाला, (वसुभिः), धनोंसे युक्त, (नियुत्वान्) घोडोंसे युक्त (क्षपां वस्ता) रात्रीको बसानेवाला (सूर्यस्य जनिता) सूर्यको उत्पन्न करनेवाला, तथा (वाजं भागं धिषणा इव विभक्तं) अन्नके भागको बुद्धिपूर्वक बांटनेवाला है ॥४॥

[४६०] (अस्मिन् वाजसातौ भरे) इस अन्नकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले संग्राममें (शुनं) सुखकारी, उत्साही (मघवानं नृतम इन्द्रं) धनवान् उत्तम नेता इन्द्रको हम अपनी (ऊतये) सहायताके लिये (हुवेम) बुलाते हैं। वह (शृण्वन्तं उग्रं) सबकी बातें सुननेवाला उग्रवीर है, वह (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें वृत्रोंका, असुरोंका वध करता है और (धनानां संजितं) धनोंको जीतता है ॥५॥

[५०]

[४६१] (यस्य सोमः) जिसका यह सोम है ऐसा वह (इन्द्रः) इन्द्र (स्वाहा पिबतु) समर्पणपूर्वक दिए गए सोमको पीवे। (तुम्रः वृषभः मरुत्वान्) शत्रुओंका हिंसक, बलवान्, मरुतोंसे युक्त (उरुव्यचाः) और महान् यशवाला वह इन्द्र (आगत्य) हमारे पास आकर (एभिः अन्नैः आ पृणतां) इन अन्नोंसे तृप्त हो और (हविः) हमारी हवि भी (अस्य तन्वः) इसके शरीरको (कामं ऋध्याः) यथेच्छ बढावे ॥१॥

भावार्थ- यह इन्द्र बलवान्, शत्रुओंका संहारक, सर्वत्र व्याप्त, धनवान् और बुद्धियोंका पालक तथा उत्तम अन्नोंको धारण करनेवाला है। इन्द्रकी स्तुति करनेसे बुद्धि उत्तम और तीक्ष्ण होती है ॥३॥

यह इन्द्र द्यु तथा अन्य लोकोंको धारण करनेवाला, सदा उन्नतिकी तरफ गति करनेवाला, रात्रिका उत्पादक साथ ही सूर्यको उत्पन्न करनेवाला है ॥४॥

इस मंत्रमें (शुनं) सुखकारी, (मघवा) धनवान्, (नृतमः) मानवोंमें श्रेष्ठ नेता (उग्रः) उग्रवीर, (वृत्राणि घ्नन्) असुरोंका वधकर्ता, (धनानां संजितः) धनोंको जीतनेवाला ये इन्द्रके विशेषण राजाके भी गुण हैं। ये गुण मानवोंको भी अपने अन्दर धारण करने योग्य हैं ॥५॥

४६२ आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः ॥ २ ॥
४६२ गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥ ३ ॥
४६४ इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ ४ ॥
४६५ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [४६२] हे इन्द्र ! (**ते जवसे**) तेरे शीघ्रतासे जानेके लिए (**सपर्यू**) तेरी उत्तम सेवा करनेवाले घोडोंको (**तेरे रथमें**) मैं (**आ युनज्मि**) जोडता हूँ, (**ययोः**) जिनसे तू (**श्रुष्टिं आवः**) हमारी सहायता के लिए आ, (**हरयः**) घोडे भी (**त्वा इह धेयुः**) तुझे यहां ले आवें, हे (**सु-शिप्र**) उत्तम ठोढीवाले इन्द्र! (**सु-सुतस्य चारोः अस्य पिब**) अच्छी तरह निचोडे गए और उत्तम इस सोमरसको पी ॥२॥

[४६३] (**गृणानाः**) स्तुति करनेवाले हम (**मिमिक्षुं सु-पारं**) पानी बरसानेवाले तथा दुःखोंसे अच्छी तरह पार करानेवाले इन्द्रको (**ज्यैष्ठ्याय धायसे**) श्रेष्ठताके लिए तथा पोषण प्राप्त करनेके लिए (**गोभिः दधिरे**) गौओंसे धारण करते हैं। हे (**ऋजीषिन्**) सरल मार्गमें प्रेरित करनेवाले इन्द्र ! (**मन्दानः सोमं पपिवान्**) आनन्दसे सोमको पीता हुआ तू (**अस्मभ्यं पुरुधा गाः सं इषण्यः**) हमारी ओर अनेक प्रकारकी गायोंको प्रेरित कर ॥३॥

[४६४] हे इन्द्र! (**गोभिः अश्वैः चन्द्रवता राधसा**) गाय, घोडे और चमकनेवाले धनसे (**इमं कामं मन्दय**) हमारी इस अभिलाषाको पूर्ण कर। (**स्वर्यवः विप्राः कुशिकासः**) स्वर्ग जानेकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् कुशिक ऋषिके पुत्र (**तुभ्यं इन्द्राय**) तुझ इन्द्रके लिए (**मतिभिः**) अपनी बुद्धियोंके द्वारा (**वाहः अक्रन्**) स्तोत्र बनाते हैं ॥४॥

[४६५] (**अस्मिन् वाजसातौ भरे**) इस अन्नकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले संग्राममें (**शुनं**) सुखकारी, उत्साही (**मघवानं नृतमं इन्द्रं**) धनवान् उत्तम नेता इन्द्रको हम अपनी (**ऊतये**) सहायता के लिए (**हुवेम**) बुलावे हैं, वह (**शृण्वन्तं उग्रं**) सबकी बातें सुननेवाला उग्रवीर है, वह (**समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं**) युद्धोंमें वृत्रोंको, असुरोंका वध करता है, और (**धनानां संजितं**) धनोंको जीतता है ॥५॥

भावार्थ- शत्रुओंका विनाश करनेवाला, बलवान् तथा मरुतोंकी सहायता लेनेवाला यह इन्द्र उन्हीं लोगोंके सोमरसको स्वीकार करता है, जो उसे प्रीतिसे समर्पित करते हैं। वह स्वयं सोमरससे तृप्त होकर सोमरसको प्रदान करनेवालेको भी हरतरहसे बढाता है ॥१॥

हे इन्द्र ! शीघ्रतासे तू जा सके इसलिए मैं तेरे रथमें उत्तम घोडे जोडता हूँ। तू हमारे पास आकर पवित्रतापूर्वक निचोडे गए सोमरसको पी ॥२॥

हे इन्द्र ! तू पानी बरसानेवाला तथा दुःखोंसे पार करनेवाला है। उससे श्रेष्ठता और पोषण करनेके लिए हम गायोंको धारण करते हैं। गायोंको पालने और उनके दूधको पीनेसे पुष्टि प्राप्त होती है। इसीलिए, हे इन्द्र ! तू हमारी तरफ गायोंको प्रेरित कर ॥३॥

हे इन्द्र! गाय, घोडे और धन देकर हमारे मनोरथोंको पूर्ण कर। अपनी अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिए कुशिक ऋषिके पुत्र तेरी स्तुति करते हैं ॥४॥

इस मंत्रमें (**शुनं**) सुखदायी, (**मघवा**) धनवान्, (**नृतमः**) मानवोंमें श्रेष्ठ नेता (**उग्रः**) उग्रवीर, (**वृत्राणि घ्नन्**) असुरोंका वधकर्ता, (**धनानां संजितः**) धनोंको जीतनेवाला ये इन्द्रके विशेषण राजाके भी गुण हैं। ये गुण मानवोंको भी अपने अन्दर धारण करने योग्य हैं ॥५॥

[५१]

[ऋषिः— गाथिनो विश्वामित्रः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप्, १-३ जगती, १०-१२ गायत्री ।]

४६६ चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ १ ॥

४६७ शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥ २ ॥

४६८ आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥ ३ ॥

---

[५१]

अर्थ- [४६६] (**चर्षणीधृतं उक्थ्यं, वावृधानं**) प्रजाओंको धारण करनेवाले, प्रशंसनीय, बढानेवाले, (**पुरुहूतं अमर्त्यं**) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले, अमर (**जरमाणं इन्द्रं**) स्तुति के योग्य इन्द्रकी हमारी (**बृहती गिरः**) बडी वाणियां (**सुवृक्तिभिः अभि अनूषत**) उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करती हैं ॥१॥

[४६७] (**शतक्रतुं अर्णवं**) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले, जलसे युक्त (**शाकिनं, नरं**) सामर्थ्यशाली, नेता (**वाजसनिं पूर्भिदं**) अन्न प्राप्त करानेवाले, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले (**तूर्णिं अप्-तुरं**) शीघ्रतासे जानेवाले, जलोंको प्रेरित करनेवाले, (**धाम-साचं अभि-षाचं**) तेजसे युक्त, शत्रुओंको हरानेवाले (**स्वः-विदं इन्द्रं**) सुखको जाननेवाले इन्द्रको (**मे गिरः विश्वतः उपयन्ति**) मेरी स्तुतियां सब ओरसे प्राप्त होती हैं ॥२॥

[४६८] (**जरिता**) शत्रुओंको क्षीण करनेवाला इन्द्र (**वसोः आकरे**) धन प्राप्त होनेवाले युद्धमें (**पनस्यते**) प्रशंसित होता है, वह (**इन्द्रः**) इन्द्र (**अनेहसः स्तुभः दुवस्यति**) निष्पाप स्तुतियोंको अपनाता है। वह (**विवस्वतः सदने आ हि पिप्रिये**) विवस्वान् के घर आकर प्रसन्न होता है। हे मनुष्य! तू (**सत्रासाहं**) एकत्रित हुए शत्रुओंको भी हरानेवाले तथा (**अभिमातिहनं**) अभिमानियोंका नाश करनेवाले इन्द्रकी (**स्तुहि**) स्तुति कर ॥३॥

१ **इन्द्रः अनेहसः स्तुभः दुवस्यति-** इन्द्र निष्पाप स्तुतियोंको ही अपनाता है।

२ **अभिमातिहनः-** यह इन्द्र घमण्डियोंका नाश करनेवाला है।

भावार्थ- यह इन्द्र मनुष्योंका भरण पोषण करके उनको धारण करनेवाला, प्रशंसा के योग्य और अमर है। उसे सब अपनी स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥१॥

यह इन्द्र सैकडों तरहके शुभ कर्म करनेवाला, वर्षा करनेवाला, सामर्थ्यशाली, सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाला, शत्रुसंहारक, तेजसे युक्त और सुखको जाननेवाला है ॥२॥

यह इन्द्र शत्रुओंको क्षीण करनेवाला है और धन प्राप्त होनेवाले महायुद्धोंमें इसके पराक्रमकी प्रशंसा होती है। यह इन्द्र उन्हीं स्तुतियोंको सुनता है कि जो पापसे रहित और शुद्ध अन्तःकरणसे किए गए होते हैं ॥३॥

४६९ नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥
४७० पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥ ५ ॥
४७१ तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्यापिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥ ६ ॥

अर्थ- [४६९] (**सबाधः**) शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाले वीर मनुष्य (**नृणां नृतमं**) मनुष्योंमें उत्तम नेता तथा (**वीरं त्वा**) वीर तुझ इन्द्रकी (**गीर्भिः उक्थैः अभि अर्चत**) स्तुति स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं। (**पुरुमायः**) अनेक गुणोंवाला वह इन्द्र (**सहसे सं जिहीते**) बलके लिए युद्धके प्रति जाता है, वह (**प्रदिवः अस्य नमः**) द्युलोकके इस अन्नरूप सोमका (**एकः ईशे**) अकेलाही स्वामी है ॥४॥

१ **सबाधः नृणां नृतमं वीरं त्वा उक्थैः अभि अर्चत**- शत्रुओंका पराजय करनेवाले श्रेष्ठ वीर इन्द्रका स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं।

२ **पुरुमायः सहसे सं जिहीते**- बहुत कुशलतावाला इन्द्र शत्रु के पराजय करनेके लिये मिलकर यत्न करता है।

३ **एकः ईशे**- यह एकही सबका स्वामी हैं।

[४७०] (**मर्त्येषु अस्य निष्षिधः पूर्वीः**) मनुष्योंमें इसके दान बहुत सारे हैं। इसके कारण (**पृथिवी पुरु वसूनि बिभर्ति**) पृथिवी बहुतसे धनोंको धारण करती है। इस (**इन्द्राय**) इन्द्रके कारण ही (**द्यावः ओषधीः आपः**) द्युलोक, ओषधी, जल (**जीरयः उतवनानि रयिं रक्षन्ति**) मनुष्य और वन धनकी रक्षा करते हैं ॥५॥

१ **पृथिवी द्यावः ओषधीः आपः जीरयः वनानि रयिं रक्षन्ति**- पृथिवी, द्युलोक, औषधि, जल, मानव, वन तथा धनका रक्षण करते है।

२ **मर्त्येषु अस्य निष्षिधः पूर्वीः**- मनुष्योंमें इस इन्द्रके दिए हुए धन बहुतसे है।

३ **पृथिवी पुरुवसूनि बिभर्ति**- इसी इन्द्रके कारण यह पृथिवी अनेक तरहके धन धारण करती है।

[४७१] हे (**हरिवः**) घोडोंवाले इन्द्र! (**तुभ्यं ब्रह्माणि, तुभ्यं गिरः**) तेरे लिए स्तोत्र, तेरे लिए स्तुतियां (**सत्रा**) सब मनुष्य (**दधिरे**) धारण करते हैं। हे (**सखे वसो**) मित्र तथा सबको बसानेवाले इन्द्र! (**आपिः**) सबका भाई तू (**नूतनस्य अवसः बोधि**) नये नये संरक्षणके साधनको जानता है, तू (**जरितृभ्यः वयः धाः**) स्तोताओंको अन्न दे ॥६॥

१ **नूतनस्य अवसः बोधि**- नये नये रक्षणके साधन जानने चाहिए और अपने पास रखने चाहिए।

भावार्थ- शत्रुओंको नष्ट करनेवाले वीर मनुष्योंमें उत्तम नेता इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं। वह अनेक गुणोंसे युक्त है और अपना बल प्रकट करनेके लिए वह युद्ध के प्रति जाता है ॥४॥

मनुष्यके अन्दर जो अनेक प्रकारकी शक्तियां हैं, वे ही धन हैं। ये अमूल्य धन हैं, पर ये शक्तियां शरीरकी न होकर इन्द्र अर्थात् जीवात्माकी हैं। जब तक इस शरीरमें जीवात्मा है, तभी तक इस शरीरमें शक्तियां भी अपना कार्य करती हैं, इसलिए ये शक्तिरूपी धन इन्द्रके ही है, जो मनुष्यमें रहते हैं। पृथिवीमें भी अग्निके रूपमें यह इन्द्रही धनोंको स्थापित करता है। पृथिवीमें यदि इन्द्र अर्थात् उष्णता न हो तो रत्न सोना, चांदी, तांबा आदि कुछ भी न हो। इसलिए पृथ्वीमें जो कुछ धन है, वह इन्द्रके ही कारण है। उस ऐश्वर्यशाली परमात्माके कारणही द्यु, औषधी, जल आदि धनकी रक्षा करते हैं अर्थात् इनमें जो शक्तियां हैं, वे इनकी अपनी न होकर इन्द्रकी ही हैं ॥५॥

हे इन्द्र! तू सबसे मित्रके समान स्नेह करता और उनका मित्रके समान हित करता है, इसके पास नवीन सुरक्षा के साधन हैं। उनसे वह सबकी रक्षा करता है ॥६॥

४७२ इन्द्र॑ मरुत्व इ॒ह पा॑हि सोमं॒ यथा॑ शार्या॒ते अपि॑बः सु॒तस्य॑ ।
त॒व प्रणी॑ती॒ तव॑ शूर॒ शर्म॒न्ना वि॑वासन्ति क॒वयः॑ सुय॒ज्ञाः ॥ ७ ॥

४७३ स वा॑वशा॒न इ॒ह पा॑हि सोमं॑ म॒रुद्भि॑रिन्द्र॒ सखि॑भिः सु॒तं नः॑ ।
जा॒तं यत् त्वा॒ परि॑ दे॒वा अभू॑षन् म॒हे भरा॑य पुरुहूत॒ विश्वे॑ ॥ ८ ॥

४७४ अ॒प्तूर्ये॑ मरुत आ॒पिरे॒षोऽम॑न्द॒न्निन्द्र॒मनु॒ दाति॑वाराः ।
तेभिः॑ सा॒कं पि॑बतु वृत्रखा॒दः सु॒तं सोमं॑ दा॒शुषः॒ स्वे स॒धस्थे॑ ॥ ९ ॥

अर्थ- [४७२] हे (मरुत्व इन्द्र) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्र! (यथा शार्यातेः सुतस्य अपिबः) जैसे तूने शर्यातिके पुत्रके यज्ञमें सोम पिया था, वैसे ही तू (इह सोमं पाहि) यहां सोम पी। हे (शूर) शूरवीर! (तव प्रणीती तव शर्मन्) तेरे अनुशासन तथा तेरे आश्रयमें (सु-यज्ञाः कवयः) उत्तम यज्ञ करनेवाले बुद्धिमान् (आ विवासन्ति) सुखपूर्वक रहते हैं ॥७॥

१ तव प्रणीती, तव शर्मन् सुयज्ञाः कवयः आ विवासन्ति- तेरी नीतिमें तथा तेरे आश्रयमें उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानी रहते हैं। नीति ऐसी बर्तनी चाहिये कि जिसमें ज्ञानी लोग आकर आनंदसे रहे।

[४७३] हे (इन्द्र) इन्द्र! (यत् त्वा) जिस तुझे (जातं) उत्पन्न होते ही (विश्वे देवाः) सब देवोंने (महे भराय) महान् संग्रामके लिए (परि अभूषन्) तैयार किया, हे (पुरुहूत) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र! (वावशानः सः) इच्छा करता हुआ तू (सखिभिः मरुद्भिः) मित्र मरुतोंके साथ (नः सुतं सोमं) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमको (इह पाहि) यहां पी ॥८॥

१ त्वा जातं विश्वे देवाः महे भराय परि अभूषन्- उत्पन्न होते ही तुझे सब ज्ञानियोंने बडे युद्धके लिये तैय्यार किया -सजाया। युद्धके लिये आवश्यक साधन पास रखे।

[४७४] (एषः आपिः) यह इन्द्र हमारा भाई है, ऐसे (इन्द्रं) इन्द्रको (दातिवाराः मरुतः) धन देनेकी इच्छा करनेवाले मरुत् (अप्-तूर्ये) संग्राममें (अनु अमन्दन्) हर्षित करते है, (वृत्रखादः) वृत्रको खा जानेवाला वह इन्द्र (तेभिः साकं) उन मरुतोंके साथ (दाशुषः स्वे सधस्थे) दान देनेवालेके घरमें (सुतं सोमं पिबतु) निचोडे हुए सोमको पीवे ॥९॥

१ एष आपिः दातिवाराः असूर्ये अनु अमन्दन्- इस भाईको दानी वीर युद्धमें अनुकूल रहकर आनंदित करते हैं।

भावार्थ- इस इन्द्रकी नीति और आश्रयमें आकर ज्ञानीजन सुखपूर्वक रहते हैं। यह ज्ञानियोंको संरक्षण देता है। इसी प्रकार राष्ट्रमें भी ज्ञानियोंको भरपूर संरक्षण मिलना चाहिए, ताकि दुष्ट उन्हें दुःख न दे सकें और वे उस राष्ट्रमें सुखसे रह सकें ॥७॥

इन्द्रके उत्पन्न होते ही देवोंने उसे शत्रुओंसे लडनेके लिए तैय्यार और सक्षम बनाया। राष्ट्रमें भी इसी तरह कुमारों और तरुणोंको युद्धविद्याकी शिक्षा देकर शत्रुओंसे लडने के लिए तैय्यार करना चाहिए। जिस राष्ट्रमें तरुण युद्धशील एवं पराक्रमी होते हैं, वह राष्ट्र हमेशा सुरक्षित रहता है ॥८॥

यह इन्द्र सबका भाई अर्थात् भरणपोषण करनेवाला है, इसीलिए सब मित्र इससे प्रेम करते हैं और युद्धादि आपत्तिके समय इसकी हर तरहसे सहायता करते हैं। इसके सहायक भी मरुत् (मर-उत्) अर्थात् मरनेतक उठकर लडनेवाले हैं। इसी तरह राष्ट्रमें भी राजा सभी प्रजाओंका भरणपोषण करेगा तो प्रजायें भी उससे प्रेम करेंगी और आपत्तिके समय उसके सहायक मित्र उसके लिए प्राण भी अर्पित कर देंगे ॥९॥

४७५ इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥ १० ॥
४७६ यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥ ११ ॥
४७७ प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसे ॥ १२ ॥

[५२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १-४ गायत्री, ६ जगती ।]

४७८ धानावन्तं करम्भिण—मपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥
४७९ पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥

अर्थ- [४७५] हे (**राधानां पते गिर्वणः**) धनोंके स्वामी तथा वाणीसे स्तुत्य इन्द्र! (**इदं ओजसा सुतं**) यह सोम बलपूर्वक निचोडा गया है (**तु अस्य पिब**) तू इसे पी ॥१०॥

[४७६] (**यः ते स्वधां असत्**) जो सोम तेरे लिए अन्नरूप है, उस (**सुते तन्वं नियच्छ**) सोमरसमें अपने मुंहको डाल, (**सः**) वह (**सोम्यं त्वा ममत्तु**) सोमकी इच्छा करनेवाले तुझे आनंदित करे ॥११॥

[४७७] हे (**इन्द्र**) इन्द्र! यह सोम (**ते कुक्ष्योः प्र अश्नोतु**) तेरे दोनों कोखोंको व्याप्त करे, (**ब्रह्मणा शिरः**) ज्ञानसे मस्तिष्क भरा रहे, हे शूर! (**राधसे बाहू**) धनकी प्राप्तिके लिए भुजायें बलवान् हों ॥१२॥

१ **ब्रह्मणा शिरः-** ज्ञानसे सिर पवित्र हो।

२ **राधसे बाहू-** धनको लानेके लिये बाहू तैयार हों।

[५२]

[४७८] हे (**इन्द्र**) इन्द्र! (**नः**) हमारे (**धानावन्तं, करम्भिणं अपूपवन्तं**) लाजा-खीलोंसे युक्त, दहीसे मिले हुए, पुओंसे युक्त (**उक्थिनं**) प्रशंसनीय इस सोमको (**प्रातः जुषस्व**) सबेरे पी ॥१॥

१ **धानावन्तं करम्भिणं अपूपवन्तं उक्थिनं प्रातः जुषस्व-** खीलोंसे मिला, दहीसे युक्त, पुओंके साथ प्रशंसनीय प्रातराश खाओ।

[४७९] हे (**इन्द्र**) इन्द्र! (**पचत्यं पुरोळासं**) अच्छी तरह पकाये गए इस पुरोडाशको (**जुषस्व**) खा (**च**) और (**गुरस्व**) बलशाली हो, (**हव्यानि**) ये हव्य (**तुभ्यं सिस्रते**) तुझे दिये जाते हैं ॥२॥

१ **पचत्यं पुरोळाशं जुषस्व गुरस्व च-** परिपक्व प्रातराशको खाओ और बलवान् बनो।

भावार्थ- यह इन्द्र हर तरह के धनका स्वामी है। इसके धन समृद्धि करनेवाले हैं। उत्तम मार्गसे कमाया गया धन ही मनुष्यकी समृद्धिका कारण बनता है। इसलिए मनुष्य सदा उत्तम रीतिसे ही धनार्जन करनेका प्रयत्न करे ॥१०॥

सोमरसमें अनेक शक्तियां रहती हैं। इसे नित्य प्रति पीनेसे मस्तिष्कमें ज्ञान भरा रहता है और भुजायें बलसे युक्त होती हैं। वीर जब इस रसको पीते हैं तब वे पराक्रमसे युक्त होते हैं ॥११-१२॥

मनुष्य धान, दूध दही, तथा अन्य पौष्टिक अन्नोंको खाये और बलवान् बने ॥१-२॥

४८० पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

४८१ पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥

४८२ माध्यंदिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥ ५ ॥

४८३ तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥ ६ ॥

अर्थ- [४८०] हे इन्द्र! (नः पुरोळाशं घसः) हमारे पुरोडाशको खाओ, तथा (वधूयुः योषणां इव) जैसे स्त्रीकी कामना करनेवाला स्त्रीका उपभोग करता है, उसी प्रकार (नः गिरः जोषयासे) हमारी स्तुतियोंका सेवन कर ॥३॥

[४८१] हे इन्द्र ! (प्रातः सावे) प्रातःकालके यज्ञमें तू (नः) हमारे (सनश्रुतं) प्राचीनकालसे प्रसिद्ध (पुरोडाशं जुषस्व) पुरोडाश को खा, (हि) क्योंकि (ते क्रतुः बृहन्) तेरे कर्म महान् है ॥४॥

१ ते क्रतुः बृहत्- तेरा कार्य महान् है।

[४८२] हे इन्द्र ! (यत्) क्योंकि (तूर्णि-अर्थः) यज्ञको प्रेरणा देनेवाला (वृषायमाणः) बलवान् तथा (जरिता) तेरी स्तुति करनेवाला (स्तोता) स्तोता (गीर्भिः ईट्टे) अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करता है, इसलिए तू (इह) उसके यज्ञमें (माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः) माध्यन्दिन यज्ञकी खीलोंको तथा (चारूं पुरोडाशं) उत्तम पुरोडाशको (कृष्व) खा ॥५॥

[४८३] हे (कवे) दूरदर्शी इन्द्र ! तू (तृतीये सवने) तीसरे सवनमें (नः धानाः आहुतं पुरोळाशं) हमारी खीलोंको तथा हवनके योग्य पुरोडाशको (मामहस्व) महत्त्वका अन्न समझकर खा। (प्रयस्वन्तः) अन्न तैयार करनेकी इच्छा करनेवाले हम (ऋभुमन्तं, वाजवन्तं त्वा) ऋभुओंवाले तथा अन्नवाले तेरी (धीतिभिः) स्तोत्रों से (उपशिक्षेम) प्रशंसा करते है ॥६॥

१ नः धानाः आहुतं पुरोळाशं मामहस्व - हमारे खीलोंको तथा स्वीकरणीय पदार्थोंको महत्वका अन्न समझकर खा।

भावार्थ - इन्द्रके सभी कार्य महान् है। इसीलिए सभी मनुष्योंकी वाणियां इस इन्द्रकी स्तुति करती है और सभी मनुष्य इसे सोमरस प्रदान करते है ॥३-४॥

यह इन्द्र यज्ञको प्रेरणा देनेवाला है। इन्द्र सोमको पीता है और सोमकी आहुति यज्ञमें भी डाली जाती है। लोग इन्द्रको अपने पास बुलानेके लिए यज्ञ करते हैं। इसलिए इन्द्रको यज्ञका प्रेरक कहा गया है। इसी तरह राष्ट्रमें सर्वत्र यज्ञ किये जायें ताकि वहां का राज हर तरहसे समृद्ध हो ॥५॥

हे इन्द्र ! तू हमारे द्वारा दिए गए अन्नको खा और इसे महत्त्वका अन्न समझ। हर अन्न महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वह शक्ति प्रदान करता है। इसीलिए अन्नकी सदा प्रशंसा करनी चाहिए ॥६॥

४८४ पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ७ ॥
४८५ प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ ॥

[५३]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः; १ इन्द्रापर्वतौ; १५,१६ वाक्, (ससर्परी); १७-२० रथाङ्गानि; २१-२४ अभिशापः । छन्दः- त्रिष्टुप्; १०, १६ जगती; १३ गायत्री; १२, २०, २२ अनुष्टुप्; १८ बृहती ।]

४८६ इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥

अर्थ- [४८४] हे इन्द्र ! (**पूषण्वते, हरिवते, हर्यश्वाय ते**) पोषण करनेवाले, कष्टोंको हरनेवाले, तथा हरिनामक घोडोंवाले तेरे लिये हमने (**करम्भः धानाः**) दहीमिश्रित सोमको तथा खीलोंको (**चकृम**) तैय्यार किया है। हे (**वृत्रहा, शूर विद्वान्**) वृत्रको मारनेवाले, शूरवीर और विद्वान् इन्द्र ! तू (**सगणः मरुद्भिः**) मरुतोंके साथ (**अपूपं अद्धि**) पुओंको खा और (**सोमं पिब**) सोम पी ॥७॥

[४८५] (**अस्मै नृणां वीरतमाय**) इस वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ वीरके लिये (**धानाः पुरोडाशं तूयं प्रति भरत**) खील तथा पुरोडाशको शीघ्र भरपूर दो। हे (**धृष्णो इन्द्र**) शत्रुओंका घर्षण करनेवाले इन्द्र ! हम (**तुभ्यं**) तेरे लिए (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**सदृशीः**) एकत्र साथ बैठकर स्तुति करते हैं, वे स्तुतियां (**त्वा सोमपेयाय वर्धन्तु**) तुझे सोम पीनेके लिए उत्साहित करें ॥८॥

१ **दिवे दिवे सदृ-शी-** प्रतिदिन साथ साथ बैठकर स्तुति करते हैं। साथ बैठकर स्तुति करनेसे समाजकी एकता होती है।

[५३]

[४८६] हे (**इन्द्रपर्वता**) इन्द्र और पर्वत देवो ! तुम दोनों (**बृहता रथेन**) विशाल रथसे (**सुवीराः**) उत्तम सन्तानोंसे युक्त तथा (**वामीः ईषः**) चाहने योग्य धन (**आ वहतं**) ले आओ, हे (**देवा**) देवो ! तुम (**अध्वरेषु**) यज्ञोंमें हमारे द्वारा दी गई (**हव्यानि वीतं**) आहुतियोंको स्वीकार करो और (**गीर्भिः वर्धेथां**) हमारी स्तुतियोंसे बढो तथा (**इळया मदन्ती**) हमारे द्वारा दिए गए अन्नसे आनन्दित होओ ॥१॥

भावार्थ- यह इन्द्र सबकी पुष्टि करनेवाला और कष्टोंको हरनेवाला है। यही वृत्र अर्थात् शत्रुओंको मारनेवाला शूरवीर तथा विद्वान् है ॥७॥

यह इन्द्र वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ वीर है। यह शत्रुओंका संहार करनेवाला है। इसके लिए सभी एकत्र बैठकर स्तुति करते हैं। एकत्र बैठकर स्तुति करनेसे एकता स्थापित होती है, इसीलिए समाजमें एक जगह बैठकर प्रार्थना करनी चाहिए ॥८॥

हे इन्द्र और पर्वत देवो ! तुम हमें उत्तम सन्तानसे युक्त धन दो। हमारे पास धन तो हो, पर साथ ही उसका उपभोग करनेवाले उत्तम पुत्र हों। पुत्र उत्तम हों, कुपुत्र न हों, कुपुत्र धनका नाश कर देते हैं। इसीलिए धनके साथ उत्तम पुत्रकी भी प्राप्ति हो। हम धनवान् होकर प्रतिदिन देवोंकी उपासना भी किया करें और अपनी वाणियोंसे देवोंकी महिमाका गान करें ॥१॥

४८७ तिष्ठा सु कं मघवन् मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥ २ ॥
४८८ शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाऽथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥
४८९ जायेदस्तं मघवन् त्सेदु योनिस्तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥
४९० परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥ ५ ॥

अर्थ- [४८७] हे (मघवन्) हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तू मेरे पास (कं सु तिष्ठ) सुखपूर्वक बैठ, (परा मा गाः) मुझसे दूर मत जा, (नु) क्योंकि मैं (त्वा) तेरे लिए (सु-सुतस्य सोमस्य) अच्छी तरह निचोडे गए सोमका (यक्षि) यज्ञ करता हूँ। हे (शचीवः इन्द्र) शक्तिमान् इन्द्र! (पुत्रः पितुः न) पुत्र जिसप्रकार पिताका सहारा लेता है उसी प्रकार मैं (स्वादिष्ठया गिरा) तेरी मधुर प्रार्थना करता हुआ (ते सिचं आरभे) तेरा आश्रय लेता हूँ॥२॥

१ सिचः- आंचल, सहारा।

२ कं सुतिष्ठ, परा मा गाः- आनंदसे यहां बैठ, दूर न जा।

[४८८] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो! (मे प्रतिगृणीहि) तू मुझे उत्साहित कर, फिर हम दोनों (शंसाव) इन्द्रकी प्रशंसा करें, तथा (इन्द्राय जुष्टं वाहः कृणवाव) इन्द्रके लिए प्रीतियुक्त स्तोत्रोंको करे। (यजमानस्य इदं बर्हिः आ सीद) यजमानके इस आसन पर बैठ, (अथ) इसके बाद (इन्द्राय शस्तं उक्थं भूत्) इंद्रके लिए प्रशंसनीय स्तोत्र गाया जावे ॥३॥

[४८९] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र! (जाया इत् अस्तं) स्त्री ही घर है, (सा इत् योनिः) वहीं घरमें आश्रय स्थान है। (तत् इत्) वहीं पर (त्वा) तुझे (युक्ताः हरयः वहन्तु) रथमें जुडे हुए घोडे ले जावें, हम (यदा कदा च सोमं सुनवाम) जब कभी सोमरस तैय्यार करते हैं, (दूतः अग्निः) दूत अग्नि (त्वा अच्छ धन्वाति) तेरे पास सीधे जाए ॥४॥

१ जाया इत् अस्तम्- स्त्री ही घर है।

२ जाया इत् योनिः- स्त्री ही आश्रय है। इतनी स्त्रीकी योग्यता है।

[४९०] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र! तू (परा याहि) दूर जा तथा (आ याहि) पास आ, हे (भ्रातः इन्द्र) भाई इन्द्र! (उभयत्रा ते अर्थं) दोनों जगह तेरा प्रयोजन है। (यत्र बृहतः रथस्य निधानं) जहां तू अपने महान् रथको रोकता है, वहां पर (रासभस्य वाजिनः विमोचनं) हिनहिनानेवाले अपने घोडोंको खोल ॥५॥

भावार्थ- ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तू मेरे पास आकर सुखपूर्वक बैठ, मुझसे दूर मत जा और जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रका प्रेमसे पालन करता है, उसी प्रकार तू मेरा पालन कर ॥२॥

इन्द्रकी उपासना उत्साहसे ही की जाए, उससे प्रेमपूर्वक व्यवहार किया जाए और उसका हर तरहसे सत्कार किया जाए ॥३॥

पत्नी ही घर होती है। वही घरमें सब लोगोंका आश्रय स्थान है। स्त्रीके कारण ही परिवारका संगठन होता है। इतनी स्त्रीकी महत्ता है ॥४॥

हे इन्द्र! तू भले ही दूर चला जा, पर जाकर फिर हमारे पास ही आ। तू हमारा भाई है, इसलिए हमारा भाईके समान प्रेमसे भरणपोषण कर ॥५॥

४९१ अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६ ॥
४९२ इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७ ॥
४९३ रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम् ।
त्रिर्यद् दिवः परि मुहूर्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥
४९४ महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतो ऽस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदास- मप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥

अर्थ- [४९१] हे इन्द्र तू (**सोमं अपाः**) सोम पी तथा (**अस्तं प्रयाहि**) घर जा, क्योंकि (**ते गृहे कल्याणीः जाया**) तेरे घरमें कल्याण करनेवाली स्त्री तेरी प्रतीक्षा कर रही है तथा वहां (**सुरणं**) सुख भी है। (**यत्र बृहतः रथस्य निधानं**) जहां तू महान् रथको रोकता है, वहीं पर (**वाजिनः विमोचनं**) घोडोंको खोलकर (**दक्षिणावत्**) दक्षिणा देने के लिए उद्यत है ॥६॥

१ **अस्तं प्रयाहि, ते गृहे कल्याणी जाया सुरणं**- तू अपने घर जा, वहां तेरे घरमें कल्याण करनेवाली तेरी स्त्री उत्तम सुख देनेके लिये तैयार है।

[४९२] (**इमे भोजाः, अंगिरसः विरूपाः**) ये भोजन देनेवाले, अंगोंके रसकी विद्या जाननेवाले, अनेक रूपोंवाले (**दिवः वीराः असुरस्य पुत्रासः**) तेजस्वी तथा वीर रुद्रके पुत्रों मरुतोंने (**विश्वामित्राय**) विश्वामित्रको (**सहस्रसावे मघानि ददतः**) यज्ञ करनेके लिए हजारों प्रकारके ऐश्वर्य दिए और (**आयुः प्रतिरन्तः**) उसकी आयु बढाई ॥७॥

[४९३] (**यत्**) जब (**अन्-ऋतु-पाः**) हमेशा सोमको पीनेवाला (**ऋतावा**) ऋतुके अनुसार कर्म करनेवाला इन्द्र (**स्वैः मंत्रैः**) अपने मंत्रोंसे बुलाया जाकर (**दिवः**) द्युलोकसे (**मुहूर्तं**) एक ही क्षणमें (**त्रिः परि आगात्**) तीनों सवनोंमें जाता है, तब (**मघवा**) ऐश्वर्यवान् वह इन्द्र (**मायाः कृण्वान्**) कौशल्य करता हुआ (**स्वां तन्वं**) अपने शरीरको (**रूपं रूपं परि बोभवीति**) अनेक रूपोंवाला बनाता है ॥८॥

१ **मायाः कृण्वानः स्वां तन्वं रूपं रूपं परि बोभवीति**- कौशल्यके कार्य करनेवाले इन्द्रने अपने शरीरको अनेक रूपोंवाला बना दिया है।

[४९४] (**महान् देवजाः**) महान् देवोंसे उत्पन्न, (**देवजूतः, नृचक्षाः**) देवोंसे प्रेरित, विद्वान् (**विश्वामित्रः ऋषिः**) विश्वामित्र ऋषिने (**अर्णवं सिन्धुं अस्तभ्नात्**) जलसे भरी नदीको रोक दिया, तथा (**यत्**) जब वह (**सुदासं अवहत्**) सुदासके यज्ञमें गया, तब (**कुशिकेभिः इन्द्रः अप्रियायत**) कुशिकोंने इन्द्रको अपना प्रेमका स्थान बनाया ॥९॥

१ **विश्वामित्रः महान् देवजाः नृचक्षाः**- विश्वका हित करनेवाला मनुष्य महान्, देवोंके गुणोंसे युक्त और विद्वान् हो।

भावार्थ- कल्याण करनेवाली स्त्री जिस घरमें होती है, वही घर सुखकारी होता है। जिस घरमें स्त्री प्रिय और मीठी वाणीमें बोलनेवाली होती है, वही घर सुखका घर होता है, उस घरके सब सदस्य सुखसे रहकर स्वस्थ और दीर्घायु होते हैं ॥६॥

मरुत् वीर हैं और रुद्र अर्थात् शत्रुओंको रुलानेवाले इन्द्रके सहायक हैं। यह सबको अन्न देकर सबका भरणपोषण करते हैं तथा विश्वका मित्रके समान हित करनेवाले तथा मनुष्यों पर मित्रके समान स्नेह करनेवाले महान् पुरुषको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥७॥

ऋतुके अनुसार काम करनेवाला यह इन्द्र अपनी मायाशक्तिके कारण अपने शरीरको अनेक रूपोंमें प्रकट करता है और एक ही क्षण में तीनों लोकोंमें व्याप्त हो जाता है ॥८॥

विश्वका हित करनेवाला पुरुष महान् देवोंके उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण मानों उन्हींका पुत्र, सब मनुष्योंके कर्मोंको देखनेवाला हो। ऐसा ही मनुष्य दासका उद्धार करता है ॥९॥

४९५ हंसाइव कृणुथ श्लोकमद्रिभि-र्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥ १० ॥

४९६ उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्व-मश्वं राये प्र मुंचता सुदासः ।
राजा वृत्रं जंघनत् प्रागपागुद-गथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥ ११ ॥

४९७ य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ १२ ॥

४९८ विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । करदिन्नः सुराधसः ॥ १३ ॥

अर्थ- [४९५] हे (विप्राः ऋषयः नृचक्षसः कुशिकाः) बुद्धिमान्, दूरदर्शी तथा मनुष्योंका हित करनेवाले कुशिक ऋषिके पुत्रो ! (अध्वरे अद्रिभिः सुते) यज्ञमें पत्थरोंसे सोमको निचोडने पर (सचा) एक साथ बैठकर (हंसाः इव) हंसोंके समान (गीर्भिः श्लोकं कृणुथ) एक स्वरसे स्तोत्र बोलो और (सोम्यं मधु पिबध्वं) उत्तम तथा मीठे सोमरसको पीओ ॥१०॥

१ हे विप्राः ! सचा श्लोकं कृणुथ- हे ज्ञानी लोगो ! साथ बैठकर स्तोत्र पाठ करो।

[४९६] हे (कुशिकाः) कुशिक ऋषिके पुत्रो ! (उप प्र इत) पास आओ (चेतयध्वं) उत्साहित होओ, तथा (सुदासः अश्वं राये प्र मुंचत) सुदासके घोडेको ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए खोल दो। (राजा) तेजस्वी इन्द्रने (प्राग् अपाग् उदग्) सामनेसे, पीछेसे तथा ऊपरसे (वृत्रं जंघनत्) शत्रुको मारा, (अथ) बादमें (पृथिव्याः वरे) पृथ्वीके उत्तम स्थानमें वह (यजाते) यज्ञ करता है ॥११॥

१ उप प्र इत, चेतयध्वम्- पास आकर बैठो और उत्साहित हो जाओ।

२ राजा प्राग्, अपाग्, उदग् वृत्रं जंघनत्- राजाने सामनेसे, पीछेसे तथा ऊपरसे शत्रुको मारा है।

[४९७] (यः अहं) जिस मैंने (इमे उभे रोदसी इन्द्रं अतुष्टवम्) इन दोनों द्यावापृथिवीकी तथा इन्द्रकी स्तुति की, मुझ (विश्वामित्रस्य) विश्वामित्रका (इदं ब्रह्म) यह स्तोत्र (भारतं जनं रक्षति) भरत कुलमें उत्पन्न जनोंकी रक्षा करता है ॥१२॥

१ इदं ब्रह्म भारतं जनं रक्षति- यह ज्ञान भारतीय जनोंका रक्षण करता है।

[४९८] (विश्वामित्राः) विश्वामित्रोंने (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिए (ब्रह्म अरासत) स्तोत्र बनाया। वह इन्द्र (नः सुराधसः करत् इत्) हमें उत्तम धनवान् करता ही है ॥१३॥

भावार्थ- ऋषियोंके पुत्र बुद्धिमान्, दूरदर्शी तथा मनुष्योंका हित करते थे और ये सब समाज में संगठन करके देशकी उन्नति करते थे ॥१०॥

जब इन्द्रने चारों ओरके शत्रुओंको मारा, तभी वह यज्ञ कर सका। इसी प्रकार जो राजा अपने चारों ओरके शत्रुओं को नष्ट करता है, तभी वह पृथ्वी के ऊंचे स्थानमें बैठ सकता है अर्थात् अपनी तथा अपने राष्ट्रकी उन्नति कर सकता है ॥११॥

विश्वसे प्रेम करनेवाला मनुष्य भरणपोषण करनेवाले की हर तरहसे रक्षा करता है। तथा वीर पराक्रमी इन्द्रकी स्तुति करता है, और उसके गुणोंको अपने में धारण करता है ॥१२-१३॥

४९९ किं ते॑ कृण्वन्ति॒ कीक॑टेषु॒ गावो॒ नाशिरं॑ दुह्रे॒ न त॑पन्ति घ॒र्मम् ।
आ नो॑ भर॒ प्रम॑गन्दस्य॒ वेदो॑ नैचाशा॒खं म॑घवन् रन्धया नः ॥ १४ ॥

५०० स॒स॒र्प॒रीरम॑ति॒ बाध॑माना बृ॒हन्मि॑माय ज॒मद॑ग्निदत्ता ।
आ सूर्य॑स्य दुहि॒ता त॑तान॒ श्रवो॑ दे॒वेष्व॒मृत॑मजु॒र्यम् ॥ १५ ॥

५०१ स॒स॒र्प॒रीर॑भर॒त् तूय॑मे॒भ्योऽधि॒ श्रव॒: पाञ्च॑जन्यासु कृ॒ष्टिषु॑ ।
सा प॒क्ष्या॒३ नव्य॒मायु॒र्दधा॑ना॒ यां मे॑ पलस्तिजमदग्नयो॑ द॒दुः ॥ १६ ॥

अर्थ- [४९९] हे (मघवन्) इन्द्र! (कीकटेषु गावः ते किं कृण्वन्ति) अनार्य देशोंमें रहनेवाली गायें तेरा क्या लाभ करती हैं? तेरे लिए (न आशिरं दुह्रे) न दूध दुहती हैं, (न घर्मं तपन्ति) और न यज्ञकी अग्निको प्रदीप्त करती है। तू (प्रमगन्दस्य वेदः नः आ भर) सूदखोरके धनको हमारे लिए ले आ। तथा (नः) हमारे लिए तू (नैचाशाखं रन्धय) नीच जातियोंके मनुष्यको वशमें कर ॥१४॥

१ **कीकटः-** अनार्योंका देश "कीकटा नाम देशोऽनार्यनिवासः" (नि. ६/३२)

२ **प्रमगन्दः-** सूदखोर, "मगन्दः कुसीदी" (नि ६/३२)

३ **प्रमगन्दस्य वेदः नः आभर-** सूदखोरके धनको हमारे पास ले आ।

४ **नः नैचाशाखं रन्धय-** हमारे लिये नीच मनुष्यका नाश कर।

[५००] (जमदग्निदत्ता) जमदग्निके द्वारा दी गई तथा (अमतिं बाधमाना) अज्ञानताको नष्ट करनेवाली (ससर्परी) वाणी, विद्या (बृहत् मिमाय) बहुत जोरसे आवाज करती है। (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री उषा (देवेषु) देवोंको (अमृतं अजुर्यं श्रवः) अमरता देनेवाली तथा क्षीणतासे रहित अन्नको (आ ततान) प्रदान करती है ॥१५॥

१ **जमदग्निः-** आंख- "चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः जगत्पश्यत्यनेन।"

[५०१] (यां) जिसे (मे) मुझे (पलस्तिजमदग्नयः ददुः) पलस्ति जनदग्नियोंने दिया, (सा) वह वाणीविद्या (पक्ष्या) उत्तम पक्षवाली तथा (नव्यं आयुः दधाना) नवीन आयुको धारण करनेवाली है। (पांचजन्यासु कृष्टिषु श्रवः) पंचजनोंसे युक्त मनुष्योंमें जो धन है, उसे (ससर्परी) विद्या (एभ्यः) इन पंचजनोंसे (तूयं अधि अभरत्) शीघ्र ही ले आई ॥१६॥

भावार्थ- जिस अनार्य देशोंमें इन्द्रादि देवोंके लिए न दूध दिया जाता है और न यज्ञ ही किया जाता है, जहांके मनुष्य ही सारा दूध घी खा जाते हैं, वहां गायोंका कुछ भी फायदा नहीं होता। गायोंका संरक्षण आर्यदेशोंमें इसीलिए होता था कि उसके दुग्ध और घृतसे वे देवोंको हवि प्रदान करते थे और इसीमें गायोंकी सार्थकता थी। इन्द्र सूदखोरोंका शत्रु है, राष्ट्रके सूदखोर विनाशक हैं इसीलिए इन्द्र इनका नाश करता है। इसी प्रकार वह नीच जातियों के लोगोंको भी नष्ट करता है ॥१४॥

आंख आदि इन्द्रियोंसे प्राप्त की गई विद्यासे अज्ञानताका नाश होता है और जिस समय संसारका चक्षु सूर्य उदय होता है, तब सारा अन्धकार दूर होकर सर्वत्र प्रकाश हो जाता है, इस प्रकार सूर्य भी विद्याका प्रदाता है। इस सूर्य की पुत्री उषाके उदय होने पर सभी यज्ञ प्रारंभ हो जाते हैं और उन यज्ञोंमें देवोंको हवि दी जाती है, यह हवि अमरता प्रदान करनेवाली तथा क्षीणतासे रहित होती है ॥१५॥

विद्या सदा ही नवीन और आयु दीर्घ करनेवाली होती है। इसी विद्यासे हर तरहके धनकी एवं अन्नकी प्राप्ति होती है ॥१६॥

५०२ स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥ १७ ॥
५०३ बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ १८ ॥
५०४ अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥ १९ ॥
५०५ अयमस्मान् वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥ २० ॥

अर्थ- [५०२] (**गावौ स्थिरौ भवतां**) रथमें जुते हुए बैल स्थिर हों, (**अक्षः वीळु**) रथकी धुरा दृढ हो (**ईषा मा वि वर्हि**) रथका दण्ड न टुटे, (**युगं मा विशारि**) जुआ न टूटे (**पातल्ये शरीतः**) रथका अक्ष टूटनेसे पहले ही (**इन्द्रः ददतां**) इन्द्र उस रथको ठीक कर दे, हे (**अरिष्टनेमे**) न टूटे हुए अक्षवाले रथ! (**नः अभि सचस्व**) हमें तू प्राप्त हो ॥१७॥

[५०३] हे (**इन्द्र**) इन्द्र! (**नः तनूषु बलं धेहि**) हमारे शरीरोंमें बल स्थापित कर, (**नः अनुळुत्सु बलं**) हमारे बैल आदि पशुओंमें बल दे तथा (**जीवसे**) दीर्घकालतक जीनेके लिए (**तोकाय तनयाय बलं**) हमारे पुत्र और पौत्रोंमें बल दे, (**हि**) क्योंकि (**त्वं बलदा असि**) तू बलका प्रदाता है ॥१८॥

[५०४] हे इन्द्र! (**खदिरस्य सारं**) खैरकी लकडीसे बनाये गए इस रथके दण्डेको (**अभिव्ययस्व**) दृढ कर, तथा (**स्पंदने**) इस रथके चलते समय (**शिंशपायां**) शिंशपाकी लकडीसे बनाये गए इस रथकी धुरामें (**ओजः धेहि**) बल स्थापित कर। हे (**वीळो वीळित अक्ष**) स्वयं दृढ किए गए अक्ष! (**वीळयस्व**) तू और ज्यादा दृढ हो, और (**यामात्**) चलते हुए (**अस्मात्**) इस रथसे (**नः मा अव जीहिपः**) हमें नीचे मत गिरा ॥१९॥

[५०५] (**अयं वनस्पतिः**) वनस्पति अर्थात् लकडीसे बना हुआ यह रथ (**अस्मान् मा हा**) हमें नीचे न गिराये, (**मा च रीरिषत्**) न दुःख दे। (**आ गृहेभ्यः**) हमारे घर पहुंचने तक यह (**स्वस्ति**) हमारा कल्याण करे तथा (**आ विमोचनात्**) घोडोंको खोलने तक यह (**अवसै आ**) हमारी रक्षा करे ॥२०॥

भावार्थ- रथमें जोते जानेवाले बैल, अक्ष, दण्ड, जुआ आदि सभी अंग दृढ हों और इन्द्र भी उस रथको दृढ बनाये रहे, ऐसा दृढ रथ हमें प्राप्त हो। यह शरीर भी एक रथ है, जिसमें इन्द्रियां ही घोडे या बैल हैं, जो इस रथमें जुते हुए हैं। नाभि, इस रथकी अक्ष या धुरा है। पृष्ठवंश इस रथका दण्ड है, दोनों स्कंधभाग इस रथके जुए हैं इन्द्र जीवात्मा है। यह जीवात्मा इस शरीररूपी रथके सब अंगोंको सुदृढ बनाये ॥१७॥

हे इन्द्र! तू हर तरहके बलोंको देनेवाला है, इसलिए तू हमारे पशु, हमारे शरीरों और हमारे पुत्र पौत्रों को बल प्रदान कर, ताकि वे सब दीर्घकालतक आनंदसे जी सकें ॥१८॥

हे इन्द्र! तू इस रथको हर तरहसे दृढ कर। इस रथके अक्ष दृढ हों ताकि भागते समय इस रथपरसे मनुष्य गिर न जाए। इसी प्रकार इस शरीररूपी रथके भी सब अंग दृढ हों, ताकि यह मनुष्य शीघ्र न मरे ॥१९॥

लकडियोंसे बना हुआ यह रथ न तो हमें नीचे ही गिराये और न दुःख दे अर्थात् यह रथ इतनी दृढतासे बनाया गया हो कि वह रास्तेमें ही टूट न जाए। घर पहुंचकर वहां घोडोंको खोलनेतक यह मनुष्यकी रक्षा एवं उसका कल्याण करता रहे ॥२०॥

५०६ इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ २१ ॥
५०७ परशुं चिद् वि तपति शिम्बलं चिद् वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥
५०८ न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥ २३ ॥
५०९ इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥ २४ ॥

अर्थ- [५०६] हे (**शूर, मघवन् इन्द्र**) शूर तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (**अद्य**) आज (**बहुलाभिः श्रेष्ठाभिः ऊतिभिः**) अनेक तरहके श्रेष्ठ संरक्षणके साधनोंसे (**यात्**) शत्रुओंको मार और (**नः जिन्व**) हमें आनन्दित कर। (**यः**) जो (**नः द्वेष्टि**) हमसे द्वेष करता है उसे (**अधरः सस्पदीष्ट**) नीचे गिरा दे, तथा (**यं उ द्विष्मः**) जिससे हम द्वेष करते हैं, (**तं उ प्राणो जहातु**) उसे प्राण छोड दें अर्थात् वह मर जाये ॥२१॥

[५०७] वह इन्द्र (**परशुं वि तपति**) फरसेको तीक्ष्ण करता है, और उससे (**शिम्बलं चित् वि वृश्चति**) अपने बलका दुरुपयोग करनेवाले दुष्टको काटता है। तथा (**येषन्ती उखा चित्**) चूनेवाली थालीके समान (**प्रयस्ता**) हिंसकशत्रु (**फेनं अस्यति**) अपने मुंहसे फेन गिराता है ॥२२॥

[५०८] (**जनासः**) वीर मनुष्य (**सायकस्य न चिकिते**) बाण या शस्त्रास्त्रोंके दुःखको कुछ भी नहीं समझते, वे (**लोधं**) लोभी शत्रुको (**पशु मन्यमानाः**) पशु मानकर (**नयन्ति**) जहां चाहे वहां ले जाते हैं। वे (**वाजिना**) बलवान् के द्वारा (**अवाजिनं**) निर्बलको (**न हासयन्ति**) हंसी नहीं उडवाते, तथा (**गर्दभं पुरः अश्वान् न नयन्ति**) गधेके आगे घोडे नहीं ले जाते ॥२३॥

१ **जनासः सायकस्य न चिकिते-** वीर जन शस्त्रास्त्र के दुःखको कुछ नहीं समझते।
२ **लोधं पशु मन्यमानाः नयन्ति-** लोभी शत्रुको पशु मानकर जहां चाहे वहां ले जाते हैं।
३ **वाजिना अवाजिनं न हासयन्ति-** बलवान् के द्वारा निर्बलको कष्ट नहीं देते।

[५०९] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**इमे भरतस्य पुत्राः**) ये भरतके पुत्र (**अपपित्वं चिकितुः**) शत्रुको क्षीण करना ही जानते हैं (**न प्रपित्वं**) उसे समृद्ध करना नहीं। ये वीर (**नित्यं**) सदा ही (**आजौ**) युद्धमें (**अश्वं**) अपने घोडेको (**अरणं न**) युद्धका क्षेत्र न होने समान (**हिन्वन्ति**) दौडाते हैं और (**ज्यावाजं परि नयन्ति**) अपने धनुषकी डोरी के बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं ॥२४॥

१ **भरतस्य पुत्राः अपपित्वं चिकितुः न प्रपित्वं-** ये भरतके पुत्र शत्रुको क्षीण करना ही जानते हैं, उन्हें समृद्ध बनाना नहीं।
२ **आजौ अश्वं हिन्वन्ति-** वे युद्धमें अपने घोडेको प्रेरित करते हैं।
३ **ज्यावाजं परि नयन्ति-** अपने धनुषके बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं।

भावार्थ- हे शूरवीर इन्द्र ! तू आज अनेक तरहके संरक्षणके साधनोंसे हमारे शत्रुओंको मारकर हमारी रक्षा कर और हमें आनन्दित कर। जो हमसे द्वेष करता है, या जिससे हम द्वेष करते हैं, वह नष्ट हो जाए ॥२१॥

यह इन्द्र अपने शस्त्रको तीक्ष्ण करके उससे अपने बलका दुरुपयोग करनेवाले दुष्टको काटता है, तब वह दुष्ट अपने मुंहसे फेन गिराता हुआ मर जाता है ॥२॥

वीर जब शत्रुओंसे युद्ध करते हैं, तब शस्त्रास्त्रोंके लगने के कारण होनेवाले दुःखोंकी जरा भी परवाह नहीं करते, अपितु वीरतासे लडकर जो लोभी शत्रु होते हैं, उन्हें पशु की तरह बांधकर ले जाते हैं, पर जो निर्बल होकर उनके पास आता है, उस पर अपने बलका प्रयोग नहीं करते, तथा जो गर्दभ आदि निकृष्ट वाहनोंपर बैठकर लडने आता है, उससे ये वीर अश्व आदि उत्कृष्ट वाहनोंपर बैठकर लडने नहीं जाते ॥२३॥

[५४]

[ऋषि- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५१० इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत् कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥ १ ॥

५११ महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥ २ ॥

५१२ युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ३ ॥

---

[५४]

अर्थ- [५१०] (महे) महान् (विदथ्याय) यज्ञके साधक तथा (ईड्याय) स्तुति के योग्य अग्निके लिए स्तोता गण (इमं शूषं) इस स्तोत्रको (शश्वत् कृत्व) बार बार (प्र जभ्रुः) करते हैं, वह अग्नि (दम्येभिः अनीकैः) शत्रुओंके विनाशक किरणोंसे युक्त होकर (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थनाओंको सुने तथा (दिव्यैः अजस्रः अग्निः) अपने दिव्य तेजोंसे निरन्तर प्रकाशित होनेवाला अग्नि (शृणोतु) हमारी स्तुति सुने ॥१॥

[५११] (विदथेषु) यज्ञोंमें (ययोः स्तोमे) जिन द्यावापृथिवीके स्तोत्रमें (सपर्यवः देवाः) पूजाके योग्य देव (सचायः मादयन्ते) इकट्ठे होकर आनन्दित होते हैं, उन (महि दिवे पृथिव्यै) महान् द्युलोक और पृथ्वीलोकके लिए (महि अर्च) महान् स्तोत्र बनाओ, क्योंकि (मे कामः) मेरी कामना (प्रजाजन् इच्छन्) सबको जानता हुआ और सब भोगोंकी इच्छा करता हुआ (चरति) सर्वत्र विचरता है ॥२॥

[५१२] हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (युवोः ऋतं) तुम दोनोंके नियम (सत्यं अस्तु) सत्य होते हैं, तुम दोनों (नः महे सुविताय) हमारी श्रेष्ठ उन्नतिके लिए हमें (प्रभूतं) समर्थ बनाओ। (अग्ने दिवे पृथिव्यै) अग्नि, द्युलोक और पृथिवीलोकके लिए (इदं नमः) यह नमस्कार हो, मैं इन सभी देवोंकी (प्रयसा सपर्यामि) अन्न या हविसे पूजा करता हूँ और (रत्नं यामि) रत्न मांगता हूँ ॥३॥

भावार्थ- भरत अर्थात् भारतके वीर पुत्र इतने वीर होते हैं कि उनके कारण उनके शत्रु सदा क्षीण ही होते हैं। ये वीर कभी निर्बल हों और उनके शत्रु समृद्ध हों, ऐसा अवसर ही कभी नहीं आता। ये वीर अपने घोडोंको युद्धभूमिमें भी ऐसा दौडाते हैं कि मानों वे युद्धभूमिमें न होकर किसी खाली मैदानमें हों अर्थात् वे जिधर जाते हैं उधर ही शत्रुओंका सफाया हो जाता है और इस प्रकार वे युद्धमें अपने धनुषका बल प्रकट करते हैं ॥२४॥

इसी अग्निसे यज्ञका काम सिद्ध होता है, इसीलिए सब ऋत्विग्गण इस अग्निकी स्तुति करते हैं। इसकी किरणें शत्रुओंका दमन करनेवाली अथवा गृहको प्रकाशित करनेवाली हैं। इसका तेज भी दिव्य है ॥१॥

यज्ञोंमें किये जानेवाले स्तोत्रोंसे सभी देव आनन्दित होते है। ऋत्विग्गण द्यु और पृथिवीकी भी स्तुति करते हैं। ये दोनों ही महान् और तेजस्वी हैं। इनकी स्तुति करके मेरा मन सब भोगों को प्राप्त करना चाहता है ॥२॥

द्यावापृथिवीके नियम कभी भी असत्य नहीं होते, ये हमेशा अपने नियममें चलते रहते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी नियमोंमें चलता हुआ सामर्थ्यशाली और उन्नतिशील होता है और इन देवोंकी कृपासे वह रत्न भी प्राप्त करता है ॥३॥

५१३ उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद् वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४ ॥
५१४ को अद्धा वेद क इह प्र वोचद् देवाँ अच्छा पथ्याऽका समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ ॥
५१५ कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥ ६ ॥
५१६ समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥ ७ ॥

अर्थ- [५१३] हे (**ऋतावरी**) सत्य नियमोंके अनुसार चलनेवाली (**रोदसी**) द्यावापृथिवी ! (**वां**) तुम दोनोंको (**पूर्व्याः सत्यवाचः**) पूर्व ऋषियोंकी सत्य वाणियां या सत्यज्ञान (**आविविद्रे**) जानता था और हे (**पृथिवि**) पृथिवी ! (**शूरसातौ समिथे**) शूरवीरोंके एकत्रित होकर लडनेवाले युद्धमें (**नरः चित्**) वे वीर पुरुष भी (**वां वेविदानाः**) तुम दोनोंको जानते हुए (**ववन्दिरे**) तुम्हारी वन्दना करते हैं ॥४॥

[५१४] (**का पथ्या देवान् अच्छा समेति**) कौनसा मार्ग देवोंकी तरफ सीधा जाता है, (**कः अद्धा वेद**) इसे निश्चयपूर्वक कौन जानता है (**कः इह प्रवोचत्**) उसका वर्णन यहां कौन कर सकता है ? क्योंकि (**एषां**) इन देवोंका (**परेषु गुह्येषु व्रतेषु**) उत्कृष्ट तथा छिपे हुए जो स्थान हैं, उनमेंसे (**या अवमा सदांसि**) जो नीचे के स्थान हैं, वे ही (**ददृश्रे**) दिखाई देते हैं ॥५॥

[५१५] (**कविः नृचक्षाः**) दूरदर्शी ज्ञानी तथा सबको देखनेवाला सूर्य (**अभि सीं अचष्टे**) इन दोनों लोकोंको चारों ओरसे देखता है। (**विघृते**) रसोंको धारण करनेवाली, (**मदन्ती**) आनन्द प्रदान करनेवाली, (**समानेन क्रतुना संविदाने**) समान कर्मसे सबको जाननेवाली ये दोनों (**ऋतस्य योना**) ऋतके स्थानमें, (**यथा वेः**) जैसे पक्षियोंके कई घोंसले होते हैं, उसी प्रकार (**नाना सदनं चक्राते**) अनेक प्रकारके स्थान बनाते हैं ॥६॥

[५१६] (**समान्या**) समान रहनेपर भी (**वियुते**) एक दूसरे से अलग (**दूरे अन्ते**) जिनका अन्तभाग एक दूसरेसे बहुत दूर है, ऐसी (**जागरूके**) सदा जाग्रत रहनेवाली ये दोनों द्यावापृथिवी (**ध्रुवे पदे तस्थतुः**) अविनाशी स्थानमें रहती हैं, (**युवती**) सदा तरुण रहनेवाली (**स्वसारा**) ये दोनों बहनें (**भवन्ती**) जब पैदा होती हैं, (**आत्**) तभीसे इनके लिए (**मिथुनानि नाम**) जुडवें नाम (**ब्रुवाते**) बोले जाने लगते हैं ॥७॥

भावार्थ- सत्य नियमों के अनुसार चलनेवाली इन द्यु और पृथिवीको सत्यवाणी बोलनेवाले ऋषि जानते थे और आज भी युद्धमें लडनेवाले वीर इन दोनों देवियोंको बुलाते हैं ॥४॥

देवोंके जो उत्कृष्ट और छिपे हुए स्थान हैं, उन्हें कोई नहीं जानता, पर जो स्थूल स्थूल स्थान हैं उन्हींको मनुष्य देखते हैं, इसलिए उन देवोंतक पहुंचनेवाला जो सीधा मार्ग है, उसे कौन जानता है और उसका वर्णन कौन कर सकता है? ॥५॥

दूरदर्शी ज्ञानी तथा सबको देखनेवाला सूर्य इन द्यु और पृथिवीको चारों ओरसे देखता है। ये दोनों लोक रसोंको धारण करते हैं और अपने रसोंसे सबको आनंदित करते हैं तथा ऋतके स्थानमें अनेक जगह बनाते हैं ॥६॥

ये दोनों द्यावापृथिवी संसारके पालनपोषणरूप कर्मको एक समान करने पर भी एक दूसरे से अलग है, इनके छोर भी एक दूसरे से बहुत दूर हैं। ये दोनों बहिनें जब अस्तित्व में आती हैं, तभीसे रोदसी, द्यावापृथिवी, आदि जुडवें नामोंसे इन्हें सम्बोधित किया जाने लगता है ॥७॥

५१७ विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान् बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद् ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत् पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥ ८ ॥
५१८ सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥ ९ ॥
५१९ इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥ १० ॥
५२० हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥ ११ ॥

अर्थ- [५१७] (एते) ये दोनों द्यावापृथिवी (विश्वा इत् जनिमा सं विविक्तः) सभी प्राणियों को स्थान प्रदान करती हैं। ये दोनों (महः देवान् बिभ्रती) बडे बडे देवोंको धारण करती हैं, फिर भी (न व्यथेत) कभी दुःखी नहीं होती। (एजत्) चलनेवाला तथा (ध्रुवं) स्थिर (विश्वं) विश्व (एकं पत्यते) एकके आश्रयमें रहता है और दूसरेमें (पतत्रि) पक्षीगण (चरत्) उडते हुए (विषुणं वि जातं) चारोंसे प्रकट होते हैं ॥८॥

[५१८] हे द्युलोक! (महः) महान् (पितुः) सबका पालन करनेवाली (जनितुः) सबको उत्पन्न करनेवाली तेरा तथा (नः) हमारा (तत् सना पुरामं जामिः) वह सनातन और पुराना सम्बन्ध मैं (आरात् अध्येमि) अब याद करता हूँ। (यत्र अन्तः) जिसके मध्यमें (उरौ व्युते पथि) विस्तीर्ण और प्रकाशित मार्गमें (पनितारः देवासः) स्तुति करनेवाले देव (एवैः तस्थु) अपने साधनोंसे युक्त होकर रहते हैं ॥९॥

[५१९] हे (रोदसी) द्यावापृथिवी! (इमं स्तोमं प्र ब्रवीभि) मैं इस स्तोत्रको कहता हूँ इसे (ऋदूदराः) सरल मनवाले (अग्निजिह्वाः) अग्निको अपना मुख बनानेवाले, (सम्राजः) अत्यन्त तेजस्वी (युवानः) तरुण (कवयः) ज्ञानी और (पप्रथानाः) अत्यन्त प्रसिद्ध यशवाले (मित्रः वरुणः आदित्यासः) मित्र, वरुण और आदित्य (शृणवत्) सुनें ॥१०॥

[५२०] (हिरण्यपाणिः सुजिह्वः सविताः) सुनहरी किरणोंवाला, उत्तम रूपवाला सूर्य (दिवः) द्युलोकसे (विदथे आ पत्यमानः) यज्ञमें आकर (त्रिः) तीनों सवनोंको पूर्ण करता है। हे (सवितः) सूर्यदेव! (देवेषु श्लोकं अश्रेः) विद्वानोंमें बैठकर स्तुतिको सुन और (अस्मभ्यं सर्वतातिं आ सुव) हमें सब प्रकारका धन दे ॥११॥

भावार्थ- ये दोनों द्यावापृथिवी पशु, पक्षी आदि प्राणियों और सूर्य, चन्द्र, तारक आदि बडे बडे देवोंको भी धारण करती हैं पर वे कभी श्रान्त नहीं होती। इनमेंसे एक पृथ्वी पर चलनेवाले पशु मनुष्य आदि तथा स्थिर रहनेवाले पत्थर, वृक्ष आदि रहते हैं और द्यु में उडनेवाले पक्षी आदि रहते हैं ॥८॥

इस द्युलोकमें रहनेवाले सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि देव अपने संरक्षणके सभी साधनोंसे युक्त होकर रहते हैं। उन देवों और मनुष्योंका सम्बन्ध बहुत पुराना और हमेशा रहनेवाला है। इन देवोंसे मनुष्यका सम्बन्ध यदि टूट जाए तो मनुष्यकी मृत्यु निश्चित है ॥९॥

मित्र, वरुण और आदित्य ये देवगण सरल मनवाले, अत्यन्त तेजस्वी, दूरदर्शी, तरुण, ज्ञानी और अत्यन्त यशस्वी हैं ॥१०॥

उत्तम किरणोंवाले और उत्तम रूपवाले इस सूर्यकी किरणें जब यज्ञशालामें आकाशसे उतरती हैं, तब यज्ञ शुरू होकर सूर्यके अस्त होने तक वह यज्ञ चलता रहता है, और इन्हीं सूर्यदेवके कारण प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन और सायंसवन ये तीनों सवन चलते हैं ॥११॥

५२१ सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२ ॥

५२२ विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥ १३ ॥

५२३ विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥ १४ ॥

५२४ इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरंदरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥ १५ ॥

अर्थ- [५२१] (**सुकृत् सुपाणिः**) उत्तम कर्म करनेवाला और उत्तम हाथोंवाला (**स्वव न्**) धनसम्पन्न और (**ऋतावा**) नियमोंका पालन करनेवाला (**देवः त्वष्टा**) त्वष्टा देव (**नः तानि धात्**) हमें उन धनोंका प्रदान करे। हे (**ऋभवः**) ऋभु देवो! (**ऊर्ध्वग्रावाणः**) सोम पीसनेके लिए पत्थरको उठाये हुए ऋत्विगोंने (**अध्वरं अतष्ट**) यज्ञको उत्तम रीतिसे सम्पन्न किया है। इसलिए हे (**पूषण्वन्तः**) पोषण करनेवाले ऋभुओ! तुम उस सोमसे (**मादयध्वं**) आनन्दित हो ॥१२॥

[५२२] (**विद्युद्रथाः**) बिजलीके रथवाले (**ऋष्टिमन्तः**) शस्त्र धारण करनेवाले, (**दिवः**) तेजस्वी, (**मर्याः**) शत्रुओंको मारनेवाले, (**ऋतजाताः**) नियमों पर चलनेवाले (**अयासः**) वेगवान् (**यज्ञियासः मरुतः**) पूजाके योग्य मरुद्गण और (**सरस्वती**) सरस्वती (**शृणवन्**) हमारी प्रार्थनाओंको सुने। हे (**तुरासः**) फुर्तीले मरुतो! हमें (**सहवीरं रयिं धात**) सन्तानसे युक्त धनको प्रदान करो ॥१३॥

[५२३] (**पूर्वीः युवतयः**) बहुतसी सदा तरुणी रहनेवाली (**जनित्रीः**) सबको उत्पन्न करनेवाली (**ककुहः**) दिशायें (**यस्य न मर्धन्ति**) जिसकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करती, वह विष्णु (**उरुक्रमः**) महान् पराक्रमवाला है। उसी (**पुरुदस्मं विष्णुं**) अत्यन्त रूपवान् विष्णुके पास (**अर्काः स्तोमासः**) पूजाके योग्य स्तोत्र (**यामनि ग्मन्**) यज्ञमें उसी प्रकार जाते हैं, (**कारिणः भगस्य इव**) जिस प्रकार उत्तम कर्म करनेवाले धनवान् के पास जाते हैं ॥१४॥

[५२४] (**इन्द्रः**) इन्द्र (**विश्वैः वीर्यैः पत्यमानः**) सभी तरहके बलसे सम्पन्न होकर आता हुआ (**उभे रोदसी**) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको (**महित्वा आ पप्रौ**) अपनी महिमासे भर देता है। (**पुरंदरः**) शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाला, (**वृत्रहा**) वृत्रको मारनेवाला (**धृष्णुषेणः**) विजयी सेनावाला वह तू, हे इन्द्र! (**भूरि पश्वः संगृभ्य**) बहुतसे पशुओंको इकट्ठा करके (**नः आभर**) हमें भरपूर दे ॥१५॥

भावार्थ- त्वष्टादेव उत्तम कर्म करनेवाला, उत्तम हाथोंवाला, नियमोंका पालन करनेवाला है, वह हमें हर तरहके धन प्रदान करे। हे ऋभुओ! तुम यज्ञमें सोम पीकर आनन्दित होओ ॥१२॥

ये मरुद्गण बिजली जैसे तेजस्वी रथवाले, शस्त्रधारी, शत्रुओंको मारनेवाले और नियमोपर चलनेवाले और इसीलिए पूज्य हैं। ये और सरस्वती देवी हमें धन प्रदान करें ॥१३॥

सबको उत्पन्न करनेवाली दिशायें भी इस विष्णुकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकतीं, क्योंकि वह विष्णु महापराक्रमी है। जिस प्रकार समाजका हित करनेवाले किसी धनवान्‌की प्रशंसा सभी करते हैं, उसी तरह इस इन्द्रकी सभी प्रशंसा करते हैं ॥१४॥

इन्द्र अपने सभी तरह के बलसे सम्पन्न होकर अपनी महिमासे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है। यह इन्द्र शत्रुओंकी नगरियोंका विनाशक है और शत्रुओंका भी संहारक है। इसकी सेना हमेशा विजय प्राप्त करती है ॥१५॥

५२५ नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥ १६ ॥
५२६ महत् तद् वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभि- रिमां धियं सातये तक्षता नः ॥ १७ ॥
५२७ अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासो- ऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान् नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥ १८ ॥

अर्थ- [५२५] हे (नासत्या) अविनाशी अश्विनौ देवो! (बन्धुपृच्छ) भाईकी तरह प्रेम करनेवाले अपने उपासकोंकी परवाह करनेवाले तुम दोनों (मे पितरा) मेरे पालन करनेवाले हो। (अश्विनोः) इन अश्विनौ देवोंका (सजात्यं नाम) जन्मसे ही फैलनेवाला यश (चारु) सुन्दर है। हे अश्विनौ! (युवं हि रयिदौ स्थः) तुम दोनों धनके प्रदाता हो, इसलिए (नः रयीणां) हमें धन प्रदान करो। (अदब्धा) आलस्यसे रहित तुम दोनों (अकवैः दात्रं रक्षेथे) बुरे कर्मोंसे दाताकी रक्षा करते हो॥१६॥

१ अश्विनौः सजात्यं नाम चारु- अश्विनौ देवोंका जन्मसे ही उत्पन्न हुआ यश उत्तम है।

२ अदब्धा अकवै दात्रं रक्षेथे- आलस्यसे रहित दोनों अश्विनौ देव दुष्ट कर्मोंसे दाता की रक्षा करते हैं।

[५२६] हे (कवयः) ज्ञानी देवो! (वः तत् नाम) तुम्हारा वह यश (महत् चारु) महान् और उत्तम है, (यत्) जिसके कारण (विश्वे) तुम सब (इन्द्रे) इन्द्रके अनुशासनमें रहकर (देवाः भवथ) देव होते हो। हे (पुरुहूत) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र! (प्रियेभिः ऋभुभिः) अपने प्रिय ऋभुओंके साथ तू (सखा) हमारा मित्र हो, तथा (सातये) ज्ञान और धनकी प्राप्तिके लिए (नः इमां धियं) हमारी इस बुद्धिको (तक्षत) तीक्ष्ण कर॥१७॥

१ इन्द्रे देवाः भवथ- इन्द्रके अनुशासनमें रहकर देव बना जा सकता है।

२ सातये इमां धियं तक्षत- ज्ञानकी प्राप्तिके लिए हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो।

३ कवयः नाम महत्त चारु- दूरके परिणामों का विचार करके काम करनेवालोंका यश महान् और उत्तम होता है।

[५२७] (अर्यमा अदितिः यज्ञियासः) अर्यमा, अदिति और पूजाके योग्य देव (नः) हमारी रक्षा करें, (वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि) वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं। (नः गन्तोः) हमारे मार्गसे (अनपत्यानि) सन्तानको न देनेवाले कर्मोंको (युयोत) दूर करो, ताकि (नः गातुः) हमारा मार्ग (प्रजावान् पशुमान् अस्तु) सन्तानों और पशुओंसे युक्त हो॥१८॥

१ वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि- वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं

२ नः गन्तोः अनपत्यानि युयोत- हमारे मार्ग सन्तानको न देनेवाले कर्मोंसे रहित हो।

३ नः गातुः प्रजावान् पशुमान् अस्तु- हमारा घर सन्तानों और पशुओंसे युक्त हो।

भावार्थ- इन अश्विनौसे जो भाई की तरह प्रेम करता है उसकी ये हर तरह से परवाह करते हैं और उसका पालन करते हैं। ये दोनों जब जन्मे थे, तभीसे इन्होंने उत्तम कर्म करने शुरु कर दिए और तभीसे इनका उत्तम यश चारों ओरसे फैलने लगा। ये दाताको धन प्रदान करते हैं और दुष्ट कर्मोंसे उसकी सदा रक्षा करते हैं॥१६॥

ज्ञानी और दूरके परिणामोंको भी सोचकर काम करनेवाले देवोंका यश महान् और उत्तम होता है। जो भी इन्द्रके अनुशासनमें रहकर काम करता है, वह देव बन जाता है। अतः मनुष्यको चाहिए कि वह इन्द्र और अन्य देवोंका मित्र बने तथा ज्ञानकी प्राप्तिके लिए अपनी बुद्धिको तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म विचारोंका दर्शन करनेवाली बनाये॥१७॥

हम वरुणके नियमोंके अनुसार चलें, ताकि सभी देव हमारी रक्षा करें। हम कोई भी ऐसा काम न करें कि जिससे हम सन्तानहीन हों, इसके विपरीत हम ऐसे मार्गसे चलें कि जिससे हमारे घर पुत्र पौत्रों औस पशुओंसे भरा रहे॥१८॥

५२८ देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान् नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम् ॥ १९ ॥
५२९ शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥ २० ॥
५३० सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद् रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥ २१ ॥
५३१ स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥ २२ ॥

अर्थ- [५२८] (पुरुध प्रसूतः) अनेक तरहसे उत्पन्न होनेवाला (देवानां दूतः) देवोंका दूत अग्नि (अनागान् नः) पापसे रहित हम लोगोंको (सर्वताता वोचतु) हर तरहसे उपदेश दे। (पृथिवी द्यौः उत आपः) पृथिवी, द्युलोक और जल (सूर्यः नक्षत्रैः उरु अन्तरिक्षं) सूर्य और नक्षत्रोंसे विस्तृत अन्तरिक्ष (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने ॥१९॥

१ देवानां दूते अनागान् नः वोचतु -देवोंका दूत ज्ञानी पापसे रहित हमें उपदेश करे।

[५२९] (वृषणः) जल बरसा कर (ध्रुवक्षेमासः) निश्चयसे मनुष्योंका कल्याण करनेवाले तथा (इळया मदन्तः) वनस्पति आदिसे मनुष्योंको आनन्दित करनेवाले (पर्वतासः) पर्वत (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें तथा (अदितिः) अदिति देवी भी (आदित्यैः) आदित्योंके साथ (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने तथा (मरुतः) मरुत् देव (नः भद्रं शर्म यच्छन्तु) हमें कल्याणकारी सुख और स्थान प्रदान करें ॥२०॥

१ वृषणः पर्वतासः ध्रुवक्षेमासः- जल बरसानेवाले पर्वत निश्चयसे मनुष्योंका कल्याण करनेवाले हैं।

[५३०] हमारे (पन्थाः) मार्ग (सदा सुगः पितुमान् अस्तु) सदा ही सरलतासे जाने योग्य और अन्नसे युक्त हों, हे (देवाः) देवो! (ओषधीः) अन्न तथा अन्य वनस्पति आदियोंको (मध्वा सं पिपृक्त) मधुरतासे युक्त करो। हे (अग्ने) अग्ने! (सख्ये) तेरी मित्रतामें रहनेवाले (मे भगः) मेरा ऐश्वर्य (न मृध्याः) नष्ट न हो, (उत्) इसके विपरीत (रायः) धन और (पुरुक्षोः सदनं) बहुत अन्नसे भरपूर घरको (अश्याम्) प्राप्त करूं ॥२१॥

१ पन्थाः सदा सुगः पितुमान् अस्तु- हमारे मार्ग सदा ही सरलता से जाने योग्य तथा अन्नसे भरपूर हों।

२ ओषधीः मध्वा सं पिपृक्त- अन्न वनस्पतियां मधुरतासे युक्त हों।

[५३१] हे (अग्ने) अग्ने! (हव्या स्वदस्व) हविके योग्य पदार्थोंका भक्षण कर, और (इषः सं दिदीहि) अन्नको प्रदान कर, (श्रवांसि) अन्नोंको (अस्मध्रक्) हमारी ओर (सं मिमीहि) प्रेरित कर। (पृत्सु) युद्धोंमें (तान् विश्वान् शत्रून्) उन सब शत्रुओंको (जेषि) जीत, तथा (सुमनाः) उत्तम मनवाला होकर तू (विश्वा अहा) सभी दिन (नः दिदीहि) हमारे लिए प्रकाशसे युक्त कर ॥२२॥

१ विश्वा अहा नः दिदीहि- सब दिन हमारे लिए प्रकाशसे युक्त और सुखकर हों।

भावार्थ- अनेक तरहसे उत्पन्न होनेवाला तथा देवोंका दूत होकर आनेवाला ज्ञानी पापसे रहित हम लोगोंको उत्तम उपदेश करे। ज्ञानी मनुष्य प्रथम मातासे उत्पन्न होता है फिर सरस्वती देवीके गर्भसे उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् समाजके गर्भसे बाहर आकर सभी श्रेष्ठ पुरुषोंको अपना ज्ञान प्रदान करता है। समाजके लोगोंको उत्तम कर्मका उपदेश देता है ॥१९॥

पर्वतोंके ऊपर वृक्ष होते हैं उन वृक्षों से बादल टकरा कर बरसते हैं और बरसातके जलसे अन्नकी उत्पत्ति होकर उससे मनुष्य पुष्ट होकर आनन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार पर्वत निःसन्देह मनुष्यका कल्याण करते हैं। वे पर्वत, अदिति, आदित्य और मरुत् आदि देव हमारी प्रार्थनाको सुनकर हमें कल्याणकारी सुख और स्थान प्रदान करें ॥२०॥

हम जिस मार्गसे भी जायें, वह मार्ग सरलतासे जाने योग्य और कांटों तथा विघ्नोंसे रहित हो, हम जहां भी और जिस मार्गसे भी जायें, वहां हमें भरपूर अन्न मिले तथा हम जिस अन्नको खायें वह मधुरतासे भरा हुआ हो। हम अग्निकी मित्रताको प्राप्त करें, ताकि हम धन और उत्तम स्थानको प्राप्त कर सकें ॥२१॥

[५५]

[ऋषिः- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५३२ उषसः पूर्वा अध यद् व्यूषुर्महद् वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥

५३३ मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥

५३४ वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद् वदेम महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३ ॥

---

[५५]

अर्थ- [५३२] (**यत्**) जब (**पूर्वाः उषसः**) बहुतसी उषायें (**वि ऊषुः**) प्रकाशित हो गई, (**अध**) उसके बाद (**अक्षरं महत्**) यह अविनाशी महान् ज्योति (**गोःपदे**) जलके स्थानमें (**वि जज्ञे**) प्रकट हुआ। तब यज्ञकर्ता (**प्रभूषन्**) अपनेको अच्छी तरह अलंकृत करके (**देवानां व्रता उप**) देवोंके कर्मोंको करने लगा। (**देवानां**) देवोंका यह (**एकं महत् असुरत्वं**) एक महान् पराक्रम है ॥१॥

[५३३] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**अत्र**) यहां (**देवाः**) देवगण (**नः मा जुहुरन्त**) हमारी हिंसा न करें। (**पदज्ञाः पूर्वे पितरः मा**) हमारे उत्तम मार्गको जाननेवाले प्राचीन पितर भी हमारा अनिष्ट न करें। (**पुराण्यः सद्मनोः अन्तः**) प्राचीन स्थानोंके बीचमें (**महत् केतुः**) महान् प्रकाश उत्पन्न होता है, (**देवानां एकं महत् असुरत्वं**) यह देवोंका एक महान् पराक्रम है ॥२॥

[५३४] (**मे कामाः पुरुत्रा पतयन्ति**) मेरे मनोरथ अनेक तरहसे दौडते हैं, इसीलिए मैं (**शमि**) यज्ञमें (**अग्नौ समिद्धे**) अग्निके प्रज्वलित होनेपर (**पूर्व्याणि अच्छ दीद्ये**) उत्तम कर्मोंको अच्छी तरह करता हूँ (**ऋतं वदेम**) हम सत्य ही कहते है कि यह (**देवानां एकं महत् असुरत्वं**) देवोंका एक महान् पराक्रम है ॥३॥

भावार्थ- हे अग्ने! तू उत्तम पदार्थोंका भक्षण कर और उत्तम अन्न हमें भी दे, हमारे सभी शत्रु नष्ट हों तथा हमारे लिए सभी दिन सुखकर और प्रकाशसे युक्त हों ॥२२॥

जब पहले अनेक उषायें आकर चली गइ तब महान् ज्योतिरूप सूर्य जलोंके स्थान आकाशमें प्रकट हुआ, सूर्योदय के बाद ही यज्ञकर्ता पवित्र और भूषित होकर यज्ञादि दिव्यकर्म करने लगा। इन कर्मोंमें देवोंका असुरत्व अर्थात् प्राण छिपा हुआ है। यज्ञादि करनेसे दिव्य प्राण प्राप्त होते हैं ॥१॥

हे अग्ने! इस संसारमें उत्तम तेजस्वी पुरुष हमारा अनिष्ट न करें, तथा उत्तम मार्गोंको जाननेवाले ज्ञानी भी हमारा अनिष्ट न करें। यह देवोंका ही पराक्रम है कि अनन्तकालसे चली आनेवाली द्यावापृथ्वीके मध्यमें महान् ज्योतिरूप सूर्य प्रकाशित होता है ॥२॥

मनुष्यके मनोरथ अनेक तरहके होते हैं, उन मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिए उसे चाहिए कि वह उत्तम कर्म करे और देवोंके पराक्रमको सदा ध्यानमें रखे ॥३॥

५३५ समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥
५३६ आक्षित् पूर्वास्वपरा अनूरुत् सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ५ ॥
५३७ शयुः परस्तादध नु द्विमाताऽबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६ ॥
५३८ द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ७ ॥

अर्थ- [५३५] (समानो राजा) एक ही राजा (पुरुत्रा विभृतः) अनेक तरहसे धारण किया जाता है। वह (शयासु शयः) यज्ञोंमें सोता है तथा (वनानु प्रयुतः) वनोंमें अलग अलग पडा रहता है। (अन्या वत्सं भरति) एक अपने बच्चेका पालन करती है तो (माता) दूसरी माता (क्षेति) उसे केवल धारण करती है, यह सब (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कृत्य है ॥४॥

[५३६] यह अग्नि (पूर्वासु) अत्यंत प्राचीन वनस्पतियों में रहता है और (अपरा अनूरुत्) नवीन वनस्पतियोंमें भी प्रकाशित होता है, तथा वह (सद्यः जातासु तरुणीषु अन्तः) नवीन उत्पन्न हुई तरुणियोंमें भी रहता है, (अप्रवीताः अन्तर्वतीः सुवते) किसीके द्वारा वीर्यसिंचन न होनेपर भी गर्भवती होकर उत्पन्न करती हैं, यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् आश्चर्यजनक कर्म है ॥५॥

[५३७] (परस्तात् शयुः) पश्चिममें सोनेवाला (अध नु) और (द्विमाता) दो माताओंवाला (एकः वत्सः) एक बच्चा (अबन्धनः चरति) बिना किसी बन्धन या विघ्नके विचरता है। (ता व्रतानि) वे सब काम (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुणके हैं। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥६॥

[५३८] (द्विमाता) दो माताओंवाला (होता) होता (विदथेषु सम्राट्) यज्ञोंका सम्राट् (अनु अग्रं चरति) सबसे आगे चलता है और (बुध्नः क्षेति) सबसे श्रेष्ठ होकर रहता है। इसके लिए (रण्यवाचः) सुन्दर वाणियां (रण्यानि प्र भरन्ते) सुन्दर और रमणीय स्तुतियोंको करती हैं। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक अद्भुत कार्य है ॥७॥

भावार्थ- एक ही तेजस्वी अग्नि अनेक तरहसे प्रकाशित होता है। वह यज्ञमें तो एक यज्ञाग्निके रूप में रहता है, और अलग अलग लकडियों में अलग अलग रूपसे रहता है। एक माता अरणी तो उसे केवल धारण करती है और दूसरी माता यज्ञवेदि उसे हवि आदि देकर पुष्ट करती है। इसी तरह राष्ट्रमें एक ही राजा अनेक रूपोंको धारण करता है। वह कभी शय्यापर सोता है अर्थात् सुखोंका उपभोग करता है तो कभी वनमें अर्थात् युद्धके मैदानमें जाता है। उसकी अपनी माता तो उसे गर्भमें धारण करती है, पर उसकी दूसरी माता प्रजा उस राजाका पालनपोषण करती है ॥४॥

यह अग्नि अत्यन्त प्राचीन और जीर्णशीर्ण वृक्षोंमें रहता है, तथा जो हरेभरे वृक्ष हैं, उनमें भी रहता है, और जो पौधे नये ही उगे हैं उनमें भी रहता है। इन वनस्पतियों में कोई भी वीर्यका सेवन नहीं करता, फिर भी ये गर्भवती होकर फल और फूलोंको उत्पन्न करती हैं ॥५॥

पश्चिममें अस्त होनेवाले सूर्यकी द्यु और पृथिवी ये दो मातायें हैं और उनका यह बच्चा बिना किसी विघ्न या बाधाके आकाशमें विचरता है। यह सब महिमा मित्र और वरुण आदि देवोंकी है ॥६॥

यह अग्नि दो अरणियोंमेंसे उत्पन्न होनेके कारण दो माताओंवाला है, वह अग्नि या अग्रणी होनेके कारण सबसे आगे चलते है इसीलिए वह सबसे श्रेष्ठ है। जो सबसे आगे रहकर काम करता है, वह श्रेष्ठ होता है और सब उसकी प्रशंसा करते हैं ॥७॥

५३९ शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ८ ॥

५४० नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ९ ॥

५४१ विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १० ॥

५४२ नाना चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोरन्यद् रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ११ ॥

अर्थ- [५३९] (अन्तमस्य) पासमें रहनेवाले तथा (युध्यतः शूरस्य इव) युद्ध करनेवाले शूरवीरके समान तेजस्वी अग्निके सामने (आयत् विश्वं) आनेवाले सारे प्राणी (प्रतीचीनं ददृशे) पराङ्मुख हुए हुए दिखाई देते है। (मतिः) बुद्धिमान् यह अग्नि (गोः निष्षिधं) जलोंको धारण करनेवाले आकाशके (अन्तः) अन्दर (चरति) विचरता है। यह (देवानां एक महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् पराक्रम है॥८॥

[५४०] (पलितः दूतः) अत्यन्त प्राचीन तथा दूत यह अग्नि (आसु वेवेति) इन वनस्पतियोंमें व्याप्त है, तथा (रोचनेन) अपने तेजसे (महान्) यह महान् अग्नि (अन्तः चरति) इन वनस्पतियोंके अन्दर घूमता है और जब (वपूंषि बिभ्रत) शरीरको धारण करता है, तभी (नः अभि वि चष्टे) हमें वह दिखाई देता है। (देवानां एक महत् असुरत्वं) यह देवोंका एक महान् पराक्रम है॥९॥

[५४१] (अमृता प्रिया धामानि दधानः) अविनाशी और प्रिय लोकोंको धारण करनेवाला (गोपाः विष्णुः) पालन करनेवाला विष्णु (पाथः परमं पाति) अपने मार्गसे कल्याणकी रक्षा करता है। (अग्निः) अग्नि (ता विश्वा भुवनानि वेद) उन सम्पूर्ण भुवनोंको जानता है। यह (देवानां एक महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है॥१०॥

[५४२] (यम्या) जुडवीं दो स्त्रियां (नाना वपूंषि चक्राते) अनेक तरहके रूपोंको प्रकट करती है। (तयोः) उनमें (अन्यत् रोचते) एक तेजस्विनी है और (अन्यत्) दूसरी (कृष्णं) काली है। (यत् श्यावी अरुषी च) जो काली और गोरी अथवा तेजस्विनी स्त्रियां हैं, वे (स्वसारौ) दोनों आपसमें बहिने हैं। यह (देवानां एक महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है॥११॥

भावार्थ- जब यह अग्नि धधकने लगती है, तब इसकी ओर आनेवाले सभी प्राणी इससे दूर भागने लगते हैं। यह अग्नि विद्युतके रूपमें आकाशमें रहता है॥८॥

वह अग्नि सभी वृक्ष आदि वनस्पतियोंमें व्याप्त है और सभी वृक्षोंमें उसका तेज घूम रहा है, पर वह मनुष्योंको दिखाई तभी देता है कि जब वह अरणीसे घिसे जाने पर ज्वालारूप शरीर धारण कर लेता है॥९॥

सबका पालन करनेवाला व्यापक विष्णु सब अविनाशी लोकोंको धारण करता है और सदा कल्याणमय कर्मों और मार्गोंकी रक्षा करता है। अग्नि सभी भुवनोंका ज्ञाता है॥१०॥

दिन और रातरूपी दो जुडवीं बहने हैं, उनमें रात काली और दिन गोरी और प्रकाशयुक्त है। काली और गोरी होनेपर भी ये परस्पर प्रेमसे व्यवहार करती हैं॥११॥

५४३ माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १२ ॥
५४४ अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १३ ॥
५४५ पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान् महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १४ ॥
५४६ पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १५ ॥

अर्थ- [५४३] (यत्र) जहां (माता च दुहिता च) माता और पुत्री दोनों (धेनू) तृप्त करनेवाली (सबर्दुघे) अमृतको दुहनेवाली हैं, वे दोनों (समीची) एक साथ मिलकर (धापयेते) अपना दूध पिलाती हैं। (ते) वे दोनों (ऋतस्य सदसि अन्तः) ऋतके स्थानमें रहती हैं, मैं उनकी (ईळे) स्तुति करता हूँ। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कार्य है ॥१२॥

[५४४] (अन्यस्याः वत्सं) दूसरेके बच्चेको (रिहती मिमाय) चाटती हुई प्रसन्नतासे शब्द करती है। यह (धेनुः) गाय (कया भुवा) किस स्थानसे (ऊधः नि दधे) अपने स्तनोंको दूधसे भरती है? (सा इळा) वह पृथ्वी (ऋतस्य पयसा पिन्वते) ऋतके दूधसे पुष्ट होती है। यह (देवानां एकं महत असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥१३॥

[५४५] (पद्या) पैरसे उत्पन्न होनेवाली पृथ्वी (पुरुरूपा वपूंषि) अनेक रूपवाले शरीरोंको (वस्ते) धारण करती है और (त्र्यविं रेरिहाणा) तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले सूर्यको चाटती हुई (ऊर्ध्वा तस्थौ) सबसे ऊंचे स्थान पर खडी रहती है, (विद्वान्) विद्वान् मैं (ऋतस्य सद्म वि चरामि) ऋतके स्थानमें संचार करता हूँ। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥१४॥

१ पद्या- विराट् पुरुषके पैरसे उत्पन्न हुई पृथ्वी- "पद्भ्यां भूमिः"

[५४६] (दस्मे) सुन्दर रूपवाली दोनों (अन्तः) अन्तरिक्षमें (पदे निहिते) पैर रखती हैं, (तयोः) उनमें (अन्यत्) एक (गुह्यं) छिपी हुई है (अन्यत् आविः) दूसरी प्रकट है। उन दोनोंका (सा पथ्या) वह मार्ग (सध्रीचीना) एक होते हुए भी (विषूची) अलग अलग विभक्त है। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक अद्भुत कर्म है ॥१५॥

भावार्थ- सबको उत्पन्न करनेवाली माता यह पृथ्वी और दूर दूर रहनेवाली दुहिता द्यु दोनों ही सारे विश्वको तृप्त करनेवाली, अमृतमय पदार्थोंको देनेवाली तथा सारे संसारको अपना रस प्रदान करनेवाली हैं, ये दोनों नियममें रहती हैं ॥१२॥

इन दोनों माताओंमें एक माता पृथ्वी दूसरे द्युलोकके बच्चे अर्थात् सूर्यकी किरणोंको चाटती हुई प्रसन्न होती है। यह पृथ्वी अपने स्तनोंको सूर्यकी किरणोंके द्वारा बरसाये गए जलसे पूर्ण करती है फिर उस दूधसे मनुष्यों को पुष्ट करती है ॥१३॥

विराट् पुरुषके पैरोंसे उत्पन्न हुई यह पृथ्वी लाल, हरा, नीला आदि अनेक रूपों को धारण करती हुई द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्य की किरणोंको चाटती है, इसीलिए सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। विद्वान ज्ञानी मनुष्य इस सूर्यके लोकमें विचरता है ॥१४॥

सुन्दर रूपवाली दोनों दिन और रात अन्तरिक्षमें संचार करती हैं, उनमें एक रात्री काली होने के कारण छिपी हुई रहती है और दूसरी स्त्री दिन प्रकाशयुक्त होनेके कारण सबको दिखाई देती है। इन दोनों दिन और रातका मार्ग यद्यपि अन्तरिक्ष ही है, पर दिनमें पुण्यशाली मनुष्य विचरते हैं, तो रातमें चोर, डाकू आदि पापी विचरते है ॥१५॥

५४७ आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १६ ॥

५४८ यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन् यूथे नि दधाति रेतः ।
स हि क्षपावान् त्स भगः स राजा महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १७ ॥

५४९ वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १८ ॥

५५० देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १९ ॥

अर्थ- [५४७] (अशिश्वीः) बच्चोंसे रहित, (सबर्दुधाः) अमृतको दुहनेवाली, (शशया) तेजयुक्त (अप्रदुग्धा) न दुहीं गई (युवतः धेनवः) तरुणी गायें (नव्यानव्या भवन्ती) प्रतिदिन नवीन नवीन होती हुई (धुनयन्तां) दोहन करें। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक अद्भुत काम है ॥१६॥

[५४८] (यत् वृषभः) जो वीर (अन्यासु रोरवीति) दूसरी दिशाओंमें रहकर गरजता है, (सः) वह (अन्यस्मिन् यूथे) किसी दूसरे ही झुण्डमें जाकर (रेतः नि दधाति) अपने वीर्यको स्थापित करता है। (सः हि) वह गरजनेवाला (क्षपावान्) पालन करनेवाला (सः भगः) वह ऐश्वर्यवान् तथा (सः राजा) वह सबका राजा और तेजस्वी है। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् अद्भुत काम है ॥१७॥

[५४९] हे (जनासः) मनुष्यो! (वीरस्य सु अश्व्यं) इस वीरके उत्तम पराक्रमकी (नु प्रवोचाम) हम प्रशंसा करें, (अस्य) इसके इस पराक्रमको (देवाः विदुः) देव भी जानते हैं, (षोळ्हा युक्ता) छै छै घोडोंसे युक्त होनेपर भी (पंचपंचा वहन्ति) पांच पांच घोडे ही इसे ढोते हैं। (देवानां एकं महत्त असुरत्वं) यह देवोंका एक महान् अद्भुत काम है ॥१८॥

[५५०] (सविता) सबको उत्पन्न करनेवाला (विश्वरूपः) अनेक रूपोंवाला (त्वष्टा देवः) त्वष्टा देव (पुरुधा प्रजाः जजान) अनेक तरहकी प्रजाओंको उत्पन्न करता है और (पुपोष) इनको पुष्ट भी करता है (इमा विश्वा भुवनानि अस्य) ये सारे भुवन इसी त्वष्टा देवके हैं, यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् अद्भुत काम है ॥१९॥

भावार्थ- शिशुओंसे रहित होती हुई भी अमृतको दुहनेवाली, तेजयुक्त, न दुही गई सूर्यकिरण रूपी गायें प्रतिदिन नवीन होकर अमृत प्रदान करें ॥१६॥

मेघरूपी वीर गरजता तो दूसरी जगह अर्थात् आकाशमें है, पर वर्षाजलरूपी अपने वीर्यका सिंचन करता है दूसरी जगह अर्थात् पृथ्वीमें है। इस प्रकार जल बरसाकर वह पृथ्वीका पालन करता है और ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥१७॥

इस मंत्रमें अध्यात्मका वर्णन है। इस आत्मारूपी इन्द्रका पराक्रम बहुत ही महान् है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं और अन्य देवगण भी इसके पराक्रम को अच्छी तरह जानते हैं यद्यपि इस आत्माके रथ इस शरीरमें पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा मन और पांच कर्मेन्द्रियां और मन इस प्रकार छै छै घोडे जुते हुए हैं, पर इस आत्माको पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां रूपी ५-५ घोडे ही ढोते हैं ॥१८॥

सबको उत्पन्न करनेवाला अनेक रूपोंवाला त्वष्टा देव अनेक तरहकी प्रजाओंको उत्पन्न करता है और उनका पालन पोषण भी करता है। ये सभी लोक उसी त्वष्टाने बनाये हैं ॥१९॥

५५१ मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २० ॥
५५२ इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २१ ॥
५५३ निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २२ ॥

अर्थ- [५५१] इन्द्र (**मही**) महान् तथा (**समीची**) परस्पर मिलजुलकर चलनेवाली (**चम्वा**) इन द्युलोक और पृथ्वीलोकको (**सं ऐरत्**) अच्छी तरह प्रेरित करता है। (**ते उभे**) वे दोनों (**अस्य वसुना नि ऋष्टे**) इन इन्द्रके तेजसे व्याप्त हैं। मैंने (**वीरः वसूनि विन्दमानः शृण्वे**) वीरको ही धनोंको प्राप्त करते सुना है। यह (**देवानां एकं महद् असुरत्वं**) देवोंका एक महान् अद्भुत काम है॥२०॥

१ **वीरः वसूनि विन्दमानः शृण्वे-** मैंने वीरको ही धन प्राप्त करते सुना है।

[५५२] (**हित मित्रः राजा न**) जिस प्रकार अपनी प्रजाओंका मित्रके समान हित करनेवाला एक राजा सदा ही अपनी प्रजाके पास रहता है, उसी प्रकार इन्द्र भी (**नः इमां पृथिवीं क्षेति**) हमारी इस पृथ्वीके पास रहता है और हम भी (**विश्वधायाः उप**) इस विश्वका पालन करनेवाली भूमिके पास रहें। (**वीराः पुरःसदः शर्मसदः**) इस इन्द्रके सहायक वीर मरुत् हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हैं। यह (**देवानां एकं महत् असुरत्वं**) देवोंका एक महान् अद्भुत काम है॥२१॥

१ **वीराः पुरःसदः शर्मसदः-** वीर हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हों।

[५५३] हे (**इन्द्र**) इन्द्र! (**ओषधीः उत आपः**) औषधियां और जल (**ते**) तेरेही कारण (**निष्षिध्वरी**) ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं। (**पृथिवीः**) पृथिवी भी (**ते रयिं बिभर्ति**) तेरे ही ऐश्वर्यको धारण करती है, अतः, हे इन्द्र! (**ते सखायः**) तेरे मित्र हम (**वामभाजः स्याम**) उत्तम धनके भागी हों, यह (**देवानां एकं महद् असुरत्वं**) देवोंका एक महान् कर्म है॥२२॥

भावार्थ- मिलजुलकर चलनेवाले द्युलोक और पृथ्वीलोक इन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर चलते हैं, वे दोनों ही लोक इन्द्रके तेजसे व्याप्त हैं। ऐसा इन्द्र भी वीर होकर ही धनोंको प्राप्त करता है। इसलिए मनुष्य भी वीरतापूर्ण पराक्रम प्रदर्शित करके ही धन पानेकी इच्छा करे। लक्ष्मी वीर पुरुषको ही वरण करती है निर्बलको नहीं॥२०॥

अपनी प्रजाओंका हित करनेवाला एक राजा जिस प्रकार हमेशा अपनी प्रजा के पासही रहता है, उसी प्रकार यह इन्द्र भी हमेशा इस पृथ्वीके पास रहता है। इस इन्द्रके सहायक वीर मरुत् हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हैं। वीर भी हमेशा आगे बढनेवाले और प्रजाका कल्याण करनेवाले हों। वे कायर और अत्याचारी न हों॥२१॥

औषधियां और जल इसी इन्द्रके ऐश्वर्यके कारण समृद्धिशाली हैं। पृथ्वीमें भी जो कुछ ऐश्वर्य है, वह भी इसी इन्द्रके कारण है। अतः ऐसे धनवान् इन्द्रके मित्र हम भी उत्तम धनके स्वामी हों॥२॥

[५६]

[ऋषिः- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५५४ न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभि–र्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥ १ ॥
५५५ षड्भाराँ एको अचरन् बिभ–र्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥ २ ॥
५५६ त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्–त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥ ३ ॥

---

[५६]

अर्थ- [५५४] (देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि) देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं, अतः **(ता न मायिनः मिनन्ति)** उसका उल्लंघन न मायावी शत्रु कर सकते हैं, **(न धीराः)** और न बुद्धिमान् ही कर सकते हैं। **(वेद्याभिः)** सब तरहके ज्ञानके सम्पन्न **(अद्रुहा)** द्रोह करनेवाली **(रोदसी)** द्यु और पृथ्वी **(न)** उन नियमोंका उल्लंघन नहीं कर सकती, **(तस्थिवांसः पर्वताः न निनमे)** स्थिर रहनेवाले पर्वत भी कभी नहीं झुकते ॥१॥

१ **देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि-** देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत है।

[५५५] (अचरन् एकः) न चलनेवाला एक सूर्य **(षट् भारान् बिभर्ति)** छै भारोंको धारण करता है। **(ऋतं वर्षिष्ठं)** उस नियम पर चलनेवाले तथा अत्यन्त श्रेष्ठ सूर्यको **(गावः उप आगुः)** किरणें आकर घेर लेती है, **(अत्याः महीः तिस्रः)** सतत गमन करनेवाले विशाल तीन लोक **(उपराः तस्थुः)** सब लोकोंसे श्रेष्ठ होकर रहते हैं, उनमें **(द्वे गुहा निहिते)** दो लोक गुहामें छिपे हुए हैं, और **(एका दर्शि)** एक दिखाई देती है ॥२॥

[५५६] (त्रिपाजस्यः वृषभः विश्वरूपः) तीन तरहके बलोंवाला, वीर, अनेक रूपोंवाला, **(उत)** और **(त्रिउधा पुरुध प्रजावान्)** तीन स्तनोंवाला, अनेक रूप रंगोंवाली, प्रजाओंसे युक्त **(त्रि अनीकः)** तीन सेनाओंवाला **(महिनावान्)** महिमाशाली वह सूर्य **(पत्यते)** उदय होता है। **(स वृषभः)** वह वीर्यशाली **(शश्वतीनां)** अनेकों वनस्पतियोंमें **(रेतोधाः)** अपने वीर्यको स्थापित करता है ॥३॥

भावार्थ- देवोंके नियम हमेशा एकसे रहते हैं, इसीलिए वे श्रेष्ठ हैं। उन नियमोंका उल्लंघन न दुष्ट कर सकते हैं और न बुद्धिमान् सज्जन ही। द्यु और पृथ्वी आदि लोक भी उन नियमोंका उल्लंघन नहीं कर सकते। इसीलिए जब एक बार पर्वतोंको स्थिर कर दिया तो आजतक वे स्थिर हैं, कभी नहीं झुकते ॥१॥

न चलनेवाला सूर्य छै ऋतुओंको धारण करता है। उस सूर्यको किरणें व्याप्त करती हैं। उसीके कारण द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी स्थिर हैं, उनमें द्यु और अन्तरिक्ष न दिखाई देनेके कारण गुहामें गुप्त हैं और एक लोक पृथ्वी दिखाई देता है ॥२॥

इस सूर्यका बल प्रातः, मध्यान्ह और सायं इन तीन कालोंमें प्रकट होने के कारण तीन तरहका है, द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी ये तीन स्तन सूर्यके हैं। इन तीनों लोकोंमें रहनेवाली शक्तियां उसकी तीन तरहकी सेनायें हैं। वह सूर्य वीर्यशाली है, इसीलिए वह महिमाशाली भी है। वह अपनी किरणोंके द्वारा समस्त ओषधियोंमें रसका आधान करता है। वह रस ही सूर्यका वीर्य है ॥३॥

५५७ अभीकं आसां पदवीरंबो—ध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग् व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥ ४ ॥

५५८ त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीना—मुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्या—स्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥ ५ ॥

५५९ त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥ ६ ॥

५६० त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥ ७ ॥

अर्थ- [५५७] (आसां) इन वनस्पतियोंके (अभीके) पासमें (पदवीः अबोधि) इस सूर्यके चिन्ह जाने जाते हैं, मैं (आदित्यानां चारु नाम अह्वे) आदित्योंके सुन्दर नामोंका वर्णन करता हूँ। (देवीः आपः चित्) दिव्य जल भी (अस्मै अरमन्त) इस सूर्यके साथ रमण करते है, पर जब (पृथक् व्रजन्तीः) वे जल अलग अलग होकर चलने लगते हैं, तब (सीं) इस सूर्यको (परि अवृंजन्) त्याग देते है ॥४॥

[५५८] हे (सिन्धवः) नदियो ! तुम (त्रिषधस्था) तीन स्थानोंपर रहती हो, तथा (त्रिः कवीनां) तीन तरहके देव इन स्थानोंमें रहते हैं (उत) और (त्रिमाता) इन तीनों लोकोंका निर्माता सूर्य (विदथेषु सम्राट्) यज्ञोंमें सम्राट् होता है। (ऋतावरीः) जलोंसे युक्त (तिस्रः अप्याः योषणाः) तीन आकाशीय स्त्रियां (दिवः) द्युलोकसे (त्रि विदथे) तीन सवनोंवाले यज्ञमें (आ पत्यमानाः) आती हैं ॥५॥

[५५९] हे (सवितः) सबके प्रेरक सूर्य ! तू (दिवः) द्युलोकसे आकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वार्याणि) चाहने योग्य धन (त्रिः आ सुव) तीनबार दे तथा (अह्नः नः त्रिः) दिनमें भी हमें तीनबार धन दे। हे (भग त्रातः) ऐश्वर्यवान् रक्षक ! तू (त्रिधातु रायः वसूनि) तीन तरहके ऐश्वर्य और धन (आ सुव) प्रदान कर। हे (धिषणे) सरस्वती ! हमें (सातये धाः) धनप्राप्तिके योग्य बना ॥६॥

[५६०] (सविता) सबका प्रेरक सूर्य (दिवः) द्युलोकसे (त्रिः सोषवीति) तीन प्रकारके धन प्रदान करे। (राजाना सुपाणी मित्रावरुणा) तेजस्वी और कल्याणकारी हाथोंवाले मित्र और वरुण, (आपः चित्) जल तथा (उर्वी रोदसी चित्) विशाल द्यावापृथिवी भी (सवाय) धनकी प्राप्तिके लिए (सवितुः रत्नं भिक्षन्त) सूर्यसे रत्न मांगते हैं ॥७॥

भावार्थ- वनस्पतियोंके अन्दर सूर्यके द्वारा स्थापित रसको देखा जा सकता है। द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले जल वर्षाकालमें इस सूर्यके साथ रहते हैं, पर जब वर्षाकाल के बाद वे जल सूर्यसे अलग होने लगते हैं, तब वे जल सूर्यसे दूर चले जाते हैं, फिर वे जल सूर्यको नहीं घेरते ॥४॥

द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीनों लोकोंमें द्यु स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय और पृथ्वी स्थानीय देवगण रहते हैं। इन तीनों लोकोंका निर्माता सूर्य यज्ञके तीनों सवनोंमें प्रकाशित होता है। और सरस्वती, इळा और भारती ये तीन देवियां इन यज्ञोंमें उपस्थित होती हैं ॥५॥

हे सूर्य ! तू प्रतिदिन हमारे पास आकर हमें तीनबार धनका दान दे, तू हमें सब तरहका ऐश्वर्य और धन प्रदान कर ॥६॥

सबको प्रेरणा देनेवाला सूर्य द्युलोकसे हमें तीन तरहके धन दे। तेजस्वी, कल्याणकारी हाथोंवाले मित्र, वरुण, जल और विशाल द्यावापृथिवी भी उसी सूर्यसे धन आदि मांगते हैं ॥७॥

५६१ त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभास—स्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥ ८ ॥

[५७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः। देवता- विश्वे देवाः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

५६२ प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद् या दुदुहे भूरि धासे—रिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥ १ ॥

५६३ इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥ २ ॥

अर्थ- [५६१] (दूणशा उत्तमा) नष्ट न होनेवाले, उत्तम (रोचनानि त्रिः) प्रकाशस्थान तीन हैं, उनके कारण (असु-रस्य वीराः) जीवन देनेवाले परमेश्वरके वीर (ऋतावानः इषिराः दूळभासः) सत्यनिष्ठ, उत्साहपूर्वक कार्य करनेमें तत्पर और कभी भी न दबनेवाले होकर (त्रिः राजन्ति) तीन प्रकारसे प्रकाशित होते हैं। ये (दिवः वीराः) दिव्यवीर (विदथे) युद्धमें हमारे सहायक हों ॥८॥

[५७]

[५६२] (चरन्तीं) उत्तममार्गमें जानेवाली, (प्रयुतां) उत्तम ज्ञानसे युक्त (अगोपां) रक्षकसे रहित (धेनुं मे मनीषां) धारण करनेवाली, मेरी बुद्धिको (विविक्वान्) विवेक से युक्त इन्द्रने (अविदत्) जान लिया है। (या) जो धेनु (सद्यः चित्) शीघ्र ही (भूरि धासे दुदुहे) बहुतसे अन्नको दुहती है, (अस्याः) उस धेनुके (तत्) उस महत्वकी (इन्द्रः अग्निः) इन्द्र और अग्नि (पनितारः) प्रशंसा करनेवाले हैं ॥१॥

[५६३] (वृषणा सुहस्ता) बलवान् तथा उत्तम हाथोंवाले (इन्द्रः पूषा) इन्द्र और पूषा तथा अन्य देव (प्रीताः) प्रसन्न होकर (दिवः शशयं दुदुह्रे) द्युलोकसे मेघको दुहते हैं (यत्) क्योंकि (विश्वे देवाः) सभी देव (अस्यां रणयन्तः) मेरी इस स्तुतिमें आनन्द प्राप्त करते हैं, इसलिए हे (वसवः) वसुदेवो! (वः) आपकी कृपासे मैं (अत्र) इस संसारमें (सुम्नं अश्याम) सुखको प्राप्त करूँ ॥२॥

भावार्थ- इस मानवी कार्यक्षेत्रमें शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक ऐसे तीन प्रकाश केन्द्र हैं। सबको जीवन देनेवाले ईश्वर पर निष्ठा रखकर कार्य करनेवाले वीर इन तीन दिव्य तेजोंसे युक्त होकर सत्यनिष्ठ, बनते हैं। ऐसे वीर अपने कार्यको यथाशीघ्र समाप्त करते हैं और कोई भी उन्हें नहीं दबा सकता। इसलिए ये वीर तीनों क्षेत्रोंमें तेजस्वी और यशस्वी होते हैं। हमारे इस धर्मयुद्धमें ऐसे वीर हमारी सहायता करें ॥८॥

उत्तम मार्गमें जानेवाली उत्तम ज्ञानसे युक्त बुद्धि धारण करनेवाली होती है, ऐसी बुद्धि अनेक तरहके धनोंको प्रदान करती है। इसीलिए ऐसी बुद्धिकी इन्द्र और अग्निकी प्रशंसा करते हैं ॥१॥

जब इन्द्र और पूषा आदि देव प्रसन्न होते हैं, तब वे द्युलोक से मेघोंको दुहकर पानी बरसाते हैं। वे सभी देव मेरी स्तुतिको सुनकर आनन्दित होते हैं, अतः उनकी दयासे मैं इस संसारमें हर तरहका सुख प्राप्त करूं ताकि यहां मेरा निवास उत्तम हो ॥२॥

५६४ या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३ ॥
५६५ अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥ ४ ॥
५६६ या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥ ५ ॥
५६७ या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद् देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ- [५६४] (याः जामयः) जो स्त्रियां (वृष्णो) बलवान्के पास जाकर (शक्तिं इच्छन्ति) शक्तिकी इच्छा करती हैं और (नमस्यन्तीः) नम्र होकर जाती हैं, तब वे (अस्मिन् गर्भं) इस पुरुषमें गर्भ स्थापित करनेकी शक्ति है, ऐसा (जानते) जान लेती हैं। (वावशानाः धेनवः) कामवश हुई धेनुएं (महः वपूंषि बिभ्रतं) बडे शरीरको धारण करनेवाले अपने (पुत्रं अच्छा चरन्ति) पुत्रके पास सीधे जाती हैं ॥३॥

[५६५] (अध्वरे ग्राव्णः युजानः) यज्ञमें सोम कूटनेके पत्थरोंका उपयोग करता हुआ मैं (मनीषा) अपनी मननशील बुद्धिसे (सुमेके रोदसी) सुन्दर रूपवाली द्यु और पृथ्वीलोककी (अच्छ विवक्मि) सुन्दर स्तुति करता हूँ। हे अग्ने ! (भूरिवाराः) बहुतोंके द्वारा वरणीय, (दर्शताः) देखने योग्य, (यजत्राः) पूजाके योग्य (ते इमाः) तेरी ये ज्वालायें (मनवे) मनुष्यके कल्याणके लिये (ऊर्ध्वाः भवन्ति) ऊपरकी ओर चलें ॥४॥

[५६६] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते) तेरी (या) जो (मधुमती) मधुरतासे युक्त, (सुमेधा) उत्तम बुद्धिशाली, (उरूची) सर्वत्र व्याप्त (जिव्हा) ज्वाला (देवेषु उच्यते) देवोंमें प्रशंसित होती है, (तया) उस ज्वालाको (विश्वान् यजमान् अवसे) सम्पूर्ण पूजनीय देवोंकी रक्षाके लिए (इह सादय) यहां इस यज्ञमें स्थापित कर और उन्हें (मधूनि) मीठे सोमरस (पायय) पिला ॥५॥

[५६७] हे (देव अग्ने) दिव्य अग्ने ! (ते या) तेरी जो (चित्रा) उत्तम (असश्चन्ती) बुरे मार्गों में न जानेवाली बुद्धि (पर्वतस्य धारा इव) मेघसे निकलनेवाली वृष्टिकी धाराके समान (पीपयद्) सबको तृप्त करती है, हे (वसो जातवेदः) सबको बसानेवाले जातवेद अग्ने ! (तां प्रमतिं) उस उत्तम बुद्धिको (अस्मभ्यं रास्व) हमें दे, तथा (विश्वजन्यां प्रमतिं) सारे संसारका हित करनेवाली उत्तम बुद्धिको प्रदान कर ॥६॥

१ अग्ने ! विश्वजन्यां सुमतिं रास्व- हे अग्निदेव ! संसारका हित करनेवाली उत्तम बुद्धिको तू हमें प्रदान कर।

भावार्थ- जलरूपी स्त्रियां जब शक्तिशाली सूर्यके पास जाती हैं, तब उन्हें सूर्यकी शक्तिका ज्ञान हो जाता है और वह पृथ्वीरूपी धेनुमें वृष्टि जलरूपी अपने वीर्यका आधान करता है, तब वह पृथ्वी अनेकरूप धारण करनेवाले वृक्ष वनस्पतियोंको उत्पन्न करती है, वे वृक्ष वनस्पति ही पृथ्वीके पुत्र हैं ॥३॥

मैं इस यज्ञमें अपनी मीठी और सुन्दर वाणीसे द्युलोक और पृथ्वीलोककी स्तुति करता हूँ। हे अग्ने ! देखने योग्य तथा पूजाके योग्य तेरी ये ज्वालायें मनुष्यके कल्याणके लिए हमेशा ऊपरकी तरफ जलती रहें ॥४॥

इस अग्निकी ज्वाला मधुरतासे युक्त, उत्तम बुद्धिको प्रदान करनेवाली होनेके कारण सभी विद्वानोंमें प्रशंसित होती है। इसी ज्वालाके द्वारा सब देवों तक हवि पहुंचती है, इसीलिए वह अग्नि सब देवोंकी रक्षा करनेवाला है ॥५॥

हे अग्ने ! तेरी बुद्धि सदाही उत्तम मार्गोंसे जानेवाली है और वह सबको तृप्त करती है, उसी बुद्धिको तू हमें प्रदान कर ताकि हम संसारका हित कर सकें ॥६॥

[५८]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५६८ धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना—ऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामो—षसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥ १ ॥
५६९ सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेनो—र्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद् वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥ २ ॥
५७० सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठा—ऽऽहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
५७१ आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवै—र्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥ ४ ॥

---

[५८]

अर्थ- [५६८] (प्रत्नस्य काम्यं) पुरातन इच्छाके अनुकूल (दुहाना धेनुः) दुही जाती हुई गौ और (दक्षिणायाः पुत्रः) दक्षिणामें दी गौका बछडा यज्ञस्थलके (अन्तः चरति) भीतर घूमता है (**शुभ्रयामा**) शुभ्र गतिवाला वीर (द्योतनिं आ वहति) ज्योतिको धारण करता है, (**अश्विनौ**) अश्विनौकी प्रशंसा करनेके लिए (**स्तोमः**) स्तोत्र (उषसः अजीगः) उषाके कारण जागृत हुआ है, उषःकालमें पढा जाता है।

[५६९] (वां प्रति) तुम्हें (ऋतेन सुयुक् वहन्ति) सरल मार्गसे तुम्हारे रथके घोडे यहां ले आते हैं। यहां (मेधाः) सब यज्ञ (पितरा इव) रक्षकोंके समान सबको (ऊर्ध्वाः भवन्ति) ऊँचा उठाते है, (पणेः मनीषां) व्यापारीकी इच्छाको (अस्मत् वि जरेथां) हमसे दूरकर क्षीण करो, हम (युवोः अव चकृम) तुम दोनोंका अन्न तैयार कर चुके इसलिए (अर्वाक् आ यातं) हमारे पास आ जाओ। [और उसका सेवन करो] ॥२॥

[५७०] हे (दस्रौ !) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (अद्रेः इमं श्लोकं) पर्वत (पर उगनेवाले इस सोम) के इस काव्यको (सुवृता रथेन) सुन्दर गतिवाले रथपरसे, (सुयुग्भिः अश्वैः) उत्तम शिक्षित घोडोंको जोतकर, आकर (श्रृणुतं) सुनते हैं (किं पुराजाः विप्रासः) कि, पूर्वकालमें उत्पन्न ज्ञानी लोग (वां) तुम्हें (अवर्ति प्रति गमिष्ठा) दरिद्रताको हटानेके लिए जाते हैं ऐसा (आहुः अंग) बतलाते हैं ॥३॥

[५७१] (हे अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (आ मन्येथां) तुम (हमारे इस कर्मका) अनुमोदन करो (एवैः आगतं कश्चित्) घोडोंसे अवश्य आओ, क्योंकि (विश्वे जनासः हवन्ते) सभी लोग तुम्हें बुलाते हैं, (उस्रः अग्ने) सूर्योदयके पहले ही (इमा गोऋजीका मधूनि) इन गोरसमिश्रित मीठे सोमरसोंको (वां हि) तुम्हें ही (मित्रासः न प्र ददुः) मित्रोंके सामने ये याजक देते हैं ॥४॥

भावार्थ- प्रातःकालमें गौका दोहन हो, यह इच्छा सदा मनमें रहे। इस कार्यके लिये गौ और बछडा यज्ञशालाके चारों ओर घूमता रहे। यशस्वी वीर तेजस्वी बनकर अपना कर्तव्य करे। प्रातःकालमें उषाके साथ अश्विदेवों के स्तोत्रपाठ चलें ॥१॥

तुम्हारे रथको घोडे जोते है, वे तुम दोनोंको सरल मार्गसे इस यज्ञस्थलमें ले आते हैं। जिस तरह मातापिता पुत्रकी सुरक्षा करते हैं, वैसे यज्ञ जनताकी सुरक्षा करके उनकी उन्नति करते हैं। व्यापार करनेवालोंकी बुद्धि अधिक से अधिक लाभ उठानेकी रहती है, वैसी बुद्धि हमारे पास न रहे, हममें उदारता रहे। हमारे द्वारा तैयार किया अन्न तुम यहां आकर सेवन करो ॥२॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करते हैं, सुन्दर रथको उत्तम घोडे जोतकर यज्ञमें आते हैं, और वेदके काव्यको सुनते हैं, उस काव्यका भाव यह होता है कि अश्विदेव जनताकी 'दरिद्रताको दूर करनेके लिये जनता के समीप जाते हैं' ॥३॥

अश्विदेवोंको सब लोग बुलाते हैं, वहां वे घोडोंपर सवार होकर प्रातःकाल में जायें और मित्र जैसे याजकोंसे दिये गोरसमिश्रित सोमरस पीयें ॥४॥

५७२ तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ५ ॥

५७३ पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्वाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥ ६ ॥

५७४ अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥ ७ ॥

५७५ अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥ ८ ॥

अर्थ- [५७२] हे (**मघवाना**) ऐश्वर्यसंपन्न अश्विदेवो! (**पुरू रजांसि चित् तिरः**) बहुतसे रजोगुणोंको भी पार करके (**वां आंगूषः**) तुम्हारी स्तुति (**जनेषु**) जनतामें हो जावे, हे (**दस्रौ**) शत्रुविनाशक वीरो! (**देवयानैः पथिभिः**) देवता गण जिनपरसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (**इह आ यातं**) इधर पधारो, क्योंकि (**इमे मधूनां निधयः वां**) ये मधुरसोंके भण्डार तुम्हारे लिए रखे हैं ॥५॥

[५७३] हे (**नरा**) नेता अश्विदेवो! (**वां पुराणं ओकः**) तुम्हारा पुराना यज्ञस्थान तथा तुम्हारी (**सख्यं शिवं**) मित्रता कल्याणकारक है, (**युवोः द्रविणं जह्वाव्यां**) तुम्हारा धन नदीके पास रखा है, (**पुनः**) फिरसे (**शिवानि सख्या**) हितकारक मित्रता (**कृण्वानाः**) करते हुए (**समानाः**) समभावसे (**सह नु**) सब मिलकर ही (**मध्वा मदेम**) मीठे रसपानसे हर्षित हों ॥६॥

[५७४] हे (**सूदानू**) अच्छे दानी अश्विदेवो! तुम (**नासत्या**) सत्यपूर्ण (**सुदक्षा**) अच्छी शक्तिसे युक्त (**अस्त्रिधा**) बिना किसी क्षतिके (**युवाना युवं**) नित्य युवक तुम दोनों (**वायुना नियुद्भिः च**) वायु और घोडोंके साथ (**सजोषसा**) प्रीतिपूर्वक (**तिरो अह्न्यं सोमं**) कल निचोडकर रखे सोमको (**जुषाणा पिबतं**) आदरपूर्वक पान करो ॥७॥

[५७५] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो! (**पुरूचीः इषः**) बहुतसी अन्नसामग्रियाँ (**वां परि ईयुः**) तुम्हें चारों ओरसे प्राप्त होती हैं, (**यतमानाः**) प्रयत्नशील लोग (**अमृध्राः**) किसी प्रकारकी क्षति या रूकावट न पाते हुए (**गीर्भिः**) अपने भाषणोंमें तुम्हारी स्तुति करते है, (**वां ऋतजाः**) तुम दोनोंका सत्यके लिये उत्पन्न (**अद्रिजूतः रथः ह**) पर्वतकी लकडियोंसे बनाया रथ सचमुच (**सद्यः द्यावापृथिवी**) तुरन्त भूलोक तथा द्युलोकके (**परि याति**) चारों ओर प्रयाण करता है ॥८॥

भावार्थ- अश्विदेव, धूलीके मलिन स्थानोंसे पार होकर जनतामें स्तुतिको प्राप्त करें। शत्रुना नाश करें, देवोंके मार्गोंसे पधारें और मीठा अन्न सेवन करें ॥५॥

नेताओंका घर और उनका मित्रभाव कल्याणकारी हो, उनका धन सबका कल्याण करे। सब लोग समभावसे मीठे अन्नका सेवन करते रहें ॥६॥

अच्छे दानी बनो, सत्यका पालन करो, कार्यमें क्षति न रखो, तरुण जैसे उत्साही वीर बनो, घोडोंपर सवार होकर वायुवेगसे जाओ और कल तैयार किये सोमरसका पान करो ॥७॥

इन अश्विदेवोंका रथ चारों ओर जानेवाला है, उनके रथके लिए कहीं भी मार्गमें रुकावट नहीं होती। इसीलिए उन्हें चारों ओरसे अन्नसामग्रियां मिलती रहती हैं ॥८॥

५७६ अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत् सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥ ९ ॥

[५९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- मित्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।]

५७७ मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥
५७८ प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ २ ॥

अर्थ- [५७६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवाकुः सोमः) तुम्हारी कामना पूर्ण करता हुआ सोम (मधुषुत्तमः) मीठेपनको खूब बहाता है, इसलिए (दुरोणे आगतं) घरपर पधारकर (तं पातं) उसका पान करो। (वां रथः ह) तुम्हारा रथ अवश्य ही (भूरि वर्षः करिक्रत्) बहुत स्वीकरणीय तेज उत्पन्न करता हुआ (सुतावतः) निचोडनेवालेके (निष्कृतं आ गमिष्ठः) घर अत्यधिक रूपमें आ जाता है ॥९॥

[५९]

[५७७] (मित्रः) मित्र देव (ब्रुवाणः) आज्ञा देता हुआ (जनान् यातयति) मनुष्योंको अपने काममें नियुक्त करता है, (मित्रः पृथिवीं उत द्यां दाधार) मित्र ही पृथ्वी और द्युलोकको धारण करता है, (मित्रः) मित्र (अनिमिषाभिः) पलक न मारनेवाली आंखोंसे (कृष्टीः अभि चष्टे) मनुष्योंके कामोंको देखता है, अतः हे मनुष्यो ! (मित्राय) मित्रके लिए (घृतवत् हव्यं जुहोत) घी युक्तसे हवि प्रदान करो ॥१॥

१ मित्रः अनिमिषाभिः कृष्टीः अभि चष्टे- मित्र देव कभी भी पलक न मारते हुए मनुष्योंके कामोंको देखता रहता है।

[५७८] हे (आदित्य मित्र) अदितिपुत्र मित्र ! (यः ते व्रतेन शिक्षति) जो तेरे नियमके अनुसार आचरण करता है, (सः मर्तः प्रयस्वान् अस्तु) वह मनुष्य धनवान् हो, (त्वा ऊतः) तुझसे रक्षित हुआ मनुष्य (न हन्यते न जीयते) न मारा ही जाता है और न जीता ही जाता है, (एनं) इसे (अंहः) पाप (न अन्तिकः अश्नोति) न पाससे व्यापता है, (न दूरात्) न दूरसे ॥२॥

१ मित्र, यः ते व्रतेन शिक्षति सः मर्तः प्रयस्वान् अस्तु- हे मित्र ! जो तेरे नियमका पालन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है।

२ त्वा ऊतः न हन्यते न जीयते- तुझसे सुरक्षित हुआ मनुष्य न मारा ही जाता है, और न जीता ही जाता है।

३ एनं अंहः न अश्नोति- इसे पाप नहीं छू सकता।

भावार्थ- अश्विनीदेवोंका रथ चारों ओर तेजको फैलाता हुआ दौडता है। ऐसे रथके द्वारा अश्विनौ जहां भी जाते हैं, वहीं चारों और आनन्दका वातावरण उत्पन्न होकर मानों सर्वत्र मीठे रसकी धारा बहने लगती है। मनुष्य भी इसी प्रकार सदा आनन्दमय होकर अपने चारों ओर मधुरता उत्पन्न करे ॥९॥

यह मित्र आज्ञा देते हुए मनुष्योंको अपने काममें नियुक्त करता है। यही सब लोकोंको धारण करता है तथा वह सदा ही मनुष्योंके कामोंको देखता रहता है, इससे कोई भी काम छुपा नहीं रहता ॥१॥

जो मनुष्य मित्रके समान हित करनेवाले परमेश्वरके नियमोंके अनुसार चलता है, वह ऐश्वर्यवान् होता है। उसे कोई भी शत्रु न जीत ही सकता है और न मार ही सकता है। और कोई पाप कर्म भी नहीं करता ॥२॥

५७९ अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥
५८० अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४ ॥
५८१ महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्ट मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ५ ॥
५८२ मित्रस्य चर्षणीधृतो ऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥
५८३ अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥

अर्थ- [५७९] (**अनमीवासः**) रोग रहित (**इळया मदन्तः**) अन्नसे आनन्दित होनेवाले, (**पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः**) इस पृथ्वीके विस्तीर्ण क्षेत्रोंमें नम्र होकर चलनेवाले तथा (**आदित्यस्य व्रतं उपक्षियन्तः**) आदित्यके नियमके अनुसार आचरण करनेवाले (**वयं**) हम (**मित्रस्य सुमतौ स्याम**) मित्र देवकी उत्तम बुद्धिमें रहें ॥३॥

१ **पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः मित्रस्य सुमतौ-** पृथ्वी पर विनम्र होकर चलनेवाले मनुष्य मित्रकी उत्तम बुद्धिमें रहते हैं।

[५८०] (**नमस्यः**) नमन करने योग्य (**सुशेवः**) सेवाके योग्य (**राजा**) तेजस्वी (**सुक्षत्रः**) उत्तम बलवाला (**वेधाः**) अत्यन्त बुद्धिमान् (**अयं मित्रः**) सबका मित्र रूप यह सूर्य (**अजनिष्ट**) उदय हो गया है। (**वयं**) हम (**तस्य यज्ञियस्य**) उस पूजनीय सूर्यके (**सुमतौ**) उत्तम बुद्धिके और (**भद्रे सौमनसे अपि**) कल्याणकारी उत्तम मनके अनुकूल रहें ॥४॥

[५८१] यह (**महान् आदित्यः**) महान् आदित्य (**नमसा उपसद्यः**) विनम्र होकर ही पासमें जाने योग्य है। (**यातयज्जनः**) मनुष्योंको अपने अपने काममें प्रेरित करनेवाला यह सूर्य (**गृणते सुशेवः**) स्तोताके लिए उत्तम सुखका देनेवाला है। (**तस्मा पन्यतमाय मित्राय**) उस अत्यन्त स्तुत्य मित्रके लुिए (**एतत् जुष्टं हविः**) इस अत्यन्त प्रिय हविको (**अग्नौ आ जुहोत**) अग्निमें आहुति दो ॥५॥

[५८२] (**चर्षणीधृतः देवस्य मित्रस्य**) मनुष्योंको धारण करनेवाले इस दिव्य सूर्यकी (**अवः**) रक्षात्मक कृपा (**सानसि**) सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य (**द्युम्नं**) धनदायक और (**चित्रश्रवस्तमं**) अनेक तरहके अन्नको प्रदान करनेवाली है ॥६॥

[५८३] (**यः मित्रः**) जिस सूर्यने (**महिना**) अपनी महिमासे (**दिवं अभि बभूव**) द्युलोकको व्याप लिया, वही (**सप्रथाः**) प्रसिद्ध यशवाला सूर्य (**श्रवोभिः**) अन्नादिके द्वारा (**पृथिवीं अभि**) पृथिवीको व्याप लेता है ॥७॥

भावार्थ- रोगसे रहित होकर अन्नसे आनन्दित होनेवाले तथा विनम्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाले एवं आदित्य सूर्यके समीप रहनेवाले हम मित्रकी उत्तम बुद्धिमें हम रहें ॥३॥

उदय होता हुआ सूर्य नमन करने योग्य, सेवा किए जाने योग्य, उत्तम बलवाला तथा उत्तम बुद्धिवाला है, जो इसके अनुकूल आचरण करता है, वह हर तरहका कल्याण प्राप्त करता है ॥४॥

यह आदित्य देव महान् है, इसलिए इसके पास लोग नम्र होकर ही जाते हैं। यह सूर्य उदय होकर सबको अपने अपने काममें प्रेरित करता है। यह सूर्य स्तोताके लिए उत्तम सुखको देनेवाला है, ऐसे उस अत्यन्त स्तुत्य देवके लिए अग्निमें उत्तम आहुति देनी चाहिए ॥५॥

जिस प्रकार इस देवकी कृपा हो जाती है, वह हर तरहके धन तथा अन्न एवं यश प्राप्त करता है ॥६॥

द्युलोकमें रहकर यह सूर्य अपने प्रकाशसे द्युलोकको व्याप लेता है और जब वह अपनी किरणोंसे जल बरसाकर अन्नको उत्पन्न करता है, तो वह पृथ्वीको भी अपनी महिमासे व्याप्त कर लेता है ॥७॥

५८४ मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् बिभर्ति ॥ ८ ॥
५८५ मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥

[६०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- ऋभवः, ५-७ इन्द्र ऋभवश्च । छन्दः- जगती ।]

५८६ इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥ १ ॥
५८७ याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥

अर्थ- [५८४] (अभिष्टिशवसे मित्राय) शत्रुओं पर आक्रमण करनेके कार्यमें बलशाली मित्रके लिए (पंचजनाः) पांच मनुष्य (येमिरे) आहुति देते हैं। (सः विश्वान् देवान् बिभर्ति) वह सब देवोंको धारण करता है ॥८॥

[५८५] (मित्रः) मित्र (देवेषु आयुषु) देवोंमें और मनुष्योंमें (वृक्तबर्हिषे जनाय) आसन बिछानेवाले मनुष्यके लिए (इष्टव्रताः इषः अकः) व्रतों एवं नियमोंका पालन करनेवालोंके द्वारा चाहे जाने योग्य अन्नको प्रदान करता है ॥९॥

[६०]

[५८६] हे (प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वनाः) शत्रुओंपर आक्रमण करके अपना तेज प्रकट करनेवाले तथा उत्तम धनुषवाले वीर ऋभुओ! (याभिः मायाभिः) जिन कुशलतापूर्वक किए जानेवाले कामोंके कारण तुम (यज्ञियं भागंआनश) यज्ञीय भागको प्राप्त करते हो, (तानि) उन कर्मोंको (नरः) जो मनुष्य (वेदसा अभि जग्मुः) ज्ञानपूर्वक करते हैं, उनके साथ (वः मनसा बन्धुता इह इह) तुम्हारा मनसे भाईचारा यहीं रहता है ॥१॥

[५८७] हे (ऋभवः) ऋभुओ! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे तुमने (चमसां अपिंशत) चमचोंको सुन्दर रूप दिया, (यया धिया) जिस बुद्धिसे तुमने (चर्मणः गां अरिणीत) चर्मसे भी गाय तैय्यार की, (येन मनसा) जिस मनसे (हरी निरतक्षत) घोडोंको बलवान् बनाया, (तेन देवत्वं समानश) उसीके कारण तुमने देवत्व प्राप्त किया ॥२॥

भावार्थ- यह मित्र सूर्य अत्यन्त बलशाली है, इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांचों जन इसे आहुति प्रदान करते हैं। वह मित्र सब देवोंको धारण करता है ॥८॥

यह सूर्य देवों और मनुष्योंमें जो इस सूर्यका सत्कार आदि करते हैं उन्हींको यह अन्न प्रदान करता है, जिसे नियमका पालन करनेवाले ही प्राप्त करते हैं ॥९॥

शत्रुओंपर आक्रमण करके अपना तेज प्रकट करनेवाले तथा उत्तम धनुष धारण करनेवाले ये ऋभु जिन कर्मोंको करके पूजाके योग्य बिते हैं, उन्हीं कर्मोंको जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक करते हैं, उनके साथ ये ऋभु मनसे भाईचारेका व्यवहार करते हैं ॥१॥

ऋभुओंने अपनी शक्तिसे उत्तम उत्तम साधन बनाये, उन्होंने अपनी बुद्धिसे हड्डी और चमडीवाली गायको मांससे भरपूर करके हृष्टपुष्ट किया। उसी बुद्धिसे उन्होंने घोडोंको भी हृष्टपुष्ट किया, अपने इन्हीं कामोंके कारण उन्हें देवत्व प्राप्त हुआ ॥२॥

५८८ इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशु—र्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥ ३ ॥
५८९ इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥ ४ ॥
५९० इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन् दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥ ५ ॥
५९१ इन्द्र ऋभुमान् वाजवान् मत्स्वेह नो—ऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥ ६ ॥

अर्थ- [५८८] (**मनोर्नपातः अपसः ऋभवः**) मनुष्योंको न गिरानेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऋभुओंने (**इन्द्रस्य सख्यं आनशुः**) इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त किया, और उसे (**दधन्विरे**) धारण भी किया, (**सुकृतः सौधन्वनासः**) उत्तम कर्म करनेवाले तथा उत्तम धनुष धारण करनेवाले ऋभुगण (**शमीभिः सुकृत्यया विष्ट्वी**) अपनी शक्तियों और उत्तम कर्मोंके कारण सर्वत्र व्याप्त होकर (**अमृतत्वं एरिरे**) अमृतत्वको प्राप्त किया ॥३॥

१ **अपसः इन्द्रस्य सख्यं आनशुः**- उत्तम कर्म करनेवाले ही इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त कर सकते हैं।

२ **सुकृत्यया अमृतत्वं एरिरे**- उत्तम कर्मसे ही अमृतको प्राप्त करते हैं।

[५८९] हे (**वाघतः सौधन्वनाः ऋभवः**) बुद्धिमान् और उत्तम धनुषवाले ऋभुओ ! तुम (**सुते**) सोमके यज्ञमें (**इन्द्रेण सचा**) इन्द्रके साथ (**सरथं याथ**) एक ही रथपर बैठकर जाते हो, (**अथ**) और (**वशानां**) जो तुम्हारी कामना करता है, उसके पास (**श्रिया सह भवथ**) धन और ऐश्वर्यके साथ जाते हो, (**वः सुकृतानि वीर्याणि च**) तुम्हारे उत्तम कर्म और पराक्रमकी (**न प्रतिमै**) कोई उपमा नहीं है ॥४॥

१ **वः सुकृतानि वीर्याणि च न प्रतिमै**- इन ऋभुओंके उत्तम कर्म और पराक्रमकी कोई उपमा नहीं है।

[५९०] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**वाजवद्भिः ऋभुभिः**) बलसे युक्त ऋभुओंके साथ तू (**समुक्षितं सुतं सोमं**) अच्छी तरह पवित्र करके निचोडे गए सोमको (**गभस्त्योः आवृषस्व**) हाथोंमें धारण कर। हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**धिया इषितः**) अपनी उत्तम बुद्धिसे प्रेरित होकर तू (**सौधन्वनेभिः नृभिः**) उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले मनुष्योंके साथ (**दाशुषः गृहे मत्स्व**) दानशीलके घरके जाकर आनन्दित हो ॥५॥

[५९१] हे (**पुरुष्टुत इन्द्र**) बहुतोंके द्वारा स्तुत इन्द्र ! (**ऋभुमान्**) ऋभुओंसे युक्त (**वाजवान्**) बलशाली तथा (**शच्या**) शक्तिसे युक्त होकर (**इह**) यहां (**नः अस्मिन् सवने**) हमारे इस यज्ञमें (**मत्स्व**) आनन्दित हो। (**इमानि स्वसराणि**) ये दिन और (**मनुषः धर्मभिः**) मनुष्यके कर्मोंके साथ (**देवानां व्रता**) देवोंके नियम भी (**तुभ्यं येमिरे**) तेरे कारण ही चलते हैं ॥६॥

भावार्थ- ये ऋभु मनुष्यको कभी भी अवनति के मार्गमें प्रेरित नहीं करके, उसको गिराते या अवनत करते नहीं। अपितु हमेशा उसे उत्तम मार्गोंमें प्रेरित करके उसे उन्नत ही करते हैं। वे उत्तम कर्मोंके द्वारा इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त करके उसे हमेशा टिकाये भी रहते हैं। वे अपने इन उत्तम कर्मोंके द्वारा ही अमृतत्वकी प्राप्ति करते हैं ॥३॥

यह ऋभु अपने पराक्रमके कारण इतने उन्नत हैं कि वे इन्द्र के साथ उसीके रथपर बैठकर यज्ञोंमें जाते हैं। जो उनके साथ मित्रता करते हैं, उनके पास ये ऋभु धन और ऐश्वर्य लेकर जाते हैं। इनके उत्तम कर्म और पराक्रम इतने महान् हैं कि उनकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती ॥४॥

हे इन्द्र ! तू ऋभुओंके साथ यज्ञमें आकर इस निचोडे गए सोमको हाथोंसे धारण कर और उन उत्तम धनुर्धारी मनुष्य-ऋभुओंके साथ दानशीलके घरमें जाकर आनन्दित हो ॥५॥

हे इन्द्र ! तू ऋभुओंके साथ अपने बल और शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे यज्ञमें आकर आनन्दित हो। हे इन्द्र ! मनुष्योंके और देवोंके कर्म भी तेरे ही कारण नियममें चलते हैं ॥६॥

५९२ इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥ ७ ॥

[६१]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५९३ उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधि—रनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥

५९४ उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥

५९५ उषः प्रतीची भुवनानि विश्वो—र्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥

अर्थ- [५९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (वाजिभिः ऋभुभिः) बलवान् ऋभुओंके साथ (वाजयन्) सबको बलशाली बनाता हुआ (जरितुः) स्तोताके (इह यज्ञियं स्तोमं उप याहि) इस पूजनीय यज्ञमें आ हे (सहस्रणीथो) हजारों उत्तम मार्गोंको जाननेवाले इन्द्र ! (शतं इषिरेभिः केतेभिः) सौ वेगवान घोडोंसे युक्त होकर (आयवे) मनुष्यको आयु प्रदान करनेके लिए (अध्वरस्य होमनि) हिंसारहित यज्ञमें आ ॥७॥

[६१]

[५९३] (वाजेन वाजिनि) अन्नसे अन्नवाली (मघोनि उषः) धनवाली उषा ! (प्रचेताः) ध्यान देती हुई (गृणतः स्तोमं जुषस्व) स्तोताओंके स्तोत्र श्रवण कर। हे (विश्ववारे देवि) सबके द्वारा स्वीकारके योग्य उषादेवी ! तू (पुराणी युवतिः) पुरातन होनेपर भी तरुणी तथा (पुरंधिः) बडी बुद्धिमती (व्रतं अनुचरसि) व्रतका अनुष्ठान करती है ॥१॥

[५९४] (देवी उषः) उषादेवी ! (चन्द्ररथा) चन्द्रके समान सुंदर रथमें बैठनेवाली (सूनृता ईरयन्ती) मधुरवाणीको प्रेरित करनेवाली, (अमर्त्या विभाहि) अमर स्वरूपिणी तू प्रकाशित हो। (ये पृथुपाजसः हिरण्यवर्णाः) जो विशेष बलवान् तथा सुवर्ण के समान रंगवाले और (सुयमासः अश्वाः) स्वाधीन रहनेवाले घोडे हैं वे (त्वा आ वहन्तु) तुझे यहां ले आवें ॥२॥

[५९५] हे (उषः) उषा ! (विश्वा भुवनानि प्रतीची) सब भुवनोंके सन्मुख (अमृतस्य केतुः) अमृतके ध्वजके समान (ऊर्ध्वा तिष्ठसि) तू उच्च स्थानमें खडी रहती है। हे (नव्यसि) नित्य नवीन बननेवाली उषा ! (चक्रं इव) चक्रके समान (समानं अर्थं चरणीयमाना) एक ही अर्थ प्राप्तिके लिए चलनेवाली तू (आ ववृत्स्व) पुनः पुनः फिरती रह ॥३॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू बलवान् ऋभुओंके साथ सबको बलशाली बनाता हुआ स्तोताके इस पूजनीय यज्ञमें आ और मनुष्योंकी आयु बढा ॥७॥

यह उषा अन्नके साथ रहनेवाली, उत्तम अन्न तैय्यार करनेवाली, ऐश्वर्यवती, उत्तम अन्तःकरणवाली, सबसे श्रेष्ठ, तेजस्विनी, विशेष बुद्धिमती और तरुणी है, यह अपने नियमोंका पालन करती है ॥१॥

यह उषा चन्द्रके समान सुन्दर और आल्हाददायक रथमें बैठती है, मधुर और शुभ भाषण की प्रेरणा देती है और अमर है ॥२॥

यह उषा अमरत्व प्राप्तिका ज्ञान देती है अर्थात् अमृतत्त्व प्राप्तिका ज्ञान प्राप्त कराती है, सब भुवनोंका निरीक्षण करती है। यह नई कन्याके समान सुन्दर दीखती है तथा एक ही ध्येयकी प्राप्तिके लिए हमेशा चक्रके समान घूमती रहती है। सिद्धिके प्राप्त होने तक यह अपने प्रयत्नको नहीं छोडती ॥३॥

५९६ अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद् दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४ ॥
५९७ अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥ ५ ॥
५९८ ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥
५९९ ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन् वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥

अर्थ- [५९६] (**स्यूम इव अवचिन्वती**) प्रकाश किरणके समान अन्धकारको दूर करनेवाली (**मघोनी उषा**) धनवाली (**स्वसरस्य पत्नी**) दिनकी पत्नी उषा (**याति**) चलती है। (**स्वः जनन्ती**) प्रकाशको प्रकट करनेवाली (**सुभगा सुदंसा**) भाग्यवाली सुंदरी (**दिवः पृथिव्याः आन्तात्**) द्युलोक और पृथिवीके अन्तिम भाग तक (**आ पप्रथे**) प्रकाशित होती है ॥४॥

[५९७] हे स्तोता लोगो! (**वः अच्छ**) आप सबके सनुख (**विभातीं देवीं उषसं**) प्रकाशनेवाली उषादेवीको (**नमसा वः सुवृक्तिं प्रभरध्वं**) नमस्कारपूर्वक तुम सब स्तुति करो। (**मधुधा**) मधुरताका धारण करनेवाली उषा (**दिवि ऊर्ध्वं पाजः अश्रेत्**) द्युलोकमें उच्च भागपर अपना तेज रखती है। (**रण्वसंदृक् रोचना**) रमणीय दर्शनवाली तेजस्विनी उषा (**प्र रुरुचे**) प्रकाशित हो रही है ॥५॥

[५९८] (**ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि**) सत्यपालन करनेवाली यह उषा द्युलोकपर आनेवाले किरणोंसे जानी गई है। यह (**रेवती**) धनसंपन्न उषा (**रोदसी चित्रं अस्थात्**) द्यावापृथिवीपर विविध रंगवाली शोभाको स्थापित कर रही है। हे (**अग्ने**) अग्नि! (**आयतीं विभातीं उषसं**) आनेवाली इस प्रकाशित उषाके प्रति (**वामं द्रविणं भिक्षमाणा एषि**) स्वीकरणीय धनकी अपेक्षा करता हुआ तू जाता है ॥६॥

[५९९] (**वृषा ऋतस्य बुध्ने**) बलवान् सूर्य दिनके प्रारंभमें (**उषसां इषण्यन्**) उषाओंको प्रेरित करता हुआ (**मही रोदसी आ विवेश**) विशाल द्यावापृथिवीमें प्रविष्ट हुआ है। (**मित्रस्य वरुणस्य मही माया**) मित्र और वरुणकी यह महती शक्ति (**चन्द्रा इव भानुं पुरुत्रा विदधे**) सुवर्णके सदृश रमणीय उषाके समान प्रकाश चारों ओर धारण करती है ॥७॥

भावार्थ- प्रकाशकी किरणोंके समान यह अन्धेरेको दूर करके सर्वत्र प्रकाश करती है, यह उषा अपने बलसे आगे बढनेवाले सूर्यकी पत्नी होकर सदा प्रगति करती है। यह उत्तम प्रकाशको प्रकट करती हुई उत्कृष्ट धन और ऐश्वर्यसे युक्त तथा उत्तम सुन्दरी है ॥४॥

यह प्रकाशनेवाली उषा मधुरताको धारण करनेवाली, सुन्दरी और तेजस्विनी है। ऐसी उषाकी प्रशंसा सर्वत्र होती है ॥५॥

उषा सत्यका पालन करनेवाली तथा द्युलोकमें अपनी किरणोंको फैलानेवाली है। शोभावाली यह उषा आकाशमें विविध रंगोवाले चित्रोंको चितारती है। तब अग्नि भी पृथ्वी पर प्रज्वलित होती है। तब प्रतीत ऐसा होता है कि मानों अग्नि भी अपने तेजको प्राप्त करनेके लिए उषाके पास जा रहा हो ॥६॥

बलवान् पिता सूर्य, उत्तम कर्म जब प्रारंभ होते है, तब दिनके प्रारंभमें उषाओंको प्रेरित करता है और द्यु और पृथ्वीके मध्यमें अपनी प्रकाश किरणोंको विस्तृत करता है। सूर्य प्रथम उषाको भेजता है और तब स्वयं प्रकट होता है। उषःकालमें जो रमणीय प्रकाश फैलता है, वह सब मित्र और वरुणकी महिमा है ॥७॥

[६२]

[ऋषिः— गाथिनो विश्वामित्रः, १६-१८ जमदग्निर्वा । देवता— १-३ इन्द्रावरुणौ, ४-६ बृहस्पतिः, ७-९ पूषा, १०-१२ सविता, १३-१५ सोमः, १६-१८ मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री, १-३ त्रिष्टुप्।]

६०० इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व१ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥ १ ॥

६०१ अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २ ॥

६०२ अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान् वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान् होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥ ३ ॥

६०३ बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

---

[६२]

अर्थ- [६००] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (वां) तुम दोनोंके (मन्यमानाः भृमयः इमाः) शत्रुओंको संहार करनेवाले तथा घूमनेवाले शस्त्र (युवावते) तरुण मनुष्योंकी (तुज्याः न अभूवन्) हिंसा करनेवाले न हों। तुम (येन) जिससे (सखिभ्यः) अपने मित्रोंको (सिनं भरथः स्म) अन्न प्रदान करते थे, (त्यत्) वह (वां यशः) तुम दोनोंका यश (क्व) कहां है? ॥१॥

[६०१] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (रयीयन्) धनैश्वर्यकी इच्छा करता हुआ (अयं पुरुतमः) यह अत्यन्त श्रेष्ठ होता (अवसे) अपनी रक्षाके लिए (वां जोहवीति) तुम्हें बार बार बुलाता है। तुम दोनों (मरुद्भिः दिवा पृथिव्या सजोषौ) मरुत्, द्यु और पृथ्वीके साथ मिलकर (मे हवं शृणुतं) मेरी प्रार्थनाको सुनो ॥२॥

[६०२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण देवो ! (अस्मे तत् वसु स्यात्) हमें वह धन प्राप्त हो, हे (मरुतः) मरुद्गण ! (अस्मे सर्ववीरः रयिः) हमें सब पुत्रपौत्रोंसे युक्त धनैश्वर्य प्रदान करो, (वरूत्रिः) सबके द्वारा वरण किए जाने योग्य देवशक्तियां (शरणैः) शरण देकर (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें तथा (होत्रा भारती) होत्रा और भारती (अस्मान्) हमारी रक्षा करें ॥३॥

[६०३] हे (विश्व देव्य बृहस्पते) सम्पूर्ण दिव्यतासे युक्त बृहस्पते ! (नः हव्यानि जुषस्व) हमारी प्रार्थनाओंको सुनो और (दाशुषे रत्नानि रास्व) दानशीलको रत्न प्रदान करो ॥४॥

भावार्थ- हे इन्द्रावरुण ! तुम्हारे शक्तिशाली और सर्वत्र घुमनेवाले शस्त्रास्त्र तरुण मनुष्योंकी हिंसा न करें। तुम जिससे अपने मित्रोंको अन्न प्रदान करते हो वह तुम्हारा यश अथवा बल प्रकट करो ॥१॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! धन और ऐश्वर्यको पानेकी इच्छा करनेवाला यह श्रेष्ठ स्तोता अपनी रक्षाके लिए तुम्हें बुलाता है, तुम मरुत्, द्यु और पृथ्वी आदि देवोंके साथ आकर मेरी प्रार्थना सुनो ॥२॥

इन्द्र, वरुण, मरुत्, वरुत्री, होत्रा, भारती आदि देव हमें धन, सुख और पुत्रपौत्र आदि देकर हमारी रक्षा करें ॥३॥

यह बृहस्पति मनुष्योंकी सब अभिलाषाओंको पूरी करनेवाला अनेक रूपोंवाला तथा वीर है। उसका ओज किसीके सामने नहीं झुकता, ऐसा वह बृहस्पति हमारी प्रार्थनाओंको सुनकर हमें धन प्रदान करे ॥४-६ ॥

६०४ शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥
६०५ वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६ ॥
६०६ इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥
६०७ तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८ ॥
६०८ यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥
६०९ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥
६१० देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥ ११ ॥
६११ देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥ १२ ॥

अर्थ- [६०४] हे मनुष्यो ! (**अध्वरेषु**) यज्ञोंमें (**शुचिं बृहस्पतिं**) पवित्र बृहस्पतिको (**अर्कैः नमस्यत**) स्तोत्रोंसे प्रणाम करो। मैं उससे (**अनामि ओजः आ चके**) शत्रुओंके सामने न झुकनेवाले ओजको मांगता हूँ॥५॥

[६०५] मैं (**चर्षणीनां वृषभं**) मनुष्योंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले (**विश्वरूपं**) अनेक रूपोंवाले (**अदाभ्यं**) किसीसे न दबनेवाले (**वरेण्यं बृहस्पतिं**) ग्रहण करने योग्य बृहस्पतिकी पूजा करता हूँ॥६॥

[६०६] हे (**आघृणे पूषन् देव**) दीप्तिमान् पोषण देव ! (**इयं नव्यसी सुस्तुतिः**) यह नवीन और उत्तम स्तुति (**ते**) तेरे लिए है, इसलिए (**अस्माभिः**) हमारे द्वारा (**तुभ्यं शस्यते**) तेरे लिए ही की जाती है॥७॥

[६०७] हे पोषक देव ! (**मम तां गिरं**) मेरी उस उत्तम वाणीको (**जुषस्व**) सुनो और (**वाजयन्तीं धियं अव**) बल प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली इस बुद्धिकी उसी प्रकार रक्षा करो जिस प्रकार एक (**वधूयुः योषणां इव**) वधूकी कामना करनेवाला अपनी वधूकी रक्षा करता है॥८॥

[६०८] (**यः**) जो पूषा (**विश्वा भुवना**) सारे भुवनों को (**अभि पश्यति**) चारों ओरसे देखता है (**च**) और (**सं पश्यति**) अच्छी तरह देखता है, (**सः पूषा**) वह पोषक देव (**नः अविता भुवत्**) हमारी रक्षा करनेवाला हो॥९॥

[६०९] हम (**सवितुः देवस्य**) सविता देवके (**तत् वरेण्यं भर्गः**) उस श्रेष्ठ, वरण करने योग्य तेजका (**धीमहि**) ध्यान करते हैं (**यः**) जो सविता (**नः धियः**) हमारी बुद्धियोंको (**प्रचोदयात्**) उत्तम मार्गमें प्रेरित करे॥१०॥

[६१०] (**वाजयन्तः**) धनकी अभिलाषा करनेवाले हम (**पुरंध्या**) अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे (**सवितुः देवस्य**) सविता देवसे (**भगस्य रातिं ईमहे**) ऐश्वर्यके दानको मांगते हैं॥११॥

[६११] (**धिया इषिताः विप्राः नरः**) अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे प्रेरित होकर सत्कर्म करनेवाले ज्ञानी मनुष्य (**सुवृक्तिभिः यज्ञैः**) उत्तम रीतिसे किए गए स्तोत्रोंसे (**देवं सवितारं नमस्यन्ति**) तेजस्वी सविता देवकी अर्चना करते हैं॥१२॥

भावार्थ- यह पोषक देव तेजस्वी है, अतः अपनी तेजस्वितासे हमारी बुद्धियोंकी रक्षा करे। वह सारे भुवनोंको सब ओरसे और सम्यक् रीतिसे देखनेवाला है, सर्व द्रष्टा है। अतः वह हमारी प्रार्थनाओंसे प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करे॥७-९॥

वह तेजस्वी परमात्मा सबका उत्पादक है और सबको उत्तम प्रेरणा देनेवाला है। वह बडा तेजस्वी है, जो मनुष्य उसके तेजका सतत ध्यान करके उसे धारण करता है, उसकी बुद्धि सदा उत्तम मार्गमें ही प्रेरित होती है॥१०॥

सविता देव ज्ञानियोंकी बुद्धियोंको उत्तम बनाकर उन्हें सदा सन्मार्गमें ही प्रेरित करता है। जब ज्ञानी जन अपनी मेधासे उस सविता देवकी स्तुति करते हैं, तब वह उन्हें धनैश्वर्य प्रदान करके सम्पन्न बनाता है॥११-१२॥

६१२ सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ १३ ॥
६१३ सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥ १४ ॥
६१४ अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥ १५ ॥
६१५ आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १६ ॥
६१६ उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ १७ ॥
६१७ गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥ १८ ॥

अर्थ- [६१२] (**गातुवित् सोमः**) श्रेष्ठ मार्गोंको जाननेवाला सोम (**जिगाति**) सर्वत्र जाता है और (**देवानां निष्कृतं आसदं**) देवोंके योग्य उत्तम आसनरूप (**ऋतस्य योनिं**) यज्ञके स्थानपर (**एति**) जाता है ॥१३॥

[६१३] (**सोमः**) सोम (**अस्मभ्यं**) हमारे लिए (**द्विपदे चतुष्पदे च पशवे**) दोपाये और चौपाये पशुओंके लिए (**अनमीवा इषः करत्**) रोगरहित अन्न प्रदान करे ॥१४॥

[६१४] (**सोमः**) सोम (**अस्माकं आयुः वर्धयन्**) हमारी आयुको बढाता हुआ और (**अभिमातीः सहमानः**) अभिमानियोंका पराभव करता हुआ (**सधस्थं आसदत्**) हमारे घरमें आकर रहे ॥१५॥

१ **सोमः अभिमातीः सहमानः**- सोम अभिमानियोंको पराभूत करता है।

[६१५] (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण (**सुक्रतू**) उत्तम कर्म करनेवाले हैं, वे दोनों (**नः गव्यूतिं**) हमारी गायोंके समूहको (**घृतैः उक्षतं**) घीसे सींचे और (**रजांसि**) हमारे घरोंको (**मध्वा**) मधुरता युक्त पदार्थोंसे सींचें ॥१६॥

[६१६] हे (**शुचिव्रता**) उत्तम और पवित्र कर्म करनेवाले मित्र और वरुण! (**उरुशंसा**) महान् स्तुतिवाले (**नमोवृधा**) स्तुतियोंसे बढनेवाले, (**द्राघिष्ठाभिः**) विस्तृत वाणियोंसे युक्त तुम दोनों (**दक्षस्य मह्ना राजथः**) अपने बलकी महिमाके कारण शोभित होते हो ॥१७॥

१ **दक्षस्य मह्ना राजथः**- ये देव अपने बलके महत्वसे ही तेजस्वी हैं। तेजस्वी वे ही होते हैं, जो अपनेही बल पर निर्भर रहते हैं।

[६१७] हे मित्र और वरुण! (**जमदग्निना गृणाना**) जमदग्नि ऋषिक द्वारा प्रशंसित होते हुए तुम (**ऋतस्य योनौ सीदतं**) यज्ञके स्थानमें आकर बैठो और (**ऋतावृधा**) ऋतके कारण बढनेवाले तुम दोनों (**सोमं पानं**) सोमका पान करो ॥१८॥

भावार्थ- सोम सभी मार्गोंको जाननेवाला होनेके कारण यज्ञमें देवोंके समान ही सम्मान पाता है। वह अपने भक्तोंको और उनके पशुओंके लिए रोगरहित अन्न प्रदान करके जो अभिमानी शत्रु होते हैं, उन्हें हराकर उन्हें नीचा दिखाता है ॥१३-१५॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम कर्म करनेवाले हैं। वे हमारी गायोंको घी से और हमारे घरोंको मधुरतायुक्त पदार्थोंसे भरपूर करें। वे दोनों ही पवित्र कर्म करनेवाले होने के कारण महा बलशाली हैं, तथा अपने बलकी महिमाके कारण ही वे तेजस्वी हैं। इन तेजस्वी देवोंकी अग्निकी सदा पूजा करनेवाले ऋषि भी स्तुति करते हैं। वे अपने ऋत अर्थात् नियमोंका पालन करनेके कारण ही वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥१६-१८॥

॥ इति तृतीयं मण्डलं समाप्तम्॥

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

तृतीय-मण्डल

सुभाषित

१ **यज्ञं चकृम, गीः वर्धतां**- (१) हमने यज्ञ किया है, अतः हमारी वाणी वृद्धिको प्राप्त हो।

२ **मेधिरः पूतदक्षः जनुषा सुबन्धुः**- (३) यह अग्नि मेधावान्, पवित्र बलशाली तथा जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु है।

३ **अग्निः समिथे अक्रः महीनां बभ्रिः उस्त्रियाः जजान**- (१२) यह अग्नि संग्राममें अपराजित बडी बडी सेनाओंका भरणपोषण करनेवाला और प्रकाशको पैदा करनेवाला है।

४ **सुमतिं निकामः सखित्वं**- (१५) उत्तम बुद्धिको चाहनेवाला ही इस अग्निकी मित्रता कर सकता है।

५ **देवानां केतुः मन्द्रः**- (१७) यह अग्नि देवोंका प्रज्ञापक और रमणीय है ।

६ **वयं यज्ञियस्य भद्रे सौमनसे स्याम**- (२१) हम उस पूजनीय अग्निकी कल्याणकारी बुद्धिमें रहें।

७ **तरुषः दक्षस्य विधर्मणि देवासः क्रत्वा चित्तिभिः अग्निं जनयन्त**- (२६) पराक्रमी और कुशल मनुष्यके यज्ञमें ही देवगण अपने पराक्रम और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं।

८ **अह्रयं वाजं ऋग्मियं** - (२७) लज्जासे रहित कमाया गया अन्न ही प्रशंसाके योग्य होता है।

९ **सुरुक्मं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां अपसां अग्निं इह पुरः दधिरे**- (२८) उत्तम तेजस्वी, सभी विद्वानोंका हित करनेवाले, शत्रुओंको रुलानेवाले, श्रेष्ठतम कर्मको करनेवाले अग्निको यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं।

१० **रथी बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः देवानां पुरोहितः अभवत्**- (३१) उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंको देखनेवाला ही देवोंका पुरोहित हो सकता है।

११ **विप्रः गातवे पृथुपाजसे वैश्वानराय विघन्त**- (३९) ज्ञानी जन उत्तम मार्ग पर जानेके लिए विशाल बलवाले वैश्वानरकी सेवा करते हैं।

१२ **अमृतः अग्निः देवान् दुवस्यति**- (३९) मरणधर्मसे रहित अग्नि भी अन्य देवोंकी सेवा करता है।

१३ **अथ सनता धर्माणि न दुदूषति**- (३९) इसलिए प्राचीन धर्म दूषित नहीं होते।

१४ **मनुषः पुरोहितः निषत्तः द्युभिः बृहन्ते क्षयं परिभूषति**- (४०) मनुष्योंका पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि वह अपने तेजोंसे यज्ञगृहको प्रकाशित करे।

१५ **यस्मिन् अपांसि, तस्मिन् सुम्नानि**- (४१) जहां पर कर्म हैं, वहीं पर सुख है।

१६ यज्ञानां पिता विपश्चितां असु-रः वाघतां वयुनं विमानं- (४९) वह अग्नि यज्ञोंका पालक, ज्ञानियोंके लिए प्राणदाता या बल देनेवाला और स्तोताओंको उत्तम मार्ग दिखानेवाला है।

१७ आयुनि सु अपत्ये जरस्व- (४५) दीर्घायुवाली उत्तम सन्तानके लिए अग्निकी स्तुति करनी चाहिए।

१८ विचक्षण! येभिः स्वर्विद् अभवः तव धामानि आचके- (४८) हे बुद्धिमान् अग्ने! जिनसे तूने स्वर्ग प्राप्त किया, उन तेरे तेजोंको हम चाहते हैं।

१९ वैश्वानरस्य दंसनाभ्यः बृहत्- (४९) वैश्वानर अग्निकी तरह कर्म करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है।

२० कविः सु- अपस्यया अरिणात्- (४९) ज्ञानी उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे उस धनका दान कर देता है।

२१ वस्वः सुमतिं रासि- (५०) धनके बारेमें हमें उत्तम बुद्धि दे।

२२ नः इमं यज्ञं मधुमन्तं कृधि- (५१) हमारे इस यज्ञको मधुरतासे पूर्ण कर।

२३ अध्वरे ऊर्ध्वः गातुः अकारि- (५३) हिंसा रहित यज्ञमें उन्नतिशील मार्गको ही हमने पकडा है।

२४ ऋतं अनु व्रतं इति आहुः- (५६) सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है, ऐसा कहते हैं।

२५ भारती भारतीभिः सजोषाः- (५७) एककी वाणी दूसरोंकी वाणियोंके अनुकूल हो अर्थात् राष्ट्रकी प्रजाओंकी वाणियां परस्पर अनुकूल हो।

२६ सरस्वती सारस्वतेभिः- (५७) एकका ज्ञान अन्योंके ज्ञानके अनुकूल हो।

२७ वीरः, कर्मण्यः, सुदक्षः, देवकामः जायते- (५८) वीर, उत्तम कर्म करनेवाला, चतुर और देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो।

२८ उषसः चेकितानः कवीनां पदवीः अबोधि- (६१) उषःकालमें उठनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलनेवाला ही ज्ञानवान् होता है।

२९ अग्निः घृतवन्तं पृथुप्रगाणं योनिं आ अस्थात्- (६७) तेजस्वी मनुष्य सदा तेजयुक्त और प्रशंसित स्थान पर ही बैठता है।

३० ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं गौः परिचरति- (८४) सत्य बोलनेवालेकी वाणी चारों और फैलती है।

३१ ब्रध्नस्य शासने रणन्ति- (८७) उस महान् अग्निके शासनमें मनुष्य सुखी रहते है।

३२ येषां गीः गव्या, सुरुचः रोचमानाः- (८७) जिनकी वाणी प्रभावशाली होती है, वे तेजस्वी होकर प्रकाशमान होती हैं।

३३ शूषं प्रविदा- (८८) सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है।

३४ देवानां व्रता अनु गुः मदन्ति- (८९) देवोंके नियमोंके अनुसार चलनेवाले ही आनन्दमें रहते हैं।

३५ व्रतं दीध्यानाः ऋतं आहुः- (९०) नियममें चलनेवाले पुरुष ही सत्यभाषण करते हैं।

३६ तृष्टं ववक्षति सुमना अस्ति- (१०७) जो हमेशा उत्साहसे भरा रहता है, वही सदा प्रसन्न रहता है।

३७ येषां सख्ये श्रितः प्रयन्ति अन्ये आसते- (१०७) यह अग्नि जिनसे मित्रता करता है, वे आगे बढ जाते है, जबकि दूसरे नास्तिक रह जाते हैं।

३८ तत् भद्रं पाकाय चित् छदयति- (१११) अग्निका वह उत्तम पराक्रम अज्ञानीको भी पूजाकी ओर प्रेरित करता है।

३९ शर्वरे सं इद्धं पशवः अपि समासते- (१११) रात्रीमें अग्निके प्रदीप्त होने पर पशु भी इस अग्निकी उपासना करते हैं।

४० अस्य अर्थं हि तरणि- (१२५) इस अग्निके द्वारा दिए जानेवाला धन दुःखोंसे पार करानेवाला होता है।

४१ विशां पुर एता रथः सदा नवः अदाभ्यः- (१२७) प्रजाओंका नेता हमेशा प्रगति करनेवाला होनेके कारण उत्साहसे सदा नया ही रहता है, इसीलिए उसे कोई दबा नहीं सकता।

४२ अपसः धीतयः ऋतस्य पथ्याः अनु यन्ति- (१३८) कर्म करनेवाले ज्ञानी जन सत्यमार्गके अनुकूल चलते हैं।

४३ यजिष्ठः बर्हिः आ सदत्- (१४१) सबसे पूजनीय ही यज्ञमें सबसे मुख्य स्थान पर बैठता है।

४४ ऊतयः दक्षं सचन्ते- (१४२) रक्षण

करनेवाले देव भी इसी अग्निके सामर्थ्यसे समर्थ होते हैं।

४५ विप्रः एषां यन्ता- (१४३) ज्ञानी ही इन मनुष्योंका शासक हो सकता है।

४६ नमः उक्ति अयति- (१४९) सबसे प्रणामपूर्वक अर्थात् विनम्रतापूर्वक भाषण करना चाहिए।

४७ विद्वान् विदुषः आ वक्षि- (१४९) विद्वान् ही अपने साथ विद्वानोंको ला सकता है।

४८ त्वत् पूर्वीः ऊतयः देवस्य यन्ति- (१५३) इस अग्निसे अनेक तरह की रक्षणशक्तियां दिव्य मनुष्योंके पास जाती हैं।

४९ अद्रोघेण वचसा रयिः सत्यं- (१५३) पापरहित कथनसे प्राप्त होनेवाला धन ही टिकता है।

५० मर्तस्य दुर्मतिः नः मा परि स्थात्- (१६०) मनुष्योंकी दुर्बुद्धि हमारे पास कभी न आवे।

५१ सखा इव पितरा इव साधुः भव- (१७३) अग्रणी नेता अपनी प्रजाका मित्र अथवा पितामाताके समान हितैषी हो।

५२ जनानां प्रतिक्षितयः पुरुद्रुहः प्रति दहतात्- (१७३) जो मनुष्य उत्तम मनुष्योंसे द्वेष करते हैं, ऐसे विद्वैषी मनुष्योंको जला देना चाहिए।

५३ ऊतः तेजीयसा मनसा- (१८०) इस अग्निसे रक्षित हुआ मनुष्य तेजोयुक्त अन्तःकरणवाला होता है।

५४ नृतमस्य प्रभूतौ- (१८०) हम उत्तम नेताके संरक्षणमें रहें।

५५ अमृतस्य भूरीणि नाम- (१८५) इस अमर अग्निकी अनेक विभूतियां हैं।

५६ भगः इव अग्निः क्षितीनां दैवीनां नेता- (१८६) सूर्यकी तरह वह अग्नि मनुष्यों और देवोंका नेता है।

५७ सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अति पर्षत्- (१८६) वह अपने उपासकको सभी पापोंसे पार करता है।

५८ जूर्यत्सु अजरः अमृतं आ दधे- (१९८) विनाशी विश्वमें जो जरारहित होकर रहता है, वही अमृतको प्राप्त होता है।

५९ अमृतेषु जागृविः सः अग्निः युगे युगे सं इध्यते- (२१५) अमरदेवोंमें सदा जागृत रहनेवाला वह अग्नि प्रतिदिन प्रदीप्त किया जा सकता है।

६० हृदा मतिं ज्योतिः प्रजानन्- (२२०) बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम अपने हृदयमें परमात्मज्योतिको प्रत्यक्ष करता है।

६१ पवित्रैः त्रिभिः अर्कं :अपुपोत्- (२२०) फिर पवित्र हुए मन, वाणी और कर्म इन तीनसे अपनी अर्चनीय आत्माको पवित्र करता है।

६२ स्वधाभिः वर्षिष्ठं अकृत- (२२०) अपनी शक्तियोंसे आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाता है।

६३ आत् इत् द्यावापृथिवी परि अपश्यत्- (२२०) इसके बाद द्यु और पृथ्वीको देखता है।

६४ धिया चक्रे वरेण्यः -(२३०) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला ही लोगोंके द्वारा वरण करने योग्य होता है।

६५ बाहुभिः वाजी अरुषः रोचते- (२४८) अपनी भुजाओंसे बलवान् होनेवाला ही तेजस्वी होता है।

६६ अनिवृतः अश्मनः परि वृणक्ति- (२४८) ऐसा आदमी अनिर्बन्ध शक्तिवाला होकर चट्टानोंको भी पार कर जाता है।

६७ त्वत् प्रकेतः कः चन- (२५९) हे इन्द्र! तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है?

६८ परमा चित् रजांसि दूरे न- (२६०) दूरके लोक भी इस इन्द्रके लिए दूर नहीं हैं।

६९ अच्युतानि च्यावयन् स्म- (२६२) यह इन्द्र अपने स्थानसे न हिलनेवालोंको भी हिला देता है।

७० धायुः यस्मै मर्त्याय अवधाः स अभक्तं चित् गेह्यं भजते- (२६५) ऐश्वर्यको धारण करनेवाला तू जिस मनुष्यको ऐश्वर्य देता है, वह पहलेसे अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है।

७१ ते सुमतिः भद्रा- (२६५) तेरी उत्तम बुद्धि कल्याण करनेवाली है।

७२ रातिः सहस्र-दाना- (२६५) तेरा दान बहुत ऐश्वर्य देनेवाला है।

७३ मही अपारां सामनां इषिरां भूमिं सदने नि ससत्थ- (२६७) बडी, विस्तृत और समान तथा अन्न देनेवाली भूमिको इसी इन्द्रने स्थिर किया।

७४ इन्द्रः एकः वसुमती पृथिवीं आ पप्रौ-(२६९) इन्द्र अकेला ही धनसे भरी हुई पृथ्वीको अपने तेजसे भर

देता है।

७५ सूर्यः हर्यश्वप्रसूताः प्रदिष्टाः दिशः न मिनाति (२७०) यह सूर्य भी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न व निर्दिष्ट की गई दिशाओंका उल्लंघन नहीं करता अर्थात् सदा उन्हीं पर चलता है।

७६ उषसः यामन् महि चित्रं अनीकं दिदृक्षन्तः- (२७१) उषाके उदय होने पर लोग महान और अद्‌भुत सूर्यके तेजको देखनेकी इच्छा करते हैं।

७७ आमा गौ पक्वं बिभृती चरति- (२७२) प्रसूत गौ पके दूधको धारण करके विचरती है।

७८ उस्त्रियायां यत् स्वाद्मं संभृतं सीं विश्वं भोजनाय अदधात्- (२७२) गौ में जो मीठा दूध है, वह सब भोजनके लिए है।

७९ दुर्मायवः दुरेवाः निषंगिणः रिपवः हन्त्वासः- (२७३) दुष्ट कपटी दुर्जन बाण धारण करके जो शत्रु आते हैं, वे मारने योग्य हैं।

८० रक्षः समूलं उत् वृह- (२७५) राक्षसोंको जडसहित नष्ट कर।

८१ ब्रह्मद्विषे तपुर्षिं हेतिं अस्य- (२७५) ज्ञानके द्वेषी पर दुःख देनेवाले शस्त्र फेंक।

८२ यत्र पिता दुहितुः सेकं ऋञ्जन्, शग्म्येन मनसा सं दधन्वे- (२८१) जब पिता अपनी पुत्रीको वीर्य धारण करने योग्य बना देता है अर्थात् उसे बडी बनाकर उसका विवाह कर देता है, तब वह अपने मनमें शान्ति धारण करता है।

८३ तान्वः जामये रिक्थं न आरैक्- (२८२) पुत्र अपनी बहिन को पिताके धनका भाग नहीं देता।

८४ अन्यः सुकृतोः कर्ता- (२८२) पुत्र उत्तम कर्मोंका कर्ता है।

८५ अन्यः ऋन्धन्- (२८३) दूसरी-पुत्री अलंकारोंसे स्वयंको सजाती है।

८६ ऋतेन मासान् असिषासन्- (२८९) यज्ञके साधनसे ऋषियोंने महिनोंको जाना।

८७ ते सख्यं महि शक्तीः आ वश्मि- (२९४) हे इन्द्र! तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको पानेकी मैं इच्छा करता हूं।

८८ विविद्वान् सखिभ्यः महिः क्षेत्रं पुरुः चन्द्रं- (२९५) उत्तम विद्वान् अपने मित्रोंके लिए विस्तृत भूमि और चमकनेवाले धन देता है।

८९ ते महिमानं ऋजिप्याः सखायः वृजध्यै परि- (२९७) इस इन्द्रके बलको सरल मार्गसे जानेवाले मित्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

९० विश्वायुः वृषभः वयोधाः सूनृतानां गिरां पतिः भव- (२९८) हे इन्द्र! तू पूर्णायु बलवान् और अन्नको धारण करनेवाला तथा सत्यभाषण करनेवाला है।

९१ सरण्यन् विश्वेभिः ऊतिभिः नः आ गहि- (२९८) हे इन्द्र! आगे बढता हुआ तू संपूर्ण संरक्षक शक्तियों के साथ हमारे पास आ।

९२ अदेवीः बहुलाः द्रुहः वि याहि- (२९९) दिव्य गुणोंसे रहित बहुत शत्रुओंको दूर कर।

९३ स्वः नः सातये धाः- (२९९) धन हमारे उपभोगके लिए दे।

९४ रिषः नः पाहि- (३००) शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

९५ नः गोजितः कृणुहि- (३००) हमें गायोंको जीतकर प्राप्त करनेवाला कर।

९६ अन्तः कृष्णान् अरुषैः धामभिः गात्- (३०१) आन्तरिक शत्रुओंको तेजस्वी स्थानोंसे दूर कर।

९७ ऋतेन दिशमानः स्वाः विश्वाः दुरः अप अवृणोत्- (३०१) सत्यसे प्रेरित होकर अपने सब दोष दूर कर।

९८ नः अंहसः पीपरन्- (३१६) इन्द्र हमें पापसे पार कराता है।

९९ नावा यान्तं इव उभये हवन्ते- (३१६) जिस प्रकार नावसे जानेवाले मल्लाहको दोनों किनारोंके मनुष्य बुलाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रको सुखी और दुःखी दोनों मनुष्य बुलाते हैं।

१०० इन्द्रः पुरूणि नर्या दधानः नृवत् बर्हणा तुजः आ विवेश- (३३७) इन्द्र बहुत पराक्रम करके नेताके समान बढी हुई शत्रुसेनामें प्रविष्ट हुआ।

१०१ इमाः धियः अचेतयत्-(३३७) इन्द्रने बुद्धियोंको सचेत किया॥

१०२ शुक्रं वर्णं अतीतरत्- (३३७) शुद्ध तेजको बढाया।

१०३ महः इन्द्रस्य महानि सुकृता कर्म- (३३८) बडे इन्द्रके बडे उत्तम कर्म प्रसिद्ध हैं।

१०४ अभिभूति-ओजाः वृजनेन मायाभिः वृजिनान् दस्यूनं सं पिपेष- (३३८) सामर्थ्यवान् नेताने अपने बलसे और कुशलतासे दुष्ट शत्रुओंको मारा।

१०५ इन्द्रः चर्षणिप्राः सत्पतिः- (३३९) इन्द्र मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनेवाला और सज्जनोंका पालक है।

१०६ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्र आवत्- (३४१) दुष्टोंको मारकर आर्योंकी उत्तम रक्षा की।

१०७ विवाचः नुनुदे- (३४२) निरर्थक बकवास करनेवालोंको दूर किया।

१०८ अभिक्रतूनां दमिता- (३४२) घमण्डी लोगोंका दमन किया।

१०९ महद्भिः कर्मभिः सुश्रुतः -(३५५) मनुष्य अपने श्रेष्ठ और महान् कर्मोंसे ही प्रसिद्ध होता है।

११० महान् उग्रः वीर्याय वावृधे- (३५९) यह महान् और वीर इन्द्र पराक्रमके कार्य करनेके लिए ही बढता है।

१११ जिहानः कवीन् संदृशे इच्छामि- (३७७) उत्तम कर्म करता हुआ ही मैं ज्ञानियोंकी संगति की इच्छा करूं।

११२ विजानन् तमसः ज्योतिः वृणीत-(३९३) ज्ञानसे युक्त होकर ही मनुष्य अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त करता है।

११३ दुरितात् आरे अभीके स्याम- (३९३) पापसे दूर होकर हम भयरहित स्थानमें रहें।

११४ स्वराट् यशस्तरः- (४४०) जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है, वही अत्यधिक- यशवाला होता है।

११५ सद्यः जातः वृषभः कनीनः- (४५१) प्रकट होते ही और उत्साही तरुण जैसा पुरुषार्थी बनो।

११६ इनतमः पृथुज्रयाः सत्वभिः शूषैः दस्योः आयुः अमिनात्- (४५७) श्रेष्ठ स्वामी, संग्राममें जानेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे दुष्टकी आयु नष्ट करता है।

११७ इन्द्रः अनेहसः स्तुभः दुवस्यति- (४६८) इन्द्र निष्पाप स्तुतियोंको ही अपनाता है।

११८ अभिमातिहनः- (४६८) इन्द्र घमण्डियोंका नाश करनेवाला है।

११९ सबाधः नृणां नृतमं वीरं त्वा उक्थैः अभि अर्चत- (४६९) शत्रुओंका पराजय करनेवाले श्रेष्ठ वीर इन्द्रकी स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं।

१२० पुरुमायः सहसे सं जिहीते- (४६९) बहुत कुशलतावाला इन्द्र शत्रुका पराजय करनेके लिए मिलकर यत्न करता है।

१२१ मर्त्येषु अस्य निष्षिधः पूर्वीः- (४७०) मनुष्योंमें इस इन्द्रके दिए हुए धन बहुतसे हैं।

१२२ पृथिवी पुरुवसूनि बिभर्ति- (४७०) इसी इन्द्रके कारण यह पृथिवी अनेक तरहके धन धारण करती है।

१२३ नूतनस्य अवसः बोधि- (४७१) नये नये रक्षणके साधन जानने चाहिए।

१२४ तव प्रणीती तव शर्मन् सुयज्ञाः कवयः आ विवासन्ति- (४७२) तेरी नीति तथा तेरे आश्रयमें उत्तम कर्म करनेवाले रहते हैं।

१२५ ब्रह्मणा शिरः-(४७७) ज्ञानसे सिर पवित्र हो।

१२६ राधसे बाहू- (४७७) धनको लानेके लिए बाहू तैय्यार हों।

१२७ जाया इत् अस्तं- (४८९) स्त्री ही घर है।

१२८ जाया इत् योनिः- (४८९) स्त्री ही आश्रय है।

१२९ अस्तं प्रयाहि, ते गृहे कल्याणी जाया सुरणं (४९१) हे मनुष्य ! तू अपने घर जा, वहां तेरे घरमें कल्याण करनेवाली तेरी स्त्री उत्तम सुख देनेके लिए तैय्यार है।

१३० मायाः कृण्वानाः स्वां तन्वं रूपं रूपं परिबोभवीति- (४९३) कौशल्यके कार्य करनेवाले इन्द्रने अपने शरीरको अनेक रूपोंवाला बना दिया है।

१३१ विश्वामित्रः महान् देवजाः नृचक्षाः- (४९४) विश्वका हित करनेवाला मनुष्य महान्, देवोंके गुणोंसे युक्त और विद्वान् हो।

१३२ इदं ब्रह्म भारतं जनं रक्षति- (४९७) यह वेदज्ञान भारतीय जनोंकी रक्षा करता है।

१३३ प्रमगन्दस्य वेदः नः आ भर- (४९९) सूदखोरके धनको हमारे पास ले आ।

१३४ जनासः सायकस्य न चिकिते- (५०८) वीर मनुष्य शस्त्रास्त्रके दुःखको कुछ नहीं समझते।

१३५ लोधं पशुं मन्यमानाः नयन्ति- (५०८) लोभी शत्रुको पशु मानकर उसे जहां चाहे वहां ले जाते हैं।

१३६ वाजिना अवाजिनं न हासयन्ति- (५०८) बलवान् के द्वारा निर्बलको कष्ट नहीं देते।

१३७ भरतस्य पुत्राः अपपित्वं चिकितुः न प्रपित्वं- (५०९) ये भरतके पुत्र शत्रुको क्षीण करना ही जानते हैं, उन्हें समृद्ध बनाना नहीं।

१३८ ज्यावाजं परि नयन्ति- (५०९) अपने धनुषके बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं।

१३९ अश्विनोः सजात्यं नाम चारु- (५२५) अश्विनौ देवोंका जन्मसे ही उत्पन्न हुआ यश उत्तम है।

१४० इन्द्रे देवाः भवथ- (५२६) इन्द्रके अनुशासनमें रहकर देव बना जा सकता है।

१४१ सातये इमां धियं तक्षत- (५२६) ज्ञानकी प्राप्तिके लिए हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो।

१४२ कवयः नाम महत् चारु- (५२६) दूरके परिणामोंका विचार करके काम करनेवालोंका यश महान् और उत्तम होता है।

१४३ वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि- (५२७) वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं।

१४४ नः गन्तोः अनपत्यानि युयोत- (५२७) हमारे मार्ग सन्तानको न देनेवाले कर्मोंसे रहित हों।

१४५ नः गातुः प्रजावान् पशुमान् अस्तु- (५२७) हमारा घर सन्तानों और पशुओंसे युक्त हो।

१४६ देवानां दूतः अनागान् नः वोचतु- (५२८) देवोंका दूत ज्ञानी पापसे रहित होकर हमें उपदेश करे।

१४७ वृषणः पर्वतासः ध्रुवक्षेमासः- (५२९) जल बरसानेवाले पर्वत निश्चयसे मनुष्योंका कल्याण करनेवाले हैं।

१४८ पन्थाः सदा सुगः पितुमान् अस्तु- (५३०) हमारे मार्ग सदा ही सरलतासे जाने योग्य तथा अन्नसे भरपूर हों।

१४९ ओषधीः मध्वा सं पिपृक्त- (५३०) अन्न वनस्पतियां मधुरतासे युक्त हों।

१५० विश्वा अहा नः दिदीहि- (५३१) सब दिन हमारे लिए प्रकाशसे युक्त और सुखकर हों।

१५१ वीरः वसूनि विन्दमानः श्रृण्वे- (५५१) मैंने वीरको ही धन प्राप्त करते हुए सुना है।

१५२ वीराः पुरः सदः शर्मसदः- (५५२) वीर हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हों।

१५३ देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि- (५५४) देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं।

१५४ अग्ने ! विश्वजन्यां सुमतिं रास्व- (५६७) हे अग्ने! संसारका हित करनेवाली उत्तम बुद्धिको तू हमें प्रदान कर।

१५५ मित्रः अनिमिषाभिः कृष्टीः अभी चष्टे- (५७७) मित्रदेव कभी भी पलक न मारते हुए मनुष्योंके कार्मोको देखता रहता है।

१५६ मित्र, यः ते व्रतेन शिक्षति सः मर्तः प्रयस्वान् अस्तु- (५७८) हे मित्र, जो तेरे नियमका पालन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है।

१५७ त्वा ऊतः न हन्यते न जीयते- (५७८) मित्रके द्वारा रक्षित हुआ मनुष्य न मारा ही जाता है और न जीता ही जाता है।

१५८ एनं अंहः न अश्नोति- (५७८) मित्रके द्वारा रक्षित मनुष्यको पाप नहीं छू सकता।

१५९ पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः मित्रस्य सुमतौ (५७९) पृथ्वी पर विनम्र होकर चलनेवाले मनुष्य मित्रकी उत्तम बुद्धिसे रहते हैं।

१६० अपसः इन्द्रस्य सख्यं आनशुः- (५८६) उत्तम कर्म करनेवाले ही इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त कर सकते हैं।

१६१ सुकृत्यया अमृतत्वं एरिरे- (५८८) मनुष्य उत्तम कर्मसे ही अमृतको प्राप्त करते हैं।

१६२ वः सुकृतानि वीर्याणि च न प्रतिमै- (५८९) इन ऋभुओंके उत्तम कर्म और पराक्रमकी कोई उपमा नहीं है।

१६३ सोमः अभिमातीः सहमानः- (६१४) सोम अभिमानियोंको पराभूत करता है।

१६४ दक्षस्य मह्ना राजथः- (६१६) मित्र और वरुण ये दोनों देव अपने बलके महत्त्वसे ही तेजस्वी हैं। तेजस्वी वे ही होते हैं, जो अपने ही बल पर निर्भर होते हैं।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

तृतीय-मण्डल

तृतीय मण्डलमें ऋषि, देवता, सूक्त और मंत्रोंकी संख्या इस तरह है-

ऋषिवार सूक्तसंख्या

ऋषि	सूक्त संख्या
गाथिनो विश्वामित्रः	४६
गाथी कौशिकः	४
प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा	४
ऋषभो वैश्वामित्रः	२
कात्य उत्कीलः	२
कतो वैश्वामित्रः	२
देवश्रवा देवव्रातश्च भारतौ	१
कुशिक ऐषीरथिः गाथिनो विश्वामित्रो वा	१
	६२

ऋषिवार मंत्रसंख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
गाथिनो विश्वामित्रः	४६६
प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा	६२
कुशिक ऐशीरथिः	२२
गाथी कौशिकः	२०
ऋषभो वैश्वामित्रः	१४
कात्य उत्कीलः	१३
कतो वैश्वामित्रः	१०
देवश्रवा देवव्रातश्च भारतौ	५
नद्यः	४
घोर आंगिरसः	१
	६१७

देवतावार मंत्रसंख्या

	देवता	मंत्रसंख्या
१	इन्द्रः	२२९
२	अग्निः	१८६
३	विश्वे देवाः	६१
४	वैश्वानरोऽग्निः	२९
५	आप्री सूक्तं	११
६	अश्विनौ	९
७	इन्द्राग्नी	९
८	मित्रः	९
९	यूपः	९
१०	नद्यः	८
११	उषाः	७
१२	अभिशापः	४
१३	ऋभवः	४
१४	रथांगानि	४
१५	इन्द्र ऋभवः	३
१६	इन्द्रावरुणौ	३
१७	पूषा	३
१८	बृहस्पतिः	३
१९	मरुतः	३
२०	मित्रावरुणौ	३
२१	विश्वामित्रः	३
२२	सविता	३
२३	सोमः	३

२४	आत्मा	२
२५	वाक्	२
२६	अग्नीन्द्रौ	१
२७	इन्द्रापर्वतौ	१
२८	ऋतवः	१
२९	ऋत्विजः	१
३०	पुरीष्या अग्नयः	१
३१	विश्वामित्रोपाध्यायः	१
३२	व्रश्चनः	१
		६१७

इन मंत्रोंमें मनुष्यके व्यवहारके लिए उपयोगी अनेक उपदेश दिए गए हैं। जिन्हें अब हम देखेंगे-

भारतोंका तेज व वेदज्ञान

१ **भरतस्य पुत्राः अपपित्वं चिकितुः, न प्रपित्वं- (५०१)** भरतके पुत्र शत्रुको क्षीण करना ही जानते हैं, उन्हें समृद्ध बनाना नहीं।

२ **ज्यावाजं परि नयन्ति- (५०९)** वे अपने धनुषके बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं।

इन दोनों मंत्रभागोंमें भारतोंके बलकी महिमा है भारत का अर्थ है -भा-रत, **(भा इति तेजः तस्मिन् रताः ये इति)** अर्थात् भा कहते हैं तेजको, उसमें जो सदैव रत रहते हैं, अर्थात् अपने सभी कर्म या आचरण तेजको प्राप्त करनेके लिए ही करते हैं, वे भारत कहलाते हैं। प्राचीन आर्यावर्तके निवासी बहुत ही तेजस्वी होते थे। वे हमेशा ऐसा ही आचरण करते थे कि जिससे उनका तेज बढता था, वे बहुत तेजस्वी होते थे, इसीलिए वे आर्य अर्थात् श्रेष्ठ कहलाते थे। उन तेजस्वी लोगोंके रहनेके कारण ही यह आर्यावर्त बादमें जाकर भारत कहलाया। उस भारत देशमें रहनेवाले लोग विजिगीषु होते थे, इसलिए वे सभी देशोंको जीतकर वहीं वहां अपनी पताका गाडते चलते थे। उनके सामने उनके शत्रु क्षीण ही होते थे। उनके रहते हुए शत्रुओंका समृद्ध होना असंभव था। इसका कारण था कि उनके धनुषोंमें सामर्थ्य था। उनके शस्त्रास्त्रोंका सामर्थ्य सर्वत्र फैला हुआ था इसीलिए उनके शत्रु सदा क्षीण रहते थे।

उन भारतोंका आचरण सर्वदा शुद्ध रहता था। क्योंकि उन्हें एक अद्वितीय मार्गदर्शक मिल गया था। वह मार्गदर्शक था "वेदज्ञान"। वेदज्ञानसे सुरक्षित होकर वे सब काम करते थे। इस महत्वपूर्ण कथनका ज्ञापक निम्न मंत्रभाग है-

३ **इदं ब्रह्म भारतं जनं रक्षति- (४९७)** यह वेदज्ञान भारतोंकी रक्षा करता है। वेद आर्योंकी अमूल्य निधि है, इससे रक्षित होकर उन्होंने सर्वत्र अपना यश फैलाया। यह वेदज्ञान "ब्रह्म" अर्थात् महान् है, यह व्यापक है। इसकी जैसी व्यापकता अन्य किसीकी नहीं है। यह शाश्वतकालसे चलता आ रहा है और शाश्वतकालतक चलता चला जाएगा। यह वेदज्ञान भारतोंको उत्तम मार्ग दिखाकर उनकी रक्षा करता रहा है। आज भी जो जन तेजसे युक्त होना चाहते हैं, उन्हें यह वेद उत्तम मार्गोंमें प्रेरित करके उनकी रक्षा करता है। भारतीय विचारधाराकी पुरानी मान्यताके अनुसार ये वेद परमात्माके द्वारा प्रकट किए गए हैं। इसलिए इन वेदोंमें परमात्माकी ज्योति निहित है।

परमात्मा - ज्योति

परमात्माकी ज्योति सर्वत्र फैली हुई है। अणु अणुमें परमात्माका महत्व है। पर कुछ ही लोग उसका साक्षात्कार कर पाते हैं। कुछ ऐसे होते है कि जो बाहर के संसारमें परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। प्रकृति के रमणीय दृश्यों, नदियों की कलकल ध्वनि, पर्वतोंकी हिमाच्छादित श्रृंगोंमें वे परमात्माका ही सौन्दर्य देखते हैं, पर कुछ जो अन्तर्मुखी वृत्तिके हैं, अपने हृदयके अन्दर ही परमात्माका साक्षात्कार करते हैं-

१ **हृदा मतिं ज्योतिः प्रजानन्- (२२०)** बुद्धिमान् मनुष्य अपने हृदयमें परमात्म-ज्योतिको प्रत्यक्ष करता है। बुद्धिशाली पुरुष हृदयमें झांककर देखता है और वहां उसे परमात्माके दर्शन होते हैं। परमात्माका चिन्तन जीवनको पवित्र करनेवाला है। परमात्माके चिन्तनसे मन पवित्र होता है। मनसे वाणी पवित्र होती है, वाणीसे कर्म पवित्र होता है। इन तीनों के पवित्र होनेसे आत्मा पवित्र होती है, आत्माके पवित्र होनेसे जीवन पवित्र होता है।

२ पवित्रैः त्रिभिः अर्कं अपुपोत्- (२२०) मनुष्य अपने हृदयमें आत्माका साक्षात्कार करके अपने मन, वाणी और कर्मको पवित्र करके अपनी अर्चनीय आत्माको पवित्र करता है। मनुष्यकी आत्मा अर्चनीय है, वह अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। जो अपनी आत्माको अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न समझता है, वह अपनी आत्माको पूजाके योग्य समझता है, पर जो अपनी आत्माको क्षुद्र समझता है, वह उसकी महिमाको बिल्कुल ही नहीं समझ सकता। इस अर्चनीय आत्माको हमेशा पवित्र ही रखना चाहिए-

३ स्वधाभिः वर्षिष्ठं अकृत- (२२०) अपनी शक्तियोंसे आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाता है। वह आत्मा स्व-धा से सम्पन्न है। स्व-धा का अर्थ है, स्वयंको धारण करनेकी शक्ति। मनुष्यकी आत्मा जब पवित्र हो जाती है, तब उसके अन्दर अनेक शक्तियां प्रकट होने लगती हैं, ये शक्तियां ही स्वधा हैं। इन्हीं शक्तियों के कारण आत्माका धारण होता है। जब आत्माकी स्वधाशक्ति बढ जाती है, तब वह श्रेष्ठ बनती है। इसी प्रकार जिस मनुष्यके अन्दर स्वयंको धारण करनेकी शक्ति होती है, वह श्रेष्ठ होता है, इस प्रकारके उत्तम उपदेशोंसे भरा हुआ हमारा प्राचीन धर्म है। इसी लिए प्राचीन धर्म दोषरहित माना जाता है-

प्राचीन धर्मका अदोषत्व

१ सनता धर्माणि न दुदूषति- (३९) प्राचीन धर्म दूषित नहीं होते। प्राचीन धर्मोंमें जो भी सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं, वे दोषोंसे रहित हैं। प्राचीन धर्म देवोंके द्वारा निर्मित हैं और उन्हींके नियमों पर चलते हैं, इसलिए प्राचीन भारतीय धर्म देवोंका धर्म ही है और देवोंका धर्म होनेसे यह अपरिवर्तनीय और अटल है-

२ देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि- (५५४) देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं। देव स्वयं अटल और शाश्वत हैं। वे हर काल और हर जगह एक जैसा ही रहते हैं। इसलिए उनके द्वारा निश्चित किये गए नियम भी श्रेष्ठ और शाश्वत हैं। इन देवोंके नियममें चलनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। वेदोंके मंत्रोंमें ज्ञानप्राप्तिके उपाय भी बताये गए हैं। जो इस प्रकार है-

ज्ञान-प्राप्तिके उपाय

१ उषसः चेकितानः कवीनां पदवीः अबोधि- (६१) उषःकालमें उठनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलनेवाला ही ज्ञानवान् होता है। ब्राह्ममुहूर्तमें उठना हर दृष्टिसे लाभदायक है। ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेवालेकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र होती है और वह स्वयं भी तेजस्वी होता है। ब्राह्ममुहूर्तमें जागरण के बारेमें मनुजीका कथन है-

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानु चिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च।

"अर्थात् मनुष्य ब्राह्ममुहूर्तमें उठे, धर्म और अर्थके विषयमें चिन्तन करे, शरीर तथा उसके कारण उत्पन्न होनेवाले क्लेशोंके कारणोंकी खोज करके वेदतत्त्वोंके अर्थका चिन्तन करे।" इन सब बातोंके चिन्तनके लिए ब्राह्ममुहूर्तका समय सबसे उत्तम है। अतः ज्ञानप्राप्तिका प्रथम उपाय ब्राह्म मुहूर्तमें जागरण है।

दूसरा उपाय है- बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलना। बुद्धिमान् मनुष्य जिस मार्ग पर चल चुके हैं, उसी पर चलना मनुष्यके लिए श्रेयस्कर है। उस मार्ग पर चलकर मनुष्य उन्नति कर सकता है। अपनेसे पूर्वके बुद्धिमानोंका आदर्श मनुष्योंके सामने रहे और उसी आदर्श पर चलकर मनुष्य ज्ञानकी प्राप्ति करे।

ज्ञानका महत्त्व

१ शूषं प्रविदा- (८८) सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है। सच्चा सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है।

२ विप्रः एषां यन्ता- (१४३) ज्ञानी ही इन मनुष्योंका शासक हो सकता है। मनुष्यों पर शासन ज्ञानी ही कर सकता है। ज्ञानी मनुष्य हर तरह के गुणोंसे युक्त होता है। उसमें हर तरहके कार्य करनेकी शक्ति होती है। एक वेदवेत्ता उत्तम राजा, उत्तम सेनापति, उत्तम आमात्य और उत्तम पुरोहित हो सकता है मनुजीका कथन है-

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

"वेदशास्त्रोंको जाननेवाला मनुष्य सेनापतिका कार्य, राज्य संचालनका कार्य, दण्ड देनेका कार्य और सब मनुष्यों पर शासन करनेका कार्य कर सकता है।" वेदज्ञानी जिस

राष्ट्रका संचालक हो, वही राष्ट्र उन्नति कर सकता है। इसलिए राष्ट्रका नेता उत्तम वेदज्ञ ही हो।

३ **वि जानन् तमसः ज्योतिः वृणीत- (३९३)** ज्ञानसे युक्त होकर ही मनुष्य अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त करता है। अज्ञान एक घोर अन्धकार है। इस अन्धकारको पार करना चाहिए। जिस राष्ट्रमें अज्ञानका साम्राज्य हो, वह राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए सर्वप्रथम राष्ट्रमेंसे अज्ञानाधकारको दूर करना चाहिए, और ज्ञानकी ज्योति सर्वत्र फैलानी चाहिए। राष्ट्रका प्रत्येक मनुष्य ज्ञानसे सम्पन्न हो।

४ **ब्रह्मणा शिरः- (४७७)** ज्ञानके द्वारा सभी मनुष्योंका मस्तिष्क प्रकाशयुक्त हो। **"बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति"** इस कथनके अनुसार बुद्धि ज्ञानके द्वारा ही शुद्ध होती है। उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेसे मनुष्यका मस्तिष्क भी उत्तम होता है।

यज्ञसे लाभ

वेदोंमें जगह जगह पर यज्ञकी महिमा गाई गई है। यज्ञ शब्द बहुत व्यापक है। अग्नि प्रज्वलित करके उसमें सामग्री आदि डालना तो यज्ञका स्थूल या बाह्य रूप है, पर उसका सूक्ष्म अर्थ है -देवोंके मार्गका अनुसरण करके स्वयंको श्रेष्ठ बनाना, संगठनके द्वारा राष्ट्रका उत्थान करना और दान देकर राष्ट्रकी प्रजाओंको सुखी बनाना। देवोंका कार्य, उनके आदर्श मनुष्योंके लिए अनुकरणीय हैं। देवोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चलकर मनुष्य देवोंके समान बन सकता है, इसलिए राष्ट्र में देवपूजारूप यज्ञका करना आवश्यक है।

संगतिकरण- राष्ट्रका आधार संगठन है। देशकी बाहरी सीमायें शत्रुओंसे सुरक्षित रहें, देशकी आन्तरिक स्थिति भी सुदृढ हो, इसलिए आवश्यक है कि देशकी प्रजायें संगठित हों। उनमें एक सूत्रता हो। राष्ट्रके सभी नागरिकोंके आचार विचार एक जैसे हों, एक दूसरेके प्रतिकूल न हों।

दान- निस्वार्थ भावसे किसीको कुछ देना दान कहलाता है। राष्ट्रमें निर्बलको बलका दान देकर, अज्ञानियोंको ज्ञानका दान देकर, निर्धनोंको धनका दान देकर सशक्त बनाना चाहिए। इस प्रकार राष्ट्रकी उन्नतिके लिए दान भी एक आवश्यक तत्त्व है। इस प्रकार इन तीनों तत्त्वोंके सम्मिलित रूपका नाम यज्ञ है। इस यज्ञको करनेसे मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति होती है-

१ **यज्ञं चकृम, गीः वर्धतां- (१)** हमने यज्ञ किया है, अतः हमारी वाणी वृद्धिको प्राप्त हो।

२ **नः इमं यज्ञं मधुमन्तं कृधि- (५१)** हमारे इस यज्ञको मधुरतासे पूर्ण कर।

३ **अध्वरे ऊर्ध्वः गातुः अकारि- (५३)** हिंसारहित यज्ञमें उन्नतिशील मार्ग ही हो।

यज्ञ करनेसे मनुष्यकी वाणी पवित्र होती है। देवोंकी पूजा करनेसे तथा देवोंकी स्तुति गानेसे मनुष्यकी वाणी पवित्र होती है। उसका जीवन मधुर होता है और उसका मार्ग उन्नतिशील होता है।

यज्ञको श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है। इस कर्मको मनुष्य सदा करता रहे। कर्मसे मनुष्य सुख और अमरत्व प्राप्त करता है-

कर्मसे लाभ

१ **यस्मिन् अपांसि, तस्मिन् सुम्नानि- (४१)** जहां पर कर्म हैं, वहीं पर सुख है।

२ **दंसनाभ्यः बृहत्- (४९)** कर्मोंको करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है।

३ **कविः सु-अपस्यया अरिणात्- (४९)** ज्ञानी उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे धनका दान करता है।

४ **अपसः धीतयः ऋतस्य पथ्याः अनु यन्ति- (१३८)** कर्म करनेवाले ज्ञानी जन सत्यमार्गके अनुकूल चलते हैं।

५ **महद्भिः कर्मभिः सुश्रुतः- (३५५)** मनुष्य अपने श्रेष्ठ और महान् कर्मोंसे ही प्रसिद्ध होता है।

६ **सुयज्ञाः कवयः तव प्रणीती तव शर्मन्- (४७२)** उत्तम कर्म करनेवाले लोग ही इस इन्द्रके आश्रयमें रहते हैं।

कर्म करना सुख और समाधानकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है। सत्यमार्ग पर चलते हुए जो कर्म किए जाते हैं, वे ही उत्तम और श्रेष्ठ कर्म होते हैं। ऐसे श्रेष्ठ कर्मोंको

करनेके कारण ही मनुष्य सर्वत्र प्रसिद्ध होता है। इसलिए मनुष्य सदा उत्तम कर्म करता रहे। उत्तम कर्मोंको करनेसे ही मनुष्य देवोंके नजदीक आकर उनसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। तब देवोंकी मित्रता के कारण मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त कर सकता है।

५ **अपसः इन्द्रस्य सख्यं आनशुः**- (५८८) उत्तम कर्म करनेवाले ही इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त कर सकते हैं।

८ **सुकृत्यया अमृतत्वं एरिरे**- (५८८) मनुष्य उत्तम कर्मोंसे ही अमृतको प्राप्त करते हैं।

कर्मका करना नियम या व्रतकी तरफ संकेत करता है। उत्तम कर्म नियममें रहकर ही हो सकते हैं। इसलिए इन नियमोंके बारे में वेदमंत्रोंमें जो कुछ कहा है, उसे अब देखते हैं-

नियमका महत्त्व

१ **व्रतं दीध्यानाः ऋतं आहुः**- (९०) नियममें चलनेवाले पुरुष ही सत्यभाषण करते हैं।

२ **ऋतं अनु व्रतं इति आहुः**- (५६) सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है, ऐसा कहते हैं।

३ **देवानां व्रता अनु गुः मदन्ति**- (८९) देवोंके नियमोंके अनुसार चलनेवाले पुरुषही सत्यभाषण करते हैं।

४ **तृष्टं ववक्षति, सुमनाः अस्ति**- (१०७) जो हमेशा उत्साहसे भरा रहता है, वही सदा प्रसन्न रहता है।

५ **सूर्यः हर्यश्वप्रसूताः प्रदिष्टाः दिशः न मिनाति** (२७०) यह सूर्य भी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न व निर्दिष्ट की गई दिशाओंका उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् सदा उन्हीं पर चलता है।

६ **इन्द्रे देवाः भवथ**- (५२६) इन्द्रके अनुशासनमें रहकर देव बना जा सकता है।

७ **वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि**- (५२७) वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं।

८ **मित्र, यः ते व्रतेन शिक्षति, सः मर्तः प्रयस्वान् भवति**- (५७८) हे मित्र, जो तेरे नियमका पालन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है।

सत्यभाषण करना, सत्यमार्गका अनुसरण करना, सत्यमय जीवन बनाना मनुष्यके लिए बडा कठिन है। मनुष्यके जीवनमें पदे पदे ऐसे प्रलोभन आते हैं कि जो मनुष्यको अपने पथसे विचलित कर देते हैं। इसीलिए यजुर्वेदके ४० वें अध्यायमें कहा है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

"सोनेके ढक्कनसे सत्यका मुंह ढका हुआ है।" इस ढक्कनको उतार देनेसे सत्यके दर्शन हो जाते हैं, पर जो सोनेकी चमकमें फंस कर रह जाता है, वह सत्यका दर्शन नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्यके जीवनमें सत्यका पालन बडा कठिन है। पर यह असाध्य नहीं है। सत्यका पालन करना सर्वथा असंभव हो ऐसी बात नहीं है। पर इस सत्यका दर्शन वे ही लोग कर सकते हैं कि जो देवोंके नियमोंके अनुसार चलते हैं (८९) विद्वानोंने या ज्ञानियोंने जो नियम निर्धारित कर दिए हैं, उन नियमोंके अनुसार चलनेवाला मनुष्य सत्यका साक्षात्कार कर सकता है। अनुशासनकी अनिवार्यता देवोंमें भी है। देखिए- प्रभुने सृष्टिके प्रारंभमें ही सूर्यका मार्ग निर्दिष्ट कर दिया था, और वह सूर्य आज भी उसी निर्दिष्ट मार्ग से अपनी यात्रा करता है। रोज समयानुसार उदय होता है और अपने ठीक समय पर अस्त हो जाता है। उसके उदय-अस्तके समयमें एक क्षणका भी फरक नहीं पडता। इस प्रकार सूर्य भी अपने नियममें रहता है (२७०)। इस परम प्रभुके नियम अनुल्लंघनीय हैं। प्रभुके नियमोंका उल्लंघन करना असंभव है। इसलिए वेद कहता है कि इस वरणीय प्रभुके नियम अटल हैं (५२७)। जो मनुष्य प्रभुके इन अटल नियमों के अनुसार चलता है, वही इस प्रभुका मित्र या उपासक हो सकता है (५२६) और वही ऐश्वर्यवान् हो सकता है (५७८), वही एक उत्तम नेता बन सकता है।

श्रेष्ठ नेता के गुण

देशके नेतामें कौन कौनसे गुण होने चाहिए, वह अब देखिए-

१ **सखा इव पितरा इव साधुः भव**- (१७३) अग्रणी नेता अपनी प्रजाका मित्र अथवा पिता माताके समान हितैषी हो।

२ **धिया चक्रे वरेण्यः**- (२३०) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला ही लोगोंके द्वारा वरण करने योग्य होता है।

३ बाहुभिः वाजी अरुषः रोचते- (२४८) अपनी भुजाओंसे बलवान् होनेवाला ही तेजस्वी होता है।

४ अनिवृत्तः अश्मनः परि वृणक्ति- (२४८) ऐसा आदमी अनिर्बन्ध शक्तिवाला होकर चट्टानोंको भी पार कर जाता है।

५ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्र आवत्- (३४१) दुष्टोंको मारकर आर्योंकी उत्तम रक्षा की।

६ अभिक्रतूनां दमिता- (३४२) घमण्डी लोगोंका दमन करता है।

७ स्वराट् स्वयशस्तरः- (४४०) जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है वही अत्यधिक यशवाला होता है।

८ विश्वामित्रः महान् देवजाः नृचक्षाः- (४९४) विश्वका हित करनेवाला मनुष्य महान् देवोंके गुणोंसे युक्त और विद्वान् है।

९ जनासः सायकस्य न चिकिते- (५०८) वीर मनुष्य शस्त्रास्त्रके दुःखको कुछ नहीं समझते।

१० लोधं पशुं मन्यमानाः नयन्ति- (५०८) लोभीको पशु मानकर उसे जहां चाहे वहां ले जाते हैं।

११ वाजिना अवाजिनं न हासयन्ति- (५०८) बलवान् के द्वारा निर्बलको कष्ट नहीं देते।

१२ कवयः नाम महत् चारु- (५२६) दूरके परिणामोंका विचार करके काम करनेवालोंका यश महान् और उत्तम होता है।

१३ वीराः पुरः सदः शर्मसदः- (५५२) वीर हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हैं।

इस प्रकार नेताके गुणोंका वर्णन किया है। नेता अपनी प्रजाओंसे मित्रके समान स्नेहपूर्ण तथा मातापिता के समान प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाला हो। उनकी उन्नतिके लिए उत्तम से उत्तम कर्म करनेवाला हो। बलशाली और तेजस्वी हो। ऐसा तेजस्वी नेता आगे आनेवाले संकटोंको भी आसानीसे पार कर जाता है। सामने बडे बडे पहाड भी हों तो भी वह उन्हें पार कर जाता है। उसके अन्दर सदा उत्साह और चेहरे पर प्रसन्नता विराजमान रहती है। वह अपने तेजके कारण सर्वत्र यशस्वी होता है। यह विद्वान् होनेके कारण सभी दिव्यगुणोंसे युक्त होकर सारे संसारका हित करनेवाला होता है। यह नेता ऐसा वीर होता है कि वह संग्राम में तीक्ष्ण से तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंको भी कुछ नहीं समझता। ऐसा वीर और तेजस्वी नेता जब किसी देशका संचालक होता है, तब उस देशमें कोई लोभी नहीं होता। यदि कोई होता भी है, तो उसे पशु समझकर उसके साथ यथायोग्य व्यवहार किया जाता है। उसके शासनमें कोई भी बलवान् निर्बलोंको निष्कारण नहीं सता सकता। यह सदा दूरके परिणामों पर विचार करके अपने कदम उठाता है, इसीलिए उसके सभी काम सफल होते हैं और वह यशस्वी और श्रेष्ठ होता है। ऐसा नेता देशमें होना चाहिए। इस नेताका वर्णन ऋग्वेदके तीसरे मण्डलमें इन्द्रके रूपमें भी किया गया है।

इन्द्रकी महिमा

१ त्वत् प्रकेतः कः चन- (२५९) हे इन्द्र! तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है?

२ परमा चित् रजांसि दूरे न- (२६०) दूरके लोक भी इस इन्द्रके लिए दूर नहीं हैं।

३ अच्युतानि च्यावयन् (२६२) यह इन्द्र अपने स्थानसे न हिलनेवाले दृढ से दृढ शत्रुओंको भी हिला देता है।

४ ते महिमानं ऋजिप्याः सखायः वृजघ्यै परि- (२९७) इस इन्द्रके बलको सरल मार्गसे जानेवाले मित्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

५ उभये हवन्ते- (३१६) इस इन्द्रको सुखी और दुःखी दोनों तरहके मनुष्य बुलाते हैं।

इस इन्द्रसे अधिक बुद्धिमान् और कोई नहीं है। इसीलिए इसकी सर्वत्र गति है। दूरके लोक भी इसके लिए दूर नहीं है। यह इतना बलशाली है कि वह अपने दृढ से दृढ शत्रुको भी अपने स्थानसे विचलित कर देता है। सेनापति ऐसा ही शूरवीर हो कि बलवान् से बलवान् शत्रु भी उसके सामने टिक नहीं पावे। जिस देशका ऐसा सेनापति होगा, वह देश सुरक्षित होगा ही, इसमें सन्देह क्या?

इन्द्र क्षत्रिय वर्गका प्रतिनिधि है और अग्नि ब्राह्मणवर्गका। **"शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते"**

इस नीति वचन के अनुसार प्रथम राष्ट्रकी बाहिरी सीमाओंकी सुरक्षा आवश्यक है, जो क्षत्रियवर्गका कर्तव्य है, राष्ट्रकी सीमाओंके सुरक्षित होनेके बाद ज्ञान का प्रसार संभव हो सकता है। ज्ञानके प्रसारका काम ब्राह्मणवर्ग पर निर्भर है। इस वर्गका प्रतिनिधि अग्नि है, अतः अब उसके गुणों पर विचार करेंगे।

अग्निके गुण

१ **मेधिरः पूतदक्षः जनुषाः सुबन्धुः-** (३) यह अग्नि मेधावान्, पवित्र ज्ञानवाला और जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु है।

२ **सुमतिं निकामः सखित्वं-** (१५) उत्तम बुद्धिको चाहनेवाला ही इस अग्निकी मित्रता कर सकता है।

३ **येषां सख्ये श्रितः प्र यन्ति, अन्ये आसते-** (१०७) यह अग्नि जिनसे मित्रता करता है, ये आगे बढ जाते हैं, जब कि दूसरे नास्तिक होनेकी वजहसे पीछे रह जाते हैं।

४ **तत् भद्रं पाकाय चित् छदयति-** (१११) अग्निका वह उत्तम पराक्रम अज्ञानीको भी पूजा की ओर प्रेरित करता है।

५ **ऊतः तेजीयसा मनसा-** (१८०) इस अग्निसे रक्षित हुआ मनुष्य तेजोयुक्त अन्तःकरणवाला होता है।

६ **सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अति पर्षत्-** (१८६) अग्नि अपने उपासकको सभी पापोंसे पार करता है।

अग्नि अर्थात् ब्राह्मण मेधाबुद्धिसे युक्त, पवित्र और उत्तम ज्ञानवाला और सबका भाई है। यह स्वयं ज्ञानवान् है, इसलिए इसके साथ वही लोग मित्रता कर सकते हैं कि जो स्वयं ज्ञानवान् हैं अथवा यह अग्नि उन्हीं लोगोंके साथ मित्रता करता है कि जो मेधावी हैं। ब्राह्मण भी ऐसोंके साथ ही मित्रता करे जो ज्ञानी और मेधावी हो। जो ज्ञानी इस अग्निके साथ मित्रता करता है, वह तो आगे बढ जाता है, पर जो अग्निका तिरस्कार करते है, वे पीछे रह जाते है, आगे नहीं बढ पाते। ब्राह्मण ज्ञानीके साथ जो मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करता है, वह उन्नति करता जाता है, पर जो ज्ञानीका तिरस्कार करता है, वह अवनत ही रह जाता है। ज्ञान देशका आधार है, अतः जिस देशमें ज्ञानका आधार सुदृढ होता है, वह देश उन्नत होता जाता है, पर जिस देशमें ज्ञान या सुशिक्षाकी समुचित व्यवस्था नहीं होती, वह देश अवनत दशामें ही रह जाता है। इसलिए देशकी प्रजाओंमें शिक्षाके प्रति रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। कायदे कानून के द्वारा शिक्षा अनिवार्य करनी चाहिए। अनिवार्य करनेसे अज्ञानी भी ज्ञानप्राप्तिकी तरफ अग्रसर होंगे। तब ज्ञानसे सभी मनुष्यों के अन्तःकरणका कोना कोना प्रकाशित होता है। उसका अन्तःकरण तेजसे युक्त होता है। जिसका अन्तःकरण तेजस्वी होता है, वह सभी पापोंसे पार हो जाता है। उससे कोई भी पापकर्म नहीं होता और वह पवित्र हो जाता है यह अग्नि ज्ञानका देव है और देवोंका पुरोहित है। पुरोहित कैसा हो, इसका वर्णन करनेवाले मंत्रभाग अब देखिए-

पुरोहित कैसा हो?

१ **रथीः बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः देवानां पुरोहितः अभवत्-** (३१) उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंको देखनेवाला ही देवोंका पुरोहित हो सकता है।

२ **मनुषः पुरोहितः निषत्तः द्युभिः बृहन्तं क्षयं परिभूषति-** (४०) मनुष्योंका पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि वह अपने तेजोंसे यज्ञगृहको प्रकाशित कर दे।

इन दो मंत्रभागोंमें पुरोहितके अनेक गुणोंका वर्णन किया है-

१ **रथी-** वह शब्द गति करनेवालेका वाचक है। रथ शब्दका निर्वचन करते हुए यास्क कहते हैं- "रथः कस्मात ? रंहतेर्गतिकर्मणः" रथ क्यों कहा जाता है? क्योंकि वह गति करता है। "रंह् गतौ" इस धातुसे रथ शब्द सिद्ध होता है, उस गति करनेवाले रथपर बैठने वाला रथी होता है। इस प्रकार रथी शब्दका अर्थ हुआ जो उत्तम गति करता हो अथवा गति करनेके लिए जो प्रेरणा देता हो। राष्ट्र भी एक रथ है, जो सतत गति करता रहता है, उस राष्ट्रको उत्तम प्रेरणा देनेका काम पुरोहितका होता

है। इस प्रकार पुरोहितका प्रथम कर्तव्य है राष्ट्रको उत्तम प्रेरणा देना।

२ बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः- महान् यज्ञका निरीक्षक। पुरोहितका काम है कि वह राष्ट्रमें यज्ञका काम चल रहा है या नहीं, यह देखे। यज्ञका अर्थ है संगठन। पुरोहित राष्ट्रमें प्रजाओंको संगठित करे। राष्ट्रमें जो विभिन्न जाति तथा धर्मके लोग हों, उन्हें एकताके सूत्र में बांधे। यह संगठनका काम राष्ट्रमें सतत चालू रहे, यह देखना पुरोहितका काम है। संगठनका काम भी एक महायज्ञ है, उस महायज्ञ पर पुरोहित अपनी नजर रखे और जहां जहां कुछ कमी देखे, उसे दूर करे।

३ देवानां पुरोहितः- दिव्य गुणवाले ज्ञानी विद्वानोंका वह स्वयं आगे आकर हित करनेवाला हो। ज्ञानियोंकी समुचित सुरक्षाका प्रबन्ध है या नहीं, यह पुरोहित देखे और यदि कहीं कभी देखे, तो वह स्वयं आगे बढकर उस कमीको दूर करे। इसीलिए वह पुरोहित (पुरः आगे बढकर हितः- हित करनेवाला) कहा गया है। पुरोहित इस बातकी प्रतीक्षा करता हुआ न बैठा रहे कि कोई मुझे बुलाये, तभी मैं जाऊं, अपितु उसे जहां कहीं भी कुछ कमी दिखाई दे, वहां स्वयं पहुंचकर उस कमीको दूर करे। सज्जनोंका परित्राण पुरोहित करे।

४ पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि उसके सभागृहमें पधारते ही सर्वत्र तेज छा जाए। सभी उससे अभिभूत हो जाएं। ऐसा तेजस्वी पुरोहित ही राष्ट्रका कल्याण कर सकता है। देवोंका पुरोहित अग्नि जिस प्रकार तेजस्वी हो, ऐसा पुरोहित राष्ट्रकी सभी प्रजाओंको संगठित करके राष्ट्रका संगठन उत्तम बना सकता है।

एकता के सूत्र

१ भारती भारतीभिः सजोषाः- (५७) एकको वाणी दूसरोंकी वाणियोंके अनुकूल हो। राष्ट्रकी प्रजाओंकी वाणियां परस्पर अनुकूल हो।

२ सरस्वती सारस्वतेभिः- (५७) एकका ज्ञान अन्योंके ज्ञान के अनुकूल हो।

राष्ट्रकी प्रजाओंकी बातें एक दूसरेका विरोध करनेवाली न हों। नेताओंके भाषण परस्पर विरोधी न हों, सब यही सोचें कि राष्ट्रकी उन्नति किस प्रकार हो और उसी लक्ष्यको सामने रखकर भाषण करें। स्वार्थकी भावना उनमें न हो। स्वार्थकी भावना जहां होगी, वहां परस्परके भाषण कभी अनुकूल नहीं हो सकते। अतः स्वार्थकी भावनाको त्यागकर परमार्थकी भावना प्रजाओंमें हो, तभी उनमें एकता हो सकती है। और तब-

३ पुरुमायः सहसे सं जिहीते- (४६९) बहुत कुशलतावाले मनुष्य शत्रुओंको हरानेके लिए मिलकर यत्न करते हैं।

एकता हो जाने पर सभी प्रजायें संगठित होकर शत्रुओंको हरानेके लिए प्रयत्न करती है और तब सारा राष्ट्र सुरक्षित होकर समृद्ध होता है।

वाणीकी शक्ति इतनी महान् होती है कि इससे महान्से महान् रचना भी की जा सकती और महान् विध्वंस भी, इसलिए वाणीका उपयोग बहुत संभाल कर करना चाहिए। वाणी सदा उत्तम रहे-

उत्तम वाणी

१ ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं गौः परि चरति- (८४) सत्य बोलनेवाली वाणी चारों ओर फैलती है।

२ येषां गीः गण्या सुरुचः रोचमानाः- (८७) जिनकी वाणी प्रभावशाली होती है, वे तेजस्वी होकर प्रकाशमान् होते हैं।

३ नमः उक्तिं अयति- (१४९) सबसे नम्रतापूर्वक बात करनी चाहिए।

४ पृथिव्याः नरिमन् मितज्ञवः मित्रस्य सुमतौ- (५७९) पृथ्वी पर विनम्र होकर चलनेवाले मित्रकी उत्तम बुद्धिमें हम रहते हैं।

सत्य बोलनेवालेकी वाणी बहुत प्रभावशाली होती है, इस लिए वह जो भी बोलता है, वह राष्ट्रमें चारों ओर फैलता है, उसके अनुसार प्रजायें चलती हैं। इसलिए सत्यभाषण द्वारा अपनी वाणीको प्रभावयुक्त बनाना चाहिए। क्योंकि जिनकी वाणी प्रभावसे युक्त होती है, वे तेजस्वी होकर प्रकाशमान् होते हैं।

मनुष्य नम्र बने और सबके साथ विनम्रतापूर्वक व्यवहार करे। मनुष्य जितना अधिक नम्रतासे व्यवहार करेगा, उतनी ही अधिक उसकी आत्मा उन्नत होगी।

नम्रताका व्यवहार ऐश्वर्य प्राप्त करनेका एक सर्वोत्तम उपाय है और उद्धतता प्राप्त हुए ऐश्वर्यको खोने का मार्ग है। नम्रतापूर्ण व्यवहारसे मनुष्य परमात्माके समीपसे समीपत्तर होता जाता है और उद्धततासे वह परमात्मासे दूरसे दूरतर होता जाता है। इसलिए मनुष्यका व्यवहार नम्रतासे युक्त हो। जो विनम्र होकर रहते हैं, उनकी बुद्धि बडी ही उत्तम होती है और वे सभीसे मित्रवत् स्नेह करते हैं। उत्तम वाणी गृह, समाज और राष्ट्रको सुखमय बना देती है, अन्यथा सर्वत्र कलह होता है। विशेष कर गृहमें यदि सभी नम्रतापूर्वक परस्पर व्यवहार करें, गृहिणी उत्तम और सुभाषिणी हो तो घर स्वर्गका सुख देने लगता है, और कुभाषिणी गृहिणी घरको नरक बना देती है, इसीलिए वेदके निम्न मंत्रभाग सुगृहिणीके महत्वके प्रतिपादक हैं-

सुगृहिणीका महत्त्व

१ **जाया इत् अस्तं-** (४८७) स्त्री ही घर है।

२ **जाया इत् योनिः-** (४८९) स्त्री ही आश्रय है।

३ **अस्तं प्र याहि, ते गृहे कल्याणी जाया सुरणं-** (४९१) हे मनुष्य ! तू अपने घर जा, वहां तेरे घरमें कल्याण करनेवाली तेरी स्त्री उत्तम सुख देने के लिए तैय्यार है।

स्त्री ही घर है, ''बिन घरनी घर भूतका डेरा'' इस हिन्दी कहावतके अनुसार ''गृहिणी गृहमित्याहुः'' इस सुभाषितके अनुसार गृहिणी ही घरकी शोभा है। पर वह गृहिणी सुगृहिणी हो, अपने परिवारके सदस्योंसे तथा अन्य अभ्यागतोंसे वह प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाली हो। स्वभावसे मधुर हो। ऐसी स्त्री जिस घरमें हो, वही उत्तम आश्रय हो सकता है। वहीं पर सच्चा सुख रहता है। ऐसे घरमें जानेके लिए मनुष्य भी उत्सुक रहता है। वह दिनभरका थका मांदा जब अपने घरमें जाता है, तब गृहिणीके मधुर व्यवहारसे उसकी सारी थकान उतर जाती है और उसका मन फिरसे प्रफुल्लित हो जाता है। ऐसा घर वास्तवमें कल्याण करनेवाला है और ऐसी सुस्वभावी स्त्री ही सच्चा सुख देती है। ऐसी स्त्रीसे उत्तम सन्तानें उत्पन्न होती हैं-

उत्तम सन्तान-प्राप्तिका उपाय

१ **आयुनि सु-अपत्ये जरस्व-** (४५) दीर्घायुवाली उत्तम सन्तानके लिए अग्निकी स्तुति करनी चाहिए।

२ **वीरः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः जायते-** (५८) वीर, उत्तम कर्म करनेवाला, चतुर और देवत्वकी इच्छा करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो।

३ **नः गन्तोः अनपत्यानि युयोत-** (५२७) हमार मार्ग सन्तानको न देनेवाले कर्मोंसे रहित हो।

हम ऐसे मार्गको न अपनायें कि जिसपर चलकर हम सन्तानके सुखसे वंचित रह जायें। सन्तानका सुख एक महानतम सुखोंमेंसे है। प्रत्येक गृहस्थ इस सुखका भोग करे। पर यह सुख तभी मनुष्यको मिल कहता है कि जब सन्तान श्रेष्ठ हों। सन्तानको श्रेष्ठ बनानेकी जिम्मेदारी माता पिता पर है। माता पिता अपनी सन्तानको इस प्रकार का बनायें कि वह वीर, कर्म करनेवाला, सावधान, देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला हो। सभी दिव्यगुणोंसे युक्त हो। ऐसी सन्तान ही उत्तम होती है और ऐसी सन्तानसे ही गृहस्थीका सुख बढता है।

गृहस्थका दूसरा सुख है- धनलाभ। धनार्जन के अनेक साधन हैं। सदोष और अदोष दोनों ही मार्गोंसे धन कमाया जा सकता है, पर सदोष मार्गसे कमाया गया धन टिकता नहीं, वह स्वयं तो नष्ट होता ही है, साथ ही स्वामीको भी नष्ट कर डालता है, पर अदोष मार्गके द्वारा कमाया गया धन स्वामीकी उन्नतिका कारण बनता है। वह अनन्तकाल तक टिकता है और स्वामीको सच्चे अर्थोंमें ऐश्वर्यवान् और समृद्ध बनाता है। यही उत्तम धन है। इसके बारे में वेदका उपदेश देखिए।

उत्तम धन

१ **अद्रोघेण वचसा रयिः सत्यं-** (१५३) पापरहित कथनसे प्राप्त होनेवाला धन टिकता है। पापके द्वारा कमाये गए धनके बारेमें मनुजीका कथन द्रष्टव्य है-

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥

''मनुष्य प्रथम अधर्मका आचरण करके खूब धन कमाता है, खूब समृद्ध होता है, इसके बाद भद्र अर्थात् सुखमय जीवन भोगता है, इसके बाद शत्रुओंको जीतता है, उसके बाद वह मनुष्य जडसहित विनष्ट हो जाता है।''

अधर्मसे पैसा कमानेवालेकी यही दशा होती है। अतः मनुष्य धर्म मार्गसे ही धनार्जन करनेका प्रयत्न करे।

संसारमें ऐश्वर्य अपार है, पर वह सबको नहीं मिल पाता। "**साहसे प्रतिवसति श्रीः**" इस युक्तिके अनुसार साहस करनेवाले मनुष्यको ही ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें वेदका निम्न मंत्रभाग विवेचनीय है-

वीरः वसूनि वन्दमानः श्रृण्वे- (५५१) मैंने वीरको ही धन प्राप्त करते हुए सुना है। "**वीरभोग्या वसुंधरा**" है, वीरोंके द्वारा उपभोग्या होनेके कारण यह पृथ्वी वीरपत्नी है। वीरोंके द्वारा पालनीया है। अतः वीरता दिखाकर ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाले के पास ही यह लक्ष्मी टिकती है।

ऐसे उत्तम धनसे प्राप्त किया हुआ अन्न ही उत्तम अन्न होता है। उत्तम अन्न किसे कहते हैं, इस विषयमें ऋग्वेदका ऋषि कहता है।

उत्तम अन्न

१ **अह्रयं वाजं ऋग्मियं**- (२७) लज्जासे रहित कमाया गया अन्न ही प्रशंसा के योग्य होता है। अन्न ऐसे मार्गसे कमाया जाए कि मनुष्य को उस मार्ग पर चलते हुए लज्जा न लगे। कालाबाजार, चोरबाजार यह सब ऐसे मार्ग हैं कि मनुष्य इन पर चलते हुए डरता है, लजाता है और संकोच करता है, पर धनप्राप्ति की मृगतृष्णासे प्रेरित होकर वह डर, लज्जा, संकोच सबको उठाकर ताक पर धर देता है और अस्तव्यस्त होकर भागता फिरता है। ऐसा अन्न मनुष्यके लिए कल्याणकारी नहीं होता। अतः मनुष्य ऐसे ही अन्नका उपभोग करे कि जो सत्यमार्गसे प्राप्त किया गया है, उसी अन्नको खाकर वह हृष्टपुष्ट होगा और पवित्र जीवनवाला होगा और फिर गृहस्थाश्रम सुखमय होगा। ऐसे अन्नको खाकर पुत्र आदि अपत्य भी प्रसन्न रहेंगे।

दायादभाग

दायादका धन वह है कि जिसे कोई गृहस्थ अपनी मृत्युके बाद छोड जाता है। प्राचीन पद्धति के अनुसार ऐसे धनका अधिकारी उस मनुष्यका पुत्र ही हो सकता है, पुत्री नहीं। इस बातको निरुक्तमें अच्छी तरह विशद किया है। जब तक मनुष्य जीवित है, उसका कर्तव्य है कि वह अपनी पुत्रीका पोषण करे और उसे वीर्यधारणमें समर्थ बनाये। इसके बारे में वेद कहता है-

१ **यत्र पिता दुहितुः सेकं ऋंजन् शग्म्येन मनसा सं दधन्वे**- (२८१) जब पिता अपनी पुत्रीको वीर्य धारण करने बना देता है, तब जाकर उसे शान्ति मिलती है। पिता के लिए पुत्रीकी समस्या बडी भारी होती है। पुत्रीकी शरीर-वृद्धिके साथ पिताकी चिन्तामें भी वृद्धि होती जाती है। जब पुत्री इस योग्य हो जाती है कि वह वीर्य को धारण कर सके तो उसकी चिन्ता पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है, अन्तमें जब पिता उस पुत्रीका विवाह कर देता है, तब जाकर उसे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। विवाहके अवसर पर पिता जो कुछ उसे देता है, उतने ही धन पर लडकीका अधिकार होता है। बाकीकी जायदाद पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। सारी जायदादाका वारिस लडका ही होता है।

२ **तान्वः जामये रिक्थं न आरैक्**- (२८२) पुत्र अपनी बहिनको पिताके धनका भाग नहीं देता। पर यदि लडकीके विवाहके पूर्व ही पिताकी मृत्यु हो जाए, तो भाई का यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी बहिनका पोषण करके उत्तम स्थल ढूंढकर उसका विवाह कर दे। पिताके अभावमें भाई ही अपनी बहिनका पिता बनता है। अतः उसीकी यह जिम्मेदारी है कि वह अपनी बहिनके लिए यशाशक्ति धन आदि प्रदान करे। पर बहिन नियमानुसारतः पिताके धनकी अधिकारिणी नहीं बन सकती, क्योंकि पिता के वंशको आगे बढानेवाला तो पुत्र ही होता है, पुत्री तो दूसरे व्यक्ति अर्थात् अपने पतिका वंश बढानेवाली होती है, अतः वेदमें भी पुत्रीकी अपेक्षा पुत्रकी श्रेष्ठता ज्यादा मानी गई है। समस्त उत्तम कर्मोंको करनेका अधिकार पुत्रको ही है-

३ **अन्यः सुकृतोः कर्ता**- (२८२) पुत्र-पुत्रीमेंसे एक अर्थात् पुत्र उत्तम कर्मका करनेवाला है।

४ **अन्यः ऋन्धन्**- (२८२) दूसरी-पुत्री अलंकारोंसे स्वयंको सजाती है।

पुत्र ही सब उत्तम कर्मोंको कर सकता है, पुत्रीका तो काम यही है कि वह घरको सजाने तथा स्वयंको सजाने के काममें लगी रहे।

इस प्रकार इस तृतीय मंडलमें अत्यधिक महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया है, जो पठनीय और मननीय हैं।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

तृतीय-मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अक्रो न बभ्रिः समिथे	१२
अगच्छदु विप्रतमः	२८७
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो	२११
अग्न इळा समिध्यसे	२०४
अग्निमुपसमश्विना	१८३
अग्निरस्मि जन्मना	२१९
अग्निर्जज्ञे जुह्वा	२८३
अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च	४४
अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये	२१०
अग्निर्धिया स चेतति	१२५
अग्निर्नेता भग इव	१८६
अग्निर्होता पुरोहितो	१२३
अग्निश्रियो मरुतो	२१७
अग्ने अपां समिध्यसे	२१२
अग्ने जरस्व स्वपत्य	४५
अग्ने जुषस्व नो हविः	२३७
अग्ने तृतीये सवने	२४१
अग्ने त्री ते वाजिना	१८४
अग्ने दा दाशुषे रयिं	२०७
अग्ने दिवः सूनुरसि	२०८
अग्ने दिवो अर्णमच्छा	१९५
अग्ने द्युम्नेन जागृवे	२०५
अग्ने भूरीणि तव	१८५
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे	१२०
अग्ने यत् ते दिवि	१९४
अग्ने विश्वानि वार्या	१३१
अग्ने विश्वेभिरग्निभिः	२०६
अग्ने वीहि पुरोळाशं	२३९
अग्ने वृधान आहुतिं	२४२
अग्ने शकेम ते वयं	२२४
अग्ने सहस्व पृतना	२०३
अग्निं यन्तुरमप्तुरम्	२३२
अग्निं वर्धन्तु नो गिरो	११९
अग्निं सुदीतिं सुदृशं	१७१
अग्निं सुम्नाय दधिरे	२८
अग्निं सूनुं सनश्रुतं	१२६
अग्निं होतारं प्र वृणे	१७८
अग्निः सनोति वीर्याणि	२०९
अच्छा विवक्मि रोदसी	५६५
अच्छा वो देवीमुषसं	५९७
अच्छा सिन्धुं मातृतमां	३२२
अच्छिद्रा शर्म जरितः	१५९
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो	२५५
अञ्जन्ति त्वामध्वरे	९४
अतारिषुर्भरता गव्यवः	३३१
अति तृष्टं ववक्षिथ	१०७
अदाभ्यः पुरएता	१२७
अदेदिष्ट वृत्रहा	३०१
अद्रोघ सत्यं तव तत्	३११
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्षु	६३
अध्वर्युभिः पञ्चभिः	८९
अनमीवास इळया	५७९
अनु कृष्णे वसुधिती	२९७
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म	४०
अन्यस्या वत्सं रिहती	५४४
अपश्चिदेष विभ्वो	२९६
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां	१३
अपाः सोममस्तमिन्द्र	४९१
असूर्ये मरुत आपिः	४७४
अभि जैत्रीरसचन्त	२८४
अभि तष्टेव दीधया	३७७
अभि द्युम्नानि वनिन	४०२
अभि प्रयांसि वाहसा	१२९
अभि यो महिना दिवं	५८३
अभिव्ययस्य खदिरस्य	५०४
अभीक आसां पदवीः	५५७
अमन्थिष्टां भारता	१९९
अमत्रिन्द्र श्रवो बृहद्	३७५
अमित्रायुधो मरुतामिव	२५७
अयमग्निः सुवीर्यस्य	१६२
अयमस्मान् वनस्पति	५०५
अयमु वां पुरुतमो	६०१

अयमि ते नमउक्ति	१४९
अयं ते अस्तु हर्यतः	४३१
अयं ते योनिर्ऋत्वियो	२५२
अयं मित्रो नमस्यः	५८०
अयं सो अग्निर्यस्मिन्	१९३
अरण्योर्निहितो जातवेदा	२४४
अर्यमा णो अदितिः	५२७
अर्वाचीनं सु ते मन	३६७
अर्वाञ्च त्वा सुखे रथे	* ४१३
अर्वावतो न आ गहि	३७६, ४०३
अलातृणो वल इन्द्र	२६८
अवर्धयन् त्सुभगं सप्त	४
अव स्यूमेव चिन्वती	५९६
अश्विना परि वामिषः	५७५
अश्विना मधुषुत्तमो	५७६
अश्विवा वायुना युवं	५७४
अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः	२१५
असूत पूर्वो वृषभो	३८१
अस्माकमायुर्वर्धयन्	६१४
अस्तीदमधिमन्थनम्	२४३
अस्मे तदिन्द्रावरुणा	६०२
अस्मे प्र यन्धि मघवन्	३६४
अहन्नहिं परिशयानं	३१३
अषाळ्हो अग्ने वृष	१५८
आकरे वसोर्जरिता	४६८
आक्षित् पूर्वास्वपरा	५३६
आ च त्वामेता वृषणा	४२६
आ जुहोत स्वध्वरं	११२
आतिष्ठन्तं परि विश्वे	३८०
आ तू न इन्द्र मद्र्यक्	४०५
आ तू भर माकिरेतत्	३६३
आ ते कारो शृणवामा	३२९
आ ते सपर्यू जवसे	४६२
आ त्वो बृहन्तो हरयो	४२८
आदित्या रुद्रा वसवः	१०१
आ देवानामभवः	१७
आ धेनवो धुनयन्तां	५४७
आ नस्तुजं रयिं	४३९
आ नो गहि सख्येभिः	१९
आ नो गोत्रा दर्दृहि	२७९
आ नो भर भगमिन्द्र	२७७
आ नो मित्रावरुणा	६१५
आ नो यज्ञं नभोवृधं	४२५
आपूर्णो अस्य कलशः	३१७
आ भन्दमाने उषसा	५५
आ भारती भारतीभिः	५७
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो	२७
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिः	४३६
आ मन्येथामा गतं	५७१
आ याहि पूर्वीरति	४२४
आ याह्यग्ने समिधानो	६०
आ याह्यर्वाङ वन्धुरे	४२३
आ योनिमग्निर्घृतवन्तम्	६७
आ रोदसी अपृणदा	३०
आ रोदसी अपृणा	७३
आ सीमरोहत् सुयमा	८५
आ होता मन्द्रो विदथानि	१८४
इच्छन्ति त्वा सोम्यासः	२५९
इदं ह्यन्वोजसा	४७५
इध्मेनाग्न इच्छमानो	१७५
इनोत पृच्छ जनिमा	३७८
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि	३४२
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः	५९०
इन्द्र ऋभिर्वाजिभिः	५९२
इन्द्र ऋभुमान् वाजवान्	५९१
इन्द्र क्रतुविदं सुतं	३९७
इन्द्रत्क वृषभ	३९६
इन्द्र दृह्य यामकोशा	२७३
इन्द्र पिब वृषधूतस्य	४२९
इन्द्र पिब स्वधया चित्	३५३
इन्द्र प्र णो धितावानं	३९८
इन्द्रमग्निं कविच्छदा	१३४
इन्द्र मरुत्व इह	४७२
इन्द्रमित्था गिरो	४१६
इन्द्र सोमं सोमपते	३०३
इन्द्र सोमाः सुता इमे	३९९
इन्द्र सोमाः सुता	४१८
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ	३३७
इन्द्रस्य कर्म सुकृता	३१०
इन्द्रस्य सख्यमृभवः	५८८
इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप	१३८
इन्द्राग्नी आ गतं सुतं	१३२
इन्द्राग्नी जरितु सचा	१३३
इन्द्राग्नी तविषाणि	१३९
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो	१३७
इन्द्राग्नी रोचना दिवः	१४०
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो	३५६
इन्द्र मतिर्हृद आ	३८७
इन्द्र वृत्राय हन्तवे	३७०
इन्द्र सुशिप्रो मघवा	२६१
इन्द्रं सोमस्य पीतये	४१७
इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासं	३३३
इन्द्रः सु पूषा वृषणा	५६३
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्	३३९
इन्द्रः स्वाहा पिबतु	४६१
इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन	४८६
इन्द्रियाणि शतक्रतो	३७४
इन्द्रैण याथ सरथं	५८९
इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे	३२१
इन्द्रो अस्मां अरदद्	३२५
इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो	५०६
इन्द्रो मधु सम्भृतम्	३९२
इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान	५२४
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः	३३५
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं	४३५
इम इन्द्र भरतस्य	५०९
इममिन्द्र गवाशिरं	४२०
इमं कामं मन्दया	२७८, ४६४

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यं ३५१
इमं नरो मरुतः १६३
इमं नो यज्ञममृतेषु १८८
इमं महे विदथ्याय ५१०
इमं स्तोमं रोदसी प्र ५१९
इमा उ वां भृमयो ६००
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः ४०७
इमाभू षु प्रभृतिं ३५५
इमां च नः पृथिवीं ५५२
इमे भोजा अङ्गिरसो ४९२
इयं ते पूषन्नाघृणे ६०६
इहेह वो मनसा ५२६
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं २३, ७१, ८२, ९३, १६१, १९७, २०२
इळयास्त्वा पदे वयं २४६
ईयिवांसमति स्त्रिधः १०८
ईळेन्यो नमस्यस्तिरः २३४
ईळे अग्निं विपश्चिनं २२३
ईळे च त्वा यजमानो १५
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा ४५४
उच्छ्रयस्व वनस्पते ९६
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र १७६
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः ४४८
उत नो ब्रह्मन्नविष १४६
उताभये पुरुहूत २६३
उतो पितृभ्यां प्रविदान ८८
उतो हि वां पूर्व्या ५१३
तत्तानायामव भरा २४५
उदस्तम्भीत् समिधा ७०
उदु ष्टुतः समिधा ६९
उद् य ऊर्मिः शम्या हन्तु ३३२
उद् वह रक्षः सहमूलम् २७५
उपक्षेतारस्तव सुप्रणीते १६
उप नः सुतमा गहि ४१५
उप प्रेत कुशिकाः ४९६
उपस्थाय मातरम् ४५३
उपाजिरा पुरुहूताय ३४५
उपो नयस्व वृषणा ३४६
उरुशंसा नमोवृधा ६१६
उरुं गंभीरं जनुषा ४४४
उरौ महां अनिबाधे ११
उरौ वा ये अन्तरिक्षे ७९
उषः प्रतीचीं भुवनानि ५९५
उषसः पूर्वा अध यद् ५३२
उषो देव्यमर्त्या वि ५९४
उषो वाजेन वाजिनि ५९३
ऊर्जो नपातमध्वरे २३३
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे ५३
ऋतस्य बुध्न उषसां ५९९
ऋतस्य वा केशिना योग्याभिः ७७
ऋतावरी दिवो अर्कैः ५९८
ऋतावा यस्य रोदसी १४२
ऋतावानं यज्ञियं ३६
ऋभुक्षक्र ईड्यं चारु ६६
एको द्वे वसुमती २६९
एतद् वचो जरितः ३२७
एता ते अग्ने जनिमा २०
एवा वयं पयसा ३२३
एभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् ८०
ओजिष्ठं ते मध्यतो १९२
ओ षु स्वसारः कारवे ३२८
कविर्नृचक्षा अभि षीं ५१५
कायमानो वना त्वं १०६
किं ते कृण्वन्ति ४९९
कुविन्मा गोपां करसे ४२७
कृणोत धूमं वृषणं २५१
कृधि रत्नं सुसनितः १७७
केतुं यज्ञानां विदथस्य ४१
को अद्धा वेद क ५१४
ऋत्वा दक्षस्य तरुषो २६
गम्भीरां उदधींरिव ४३८
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र ३०४
गिर्वणः पाहि नः सुतं ४०१
गृणाना जमदग्निना ६१७
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे ४६३
घृतवन्तः पावक ते १८९
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि १६५
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं ४३
चर्षणीधृतं मघवानम् ४६६
जज्ञानो हरितो वृषा ४३४
जन्मन्जन्मन् निहितो २१
जातो अग्नी रोचते २४९
जातो जायते सुदिन त्वे ९८
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य ८७
जायेदस्तं मघवन् ४८९
ज्योतिर्वृणीत तमसो ३९३
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी ३९४
त इन्नवस्य मधुमद् ३०६
तत् सवितुर्वरेण्यं ६०९
तद् भद्रं तव दंसना १११
तदिन्नवस्य वृषभस्य ३८३
तदिन्नवस्य सवितुः ३८४
तनूनपादुच्यते गर्भ २५३
तन्नस्तुरीपमध पौषयित्नु ५८
तवो ष्वग्ने अन्तराँ १७४
तमङ्गिरस्वन्नमसा २९९
तमिन्द्र मदमा गहि ४१५
तवायं सोमस्त्वमेहि ३४९
तं त्वा मर्ता अगृभ्णत ११०
तं त्वा विप्रा विपन्यवो १२२
तं सबाधो यतस्रुच २२७
तं शुभ्रमग्निमवसे २१४
तां जुषस्व गिरं मम ६०७

तिरः पुरू चिदश्विना	५०२
तिष्ठा सु कं मघवन्	४८७
तिष्ठा हरी रथ आ	३४४
तिस्रो यह्वस्य समिधः	३२
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये	४२१
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो	१५४
तुभ्यं ब्रह्माणि गिर	४७१
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो	१९१
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो	१९०
तृतीये धानाः सवने	४८३
तोशा वृत्रहणा हुवे	१३५
त्रिपाजस्यो वृषभो	५५६
त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्	२२०
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि	५५९
त्रिरा दिवः सविता	५६०
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि	५६१
त्रीणि राजाना विदथे	३८२
त्रीणि शता त्री सहस्राणि	११३
त्रीण्यायूंषि तव	१७०
त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः	५५८
त्वद्धि पुत्र सहसो	१५३
त्वं नृचक्षा वृषभानु	१५७
त्व नो अस्या उषसो	१५६
त्वमपो यद्ध वृत्रं	३०८
त्वं सद्यो अपिबो जात	३१२
त्वं हि ष्मा च्यावयन्	२६२
त्वामग्ने मनीषिणः	११४
त्वां यज्ञेष्वृत्विजम्	११५
त्वां सुतस्य पीतये	४२२
दधिक्रामग्निमुषसं च	१८७
दधिष्वा जठरे सुतं	४००
दश क्षिपः पूर्व्यं	२००
दिदृक्षन्त उषसो	२७१
दिवक्षसो धनवो	८४
दिवक्षिदा ते रूचयन्त	७८
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना	३८८
दिशः सूर्यो न मिनाति	२७०
दीदिवां समपूर्व्यं	१४५
देवं नरः सवितारं	६११
देवस्त्वष्टा सविता	५५०
देवस्य सवितुर्वयं	६१०
देवानां दूतः पुरुध	५२८
दैव्या होतारा प्रथमा	५६, ९०
द्यामिन्द्रो हरिधायसं	४३३
द्युम्नेषु पतनाज्ये	३७२
द्यौश्च त्वा पृथिवी	७४
द्रवतां त उषसा	१५०
द्विमाता होता विदथेषु	५३८
धर्ता दिवो रजसः	४५९
धानावन्तं करम्भिणं	४७८
धिया चक्रे वरेण्यो	२३०
धेनुः प्रत्नस्य काम्यं	५६८
नकिरेषां निन्दिता	३९०
न जामये तान्वो	२८२
न ता मिनन्ति मायिनो	५५४
न ते दूरे परमा चिद्	२६०
न त्वा गभीरः पुरुहूत	३१८
नमस्यत हव्यदातिं	३१
न सायकस्य चिकिते	५०८
नानाचक्राते यम्या	५४२
नामानि ते शतक्रतो	३६८
नासत्या मे पितरा	५२५
नि गव्यता मनसा	२८९
नि त्वा दधे वर	२०१
नि त्वा दधे वरेण्यं	२३१
नि दुरोणे अमृतो	१८
निर्मथितः सुधित आ	१९८
नि वेवेति पलितो	५४०
निष्षिध्वरीस्त ओषधीः	५५३
नि षीमिदत्र गुह्या	३७९
नि सामनामिषिरामिन्द्र	२६७
नू नो रास्व सहस्रवत्	१४७
नृणामु त्वा नृतमं	४६९
एतिर्भव वृत्रहन् त्सूनृतानां	२९८
पदेइव निहिते दस्मे	५४६
पद्या वस्ते पुरुरूपा	५४५
परशुं चिद् वि तपति	५०७
परा याहि मघवन्	४९०
परि विश्वानि सुधिता	१३०
पाति प्रियं रिपो अग्रं	६५
पावकशोचे तव हि	२९
पिता यज्ञानामसुरो	४२
पितुश्च गर्भं जनितुश्च	१०
पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद	९
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं	२९२
पिबा वर्धस्व तव घा	३५७
पुराणमोकः सख्यं शिवं	५७३
पुरीष्यासो अग्नयः	१९६
पुरुष्टुतस्य धामभिः	३६९
पुरोळा अग्ने पचतः	२३८
पुरोळाशं च नो घसो	४८०
पुरोळाशं पचत्यं	४७९
पुरोळाशं सनश्रुत	४८१
पूर्वीरस्य निष्षिधो	४७०
पूषण्वते ते चक्रमा	४८४
पृक्षप्रयजो द्रविणः	९२
पृथुपाजा अमर्त्यो	२२६
प्र करवो मनना	७२
प्रति धाना भरत	४८५
प्र ते अग्ने हविष्मतीम्	१७९
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः	४७७
प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानो	६१
प्र दीधितिर्विश्ववारा	५२
प्र पर्वतानामुशती	३२०
प्र पीपय वृषभं	१६०

प्र मात्राभी रिरिचे	४४३
प्र मे विविक्वां अविदन्	५६२
प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य	८३
प्र यत् सिन्धवः प्रसवं	३६०
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिः	२१६
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्य	३२६
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो	१३६
प्र वो देवायाग्नये	१४१
प्र वो वाजा अभि द्यवो	२२२
प्र सप्तहोता सनकात्	२५६
प्र स मित्र मर्तो अस्तु	५७८
प्र सू त इन्द्र प्रवता	२६४
प्र होत्रे पूर्व्यं वचो	११८
प्राञ्चं यज्ञं चकृम	२
प्रद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिः	६२
बभ्राणः सूनो सहसो	८
बलं धेहि तनूषु ना	५०३
बृहन्त इद् भानवो	१४
बृहस्पते जुषस्व नो	६०३
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा	३४७
भवा नो अग्ने सुमना	१७३
भूरिणि हि त्वे दधिरे	१८१
मखस्य ते तविषस्य	३३४
मतयः सोमपामुरुं	४०९
मनुष्वदिन्द्र सवनं	३०७
मन्थता नरः कविं	२४७
मन्द्रं होतारं शुचि	३८
मयो दधे मेधिरः	३
मरुत्वन्तं वृषभं	४५०
मरुत्वां इन्द्र वृषभो	४४६
महत् तद् वः कवयः	५२६
महां अमत्रो वृजने	३५८
महां असि महिष	४४२
महां आदित्यो नमसा	५८१
महां उग्रो वावृधे	३५९
महां ऋषिर्देवजा	४९४
महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं	२९५
महि ज्योतिर्निहितं	२७२
महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीः	८६
महान् त्सधस्थे ध्रुव	७५
महि महे दिवे अर्चा	५११
मही यदि धिषणा	२८३
मही समैरच्चम्वा समीची	५५१
महो महानि पनयन्ति	३३८
मह्ना ते सख्यं वश्मि	२९४
माता च यत्र दुहिता	५४३
मा ते हरी वृषणा	३४८
माध्यंदिनस्य सवनस्य	४८२
माध्यंदिने सवने	२४०
मा नो अग्नेऽमतये	१६६
मारे अस्मद् वि मुमुचो	४१२
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः	१५१
मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो	५८२
मित्राय पञ्च येमिरे	५८४
मित्रो अग्निर्भवति यत्	६४
मित्रो जनान् यातयति	५७७
मित्रो देवेष्वायुषु	५८५
मिहः पावकाः प्रतता	३००
मो षू णो अत्रजुहुरन्त	५३३
य इमे रोदसी उभे	४९७
यजाम इन्नमसा वृद्धम्	३०९
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे	३१५
यज्ञो हि त इन्द्र	३१४
यज्ञं सहसावन्	२२
यज्जायथास्तदहरस्य	४५२
यत् त्वा होतारमनजन्	१८२
यथायजो होत्रमग्ने	१६९
यदङ्ग त्वां भरताः	३३०
यदद्य त्वा प्रयति	२५८
यदन्तरा परावतम्	४०४
यदन्यास वृषभो रोरवीति	५०८
यदी मन्थन्ति बाहुभि	२४८
यमा चिदत्र यमसूरसूत	३८९
यस्ते अनु स्वधामसत्	४७६
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने	१७२
यस्मै धायुरदधा मर्त्याय	२६५
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति	५६४
या ते अग्ने पर्वतस्येव	५६७
यो ते जिह्वा मधुमती	५६६
यां आभजो मरुत इन्द्र	३५२
यान् वो नरा देवयन्तो	९९
याभिः शचीभिश्चमसाँ	५८७
युधेन्द्रो मह्नावरिवः	३३९
युध्मस्य ते वृषभस्य	४४१
युवा सुवासाः परिवीत	९७
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यम्	५१२
युवं प्रत्नस्य साधथो	३८५
ये ते शुष्मं ते तविषीम्	३०५
ये त्वाहिहत्ये मघवन्	४४९
ये वृक्णासो अधि क्षमि	१००
यो विश्वाभि विपश्यति	६०८
यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते	५१
यं नु नकिः पृतनासु	४५७
यं सोममिन्द्र पृथिवी	४४५
रमध्वं मे वचसे	३२४
रारन्धि सवनेषु ण	४०८
रूपं रूपं मघवा	४९३
वनस्पतेऽव सृजोप देवान्	५९
वनस्पते शतवल्शो वि	१०४
वयमिन्द्र त्वायवो	४११
वयं ते अद्य ररिमा	१५२
वव्राजा सीमनदतीरदब्धा	६
वाजी वाजेषु धीयते	२२९
वाजेषु सासहिर्भव	३७१
वार्त्रहत्याय शवसे	३६६

विवद् यदी सरमा २८६
विद्मा हि त्वा धनंजयं ४१९
विद्युद्रथा मरुत ५२२
वि पाजसा पृथुना १५५
विभावा देवः सुरणः ४७
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति ५३४
विवेष यन्मा धिषणा ३१६
विशां कविं विश्पतिं ३३
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः ४६
विश्वामित्रा अरासत ४९८
विश्वदेते जनिमा सं ५१७
वष्णुं स्तोमासः पुरुदस्मं ५२३
विष्णुर्गोपाः परम पाति ५४१
वीरस्य नु स्वश्व्यं ५४९
वीळौ सतीरभि धीरा २८५
वृत्रखादो वलंरुजः ४३७
वृषणं त्वा वयं वृषन् २३६
वृषभं चर्षणीनां ६०५
वृषायन्ते महे अत्याय ९१
वृषो अग्निः समिध्यसे २३५
वैश्वानर तव धामान्या ४८
वैश्वानरः प्रत्नथा ३५
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो ४९
वैश्वानरं मनसाग्निं २१३
वैश्वानराय धिषणां २४
वैश्वानराय पृथुपाजसे ३९
व्रता ते अग्ने महतो ७६
व्रातं व्रातं गणं गणं २१८
शग्धि वाजस्य सुभग १६७
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं ४६७
शतधारमुत्समक्षीयमाणं २२१
शयुः परस्तादध नु ५३७
शासद् वह्निर्दुहितुः २८१
शुक्रेभिरङ्गै रज ५
शुचिं न यामन्निषिरं ३७
शुचिमर्कैर्बृहसातिम् ६०४
शुनं हुवेम मघवानम् २८०, ३०२, ३१९, ३४३, ३५४, ३६५, ३८६, ३९५, ४३०, ४५४, ४६०, ४६५
शुष्मिसमं न ऊतये ३७३
शूरस्येव युध्यतो ५३९
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं १०३
शृश्वन्तु नो वृषणः ५२९
शंसा महामिन्द्रं ४५६
शंसावध्वर्यो प्रति मे ४८८
षड्भाराँ एको अचरन् ५५५
स केतुरध्वराणाम् ११७
सखा ह यत्र सखिभिः ३९१
सखायस्त्वा ववृमहे १०५
स वा यस्ते ददाशति ११६
स जातेभिर्वृत्रहा सेदु २९१
स जिन्वते जठरेषु ४३
सजोषा इन्द्र सगणो ४४७
सतः सतः प्रतिमानं २८८
स तेजीयसा मनसा १८०
सत्ते होता न ऋत्वियः ४०६
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ३४०
स त्वं नो रायः १६४
सदा सुगः पितमाँ ५३०
सद्यो जात ओषधीभिः ६८
सद्यो ह जातो वृषभः ४५१
स नः पावक दीदिहि १२१
स नः शर्माणि वीतये १४४
सना पुराणमध्येम्यारात् ५१८
सत्र होत्राणि मनसा ५४
स मनस्वा ह्यन्धसो ४१०
समित्समित् सुमना ५०
समिद्धस्य श्रयमाणः ९५
समिध्यमानः प्रथमानु १६८
समिध्यमानो अध्वरे २२५
समुद्रेण सिन्धवो ३६१
समानो राजा विभृतः ५३५
समान्या वियुते दूरे ५१६
स यन्ता विप्र एषां १४३
स रोचयज्जनुषा २५
स वावशान इह ४७३
ससर्परीरभरन् तूयं ५०१
ससर्परीरमतिं बाधमाना ५००
ससानात्यां उत सूर्यं ३४१
ससृवां समिव त्मना १०९
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तं २६६
स हव्यवाळमर्त्य १२४
सहावां पृत्सु तरणिः ४५८
स होता यस्य रोदसी ८१
साह्वान् विश्वा अभियुजः १२८
सीद होतः स्व उ लोके २५०
सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ५२१
सुनिमथा निर्मथितः २५४
सुयुग्भ रथैः सुवृता ५७०
सुयुग् वहन्ति प्रति वां ५६९
सोमस्य मा तवसं १
सोमा जिगाति ६१२
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे ६१३
स्तीर्णं ते बर्हिः सुत ३५०
स्तीर्णा अस्य संहतो ७
स्थिरौ गावौ भवतां ५०२
स्वदस्व हव्या समिषो ५३१
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि ४४०
स्वस्तये वाजिभिश्च २७६
सं घोषः शृण्वेऽवमैः २७४
संपश्यमाना अमदन् २९०
हर्यन्नुषसमर्चयः ४३२
हिरण्यपाणिः सविता ५२०
हंसाइव कृणुथ ४९५
हंसा इव श्रेणिशो १०२
होता देवो अमर्त्यः २२८
हृदा इव कुक्षयः ३६२

ॐ

ऋग्वेद का सुबोध-भाष्य

चतुर्थ मण्डल

[१]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— अग्निः, २-५ अग्नीवरुणौ वा । छन्दः— त्रिष्टुप्, १ अष्टिः
२ अतिजगती; ३ धृतिः]

१ त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे ।
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥ १ ॥

२ स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ- [१] हे (अग्ने) अग्ने ! (समन्यवः देवासः) उत्साहशील देवगण (अरतिं देवं त्वां सदमित् हि न्येरिरे) नष्ट न होनेवाले और तेजस्वी तुझको सदैव प्रेरित करते हैं। तथा (क्रत्वा न्येरिरे) अपने पुरुषार्थसे तुझे प्रेरित करते हैं। हे (यजत) यजनीय अग्ने (अमर्त्यं आदेवं प्रचेतसं) अमर, सर्वत्र द्युतिमान् और अत्यन्त ज्ञानी तुझे (मर्त्येषु आदेवं जनत) मनुष्योंके मध्यमें अच्छी तरह तेजस्वी होने तक प्रज्ज्वलित करते है । निश्चयसे (विश्वं प्रचेतसं आदेवं जनत) सब कर्मोंके जाननेवाले तुझे अत्यन्त तेजस्वी होनेतक प्रज्ज्वलित करते हैं ॥१॥

[२] हे (अग्ने) अग्नि देव ! (सः) वह तू (यज्ञवनसं) यज्ञमें आनेकी ईच्छा करनेवाले (यज्ञवनसं) यज्ञके द्वारा सत्कृत होनेवाले (ऋतावानं) सत्यशील (आदित्यं) जलोंको ग्रहण करनेवाले (चर्षणीधृतं) प्राणियोंके आधार तथा (चर्षणीधृतं) प्राणियोंके संरक्षक (राजानं) तेजस्वी (ज्येष्ठं भ्रातरं) अपने श्रेष्ठ भाई (वरुणं) वरुण को (सुमती) उत्तम बुद्धिसे (देवान् अच्छ आ ववृत्स्व) देवोंकी तरफ प्रेरित कर ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! सब उत्साहशील देवगण तुझे मनुष्योंके बीचमें अपने पुरुषार्थसे अच्छी तरह प्रकाशित होने तक प्रज्जवलित करते है और तुझे प्रेरित करते हैं ॥१॥

हे अग्निदेव ! यज्ञमें सत्कृत होनेके कारण यज्ञमें आनेकी इच्छा करनेवाले सत्यशील, जलोंको ग्रहण करनेवाले प्राणियोंके आधार एवं संरक्षक तेजस्वी वरुणको विद्वानों और ज्ञानियोंकी तरफ प्रेरित कर ॥२॥

३ सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ ३ ॥
४ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ४ ॥
५ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥ ५ ॥

अर्थ- [३] हे (**दस्म सखे**) सुन्दर मित्र अग्ने! (**रंह्या रथ्या आशुं चक्रं इव**) वेगवान् घोडे जिस प्रकार शीघ्रतागामी रथको प्रेरित करते हैं अथवा (**रंह्या न**) वेगवान् घोडे जिस प्रकार वीरके द्वारा प्रेरित होते हैं, उसी प्रकार अपने (**सखायं**) मित्र वरुणको (**अभि आ ववृत्स्व**) हमारी ओर प्रेरित कर! हे (**अग्ने**) अग्ने! तू (**वरुणे विश्वभानुषु मरुत्सु सचा**) वरुण और सर्वत्र प्रकाशित होनेवाले मरुतोंके साथ (**मृळीकं विदः**) सुखकारी सोमको प्राप्त कर। हे (**शुशुचान**) तेजस्वी अग्ने! तू (**तोकाय तुजे**) पुत्र और पौत्रोंके लिए (**शं कृधि**) कल्याण और सुख प्रदान कर तथा हे (**दस्म**) सुन्दर दर्शनीय अग्ने! (**अस्मभ्यं शं कृधि**) हमारे लिए सुख प्रदान कर ॥३॥

[४] हे (**अग्ने**) प्रकाशक देव! (**विद्वान् त्वं**) ज्ञानवान् तू (**नः**) हमारे ऊपर (**वरुणस्य देवस्य**) वरुणदेवका जो (**हेळः**) क्रोध है, उसे (**अव यासिसीष्ठाः**) हमारे ऊपरसे दूर कर। (**यजिष्ठः**) अत्यन्त पूज्य (**वह्नितमः**) हवियोंको ले जानेमें अत्यन्त कुशल तथा (**शोशुचानः**) अत्यन्त तेजस्वी तू (**अस्मत्**) हमसे (**विश्वा द्वेषांसि**) सम्पूर्ण द्वेष भावनाओंको (**प्र मुमुग्धि**) दूर कर ॥४॥

[५] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**सः त्वं**) वह तू (**ऊती**) अपनी रक्षाके साधनोंसे (**नः अवमः**) हमारी उत्तमतासे रक्षा करनेवाला होकर (**अस्या उषसः व्युष्टौ**) इस उषाके प्रकाशित होने पर (**नेदिष्ठः भव**) हमारे अत्यन्त समीप आवो। (**रराणः**) आनन्दित होकर (**नः वरुणं अव यक्ष्व**) हमारे ऊपर वरुणके क्रोधको नष्ट कर, (**मृळीकं वीहि**) सुखकारी सोमकी अभिलाषा कर तथा (**सुहवः**) उत्तम रीतिसे बुलाया जाकर (**नः एधि**) हमें बढा-समृद्ध कर ॥५॥

भावार्थ- हे अग्ने! जिस प्रकार वेगवान् घोडे शीघ्रगामी रथको प्रेरित करते हैं और वे घोडे स्वयं भी प्रेरित होते हैं, उसी प्रकार तू वरुणको हमारी ओर प्रेरित कर, तथा वरुण और अत्यन्त तेजस्वी मरुतोंके साथ आकर सुखकारी सोमको प्राप्त कर तथा हमारे द्वारा सुख प्राप्त करके हमारे पुत्र पौत्र तथा हमारे लिए भी सुख प्रदान कर ॥३॥

हे ज्ञानवान् अग्ने! हमारे किसी अपराधके कारण यदि वरुण देवका क्रोध हम पर हो तो उस क्रोधको तू दूर कर तथा अत्यन्त श्रेष्ठ तू हमारे अन्दरसे सब द्वेष भावनाओंको दूर कर ॥४॥

हे अग्ने! अपनी रक्षाके साधनोंसे हमारी अच्छी तरह रक्षा कर और प्रतिदिन प्रातःकाल हमारे समीप प्रज्वलित हो अर्थात् हम प्रतिदिन यज्ञ करें। हमारे यज्ञोंमें तू सुखकारी हवियोंको प्राप्त कर तथा हमारे ऊपर वरुण देवका जो क्रोध हो उसे दूर करके हमें समृद्ध कर और बढा ॥५॥

६ अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृग् देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६ ॥
७ त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगा—च्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥ ७ ॥
८ स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥ ८ ॥
९ स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन् देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९ ॥

अर्थ- [६] (**इव**) जैसे (**देवस्य अघ्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं**) उत्तम गौपालक पुरुषकी गौका दूध और घी शुद्ध और तेजस्वी होता है तथा (**धेनोः मंहना**) गायका दान श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार (**सुभगस्य देवस्य श्रेष्ठा संदृक्**) उत्तम ऐश्वर्यवाले अग्निका प्रशंसनीय तेज (**मर्त्येषु चित्रतमा स्पार्हा**) मनुष्योंमें अत्यन्त पूजनीय और स्पृहणीय होता है ॥६॥

१ **देवस्य अघ्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं-** उत्तम गौपालकको गायका दूध या घी पवित्र और तेज देनेवाला है। अतः गायका उत्तम रीतिसे पालन करना चाहिए।

२ **धेनोः मंहना-** गायका दान भी श्रेष्ठ होता है।

[७] (**अस्य देवस्य अग्नेः**) इस दिव्य गुणवाले अग्निके (**ता त्रिः परमा**) तीन उत्तम (**सत्या, जनिमानि, स्पार्हा सन्ति**) यथार्थभूत जन्म स्पृहणीय हैं (**अनन्ते अन्त परिवीतः**) अनन्त आकाशके मध्यमें व्याप्त (**शुचिः शुक्रः रोरुचानः अर्यः आगात्**) सबका शोधक दीप्तियुक्त अत्यधिक प्रकाशमान् स्वामी अग्नि हमारे पास आवे ॥७॥

१ **ता त्रिः जनिमानि-** वे तीन जन्म पृथ्वी पर अग्निके रूपमें, अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें और द्युलोकमें सूर्यके रूपमें अग्निके तीन जन्म।

[८] (**दूतः होता हिरण्यरथः रंसुजिह्वः सः**) दूत, देवोंका बुलानेवाला, सुवर्ण रथवाला, सुन्दर ज्वालावाला वह अग्नि (**विश्वेत् सद्म अभि वष्टि**) सभी उत्तम घरोंमें जानेकी इच्छा करता है। तथा (**रोहित् अश्वः, वपुष्यः विभावा, पितुमती संसत् इव सदा रण्वः**) रोहित वर्णके अश्वोंवाला, रूपवान्, कान्तियुक्त वह अन्नसे सम्पन्न घरके समान सदा सुखकर है ॥८॥

[९] (**यज्ञबन्धुः सः**) यज्ञमें सबका भाई वह अग्नि (**मनुष्यः चेतयत्**) मनुष्योंको ज्ञानयुक्त करता है अध्वर्युगण (**मह्या रशनया तं प्र नयन्ति**) बडी रज्जु द्वारा उसको उत्पन्न करते हैं। (**सः अस्य मर्तस्य दुर्यासु साधन् क्षेति**) वह इस यजमानके घरोंमें उसके कार्योंको करता हुआ निवास करता है। तथा (**देवः सधनित्वं आप**) द्योतमान् अग्नि अपने भक्तके पास प्राप्त होता है ॥९॥

१ **यज्ञबन्धुः मनुष्यः चेतयत्-** यज्ञ अर्थात् संगठनके कार्योंसे प्रेम करनेवाला ही मनुष्योंको ज्ञान दे सकता है।

भावार्थ- जिस प्रकार उत्तम रीतिसे पाली हुई गायका दूध और घी उत्तम तेजका देनेवाला होता है और ऐसी गायका दान भी मनुष्योंमें प्रशंसनीय होता है, उसी प्रकार यह अग्नि भी तेजका देनेवाला होनेसे मनुष्योंमें बहुत प्रशंसनीय है ॥६॥

इस अग्निके तीनों जन्म बहुत उत्तम हैं। इस तीन जन्मोंवाला अनन्त आकाशमें व्याप्त यह अग्नि तेजस्वी शुद्ध होकर हमारे पास आवे ॥७॥

देवोंका दूत, देवोंको बुलानेवाला उत्तम तेजस्वी ज्वालाओंवाला वह, अग्नि उत्तम घरोंमें जानेकी इच्छा करता है और वह अन्न सम्पन्न घरकी तरह सबके लिए सुखकर है ॥८॥

१० स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन् द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥ १० ॥
११ स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्ता ऽऽयोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥ ११ ॥
१२ प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥ १२ ॥

अर्थ- [१०] (देवभक्तं यत् रत्नं अस्य) देवोंके द्वारा भजनीय जो उत्कृष्ट ऐश्वर्य इस अग्निका है उस श्रेष्ठ ऐश्वर्यको (प्रजानन् स अग्निः) अच्छी प्रकारसे जानता हुआ वह अग्नि (नः अच्छ तु नयतु) हमें शीघ्र प्राप्त करावे। (अमृताः विश्वे धिया यत् अकृण्वन्) मरण रहित सब देवताओंने अपनी बुद्धिसे जिस अग्निको उत्पन्न किया उस (सत्यं) अविनाशी अग्निको (पिता जनिता द्यौः) सबको उत्पन्न करनेवाले द्युलोक (उक्षन्) घृतादि आहुतियोंसे सींचते हैं ॥१०॥

[११] (सः प्रथमः) वह अग्नि सबसे प्रथम (पस्त्यासु) मनुष्योंके घरोंमें उत्पन्न हुआ, (अस्य महः रजसः बुध्ने) फिर इस महान् अन्तरिक्षमें तत्पश्चात् अपने मूल स्थान (योनौ जायत) पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ। यह अग्नि (अपात् अशीर्षा) पादरहित मस्तकरहित है। यह (अन्ता गुहमानः वृषभस्य नीळे आयोयुवानः) अन्दर गुप्त होकर जलवर्षी मेघमें अपनेको एक कर देता है ॥११॥

[१२] (ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे) जलके मूल स्थान अन्तरिक्षमें जल सिंचन करनेवाले मेघके स्थानमें स्थित अग्निने (विपन्या प्रथमं शर्धः आर्त) स्तुतिके द्वारा सबसे श्रेष्ठ बलको प्राप्त किया ! (वृष्णे) अपनी कामनाओंकी तृप्तिके लिए (प्रियासः सप्त) प्रेम करनेवाले सात होताने (स्पार्हः युवा, वपुष्यः, विभावा) स्पृहणीय, तरुण, उत्तम शरीरवाले तथा तेजस्वी अग्निको (अजनयन्त) उत्पन्न किया ॥१२॥

१ **वृषभस्य विपन्या प्रथमं शर्धः आर्त-** उस बलवान् अग्निकी स्तुतिसे मनुष्य सर्वोत्तम बल प्राप्त करता है और-

२ **ऋतस्य योना-** सत्यके स्थानमें जाकर विराजता है।

भावार्थ- यज्ञसे प्रेम करनेवाला यह अग्नि मनुष्योंको ज्ञानसे युक्त करता है और वे मनुष्य इसे रस्सीसे मथकर उत्पन्न करते हैं। उत्पन्न होकर वह मनुष्योंके घरोंमें रहता है और उनके साथ मैत्री करता है ॥९॥

अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्यको अग्नि जानता हुआ हमें प्रदान करे। अमर देवों द्वारा उत्पन्न किया गया वह अग्नि द्युलोक द्वारा घृतादिसे सिंचित होता है ॥१०॥

यह अग्नि सर्व प्रथम मनुष्योंके घरमें उत्पन्न हुआ, फिर अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ। इसके न सिर है न पैर अतः यह हमेशा छिपा हुआ रहता है। यह अन्तरिक्षमें जाकर मेघोंसे बिल्कुल मिल जाता है ॥११॥

अन्तरिक्षमें मेघोंमें स्थित अग्नि स्तुतियों के द्वारा बल प्राप्त करता है। सदा तरुण तथा उत्तम शरीरवाले इस अग्निको सात होताओंने उत्पन्न किया ॥१२॥

१३ अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥ १३ ॥
१४ ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन् विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥ १४ ॥
१५ ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ १५ ॥
१६ ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥ १६ ॥

अर्थ- [१३] (अत्र अस्माकं पितरः मनुष्याः ऋतं आशुषाणाः) यहाँ इस लोकमें हमारे पितर मनुष्य गणोंने यज्ञ करते हुए अग्निको (अभि प्रसेदुः) प्राप्त किया था। उन्होंने (उषसः हुवानः) उषाकी स्तुति करते हुए (अश्मव्रजाः वव्रे अन्तः) पर्वतोंसे घिरे हुये, गुहाके अन्धकारमें स्थित (सुदुघाः उस्राः उत् आजन्) दुधारु गौवोंको उस अन्धकारपूर्ण गुहासे बाहर निकाला ॥१३॥

[१४] (ते अद्रिं ददृवांसः मर्मृजत) उन पितर लोगोंने पर्वतको विदीर्ण कर अग्निको शुद्ध किया। (एषां तत् अन्ये अभित वि वोचन्) उनके इस प्रकारके कर्मों का दूसरे लोगोंने सर्वत्र बखान किया। (पश्वयन्त्रासः, कारं अभि अर्चन् ज्योतिः विदन्त) पशुओंकी रक्षाका उपाय जाननेवाले उन्होंने अभीष्ट फल देनेवाले अग्निकी स्तुति की और ज्योति प्राप्त की तथा अपनी (धीभिः चकृपन्त) बुद्धियों द्वारा अपनेको सामर्थ्य युक्त बनाया ॥१४॥

१ धीभिः चकृपन्त ज्योतिः विदन्त- जो बुद्धियों द्वारा अपनेको सामर्थ्य युक्त बनाते हैं, वे ही ज्योति प्राप्त करते हैं।

२ एषां तत् अन्ये अभितः वि वोचन्- इनके उस यशका दूसरे लोग सर्वत्र गान करते हैं।

[१५] (ते नरः) उन सब नेताओंने (उशिजः मनसा गव्यता) अग्निकी कामना करनेवाले मनसे गोलाभकी इच्छा करके (दृध्रं उब्धं, दृळ्हं गाः येमानं परिसन्तं गोमन्तं, वज्रं अद्रिं) द्वारको रोकनेवाले, अच्छी तरह बन्द, सुदृढ, गौवोंके अवरोधक, सर्वत्र व्याप्त, गौवोंसे पूर्ण गोष्ठरूप पर्वतको (दैव्येन वचसा विवव्रुः) दिव्यवाणीसे खोल दिया ॥१५॥

[१६] (ते प्रथमं मातुः धेनोः नाम मन्वत) उन ऋषियोंने सर्वप्रथम मातारूप वाणीका ज्ञान प्राप्त किया। फिर इसके पश्चात् (त्रिः सप्त परमाणी विन्दन्) इक्कीस उत्तम छन्दोंको जाना। तदनन्तर (तत् जानतीः व्राः अभ्यनूषत) उनको जाननेवाली उषाका स्तवन किया, तब (गोः यशसा अरुणीः आविः भुवत्) सूर्यके तेजके साथ अरुण वर्णवाली उषा प्रादुर्भूत हुई ॥१६॥

भावार्थ- इस मर्त्यलोकके सर्व प्रथम प्राचीन मनुष्योंने यज्ञकी इच्छासे अग्निको प्राप्त किया, फिर उन्होंने उषाकी स्तुति करते हुए पर्वतोंकी गुहाओंमें बन्द कर दिए गए दुधारु गायोंको बाहर निकाला ॥१३॥

पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाले प्राचीन मनुष्योंने अग्निको शुद्ध किया और उनकी शूरता का यश चारों और फैला। उन्होंने पशुओंकी रक्षा करके ज्योति प्राप्त की और अपनी बुद्धियोंसे स्वयंको सामर्थ्यवान् बनाया ॥१४॥

नेताओंने गायोंकी इच्छा करते हुए गौवोंसे परिपूर्ण पर्वतकी गुहाको अपनी दिव्य वाणियोंसे ही खोल दिया ॥१५॥

ऋषियोंने सर्व प्रथम वाणीका ज्ञान प्राप्त किया, फिर उस वाणी से २१ छन्दोंका ज्ञान प्राप्त करके उषाकी स्तुति की, तब सूर्यके तेजके साथ उषा प्रकट हुई ॥१६॥

१७ नेशत् तमो दुधितं रोचत द्यौ—रुद् देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ १७ ॥
१८ आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्य—न्नादिद् रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥ १८ ॥
१९ अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवा—मन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥ १९ ॥
२० विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥ २० ॥

अर्थ- [१७] (तमः दुधितं नेशत्) रात्रीके द्वारा उत्पन्न अंधकार उषाकी प्रेरणासे नष्ट हुआ। (द्यौः रोचत) फिर अन्तरिक्ष प्रकाशमान् हुआ। (उषसः देव्याः भानुः उत अर्तः) उषादेवीकी आभा प्रकट हुई और उसके अनन्तर (मर्तेषु ऋजु च वृजिना पश्यन् सूर्यः) मनुष्योंमें सत् और असत् कर्मोंका अवलोकन करता हुआ सूर्य (बृहतः वज्रान् आ तिष्ठत्) विशाल मैदानोंके ऊपर आरूढ हुआ ॥१७॥

[१८] (आदित् बुबुधानाः पश्चा व्यख्यन्) सूर्योदयके अनन्तर ऋषियोंने पृथ्वीकी पीठ पर अग्निको प्रकाशित किया। और (आदित् द्युभक्तं रत्नं) उसके अनन्तर तेजस्वी रत्नोंको धारण किया। तब (विश्वासु दुर्यासु विश्वेदेवाः) समस्त गृहोंमें सब यजनीय देवगण आये। (वरुण, मित्र, धिये सत्यं अस्तु) उपद्रवोंके निवारक और मित्र भूत हे अग्ने! बुद्धिमान् मनुष्यके लिए उसकी सभी कामनाएं सत्य हों ॥१८॥

[१९] (शुशुचानं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठं अग्निं) अत्यन्त दीप्तिमान् देवोंको आह्वान करनेवाले विश्वपोषक और पूजनीयोंमें सर्वश्रेष्ठ अग्निकी (अच्छ वोचेम) हम स्तुति करें। यद्यपि यजमानने (गवां ऊधः शुचिः न अतृणत्) गौवोंके थनोंसे शुद्ध दूध नहीं दुहा है और (अंशोः अन्धः पूतं न परि षिक्तं) सोमको पवित्रतासे नहीं निचोडा है, तो भी तू इस स्तुतिको स्वीकार कर ॥१९॥

[२०] (अग्निः विश्वेषां यज्ञियानां अदितिः) अग्नि समस्त यज्ञीय देवोंको अदितिके समान उत्पन्न करनेवाला और (विश्वेषां मानुषाणां अतिथिः) सम्पूर्ण मनुष्योंके लिए पूजाके योग्य अतिथि है (देवानां अवः आवृणानः जातवेदाः) उत्तम मनुष्योंकी स्तुतियोंको स्वीकार करनेवाला अग्नि स्तुति करनेवालोंके लिये (सुमृळीकः भवतु) सुखकर हो ॥२०॥

भावार्थ- उषाकी प्रेरणासे रात्रीका अन्धकार दूर हुआ, अन्तरिक्ष चमका, उषाकी आभा प्रकट हुई और तब मनुष्योंके सभी तरहके कर्मोंका निरीक्षण करता हुआ सूर्य मैदानोंमें चमकने लग गया। प्रभातकालका बहुत सुन्दर और सजीव चित्रण है ॥१७॥

सूर्योदयके बाद पृथ्वीपर ऋषियोंने यज्ञ शुरु किए और सम्पत्ति युक्त हुए, तब सभी देवता उस यज्ञमें आए। हे मित्र, भूत, अग्ने! इस यज्ञसे बुद्धिमान् की सभी इच्छाएं पूर्ण हों ॥१८॥

हे अग्ने! यह यजमान इतना निर्धन है कि वह गायोंको दुह कर अथवा सोमका रस निकाल कर तुझे प्रदान नहीं कर सकता, तो भी तू उसकी स्तुतिको स्वीकर कर ॥१९॥

अग्नि सभी पूजनीय देवोंको उत्पन्न करनेवाला और समस्त मनुष्योंके लिए पूजनीय अतिथिके समान है। ऐसा उत्तम मनुष्योंकी स्तुतियोंको स्वीकार करनेवाला सर्वज्ञ अग्नि सभीके लिए सुखकर हो ॥२०॥

[२]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२१ यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १ ॥

२२ इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्रांश्च ॥ २ ॥

२३ अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान् विश आ च मर्तान् ॥ ३ ॥

२४ अर्यमणं वरुणं मित्रमेषा-मिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥ ४ ॥

---

[२]

अर्थ- [२१] (अमृतः यः अग्निः मर्त्येषु ऋतावा निधायि) मरणरहित जो अग्नि मनुष्योंके मध्यमें सत्यस्वरूपसे रहता है। (देवेषु अरतिः होता यजिष्ठः देवः) देवोंके बीचमें शत्रुओंका पराभवकर्ता, देवोंको बुलानेवाला तथा सबसे अधिक पूजनीय तेजस्वी अग्नि अपने (मह्ना हव्यैः शुचध्यै मनुषः इरयध्यै) महान् तेजस् हव्योंके द्वारा प्रज्ज्वलित करनेके लिए मनुष्योंको प्रेरित करता है ॥१॥

[२२] हे (सहसः सूनो ऋष्व अग्ने) हे बलके पुत्र तथा दर्शनीय अग्ने! (अद्य नः इह त्वं जातः) आजके दिन हमारे इस कार्यमें उत्पन्न होकर तू अपने (ऋजुमुष्कान् वृषणः च शुक्रान् युयुजानः) कोमल, मांसलयुक्त, बलवान् और दीप्तिमान् अश्वोंको रथमें जोड करके (जातान् उभयान् अन्तः दूतः ईयसे) उत्पन्न हुए हुए देव और मनुष्योंके मध्यमें दूत बन कर जाता है ॥२॥

[२३] हे अग्ने! मैं (ऋतस्य) सत्यस्वरूप तेरे (रोहिता) लाल वर्णवाले (मनसा जविष्ठा, वृधस्नू घृतस्नू) मनकी अपेक्षा भी अधिक वेगवाले अन्नको बढानेवाले और जलकी वर्षा करनेवाले (अत्या मन्ये) घोडोंकी प्रशंसा करता हूँ तू (युष्मान् अरुषा युजानः) अपने दीप्तिमान् घोडोंको रथमें जोड करके (देवान् विशः मर्तान् अन्तः आ ईयसे) देवों और सेवा करनेवाले मनुष्योंके बीचमें घूमता रहता है ॥३॥

[२४] हे (अग्ने) अग्ने! (सु अश्वः सुरथः सु राधाः) उत्तम घोडोंवाला, उत्तम रथवाला और उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर तू (एषां, सु हविषे जनाय) इन मनुष्योंके बीचमें शोभन हविवाले यजमानके लिये (अर्यमणं, वरुणं, मित्रं, इन्द्राविष्णू, मरुतः, अश्विना) अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको (आ वह इत ऊं) इस स्थान पर बुला ला ॥४॥

भावार्थ- मर्त्योंमें अमर वह अग्नि सत्य को स्थापित करता है। ऐसा शत्रुओंका पराभव करनेवाला देवोंको बुलानेवाला अग्नि अपने तेजसे मनुष्योंको हवि प्रदान करनेके लिए प्रेरित करे ॥१॥

हे अग्ने! तू अपने शक्तिशाली पुट्ठोंवाले घोडोंको रथमें जोडकर देव और मनुष्योंके बीचमें उनके कर्मोंका निरीक्षण करनेके लिए जाता है ॥२॥

अग्निके घोडे लाल रंगके मनसे भी वेगवान् वृद्धि करनेवाले तथा घृतादि पदार्थोंकी वर्षा करनेवाले हैं, ऐसे तेजस्वी घोडोंको अपने रथमें जोडकर मनुष्यों और देवोंके बीच जा कर उनके कामोंका निरीक्षण करता है ॥३॥

उत्तम घोडों, रथों और ऐश्वर्यसे सम्पन्न यह अग्नि उत्तम हविवाले मनुष्यके लिए सब देवोंको बुलाकर लाता है ॥४॥

२५ गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥ ५ ॥
२६ यस्त इध्मं जभरत् सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य ॥ ६ ॥
२७ यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन् रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥ ७ ॥
२८ यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान् तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥ ८ ॥

अर्थ- [२५] हे (असुर अग्ने) बलवान् अग्ने! मेरा (एषः यज्ञः गोमान् अविमान् अश्वी) यह यज्ञ गौ, भेड और अश्वको प्राप्त करानेवाला (नृवत्सखा, सदं इत् अप्रमृष्यः, इळावान्) उत्तम मनुष्योंसे भरपूर, सदैव ही विघ्नरहित, अन्नसे सम्पन्न, (प्रजावान् दीर्घः रयिः, पृथुबुध्नः सभावान्) सन्तानोंसे युक्त चिरकालतक रहनेवाले धनसे सम्पन्न दृढ नींववाला और उपदेश करनेवाले ज्ञानियोंसे पूर्ण हो ॥५॥

[२६] हे (अग्ने) अग्ने! (यः ते सिष्विदानः इध्मं जभरत्) जो पुरुष तेरे लिये पसीनेसे युक्त होकर समिधाओंके भारको ढोता है, और (वा त्वया मुर्धानं ततपते) जो तेरी कामनासे अपने मस्तकको काष्ठके बोझसे दुःखी करता है। (तस्य स्वतवान् भुवः पायुः) उस व्यक्तिको तू धनवान् बना एवं उसका पालन कर। तू (सीं, विश्वस्मात् अघायतः उरुष्य) उसकी सब प्रकारके पापियोंसे भी रक्षा कर ॥६॥

१ **यः ते सिष्विदानः इध्मं आभरत् मूर्धानं ततपते, तस्य स्वतवान् भुवः पायुः विश्वस्मात् अघायतः उरुष्य**- जो इस अग्निके लिए बहुत परिश्रम करके पसीनेसे लथपथ हो, अपने सिर पर समिधायें ढोकर लाता है, उसे यह अग्नि धनवान् बनाता है और पापियोंसे चारों ओरसे रक्षा करता है।

[२७] हे अग्ने! (अन्नियते यः ते अन्नं भरात्) अन्नकी कामनासे जो तुझे अन्न देता है, और (चित् मन्द्रं निशिषत्) हर्ष पैदा करनेवाले सोमको तुझे प्रदान करता है, जो (अतिथिं उदीरत्) अतिथिके समान तेरा आदर करता है, और (आ देवयुः दुरोणे इनधते) देवत्वकी इच्छा करके अपने घरमें प्रज्ज्वलित करता है, (तस्मिन् दास्वान् रयिः ध्रुवः अस्तु) उसके घरमें उदारता तथा अचल और बहुत प्रमाणमें सम्पत्ति हो ॥७॥

[२८] हे अग्ने! (यः दोषा, यः उषसि त्वा प्रशंसात्) जो मनुष्य रात्रीकालमें और जो उषःकालमें तेरी स्तुति करता है, तथा (वा हविष्मान् त्वा प्रियं कृणवते) जो हव्यसे युक्त हो करके तुझको प्रसन्न करता है, तो तू (स्वे दमे) उसके अपने घरमें (हेम्यावान् अश्वः यः न दाश्वांसं तं अंहसः पीपरः) सुवर्णसे बने हुये जीनवाले अश्वकी तरह श्रद्धासे हवि देनेवाले उस मनुष्यको पापरूप दरिद्रतासे पार कर ॥८॥

भावार्थ- हे प्राणदाता अग्ने! मेरा यह यज्ञ गौ, बकरी, घोडे, मनुष्योंसे युक्त सदा विघ्नरहित सन्तान देनेवाले अविनश्वर संपति देनेवाला तथा उपदेशक ज्ञानियोंसे युक्त हो ॥५॥

जो बहुत परिश्रम करके इस अग्निकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके धनोंसे समृद्ध होकर पुण्यशाली होता है ॥६॥

इस अग्निको जो हवि देता है, और सोम देता है और अतिथिके समान उसका सम्मान करता है, देवत्वप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उस मनुष्यके घरमें सम्पति हमेशा रहती है ॥७॥

जो मनुष्य इस अग्निकी रात्री और उषःकालमें स्तुति करता है और हविके द्वारा इसको प्रसन्न करता है, वह दरिद्रतासे उसी तरह पार हो जाता है, जिस तरह कोई यात्री तैयार घोडेके द्वारा यात्रा पार कर जाता है ॥८॥

२९ यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन् नैनमंहः परि वरदघायोः ॥ ९ ॥

३० यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठाऽसाम यस्य विधतो वृधासः ॥ १० ॥

३१ चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥ ११ ॥

अर्थ- [२९] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**यः अमृताय तुभ्यं दाशत्**) जो मरणरहित तेरे लिये हव्य प्रदान करता है, (**यतस्रुक**) जो स्रुवाको हाथमें उठाकर (**त्वे दुवः कृणवते**) तेरी सेवा करता है, (**सः शशमानः राया न वि योषत्**) वह स्तोत्र करनेवाला कभी धनधान्यसे रहित नहीं होता तथा (**आघायोः अहंः एनं न परि वरत्**) पापकी इच्छा करनेवाले हिंसकके पाप इसको कभी भी स्पर्श नहीं करते ॥९॥

१ **यः अमृताय दाशत्, दुवः कृणवते राया न वि योषत्, अघायोः अंहः न परिवरत्-** जो इस अमर अग्निको हवि देता और इसकी सेवा करता है, वह कभी भी निर्धन और पापी नहीं होता।

[३०] हे (**रराणः देवः यविष्ठ अग्ने**) आनन्दयुक्त, प्रकाशमान, तरुण अग्ने ! (**त्वं यस्य मर्तस्य**) तू जिस मनुष्यका (**सुधितं, अध्वरं जुजोषः**) सुसम्पादित, हिंसारहित यज्ञका सेवन करता है, (**यस्य सा होत्रा प्रीता इत् असत्**) जिसके यज्ञमें वह होता निश्चय ही आनन्दमें रहता है। (**विधतः, वृधासः असाम**) उस तुझ यज्ञ सेवन करनेवाले अग्निको हम बढानेवाले हों ॥१०॥

१ **त्वं यस्य मर्तस्य अध्वरं जुजोष, स प्रीता इत् असत् -** यह अग्नि जिस मनुष्यके यज्ञका सेवन करता है, वह हमेशा आनन्दमें ही रहता है।

[३१] (**वीता वृजिना पृष्ठा इव**) जैसे अश्वको पालनेवाला उत्तम और खराब पीठवाले घोडोंको अलग अलग कर देता है, उसी प्रकार (**विद्वान्**) ज्ञानवान् अग्नि (**मर्तान् चित्तिं च अचित्तिं चिनवत्**) मनुष्योंके पुण्य और पापको पृथक् पृथक् करे। हे (**देव**) दिव्यगुण सम्पन्न अग्ने ! तू (**सु-अपत्याय च नः राये**) सुन्दर पुत्रकी प्राप्तिके लिये तू हमें श्रेष्ठ धनमें स्थापित कर। तू हमें (**दितिं रास्व च अदितिं उरुष्य**) दानशीलता दे और कंजूससे हमारी रक्षा कर ॥१॥

१ **मर्तान् चित्तिं अचित्तिं चिनवत् -** यह अग्नि मनुष्योंके पाप और पुण्योंको पृथक् पृथक् करता है।

२ **दितिं रास्वं अदितिं उरुष्य-** हमें दानशीलता दे और कंजूसीसे हमारी रक्षा कर।

भावार्थ-जो इस अमर अग्निको आहुति देता है और स्रुवा द्वारा इसकी सेवा करता है, वह कभी भी धनसे रहित और पापी नहीं होता ॥९॥

यह अग्नि जिसके यज्ञमें जाता है, वह हमेशा आनन्दमें रहता है। हम भी इस अग्निको बढानेवाले हों ॥१०॥

यह अग्नि मनुष्योंके पाप और पुण्यकर्मोंको पृथक् पृथक् कर पुण्यशालियोंको उत्तम पुत्र, उत्तम धन और दानशीलता देकर कंजूसीसे उनकी रक्षा करता है ॥११॥

३२ कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥ १२ ॥

३३ त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥ १३ ॥

३४ अधा ह यद् वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥ १४ ॥

३५ अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाऽद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥ १५ ॥

अर्थ- [३२] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**आयोः दुर्यासु निधारयन्तः**) मनुष्यके घरोंमें निवास करनेवाले तथा (**अदब्धाः कवयः**) कभी भी पराजित न होनेवाले, दूरदर्शी देवताओंने, (**कविं**) मेधावी तेरी (**शशासुः**) प्रशंसा की है। (**अतः अर्यः त्वं**) इस कारणसे श्रेष्ठ तू (**दृश्यान् अद्भुतान् एतान् एवैः पड्भिः पश्येः**) दर्शनीय और अद्भुत इन देवोंको गमनशील अपने तेजोंसे देख ॥१२॥

[३३] हे (**घृष्वे, यविष्ठ अग्ने**) तेजस्वी तथा अत्यन्त युवक अग्ने ! (**चर्षणिप्राः, सुप्रणीतिः त्वं**) मनुष्योंकी अभिलाषाका पूरक और उत्तम नेता तू (**सुत सोमाय, विधते वाघते**) सोमको निचोडनेवाले, तेरी सेवा करनेवाले तथा स्तुति करनेवाले मनुष्यके लिए (**पृथु, चन्द्रं, रत्नं अवसे भर**) प्रभूत प्रसन्नताप्रद श्रेष्ठ धन रक्षणके लिए भरपूर दे ॥१३॥

[३४] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**अधा ह वयं त्वाया**) और भी हम तेरी अभिलाषा करते हुये (**पड्भिः हस्तेभिः तनूभिः यत् चकृम**) पैरोंसे, हाथोंसे तथा शरीरके अन्य अवयवोंसे जो कार्य करते हैं, उसी (**भुरिजोः अपसा**) दोनों बाहुओंके द्वारा किए जानेवाले कर्मसे (**आशुषाणाः सुध्यः**) यज्ञ कार्यमें लगे हुये बुद्धिमान् जन (**ऋतं येमुः**) सत्यस्वरूप तुझको उसी प्रकार तैय्यार करते हैं (**क्रन्तः रथं न**) जिस प्रकार शिल्पी रथको ॥१४॥

[३५] (**सप्त दिवस्पुत्राः अंगिरसः**) हम सात आदित्यके पुत्र अंगिरस (**विप्राः भवेम**) ज्ञानी बनें (**अध**) इसके बाद (**मातुः उषसः**) सबका निर्माण करनेवाली, उषासे (**प्रथमः वेधसः नॄन्**) श्रेष्ठसे श्रेष्ठ ज्ञानी मनुष्योंको (**जायेमहि**) उत्पन्न करें, तथा (**शुचन्तः धनिनं अद्रिं रुजेम**) तेजस्वी होकर हम धनसे युक्त पर्वतको फोडें ॥१५॥

भावार्थ- कभी भी पराजित न होनेवाले दूरदर्शी देव भी इस मेधावी अग्निकी प्रशंसा करते हैं, इसलिए यह अग्नि भी अपने तेजसे उन देवोंकी रक्षा करता है ॥१२॥

हे अग्ने ! मनुष्योंकी कामनाओंको पूरा करनेवाला, उत्तम नेता तू सोमयज्ञमें तेरी स्तुति द्वारा उत्तम सेवा करनेवालेको भरपूर धन दे ॥१३॥

हे अग्ने ! हम जिन हाथ, पैर आदि अवयवोंसे जो कर्म करते हैं, उन्हें कर्मों से दूसरे बुद्धिमान् भी तुझको सिद्ध करते हैं ॥१४॥

मनुष्य प्रथम स्वयं ज्ञानी बनकर दूसरोंको भी ज्ञानी बनाएं और इस प्रकार तेजस्वी होकर अनेक तरहके ऐश्वर्योंको प्राप्त करें ॥१५॥

१६ अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ १६ ॥
१७ सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो ऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥ १७ ॥
१८ आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ १८ ॥
१९ अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥ १९ ॥

अर्थ- [३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (अवः) फिर (परासः प्रत्नासः ऋतं यथा आशुषाणाः) श्रेष्ठ, पुरातन, सत्यभूत यज्ञकर्मोंका यथावद् रूपसे अनुष्ठान करनेवाले (नः पितरः) हमारे पितरोंने (शुचि, दीधिति अयन्) उत्तम स्थान और तेजको प्राप्त किया। तथा उन सबोंने (उक्थशासः क्षाम भिन्दन्तः) वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके अन्धकार विनष्ट किया, और (अरुणीः अपव्रन्) अरुण वर्णवाली उषाको प्रकट किया ॥१६॥

[३७] (सुकर्माणः सुरुचः देवयन्तः देवाः) सुन्दर कार्य करनेवाले, शोभन दीप्तियुक्त, देवाभिलाषी दिव्यगुणोंसे सम्पन्न लोग (जनिम) अपने जन्मको उसी प्रकार निर्मल करते है, जिस प्रकार (अयः धमन्तः न) लोहार लोहेको धोंकनीके द्वारा निर्मल करते हैं। तवा (अग्निं शुचन्तः इन्द्रं ववृधन्तः) अग्निको प्रदीप्त करते हुये और इन्द्रको उत्साहित करते हुए उन्होंने ही (परिषदन्तः ऊर्वं गव्यं आ अग्मन्) चारों ओरसे घेर करके गौओंके महान् समूहको प्राप्त किया ॥१७॥

[३८] हे (उग्र) तेजस्विन् अग्ने ! (इव क्षुमति पश्वः यथा) जिस प्रकार धनी मनुष्यके गृहमें पशुओंके समूहकी प्रशंसा होती है, उसी प्रकार (यत् देवानां अन्ति जनिम आ अख्यत्) जो देवोंके समीप उनके जन्मोंकी प्रशंसा करता है, उन (मर्तानां चित् उर्वशीः अकृप्रन्) मनुष्योंकी प्रजा समर्थ होती है और (अर्यः उपरस्य आयोः वृधे चित्) स्वामी भी अपने पुत्र और नौकरादि मनुष्योंके संवर्धनमें समर्थ होता है ॥१८॥

१ यत् देवानां जनिम आ अख्यत्, अयः उपरस्य आयोः वृधे- जो देवोंके जन्मोंका वर्णन करता है, वह स्वामी अपने पुत्र और अन्य मनुष्योंके पालन पोषणमें समर्थ होता है।

[३९] हे अग्ने ! हम (ते अकर्म) तेरी सेवा करते हैं। उसीसे हम (सु-अपसः अभूम) श्रेष्ठ कर्मवाले होते हैं। (विभातीः उषसः ऋतं अवस्रन्) प्रकाशित उषाएं तेरे कारण ही तेजको धारण करती हैं। (देवस्य चारु चक्षुः मर्मृजतः) तेजस्वी तेरे रमणीय तेजको शुद्ध करते हुए हम (अनूनं, पुरुधा सुश्चन्द्रं अग्निं) न्यूनतासे रहित, अनेक प्रकारसे आह्लादकारक अग्निको धारण करते हैं ॥१९॥

१ ते अकर्म सु अपसः अभूम- इस अग्निकी सेवा करनेवाले सदा उत्तम कर्म करते हैं।

भावार्थ- प्राचीन ऋषियोंने यज्ञके द्वारा उत्तम तेजको प्राप्त किया और फिर अपने स्तोत्रोंसे अन्धकारका नाश करके उषाको प्रकट किया ॥१६॥

उत्तम कर्म करनेवाले, उत्तम तेजस्वी तथा दिव्य मनुष्यही अपने जन्मको निर्मल करते हैं, तथा वे अग्नि और इन्द्रकी उपासनासे अनेक तरहके ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥१७॥

जिस प्रकार पुष्ट पशुओंके समूहकी प्रशंसा होती है, उसी प्रकार जो देवोंकी प्रशंसा करता है, उनकी उपासना करता है, उसके पुत्र पौत्रादि हृष्टपुष्ट होते हैं और उनका स्वामी भी उनके पालनपोषणमें समर्थ होता है ॥१८॥

इस अग्निकी सेवा करनेवाले सदा उत्तम कर्म करते हैं। इसीके कारण उषायें तेजको धारण करती हैं। अतः हम भी इस आह्लादकारक तेजको धारण करें ॥१९॥

४० एता ते अग्न उचथानि वेधो ऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥ २० ॥

[३]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः, १ रुद्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४१ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ता- द्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥

४२ अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदे- मा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २ ॥

अर्थ- [४०] हे (**वेधः अग्ने**) विधाता अग्ने ! (**कवये ते एता उचथानि अवोचाम**) तुझ ज्ञानीके लिये इन सम्पूर्ण स्तोत्रोंका हम उच्चारण करते हैं। तू (**ता जुषस्व**) उनको ग्रहण कर और (**उत् शोचस्व**) पूर्ण रूपसे उदीप्त हो और (**नः वस्यसः कृणुहि**) हमको अतिशय धनसेयुक्त कर। हे (**पुरुवार**) बहुतोंसे वरणीय अग्ने! हमें (**महः रायः प्रयन्धि**) महान् ऐश्वर्य भी प्रदान कर ॥२०॥

[३]

[४१] हे मनुष्यो ! (**अचित्तात् स्तनयित्नोः पुरा**) चंचल विद्युतकी उत्पत्तिसे पूर्व ही (**अध्वरस्य राजानं**) यज्ञके अधिपति (**होतारं**) देवोंको बुलानेवाले (**रुद्रं**) शत्रुओंको रुलानेवाले (**रोदस्योः सत्ययजं**) द्यावापृथ्वीके बीचमें सत्य यज्ञ करनेवाले (**हिरण्यरूपं अग्निं**) सोनेके समान तेजस्वी हम अग्निको (**अवसे कृणुध्वं**) अपनी रक्षाके लिए उत्पन्न करो ॥१॥

१ **अचितात् स्तनयित्नोः पुरा अग्निं कृणुध्वं**- कभी दीखनेवाली, कभी न दीखनेवाली चंचल बिजलीके पहले ही अग्निको उत्पन्न करना चाहिए। अर्थात् चातुर्मास्यके पहले ही यज्ञ समाप्त हो जाने चाहिए ऐसा विधान है।

[४२] (**पत्ये उशती सुवासाः जाया इव, वयं ते यं चकृम**) पतिकी कामना करती हुई सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित स्त्री जिस प्रकारसे अपने समीप पतिके लिये स्थान प्रस्तुत करती है, उसी प्रकारसे हे अग्ने ! हम लोग तेरे लिए जिस स्थानको तैय्यार करते हैं, (**अयं योनिः**) यही तेरा स्थान हैं ! हे (**स्वपाक**) श्रेष्ठ कर्मोंके करनेवाले (**परिवीतः**) अपने तेज द्वारा चारों ओर व्याप्त तू (**अर्वाचीनः नि षीद**) हम लोगोंके सामने विराजमान है। (**इमाः ते प्रतीची उ**) ये स्तुतियाँ तेरी ओर प्रेरित हो रही हैं ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तुझ ज्ञानीके लिए हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंको तू स्वीकार कर और हमें उत्तम धनोंमें युक्त कर ॥२०॥

हे मनुष्यो ! चंचल बिजलीसे युक्त बरसातसे पूर्व ही इस यज्ञके अधिपति, तेजस्वी अग्निको अपनी रक्षाके लिए उत्पन्न करो ॥१॥

जिस प्रकार पतिसे प्रेम करनेवाली पत्नी अच्छे अच्छे वस्त्रोंसे सुशोभित होकर अपने पतिको उत्तम स्थान देती है, उसी प्रकार हम भी अग्निको उत्तम स्थान देते हैं, वह अग्नि हमारे पास आकर बैठे और हमारी स्तुतियों को सुने ॥२॥

४३ आशृण्वते अदृपिताय मन्म　नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस　ग्रावेव सोता मधुषुद् यमीळे　॥ ३ ॥
४४ त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या　ऋतस्य बोध्यृतचित् स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि　कदा भवन्ति सख्या गृहे ते　॥ ४ ॥
४५ कथा ह तद् वरुणाय त्वमग्ने　कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै　ब्रवः कदर्यम्णे कद् भगाय　॥ ५ ॥
४६ कद् धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने　कद् वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे　ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने　॥ ६ ॥
४७ कथा महे पुष्टिंभराय पूष्णे　कद् रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद् विष्णव उरुगायाय रेतो　ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै　॥ ७ ॥

अर्थ- [४३] हे (वेधः) ज्ञानी ! (ग्रावा इव मधुषुत्ः सोता यं ईळे) पत्थरकी तरह सोम निचोडनेवाला जिस अग्निकी स्तुति करता है, तू भी उस (आशृण्वते अदृपिताय नृचक्षसे सुमृळीकाय) स्तोत्रोंके सुननेवाले, अभिमान रहित, मनुष्योंके द्रष्टा, सुखदाता एवं (अमृताय देवाय मन्म, शस्ति शंस) अमर, दिव्यगुणयुक्त अग्निके लिये स्तोत्र और स्तुतिवचनोंका पाठ कर ॥३॥

[४४] हे (अग्ने) अग्ने ! (ऋतचित् सु आधीः) ज्ञानी और उत्तम कर्म करनेहारा (त्वं चित् नः) तू ही हम लोगोंके (ऋतस्य अस्याः शम्या बोधि) यज्ञके इस कर्मको जान। (ते उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति) तेरे स्तोत्र हमारे लिए आनन्ददायक कब होंगे ? तथा हमारे (गृहे ते सख्या कदा भवन्ति) घरमें तेरी मित्रता कब होगी ? ॥४॥

[४५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं तत् वरुणाय कथा गर्हसे) तू हमारे उस कर्मकी वरुणसे क्यों निन्दा करता है ? (ह दिवे कथा) निश्चयसे हमारे कर्मकी निन्दा सूर्यसे क्यों करता है ? (नः आगः कत्) हम लोगोंका क्या अपराध है ? (मीळ्हुषे मित्राय पृथिव्यै कथा ब्रवः) सुख देनेवाले मित्र और पृथ्वीसे निन्दा क्यों की ? तथा (अर्यम्णे भगाय कत्) अर्यमा और भग नामक देवोंसे भी क्यों हमारी निन्दाकी बात कही ? ॥५॥

[४६] हे (अग्ने) अग्ने ! जब तू (धिष्ण्यासु वृधसानः कत्) यज्ञमें घृतादि आहुतियोंसे बढता है तब उन बातोंको क्यों कहता है ? (प्रतवसे शुभंये परिज्मने नासत्याय वाताय क्षे कत्) महान् बली, शुभकारी, सर्वत्र गतिमान्, सत्यमें अग्रणी वायुके लिये और पृथ्वीके लिये यह कथा क्यों कहता है ? तथा हे (अग्ने) अग्ने ! (नृघ्ने, रुद्राय कत् ब्रवः) पापी मनुष्योंके मारनेवाले रुद्रके लिये भी यह कथा क्यों सुनाता है ? ॥६॥

[४७] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (महे पुष्टिंभराय पूष्णे कथा) महान्, पुष्टिप्रद पूषाके लिये यह पाप क्यों कहता है ? (सुमखाय हविर्दे, रुद्राय कत्) उत्तम यज्ञवाले हविप्रद रुद्रके लिये यह बात किसलिये कहता है ? तथा (उरुगायाय विष्णवे रेतः कत्) बहुतों द्वारा प्रशंसाके योग्य विष्णुके लिये क्षयहेतु पाप क्यों कहता है ? एवं (बृहत्यै शरवे कत् ब्रवः) महान् संवत्सरसे यह अधर्म युक्त बात क्यों बोलता है ? ॥७॥

भावार्थ - हे मनुष्य ! पत्थरके समान सोम निचोडनेवाला मनुष्य जिस तरह इस अग्निकी स्तुति करता है, उसी तरह तू भी इस अमृत देवकी स्तुति कर ॥३॥

उत्तम कर्म करनेहारा तथा ज्ञानी यज्ञाग्नि सभी यज्ञ कर्मोंका देवता होनेसे उन्हें अच्छी तरह जानता है। इसके प्रसन्न होनेपर इसके स्तोत्र हमारे लिए आनन्ददायक होते हैं और हमारे घरोंसे यह मित्रता स्थापित करता है ॥४॥

४८ कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ८ ॥
४९ ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत् पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९ ॥
५० ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १० ॥
५१ ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११ ॥

अर्थ- [४८] हे अग्ने ! तू (**ऋताय मरुतां शर्धाय कथा**) सत्यके कारणरूप मरुतोंके समूहोंसे यह बात क्यों कहता है? (**पृच्छ्यमानः बृहते सूरे कथा**) पूछे जानेपर महान् सूर्यके लिये यह कथा क्यों कहता है? तथा (**अदितये तुराय प्रति ब्रवः**) अदितिके लिये और द्रुतगामी वायुके लिये मेरे अपराध सम्बन्धी बात क्यों बोलता है? हे (**जातवेदः**) सबको जाननेवाले सर्वज्ञ! तू (**चिकित्वान् दिवः साध**) सब कुछ जान कर तेजको सिद्ध कर ॥८॥

[४९] हे (**अग्ने**) अग्ने! हम (**ऋतेन नियतं ऋतं गोः आ ईळे**) जल और गायके दूधकी याचना करते हैं। (**आमा, मधुमत् पक्वं सचा**) यह गौ कच्ची अवस्थामें भी मधुर और पक्व दूधको धारण करती हैं। (**कृष्णा सती एषा**) कृष्णवर्णवाली होकर भी यह गौ (**रुशता धासिना जामर्येण पयसा पीपाय**) तेजोयुक्त एवं पुष्टिकारक दूधसे प्रजाकी पालना करती है ॥९॥

[५०] (**वृषभः पुमान् अग्निः**) बलवान् पराक्रमी अग्नि (**ऋतेन पृष्ठ्येन पयसा अक्तः**) उत्तम पोषक दूध द्वारा सिंचित होता है। (**वयोधाः हि ष्म चित् अस्पन्दमानः अचरत्**) अन्नदाता अग्नि एक जगह रहता हुआ भी तेजसे सर्वत्र विचरता है। तथा (**वृषा पृश्निः शुक्रं ऊधः दुदुहे**) जलवर्षक सूर्य शुद्ध जलका दोहन करता है ॥१०॥

[५१] (**अंगिरसः ऋतेन अद्रिं भिदन्तः**) अङ्गिरसोंने अपनी सत्यशक्तिसे पर्वतको विदीर्ण करके शत्रुओंको दूर (**व्यसन् गोभिः सं नवन्त**) फेंकनेके पश्चात् गौवोंको प्राप्त किया। (**नरः शुनं उषसं परिसदन्**) लोगोंने सुखपूर्वक उषाको प्राप्त किया। तदनन्तर (**अग्नौ जाते**) अग्निके उत्पन्न होनेपर (**स्वः आविः अभवत्**) सूर्य प्रकट हुआ ॥११॥

भावार्थ- अपने भक्तसे कोई पाप भी हो जाए, तो भी यह ज्ञानवान् अग्नि अपने उस भक्त की निन्दा नहीं करता या उसके पापकी बात सबसे नहीं करता, अपितु उसे सुधारकर उसे तेज ही प्रदान करता है ॥५-८॥

गायें स्वयं कम अवस्थावाली होती हुई भी पक्के तथा मधुर दूधको धारण करती हैं, इसी प्रकार स्वयं किसी भी वर्णकी हों, पर उन सबका दूध पुष्टिकारक ही होता है। इसी प्रकार समाजमें मनुष्य किसी जाति, धर्म या सम्प्रदायके हों, पर उन सबके काम समाज उन्नत करनेवाले ही होने चाहिए ॥९॥

यह बलवान् और पराक्रमी अग्नि उत्तम दूधसे सिंचित होकर अपने तेजसे सर्वत्र जाता है और वही सूर्य बनकर अन्तरिक्षसे शुद्ध जलको बरसाता है ॥१०॥

अङ्गिरा ऋषियोंने अपनी अविनश्वर शक्तिसे अन्धकाररूपी पर्वतोंको फोडकर गाय अर्थात् किरणें प्राप्त की, उन्हीं किरणोंसे उन्होंने उषाको भी प्राप्त किया। उषाके उदय होनेपर अग्नि प्रज्ज्वलित हुई और तब सूर्यका उदय हुआ ॥११॥

५२ ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित् स्रवितवे दधन्युः ॥ १२ ॥

५३ मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥ १३ ॥

५४ रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद् वावृधानम् ॥ १४ ॥

५५ एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान् स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥ १५ ॥

अर्थ- [५२] हे **(अग्ने)** अग्ने! **(अमृताः अमृक्ताः मधुमद्भिः अर्णोभिः देवीः आपः)** अविनाशिनी, अखण्डरूपसे बहनेवाली मधुरजलोंवाली दिव्य नदियां **(सर्गेषु प्रस्तुभानः वाजी न, ऋतेन)** युद्धोंमें जानेके लिये प्रोत्साहित अश्वकी तरह, सत्यसे प्रेरित होकर **(सदमित् स्रवितवे प्र दधन्युः)** सदैव बहनेके लिये जाती हैं ॥१२॥

[५३] हे **(अग्ने)** अग्ने! तू **(कस्य ह्रुरः क्षयं मा गाः)** किसी भी हिंसक मनुष्यके यज्ञमें मत जा **(प्रमिनतः वेशस्य मा)** दुष्ट बुद्धिवाले पडोसी के यज्ञमें मत आ। **(आपेः मा)** मेरे किसी दुष्ट बन्धु बांधवके यज्ञमें मत जा, तथा **(अनृजोः भ्रातुः ऋणं मा वेः)** कुटिल चित्तवाले बन्धुके हविकी कामना मत कर। हम लोग भी **(सख्युः रिपोः दक्षं मा भुजेम)** मित्र अथवा शत्रुकी शक्तिके आश्रित न रहें ॥१३॥

[५४] हे **(सुमख अग्ने)** उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाले अग्ने! तू हम लोगोंका **(रारक्षाणः)** विशेष रक्षक होकर तथा हमसे **(प्रीणानः)** प्रसन्न होकर **(तव रक्षणेभिः)** अपने रक्षणके सामर्थ्यसे **(नः रक्ष)** हमारी रक्षा कर तथा **(प्रति स्फुर)** हमारे लिए प्रज्ज्वलित हो। हमारे **(विळु अंहः विरुज)** घोरसे घोर पापका विनाश कर। एवं जो **(महि चित् वावृधानं रक्षः जहि)** महान् होकर भी बढे हुए राक्षसको विनष्ट कर दे ॥१४॥

[५५] हे **(अग्ने)** अग्ने! हमारे **(एभिः अर्कैः सुमनाः भव)** इन स्तोत्रोंके द्वारा तू प्रसन्न मनवाला हो। हे **(शूर)** पराक्रमी! हमारे **(इमान् वाजान्, मन्मभिः स्पृश)** इन अन्नोंको स्तोत्रोंके साथ ग्रहण कर। **(उत अङ्गिरः ब्रह्माणि जुषस्व)** और भी हे अंगरसके ज्ञाता अग्ने! तू हमारे स्तोत्रोंका ग्रहण कर! तथा **(देववाता शस्तिः ते सं जरेत)** देवोंको प्रसन्न करनेवाली स्तुति तुझको भी संवर्धित करे ॥१५॥

भावार्थ- इसी सत्यशक्तिके कारण मधुरजलोंवाली नदियां भी हमेशा अखण्डरूपसे बहती रहती हैं ॥१२॥

हे अग्ने! तू किसी भी हिंसक, मेरा अहित चाहनेवाले मेरे पडौसी, कुटिलचित्तवाले भाईके यज्ञमें मत जा, हम भी तेरी शक्तिको छोडकर और किसी भी शत्रु या मित्रकी शक्तिके आश्रित न रहें ॥१३॥

हे अग्ने! हमारा रक्षक तू हमसे प्रसन्न होकर अपनी शक्तिसे हमारी रक्षा कर, तथा हमारे भयंकर पापका तथा भयंकर राक्षसोंको भी विनष्ट कर ॥१४॥

हे अंगोंमें बहनेवाले रसोंके ज्ञाता अग्ने! तू हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न हो और हमारे द्वारा दी गई हवियोंसे और अधिक प्रज्ज्वलित हो ॥१५॥

५६ एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्या॒न्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥ १६ ॥

[४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- रक्षोहाऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५७ कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानो ऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥

५८ तव भ्रमास आशुया पत॒न्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गा॒नसंदितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २ ॥

अर्थ- [५६] हे (वेधः अग्ने) ज्ञानी अग्ने ! (विदुषे कवये तुभ्यं) विद्वान् और दूरदर्शी तेरे लिये (नीथानि निण्या, निवचना काव्यानि) फलदायक, अत्यन्त गूढ, अधिक व्याखयके, योग्य काव्योंका और (एता विश्वा वचांसि) इन समस्त स्तुतियोंका (मतिभिः उक्थैः) स्तोत्रों और मंत्रोंके साथ (विप्रः) मैं बुद्धिमान् (अशंसिषं) उच्चारण करता हूँ ॥१६॥

[४]

[५७] हे अग्ने ! (पृथ्वीं प्रसितिं न) जिस प्रकार कोई व्याध अपने विस्तीर्ण जालको फैलाता है, उसी प्रकार (पाजः कृणुष्व) अपने बलको विस्तृत कर ! (अमवान् राजा इभेन इव) बलवान् राजा जिस प्रकार हाथीपर चढकर जाता है, उसी प्रकार (याहि) तू भी जा । (प्रसितिं तृष्वीं अनु द्रूणानः) शत्रुकी सेनाका शीघ्रतापूर्वक पीछा करता हुआ (अस्ता असि) उस सेनाको तू नष्ट करके, (तपिष्ठैः रक्षसः विध्य) अपने तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंसे राक्षसोंको बींध ॥१॥

[५८] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव भ्रमासः आशुया पतन्ति) तेरी घूमनेवाली किरणें शीघ्रतासे जाती हैं। (शोशुचानः) अत्यन्त तेजस्वी तू (धृषता) अपने शत्रुनाशक सामर्थ्यसे (अनु स्पृश) शत्रुओंको छू अर्थात् जला डाल । (असंदित) किसीसे भी न रोके जानेवाला तू (जुह्वा) अपनी ज्वालासे (तपूंषि) तेज (पतंगान्) चिनगारियां और (उल्का) उल्काओंको (विष्वक् सृज) चारों ओर उत्पन्न कर ॥२॥

भावार्थ-हे ज्ञानी अग्ने ! मैं विद्वान् और दूरदर्शी तेरे लिए अत्यन्त गूढार्थवाले होनेसे व्याख्याकी आवश्यकतावाले मंत्रों और स्तुतियोंका उच्चारण करता हूँ ॥१६॥

हे अग्ने ! जिस प्रकारको व्याध चिडियोंको पकडने के लिए अपने जालको फैलाता है उसी प्रकार तू अपने बलको फैला और जिस प्रकार एक वीर राजा हाथी पर बैठकर शत्रु सेनापर चढता चला जाता है, उसी प्रकार तू शत्रुओंपर आक्रमण कर। उन शत्रुसेनाका पीछा करके तू उनका संहार कर और अपने तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंसे जो राक्षस हों उन्हें बींध डाल ॥१॥

हे अग्ने ! तेरी घूमनेवाली किरणें सर्वत्र जाती हैं, अतः तू अपनी इन सामर्थ्यशाली किरणोंसे शत्रुओंको जला डाल, तथा अपनी ज्वालाओंसे तू तेज, चिनगारी और उल्काओंको उत्पन्न कर। अग्निकी किरणें क्षणमें ही सर्वत्र फैल जाती हैं। इन किरणोंके तेजके कारण जितने भी राक्षस अर्थात् मनुष्यको खानेवाले रोगजन्तु हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं ॥२॥

५९ प्रति॒ स्पशो॒ वि सृ॑ज॒ तूर्णि॑तमो॒ भवा॑ पा॒युर्वि॒शो अ॒स्या अद॑ब्धः ।
यो नो॑ दू॒रे अ॒घशं॑सो॒ यो अन्त्यग्ने॒ माकि॑ष्टे॒ व्यथि॒रा द॑धर्षीत् ॥ ३ ॥
६० उद॑ग्ने तिष्ठ॒ प्रत्या त॑नुष्व॒ न्य१॑मित्राँ॑ ओषतात् तिग्महेते ।
यो नो॒ अरा॑तिं समिधान च॒क्रे नी॒चा तं ध॑क्ष्यत॒सं न शुष्क॑म् ॥ ४ ॥
६१ ऊ॒र्ध्वो भ॑व॒ प्रति॑ वि॒ध्याध्य॒स्मदा॒विष्कृ॑णुष्व॒ दैव्या॑न्यग्ने ।
अव॑ स्थि॒रा त॑नुहि यातु॒जूनां॑ जा॒मिमजा॑मि॒ प्र मृ॑णीहि॒ शत्रू॑न् ॥ ५ ॥

अर्थ- [५९] हे (अग्ने) अग्ने! (तूर्णितमः) अत्यन्त वेगवान् तू (स्पशः) अपने चरोंको (प्रति वि सृज) चारों ओर प्रेरित कर। (अदब्धः) किसीसे भी न दबनेवाला तू (अस्याः विशः) इन प्रजाओंका (पायुः भव) पालक हो। (यः अघशंसः नः दूरे) जो पापी हमसे दूर है और (यः नः अन्ति) जो हमारे पास है, उनमेंसे कोई भी (व्यथिः) दुःखदेनेवाला शत्रु (ते माकिः आ दधर्षीत्) तेरे भक्तोंको पीडित न करे ॥३॥

१ तूर्णितमः स्पशः प्रति वि सृजः- हे अग्ने! शीघ्रतासे काम करनेवाला तू अपने चरोंको चारों ओर प्रेरित कर। राजा अपने राज्यमें चारों ओर गुप्तचारोंका जाल बिछाये।

२ अदब्धः विशः पायुः- किसीसे भी न दबनेवाला वीर राजा अपनी प्रजाओंका पालन करनेवाला हो।

३ यः अघशंसः दूरे अन्ति, माकिः आ दधर्षीत्- जो पापवचनों या दुष्टवचनोंको बोलनेवाला हो, चाहे वह पास हो या दूर इन प्रजाओंको न सताये।

[६०] हे (अग्ने) अग्ने! तू (उत् तिष्ठ) उठकर खडा हो, (प्रति आ तनुष्व) अपनी किरणोंको फैला, हे (तिग्महेते) तीक्ष्णशस्त्रोंवाले अग्ने! तू (अमित्रान् नि ओषतात्) शत्रुओंको जला डाल, हे (सं इधान) सम्यक् रीतिसे प्रज्वलित अग्ने! (यः नः अरातिं चक्रे) जो हमसे शत्रुता करता है, (तं नीचा धक्षि) उस नीचको उसी प्रकार जला डाल, (शुष्कं अतसं न) जिस प्रकार सूखे ईंधनको जलाता है ॥४॥

[६१] हे (अग्ने) अग्ने! तू (ऊर्ध्वः भव) ऊपरकी तरफ जल, तथा (अस्मत् अधि) हमसे अधिक बलशाली शत्रुओंको (प्रतिविध्य) बींध और इस प्रकार (दैव्यानि आविः कृणुष्व) अपने दिव्य तेजोंको प्रकट कर। (यातुजूनां) राक्षसोंसे (स्थिरा अव तनुहि) दृढ शस्त्रास्त्रोंको शिथिल कर, तथा (जामि अजामि शत्रून्) बन्धु और बन्धुत्वसे हीन शत्रुओंको (मृणीहि) मार ॥५॥

भावार्थ- अग्निकी किरणें ही उसके चर हैं, जो सर्वत्र घूमते रहते हैं, वह अपने तेजसे सब मनुष्योंका पालन करता है और उसके भक्तको कोई भी पापी पीडित नहीं कर सकता। राजा भी अपने राज्यमें सर्वत्र गुप्तचरोंकी नियुक्ति करे और अपनी प्रजा का उत्तम रीतिसे पालन करे। कोई भी पापी उसके राज्यमें रहकर प्रजाको न सता सके, इस प्रकार वह राजा दुष्टों पर नियंत्रण करता हुआ शासन करे ॥३॥

हे अग्ने! तू प्रदीप्त होकर अपनी किरणोंको चारों ओर फैला और अपने तेजसे शत्रुओंको जला डाल। जो हमसे शत्रुता करता है, उस नीच शत्रुको सूखी लकडीके समान जला दे। राजा भी सदा तैयार रहकर अपने प्रतापको सर्वत्र फैलाकर अपने शत्रुओंका संहार करे। जो राज्यकी प्रजाओंसे द्वेष करता है या राज्यकी प्रजाओंमें जो अदानशील हो, कंजूस उसे राजा अपने तेजसे उसी प्रकार जला दे, जिस प्रकार अग्नि सूखे काष्ठको जलाती है ॥४॥

हे अग्ने! तू प्रज्वलित होकर हमसे अधिक बलशाली शत्रुओंको भी नष्ट कर और इस प्रकार अपने दिव्य तेजोंको प्रकट कर। शत्रुओंके शस्त्रास्त्रोंको शिथिल कर तथा जो हमारे सम्बन्धी होकर भी शत्रुताका व्यवहार करते हैं और सम्बन्धी न होकर भी शत्रुता का व्यवहार करते हैं, उन्हें तू मार। इसी प्रकार राजा भी शत्रुओंको मारकर अपने प्रतापको प्रकट करे! शत्रुको, चाहे वह हमारा सम्बन्धी हो या पराया, मार ही देना चाहिए। प्रकट शत्रुकी अपेक्षा प्रच्छन्न शत्रु ज्यादा खतरनाक होता है ॥५॥

६२ स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥ ६ ॥
६३ सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानु—र्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥ ७ ॥
६४ अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमा—ऽस्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८ ॥

अर्थ- [६२] हे **(यविष्ठ)** अत्यन्त तरुण अग्ने! **(यः)** जो मनुष्य **(ईवते ब्रह्मणे)** उत्तम मार्गोंमें प्रेरित करनेवाले महान् अग्निकी और **(गातुं ऐरत्)** स्तोत्रोंतो प्रेरित करता है, **(सः)** वही पुरुष **(ते सुमतिं जानाति)** तेरी उत्तम कृपाको जानता या प्राप्त करता है। वह **(अस्मै)** इस पुरुषके **(विश्वानि सु दिनानि)** सभी दिन उत्तम करता है और उसे **(द्युम्नानि रायः)** चमकनेवाले धन प्रदान करता है, तब **(अर्यः)** उस श्रेष्ठ पुरुषका (दुरः) घर **(अभि वि द्यौत्)** अच्छी तरह चमकने लगता है ॥६॥

१ **यः ब्रह्मणे गातुं ऐरत् सः सुमतिं जानाति-** जो इस महान् अग्निकी स्तुति करता है, वह इस देवकी कृपाको प्राप्त करता है।

२ **विश्वानि दिनानि सु-** उसके सभी दिन उत्तम होते हैं।

३ **अर्यः दुरः वि द्यौत्-** उस श्रेष्ठ पुरुषका घर धनके कारण चमकने लगता है।

[६३] हे **(अग्ने)** अग्ने! **(यः नित्येन हविषा)** जो प्रतिदिन हविके द्वारा तथा **(यः उक्थैः)** जो स्तोत्रोंके द्वारा **(त्वा)** तुझे **(पिप्रीषति)** तृप्त करना चाहता है, **(सः इत्)** वह ही **(सुभगः सुदानुः अस्तु)** उत्तम भाग्यशाली और उत्तम दानशाली हो, **(अस्मै)** इसके घर तथा जीवनके **(विश्वा इत् सु दिना)** सभी दिन उत्तम हों तथा **(सा इष्टिः असत्)** वह यज्ञ भी इसके लिए सुफलदायक हो ॥७॥

१ **यः हविषा नित्येन पिप्रीषति, सः इत् सुभगः सुदानुः-** जो हविके द्वारा प्रतिदिन इस अग्निको तृप्त करना चाहता है, वह उत्तम भाग्यशाली होकर उत्तम रीतिसे दानशील अर्थात् उदार हृदयवाला होता है।

२ **अस्मै स्वे आयुषि विश्वा इत् सुदिना-** इस मनुष्यके जीवनके सभी दिन उत्तम होते हैं।

[६४] हे अग्ने! मैं **(ते सुमतिं अर्चामि)** तेरी उत्तम बुद्धिकी सेवा करता हूं। **(वावाता इयं गीः)** बार बार तेरी तरफ जानेवाली यह वाणी **(ते अर्वाक् घोषि)** तेरी तरफ जाकर तेरे गुणोंका बखान करे तथा **(जरताम्)** तेरी प्रशंसा करे। **(सु अश्वाः सु रथाः)** उत्तम घोडों और उत्तम रथोंसे युक्त होकर हम **(त्वा मर्जयेम)** तुझे शुद्ध करें तथा तू भी **(अनु द्यून्)** प्रतिदिन **(अस्मे क्षत्राणि धारयेः)** हमारे अन्दर सब तरहके बलोंको स्थापित कर ॥८॥

भावार्थ- जो इस युवक अग्निके लिए उत्तम स्तुति करता है, वही पुरुष इस अग्निकी कृपाको प्राप्त करता है, उसके सभी दिन उत्तम रीतिसे कटते हैं। वह सदा धनैश्वर्यसे सम्पन्न होने के कारण उसका घर धनसे भरे रहनेके कारण सदा चमकता रहता है ॥६॥

जो प्रतिदिन हवि द्वारा और स्तुति अर्थात् यज्ञके द्वारा इस अग्निको उत्तम रीतिसे तृप्त करता है, उसे यह अग्नि हर तरहके ऐश्वर्य प्रदान करके सौभाग्यशाली बनता है और वह भी धनवान् तथा सौभाग्यशाली बनकर उदार बनता है। अर्थात् कंजूस नहीं होता। ऐसे सौभाग्यशालीके जीवनके सभी दिन आनन्द और सुखसे कटते हैं ॥७॥

हे अग्ने! मैं तेरी उत्तम बुद्धिकी मैं पूजा करता हूँ, मेरे द्वारा उच्चारी गई वाणी तेरे पास जाकर तेरी प्रशंसा करे, अर्थात् मैं सदा अपनी वाणीसे तेरी ही प्रशंसा करूं और उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त होकर तुझे अच्छी तरह प्रदीप्त करूं ताकि मैं सब तरहके बलोंका स्वामी होऊं ॥८॥

६५ इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन् दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमा ऽभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥ ९ ॥
६६ यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् ॥ १० ॥
६७ महो रुजामि बन्धुता वचोभि स्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥ ११ ॥
६८ अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्या ऽग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥ १२ ॥

अर्थ- [६५] हे अग्ने! मनुष्य (**इह**) यहां इस जगत्में (**दोषावस्तः**) रात और दिन अर्थात् (**अनु धून**) प्रतिदिन (**दीदिवांसं त्वा**) अत्यन्त तेजस्वी तेरी (**त्मन्**) स्वयं ही (**भूरी उप आ चरेत्**) अच्छी तरह सेवा करे। हम भी (**जनानां द्युम्ना अभि तस्थिवांसः**) शत्रु मनुष्योंके धनों पर अधिकार करते हुए तथा (**क्रीळन्तः**) खेलते हुए (**सुमनसः त्वा अभि सपेम**) उत्तम मनवाले होकर तेरी पूजा करें ॥९॥

[६६] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**यः सु-अश्वः सु हिरण्यः**) जो उत्तम घोडोंवाला तथा उत्तम सोनेवाला पुरुष (**वसुमता रथेन**) धन युक्त रथसे (**त्वा उपयाति**) तेरे पास जाता है, और (**यः**) जो मनुष्य (**ते आतिथ्यं**) तेरे आतिथ्यको (**आनुषक् जुजोषत्**) हमेशा करना चाहता है, तू (**तस्य त्राता भवसि**) उस मनुष्यका रक्षक होता है और (**तस्य सखा**) उसका मित्र होता है ॥१०॥

१ **यः ते आतिथ्यं आनुषक् जुजोषत् तस्य त्राता सखा भवसि**- हे अग्ने! जो तेरा अतिथिके समान सत्कार करता है, उसका तू रक्षक और मित्र होता है।

[६७] हे (**होतः यविष्ठ सुक्रतो**) देवोंको बुलानेवाले अत्यन्त तरुण तथा उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने! मैं (**वचोभिः बन्धुता**) अपने स्तोत्रोंके कारण जो भ्रातृत्व प्राप्त किया है, उससे मैं (**महः**) बडे बडे राक्षसोंको भी (**रुजामि**) नष्ट करता हूँ। (**तत्**) वह स्तोत्र (**मा**) मुझे (**पितुः गोतमात्**) अपने पिता गौतमसे (**अनु इयाय**) प्राप्त हुआ था। हे (**दमूनाः**) शत्रुओंको दबानेवाले अग्ने! (**त्वं**) तू (**नः**) हमारे (**अस्य वचसः**) इस स्तुतिको (**चिकिद्धि**) जान ॥११॥

[६८] हे (**अमूर अग्ने**) सर्वज्ञ अग्ने! (**तव**) तेरी (**अस्वप्नजः**) सदा जागती रहनेवाली (**तरणयः**) शीघ्रतासे जानेवाली, (**सुशेवाः**) सुख देनेवाली, (**अतन्द्रासः**) आलस्यसे रहित (**अवृकाः**) अहिंसक (**अश्रमिष्ठाः**) न थकनेवालीं (**सध्र्यञ्चः**) एक साथ मिलकर चलनेवालीं (**पायवः**) रक्षा करनेवालीं (**ते**) वे किरणें (**निषद्य**) हमारे पास आकर (**नः पान्तु**) हमारी रक्षा करें ॥१२॥

भावार्थ- हे अग्ने! हर मनुष्य प्रतिदिन अत्यन्त तेजस्वी तेरी सेवा स्वयं आत्मस्फूर्तिसे प्रेरित होकर करे, जबर्दस्ती नहीं। हम भी शत्रुओंके धनों पर अधिकार करते हुए, अपने घरोंमें अपनी सन्तानोंके साथ क्रीडा करते हुए तथा उत्तम मनसे युक्त होकर तेरी पूजा किया करें ॥९॥

हे अग्ने! जो उत्तम घोडोंवाला होकर धनसे भरे रथ पर बैठकर तेरे पास तेरा अतिथिके समान सत्कार करनेके लिए आता है, उसकी तू रक्षा करता है और मित्र बनकर उसका हित करता है ॥१०॥

हे अग्ने! स्तुति करके मैंने जो तेरा भ्रातृत्व प्राप्ति किया है, उस भ्रातृत्वको महिमासे मैं बडे से बडे राक्षसोंको भी नष्ट करूं। तू मेरी इस प्रार्थनाको सुन ॥११॥

हे सर्वज्ञ अग्ने! तेरी किरणें कभी न सोनेवालीं, शीघ्रतासे सर्वत्र जानेवालीं, सुख देनेवालीं, आलस्यसे रहित अहिंसक तथा न थकनेवाली है। वे रक्षक किरणें हमारी रक्षा करें ॥१२॥

६९ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
रक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः ॥ १३ ॥
७० त्वया वयं सधन्य१स्त्वोता स्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यताते ऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥ १४ ॥
७१ अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥ १५ ॥

[५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

७२ वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद् भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनो प स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥ १ ॥

अर्थ- [६९] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**ये ते पायवः**) जो तेरी रक्षा करनेवाली किरणें हैं, उन्होंने (**पश्यन्तः**) देखकर (**अन्धं मामतेयं**) अन्धे ममतापुत्रको (**दुरितात् अरक्षन्**) दुरितसे बचाया। (**विश्ववेदाः**) सब कुछ जाननेवाले अग्निने (**तान् सुकृतः**) उसके समस्त पुण्योंकी (**ररक्ष**) रक्षा की तब (**दिप्सन्तः इत् रिपवः**) हरानेकी इच्छा करनेवाले शत्रु भी (**नाह देभुः**) इसे नहीं दबा सके ॥१३॥

[७०] हे (**अह्रयाण**) न जाने जानेवाली गतिवाले अग्ने ! (**त्वया वयं सधन्यः**) तेरे कारण हम धन्य हैं। (**त्वा ऊताः**) तेरे द्वारा रक्षित होकर हम (**तव प्रणीती**) तेरे बताये मार्ग पर चलकर (**वाजान् अश्याम**) अन्नोंको प्राप्त करें। (**सत्यताते**) सत्यका प्रसार करनेवाले अग्ने ! तू (**उभा शंसा सूदय**) दूर और पास दोनों शत्रुओंको नष्ट कर, (**अनुष्ठुया कृणुहि**) यह काम तू सदा कर ॥१४॥

१ **त्वया वयं सधन्यः**- तेरे कारण हम धन्य हैं।

२ **तव प्रणीती वाजान् अश्याप**- तेरे बताये मार्ग पर चलकर हम अन्नोंको प्राप्त करें।

[७१] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**अया समिधा**) इस समिधासे (**ते विधेम**) तुझे प्रदीप्त करते हैं, तू (**शस्यमानं स्तोत्रं**) हमारे द्वारा बोले जाते हुए स्तोत्रको (**प्रति गृभाय**) स्वीकार कर, (**अशसः रक्षसः**) तेरी स्तुति न करनेवाले राक्षसोंको तू (**दह**) जला डाल, तथा हे (**मित्रमहः**) मित्रके समान पूज्य अग्ने ! तू (**अस्मान्**) हमारी (**द्रुहः निदः अवद्यात् पाहि**) द्रोह, निन्दा और दुष्टतासे रक्षा कर ॥१५॥

[५]

[७२] (**सजोषाः**) समान प्रीतिवाले हम (**मीळ्हुषे**) सुखकारी (**बृहद्भाः**) अत्यन्त तेजस्वी (**वैश्वानराय अग्नये**) वैश्वानर अग्निके लिए (**कथा दाशेम**) किस प्रकार हवि दें ? वह अग्नि (**अनूनेन बृहता वक्षथेन**) कहींसे भी न्यूनतासे रहित, विशाल शरीरसे (**उप स्तभायत्**) सम्पूर्ण विश्वको उसी प्रकार थामे हुए हैं, (**उपमित् रोधः न**) जिस प्रकार खम्बा भवनको आधार देता है ॥१॥

भावार्थ- अग्नि अर्थात् ज्ञानीका तेज अन्धे ममताके पुत्रकी रक्षा करता है। ममताके कारण मनुष्य अन्धा हो जाता है और वह मनमाना व्यवहार करने लगता है, तब ज्ञानीका तेज उसे आंखें अर्थात् विवेक प्रदान करके उसे सन्मार्गपर लाकर उसके पुण्योंकी रक्षा करता है। तब काम क्रोधादि शत्रु उसे फिरसे दबानेकी कोशिश करते हैं, पर नहीं दबा पाते ॥१३॥

इस अग्निकी सहायता जिसे मिल जाती है, वह धन्य हो जाता है, जो उसके बताये मार्ग पर चलता है, वह हर तरहके अन्नोंको प्राप्त करता है और उसके सभी शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥१४॥

हे अग्ने ! हम समिधाओंसे तुझे प्रदीप्त कर तेरी स्तुति करते हैं, अतः तू हमारी स्तुतियोंको स्वीकार कर, पर जो तेरी स्तुति नहीं करते, उन राक्षसोंको जला डाल। पर हमारी तू हर तरहके दुष्ट कर्मोंसे रक्षा कर ॥१५॥

७३ मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ २ ॥
७४ साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वा-नग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥ ३ ॥
७५ प्र ताँ अग्निर्बभसत् तिग्मजम्भ-स्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥ ४ ॥
७६ अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [७३] (यः स्वधावान्) जिस अन्नसे भरपूर (गृत्सः अमृतः विचेताः) मेधावी, अमर, विशेष बुद्धिमान् (नृतमः यह्वः वैश्वानरः अग्निः देवः) अत्यन्त श्रेष्ठ नेता, महान् वैश्वानर अग्नि देवने (पाकाय मर्त्याय मह्यं) ज्ञानी और मरणशील मुझे (इमां रातिं ददौ) इस धनके दानका दिया था, उसकी (मा निन्दत) निन्दा मत करो ॥२॥

[७४] (द्विबर्हा) दोनों लोकोंमें अपनी ज्वालाओंको फैलानेवाला (तिग्मभृष्टिः) तीक्ष्ण तेजवाला (सहस्ररेताः वृषभः तुविष्मान्) हजारों तरहके बलवाला, पराक्रमी, साहसी (अग्निः) अग्नि (गोः पदं न अपगूळ्हं) गायके पदके समान छिपे हुए (मनीषां) ज्ञानियोंके (महि साम विविद्वान्) महान् ज्ञानको जानता हुआ (मह्यं प्र इत् वोचत्) मेरे लिए उसका उपदेश करे ॥३॥

१ **मनीषां महि साम प्र वोचत्**- ज्ञानियोंके महान् ज्ञानका उपदेश सर्वत्र करे।

[७५] (ये) जो मनुष्य (चेततः वरुणस्य मित्रस्य) ज्ञानवान् वरुण और मित्रके (प्रिया ध्रुवाणि धाम) प्रिय और ध्रुव तेजोंको (प्र मिनन्ति) नष्ट करते हैं (तान्) उन्हें, (यः सुराधाः तिग्मजम्भः अग्निः) जो उत्तम ऐश्वर्यवाला, तीक्ष्ण दाढोंवाला अग्नि है, वह (तपिष्ठेन शोचिषा) अपने अत्यन्त तेजसे (बभसत्) जला डाले ॥४॥

[७६] (अभ्रातरः योषणः न) बन्धुबान्धवोंसे रहित स्त्री जिस प्रकार कुमार्ग पर चलती है उसी प्रकार (व्यन्तः) कुमार्ग पर चलनेवाले अथवा (पतिरिपः जनयः न) पतिसे द्वेष करनेवाली स्त्रियां जिस प्रकार दुराचारिणी हो जाती हैं, उसी प्रकार (दुरेवाः) दुराचारी (अनृताः असत्याः) ऋत अर्थात् नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले, असत्य बोलनेवाले (पापासः) पापियोंने (इदं गभीरं पदं) इस अगाध नरकस्थानको (अजनत) उत्पन्न किया है ॥५॥

१ **व्यन्तः दुरेवाः अनृताः असत्याः पापासः इदं गभीरं पदं अजनत**- कुमार्ग पर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले असत्य शील पापियोंने ही इस गंभीर नरकका निर्माण किया है।

भावार्थ- जिस प्रकार खम्भे भवनको आधार देकर उसे स्थिर रखते हैं, उसी प्रकार यह अग्नि अपने विशाल शरीरसे सारे संसारको थामे हुए है, इसी लिए इस अग्निका नाम वैश्वानर अर्थात् विश्वका रक्षक है ॥१॥

जिस अन्नके स्वामी बुद्धिमान अमर, महान् वैश्वानर देवने मुझे बुद्धिमान् और मरणशील मनुष्यको धन प्रदान किया, उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। जो दान देनेवाला मनुष्य हो, उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए।

पृथ्वी और द्यु इन दोनों लोकोमें अपनी ज्वालाकों फैलानेवाला, तीक्ष्ण तेजवाला, हजारों तरहके बलसे युक्त अग्नि ज्ञानियोंके महान् ज्ञानको सर्वत्र फैलाये। यह ज्ञान वाणी के पदोंके समान छिपा रहता है। उसका राष्ट्रमें प्रचार करना चाहिए ॥३॥

जो अज्ञानी ज्ञानसे युक्त मित्र और वरुणके व्रतोंका उल्लंघन करते हैं या उनके तेजोंका नाश करना चाहते हैं, उन नास्तिक और दुष्टोंको यह तीक्ष्ण दाढों अर्थात् तीक्ष्ण ज्वालाओंवाला अग्नि जला डाले। राष्ट्रमें भी जो ऐसे लोग हों कि जो राष्ट्रीय अनुशासनका उल्लंघन करते हैं, उन्हें ज्ञानीजन या नेता नष्ट करें ॥४॥

७७ इदं मे अग्ने कियते पावका ऽमिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद् दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६ ॥

७८ तमिन्न्वे३व समना समान मभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्ने रग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥ ७ ॥

७९ प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग् वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥ ८ ॥

अर्थ- [७७] हे (**पावक अग्ने**) पवित्र करनेवाले अग्ने ! (**कियते, गुरुं भारं न**) जिस प्रकार कोई उदार मनुष्य थोडा मांगनेवालेके लिए भी बहुत ज्यादा दे देता है, उसी प्रकार (**अमिनते**) किसी की हिंसा न करनेवाले (**मे**) मुझे तू (**धृषता प्रयसा**) शत्रुओंको हराने योग्य शक्तिसे युक्त (**गभीरं यह्वं**) अगाध, महान् (**पृष्ठं**) आधार देनेवाले (**सप्तधातु**) सात धातुओंसे युक्त (**बृहत् मन्म**) विशाल धन (**दधाथ**) प्रदान कर ॥६॥

[७८] (**अग्रे**) सबसे पहले जिस (**जबारु चारु**) वेगसे जानेवाले सुन्दर वैश्वानर मण्डलको (**ससस्य पृश्नैः रुपः अधि**) पदार्थ को उत्पन्न करनेवाली, विविधवर्णोंवाली पृथ्वीके ऊपर (**चर्मन् आरुपितं**) विचरनेके लिए स्थापित किया था, (**तं इत् नु समानं**) उसी समदृष्टिवाले वैश्वानरको हमारी (**समना**) मनपूर्वक की गई (**पुनती धीतिः**) पवित्र करनेवाली स्तुति (**क्रत्वा अभि अश्याः**) कर्म के द्वारा प्राप्त हो ॥७॥

[७९] (**मे अस्य वचसः किं प्रवाच्यं**) मेरी इस वाणीमें निन्द्य ऐसी कौनसी बात है ? (**वदन्ति**) ज्ञानी भी कहते हैं कि (**उस्रियाणां यत्**) गायोंके जिस दूधको दुहनेवाले (**वारि इव अप व्रन्**) जलके समान दुहते हैं उसी दूधको अग्निने (**निणिक् गुहा हितम्**) अच्छी तरह गुहामें छिपाया है, वही अग्नि (**वेः रुपः**) विशाल पृथ्वीके (**प्रियं अग्रं पदं पाति**) प्रिय और मुख्य स्थानकी रक्षा करता है ॥८॥

भावार्थ- स्वर्ग और नरक इसी पृथ्वी पर है। बन्धुबान्धवोंसे रहित तथा पतिसे द्वेष करनेवाली स्त्री जिस प्रकार दुराचारिणी होकर कुमार्ग पर चलती है, उसी प्रकार कुमार्ग पर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले, असत्य बोलनेवाले पापियोंने ही इस पृथ्वी पर अगाध नरक स्थानका निर्माण किया है। ऐसे ही दुष्ट मनुष्य देशको नरक बना देते हैं, अतः उनका नाश करना अत्यन्त आवश्यक है ॥५॥

हे पवित्र करनेवाले अग्ने ! जिस प्रकार कोई उदार मनुष्य थोडा मांगने पर भी ज्यादा देता है, उसी प्रकार तू किसीकी हिंसा न करनेवाले मुझे सात तरहके विशाल धन प्रदान कर ॥६॥

पहले प्रजापतिने आदित्यमण्डलका निर्माण किया और उसे पदार्थको उत्पन्न करनेवाली विविध रंगोंवाली पृथ्वीके ऊपर स्थापित किया। तबसे आदित्यमण्डल विचरण कर रहा है ॥७॥

ऋषि इस वैश्वानरअग्निकी जो प्रशंसा करता है, उसमें असत्यता जरा भी नहीं है। वैश्वानर अग्नि वस्तुतः महान् है, यह उसीकी महिमा है कि जिस दूधको दुहनेवाले जलकी तरह दुहते हैं, उसे उसने गायके थन रूपी गुहामें छिपा दिया है। वैश्वानर अर्थात् प्राणियोंको जीवित रखनेवाला शरीरस्थ अग्नि ही गायके स्तनोंमें दूधको प्रेरित करता है और वही इस पृथ्वीके मुख्य स्थान यज्ञकी रक्षा करता है ॥८॥

८० इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद् रघुयद् विवेद ॥ ९ ॥
८१ अध द्युतानः पित्रोः सचासा ऽमनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद् गो–र्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥ १० ॥
८२ ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमान–स्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत् पृथिव्याम् ॥ ११ ॥
८३ किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥ १२ ॥

अर्थ- [८०] (इदं) यह (त्यत् महां महि पूर्व्यं अनीकं) उस महान् आदित्यकी महान् और श्रेष्ठ सेना है (यत्) जिसके कारण (उस्रिया गौः सचते) दुधारु गाय संयुक्त होती है । (ऋतस्य पदे) ऋतके स्थानमें (दीद्यानं) चमकनेवाले तथा (रघुष्यत्) वेगसे जानेवाले सूर्यको (विवेद) मैंने जान लिया है, वह (गुहां रघुयत्) गुहामें शीघ्रतासे जाता है ॥९॥

[८१] (पित्रोः सचा द्युतानः) द्यावापृथ्वीके बीचमें चमकनेवाला सूर्य (पृश्नेः चारु गुह्यं) गायके उत्तम दूधको (आसा अमनुत) मुंहसे पीता है । (गोः मातुः परमे पदे) गाय माता के उत्कृष्ट स्थानमें (अन्ति सत्) निहित दूधको (वृष्णः शोचिषः प्रयतस्ये) बलवान् तेजस्वी और प्रयत्न करनेवाले देवकी (जिह्वा) जिह्वा पीती है ॥१०॥

[८२] (पृच्छ्यमानः) पूछे जाने पर मैं (नमसा) विनम्रता पूर्वक (ऋतं वोचे) यह सत्य बात ही कहता हूँ कि हे (जातवेदः) जातवेद अग्ने! (तव आशसा) तेरे आशिर्वादसे (यत् इदं) जो कुछ यह है, (अस्य त्वं क्षयसि) उसका तू ही घर है । (दिवि यत् उ द्रविणं) द्युलोकमें जो कुछ धन है (यत् पृथिव्यां) जो कुछ पृथिवीमें है, अथवा (यत् ह विश्वं) जो सम्पूर्ण धन है, उसका भी तू स्वामी है ॥११॥

१ दिवि पृथिव्यां यत् द्रविणं अस्य त्वं क्षयसि- द्युलोक और पृथ्वीलोकमें जो कुछ धन है, उसका तू ही स्वामी है ।

[८३] हे (जातवेद) सम्पूर्ण उत्पन्न विश्वको जाननेवाले अग्ने! (अस्य) इस ऐश्वर्यमेंसे (किं द्रविणं नः) कौनसा धन हमारे लिए योग्य है, तथा (कत् ह रत्न) कौनसा रत्न हमारे लिए योग्य है, उसे (चिकित्वान्) सब कुछ जाननेवाला तू (नः वोचः) हमें बता । (अध्वनः) उत्तम मार्गसे जानेवाले (नः) हमारे लिए योग्य (यत् परमं) जो उत्तम ऐश्वर्य (गुहा) गुहामें निहित है, उसे (नः) हमें बता, हम (निदानाः) निन्दित होकर (रेकु पदं न अगन्म) खाली घरोंमें न जायें ॥१२॥

१ अध्वनः नः परमं- उत्तम मार्गसे जानेवाले हमें उत्तम ऐश्वर्य मिले। जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसे उत्तम ऐश्वर्य मिलता है ।

२ निदानाः रेकु पदं न अगन्म- हम निन्दित होकर खाली अर्थात् निर्धनके घर न जाएं ।

भावार्थ- यह उस वैश्वानर अग्नि अर्थात् सूर्यकी महान् किरणोंकी सेना ही है, जिसके कारण दूध देनेवाली गायें अर्थात् जल बरसानेवाले मेघ आपसमें संयुक्त होते हैं। सूर्यकी किरणोंके कारण ही मेघोंकी उैत्पत्ति होती है। द्यु में चमकनेवाले सूर्यकी किरणें ही बिजलीके रूपमें गुहामें अर्थात् बादलोंमें रहकर वेगसे सर्वत्र जाती है ॥९॥

द्यावापृथ्वीके बीचमें चमकनेवाला सूर्य मेघोंमें छिपे हुए पानीको पीता है ॥१०॥

इस विश्वमें जो कुछ धन और ऐश्वर्य है, वह सब इस अग्निका ही है, वही इन सब धनोंका स्वामी है, यह एक सत्य है, जिसे सबको नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए। मनुष्य 'सब धन अग्निका' है। यह सोचकर घमण्ड न करे धनवान् होकर भी नम्र बना रहे ॥११॥

८४ का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥ १३ ॥
८५ अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥ १४ ॥
८६ अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद् वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥ १५ ॥

अर्थ- [८४] (**का वयुना मर्यादा**) ऐश्वर्य प्राप्तिकी मर्यादा क्या, (**कत् ह वामं**) तथा रमणीय धन क्या, हम सभी ऐश्वर्योंकी तरफ उसी तरह (**गमेम**) जाएं, जिस प्रकार (**रघवः वाजं न**) वेगवाने घोडे युद्धकी तरफ जाते हैं। (**अमृतस्य सूरः**) अमरणशील सूर्यकी (**देवी पत्नीः उषासः**) तेजसे युक्त पत्नी उषायें (**वर्णेन**) अपने प्रकाशसे (**नः कदा ततनन्**) हमारी उन्नति कब करेंगी? ॥१३॥

[८५] (**अनिरेण**) नीरस (फल्ग्वेन) निष्फल, (**प्रतीत्येन**) कठिन और (**कृधुना**) बहुत छोटी (**वचसा**) वाणीसे (**अतृपासः**) मनुष्य अतृप्त ही रहते हैं। (**अध**) तब हे (**अग्ने**) अग्ने! (**इह**) यहां इस यज्ञमें वे लोग (**ते किं वदन्ति**) तेरी स्तुति क्या करेंगे? (**अन्- आयुधासः असता सचन्तां**) शस्त्रसे रहित अर्थात् पराक्रमहीन लोग दुःखसे युक्त हों ॥१४॥

१ **अनिरेण फल्ग्वेन वचसा अतृपासः किं वदन्ति-** नीरस और निष्फल वाणीके कारण अतृप्त रहनेवाले मनुष्य अग्निकी स्तुति क्या करेंगे?

२ **अत्- आयुधासः असता सचन्तां-** शस्त्र धारण न करनेवाले पराक्रमहीन मनुष्य हमेशा दुःखी ही रहते हैं।

[८६] (**समिधानस्य**) प्रदीप्त होनेवाले (**वृष्णः**) बलशाली (**वसोः**) सबको बसानेवाले (**अस्य**) इस अग्निका (**अनीकं**) तेज (**श्रिये**) मनुष्यके कल्याणके लिए (**दमे आ रुरोच**) घरमें सदा प्रकाशित होता रहता हैं। (**रुशत् वसानः**) तेजको धारण किए हुए होनेके कारण (**सुदृशीकरूपः**) सुन्दर, देखने योग्य रूपवाला तथा (**पुरुवारः**) बहुतोंके द्वारा वरणीय यह अग्नि उसी तरह (**अद्यौत्**) प्रकाशित होता है, जिस प्रकार (**क्षितिः राया न**) कोई मनुष्य ऐश्वर्यके कारण चमकता है ॥१५॥

१ **अस्य अनीकं श्रिये दमे आ रुरोच-** इस अग्निका तेज मनुष्यके कल्याणके लिए ही घरमें प्रकाशित होता है।

भावार्थ- हे अग्ने! इस विश्वमें जितना कुछ ऐश्वर्य भरा पडा है, उसमेंसे कौनसा धन और रत्न हमारे लिए योग्य है, उसे बता हम सदा उत्तम मार्गसे जाननेवाले हैं, अतः हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर ताकि हमारी स्थिति ऐसी न हो कि हमें किसी निर्धनके घर जाकर भीख मांगनी पडे और निन्दाके पात्र बनें ॥१२॥

हम धन क्या, ऐश्वर्यका अर्थात् सभी कुछ प्राप्त करें और प्रतीदिन आनेवाली सूर्यकी पत्नी उषा अपने प्रकाशसे हमारी उन्नति करती रहे ॥१३॥

जिनकी वाणी रुखी रहती है, जो कभी भी मधुरतासे नहीं बोलते, जिनका बोलना निष्फल ही रहता है, अर्थात् जो सदा बकवास करते रहते हैं तथा जिनकी वाणी बहुत ही नीच होती है, वे स्वयं अतृप्त अर्थात् असन्तोषी रहते हैं। वे भला अग्नि जैसे श्रेष्ठ देवकी स्तुति क्या करेंगे? ऐसे मनुष्य कभी पराक्रमी भी नहीं हो सकते इसलिए वे हमेशा दूसरोंके दास बने रहकर दुःख ही पाते हैं ॥१४॥

प्रदीप्त होनेवाले बलशाली इस अग्निका तेज मनुष्यके कल्याण के लिए सर्वत्र प्रकाशित होता है। यह हमेशा तेजको धारण करनेके कारण सुन्दर रूपवाला होकर उसी तरह चमकता है, जिस प्रकार ऐश्वर्य की प्राप्ति होने पर मनुष्य ॥१५॥

[६]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— अग्निः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।]

८७ ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होत॒रग्ने॒ तिष्ठ॑ दे॒वता॑ता॒ यजी॑यान् ।
त्वं हि विश्व॑म॒भ्यसि॒ मन्म॒ प्र वे॒धस॑श्चित् तिरसि मनी॒षाम् ॥ १ ॥
८८ अमू॑रो॒ होता॒ न्य॑सादि वि॒क्ष्व१॒॑ग्निर्म॒न्द्रो वि॒दथे॑षु॒ प्रचे॑ताः ।
ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒तेवा॑श्रे॒न्मेते॑व धू॒मं स्त॑भाय॒दुप॒ द्याम् ॥ २ ॥
८९ य॒ता सु॑जू॒र्णी रा॒तिनी॑ घृ॒ताची॑ प्रद॒क्षि॒णिद् दे॒वता॑तिमुरा॒णः ।
उदु॒ स्वरु॑र्नव॒जा नाक्रः॑ प॒श्वो अ॑नक्ति सु॒धितः॑ सु॒मेकः॑ ॥ ३ ॥
९० स्ती॒र्णे ब॒र्हिषि॑ समिधा॒ने अ॒ग्ना ऊ॒र्ध्वो अ॑ध्व॒र्युर्जु॑जुषा॒णो अ॑स्थात् ।
पर्य॒ग्निः प॑शु॒पा न होता॑ त्रिवि॒ष्ट्ये॑ति प्र॒दिव॑ उरा॒णः ॥ ४ ॥

---

[६]

अर्थ- [८७] हे (अध्वरस्य होतः अग्ने) यज्ञके होता अग्ने ! (यजीयान्) याज्ञिकोंमें श्रेष्ठ तू (देवताता न ऊर्ध्वः ऊ षु तिष्ठ) यज्ञमें हम लोगोंकी अपेक्षा ऊंचे स्थानपर बैठ। (त्वं हि विश्वं मन्म अभ्यसि) तू ही हमारी सम्पूर्ण प्रार्थनाओंको जाननेवाला है और (वेधसः चित् मनीषां प्र तिरसि) ज्ञानियोंकी बुद्धिको बढानेवाला है ॥१॥

१ यजीयान् ऊर्ध्वः तिष्ठति- यज्ञ करनेवाला सदा उन्नत रहता है।

२ वेधसां मनीषा प्र तिरसि (ति) - यज्ञसे बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि बढती है।

[८८] (अमूरः होता मन्द्रः प्रचेताः अग्निः) बुद्धिशाली, यज्ञ करनेवाला, प्रसन्नताको देनेवाला और उत्तम ज्ञानी अग्नि (विदथेषु विक्षु नि असादि) यज्ञमें प्रजाओंके मध्यमें बैठता है। वह (सविता इव भानुं ऊर्ध्वः अश्रेत्) सूर्यकी तरह अपनी किरणोंको ऊपरकी ओर फेंकता है और (मेता इव द्यां उप धूमं स्तभायत्) खम्भेकी तरह द्युलोकके ऊपर धूमको धारण करता है ॥२॥

[८९] (यता सुजूर्णिः घृताची रातिनी) उठाई गई, पुरातन, घृतको धारण करनेवाली स्रुवा घृतसे पूर्ण है। (देवतातिं उराणः प्रदक्षिणित्) यज्ञकी वृद्धि करनेवाला अध्वर्यु यज्ञके चारों ओर घूमता है। (नवजाः स्वरुः न उदु) नया बनाया गया यूप सीधा खडा हुआ है। और (अक्रः सुमेकः सुधितः पश्वः अनक्ति) आक्रमण करनेवाला, तेजस्वी, अच्छी प्रतिभा सम्पन्न, सबको देखनेवाला अग्नि पूर्ण रूपसे प्रज्वलित हो रहा है ॥३॥

[९०] (बर्हिषि स्तीर्णे अग्नौ समिधाने) कुशके बिछाये जाने तथा अग्निके समृद्ध होनेपर (अध्वर्युः जुजुषाणः ऊर्ध्वः अस्थात्) अर्ध्वयु देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये तैयार होता है। (प्रदिवः अग्निः होता) दिव्य गुणयुक्त तेजस्वी होता (उराणः) हव्यको विस्तृत करता हुआ (पशुपा न त्रिविष्टि परि एति) पशुपालककी तरह तीन बार प्रदक्षिणा करता है ॥४॥

भावार्थ- यज्ञमें इस अग्निका सर्वोच्च स्थान रहता है। इसलिए यह सभी भक्तोंकी प्रार्थनाको सुनता है और उनकी मननशीलताको बढाता है ॥१॥

यह सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी अग्नि यज्ञोंमें प्रजाओंमें जाकर बैठता है और अपनी किरणों और धुंएको द्युलोकमें फेंकता है। अग्निका ऊर्ध्वज्वलन प्रसिद्ध ही है। इसी तरह अग्रणी नायकको सदा उन्नतिकी तरफ ही बढना चाहिए ॥२॥

घी से भरी हुई स्रुवायें आहुति के लिए उठाई जा रही हैं। ऋत्विग्गण यज्ञाग्निकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। पासमें ही नवीन और उत्तम लकडीसे बना हुआ यूप स्तंभ खडा हुआ और कुण्डमें ज्ञानी और तेजस्वी अग्नि प्रज्वलित हो रहा है ॥३॥

कुशके बिछाये जाने तथा अग्निके प्रज्ज्वलित होने पर अध्वर्यु देवोंको प्रसन्न करनेके लिए तैय्यार होता है और उस यज्ञाग्निकी तीन बार परिक्रमा करता है ॥४॥

९१ परि त्मना मितद्रुरेति होता ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥ ५ ॥
९२ भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग् घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत् ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः ॥ ६ ॥
९३ न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको३ ऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
९४ द्विर्यं पञ्च जीजनन् त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥ ८ ॥

अर्थ- [९१] (मन्द्रः, होता, मधुवचाः ऋतावाः अग्निः) प्रसन्नता प्रदान करनेवाला होमनिष्पादक, मधुर शब्द करनेवाला, यज्ञवान् अग्नि (मितद्रुः त्मना परि एति) धीमे गतिवाला होकर स्वंय चारो ओर परिक्रमा करता हैं। (अस्य शोकाः वाजिनः न द्रवन्ति) इसकी किरणें घोडे के समान सब ओर दौडती हैं। (यत् अभ्राट् विश्वा भुवना श्रयन्ते) जब यह प्रदीप्त होता है उस समय सारे लोग इससे डर जाते हैं ॥५॥

१ मन्द्रः मधुवाचाः अग्निः परि एति- आनन्द देनेवाला और मधुर भाषण करनेवाला तेजस्वी नेता अपने यशसे चारों ओर जाता है।

२ यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते- जब यह अग्नि प्रज्ज्वलित होता है, तब सभी लोक इससे डरते हैं।

[९२] हे (सु अनीक अग्ने) सुन्दर ज्वालावाले अग्ने! (घोरस्यः सतः विषुणस्य) भयके देनेवाले होते हुए भी सर्वत्र व्याप्त (ते चारुः भद्रा संदृक्) तेरी सुन्दर और कल्याणकारी कांति अच्छी प्रकार दृष्टिगोचर होती है। (यत् ते शोचिः तमसा न वरन्त) क्योंकि तेरा प्रकाश अंधकारसे ढका नहीं जा सकता और (ध्वस्मानः तन्वि रेपः न आ धुः) राक्षसादि तेरे शरीरमें पाप स्थापित नहीं कर सकते हैं ॥६॥

[९३] (जनितोः यस्य सातुः न अवारि) सबको उत्पन्न करनेवाले जिस अग्निके दानका निवारण कोई नहीं कर सकता (मातरापितरा दष्टौ नू चित् न) द्यावा-पृथ्वी भी जिसकी इच्छपूर्ति करनेमें शीघ्र समर्थ नहीं होते, (अध सुधितः पावकः अग्निः) बुद्धिशाली, पवित्र करनेवाला अग्नि (मानुषीषु विक्षु मित्रः न दीदाय) मनुसे सम्बन्धित प्रजाओं-मनुष्योंके बीचमें मित्रकी तरह दीप्तिमान् होता है ॥७॥

[९४] (उषर्बुधं, दन्तं, शुक्रं) उषःकालमें जागनेवाले, दविभक्षक, तेजस्वी (सु आसं यं अग्निं) उत्तम रूपसे प्रतिष्ठित जिस अग्निको (तिरभं परशुं न) तीक्ष्ण फरसेके समान (मानुषीषु विक्षु संवसानाः) मनावी प्रजाओंमें रहनेवालीं (द्विपंच स्वसारः अथर्यः) दस बहिनरूपी अंगुलियां (जीजनन्) उत्पन्न करती हैं ॥८॥

भावार्थ- आनन्ददायक, मधुर शब्द करनेवाला यह अग्नि अपनी गतिसे चारों ओर व्याप्त होता है। इसकी किरणें चारों ओर फैलती है और जब यह प्रज्ज्वलित होता है, तब सारे लोक इससे डरते हैं ॥५॥

यह तेजस्वी अग्नि अपने शत्रुओंके लिए भयजनक होता हुआ भी अपने मित्रोंके लिए सुन्दर और कल्याणकारी है। इसका तेज अन्धकारसे ढका नहीं जा सकता, तथा दुष्ट मनुष्य इसका संहार भी नहीं कर सकते ॥६॥

सबको उत्पन्न करनेवाले इस अग्निके द्वारा दिए जाते हुए दानको कोई रोक नहीं सकता। द्यावापृथ्वीभी इसकी इच्छा पूरी करनेमें समर्थ नहीं होते। ऐसा महिमाशाली यह अग्नि मानवी प्रजाओंके बीचमें मित्रकी तरह प्रकाशित होता है ॥७॥

उषःकालमें जगनेवाले तेजस्वी तथा तीक्ष्ण फरसेके समान शत्रुके विनाशक इस अग्निको मानवी प्रजाओंकी दस बहिन रूपी अंगुलियां मथकर प्रकट करती हैं ॥८॥

९५ तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ॥ ९ ॥
९६ ये ह त्ये ते सहमाना अयास—स्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥ १० ॥
९७ अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदु—र्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥ ११ ॥

[७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्, १ जगती, २-६ अनुष्टुप्।]

९८ अयमिह प्रथमो धायि धातृभि—र्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचु—र्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १ ॥

अर्थ- [९५] हे (अग्ने) अग्ने! (तव त्ये) तेरे वे (घृतस्नाः रोहितासः) घृत बढानेवाले, लाल रंगके (ऋज्यंचः स्वंचः) सरल गति से उत्तम प्रकारसे जानेवाले (अरुषासः वृषणः) तेजस्वी और युवा (ऋजुमुष्काः दस्माः) सुगठित अवयवोंवाले और सुन्दर (हरितः) घोडे (देवताति अह्वन्त) यज्ञमें बुलाये जाते हैं ॥९॥

[९६] हे (अग्ने) अग्ने ! (ह ये त्ये सहमानाः) जो शत्रुओंको हरानेवाली (अयासः दुवसनासः ते अर्चयः) गमनशील, दमकती हुई, पूजाके योग्य तेरी रश्मियां (श्येनासः न अर्थं चरन्ति) अश्वोंकी तरह गन्तव्य स्थानपर जाती हैं। वे तेरी रश्मियां (मारुतं शर्धः न तुविष्वणसः) मरुत्‌गणोंकी तरह अत्यन्त ध्वनि करती हैं ॥१०॥

[९७] हे (समिधान) देदीप्यमान् अग्ने ! (तुभ्यं ब्रह्म अकारि) तेरे लिये लोगोंने यह स्तोत्र बनाया है। होता (उक्थं शंसाति) वेदमंत्रोंका उच्चारण करता है और (यजते) यजन किया जाता है। अतः तू उन्हें (वि, धाः उ) धारण कर। (आयोः शंसं होतारं अग्निं नमस्यन्तः) मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय, देवोंको बुलानेवाले अग्निको नमस्कार करते हुये (मनुषः उशिजः नि षेदुः) मनुष्य उत्तम धनादिको कामनासे इस यज्ञमें आकर बैठते हैं ॥११॥

[७]

[९८] (अप्नवानः भृगवः) अप्नवान और भृगुवंशियोंने (वनेषु यं चित्रं विशेविशे विभ्वं विरुरुचुः) जंगलोंमें जिस अद्भुत और सब प्रजाओंके ईश्वर अग्निको प्रदीप्त किया, वही (होता, यजिष्ठः अध्वरेषु ईड्यः प्रथमः) होता, याज्ञिकोंमें श्रेष्ठ कर्मवाला, यज्ञोंमें स्तुति के योग्य और सब देवोंमें मुख्य (अयं धातृभिः इह धायि) यह अग्नि यज्ञ करनेवाले विद्वानों द्वारा इस यज्ञमें स्थापित हुआ है ॥१॥

भावार्थ- इस अग्निके तेजस्वी, सुन्दर, अवयवोंवाले, बलिष्ठ घोडे यज्ञमें बुलाये जाते हैं। ये घोडे अग्निकी किरणें ही हैं, जो प्रत्येक यज्ञमें प्रकट की जाती हैं ॥९॥

इस अग्निकी ज्वालाएं तेजसे युक्त तथा पूज्य होकर घोडेकी तरह अपने स्थानपर पहुंचती हैं और मरुतोंके संघकी तरह शब्द करती हैं ॥१०॥

जिस प्रशंसनीय अग्निकी उपासना करते हुए मनुष्य धनादिकी इच्छासे यज्ञमें आकर बैठते हैं, उसी अग्निके लिए सब स्तुतियां, सब मंत्र और सब हवन किए जाते हैं ॥११॥

जंगलमें उत्पन्न हुए हुए तथा सभीके ईश्वर इस अग्निको मनुष्योंने यज्ञमें स्थापित किया।

९९ अग्ने कुदा तं आनुषग् भुवंद् देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वां जगृभ्रिरे मर्तांसो विक्ष्वीड्यम् ॥ २ ॥

१०० ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥ ३ ॥

१०१ आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥

१०२ तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥ ५ ॥

१०३ तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥ ६ ॥

अर्थ- [९९] हे (अग्ने) अग्ने! (हि विक्षु मर्तासः ईड्यं त्वा जगृभ्रिरे) क्योंकि प्रजाओंमें मनुष्यलोग स्तुतिके योग्य तुझको ग्रहण करते हैं। (अध देवस्य ते चेतनं कदा आनुषक् भुवत्) इस कारणसे प्रकाशमान् तेरा तेज चारों ओर कब फैलेगा? ॥२॥

[१००] (ऋतावानं, विचेतसं) मायारहित, ज्ञानसम्पन्न (**विश्वेषां, अध्वराणां हस्कर्तारं**) सम्पूर्ण यज्ञोंको प्रकाशित करनेवाले अग्निको, (**पश्यन्तः दमे दमे**) देखते हुये मनुष्य प्रत्येक यज्ञगृहमें उसी प्रकार अलंकृत करते हैं। (**स्तृभिः द्यां इव**) जिस प्रकार नक्षत्रोंसे द्युलोक अलंकृत होता है ॥३॥

[१०१] (**यः विश्वाः चर्षणीः अभि**) जो अग्नि सम्पूर्ण प्रजाओंको अपनी श्रेष्ठतासे अभिभूत करता है। उसी (**आशुं, विवस्वतः दूतं, केतुं, भृगवाणं**) शीघ्रगामी, उपासकके दूत, पताका स्वरूप, तेजस्वी अग्निको (**आयवः विशेविशे, आ जभ्रुः**) सभी मनुष्य अपने अपने घरोंमें स्थापित करते हैं ॥४॥

[१०२] मनुष्योंने (**होतारं, चिकित्वांसं**) देवोंको बुलानेवाले, विद्वान, (**रण्वं, पावकशोचिषं, यजिष्ठं सप्त धामभिः**) रमणीय, पवित्र तेजवाले याज्ञिकोंमें श्रेष्ठ और सात प्रकारके तेजोंसे युक्त (**तं ईं**) इस अग्निको (**आनुषक् नि षेदिरे**) यथास्थान प्रतिष्ठित किया है ॥५॥

[१०३] (**शश्वतीषु मातृषु वने आ सन्तं**) अनेक प्रकारके जलोंमें तथा वृक्षोंमें विद्यमान (**वीतं अश्रितं चित्रं गृहाहितं**) सुन्दर होते हुए भी पासमें रखनेके अयोग्य, विचित्र, गुहामें अवस्थित, (**सुवेदं कूचिदर्थिनं तं**) सुविज्ञ सर्वत्र, हव्य ग्रहण करनेवाले उस अग्निको मनुष्योंने स्थापित किया है ॥३॥

भावार्थ- हे अग्ने! सभी मनुष्य तेरा प्रकाश पाना चाहते हैं, इसलिए तू कब अपना प्रकाश फैलाएगा ॥२॥

सभी यज्ञोंमें प्रकाशित होनेवाले, सत्यशाली, अग्निको मनुष्य अपने घरोंमें उसी प्रकार सुशोभित करते हैं, जिस प्रकार द्युलोक नक्षत्र से सुशोभित होता है ॥३॥

अपनी श्रेष्ठतासे सभी मनुष्योंको परास्त करनेवाले, शीघ्रगामी, दूतकर्म करनेवाले तथा तेजस्वी अग्निको सभी मनुष्य अपने अपने घरोंमें प्रज्ज्वलित करते हैं ॥४॥

सभी मनुष्योंने इस ज्ञानी और सात प्रकारके तेजोंसे युक्त अग्निको उत्तम स्थानपर स्थापित किया है ॥५॥

वह अग्नि जल और काष्ठसे उत्पन्न सुन्दर होते हुए भी जलानेके भयसे पासमें रखनेके अयोग्य उत्तम ज्ञानी और सर्वत्र प्रतिष्ठित है ॥६॥

१०४ ससस्य यद् वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन् रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥ ७ ॥

१०५ वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥ ८ ॥

१०६ कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥ ९ ॥

१०७ सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥ १० ॥

अर्थ- [१०४] (देवाः ससस्य वियुता) स्तोता लोग निद्रासे विमुक्त होकर उषःकालमें, (ऋतस्य धामन् सस्मिन्, ऊधन् रणयन्त) उदकके स्थान स्वरूप सम्पूर्ण यज्ञोंमें अग्निको प्रसन्न करते हैं। (यत् महान् ऋतावा) क्योंकि वह महान् सत्यवान् (रातहव्यः अग्निः नमसा सदमित् अध्वराय वेः) दिए गए हव्यको ग्रहण करनेवाला वह अग्नि नमस्कारपूर्वक सदा उपासकके किये हुये यज्ञको जानता है ॥७॥

[१०५] हे अग्ने! (विद्वान्) ज्ञानवान् तू (अध्वरस्य दूत्यानि वेः) यज्ञके दूतके कर्मोंको अच्छी तरह जानता है। तू (उभे रोदसी अन्तः संचिकित्वान्) आकाश-पृथ्वीके अन्दर व्यापक होकर उन्हें भली प्रकार जानता है। (प्रदिवः उराणः विदुष्टरः दूतः) पुरातन, सबकी वृद्धि करनेवाला, शत्रुओंसे पराभूत न होनेवाला देवोंका दूत तू (दिवः आरोधनानि ईयसे) द्युलोकके उच्च स्थानको भी प्राप्त होता है ॥८॥

[१०६] हे अग्ने! (रुशतः) तेजस्वी (ते एम कृष्णं) तेरा मार्ग कृष्णवर्ण है। तेरी (भा पुरः) कान्ति उत्कृष्ट है, तेरा (चरिष्णु अर्चिः वपुषां एकं इत्) संचरणशील तेज, सम्पूर्ण तेजयुक्त पदार्थोंमें सर्वश्रेष्ठ है। (यत् अप्रवीता गर्भं ह दधते) जब गर्भरहित अरणि तुझे अपने गर्भमें धारण करती है तब तू (सद्यः चित् जात दूतः, भवसि) तुरन्त उत्पन्न होकरके दूत बन जाता है ॥९॥

[१०७] (सद्यः जातस्य, ओजः ददृशानं) उत्पन्न होते ही इस अग्निका तेज दीखने लगता है। (यत् अस्य शोचिः, अनु वातः वाति) जब इस अग्निकी ज्वालाको लक्ष्य करके पवन चलता है, तब वह अग्नि (असतेषु तिग्मां जिह्वां वृणक्ति) वृक्ष समुहोंमें अपनी तीक्ष्ण ज्वालाको व्याप्त कर देता है और (स्थिरा चित् अन्ना जम्भैः विदयते) कठिन से कठिन अन्न काष्ठादिको भी अपनी दाढोंसे चबा जाता है ॥१०॥

भावार्थ- वह अग्नि अपने उपासकों द्वारा किए जानेवाले यज्ञोंको जानता हुआ उनके द्वारा दी गई हवियोंको प्रेमसे स्वीकार करता है, इसलिए उसे सभी मनुष्य अपने अपने यज्ञोंमें बुलाकर प्रसन्न करते हैं ॥७॥

यह अग्नि दूतके कर्मोंको अच्छी तरह जानता है और उन द्यावापृथ्वीके अन्दर व्यापक होकर उन्हें भी अच्छी तरहसे जानता है। सबको समृद्ध करनेवाला, शत्रुओंसे कभी न हारनेवाला, वह अग्नि द्युलोकसे भी ऊंचे स्थानपर जा पहुंचता है ॥८॥

इस तेजस्वी अग्निके जानेका मार्ग धुंवेका होनेसे काला है, पर इसकी ज्वालायें सभी तेजस्वी पदार्थोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं! जब अरणियोंके मध्यभागमें इसकी उत्पत्ति होती है, तो उत्पन्न होते ही यह देवोंको हवि पहुंचाने लगता है ॥९॥

उत्पन्न होते ही इस अग्निका तेज सर्वत्र फैलने लगता है और हवाकी गति भी तीव्र हो जाती है। तब यह अग्नि वृक्षोंको अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओंसे जला डालता है ॥१०॥

१०८ तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥ ११ ॥

[८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्द- गायत्री ।]

१०९ दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ १ ॥
११० स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥
१११ स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद् वसु ॥ ३ ॥
११२ स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥ ४ ॥

अर्थ- [१०८] (**यत् तृषुणा अन्ना तृषु ववक्ष**) जो अग्नि बहुत तीव्र इच्छा होनेके कारण अन्नरूप काष्ठादिको शीघ्र ही जला देता है तब (**यह्वः अग्नि तृषुं दूतं कृणुते**) महान् अग्नि स्वयं को शीघ्र ही दूत बना लेता है वह (**निजूर्वन् वातस्य मेळिं सचते**) काष्ठसमूहको दग्ध करके वायुके बलके साथ मिल जाता है और (**आशुं न अर्वा वाजयते हिन्वे**) अश्वारोही जिस प्रकार घोडेको पुष्ट करता है, उसी प्रकार गमनशील अग्नि अपनी ज्वालाको पुष्ठ करता है और प्रेरणा देता है ॥११॥

[८]

[१०९] हे अग्ने ! (**विश्ववेदसं हव्यवाहं**) समस्त धनोंके स्वामी ! देवताओंको हव्य पहुंचानेवाले (**अमर्त्यं, यजिष्ठं दूतं वः**) अविनाशी, अतिशय पूजनीय एवं देवताओंके दूत तुझे मैं (**गिरा ऋञ्जसे**) स्तुतियों द्वारा बढाता हूँ ॥१॥

[११०] (**स हि वसुधितिं वेद**) वह अग्नि निश्चयपूर्वक, धनके धारण करनेवालोंको जानता है। तथा वह (**महान्, दिवः आरोधनं**) सर्वश्रेष्ठ अग्नि देवलोकके आरोहण स्थानको भी जानता है। अतः (**सः इह देवान् आ वक्षति**) वह यहां इस हमारे यज्ञमें इन्द्रादि देवोंको सब ओरसे बुलावे ॥२॥

[१११] (**सः देवः**) वह प्रकाशमान् अग्नि (**देवान् आनमं वेद**) देवोंको भी झुकाना जानता है। वह (**दमे ऋतायते प्रियाणि चित् वसु दाति**) यज्ञ गृहमें यज्ञाभिलाषी के लिये प्रियसे प्रिय धनको भी देता है ॥३॥

देवान् आनमं वेद, प्रियाणि वसु- जो देवोंको नमस्कार करना जानता है, वही उत्तमोत्तम धन प्राप्त करता है।

[११२] (**सः होता स इत् उ दूत्यं चिकित्वान्**) वह अग्नि होता है, वही दौत्य कर्मको जानता है। वह (**दिवः आरोधनं विद्वान् अन्तः ईयते**) द्युलोकके योग्य स्थानको भी जाननेवाला वह सर्वत्र व्याप्त है।

भावार्थ- अग्नि सब वृक्षादियोंको जलाकर देवोंको हवि पहुंचानेका काम करता है। वृक्षोंको जलाते समय वायु भी अग्निकी सहायता करता है, इस प्रकार वायुकी सहायतासे अग्नि अपनी ज्वालाओंको पुष्ट करता हुआ उन्हें विस्तृत करता है ॥११॥

यह अग्नि समस्त धनोंका स्वामी, देवोंको हवि पहुंचानेवाला, अनिवाशी, अत्यन्त पूज्य और स्तुतियों द्वारा बढाने योग्य है ॥१॥

किसके पास कितना धन है, यह सब अग्नि जानता है, साथ ही वह देवोंके स्थानोंको जानता है, इसलिये यज्ञमें देवोंको बुलाकर लानेमें वही समर्थ है ॥२॥

वह तेजस्वी अग्नि इतना वीर है कि सभी देव भी उसके आगे झुकते हैं, वही वीर अग्नि यज्ञीय पुरुषको उत्तमोतम धन प्रदान करता है ॥३॥

वह अग्नि होता है, इसलिए वह हवि पहुंचाने रूप दूतके कर्मको जानता है। इसी कारणसे वह सर्वत्र आता जाता रहता है। अग्रणी नेताका आना जाना सभी प्रजाओंमें होता रहे। वह एक जगह कभी न बैठे ॥४॥

११३ ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५॥

११४ ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६॥

११५ अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥७॥

११६ स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८॥

[९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

११७ अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥१॥

११८ स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२॥

अर्थ- [११३] (**ये हव्यदातिभिः अग्नये ददाशुः**) जो लोग हवि देकर अग्निकी सेवा करते हैं और (**ईं पुष्यन्तः**) उसे पुष्ट करते हुए (**य इन्धन्ते**) जो समिधाओं द्वारा प्रदीप्त करते हैं, उन्हींकी तरह हम भी (**ते श्याम**) तेरे प्रिय हों ॥५॥

[११४] (**ये अग्ना: दुवः दधिरे**) जो अग्निमें आहुति डालते हैं (**ससवांसः ते राया वि शृण्विरे**) अग्निकी सेवा करनेवाले वे धनसे युक्त होते हुये प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं और (**ते सुवीर्यैः**) वे बलशाली सन्तानोंसे भी युक्त होते हैं ॥६॥

[११५] (**पुरुस्पृहः रायः दिवेदिवे**) बहुतोंद्वारा चाहने योग्य सम्पतियां प्रतिदिन (**अस्मे सचरन्तु**) हमारे पास आवें और (**वाजासः अस्मे ईरतां**) अनेक प्रकारके अन्न भी हम लोगोंको यज्ञ कार्यमें प्रेरित करें ॥७॥

[११६] (**सः विप्रः**) वह मेधावी अग्नि अपने (**शवसा**) बल द्वारा (**मानुषाणां चर्षणीनां**) गमनशील मनुष्योंके कष्टोंको (**क्षिप्रा इव अति विध्यति**) बाणोंके समान बिल्कुल नष्ट कर देता है ॥८॥

[९]

[११७] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**यः ईं देवयुं जनं**) जो तू इन देवोंकी भक्ति करनेवाले जनको सुखी करनेके लिये उसके (**बर्हिः आसदं आ इयेथ**) कुशासनपर बैठनेके लिये आता है, वह तू (**महान् असि, मृळ**) महान् है, अतः हमें सुखी कर ॥१॥

[११८] (**दूळभः मानुषीषु विक्षु प्रावीः**) राक्षसादि द्वारा अहिंसनीय तथा मानवी प्रजाओंमें स्वच्छन्दरूपसे विचरण करनेवाला (**सः अमर्त्यः विश्वेषां दूतः भुवत्**) वह अविनाशी अग्नि समस्त देवोंका दूत हुआ है ॥२॥

भावार्थ- जो अग्निको हवि देकर उसकी सेवा करके तथा उसको प्रदीप्त करके उसे पुष्ट बनाते हैं, वे ही अग्निको प्रिय होते हैं। अतः हम भी वैसे ही बने ॥५॥

जो अग्निमें आहुतियां प्रदान करते हैं, वे धन और बलशाली सन्तानोंसे युक्त होकर यश प्राप्त करते हैं ॥६॥

अग्नि देवकी कृपासे अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों और हम भी अन्नादिसे सम्पन्न होकर यज्ञ करते रहें। धनके घमण्डमें आकर हम अग्निको भूल न जाएं ॥७॥

वह ज्ञानी अग्नि मननशील मनुष्योंके सारे कष्टोंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार बाणोंसे शत्रुओंको नष्ट किया जाता है ॥८॥

यह अग्नि महान् होता हुआ भी देवोंकी भक्ति करनेवाले मनुष्यको सुखी करनेके लिए उसके पास आकर बैठता और उसे सुखी करता है, उसी प्रकार अग्रणी नेता भी निरहंकारभावसे सबके पास जाकर उनके सुखदुःखका ख्याल करें ॥१॥

अहिंसनीय तथा जिसकी गति पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता, ऐसा वह अग्नि देवोंका दूत है। इसी प्रकार राष्ट्रका दूत अवध्य और सर्वत्र संचार करनेवाला होना चाहिए ॥२॥

११९ स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि षीदति ॥ ३ ॥

१२० उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ॥ ४ ॥

१२१ वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥ ५ ॥

१२२ वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥ ६ ॥

१२३ अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥ ७ ॥

१२४ परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ८ ॥

अर्थ- [११९] (**सः सद्म परिणीयते**) वह अग्नि यज्ञगृहके चारों ओर ले जाया जाता है तथा (**दिविष्टिषु**) यागोंमें (**मन्द्रः होता उत पोता निसीदति**) स्तुति योग्य वह अग्नि होता और पवित्र करनेवाला होकर बैठता है ॥३॥

[१२०] (**उत अग्निः अध्वरे ग्नाः**) वह अग्नि स्तुतिके योग्य होता है। (**उतो दमे गृहपतिः**) और गृहमें गृहपति रूपसे प्रतिष्ठित होता है। (**उत ब्रह्मा निषीदति**) और यज्ञमें ब्रह्मारूपसे विराजमान होता है ॥५॥

[१२१] हे अग्ने! तू (**अध्वरीयतां, मानुषाणां जनानां हव्या हि वेषि**) यज्ञ करनेवाले मननशील उपासकोंके हव्याहुतियोंकी अभिलाषा करता है। (**च उपवक्ता**) यज्ञमें उपस्थित लोगोंको उपदेश देता है ॥५॥

[१२२] हे अग्ने! तू (**हव्यं वोळहवे**) हव्य वहन करनेके लिये (**यस्स मर्तस्य अध्वरं जुजोषः**) जिस मनुष्यके यज्ञका प्रीतिसे सेवन करता है, (**अस्य दूत्यं वेषीत्**) उसी मनुष्यका दौत्य कार्य भी तू करता है ॥६॥

[१२३] हे (**अङ्गिरः**) अंगमें रस रूपसे रहनेवाले अग्ने! तू (**अस्माकं अध्वरं जोषि**) हमारे यज्ञका सेवन कर। (**अस्माकं यज्ञं**) हमारे हव्यको ग्रहण कर। और (**अस्माकं हवं श्रृणुधि**) हमारी प्रार्थना सुन ॥७॥

[१२४] हे अग्ने! तू (**येन दाशुषः विश्वतः रक्षसि**) जिस रथकी सहायतासे दाता मनुष्यकी चारों ओरसे रक्षा करता है (**ते दूळभः रथः अस्मान् परि अश्नोतु**) तेरा वह अहिंसनीय रथ हमें चारों ओर से व्याप्त करनेवाला हो ॥८॥

भावार्थ- वह अग्नि यज्ञगृहमें चारों ओर घुमाया जाता है, फिर होता और पवित्र करनेवाले के रूपमें एक जगह स्थापित किया जाता है। यह अग्नि अपने तेजसे चारों ओरका वातावरण शुद्ध करता है ॥३॥

वह अग्नि गृहमें गृहपति और यज्ञमें ब्रह्मा होकर सर्वत्र स्तुति के योग्य होता है ॥४॥

वही अग्नि मननशील तथा यज्ञ करनेवाले मनुष्योंके यज्ञोंमें ही जाता है और वह उपस्थित जनसमूहको उत्तम उपदेश देता है। ये उत्तम उपदेशकके गुण हैं ॥५॥

यह अग्नि जिस यज्ञमें प्रीतिपूर्वक जाता है, उसका दूत भी बनकर उसे सुखी बनाता है ॥६॥

हे अग्ने! तू हमारे हिंसारहित यज्ञमें आकर हमारी हवियोंका सेवन कर और हमारी प्रार्थना सुन ॥७॥

हे अग्ने! तू जिस रथके द्वारा दानी मनुष्यकी चारों ओरसे रक्षा करता है, वही रथ हमारी भी चारों ओरसे रक्षा करे ॥८॥

[१०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- पदपंक्तिः; ४, ६, ७, उष्णिग्वा; ५ महापदपंक्तिः, ८ उष्णिक् ।]

१२५ अग्ने तमद्याऽश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥
१२६ अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥
१२७ एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्व१र्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥
१२८ आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥
१२९ तव स्वादिष्ठाऽग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५ ॥

---

[१०]

अर्थ- [१२५] (अग्ने) हे अग्ने ! (अद्य) आज हम (ओहैः स्तोमैः) प्रशंसनीय स्तोत्रोंके द्वारा (अश्वं न) घोडेके समान् वेगवान् (क्रतुं न भद्रं) यज्ञके समान कल्याणकारी तथा (हृदिस्पृशं) अन्तस्तलमें निवास करनेवाले (तं ते ऋध्यामः) उस तुझको बढाते हैं ॥१॥

[१२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अधा हि, भद्रस्य, दक्षस्य साधोः) इस समय हमारे कल्याणकारक बलको सिद्ध करनेवाले (ऋतस्य, बृहतः क्रतोः रथीः बभूथ) सत्यके आधाररूप, महान् यज्ञको प्रेरणा देनेवाला है ॥२॥

१ रथीः- प्रेरक, प्रेरणा देनेवाला 'रंहतेर्गतिकर्मणः'

२ बृहतः क्रतोः भद्रस्य दक्षस्यः साधुः- महान् यज्ञ या कर्मसे कल्याणकारी बलकी प्राप्ति होती है।

[१२७] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्वः न ज्योतिः विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः) सूर्यके समान प्रकाशसे युक्त सम्पूर्ण एवं श्रेष्ठ अन्तःकरणवाला तू (नः एभिः अर्कैः) हम लोगोंके इन अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा (नः अर्वाङ् भव) हम लोगोंकी ओर आ ॥३॥

[१२८] हे (अग्ने) अग्ने ! (अद्य आभिः गीर्भिः गृणन्तः ते दाशेम) आज इन स्तुति वचनोंके द्वारा तेरी स्तुति करते हुए तुझको हव्य प्रदान करें। (ते दिवः शुष्माः प्र स्तनयन्ति) तेरी तेजस्वी ज्वालायें शब्द करती हैं ॥४॥

[१२९] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव स्वादिष्ठा संदृष्टिः) तेरी परमप्रिय कान्ति (अह्नः इदा चित अक्तोः इदा चित्) चाहें दिन हो अथवा रात्री हो, दोनों समयोंमें (रुक्मः न श्रिये उपाके रोचते) अलंकारके समान प्रकाश करनेके लिए समीप ही सुशोभित होती है ॥५॥

भावार्थ- यह अग्नि घोडे के समान वेगवान् और यज्ञके समान कल्याण करनेवाला है, अतः इसे सदा हवि आदियों द्वारा बढाना चाहिए ॥१॥

कल्याणकारक बलका देनेवाले तथा सत्य के आधाररूप यज्ञको यह अग्नि अपनी प्रेरणासे बढाता है, इसीलिए यह यज्ञका नेता है ॥२॥

हे अग्ने ! सूर्यके समान तेजस्वी, तथा श्रेष्ठ अन्तःकरणवाला तू हमारे इन स्तोत्रोंको सुनकर हमारी तरफ आ ॥३॥

हे अग्ने ! हम तुझे हृदयपूर्वक हवि प्रदान करें, ताकि प्रदीप्त होकर तेरी तेजस्वी ज्वालाएं उत्तम शब्द करें ॥४॥

जिस प्रकार अलंकारोंसे स्त्रियां सुशोभित और कान्तियुक्त दीखती है, उसी प्रकार यह अग्नि भी कान्तिसे दिन रात सुशोभित होता है ॥५॥

१३० घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत् ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६ ॥

१३१ कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषो ऽग्न इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥ ७ ॥

१३२ शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्रा ऽग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥

[११]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१३३ भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीक- मुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद् दृशे ददृशे नक्तया चि- दरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १ ॥

अर्थ- [१३०] हे (स्वधावः) अन्नवान् अग्ने! तेरा (तनूः पूतं घृतं अरेपाः) स्वरूप शुद्ध घृतके समान् पापसे शून्य है और (ते शुचिः हिरण्यं, तत् रुक्मः न रोचते) तेरा शुद्ध और रमणीय वह तेज भूषणके समान प्रकाशमान् है ॥६॥

[१३१] हे (ऋतावः अग्ने) सत्यसे युक्त अग्ने ! तू (सनेमि हि कृतं चित्) बहुत पहले किए हुए (द्वेषः) पापको भी (यजमानात् मर्तात् इत्था इनोषि स्म) यज्ञशील मनुष्योंसे इस प्रकार दूर करता है ॥७॥

[१३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवेषु युष्मे नः सख्या भ्रात्रा शिवा सन्तु) देवोंके साथ तथा तेरे साथ हम लोगोंकी मैत्री और भ्रातृभाव मंगल जनक हो। (सा सदने सस्मिन् ऊधन् नः नाभिः) वह मैत्रीभाव एवं भ्रातृभाव देवोंके स्थानमें और सभी यज्ञोंमें हमारे लिए केन्द्र रूप हो ॥८॥

[११]

[१३३] हे (सहसिन्) बलवान् अग्ने! (ते भद्रं अनीकं सूर्यस्य उपाके आरोचते) तेरा कल्याणकारी तेज सूर्यके रहते हुए अर्थात् दिवसमें भी चारों ओर प्रकाशमान् होता है। तथा (रुशत् दृशे नक्तया चित्त ददृशे) प्रकाशयुक्त और दर्शनीय तेज रात्रीमें भी दिखाई देता है। (रूपे आ अरूक्षितं दृशे अन्नं) रूपवान् तुझमें चिकना और दर्शनीय अन्न डाला जाता है ॥१॥

१ अरूक्षितं अन्नं रूपः- घी आदि चिकने पदार्थोंसे युक्त अन्न खानेवाला रूपवान् होता है।

भावार्थ- हे अन्नसे समृद्ध अग्ने ! तेरा स्वरूप शुद्ध घृतके समान पापरहित है और तेरा वह रमणीय तेज अलंकारके समान चमकता है ॥६॥

यह अग्नि पुराने से भी पुराने पापको नष्ट कर देता है ॥७॥

हे अग्ने ! तेरे साथ तथा अन्य देवोंके साथ हुई हुई हमारी मित्रता और भाईपन हमें कल्याण देनेवाला हो तथा सभी यज्ञोंमें हम तेरी मित्रताको ध्यनामें रखें ॥८॥

इस बलवान् अग्निका तेज दिन और रात प्रकाशित होता है। सूर्यके प्रकाशमें भी इस अग्निका प्रदीप्त तेज दीखाई देता है, अतः इस रूपवान् अग्निमें सभी उत्तम आहुतियां डाली जाती हैं ॥१॥

१३४ वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद् वावनः शुक्र देवै-स्तन्नो रास्व समहो भूरि मन्म ॥ २ ॥
१३५ त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषा-स्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ३ ॥
१३६ त्वद् वाजी वाजंभरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद् रयिर्देवजूतो मयोभु-स्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥
१३७ त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभि-र्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [१३४] हे (तुविजात अग्ने) अनेक प्रकारसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (स्तवानः) प्रशंसित हुआ हुआ तू (वेपसा मनीषां गृणते खं वि षाहि) उत्तम कर्मोंसे स्तुति करनेवालेके लिए स्वर्ग खोल दे। तथा हे (शुक्र) सुन्दर तेजसे युक्त और (सुमहः) सु महान् अग्नि ! तू (विश्वेभिः देवैः यत् वावनः) सब देवोंके साथ जो उत्तम धन अन्योंको देता है (तत् मन्म भूरि नः रास्व) वह अभिलषित धन प्रभूत मात्रामें हमें भी दे ॥२॥

१ वेपसा गृणते खं- अपने उत्तम कर्मोंसे उस परमात्माकी उपासना करनेवालेको स्वर्ग सुख मिलता है।

[१३५] हे (अग्ने) अग्ने ! (काव्या त्वत् जायन्ते) काव्य तुझसे उत्पन्न होते हैं, (मनीषाः त्वत् राध्यानि उक्था त्वत्) उत्तम बुद्धि और आराधनाके योग्य मन्त्र तुझसे प्रकट हुये हैं, तथा (इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय) सत्यकर्मवाले तथा दाता मनुष्यके लिये (वीरपेशाः द्रविणं त्वत् एति) पुष्टिदायक धन भी तुझसे ही उत्पन्न हुआ है ॥३॥

१ काव्या मनीषाः राध्यानि उक्था त्वत् जायन्ते- काव्य, उत्तम बुद्धि तथा आराधनाके योग्य स्तोत्र सब इस अग्निसे ही उत्पन्न होते हैं।

२ इत्था - सत्य, 'इत्थेति सत्यनामसु पाठात्।'

३ धी - कर्म 'धीरिति कर्मनाम।'

[१३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाजी, वाजंभरः विहायाः अभिष्टिकृत् सत्यशुष्मः) शक्तिशाली, अन्नसे समृद्ध, महान्, यज्ञ कर्मोंका साधक सत्य बलसे युक्त पुत्र (त्वत् जायते) तेरे द्वारा ही उत्पन्न होता है। और (देवजूतः मयोभुः रयिः त्वत्) देवों द्वारा प्रेरित, सुखप्रद धन भी, तेरे द्वारा प्रकट होता है तथा (आसुः जूजुवान् अर्वा त्वत्) शीघ्रगामी, वेगवान् अश्व भी तेरे द्वारा ही प्रादुर्भूत होता है ॥४॥

[१३७] हे (अमृत अग्ने) अविनाशी अग्ने ! (देवयन्तः, मर्ताः) देवताओंकी कामना करनेवाले मनुष्य लोग, (प्रथमं, देवं, मन्द्रजिह्वं, द्वेषोयुतं) सबमें अग्रणी, दिव्यगुण सम्पन्न, आनन्ददायक, जिह्वावाले, पापियोंका नाश करनेवाले, (दमूनसं, गृहपतिं, अमूरं त्वां) राक्षसोंका दमन करनेवाले घरके स्वामी एवं ज्ञानी ऐसे गुणोंसे युक्त तेरी (धीभिः आ विवासन्ति) बुद्धि द्वारा सब ओरसे सेवा करते हैं ॥५॥

भावार्थ- अपने उत्तम कर्मोंके द्वारा परमात्माकी भक्ति करनेवालेको सुख मिलता है, उसे देवगण चाहते हैं, और वह भरपूर धन प्राप्त करता है ॥२॥

उत्तम स्तुति रूप काव्य तथा बुद्धि इसी प्रकाशस्वरूप परमात्मासे उत्पन्न होते हैं। सत्कर्म करनेवाले दानशील मनुष्यको पुष्ट करनेवाले धन भी इसी अग्नि से उत्पन्न होते हैं ॥३॥

इसी अग्निकी कृपासे शक्तिशाली, अन्नसे सम्पन्न महान्, यज्ञशील और सत्य बलसे युक्त पुत्र होता है और सुखप्रद धन तथा वेगवान् घोडे भी इसकी प्रसन्नतासे मिलते हैं ॥४॥

हे अग्ने ! देवोंकी भक्ति करनेवाले मनुष्य सर्वश्रेष्ठ, पापी और राक्षसोंके विनाशक, गृहपति तेरी अपनी बुद्धियोंसे सेवा करते हैं ॥५॥

१३८ आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ॥ ६ ॥

[१२]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३९ यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक् त्रिस्ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत् तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥ १ ॥

१४० इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन् रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥ २ ॥

अर्थ- [१३८] हे (सहसः सुनो अग्ने) बलसे पुत्र अग्ने! तू (दोषा शिवः देवः स्वस्ति यं आ चित् सचसे) रात्रीमें मंगलजनक एवं तेजस्वी होकर जिसका कल्याण करता है और (यत् निपासि) जिसकी रक्षा करता है, उन (अस्मत् अमतिं आरे) हम लोगोंसे मतिहीनताको दूर कर। हमारे पाससे (अंहः आरे) पाप दूर कर और (विश्वां दुर्मतिं आरे) सम्पूर्ण दुर्बुद्धिको परे कर ॥६॥

१ शिवः देवः यं स्वस्ति अमतिं, अंहः विश्वां दुर्मतिं आरे- कल्याणकारी देव अग्नि जिसका कल्याण करता है, उससे मूर्खता, पाप और दुष्ट बुद्धिको दूर करता है।

[१२]

[१३९] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्ने! (यः यतस्रुक् त्वां इनधते) जो स्रुक्को घीसे भर कर तैयार करके तुझको प्रदीप्त करता है और (सस्मिन् अहन् ते त्रिः अन्नं कृणवत्) प्रत्येक दिन तेरे लिए तीन बार हविरूप दान करता है, (सः तव क्रत्वा प्रसक्षत् चिकित्वान्) वह तेरे सामर्थ्यसे तेजका ज्ञान प्राप्त करके (द्युम्नैः सु अभि अस्तु) तेजोंके द्वारा सबको हरा दे ॥१॥

१ सस्मिन् अहन् त्रिः अन्नं कृणवत् सः द्युम्नैः सु अभि अस्तु- जो प्रत्येक दिन इस अग्निको तीन बार हवि देता है, वह अपने तेजोंसे सबको परास्त कर देता है।

[१४०] हे (महः अग्ने) महान् अग्ने! (यः शश्रमाणः ते इध्मं जभरत्) जो बहुत परिश्रम करके तेरे लिये समिधा लाता है, तथा (आ अनीकं सपर्यन्) तेरे सर्वत्र फैले हुये तेजकी पूजा करता है, एवं (दोषां प्रति, उषसं इधानः) रात्रीकाल और उषःकालमें जो तुझको प्रदीप्त करता है (सः पुष्यन् अमित्रान् घ्नन् रयिं सचते) वह पुष्ट होकर, शत्रुओंका नाश करता और धन प्राप्त करता है ॥२॥

१ यः शश्रमाणः अनीकं सपर्यते सः पुष्यन् अमित्रान् घ्नन् रयिं सचते- जो परिश्रमपूर्वक इस अग्निके तेजकी सेवा करता है, वह पुष्ट होकर शत्रुओंको मारता और धन प्राप्त करता है।

भावार्थ- हे अग्ने! तू हम भक्तोंका कल्याण कर और हमारी रक्षा कर, ताकि हम मूर्खता, दरिद्रता, पाप और दुष्ट बुद्धियोंसे दूर रहें ॥६॥

हे अग्ने! जो तुझे घीसे भरा हुआ स्रुक् और दिनमें तीन बार हवि देता है, वह तेरे सामर्थ्यसे तथा तेजोंसे युक्त होकर सबको परास्त कर दे। इसमें प्रातः माध्यन्दिन और सायं इन तीन सवनोंका स्पष्ट उल्लेख है ॥१॥

जो परिश्रम करके इस अग्निके लिए उत्तम समिधा लाता है, तथा सबेरे शाम इस अग्निको प्रदीप्त कर उसके तेजकी पूजा करता है, वह अपने शत्रुओंको नष्ट करके धन प्राप्त करता है ॥२॥

१४१ अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्या ऽग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो ऽव्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥ ३ ॥

१४२ यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठा ऽचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व१स्माँ अदितेरनागान् ऽव्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ ४ ॥

१४३ महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद् देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद् रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥ ५ ॥

१४४ यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता ऽव्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ६ ॥

अर्थ- [१४१] (अग्निः बृहतः क्षत्रियस्य ईशे) अग्नि महान् क्षात्रबलका स्वामी है तथा (परमस्य वाजस्य रायः) परम उत्कृष्ट अन्नका एवं धनका अधिपति है। (यविष्ठः स्वधावान् अग्निः) अत्यन्त बलवान् और अन्नवान् अग्नि (विधते मर्त्याय रत्नं आनुषक् वि दधाति) स्तुति करनेवाले के लिये रमणीय धन क्रमसे प्रदान करता है ॥३॥

[१४२] हे (यविष्ठ अग्ने) अत्यन्त युवा अग्ने! (यत् चित् हि ते पुरुषत्रा) यदि हमने तेरे भक्तोंके विषयमें (अचित्तिभिः कत् चित्त आगः चकृमः) अज्ञानता वश कोई पाप किया हो, तो तू (अदितेः अस्मान् सु अनागान् कृधि) मातृभूमिके सेवक हमको सम्पूर्ण पापोंसे रहित कर। और हे (विष्वक्) सर्वत्र विद्यमान अग्ने! हमारे (एनांसि वि शिश्नथः) दुष्कर्मोंको शिथिल कर ॥४॥

[१४३] हे (अग्ने) अग्ने ! हम (ते सखायः) तेरे मित्र हैं, अतः हम (देवानां, उत, मर्त्यानां अभीके) इन्द्रादि देवोंके निकट अथवा मनुष्योंके निकट किए गए (महः चित् ऊर्वात् एनसः) किसी भी बडे और विस्तृत पापसे (सदं इत् मा रिषां) कभी भी हिंसीत न हों। हे अग्ने! (तोकाय, तनयाय शं योः यच्छ) पुत्र और पौत्रके लिए सुख और नीरोगता प्रदान कर ॥५॥

[१४४] हे (यजत्रा वसवः) पूजाके योग्य और निवास देनेवाले अग्नियो ! तुमने (यथा ह पदि सितां त्यत् गौर्यं चित्) जिस प्रकारसे 'पैर बंधे हुए उस गायको विमुक्त किया था, (एवो, अस्मत्, अंहः सु विमुञ्चत्) उसी प्रकार हमसे पाप पूर्णरूपसे छुडाओ (अग्ने) अग्ने ! (नः प्रतरं आयुः प्र तारि) हमारी बडी हुई आयुको और भी बढा ॥६॥

भावार्थ- वह अग्नि महान् संरक्षणशक्ति, उत्तम अन्न और धनका स्वामी है, वह अत्यन्त बलवान् और अन्नवान् अग्नि अपनी स्तुति करनेवालेको रमणीय धन प्रदान करता है ॥३॥

हे अग्ने ! यदि हमने तेरे भक्तोंकी निन्दा की या उनके बारेमें कोई पाप किया हो, तो हमें पापोसे रहित कर तथा हमारे दुष्कर्मोंको शिथिल कर ॥४॥

हे अग्रणी ! हम तेरे मित्र हैं, अतः यदि हमने अज्ञानसे देवों और मनुष्योंके बारेमें कोई पाप किया हो, तो उस पापसे हम कभी हिंसित न हों। तू हमारे पुत्र पौत्रोंको सुख और स्वास्थ्य प्रदान कर ॥५॥

हे अग्ने ! तूने जिस प्रकार बंधे हुए पैरवाली गायको छुडाया था, उसी प्रकार हमें पापसे छुडा, तथा हमारी आयु दीर्घ कर ॥६॥

[१३]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः (लिङ्गोक्तदेवता इति एके) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१४५ प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोण—मुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १ ॥
१४६ ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् द्रप्सं दविध्वद् गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ २ ॥
१४७ यं सीमकृण्वन् तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ ३ ॥
१४८ वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुं—मवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ ४ ॥

---

[१३]

अर्थ- [१४५] (**सुमनाः अग्निः**) श्रेष्ठ मनवाला अग्नि (**विभातीनां उषसां अग्रं रत्नधेयं प्रति अख्यत्**) प्रकाशित होनेवाली उषाके पहले रत्नके समान प्रकाशमान अपने तेजको फैलाता है। हे (**अश्विना**) अश्विनीकुमारो! तुम (**सुकृतः दुरोणं यातं**) उत्तम कर्म करनेवालेके घर जाओ, क्योंकि (**सूर्यः देवः ज्योतिषा उत् एति**) सूर्यदेव अपने तेजके साथ उदय हो रहा है ॥१॥

[१४६] (**गविषः सत्वा द्रप्सं द्रविध्वत् न**) जिस प्रकार गायकी इच्छा करनेवाला बैल धूलको उडाता है, उसी प्रकार (**देवः सविता भानुं ऊर्ध्वं अश्रेत्**) तेजस्वी सूर्य अपनी किरणोंको ऊपरकी तरफ फेंकता है। (**यत् सूर्यं दिवि अरोहयन्ति**) जब किरणें सूर्यको द्युलोकमें चढाती हैं तब (**वरुणः मित्रः व्रतं अनुयन्ति**) वरुण और मित्र अपने अपने कर्मोंका अनुसरण करते हैं ॥२॥

[१४७] (**ध्रुवक्षेमाः अर्थं अनवस्यन्तः**) अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाले तथा अपने कार्यको न त्यागनेवाले देवोंने (**सीं तमसे विपृचे यं अकृण्वन्**) चारों ओरसे अंधकारको दूर करनेके निमित्त जिस सूर्यकी रचना की, (**तं विश्वस्य जगतः स्पशं सूर्यं**) उस समस्त संसारको देखनेवाले सूर्यको (**यह्वीः सप्त हरितः वहन्ति**) महान् सात घोडे ढोते हैं ॥३॥

[१४८] हे (**देव**) प्रकाशमान् सूर्य! तू (**तन्तुं विहरन् असितं वस्म**) अपने किरण समूहको फैलाते हुये तथा कृष्णवर्णवाले रात्रीरूप वस्त्रको (**अवव्ययन् वहिष्ठेभिः यासि**) दूर हटाते हुये अत्यन्त बलवान् अश्वों द्वारा सर्वत्र जाता है। (**दविध्वतः सूर्यस्य रश्मयः**) कम्पनयुक्त सूर्यकी किरणें (**अन्तः अप्सु तमः चर्म इव अवाधुः**) मध्यअन्तरिक्षमें स्थित अंधकारको चर्मके समान हटा देती हैं ॥४॥

भावार्थ- यह श्रेष्ठ मनवाला अग्नि तेजस्वी उषाओंके पहले ही अपने तेजको फैलाता है, उसके बाद अश्विनीकुमार उत्तम कर्म करनेवालेके घर जाते हैं और सूर्य अपने तेजके साथ उदय हो रहा है ॥१॥

जिस प्रकार कामोन्मत्त बैल अपने खुरों और सींगोंसे धूल उडाता है, उसी प्रकार यह सूर्य अपनी किरणोंको चारों ओर फेंकता है। तथा जब सूर्य आकाशमें ऊपर चढ आता है, तब वरणीय और हितकारी ज्ञानी अपने अपने कर्मोंको करना शुरु करते हैं ॥२॥

अपने स्थान पर स्थिर रहनेवाले तथा अपने कर्मका त्याग न करनेवाले देवोंने अन्धकारके नाशके लिए इस सूर्यकी रचना की। सब जगत्के द्रष्टा उस सूर्यको सात महान् घोडे सब जगह ले जाते हैं ॥३॥

अपनी किरणोंको फैलाता हुए तथा रात्रीरूपी काले वस्त्रको दूर करता हुआ सूर्य अपने बलवान् घोडोंसे सर्वत्र जाता है। इस सूर्यकी किरणें अन्तरिक्षमें स्थित अंधकारको चमडेके समान हटा देती हैं ॥४॥

१४९ अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥

[१४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः (लिङ्गोक्तदेवता इति पक्षे) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१५० प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद् देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेने-मं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥ १ ॥
१५१ ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रे-ज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥ २ ॥
१५२ आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागा-न्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्यु१-षा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥

[१४]

अर्थ- [१४९] (अनायतः अयं अनिबद्धः) आधारहीन तथा बंधनहीन यह सूर्य (उत्तानः कया स्वधया याति) ऊपरकी दिशामें किस बलसे जाता है ? (न्यङ् कया न अव पद्यते) और नीचे क्यों नहीं गिरता, इसको (कः ददर्श) कौन देखता है ? पर यह निश्चित है कि (दिवः स्कम्भः स्मृतः नाकं पाति) द्युलोकका आधार होकर ऋतवान् सूर्य स्वर्गकी रक्षा करता है ॥५॥

[१५०] (देवः जातवेदः अग्निः) दिव्य गुण युक्त तथा संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाला अग्नि अपने (महोभिः रोचमानाः उषसः प्रति अख्यत्) तेजोंसे तेजस्वी उषाओंको प्रकाशित करता है । हे (उरुगाया नासत्या) बहुतों द्वारा प्रशंसित होने योग्य अश्विनो ! तुम भी (रथेन नः इमं यज्ञं अच्छ उपयातं) रथके द्वारा हमारे इस यज्ञमें सीधे चले आओ ॥१॥

[१५१] (सविता देवः विश्वस्मै भुवनाय) सूर्यदेव समस्त लोकके लिये (ज्योतिः कृण्वन् ऊर्ध्वं केतुं अश्रेत्) आलोक करता हुआ सबसे ऊपर प्रकाशको धारण करता है। (वि चेकितानः सूर्यः रश्मिभिः) सबको विशेष रूपसे देखनेवाला सूर्य अपनी किरणोंसे (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आप्राः) आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षको पूर्ण करता है ॥२॥

[१५२] (आवहन्ती, अरुणीः ज्योतिषा मही) धनोंको धारण करनेवाली, अरुणवर्णवाली, ज्योतिसे महान् (रश्मिभिः चित्रा) किरणोंके कारण सुन्दर (चेकिताना देवी उषाः आगात्) सबका निरीक्षण करनेवाली दिव्यगुणोंवाली उषा प्रकट हुई है। वह जीवमात्रको (प्रबोधयन्ती सुयुजा रथेन सुविताय ईयते) जगाती हुई सुशोभित रथ द्वारा कल्याणके निमित्त सर्वत्र जाती है ॥३॥

भावार्थ- आधारहीन और बंधनहीन होता हुआ भी यह सूर्य ऊपर किस प्रकार चढ जाता है और ऊपर चढता हुआ नीचे गिरता क्यों नहीं, इस रहस्यको कौन जानता है ? पर यह निश्चित है कि वही सूर्य द्युलोकका आधार बनकर उसकी रक्षा कर रहा है ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय उषायें प्रकाशित होती हैं और यह तेजस्वी तथा सर्वज्ञ अग्नि अपने तेजोंके साथ प्रज्ज्वलित होता है, उस समय तुम हमारे यज्ञमें सीधे चले आओ ॥१॥

सबका प्रेरक सूर्यदेव जब समस्त भुवनोंको प्रकाशित करता हुआ अपने प्रकाशको ऊपर चारों ओर फैलाता है तो उससे आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानोंको भर देता है ॥२॥

ऐश्वर्य अपने साथ लेनेवाली तेजस्वी ज्योतिसे युक्त किरणोंके कारण सुन्दर दिखाई देनेवाली उषा प्रकट होकर दूसरोंको जगाती हुई उनका कल्याण करनेके लिए अपने सुन्दर रथसे सब जगह जाती है ॥३॥

१५३ आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥ ४ ॥
१५४ अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥

[१५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः, ७-८ सोमकः साहदेव्यः, ९-१० अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।]

१५५ अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १ ॥
१५६ परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २ ॥
१५७ परि वाजपतिः कवि- रग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ ३ ॥

अर्थ- [१५३] हे अश्विनीकुमारो ! (**वहिष्ठाः रथाः ते अश्वासः**) वहन करनेमें अत्यन्त समर्थ तुम्हारे रथ व घोडे (**वां उषसः व्युष्टौ आवहन्तु**) तुम दोनोंको उषाके प्रकाशित होनेपर इस यज्ञमें ले आवें। हे (**वृषणा**) बलवान् अश्विनीकुमारो ! (**हि इमे सोमा वां**) निश्चयसे ये सोमरस तुम दोनोंके लिये प्रस्तुत हैं, अतः (**अस्मिन् यज्ञे मधुपेयाय मादयेथां**) इस यज्ञमें सोमरस पान करनेके लिये हर्षको प्राप्त होओ ॥४॥

[१५४] (**अनायतः अनिबद्धः**) आधारहीन तथा बंधनहीन यह सूर्य (**उत्तानः कया स्वधया याति**) ऊपरकी दिशामें किस बलसे जाता है ? (**न्यङ् कथा न अव पद्यते**) और नीचे क्यों नहीं गिरता इसको (**कः ददर्श**) कौन देखता है ? पर यह निश्चित है कि (**दिवः स्कम्भः समृतः नाकं पाति**) द्युलोकका आधार होकर ऋतवान् सूर्य स्वर्गकी रक्षा करता है ॥५॥

[१५]

[१५५] (**होता, देवेषु देवः यज्ञियः अग्निः**) यज्ञका सम्पादन करनेवाला, देवोंके बीचमें अत्यधिक तेजस्वी, यज्ञके योग्य अग्नि (**नः अध्वरे वाजी सन् परिणीयते**) हमारे यज्ञमें शीघ्रगामी अश्वकी तरह सब ओर ले जाया जाता है ॥१॥

[१५६] (**अग्निः देवेषु प्रयः आ दधत्**) यह अग्नि देवोंके लिए हविरूप अन्नको धारण करता हुआ (**रथी इव**) रथीके समान (**अध्वरं त्रिविष्टि परि यति**) यज्ञके चारों ओर तीन बार घूमता है ॥२॥

[१५७] (**वाजपतिः कविः अग्निः**) अन्नका स्वामी ज्ञानी अग्नि, (**दाशुषे रत्नानि दधत्**) हवि देनेवाले मनुष्यको रमणीय धनोंको प्रदान करता हुआ (**हव्यानि परि अक्रमीत्**) हव्योंको चारों ओरसे व्याप्त कर लेता है ॥३॥

भावार्थ- हे अश्विनीकुमारो ! उषःकालमें तुम्हें तुम्हारे बलशाली घोडे सोमपानके लिए यज्ञमें ले आवें। इस यज्ञमें तुम्हारे पीने के लिए सोमरस तैय्यार हैं, तुम उन्हें पीकर आनन्दित होवो ॥४॥

आधारहीन और बंधनहीन होता हुआ भी यह सूर्य ऊपर किस प्रकार चढ जाता है और ऊपर चढता हुआ नीचे गिरता क्यों नहीं, इस रहस्यको कौन जानता है ? पर यह निश्चित है कि वही सूर्य द्युलोकका आधार बनकर उसकी रक्षा कर रहा है ॥५॥

देवोंको बुलाकर लानेवाला, तेजस्वी तथा पूज्य अग्नि इस हिंसारहित यज्ञमें चारों ओर ले जाया जाता है।

यह अग्नि हविको धारण करता हुआ यज्ञके चारों ओर तीन बार प्रदक्षिणा करता हैं ॥२॥

अन्नका स्वामी तथा ज्ञानी अग्नि दाता मनुष्यको धन प्रदान करता हुआ यज्ञको चारों ओरसे व्याप्त कर लेता है ॥३॥ ?

१५८ अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥ ४ ॥
१५९ अस्य घा वीर ईवतो ऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥ ५ ॥
१६० तमर्वन्तं न सानसि—मरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥ ६ ॥
१६१ बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥ ७ ॥
१६२ उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥
१६३ एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥
१६४ तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥

अर्थ- [१५८] (**अयं यः अमित्रदम्भनः द्युमान्**) यह जो शत्रु विनाशक और तेजस्वी अग्नि है वह (**दैववाते सृंजये**) देवों द्वारा अभिलषित विजयके कार्यमें (**पुरः समिध्यते**) सबसे आगे प्रज्ज्वलित किया जाता है॥४॥

[१५९] (**तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ईवतः अस्य अग्नेः**) तीक्ष्ण दाढवाले, अमीष्ट फल देनेवाले और गमनशील इस अग्निकी उपासना करनेवाला (**मर्त्यः**) मनुष्य ही (**वीरः**) वीर होकर (**ईशीत घ**) सब ऐश्वर्योंका स्वामी होता है ॥५॥

> **ईवतः अस्य अग्नेः मर्त्यः वीरः ईशीत-** सर्वत्र गमन करनेवाले इस अग्निकी उपासना करनेवाला मनुष्य वीर होकर सब ऐश्वर्योंका स्वामी बनता है।

[१६०] लोग (**अर्वन्तं न**) शीघ्रगामी घोडेकी तरह (**दिवः शिशुं न**) द्युलोकके पुत्रभूत सूर्यकी तरह (**अरुषं, सानसिं तं**) दीप्तिमान् और सबके द्वारा सेवा किए जाने के योग्य उस अग्निकी (**दिवे दिवे मर्मृज्यन्ते**) प्रतिदिन बारबार सेवा करते हैं ॥६॥

[१६१] (**यत्**) जब (**साहदेव्यः कुमारः**) सहदेवके कुमारने (**मां हरिभ्यां बोधत्**) मुझे घोडोंसे ज्ञान प्रदान किया, तब (**हूतः**) अच्छी तरह निमंत्रित होकर (**अच्छ उदरं**) अपने उदरको तृप्त किया ॥७॥

[१६२] (**उत**) और (**साहदेव्यात् कुमारात्**) सहदेवके कुमारसे (**त्या यजता प्रयता हरी**) उन प्रशंसनीय और प्रयत्न करनेवाले घोडोंको मैंने (**सद्यः आ ददे**) शीघ्रही प्राप्त कर लिया ॥८॥

[१६३] हे (**अश्विना देवा**) अश्विनी देवो ! (**वां**) तुम्हारा प्रिय (**एष साहदेव्यः कुमारः सोमकः**) सहदेवका पुत्र कुमार सोमक (**दीर्घायुः अस्तु**) दीर्घ आयु वाला हो ॥९॥

[१६४] हे (**अश्विना देवा**) अश्विनी देवो ! (**युवं**) तुम दोनों (**तं साहदेव्यं कुमारं**) उस सहदेवके पुत्र कुमारको (**दीर्घायुषं कृणोतन**) दीर्घ आयुवाला करो ॥१०॥

भावार्थ- देवगण शत्रु विजयके कार्यमें भी इस शत्रु विनाशक और तेजस्वी अग्निको आगे स्थापित करते हैं यह अग्नि शत्रु विजयके कार्यमें भी अग्रणी है ॥४॥

जो इस तेजस्वी अग्रणीकी उपासना करता है वह वीर होकर सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥५॥

जिस प्रकार घोडेको प्रतिदिन धोकर साफ किया जाता है, उसी प्रकार लोग प्रतिदिन इस अग्निकी सेवा करके इसे शुद्ध करते हैं ॥६॥

विद्वानोंसे मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके अपनी उदरपूर्तिका निर्वाह उत्तम प्रकारसे करे। उसके पास साधन भी उत्तम तरहके प्रशंसनीय तथा प्रयत्नशील हों ॥७-८॥

जो उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण सबके लिए आल्हादकारक होते हैं, सबको आनन्द देते हैं, उनकी आयु दीर्घ होती है ॥९-१०॥

[१६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१६५ आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्ष—मिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥

१६६ अव स्य शूराध्वनो नान्ते ऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधा—श्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥

१६७ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारू—नह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥

१६८ स्व१र्यद् वेदि सुदृशीकमर्कै—र्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥

---

[१६]

अर्थ- [१६५] (**ऋषीजी सत्यः मघवान्**) सरल मार्गसे जानेवाला, सत्यनिष्ठ तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**नः उप आ यातु**) हमारे पास आवे। (**अस्य हरयः नः उप द्रवन्तु**) इसके घोडे हमारे पास दौडकर आवें। (**इह**) इस यज्ञमें हम (**तस्मै**) उस इन्द्रके लिए (**इत अन्धः सुषुम**) इस अन्नरूपी सोमको निचोडते हैं। (**गृणानः**) प्रशंसित हुआ हुआ वह इन्द्र (**अभिपित्वं करते**) हमारी इच्छाएं पूर्ण करे ॥१॥

[१६६] हे (**शूर**) शूरवीर इन्द्र ! (**अध्वनः अन्ते न**) जिस प्रकार लोग मार्गके दोनों बाजुओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार (**अद्य अस्मिन् सवने**) आज इस यज्ञमें (**मन्दध्यै नः अवस्य**) आनन्दित करनेके लिए तू हमारी रक्षा कर। (**उशना इव वेधा**) उशना ऋषिके समान बुद्धिमान् यह स्तोता (**चिकितुषे असुर्याय**) ज्ञानवान् तथा असुरोंको मारनेवाले तेरे लिए (**मन्म उक्थं शंसाति**) मननीय स्तोत्रको कहता है ॥२॥

[१६७] (**कविः निण्यं न**) जिस प्रकार विद्वान् गुह्यार्थको जानता है, उसी प्रकार यह इन्द्र (**यत् विदथानि साधन्**) जब यज्ञोंको करता हुआ तथा (**सेकं विपिपानः अर्चात्**) सोमको पीता हुआ पूजा करता है, तब (**इत्था**) इस प्रकार वह (**दिवः सप्त कारून् जीजनत्**) द्युलोकसे सात किरणोंको प्रकट करता है। तब (**गृणन्तः**) स्तोतागण (**अन्हा**) दिनके प्रकाशकी सहायतासे (**वायुना चत्रुः**) अपने कर्म करते हैं ॥३॥

[१६८] (**यत् ह**) जब (**महि ज्योतिः स्वः**) विशाल और तेजस्वी द्युलोक (**अर्कैः सुदृशकिं वेदि**) किरणोंसे उत्तम देखने योग्य बनता है, तब (**वस्तोः रुरुचे**) घर भी प्रकाशित होते हैं। (**नृतमः**) उत्तम नेता सूर्य (**अभिष्टौ**) उदय होनेपर (**नृभ्यः विचक्षे**) मनुष्योंके देखनेके लिए (**अन्धा तमांसि दुधिता चकार**) गहरे अन्धकारका नाश करता है ॥४॥

नृतमः नृभ्यः विचक्षे अन्धा तमांसि दुधिता चकार- अत्यन्त श्रेष्ठ नेता अपनी प्रजाओंके देखनेके लिए घने अन्धकारका नाश करता है।

भावार्थ- सरल व्यवहार करनेवाला, अर्थात् कुटिल व्यवहारसे रहित सत्यका पालक इन्द्र हमारे पास आकर हमारे दिए गए सोमको पीए और हमारी इच्छायें पूर्ण करे ॥१॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार किसी मार्गके दोनों और पेड आदि रोपकर मार्गकी रक्षा करते हैं और उन वृक्षोंकी छाया के कारण लोग आनन्द पाते है, उसी तरह इन्द्र भी इस यज्ञमें आनन्द प्राप्त करनेके लिए हमारी रक्षा करे। वह इन्द्र ज्ञानी और असुरोंको मारनेवाला है, अतः उसके लिए ज्ञानी विद्वान् स्तोत्रोंको कहते हैं ॥२॥

जिस प्रकार एक ज्ञानी गुह्य अर्थोंको भी जानता है, उसी प्रकार यह सूर्यरूपी इन्द्र द्युलोकसे अपनी किरणोंको प्रकट करके गुह्य स्थलोंको भी प्रकाशित करता है। तब स्तोतागण इसकी प्रशंसा करते हुए इसके प्रकाशकी सहायतासे अपने कर्मोंको करते हैं ॥३॥

१६९ ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥
१७० विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
१७१ अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥

अर्थ- [१६९] (यः विश्वा भुवना अभि बभूव) जिसने सारे भुवनों को जीत लिया ऐसा वह (इन्द्रः) इन्द्र (अमितं ववक्ष) अपार यशको धारण करता है, उस (ऋजीषी) सोमका पान करनेवाला (महित्वा) अपने महत्वसे (उभे रोदसी आ पप्रौ) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोकको भर देता है, (अतः चित्) इसी लिए (अस्य महिमा विरेचि) इसकी महिमा सबसे अधिक है ॥५॥

१ यः विश्वा भुवना अभि बभूव अमितं ववक्ष- जो सारे भुवनोंको अपने अधिकारमें कर लेता है, उसका यश अपरिमित होता है।

२ महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ- वह अपने महत्वसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है।

३ अतः चित् अस्य महिमा विरेचि- इसी कारण इसका महत्त्व सबकी अपेक्षा अधिक है।

[१७०] (विश्वानि नर्याणि विद्वान्) सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकारी कार्योंको जाननेवाले (शक्रः) सामर्थ्यशाली इन्द्रने (निकामैः सखिभिः) इच्छा करनेवाले अपने मित्रोंके द्वारा (अपः रिरिचे) पानीको गिराया। (ये वचोभिः अश्मानं चित् बिभिदुः) जिन मरुतोंने अपने शब्दोंसे मेघ को भी फोड दिया, उन (उशिजः) कामना करनेवाले मरुतोंने (गोमन्तं व्रजं विवव्रुः) गायोंसे युक्त बाडेको प्राप्त किया ॥६॥

अश्मा- पर्वत, मेघ

विश्वानि निर्याणि विद्वान्- सब जन हितकारी कर्मोंको जाननेवाला।

वचोभिः अश्मानं बिभिदुः- आवाजसे मेघोंसे पानी बरसाया।

[१७१] हे इन्द्र ! (प्रावत् ते वज्रं) रक्षण करनेवाले तेरे वज्रने (अपः वीव्रवांसं वृत्रं) जलको रोकनेवाले मेघको (पराहन्) मारा, तब (पृथिवी सचेताः) पृथ्वी सचेत हुई। हे (घृष्णो शूर) शत्रुओंको मारनेवाले शूरवीर इन्द्र ! (पति भवन्) स्वामी होते हुए तूने (शवसा) अपने बलसे (समुद्रियाणि अर्णांसि) अन्तरिक्षके जलोंको (प्र एनोः) प्रेरित किया ॥७॥

भावार्थ- जब विशाल द्युलोक सूर्यकी किरणोंके कारण तेजस्वी और उत्तम रीतिसे देखने योग्य हो जाता है, तब पृथ्वी पर के सब घर भी प्रकाशित हो जाते हैं। उत्तम नेता सूर्य मनुष्योंके देखने के लिए गहरे अन्धकारको दूर करता है। इसी प्रकार उत्तम नेता और ज्ञानी भी अपनी प्रजाओंके लिए अन्धकारको दूर करके सर्वत्र ज्ञानका प्रकाश करे ॥४॥

वह सूर्य अपने प्रकाशसे सारे लोकों पर अधिकार कर लेता है, इसीलिए उस सूर्यका यश अपार है। इसके महत्त्वसे द्यु और पृथ्वी ये दोनों लोक भर जाते हैं। इसी कारण इसका महत्व सबसे बढकर है ॥५॥

यह इन्द्र मनुष्योंके लिए हितकारी सभी कर्मोंको जाननेवाला और समर्थ है। वह अपने मित्रोंकी सहायतासे जल बरसाता है। इन्द्रके वे मित्र इन्द्रकी सहायतासे अनेक गायोंको प्राप्त करते हैं ॥६॥

जलोंको रोकनेवाले मेघको इन्द्रने बिजलीने फोडा, पृथिवी पर पानी गिराया, इससे पृथिवी प्रसन्न हो गई। समुद्रके जलोंका बाष्प बनकर उससे बननेवाले मेघ अन्तरिक्षमें भ्रमण करने लगे, जिनसे वर्षा होने लगी।

१७२ अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥
१७३ अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९ ॥
१७४ आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत् ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥ १० ॥

अर्थ- [१७२] (**यत् सरमा**) जब सरमाने (**पूर्व्यं ते आविर्भुवत्**) पहले तेरे लिए गायोंको प्रकट किया, तब तूने (**अपः अद्रिं दर्दः**) जलसे भरे मेघको फोडा। (**अंगिरोभिः गृणानः**) अंगिराओंसे प्रशंसित होते हुए तथा (**गोत्रा रुजन्**) मेघोंको फोडते हुए (**नेता सः**) उत्तम नेता वह तू (**नः भूरिं वाजं आ दर्शि**) हमें बहुत सा अन्न दे ॥८॥

[१७३] हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**नृमणः**) मनुष्योंका हित करनेवाला तू (**कावं अच्छ गाः**) बुद्धिमानके पास सीधा जा, तथा (**स्वर्षाता अभिष्टौ**) धनके लिए होनेवाले युद्धमें (**नाधमानं ऊतिभिः इषणः**) तेरी कामना करनेवालेको अपने संरक्षणोंसे सुरक्षित करनेकी इच्छा कर। (**द्युम्न हूतौ**) युद्धमें (**मायावान् अब्रह्मा दस्युः**) मायावी तथा ज्ञानसे रहित दस्यु (**अर्त**) नष्ट हो जाय ॥९॥

१ **नृमणः कविं अच्छ गाः-** मानवोंका हित करनेकी इच्छासे ज्ञानके पास सीधा जा।

२ **स्वर्षाता अभिष्टौ नाधमानं ऊतिभिः इषणः-** धनप्राप्तिके लिये होनेवाले युद्धमें तेरी प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेको संरक्षणोंसे बचा।

३ **द्युम्न हुतौ मायावान् अब्रह्मा दस्युः अर्त-** युद्धमें कपटी और अज्ञानी दस्यु नष्ट हो जाय।

[१७४] हे इन्द्र ! तू (**दस्युघ्ना मनसा**) दस्युको मारनेकी इच्छावाले मनसे युक्त होकर (**अस्तं आयाहि**) घर आ, (**निकामः कुत्सः**) तेरी इच्छा करनेवाला कुत्स (**ते सख्ये भुवत्**) तेरी मित्रतामें रहे। (**सरूपा स्वे योनौ निषदतं**) समान रूपवाले तुम दोनों अपने घरमें बैठो, तब (**ऋतचित् नारी वां चिकित्सत्**) सत्य ज्ञान युक्त स्त्री तुम दोनोंको यथावत् जाने ॥१०॥

१ **दस्युघ्ना मनसा अस्तं आयाहि-** दुष्टको मारनेके विचारसे अपने घर जा कर रहो।

२ **सरूपा स्वे योनौ निषीदतम्-** समान रूप या विचारवाले एकत्र रहें।

३ **ऋतचित् नारी वां चिकित्सत्-** सत्यज्ञानवाली स्त्री तुम दोनोंको जाने। तुम्हारी परीक्षा करे।

भावार्थ- प्रतिदिन प्रकट होनेवाली उषाने सूर्यकी किरणोंको प्रकट किया उन किरणोंके द्वारा सूर्यने जलसे भरे मेघोंको फोडा। उससे पानी बरसा और उस वृष्टि के कारण बहुतसा अन्न उत्पन्न हुआ ॥८॥

मनुष्योंका हित करनेकी इच्छा करनेवाला नेता ज्ञानीके पास जाकर जनहितका मार्ग पूछे। धनप्राप्तिके लिए होनेवाले युद्धमें इस नेताकी सहायता सभी चाहते हैं। पर उनमें जो सज्जन होता है, वही बचे रहते हैं, बाकी दुष्ट और कपटी मनुष्य नष्ट हो जाते हैं ॥९॥

हे इन्द्र ! दुष्टको मारनेकी इच्छावाले मनसे युक्त होकर हमारे घर आ तब हमारे घरमें रहनेवाला ज्ञानी तुझसे मित्रता करे, तब समान स्वभाववाले तुम दोनों घरमें आनन्दसे रहो, और तब उस घरकी गृहिणी तुम दोनोंका सत्कार करे। इसी प्रकार एक राष्ट्रके राजनैतिक नेता तथा ज्ञानी परस्पर एक मतवाले होकर रहें और घरमें गृहिणी उनका सत्कार करें ॥१०॥

१७५ यासि कुत्सेन सरथमवस्यु—स्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन् कविर्यदहन् पार्याय भूषात् ॥ ११ ॥
१७६ कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून् प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२ ॥
१७७ त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांस—मृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः सहस्रा ऽत्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥ १३ ॥
१७८ सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत् ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥ १४ ॥

अर्थ- [१७५] हे इन्द्र ! (**यत् अहन्**) जिस दिन, (**गध्यं वाजं न**) योग्य बलको प्राप्त करनेके समान, (**ऋज्रा युयूषन्**) सरलतासे जानेवाले घोडोंको अपने रथमें जोडकर (**कविः पार्याय भूषात्**) बुद्धिमान् कुत्स संकटसे पार होनेके लिए तैय्यार होता है, उस समय (**अवस्युः**) उसके रक्षणकी इच्छा करनेवाला और (**तोदः**) शत्रुओंको मारनेवाला तथा (**वातस्य हर्योः ईशानः**) वायुवेगवाले घोडोंका स्वामी तू (**कुत्सेन सरथं यासि**) कुत्सके साथ एक रथ पर बैठकर जाता है ॥११॥

[१७६] हे इन्द्र ! तूने (**कुत्साय अशुषं शुष्णं निबर्हीः**) कुत्सके रक्षणके लिए महाबलवान् शुष्णनामक असुरको मारा, तथा (**अन्हः प्रपित्वे**) दिनके पूर्व भागमें तूने (**सहस्रा कुयवं**) हजारों सैनिककोंके साथ कुयव नामक असुरको मारा, तथा (**कुत्स्येन सद्यः दस्यून् प्रमृण**) वज्रसे शीघ्र ही दस्युओंको मारा और (**अभीको शूरः चक्रं प्रवृहतात्**) युद्धमें तूने सूर्यका चक्र तोड दिया ॥१२॥

[१७७] हे इन्द्र ! (**वैदथिनाय ऋजिश्वने**) विदथिके पुत्र ऋजिश्वीके लिए (**त्वं**) तूने (**पिप्रुं**) पिप्रु नामक असुरको तथा (**शू शुवांसं मृगयं**) अति बलशाली मृगया नामक राक्षसको (**रन्धीः**) मारा। तूने (**पंचाशत् सहस्रा कृष्णा निवपः**) पचास हजार काले वर्णके असुरोंको मारा, तथा (**जरिमा अत्कं न**) जैसे लोग जीर्णशीर्ण कपडेको फाड डालते हैं, उसी तरह तूने (**पूरः विदर्दः**) शत्रुके नगरोंको तोड डाला ॥१३॥

१ **पंचाशत् सहस्रा कृष्णा नि वपः-** पचास हजार काले शत्रुओंको मारा। आर्य गोरे थे और उनके शत्रु काले थे।

२ **पुरः निदर्दः-** नगर, काले शत्रुओंके नगर तोड दिये।

[१७८] हे इन्द्र ! (**यत्**) जब तू (**सूर उपाके**) सूर्यके पास अपने (**तन्वं दधानः**) शरीरको धारण करता है, तब (**अमृतस्य ते**) अमर तेरा (**वर्पः विचेति**) रूप और ज्यादा चमकता है। (**हस्ती मृगः न**) बलशाली हाथीके समान (**तविषीं उषाणः**) शत्रुकी सेनाको जलाता हुआ तथा (**आयुधानि बिभ्रत्**) शस्त्रोंको धारण करता हुआ तू (**सिंहः भीमः न**) सिंहके समान भयंकर होता है ॥१४॥

१ **आयुधानि बिभ्रत् सिंहः भीमः न-** तू शस्त्रोंको धारण करनेपर सिंहके समान भयंकर दीखता है।

२ **अमृतस्य ते वर्पः विचेति-** तुझ अमर देवका शरीर चमकता है।

भावार्थ- जब योग्य बलको प्राप्त करके ज्ञानी संकटसे पार होनेके लिए तैय्यार होता है, तब उसकी रक्षा करनेकी इच्छासे शत्रुओंको मारनेवाला, तथा वायुके समान वेगवान् घोडों पर बैठकर इन्द्र उसके पास जाता है ॥११॥

इस इन्द्रने ज्ञानीके लिए महाबलवान् शुष्ण असुरको मारा, तथा हजारों सैनिकोंके साथ कुयव नामक राक्षसको मारा, संग्राममें उनके सूर्यके चक्रके समान तेजस्वी शस्त्रास्त्रोंको भी तोड डाला ॥१२॥

युद्धमें प्रवीण तथा युद्धमें सरलतापूर्वक घोडोंको दौडानेवाले वीरके लिए इन्द्रने पिप्रु नामक असुरको मारा और अत्यन्त बलशाली मृगय नामक राक्षसको मारा, तथा पचास हजार वर्णके असुरोंको मारा और जिसप्रकार लोग सडे गले कपडे को आसानीसे फाड डालते हैं, उसी तरह इन्द्रने सरलतासे ही शत्रुओंके नगरोंको तोड डाला ॥१३॥

१७९ इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन् त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥ १५ ॥
१८० तमिद् व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥ १६ ॥
१८१ तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥ १७ ॥

अर्थ- [१७९] (स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः) युद्धके समान यज्ञमें चमकनेवाले, **(उक्थैः शशमानासः)** स्तोत्रोंसे प्रशंसा करनेवाले **(श्रवस्यवः वसूयन्तः कामाः)** अन्न तथा धनकी इच्छा करनेवाले स्तोतागण **(इन्द्रं अग्मन्)** इन्द्रके पास जाते हैं। वह इन्द्र **(ओकः न)** घरके समान सुखदायक है, तथा **(रण्वा सुदृशी पुष्टिः इव)** रमणीय, दीखनेमें उत्तम समृद्धिके समान पोषक है ॥१५॥

१ **ओकः न रण्वा सुदृशी पुष्टिः इव-** यह इन्द्र घरके समान सुखदायक तथा रमणीय और दीखनेमें उत्तम समृद्धिके समान पोषक है।

[१८०] (यः,) जिस इन्द्रने **(ता पुरूणि नर्या चकार)** उन बहुतसे मनुष्योंके हितकारी कार्योंको किया तथा **(स्पार्हराधाः यः)** स्पृहणीय धनोंको अपनेपास रखनेवाला जो इन्द्र **(मावते जरित्रे)** मेरे जैसे स्तोताके लिए **(गध्यं चित् वाजं)** ग्रहण करने योग्य अन्नको **(मक्षू भरति)** शीघ्र देता है ऐसे **(सुहवं तं इन्द्रं)** अच्छी तरहसे सहायार्थ बुलाने योग्य उस इन्द्रको हम **(वः)** तुम्हारे सहायतार्थ हम **(हुवेम)** बुलाते हैं ॥१६॥

१ **यः ता पुरूणि नर्या चकार-** जिसने मनुष्योंके बहुतसे हितकारक कार्य किये हैं। सार्वजनिक हितके कार्य जो करता रहता है।

२ **यः स्पार्हराधाः-** स्पृहणीय धन जिसके पास है।

[१८१] हे **(शूर)** शूरवीर इन्द्र! **(यत्)** जब **(मुहुके)** युद्धमें **(कस्मिन् चित् जनानां अन्तः)** किन्ही मनुष्योंके बीचमें **(तिग्मः अशनिः पताति)** तीक्ष्ण अस्त्र गिरे अथवा हे **(अर्यः)** श्रेष्ठ इन्द्र! **(यत् घोरा समृतिः भवाति)** जब भयंकर युद्ध होता है, **(ऊध)** तब तू **(न तन्वः गोपाः)** हमारे शरीरका रक्षक है। यह **(बोधिस्म)** तू जान ॥१७॥

१ **यत् मुहुके तिग्मः अशनिः पताति, यत् घोरा समृतिः भवाति, अधः न तन्वः गोपाः-** जब युद्धमें तीक्ष्ण वज्र गिरता है और जब घनघोर युद्ध होता है, तब हमारे शरीरकी हे इन्द्र! तू रक्षा कर।

भावार्थ- यह इन्द्र जब सूर्यके साथ मिलकर अपना रूप प्रदर्शित करता है, तब उस अमर देवका रूप और ज्यादा चमकने लगता है, तथा जब यह शस्त्रोंको धारण करता है, तब वह सिंहके समान भयंकर हो जाता है ॥१४॥

यज्ञमें चमकनेवाले, प्रशंसा करनेवाले अन्न और धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता इन्द्रके पास जाते हैं। यह इन्द्र उन लोगोंके लिए घरके समान सुखदायक और उत्तम समृद्धि देकर पुष्ट करनेवाला है ॥१५॥

वह इन्द्र बहुतसे मनुष्योंके लिए हितकारी कार्योंको करता है और अत्युत्तम धनोंको अपने पास रखता है। वह अपनी स्तुति करनेवालेके लिए उत्तम अन्न शीघ्र देता है। इसीलिए हम इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥१६॥

हे इन्द्र! तू हमारा रक्षक है, इसलिए जब हमारे मनुष्यों पर शत्रुओंके तीक्ष्ण शस्त्र आकर गिरे और जब भयंकर युद्ध हों, तब तू हमारी रक्षा कर और हमारे शरीरोंको सुरक्षित रख ॥१७॥

१८२ भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मो—रुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥ १८ ॥
१८३ एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन् विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥ १९ ॥
१८४ एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद् यथा नः सख्या वियोष—दसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥ २० ॥
१८५ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

अर्थ- [१८२] हे इन्द्र ! तू (**वामदेवस्य धीनां अविता भुवः**) वामदेवकी बुद्धियोंका रक्षक हुआ तू (**वाजसातां**) युद्धमें हमारा (**अवृकः**) अकुटिल (**सखा भुवः**) मित्र हुआ हम (**प्रमतिं त्वा अनु अगन्म**) प्रकृष्ट ज्ञानी होकर तेरे पीछे चलें। तू (**विश्वध**) हमेशा (**जरित्रे उरुशंसः स्याः**) स्तोताके लिए प्रशंसनीय हो ॥१८॥

१ **धीनां अविता भुवः-** तू बुद्धियोंका रक्षक है।
२ **वाजसातौ अवृकः सखा भुवः-** तू युद्धमें सीधा मित्र हुआ है।
३ **प्रमतिं त्वा अनु अगन्म-** तुझ जैसे बुद्धिमानके अनुगामी हम होते हैं।
४ **विश्वध जरित्रे उरुशं सः स्याः-** सर्वदा तू स्तोताके लिये प्रशंसनीय होता है।
५ **सखा अकुटिलः-** मित्र हमेशा अकुटिल हो, कुटिलतासे रहित होकर व्यवहार करे।

[१८३] हे (**मघवन् इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**विश्वे आजौ**) सभी युद्धोंमें (**त्वायुभिः**) तुझे चाहनेवाले (**मघवद्भिः**) ऐश्वर्योंसे युक्त (**द्यावः न द्युम्नैः**) द्युलोकके समान तेजस्वी (**एभिः नृभिः**) इन मरुतोंके साथ रह कर हम (**अर्यः अभि सन्तः**) शत्रुओंको हराते हुए (**पूर्वीः शरदः**) बहुत वर्षों तक (**क्षपः**) दिन रात (**त्वा मदेम**) तुझे आनन्दित करते रहें ॥१९॥

[१८४] (**यथा नः सख्या वियोषद्**) जिससे हमारी मित्रता दृढ हो, तथा वह (**उग्रः**) वीर इन्द्र (**नः तनूपाः अविता असत्**) हमारे शरीरका पालक तथा रक्षक हो, (**एव**) इसलिए (**भृगवः रथं न**) जैसे भृगुओंने इन्द्रको रथ दिया, उसी प्रकार हम उस (**वृषभाय वृष्णे इन्द्राय**) बलवान् तथा कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इन्द्रके लिए (**ब्रह्म अकर्म**) स्तोत्र करते हैं ॥२०॥

१ **उग्रः नः तनूपा अविता असत्-** उग्र वीर हमारा शरीर रक्षक तथा संरक्षक हो।
२ **नः सख्या वियोषद्-** हमारी इन्द्रके साथ मित्रता दृढ हो।

[१८५] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तू (**स्तुतः गृणानः**) स्तुत्य होकर तथा प्रशंसित होकर (**जरित्रे**) स्तोताके लिए (**नद्यः न**) जैसे नदियां पानी देती हैं, उसी प्रकार (**इषं पीपेः**) अन्न दे। हे (**हरि-वः**) घोडोंवाले इन्द्र ! हम (**ते**) तेरे लिए अपनी (**धिया नव्यं ब्रह्म अकारि**) बुद्धिसे नये नये स्तोत्र बनाते हैं। (**रथ्याः स-दासाः स्याम**) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥२१॥

१ **रथ्याः सदासाः स्याम-** हमारे पास रथ और सेवक हों।

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू उत्तम और दिव्य गुणोंसे युक्त मनुष्यकी बुद्धियोंका रक्षक है। तू युद्धमें ऐसे मनुष्योंका सच्चा मित्र होता है। इसलिए उत्तम ज्ञानसे युक्त होकर हम तेरे कहनेके पीछे चलें ॥१८॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! हम सभी युद्धोंमें ऐश्वर्योंसे युक्त होकर तेरे सहयोगी मरुतोंके साथ मिल कर हम शत्रुओंको हरायें। और कई वर्षों तक तुझे आनन्दित करते रहें ॥१९॥

जिससे इन्द्रके साथ हमारी मित्रता दृढ हो, और वह हमारे शरीरों का रक्षक हो। इसलिए हम उस बलवान् तथा कामनाओंको पूर्ण करनेके लिए उसकी स्तुति करते हैं ॥२०॥

[१७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः। देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् १५ एकपदा विराट् ।]

१८६ त्वं म॒हाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्यं॑ ह॒ क्षा अनु॑ क्ष॒त्रं मं॒हना॑ मन्यत॒ द्यौः ।
त्वं वृ॒त्रं शव॑सा जघ॒न्वान् त्सृ॒जः सिन्धूँ॒रहि॑ना जग्रसा॒नान् ॥ १ ॥
१८७ तव॑ त्वि॒षो जनि॑मन् रेजत॒ द्यौ रेज॒द् भूमि॑र्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः ।
ऋ॒घा॒यन्त॑ सु॒भ्व१॒ः पर्व॑तास॒ आर्द॒न् धन्वा॑नि स॒रय॑न्त॒ आपः॑ ॥ २ ॥
१८८ भि॒नद् गि॒रिं शव॑सा॒ वज्र॑मि॒ष्णन्ना॑विष्कृण्वा॒नः स॑हसा॒न ओजः॑ ।
वधी॑द् वृ॒त्रं वज्रे॑ण मन्दसा॒नः सर॒न्नापो॒ जव॑सा ह॒तवृ॑ष्णीः ॥ ३ ॥

---

[६१७]

अर्थ- [१८६] हे इन्द्र! (**त्वं महान्**) तू महान् है, (**क्षा तुभ्यं क्षत्रं ह अनु**) पृथ्वी तेरे क्षात्रसामर्थ्यके पीछे चलती है, तथा (**मंहना द्यौः**) महिमासे युक्त द्युलोक भी (**मन्यत**) तेरी महत्ताको स्वीकार करता है। (**त्वं शवसा वृत्रं जघन्वान्**) तूने बलसे वृत्रको मारा, तथा (**अहिना जग्रसानान् सिन्धुन् सृजः**) अहिके द्वारा रोकी गई नदियोंको बहाया ॥१॥

१ **त्वं महान्-** तू महान् है।

२ **क्षा तुभ्यं क्षत्रं अनु-** पृथ्वी तेरे क्षात्र सामर्थ्यके पीछे चलती है।

३ **मंहना द्यौः मन्यत-** महिमासे युक्त द्युलोक भी तेरी महत्ताको स्वीकार करता है।

[१८७] हे इन्द्र! (**त्विषः तव जनिमन्**) तेरे जैसे तेजस्वी के जन्मते ही (**स्वस्य मन्योः भियसा**) तेरे क्रोधके डरसे (**द्यौः रेजत्**) द्यु कांपने लगी, तथा (**भूमिः रेजत्**) भूमि भी कांपने लगी (**सुभ्वः पर्वतासः ऋधायन्त**) महान् पर्वत भयभीत होने लगे, तथा (**आपः**) जल प्रवाह (**धन्वानि आर्दन् सरयन्ते**) मरु स्थलोंको गीला बनाते हुए बहने लगे ॥२॥

[१८८] (**सहसानः ओजः आविष्कृण्वानः**) शत्रुओंको हरानेवाले सामर्थ्यको प्रकट करते हुए इन्द्रने (**शवसा वज्रं इष्णन्**) बलसे वज्रको प्रेरित किया और (**गिरं भिनद्**) मेघोंको फोडा। (**मन्दसानः**) सोमसे आनन्दित होते हुए इन्द्रने (**वज्रेण वृत्रं वधीत्**) वज्रसे वृत्रको मारा, तथा (**हत वृष्णीः**) बलवान् वृत्रके मर जाने पर (**आपः जवसा सरन्**) जल प्रवाह वेगसे बहने लगे ॥३॥

१ **गिरिः-** पर्वत, मेघ, पर्वत परका बर्फ।

भावार्थ- हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥२१॥

हे इन्द्र तू महान् है, यह पृथ्वी भी तेरे सामर्थ्यके वशमें होकर तेरे आदेशोंके अनुसार चलती है। विशाल और विस्तृत द्युलोक भी तेरी महत्ताको स्वीकार करता है। तूने असुरोंको मारकर पानीको प्रवाहित किया, इसी कारण सब लोग तुझसे घबराते हैं और तेरी आज्ञाके अनुसार चलते हैं ॥१॥

इस महातेजस्वी इन्द्रके जन्मते ही इसके क्रोधसे द्युलोक कांपने लगा, भूमि कांपने लगी, सभी पर्वत और मेघ कांपने लगे और उन मेघोंसे जब जल प्रवाह बहने लगे, तब उन प्रवाहोंसे मरुस्थल भी गीले और पानीसे भर गए ॥२॥

शत्रुओंको हरानेवाले अपने सामर्थ्यसे जब इन्द्रने वज्रको प्रेरित किया, तब उससे मेघ विदीर्ण होकर पानी बरसाने लगे ॥३॥

१८९ सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥ ४ ॥
१९० य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥ ५ ॥
१९१ सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ ६ ॥
१९२ त्वमध प्रथमं जायमानो ऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन् वि वृश्चः ॥ ७ ॥

अर्थ- [१८९] (यः) जिसने (स्वर्यं) स्तुत्य, (सुवज्रं) उत्तम वज्र धारण करनेवाले तथा (सदसः अनपच्युतं) अपने स्थानसे न हटाये जा सकनेवाले (भूम) तथा ऐश्वर्यसे युक्त (ईं जजान) इस इन्द्रको उत्पन्न किया। वह (इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमः अभूत्) इन्द्रको उत्पन्न करनेवाला प्रजापति उत्तम कर्म करनेवाला था। हे इन्द्र! (ते जनिता) तुझे उत्पन्न करनेवालेने तुझे (सुवीरः मन्यत्) उत्तम वीर माना ॥४॥

यः ईं जजान, इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमः अभूत्- जिसने इस इन्द्रको उत्पन्न किया, वह इन्द्रका जन्मदाता उत्तम कर्म करनेवाला था।

[१९०] (कृष्टीनां राजा पुरुहूत यः इन्द्रः) मनुष्योंका राजा तथा बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाला जो इन्द्र (एकः इत्) अकेला होते हुए भी (भूम च्यावयति) बहुतसे शत्रुओंको अपने स्थानसे हटा देता है। (विश्वे मघोनः) सब ऐश्वर्यवान् मनुष्य (देवस्य गृणतः रातिं) दिव्य गुणवाले तथा स्तुति करनेवालेको धन देनेवाले (एनं अनु मदन्ति) इस इन्द्रको आनन्दित करते हैं ॥५॥

१ कृष्टीनां राजा इन्द्रः- प्रजाओंका राजा इन्द्र है।

२ एकः भूम च्यावयति- वह अकेलाही बहुत शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट कर देता है।

[१९१] (सत्रा सोमाः अस्य) सब सोम इसी इन्द्रके हैं, (विश्वे मदासः) सब आनन्द देनेवाले सोम (बृहतः) इस महान् इन्द्रको (सत्रा मन्दिष्ठाः) एक साथ आनन्दित करते हैं। वह (वसूनां वसुपतिः अभवः) सब धनोंका स्वामी है, हे इन्द्र! तू (विश्वाः कृष्टीः) सारे मनुष्योंको (दत्रे अधिथाः) ऐश्वर्यमें स्थापित करता है ॥६॥

विश्वाः कृष्टीः दत्रे अधिथाः- हे इन्द्र तू सब मनुष्योंको ऐश्वर्यमें स्थापित करता है।

[१९२] हे (इन्द्र) इन्द्र! (जायमानः प्रथमं) उत्पन्न होते ही सबसे पहले (त्वं) तूने (अमे) युद्धमें (विश्वाः कृष्टीः) सब प्रजाओंको (अधिया) धारण किया, (त्वं) तूने (प्रवतः प्रति) बहनेवाले जल प्रवाहोंको रोककर (आशयानं अहिं) सोनेवाले अहिको (वज्रेण विवृश्चः) वज्रसे मारा ॥७॥

भावार्थ- जिसने अपने स्थानसे च्युत न होनेवाले सामर्थ्यशाली इन्द्रको उत्पन्न किया, वह उत्तम कर्म करनेवाला पुण्यशाली था। ऐसे सामर्थ्यशाली वीरको जो स्त्री उत्पन्न करती है, वह सचमुच पुण्यशालिनी होती है। ऐसे सामर्थ्यशालीकी सभी प्रजायें सत्कार करती हैं ॥४॥

यह इन्द्र मनुष्योंका पालक होनेसे सबका राजा है, इसीलिए सब इसे अपनी सहायता के लिए बुलाते हैं। यह अपनी वीरता के कारण बहुतसे शत्रुओंको भी अपने स्थानसे च्युत कर देता है। अतः सब दिव्यगुणवाले मनुष्य इस इन्द्रको आनन्दित करते हैं ॥५॥

सब सोम इसी इन्द्रके लिए निचोडे जाते हैं, और वे इसीको एक साथ आनन्दित करते हैं। वह सब धनोंका स्वामी है, इसीलिए वह सब मनुष्योंको ऐश्वर्यमें स्थापित करता है ॥६॥

१९३ सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ८ ॥

१९४ अयं वृतश्चातयते समीची-र्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्य-स्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९ ॥

१९५ अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्न-न्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥ १० ॥

अर्थ- [१९३] (**यः वृत्रं हन्ता**) जो वृत्रको मारनेवाला, (**वाजं सनिता**) अन्न देनेवाला, (**मघानि दाता**) ऐश्वर्योंको देनेवाला (**सुराधाः मघवा**) उत्तम धन युक्त तथा ऐश्वर्यवान् है, उस (**सत्राहणं**) शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले, (**दाधृषिं**) शत्रुओंका घर्षण करनेवाले (**तुभ्रं**) प्रेरणा देनेवाले, (**महां अपारं वृषभं सु-वज्रं**) महान् अपार बलवान्, उत्तम वज्र धारण करनेवाले (**इन्द्रं**) इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं ॥८॥

[१९४] (**यः मघवा**) जो ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**आजिषु एकः शृण्णः**) युद्धोंमें अकेला ही प्रसिद्ध है, (**अयं**) ऐसे इस इन्द्रने (**समीचीः वृतः**) संगठित हुए हुए शत्रुओंको (**चातयते**) हटाया है। (**अयं**) यह इन्द्र (**यं वाजं भरति**) जिस अन्नको देना चाहता है, (**सनोति**) उसे देता ही है, हम (**अस्य सख्ये प्रियसिः स्याम**) इसकी मित्रतामें प्रिय होकर रहें ॥९॥

अस्य सख्ये प्रियासः स्याम- इस इन्द्रकी मित्रतामें हम इसके प्रिय होकर रहें।

[१९५] (**अध**) तब (**अयं**) यह इन्द्र (**जयन् घ्नन्**) शत्रुओंको जीतता हुआ और मारता हुआ (**शृण्वे**) प्रसिद्ध होता है, (**उत्**) और (**युधा गाः प्र कृणुते**) युद्धसे गायोंको प्राप्त करता है (**यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते**) जब इन्द्र वास्तव में क्रोध करता है, तब (**विश्वं एजत् हळ्हं**) सारा जंगम और स्थावर जगत् (**अस्मात् भयत**) इससे डरता है ॥१०॥

यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते, विश्वं एजत् दृळ्ह अस्मात् भयत्- जब इन्द्र वास्वतमें क्रोध करता है तब सारा जंगम और स्थावर जगत् इससे डरता है।

भावार्थ- इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही सबसे पहले युद्धमें सब प्रजाओंको धारण किया और जल प्रवाहको रोककर सोनेवाल अहि नामक राक्षसको मारा। अहि मेघ है। जब मेघ बरसता नहीं और पानी को रोककर पडा रहता है, तब सूर्यकी किरणें बिजलीके रूप में परिवर्तित होकर मेघोंको फोडकर पानी बरसाती है ॥७॥

वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाला, अन्नको देनेवाला, ऐश्वर्योंको देनेवाला, उत्तम धन युक्त और ऐश्वर्यनान् है। वह शत्रुओंको एक साथ मारनेवाला, शत्रुओंको हरानेवाला, सबको प्रेरणा देनेवाला, और अत्यन्त बलवान् है ॥८॥

यह ऐश्वर्यवान् इन्द्र युद्धोंमें अकेलाही शत्रुओंको मारनेके कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है। वह जिस पर प्रसन्न होकर अन्नको देना चाहता है, उसको वह देता ही है। अतः हम भी इसकी मित्रतामें इसके प्रिय होकर रहें ॥९॥

जब यह इन्द्र शत्रुओंके विजेता और नाशकके रूप में प्रसिद्ध होता है, तब युद्धमें उसका वास्तविक क्रोध प्रकट होता है और तब उसके क्रोधको देखकर सारा चर और अचर जगत् इससे डरने लगता है ॥१०॥

१९६ समिन्द्रो गा अजयत् सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता संभरश्च वस्वः ॥ ११ ॥
१९७ कियत् स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत् पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥ १२ ॥
१९८ क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥ १३ ॥
१९९ अयं चक्रमिषणत् सूर्यस्य न्येतशं रीरमत् ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥ १४ ॥

अर्थ- [१९६] (**मघवा इन्द्रः गाः सं अजयत्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्रने गायोंको अच्छी तरह जीता, तथा (**हिरण्या सं**) सोनेको भी जीता (**अश्विया सं**) घोडोंको जीता तथा (**यः पू र्वीः**) जिस इन्द्रने बहुतसी सेनाओंको जीता, वह (**शाकैः नृतमः**) शक्तियोंसे युक्त तथा उत्तम नेता इन्द्र (**एभिः नृभिः**) इन मनुष्योंसे प्रशंसित होकर (**अस्य रायः विभक्ताः**) अपने धनको बांट देता है, पर (**वस्वः संभरः**) फिर भी अनेक प्रकारके धनोंको धारण करता है ॥११॥

१ **अस्य रायः विभक्ताः वस्वः संभरः**- यह इन्द्र अपने धनको बांट देता है, पर फिर भी इसके पास भरपूर धन रहता है।

[१९७] (**यः जनितुः जजान**) जो इन्द्र अपने उत्पन्न करनेवालेसे उत्पन्न होता है, तथा (**स्तनयद्भिः अभ्रैः जूतः वातः न**) गर्जनेवाले मेघोंके साथ प्रेरित वायुके समान (**यः अस्य मुहुकैः इयर्ति**) जो अपने बलको बारबार प्रेरित करता है, ऐसे (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**मातुः कियत स्वित् अधि एति**) मातासे कितना बल प्राप्त किया और (**पितुः कियत्**) पितासे कितना बल प्राप्त किया ॥१२॥

[१९८] हे इन्द्र ! (**त्वं**) तु (**अ-क्षियन्तं क्षियन्तं कृणोति**) आश्रयरहितको आश्रयसे युक्त करता है। वह (**मघवा**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**सोमहं रेणु इयर्ति**) किये हुए पापको नष्ट करता है। (**द्यौः इव अशनिमान्**) द्युलोकके समान वज्र धारण करनेवाले, (**विभंजनुः**) शत्रुओंको तोडनेवाला (**मघवा**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**स्तोतारं वसौ धात्**) स्तोताको धनोंमें स्थापित करता है ॥१३॥

२ **अक्षियन्तं क्षियन्तं कृणोति**- वह इन्द्र आश्रय रहितको आश्रय प्रदान करता है।

[१९९] (**अयं सूर्यस्य चक्रं इषणत्**) इस इन्द्रने सूर्यके चक्रको प्रेरित किया, तथा (**ससृमाणं एतशं नि रीरमत्**) युद्धके लिए आते हुए एतशको वापस भेजा ! (**जुहुराणः कृष्णः**) कुटिल गति करनेवाला काला मेघ (**त्वचः अस्य रजसः बुध्ने योनौ**) तेजस्वी इस जलके मूल भूत स्थान अन्तरिक्षमें (**ईं जिघर्ति**) इस इन्द्रको रखता है ॥१४॥

भावार्थ- उत्तम शक्तियोंसे भरपूर यह इन्द्र गाय, घोडे तथा अनेक तरहके ऐश्वर्योंको जीत कर जो धन प्राप्त करता है, उन्हें वह सब मनुष्योंमें बांट देता है फिर भी उसके पास भरपूर धन रहता है। इसी प्रकार राजा भी युद्ध आदिमें जो धन प्राप्त करे उसे वह प्रजाओंकी उन्नतिके कामोंमें खर्च करे, तब प्रजा भी उन्नत होकर राज्यकोषको भरपूर करेगी ॥११॥

यह इन्द्र जिसे उत्पन्न करता है, उसीसे फिर यह उत्पन्न होता है, और वायुके समान अपने बलको प्रेरित करता है। यह इन्द्र कुछ शक्ति अपनी मातासे प्राप्त करता है, तो कुछ शक्ति अपने पितासे। यह इन्द्र राजा है, जो प्रजाका पालन होनेसे प्रजाको उत्पन्न करता है, फिर प्रजाओंके द्वारा चुने जाने के कारण उससे फिर उत्पन्न होता है। प्रजाओंकी सहायता पाकर वह अपने बलको शत्रुओंकी ओर प्रेरित करता है। प्रजा उसकी माता और राष्ट्र या राज्यशासन उसका पिता है। राजा के रूपमें वह थोडेसे अधिकार प्रजासे प्राप्त करता है, तो थोडे से अधिकार राज्यशासनसे प्राप्त करता है ॥१२॥

वह इन्द्र आश्रयरहितको आश्रय प्रदान करता है और किए हुए पापको नष्ट करता है। वह वज्रधारी इन्द्र अपने स्तोताओंको धन प्रदान करता है। राजा भी अपने राष्ट्रमें जो आश्रयरहित हो उसे सहारा दे। अनाथको सुखप्रदान करे और अपनी प्रजाओंको ऐश्वर्यसे युक्त करके उन्हें अपराध करनेका अवसर न दे ॥१३॥

२०० असिक्न्यां यजमानो न होता ॥ १५ ॥

२०१ गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोति—मा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥ १६ ॥

२०२ त्राता नो बोधि ददृशान आपि—रभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७ ॥

२०३ सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८ ॥

अर्थ- [२००] (**असिक्न्यां न यजमानः होता**) रात्रीमें प्रशंसित यजमान अग्निका रक्षण करता है ॥१५॥

[२०१] (**अवते कोशं न**) जिस प्रकार लोग कुंओंमेंसे जलसे भरे बर्तनको निकालते हैं, उसी प्रकार (**गव्यन्तः अश्वायन्तः, वाजयन्तः जनीयन्तः**) गायकी इच्छा करनेवाले, घोडोंकी इच्छा करनेवाले, अन्नकी इच्छा करनेवाले तथा स्त्रियोंकी इच्छा करनेवाले (**विप्राः**) बुद्धिमान् हम (**वृषणं जनिदां अक्षितोतिं**) बलवान्, स्त्रियोंको देनेवाले, क्षीण न होनेवाले संरक्षणके साधनोंसे युक्त (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**आच्यावयामः**) अपनी तरफ लाते हैं ॥१६॥

[२०२] हे इन्द्र ! (**ददृशानः**) सबको देखनेवाला तू (**नः त्राता आपिः बोधि**) हमारा रक्षण करनेवाला भाई होकर हमें जान। वह इन्द्र (**अभिख्याता**) सब तरफ प्रसिद्ध, (**सोम्यानां मर्डिता**) सोम यज्ञ करनेवालोंको सुखी करनेवाला (**सखा**) मित्र (**पिता**) पालन करनेवाला (**पितॄणां पितृतमः**) पालन करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ (**ई लोकं कर्ता**) इस लोकका बनानेवाला तथा (**उशते वयोधाः**) स्तोताके लिए अन्नको धारण करनेवाला है ॥१७॥

[२०३] हे इन्द्र ! (**सखीयतां अविता बोधि**) तेरी मित्रता चाहनेवाले हमारा तू रक्षक हो, हे (**गृणानः इन्द्र**) प्रशंसित होनेवाले इन्द्र ! तू (**सखा**) हमारा मित्र हो, तथा (**स्तुवते वयः धाः**) स्तोताके लिए अन्नको धारण कर। हे इन्द्र ! (**सबाधः वयं**) आपत्तिमें पडे हुए हम (**आभिः शमीभिः महयन्तः**) इन स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए (**ते आ चकृम**) तेरी प्रार्थना करते हैं ॥१८॥

भावार्थ- इस इन्द्रने सूर्यके चक्रको प्रेरित किया तथा चारों ओरसे घिरकर आते हुए अन्धकारको दूर किया, जब काले काले मेघ छाते हैं, तब उन जलोंमें सूर्यकी किरणें प्रविष्ट होती हैं और बादल जब रगड खाते हैं, तब उनमें बिजली चमकती है वही इन्द्रका रूप है ॥१४॥

दिनमें यज्ञ करनेके समय अग्निकी रक्षा ऋत्विग्गण करते हैं, पर रात्रीमें ऋत्विग्गणोंके अभावमें यजमानको ही अग्निकी रक्षा करनी पडती है। इसी लिए यजमानको "अग्नीध्र" कहा जाता है ॥१५॥

जिस प्रकार मनुष्य कुवेंमें से पानी भरते हैं, उसी तरह ऐहिक सुखकी कामना करनेवाले ज्ञानी जन इस इन्द्रको अपनी ओर बुलाते हैं ॥१६॥

इन्द्र सबके कार्यको देखनेवाला और सबका भाई होकर सबकी रक्षा करनेवाला है। यह सर्वत्र प्रसिद्ध सोम यज्ञ करनेवालोंको सुखी करनेवाला, मित्रके समान हितकारी सबका पालन करनेवाला और पालन करनेवालोंमें भी सर्वश्रेष्ठ और लोकोंका बनानेवाला है ॥१७॥

हे इन्द्र ! हमारी मित्रताको चाहते हुए तू हमारा रक्षक हो। हम आपत्तिमें पडे हुए हैं अतः हम तेरी प्रार्थना करते हैं ॥१८॥

२०४ स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥ १९ ॥
२०५ एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २० ॥
२०६ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

[१८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः, १ इन्द्र, ४ (उत्तरार्धर्चस्य), ७ अदितिः । देवता- १ वामदेवः, २-४ (पूर्वार्धर्चस्य), ८-१३ इन्द्रः, ४ (उत्तरार्धर्चस्य), ७ वामदेवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२०७ अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १ ॥

अर्थ- [२०४] (यत् ह) जब (मघवा इन्द्रः स्तुतः) ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी स्तुति की जाती है, तब वह (एकः) अकेला ही (अप्रतीनि भूरीणि वृत्रा हन्ति) पीछे न हटनेवाले बहुतसे वृत्रोंको मार देता है। (यस्य शर्मन्) इस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले (अस्य प्रियः जरिता) इसके प्रिय स्तोताको (नकिः देवाः वारयन्ते न मर्ताः) न देव नष्ट कर सकते हैं और न मनुष्य नष्ट कर सकते हैं ॥१९॥

यस्य शर्मन् अस्य प्रियः न किः देवाः वारयन्ते न मर्ताः- इस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले इसके मित्रको न देव मार सकते हैं न मनुष्य।

[२०५] (विरप्शी, चर्षणीधृत्, अनर्वा मघवा इन्द्रः) शक्तिशाली, मनुष्योंको धारण करनेवाला, प्रतिबन्ध रहित और ऐश्वर्यवान् इन्द्र (एव) ही (नः सत्या करत्) हमारी कामनाओंको सत्य करनेवाला है। (जनुषां राजा त्वं) जन्म लेनेवाले प्राणियोंका राजा तू (यत् माहिनं श्रवः) जो यशस्वी अन्न (जरित्रे) स्तोताको देता है, वह (अस्मे अधि धेहि) हमें भी दें ॥२०॥

[२०६] (नद्यः न) जिस प्रकार नदियोंको जल पूर्ण करते हैं उसी प्रकार हे इन्द्र! (स्तुतः गृणानः) प्रशंसित तथा स्तुति किया हुआ तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण कर। हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र! हमने (धिया) अपनी बुद्धिसे (ते नव्यं ब्रह्म अकारि) तेरे लिए नया स्तोत्र बनाया है, हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथवाले तथा दासोंसे युक्त हों ॥२१॥

[१८]

[२०७] (अयं पन्था अनुवित्तः पुराणः) यह मार्ग ऐश्वर्य दिलानेवाला सनातन है। (यतः विश्वे देवाः उत् अजायन्त) जिस मार्गसे सब देव उन्नत हुए हैं, (अतः चित् प्रवृद्धः जनिषीष्ट) इसीसे मनुष्य उन्नत होकर बडा हुआ है हे मनुष्य! (अमुया) अपनी उत्पत्तिसे (मातरं पत्तवे मा कः) माताको नष्ट मत कर।

१ अमुया मातरं पत्तवे मा कः- अपनी कार्य प्रवृत्तीसे अपनी मातृभूमिको गिरावट न कर।
२ अयं पन्था अनुवित्तः पुराणः- यह मार्ग अनुकूलतासे धन देनेवाला सनातन है।
३ अतः चित् प्रवृद्धः जानषीष्ट- इस मार्गसे निश्चयसे बडे होते हैं।

भावार्थ- जब इन्द्रकी स्तुति की जाती है, तब इन्द्रका बल बढता है और वह अकेला ही अनेक शत्रुओंको मारता है। जो मनुष्य इसके आश्रयमें रहता है और इसका प्रेम प्राप्त करता है, उसे न देव मार सकते हैं और न मनुष्य ॥१९॥

शक्तिशाली, मनुष्योंको धारण करनेवाला, तथा किसीसे भी न रुकनेवाला ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही हमारे मनोरथोंको पूर्ण कर सकता है। हे इन्द्र! तू सारे प्राणियोंका राजा है तू जो उत्तम अन्न स्तोताको देता है, वही हमें भी दे ॥२०॥

हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं अतः तू जैसे नदियाँ मनुष्योंको पानी देती हैं उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥२१॥

२०८ नाहमतो निरया दुर्गहैतत् तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥
२०९ परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत् सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३ ॥
२१० किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥

अर्थ- [२०८] (अहं अतः न निरय) मैं इस मार्गसे नहीं जाऊंगा, (एतत् दुः गहा) यह मार्ग बहुत दुर्गम है, इसलिए मैं (तिरश्चता पाश्र्वात् निगर्माणि) तिरछे बाजूसे निकलूंगा, (मे) मेरे (बहूनि अकृता कर्त्वानि) बहुतसे न किए हुए करने योग्य कर्म हैं। (त्वेन युध्यै) किससे युद्ध करना है, यह मैं (त्वेन संपृच्छै) किससे पूछुं ॥२॥

१ एतत् दुर्गहा, अतः अहं न निरय- यह दुर्गम मार्ग है अतः मैं इससे नहीं जाऊंगा।
२ तिरश्चता पाश्र्वात् निर्गमणि- दूसरे मार्गसे जाऊंगा।
३ बहूनि कर्त्वानि अकृता- बहुतसे कर्तव्य किये नहीं है।
४ त्वेन युध्यै, त्वेन संपच्छै- एकसे लडूंगा और पूछूंगा।

[२०९] मैंने (परायतीं मातरं अनु अचष्टे) आसन्नमरण हुई माताको देख लिया है, और मैं (न अनु गानि न) उसके सहायार्थ नहीं जाता हूँ ऐसी बात नहीं, अपितु (गमानि नु) जाता ही हूँ। (इन्द्रः) इन्द्रने (चम्वो सुतस्य त्वष्टुः) लकडीके पात्रोंमें सोमरस निचोडनेवाले त्वष्टाके (गृहे) घरमें (शत् धन्यं सोमं अपिबत्) सैकडों प्रकारके धन्यता देनेवाले सोमको पिया ॥३॥

[२१०] (यं) जिसका (सहस्रं मासः पूर्वीः शरदः च) हजारों महिनों और बहुत वर्षों तक (जभार) भरणपोषण किया है, (सः) वह (ऋधक् किं कृणवत्) विरुद्ध कर्म क्यों करेगा ? (ये जनित्वाः) जो उत्पन्न होनेवाले हैं, उनके और (जातेषु) उत्पन्न हुओंके (अन्तः) बीचमें (अस्य प्रतिमानं न हि) इस इन्द्रकी उपमा कोई नहीं है ॥४॥

१ यं सहस्र मासाः पूर्वीः शरदः य जभार सः ऋणक् किं कृणवत्- जिसका बहुत मासों और वर्षोंतक भरणपोषण किया गया है, वह अपने पोषण करनेवालेके विरुद्ध कोई काम क्यों करेगा ? अर्थात् कभी नहीं कर सकता।
२ जनित्वाः जातेषु अस्य प्रतिमानं नहि- उत्पन्न होनेवालों और उत्पन्न हुए हुओंमें इस इन्द्रके समान कोई नहीं है।

भावार्थ- मनुष्य उत्पन्न होकर ऐसा कर्म करे कि जिससे उसके कुल और उसकी मातृभूमिका अपयश होकर उसकी अवनति न हो। यही उत्तम मार्ग ऐश्वर्यको दिलानेवाला है। इसी उत्तम मार्ग पर चलकर सब देव उन्नत हुए हैं और इसी प्रकार चलकर मनुष्य भी उन्नत हो सकता है ॥१॥

मातृभूमिको तथा स्वयंको गिरानेवाले मार्ग बहुत खतरनाक होते हैं, अतः मनुष्यको चाहिए कि वह इस मार्गसे न जाए। इसके विपरित वह इस मार्गको बगल करके निकल जाए। उसके सामने हमेशा आगे बढनेका ही आदर्श हो, क्यों कि उसके सामने ऐसे कई काम पडे रहते हैं जो अभी करने बाकी है। मनुष्य जीवनभर कर्म करता रहे फिर भी काम खतम होनेवाले नहीं है। मनुष्य मरणशील हैं। पर कर्म अमर है इसलिए मनुष्य सदा उन्नतिके मार्गपर ही चले ॥२॥

मनुष्यको चाहिए कि जब उसकी मातृभूमि अवनत हो रही हो, तब उसकी सहायताके लिए वह अवश्य जाए। अपनी मातृभूमिकी उपेक्षा न करे। ऐसा मनुष्य ही इन्द्रका प्रिय होकर धन्य होता है ॥३॥

मनुष्यको चाहिए कि वह अपने आश्रितोंका बडे प्रेमसे भरणपोषण करे और जिनका भरणपोषण किया जाता है, उन्हें भी चाहिए कि वे अपने स्वामीके विरुद्ध कोई काम न करे। आश्रयदाता और आश्रित दोनों बडे प्रेमसे रहें ॥४॥

२११ अवद्यमिव मन्यमाना गुहाक-रिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात् स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥
२१२ एता अर्षन्त्यललाभवन्ती-ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥
२१३ किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्ते-न्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान् पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ॥ ७ ॥
२१४ ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्यु-र्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥

अर्थ- [२११] (माता) माताने **(गुहा इन्द्रं अवद्यं इव मन्यमाना)** गुहा (गर्भ) में स्थित इन्द्रको निन्दनीय मानकर **(वीर्येण न्यृष्टं अकः)** बलपूर्वक बाहर निकाल फेंका। **(अथ)** तब इन्द्र **(अत्कं वसानः स्वयं उत् अस्थात्)** तेजको आवरण धारण करता हुआ स्वयं उठ खडा हुआ और **(जायमानः)** उत्पन्न होते ही उसने **(रोदसी अपृणात्)** द्यावा पृथिवीको अपने तेजसे भर दिया ॥५॥

[२१२] (अललाभवन्तीः) हर्षसे शब्द करती हुई **(ऋतावरीः)** पानीसे भरी हुई **(एताः)** ये नदियां **(संक्रोशमानाः इव)** मानों चिल्लाती हुई **(अर्षन्ती)** बह रही हैं। **(आपः इदं किं भनन्ति)** ये जल यह क्या कह रहे हैं, **(एताः वि पृच्छ)** इनसे यह पूछ। इन्द्रके शस्त्र **(कं परिधिं अद्रिं रुजन्ति)** जलको घेरनेवाले मेघको फोडते हैं ॥६॥

[२१३] (नि विदः अस्मै किं उ भनन्त) स्तुतियां इस इन्द्रसे क्या कहती हैं तथा **(आपः)** जल **(इन्द्रस्य अवद्यं दिधिषन्तेः)** इन्द्रके निर्दोषपनको स्तुतियां धारण करती हैं। **(मम पुत्रः)** मेरे पुत्रने **(महता वधेन वृत्रं जघन्वान्)** बडे शस्त्रसे वृत्रको मारा और **(एतान् सिन्धून् वि असृजत्)** इन नदियोंको बहाया ॥७॥

[२१४] हे इन्द्र ! **(ममत् चन त्वा)** एक बार तुझे **(युवतिः परास)** स्त्री **(अदिति)** ने दूर रखा, **(ममत् चन त्वा कुषवा जगार)** एक बार तुझे कुषवा नामक नदीने निगल लिया था, तथा **(ममत्- चित् आपः)** वहां पर एक बार जलोंने **(शिशवे ममृड्युः)** शिशुके रूपवाले तुझे सुखी किया और तब **(ममत्-चित् इन्द्रः)** दूसरी बार इन्द्र **(सहसा उत् अतिष्ठत्)** अपने बलसे उठ खडा हुआ ॥८॥

भावार्थ- प्रकृति माताके गर्भमें रहता हुआ यह इन्द्ररूपी सूर्य अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण माताके लिए इसे गर्भमें धारण करना असह्य हो गया, तब प्रकृति माताने बलपूर्वक उसे अपने गर्भसे बाहर निकाल फेंका। तब वह गर्भ सूर्यके रूपमें बाहर आकर द्युलोकमें स्थित हो गया और उत्पन्न होते ही उसने द्युलोक और पृथ्वी लोकको अपने प्रकाशसे भर दिया ॥५॥

बहनेवाली नदियां अत्यन्त हर्षसे युक्त होकर कल कल करती हुई बहती हैं, और हर्षसे युक्त शब्दको प्रकट करती हुई बह रही हैं। वे मानों यह कह रही हों कि हमारे जलको मेघ घेरे रहते हैं, पर जब अपने शस्त्रसे इन्द्र उन्हें फोडता है, तब पानी बरसता है और तब हम भी बहना शुरु कर देती हैं ॥६॥

ऋत्विजोंके द्वारा की गई स्तुतियां इन्द्रके बलको बढाती है इस प्रकार मानों वे इन्द्रको उत्पन्न ही करती हैं। वे स्तुतियां कहती हैं कि हमारे पुत्र इन्द्रने बडे शस्त्रसे मेघोंको मारा और इन जल प्रवाहोंको बहाया, और जल प्रवाहोंसे भरी हुई नदियां इन्द्रकी शक्तिको धारण करती हैं ॥७॥

माताने बालक इन्द्रको प्रथम दूर रखा, वह बालक नदीमें एक बार डूब गया, वही एक बार जलमें खेलने लगा। पश्चात् वह बडा हुआ और अपने पांव पर खडा रहा। यह बाल इन्द्रका आलंकारिक वर्णन है।

२१५ मर्मचन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९ ॥

२१६ गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागा-मनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्वं इच्छमानम् ॥ १० ॥

२१७ उत माता महिषमन्ववेन-दमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन् त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥ ११ ॥

अर्थ- [२१५] हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**ममत्-चन**) एक बार तुझपर (**नि विविध्वान्**) आक्रमण करते हुए (**व्यंसः**) व्यंस नामक राक्षसने (**ते हनू अप जघान**) तेरी ठोढी पर प्रहार किया (**अधः**) बादमें (**निविद्धः उत्तरः बभूवान्**) वींधा गया तू अधिक बलशाली हुआ और तूने (**दासस्य शिरः वधेन सं पिणक्**) उस दासके सिरको शस्त्रसे काट दिया ॥९॥

[२१६] (**गृष्टिः वत्सं**) जिस प्रकार गाय बछडेको उत्पन्न करती है, उसी प्रकार (**माता**) माता अदितिने (**स्वयं गातुं तन्वं इच्छमानं**) स्वयं चलनेके लिए शरीरकी इच्छा करनेवाले, (**स्थविरं तवागां**) बडे, बलशाली, (**अनाधृष्यं वृषभं**) शत्रुओंसे न हारनेवाले बलवान् (**तुम्रं अरीळ्हं इन्द्रं**) प्रेरक और न मारे जानेवाले, इन्द्रको (**चरथाय ससूव**) विचरनेके लिए उत्पन्न-प्रकट किया ॥१०॥

[२१७] (**उत**) और (**माता**) माताने (**महिषं अनु अवेनत्**) महान् इन्द्रकी प्रशंसा की कि हे (**पुत्र**) पुत्र ! (**अमी देवाः त्वा जहति**) ये देव तुझे छोड रहे हैं। (**अथ**) तब (**वृत्रं हनिष्यन्**) वृत्रको मारनेकी इच्छा करते हुए (**इन्द्रः**) इन्द्रने [**विष्णुसे**] (**अब्रवीत्**) कहा कि हे (**सखे विष्णो**) मित्र विष्णो ! (**वितरं विक्रमस्व**) तू उत्तम पराक्रम कर ॥११॥

भावार्थ- व्यंस राक्षसने युद्धमें इन्द्रकी ठोढी पर प्रहार किया। इसके पश्चात् इन्द्र बडा होकर अधिक शक्तिशाली हुआ और उसी दासके सिरको उसी इन्द्रने काटा ॥९॥

इन्द्र शत्रुपर हमले करनेके लिये आक्रमण करना चाहता था इसलिये बलवान् इन्द्रको माताने बलशाली स्थितिमें उत्पन्न किया ॥१०॥

एक बार इन्द्र जब शक्तिरहित होने लगा, तब उसकी माताने कहा कि तुझे ये देवगण छोड रहे हैं, तब वृत्र असुर को मारनेकी इच्छासे इन्द्रने विष्णुसे कहा कि तू अपना पराक्रम प्रकट करके उस असुरका नाश कर। यह एक आध्यात्मिक अलंकार है, इस मंत्रमें शरीरकी अवस्थाका वर्णन है। जब इन्द्र-आत्मा निर्बल हो जाती है, तब उसे सब देवरूपी इन्द्रियां छोडने लगती हैं, अर्थात् आत्मशक्ति कमजोर पडने लगती है, तब आत्माको शक्ति देनेवाली उसकी माता अर्थात् उसे सजग करता है कि देख इस शरीरमेंसे इन्द्रियोंकी शक्ति कम हो रही है, तब आत्मा भी सजग होकर विष्णु अर्थात् प्राणशक्तिको प्रेरित करती है और वह प्राणशक्ति प्रेरित होकर फिर इन्द्रियोंको पुष्ट करती है ॥११॥

२१८ कस्ते मातरं विधवामचक्र—च्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद् यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥ १२ ॥

२१९ अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमाना—मधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥ १३ ॥

[१९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२२० एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद् वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥

अर्थ- [२१८] हे इन्द्र! (**यत्**) जब तूने (**पितरं पादगृह्य प्राक्षिणाः**) पिताको पैर पकड कर फेंका तब (**कः ते मातरं विधवां अचक्रत्**) तेरी माताको किसने विधवा बनाया? और (**शयुं चरन्तं त्वां**) सोनेवाले और चलनेवाले तुझे (**कः जिघांसत्**) किसने मारनेकी इच्छा की और (**कः देवः मार्डीके ते अधि आसीत्**) कौन देव सुख देनेमें तुझसे अधिक था? ॥१२॥

[२१९] मैंने (**अवर्त्या शुनः आंत्राणि पेचे**) नबर्तने योग्य कुत्तेकी अंतडियों को पकाया, (**देवेषु मर्डितारं न विविदे**) देवोंमें सुखी करनेवालेको मैंने नहीं जाना, और (**जायां अमहीयमानां अपश्यं**) अपनी स्त्रीको अप्रशंसनीय स्थितिमें देखा, (**अध श्येनः मे मधु आ जभार**) तब श्येन मेरे लिए मधुर अन्न लाया ॥१३॥

[१९]

[२२०] हे (**वज्रिन् इन्द्र**) वज्रधारी इन्द्र! (**सु-हवासः ऊमाः विश्वे देवासः**) उत्तम प्रकारसे सहायार्थ बुलाने योग्य, रक्षा करनेवाले सम्पूर्ण देव तथा (**उभे रोदसी**) दोनों द्यावापृथिवी (**वृद्धं ऋष्वं**) वृद्ध, महान् (**त्वा**) तुझे (**एकं इत्**) अकेलेको ही (**अत्र वृत्रहत्ये**) इस युद्धमें (**वृणते**) स्वीकार करते हैं ॥१॥

भावार्थ- यह मंत्र भी आध्यात्मिक भावार्थको लिए हुए है। जब इन्द्ररूपी जीवात्मा अपने पिता परमात्माको दूर फेंक देता है अर्थात् भुला देता है, तब आत्माको उत्पन्न करनेवाली शक्तिरूप उसकी माता विधवा के समान शक्ति रहित हो जाती है। परमात्माकी शक्ति ही आत्माको शक्तिसम्पन्न करती है। इसलिए वह मानों आत्माको उत्पन्न ही करती है। जब यह आत्मा सोती रहती है, सजग नहीं रहती, तो मानों उसकी मृत्यु ही हो जाती है। जितना सुख यह जीवात्मा देती है, उससे ज्यादा सुख सुखस्वरूप परमात्मा देता है ॥१२॥

इस मंत्रमें नीच प्रवृत्तिके मनुष्यके विषयमें विधान है। जब मनुष्य अत्यन्त नीच स्थितिमें पहुंचकर कुत्ते आदि पशुओंके मांस पर अपना जीवन निर्वाह करने लगता है, तब उसे कोई भी देव सुख प्रदान नहीं करता, उसके शरीरमें स्थित इन्द्रियां रूपी देव शक्तिहीन होकर दुःख भोगने लगते हैं। उसकी स्त्री आदि उसके परिवारके सदस्य भी अप्रशंसनीय स्थितिमें ही रहते हैं। उनकी स्थिति भी बडी दयनीय होती है। तब एक विद्वान् आकर उसे मीठा प्रशंसनीय अन्नका महत्त्व बताकर उसे पशुमांसको छोडनेका आदेश देता है, तब उसकी स्थिति सुधरती है। शारीरिक स्थिति मधुर अन्न खानेसे ही सुधरती है, पशुमांसको खानेसे नहीं ॥१३॥

इस वज्रधारी इन्द्रको सभी देव और सभी लोक असुरोंको मारनेके लिए बुलाते हैं और अपने नेताके रूपमें स्वीकार करते हैं ॥१॥

२२१ अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥

२२२ अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्य-मबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयान-महिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥

२२३ अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजो-ऽवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

२२४ अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥

अर्थ- [२२१] (**जिव्रय: न**) जिस प्रकार वृद्ध तरुणोंको प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार (**देवा**) देवगण तुझे (**अवाअसृजन्त**) प्रेरित करते हैं। हे (**सत्ययोनी: इन्द्र**) सत्यके आश्रयस्थान इन्द्र! तू (**सम्राट् भुव:**) सम्राट् हुआ है, तूने (**अर्ण: परिशयानं अहिं**) पानीके चारों तरफ सोनेवाले अहि राक्षसको (**अहन्**) मार कर (**विश्वधेना: प्रवर्तनी अरद:**) सबको तृप्त करनेवाली नदियोंको प्रेरित किया ॥२॥

[२२२] (**अतृष्णुवन्तं अबुध्यं**) तृप्त न होनेवाले, कठिनतासे जाने जानेवाले, (**अबुध्यमानं**) स्वयं कुछ न जाननेवाले, (**सुषुपाणं**) सोनेकी इच्छा करनेवाले (**सप्त प्रवत:**) सात नदियोंको (**प्रति आशयानं**) घेर कर बैठनेवाले (**वियतं**) तथा अन्तरिक्षमें रहनेवाले (**अहिं**) अहिको, हे इन्द्र! तूने (**अपर्वन्**) संधियोंसे रहित करते हुए (**वज्रेण विरिणा:**) वज्रसे मारा ॥३॥

१ अ-पर्वन्- संधियोंसे रहित, जो पर्वका दिन नहीं, ऐसे पौर्णमासी अष्टमी और चतुर्दशी। पर्वके दिन छोडकर दूसरे दिन मारा।

[२२३] (**वात: तविषीभि: वार्ण**) जिस प्रकार वायु अपने बलोंसे पानीमें हलचल पैदा करता है, उसी तरह (**इन्द्र:**) इन्द्रने (**शवसा**) बलसे (**बुध्नं क्षाम**) द्युलोक और पृथ्वीलोकको (**अक्षोदयत्**) हिला दिया। (**ओज: उशमान:**) बलकी कामना करते हुए इन्द्रने (**हळ्हानि औभ्नात्**) अत्यंत दृढ शत्रुओंको भी मार दिया, तथा (**पर्वतानां ककुभ: अवाभिनत्**) पर्वतोंके पंखोंको भी काट डाला ॥४॥

[२२४] हे (**इन्द्र**) इन्द्र! (**जनय: गर्भं न**) जैसे मातायें अपने गर्भकी रक्षा करती हैं उसी तरह (**अद्रय:**) शस्त्र (**अभि प्रदद्रु:**) तेरे पीछे पीछे चलते है, (**रथा: इव**) तथा जिस प्रकार रथ युद्धमें साथ जाते हैं उसी तरह ये शस्त्र तेरे (**साकं ययु:**) तेरे साथ चलते हैं। तूने (**विसृत: अतर्पय:**) नदियोंको तृप्त किया (**ऊर्मीन् उब्ज**) मेघोंको फोडा तथा हे इन्द्र! (**त्वं**) तूने (**वृतान् सिन्धून्**) रुकी हुई नदियोंको (**अरिणा:**) बहाया ॥५॥

भावार्थ- जिस प्रकार वृद्ध तरुणोंको उत्तम उपदेश देकर उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार देवगण इस इन्द्रको वीरतापूर्ण कर्म करनेके लिए प्रेरित करते हैं। यह इन्द्र सदा सत्यका ही पक्ष लेता है। इसलिए अहि आदि असुर असत्यका पक्ष लेकर प्रजाको दु:ख देते हैं, उन्हें मारकर इन्द्र सबको तृप्त एवं सुखी करता है ॥२॥

कभी न तृप्त होनेवाले, सदा ही असन्तोषकी वृत्ति धारण करनेवाले, स्वयं कुछ न जाननेवाले अज्ञानसे भरपूर मनुष्य असुर कहलाते हैं, इन्द्र उनका वध करता है ॥३॥

जिस प्रकार हवा अपने बलसे पानीमें हलचल पैदा करती है उसी प्रकार इन्द्रने अपने बलसे द्युलोक और पृथ्वीलोक को क्षुब्ध किया। वह बहुत शक्तिशाली है ॥४॥

जिस प्रकार मातायें अपने गर्भकी रक्षा करती हैं उसी प्रकार शस्त्र भी इस इन्द्रकी रक्षा करते हैं अथवा जिस प्रकार रथयुद्धमें रथ वीरोंके साथ साथ जाते हैं, उसी प्रकार ये शस्त्र भी इन्द्रके साथ साथ चलते हैं। इस इन्द्रने मेघोंको तोडकर जलप्रवाह चलाकर नदियोंको तृप्त किया ॥५॥

२२५ त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥
२२६ प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद् युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक् तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥
२२७ पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥
२२८ वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्य१न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित् समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

अर्थ- [२२५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं) तूने (तुर्वीतये वय्याय) तुर्वीति और वय्यके लिये (विश्वधेनां क्षरन्तीं महीं अवनिं) सबको तृप्त करनेवाली, धान्यको देनेवाली विस्तृत पृथ्वीको (एजत् अर्णः नमसा) बहनेवाले पानीसे और अन्नसे (अरमयः) आनन्दित किया, तथा तूने (सिन्धून् सुतरणान् अकृणोः) नदियोंको उत्तमता से पार करने योग्य बनाया ॥६॥

[२२६] इन्द्रने (नभन्वः वक्वाः न) हिंसक सेनाओंके समान (ध्वस्राः) किनारोंको ध्वस्त करनेवाली (युवतीः ऋतज्ञाः) जलसे भरी हुई तथा अन्नको उत्पन्न करनेवाली (अग्रुवः अपिन्वद्) नदियोंको पूर्ण किया। (धन्वानि) मरुस्थलोंको तथा (तृषाणां अज्रान्) प्यासी भूमियोंको (अपृणक्) तृप्त किया तथा (दंसुपत्नीः स्तर्यः) शक्तिशाली स्वामियोंवाली गायोंको (इन्द्रः अधोक्) इन्द्रने दुहा ॥७॥

[२२७] इन्द्रने (वृत्रं जघन्वान्) वृत्रको मारा और (गूर्ताः पूर्वीः उषसः शरदः च) अन्धकारमें डूबी हुई बहुतसी उषाओंको और वर्षोंको तथा (सिन्धून्) नदियोंको (असृजत्) प्रकट किया। (परिष्ठिताः) बादलोंमें स्थित (बद्बधानाः) वृत्रके द्वारा रोकी गई (सीराः) नदियोंको (पृथिव्या स्रवितवे) पृथिवीपर बहनेके लिए (अतृणत्) प्रेरित किया ॥८॥

[२२८] हे (हरि-वः) घोडोंको रखनेवाले इन्द्र! तूने (वम्रीभिः अदानं) चींटियोंके द्वारा खाये जानेवाले (अग्रुवः पुत्रं) अग्रुके पुत्रको (निवेशनात् आ जमर्थ) उसके घरसे बाहर निकाला। (आददानः अन्धः अहिं अख्यत्) बाहर निकल कर उस अन्धे अग्रुके पुत्रने अहिको देखा। (निर्भूतः) वह घरसे बाहर निकला, तब इन्द्रने (उखच्छित् पर्व) बर्तनके समान टूट जानेवाले उसके जोडोंको (समरन्त) अच्छी तरह जोडा ॥९॥

भावार्थ- इस इन्द्रने वीरके लिए सारी पृथ्वीको विस्तृत, धान्यसे सम्पन्न और तृप्त करनेवाली बनाया और नदियोंको भी सरलतासे पार करने योग्य बनाया ॥६॥

इन्द्रने, जिस प्रकार हिंसक सेनायें अपनी प्रतिपक्षी सेनाओंका नाश करती हैं, उसी प्रकार किनारोंको ध्वस्त करनेवाली जलसे पूर्ण नदियोंको प्रवाहित किया, उससे मरुस्थलों और प्यासी भूमियोंको तृप्त करके उर्वरा बनाया तब उन भूमियोंको बनाकर उनको दुहा अर्थात् उससे अनेक रस प्राप्त किए ॥७॥

इन्द्रने अन्धकारमें डूबी हुई उषाओंको प्रकट किया, उन उषाओंके कारण सूर्य प्रकट हुआ, सूर्यके प्रकट होनेके साथ ही वर्षों, मासों और दिवसोंकी गणना होने लगी। सूर्यके उगनेसे बर्फ पिघलने लगी, तो नदीयोंमें प्रवाह तेज हो गया ॥८॥

इन्द्रने अग्रुवके पुत्रकी रक्षा की, वह अन्धा था, अतः उसे दृष्टि देकर देखने योग्य बनाया और उसकी टूटी हुई सन्धियोंको जोडकर फिर उसे स्वस्थ कर दिया ॥९॥

२२९ प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्रा॒ऽऽविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्ता॒ऽपांसि राजन् नर्याविवेषीः ॥ १० ॥
२३० नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२३१ आ न इन्द्रो दूरादा न आसा॒दभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १ ॥
२३२ आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छा॒ऽर्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शी॒मं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २ ॥

अर्थ- [२२९] हे (राजन्) तेजस्वी इन्द्र! (यथा यथा) जैसे जैसे तू (स्वगूर्ता) स्वयं प्रशंसित तथा (नर्या) मनुष्योंके लिए हितकारक और (वृष्ण्यानि अपांसि) पराक्रमसे युक्त कर्मोंको (आ विवेषीः) करता है, वैसे वैसे हे (विप्र) विद्वान् इन्द्र! (विदुषे ते) ज्ञानसे युक्त तेरे द्वारा किए गए (पूर्वाणि करणानि) बहुतसे कर्मोंको (आ विद्वान्) जाननेवाला मैं (करांसि आह) तेरे कर्मोंका वर्णन करता हूं ॥१०॥

[२३०] हे इन्द्र! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित हुआ तू (जरित्रे) स्तोताके लिए (इषं) अन्नको (नद्यः न) नदियोंके समान (पीपेः) भर दे। हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र! मैं (धिया) अपनी बुद्धिसे (ते) तेरे लिए (नव्यं ब्रह्म) नये स्तोत्रको (अकारि) करता हूँ, हम (रथ्यः सदासाः) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

[२०]

[२३१] (समत्सु संगे पृतन्यून् तुर्वणिः) बडे बडे संग्रामोंमें और छोटे संग्राममें हिंसकोंको मारनेवाला (वज्रबाहुः) वज्रके समान कठोर बाहुओंवाला, (नृपतिः) मनुष्योंका पालन करनेवाला (ओजिष्ठेभिः) सामर्थ्योंसे युक्त तथा (अभिष्टिकृत् इन्द्रः) अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला इन्द्र (नः अवसे) हमारे संरक्षणके लिए (दूरादआसाद् नः यासत्) दूरसे और पाससे हमारे पास आवे ॥१॥

[२३२] (अर्वाचीनः इन्द्रः) हमारी तरफ आनेवाला इन्द्र (अवसे राधसे) हमारे संरक्षणके लिए तथा हमें धन देनेके लिए (हरिभिः नः अच्छे आ यातु) घोडोंसे हमारी तरफ सीधा आवे। (वज्री, मघवा, विरप्शी) वज्र धारण करनेवाला, ऐश्वर्यवान् और महान् इन्द्र (वाजसातौ) अन्नप्राप्तिके लिए यज्ञोंके शुरु होने पर (इमं यज्ञं तिष्ठाति) हमारे इस यज्ञमें ही बैठता है ॥२॥

भावार्थ- यह तेजस्वी इन्द्र सुखदायक मनुष्योंके लिए हितकारक और पराक्रमसे युक्त कर्मोंको करता है, उसी कारण इस इन्द्रके कर्मोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती है ॥१०॥

हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हो ॥११॥

यह इन्द्र संग्रामोंमें शत्रुओंको मारनेवाला, वज्रके समान कठोर बाहुओंवाला, मनुष्योंका पालन करनेवाला, सामर्थ्योंसे युक्त और अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥१॥

हमारी तरफ आनेवाला इन्द्र हमारी रक्षाके लिए तथा हमें धन देने के लिए हमारी ओर आवे। वह वज्रधारी और ऐश्वर्यवान् इन्द्र हमारे यज्ञमें आकर बैठे और हमें अन्न प्रदान करे ॥२॥

२३३ इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत् सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन् त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥ ३ ॥
२३४ उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥
२३५ वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभि—र्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभि मन्यमानो—ऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ ॥
२३६ गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥

अर्थ- [२३३] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं) तू (नः पुरः दधत्) हमें आगे रखकर (अस्माकं इमं क्रतुं यज्ञं) हमारे इस किए जानेवाले यज्ञका (सनिष्यसि) सेवन कर। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र! (श्वघ्नी इव) शिकारी जिस प्रकार पशुओंको ढूंढता है, उसी तरह (अर्यः वयं) तेरी स्तुति करनेवाले हम (धनानां सनये) धनकी प्राप्तिके लिए (त्वया) तेरी सहायतासे (आजिं जयेम) संग्रामको जीतें ॥३॥

[२३४] हे (स्वधावः) अन्नवान् इन्द्र! (सुमनाः) उत्तम मनवाला तू (उशन्) हमारी कामना करता हुआ (नः उपाके) हमारे पास आकर (नः सु-सुतस्य) हमारे द्वारा निचोडे गए (मध्वः सोमस्य नु पाः) मीठे सोमको पी। (पृष्ठ्येन अन्धसा) अपने पीछे रखे हुए अन्नरूप सोमसे (सं ममदः) आनन्दित हो ॥४॥

[२३५] (पक्वः वृक्षः न) जिस प्रकार पके हुए फलोंवाला वृक्ष प्रशंसित होता है, अथवा (सृण्यः जेता न) शस्त्र चलानेमें कुशल विजेता जिस प्रकार प्रशंसित होता है, उसी प्रकार (यः नवेभिः ऋषिभिः ररप्श) जो नये ऋषियोंके द्वारा प्रशंसित होता है। (योषां मर्यः न) जिस तरह अपनी स्त्रीकी पुरुष प्रशंसा करता है, उसी तरह (अभि मन्यमानः) अच्छी तरह जानता हुआ मैं (पुरुहूतं इन्द्रं) बहुतोंके द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाले इन्द्रका (अच्छा विवक्मि) उत्तम रीतिसे वर्णन करता हूं ॥५॥

[२३६] (गिरिः न स्वतवान्) पहाडके समान बलवान् (यः ऋष्वः उग्रः इन्द्रः) जो महान् और वीर इन्द्र (सहसे) शत्रुओंको जीतनेके लिए (सनात् एव जातः) प्राचीनकालसे ही उत्पन्न हुआ है, वह इन्द्र (उदन् कोशं इव) पानीसे भरे हुए बर्तनके समान (वसुना न्यृष्टं) धनसे युक्त (स्थविरं वज्र) महान् वज्रको (आदर्ता) स्वीकार करता है ॥६॥

१ ऋष्वः उग्रः इन्द्रः सहसे सनात् एव जातः- वह महान् और वीर इन्द्र शत्रुओंको जीतनेके लिए प्राचीनकालसे ही उत्पन्न हुआ है।

भावार्थ- हे इन्द्र! हमारे इस यज्ञमें आकर तू यज्ञका सेवन कर। तेरी स्तुति करनेवाले हम धनकी प्राप्तिके लिए तेरी सहायतासे संग्रामको जीतें ॥३॥

हे इन्द्र! उत्तम मनसे युक्त होकर हमारे पास आनेकी इच्छा करता हुआ तू हमारे दिए गए अन्नका सेवन कर ॥४॥

जिस प्रकार पके हुए फलोंवाला वृक्ष अथवा शस्त्र चलानेमें कुशल विजेता सर्वत्र प्रशंसित होता है, अथवा जिस प्रकार एक स्त्री अपने पतिके द्वारा प्रशंसित होती है उसी प्रकार यह इन्द्र भी सबके द्वारा प्रशंसित होता है ॥५॥

महान् और वीर इन्द्र शत्रुओंको जीतनेके लिए प्राचीनकालसे ही उत्पन्न हुआ है। वह इस कामके लिए महान वज्रको धारण करता है ॥६॥

२३७ न यस्यं वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्यं ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रा ऽस्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥ ७ ॥

२३८ ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीना मुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान् वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ८ ॥

२३९ कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहो ऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥ ९ ॥

२४० मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत् ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन् त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥ १० ॥

अर्थ- [२३७] **(जनुषा यस्य वर्ता न अस्ति)** जन्मसे ही जिसका कोई नाश करनेवाला नहीं है। तथा **(राधसः मघस्य न आमरीता)** जिसके ऐश्वर्यसे युक्त धनका भी नाश करनेवाला कोई नहीं है। हे **(तविषीवः उग्र पुरुहूत)** बलवान्, वीर और बहुतोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाये जानेवाले इन्द्र! **(वृषाणः)** अत्यन्त बलशाली तू **(अस्मभ्यं रायः दद्धि)** हमें धन दे॥७॥

१ **जनुषा (अस्य) वर्ता न अस्ति-** जन्मसे ही इस इन्द्रका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

[२३८] हे इन्द्र! तू **(चर्षणीनां रायस्य क्षयस्य)** मनुष्यों पर, धन पर तथा घर पर **(ईक्षे)** शासन करता है **(उत)** और **(गोनां व्रजं अपवर्तासि)** गायोंके बाडेको खोलनेवाला है। **(शिक्षानरः)** शिक्षाके द्वारा लोगोंको उन्नत करनेवाला तथा **(समिथेषु प्रहावान्)** युद्धोंमें शत्रुओं पर प्रहार करनेवाला तू **(भूरिं वस्वः राशिं)** बहुतसी धनकी राशिको **(अभिनेता असि)** प्राप्त करानेवाला है॥८॥

[२३९] **(शचिष्ठः ऋष्वः)** अत्यन्त बलवान और महान् इन्द्र **(कया शच्या शृण्वे)** किस शक्तिके कारण प्रसिद्ध है? तथा **(यया मुहु कृणोति)** जिससे बार बार काम करता है वह शक्ति **(का चित्)** कौनसी है? वह इन्द्र **(दाशुषे)** दान देनेवालेके लिए **(पुरु अंहः विचयिष्ठः)** बहुतसे पाप का नाश करनेवाला है। **(अथ)** और **(जरित्रे द्रविणं दधाति)** स्तोताके लिए धन देता है॥९॥

[२४०] हे इन्द्र! तू **(नः मा मर्धीः)** हमें न मार, अपितु **(आ भर)** हमारा भरण पोषण कर। **(ते यत् भूरि)** तेरे जो बहुत साधन **(दाशुषे दातवे)** दान देनेवालेको देनेके लिए हैं **(तत् नः दद्धि)** वह हमें दे। हे इन्द्र! **(स्तुवन्तः वयं)** तेरी स्तुति करते हुए हम **(अस्मिन् नव्ये देष्णे शस्ते उक्थे)** इस नये, दान जिसमें दिया जाता है ऐसे तथा अनुशासित यज्ञमें **(प्र ब्रवाम)** तेरा बहुत गुणवर्णन करते है॥१०॥

भावार्थ- यह इन्द्र ऐसा वीर है कि जन्मसे ही इसका कोई नाश नहीं कर सकता। इसके ऐश्वर्यका भी कोई नाश नहीं कर सकता॥७॥

यह इन्द्र मनुष्यों पर, धन पर और घर पर भी शासन करता है और गायोंकी भी रक्षा करनेवाला है। यह इन्द्र शिक्षाके द्वारा लोगोंको उन्नत करनेवाला, युद्धमें शत्रुओं पर प्रहार करनेवाला और धनकी राशिको प्रदान करनेवाला है॥८॥

वह इन्द्र अपने बल और महानताके कारण ही प्रसिद्ध है, उसमें सतत काम करनेकी शक्ति है। वह दान देनेवालेके बहुतसे पापोंका नाश करता है॥९॥

हे इन्द्र! तू हमें मार मत, इसके विपरीत हमारा पालन पोषण कर। जो पदार्थ तू दानशीलोंको देता है, वही हमें भी दे। हम भी अनुशासित यज्ञमें बैठकर तेरा गुणगान करें॥१०॥

२४१ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२१]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।]

२४२ आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥

२४३ तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट् साह्वान् तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥ २ ॥

अर्थ- [२४१] हे इन्द्र! (**नद्यः न**) जिस प्रकार नदियां पानीसे भरी जाती हैं, उसी तरह (**स्तुतः गृणानः**) स्तुत और प्रशंसित हुआ तू (**जरित्रे इषं पीपेः**) स्तोताको अन्नसे पूर्ण कर। हे (**हरि-वः**) घोडोंवाले इन्द्र! मैंने (**ते धियां नव्यं ब्रह्म अकारि**) तेरे लिए बुद्धिसे नया स्तोत्र बनाया है। हम (**रथ्यः सदासाः स्याम**) रथ और दासोंसे युक्त हों ॥११॥

[२१]

[२४२] (**द्यौः न**) द्युलोकके समान तेजस्वी (**यस्य तविषीः पूर्वीः**) जिस इन्द्रके बल बहुतसे हैं, वह (**इन्द्रः**) इन्द्र (**अवसे नः उप आयातु**) संरक्षणके लिए हमारे पास आवे तथा (**स्तुतः**) प्रशंसित होकर वह (**इह सधमात् अस्तु**) इस यज्ञमें हमारे साथ आनन्द प्राप्त करनेवाला हो, और (**अभिभूति क्षत्रं पुष्यात्**) शत्रुको हरानेवाले बलको पुष्ट करे ॥१॥

[२४३] (**साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः सम्राट् न**) शत्रुको हरानेवाले तथा उनकी हिंसा करनेवाले, युद्धके योग्य सम्राट्के समान (**यस्य क्रतुः**) जिस इन्द्रकी शक्ति (**कृष्टीः**) प्रजाओंपर (**अभि अस्ति**) शासन करती है, ऐसे (**तुविद्युम्नस्य तुविराधसः तस्य इत्**) बहुत तेजस्वी और बहुत धनोंवाले उस इन्द्रके (**वृष्ण्यानि**) बलोंकी तथा (**नॄन्**) अन्य नेताओंकी (**इह स्तवथ**) यहां तुम स्तुति करो ॥२॥

१ **साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः सम्राट्-** शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला, युद्धमें कुशल सम्राट हो।

२ **तरुत्रः-** शत्रुका नाश तथा प्रजाका रक्षण करनेवाला।

३ **तुविद्युम्नस्य तुनिराधसः वृष्ण्यानि स्तवथ-** तेजस्वी और साधन संपन्नके बलोंकी प्रशंसा करो।

४ **नॄन् स्तवथ-** नेताओंकी प्रशंसा करो।

भावार्थ- हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते है, अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

यह इन्द्र द्युलोकके समान तेजस्वी है, इसीलिए इस इन्द्रके बल बहुतसे हैं। ऐसा यह तेजस्वी इन्द्र संरक्षणके लिए हमारे पास आवे। वह हमारे यज्ञमें आकर आनन्द प्राप्त करे ॥१॥

यह इन्द्र एक ऐसा सम्राट् हैं कि जो शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला और युद्धमें कुशल है। ऐसे तेजस्वी और साधनसम्पन्न इन्द्रके बलोंकी सब प्रशंसा करते हैं। ऐसे नेताओंकी प्रशंसा सर्वत्र होती है ॥२॥

२४४ आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३ ॥
२४५ स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥ ४ ॥
२४६ उप यो नमो नमसि स्तभाय—न्नियर्ति वाचं जनयन् यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थै—रेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥
२४७ धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान् त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान् त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥

अर्थ- [२४४] (**मरुत्वान् इन्द्रः**) मरुतोंको साथमें रखनेवाला इन्द्र (**नः अवसे**) हमारे संरक्षणके लिए (**दिवः पृथिव्याः समुद्रात् पुरीषात्**) द्युलोकसे, पृथिवीसे, अन्तरिक्षसे, जलसे (**स्वर्णरात्**) स्वर्गलोकसे (**परावतः**) दूर देशसे (**उत वा**) और (**ऋतस्य सदनात्**) यज्ञके स्थानसे (**आयातु**) आवे ॥३॥

१ **समुद्रः-** समुद्र, अन्तरिक्ष "समुद्र इति अन्तरिक्षनाम" (निघ १/३/१५)

२ **पुरीषं-** शौच, पानी "पुरीषमित्युदकनाम" (निघं १/१२/१२)

३ **मरुत्वान् इन्द्रः नः अवसे आयातु-** सेनाके साथ इन्द्र हमारे संरक्षणके लिये हमारे पास आवे।

[२४५] (**यः**) जो इन्द्र (**स्थूरस्य बृहतः रायः ईशे**) बहुत बडे धन पर शासन करता है, (**यः वायुना गोमतीषु जयति**) जो वायुकी सहायतासे गायोंकी प्राप्ति होनेवाले युद्धोंमें जय प्राप्त करता है तथा (**घृष्णुया**) जो शत्रुओंका घर्षण करनेवाला (**वस्यः अच्छ नयति**) धनको अच्छी तरह प्राप्त कराता है, (**तं इन्द्रं विदथेषु स्तवाम**) उस इन्द्रकी यज्ञोंमें हम प्रशंसा करते हैं ॥४॥

१ **यः बृहतः रायः ईशे, घृष्णुया वस्यः, तं विदथेषु स्तवाम-** जो वीर बडे धनको अपने आधीन रखता है शत्रुओंका घर्षण करके जो धन प्राप्त करता है, उसकी हम यज्ञोंमें तथा युद्धोंमें प्रशंसा गाते हैं।

[२४६] (**नमः ऋंजसानः उक्थैः पुरुवारः**) नमन करने योग्य, कर्मोंको सिद्ध करनेवाला और स्तोत्रोंके द्वारा बहुत बार वरण करने योग्य (**यः**) जो इन्द्र (**स्तभायन्**) लोकोंको आधार देता है तथा (**यजध्यै वाचं जनयन्**) यज्ञ करनेके लिए स्तुतिके स्तोत्र करता हुआ यजमानको (**नमसि इयर्ति**) अन्नप्राप्तिके कार्यमें प्रेरित करता है, उस (**इन्द्रं**) इन्द्रको (**होता सदनेषु**) होता यज्ञोंमें (**कृण्वीत**) आनन्दित करे ॥५॥

[२४७] (**औशिजस्य गोहे**) उशिक् ऋषिके पुत्रके घरमें (**सदन्तः धिषण्यन्तः**) बैठे हुए स्तुति करनेवाले ऋत्विक् (**यदि**) जब (**धिषा**) बुद्धिपूर्वक (**अद्रिं सरण्यान्**) [सोम पीसनेके लिए] पत्थरके पास जाएं, तब इन्द्र (**आ**) आवेगा (**यः नः संवरणेषु वह्निः**) जो हमें युद्धोंमें पार ले जानेवाला तथा (**महान्**) महान् है, वह (**दु-रोषाः**) शत्रुपर भयंकर क्रोध करनेवाला (**होता**) बुलानेपर (**पास्त्यस्य आ**) यजमानके घर आवेगा ॥६॥

१ **यः संवरणेषु नः वह्निः-** जो युद्धोंमेंसे हमें पार ले जाता है।

२ **दुरोषाः-** शत्रुपर भयंकर क्रोध करनेवाला।

भावार्थ- मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाला इन्द्र, हमारी रक्षा करनेके लिए द्युलोक, पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष और जल प्रदेशोंसे हमारे पास आवे ॥३॥

यह इन्द्र बहुत बडे धन और ऐश्वर्यों पर शासन करता है। यही वायुकी सहायतासे गायोंकी प्राप्ति होनेवाले युद्धोंमें जय प्राप्त करता है। यह इन्द्र शत्रुओंको अच्छी तरह परास्त करके धनको प्राप्त करता है ॥४॥

यह इन्द्र नमन करने योग्य, उत्तम कर्मोंको सिद्ध करनेवाला, वरणीय और लोकोंके लिए आधार देनेवाला है ॥५॥

यह इन्द्र शत्रुओंपर भयंकर क्रोध करनेवाला और महान् है। जब यजमानके घरमें ऋत्विक गण सोम पीसने के लिए पत्थरोंके पास जाते हैं, तब उन पत्थरोंकी आवाज सुनकर इन्द्र वहां आता है ॥६॥

२४८ सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद् धिये प्रायसे मदाय ॥ ७ ॥
२४९ वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो वहन्ति ॥ ८ ॥
२५० भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९ ॥
२५१ एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १० ॥

अर्थ- [२४८] (यत् ई) जब इस इन्द्रको (भार्वरस्य सत्रा) भार्वरके यज्ञमें तथा (यत् ई औशिजस्य गोहे) जब इसको उशिक् ऋषिके पुत्रके घरमें (धिये, अयसे, मदाय) बुद्धि बढानेके लिए शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए और आनन्दके लिए (वृष्णः सिषक्ति) बलवर्धक सोम सींचता है, तब यह (भराय) भरणपोषण के लिए (स्तुवते) स्तोताको (गुहा) गुहामें रखे हुए धनको (प्र) देता है ॥७॥

[२४९] इन्द्रने (यत्) जब (पर्वतस्य वरांसि वि वृण्वे) पर्वतके दरवाजोंको खोल दिया तथा (यदि) जब (अपां जवांसि पयोभिः जिन्वे) नदियोंके वेगोंको जलोंसे पूर्ण किया, तब उसने (गौरस्य गवयस्य विदद्) हिरण और गायके समूहको प्राप्त किया। (सुध्यः) बुद्धिमान् ऋत्विज (गोहे) यज्ञशालामें (वाजाय) इस बलवान् इन्द्रके लिए (वहन्ति) सोम पहुंचाते हैं ॥८॥

[२५०] हे इन्द्र ! (ते हस्ता भद्रा) तेरे हाथ कल्याण करनेवाले है, (उत) और (पाणी सुकृता) तेरे पंजे उत्तम कर्म करनेवाले हैं, तथा वे (स्तुवते राधः प्रयन्तारा) स्तोताको धन देनेवाले हैं। (ते निषत्तिः का) तेरे रहनेका स्थान कौनसा है? (उत्) और तू हमें (किं न ममत्सि) क्यों नहीं आनन्दित करता? (उत्) और हमें (दातवै) धन देनेके लिए (किं न हर्षसे) क्यों नहीं हर्षित होता है? ॥९॥

[२५१] (एवा) इस प्रकार (सत्यः वस्वः सम्राट्) अविनाशी, धनोंका सम्राट् (वृत्रं हन्ता) वृत्रको मारनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (पूरवे वरिवः कः) यजमानके लिए धन देता है। हे (पुरुस्तुत) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्र! तू (क्रत्वा) अपने पराक्रमसे (नः रायः) हमें धनसे (शग्धि) समर्थ कर, मैं (ते दैव्यस्य अवसः भक्षीय) तेरे दिव्य संरक्षणका उपभोग करूं ॥१०॥

१ **सत्यः वस्वः सम्राट्-** यह सच्चे धनोंका सम्राट् है।
२ **पूरवे वरिवः कः-** यज्ञ करनेवालेको धन देता है।
३ **ते दैव्यस्य अवसः भक्षीय-** तेरे दिव्य संरक्षणको हम प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- जब किसी भरणपोषण करनेवाले अथवा किसी पदार्थकी कामना करनेवाले के घरमें इस इन्द्रके लिए बलवर्धक सोम सींचा जाता है, तब यह इन्द्र बुद्धिके लिए, शत्रुपर आक्रमण करने के लिए अपने भक्तको अत्यन्त गुप्त धनको भी बता देता है।

इन्द्रने जब पर्वतोंके दरवाजोंको खोल दिया, तो जलके प्रवाह भरपूर वेगसे बहने लगे। तब जब सर्वत्र धान्यकी बहुतायत हो गए, तब गायें और हिरण आदि पशु समृद्ध और हृष्टपुष्ट हो गए ॥८॥

इस इन्द्रके हाथ कल्याण करनेवाले और उसके पंजे भी उत्तम कर्म करने वाले हैं। इस पर भी वह हमें आनन्दित क्यों नहीं करता तथा हमें धन देते समय वह हर्षित क्यों नहीं होता, यह विचारणीय है ॥९॥

वह इन्द्र धनोंका सच्चा सम्राट है। वह यज्ञ करनेवालोंको धन देता है। उस धनसे वह मनुष्य समर्थ बनता है। हे इन्द्र! तेरे दिव्य संरक्षणको हम प्राप्त करें ॥१०॥

२५२ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२२]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२५३ यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान् करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥ १ ॥

२५४ वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥ २ ॥

अर्थ- [२५२] (**नद्यः न**) जिस प्रकार नदियां जलसे भरी जाती है, उसी प्रकार हे इन्द्र! (**स्तुतः गृणानाः**) स्तुत और प्रशंसित होकर तू (**जरित्रे इषं पीपेः**) स्तोताको अन्न भरपूर दे। (**हरि-वः**) घोडोंवाले इन्द्र! मैंने (**ते**) तेरे लिए (**धिया नव्यं ब्रह्म**) बुद्धिपूर्वक नये स्तोत्र (**अकारि**) बनाये हैं, हम (**रथ्यः सदासाः स्याम**) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

१ **रथ्यः सदासाः स्याम-** हम रथोंसे तथा सेवकोंसे युक्त हों अर्थात् हमारे पास रथ हों और नौकर भी हों।

[२२]

[२५३] (**यः**) जो (**अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति**) वज्रको बलसे धारण करता हुआ आता है, वह (**इन्द्रः**) इन्द्र (**नः यत्**) हमारा जो कुछ है (**च**) और (**यत् वष्टि**) जो चाहता है उसका (**जुजुषे**) सेवन करता है। वह (**महान् शुष्मी मघवा**) महान् और बलवान् इन्द्र (**नः ब्रह्म, स्तोभं, सोमं, उक्था**) हमारे अन्न, स्तुति, सोम और स्तोत्रको (**आ करति**) स्वीकार करता है ॥१॥

१ **यः अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति-** जो वज्रको धारण करके आता है। वह वीर है। (**महान् शुष्मी मघवा**) वह बडा बलवान् और धनवान् है।

[२५४] (**वृषा**) बलवान् (**उग्रः**) वीर (**नृतमः शचीवान्**) उत्तम नेता, शक्तिशाली इन्द्र (**बाहुभ्यां वृषन्धि चतुरश्रि अस्यन्**) बाहुओंसे बिजलीके समान तेजको धारण करनेवाले तथा चार धाराओंवाले वज्रको शत्रुओं पर फेंकते हुए (**श्रिये**) ऐश्वर्यके लिए (**परुष्णीं उषमाणः**) परुष्णी नदीका उपयोग करता है (**यस्यां पर्वाणि**) जिस नदीके प्रदेशोंका वह इन्द्र (**सख्याय विव्ये**) मित्रताके लिए संरक्षण करता है ॥२॥

१ **वृषा उग्रः नृतमः शचीवान् बाहुभ्यां वृषंधिं चतुरश्रि अस्यन् श्रिये-** बलवान् उग्र श्रेष्ठ नेता बलवान् वीर अपने बाहुओंसे चार धारोंवाले वज्रको यशके लिए शत्रुपर फेंकता है।

भावार्थ - हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते है। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

जो वज्रको धारण करके आता है, वह वीर, बडा बलवान् और धनवान् है। इसीलिए वह हमारे ऐश्वर्योंका यथेच्छ उपभोग करता है ॥१॥

बलवान्, उग्र, श्रेष्ठनेता, बलवान् वीर अपने बाहुओंसे चार धाराओंवाले वज्रको यश प्राप्त करनेके लिए शत्रुपर फेंकता है। वह नदियोंके प्रदेशका संरक्षण करता है ॥२॥

२५५ यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत् प्र भूम ॥ ३ ॥
२५६ विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन् रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत् परिज्मन् नोनुवन्त वाताः ॥ ४ ॥
२५७ ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥ ५ ॥
२५८ ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥

अर्थ- [२५५] (यः देवः देवतमः) जो तेजस्वी श्रेष्ठ देव (जायमानः) उत्पन्न होकर (महः वाजेभिः महद्भिः शुष्मैः) बडे सामर्थ्योंसे और बडी शक्तियोंसे युक्त है, वह (बाह्वोः उशन्तं वज्रं दधानः) भुजाओंमें सुन्दर वज्रको धारण करता हुआ (अमेन) अपने बलसे (द्यां भूम रेजयत्) द्युलोक और भूमिको कंपाता है ॥३॥

[२५६] (जनिमन्) जन्मते ही (ऋष्वात्) इस महान् इन्द्रसे (विश्वा रोधांसि) सभी पहाड (पूर्वीः प्रवतः) पूर्ण भरी नदियां (द्यौः क्षाः) द्युलोक और पृथ्वीलोक (रेजत) कांपने लगे। (शुष्मी) बलवान् यह इन्द्र (गोः मातरा) सूर्यको माताओंको -द्यावापृथिवीको (आ भरति) धारण करता है। तथा (वाताः) वायु (नृवत्) मनुष्यके समान (परिज्मन् नोनुवन्त) अन्तरिक्षमें शब्द करते हैं ॥४॥

[२५७] हे (शूर धृष्णो इन्द्र) शूर और शत्रुओंका घर्षण करनेवाले इन्द्र! (यत्) जो तूने (दधृष्वान्) लोकोंको धारण करते हुए (शवसा) बलसे (धृषता वज्रेण) शत्रुओंको मारनेवाले वज्रके द्वारा (अहिं अविवेषीः) अहिको मारा (महतः ते) महान् तेरे (ता महानि) वे महान् कर्म (विश्वेषु अत् सवनेषु) सभी यज्ञोंमें (प्रवाच्या) वर्णन करने योग्य हैं ॥५॥

१ महतः ते ता महानि विश्वेषु इत् सवनेषु प्रवाच्या- महान् इस इन्द्रके वे महान् कर्म सभी उत्तम उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं।

[२५८] हे (तुविनृम्ण) अत्यधिक बलशाली इन्द्र! (ते ता विश्वा) तेरे वे सब कर्म (सत्या) यथार्थ हैं। हे (वृषणः) बलवान् इन्द्र! (धेनवः) गायें तेरे लिए (ऊध्नः सिस्रते) थनोंसे दूध चुआती हैं। (अध) और हे (वृषमनः) बलवान् मनवाले इन्द्र! (त्वद् भियानाः) तुझसे डरती हुई (सिन्धवः) नदियां (जवसा चक्रमन्त) वेगसे बहती हैं ॥६॥

१ ते ता विश्वा सत्या- इन्द्रके वे सभी कर्म सत्य हैं, काल्पनिक नहीं।

भावार्थ- जो तेजस्वी श्रेष्ठ देव इन्द्र उत्पन्न होने के साथ ही सामर्थ्यों और शक्तियोंसे युक्त हो जाता है। वह इन्द्र भुजाओंमें सुन्दर वज्रको धारण करके अपने बलसे द्युलोक और भूमिको कंपाता है ॥३॥

जन्मते ही इस महान् इन्द्रके बलसे पहाड, जलसे भरी हुई नदियां तथा सभी लोक कांपने लगे। यह बलवान् इन्द्र द्युलोक और पृथ्वी लोकको धारण करता है ॥४॥

हे शूर और शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्र! जो तूने लोकोंको धारण किया और अपने बल और वज्रसे अहिको मारा। महान् इन्द्रके ये महान् कर्म सभी उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं ॥५॥

अत्यधिक बलशाली इन्द्रके सभी कर्म सत्य हैं। इन्हें असत्य या काल्पनिक नहीं कहा जा सकता। इसी इन्द्रसे प्रेरित होकर गायें अपने थनोंसे दूध चुआती हैं। हे मनस्वी इन्द्र! नदियां भी तुझसे डरकर वेगसे बहती हैं ॥६॥

२५९ अत्राह ते हरिवस्ता उ देवी—रवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।
यत् सीमनु प्र मुचो बद्धधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥ ७ ॥
२६० पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धु—रा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥ ८ ॥
२६१ अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥ ९ ॥
२६२ अस्माकमित् सु शृणुहि त्वमिन्द्रा—ऽस्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधी—रस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ १० ॥

अर्थ- [२५९] हे इन्द्र ! **(यत्)** जब तूने **(सीं प्रसितिं दीर्घां)** इस शक्तिशाली बडी नदीको **(स्यन्दयध्यै प्र मुचः)** बहनेके लिए मुक्त किया, तब हे **(हरि-वः)** घोडे रखनेवाले इन्द्र ! **(बद्धधानाः ताः देवीः स्वसारः)** **[वृत्रके द्वारा]** बांधे हुए उन दिव्य जलोंने **(अवोभिः)** रक्षण करनेके कारण **(ते स्तवन्तः)** तेरी स्तुति की ॥७॥

[२६०] हे इन्द्र ! **(त्वा मद्यः अंशुः पिपीळे)** तेरे लिए आनन्ददायक सोम पीस दिया गया है। **(न सिन्धुः आ यम्याः)** अब नदी सोमके पास आवे अर्थात् सोमरसमें नदीका पानी मिलाया जावे **(आशुः गोः तुवि- ओजसं रश्मिं न)** जिस प्रकार तेजीसे जीनेवाले घोडेके मजबूत लगाम सारथी अपनी तरफ खींचता है उसी तरह **(शमी शक्तिः)** शत्रुओंका शमन करने वाला शक्तिशाली यह सोम **(शुशुचानस्य शशमानस्य अस्मध्रक्)** तेजस्वी और स्तुतिके योग्य इन्द्रको हमारी तरफ आनेवाला करे ॥८॥

[२६१] हे **(सहुरे)** शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र ! तू **(अस्मे)** हमारे लिए **(सहांसि, वर्षिष्ठा, ज्येष्ठा)** शत्रुका पराभव करनेवाले, श्रेष्ठ और प्रशस्त **(नृम्णानि)** पराक्रम **(कृणुहि)** कर। तथा **(अस्मभ्यं सु-हननानि वृत्रा रन्धि)** हमारे लिए अच्छी तरह मारने योग्य शत्रुओंका नाश कर और **(वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि)** हिंसक मनुष्यके शस्त्रको भी नष्ट कर ॥९॥

१ **हे सहुरे ! अस्मे सहांसि वर्षिष्ठा ज्येष्ठा नृम्णानि कृणुहि-** हे शत्रुका पराभव करनेवाले वीर ! हमारे हितके लिए शत्रुको पराभूत करनेवाले श्रेष्ठ और प्रशंसित पराक्रम तू कर।

२ **अस्मभ्यं सुहननानि वृत्रा रन्धि -** हमारे लिये वध्य शत्रुओंको मार।

३ **वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि-** हिंसक मनुष्यके शस्त्रको नष्ट कर।

[२६२] हे इन्द्र ! तू **(अस्माकं इत् सु श्रृणुहि)** हमारी ही प्रार्थनाको अच्छी तरह सुन तथा **(त्वं अस्मभ्यं चित्रान् वाजान्)** तू हमारे लिए अनेक तरहके अन्न **(उप माहि)** दे। **(अस्मभ्यं विश्वाः पुरन्धिः इषणः)** हमारी तरफ सब बुद्धियोंको प्रेरित कर, हे **(मघवन्)** ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! **(गो-दाः)** गायोंको देनेवाला तू **(अस्माकं सु बोधि)** हमें ज्ञानवान् कर ॥१०॥

१ **त्वं अस्मभ्यं चित्रान् वाजान् उप माहि-** तू हमारे लिये अनेक प्रकारके अन्न, भोग तथा बल दे।

२ **गोदाः अस्माकं बोधि-** हमें गायें और ज्ञान दे।

भावार्थ - जब इन्द्रने अपरिमित शक्तिसे सम्पन्न नदियोंके प्रवाहोंको बहनेके लिए मुक्त किया, तब वे शब्द करती हुई बहने लगीं, मानों इस ध्वनिसे वे इन्द्रकी स्तुति कर रही हों ॥७॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोमरस निकालकर उसमें पानी मिलाकर तैय्यार कर दिया गया है। यह सोमरस इन्द्रको हमारी तरफ उसी तरह खींचकर लावे कि जिस प्रकार तेजी से जानेवाले घोडोंकी लगाम सारथी अपनी तरफ खींचता है ॥८॥

हे शत्रुको परास्त करनेवाले वीर ! हमारे हितके लिए शत्रुको पराजित करनेवाले श्रेष्ठ और प्रशंसित पराक्रम तू कर। तू हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे वध्य शत्रुओंको मार। हिंसक मनुष्यके शस्त्रको नष्ट कर ॥९॥

२६३ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२३]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः, ८-१० ऋतं वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२६४ कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥

२६५ को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥

अर्थ- [२६३] (**नद्यः न**) जिस तरह नदियां जलसे पूर्णकी जाती है, उसी तरह हे इन्द्र ! (**स्तुतः गृणानः**) स्तुत और प्रशंसित होकर तू (**जरित्रे इषं पीपेः**) स्तोताको अन्न भरपूर दे। हे (**हरिवः**) घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! मैंने (**ते**) तेरे लिए (**धिया नव्यं ब्रह्म अकारि**) बुद्धिपूर्वक नये स्तोत्रको बनाया है। हम (**रथ्यः सदासाः स्याम**) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

[२३]

[२६४] (**महा कथा अवृधत्**) उस महान् इन्द्रको कैसे बढाया ? वह (**कस्य होतुः यज्ञं जुषाणः अभि**) किस होताके यज्ञका सेवन करेगा ? तथा (**ऊधः सोमं पिबत्**) गौ दूधसे मिश्रित सोमको पीता हुआ और (**उशानः अन्धः जुषमाणः**) इच्छापूर्वक अन्नका सेवन करता हुआ वह (**ऋष्वः**) महान् इन्द्र (**शुचते धनाय ववक्ष**) तेजस्वी धनको प्राप्त कराता है ॥१॥

[२६५] (**अस्य सधमादं**) इस इन्द्रके साथ बैठनेके आनन्दको (**कः वीरः आप**) कौन वीर प्राप्त करता है ? (**कः अस्य सुमतिभिः सं आनंश**) कौन इसकी उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होता है ? (**अस्य चित्रं कद् चिकिते**) इसके अनेक तरहके धनको कौन जानता है ? तथा यह इन्द्र (**शशमानस्य यज्योः**) स्तुति करनेवाले यजमानको (**वृधे**) बढानेके लिए (**ऊती**) संरक्षणके साधनोंसे युक्त (**कद् भुवत्**) कब होगा ? ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू हमारी प्रार्थनाको अच्छी तरह सुन और हमारे लिए अनेक तरहके अन्न दे। हमारी बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित कर। तू हमें ज्ञानवान् कर ॥१०॥

हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्यको पानी देती हैं, उसी तरह हमें बचा दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

उस महान् इन्द्रको किस तरह बढाया जाए, और वह किस भक्त की हवि का सेवन करेगा, यह जानने योग्य बात है। वह जिस भक्तके द्वारा दिए गए सोमको पीता है, उस भक्तको वह तेजस्वी धन प्रदान करता है ॥१॥

इस इन्द्रके साथ बैठनेके आनन्दको कौनसा वीर प्राप्त करता है ? कौन इसकी उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होता है ? कौन इसके अनेक तरहके धनको जानता है ? यह इन्द्र अपने स्तोताकी रक्षा करनेके लिए साधनोंसे युक्त कब होता है ? यह सभी बातें कठिनतासे जानी जाती हैं ॥२॥

२६६ कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥ ३ ॥

२६७ कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥ ४ ॥

२६८ कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ॥ ५ ॥

अर्थ- [२६६] (इन्द्रः) इन्द्र (हूयमानं) बुलानेवालेकी प्रार्थनाको (कथा शृणोति) कैसे सुनता है? तथा (शृण्वन्) प्रार्थनाको सुनकर वह इन्द्र (अस्य अवसां कथा वेद) इस स्तोताके संरक्षणके मार्गको कैसे जानता है? (अस्य पूर्वीः उपमातयः काः) इसके बहुतसे दान कौन कौनसे है? तथा (जरित्रे पपुरिं एनं) स्तोताकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इसका लोग (कथं आहुः) किस प्रकार वर्णन करते हैं? ॥३॥

[२६७] (स-बाधः शशमानः दीध्यानः) आपत्तियोंमें पडा हुआ और स्तुति करनेवाला तेजस्वी यजमान (अस्य द्रविणं कथा अभिनशत्) इस इन्द्रके धनको कैसे प्राप्त करेगा? (जगृभ्वान्) शत्रुओंको पकडनेवाला इन्द्र (यत् नमः जुजोषत्) जब अन्नका सेवन करता है, तब वह (देवः) देव इन्द्र (मे ऋतानां नवेदाः भुवत्) मेरे यज्ञोंको अच्छी तरह जाननेवाला होता है ॥४॥

[२६८] (देवः) यह देव इन्द्र (अस्याः उषसः व्युष्टौ) इस उषःकालके उदय होने पर (मर्त्यस्य सख्यं) मनुष्यकी मित्रताको (कथा कद् जुजोष) कैसे और कब प्राप्त करेगा? (ये अस्मिन् सु-युजं कामं ततस्रे) जो इस इन्द्रके पाससे सुयोग्य इच्छाको सफल करना चाहते हैं उन (सखिभ्यः) मित्रोंके लिए (अस्य सख्यं कत् कथा) इसकी मित्रता कब और कैसे प्राप्त होगी? ॥५॥

१ ये अस्मिन् सुयुजं कामं ततस्रे, सखिभ्यः अस्य सख्ये कथा- जो भक्त इसमें अपनी सुयोग्य कामना सफल करना चाहते हैं, उन मित्रोंके लिये इसकी मित्रकी कब प्राप्त होगी?

भावार्थ : वह इन्द्र बुलानेवालेकी प्रार्थना कैसे सुनता है? प्रार्थना को सुनकर भी वह स्तोताकी रक्षा किस तरह करता है? स्तोताओंको दिए जानेवाले इसके दान कौन कौनसे हैं? कामनाओंको पूरा करनेवाले इस इन्द्रका लोग किस तरह वर्णन करते हैं? यह भी आश्चर्यकारक बातें हैं ॥३॥

जब कोई भक्त आपत्तिमें पड जाने के कारण सच्चे हृदयसे इन्द्रकी प्रार्थना करता है, तब वह इन्द्रके धनको किस तरह प्राप्त करता है, अर्थात् इन्द्र अपने इस भक्त की रक्षा कैसे करता है, यह जानना कठिन है। शत्रुओंको पकडनेवाला यह इन्द्र भक्तोंके द्वारा दिए गए अन्नका सेवन करता है, तब वह यज्ञोंको अच्छी तरह जानता है ॥४॥

जो इस इन्द्रके पाससे सुयोग्य इच्छाको सफल करना चाहते हैं, उन मित्रोंके लिए इसकी मित्रता कब और कैसे प्राप्त होगी और यह देव इन्द्र भी मनुष्यकी मित्रता किस तरह प्राप्त करेगा इसका मार्ग खोजना चाहिए ॥५॥

२६९ किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः ॥ ६ ॥
२७० द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥ ७ ॥
२७१ ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥ ८ ॥

अर्थ- [२६९] हम (**सखिभ्यः**) मित्रोंके सामने तेरी (**अमत्रं सख्यं**) शत्रुके आक्रमणसे रक्षा करनेवाली मित्रताका (**किं आत् प्रब्रवाम**) किस तरह वर्णन करें, तथा (**ते भ्रात्रं**) ते भ्रातृत्वका वर्णन हम (**कदा**) कब करें ? (**सुदृशः अस्य**) सुन्दर दीखनेवाले इस इन्द्र की (**सर्गाः श्रिये**) सृष्टियां सबके आश्रयके लिए हैं। (**स्वः न**) सूर्यके समान तेजस्वी और (**गौः**) सब जगह जानेवाले इस इन्द्रके (**चित्रतमं वपुः**) अत्यन्त सुन्दर तेजको सब (**आ इषे**) चाहते हैं ॥६॥

१ **अस्य सुदृशः सर्गाः श्रिये-** इस सुन्दर इन्द्रकी रचनाएं सबके आश्रय करनेके लिए हैं।
२ **अम-त्रं सख्यं प्र ब्रवाम-** शत्रुसे रक्षण करनेवाली मित्रताका हम वर्णन करते हैं।
३ **स्वः न, गोः चित्रतमं वपुः आ इषे-** सूर्यके समान तेजस्वी और सब जगह जानेवाले इस इन्द्रके अत्यन्त सुन्दर तेजको सब चाहते हैं।

[२७०] (**द्रुहं, ध्वरसं, अन्-इन्द्रां जिघांसन्**) द्रोह करनेवाले और इन्द्रको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंको मारनेकी इच्छा करते हुए इन्द्रने (**तुजसे**) उन्हें मारनेके लिए (**तिग्मा अनीका**) तीक्ष्ण शस्त्रोंको (**तेतिक्ते**) और ज्यादा तीक्ष्ण किया। (**ऋण-या उग्रः**) ऋणको दूर करनेवाला और वीर इन्द्र (**अज्ञाताः उषसः**) आनेवाली उषाओंमें (**नः ऋणा चित्**) हमारे ऋणोंको भी (**दूरे बबाध**) दूरसे ही नष्ट करता है ॥७॥

१ **द्रुहं, ध्वरसं, अनिन्द्रां जिघांसन् तुजसे तिग्मा अनीका तेतिक्ते-** द्रोही, विनाशक और नास्तिकको मारनेके लिए इन्द्रने तीक्ष्ण आयुधोंको अधिक तीक्ष्ण किया।
२ **ऋणाया उग्रः नः ऋणा दूरे बबाध-** ऋण दूर करनेवाले इन्द्रने हमारे ऋणोंको दूर किया।

[२७१] (**ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति**) ऋतकी शक्तियां बहुत हैं, (**ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति**) ऋतकी बुद्धि पापोंको नष्ट कर देती है। (**ऋतस्य बुधानः शुचमानः श्लोकः**) ऋतके ज्ञानयुक्त और तेजस्वी स्तोत्र (**आयोः कर्णा बधिरा ततर्द**) मनुष्यके कानोंको बहरा कर देते हैं ॥८॥

१ **ऋत-** सत्य, ठीक, यज्ञ, पानी, आदरणीय, उचित
२ **ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति-** उचित कर्तव्यकी शक्तियां अनन्त हैं, पहिलेसे हैं।
३ **ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति-** उचित बुद्धि पापोंको नष्ट करती है।
४ **ऋतस्य बुधान, शुचमान् श्लोकः आयोः कर्णा बधिरा ततर्द-** सत्यके ज्ञानमय और शुद्ध स्तोत्र मनुष्यके कानोंको बधिर करते हैं। इतने वे स्तोत्र बडे होते हैं।

भावार्थ- सुन्दर दीखनेवाले इस इन्द्रकी सृष्टिभी सुन्दर है। यह सृष्टि त्यागने योग्य नहीं है, यह सबके आश्रय लेनेके योग्य है। इसी सृष्टिमें रहकर इन्द्रके सुन्दर तेजको प्राप्त किया जा सकता है ॥६॥

द्रोह करनेवाले, हिंसा करनेवाले और इन्द्रको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंको मारनेके लिए इन्द्र अपने शस्त्रोंको तीक्ष्ण करता है। वह इन्द्र ऋणोंको दूर करनेवाला है। वह हमारे ऊपर लादे हुए ऋणोंको भी दूर करे ॥७॥

उत्तम कर्तव्यमें अनन्त शक्तियां भरी होती हैं। उत्तम बुद्धियां पापोंको नष्ट करती हैं। उत्तम स्तुतियां दुष्ट मनुष्योंके कानोंको बहरा कर देती हैं अर्थात् उत्तम स्तुतियां दुष्ट मनुष्योंके कानों को अच्छी नहीं लगतीं, इसलिए वह मानों उन स्तुतियों के प्रति बहरा बन जाता है ॥८॥

२७२ ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥ ९ ॥
२७३ ऋतं येमान ऋतमिद् वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥ १० ॥
२७४ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।]

२७५ का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥ १ ॥

अर्थ- [२७२] (वपुषे ऋतस्य वपूंषि) बलवान् ऋतके शरीर (दृळ्हा, धरुणानि चन्द्रा पुरूणि) दृढ, धारण करनेवाले, आनन्ददायक और बहुतसे (सन्ति) हैं। लोग (ऋतेन) (दीर्घं पृक्षः इषणन्त) बहुत अधिक अन्न चाहते हैं। (ऋतेन गावः ऋतं आ विवेशुः) ऋतकी सहायतासे गायें यज्ञमें प्रविष्ट होती हैं ॥९॥

१ ऋतस्य वपूंषि दृळ्हा, धरुणानि, चन्द्रा पुरूणि सन्ति- सत्यके शरीर सुदृढ, धारणक्षम, आनंददायी और अनेक होते हैं।

२ ऋतेन दीर्घं पृक्षः इषणन्त- सत्यसे बहुत अन्न लोग चाहते हैं। सत्यके पालनसे बहुत लाभ होते हैं।

[२७३] (ऋतं येमानः ऋतं इत् वनोति) ऋतका पालन करनेवाला ऋतकी ही भक्ति करता है, (ऋतस्य शुष्मः तुरया उ गव्युः) ऋतका बल घोडे और गायोंको देनेवाला है। (ऋताय बहुले गभीरे पृथ्वी) ऋतके लिए विस्तीर्ण और गंभीर द्यावापृथिवी और (ऋताय परमे धेनू दुहाते) ऋतके लिए ही उत्कृष्ट गायें दुहती हैं ॥१०॥

[२७४] (नद्यः न) जिस प्रकार नदियां जलसे पूर्ण होती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र! (स्तुतः गृणानः) तेरी स्तुती और प्रशंसा करनेपर तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण करता है। मैंने (ते) तेरे लिए (धिया नव्यं ब्रह्म अकारि) बुद्धिपूर्वक नया स्तोत्र बनाया है। हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथ और दासोंसे युक्त हों ॥११॥

[२४]

[२७५] (का सु-स्तुतिः) कौनसी उत्तम स्तुति (शवसः सूनुं अर्वाचीनं इन्द्रं) बलके लिये प्रसिद्ध और हमारी तरफ आनेवाले इन्द्रको हमें (राधसे आ ववर्तत्) धन देनेके लिए प्रवृत्त करेगी ? (जनासः) मनुष्यो ! (वीरः गोपतिः इन्द्रः) वीर और गायोंका पालन करनेवाला वह इन्द्र (निष्षिधां वसूनि) शत्रुओंके धनोंको (गृणते नः ददिः हि) स्तुति करनेवाले हमें देगा ! ॥१॥

१ वीरः निः षिधां वसूनि गृणते ददिः- शूरवीर शत्रुके धनोंको स्तुति करनेवालेको देता है।

भावार्थ- सत्य अर्थात् अविनाशी देवके शरीर दृढ, धारण करनेवाले, आनन्ददायक और अनेक हैं। मनुष्य इस अविनाशी देवको प्रसन्न करके बहुत अधिक अन्न चाहते हैं। इस अविनाशी देवकी सहायतासे गायें अर्थात् इन्द्रियां उत्तम कर्मकी तरफ प्रवृत्त होती हैं ॥९॥

ऋतका पालन करनेवाला ऋतकी ही भक्ति करता है। इस अविनाशी देवका बल घोडे और गायोंको देनेवाला है। इसी देवसे प्रेरित होकर द्युलोक और पृथ्वीलोक विस्तीर्ण और गंभीर हुए हैं। इसी देवसे प्रेरित होकर गायें उत्तम पदार्थ दुहती हैं ॥१०॥

हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

हे ज्ञानियों ! वीर और गायोंका पालन करनेवाला वह इन्द्र हमें शत्रुओंका धन देगा भला ? यदि देगा तो वह कौनसी स्तुति है, जो इन्द्रको हमें धन देनेके लिए प्रवृत्त करेगी ? ॥१॥

२७६ स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २ ॥
२७७ तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत् त्यागमुभयासो अग्मन् नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३ ॥
२७८ क्रतूयन्ति क्षितयो योगं उग्राऽऽशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद् विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥

अर्थ- [२७६] (सः वृत्रहत्ये यामन् हव्यः) वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाले युद्धमें सहायार्थ बुलाने योग्य है, (सः ईड्यः) वह प्रशंसनीय है, (सः सु-स्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः) वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करने पर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है, (सः मघवा) वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र (ब्रह्मण्यते सुष्वये मर्त्याय) स्तुति करनेवाले तथा सोम तैय्यार करनेवाले मनुष्यके लिए (वरिवः धात्) श्रेष्ठ धन देता है ॥२॥

१ सः सुस्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः- वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करनेपर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है।

[२७७] (नरः) मनुष्य (समीके तं इत् विह्वयन्ते) युद्धमें उसी इन्द्रको अपने सहायार्थ बुलाते हैं। (यत्) जब (रिरिक्वांसः) तपसे तेजस्वी मनुष्य इन्द्रको (तन्वः त्राम् कृण्वत) अपने शरीरका रक्षक बनाते हैं तब (उभयासः नरः मिथः) दोनों तरहके मनुष्य संगठित होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र और पौत्रकी प्राप्ति (त्यागं अग्मन्) करानेवाले उस इन्द्रके पास जाते हैं ॥३॥

१ नरः समीके तं विह्वयन्त- मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिये उस वीरको बुलाते हैं।

२ गिरिक्वांसः तन्वः त्रां कृण्वत- तेजस्वी लोग अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं।

३ उभयासः नरः मिथः तोकस्य तनयस्य सातौ त्यागं अग्मन्- दोनों प्रकारके लोग परस्पर पुत्र पौत्रोंके लाभके लिये त्याग करते हैं अपने बाल बच्चोंके लाभ करनेके लिये स्वयं त्याग करते हैं।

[२७८] (उग्राः अशुषाणासः क्षितयः) वीर और प्रयत्न करनेवाले मनुष्य (मिथः) मिलकर (अर्णसातौ योगे) धनादिकी प्राप्ति होनेवाले युद्धमें (क्रतूयन्ति) पराक्रम करते हैं। (यत् युध्माः विशः अभीके अववृत्रन्त) जब युद्ध करनेवाली प्रजायें युद्धमें संगठित होती हैं (आत् इत् नेमे) तब युद्ध ही करनेवाले (इन्द्रयन्ते) इन्द्रको अपने सहायार्थ बुलाते हैं ॥४॥

१ उग्राः आशुषाणाः क्षितयः मिथः अर्णसातौ योगे क्रतूयन्ति- उग्र प्रयत्नशील वीर मिलकर युद्धमें यश मिलनेके लिये प्रयत्न करते हैं।

२ युध्मा विशः अभीके अववृत्रन्त आत् इत् नेमे इन्द्रयन्ते- युद्ध करनेवाले वीर युद्धमें संगठित होते हैं, तब वे अपनी सहायताके लिये इन्द्रको बुलाते हैं।

भावार्थ- वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाले युद्धमें सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है, वह प्रशंसनीय है। वह उत्तम स्तुति करनेवालेको सच्चे तथा अविनाशी ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र स्तुति तथा सोम तैय्यार करनेवालेको श्रेष्ठ धन देता है ॥२॥

मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिए उस वीरको बुलाते हैं। तेजस्वी जन अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं। शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके लोग पुत्र-पौत्रोंके लाभके लिए त्याग करते हैं। अपने बालबच्चोंके सुखके लिए अपने सुखोंका त्याग करते हैं ॥३॥

वीर और प्रयत्न करनेवाले मनुष्य संगठित होकर धनप्राप्ति के लिए युद्धमें पराक्रम करते हैं। जब प्रजायें पहले स्वयं संगठित होकर अपना पराक्रम दिखाती हैं, तभी इन्द्र भी उनकी सहायताके लिए आता है ॥४॥

२७९ आदिद्ध नेमं इन्द्रियं यजन्त आदित् पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो वि पपृच्यादसुष्वी–नादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ ॥
२८० कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थे–न्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन् तमित् सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥
२८१ य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन् तस्मिन् दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥

अर्थ- [२७९] (**आत् इत्**) इसके बाद (**नेमे**) योद्धागण (**इन्द्रियं यजन्ते**) इन्द्रकी शक्तिका यजन करते हैं, (**आत् इत्**) इसके बाद (**पक्तिः**) पकाने वाला (**पुरोळाशं रिरिच्यात्**) पुरोडाशको पकाता है, (**आत् इत्**) इसके बाद ही (**सोमः**) सोमयज्ञ करनेवाला (**असुष्वीन् पपृच्यात्**) सोमयाग न करनेवालों को दूर करता है। (**आत् इत्**) इसके बाद (**यजध्यै वृषभं**) यज्ञके लिए बलवान् इन्द्रकी (**जुजोष**) सेवा करते हैं ॥५॥

१ **नेमे इन्द्रियं यजन्ते-** कई वीर इंद्रियशक्तिसे सम्पन्न वीरको सम्मानित करते हैं।

२ **वृषभं जुजोष-** बलवान्‌की सेवा करते हैं।

[२८०] (**इत्था**) इस प्रकार (**यः**) जो हित करनेकी (**उशते इन्द्राय**) इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए (**सोमं सुनोति**) सोम निचोडता है, (**अस्मै**) इसके लिए यह इन्द्र (**वरिवः कृणोति**) धन देता है। यह इन्द्र (**सध्रीचीनेन मनसा अविवेनन्**) उत्तम मनसे [उस मनुष्यकी] हित करनेकी इच्छा करता हुआ (**समत्सु**) युद्धोंमें (**तं इत् सखायं कृणुते**) उसीको मित्र बनाता है ॥६॥

१ **सध्रीचीनेन मनसा अरिवेनन् समत्सु तं सखायं कृणुते-** उत्तम मनसे जनहित करनेकी इच्छासे युद्धोंमें उसको ही वह मित्र करता है। सदिच्छावालेको मित्र करता है।

[२८१] (**अद्य**) आज (**यः**) जो (**इन्द्राय सोमं सुनवत्**) इन्द्रके लिए सोम निचोडेगा, (**पक्तीः पचात्**) पुरोडाश पकायेगा, (**उत**) और (**धानाः भृज्जाति**) धानकी खीलोंको भूनेगा, (**तस्मिन्**) उसके लिए (**मनायोः**) उत्तम मनवाला (**इन्द्रः**) इन्द्र (**उचथानि हर्यन्**) स्तोत्रोंको सुनता हुआ (**वृषणं शुष्मं दधत्**) अत्यन्त उत्तम बलको देगा ॥७॥

१ **मनायोः वृषणं शुष्मं दधत्-** मननशील वीर बलिष्ठको अधिक बल देता है। जो मननशील वीर अपना बल बढानेका यत्न करता है उसका बल वह बढाता है।

भावार्थ- इन्द्रकी पूजा सभी करते हैं, पर पूजा करनेके ढंग अलग अलग हैं। योद्धागण इन्द्रके शक्तिकी पूजा करते हैं और याजक गण सोम रसको प्रदान करके इन्द्रकी पूजा करते हैं। ये याजकगण सोमयज्ञ न करनेवाले नास्तिकोंको दूर करते हैं। तब वे बलवान् इन्द्रकी सेवा करते हैं ॥५॥

जो मनुष्य हित करनेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, उसे यह इन्द्र भी धन प्रदान करता है यह इन्द्र उत्तम मनसे हित करनेकी इच्छा करता हुआ युद्धोंमें उसी सोमयज्ञ करनेवालेको मित्र बनाता है। उसीकी वह सहायता करता है ॥६॥

जो इन्द्रके लिए सोम निचोडकर, पुरोडाश पकाकर उसे देगा, उसे इन्द्र उसकी प्रार्थनाओंको सुनकर अत्यन्त उत्तम बल देगा ॥७॥

२८२ यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥ ८ ॥

२८३ भूयसा वस्नमचरत् कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद् दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥ ९ ॥

२८४ क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥ १० ॥

२८५ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

अर्थ- [२८२] (**यदा**) जब (**ऋधावा**) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र (**समर्यं वि अचेत्**) अपने युद्धके वीरोंको विशेषरीतिसे जानता है, (**यदा**) जब (**अर्यः**) श्रेष्ठ इन्द्र (**आजिं अभि अख्यत्**) युद्धका वर्णन करता है, तब (**दुरोणे**) घरमें (**पत्नी**) इस इन्द्रकी पत्नी (**सोमसुद्भिः निशितं**) सोम इस निकालनेवालोंके द्वारा उत्साहित किए गए तथा (**वृषणं**) बलवान् इन्द्रके (**अचिक्रदत्**) यशका वर्णन करती है ॥८॥

[२८३] किसीने (**भूयसा कनीयः वस्नं अचरत्**) बहुत धन देकर थोडीसी चीज प्राप्त की, जब वह चीज (**अविक्रीतः**) कहीं बिकी नहीं, तो (**पुनः यन्**) उसने फिर जाकर (**अकानिषं**) पैसे वापिस मांगे, (**सः भूयसा कनीयः न अरि रेचीत्**) वह बेचनेवाला बहुत धन देकर थोडीसी चीज लेनेको तैय्यार न हुआ। (**दीनाः दक्षाः**) असमर्थ और चतुर (**वाणं**) जो कुछ बोल देते हैं, उसीको (**वि प्र दुहन्ति**) प्राप्त करते हैं ॥९॥

[२८४] (**मम इमं इन्द्रं**) मेरे इस इन्द्रको (**दशभिः धेनुभिः कः क्रीणाति**) दस गायोंसे कौन खरीद सकता है? हे खरीदनेवालो! (**यदा**) जब यह इन्द्र (**वृत्राणि जंघनत्**) शत्रुओंको मार देगा (**अथ**) तब (**एनं मे पुनः ददत्**) इस इन्द्रको मुझे फिर वापस कर दो ॥१०॥

[२८५] (**नद्यः न**) जिस तरह नदियां जलोंसे पूर्ण हो जाती हैं, उसी तरह हे इन्द्र! (**स्तुतः गृणानः**) स्तुत और प्रशंसित हुआ तू (**जरित्रे इषं पीपेः**) स्तोताको अन्नसे पूर्ण कर। मैंने (**ते**) तेरे लिए (**धिया**) बुद्धिसे (**नव्य ब्रह्म**) नये स्तोत्रको (**अकारि**) किया है, हम (**रथ्यः सदासः स्याम**) रथ और दासोंसे युक्त हो ॥११॥

भावार्थ- जब कोई वीर योद्धा युद्धके तरीकोंको विशेष रीतिसे जान जाता है और वह युद्धका वर्णन करता है, तब घरमें बैठी हुई उसकी पत्नी भी अपने पराक्रमी पतिका वर्णन करती है, उसकी प्रशंसा करती है ॥८॥

मनुष्य अपनी आत्मारूपी अपार धनके बदलेमें संसारसुख रूपी अल्पसे पदार्थको ले लेते है, पर जब संसारसुख उन्हें किसी कामका प्रतीत नहीं होता, तब वे फिर संसारसुखके बदले में आत्मरूपी धनको लेना चाहते हैं, पर वह उन्हें नहीं मिल पाता, क्योंकि वे जो कुछ वाणीसे बोलते या कर्मसे करते हैं, उसीका फल वे प्राप्त करते हैं। यह मंत्र प्रतीक वादी है ॥९॥

मेरे इन्द्रको इस गायोंके बदलेमें कौन खरीद सकता है? जो खरीदे, वह अपना काम करनेके बाद इन्द्र मुझे लौटा दे। मंत्रका रहस्य अस्पष्ट है ॥१०॥

हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥११॥

[२५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८६ को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥

२८७ को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ २ ॥

२८८ को देवानामवो अद्या वृणीते - क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यां-ऽशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥ ३ ॥

२८९ तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंस-ज्ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥ ४ ॥

---

[२५]

अर्थ- [२८६] (**अद्य**) आज (**देवकामः उशन्**) देवोंकी इच्छा करता हुआ तथा कामना करता हुआ (**कः नर्यः**) कौन मनुष्य (**इन्द्रस्य सख्यं जुजोष**) इन्द्रकी मित्रता प्राप्त करता है (**वा**) अथवा (**सुतसोमः कः**) सोमयज्ञ करनेवाला कौन यजमान (**अग्नौ समिद्धे**) अग्निके प्रज्वलित होने पर (**पार्याय महे अवसे**) दुःखोसे पार होनेके लिये तथा बडे संरक्षणके लिए इन्द्रकी (**ईट्टे**) स्तुति करता है ॥१॥

[२८७] (**सोम्याय**) सोमको पीनेवाले इस इन्द्रकी (**कः वचसा ननाम**) कौन अपनी वाणीसे स्तुति करता है ? (**वा**) अथवा कौन इसका (**मनायुः भवति**) भक्त होना चाहता है ? कौन (**उस्राः वस्त**) गायोंको पालता है ? (**इन्द्रस्य युज्यं कः**) इन्द्रकी सहायताको कौन चाहता है, (**सखित्वं कः**) उसकी मित्रताको कौन चाहता है, (**कः भ्रात्रं वष्टि**) कौन उसके भाईपनेकी कामना करता है, तथा (**कवये**) उस दूरदर्शी इन्द्रको (**कः ऊती**) कौन अपने संरक्षणके लिये चाहता है ? ॥२॥

[२८८] (**अद्य**) आज (**देवानां अवः कः वृणीते**) देवोंके संरक्षणको कौन पाता है ? तथा (**आदित्यान्, अदितिं ज्योतिः**) आदित्यों, अदिति और ज्योति रूपी उषाकी (**कः ईट्टे**) कौन स्तुति करता है ? (**अश्विनौ, इन्द्रः अग्निः**) अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि (**कस्य सुतस्य अंशोः**) किसके निचोडे हुए सोम रसका (**मनसा अविवेनं पिबन्ति**) मनसे इच्छानुसार पीते है ? ॥३॥

[२८९] (**यः**) जो (**नरे नर्याय नृणां नृतमाय**) आगे ले जानेवाले, मनुष्योंका हित करनेवाले तथा नेताओंमें सर्वोत्तम नेता (**इन्द्राय**) इन्द्रके लिए (**सुनवाम इति आह**) सोम रस निकाले, ऐसा कहता है, (**तस्मै**) उसके लिए (**भारतः अग्निः**) भरणपोषण करनेवाला अग्नि (**शर्म यंसत्**) सुख देवे, तथा वह मनुष्य (**उच्चरन्तं सूर्यं**) उदय होते हुए सूर्यको (**ज्योक् पश्यात्**) बहुत कालतक देखे ॥४॥

१ **उच्चरन्तं सूर्यं ज्योक् पश्यात्-** उदय होनेवाले सूर्यको दीर्घ काल तक देखे। दीर्घायु हो।

भावार्थ- देवोंकी इच्छा और कामना करता हुआ कौनसा मनुष्य इन्द्रकी मित्रता चाहता है ? अथवा सोमयज्ञ करनेवाला कौन यजमान अग्निके प्रज्वलित होने पर दुःखोंसे पार होनेके लिए इन्द्रकी स्तुति करता है ? ॥१॥

सोम पिलानेसे पूर्व इस इन्द्रकी स्तुति कौन करता है ? इसका भक्त कौन हो सकता है ? इन्द्रका मित्र कौन है ? उसकी मित्रताको कौन प्राप्त करना चाहता है ? उसके भ्रातृत्वको कौन प्राप्त करना चाहता है ? उस दूरदर्शी इन्द्रको कौन अपने संरक्षणके लिए बुलाना चाहता है ? यह बातें मननीय हैं ॥२॥

देवोंके संरक्षणको कौन प्राप्त करता है ? आदित्य, अदिति और ज्योति अर्थात् प्रकाशकी कौन स्तुति करता है ? अश्विनौ इन्द्र और अग्नि आदि देव किसके द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको मनःपूर्वक पीनेकी इच्छा करते हैं ? ॥३॥

२९० न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥ ५ ॥
२९१ सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥
२९२ न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥ ७ ॥

अर्थ- [२९०] (तं) उस मनुष्यको **(दभ्राः बहवः)** थोडे और बहुतसे शत्रु भी **(न जिनन्ति)** नहीं जीत सकते, तथा **(अदितिः)** अदिति **(अस्मै उरु शर्म यंसत्)** इसके लिए महान् सुख देती है। **(इन्द्रे)** इन्द्रके लिए **(सुकृत् प्रियः)** उत्तम कर्म करनेवाला प्रिय होता है, **(मनायुः प्रियः)** यज्ञ करनेवाला प्रिय होता है, **(सु-प्र-अवीः प्रियः)** उत्तम मार्गसे जानेवाले इसे प्रिय होता है, तथा **(सोमी अस्य प्रियः)** सोम यज्ञ करनेवाला इस इन्द्रका प्यारा होता है ॥५॥

१ **तं दभ्राः बहवः न जिनन्ति-** उसको थोडे या बहुत शत्रु नहीं जीत सकते।

२ **अदितिः अस्मै उरु शर्म यंसत्-** प्रकृति उसको बडा सुख देती है।

३ **इन्द्रे सुकृत्, मनायुः, सुप्रावीः प्रियः-** इन्द्रको उत्तम कार्य करनेवाला, मननशील और उत्तम रक्षण करनेवाला प्रिय होता है।

[२९१] (प्राशुषाट् एषः वीरः इन्द्रः) शत्रुओंको मारनेवाला यह वीर इन्द्र **(केवला)** केवल **(सु-प्र-अव्यः सुष्वेः)** उत्तम मार्ग पर चलनेवाले तथा सोम तैयार करनेवाले मनुष्यके ही **(पक्तिं कृणुते)** पुरोडाशको स्वीकार करता है। यह इन्द्र **(असुष्वेः आपिः न)** सोमयाग न करनेवालेका मित्र नहीं होता **(न सखा)** न सखा होता है **(न जामिः)** न भाई होता है अपितु **(दुष्प्राव्यः अ-वाचः अवहन्ता इत्)** बुरे मार्ग पर चलनेवाले और स्तुति न करनेवालेको यह मारनेवाला ही होता है ॥६॥

१ **दुष्प्राव्यः अवाचः अव हन्ता वीरः:-** बुरे मार्गसे जानेवालेका, स्तुति न करनेवालेका मारनेवाला यह वीर है।

२ **प्राशुषाट् एषः वीरः इन्द्रः केवला सु-प्र- अव्ययः पक्तिं कृणुते-** शत्रुओंका संहारक यह वीर इन्द्र केवल उत्तम मार्ग पर चलनेवालेकी हविको ही स्वीकार करता है।

[२९२] (सुत-पाः इन्द्रः) सोमरसको पीनेवाला यह इन्द्र **(असुन्वता रेवता पणिना)** सोम न निचोनेवाले धनवान् पर कंजूस मनुष्यके साथ **(सख्यं न सं गृणीते)** मित्रता नहीं जोडता। वह इन्द्र **(अस्य नग्नं वेदः खिदति)** इस कंजूसके निरर्थक धनको नष्ट कर देता है, **(हन्ति)** और कंजूसको मार देता है, वह **(केवला)** केवल **(सुष्वये पक्तये वि भूत्)** सोमयज्ञ करनेवाले तथा पुरोडाश पकानेवालेका ही मित्र होता है ॥७॥

१ **इन्द्रः रेवता पणिना सख्यं न सं गृणीते-** यह इन्द्र धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यके साथ मित्रता नहीं जोडता।

२ **अस्य नग्नं वेदः खिदति-** ऐसे कंजूस मनुष्यका धन निरर्थक होने के कारण खेद करता है।

भावार्थ- जो मनुष्य ऐसा कहता है कि 'हम इन्द्रके लिए सोम तैय्यार करें' ऐसा नेता, मानवोंके हितकारी मनुष्योंको भरणपोषण करनेवाला अग्नि सुख प्रदान करे और ऐसा सर्वोत्तम मनुष्य उदय होते हुए सूर्यकी चिरकाल तक देखे अर्थात् वह दीर्घकाल तक जीवित रहे ॥४॥

जो श्रेष्ठ नेता और प्रजाओंका हित करनेवाला मनुष्य है, उस मनुष्यको थोडोंकी तो बात ही क्या, बहुत सारे शत्रु भी मिलकर नहीं जीत सकते। अदिति अविनाशी माता ऐसे मनुष्यको महान् सुख देती है। इन्द्रको उत्तम कर्म करनेवाला, यज्ञ करनेवाला, उत्तम मार्गसे जानेवाला मनुष्य ही प्रिय होता है ॥५॥

शत्रुओंका विनाशक यह इन्द्र केवल उन्हींकी हवियोंको स्वीकार करता है, जो उत्तम मार्गसे जाते हैं। यह इन्द्र यज्ञ आदि उत्तम कर्म करनेवालेका न मित्र होता है और न भाई, वह तो ऐसे बुरे मार्ग पर चलनेवाले नास्तिकोंको मारनेवाला ही होता है ॥६॥

२९१ इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्तं उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाज न्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

[२६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः १-३ इन्द्रो वा । देवता- १-३ इन्द्रः, आत्मा वा, ४-७ श्येनः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।]

२९४ अहं मनुरभवं सूर्यश्चाऽहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥

२९५ अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥

अर्थ- [२९३] (परे अवरे मध्यमासः) उत्तम अधम और मध्यम कोटिके लोग (इन्द्रं हवन्ते) इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं। (यान्तः अवसितासः इन्द्रं) चलते हुए और बैठे हुए लोग भी इन्द्रको बुलाते हैं। (क्षियन्तः युध्यमानाः इन्द्रं) घरमें बैठे हुए और युद्ध करते हुए लोग भी इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं, तथा (वाजयन्तः नरः इन्द्रं हवन्ते) अन्नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥८॥

[२६]

[२९४] (अहं मनुः अभवं) मैं मनु हुआ हूँ (अहं सूर्यः च) मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही (विप्रः कक्षीवान् ऋषिः) बुद्धिमान् कक्षीवान् ऋषि हूँ। (अहं आर्जुनेयं कुत्सं नि ऋंजे) मैंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सको समर्थ किया है, (अहं कविः उशना) मैं ही दूरदर्शी उशना ऋषि हूँ, (मा पश्यत) मुझे देखो ॥१॥

[२९५] (अहं आर्याय भूमिं अददां) मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी, (अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं) मैंने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया। (अहं वावशानाः अपः अनयं) मैं ही शब्द करते हुए जलोंको आगे ले गया, और (देवासः मम केतं अनु आयन्) देव मेरे संकल्प के पीछे चले ॥२॥

१ अहं आर्याय भूमिं अददां- मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी।

२ अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं- मैंने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया।

भावार्थ- सोमको पीनेवाला यह इन्द्र यज्ञ न करनेवाले, धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवालेके साथ मित्रता नहीं जोडता। ऐसे कंजूस मनुष्य का धन पडा पडा रोता रहता है। इन्द्र ऐसे कंजूसके धनको नष्ट कर देता है और उस कंजूसको भी मार देता है। वह इन्द्र तो केवल यज्ञ करनेवाले और हवि देनेवाले मनुष्यसे ही मित्रता करता है ॥७॥

उत्तम, अधम और मध्यम कोटिके लोग, चलते हुए बैठे हुए, और युद्ध करते हुए लोग भी इन्द्रको बुलाते हैं, उसी तरह अन्नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥८॥

मैं इन्द्र या आत्मा ही मनु हुआ हूँ, मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही बुद्धिमान् कक्षीवान् ऋषि हूँ। मैंने ही अर्जुनीके पुत्र कुत्सको समर्थ किया है। मैं ही दूरदर्शी उशना कवि हूँ ॥१॥

मुझ इन्द्रने ही श्रेष्ठ पुरुषोंके निवास करनेके लिए भूमि दी। मैंने ही दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया। मैंने ही शब्द करते हुए बहनेवाले जलोंके प्रवाहोंको प्रेरित किया। सभी देव मुझ इन्द्रके पीछे चलते हैं। इन्द्र परमात्मा है, इसी परमात्माकी आज्ञाके अनुसार सभी देव चलते हैं ॥२॥

२९६ अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥
२९७ प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥
२९८ भरद् यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥
२९९ ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद् दादृहाणो देवावान् दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥

अर्थ- [२९६] (**अहं मन्दसानः**) मैने आनन्दसे (**शम्बरस्य नवः नवतीः पुरः**) शम्बरासुरके निन्यानवे नगरोंको (**साकं वि ऐरं**) एक साथ नष्ट किया। तथा (**यत्**) जब (**सर्वताता**) यज्ञमें मैंने (**अतिथिग्वं दिवोदासं**) अतिथियोंको गौवें देनेवाले दिवोदासकी (**आवं**) रक्षा की, तब उसके लिए (**शततमं वेश्यं**) सौवे नगरको रहने योग्य बनाया ॥३॥

१ **अहं शंबरस्य नवनवतीः पुरः साकं वि ऐरं-** मैंने शंबरासुरकी निन्यान्वे पुरियोंको एक साथ तोडा।
२ **शततमं वेश्यं-** सोवे नगरको रहने योग्य बनाया।

[२९७] (**यत् सुपर्णः**) जो उत्तम शक्तिशाली पंखोंवाला पक्षी (**अचक्रया स्वधया**) अपनी कभी भ्रान्त न होनेवाली शक्तिसे (**मनवे**) मनुके लिए (**देव जुष्टं हव्यं**) देवोंको प्रिय लगनेवाली हविको (**भरत्**) ले आया, हे (**मरुतः**) मरुतो ! (**सः विः**) वह सुपर्ण पक्षी (**विभ्यः प्र**) अन्य पक्षियोंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली (**अस्तु**) हो। वह (**श्येनः**) श्येन पक्षी (**श्येनेभ्यः आशुपत्वा**) अन्य श्येनपक्षीयोंसे शीघ्रगामी हो ॥४॥

[२९८] (**यदि**) जब (**विः**) पक्षी (**वेविजानः**) सब लोकोंको कंपाता हुआ सोमको (**अतः भरत्**) उस लोक अर्थात् द्युलोकसे ले आया, तब वह (**उरुणा पथा**) विस्तृतमार्गमें (**मनोजवा असर्जि**) मनके वेगसे उडा। (**उत**) और वह पक्षी (**सौम्येन मधुना**) शान्ति प्रदान करनेवाले तथा मधुर रसको लेकर (**तूयं ययौ**) शीघ्रतासे आया, तब (**श्येनः**) उस श्येन पक्षीने (**अत्र श्रवः विविदे**) इस लोकमें यशको प्राप्त किया ॥५॥

[२९९] (**परावतः अंशुं ददमानः**) दूर देशसे सोमको लेकर (**ऋजीपी**) सरल मार्गसे जानेवाला, तथा (**देवावान्**) देवोंके साथ रहनेवाला (**श्येनः शकुनः**) श्येन पक्षी (**मन्द्रं मदं सोमं**) मधुर और आनन्ददायक सोम (**अमुष्यात् उत्तरात् दिवः**) उस उंचे द्युलोकसे (**आदाय**) लेकर (**ददृहाणः**) दृढ होकर (**भरत्**) ले आया ॥६॥

भावार्थ- मैंने आनन्दसे शम्बरासुरकी निन्यानवे नगरियोंको तोडा। जब मैंने अतिथियोंको गायें देनेवाले दिवोदासकी रक्षा की, तब उसके लिए सौवें नगरको रहनेके योग्य बनाया ॥३॥

उत्तम शक्तियोंवाली यह जीवात्मा जब देवों अर्थात् विद्वानोंको प्रिय लगनेवाले उस परमात्मतत्त्व रूप अमृतको प्राप्त कर लेती है, तब वह आत्मा अन्य आत्माओंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और शीघ्रगामी हो जाती है ॥४॥

जब यह जीवात्मा द्युलोक रूपी ब्रह्मरन्ध्रमें प्रविष्ट होकर वहां अमृततत्त्वको प्राप्त कर लेता है, तब उसके लिए असाध्य ऐसी कोई भी चीज नहीं रह जाती। इस अमृततत्त्वको प्राप्त कर लेनेके बाद उसका जीवन शान्त और मधुर हो जाता है और वह महान् यशको प्राप्त करता है ॥५॥

यह श्येन पक्षी रूपी जीवात्मा सदा सरल मार्गसे जानेवाला, देवोंके साथ रहनेवाला है। यह द्युलोकसे सोम लाकर जब उसका आस्वादन करता है, तब वह बहुत शक्तिशाली हो जाता है ॥६॥

३०० आदाय श्येनो अभरत् सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरंधिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ ॥

[२७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- श्येनः, ५ इन्द्रो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५ शक्वरी ।]

३०१ गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥

३०२ न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरंधिरजहादराती रुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥

३०३ अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरंधिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३ ॥

अर्थ- [३००] (श्येनः) श्येन (सहस्र अयुतं च सवान्) हजारों यज्ञोंके (साकं) साथ (सोमं आदाय अभरत्) सोमको लेकर उडा। (अत्र) इसके बाद (पुरंधिः अमूरः) अनेकों उत्तम कर्मोंको करनेवाले तथा बहुत ज्ञानवान् इन्द्रने (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (मूराः) मूर्ख (अरातीः) शत्रुओंको (अजहात्) मारा ॥७॥

[२७]

[३०१] (गर्भे नु सन्) गर्भ में रहकर (अहं) मैंने (एषां देवानां) इन देवोंके (विश्वा जनिमानि अवेदम्) सब जन्मोंको जान लिया। (शतं आयसीः पुरः मा अरक्षन्) सौ लौहमय नगरियोंने मेरी रक्षा की। (अधः) इसके बाद (श्येनः) श्येन होकर मैं (जवसा निः अदीयम्) वेगसे बाहर निकल आया ॥१॥

[३०२] (सः) वह (मां जोषं न घ अप जभार) मुझे अच्छी तरह घेर नहीं पाया। मैंने ही (इदं) इसे (त्वक्षसा वीर्येण) तीक्ष्ण सामर्थ्यसे (अभि आस) घेर लिया। (ईर्मा) सबका प्रेरक (पुरंधिः) प्रज्ञावान् परमात्माने (आरतिः अजहात्) शत्रुओंको मारा। (शूशुवानः) परिपूर्ण परमात्माने (वातान्) वायुके समान वेगवान् शत्रुओंको भी मारा ॥२॥

[३०३] (अध) तब सोम लानेके समय (यत्) जब (श्येनः) श्येनने (द्यौः) द्युलोकसे (अव अस्वनीत्) गर्जना की, तब (पुरंधि) बुद्धिको बढानेवाले सोमको सोमरक्षकोंने (अतः वि ऊहुः) इस श्येनने छीनना चाहा, तब (मनसा भुरण्यन्) मनोवेगसे जानेवाले (अस्ता) धनुर्धारी (कृशानुः) कृशानुने (ज्यां क्षिपत्) डोरी चढाई, और (अस्मा अव सृजात्) इस श्येन पर तीर छोडा ॥३॥

भावार्थ- जब श्येन पक्षी द्युलोकसे इस सोमको लाया, तब उसके साथ ही वह अनेकों तरहके यज्ञ भी लेता आया। उन यज्ञमें इन्द्रको सोम दिया जाने लगा, तब उसने उस सोमके आनन्दमें बहुतसे मूर्ख शत्रुओंको मारा। इन्द्र स्वयं ज्ञानी है, इसलिए वह अज्ञानियोंका नाश करता है ॥७॥

जहां सोम रखा हुआ था, वह देवों की नगरी थी और वह स्थान सौ लोहे के नगरोंसे सुरक्षित था, पर श्येन उन देवोंकी कोई परवाह न करके उन सौ नगरियोंको पार कर गया और वहां जाकर सोम लेकर वेगसे उन नगरियोंसे बाहर निकल आया ॥१॥

श्येन रूपी यह जीवात्मा जब सोम लाने के लिए द्युलोककी तरफ जाता है, तब उसे अनेक विघ्न घेर लेते हैं, और उसके मार्गमें रोडे अटकाते हैं, पर वे विघ्न उसे घेर नहीं पाते, इसके विपरीत वही आत्मा अपनी शक्तिसे इन विघ्नों पर विजय प्राप्त कर लेती है। ऐसे समय सबके प्रेरक परमात्मा भी इसके सहायक होते हैं ॥२॥

सोम लाते समय श्येन और सोमरक्षकोंमें युद्ध छिड गया, तब श्येनने गर्जना की और दूसरी तरफ सोमरक्षक श्येनसे सोम छुडानेकी कोशिश करने लगे। तब उन सोमरक्षकोंमेंसे एकने अपने धनुष पर डोरी चढाई और श्येनकी तरफ एक तीर चला दिया ॥३॥

३०४ ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत् पतत्र्यस्य पर्ण—मध यामनि प्रसितस्य तद् वेः ॥ ४ ॥

३०५ अध श्वेतं कलशं गोभिरक्त—मापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्र—मिन्द्रो मदाय प्रति धत् पिबध्यै
शूरो मदाय प्रति धत् पिबध्यै ॥ ५ ॥

[२८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- इन्द्रः, इन्द्रासोमौ वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३०६ त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धू—नपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १ ॥

अर्थ- [३०४] (ऋज्प्यिः श्येनः) सरल मार्गसे जानेवाला श्येन पक्षी (इन्द्रावतः बृहतः स्नोः अधि) इन्द्रके द्वारा रक्षित महान् द्युलोकसे (ई जभार) इस सोमको उसी तरह लाया, (भुज्युं न) जिस तरह अश्विनौ भुज्युको ले आए थे। (अध) इसके बाद (यामनि अन्तः) युद्धमें (अस्य प्रसितस्य वेः) इस अस्त्रसे विद्ध पक्षीका (तत् पतत्रि पर्णं) वह उडनेका साधन पंख (पतत्) गिर गया ॥४॥

[३०५] (अध) इसके बादसे (श्वेतं कलशं) तेजस्वी, कलशमें रखे हुए (गोभिः अक्तं आपिप्यानं) गायके दूधसे मिश्रित, तृप्त करनेवाले (शुक्रं) तेजस्वी (अध्वर्युभिः प्रयतं) अर्ध्वयुके द्वारा दिए गए (मध्वः अग्रं) मधुररसोंमें सर्वश्रेष्ठ (अन्धः) अन्नरूप इस सोमको (मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् इन्द (मदाय) आनन्दके लिए (पिबध्यै) पीये और (प्रति धत्) धारण करे (शूरः) वह शूरवीर इन्द्र (मदाय पिबध्यै) आनन्दके लिए इस सोमरसको पीये और (प्रति धत्) धारण करे ॥५॥

[२८]

[३०६] हे सोम ! (तव तत् सख्ये) तेरी उस मित्रतामें (त्वा युजा) तेरी सहायतासे (इन्द्रः) इन्द्रने (मनवे) मनुके लिए (सस्रुतः अपः कः) बहनेवाले जलोंको उत्पन्न किया, (अहिं अहन्) अहिको मार कर (सप्त सिन्धून् अरिणात्) सात नदियोंको बहाया, तथा (अपिहिता इव खानि अपावृणोद्) बन्द किए द्वारोंको खोला ॥१॥

१ अहिं अहन् सप्त सिन्धून् अरिणात्- अहिको मारा और सात नदियोंको बहाया ।

भावार्थ- जिस प्रकार अश्विनीकुमार समुद्रमें पडकर डूबते भुज्यको बाहर निकाल लाए थे, उसी प्रकार यह श्येन पक्षी इन्द्रके द्वारा रक्षित विशाल द्युलोकसे सोम ले आया। सोम लाते समय जो युद्ध हुआ उसमें कृशानुने एक तीर जो मारा उससे इस श्येनका एक पंख कट कर गिर गया ॥४॥

ऐश्वर्यवान् इन्द्र कलशमें गायके दूधके साथ मिलाकर रखे गए, तेजस्वी, मधुर रसोंमें सर्वश्रेष्ठ अन्नरूप सोमरसको आनन्दके लिए पीये और इसकी रक्षा करे ॥५॥

सोमसे मित्रता करके तथा उसकी सहायता प्राप्त करके इन्द्रने मनुके लिए बहनेवाले जलोंको उत्पन्न किया। अहि नामक असुरको मारा, सात नदियोंको बहाया और जलके बन्द किए द्वारोंको खोल डाला ॥१॥

२०७ त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥ २ ॥
२०८ अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून् मध्यंदिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥ ३ ॥
२०९ विश्वस्मात् सीमधमाँ इन्द्र दस्यून् विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥ ४ ॥
२१० एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित् ततृदाना ॥ ५ ॥

अर्थ- [३०७] हे (**इन्दो**) सोम ! (**त्वा युजा**) तेरी सहायतासे (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**सद्यः**) शीघ्र ही (**बृहता स्नुना अधि वर्तमानं**) विशाल द्युलोकमें चलनेवाले (**सूर्यस्य चक्रं**) सूर्यके चक्रको (**सहसा नि खिदत्**) बलके द्वारा अपने अधिकारमें किया। और (**महः द्रुहः**) महान् द्रोह करनेवाले सूर्यके (**विश्वायुः**) सब जगह जानेवाले चक्र पर (**अप धायि**) अधिकार किया ॥२॥

[३०८] हे (**इन्दो**) सोम ! (**अभीके**) संग्राममें (**मध्यंदिनात् पुरा**) मध्याह्नसे पहले ही (**इन्द्रः दस्यून् अहन्**) इन्द्रने दस्युओंको मार डाला और (**अग्निः अदहत्**) अग्निने उन्हें जला दिया। (**न**) प्रशंसित इन्द्रने (**दुरोणे दुर्गे**) कठिनतासे प्रवेश करने योग्य किलेमें छिपे रहने पर भी (**यातां**) राक्षसोंके (**पुरू सहस्रा**) बहुतसे हजारों नगरोंको (**क्रत्वा, शर्वा**) अपने पराक्रम व बलसे (**नि बर्हीत्**) नष्ट कर दिए ॥३॥

१ **दुरोणे दुर्गे यातां पुरू सहस्रा क्रत्वा शर्वा नि बर्हीत्**- प्रवेश करनेके लिये कठिन किलेमें रहने वाले राक्षसोंके सहस्रों सैनिकोंको अपने पराक्रमसे मारा।

२ **दुरोणः दुर्गः**:- जिसमें प्रवेश करना कठिन है ऐसा किला।

[३०९] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तूने (**सीं दस्यून्**) इन दस्युओंको (**विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः**) सभीसे नीचा किया, तथा (**दासीः विशः अ-प्रशस्ताः अकृणोः**) दासभावसे युक्त प्रजाओंको निन्दनीय बनाया। हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनोंने (**शत्रून् अबाधेथां**) शत्रुओंको रोका और उन्हें (**वधत्रैः अमृणतं**) शस्त्रोंसे मारा, तब तुमने (**अपचितिं अविन्देथां**) सत्कारको प्राप्त किया ॥४॥

१ **इन्द्र ! दस्यून् विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः**:- हे इन्द्र ! तू दस्युओंको सबसे नीच बना देता है।

२ **दासीः विशः अप्रशस्ताः अकृणोः**:- दासभावसे युक्त प्रजाओंको निन्दाके योग्य करता है। दासभावसे युक्त मनुष्य हमेशा निन्दनीय होते हैं।

[३१०] हे सोम ! (**सत्यं एव**) यह सत्य ही है, कि तूने (**च इन्द्रः**) और इन्द्रने अर्थात् (**मघवाना युवं**) ऐश्वर्यसे युक्त तुम दोनोंने (**ऊर्वं अश्व्यं गोः**) महान् घोडे और गायोंके समूहका (**आदर्दृतं**) आदर किया। तुम दोनोंने (**अश्ना अपिहितानि**) पत्थरसे छुपाये गए गौ समूहको तथा (**क्षाः**) भूमिको (**रिरिचथुः**) प्राप्त किया। और शत्रुओंको (**ततृदाना**) मारा ॥५॥

भावार्थ- हे सोम ! तुझसे उत्साह पाकर इन्द्रने विशाल द्युलोकमें घूमनेवाले सूर्यके चक्रको अपने सामर्थ्यसे अपने अधिकारमें किया ॥२॥

हे सोम ! तुझसे उत्साह लेकर इन्द्रने संग्राममें मध्याह्नसे पूर्व ही दस्युओंको मार डाला, अर्थात् इतना सामर्थ्य उसमें आ गया। इन्द्रके मार डालनेके बाद अग्निने उन दस्युओंको जला डाला। इन्द्रने उन दस्युओंके अनेक दुर्गम किलोंको अपने पराक्रम और बलसे नष्ट कर दिया ॥३॥

हे इन्द्र ! तूने ही इन दस्युओंको सबसे नीचा किया तथा जो प्रजायें गुलाम बनकर रहती हैं, उसे निन्दाके योग्य बनाया। हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनोंने शत्रुओंको रोका और उन्हें शस्त्रोंसे मारा, तब तुमने सत्कारको प्राप्त किया ॥४॥

[२९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२११ आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १ ॥
२१२ आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान् हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥ २ ॥
२१३ श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान् करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ३ ॥
२१४ अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्याशून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥ ४ ॥

---

[२९]

अर्थ- [३११] हे इन्द्र! (**स्तुतः, आंगूषेभिः गृणानः, सत्यराधाः अर्यः**) प्रशंसित तथा स्तोत्रोंसे वर्णित तथा अविनाशी धनसे युक्त तथा श्रेष्ठ तू (**मन्दसानः**) आनन्दित होकर (**वाजेभिः तिरश्चित्**) अन्नोंके साथ प्राप्त होनेवाले हमारे (**पुरूणि सवनानि उप**) बहुतसे यज्ञोंके पास (**नः ऊती**) हमारे संरक्षणके लिए (**हरिभिः आ याहि**) घोडोंसे आ ॥१॥

१ तिरः- चित्- प्राप्त होनेवाले 'तिरः सतः इति प्राप्तस्य' (निरु ३/२०)

[३१२] वह (**नर्यः चिकित्वान्**) मनुष्योंका हित करनेवाला, बुद्धिमान्, तथा (**सोतृभिः हूयमानः**) सोम निचोडनेवालोंके द्वारा बुलाया जानेवाला वह इन्द्र हमारे (**यज्ञं उप आ याति**) यज्ञके पास आवे। (**सु-अश्वः**) उत्तम घोडोंवाला, (**अ-भीरुः**) निर्भय तथा (**सुष्वाणेभिः मन्यमानः**) सोम तैय्यार करनेवालोंके द्वारा प्रशंसित (**यः**) जो इन्द्र है, वह (**वीरैः सं मदति**) वीरों के साथ आनन्दित होता है ॥२॥

[३१३] हे मनुष्य! (**अस्य कर्णा**) इस इन्द्रके कानोंको (**वाजयध्यै**) इन्द्रका बल बढानेके लिए तथा (**जुष्टां दिशं मन्दयध्यै**) सब दिशामें आनन्दित होनेके लिए (**श्रावयेत्**) स्तोत्र सुना। (**उत् वावृषाणः**) सोमसे युक्त होता हुआ तथा (**तुविष्मान्**) बलवान (**इन्द्र**) इन्द्र (**नः राधसे**) हमारे धनप्राप्तिके लिए (**सुतीर्था**) उत्तम तीर्थके समान (**अभयं करत्**) भयरहित करे ॥३॥

[३१४] (**यः वज्रबाहुः**) जो भुजाओंमें वज्रको धारण करनेवाला इन्द्र है, वह (**सहस्राणि शतानि**) हजारों व सैकडों (**आशून्**) शीघ्र दौडनेवाले घोडोंको (**त्मनि धुरि उप दधानः**) अपने रथकी धुरामें जोडकर (**ऊती**) संरक्षण करनेके लिए (**नाधमानं हवमानं, गृणन्तं, विप्रं**) प्रार्थना करनेवाले, बुलानेवाले, स्तुति करनेवाले तथा ज्ञानी यजमानके पास (**इत्था**) इस प्रकार (**अच्छ गन्ता**) सीधा जानेवाला है ॥४॥

भावार्थ- हे इन्द्र और सोम! तुम दोनों ऐश्वर्यशाली हो। तुम दोनोंने घोडे, गाय आदि प्राणियोंका बडा आदर किया। तुम्हीं दोनोंने पहाडोंकी गुफाओंमें छिपाये गए भूमिको प्राप्त किया और शत्रुओंको मारा ॥५॥

प्रशंसित, स्तोत्रोंसे वर्णित अविनाशी धनसे युक्त तथा श्रेष्ठ इन्द्र! तू आनन्दित होकर अन्नोंके साथ प्राप्त होनेवाले हमारे यज्ञोंके पास आ और हमारी रक्षा कर ॥१॥

मनुष्योंका हित करनेवाला, बुद्धिमान् तथा सबके द्वारा बुलाया जानेवाला वह इन्द्र हमारे यज्ञके पास आवे। उत्तम घोडोंवाला, निर्भय वह इन्द्र वीरोंके साथ आनन्दित होता है ॥२॥

इन्द्रका बल बढानेके लिए तथा आनन्दित होनेके लिए स्तोत्र किए जाए। तब बलवान् इन्द्र हमें धन प्राप्त कराने के लिए उत्तम तीर्थके समान अभयता प्रदान करे ॥३॥

यह इन्द्र भुजाओंमें वज्रको धारण करनेवाला, अनेकों घोडोंको अपने रथमें जोडनेवाला, रक्षा करनेवाला और सदाही सन्मार्गसे जानेवाला है ॥४॥

३१५ त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥ ५ ॥

[३०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः, ९-११ इन्द्रोषसौ । छन्दः- गायत्री; ८, २४ अनुष्टुप् ।]

३१६ नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥
३१७ सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥
३१८ विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥
३१९ यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥
३२० यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥

अर्थ- [३१५] हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**त्वा ऊतासः**) तेरे द्वारा संरक्षित हुए हुए (**विप्राः गृणन्तः सूरयः वयं**) ज्ञानी, स्तुति करनेवाले, तथा बुद्धिमान् हम (**बृहत्-दिवस्य आकाय्यस्य पुरु-क्षोः ते**) अत्यन्त तेजस्वी चारों ओरसे प्रशंसित होनेवाले तथा बहुत अन्नसे युक्त तेरे (**रायः दावने**) धनके दानमें (**भेजानासः स्याम**) भाग लेनेवाले हों ॥५॥

[३०]

[३१६] हे (**वृत्र-हन् इन्द्र**) वृत्रके नाश कर्ता इन्द्र ! (**त्वत् उत्तरः नकिः**) तुझसे अधिक श्रेष्ठ कोई दूसरा नहीं है। (**न ज्यायान्**) तुझसे अधिक बडा भी कोई नहीं है। (**यथा त्वं**) जैसा तू है वैसा (**नकिः एव**) दूसरा कोई नहीं ॥१॥

[३१७] हे इन्द्र ! (**कृष्टयः**) सब प्रजाजन (**ते अनु सत्रा वावृतुः**) तेरे अनुकूल और तेरे साथ साथ रहते हैं। (**विश्वा चक्रा इव**) सब रथोंके चक्र जैसे साथ घूमते हैं वैसे ही सब लोग तेरे साथ चलते हैं। इस कारण (**सत्रा महान् श्रुतः असि**) तू सचमूच बडा प्रख्यात हुआ है ॥२॥

[३१८] हे इन्द्र ! (**विश्वे चन् इत् देवासः**) सब देव (**अना त्वा युयुधुः**) बलके साथ तुझे प्राप्त करके असुरोंके साथ युद्ध करने लगे। उस समय (**यत् अहा नक्तं आतिरः**) दिनमें और रात्रीमें तूने शत्रुओंको पूर्ण नाश किया ॥३॥

[३१९] हे इन्द्र ! (**यत्र**) जिस युद्धमें (**उत**) और (**बाधितेभ्यः युध्यते कुत्साय**) शत्रुके साथ युद्ध करनेवाले कुत्सके हितके लिये (**सूर्यं चक्रं मुषाय**) सूर्य संबंधी चक्र तूने उठाया और अपने भक्तकी सहायता की ॥४॥

[३२०] हे इन्द्र ! (**त्वं एकः इत्**) तू अकेलाही (**यत्र**) जिस युद्धमें (**देवान् ऋघायतः विश्वान् अयुध्यः**) देवोंका नाश करनेवाले राक्षसोंके साथ युद्ध करता रहा और (**वनून् अहन्**) हिंसकोंका तूने ही वध किया ॥५॥

भावार्थ- हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तेरे द्वारा संरक्षित होकर ज्ञानी तथा बुद्धिमान् हम अत्यन्त तेजस्वी चारों ओरसे प्रशंसित होनेवाले तथा बहुत अन्नसे युक्त तेरे धनके दानमें हम भाग लेनेवाले हों ॥५॥

इन्द्रके समान सर्वगुण संपन्न दूसरा कोई नहीं है। इन्द्रका अर्थ प्रभु परमेश्वर है, सूर्य है, राजा है, वीर है। जगत्का इन्द्र परमेश्वर, सूर्य मालिकाका इन्द्र सूर्य, नरेन्द्र राजा, मानवेन्द्र वीर। ये गुण इनमें देखने चाहिए ॥१॥

सब प्रजाजन, सब लोक लोककार प्रभुके साथ घूमते हैं इसलिये प्रभुको सबसे महान् कहते हैं। ॥२॥

सब विबुधवीर ईश्वरका बल प्राप्त करके दुष्टोंके साथ युद्ध करके उन दुष्टोंको दूर करनेका यत्न करने लगे थे। तूने उनके साथ रहकर दिनरात शत्रुओंका पूर्ण नाश किया। परमेश्वर पर विश्वास रख कर उसका बल प्राप्त करके सब श्रेष्ठ पुरुषोंको उचित है कि वे दुष्टोंको दूर करें। ॥३॥

इस इन्द्रने युद्धचक्रके द्वारा अपने भक्तकी सहायता की। अकेले इन्द्रने सब देवोंका नाश करनेकी इच्छासे लडनेवाले असुरोंका पूर्ण नाश किया और सब शत्रुओंका वध किया। उस तरह वीरोंको करना उचित है ॥४-५॥

३२१ यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥
३२२ किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥
३२३ एतद् घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद् दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥
३२४ दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥
३२५ अपोषा अनसः सरत् संपिष्टादह बिभ्युषी । नि यत् सीं शिश्नथद् वृषा ॥ १० ॥
३२६ एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

अर्थ- [३२१] (यत्र) जहां (उत) और हे इन्द्र! (मर्त्याय कं सूर्यं अरिणाः) मानवोंको सुख देनेके लिये सूर्यको प्रवर्तित किया तथा (एतशं शचीभिः प्र आवः) एतशको अपनी शक्तियोंसे विशेष रीतिसे सुरक्षित रखा ॥६॥

[३२२] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले! (मघवन्) धनवान् इन्द्र! तू (मन्यु-मत्- तमः) अत्यंत उत्साही अथवा शत्रुपर अत्यंतक्रोध करनेवाला (किं आत् उत असि) सचमुच है (अत्र अह) और यहीं तूने (दानुं आतिरः) दानवका नाश किया है ॥७॥

[३२३] हे इन्द (उत) और (यत् एतत्) जो यह तूने (वीर्यं पौंस्यं चकर्थ घेदुत) पराक्रम युक्त पौरुषका कर्म किया (दुः हनायुवं) मारनेकी इच्छा करनेवाली (दिवः दुहितरं स्त्रियं वधीः) द्युलोककी पुत्री स्त्री-रूपी उषाको तूने मारा ॥८॥

[३२४] हे इन्द्र! (महान्) तू बडा है। ऐसे तूने (दिवः महीयमानां दुहितरं) द्युलोककी महिमावाली पुत्री (उषसं) उषाके रथको (संपिणक् चित् घ) पीस दिया यह सत्य है ॥९॥

[३२५] (वृषा) बलवान् इन्द्रने (यत्) जब (सीं नि शिश्नथत्) उसके रथको तोड डाला तब (बिभ्युषी उषा) डरनेवाली उषा (संपिष्टात् अनसः) टूटे हुए रथसे (अह अपसरत्) दूर हो गई ॥१०॥

[३२६] (अस्याः एतत् सुसंपिष्टं अनः) इस उषाका यह टूटा हुआ रथ (विपाशि आशये) विपाशा नदीके तीर पर पडा है। और (सीं परावतः ससार) वहांसे यह उषा दूर भाग कर चली गई ॥११॥

भावार्थ- परमेश्वर ने सब लोकोंको सुख मिले इसलिये सूर्यको निर्माण करके चलाया। इस तरह राजा अपनी प्रजाको सुख देने के लिये विविध कार्य करें ॥६॥

वीर अपने घेरनेवाले शत्रुका नाश करे, धनका संग्रह अपने पास रखे, अत्यंत उत्साह धारण करे तथा शत्रु पर क्रोध करे और दुष्टोंका पूर्ण नाश करें ॥७॥

इन्द्र सदा पुरुषार्थके कर्म करता है। इस इन्द्रने द्युलोककी पुत्री उषाका रथ तोड डाला ॥८॥

द्युलोककी पुत्री उषा मर्यादासे बाहर जा रही थी, इसलिये इन्द्रने उस स्वतंत्र होनेवाली पुत्रीके रथ को विनष्ट किया। पुत्रियोंको उचित है कि वे अपनी मर्यादा में रहें। अपनी मर्यादाका अतिक्रमण न करें ॥९॥

इन्द्रने उषाके रथको तोड डाला, इसका कारण यह था कि यह उषा सवेरे ही अपना रथ लेकर भ्रमण करने के लिए जाने लगी थी। इस तरह स्वेच्छासे पुत्रियोंका भ्रमण योग्य नहीं है, इसलिये इन्द्रने उषाका रथ तोड दिया। इससे उषा डर गई और वहांसे दूर गई जब इन्द्रने उषाका रथ तोड दिया, वह तब सूर्यसे डर कर भाग गई ॥१०॥

यहां उषाके रथका तोडना आदि आलंकारिक वर्णन है। कुमारिकाएं मर्यादामें रहें, स्वेच्छाचारी न बनें। स्वेच्छासे भ्रमण करनेपर कुमारिकाएं दण्डनीय होती हैं यह बतानेके लिये यह अलंकारिक वर्णन है। सूर्य इन्द्र है, उसके आते ही उषाका स्वैरसंचार बंद होता है। इस पर यह अलंकार रचा है ॥११॥

३२७ उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥
३२८ उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् । पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥
३२९ उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥
३३० उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥ १५ ॥

अर्थ- [३२७] हे इन्द्र! (उत) और (वि-बाल्यं वितस्थानां सिन्धुं) पूर्ण भरपूर भरी हुई वेगसे बहनेवाली सिन्धुनदीको इस (क्षमि अधि) पृथ्वीपर (मायया परिष्ठाः) अपनी शक्तिसे स्थिर किया ॥१२॥

[३२८] (उत) और, हे इन्द्र! (धृष्णु-या) शत्रुका वर्णन करनेवाले तूने (यत् अस्य शुष्णस्य पुरः संपिणक्) जब इस शोषक शत्रूके नगरोंको चूर्ण कर दिया, तब उसका (वेदनं अभि प्र मृक्षः) धन भी तूने प्राप्त किया ॥१३॥

१ 'शुष्णः'- शोषण करनेवाला शत्रु, जो प्रजाका शोषण करता है।

२ 'वेदनं'- धन, ऐश्वर्य, खजाना, धनकोश।

[३२९] इन्द्र! (उत) और तूने (दासं कौलितरं शम्बरं) विनाश करनेवाले कुलितर पुत्र शंबरको बहुत (पर्वतात् अधि) बडे पर्वतके ऊपरसे (अवाहन्) नीचे पटक कर मार दिया ॥१४॥

[३३०] हे इन्द्र! (उत) और तूने (प्रधीन् इव) चक्र के अरोंकी तरह जुडकर रहनेवाले (वर्चिनः दासस्य) तेजस्वी दासके अर्थात् विनाशक शत्रूके (पंच शता सहस्राणि) पांच लाख सैनिकोंको (अधि अवधीः) मार दिया ॥१५॥

भावार्थ- सिन्धु नदी, अथवा कोई एक नदी जो पानीसे भरपूर भरने के कारण वेगसे बह रही थी, उस नदीको अपनी आयोजनासे इन्द्रने स्थिर किया और बाढका भय दूर किया। राजा भी अपने राज्यकी नदियोंको काबूमें रखे और बाढ आनेपर भी नदियां नाश न करें ऐसा प्रबंध करे ॥१२॥

शोषक शत्रुके नगर तोडो और उसके धनकोष अपने कब्जेमें लेलो तथा इस तरह शत्रुको निर्बल करो ॥१३॥

'शं-बर' यह मेघका नाम है। 'शं,' कल्याण करनेवाले जलको जो ऊपर ले जाता है और वहां संग्रहित करता है वह 'शं-बर' मेघ है। यह 'दास' है, 'दास' का अर्थ (दस् उपक्षये) क्षय करनेवाला, विनाश कर्ता कष्ट देनेवाला। मेघ आकाशमें आनेसे नीचेके प्रदेशमें गर्मी बढती है यही मेघके क्लेश हैं। इसलिये मेघको तोडकर वृष्टि करनी आवश्यक है। यह मेघ 'कौलि-तर' है, अधिक कुलीन है 'जल' अर्थात् उदक 'कुलीन' है, (कु) पृथ्वीमें (लीन) विलीन होता है, इस कारण जल 'कु-लीन' है। 'कौलि-तर' का अर्थ (कु) भूमिमें लीन विलीन होने में (तर) अधिक शीघ्र विलीन होनेवाला। ऐसा 'शं' कल्याण करनेवाला जल है उसको (बरं) ऊपर ले जाता है। यह मेघ है। केवल मेघ ही रहे और वृष्टि नहीं हुई तो बडे कष्ट होते हैं। इसलिये इन्द्र मेघको तोडता है और वृष्टी करता है। यह कथा या वर्णन आलंकारिक है ॥१४॥

'प्रधी' चक्रके चारों ओर रहनेवाले जैसे अरे जुडे रहते हैं। वैसे जुडे हुए रहकर लडनेवाले (पञ्च शता सहस्राणि) पांच सौ हजार अर्थात पांच लाख अथवा (सहस्राणि पंच शता) एक हजार और पांच सौ अथवा (पञ्च सहस्राणि शता) पांच हजार और सौ शत्रुकी इतनी सैन्य संख्या युद्धमें इन्द्रने मारी थी। 'वर्चिनः दासस्य' वर्चका अर्थ तेज और बल है। यह दास अर्थात् शत्रु तेजस्वी था और बलवान् भी था ॥१५॥

३३१ उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६ ॥
३३२ उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥
३३३ उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
३३४ अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत् ते सुम्नमष्टवे ॥ १९ ॥
३३५ शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥
३३६ अस्वापयद् दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥
३३७ स घेदुतासि वृत्रहन् त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥

अर्थ- [३३१] (उत) और (शतक्रतुः इन्द्रः) सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रने (त्यं) उस (अग्रुवः पुत्रं) अग्रगामी के पुत्र (परावृक्तं) परावृक्तको (उक्थेषु आभजत्) स्तोत्र पाठोंके समयमें उच्चार करने योग्य करके मान लिया है ॥१६॥

[३३२] (उत त्या) और वे दोनों (अस्नातारा) तैरना न जाननेवाले (तुर्वशा-यदू) तुर्वश और यदूको (शचीपतिः विद्वान् इन्द्रः) शचीके पति, ज्ञानी इन्द्रने (अपारयत्) पार किया ॥१७॥

[३३३] हे इन्द्र ! (उत) और (त्या आर्या) उन आर्य राजाओंने (सरयोः पारतः) सरयूके पार रहनेवाले (अर्णाचित्ररथा) अर्ण और चित्ररथको (सद्यः अवधीः) तत्काल मार दिया ॥१८॥

[३३४] हे (वृत्र-हन्) वृत्रका वध करनेवाले इन्द्र ! तूने (जहिता) समाजके द्वारा त्यागे हुए (अन्धं श्रोणं च) अन्धे और पङ्गु (द्वा) इन दोनोंको (अनुनयः) अनुकूल मार्गसे चलाया। (तत् ते सुम्नं) यह तेरा दिया हुआ सुख (अष्टवे न) हटानेके लिये कोई समर्थ नहीं होता ॥१९॥

[३३५] (इन्द्रः) इन्द्रने (अश्मन्मयीनां शतं पुरां) शत्रुके सौ किलोंवाले नगरोंको (दाशुषे दिवोदासाय) दातादिवो दासके लिये (वि आस्यत्) दे दिया ॥२०॥

[३३६] (इन्द्रः) इन्द्रने (मायया) अपनी शक्तिसे (दासानां त्रिंशतं सहस्रा) दुष्ट विनाशकारियोंके तीस सहस्र वीरोंको (हथैः दभीतये अस्वापयत्) हथियारोंसे दभीतिका हित करनेके लिये मारा, सुला दिया ॥२१॥

[३३७] (उत) और हे इन्द्र ! (यः ता विश्वानि) जो तू उन सब शत्रुओंको (चिच्युषे) हिला देता है। हे (वृत्रहन्) वृत्रका वध करनेवाले इन्द्र ! (गोपतिः सः) गौओंका पालन करनेवाला वह तू (समान घ) सबके साथ समान बर्ताव करता है ॥२२॥

भावार्थ- शत-क्रतुः- सौ यज्ञ करनेवाला इन्द्र। सैकडों उत्तम कर्म करनेवाला वीर, अग्रुवः- अग्र भागमें जानेकी इच्छा करनेवाली स्त्री। अच्छे कार्यमें पीछे न रहनेवाली स्त्री। परावृक्तं- दुष्ट कर्मसे निवृत्त होकर सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेवाला वीर। ऐसे वीरोंका यज्ञोंमें सत्कार करना चाहिये। इनकी प्रशंसा होनी चाहिए ॥१६॥

पानी में उतर कर तैर कर जो स्नान नहीं कर सकते, ऐसे तुर्वश और यदूको जलसे पार किया ॥१७॥

वे आर्यवंशके होनेपर भी आचारभ्रष्ट हो चुके थे इसलिये वधके योग्य समझे गये। जो राजा आर्यवंशीय होने पर भी आचारसे भ्रष्ट हो जाएं, उन्हें मारना ही चाहिए ॥१८॥

हे इन्द्र ! तूने समाजके द्वारा त्यागे हुए अन्धे और पंगुजनोंको भी उत्तम मार्गसे चलाया। तू जिसे सुख प्रदान करता है, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥१९॥

शत्रुका नाश करके शत्रु के सौ किले अपने अनुयायीको दिये ॥२०॥

दभीतिकी सहायता करनेके लिये इन्द्र गया और शत्रुके सहस्रों वीरोंका वध करके दभीतिको निर्भय किया ॥२१॥

शत्रुका नाश करना और समान बर्ताव करना ये दो गुण इस मंत्रमें वर्णन किये हैं ॥२२॥

३३८ उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् । अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥
३३९ वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥ २४ ॥

[३१]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, २ पादनिचृत् ।]

३४० कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
३४१ कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
३४२ अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

अर्थ- [३३८] (**उत**) और हे इन्द्र ! (**यत् पौंस्यं**) जो पुरुषार्थ और जो (**इन्द्रियं**) इन्द्रियविषयक सामर्थ्य (**नूनं करिष्य**) तूने प्रकट किया (**अद्य नकिः**) आज कोई भी (**तत् आभिनत्**) उसका निराकरण नहीं कर सकता ॥२३॥

[३३९] हे (**आ-दुरे**) शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र ! (**अर्यमा देवः**) शत्रुओंका नियमन करनेवाला देव (**ते वामं वामं ददातु**) तेरे पासका उत्तम धन हमें देवे ! (**पूषा**) पोषक देव (**वामं**) उत्तम धन देवे ! (**भगः देवः वामं**) भाग्य युक्त देव उत्तम धन हमें देवे तथा (**करूळती**) कारीगरोंको धन देनेवाला हमें धन देवे ॥२४॥

१ आ-दुरः (आ-दुरिः) सब शत्रुओंको दूर करनेवाला इन्द्र । अर्यमा (**अरीणां नियमयिन्ता**) शत्रुओंका नियमन करनेवाला । (**अर्यमिमीते**) श्रेष्ठ कौन है, सीधा कौन है और दुष्ट कौन है इसका निर्णय देनेवाला ।

[३१]

[३४०] (**सदावृधः चित्रः सखा**) सदा बढनेवाला तथा विलक्षण सामर्थ्यवान् मित्र इन्द्र (**कया ऊती**) किस संरक्षणके साधनके साथ तथा (**कया वृता शचिष्ठया**) किस वरणीय शक्तिके साथ (**नः आभुवत्**) हमारी तरफ आएगा ?

१ **सदावृधः चित्रः सखा**- सामर्थ्यसे सदा बढनेवाला विलक्षण शक्तिशाली मित्र हो ।

२ **ऊती शचिष्ठया वृता नः आभुवत्**- संरक्षणके सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारे पास आ जाय ।

[३४१] (**सत्यः मदानां मंहिष्ठः कः अन्धसः**) अविनाशी तथा आनन्द देनेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक पूज्य कौनसा अन्न (**त्वा**) तुझे (**दृळ्हा वसु चित् आरुजे**) शत्रुओंके पास सुदृढ रहनेवाले धनोंको प्राप्त करनेके लिए (**मत्सत्**) आनन्दित करेगा ? ॥२॥

[३४२] (**जरितृणां सखीनां अविता**) स्तुति करनेवाले मित्रोंका रक्षक तू (**शतं ऊतिभिः**) सैंकडों संरक्षण के साधनोंसे युक्त होकर (**नः अभि सु भवासि**) हमारे पास आ ॥३॥

भावार्थ- इन्द्रने जो भी पुरुषार्थ और इन्द्रियोंका सामर्थ्य प्रकट किया, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥२३॥

पूषा- पोषक देव, पोषण करनेवाला । **भगः**- भाग्य जिसके पास है, धनका अधिकारी **करूळती**- (**करुः-दती = कृतदतः**) जिसके दांत कटे हैं । (**करुः कारुः, दती दाता**) कारीगरोंको योग्य धन देनेवाला । इन्द्रका धन ये देव हमें देवें । यह प्रार्थना इस मंत्रमें है ॥२४॥

मित्र सदा ही विलक्षण सामर्थ्यसे युक्त और शक्तिशाली हो । उसकी शक्ति वरण करने योग्य अर्थात् सज्जनोंकी रक्षा करनेवाला हो ॥१॥

अन्नोंमेंसे कौनसा अन्न तुझे शत्रुके पास सुदृढ रूपसे रखे हुए धनोंको प्राप्त करनेके लिये उत्साहित करेगा ? जो ऐसा करे वही अन्न तुझे सेवन करना चाहिए ॥२॥

तू संरक्षण करनेकी इच्छासे सैंकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ कर रह ॥३॥

३४३ अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥
३४४ प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥ ५ ॥
३४५ सं यत् त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥ ६ ॥
३४६ उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥ ७ ॥
३४७ उत स्मा सद्य इत् परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिन्मंहसे वसु ॥ ८ ॥
३४८ नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥ ९ ॥
३४९ अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान् त्सहस्रमूतयः । अस्मान् विश्वा अभिष्टयः ॥ १० ॥

अर्थ- [३४३] (**वृत्तं चक्रं अर्वतः न**) जिस प्रकार गाडीका गोल पहिया घोडेके पीछे चलता है उसी प्रकार [तेरे पीछे चलनेवाले] (**नः चर्षणीनां**) हम मनुष्योंकी (**अभि**) तरफ तू (**नियुद्भिः आ ववृत्स्व**) घोडोंसे आ ॥४॥

[३४४] हे इन्द्र ! (**क्रतूनां पवता हि**) तू यज्ञके स्थानोंको (**पदा इव गच्छसि**) अपने पांवसे जानेके समान जाता है । मैं (**सूर्ये सचा**) सूर्यके साथ तेरी (**अभाक्षि**) पूजा करता हूं ॥५॥

[३४५] हे इन्द्र ! (**यत् मन्यवः दधिन्विरे**) जब हम तेरी स्तुति करते हैं, तो वे स्तुतियां (**चक्राणि ते सं**) चक्रोंके समान तेरी ओर जाती हैं । (**अध त्वे**) पहले तेरे पास जाती है, (**अध सूर्यं**) फिर बादमें सूर्यके पास ॥६॥

[३४६] हे (**शचीपते**) शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! (**मघवानं दातारं**) ऐश्वर्यशाली तथा धन देनेवाले (**त्वां**) तुझे लोग (**अविदीधयुं आहुः इत्**) तेजस्वी कहते है ॥७॥

[३४७] हे इन्द्र ! तू (**सशमानाय सुन्वते**) स्तुति करनेवाले और सोम तैय्यार करनेवालेके लिए (**पुरूचित् वसु**) बहुतसे धनको भी (**सद्यः इत्**) शीघ्र ही (**परिमंहसे**) चारों ओरसे देता है ॥८॥

[३४८] हे इन्द्र ! (**आमुरः**) हिंसक शत्रु (**ते शतं चन राधः**) तेरे सैंकडों तरहके धनको (**नहि वरन्ते स्म**) नहीं पा सकते, तथा (**करिष्यतः**) शत्रुओंकी हिंसा करते हुए तेरे (**च्यौलानि न**) बलोंको रोक नहीं सकते ॥९॥

[३४९] हे इन्द्र ! (**ते शतं ऊतयः अस्मान् अवन्तु**) तेरे सैंकडों रक्षाके साधन हमारी रक्षा करें, तथा (**सहस्र ऊतयः अस्मान्**) हजारों रक्षणके साधन हमारी रक्षा करें, तथा (**विश्वाः अभिष्टयः अस्मान्**) सब प्रकारकी इच्छायें हमारी रक्षा करें ॥१०॥

भावार्थ- जिस प्रकार गाडीका पहिया घोडेके पीछे पीछे चलता है, उसी तरह, हे इन्द्र ! तेरे पीछे चलनेवाले हमारी ओर तू आ ॥४॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञोंसे इतना प्रेम करता है कि तू इन यज्ञोंमें पैरोंसे ही आता है । मैं सूर्यके साथ तेरी पूजा करता हूं ॥५॥

हे इन्द्र ! जब हम तेरी स्तुति करते हैं, तब वे तेरी स्तुतियां तेरी तरफ जाती हैं । पहले वे स्तुतियां तेरे पास जाती हैं, फिर सूर्यके पास ॥६॥

हे शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! तू ऐश्वर्यशाली और धनको देनेवाला है । तुझे सभी प्राणी तेजस्वी कहते हैं ॥७॥

तु स्तुति करनेवाले और सोम यज्ञ करनेवालेके लिए बहुत सारा धन बहुत शीघ्र देता है ॥८॥

अनेकों हिंसक शत्रु मिलकर भी इस इन्द्रके सैंकडों तरहके धन नहीं पा सकते और जब वह इन्द्र हिंसक शत्रुओंका संहार करता है, तब शत्रु संगठित होकर भी उसके बलको नहीं रोक सकते। उसका मुकाबला नहीं कर सकते ॥९॥

हे इन्द्र ! तेरे पास सैंकडों और हजारों तरहके जो रक्षाके साधन हैं, वे हमारी रक्षा करें और सब प्रकारकी इच्छायें हमारी रक्षा करें ॥१०॥

३५० अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥ ११ ॥
३५१ अस्माँ अविड्ढि विश्वहे-न्द्र राया परीणसा । अस्मान् विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥
३५२ अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥
३५३ अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥ १४ ॥
३५४ अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥ १५ ॥

[३२]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— इन्द्रः, २३-२४ इन्द्राश्वौ । छन्दः— गायत्री ।]

३५५ आ तू न इन्द्र वृत्रह-न्नस्माकमर्धमा गहि । महान् महीभिरूतिभिः ॥ १ ॥
३५६ भृमिश्चिद् घासि तूतुजि-रा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥ २ ॥

अर्थ- [३५०] हे इन्द्र ! (इह) यहां (अस्मान्) हमें (सख्याय स्वस्तये) मित्रता तथा कल्याण करनेके लिए और (महान् दिवित्मते राये) महान् तेजस्वी धन देने के लिए (वृणीष्व) स्वीकार कर ॥११॥

[३५१] हे इन्द्र ! तू (परीणसा राया) महान् ऐश्वर्यसे (विश्वहा) सब दिन (अस्मान् अविड्ढि) हमारी रक्षा कर । तथा (विश्वाभिः ऊतिभिः अस्मान्) सभी संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥१२॥

[३५२] (अस्ता ईव) जिस प्रकार लोग घर खोलते हैं उसी प्रकार तू हे इन्द्र ! अपने (नवाभिः ऊतिभिः) नये संरक्षणोंके साधनोंके द्वारा (अस्मभ्यं) हमारे लिए (तान् गोमतः व्रजान्) उन गायोंके बाडोंको (अपावृधि) खोल दे ॥१३॥

[३५३] हे इन्द्र ! (अस्माकं) हमारा (धृष्णुया द्युमान्, अनपच्युतः) शत्रुओंका विनाश करनेवाला, तेजस्वी विनाश रहित (गव्युः अश्वयुः) गायों तथा घोडोंको प्राप्त करनेवाला (रथः) रथ (ईयते) आता है ॥१४॥

[३५४] हे (सूर्य) सबके प्रेरक इन्द्र ! तूने (वर्षिष्ठं द्यां उपरि इव) जिस प्रकार अत्यधिक तेजस्वी द्युलोकको ऊपर स्थापित किया है, उसी तरह तू (देवेषु) देवोंमें (अस्माकं श्रवः उत्तमं कृधि) हमारे यशको उत्तम कर ॥१५॥

[३२]

[३५५] हे (वृत्रहन् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (महान्) महान् तू (महीभिः ऊतिभिः) बडे बडे संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (नः अस्माकं अर्धं आगहि) हमारे पास आ ॥१॥

[३५६] हे इन्द्र ! तू (भृमिः चित्) पुरुषार्थी है और (तूतुजि असि) हमें बढानेवाला है। हे (चित्र) विलक्षण शक्तिमान् इन्द्र ! तू (चित्रणीषू) अनेक पुरुषार्थके काम करनेवालोंको (ऊतये) संरक्षण करनेके लिए (चित्रं कृणोषि) अनेक तरहके सामर्थ्य देता है ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र हमें अपनी मित्रताकी छाया में रख और हमारा कल्याण कर। महान् और तेजस्वी धन देने के लिए हमें तू अपना भक्त बना ले ॥११॥

हे इन्द्र ! तू महान् ऐश्वर्यसे हमेशा हमारी रक्षा कर, तथा सभी संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥१२॥

जिस प्रकार लोग अपने घरके दरवाजोंको खोलते हैं, उसी तरह, हे इन्द्र ! तू अपने नये संरक्षणके साधनोंके द्वारा हमारे लिए उन गायोंके बाडोंको खोल दे ॥१३॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंका विनाश करनेवाला, तेजस्वी, विनाश रहित तथा अनेक तरहके पशुओंको प्राप्त करानेवाला रथ हमारी तरफ आवे ॥१४॥

हे इन्द्र ! तूने जिस प्रकार अत्यधिक तेजस्वी द्युलोकको सबसे ऊपर स्थापित किया है, उसी तरह विद्वानोंमें हमारे यशको सबसे श्रेष्ठ और ऊंचा कर ॥१५॥

हे वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! महान् तू बडे बडे संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥१॥

अनेक उत्तम कर्म करनेवाली प्रजामें अपने संरक्षण करनेके लिए विलक्षण सामर्थ्य उत्पन्न करता है ॥२॥

३५७ दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥ ३ ॥
३५८ वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँअस्माँ इदुदव ॥ ४ ॥
३५९ स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ॥ ५ ॥
३६० भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥ ६ ॥
३६१ त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ७ ॥
३६२ न त्वा वरन्ते अन्यथा यद् दित्ससि स्तुतो मघम् । स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥
३६३ अभि त्वा गोतमा गिराऽनूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥ ९ ॥

अर्थ- [३५७] हे इन्द्र ! (ये त्वे सचा) जो तेरे साथ रहते हैं, ऐसे (दभ्रेभिः सखिभिः) थोडेसे मित्रोंकी सहायतासे तू (शशीयांसं व्राधन्तं) उछलनेवाले बडे शत्रुको (चित्) भी (ओजसा हंसि) मार देता है ॥३॥

[३५८] हे इन्द्र ! (वयं त्वे सचा) हम तेरे साथ हैं, (वयं त्वा अभि नोनुमः) हम तेरी स्तुति करते हैं। तू (अस्मान् इत् अस्मान् उत् अव) हमारी ही अर्थात् केवल हमारी ही रक्षा कर ॥४॥

[३५९] हे (अद्रि-वः) शस्त्रोंसे युक्त इन्द्र ! (सः) वह तू (चित्राभिः अनवद्याभिः अन-अधृष्टाभिः ऊतिभिः) अनेक तरहके प्रशंसनीय तथा शत्रुओंके द्वारा न हराये जाने योग्य संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (नः आगहि) हमारे पास आ ॥५॥

[३६०] हे इन्द्र ! (त्वावतः गोमतः सखायः) तेरे जैसे गायोंवालेके मित्र होकर हम (घृष्वये वाजाय) शत्रुका पराजय करनेवाले बलकी प्राप्तिके (युजः भूयामः) योग्य हों ॥६॥

[३६१] हे इन्द्र ! (गोमतः वाजस्य) गायोंसे उत्पन्न अन्न पर (त्वं एकः ईशिषे) तू अकेला ही स्वामित्व करता है । (सः) वह तू (महीं इषं) उस महान् अन्नको (नः यन्धि) हमें दे ॥७॥

[३६२] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुत्य इन्द्र ! (स्तुतः) प्रशंसित होकर तू (यद्) जब (स्तोतृभ्यः मघं दित्ससि) स्तोताओंको धन देना चाहता है, तब (त्वा) तुझे कोई भी (अन्यथा न वरन्ते) किसी भी प्रकार रोक नहीं सकते ॥८॥

[३६३] हे इन्द्र ! (गोतमाः) गोतम तुझे (गिरा अववृधन्त) स्तुतिसे बढाते हैं । तथा (घृष्वये वाजाय दावने) महान् अन्नके दानके लिए तेरी (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥९॥

भावार्थ- इन्द्र ! तू हमेशा तेरे साथ रहनेवाले थोडेसे भी मित्रोंकी सहायतासे बडे बडे पराक्रमी शत्रुओंको भी मार देता है ॥३॥

हे इन्द्र ! हम तेरे साथ हैं, और हम तेरी स्तुति करते हैं, इसलिए तू हमारी ही केवल हमारी ही रक्षा कर ॥४॥

हे इन्द्र ! शस्त्रोंसे युक्त होकर तू अनेक तरहके प्रशंसनीय और शत्रुओंके लिए अजेय संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥५॥

हे इन्द्र ! तू गायोंका स्वामी है, अतः हम तेरे मित्र होकर शत्रुको हरानेवाले बलकी प्राप्तिके लिए योग्य हों ॥६॥

हे इन्द्र ! गायोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्न पर तू अकेला ही स्वामित्व करता है। उस महान् अन्नको तू हमें प्रदान कर ॥७॥

हे प्रशंसाके योग्य इन्द्र ! प्रशंसित होकर तू जब स्तोताओको धन देना चाहता है, तब तुझे कोई किसी भी प्रकार नहीं रोक सकता ॥८॥

हे इन्द्र ! गोतम तुझे स्तुतिसे बढाते हैं, तथा महान् अन्नके दानके लिए तेरी स्तुति करते है ॥९॥

३६४ प्र ते वोचाम वीर्या या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥ १० ॥
३६५ ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥
३६६ अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद् यशः ॥ १२ ॥
३६७ यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥
३६८ अर्वाचीनो वसो भवाऽस्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥
३६९ अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥
३७० पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥ १६ ॥

अर्थ- [३६४] हे इन्द्र ! (**मन्दसानः**) आनन्दित होते हुए तूने (**अभीत्य**) आक्रमण करके (**दासीः याः पुरः आरुजः**) दासके जो नगरोंको तोड दिया, हम (**ते वीर्या वोचाम**) तेरे उन पराक्रमोंका वर्णन करते हैं ॥१०॥

[३६५] हे (**गिर्वणः इन्द्र**) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! तूने (**यानि पौंस्या चकर्थ**) जिन पराक्रमोंको किया है, (**ते ता**) तेरे उन पराक्रमोंकी (**वेधसः गृणन्ति**) ज्ञानी प्रशंसा करते हैं ॥११॥

[३६६] हे इन्द्र ! ये (**स्तोमवाहसः गोतमाः**) स्तुति करनेवाले गौतम (**त्वे अवीवृधन्त**) तेरा यश बढाते हैं अतः तू (**एषु वीरवत् यशः आ धाः**) इनमें पुत्रोंसे युक्त यशको स्थापित कर ॥१२॥

[३६७] (**यत् चित् हि**) जिस कारण हे इन्द्र ! (**शश्वतां**) बहुतसे सज्जनोंके लिए (**त्वं साधारणः असि**) तू साधारण परिचित ही है, इसलिए (**तं त्वा**) उस तुझे ही सहायार्थ (**वयं हवामहे**) हम बुलाते हैं ॥१३॥

[३६८] हे (**सोम-पाः वसो इन्द्र**) सोमको पीनेवाले तथा सबको बसानेवाले इन्द्र ! तू (**अर्वाचीनः भव**) हमारी तरफ आ और (**सोमानां अन्धसः मत्स्व**) सोमरूपी अन्नसे आनन्दित हो ॥१४॥

[३६९] हे इन्द्र ! (**मतीनां अस्माकं**) स्तुति करनेवाले हमारा (**स्तोमः**) स्तोत्र (**त्वा आ यच्छतु**) तुझे इधर ले आवे तथा तू भी (**हरी**) अपने घोडोंको (**अर्वाक् आ वर्तय**) हमारी तरफ प्रेरित कर ॥१५॥

[३७०] हे इन्द्र ! तू (**नः पुरोळाशं घस**) हमारे पुरोडाशको खा । तथा (**वधूयुः योषणां इव**) जिस प्रकार स्त्रीकी कामना करनेवाला स्त्रीका सेवन करता है, उसी प्रकार तू (**नः गिरः जोषयासे**) हमारी स्तुतियोंका सेवन कर ॥१६॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! आनन्दित होते हुए तूने आक्रमण करके जो दासासुर के नगरोंको तोड दिया, उन तेरे पराक्रमोंका हम वर्णन करते हैं ॥१०॥

हे इन्द्र ! तूने जिन पराक्रमोंको प्रकट किया है, उन पराक्रमोंकी ज्ञानी प्रशंसा करते हैं ॥११॥

इन स्तोताओंमें पुत्रोंवाले यशको स्थापित कर । मनुष्योंको ऐसे पुत्र प्राप्त करने चाहिए, जो अपने पिताओंको यशस्वी बना सकें ॥१२॥

हे इन्द्र ! प्रायः सभी उत्तम जन तुझे अच्छी तरह जानते हैं, इसलिए वे तुझे ही अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥१३॥

हे सोमको पीनेवाले इन्द्र ! तू हमारी तरफ आ और इस सोमरूपी अन्नसे आनन्दित हो ॥१४॥

हे इन्द्र ! हमारी स्तुतियोंसे आकर्षित होकर तू अपने घोडोंको हमारी तरफ कर अर्थात् तू हमारी तरफ आ ॥१५॥

हे इन्द्र ! तू हमारे पुरोडाशको खा और हमारी स्तुतियोंका तू सेवन कर, हमारी स्तुतियोंको तू सुन ॥१६॥

३७१ सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥ १७ ॥
३७२ सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥ १८ ॥
३७३ दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥
३७४ भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥ २० ॥
३७५ भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥ २१ ॥
३७६ प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् । माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥ २२ ॥
३७७ कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते ॥ २३ ॥

अर्थ- [३७१] हम (इन्द्रं) इन्द्रसे (सहस्रं युक्तानां व्यतीनां) हजारों योग्य शिक्षित तथा शत्रुओंको हरानेवाले घोडोंको तथा (सोमस्य शतं खार्यः) सोमके सौ खारियोंको (ईमहे) मांगते हैं ॥१७॥

१ खारी- एक प्राचीन कालका माप, जिसमें १६ द्रोण होते हैं । एक द्रोण - करीब एक बाल्टी ।

[३७२] हे इन्द्र ! हम (ते शता सहस्रा गवां) तेरी सैंकडों व हजारों गायोंको (आच्यावयामसि) अपनी तरफ प्रेरित करते हैं, (ते राधः अस्मत्रा एतु) तेरा ऐश्वर्य हमारी तरफ आवे ॥१८॥

[३७३] हे इन्द्र ! हम (ते दश हिरण्यानां कलशानां) तेरे दस सोनेसे भरे कलशोंको (अधीमहि) धारण करते हैं । हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (भूरिदा असि) बहुत दान देनेवाला है ॥१९॥

[३७४] हे (भूरि-दा) बहुत दान देनेवाले इन्द्र ! तू (नः भूरि देहि) हमें बहुत अधिक धन दे । (दभ्रं मा) थोडा नहीं, (भूरि आभर) बहुत ज्यादा धन दे, (घ) क्योंकि हे इन्द्र ! तू (भूरि दित्ससि) बहुत अधिक देना चाहता है ॥२०॥

[३७५] हे (वृत्रहन् शूर) वृत्रको मारनेवाले तथा शूर इन्द्र ! तू (पुरुत्रा) बहुत लोगोंमें (भूरिदा शूरः श्रुतः असि) बहुत देनेवालेके रूप में प्रसिद्ध है । तू (नः राधसि भजस्व) तु हमें ऐश्वर्यमें स्थापित कर ॥२१॥

[३७६] हे (विचक्षणः, गोषणः, नपात्) बुद्धिमान्, गायोंके पालन करनेवाले तथा विनाश न करनेवाले इन्द्र! मैं (ते बभ्रू शंसामि) तेरे भूरे रंगवाले घोडोंकी प्रशंसा करता हूँ । तू (आभ्यां गाः मा अनु शिश्रथः) इनसे हमारी गायोंको मत मार ॥२२॥

[३७७] (विद्रधे नव अर्भके द्रुपदे) मजबूत नये और छोटे लडकीके टुकडेपर अंकित (कनीनका इव) पुतली जिस प्रकार शोभित होती है, उसी तरह (बभ्रू यामेषु शोभते) तेरे भूरे रंगके घोडे यज्ञोंमें शोभित होते हैं ॥२३॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू हमें हजारों योग्य शिक्षित घोडोंको तथा बहुत मात्रा में सोमको प्रदान कर ॥१७॥

हे इन्द्र ! हम तेरी सैंकडों और हजारों गायोंको मांगते हैं तेरा ऐश्वर्य हमारी तरफ आवे ॥१८॥

हे इन्द्र ! हम तुझसे अत्यधिक धन प्राप्त करें । तू बहुत दान देनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध ही है ॥१९॥

हे इन्द्र ! तू अत्यधिक दान देनेवाला है, इसलिए तू हमें बहुत ज्यादा धन दे । हमें कम धन मत दे ॥२०॥

हे वृत्रको मारनेवाले शूरवीर इन्द्र ! तू अत्यधिक धन देनेवालेके रूप में प्रसिद्ध है। तू हमें ऐश्वर्यमें स्थापित कर ॥२१॥

हे बुद्धिमान्, गायोंके पालन करनेवाले तथा विनाश न करनेवाले इन्द्र ! मैं तेरे घोडोंकी प्रशंसा करता हूँ। तू हमारी गायोंको मत मार ॥२२॥

जिस प्रकार मजबूत लकडीके टुकडे पर अंकित पुतली जिस तरह सुन्दर लगती है, उसी तरह इन्द्रके घोडे यज्ञमें शोभा देते हैं ॥२३॥

३७८ अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे । बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४॥

[३३]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३७९ प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१॥

३८० यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद् देवानामुप सख्यमायन् धीरासः पुष्टिमवहन् मनायै ॥२॥

३८१ पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥

अर्थ- [३७८] हे इन्द्र ! (**यामेषु**) यज्ञोंमें शोभित होनेवाले तेरे (**अस्त्रिधा बभ्रू**) अहिंसक घोडे (**उस्त्रयाम्णे अरं**) बैलोंके रथ पर जानेवाले मेरे लिए कल्याण करनेवाले हों (**अनुस्त्रयाम्णे**) पैरोंसे ही जानेवाले मेरे लिए (**अरं**) कल्याण करनेवाले हों ॥२४॥

[३३]

[३७९] (**ये वातजूताः अपसः**) जो वायुके समान वेगवान् और कर्तृत्वशाली ऋभु अपने (**तरणिभिः एवैः**) चालाक और होशियार घोडोंसे (**द्यां सद्य परि बभूवुः**) द्युलोकको शीघ्र ही व्याप्त करते हैं, उन (**ऋभुभ्यः**) ऋभुओंके लिए (**वाचं**) स्तुतियोंको (**दूतं इव इष्ये**) दूतके समान प्रेरित करता हूँ और उनके (**उपस्तिरे**) सोमको उत्तम बनानेके लिए (**श्वैतरीं धेनुं ईळे**) दुधारु गायको मांगता हूँ ॥१॥

[३८०] (**यदा**) जब (**ऋभवः**) ऋभुओंने (**पितृभ्यां**) माता पिताओंके (**परिविष्टी**) सेवा करके (**वेषणा**) अपने महत्व और (**दंसनाभिः**) उत्तम कर्मों से स्वयंको (**अरं अक्रन्**) सामर्थ्यशाली बनाया (**आत् इत्**) उसके बाद ही (**देवानां सख्यं उप आयन्**) देवोंकी मित्रताको प्राप्त किया । देवोंकी मैत्री प्राप्त करके (**धीरासः**) उन बुद्धिमान् ऋभुओंने (**मनायै पुष्टिं अवहन्**) अपने मनको शक्तिशाली बनाया ॥२॥

१ **ऋभवः पितृभ्यां परिविष्टी दंसनाभिः अरं अक्रन्**-ऋभुओंने अपने माता पिताकी सेवा और उत्तम कर्मोंको करके स्वयं को सामर्थ्यशाली बनाया ।

२ **देवानां सख्यं उप आयन् मनायै पुष्टिं अवहन्** - देवोंसे मैत्री स्थापित की और अपने मनको शक्तिशाली बनाया ।

[३८१] (**ये**) जिन ऋभुओंने (**यूपा इव**) पडे हुए खम्भे के समान (**जरणा शयाना पितरा**) जीर्ण होकर पडे हुए मातापिताको (**पुनः**) फिरसे (**सना युवाना चक्रुः**) हमेशाके लिए तरुण बना दिया, (**ते**) वे (**वाजः विभ्वा ऋभुः**) वाज विभ्वा और ऋभु (**इन्द्रवन्तः**) इन्द्रकी कृपासे युक्त होकर तथा (**मधुप्सरसः**) मधुर सोमका भक्षण करनेवाले होकर (**नः यज्ञं अवन्तु**) हमारे यज्ञकी रक्षा करें ॥३॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तेरे अहिंसक घोडे बैलोंके रथ पर तथा पैदल ही जानेवाले मेरा कल्याण करनेवाले हों ॥२४॥

ये ऋभु वेगवान् और उत्तम कार्य करनेवाले हैं । इनके घोडे द्युलोकको शीघ्र ही व्याप लेते हैं । ऐसे ऋभुओंके लिए मैं अपने स्तोत्रोंको उसी तरह भेजता हूँ कि जिस तरह स्वामी अपने दूत भेजते हैं । मैं उन ऋभुओंसे सोमयज्ञ करनेके लिए दुधारु गायें मांगता हूँ ॥१॥

ऋभुओंने मातापिताकी सेवा करके तथा उत्तम उत्तम कर्म करके स्वयं को शक्तिशाली बनाया, तब वे देवोंके मित्र बने और उन्होंने अपने मनको भी शक्तिशाली बनाया । ऋभु प्रथम मनुष्य थे, पर जब उन्होंने अपने मातापिताकी सेवा की ओर उत्तम उत्तम कर्म किए, तब उन्हें देवत्वकी प्राप्ति हुई । वे मनुष्यसे देव बन गए ! देव बननेके बाद उनके मनकी शक्ति भी बढ गई इसी तरह मनुष्य भी उत्तम उत्तम कर्म करके देव बन सकता है और अपनी मनः शक्ति को बढा सकता है ॥२॥

३८२ यत् संवत्समृभवो गामरक्षन् यत् संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत् संवत्समभरन् भासो अस्या–स्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥ ४ ॥
३८३ ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान् त्रीन् कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत् पनयद् वचो वः ॥ ५ ॥
३८४ सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रु–रनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवा–ऽवेनत् त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥ ६ ॥
३८५ द्वादश द्यून् यदगोह्यस्या–ऽऽतिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून् धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥

अर्थ- [३८२] (यत्) जब (ऋभवः) ऋभुओंने (सं वत्सं) एक वर्ष तक (गां अरक्षन्) गायकी रक्षा की। (यत्) जब (संवत्सं) एक वर्षतक (ऋभवः) ऋभुओंने (मा: अपिंशन्) उस गायके अवयवोंमें मांस भर कर उसे सुन्दर रूपसे युक्त किया । (यत्) जब (संवत्सं) एक वर्षतक (अस्याः भासः अभरन्) इस गायमें तेज भरा, (ताभिः शमीभिः) अपने उन उत्तम कर्मोंके कारण ही उन ऋतुओंने (अमृतत्वं आशुः) अमरता प्राप्त की ॥४॥

[३८३] (ज्येष्ठः आह चमसा द्वा कर इति) बडा बोला कि हम चमसके दो भाग करें, (कनीयान् त्रीन् कृणवाम इति आह) छोटा बोला हम तीन करें । (कनिष्ठः आह चतुरः कर इति) सबसे छोटा बोला कि हम चार भाग करें, हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (त्वष्टा) त्वष्टाने (वः वचः पनयत्) तुम्हारे इन बातोंकी प्रशंसा की ॥५॥

[३८४] (नरः) नर रूपी ऋभुओंने (सत्यं ऊचुः) सत्य ही कहा (हि) क्योंकि उन्होंने (एव चक्रुः) जैसा कहा था, वैसा ही किया । (अनु) उसके बाद (एतां स्वधां) इस हविको (ऋभवः जग्मुः) ऋभुओंने प्राप्त किया । (त्वष्टा) त्वष्टा देवने (अहा इव विभ्राजमानान्) दिनके समान तेजस्वी (चतुर चमसान्) चार चमसोंको (ददृश्वान्) देखा और (अवेनत्) उन्हें बहुत पसन्द किया ॥६॥

[३८५] (यत्) जब (ऋभवः) ऋभुओंने (द्वादश द्यून्) बारह दिनतक (अगोह्यस्य आतिथ्ये) जिसका तेज छिप नहीं सकता, ऐसे आदित्यके आतिथ्यमें (ससन्तः रणत्) रहते हुए आनन्द किया, तब ऋभुओंने (सुक्षेत्रा अकृण्वन्) खेतोंको उत्तम बनाया, (सिन्धून् अनयन्त) नदियोंको प्रेरित किया (धन्व ओषधीः आ अतिष्ठन्) निर्जल प्रदेशमें ओषधी वनस्पतियोंको उगाया और (आपः निम्नं) जलोंको नीचेकी ओर बहाया ॥७॥

भावार्थ- इन ऋभुओंने लकडीके खम्भेके समान निश्चेष्ट पडे हुए अपने वृद्ध मातापिताको फिरसे हमेशा के लिए तरुण बना दिया । तब वे ऋभु इन्द्रकी कृपाके पात्र हुए ॥३॥

इन ऋभुओंने एक अत्यन्त जीर्ण गायकी वर्षभरतक सेवा की । उस गायमें मांस भरा, उसके अवयवोंको सुन्दर बनाया और उसमें तेज भरा । इस प्रकार उन्होंने एक मृतवत् गायको पुष्ट किया । अपने इन उत्तम कर्मोंके कारण उन्होंने अमरता प्राप्त की । गोरक्षण करनेसे दूध घी मिलता है और दूध घी के भक्षणसे दीर्घायु प्राप्त होती है ॥४॥

ऋभुओंमें सबसे बडेने कहा कि हम इसके दो भाग करें, छोटेने कहा कि हम तीन करें और सबसे छोटेने कहा कि हम इसके चार भाग करें । त्वष्टाने ऋभुओंके इन बातोंकी बहुत प्रशंसा की ॥५॥

ये नर रूपी ऋभु हमेशा सत्य ही बोलते हैं और ये जैसा बोलते हैं, वैसा ही आचरण करते हैं । अपने इस सत्य आचरण के कारण ही वे अपनी शक्तिको प्राप्त करते हैं ॥६॥

इस मंत्रमें ऋभुओंका वर्णन सूर्यकी रश्मिके रूपमें है । जब ये किरणें आदित्यके समीप तेजीसे प्रकाशित होती हैं अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें अत्यधिक प्रकाशित होती हैं, तब उसके बाद बरसात होती है । उस बरसातसे जल बरसाकर सूर्य किरणें खेतोंको उपजाऊ बनाती है, नदियोंको बहाती है, निर्जल प्रदेशोंमें ओषधियोंको उत्पन्न करती हैं और जलोंको बहाती हैं ॥७॥

३८६ रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ८ ॥
३८७ अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत् सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥ ९ ॥
३८८ ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥
३८९ इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन् त्सवने दधात ॥ ११ ॥

अर्थ- [३८६] (**ये**) जिन ऋभुओंने (**सुवृतं नरेष्ठां रथं चक्रुः**) अच्छी तरह बन्धनोंसे बंधे हुए और मनुष्योंके लिए बैठने योग्य रथको तैय्यार किया, (**ये विश्वजुवं विश्वरूपां धेनुं**) जिन्होंने सबको प्रेरणा देनेवाली और अनेक रूपोंवाली गायको बनाया, (**ते**) वे (**सु-अपसः सु-अवसः सुहस्ताः**) उत्तम कर्म करनेवाले, उत्तम रक्षाके साधनोंसे युक्त और उत्तम हाथोंवाले (**ऋभवः**) ऋभु (**नः रयिं आ तक्षन्तु**) हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८॥

[३८७] (**एषां अपः**) इन ऋभुओंके कर्मोंको (**कृत्वा मनसा अभि दीध्यानः**) कर्म और मनसे तेजस्वी (**देवाः**) देवोंने (**अभि अजुषन्त**) स्वीकार किया है । अपने कर्मोंके कारण (**सुकर्मा वाजः**) उत्तम कर्म करनेवाला वाज नामक ऋभु (**देवानां अभवत्**) देवोंका प्रिय बना, (**ऋभुक्षा इन्द्रस्य**) ऋभुक्षा इन्द्रका प्रिय बना, (**विभ्वा वरुणस्य**) और विभ्वा वरुणका प्रिय बना ॥९॥

[३८८] (**ये**) जिन ऋभुओंने (**उक्था मदन्तः**) स्तोत्रोंसे आनन्दित होकर (**मेधया**) अपनी बुद्धिसे (**हरि चक्रुः**) दो उत्तम घोडोंको बनाया, (**ये**) जिन ऋभुओंने (**इन्द्राय**) इन्द्रके लिए (**सुयुजा चक्रुः**) आसानीसे रथमें जुड जानेवाले घोडोंको तैय्यार किया, हे (**ऋभवः**) ऋभुओ ! (**ते**) वे तुम (**क्षेमयन्तः मित्रं न**) कल्याण चाहनेवाले मित्रके समान (**अस्मे**) हमारे लिए (**रायस्पोषं द्रविणानि**) धन, पुष्टि और अन्यान्य ऐश्वर्य भी (**धत्त**) प्रदान करो ॥१०॥

[३८९] हे ऋभुओ ! (**इदा अह्नः**) इस दिनके भागमें देवोंने (**वः**) तुम्हारे लिए (**प्रीतिं मदं धुः**) सोम और आनन्द प्रदान किया । (**श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति**) कष्ट उठाये बिना देवगण मित्रता नहीं करते। हे (**ऋभवः**) ऋभुओ ! (**अस्मिन् तृतीये संवने**) इस तीसरे सवनमें (**अस्मे वसूनि नूनं दधात्**) हमें धन निश्चयसे दो ॥११॥

१ **श्रन्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति**- कष्ट उठाये बिना देवगण मित्रता नहीं करते ।

भावार्थ- ये ऋभु शिल्पी भी हैं । इन्होंने एक मजबूत और मनुष्योंके लिए आसानीसे बैठने योग्य रथका निर्माण किया । उन्होंने गायोंको कामधेनु बनाया । वे सभी ऋभु उत्तम कर्म करनेवाले, उत्तम रक्षाके साधनोंसे युक्त और कुशल हाथोंवाले हैं । ये ऋभु हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८॥

इन ऋभुओंके कर्म इतने सुन्दर होते हैं कि इनके कर्म अपनी कर्तृत्वशक्ति तथा मानसिक शक्तिके कारण तेजस्वी देवोंको भी बहुत पसन्द आते हैं । अपने इन उत्तम कर्मोंके कारण ही वे ऋभु देवोंके प्रिय बने । उनमें उत्तम कर्म करनेवाला वाजनामक ऋभु सभी देवोंका प्रिय बना, ऋभुक्षा इन्द्रका प्रिय बना और विभ्वा वरुणका प्रिय बना ॥९॥

इन ऋभुओंने स्तुतियोंसे आनन्दित होकर अपनी बुद्धिके प्रभाव से उत्तम घोडोको तैय्यार किया । इन्द्रके घोडोंको भी इन ऋभुओंने सुशिक्षित किया । वे ऋभु कल्याण चाहनेवाले मित्रके समान हमें धन, पुष्टि और अन्यान्य ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१०॥

हे ऋभुओ ! तुम्हारे परिश्रम और कुशाग्र बुद्धिको देखकर ही देवोंने तुम्हें सोमपानका अधिकारी बनाकर आनन्द प्रदान किया, क्योंकि बिना परिश्रम किये या बिना कष्ट उठाये देवगण किसीसे मित्रता नहीं करते । जो मनुष्य परिश्रम नहीं करता या कष्ट नहीं करता, देवगण उसकी सहायता नहीं करते ॥११॥

[३४]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३९० ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छे—मं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्ना—मधात् पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥ १ ॥
३९१ विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरंधिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥ २ ॥
३९२ अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत् प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थु—रभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥ ३ ॥
३९३ अभूदु वो विधते रत्नधेय—मिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥ ४ ॥

---

[३४]

अर्थ- [३९०] (ऋभुः विभ्वा वाजः इन्द्रः) ऋभु, विभ्वा, वाज और इन्द्र हमें (रत्नधेया) रत्न प्रदान करनेके लिए (नः इमं यज्ञं अच्छ उपयात) हमारे इस यज्ञकी ओर सीधा आवें । (वः) तुम्हारे लिए (धिषणा देवी) वाग्देवीने (इदा अह्नां) आजके दिन (पीतिं अधात्) सोम पीनेके लिए दिया है । (मदाः) ये आनन्द कारक सोम (वः सं अग्मत) तुमसे संयुक्त हों, तुम्हें प्राप्त हों ॥१॥

[३९१] हे (वाजरत्नाः ऋभवः) समृद्ध अन्नसे युक्त ऋभुओ ! (जन्मनः विदानासः) सभी प्राणियोंके जन्मोंको जानते हुए (ऋतुभिः मादयध्वम्) सभी ऋतुओंमें आनन्द प्राप्त करो । (वः मदाः सं अग्मत) तुम्हें ये आनन्द कारक सोम सदा प्राप्त होते रहें । (पुरंधि सं अग्मतः) उत्तम बुद्धि भी प्राप्त होती रहे । तुम (सुवीरां रयिं) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धनको (अस्मे एरयध्वं) हमारी तरफ प्रेरित करो ॥२॥

[३९२] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (वः अयं यज्ञः अकारि) तुम्हारे लिए यह यज्ञ किया गया है । (यं) जिस यज्ञको (प्रदिवः) तेजस्वी तुम (मनुष्वत् दधिध्वे) मनुष्यके समान स्वीकार करो । (जुजुषाणासः) प्रसन्न करनेवाले सोम (वः अच्छा प्र अस्थुः) तुम्हारी तरफ सीधे आते हैं । इसी कारण हे (वाजाः) बलवान् ऋभुओ ! (विश्वे) तुम सब (अग्रिया अभूत) सबसे श्रेष्ठ हुए ॥३॥

[३९३] हे (नरः) नेता ऋभुओ ! (वः इदा) तुम्हारा यह (रत्नधेयं) रत्नादि ऐश्वर्य (विधते दाशुषे) सेवा करनेवाले तथा हवि देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्यके लिए (अभूत्) हो । (वाजाः ऋभवः) हे बलशाली ऋभुओ ! मैं (वः) तुम्हें (मदाय) आनन्दके लिए (म हि तृतीयं सवनं) बहुत मात्रामें तीसरे सवनके सोमको (ददे) देता हूं, तुम (पिबत) पीओ ॥४॥

भावार्थ- ऋभु, विभ्वा, वाज और इन्द्र हमें रत्न आदि धन प्रदान करनेके लिए हमारे इस यज्ञकी तरफ सीधे आवें । क्योंकि इन्हें यज्ञमें स्तुतियोंके साथ सोमरस दिए जाते हैं । ये आनन्दकारक सोमरस इन देवोंके साथ संयुक्त हों ॥१॥

उत्तम और श्रेष्ठ अन्नसे युक्त ऋभुओ ! तुम सभी प्राणियोंके जन्मोंको जानते हो । अतः तुम सभी ऋतुओंमें आनन्दित रहो । ये आनन्दकारक सोम और उत्तम बुद्धियां तुम्हें प्राप्त होती रहें । तुम हमें उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन प्रदान करो ॥२॥

हे ऋभुओ ! तुम्हारे लिए ही यह यज्ञ किया है । अतः इस यज्ञको तुम मनुष्यके समान प्रेमसे स्वीकार करो । आनन्द देनेवाले सोम तुम्हारी ओर आते हैं । इन्हीं सोमरसोंके कारण तुम सबसे श्रेष्ठ हुए हो ॥३॥

हे नेता ऋभुओ ! तुम्हारे रत्न आदि ऐश्वर्य तुम्हारी सेवा करनेवाले तथा तुम्हें हवि देनेवाले मनुष्यके लिए हों । हे बलशाली ऋभुओ ! मैं तुम्हारे आनन्दके लिए बहुत मात्रामें सोमरस प्रदान करता हूं, तुम सब पीओ ॥४॥

३९४ आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥ ५ ॥

३९५ आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥ ६ ॥

३९६ सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥ ७ ॥

३९७ सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥ ८ ॥

अर्थ - [३९४] (वाजाः नरः ऋभुक्षाः) हे बलशाली नेता ऋभुओ ! **(महः द्रविणसः गृणानाः)** अधिक सम्पत्तिशालीके रूपमें प्रसिद्ध तुम **(नः उप यात)** हमारे पास आओ । **(अह्नाम् अभि पित्वे)** दिवसकी समाप्ति पर **(इमाः पीतयः)** ये सोमरस **(वः ग्मन्)** तुम्हारी तरफ उसी तरह जाते है, जिस प्रकार **(नवस्वः अस्तं इव)** नव प्रसूत गायें अपने घरकी तरफ उत्सुकतासे जाती हैं ॥५॥

[३९५] हे **(शवसः नपातः)** बलको नष्ट न करनेवाले ऋभुओ ! **(सूरयः)** बुद्धिमान् तथा **(नमसा हूयमानाः)** विनीतभावसे बुलाये जानेवाले तुम **(सजोषसः)** प्रेमसे युक्त होकर **(इमं यज्ञं उप आ यातन)** इस यज्ञमें आओ। **(यस्य च स्थ)** तुम जिसके हो, उस **(इन्द्रवन्तः)** इन्द्रसे संयुक्त होकर **(रत्नधाः)** रमणीय धनोंको धारण करनेवाले तुम **(मध्वः पात)** मधुरसोम पीओ ॥६॥

[३९६] हे **(इन्द्र)** इन्द्र ! तू **(सजोषाः)** प्रीतिपूर्वक **(वरुणेन सोमं)** वरुणके साथ सोम पी । हे **(गिर्वणः)** स्तुतिके योग्य इन्द्र ! तू **(सजोषाः)** प्रीतिसे युक्त होकर **(मरुद्भिः पाहि)** मरुतोंके साथ सोम पी । तू **(अग्रेपाभिः ऋतुपाभिः)** सबसे प्रथम सोमरसको पीनेवाले तथा ऋतुओंके अनुसार सोमको पीनेवाले देवोंके साथ देवोंके साथ **(सजोषाः)** प्रीतिपूर्वक सोम पी, तथा **(रत्नधाभिः)** उत्तम ऐश्वर्योको धारण करनेवाली तथा **(ग्नास्पत्नीभिः)** कार्योंका पालन करनेवाली दिव्य स्त्रियोंके साथ **(सजोषाः)** प्रीतिपूर्वक सोम पी ॥७॥

[३९७] हे **(ऋभवः)** ऋभुओ ! तुम **(सजोषसः)** प्रेमसे युक्त होकर **(आदित्यैः मादयध्वं)** आदित्योंके साथ आनन्द करो । **(सजोषसः)** प्रीतिपूर्वक **(पर्वतेभिः)** पर्वतोंके साथ आनन्द करो । **(सजोषसः)** प्रेमसे युक्त कर **(दैव्येन सवित्रा)** देवोंके हितकारी सविता देवके साथ आनन्द करो । तथा **(सजोषसः)** प्रेमपूर्वक **(रत्नधेभिः सिन्धुभिः)** रत्नोंको धारण करनेवाले सागरोंके साथ आनन्द करो ॥८॥

भावार्थ : हे बलशाली नेता ऋभुओ ! तुम अत्यधिक सम्पत्तिशालीके रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध हो । तुम हमारे पास आओ। तुम्हारे जानेपर ये सोमरसको धारायें तुम्हारी तरफ उसी तरह बहें कि जिसप्रकार नव प्रसूता गायें अपने बछडोंके लिए उत्कंठित होकर अपने घरकी तरफ जाती है ॥५॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले ऋभुओ ! तुम बुद्धिमान् हो और सब विनीतभावसे तुम्हें बुलाते है । अतः तुम प्रेमसे युक्त होकर यज्ञमें जाओ । तुम इन्द्रके बहुत प्रिय हो, इसलिए इन्द्रके साथ ही हमारे यहां आकर सोम पीओ और सुन्दर कार्य करो ॥६॥

इन्द्र ! तू प्रेमपूर्वक वरुण, मरुतों और ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाले तथा दिव्यशक्तियोंके साथ प्रेमपूर्वक कार्य करो ॥७॥

ऋभुओ ! तुम प्रेमसे युक्त होकर आदित्य, पर्वत, देवोंके लिए हितकारी और रत्नोंको धारण करनेवाले सागरोंके साथ आनन्द करो ॥८॥

३९८ ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ९ ॥
३९९ ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥ १० ॥
४०० नापाभूत न वोऽतीतृषामा—ऽनिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥ ११ ॥

[३५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४०१ इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥ १ ॥

अर्थ- [३९८] (ये) जिन ऋभुओंने (ऊती) अपने संरक्षणके साधनने (अश्विना ततक्षुः) अश्विनीकुमारोंको समर्थ बनाया, (ये पितरा) जिन्होंने पितरोंको समर्थ बनाया, (ये धेनुं) जिन्होंने गायोंको दुधारु बनाया, (ये अश्वा) जिन्होंने घोडोंको शक्तिशाली बनाया । (ये अंसत्रा) जिन्होंने कवचोंका निर्माण किया, (ये रोदसी ऋधक्) जिन्होंने द्यु और पृथ्वीको अलग अलग किया, (ये विभ्वः नरः) जिन शक्तिशाली नेताओंने (सु-अपत्यानि चक्रुः) सुन्दर कर्मोंको किया ॥९॥

[३९९] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (ये) जो तुम (गोमन्तं वाजवन्तं) गायोंसे युक्त, घोडोंसे युक्त (सुवीरं) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त (वसुमन्तं पुरुक्षुम्) द्रव्य और अन्नसे समृद्ध (रयिं धत्थ) ऐश्वर्यको धारण करते हो । (ये च रातिं गृणन्ति) जिनके दानकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, (ते अग्रेपाः) वे सबसे प्रथम सोम पीनेवाले तुम (मन्दसानाः) आनन्दसे युक्त होकर (अस्मे धत्त) हमें धन दो ॥१०॥

[४००] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! तुम (न अपाभूत) हमसे दूर मत जाओ, (वः न अतीतृषाम) हम भी तुम्हें प्यासे न रखें, अर्थात् सोम प्रदान करते रहें । हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (देवाः) दिव्य गुणोंसे युक्त तुम (अनिःशस्ताः) निन्दारहित होकर (अस्मिन्यज्ञे) इस यज्ञमें (इन्द्रेण सं मदथ) इन्द्रके साथ बैठकर आनन्दित होओ । हे (देवाः) ऋभुओ ! (रत्नधेयाय) रत्न प्रदान करनेके लिए (राजभिः मरुद्भिः) तेजस्वी मरुतोंके साथ (सं) आनन्द प्राप्त करो ॥११॥

[३५]

[४०१] हे (शवसः नपातः) बलको नष्ट न करनेवाले (सौधन्वनाः ऋभवः) तथा उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले ऋभुओ ! (इह उपयात) हमारे पास आओ, (मा अप भूत) हमसे दूर मत जाओ । (अस्मिन् सवने) इस यज्ञमें (रत्नधेयं इन्द्रं अनु) रत्नोंको प्रदान करनेवाले इन्द्रको दिए जानेवाले (मदासः) आनन्दकारक सोम (वः गमन्) तुम्हें भी प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थ- जिन ऋभुओंने अश्विनीकुमारों, पितरों और घोडोंको शक्तिशाली बनाया, तथा गायोंको दुधारु बनाया, जिन्होंने कवचोंका निर्माण किया, जिन्होंने द्यु और पृथ्वीको अलग अलग किया, तथा जिन्होंने उत्तम कर्म किए, जो गायों, घोडों, उत्तम सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्यको धारण करते हैं, जिनके दानकी प्रशंसा सर्वत्र होती है, ऐसे ये ऋभु आनन्दित होकर हमें धन प्रदान करें ॥९-१०॥

हे ऋभुओ ! तुम हमसे दूर मत जाओ और हम भी तुम्हें प्यासे न रखें, तुम्हें सदा सोम प्रदान करते रहें । तुम आनन्दित होकर इस यज्ञमें इन्द्रके साथ बैठकर आनन्द प्राप्त करो, तथा हमें रत्न प्रदान करनेके लिए तेजस्वी मरुतोंके साथ बैठकर आनन्द प्राप्त करो ॥१॥

४०२ आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत् सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥ २ ॥
४०३ व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥
४०४ किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥ ४ ॥
४०५ शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥

अर्थ- [४०२] (**ऋभूणां रत्नधेयं इह आगन्**) ऋभुओंके रत्न आदियोंके दान यहां आवें, (**सु-सुतस्य सोमस्य पीतिः अभूत्**) अच्छी तरहसे निचोडे गए सोमरसका पान होता रहे । हे ऋभुओ ! (**यत्**) क्योंकि तुमने (**सुकृत्यया सु अपस्यया**) अपनी कुशलता और कर्तृत्वशक्तिसे (**एकं चमसं चतुर्धा विचक्र**) एक चमसको चार प्रकारसे बनाया ॥२॥

[४०३] हे ऋभुओ ! तुमने (**चमसं चतुर्धा वि अकृणोत**) चमसको चार तरहसे विभक्त किया, (**सखे**) हे मित्र ! (**शिक्ष इति अब्रवीत**) दान दे, ऐसा तुमने कहा था । (**अथ**) इसके बाद, हे (**वाजाः**) ऋभुओ ! (**अमृतस्य पन्थां ऐत**) अमृतके मार्ग पर चले । हे (**ऋभव**) ऋभुओ ! (**सुहस्ताः**) उत्तम हाथोंवाले तुम (**देवानां गणं**) देवोंके संघमें शामिल हो गए ॥३॥

[४०४] हे ऋभुओ ! (**यं**) जिस चमसके तुमने (**काव्येन**) अपनी बुद्धिसे (**चतुरः विचक्र**) चार भाग किए (**एषः चमसः**) वह चमस (**किंमयः स्वित् आस**) भला किस चीजका बना हुआ था ? (**अथ**) अब हे ऋत्विजो ! (**मदाय**) आनन्दके लिए (**सवनं सुनुध्वं**) सोमको पीसकर निचोडो । हे (**ऋभवः**) ऋभुओ ! (**मधुनः सोम्यस्य पात**) तुम मीठे सोमरसका पान करो ॥४॥

[४०५] हे ऋभुओ ! तुमने (**शच्या**) अपनी कर्मकुशलतासे (**पितरा युवाना अकर्त**) माता पिताको तरुण बनाया । तुमने (**शच्या**) अपनी कुशलतासे (**चमसं देवपानं अकर्त**) चमसको देवोंके लिए पीने योग्य बनाया । हे (**वाजरत्नाः ऋभवः**) ऐश्वर्यसे समृद्ध ऋभुओ ! तुमने (**शच्या**) अपनी कुशलतासे (**इन्द्रवाहा**) इन्द्रको ले जानेवाले (**हरी**) घोडोंको (**धनुतरौ अतष्ट**) बाणसे भी अधिक वेगसे जानेवाला बनाया ॥५॥

भावार्थ- हे बलोंको क्षीण न करनेवाले तथा उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले ऋभुओ ! हमारे पास ही सदा रहो, हमारे पाससे दूर कभी मत जाओ । यज्ञमें आनन्दप्रद सोमरस जिस तरह रत्नोंको धारण करनेवाले इन्द्रको प्रदान किए जाते हैं, उसी तरह हम तुम्हें भी प्रदान करते हैं ॥१॥

ऋभुओंके रत्न आदियोंके दान हमें प्राप्त हों । ये ऋभु अपने काममें कुशल और सदा ही उत्तम कर्म करनेवाले हैं । इसलिए इन्हें सोमरस प्रदान किए जाएं ॥२॥

हे ऋभुओ ! तुमने चमसको चार तरहसे विभक्त किया और तुमने अपने मित्रसे कहा कि हे मित्र ! तू दान दे । तुम अपने हाथों की कुशलता के कारण देवोंके संघमें शामिल हुए और इस प्रकार तुम अमृत मार्गके पथिक बने । जो अपने हाथोंसे उत्तम कर्म करता है, वह देव बनकर अमृतके मार्ग पर चलता है ॥३॥

हे ऋभुओ ! जिस चमसके तुमने चार भाग किए, वह भला किसका बना हुआ था ? ऋत्विजो ! तुम इन ऋभुओंके आनन्दके लिए सोम निचोडो और हे ऋभुओ ! तुम इस मधुर सोमरसका पान करो ॥४॥

हे ऋभुओ ! तुमने अपनी कुशलतासे माता पिताको तरुण बनाया । अपनी कुशलतासे तुने चमसको इतना सुन्दर बनाया कि वह देवगणोंके सोम पीने का एक साधन बना । तुमने अपने चातुर्यसे इन्द्रको ले जानेवाले घोडोंको इतना वेगवान् बनाया कि वे बाणसे भी अधिक वेगवाली हुए ॥५॥

४०६ यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीर—मा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥
४०७ प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यंदिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीँर्याँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥ ७ ॥
४०८ ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥
४०९ यत् तृतीयं सवनं रत्नधेय—मकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत् सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥

अर्थ- [४०६] हे (**वाजासः**) ऋभुओ ! (**यः**) जो मनुष्य (**अह्नां अभिपित्वे**) दिनके समाप्त होने पर (**वः मदाय**) तुम्हें आनन्द प्राप्त करानेके लिए (**तीव्रं सवनं सुनोति**) तीक्ष्ण सोमरसको निचोडता है, (**तस्मै**) उसे हे (**वृषणः ऋभवः**) शक्तिशाली ऋभुओ ! (**मन्दसानाः**) स्वयं आनन्दित होकर (**सर्ववीरं रयिं**) सब तरहसे वीर सन्तानोंसे युक्त धनको (**आ तक्षत**) प्रदान करो ॥६॥

[४०७] हे (**हर्यश्व**) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! तू (**प्रातः**) प्रातःकाल (**सुतं अपिबः**) निचोडे गए सोमको पी। (**माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते**) मध्याह्न समयका सोम भी केवल तेरे लिए ही है। हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**सुकृत्या**) उत्तम कर्मोंके कारण (**यान् सखीन् चकृषे**) जिन्हें तुमने अपना मित्र बनाया, उन (**रत्नधेभिः ऋभुभिः**) रत्नोंको धारण करनेवाले ऋभुओंके साथ तू (**पिबस्व**) सोम पी ॥७॥

१ **सुकृत्या सखीन् चकृषे**- उत्तम कर्मोंके कारण इन्द्रने ऋभुओंको अपना मित्र बनाया। जो मनुष्य उत्तम कर्म करता है, उसे ही इन्द्र अपना मित्र बनाता है।

[४०८] हे ऋभुओ ! (**ये**) जो तुम (**सुकृत्या देवासः अभवत**) अपने उत्तम कर्मोंके कारण देव बने, उसी कारण तुम (**श्येनाः इव**) सुपर्णके समान (**दिवि अधि निषेद**) द्युलोकमें प्रतिष्ठित हुए। हे (**शवसः नपातः**) बलको क्षीण न करनेवाले ऋभुओ ! (**ते**) वे तुम (**रत्नं धात**) रत्नोंको प्रदान करो। हे (**सौधन्वनाः**) उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले ऋभुओ ! तुम (**अमृतासः अभवत**) अमर हो गए हो ॥८॥

सुकृत्या देवासः अभवत- उत्तम कर्मोंसे ही देव बना जा सकता है।

[४०९] हे (**सुहस्ताः**) उत्तम तथा कुशल हाथोंवाले ऋभुओ ! तुमने (**सुअपस्या**) अपने उत्तम कर्मोंसे (**यत् तृतीयं सवनं**) जिस तीसरे सवनको (**रत्नधेयं अकृणुध्वं**) रत्न प्रदान करनेवाला बनाया है, (**तत्**) इसलिए हे (**ऋभवः**) ऋभुओ ! (**मदेभिः इन्द्रियेभिः**) प्रसन्न इन्द्रियोंसे युक्त होकर (**वः परिषिक्तं**) तुम्हारे लिये निचोडे गए (**एतत्**) इस सोमको (**सं पिबध्वम्**) अच्छी तरह पीओ ॥९॥

भावार्थ- हे ऋभुओ ! जो मनुष्य सायंकालके समय तुम्हें आनन्द देने के लिए तीव्र सोमको तैय्यार करता है, उस मनुष्यको तुम प्रसन्न होकर वीर सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्यको प्रदान करो ॥६॥

हे इन्द्र ! तू प्रातःकाल और मध्यान्ह कालमें आकर सोम पी। जिनके उत्तम कर्मोंके कारण तूने जिन ऋभुओंको अपना मित्र बनाया, उन रत्नोंको धारण करनेवाले ऋभुओंके साथ तू सोम पी ॥७॥

हे ऋभुओ ! चूंकि तुम अपने उत्तम कर्मोंके कारण देव बने हो, इसी कारण तुम द्युलोक या स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हुए हो। तुम अमर हो गए हो, इसलिए हमें भी तुम क्षीण न होनेवाले धन प्रदान करो ॥८॥

हे उत्तम कर्म करनेवाले ऋभुओ ! तुमने अपने उत्तम कर्मोंसे इस तीसरे सवनको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला बनाया। इस कारण तुम्हारे लिए यह सोमरस निचोडा गया है। तुम प्रसन्न इन्द्रियोंसे युक्त होकर इस सोमको पीओ ॥९॥

[३६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

४१० अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत् तद् वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥ १ ॥

४११ रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥

४१२ तद् वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत् सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥

४१३ एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद् व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥

---

[३६]

अर्थ- [४१०] हे (**ऋभवः**) ऋभुओ ! तुम्हारा (**रथः**) रथ (**अनश्वः जातः**) घोडोंसे रहित (**अनभीशुः**) लगामसे रहित (**त्रिचक्रः**) तीन पहियोंसे युक्त तथा (**उक्थ्यः**) प्रशंसनीय है । वह (**रजः परि वर्तते**) अन्तरिक्षमें चारों ओर घूमता है । तुम (**यत्**) जो (**द्यां पृथिवीं च पुष्यथ**) द्युलोक और पृथिवी लोकको पुष्ट करते हो, (**तत् महत्**) वह महान् कर्म (**वः देव्यस्य प्रवाचनं**) तुम्हारे देवत्वका द्योतक है ॥१॥

[४११] (**सुचेतसः ये**) उत्तम चित्त तथा ज्ञानवाले जिन ऋभुओंने (**सुवृतं**) अच्छी तरहसे घूमनेवाले तथा (**अविह्वरन्तं**) कभी कुटिलतासे न जानेवाले (**रथं**) रथको (**मनसः परि ध्यया**) मनके संकल्प से ही (**चक्रुः**) बनाया, (**वाजाः ऋभवः**) हे बलशाली ऋभुओ ! (**तान् वः**) उन तुम लोगोंको (**अस्य सवनस्य पीतये**) इस सोमको पीनेके लिए (**आवेदयामसि**) आमन्त्रित करते हैं ॥२॥

[४१२] हे (**वाजाः विभ्वः ऋभवः**) बलशाली तथा तेजस्वी ऋभुओ ! (**यत्**) जो तुमने (**जिव्री सन्ता**) अत्यन्त वृद्ध (**सना-जुरा**) अत्यन्त जीर्ण (**पितरा**) मातापिताको (**चरथाय**) घूमने फिरनेके लिए (**पुनः युवाना तक्षथ**) फिरसे तरुण बना दिया, (**वः तत् महित्वनं**) तुम्हारा वह महत्त्वपूर्ण कर्म (**देवेषु सुप्रवाचनं अभवत्**) देवोंमें अत्यधिक प्रशंसनीय हुआ ॥३॥

[४१३] हे (**वाजाः ऋभवः**) बलशाली ऋभुओ ! तुमने (**एकं चमसं चतुर्वयं विचक्र**) एक ही चमसको चार अवयवोंवाला बनाया और अपने (**धीतिभिः**) कर्मोंसे तुमने (**निश्चर्मणः गां अरिणीत**) केवल चमडीवाली गायको भी हृष्टपुष्ट बनाया । (**वः तत्**) तुम्हारा वह काम (**श्रुष्टी उक्थ्यं**) शीघ्र ही प्रशंसनीय हो गया, (**अथ**) इसके बाद तुमने (**देवेषु अमृतत्वं आनश**) देवोंमें अमरता प्राप्त की ॥४॥

भावार्थ- ऋभु सूर्यकी किरणें हैं । इनका रथ सूर्य घोडोंसे रहित और लगामसे रहित है । प्रातः, मध्यान्ह और सायं ये तीन उस रथके तीन चक्र हैं । इन चक्रोंसे वह पूरे द्युलोकमें घूमता है । इन्हीं किरणोंसे द्युलोक और पृथ्वीलोक पुष्ट होते हैं। इसीलिए इन सूर्य किरणोंको देव कहा जाता हैं ॥१॥

हे बलशाली ऋभुओ ! उत्तम ज्ञानवाले तुमने अच्छी तरह जानेवाले तथा कभी भी कुटिल मार्गसे न जानेवाले रथको अपने मनके संकल्पमात्रसे ही बना डाला । इसलिए हम उत्तम ज्ञानवाले तुम्हें इस सोमको पीने के लिए आमंत्रित करते हैं, बुलाते हैं ॥२॥

हे बलशाली और तेजस्वी ऋभुओ ! तुमने अपने अत्यन्त वृद्ध और अत्यन्त क्षीण माता पिताको घूमने फिरने के लिए फिरसे तरुण बना दिया, वह तुम्हारा महत्त्वपूर्ण कर्म देवोंमें अत्यधिक प्रशंसनीय हुआ ॥३॥

हे बलशाली ऋभुओ ! तुमने एक ही चमसको चार अवयवोंवाला बनाया, और अपने कर्मोंसे तुमने केवल चमडों और हड्डियोंवाली गायमें मांस भरकर उसे हृष्टपुष्ट बनाया । अपने इन्हीं कर्मोंके कारण तुमने प्रशंसा प्राप्त की और देवोंमें स्थान पाकर अमर हुए ॥४॥

४१४ ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन् नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥
४१५ स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥ ६ ॥
४१६ श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चित-स्तान् व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥
४१७ यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तम-मा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥

अर्थ- [४१४] (**यं नरः अजीजनन्**) जिसे नेता ऋभुओंने उत्पन्न किया, वह (**प्रथमश्रवस्तमः**) सबसे श्रेष्ठ और अत्यन्त यश प्रदान करनेवाला धन (**वाजश्रुतासः ऋभुतः**) अपने बलके लिए विख्यात ऋभुसे हमें प्राप्त हो । (**विभ्वतष्टः**) विशेष तेजस्वी ऋभुओंके द्वारा बनाया गया रथ (**विदथेषु प्रवाच्यः**) युद्धोंमें विशेषरूपसे प्रशंसनीय होता है । हे (**देवासः**) देवो ! (**यं अवथ**) जिसकी तुम रक्षा करते हो, (**सः विचर्षणिः**) वह विश्वविख्यात होता है ॥५॥

१ **यं देवासः अवथ सः विचर्षणिः-** जिसकी रक्षा देवगण करते हैं, वह विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है।

[४१५] (**वाजः विभ्वा ऋभवः**) वाज, विभ्वा और ऋभु (**यं यं आविषुः**) जिस जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, (**सः वाजी अर्वा**) वह बलवान् और प्रगतिशील, (**सः ऋषिः वचस्यया**) वह मंत्रद्रष्टा ज्ञानी और प्रशंसनीय (**स शूरः अस्ता**) वह शूर वीर, शस्त्रास्त्र फेंकनेवाला इसी कारण (**पृतनासु दुष्टरः**) युद्धोंमें अपराजेय होता है । (**सः रायस्पोषं**) वह धन और पोषण (**सः सुवीर्यं**) वह उत्तम पराक्रमको धारण करता है ॥६॥

[४१६] हे (**वाजाः ऋभवः**) बलशाली ऋभुओ ! (**वः श्रेष्ठं दर्शतं पेशः**) तुम्हारा श्रेष्ठ और देखने योग्य सुन्दररूप (**अधि धायि**) सबसे ऊपर है । (**स्तोमः**) हमने जो स्तोत्र किया है, (**तं जुजुष्टन**) उसका सेवन करो तुम (**धीरासः कवयः विपश्चितः स्थ**) धैर्यशाली, दूरदर्शी और बुद्धिमान् हो । (**तान् वः**) उन तुमको (**एना ब्रह्मणा वेदयामसि**) इन मंत्रोंसे बुलाते हैं ॥७॥

[४१७] हे (**ऋभवः**) ऋभुओ ! (**विद्वांसः यूयं**) ज्ञानसे युक्त तुम (**अस्मभ्यं**) हमें (**धिषणाभ्यः परि**) हमारी कल्पनाकी अपेक्षा भी अधिक (**विश्वा नर्याणि भोजना**) सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाली सम्पत्ति, (**द्युमन्तं वृषशुष्मं**) तेजस्वी ऐश्वर्यसे युक्त अधिकार (**उत्तमं वयः रयिं वाजं**) उत्तम अन्न, ऐश्वर्य और बल (**नः आ तक्षत**) हमें प्रदान करो ॥८॥

भावार्थ- जिस धनको ऋभु उत्पन्न करते हैं, वह अत्यन्त श्रेष्ठ और अत्यन्त यश प्रदान करनेवाला धन होता है । उसी तरह जिस रथको ऋभु बनाते हैं, वह युद्धोंमें उत्तम काम करनेके कारण अत्यन्त प्रशंसनीय होता है । देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, वह विशेष बुद्धिमान् होकर विश्वविख्यात होता है ॥५॥

ये ऋभुगण जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह बलवान्, प्रगतिशील, ज्ञानी, प्रशंसनीय, शूरवीर, युद्धमें शस्त्रास्त्रोंका प्रहार करनेवाला, युद्धोंमें अपराजेय, धन ऐश्वर्यसे युक्त और उत्तम पराकर्मशील होता है ॥६॥

इन ऋभुओंका रूप बडा ही सुन्दर और श्रेष्ठ है । उनका रूप अन्य देवोंसे बढ चढकर होनेके कारण सबसे उच्च स्थान पर है । वे धैर्यशाली दूरदर्शी और बुद्धिमान् है । उन्हें स्तोत्रोंके द्वारा बुलाया जाता है । ॥७॥

ज्ञानसे युक्त ऋभुओ ! तुम हम जितनी कल्पना करते हैं, उसकी भी अपेक्षा अधिक ऐश्वर्य हमें प्रदान करो । वह ऐश्वर्य सब प्राणियोंका हित करनेवाला, उत्तम अन्न और बल हमें प्राप्त हो ॥८॥

४१८ इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत् तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान् तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥

[३७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५-८ अनुष्टुप् ।]

४१९ उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वासु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ १ ॥
४२० ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥
४२१ त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥

अर्थ- [४१८] (ऋभवः) हे ऋभुओ ! तुम (रराणाः) आनन्दित होते हुए (नः) हमें (इह) इस संसारमें (प्रजां) उत्तम सन्तान (इह रयिं) इस संसारमें ऐश्वर्य (इह वरिवत् श्रवः) यहां वीरताको देनेवाला अन्न प्रदान करो। (नः) हमें (तं चित्रं वाजं दद) उस श्रेष्ठ और विलक्षण बलको दो कि (येन) जिससे (वयं) हम (अन्यान् अति चितयेम) दूसरोंसे आगे बढ जाएं ॥९॥

[३७]

[४१९] हे (वाजाः ऋभुक्षां देवाः) बलवान् ऋभुदेवो ! तुम (देवयानैः पथिभिः) देव जिनसे जाते हैं ऐसे मार्गोंसे (नः अध्वरं उप यात) हमारे यज्ञमें आओ। हे (रण्वाः) सुन्दर ऋभुओ ! (यथा) ताकि (आसु मनुषः विक्षु) इन मनुकी प्रजाओंमें तुम (अह्नां सुदिनेषु) दिनोंमें उत्तम दिन पर (यज्ञं दधिध्वे) यज्ञकी हविको ग्रहण करो ॥१॥

[४२०] (अद्य) आज (ते यज्ञाः) वे यज्ञ (वः मनसे हृदे) तुम्हारे मन और हृदयको आनन्द देनेवाले (सन्तु) हों । आज (घृतनिर्णिजः) घी के समान तेजस्वी (जुष्टासः) सेवन करने योग्य सोम (गुः) तुम्हारी ओर बहें । (पूर्णाः सुतासः) उत्साहसे पूर्ण और अच्छी तरह निचोडे गए सोम (वः प्र हरयन्तः) तुम्हारे लिए ले जाए जाएं । तथा (पीताः) पिए गए सोम (क्रत्वे दक्षाय) तुम्हारे पराक्रम और चातुर्यको प्रकट करनेके लिए (हर्षयन्त) तुम्हें हर्षित करें ॥२॥

[४२१] हे (वाजाः ऋभुक्षणः) बलवान् ऋभुओ ! (यथा व) स्तोमः) जिस तरह तुम्हें स्तोत्र समर्पित किए जाते हैं, उसी तरह मैं (वः) तुम्हें (त्रि-उदायं देवहितं ददे) तीनों सवनोंमें तैय्यार होनेवाला तथा देवोंके लिए हितकारी सोम समर्पित करता हूं । (बृहत् दिवेषु उपरासु विक्षु) अत्यन्त तेजस्वी और श्रेष्ठ मनुष्योंमें भी (मनुष्वत्) मनुके समान तेजस्वी मैं (युष्मे) तुम्हारे लिए (सचा सोमं जुह्वे) एक साथ सोमरस प्रदान करता हूं ॥३॥

भावार्थ- हे ऋभुओ ! तुम आनन्दित होकर हमें इस संसारमें उत्तम सन्तान, उत्तम ऐश्वर्य और वीरताको प्रदान करनेवाला अन्न प्रदान करो । हमें ऐसा विलक्षण बल प्रदान करो कि जिससे हम दूसरोंसे आगे बढ जाएं ॥९॥

हे बलवान् ऋभुओ ! तुम देवोंके मार्गोंसे चलकर हमारे यज्ञमें आओ । मनुकी इन प्रजाओंके यज्ञमें आकर उत्तम दिनमें यज्ञकी हविको ग्रहण करो ॥१॥

हे ऋभुओ ! हमारे द्वारा किए जानेवाले ये यज्ञ तुम्हारे मन और हृदयको आनन्दित करें, तथा घीके समान तेजस्वी ये सोम तुम्हारी तरफ बहें । इनसे तुम हर्षित होकर अपनी कुशलताको प्रकट करो ॥२॥

हे बलवान् ऋभुओ ! जिस तरह तुम्हें स्तोत्र समर्पित किए जाते हैं, उसी तरह मैं तीनों सवनोंमें तैय्यार होनेवाला तथा देवोंके लिए हितकारी सोम तुम्हें समर्पित करता हूं । मैं अत्यन्त तेजस्वी मनुष्योंमें भी अत्यन्त तेजस्वी हूं । ऐसा मैं तुम्हें सोम प्रदान करता हूं ॥३॥

४२२ पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूता ऽयःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातो ऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥

४२३ ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥

४२४ सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥

४२५ वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥

अर्थ- [४२२] (पीवो अश्वाः) पुष्ट घोडोंवाले (शुचद्रथाः) तेजस्वी रथोंवाले (अयः शिप्राः) लोहेके कवचोंको धारण करनेवाले तुम, हे (वाजिनः) बलवान् ऋभुओ ! (सुनिष्काः) उत्तम धनवाले होओ । हे (इन्द्रस्य सूनो) इन्द्रके पुत्रो ! (शवसः नपातः) बलसे उत्पन्न हुए ऋभुओ ! (वः मदाय) तुम्हारे आनन्दके लिए (अग्रियं अनु चेति) यह श्रेष्ठ सोम दिया जाता है ॥४॥

[४२३] हे (ऋभुक्षणः) ऋभुओ ! (ऋभुं) तेजस्वी (रयिं) सम्पत्तिरूप (वाजे वाजिन्तमं) युद्धमें अत्यन्त बलशाली (युजं) एक साथ रहनेवाले (इन्द्रस्वन्तं) इन्द्रके प्रिय (सदासातं) सदा अत्यन्त उदार (अश्विनं) उत्तम घोडोंवाले तुम्हारे समूहको (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥५॥

[४२४] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (यूयं इन्द्रश्च) तुम और इन्द्र (यं मर्त्यं अवथ) जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, (सः इत् अस्तु) वही श्रेष्ठ होता है । (सः धीभिः सनिता) वही अपने कर्मोंसे उपभोगोंसे संयुक्त होता है । (सः) वही (मेधसाता अर्वता) यज्ञमें अश्वसे युक्त हो ॥६॥

धीभिः सनिता- मनुष्य अपने उत्तम कर्मों और उत्तम बुद्धियोंके कारण श्रेष्ठ उपभोगोंसे संयुक्त होता है।

[४२५] (वाजाः ऋभुक्षणः) बलवान् ऋभुओ ! तुम (नः यष्टवे) हमें उत्तम कर्मोंका आचरण करनेके लिए (पथः वि चतन) उत्तम मार्गको प्रकाशित करो । हे (सूरयः) बुद्धिमान् ऋभुओ ! (स्तुतः) तुम स्तुत होकर (विश्वाः आशाः तरीषणि) सब दिशाओंको पार कर जाने के लिए (अस्मभ्यं) हमें मार्ग दिखाओ ॥७॥

भावार्थ- हे बलशाली ऋभुओ ! पुष्ट घोडोंवाले, तेजस्वी रथोंवाले, लोहेके कवचोंको धारण करनेवाले तुम उत्तम और श्रेष्ठ धनोंके स्वामी हो । हम तुम्हारे आनन्दके लिए यह श्रेष्ठ सोम प्रदान करते हैं ॥४॥

ये ऋभु तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, युद्धोंमें अत्यन्त बलशाली, सदा संगठित होकर रहनेवाले, इन्द्रके अत्यन्त प्रिय, अत्यन्त उदार और उत्तम घोडोंको अपने पास रखनेवाले हैं, इसलिए इन्हें सब बुलाते हैं ॥५॥

हे ऋभुओ ! तुम और इन्द्र जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, वही श्रेष्ठ होता है और वही अपने उत्तम कर्मों और अपनी उत्तम बुद्धियोंसे उत्तम उपभोगोंसे संयुक्त होता है ॥६॥

हे बलवान् ऋभुओ ! तुम उत्तम कर्मोंका आचरण करनेके लिए हमें उत्तम मार्ग बताओ, तथा जिससे हम सभी दिशाओंको तर जाएं, ऐसा मार्ग भी हमें बताओ ॥७॥

४२६ तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥

[३८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- दधिक्राः; १ द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४२७ उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पुरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥
४२८ उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥
४२९ यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥

अर्थ- [४२६] हे (वाजाः ऋभुक्षणः इन्द्र नासत्या) बलवान् ऋभुओ, इन्द्र और अश्विनी देवो ! तुम (नः चर्षणिभ्यः) हम मनुष्योंको (तं पुरु रयिं) उस बहुतसे धन और (अश्वं) घोडोंकी (मघत्तये) प्राप्ति के लिए (सं आ शस्त) आशीर्वाद दो ॥८॥

[३८]

[४२७] हे द्यावापृथिवी ! (दात्रा त्रसदस्युः) दानशील त्रसदस्युने (पुरुभ्यः) मनुष्योंको (या नितोशे) जो धन दिए, (पूर्वाः) वे सभी धन (वां हि सन्ति) तुम्हारे ही हैं । तुमने (क्षेत्रासां ददथुः) हमें भूमिको जीतनेवाले घोडे दिए, (उर्वरासां) जमीनको उपजाऊ बनानेवाला पुत्र दिया, तथा (दस्युभ्यः अभिभूतिं) दुष्टोंका पराभव करनेवाला (उग्रं धनं) तीक्ष्ण अस्त्र दिया ॥१॥

[४२८] (उत) और (वाजिनं) बलशाली (पुरुनिष्षिध्वानं) बहुतसे शत्रुओंको संहार करनेवाले (विश्वकृष्टिं) सब मनुष्योंका हित करनेवाले (श्येनं ऋजिप्यं) श्येनके समान सरल जानेवाले (प्रुषितप्सुं) तेजस्वी रूपवाले (अर्यः चर्कृत्य) श्रेष्ठोंके द्वारा प्रशंसनीय (नृपतिं न शूरं) राजाके समान शूरवीर (आशुं) शीघ्रगतिसे जानेवाले (दधिक्रां) दधिक्राको ये द्यावापृथिवी (ददथुः) धारण करते हैं ॥२॥

[४२९] (सीं प्रवता इव द्रवन्तं) नीची जगह पर जिस तरह चारों ओरसे पानी दौडता है, उसी तरह दौडनेवाले (मेधयुं शूरं न) संग्रामको जीतनेकी इच्छा करनेवाला शूरवीरके समान (पड्भिः गृध्यन्तं) पैरोंसे आगे बढनेकी इच्छा करनेवाले (वातं इव ध्रजन्तं) वायु के समान वेगवान् (रथतुरं) रथको प्रेरणा देनेवाले (यं) जिस दधिक्रा देवको (विश्वः पूरुः) सभी मनुष्य (हर्षमाणः मदति) हर्षित होते हुए आनन्दित करते हैं ॥३॥

भावार्थ- हे ऋभुओ, इन्द्र और अश्विनी देवो ! तुम सब हमें आशीर्वाद दो ताकि हम उत्तम धन, घोडे और अन्यान्य ऐश्वर्य भी प्राप्त कर सकें ॥८॥

हे द्यावापृथिवी ! दानशील त्रसदस्युने जो कुछ भी मनुष्योंको दिया, वह सब धन तुम्हारा ही है । तुमने हमें भूमिको जीतनेवाला घोडा दिया, भूमिको उपजाऊ बनानेवाला पुत्र दिया और दुष्टोंका संहार करनेवाला तीक्ष्ण अस्त्र दिया ॥१॥

बलशाली बहुतसे शत्रुओंके संहार करनेवाले, सब मनुष्योंका हित करनेवाले, श्येन पक्षीके समान सरलतासे जानेवाले, तेजस्वी रूपवाले, श्रेष्ठोंके द्वारा प्रशंसनीय, राजाके समान शूरवीर दधिक्राको ये द्यावापृथिवी धारण करते हैं ॥२॥

नीची जगह पर जिस तरह पानी चारों ओरसे इकट्ठा होकर दौडता है, अथवा जिस तरह संग्रामको जीतनेकी इच्छा करनेवाला शूरवीर पैदलही आगे बढता चला जाता है, जो वायुके समान वेगवान् है तथा जो रथको प्रेरणा देनेवाला है, उस दधिक्रादेवको सभी मनुष्य आनन्दित करते हैं और स्वयं भी हर्षित होते हैं ॥३॥

४२० यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत् तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥ ४ ॥
४२१ उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायु—मनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥ ५ ॥
४२२ उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन् नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत् किरणं ददश्वान् ॥ ६ ॥
४२३ उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्यो—ऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥

अर्थ- [४२०] (यः स्म) जो देव (समत्सु) युद्धोंमें (गध्या आरुन्धानः) ऐश्वर्योंको रोके रखता है, (सनुतरः) ऐश्वर्यसे युक्त होकर (गोषु गच्छन्) सभी दिशाओं जाता हुआ (चरति) सर्वत्र संचार करता है । (आविर्ऋजीकः विदथा निचिक्यत्) अपने शस्त्रास्त्रोंको प्रकट करके युद्धोंमें प्रसिद्ध होता है । वह दधिक्रादेव (आपः आयोः) आप्त अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यके (अरतिं) शत्रुको (परि तिरः) दूर करता है ॥४॥

[४२१] (उत स्म) तथा जिस प्रकार (वस्त्रमथिं तायुं न) कपडोंको चुरानेवाले चोरको देखकर लोग चिल्लाते हैं, उसी तरह (श्रवः पशुमत् यूथं च अच्छ) धन और पशुओंके समूहकी तरफ सीधे जानेवाले (एनं) इस दधिक्राको (भरेषु) संग्रामोंमें देखकर (क्षितयः अनु क्रोशन्ति) शत्रुपक्षके मनुष्य भयसे चिल्लाने लगते हैं, तथा जिस तरह (नीचायमानं जसुरिं श्येनं न) नीचेकी ओर झपट्टा मारते हुए भूखे बाजको देखकर सभी पक्षी भाग जाते हैं उसी तरह इस दधिक्राको देखकर सभी शत्रु भाग जाते हैं ॥५॥

[४२२] (रथानां श्रेणिभिः) रथोंकी पंक्तियोंसे (आसु सरिष्यन्) इन सेनाओंमें जानेकी इच्छा करता हुआ वह दधिक्रा (प्रथमः नि वेवेति) सबसे आगे दौडता है । (जन्यः न) स्त्रीकामी जैसे अपने शरीरको मालाओंसे सजाता है, उसी तरह (स्रजं कृण्वानः शुभ्वा) मालाओंके पहननेके कारण अत्यन्त शोभायमान यह दधिक्रा (किरणं ददश्वान्) लगामोंको चबाता हुआ (रेणुं रेरिहत् स्म) धूलसे सन जाता है ॥६॥

[४२३] (उत) और (स्यः) वह (वाजी) बलवान् (समर्ये सहुरिः) युद्धमें शत्रुओंका संहारक (ऋतावा) अनुशासनमें रहनेवाला (तन्वा शुश्रूषमाणः) स्वयं चाटकर अपने शरीरकी सेवा करनेवाला (तुरं यतीषु तुरयन्) शीघ्रतासे जानेवाली सेनाओं पर आक्रमण करनेवाला (ऋजिप्यः) सरल मार्गसे जानेवाला यह दधिक्रा (रेणुं ऋञ्जन्) धूलिको उडाता हुआ उस धूलको (भ्रुवोः अधि किरते) अपनी भौहोंके ऊपर फैलाता है ॥७॥

भावार्थ- जो दधिक्रा देवता युद्धोंमें ऐश्वर्योंको शत्रुओंके हाथोंमें जाने नहीं देता, सभी दिशाओंमें बिना किसी रुकावटके संचार करता है । जो युद्धमें अपने बलको प्रकट करनेके कारण सर्वत्र प्रसिद्ध है, वह श्रेष्ठ मनुष्यके शत्रुओंको दूर करता है ॥४॥

जिस तरह किसी चोरको देखकर मनुष्य चिल्लाने लगते हैं, उसी तरह संग्राममें इस दधिक्रा उत्तम घोडेको देखकर शत्रु डरसे चिल्लाने लगते हैं अथवा जिस तरह नीचेकी तरफ झपट्टा मारकर उडनेवाले इस दधिक्रा उत्तम घोडेको देखकर भाग जाते हैं, उसी तरह इस घोडेको देखकर सभी शत्रु रणभूमिसे भाग जाते हैं ॥५॥

यह उत्तम अश्व युद्धमें रथकी पंक्तियोंसे भी आगे बढ जाता है और शत्रुकी सेनामें प्रविष्ट हो जाता है जैसे कोई स्त्रीकामी पुरुष अपने शरीरको मालाओंसे सजाता है, उसी प्रकार यह दधिक्रा मालाओंसे सदा सुशोभित रहता है । जब यह युद्धमें जाता है, तब लगामको चबाता हुआ इतनी तेजीसे दौडता है कि उसके खुरोंसे उडनेवाली धूलसे उसका शरीर सन जाता है ॥६॥

४३४ उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद् दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥ ८ ॥

४३५ उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत् सहस्रैः ॥ ९ ॥

४३६ आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥ १० ॥

अर्थ- [४३४] (**उत**) इसके अलावा भी (**द्योः तन्यतो; इव**) अत्यन्त तेजस्वी और कडकनेवाली बिजलीसे जैसे सब घबराते हैं, उसी तरह (**ऋघायतः अस्य**) शत्रुओंका संहार करनेवाले इस दधिक्रासे (**अभियुजः भयन्ते स्म**) आक्रमणकारी डरते हैं । (**यदा**) जब यह दधिक्रा (**सीं सहस्र अभि अयोधीत्**) चारों ओरसे हजारों शत्रुओंसे लडता है, तब (**ऋञ्जन्**) सजा संवरा हुआ यह (**भीमः दुर्वर्तुः भवति स्म**) भयंकर और दुर्निवार हो जाता है ॥८॥

[४३५] (**उत**) और (**कृष्टिप्रः आशोः**) मनुष्योंकी मनोकामनाओंको पूरा करनेवाले तथा वेगवान् (**अस्य**) इस दधिक्राके (**अभिभूतिं जूर्तिं**) पराक्रम और वेगकी (**जनाः पनयन्ति**) मनुष्य स्तुति करते हैं । (**समिथे वियन्तः**) युद्धमें जानेवाले योधा (**एनं आहुः**) इसके बारे में कहते हैं कि (**दधिक्रा**) यह दधिक्रा (**सहस्रैः परा असरत्**) हजारों शत्रुओंको भी भेद कर आगे निकल गया ॥९॥

[४३६] (**सूर्यः ज्योतिषा अपः इव**) सूर्य जैसे अपने प्रकाशसे अन्तरिक्षको व्याप्त कर देता है, उसी तरह यह (**दधिक्रा**) दधिक्रा (**शवसा**) अपने तेजसे (**पंच कृष्टीः**) पांचों तरहके मनुष्योंको (**आ**) व्याप्त कर लेता है । (**शतसाः सहस्रसाः**) सैकडों और हजारों तरहके धनोंको देनेवाला यह (**वाजी अर्वा**) बलवान् घोडा (**इमा वचांसि**) इन हमारी प्रार्थनाओंको (**मध्वा पृणक्तु**) मधुर फलोंसे संयुक्त करे ॥१०॥

भावार्थ- वह बलवान्, युद्धमें शत्रुओंका संहारक, अनुशासनमें रहनेवाला, स्वयं अपनी सेवा करनेवाला, शीघ्रतासे जानेवाली सेनाओं पर आक्रमण करनेवाला तथा सरल मार्गसे जानेवाला यह दधिक्रा इतनी धूल उडाता है कि उससे उसकी आंखें भी भर जाती हैं ॥७॥

जिस तरह प्राणी तेजस्वी और कडकनेवाली बिजलीसे घबराते हैं उसी तरह शत्रुओंका संहार करनेवाले इस दधिक्रासे शत्रुगण घबराते हैं । जब यह हजारों योधाओंसे एक साथ लडता है, तब सजा संवरा होनेपर भी यह भयंकर और दुर्निवार हो जाता है ॥८॥

मनुष्योंकी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले तथा वेगवान् इस दधिक्राके पराक्रम और वेगकी मनुष्य स्तुति करते हैं । युद्धमें जानेवाले योधा इस दधिक्राके बारेमें यह कहते हैं कि यह दधिक्रा हजारों शत्रुओंके व्यूहको भी भेदकर आगे निकल जाता है ॥९॥

सूर्य जैसे अपने प्रकाशसे अन्तरिक्षको व्याप लेता है, उसी प्रकार यह दधिक्रा अपने तेजसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांचों तरहके मनुष्योंको व्याप लेता है । यह बलवान् घोडा सैकडों और हजारों तरहके धन प्रदान करता है, इसलिए वह हमारी प्रार्थनाओंको मधुर फलोसे युक्त करे ॥१०॥

[३९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता-दधिक्राः । छन्दः- त्रिष्टुप् , ६ अनुष्टुप् ।]

४३७ आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥ १ ॥
४३८ महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥
४३९ यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥ ३ ॥
४४० दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥

---

[३९]

अर्थ- [४३७] (तं आशुं दधिक्रां नु स्तवाम) उस वेगवान् दधिक्राकी हम स्तुति करें । (उत) और (दिवः पृथिव्याः चर्किराम) द्युलोक और पृथ्वीलोककी भी प्रशंसा करे । (उच्छन्तीः उषसः) उदय होनेवाली उषायें (मां सूदयन्तु) मुझे उत्साह प्रदान करें और (विश्वानि दुरितानि अति पर्षन्) सम्पूर्ण संकटोंसे पार करें ॥१॥

[४३८] (क्रतुपाः) पराक्रम करनेवाला मैं (महः) महान् (अर्वतः) शीघ्रगामी (पुरुवारस्य) बहुजनप्रिय (वृष्णः) बलशाली (दधिक्राव्णः) दधिक्राकी (चर्कर्मि) बार बार स्तुति करता हूँ । हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (पुरुभ्यः) मनुष्योंके लिए (अग्निं न दीदिवांसं) अग्निके समान तेजस्वी (यं ततुरिं) जिस संकटोंसे पार लगानेवाले ऐश्वर्यको (ददथुः) प्रदान करते हो ॥२॥

[४३९] (यः) जो मनुष्य (उषसः व्युष्टौ) उषाके उदय होने और (अग्नौ समिद्धे) अग्निके प्रज्वलित होने पर (अश्वस्य दधिक्राव्णः) वेगशाली दधिक्राकी (अकारीत्) स्तुति किया करता है, (तं) उसे (मित्रेण वरुणेन सजोषाः) मित्र और वरुणके साथ आनन्दमें रहनेवाला (अदितिः) अविनाशी दधिक्रा (अनागसं कृणोतु) निष्पाप करे ॥३॥

[४४०] (इषः) अन्न देनेवाले और (ऊर्जः) बल देनेवाले (महः दाधिक्राव्णः) महान् दधिक्राका तथा (मरुतां) मरुतोंका (यत्) जो (भद्रं नामः) कल्याणकारी स्वरूप है, उसका (अमन्महि) हम मनन करते हैं तथा हम (वरुणं मित्रं अग्निं) वरुण, मित्र, अग्नि और (वज्रबाहुं इन्द्रं) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले इन्द्रको (स्वस्तये) अपने कल्याणके लिए (हवामहे) बुलाते हैं ॥४॥

भावार्थ- हम इस वेगवान् दधिक्राकी स्तुति करते हैं, इस द्यु और पृथ्वीलोककी भी प्रशंसा करते हैं। उदय होती हुई उषायें मुझे उत्साह प्रदान करें और वे मुझे सब संकटोंसे पार करें ॥१॥

पराक्रम करनेवाला मैं महान् शीघ्रगामी, बहुजन प्रिय और बलशाली दधिक्राकी बार बार स्तुति करता हूँ । हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों मनुष्योंको अग्निके समान तेजस्वी और उन्हें संकटोंसे पार लगानेवाला धन प्रदान करते हो ॥२॥

जो मनुष्य उषाके प्रकाशित तथा अग्निके प्रज्वलित होनेपर इस वेगशाली दधिक्राकी स्तुति करता है, उसे मित्र और वरुणके साथ आनन्दित होनेवाला अविनाशी दधिक्रा निष्पाप करे ॥३॥

अन्न तथा बल देनेवाले दधिक्रा तथा मरुतोंका जो कल्याणकारी रूप है उसका मनन करते हैं । हम वरुण मित्र, अग्नि और वज्रधारी इन्द्रको अपने कल्याण के लिए बुलाते हैं ॥४॥

४४१ इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥ ५ ॥
४४२ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

[४०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- दधिक्रा, ५ सूर्यः । छन्दः- जगती, १ त्रिष्टुप् ।]

४४३ दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥
४४४ सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥

अर्थ- [४४१] (**उदीराणाः**) युद्ध करनेके लिए जानेवाले क्षत्रिय तथा (**यज्ञं उपप्रयन्तः**) यज्ञके लिए प्रयत्न करनेवाले ब्राह्मण (**उभये**) ये दोनों ही (**इन्द्रं इव**) इन्द्रके समान इस दधिक्राको (**वि ह्वयन्ते**) बुलाते हैं । हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! तुमने (**नः**) हमें (**मर्त्याय सूदनं**) मनुष्यको प्रेरणा देनेवाले (**अश्वं दधिक्रां**) वेगवान् घोडेको (**ददथुः**) प्रदान किया ॥५॥

[४४२] मैंने (**जिष्णोः**) विजयशील (**अश्वस्य**) व्यापक (**वाजिनः दधिक्राव्णः**) बलवान् दधिक्राकी (**अकारिषं**) स्तुति की है, वह (**नः मुखा सुरभि करत्**) हमारी मुखादि इन्द्रियोंको निरोगी करे और (**नः आयूंषि प्रतारिषत्**) हमारी आयुको दीर्घ करे ॥६॥

[४०]

[४४३] हम (**दधिक्राव्णः इत् उ नु**) दधिक्रा देवी की ही (**चर्किराम**) स्तुति करें । (**मां**) मुझे (**विश्वाः इत् उषसः**) सभी उषायें (**सूदयन्तु**) प्रेरणा प्रदान करें । हम (**अपां अग्नेः उषसः सूर्यस्य**) जल, अग्नि, उषा, सूर्य (**बृहस्पतेः जिष्णोः आंगिरसस्य**) बृहस्पति और विजयशील आंगिरसकी स्तुति करें ॥१॥

[४४४] (**सत्वा भरिषः गविषः**) बलशाली, भरणपोषण करनेवाला, गौओंको प्रेरणा देनेवाला (**दुवन्यसत्**) भक्तोंके बीचमें रहनेवाला (**तुरण्यसत्**) शीघ्रतासे जानेवाला दधिक्रा (**उषसः**) उष कालमें (**इषः श्रवस्यात्**) अन्न या हविकी कामना करे । (**सत्यः**) अविनाशी (**द्रवः**) स्वयं वेगवान् तथा (**द्रवरः**) अन्योंकी भी वेग प्रदान करनेवाला (**पतंगरः**) उछाल मारते हुए जानेवाला (**दधिक्रा**) दधिक्रा हमारे लिए (**इषं ऊर्जं स्वः जनत्**) अन्न, बल और सुख उत्पन्न करे ॥२॥

भावार्थ- जिस प्रकार यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण तथा युद्ध करनेवाले क्षत्रिय ये दोनों इन्द्र को रक्षाके लिए बुलाते हैं, उसी तरह दधिक्राको बुलाते हैं । तब मित्र और वरुण मनुष्यको उत्साह देनेवाले दधिक्राको प्रदान करते हैं ॥५॥

विजयशील, व्यापक और बलवान् दधिक्राकी मैंने स्तुति की है, वह हमारी इन्द्रियोंको स्वस्थ करके हमारी आयुको दीर्घ बनाये ॥६॥

हम दधिक्रा, जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और आंगिरसकी स्तुति करें । प्रतिदिन उदय होनेवाली उषा हमें उत्तम प्रेरणा प्रदान करती रहे ॥१॥

बलशाली, सबका भरणपोषण करनेवाला, भक्तोंका हितकारी, शीघ्रतासे जानेवाला दधिक्रा उषःकालमें हविकी कामना करे । अविनाशी, वेगवान् तथा अन्योंको भी प्रेरणा देनेवाला दधिक्रा हमारे लिए अन्न, बल और सुख उत्पन्न करे ॥२॥

४४५ उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥ ३ ॥
४४६ उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत् पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥
४४७ हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षस- द्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमस- दब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ ५ ॥

[४१]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४४८ इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥ १ ॥

अर्थ- [४४५] (उत स्म) तथा (द्रवतः तुरण्यतः) जानेवाले तथा वेगसे भागनेवाले तथा (प्रगर्धिनः) स्पर्धा करनेवाले (अस्य) इस दधिक्राके (अनु) पीछे लोग उसी प्रकार जाते हैं, (वेः पर्णं न) जिस प्रकार पक्षीके पीछे उसके पंख होते हैं । (श्येनस्य इव ध्रजतः) श्येन पक्षीके समान जानेवाले तथा (तरित्रतः) रक्षा करनेवाले (दधिक्राव्णः) दधिक्राके (अंकसं परि) शरीरके चारों ओर (ऊर्जा सह) सामर्थ्यसे घेरते हैं ॥३॥

[४४६] (उत) और (स्यः वाजी) वह बलवान् दधिक्रा (ग्रीवायां अपि कक्षे आसनि बद्धः) गर्दन, कांख और मुंहसे बंधा होने पर भी (क्षिपणिं तुरण्यति) अपने शत्रुओंकी तरफ तेजीसे भागता है (दधिक्रा) यह दधिक्रा (संतवीत्वत्) अत्यन्त बलवान् होकर (क्रतुं अनु) कर्मका अनुसरण करके (पथां अंकांसि आपनीफणत्) मार्गोंके टेढेपनको भी पार कर जाता है ॥४॥

[४४७] (ऋतं) वह ब्रह्मतत्त्व (हंस) सर्वत्र व्यापक (शुचिषत्) अत्यन्त तेजस्वी (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्षमें व्यापक (वेदिषत् होता) वेदिमें बैठनेवाला होता (दुरोणसत् अतिथिः) घरमें आनेवाला अतिथि (नृषद्) मनुष्योंमें व्यापक (वरसत्) श्रेष्ठ मनुष्योंमें रहनेवाला, (ऋतसत्) ऋत या यज्ञमें रहनेवाला (व्योमसत्) व्योममें व्यापक (अब्जाः) कर्मोंसे प्राप्य (गोजाः) वाणी अर्थात् विद्याके द्वारा ज्ञेय (ऋतजाः) सत्यसे प्राप्य और (अद्रिजाः) मेघोंमें व्याप्त है ॥५॥

[४१]

[४४८] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (अस्मत् उक्तः) हमारे द्वारा बोला गया (क्रतुमान् नमस्वान् यः) बुद्धिपूर्वक और नम्रतासे किया गया जो स्तोत्र (वां हृदि पस्पर्शत्) तुम दोनोंके हृदयोंको छू ले, हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र वरुण ! (अमृतः हविष्मान् होता न) अमर और हविसे युक्त अग्निके समान तेजस्वी ऐसा (कः स्तोत्रः) कौनसा स्तोत्र है कि जो (वां सुम्नं आपः) तुम्हारे सुख को प्राप्त कर सके ॥१॥

भावार्थ- वेगसे भागनेवाले तथा स्पर्धा करनेवाले इस दधिक्राके पीछे लोग उसी तरह जाते हैं, जिस प्रकार एक पक्षीके पीछे पंख होते हैं । श्येन पक्षीके समान जानेवाले तथा रक्षा करनेवाले दधिक्राको मनुष्य चारों ओरसे घेरते हैं ॥३॥

वह बलवान् दधिक्रा गले, कांख और मुंहसे बंधा हुआ होने पर भी अपने शत्रुओंकी तरफ तेजीसे दौडता है । अत्यन्त बलवान् वह दधिक्रा अपने लक्ष्यको सामने रखकर टेढे मेढे मार्गोंको भी आसानीसे पार कर जाता है ॥४॥

वह ब्रह्मतत्त्व सर्वत्र व्यापक, अत्यन्त तेजस्वी, यज्ञमें विद्यमान रहता है । वही घरमें अतिथिके रूपमें आता है । वही मनुष्योंमें व्यापक है । यज्ञमें वह निवास करता है और वह कर्म, ज्ञान और सत्यसे प्राप्य है ॥५॥

हे इन्द्र और वरुण ! हम बुद्धिपूर्वक और नम्रता पूर्वक ऐसा कौनसा स्तोत्र बोलें, कि जो तुम दोनोंके हृदयोंको छू ले और उसके द्वारा हम उत्तम सुखको प्राप्त कर सकें ॥१॥

४४९ इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रू—नवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥ २ ॥
४५० इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठे—त्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ ३ ॥
४५१ इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मि—न्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीति—स्तस्मिन् मिमाथामभिभूत्योजः ॥ ४ ॥
४५२ इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ५ ॥

अर्थ- [४४९] (**यः मर्तः**) जो मनुष्य (**प्रयस्वान्**) हविसे युक्त होकर (**सख्याय**) मित्रताप्राप्तिके लिए (**इन्द्रावरुणा देवौ**) इन्द्र और वरुण इन दोनों देवोंको (**आपी चक्रे**) अपना भाई बनाता है, (**सः**) वह (**वृत्रा हन्ति**) पापोंको नष्ट करता है, (**समिथेषु शत्रून्**) युद्धोमें शत्रुओंको मारता है और (**महद्भिः अवोभिः**) महान् संरक्षणोंको प्राप्त करने के कारण (**सः**) वह (**प्र शृण्वे**) प्रसिद्ध होता है ॥२॥

१ **यः मर्तः इन्द्रावरुणा देवौ आपी चक्रे-** जो मनुष्य इन्द्र वरुण इन देवोंको अपना भाई बनाता है।
२ **सः वृत्रा हन्ति-** वह पापोंको नष्ट करता है, और
३ **प्र शृण्वे-** बहुत प्रसिद्ध होता है ।

[४५०] (**यदि**) यदि (**सखाया**) मित्र हुए इन्द्र और वरुण (**सख्याय**) मित्रताके लिए (**सुतेभिः सोमैः**) निचोडे गए सोमरसोंसे और (**सुप्रयसा**) उत्तम अन्नोंसे (**मादयेते**) आनन्दित हों, तो (**ता इन्द्रा वरुणा**) वे दोनों इन्द्र और वरुण (**शशमानेभ्यः नृभ्यः**) स्तुति करनेवाले मनुष्योंको (**इत्था ह**) इस प्रकार (**रत्नं धेष्ठा**) रत्न प्रदान करते हैं ॥३॥

[४५१] (**यः**) जो (**नः दुरेवः**) हमारा अहित करनेवाला (**वृकतिः**) कंजूस और (**दभीतिः**) हिंसा करनेवाला हो, हे (**उग्रा इन्द्रावरुणा**) वीर इन्द्र और वरुण ! (**युवं**) तुम दोनों (**तस्मिन्**) उस पर (**अभिभूतिः ओजः**) उसे नष्ट करनेवाला अपना तेज (**मिमाथां**) प्रकट करो, तथा (**अस्मिन्**) इस शत्रु पर (**दिद्युं**) तेजस्वी (**ओजिष्ठं**) अत्यन्त तेजस्वी (**वज्रं वधिष्टं**) वज्रको मारो ॥४॥

[४५२] हे (**इन्द्रावरुणा**) इन्द्र और वरुण ! (**वृषभा धेनोः इव**) जैसे दो बैल गाय पर प्रेम करते हैं, उसी तरह (**युवं**) तुम दोनों (**अस्याः धियः प्रेतारा भूतं**) इस स्तुति पर प्रेम करनेवाले होओ । जिस प्रकार (**मही गौः**) एक बडी गाय (**यवसा गत्वी**) तृणादिका भक्षण करके (**सहस्रधारा पयसा इव**) हजारों धाराओंवाले दूधको दुहती है, उसी तरह (**सा**) वह स्तुति (**नः दुहीयत्**) हमारी कामनाओंको दुहे ॥५॥

भावार्थ- जो मनुष्य इन्द्र और वरुणको अपना मित्र और भाई बनाता है, वह पापोंको नष्ट करता है, युद्धोंमें शत्रुओंको मारता है और इन्द्र और वरुणसे सुरक्षित होकर वह महान् यश प्राप्त करता है ॥२॥

यदि मित्र हुए हुए इन्द्र और वरुण मित्रताको स्थायी बनानेकेलिए तैय्यार किए गए सोमरसों और उत्तम अन्नोंसे आनन्दित हों, तो ये दोनों इन्द्र और वरुण स्तुति करनेवाले मनुष्योंको रत्न प्रदान करें ॥३॥

हे वीर इन्द्र और वरुण ! हमारा अहित करनेवाला, कंजूस और हिंसा करनेवाला जो मनुष्य हो, उस पर तुम अपना तेज प्रकट करो ताकि वह नष्ट हो जाए । उस पर अपना तेजस्वी वज्र मारो ॥४॥

हे इन्द्र और वरुण ! जिस तरह दो बैल एक गाय पर प्रेम करते हैं, उसी तरह तुम दोनों इस हमारी स्तुति पर प्रेम करो, तथा जिस प्रकार एक बडी गाय घास खाकर भी हजारों धाराओंसे दूध देती है, उसी तरह वह स्तुति हमारी कामनाओंको पूर्ण करे ॥५॥

४५३ तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥ ६ ॥
४५४ युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ ७ ॥
४५५ ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥
४५६ इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥

अर्थ- [४५३] हे (**इन्द्रा वरुणा**) इन्द्र और वरुण ! (**नः हिते**) हमारा हित करनेके लिए (**तोके तनय**) पुत्रपौत्रोंकी प्राप्तिके लिए (**उर्वरासु सूरः दृशीके**) उपजाऊ जमीन पर चिरकाल तक सूर्यका दर्शन करनेके लिए (**च**) तथा (**वृषणः पौंस्ये**) शक्तिशाली मुझे प्रजोत्पादनमें समर्थ बनाने के लिए (**दस्मा**) सुन्दर रूपवाले तुम दोनों (**अवोभिः**) अपने सुरक्षाके साधनोंसे (**परितक्म्यायां**) रात्रीमें भी तैय्यार (**स्यातां**) रहो ॥६॥

[४५४] हे इन्द्रावरुण ! (**गविषः**) गायोंकी इच्छा करनेवाले हम (**प्रभूती सु-आपी**) प्रभावशाली और उत्तम बन्धूरूप (**युवां इत्**) तुम दोनोंके ही (**पूर्व्याय अवसे परि**) प्राचीन संरक्षणको चाहते हैं । (**पितरा इव शंभू**) मातापिताके समान सुखदायक (**शूरा मंहिष्ठा**) शूर और पूज्य तुम दोनोंको हम (**प्रियाय सख्याय**) प्रेमपूर्ण मित्रताके लिए (**वृणीमहे**) बुलाते हैं ॥७॥

[४५५] (**सुदानू**) हे उत्तम फल देनेवाले इन्द्र और वरुण ! (**युवयूः आर्जि अवसे न**) जिस तरह तुम्हारे भक्त संग्राममें संरक्षणके लिए तुम्हारे पास आते हैं उसी प्रकार (**ताः वाजयन्तीः धियः**) वे बलादि ऐश्वर्यकी कामना करती हुई हमारी बुद्धियां (**वां जग्मुः**) तुम्हारी तरफ जाती है। (**गावः श्रिये सोमं उप न**) जिस तरह गायें तेजको बढानेके लिए सोमके पास जाती हैं, उसी तरह (**मे मनीषाः गिरः**) मेरी बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियां (**इन्द्रं वरुणं**) इन्द्र और वरुणके पास (**अस्थुः**) जाये ॥८॥

[४५६] (**मे**) मेरी (**द्रविणं इच्छमानाः इमाः मनीषाः**) धनकी अभिलाषा करनेवाली ये बुद्धियां (**इन्द्रं वरुणं उप अग्मन्**) इन्द्र और वरुणके पास जाती हैं । (**जोष्टारः वस्वः इव**) जिस तरह धनके अभिलाषी जन धनीके पास जाते हैं, (**श्रवसः भिक्षमाणाः रघ्वीः इव**) अन्नकी भीख मांगनेवाले भिखारी जिस तरह दानियोंके पास जाते हैं उसी तरह मेरी स्तुतियां (**ईं उप**) इन इन्द्र और वरुणके पास (**अस्थुः**) जाती हैं ॥९॥

भावार्थ- हे इन्द्र और वरुण ! हमारा हित करने के लिए, पुत्र पौत्रोंकी प्राप्तिके लिए, उपजाऊ जमीन पर चिरकाल तक रहनेके लिए, तथा उत्तम प्रजोत्पादनके लिए तुम रात्रीके समय भी हमारी रक्षा करो ॥६॥

गायोंकी इच्छा करनेवाले हम अत्यन्त प्रभावशाली तथा उत्तम बन्धुके समान व्यवहार करनेवाले इन्द्र और वरुणकी सुरक्षाको चाहते हैं । मातापिताके समान सुखदायक, शूर और पूज्य तुम दोनोंको हम प्रेमपूर्ण मित्रता के लिए बुलाते हैं ॥७॥

हे उत्तम फल देनेवाले इन्द्र और वरुण ! जिस तरह तुम्हारे भक्त संग्राममें संरक्षणके लिए तुम्हारे पास आते हैं, उसी तरह ऐश्वर्यकी कामना करनेवाली मेरी बुद्धियां तुम्हारे पास जाती है अथवा जिस प्रकार सोमका तेज बढानेके लिए उसमें गायका दूध दही मिलाया जाता है, उसी प्रकार बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियां इन्द्र और वरुण से जाकर मिलें ॥८॥

धनकी अभिलाषा करनेवाले मेरी प्रार्थनायें इन इन्द्र और वरुणके पास उसी तरह जाती हैं, जिस तरह धनके अभिलाषी जन धनीके पास जाते हैं या अन्नकी भीख मांगनेवाले भिखारी दानीके पास जाते हैं ॥९॥

४५७ अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टे--र्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभि--रस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥ १० ॥
४५८ आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद् दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान् तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥ ११ ॥

[४२]

[ऋषिः- त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । देवता- त्रसदस्युः, ७-१० इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४५९ मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ १ ॥
४६० अहं राजा वरुणो मह्यं ता--न्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥

अर्थ- [४५७] हम (**त्मना**) अपने सामर्थ्यसे ही (**अश्व्यस्य**) घोडोंके समूहोंके, (**रथ्यस्य**) रथके समूहोंके (**पुष्टः**) पोषक पदार्थोंके तथा (**नित्यस्य रायः**) हमेशा रहनेवाले ऐश्वर्यके (**पतयः स्याम**) स्वामी हों । (**चक्राणा ता**) गमन करनेवाले वे दोनों देव (**नव्यसीभिः ऊतिभिः**) अपने नवीनतम संरक्षणके साधनोंसे (**अस्मत्रा**) हमें (**नियुतः रायः**) घोडे आदि पशुओं और ऐश्वर्यसे (**सचन्तां**) संयुक्त करें ॥१०॥

[४५८] हे (**बृहन्ता इन्द्र वरुण**) महान् इन्द्र और वरुण ! तुम (**वाजसातौ**) युद्धमें (**नः**) हमारी सहायता करनेके लिए (**बृहतीभिः ऊती**) बडे बडे रक्षाके साधनोंसे सुसज्जित होकर हमारे पास (**आ यातं**) आओ । (**यत् पृतनासु**) जिन युद्धोंमें (**दिद्यवः प्रक्रीळान्**) तेजस्वी शस्त्रास्त्र खेलते हैं, (**तस्य आजेः**) उन युद्धोंमें हम (**वां**) तुम दोनोंकी कृपासे (**सनितारः स्याम**) ऐश्वर्यसे युक्त हों ॥११॥

[४२]

[४५९] (**यथा विश्वे अमृताः नः**) जिस प्रकार सभी देव मेरे हैं, उसी तरह (**विश्व आयोः**) सभी मनुष्यों पर अधिकार चलानेवाले (**मम क्षत्रियस्य**) मुझ रक्षकके (**द्विता राष्ट्रं**) दो तरहके राष्ट्र हैं । (**देवाः**) सभी देव (**वरुणस्य क्रतुं सचन्ते**) वरुणकी आज्ञानुसार चलते हैं । मैं (**कृष्टेः**) सभी मनुष्योंका तथा (**उपमस्य वव्रेः**) सब मनुष्यके पास रहेनवाले धनका (**राजाभि**) राजा हूँ ॥१॥

[४६०] (**अहं**) मैं ही (**राजा वरुणः**) राजा वरुण हूँ, देवगण (**मह्यं**) मेरे लिए ही (**तानि प्रथमा असुर्याणि**) उन श्रेष्ठ बलोंको (**धारयन्त**) धारण करते हैं । (**देवाः वरुणस्य क्रतुं सचन्ते**) देवगण वरुणकी आज्ञानुसार चलते हैं । मैं (**कृष्टेः**) मनुष्योंका और (**उपमस्य**) उनके पासके (**वव्रेः**) धनका (**राजाभि**) स्वामी हूँ ॥२॥

भावार्थ- हम स्वयं अपने प्रयत्नोंसे घोडोंके समूहोंके, रथके समूहोंके पोषक पदार्थोंके तथा शाश्वत रूपसे टिकनेवाले ऐश्वर्योंके स्वामी हों, तथा इन्द्र और वरुण भी अपने नवीनतम रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर हमें घोडे आदि पशुओं और ऐश्वर्योंसे संयुक्त करें ॥१०॥

हे महान् इन्द्र और वरुण ! तुम युद्धमें आकर हमारी रक्षा करो । जिस युद्धमें तेजस्वी शस्त्रास्त्र खेल किया करते हैं, उस युद्धमें हम तुम्हारी कृपासे धनके भागी बनें ॥११॥

सभी देव उस परमात्मा के अधीन हैं, तथा द्यु और पृथ्वी रूपी दो राष्ट्र भी उसीके हैं । इसी वरणीय परमात्माके आज्ञामें सब देव चलते हैं । वही परमात्मा सब मनुष्यों सौर उनके पास निहित धनोंका स्वामी है ॥१॥

परमात्मा ही सर्वश्रेष्ठ राजा है । उसीके कारण सब देव अपना सामर्थ्य धारण करते हैं । चन्द्र सूर्यादि देव उसीके सामर्थ्यसे सामर्थ्यशाली हैं । सभी देव उसकी आज्ञामें चलते हैं । परमात्मा ही मनुष्योंका और उनके पास निहित धनोंका स्वामी है ॥२॥

४६१ अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वो—र्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान् त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥
४६२ अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावो—त त्रिधातु प्रथयद् वि भूम ॥ ४ ॥
४६३ मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥ ५ ॥
४६४ अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थो—भे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥

अर्थ- [४६१] (अंहः इन्द्रः वरुणः) मैं इन्द्र और वरुण हूँ। (महित्वा उर्वी) अपनी महिमाके कारण विशाल (गभीरे) गहरे और (सुमेके ते रोदसी) सुन्दर रूपवाले वे दोनों द्यु और पृथिवी भी मैं ही हूँ। (विद्वान्) सब कुछ जाननेवाला मैं (त्वष्टा इव) त्वष्टाके समान (विश्वा भुवनानि सं ऐरयं) सब लोकोंको प्रेरणा देता हूँ। (च) और (रोदसीं धारयं) दोनों द्यावापृथ्वीको धारण करता हूँ ॥३॥

[४६२] (अहं) मैंने (उक्षमाणाः अपः अपिन्वं) सींचने योग्य जलकी वृष्टि की। मैंने (ऋतस्य सदने) जलके स्थान द्युलोकमें (दिवं धारयं) सूर्यको स्थापित किया। (ऋतेन अदितेः पुत्रः ऋतावा) नियमानुसार अदितिका पुत्र बनकर मैंने विश्वको नियममें स्थापित किया। (उत) और (त्रिधातु भूम) तीन लोकोंवाली सृष्टि (वि प्रथयत्) विस्तृत की ॥४॥

[४६३] (सुअश्वाः वाजयन्तः नराः) उत्तम घोडोंवाले तथा संग्राम करनेवाले योद्धा (मां हवन्ते) मुझे बुलाते हैं। वे योद्धा (समरणे) संग्राममें (वृताः) शत्रुओंसे घिर जाने पर (मां हवन्ते) मुझे ही बुलाते हैं। (मघवा इन्द्रः अहं) ऐश्वर्यशाली व शक्तिशाली मैं (आजिं कृणोमि) संग्राम करता हूँ। (अभिभूति ओजाः) शत्रुओंको हरानेवाले तेजसे युक्त मैं (रेणुं इयर्मि) धूल उडाता हूँ ॥५॥

[४६४] (अहं ता विश्वा चकरं) मैंने ही उन सब लोकोंको बनाया है। (अप्रतीतं मा) कहीं भी न रुकने वाली गतिवाले मुझे (दैव्यं सहः नकिः वरते) दिव्य बल भी नहीं रोक सकता। (यत् मा सोमासः ममदन्) जब मुझे सोमरस आनन्दित करते हैं (यत् उक्था) जब स्तोत्र आनन्दित करते हैं, तब (उभे अपारे रजसी) दोनों अपार द्यु और पृथिवी (भयेते) भयभीत हो जाते हैं ॥६॥

भावार्थ- परमात्मा ही इन्द्र और वरुण है। वही यह विशाल और अत्यन्त द्युलोक और पृथ्वी लोक है। वह सर्व ज्ञाता है। इसलिए वही परमात्मा प्रजापतिके रूपमें सब लोकोंको प्रेरणा देता है। वही सब लोकोंको धारण करता है ॥३॥

परमात्मा ही सींचने योग्य जलको बरसात के रूपमें बरसाता है। वही द्युलोक में सूर्यको स्थापित करता है। वह अदिति का पुत्र होकर विश्वको नियममें रखता है और वही तीन लोकोंसे युक्त सृष्टिका विस्तार करता है ॥४॥

जब योधागण संग्राममें युद्ध करते हैं, तब वे अपनी रक्षाके लिए परमात्माकी ही प्रार्थना करते हैं, जब वे शत्रु सैनिकोंसे घिर जते हैं, तब भी वे परमात्माकी शरण में ही जाते हैं। वही परमात्मा ऐश्वर्यशाली और शक्तिशाली है, वही योधाओंमें स्थिर होकर उन्हें शक्ति देता है, इसलिए मानों परमात्मा ही योधाओंके रूपमें युद्ध करता है ॥५॥

परमात्माने ही उन सब लोकोंको बनाया है। अप्रतिहत गतिवाला परमात्मा सब देवोंका भी देव है, इसलिए देवों का बल भी उसकी गतिको कुण्ठित नहीं कर सकता। जब उत्तम ज्ञान तथा उत्तम स्तुतियां इस परमात्माको प्रसन्न कर देती हैं, तो उस परमात्मासे प्राप्त शक्ति के आगे द्यु और पृथ्वी भी कांपने लगते हैं ॥६॥

४६५ विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ७ ॥

४६६ अस्माकमत्र पितरस्त आसन् त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥

४६७ पुरुकुत्सानी हि वामदाश—द्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥

४६८ राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥ १० ॥

अर्थ- [४६५] हे वरुण ! (**तस्य ते**) उस तेरी महिमाको (**विश्वा भुवनानि विदुः**) सभी भुवन जानते हैं । हे (**वेधः**) स्तोता ! तू (**वरुणाय ता प्र ब्रवीषि**) वरुण के लिए उन स्तुतियोंका गान कर । हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**त्वं वृत्राणि जघन्वान्**) तूने वृत्रोंको मारा, इसलिए तू (**शृण्विषे**) प्रसिद्ध है । (**त्वं**) तूने (**वृतान् सिन्धून् अरिणाः**) ढकी या रुकी हुई नदियोंको प्रवाहित किया ॥७॥

[४६६] (**दौर्गहे बध्यमाने**) दुर्गहके पुत्रके बांध दिए जाने पर (**ते सप्त ऋषयः**) वे सात ऋषि (**अस्माकं अत्र पितरः आसन्**) हमारे यहां पालक बने । (**ते**) उन ऋषियोंने (**अस्याः**) इस स्त्रीको (**इन्द्रं न वृत्रतुरं**) इन्द्रके समान वृत्रका नाशक (**अर्धदेवं**) आधे देव (**त्रसदस्युं**) दस्यु अर्थात् दुष्टको भयभीत करनेवाले वीरको (**आयजन्त**) प्रदान किया ॥८॥

[४६७] हे (**इन्द्रावरुणौ**) इन्द्र और वरुण ! (**पुरुकुत्सानी**), पुरुकुत्साकी पत्नीने (**वां**) तुम दोनोंको (**हव्येभिः नमोभिः**) हवियोंसे और स्तुतियोंसे (**अदाशत्**) प्रसन्न किया। (**अथ**) इसके बाद (**वृत्रहणं अर्धदेवं**) वृत्रको मारनेवाले आधे देव (**राजानं त्रसदस्युं**) राजा त्रसदस्युको (**अस्याः ददथुः**) इस पत्नी को प्रदान किया ॥९॥

[४६८] हे (**इन्द्रावरुण**) इन्द्र वरुण ! (**युवां ससवांसः**) तुम दोनोको नमस्कार करनेवाले (**वयं**) हम (**राया मदेम**) ऐश्वर्यसे आनन्दित हों । (**हव्येन देवाः**) हव्यसे देवगण आनन्दित हों, और (**यवसेन गावः**) जौ आदिसे गायें आनन्दित हों । (**युवं**) तुम दोनों (**विश्वाहा**) प्रतिदिन (**नः**) हमें (**अनपस्फुरन्तीं तां धेनुं**) उपद्रव न करनेवाली उस गायको (**धत्तं**) प्रदान करो ॥१०॥

भावार्थ- हे वरुण ! तेरी उस महिमाको सारे लोक जानते हैं, इसीलिए सभी स्तोता तेरी स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! तूने वृत्रोंको मारा, इसीलिए तू प्रसिद्ध हुआ, और तूने वृत्रोंको मार कर रुकी हुई नदियोंको प्रवाहित किया ॥७॥

जब दुष्ट मनुष्य राष्ट्रमेंसे नष्ट होते हैं, तब ज्ञानीजन उस राष्ट्रका पालन करते हैं । तब उन ज्ञानियोंकी कृपासे राष्ट्रमें इन्द्रके समान शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा दुष्ट जनोंको भयभीत करनेवाले वीर पैदा होते हैं, जो देवोंके समान ही होते हैं ॥८॥

हे इन्द्र और वरुण ! पुरुकृत्सकी पत्नीने हवियों और नमस्कारोंसे तुम्हें प्रसन्न किया। इसके बाद तुमने उस स्त्रीको वृत्रहन्ता त्रसदस्युको प्रदान किया ॥९॥

हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनोंको नमस्कार करनेवाले हम ऐश्वर्यसे आनन्दित हों । उसी तरह हमारे द्वारा दी गई हविसे देवगण और हमारे द्वारा दिए गए जौ आदि धान्य तथा तृणसे गायें प्रसन्न हों । तुम भी हमें रोज ऐसी गायें प्रदान करो कि जो उपद्रव करनेवाली न हों ॥१०॥

[४३]

[ऋषिः- पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । देवता- अश्विनौ । । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४६९ क उ श्रवत् कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥ १ ॥
४७० को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥
४७१ मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यून्निन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥ ३ ॥
४७२ का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित् त्यजसो अभीकं उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥ ४ ॥

---

[४३]

अर्थ- [४६९] (याज्ञियानां कतमः कः उ) पूजनीय देवोंमेंसे कौनसा देव (श्रवत्) हमारी प्रार्थना सुनेगा ? (कतमः देवः) इनमेंसे भला कौनसा देव (वन्दारु जुषाते) वन्दनीय स्तोत्रका मनःपूर्वक सेवन करता है ? (इमां) इस (सुष्टुतिं सुहव्यां) सुन्दर अच्छी (देवीं) दिव्य गुणोंवाली (प्रेष्ठां) अत्यन्त प्रिय स्तुतिको (अमृतेषु) अमरोंमें (कस्य हृदि श्रेषाम) भला किसके लिये हम करें ? ॥१॥

[४७०] (कः मृळाति) कौन सुख देता है ? (देवानां) देवोंमें (कतमः आगमिष्ठः) भला कौनसा इधर आनेमें अत्यन्त आतुरता दर्शाता है ? (कतमः उ शंभविष्ठः) कौनसा देव सचमुच अत्यन्त सुखदायक है ? (कं आशुं द्रवत् अश्वं रथं आहुः) किसे भला शीघ्रगामी और दौडनेवाले घोडोंसे युक्त रथ है ऐसा कहते हैं (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (यं अवृणीत) जिसे स्वीकार कर चुकी ॥२॥

[४७१] (दिव्या सुपर्णा) दिव्य तथा सुन्दर पर्णवाले और (दिवः आजाता) द्युलोकसे आनेवाले अश्विदेवो ! (शचीनां कया) अनेक शक्तियोंमेंसे भला किस शक्तिके कारण तुम (शचिष्ठा भवथः) अत्यन्त शक्तिमान् बन जाते हो ? (परितक्म्यायां) रात्रिमें (इन्द्रः न) इन्द्रके तुल्य तुम (शक्तिं) बल दर्शाते हो, (ईवतः द्यून्) आनेवाले दिनोंमें अर्थात् आगामी कालमें होनेवाले कार्योंके प्रति (मक्षु हि) बहुतही शीघ्र तुम (गच्छथः स्म) जाते हो ॥३॥

[४७२] हे (माध्वी दस्रा अश्विना) मीठे स्वभाववाले तथा शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (का उपमातिः) भला कौनसी उपमा (वां भूत्) तुम्हारे [गुणोंका वर्णन करनेके] लिए पर्याप्त होगी ? (कया हूयमाना) भला किस स्तुतिसे बुलानेपर (नः आगमथः) हमारे पास तुम आओगे ? (वां अभीके) तुम्हारे (महः त्यजसः चित्) बढे भारी क्रोधको (कः) भला कौन सहने करेगा ? (ऊतीः नः उरुष्यतं) रक्षाकी आयोजनासे हमें सुरक्षित रखो ॥४॥

भावार्थ- पूज्य देवोंमें ऐसा कौन है कि जो हमारी प्रार्थनाओंको सुनेगा ? हमारे वन्दनीय स्तोत्रोंको कौन मानेगा ? इस बातका विचार करके उस देवकी पूजा करनी चाहिए ॥१॥

देवोंमें अश्विनी देव सुख देते हैं। ये ही देव सचमुच सुखकारक हैं। इसीलिए इन्हें सूर्यकी कन्याने वरण किया था ॥२॥

हे अश्विनी देवो ! हमें बताओ कि तुम किन शक्तियोंके कारण शक्तिमान् हुए । तुम किस शक्तिसे युक्त होकर रात और दिन संचार करते हो ? ॥३॥

ये अश्विदेव मीठे स्वभाववाले और शत्रु विनाशक हैं । उनके गुणोंका वर्णन करनेके लिए कोई भी उपमा नहीं है। इनका क्रोध इतना भयंकर है कि उसे कोई सहन नहीं कर सकता ॥४॥

४७३ उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन् यत् सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥ ५ ॥
४७४ सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥ ६ ॥
४७५ इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

[४४]

[ऋषिः- पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४७६ तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥

अर्थ- [४७३] (वां उरु रथः) तुम दोनोंका विशाल रथ (यत्) जब (समुद्रात् वां आ अभिवर्तते) समुद्र-अन्तरिक्षमेंसे तुम्हारी ओर आता है, तब (द्यां परि नक्षति) द्युलोकमें चारों ओर चला जाता है, हे (माध्वी) मीठे अश्विदेवो ! (वां मधु) तुम्हारे मीठे रस हमको (मध्वा प्रुषायन्) मीठाससे भर देते हैं । (यत्) जब (वां पृक्षः) तुम्हारे अन्नोंको (सीं) सब जगहसे (पक्वा भुरजन्त) पके धान्य प्राप्त होते हैं ॥५॥

[४७४] (वां अश्वान्) तुम्हारे घोडोंको (सुन्धुः ह) बडी भारी नदीने (रसया सिञ्चित्) रसीले जलसे सिञ्चित किया है । (उरुषासः) लाला रंगवाले (घृणा वयः) दीप्तिमान् और पक्षीके समान वेगवान् घोडे (परि ग्मन्) चारों और चले गये हैं, (वां तत्) तुम्हारा वह (अजिरं यानं) शीघ्रगामी रथ (सु चेति) भलीभाँति ज्ञात हो गया है, (येन) जिसकी सहायतासे (सूर्यायाः पती भवथः) तुम दोनों सूर्याके पति-पालनकर्ता बनते हो ॥६॥

[४७५] हे (वाजरत्ना नासत्या) बलरूप अन्न अपने पास रखनेवाले अश्विदेवो ! (यत् समना वां) जो समान मनवाले तुम्हें (पपृक्षे) मैं अन्न अर्पण करता हूँ, (इयं सा सुमति) यही वह अच्छी बुद्धि है, इससे (अस्मे) हमें (सुख हो), (जरितारं युवं उरुष्यतं) प्रशंसकको तुम दोनों सुरक्षित रखो, (कामः) हमारी इच्छा (युवद्रिक् ह श्रितः) तुम्हारी ओर ही जा रही है ॥७॥

[४४]

[४७६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां तं) तुम्हारे उस (वसूयुं) धनसे पूर्ण (पुरुतमं) विशाल (गिर्वाहसं) भाषणोंको दूरतर पहुँचानेवाले (गोः संगतिं) गायोंसे युक्त करनेवाले (पृथुज्रयं रथं) विख्यात वेगवाले रथको (अद्य हुवेम) आज बुलाते हैं, (यः वन्धुरायुः) जो लट्ठवाला होकर (सूर्यां वहति) सूर्याको इष्ट स्थानपर पहुँचाता है ॥१॥

भावार्थ- अश्विनीकुमारोंका विशाल रथ अन्तरिक्षमें सर्वत्र संचार करता है । द्युलोकमें भी उसकी गति कहीं नहीं रुकती। इनकी स्तुति करने पर स्तोता मिठाससे परिपूर्ण हो जाता है । इन्हीं अश्विनौके कारण धान्य पक्व होते हैं । अश्विनौ सूर्य और चन्द्र हैं, जो अपनी किरणोंसे ओषधि वनस्पतियोंमें मीठा रस भरते और पकाते हैं ॥५॥

अश्विनीकुमारके घोडे अर्थात् सूर्यकी किरणें नदियों और तालाबोंके जलोंमें अपने मुंह डालकर जल पीती हैं । मधुर जल उन किरणोंको सींचते हैं । ये किरणें तेजस्वी और पक्षीके तुल्य वेगवान् हैं । सूर्यका वह तेजस्वी रथ प्रातः काल शीघ्र ही दिखलाई पडने लगता है ॥६॥

अश्विनौ देवोंकी पूजा करनेवालोंको ये देव उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं और उत्तम बुद्धिसे उन्हें सुख प्राप्त होता है । इस प्रकार ये दोनों देव स्तोताकी रक्षा करते हैं ॥७॥

अश्विनौ देवोंका रथ धनसे पूर्ण, विशाल, गायोंसे युक्त और सुप्रसिद्ध वेगवाला है । उसे हम अपनी तरफ बुलाते हैं ॥१॥

४७७ युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥
४७८ को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
४७९ हिरण्ययेन पुरुभू रथेने—मं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥
४८० आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [४७७] हे (**दिवः नपाता अश्विना**) द्युलोकको न गिरानेवाले अश्विदेवो ! (**देवता युवं**) देवतारूपी तुम दोनों (**तां श्रियं**) उस शोभाको (**शचीभिः वनथः**) शक्तियोंसे प्राप्त करते हो । (**यत्**) जब (**ककुहासः**) बडे भारी घोडी (**वां**) तुम्हें (**रथे वहन्ति**) रथपर बैठनेपर इष्ट स्थानपर पहुँचाते हैं, तब (**पृक्षः**) अन्न (**युवोः वपुः अभि सचन्ते**) तुम दोनोंके शरीरको प्राप्त होते हैं, पुष्ट करते हैं ॥२॥

[४७८] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**रातहव्यः कः**) हविर्भाग दे चुकनेपर भला कौन (**अर्कैः**) पूजनीय साधनोंसे (**वां अद्य**) तुम्हारी आज (**ऊतये वा सुतपेयाय वा**) संरक्षणके लिए या निचोडे हुए सोमको पीनेके लिए (**करते**) प्रशंसा करता है ? (**पूर्व्याय ऋतस्य वनुषे वा**) पूर्वकालीन सत्यधर्मकी प्राप्तिके लिए (**नमः येमानः**) नमन करता हुआ (**आ ववर्तत्**) अपनी ओर तुम्हें कौन प्रवृत्त करता है ॥३॥

[४७९] हे (**पुरुभु नासत्या**) बहुत प्रकारसे अपना अस्तित्व जतलाने हारे तथा सत्यपालक अश्विदेवो ! (**हिरण्ययेन रथेन**) सुवर्णमय रथपरसे (**इमं यज्ञं**) इस यज्ञके (**उपयातं**) समीप आओ, (**मधुनः सोम्यस्य**) मीठे सोमरसका (**पिबाथः इत्**) पान करो और (**विधते जनाय**) पुरुषार्थ करनेहारे लोगोंको (**रत्नं दधथः**) रत्न दो ॥४॥

[४८०] (**दिवः पृथिव्याः**) द्युलोकसे या भूलोक से (**नः अच्छ**) हमारी ओर (**हिरण्ययेन सुवृता रथेन**) सुवर्णमय सुन्दर पथपरसे (**आयातं**) आओ, (**देवयन्तः अन्ये**) देवोंकी कामना करनेहारे दूसरे लोग (**वां मा नियमन्**) तुम्हें बीचमें ही न रोक सकें, (**यत्**) क्योंकि (**पूर्व्या नाभिः**) पूर्वकालसे हमारा यह घर (**वां**) तुम्हें (**सं ददे**) भलीभाँति बद्ध कर चुका है । तुम्हारा संबंध हमसे पूर्वकालसे चला आया है ॥५॥

भावार्थ- देवत्वको प्राप्त हुए ये अश्विनीकुमार अपनी शक्तियोंके कारण ही शोभाको प्राप्त होते हैं । जब इनके पुष्ट घोडे उन्हें रथमें बैठाकर इनके इष्ट स्थानपर पहुंचाते हैं, तब भक्तोंके द्वारा दिए गए इनके शरीरोंको पुष्ट करते हैं ॥२॥

हे अश्विनौ ! हवि दे चुकनेके बाद पूज्य साधनोंसे अपने संरक्षणके लिए कौन तुम्हारी पूजा करता है और सत्यधर्म की प्राप्तिके लिए कौन तुम्हें प्रवृत्त करता है, इसका विचार तुम करो ॥३॥

हे अनेक प्रकारसे अस्तित्वमान् और सत्यके पालक अश्विदेवो ! तुम सोनेके रथसे इस यज्ञके समीप आओ । मीठे सोमरसका पान करो और पुरुषार्थी जनोंको रत्न दो ॥४॥

हे अश्विनौ ! द्युलोकसे या भूलोकसे हमारी तरफ सुन्दर सोनेके रथसे आओ । देवोंकी कामना करनेवाले लोग तुम्हें बीचमें ही न रोकें । तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध पूर्वकालसे चला आ रहा है ॥५॥

४८१ नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन् त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥
४८२ इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

[४५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती, ७ त्रिष्टुप् ।]

४८३ एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन् मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥
४८४ उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥

अर्थ- [४८१] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (नः नु) हमें जल्दीही (पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) अनेक वीरोंसे युक्त प्रचण्ड धनको (अस्मे उभयेषु मिमाथां) हमारे दोनों दलोंमें दे डालो, (यत् वां स्तोमं) जब कि तुम्हारी स्तुतिको (नरः आवन्) नेताओंने सुरक्षित कर रखा है तथा (आजमीळ्हासः) अजमीळ्ह परिवारके लोग (सधस्तुतिं अग्मन्) मिलकर ही जानेवाली प्रशंसामें सम्मिलित होनेके लिए आ गये हैं ॥६॥

[४८२] हे (वाजरत्ना नासत्या) बलरूप अन्न अपने पास रखनेवाले अश्विदेवो ! (यत् समना वां) जो समान मनवाले तुम्हें (पपृक्षे) मैं अन्न अर्पण करता हूँ, (इयं सा सुमति) यही वह अच्छी बुद्धि है, इससे (अस्मे) हमें [सुख हो], (जरितारं युवं उरुष्यतं) प्रशंसकको तुम दोनों सुरक्षित रखो, (कामः) हमारी इच्छा (युवद्रिक् ह श्रितः) तुम्हारी ओर ही जा रही है ॥७॥

[४५]

[४८३] (स्यः एषः) वह यह (भानुः उत् इयर्ति) सूर्य ऊपर आ रहा है, (अस्य दिवः सानवि) इस द्युलोकके ऊँचे विभागमें (परिज्मा रथः युज्यते) चारों ओर जानेवाला रथ जोता है, (अस्मिन् अधि) इस पर (त्रयः मिथुनाः पृक्षासः) तीन युगल अन्न रखे हुए हैं, (तुरीयः) चौथा (मधुनः दृतिः) मधुका पात्र (वि रप्शते) विविध प्रकारसे विराजित होता है ॥१॥

[४८४] (उषसः व्युष्टिषु) उषाओंसे निकल आनेपर (मधुमन्तः पृक्षासः) मीठाससे युक्त अन्न, (अश्वासः रथाः) घोडे तथा रथ (परिवृतं तमः) चारों ओरसे घिरा हुआ अंधकार (आ अप ऊर्णुवन्तः) पूर्णतया दूर हटाते हुए, (शुक्रं रजः) दीप्त तेजको (स्वः न) सूर्यके समान (आ तन्वन्तः) चारों ओर फैलाते हुए (वां उत् ईरते) तुम दोनोंको ऊपर उठाते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! हमें शीघ्रही अनेक वीरोंसे युक्त धन प्रदान करो ॥६॥

अश्विनौ देवोंकी पूजा करनेवालोंको ये देव उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं और उत्तम बुद्धिसे उन्हें सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार ये दोनों देव स्तोताकी रक्षा करते हैं ॥७॥

सूर्यका रथ आकाशमें जब ऊपर चढता है, तब द्युलोकके ऊंचे भागमें चारों ओर जानेवाला रथ जोडा जाता है सूर्यका रथ ऊंचे द्युलोकमें सर्वत्र जाता है। उस समय यज्ञशालामें सब तरफ अन्न और सोमके पात्र सुशोभित होते हैं ॥१॥

जब उषायें प्रकाशित होती हैं, तब अन्धकार पूरी तरहसे दूर हो जाता है और सूर्य निकल आता है और दीप्त तेज सर्वत्र छा जाता है, तब अश्विनौ भी उन्नत होते दिनके समय या प्रातःकाल सूर्योदयके समय प्राण और अपान बलशाली होते हैं ॥२॥

४८५ मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥ ३ ॥
४८६ हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥
४८७ स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥ ५ ॥
४८८ आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान् युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥ ६ ॥

अर्थ- [४८५] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**मधुपेभिः आसभिः**) मीठे रसको पीनेवाले मुखोंसे (**मध्वः पिबतं**) मीठा रस पीओ (**उत**) और (**प्रियं रथं**) प्यारे रथको (**मधुने युञ्जाथां**) मधु पानेके लिये घोडोंसे जोड दो । (**वर्तनिं पथः**) घर तक के मार्गको (**मधुना आ जिन्वथः**) मधुसे पूरी तरह भर देते हो (**मधुमन्तं दृतिं वहेथे**) मीठास भरे पात्रको तुम दोनों ढोते हो ॥३॥

१ **'दृतिं'**- यह चमडेका पात्र है, पखाल, मशक, । सोमका रस इस चर्मपात्रमें भरकर रखते थे ऐसा इससे पता लगता है। **मधुमन्तं दृतिं** । मीठा सोमरस जिसमें भरा हुआ है ऐसा दृति, पखाल था मशक ।

[४८६] (**ये**) जो (**हंसासः, मधुमन्तः**) हंसतुल्य, मीठाससे पूर्ण, (**अस्रिधः हिरण्यपर्णाः**) द्रोह न करनेवाले, सुवर्णके समान चमकनेवाले पत्तोंसे युक्त (**उषर्बुधः उहुवः**) प्रातःकाल जागनेवाले, दूरतक पहुँचानेवाले, (**उदप्रुतः मन्दिनः**) वेगसे जानेके कारण पसीनेके बूँदोंको टपकानेवाले, आनन्दित (**मन्दिनिस्पृशः**) हर्षित करनेवालेको छूनेवाले घोडे (**वां**) तुम्हें ले चलते है, इसलिए (**मक्षः मध्वः न**) मधुमक्खियां मधुकी ओर जैसे चली जाती हैं, वैसे ही (**सवनानि गच्छथः**) हमारे सवनोंमें तुम जाते हो ॥४॥

[४८७] (**यत्**) जब (**विचक्षणः तरणिः**) बुद्धिमान् और कार्य पूरा करनेवाला मानव (**निक्तहस्तः**) हाथोंको स्वच्छ धोकर (**मधुमन्तं सोमं अद्रिभिः सुषाव**) मीठे सोम वनस्पतिको पत्थरोंसे कूटकर निचोड चुका हो, तब (**प्रति वस्तोः**) हर प्रातःकाल (**मधुमन्तः स्वध्वरासः अग्नयः**) मीठाससे पूर्ण, अच्छे हिंसारहित अग्रणी दीप्तिमान् अग्निसमान युक्त कार्योंसे लोग (**उस्रा अश्विना जरन्ते**) साथ रहनेवाले अश्विदेवोंकी स्तुति करते हैं ॥५॥

[४८८] (**शुक्रं रजः**) प्रदीप्त तेजको (**स्वः न**) सूर्यके समान (**आ तन्वन्तः**) फैलाती हुई (**अहभिः**) दिनोंसे (**दविध्वतः**) अँधियारीको हटाती हुई (**आकेनिपासः**) समीप आ गिरनेवाली किरणें होती हैं, (**अश्वान् युयुजानः**) घोडोंको जोतता हुआ (**सूरः चित् ईयते**) विद्वान् भी संचार करता है । (**स्वधया**) स्वधासे-अपनी धारणाशक्तिसे (**विश्वान् पथः**) सभी मार्गोंको तुम (**अनु चेतथः**) अनुक्रमसे जतलाते हो ॥६॥

भावार्थ- हे अश्विनौ ! मीठे रसको पीनेवाले मुखोंसे मीठा रस पीओ । अपने रथको भी मधु पानेके लिए जोड दो। तुम्हारे जानेके मार्ग मधुरतासे पूर्ण हों और मिठाससे भरे हुए पात्र तुम्हारे पास हों ॥३॥

अश्विनीकुमारोंके घोडे हंसके समान सफेद, मधुरतासे पूर्ण, द्रोह न करनेवाले, सोनेके समान चमकनेवाले, प्रातःकाल जागनेवाले, दूर तक पहुंचानेवाले और वेगवान् हैं। उन घोडोंवाले रथ पर चढकर तुम यज्ञोंमें जाते हो ॥४॥

जब प्रातःकाल बुद्धिमान् और कार्य पूरा करनेवाले मनुष्य शुद्ध और पवित्र होकर मीठ सोमरसको निचोड चुकता है, तब प्रतिदिन हिंसा रहित कार्योंको करनेवाले तथा अग्निके समान तेजस्वी मनुष्य इन अश्विदेवोंको बुलाते हैं ॥५॥

४८९ प्र वामवोचमश्विना धियंधा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥ ७ ॥

[४६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रवायू, १ वायुः । छन्दः- गायत्री ।]

४९० अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥ १ ॥

४९१ शतेना नो अभिष्टिभि- र्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥ २ ॥

४९२ आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥ ३ ॥

४९३ रथं हिरण्यवन्धुर- मिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ ४ ॥

अर्थ- [४८९] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**धियंधाः**) बुद्धिको धारण करनेवाला मैं (**वां प्र अवोचं**) तुम्हारे संबंधमें बहुत कुछ कह चुका हूँ, (**यः स्वश्वः**) जो अच्छे घोडोंवाला (**अजरः रथः अस्ति**) जीर्ण न होनेवाला रथ है, (**येन**) जिस पर से (**हविष्मन्तं तरणिं**) हविसे युक्त तारण करनेवाले (**भोजं अच्छ**) तथा भोजन देनेवाले [यज्ञ] के प्रति (**सद्यः**) तुरन्त ही (**रजांसि परि याथः**) लोकोंको पारकर तुम चले जाते हो ॥७॥

[४६]

[४९०] हे (**वायो**) वायु ! (**दिविष्टिषु**) यज्ञोंमें बैठकर (**मधूनां सुतं**) मधुर सोमोंके निचोडे गए रसको (**अग्रं पिब**) सबसे पहले पी । (**हि**) क्योंकि (**त्वं पूर्वपाः असि**) तू सबसे पहले इन रसोंको पीनेवाला है ॥१॥

[४९१] हे (**वायो**) वायुदेव ! (**नियुत्वान्**) उत्तम घोडोंवाला तू (**इन्द्रसारथिः**) इन्द्रको सारथि बनाकर (**अभिष्टिभिः**) अभिलाषा पूर्ण करनेके लिए (**शतेन नः**) सैंकडों घोडोंसे हमारे पास आ और (**सुतस्य तृम्पतं**) निचोडे गए सोमरसको पीकर तू और इन्द्र तृप्त होओ ॥२॥

[४९२] हे (**इन्द्रवायू**) इन्द्र और वायु ! (**वां सहस्र हरयः**) तुम दोनोंके हजारों घोडे (**प्रयः अभिः**) अन्नकी ओर जाते हैं वे तुम्हें (**सोमपीतये**) सोम पीनेके लिए (**वहन्तु**) ले आयें ॥३॥

[४९३] हे (**इन्द्रवायू**) इन्द्र और वायु ! तुम दोनों (**हिरण्यवन्धुरं**) सोनेसे मढे हुए (**सु अध्वरं**) उत्तम यज्ञके साधक (**दिविस्पृशं रथं**) आकाशको छूनेवाले रथ पर (**आ स्थाथः**) आकर बैठते हो ॥४॥

भावार्थ- अश्विनौ की किरणें अत्यन्त तेजस्वी, अन्धेरेको हटानेवाली और सर्वत्र प्रकाश करनेवाली हैं । तब विद्वान् अपने रथोंमें बैठकर संचार करते हैं और अपनी धारणा शक्तिसे सभी मार्गोंको प्रदर्शित करते हैं ॥६॥

इन अश्विदेवोंका रथ कभी जीर्ण न होनेवाला है । इन पर बैठकर अश्विदेव सभी लोकोंमें संचार करते हैं ॥७॥

यह वायुदेव देवोंमें सबसे पहले इन सोमरसोंको पीता है, इसलिए यज्ञोंमें सबसे पहले इस वायुको मधुर सोमोंका रस निचोडकर दिया जाता है ॥१॥

हे वायो ! तू इन्द्रको अपना सारथि बनाकर उत्तम घोडोंसे हमारी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिए आ और तू तथा इन्द्र दोनों इन निचोडे गए सोमरसोंको पीकर तृप्त हो ॥२॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनोंके हजारों घोडे अन्नकी ओर जाते हैं । वे तुम दोनोंको सोम पीनेके लिए हमारी ओर ले आयें ॥३॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों सोनेसे मढे हुए, यज्ञको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाले तथा बहुत ही ऊंचे रथपर आकर बैठते हो ॥४॥

४९४ रथे॑न पृथुपाज॑सा दा॒श्वांस॒मुप॑ गच्छतम् । इन्द्र॑वायू इ॒हा ग॑तम् ॥५॥
४९५ इन्द्र॑वायू अ॒यं सु॒त—स्तं दे॒वेभि॑: स॒जोष॑सा । पिब॑तं दा॒शुषो॑ गृ॒हे ॥६॥
४९६ इ॒ह प्र॒याण॑मस्तु वा॒—मिन्द्र॑वायू वि॒मोच॑नम् । इ॒ह वां॒ सोम॑पीतये ॥७॥

[४७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः। देवताः- इन्द्रवायू, १ वायुः। छन्दः- अनुष्टुप्।]

४९७ वायो॑ शु॒क्रो अ॑यामि ते॒ मध्वो॒ अग्रं॒ दिवि॑ष्टिषु ।
आ या॑हि॒ सोम॑पीतये स्पा॒र्हो दे॑व नि॒युत्व॑ता ॥१॥
४९८ इन्द्र॑श्च वायवेषां॒ सोमा॑नां पी॒तिम॑र्हथः ।
यु॒वां हि यन्तीन्द॑वो नि॒म्नमापो॒ न स॒ध्र्य॑क् ॥२॥

अर्थ- [४९४] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायु ! (पृथुपाजसा रथेन) अत्यन्त बलशाली रथके द्वारा (दाश्वांसं) दान देनेवालेके (उपगच्छतं) पास जाओ । (इह आगतम्) इस यज्ञमें तुम दोनों आओ ॥५॥

[४९५] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायु ! (अयं सुतः) यह सोमरस निचोडा गया है । (तं) उस सोमरसको (सजोषसा) परस्पर प्रीति करनेवाले तुम दोनों (दाशुषः गृहे) दानशीलके घरमें जाकर (देवेभिः पिबतं) देवोंके साथ मिलकर पियो ॥६॥

[४९६] हे (इन्द्रवायू) इन्द्रवायु ! (वां इह प्रयाणं अस्तु) तुम दोनोंका इधर हमारी तरफ आगमन हो। (इह) यहां आकर (सोमपीतये) सोमपीनेके लिए (वां विमोचनं) तुम दोनोंके घोडोंका विमोचन हो ॥७॥

[४७]

[४९७] हे (वायो) वायु ! (शुक्रः) तेजस्वी मैं (दिविष्टिषु) यज्ञोंमें (मध्वः) इस मधुर रसको (ते) तुझे (अग्रं अयामि) सबसे पहले देता हूँ। हे (देव) देव ! (स्पार्हः) कान्तिमान् तू (सोमपीतये) सोमपीनेके लिए (नियुत्वता आ याहि) उत्तम घोडोंसे आ ॥१॥

[४९८] (इन्द्रः च वायो) हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों (एषां सोमानां पीतिमर्हथः) इन सोमरसोंका पान कर सकते हो । (आपः सध्र्यक् निम्नं न) जिस तरह जल इकट्ठे होकर नीचे स्थलकी तरफ बहते हैं, उसी तरह ये (इन्दवः) सोमरस (युवां हि यान्ति) तुम दोनोंकी तरफ दौडते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों अत्यन्त बलशाली रथसे दान देनेवाले मनुष्यके पास जाओ और उसके यज्ञमें जाकर सम्मिलित होओ ॥५॥

हे इन्द्र वायु ! यह सोमरस तुम्हारे लिए निचोडा गया है । उस सोमरसको परस्पर प्रीति रखनेवाले तुम दोनों दाता के घर जाकर देवोंके साथ बैठकर पियो ॥६॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों हमारी तरफ आओ और सोमपीनेके लिए हमारे यहां आकर यहां घोडोंको मुक्त करो ॥७॥

हे वायुदेव ! तेजसे युक्त मैं यज्ञोंमें इस मधुर सोमरसको सबसे पहले तुझे देता हूँ। कान्तिसे युक्त तू सोमपीनेके लिए उत्तम घोडोंसे आ ॥१॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों इन सोमरसोंका पान कर सकते हो । जिस तरह जल इकट्ठे होकर नीचे स्थलकी तरफ बहने लगते हैं, उसी तरह ये सोमरस तुम दोनोंकी तरफ दौडते हैं ॥२॥

४९९ वायविन्द्रश्च शुष्मिणां सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥
५०० या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसे न्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥

[४८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- वायुः । छन्दः-अनुष्टुप् ।]

५०१ विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥
५०२ निर्युवाणो अशस्ती र्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥

अर्थ- [४९९] हे (**वायो इन्द्रः च**) वायो और इन्द्रदेव ! (**शवसस्पती शुष्मिणा**) बलोंके स्वामी अतएव अत्यन्त बलशाली (**नियुत्वन्ता**) उत्तम घोडोंसे सम्पन्न तुम दोनों (**सरथं**) एक ही रथ पर चढकर (**नः ऊतये सोमपीतये**) हमारी रक्षा करनेके लिए तथा सोम पीनेके लिए (**आ यातं**) आओ ॥३॥

[५००] हे (**नरा यज्ञवाहसा इन्द्रवायू**) नेतृत्व करनेवाले तथा यज्ञको सम्पन्न करनेवाले इन्द्र और वायु ! (**वां**) तुम दोनोंके (**याः पुरुस्पृहः नियुतः सन्ति**) जो बहुतोंके द्वारा चाहे जाने योग्य घोडे हैं, (**ताः**) उन घोडोंको (**दाशुषे अस्मे**) दान देनेवाले हमें (**नि यच्छतम्**) प्रदान करो ॥४॥

[४८]

[५०१] हे (**वायो**) वायुदेव ! (**हो-त्राः**) हवनसे रक्षण करनेवाले (**अ-वीताः**) अन्योंके द्वारा पहले न पिये गए इस सोमरसका (**विहि**) भक्षण करो । (**विपः न**) तू शत्रुओंको कंपानेवाले वीरके समान (**अर्यः**) स्तुति करनेवाले हमारे (**रायः**) धनैश्वर्यको बढा । तथा तू (**चन्द्रेण रथेन**) आल्हादकारक रथके द्वारा (**सुतस्य पीतये**) सोमको पीनेके लिए (**आ याहि**) आ ॥१॥

[५०२] हे (**वायो**) वायु ! (**अशस्तीः**) अवर्णनीय (**निर्गुवाणः नियुत्वान्**) तारुण्यसे सम्पन्न घोडोंको नियुक्त करके तू (**इन्द्रसारथिः**) इन्द्रकी सहायता करते हुए अपने (**चन्द्रेण रथेन**) तेजस्वी रथसे (**सुतस्य पीतये**) सोमपीनेके लिए (**आ याहि**) आ ॥२॥

भावार्थ- हे इन्द्र और वायु ! बलोंके स्वामी तथा अत्यन्त बलशाली एवं उत्तम घोडोंवाले तुम दोनों हमारी रक्षा करने तथा सोम पीनेके लिए एक रथ पर बैठकर आओ ॥३॥

हे नेतृत्व करनेवाले तथा यज्ञको सम्पन्न करनेवाले इन्द्र और वायु ! तुम दोनोंके पास जो अत्यन्त उत्तम घोडे हैं, उन्हें दान देनेवाले हम लोगोंको प्रदान करो ॥४॥

हे वायु ! हवनके द्वारा जो लोगोंकी रक्षा करता है, तो जिसे अभी तक किसीने जूठा नहीं किया है, उस सोमरसका तू भक्षण कर । तू स्तुति करनेवाले हमारे धनैश्वर्यको बढा । और चमकते हुए रथसे सोम पीनेके लिए आ ॥१॥

वायु प्राण है । उसका रथ शरीर है, उस शरीरमें वह इन इन्द्रियां रूपी घोडोंको जोडता है । तब इस तेजस्वी शरीर रूपी रथमें बैठकर वह प्राण इन्द्र अर्थात् आत्माके साथ संयुक्त होता है और तब वह सोम अर्थात् अमृततत्त्वका पान करता है ॥२॥

५०३ अनु॑ कृ॒ष्णे वसु॑धिती येमा॒ते वि॒श्वपे॑शसा ।
वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ रथे॑न या॒हि सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ ३ ॥
५०४ वह॑न्तु त्वा मनो॒युजो॑ यु॒क्तासो॑ नव॒तिर्नव॑ ।
वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ रथे॑न या॒हि सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ ४ ॥
५०५ वायो॑ श॒तं हरी॑णां यु॒वस्व॒ पोष्या॑णाम् ।
उ॒त वा॑ ते सह॒स्रिणो॒ रथ॒ आ या॑तु॒ पाज॑सा ॥ ५ ॥

[४९]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— इन्द्राबृहस्पती । छन्दः— गायत्री ।]

५०६ इ॒दं वा॑मा॒स्ये॑ ह॒विः प्रि॒यमि॑न्द्राबृहस्पती । उ॒क्थं मद॑श्च शस्यते ॥ १ ॥
५०७ अ॒यं वां॒ परि॑ षिच्यते॒ सोम॑ इन्द्राबृहस्पती । चारु॒र्मदा॑य पी॒तये॑ ॥ २ ॥

अर्थ- [५०३] हे (वायो) वायु ! (कृष्णे) आकर्षण शक्तिसे युक्त (वसुधिती) धनोंको धारण करनेवाली (विश्व पेशसा) अनेक रूपोंवाली ये द्यावापृथिवी तेरा ही (अनुयेमाते) अनुसरण करती है । तू (सुतस्य पीतये) सोम पीनेके लिए (चन्द्रेण रथेन) आल्हादकारक रथसे (आ याहि) आ ॥३॥

[५०४] हे (वायो) वायु ! (त्वा) तुझे (मनोयुजः) मनसे जुडजानेवाले (युक्तासः) रथमें जोडे हुए (नवतिः नव) निन्यानवे घोडे (वहन्तु) ले जायें । तू भी (सुतस्य पीतये) सोमरसको पीनेके लिए (चन्द्रेण रथेन आ याहि) तेजस्वी रथसे आ ॥४॥

[५०५] हे (वायो) वायुदेव ! तू (पोष्याणां) पोषणके योग्य, बलशाली (हरीणां शतं) सौ घोडोंको अपने रथमें (युवस्व) नियुक्त कर । (उत वा) और (ते) तेरा (सहस्रिणः रथः) हजार घोडोंवाला रथ (पाजसा) बलसे (आ यातु) आए ॥५॥

[४९]

[५०६] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति ! (इदं प्रियं हविः) यह प्रिय हवि (वां आस्ये) तुम दोनोंके सामने समर्पित की जाती है । (च) तथा (मदः उक्थं शस्यते) आनन्ददायक स्तोत्र गाये जाते हैं ॥१॥

[५०७] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति ! (वां मदाय पीतये) तुम्हारे आनन्दके लिए तथा पीनेके लिए (अयं चारुः सोमः) यह सुन्दर सोम (परि षिच्यते) तैय्यार किया जाता है ॥२॥

भावार्थ- आकर्षण शक्तिसे युक्त धनोंको धारण करनेवाली तथा अनेक रूपोंवाली ये द्यावापृथिवी इसी प्राणसे जीवित रहती हैं । प्राणके कारण ही इन लोकोंमें जीवनशक्ति रहती है ॥३॥

इस प्राण की असंख्य शक्तियां हैं । निन्यानवे असंख्यताका द्योतक है । ये असंख्य शक्तियां शरीरमें रहती हैं और जब मनको इन शक्तियोंपर केन्द्रित किया जाता है, तब ये शक्तियां शरीरको प्रेरणा देती हैं ॥४॥

यह प्राण सबसे अधिक बलशाली, सबका पोषण करनेवाला तथा हजारों शक्तियोंसे सम्पन्न है ॥५॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! यह प्रिय हवि तुम दोनोंके लिए समर्पित की जाती है और आनन्ददायक स्तोत्र भी गाये जाते हैं ॥१॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम्हारे आनन्दके लिए तथा पीनेके लिए यह सुन्दर सोम तैय्यार किया जाता है ॥२॥

५०८ आ नं इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
५०९ अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥
५१० इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
५११ सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥

[५०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- बृहस्पतिः, १०-११ इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप्, १० जगती ।]

५१२ यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥

अर्थ- [५०८] हे (**इन्द्राबृहस्पती**) इन्द्र और बृहस्पति ! (**सोमपा**) सोमपीनेवाला तू (**इन्द्रः च**) और इन्द्र दोनों (**सोमपीतये**) सोमपीनेके लिए (**नः गृहं आ गच्छतम्**) हमारे घर आओ ॥३॥

[५०९] हे (**इन्द्राबृहस्पती**) इन्द्र और बृहस्पति ! (**अश्वावन्तं, शतग्विनं, सहस्रिणं**) घोडोंसे युक्त, सैंकडों गौओंवाले तथा हजारोंकी संख्यामें (**अस्मे रयिं धत्तम्**) हमें ऐश्वर्य दों ॥४॥

[५१०] हे (**इन्द्राबृहस्पती**) इन्द्र और बृहस्पति ! (**सुते**) सोमके तैय्यार हो जाने पर (**अस्य सोमस्य पीतये**) इस सोमको पीनेके लिए (**वयं गीर्भिः हवामहे**) इस स्तुतियोंसे हमें बुलाते हैं ॥५॥

[५११] हे (**इन्द्राबृहस्पती**) इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों (**दाशुषः गृहे**) दानशील मनुष्यके घरमें (**सोमं पिबतं**) सोमको पीओ और (**तत् ओकसा**) उसके घरको अपना ही समझकर (**मादयेथां**) तुम दोनों आनन्दित होओ ॥६॥

[५०]

[५१२] (**त्रिषधस्थः यः बृहस्पतीः**) तीनों लोकोंमें रहनेवाले जिस बृहस्पतिने (**रवेण सहसा**) अपने शब्द और बलसे (**ज्मः अन्तान्**) पृथिवीके अन्तिम प्रदेशों अर्थात् दिशाओंको (**तस्तम्भ**) आधार दिया, (**तं मन्द्रजिह्वं**) उस मधुरवाणीवाले बृहस्पतिको (**प्रत्नासः ऋषयः**) प्राचीन ऋषि तथा (**दीध्यानाः विप्राः**) तेजस्वी ज्ञानी (**पुरः दधिरे**) आगे स्थापित करते हैं ॥१॥

भावार्थ- हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों सोमपान करनेके लिए हमारे घर आओ ॥३॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों हमें घोडोंसे युक्त, सैंकडों गौओंवाले धनोंको हजारोंकी संख्यामें दो ॥४॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! इस सोमके तैय्यार हो जाने पर हम इस सोमको पीनेके लिए तुम्हें अपनी स्तुतियोंसे बुलाते हैं ॥५॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों दानी के घरमें जाकर सोम पिओ और उसके घरको अपना ही समझकर वहां आनन्दित होवो ॥६॥

वाणीका अधिपति यह देव अपने बल तथा आज्ञासे दसों दिशाओंको आधार देता है और उन्हें स्थिर करता है । इस वाणीके स्वामीकी सभी प्राचीन मंत्रद्रष्टा ऋषि और तेजस्वी ज्ञानी स्तुति करते हैं और हर काममें इसे आगे स्थापित करते हैं ॥१॥

५१३ धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् । ॥ २ ॥
५१४ बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥
५१५ बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ४ ॥
५१६ स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥

अर्थ- [५१३] हे (बृहस्पते) वाणीके स्वामिन् ! (धुनेतयः) अपनी गतिसे शत्रुओंको भयभीत करनेवाले (ये नः) जो हमारे मनुष्य हैं, जो (सुप्रकेतं मदन्तः) उत्तम ज्ञानवाले तुम्हें आनन्दित करते हुए (अभिततस्त्रे) तेरी स्तुति करते हैं, (अस्य) उनके (पृषन्तं) फल प्रद (सृप्रं) उत्साह देनेवाले (अदब्धं) अजेय (ऊर्वं योनिं रक्षतात्) विशाल गृहकी रक्षा कर ॥२॥

[५१४] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (परावत् या परमा) दूर पर जो अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान है, (अतः) वहांसे (आ) पास ही (ते ऋतस्पृशः नि षेदुः) ऋतको स्पर्श करनेवाली किरणें रह रही हैं । (तुभ्यं अद्रिदुग्धाः मध्वः) तेरे लिए पथ्थरसे कूटकर निचोडे गए मधुर सोमरस (खाताः अवताः) गहरे कुंवेके समान (अभितः विरप्शं) चारों ओरसे शब्द करते हुए (श्चोतन्ति) चू रहे हैं ॥३॥

[५१५] (सप्तास्यः) सात मुखवाला (तुविजातः) अनेक तरहसे प्रकट होनेवाले तथा (सप्तरश्मिः) सात किरणोंवाला (बृहस्पतिः) बृहस्पति (महः ज्योतिषः परमे व्योमन्) महान् ज्योतिके स्थान परम आकाशमें (प्रथमं जायमानः) सबसे पहले प्रकट होकर (रवेण तमांसि वि अधमत्) अपनी ज्योतिसे अन्धकारका नाश करता है ॥३॥

[५१६] (सः) उस बृहस्पतिने (सुस्तुभा) उत्तम रीतिसे करनेवाले (स ऋक्वता गणेन) उसने तेजस्वी गणसे तथा (रवेण) शब्दसे (फलिगं वलं रुरोज) मेघ और वल नामक असुरको फोडा। (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (हव्यसूदः वावशतीः उस्रियाः) हव्य पदार्थोंको दुहनेवाली तथा रंभानेवाली गायोंको (कनिक्रदत् उत् आजत्) शब्द करते हुए मुक्त किया ॥५॥

भावार्थ- हे वाणीके स्वामी बृहस्पते ! शत्रुओंको अपनी गतिसे भयभीत करनेवाले जो हमारे मनुष्य हैं । उनके हर तरहसे सुखदायक घर या शरीर की तू रक्षा कर । यह शरीररूपी गृह हर तरहके फलोंको देनेवाला है, उत्साहप्रद है, अयोध्या होनेसे अजेय है और अनन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण होनेके कारण विशाल है ॥२॥

हे सब जगत्के स्वामिन् देव ! सभी जगत्में तुम्हारे ही तेजकी किरणें फैल रही हैं । जहां दूर प्रदेशोंमें भी प्रकाश फैला हुआ दीखता है, वहां भी तेरी ही किरणें फैला रही हैं । इसी कारण तेरे लिए, जिस प्रकार एक गहरे कुंवेमें चारों ओरसे पानीका झरना झरता है, उसी तरह स्तुतियां की जाती हैं ॥३॥

इस मंत्रमें बृहस्पतिका वर्णन सूर्यके रूपमें किया गया है । सात रंगकी किरणें ही सूर्यके सात मुख हैं जिनसे वह रसोंको ग्रहण किया करता है । ऐसे सात मुखोंवाला वह सूर्य रूपी बृहस्पति द्युलोकमें प्रकाशित होता है । वह प्रतिदिन सबसे प्रथम प्रकट होता है और प्रकट होकर अन्धकारका नाश करता है ॥४॥

उस बृहस्पतिने उत्तम रीतिसे स्तुति करनेवाले तेजस्वी गणसे हर्षयुक्त शब्द करते हुए मेघों और वल नामक राक्षस को मारा । उन मेघोंको फोडकर और पानी बरसाकर बृहस्पतिने हवनीय पदार्थोंको दुहनेवाली तथा रंभानेवाली गायोंको हर्षसे शब्द करते हुए मुक्त किया ॥५॥

५१७ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

५१८ स इद् राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥

५१९ स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥ ८ ॥

अर्थ- [५१७] (**एवा**) इस प्रकार (**पित्रे**) सबका पालन करनेवाले (**विश्वदेवाय**) सम्पूर्ण देवोंके स्वामी (**वृष्णे**) बलवान् बृहस्पतिकी हम (**यज्ञैः नमसा हविर्भिः**) यज्ञोंसे, नमस्कारोंसे और हवियोंसे (**विधेम**) सेवा करें । हे (**बृहस्पते**) बृहस्पते ! (**सुप्रजाः वीरवन्तः वयं**) उत्तम प्रजाओं तथा पराक्रमसे युक्त हम (**रयीणां पतयः स्याम**) धनोंके स्वामी हों ॥६॥

[५१८] (**यः बृहस्पतिं**) जो राजा वाणीके स्वामी पुरोहितकी (**पूर्वभाजं सुभृतं बिभर्ति**) सबसे पहले उत्तम पोषक पदार्थोंसे सत्कार करता है (**वल्गूयति वन्दते**) स्तुति करता है, और वन्दना करता है (**सः इत्**) वही राजा (**विश्वा प्रतिजन्यानि**) सभी युद्धोंको (**शुष्मेण वीर्येण**) अपने बल और शक्तिसे (**अभि तस्थौ**) जीतता है ॥७॥

१ **यः बृहस्पतिं वन्दते, सः इत् राजा विश्वा प्रतिजन्यानि शुष्मेण वीर्येण अभि तस्थौ-** जो वेदज्ञाता पुरोहितकी वन्दना करता है, वही राजा सभी युद्धोंमें अपनी शक्तिसे विजय प्राप्त करता है ।

[५१९] (**यस्मिन् राजनि**) जिस राजाके राज्यमें (**ब्रह्मा पूर्वः एति**) ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सबसे पूज्य होकर आगे चलता है, (**सः इत्**) वही राजा (**सुधितः**) अच्छी तरहसे तृप्त होकर (**स्वे ओकसि**) अपने घरमें (**क्षेति**) रहता है । (**तस्मै इळा विश्वदानीं पिन्वते**) उसके राज्यमें भूमि प्रतिदिन पुष्ट होकर बढती जाती है, (**तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते**) उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुकती हैं ॥८॥

१ **यस्मिन् राजनि ब्रह्मा पूर्वः एति-** जिस राजाके राज्यमें ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सत्कृत होकर सबसे आगे रहता है ।

२ **सः इत् सुधितः स्वे ओकसि क्षेति-** वही राजा अच्छी तरहसे तृप्त होकर अपने घरमें सुखसे रहता है ।

३ **तस्मै इळा विश्वदानीं पिन्वते-** उसके राज्यकी भूमि प्रतिदिन पुष्ट होती रहती है ।

४ **तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते-** उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुक जाती हैं ।

भावार्थ- यह बृहस्पति सबका पालन करनेवाला, सम्पूर्ण देवोंका स्वामी, बलवान् बृहस्पतिकी हम हवियोंसे सेवा करते हैं । उसकी कृपासे उत्तम प्रजाओं और पराक्रमसे युक्त हम धन ऐश्वर्योंके स्वामी हों ॥६॥

जो राजा अपने वेदज्ञ पुरोहितका सत्कार करता है, उसकी स्तुति करता है और वन्दना करता है, वही बलसे युक्त होकर सभी युद्धोंमें विजय प्राप्त करता है ॥७॥

जिस राजाके राज्यमें हर काममें वेदज्ञ पुरोहितकी सलाह ली जाती है, उस राज्यमें सब प्रजायें सुखसे रहनेके कारण राजाका आदर करती हैं, वह राज्य धनधान्यसे समृद्ध होता है, वहांकी भूमि बडी उपजाऊ और पोषक पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाली होती है । अतः वह राजा भी सभी तरहकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर अपने घरमें सुखपूर्व निवास करता है ॥८॥

५२० अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥

५२१ इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते ऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवो ऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥

५२२ बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी र्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ११ ॥

अर्थ- [५२०] (**यः राजा**) जो राजा (**अवस्यवे ब्रह्मणे**) रक्षाके अभिलाषी ब्रह्मज्ञानी पुरोहितके लिए (**वरिवः कृणोति**) धनादि प्रदान कर उसकी रक्षा करता है, (**तं देवाः अवन्ति**) उस राजाकी देवगण रक्षा करते है । वह राजा (**अप्रतिइतः**) कभी भी पराङ्मुख न होता हुआ (**प्रतिजन्यानि धनानि**) शत्रुओंके धनोंको (**उत**) और (**या सजन्या**) जो अपने सम्बन्धियोंके धन हैं, उन सबको (**सं जयति**) सम्यक् रीतिसे जीतता है ॥९॥

१ **यः राजा अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति, तं देवाः अवन्ति-** जो राजा रक्षाके अभिलाषी ब्राह्मणकी धनादि देकर रक्षा करता है, उस राजाकी रक्षा देवगण करते हैं ।

२ **सः अप्रतिइतः प्रतिजन्यानि सजन्या धनानि संजयति-** वह राजा कभी भी पराङ्मुख न होता हुआ शत्रुओंके और अपनोंके धनोंको भी जीतता है ।

[५२१] हे (**बृहस्पते**) बृहस्पते ! तू (**इन्द्रः च**) और इन्द्र दोनोंही (**मन्दसानाः वृषण्वसू**) आनन्दसे रहनेवाले तथा धनोंकी वर्षा करनेवाले हो । तुम दोनों (**अस्मिन् यज्ञे**) इस यज्ञमें (**सोमं पिबतं**) सोमको पिओ। (**सु-आ-भुवः इन्दवः**) हर तरहसे उत्तम सामर्थ्य प्रदान करनेवाले सोम (**वां विशन्तु**) तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट हों । (**अस्मे**) हमें तुम (**सर्ववीरं रयिं नि यच्छतम्**) हर तरहके वीर सन्तानोंसे ऐश्वर्यको प्रदान करो ॥१०॥

[५२२] हे (**बृहस्पते इन्द्र**) बृहस्पति और इन्द्र ! (**नः वर्धतं**) हमें बढाओ । (**वां**) तुम दोनोंकी (**सा सुमतिः अस्मै सचा भूतु**) वह उत्तम बुद्धि हमें एकसाथ प्राप्त हो । तुम दोनों हमारे (**धियः अविष्टं**) कर्मोंकी रक्षा करो, (**पुरंधीः जिगृतं**) बुद्धियोंको जागृत करो तथा (**वनुषां**) तुम्हारी भक्ति करनेवाले हमारे (**अर्यः अरातीः**) आक्रमणकारी शत्रुओंको (**जजस्तं**) नष्ट करो ॥११॥

भावार्थ- जो राजा रक्षाकी अभिलाषा करनेवाले ज्ञानी पुरोहितकी हरतरहसे रक्षा करता है, उसकी रक्षा देवगण करते हैं। देवोंसे रक्षित होकर वह राजा अपनोंके और शत्रुओंके धनोंको जीतता है ।

हे बृहस्पते तथा इन्द्र ! तुम दोनों सदा आनन्दमें रहनेवाले तथा धनोंके वर्षा करनेवाले हो । तुम दोनों इस यज्ञमें सोमपान करो । सामर्थ्य प्रदान करनेवाले ये सोम तुम्हें सामर्थ्य प्रदान करें और तुम भी हमें उत्तम सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्यको प्रदान करो ॥१०॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों हमें बढाओ । तुम दोनोंकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो । तुम हमारे कर्मोंकी रक्षा करो, हमारी बुद्धियोंको जागृत करो तथा हम पर आक्रमण करनेवाले जो हमारे शत्रु हैं, उन्हें नष्ट करो ॥११॥

[५१]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः। देवता- उषाः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

५२३ इदमु त्यत् पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥

५२४ अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥

५२५ उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान् राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥

५२६ कुवित् स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥

---

[५१]

अर्थ- [५२३] (**इदं उ त्यत् पुरुतमं**) यह निश्चयसे वह अत्यंत विशाल और (**वयुनावत् ज्योतिः**) ज्ञान देकर कर्म करानेवाला तेज (**पुरस्तात् तमसः अस्थात्**) पूर्व दिशामें अन्धकारमेंसे ऊपर आ रहा है। (**नूनं**) निःसंदेह ये (**विभातीः दिवाः दुहितरः उषसः**) प्रकाशनेवाली द्युलोककी पुत्री उषाएँ (**जनाय गातुं कृण्वन्**) लोगोंके लिए मार्ग कर रही हैं ॥१॥

[५२४] (**चित्राः उषसः पुरस्तात् अस्थुः उ**) ये सुन्दर उषायें पूर्व दिशामें उसी तरह ऊपर खडी हो रही है। (**अध्वरेषु मिताः स्वरवः इव**) जिस तरह यज्ञोंमें यूप खडे होते हैं। वे उषाएँ (**व्रजस्य तमसः द्वारा उच्छन्तीः**) गौओंके बाडोंके अन्धकारमय द्वारोंको खोलती हैं और (**शुचयः पावकाः अव्रन्**) शुद्ध पवित्र प्रकाशसे विश्वको व्यापती हैं ॥२॥

[५२५] (**अद्य**) आज (**उच्छन्तीः मघोनीः उषसः**) प्रकाशनेवाली धनवाली उषाएँ (**भोजान् राधोदेयाय चितयन्तः**) भोजन देनेवालोंको धन देनेके लिए जगाती हैं। (**अचित्रे तमसः विमध्ये अन्तः**) एक जैसे अन्धकारके अन्दर (**अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु**) न जागनेवाले कंजूस बनिये सोते हैं ॥३॥

[५२६] हे (**देवीः उषसः**) दिव्य उषाओ! (**वः सनयः नवो वा सः यामः**) तुम्हारा पुराना अथवा नया वह रथ (**अद्य कुवित् बभूयात्**) आज बहुत बार चलता रहे। (**येन रेवतीः**) जिस रथसे तुम धनवाली उषायें (**नवग्वे अंगिरे**) नौ गौवोंवाले अंगिरसके लिये और (**दशग्वे सप्तास्ये**) दस गौवोंवाले सप्तास्यके लिये (**रेवत् ऊष**) धनयुक्त होकर प्रकाशती रहो ॥४॥

भावार्थ- यह महान् और कर्मोंसे मनुष्योंको प्रवृत्त करनेवाला तेज पूर्व दिशामें अन्धकारमेंसे प्रकट हो रहा है। निस्सन्देह ये प्रकाशनेवाली उषायें लोगोंके लिए प्रगतिका मार्ग बता रही हैं ॥१॥

ये विलक्षण प्रकाश देनेवाली उषायें पूर्वदिशामें ऊपर उठ रही हैं। गौओंके बाडोंके ढके हुए द्वारा ये उषायें आकर खोलती हैं और अपने शुद्ध और पवित्र प्रकाशसे विश्वको व्याप लेती हैं रात्री के अन्धकारमें गायें अपने गोष्ठोंमें बन्द पडी रहती हैं, उषाके प्रकट होनेपर उन गोष्ठोंके द्वार खोल दिए जाते हैं ॥२॥

आज अन्धकारको दूर करनेवाली ऐश्वर्यशाली उषायें धनीलोगोंको यज्ञके लिए धनका दान करनेके लिए जगाकर प्रेरित करें। जो न जागनेवाले कंजूस बनिये हैं, वे गाढ अन्धकारमें सोते रहें। ऐसे कंजूस बनिये कभी भी ज्ञानसम्पन्न नहीं हो सकते, वे सदा ही अन्धकारमें ठोकर खाते फिरेंगे। जो यज्ञके कार्यके लिए अपना धन समर्पित करेंगे, वे उन्नति करेंगे और अदानशील व्यक्ति नष्ट हो जाएंगे ॥३॥

हे दिव्य उषाओ! तुम्हारा रथ सदा चलता रहे। इस रथमें तुम धनोंको लादकर अनेक शक्तियोंवाले मनुष्यको ये धन प्रदान करो ॥४॥

५२७ यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥ ५ ॥
५२८ क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥ ६ ॥
५२९ ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन् द्रविणं सद्य आप ॥ ७ ॥
५३० ता आ चरन्ति समना पुरस्तात् समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥ ८ ॥

अर्थ- [५२७] हे (**देवीः उषसः**) दिव्य उषाओ ! (**यूयं हि ऋतयुग्भिः अश्वैः**) तुम सीधे जोते जानेवाले घोडोंसे, (**भुवनानि सद्यः परिप्रयाथ**) सब भुवनोंमें चारों ओर घूमती हो और (**ससन्तं द्विपात् चतुष्पाद् जीवं**) सोनेवाले द्विपाद् और चतुष्पाद् जीवोंको (**चरथाय प्रबोधयन्तीः**) घूमनेके लिये जगाती हो ॥५॥

[५२८] (**यया ऋभूणां विधाना विदधुः**) जिसके साथ ऋभुओंके कार्य हुए वह उषा (**आसां पुराणी कतमा क्व स्वित्**) इनमें पुरानी कौनसी और कहां है ? (**यत् उषसः शुभ्राः शुभं चरन्ति**) जब तेजस्वी उषाएं शोभा प्रकट करती हैं, तब (**अजुर्याः सदृशीः न विज्ञायन्ते**) नित्य नवीन होने पर भी सदृश होनेसे कौन नूतन और कौन पुरानी है इसका पता नहीं चलता ॥६॥

[५२९] (**ताः घ ताः भद्राः**) वे निःसंदेह कल्याण करनेवाली (**उषसः**) उषाएं (**पुरा आसुः**) पूर्व समयमें हो चुकी हैं । वे (**अभिष्टिद्युम्नाः**) जाते ही धन देनेवाली और (**ऋत-जात-सत्याः**) सत्य और सरलतामें प्रसिद्ध हैं । (**यासु ईजानः**) जिन उषाओंमें यज्ञ करनेवाला (**उक्थैः शशमानः**) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करनेवाला (**स्तुवन् शंसन् सद्यः द्रविणं आप**) स्तवन और प्रशंसा करता हुआ तत्काल ही धन प्राप्त करता है ॥७॥

[५३०] (**ताः**) वे उषाएं (**पुरस्तात् समनाः**) पूर्व दिशामें समान रीतिसे (**आ चरन्ति**) चारों ओर फैल रही हैं । (**समनाः समानतः पप्रथानाः**) वे समान उषाएं समान अन्तरिक्षके प्रदेशसे फैलती हैं । (**ऋतस्य सदसः बुधानाः**) यज्ञके स्थानको बताती है । ये (**देवीः उषसः**) दिव्य उषाएं (**गवां सर्गाः न**) गौवोंके समूहके समान (**जरन्ते**) प्रशंसित होती हैं ॥८॥

भावार्थ- ये दिव्य उषायें उत्तम घोडोंसे चलनेवाले रथोंसे भुवनोंको व्यापती हैं और सोनेवाले द्विपाद और चतुष्पाद् प्राणियोंको घूमनेके लिए जगाती हैं ॥५॥

अनेक उषायें जब आती हैं, तब उनमें कौनसी उषायें नई हैं और कौनसी पुरानी, यह जानना कठिन हो जाता है, क्योंकि सब उषायें एक जैसी दीखती हैं । सभी उषायें एक जैसी होती हैं ॥६॥

वे तेजस्वी सत्य यज्ञोंके प्रवर्तक अनेक उषायें पूर्व समयमें आ चुकी हैं । इन उषाओंमें यज्ञ करनेवाला स्तुति करता हुआ यज्ञ करनेके कारण पर्याप्त धन प्राप्त करता है ॥७॥

वे एक मनसे आनेवाली उषायें पूर्वदिशासे फैलती हैं और यज्ञके स्थानको प्रकाशित करती हैं ॥८॥

५३१ ता इन्न्वेॆ३व समना समानी—रमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥ ९ ॥

५३२ रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १० ॥

५३३ तद् वो दिवो दुहितरो विभाती—रुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥ ११ ॥

[५२]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- उषाः । छन्दः- गायत्री ।]

५३४ प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

अर्थ- [५३१] (**ता इत् नु एव उषसः**) वे ही उषाएं (**समनाः समानीः**) समान एक रंगरूपवाली (**अमीतवर्णाः चरन्ति**) अनेक रंगोंसे युक्त होकर संचार करती हैं। (**अभ्वं असितं गूहन्ती**) विशाल अंधकारको ढक देती हैं और (**रुशद्भिः तनूभिः**) तेजस्वी शरीरोंसे (**शुक्राः शुचयः रुचानाः**) शुद्ध प्रकाशोंको चमका देती हैं ॥९॥

[५३२] हे (**दिवः दुहितरः**) द्युलोककी पुत्री उषाओं ! तुम (**विभातीः देवीः**) प्रकाशनेवाली देवियां हो (**अस्मासु प्रजावन्तं रयिं यच्छत**) हमें पुत्रपौत्रादि युक्त धन दो । (**स्योनात् वः प्रतिबुध्यमानाः**) सुखसे तुम्हारे द्वारा जागृत होनेवाले हम (**सुवीर्यस्य पतयः स्याम**) उत्तम वीरता के स्वामी हों ॥१०॥

[५३३] हे (**दिवः दुहितरः उषसः**) द्युलोककी पुत्री उषाओ ! (**यज्ञ केतुः**) यज्ञका ध्वज जैसा यज्ञकर्ता मैं (**विभातीः वः तत् उपब्रुवे**) प्रकाशनेवाली तुमसे वह कहता हूं कि (**वयं जनेषु यशसः स्याम**) हम सब लोगोंमें यशस्वी हों और (**तत् द्यौः पृथिवी देवीः च धत्तां**) वह हमारी इच्छा द्यौ और पृथिवी देवी सफल करे ॥११॥

[५२]

[५३४] (**स्या सूनरी जनी**) वह उत्तम नेतृत्व करनेवाली, फल देनेवाली और (**स्वसुः परि व्युच्छन्ती**) अपनी बहिन रात्रीके अन्तिम समयमें प्रकाशती हुई यह (**दिवः दुहिता प्रति अदर्शि**) स्वर्गकन्या दीख रही है ॥१॥

भावार्थ- ये उषायें अनेक रंगोंवाली अन्धकारको नष्ट करके प्रकाशको फैलाती हुई अपने तेजस्वी शरीरोंसे शुद्ध पवित्र और तेजस्वी होकर विश्वमें संचार करती हैं ॥९॥

हे स्वर्गकी कन्याओं ! तेजस्वी देवियां तुम हमारे लिए पुत्र पौत्रोंको बढानेवाला धन दो । हम ज्ञानी और सुखी हों और उत्तम वीर्यके कार्य उत्तम रीतिसे सिद्ध हों । धनप्राप्तिके बाद हम आलसी न हों, हम अपने कार्यमें शिथिल न हों । हम उत्साहसे वीरताके काम करें ॥१०॥

हे स्वर्गकन्याओं उषाओ ! तुम प्रकाश फैला रही हो । इसलिए मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं विजयी, यशस्वी और कीर्तिमान् होऊं । द्यु और पृथिवी भी हमारी सहायता करें ॥११॥

यह स्वर्गीय कन्या उषा अपनी बहिन रात्रीके अन्तिम भागमें प्रकाशित होती है और रात्रीके अन्धकारको दूर करती है। यह उत्तम नेतृत्व करती है और उत्तम सन्तान उत्पन्न करती है ॥१॥

५३५ अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी ।
सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥
५३६ उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥
५३७ यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि ।
प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥ ४ ॥
५३८ प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः ।
ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥ ५ ॥
५३९ आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः ।
उषो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥

अर्थ- [५३५] (अश्वा इव चित्रा) घोडीके समान सुंदर (अरुषी) तेजस्विनी (गवां माता) किरणोंकी जननी (ऋतावरी) सरल कर्म करनेवाली (उषा अश्विनोः सखा अभूत्) यह उषा अश्विदेवोंकी सखी है ॥२॥

[५३६] हे (उषः) उषा ! (उत अश्विनोः सखा असि) तू अश्विदेवोंकी सखी है, (उत गवां माता असि) और किरणोंकी माता है (उत वस्व ईशिषे) और तू धनकी स्वामिनी है ॥३॥

[५३७] हे (सूनृतावरि) मधुर भाषण करनेवाली उषा ! (यावयत्- द्वेषसं त्वां) शत्रुओंको दूर करनेवाली तू है ऐसी तुझ (चिकित्वत्) ज्ञानवतीको (स्तोमैः प्रति अभुत्स्महि) स्तोत्रोंसे हम जाग्रत करते हैं ॥४॥

[५३८] (भद्राः रश्मयः) कल्याणकारक किरणें (गवां सर्गाः न) गौओंके झुण्डके सदृश (अदृक्षत) दीख रही हैं, यह (उषाः) उषा (उरु ज्रयः आ अप्राः) विशेष तेजको सर्वत्र भर देती है ॥५॥

[५३९] (विभावरि उषः) चमकनेवाली उषा ! (आपप्रुषी) तेजसे जगत्को भर देनेवाली तू (ज्योतिषा तम वि आवः) प्रकाशसे अन्धकारको दूर करती है । (अनु स्वधां अव) पश्चात् तू अपनी धारक शक्तिका संरक्षण कर ॥६॥

भावार्थ- यह उषा तेजस्विनी और प्रकाशवाली है । यह गौओं का हित करती है । माता के समान गौओंका पालन करती है । यज्ञको सिद्ध करनेवाली, सत्यका पालन करनेवाली तथा अश्विदेवोंसे मित्रता करनेवाली है ॥२॥

हे उषा ! तू अश्विदेवोंकी हितकारिणी, गौओंको माता और धनकी स्वामिनी है ॥३॥

हे मधुरभाषण करनेवाली उषा ! तू अपने मधुर भाषण से शत्रुओंको दूर कर । ज्ञानवान् होकर सदा जागती रह ॥४॥

कल्याण करनेवाली किरणें इस तरह दीख रही हैं कि मानों गायें बन्धनसे मुक्त हुई हों । हे उषा ! तू इन किरणोंसे सर्वत्र प्रकाश भर दे ॥५॥

हे उषा ! तू सर्वत्र प्रकाश भर दे । प्रकाशसे अन्धकारको दूर कर और अपनी धारणाशक्तिको बढा और उसकी रक्षा कर ॥६॥

५४० आ द्यां तनोषि रश्मिभि-रान्तरिक्षमुरु प्रियम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ७ ॥

[५३]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- सविता । छन्दः- जगती।)

५४१ तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महद् वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान् देवो अक्तुभिः ॥ १ ॥
५४२ दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्व-जीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥ २ ॥
५४३ आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥ ३ ॥

अर्थ- [५४०] हे (**उषः**) उषा ! (**रश्मिभिः द्यां आ तनोषि**) किरणोंसे द्युलोकको भर देती है तथा (**शुक्रेण शोचिषा**) शुद्ध प्रकाशसे (**प्रियं उरु अन्तरिक्षं आ**) प्रिय विस्तीर्ण अन्तरिक्षको भी भर देती है ॥७॥

[५३]

[५४१] हम (**असुरस्य प्रचेतसः**) प्राणशक्तिके दाता तथा बुद्धिमान् (**देवस्य सवितुः**) सविता देवके (**तत् वार्यं महत् वृणीमहे**) उस वरणीय तथा महान् तेजकी अभिलाषा करते हैं । (**येन**) जिस तेजसे वह देव (**त्मना**) स्वयं ही (**दाशुषे**) दानशील मनुष्यके लिए (**छर्दि यच्छति**) सुख प्रदान करता है । (**नः तत्**) हमें उस तेजको देता हुआ (**महान् देवः**) यह महान् देव (**अक्तुभिः**) रात्रीकी समाप्ति पर (**उदयान्**) उदय होता है ॥१॥

[५४२] (**दिवः धर्ता**) द्युलोकको धारण करनेवाला (**भुवनस्य प्रजापतिः**) सभी लोकोंकी प्रजाओंका पालन करनेवाला तथा (**कविः सविता**) ज्ञानी सविता देव (**पिशंगं द्रापिं प्रति मुंचते**) अपने सुनहरे कवचको उतारता है । (**विचक्षणः**) सर्वद्रष्टा वह सूर्य (**प्रथयन् आपृणन्**) अपने तेजको प्रकट करता हुआ तथा उस तेजसे सब लोकोंको पूर्ण करता हुआ (**उरु उक्थ्यं सुम्नं**) अत्यधिक स्तुत्य सुखको (**अजीजनत्**) उत्पन्न करता है ॥२॥

[५४३] (**देवः**) यह सविता देव (**दिव्यानि रजांसि पार्थिवा**) द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा पृथ्वीलोक को (**आप्राः**) अपने तेजसे भर देता है । तथा (**स्वाय धर्मणे**) अपने इस कर्मके कारण (**श्लोकं कृणुते**) प्रसिद्धि प्राप्त करता है । वह (**सविता**) सविता देव (**जगत्**) जगत्को (**अक्तुभिः निवेशयन्**) रातके समय सुलाता हुआ तथा (**प्रसुवन्**) दिनमें सबको प्रेरणा देता हुआ (**सवीमनि**) उषःकालमें (**बाहु प्र अस्राक्**) अपनी किरणोंको फैलाता है ॥३॥

भावार्थ- हे उषः ! तू अपनी किरणोंसे आकाशको भर दे । अपने तेजस्वी प्रकाशसे विस्तीर्ण अन्तरिक्षको भी भर दे। सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश कर दे ॥७॥

हम प्राणशक्तिके देनेवाले तथा बुद्धिमान् उस सविता देवके उस तेजकी अभिलाषा करते हैं, जिस तेजसे वह देव दानशील मनुष्यके लिए सुख प्रदान करता है । उस तेजको हमें देता हुआ वह महान् देव रात्रीकी समाप्ति पर उदय होता है ॥१॥

द्युलोक को धारण करनेवाला तथा सभी लोकोंकी प्रजाओंका पालन करनेवाला यह ज्ञानी प्रेरक देव सूर्य अपने सुनहरे कवच अर्थात् सुनहरी किरणोंको प्रकट करता है, जब वह सूर्य प्रकट होता है, तब उसके तेजसे सभी लोक भर जाते है और उदय होते हुए सूर्यको देखकर सभी प्राणी सुख पाते हैं ॥२॥

यह सविता देव द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकोंको अपने तेजसे भर देता है । अपने इस काम के लिए वह देव सर्वत्र विख्यात है । वह सबका प्रेरक देव सम्पूर्ण जगत्को रातके समय सुला देता है और दिनके समय उन्हें अपने अपने कामोंमें प्रेरित करता है । उषःकालमें वह अपनी भुजाओं अर्थात् किरणोंको प्रकट करता है ॥३॥

५४४ अदा॑भ्यो॒ भुव॑नानि प्र॒चाक॑शद् व्र॒तानि॑ दे॒वः स॑वि॒ताभि र॑क्षते ।
प्रास्रा॑ग्बा॒हू भुव॑नस्य प्र॒जाभ्यो॑ धृ॒तव्र॑तो म॒हो अज्म॑स्य राजति ॥ ४ ॥
५४५ त्रिर॒न्तरि॑क्षं सवि॒ता म॑हित्व॒ना त्री रजां॑सि परि॒भूस्त्रीणि॑ रोच॒ना ।
ति॒स्रो दिवः॑ पृथि॒वीस्ति॒स्र इ॑न्वति त्रि॒भिर्व्र॒तैर॒भि नो॑ रक्षति॒ त्मना॑ ॥ ५ ॥
५४६ बृ॒हत्सु॑म्नः प्रस॒वीता॑ नि॒वेश॑नो॒ जग॑तः स्था॒तुरु॒भय॑स्य॒ यो व॒शी ।
स नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता शर्म॑ यच्छत्व॒स्मे क्षया॑य त्रि॒वरू॑थ॒मंह॑सः ॥ ६ ॥
५४७ आग॑न् दे॒व ऋ॒तुभि॒र्वर्ध॑तु॒ क्षयं॒ दधा॑तु नः सवि॒ता सु॑प्र॒जामिष॑म् ।
स नः॑ क्ष॒पाभि॒रह॑भिश्च जिन्वतु प्र॒जाव॑न्तं र॒यिम॒स्मे समि॑न्वतु ॥ ७ ॥

अर्थ- [५४४] (**अदाभ्यः**) किसीसे न दबनेवाला यह (**सविता देवः**) सविता देव (**भुवनानि प्रचाकशत्**) सभी लोकोंको प्रकाशित करता है । वह (**व्रतानि**) सभी व्रतोंकी (**अभि रक्षते**) रक्षा करता है । (**भुवनस्यः प्रजाभ्यः**) सभी लोकोंकी प्रजाओंके हितके लिए वह (**बाहू प्र अस्राक्**) अपनी भुजाओंको फैलाता है । (**धृतव्रतः**) व्रतोंको धारण करनेवाला वह देव (**महः अज्मस्य राजति**) महान् जगत्का राजा है ॥४॥

[५४५] वह (**सविता**) सविता देव (**अन्तरिक्षं त्रिः**) अन्तरिक्षको तीन बार अपने तेजसे भरता है । (**महित्वना**) अपने महत्वसे (**त्रिः रजांसि**) तीनों लोकोंको भर देता है । (**परिभू**) सर्वश्रेष्ठ वह सविता देव (**त्रीणि रोचना**) तीनों तेजस्वी स्थानोंको व्यापता है । वह (**तिस्रः देवः तिस्रः पृथिवीः इन्वति**) तीनों द्युलोकको और तीनों पृथ्वीलोकोंको प्रेरणा देता है । वह (**त्मना**) स्वयं (**त्रिभिः व्रतैः**) तीन कर्मोंसे (**नः अभि रक्षति**) हमारी रक्षा करे ॥५॥

[५४६] (**यः बृहत्सुम्नः**) जो बहुत सुखोंका दाता सविता (**जगतः स्थातुः उभयस्य वशी**) जंगम और स्थावर रूप दोनों जगतोंको अपने अधीन रखनेवाला (**प्रसविता**) सबको उत्पन्न करनेवाला तथा (**निवेशनः**) स्थिर रखनेवाला है, (**सः सविता देवः**) वह सविता देव (**त्रिवरूथं शर्म**) तीनों लोकोंका सुख (**नः यच्छतु**) हमें प्रदान करे। तथा (**अस्मे अंहसः क्षयाय**) हमारे पापोंका नाश करनेवाला हों ॥६॥

[५४७] (**आगन् देवः**) उदय होता हुआ सूर्य (**ऋतुभिः नः क्षयं वर्धतु**) सभी ऋतुओंमें हमारे सुखोंको बढाये । (**सविता**) वह सविता देव (**नः**) हमें (**सुप्रजां इषं**) उत्तम प्रजाओंसे युक्त अन्नको (**दधातु**) प्रदान करे । (**सः**) वह देव (**क्षपाभिः अहभिः**) रात और दिन (**नः जिवन्तु**) हमें समृद्धिसे तृप्त करे । तथा (**अस्मे**) हमें वह (**प्रजावन्तं रयिं**) प्रजासे युक्त ऐश्वर्यको (**सं इन्वतु**) प्रदान करे ॥७॥

भावार्थ- किसीसे न दबनेवाला यह सूर्य सभी लोकोंको प्रकाशित करता है, सभी तरहके कर्मोंकी यह रक्षा करता है । सभी प्राणियोंके हितके लिए यह अपनी भुजाओंको फैलाता है, और व्रतोंकी रक्षा करनेवाला यह देव महान् जगत्का राजा है ॥४॥

वह सविता देव अन्तरिक्षको प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालोंमें अपने तेजसे भर देता है । यह तेजस्वी देव द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों तेजस्वी स्थानोंको तेजसे भर देता है । वह अपने कार्योंसे हमारी रक्षा करे ॥५॥

बहुत सुखोंका दाता यह सविता जंगम और स्थावर जगत्का ईश्वर होनेसे वह इन दोनों जगतोंको उत्पन्न करनेवाला तथा स्थिर करनेवाला है । वह देव हमारे पापोंको नष्ट करके हमें तीनों लोकोंका सुख प्रदान करे ॥६॥

उदय होता हुआ सूर्य सभी ऋतुओंमें हमारे सुखोंको बढाये । वह प्रेरक देव हमें उत्तम प्रजाओंसे युक्त अन्नको प्रदान करे। वह देव रातदिन हमें समृद्धिसे युक्त करे तथा प्रजायुक्त ऐश्वर्य प्रदान करे ॥७॥

[५४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- सविता । छन्दः- जगती, ६ त्रिष्टुप् ।]

५४८ अभूद् देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥ १ ॥

५४९ देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद् दामानं सवितर्व्यूर्णुषे ऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ २ ॥

५५० अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥ ३ ॥

५५१ न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद् यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरि र्वर्ष्मन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥ ४ ॥

---

[५४]

अर्थ- [५४८] **(नः वन्द्यः सविता देवः अभूत्)** हमारे लिए वन्दनीय सविता देव उदय हो रहा है । **(यः मानवेभ्यः रत्ना वि भजति)** जो मनुष्योंको रत्न प्रदान करता है, तथा जो **(अत्र)** इस जगत्में **(नः)** हमें **(श्रेष्ठं द्रविणं दधत्)** श्रेष्ठ धन प्रदान करता है, वह **(अह्नः इदानीं)** दिनके इस भागमें **(नृभिः उपवाच्यः भवति)** मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय होता है ॥१॥

[५४९] हे **(सवितः)** सविता देव ! तू **(प्रथमं)** सबसे पहले **(यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः)** पूज्य देवोंके लिए **(अमृतत्वं सुवसि)** अमृतत्वको प्रदान करता है फिर **(उत्तमं भागं)** यज्ञके उत्तम भागको प्रदान करता है **(आत् इत्)** इसके बाद ही **(दामानं)** देने योग्य धनोंको **(वि ऊर्णषे)** प्रकाशित करता है । तथा **(मानुषेभ्यः)** मनुष्योंको **(अनुचीना जीविता)** क्रमसे पुत्रपौत्रादिकोंको प्रदान करता है ॥२॥

[५५०] हे **(सवितः)** सविता देव ! **(दैव्ये जने)** तुम दिव्य देवके बारेमें **(यत्)** जो पाप हम **(अचित्ती)** अज्ञानतासे **(दीनैः)** दुर्बलताके कारण **(दक्षैः)** अभिमानके कारण **(प्रभूती)** ऐश्वर्यके अहंकारसे अथवा **(पूरुषत्वता)** मनुष्य होनेके कारण किया हो, **(देवेषु च मानुषेषु च)** जो पाप देवोंके बारेमें और मनुष्योंके बारेमें किया हो, **(त्वं)** तू **(नः)** हमें **(अनागसः)** उस पापसे रहित **(सुवतात्)** कर ॥३॥

[५५१] **(यथा भुवनं धारयिष्यति)** जिससे सारे भुवनोंको धारण करता है, **(सवितुः दैव्यस्य तत्)** सविता देवकी वह शक्ति **(न प्रमिये)** कभी नष्ट नहीं होगी। **(सु अंगुरिः)** कुशल हाथोंवाले इस सविताने **(यत् पृथिव्याः वरिमन्)** जो पृथिवीको विस्तृत रूपसे **(सुवति)** उत्पन्न किया, तथा **(दिवः वर्ष्मन्)** द्युलोकको विस्तृत रूपसे उत्पन्न किया, **(अस्य तत् सत्यं)** इस सविता देवका वह कर्म सत्य है ॥४॥

भावार्थ- सबके द्वारा वन्दनाके योग्य वह सूर्य उदय होकर मनुष्योंको उत्तम उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है । इसीलिए वह सभी मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय होता है ॥१॥

सूर्योदयके समय जो यज्ञ किया जाता है, उस यज्ञका अमृततत्त्व और उत्तम भाग यह सूर्य देवोंको प्रदान करता है । इसके बाद उस यज्ञ करनेवालेको उत्तम धन तथा पुत्रपौत्रादि प्रदान करता है ॥२॥

हे सविता देव ! तेरे विषयमें हमने यदि अज्ञान, दुर्बलता, अभिमान, ऐश्वर्य मद और मनुष्य होनेके कारण कोई अपराध कर डाला हो, इसी प्रकार जो अपराध हमने देवों और मनुष्योंके बारे में किया हो, उन अपराधोंसे तू हमें मुक्त कर ॥३॥

जिस अपनी शक्तिसे यह सूर्यदेव भुवनोंको धारण करते है, उस शक्तिका नाश कभी नहीं होता । कुशल हाथोंवाले इस सूर्यने जो पृथ्वी को और द्युलोकको इतना विस्तृत बनाया, वह उसका कर्म भी कभी नष्ट नहीं होता ॥४॥

५५२ इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥ ५ ॥

५५३ ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ ६ ॥

[५५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ८-१० गायत्री ।]

५५४ को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात् को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥ १ ॥

५५५ प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान् वि यदुच्छान् वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥ २ ॥

अर्थ- [५५२] हे (**सवितः**) सविता देव ! तूने (**इन्द्रज्येष्ठान्**) इन्द्रको पूज्य और बडा माननेवाले हमें (**बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः सुवसि**) बडे बडे पर्वतोंकी अपेक्षा भी बडा बनाया । तू ही (**एभ्यः**) इन मनुष्योंको (**पस्त्यावतः क्षयान्**) घरसे युक्त स्थानोंको प्रदान करता है । ये किरणें (**यथा यथा पतयन्तः**) जैसे जैसे ऊपर जाती हुई (**वियेमिरे**) इस विश्वका नियमन करती हैं । वे भी किरणें (**ते स्वाय एव एव तस्थुः**) तेरी आज्ञामें ही रहती हैं ॥५॥

[५५३] हे (**सवितः**) सविता ! (**ये**) जो मनुष्य (**ते**) तेरे लिए (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**त्रिः अहन्**) तीन बार (**सौभगं सवासः**) उत्तम ऐश्वर्यको देनेवाले सोमको (**आसुवन्ति**) निचोडते हैं, उन (**नः**) हमारे लिए (**इन्द्रः द्यावा पृथिवी**) इन्द्र, द्यु, पृथिवी (**अद्भिः सिन्धुः**) जलसहित नदियां (**आदित्यैः अदितिः**) आदित्योंके साथ अदिति (**शर्म यंसत्**) सुख प्रदान करें ॥६॥

[५५]

[५५४] हे (**वसवः**) वसुओ ! (**वः**) तुममेंसे (**कः त्राता**) कौन रक्षा करनेवाला है ? (**कः वरूता**) कौन दुःखका निवारण करनेवाला है ? हे (**अदिते द्यावाभूमी**) अखण्डनीय द्यु और पृथ्वी ! (**नः त्रासीथां**) हमारी रक्षा करो । हे (**वरुण मित्र**) वरुण और मित्र ! (**सहीयसः मर्तात्**) शक्तिशाली शत्रुसे भी हमारी रक्षा करो । हे (**देवाः**) देवो ! (**वः कः**) तुममेंसे कौन सा देव (**अध्वरे वरिवः धाति**) यज्ञमें धन प्रदान करता है ? ॥१॥

[५५५] (**ये**) जो देव (**पूर्व्याणि धामानि**) प्राचीन और सनातन स्थानोंको प्रदान करते तथा (**यत् वियोतारः अमूराः**) जो दुःखनाशक तथा ज्ञानी देव (**उच्छान्**) अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं । वे (**विधातारः**) फल देनेवाले देव (**अस्त्राः**) हमेशा (**वि दधुः**) उत्तम फल ही देते हैं । वे (**ऋतधीतयः दस्माः**) सच्चा पराक्रम करनेवाले तथा सुन्दर देव (**रुरुचन्त**) अत्यन्त तेजस्वी होते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे सविता देव ! तूने इन्द्रको पूज्य मानकर उसकी उपासना करनेवालोंको बडे बडे पर्वतोंसे भी बडा बनाया। इन मनुष्योंको तू घरसे युक्त स्थानोंको प्रदान करता है । इस सूर्यकी किरणें ज्यों ज्यों मध्याकाशकी तरफ बढती हैं, तैसे तैसे जगत् के सभी प्राणी अपने अपने कार्योंमें संलग्न हो जाते हैं । इस प्रकार सूर्यकी किरणें सब जगत्को वशमें रखती हैं, पर ये किरणें इस सविता देवकी आज्ञामें चलती हैं ॥५॥

हे सविता देव ! जो मनुष्य प्रतिदिन तीन सवनोंमें तीन बार उत्तम भाग्य देनेवाले सोमको निचोडते हैं, उन हमारे लिए इन्द्र, द्यु, पृथिवी, जलपूर्ण नदियां, आदित्योंके साथ अदिति सुख प्रदान करे ॥६॥

हे वसुओ ! तुममेंसे कौन रक्षण कर्ता और दुःख निवारक है ? हे अखण्डनीय द्यु और पृथ्वी ! तुम दोनों हमारी रक्षा करो । हे मित्र तथा वरुण ! तुम दोनों शक्तिशाली शत्रुसे भी हमारी रक्षा करो । हे देवो ! तुममेंसे ऐसा कौन सा देव है कि जो यज्ञमें धन प्रदान करता है ? ॥१॥

५५६ प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥ ३ ॥
५५७ व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥ ४ ॥
५५८ आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥ ५ ॥
५५९ नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥ ६ ॥

अर्थ- [५५६] (**पस्त्यां अदितिं**) सबको शरण देनेवाली अदितिको (**सिन्धुं स्वस्तिं देवीं**) नदी तथा कल्याणकारिणी देवीको (**सख्याय अर्कैः इळे**) उनकी मित्रता-प्राप्तिके लिए स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ। (**उभे अहनी**) दोनों द्यावापृथिवी (**नः यथा निपातः**) हमारी जिस तरह रक्षा करते हैं, उसी तरह (**अदब्धे उषासानक्ता**) अहिंसनीय उषा और रात्री हमारी रक्षा (**करतां**) करें ॥३॥

[५५७] (**अर्यमा वरुणः पन्थां वि चेति**) अर्यमा और वरुण ये दोनों देव उत्तम मार्गको प्रकाशित करें। (**इषः पतिः अग्निः**) अन्नोंको पुष्ट करनेवाला अग्निदेव (**सुवितं गातुं**) सुखकारी मार्गको बताये । (**इन्द्राविष्णू**) इन्द्र और विष्णु (**सु स्तवाना**) अच्छी तरहसे प्रशंसित होकर (**नृवत् अभवत् वरूथं शर्म**) मनुष्योंसे युक्त तथा बलसे युक्त उत्तम सुख (**नः यन्तं**) हमें प्रदान करें ॥४॥

[५५८] मैं (**पर्वतस्य मरुतां**) पर्वत, मरुत् (**त्रातुः भगस्य देवस्य**) रक्षा करनेवाले भग देवकी (**रक्षांसि**) रक्षाओंकी (**आ अव्रि**) अभिलाषा करता हूँ । (**पतिः**) सबका पालक देव (**नः जन्यात् अंहसः पात्**) हमें मनुष्यों के प्रति होनेवाले पापसे बचाये । (**उत**) तथा (**मित्रः**) मित्र देव (**मित्रियात् नः उरुष्येत्**) मित्रभावसे हमारी रक्षा करे ॥५॥

[५५९] हे (**देवी रोदसी**) देवी द्यावापृथिवी ! जिस तरह (**सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न**) धन पाने की इच्छा करनेवाले लोग यात्रा करनेके लिए समुद्र की स्तुति करते हैं, उसी तरह मैं (**अहिना बुध्न्येन**) अहिर्बुध्न्यके साथ तुम्हारी (**इष्टैः अप्येभिः**) उत्कृष्ट हविर्द्रव्योंसे (**स्तवीत**) स्तुति करता हूँ । तुम (**धर्मस्वरसः**) जोरसे ध्वनि करनेवाली (**नद्यः**) नदियोंको (**अपव्रन्**) मुक्त कर दो ॥६॥

भावार्थ- ये देव भक्तोंको सनातन स्थानोंको प्रदान करते हैं। दुःखनाशक तथा ज्ञानी देव अन्धकारको दूर करके सर्वत्र प्रकाश फैलाते हैं । वे फल देनेवाले देव सदा उत्तम फल ही प्रदान करते हैं । तब सच्चा पराक्रम करनेवाले तथा देखनेमें सुन्दर देव तेजसे युक्त होकर प्रकाशते हैं ॥२॥

मैं सबको शरण देनेवाली अदिति, नदी तथा अन्य भी कल्याण करनेवाली देवियोंकी उनकी मित्रता प्राप्त करनेके लिए स्तुति करता हूँ। ये द्यु और पृथ्वी हमारी जिस तरह रक्षा करते हैं, उसी तरह उषा और रात्री भी हमारी रक्षा करें ॥३॥

अर्यमा और वरुण ये दोनों देव उत्तम मार्गको प्रकाशित करें। उसी तरह अन्नोंको पुष्ट करनेवाला अग्निदेव सुखकारी मार्गको बताये । इन्द्र और विष्णु हमें मनुष्योंसे और बलसे भरपूर उत्तम सुख प्रदान करें ॥४॥

पर्वत, मरुत् और भगदेव हमारी रक्षा करें। हमने अन्य मनुष्योंके प्रति जो अपराध किया हो, उससे सबका पालन करनेवाला देव बचाये । सबसे स्नेह करनेवाला देव भी प्रेमभावसे हमारी रक्षा करे ॥५॥

हे द्यावापृथ्वी ! जिस तरह धन पानेकी इच्छा करनेवाले व्यापारी यात्रा पर जानेसे पहले समुद्र की स्तुति करते हैं, उसी तरह मैं तुम्हारी उत्तम द्रव्योंसे पूजा करता हूँ। तुम दोनों प्रसन्न होकर कलकल ध्वनि करती हुई बहनेवाली नदियोंको बहनेके लिए मुक्त कर दो ॥६॥

५६० देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥ ७ ॥

५६१ अग्निरीशे वसव्यस्याऽग्निर्महः सौभगस्य ।
तान्यस्मभ्यं रासते ॥ ८ ॥

५६२ उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु ।
अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥ ९ ॥

५६३ तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥ १० ॥

[५६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५-७ गायत्री ।]

५६४ मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥ १ ॥

अर्थ- [५६०] (देवी अदितिः) देवी अदिति (देवैः) देवोंके साथ (नः नि पातु) हमारा पालन करे । (त्राता देवः) रक्षण करनेवाला देव (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करते हुए (त्रायतां) हमारी रक्षा करे । हम (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः) मित्र, वरुण और अग्निके (सानु धासिं) उत्तम स्थानको (नहि प्रमियं अर्हामसि) नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है ॥७॥

[५६१] (अग्निः वसव्यस्य ईशे) अग्नि धनोंके समूहोंका स्वामी है । (अग्निः महः सौभगस्य) अग्नि महान् सौभाग्यका भी स्वामी है । वह (तानि) उन धनों और सौभाग्योंको (अस्मभ्यं रासते) हमें प्रदान करे ॥८॥

[५६२] हे (मघोनि सूनृते वाजिनीवति उषः) ऐश्वर्य युक्त, उत्तम वाणीवाली तथा बल देनेवाली उषे ! तू (अस्मभ्यं) हमें (पुरु वार्या वह) बहुत सारा उत्कृष्ट धन दे ॥९॥

[५६३] (सविता भगः वरुणः मित्रः अर्यमा इन्द्रः) सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र ये सभी देव (नः राधसा गमत्) हमारे पास ऐश्वर्यसे युक्त होकर आवें तथा (नः तत् सु) हमें वह धन सम्यक् रीतिसे प्रदान करें ॥१०॥

[५६]

[५६४] (यत्) जब (वरिष्ठे बृहती) बहुत श्रेष्ठ और विशाल द्यावापृथिवीको (सीं विमिन्वन्) चारों ओरसे घेरता हुआ (उक्षा) मेघ (पप्रथानेभिः एवैः) अत्यन्त विस्तृत तथा गतिमान् वायुओंसे प्रेरित होकर (रुवत्) शब्द करता है, तब (इह) यहां (ज्येष्ठे मही रुचा द्यावापृथिवी) ज्येष्ठ, विशाल और तेजस्वी द्यु और पृथिवी (शुचयद्भिः अर्कैः) तेजस्वी पूजाओंसे युक्त (भवतां) हों ॥१॥

भावार्थ- देवी अदिति अन्य देवोंके साथ मिलकर हमारा पालन करे । रक्षण करनेवाला देव प्रमाद न करते हुए हमारी रक्षा करे । हम मित्र वरुण और अग्निके श्रेष्ठ स्थानको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥७॥

अग्नि सभी तरह के धनोंका तथा महान् सौभाग्यका भी स्वामी है । उन धनोंको वह हमें प्रदान करें ॥८॥

उषा ऐश्वर्यवाली, उत्तम वाणीसे युक्त तथा बलसे युक्त है । वह हमें बहुत सारा उत्कृष्ट धन देवे ॥९॥

सविता, भग आदि सभी देव हमारे पास आवें और हमें उत्कृष्ट धन प्रदान करें ॥१०॥

जब हवाओंसे प्रेरित होनेवाले मेघ इस द्यावापृथिवीको चारों ओरसे घेर लेते हैं, तब तेजसे युक्त इन दोनों लोकोंकी स्तुति सब प्राणी करते हैं ॥१॥

५६५ देवी देवेभिर्यजते यजत्रै॒रमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥ २ ॥
५६६ स इत् स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥
५६७ नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ४ ॥
५६८ प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥

अर्थ- [५६५] (**यजत**) यज्ञीय अर्थात् पूजनीय (**अमीनती**) किसीकी हिंसा न करनेवाली (**उक्षमाणे**) बलिष्ठ (**ऋतावरी**) यज्ञसे युक्त (**अद्रुहा**) किसीसे द्रोह न करनेवाली (**देवपुत्रे**) देवोंको उत्पन्न करनेवाली (**यज्ञस्य नेत्री**) यज्ञका सम्पादन करनेवाली, (**देवी**) तेजयुक्त देवियां द्यु और पृथ्वी (**देवेभिः यजत्रैः शुत्रयद्भिः अर्कैः**) दिव्य गुणोंसे युक्त, यज्ञके योग्य तेजस्वी स्तोत्रोंसे युक्त (**तस्थतुः**) हों ॥२॥

[५६६] (**यः इमे द्यावापृथिवी जजान**) जिसने इन द्यावापृथिवीका निर्माण किया, (**सः इत् सु अपाः**) वही उत्तम कर्म करनेवाला है और वही (**भुवनेषु आस**) सारे भुवनोंमें व्याप्त है ! उसी (**धीरः**) उत्तम बुद्धिको प्रदान करनेवाले देवने (**सच्वा**) अपनी कुशलतासे (**उर्वी**) विशाल (**गभीरं**) गंभीर (**सुमेके**) उत्तम रूपवाले (**अवंशे**) बिना किसी आधारके भी स्थिर रहनेवाले (**रजसी**) इन दोनों लोकोंको (**सं ऐरत्**) बनाया ॥३॥

१ **यः इमे द्यावापृथिवी जजान सः इत् सु अपाः भुवनेषु आस**- जिन परमात्माने इन द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, वही उत्तम कर्म करनेवाला परमात्मा इन दोनों लोकोंमें व्याप्त है ।

[५६७] हे (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी ! (**बृहद्भिः वरूथैः**) महान् धनों और (**पत्नीवद्भिः**) पत्नियोंसे युक्त (**नः**) हमारी (**इषयन्ती**) हविकी इच्छा करनेवाली, (**सजोषाः**) परस्पर प्रेमसे रहनेवाली (**उरूची**) विशाल क्षेत्रवाली (**विश्वे यजते**) सबके द्वारा पूज्य तुम दोनों (**नि पातं**) रक्षा करो । हम भी (**धिया**) अपने उत्तम कर्म या बुद्धिसे (**सदासाः रथ्यः स्याम**) दास तथा रथोंसे युक्त हों ॥४॥

[५६८] हे द्यावापृथिवी ! (**द्यवी**) तेजस्वी (**वां**) तुम दोनोंके लिए (**महि उपस्तुतिं**) बडी बडी स्तुतियोंको (**अभि प्र भरामहे**) हम करते हैं । (**प्रशस्तये**) अपनी स्तुति सुननेके लिए (**शुची**) पवित्र तुम दोनों (**उप**) हमारे पास आओ ॥५॥

भावार्थ- पूज्य, किसीकी हिंसा न करनेवाली, बलिष्ठ, यज्ञयुक्त, किसीसे द्रोह न करनेवाली, देवोंको उत्पन्न करनेवाली, यज्ञको पूर्ण करनेवाली, तेजस्वी देवियां उत्तम स्तोत्रोंसे युक्त हों ॥२॥

जिसने इन अगाध, अपार, विशाल, उत्तम रूपवाले तथा बिना किसी आधारके स्थिर रहनेवाले इन दोनों लोकोंको बनाया, वही उत्तम कर्म करनेवाला परमात्मा इन लोकोंमें व्याप्त है ॥३॥

हे द्यावापृथिवी ! धनों और उत्तम पत्नियोंसे युक्त होकर घरमें आनन्दसे रहनेवाले हमारी तुम दोनों रक्षा करो । हम भी अपनी उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्मोंसे दास और रथोंको प्राप्त करें ॥४॥

हे द्यु और पृथिवी ! तेजसे युक्त तुम दोनोंके लिए हम उत्तम स्तुतियोंको करते हैं । अपनी स्तुति सुननेके लिए तुम दोनों यहां आओ ॥५॥

५६९ पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥
५७० मही मित्रस्य साधथ- स्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ७ ॥

[५७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- १-३ क्षेत्रपतिः; ४ शुनः; ५, ८ शुनासीरौ; ६-७ सीता । छन्दः- अनुष्टुप्; ५ पुर उष्णिक्; २, ३, ८ त्रिष्टुप् ।]

५७१ क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥
५७२ क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूत- मृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥

अर्थ- [५६९] हे द्यावापृथिवी ! (पुनाने) पवित्र करनेवाली (मिथः) तुम दोनों (तन्वा स्वेन दक्षेण) अपने रूप तथा बलसे (राजथः) सुशोभित होती हो । तुम दोनों (सनात् ऋतं ऊह्याथे) अनन्त कालसे यज्ञका सम्पादन करती हो ॥६॥

[५७०] (तरन्ती) दुःखसे तारती हुई (मही) विशाल तथा (ऋतं पिप्रती) यज्ञको पूर्ण करती हुई तुम दोनों, हे द्यु और पृथिवी ! (मित्रस्य साधथः) अपने मित्रकी अभिलाषाको पूर्ण करती हो । तथा (यज्ञं परि नि सेदथुः) यज्ञके चारों ओर बैठती हो ॥७॥

[५७]

[५७१] (हितेन इव) मित्रके समान हितकारी (क्षेत्रस्य पतिना) क्षेत्रपति की सहायतासे (वयं) हम (जयामसि) खेतोंको जीतें । (सः) वह क्षेत्रपति देव (नः) हमें (गां अश्वं) गाय और घोडोंको (पोषयित्नु) पुष्ट करनेवाला धन (आ) प्रदान करे, तथा (ईदृशे) ऐसे धनमें (मृळाति) हमें सुखी करे ॥१॥

[५७२] हे (क्षेत्रस्य पते) क्षेत्रपति देव ! (धेनुः पयः इव) जिस प्रकार गाय दूध दुहती है, उसी तरह तू (मधुमन्तं ऊर्मि पयः) मिठास और प्रवाहसे भरपूर जलको (अस्मासु धुक्ष्व) हमें दुह अर्थात् प्रदान कर । (ऋतस्य पतयः) सत्य कर्मोंका पालन करनेवाले देवगण (नः मृळयन्तु) हमें उसी तरह सुखी करें, (मधुश्चुतं सुपूतं घृतं इव) जिस तरह मिठास चुआनेवाले तथा अच्छी तरह से पवित्र किए गए जल सुख देते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे द्यु और पृथिवी ! सबको पवित्र करनेवाली तुम दोनों अपने रूप और बलसे सुशोभित होती हो, तथा अनन्त कालसे यज्ञका सम्पादन करती हो ॥६॥

दुःखसे पार करनेवाली विशाल तथा यज्ञको पूर्ण करती हुई तुम दोनों, हे द्यु और पृथिवी ! अपने भक्त की अभिलाषाओंको पूरा करती हो, तथा यज्ञको पूर्ण करती हो ॥७॥

मित्रके समान हित करनेवाले उस क्षेत्रपति देव की सहायतासे हम खेतोंको प्राप्त करें । वह देव हमें गाय और घोडोंको पुष्ट करनेवाला धन प्रदान करे और उन धनोंमेंसे हमें सुखी करे ॥१॥

हे क्षेत्र के स्वामी भूमिके स्वामी देव ! जिस प्रकार एक गाय दूध देती है, उसी तरह तू मिठाससे भरपूर और प्रवाहसे युक्त जल प्रदान कर । अथवा जिस प्रकार मीठे और पवित्र शीतल जल प्यासे मनुष्यको सुख देते हैं, उसी तरह सत्य कर्मोंका पालन करनेवाले देवगण हमें सुख दें ॥२॥

५७३ मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥

५७४ शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥

५७५ शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद् दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

५७६ अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥ ६ ॥

अर्थ- [५७३] (ओषधी) ओषधि वनस्पतियां (**नः मधुमतीः**) हमारे लिए मिठाससे भरपूर हों । (**द्यावः आपः अन्तरिक्षं**) द्यु, जल और अन्तरिक्ष (**नः मधुमत् भवतु**) हमारे लिए मधुर हों । (**क्षेत्रस्य पतिः नः मधुमान् अस्तु**) क्षेत्रका स्वामी भूमि देव हमारे लिए मधुरतासे युक्त हो, तथा (**अरिष्यन्तः**) किसी तरहसे हिंसित न होते हुए हम (**एनं अनु चरेम**) इस क्षेत्रपतिका अनुसरण करें ॥३॥

[५७४] (**वाहाः शुनं**) घोडे आदि वाहन हमारे लिए सुखकारी हों, (**नरः शुनं**) मनुष्य हमारे लिए सुखकारी हों, (**लाङ्गलं शुनं कृषतु**) हल सुखपूर्वक हमारे खेतोंको जोते । (**वरत्रा शुनं बध्यन्तां**) जुवे आदि सुखपूर्वक बांधे जायें (**अष्ट्रां शुनं उत् इङ्गय**) चाबुक भी मिठाससे युक्त होकर चलाये जायें ॥४॥

[५७५] हे (**शूनासीरौ**) शुना और सीर ! तुम दोनों (**इमां वाचं जुषेथां**) इस वाणीको सुनो, तुमने (**दिवि यत् पयः चक्रथुः**) द्युलोकमें जो जल उत्पन्न किया है, (**तेन**) उस जलसे (**इमां उप सिंचतम्**) इस भूमिको सींचो ॥५॥

शुना सीर- शुनः इन्द्रः सीरः वायुः इति शौनकः। शुनः वायुः सीरः आदित्यः इति निरुक्तः (नि ९, ४०)

[५७६] हे (**सुभगे सीते**) उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली भूमि ! (**अर्वाची भव**) हम पर कृपा करनेवाली हो। (**त्वा वन्दामहे**) तेरी हम वन्दना करते है, (**यथा**) ताकि तू (**नः सुभगा अससि**) हमें उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली हो (**यथा**) ताकि (**नः सुफला अससि**) उत्तम फलोंको देनेवाली हो ॥६॥

भावार्थ- ओषधी-वनस्पतियां हमारे लिए मिठाससे भरपूर हों । द्यु, जल और अन्तरिक्ष हमारे लिए मधुर हों । भूमि भी हमारे लिए मधुरतासे युक्त हो और हम किसी भी तरहसे हिंसित न होते हुए क्षेत्रपतिका अनुसरण करें ॥३॥

घोडे आदि वाहन हमारे लिए सुखकारी हों, मनुष्य हमारे लिए सुखकारी हों, हल सुखपूर्वक चलाये जाएं, जुए आदि उत्तम रीतिसे बांधे जायें तथा बैलों पर चाबुक आदि जो उठाये जायें, वे अत्याचार करनेके लिए न होकर मिठाससे भरे हुए हों ॥४॥

हे इन्द्र और वायु ! तुमने द्युलोकमें जिस उत्तम जलका निर्माण किया है, उस जलसे इस भूमिको सींचों ॥५॥

हे उत्तम ऐश्वर्यशाली भूमे ! तू हम पर कृपा कर। हम तेरी वन्दना करते हैं । तू हमारे लिए उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली तथा उत्तम फल देनेवाली हो ॥६॥

५७७ इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥
५७८ शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥ ८ ॥

[५८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः, सूर्यो वाऽऽपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा ।
छन्दः- त्रिष्टुप्, ११ जगती ।]

५७९ समुद्राद्रूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १ ॥
५८० वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥ २ ॥

अर्थ- [५७७] (इन्द्रः सीतां निगृह्णातु) इन्द्र हलकी मूठ पकडे, (पूषा तां अनु यच्छतु) पूषा देव उसकी निगरानी रखे, तब (सा पयस्वती) वह भूमि उत्तम धान्य तथा जलसे भरपूर होकर (उत्तरां उत्तरां समां) प्रत्येक वर्ष (नः दुहां) हमारे लिए धान्यादि दुहे ॥७॥

[५७८] (फालाः नः भूमिं शुनं वि कृषन्तु) हलके फाल हमारी भूमिको सुखपूर्वक जोतें । (कीनाशाः वाहैः शुनं अभि यन्तु) किसान अपने बैलोंके साथ सुखपूर्वक चलें । (पर्जन्यः) मेघ (मधुना पयोभिः) अपने मिठास तथा जलोंसे (शुनं) हमारे लिए सुखकारी हो, तथा (शुनासीरा) इन्द्र और वायु ! (अस्मासु शुनं धत्तं) हमें सुख प्रदान करें ॥८॥

[५८]

[५७९] (समुद्रात् मधुमान् ऊर्मिः उत् आरत्) समुद्रसे मीठी लहर ऊपर उठी, वह (अंशुना) सोमके साथ (अमृतत्वं उप आनट्) अमरताको प्राप्त हुई । (घृतस्य यत् गुह्यं नाम अस्ति) घीका जो गुप्त नाम है, वही (देवानां जिह्वा) देवोंकी जीभ और (अमृतस्य नाभिः) अमृतकी नाभि है ॥१॥

[५८०] (वयं) हम (घृतस्य नाम प्र ब्रवाम) घृतकी प्रशंसा करें । (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नमोभिः धारयाम) नमस्कारोंसे इसे धारण करें । (शस्यमानं ब्रह्मा उप शृणवत्) हमारे द्वारा गाये जानेवाले स्तोत्रोंको ब्रह्मा सुने । (चतुः शृंगः गौरः एतत् अवमीत्) चार सींगोंवाले गौरने इस जगत्को बनाया ॥२॥

भावार्थ- इन्द्र भूमिको समृद्ध बनानेके लिए हल चलाये, पोषक देव पूषा भूमिकी निगरानी रखे । तब उत्तम धान्य एवं जलसे समृद्ध होकर वह भूमि हमें प्रति वर्ष उत्तम धान्य प्रदान करे ॥७॥

हलके फाल हमारी भूमिको अच्छी तरह जोतें, किसान अपने बैलोंके साथ सुखसे रहें । मेघ भी समय समय पर जल बरसाकर हमें सुख प्रदान करें, इस प्रकार इन्द्र और वायु हमें हर तरहसे सुखी करें ॥८॥

अध्यात्मपक्षमें - हृदयरूपी समुद्रसे जो लहरें उठती हैं, वे सोमके स्थान मस्तिष्कमें जाकर पहुंचती हैं । घृतका एक गुह्यनाम वीर्य भी है, यह वीर्य ही अमृततत्त्व है और यही वीर्य देवों अर्थात् इन्द्रियोंके लिए जिव्हा अर्थात् रस रूप है ॥१॥

हम इस वीर्यरूपी घृतकी प्रशंसा करें, इस जीवनरूपी यज्ञमें हम नम्र होकर इस वीर्यको धारण करें । इन हमारी स्तुतियोंको परमात्मा सुने । उसी चार वेद रूपी सींगोंवाले तेजस्वी परमात्माने इस जगत्को बनाया ॥२॥

५८१ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥ ३ ॥
५८२ त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४ ॥
५८३ एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [५८१] (**अस्य चत्वारि श्रृंगाः**) इस देवके चार सींग (**त्रयः पादाः**) तीन पैर (**द्वे शीर्षे**) दो सिर और (**अस्य सप्त हस्तासः**) इसके सात हाथ हैं। यह (**वृषभः**) बलवान् देव (**त्रिधा बद्धः**) तीन स्थानोंपर बंधा हुआ (**रोरवीति**) शब्द करता है, वह (**महः देवः**) महान् देव (**मर्त्यान् आ विवेश**) मनुष्योंमें प्रविष्ट है ॥३॥

[५८२] (**पणिभिः**) पणियोंके द्वारा (**गवि त्रिधा हितं**) गायोंमें तीन प्रकारसे रखे हुए (**गुह्यमानं घृतं**) गुप्त घृतको (**देवासः अनु अविन्दन्**) देवोंने जान लिया। उनमेंसे (**एकं इन्द्रः जजान**) एकको इन्द्रने उत्पन्न किया, (**एकं सूर्यः जजान**) दूसरेको सूर्यने उत्पन्न किया, तथा (**एकं**) तीसरेको देवोंने (**स्वधया**) अपनी शक्तिके द्वारा (**वेनात् निष्टतक्षुः**) तेजस्वी अग्निसे पैदा किया ॥४॥

[५८३] (**हृद्यात् समुद्रात्**) रमणीय समुद्रसे (**एताः**) ये धारायें (**शतव्रजाः**) सैकडों मार्गोंसे (**रिपुणा न अवचक्षे**) शत्रुकी दृष्टिमें न पडते हुए (**अर्षन्ति**) बह रही हैं। मैं (**घृतस्य धाराः**) घीकी उन धाराओंको (**अभि चाकशीमि**) देख रहा हूँ। (**आसां मध्ये**) इन घृतकी धाराओंके बीचमें (**हिरण्ययः वेतसः**) स्वर्णके समान तेजस्वी अग्नि है ॥५॥

भावार्थ- अग्निपक्षमें - इस यज्ञकी अग्निके चारवेद चार सींग हैं, प्रातः, मध्यान्ह और सायं ये तीन सवन इसके तीन पैर हैं, ब्रह्मादिन और प्रवर्ग्य ये दो इसके सिर हैं, सात छन्द ही इस यज्ञाग्नि के सात हाथ हैं, वह यज्ञाग्नि मंत्र, ब्राह्मण और कल्पइन तीन स्थानों पर बंधा हुआ है। वह महान् देव अग्नि सब स्थानोंमें व्याप्त है। **सूर्यपक्षमें** - चार दिशायें इस सूर्यके चार सींग हैं, प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन इस सूर्यके तीन पैर हैं, दिन-रात या दक्षिणायन-उत्तरायण ये दो सिर हैं, सातरंगकी किरणें इस सूर्यके साथ हाथ हैं। भूमि, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीन स्थानोंमें बंधा हुआ यह सूर्यदेव शब्द करता है। ऐसा यह महान् देव सर्वत्र गमन करता है ॥३॥

प्राणियोंने घृतको दूध, दही और मक्खन के रूपमें गौमें छुपा दिया था। उस बातको विद्वानोंने जान लिया। इन्द्रने दूधको जाना, सूर्यने दहीको जाना और अग्निने घृतको जान लिया ॥४॥

हृदयरूपी समुद्रसे निकलकर सैकडों नाडियोंमें यह तेजरूपी घृतकी धारा बह रही है, पर इन धाराओंको कोई देख नहीं सकता, केवल मैं अर्थात् आत्मा ही इन्हें देख सकता है। आत्माकी देखरेखमें ही ये तेजकी धारायें नाडियोंमें बहा करती हैं। इन नाडियोंमें बहनेवाली धाराओंमें तेजस्वी अग्निकी शक्ति है। इसी अग्निके कारण ये नाडियां अपना काम करती हैं ॥५॥

५८४ सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ६ ॥
५८५ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ७ ॥
५८६ अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ८ ॥
५८७ कन्याइव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते ॥ ९ ॥

अर्थ- [५८४] (**अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः**) हृदयमेंसे निकलकर तथा मनके द्वारा पवित्रकी गई ये तेजकी धारायें (**धेनाः सरितः न**) आनन्द देनेवाली नदियोंके समान (**सम्यक् स्रवन्ति**) अच्छी तरह बहती है । (**क्षिपणोः ईषमाणाः मृगाः इव**) शिकारीसे डरकर भागनेवाले हिरणोंके समान (**एते घृतस्य धाराः**) ये घीकी धारायें (**अर्षन्ति**) तेजीसे बह रही हैं ।.६॥

[५८५] (**प्र अध्वने सिन्धोः इव शूघनासः**) नीची जगह पर बहनेवाले नडियोंके जलके समान शीघ्रगामी, (**वातप्रमियः**) वायुके समान बलशाली, (**ऊर्मिभिः पिन्वमानः**) लहरोंके कारण बढनेके कारण (**अरुषः वाजी न काष्ठाः भिन्दन्**) तेजस्वी घोडेके समान अपनी मर्यादाओंको तोडती हुई ये (**घृतस्य यह्वाः धाराः**) घृतकी बडी बडी धारायें (**पतयन्ति**) गिरती हैं ॥७॥

[५८६] जिस तरह (**समना कल्याण्यः स्मयमानासः योषाः इव**) समान मनवाली हितकारिणी, हंसती हुई स्त्रियां अपने पतियोंके पास जाती हैं, उसी प्रकार ये घृतकी धारायें (**अग्निं अभि प्रवन्त**) अग्निकी तरफ जाती हैं । (**घृतस्य धाराः**) ये घी की धारायें (**समिधः नसन्त**) प्रदीप्त हुई अग्निकी तरफ जाती हैं, (**ताः जुषाणः**) उन धाराओंका सेवन करता हुए यह (**जातवेदाः**) अग्नि (**हर्यति**) आनन्दित होता है ॥८॥

[५८७] (**यत्र सोमः सूयते**) जहां सोमरस निचोडा जाता है, (**यत्र यज्ञः**) जहां यज्ञ होता है, (**तत्**) वहां (**घृतस्य धाराः अभिपवन्ते**) वहां ये घी की धारायें बहती हैं। (**वहतुं एतवै उ**) विवाहके लिए जानेवाली (**कन्याः इव**) कन्यायें जिस तरह (**अञ्जि अञ्जानाः**) अलंकार आदि धारण करके अपना तेज प्रकट करती हैं, उसी तरह इन धाराओंको मैं (**अभि चाकशीमि**) देखता हूँ ॥९॥

भावार्थ- हृदयमेंसे निकलनेवाली नाडियोंके अन्दर बहनेवाली रक्तरूपी तेजकी धारायें मनके उत्तम विचारोंसे पवित्र होकर बहती हैं । मनके विचारोंका परिणाम नाडियोंमें बहनेवाले रक्त पर भी पडता है । उत्तम विचारोंसे रक्त शुद्ध होता है और दुष्ट विचारोंसे अशुद्ध होता है ये रक्त की धारायें नाडियोंमें इतनी तेजीसे बहती हैं कि जिस प्रकार किसी शिकारीसे डर कर हिरण भागते हैं ॥६॥

नाडियोंमें बहनेवाली रक्तकी धाराओंका वेग ऐसा है कि जिस तरह नीची जगह पर जलप्रवाह बहता है । ये धारायें वायुके वेगके समान शक्तिशाली हैं । कभी कभी जब इन रक्तकी धाराओंमें इतनी लहरें उठती हैं, कि ये अपनी मर्यादा को तोड देती है । कभी कभी मनुष्यको इतना हर्ष हो जाता है कि उसके शरीरमें रक्तकी लहरें बहुत बढ जाती है और रक्तका प्रवाह बहुत वेगवान् हो जाता है, तब नाडियां रक्तके वेग को सहनेमें असमर्थ हो जाती हैं, लिहाजा रक्त नाडियोंको फाडकर बहने लगता है ॥७॥

जिस तरह कल्याण करनेवाली, तथा अपने पति पर मन लगानेवाली स्त्रियां मुस्कराती हुई अपने पतियोंके पास जाती हैं, उसी तरह ये नाडियां अग्निरूपी आत्माके अधिष्ठान हृदयकी तरफ जाती हैं । ये धारायें जीवित हृदयकी तरफ ही जाती हैं, मृतकी तरफ नहीं, इन शुद्ध रसोंका सेवन करके शरीरस्थ आत्मा हर्षित होती है ॥८॥

५८८ अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजि- मस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥ १० ॥

५८९ धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रित- मन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृत- स्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥ ११ ॥

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ- [५८८] हे मनुष्यो ! तुम देवोंके लिए (**सुस्तुतिं अभि अर्षत**) उत्तम स्तुतियोंको करो । हे देवो ! तुम (**अस्मासु**) हमें (**गव्यं आजिं**) गौसमूह, विजय, (**भद्रा द्रविणानि धत्त**) कल्याणकारी धनोंको प्रदान करो । (**नः इमं यज्ञं**) हमारे इस यज्ञको (**देवता नयत**) देवों तक पहुंचाओ । (**घृतस्य मधुमत् धाराः**) घी की मीठी धारायें (**पवन्ते**) बह रही हैं ॥१०॥

[५८९] हे परमात्मन् ! (**ते धामन्**) तेरे ही तेजमें (**विश्वं भुवनं अधिश्रितं**) सारे भुवन आश्रित हैं । (**यः**) जो तेरे मधुररस (**समुद्रे अन्तः**) समुद्रके अन्दर (**हृदि अन्तः**) हृदयके अन्दर (**आयुषि**) अन्नमें (**अपां अनीके**) जलोंके अन्दर (**समिथे**) तथा संग्राममें (**आभृतः**) भरा पडा है, (**ते तं मधुमन्तं ऊर्मि**) तेरे उस मधुरता से भरे रसको (**अश्याम**) हम भोगें ॥११॥

भावार्थ- जहां सोमरस निचोडे जाते हैं, जहां यज्ञ होता है, वहीं ये घी की धारायें बहती हैं । जिस तरह कन्यायें विवाहके लिए जाते समय अलंकारसे सजकर तेज बिखेरती चलती हैं, उसी तरह ये घृतकी धारायें तेजसे युक्त हैं ॥९॥

हे मनुष्यो ! तुम इन देवोंकी स्तुति करो । हे देवो ! तुम हमें गाय, विजय और कल्याणकारी धन प्रदान करो, तथा हमारे द्वारा किए जानेवाले यज्ञको देवोंतक पहुंचाओ । ये घीकी मीठी धारायें बह रही हैं ॥१०॥

हे परमात्मन् ! तेरे ही तेजमें ये सारे भुवन आश्रित हैं । तेरे ही कारण समुद्र, हृदय, अन्न, जलादि पदार्थोंमें मधुरतासे भरे रसोंकी लहरें उठ रही हैं, हम उस मधुर रसको प्राप्त करें ॥११॥

॥ चतुर्थ मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

चतुर्थ मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अकर्म ते स्वपसो ३९
अकारि ब्रह्म समिधान ९७
अक्षोदयच्छवसा क्षाम २२३
अग्निरीशे बृहतः १४१
अग्निरीशे वसव्यस्या ५६१
अग्निर्होता नो अध्वरे १५५
अग्ने कदा त आनुषम् ९९
अग्ने तमद्याऽश्वं न १२५
अग्ने मृळ महां असि ११७
अग्रं पिबा मधूनां ४९०
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये ५५०
अच्छा कविं नृमणो १७३
अच्छा यो गन्ता नाधमानं ३१४
अच्छा वोचेय शुशुचानम् १९
अतृष्णुवन्तं वियतं २२२
अत्या वृधस्नु रोहिता २३
अत्राह ते हरिवस्ता २५९
अदाभ्यो भुवनानि ५४४
अध द्युतानः पित्रोः ८१
अध श्वेतं कलशं गोभिः ३०५
अधा मातुरुषसः ३५
अधा यथा नः पितरः ३६
अधा ह यद् वयं ३४
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य १२६
अनश्वो जातो अनभीशुः ४१०
अनायतो अनिबद्धः १४९, १५४
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन ८५
अनु कृष्णे वसुधिती ५०३
अनु द्वा जहिता ३३४
अपो यदद्रि पुरुहूत १७२
अपो वृत्रं वव्रिवांसं १७१
अपोषा अनसः सरत् ३२५
अपो ह्योषामजुषन्त ३४७
अप्रतीतो जयति सं ५२०
अभि त्वा गोतमा ३६३
अभि प्र दद्रुर्जनयो २२४
अभि प्रवन्त समनेव ५८६
अभि न आ ववृत्स्व ३४३
अभी ष णः सखीनाम् ३४२
अभूदु वो विधते ३९३
अभद् देवः सविता ५४८
अभ्यर्षत सुष्टुतिं ५८८
अभ्रातरो न योषणो ७६
अमूरो होता न्यस्मदि ८८
अया ते अग्ने समिधा ७१
अयमिह प्रथमो धायि ९८
अयं वां परि षिच्यते ५०७
अयं चक्रमिषणत् १९९
अयं पन्था अनुवित्तः २०७
अयं योनिश्चकृमा यं ४२
अयं यः सृञ्जये पुरो १५८
अयं वृतश्चायते १९४
अयं वो यज्ञ ऋभवः ३९२
अयं शृण्वे अध जयन् १९५
अरं म उस्रयाम्णे ३७८
अर्चामि ते सुमतिं ६४
अर्यमणं वरुणं मित्रं २४
अर्वाचीनो वसो भव ३६८
अर्वाची सुभगे भव ५७६
अवद्यमिव मन्यमाना २११
अव यच्छ्येनो अस्वनीत् ३०३
अवर्त्या शुन आन्त्राणि २१९
अव स्य शूराध्वनो १६६
अवासृजन्त जिव्रयो २२१
अवीवृधन्त गोतमा ३६६
अश्वेव चित्रारुषी ५३५
अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य ४५७
असिक्न्यां यजमानो २००
अस्थुरु चित्रा उषसः ५२४
अस्मभ्यं तां अपा ३५२
अस्माकं जोष्यध्वरं १२३
अस्माकं त्वा मतीनां ३६९
अस्माकं धृष्णुया रथो ३५३
अस्माकमत्र पितरस्त ४६६
अस्माकमत्र पितरो १३

अस्माकमित् सु श्रृणुहि २६२
अस्माकमुत्तमं कृधि ३५४
अस्मां अवन्तु ते शतं ३४९
अस्मां अविड्ढि विश्वहेन्द्र ३५१
अस्मां इहा वृणीष्व ३५०
अस्मे इन्द्राबृहस्पती ५०९
अस्मे रायो दिवेदिवे ११५
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि २६१
अस्य घा वीर ईवतो १५९
अस्य श्रिये समिधानस्य ८६
अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य ६
अस्वप्न जस्तरणयः ६८
अस्वापयद् दभीतये ३३६
अहन्निन्द्रो अदहदग्निः ३०८
अहमपो अपिन्वं ४६२
अहमिन्द्रो वरुणस्ते ४६१
अहं ता विश्वा चकरं ४६४
अहं पुरो मन्दसानो २९६
अहं भूमिमददामार्यायाऽह २९५
अहं मनुरभवं सूर्यः २९४
अहं राजा वरुणो ४६०
आकेनिपापो अहभिः ४८८
आगन् देव ऋतुभिः ५४७
आगन्नभूणामिह रत्नधेयम् ४०२
आ तू न इन्द्र वृत्रहन् ३५५
आ तो यातं दिवो ४८०
आ दधिक्राः शवसा ४३६
आ दस्युघ्ना मनसा १७४
आदाय श्येनो अभरत् ३००
आदित् पश्चा बुबुधाना १८
आदिद्ध नेम इन्द्रियं २७९
आ द्यां तनोषि ५८०
आ न इन्द्राबृहस्पती ५०८
आ न इन्द्रो दूरादा २३१
आ न इन्द्रो हरिभिः २३२
आ नपातः शवसो ३९५
आ नः स्तुत उप वाजेभिः ३११
आ नो बृहन्ता बृहतीभिः ४५८
आपप्रुषी विभावरि ५३९
आ पर्वतस्य मरुतां ५५८
आप्रा रजांसि दिव्यानि ५४३
आभिष्टे अद्य १२८
आ यात्विन्द्रो दिव २४४
आ यात्विन्द्रोऽवस उप २४२
आ यूथेव क्षुमति ३८
आरे अस्मदमतिमारे १३८
आवहन्त्यरुणी ज्योतिषागान् १५२
आ वाजा यातोप न ३९४
आ वां वहिष्ठा इदते १५३
आ वां सहस्रं हरय ४९२
आ वो राजानम् ४१
आशुं दधिक्रां तमु ४३७
अ शुं दूतं विवस्वतो १०१
आशुण्वते अदृपिताय ४३
आ सत्यो यातु मघवां १६५
आ हि ष्मा याति ३१२
इदमु त्यत् पुरुतमं ५२३
इदमु त्यन्महि महां ८०
इदं वामास्ये हविः ५०६
इदं मे अग्ने कियते ७७
इदाहनः पीतिमृत ३८९
इध्मं यस्मै जभरच्छश्रमाणो १४०
इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भयः ५५२
इन्द्रमिवेदुभये वि ४४१
इन्द्रां कामा वसूयन्तो १७९
इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास २९३
इन्द्र सीता नि गृहणातु ५७७
इन्द्रवायू अयं सुतः ४९५
इन्द्रश्च वायवेपा ४९८
इन्द्रश्च सोमं पिबतं ५२१
इन्द्रा को वां वरुणा ४४८
इन्द्रा बृहस्पति वय ५१०
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युं ४५१
इन्द्रा युव वरुणा भूत ४५२
इन्द्रा ह यो वरुणा ४४९
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा ४५०
इमं यज्ञं त्वमस्माकं २३३
इमा इन्द्रं वरुणं मे ४५६
इह त्वं सूनो सहसो २२
इह त्वा भर्या चरेत् ६५
इह प्रजामिह रयिं ४१८
इह प्रयाणमस्तु वां ४९६
इहहे यद् वां समना ४७५, ४८२
इहोप यात शवसो ४०१
ईक्षे रायः क्षयस्य २३८
उच्छन्तरिद्य चितयन्त ५२५
उत ग्ना अग्निरध्वर १२०
उत त्यं पुत्र मग्रुवः ३३१
उत त्या तुर्वशायदू ३३२
उत त्या यजताहरी १६२
उत त्या सद्य आर्या ३३३
उत दास कौलितरं ३२९
उत दासस्य वर्चिनः ३३०
उत नूनं यदिन्द्रियं ३३८
उत माता महिषं २१७
उत वाजिनं पुरुनि ४२८
उत शुष्णस्य धृष्णुया ३२८
उत सखास्यश्विनोः ५३६
उत सिन्धुं विबाल्यं ३२७
उत स्मा सद्य इत् ३४७
उत स्मासु प्रथमः ४३२
उत स्मास्य तन्यतोः ४३४
उत स्मास्य द्रवतः ४४५
उत स्मास्य पनयन्ति ४३५

उत स्मा हि त्वामाहुरिन्	३४६
उत स्मैन वस्त्रमथिं न	४३१
उत स्य वाजा क्षिपणिं	४४६
उत स्य वाजी सहूरिः	४३३
उतो हि वां दात्रा सन्ति	४२७
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या	६०
उद् वां पृक्षासो	४८४
उप नो वाजः अध्वरम्	४१९
उप यो नमो नमसि	२४६
उरुं वां रथः परि	४७३
उशन्तु षु णः सुमना	२३४
उषो मघोन्या वह	५६२
ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य	८७
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो	१५१
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो	१४६
ऊर्ध्वो भव प्रति	६१
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो	३०४
ऋजोषी श्येनो ददमानो	२९९
ऋतं येमान ऋतमिद्	२७३
ऋतं वोचे नमसा	८२
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि	२७२
ऋतस्य हि शुरुधः	२७१
ऋतावानं विचेतसं	१००
ऋतेन ऋतं नियतं	४९
ऋतेन देवीरमृता	५२
ऋतेनाद्रिं व्यसन्	५१
ऋतेन हि ष्मा वृषभः	५०
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमः	४१४
ऋभमृभुक्षणो रयिं	४२३
ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो	३९०
एकं वि चक्र चमसं	४१३
एतदस्या अनः शये	३२६
एतद् घेदुत वीर्यम्	३२३
एता अर्षन्ति हृद्यात्	५८३
एता अर्षन्त्यललामवन्तीः	२१२
एता ते अग्न उचथानि	४०
एता विश्वा विदुषे	५६
एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिः	१८३
एभिर्नो अर्कैर्भवा	१२७
एभिर्भव सुमना अग्ने	५५
एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्	२२०
एवा न इन्द्रो मघवा	२०५
एवा पित्रे विश्वदेवाय	५१७
एवा वस्य इन्द्रः सत्यः	२५१
एवा सत्यं मघवाना	३१०
एवेदिन्द्राय वृषभाय	१८४
एष वां देवावश्विना	१६३
एष स्य भानुः	४८३
क इमं दशभिर्ममेन्द्रं	२८४
क उ श्रवत् कतमो	४६९
कथा कदस्या उषसो	२६८
कथा महामवृधत्	२६४
कथा महे पुष्टिंभराय	४७
कथा शर्धाय मरुतां	४८
कथा शृणोति हूयमानं	२६६
कथा सबाधः शशयानो	२६७
कथा ह तद् वरुणाय	४५
कद् धिष्ण्यासु वृधसानो	४६
कनीनकेव विद्रधे	३७७
कन्याइव वहतुं	५८७
कया तच्छृण्वे शच्या	२३९
कया निश्चत्र आ भुवत्	३४०
कविं शशासुः कवयः	३२
कविर्न निण्यं विदथानि	१६७
कस्ते मातरं विधवां	२१८
कस्त्वा सत्यो मदानां	३४१
का मर्यादा वयुना कद्ध	८४
का वां भूदुपमातिः	४७२
का सुष्टुतिः शवसः	२७५
किमादमत्रं सख्यं	२६९
किमादतासि वृत्रहन्	३२२
किमु ष्विदस्मै निविदो	२१३
कियत् स्विदिन्द्रो	१९७
किंमयः स्विच्चमस एष	४०४
किं स ऋधक् कृणवद्	२१०
किं नो अस्य द्रविणं	८३
कुत्साय शुष्णमशुषं	१७६
कुवित् स देवीः सनयो	५२६
कृणुष्व पाजः प्रसितिं	५७
कृणोत्यस्मै वरिवो य	२८०
कृतं चिद्धि ष्मा	१३१
कृष्णं त एम रुशतः	१०६
का अद्य नर्यो देवकाम	२८६
को अस्य वीरः सधमादं	२६५
को देवानामवो अद्या	२८८
को नानाम वचसा	२८७
को मृळाति कतम	४७०
को वामद्या करते	४७८
को वस्त्राता वसवः को	५५४
क्रतूयन्ति क्षितयो योग	२७८
क्व स्विदासां कतमा	५२८
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं	१९८
क्षेत्रस्य पतिना वयं	५७१
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तं	५७२
गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदम्	३०१
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय	२०१
गिरिर्न यः स्वतवां	२३६
गृष्टिः ससूव स्थविरं	२१६
गोमां अग्ने ऽविमां अश्वी	२५
घृतं न पूतं	१३०
चत्वारि शृङ्गा त्रयो	५८१
चित्तिमचित्तिं चिनवद्	३१
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा	३८३
तत् सु नः सविता	५६३
तद् देवस्य सवितुः	५४१

तद् वो दिवो ५३३
तद् वो वाजा ऋभवः ४१२
तमर्वन्तं न सानसिं १६०
तमिद् व इन्द्रं सुहवं १८०
तमिन्नरो वि ह्वयन्ते २७७
तमीं होतारमानुषक् १०२
तव त्ये अग्नि हरितो ९५
तव त्विषो जनिमत् १८७
तव भ्रमास आशुया ५८
तद स्वादिष्ठाऽग्ने १२९
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म २८९
तस्मिन्वेव समना ७८
तस्येदिह स्तवथ २४३
तं नो वाजा ऋभुक्षण ४२६
तं युवं देवावश्विना १६४
तं वां रथं वयं ४७६
तं शश्वतीषु मातृषु १०३
ता आ चरन्ति समना ५३०
ता इन्नवेव समना ५३१
त घा ता भद्रा उषसः ५२९
ता तू त इन्द्र महतो २५७
ता तू ते सत्या तुविनृम्ण २५८
ता ते गृणन्ति वेधसो ३६५
ता वां धियोऽवसे ४५५
तिग्मा यदन्तरशनिः १८१
तृषु यदन्ना तृषुणा १०८
ते गव्यता मनसा १५
ते मन्वत प्रथमं १६
ते मर्मृजत ददृवांसो १४
ते राया ते सवीर्यैः ११४
ते वो हृदे मनसे ४२०
ते स्याम ये अग्नये ११३
तोके हिते तनय ४५३
त्राता नो बोधि ददृशान २०२
त्रिधा हितं पणिभिः ५८२
त्रिरन्तरिक्षं सविता ५४५
त्रिरस्य ता परमा सन्ति ७
त्र्युदायं देवहितं यथा ४२१
त्वदग्ने काव्या त्वत् १३५
त्वद् वाजी वाजंभरो १३६
त्वदग्ने वाघते सुप्रणीतिः ३२
त्वमध प्रथमं जायमानो १९२
त्वया वयं सधन्यः ७०
त्वं चित्रः शम्या अग्ने ४४
त्वं नो अग्ने वरुणस्य ४
त्वं पिप्रुं मृगयं १७७
त्वं महां इन्द्र तुभ्यं १८६
त्वं महीमवनिं विश्वधेनां २२५
त्वं ह्येक ईशिष ३६१
त्वामग्ने प्रथमं १३७
त्वा युजा तव तत् सोम ३०६
त्वा युजा नि खिदत् ३०७
त्वां ह्यग्ने सदमित् १
त्वोतासं मघवन्निन्द्र ३१५
दधिक्राव्णः इदु नु ४४३
दधिक्राव्णः इष ऊर्जो ४४०
दधिक्राव्णो अकारिषं ४४२
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं ३५७
दश ते कलशानां ३७३
दिवश्चिद् घा दुहितरं ३२४
दिवो धर्ता भुवनस्य ५४२
दूतं वो विश्ववेदसं १०९
देवेभ्यो हि प्रथमं ५४९
देवी देवेभिर्यजसे ५६५
देवैर्नो देव्यदितिनि ५६०
द्रुहं जिघांसन् ध्वर. २७०
द्वादश द्यून् यदगोह्यस्य ३८५
द्विर्यं पञ्च जीजनन् ९४
धामन् ते विश्वं ५८९
धिषा यदि धिषण्यन्तः २४७
धुनेतयः सुप्रकेतं ५१३
नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो ३१६
न घा स मामप जोषं ३०२
न तं जिनन्ति बहवो २९०
न त्वा वरन्ते अन्यथा ३६२
न प्रमिये सवितुः ५५१
न यस्य वर्ता जनुषा २३७
न यस्य सातुर्जनितोरवारि ९३
न रेवता पणिना २९२
नहि ष्मा ते शतं ३४८
नापाभूत न वो ४००
नाहमतो निरया २०८
निर्धुवाणो अशस्तीः ५०२
नूनो रयिं पुरुवीरं ४८१
नू रोदसी अहिना ५५९
नू रोदसी बृहद्भिः ५६७
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान १८५, २०६, २३०, २४१, २५२, २६३, २७४, २८५
नेशत् तमो दुधितं १७
परायतीं मातरम् २०९
परि त्मना मितद्रुः ९१
परि त्रिविष्ट्यध्वरं १५६
परि वाजपतिः कविः १५७
पिपीळे अंशुर्मद्यो २६०
पिबो अश्वाः शुचद्रथा हि ४२२
पीनर्ये चक्रुः पितरा ३८१
पुनाने तन्वा मिथः ५६९
पुरु कुत्सानी हिवां ४६७
पुरोळाशं च नो घसो ३७०
पूर्वीरुषसः शरदश्च २२७
प्र ऋभुभ्यो दूतमिव ३७९
प्र तां अग्निर्बभसत् ७५
प्रति ते दूळभो रथो १२४
प्रति भद्रा अदृक्षत ५३८

प्रति ष्या सूनरी ५३४
प्रति स्पशो वि सृज ५९
प्र ते पूर्वाणि करणानि २२९
प्र ते बभ्रू विचक्षण ३७६
प्र ते वोचाम वीर्या ३६४
प्रत्यग्निरुष सामग्र मख्यद् १४५
प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा १५०
प्र पस्त्यामदितिं सिन्धुं ५५६
प्र ये धामानि पूर्व्याणि ५५५
प्रवता हि ऋतूनां ३४४
प्रवाच्यं वचसः किं मे ७९
प्र वामवोचमश्विना ४८९
प्र वां मही द्यवी ५६८
प्र शर्ध आर्त प्रथमं १२
प्र सु ष विभ्यो मरुतो २९७
प्राग्रुवो नभन्वो न २२६
प्रातः सुतमपिबो ४०७
बृहत्सुम्नः प्रसवीता ५४६
बृहस्पत इन्द्र वर्धत ५२२
बृहस्पतिः प्रथमं ५१५
बृहस्पते या परमा ५१४
बोधद्यन्मा हरिभ्यां १६१
भद्रं ते अग्ने सहसिन् १३३
भद्रा ते अग्ने स्वनीक ९२
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत २५०
भरद् यदि विरतो २९८
भिनद् गिरिं शवसा १८८
भुवोऽविता वामदेवस्य १८२
भूयसा वस्नमचरत् २८३
भूयामो षु त्वावतः ३६०
भूरिदा भूरिदेह नो ३७४
भूरिदा ह्यसि श्रुतः ३७५
भृमिश्चिद् घासि ३५६
मक्षू हि ष्मा गच्छथ ४७१
मच्चमचन ते मघवन् २१५
मधुमती रोषधीर्द्याव ५७३
मध्वः पिबतं मधुपेभिः ४८५
ममच्चन त्वा युवतिः २१४
मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य ४५९
महश्चकर्म्यर्वतः क्रतुप्रा ४३८
महश्चिदग्न एनसो १४३
मही द्यावापृथिवी इह ५६४
मही मित्रस्य साधथः ५७०
महो रुजामि बन्धुता ६७
मा कस्य यक्षं सदमित् ५३
मा निन्दत य इमां ७३
मा नो मर्धीरा भरा २४०
मां नरः स्वश्वा ४६३
य इन्द्राय सुनवत् २८१
य एक इच्च्या वयति १९०
यच्चिद्धि के पुरुषत्रा १४२
यच्चिद्धि शश्वतीं ३६७
यता सुजूर्णी रातिनी ८९
यत् तृतीयं सवनं ४०९
यत्र देवां ऋघायतो ३२०
यत्रोत बाधितेभ्यः ३१९
यत्रोत मर्त्याय कं ३२१
यत् संवत्समृभवो ३८२
यथा ह त्यद् वसवो १४४
यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां ३८०
यदा समर्य व्यचेत् २८२
यत्र इन्द्रो जुजुषे २५३
यस्त इध्मं जभरत् २६
यस्तस्तम्भ सहसा वि ५१२
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय २९
यस्ते भरादन्नियते २७
यस्त्वा दोषा य उषसि २८
यस्त्वामग्न इनधते १३९
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो ६६
यस्य त्वमग्ने अध्वरं ३०
यं सीमकृण्वन् तमसे १४७
यं सीमनु प्रवतेव ४२९
यः स्मारुन्धानो गध्या ४३०
यावयद् द्वेषसं त्वा ५३७
या वां सन्ति पुरुस्पृहो ५००
यासि कुत्सेन सरथम् १७५
युवं श्रियमश्विना देवता ४७७
युषामिद्धयवसे पूर्व्याय ४५४
यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यः ४१७
यूयं हि देवीर्ऋतयग्भिः ५२७
ये अश्विना ये पितरा ३९८
ये गोमन्तं वाजवन्तं ३९९
ये ते त्रिरहन् ५५३
ये देवासो अभवता ४०८
ये पायवो मामतेयं ते ६९
ये ह त्ये ते सहमाना ९६
ये हरी मेधयोक्था ३८८
यो अस्वस्य दधिक्राव्णो ४३९
यो देवो देवतमो २५५
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा २१
यो वः सुनोत्यभिपित्वे ४०६
रक्षा णो अग्ने तव ५४
रथेन पृथुपाजसा ४९४
रथं ये चक्रुः सुवृतं ३८६, ४११
रथं हिरण्यवन्धुम् ४९३
रयिं दिवो दुहितरो ५३२
राया वयं ससवांसो ४६८
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो २२८
वायमिन्द्र त्वे सचा ३५८
वयं नाम त्र ब्रवामा ५८०
ववक्ष इन्द्रो अमितम् १६९
वहन्तु त्वा मनोयुजो ५०४
वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि १४८
वामंवामं त आदुरे ३३९
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा ४९९

वायो शतं हरीणां ५०५
वायो शुक्रो अयामि ते ४९७
विदानासो जन्मनो ३९१
विदुष्टे विश्वा भुवनानि ४९५
विहि होत्रा अवीता ५०१
वि नो वाजा ऋभुक्षणः ४२५
वि यद् वरांसि २४९
वि यो ररप्श ऋषिभिः २३५
विश्वस्मात् सीमधमां ३०९
विश्वानि शक्रो नर्याणि १७०
विश्वा रोधांसि प्रवतश्च २५६
विश्वे चनेदना त्वा ३१८
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां २०
वि षाह्यग्ने गृणते १३४
वृषा वृषन्धि चतुरश्रि २५४
वेरध्वरस्य दूत्यानि १०५
वेषि ह्यध्वरीयताम् १२१
वेषद्वस्य दूत्यं १२२
वैश्वानराय मीळ्हुषे ७२
व्यकृणोत चमसं ४०३
व्यर्यमा वरुणश्चेति ५५७
शच्याकर्ता पितरा ४०५
शतमश्मन्मयीना पुरां ३३५
शतेना नो अभिष्टिभिः ४९१
शि नः सख्या १३२
शुनासीराविमां वाचं ५७५
शुनं नः फाला वि ५७८
शुनं वाहाः शुनं नरः ५७४
श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै ३१३
श्रेष्ठं वः पेशो अधि ४१६
स इत् क्षेति सुधित ५१९
स इद् राजा प्रतिजन्यानि ५१८
स इत् स्वपा भुवनेषु ५६६
सरवीयतामविता बोधि २०३
सखे सखायमभ्या ३
स घेदुतासि वृत्रहन् ३३७
स चेतयन्मनुषो ९
स जायत प्रथमः ११
सजोषस आदित्यैः ३९७
सजोषा इन्द्र वरुणेन ३९६
स नश्चित्राभिराद्रिवः ३५९
स तू नो अग्निर्नयतु १०
स ते जानाति सुमतिं ६२
सत्यमूचुर्नर एवा हि ३८४
सत्रा ते अनु कृष्टयो ३१७
सत्रा यदीं भार्वरस्य २४८
सत्रा सोमा अभवन् १९१
सत्राहणं दाधृषिं १९३
सत्वा भरिषो गविषो ४४४
स त्वं नो अग्नेऽवमो ५
सदग्ने अस्तु सुभगः ६३
स दूतो विश्वेदभि ८
सद्यो जातस्य ददृशानम् १०७
स भ्रातरं वरुणमग्न २
स मानुषीषु दूळभो ११८
समिन्द्रो गा अजयत् १९६
समुद्रादूर्मिर्मधुमां ५७९
सम्यक् स्रवन्ति सरितो ५८४
स वाज्यर्वा स ऋषिः ४१५
स विप्रश्चर्षणीनां ११६
स वृत्रहत्ये हव्यः स २७६
स वेद देव आनमं १११
स सद्य परि णीयते ११९
ससस्य यद् वियुता १०४
स सुष्टुभा स ऋक्वता ५१६
सहस्र व्यतीनां ३७१
सहस्रा ते शता वयं ३७२
स हि वेदा वसुधितिं ११०
स होता सेदु दुत्यं ११२
सं यत् त इन्द्र मन्यवः ३४५
साम द्विबर्हा महि ७४
सिन्धुर्ह वां रसया ४७४
सिन्धोरिव प्राध्वने ५८५
सुकर्माणः सुरुचो ३७
सुप्राव्यः प्राशुषाळेष २९१
सुविरस्ते जनिता १८९
सूर उपाके तन्वं १७८
सेदृभवो यमवथ ४२४
सोममिन्द्रा बृहस्पती ५११
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने ९०
स्तुत इन्द्रो मघवा २०४
स्थूरस्य रायो बृहतो २४५
स्वध्वरासो मधुमन्तो ४८७
स्वर्यद् वेदि सुदृशीकम् १६८
हिरण्ययेन पुरुभू ४७९
हंसः शुचिषद् वसुः ४४७
हंसासो ये वां मधुमन्तो ४८६

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

पञ्चमं मण्डलम्

[१]

[ऋषिः- बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१ अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ १ ॥
२ अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ- [१] (आयतीं उषासं प्रति धेनुं इव) आती हुई उषाओंके समय जिस प्रकार गायोंको जगाया जाता है उसी प्राकर (जनानां समिधा अग्निः अबोधि) मनुष्योंकी समिधाओंसे यह अग्नि प्रज्वलित हुआ है । प्रज्वलित हुए इस अग्निकी (उज्जिहानाः यह्वाः भानवः) ऊपरकी तरफ जलनेवाली बडी बडी ज्वालायें (वयां इव) वृक्षोंकी शाखाओंके समान (नाकं अच्छ सिस्रते) आकाशकी तरफ सीधी जाती हैं ॥१॥

१ उषासं धेनुं इव जनानां समिधा अग्निः अबोधि- उषःकालमें उठनेवाली गायके समान यह अग्नि मनुष्योंके द्वारा लाई गई समिधाओंसे प्रज्वलित किया जाता है ।

[२] (देवान् यजथाय) देवोंकी पूजा करनेके लिए (होता अबोधि) देवोंको बुलाकर लानेवाला यह अग्नि प्रज्वलित किया जाता है । (प्रातः) प्रातःकालमें प्रज्वलित होकर (सुमनाः अग्निः) उत्तम मनवाला यह अग्नि (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊपरकी तरफ जाता है । तब (समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि) प्रदीप्त हुए इस अग्निका तेजस्वी सामर्थ्य दिखाई देता है । उसके बाद (महान् देवः तमसः निरमोचि) यह महान् देव अन्धकारसे छूट जाता है । ॥२॥

१ सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात्- उत्तम मनवाला मनुष्य हमेशा उत्तम होता है ।

२ महान् देवः तमसः निरमोचि- तब वही मनुष्य महान् देव बनकर अज्ञानान्धकारसे छूट जाता है।

भावार्थ- उषःकालमें जिस प्रकार गायें उठाई जाती हैं उसी प्रकार समिधाओंमें यज्ञाग्नि भी प्रज्वलित की जाती है । तब उस अग्निकी बडी बडी ज्वालायें आकाशमें उसी प्रकार सीधी जाती है, जिस प्रकार पेडकी शाखायें ॥१॥

देवोंकी पूजा करनेके लिए मनुष्य इस यज्ञाग्निको प्रातःकाल प्रज्वलित करते हैं, तब वह प्रसन्न होकर ऊपरकी तरफ जलता है, इस प्रकार उसका तेजस्वी रूप प्रकट होता है और चारों ओरका अन्धकार छंट जाता है ॥२॥

३ यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद् दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥

४ अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥ ४ ॥

५ जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥ ५ ॥

६ अग्निर्होता न्यसीदद् यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ ६ ॥

अर्थ- [३] (यत्) जब (**ई शुचिः अग्निः**) यह पवित्र अग्नि (**शुचिभिः गोभिः**) अपनी तेजस्वी किरणोंके साथ (**अंक्ते**) प्रकट होता है, तब वह (**गणस्य रशनां अजीगः**) जगत्के व्यवहारका लगाम अपने हाथमें ले लेता है । (**आत्**) उसके बाद उससे (**वाजयन्ती दक्षिणा युज्यते**) बल बढानेवाली आहुति संयुक्त होती है, तब (**उत्तानां ऊर्ध्वः**) श्रेष्ठोंमें भी सर्वश्रेष्ठ वह अग्नि उस आहुतिको (**जुहूभिः अधयत्**) अपनी जिह्वाओंके द्वारा पीता है ॥३॥

[४] (**सूर्ये चक्षूंषि इव**) जिस प्रकार लोगोंकी आंखें सूर्योदयकी प्रतीक्षा करती हैं, उसी प्रकार इस (**देवयतां मनांसि अग्निं अच्छा सं चरन्ति**) देवोंके उपासकोंके मन अग्निके चारों ओर घूमते हैं । (**यत्**) जब (**ई**) अग्निको (**विरूपे**) अनेक रूपवाली द्यावापृथ्वी (**उषसा सुवाते**) उषाके साथ पैदा करती हैं, तो (**श्वेतः वाजी**) तेजस्वी और बलवान् अग्नि (**अह्नां अग्रे**) दिनोंके प्रारंभमें (**जायते**) प्रकट होता है ॥४॥

[५] (**जेन्यः**) उत्पन्न किए जाने योग्य यह अग्नि (**अह्नां अग्रे जनिष्ट**) दिनोंके प्रारंभमें उत्पन्न हुआ, तथा (**हितेषु वनेषु हितः अरुषः**) हितकारी लकडियोंमें रखे जाने पर यह और प्रज्वलित हुआ । तब (**होता यजीयान् अग्निः**) यज्ञको पूर्ण करनेवाला तथा पूज्य अग्नि (**दमे दमे सप्त रत्ना दधानः**) प्रत्येक घरमें सात रत्नोंको धारण करता हुआ (**नि ससाद**) अपने स्थान पर जाकर बैठता है ॥५॥

[६] (**यजीयान् होता अग्निः**) पूज्य तथा यज्ञ पूर्ण करनेवाला अग्नि (**मातुः उपस्थे**) माता अर्थात् पृथ्वीकी गोदमें तथा (**सुरभा लोके**) सुगंधित स्थान पर (**नि असीदत्**) बैठता है । (**युवा कविः पुरुनिः ष्ठः**) तरुण, ज्ञानी तथा अनेक स्थानों पर रहनेवाला (**ऋतावा धर्ता**) सत्यपालक तथा सबको धारण करनेवाला अग्नि (**कृष्टीनां मध्य इद्धः**) मनुष्योंके बीचमें प्रदीप्त होता है ॥६॥

भावार्थ- उस पवित्र अग्निकी किरणोंसे प्रकट होते ही संसारका सब कार्य-व्यवहार उस अग्निके आधार पर चलने शुरु हो जाते हैं । तभी उस अग्निमें आहुतियां पडनी शुरु हो जाती हैं, जिन्हें वह अपनी ज्वालाओं द्वारा पीता है ॥३॥

जिस प्रकार लोग उठकर सूर्योदयकी प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार देवोंकी पूजा करनेवाले अग्निके प्रकट होनेकी प्रतीक्षा करते हैं । द्यावापृथ्वी इस अग्निको दिनके प्रारम्भमें उत्पन्न करते हैं ॥४॥

प्रथम यह अग्नि धीरे जलता है पर जब समिधाएं उसमें डाल दी जाती हैं, तब यह बहुत जोरसे जलने लगता है । यह प्रत्येक घरमें सात रत्नोंको लेकर बैठता है । घर-शरीर, सात रत्न- दो आंख, दो कान, दो नाक, एक मुंह ॥५॥

यह अग्नि भूमिमें खोदे हुए तथा आहुतिके द्रव्योंसे सुगंधित वेदिमें बैठता है । तथा वहां यज्ञके आधार इस अग्निको मनुष्य प्रज्वलित करते हैं ॥६॥

७ प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥ ७ ॥
८ मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥ ८ ॥
९ प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥ ९ ॥
१० तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत् ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥ १० ॥

अर्थ- [७] (**यः ऋतेन रोदसी ततान**) जिसने अपने दैवी सामर्थ्यसे द्यावापृथ्वीका विस्तार किया, (**वाजिनं घृतेन नित्यं मृजन्ति**) जिस बलवानको घीसे रोज प्रदीप्त करते हैं, (**त्यं विप्रं**) उस ज्ञानी (**साधुं होतारं**) कार्य सिद्ध करनेवाले तथा देवोंको बुलाकर लानेवाले अग्निकी (**अध्वरेषु**) यज्ञोंमें मनुष्य (**नमोभिः ईळते**) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥७॥

[८] (**मार्जाल्यः**) सबको शुद्ध करनेवाला, (**दमूनाः**) शत्रुओंका दमन करनेवाला, (**कविप्रशस्तः अतिथिः नः शिवः**) ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अतिथिके समान पूज्य, हम सबका कल्याण करनेवाला, (**सहस्रशृंगः**) हजारों ज्वालाओंवाला (**वृषभः**) सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, (**तद् ओजाः**) ओजस्वी यह अग्नि (**स्वे मृज्यते**) अपने स्थान पर प्रदीप्त किया जाता है । हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**अन्यान् विश्वान्**) दूसरे सभी प्राणियोंको तू (**सहसा प्र-असि**) अपने बलसे पराजित करता है ॥८॥

[९] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**यस्मै आविः बभूथ**) जिसके लिए तू प्रकट हुआ, उसके लिए तू (**सद्यः अन्यान् अति एषि**) शीघ्र ही दूसरोंको पराजित कर देता है । (**चारुतमः**) अत्यन्त सुन्दर (**ईळेन्यः**) अत्यन्त स्तुत्य (**वपुष्यः**) सुन्दर रूपवाला (**विभावा**) तेजस्वी (**प्रियः**) प्रिय तू (**मानूषीणां विशां**) मानवी प्रजाओंके लिए (**अतिथिः**) अतिथिके समान पूज्य है ॥९॥

[१०] हे (**यविष्ठ अग्ने**) बलवान् अग्ने ! (**क्षितयः**) प्रजायें (**तुभ्यं**) तेरे लिए (**अन्तितः आ उत दूरात्**) पास और दूरसे (**बलिं भरन्ति**) आहुति देती हैं । तू (**भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि**) जोरसे तेरी स्तुति करनेवालेकी उत्तम बुद्धिको जान । हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**ते बृहत् शर्म**) तेरा महान् आश्रय (**महि भद्रं**) पूज्य और कल्याणकारी है ॥१०॥

भावार्थ- उसी अग्निने अपने सामर्थ्यसे द्यु और पृथ्वी लोकका विस्तार किया, अतः ऐसे सामर्थ्यशाली अग्निको उपासक घीसे प्रदीप्त करते हैं तथा यज्ञोंमें उत्तम स्तोत्रोंसे इसकी स्तुति करते हैं ॥७॥

सबको शुद्ध करनेवाला, अतिथिवत् पूज्य, ज्ञानियों द्वारा पूजित, हजारों ज्वालाओंवाला अग्नि अपने स्थान वेदिमें प्रदीप्त किया जाता है । प्रदीप्त होकर वह सबको अपनी शक्तिसे पराजित करता है ॥८॥

जिस पर इस अग्निकी कृपा होती है, उसके सभी शत्रु नष्ट हो जाते हैं । इसलिए सुन्दर और तेजस्वी इस अग्निकी सब लोग अतिथिके समान पूजा करते हैं ॥९॥

पास और दूर रहती हुई सभी प्रजाएं इस बलवान् अग्निको बलि देती हैं। यह भी अपने उपासककी मनकी भावनाओंको जानता है और उसे अपना कल्याणकारी और महान् आश्रय प्रदान करता है ॥१०॥

११ अद्य रथं भानुमो भानुमन्त—मग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान् पथीनामुर्व१न्तरिक्ष—मेह देवान् हविरद्याय वक्षि ॥ ११ ॥
१२ अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ १२ ॥

[२]

[ऋषिः- कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा; २, ९ वृशो जानः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १२ शक्वरी ।]

१३ कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥ १ ॥
१४ कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धा—ऽपश्यं जातं यदसूत माता ॥ २ ॥

अर्थ- [११] हे (**भानुमः अग्ने**) तेजस्वी अग्ने ! (**अद्य**) आज (**भानुमन्तं समन्तं रथं**) तेज पूर्ण तथा सुदृढ रथ पर दूसरे (**यजतेभिः तिष्ठ**) पूज्य देवोंके साथ बैठ, तथा (**विद्वान्**) सब जाननेवाला तू (**देवान्**) उन देवोंको (**हविरद्याय**) हवि खानेके लिए (**उरु अन्तरिक्षं**) विस्तृत अन्तरिक्षके (**पथीनां**) उत्तम मार्गोंके द्वारा (**इह वक्षि**) यहां इस यज्ञमें ले आ ॥११॥

[१२] हम (**कवये मेध्याय वृषभाय वृष्णे**) ज्ञानी, बुद्धिमान्, बलवान् और कामना पूरी करनेवाले अग्निके लिए (**वन्दारु वचः अवोचाम**) स्तुतिपरक मंत्र बोलते हैं । (**गविष्ठिरः**) गायोंकी इच्छा करनेवालोंको गाय देनेवाला उपासक (**अग्नौ नमसा स्तोमं अश्रेत्**) अग्निमें नमनपूर्वक अपने स्तोत्रको उसी प्रकार स्थापित करता है, जिस प्रकार (**रुक्मं उरुव्यं चं दिवि इव**) तेजस्वी और अत्यधिक गतिशील सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया है ॥१२॥

[२]

[१३] (**युवतिः माता**) तरुणी माता (**समुब्धं कुमारं**) सम्यक् रूपसे गुप्त अपने पुत्रको (**गुहा बिभर्ति**) अपने गर्भमें धारण करती है, (**पित्रे न ददाति**) पिताको नहीं देती । (**अरतौ**) प्रदीप्त होने पर (**निहितं**) गुप्त रूपमें स्थित इस कुमारको लोग (**पुरः पश्यन्ति**) साक्षात् देखते हैं, और तब (**जनासः**) मनुष्य (**अस्य अनीकं न मिनत्**) इसके तेजको नष्ट नहीं कर सकते ॥१॥

[१४] हे (**युवते**) तरुणी ! (**पेषी त्वं**) मथी जानेवाली तू (**एतं कं कुमारं बिभर्षि**) इस सुखस्वरूप कुमारको धारण करती है । इसे (**महिषी जजान**) अत्यन्त पूजनीय माताने उत्पन्न किया था । (**गर्भः**) यह गर्भ (**पूर्वीः शरदः ववर्ध**) अनेक वर्षों तक बढा, और (**यत् माता असूत**) जब माताने इसे उत्पन्न किया, तब (**जातं अपश्यन्**) इस उत्पन्न हुए कुमारको सबने देखा ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू आज हवि खानेके लिए अन्तरिक्षसे उत्तम मार्गोंसे चलकर अपने रथसे पूजा के योग्य देवोंको बुला ला ॥११॥

हम इस ज्ञानी, बुद्धिमान् और अपने उपासकोंकी कामना पूर्ण करनेवाले अग्निकी विनम्रतासे स्तुति करते हैं । इस अग्निमें सारे स्तोत्र उसी प्रकार स्थित हैं, जिस प्रकार द्युलोकमें तेजस्वी और गतिशील सूर्य ॥१२॥

युवती माता अरणि गुप्त रूपमें स्थित अपने कुमार अग्निको अपने अन्दर ही धारण करती है, इसके पिता ऋत्विजों को नहीं देती । पर जब वही प्रदीप्त होकर सामने आ जाता है, तो सभी प्रजाएं इसे देखती हैं और तब इसके तेजको कोई नष्ट नहीं कर पाता । इस पूरे सूक्त में अरणि स्थित गुप्त अग्निका आलंकारिक वर्णन है ॥१॥

१५ हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत् किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥ ३ ॥
१६ क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद् यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद् युवतयो भवन्ति ॥ ४ ॥
१७ के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥
१८ वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥ ६ ॥

अर्थ- [१५] मैंने (आरात् क्षेत्रात्) पासके स्थानसे (हिरण्यदन्तं शुचिवर्णं) स्वर्णके समान ज्वालावाले तेजस्वी वर्णवाले तथा (आयुधा मिमानं) अपने शस्त्ररूपी ज्वालाओंको प्रकट करनेवाले अग्निको (अपश्यं) देखा, और देखकर (अस्मै) इसे (अमृतं वि पृक्वत्) अमृततुल्य हविको (ददानः) दिया, अतः (अन्-इन्द्राः अन् उक्थः) इन्द्रको न माननेवाले तथा स्तुति न करनेवाले (मां किं कृणवन्) मेरा क्या करेंगे ? ॥३॥

१ अस्मै अमृतं ददानः अनिन्द्राः मां किं कृणवन्- इस अग्निको मैंने अमृततुल्य हवि प्रदान की है, अतः इन्द्रको न माननेवाले मेरा क्या करेंगे ? अर्थात् अग्निके उपासकका नास्तिक जन कुछ भी नहीं बिगाड सकते ।

[१६] (चरन्तं यूथं न सुमत् पुरु शोभमानं) विचरते हुए पशुओंके झुण्डके समान स्वयं बहुत सुशोभित (क्षेत्रात् सनुतः) अपने स्थान अरणिमें गुप्त अग्निको मैंने (अपश्यं) देखा है । (सः अजनिष्ट) जब वह अग्नि उत्पन्न हो जाता है, तब (ताः न अगृभ्रन्) लोग उसकी ज्वालाओंको पकड नहीं सकते, क्योंकि तब उसकी (पलिक्नी इत् युवतयः भवन्ति) क्षीण ज्वालायेंभी युवावस्थावाली हो जाती हैं ॥४॥

[१७] (येषां गोपाः अरणः चित् न आस) जिनका रक्षक गतिमान् अग्नि भी नहीं होता ऐसे (के) कौन जन (मे मर्यकं गोभिः वि यवन्त) मेरे राष्ट्रको गायोंसे पृथक् कर सकते हैं ? (ये ईं जगृभुः) जो इस राष्ट्रपर आक्रमण करते हैं, (ते अव सृजन्तु) वे नष्ट हो जायें । रक्षा के लिए (चिकित्वान्) ज्ञानवान् अग्नि (नः पश्वः उप आजाति) हमारे पशुओंके पास आता है ॥५॥

[१८] (वसां राजानं) प्राणियोंके स्वामी और (जनानां वसतिं) मनुष्योंमें आश्रयस्थान इस अग्निको (अरातयः) शत्रुओंने (मर्त्येषु नि दधुः) मर्त्यलोकमें छिपा कर रख दिया, (अत्रेः ब्रह्माणि) अत्रि ऋषिके स्तोत्र (तं अवसृजन्तु) उस अग्निको मुक्त करें, (निन्दितारः निन्द्यासः भवन्तु) तथा अग्निकी निन्दा करनेवाले स्वयं निन्दाके योग्य हों ॥६॥

भावार्थ- मथन करने योग्य यह अरणी इस सुखदायक कुमार अग्निको धारण करती है, फिर यही मथे जाने पर अग्निको उत्पन्न करती है । अनेक वर्षों तक यह अरणि बढती रही, साथ ही उसके अन्दर स्थित अग्नि भी बढता रहा । पर जब माता अरणि के मथने पर यह प्रकट हुआ, तब लोगोंने इस अग्निको देखा ॥२॥

मैंने पास ही तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त अग्निको देखा और उसमें आहुति दी है, अर्थात् उसकी उपासना की है, अतः नास्तिक और भक्तिहीन मनुष्य मेरा कुछ भी नहीं बिगाड सकते ॥३॥

ज्ञानी लोग अरणिस्थ गुप्त अग्निके भी महत्त्वको जानते हैं । पर साधारण लोग उसके महत्त्वको तभी जानते हैं, जब कि वह उत्पन्न हो जाता है और उसकी ज्वालायें शक्तियुक्त हो जाती हैं । क्योंकि उस समय उस अग्निको वे पकड नहीं सकते ॥४॥

ऐसा कौन मनुष्य है कि जो अग्निकी सहायताके बिना ही हमारे राष्ट्रमें गौवोंका नाश कर राष्ट्रको गौवोंसे अलग कर दे । यदि कोई ऐसा करता है तो अग्नि हमारे पशुओंकी रक्षा करने के लिए हमारे पास आता है और उस शत्रुको नष्ट कर देता है ॥५॥

१९ शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥ ७ ॥
२० हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥ ८ ॥
२१ वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्नि- राविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥ ९ ॥
२२ उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्ने- स्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥ १० ॥

अर्थ- [१९] **(अग्ने)** हे अग्ने ! **(हि सः अशमिष्ट)** चूंकि उस ऋषिने तेरी स्तुति की, इसलिए तूने **(निदितं चित् शुनः शेपं)** अच्छी तरहसे बंधे हुए शुनः शेपको **(सहस्रात् यूपात्)** हजारों यूपस्तंभसे **(अमुंचः)** छुडाया **(एव)** उसी प्रकार हे **(होतः चिकित्वः)** यज्ञ करनेवाले तथा ज्ञानी अग्ने ! तू **(इह निषद्य)** यहां बैठकर **(अस्मत् पाशान् वि मुमुग्धि)** हमसे बंधनोंको छुडा ॥७॥

[२०] **(व्रतपाः देवानां इन्द्रः मे उवाच)** व्रतोंके पालक देवोंके राजा इन्द्रने मुझसे कहा है कि हे **(अग्ने)** अग्ने ! तू **(हृणीयमानः मत् अप ऐयेः)** नाराज होकर मुझसे दूर चला गया है, क्योंकि **(विद्वान् त्वा चचक्ष)** विद्वान् इन्द्रने तुझे देखा और **(तेन अनुशिष्टः अहं आगां)** उसके कहनेपर मैं आया हूँ ॥८॥

[२१] **(अग्निः)** अग्नि **(बृहता ज्योतिषा विभाति)** महान् तेजसे प्रकाशित होता है तथा **(महित्वा)** अपने सामर्थ्यसे **(विश्वानि आविः कृणुते)** सभी पदार्थोंको प्रकट करता है । **(दुरेवाः अदवीः मायाः प्र सहते)** दुःखदायक असुरोंकी मायाको वह नष्ट करता है तथा **(रक्षसे विनिक्षे श्रृंगे शिशीते)** राक्षसोंके विनाशके लिए अपनी ज्वालायें तीक्ष्ण करता है ॥९॥

[२२] **(अग्नेः तिग्मायुधाः स्वानासः)** अग्निकी तीक्ष्ण शस्त्रोंके समान शब्द करनेवाली ज्वालायें **(रक्षसे हन्तवै)** राक्षसोंको मारनेके लिए **(दिवि सन्तु)** द्युलोक प्रकट हों । **(मदे चित् अस्य भामाः रुजन्ति)** आनन्दित होनेपर इसकी ज्वालायें राक्षसोंको पीडा देती हैं तथा **(अदेवीः परिबाधः न वरन्ते)** आसुरी बाधायें इस अग्निका निवारण नहीं कर सकतीं ॥१०॥

भावार्थ- प्राणियोंके स्वामी तथा सबके जीवनके आधार इस अग्निको शत्रुओंने मर्त्यलोकमें छिपाकर रख दिया था, उसे अग्निके स्तोत्रोंने छुडाया । इस अग्निकी निन्दा करनेवाले स्वयं ही निन्दाके योग्य होते हैं ॥६॥

हे अग्ने ! स्तुत होकर तूने जिस प्रकार शुनःशेपको हजारों तरहके बंधनसे छुडाया था, उसी प्रकार तू हमें भी बंधनोंसे मुक्त कर ॥७॥

इन्द्रसे मुझे मालूम हुआ कि अग्नि मुझसे नाराज होकर दूर चला गया है, अतः इन्द्रने आज्ञा पाकर अग्निको प्रसन्न करनेके लिए मैं अग्निके पास गया ॥८॥

यह अग्नि अपने तेज और सामर्थ्यसे स्वयं प्रकाशित होकर सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रकट करता है । वह असुरोंकी दुःखदायक मायाको नष्ट करके राक्षसोंको नष्ट करनेके लिए भी अपनी ज्वालायें तीक्ष्ण करता है । अग्निसे राक्षसरूपी रोगजन्तु नष्ट हो जाते हैं, इसीलिए प्रतिदिन हवन करनेका विधान है ॥९॥

इस अग्निकी तीक्ष्ण ज्वालायें राक्षसोंके हननके लिए द्युलोकमें चमकती हैं और राक्षसोंको मारती हैं । उस समय इसकी ज्वालाओंको कोई रोक नहीं सकता ॥१०॥

२३ एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥ ११ ॥
२४ तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्वर्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन् बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥ १२॥

[३]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवता- अग्निः, ३ मरुद्रुद्रविष्णवः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ विराट् ।]

२५ त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥ १ ॥
२६ त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद् दम्पती समनसा कृणोषि ॥ २ ॥

अर्थ- [२३] हे (**तिविजात अग्ने**) अनेक स्वरूपवाले अग्ने ! (**विप्रः धीरः सु-अपाः**) बुद्धिमान्, धीर और उत्तम कर्म करनेवाले मैंने (**ते एतं स्तोमं अतक्षं**) तेरे लिए इस स्तोत्रको उसी प्रकार बनाया है, (**रथं न**) जिस प्रकार रथ बनाया जाता है । हे (**अग्ने देव**) अग्ने ! (**यदि त्वं हर्यः**) यदि तू इस स्तोत्रकी कामना करे, तो हम (**एना**) इस तेरी प्रसन्नतासे (**स्वर्वतीः अपः जयेम**) सुखदायक ज्ञानको प्राप्त करें ॥११॥

[२४] (**तुविग्रीवः वृषभः वावृधानः**) बहुत ज्वालाओंवाला, बलवान् तथा वृद्धिको प्राप्त होनेवाला अग्नि (**अर्यः**) श्रेष्ठ पुरुषको (**अ-शत्रु देवः सं अजाति**) शत्रुरहित धन प्रदान करता है, (**इति**) इस प्रकार (**इमं अग्निं**) इस अग्निके बारेमें (**अमृता अवोचन्**) अमर देव कहते हैं, वह अग्नि (**बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसत्**) यज्ञशील मनुष्यको सुख देवे, वह निश्चयसे (**हविष्मते मनवे शर्म यंसत्**) यज्ञशील पुरुषके लिए सुख देवे ॥१२॥

[३]

[२५] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**यत् त्वं जायसे**) जब तू उत्पन्न होता है, तो (**त्वं वरुणः**) तू वरुण होता है, (**यत् सुमिद्धः भवसि त्वं मित्रः**) जब तू प्रदीप्त होता है, तब तू मित्र होता है, हे (**सहसः पुत्र**) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (**त्वे विश्वे देवाः**) तुझमें ही सब देव स्थित हैं, (**त्वं दाशुषे मर्त्याय इन् द्रः**) तू दाता मनुष्यके लिए शत्रुका विनाशक है ॥१॥

[२६] हे (**स्वधावन् अग्ने**) अन्नवान् अग्ने ! (**यत् त्वं कनीनां अर्यमा भवसि**) जब तू कन्याओंका स्वामी होता है, तब तू (**गुह्यं नाम बिभर्षि**) गुप्त नामको धारण करता है । (**यत्**) क्योंकि तू (**दम्पती समनसा कृणोषि**) पति पत्नीको समान मनवाला करता है । इसलिए सब तुझे (**सुधितं मित्रं न**) उत्तम मित्रके समान (**गोभिः अंजन्ति**) गायके घी से सींचते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे सर्वज्ञ अग्ने ! हमने तेरे लिए ये स्तोत्र बनाये हैं । यह तू स्वीकार कर, यदि तू इन स्तोत्रोंको स्वीकार करेगा, तो हम भी तेरी कृपासे ज्ञानवान् हो सकेंगे ॥११॥

यह बहुत बलवान् अग्नि श्रेष्ठ पुरुषोंको शत्रुरहित धन प्रदान करता है, ऐसा सभी अमर देव कहते हैं । वह यज्ञ करनेवाले मनुष्यको हर तरहका सुख देता है ॥१२॥

जब यह उत्पन्न होता है, तो सबको यह प्रिय (वरणीय) लगता है, तथा जब यह प्रदीप्त होता है, तब वह सूर्यके समान चमकने लगता है इसीमें सब देव स्थित हैं, तथा यह दानी मनुष्यके शत्रुका नाश करता है ॥१॥

विवाह संस्कारमें अग्नि कन्याओंका प्रथम स्वामी होता है, उस समय उसका नाम 'अर्यमा' होता है, फिर वह पतिपत्नीके हृदयोंको परस्पर मिलाता है, इससे प्रसन्न होकर वे पतिपत्नी इस अग्निको घीसे सींचते हैं ॥२॥

२७ तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत् ते जनिम चारु चित्रम् ।
पदं यद् विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥
२८ तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥ ४ ॥
२९ न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान् न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद् देव मर्तान् ॥ ५ ॥
३० वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।
वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥ ६ ॥

अर्थ- [२७] हे अग्ने ! (**तव श्रिये**) तेरी शोभा बढानेके लिए (**मरुतः मर्जयन्त**) मरुद्गण तुझे शुद्ध करते हैं । हे (**रुद्र**) रुद्र ! (**ते यत् जनिम**) तेरा जो जन्म है वह (**चारू चित्रम्**) सुन्दर और विलक्षण है । (**विष्णोः**) विष्णुका (**यत् उपमं पदं निधायि**) जो उपमा देने योग्य स्थान निश्चित किया गया है, (**तेन**) उससे तू (**गोनां गुह्यं नाम**) जलोंके छिपे हुए नामकी (**पासि**) रक्षा करता है ॥३॥

[२८] हे (**देव**) तेजस्वी अग्ने ! (**सुदृशः देवाः**) उत्तम रूपवान् देवगण (**तव श्रिया पुरु दधानाः**) तेरे समृद्धिसे और अधिक तेज धारण करते हुए (**अमृतं सपन्त**) अमृतको प्राप्त करते हैं । (**आयोः दशस्यन्त**) घृतकी हवि देनेकी इच्छा करनेवाले (**शंसं**) स्तोत्र कहते हुए (**उशिजः मनुषः**) कामना करनेवाले मनुष्य (**होतारं अग्नि नि षेदुः**) होता अग्निकी सेवा करते हैं ॥४॥

१ **सुदृशः श्रिया पुरु दधानाः अमृतं सपन्त**- उत्तम तेजस्वी लोग समृद्धिके कारण और अधिक तेजको प्राप्त कर अमृत पाते हैं । **आयु-घृत 'आयुर्वै घृतं'**

[२९] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**त्वत् पूर्वः**) तुझसे पहले (**होता यजीयान् न**) यज्ञ करनेवाला और पूज्य कोई नहीं था। (**परः**) आगे भी (**काव्यैः न**) तुझ जैसा स्तोत्रोंके द्वारा प्रशंसनीय कोई नहीं होगा । हे (**स्वधावः**) अन्नसे समृद्ध अग्ने! (**यस्याः विशः अतिथिः भवासि**) जिस मनुष्यका तू अतिथि होता है, हे (**देव**) अग्ने! (**सः यज्ञेन मर्तान् वनवत्**) वह यज्ञके द्वारा पुत्रपौत्रादिकोंको प्राप्त करता हैं ॥५॥

१ **त्वत् पूर्वः यजीयान् न, परः काव्यैः न**- इस अग्निसे पहले न कोई स्तुतिके योग्य था और न आगे होगा।

२ **यस्याः अतिथिः भवासि स मर्तान् वनवत्**- जो इस अग्निकी अतिथिके समान पूजा करता है, वह पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होता है ।

[३०] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**वसूयवः वयं**) धनकी कामना करनेवाले हम (**हविषा बुध्यमानाः**) हविसे तुझे प्रज्वलित करते हुए तथा (**त्वा ऊताः**) तुझसे सुरक्षित होकर (**वनुयाम**) धनसे संयुक्त हों । (**वयं समर्ये विदथेषु अह्नां**) हम छोटे युद्धों और बडे बडे संग्रामोंमें प्रतिदिन विजय प्राप्त करें तथा (**सहसः पुत्र**) हे बलके पुत्र ! (**वयं**) हम (**राया**) धनसे समृद्ध होकर (**मर्तान्**) पुत्रपौत्रादियोंको प्राप्त करें ॥६॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तेरा तेज बढाने के लिए वायु तुझे प्रदीप्त करके तुझे शुद्ध करते हैं । हे रुद्र ! तेरा जन्म सुन्दर और विलक्षण है । जो विष्णु अर्थात् सूर्यका स्थान द्युलोक है, उसमें जलोंका स्थान छिपा हुआ है ॥३॥

जो मनुष्य स्तोत्रपूर्वक इस अग्निमें घीकी आहुति डालते हैं और इस अग्निकी सेवा करते हैं, वे देवोंके समान तेज और समृद्धिसे युक्त होकर अमृतको प्राप्त करते हैं ॥४॥

इस अग्निसे पहले न कोई स्तुत्य था और भविष्यमें कोई होगा ही । यह अद्वितीय है । जो इस अग्निका अतिथिके समान सत्कार करता है वह पुत्र पौत्रादियोंसे युक्त होता है ॥५॥

३१ यो न आगो अभ्येनो भरा-त्यधीदघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेता-मग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥ ७ ॥
३२ त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥
३३ अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नो-ऽग्ने कदाँ ऋतचिद् यातयासे ॥ ९ ॥
३४ भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद् देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥ १० ॥

अर्थ- [३१] (**यः नः आगः एनः अभि भराति**) जो हमारे प्रति अपराध और पाप करता है, (**अघं**) उस पापको यह अग्नि (**अघशंसे इत् अधि दधात्**) उस पापीमें ही स्थापित कर दे । हे (**चिकित्वः अग्ने**) ज्ञानी अग्ने ! (**यः नः द्वयेन मर्चयति**) जो हमें पाप और अपराध इन दोनोंसे कष्ट पहुंचाता है, तू (**एतां अभिशस्तिं जहि**) उस इस पापीको मार डाल ॥७॥

[३२] हे (**देव अग्ने**) तेजस्वी अग्ने ! (**अस्याः व्युषि**) इस रात्रीके समाप्त होकर उषाके प्रकट होनेपर (**यत्**) जब (**पूर्वे त्वा**) प्राचीन लोग तुझे (**दूतं कृण्वानाः**) दूत बनाकर तुझमें (**हव्यै अयजन्त**) हवियोंसे यज्ञ करते हैं, तब (**संस्थे वसुभिः मर्तैः इध्यमानः**) श्रेष्ठ मनुष्योंके द्वारा प्रज्वलित होता हुआ (**रयीणां ईयसे**) धनोंके साथ जाता है ॥८॥

[३३] (**पुत्रः पितरं इव**) जिस प्रकार पुत्र पिताकी सेवा करता है, उसी प्रकार हे (**सहसः सूनो**) बलके द्वारा उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (**यः विद्वान् ते ऊहे**) जो विद्वान् तेरी सेवा करता है, उसे तू (**अव स्पृधि**) संकटोंसे पार कर और (**योधि**) पापसे अलग कर । हे (**चिकित्वः अग्ने**) ज्ञानी अग्ने ! (**नः कदा अभिचक्षसे**) तू हम पर कृपादृष्टिसे कब देखेगा ? और (**ऋतचित्**) ऋतका पालक होकर (**कदा यातयासे**) हमें सन्मार्गपर प्रेरित करेगा ? ॥९॥

[३४] हे (**वसो पिता**) निवास करानेवाले पालक अग्ने ! (**यदि तत् जोषयासे**) जब तू उस हविका सेवन करता है, तब उपासक (**वन्दमानः**) तेरी स्तुति करता हुआ (**भूरि नाम दधाति**) तेरा बहुत यश धारण करता है । (**कुवित् सहसा**) अत्यधिक बलशाली (**चकानः**) सुन्दर होता हुआ (**वावृधानः अग्निः**) बढता हुआ अग्नि (**देवस्य सुम्नं वनुते**) उपासकको सुख देता है ॥१०॥

भावार्थ- हे अग्ने ! धनकी इच्छा करनेवाले हम तुझे अच्छी तरह प्रज्ज्वलित करके तथा तुझसे सुरक्षित होकर धन प्राप्त करें तथा युद्धोंमें शत्रुओंको जीतें और पुत्रपौत्रादिकोंको प्राप्त करें ॥६॥

हे अग्ने ! जो हमें लक्ष्य करके पाप और अपराध करता है, वह पाप उसीको नष्ट करे, तथा जो हमें सताता है, उसे यह अग्नि नष्ट कर दे ॥७॥

रात्रीके समाप्त होकर उषाके प्रकट होनेपर उत्तम श्रेष्ठ जन इस अग्निको प्रज्वलित करके उसमें हवियां डालते हैं, तब यह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे युक्त होकर प्रज्ज्वलित होता है ॥८॥

हे अग्ने ! पुत्र जैसे पिताकी सेवा करता है, उसी प्रकार जो तेरी सेवा करता है, उसे तू संकटोंसे पार कराकर पापोंसे पृथक् कर । उस पर अपनी कृपादृष्टि रखकर उसे सन्मार्ग पर प्रेरित कर ॥९॥

जब यह अग्नि वेदिमें प्रतिष्ठित होता है, तब उपासक इसकी स्तुति करता हुआ अग्निके बहुत यशका वर्णन करता है, तब अग्नि भी बढता हुआ उस उपासकको सुख प्रदान करता है ॥१०॥

३५ त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन् रिपवो जनासो ऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥ ११ ॥
३६ इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन् वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥ १२ ॥

[४]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवताः- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३७ त्वामग्ने वसुपतिं वसूना मभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमा ऽभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ १ ॥
३८ हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्य स्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २ ॥

अर्थ- [३५] (**स्तेनाः अदृश्रन्**) यहां बहुतसे चोर दिखाई देते हैं तथा (**अज्ञातकेताः जनासः**) अनजाने मनुष्य (**वृजिनाः रिपवः अभूवन्**) कुटिल और शत्रु हो गए हैं अतः (**अंग यविष्ठ अग्ने**) हे प्रिय और बलवान् अग्ने ! तू (**जरितारं विश्वानि दुरिता अति पर्षि**) स्तोताको सम्पूर्ण संकटोंसे पार कर ॥११॥

[३६] हे अग्ने ! (**यामासः इमे त्वत् रिक् अभूवन्**) स्तुति करनेवाले ये उपासक तेरी ओर हुए हैं (**वा इत्**) और मैंने भी (**वसवे**) निवास करानेवाले तुझ अग्निसे (**तत् आगः अवाचि**) वह अपराध स्पष्ट कर दिया है। (**अयं अग्निः वावृधानः**) यह अग्नि प्रज्वलित होते हुए (**नः अभिशस्तये नाह परा दात्**) हमें निन्दकोंके लिए न सौंपे और (**नि रिषते**) न हिंसकोंके लिए हमें सौंपे ॥१२॥

[४]

[३७] हे (**राजन् अग्ने**) तेजस्वी अग्ने ! (**वसूनां वसुपतिं त्वां**) उत्तम उत्तम धनोंके स्वामी तेरी (**अध्वरेषु अभि प्र मन्दे**) यज्ञोंमें स्तुति करता हूँ। (**वाजयन्तः**) बलकी इच्छा करनेवाले हम (**त्वया वाजं अभि जयेम**) तेरी सहायतासे बलको प्राप्त करें और (**मर्त्यानां पृत्सुतीः अभि स्याम**) मनुष्योंकी सेनाओंको जीतें ॥१॥

[३८] (**हव्यवाट् अजरः अग्निः नः पिता**) हवियोंको ले जानेवाला जरारहित अग्नि हमारा पालक है। (**विभुः विभावा अस्मे सुदृशीकः**) वह व्यापक और तेजस्वी अग्नि हमें सुन्दर लगता है। हे अग्ने ! तू हमें (**सुगार्हपत्याः इषः दिदीहि**) उत्तम गृहस्थीके योग्य अन्न दे और (**अस्मद्यक् श्रवांसि संमिमीहि**) हमारी ओर कीर्तिको प्रेरित कर ॥२॥

भावार्थ- हे बलवान् ! यहां इस संसारमें बहुतसे मनुष्य दुष्ट, कुटिल, अज्ञात और शत्रु हैं, उन सबसे तू उपासकको बचा और उसे सब संकटोंसे पार करा ॥११॥

स्तुति करनेवाले ये उपासक उस अग्निके सामने उपस्थित हो गए हैं और मैंने भी उस अग्निके सामने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है अतः अब वह हम पर कृपा करे और हमें निन्दकों और हिंसकोंके हाथोंमें न सौंपे ॥१२॥

हे अग्ने ! तू श्रेष्ठतम धनोंका स्वामी है अतः मैं तेरी स्तुति करता हूं। बलकी इच्छा करनेवाले हम तुझसे बल प्राप्त करें और दुष्ट शत्रुओंको जीतें ॥१॥

यह जरारहित हविभक्षक अग्नि व्यापक, तेजस्वी, सुन्दर और मनुष्योंका पालक है। वह अग्नि में गृहस्थाश्रमको चलाने के लिए उत्तम अन्न दे और हमें यश भी प्रदान करे ॥२॥

३९ विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां   शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे   स देवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥

४० जुषस्वाग्न इळया सजोषा   यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद   आ च देवान् हविरद्याय वक्षि ॥ ४ ॥

४१ जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण   इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या   शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ५ ॥

४२ वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व   वयः कृण्वानस्तन्वे स्वायै ।
पिपर्षि यत् सहसस्पुत्र देवान्   त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥ ६ ॥

४३ वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम   वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वा—स्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७ ॥

अर्थ- [३९] हे मनुष्यो ! (**मानुषीणां विशां विश्पतिं**) मानवी प्रजाओंके पालक (**कविं**) ज्ञानी (**शुचिं पावकं घृतपृष्ठं**) स्वयं शुद्ध रहकर दूसरोंको पवित्र करनेवाले, तेजस्वी शरीरवाले (**होतारं विश्वविदं अग्निं**) देवोंको बुलाकर लानेवाले सर्वज्ञ अग्निको (**दधिध्वं**) तुम धारण करो । (**सः**) वह (**देवेषु वार्याणि वनते**) देवोंमें वरण करने योग्य धन हमें देवे ॥३॥

[४०] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**इळया सजोषाः**) वेदिमें प्रीतिपूर्वक प्रज्वलित होकर (**सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानः**) सूर्यकी किरणोंके साथ संयुक्त होकर (**जुषस्व**) हमारी हविका सेवन कर । हे (**जातवेदः**) सर्वज्ञ अग्ने ! (**नः समिधं जुषस्व**) हमारी समिधाओंका सेवन कर और (**हविः अद्याय देवान् आ वक्षि**) हविको खाने के लिए देवोंको ले आ ॥४॥

[४१] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**जुष्टः दमूनाः**) प्रीतियुक्त, उदार मनवाला (**दुरोणे विद्वान् अतिथिः**) घरमें विद्वान् अतिथिके समान पूज्य तू (**नः इमं यज्ञं उप याहि**) हमारे इस यज्ञमें आ, तथा (**विश्वाः अभियुजः**) सभी आक्रमणकारियोंको (**विहत्य**) मारकर (**शत्रूयतां भोजनानि आ भर**) शत्रुता करनेवाले मनुष्योंका अन्न हमारे पास ले आ ॥५॥

[४२] (**स्वायै तन्वे वयः कृण्वानः**) अपने शरीरके लिए अन्न प्राप्त करते हुए तू (**वधेन दस्युं प्र चातयस्व**) शस्त्रसे दस्युको मार । (**यत्**) क्योंकि हे (**सहसःपुत्र**) बलके पुत्र अग्ने ! तू (**देवान् पिपर्षि**) देवोंको तृप्त करता है । हे (**नृतम अग्ने**) श्रेष्ठ नेता अग्ने ! (**सः**) वह तू (**वाजे अस्मान् पाहि**) युद्धमें हमारी रक्षा कर ॥६॥

[४३] हे (**पावक भद्रशोचे अग्ने**) पवित्र करनेहारे, कल्याणकारी तेजवाले अग्ने ! (**वयं ते**) हम तेरी (**उक्थैः हव्यैः विधेम**) स्तोत्रों और हवियोंसे सेवा करते हैं । तू (**अस्मे विश्ववारं रयिं सं इन्व**) हमें सबके द्वारा वरणीय धन दे, (**अस्मे इत् विश्वानि द्रविणानि धेहि**) हमें ही सभी तरहके धन दे ॥७॥

भावार्थ- वह अग्नि सब प्रजाओंका पालक, स्वयं शुद्ध, दूसरोंको पवित्र करनेवाला, तेजस्वी और सर्वज्ञ है, वह सबके द्वारा धारण करने योग्य है । वह अग्नि हम पर प्रसन्न होकर हमें श्रेष्ठ श्रेष्ठ धन प्रदान करे ॥३॥

वेदिमें अग्निके प्रज्वलित होनेपर उसकी किरणें सूर्यकी किरणोंके साथ मिलती हैं । उस समय अग्निके साथ संयुक्त होकर सूर्य भी मानो हविका भक्षण करता है । उस समय सभी देव हविके भक्षणके लिए यज्ञमें उपस्थित होते हैं ॥४॥

हे अग्ने ! प्रीतियुक्त, उदार तथा अतिथिके समान पूज्य तू हमारे इस यज्ञमें आ तथा सम्पूर्ण आक्रमणकारियोंको मारकर उनके अन्न उनसे छीन कर हमें दे ॥५॥

हे अग्ने ! तू अपने शरीरके लिए हवि प्राप्त करते हुए दुष्टोंको मार । तू ही देवोंके तृप्त करता है अतः तू हमारी भी सर्वत्र रक्षा कर ॥६॥

हे उत्तम कल्याणकारी तेजवाले अग्ने ! हम तेरी स्तोत्रों और हवियोंसे सेवा करते हैं अतः तू हमें हर तरहका धन दे ॥७॥

४४ अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥ ८ ॥
४५ विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९ ॥
४६ यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ १० ॥
४७ यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ ११ ॥

अर्थ- [४४] हे (**सहसः सूनो त्रिसधस्थ अग्ने**) बलके पुत्र और तीनों लोकोंमें रहनेवाले अग्ने ! तू (**अस्माकं हव्यं अध्वरं जुषस्व**) हमारी हवि और यज्ञका सेवन कर । (**वयं देवेषु सुकृतः स्याम**) हम देवोंमें श्रेष्ठ कर्म करनेवाले हों । तू (**त्रिवरूथेन शर्मणा नः पाहि**) तीन मंजिले घरसे हमारी रक्षा कर ॥८॥

१ **वयं देवेषु सुकृतः स्याम**- हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों ।

२ **त्रिवरूथेन शर्मणा नः पाहि**- तीन मंजिले घरसे हमारी रक्षा कर ।

[४५] हे (**जातवेदः अग्ने**) सर्वज्ञ अग्ने ! (**सिन्धुं न नावा**) जैसे नाविक नावके द्वारा लोगोंको समुद्रके पार पहुंचाता है, उसी प्रकार तू (**नः**) हमें (**दुर्गहा विश्वानि दुरिता अतिपर्षि**) कठिनतासे पार जाने योग्य सभी पापोंसे पार करा । (**अत्रिवत् नमसा गृणानः**) अत्रिके समान स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले (**अस्माकं तनूनां अविता**) हमारे शरीरोंका तू रक्षक है, यह तू (**बोधि**) जान ॥९॥

[४६] (**यः मर्त्यः**) जो मरणशील मैं (**अमर्त्यं त्वां**) अमरणशील तुझे (**कीरिणा हृदा मन्यमानः**) आनन्दयुक्त अन्तःकरणसे स्तुति करता हुआ (**जोहवीमि**) बुलाता हूँ । हे (**जातवेदः**) सर्वज्ञ अग्ने ! (**अस्मासु यशः धेहि**) हममें कीर्ति स्थापित कर और हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**प्रजाभिः**) प्रजाओंसे युक्त होकर (**अमतत्वं अश्यां**) मैं अमृतको प्राप्त करूं ॥१०॥

[४७] हे (**जातवेदः**) सर्वज्ञ अग्ने ! (**त्वं**) तू (**यस्मै सुकृते**) जिस श्रेष्ठ कर्म करनेवाले उपासकके लिए (**लोकं स्योनं कृणवः**) लोकको सुखकर बनाता है, (**सः**) वह (**अश्विनं पुत्रिणं वीरवन्तं**) घोडोंसे, पुत्रोंसे, वीरोंसे (**गोमन्तं स्वस्ति रयिं नशते**) तथा गौओंसे युक्त कल्याणकारी धन प्राप्त करता है ॥११॥

भावार्थ- हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! तू तीनों लोकोंमें रहनेवाला है अतः तू हमारे यज्ञका सेवन कर । हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों तथा तीन तीन मंजिलवाले घरोंमें हम सुखसे रहें ॥८॥

जिस प्रकार नाविक नावके द्वारा लोगोंको समुद्रके पार पहुंचाता है, उसी प्रकार हे अग्ने ! तू हमें सब संकटोंसे पार करा । अत्रिऋषिके समान स्तुति करनेवाले हमारे शरीरोंकी तू रक्षा कर ॥९॥

मैं मरणशील होता हुआ आनन्दित हृदयसे तुझ अमर अग्निकी स्तुति करता हूँ अतः तू मुझे भी मेरी प्रजाओंके साथ अमर कर और यश दे ॥१०॥

हे सर्वज्ञ अग्ने ! तू जिस उत्तम कर्म करनेवाले उपासके लिए सुख प्रदान करता है, वह पुत्रपौत्रोंसे युक्त कल्याणकारी धन प्राप्त करता है ॥११॥

[५]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवता- आप्रीसूक्तं = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । छन्दः- गायत्री ।

४८ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥

४९ नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥

५० ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥

५१ ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्यर्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥

५२ देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥

५३ सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥

---

[५]

अर्थ- [४८] हे मनुष्यो (**सुसमिद्धाय शोचिषे**) अच्छी तरहसे प्रदीप्त तथा तेजस्वी (**जातवेदसे अग्नये**) जातवेदा अग्निके लिए (**तीव्रं घृतं जुहोतन**) बलसे युक्त घीकी आहुति दो ॥१॥

[४९] (**नराशंसः**) मनुष्योंसे प्रशंसित होनेवाला अग्नि (**इमं यज्ञं**) इस यज्ञको (**सुसूदति**) अच्छी तरह प्रेरित करे । (**हि**) क्योंकि (**अदाभ्यः कविः मधुहस्त्यः**) वह अग्नि अहिंस्य, ज्ञानी और मधुरता पूर्ण किरणोंवाला है ॥२॥

[५०] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**ईळितः**) स्तुत होकर (**ऊतये**) हमारी रक्षाके लिए (**सुखैः रथेभिः**) सुखदायक रथोंसे (**प्रियं चित्रं इन्द्रं**) प्रिय और विलक्षण शक्तिवाले इन्द्रको (**इह आ वह**) यहां ले आ ॥३॥

[५१] हे मनुष्य ! तू (**ऊर्णम्रदा अभि वि प्रथस्व**) ऊनके समान कोमल आसनको बिछा, क्योंकि मनुष्योंने (**अर्काः अनूषत**) स्तुतियोंको गाना शुरु कर दिया है । हे (**शुभ्र**) तेजस्वी आसन् ! तू (**नः सातये भव**) हमें धन प्रदान करनेवाला हो ॥४॥

[५२] हे (**देवीः द्वारः**) दिव्य द्वारो ! तुम (**वि श्रयध्वं**) खुल जाओ, (**सुप्रायणाः**) उत्तम गुणोंवाली तुम (**नः ऊतये**) हमारी रक्षाके लिए (**यज्ञं प्र पृणीतन्**) यज्ञको पूर्ण करो ॥५॥

[५३] (**सुप्रतीके**) उत्तम रूपवाली (**वयोवृधा**) आयुको बढानेवाली (**यह्वी**) महान् (**ऋतस्य मातरा**) यज्ञका निर्माण करनेवाली (**दोषां उषासं**) रात्री और उषाकी (**ईमहे**) हम स्तुति करते हैं ॥६॥

भावार्थ- हे मनुष्यो ! मनुष्योंसे प्रशंसित होनेवाला वह अग्नि इस यज्ञको प्रेरणा देता है । वह जातवेदा अर्थात् सम्पूर्ण उत्पन्न हुए जगत्को जाननेवाला वह अग्नि किसीसे भी न दबनेवाला, बुद्धियोंका प्रेरक और मधुर किरणोंवाला है । ऐसे अग्निको प्रज्वलित करके और अधिक तेजस्वी बनानेके लिए उत्तम घीकी आहुति डालो ॥१-२॥

हे अग्ने ! तू प्रशंसित होकर हमारी रक्षाके लिए सुखदायक रथोंसे प्रिय और आश्चर्यकारक कर्म करनेवाले इन्द्रको हमारे पास ले आ ॥३॥

यज्ञमें आसन ऊनके समान कोमल हों । उन पर सुखपूर्वक बैठकर मनुष्य स्तुति करें ॥४॥

ये दिव्य द्वार हमारे आने जाने के समय पर सुखदायी हों । हमारी रक्षाके लिए यज्ञको पूर्ण करें ॥५॥

दिन रात ये दोनों देवियां उत्तम रूपवाली, आयुको बढानेवाली महान् यज्ञका निर्माण करनेवाली हैं ॥६॥

५४ वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥ ७ ॥
५५ इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ८ ॥
५६ शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥
५७ यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥ १० ॥
५८ स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥

[६]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- पङ्क्तिः ।]

५९ अग्निं तं मन्ये यो वसु-रस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवो ऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

अर्थ- [५४] हे (**दैव्या होतारा**) दिव्य होताओ ! तुम दोनों (**ईळिता**) स्तुत होकर (**मनुषः**) मनुष्यके द्वारा किए जानेवाले (**नः इमं यज्ञं**) हमारे इस यज्ञको (**वातस्य पत्मन्**) वायुकी सी गति से (**आ गतं**) आओ ॥७॥

[५५] (**इळा सरस्वती मही**) इळा, सरस्वती और महान् भारती ये (**तिस्रः देवीः**) तीनो देवियां (**मयोभुवः**) सुखकारक हैं, ये (**अस्रिधः**) अहिंसक होकर (**बर्हिः सीदन्तु**) यज्ञमें आकर बैठें ॥८॥

[५६] हे (**त्वष्टः**) त्वष्टा ! (**शिवः विभुः**) कल्याणकारी और व्यापक तू (**इह आगहि**) यहां आ और (**पोषे**) हमारे पोषणके लिए (**नः**) हमारी (**त्मना**) स्वयं ही (**यज्ञे यज्ञे उदव**) प्रत्येक यज्ञमें रक्षा कर ॥९॥

[५७] हे (**वनस्पते**) वनस्पते ! (**यत्र देवानां गुह्या नामानि वेत्थ**) जहां जहां तू देवोंके गुप्त स्थानोंको जानता है, (**तत्र हव्यानि गमय**) वहां वहां हमारी हवियोंको पहुंचा ॥१०॥

[५८] (**अग्नये स्वाहा**) अग्निके लिए यह हवि समर्पित है, (**वरुणाय स्वाहा**) वरुणके लिए यह हवि समर्पित है, (**इन्द्राय मरुद्भ्यः स्वाहा**) इन्द्र और मरुतोंके लिए यह हवि समर्पित है, (**देवेभ्यः हविः स्वाहा**) देवोंके लिए यह हवि समर्पित है ॥११॥

[६]

[५९] (**यः वसुः**) जो अग्नि निवास करानेवाला है, (**धेनवः यं अस्तं यन्ति**) गायें जिसके घर जाती हैं, (**अस्तं आशवः अर्वन्त**) जिसके घर वेगवान् घोडे जाते हैं (**अस्तं नित्य सः वाजिनः**) जिसके घर नित्य बलवान् जाते हैं, (**तं अग्निं मन्ये**) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ । हे अग्ने ! तू (**स्तोतृभ्यः इषं आ भर**) स्तोताओंके लिए अन्न भरपूर दे ॥१॥

भावार्थ- हे दिव्य होताओ ! तुम दोनों स्तुत होकर मनुष्योंके द्वारा किए जानेवाले इस यज्ञमें वायुकी गतिसे आओ ॥७॥
इळा, सरस्वती और भारती ये तीनों देवियां सुखकारक है, अतः ये किसीकी हिंसा न करती हुई हमारे यज्ञोंमें आकर बैठें ॥८॥
हे त्वष्टा देव ! तू सुखकारी और कल्याणकारी है तथा व्यापक है। तू स्वयं ही हमारे यज्ञोंमें आ और हमारी रक्षा कर ॥९॥
हे वनस्पते देव ! तू देवोंके जिन जिन गुह्य स्थानोंको जानता है, वहां वहां हमारी हवियोंको पहुंचा ॥१०॥
अग्नि, वरुण, इन्द्र, मरुत् तथा अन्य देवोंके लिए यह हवि समर्पित हो ॥११॥

६० सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ २ ॥

६१ अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्य-मिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥

६२ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवी-षं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥

६३ आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ५ ॥

अर्थ- [६०] (**यः वसुः**) जो निवास करानेवाला है, (**यं धेनवः सं आयन्ति**) जिसके पास गायें आती है (**रघुद्रुवः अर्वन्तः सं**) शीघ्र दौडनेवाले घोडे जिसके पास जाते हैं, (**सुजातासः सूरयः सं**) उत्तम कुलमें उत्पन्न विद्वान् जिसके पास जाते है, (**सः अग्निः गृणे**) उस अग्निकी सब लोग स्तुति करते हैं, हे अग्ने (**स्तोतृभ्यः इषं आभर**) स्तोताओंके लिए अन्न भरपूर दे ॥२॥

[६१] (**विश्वचर्षणिः अग्निः**) सबको देखनेवाला अग्नि (**विशे वाजिनं ददाति**) अपने उपासकोंको घोडा देता है और (**अग्निः**) यह अग्नि (**प्रीतः**) प्रसन्न होकर (**राये**) धनकी इच्छा करनेवालेके लिए (**वार्यं सु-आभुवं**) चाहने योग्य और उत्तम अस्तित्व देनेवाले धनको (**याति**) देता है । हे अग्ने ! (**स्तोतृभ्यः इषं आभर**) स्तोताओंको अन्न भरपूर दे ॥३॥

[६२] हे (**देव अग्ने**) दिव्यगुणयुक्त अग्ने (**द्युमन्तं अज रंते यत्**) तेजस्वी और जरारहित तुझे जब हम (**आ इधीमहि**) चारों ओरसे प्रज्वलित करते हैं, तब (**ते स्या पनीयसी समित्**) तेरी वह प्रशंसनीय तेज (**द्यवि दीदयति**) द्युलोकमें प्रकाशित होता है । हे अग्ने ! (**स्तोतृभ्यः इषं आभर**) स्तोताओंको भरपूर अन्न दे ॥४॥

[६३] हे (**शोचिषः पते, सुश्यन्द्र, दस्म**) तेजोंके स्वामी, आनन्ददायक, सुन्दर (**विश्पते हव्यवाद् अग्ने**) प्रजाओंके पालक और हवि ले जानेवाले अग्ने ! (**शुक्रस्यः ते तुभ्यं**) तेजस्वी तेरे लिए (**ऋचा हविः हूयते**) मंत्रके साथ हवि दी जाती है ॥५॥

भावार्थ- इसी अग्निके आश्रयसे गायें, वेगवान् घोडे, बलवान् तथा उत्तम कुलोत्पन्न विद्वान् नित्यप्रति रहते हैं। वह स्तोताओंके लिए भरपूर अन्न देता है ॥१-२॥

सर्व द्रष्टा अग्नि अपने उपासकोंको घोडा देता है और प्रसन्न होनेपर धनकी इच्छा करनेवालोंको उत्तम धन देता है ॥३॥

जब लोग इस तेजस्वी जरारहित अग्निको चारों ओरसे प्रज्वलित करते हैं, तब इसका तेज द्युलोकमें सर्वत्र फैलता है और यह प्रसन्न होकर स्तोताओंको भरपूर अन्न देता है ॥४॥

यह अग्नि तेजोंका स्वामी आनन्ददायक, सुन्दर प्रजाओंका पालक हवि ले जानेवाला और तेजस्वी है । इसके लिए मंत्रपूर्वक हवि दी जाती है ॥५॥

६४ प्र ते अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ६ ॥

६५ तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥

६६ नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८ ॥

६७ उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ९ ॥

अर्थ- [६४] (**त्ये अग्नयः**) वे अग्नि (**अग्निषु**) अन्य अग्नियोंमें (**विश्वं वार्यं पुष्यन्ति**) सब चाहने योग्य धनको पुष्ट करते हैं। (**ते हिन्विरे**) वे लोगोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं (**ते इन्विरे**) वे लोगोंको आनंदित करते हैं (**ते इषण्यन्ति**) वे आहुतिकी इच्छा करते हैं । हे अग्ने ! (**स्तोतृभ्यः इषं आभर**) स्तोताओंके लिए अन्न भरपूर दे ॥६॥

[६५] (**ये**) जो (**पत्वभिः**) अपनी वेगशील किरणोंके द्वारा (**शफानां गोनां व्रजा भुरन्त**) अच्छे खुरोंवाली गायोंके बाडोंकी कामना करते हैं, हे अग्ने ! (**तव त्ये अर्चयः**) तेरी वे किरणें (**वाजिनः महि व्राधन्त**) आहुतियोंसे युक्त होकर बहुत बढती हैं ॥७॥

[६६] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**नः स्तोतृभ्यः**) हम स्तोताओंको (**सुक्षितीः**) उत्तम घर और (**नवाः इषः**) नये अन्न (**आ भर**) भरपूर दे (**ये दमे दमे आनृचुः**) जो घर घरमें पूजा करते हैं (**ते त्वादूतासः स्याम**) वे हम तुझ दूतको पाकर सुखी हों (**स्तोतृभ्यः इषं आ भर**) अन्य स्तोताओंको भी भरपूर अन्न दे ॥८॥

[६७] हे (**शवसः पते सुश्चन्द्र**) बलोंके स्वामी और आल्हादक अग्ने ! तू (**आसनि**) अपने मुखमें पडे हुए (**सर्पिषः उभे दर्वी**) घीके दो चमचोंको (**श्रीणीषे**) अच्छी तरह पचा जाता है, अतः (**उक्थेषु नः उत् पुपूर्याः**) यज्ञोंमें हमें फलोंसे तृप्त कर और (**स्तोतृभ्यः इषं आ भर**) स्तोताओंको अन्न भरपूर दे ॥९॥

भावार्थ- भौतिक अग्नि दिव्य अग्नियोंके अन्दर पुष्टिकारक शक्तियां स्थापित करते हैं, जब इस भौतिक यज्ञाग्निमें आहुतियां डाली जाती हैं, तब अग्नि प्रज्वलित होती है और उसकी किरणें दिव्य अग्नि अर्थात् सूर्यकी किरणोंके साथ संयुक्त होती हैं उन्हीं किरणोंके साथ यज्ञाग्निमें प्रदत्त हवि भी सूक्ष्मतम होकर सूर्यकी किरणोंमें जा पहुंचती है, फिर वह सूर्य अपनी किरणों द्वारा हविके सूक्ष्म भागको सब ओषधियोंमें स्थापित करता है । उन औषधियोंको खाकर सारे प्राणी प्रसन्न होते हैं ॥६॥

अग्नियोंमें गायोंके दूध आदि पदार्थोंकी आहुतियां दी जाती हैं, इसलिए मानों वे अग्नियां ही गायोंकी कामना करती हैं । उन आहुतियोंको पाकर वे अग्नियां और अधिक प्रज्वलित होकर वृद्धिको प्राप्त होती हैं ॥७॥

हे अग्ने ! तू हमें उत्तम घर और नये अन्न भरपूर प्रमाणमें दे । हम तेरी सर्वत्र पूजा करते हैं, अतः हम तुझे पाकर समृद्ध हों ॥८॥

हे बलोंके स्वामी अग्ने ! तू तुझमें डाली गई घृतादि हवियोंको आसानीसे पचा डालता है और यज्ञोंमें अपने स्तोताओंको फलोंसे तृप्त करता है ॥९॥

६८ एवाँ अग्निमजुर्यमु—र्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्य—मुत त्यदाश्वश्व्य—मिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १० ॥

[७]

[ऋषिः- इष आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, १० पङ्क्तिः ।]

६९ सखायः सं वः सम्यञ्च—मिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीना—मूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥
७० कुत्रा चिद् यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद् यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥ २ ॥
७१ सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥ ३ ॥

अर्थ- [६८] (एव) इस प्रकार (गीर्भिः यज्ञेभिः) स्तुतियोंके और यज्ञोंके द्वारा लोग (अग्निं अजुः यमुः) अग्निके पास जाते हैं और उसे पूजते है। वह अग्नि (अस्मे) हमें (सुवीर्यं उत आश्वश्व्यं दधत्) उत्तम वीर पुत्र पौत्रादि और अश्वोंका समूह प्रदान करे और (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) अन्य स्तोताओंको अन्न भरपूर दें ॥१०॥

[७]

[६९] हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम (क्षितीनां वर्षिष्ठाय) प्रजाओंमें सबसे वृद्ध (ऊर्जः नप्त्रे) बलके नाती और (सहस्वते) स्वयं भी बलवान् (अग्नये) अग्निके लिए (इषं स्तोमं सम्यंचं) अन्न और स्तोत्रको उत्तम रीतिसे तैय्यार करो ॥१॥

[७०] (यस्य समृतौ नरः रण्वाः) जिसके आने पर मनुष्य आनन्दित होते हैं (नृषदने अर्हन्तः ये इन्धते) मनुष्योंके द्वारा बैठने योग्य यज्ञस्थानमें बुद्धिमान् जन जिसको प्रज्वलित करते है (जन्तवः सं जनयन्ति) अन्य प्राणी भी उत्पन्न करते हैं वह अग्नि (कुत्र चित्) कहां है ? ॥२॥

[७१] (यत्) जब हम (इषः सं वनामहे) अन्नकी कामना करते हैं और जब (मानुषाणां हव्या सं) मनुष्योंकी हवियां उस अग्निकी ओर जाती हैं, तब वह अग्नि (द्युम्नस्य शवसा) अपने तेजके सामर्थ्यसे (ऋतस्य रश्मिं आ ददे) जल बरसानेवाली किरणोंको ग्रहण करता है ॥३॥

भावार्थ- इस प्रकार लोग स्तुतियोंके साथ यज्ञ करते हुए अग्निकी उपासना करते हैं और वह अग्नि भी अपने उपासकोंको पुत्र, घोडे, गाय और अन्न ये सभी पदार्थ भरपूर प्रमाणमें देता है ॥१०॥

वह अग्नि प्रजाओंमें सबसे वृद्ध और बलका पुत्र होनेके कारण स्वयं भी बलवान् है। उसके लिए उत्तम रीतिसे तैय्यार किया गया अन्न ही देना चाहिए ॥१॥

इस अग्निको यज्ञस्थानमें बुद्धिमान् उत्पन्न करते हैं, अन्य प्राणी भी इसे अपनी रक्षाके लिए उत्पन्न करते हैं और इसे उत्पन्न हुआ हुआ देखकर लोग प्रसन्न भी होते हैं। पर इसका मूल स्थान कहां है, यह रहता कहां है ? यह कोई भी नहीं जानता ॥२॥

जब मनुष्योंकी अन्न पानेकी इच्छा होती है, तब वे अग्निमें हवियां डालते हैं और तभी अग्निकी किरणें पानी बरसाती है ॥३॥

७२ स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद् दूर आ सते ।
पावको यद् वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ॥ ४ ॥
७३ अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥ ५ ॥
७४ यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद् विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूना-मस्ततातिं चिदायवे ॥ ६ ॥
७५ स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिद-न्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥ ७ ॥
७६ शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥ ८ ॥

अर्थ- [७२] (**अजर: पावक:**) यह जरारहित और पवित्र करनेवाला (**यत् वनस्पतीन् प्र मिनाति**) जब बनस्पतियोंको जलाने लगता है, तब (**स:**) वह (**नक्तं**) रात में (**दूरे सते चित्**) दूर पर रहनेवाले मनुष्यके लिए भी (**केतुं आकृणोति स्म**) अपनी ज्वालाएं प्रकट करता है ॥४॥

[७३] (**यस्य वेषणे**) जिस अग्निकी सेवामें (**पथिषु**) होममार्गोंमें (**स्वेदं अव जुह्वति**) घृतकी मनुष्य आहुतियां देते हैं, तब वे घृतकी धारायें (**एनं अभि रुरुहु:**) इस अग्नि पर उसी प्रकार चढती है, जिस प्रकार (**स्वजेन्यं भूम पृष्ठा इव**) अपनेसे उत्पन्न पुत्र पिताकी पीठपर चढता है ॥५॥

[७४] (**मर्त्य:**) मनुष्य (**पितूनां स्वादनं**) अन्नको स्वादिष्ट बनानेवाले (**आयवे अस्ततातिं**) मनुष्योंके कल्याणके लिए घरोंमें रहनेवाले (**पुरुस्पृहं यं विदत्**) बहुतोंके द्वारा चाहे जाने योग्य जिस अग्निको जानता है, वह (**विश्वस्य धायसे प्र**) विश्वको पुष्ट करनेके लिए प्रयत्न करता है ॥६॥

[७५] (**हिरिश्मश्रु: शुचिदन् ऋभु: अनिभृष्टतविषि: स:**) सोनेके समान तेजस्वी मूंछ-ज्वाला वाला, सफेद दांतोंवाला, व्यापक और अपराजित बलवाला वह अग्नि (**दाता पशु: न**) घासको काटनेवाले पशुकी तरह (**धन्व आक्षितं दाति**) निर्जल प्रदेशमें रखे गए लकडी आदियोंको जलाकर टुकडे टुकडे कर देता है ॥७॥

[७६] मनुष्य (**यस्मै अत्रिवत् रीयते**) जिसको अत्रि ऋषिके समान हवि आदि देता है, जो (**स्वधिति इव प्र**) कुल्हाडीके समान लकडियोंको फाड देता है (**यत् भगं आनशे**) जो ऐश्वर्यका उपभोग करता है, उस अग्निको (**सूषू: माता क्राणा असूत**) प्रसव करनेवाली माता अरणी स्वेच्छासे उत्पन्न करती है, वह (**शुचि: स्म**) तेजस्वी है ॥८॥

भावार्थ- जब यह अग्नि लकडियोंको जलाने लगता है, तब रातमें दूर पर रहनेवाले मनुष्यको भी उसकी ज्वालाएं दीखने लगती हैं ॥४॥

उस अग्निकी सेवा करते हुए जो घृतकी धारायें अग्निमें डाली जाती हैं, वे उस अग्निको ऊपरसे आच्छादित कर लेती हैं ॥५॥

यह अग्नि अन्नको परिपक्व करके स्वादिष्ट बनाता है और घरमें रहकर लोगोंका कल्याण करता है। इस प्रकार यह अग्नि सारे संसारका पालन पोषण करता है ॥६॥

सोनेकी रंगवाली ज्वालाओंसे युक्त तेजस्वी दांतोंवाला व्यापक यह अग्नि जलहीन अर्थात् सूखे प्रदेशमें रखी हुई काष्ठा दिकोंको जलाकर टुकडे टुकडे कर देता है ॥७॥

इस अग्निको अरणी स्वेच्छासे उत्पन्न करती है। जब यह प्रज्वलित होकर समिधाओंको जलाकर तेजस्वी होता है, तब लोग इसमें आहुतियां डालते हैं ॥८॥

७७ आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥ ९ ॥
७८ इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद् दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥ १० ॥

[८]

[ऋषिः- इष आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती ।]

७९ त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥ १ ॥
८० त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥ २ ॥

अर्थ- [७७] हे (**सर्पिः आसुते अग्ने**) घृतको भक्षण करनेवाले अग्ने ! (**यः आ**) जो तू सर्वत्र व्यापक है, उस (**धायसे ते शं अस्ति**) जगत्को धारण करनेवाले तुझे सुख प्राप्त हो, (**एषु मर्त्येषु**) इन मनुष्योंमें (**तू द्युम्नं श्रवः चित्तं आ धाः**) तेज, यश और उत्तम मन स्थापित कर ॥९॥

[७८] हे अग्ने ! (**इति मन्युं**) इस प्रकार स्तोत्र बनानेवाला (**अध्रिजः**) अपराजेय ऋषि (**त्वादातं पशुं आ ददे**) तेरे द्वारा दिए गए पशुको स्वीकार करता है और (**आत्**) उसके बाद (**अत्रिः**) अत्रि ऋषि (**अपृणतः दस्यून्**) दान न देनेवाले दस्युओंको (**सासह्यात्**) पराजित करे, तथा (**इषः नृन् सासह्यात्**) आक्रमण करनेवाले मनुष्योंको भी पराजित करे ॥१०॥

[८]

[७९] हे (**सहस्कृत अग्ने**) बलको उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! (**ऋतायवः प्रत्नासः**) सत्यके मार्ग पर चलनेवाले प्राचीन ऋषि मुनि (**ऊतये**) अपने संरक्षणके लिए (**प्रत्नं पुरुश्चन्द्रं**) प्राचीन, अत्यन्त आनन्ददायक (**विश्वधायसं यजतं**) संसारके भरणपोषण करनेवाले, उदारचितवाले, पूजनीय (**वरेण्यं गृहपतिं**) वरण करनेके योग्य, घरके पालक (**त्वां सं ईधिरे**) तुझको अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं ॥१॥

[८०] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**विशः**) मनुष्य (**अतिथिं पूर्व्यं**) अतिथिके समान पूज्य, प्राचीन (**शोचिष्केशं गृहपतिं**) तेजस्वी ज्वालाओंवाले, घरके स्वामी (**बृहत् केतुं पुरुरूपं**) बहुत ऊंची ज्वालाओंसे युक्त, अनेक रूपोंवाले (**धनस्पृतं सु शर्माणं**) धनसे से भरपूर, उत्तम सुखकारी, (**सु-अवसं चरद्विषं**) उत्तम संरक्षण करनेवाले सूखी समिधाओंको जलानेवाले (**त्वां नि षेदिरे**) तुझे वेदिमें स्थापित करते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू हमेशा शान्त रह, कभी भी हम पर क्रोधित मत हो, तथा हमें तेज, यश और उत्तम मन प्रदान कर ॥९॥

हे अग्ने ! अपराजित अत्रि ऋषि इस प्रकार स्तोत्रोंके द्वारा तुझसे धन आदि प्राप्त करके अदानशील दस्युओं और आक्रमणकारी मनुष्योंको नष्ट करे ॥१०॥

यह अग्नि अत्यन्त प्राचीन और आनन्ददायक, संसारका भरणपोषण करनेवाला, उदार मनवाला, पूजनीय वरण करने योग्य और घरका स्वामी है। ऐसे इस अग्निको ऋतके मार्गपर चलनेवाले प्राचीन विद्वान् अपनी रक्षाके लिए प्रज्वलित करते हैं ॥१॥

यह अग्नि अतिथिके समान पूज्य, तेजस्वी और ऊंची ज्वालाओंवाला, घरका स्वामी, अनेक रूपोंवाला, उत्तम सुखकारी, उत्तम संरक्षण देनेवाला है। अतः इसे मनुष्य वेदिमें स्थापित करते हैं ॥२॥

८१ त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥ ३ ॥
८२ त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥ ४ ॥
८३ त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत ।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥ ५ ॥
८४ त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम् ।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥ ६ ॥

अर्थ- [८१] हे (**सुभग अग्नेः**) उत्तम भाग्यशाली अग्ने ! (**मानुषीः विशः**) मानवी प्रजायें (**होत्राविदं विविचिं**) होत्रोंके जाननेवाले, सत्यासत्यका विवेक करनेवाले (**रत्नधातमं**) उत्तम उत्तम रत्नोंको देनेवाले (**गुहा सन्तं**) अरणीरूप गुहामें रहनेवाले (**विश्वदर्शतं तुविष्वणसं**) सबके द्वारा देखने योग्य, अत्यन्त ध्वनियुक्त (**सुयजं घृतश्रियं**) उत्तम रीतिसे पूजनीय, घृतके कारण तेजस्वी (**त्वां ईळते**) तेरी स्तुति करती हैं ॥३॥

[८२] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**त्वां विश्वधा गीर्भिः गृणन्तः**) हम अनेक तरहके स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए (**धर्णसिं त्वां**) सबको धारण करनेवाले तेरे पास (**नमसा सेदिम**) नमस्कारपूर्वक आते हैं । (**अंगिरः देवः**) अंगोंमें तेज प्रदान करनेवाला तथा स्वयं भी तेजस्वी तू (**सं इधानः**) अच्छी तरह प्रज्वलित होता हुआ (**नः जुषस्व**) हमारी आहुतियोंका सेवन कर और (**सुदीतिभिः**) अपनी तेजस्वी ज्वालाओंसे (**मर्तस्य यशसा**) मनुष्यको यशसे युक्त कर ॥४॥

[८३] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**पुरुरूपः त्वं**) अनेक रूपोंवाला तू (**प्रत्नथा**) पहलेके समान ही (**विशे विशे वयः दधासि**) प्रत्येक मनुष्यको अन्न देता है । हे (**पुरुस्तुत**) बहुतों द्वारा स्तुत होनेवाले अग्ने ! तू (**सहसा**) अपने बलसे ही (**पुरूणि अन्ना विराजसि**) अनेक तरहके अन्नोंका स्वामी है । (**तित्विषाणस्य ते**) अत्यन्त तेजस्वी तेरी (**सा त्विषिः**) वह दीप्ति (**न अधृषे**) दूसरोंके द्वारा दबाई नहीं जा सकती ॥५॥

[८४] हे (**यविष्ठ्य अग्ने**) बलवान् अग्ने ! (**समिधानं त्वां**) उत्तम प्रकारसे प्रज्वलित होनेवाले तुम (**देवाः**) देवोंने (**हव्यवाहनं दूतं चक्रिरे**) हविको लेनेवाला दूत बनाया है । (**उरुज्रयसं घृतयोनिं आहुतं त्वेषं**) अत्यन्त वेगवान् घीके आधारसे रहनेवाले, हवियोंको प्राप्त करनेवाले और तेजस्वी तुझे लोग (**चोदयन्मति चक्षुः दधिरे**) बुद्धिको प्रेरणा देनेवाले और आंखके रूपमें धारण करते हैं ॥६॥

भावार्थ- यह अग्नि सौभाग्यशाली, सत्यासत्यको जाननेवाला, उत्तम उत्तम रत्नोंको देनेवाला, अत्यन्त सुन्दर, जलते समय अत्यन्त जोरकी ध्वनि करनेवाला, घृतके कारण तेजस्वी है, इसकी मानवी प्रजायें स्तुति करती हैं ॥३॥

यह अग्नि शरीरमें रहते हुए शरीरके अंगोंमें तेज भरता है, तथा स्वयं भी तेजस्वी है । वह उपासकको अपनी ज्वालाओंके द्वारा यशसे युक्त करता है, इसीलिए सब मनुष्य उसके पास विनम्रतासे जाते हैं ॥४॥

अनेक रूपोंवाला वह अग्नि पहलेके समान ही प्रत्येक मनुष्यको अन्न देता है, क्योंकि वह स्वयं अन्नका स्वामी है । उस तेजस्वी अग्निके तेजको कोई दबा नहीं सकता ॥५॥

यह तेजस्वी अग्नि सबकी बुद्धियोंको प्रेरणा देता है और यह सब देवोंके लिए चक्षुरूप है । इसलिए इसे सब देव अपना दूत बनाते हैं ॥६॥

८५ त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः   सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे ।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितोऽभि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥ ७ ॥

[९]

[ऋषिः- गय आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५, ७ पङ्क्तिः ।]

८६ त्वामग्ने हविष्मन्तो   देवं मर्तास ईळते ।
मन्ये त्वा जातवेदसं   स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥ १ ॥

८७ अग्निर्होता दास्वतः   क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं   सं वाजासः श्रवस्यवः ॥ २ ॥

८८ उत स्म यं शिशुं यथा   नवं जनिष्टारणी ।
धर्तारं मानुषीणां   विशामग्निं स्वध्वरम् ॥ ३ ॥

अर्थ- [८५] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुम्नायवः प्रदिवः) सुखकी इच्छा करनेवाले प्राचीन जन (आहुतं त्वां) आहुतिसे युक्त तुझे (घृतैः सुसमिधा सं ईधिरे) घी और समिधासे प्रदीप्त करते हैं । (ओषधीभिः वावृधानः) काष्ठ आदियोंसे बढता हुआ तथा (उक्षितः सः) घीसे सिंचित हुआ वह तू (पार्थिवा ज्रयांसि असि वि तिष्ठसे) पृथ्वीकी सतहों पर दृढतासे स्थित होता है ॥७॥

[९]

[८६] हे (अग्ने) प्रकाशक अग्ने (हविष्मन्तः मर्तासः) हवियोंसे युक्त मनुष्य (देवं त्वां ईळते) तेजस्वी तेरी स्तुति करते हैं । (त्वा जातवेदसं मन्ये) मैं तुझे सर्वज्ञ मानता हूं । (सः) वह तू (हव्या आनुषक् आ वक्षि) हवियोंको सब जगह पहुंचाता है ॥१॥

[८७] (यज्ञासः यं सं चरन्ति) सब यज्ञ जिसकी ओर जाते हैं, (श्रवस्यवः वाजासः सं) अन्न और यशकी इच्छा करनेवाले मनुष्यकी हवियां भी जिस अग्निकी ओर जाती हैं, (अग्निः) वह अग्नि (दास्वतः वृक्तबर्हिषः क्षयस्य होता) दान देनेवाले तथा कुशासन बिछानेवाले मनुष्यके घरमें देवोंको बुलाकर लाता है ॥२॥

[८८] (मानुषीणां विशां धर्तारं) मानवी प्रजाओंको धारण करनेवाले (सु-अध्वरं) उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाले (यं अग्निं) जिस अग्निकी (अरणी) दो अरणियां (नवं शिशुं यथा) नये बच्चेके समान (जनिष्ट) उत्पन्न करती हैं ॥३॥

भावार्थ- जब यह अग्नि सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके द्वारा घी आदिसे अच्छी प्रकार जलाया जाता है, तब घीसे सिंचित होकर वह पृथ्वी के ऊपर अच्छी प्रकार अपना स्थान बना लेता है अर्थात् वेदिमें वह उत्तम प्रकारसे जलने लगता है ॥७॥

हे अग्ने ! क्योंकि तू इस संसारमें उत्पन्न सभी पदार्थोंको जाननेवाला है, इसलिए सभी तेरी स्तुति करते हैं ॥१॥

सभी यज्ञ और यज्ञोंमें दी हुई सभी हवियां इसी अग्निके पास पहुंचती हैं । और वह अग्नि यज्ञ करनेवाले मनुष्यके घरमें देवोंको बुलाकर लाता है और उसके घरकी रक्षा करता है ॥२॥

मनुष्योंके शरीरोंके अन्दर रहकर मनुष्योंके जीवनको धारण करनेवाले इस अग्निको दो अरणियां उसी प्रकार उत्पन्न करती हैं, जिस प्रकार माता नवीन बच्चे को ॥३॥

८९ उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाऽग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥

९० अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥ ५ ॥

९१ तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥ ६ ॥

९२ तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत् स पोषयद् भुवद् वाजस्य सातये उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ ॥

अर्थ- [८९] (**पशुः न यवसे**) जिस प्रकार भूखा पशु जौको खा जाता है, उसी प्रकार (**यः पुरू वना दग्धा असि**) जो बहुतसे बनोंको जला देता है, उस अग्निको (**ह्वार्याणां पुत्रः न**) कुटिल गतिवाले सांपोंके पुत्रके समान (**दुर्गुभीयसे**) पकडना बडा कठिन है ॥४॥

[९०] (**यत्**) जब (**ध्माता इव**) लुहारके समान (**त्रितः ई धमति**) त्रित ऋषि इसको प्रज्वलित करता है, तब (**ध्मातरि यथा शिशीते**) लोहारके समान तीक्ष्ण होने पर (**यस्य धूमिनः**) जिस धूंवेसे युक्त अग्निकी (**अर्चयः**) ज्वालायें (**दिवि सम्यक् संयन्ति**) द्युलोकमें अच्छी तरह संचार करती हैं ॥५॥

[९१] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**अहं**) मैं (**मित्रस्य तव ऊतिभिः प्रशस्तिभिः च**) सबके मित्र तेरे संरक्षणों और स्तोत्रोंसे (**मर्त्यानां दुरिता**) मानवी पापकर्मोंसे (**तुर्याम**) उसी प्रकार पार हो जाऊं जिस प्रकार (**द्वेषोयुतः न**) द्वेष करनेवाले शत्रुओंसे पार होता हूँ ॥६॥

[९२] हे (**सहस्वः अग्ने**) बलवान् अग्ने ! (**नरः**) नेता तू (**नः तं रयिं आ भर**) हमें वह ऐश्वर्य भरपूर दे । (**सः क्षेपयत्**) वह हारे शत्रुओंको नष्ट करे, (**सः पोषयत्**) वह हमें पुष्ट करे (**वाजस्य सातये भुवत्**) वह अन्नकी प्राप्तिमें हमारा सहायक हो । अग्ने ! (**पृत्सु वृधे नः**) युद्धोंमें उन्नतिके लिए हमें शक्तिशाली कर (**उत एधि**) और हमें बढा ॥७॥

भावार्थ- वह अग्नि जब पशु जैसे जौको खा जाता है, उसी प्रकार बहुतसी लकडियोंको जलाकर बलवान् हो जाता है, तब उसे पकडना उसी प्रकार कठिन हो जाता है, जिस प्रकार सांपके बच्चेको, अर्थात् तब वह सांपके बच्चेकी तरह भयंकर हो जाता है ॥४॥

जिस प्रकार लोहार अग्निको प्रज्वलित करता है, उसी प्रकार तीनों लोकोंमें स्थित यह अग्नि जब तीक्ष्ण होता है, तब धुंवेंसे लिपटे रहने पर भी इसकी ज्वालाएं द्युलोक तक जाती हैं ॥५॥

जिस प्रकार द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पराजित करता हूँ, उसी प्रकार मैं इस अग्निके संरक्षणोंसे मनुष्यके पापकर्मोंको पराजित करूं अर्थात् मैं कभी पाप न करूं ॥६॥

बलशाली वह अग्नि हमें ऐश्वर्य देकर हमारे शत्रुओंको नष्ट करे और हमें पुष्ट करे, तथा अन्न प्राप्त करनेमें हमारी सहायता करे । हमें युद्धोंमें भी बढावे ॥७॥

[१०]

[ऋषिः- गय आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्; ५, ७ पङ्क्तिः ।]

९३ अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥
९४ त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥ २ ॥
९५ त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥ ३ ॥
९६ ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद् येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥ ४ ॥

---

[१०]

अर्थ- [९३] हे (अग्ने) अग्ने! (**अस्मभ्यं ओजिष्ठं द्युम्नं आभर**) हम लोगोंके लिए अत्यन्त बलशाली तेज भरपूर प्रदान कर। हे (**अध्रिगो**) न रोके जानेवाली गतिसे युक्त अग्ने! (**नः परीणसा राया**) हमें अपार सम्पत्तिसे युक्त कर और (**वाजाय पन्थां प्र रत्सि**) अन्न और बलकी प्राप्तिके लिए हमें मार्ग दिखा ॥१॥

[९४] हे (**अद्भुत अग्ने**) विलक्षण अग्ने! (**त्वं नः**) तू हमारे (**क्रत्वा, दक्षस्य मंहना**) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मोंसे प्रसन्न होकर उत्तम बल प्रदान कर, (**त्वे असुर्यं आरुहत्**) तुझमें दैवी सामर्थ्य भरा हुआ है। अतः (**यज्ञियः**) पूजनीय तू (**मित्रः न क्राणा आ**) सूर्यके समान शीघ्र ही चारों ओर व्याप्त हो ॥२॥

[९५] हे (**अग्ने**) अग्ने! (**ये सूरयः नरः स्तोमेभिः मघानि आनशुः**) जिन विद्वान् मनुष्योंने तेरी स्तुतियोंसे धनकी प्राप्ति की (**त्वं एषां नः गयं पुष्टिं वर्धय**) तू उनके और हमारे घरकी तथा पोषकताकी वृद्धि कर ॥३॥

[९६] (**चन्द्र अग्ने**) हे आनन्ददायक अग्ने! (**येषां सुकीर्तिः दिवः चित् बृहत्**) जिनका यश द्युलोकसे भी बढचढ कर है, ऐसे (**ये नरः**) जो मनुष्य (**गिरः शुंभन्ति**) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, (**ते अश्वराधसः**) वे घोडोंके साथ सम्पत्ति प्राप्त करते हैं, (**शुष्मेभिः शुष्मिणः**) तेरे बलोंसे बलशाली होते हैं। ऐसोंको तू (**त्मना बोधति**) स्वयं जानता है ॥४॥

भावार्थ- हे अग्ने! हमें अपार सम्पत्ति देकर उसके साथ ही अन्नकी प्राप्तिका मार्ग भी दिखा, ताकि हम बलशाली और तेजसे युक्त हों ॥१॥

हे अद्भुत अग्ने! हमारे कर्मोंसे प्रसन्न होकर तू हमें उत्तम सामर्थ्य प्रदान कर, क्योंकि तू भी दैवी सामर्थ्यसे युक्त है। पूजनीय तू अपनी किरणोंसे सूर्यके समान इस लोकको चारों ओरसे व्याप्त कर ले ॥२॥

हे अग्ने! जिन बुद्धिमान् लोगोंने तेरी उपासना और प्रार्थना से धनकी प्राप्ति की, तू उनके और हमारे घर और स्वास्थ्यकी रक्षा कर ॥३॥

जिनका बहुत भारी यश है, जो इस अग्निकी उपासना करते हैं, वे सम्पत्तियोंसे युक्त होते हैं; बलवान् होते हैं और अग्नि भी उनका सहायक होता है ॥४॥

९७ तव॒ त्ये अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ भ्राज॑न्तो यन्ति धृष्णु॒या ।
परि॑ज्मानो॒ न वि॒द्युतः॒ स्वा॒नो रथो॒ न वा॑ज॒युः ॥ ५ ॥

९८ नू नो॑ अग्न ऊ॒तये॑ स॒बाध॑सश्च रा॒तये॑ ।
अ॒स्माका॑सश्च सू॒रयो॒ विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑ ॥ ६ ॥

९९ त्वं नो॑ अग्ने अङ्गिरः स्तु॒तः स्तवा॑न॒ आ भ॑र ।
होत॑र्विभ्वा॒सहं॑ र॒यिं स्तो॒तृभ्यः॒ स्तव॑से च न उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ॥ ७ ॥

[११]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती ।]

१०० जन॑स्य गो॒पा अ॑जनिष्ट॒ जागृ॑वि- र॒ग्निः सु॒दक्षः॑ सुवि॒ताय॒ नव्य॑से ।
घृ॒तप्र॑तीको बृह॒ता दि॑वि॒स्पृशा॑ द्यु॒मद् वि भा॑ति भर॒तेभ्यः॒ शुचिः॑ ॥ १ ॥

अर्थ- [९७] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव धृष्णुया भ्राजन्तः त्ये अर्चयः) तेरी अत्यन्त चंचल और दीप्तिमान् वे प्रसिद्ध ज्वालायें (परिज्मानः विद्युतः न) सर्वत्रव्याप्त विद्युत के समान तथा (स्वानः वाजयुः रथः न) शब्द करते हुये बलशाली रथके समान (यन्ति) सर्वत्र जाती हैं ॥५॥

[९८] हे (अग्ने) अग्ने ! (नू नः ऊतये) शीघ्र ही हम लोगोंकी रक्षा करनेके लिए (च सबाधसः रातये) और आपत्तिमें पडे हुओंको सम्पत्ति आदि देनेके लिए आ । (अस्माकासः च सूरयः विश्वाः आशाः तरीषणी) हमारे विद्वान् लोग अपने सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त करें ॥६॥

[९९] हे (अङ्गिरः अग्ने) प्राणके सदृश प्रिय अग्ने ! पुरातन महर्षियोंके द्वारा (स्तुतः) उपासित और आगे भी (स्तवानः) उपासित होनेवाला तू (विभ्वासहं, रयिं नः आ भर) महान् शत्रुको भी पराजित करनेवाला धन हम लोगोंके लिये सब ओरसे भरपूर दे । (होतः स्तोतृभ्यः नः स्तवसे) देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! तू स्तुति करनेवाले हम लोगोंको स्तुति करनेका सामर्थ्य प्रदान कर । (उत पृत्सु नः वृधे एधि) और युद्धमें हम लोगोंको बढा ॥७॥

[११]

[१००] (जनस्य गोपाः जागृविः, सुदक्षः, अग्निः) लोगोंका रक्षक, जागरणशील प्रशंसितबलवाला अग्नि, लोगोंके (नव्यसे सुविताय अजनिष्ट) नूतन कल्याणके लिये उत्पन्न हुआ है । (घृतप्रतीकः बृहता, दिविस्पृशा शुचिः भरतेभ्यः) घृतसे प्रज्वलित, महान् प्रकाशको छूनेवाले तेजसे युक्त, पवित्र यह अग्नि भरणपोषण करनेवालोंके लिये (द्युमत् वि भाति) दीप्तिमान् होकर के प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तेरी ये तेजस्वी ज्वालायें विद्युत्के समान चमकती हैं और ध्वनि करते हुए बलशाली रथके समान सर्वत्र जाती हैं ॥५॥

हे अग्ने ! तू हम लोगोंकी रक्षा करने और आपत्तियोंमें फंसे हुए लोगोंको सम्पत्ति देनेके लिए हमारे पास आ । हमारे सभी विद्वान् पूर्ण मनोरथवाले हों ॥६॥

हे प्रिय अग्ने ! प्राचीनों द्वारा उपासित और आगे आनेवालोंके द्वारा उपासित होनेवाला तू हमें शत्रुको हरानेवाला धन दे । हमारे स्तोताओंको सामर्थ्य दे और हमें भी युद्धमें बढा ॥७॥

यह अग्नि लोगोंका संरक्षण करनेवाला, जागृत रहनेवाला बलवान् तथा लोगोंका कल्याण करनेवाला है । घीसे प्रज्वलित होनेवाला यह अग्नि उनकी रक्षा करता है, जो लोगोंका पालन करते हैं ॥१॥

१०१ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहित-मग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ २ ॥
१०२ असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचि-र्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद् दिवि श्रितः ॥ ३ ॥
१०३ अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुया-ऽग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनो-ऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥ ४ ॥
१०४ तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वच-स्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्मही-रा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥ ५ ॥

अर्थ- [१०१] (यज्ञस्य केतुं) यज्ञकी पताका (प्रथमं पुरोहितं इन्द्रेण देवैः सरथं) सबसे प्राचीन, हर कार्यमें सर्वप्रथम स्थापित किये जानेवाले इन्द्रादि देवोंके साथ एक ही रथ पर बैठनेवाले इस (अग्निं नरः त्रिषधस्थे समीधिरे) अग्निको मनुष्य तीन स्थानोंमें प्रज्वलित करते हैं । (सुक्रतुः होता सः यजथाय बर्हिषि निसीदत्) शुभकर्मोंका कर्ता और देवोंको बुलानेवाला वह अग्नि यज्ञके लिये कुशासन पर प्रतिष्ठित होता है ॥२॥

[१०२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मात्रोः असंमृष्टः जायसे) जननीस्वरूप अरणिद्वयसे बिना किसी कठिनाई के उत्पन्न होता है । (मन्द्रः कविः शुचिः) सबसे स्तुति किये जाने योग्य, मेधावी और पवित्र तू (विवस्वतः उदतिष्ठः) मनुष्यके कल्याण के लिए प्रज्वलित होता है । पूर्व महर्षियोंने (त्वा घृतेन अवर्धयन्) तुझको घृत द्वारा बढाया था । हे (आहुत) आहुतिसे युक्त ! (ते दिविश्रितः धूमः केतुः अभवत्) तेरा अन्तरिक्ष व्यापी धूम ध्वजके समान है ॥३॥

[१०३] (साधुया अग्निः नः यज्ञं उपवेतु) सब कार्योंमें साधक अग्नि हमारे यज्ञमें आवे । (नरः गृहे गृहे अग्निं वि भरन्ते) मनुष्य प्रति घरमें अग्निको पुष्ट करते हैं । (हव्यवाहनः अग्निः दूतः अभवत्) हव्यको ले जानेवाला अग्नि देवोंका दूत हुआ है । (वृणानाः कविक्रतूं अग्निं वृणते) बुद्धिमान् लोग पवित्र और ज्ञानयुक्त कर्मवाले अग्निकी सेवा करते हैं ॥४॥

[१०४] हे (अग्ने) अग्ने ! (इदं मधुमत्तमं वचः तुभ्यं इत्) यह अतिशय मधुर स्तोत्र तेरे लिये है । (इयं मनीषा तुभ्यं हृदे शं अस्तु) यह स्तुति तेरे हृदयमें सुख प्रदान करनेवाली हो । (इव महीः अवनीः सिन्धुं) जैसे बडी नदियां समुद्रको परिपूर्ण करती हैं, उसी प्रकार (गिरः त्वां पृणन्ति) ये स्तुतियां तुझे पूर्ण करती हैं और (शवसा वर्धयन्ति) बलसे बढाती हैं ॥५॥

भावार्थ- यज्ञका चिन्ह, सबसे प्राचीन, इन्द्रादि देवोंके साथ एक स्थान पर बैठनेवाला यह अग्नि है, यह द्यु- अन्तरिक्ष- पृथ्वी इन तीनों स्थानों पर प्रज्वलित होता है । उत्तम कर्मोंका कर्ता यह अग्नि यज्ञमें उत्तम आसन पर बैठता है ॥२॥

यह अग्नि अपनी मातारूप अरणियोंको बिना किसी तरहकी हानि पहुंचाये प्रज्वलित होकर मनुष्योंका कल्याण करता है । प्राचीन ऋषियोंने इसे घीसे बढाया और जब इसका धुंआ आकाशमें गया तब लोगोंने समझा कि अग्नि जल रहा है ॥३॥

सब कार्योंको सिद्ध करनेवाला अग्नि हमारे यज्ञमें आवे । इस अग्निको हर मनुष्य आहुति आदि देकर पुष्ट करते हैं । यह दूत होकर देवोंको हवि पहुंचाता है, अतः बुद्धिमान् जन इस अग्निकी सेवा करते हैं ॥४॥

हे अग्ने ! ये मधुरतायुक्त स्तुतियां तेरे लिए ही हैं । इनसे तेरे हृदयको सुख पहुंचे । जिस प्रकार बडी बडी नदियां समुद्रमें जाकर गिरती और उसे पूर्ण करती हैं, उसी प्रकार ये स्तुतियां अग्निको पूर्ण करती और और उसे बलयुक्त करके बढाती हैं ॥५॥

१०५ त्वाम॑ग्ने॒ अङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒त- मन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने ।
स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत् त्वामा॑हुः॒ सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः ॥ ६ ॥

[१२]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१०६ प्राग्नये॑ बृह॒ते य॒ज्ञिया॑य ऋ॒तस्य॒ वृष्णे॒ असु॑राय॒ मन्म॑ ।
घृ॒तं न य॒ज्ञ आ॒स्ये॒३॒॑ सुपू॑तं॒ गिरं॑ भरे वृष॒भाय॑ प्रती॒चीम् ॥ १ ॥
१०७ ऋ॒तं चि॑कित्व ऋ॒तमिच्चि॑किद्ध्यृ॒- तस्य॒ धारा॒ अनु॑ तृन्धि पू॒र्वीः ।
नाहं या॒तुं सह॑सा॒ न द्व॒येन॑ ऋ॒तं स॑पाम्यरु॒षस्य॒ वृष्णः॑ ॥ २ ॥
१०८ कया॑ नो अग्न ऋ॒तय॑न्नृ॒तेन॒ भुवो॒ नवे॑दा उ॒चथ॑स्य॒ नव्यः॑ ।
वेदा॑ मे दे॒व ऋ॑तु॒पा ऋ॑तू॒नां नाहं पतिं॑ सनि॒तुर॒स्य रा॒यः ॥ ३ ॥

अर्थ- [१०५] हे (अग्ने) अग्ने ! (गुहाहितं) गुहाके मध्यमें छिपे हुये (**वने वने शिश्रियाणं त्वां अङ्गिरसः अनु अविन्दन्**) प्रत्येक वृक्षमें रहनेवाले तुझको अङ्गिराओंने प्राप्त किया । (**सः महत् सहः मथ्यमानः जायसे**) वह तू महान् बलके साथ मथित होने पर उत्पन्न होता है । इसी कारणसे हे (**अङ्गिरः त्वां सहसः पुत्रं आहुः**) प्रिय अग्ने ! तुझे बलका पुत्र कहते हैं ॥६॥

[१२]

[१०६] (**बृहते, यज्ञियाय, ऋतस्य वृष्णे, असुराय, वृषभाय अग्नेय**) अपने सामर्थ्यसे अत्यन्त महान् पूजाके योग्य, जलकी वृष्टि करनेवाले, प्राणोंको शक्ति देनेवाले, कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अग्निके लिये (**यज्ञे, आस्ये सुपूतं घृतं न**) यज्ञमें, उसके मुखमें डाली हुई परम पवित्र घृतकी तरह, (**प्रतीचीं मन्म गिरं प्र भरे**) सरल और मननीय स्तुति करता हूँ ॥१॥

[१०७] हे (**ऋतं चिकित्वः**) हमारी स्तुतियोंको जाननेवाले अग्ने ! तू हमारे कहे हुये (**ऋतं चिकिद्धि इत्**) स्तोत्रको जान और (**ऋतस्य पूर्वीः धाराः अनुतृन्धि**) जलकी अनेक धारायें बरसा । (**अहं सहसा यातुं न सपामि**) मैं बलसे युक्त होकर हिंसक कामको नहीं करता, तथा (**द्वयेन न**) सत्य अनृतसे मिले हुये अवैदिक कार्यको भी नहीं करता, अपितु (**अरुषस्य वृष्णः ऋतं**) तेजस्वी और कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तेरे स्तोत्रको ही करता हूं ॥२॥

[१०८] हे (अग्ने) अग्ने ! (**ऋतयन् कया ऋतेन**) सत्यका आचरण करता हुआ तू किस सत्यकर्म द्वारा (**नः नव्यः उचथस्य नवेदाः भुवः**) हमारे नवीन स्तोत्रको जाननेवाला होगा । (**ऋतूनां ऋतुपाः देवः मे वेद**) ऋतुओंका संरक्षण करनेवाला रक्षक दिव्यगुणयुक्त तू मुझको जान । (**अहं सनितुः अस्य रायः पतिं न**) मैं विभाग करनेवाले इस धनके स्वामीको नहीं जानता हूँ ॥३॥

भावार्थ- यह अग्नि प्रत्येक वृक्ष और लकडी के अन्दर छिपा हुआ था । पर बाद में इसे अंगिरा ऋषियोंने प्रकट किया। इसे अंगिराओंने मथकर प्रकट किया, तब इसमें बहुत बल आ गया । मथते समय बहुत शक्ति लगानी पडती है, तब जाकर यह उत्पन्न होता है । अत बलसे उत्पन्न होनेके कारण अग्निको 'बलका पुत्र' कहते हैं ॥६॥

वह अग्नि अपने सामर्थ्यसे महान् बना है, वह जलकी वर्षा करके प्राणोंको शक्तिशाली बनाता है । ऐसे अग्निके लिए मैं मननीय स्तोत्र बनाता हूँ ॥१॥

हे अग्ने ! तू सबके मनोभावोंको जाननेवाला है अतः हमारे मनोभावोंको जान कर तू पानीकी अनेक धारायें बहा । बलसे युक्त होते हुए भी मैं हिंसा और छल कपट के कार्य न करूं अपितु केवल तेरी स्तुति ही करूं ॥२॥

हे अग्ने ! सत्यका आचरण करनेवाला तू हमारे किस किस कर्मके द्वारा हमारे स्तोत्रको समझेगा ? तू सर्वज्ञ है, अतः मेरे सामर्थ्यको जानता है, पर मैं तेरे सामर्थ्यको पूरी तरह नहीं जानता क्योंकि तेरा सामर्थ्य अपार है ॥३॥

१०९ के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥ ४ ॥
११० सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥ ५ ॥
१११ यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥ ६ ॥

[१३]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

११२ अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥ १ ॥

अर्थ- [१०९] हे (अग्ने) अग्ने ! (रिपवे बन्धनासः) जो अपने शत्रुके लिये बन्धनका निर्माण करते हैं (ते के) ऐसे सामर्थ्यशाली जन कौन है ? (के पायवः द्युमन्तः सनिषन्तः) कौन पोषण करनेवाले, तेजस्वी और दानशील हैं ? (अनृतस्य धासिं के पान्ति) असत्य बोलनेवालेको कौन बचाते हैं ? तथा (असतः वचसः के गोपाः सन्ति) असत्य वचनसे कौन रक्षा कर सकते हैं ? ॥४॥

[११०] हे (अग्ने) अग्ने ! (विषुणाः ते सखायः एते अशिवाः सन्तः) सब जगह फैले हुये तेरे मित्रजन पहले सुखोंसे रहित हुये थे, पर बादमें वे (शिवासः अभूवन्) सौभाग्यशाली बन गए । (ऋजूयते वचोभिः वृजिनानि ब्रुवन्तः) हम सरल आचरण करते हैं फिर भी जो हमसे दुष्टवचनों से कुटिलशब्द बोलते हैं (एते स्वयं अधूर्षत) ये मेरे शत्रु अपने ही वचनों द्वारा स्वयं विनष्ट हो जाय ॥५॥

१ **ते सखायः अशिवाः सन्तः शिवासः अभूवन्-** इस अग्निके मित्र भी जब अग्निकी उपासना करना भूल गए, तब दुःखी और दुर्भाग्यशाली हो गए, पर फिर अग्निकी उपासनासे सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ।

२ **ऋजूयते वृजनानि ब्रुवन्तः स्वयं अधूर्षत-** जो सत्याचरणी सज्जनोंसे दुष्टवचन बोलते हैं, उन वचनोंसे वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं ।

[१११] हे (अग्ने) अग्ने ! (अरुषस्य वृष्णः यज्ञं ते यः नमसा ईट्टे) प्रकाशमान् और कामना पूर्ण करनेवाले यजनीय तेरी जो स्तोत्र द्वारा स्तुति करता है, और तेरे लिये (ऋतं पाति) यज्ञकी रक्षा करता है (तस्य क्षयः पृथुः) उस मनुष्यका घर विस्तीर्ण हो और तेरी (प्रसर्स्राणस्य, नहुषस्य शेषः साधुः आ एतु) भलीभांति सेवा करनेवाले मनुष्यकी कामना सिद्ध हो ॥६॥

[१३]

[११२] हे (अग्ने) अग्ने ! हम लोग (त्वा अर्चन्तः हवामहे) तेरी पूजा करते हुये तेरा आह्वान करते हैं । एवं तेरी (अर्चन्तः ऊतये समिधीमहि) स्तुति करते हुये अपनी रक्षाके लिये तुझको प्रज्वलित करते हैं ॥१॥

भावार्थ- अपने शत्रुओंको रोकनेवाले सामर्थ्यशाली वीर कौन हैं ? कौन दान देकर लोगोंका पालन पोषण करते हैं, कौन असत्य बोलते हैं और कौन जन उन असत्य बोलनेवालोंकी रक्षा करते हैं, यह सभी बातें अग्नि जानता है । वह सर्वज्ञ है अतः उससे कोई बात छिपी हुई नहीं है ॥४॥

इस अग्निकी उपासनाके बिना जो पहले सुखोंसे रहित दुर्भाग्यशाली बन गए थे, वे ही बाद में इस अग्निकी उपासना करके सुखी होकर उत्तम भाग्यशाली बने । जो सत्यका आचरण करनेवाले सज्जनसे दुष्ट वचन बोलते हैं, वे स्वयं अपने वचनोंसे नष्ट हो जाते हैं ॥५॥

हे अग्ने ! जो तुझ बलवान् और तेजस्वीकी स्तुति करता है और यज्ञमें आहुति देता है, वह महान् धनी होता है और तेरी सेवा करनेवाले उस मनुष्यकी सभी कामनायें पूर्ण होती हैं ॥६॥

११३ अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ २ ॥
११४ अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥
११५ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ४ ॥
११६ त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
११७ अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥ ६ ॥

[१४]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

११८ अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १ ॥

अर्थ- [११३] (अद्य) आज (द्रविणस्यवः दिविस्पृशः देवस्य अग्ने) धन-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोग आकाशको छूनेवाले, प्रकाशमान् अग्निके (**शीघ्रं स्तोमं मनामहे**) कामना सिद्ध करनेवाले स्तोत्रको बोलते हैं ॥२॥

[११४] (**यः अग्निः मानुषेषु होता**) जो अग्नि मनुष्योंके बीचमें स्थापित हुआ हुआ और देवोंको बुलानेवाला है, (**सः नः गिरः जुषत**) वह हम लोगोंकी स्तुतियोंको ग्रहण करे और (**दैव्यं जनं आ यक्षत्**) देवताओंके पास हविको सब ओरसे पहुँचावे ॥३॥

[११५] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**त्वं जुष्टः वरेण्यः होता सप्रथाः असि**) तू सर्वदा सेवन करने योग्य, अतिश्रेष्ठ होम निष्पादक और प्रसिद्ध यज्ञवाला है । (**त्वया यज्ञं वि तन्वते**) तेरे द्वारा ही यज्ञका विस्तार किया जाता है ॥४॥

[११६] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**विप्राः वाजसातमं सुष्टुतं त्वां वर्धन्ति**) बुद्धिमान् लोग, अन्नके दाता, उत्तम यशवाले तुझको स्तुतियोंसे बढाते हैं । (**सः नः सुवीर्यं रास्व**) वह तू हमको उत्कृष्ट बल प्रदान कर ॥५॥

[११७] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**इव नेमिः अरान्**) जिस प्रकार चक्रकी नाभिके चारों ओर अरे होते हैं, उसी प्रकार (**त्वं देवान् परि भूरसि**) तू देवोंको चारों ओरसे व्याप्त करता है । तू हम लोगोंको (**चित्रं राधः आ ऋञ्जसे**) नाना प्रकारका धन सब ओरसे प्रदान कर ॥६॥

[१४]

[११८] हे मनुष्य ! (**अमर्त्यं अग्निं**) अविनाशी अग्निको (**स्तोमेन बोधय**) स्तोत्र द्वारा चैतन्य कर । वह (**समिधानः नः हव्या देवेषु दधत्**) अच्छी प्रकार प्रज्वलित होनेपर हमारे हव्योंको देवताओंमें स्थापित करे ॥१॥

भावार्थ- अग्निकी पूजा करते हुए हम अपने संरक्षणके लिए अग्निको बुलाते हैं और कामनाको सिद्ध करनेवाले स्तोत्रोंसे उसकी स्तुति करते हैं ॥१-२॥

यह अग्नि सब प्राणियोंके पास देवोंको बुलाकर लाता और स्वयं भी अन्य देवोंके साथ मनुष्योंके अन्दर विराजता है वह अग्नि सब देवोंके पास उनका भाग पहुंचाता है और इस प्रकार सभी देवोंको वह पुष्ट करता है ॥३॥

यह अग्नि मनुष्योंके बीचमें स्थित होकर देवोंको बुलाकर लाता है और इस प्रकार यज्ञका विस्तार करता है फिर उस यज्ञमें डाली गई हवियोंको वह देवोंतक पहुंचाता है ॥४॥

सब श्रेष्ठ बुद्धिमान् मनुष्य अन्नको देनेवाले तथा उत्तम यश देनेवाले इस अग्निको स्तोत्रोंसे बढाते हैं, तब वह प्रसन्न होकर अपने उपासकोंको बल प्रदान करता है। इस शरीरमें स्थित अग्निको अन्नादिसे पुष्ट करने पर शरीर भी पुष्ट होता है ॥५॥

ज्ञानी लोग इस सर्व व्यापक अग्निकी सब तरहसे स्तुति करते हैं और इस अग्निको बढाते हैं। तब यह प्रसन्न होकर उपासकोंको नाना तरहके धन देता है ॥६॥

हर मनुष्यको चाहिए कि वह अग्निको अच्छी तरह प्रज्वलित करे, क्योंकि अच्छी तरह प्रज्वलित होने पर वह डाली गई आहुतियोंको देवोंतक पहुंचाता है ॥१॥

१९९ तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥ २ ॥
१२० तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ ३ ॥
१२१ अग्निर्जातो अरोचत घ्नन् दस्यूञ्ज्योतिषा तमः । अविन्दद् गा अपः स्वः ॥ ४ ॥
१२२ अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५ ॥
१२३ अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ ॥

[१५]

[ऋषिः- धरुण आङ्गिरसः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१२४ प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १ ॥

अर्थ- [११९] (मर्ताः) मनुष्यगण, (देवं अमर्त्यं मानुषे जने यजिष्ठं तं) दिव्यगुण युक्त, अमर और मनुष्योंके मध्यमें परम पूजनीय उस अग्निको (अध्वरेषु ईळते) यज्ञोंमें स्तुति करते हैं ॥२॥

[१२०] यज्ञस्थलमें (शश्वन्तः घृतश्चुता) बहुतसे स्तोतागण घृत गिराते हुये स्रुवाके साथ (हव्याय वोढवे हि) हव्यको देवों तक पहुंचानेके लिए निश्चयसे (तं देवं अग्निं ईळते) उस दिव्यगुणयुक्त अग्निकी स्तुति करते हैं ॥३॥

[१२१] (जातः अग्निः) उत्पन्न अग्नि अपने (ज्योतिषा तमः दस्यून् घ्नन् अरोचत) तेजसे अन्धकार और शत्रुओंको विनष्ट करता हुआ प्रकाशित हुआ और उसने (गाः अपः स्वः अविन्दत्) किरण, जल और सुख इन तीनोंको प्राप्त किया ॥४॥

[१२२] हे मनुष्यो ! तुम उस (ईळेन्यं कविं घृतपृष्ठं अग्निं सपर्यत) प्रशंसा करने योग्य, ज्ञानी और तेजस्वी ज्वालावाले अग्निकी सेवा करो । वह अग्नि (मे हवं श्रृणवत् वेतु) मेरे इस आह्वानको सुने और मेरी इच्छाको जाने ॥५॥

[१२३] ऋत्विकगण (घृतेन स्तोमेभिः) घृतसे और स्तोत्रोंके द्वारा (वचस्युभिः स्वाधीभिः) स्तुतिके अभिलाषी और ध्यानगम्य देवोंके साथ, (विश्वचर्षणिं अग्निं वावृधुः) संसारको प्रकाशित करनेवाले अग्निको बढाते हैं ॥६॥

[१२४] (अग्निः घृतप्रसत्तः) अग्नि हविरूपघृतसे प्रसन्न होता है । यह (असुरः सुशेवः रायः धर्ता धरुणः वस्वः) बलवान्, सुखस्वरूप, धनका पोषक, हविको धारण करनेवाला और गृहका प्रदाता है । ऐसे (कवये यशसे पूर्व्याय, वेद्याय, वेधसे गिरं प्रभरे) दूरदर्शी, यशस्वी, श्रेष्ठ, जानने योग्य और बुद्धिमान् अग्निके लिये मैं स्तुति और प्रार्थना करता हूँ ॥१॥

भावार्थ- वह अग्नि दिव्य गुण युक्त, अमर और मनुष्योंके बीचमें अत्यन्त पूज्य है, अतः सब उसकी स्तुति करते है। उसी प्रकार जो मनुष्य दिव्य गुण युक्त है, वह सबके द्वारा पूज्य होता है और सब उसकी प्रशंसा करते हैं ॥२॥

यह अग्नि दूतका काम करता है और यज्ञकर्ताओंकी प्रार्थना और हवियोंको देवोंतक पहुंचाता है, इसलिए सब उसकी स्तुति करते हैं । दूतकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥३॥

अग्निके प्रकाशित होते ही अन्धकार और रोगादिके जन्तु आदि शत्रु नष्ट हो जाते हैं । तब उसकी किरणोंसे पानी बरसता है और सभी मनुष्य सुख पाते हैं ॥४॥

यह अग्नि प्रशंसनीय, ज्ञानी और तेजस्वी है, ऐसी अग्निकी सेवा सभी मनुष्योंको करनी चाहिए । वह अग्नि मनुष्योंकी प्रार्थना सुनता है और उनकी इच्छाओंको समझता है ॥५॥

सर्वव्यापक होने से यह अग्नि सब कुछ देखता है। यह ध्यानके द्वारा देखने योग्य है, ऐसे अग्निको सब ऋत्विज बढाते हैं ॥६॥

वह अग्नि (असु-रः) प्राणोंको बलवान् बनानेवाला, सुख प्रदाता धनको धारण करनेवाला और सबको बसानेवाला है। वह भविष्यकी बातोंको भी जाननेवाला, यशस्वी तथा श्रेष्ठ है । ऐसे गुणोंसे युक्त मनुष्यकी पूजा होती है ॥१॥

१२५ ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन् धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥ २ ॥
१२६ अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद् दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात् सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥ ३ ॥
१२७ मातेव यद् भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद् दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४ ॥
१२८ वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ ॥

अर्थ- [१२५] (ये) जो मनुष्य (**दिवः धरुणे धर्मन् सेदुषः, नॄन् अजातान्**) द्युलोकके धारक, प्रतिष्ठित धर्ममें लगे हुये, नेता रूप अमर देवगणको (**जातैः अभि ननक्षुः**) ऋत्विजों द्वारा अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, वे (**यज्ञस्य धरुणं ऋतं शाके परमे व्योमन्**) यज्ञके धारक सत्यस्वरूप अग्निको यज्ञके लिये उत्तम स्थान पर (**ऋतेन धारयन्त**) स्तोत्र द्वारा स्थापित करते हैं ॥२॥

[१२६] जो मनुष्य (**पूर्व्याय महत् दुष्टरं, वयः**) श्रेष्ठ अग्निके लिये, अन्यों द्वारा अत्यधिक कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्न प्रदान करता है, (**तन्वः अंहोयुवः वि तन्वते**) उसका शरीर पापसे रहित होकर बढता है । (**स नवजातः क्रुद्धं सिंहं न**) वह नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंहकी तरह (**संवतः अभितः तुतुर्यात्**) इकट्ठे हुये हुए हमारे शत्रुओंको सब ओरसे नष्ट करे । तथा (**परि स्थुः**) सर्वत्र वर्तमान अन्य शत्रुओंको भी हमसे दूर करे ॥३॥

१ **पूर्व्याय दुस्तरं वयः अंहोयुवः वि तन्वते**- जो इस श्रेष्ठ अग्निके लिए अन्यों द्वारा कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्नको प्रदान करता है, वह पापसे छूटकर वृद्धिको प्राप्त होता है ।

[१२७] हे अग्ने ! (**पप्रथानः**) सर्वत्र प्रख्यात तू (**यत् माता इव जनं जनं भरसे**) माताकी तरह प्रत्येक जनका पोषण करता है । (**धायसे च चक्षसे**) धारण करनेके लिये और ज्ञानके लिये सबके द्वारा स्तुत होता है (**यत् दधानः वयः वयः जरसे**) जब प्रज्वलित होता है, तब सारे अन्नोंको जीर्ण कर देता है । और (**विषुरूपः त्मना परि जिगासि**) नाना रूप होकर अपनी शक्तिसे सब जगह व्याप्त होता है ॥४॥

[१२८] हे (**देव**) दिव्य गुण युक्त अग्ने ! (**उरं दोघ धरुणं वाजः ते अन्तं शवसः नु पातु**) अत्यधिक कामनाओंके पूरक, धनके धारक हविरूप अन्न तेरे सम्पूर्ण बलकी उसी प्रकार रक्षा करे जिस प्रकार (**तायुः न गुहा पदं दधानः**) तस्कर गुहाके मध्यमें छिपकर धनको धारण करता है, (**महः राये चितयन्, अत्रिं अस्पः**) प्रचुर धन लाभके लिये सन्मार्गको प्रकाशित कर और पालन करनेवालेको प्रसन्न कर ॥५॥

भावार्थ- प्रथम मनुष्योंने द्युलोकको धारण करनेवाले, धार्मिक, उत्तम मार्ग पर ले जानेवाले अमर अग्निका पता लगाया, फिर उस यज्ञका सम्पादन करनेवाले अग्निको यज्ञ करनेके लिए उत्तम स्थान पर मंत्रों द्वारा स्थापित किया ॥२॥

जो इस श्रेष्ठ अग्निको उत्तमसे उत्तम अन्न प्रदान करता है, वह निष्पाप होकर बढता है और वह अग्नि क्रोधित सिंहकी तरह भयंकर रूपसे प्रज्वलित होकर उसके सब शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥३॥

यह सर्वत्र विस्तृत अग्नि माताके समान पवित्र और उत्तम हो कि उससे अग्निका बल और सामर्थ्य बढे । यज्ञमें दी जानेवाली हवि खराब न हो । प्रज्वलित होने पर अग्नि उत्तम मार्गको प्रकाशित करता है और पालक मनुष्यको आनन्दित करता है ॥५॥

[१६]

[ऋषिः- पूरुरात्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५ पंक्तिः ।]

१२९ बृहद् वयो हि भानवे ऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभि र्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥

१३० स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुष ग्भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥

१३१ अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन् तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३ ॥

१३२ अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद् यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४ ॥

---

[१६]

अर्थ- [१२९] **(मर्तासः यं मित्रं न प्रशस्तिभिः पुरः दधिरे)** मनुष्यगण जिस अग्निको मित्रकी तरह प्रकृष्ट स्तुतियों द्वारा सबसे आगे स्थापित करते हैं । उस **(देवाय भानवे अग्नये हि बृहद्वयः अर्च)** दिव्यगुण युक्त और प्रकाशमान् अग्निके लिये महान् हविरूप अन्न प्रदान करके उसकी पूजा करो ॥१॥

[१३०] जो **(अग्निः आनुषक् हव्यं)** अग्नि देवोंके लिये अनुकूलतासे हव्यको वहन करता है । जो **(बाह्वोः दक्षस्य द्युभिः)** अपनी भुजाओंके बलके अत्यधिक तेजोंसे युक्त है **(जनानां होता सः भगः न वारं वि ऋण्वति)** मनुष्योंका होता वह अग्नि हम लोगोंको सूर्यकी तरह श्रेष्ठ सम्पत्ति प्रदान करता है ॥२॥

[१३१] जो ऋत्विक्गण **(तुविष्वणि यस्मिन् अर्ये शुष्मं सं आदधुः)** अत्यधिक शब्द करनेवाले जिस श्रेष्ठ अग्निमें बलको स्थापित करते हैं **(अस्य वृद्धशोचिषः मघोनः सख्ये स्तोमे)** इस बढी हुई कान्तिवाले और बहु धनसे युक्त अग्निकी मित्रता और स्तुतिमें रहकर हम **(विश्वा)** सम्पूर्ण सुख प्राप्त करें ॥३॥

[१३२] हे **(अग्ने)** अग्ने ! **(अध एषां सुवीर्यस्य मंहना)** अनन्तर इन मनुष्योंको तुम श्रेष्ठ बलसे युक्त करो । **(न यह्वं रोदसी परि बभूवतुः)** जैसे महान् सूर्यके सहारे ये पृथ्वी और आकाश स्थित हैं उसी प्रकार **(श्रवः तं इत्)** सारे अन्न और धन उसीके आश्रयसे स्थित हैं ॥४॥

भावार्थ- जिस प्रकार मित्र अपने मित्रसे स्नेह करता है और हमेशा अपने मित्रको आगे बढानेका प्रयत्न करता है, उसी तरह मनुष्य इस अग्निको सबसे आगे रखते हैं और उसका हर तरहसे सम्मान करते हैं ॥१॥

इस सूर्यमें अनेक प्रकार की सम्पत्तियां हैं, जिन्हें यह सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब प्राणियों को प्रदान करता है, उसी प्रकार इस अग्निकी किरणों में अनेक तरहकी शक्तियां रहती हैं, वे सभी शक्तियां उपासक अग्निसे प्राप्त करता है ॥२॥

जब मनुष्य इस अग्निको आहुति आदि देकर पुष्ट करते हैं, और यह बडे शब्दके साथ जलने लगता है, तब इस बडी हुई कान्तिवाले अग्निकी उपासनासे मनुष्य सब सुखोंको प्राप्त करते हैं ॥३॥

जिस प्रकार पृथ्वी और द्युलोक सूर्यके आकर्षणसे अपने अपने स्थान पर स्थित हैं, उसी प्रकार सब अन्न इसी अग्निके सहारे टिके हुए हैं । अन्न इसी अग्निके कारण उत्पन्न होते हैं । उस अन्नको खाकर मनुष्य बलशाली होते हैं ॥४॥

१३३ नू नु एहि वार्य––मग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचो––तैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥

[१७]

[ऋषिः- पूरुरात्रेयः । देवता-अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५ पंक्तिः ।]

१३४ आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥ १ ॥
१३५ अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन् मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥ २ ॥
१३६ अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३ ॥

अर्थ- [१३३] हे (**अग्ने**) अग्ने ! हम सब तेरी (**गृणानः**) स्तुति करते हैं । (**नु एहि**) शीघ्र ही हमारे यज्ञमें आ । और (**नः वार्यं आभर**) हमारे लिये श्रेष्ठ धन भरपूर दे (**ये वयं च ये सूरयः सचा स्वस्ति धामहे**) जो हम और जो विद्वान् स्तोता हैं वे सब मिलकर कल्याणको धारण करें (**उत पृत्सु नः वृधे एधि**) और युद्धमें हम लोगोंको बढानेके लिए तू स्वयं भी बढ ॥५॥

[१७]

[१३४] हे (**देव**) देव ! (**मर्त्यः इत्था तव्यांसं अग्निं ऊतये यज्ञैः आ**) मनुष्य इस प्रकार तेजस्वी अग्निको स्वरक्षाके लिये सम्मानपूर्वक बुलाता है । और (**पूरूः कृते सु अध्वरे अवसे ईळीत**) मनुष्य आरम्भ किए हुए शोभन अहिंसामय यज्ञमें, अपनी रक्षाके लिए अग्निकी स्तुति करता है ॥१॥

[१३५] हे (**विर्धमन्**) धर्मका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य ! (**स्वयशस्तरः**) अत्यन्त श्रेष्ठ यशवाला तू (**मन्द्रं चित्रशोचिष, नाकं परः तं अस्य**) आनन्द देनेवाले, अद्भुत प्रकाशवाले, दुःखसे रहित, श्रेष्ठ उस प्रसिद्ध अग्निकी (**हि मनीषया आसा मन्यसे**) निश्चयसे प्रकृष्ट बुद्धिपूर्वक वाणीसे स्तुति कर ॥२॥

[१३६] (**यः तुजा आयुक्तः**) जो अग्नि बलसे और स्तुतिसे सामर्थ्ययुक्त होता है । जो (**दिवः न**) प्रकाशमान् आदित्यकी तरह द्योतमान है । (**यस्य**) जिसकी (**बृहत् अर्चयः**) बडी ज्वालाएं (**रेतसा**) तेजसे प्रकाशित होती हैं ऐसे (**अस्य अर्चिषा असौ उ**) इस अग्निकी प्रभासे ही यह मनुष्य तेजस्वी होता है ॥३॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तेरी हम स्तुति करते हैं अतः तू शीघ्र हमारे पास आ और हमें भरपूर श्रेष्ठ धन दे । हम सब संगठित होकर तेरी स्तुति करते हैं अतः हम सबका कल्याण हो और युद्धोंमें भी हमारी उन्नति हो ताकि हम धन धान्यसे समृद्ध होकर तुझे भी तुष्ट कर सकें ॥५॥

हे तेजस्वी देव ! यज्ञके आरंभ होने पर मनुष्य इस अग्निकी अपनी रक्षाके लिए उपासना करता है और इसे सम्मान पूर्वक अपने पास बुलाता है ॥१॥

वह अग्नि आनन्द देनेवाला, अत्यन्त सुन्दर ज्वालाओंवाला, दुःखसे रहित और श्रेष्ठ है, इसलिए बुद्धिपूर्वक उसकी उपासना करनेवाला धार्मिक और श्रेष्ठ यशसे युक्त होता है ॥२॥

यह अग्नि तेज और सामर्थ्यसे युक्त है । सूर्य जैसे अपनी किरणोंसे सबको शक्ति देता है, उसी तरह अग्नि भी अपने तेजसे सब प्राणियोंको तेज प्रदान करता है, जिस मनुष्यमें अग्नि जितना सामर्थ्यशाली होगा, उतना ही वह मनुष्य तेजोवान् होगा ॥३॥

१३७ अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्यो ऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥
१३८ नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥

[१८]

[ऋषिः— द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः । देवता— अग्निः । छन्दः— अनुष्टुप्, ५ पंक्तिः ।]

१३९ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥
१४० द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक् स्तोता चित् ते अमर्त्य ॥ २ ॥

अर्थ- [१३७] (विचेतसः) सुन्दर मतिवाले बुद्धिमान् जन, (दस्मस्य अस्य क्रत्वा वसु रथ आ) दर्शनीय इस अग्निका यज्ञमें सत्कार करके धन और रथ सब ओरसे प्राप्त करते हैं । (अध हव्यः अग्निः विश्वासु विक्षु प्रशस्यते) इसके बाद यज्ञार्थ बुलाये जानेवाला यह अग्नि सम्पूर्ण प्रजाओंमें विशेष रूपसे प्रशसित होता है ॥४॥

[१३८] हे अग्ने ! जिस धनको (सूरयः आसा सचन्त) स्तोता लोग मुंहसे स्तोत्र बोलकर प्राप्त करते हैं। (वार्यं नः नु इद्धि) वह वरणीय धन हम लोगोंको शीघ्र ही प्रदान कर । हे (ऊर्जः नपात्) बलके पुत्र! हमें (अभिष्टये पाहि) अभिलषित प्रदान करके हमारी रक्षा कर । हमें (स्वस्तते शग्धि) कल्याण के लिए समर्थ कर (उत पृत्सु नः वृधे एधि) और संग्राममें उपस्थित रहते हुये हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके लिए तू भी वृद्धिको प्राप्त हो ॥५॥

[१८]

[१३९] (अमर्त्यः यः मर्तेषु विश्वानि हव्या रण्यति) अमरणशील जो अग्नि मनुष्योंके मध्यमें प्रतिष्ठित होकर सम्पूर्ण हव्योंकी कामना करता है वह (अग्निः पुरुप्रियः) अग्नि बहुतोंका प्रिय (विशः अतिथिः) सर्वत्र व्यापक, अतिथिके समान सत्कारके योग्य और (प्रातः स्ववेन) प्रातःकालमें स्तुति किए जाने योग्य है ॥१॥

[१४०] हे (अमर्त्य) अमर अग्ने ! (मृक्तवाहसे द्विताय स्वस्य दक्षस्य मंहना) पवित्र हवि पहुँचानेवाले द्वितको अपने बलसे महत्वयुक्त कर । क्योंकि (सः ते आनुषक् इन्दुं धत्ते) (स्तोता चित्) वह तेरे लिये अनुकूलतासे सदा ही सोमरस देता है, और तेरी पूजा करता है ॥२॥

भावार्थ- उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य इस अग्निका सत्कार करके सब तरहका धन और रथ प्राप्त करते हैं । उत्पन्न होनेके बाद यह अग्नि सब प्रजाओंमें अत्यधिक प्रशंसित होता है । जो इस अग्निका सत्कार करता है, वह हर तरहसे समृद्ध होता है ॥४॥

बुद्धिमान् जन अग्निकी उपासना करके उत्तम और श्रेष्ठ धन प्राप्त करते हैं । अग्निसे सम्पत्ति प्राप्त करनेका एकमात्र मार्ग उसकी उपासना है । हमारे अन्दर जो सामर्थ्य हो, वह लोगोंका कल्याण करनेके लिए ही हो । वह अग्रणी स्वयं भी सामर्थ्यशाली होकर युद्धोंमें हमें भी बढाए ॥५॥

यह अग्नि स्वयं अमर होता हुआ मरणशील मनुष्योंके अन्दर रहता हुआ उन्हें बलवान् और सामर्थ्यशाली बनाता है । इसीलिए वह सभीके लिए प्रिय और अतिथिके समान पूज्य है, उसकी प्रातःकाल स्तुति करनी चाहिए ।

अमर अग्ने ! तू सदा स्तुति करनेवाले और सोमरस देनेवाले, दोनों प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न तथा उत्तम हवि देनेवाले मनुष्यको अपने सामर्थ्यसे सर्वश्रेष्ठ बना (द्वितय- दो प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न शारीरिक और आध्यात्मिक ।) ॥२॥

१४१ तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥

१४२ चित्रा वा येषु दीधिति– रासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

१४३ ये मे पञ्चाशतं ददु– रश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत् कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥ ५ ॥

[१९]

[ऋषिः– वव्रिरात्रेयः । देवता– अग्निः । छन्दः– गायत्री, ३-४ अनुष्टुप्, ५ विराड्रूपा ।]

१४४ अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥ १ ॥

अर्थ- [१४१] हे **(अश्वदावन्)** अश्वदाता अग्ने ! **(दीर्घायुशोचिषं तं वः मघोनां गिरा हुवे)** दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले तथा तेजस्वी उस तुझको स्तुति द्वारा बुलाता हूँ । जिससे **(येषां रथः अरिष्टः वि ईयते)** जो वीर हैं, उनका रथ शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर युद्धमें विशेष रूपसे बढता जाये ॥३॥

[१४२] **(येषु चित्र दीधितिः)** जिन ऋत्विजोंमें अनेक प्रकारके तेज होते हैं **(ये आसन् उक्था पान्ति)** जो मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं वे यज्ञशील **(स्वर्णरि स्तीर्ण बर्हिः परि श्रवांसि दधिरे)** स्वर्ग प्रापक यज्ञमें फैले हुये कुशोंके ऊपर अनेक प्रकारके अन्न अग्निके लिये स्थापित करते हैं ॥४॥

१ **येषु चित्रा दीधितिः**- यज्ञशील मनुष्योंमें अनेक तरहके तेज होते हैं ।

२ **आसन् उक्था पान्ति**- वे ब्राह्मण मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं ।

[१४३] हे **(अमृत अग्ने)** अमर अग्ने ! **(सधस्तुति ये मे पञ्चाशतं अश्वानां ददुः)** तेरी स्तुतिके साथ जो धनदाता मुझे पचास घोडोंको प्रदान करते हैं, तू उन **(मघोनां नृणां द्युमत् बृहत् नृवत् महि श्रवः कृधि)** धनिक मनुष्योंको तेजस्वी और बहुत सेवकोंसे युक्त यशस्वी अन्न प्रदान करो ॥५॥

[१९]

[१४४] **(वव्रिः मातुः उपस्थे विचष्टे)** वह अदृश्य अग्नि माता अरणीके समीप स्थित होकर सबको भली प्रकार देखता है और **(चिकेत)** सब कुछ जानता है, **(वव्रेः अवस्थाः अभि प्रजायन्ते)** जब वह अदृश्य अग्नि प्रकट होता है तब उसकी अनेक अवस्थायें होती हैं ॥१॥

भावार्थ- हे अश्वको देनेवाले अग्ने ! मैं तुझे स्तुति द्वारा बुलाता हूँ ताकि तू अपने तेजसे हमारे वीरोंकी आयु दीर्घ कर सके और युद्धमें आगे जानेवाले उनके रथोंको शत्रु नष्ट कर सकें ॥३॥

जो ब्राह्मण अनेक तेजोंसे युक्त है और वेदमंत्रोंको कण्ठस्थ करके वेदमंत्रोंकी रक्षा करते हैं वे यज्ञमें अग्निको देनेके लिए अनेक प्रकारके अन्नोंको तैय्यार करते हैं ॥४॥

जो अग्निके उपासकोंको गौ आदि धन प्रदान करते हैं, वे भी अग्निसे अनेक तरहका महत्त्वपूर्ण धन प्राप्त करते हैं ॥५॥

वह अदृश्य अग्नि अपनी माता अरणीके गर्भमें रहकर सभी कुछ देखता है और जानता है जब वह प्रकट होता है, तब शरीराग्नि, भौतिकाग्नि, सूर्य आदि रूपोंमें उसकी अनेक अवस्थायें हो जाती हैं ॥१॥

१४५ जुहुरे वि चितयन्तो ऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥ २ ॥

१४६ आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद् वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३ ॥

१४७ प्रियं दुग्धं न काम्य मजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरो ऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥

१४८ क्रीळन् नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन् धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥ ५ ॥

अर्थ- [१४५] हे अग्ने ! (वि चितयन्तः अनिमिषं जुहुरे) तेरे प्रभावको जानकर जो लोग सर्वदा तुझमें आहुति डाला करते हैं और तेरे (नृम्णं पान्ति) बलकी रक्षा करते हैं । वे लोग (दृळ्हां पुरं आ विविशुः) शत्रुओंके दृढ नगरको भी तोड करके उसमें सब ओरसे प्रवेश कर जाते हैं ॥२॥

[१४६] (बृहदुक्थः वाजयुः निष्कग्रीवः जन्तवः कृष्टयः) महान् स्तोत्र करनेवाले, अन्नाभिलाषी, सुवर्णके अलंकारोंको कंठमें धारण करनेवाले उत्पन्नशील मनुष्य (मध्वा न एना श्वैत्रेयस्य द्युमत् आ वर्धन्तः) शहद सदृश मीठे इन अपनी स्तुतियोंसे अत्यधिक प्रकाशमान् अग्निके तेजस्वी बलको सब ओरसे बढाते हैं ॥३॥

[१४७] जो अग्नि ! (धर्मः न, वाजजठरः अदब्धः शश्वतः दमः) यज्ञके समान, हवि अन्नको अपने अन्दर रखनेवाला, तथा शत्रुओं द्वारा स्वयं अहिंसित होकर शत्रुओंकी हिंसा करनेमें समर्थ है (जाम्योः सचा दुग्धं काम्यं अजाभि प्रियं) आकाश और पृथ्वीका सहायक वह अग्नि दूधके समान चाहे जाने योग्य दोषोंसे रहित हमारे प्रिय स्तोत्रको सुने ॥४॥

[१४८] हे (रश्मे) प्रदीप्त अग्ने (क्रीळन् वायुना भस्मना सं वेदिदानः नः आ भुवः) प्रदीप्त होता हुआ और वायुसे उडाई गई राखके द्वारा भली भांति ज्ञात होनेवाला तू हमारी तरफ ध्यान दे । तेरे (वक्षणेस्थाः वक्ष्यः सुसंशिता घृषजः) अन्दर स्थित ज्वालायें जो सुतीक्ष्ण और शत्रुनाशक हैं (ताः अस्य तिग्माः न सन्) वे ज्वालायें इस मेरे लिए तीक्ष्ण न हों अर्थात् शीतल हों ॥५॥

भावार्थ- इस अग्निमें जो प्रतिदिन आहुति प्रदान करते हैं, और अग्निको पुष्ट करते हुए उसके बलकी रक्षा करते हैं, वे उस अग्निकी सहायतासे शत्रुओंके दृढसे दृढ नगरको भी तोडकर उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥२॥

महान् स्तुति करनेवाले अन्नकी इच्छा करनेवाले अलंकारों से सजे धजे मनुष्य उत्तम स्तुतियोंसे इस अग्निके बलको सब ओरसे बढाते हैं । मनुष्यको हमेशा शहदके समान मीठी वाणी ही बोलनी चाहिए ॥३॥

यह अग्नि हर तरहके अन्नको अपने अन्दर धारण करता है और शत्रुओं द्वारा स्वयं अहिंसित शत्रुओंका नाश होकर करता है, ऐसा अग्नि हमारी स्तुतियोंको सुने । स्तुति हमेशा दोषोंसे रहित और दूधके समान सुन्दर हो ॥४॥

जब अग्नि जलता है, तब उसकी राख इधर उधर हवामें उडती है, उसके द्वारा अग्निका जलना ज्ञात होता है । उस अग्निकी ज्वालाएं रोगरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाली है, इसकी जो उपासना करता है, वह कभी रोगोंसे पीडित नहीं होता ॥५॥

[२०]

[ऋषिः- प्रयस्वन्त आत्रेयाः । देवता अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ४ पंक्तिः ।]

१४९ यमग्ने वाजसातम त्वं चिन् मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥
१५० ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरो ऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥ २ ॥
१५१ होतारं त्वा वृणीमहे ऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
१५२ इत्था यथा त ऊतये सहसावन् दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥ ४ ॥

---

[२०]

अर्थ- [१४९] हे (**वाजसातम अग्ने**) अनन्त अन्न देनेवाले अग्ने ! (**नः यं रयिं त्वं मन्यसे चित्त**) हम लोगों द्वारा दिये गये जिस धनको तू स्वीकार करता है, हमारे (**श्रवाय्यं गीर्भिः युजं तं देवत्रा पनय**) प्रशस्त और स्तुतियोंके साथ उस धनको तू देवताओंको पहुंचा ॥१॥

[१५०] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**ये वृद्धाः**) जो मनुष्य धनसे समृद्ध होकर भी (**ते उग्रस्य शवसः अप न ईरयान्त**) तेरे इस भयंकर बलको देखकर भी नहीं कांपते हैं, वे (**अन्यव्रतस्य द्वेषः ह्वरः सश्चिरे**) दूसरे उत्तम कर्म करनेवालोंके द्वेष और हिंसासे अपने आपको संयुक्त करते हैं ॥२॥

१ **वृद्धाः उग्रस्य शवसः न ईरयन्ति ह्वरः सश्चिरे**- जो अग्निकी कृपासे समृद्ध होकर भी इसके क्रोधसे डरते नहीं हैं, वे नष्ट हो जाते हैं ।

[१५१] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**प्रयस्वन्तः**) अन्नसे सम्पन्न हम (**होतारं दक्षस्य साधनं**) देवोंको बुलानेवाले और बलको प्रदान करनेवाले (**त्वा वृणीमहे**) तुझे चाहते हैं और (**यज्ञेषु पूर्व्यं त्वां गिरा हवामहे**) यज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ तेरी वाणी द्वारा स्तुति करते हैं ॥३॥

[१५२] हे (**सहसावन् सुक्रतो**) बलवान् और बुद्धिसे युक्त अग्ने ! (**यथा ते उतये दिवे दिवे**) जिस प्रकार तेरे रक्षणादिकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन हम तैय्यार रहें, तथा (**ऋताय राये सधमादः स्याम**) धर्मसे प्राप्त होनेवाले धनके लिये हम लोग इकट्ठे होकर आनंदित हों, उसी प्रकार (**गोभिः वीरैः सधमादः स्याम, इत्था**) गायों और वीर पुत्रोंके साथ सुखसे युक्त होकर निवास करनेवाले हों, इस प्रकार का तू हमें कर ॥४॥

भावार्थ- हे अग्ने ! हमारे द्वारा दिए गए जिस उत्तम और स्तुतियोंके साथ हविको तू स्वीकार करता है, उस हविको तू अन्य देवताओंके पास पहुंचा ॥१॥

जो मनुष्य इस अग्निकी कृपासे धन आदिसे समृद्ध होकर भी इस क्रोधको देखकर कांपते नहीं, अग्निके क्रोधकी परवाह नहीं करते, वे उत्तम व्रत करनेवाले मनुष्योंके शत्रु होते हैं और वे नष्ट हो जाते हैं ॥२॥

यह अग्नि बल प्रदान करनेवाला है और यज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ है, ऐसे अग्निकी सब अन्न चाहनेवाले स्तुति करते हैं ॥३॥

हम सभी अग्निकी स्तुति करते हुए प्रतिदिन इस अग्निके संरक्षणमें रहें और धर्मयुक्त धनको प्राप्त करके हम सभी संघटित होकर आनन्दका उपभोग करें तथा पशु और पुत्रपौत्रोंसे समृद्ध होकर हम सब आनन्दसे रहें । यह सब अग्निकी उपासनासे ही प्राप्त हो सकता है ॥४॥

[२१]

[ऋषिः- सप्त आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ४ पंक्तिः ।]

१५३ मनुष्वत् त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥ १ ॥

१५४ त्वं हि मानुषे जने ऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥

१५५ त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥ ३ ॥

१५६ देवं वो देवयज्यया ऽग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥ ४ ॥

---

[२१]

अर्थ- [१५३] हे (अग्ने) अग्ने ! हम (**त्वा मनुष्वत् नि धीमहि**) तुझको मननशील विद्वानकी तरह स्थापित करते हैं, और (**मनुष्वत् समिधीमहि**) मननशील विद्वान्की ही तरह प्रज्वलित करते हैं । हे (**अङ्गिर**) प्राणोंके सदृश प्रिय ! तू (**मनुष्वत् देवयते देवान् यज**) मननशील विद्वानकी तरह ही उत्तम गुणोंको चाहनेवालोंको उत्तम गुणोंसे युक्त कर ॥१॥

[१५४] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**त्वं मनुषे जने सुप्रीतः इध्यसे**) तू मननशील मनुष्योंमें प्रसन्न होकर प्रकाशित होता है । हे (**सुजात**) उत्तम प्रकारसे उत्पन्न अग्ने ! (**सर्पिः आ सुते स्रुचः त्वा आनुषक् यन्ति**) घृतसे भरे हुए चमचे तुझको अनुकूलतासे प्राप्त होते हैं ॥२॥

[१५५] हे (**कवे**) दूरदर्शिन् अग्ने ! (**विश्वे देवासः सजोषसः त्वां दूतं अक्रत**) सब देवोंने एक मतसे तुझे दूत बनाया है, इसलिए तेरे भक्त (**देवं त्वा सपर्यन्तः यज्ञेषु ईळते**) दिव्य गुण युक्त तेरी सेवा करते हुये, यज्ञोंमें तेरी स्तुति करते हैं ॥३॥

[१५६] हे (**शुक्रः**) तेजस्वी अग्ने ! (**मर्त्यः देवं अग्निं देवयज्यया ईळीत**) मनुष्य, दिव्यगुण युक्त और सबमें अग्रणी तेरी देवोंको प्रसन्न करनेके लिए स्तुति करते हैं । तू हवि द्वारा (**समिद्धः दीदिहि**) प्रवृद्ध होकर दीप्त हो । (**ऋतस्य योनिं आ असदः**) तू यज्ञकी वेदिमें आकर प्रतिष्ठित हो । तथा (**ससस्य योनिं आ असदः**) प्रशंसनीय इस यज्ञमें आकर प्रतिष्ठित हो ॥४॥

भावार्थ- मननशील विद्वान् जिस प्रकार अग्निको प्रतिष्ठित करके उसे अच्छी तरह प्रदीप्त करते हैं, उसी प्रकार हम भी अग्निको प्रदीप्त करें और वह अग्नि भी दिव्य गुणोंकी अभिलाषा करनेवाले हमें दिव्य गुणोंसे युक्त करे ॥१॥

मननशील मनुष्यों द्वारा यह अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, जब यह अच्छी तरह प्रज्वलित हो जाता है, तब उसमें घीसे भर भर कर स्रुचाएं डाली जाती हैं ॥२॥

हे दूरदर्शी अग्ने ! सब देवोंने एक मतसे तुझे देवोंका दूत निश्चित किया है, इसलिये दिव्य गुण युक्त तेरी उपासना करते हैं ताकि उनकी प्रार्थनाएं तू देवोंके पास पहुंचा ॥३॥

यह अग्नि देवोंका मुख है, इसलिए देवोंको प्रसन्न करनेके लिए भक्त गण इसी अग्निका सहारा लेते हैं और इसे प्रज्वलित करके इसमें आहुति देते हैं । तब यह यज्ञकी वेदिमें अच्छी प्रकार प्रतिदिन होता है ॥४॥

[२२]

[ऋषिः- विश्वसामा आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ४ पंक्तिः ।]

१५७ प्र विश्वसामन्नत्रिव—दर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥

१५८ न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुष—गद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥

१५९ चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥

१६० अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दंपते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ४ ॥

---

[२२]

अर्थ- [१५७] हे (**विश्वसामन्**) विश्वभरके सामके ज्ञाता ! (**यः अध्वरेषु ईड्यः**) जो सब यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य है (**होता विशि मन्द्रतमः**) देवताओंको बुलानेवाला तथा प्रजाओंको अत्यन्त आनन्द देनेवाला है (**पावकशोचिषे अत्रिवत् प्र अर्च**) उस पवित्र दीप्तिवाले अग्निका अत्रिके समान पूजन कर ॥१॥

[१५८] हे यजमानो ! तुम सब, (**जातवेदसं देवं ऋत्विजं अग्निं निदधात**) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले, तेजस्वी और सब ऋतुओंमें यज्ञ करनेवाले अग्निको संस्थापित करो, जिससे (**अद्य देवव्यचस्त प्रः यज्ञः आनुषक् प्र एतु**) आज देवोंके प्रिय यज्ञके साधक रूप हव्यको हम अग्निके लिये अनुकूलतासे प्रदान करें ॥२॥

[१५९] हे अग्ने ! (**चिकित्विन्मसं**) विज्ञानयुक्त मनवाले (**देवं त्वा मर्मासः ऊतये इयानासः**) तेजस्वी तुझको हम सब मनुष्य अपनी रक्षाके लिये प्राप्त होते हैं । तथा (**वरेण्यस्य ने अवसः अमन्महि**) वरण करने योग्य श्रेष्ठ तेरी संरक्षण शक्ति प्राप्त करनेके लिए हम स्तुति करते हैं ॥३॥

[१६०] हे (**सहस्य अग्ने**) बलके पुत्र अग्ने ! तू (**अस्य नः इदं वचः चिकिद्धि**) इस हमारी प्रार्थनाओंको जान । हे (**सुशिप्र दम्पते**) सुन्दर हनु और नासिकावाले गृहपति ! (**तं त्वा अत्रयः स्तोमैः वर्धन्ति**) उस तुझको तीन प्रकारके दुःखोंसे रहित जन स्तोत्रोंसे बढाते हैं । और (**अत्रयः गीर्भिः शुम्भन्ति**) काम क्रोध और लोभ इन तीनों दोषोंसे रहित जन उत्तम वचनोंसे अलंकृत करते हैं ॥४॥

भावार्थ- यह अहिंसक यज्ञोंका आधार है, सब प्रजाओंको अत्यन्त आनन्द देनेवाला है, इसलिए वह सब प्रकारसे पूज्य है ॥१॥

यह अग्नि इस संसारमें उत्पन्न हुए हुए सब पदार्थोंको जाननेवाला है, ऋतुके अनुसार उसमें यज्ञ किए जाते हैं वह देवोंका प्रिय है और यज्ञको सिद्ध करनेवाला है ॥२॥

उत्तम और मननशील बुद्धिसे युक्त यह अग्नि उत्तम संरक्षणकी शक्तिसे युक्त है, इसीलिए इससे वह शक्ति प्राप्त करनेके लिए मनुष्य इसकी स्तुति करते हैं ॥३॥

हे बलके पुत्र अग्ने ! इन हमारी प्रार्थनाओंको तू समझ । (अ-त्रयः) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे रहित मनुष्य तुझे अपने स्तोत्रोंसे बढाते हैं और तुझे उत्तम वचनोंसे शुद्ध करते हैं । उत्तम वचन बोलनेवाला सदा शुद्ध और पवित्र रहता है ॥४॥

[२३]

[ऋषिः- द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ४ पंक्तिः ।]

१६१ अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥ १ ॥

१६२ तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥ २ ॥

१६३ विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः ।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥ ३ ॥

१६४ स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ॥ ४ ॥

---

[२३]

अर्थ- [१६१] हे (अग्ने) अग्ने ! (**यः आसा वाजेषु विश्वाः चर्षणीः अभि सासहत्**) जो मनुष्य स्तोत्रसे युक्त होकर युद्धोंमें सम्पूर्ण शत्रुओंको सब प्रकारसे अभिभूत करता है (**द्युम्नस्य प्रासहा सहन्तं रयिं आ भर**) उस तेजस्वी जनके लिये प्रकृष्ट बलसे शत्रुओंको पराजित करनेवाले धन प्रदान कर ॥१॥

सहन्तं रयिं द्युम्नस्य आ भर- शत्रुको पराजित करनेवाला धन तेजस्वी मनुष्यको मिले ।

[१६२] हे अग्ने ! (**सहस्व अग्ने**) बलवान् अग्ने ! (**त्वं हि सत्यः, अद्‌भुतः, गोमतः वाजस्य दाता**) तू सत्यस्वरूप, अद्‌भुत तथा गवादि युक्त धनोंका देनेवाला है । ऐसा तू (**पृतनासहं रयिं आ भर**) शत्रुओंकी सेनाको परास्त करनेवाले ऐश्वर्यको हमें प्रदान कर ॥२॥

[१६३] हे अग्ने ! (**सजोषसः वृक्तबर्हिषः विश्वे जनासः**) समान प्रीतिवाले, आसन बिछानेवाले सब ऋत्विक् गण (**हि सद्मसु**) निश्चयसे यज्ञगृहमें (**होतारं प्रियं त्वा**) देवोंके आह्वाता, सबके प्रिय तुझसे (**पुरु वार्या व्यन्ति**) बहुत श्रेष्ठ धनोंकी याचना करते हैं ॥३॥

[१६४] (**सः विश्वचर्षणिः अभिमाति सहः हि ष्म दधे**) सब कर्मोंको देखनेवाला वह शत्रुओंके संहार करनेवाले बलको हमें प्रदान करे । हे (**शुक्र अग्ने**) तेजस्वी अग्ने ! तू (**नः एषु क्षयेषु रेवत् आ दीदिहि**) हमारे इन घरोंमें धनसे सम्पन्न तेज फैला । हे (**पावक**) पापशोधक (**द्युमत् दीदिहि**) तेज और यशसे युक्त तू सर्वत्र प्रकाशित हो ॥४॥

भावार्थ- जो अग्निकी स्तुति करनेके साथ साथ इतना बलशाली है कि युद्धोंमें उसके सभी शत्रु हार जाते हैं उसीके पास सभी तरहके ऐश्वर्य रहते हैं ऐसा ही वीर ऐश्वर्योंकी रक्षा कर सकता है ॥१॥

हे अग्ने ! तू अद्वितीय शक्तिवाला तथा ऐश्वर्योंसे भरपूर है, अतः संघटित होकर रहनेवाले तथा तेरे सत्कार करनेके लिए आसन बिछानेवाले मनुष्य तुझसे अनेक तरहके ऐश्वर्य मांगते हैं अतः तू उन्हें भरपूर ऐश्वर्य दे ॥२॥

हे अग्ने ! तू सर्वव्यापक होने के कारण सब कर्मोंको देखनेवाला है, तथा तेरे पास बलका भण्डार है, अतः तू हमारे घरोंको ऐश्वर्यसे और बलसे सम्पन्न कर, तथा स्वयं भी प्रकाशित होता रह, अर्थात् हम भी ऐश्वर्य और बलसे युक्त होकर यज्ञ करते रहें ॥३-४॥

[२४]

[ऋषिः- गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च । देवता- अग्निः ।
छन्दः- द्विपदा विराट् ।]

१६५ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥ १ ॥
१६६ वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ २ ॥
१६७ स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ ३ ॥
१६८ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४ ॥

[२५]

[ऋषिः- वसूयव आत्रेयाः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप् ।]

१६९ अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत् पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥ १ ॥

---

[२४]

अर्थ- [१६५] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**त्वं नः अन्तमः**) तू हमारे पास रहकर हमारे लिए (**वरूथ्यः त्राता उत शिवः भव**) स्तुतिके योग्य, रक्षक और कल्याणकारी हो ॥१॥

[१६६] (**वसुः वसुश्रवाः अग्निः**) सबको बसानेवाला धन और धान्यसे युक्त अग्नि (**अच्छ नक्षि**) अच्छी प्रकार से हमको व्याप्त करे । और (**द्युमत्तमं रयिं दाः**) अतिशय दीप्तिशील उत्तम धन हमको प्रदान करे ॥२॥

[१६७] हे अग्ने ! (**सः नः बोधि**) वह प्रसिद्ध तू हम लोगोंको जान । हम लोगोंकी (**हवं श्रुधि**) पुकारको सुन । तथा (**समस्मात् अघायतः नः उरुष्य**) समस्त पापाचरण करनेवाले दुष्टोंसे हम लोगोंकी रक्षा कर ॥३॥

[१६८] हे (**शोचिष्ठ दीदिवः**) अत्यन्त शुद्ध करनेवाले और अपने तेजसे प्रदीप्त होनवाले अग्ने ! (**नूनं तं त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे**) निश्चयसे उन श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न तुझसे हम लोग सुखकी तथा मित्रताकी प्रार्थना करते हैं ॥४॥

[२५]

[१६९] हे ऋषियो ! अपनी (**अवसे वः देवं अग्निं अच्छा गासि**) रक्षाके लिये तुम दिव्यगुण युक्त अग्निकी अच्छी प्रकारसे स्तुति करो । (**सः नः वसुः रासत्**) वह अग्नि हमें धन भरपूर देवे । (**ऋषूणां पुत्रः ऋतावा द्विषः पर्षति**) ऋषियोंके पुत्र अर्थात् ऋषियों द्वारा अरणिमन्थनसे उत्पन्न, सत्यसे युक्त अग्नि हम लोगोंको शत्रुओंसे पार लगावे ॥१॥

भावार्थ- संरक्षण करनेवाले साधनोंसे युक्त यह अग्नि हमारे पास बैठे और हमें सुखकारक हो, वह सर्वव्यापक अग्नि हम पर कृपा करके हमें अत्यन्त तेजस्वी सम्पत्ति प्रदान करे ॥१-२॥

हे अग्ने ! तू हमें जान, हमारी पुकार सुन तथा हमें सब पापियोंसे बचा ताकि हम तुझसे सुख और मित्रता प्राप्त कर सकें ॥३-४॥

हर मनुष्यको अपनी रक्षाके लिए इस तेजस्वी अग्निकी ही स्तुति करनी चाहिए, वही हर तरहका धन देकर सबको बसने योग्य बनाता है । वह ज्ञानपूर्वक अरणिमन्थन करनेसे पैदा होता है, इसलिए वह अत्यधिक बलशाली होनेसे शत्रुओंको पराजित करता है ॥१॥

१७० स हि सत्यो यं पूर्वे चिद् देवासश्चिद् यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥ २ ॥

१७१ स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥ ३ ॥

१७२ अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥

१७३ अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥ ५ ॥

अर्थ- [१७०] (**पूर्वे चित्**) पूर्ववर्ती महर्षियोंने (**होतारं, मन्द्रजिह्वं सुदीतिभिः विभावसुं यं ईधिरे**) देवोंके आह्वाता, सुन्दर जिह्वावाले, अत्यन्त तेजवाले, शोभनदीप्तिसे सम्पन्न जिस अग्निको प्रदीप्त किया, तथा (**यं देवासः चित्**) जिसको देवोंने भी प्रदीप्त किया, (**स हि सत्यः इत्**) वह अग्नि सत्य संकल्पसे परिपूर्ण है ॥२॥

[१७१] हे (**सुवृक्तिभिः वरेण्य अग्ने**) स्तोत्रों द्वारा स्तुत तथा वरण करने योग्य अग्ने ! (**सः श्रेष्ठया धीती च वरिष्ठया सुमत्या नः रायः दिदीहि**) वह तू अपनी अति धारणावाली और अत्यन्त स्वीकार करने योग्य सुन्दर बुद्धिसे हम लोगोंके लिये धनको प्रदान कर ॥३॥

[१७२] जो (**अग्निः देवेषु राजति**) अग्नि देवोंके मध्यमें प्रकाशित होता है जो (**अग्निः मर्तेषु आविशन्**) अग्नि मनुष्योंमें प्रविष्ट होता है, तथा जो (**अग्निः नः हव्यवाहनः**) अग्नि हमारे यज्ञमें देवताओंके लिये हव्य वहन करनेवाला है । उस (**अग्निं धीभिः सपर्यत**) अग्निकी, हे मनुष्यो ! तुम सब अपनी बुद्धियोंसे स्तुति द्वारा पूजा करो ॥४॥

[१७३] (**अग्निः दाशुषे**) अग्नि दाताके लिये, (**तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणं उत्तमं अतूर्तं श्रावयत्पतिं**) बहुविध अन्नोंसे युक्त, बहुत स्तोत्रोंका कर्ता, अत्यन्त श्रेष्ठ, शत्रुओं द्वारा हिंसित न होनेवाला, अपने उत्तम कर्मोंसे कुलके यशको फैलानेवाला इस प्रकार के गुणोंसे अलंकृत (**पुत्रं ददाति**) पुत्र देता है ॥५॥

भावार्थ- इस अत्यन्त तेजस्वी अग्निको प्राचीन महर्षियोंने और देवोंने प्रदीप्त किया था । वह अग्नि अविनाशी और सत्य संकल्पोंसे युक्त है । वह जो संकल्प करता है, वह हमेशा श्रेष्ठ और उत्तम होता है ॥२॥

हे अग्ने ! तू उत्तम और धारणावाली बुद्धिसे युक्त है, इसीलिए सब तेरी स्तुति करते हैं और तुझे चाहते हैं, अतः तू हमें भी अपनी उत्तम बुद्धिसे युक्त कर एवं धन प्रदान कर । धन प्राप्त करनेसे पूर्व मनुष्यमें उत्तम बुद्धि होनी चाहिए ताकि वह प्राप्त हुए धनका दुरुपयोग न करे ॥३॥

यह अग्नि देवोंमें भी प्रतिष्ठित है अर्थात् सूर्य, विद्युत आदि रूपोंमें यह देवोंके बीचमें विद्यमान है, तथा मनुष्योंमें अग्नि ज्ञानी ब्राह्मण के रूपमें है, मनुष्य शरीरमें प्राणाग्नि तथा आत्माग्निके रूपमें विद्यमान है ॥४॥

इस अग्निकी कृपासे जो पुत्र प्राप्त होता है, वह धनवान्, बुद्धिमान्, बलवान् और यशोवान् होता है । जिस माता पिताओंमें यह अग्नि अत्यधिक शक्तिशाली होता है, उनकी सन्तानें इन गुणोंसे युक्त होती हैं ॥५॥

१७४ अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥ ६ ॥
१७५ यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयि स्त्वद् वाजा उदीरते ॥ ७ ॥
१७६ तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ८ ॥
१७७ एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥ ९ ॥

[२६]

[ऋषिः- वसूयव आत्रेयाः । देवता- अग्निः, ९ विश्वे देवाः । छन्दः- गायत्री ।]

१७८ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

अर्थ- [१७४] (अग्निः यः नृभिः, युधा सासाह सत्पतिं ददाति) अग्नि हम लोगोंको उस तरहका, जो अपने परिजनोंका साथ देनेवाला, युद्धके द्वारा शत्रुओंको पराभूत करनेवाला और सत्य प्रतिज्ञ है ऐसा पुत्र देता है। तथा जो (अग्निः जेतारं, अपराजितं, रघुष्यदं अत्यं) अग्नि शत्रुओंको जीतनेवाला, कभी भी पराजित न होनेवाला, द्रुत वेग वाला और निरन्तर चलनेवाला घोडा भी देता है ॥६॥

[१७५] (यत् वाहिष्ठं तद् अग्नये) जो श्रेष्ठतम स्तोत्र है वह अग्निके लिये निवेदन किया जाता है । हे (विभावसो) तेजोमय अग्ने ! हम लोगोंको (बृहत् अर्च) बहुत धन प्रदान कर, क्योंकि (महिषी इव त्वत् रयिः उदीरते) जिस तरह स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न होता है, उसी तरह तुझसे ही सम्पत्ति उत्पन्न होती है । और (वाजाः त्वत्) सम्पूर्ण अन्न भी तुझसे ही उत्पन्न होते हैं ॥७॥

[१७६] हे अग्ने (तव अर्चयः द्युमन्तः) तेरी शिखायें तेजसे युक्त हैं । हे (बृहत्) महान् ! तू (ग्रावा इव उच्यते) शत्रुओंको शिलाके समान चूर्ण करनेमें समर्थ कहा जाता है । (उतो त्मना दिवः) और अपने आप स्वयं द्योतमान होता है । (ते स्वानः तन्यतुः यथा अर्त) तेरा शब्द मेघ-गर्जनकी तरह प्रकट होता है ॥८॥

[१७७] (वसूयवः सहसानं अग्निं ववन्दिम) हम धनकी कामना करनेवाले लोग बलवान् अग्निकी स्तोत्रादिके द्वारा स्तुति करते हैं । (सुक्रतुः सः नः विश्वा द्विषः अति पर्षत् इव नावा) शोभन कर्मवाला वह अग्नि हम लोगोंको सम्पूर्ण शत्रुओंसे उसी प्रकार पार लगावे, जिस प्रकार नौकाके द्वारा नदी पार की जाती है ॥९॥

[२६]

[१७८] हे (पावक देव अग्ने) पवित्र करनेवाले और दिव्य गुणोंसे युक्त अग्ने ! तू अपनी (रोचिषा मन्द्रया जिह्वया देवान् आ वक्षि) दीप्तिसे और देवोंको प्रहृष्ट करनेवाली जिह्वासे देवोंको यज्ञमें ले आ (च यक्षि) और उनको तृप्त कर ॥१॥

भावार्थ- इस अग्निकी प्रसन्नतासे जो पुत्र प्राप्त होता है, वह सब मनुष्योंके साथ संगठित होकर रहनेवाला, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला और सत्यके मार्ग पर चलनेवाला होता है । उसकी प्रसन्नतासे उत्तम उत्तम पशु भी प्राप्त होते हैं ॥६॥

इसी अग्निसे महान् धन और बल उत्पन्न होते हैं, और यह धन और बल वह अपने उपासकोंको देता है, इसलिए सारे श्रेष्ठ स्तोत्र उसीके लिए किए जाते हैं ॥७॥

जब इस अग्निकी ज्वालायें तेजसे युक्त होती हैं, तब शत्रुओंको उसी प्रकार पीस देती हैं, जिस प्रकार पत्थर पदार्थोंको, और तब वह अग्नि स्वयं प्रकाशमान् होता है उसका शब्द मेघकी गर्जनाके समान भयंकर होता है ॥८॥

बल और धनकी कामना करनेवाले लोग इस अग्निकी स्तुति करें, प्रसन्न होकर वह उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि अपने उपासकोंको शत्रुओंकी पीडासे दूर करे ॥९॥

१७९ तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥
१८० वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥
१८१ अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥
१८२ यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ ॥
१८३ समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६ ॥
१८४ न्यग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥ ७ ॥
१८५ प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८ ॥

अर्थ- [१७९] हे (**घृतस्नो चित्रभानो**) घृतसे प्रदीप्त होनेवाले आश्चर्यकारक रश्मिवाले अग्ने ! (**स्वर्दृशं तं त्वा ईमहे**) सर्वद्रष्टा उस तुझसे हम सब अपने सुखके लिये याचना करते हैं । तू (**वीतये देवान् आ वह**) हव्य भक्षण के लिये देवोंको यहां ले आ ॥२॥

[१८०] हे (**कवे अग्ने**) दूरदर्शी अग्ने ! हम (**अध्वरे**) हिंसारहित यज्ञमें (**वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तं त्वा समिधीमाहि**) हव्य का भक्षण करनेवाले दीप्तिमान् और महान् गुणोंसे युक्त तुझको अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं ॥३॥

[१८१] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**विश्वेभिः, देवेभिः हव्यदातये आ गहि**) सम्पूर्ण देवोंके साथ तू हव्य दाताके लिये यज्ञमें उपस्थित हो । हम सब (**होतारं त्वा वृणीमहे**) देवोंको बुलाकर लानेवाले तुझको स्वीकार करते हैं चाहते हैं ॥४॥

[१८२] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**सुन्वते यजमानाय सुवीर्यं आ वह**) सोम निचोडनेवाले यजमानके लिये तू श्रेष्ठ पराक्रमको प्रदान कर और (**देवैः बर्हिषि आ सत्सि**) देवोंके साथ यज्ञमें कुश पर आकर बैठ ॥५॥

[१८३] हे (**सहस्रजित् अग्ने**) सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाले अग्ने ! तू (**समिधानः उक्थ्यः देवानां दूतः धर्माणि पुष्यसि**) हव्य द्वारा प्रदीप्त, प्रशंसनीय देवोंका दूत होकर हम लोगोंके सभी धार्मिक कार्योंको उत्तम प्रकारसे पूर्ण करता है ॥६॥

[१८४] हे मनुष्यो ! तुम (**जातवेदसं, होत्रवाहं, यविष्ठ्यं, देवं, ऋत्विजं नि दधात्**) सब उत्पन्न हुएको जाननेवाले, यज्ञके प्रापक, अतिशय युवा, तेजस्वी और यज्ञ साधक अग्निको निरन्तर धारण करो ॥७॥

[१८५] (**देवव्यचस्तमः यज्ञः अद्य आनुषक् प्र एतु**) प्रकाशमान् स्तोताओं द्वारा प्रदत्त हवि अन्न आज अनुकुलतासे देवताओंके पास पहुँचे । हे ऋत्विक्‌गण ! (**आसदे बर्हिः स्तृणीत**) तुम अग्निके विराजमान होनेके लिये पवित्र कुशको बिछाओ ॥८॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तेरी ज्वालाएं विलक्षण हैं, इसीलिए तेरी ज्वालाएं आनन्द देनेवाली हैं, हम तुझसे सुखकी कामना करते हैं तू हमारे इस जीवन यज्ञमें सभी देवोंको स्थिर रख ताकि हम चिरकाल तक सुखका उपभोग कर सकें ॥१-२॥

हे अग्ने ! तू उत्तम कर्म करनेवाला है अतः इस हिंसासे रहित यज्ञमें भी सभी देवताओंके साथ आ, हम तुझे बुलाते हैं और हवि भी देते हैं ॥३-४॥

हे हजारों शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले अग्ने ! तू प्रदीप्त होकर हमारे सभी धार्मिक कार्योंको पूर्ण करता है, इसलिए हमारे यज्ञोंमें आ और सब देवोंके साथ हमारे द्वारा दी गई आहुतिका भक्षण कर और हमें बल प्रदान कर ॥५-६॥

हे मनुष्यो ! यह अग्नि सब कुछ जाननेवाला अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी और यज्ञको पूर्ण करनेवाला है । इसका अच्छी तरह सम्मान करो ताकि यह हवि अन्नको देवोंके पास प्रीतिपूर्वक पहुंचावे ॥७-८॥

१८६ एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥

[२७]

[ऋषिः- त्रैवृष्णस्त्र्यरुणः, पौरुकुत्स्यस्त्रसदस्युः, भारतोऽश्वमेधश्च राजानः; (अत्रिभौम इति केचित् ।)
देवता- अग्निः, ६ इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप्, ४-५ अनुष्टुप् ।]

१८७ अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १ ॥

१८८ यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥ २ ॥

१८९ एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥ ३ ॥

अर्थ- [१८६] (**मरुतः अश्विना मित्रः**) मरुद्गण अश्विनीकुमार, मित्र (**वरुणः देवासः**) वरुण तथा दूसरे देव (**सर्वया विशा**) सभी प्रजाओंके साथ (**इदं आ सीदन्तु**) इस जगह आकर बैठें ॥९॥

[२७]

[१८७] हे (**वैश्वानर अग्ने**) सम्पूर्ण मनुष्योंके नेता अग्ने ! (**सत्पतिः चेतिष्ठः असुरः मघोनः त्रैवृष्णः त्रि-अरुणः**) श्रेष्ठ जनोंके पालक ज्ञानवान्, बलवान्, धनवान्, द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीनों लोकोंमें व्यापक और तीन प्रकार की ज्वालाओंसे युक्त तूने (**मे दशभिः सहस्रैः अनस्वन्ता गावा मामहे**) मुझे भी दशसहस्र उत्तम शकटादि वाहन और गौ अथवा उत्तमवाणी प्रदान किया । यह मैं अच्छी तरह (**चिकेत**) जानता हूँ ॥१॥

[१८८] हे (**वैश्वानर अग्ने**) सबमें प्रकाशमान् अग्ने ! (**यः सुष्टुतः वावृधानः**) जो उत्तम प्रकार प्रशंसित अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होता हुआ तू (**मे शता च गोनां विंशतिं**) मेरे लिये शत सुवर्ण और बीस धेनु (**च, युक्ता, सुधुरा च हरी ददाति**) और रथ, तथा रथसे संयुक्त दो सुन्दर अश्वोंको प्रदान करता है, उस (**त्रि-अरुणाय शर्म यच्छ**) उन तीनों गुणोंवाले पुरुष के लिये तू गृह वा सुख प्रदान कर ॥२॥

[१८९] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**यः तुविजातस्य ते सुमतिं, ते गिरः चकानः**) जो अनेक तरहसे उत्पन्न होनेवाले तेरी सुन्दर बुद्धिकी और तेरी स्तुतियोंकी कामना करता है, एवं (**नविष्ठाय नवमं**) अत्यन्त स्तुति योग्य नवीनतम वचनोंसे तेरी स्तुति करता है, जिससे (**त्रसदस्युं**) चोर डरते हैं, ऐसा (**युक्तेन त्र्यरुणः पूर्वीः अभि गृणाति एव**) त्र्यरुण ऋषि उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर अनेक तरहकी स्तुतियां करता है ॥३॥

भावार्थ- मरुत्, अश्विनीकुमार, मित्र, वरुण आदि सब देव अपनी अपनी प्रजाओंके साथ हमारे स्थान पर आकर बैठें ॥९॥

हे अग्ने ! तू सज्जनोंका पालक, ज्ञानवान्, बलवान्, धनवान् सर्वत्र व्यापक और उत्तम ज्वालाओंमें युक्त है, तू अपने उपासकोंको अपरिमित धन प्रदान करता है, यह मैं जानता हूँ ॥१॥

जो दानी पुरुष सोना, गाय, रथ घोडे आदि प्रदान करता है, वह तीन गुणोंसे युक्त मनुष्य सुख प्राप्त करता है ॥२॥

जो इस अग्निकी सुन्दर बुद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, वह इस अग्निकी सर्वश्रेष्ठ स्तुतियोंसे स्तुति करता है और तब वह उत्तम बुद्धिसे युक्त होता है ॥३॥

१९० यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ ४ ॥

१९१ यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥ ५ ॥

१९२ इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद् दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ ॥

[२८]

[ऋषिः- विश्ववारात्रेयी । देवता- अग्निः । छन्दः- १, ३ त्रिष्टुप्, २ जगती, ४ अनुष्टुप्, ५-६ गायत्री ।]

१९३ समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १ ॥

अर्थ- [१९०] हे अग्ने (**यः सूरये ऋचा**) जो कोई बुद्धिमान् तेरी ऋचाओंसे प्रार्थना करता है । और (**अश्वमेधाय मे इति प्र वोचति**) अश्वमेधके लिये 'मुझे धन दो' इस प्रकार कहता है । तब तू उस (**यते सनिं ददत्**) यत्न करनेवालेको उत्तम धन प्रदान कर । हे अग्ने (**ऋतायते मेधां ददत्**) यज्ञकी कामना करनेवालेको तू श्रेष्ठतम बुद्धि देनेवाला हो ॥४॥

१ **यते सनिं ददत्-** यह अग्नि प्रयत्न करनेवालेको ही धन देता है ।

[१९१] (**यस्य अश्वमेधस्य दानाः पुरुषाः**) जिसके अश्वमेधमें दिये गये, अभिलाषाओंके पूरक (**शतं उक्षणः मा उद्धर्षयन्ति**) सौ बैल मुझको प्रहर्षित करते हैं । हे अग्ने ! वे बैल (**त्र्याशिरः सोमा इव**) दही, सत्तू और दूध इन तीनों पदार्थोंसे मिश्रित सोमकी तरह मुझे आनंद देनेवाले हों ॥५॥

[१९२] हे (**शतदाव्नी इन्द्राग्नी**) सैकडों तरहके ऐश्वर्योंका दान देनेवाले इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों (**अश्वमेधे**) इस अश्वमेधमें (**दिवि अजरं सूर्यं इव**) द्युलोकमें कभी भी क्षीण न होनेवाले सूर्यके समान क्षीणताहीन (**क्षत्रं**) निर्बलोंके रक्षक (**बृहत् सुवीर्यं धारयतं**) श्रेष्ठ बलको धारण करें ॥६॥

१ **अजरं सूर्यं इव क्षत्रं सुवीर्यम्-** क्षीण न होनेवाले सूर्यके समान तेजस्वी निर्बलोंका रक्षक बल हो ।

[२८]

[१९३] (**समिद्ध अग्निः दिवि शोचिः अश्रेत्**) भलीभांति दीप्त अग्नि द्योतमान् अन्तरिक्षमें अपने तेजको प्रकाशित करता है । और (**उषसं प्रत्यङ् उर्विया वि भाति**) उषाके अभिमुख विस्तृत होकर विशेष शोभा पाता है । उस समय (**देवान् नमोभिः ईळाना**) देवोंकी स्तोत्रोंसे स्तुति करती हुई (**हविषा घृताची विश्ववाराप्राची एति**) हविसे और घृतसे भरी हुई स्रुवाको लेकर विश्ववारा पूर्वकी ओर मुख करके अग्निके प्रति जाती है ॥१॥

भावार्थ- जो विद्वान् उस बुद्धिमान अग्निकी प्रार्थना करता है और यह कहता है कि 'अश्वमेध यज्ञ करनेके लिए 'मुझे धन दो' तो वह अग्नि उस प्रयत्न करनेवालेको धन और उत्तम बुद्धि प्रदान करता है ॥४॥'

क्षत्रियोंके लिए अश्वमेध बडा भारी यज्ञ है, उसमें राजा लोग भरपूर दान देते हैं । वह दान सात्त्विक होने के कारण दान लेनेवालोंके लिए बहुत आनन्ददायक होता है ॥५॥

इन्द्र अग्निका बल निर्बलोंका रक्षक तथा सूर्यके समान कभी भी क्षीण होनेवाला नहीं है । इन दोनों देवोंका बल निर्बलोंकी रक्षा करनेवाला है । राष्ट्रमें इन्द्र और अग्नि क्रमशः क्षत्रिय और ब्राह्मणके वाचक हैं । ब्राह्मण और क्षत्रियोंका तेज राष्ट्रमें क्षीण न हो, तथा उन दोनोंका बल निर्बलोंकी सहायता करनेवाला हो ॥६॥

१९४ समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्व–स्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः ॥ २ ॥
१९५ अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ ३ ॥
१९६ समिद्धस्य प्रमहसो–ऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥
१९७ समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥
१९८ आ जुहोता दुवस्यता–ऽग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥

अर्थ- [१९४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (**समिध्यानः अमृतस्य राजसि**) भलीभांति प्रजवलित होकर अमृततत्त्वका प्रकाशक होता है । (**हविष्कृण्वन्तं स्वस्तये सचसे**) हव्यदाता यजमानको तू कल्याणसे युक्त करता है । तू (**यं इन्वसि स विश्वं द्रविणं धत्ते**) जिस मनुष्यके पास जाता है, वह सम्पूर्ण धनको धारण करता है । (**च आतिथ्यं पुरः इत् नि धत्ते**) और अतिथिके सैत्कारके योग्य पदार्थको तेरे सम्मुख स्थापित करता है ॥२॥

[१९५] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू हम लोगोंके (**महते सौभगाय शर्ध**) महान् सौभाग्यके लिये शत्रुओंका दमन कर। (**तव द्युम्नानि उत्तमानि सन्तु**) तेरे तेज उत्कृष्ट हों । तू (**जास्पत्यं सं आ सुयमं कृणुष्व**) दाम्पत्य सम्बन्धको सुदृढ और अच्छी तरह नियंत्रित कर । और (**शत्रूयतां महांसि अभितिष्ठ**) शत्रुओंके तेजको क्षीण कर ॥३॥

[१९६] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**समिद्धस्य तव प्रमहसः श्रियं वन्दे**) अच्छी तरह प्रज्वलित होनेवाले तेरे प्रकृष्ट तेजकी हम प्रशंसा करते हैं । (**वृषभः द्युम्नवान् असि**) कामनाओंका पूरक और तेजस्वी है । तथा (**अध्वरेषु सं इध्यसे**) हिंसारहित यज्ञोंमें भलीभांति प्रदीप्त होता है ॥४॥

[१९७] हे (**आहुत सु अध्वर अग्ने**) यजमानों द्वारा आहुत शोभन यज्ञवाले अग्ने ! (**त्वं समिद्धः देवान् यक्षि**) तू भलीभाँति प्रदीप्त होकर इन्द्र देवोंका-यजन कर । क्योंकि तू (**हि हव्यवाट् असि**) निश्चयसे हव्यको वहन करनेवाला है ॥५॥

[१९८] हे ऋत्विजो ! तुम लोग हमारे (**अध्वरे प्रयति, हव्यवाहने अग्निं आ जुहोत**) हिंसारहित यज्ञके शुरु होने पर हव्यको वहन करनेवाले अग्निमें हव्य प्रदान करो । और अग्निको (**दुवस्यत वृणीध्वं**) सेवा करो तथा देवोंमें उसका वरण करो ॥६॥

भावार्थ- उषःकालमें इस अग्निकी किरणें विस्तृत होती हैं और तब अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित होता है और अन्तरिक्षमें उसकी ज्वालायें फैलती हैं । उस समय हविसे युक्त तथा घृतसे पूर्ण स्रुवाको लेकर विश्ववारा आहुति देती है । इस मंत्रके द्वारा स्त्रियोंको भी यज्ञ करनेका अधिकार वेद प्रदान करता है ॥१॥

इस अग्निमें यह गुण है कि यह प्रज्वलित होकर रोग जन्तुओंका नाश करके मनुष्यको अमरता प्रदान करता है और उसका हर तरह से कल्याण करता है । जिस मनुष्य पर यह अग्नि प्रसन्न होता है वह धनवान् होता है ॥२॥

हे अग्ने ! तू हम लोगोंका सौभाग्य बढानेके लिए शत्रुओंको नष्ट कर और अपने तेजसे हमें तेजस्वी बना, हमारा दाम्पत्यजीवन सुदृढ और संयमित हो और हमारे शत्रुओंके तेजको क्षीण कर ॥३॥

यह अग्नि अत्यन्त तेजस्वी और सभी इसके तेजकी प्रशंसा करते हैं, वह कामनाओंका पूरक और हिंसारहित यज्ञोंमें प्रदीप्त होता है ॥४॥

यह अग्नि सभीके द्वारा प्रशंसित तथा उत्तम यज्ञको पूर्ण करनेवाला होकर देवोंको हवि पहुंचानेवाला है, तथा देवोंको संगठित करता है ।.५॥

हे मनुष्यो ! तुम यज्ञके शुरु होने पर इस अग्निमें आहुतियां डालो, इसकी सेवा करो और इसका दूतके रूपमें वरण करो ॥६॥

[२९]

[ऋषिः- गौरिवीतिः शाक्त्यः । देवता- इन्द्रः, ९ (प्रथमपादस्य) उशना वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१९९ त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षा-स्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥ १ ॥

२०० अनु यदीं मरुतो मन्दसान-मार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं ह-न्नपो यह्वीरसृजत् सर्तवा उ ॥ २ ॥

२०१ उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्ये-न्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्द-दहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३ ॥

२०२ आद् रोदसी वितरं वि ष्कभायत् संविव्यानश्चिद् भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥ ४ ॥

---

[२९]

अर्थ- [१९९] (मनुषः देवताता) मनुष्य के यज्ञमें (त्रि-अर्यमा) तीन श्रेष्ठ पुरुष (त्री दिव्यां रोचना) तीन दिव्य तेजोंको (धारयन्त) धारण करते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पूतदक्षाः मरुतः) पवित्र बलसे युक्त मरुत् (त्वा अर्चन्ति) तेरी स्तुति करते है । (त्वं एषां ऋषिः असि) तू इनको देखनेवाला है ॥१॥

१ इन्द्रः ऋषिः- इन्द्र सब तरहके ज्ञानको देखता है ।

[२००] (यत्) जब इन्द्रने (वज्रं अभि आदत्त) वज्र हाथमें लिया (अहिं हन्) अहिको मारा और (यह्वीः अपः) बडे जल-प्रवाहोंको (सर्तवा असृजत्) बहनेके लिए मुक्त किया, तब (मरुतः) मरुतोंने (सुतस्य पपिवासं) सोमको पीनेकी इच्छावाले (मन्दसानं इन्द्रं) आनन्दित इन्द्रकी (आर्चन्) प्रशंसा की ॥२॥

[२०१] (उत) और (ब्रह्माणः मरुतः) हे महान् मरुतो ! तुम और (इन्द्रः) इन्द्र (मे) मेरे द्वारा (सु-सुतस्य अस्य सोमस्य) अच्छी तरह निचोडे गए इस सोमको (पेयाः) पिओ । (तत् हव्यं) वह हव्य सोम (मनुषे गाः अविन्दत्) मनुष्यके लिए गायें प्राप्त कराता है, तथा (अस्य पपिवान्) इसे पीकर (इन्द्र अहिं अहन्) इन्द्रने अहिको मारा ॥३॥

[२०२] (आत्) बादमें (इन्द्रः) इन्द्र (रोदसी) द्यावापृथिवीको (वितरं विष्कभायत्) बहुत दृढतासे थामा, तथा (सं विव्यानः चित्) आक्रमण करते हुए (मृगं भियसे कः) मृगके समान मायावी वृत्रको भयभीत किया। तथा (जिगर्ति प्रतिश्वसन्तं दानवं) निगलनेवाले और लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले दानेको (जर्गुराणः) प्रयत्न करते (अप अवहन्) मारा ॥४॥

भावार्थ- मनुष्यका जीवन एक यज्ञ है, जिसमें मन, बुद्धि और चित्त ये तीन अर्यमा या श्रेष्ठतत्त्व मनन, विवेक और ज्ञानरूपी तीन दिव्यशक्तियां धारण करते हैं । मरुत्‌रूपी प्राण पवित्र होकर इस यज्ञाग्निको प्रज्वलित करते हैं । इन्द्र अर्थात् आत्मा इस यज्ञको देखता है ॥१॥

इस इन्द्रने वज्रको हाथमें लेकर अहि नामक असुरको मारा और बडे बडे जल प्रवाहोंको मुक्त किया, तब मरुतोंने सोमको पीनेकी इच्छावाले आनन्दित इन्द्रकी प्रशंसा की ॥२॥

हे वीर मरुतो ! तुम और इन्द्र अच्छी तरह निचोडे गए इस सोमको पियो । इस सोम को पीकर ही इन्द्र ने अहिको मारा था और यह सोमरूप हव्य ही मनुष्यको गायें प्राप्त कराता है ॥३॥

इन्द्रने द्यु और पृथिवीको दृढतासे थाम रखा है । इस इन्द्रने अपने आक्रमणसे मृगके समान मायावी शत्रुको भयभीत किया तथा सब कुछ खा जाने वाले और लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले दानवको अपने प्रयत्नोंसे मारा ॥४॥

२०३ अध क्रत्वा मघवन् तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत् सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥ ५ ॥

२०४ नव यदस्य नवतिं च भोगान् त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥ ६ ॥

२०५ सखा सख्ये अपचत् तूयमग्नि—रस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम् ॥ ७ ॥

२०६ त्री यच्छता महिषाणामघो मा—स्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥ ८ ॥

अर्थ- [२०३] हे इन्द्र ! (**यत्**) जब तूने (**पुरः पतन्तीः**) आगे बढती आनेवाली (**सूर्यस्य हरितः**) सूर्यकी सुनहरे रंगकी घोडियोंको अर्थात् किरणोंको (**एतशे**) एतशके लिए (**उपरा कः**) गतिहीन कर दिया, स्थिर कर दिया (**अध**) तब हे (**मधवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तेरे इस (**क्रत्वा अनु**) कर्मसे प्रसन्न होकर (**विश्वे देवाः**) सब देवोंने (**तुभ्यं सोमपेयं अददुः**) तुझे सोम पीनेके लिए दिया ॥५॥

[२०४] (**यत्**) जब (**मघवा**) इन्द्रने (**नव नवतिं च भोगान्**) शत्रुकी निन्यानवे नगरियोंको (**वज्रेण**) वज्रसे (**साकं विवृश्चत्**) एक साथ तोड डाला तथा (**द्यां बाधत**) और द्युलोकको थामा, तो (**मरुतः**) मरुद्गण (**सधस्थे**) यज्ञमें (**त्रैष्टुभेन वचसा**) त्रिष्टुभ् छन्दकी ऋचासे (**इन्द्रं अर्चन्ति**) इन्द्र स्तुति करने लगे ॥६॥

[२०५] (**सखा अग्निः**) मित्र अग्निने (**सख्ये अस्य क्रत्वा**) अपने मित्र इस इन्द्रके पराक्रमकी सहायतासे (**त्री शतानि महिषा**) तीन सौ शक्तिवर्धक कन्दोंको (**अपचत्**) पकाया और साथ साथ (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**वृत्रहत्याय**) वृत्रको मारने के लिए (**मनुषः सुतं सोमं**) मनुष्योंके द्वारा निचोडे गए सोमके (**त्री सरांसि**) तीन बर्तनोंको (**साकं पिबत्**) एक साथ पी डाला ॥७॥

[२०६] हे इन्द्र ! (**यत्**) जब तूने (**त्री शता महिषाणां अधः**) तीनसौ शक्ति वर्धक कंदोको पकाया तथा (**मघवा**) ऐश्वर्यशाली तूने (**सौम्या त्री सरांसि अपाः**) सोमके तीन बर्तनोंको पिया तथा (**यत् अहिं जघान**) जब अहि को मारा, तब (**कारं न**) जिस प्रकार लोग कारीगर को बुलाते हैं, उसी प्रकार (**विश्वे देवाः**) सब देवोंने (**माः**) धनकी प्राप्तिके लिए (**भरं इन्द्राय अह्वन्त**) भरणपोषण करनेवाले इन्द्रको बुलाया ॥८॥

भावार्थ- जब इन्द्रने आगे बढती हुई सुनहरे रंग की किरणोंको स्थिर किया, उनकी चंचलता नष्ट कर दी, तब इसके इस कर्मसे प्रसन्न होकर सभी देवोंने इस इन्द्रकी बडी स्तुति की ॥५॥

जब इन्द्रने अपने वज्रसे शत्रुओंकी निन्यानवे नगरियोंको तोडा और द्युलोकको स्थिर किया तब मरुतोंने यज्ञमें त्रिष्टुप् छन्दके मंत्रोंसे इस इन्द्रकी स्तुति की ॥६॥

अग्निने इस इन्द्रकी सहायतासे तीन सौ शक्तिवर्धक कन्द पकाये । वृत्रको मारकर इन्द्रने मनुष्योंके द्वारा निचोडे गए सोमको बहुत पिया ॥७॥

इन्द्रने जब तीनसौ शक्तिवर्धक कन्दोंको पकाया और खूब सारा सोम पिया और उस सोम के उत्साहमें अहिको मारा । तब धनकी प्राप्तिके लिए भरणपोषण करनेवाले इन्द्रको सभी देवोंने बुलाया ॥८॥

२०७ उशना यत् सहस्यैरयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९ ॥

२०८ प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद् वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥ १० ॥

२०९ स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११ ॥

२१० नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥ १२ ॥

अर्थ- [२०७] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**यत्**) जब तू (**उशना**) और उशना दोनों (**सहस्यैः जूजुवानेभिः अश्वैः**) शत्रुओंके मारनेवाले और वेगसे दौडनेवाले घोडोंके द्वारा (**गृहं अयातं**) घर गए, तब (**अत्र**) उस समय तुम दोनों (**कुत्सेन देवैः**) कुत्स और देवोंके साथ (**सरथं ययाथ**) एक ही रथ पर बैठकर गए और तूने (**शुष्णं अवनोः**) शुष्णको मारा ॥९॥

[२०८] हे इन्द्र ! तूने (**सूर्यस्य अन्यत् चक्रं प्र अवृहः**) सूर्यके एक चक्रको पृथक् किया तथा (**कुत्साय वरिवः यातवे**) कुत्सको धन देनेके लिए (**अन्यत् अकः**) दूसरा चक्र बनाया । तूने (**अ-नासः दस्यून् वधेन अमृणः**) नाक रहित अर्थात् छोटी नाकवाले दस्युओंको शस्त्रसे मारा, तथा (**दुर्योणे**) संग्राममें (**मृध्रवाचः आवृणक्**) बुरे शब्द बोलनेवालोंको मारा ॥१०॥

[२०९] हे इन्द्र ! (**गौरिवीतेः स्तोमासः त्वा अवर्धन्**) गौरिवीतिके स्तोत्रोंने तेरा यश बढाया तथा तूने (**वैदथिनाय पिप्रुं अरन्धयः**) विदथिके पुत्रके लिए पिप्रुको मारा । तब (**ऋजिश्वा त्वां सख्याय आ चक्रे**) ऋजिश्वाने तुझे मित्र बनानेके लिये प्रार्थना की, उसने तेरे लिए (**पक्तीः पचन्**) पुरोडाश पकाया तथा तूने (**अस्य सोमं अपिबः**) इसके सोमको पिया ॥११॥

[२१०] (**सुतसोमासः नवग्वासः दशग्वासः**) सोम तैय्यार करनेवाले नवग्व तथा दशग्वोंने (**इन्द्रं अर्कैः अभि अर्चन्ति**) इन्द्रकी स्तोत्रोंसे स्तुति की । तब उनके लिए (**शशमानाः नरः**) प्रशंसित हुए मरुतोंने (**अपिधान वन्तं ऊर्वं गव्यं**) छिपाकर रखे गए बहुत बडे गायोंके समूहको (**अप व्रन्**) खोल दिया, प्राप्त किया ॥१२॥

१ नवग्वासः दशग्वासः- नौ और दस गायें पासमें रखनेवाले ।

भावार्थ- इन्द्र और उशना अर्थात् ब्रह्मज्ञानी शत्रुओंको मारनेके लिए घोडोंसे गए, तब यह इन्द्र अन्य देवोंके साथ उसी ज्ञानीके रथ पर बैठकर गया और उसने शुष्णको मारा ॥९॥

इस इन्द्रने सूर्यको एक चक्रसे युक्त किया, तथा ज्ञानीको धन देनेके लिए दूसरे उपायका सहारा लिया । इस इन्द्रने चिपटी नाकवाले दस्युओंको शस्त्रसे मारा और संग्राममें कुवचनोंको कहनेवालोंको मारा ॥१०॥

गौरिवीति अर्थात् गायोंकी रक्षा करनेवाले मनुष्यने इस इन्द्रका यश बढाया । यह इन्द्र भी गौ-रक्षक है, तथा युद्ध करनेवाले शूरवीरके पुत्र की सहायता करते हुए पिप्रुको मारा । ऋजिश्वाने इन्द्रको मित्र बनानेके लिए इस इन्द्रकी प्रार्थना की, और उसने इन्द्र के लिए पुरोडाश पकाया ॥११॥

सोम तैय्यार करनेवाले नवग्व और दशग्वोंने इन्द्र की स्तोत्रोंसे स्तुति की, तब इन्द्रके सहायक मरुतोंने नौ और दस गायोंके स्वामीके लिए गायोंका समूह प्रदान किया ॥१२॥

२११ कथो नु ते परि चराणि विद्वान् वीर्या मघवन् या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥ १३ ॥
२१२ एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्य-परीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन् कृणवो दधृष्वान् न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥ १४ ॥
२१३ इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ ॥

[३०]

[ऋषिः- बभ्रुरात्रेयः । देवता- इन्द्रः, १२-१५ ऋणंचयेन्द्रौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२१४ क्व१स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन् तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥ १ ॥

अर्थ- [२११] हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तूने (**या वीर्या चकर्थ**) जो पराक्रमके कार्य किए हैं, उन्हें (**विद्वान्**) जाननेवाला मैं (**ते कथो नु परिचराणि**) तेरी किस तरह सेवा करूं ? हे (**शविष्ठ**) बलवान् इन्द्र ! (**च ह**) और तूने (**या नव्या कृणवः**) जो नये पराक्रमके कार्य किए हैं (**ते ता विदथेषु प्र ब्रवाम इत्**) तेरे उन पराक्रमोंका यज्ञोंमें हम वर्णन करते हैं ॥१३॥

[२१२] हे (**अपरीतः इन्द्र**) युद्धमें पीछे न हटनेवाले इन्द्र ! तूने (**जनुषा**) जन्मते ही (**वीर्येण**) अपने बलसे (**एता भूरि विश्वा चकृवान्**) इन सारे विश्वोंको बनाया । हे (**दधृष्वान् वज्रिन्**) शत्रुओंका घर्षण करनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! तू (**या चित् कृणवः**) जिन पराक्रमोंको करता है, ते (**तस्याः तविष्याः वर्ता न अस्ति**) तेरे उस बलका निवारण करनेवाला कोई नहीं है ॥१४॥

१ **जनुषा वीर्येण एता भूरि विश्वा चकृवान्-** इन्द्रने जन्मते ही अपने बलसे इस सारे विश्वको बनाया ।
२ **या चित् कृणवः तस्याः तविष्याः वर्ता न अस्ति-** यह इन्द्र जिन पराक्रमोंको करता है, उनका निवारण करनेवाला कोई नहीं है ।

[२१३] हे (**शविष्ठ इन्द्र**) बलवान इन्द्र ! हमने (**ते**) तेरे लिए (**या नव्या अकर्म**) जिन नये स्तोत्रोंको बनाया है, उनका और (**क्रियमाणा ब्रह्म**) आगे किए जानेवाले स्तोत्रोंका (**जुषस्व**) सेवन कर । (**रथं न**) जिस प्रकार बढई रथको उत्तम बनाता है, उसी प्रकार (**सु-अपाः धीरः वसूयुः**) उत्तम कर्म करनेवाला, बुद्धिमान् तथा धनको चाहनेवाला मैं (**भद्रा वस्त्रा इव**) उत्तम वस्त्रके समान स्तोत्रको (**अतक्षम्**) बनाता हूँ ॥१५॥

[३०]

[२१४] (**यः पुरुहूत वज्री**) जो सहायार्थ बहुतोंके द्वारा बुलाया जानेवाला तथा वज्रधारी इन्द्र (**सुतसोमं इच्छन्**) सोम रसकी इच्छा करता हुआ (**राया**) धनसे युक्त होकर (**ऊती**) संरक्षणके लिए (**तत् ओकः गन्ता**) उस घरको जाता है, (**स्यः**) वह (**वीरः क्व**) वीर कहां है ? तथा (**हरिभ्यां सुखरथं**) घोडोंसे युक्त और सुखदायक रथ पर बैठकर (**ईयमानं इन्द्रं**) जानेवाले इन्द्रको (**कः अपश्यत्**) किसने देखा है ? ॥१॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! जो तूने नये पराक्रमके कार्य किए हैं, उनको तो हम जानते हैं, अतः यज्ञोंमें हम उनकी प्रशंसा कर भी सकते हैं, पर जो पराक्रम तूने पहले किए हैं, उन्हें हम नहीं जानते, फिर उनका वर्णन हम किस तरह करें ? ॥१३॥

इस इन्द्रने जन्म लेते ही अपने जलसे सारे विश्वको बनाया । हे इन्द्र ! तू जिन पराक्रमोंको प्रकट करता है, उनको रोकनेवाला कोई नहीं है ॥१४॥

हे इन्द्र ! मैंने तेरे लिए उत्तम स्तोत्रोंको बनाया है, उन स्तोत्रोंको तू सुन । उत्तम कर्म करनेवाला, बुद्धिमान् तथा धनको चाहनेवाला मैं नये वस्त्रके समान सुन्दर स्तोत्रोंको बनाता हूँ ॥१५॥

२१५ अवाचचक्षं पदमस्य सस्व—रुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहु—रिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥ २ ॥

२१६ प्र नु वयं सुते या ते कृतानी—न्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान् वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥ ३ ॥

२१७ स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ४ ॥

अर्थ- [२१५] (**अस्य सस्वः उग्रं पदं**) मैंने इस इन्द्रके गुप्त तथा उग्र स्थानको (**अवाचचक्षं**) देख लिया है । मैं (**इच्छन्**) देखनेकी इच्छा करता हुआ (**निधातुः अनु आयं**) सबको धारण करनेवाले इन्द्रके स्थान पर गया । (**अन्यान्, अपृच्छं**) मैंने दूसरोंसे भी पूछा (**उत ते मे आहुः**) तब उन्होंने मुझे बताया कि (**बुबुधानाः नरः इन्द्रं अशेम**) ज्ञानवान् मनुष्य ही इन्द्रको प्राप्त करते है ॥२॥

१ **बुबुधानाः नरः इन्द्रं अशेम-** ज्ञानवान् मनुष्य ही इन्द्रको प्राप्त करते हैं ।

[२१६] हे इन्द्र ! (**या ते कृतानि**) जो तेरे पराक्रमके कार्य हैं, उनका (**वयं सुते ब्रवाम**) हम सोमयागमें वर्णन करते हैं । तथा तूने (**नः यानि जुजोषः**) हमारे जिन कर्मोंका सेवन किया है, उन्हें (**विद्वान वेदत् श्रुणवत्**) विद्वान् जाने और सुने । (**सर्वसेनः अयं विद्वान् मघवा**) सब सेनाओंसे युक्त यह विद्वान ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**वहते**) घोडों द्वारा ले जाया जाता है ॥३॥

१ **ते या कृत्यानि, वयं ब्रवाम-** जो तेरे कर्म हैं, उनका वर्णन हम करते हैं ।

[२१७] हे इन्द्र ! (**जातः**) उत्पन्न होते ही तूने (**मनः स्थिरं चकृषे**) मनको स्थिर किया । (**युधये**) युद्धमें (**एकः चित्**) अकेले होते हुए भी तूने (**भूयसः वेषीत्**) बहुतोंको नष्ट किया । तूने (**शवसा**) बलसे (**अश्मानं चित् दिद्युतः**) पहाडको भी तोड डाला तथा (**उस्त्रियाणां ऊर्वं गवां विदः**) गायोंके बडे समूहको प्राप्त किया ॥४॥

१ **जातः मनः स्थिरं चकृषे-** उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपने मनको स्थिर किया ।

२ **युधये एकः चित् भूयसः वेषीत्-** युद्धमें अकेले होते हुए भी इन्द्रने अनेकों शत्रुओंको नष्ट किया।

भावार्थ- जो वज्रधारी इन्द्र सोमपीनेकी इच्छा करता हुआ धनसे युक्त होकर संरक्षणके लिए अपने भक्तके घरको जाता है, वह वीर कहां है और उत्तम रथ पर बैठकर जानेवाले उस वीरको किसने देखा है ? ॥१॥

मैंने इस इन्द्रके गुप्त स्थानको जान तो लिया है, मैं इन्द्रके स्थान पर गया भी, पर वहां जानेपर मालूम हुआ कि सिर्फ ज्ञानसे युक्त पुरुष ही उस इन्द्रको प्राप्त कर सकते हैं । यह इन्द्र भी उसी तरह हृदयरूपी गुप्त स्थानमें छिपा रहा है, सब जानते हैं कि आत्माका स्थान हृदय है और कुछ लोग उस स्थान तक पहुंच भी जाते हैं, पर वहां जाकर ज्ञात होता है कि केवल ज्ञानी ही उस आत्माको प्राप्त कर सकते हैं ॥२॥

जो इन्द्रके कार्य हैं, उनका हम वर्णन करते हैं । यह इन्द्र भी केवल विद्वान् की बातोंका अनुसरण करता है । यह विद्वान् और ऐश्वर्यवान् है ॥३॥

इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही मनमें संकल्प किया कि मैं शत्रुओंको मारूंगा और उसी संकल्पसे प्रेरित होकर उसने अकेले ही सब शत्रुओंको नष्ट किया । उसने अपने बलसे पहाडको भी तोडा और उनमेंसे गायोंको बाहर निकाला ॥४॥

२१८ परो यत् त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद् दासपत्नीः ॥ ५ ॥

२१९ तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६ ॥

२२० वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन् गवा मघवन् त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥ ७ ॥

२२१ युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित् स्वर्यं१ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥

अर्थ- [२१८] (**यत्**) जब (**परः परमः त्वं**) उत्कृष्टोंमें अत्यन्त उत्कृष्ट तू (**परावति**) दूर देशमें (**श्रुत्यं नाम बिभ्रत् आजनिष्ठाः**) प्रसिद्ध यशको धारण करते हुए उत्पन्न हुआ, (**अतः चित्**) तबसे ही (**देवाः इन्द्रात् अभयन्त**) सब देव इन्द्रसे डरने लगे और इन्द्रने (**दासपत्नी विश्वाः अपः अजयत्**) दासके द्वारा रोके गए सब जलोंको जीत लिया ॥५॥

[२१९] (**सुशेवाः मरुतः**) उत्तम सेवा करने योग्य ये मरुत् (**तुभ्य इत्**) तेरे लिए ही (**अर्कं अर्चन्ति**) स्तोत्रसे अर्चा करते हैं तथा (**अन्धः सुन्वन्ति**) सोम निचोडते हैं । (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**मायाभिः**) अपनी कुशलतासे (**ओहानं**) देवोंको पीडा देनेवाले (**अपः आशयानं**) जलोंको घेर कर सोनेवाले तथा (**मायिनं**) मायावी (**अहिं**) अहिको (**सक्षत्**) मारा ॥६॥

[२२०] हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**संचकानः**) स्तुत होनेवाले तूने (**जनुषा**) जन्मते ही (**दानं इन्वन्**) दानासुरको मारते हुए (**गवा**) अपने वज्रसे (**मृधः**) दूसरे हिंसकोंको भी (**अहन्**) मारा । (**मनवे गातुं इच्छन्**) मनुके लिए मार्ग बनानेकी इच्छा करते हुए तूने (**अत्र**) इस युद्धमें (**दासस्य नमुचेः शिरः**) दासके और नमुचिके सिरको (**अवर्तयः**) काट डाला ॥७॥

[२२१] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तूने (**स्वर्यं अश्मानं चित् वर्तमानं**) गर्जना करनेवाले मेघके समान स्थित (**दासस्य नमुचेः**) दास नमुचिके (**शिरः मथायन्**) सिरके टुकडे टुकडे कर डाला (**आत् इत्**) फिर (**मां युजं अकृथाः**) मुझे मित्र बनाया। फिर (**मरुद्भ्यः**) मरुतोंके लिए (**रोदसी चक्रिया इव**) द्यावापृथिवी दो चक्रोंके समान हो गए ॥८॥

भावार्थ- दूर देशमें उत्पन्न होने पर भी इस इन्द्रसे सब देव डरने लग गए । जन्म लेते ही उसका यश फैलने लग गया । तब इन्द्रने दासके द्वारा रोके गए सब जलोंको जीत लिया ॥५॥

जब इन्द्रने अपनी कुशलतासे देवोंको पीडा देनेवाले जलोंको घेरकर सोनेवाले तथा मायावी अहि नामक असुरको मारा, तब मरुतोंने इस इन्द्रकी अर्चा की और उसकी प्रशंसा की ॥६॥

इस इन्द्रने जन्मते ही दानासुरको मारा और अपने वज्रसे दूसरे हिंसक शत्रुओंको भी मारा । मनुष्यके जानेके लिए मार्ग बनाया और युद्धमें दास और नमुचिके सिरको काटा ॥७॥

जब इन्द्रने गर्जना करनेवाले मेघके समान खडे हुए दास नमुचिके सिरके टुकडे किए, तब मरुतोंके लिए ये द्यु और पृथ्वी दो भागोंमें बंट गए ॥८॥

२२२ स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद् युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥
२२३ समत्र गावोऽभितोऽनवन्ते—हेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकै—र्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥ १० ॥
२२४ यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्द—न्नरोरवीद् वृषभः सादनेषु ।
पुरंदरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥ ११ ॥
२२५ भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन् गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥ १२ ॥

अर्थ- [२२२] (**दासः स्त्रियः आयुधानि चक्रे**) तब दासने स्त्रियोंको आयुध अर्थात् सेना बनाया। (**अस्य अबलाः सेनाः**) इसकी स्त्रियोंकी सेना (**मा किं करत्**) मेरा क्या करेगी? यह सोचकर (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**अस्य द्वे धेने**) इसकी दो खूबसूरत स्त्रियोंको (**अन्तः अख्यत्**) अन्दर बन्द कर दिया और (**युधये दस्युं उप प्र ऐत्**) युद्ध करनेके लिए दस्यु पर चढ चला ॥९॥

[२२३] (**यत्**) जब (**गावः वत्सैः वियुताः आसन्**) गायें बछडोंसे अलग हो गई और (**इह इह अभितः सं अनवन्त**) इधर उधर और सब जगह चिल्लाने लगीं, और (**यत्**) जब (**सुसुताः सोमासः**) निचोडे गए सोमोंने (**ईं अमन्दन्**) इस इन्द्रको आनन्दित किया तब (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**अस्य शाकैः**) अपने सामर्थ्योंसे (**ताः सं असृजत्**) उन गायोंको (**बछडोंके साथ**) संयुक्त कर दिया ॥१०॥

[२२४] (**यत्**) जब (**बभ्रूधूताः सोमाः**) बभ्रु ऋषिके द्वारा निचोडे गए सोमोंने (**ईं अमन्दन्**) इस इन्द्रको आनन्दित किया, तब (**वृषभः सादनेषु अरोरवीत्**) बलवान् इन्द्रने युद्धमें गर्जना की। (**पुरन्दरः इन्द्रः**) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रने (**पपिवान्**) सोम पिया (**पुनः**) फिर (**अस्य**) इस बभ्रुके लिए (**उस्त्रियाणां गवां अददात्**) दूध देनेवाली गायें दीं ॥११॥

[२२५] हे (**अग्ने**) तेजस्वी इन्द्र! (**गवां चत्वारि सहस्रा ददतः**) चार हजार गायोंको मुझे देकर (**रुशमाः इदं भद्रं अक्रन्**) रुशमोंने यह बडा कल्याणकारी काम किया। (**नृणां नृतमस्य**) मनुष्योंमें उत्तम मनुष्य (**ऋणंचयस्य प्रयता मघानि**) ऋणंचयके द्वारा दिए गए ऐश्वर्योंको हमने (**प्रति अग्रभीष्म**) स्वीकार किया है ॥१२॥

भावार्थ- पराभव होनेके कारण दासने, यह सोचकर कि शायद इन्द्र स्त्रियोंसे न लडे, स्त्रियोंकी एक सेना सजाई और इन्द्र पर चढ चला, तब इन्द्रने भी सोचा कि ये अबला स्त्रियां मेरा क्या कर लेंगी, और यह सोचकर उसने उस सेनामेंसे दो खूबसूरत स्त्रियोंको कैदखाने में बंद कर दिया। तब वह सारी सेना डर कर भाग गई और इन्द्रने अपने सेनासे दास पर आक्रमण कर दिया ॥९॥

गायें जब अपने बछडोंसे बिछडकर इधर उधर रंभाने लगीं, तब इन्द्रने सोमसे आनन्दित होकर उन गायोंको उनके बछडोंसे मिला दिया ॥१०॥

जब भरणपोषण करनेवाले दानीने सोमके द्वारा इस इन्द्रको आनन्दित किया, तब बलसे युक्त होकर उसने युद्धमें गर्जना की और उस दानीको इन्द्रने दुधारु गायें दीं ॥११॥

तेजस्वी मनुष्य हमेशा दान रूप कल्याणकारी कर्म करता है। मनुष्योंमें उत्तम मनुष्य तथा ऋणको दूर करनेवाले दानी महानुभावके ऐश्वर्योंको हम स्वीकार करते हैं। हमेशा वही दान स्वीकार करना चाहिए कि जो उत्तम मनुष्यके द्वारा दिया गया हो ॥१२॥

२२६ सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासो—ऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥ १३ ॥

२२७ औच्छत् सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत् सहस्रा ॥ १४ ॥

२२८ चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित् तप्तः प्रवृजे य आसी—दयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥ १५ ॥

[३१]

[ऋषिः- अवस्युरात्रेयः । देवता- इन्द्रः, ८ तृतीयपादस्य कुत्सो वा, चतुर्थपादस्य उशना वा,
९ इन्द्राकुत्सौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२२९ इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥ १ ॥

---

[२२६] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**रुशमासः**) तेजस्वी मनुष्योंने (**गवां सहस्रैः**) हजारों गायोंसे युक्त (**सुपेशसं अस्तं**) उत्तम रूपवाले घरको (**मा अवसृजन्ति**) मुझे प्रदान किया । तब (**परितक्म्यायाः अक्तोः वि उष्टौ**) अन्धकारमय रात्रीके समाप्त होकर उषःकालके प्रकाशित होने पर (**सुतासः तीव्राः**) हमारे द्वारा निचोडे गए तीखे सोमोंने (**इन्द्रं अमन्दुः**) इन्द्रको आनन्दित किया ॥१३॥

[२२७] (**रुशमानां राजनि ऋणं चये**) रुषमोंके राजा ऋणंचयके घरमें जानेपर (**या परितक्म्या**) जो अन्धकारमय रात थी, (**सा रात्री औच्छत्**) वह रात्री बीत गई । तब (**अत्यः वाजी न**) निरन्तर दौडनेवाले घोडेकी तरह (**रघुः अज्यमानः**) शीघ्रतासे जानेवाले (**बभ्रुः**) बभ्रुने (**चत्वारि सहस्रा असनत्**) चार हजार गायें प्राप्त कीं ॥१४॥

[२२८] हे (**अग्ने**) अग्ने ! हमने (**रुशमेषु**) रुशमदेशोंमें (**चतुः सहस्रं गव्यस्थ पश्वः**) चार हजार गायरूपी पशुओंको (**प्रति अग्रभीष्म**) प्राप्त किया । तथा (**प्रवृजे**) प्रवर्ग्य यज्ञमें (**यः तप्तः अयस्मयः धर्मः**) जो तपे हुए सोने का पात्र था, (**तं उ**) उसे भी, हे (**विप्राः**) ज्ञानियो ! (**आदाम**) हमने प्राप्त किया ॥१५॥

[३१]

[२२९] (**मघवा इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**वाजयन्तं यं अधि अस्थात्**) जिस मजबूत रथ पर बैठता है (**रथाय प्रवतं कृणोति**) उस रथको वेगसे जानेवाला बना देता है । (**गोपाः पश्वः यूथा इव**) ग्वाला जिस प्रकार पशुओंके झुण्डको प्रेरित करता है, उसी प्रकार इन्द्र (**व्युनोति**) अपनी सेनाको प्रेरित करता है और (**प्रथमः**) मुख्य इन्द्र (**अरिष्टः**) स्वयं अहिंसित होता हुआ (**सिषासन् याति**) धन देनेकी इच्छा करता हुआ जाता है ॥१॥

भावार्थ- जब मनुष्य गायोंसे युक्त समृद्धिशाली घरोंको प्राप्त करता है, तब वह प्रतिदिन रातके बीतने और उषःकालके प्रकट होने पर सोमरसोंको तैय्यार करता है और उसे पीकर इन्द्र आनन्दित होता है ॥१३॥

ऋणसे दबा हुआ एक तेजस्वी मनुष्य जब एक ऋणको दूर करनेवाले दानी राजा के पास जाता है, तब ऋणके कारण उसकी जो अन्धकारमय रात थी, वह ऋणसे मुक्त होने के कारण दूर हो गई । मनुष्य जब ऋणसे मुक्त हो जाता है, तब उसे सर्वत्र प्रकाश दीखने लगता है । ऋणसे मुक्त होकर भरणपोषण करनेवाले उस मनुष्यने बहुत सारी समृद्धि प्राप्त की ॥१४॥

हे अग्ने ! हमने रुशम देशमें चार हजार गायोंको प्राप्त किया, साथ ही प्रवर्ग्यमें तपे हुए सोनेसे निर्मित सोनेके पात्रको भी प्राप्त किया ॥१५॥

यह इन्द्र इतना कुशल है कि यह जिस रथ पर भी बैठ जाता है उसे वेगसे जानेवाला बना देता है । एक ग्वाला जिस प्रकार पशुओंके झुण्डको प्रेरित करता है, उसी तरह यह अपनी सेनाको प्रेरित करता है और युद्धमें अपराजेय होकर सबको धन देनेकी इच्छा करता हुआ जाता है ॥१॥

२३० आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्य—मेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥ २ ॥
२३१ उद्यत् सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत् सुदुघा वव्रे अन्त—र्वि ज्योतिषा संववृत्वत् तमोऽवः ॥ ३ ॥
२३२ अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कै—रवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥
२३३ वृष्णे यत् ते वृषणो अर्कमर्चा—निन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५ ॥

अर्थ- [२३०] हे (हरि-वः) घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! तू (मा आ द्रव) मेरे पास शीघ्र आ, (मा वि वेनः) मुझे निराश मत कर । हे (पिशंगराते) धनवान् इन्द्र ! (नः अभि सचस्व) हमें स्वीकार कर । हे इन्द्र! (त्वत् वस्यः अन्यत् नहि अस्ति) तुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं । तूने (अ-मेनान् जनिवतः चकर्थ) पत्नियोंसे रहित कई मनुष्योंको पत्नीवाला बनाया ॥२॥

१ त्वत् वस्यः अन्यत् नहि अस्ति- तुझसे अर्थात् इस इन्द्रसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ।

[२३१] (यत्) जब (सहसः सहः) उषाके तेजसे सूर्यका तेज (उत् आजनिष्ट) उदय हुआ, तब (इन्द्रः) इन्द्रने लोगोंको (विश्वा इन्द्रियाणि देदिष्ट) सब इन्द्रियां दे दी । तथा (वव्रे अन्तः) पहाडके अन्दर बन्दकी हुई (सु-दुघाः) उत्तम और दुधारु गायोंको (प्राचोदयत्) बाहर प्रेरित किया, तथा (सं ववृत्वत् तमः) सबको आच्छादित करनेवाले अन्धकारको (ज्योतिषा अवः) अपने तेजसे नष्ट किया ॥३॥

[२३२] हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (अनवः) कारीगर मनुष्योंने (ते रथं अश्वाय तक्षन्) तेरे रथको घोडेके लगानेके योग्य बनाया । तथा (त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं) त्वष्टाने तेजस्वी वज्रको बनाया। (महयन्तः ब्रह्माणः) पूजा करनेवाले स्तोताओंने (अहये हन्तवै) अहिको मारनेके लिए (इन्द्रं अर्कैः अवर्धयन्) इन्द्रको स्तोत्रोंसे उत्साहित किया ॥४॥

[२३३] (अन्-अश्वासः) घोडोंसे रहित (अ-रथाः) रथोंसे रहित (इन्द्र-इषिताः पवयः) इन्द्रसे प्रेरित होकर चलनेवाले (ये) जिन मरुतोंने (दस्यून् अभ्यवर्तन्त) दस्युओंको मारा, (ते वृषणः) उन बलवान् मरुतोंने (यत्) जब (इन्द्र) हे इन्द्र! (वृष्णे ते अर्कं अर्चान्) बलवान् तेरी स्तुतिसे पूजा की, तब (अदितिः ग्रावाणः सजोषाः) न टूटनेवाले पत्थर परस्पर संयुक्त होकर सोमरस निकालने लगे ॥५॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू मेरे पास शीघ्र आ, मुझे निराश मत कर । तू हमें अपना बनाकर स्वीकार कर, क्योंकि तुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है । तूने अनेकोंके घर समृद्ध किए हैं ॥२॥

जब उषःकालके बाद सूर्यका तेज प्रकट होता है, तब उस सूर्यके तेजसे इन्द्रियोंको शक्तियां मिलती हैं । सूर्य चर और अचर जगत्की आत्मा है । सूर्य उदय होते ही अन्धकारको दूर कर देता है और अन्धकारके दूर होने पर गाय आदि पशु चरनेके लिए निकल पडते हैं ॥३॥

हे इन्द्र ! तेरे रथको कारीगरोंने इतना उत्तम बनाया कि उसमें घोडे आसानीसे जुड गए, तेरे लिए ही त्वष्टाने तेजस्वी वज्रको बनाया, तथा स्तोताओंने अहि नामक असुरको मारनेके लिए तेरे उत्साहको बढाया ॥४॥

हे इन्द्र ! घोडोंसे रहित, और रथोंसे रहित होनेपर भी इन्द्रसे प्रेरित होनेके कारण इन मरुतोंने दस्युओंको मारा फिर उन बलवान् मरुतोंने इस इन्द्रकी स्तुति की तब इस इन्द्रके लिए सोमरस निचोडा गया ॥५॥

२३४ प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन् या चकर्थ ।
शक्तीवो यद् विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥
२३५ तदिन्नु ते करणं दस्म विप्रा ऽहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित् परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥ ७ ॥
२३६ त्वमपो यदवे तुर्वशाया ऽरमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद् वामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥
२३७ इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना ऽऽ वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थात् मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥ ९ ॥

अर्थ- [२३४] (**शक्तीवः, मघवन्**) हे शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**यत्**) जब तूने (**उभे रोदसी जयन्**) दोनों द्यावापृथिवीको जीतकर (**मनवे**) मनुके लिए (**दानुचित्राः अपः विभरा**) स्नेह से भरपूर पानियोंको धारण किया, तब तूने (**या चकर्थ**) जिन कामोंको किया, (**ते**) तेरे उन (**नूतना पूर्वाणि करणानि**) नये और पुराने कर्मोंका मैं (**वोचं**) वर्णन करता हूँ ॥६॥

[२३५] हे (**दस्म विप्र**) सुन्दर और बुद्धिमान् इन्द्र ! तूने (**अहिं घ्नन्**) अहिको मार कर (**यत् ओजः अत्र अमिमीथाः**) जो पराक्रम यहां प्रकाशित किया, (**तत् इत् नु ते करणं**) वह भी तेरा ही काम है । तूने (**शुष्णस्य चित् माया परि अगृभ्णाः**) शुष्णकी मायाको जान लिया, तथा (**प्रपित्वं यन्**) संग्राममें जाकर (**दस्यून् अप असेधः**) दस्युओंको मारा ॥७॥

[२३६] हे इन्द्र ! (**पारः त्वं**) दुःखों से पार करानेवाले तूने (**यदवे तुर्वशाय**) यदु और तुर्वशके लिए (**सुदुघा अपः अरमयः**) उत्तम वनस्पतियोंको पैदा करनेवाले जलोंको बहाया । तूने (**अयातं उग्रं**) चढे चले आनेवाने भयंकर शत्रुसे (**कुत्सं अवह**) कुत्सकी रक्षा की, तब (**उशना देवाः वां अरन्त**) उशना और देवोंने तुम्हारी [इन्द्रकी और कुत्सकी] स्तुति की ॥८॥

[२३७] हे (**इन्द्रा कुत्सा**) इन्द्र और कुत्स ! (**रथेन वहमाना**) रथसे जानेवाले (**वां**) तुम दोनोंको (**अत्याः**) शीघ्र जानेवाले घोडे (**कर्णे अपि आ वहन्तु**) युद्धमें भी ले जाएं । तुमने (**अद्भ्यः**) पानियोंसे निकालकर (**सीं**) इस असुरको (**निः धमथः**) मारा, तथा उसे (**सधस्थात् निः अबोधेतां**) उसके स्थानसे भी तुमने च्युत कर दिया था। तुम (**मघोनः हृदः तमांसि वरथः**) दानी धनवान्के हृदयसे पापोंको दूर करते हो ॥९॥

भावार्थ- इस इन्द्रने दोनों द्यावापृथ्विको जीतकर मनुष्यके लिए स्नेहसे भरपूर जलोंको प्रवाहित किया । इन्द्रके ये काम सनातन कालसे चले आने पर भी नवीन जैसे ही लगते हैं ॥६॥

इन्द्रने अहि नामक असुरको मार कर अपना पराक्रम प्रकट किया । ऐसा काम केवल इन्द्र ही कर सकता है । वह इन्द्र स्वयं मायावी होनेके कारण शुष्ण को आदि असुरोंकी मायाको जान लेता है और उन्हें मार देता है ॥७॥

हे इन्द्र ! तू दुःखोंसे पार करता है । तूने ही यत्न करनेवाले तथा शीघ्रतासे काम करनेवाले मनुष्यके लिए उत्तम वनस्पतियोंको पैदा करनेवाले जलोंको बहाया । तूने ही भयंकर वेगसे चढे चले आनेवाले शत्रुसे सज्जन पुरुषकी रक्षा की, तब बुद्धिमान् विद्वानोंने इस इन्द्रकी रक्षा की ॥८॥

हे इन्द्र और कुत्स ! रथसे जानेवाले तुम दोनोंको शीघ्रगामी घोडे युद्धमें ले जाएं और वहां तुम पानीमें छिपकर रहनेवाले असुरको मारो तथा दानी धनवान् के हृदयसे पापोंको दूर करो ॥९॥

२३८ वातस्य युक्तान् त्सुयुजश्चिदश्वान् कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥ १० ॥

२३९ सूरश्चिद् रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत् सनिष्यति क्रतुं नः ॥ ११ ॥

२४० आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन् ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥ १२ ॥

२४१ ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥ १३ ॥

अर्थ- [२३८] (**एषः कविः अवस्युः**) इस दूरदर्शी अवस्युने (**सुयुजः**) रथमें उत्तम प्रकारसे जुडनेवाले (**वातस्य युक्तान् अश्वान्**) वायुके समान घोडोंको (**अजगन्**) प्राप्त किया। हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तब (**विश्वे सखायः मरुतः**) सब मित्र मरुतोंने (**ब्रह्माणि**) स्तोत्रोंसे (**ते तविषीं अवर्धन्**) तेरे बलको बढाया ॥१०॥

[२३९] इन्द्रने (**पूर्वं**) पहले (**परितक्म्यायां**) युद्धमें (**सूरः चित्**) सूर्यसे भी अधिक (**जूजुवांसं रथं**) वेगसे दौडे जानेवाले रथको (**उपरं करत्**) गतिहीन कर दिया था। उस इन्द्रने (**एतशः चक्रं भरत्**) एतशके चक्रको छीन लिया था और उससे (**रिणाति**) शत्रुओंको मारा था, ऐसा वह इन्द्र हमें (**पुरः दधत्**) आगे बढाता हुआ (**नः क्रतुं सनिष्यति**) हमारे यज्ञका सेवन करें ॥११॥

[२४०] हे (**जनाः**) मनुष्यो ! (**अभि चक्षे**) तुम्हें देखनेके लिए (**सखायं सुतसोमं इच्छन्**) मित्रकी तथ निचोडे गए सोमकी इच्छ करता हुआ (**अयं इन्द्रः**) यह इन्द्र (**आ जगाम**) आ गया है। (**अध्वर्यवः**) अध्वर्युगण (**यस्य जीरं चरन्ति**) जिसे तेजीसे चलाते हैं, वे (**ग्रावा**) सोम पीसनेसे पत्थर (**वदन्**) शब्द करते हुए (**वेदिं अवभ्रियाते**) वेदि पर लाये जाते हैं ॥१२॥

[२४१] (**ये चाकनन्त ते चाकनन्त**) जो आनन्दमें है, वे आनन्दमें ही रहें। हे (**अमृत**) मरण धर्म रहित इन्द्र ! (**ते मर्ताः**) वे मनुष्य (**नु**) कभी भी (**अंहः मा आरन्**) पापसे युक्त न हों। तू (**यज्यून अवन्धि**) भक्तोंको स्वीकार कर, (**ते**) तेरी भक्ति करनेवाले हम (**येषु जनेषु स्याम**) जिन मनुष्योंमें है (**तेषु ओजः धेहि**) उनमें बल स्थापित कर ॥१३॥

भावार्थ- बुद्धिमान् और रक्षक मनुष्य वायुके समान वेगवान् घोडोंको प्राप्त करे। तथा वीर इन्द्र या राजाके सभी मित्र मिलकर उसका बल बढावें ॥१०॥

पहले युद्धमें इन्द्रने अपने शत्रुके सूर्यसे भी तेज दौडनेवाले रथको गतिहीन कर दिया था, तथा उसके ऊपर आक्रमण करता हुआ जो शत्रु चला आ रहा था, उसे मारा और अपने अनुयायियोंको आगे बढाया ॥११॥

हे मनुष्यो ! तुम्हें देखनेके लिए मित्रकी तथा सोमकी अभिलाषा करता हुआ यह इन्द्र आया है। अध्वर्यु अर्थात् यज्ञ करनेवालोंके द्वारा जोरसे चलाये जानेवाला पत्थर शब्द करता है ॥१२॥

जो आनन्दसे हैं, वे सदा आनन्दसे ही रहें। वे कभी भी पापसे युक्त होकर दुःखी न हों। हे इन्द्र ! हम भक्तों पर तु कृपा कर, तथा तेरी भक्ति करनेवाले हम मनुष्योंमें बल स्थापित कर ॥१३॥

[३२]

[ऋषिः- गातुरात्रेयः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२४२ अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद् वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥ १ ॥
२४३ त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २ ॥
२४४ त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥ ३ ॥
२४५ त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥ ४ ॥

---

[३२]

अर्थ- [२४२] हे इन्द्र ! तूने (**उत्सं अदर्दः**) मेघोंको फोडा, (**खानि वि**) जलके द्वारोंको खोला, (**त्वं**) तूने (**बद्बधानान् अर्णवान् अरम्णाः**) क्षुब्ध हुए हुए जलसे भरे मेघोंको मुक्त किया । (**महान्तं पर्वतं विवः**) बडे बडे पहाडको फोडा (**धारा विसृजः**) जलकी धाराओंको बहाया, तथा (**दानवं अव हन्**) दानवको मारा ॥१॥

[२४३] हे इन्द्र ! (**त्वं**) तूने (**ऋतुभिः**) वर्षाकालमें (**बद्बधानान् उत्सान्**) क्षुब्ध हुए हुए मेघोंको फोडा है । हे (**वज्रिन्**) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तूने (**पर्वतस्य ऊधः अरंहः**) मेघके बलको नष्ट किया । तथा हे (**उग्र इन्द्र**) वीर इन्द्र ! तूने (**शयानं प्रयुतं अहिं**) सोये हुए बलवान् अहिको (**जघन्वान्**) मारा तथा तूने (**तविषीं अधत्थाः**) बलको धारण किया ॥२॥

[२४४] (**यः एकः इत्**) जो अकेला ही स्वयंको (**अप्रतिः मन्यमानः**) प्रतिस्पर्धी रहित मानता था (**अस्मात्**) उससे (**अन्यः तव्यान् अजनिष्ट**) एक दूसरा बलवान् उत्पन्न हुआ, और उस (**इन्द्रः**) इन्द्रने (**तविषीभिः**) अपने बलोंसे (**महतः मृगस्य**) महान् और मृगके समान तेज दौडानेवाले (**त्यस्य**) उस शुष्णासुरके (**वधः**) आयुधोंको (**जघान**) नष्ट कर दिया ॥३॥

[२४५] (**वृषप्रभर्मा वज्री**) वर्षणशील मेघको गिरानेवाले तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रने (**एषां स्वधया मदन्तं**) इन प्राणियोंके अन्नसे आनन्दित होनेवाले (**मिहः न पातं**) मेघको न गिरने देनेवाले (**दानवस्य भामं**) दानवके तेजको और (**त्यं शुष्णं**) उस शुष्णको (**वज्रेण निजधान**) वज्रसे मारा ॥४॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तूने दानवको मारकर मेघोंको फोडा, जलके द्वारोंको खोला, अन्दर ही अन्दर क्षुब्ध होनेवाले जलोंको मुक्त किया, बडे बडे पर्वतोंको फोडा और जलकी धाराओंको बहाया ॥१॥

हे इन्द्र ! बलवान् होकर तूने वर्षाकालमें अन्दर ही अन्दर क्षुब्ध होते हुए मेघोंको फोडा, पानी बरसाकर तूने मेघके बलको नष्ट किया, तथा सोये हुए अहिको मारा ॥२॥

शुष्णासुर स्वयंको बहुत बलशाली समझता था, तथा अपनेको प्रतिस्पर्धीसे रहित मानता था । तब इन्द्र पैदा हुआ, जो शुष्णासुरसे भी अधिक बलशाली निकला और उसने अपने बलोंसे महाबलशाली शुष्णको अपने शस्त्रास्त्रोंसे मार दिया ॥३॥

दानव और शुष्ण असुर प्राणियोंके द्वारा ही दिए गए अन्नसे आनन्दित होते थे, पर उन प्राणियोंके लिए जल बरसने नहीं देते थे, तब वज्रधारी इन्द्रने अपने वज्रसे उन दोनों असुरोंको मारा ॥४॥

२४६ त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्त—ममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५ ॥
२४७ त्यं चिदित्था कत्पयं शयान—मसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्यो—च्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥ ६ ॥
२४८ उद् यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥ ७ ॥
२४९ त्यं चिदर्णं मधुपं शयान—मसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥ ८ ॥

अर्थ- [२४६] हे इन्द्र ! (**अमर्मणः**) जिसके मर्मको कोई नहीं जान सका ऐसे (**अस्य निषत्तं मर्म**) इस वृत्रके छुपे हुए मर्मको तूने (**क्रतुभिः**) अपने ज्ञान द्वारा (**विदत् इत्**) जान लिया । (**सुक्षत्र**) बलवान् इन्द्र! (**प्रभृता मदस्य**) बहुत सोमके आनन्दमें तूने (**युयुत्सन्तं ईं**) युद्ध करनेकी इच्छावाले इस वृत्रको (**तमसि हर्म्ये धाः**) अन्धकार पूर्ण स्थानमें बन्द कर दिया ॥५॥

[२४७] (**सुतस्य मन्दानः**) सोमसे आनन्दित होकर (**वृषभः इन्द्रः**) बलवान् इन्द्रने (**उच्चैः अपगूर्य**) वज्रको ऊंचा उठाकर (**कत्पयं**) सुखकर जलवाले (**शयानं**) सोनेवाले (**असूर्ये तमसि वावृधानं**) सूर्यरहित अन्धकारके स्थानमें बढनेवाले (**तं**) उस वृत्रको (**जघान**) मारा ॥६॥

[२४८] (**यत् इन्द्रः**) जब इन्द्रने (**महते दानवाय**) महान् दानवको मारनेके लिए (**सहः अप्रतीतं**) शत्रुओंको मारनेवाले तथा अजेय (**वधः**) वज्रको (**उद् यमिष्ट**) ऊपर उठाया, और (**यत्**) जब (**वज्रस्य प्रभृतौ**) वज्रके प्रहारसे (**ईं ददाभ**) इस वृत्रको मारा, तब इन्द्रने (**विश्वस्य जन्तोः अधमं चकार**) सारे प्राणियोंको नीचा कर दिया ॥७॥

[२४९] (**उग्रः**) वीर इन्द्रने (**महि**) महान् (**अर्णं**) वेगसे चढाई करनेवाले, (**मधुरं**) मधुको पीनेवाले (**शयानं**) सोनेवाले (**असिन्वं**) शत्रुओंको दूर फेंक देनेवाले (**वव्रं**) सबको ढकनेवाले (**त्यं**) उस असुरको (**अदात्**) पकड लिया । बादमें (**दुर्योणे**) संग्राममें इन्द्रने (**महता वधेन**) वज्रसे (**अ-पादं अ-मंत्र**) पैरोंसे रहित पर असीमित सौर (**मृध्रवाचं**) असत्यभाषण करनेवाले वृत्रको (**नि आवृणक्**) मारा ॥८॥

भावार्थ- वृत्रासुरके मर्म स्थानको कोई जान नहीं पाता था, उसे भी इन्द्रने अपनी बुद्धिमत्तासे जान लिया, और फिर उस मर्म पर प्रहार करके इन्द्रने वृत्रको अपना बन्दी बना लिया और उसे एक अन्धेरे स्थानमें बन्द कर दिया ॥५॥

सोमसे आनन्दित होकर उस बलवान् इन्द्रने वज्रको उठाकर सुखदायक जलोंको रोककर उन्हीं पर सोनेवाले तथा सूर्य रहित अन्धकारके स्थानमें बढनेवाले उस वृत्रको मारा ॥६॥

जब इन्द्रने उस महान् दानव वृत्रको मारनेके लिए शत्रुओंको मारनेवाला तथा अजेय वज्र ऊपर उठाया, तब वज्रके प्रहारसे इस वृत्रको मारा । तब इन्द्रने अपनी शक्तिसे सभी प्राणियोंको अपनेसे नीचा कर दिया ॥७॥

वृत्रासुर पैरोंसे रहित होने पर भी असीम शक्तिवाला और असत्यभाषण करनेवाला था, उस वेगसे चढाई करनेवाले, मधुको पीकर सोनेवाले शत्रुओंको दूर करनेवाले असुरको इन्द्रने जा पकडा और अपने बडे वज्रसे मार डाला ॥८॥

२५० को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥ ९ ॥
२५१ न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभि-रनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥ १० ॥
२५२ एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥ ११ ॥
२५३ एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥ १२ ॥

अर्थ- [२५०] (**अस्य शुष्मं तविषी कः वराते**) इस इन्द्रने महान् बलका कौन निवारण कर सकता है ? (**अ-प्रति-इतः**) पीछे न हटनेवाला इन्द्र (**एकः**) अकेला ही (**धना भरते**) धनोंको धारण करता है । (**देवी इमे चित्**) तेजस्वी ये दोनों द्यावापृथिवी (**ज्रयसः अस्य इन्द्रस्य**) वेगवाले इस इन्द्रके (**ओजसः भियसा**) बलके डरसे (**जिहाते**) चलती हैं ॥९॥

[२५१] (**अस्मै**) इस इन्द्रके लिए (**देवी स्वधितिः**) तेजस्विनी द्यौ (**नि जिहीते**) नम्र होकर चलती है, तथा (**उशती इव**) जिस प्रकार स्त्री पति के सामने आत्मसमर्पण कर देती है उसी प्रकार (**गातुः**) भूमि (**इन्द्राय येमे**) इन्द्रके आगे आत्मसमर्पण कर देती है, (**यत्**) जब यह इन्द्र (**आभिः**) इन प्रजाओंसे (**विश्वं ओजः सं युवते**) अपने सम्पूर्ण बलको संयुक्त करता है, तब (**क्षितयः**) प्रजायें (**स्वधाव्ने**) इस बलवान् इन्द्रको (**नमन्ते**) नमन करती हैं ॥१०॥

[२५२] हे इन्द्र ! (**सत्पतिं पांचजन्यं**) सज्जनोंका पालन करनेवाले, पंचजनोंका हित करनेवाले, (**यशसं**) यशस्वी और (**जातं**) उत्पन्न हुए (**त्वा एकं**) तुझ अकेले ही मैं (**जनेषु शृणोमि**) मनुष्योंमें सुनता हूँ । (**दोषा वस्तोः हवमानासः**) दिनरात हवि प्रदान करनेवाली तथा (**आशसः**) कामना करनेवाले (**मे**) मेरी प्रजायें (**नविष्ठं तं इन्द्रं जगृभ्र**) अतिशय स्तुत्य उस इन्द्रको स्वीकार करें ॥११॥

[२५३] (**एवा**) इस प्रकार (**ऋतुथा**) समय समय पर (**यातयन्तं**) जन्तुओंको प्रेरित करनेवाले हे इन्द्र ! (**त्वां**) तुझे (**विप्रेभ्यः मघा ददतं शृणोमि**) ज्ञानियोंको धन देनेवाला सुनता हूँ । हे इन्द्र ! (**त्वाया ये कामं निदधुः**) तुझमें जो अपनी अभिलाषा को स्थापित करते हैं वे (**ब्रह्माणः सखायः**) ज्ञानी मित्र (**ते किं गृहते**) तुझसे क्या पाते हैं ? ॥१२॥

भावार्थ- इस इन्द्रके महान् बलका मुकाबला भला कौन कर सकता है ? क्योंकि यह कभी भी पीछे नहीं हटता, इसलिए यह अकेला ही सब धनोंको धारण करता है । ये दोनों तेजस्वी द्यावापृथ्वी वेगशाली इस इन्द्रके बलके जरसे चलती हैं ॥९॥

इस इन्द्रके सामने तेजसे युक्त द्युलोक झुककर चलता है । भूमि भी इन्द्रके सामने नम्र हो जाती है । वह अपनी प्रजाओंको हर तरहके बलसे युक्त करता है । तथा प्रजायें भी इस इन्द्रके आगे नम्र होकर चलती हैं ॥१०॥

सब मनुष्योंमें इन्द्र ही सज्जनोंके पालन करनेवाले और पंचजनोंका हित करनेवालेके रूपमें बहुत प्रसिद्ध है । वही यशस्वी है । सभी प्रजायें अपनी सभी कामनाओंकी पूर्णताके लिए इस इन्द्रकी प्रार्थना करती हैं ॥११॥

यथायोग्य समय पर जन्तुओंके प्रेरित करनेवाले इन्द्र ! मैं सुनता हूँ कि तू ज्ञानियोंको धन देनेवाला है । तुझसे जो भी अभिलाषा करते हैं, वे ज्ञानी जन सभी तरहके सुख प्राप्त करते हैं ॥१२॥

[३३]

[ऋषिः- प्राजापत्यः संवरणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२५४ महि महे तवसे दीध्ये नॄ—निन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥ १ ॥
२५५ स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कै—र्हरीणां वृषन् योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥ २ ॥
२५६ न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वा—ऽयुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता—ऽऽ रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥ ३ ॥

---

[३३]

अर्थ- [२५४] (यः अस्मै जने सुमतिं) जो इस मनुष्यके लिए उत्तम बुद्धि देता है, तथा इन्द्रकी (स्तुतः) स्तुति होनेपर भी (वाजसातौ समर्यः चिकेत) युद्धके लिये श्रेष्ठ वीर पुरुषोंको जो पहचानता है, उस (महे तवसे इन्द्राय) महान् बलशाली इन्द्रकी (अतव्यान्) शक्तिहीन निर्बल मैं (नॄन् तवसे) मनुष्योंका बल बढानेके लिए (इत्था महिदीध्ये) इस प्रकार बहुत स्तुति करता हूँ ॥१॥

१ जने सुमतिं- मनुष्यमें इन्द्र उत्तम बुद्धि करता है ।

२ वाजसातौ समर्यः चिकेत- युद्धमें उपयोगी वीरको जानता है ।

३ तवसे इन्द्राय अतव्यान् महि दीध्ये- शक्तिमान् इन्द्रके लिये निर्बल मैं वही स्तुति करता हूँ इससे शक्ति मुझे प्राप्त होगी ।

[२५५] हे (वृषन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (नः अर्कैः धियसानः) हमारे स्तोत्रोंसे स्तुति सुननेपर (हरीणां योक्त्रं अश्रेः) घोडोंके लगाम हाथमें लेता है । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (इत्था) इस प्रकार (याः जोषं वक्षः) इन लगामोंको तू प्रीतिपूर्वक हाथमें ले और (अर्यः जनान् अभि प्रसक्षि) शत्रुके वीरोंको नष्ट कर ॥२॥

१ इत्था जोषं वक्षः अर्य जनान् अभि प्रसक्षि- इस तरह घोडोंके लगाम पकड और शत्रुके वीरोंको मार।

२ अर्यः- (अरि) शत्रुके

[२५६] हे (ऋष्व इन्द्र) महान् इन्द्र ! (यत् अस्मत् अयुक्तासः असन्) जो हमसे अलग हैं, (अ-ब्रहता) ज्ञानसे रहित होनेके कारण (ते) वे मनुष्य (ते न) तेरे भक्त नहीं हैं । हे (वज्रहस्त देव) वज्रको हाथमें धारण करनेवाले, तेजस्वी तथा (सु-अश्वः) उत्तम घोडोंसे युक्त इन्द्र ! (तं रथं अधि तिष्ठ) उस रथ पर बैठ और (रश्मिं आ यमसे) लगामको नियंत्रित कर ॥३॥

१ यत् अस्मत् अयुक्ता असन्, ते अब्रह्मता, ते न- जो हमसे पृथक् हुए हैं वे अपने अज्ञानके कारण तेरे भक्त नहीं रहे हैं ।

२ अ-ब्रह्मता -अज्ञान

भावार्थ- इन्द्र मनुष्यके लिए उत्तम बुद्धि देता है । यह युद्धमें वीर मनुष्योंको पहचानता भी है । निर्बल मैं उस महान् बलशाली इन्द्रकी स्तुति करता हूँ, ताकि वह मनुष्योंका बल बढाये ॥१॥

हे इन्द्र ! तू हमारी स्तुतियोंसे प्रेरित होकर घोडेके लगामोंको हाथमें ले और उन लगामोंको प्रेमपूर्वक हाथोंसे पकड कर तू शत्रुके वीरोंको नष्ट कर ॥२॥

जो सदा ज्ञानियोंसे अलग रहते हैं वे ज्ञानसे रहित ही होते हैं, अतः वे मनुष्य तेरे भक्त नहीं हो सकते । हे वज्रधारी तेजस्वी इन्द्र ! तू रथ पर बैठ और लगामको पकड ॥३॥

२५७ पुरू यत् त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
तत॒क्षे सूर्या॑य चि॒दोक॑सि॒ स्वे वृषा॑ स॒मत्सु॑ दा॒सस्य॒ नाम॑ चि॒त् ॥ ४ ॥
२५८ व॒यं ते त इन्द्र॒ ये च॒ नरः॒ शर्धो॑ जज्ञा॒ना या॒ताश्च॒ रथाः॑ ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा॒ भगो॒ न हव्यः॑ प्रभृ॒थेषु॒ चारुः॑ ॥ ५ ॥
२५९ पपृ॒क्षेण्य॑मिन्द्र॒ त्वे ह्योजो॑ नृ॒म्णानि॑ च नृ॒तमा॑नो॒ अम॑र्तः ।
स न॒ एनीं॑ वसवानो र॒यिं दाः॒ प्रार्यः॑ स्तुषे तुविम॒घस्य॒ दान॑म् ॥ ६ ॥

अर्थ- [२५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् ते) जो तेरे (पुरू उक्था सन्ति) बहुतसे वर्णनके सूक्त हैं उनमें ऐसा है कि (युध्यन्) युद्ध करते हुए तूने (उर्वरासु) उपजाऊ भूमियोंमें (गवे) पानी बहनेके लिए (चकर्थ) मार्ग किया है (वृषा) बलवान् इन्द्र ! तूने (सूर्याय) सूर्यको (स्वे ओकसि) अपने स्थान पर स्थापित किया, तथा (समत्सु) युद्धोंमें (दासस्य नाम चित् ततक्षे) दासके नामको भी नष्ट कर दिया ॥४॥

१ हे इन्द्र ! ते पुरु उक्था सन्ति- हे इन्द्र ! तेरे बहुत स्तोत्र गाये जाते हैं ।

२ उर्वरासु गवे चकर्थ- उपजाऊ भूमिमें तूने गौओंके लिये घास और पानी बनाया है ।

३ समत्सु दासस्य नाम चित् ततक्षे- युद्धोंमें दासका नाम भी हटा दिया । दुष्टोंको नष्ट किया ।

[२५८] हे इन्द्र ! (ये नरः शर्धः जज्ञानाः) जो नेता, बलको बढानेवाले तथा (रथाः याताः च) रथोंसे जानेवाले हैं (ते वयं) वे हम (ते च) तेरे ही हैं । हे (अहिशुष्म) अहिको मारने योग्य बलसे युक्त इन्द्र! (प्रभृतेषु चारूः हव्यः) युद्धोंमें अच्छी तरह सहाय्यार्थ बुलाने योग्त तू (सत्वा) बलसे युक्त होकर (भगः न) धनके समान (अस्मान् आ जगम्यात्) हमारी तरफ आ ॥५॥

१ ये नरः शर्धः जज्ञाना : - जो वीर बल बढाते हैं ।

२ प्रभृतेषु चारुः हव्य : - युद्धोंमें अच्छी तरह सहायार्थ बुलाने योग्य वह वीर इन्द्र है ।

३ सत्वा अस्मान् आ जगम्यात्- बलवान् वीर हमारे पास आ जाये ।

[२५९] हे इन्द्र ! (पपृक्षेण्यं ओजः) पूज्य ओज और (नृम्णानि) अन्य बल (त्वे) तुझमें ही है । (नृतमानः अमर्तः) उत्तम नेता, अमर, तथा (वसवानः) अपनी शक्तिसे रहनेवाला (सः) वह तू (नः) हमें (एनींरयिं दाः) श्वेतरंगका धन दे । मैं (तुविमघस्य अर्यः दानं स्तुषे) बहुत धनवाले तथा श्रेष्ठ इन्द्रके दानकी प्रशंसा करता हूँ ॥६॥

१ एनी- श्वेत, काले रंगका एक हिरण ।

२ त्वे पपृक्षेण्यं ओजः नृम्णानि- तेरे अन्दर वर्णनीय सामर्थ्य और अनेक प्रकारके बल हैं ।

३ नृतमानः अमर्तः वसवानः नः एनीं रयिं दाः - उत्तम वीर और अमरतासे रहनेवाला तू हमें उत्तम धन दे।

४ तुविद्युम्न अर्यः दानं स्तुषे- विशेष तेजस्वी श्रेष्ठ वीरके दानकी प्रशंसा करो ।

भावार्थ- हे इन्द्र ! तेरा वर्णन करनेवाले जो अनेक सूक्त हैं, उनमें यही वर्णन है कि तूने उपजाऊ भूमियोंमें पानीके बहनेके लिए मार्ग बनाया । तूने ही सूर्यको अपने स्थान पर स्थिर किया, और युद्धमें सदा असुरका नाम भी रहने नहीं दिया ॥४॥

हे इन्द्र ! जो नेता बलको बढाते हैं, तथा रथोंसे जाते हैं, वे सभी तेरे ही हैं । युद्धमें तुझे सब अच्छी तरह बुलाते हैं । अतः तू धनसे युक्त होकर हमारी तरफ आ ॥५॥

इस इन्द्रमें ओज और तेज है । वह अपनी ही शक्तिसे पराक्रम प्रकट करता है, इसीलिए वह उत्तम नेता और अमर है ॥६॥

२६० एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७॥

२६१ उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८॥

२६२ उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥९॥

२६३ उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१०॥

अर्थ- [२६०] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! (एवा) इस प्रकार (गृणतः कारून्) स्तुति करनेवाले तथा यज्ञोंको करनेवाले (नः) हमारी (ऊतिभिः अव पाहि) संरक्षणके साधनोंसे रक्षा कर, (उत) और (वाजसातौ) यज्ञमें (त्वचं ददतः) कान्तिको देनेवाले (सुसुतस्य चारोः मध्वः) उत्तम तरहसे निचोडे गए, सुन्दर सोमरससे (पिप्रीहि) प्रसन्न हो ॥७॥

[२६१] (हिरणिनः) बहुतसा सोना पासमें रखनेवाले (गैरिक्षितस्य) गिरिक्षित गोत्रमें उत्पन्न (पौरुकुत्स्यस्य सूरेः) पुरुकुत्सके विद्वान् पुत्र (त्रसदस्योः रराणाः) त्रसदस्युके द्वारा दिए गए (दश श्येतासः) दस सफेद रंगके घोडे (मा वहन्तु) मुझे ले जावें, मैं भी (क्रतुभिः सश्चे) अपने पराक्रमोंके साथ रहता हूँ ॥८॥

[२६२] (उत) उसी प्रकार (मारुताश्वस्य विदथस्य रातौ) मरुताश्वके पुत्र विदथके यज्ञमें (मा) मुझे (त्ये शोणाः क्रत्वामघासः) वे लाल तथा पराक्रमके कारण पूजे जानेवाले घोडे मिले । (च्यवतानः) च्यवनने (सहस्रा ददानः) हजारों तरहके धन देते हुए (अर्यः मे) श्रेष्ठतासे युक्त मेरे (वपुषे) शरीरके लिए (आनूकं अर्चत्) अलंकार भी दिए ॥९॥

[२६३] (उत) और (लक्ष्मणयस्य धवन्यस्य) लक्ष्मणके पुत्र ध्वनके (त्ये सुरुचः यतानाः) वे सुन्दर और पराक्रमी घोडे भी (मा जुष्टाः) मुझे प्राप्त हुए । (गावः व्रजं न) जिस प्रकार गायें बाडेमें जाती हैं उसी प्रकार (प्रयताः मह्ना रायः) दिए गए महत्त्वसे युक्त धन (संवरणस्य ऋषेः अपि ग्मन्) संरक्षण ऋषिकी तरफ गाये हैं ॥१०॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले तथा यज्ञोंको करनेवाले हमारी तू रक्षा कर तथा यज्ञमें हमारे द्वारा दिए गए तथा तेजदायक सुन्दर सोमरसको पीकर प्रसन्न हो ॥७॥

अत्यन्त धनवान् तथा वाणीके द्वारा स्तुत्य विद्वान् सज्जनके साथ मेरी मैत्री हो और मैं भी अपने पराक्रमसे युक्त होकर रहूँ ॥८॥

मरुत्के समान वेगवान् घोडे जिसके पास हैं, ऐसे युद्धमें कुशल वीरके पाससे मुझे हर तरहके उत्तम साधन मिलें । दानी पुरुष मुझे हजारों तरहका धन प्रदान करते हुए मुझे अलंकार भी देता है ॥९॥

उत्तम चिन्होंसे युक्त तथा गर्जना करनेवाले वीरके सुन्दर और पराक्रमी घोडे मुझे प्राप्त हों । महत्वपूर्ण धन सबके द्वारा पूज्य ज्ञानीके पास ही जाते हैं ॥१०॥

[३४]

[ऋषिः- प्राजापत्यः संवरणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

२६४ अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥

२६५ आ यः सोमेन जठरमपिप्रताऽमन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २ ॥

२६६ यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३ ॥

---

[३४]

अर्थ- [२६४] (**अ-जात-शत्रुं दस्मं**) जिसका शत्रु उत्पन्न नहीं हुआ है, ऐसे सुन्दर इन्द्रकी तरफ (**अ-जरा स्वर्वति अमिता स्वधा**) क्षीण न होनेवाला, स्वर्गीय, अपरिमित अन्न जाता है, । उस (**ब्रह्मवाहसे**) ज्ञानी, (**पुरुस्तुताय**) और बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्रके लिए (**सुनोतन**) सोम निचोडो, (**पचत्**) पुरोडाश पकाओ, तथा (**प्रतरं दधातन**) उत्तम हवि अर्पण करो ॥१॥

[२६५] (**यत्**) जब (**यः**) जिस इन्द्रने (**सोमेन जठरं अपिप्रत**) सोमसे पेट भर लिया, और (**मध्वः अन्धसः मघवा अमन्दत**) जब सोमरूपी अन्नसे ऐश्वर्यवान् इन्द्र आनन्दित हुआ, तब (**उशना**) युद्धकी इच्छा करने वाले (**महावधः**) तथा शत्रुओंका बुरी तरह वध करनेवाले इन्द्रने (**मृगाय हन्तवे**) मृगनामक राक्षसको मारनेके लिए (**ईं सहस्रभृष्टिं वधं**) इस हजारों धारवाले वज्रको (**यमत्**) हाथमें लिया ॥२॥

[२६६] (**यः अस्मै घ्रंसे**) जो इस इन्द्रके लिए दिनमें (**उत वा यः**) और जो (**ऊधनि**) रातमें (**सोमं सुनोति**) सोम निचोडता है, वह (**द्युमान् भवति**) वह तेजस्वी होता है, पर (**यः कवासखः**) जो बुरे आदमियोंका मित्र है, उस (**ततनुष्टिं**) जो अपना दिखावा करना चाहता है अर्थात् जो अभिमानी तथा (**तनूशुभ्रं**) जो अपने शरीरको अलंकारोंसे सजाना चाहता है अर्थात् लोभी वे स्वार्थी मनुष्यका (**मघवा शक्रः**) ऐश्वर्यवान् और सामर्थ्यवान् इन्द्र (**अप ऊहति**) तिरस्कार करता है ॥३॥

१ **यः अस्मै सोमं सुनोति द्युमान् भवति**- जो इस इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, वह तेजस्वी होता है

२ **यः कवासखः ततनुष्टिं तनूशुभ्रं अप ऊहति**- पर जो दुष्टोंका मित्र है, उस ढोंगी और स्वार्थीका इन्द्र तिरस्कार करता है ।

भावार्थ- इस इन्द्रका कोई भी शत्रु आज तक पैदा नहीं हुआ, इसलिए इसका प्रतिद्वन्द्वी भी कोई नहीं है । जो भी मनुष्य क्षीण न होनेवाले, स्वर्गीय और अपरिमित अन्न देता है, वह उस इन्द्रके पास ही पहुंचता है । ऐसे ज्ञानी और बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्रके लिए सोम निचोडो ॥१॥

सोमरसको भरपूर पीकर उससे आनन्दित होकर युद्धकी इच्छा करनेवाले इन्द्रने शत्रुओंका संहार करनेवाले तथा राक्षसोंका वध करनेवाले वज्रको हाथमें धारण किया ॥२॥

जो इस इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, वह तेजस्वी होता है, पर जो दुष्टोंका मित्र है, दिखावा करता है अपने शरीरको सजानेमें ही व्यस्त रहता है, जो शरीरको ही सब कुछ समझता है, इन्द्र उस मनुष्यका तिरस्कार करता है । उसकी कभी सहायता नहीं करता ॥३॥

२६७ यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥ ४ ॥
२६८ न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनि--रा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥
२६९ वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजो--ऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥ ६ ॥

अर्थ- [२६७] (शक्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्र (यस्य पितरं) जिसके पिताको (यस्य मातरं) जिसकी माताको अथवा (यस्य भ्रातरं) जिसके भाईको (अवधीत्) मार देता है, (अतः न ईषते) उस दुष्टकी तरफ इन्द्र देखता भी नहीं है । (यतंकरः वस्वः आकरः) प्रयत्नशील तथा धनका भण्डार यह इन्द्र (अस्य प्रयता न वेति) इस दुष्ट मनुष्यके द्वारा दी गई हवियोंको स्वीकार भी नहीं करता, वह इन्द्र (किल्बिषात् ईषते) पापसे दूर भागता है ॥४॥

१ ईषते- (ईष्) दूर भागना, बचना, सरकना, इकट्ठा करना, देखना, देना, आक्रमण करना, घात करना

[२६८] (पंचभिः दशभिः) पांच अथवा दश शत्रुओंके साथ [युद्ध शुरु होने पर] भी इन्द्र (आरभं न वष्टि) सहायताकी इच्छा नहीं करता । यह (पुष्यता चन असुन्वता) धनवान् होनेपर भी सोमयज्ञ न करनेवालेके साथ (न सचते) मित्रता नहीं करता, इसके विपरीत (धुनिः) शत्रुओंको कंपानेवाला यह इन्द्र (अमुया जिनाति) यज्ञ न करनेवालेको जीतता है और उसे (हन्ति) मारता है, पर (देव-युं गोमति व्रजे आ भजति) देवके भक्तको गायोंसे युक्त बाडेसे संयुक्त करता है ॥५॥

१ पंचभिः दशभिः आरभं न वष्टि- पांच दश शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके लिए भी वह दूसरेकी सहायता नहीं चाहता । स्वयं अकेला ही उनसे युद्ध करता है ।

[२६९] (समृतौ वित्वक्षणः) युद्धमें बहुत पराक्रमी, (चक्रं आसजः) रथ पर चक्र ठीक तरह बिठलानेवाला (असुन्वतः विषुणः) सोमयाग न करनेवालेका तिरस्कार करनेवाला, (सुन्वतः वृधः) सोमयाग करनेवालेको बढनेवाला (विश्वस्य दमिता) विश्वका दमन करनेवाला (विभीषणः) शत्रुओंके लिए भयंकर तथा (आर्यः इन्द्रः) श्रेष्ठ इन्द्र (दासं यथावशं नयति) शत्रुओंको अपने वशमें करता है ॥६॥

१ समृतौ वित्वक्षणः- युद्धमें शत्रुका संहार करनेवाला ।
२ चक्रं आसजः- रथके चक्रको ठीक तरह बिठलानेवाला ।
३ विश्वस्य दमिता- सब शत्रुओंका दमन करनेवाला ।
४ भीषणः आर्यः दासं यथावशं नयति- अति पराक्रमी आर्यवीर शत्रुको अपने वशमें करता है ।

भावार्थ- वह इन्द्र जिस मनुष्यको भी दुष्ट समझता है, उसके पिता, माता, भाई आदि सभी सम्बन्धियोंको मार देता है और ऐसे आदमी पर वह कभी कृपादृष्टि नहीं करता । सदा प्रयत्न करनेवाला तथा धनका भण्डार यह इन्द्र ऐसे दुष्ट मनुष्यके द्वारा दी गई हवियोंको कभी स्वीकार नहीं करता । वह इन्द्र स्वयं भी पापसे दूर भागता है और दूसरोंको दण्डादिके द्वारा पापमार्गसे दूर भगाता है ॥४॥

यह इन्द्र इतना शक्तिशाली है कि दसबीस शत्रुओंके साथ लडते हुए भी यह किसी दूसरेसे सहायताकी याचना तो नहीं करता । इसके पास धन भरा हुआ है तो भी यह किसी नास्तिकके साथ मित्रता नहीं करता । इसके विपरीत शत्रुओं को कंपानेवाला इन्द्र नास्तिक मनुष्योंको जीतता है और उसे मार भी देता है, पर उसका जो भक्त है, उसे वह इन्द्र उत्तम गायोंसे युक्त करता है ॥५॥

यह इन्द्र युद्धमें बहुत पराक्रम प्रकट करनेवाला, रथकी विद्यामें निष्णात, नास्तिकको मारनेवाला, आस्तिककी रक्षा करनेवाला, सारे विश्व पर सत्ता चलानेवाला, शत्रुओंके लिए भयंकर तथा शत्रुओंको वशमें करनेवाला है ॥६॥

२७० समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७ ॥
२७१ यं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसा—ववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपनी—न्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥
२७२ सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत् त्वेषमस्तु ॥ ९ ॥

अर्थ- [२७०] वह इन्द्र (**पणेः भोजनं**) कंजूस बनियेके अन्नको (**मुषे**) लूटनेके लिए आगे (**सं अजति**) जाता है, तथा (**दाशुषे सू-नरं वसु भजति**) दाताके लिए उत्तम उत्तम धन देता है। (**यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्**) जो इसके बलको क्रोधित करता है, उन (**विश्वे पुरु जनः**) सारे मनुष्योंको यह (**दुर्गे चन आ ध्रियते**) किलेमें बन्द कर देता है ॥७॥

१ **दाशुषे सूनरं वसु भजति-** दाताको उत्तम धन देता है ।
२ **यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्, विश्वे पुरुजनः दुर्गे आध्रियते-** जो इसके सामर्थ्यको क्रोधित करता है, उन सब शत्रुजनोंको किलेमें कैद करके रखता है ।
३ **पणेः भोजनं मुषे अजति-** दुष्टोंके धन लूटनेके लिए यह वीर आगे बढता है ।
४ **पणिः-** व्यापारी, जो व्यापारमें अधिक लाभ लेता है और जो दान नहीं देता । अति कंजूस व्यापारी।

[२७१] (**यत्**) जब (**मघवा इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (**सु-धनौ, विश्वशर्धसौ जनौ**) उत्तम धनवाले अत्यन्त बलशाली मनुष्योंको (**अवेत्**) जानता है तब (**शुभ्रिषु गोषु**) सफेद गायोंके दान देनेके लिए उनमेंसे (**अन्यं युजं अकृत**) एक यज्ञ करनेवाले की ही सहायता करता है। (**प्रवेपनिः**) शत्रुओंको कंपानेवाला तथा (**सत्वभिः धुनिः**) अपने बलोंसे शत्रुको मारनेवाला यह इन्द्र (**ई गव्यं सृजते**) इस यज्ञकर्ताके लिए गायोंके समूहका दान देता है ॥८॥

१ **यत् इन्द्रः सुधनौ विश्वशर्धसौ जनौ अवेत्, अन्यं युजं अकृत्-** जब इन्द्र धनी बली ऐसे दो मानवोंको जानता है तब वह उनमेंसे योग्यको ही अपना मित्र करता है ।
२ **ई गव्यं सृजते-** उसको गायें देता है ।

[२७२] हे (**अग्ने**) तेजस्वी इन्द्र ! (**अर्यः**) श्रेष्ठ मैं (**उपमां केतुं**) अनुपम, विख्यात और (**सहस्रसां**) हजारों दान देनेवाले (**आग्निवेशिं शत्रिं**) अग्निवेशी के पुत्र शत्रिकी मैं (**गृणीषे**) स्तुति करता हूँ। (**संयतः आपः**) अच्छी तरह बहनेवाले जलप्रवाह (**तस्मै पीपयन्तः**) उसे तृप्त करते हैं। (**तस्मिन् क्षत्रं अभवत्, त्वेषं अस्तु**) उसमें क्षात्रबल प्रकट हुआ और उसमें तेज भी हुआ है ।

१ **संयतः आपः-** अच्छी प्रकार तैयार किए गए नहरोंसे चलनेवाले जलप्रवाह ।
२ **तस्मिन् क्षत्रं अभवत्, त्वेषं अस्तु-** उसमें क्षात्र तेज था, और उसमें बल हो । जिसमें क्षात्र तेज और बल होता है उसकी असाधारण योग्यता होती है ॥२॥

भावार्थ- इन्द्र कंजूसों पर कभी भी कृपा नहीं करता, अपितु उनके अन्नादिको लूटनेके कार्यमें वह सदा आगे ही रहता है। पर जो दानशील है, उसके लिए वह उत्तम उत्तम धन देता है। जो इस इन्द्रको क्रोधित करता है, वह कभी भी इस इन्द्रसे बचकर नहीं निकल सकता ॥७॥

इन्द्र दुष्ट और सज्जन दोनों तरहके मनुष्योंको जानता है, पर उनमें वह सज्जन मनुष्यकी ही सहायता करता है और दूसरेको मार देता है ॥८॥

जो सदा अग्निकी उपासना करनेवाला यज्ञशील मनुष्य है ऐसे अनुपम और विख्यात मनुष्यकी इन्द्र सदा सहायता करता है। ऐसे सज्जन मनुष्यकी तरफ जलप्रवाह बहते हैं और उसमें क्षात्रशक्ति, बल और तेज बढता है ॥९॥

[३५]

[ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप्, ८ पङ्क्तिः ।]

२७३ यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥

२७४ यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद् वा पञ्च क्षितीनामवस्तत् सु न आ भर ॥ २ ॥

२७५ आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ३ ॥

२७६ वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४ ॥

---

[३५]

अर्थ- [२७३] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**यः ते साधिष्ठः क्रतुः**) जो तेरा अत्यन्त पराक्रम बलयुक्त है, उस (**चर्षणीसहं**) शत्रुओंको हरानेवाले, (**सस्निं**) शुद्ध और (**वाजेषु दुस्तरं**) संग्राममें कठिनतासे तरने योग्य पराक्रमको (**अवसे**) रक्षाके लिए (**अस्मभ्यं आ भर**) हमें दे ॥१॥

१ **चर्षणीसहं, सस्नि, वाजेषु दुस्तरं अस्मभ्यं अवसे आभर**- शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले, उत्तम तथा युद्धोंमें शत्रुको दुस्तर होनेवाले सामर्थ्यको हमारेमें भरपूर रखो ।

[२७४] हे इन्द्र ! (**ते यत् चतस्रः**) तेरे जो चार प्रकारके (**अवः**) रक्षाके साधन हैं, अथवा हे शूर! (**यत् तिस्रः**) जो तीन प्रकारके रक्षणके साधन हैं, (**वा**) अथवा (**यत् पंच क्षितीनां अवः**) जो पांच जनोंका हित करनेवाले रक्षाके साधन है, (**तत् नः सु आ भर**) उन्हें तू हमें अच्छी तरह दे ॥२॥

[२७५] हे इन्द्र ! (**वृषन्तमस्य ते**) अत्यन्त बलवान् तेरे (**अवः**) रक्षणकी हम (**आ हूमहे**) कामना करते हैं (**वृषजूतिः तुर्वणिः**) वेगसे जानेवाला तथा शत्रुओंका हिंसक तू (**आभूभिः**) सहायकोंके साथ (**जज्ञिषे**) प्रकट होता है ॥३॥

[२७६] हे इन्द्र ! (**राधसे वृषा असि**) तू समृद्धि देनेके लिए समर्थ है, इसलिए (**जज्ञिषे**) तू प्रकट होता है, (**ते शवः वृष्णिः**) तेरा बल कामनाओंको प्रदान करनेवाला है । (**ते मनः धृषत्**) तेरा मन धर्षणशक्तिसे युक्त है, तथा (**स्व-क्षत्रं**) तेरा बल अधिकारमें रहता है, हे इन्द्र ! तेरा (**पौंस्यं सत्राहं**) बल शत्रुओंको मारनेवाला है ॥४॥

भावार्थ- इस इन्द्रके अन्दर जो बल है, वह बहुत पराक्रमसे युक्त, शत्रुओंको हरानेवाला, शुद्ध पवित्र है । संग्राममें उसकी शक्तिका पार पाना बडा कठिन है । उस बलको हम अपनी रक्षाके लिए प्राप्त करें ॥१॥

हे इन्द्र ! शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक रूप रक्षाके चार तरहके साधन हैं, उन्हें हमें तू प्रदान कर पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीन स्थानोंसे तू हमारी रक्षा कर । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांच जनोंका हित करनेवाले साधनोंसे हमें युक्त कर ॥२॥

हे इन्द्र ! तू अत्यन्त ही बलवान् है, इसलिए तेरी रक्षाकी हम कामना करते हैं । वेगसे जानेवाला तथा शत्रुओंका हिंसक तू सहायकोंके साथ हमारे पास आ ॥३॥

हे इन्द्र ! तू समृद्धिको देनेमें समर्थ है, इसलिए तू प्रकट होता है । तेरा बल कामनाओंको प्रदान करनेवाला है, तेरा मन शत्रुओंको हरानेवाली शक्तिसे युक्त है । तू अपनी शक्तियोंको अपने अधिकारमें रखता है ॥४॥

२७७ त्वं तमिन्द्र मर्त्यं — ममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥
२७८ त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥
२७९ अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥
२८० अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ ॥

[३६]

[ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ३ जगती ।]

२८१ स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद् दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाण — श्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १ ॥

अर्थ- [२७७] हे (**अद्रिवः शतक्रतो इन्द्र**) वज्र धारण करनेवाले तथा सैंकडों उत्तम काम करनेवाले इन्द्र ! (**त्वं**) तू (**तं अभित्रयन्तं मर्त्यं**) उस शत्रु मनुष्यको मारनेके लिए (**सर्वरथा नि याहि**) अपने सब जगह चलनेवाले रथसे जा ॥५॥

[२७८] हे (**वृत्रहन्तम**) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (**पूर्वीषु पूर्व्यं उग्रं**) प्राचीनोंमें भी प्राचीन तथा वीर (**त्वां इत्**) तुझे (**वृक्तबर्हिषः जनासः**) आसन बिछानेवाले मनुष्य (**वाजसातये हवन्ते**) अन्नकी प्राप्ति होनेवाले यज्ञमें बुलाते हैं ॥६॥

[२७९] हे इन्द्र ! (**दुस्तरं**) कठिनतासे तरने योग्य, (**आजिषु पुरः यावानं**) युद्धोंमें आगे जानेवाले (**सयावानं**) तथा अनुचरों सहित जानेवाले (**अस्माकं रथं**) हमारे रथकी (**अव**) रक्षा कर ॥७॥

[२८०] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**अस्माकं एहि**) हमारी तरफ आ और (**पुरन्ध्या नः रथं अव**) बुद्धिसे हमारे रथकी रक्षा कर । हे (**शविष्ठ**) बलवान् इन्द्र ! (**वार्यं श्रवः**) ग्रहण करने योग्य अन्नको (**वयं**) हम (**दिवि दधीमहि**) यज्ञमें स्थापित करते हैं, तथा (**दिवि स्तोमं मनामहे**) यज्ञमें हम स्तोत्र बोलते हैं ॥८॥

[३६]

[२८१] (**यः वसूनां दातुं चिकेतत्**) जो धनोंको देना जानता है, ऐसा (**इन्द्रः**) इन्द्र (**आ गमत्**) हमारे पास आवे । वह (**रयीणां दामनः**) धनोंका देनेवाला इन्द्र (**तृषाणः**) प्यासा (**धन्वचरः वंसगः न**) शिकारी जैसा पशुओंको चाहता है, उसी प्रकार (**चकमानः**) सोमकी इच्छा करता हुआ (**दुग्धं अंशुं पिबतु**) दूधसे मिले हुए सोमको पीवे ॥१॥

भावार्थ- हे वज्रधारी तथा सैंकडों तरहके उत्तम काम करनेवाले इन्द्र ! तू शत्रुओंको मारनेके लिए रथ पर बैठकर जा ॥५॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुझे प्राचीनोंमें भी प्राचीन ज्ञानी अन्न और बलकी प्राप्तिकी लिए बुलाते हैं ॥६॥

हे इन्द्र ! हमारा रथ हमेशा युद्धोंमें आगे जाता है । यह हमारा रथ यद्यपि दुस्तर है, तथापि तू हमारे इस रथकी रक्षा कर ॥७॥

हे इन्द्र ! तू हमारी तरफ आ, और बुद्धिपूर्वक हमारे रथकी रक्षा कर । हम तेरे लिए यज्ञमें उत्तम अन्नकी ही आहुति देते हैं और स्तुति करते हैं ॥८॥

२८२ आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत् सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥ २ ॥
२८३ चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन् पुरूवसुः ॥ ३ ॥
२८४ एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रे—यर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन् यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४ ॥
२८५ वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौ—र्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन् भरे धाः ॥ ५ ॥

अर्थ- [२८२] हे (**हरि-वः शूर**) घोडोंसे युक्त शूरवीर इन्द्र ! (**पर्वतस्य पृष्ठे सोमः न**) जिस तरह सोम पर्वतकी पीठपर रहता है, उसी प्रकार (**ते**) तेरे (**शिप्रे हनू**) सुन्दर होठपर सोम (**आरुहत्**) चढे । हे (**पुरुहूत राजन्**) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले, तेजस्वी इन्द्र ! (**अर्वतः न**) जिस प्रकार घोडेको घास आदि देकर आनन्दित करते हैं, उसी प्रकार (**विश्वे**) हम सब (**गीर्भिः त्वा हिन्वन्**) स्तुतियोंसे तुझे आनन्दित करते हुए (**मदेम**) स्वयं भी आनन्दित हों ॥२॥

[२८३] हे (**सदावृधः पुरूवसुः मघवन्**) हमेशा बढानेवाले, बहुत धनवान् तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**वृत्तं चक्रं न**) जिस प्रकार गोल पहिया चलते हुए कांपता है, उसी प्रकार (**मे मनः**) मेरा मन (**अमतेः भिया वेपते**) बुद्धिहीनताके भयसे कांपता है । इसीलिए हे (**अद्रिवः**) शस्त्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (**जरिता**) स्तुति करनेवाला मैं (**रथात् अधि त्वा**) रथ पर बैठनेवाले तेरी (**कुवित् स्तोषत्**) बहुत बार स्तुति करता हूँ ॥३॥

१ **मे मनः अमतेः भिया वेपते**- मेरा मन निर्बुद्धिताके भयसे कांपता है ।

[२८४] (**ग्रावा इव**) जैसे सोमपीसनेका पत्थर रस निकालता है, उसी तरह हे इन्द्र ! (**एष जरिता**) वह स्तोता (**ते वाचं इयर्ति**) तेरी स्तुति करता है । हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (**बृहत् आशुषाणः**) बहुत धनको पासमें रखनेवाला तू (**सव्येन दक्षिणित् रायः यंसि**) बांये और दायें हाथोंसे धन देता है, हे (**हरिवः**) घोडोंसे युक्त इन्द्र ! (**मा वि वेनः**) तू हमें निराश न कर ॥४॥

[२८५] हे इन्द्र ! (**वृषा द्यौः**) बलवान् द्युलोक (**वृषणं त्वा**) बलवान् तुझे (**वर्धतु**) बढावे । (**वृषा**) बलवान् तू (**वृषभ्यां हरिभ्यां**) बलवान् घोडेके द्वारा (**वहसे**) ले जाया जाता है । हे (**सु-शिप्र, वृषक्रतो वज्रिन्**) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले, पराक्रम करनेवाले तथा वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (**वृषा वृषरथः सः**) बलवान् और बलवान् रथवाला वह तू (**नः भरे धाः**) हमें संग्राममें आधार दे, सहायता कर ॥५॥

भावार्थ- यह इन्द्र अपने भक्तोंको धन देना जानता है । वह प्यासा सोम पीनेकी इच्छा करता हुआ दूध मिश्रित सोमको पीवे ॥१॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार सोम पर्वतकी पीठपर रहता है, उसी तरह सोमरसकी पीठपर तेरे होठ रहें अर्थात् तू सोम पी । हम तुझे अपनी स्तुतियोंसे आनन्दित करते हुए स्वयं भी आनन्दित हों ॥२॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार रथका पहिया चलते हुए कांपता है, उसी तरह निर्बुद्धि होनेके कारण मेरा मन बहुत कांपता है । इसीलिए मैं तेरी स्तुति करता हूँ । इन्द्रकी उपासना करनेसे मनकी शक्ति बढती है और वह दृढ होता है ॥३॥

हे इन्द्र ! यह स्तोता अपने मुखसे स्तुतियोंको प्रकट करता है । तू दोनों रथोंसे धन देनेके लिए प्रसिद्ध है, इसलिए तू हमें भी खूब धन दे और हमें निराश मत कर ॥४॥

हे इन्द्र ! ये बलवान् द्युलोक तुझे बढावे । तथा तू हमें संग्राममें सहारा दे ॥५॥

२८६ यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान् त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥ ६ ॥

[३७]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८७ सं भानुना यतते सूर्यस्या ऽऽजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान् य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥

२८८ समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णबर्हि र्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्य यदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २ ॥

२८९ वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद् रथ आ च घोषात् पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३ ॥

अर्थ- [२८६] (**यः वाजिनीवान्**) जिस बलवान् श्रुतरथने (**सचमानौ रोहितौ वाजिनौ**) साथ साथ चलनेवाले दो लाल घोडे (**त्रिभिः शतैः**) तथा तीन सौ गायें (**अदिष्ट**) मुझे दी । हे मरुतो ! (**अस्मै यूने श्रुतरथाय**) ऐसे इस तरुण श्रुतरथको (**क्षितयः**) प्रजायें (**दुवोया नमन्तां**) सेवाभावसे नमन करें ॥६॥

[३७]

[२८७] (**सु-अंचाः आजुह्वानः घृतपृष्ठः**) उत्तम गति करनेवाली तथा आहुतियोंसे प्रज्वलितकी गई अग्नि [की ज्वाला] (**सूर्यस्य भानुना सं यतते**) सूर्यके तेजसे स्पर्धा करती है । उस समय (**यः**) जो (**इन्द्राय सुनवाम इति आह**) इन्द्रके लिए सोम निचोडें ऐसा कहता है, (**तस्मै**) उसके लिए (**अमृध्रः उषसः वि उच्छात्**) सुखमय उषायें प्रकाशित हों ॥१॥

[२८८] (**समिद्धाग्निः स्तीर्णबर्हिः**) अग्नि प्रज्वलित करके, आसन बिछाकर यजमान (**वनवत्**) अग्निकी सेवा करता है, तथा (**युक्तग्रावा सुतसोमः**) सोम कूटनेके पत्थरोंसे युक्त होकर तथा सोम तैय्यार करके यह यजमान (**जराते**) स्तुति करता है । (**यस्य ग्रावाणः इषिरं वदन्ति**) जिसके पत्थर शीघ्र शीघ्र शब्द करते हैं, वह (**अध्वर्युः हविषा सिन्धुं अव अयत्**) अध्वर्यु हविसे युक्त होकर सिन्धुकी तरफ यज्ञ करनेके लिए जाता है ॥२॥

[२८९] (**यः ई इषिरां महिषीं वहाते**) जिसने इस सुन्दर रानीको स्वीकार किया, (**इयं वधूः**) वह यह वधू (**पतिं इच्छन्ती एति**) पतिकी कामना करती हुई इधर ही आती है । (**अस्य रथः आश्रवस्यात्**) इस इन्द्रके रथकी कीर्ति चारों ओर फैले (**च**) और (**घोषात्**) उसका शब्द घोषित होवे और वह (**पुरू सहस्रा परि वर्तयाते**) बहुत हजारों प्रकार धनोंको चारों ओरसे हमारे पास लावे ॥३॥

भावार्थ- प्रसिद्ध रथवाला जो राजा ज्ञानीको घोडे और गायें देता है, उसके सैनिक उसकी सहायता करते हैं और प्रजायें उसके सामने नम्र रहती हैं, उस राजाके अनुकूल प्रजायें रहती हैं ॥६॥

आहुतियोंसे प्रज्वलित की गई तथा उत्तम प्रकारसे गति करनेवाली अग्निकी ज्वाला सूर्यके तेजसे स्पर्धा करती है। सूर्योदयके समय एक तरफ सूर्य उदय होता है, तो दूसरी तरफ यज्ञाग्नि प्रज्वलित होती है । तब मानों दोनोंकी किरणें परस्पर स्पर्धा करती हैं । ऐसे सूर्योदयके समय जो यज्ञमें सोम निचोडता है, उसके लिए उषायें सुख प्रदान करती हैं ॥१॥

अग्नि प्रज्वलित करके यज्ञ करनेवाला अग्निकी सेवा करता है और उस यज्ञमें बैठकर सोम तैय्यार करता है ॥२॥

शक्तिशाली मनुष्यका यश चारों ओर फैलता है और उसका नाम भी चारों ओर सुनाई देता है । तब उसके नाम और यशको सुनकर अनेक युवतियां उसे अपना पति बनाना चाहती हैं, और जिसको वह अपनी रानी चुन लेता है, वह अपने को धन्य मानकर उसकी कामना करती हुई उसके साथ आनन्दसे रहती है ॥३॥

२९० न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्र—स्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं　क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन्　॥ ४ ॥
२९१ पुष्यात् क्षेमे अभि योगे भवा—त्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति　य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत्　॥ ५ ॥

[३८]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।]

२९२ उरोष्ट इन्द्र राधसो　विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे　द्युम्ना सुक्षत्र मंहय　॥ १ ॥

अर्थ- [२९०] (यस्मिन्) जिसके राज्यमें (इन्द्रः) इन्द्र (गोसखायं तीव्रं सोमं पिबति) गौ-दूधसे मिश्रित तीखे सोमको पीता है (सः राजा न व्यथते) वह राजा कभी दुःखी नहीं होता, वह (स्तवनैः अजति) अपनी शक्तियोंसे सर्वत्र विचरता है, (वृत्रं हन्ति) अपने शत्रुओंको मारता है (सुभगः नाम पुष्यन्) अपने सौभाग्य और यशको पुष्ट करता हुआ (क्षितीः) प्रजाओंको (क्षेति) शान्तिमय निवास कराता है ॥४॥

१ स राजा न व्यथते- वह राजा दुःखी नहीं होता ।
२ सत्वनैः अजति- अपने बलोंके साथ घूमता है ।
३ वृत्रं हन्ति- शत्रुको मारता है ।
४ सुभगः नाम पुष्यन् क्षितीः क्षेति- अपने यशसे अपना नाम बढाता हुआ प्रजाका कल्याण करता है ।

[२९१] (यः इन्द्राय सुतसोमः ददाशत्) जो इन्द्रके लिए तैय्यार किया गया सोम देता है, वह (पुष्यात्) पुष्ट होता है, (क्षेमे योगे अभि भवाति) प्राप्त धनके रक्षणमें और अप्राप्त धनको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है, और (वृतौ) शुरु होनेपर (उभे सं जयाति) छोटे और बडे दोनों तरहके युद्धोंमें अच्छी तरह जय प्राप्त करता है, तथा वह (सूर्ये प्रियः भवाति) सूर्यके लिए प्रिय होता है और (अग्नौ प्रियः भवाति) अग्निके लिए प्रिय होता है ॥५॥

१ यः इन्द्राय सोमः ददाशत् पुष्यात्- जो इन्द्रके लिए सोम देता है, वह पुष्ट होता है ।
२ योगे क्षेमे अभि भवाति- वह मनुष्य अप्राप्त धनको प्राप्त करने और प्राप्त धनके रक्षण करनेमें समर्थ होता है।
३ सूर्ये अग्नौ प्रियः भवाति- वह सूर्य और अग्निके लिए प्रिय होता है ।

[३८]

[२९२] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडों शुभकर्म करनेवाले इन्द्र ! (उरोः ते) महाने तेरे (राधसः रातिः) धनके दान (विभ्वी) महान् हैं । (अध) इसलिए हे (विश्वचर्षणे सुक्षत्र) सबको देखनेवाले तथा उत्तम क्षात्र तेजवाले इन्द्र ! (नः द्युम्ना मंहय) हमें उत्तम तेजस्वी धन दे ॥१॥

भावार्थ- जिस राजाके राज्यमें इन्द्र सोम पीता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता है, वह शक्तिसे युक्त होकर सर्वत्र विचरता हैं, वह अपने शत्रुओंको मारता और अपने सौभाग्य और यशको बढाता हुआ सुखपूर्वक निवास करता है । उसी तरह जिस राजाका सेनापति राष्ट्रमें आनन्दसे रहता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता, उसकी शक्ति बहुत बढ जाती है इसलिए वह अपने शत्रुओंका संहार करता है । उस राजाका सौभाग्य और यश बढता है और वह सुखसे निवास करता है ॥४॥

जो इन्द्रके लिए तैय्यार किया गया सोम देता है, वह पुष्ट होता है, वह प्राप्त धनके रक्षण और अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें समर्थ होता है । वह सभी तरहके संग्रामोंमें विजयी होता है और वह सूर्य तथा अग्निके लिए प्रिय होता है ॥५॥

२९३ यदीमिन्द्र श्रवाय्य॒मिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥
२९४ शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥
२९५ उतो नो अस्य कस्य चिद् दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरा ऽस्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥
२९६ नू तं आभिरभिष्टिभि स्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥

[३९]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५ पंक्तिः ।]

२९७ यदिन्द्र चित्र मेहना ऽस्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

अर्थ- [२९३] हे (**हिरण्यवर्ण**) तेजस्वी वर्णवाले तथा (**शविष्ठ इन्द्र**) बलवान् इन्द्र ! तू (**यत् ई श्रवाय्यं इषं दधिषे**) जो यह सुप्रसिद्ध यशको धारण करता है, वह तेरा (**दुस्तरं दीर्घश्रुत्तमं**) कठिनतासे पार करने योग्य तथा बहुत प्रसिद्ध यश (**पप्रथे**) फैल रहा है ॥२॥

[२९४] हे (**अद्रिवः**) वज्रधारी इन्द्र ! (**ये ते**) जो तेरे (**मेहना केतसापः शुष्मासः**) उदार सर्वव्यापी और बलशाली देव हैं, (**उभौ देवौ**) वे और तू दोनों (**दिवः च ग्मः च**) द्युलोक और पृथिवी लोकके (**अभिष्टये**) उन्नतिके लिये (**राजथः**) शासन करते हो ॥३॥

[२९५] हे (**वृत्रहन्**) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (**तव कस्य चित् दक्षस्य**) अपने किसी भी बलकी सहायतासे (**अस्य**) इसके (**नृम्णं**) धनको (**नः अस्मभ्यं आभर**) हमें ही दे, क्योंकि तू (**अस्मभ्यं नृमणस्यसे**) हमें धनवान् करना चाहता है ॥४॥

[२९६] हे (**शतक्रतो इन्द्र**) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (**तव शर्मन्**) तेरे आश्रयमें रहते हुए हम (**आभिः अभिष्टिभिः**) तेरे इन संरक्षणोंसे (**सुगोपाः स्याम**) अच्छी तरहसे सुरक्षित हों, हे शूर ! (**सुगोपाः स्याम**) हम अच्छी तरह सुरक्षित हों ॥५॥

[३९]

[२९७] हे (**अद्रिवः, चित्र, विदद्-वसो इन्द्र**) शस्त्रधारी, विलक्षण सामर्थ्यवान्, तथा धनोंको प्राप्त करनेवाले इन्द्र! (**यत् मेहना त्वा दातं राधः अस्ति**) जो पूजनीय तथा तेरे द्वारा दिया जानेवाला धन है, (**तत्**) उस धनको (**नः**) हमें (**उभया हस्त्या आ भर**) दोनों हाथोंसे भरपूर दे ॥१॥

भावार्थ- हे अनेकों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तेरे दान बहुत बडे हैं । तू सर्वद्रष्टा है, उत्तम तेजवाला है, अतः हमें उत्तम तेजस्वी धन दे ॥१॥

बलशाली इन्द्रका यश बहुत ही प्रसिद्ध, कठिनतासे पार किए जाने योग्य और बहुत ही विस्तृत है ॥२॥

यह इन्द्र और इतर बलशाली देव मिलकर इस द्युलोक और पृथ्वीलोक पर शासन करते हैं ॥३॥

हे वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! अपने बलसे इस मनुष्यके धनको तू हमें प्रदान कर । हम जानते हैं कि तू हमें धनवान् करना चाहता है ॥४॥

हे इन्द्र ! तेरे आश्रयमें रहते हुए हम तेरे संरक्षणके साधनोंसे अच्छी तरह सुरक्षित हों । हम अच्छी तरह सुरक्षित रूपसे रहें ॥५॥

२९८ यन्मन्यसे वरेण्य—मिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वय—मकूपारस्य दावने ॥ २ ॥

२९९ यत् ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३ ॥

३०० मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४ ॥

३०१ अस्मा इत् काव्यं वचः उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ ॥

अर्थ- [२९८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जिस धनको तू (द्युक्षं वरेण्यं) तेजस्वी और ग्रहण करने योग्य (मन्यसे) मानता है, (तत् आ भर) उस धनको हमें दे । (ते वयं) तेरे हम (तस्य अकूपारस्य दावने) उस निस्सीम धनके दानमें (विद्याम) रहें ॥२॥

[२९९] हे (अद्रिवः) शस्त्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (यत् ते) जो तेरा (दित्सु प्रराध्यं) धन देनेकी इच्छावाला, स्तुत्य (श्रुतं बृहत् मनः अस्ति) प्रसिद्ध और उदार मन है, (तेन) उस मनसे (दृळ्हा चिद् वाजं) दृढसे दृढ शत्रुको तोड कर भी और अन्नको (सातये आ दर्षि) दान करनेके लिए हमें दे ॥३॥

[३००] (मघोनां मंहिष्ठं) धनवानोंमें अत्यन्त धनवान् (चर्षणीनां राजानं इन्द्रं) मनुष्योंके राजा इन्द्रकी (प्रशस्तये) प्रशंसाके लिए (गिरः) स्तोता (पूर्वीभिः जुजुषे) स्तुतियोंसे सेवा करते हैं ॥४॥

[३०१] (अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए ही (काव्यं वचः उक्थं शंस्यं) काव्य, स्तुतियां और स्तोत्र कहने योग्य हैं । (तस्मै ब्रह्मवाहसे) उसी स्तुतिको प्राप्त करानेवाले इन्द्रके यशको (अत्रयः गिरः वर्धन्ति) अत्रि ऋषिगण स्तुतियोंसे बढाते हैं (अत्रयः गिरः शुम्भन्ति) अत्रि ऋषि स्तुतियोंसे उसके यशको तेजस्वी करते हैं ॥५॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिया जानेवाला धन बहुत ही पूज्य है । उस धनको तू हमें दे और दोनों हाथोंसे दे ॥१॥

हे इन्द्र ! जिस धनको तू तेजस्वी और ग्रहण करने योग्य समझता है, वही धन तू हमें दे । हम भी तेरे उस अपार धनके आश्रयमें रहें ॥२॥

इन्द्रका मन बहुत ही उदार, स्तुत्य और अपने भक्तोंको सम्पत्ति देनेकी इच्छा करनेवाला है । अतः तू हमारे मनको भी दृढ और उदार बना ॥३॥

यह इन्द्र मनुष्योंका राजा है, और धनवानोंमें भी अत्यन्त धनवान् है इसीलिए सब मनुष्य इन्द्रकी स्तुतियोंसे सेवा करते हैं ॥४॥

यही इन्द्र स्तुतिके योग्य है । इन्द्रके यशका सभी ऋषि वर्णन करते हैं और वे ऋषि भी इन्द्रके तेजको प्राप्त करते हैं ॥५॥

[४०]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः, ५ सूर्यः, ६-९ अत्रिः । छन्दः- १-३ उष्णिकः ५, ९ अनुष्टुप्, ४, ६-८ त्रिष्टुप् ।]

३०२ आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥

३०३ वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥

३०४ वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥

३०५ ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥

३०६ यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ५ ॥

---

[४०]

अर्थ- [३०२] हे (**वृत्रहन्तम वृषन् इन्द्र**) वृत्रको मारनेवाले, बलवान् इन्द्र ! तू (**वृषभिः आ याहि**) बलवान् घोडोंसे आ और हे (**सोमपते**) सोमके स्वामी इन्द्र ! (**अद्रिभिः सुतं सोमं पिब**) पत्थरोंसे कूट कर निचोडे गए इस सोमको पी ॥१॥

[३०३] (**ग्रावा वृषा**) पत्थर मजबूत हैं, (**अयं सुतः सोमः वृषा**) यह निचोडा गया सोम भी बलदायक है, और इसका (**मदः वृषा**) आनन्द भी बलदायक है, अतः हे (**वृत्रहन्तम वृषन् इन्द्र**) वृत्रको मारनेवाले बलवान् इन्द्र । तू (**वृषभिः**) बलवान् घोडोंसे आ और सोम पी ॥२॥

[३०४] हे (**वज्रिन्**) वज्रधारी इन्द्र ! (**वृषा**) बलवान् मैं (**चित्राभिः ऊतिभिः**) अनेक तरहके रक्षणके साधनोंसे युक्त (**त्वा वृषणं**) तुझ बलवान् को (**हुवे**) बुलाता हूँ । हे (**वृत्रहन्तम् वृषन् इन्द्र**) वृत्रको मारनेवाले बलवान् इन्द्र ! तू (**वृषभिः**) बलवान् घोडोंसे आ ॥३॥

[३०५] (**ऋजीषी**) सोम पासमें रखनेवाला, (**वज्री**) वज्रधारी (**वृषभः तुराषाट्**) बलवान्, शत्रुओंका त्वरासे हिंसक (**शुष्मी राजा**) बलवान्, तेजस्वी (**वृत्रहा सोमपावा**) वृत्रको मारनेवाला, सोम पीनेवाला (**इन्द्रः**) इन्द्र (**हरिभ्यां युक्त्वा अर्वाङ् उपयासद्**) घोडोंको रथमें जोडकर हमारे पास आवे और (**माध्यंदिने सवने मत्सत्**) माध्यंदिनसवनमें आनन्दित हो ॥४॥

[३०६] हे (**सूर्य**) सूर्य ! (**यत्**) जब (**त्वा**) तुझे (**आसुरः स्वर्भानुः**) स्वर्भानु नामक असुरने (**तमसा अविध्यत्**) अन्धकारसे ढक लिया, तब (**यथा अक्षेत्रवित् मुग्धः**) जैसे अपने स्थानको न जाननेवाला मनुष्य मोहित हो जाता है, भटक जाता है, उसी तरह (**भुवनानि अदीधयुः**) सभी लोग मोहित हो गए ॥५॥

भावार्थ- हे वृत्रहन्ता और बलशाली इन्द्र ! तू बलवान् घोडोंसे आ और अच्छी तरह निचोडे गए इस सोमको पी ॥१॥

सोमका रस पिये जाने पर बल देनेवाला है और आनन्द भी देनेवाला है । अतः, हे इन्द्र ! तू बलशाली घोडों पर बैठकर आ और सोम पी ॥२॥

हे इन्द्र ! तू अनेक तरहके संरक्षणके साधनोंसे युक्त है, इसलिए मैं तुझ बलवान्को बुलाता हूँ । तू बलवान् घोडोंवाले रथ पर बैठकर आ ॥३॥

सोमको पीनेवाला, वज्रधारण करनेवाला, बलवान्, शत्रुओंका संहारक बलवान् और तेजस्वी इन्द्र घोडोंके रथमें बैठकर हमारे पास आवे और सोम पीकर आनन्दित हो ॥४॥

३०७ स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६ ॥
३०८ मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधा—स्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥
३०९ ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान् नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात् स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ ८ ॥
३१० यं वै सूर्यं स्वर्भानु—स्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥ ९ ॥

अर्थ- [३०७] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**अध**) इसके बाद (**यत्**) जब तूने (**स्वर्भानोः**) स्वर्भानु असुरके (**दिवः अव वर्तमानाः**) द्युलोकके नीचे विद्यमान (**मायाः**) मायाओंको (**अवाहन्**) दूर किया, तब (**अपव्रतेन तमसा**) प्रकाश करने रूप कर्मसे भ्रष्ट करनेवाले अन्धकारसे (**गूळ्हं सूर्यं**) छिपे हुए सूर्यको (**अत्रिः**) अत्रिने (**तुरीयेण ब्रह्मणा**) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानसे (**अविन्दत्**) प्राप्त किया ॥६॥

[३०८] हे (**अग्ने**) अत्रि ऋषि ! (**तव**) तुम्हारे विद्यमान रहते (**इमं मां**) इस मुझे यह (**द्रुग्धः**) द्रोह करनेवाला दुष्ट असुर (**इरस्या**) भूखके कारण अथवा (**भियसा**) डरसे (**मा नि गारीत्**) निगल न जाए। (**त्वं सत्यराधः मित्रः असि**) तू सच्चे ऐश्वर्यसे युक्त मित्र है । तू (**च**) तथा (**राजा वरुणः**) तेजस्वी वरुण (**तौ**) वे दोनों मिलकर (**इह मा अवतं**) यहां मेरी रक्षा करो ॥७॥

[३०९] तब (**ब्रह्मा अत्रिः**) ज्ञानी अत्रिने (**ग्राव्णः युयुजानः**) पत्थरोंको परस्पर संयुक्त करते हुए (**कीरिणा देवान् सपर्यन्**) स्तोत्रसे देवोंकी पूजा अर्चा करते हुए, तथा (**नमसा उप शिक्षन्**) हविसे या नम्रतासे उन देवोंको प्रसन्न करते हुए (**दिवि**) द्युलोकमें (**सूर्यस्य चक्षुः आधात्**) सूर्यके मण्डलको स्थापित किया और (**स्वर्भानोः मायाः अप अघुक्षत्**) स्वर्भानुकी मायाको दूर किया ॥८॥

[३१०] (**यं वै सूर्यं**) जिस सूर्यको (**आसुरः स्वर्भानुः**) असुर स्वर्भानुने (**तमसा अविध्यत्**) अन्धकारसे ढक दिया था, (**तं**) उस सूर्यको (**अत्रयः अनु अविन्दन्**) अत्रियोंने प्राप्त किया, (**अन्ये नहि अशक्नुवन्**) दूसरे उसे प्राप्त नहीं कर सके ॥९॥

भावार्थ- जब स्वर्भानु नामक असुरने सूर्यको अन्धकारसे ढक दिया, तब सारा संसार अन्धकारसे घिर गया, उस समय सूर्यदर्शन न होने के कारण सारे भुवन भ्रान्तसे हो गए । जिस तरह अपने गमन स्थानको न जाननेवाला मनुष्य भटक जाने के कारण भ्रान्त और मोहित सा हो जाता है, उसी तरह अन्धकारसे आवृत सारे भुवन भ्रान्त और मोहितसे हो गए ॥५॥

जब सूर्यको आच्छादित करनेवाले स्वर्भानुके माया भरे अन्धकारने ढक लिया, तब सूर्य लोकोंको प्रकाशित करनेमें असमर्थ हो गया, इस प्रकार स्वर्भानुने सूर्यको अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट कर दिया, तब इन्द्रने उसकी सहायता और उस अन्धकारको दूर किया। तब ज्ञानी विद्वान्ने अपने श्रेष्ठतम ज्ञानकी सहायतासे यही समझा कि सूर्य तो अन्धकारसे ढक गया था, जो अब निकल आया है ॥६॥

इस मंत्रमें सूर्य कहता है हे ज्ञानी ! तुम्हारे यहां रहते हुए वह दुष्ट स्वर्भानु असुर भूखसे अथवा भयसे मुझे निगल न डाले। तुम मुझसे स्नेह करते हो, तुम हितकारी हो, इसलिए तुम और राजा वरुण दोनों मिलकर मेरी रक्षा करो ॥७॥

पूर्व मंत्रमें सूर्यके द्वारा की गई प्रार्थनाको सुनकर ज्ञानी मनुष्यने सोम पीसनेवाले पत्थरोंको सोम पीसनेके लिए आपसमें संयुक्त किया, अर्थात् यज्ञ प्रारंभ किया, उस यज्ञमें देवोंकी स्तुति की, उन्हें हवियां प्रदान कीं, तब द्युलोकमें विद्यमान स्वर्भानु असुरकी मायाको अर्थात् अन्धकारको दूर किया और सूर्य के मंडलको प्रकाश करनेके लिए अन्धकारसे मुक्त किया ॥८॥

[४१]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १६-१७ अतिजगती, २० एकपदा विराट् ।]

३११ को नु वां मित्रावरुणावृतायन् दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥ १ ॥

३१२ ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायु-रिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥ २ ॥

३१३ आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन् रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥ ३ ॥

३१४ प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥ ४ ॥

अर्थ- [३११] हे (**मित्रावरुणौ**) मित्र और वरुण ! (**कः नु वां ऋतायन्**) तुम्हारी पूजा कौन कर सकता है ? तुम (**दिवः**) द्युलोकसे (**महः पार्थिवस्य**) महान् पृथ्वीके स्थानसे (**वा**) अथवा (**ऋतस्य सदसि**) जलके स्थान अन्तरिक्षके स्थानसे (**नः त्रासीथां**) हमारी रक्षा करो, तथा (**यज्ञायते**) यज्ञ करनेवाले हमें (**पशुषः वाजान्**) पशुओंके अन्दर रहनेवाले बलोंको प्रदान करो ॥१॥

[३१२] (**ये मीळ्हुषे रुद्राय सजोषाः**) जो सुखदायक रुद्रके साथ मिलजुलकर (**नमोभिः सुवृक्तिं स्तोमं**) नम्रतापूर्वक बोले गए स्तोत्रको (**दधते**) धारण करते हैं, (**ते**) वे (**मित्रः वरुणः अर्यमा आयुः इन्द्रः ऋभुक्षा मरुतः नः जुषन्तु**) मित्र, वरुण, अर्यमा वायु, इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुत हमारी इस स्तुतिको सुनें ॥२॥

[३१३] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**वातस्य पत्मन्**) जहां हवाके समान घोडे दौडते हैं, ऐसी जगह तथा (**रथस्य पुष्टौ**) रथको मजबूत करनेवाली जगहमें (**येष्ठा वां**) सबको नियंत्रणमें रखनेवाले तुम्हें (**हुवध्यै**) मैं बुलाता हूं । (**उत वा**) और (**दिवः यज्यवे असुराय**) तेजस्वी, पूज्य और प्राणदाता रुद्रके लिए, हे मनुष्यो ! (**अन्धांसि इव**) अन्नोंके समान (**मन्म भरध्वं**) स्तोत्रोंको कहो ॥३॥

[३१४] (**सक्षणः**) शत्रुओंके आक्रमणको सहनेवाला, (**दिव्यः कण्व होता**) तेजस्वी ज्ञानी होता (**त्रितः दिवः**) तीनों लोकोंको व्यापनेवाला सूर्य तथा (**सजोषाः वातः अग्निः**) एक साथ रहनेवाला वायु अग्नि (**पूषा भगः**) पूषादेव और भग तथा (**प्रभृथे विश्वभोजाः**) यज्ञमें सब कुछ भक्षण करनेवाले (**आश्वश्वतमाः**) शीघ्र दौडनेवाले श्रेष्ठ घोडोंसे युक्त देव (**आजिं न जग्मुः**) युद्धमें जाते हैं ॥४॥

भावार्थ- जिस सूर्यको स्वर्भानुने अन्धकारसे ढक दिया, उसे ज्ञानियोंने जान लिया कि यह तो अन्धकारने सूर्यको ढक लिया है दूसरे साधारण मनुष्य तो यही समझते थे कि सूर्यको राहुने निगल लिया है । वस्तुतः सूर्यको राहु निगलता नहीं, अपितु उसे अन्धकार ढक देता है । इस सच्चाईको ज्ञानी ही जाने सके, दूसरे साधारण बुद्धिके मनुष्य नहीं ॥९॥

हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों इतने विशाल और महान् हो कि तुम दोनोंके गुणोंकी पूजा पूरी तरह कौन कर सकता है ? द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्षसे तुम दोनों हमारी रक्षा करो और यज्ञ करनेवाले हमें हर तरहके बल प्रदान करो ॥१॥

सभी देव साथ साथ मिलकर रहते हैं और वे नम्रतापूर्वक बोली गई स्तुतिको ही सुनते हैं । वे सभी हमारी स्तुतियोंको सुनें ॥२॥

जहां घोडे तेज दौडते हैं और रथ भी दृढ होते हैं, ऐसे युद्धमें हम सब पर शासन करनेवाले अश्विदेवोंको बुलाते हैं । हे मनुष्यो ! तुम तेजस्वी, पूज्य और प्राणदाता रुद्रके लिए उत्तम स्तोत्रोंको कहो ॥३॥

३१५ प्र वो र॒यिं यु॒क्ताश्वं भरध्वं रा॒य ए॒षेऽव॑से दधीत॒ धीः ।
सु॒शेव॒ ए॒वैरौ॑शि॒जस्य॒ होता॒ ये व॒ एवा॑ मरुतस्तु॒राणा॑म् ॥ ५ ॥
३१६ प्र वो॑ वा॒युं र॑थ॒युजं॑ कृणुध्वं॒ प्र दे॒वं विप्रं॑ पनि॒तार॑म॒र्कैः ।
इ॒षु॒ध्यव॑ ऋत॒साप॒: पुरं॑धी॒र्वस्वी॑र्नो॒ अत्र॒ पत्नी॒रा धि॒ये धुः॑ ॥ ६ ॥
३१७ उप॑ व ए॒षे वन्द्ये॑भिः शू॒षैः प्र य॒ह्वी दि॒वश्चि॒तय॑द्भिर॒र्कैः ।
उ॒षासा॒नक्ता॑ वि॒दुषी॑व॒ विश्व॒मा हा॑ वहतो॒ मर्त्या॑य य॒ज्ञम् ॥ ७ ॥
३१८ अ॒भि वो॑ अर्चे पो॒ष्याव॑तो॒ नॄन् वास्तो॒ष्पतिं॒ त्वष्टा॑रं॒ ररा॑णः ।
धन्या॑ स॒जोषा॑ धि॒षणा॒ नमो॑भि॒र्वन॒स्पतीँ॒रोष॑धी रा॒य ए॒षे ॥ ८ ॥

अर्थ- [३१५] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः) तुम (युक्ताश्वं रयिं) घोडोंसे युक्त ऐश्वर्यको (भरध्वं) भरपूर प्रदान करो। (रायः एषे) धनकी प्राप्ति और (अवसे) रक्षाके लिए (धीः दधीत) मनुष्य उत्तम बुद्धि धारण करे। हे मरुतो (तुराणां वः ये अश्वाः) शीघ्रता करनेवाले तुम्हारे जो घोडे है, उन (एवैः) घोडोंसे (औशिजस्य होता) औशिजका होता (सुशेवः) सुखी हो ॥५॥

[३१६] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अर्कैः) अपनी स्तुतियोंसे (देवं विप्रं पनितारं वायुं) तेजस्वी, ज्ञानी, स्तुतिके योग्य वायु देवको (रथयुजं कृणुध्वं) रथसे संयुक्त करो । (इषुध्यवः ऋतसापः) शीघ्रतासे सर्वत्र जानेवाली, धर्म कार्य करनेवाली, (वस्वीः पत्नीः) धनैश्वर्यसे भरपूर तथा पालन करनेवाली शक्तियां (धिये) कर्मको पूरा करने के लिए (नः अत्र पुरन्धीः आ धुः) हमें यहां उत्तम बुद्धियोंको प्रदान करे ॥६॥

[३१७] हे (उषासानक्ता) दिन और रात ! तुम दोनों (यह्वी) बहुत बडी हो । (शूषैः चितयद्भिः अर्कैः) सुखकर और ज्ञान युक्त स्तोत्रोंसे हम (वन्द्येभिः वः) वन्दनीय देवोंके साथ रहनेवाले तुम्हें (दिवः उप प्र ऐषे) द्युलोकसे हवि पहुंचाता हूं । तुम दोनों (विदुषी इव) विदुषियोंके समान, (मर्त्याय) मनुष्यको (विश्वं यज्ञं सभी तरहके यज्ञकी तरफ (आ वहतः) प्रेरित करते हो ॥७॥

[३१८] मैं (वः अभि) तुम्हारे लिए (नॄन् पोष्यावतः) मनुष्योंको पुष्ट करनेवाले (वास्तोष्पतिं त्वष्टारं) वास्तोष्पति और त्वष्टाको (रराणः) प्रसन्न करते हुए (अर्चे) पूजा करता हूं । तथा (रायः एषे) धनकी प्राप्तिके लिए (धन्या) धन प्रदान करनेवाली तथा (सजोषाः) आनन्ददायक (धिषणा) वाग्देवता (वनस्पतीन्) वनस्पतियों और (ओषधीः) ओषधियोंको (नमोभिः) नमस्कारोंसे प्रसन्न करता हूँ ॥८॥

भावार्थ- शत्रुओंके आक्रमणको सहनेवाला तेजस्वी ज्ञानी होता, तीनों लोकोंको व्यापनेवाला सूर्य तथा वायु और अग्नि, पूषा और भग तथा अन्य भी देव युद्धमें अपने भक्तोंकी सहायता करनेके लिए जाते हैं ॥४॥

हे मरुतो ! तुम घोडोंसे युक्त ऐश्वर्यको भरपूर प्रदान करो । धन और रक्षाकी प्राप्तिके लिए मनुष्य उत्तम बुद्धि धारण करे । हे मरुतो ! शीघ्रतासे काम करनेवाले तुम्हारे जो घोडे हैं, उन घोडोंसे औशिजका होता सुखी हो ॥५॥

हे मनुष्यो ! अपनी स्तुतियोंसे तेजस्वी, ज्ञानी और स्तुतिके योग्य वायुको रथसे युक्त करो । शीघ्रतासे सर्वत्र जानेवाली, धर्म कार्य करनेवाली, धनैश्वर्यसे भरपूर तथा पालन करनेवाली शक्तियां कर्मको पूरा करनेके लिए हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करे ॥६॥

हे दिन और रात ! तुम बहुत बडी हो । हम सुखकर और ज्ञानयुक्त स्तोत्रोंसे तुम्हें हवि पहुंचाते हैं । तुम दोनों संसारके सभी पदार्थोंको जानती हो और मनुष्यको सभी तरहके यज्ञकी तरह प्रेरित करती हो ॥७॥

मैं मनुष्योंका हित करनेके लिए सबका पोषण करनेवाले वास्तोष्पति और त्वष्टाको प्रसन्न करते हुए उनकी पूजा करता हूँ । धनकी प्राप्तिके लिए मैं धन और आनन्द देनेवाली वाग्देवता, वनस्पति और ओषधीकी स्तुति करता हूँ ॥८॥

३१९ तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥ ९ ॥
३२० वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥ १० ॥
३२१ कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद् राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥ ११ ॥
३२२ शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥ १२ ॥

अर्थ- [३१९] (**ये वसवः न वीरः**) जो वसुओंके समान वीर (**स्व एतवः**) अपनी इच्छाके अनुसार जानेवाले (**पर्वताः**) मेघ हैं, वे (**नः तने तुजे**) हमारे विस्तृत दानमें सहायक हों । (**नः पनितः आप्त्यः**) हमारे द्वारा स्तुत्य, ज्ञानी, (**यजतः**) पूज्य तथा (**नर्यः**) मनुष्योंका हित करनेवाला देव (**अभिष्टौ नः शंसं वर्धात्**) यज्ञमें हमारे स्तोत्रोंको बढाये ॥९॥

[३२०] (**भूम्यस्य वृष्णः**) भूमिको सींचनेवाले मेघके (**गर्भं**) अन्दर रहनेवाले (**अपां नपातं**) जलोंको गिरानेवाले अग्निकी (**सुवृक्ति**) उत्तम स्तोत्रोंसे (**अस्तोषि**) स्तुति मैंने की । (**त्रितः**) तीनों लोकोंमें व्यापक वह (**अग्नि**) अग्नि (**एतरि**) जाते हुए अपने (**शूषैः**) सुखदायक किरणोंसे मुझे (**न गृणीते**) कष्ट नहीं देता । अपितु (**शोचिष्केशः**) प्रदीप्त ज्वालाओं रूपी बालों वाला वह अग्नि (**वना नि रिणाति**) वनोंको जलाता है ॥१०॥

[३२१] हम (**महे रुद्रियाय**) महान् रुद्रके पुत्र मरुतोंकी (**कथा ब्रवाम**) किस प्रकार स्तुति करें ? (**रायेः**) धनप्राप्तिके लिए (**चिकितुषे भगाय**) ज्ञानवान् भग देव के लिए (**कत्**) किस तरहकी स्तुतिका उच्चारण करें ? (**आपः ओषधीः**) जल, ओषधी, (**द्यौः वना वृक्षकेशाः गिरयः**) द्यु, वन और वृक्षरूपी बालोंवाले पहाड (**नः अवन्तु**) हमारी रक्षा करें ॥११॥

[३२२] (**नभः तरीयान्**) आकाशमें संचार करनेवाला (**इषिरः**) सब जगह जानेवाला (**परिज्मा**) पृथ्वी के चारों और घूमनेवाला (**ऊर्जां पतिः**) बलोंका स्वामी वायु (**नः गिरः शृणोतु**) हमारी स्तुतिको सुने । तथा (**पुरः न शुभ्रां**) स्फटिकके समान निर्मल तथा (**बबृहाणस्य अद्रे परि स्रुचः**) विशाल पर्वतके चारों औरसे निकालनेवाला (**आपः**) जल (**शृण्वन्तु**) हमारी प्रार्थना सुने ॥१२॥

भावार्थ- वसुओंके समान वीर और सब जगह अपनी इच्छानुसार जानेवाले मेघ हमें बहुत दान दें । तथा स्तुतिके योग्य, पूज्य और मनुष्योंका हित करनेवाला देव यज्ञमें हमारी स्तुतियोंको बढावे ॥९॥

भूमिको सींचनेवाले मेघके अन्दर रहनेवाले तथा जलोंको न गिरानेवाले अग्निकी मैंने उत्तम स्तोत्रों से स्तुति की । वह अग्नि चलते हुए अपनी सुखदायक किरणोंसे मुझे कभी कष्ट नहीं देता, अपितु वह वनों को ही जलाता है ॥१०॥

हम महान् रुद्रके पुत्र मरुतोंकी किस तरहकी स्तुति करें ? तथा भगवान् भगकी किस तरहकी स्तुति करें ताकि हमें धन मिलें ? जल, ओषधीः, द्यु, वन और वृक्ष ही जिनके बालोंके समान हैं ऐसे पहाड हमारी रक्षा करें ॥११॥

आकाशमें संचार करनेवाला सब जगह जानेवाला तथा पृथ्वीके चारों ओर घूमनेवाला बलोंका स्वामी वायु हमारी स्तुतिको सुनें, उसी प्रकार स्फटिकके समान निर्मल तथा विशाल पहाडके चारों ओर घूमनेवाले जल हमारी प्रार्थना सुनें ॥१२॥

३२३ विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥ १३ ॥
३२४ आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥ १४ ॥
३२५ पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत् सूरिभिर्ऋजुहस्ता ऋजुवनिः ॥ १५ ॥
३२६ कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६ ॥

अर्थ- [३२३] हे (**महान्तः**) महान् मरुतो ! (**वः ये एवाः**) तुम्हारी उपासनाके जो मार्ग हैं, उन्हें हम (**विद चित्**) जानते ही हैं । हे (**दस्माः**) सुन्दर मरुतो ! (**वार्यं दधानाः**) वरण करने योग्य ऐश्वर्यको धारण करते हुए हम (**ब्रवामा**) तुम्हारी स्तुति करते हैं । (**वयः चन**) अन्नको धारण करनेवाले ये मरुत् (**क्षुमा अनुयतं मर्तं**) क्षुब्ध होकर चले आनेवाले शत्रु मनुष्यको (**वधस्नैः**) शस्त्रास्त्रोंसे मार कर (**सुभ्वः**) अच्छी तरह वृद्धिको प्राप्त होकर (**आ अव यन्ति**) हमारी तरफ आते हैं ॥१३॥

[३२४] (**देव्यानि पार्थिवानि जन्म**) मैं द्युलोक और पृथ्वीलोकसे उत्पन्न हुए (**आपः**) जलोंकी (**सुमखाय**) यशको उत्तम रीतिसे पूरा करनेके लिए (**अच्छ आ वोचं**) अच्छी तरह स्तुति करता हूँ । (**द्यावः चन्द्राग्राः**) चमकनेवाले चन्द्र आदि ग्रह (**गिरः वर्धन्तां**) हमारी स्तुतियोंको बढायें तथा (**अभिषाताः अर्णाः**) जलसे भरी हुई नदियां (**उदा वर्धन्तां**) जलसे हमारी उन्नति करें ॥१४॥

[३२५] (**पदे पदे**) पद पद में (**मे जरिमा**) मेरी स्तुति (**निधायि**) निहित है । (**वा**) और (**या शक्रा**) जो शक्ति है, वह (**पायुभिः**) अपनी सुरक्षाके साधनोंसे (**वरूत्री**) हमारी रक्षा करनेवाली हो । (**सूरिभिः**) विद्वानोंसे स्तुत यह (**ऋजुहस्ता**) सरल हाथोंवाली, (**ऋजुवनिः**) कल्याणकारक दानोंसे युक्त (**महता मही**) माता भूमि (**रसा**) अपने रसोंसे (**नः सिषक्तु**) हमें सींचे ॥१५॥

[३२६] हम (**सुदानून्**) उत्तम दाने देनेवाले मरुतोंको (**नमसा कथा दाशेम**) नम्रतापूर्वक किस तरह हवि दें ? (**एवया मरुतः अच्छ उक्तौ**) ऐसे स्तोत्र बोलकर भी हम मरुतोंकी सेवा किस तरह करें ? (**प्रश्रवसः मरुतः अच्छ उक्तौ**) हवि देकर भी इन मरुतोंकी सेवा किस तरह करें ? (**अहिर्बुध्न्यः**) अहिर्बुध्न्य देव (**नः रिषे मा धात्**) हमें हिंसकोंके अधिकारमें न दे अपितु वह (**अस्माकं उपमातिवनिः भूत्**) हमारे शत्रुओंका नाश करनेवाला हो ॥१५॥

भावार्थ- हे मरुतो ! तुम्हारी उपासनाके जो मार्ग हैं, उन्हें हम जानते हैं, इसलिए उत्तम ऐश्वर्यको धारण करके हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । अन्नको धारण करनेवाले ये मरुत् शत्रुओंका संहार करते हुए हमारी ओर आवें ॥१३॥

द्यु और पृथ्वीसे उत्पन्न हुए जलोंकी मैं स्तुति करता हूँ । चमकनेवाले चन्द्र आदि ग्रह हमारी स्तुतियोंको बढायें, तथा जलसे भरी हुई नदियां अपने जलसे हमारी उन्नति करें ॥१४॥

स्थान स्थान पर मेरी स्तुतियां निहित हैं । जो शक्ति है, वह अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करे । विद्वानोंसे प्रशंसित तथा कल्याणकारक दानोंकी देनेवाली वह माता भूमि अपने रसोंसे हमें सींचे ॥१५॥

उत्तम दान देनेवाले मरुतोंकी हम किस तरह स्तुति करें, या उन्हें किस तरह हवि दें कि वे खुश हो जाएं ? अहिर्बुध्न्य देव भी हमें शत्रुओंके अधीन न करें अपितु वह हमारे शत्रुओंका नाश ही करे ॥१६॥

5

३२७ इतिं चिन्नु प्रजायैं पशुमत्यै देवांसो वनंते मर्त्यो व आ देवांसो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रां शिवां तन्वों धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥ १७ ॥
३२८ तां वों देवाः सुमतिमूर्जयन्ती—मिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नंः सुदानुर्मृळयंन्ती देवी प्रति द्रवंन्ती सुवितायं गम्याः ॥ १८ ॥
३२९ अभि न इळा यूथस्यं माता स्मन्नदीभिरुर्वशीं वा गृणातु ।
उर्वशीं वा बृहद्दिवा गृणाना—ऽभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥ १९ ॥
३३० सिषंक्तु न ऊर्जव्यंस्य पुष्टेः ॥ २० ॥

अर्थ- [३२७] हे (**देवासः**) देवो ! (**मर्त्यः**) यह मनुष्य (**प्रजायै पशुमत्यै**) प्रजाकी और पशुओंकी प्राप्तिके लिए (**वः वनते**) तुम्हारी सेवा करता है । हे (**देवासः**) देवो ! (**मर्त्यः**) मनुष्य (**वः वनते**) तुम्हारी उपासना करता है । (**अस्याः तन्वः**) मेरे इस शरीरकी पुष्टिके लिए (**अत्र शिवां धासिं**) यहां इस संसारमें कल्याणकारी अन्न प्रदान करें । (**निर्ऋतिः चित्**) निर्ऋति तो (**मे जरां जग्रसीत**) मेरे बुढापेको ही निगले ।

१ **अस्याः तन्वः शिवां धासिं**- देवगण मेरे इस शरीरकी पुष्टिके लिए कल्याणकारी अन्नको प्रदान करें ।

२ **निर्ऋतिः मे जरां जग्रसीत**- बुरी अवस्था मेरे बुढापेको ही निगले ।

[३२८] हे (**वसवः देवाः**) सबको निवास करानेवाले देवो ! हम (**शसा**) अपनी स्तुतिके कारण (**गोः**) गायके पाससे (**वः**) तुम्हारे (**तां सुमतिं ऊर्जयन्तीं**) उस उत्तम बुद्धि और बल देनेवाले (**इषं अश्याम**) अन्नको प्राप्त करें । (**सा देवी**) वह दिव्य गुणोंवाली गाय (**नः सुविताय गम्याः**) हमें सुख प्रदान करनेके लिए आवे, तथा प्राप्त करें । (**सा देवी**) वह दिव्य गुणोंवाली गाय (**नः सुविताय गम्याः**) हमें सुख प्रदान करनेके लिए आवे, तथा (**सुदानुः मृळयन्ती**) वह उत्तम दानवाली गौ हमें सुख देती हुई (**प्रति द्रवन्ती**) हमारी तरफ आवे ॥१८॥

[३२९] (**यूथस्य माता**) पशुओंके समूहको पुष्ट करनेवाली (**उर्वशी**) विशाल क्षेत्रोंवाली (**नः इळा**) हमारी भूमि (**नदीभिः अभि गृणातु**) नदियोंके द्वारा गर्जना करे । (**बृहद्दिवा उर्वशी**) अत्यन्त तेजस्वी और विस्तृत क्षेत्रोंवाली भूमि (**गृणाना**) प्रशंसित होती हुई और (**अभि ऊर्ण्वाना**) चारों ओरसे व्याप्त करती हुई (**आयोः प्रभृथस्य**) मनुष्यके द्वारा दी गई आहुतिको स्वीकार करे ॥१९॥

[३३०] (**ऊर्जव्यस्य पुष्टेः**) बल और पोषणके लिए (**नः सिषक्तुः**) देव हमारी प्रार्थना सुने ॥२०॥

भावार्थ- देवो ! यह मनुष्य सन्तान और पशुओंकी प्राप्तिके लिए तुम्हारी सेवा करता है । हे देवो ! तुम मेरे शरीरकी पुष्टिके लिए उत्तम और कल्याणकारी अन्न दो । यदि निर्ऋति अर्थात् बुरी अवस्थाका अधिष्ठाता देव मेरे जीवनमें से किसी वस्तुको खाना चाहे तो वह मेरे बुढापेको ही खाए । मेरे तारुण्यको नहीं । मैं कभी बूढा न होऊं ॥१७॥

हम अपनी स्तुतिके कारण गायसे उत्तम बुद्धि और बल देनेवाले अन्नको प्राप्त करें । गायका दूध बुद्धि और बलको बढानेवाला होता है । गाय हर तरहका सुख प्रदान करनेवाली, उत्तम दान देनेवाली होकर हमारी ओर आवे ॥१८॥

पशुओंके समूहको पुष्ट करनेवाली तथा विशाल क्षेत्रोंवाली भूमि नदियोंके द्वारा गर्जना करे । इस भूमि पर नदियां जलसे भरपूर होकर बहें । तब इसके ऊपर अन्न भरपूर उगे, उस अन्नके द्वारा मनुष्य यज्ञ करें और उस यज्ञमें जो हवियां दी जाएं, उनसे माता भूमि तृप्त हो ॥१९॥

देव हमारी प्रार्थना सुने और हमें बल तथा पोषण प्रदान करे ॥२०॥

[४२]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- विश्वे देवाः, ११ रुद्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १७ एकपदा विराट् ।]

३३१ प्र शंतमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १ ॥

३३२ प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात् सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २ ॥

३३३ उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ३ ॥

३३४ समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ४ ॥

---

[४२]

अर्थ- [३३१] हमारी (**शंतमा गीः**) सुखकारक स्तुति तथा (**दीधिती**) कर्म (**वरुणं मित्रं भगं अदितिं**) वरुण, मित्र, भग और अदितिको (**नूनं अश्याः**) निश्चयसे प्राप्त हो (**पृषद्योनिः**) अन्तरिक्षमें उत्पन्न होनेवाला (**पंच होता**) पांच प्राणोंका आधार (**अतूर्तपन्थाः**) अप्रतिहत गतिवाला (**असुरः**) बलदाता तथा (**मयोभुः**) सुखदाता वायु (**श्रुणोतु**) हमारी प्रार्थना सुने ॥१॥

[३३२] (**माता सूनुं न**) जिस तरह एक माता अपने पुत्रको बडे ही प्रेमसे अपनाती है, उसी तरह (**अदितिः**) अदिति देवी (**मे इमं हृद्यं सुशेवं स्तोमं**) मेरे इस आनन्ददायक स्तोत्रको (**प्रति जगृभ्यात्**) स्वीकार करे । (**यत् देवहितं प्रियं ब्रह्म**) जो देवोंके लिए हितकारी और प्रिय स्तोत्र है, और (**यत् मयोभु अस्ति**) जो सुखकारक है, उसे (**अहं**) मैं (**मित्रे वरुणे**) मित्र और वरुणके लिए समर्पित करता हूं ॥२॥

[३३३] (**कवीनां कवितम्**) ज्ञानियोंमें भी श्रेष्ठ इस इस देवको (**उत् ईरय**) हर्षित करो । (**एनं मध्वा घृतेन**) इस देवको मधु और घीसे (**अभि उनत्त**) सींचो -तृप्त करो । (**सः सविता**) वह सविता देव (**नः**) हमें (**प्रयता**) प्रयत्नसे मिलनेवाले (**हितानि चन्द्राणि**) हित करनेवाले, चमकनेवाले अथवा प्रसन्नता देनेवाले (**वसूनि**) धनोंको (**सुवाति**) प्रदान करता है ॥३॥

[३३४] हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! (**नः**) हमें (**सं मनसा**) उत्तम मनसे युक्त होकर (**गोभिः नेषि**) गायोंसे संयुक्त कर, हे (**हरिवः**) उत्तम घोडोंवाले (**सूरिभिः सं**) विद्वानोंसे युक्त कर (**स्वस्ति सं**) कल्याणसे युक्त कर, (**देवहितं यत् अस्ति**) देवोंका कल्याण करनेवाला जो ज्ञान है, उस (**ब्रह्मणा सं**) ज्ञानसे हमें संयुक्त कर, तथा (**यज्ञियानां देवानां**) पूजाके योग्य देवोंकी (**सुमत्या**) उत्तम बुद्धिसे (**सं**) हमें संयुक्त करे ॥४॥

१ **सं मनसा गोभिः नेषि-** हे इन्द्र ! तू उत्तम मनसे युक्त होकर गायें प्रदान कर ।

२ **सूरिभिः देवहितं ब्रह्मणा, यज्ञियानां देवानां सुमत्या सं-** विद्वानों, देवोंके लिए कल्याणकारक ज्ञान तथा पूज्य देवोंकी उत्तम बुद्धिसे संयुक्त कर ।

भावार्थ- हमारी सुखकारक स्तुति और उत्तम कर्म वरुण, मित्र, भग और अदिति आदि देव निश्चयसे प्राप्त करें । अन्तरिक्षमें उत्पन्न होनेवाला, पांच प्राणोंका आधार, अप्रतिहतगतिवाला, बल और सुख देनेवाला वायु हमारी प्रार्थना सुने ॥१॥

जिस तरह एक माता अपने पुत्र को बडे प्रेमसे अपनाती है, उसी तरह अदिति देवी मेरे इस आनन्ददायक और सुखदायक स्तोत्रको स्वीकार करे । तथा जो देवोंके लिए हितकारी और प्रिय स्तोत्र है, उसे मैं मित्र और वरुणके लिए समर्पित करता हूं ॥२॥

यह सबको प्रेरणा देनेवाला देव मधु और घीसे तृप्त होता है उसे तृप्त करनेवालेको वह बडे ही प्रयत्नोंसे मिलनेवाले, चमकनेवाले तथा प्रसन्नता करनेवाले धनोंको प्रदान करता है ॥३॥

३३५ देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरंधि- रवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥ ५ ॥

३३६ मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णो- रजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन् नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ॥ ६ ॥

३३७ उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥ ७ ॥

अर्थ- [३३५] (**देवः भगः**) दिव्य गुणयुक्त भगदेवता, (**सविता**) सबका प्रेरक सविता देव (**रायः**) धनका स्वामी (**अंशः**) त्वष्टा (**वृत्रस्य**) वृत्रको मारनेवाला (**धनानां संजितः**) धनोंको जीतनेवाला (**इन्द्रः**) इन्द्र (**ऋभुक्षाः वाजः उत वा पुरन्धिः**) ऋभुक्षा, बाज और विभु ये सभी (**अमृतासः**) अमर देव (**तुरासः**) हमारी तरफ शीघ्रतासे आते हुए (**नः अवन्तु**) हमारी रक्षा करें ॥५॥

[३३६] हम (**अप्रतीतस्य**) युद्धमें पीछे न हटनेवाले (**जिष्णोः**) जयशील (**अजूर्यतः**) कभी वृद्ध न होनेवाले तथा (**मरुत्वतः**) मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाले इन्द्रके (**कृतानि**) कर्मोंका हम (**प्र ब्रवाम**) वर्णन करते हैं। हे (**मघवन्**) इन्द्र ! (**ते वीर्यं**) तेरे पराक्रमको (**न पूर्वे**) न पहलेके लोग प्राप्त कर सके, (**न नूतनः कश्चन आप**) न इस समयका कोई प्राप्त कर सका, और (**न अपरासः**) न आगे आनेवाले ही प्राप्त कर सकेंगे ॥६॥

[३३७] (**यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः**) जो प्रशंसा करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको अत्यन्त सुख प्रदान करता है, तथा जो (**जोहुवानं**) बार बार आहुति देनेवालेके पास (**पुरुवसुः**) बहुत धनसे युक्त होकर (**आगमत्**) आता है, उस (**प्रथमं**) सबसे श्रेष्ठ (**रत्नधेयं**) स्वयं रत्नोंको धारण करनेवाले तथा (**धनानां सनितारं**) धनोंको प्रदान करनेवाले (**बृहस्पतिं**) बृहस्पतिकी (**उप स्तुति**) स्तुति कर ॥७॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! तू उत्तम मनसे हमें युक्त होकर हमें गायें प्रदान कर । विद्वानोंसे हमें संयुक्त कर । देवोंके लिए जो कल्याणकारक ज्ञान है, उससे हमें युक्त कर, तथा पूजाके योग्य देवोंकी उत्तम बुद्धिसे हमें युक्त कर ॥४॥

दिव्य गुणवाले भग, सबका प्रेरक सविता, धनका स्वामी त्वष्टा, धनोंको जीतनेवाला तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र आदि सभी देव हमारी रक्षा करें ॥५॥

यह इन्द्र युद्धमें कदम पीछे न हटानेवाला, जयशील और कभी वृद्ध न होनेवाला है । इसके पराक्रमको न पहलेके लोग प्राप्त कर सके, न आजके लोग प्राप्त कर सकते हैं और न आगे आनेवाले लोग ही प्राप्त कर सकेंगे ॥६॥

इस विशाल संसारका पालक बृहस्पति देव प्रशंसा तथा स्तुति करनेवाले मनुष्यको अत्यन्त सुख प्रदान करता है और जो इस देवके लिए आहुति देता है, उसके पास वह बहुत धनसे युक्त होकर आता है । ऐसे सबसे श्रेष्ठ, रत्नोंको धारण करनेवाले तथा धनोंको प्रदान करनेवाले बृहस्पतिकी स्तुति करनी चाहिए ॥७॥

३३८ तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥ ८ ॥
३३९ विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्याद् यावयस्व ॥ ९ ॥
३४० य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात् तुच्छ्यान् कामान् करते सिष्विदानः ॥ १० ॥

अर्थ- [३३८] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (तव ऊतिभिः सचमानाः) तेरी रक्षाओंसे युक्त हुए मनुष्य (अरिष्टाः मघवानः) रोगादिसे रहित, ऐश्वर्यवान् तथा (सुवीराः) उत्तम पुत्र पौत्रवाले होते हैं । (ये अश्वदाः सन्ति) जो मनुष्य घोडोंका दान देनेवाले होते हैं, (उत वा गोदाः) अथवा गोयोंको देनेवाले होते हैं, तथा (ये वस्त्रदाः) जो वस्त्रोंको देनेवाले होते हैं, (तेषु सुभगाः रायः) उनमें उत्तम भाग्यशाली ऐश्वर्य स्थित होते हैं ॥८॥

१ बृहस्पते ! तव ऊतिभिः सचमानाः अरिष्टाः मघवानाः सुवीराः- हे बृहस्पते ! तेरी रक्षासे युक्त हुए मनुष्य रोगादिसे रहित, ऐश्वर्यवान् और उत्तम पुत्र पौत्रवाले होते हैं ।

२ अश्वदाः, गोदाः, वस्त्रदाः सुमनाः रायः- अश्व, गाय और वस्त्र दानमें देनेवाले मनुष्य उत्तम भाग्यशाली और धनवान् होते हैं ।

[३३९] (ये) जो (उक्थैः) प्रार्थना करने पर भी (नः अपृणन्तः) हमें न देकर स्वयं ही (भुंजते) भोग करते है, (एषां वित्तं) ऐसे मनुष्योंके धनको (विसर्माणं कृणुहि) नष्ट हो जानेवाला कर । तथा ऐसे (अपव्रतान्) नास्तिकों, (प्रसवे वव्रधानान्) जगमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा (ब्रह्मद्विषेः) परमात्मासे द्वेष करनेवाले मनुष्योंको (सूर्यात् यावयस्व) सूर्यसे दूर कर अर्थात् उन्हें अन्धकारमें स्थापित कर ॥९॥

१ उक्थैः नः अपृणन्तः भुंजते एषा वित्तं विसर्माणं कृणुहि- जो मनुष्य प्रार्थना करने पर भी हमें न देकर स्वयं ही भोगते हैं, उनके धनको नष्ट हो जाने वाला कर ।

२ अपव्रतान्, प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्यात् यावयस्व- दुष्ट कर्म करनेवाले, संसारमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा ईश्वरसे द्वेष करनेवाले नास्तिकोंको सूर्यसे दूर कर अर्थात् उन्हें अन्धकारमें डाल दे।

[३४०] हे (मरुतः) मरुतो ! (यः देववीतौ रक्षसः ओहते) जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, (तं) उसे (अचक्रेभिः नि यात) चक्रोंसे रहित रथोंसे नष्ट करो । (यः) जो मनुष्य (वः शशमानस्य) तुम्हारे लिए स्तुति करनेवालेकी (निन्दात्) निन्दा करता है, वह (सिष्विदानः) महान् प्रयत्न करने परभी (कामान् तुच्छ्यान् करते) अपनी कामनाओंको तुच्छ कर देता है ॥१०॥

१ मरुतः यः देववीतौ रक्षसः ओहते तं अचक्रेभिः नि यात् - हे मरुतो ! जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, उसके रथोंको तुम चक्रोंसे रहित करके मार डालो ।

२ यः वः शशमानस्य निन्दात्, सिष्विदानः कामान् तुच्छ्यान् करते- जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी निन्दा करता है, वह अपनी कामनाओंको तुच्छ करता है ।

भावार्थ- बृहस्पतिसे सुरक्षित हुए मनुष्य सभी तरहके रोगादियोंसे रहित, अहिंसित, ऐश्वर्यवान् और उत्तम पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होते हैं । जो मनुष्य घोडोंका, गायोंका और वस्त्रोंका दान करते हैं, उन्हें सौभाग्य और ऐश्वर्य मिलता है ॥८॥

जो मनुष्य मांगने पर भी मनुष्योंको न देकर स्वयं ही खा जाते हैं, ऐसे मनुष्योंका धन नष्ट हो जाता है । ऐसे स्वार्थी मनुष्य नास्तिक होते हैं । ये परमेश्वरमें श्रद्धा नहीं करते अपितु उससे द्वेष ही करते हैं । ऐसे मनुष्य थोडेसे समय के लिये तो इस संसारमें वृद्धिको प्राप्त होते हैं, पर अन्तमें गहरे अन्धकारमें ही ढकेल दिए जाते हैं ॥९॥

जो मनुष्य अपने यज्ञ जैसे पवित्र कार्योंमें दुष्ट राक्षसोंको बुलाता है, उसे देवगण धनहीन बनाकर नष्ट कर देते हैं । तथा जो उन देवोंके भक्तों की निंदा करता है, उसकी सभी कामनायें नष्ट हो जाती हैं ॥१०॥

३४१ तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥ ११ ॥

३४२ दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥ १२ ॥

३४३ प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥ १३ ॥

अर्थ- [३४१] हे मनुष्य ! **(यः सु-इषुः सु-धन्वा)** जो उत्तम बाण और उत्तम धनुषसे युक्त है, **(यः विश्वस्य भेषजस्य क्षयति)** जो सभी ओषधियोंका निवासस्थान है, **(तं उ स्तुहि)** उसी रुद्रकी तू स्तुति कर। तू **(महे सौमनसाय)** अपने महान् मनको उत्तम करनेके लिए **(रुद्रं यक्ष्व)** रुद्रकी पूजा कर तथा **(नमोभिः)** नमस्कारसे **(असुरं देवं दुवस्य)** इस बलवान् रुद्रदेवकी सेवा कर ॥११॥

१ **सु-इषुः सु-धन्वा-** यह रुद्रदेव उत्तम बाण और धनुषसे युक्त है ।

२ **विश्वस्य भेषजस्य क्षयति-** यह रुद्र सभी तरहकी ओषधियोंका निवासस्थान है ।

३ **महे सौमनसाय असुरं देवं यक्ष्व-** अपने महान् मनको उत्तम बनाने के लिए बलवान् देवकी पूजा करनी चाहिए ।

[३४२] **(ये दमूनसः)** जो उदार हैं, तथा **(अपसः सुहस्ताः)** उत्तम कर्म करनेके कारण जो उत्तम हाथोंवाले हैं वे देव तथा **(विभ्वतष्टाः)** परमेश्वरने जिनके मार्गोंका निर्माण किया है, तथा जो **(वृष्णः पत्नीः)** बलवान् इन्द्रकी पत्नीरूप है, ऐसी **(नद्यः)** नदियां, **(सरस्वती)** सरस्वती **(उत)** और **(बृहत् दिवा)** अत्यन्त तेजस्वी राका आदि **(शुभ्राः)** तेजस्वी देवियां **(दशस्यन्तीः)** कामनाओंको पूर्ण करती हुई **(वरिवस्यन्तु)** हमें धन प्रदान करें ॥१२॥

[३४३] **(यः आहनाः)** जिस वर्षणकर्ता इन्द्रने **(रूपा मिनानः)** अनेक रूपोंको प्रकट करते हुए **(दुहितुः नः)** अपनी पुत्री पृथ्वी तथा हमारे हितके लिए **(वक्षणासु इदं अकृणोत्)** नदियोंमें इस जलको उत्पन्न किया, उस **(महे शरणाय)** महान् रक्षक इन्द्रको मैं अपनी **(नव्यसी जायमानां)** एकदम स्फुरित होनेवाली **(मेधां)** मेधाबुद्धि और **(गिरं)** वाणीको **(प्र भरे)** सौंपता हूँ ॥१३॥

भावार्थ- शत्रुओंका संहार करनेके लिए यह रुद्रदेव हमेशा अपने हाथोंमें उत्तम धनुष और उत्तम बाण धारण करता है। इसी रुद्रदेवमें सब ओषधियां निवास करती हैं । मनको उत्तम और महान् बनाने के लिए इसी रुद्रदेवकी पूजा करनी चाहिए और स्तुतियोंसे इसी बलवान् देवकी सेवा करनी चाहिए ॥११॥

उदार तथा उत्तम कर्म करनेके कारण उत्तम हाथोंवाले देव तथा इन्द्र का पालन करनेवाली तथा परमात्माके द्वारा बनाये गए मार्गों पर बहनेवाली नदियां सरस्वती तथा निर्मल राका आदि देवियां हमारे मनोरथोंको पूरा करके हमें धन दें ॥१२॥

जलको बरसानेवाला यह इन्द्र अनेक रूपोंको धारण करता है, तथा अपनी पुत्री पृथ्वी तथा हम मनुष्योंके हितके लिए इन्द्र नदियोंमें जल उत्पन्न करता है । वर्षाकालके दिनोंमें विद्युत् अनेक रूपोंमें चमकती हुई अनेक रूप धारण करती है, तब जलकी वृष्टिसे सारी नदियां भर जाती हैं, जो पृथ्वी और प्राणियोंका हित करते हैं । उस समय सभी ज्ञानी अपनी उत्तम बुद्धिसे इस विद्युत् रूपी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥१३॥

३४४ प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥ १४ ॥
३४५ एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥ १५ ॥
३४६ एष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १६ ॥
३४७ उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७ ॥

अर्थ- [३४४] (**यः**) जो मेघ (**अब्दिमान्**) जलोंको देनेवाला (**उदनिमान्**) जलसे भरपूर है, तथा जो (**रोदसी उक्षमाणः**) द्यु और पृथ्वीको सींचता हुआ (**विद्युता प्र इयर्ति**) बिजलीके साथ जाता है, उस (**स्तनयन्तं रुवन्तं**) गर्जना करनेवाले तथा शब्द करनेवाले (**इळस्पतिं**) अन्नके स्वामी मेघके पास, हे (**जरितः**) स्तोता ! (**सु स्तुतिः**) तेरी उत्तम स्तुति (**नूनं अश्याः**) अवश्य पहुंचे ॥१४॥

[३४५] (**एषः स्तोमः**) यह स्तोत्र (**मारुतं शर्धः**) मरुतोंके बलके पास (**अश्याः**) पहुंचे तथा (**युवन्यून**) तारुण्यसे सुशोभित होनेवाले (**रुद्रस्य सूनून्**) तथा रुद्रके पुत्ररूप इन मरुतोंके पास यह स्तुति (**उत्**) पहुंचे । (**कामः**) मेरा संकल्प (**मां**) मुझे (**स्वस्ति राये हवते**) कल्याणकारक धनकी प्राप्ति के लिए प्रेरणा देता है। तू (**अयासः**) यज्ञकी तरफ जानेवाले तथा (**पृषत्-अश्वान्**) रंगबिरंगे घोडोंवाले मरुतोंकी (**उप स्तुहि**) स्तुति कर ॥१५॥

[३४६] (**एषः स्तोमः**) यह स्तोत्र (**राये**) हमें धन प्रदान करने के लिए (**पृथिवीं, अन्तरिक्षं, वनस्पतीन् ओषधीः अश्याः**) पृथिवी, अन्तरिक्ष वनस्पति और ओषधीको प्राप्त हो । (**देवोदेवः**) देवोंका भी देव परमात्मा (**मह्यं सुहवो भूतु**) मेरे लिए आसानीसे बुलाने योग्य हो । (**माता पृथिवी**) माता पृथिवी (**नः**) हमें (**दुर्मतौ मा धात्**) दुष्ट बुद्धिमें स्थापित न करे ॥१६॥

१ **माता पृथिवी नः दुर्मतौ मा धात्**- माता पृथिवी हमें दुष्ट बुद्धिमें न रखें, हमारी बुद्धियां दुष्ट मार्गमें प्रेरित न हों ।

[३४७] हे (**देवा**) देवो ! हम तुम्हारी (**उरौ अनिबाधे स्याम**) विस्तृत और बाधारहित सुखमें रहें ॥१७॥

भावार्थ- मेघ जब जलसे भरपूर होता है, तब उनमें बिजली चमकती है, वे गरजते हैं, गडगडाते हैं और अन्तमें बरसकर द्यु और पृथ्वीको गीला भी कर देते हैं । उससे पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न होता है, इसलिए मेघ अन्नका स्वामी है । उस समय इस मेघकी सब स्तुति करते हैं ॥१४॥

मरुद्गण प्राण हैं ये ही रुद्र अर्थात् वायुके पुत्र हैं । ये प्राण सदा तरुण रहते हैं, सभी वृद्ध नहीं होते । इन्हीं प्राणोंसे प्रेरित होकर मन उत्तम संकल्प करता है और उस उत्तम संकल्प से ही उत्तम धनकी प्राप्ति होती है । ये प्राण इस मानव जीवनरूपी यज्ञकी तरफ जाते हैं । तथा शब्द, स्पर्श आदि गुणोंका अनुभव करनेवाली इन्द्रियां ही प्राणोंके घोडे हैं । इन इन्द्रियोंमें संचार करके प्राण इन्हें शक्तिशाली रखता है ॥१५॥

हमें धन प्रदान करनेके लिए अन्तरिक्ष, पृथिवी, वनस्पति आदि हमारी प्रार्थनाओंको सुनें । देवोंका देव परमात्मा भी हमारी प्रार्थनाओंको सुनें । माता पृथिवी हमारी बुद्धिको उत्तम मार्गमें प्रेरित करे ॥१६॥

देवोंके द्वारा प्रदान किया गया सुख बहुत विस्तृत और बाधारहित होता है, उसमें दुःखका जरासा भी मिश्रण नहीं होता। ऐसे सुखमें हम रहें ॥१७॥

३४८ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १८ ॥

[४३]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १६ एकपदा विराट् ।]

३४९ आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १ ॥
३५० आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥ २ ॥
३५१ अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३ ॥

अर्थ- [३४८] हम (**अश्विनोः**) अश्विनीदेवोंके (**नूतनेन**) नये और (**मयोभुवा**) कल्याणप्रद (**सुप्रणीती**) कृपाके साथ और (**अवसा**) रक्षणके साथ (**सं गमेम**) संयुक्त हों । हे (**अमृता**) अमर अश्विदेवो ! तुम (**नः रयिं आ वहतं**) हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो । (**उत वीरान् आ**) और वीर पुत्रपौत्रोंको भी प्रदान करो (**विश्वानि सौभगानि आ**) सम्पूर्ण सौभाग्य भी प्रदान करो ॥१८॥

[४३]

[३४९] (**मध्वा पयसा**) मधुर जलसे भरे होनेके कारण (**तूर्णि-अर्थाः**) शीघ्रतासे बहनेवाली (**धेनवः**) नदियां (**अमर्धन्तीः**) हमारी हिंसा न करती हुई (**नः उप आ यन्तु**) हमारे पास आवें । (**विप्र जरिता**) यह ज्ञानी स्तोता (**महः राये**) महान् धनकी प्राप्तिके लिए (**मयोभुवः**) सुख देने वाली (**बृहतीः सप्त**) बडी बडी सात नदियोंकी (**जोहवीति**) स्तुति करता है ॥१॥

[३५०] मैं (**वाजाय**) अन्नप्राप्तिके लिए (**सुस्तुती**) उत्तम स्तोत्र और (**नमसा**) नमस्कारोंसे (**अमृध्रे**) हिंसा न करनेवाली (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथ्वीको (**आ वर्तयध्यै**) अपनी ओर करता हूँ। (**मधुवचाः सुहस्ता**) मधुरवाणी और उत्तम हाथोंवाली तथा (**यशसा**) यशसे युक्त (**पिता माता**) पिता द्यु और माता पृथिवी (**भरे भरे**) हर संग्राममें (**नः अविष्टां**) हमारी रक्षा करें ॥२॥

[३५१] हे (**अध्वर्यवः**) अध्वर्युओ ! तुम (**मधूनि चकृवांसः**) मधुर सोमरसोंको तैय्यार करते हुए इस (**चारु शुक्रं**) सुन्दर और तेजस्वी सोमरसको (**वायवे भरत**) वायुके लिए भरपूर दो । हे (**देव**) वायो ! तू (**होता इव**) होता के समान (**नः अस्य**) हमारे द्वारा दिए गए इस सोमरसको (**प्रथमः पाहि**) सबसे पहले पी । हम (**ते मदाय**) तेरे आनन्द के लिए इस (**मध्वः**) मधुर सोमरसको (**ररिम**) देते हैं ॥३॥

भावार्थ- हे अश्विदेवो ! हम तुम्हारे नवीन और कल्याणप्रद कृपा तथा रक्षणके साथ संयुक्त हों । हे अमर देवो ! तुम हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो, वीर पुत्र पौत्रोंको प्रदान करो और सभी तरहके सौभाग्योंको प्रदान करो ॥१८॥

मधुर जलसे भरे होनेके कारण शीघ्रतासे बहनेवाली नदियां हमारी हिंसा न करती हुई हमारे पास आवें । यह ज्ञानी स्तोता भी महान् धनकी प्राप्ति के लिए सुख देनेवाली बडी बडी सात नदियोंकी स्तुति करता है ॥१॥

मैं अन्नप्राप्तिके लिए अपनी मधुर स्तुतिसे हिंसा न करनेवाली द्यु और पृथिवीको अपनी ओर करता हूँ । ये द्यु और मधुरता से भरपूर है तथा प्राणियों के पिता और माता हैं । जिस प्रकार माता पिता अपने बच्चोंके प्रति मिठाससे भरपूर होकर अपना प्रेमभरा हाथ उन पर फेरते हैं, उसी प्रकार ये द्यु और पृथ्वी सभी प्राणियों पर प्रेमसे अपना हाथ फेरकर उनकी हर संकटोंसे रक्षा करते हैं ।.२॥

हे अध्वर्युओ ! तुम इस तेजस्वी सोमरसको वायुदेवके लिए भरपूर दो और वायुदेव भी इस रसको सबसे पहले पिये, क्योंकि हम उसीके आनन्दके लिए इस मधुर सोमरसको प्रदान करते हैं ॥३॥

३५२ दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४ ॥
३५३ असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वा- गिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥ ५ ॥
३५४ आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञा- माग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥ ६ ॥
३५५ अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥ ७ ॥

अर्थ- [३५२] (**दश क्षिपः अद्रिं युंजते**) दस उंगलियां पत्थरसे संयुक्त होती हैं। (**बाहू**) भुजायें भी संयुक्त होती है । (**या सोमस्य शमितारा**) जो सोमको निचोडनेवाले हैं ऐसे (**सुहस्ता**) उत्तम हाथ भी पत्थरसे संयुक्त होते हैं । (**सुगभिस्तः**) उत्तम हाथोंवाला होता (**चनिश्चदत्**) अत्यन्त हर्षित होता हुआ (**मध्वः रसं दुदुहे**) सोमके मीठे रसको निचोडता है, (**गिरिष्ठां शुक्रं अंशुं**) पर्वत पर उत्पन्न हुए तेजस्वी सोमरसको दुहता है ॥४॥

[३५३] हे इन्द्र ! (**जुजुषाणाय**) सोम पीनेकी इच्छावाले (**ते क्रतवे दक्षाय बृहते मदाय**) तेरे पराक्रम, चातुर्य और महान् आनन्दके लिए मैं (**सोमः असावि**) सोम निचोडता हूँ । हे (**इन्द्र**) इन्द्र ! तू (**हूयमानः**) बुलाये जाने पर (**रथे**) अपने रथमें (**सुधुरा**) जुएको ढोनेमें उत्तम (**योगे**) आसानीसे जोडे जानेवाले (**प्रिया हरी**) तथा अपने प्रिय घोडोंको जोडकर अपने रथको (**अर्वाक् कृणुहि**) हमारी ओर प्रेरित कर ॥५॥

[३५४] (**अग्ने**) अग्ने ! (**सजोषाः**) हमारे साथ रहकर आनन्द करनेवाला तू (**महीं अरमतिं**) बडी, सर्वत्र व्याप्त, (**नमसा रातहव्यां**) नम्रभावसे दी गई हविको स्वीकार करनेवाली (**बृहतीं ऋतज्ञां**) महान् तथा ऋतको जाननेवाली (**देवीं ग्नां**) तेजस्विनी देवीको (**देवयानैः पथिभिः**) देवोंके द्वारा जाने योग्य रास्तोंसे (**मधोः मदाय**) सोमरस पीकर आनन्द प्राप्त करनेके लिए (**नः आ वह**) हमारे पास ले आ ॥६॥

१ ग्ना- स्त्री "मेना इति स्त्रीणां" (निरु ३/२१)

[३५५] (**वपावन्तं न**) जिस प्रकार लोग सुन्दर और शक्तिशाली मनुष्यकी स्तुति करते हैं, उसी तरह (**विप्राः**) ज्ञानी (**प्रथयन्तः**) विस्तृत बनाते हुए तथा (**अग्निना तपन्तः**) अग्निसे गर्म करते हुए (**यं**) जिस यज्ञकुण्डकी (**अञ्जन्ति**) स्तुति करते हैं । वह (**धर्मः**) यज्ञकुण्ड (**ऋतयन्**) यज्ञको पूर्ण करनेके लिए (**अग्निं असादि**) अपने अन्दर अग्निको उसी तरह धारण करता है कि जिस तरह (**प्रेष्ठः पुत्रः**) अत्यन्त प्रिय पुत्र अपने (**पितुः उपसि न**) पिताके गोदमें बैठता है ॥७॥

भावार्थ- सोम निचोडनेके समय होता की दसों अंगुलियां, भुजायें और उसके हाथ सोम कूटनेके पत्थरोंके साथ संयुक्त होते हैं । तब वह पर्वतकी ऊंची चोटी पर उत्पन्न होनेवाले सोमको निचोडकर उसका रस निकालता है ॥४॥

हम इन्द्रके पराक्रम, बल और आनन्दको बढाने के लिए सोमरसको निचोडते हैं । वह इन्द्र अपने रथमें अपने प्रिय घोडोंको जोडकर अपने रथको हमारी तरफ प्रेरित करे ॥५॥

देशकी स्त्रियां अपरिमित बलवाली हों, वे सर्वत्र संचार करनेवाली हों । वे ऋत अर्थात् नैतिकताके मार्गको जाननेवाली हों, तेजस्विनी हों तथा सदा देवों अर्थात् विद्वान् सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करें । वेदोंमें स्त्रियोंको पर्देमें बन्द करके रखनेका आदेश नहीं है । वे देशकी उन्नतिके लिए देशमें सर्वत्र संचार करें, पर साथ ही स्वेच्छाचारिणी न हों । वे अपनी नैतिकताकी मर्यादामें रहकर सत्पुरुषोंके मार्ग पर चलने वाली हों ॥६॥

३५६ अच्छा मही बृहती शंतमा गी-र्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्-गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८ ॥
३५७ प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्या-ऽहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥ ९ ॥
३५८ आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वा-ना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥ १० ॥
३५९ आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ ११ ॥

अर्थ- [३५६] (**अश्विना हुवध्यै**) अश्विनीकुमारोंको बुलानेके लिए हमारी (**मही बृहती शंतमा गीः**) प्रशंसनीय, बडी और सुख देनेवाली वाणी (**दूतः न**) दूतके समान (**अच्छ गन्तु**) सीधी जाये । हे अश्विनौ! (**गन्तं धुरः नाभि आणिः न**) जानेवाले रथकी धुराकी नाभिके लिए जिस तरह कील आवश्यक है, उसी तरह [यज्ञके लिए आवश्यक] (**मयोभुवा**) सुखदायक (**सरथा**) एक ही रथ पर चढकर जानेवाले तुम दोनों (**निधिं अर्वाक्**) हमारे खजाने रूप इस यज्ञकी तरफ (**आ यातं**) आओ ॥८॥

[३५७] (**या**) जो पूषा और वायुदेव (**राधसा**) आराधना किए जाने पर (**मतीनां चोदितारा**) बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले हैं, (**उत**) और (**या**) जो (**त्मन्**) स्वयं ही (**वाजस्य द्रविणः दा**) बल और अन्नको देनेवाले हैं, उस (**तव्यसः**) उत्तम बलशाली (**तुरस्य**) शीघ्रता करनेवाले (**पूष्णः**) पोषक देवके लिए (**उत**) तथा (**वायोः**) वायुके लिए (**अहं**) मैं (**नमः उक्तिं अदिक्षि**) नम्रभावसे अपने वचन करता हूँ ॥९॥

[३५८] हे (**जातवेदः**) अग्ने ! (**हुवानः**) हमारे द्वारा बुलाया जाकर तू (**विश्वान् मरुतः**) सभी मरुतोंको (**नामभिः रूपेभिः आ वक्षि**) नामों और रूपोंसे युक्त करके ले आता है । हे (**मरुतः**) मरुतो ! (**विश्वे**) तुम सब (**जरितुः**) स्तोताकी (**गिरः सुस्तुतिं**) वाणीसे निकलनेवाली उत्तम स्तुतिको सुनकर हमारे इस (**यज्ञं**) यज्ञकी तरफ (**आ गन्त**) आओ। (**च**) और (**विश्वे**) तुम सब (**ऊती**) रक्षासे युक्त होकर (**आ**) आओ ॥१०॥

[३५९] (**दिवः**) द्युलोकसे और (**बृहतः पर्वतात्**) बडे बडे पर्वतसे (**यजता सरस्वती**) पूज्य सरस्वती (**नः यज्ञं आ गन्तु**) हमारे यज्ञमें आवे । (**घृतावी**) घृतके समान तेजयुक्त कांतिवाली वह देवी (**हवं जुजुषाणा**) हमारी हवियोंको स्वीकार करके (**उशती**) उत्कंठित मनसे (**नः शग्मां वाचं श्रृणोतु**) हमारी भक्तिरससे पूर्ण वाणीको सुने ॥११॥

भावार्थ- जिस प्रकार कोई स्वस्थ शरीरका मनुष्य सुन्दर लगता है और लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, इसी तरह यज्ञकुण्डको विस्तृत बनाकर ज्ञानी ऋत्विज उसमें अग्न्याधान करते हैं और फिर उसमें यज्ञ करते हुए मंत्रोंका पाठ करते हैं । उस समय जिस प्रकार कोई पिता अपने पुत्रको गोदमें बिठाता है, उसी प्रकार वह यज्ञकुण्ड अपने अन्दर अग्निको धारण करता है ॥७॥

हमारी यह प्रशंसनीय और सुख देनेवाली स्तुति दूतके समान अश्विनीकुमारोंके पास सीधी जाए । जिस प्रकार चलनेवाले रथकी धुराकी नाभिको टिकाये रखनेके लिए कीले आवश्यक होती है, उसी तरह यज्ञके लिए अश्विनीकुमार आवश्यक है । ये अश्विनीकुमार प्राण और अपान हैं, जो जीवनरूपी यज्ञके खजानेकी रक्षा करते हैं । इन्हीं के कारण यह जीवन यज्ञ चलता है । जिस प्रकार रथकी धुराकी नाभिमें जब तक अक्ष न हो वह चल नहीं सकता, उसी तरह जब तक प्राण, अपान न हों, यह जीवन-यज्ञ चल नहीं सकता ॥८॥

आराधना या प्रार्थना करने पर पूषा और वायुदेव बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं और प्रसन्न होकर स्वयं ही बल और अन्नको देनेवाले हैं । उन उत्तम बलशाली पूषा और वायु से नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ ॥९॥

यह अग्नि बुलाये जाने पर सभी नामों और रूपोंसे युक्त मरुतोंको ले आता है । हे मरुतो ! तुम सब स्तोताकी स्तुतिको सुनकर हमारे इस यज्ञकी तरफ आओ और हमारी रक्षा करो ॥१०॥

३६० आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥ १२ ॥
३६१ आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥ १३ ॥
३६२ मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥ १४ ॥
३६३ बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १५ ॥

अर्थ- [३६०] (**वेधसं**) विधाता (**नीलपृष्ठं**) चमकीले अंगोंवाले (**बृहन्तं बृहस्पतिं**) महान् बृहस्पतिको (**सदने सादयध्वं**) यज्ञगृहमें बिठलाओ । हम भी (**सादद्योनिं**) अपने स्थान पर बैठे हुए (**दीदिवांसं**) तेजस्वी (**हिरण्यवर्णं**) सोनेके समान रंगवाले (**अरुषं**) अत्यन्त दीप्त ऐसे बृहस्पतिकी (**सपेम**) सेवा करें ॥१२॥

[३६१] (**धर्णसि**) सब जगतका आधार (**बृहत्-दिवः**) बहुत तेजस्वी (**रराणः**) आनन्द देनेवाला, (**विश्वेभिः ओमभिः**) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंके साथ (**हुवानः**) बुलाया जानेवाला वह अग्नि (**आ गन्तु**) हमारे पास आवे। (**ग्नाः**) प्रज्वलित ज्वालाओंवाला (**ओषधिः वसानः**) ओषधीरूपी वस्त्रोंको पहना हुआ (**अमृध्रः**) किसीसे भी हिंसित न होनेवाला (**त्रिधातुश्रृंगः**) तीन रंगकी ज्वालाओंवाला (**वृषभः**) बलवान् और (**वयः धाः**) अन्नको खानेवाले हैं ॥१३॥

[३६२] (**मातुः**) पृथिवीके (**शुक्रे परमे पदे**) तेजस्वी उत्तम स्थान पर (**आयोः रास्पिरासः विपन्यवः**) यजमानके साधन सम्पूर्ण स्तोता (**आज्मन्**) आ पहुंचे हैं । (**वासे शिशुं न**) वस्त्रसे जिस प्रकार छोटे बच्चे को साफ किया जाता है, उसी प्रकार (**रातहव्याः आयवः**) हवि देनेवाले मनुष्य (**सुशेव्यं**) सुखकारक अग्निको (**नमसा मृजन्ति**) नमस्कारोंसे शुद्ध करते हैं ॥१४॥

[३६३] हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**धियाजुरः**) तेरी स्तुति करते करते वृद्धावस्थाको प्राप्त हुए (**मिथुनासः**) पति पत्नी (**बृहते तुभ्यं**) महान् तुझे (**बृहद्वयः सचन्ते**) अत्यधिक अन्न प्रदान करते हैं । (**देवो देवः**) देवोंका भी देव अग्नि (**मह्यं सुहवः भूत्**) मेरे लिए आसानीसे बुलाये जाने योग्य हो । (**माता पृथिवी**) माता पृथिवी (**नः दुर्मतौ मा धात्**) हमें दुष्ट बुद्धिमें स्थापित न करें ॥१५॥

भावार्थ- द्युलोक से और पर्ववाले अन्तरिक्षसे यह पूज्य वाणी हमारे यज्ञमें पधारे । उस सरस्वतीका तेज घृतके समान कान्तिमान् है । वह हमारी हवियोंको स्वीकार करनेवाली होकर उत्कंठित मनसे हमारी भक्तिरससे पूर्ण वाणीको सुने ॥११॥

यह महान् बृहस्पति सबको बनानेवाला, चमकीले अंगोंवाला, तेजस्वी, सोनेके समान कान्तिवाला अत्यन्त दीप्त है । ऐसे बृहस्पतिकी हम सेवा करें ॥१२॥

यह अग्नि सब जगत्को धारण करनेवाला और संरक्षणके सभी साधनोंसे युक्त होनेके कारण सभीको आनन्द देनेवाला है। उसमें ओषधि अर्थात् समिधाओंके पडने के कारण उसकी ज्वालायें प्रज्वलित होती हैं । यह सभी तरहका अन्न खानेके कारण बहुत बलवान् है ॥१३॥

जब पृथिवीके श्रेष्ठतम स्थान यज्ञवेदिके पास साधनोंसे सम्पूर्ण ऋत्विज पहुंच जाते हैं, तब अग्निको इक छोटे बच्चेके समान शुद्ध करके स्थापित करते हैं ॥१४॥

अग्निकी सेवा करने अर्थात् यज्ञादि करनेमें जिन पतिपत्नीकी आयु व्यतीत हो गई है, वे इस अग्निमें सदा हवि देते हैं। ऐसा देवोंका भी देव यह अग्नि मेरे लिए आसानीसे बुलाये जाने योग्य हो, तथा पृथिवी माता हमें दुर्बुद्धि प्रदान न करे ॥१५॥

३६४ उ॒रौ दे॑वा अनिबा॒धे स्या॑म ॥ १६ ॥
३६५ सम॒श्विनो॒रव॑सा॒ नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम ।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒रा-ना विश्वा॑न्यमृ॒ता सौभ॑गानि ॥ १७ ॥

[४४]

ऋषिः- काश्यपोऽवत्सारः (१० क्षत्र-मंनस-एवावद-यजत-सध्रि-अवत्साराः; ११ विश्ववार-यजत-मायी-अवत्साराः, १२ अवत्सारेण सह सदापृण-यजत-बाहुवृक्त-श्रुतवित्-तर्याः, १३ सुतंभरश्च) देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

३६६ तं प्र॒त्नथा॑ पू॒र्वथा॑ वि॒श्वथे॒मथा॑ ज्ये॒ष्ठता॑तिं बर्हि॒षदं॑ स्व॒र्विद॑म् ।
प्र॒ती॒ची॒नं वृ॒जनं॑ दोहसे गि॒रा-ऽऽशुं जय॑न्त॒मनु॒ यासु॒ वर्ध॑से ॥ १ ॥
३६७ श्रि॒ये सु॒दृशी॒रुप॑रस्य॒ याः स्व॑-र्वि॒रोच॑मानः क॒कुभा॑मचो॒दते॑ ।
सु॒गो॒पा अ॑सि॒ न दभा॑य सुक्रतो प॒रो मा॒याभि॑र्ऋ॒त आ॑स॒ नाम॑ ते ॥ २ ॥

अर्थ- [३६४] हे (**देवाः**) देवो ! हम (**अनिबाधे**) बाधाओंसे रहित (**उरौ**) विशाल सुखमें (**स्याम**) रहें ॥१६॥

[३६५] हम (**अश्विनोः**) अश्विनी देवोंके (**नूतनेन**) नये और (**मयोभुवा**) कल्याणप्रद (**सुप्रणीती**) कृपाके साथ और (**अवसा**) रक्षणके साथ (**स गमेम**) संयुक्त हों । हे (**अमृता**) अमर अश्विदेवो ! तुम (**नः रयिं आ वहतं**) हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो । (**उत वीरान् आ**) और वीर पुत्रपौत्रोंको भी प्रदान करो, (**विश्वानि सौभगानि आ**) सम्पूर्ण सौभाग्य भी प्रदान करो ॥१७॥

[४४]

[३६६] (**तं**) उस इन्द्रको (**प्रत्नथा**) प्राचीन लोग (**पूर्वथा**) हमारे पूर्वज, (**इमथा विश्वथा**) तथा आजके सभी जन स्तुति करते रहे हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! (**यासु अनु वर्धसे**) जिन स्तुतियोंमें तू बढता है, उसीसे मैं (**ज्येष्ठतातिं**) सबसे ज्येष्ठ, (**बर्हिषदं**) यज्ञमें आकर बैठनेवाले (**स्वः-विदं**) सुखकी प्राप्ति करानेवाले (**प्रतीचीनं**) अत्यन्त सनातन (**वृजनं**) बलवान् तथा (**आशुं जयन्तं**) शीघ्रतासे शत्रुओंको जीतनेवाले तुझ इन्द्रकी स्तुति करता हूँ तू (**दोहसे**) हमारी अभिलाषाओंको पूर्ण कर ॥१॥

[३६७] हे इन्द्र ! (**स्वः विरोचमानः**) द्युलोकमें तेजस्वी होता हुआ तू (**अचोदते उपरस्य**) पानीको न बहने देनेवाले मेघके (**याः सुदृशीः**) जो कान्ति युक्तजल हैं, उन्हें तू बहाता है, तथा (**ककुभां श्रिये**) दिशाओंकी शोभा बढाता है । हे (**सुक्रतो**) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र तू (**सुगोपाः**) उत्तम रीतिसे रक्षा करनेवाला है, (**दभाय न असि**) तू प्राणियोंकी हिंसा करनेके लिए नहीं है । (**मायभिः परः**) तू छल कपट आदि से परे अर्थात् दूर है इसीलिए (**ते नाम ऋते आस**) तेरा नाम ऋत अर्थात् सत्य है ॥२॥

१ **मायाभिः परः नाम ऋते आस**- जो छल कपट आदि असत्य कामोंसे दूर रहते हैं, उन्हें सत्यलोककी प्राप्ति होती है ।

भावार्थ- देवोंके द्वारा प्रदान किया गया सुख बहुत विस्तृत और बाधारहित होता है उसमें दुःखका जरासा भी मिश्रण नहीं होता । ऐसे सुखमें हम रहें ॥१६॥

हे अश्विदेवो ! हम तुम्हारी नवीन और कल्याणप्रद कृपा तथा रक्षणके साथ संयुक्त हों । हे अमर देवो ! तुम हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो, वीर पुत्रपौत्रोंको प्रदान करो और सभी तरहके सौभाग्योंको प्रदान करो ॥१७॥

इस इन्द्रकी स्तुति प्राचीन कालसे हमारे पूर्वज करते चले आए हैं और आज भी सब कर रहे हैं । वह इन स्तुतियोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है । इन्हीं स्तुतियोंसे प्रेरित होकर वह हमारी सम्पूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करता है ॥१॥

३६८ अत्यं हविः सचते सच्च धातु चा—ऽरिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशु—र्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥ ३ ॥

३६९ प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥ ४ ॥

३७० संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥ ५ ॥

अर्थ- [३६८] (**अरिष्टगातुः सहोभरिः होता सः**) अप्रतिहत गमनवाला, बलका संपादक तथा यज्ञका निष्पादक वह अग्नि (**अत्यं धातु सत् हविः**) अस्थिर, स्थिर और सत् स्वरूपवाली हविको (**सचते**) प्राप्त होता है। वह (**वृषा**) बलवान अग्नि (**बर्हिः प्रसर्स्राणः**) यज्ञमें जाने पर (**शिशुः**) छोटा रहता है, पर (**विस्रुहा मध्ये हितः**) समिधाओंके मध्यमें रखे जाने पर वही शिशु (**अजरः युवा**) जरावस्थासे रहित तुरण बन जाता है ॥३॥

[३६९] (**एते**) सूर्यकी किरणें (**सुयुजः**) परस्पर संयुक्त रहनेवालीं, (**इष्टये यामन्**) यज्ञमें जानेवालीं, (**अमुष्मै यम्यः**) यज्ञ करनेवालेको ऐश्वर्य प्रदान करनेवालीं, (**नीचीः**) नीचेकी तरफ जानेवालीं, तथा (**ऋतावृधः**) यज्ञको समृद्ध करनेवाली हैं। यह (**क्रिविः**) सबको उत्पन्न करनेवाला सूर्य (**सुयन्तुभिः**) उत्तम रीतिसे जानेवाली (**सर्वशासैः**) सब पर शासन करनेवाली (**अभिशुभिः**) किरणोंसे (**प्रवणे**) नीचे जगहकी तरफ तेजीसे बहनेवाले (**नामानि**) जलोंको (**मुषायति**) चुराता है ॥४॥

[३७०] हे (**ऋजुगाथ**) सरल मार्गसे जानेवाले अग्ने ! तू (**तरुभिः संजर्भुराणः**) समिधाओंसे प्रदीप्त होता हुआ (**वयाकिनं सुतेगृभं**) आयुको दीर्घ करनेवाले निचोडे गए सोमको पीता हुआ (**चित्तगर्भासु सुस्वरुः**) हृदयरूपी गुहाओंमें विचरता है। तू (**धारवाकेषु**) वाणी अर्थात् विद्याको धारण करनेवाले विद्वानोंमें अधिक (**शोभसे**) शोभित होता है। तू (**अध्वरे जीवः**) यज्ञमें प्रदीप्त होता हुआ (**पत्नीः अभि वर्धस्व**) अपनी पत्नीरूप ज्वालाओंको बढा ॥५॥

१ **धारवाकेषु शोभते-** यह अग्नि विद्याको धारण करनेवालोंमें अधिक शोभित होता है।

भावार्थ- मेघोंमें रुके हुए तेजस्वी जलोंको इन्द्र जब बरसा देता है, तब सारी दिशायें प्रसन्न हो जाती हैं। सारी दिशायें समृद्ध हो जाती हैं। उनकी शोभा बढ जाती है। इन्द्र प्राणियोंकी रक्षा करता है, उन्हें मारता नहीं। यह सत्पुरुषोंके साथ कभी भी छल कपट नहीं करता, इसीलिए वह हमेशा सत्यलोकमें निवास करता है ॥२॥

अग्नि सर्वत्र संचार करता है। इसके संचारको कोई नहीं रोक सकता। वह बलका सम्पादक होकर हर एक तरहकी हवियोंको खाता है जब वह प्रथम यज्ञमें स्थापित किया जाता है, तब वह शिशु अर्थात् छोटेसे रूपमें ही रहता है, पर जब उसमें समिधायें डालीं जाती हैं, तब वह वरुण हो जाता है और फिर वह सदा तरुण ही रहता है, कभी बूढा नहीं होता ॥३॥

सूर्यकी किरणें यज्ञका सम्पादन करनेवाली हैं। सूर्य किरणोंके प्रकट होने पर ही यज्ञकी क्रियायें प्रारम्भ होती हैं। ये किरणें द्युलोकसे पृथ्वीकी तरफ आती हैं। पृथ्वी पर आकर सभी पदार्थोंको पुष्ट बनाती हैं और यज्ञको समृद्ध करती हैं। ये किरणें सब पर शासन करती हैं तथा इन किरणोंके द्वारा सूर्य जलको चुराता अर्थात् पीता रहता है, पर उसके इस पीनेको कोई देख नहीं सकता। सूर्य की किरणोंके द्वारा नदी तालाबोंका जल सुखाया जाता है, पर यह उसका कार्य लोगोंकी नजर में नहीं आता ॥४॥

समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ यह अग्नि आयुको बढानेवाले सोमसे और अधिक प्रज्वलित होकर हृदयोंमें संचार करता है। भक्तजन इस अग्निकी हृदयसे भक्ति करते हैं अग्नि विद्याका अधिष्ठाता देव होने के कारण विद्वानोंमें और अधिक प्रकाशित होता है। यह यज्ञमें स्वयं प्रज्वलित होकर अपनी ज्वालाओंको चहुं ओर प्रकाशित करता है ॥५॥

३७१ यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत् सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६ ॥
३७२ वेत्यग्रुर्जनिवान् वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गय-मस्माकं शर्म वनवत् स्वावसुः ॥ ७ ॥
३७३ ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद् य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥ ८ ॥

अर्थ- [३७१] ये देवगण (**यादृक् एव ददृशे**) जैसे दिखाई देते हैं, (**तादृक् उच्यते**) वैसाही उनका वर्णन किया जाता है । उन देवोंने अपने (**सिध्रया छायया**) चारों ओर फैलनेवाले अपने तेजसे (**अप्सु आ**) जलोंमें छिपी हुई (**उरुषां महीं**) विस्तृत पृथ्वीको (**दधिरे**) धारण किया, प्रकट किया । वे देव (**अस्मभ्यं**) हमें (**उरु ज्रयः**) बहुत वेग तथा (**सुवीरं अनपच्युतं**) उत्तम वीरता से पूर्ण तथा कभी क्षीण न होनेवाले (**बृहत् सहः**) बडे बलको प्रदान करें ॥६॥

[३७२] (**जनिवान्**) सबको उत्पन्न करनेवाला (**अग्रुः**) श्रेष्ठ (**कविः**) दूरदर्शी (**सूर्यः**) सूर्य (**सं अर्यता मनसा**) अपने श्रेष्ठ मनके कारण (**स्पृधः अति**) अपने शत्रुओंसे आगे बढ जाता है । (**घ्रंसं गयं विश्वतः परि रक्षन्तं**) तेजस्वी द्युलोककी चारों ओरसे रक्षा करनेवाले सूर्यकी हम उपासना करें । (**स्वावसुः**) उत्तम व श्रेष्ठ ऐश्वर्यको धारण करनेवाला यह सूर्य (**अस्माकं शर्म वनवत्**) हमें सुख प्रदान करे ॥७॥

१ **कविः सं अर्यता मनसा स्पृधः अति-** भविष्य पर नजर रखनेवाला विद्वान् अपनी श्रेष्ठ मानसिक शक्तिसे शत्रुओंको हराकर आगे बढ जाता है ।

[३७३] (**यासु ते नाम**) जिन स्तुतियोंमें तेरा नाम है, उन स्तुतियोंके द्वारा (**अस्य यतुनस्य केतुनः**) इस यज्ञके प्रज्ञापक (**ज्यायांसं**) श्रेष्ठ अग्निकी (**ऋषिस्वरं चरति**) ऋषिकी वाणी सेवा करती है । मनुष्य (**यादृश्मिन् धायि**) जिस पदार्थमें अपना मन लगा देता है, (**तं अपस्यया विदंत्**) उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर लेता है । (**यः स्वयं वहते**) जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, (**सः**) वह (**अरं करत्**) अपने कामको पूरी तरह सिद्ध करता है ॥८॥

१ **यादृश्मिन् धायि, तं अपस्यया विदत्-** मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्य को प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर ही लेता है ।

२ **यः स्वयं वहते स अरं करत्-** जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, वही अपने काम को पूरी तरह सिद्ध करता है ।

भावार्थ- यह विशाल पृथ्वी सृष्टिके पूर्व जलमें छिपी हुई थी । यह जल आधुनिक विज्ञानकी परिभाषामें गैस का रूप था । इसीके लिए कोहरा शब्दका प्रयोग किया गया है । उस कोहरेमें यह पृथ्वी ढकी हुई थी, जिसे प्रजापतिने सृष्टिकालमें प्रकट किया । इस मंत्रके दूसरे चरण में सृष्टिविद्याका सूक्ष्म संकेत है ॥६॥

यह सूर्य सबको उत्पन्न करनेवाला होनेके कारण सबसे श्रेष्ठ है । वह भविष्यद्रष्टा तथा शक्तिशाली है । वह अपने तेजसे द्युलोककी रक्षा करता है । उत्तम और श्रेष्ठ ऐश्वर्यको धारण करनेवाला सूर्य हमें सुख प्रदान करे ॥७॥

ऋषियोंने अपनी वाणीसे स्वयं प्रेरित होकर इस अग्निदेवकी पूजा की, इसीलिए वे अग्निको प्रसन्न करनेमें और ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें सफल हुए । क्योंकि जो मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है, उसे प्राप्त करनेका संकल्प कर लेता है, उसे वह प्राप्त कर ही लेता है, तथा जिस कामको वह स्वयं परिश्रमसे करता है, उस कामको वह सिद्ध कर ही लेता है ॥८॥

३७४ समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥ ९ ॥

३७५ स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभि-रेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥ १० ॥

३७६ श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥ ११ ॥

अर्थ- [३७४] (आसां अग्रिमा) इन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह (समुद्रं अव तस्थे) समुद्रकी सीमा तक आकर प्रसिद्ध होती है । (यस्मिन् आयता) जिन यज्ञोंमें इन ऋचाओंका विस्तार किया जाता है, (सवनं न रिष्यति) उस यज्ञमें किसी तरहकी हिंसा नहीं की जाती। (यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते) जिस जगह पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि रहती है, (अत्र) वहां (क्रवणस्य हार्दि) कर्म करनेवालेके हृदयके मनोरथ (न रेजते) कभी व्यर्थ नहीं होते ॥९॥

१ आसां अग्रिमा समुद्रं अव तस्थे- ईन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह समुद्रकी सीमा तक जाकर प्रसिद्ध होती है ।

२ यस्मिन् आयता सवनं न रिष्यति- जिन यज्ञोंमें इन ऋचाओंका विस्तार किया जाता है, उन यज्ञोंमें किसी तरहकी हिंसा नहीं होती ।

३ यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते, अत्र क्रवणस्य हार्दि न रेजते- जहां पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि विद्यमान होती है, वहीं उत्तम कर्म करनेवालेके हृदयकी अभिलाषायें कभी व्यर्थ नहीं जातीं ।

[३७५] (स हि) वही प्रकाशक है, हम उस (क्षत्रस्य मनसस्य) बलशाली मनवाले (एव-अवदस्य) उत्तम वाणीवाले (यजतस्य) पूज्य (सध्रेः) सबको धारण करनेवाले (अवत्सारस्य) अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यके (विदुषा चित् अर्ध्यं) विद्वानोंके द्वारा भी पूजनीय उस (शविष्ठं वाजं) बल और अन्नको (रण्वभिः चित्तिभिः) सुन्दर स्तोत्रोंसे (स्पृणवाम) चाहते हैं ॥१०॥

[३७६] (अदितिः श्येनः) अदितिका पुत्र श्येन (आसां) इन सोमरसोंका स्वामी है । इसका (मदः कक्ष्यः) आनन्द हृदयको भर देता है, इसलिए (विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः) सबके द्वारा चाहने योग्य, पूज्य और बलदायी इस सोमको (अ यं अन्यं अर्थयन्ति) सभी जन चाहते हैं, और (ते) ते (एतवे) प्रगति करनेके लिए (विषाणं परिपानं) विशेष आनन्ददायक इस पानको (अन्ति विदुः) हमेशा प्राप्त करते है ॥११॥

भावार्थ- ऋचाओंमें जो सर्व श्रेष्ठ ऋचा है, वह सारे संसारमें प्रसिद्ध होती है और जिन यज्ञोंमें ऐसी पवित्र ऋचायें बोली जाती हैं, उन पवित्र यज्ञोंमें किसी तरहकी हिंसा नहीं होती । इस मंत्रसे निश्चित होता है, कि वेदमंत्रों द्वारा किए जानेवाले यज्ञोंमें हिंसा निषिद्ध है । यज्ञ पवित्र होनेके कारण यहां होनेवाली बुद्धि भी पवित्र ही होती है, और जहां बुद्धि पवित्र होती है, वहां पवित्र बुद्धिवाले मनुष्यके हृदयकी अभिलाषायें भी पूरी होती हैं ॥९॥

वह सूर्य प्रकाशक है । उसका मन बहुत ही शक्तिशाली है, उसकी वाणी मधुर है, वह पूज्य, सबको धारण करनेवाला और अन्धकारका नाश करनेवाला है । उसका जो बल है, उसे विद्वान जन भी प्राप्त करना चाहते हैं, उसी बलको हम भी प्राप्त करना चाहते हैं ॥१०॥

अदिति का पुत्र श्येन इस सोमको लाया था, इसलिए वही इसका स्वामी है इस सोमका आनन्द पीनेवालेके हृदय को भर देता है । इसलिए सबके द्वारा चाहे जाने योग्य पूज्य और बलदायी इस सोमको सभी जन चाहते है ॥११॥

३७७ सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद् बाहुवृक्तः श्रुतवित् तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥ १२ ॥
३७८ सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥ १३ ॥
३७९ यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १४ ॥

अर्थ- [३७७] (यत्) जो (ईं गणं) इस देवोंके गमकी (सु प्रयावभिः) उत्तम स्तुतियोंसे (भजते) उपासना करता है, वह (सदापृणः) हमेशा धनसे भरपूर (यजतः) यज्ञ करनेवाला, (बाहुवृक्तः) बाहुओंसे कुटिल जनोंका नाश करनेवाला, (श्रुतवित्) ज्ञानसे सम्पन्न और (तर्यः) शक्तिशाली होकर (द्विषः वि वधीत्) शत्रुओंको मारता है । (सः) वह मनुष्य (वरा उभा प्रति एति) श्रेष्ठतासे युक्त दोनोंमें प्रगति करता जाता है, (च) और (भांति) प्रकाशित होता है ॥१२॥

१ यः ईं गणः भजते सः वरा उभा प्रति एति- जो मनुष्य इस समुदायकी उपासना करता है, वह अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनोंमें प्रगति करता है ।

[३७८] यह यज्ञ (यजमानस्य सुतंभरः) यजमानके पुत्रका भरण पोषण करनेवाला है, (सत्पतिः) सज्जनोंका पालक और स्वामी है । (सः) वह यज्ञ (विश्वासां धियां ऊधः) सभी तरहके उत्तम कर्मोंका स्तोत्र है, और (उत् अंचनः) वही सब तरहके कर्मोको प्रकट करता है । इसीके लिए (धेनुः रसवत् पयः शिश्रिये) गाय सारवाले दूधको धारण करती है और (भरत्) भरपूर देती है । (अनुब्रुवाणः अधि एति) स्तुति करनेवाला ही इसे प्राप्त करता है (न स्वपन्) सोनेवाला नहीं ॥१३॥

१ यजमानस्य सुतंभरः सत्पतिः- यह यज्ञ यजमानके पुत्रका भरण पोषण करनेवाला और सज्जनोंका पालक तथा स्वामी है ।

२ विश्वासां धियां ऊधः- यह यज्ञ सभी तरहके कर्मोंका स्त्रोत है।

३ धेनुः रसवत् पयः भरत्- गाय इसी यज्ञ के लिए सारयुक्त दूध देती है ।

४ अनुब्रुवाणः अधिः एति न स्वपन्- स्तुति करनेवाला ही इस दूधको प्राप्त कर सकता है, सोनेवाला नहीं।

[३७९] (यः जागार) जो हमेशा जागता रहता है (तं ऋचः कामयन्ते) उसीको ऋचायें चाहती हैं । (यः जागार) जो जागता रहता है, (तं उ सामानि यन्ति) उसके पास साम जाते हैं (यः जागार) जो जागता रहता है, (तं अयं सोमः आह) उससे यह सोम कहता है, (अहं तव अस्मि) मै तेरा हूं (तव सख्ये नि ओकः) तेरी ही मित्रतामें मैंने अपना निवास बना लिया है ॥१४॥

१ यः जागार तं ऋचः कामयन्ते- जो सदा जागता रहता है उसे ही ऋचायें अर्थात् ज्ञान चाहते हैं।

२ यः जागार, तं सामानि यन्ति- जो सदा जागता रहता है, उसीके पास साम भी जाते हैं ।

३ यः जागार, तं अयं सोमः आह, अहं तव अस्मि, सख्ये नि ओकः- जो जागता रहता है, उसीसे यह सोम कहता है कि मैं तेरा हूँ और तेरी मित्रतामें ही मैं रहूंगा ।

भावार्थ- जो व्यक्ति छोडकर समुदायकी उपासना करता है, अर्थात् जो वैयक्तिक उन्नतिको छोडकर सामुदायिक उन्नतिको अपना उद्देश्य बनाता है वह सदा ऐश्वर्य सम्पन्न और ज्ञानसे सम्पन्न होकर अपने शत्रुओंका नाश करता है । इस प्रकार वह धनके द्वारा सांसारिक सुखोंको प्राप्त करके अभ्युदय और निःश्रेयसके ज्ञानको प्राप्त करता है ॥१२॥

यह यज्ञ अपने सामर्थ्यसे यज्ञ करनेवालेके पुत्र अर्थात् कुटुम्बियोंकी रक्षा करता है, उनका पालन पोषण करता है । यज्ञ करनेसे घरकी हवा साफ रहनेसे उस घरके सदस्य स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं । यह यज्ञ सज्जनोंका पालक है, यज्ञोंमें केवल सज्जन ही जाते हैं । यह यज्ञ ही सब तरहके उत्तम कर्मोंका स्रोत है, इसीसे सब उत्तम कर्म निकलते हैं । पर इस यज्ञको वही आदमी कर सकता है, जो ज्ञानी है और प्रातः उठकर स्तुतियोंका उच्चारण करता है । जो अज्ञानी प्रातः देर तक सोता रहता है, वह इस यज्ञको नहीं कर सकता ॥१३॥

८० अग्निर्जागार तमृचः कामयन्ते—ऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १५ ॥

[४५]

[ऋषिः- सदापृण आत्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ९ पुरस्ताज्ज्योतिः ।

३८१ विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थै—रायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत् स्वर्गाद् वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १ ॥

३८२ वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादो—र्वाद् गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥ २ ॥

अर्थ- [३८०] (अग्निः जागार) अग्नि सदा जागता रहता है, अतः (ऋचः तं कामयन्ते) ऋचायें उसीको चाहती हैं । (अग्निः जागार) अग्नि जागता रहता है (तं उ सामानि यन्ति) उसीके पास साम जाते हैं । (अग्निः जागार) अग्नि सदा जागता रहता है, (यं अयं सोमः आह) उससे यह सोम कहता है, (अहं तव अस्मि) मैं तेरा हूं, (सख्ये नि ओकाः) तेरी मित्रतामें ही मेरा घर है ॥१५॥

[४५]

[३८१] (उक्थैः) स्तुतियोंसे प्रशंसित होकर (दिवः) द्युलोकसे (अद्रिं विस्यन्) वज्रको फेंका, तब (आयत्याः उषसः) आनेवाली उषाकी (अर्चिनः) किरणें (गुः) सर्वत्र फैल गई । (व्रजिनीः अप अवृत) रात दूर हो गई (स्वः उत् गात्) सूर्य उदय हुआ और उस (देवः) देवने (मानुषीः दुरः वि आवः) मनुष्योंके घरके दरवाजोंको खुला किया ॥१॥

[३८२] (अमतिं न) जिस तरह एक तरुणी सुन्दर रूप धारण करती है, उसी तरह (सूर्यः श्रियं वि सात्) सूर्य शोभाको धारण करता है । (गवां माता) प्रकाशकिरणोंकी माता उषा (जानती) सब कुछ देखती और जानती हुई (उर्वात्) विशाल अन्तरिक्षसे (आ गात्) उदय होती है । (धन्व-अर्णसः) वेगसे बहनेवाले पानियोंवाली नदियां (खाद-अर्णाः) किनारोंतक भरकर बहती हैं । तब (द्यौः) द्युलोक (सुमिता स्थूणा इव) अच्छी तरह नाप जोखकर बनाये गए खम्भेके समान (दृहत) दृढ हो गई है ॥२॥

भावार्थ- जो सदा जागता रहता है अर्थात् प्रयत्नशील रहता है उसको ज्ञान चाहते हैं । जो सदा प्रयत्नशील रहता है, उसीके पास साम भी जाते हैं, उसीके पास जाकर सोम अर्थात् उत्तम बुद्धि जाकर कहती है, कि मैं तेरी ही हूं और तेरी ही मित्रतामें मैं रहूंगी ॥१४॥

अग्नि अर्थात् ज्ञानी सदा जागता रहता है, वह हमेशा प्रयत्नशील रहता है, इसलिए उसे ज्ञान या विद्या भी चाहती है, उसीके पास साम जाते हैं, उसीके पास उत्तम बुद्धि सदा बनी रहती है ॥१५॥

स्तोत्रोंसे प्रशंसित होकर इन्द्रने द्युलोकसे वज्र अर्थात् अपने प्रकाशको पृथ्वीकी और चलाया, तब उदय होती हुई उषाकी किरणें सर्वत्र फैल गई । उषाके बाद सूर्य उदय हुआ और सूर्यके उदय होते ही सभी मनुष्योंके घरोंके दरवाजे खुल गए ॥१॥

जिस प्रकार कोई सुन्दरी तरुणी अपने सुन्दर रूपको धारण करती है, उसी तरह यह सूर्य उत्तम शोभाको धारण करता है । तब किरणोंको उत्पन्न करनेवाली उषा विशाल अन्तरिक्षसे उदय होती है । नदियां भी जलोंसे भरकर बहती हैं और सूर्यके उदय होने पर द्युलोक भी तेजस्वी होकर दृढ हो जाता है ॥२॥

३८३ अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौ—राविवासन्तो दसयन्त भूम ॥ ३ ॥

३८४ सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टै—रिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥ ४ ॥

३८५ एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामा—ऽयाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ ॥

३८६ एता धियं कृणवामा सखायो—ऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ६ ॥

अर्थ- [३८३] (अस्मा पूर्व्याय अक्थाय) इस प्राचीन मंत्र के कारण ही (महीनां जनुषे) भूमिको उत्पादक बनानेके लिए (पर्वतस्य गर्भः) मेघका गर्भरूप वृष्टिजल (वि जिहीत) गिरता है । (द्यौः च साधत) द्युलोक से वृष्टि होती है, तब (आ विवासन्तः) काम करनेवाले (भूम दसयन्त) और अधिक परिश्रम करने लग जाते हैं ॥३॥

[३८४] हे (इन्द्रा अग्नी) इन्द्र और अग्नि ! मैं तुम दोनोंको (देवजुष्टैः) देवोंके द्वारा सेवनीय (सूक्तेभिः वचोभिः) अच्छी तरहसे बोले गए वचनोंसे (अवसे हुवध्यै) अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ । (हि) क्योंकि (कवयः सुयज्ञाः आविवासन्तः मरुतः) ज्ञानी, उत्तम रीतिसे पूजनीय तथा तुम्हारी सेवा करनेवाले मरुद्गण भी तुम्हारी (यजन्ति) पूजा करते हैं ॥४॥

[३८५] हे देवो ! (अद्य) आज हमारे पास (नु एत) शीघ्र ही आओ । हम (सुध्यः भवाम) उत्तम कर्म करते हैं । हम (दुच्छुनाः वरीयः) शत्रुओंमेंसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीरोंको (मिनवाम) अच्छी तरह मारें । (सनुतः द्वेषांसि) छिपे हुए शत्रुओंको भी (आरे दधाम) दूर ही रखें । (प्र अञ्चः) आगे उन्नति करते हुए हम (यजमानं अच्छ अयाम) यज्ञ करनेवालेकी ओर सीधे जाएं ॥५॥

[३८६] हे (सखायः) मित्रो ! (एत) आओ । (या) जिस स्तुतिसे (माता) उषने (गोः व्रजं) किरण या प्रकाशके समूहको (ऋणुत) उत्पन्न किया, (यया) जिस स्तुतिकी सहायतासे (मनुः विशिशिप्रं जिगाय) मनुने विशिशिप्रको जीता, (यया) जिस स्तुतिकी सहायतासे (वणिक् वंकुः) वंकु वणिक् ने (पुरीषं आप) जल प्राप्त किया, उस (धियं कृणवाम) स्तुतिको हम करें ॥६॥

भावार्थ- पर्वत अर्थात् अनेक पर्तोंवाले मेघके अन्दर रहनेवाले जल भूमिकी उत्पादक शक्तिको बढाने के लिए बरसते हैं । पानी के बरसते ही परिश्रम करनेवाले मनुष्य अर्थात् कृषक आदि और अधिक परिश्रम करने लग जाते हैं ॥३॥

ज्ञानी, पूजाके योग्य मरुत् भी इन इन्द्र और अग्निकी पूजा करते हैं, अतः हम भी अपनी रक्षाके लिए उत्तम वचनोंसे इन देवोंकी स्तुति करें ॥४॥

उत्तम कर्म करनेवालेके पास देवगण शीघ्र ही जाते हैं । मनुष्यको चाहिए की वह स्पष्ट तथा छिपे हुए सभी शत्रुओंका नाश करके यज्ञ करनेवाले सज्जनकी रक्षा करे ॥५॥

स्तुतिसे प्रेरित होकर उषा प्रकाशके समूहको उत्पन्न करती है, जिस स्तुतिसे प्रेरित होकर सबके लिए मान्य इन्द्रने वृत्रको माता तथा जलकी इच्छा करनेवाले कंजूस और कुटिल मनुष्यने भी जल प्राप्त किया, उसी स्तुतिको हम किया करें ॥६॥

३८७ अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रि—रार्चन् येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद् विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७ ॥
३८८ विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥ ८ ॥
३८९ आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥ ९ ॥
३९० आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णो—ऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥ १० ॥

अर्थ- [३८७] (येन) जिस पत्थरसे सोम पीसकर (नवग्वाः) नवग्वोंने (दश मासः) दस महीने तक (आर्चन्) पूजा की, वही (अद्रिः) पत्थर (अत्र) इस यज्ञमें (हस्तयतः) हाथोंसे संयुक्त होकर (अनूनोत्) शब्द करता है । तब (ऋतं यती) यज्ञकी तरफ जाती हुई (सरमा) सरमाने (गाः अविन्दत्) स्तुतियोंको प्राप्त किया, तब (अंगिराः) अङ्गिराने (विश्वानि सत्या चकार) सभी बातोंको सत्य करके दिखाया ॥७॥

[३८८] (यत्) जब (विश्वे अंगिरसः) सभी अंगिरा (अस्याः माहिनायाः वि उषि) इस पूजनीय उषाके प्रकट होनेपर (गोभिः सं नवन्त) गायोंसे संयुक्त हुए, तब उन्होंने (आसां उत्सः) इन गायोंके दूधको (परमे सधस्थे) अत्यन्त उत्कृष्ट स्थानमें स्थापित किया । (सरमा) सरमाने (ऋतस्य पथा) ऋतके मार्गसे (गाः विदद्) स्तुति प्राप्त की ॥८॥

१ **सरमा ऋतस्य पथा गाः विदद्-** प्रगति कनरेवाली स्त्री ऋत अर्थात् सच्चे और नैतिक मार्गसे चलने पर ही लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है ।

२ **आसां उत्सः परमे सधस्थे-** अंगिरा ऋषियोंने इन गायोंके दूधको सर्वश्रेष्ठ स्थानमें स्थापित किया ।

[३८९] (सूर्यः) सूर्य (सप्ताश्वः) सातों घोडोंसे युक्त होकर (आयातु) आवे (यत्) क्योंकि (उर्विया क्षेत्रं) यह विशाल क्षेत्र (अस्य दीर्घयाथे) इस सूर्यके दीर्घ प्रवास के लिए ही है । (रघुः श्येनः) शीघ्रतासे जानेवाला तथा प्रशंसित गतिवाला यह सूर्य (अन्धः अच्छ पतयत्) हविकी तरफ सीधा जाता है, तथा (युवा कविः) यह तरुण तथा ज्ञानी सूर्य (गोषु गच्छन्) किरणोंके बीचमें रहकर (दीदयत्) प्रकाशित होता है ॥९॥

[३९०] (यत्) जब सूर्यने (हरितः वीतपृष्ठाः) तेजस्वी और कान्तिसे युक्त पीठवाले घोडोंको (अयुक्त) रथमें जोडा, तब (सूर्यः) सूर्य (शुक्रं अर्णः आ अरुहत्) तेजस्वी जलों पर चढ गया । तब लोग (उद्ना नावं न) जिस प्रकार जलमें डुबी हुई नावको जलसे बाहर निकालते हैं, उसी प्रकार (धीराः) विद्वानोंने उस सूर्यको बाहर (अनयन्त) निकाला, तब (आशृण्वतीः) उनकी स्तुति सुनकर (आपः) जल भी (अर्वाक् अतिष्ठन्) नीचेकी तरफ बहने लगे ॥१०॥

भावार्थ- नौ गायोंके स्वामी यजमानोंने दस मास तक कूट पीसकर उसका रस निकाल कर इन्द्रकी पूजा की । उतने समय तक उनके यज्ञमें स्तुतियां होती रहीं । इस प्रकार उनके यज्ञोंमें सभी बातें सत्य प्रमाणित हुई ॥७॥

उषाके प्रकट होने पर सभी ऋषियोंने गायोंके महत्वको जाना, और उन गायोंके दूधके महत्त्वको जानकर उस दूधको सर्वश्रेष्ठ बताया । इसी प्रकार एक प्रगति करनेवाली स्त्री भी उत्तम मार्गसे चलकर महत्त्व और लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है ॥८॥

इस सूर्यमें सात रंगकी किरणें होती हैं, ये सात रंगकी किरणें ही सूर्यके सात घोडे हैं । इन्हीं घोडों पर सवार होकर वह सूर्य द्युलोकके विस्तृत मार्गसे प्रवास करता है । जब यह ज्ञानी सूर्यकिरणोंके मध्यमें स्थित होता है, वह तब प्रकाशित होता है ॥९॥

३९१ धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन् दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥ ११ ॥

[४६]

[ऋषिः- प्रतिक्षत्र आत्रेयः । देवता- विश्वे देवाः; ७-८ देवपत्न्यः । । छन्दः- जगती; २,८ त्रिष्टुप् ।]

३९२ हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान् पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥ १ ॥

३९३ अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२ ॥

अर्थ- [३९१] हे देवो ! (यया) जिस बुद्धिसे (नवग्बम्मः) नवग्वोंने (दश मासः अतरन्) दस महीनोंमें समाप्त होनेवाला यज्ञ किया, उस (अप्सु) उत्तम कर्मोंमें लगनेवाली तथा (सु अर्षां) सभी उत्तम ऐश्वर्योंको देनेवाली (वः धियं) तुम्हारी बुद्धिको मैं (दधिषे) धारण करना चाहता हूँ । (अया धिया) इस उत्तम बुद्धि के कारण हम (देवगोपाः स्याम) देवोंसे सुरक्षित हों । और (अया धिया) इस बुद्धिकी सहायतासे हम (अंहः अति तुतुर्याम) पापोंसे दूर हो जाएं ॥११॥

[४६]

[३९२] (हयः न) घोडा जिस तरह रथके जुवेंमें जुड जाता है, उसी तरह (विद्वान्) एक विद्वान् मनुष्य (धूरि) यज्ञकी धुरामें (स्वयं अयुजि) स्वयं जुड जाता है । मैं भी (प्रतरणीं) संकटोंसे पार करनेवाली तथा (अवस्यवुं) रक्षण करनेवाली इस यज्ञकी धुराको (वहामि) धारण करता हूँ । (अस्याः) इस धुराको (न विमुचं वश्मि) न छोडना चाहता हूँ (नः पुनः आवृतं) और न धारण ही करना चाहता हूँ । (पुर एता) आगे आगे जाने वाला (विद्वान) विद्वान् ही मुझे (पथः) उत्तम मार्गसे (ऋजु नेषति) सरलतापूर्वक ले जाएगा ॥१॥

[३९३] (अग्ने इन्द्र वरुण मित्र मरुत उत विष्मो देवाः) हे अग्ने, इन्द्र, वरुण, मित्र, मरुत् और विष्णु आदि देवो ! मुझे (शर्धः प्र यन्त) बल प्रदान करो । (उभा नासत्या) दोनों अश्विनीकुमार (रुद्रः पूषा भगः अध ग्नाः सरस्वती) रुद्र, पूषा, भग और उनकी शक्तियां तथा सरस्वती मेरी प्रार्थना (जुषन्त) सुनें ॥२॥

भावार्थ- जब सूर्यने अपनी सतरंगी किरणोंसे जलको खींच कर बादल बनाया, तो बादलोंने उसे ढक दिया, इस प्रकार वह जलसे भरे बादलोके ऊपर जाकर मानों वह उन पर सवार ही हो गया, तब उन बादलोंसे बुद्धिशाली देवोंने उस सूर्यको बाहर निकाला, तब उस सूर्यके चमकने पर बादल भी छिन्न भिन्न हो गए और वृष्टिका जल भी पृथ्वीकी तरफ गिरने लगा ॥१०॥

देवोंकी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करके ही यज्ञ पूरे होते हैं । देवोंकी वह उत्तम बुद्धि उत्तम कर्मोंमें ही लगनेवाली तथा ऐश्वर्योंको देनेवाली है । इस बुद्धिको धारण करने से हम देवोंके द्वारा सुरक्षित हों और उनसे सुरक्षित होकर हम पापोंसे दूर रहें ॥११॥

जिस प्रकार एक विद्वान् यज्ञकर्म करनेमें प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार एक साधारण मनुष्य भी यज्ञ कर्म करता है, पर एक बार यज्ञकर्म शुरु कर देने पर उसकी क्रियाओंसे अभिज्ञ होनेके कारण वह साधारण मनुष्य न उस यज्ञको पूरी तरह समाप्त ही कर पाता है और न उसे बीचमें ही छोड पाता है । ऐसे संकटके समय विद्वान् ज्ञाता मनुष्य ही उसे सरल मार्गसे ले जाकर उसकी रक्षा करता है ॥१॥

अश्विनीकुमार, रुद्र आदि देव हमारी प्रार्थना सुनें तथा अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देव हमें बल प्रदान करें ॥२॥

३९४ इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥ ३ ॥
३९५ उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनो-त त्वष्टोत विभ्वानुमंसते ॥ ४ ॥
३९६ उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद् दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद् वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५ ॥
३९७ उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्यस्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गम-दुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥ ६ ॥

अर्थ- [३९४] मैं (ऊतये) अपनी रक्षाके लिए (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र, अग्नि (**मित्रावरुणा**) मित्र, वरुण (**अदितिं स्वः**) अदिति आदित्य (**पृथिवीं द्यां मरुतः**) पृथिवी द्युलोक, मरुत् (**पर्वतान् अपः**) पर्वत, जल (**विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं**) विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, (**भगं**) भग और (**नु शंसं सवितारं**) निश्चयसे प्रशंसाके योग्य सविता इन सभी देवोंको (**हुवे**) बुलाता हूँ ॥३॥

[३९५] (**उत विष्णुः नः**) और विष्णु हमारे लिए (**उतः अस्त्रिधः वातः**) और अहिंसनीय वायु देव (**उत द्रविणोदाः सोमः**) और धनको देनेवाला सोम (**मयस्करत्**) हमें सुख प्रदान करे । (**उत ऋभवः**) और ऋभुगण (**उत अश्विना**) और अश्विदेव (**उत त्वष्टा**) और त्वष्टा (**उत विभ्वा**) और विभ्वा (**नः राये अनुमंसते**) हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए स्वीकृति दें ॥४॥

[३९६] (**उत**) और (**त्यत् दिविक्षयं यजतं**) वह द्युलोकमें रहनेवाले तथा पूज्य (**मारुतं शर्धः**) मरुतोंका दल (**नः बर्हिः आसदे**) हमारे यज्ञमें बैठनेके लिए (**आ गमत्**) आवे । (**बृहस्पतिः**) बृहस्पति (**नः**) हमें (**वरूथ्यं शर्म**) घरमें मिलनेवाले सभी सुख (**नः यमत्**) हमें प्रदान करे । (**उत**) और (**पूषा वरुण मित्र अर्यमा**) पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा भी हमें सुख दें ॥५॥

[३९७] (**उत**) और (**त्ये सुशस्तयः पर्वतासः**) वे प्रशंसाके योग्य पर्वत तथा (**सुदीतयः नद्यः**) उत्तम तेजस्वी नदियां (**नः त्रामणे भुवन्**) हमारी रक्षा के लिए तत्पर रहें । (**विभक्ता भगः**) धनोंका विभाग करनेवाला भग देवता अपने (**शवसा अवसा**) बल और संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास (**आगमत्**) आवे तथा (**उरुव्यचाः अदितिः**) विशाल तेजवाली अदिति देवी (**मे हवं श्रोतु**) मेरी प्रार्थना सुने ॥६॥

भावार्थ- मैं अपनी रक्षाके लिए शक्तिशाली, ज्ञानी, मित्रके समान हितकारी, सबके द्वारा वरणीय, अहिंसनीय, प्रकाशस्वरूप, विस्तृत, द्युलोकके समान तेजस्वी, व्यापक, पोषण, ज्ञानके स्वामी, ऐश्वर्यशाली और सबको उत्पन्न करनेवाले परमात्माको बुलाता हूँ ॥३॥

विष्णु, अहिंसक वायु, सोम, ऋभु, अश्विनौ, त्वष्टा और विभ्वा आदि देव हमें सुख प्रदान करें और ऐश्वर्यशाली बनायें ॥४॥

द्युलोकमें रहनेवाला वह पूज्य मरुतोंका बल हमारे यज्ञमें बैठने के लिए हमारे पास आवे । बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा आदि देव भी हमें घरमें मिलनेवाले सभी सुख प्रदान करें ॥५॥

वे प्रशंसाके योग्य पर्वत तथा तेजसे भरी हुई नदियां हमारी रक्षा करनेके लिए सदा तत्पर रहें । धनोंका विभाग करनेवाला भग देवता अपने बल और संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आवे तथा अदिति हमारी प्रार्थना सुने ॥६॥

३९८ देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥ ७ ॥

३९९ उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ ८ ॥

[४७]

[ऋषिः- प्रतिरथ आत्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

४०० प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १ ॥

अर्थ- [३९८] (देवानां पत्नीः) देवोंकी पालक शक्तियां (उशतीः) अपनी इच्छासे या स्वयं प्रेरित होकर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें, तथा (तुजये वाजसातये) पुत्रकी तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए (नः प्र अवन्तु) हमारी रक्षा करें । (याः) जो देवियां (पार्थिवासः) पृथ्वीपर स्थित हैं, (याः) जो (अपां व्रते अपि) जलोंके स्थान अन्तरिक्ष या द्युलोकमें रहती हैं, (ताः देवीः) वे देवियां (सुहवाः) हमारे द्वारा अच्छी तरह बुलाई जाकर (शर्म यच्छत्) हमें सुख प्रदान करें ॥७॥

[३९९] (उत) उसी तरह (ग्नाः) दिव्य स्त्रियां तथा (देवपत्नीः) देवोंकी पालक शक्तियां अर्थात् (इन्द्राणी अग्नायी) इन्द्र की शक्ति, अग्निकी शक्ति तथा (राट् अश्विनी) तेजसे प्रदीप्त होनेवाली अश्विनीकुमारोंकी पत्नियां (वि अन्तु) हमारी रक्षा करें तथा (देवी: रोदसी वरुणानी) दिव्य गुणोंसे युक्त रोदसी और वरुणकी शक्तियां (आ वि अन्तु) चारों ओर से हमारी रक्षा करें, तथा (जनीनां यः ऋतुः) सबको उत्पन्न करनेवाली इन शक्तियोंका जो काल है, वह (श्रृणोतु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥८॥

[४७]

[४००] (ब्रुवाणाः) प्रशंसित (मही माता) विस्तृत, सबको उत्पन्न करनेवाली यह उषा (दुहितुः बोधयन्ती) अपनी पुत्री पृथ्वीको जगाती हुई तथा (प्रयुंजती) लोगोंको अपने-अपने कामोंमें लगाती हुई (देवः एति) द्युलोकसे प्रकाशित होती है । (आ विवासन्ती) सबकी सेवा करती हुई यह (युवतिः) तरुणी उषा (मनीषा जोहुवाना) उत्तम बुद्धिपूर्वक बुलाई जाती हुई (सदने) घरमें अपने (पितृभ्यः आ) पालक देवोंके साथ आती है ॥१॥

भावार्थ- देवोंका पालन करनेवाली उनकी शक्तियां स्वयं अपनी इच्छासे प्रेरित होकर पुत्र और अन्नकी प्राप्ति के लिए हमारी रक्षा करे, तथा पृथ्वी पर तथा अन्तरिक्ष एवं द्युलोकमें रहनेवाली जो देवियां हैं, वे हमारे द्वारा अच्छी तरह बुलाई जाकर हमें सुख प्रदान करें ॥७॥

देवोंका पालन करनेवाली उनकी शक्तियां अर्थात् इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारोंकी शक्तियां हमारी रक्षा करें तथा दिव्य गुणोंसे युक्त रोदसी और वरुणकी शक्तियां हमारी रक्षा करें ॥८॥

सबके द्वारा प्रशंसित तथा सबको उत्पन्न करनेवाली यह उषा पृथ्वी पर अपना प्रकाश फैलाती हुई तथा लोगोंको अपना काम करनेके लिए प्रेरित करती हुई द्युलोक से प्रकाशित होती है । प्रातःकालके समय हर घरमें उषाका प्रकाश फैलते ही सभी देव प्रविष्ट हो जाते हैं ॥१॥

४०१ अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥ २ ॥
४०२ उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ३ ॥
४०१ चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥ ४ ॥
४०४ इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥ ५ ॥

अर्थ- [४०१] (अजिरासः) सदा गति करनेवाली (अपः ईयमानाः) कर्मोंको प्रवृत्त करती हुई (अमृतस्य नाभिं आतस्थिवांसः) अमृत अर्थात् सूर्यकी नाभिमें स्थित (अनन्तासः) अनन्त (उरवः) विशाल तथा (पन्थाः) सदा चलनेवाली किरणें (द्यावापृथिवी विश्वतः परि यन्ति) द्यु और पृथ्वीके चारों ओर घूमती है ॥२॥

[४०२] (उक्षा) जलसे सिंचन करनेवाला तथा (समुद्रः) जलका भण्डार (अरुषः सुवर्णः) तेजस्वी तथा तेजस्वी किरणोंवाला यह सूर्य अपने (पितुः) पालक आकाशके (पूर्वस्य योनिं) पूर्व स्थानमें (आ विवेश) प्रविष्ट हो गया है । (पृश्निः अश्मा) अनेक रंगोंवाली उल्काके समान यह सूर्य (दिवः मध्ये निहितः) आकाशके बीचमें स्थापित किया गया है । वह आकाशमें (वि चक्रमे) घूमता है और (रजसः अन्तौ पाति) द्युलोकके दोनों अन्तिम भागोंकी रक्षा करता है ॥३॥

[४०३] (चत्वारः) चार मुख्य दिशायें (क्षेमयन्तः) अपने कल्याणकी इच्छा करती हुई (ईं बिभ्रति) इस सूर्यको धारण करती हैं । (दशः) दस दिशायें (गर्भं) गर्भरूपमें स्थित इस सूर्यको (चरसे) चलने फिरनेके लिए (धापयन्ते) परिपुष्ट करती हैं । (अस्यः) इस सूर्यकी (त्रिधातवः परमाः गावः) तीनों लोकोंको धारण करनेवाली उत्कृष्ट किरणें (सद्यः) उदय होनेके बाद ही (दिवः अन्तान् परि चरन्ति) द्युलोकके अन्तिम भागोंमें घूमने लगती हैं ॥४॥

[४०४] (यत् नद्यः चरन्ति) जिसके कारण नदियां बहती हैं, और (आप तस्थुः) जल स्थिर* रहते हैं, उस सूर्यका (इदं वपुः) यह शरीर, हे (जनासः) मनुष्यो ! (निवचनं) स्तुतिके योग्य है । (मातुः इहेह जाते) माताके गर्भसे यहीं उत्पन्न हुए (ईं) इस सूर्यको (यम्या) संसारका नियमन करनेवाले तथा (सबन्धू) भाईकी तरह रहनेवाले (द्वे) दो लोक (बिभृतः) धारण करते हैं ॥५॥

भावार्थ- सूर्यकी ये किरणें हमेशा गति करनेवालीं तथा सबेरे होनेके साथ ही लोगोंको अपने अपने कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाली, अमृतरूप सूर्यकी नाभिमें रहनेवाली हैं । ये किरणें द्युलोक और पृथ्वीके चारों ओर घूमती हैं ॥२॥

यह सूर्य जलोंको खींचकर इकट्ठा करता रहता है, और फिर उन जलोंसे पृथ्वीको सींचता है । यह रोज अपने पिता द्युलोककी पूर्वदिशामें प्रकट होता है । द्युलोकके बीचमें रहकर यह उसी प्रकार चमकता है कि मानों यह कोई अनेक रंगोंवाली उल्का हो । यह रोज द्युलोकके पूर्व और पश्चिम इन दो टोकोंको नापता हुआ उनकी रक्षा करता है ॥३॥

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये चार मुख्य दिशायें अपने कल्याणकी इच्छा करती हुई इस -सूर्यको धारण करती हैं । यह सूर्य पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ऊर्ध्व और अधः इन दसों दिशाओंके बीचमें गर्भके समान रहता है । ये दिशायें ही इस सूर्यको चलने फिरने के लिए धारण करती हैं । इस सूर्यकी किरणें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों लोगोंको धारण करती हैं । सूर्यके उदय होते ही ये किरणें द्युलोकके सभी छोरों पर पहुंच जाती हैं ॥४॥

४०५ वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥ ६ ॥

४०६ तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ७ ॥

[४८]

[ऋषिः- प्रतिभानुरात्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- जगती ।]

४०७ कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १ ॥

अर्थ- [४०५] जिस प्रकार (**मातरः पुत्राय वस्त्रा वयन्ति**) मातायें अपने अपने पुत्र के लिए कपडा बुनती हैं, उसी तरह (**अस्मा**) इस सूर्यके लिए (**धियः अपांसि**) स्तुतियां और यज्ञादि कर्म (**वि तन्वते**) किए जाते हैं। (**वृषणः उपप्रक्षे**) इस बलवान् सूर्यके प्रकट होते ही इसकी (**वध्वः**) पत्नीरूप किरणें (**मोदमानाः**) प्रसन्न होती हुई (**दिवस्पथा**) द्युलोकके मार्गसे (**अच्छ यन्ति**) चारों और फैल जाती है ॥६॥

[४०६] हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! (**अस्मभ्यं शं योः**) हमारे सुखप्राति एवं दुःखनिवृत्तिके लिए (**तत् इदं शस्तं अस्तु**) वह यह स्तुति हो। हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**इदं शस्तं अस्तु**) यह स्तुति तेरे लिए हो । हम (**गाधं उत प्रतिष्ठा अशीमहि**) उत्तम स्थान और उत्तम प्रतिष्ठाको प्राप्त करें । (**बृहते सादनाय**) संसारके लिए सबसे बडे आश्रय स्थान (**दिवे**) उस द्युलोकको (**नमः**) नमस्कार हो ॥७॥

[४८]

[४०७] (**वयं**) हम (**स्वक्षत्राय स्वयशसे**) अपने बल तथा अपने यशकी प्राप्तिके लिए (**प्रियाय महे धाम्ने**) सबको प्रिय लगनेवाले उस महान् तेजके लिए (**कत् उ मनामहे**) किस तरहकी स्तुति करें ? (**यत्**) क्योंकि (**मायिनी**) मायासे युक्त वह (**आमेन्यस्य रजसः वृणाना**) अपरिमित अन्तरिक्षको चारों ओरसे घेरकर (**अभ्रे अपां वि तनोति**) बादलोंमें पानीको फैलाती है ॥१॥

भावार्थ- इसी सूर्यके कारण नदियां बहती है और अन्तरिक्षमें जल स्थिर रहते हैं इस सूर्यका मण्डल बहुत ही दर्शनीय और स्तुतिके योग्य होता है । यह जब आकाशके गर्भसे उत्पन्न होता है, तब इसे संसारका नियमन करनेवाले तथा बन्धुओंकी तरह परस्पर प्रेमसे रहनेवाले दो लोक धारण करते हैं ॥५॥

जिस तरह मातायें अपने अपने पुत्रोंके लिए स्नेहपूर्वक कपडा बुनती हैं, उसी तरह इस सूर्यके लिए लोग प्रेमसे स्तुति और यज्ञ आदि कर्म करते हैं । जैसे ही यह बलवान् सूर्य प्रकट होता है, उसी समय उस सूर्यकी पत्नीरूप किरणें प्रसन्न होती हुई द्युलोकके मार्गसे चारों ओर फैल जाती है ॥६॥

हम सुखप्राप्ति तथा रोगनिवृत्तिके लिए मित्र, वरुण तथा अग्निकी स्तुति करते हैं । इनकी स्तुति करके हम उत्तम स्थान और उत्तम प्रतिष्ठाको प्राप्त हों । जो संसारका सबसे बडा आश्रय-स्थान है, उस द्युलोकको हम नमस्कार करते हैं ॥७॥

माया करनेवाली यह बिजली अपरिमित अन्तरिक्षको चारों ओरसे घेरती है और बादलोंमें पानीको फैलाती है । ऐसी बिजलीकी हम किस तरह स्तुति करें कि जिससे हम बल और यशको प्राप्त कर सकें ॥१॥

४०८ ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २ ॥
४०९ आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभि- र्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन् स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥ ३ ॥
४१० तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्य- नीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥ ४ ॥
४११ स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ- [४०८] (ताः) उन उषाओंने (वीरवक्षणं वयुनं अत्नत) वीरोंके उत्साहको बढानेवाले कर्मका विस्तार किया तथा (समान्या वृतया) एक समान आचरणसे (विश्वं रजः आ) सारे लोकोंको घेर लिया । (देवयुः जनः) देव बननेकी इच्छावाले मनुष्य, जब (अपराः अपाचीः अप ईजते) एक उषा पश्चिमकी ओर मुख करके दूर चली जाती है, तब अपने (अपः) कर्मोंको (पूर्वाभिः प्रतिरते) आगे आनेवाली उषाओंमें फैलाते हैं ॥२॥

[४०९] (यस्य शतं वा) जिस इन्द्र अर्थात् सूर्यकी सैंकडों किरणें (संवर्तयन्तः) प्राणियोंकी आयुको कम करती हुई (च) तथा (अहा विवर्तयन्) दिनोंके चक्रको घुमाती हुई (स्वे दमे प्रचरन्) अपने घर अर्थात् द्युलोक में घूमती रहती हैं, वह इन्द्र (अहन्येभिः अक्तुभिः) दिन और रात बराबर (ग्रावभिः) पत्थरोंसे कूटकर पीसे गए सोमसे उत्साहित होकर (मायिनि) माया करनेवाले वृत्रके ऊपर (वरिष्ठं वज्रं आ जिघर्ति) अपने श्रेष्ठ वज्रको फेंकता है ॥३॥

[४१०] (परशोः इवः) परशुके समान तीक्ष्ण (अस्य) इस अग्निके (तां रीतिं) उस स्वभावको जानता हूँ । (वर्पस्य अस्य) सुन्दर रूपवाले इस अग्निका (अनीकं) किरण समूह (भुजे) ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए है, यह मैं (प्रति अख्यं) स्पष्ट करता हूँ । (यत्) क्योंकि यह अग्नि (सचा) सहायक होकर (पितुमन्तं क्षयं इव) पालकसे युक्त घरके समान (भरहूतये) संग्राममें (विशे रत्नं दधाति) वीर मनुष्यको रत्न प्रदान करता है ॥४॥

[४११] (चतुरनीकः) चारों ओर ज्वालाओंको फैलानेवाला, (चारु वसानः) सुन्दर तेजको धारण करनेवाला (वरुणः) वरणीय (अरिं यतन्) शत्रुको मारनेवाला (सः) वह अग्नि (जिह्वया ऋंजते) जीभ या ज्वालाओंसे स्वयंको सुशोभित करता है । (यतः) जिस कारण (भगः सविता) ऐश्वर्यवान् तथा सबको प्रेरणा देनेवाला यह अग्नि (वार्यं दाति) वरणीय धनोंका देता है, इसलिए (वयं) हम (तस्य) उस अग्निके (पुरुषत्वता) पराकमका पार (न विद्म) नहीं पा सकते ॥५॥

भावार्थ- ये उषायें जब प्रकट होती हैं तब इनमें एक तरहकी स्फूर्ति होती है, जो वीरोंके उत्साहको बढाती है और उदय होनेके साथ ही यह अपनी प्रकाश किरणोंसे सब लोकोंको घेर लेती हैं, तब देवोंकी पूजा के लिए यज्ञ करनेवाले मनुष्य यज्ञ शुरु करते हैं, पर जब पहली उषा अस्त हो जाती है और उनका यज्ञ कर्म समाप्त नहीं होता, तब आगे आनेवाली उषाओंमें उन्हीं अधूरे यज्ञकर्मोंको फिर आगे बढाते हैं ॥२॥

इस इन्द्र रूपी सूर्यकी किरणें प्रति दिन आकर एक एक दिन प्राणियों की आयुको कम करती है और दिन रात के चक्को घूमाती हुई अपने घर द्युलोकमें घूमती रहती हैं । इन्द्र भी दिन रात लगातार कूटे गए सोमरसोंको पीकर माया करनेवाले वृत्रके उपर अपना श्रेष्ठ वज्र फेंकता है ॥३॥

इस अग्निका स्वभाव फरसेके समान तीक्ष्ण है, अर्थात् जो भी पदार्थ फरसेके निकट आता है, उसे यह काट देता है, उसी तरह जो भी पदार्थ पासमें आता है, उसे यह अग्नि जला डालता है । इस अग्निका यह किरण समूह सबको ऐश्वर्य दान करता है, क्योंकि यह वीर मनुष्यका सहायक होकर उसे उसी तरह रत्न आदि प्रदान करता है कि जिस प्रकार एक पालक अपने घरमें रहनेवाले सदस्योंको अन्नादि प्रदान करता है ॥४॥

[४९]

[ऋषिः- प्रतिप्रभ आत्रेयः, (५ तृणपाणिः) । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४१२ देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥ १ ॥
४१३ प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान् त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजान-ञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २ ॥
४१४ अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्नि-रहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥ ३ ॥

---

[४९]

अर्थ- [३१२] (**आयोः भगं च रत्नं विभजन्तं**) मनुष्यको ऐश्वर्य और रत्न देनेवाले (**सवितारं देवं**) सबके प्रेरक देवको (**अद्यः वः एषे**) आज तुम्हारे हितके लिए बुलाता हूँ । हे (**नरा पुरुभुजा अश्विना**) नेताओ तथा अनेक तरहसे भोग्य पदार्थोंको देनेवाले अश्विनी देवो ! मैं तुमसे (**सखीयन्**) मित्रताकी इच्छा करते हुए (**वां**) तुम दोनोंको (**दिवे दिवे आ ववृत्यां**) प्रति दिन अपनी ओर बुलाता हूँ ॥१॥

[४१३] हे मनुष्य ! (**असुरस्य प्रति प्रयाणं विद्वान्**) उस प्राणदाता सूर्यके उदयको जानकर (**सु उक्तैः**) उत्तम वचनोंसे (**सवितारं देवं**) सविता देवकी (**दुवस्य**) स्तुति कर । (**आयोः**) मनुष्यको (**ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तं**) श्रेष्ठ रत्न देनेवाले उस देवको (**विजानन्**) जानकर (**नमसा उप ब्रुवीत**) नम्रतापूर्वक उसकी स्तुति कर ॥२॥

[४१४] (**पूषा भगः अदितिः**) पूषा, भग और अदिति ये देव अपने अपने (**अदत्रया वार्याणि**) खाने योग्य और ग्रहण करने योग्य हवियोंको (**दयते**) खाते हैं । तथा (**इन्द्रः विष्णुः वरुणः मित्रः अग्निः**) इन्द्र, विष्णु, वरुण, मित्र और अग्नि ये पांचों (**दस्माः**) सुन्दर देव (**भद्रा अहानि जनयन्त**) कल्याणकारी दिनोंको उत्पन्न करते हैं ॥३॥

भावार्थ- वह अग्नि जब प्रज्वलित होता है, तब उसकी ज्वालायें चारों दिशाओंमें फैलने लगती हैं, उसका रूप सुन्दर हो जाता है, और अन्धकाररूप अपने शत्रुको नष्ट कर देता है । यह अपने भक्तोंको सदा ही धन देता रहता है अतः इसके पास कितना धन है और कितना पराक्रम है, यह जानना संभव नहीं ॥५॥

सबको प्रेरणा देनेवाला देव मनुष्य ऐश्वर्य और रत्न देता है । ऐसे सविता देवको मैं आज बुलाता हूँ । हे अनेक तरहके भोग्य पदार्थ देनेवाले अश्विनी देवो ! मैं तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ, इसीलिए मैं तुम्हें अपनी ओर बुलाता हूँ ॥१॥

यह सूर्य उदय होनेके साथ ही सभी जगत्में प्राणोंका संचार करता है । सूर्यकी किरणोंके द्वारा द्युलोक स्थित उत्तम प्राण इस पृथ्वी पर आता है । यह सर्वप्रेरक देव मनुष्योंको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है । इसलिए उस देवकी नम्रता पूर्वक स्तुति करनी चाहिए ॥२॥

पूषा, भग और अदिति ये देव अपने अपने खाने योग्य हवियों को खाते हैं और सुन्दर तथा दर्शनीय इन्द्र, विष्णु वरुण आदि देव कल्याणकारी दिनोंको उत्पन्न करते हैं ॥३॥

४१५ तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत् सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद् वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥ ४ ॥
४१६ प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दु-र्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ ॥

[५०]

[ऋषिः- स्वस्त्यात्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।]

४१७ विश्वो देवस्य नेतु-र्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १ ॥
४१८ ते ते देव नेत-र्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्यापृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥ २ ॥

अर्थ- [४१५] (यत्) जिस कारण (अध्वरस्य होता) इस यज्ञका होता मैं (उप वोचे) स्तुति करता हूँ, इस लिए (अनर्वा सविता) अपराजित सविता देव (नः) हमें (तत् वरूथं) वह संग्रहणीय धन देवे तथा (इषयन्तः सिन्धवः) बहनेवाली नदियां (तत् अनु ग्मन्) उस धनको प्रदान करें । हम (वाजरत्नाः) बल और रत्नोंके स्वामी बनकर (रायः पतयः स्याम) ऐश्वर्योंके स्वामी बनें ॥४॥

[४१६] (ये वसुभ्यः नमः ईवत्) जो वसुओंकी हवि देते हैं (ये मित्रे वरुणे) जो मित्र और वरुणके लिए (सूक्तवाचः दुः) उत्तम स्तुतियों प्रदान करते हैं, उन्हें (अभ्वं) बहुत सारा धन (अव एतु) प्राप्त हो। हे देवो ! उनके लिए (वरीयः कृणुत) श्रेष्ठ सुख प्रदान करो । हम (दिवः पृथिव्योः) द्युलोक और पृथिवी लोकके (अवसा) संरक्षणमें रहकर (मदेम) आनन्दित हों ॥५॥

[५०]

[४१७] (विश्वः मर्तः) सभी मनुष्य (नेतुः देवस्य) सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले देवकी (सख्यं वुरीत्) मित्रताको स्वीकार करते हैं । (विश्वः) वे सभी मनुष्य (पुष्यसे) पुष्टिके लिए (द्युम्नं वृणीत) तेजको प्राप्त करते हैं और (राये इषुध्यति) ऐश्वर्यके स्वामी बनते हैं ॥१॥

[४१८] हे (नेतः देव) नेता देव ! (ये) जो मनुष्य (ते) तेरी (च इमान्) और इन अन्य देवोंकी (अनुशसे) उपासना करते हैं, (ते ते) वे भी तेरे ही हैं (ते राया आपृचे) वे धनसे संयुक्त हों तथा (ते) वे हम भी (सचथ्यैः सचेमहि) सभी कामनाओंसे संयुक्त हों ॥२॥

भावार्थ- इस यज्ञको करनेवाला मैं देवोंकी स्तुति करता हूँ । अतः किसीसे भी पराजित या तिरस्कृत न होनेवाला सविता तथा बहनेवाली नदियां हमें धन प्रदान करें और हम भी बल और रत्नोंसे युक्त होकर धनके स्वामी बनें ॥४॥

जो सबको बरसानेवाले देवोंको हवि देते हैं तथा मित्र और वरुणकी उत्तम स्तुति करते हैं, उन्हें बहुत सारा धन मिलता है और उस धनसे उन्हें सुख मिलता है और द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके संरक्षणमें रहकर वे आनन्दित होते हैं ॥५॥

सभी मनुष्य सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले देवकी मित्रता स्वीकार करके अपनी पुष्टिके लिए तेज प्राप्त करते हैं और फिर धनोंके स्वामी बनते हैं ॥१॥

हे देव ! जो तेरी या अन्य देवोंकी उपासना करते हैं, वे सभी मनुष्य तेरे अपने ही हैं । वे सभी मनुष्य धनसे संयुक्त हो और हमारी भी सभी कामनायें पूरी हों ॥२॥

४१९ अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३ ॥
४२० यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्यो ऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥
४२१ एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥ ५ ॥

[५१]

[ऋषिः- स्वस्त्यात्रेयः । देवता- विश्वे देवाः; ४, ६-७ इन्द्रवायू, ५ वायुः । छन्दः- १-४ गायत्री, ५-१० उष्णिक्; ११-१३ जगती त्रिष्टुब्वा। १४-१५ अनुष्टुप् ।]

४२२ अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥

अर्थ- [४१९] (नः अतः) हमारे इस यज्ञमें (**अतिथीन्**) अतिथिके समान पूज्य (**नॄन्**) विद्वान् मनुष्योंकी (आ) पूजा करो (अतः) इस यज्ञमें (**पत्नीः दशस्यत**) उन विद्वानोंकी पत्नियोंकी भी पूजा करो । (**यूयुविः**) वह विघ्न विनाशक (**विश्वं पथेष्ठां**) सभी मार्गोंमें आनेवाले विघ्नोंको तथा (**द्विषः**) शत्रुओंको (**आरे युयोतु**) दूर ही करे ॥३॥

१ **अतः अतिथीन् नॄन् पत्नीः दशस्यत**- यज्ञमें अतिथियोंकी, विद्वानोंकी और उनकी पत्नियोंकी सेवा करनी चाहिए ।

[४२०] (**यत्र वह्निः अभि हितः**) जहां अग्नि स्थापित किया गया है, और (**द्रोण्यः पशुः**) द्रोणी अर्थात् कलशमें रखा हुआ सोमरूपी पशु (**दुद्रवत्**) दौडता है । वहां (**नृमणाः**) मनुष्योंके मन उत्साहपूर्ण और (**वीरपस्त्यः**) घर वीर पुत्रपौत्रादियोंसे भर जाते हैं, तथा (**अर्णा**) समृद्धि भी (**धीरा इव**) तरुणीके समान (**सनिता**) विशेष हो जाती है ॥४॥

[४२१] हे (**देव नेतः**) दिव्य गुणोंसे युक्त तथा सन्मार्ग पर ले जानेवाले देव ! (**ते एषः रथपतिः**) तेरा यह रथका स्वामी सारथि (**शं रयिः**) सुखको देनेवाला तथा ऐश्वर्य प्रदाता है । (**इषः स्तुतः**) सबके प्रेरक देवकी स्तुति करनेवाले हम (**शं राये**) कल्याणकारी धनके लिए तथा (**शं स्वस्तये**) सुखकारी कल्याणके लिए (**मनामहे**) स्तुति करते हैं । (**देवस्तुतः**) देवोंकी स्तुति करनेवाले हम सविताकी बार बार स्तुति करते हैं ॥५॥

[५१]

[४२२] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**हव्यदातये**) हवि देनेवाले यजमानके पास (**सुतस्य पीतये**) सोमरसको पीनेके लिए (**विश्वैः ऊमेभिः देवेभिः**) सभी संरक्षक देवोंके साथ (**आ गहि**) आ ॥१॥

भावार्थ- यज्ञमें अतिथियोंकी, विद्वानोंकी तथा उनकी पत्नियोंकी पूजा एवं सेवा करनी चाहिए । ऐसे विद्वान् मनुष्योंकी सेवा मार्गोंमें आनेवाले सभी विघ्नोंको दूर करनेवाली है और सभी शत्रुओंको नष्ट करनेवाली है ॥३॥

जहां यज्ञवेदिमें अग्नि स्थापित की जाती है तथा कलशका सोम बहने लगता है, उस स्थान पर मनुष्योंके मन उत्साहसे पूर्ण हो जाते हैं, घर पुत्रपौत्रोंसे भर जाते हैं और उस घरकी समृद्धि ऐसी हो जाती है कि जैसे कोई तरुणी समृद्धिसे भरपूर होती है ॥४॥

दिव्य गुणोंवाले देवका सारथि हमें सुख एवं धन प्रदान करे । हम भी सुख एवं कल्याणकी प्राप्तिके लिए देवोंकी और सविताकी स्तुति करें ॥५॥

हे अग्ने ! तू यजमानके पास सोम पीनेके लिए आ और अपने साथ हमारी रक्षा करनेवाले देवोंको भी ले आ ॥१॥

४२३ ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥
४२४ विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥
४२५ अयं सोमश्चमू सुतो ऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥
४२६ वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥
४२७ इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥
४२८ सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥
४२९ सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः । आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ ८ ॥

अर्थ- [४२३] (**ऋतधीतयः**) हे ऋत अर्थात् नियमोंके अनुसार बुद्धिवाले देवो ! तुम (**अध्वरं आ गत**) यज्ञमें आओ। हे (**सत्य धर्माणः**) सत्यको धारण करनेवाले देवो ! तुम हवि आदिको (**अग्नेः जिह्वया पिबत**) अग्निकी ज्वालाओंके द्वारा पीओ ॥२॥

[४२४] हे (**सन्त्य विप्र**) सेवाके योग्य विद्वान् अग्ने ! तू (**प्रातः यावभिः**) प्रातःकाल दौडनेवाले घोडोंसे (**विप्रेभिः देवेभिः**) ज्ञानी और देवोंके साथ (**सोमपीतये आ गहि**) सोमको पीनेके लिए आ ॥३॥

[४२५] (**चमू सुतः**) पत्थरों पर कूटकर निचोडा गया सोम (**अमत्रे परिषिच्यते**) पात्रोंमें छाना जाता है। यह (**इन्द्राय वायवे प्रियः**) इन्द्र और वायुके लिए प्रिय है ॥४॥

[४२६] हे (**वायो**) वायो ! (**वीतये**) सोम पीनेके लिए तथा (**हव्यदातये**) हवि देनेवाले यजमानके लिए (**जुषाणः**) प्रसन्न होता हुआ तू (**प्रयः अभि आ याहि**) अन्नकी ओर आ और (**सुतस्य अन्धसः पिब**) निचोडे हुए अन्नरूप सोमको पी ॥५॥

[४२७] हे (**वायो**) वायु ! तू (**इन्द्रः च**) और इन्द्र दोनों (**एषां सुतानां**) इन निचोडे गए सोमरसोंको (**पीतिं अर्हथः**) पीने योग्य हो । अतः तुम (**प्रयः अभि**) इस अन्नकी ओर आओ और (**अरेपसा**) अहिंसक होकर तुम दोनों (**तान् जुषेथां**) उन सोमरसोंको पीओ ॥६॥

[४२८] (**इन्द्राय वायवे**) इन्द्र और वायुके लिए (**दध्यशिरः सोमासः सुताः**) दहीसे मिश्रित सोमरस निचोडे गए हैं । और ये (**प्रयः**) अन्न (**सिन्धवः निम्नं न**) जिस प्रकार नदियां सदा नीचे की ओर बहती है, उसी प्रकार (**अभि**) तुम्हारी ओर (**यन्ति**) जाते हैं ॥७॥

[४२९] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**अत्रिवत्**) अत्रिके समान (**विश्वेभिः देवेभिः सजूः**) सभी देवोंके साथ (**अश्विभ्यां उषसा सजूः**) अश्विनी कुमार तथा उषाके साथ (**आ याहि**) आ और (**सुते रण**) सोमयज्ञमें आनन्दित हो ॥८॥

भावार्थ- इन देवोंकी बुद्धि सदा सत्यनियमोंके अनुसार चलती है और सत्यको धारण करती है ॥२॥

हे सेवाके योग्य ज्ञानवान् अग्ने ! तू प्रातःकाल दौडनेवाले घोडोंसे ज्ञानी और देवोंके साथ सोम पीनेके लिए आ ॥३॥

पत्थरों पर कूटकर निचोडा गया सोम पात्रोंमें छाना जाता है । यह छाना गया सोम इन्द्र और वायुके लिए प्रिय है ॥४॥

हे वायो ! तू सोम पीनेके लिए तथा हवि देनेवाले यजमान पर प्रसन्न होनेके लिए तू सोमरसकी तरफ आ और इसे पी ॥५॥

हे वायु ! तू और इन्द्र दोनों ही देव इन सोमरसोंको पीने के योग्य हो, अतः तुम दोनों अहिंसक होकर इस सोमरसरूप अन्नकी तरफ आओ और इन सोमरसोंको पीओ ॥६॥

दहीसे मिश्रित ये सोमरस इन्द्र वायुके लिए निचोडे जाते हैं और उन्हें प्रदान किए जाते हैं ॥७॥

हे अग्ने ! तू सभी देवों, अश्विनी कुमारों और उषाओंके साथ तथा अश्विनीकुमार तथा उषाके साथ आ और इस सोमयज्ञमें आनन्दित हो ॥८॥

४३० सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ ९ ॥
४३१ सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ १० ॥
४३२ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ११ ॥
४३३ स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ १२ ॥
४३४ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३ ॥

अर्थ- [४३०] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**अत्रिवत्**) अत्रिके समान (**मित्रावरुणाभ्यां सजूः**) मित्र और वरुणके साथ तथा (**विष्णुना सोमेन सजूः**) विष्णु और सोमके साथ (**आयाहि**) आ और (**सुते रण**) सोमयागमें आनन्दित हो ॥९॥

[४३१] हे (**अग्ने**) अग्ने ! तू (**आदित्यैः वसुभिः सजूः**) आदित्य और वसुओंके साथ तथा (**इन्द्रेण वायुना सजूः**) इन्द्र और वायुके साथ (**आ याहि**) आ और (**अत्रिवत् सुते रण**) अत्रिके समान सोमयज्ञमें आनन्दित हो ॥१०॥

[४३२] (**अश्विना**) दोनों अश्विनीकुमार (**नः स्वस्ति मिमीतां**) हमारे लिए कल्याण करें, (**भगः स्वस्ति**) भग देवता कल्याण करे, (**देवी अदितिः**) देवी अदिति कल्याण करे । (**अनर्वणः असु-रः पूषा स्वस्ति दधातु**) अपराजित तथा प्राणदाता पूषा देव हमारे लिए कल्याण प्रदान करे, (**सुचेतुना द्यावापृथिवी**) उत्तम ज्ञानसे युक्त द्यु और पृथ्वी (**नः स्वस्ति**) हमारा कल्याण करें ॥११॥

[४३३] हम (**स्वस्तये**) कल्याणके लिए (**वायुं उप ब्रवामहै**) वायुकी स्तुति करें । (**यः भुवनस्य पतिः**) जो भुवनोंका स्वामी है, उस (**सोमं**) सोमकी (**स्वस्ति**) कल्याणके लिए स्तुति करता हूँ । (**स्वस्तये**) अपने कल्याणके लिए (**सर्वगणं बृहस्पतिं**) सब गणोंके स्वामी बृहस्पतिकी उपासना करता हूँ । तथा (**आदित्यासः न स्वस्तये भवन्तु**) आदित्य भी हमारे कल्याणके लिए हों ॥१२॥

[४३४] (**अद्य**) आज (**विश्वे देवाः**) सभी देव (**नः स्वस्तये**) हमारे कल्याण के लिए हों, (**वैश्वानरः वसुः अग्निः स्वस्तये**) सम्पूर्ण विश्वका नेता तथा सबको बसानेवाला अग्नि कल्याण करने के लिए हो । (**देवाः ऋभवः**) दिव्य गुणोंसे युक्त ऋभुगण (**स्वस्तये**) कल्याणके लिए हमारी (**अवन्तु**) रक्षा करें । (**रुद्रः**) रुद्र (**नः स्वस्ति**) हमारे लिए कल्याणकारी हो तथा हमें (**अंहसः पातु**) पापोंसे बचाये ॥१३॥

भावार्थ- हे अग्ने ! तू मित्र, वरुण, सोम, विष्णु, आदित्य, इन्द्र, वायु आदि देवोंके साथ इस यज्ञमें आकर आनन्दित हो ॥९-१०॥

दोनों अश्विनीकुमार, भग, देवी अदिति कभी पराजित न होनेवाला तथा प्राणदाता पूषा और ज्ञानयुक्त द्यु और पृथ्वी ये सभी हमारा कल्याण करें ॥११॥

हम अपने कल्याणके लिए वायु, भुवनोंके स्वामी सोम, सब गणोंके स्वामी बृहस्पति तथा आदित्यकी उपासना करते हैं ॥१२॥

सभी देव, सभी विश्वका संचालक तथा सबका जीवनधारक अग्नि, सभी दिव्य गुणोंसे युक्त ऋभु हमारी रक्षा करके हमारा कल्याण करें तथा पापियोंको रुलानेवाला देव हमारे लिए कल्याणकारी होकर हमें पापोंसे बचाये ॥१३॥

४३५ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

४३६ स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ १५ ॥

[५२]

[ऋषिः— श्यावाश्व आत्रेयः । देवता— मरुतः । छन्दः— अनुष्टुप्, ६, १६-१७ पंक्तिः ।]

४३७ प्र श्यावाश्व धृष्णुयाऽर्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥

४३८ ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥

अर्थ- [४३५] हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! तुम हमारा (**स्वस्ति**) कल्याण करो, (**पथ्ये रेवति**) हे मार्गकी रक्षा करनेवाली तथा धन सम्पन्न देवी ! (**स्वस्ति**) हमारा कल्याण करो । (**इन्द्रः च अग्निः च**) इन्द्र और अग्नि (**नः स्वस्ति**) हमारा कल्याण करें । हे (**अदिते**) अदिति देवी ! (**नः स्वस्ति कृधि**) हमारा कल्याण कर ॥१४॥

[४३६] हम (**सूर्याचन्द्रमसौ इव**) सूर्य और चन्द्रमाके समान (**स्वस्ति पन्थां अनुचरेम**) कल्याणप्रद मार्ग पर ही चलें । हम (**पुनः ददता**) बार बार दान देते हुए (**अघ्नता**) परस्पर हिंसा न करते हुए तथा (**जानता**) ज्ञानसे युक्त होकर (**सं गमेमहि**) संगठित होकर चलें ॥१५॥

१ **सूर्याचन्द्रमसौ इव स्वस्ति पन्थां अनु चरेम-** सूर्य और चन्द्रमाके समान हम कल्याणके मार्ग पर चलें ।

२ **पुनः ददता अघ्नता जानता सं गमेमहि-** बार बार दान देते हुए, एक दूसरेकी हिंसा न करते हुए तथा ज्ञानसे युक्त होकर हम सभी संगठित होकर चलें ।

[५२]

[४३७] हे (**श्याव-अश्व**) भूरे रंगके घोडे पर बैठनेवाले वीर ! (**धृष्णु-या**) शत्रुका पराभव करनेमें उपयुक्त बलसे परिपूर्ण तू (**ऋक्वभिः मरुद्भिः**) सराहनीय वीर मरुतोंके साथ (**प्र अर्च**) उनकी पूजा कर (**ये यज्ञियाः**) जो पूज्य वीर (**अनु स्व-धं**) अपनी धारक शक्तिसे युक्त हो, (**अ-द्रोघं**) द्रोहरहित (**श्रवः**) कीर्ति पाकर (**मदन्ति**) हर्षित हो उठते हैं ॥१॥

[४३८] (**धृष्णु-या ते हि**) वे साहसी एवं आक्रमणकर्ता वीर (**स्थिरस्य शवसः**) स्थायि एवं अचल बलके (**सखायः सन्ति**) सहायक हैं । (**ते यामन्**) वे चढाई करते समय (**शश्वतः**) शाश्वत (**धृषत्-विनः**) विजयशील सामर्थ्यसे युक्त वीरोंका (**त्मना**) स्वयं ही (**आ पान्ति**) सभी ओरसे संरक्षण करते हैं ॥२॥

१ **धृष्णुया ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति-** वे साहसी वीर मरुत् स्थिर बलवाले मनुष्योंके ही मित्र बनते हैं ।

२ **ते धृषद्विनः त्मना आ पान्ति-** वे विजयशील सामर्थ्यसे युक्त वीरोंकी स्वयं ही रक्षा करते हैं ।

भावार्थ- हे मित्र, वरुण देव ! तुम हमारा कल्याण करो, हे मार्गकी रक्षा करनेवाली देवी, हमारा कल्याण करो । इन्द्र और अग्नि हमारा कल्याण करें और देवी अदिति भी हमारा कल्याण करें ॥१४॥

हम सभी मनुष्य दान देते हुए एक दूसरेकी हिंसा न करते हुए तथा ज्ञानसे युक्त होकर सूर्य और चन्द्रमाके समान सबका कल्याण करते हुए तथा संगठित होकर उन्नति करें ॥१५॥

जिससे शत्रुका पराभव हो, ऐसा बल प्राप्त करना चाहिए और वीरोंका भी सन्मान करना चाहिए । वीर अपनी धारक शक्ति बढा कर किसीसे भी द्वेष न करते हुए बडे बडे कार्योंमें सफलता पाकर यशस्वी बन जाते हैं ॥१॥

४३९ ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥

४४० मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥

४४१ अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥

४४२ आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥ ६ ॥

४४३ ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७ ॥

अर्थ- [४३९] (**ते स्पन्द्रासः**) शत्रुको विकम्पित करनेवाले (**न उक्षणः**) और बलवान् वीर (**शर्वरीः अति स्कन्दन्ति**) रात्रियोंका अतिक्रमण करके आगे चले जाते हैं । (**अध**) अब इसलिए (**मरुतां**) मरुतोंके (**दिवि क्षमा च**) द्युलोकमें एवं पृथ्वी पर विद्यमान (**महः मन्महे**) तेजपूर्ण काव्यका हम मनन करते हैं । ॥३॥

१ **उक्षणः शर्वरीः अति स्कन्दन्ति-** वे बलवान् वीर मरुत् दिन या रात्रीका तनिक भी ख्याल न करके अपना आक्रमण बराबर जारी रखते हैं ।

[४४०] (**ये**) जो वीर (**विश्वे**) सभी (**मानुषा युगा**) मानवी युगोंमें (**मर्त्यं**) मानवको (**रिषः पान्ति**) हिंसकसे बचाते हैं, ऐसे (**वः**) तुम (**धृष्णु-या**) विजयशील सामर्थ्यसे युक्त (**मरुत्सु**) मरुतोंके लिए हम (**स्तोमं यज्ञं च**) स्तुति तथा पवित्र कार्य (**दधीमहि**) अर्पण करते हैं ॥४॥

[४४१] (**ये**) जो (**अर्हन्तः**) पूज्य, (**सु-दानवः**) दानशूर, (**असामिशवसः**) संपूर्ण बलसे युक्त तथा (**दिवः**) तेजस्वी, द्योतमान (**नरः**) नेता हैं, उन (**यज्ञियेभ्यः**) पूज्य (**मरुद्भ्यः**) वीर-मरुतोंके लिए (**यज्ञं**) यज्ञ करो और उनकी (**प्र अर्च**) पूजा करो ॥५॥

[४४२] (**रुक्मैः आ**) स्वर्णमुद्राके हारोंसे और (**युधा आ**) आयुधोंसे युक्त, (**ऋष्वाः नरः**) बडे तथा नेतृत्वगुणसे युक्त (**दिवः**) दिव्य वीर (**ऋष्टीः**) अपने भालोंको और (**एनान् अनु ह**) इनके अनुरोधसे ही (**जज्झतीः इव**) घडघडाती हुई नदियोंके समान (**विद्युतः**) तेजस्वी वज्र शत्रु पर (**असृक्षत**) फेंक देते हैं । इनका (**भानुः**) तेज (**त्मना**) उनके साथ ही (**अर्त**) चला जाता है ॥६॥

[४४३] (**ये पार्थिवाः**) जो ये वीर पृथ्वी पर, (**ये उरौ अन्तरिक्षे**) जो विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें या (**नदीनां**) नदियोंके समीपके (**वृजने वा**) मैदानोंमें अथवा (**महः दिवः**) विस्तृत द्युलोकके (**सध-स्थे वा**) स्थानमें (**आ वावृधन्त**) सभी तरहसे बढते रहते हैं ॥७॥

भावार्थ- ये साहसी और शूरवीर सैनिक बलकी ही सराहना करते हैं । जब ये शत्रु दल पर आक्रमण कर देते हैं तब स्थायी एवं विजयी बलसे परिपूर्ण वीरोंकी रक्षा करनेका गुरुतर कार्यभार स्वयं ही स्वेच्छासे उठाते हैं ॥२॥

जो बलिष्ठ वीर शत्रुके दिलमें धडकन पैदा करते हैं, वे रात्रीके समय दुश्मनों पर चढाई करते हैं और दिन के अवसर पर भी आक्रमण जारी रखते हैं । इसीलिए हम इनके मननीय चरित्रका मनन करते हैं ॥३॥

जो वीर मानवी युगोंमें शत्रुओंसे अपनी रक्षा करते हैं, उनके सामर्थ्यकी सराहना करनी चाहिए ॥४॥

पूजनीय, दानी वीरोंका अच्छा सत्कार करना चाहिए ॥५॥

हार एवं हथियारोंसे सजे हुए ये वीर बहुत तेजस्वी प्रतीत होते हैं ।६॥

ये वीर भूमंडल पर, अन्तरिक्षमें तथा द्युलोकमें भी अबाधरूपसे संचार करते हैं ॥७॥

४४४ शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८ ॥

४४५ उत स्म ते परुष्ण्या—मूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथाना—मद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

४४६ आपथयो विपथयो—ऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभि—र्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥

४४७ अधा नरो न्योहते—ऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

अर्थ- [४४४] (सत्य-शवसं) सत्यके बलसे युक्त तथा (ऋभ्वसं) हमले करनेवाले (मारुतं शर्धः) वीर मरुतोंके सामुदायिक बलकी (उत् शंस) स्तुति करो । (उत स्म) क्योंकि (स्पन्द्राः) शत्रुको विचलित एवं विकम्पित करनेवाले और (नरः) नेता वे वीर (शुभे) लोककल्याणके लिए किये जानेवाले सत्कार्यमें (त्मना) स्वयं अपनी सदिच्छासे ही (प्र युजत) जुट जाते हैं ॥८॥

[४४५] (उत स्म) और (ते) वे वीर (परुष्ण्यां) परुष्णी नदीमें (शुन्ध्यवः) पवित्र होकर (ऊर्णाः वसत) ऊनी कपडे पहनते हैं (उत) और (रथानां पव्या) रथोंके पहियोंसे तथा (ओजसा) बडे बलसे (अद्रिं भिन्दन्ति) पहाडको भी विभिन्न कर डालते हैं ॥९॥

[४४६] (आ-पथयः) समीपके मार्गसे जानेवाले, (वि-पथयः) विविध मार्गोंसे जानेवाले (अन्तः-पथाः) गुप्त सडकों पर से जानेवाले (अनु-पथाः) अनुकूल मार्गोंसे जानेवाले, (एतेभिः नामभिः) ऐसे इन नामोंसे (विस्तारः) विख्यात हुए ये वीर (मह्यं) मेरे लिए (यज्ञं ओहते) यज्ञके हविष्यान्न ढोकर लाते हैं ॥१०॥

[४४७] (अध) कभी कभी ये वीर (नरः) नेता बनकर संसारको (नि ओहते) धारण करते हैं, (अध नियुतः) कभी पंक्तियोंमें खडे रहकर सामुदायिक ढंगसे और (अध) उसी प्रकार (पारावताः) दूर-जगह खडे रहकर भी (ओहते) बोझ ढोते हैं, (इति) इस भाँति उनके (रूपाणि) स्वरूप (चित्रा) आश्चर्यकारक तथा (दर्श्या) देखने योग्य हैं ॥११॥

भावार्थ- वीरोंके सच्चे बलका बखान करो । ये वीर जनता के हित के लिए स्वेच्छापूर्वक यत्न करते रहते हैं ॥८॥

वीर नदीमें नहाकर शुद्ध होते हैं और ऊनी कपडे पहनकर अपने रथोंके वेगसे पहाडों तकको लाँघ कर चले जाते हैं ॥९॥

भाँति भाँतिके मार्गोंसे जानेवाले वीर चहुँ ओरसे अन्नसामग्री लाते हैं ॥१०॥

वीर पुरुष नेता बन जाते हैं और सेनामें दूर जगह या समीप खडे रहकर संरक्षणका समूचा भार उठा लेते हैं । ये सुस्वरूप तथा दर्शनीय भी हैं ॥११॥

४४८ छन्दुःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणों नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन् दृशि त्विषे ॥ १२ ॥
४४९ य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥
४५० अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥
४५१ नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥

अर्थ- [४४८] (**छन्दः-स्तुभः**) छन्दोंसे सराहनीय तथा (**कु-भन्यवः**) मातृभूमिकी पूजा करनेवाले वीर (**कीरिणः**) स्तुति करनेवाले के लिए (**उत्सं**) जलप्रवाह (**आ नृतुः**) ला चुके । (**ते के चित्**) उनमेंसे कुछ (**मे**) मेरे लिए (**तायवः न**) चोरोंके समान अदृश्य, कुछ (**ऊमाः**) रक्षणकर्ता होकर (**दृशि**) दृष्टिपथमें अवतीर्ण और कई (**त्विषे**) तेजोबल बढाते (**आसन्**) थे ॥१२॥

[४४९] हे (**ऋषे**) ऋषिवर ! (**ये**) जो (**ऋष्वाः**) बडे बडे, (**ऋष्टि-विद्युतः**) हथियारोंसे द्योतमान्, (**कवयः**) ज्ञानी होते हुए (**वेधसः**) कुशलतापूर्वक कर्म करनेवाले हैं (**तं मारुतं गणं**) उस वीर मरुतोंके गणको (**नमस्य**) नमन कर और (**घिरा रमय**) वाणीसे आनन्द दे ॥१३॥

[४५०] हे (**ऋषे**) ऋषिवर ! (**योषणा मित्रं न**) युवती जिस तरह प्रिय मित्रकी ओर चली जाती है, उसी प्रकार (**मारुतं गणं अच्छ**) मरुत्संघकी ओर (**दाना**) दान लेकर जाओ । (**ओजसा धृष्णवः**) बलके कारण शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले ये वीर (**दिवः वा**) तेजस्वी हैं । हे वीरो ! (**धीभिः स्तुताः**) स्तुतियों द्वारा प्रशंसित तुम इधर (**इषण्यत**) आओ ॥१४॥

[४५१] (**वक्षणा न**) वाहनके समान पार ले जानेवाले (**एषां देवान् अच्छ**) इन तेजस्वी वीरोंकी ओर (**नु**) शीघ्र पहुँचकर (**मन्वानः**) स्तुति करनेहारा, (**सूरिभिः**) ज्ञानी (**यामश्रुतेभिः**) चढाईके बारेमें विख्यात एवं (**अञ्जिभिः**) वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत ऐसे उन वीरोंसे (**दाना**) दानके साथ (**सचेत**) संगत होता है ॥१५॥

भावार्थ- चूँकि वीर मातृभूमिके भक्त होते हैं, इसलिए वे सराहनीय हैं । उनमें कुछ गुप्त रूपसे, तो कई प्रकट रूपसे सबकी रक्षा करते हुए तेजकी वृद्धि करते हैं ॥१२॥

वीर सैनिक महान् गुणी, विशेष ज्ञानी, कुशलतापूर्वक कार्य करने हारे एवं आयुधधारी होनेके कारण द्योतमान हैं । इस मरुत्संघको रमणीय वाणीसे हर्षित कर और नमन कर ॥१३॥

दान लेकर वीरोंके समीप चले जाना चाहिए । बलसे शत्रुदल पर चढाई करनी चाहिए । जो ऐसे आक्रमणकर्ता होंगे उनकी स्तुति होगी ॥१४॥

वे वीर संकटोंमेंसे पार ले जानेवाले हैं और आक्रमण करनेमें बडे विख्यात हैं । वे ज्ञानी हैं और वस्त्रालंकारोंसे भूषित रहते हैं । ऐसे उन तेजस्वी वीरोंके पास दान लेकर पहुँच जाओ ॥१५॥

४५२ प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥

४५३ सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद् राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ ॥

[५३]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- १, ५, १०-११, १५ ककुप्; २ बृहती; ३ अनुष्टुप्, ४ पुरउष्णिक्, ६-७, ९, १३, १४, १६ सतोबृहती; ८, १२ गायत्री ।]

४५४ को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् । यद् युयुज्रे किलास्यः ॥ १ ॥

४५५ ऐतान् रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥

अर्थ- [४५२] उनके (बन्धु-एषे) बांधवोंके जाननेकी इच्छा करने पर (ये सूरयः) जिन ज्ञानी वीरोंने (मे प्र वोचन्त) मुझसे कहा, उन्होंने "(गां) गो तथा (पृश्निं) भूमि हारी (मातरं) माताएँ हैं" (वोचन्त) ऐसा कह दिया । (अध) और (शिक्वसः) उन्हीं समर्थ वीरोंने (इष्मिणं रुद्रं) "वेगवान् महावीर हमारा (पितरं) पिता है" ऐसा भी कह दिया ॥१६॥

[४५३] (सप्त सप्त) सात सात सैनिकोंकी पंक्तिमें जानेवाले (शाकिनः) इन समर्थ वीरोंमेंसे (एकं-एका) हरेकने (मे शता ददुः) मुझे सो गौएँ दीं । (श्रुतं) उस विश्रुत (गव्यं राधः) गो समूहरूपी धनको (यमुनायां अधि) यमुना नदीमें (उत् मृजे) धो डालता हूँ और (अश्व्यं राधः) अश्वरूपी संपत्तिको वहीं पर (नि मृज) धोता हूँ ॥१७॥

[५३]

[४५४] वीर मरुतोंने (यत्) जब (किलास्यः) धब्बेवाली हिरनियाँ (युयुज्रे) अपने रथोंमें जोड दीं, तब (एषां) इनके (जानं) जन्मका रहस्य (कः वेद) कौन भला जानता था ? (कः वा) और कौन भला (पुरा) पहले इन (मरुतां सुम्नेषु) वीर मरुतोंके सुख च्छत्रछायामें (आस) रहता था ? ॥१॥

[४५५] (रथेषु तस्थुषः) रथोंमें बैठे हुए (एतान्) इन वीरोंके समीप कौन भला (कथा ययुः) किस तरह जाते हैं ? उसी प्रकार उनके प्रभावका वर्णन (कः आ शुश्राव) भला किसे सुननेको मिला ? (आपयः) मित्रवत् हितकर्ता एवं (वृष्टयः) वर्षाके समान शांतिदायक ये वीर अपनी (इळाभिः सह) गोओंके साथ (कस्मै सु दासे) किस उत्तम दानीकी ओर (अनु सस्रुः) अनुकूल होकर चले गये ? ॥२॥

भावार्थ- गौ या भूमि मरुतोंकी माता है और रुद्र उनका पिता है ॥१६॥

वीरोंसे दानरूपमें प्राप्त हुई गौएँ तथा मिले हुए घोडे नदीजलमें धोकर साफसुथरे रखने चाहिए ॥१७॥

जब ये वीर रथमें बैठकर संचार करने लगे, तब भला किसे इनके जीवनका ज्ञान प्राप्त हुआ था ? उसी प्रकार कौन लोग इनके सहारे रहते थे ? (ये वीर जब जनताके सुखके लिए प्रयत्नशील हुए तभीसे लोगोंको इनका परिचय प्राप्त हुआ और लोग इनके आश्रयमें सुखपूर्वक रहने लगे ॥१॥

वीर रथों पर बैठकर मित्रोंसे मिलनेके लिए जाते हैं, उस समय वे गायें साथ लेकर ही प्रस्थान करने लगते हैं । इन के शौर्यका बखान करना चाहिए । ॥२॥

४५६ ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान् पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३ ॥
४५७ ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥
४५८ युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥
४५९ आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥
४६० ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद् वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥

अर्थ- [४५६] (ये) जो (द्युभिः विभिः) तेजस्वी सोमोंके साथ (मदे) आनंद पानेके लिए (उप आययुः) इकट्ठे हुए (ते मे आहुः) वे मुझसे बोले कि, "(नरः) नेता, (मर्याः) मानवोंके हितकारक (अ-रेपसः) तथा दोषरहित (इमान् पश्यन्) इन वीरोंको देखकर (स्तुहि इति) उनकी प्रशंसा करो" ॥३॥

[४५७] (ये) जो (स्व-भानवः) स्वयं प्रकाशमान् वीर, (अञ्जिषु) वस्त्रालंकारोंमें, (वाशीषु) कुठारोंमें, (स्रक्षु) मालाओंमें, (रुक्मेषु) स्वर्णमय हारोंमें, (खादिषु) कँगनोंमें (रथेषु) रथोंमें और (धन्वसु) धनुष्योंमें (श्रायाः) आश्रय लेते हैं, अर्थात् इनका उपयोग करते हैं ॥४॥

[४५८] हे (जीर-दानवः मरुतः) शीघ्रतापूर्वक विजय पानेवाले वीर मरुतो ! (मुदे) आनंदके लिए मैं (वृष्टी) वर्षाके समान (यतीः इव) वेगपूर्वक जानेवाले (द्यावः) बिजलियोंके समान तेजस्वी (युष्माकं रथान्) तुम्हारे रथोंका (अनु दधे स्म) अनुसरण करता हूँ ॥५॥

[४५९] (नरः) नेता, (सु-दानवः) अच्छे दानी एवं (दिवः) तेजस्वी वीर (ददाशुषे) दानी लोगोंके लिए (यं कोशं) जिस भाण्डारको (आ अचुच्यवुः) सभी स्थानोंसे बटोर लाते हैं, उसका वे (रोदसी) द्युलोकको एवं भूलोकका (पर्जन्यं) वृष्टिके समान (वि सृजन्ति) विभाजन कर डालते हैं । (वृष्टयः) वर्षाके समान शांतता देनेवाले वे वीर अपने (धन्वना) धनुष्योंके साथ (अनु यन्ति) चले जाते हैं ॥६॥

[४६०] (यत् एन्यः) जो नदियाँ (अध्वनः विमोचने) मार्ग ढूँढ निकालने के लिए (स्यन्नाः अश्वाः इव) वेगवान् घोडोंके समान (वि वर्तन्ते) वेगपूर्वक बह जाती हैं, वे (क्षोदसा) उदकसे भूमिको (ततृदानाः) फोडनेवाली (सिन्धवः) नदियां (धेनवः यथा) गौओंके समान (रजः) उपजाऊ भूमियोंकी ओर (प्रसस्रुः) बहने लगीं ॥७॥

भावार्थ- सोमयागमें इकट्ठे हुए सभी लोग कहने लगे कि, वीरोंके काव्यका गायन करना चाहिए ॥३॥

ये वीर तेजस्वी है और आभूषण, कुठार, माला, हार धारण करते हैं, तथा रथमें बैठकर धनुष्योंका उपयोग करते हैं ॥४॥

मैं वीरोंके रथके पीछे चला आ रहा हूँ. (मैं उनके मार्गका अवलम्बन करता हूँ ।) ॥५॥

ये वीर शूरतापूर्ण कार्य करके चारों ओरसे धन कमा लाते हैं और उनका उचित बँटवारा करके जनताको सुखी करते हैं ॥६॥

धुवाँधार वर्षा के पश्चात् नदियोंमें बाढ आने पर पृथ्वीको छिन्नभिन्न करके नदियां बहने लगती हैं और उपजाऊ भूभागको अधिक उर्वर बना देती हैं । ॥७॥

४६१ आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
मार्व स्थात परावतः ॥ ८ ॥
४६२ मा वो रसानितभा कुभा क्रुमु—र्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात् सरयुः पुरीषिण्य—स्मे इत् सुम्नमस्तु वः ॥ ९ ॥
४६३ तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥
४६४ शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥
४६५ कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥

अर्थ- [४६१] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (दिवः) द्युलोकसे तथा (उत) उसी प्रकार (अ-मात् अन्तरिक्षात्) असीम अंतरिक्षमेंसे (आ यात) इधर आओ, (परावतः) दूरके देशमें ही (मा अव स्थात) न रहो ॥८॥

[४६२] (वः) तुम्हें (अन्-इत-भा) तेजहीन और (कु-भा) मलिन (रसा) रसानामक नदी (मा नि रीरमत्) रममाण न करे. (वः) तुम्हें (क्रुमुः) वेगपूर्वक आक्रमण करनेहारा (सिन्धुः) सिंधु नदी बीचमें ही (मा) न रोक दे, (वः) तुम्हें (पुरीषिणी) जलसे परिपूर्ण (सरयुः) सरयु नदी (मा परिस्थात्) न घेर लेवे। (अस्मे इत्) हमें ही (वः सुम्नं) तुम्हारा सुख (अस्तु) प्राप्त हो, मिल जाये ॥९॥

[४६३] (तं) उस (वः) तुम्हारे (नव्यसीनां) नये (रथानां शर्धं) रथोंके बलके एवं सैन्यके (त्वेषं) तेजस्वी (मारुतं गणं) वीर मरुतोंके समूहके (अनु) अनुरोधसे (वृष्टयः प्र यन्ति) वर्षाएँ वेगसे चली जाती हैं ॥१०॥

[४६४] (एषां वः) इन तुम्हारे (शर्धं-शर्धं) हर सैन्यके साथ (व्रातं-व्रातं) प्रत्येक समुदायके साथ और (गणं-गणं) हरएक सैन्यके दलके साथ (सु-शस्तिभिः) अत्यन्त सराहनीय अनुशासनके (धीतिभिः) विचारोंसे युक्त होकर (अनु क्रामेम) हम अनुक्रमसे चलते रहें ॥११॥

[४६५] (अद्य) आज (मरुतः) वीर मरुत् (ऐना यामेन) इस रथमेंसे (कस्मै) भला किस (रात-हव्याय) हविष्यान्न देनेवाले एवं (सु-जाताय) कुलीन मानवकी और (प्र ययुः) चले जा रहे हैं ॥१२॥

भावार्थ- वीर सदैव हमारे निकट आकर यहीं पर रहें ॥८॥

हे वीरो ! तुम रसा, सिन्धु, पुरीषिणी एवं सरयु नदियोंसे सींचे हुए प्रदेशमें ही रममाण न बनो, अपितु हमारे निकट आकर हमें सुख दिलाओ ॥९॥

जिधर मरुतोंके रथ चले जाते हैं, उधर युद्ध होता है, तथा वर्षा भी हुआ करती है ॥१०॥

गणवेश पहनकर दलबलका जैसा अनुशासन हो, वैसे ही अनुक्रमसे पग धरते चले जाँय ॥११॥

प्रश्न है कि, भला आजके दिन किस जगह मरुत् पहुँचना चाहते हैं ? (उधर हम भी चलें ।) ॥१२॥

४६६ येन तोकाय तनयाय धान्यं१ बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद् धत्तन यद् व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३ ॥

४६७ अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभि र्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

४६८ सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

४६९ स्तुहि भोजान् स्तुवतो अस्य यामनि रणन् गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥ १६ ॥

अर्थ- [४६६] (येन) जिससे (तोकाय स्तनयाय) पुत्रपौत्रोंके लिए (अ-क्षितं) न घटनेवाले (धान्यं बीजं) अनाज तथा बीज (वहध्वे) ढोकर लाते हो, (यत् राधः) जिस धनके लिए (वः) तुम्हारे पास हम (ईमहे) आते हैं, (तत्) वह और (विश्व-आयु) दीर्घजीवन एवं (सौभगं) अच्छा ऐश्वर्य (अस्मभ्यं धत्तन) हमें दे दो ॥१३॥

[४६७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (स्वस्तिभिः) हितकारक उपायों द्वारा (अवद्यं हित्वा) दोष नष्ट करके, (अरातीः) शत्रुओंका एवं (तिरः निदः) गुप्त निन्दकका हम (अति इयाम) पराभव कर सकें । हमें (वृष्टी) शक्ति (योः शं) एकतासे उत्पन्न होनेवाला सुख, (आपः) जल तथा (उस्रिः भेषजं) तेजस्वी औषधी (सह स्याम) एक ही समय मिले ॥१४॥

[४६८] हे (नरः मरुतः) नेता वीर मरुतो ! (यं) जिसे (त्रायध्वे) तुम बचाते हो, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देवः) अत्यन्त तेजस्वी, (स-मह) महत्तासे युक्त और (सु-वीरः) अच्छा वीर (असति) होता है। (ते स्याम) हम भी वैसे ही हों ॥१५॥

[४६९] (स्तुवतः अस्य) स्तवन करनेवाले इस भक्तके यज्ञमें (भोजान्) भोजन पानेके लिए (यामन्) जाते समय (गावः न यवसे) गौएँ जिस तरह घासकी ओर जाती हैं वैसे ही (रणन्) आनन्दपूर्वक गरजते हुए जानेवाले इन वीरोंकी (स्तुहि) प्रशंसा करो, (यतः) क्योंकि वे (पूर्वान् इव) पहले परिचित तथा (कामिनः) प्रेमभरे (सखीन्) मित्रोंके समान अपने सहायक हैं । उन्हें (ह्वय) अपने समीप बुलाओ और (गिरा) अपनी वाणीसे उनकी (अनुगृणीहि) सहारना करो ॥१६॥

भावार्थ- हमें धन, धान्य, ऐश्वर्य तथा बल चाहिए । हमें ये सभी बातें उपलब्ध हों ॥१३॥

स्वस्ति तथा क्षेम हमें मिल जाए। हमारे सभी शत्रु विनष्ट हों। ऐक्यभावसे उत्पन्न होनेवाला, सुख, शक्ति, जल परिणामकारक औषधियाँ हमें मिल जायें ॥१४॥

जिन्हें वीरोंका संरक्षण प्राप्त होता है, वे बडे तेजस्वी, महान् तथा वीर होते हैं । हम उसी प्रकार बनें ॥१५॥

भक्तके यज्ञोंमें जाते समय इन वीरोंको बडा भारी हर्ष होता है । चूँकि ये सबका हित चाहते हैं, इसलिए इनकी स्तुति सबको करनी चाहिए ॥१६॥

[५४]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- जगती, १४ त्रिष्टुप् ।]

४७० प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १ ॥

४७१ प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २ ॥

४७२ विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३ ॥

[५४]

अर्थ- [४७०] हे मनुष्य (स्व-भानवे) स्वयंप्रकाश और (पवर्त-च्युते) पहाडोंको भी हिलानेवाले (मारुताय शर्धाय) मरुतोंके बलके लिए की गई (इमां वाचं) इस अपनी वाणीको-कविताको तुम (प्र अनज) भली भाँति सँवार, अलंकृत कर । (धर्म-स्तुभे) तेजस्वी वीरोंकी स्तुति करनेहारे, (दिवः पृष्ठयज्वने) दिव्य स्थानसे पीछेसे आकर यजन करनेवाले और (द्युम्न-श्रवसे) तेजस्वी यश पानेवाले वीरोंको (महि नृम्णं) विपुल धन देकर (आ अर्चत) उनकी पूजा करो ॥१॥

[४७१] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः तविषा) तुम्हारे बलवान्, (उदन्-यवः) प्रजाके लिए जल देनेवाले, (वयो-वृधः) अन्नकी समृद्धि करनेहारे तथा (अश्व-युजः) रथोंमें घोडे जोडनेवाले वीर जब (प्र परिज्रयः) बहुत वेगसे चतुर्दिक् घूमने लगते हैं और तुम्हारा (त्रि-तः) तीनों ओर फैलनेवाला संघ (विद्युता सं दधति) तेजस्वी वज्रोंसे सुसज्ज होता है और (वाशति) शत्रुको चुनौती देता है, तब (परि-ज्रय) चारों ओर विजय देनेवाला (आपः) जीवनके (अवना) पृथ्वीपर (स्वरन्ति) गर्जना करते हुए संचार करता है ॥२॥

[४७२] (विद्युत्-महसः) बिजलीके समान बलवान् (नरः) नेता, (अश्म-दिद्यवः) हथियारोंसे चमकनेसे तेजस्वी, (वात-त्विषः) वायुके समान गतिशील एवं तेजस्वी, (पर्वत-च्युतः) पहाडोंको हिलानेवाले, (ह्रादुनि वृतः) वज्रोंसे युक्त, (स्तनयत्-अमाः) घोषणा करनेकी शक्तिसे युक्त, (रभसाः) वेगवान्, (उत-ओजसः) अच्छे बलशाली वे (मरुतः) वीर मरुत् (मुहुः चित्) वारंवार (आ अब्दया) चारों ओर जला देना चाहते हैं - शत्रुको अपना सच्चा तेज दिखाते हैं ॥३॥

भावार्थ- अलंकारपूर्ण काव्य वीरोंके वर्णन पर बनाओ और उन्हें धन देकर उनका सत्कार करो ॥१॥

बलिष्ठ वीर सैनिक प्रजाके लिए जलकी व्यवस्था करते हैं, अन्नको वृद्धिगत करते हैं, रथोंमें घोडे जोडकर चारों ओर घूमकर समूची हालतको स्वयं ही देख लेते हैं । और विजयी बन जाते हैं । बडे अच्छे प्रबंधसे अपने हथियार समीप रख लेते हैं और यत्रतत्र विजयपूर्ण वायुमंडल का सृजन करते हैं, तथा भूमंडल पर नहरोंसे या अन्य किन्हीं उपायोंसे जलको चहुँ ओर पहुँचा देते हैं । ॥२॥

तेजस्वी नेता शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित बनकर पहाडों तकको विकंपित कर देनेकी अपनी क्षमताको बढाते हैं और दुश्मनको आह्वान देकर अवश्य ही उन्हें अपना बल दर्शाते हैं । ॥३॥

[मेघविषयक अर्थ] बिजली चमक रही है, (अश्म) ओले गिर रहे हैं, भारी तूफान हो रहा है, दामिनीकी दहाड सुनाई दे रही है, वायुवेगसे जान पडता है कि, मानों पहाड उड जायेंगे । इसके बाद मूसलाधार वर्षा हो चहुँ ओर जल ही जल दीख पडता है ।

४७३ व्य१क्तून् रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४ ॥

४७४ तद् वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ ५ ॥

४७५ अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६ ॥

४७६ न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥

अर्थ- [४७३] हे (**धूतयः**) शत्रुओंको हिलानेवाले, (**शिक्वसः**) सामर्थ्ययुक्त एवं (**रुद्राः मरुतः**) दुश्मनोंको रुलानेवाले वीर मरुतो ! (**यत्**) जब (**अक्तून् वि**) रात्रियोंमें (**अहानि वि**) दिनोंमें (**अन्तरिक्षं वि**) अन्तरिक्षमेंसे या (**रजांसि वि अजथ**) धूलिमय प्रदेशोंमेंसे जाते हो, उस समय (**यथा नावः ईं**) जैसे नौकाएं समुन्दरमेंसे जाती हैं, वैसे ही तुम (**अज्रान् वि**) विभिन्न प्रदेशोंमें से तथा (**दुर्गाणि वि**) बीहड स्थानोंमेंसे भी जाते हो, तब तुम (**न अह रिष्यथ**) बिलकुल थक न जाओ, बिना थकावटके यह सब कुछ हो जाय ऐसा करो ॥४॥

[४७४] हे (**मरुतः !**) वीर मरुतो ! (**वः तत्**) तुम्हारी वे (**योजनं**) आयोजनाएं तथा (**वीर्यं**) शक्ति (**सूर्यः न**) सूर्यवत् (**दीर्घं महित्वनं**) अति विस्तृत (**ततान**) फैली हुई है (**यत्**) क्योंकि तुम (**यामे**) शत्रु पर किये जानेवाले आक्रमणके समय (**एताः न**) कृष्णसारोंके समान वेगवान् बनकर (**अ-गृभीत-शोचिषः**) पकडनेमें असंभव प्रभावसे युक्त हो और (**अन्-अश्व-दां**) जहाँ पर घोडे पहुँच नहीं सकते, ऐसे (**गिरिं**) पर्वत पर भी (**नि अयातन**) हमले चढाते हो ॥५॥

[४७५] हे (**वेधसः**) कर्तृत्ववान् (**मरुतः**) वीर मरुतो ! तुम्हारा (**शर्धः**) बल (**अभ्राजि**) द्योतमान हो चुका है, (**यत् कपना इव**) क्योंकि प्रबल आँधीके समान (**अर्णसं वृक्षं**) सागवानी पेडोंको भी तुम (**मोषथ**) तोडमरोड देते हो । (**अध स्म**) और हे (**स-जोषसः**) हर्षित मनवाले वीरो ! (**चक्षुः इव**) आँख जैसे (**यन्तं**) जानेवालेको (**सु-गं**) अच्छा मार्ग दर्शाती है, वैसे ही (**अ-रमतिं नः**) विना आराम लिए कार्य करनेवाले हमें (**अनुनेषथ**) अनुकूल ढंगसे सीधी राह पर से ले चलो ॥६॥

[४७६] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**यं ऋषिं वा**) जिस ऋषिको या (**राजानं वा**) जिस राजाको तुम अच्छे कार्यमें (**सुसूदथ**) प्रेरित करते हो, (**सः न जीयते**) वह विजित नहीं बनता है, (**न हन्यते**) उसकी हत्या नहीं होती है, (**न स्त्रेधति**) नष्ट नहीं होता है, (**न व्यथते**) दुःखी नहीं बनता है और (**न रिष्यति**) क्षीण भी नहीं होता है । (**अस्य रायः**) इसके धन (**न उप दस्यन्ति**) नष्ट नहीं होते हैं तथा (**ऊतयः**) इनकी संरक्षक शक्तियां भी नहीं घटतीं ॥७॥

भावार्थ- जो बलिष्ठ वीर होते हैं, वे रातको, दिनमें, अन्तरिक्षमें से या रेगिस्तानमेंसे चले जाते हैं । वे समतल भूमि परसे या बीहड पहाडी जगहमेंसे बराबर आगे बढते ही जाते हैं, पर कभी थक नहीं जाते । (इस भाँति शत्रुदल पर लगातार हमले करके वे विजयी बन जाते हैं ।) ॥४॥

वीरोंकी बनाई हुई युद्धकी आयोजनाएं तथा उनकी संगठनशक्ति सचमुच बडी अनूठी है । दुश्मनों पर धावा करते वक्त वे जैसे समतल भूमि पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रुके दुर्ग पर भी चढाई करनेमें हिचकिचाते नहीं ।५॥

कर्तृत्वशाली वीरोंका तेज चमकता ही रहता है । जिस प्रकार प्रचंड आंधी बडे पेडोंको जडमूलसे उखाड फेंक देती है, वैसे ही ये वीर शत्रुओंको हिलाकर गिरा देते हैं । नेत्र जैसे यात्रीको सरल सडक परसे ले चलता है, ठीक उसी प्रकार ये वीर हम जैसे प्रबल पुरुषार्थी लोगोंको सीधी राहसे प्रगतिकी ओर ले चलें ॥६॥

जिसे वीरोंकी सहायता मिलती है, उसकी प्रगति सब प्रकारसे होती है ॥७॥

४७७ नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरो ऽर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन् व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥
४७८ प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥ ९ ॥
४७९. यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥ १० ॥
४८० अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥ ११ ॥

अर्थ- [४७७] (**यथा**) जैसे (**नियुत्वन्तः**) घोडे समीप रखनेवाले, (**ग्राम-जितः**) दुश्मनोंके गाँव जीतनेवाले (**नरः**) नेता, (**कवन्धिनः**) समीप जल रखनेवाले (**मरुतः**) वीर मरुत् (**अर्यमणः न**) अर्यमाके समान (**यत् इनासः**) जब वेगसे जाते हैं, तब (**अस्वरन्**) शब्द करते हैं, (**उत्सं पिन्वन्ति**) जलकुण्डोंको परिपूर्ण बना रखते हैं और (**पृथिवीं**) भूमि पर (**मध्वः**) मिठास भरे (**अन्धसा**) अन्नकी (**वि उन्दन्ति**) विशेष समृद्धि करते हैं ॥८॥

[४७८] हे (**जीरदानवः**) शीघ्र विजयी बननेवाले वीरो ! (**इयं पृथिवी**) यह भूमि (**मरुद्भ्यः**) वीर मरुतोंके लिए (**प्रवत्-वती**) सरल मार्गोंसे युक्त बन जाती है, (**द्यौः**) द्युलोक भी (**प्र-यद्भ्यः**) वेगपूर्वक जानेवाले इन वीरोंके लिए (**प्रवत्-वती**) आसानीसे जाने योग्य (**भवति**) होता है, (**अन्तरिक्ष्याः पथ्याः**) अन्तरिक्षकी सडकें भी उनके लिए (**प्रवत्-वतीः**) सुगम बनती हैं और (**पर्वताः**) पहाड भी (**प्रवत्-वन्तः**) उनके लिए सरल पथवत् बने दीख पडते हैं ॥९॥

[४७९] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**सभरसः**) समान रूपसे कार्यका बोझ उठानेवाले, मानों (**स्वर् नरः**) स्वर्गके नेता तुम (**सूर्ये उदिते**) सूर्यके उदय होने पर (**मदथ**) हर्षित होते हो। हे (**दिवः नरः**) तेजस्वी नेता एवं वीरो ! (**यत्**) जबतक (**विः सिस्रतः अश्वाः**) तुम्हारे दौडनेवाले घोडे (**न अह श्रथयन्त**) तनिक भी नहीं थक गये हैं, तभी तक (**सद्यः**) तुरन्त ही तुम (**अस्य अध्वनः पारं**) इस मार्गके अन्त तक (**अस्नुथ**) पहुँच जाओ ॥१०॥

[४८०] हे (**रथे शुभः मरुतः**) रथोंमें सुहानेवाले वीर मरुतो ! (**वः अंसेषु**) तुम्हारे कंधोंपर (**ऋष्टयः**) भाले विराजमान हैं, (**पत्सु खादयः**) पैरोंमें कडे, (**वक्षः सु रुक्माः**) उरोभागपर स्वर्णमुद्राओंके हार, (**गभस्त्योः**) भुजाओं पर (**अग्नि-भ्राजसः विद्युतः**) अग्निवत् चमकीले वज्र और (**शीर्षसु**) माथे पर (**हिरण्ययीः वितताः शिप्राः**) सुवर्णके भव्य शिरस्त्राण रखे हुए हैं । ॥११॥

भावार्थ- घुडसवार वीर शत्रुओंके ग्राम जीत लेते हैं, तथा वेगपूर्वक दुश्मनों पर धावा करते हैं। उस समय वे बडी भारी घोषणा करते हैं और जलकुण्ड पानी से भरकर भूमंडल पर मधुरिमामय अन्नजलकी समृद्धिकी यत्रतत्र विपुलता कर देते हैं ॥८॥

वीरोंके लिए पृथ्वी, पर्वत, अन्तरिक्ष एवं आकाशपथ सभी सुसाध्य एवं सुगम प्रतीत होते हैं । (वीरोंके लिए कोई भी जगह बीहड या दुर्गम नहीं जान पडती है ।) ॥९॥

सभी कामोंका भार वीर सैनिक समभावसे बराबर बाँटकर उठाते हैं । दिनका प्रारम्भ होनेपर (अर्थात् काम शुरु करना सुगम होता है, इसलिए) ये आनन्दित होते हैं । ऐसे उत्साही वीर घोडोंके थक जानेके पहले ही अपने गन्तव्यस्थान पर पहुँच जायँ ॥१०॥

इन मरुतोंका वेश वीरोंका वेश है। इनके कंधों पर भाले, पैरोंमें कडे, वक्षस्थल पर स्वर्णहार, भुजाओं पर अग्निके समान चमकीले और माथे पर सोनेके किरीट होते हैं ॥११॥

४८१ तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत् स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२ ॥

४८२ युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥ १३ ॥

४८३ यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४ ॥

४८४ तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥ १५ ॥

अर्थ- [४८१] हे **(अर्यः मरुतः)** पूजनीय वीर मरुतो ! **(तं अ-गृभीत-शोचिषं)** उस अप्रतिहत तेजस्वी **(नाकं)** आकाशमेंसे **(रुषत्)** तेजस्वी **(पिप्पलं)** जलको **(वि धूनुथ)** विशेष हिलाओ, वर्षा करो । उसके लिए तुम **(वृजना)** अपने बलोंका **(सं अच्यन्त)** संगठन करके अपने **(अतित्विषन्त)** तेज बढाओ, **(यत्)** क्योंकि **(ऋतायवः)** पानी चाहनेवाले लोग **(विततं)** विस्तृत **(घोषं स्वरन्ति)** घोषणा करके कहते हैं कि, हमें जल चाहिए । ॥१२॥

[४८२] हे **(वि-चेतसः मरुतः)** विशेष ज्ञानी वीर मरुतो ! **(युष्मा-दत्तस्य)** तुम्हारे दिये हुए **(वयस्-वतः)** अन्नसे युक्त होकर **(रायः)** ऐश्वर्यके **(रथ्यः)** रथ भरके लानेवाले हम **(स्याम)** हों । हे **(मरुतः !)** वीर मरुतो ! **(अस्मे)** हमें **(यः)** वह **(दिवः तिष्यः यथा)** आकाशमें विद्यमान् नक्षत्रके समान **(न युच्छति)** न नष्ट होनेवाला **(सहस्त्रिणं)** हजारों किस्मका धन देकर **(रारन्त)** संतुष्ट करो । ॥१३॥

[४८३] हे **(मरुत)** वीर मरुतो ! **(यूयं)** तुम **(स्पार्ह-वीरं)** स्पृहणीय वीरोंसे युक्त **(रयिं)** धनका संरक्षण करते हो, **(यूयं साम-विप्रं)** तुम शांतिप्रधान या सामगायक विद्वान् **(ऋषिं अवथ)** ऋषिका रक्षण करते हो, **(यूयं)** तुम **(भरताय)** जनताका भरणपोषण करनेवालेके लिए **(अर्वन्तं वाजं)** घोडे तथा अन्न देते हो और **(यूयं)** तुम **(राजानं)** नरेशको **(श्रुष्टि-मन्तं)** वैभवयुक्त करके उसे **(धत्थ)** धारित एवं पुष्ट करते हो । ॥१४॥

[४८४] हे **(सद्य-ऊतयः)** तुरन्त संरक्षण करनेवाले वीरो ! **(वः तत्)** तुम्हारे उस **(द्रविणं यामि)** द्रव्यकी हम इच्छा करते हैं । **(येन)** जिससे हम **(नॄन्)** सभी लोगोंको **(स्वः न)** प्रकाशके समान **(अभि ततनाम)** दान दे सकें । हे **(मरुतः !)** वीर मरुतो ! **(इदं मे सु-वचः)** यह मेरा अच्छा वचन **(हर्यत)** स्वीकार कर लो, **(यस्य तरसा)** जिसके बलसे हम **(शतं हिमाः)** सौ हेमन्तऋतु, सौ वर्ष **(तरेम)** दुःखमेंसे तैरकर पार पहुँच सकें, जीवित रह सकें । ॥१५॥

भावार्थ- अपने बलका संगठन करके तेजस्विता बढाओ । वर्षाका भार इकट्ठा करके वह बाँट दो, क्योंकि जनता जल पर्याप्त मात्रामें पानेके लिए अतीव लालायित है ॥१२॥

सहस्त्रों प्रकारका धन और अन्न हमें प्राप्त हो । वह धन आकाशके नक्षत्रकी न्याई अक्षय एवं अटल रहे ॥१३॥

वीर पुरुष शूरतायुक्त धनका वितरण करके ज्ञानी तत्त्वज्ञका पोषण करके प्रजापालनतत्पर भूपालका पालनपोषण एवं संवर्धन करते हैं ॥१४॥

हे संरक्षणकर्ता वीरो ! हमें प्रचुर धन दो ताकि हम उसे सब लोगोंमें बाँट दें। मैं अपना यह वचन दे रहा हूं । इसी भाँति करते हम सौ वर्षों तक दुःख हटाकर जीवनयात्रा बितायें ॥१५॥

[५५]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः। देवता- मरुतः। छन्दः- जगती; १० त्रिष्टुप्।]

४८५ प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १ ॥
४८६ स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २ ॥
४८७ साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ३ ॥
४८८ आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४ ॥

---

[५५]

अर्थ- [४८५] (**प्र-यज्यवः**) विशेष यजनीय कर्म करनेहारे (**भ्राजात्-ऋष्टयः**) तेजस्वी हथियारोंसे युक्त तथा (**रुक्म-वक्षसः मरुतः**) वक्षः स्थलपर स्वर्णहार धारण करनेहारे वीर मरुत् (**बृहत् वयः दधिरे**) बडा भारी बल धारण करते हैं । (**सु-यमेभिः**) भली भाँति नियमित होनेवाले, (**आशुभिः**) वेगवान् (**अश्वैः**) घोडोंके साथ, वे (**ईयन्ते**) चले जाते हैं । उनके (**रथाः**) रथ (**शुभं यातां**) लोककल्याणके लिए जाते समय उन्हींके (**अनु अवृत्सत**) पीछे चले जाते हैं ॥१॥

[४८६] (**यथा**) चूँकि तुम (**विद**) बहुत ज्ञान प्राप्त करते हो और (**स्वयं तविषीं दधिध्वे**) स्वयंमेव विशेष बल भी धारण करते हो, तुम (**महान्तः**) बडे हो और (**उर्विया**) मातृभूमिका हित करनेकी लालसासे (**बृहत् वि राजथ**) विशेष रूपसे सुशोभित होते हो । (**उत**) और (**ओजसा**) अपने बलसे (**अन्तरिक्षं वि ममिरे**) अन्तरिक्षको भी व्याप्त कर डालते हो, (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोककल्याणके लिए जाते समय, (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥२॥

[४८७] जो (**साकं जाता**) एक ही समय प्रकट होनेवाले, (**सु-भ्वः**) अच्छी प्रकार उत्पन्न हुए, (**साकं उक्षिता**) संघ करके बलसंपन्न होनेवाले (**नरः**) नेता वे वीर, (**श्रिये चित्**) वैभव पानेके लिए हा (**प्र-तरं**) अधिकाधिक (**आ ववृधुः**) बढते हैं, वे (**सूर्यस्य इव रश्मयः**) सूर्यकिरणोंके समान (**वि-रोकिणः**) विशेष तेजस्वी हैं (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोककल्याणके लिए जाते समय (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥३॥

[४८८] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**वः महित्वनं**) तुम्हारा बडप्पन (**आ-भूषेण्यं**) सभी प्रकारसे शोभायमान है और वह (**सूर्यस्य इव चक्षणं**) सूर्यके दृश्यके समान (**दिदृक्षेण्यं**) दर्शनीय है । (**उत**) इसीलिए तुम (**अस्मान् अ-मृतत्वे दधातन**) हमें अमरपनको पहुँचाओ (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोक कल्याणके लिए जाते समय (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥४॥

भावार्थ- अच्छे कर्म करनेहारे, तेजस्वी आयुध धारण करनेवाले, आभूषण सुशोभित वीर अपने बलको अत्यधिक रूपसे बढाते हैं और चपल अश्वोंपर आरूढ होकर जनताका हित करनेके लिए शत्रु दल पर धावा करना शुरू करते हैं ॥१॥

वीर पुरुष ज्ञान प्राप्त करके अपना बल बढाकर मातृभूमिका यश बढाने के लिए प्रयत्न करते हैं। अपने इन अदम्य अध्यवसायोंके फलस्वरूप वे अत्यन्त सुशोभित दीख पडते हैं और अपनी ऊँची उडानोंसे समूचो अन्तरिक्ष भी व्याप्त कर डालते हैं ॥२॥

ये वीर शत्रुदल पर आक्रमण करते समय एक ही समय प्रकट होते हैं, अपना उत्तम जीवन बिताते हैं, संघ बनाकर अपने बलकी वृद्धि करते हैं और सदैव यशके लिए ही सचेष्ट रहा करते हैं। ये सूर्यकिरणवत् तेजस्वी बनकर प्रकाशमान् होते हैं ॥३॥

४८९ उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५ ॥
४९० यदश्वान् धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान् प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत् स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६ ॥
४९१ न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७ ॥
४९२ यत् पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८ ॥

अर्थ- [४८९] हे (**पुरीषिणः मरुतः**) जलसे युक्त वीर मरुतो ! (**यूयं**) तुम (**समुद्रतः**) समुद्रके जलको (**उत् ईरयथ**) ऊपर प्रेरणा देते हो और (**वृष्टिं वर्षयथ**) वर्षाका प्रारम्भ करते हो । हे (**दस्राः**) शत्रुको विनष्ट करनेवाले वीरो ! (**वः धेनवः**) तुम्हारी गौएं (**न उप दस्यन्ति**) क्षीण नहीं होती हैं । (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोककल्याणके लिए जाते समय (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥५॥

[४९०] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**यत् पृषतीः अश्वान्**) जब धब्बेवाले घोडोंको तुम (**धूर्षु**) रथोंके अग्रभागमें जोड देते हो और (**हिरण्ययान् अत्कान्**) स्वर्णमय कवच (**प्रति अमुग्ध्वं**) हर कोई पहनते हो, तब (**विश्वाः इत्**) सभी (**स्पृधः**) चढाऊपरी करनेवाले दुश्मनोंको तुम (**वि अस्यथ**) विभिन्न प्रकारोंसे तितरबितर कर देते हो । (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोक कल्याणके लिए जाते समय (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥६॥

[४९१] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**वः**) तुम्हारे मार्गमें (**पर्वताः**) पहाड (**न वरन्त**) रुकावट न डालें, (**नद्यः न**) नदियाँ भी रोडे न अटकायँ । (**यत्र**) जिधर (**अचिध्वं**) जानेकी इच्छा हो, (**तत्**) उधर (**गच्छथ इत् उ**) जाओ, (**उत**) और (**द्यावा-पृथिवी**) भूमंडल एवं द्युलोकमें (**परि याथन**) चारों ओर घूमो । (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोककल्याणके लिए जाते समय (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥७॥

[४९२] हे (**वसवः मरुतः**) लोगोंको बसाने हारे वीर मरुतो ! (**यत् पूर्व्यं**) जो पुरातन, पुराना है (**यत् च नूतनं**) और जो नया है (**यत् उद्यते**) जो उत्कृष्ट है और (**यत् च शस्यते**) जो प्रशंसित होता है, (**तस्य विश्वस्य**) उस सभीके तुम (**नवेदसः भवथ**) जाननेवाले होओ । (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोक कल्याणके लिए जाते समय (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥८॥

भावार्थ- हे वीरो ! तुम्हारा बडप्पन सचमुच वर्णनीय है । तुम सूर्यवत् तेजस्वी हो, इसीलिए हमें अमृतोंमें स्थान दो ॥४॥

समुद्रमें विद्यमान जलको ये मरुत् उपर आकाशमें उठा ले जाते हैं और यहांसे फिर वर्षाके द्वारा इसे भूमि पर पहुँचा देते हैं । इस वर्षाके कारण गौओंका पोषण होता है ॥५॥

वीर सुन्दर दिखाई देनेवाले अश्वोंको रथमें जोडकर कवचधारी बन बैठते हैं और सारे शत्रुओंको मार भगा देते हैं ॥६॥

पर्वत तथा नदियोंके कारण वीरोंके पथमें कोई रुकावट खडी न होने पाये । विजयी बननेके लिए जिधर भी जाता उन्हें पसंद हो, उधर बिना किसी विघ्नके वे चले जायें और सर्वत्र विजयका झंडा फहरायें ॥७॥

पुराना हो या नया, जो कुछ भी ऊँचा या वर्णनीय ध्येय है, उसे वीर जान लें और उसके लिए सचेष्ट रहें ॥८॥

४९३ मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनाऽस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ९ ॥
४९४ यूयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० ॥

[५६]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- बृहती; ३, ७ सतोबृहती ।]

४९५ अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद् रोचनादधि ॥ १ ॥
४९६ यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन् तान् वर्ध भीमसंदृशः ॥ २ ॥

अर्थ- [४९३] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**नः मृळत**) हमें सुखी बनाओ, (**मा वधिष्टन**) हमें न मारो (**अस्मभ्यं**) हमें (**बहुलं शर्म वि यन्तन**) बहुत सारा सुख दो और हमारी (**स्तोत्रस्य सख्यस्य**) स्तुतियोग्य मित्रताको तुम (**अधि गातन**) जान लो । (**रथाः**) इनके रथ (**शुभं यातां**) लोक कल्याणके लिए जाते समय (**अनु अवृत्सत**) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥९॥

[४९४] हे (**गृणानाः मरुत**) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! (**यूयं**) तुम (**अस्मान् अंहतिभ्यः निः**) हमें दुर्दशासे दूर हटाकर (**वस्यः अच्छ**) बसनेके लिए योग्य जगहकी ओर (**नयत**) ले चलो । हे (**यजत्राः**) यज्ञ करनेवाले वीरो ! (**नः हव्य-दातिं**) हमारे दिये हुए हविष्यान्नका (**जुषध्वं**) सेवन करो । (**वयं**) हम (**रयीणां पतयः स्याम**) विभिन्न प्रकारके धनोंके स्वामी या अधिपति बन जायँ, ऐसा करो ॥१०॥

[५६]

[४९५] हे (**अग्ने !**) अग्ने ! (**अद्य**) आज दिन (**शर्धन्तं**) शत्रुविनाशक, (**रुक्मेभिः अञ्जिभिः**) स्वर्णहारों एवं वीरों के आभूषणोंसे (**पिष्टं**) अलंकृत (**गणं**) वीर मरुतोंके समुदायको तथा (**मरुतां विशः**) मरुतोंके प्रजाजनोंको (**रोचनात् दिवः अधि**) प्रकाशमय द्युलोकसे (**अव आ ह्वये**) मैं नीचे बुलाता हूँ । ॥१॥

[४९६] हे अग्ने ! तू उन्हें (**हृदा यथा चित्**) अंतःकरणपूर्वक जैसे पूज्य (**मन्यसे**) समझता है, (**तत् इत्**) उसी प्रकार वे (**आ-शसः**) चतुर्दिक् शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले वीर (**मे जग्मुः**) मेरे निकट आ चुके हैं (**ये**) जो (**ते**) तुम्हारे (**हवनानि**) हवानोंके (**नेदिष्ठं**) समीप (**आगमन्**) आ गये, (**तान् भीम-संदृशः**) उन उग्र स्वरूपी वीरोंको (**वर्ध**) तू बढा दे । ॥२॥

भावार्थ- हमें सुख, आनंद एवं कल्याण प्राप्त हो, ऐसा करो । जिससे हमारी क्षति हो, ऐसा कुछ भी न करो और हमसे मित्रतापूर्ण व्यवहार रखो ॥९॥

हमें वीर पुरुष पापोंसे बचाएं और सुखपूर्वक जहां निवास कर ऐसे स्थान तक हमें पहुँचा दें । हम जो कुछ भी हविष्याय प्रदान करते हैं, उसे स्वीकार कर हमें भाँति भाँति के धन मिलें, ऐसा करना उन्हें उचित है ॥१०॥

जनता के हित के लिए हम अपने बीच वीरोंको बुलाते हैं । वे वीर सैनिक इधर आयें और अच्छि रक्षाके द्वारा सबको सुखी बनायें । ॥१॥

पूज्य वीरोंको अन्न आदि देकर उनका यथावत् आदर सत्कार करें, तथा जिससे उनकी वृद्धि हो, ऐसे कार्य सम्पन्न करने चाहिए । ॥२॥

४९७ मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥
४९८ नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित् स्वर्यं१ पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥
४९९ उत् तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥
५०० युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ ६ ॥
५०१ उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणि—रिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत् प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

अर्थ- [४९७] (**मीळहुष्मती इव**) उदार तथा (**पर-अ-हता**) शत्रुसे पराभूत न हुई और इसीलिए (**मदन्ती**) हर्षित हुई वीरसेना (**अस्मत् आ एति**) हमारे निकट आ रही है । हे (**मरुतः !**) वीर मरुतो ! (**वः अमः**) तुम्हारा बल (**ऋक्षः न**) सप्तर्षियोंके समान (**शिमी-वान्**) कार्यक्षम तथा (**दु-ध्रः**) शत्रुओंके द्वारा घेरे जानेमें अशक्य है और (**गौः इव**) बैलके समान वह (**भीम-युः**) भयंकर ढंगसे सामर्थ्यवान् है ॥३॥

[४९८] (**दुर् धुरः गावः न**) जीर्ण धुरा का नाश जैसे बैल करते हैं, उसी प्रकार (**ये**) जो वीर (**ओजसा**) अपनी सामर्थ्यसे शत्रुओंका (**वृथा**) आसानीसे विनाश करते हैं, वे (**यामभिः**) हमलोंसे (**अश्मानं गिरिं**) पथरीले पहाडोंको तथा (**स्वर-यं पर्वतं चित्**) आकाशचुम्बी पहाडोंको भी (**प्र च्यावयन्ति**) स्थान भ्रष्ट कर देते हैं । ॥४॥

[४९९] (**उत् तिष्ठ**) उठो, (**नूनं**) सचमुच (**स्तोमैः**) स्तोत्रोंसे (**सम्-उक्षितानां**) इकट्ठे बढे हुए (**एषां मरुतां**) इन वीर मरुतोंके (**पुरु-तमं**) बहुतही बडे (**अ-पूर्व्यं**) एवं अपूर्व गणकी (**गवां सर्गं इव**) बैलोंके समूहकी जैसे प्रार्थना की जाती है, वैसे ही (**ह्वये**) मैं प्रार्थना करता हूँ । ॥५॥

[५००] तुम अपने (**रथे हि**) रथमें (**अरुषीः**) लालिमामय हरिणियाँ (**युङ्ग्ध्वं**) जोड दो और अपने (**रथेषु**) रथमें (**रोहितः**) एक लालवर्णवाला हरिण (**युङ्ग्ध्वं**) लगा दो, या (**अजिरा**) वेगवान् (**वहिष्ठा हरि**) होनेकी क्षमता रखनेवाले जो घोडोंको रथ (**वोळ्हवे धुरि वोळ्हवे धुरि**) खींचनेके लिए धुरामें (**युङ्ग्ध्वं**) जोड दो । ॥६॥

[५०१] (**उत**) सचमुच (**स्यः**) वह (**अरुषः**) रक्तिम आभासे युक्त (**तुवि-स्वनिः**) बडे जोरसे हिनहिनानेवाला (**दर्शतः**) देखनेयोग्य (**वाजी**) घोडा (**इह**) इस रथकी धुरामें (**धायि स्म**) जोडा गया है । हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**वः यामेषु**) तुम्हारी चढाइयोंमें वह (**चिरं मा करत्**) विलम्ब न करेगा, (**तं**) उसे (**रथेषु प्र चोदत**) रथोंमें बैठकर भली भाँति हाँक दो ॥७॥

भावार्थ- शिकस्त न खायी हुई, उमंग भरी वीर सेना हमें सहायता पहुँचानेके लिए आ रही है। वह प्रबल है इसीलिए शत्रु उसे घेर नहीं सकते हैं और इसे देख लेनेसे दर्शकोंके मनमें भयका संचार होता है ॥३॥

अपनी शक्तिके सहारे ये वीर मरुत् वीर शत्रुओंका वध करते हैं और पर्वत श्रेणीको भी जगहसे हिला देते हैं ॥४॥

ये वीर मरुत् बुलाये जानेपर इकट्ठे हो जाते हैं । मैं इन मरुतोंके इस अपूर्व दलकी प्रार्थना करता हूँ ॥५॥

हे मरुतो ! तुम अपने रथमें अनेक रंगोंवाली हिरणियां जोडो और उसमें दो अच्छे और पुष्ट घोडे भी जोडो ॥६॥

रथको शीघ्र ही अश्वयुक्त करके शीघ्र चलनेके लिए उन्हें प्रेरणा करो और बहुत जल्द दुश्मनों पर धावा करो ॥७॥

५०२ रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥
५०३ तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन् त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥ ९ ॥

[५७]

[ऋषिः— श्यावाश्व आत्रेयः । देवता— मरुतः । छन्दः— जगती, ७-८ त्रिष्टुप् ।]

५०४ आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥ १ ॥
५०५ वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ २ ॥

अर्थ- [५०२] (यस्मिन्) जिसमें (सु-रणानि) अच्छे रमणीय वस्तुओंको (बिभ्रती) धारण करनेवाली (रोदसी) द्यावापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतोंके साथ (आ तस्थौ) बैठी हुई है, उस (श्रवस्-युं) कीर्तिको समीप करनेवाले (मरुतं रथं) वीर मरुतोंके रथका (वयं आ हुवामहे) वर्णन हम सभी तरहसे कर रहे हैं ॥८॥

[५०३] (यस्मिन्) जिसमें (सु-जाता) भलीभाँति उत्पन्न, (सु-भगा) अच्छे भाग्यसे युक्त एवं (मीळ्हुषी) उदार द्यावापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतोंके साथ (महीयते) महत्त्वको प्राप्त होती है, (तं) उस (वः) तुम्हारे (रथे-शुभं) रथमें सुहानेवाले (त्वेषं) तेजस्वी और (पनस्युं) सराहनीय (शर्धं) बलकी (आ हुवे) ठीक प्रकार मैं प्रार्थना करता हूँ ॥९॥

[५७]

[५०४] हे (इन्द्र-वन्तः) इन्द्रके साथ रहनेवाले, (स-जोषसः) प्रेम करनेहारे, (हिरण्य-रथाः) सुवर्णके बनाये रथ रखनेवाले तथा (रुद्रासः) शत्रुको रुलानेवाले वीरो ! (सुविताय) हमारे वैभवको बढानेके लिए (आ गन्तन) हमारे समीप आओ । (इयं अस्मत् मतिः) यह हमारी स्तुति (वः प्रति हर्यते) तुममें से हरेक की पूजा करती है । हे (दिवः !) तेजस्वी वीरो ! जिस प्रकार (तृष्णजे) प्यासे और (उदन्-यवे) जलको चाहनेवालेके लिए (उत्साः न) जलकुंड रखे जाते हैं, उसी प्रकार हमारे लिए तुम हो । ॥१॥

[५०५] हे (पृश्नि-मातरः मरुतः) भूमि को माता माननेवाले वीर मरुतो ! तुम (वाशीमन्तः) कुठारसे युक्त, (ऋष्टि-मन्तः) भाले धारण करनेवाले, (मनीषिणः) अच्छे ज्ञानी, (सु-धन्वानः) सुन्दर धनुष्य साथ रखनेहारे, (इषुमन्तः) बाण रखनेवाले, (निषङ्गिणः) तूणीरवाले, (सु-अश्वाः सु-रथाः) अच्छे घोडों तथा रथोंसे युक्त एवं (सु-आयुधाः) अच्छे हथियार धारण करनेहारे (स्थ) हो और इसीलिए तुम (शुभं) लोककल्याणके लिए (वि याथन) जाते हो ॥२॥

भावार्थ- द्यावापृथिवी अच्छे रमणीय वस्तुओंको धारण करके जिनके आधारसे टिकी है, उन मरुतोंके विजयी रथका काव्य हम रचते हैं, तथा गायन भी करते हैं ॥९॥

जिसमें समूचा भाग्य समाया हुआ है, ऐसे तेजस्वी मरुतोंके दिव्य बलकी सराहना मैं करता हूँ ॥९॥

वीर हमारे पास आ जायँ और प्यासे हुए लोगोंको जल दे और हमारी वाणी उनका काव्यगायन करे ॥१॥

सभी भाँति के शस्त्रास्त्रों एवं हथियारोंसे सुसज्ज बनकर ये वीर शत्रुदल पर भीषण आक्रमणका सूत्रपात करते हैं ॥२॥

५०६ धूनुथ द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥
५०७ वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ ४ ॥
५०८ पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥ ५ ॥
५०९ ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ ६ ॥

अर्थ- [५०६] (**दाशुषे**) दानीको (**वसु**) धन देनेके लिए जब तुम चढाई करते हो तब (**द्यां**) द्युलोककी और (**पर्वतान्**) पहाडोंको भी तुम (**धूनुथ**) हिला देते हो । उस (**वः**) तुम्हारे (**यामनः भिया**) हमलेके डरसे (**वना**) अरण्य भी (**नि जिहते**) बहुत ही काँपने लगते हैं । हे (**पृश्नि मातरः**) भूमिको माता समझनेवाले वीरो ! (**शुभे**) लोककल्याणके लिए (**यत्**) जब तुम (**उग्राः**) उग्र स्वरूपवाले वीर बन (**पृषतीः**) धब्बेवाली हरिणियाँ रथोंमें (**अयुग्ध्वं**) जोडते हो, तब (**पृथिवीं कोपयथ**) भूमिको क्षुब्ध कर डालते हो ॥३॥

[५०७] (**मरुतः**) वीर मरुत् (**वात-त्विषः**) प्रखर तेजसे युक्त, (**वर्ष-निर्णिजः**) स्वदेशी कपडा पहननेवाले हैं । (**यमाः इव**) यमज भाईके समान (**सु-सदृशः**) बिलकुल तुल्यरूप तथा (**सु पेशसः**) सुन्दर रूपवाले हैं । वे (**पिशङ्ग-अश्वाः**) भूरे रंग के एवं (**अरुण-अश्वाः**) लाल रंगके घोडे समीप रखनेवाले, (**अ-रेपसः**) पापरहित तथा (**प्र-त्वक्षसः**) शत्रुओंका पूर्ण विनाश करनेवाले अपने (**महिना**) महत्त्वके कारण (**द्यौः इव उरवः**) आकाशके तुल्य बडे हुए हैं ॥४॥

[५०८] (**पुरु-द्रप्साः**) यथेष्ट जल समीप रखनेवाले, (**अञ्जि-मन्तः**) वस्त्रालंकार-गणवेश-धारण करनेवाले, (**सु दानवः**) दानशूर, (**त्वेष-संदृशः**) तेजस्वी दीख पडनेवाले, (**अन्-अवभ्र-राधसः**) जिनका धन कोई छीन नहीं ले जा सकता ऐसे, (**जनुषा-सु-जातासः**) जन्मसे उत्तम परिवारमें उत्पन्न (**रुक्म-वक्षसः**) सुवर्णके अलंकार छातीपर धरनेहारे, (**दिवः**) तेजःपुञ्ज तथा (**अर्काः**) पूजनीय वीर (**अ-मृतं नाम भेजिरे**) अमर कीर्ति पा चुके ॥५॥

[५०९] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**वः अंसयोः ऋष्टयः**) तुम्हारे कंधों पर भाले रखे हैं । (**वः बाह्वोः**) तुम्हारी भुजाओंमें (**सहः ओजः**) शत्रुको पराभूत करनेका बल तथा (**बलं**) सामर्थ्य (**अधि हितं**) रखा हुआ है । (**शीर्षसु**) माथों पर (**नृम्णा**) सुवर्णमय शिरोवेष्टन, (**वः रथेषु**) तुम्हारे रथोंमें (**विश्वा आयुधा**) सभी हथियार विद्यमान हैं । (**वः तनूषु**) तुम्हारे शरीरों पर (**श्रीः अधि पिपिशे**) तेज अत्यधिक शोभा बढा रहा है ॥६॥

भावार्थ- वीर सैनिक हाथमें शस्त्रास्त्र लेकर जब सज्ज होते हैं तब सभी लोग सहम जाते हैं ॥३॥

ये सभी वीर मरुत् प्रखर तेजसे युक्त, जुडवें भाईके समान परस्पर प्यार करनेवाले, तुल्य रूपवाले और सुन्दर रूपवाले हैं । ये शत्रुओंका नाश करके अपने ही महत्त्वके कारण आकाशके समान बडे हुए हैं ॥४॥

ये मरुत् सभी अलंकारोसे सजे धजे रहते हैं । उत्तम वीर परिवारमें उत्पन्न होने के कारण ये स्वयं भी वीर हैं, अतः इनका धन कोई छीन नहीं सकता ॥५॥

वीरोंके कन्धों पर भाले हों, भुजाओंमें शत्रुओंको हरानेवाला बल हो और सामर्थ्य हो । शरीर पर सभी हथियार विद्यमान हों और उनकी शोभा सदा बढे ॥६॥

५१० गोमदश्वावद् रथवत् सुवीरं चन्द्रवद् राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥ ७ ॥
५११ हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

[५८]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

५१२ तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद् वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥
५१३ त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥ २ ॥

अर्थ- [५१०] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**गो-मत्**) गौओंसे युक्त, (**अश्वा-वत्**) घोडोंसे युक्त, (**रथ-वत्**) रथोंसे युक्त, (**सु-वीरं**) वीरोंसे परिपूर्ण तथा (**चन्द्र-वत्**) सुवर्णसे युक्त, (**राधः**) अन्न (**नः दद**) हमें दे दो । हे (**रुद्रियासः**) वीरो ! (**नः**) हमारी (**प्र-शस्ति**) वैभवशालिता (**कृणुत**) करो । (**वः**) तुम्हारी (**दैव्यस्य अवसः**) दिव्य संरक्षणशक्तिका हम (**भक्षीय**) सेवन कर सकें ऐसा करो ॥७॥

[५११] (**हये नरः मरुतः**) हे नेता एवं वीर मरुतो ! (**तुवि-मघासः**) बहुत सारे धनसे युक्त, (**अ-मृताः**) अमर, (**ऋतज्ञाः**) सत्यको जाननेवाले, (**सत्य-श्रुतः**) सत्यकीर्तिसे युक्त, (**कवयः युवानः**) ज्ञानी एवं युवक, (**बृहत्-गिरयः**) अत्यन्त सराहनीय और (**बृहत् उक्षमाणाः**) प्रचंड बलसे युक्त तुम (**नः मृळत**) हमें सुखी बनाओ ॥८॥

[५८]

[५१२] (**स्व-राजः**) स्वयंशासक ऐसे (**ये**) जो वीर (**आशु-अश्वाः**) वेगवान् घोडोंको समीप रखनेवाले हैं, इसलिए (**अम-वत् वहन्ते**) अतिवेगसे चले जाते हैं, (**उत**) और जो (**अमृतस्य ईशिरे**) अमर लोकपर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं (**तं उ नूनं**) उस सचमुच (**एषां**) इन (**नव्यसीनां**) सराहनीय (**मारुतं**) वीर मरुतोंके (**तविषीमन्तं गणं स्तुषे**) बलिष्ठगण-संघकी तू स्तुति कर ॥१॥

[५१३] हे (**विप्र**) ज्ञानी पुरुष ! (**ये मयो-भुवः**) जो सुखदायक, (**महित्वा**) बडप्पनसे (**अमिताः**) असीम सामर्थ्यवान् तथा (**तुवि-राधसः**) यथेष्ट धनाढ्य हैं, उन (**नॄन्**) नेता वीर पुरुषोंको तथा (**तवसं**) बलिष्ठ एवं (**खादि-हस्तं**) हाथमें वलय-कडे-धारण करनेवाले, (**धुनि-व्रतं**) शत्रुओंको हिला देनेका व्रत जिन्होंने ले लिया हो, ऐसे (**मायिनं**) कुशल (**दाति-वारं**) दानी या शत्रुका वध करके उसे दूर करनेवाले (**त्वेषं**) तेजस्वी ऐसे इन वीरोंके (**गणं वन्दस्व**) संघको नमन कर ॥२॥

भावार्थ- हर तरहसे सहायता करके और हमारा संरक्षण करके वीर हमारी प्रगतिमें मददगार हों । हमें अन्नकी प्राप्ति ऐसी हो कि जिसके साथ गौ, रथ, अश्व, एवं वीर सैनिक की समृद्धि हो ॥७॥

ऐसे वीर जनता का संरक्षण कर हम सबको सुखी बनावें ॥८॥

जो वीर वन्दनीय हों उनकी प्रशंसा सभीको करनी चाहिए । ये ही वीर इहलोक तथा परलोकपर प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकी क्षमता रखते हैं ॥१॥

हे ज्ञानी पुरुष ! तू जो सुखदायक, अपने महत्त्वके कारण असीम सामर्थ्यवान् और धनाढ्य हैं, उन नेता वीर पुरुषोंको नमन कर ॥२॥

५१४ आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥
५१५ यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत् सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥
५१६ अराइवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥ ५ ॥
५१७ यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥

अर्थ- [५१४] (ये उद-वाहासः) जो जल देनेवाले (वृष्टिं जुनन्ति) वृष्टिको प्रेरणा देते हैं, वे (विश्वे मरुतः) सभी वीर मरुत् (अद्य) आज (वः) तुम्हारी ओर (आ यन्तु) आ जायँ । हे (कवयः) ज्ञानी तथा (युवानः मरुतः) युवक वीर मरुतो ! (यः अयं) जो यह (अग्निः सम्-इन्द्धः) अग्नि प्रज्वलित किया गया है, (एतं जुषध्वं) इसका सेवन करो ॥३॥

[५१५] हे (यजत्राः मरुतः) यज्ञ करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (जनाय) लोककल्याणके लिए (इर्यं) शत्रुविनाशक तथा (विभ्व-तष्टं) कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारे (राजानं) राजाको (जनयथ) उत्पन्न करते हो । (युष्मत्) तुमसे (मुष्टिहा) मुष्टि योधी और (बाहुबलः) बाहुबलसे शत्रुको हटाने (एतिः) आ जाता है, हमें प्राप्त होता है । (युष्मत्) तुमसे ही (सत् अश्वः) अच्छे घोडे रखनेवाला (सुवीरः) अच्छा वीर तैयार हो जाता है ॥४॥

[५१६] (अराः इव इत्) पहियेके अरोंके समान ही (अ-चरमाः) सभी समान दीख पडनेवाले तथा (अहा इव) दिवसतुल्य (महोभिः) बडे भारी तेजसे युक्त होकर (अ-कवाः) अवर्णनीय ठहरनेवाले ये वीर (प्र प्र जायन्ते) प्रकट होते हैं । (उप-मास) लगभग समान कदके (रभिष्ठाः) अतिवेगवान् ये (पृश्नेः पुत्राः) मातृभूमिके सुपुत्र (मरुतः) वीर मरुत् (स्वया मत्या) अपने मनसे ही (सं मिमिक्षुः) सब कोई मिलकर एकतापूर्वक विशेष कार्यका सृजन करते हैं ॥५॥

१ उपमासः रभिष्ठाः पृश्नेः पुत्राः स्वया मत्सा सं मिमिक्षुः- ये मातृभूमिके सुपुत्र वीर समानतापूर्वक बर्ताव करते हैं । अविषमदशामें रहते हैं और अपने कर्तव्यको ऐक्यसे निभाते हैं ।

[५१७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यत्) जब (पृषतीभिः अश्वैः) धब्बेवाले घोडे जाते हुए (विलुपविभिः) दृढ तथा सामर्थ्यवान् पहियोंसे युक्त (रथेभिः) रथोंसे तुम (प्र आयासिष्ट) जाने लगते हो, तब (आपः क्षोदन्ते) सभी जलप्रवाह क्षुब्ध हो उठते हैं, (वनानि रिणते) वनोंका नाश होता है, तथा (उस्त्रियः वृषभः) प्रकाशयुक्त वर्षा करनेहारा (द्यौः) आकाश तक (अव क्रदन्तु) भीषण शब्द से गूंज उठता है ॥६॥

भावार्थ- मरुत् वायु हैं, जो वृष्टि करते हैं । वायु के कारण वृष्टि होना प्रसिद्ध ही है । यह वायु यज्ञाग्नि के साथ मिलकर शुद्ध हो । यज्ञमें शुद्ध और पवित्र पदार्थोंकी आहुति देनेसे उसके कण सूक्ष्म होकर वायुमें मिल जाते हैं और उस वायुको शुद्ध बनाते हैं और यह वायु मेघोंमें जाकर मेघोंमें स्थित जलको भी पवित्र बनाते हैं । इस प्रकार मेघोंका जल भी पवित्र हो जाता है ॥३॥

जनताका हित हो इसलिए दुश्मनोंको विनष्ट करनेवाला, कुशलतापूर्वक सभी राज्यशासनके कार्य करनेवाला नरेश राष्ट्रपतिकी हैसियतसे पदाधिकारी चुना जाता है । उसी प्रकार मुष्टियोधि महाबाहु वीर तथा अच्छे घोडे समीप रखनेवाला वीर भी राष्ट्रमें जन्म लेता है ॥४॥

ये सभी वीर तुल्यरूप दीख पडते हैं और समान ढंग के तेजस्वी हैं । वे अपना कर्तव्य वेगसे पूर्ण करते हैं, और अपनी मातृभूमिकी सेवामें मिलजुलकर अविषम भावसे विशिष्ट कार्यको संपन्न करते हैं ॥५॥

५१८ प्रथिष्ट यामन् पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान् ह्यश्वान् धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

५१९ हये नरो मरुतो मृळता न--स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

[५९]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता मरुतः । छन्दः- जगती, ८ त्रिष्टुप् ।]

५२० प्र वः स्पळक्रन् त्सुविताय दावने--ऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान् तरुषन्त आ रजो--ऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥ १ ॥

अर्थ- [५१८] (एषां यामन्) इन वीरोंके आक्रमणसे (पृथिवी चित्त) भूमितक (प्रथिष्ठ) विख्यात हो चुकी है, (भर्ता इव) पति जैसे पत्नीमें (गर्भं), गर्भकी स्थापना करता है, वैसे ही इन्होंने (स्वं इत्) अपना ही (शवः धुः) बल अपने राष्ट्रमें प्रस्थापित किया (हि) और (वातान् अश्वान्) वेगवान् घोडोंको (धुरि आ युयुज्रे) रथके अगले भागमें जोड दिया और (रुद्रियासः) उन वीरोंने (स्वेदं वर्षं चक्रिरे) अपने पसीनेकी मानों वर्षासी की, पराक्रमकी पराकाष्ठा कर दिखाई ॥७॥

[५१९] (हये नरः मरुतः) हे नेता एवं वीर मरुतो ! (तुवि-मघासः) बहुत सारे धनसे युक्त, (अ-मृताः) अमर, (ऋतज्ञाः) सत्य को जाननेवाले, (सत्यश्रुतः) सत्य कीर्तिसे युक्त (कवयः युवान) ज्ञानी एवं युवक, (बृहत्-गिरयः) अत्यन्त सराहनीय और (बृहत् उक्षमाणाः) प्रचंड बलसे युक्त तुम (न मृळत) हमें सुखी बनाओ ॥८॥

[५९]

[५२०] (वः सविताय) तुम्हारा अच्छा कल्याण हो तथा (दावने) अच्छा दान दिया जा सके, इसलिए (स्पट्) याजक इस कर्मका (प्र अक्रन्) उपक्रम या प्रारंभ कर रहा है, तूभी (दिवे अर्च) प्रकाशक देव की, द्युलोककी पूजा कर और मैं भी (पृथिव्यै) मातृभूमिके लिए (ऋतं प्र भरे) स्तोत्रका गायन करता हूँ । वे वीर (अश्वान् उक्षन्ते) अपने घोडोंको बलवान् बनाते हैं तथा (रजः आ तरुषन्ते) अन्तरिक्षसे भी परे चले जाते हैं और (स्वं भानुं) अपने तेजको (अर्णवैः) समुद्रोंसे-समुद्रपर्यटनों द्वारा समुद्रमें से भी (अनु श्रथयन्ते) फैला देते हैं ॥१॥

भावार्थ- जब मरुत् शत्रुदल पर हमले चढाने लगते हैं, याने वायु बहने लगती है, उस समय जलप्रवाह बौखला उठते हैं, वनके पेड टूटकर गिरने लगते हैं और आकाशके मेघ भी गरजने लगते हैं ॥६॥

इन वीरोंके शत्रुदल पर होनेवाले आक्रमणोंके फलस्वरूप मातृभूमि विख्यात हुई । इन्होंने अपना बल राष्ट्रमें प्रस्थापित किया और घोडोंसे रथ संयुक्त करके जब ये चढाई करने लगे, तब (इस युद्धमें) पसीनेसे तर होने तक वीरतापूर्ण कार्य करते रहे ॥७॥

ऐसे वीर जनताका संरक्षण कर हम सबको सुखी बनावें ॥८॥

सबका भला हो और सबको सहायता पहुँचे, इस हेतुसे याजक इस यज्ञका प्रारम्भ करता है । प्रकाशके देवता की पूजा करो और मातृभूमिके सूक्तोंका गायन करो । वीर अपने घोडोंको किसी भी भूभाग पर चढाई करनेके लिए सज्ज दशामें रखते हैं और (विमान पर चढकर) अन्तरिक्षमें संचार करते हैं , (तथा नौका एवं जहाजों परसे समुद्रयात्रा करके सुदूरवर्ती देशोंमें तेज फैला देते हैं) ॥१॥

५२१ अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभि- रन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥
५२२ गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्याइव सुभ्वश्चारवः स्थन मर्याइव श्रियसे चेतथा नरः ॥ ३ ॥
५२३ को वो महान्ति महतामुदश्नवत् कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद् भरध्वे सुविताय दावने ॥ ४ ॥

अर्थ- [५२१] **(एषां)** इनके **(अमात् भियसा)** बलके डरसे **(भूमिः एजति)** पृथ्वी काँप उठती है और **(पूर्णा)** वस्तुओंसे भरी होनेके कारण **(यती)** जाते समय **(व्यथिः नौः न)** पीडित होनेवाली नौका के समान यह **(क्षरति)** आन्दोलित, स्पन्दित हो उठती है **(दूरे-दृशः)** दूरसे दिखाई देनेवाले, **(ये)** जो **(एमभिः)** वेगयुक्त गतियोंसे **(चितयन्ते)** पहचाने जाते हैं, वे **(नरः)** नेता वीर **(विदथे अन्तः)** युद्धमें रहकर **(महे)** बडप्पन पानेके लिए **(येतिरे)** प्रयत्न करते हैं ॥२॥

[५२२] हे **(नरः)** नेता वीरो ! **(गवां इव उत्तमं शृङ्गं)** गौओंके अच्छे सींगके तुल्य **(श्रियसे)** शोभाके लिए तुम सुन्दर शिरोधष्टन धारण करते हो, तथा **(रजसः विसर्जने)** अँधेरा दूर हटानेके लिए **(सूर्यः न चक्षुः)** सूर्य की तरह तुम लोगोंके नेत्र बनते हो । **(अत्याः इव)** तुम शीघ्रगामी घोडोंके समान स्वयंमेव **(सु-भ्वः)** उत्तम बने हुए एवं **(चारवः)** दर्शनीय **(स्थन)** हो और **(मर्याः इव)** मर्त्योंके समान **(श्रियसे चेतथ)** ऐश्वर्यप्राप्तिके लिए तुम सचेष्ट बने रहते हो ॥३॥

[५२३] हे **(मरुतः)** वीर मरुतो ! **(महतां वः)** तुम जैसे महान् सैनिकोंकी **(महान्ति)** महानता या बडप्पनकी **(कः उत् अश्नवत्)** भला कौन बराबरी करता है ? **(कः काव्या)** कौन भला तुम्हारे काव्य रचनेकी स्फूर्ति पाता है ? **(कः ह पौंस्या)** किसे भला तुम्हारे तुल्य सामर्थ्य प्राप्त हुए ? **(यत्)** जब **(सुविताय दावने)** अत्यन्त उच्च कोटिके दान देनेके लिए तुम **(प्र भरध्वे)** पर्याप्त धन पाते हो, तब **(यूयं ह)** तुम सचमुच **(किरणं न)** एकाध धूलिकणके समान **(भूमिं रेजथ)** पृथ्वीको भी हिला देते हो ॥४॥

भावार्थ- इन वीरोंमें भारी बल विद्यमान है, इस कारणसे भूमंडल परके देश मारे डरके काँपने लगते हैं । लदी हुई परिपूर्ण जिस तरह पवनके कारण हिलनेडोलने लगी, तो तनिक भय प्रतीत होने लगता है, ठीक उसी प्राकर सभी लोग इनकी शीघ्रगामिता के परिणामस्वरूप कुछ अंशमें भयभीत हो जाते हैं । चूँकि इनका आक्रमण विद्युत्गतिसे हुआ करता है, अतः इन वीरोंको सभी पहचानते हैं । जब ये रणक्षेत्रमें शत्रुदलसे जूझते हैं, तब इनके मनमें एक ही विचार तथा ख्याल जागृत रहता है, कि यथासंभव बडप्पन प्राप्त करना ही चाहिए ॥२॥

ये वीर शोभाके लिए माथों पर शिरोवेष्टन पहनते हैं । जैसे सूर्य अँधेरेको हटाता है, वैसे ही ये वीर जनता की उदासीनताको दूर भगा देते हैं और उसे उमंग एवं हौसलेसे भर देते हैं । घुडदौडके लिए तैयार किये हुए घोडे जैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं वैसे ही ये मनोहर स्वरूपवाले होते हैं और हमेशा अपनी प्रगति तथा वैभवशालिता करनेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं ॥३॥

इस अवनीतल पर भला ऐसा कौन है, जो इन वीरोंके समकक्ष बन सके ? इनके अतिरिक्त क्या कोई ऐसा है, जिसके विषयमें वीररसपूर्ण काव्योंका सृजन कोई करे ? इनमें जो वीरता है जो पुरुषार्थ है भला वह किसी दूसरेमें पाये भी जाते हैं ? जिस समय ये भूरि भूरि दान देने के लिए प्रचुर धन बटोरनेकी चेष्टामें संलग्न रहते हैं, अर्थात् भीषण एवं लोमहर्षण युद्ध छेडते हैं तब समूची पृथ्वी विचलित हो उठती है, सारा भूमंडल स्पंदित हो जाता है ॥४॥

५२४ अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥ ५ ॥
५२५ ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ ६ ॥
५२६ वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसाऽन्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७ ॥
५२७ मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ ८ ॥

अर्थ- [५२४] वे वीर (**अश्वाः इव इत्**) घोडोंके समान ही (**अरुषासः**) तनिक लाल वर्णके हैं (**स-बन्धवः**) एक दूसरेसे भाईचारेका बर्ताव रखनेवाले हैं (**उत**) और उसी प्रकार (**शूराः इव**) शूरोंके समान (**प्र-युधः**) अच्छे योद्धा हैं, इसलिए वे (**प्र युयुधुः**) भलीभाँति लडते हैं । (**नरः**) वे नेता वीर (**मर्याः इव**) मानवोंके समान (**सु-वृधः**) अच्छी तरह बढनेवाले हैं, अतएवं (**वावृधुः**) यथेष्ट बढते हैं । वे अपनी (**वृष्टिभिः**) वर्षाओंसे (**सूर्यस्य चक्षुः**) सूर्यके तेजको भी (**प्र मिनन्ति**) घटा देते हैं । ॥५॥

[५२५] (**ते**) उनमें कोई (**अ-ज्येष्ठाः**) श्रेष्ठ नहीं, कोई (**अ-कनिष्ठासः**) कनिष्ठ भी नहीं और कोई (**अ-मध्यमासः**) मँझली श्रेणीका भी नहीं वे सभी समान हैं, [साम्यवादको कार्यरूपमें परिणत करनेवाले हैं ।] वे (**उत् भिदः**) उन्नतिके लिए शत्रुका भेदन कर ऊपर उठनेवाले हैं, अतएवं वे अपने (**महसा**) तेजसे (**वि वावृधुः**) विशेष ढंगसे वृद्धिगत होते हैं । वे (**जनुषा**) जन्मसे (**सु-जातासः**) प्रतिष्ठित परिवारोंमें होनेवाले (**पृश्नि-मातरः**) भूमिको माता माननेवाले, (**दिवः**) स्वर्गीय (**मर्याः**) मानव ही हैं । (**नो अच्छा**) हमारी इच्छा है कि वे हमारे ओर (**आ जिगातन**) आ जायँ । ॥६॥

[५२६] (**ये**) जो वीर (**वयः न**) पंछियोंकी तरह (**श्रेणीः**) पंक्तिरूपमें समूहमें (**ओजसा**) वेगसे (**दिवः अन्तान्**) आकाशके दूसरे थोरतक तथा (**बृहतः**) बडे बडे (**सानुनः**) पर्वतोंके शिखर पर भी (**परि पप्तुः**) चारों ओरसे पहुँचते हैं। (**यथा**) जैसे एक दूसरेका बल (**उभये विदुः**) परस्पर जान लेते हैं, वैसे ही ये कर्म करते हैं। (**एषां अश्वासः**) इनके घोडे (**पर्वतस्य नभनून्**) पहाडके टुकडे करके (**प्र अचुच्यवुः**) नीचे गिरा देते हैं । ॥७॥

[५२७] (**द्यौः**) द्युलोक तथा (**अदितिः**) भूमि (**नः वीतये**) हमारे सुखसमाधानके लिए (**मिमातु**) तैयारी कर लें (**दानु-चित्राः**) दानद्वारा आश्चर्यचकित कर डालनेवाले (**उषसः**) उषःकाल हमारे लिए (**सं यतन्तां**) भली भाँति प्रयत्न करें। हे (**ऋषे !**) ऋषिवर ! (**गृणाना**) प्रशंसित हुए (**एते**) ये (**रुद्रस्य मरुतः**) वीरभद्रके वीर मरुत् (**दिव्यं कोशं**) दिव्य कोश या भाण्डारको (**आ अचुच्यवुः**) सभी ओरसे उडेल देते हैं ॥८॥

भावार्थ- ये वीर तेजस्वी हैं, तथा पर्याप्त भ्रातृभाव भी इनमें विद्यमान है । अच्छे कुशल सैनिक होते हुए वे भली भाँति लडकर युद्धोंमें विजयी बनते हैं । वे पूर्णरूपसे बढते हुए अपने तेजसे सूर्यको भी मानों परास्तसा कर देते हैं ॥५॥

इन वीरोंमें कोई भी ऊँचा, मँझला या नीचा नहीं है, इस तरहका भेदभाव नहीं के बराबर है । क्योंकि वे सभी समान हैं और उन्नतिके लिए मिलजुलकर प्रयत्न करते हैं । सभी कुलीन हैं और भूमिको मातृवत् आदरभरी निगाहसे देखते हैं । वे मानों स्वर्गसे भूमि पर उतरनेवाले मानव ही हैं । हमारी लालसा है कि वे हमारे मध्य आकर निवास करें ॥६॥

ये वीर पंक्तिमें रहकर समान रूपसे पग उठाते एवं धरते हुए चलने लगते हैं और इनकी वेगवान् गतिके कारण दर्शक यों समझने लगता है कि, मानों ये आकाशके अंतिम छोर तक इसी भाँति जाते रहेंगे । पर्वतश्रेणियोंपर भी ठीक इसी प्रकार ये चढ जाते हैं । एक दूसरे की शक्तिसे परिचित वीर जैसे लडते हों, वैसे ही ये जुझते हैं और इनके घोडे पहाडों तकको चकनाचूर कर आगे निकल जाते हैं । ॥७॥

[६०]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- मरुतोऽग्नामरुतौ वा । छन्दः- त्रिष्टुप्; ७-८ जगती ।]

५२८ ईळे अग्निं स्ववसं नमोभि-रिह प्रसत्तो वि चयत् कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥ १ ॥
५२९ आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद् रेजते पर्वतश्चित् ॥ २ ॥
५३० पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित् सानु रेजत स्वने वः ।
यत् क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आपइव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥
५३१ वरा इवेद् रैवतासो हिरण्यै-रभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

[६०]

अर्थ- [५२८] मैं (इह) इस यज्ञमें (सु अवसे) उत्तम प्रकारसे रक्षा करनेवाले (अग्नि) अग्निकी (नमोभिः ईळे) नमस्कारोंसे स्तुति करता हूँ, वह (प्रसत्तः) प्रसन्न होकर (नः कृतं वि चयत्) हमारे द्वारा किए गए स्तोत्रोंको जाने । (वाजयद्भिः रथैः इव) ऐश्वर्यसे सम्पन्न रथके समान मैं भी (प्रभरे) ऐश्वर्यसे भरपूर होऊं । (प्रदक्षिणित्) चतुरता एवं कुशलतासे मैं (मरुतां स्तोमं) मरुतोंके स्तोत्रोंका पाठ करूं और (ऋध्यां) समृद्ध होऊं ॥१॥

[५२९] (ये रुद्राः मरुताः) जो शत्रुओंको रुलानेवाले वीर मरुत् (पृषतीषु) घोडियोंसे सम्पन्न (श्रुतासु) प्रसिद्ध (रथेषु) सुखदायक रथोंमें (आ तस्थुः) आकर बैठते हैं । तब हे (उग्राः) वीर मरुतो ! (वः भिया) तुम्हारे डरसे (वना चित्) वन भी (नि जिहते) नीचे हो जाते हैं, तथा (पृथिवी चित् पर्वतः चित्) पृथिवी और पहाड भी (रेजते) कांपने लगते हैं ॥२॥

[५३०] हे मरुतो ! (वः स्वने) तुम्हारे आवाज करनेपर (महि वृद्धः चित् पर्वतः) बडा और पुराना होने पर भी पर्वत (बिभाय) डर जाता है, (दिवः सानु चित्) द्युलोकका शिखर भी (रेजते) कांपने लगता है । हे (मरुतः) मरुतो ! (ऋष्टिमन्तः) भालोंको धारण करनेवाले तुम (यत् क्रीळथ) जब खेलते हो, तब तुम (आपः इव) जल प्रवाहों के समान (सध्र्यञ्चः धवध्वे) एक साथ मिलकर दौडते हो ॥३॥

[५३१] (रैवतासः वराः इव) ऐश्वर्यशाली दूल्हा जैसे जेवरोंसे अपना शरीर सजाता है, उसी प्रकार ये मरुत् (श्रिये) शोभाके लिए (हिरण्यैः स्वधाभिः) सोनेके अलंकारों और तेजोंसे (तन्वः पिपिश्रे) अपने शरीरोंको सजाते हैं । (श्रेयांसः) कल्याणकारी और (तवसः) बलशाली मरुत् (रथेषु सत्रा) रथोंमें एक साथ बैठकर (तनूषु महांसि चक्रिरे) शरीरोंमें तेज प्रकट करते हैं ॥४॥

भावार्थ- द्युलोक तथा भूलोक हमारे सुखको बढावें । उषःकालका प्रारम्भ होते ही दान देनेका प्रारम्भ हो जाय । ये सराहनीय वीर विजय पाकर धनका बृहदाकार खजाना ले आयँ और उस द्रविणभाण्डारको हमारे सामने उडेल दें ॥८॥

मैं नम्रतापूर्वक अग्निकी स्तुति करता हूँ और वह अग्नि भी इन स्तुतियोंको सुनकर प्रसन्न हो । जिस तरह वीर अपने बलशाली रथोंसे शत्रु पर आक्रमण करके उनसे धनादि छीनकर समृद्धिशाली होते हैं, उसी तरह मैं भी मरुतोंकी स्तुति करके समृद्ध होऊं ॥१॥

ये वीर मरुत् अपने जगद्विख्यात सुखदायक रथोंमें बैठकर जब चलते हैं, तब इनके डरसे जंगल, पहाड और यहां तक कि पृथिवी भी कांपने लगती है ॥२॥

जब मरुत् खेलते हुए एक साथ दौडते हैं और शब्द करते हैं, तब बडे बडे और पुराने पहाड भी भयसे कांपने लगते है और द्युलोकका ऊंचे से ऊंचा प्रदेश भी भयसे कांपने लगता है । मरुत् अर्थात् वायु जब इकट्ठा होकर आंधीके रूपमें बडे वेगसे गर्जते हुए बहने लगता है, तब उसके वेगको देखकर सारा जगत काँपने लगता है ॥३॥

५३२ अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥

५३३ यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद् वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद् यजाम ॥ ६ ॥

५३४ अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥ ७ ॥

अर्थ- [५३२] (**अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः**) जिनमें न कोई बडा है और न कोई छोटा है, ऐसे (**एते**) ये मरुत् (**भ्रातरः**) भाईके समान रहते हैं और (**सौभागाय सं वावृधुः**) सौभाग्य प्राप्तिके लिए एक-दूसरेको बढाते हैं। (**एषां पिता**) इन मरुतोंका पिता (**रुद्रः**) रुद्र (**युवा सु अपाः**) तरुण और उत्तम कर्म करनेवाला है। (**सुदुधा पृश्निः**) उत्तम दूध दुहनेवाली पृथिवी भी (**मरुद्भ्यः**) मरुतोंके लिए (**सुदिना**) दिनोंको उत्तम बनाती है ॥५॥

१ **अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते भ्रातरः** - जिनमें न कोई बडा है और न कोई छोटा है, ऐसे ये सभी मरुत् भाईके समान प्रीतिपूर्वक रहते हैं।

२ **सौभागाय वावृधुः**- ये मरुत् सौभाग्यकी प्राप्तिके लिए एक दूसरेको बढाते है।

३ **एषां पिता रुद्रः युवा सु अपाः**- इन मरुतोंका पालन कर्ता रुद्र तरुण और उत्तम कर्म करनेवाला है।

[५३३] हे (**सुभगासः मरुतः**) उत्तम भाग्यशाली मरुतो ! तुम (**यत्**) जो (**उत्तमे मध्यमे अवमे वा दिवि**) उत्तम, मध्यम और नीचेके लोकोंमें (**स्थ**) रहते हो, हे (**रुद्राः**) शत्रुओंको रुलानेवाले मरुतों ! (**अतः नः**) उस लोकसे हमारी रक्षा करो। हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**यत् यजाम**) जो हम तेरी पूजा करते हैं, (**अस्य हविषः**) उस हवि या पूजाको (**वित्तात्**) तू जान ॥६॥

[५३४] (**विश्ववेदसः मरुतः**) सर्वत्र मरुतो ! (**यत्**) जब तुम (**अग्निः च**) और अग्नि (**दिवः उत्तरात्**) (**अधि**) द्युलोकके ऊपरके भागसे (**स्नुभिः वरध्वे**) घोडोंपर बैठकर आते हो, तब (**मन्दसानाः**) सोमरससे आनंदित होते हुए (**धुनयः**) शत्रुओंको कंपानेवाले तथा (**रिशादसः**) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले (**ते**) वे तुम (**सुन्वते यजमानाय**) सोम निचोडनेवाले यजमानके लिए (**वामं धत्त**) सुन्दर धन प्रदान करते हो ॥७॥

भावार्थ- जिस तरह एक ऐश्वर्यशाली दूल्हा विवाहके लिए जाते समय जेवरोंसे अपने शरीरोंको सजाता है, उसी तरह ये मरुत् भी अपने शरीरोंको सोनेके जेवरोंसे सजाते हैं। जिस समय ये वीर अपने शरीरोंको जेवरोंसे सजाकर रथोंपर बैठते हैं, तब इनके शरीरोंसे शोभा और तेज प्रकट होने लगता है ॥४॥

इन मरुतोंमें न कोई छोटा है, न कोई बडा है, सभी समान भावसे रहते हैं और ये सभी सौभाग्यकी प्राप्तिके लिए एक दूसरेको प्रेरणा देकर आगे बढाते हैं। इनका पालन करनेवाला रुद्र सदा तरुण और उत्तम कर्म करनेवाला है। इनकी माता पृथिवी भी इनके दिनोंको कल्याणकारक बनाती है ॥५॥

हे मरुतो ! तुम उत्तम लोक द्यु, मध्यमलोक अन्तरिक्ष तथा निम्नलोक पृथ्वीपर अर्थात् जिस लोकमें भी रहो, उस लोकसे हमारी रक्षा करो। हे अग्ने ! यज्ञमें हम जो हवि तेरे लिए देते हैं, उसे तू भी अच्छी तरह जान ले ॥६॥

जब सदा आनन्दमें रहनेवाले शत्रुओंको कंपानेवाले तथा शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले मरुत् गण द्युलोकसे यज्ञमें पधारते हैं, तब वे सोमनिचोडनेवाले यजमानको सुन्दर धन प्रदान करते हैं ॥७॥

५३५ अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥ ८ ॥

[६१]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । १,५.११-१६ देवता- मरुतः, ६-८ तरन्तमहिषी शशीयसी; ९ वैददश्विः पुरुमीळ्हः, १० वैददश्विस्तरन्तः, १७-१९ दार्भ्यो रथवीतिः । गायत्री, ३ निचृत् ५अनुष्टुप्, सतोबृहती; ।

५३६ के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय । परमस्याः परावतः ॥ १ ॥

५३७ क्व१ वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ २ ॥

५३८ जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥ ३ ॥

५३९ परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥

अर्थ- [५३५] हे (**वैश्वानर अग्ने**) सब विश्वको चलानेवाले अग्ने ! तू (**प्रदिवा केतूना सजूः**) तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त होकर (**मन्दसानः**) आनन्दित होते हुए (**शुभयद्भिः**) अपने शरीरोंको सुशोभित करनेवाले, (**ऋक्वभिः**) तेजसे युक्त (**गणश्रिभिः**) गणोंका आश्रय लेकर रहनेवाले (**पावकेभिः**) पवित्र करनेवाले (**विश्वं इन्वेभिः**) सारे विश्वको तृप्त करनेवाले (**आयुभिः मरुद्भिः**) आयुकी वृद्धि करनेवाले मरुतोंके साथ (**सोमं पिब**) सोम पी ॥८॥

[६१]

[५३६] हे (**श्रेष्ठतमाः नरः**) अति उच्च कोटिके तथा नेताके पद पर अधिष्ठित वीरो ! तुम (**के स्थ**) कौन हो ? (**ये**) जो तुम (**एकः एकः**) अकेले अकेले (**परमस्याः परावतः**) अति सुदूर देशसे यहां पर (**आयय**) आए हो ॥१॥

[५३७] (**वः अश्वाः क्व**) तुम्हारे घोडे किधर हैं ? (**अभिशवः क्व**) उनके लगाम कहाँ हैं ? (**कथं शक ?**) किससे आधारसे या कैसे तुम सामर्थ्यवान् हुए हो ? और तुम (**कथा यय ?**) भला कैसे जाते हो ? उनकी (**पृष्ठे सदः**) पीठपर की जीन एवं (**नसोः यमः**) नथुनेमें डाली जानेवाली रस्सी कहाँ धर दिये हैं ? ॥२॥

[५३८] जब (**एषां**) इन घोडोंकी (**जघने**) जाँघों पर (**चोदः**) चाबुक लगाता है, तब (**पुत्र-कृथे**) पुत्रप्रसूतिके समय (**जनयः न**) स्त्रियाँ जैसे जांघको फैलाती हैं, वैसे ही वे (**नरः**) नेता वीर (**सक्थानि**) उन घोडोंकी जांघोंका (**वि यमुः**) विशेष ढंगसे नियमन करते हैं ॥३॥

[५३९] हे (**वीरासः**) वीर, (**मर्यासः**) जनताके हितकर्ता, (**भद्र-जानयः**) उत्तम जन्म पाये हुए और (**अग्नि-तपः**) अग्नि-तुल्य तेजस्वी वीरो ! (**यथा असथ**) जैसे तुम अब हो, वैसे ही (**परा इतन**) इधर आओ ॥४॥

भावार्थ- हे विश्वके नेता अग्ने ! तू अपनी ज्वालाओंसे युक्त होकर सदा सुशोभित होनेके कारण तेजसे युक्त, गणोंका आश्रय लेकर रहनेवाले पवित्र करनेवाले तथा सभी कामनाओंकी पूर्ति करके आयुकी वृद्धि करनेवाले मरुतोंके साथ सोम पी ॥८॥

अत्यन्त सुदूरवर्ती प्रदेशोंसे आनेवाले तथा उच्च नेता के पद पर प्रतिष्ठित होनेवाले वीरो ! तुम कौन हो ॥१॥

इन वीरोंके घोडे लगाम, जीन, अन्य वस्तुएँ कहाँ हैं और कैसी हैं ? ये सभी शब्द आलंकारिक हैं, जो वायुरूपी अश्वका वर्णन करते हैं ।.२॥

घुडसवार होने पर ये वीर जब अश्वजंघापर कोडे लगाना शुरु करते हैं, तब वे घोडे अपनी जंघाओंको विस्तृत करने लगते हैं, पर ये वीर सैनिक उन्हें नियमित करते अर्थात् रोक देते हैं । (अपनी जंघाओंसे घोडोंको दृढ धरते हैं हिलने नहीं देते ।) ॥३॥

ये वीर प्रजाका हित करनेवाले तथा उत्तम कुलमें जन्मे हुए हैं, इसीलिए ये अग्निके समान तेजस्वी हैं ॥४॥

५४० सनत् साऽश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् । श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥
५४१ उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥
५४२ वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् । देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥
५४३ उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत् समः ॥ ८ ॥
५४४ उत मेऽरपद् युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥

अर्थ- [५४०] (या) जिस देवीने (श्यावाश्वस्तुताय) श्यावाश्वके द्वारा स्तुत (वीराय) वीरका स्वागत करनेके लिए (दोः उप बर्बृहत्) अपनी दोनों भुजाओंको फैलाया (सा) उस देवीने (अश्व्यं पशुं) घोडोंको (उत गव्यं) और गायोंके समूहको और (शत अवयं) सौ बकरियोंको प्रदान किया ॥५॥

[५४१] (अदेवत्रात् अराधसः पुंसः) देवको न माननेवाले तथा धनहीन या धन होने पर भी दान न देनेवाले लोभी पुरुषकी अपेक्षा (वस्यसी) धन देनेवाली स्त्री (उत त्वा शशीयसी भवति) अत्यन्त प्रशंसनीय होती है ॥६॥

१ अदवत्रात् अराधसः पुंसः वस्यसी शशीयसी भवति- देवको न माननेवाले और धनहीन होनेवाले पुरुषकी अपेक्षा धनयुक्त स्त्री अधिक प्रशंसनीय होती है ।

[५४२] (या) जो स्त्री (जसुरिं) दुःखी मनुष्यके दुःखको (वि जानाति) अच्छी तरह जानती है, (तृष्यन्तं) प्यासे मनुष्यको जानती है, (कामिनं वि) धनके अभिलाषीके मनको समझती है और जो (मनः) अपने मनको (देवत्रा कृणुते) देवपूजामें लगाती है, वही प्रशंसनीय होती है ॥७॥

१ या जसुरिं, तृष्यन्तं, कामिनं वि जानाति, देवत्रा मनः कृणुते- जो स्त्री दुःखी मनुष्यके, प्यासे और धनके अभिलाषी मनुष्यके मनके भावोंको जानती है, तथा जो देवपूजामें अपने मनको लगाती है, वही स्त्री प्रशंसाके योग्य होती है ।

[५४३] (उत घ) और ऐसी स्त्रीका (नेमः) आधा भाग (पुमान्) पुरुष (पणिः) लोभी होनेके कारण (अस्तुतः) प्रशंसा के योग्य नहीं है (इति ब्रुवे) ऐसा मैं कहता हूं, तथापि (वैरदेये) धन देनेके कार्यमें (समः इत्) उसका भाग समान है ॥८॥

[५४४] (उत) और ऐसी (अमन्दषी युवतिः) सदा प्रसन्न रहनेवाली युवति (पुरुमीळ्हाय, दीर्घयशसे श्यावाय मे विप्राय) बहुतोंसे प्रशंसित होनेवाले, महान् यशवाले, संरक्षण करनेवाले मुझ ज्ञानीको भी (वर्तनिं प्रति अरपत्) उत्तम मार्गकी तरफ संकेत करती है। तब मेरे रथको (रोहिता वि येमतुः) दो घोडे नियंत्रण में रखते हैं ॥९॥

भावार्थ- जब वीर शत्रुओंको जीतकर जाते हैं तब सब प्रजायें उनकी स्तुति करती है, और उनकी मातायें अपने पुत्रोंका आलिगन करनेके लिए अपनी बाहें पसारती हैं और प्रसन्न होकर हर तरहके पशुओंका दान करती है ॥५॥

राष्ट्रमें केवल पुरुषोंको प्राधान्य देना उचित नहीं है। पुरुष चाहे नास्तिक हो, चाहे धनहीन हो, या धनी होनेपर भी लोभी होने के कारण अदानशील हो, फिर भी स्त्री की अपेक्षा श्रेष्ठ है, यह सिद्धान्त उचित नहीं है, क्योंकि ऐसे पुरुषकी अपेक्षा एक धनी और दान देनेवाली स्त्री बहुत श्रेष्ठ होती है ॥६॥

जो दुःखी मनुष्यके दुःखको समझकर उसकी पीडाको दूर करती है, प्यासे को पानी पिलाकर उसे सुख देती है, और धनके अभिलाषीको धन देकर तृप्त करती है, तथा जो देवकी पूजा करनेमें अपने मनको लगाती है, वही स्त्री प्रशंसाके योग्य होती है ॥७॥

ऐसी दानशीला स्त्रीका आधा भाग अर्थात् पति यद्यपि लोभी होने के कारण सर्वत्र अप्रशंसित होता है, तथापि उस स्त्रीको दान देने के कारण जो पुण्यलाभ होता है, उसमें उसके पतिका भाग भी समान ही होता है ॥८॥

ऐसी प्रशंसनीय युवतियां देशमें रहकर बहुतोंसे प्रशंसित होनेवाले, महान् यशवाले ज्ञानीको भी उत्तम मार्ग दिखाती हैं। तब वे ज्ञानी उन मार्गों पर अपने रथोंसे आगे बढते जाते हैं ॥९॥

५४५ यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव मंहना ॥ १० ॥
५४६ य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥
५४७ येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्मइवोपरि ॥ १२ ॥
५४८ युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥ १३ ॥
५४९ को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥
५५० यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥
५५१ ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

अर्थ- [५४५] (**यः**) जिस (**वैददश्विः**) अश्वविद्यामें प्रवीण राजाने (**मे**) मुझ ज्ञानीको (**धेनुनां शतं ददत्**) सौ गायें प्रदान की है तथा-(**तरन्तः इव मंहना**) तरन्तके समान प्रशंसनीय धन भी दिए ॥१०॥

[५४६] (**ये**) जो (**मदिरं मधु**) मिठासभरा सोमरस (**पिबन्तः**) पीनेवाले वीर (**आशुभिः**) वेगवान् घोडोंके साथ (**ईं वहन्ते**) शीघ्र चले जाते हैं, वे (**अत्र**) यहाँ पर (**श्रवांसि दधिरे**) बहुतसा धन दे देते हैं ॥११॥

[५४७] (**येषां श्रिया**) जिनकी शोभासे (**रोदसी**) द्युलोक तथा भूलोक (**अधि**) अधिष्ठित-सुशोभित-हुए हैं, वे वीर (**उपरि दिवि**) ऊपर आकाशमें (**रुक्मः इवः**) प्रकाशमान सूर्यके तुल्य (**रथेषु आ विभ्राजन्ते**) रथोंमें द्योतमान होते हैं ॥१२॥

[५४८] (**सः**) वह (**मारुतः गणः**) वीर मरुतोंका संघ (**युवा**) तरुण, (**त्वेष-रथः**) तेजस्वी रथमें बैठनेवाला, (**अ-नेद्यः**) अनिंदनीय, (**शुभं-यावा**) शुभ कार्यके लिए ही हलचलें करनेवाला और (**अ-प्रति-स्कुतः**) अपराजित-सदैव विजयी है ॥१३॥

[५४९] (**धूतयः**) शत्रुओंको हिलानेवाले (**ऋतजाताः**) सत्यकी रक्षाके लिए उत्पन्न हुए (**अरेपसः**) निष्पाप ये वीर (**यत्र मदन्ति**) जहां आनन्दका उपभोग लेते हैं, वह (**एषां**) इनका स्थान (**कः नूनं वेद**) भला कौन जानता है ? ॥१४॥

[५५०] हे (**विपन्यवः**) प्रशंसनीय वीरो ! (**यूयं**) तुम (**इत्था**) इस प्रकारसे (**मर्तं प्र-नेतारः**) मानवोंको उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले हो और (**याम-हूतिषु**) शत्रुओंपर चढाई करते समय पुकारनेपर तुम (**धिया**) मनसे बडी लगनसे उस प्रार्थनाको (**श्रोतारः**) सुन लेते हो ॥१५॥

[५५१] हे (**पुरुश्चन्द्राः**) अत्यन्त आल्हाददायक (**रिशादसः**) शत्रुओंके विनाशक (**यज्ञियासः**) पूज्य वीरो ! (**ते**) वे प्रसिद्ध तुम (**नः काम्या**) हमारी अभिलाषायें तथा (**वसूनि**) धन हमें (**आ ववृत्तन**) लौटा दो ॥१६॥

भावार्थ- राजाको अश्वविद्यामें प्रवीण होना चाहिए तथा ज्ञानियोंको हर तरहसे सहायता करनी चाहिए ॥१०॥

अच्छे अन्नपानका सेवन करना चाहिए और वेगवान् वाहनों द्वारा शत्रु सेना पर आक्रमण करना उचित है, क्योंकि ऐसा करनेसे उच्च कोटिका धन मिलता है ॥११॥

रथोंमें बैठकर वीर सैनिक जब कार्य करने लगते हैं, तब वे अतीव सुहाने लगते हैं ॥१२॥

वीरोंका समुदाय सत्कर्म करनेमें निरत, निष्पाप, हमेशा विजयी तथा मनयुवकवत् उमंग एवं उत्साहसे परिपूर्ण रहता है ॥१३॥

शत्रुओंको कंपित करनेवाले तथा सत्यकी रक्षा के लिए जन्मे हुए तथा पापसे रहित ये वीर मरुत् जहां जाकर आनंद प्राप्त करते है, उस स्थानको भला कौन जान सकता है ? ॥१४॥

शत्रुपर चढाई करते समय मदद के लिए बुलाये जाने पर ये वीर सैनिक तुरन्त उस प्रार्थना पर ध्यान देते हैं । सहायता के अभिलाषीकी पुकार सुन लेते हैं ॥१५॥

वीरोंको सहायतासे हमें सभी तरहके धन मिलें । यदि शत्रुने हमारा धन छीन लिया हो तो वह सारी सम्पदा हमें वापस मिले ॥१६॥

५५२ एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥
५५३ उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥
५५४ एष क्षेति रथवीति—र्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥ १९ ॥

[६२]

[ऋषिः- श्रुतविदात्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्द- त्रिष्टुप्,

५५५ ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥
५५६ तत् सु वां मित्रावरुणा महित्व—मीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥ २ ॥

अर्थ- [५५२] हे (**देवि ऊर्म्ये**) रात्रि देवी ! (**मे एतं स्तोमं गिरः**) मेरे इस स्तोत्र तथा उत्तम वाणीको तू (**दार्भ्याय परा वह**) दर्भ बिछानेवाले मनुष्यकी तरफ उसी तरह ले जा, (**रथीः इव**) जिस प्रकार कोई रथी अपने गन्तव्य स्थानकी ओर जाता है ॥१७॥

[५५३] (**रथवीतौ सुतसोमे**) रथवीतिके द्वारा शुरु किए गए (**सुतसोमे**) सोमयज्ञमें (**मे कामः न अप वेति**) मेरी इच्छा नष्ट नहीं हुई (**इते मे वोचतात्**) ऐसा ज्ञानी मुझसे कहता है ॥१८॥

[५५४] (**एषः मघवा रथवीतिः**) यह धनवान् रथवीति (**गोमतीः अनु**) जलसे पूर्ण नदी के किनारे (**क्षति**) रहता है तथा (**पर्वतेषु अपश्रितः**) पर्वतोमें आश्रय लिए हुए है ॥१९॥

[६२]

[५५५] हे मित्रावरुण ! जो (**वां ध्रुवं**) तुम दोनोंका स्थिर स्थान है, (**यत्र**) जहां पर (**सूर्यस्य अश्वान् वि मुंचन्ति**) सूर्यके घोडे खोले जाते है वह सूर्यका (**ऋतं**) सत्यस्वरूप (**ऋतेन अपिहितं**) जलसे ढका हुआ है । वहां (**दश शता सह तस्थुः**) एक हजार घोडे एक साथ रहते हैं, उस (**वपुणां देवानां**) सुन्दर शरीरवाले देवोंके (**तत् एकं श्रेष्ठं**) उस श्रेष्ठ सौन्दर्यको (**अपश्यं**) मैंने देखा है ॥१॥

१ **सूर्यस्य ऋतं ऋतेन अपिहितं-** सूर्यका सत्यस्वरूप जलसे ढका हुआ है ।

[५५६] हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! (**वां तत् महित्वं सु**) तुम दोनोंका वह महत्त्व बडा भारी है । तुममेंसे (**ईर्मा**) हमेशा गति करनेवाला एक (**अहभिः**) प्रतिदिन (**तस्थुषी दुदुह्रे**) वृक्षवनस्पतियोंमेंसे रस दुहता है । तुम दोनों (**स्वसरस्य**) अपनी बहिनके (**विश्वाः धेना**) सभी तेजोंको (**पिन्वथः**) पुष्ट करते हो । (**वां एकः पविः**) तुममेंसे एकका चक्र (**आ वर्तते**) सब ओर चलता रहता है ॥२॥

भावार्थ- हे देवी रात्रि ! तू मेरी स्तुतिसे पूर्ण इस वाणीको यज्ञ करनेवाले मनुष्यको उसी तरह पहुंचा, जिस तरह कोई रथ अपने रथीको उसके गन्तव्य स्थान तक पहुंचाता है ॥१७॥

रथोंके मार्गोंको सम्यक्तया जाननेवाले राजाके यज्ञमें किसी भी ज्ञानीकी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहनी चाहिए ॥१८॥

रथके मार्गोंको जाननेवाला यह धनवान् राजा यज्ञोंको समाप्त करके नदीके किनारे या पर्वतोंकी कन्दराओंमें रहे अर्थात् भरपूर यज्ञ करनेके बाद वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करे ॥१९॥

सूर्यका मण्डल सदा जलसे भरे समुद्रमें रहता है । द्युलोक भी एक समुद्र है, जो हमेशा जलसे पूर्ण रहता है । उस समुद्रमें चलता हुआ सूर्य अपनी असंख्य किरणरूपी घोडोंको मुक्त करता है । सभी देवोंमें वह सूर्य सबसे सुन्दर और तेजस्वी शरीरवाला है ॥१॥

५५७ अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ३ ॥
५५८ आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४ ॥
५५९ अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥ ५ ॥

अर्थ- [५५७] (**राजाना मित्रावरुणा**) हे तेजस्वी मित्र और वरुण देवो ! तुमने (**महोभिः**) अपने तेजोंसे (**पृथिवीं उत द्यां**) पृथिवी और द्युलोकको (**अधारयतं**) धारण किया । (**ओषधीः वर्धयतं**) वृक्षवनस्पति आदियोंको बढाता (**गाः पिन्वतं**) गायोंको पुष्ट किया तथा है (**जीरदानू**) शीघ्रतासे दान देनेवाले देवो ! तुमने (**वृष्टिं अव सृजतं**) वर्षाको नीचेकी तरफ बहाया ॥ ३॥

१ **महोभिः पृथिवीं उत द्यां अधारयतं**- मित्र और वरुणने अपने तेजोंसे पृथिवी और द्युलोकको धारण किया ।

२ **वृष्टिं अव सृजतं**- बरसातको नीचेकी ओर प्रेरित किया ।

३ **ओषधीः वर्धयतं गाः पिन्वतं**- उस वर्षासे औषधियां बढीं और उन औषधियोंको खाकर गायें पुष्ट हुईं ।

[५५८] हे मित्र वरुण ! (**सुयुजः अश्वासः वां वहन्तु**) उत्तम रीतिसे जुडनेवाले घोडे तुम दोनोंको ले जावें तथा (**यतरश्मयः अर्वाक् उप यन्तु**) लगामके खींचे जानेपर हमारी तरफ आवें । (**वां निर्णिक् घृतस्य अनुवर्तते**) तुम दोनोंका रूप घी का अनुकरण करता है । (**प्रदिविः सिन्धवः उप क्षरन्ति**) द्युलोकसे नदियां बहती हैं ॥४॥

[५५९] हे (**घृतदक्षा मित्र वरुण**) बलोंको धारण करनेवाले मित्र और वरुण ! तुम (**अनुश्रुतां अमतिं वर्धत्**) पहलेसे ही प्रसिद्ध यशको और अधिक बढाते हुए (**यजुषा बर्हिः इव**) यजुष्के मंत्रोंसे जिस तरह यज्ञकी रक्षा होती है, उसी तरह (**उर्वी रक्षमाणा**) पृथ्वीकी रक्षा करते हो । (**नमस्वन्ता**) अन्नसे सम्पन्न तुम दोनों (**गर्ते**) रथपर बैठकर (**इळासु अन्तः आसाथे**) यज्ञोंमें आकर बैठते हो ॥५॥

भावार्थ- मित्र और वरुण ये दोनों क्रमशः सूर्य और जल हैं । इन दोनोंका महत्त्व प्राणियों के लिए बहुत हैं । इनमेंसे एक अर्थात् सूर्य हमेशा गति करता हुआ प्रतिदिन वृक्ष वनस्पतियोंमें रस स्थापित करता है । सूर्य और जल दोनों ही देव अपनी बहिन पृथ्वीको हर तरहसे पुष्ट और उपजाऊ बनाते हैं । इनमेंसे सूर्यका चक्र हमेशा चलता रहता है ॥२॥

सूर्य और जल देवता अपने तेजोसे द्युलोक और पृथ्वीको धारण करते हैं । सूर्य अपनी किरणोंसे जलको द्युलोकमें पहुंचाता है और वरुण उस जलको वृष्टिके रूपमें पृथ्वीपर बरसाता है । उस बरसातसे पृथ्वीपर सभी ओषधि वनस्पतियां बढती हैं और उन्हें खाकर सभी प्राणी पुष्ट होते हैं ॥३॥

सूर्य और जल देवताकी किरणें सब ओर जानेवाली हैं । उन दोनोंका रूप घी के समान तेजस्वी हैं । उसी तेजके कारण जलधारायें द्युलोकसे गिरती हैं ॥४॥

ये दोनों अपने यशको और अधिक बढाते हुए इस पृथ्वीकी उसी तरह रक्षा करते हैं कि जिस तरह यजुषके मंत्रोंसे यज्ञकी रक्षा होती है । ये दोनों देव रथपर बैठकर आते हैं और यज्ञोंमें सम्मिलित होते हैं ॥५॥

५६० अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥
५६१ हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यश्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥ ७ ॥
५६२ हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥ ८ ॥
५६३ यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥ ९ ॥

अर्थ- [५६०] हे (**अक्रविहस्ता**) निष्कपट हाथोंवाले, (**परस्पा**) दूरसे भी रक्षा करनेवाले (**राजाना**) तेजस्वी तथा (**अहृणीयमाना**) किसीकी भी हिंसा न करनेवाले (**वरुणा**) मित्र वरुण ! तुम (**द्वौ**) दोनों (**सह**) एक साथ (**इळासु अन्तः**) यज्ञोंके अन्दर (**यं त्रासाथे**) जिसकी रक्षा करते हो, उस (**सुकृतं**) उत्तम कर्म करनेवालेको तुम (**क्षत्रं**) धन और (**सहस्रस्थूणं**) हजार खंभोंवाला घर प्रदान करते हो ॥६॥

[५६१] (**अस्य हिरण्यनिर्णिक्**) इन देवोंके इस रथका रूप सुनहरा है, तथा (**स्थूणा अयः**) इस रथके खंभे भी सोनेके हैं, इसलिए यह रथ (**दिवि अश्वाजनी इव वि भ्राजते**) द्युलोकमें बिजलीके समान चमकता है। यज्ञ वेदि (**तिल्विले भद्रे क्षेत्रे निमिता**) रससे भरपूर कल्याणकारी जगहमें नापकर बनाई गई है। हम (**अधिगर्त्यस्य मध्वः सनेम**) इस रथ पर रखे हुए मधुर रसको प्राप्त करें ॥७॥

[५६२] हे (**मित्रवरुण**) मित्र और वरुण ! तुम (**उषसः वि उष्टौ**) उषःकालके प्रकाशित होनेपर (**सूर्यस्य उदिता**) सूर्यके उदय होने पर (**अयः स्थूणं गर्तं**) सोनेके खम्भोंवाले रथ पर (**आ रोहथः**) चढते हो तथा (**अतः**) उस रथ परसे (**अदितिं दितिं च चक्षाथे**) पृथ्वी और पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणियोंको देखते हो ॥८॥

[५६३] हे (**सुदानू भुवनस्य गोपा**) उत्तम दान देनेवाले तथा लोकोंके रक्षक मित्र और वरुण ! (**यत्**) जो (**बंहिष्ठं**) अत्यन्त विशाल (**न अतिविधे**) शत्रुओंसे अपराजेय तथा (**अच्छिद्रं**) दोषरहित (**शर्म**) घर है, (**तेन**) उस घरसे हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! (**नः अविष्टं**) हमारी रक्षा करो, हम (**सिषासन्तः**) धनको प्राप्त करनेकी इच्छावाले होकर (**जिगीवांसः स्याम**) शत्रुओंके धनको जीतनेकी इच्छा करनेवाले हों ॥९॥

भावार्थ- ये दोनों निष्कपट हाथोंवाले, दूरसे भी रक्षा करनेवाले, किसीकी भी हिंसा न करनेवाले तेजस्वी मित्रवरुण जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य उत्तम धन और गृह आदि ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥६॥

इस सूर्य रूपी रथका रूप सुनहरा है और इसके किरणरूपी खंभे भी सुनहरे हैं, इसलिए यह सूर्य द्युलोकमें बिजलीके समान चमकता है। इन देवोंका रथ यज्ञमें आता है और यह यज्ञ उस वेदिमें होता है जो उपजाऊ भूमिपर नाचकर बनाई जाती है। ऐसी जगह और वेदिमें किया गया उत्तम यज्ञ ही कल्याणकारी होता है और हर तरहके मधुर रसको प्रदान करता है ॥७॥

उषःकालमें सूर्यके उदय होने पर मित्र और वरुण अपने सुनहरे रथ पर चढते हैं और पृथ्वीपरकी सारी प्रजाओंको देखते चलते हैं। सूर्य प्रातःकाल उदय होता है और अपनी किरणरूपी आंखोंसे मानों सब जगतको देखता हुआ अपने रथको चलाता है (सूर्यके इस रूपका वर्णन ऋ. १, ३५, २. पर भी आया है) ॥८॥

हे उत्तम दान देनेवाले तथा भुवनोंकी रक्षा करनेवाले मित्र और वरुण ! तुम हमें बहुत बडा, शत्रुओंसे अपराजेय और दोषरहित घर प्रदान करो और उस घरसे हमारी रक्षा करो। हम भी अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंके धनोंको जीतकर धनवान होने की इच्छा रखें ॥९॥

[६३]

[ऋषिः- अर्चनाना आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।]

५६४ ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत् पिन्वते दिवः ॥ १ ॥

५६५ सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥ २ ॥

५६६ सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥ ३ ॥

५६७ माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥

---

[६३]

अर्थ- [५६४] हे (**ऋतस्य गोपा सत्यधर्माणा**) नियमोंके रक्षक तथा सत्यधर्मका पालन करनेवाले (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (**परमे व्योमनि**) परम आकाशमें (**रथं अधि तिष्ठथः**) रथ पर बैठते हो, (**अथ**) इसके बाद (**युवं**) तुम दोनों (**अत्र यं अवथ**) इस संसारमें जिसकी रक्षा करते हो, (**तस्मै**) उसे (**वृष्टिः**) वर्षा (**दिवः मधुमत्**) द्युलोकसे मधुर जल बरसाकर (**पिन्वते**) पुष्ट करती है ॥१॥

[५६५] हे (**स्वर्दृशा मित्रावरुणा**) तेजस्वी आंखोंवाले मित्र तथा वरुण ! तुम दोनों (**अस्य भुवनस्य सम्राजा**) इस संसारके सम्राट् हो, तुम (**विदथे राजथः**) यज्ञमें सुशोभित होते हो । हम (**वां**) तुम दोनोंसे (**वृष्टिं राधः अमृतत्वं ईमहे**) समयानुसार वृष्टि, ऐश्वर्य और अमरता मांगते हैं । तुम्हारी, (**तन्यवः**) किरणें (**द्यावा पृथिवी वि चरन्ति**) द्युलोक और पृथ्वीलोकमें विचरती हैं ॥२॥

[५६६] हे (**सम्राजौ**) भुवनोंके सम्राट् (**उग्रा**) वीर (**वृषभा**) बलवान् (**दिवः पृथिव्याः पती**) द्युलोक और पृथ्वीके स्वामी तथा (**विचर्षणी**) सबको देखनेवाले (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुणो ! तुम (**चित्रेभिः अभ्रैः**) सुन्दर मेघोंके साथ (**रवं उपतिष्ठथः**) गर्जना करते हुए रहते हो, तथा (**असुरस्य मायया**) अपने बलके सामर्थ्यसे (**द्यां वर्षयथः**) जल बरसाते हो ॥३॥

[५६७] हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! (**वां माया**) तुम दोनोंका सामर्थ्य (**दिवि श्रिता**) द्युलोकमें आश्रित है, उसीके कारण (**सूर्यः**) सूर्यका (**चित्रं आयुधं ज्योतिः**) सुन्दर शस्त्ररूपी प्रकाश (**चरति**) विचरता है । तुम दोनों (**दिवि**) द्युलोकमें (**तं**) उस सूर्यको (**वृष्ट्या अभ्रेण गूहथः**) वर्षा करनेवाले बादलोंसे छिपा देते हो, तब हे (**पर्जन्य**) मेघ ! तुझसे (**मधुमन्तः द्रप्सा ईरते**) मधुर रसकी धारायें बहती हैं ॥४॥

भावार्थ- मित्र और वरुण ये दोनों देव सत्य नियमोंका पालन करनेवाले तथा उनकी रक्षा करनेवाले हैं । वे इस जगत्‌में जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह हर तरहसे पुष्ट होता है और प्रकृति भी उसकी हरतरहसे रक्षा करती है ॥१॥

मित्र और वरुण दोनों ही अपनी तेजस्वी आंखोंसे इस संसारको देखते हैं, इसीलिए ये इस संसारके स्वामी हैं । इन्हीं देवोंसे प्राणी ऐश्वर्य और अमरता मांगते हैं । इन दोनों देवोंकी किरणें द्युलोक और पृथ्वीलोकमें विचरती हैं ॥२॥

ये मित्र और वरुण दोनों संसारके स्वामी बलवान्, द्युलोक और पृथ्वीलोकके स्वामी मित्र और वरुण सभीको देखनेवाले हैं । जब मेघ गर्जते हैं, तब मानों मेघोंमें ये ही देव गर्जते हैं और अपने सामर्थ्यसे जल बरसाते हैं ॥३॥

इन मित्र और वरुणके सामर्थ्यके कारण ही द्युलोकमें सूर्य स्थित है और उसका प्रकाश सर्वत्र विचरता है । सूर्यका प्रकाश रात्रिमें विचरनेवाले दुष्टोंका शत्रु है । इन्हीं मित्र और वरुणके सामर्थ्यसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, तब बादलोंको सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे तहस नहस करके वर्षारूपी मधुर रसकी धारायें बहाता है ॥४॥

५६८ रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥ ५ ॥

५६९ वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥ ६ ॥

५७० धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥ ७ ॥

[६४]

[ऋषिः- अर्चनाना आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ।

५७१ वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥ १ ॥

अर्थ- [५६८] हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! (**गविष्टिषु**) यज्ञोंमें (**शुभे**) अपने कल्याणके लिए (**मरुतः**) मरुद्गण (**शूरः न**) एक शूरवीरके समान (**सुखं रथं युंजते**) सुखकारी रथको जोडते हैं । तब (**दिवः तन्यवः**) द्युलोकसे प्रकट होनेवाली किरणें (**चित्रा रजांसि वि चरन्ति**) सुन्दर लोकोंमें फैलती हैं । हे (**सम्राजा**) तेजस्वी देवो ! (**पयसा**) उत्तम जलसे (**नः उक्षतं**) हमें सिंचित करो ॥५॥

[५६९] हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! तुम्हारे ही कारण (**पर्जन्यः**) मेघ (**इरावतीं**) अन्नको उत्पन्न करनेवाली (**त्वीषिमतीं**) तेजसे युक्त (**चित्रां**) सुन्दर और (**सु वाचं वदति**) उत्तमवाणीको बोलता है । (**मरुतः**) मरुद्गण (**मायया**) अपने सामर्थ्यसे (**अभ्रा सु वसत**) मेघोंको सर्वत्र फैलाते हैं । हे मित्र वरुण ! तुम (**अरुणां अरेपसं द्यां**) तेजसे युक्त तथा निर्मल द्युलोकको बरसाओ ॥६॥

[५७०] हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! (**विपश्चिता**) बुद्धिमान् तुम दोनों (**धर्मणा व्रता रक्षेथे**) धर्मपूर्वक अपने नियमोंकी रक्षा करते हो और (**असुरस्य मायया**) मेघके सामर्थ्यसे विश्वकी रक्षा करते हो, इसी (**ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः**) सत्य नियमके कारण सारे विश्वमें तुम सुशोभित होते हो, तुम्हीं (**दिवि**) द्युलोकमें (**चित्र्यं रथं सूर्यं**) तेजस्वी तथा गति करनेवाले सूर्यको (**धत्थ**) स्थापित करते हो ॥७॥

१ **विपश्चिता धर्मणा व्रता रक्षेथे-** बुद्धिमान् धर्मपूर्वक अपने व्रत-नियमोंका पालन करते हैं ।

२ **ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजते-** मनुष्य अपने सत्यनियमोंके कारण ही सारे संसारमें सुशोभित होता है ।

[६४]

[५७१] (**व्रजा इव**) जिस तरह गायें बाडेमें जाती हैं, उसी तरह (**बाह्वोः**) अपने सामर्थ्यसे (**परिजगन्वांसा**) सर्वत्र जानेवाले (**वः**) तुम मित्र और वरुणको हम बुलाते हैं तथा (**स्वर्ण-रं**) सोनेके समान चमकीले धनको देनेवाले तथा (**रिशादसं**) शत्रुओंके विनाशक (**मित्रं वरुणं**) मित्र और वरुणको हम (**ऋचा हवामहे**) ऋचाओंसे बुलाते हैं ॥१॥

भावार्थ- मित्र और वरुणकी ही कृपासे मरुद्गण यज्ञोंमें जाने के लिए अपने कल्याणकारक रथोंको जोडते हैं । तब द्युलोकसे प्रकट होनेवाली किरणें सभी लोकोंमें फैलती है ॥५॥

मित्र और वरुण के कारण ही मेघ अन्नको उत्पन्न करनेवाली गंभीर गर्जना करते हैं, तब वायु भी अपने सामर्थ्यसे सारे आकाशको बादलोंसे ढक देते हैं, तब ये मित्र और वरुण द्युलोकसे तेजस्वी और निमल जल बरसाते हैं ॥६॥

मित्र और वरुण बुद्धिमान् होनेके कारण धर्मपूर्वक अपने नियमोंका पालन करनेके कारण ही ये सारे संसारमें सुशोभित होते हैं । इसी प्रकार जो बुद्धिमान् होते हैं वे सदा सत्यके मार्गपर चलते हुए अपने व्रतोंका आचरण करते हैं तथा अपने नियमपालनरूप व्रतके कारण ही वे सारे विश्वमें यशस्वी होते हैं ॥७॥

५७२ ता वाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥

५७३ यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥

५७४ युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥

५७५ आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥

५७६ युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥

अर्थ- [५७२] हे मित्र वरुण ! तुम (**ता वाहवा**) अपने दोनों बाहोंको -हाथको (**सुचेतुना**) उत्तम मनसे (**अर्चते अस्मा**) तुम्हारी पूजा करनेवाले हमारी ओर (**प्र यन्तं**) फैलाओ । मैं भी (**वां**) तुम दोनोंके (**जार्यं शेवंहि**) प्रशंसनीय सुखका यश (**विश्वासु क्षासु**) सभी लोकोंमें (**जोगुवे**) गाऊंगा ॥२॥

[५७३] मैं (**यत्**) जब (**नूनं गतिं अश्यां**) निश्चयसे गतिको प्राप्त करूं तब (**मित्रस्य पथा यायां**) मित्रके मार्गसे ही आगे चलूं । सभी प्राणी (**अस्य प्रियस्य अहिंसानस्य**) इस प्रिय तथा दयालु मित्रके (**शर्मणि**) सुखमें (**सश्चिरे**) एकत्र होते ॥३॥

१ **यत् गतिं अश्यां मित्रस्य पथा यायां**- जब भी मैं गति करूं, तब मित्रके मार्गसे ही जाऊं ।

[५७४] (**मघोवां स्तोतॄणां क्षये**) धनवान् स्तोताओंके घरमें (**यत् ह**) जो धन (**स्पूर्धसे**) आपसी स्पर्धाका कारण बनता है, उस (**युवाभ्यां उपमं**) तुम्हारे धनको मैं हे (**मित्रावरुणा**) मित्र वरुण ! (**ऋचा धेयां**) स्तुतिके द्वारा धारण करूं ॥४॥

[५७५] हे (**मित्र**) मित्र ! तू (**वरुणः च**) और वरुण (**सुदीतिभिः**) उत्तम तेजोंसे युक्त होकर (**मघोनां सखीनां वृधसे**) धनसे युक्त मित्रोंकी वृद्धि करनेके लिए (**नः क्षये आ**) हमारे घर आओ (**स्वे सधस्थे आ**) हमारे घर अवश्य पधारो ॥५॥

[५७६] हे (**वरुणा**) मित्र और वरुण ! (**युवं**) तुम (**नः येषु**) हमारे जिन यज्ञोंमें (**उरु बृहत् क्षत्रं च बिभृथः**) अत्यन्त विशाल बल धारण करते हो, उसका उपयोग (**नः वाजसातये राये स्वस्तये**) हमारे बल बढाने तथा कल्याणको बढानेके लिए (**कृतं**) करो ॥६॥

भावार्थ- सर्वत्र गति करनेवाले, चमकीले धनोंको प्रदान करनेवाले तथा हिंसक शत्रुओंको मारनेवाले मित्र और वरुणको हम बुलाते हैं ॥१॥

हे मित्र और वरुण ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ, अतः अपने वरद हस्त मेरे ऊपर रखो । मैं तुम्हारे यशका गान सर्वत्र करूंगा ॥२॥

जब भी मैं जाऊं तब मित्रके मार्ग अर्थात् स्नेहपूर्ण मार्गपर ही चलूं, क्योंकि मित्र बडा ही प्रिय और दयालु है, अतः उसके आश्रयमें रहकर सभी प्राणी सुख प्राप्त करते हैं ॥३॥

ऐश्वर्यके अभिमानमें फंसे धनियोंके घरोंमें यह धन आपसी स्पर्धा तथा आपसी मनमुटावका कारण बनती है । इसी धनके कारण एक धनी दूसरे धनीसे शत्रुता करता है । पर एक देवभक्त के घरमें यह धन देवोंकी स्तुतिका कारण बनता है । वह देव भक्त इस धनको पाकर यज्ञादि रूप देवोंकी पूजा करता है, देवपूजाके कार्यमें ही धनको खर्च करता है ॥४॥

हे मित्र और वरुण ! तुम तेजोंसे युक्त होकर धनी मित्रोंकी वृद्धि करनेके लिए हमारे घर आओ ॥५॥

हे मित्र और वरुण ! तुम अपनी विशालशक्तिसे हमारे बल, धन और कल्याणको बढाओ ॥६॥

५७७ उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभि-रा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥ ७ ॥

[६५]

[ऋषिः- रातहव्य आत्रेयः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्दः- अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।]

५७८ यश्चिकेत स सुक्रतु-र्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥ १ ॥

५७९ ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥

५८० ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥ ३ ॥

अर्थ- [५७७] हे मित्र और वरुण ! (यजता नरा) पूज्य, नेता तथा (अर्चनानसं बिभ्रती) उपासना करनेवालेको धारण करनेवाले तुम दोनों (उच्छन्त्यां) उषाके प्रकट होने पर (रुशत् गवि) अग्निकी किरणोंसे प्रकाशित (देवक्षत्रे) यज्ञमें (नः सुतं सोमं) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमकी तरफ (हस्तिभिः पद्भिः) जुए रूपी हाथोंवाले तथा पहियोंरूपी पैरोंवाले रथोंसे (आ धावतं) दौडकर आओ ॥७॥

[६५]

[५७८] (दर्शतः वरुणः मित्रः वा) सुन्दर वरुण और मित्र (यस्य गिरः वनते) जिसकी स्तुतियां सुनते है, (यः चिकेत) जो इन देवोंको जानता है, (सः सुक्रतुः) वह उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य (देवत्रा) विद्वानोंके बीचमें बैठकर (नः ब्रवीतु) हमें उपदेश करे ॥१॥

[५७९] (ता हि) वे दोनों देव (श्रेष्ठवर्चसा) उत्तम तेजस्वी, (राजाना) दीप्तिमान् (दीर्घश्रुत्तमा) दूरसे भी पुकार सुननेवाले हैं । (ता सत्पती) वे दोनों सज्जनोंके पालक, (ऋतावृधा) यज्ञके वर्धक, तथा (जने-जने) प्रत्येक मनुष्यमें (ऋतावाना) सत्यको स्थापित करनेवाले हैं ॥२॥

[५८०] (ता पूर्वा) उन अत्यन्त प्राचीन (युवां) तुम दोनोंकी, हे मित्रावरुण ! (इयानः) मैं सर्वत्र गति करता हुआ (अवसे) अपने संरक्षणके लिए (सचा ब्रुवे) एक साथ स्तुति करता हूँ । (सु-अश्वासः) उत्तम घोडोंवाले हम (वाजान् दावने) अन्नोंको देनेके लिए (सुचेतुना) उत्तम ज्ञानवाले तुम्हारी (प्र) उत्तम रीतिसे स्तुति करते हैं ॥३॥

भावार्थ- मित्र और वरुण ये दोनों ही देव पूज्य, नेता तथा इनकी भक्ति करनेवालेकी हर तरहसे रक्षा करनेवाले हैं ॥७॥

अध्यात्मज्ञानका उपदेश वही दे सकता है कि जो इन देवोंको अच्छी तरह जानता है और जो देवोंका भक्त है ॥१॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम तेजस्वी, दीप्तिवाले, दूरसे भी प्रार्थना सुननेवाले, सज्जनोंके पालक, यज्ञके वर्धक तथा प्रत्येक मनुष्यमें सत्य नियमोंके प्रवर्तक हैं ॥२॥

ये मित्र और वरुण उत्तम ज्ञानवाले हैं और अपने उपासकोंको उत्तम अन्न देनेवाले हैं ॥३॥

५८१ मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥ ४ ॥

५८२ वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥ ५ ॥

५८३ युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥ ६ ॥

[६६]

[ऋषिः- रातहव्य आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- अनुष्टुप् ।

५८४ आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥

अर्थ- [५८१] (**मित्रः**) मित्र (**अंहः चित् अपि**) पापीको भी (**उरुक्षयाय गातुं**) महान् संरक्षणके उपायको (**वनते**) बताता है । (**प्रतूर्वतः विधतः**) हिंसक दुष्ट भक्तके बारेमें भी (**अस्य मित्रस्य सुमतिः अस्ति**) इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है ॥४॥

१ **मित्रः अंहः चित् अपि उरुक्षयाय गातुं वनते**- यह मित्रदेव पापीको भी महान् संरक्षणका उपाय बताता है ।

२ **प्रतूर्वतः विधतः अस्य मित्रस्य सुमतिः अस्ति**- हिंसा करनेवाले दुष्ट उपासकके बारे में भी इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है ।

[५८२] (**वयं**) हम (**मित्रस्य**) मित्रके (**सप्रथस्तमे अवसि**) अत्यन्त विशाल संरक्षणमें (**स्याम**) रहें । (**वरुणशेषसः**) वरुण देवकी हम सब सन्तानें (**त्वा ऊतयः**) तुझसे रक्षित होकर (**अनेहसः सत्रा**) पापसे रहित तथा संगठित होकर रहें ॥५॥

१ **वरुणशेषसः अनेहसः सत्रा**- वरुण देवके हम सभी पुत्र पापसे रहित होकर संगठित होकर रहें ।

[५८३] हे (**मित्रा**) मित्र और वरुण ! (**युवं**) तुम दोनों (**इमं जनं यतथः**) इस मनुष्यको प्रयत्नशील बनाते हो (**च**) और (**सं नयथः**) उत्तम मार्गसे ले जाते हो । हे देवो ! (**मघोनिः मा परि ख्यतं**) ऐश्वर्यशाली भक्तोंको मत त्यागो, (**ऋषीणां अस्माकं**) मंत्रद्रष्टा अथवा अत्यन्त ज्ञानी हमारे पुत्रादियोंको (**मो**) मत त्यागो, अपितु (**गोपीथे नः उरुष्यतं**) यज्ञमें हमारी रक्षा करो ॥६॥

१ **इमं जनं यतथः सं नयथः**- ये देव जिस मनुष्यको प्रयत्नशील बनाते हैं, उसे उत्तम मार्गसे ले जाते हैं ।

[६६]

[५८४] हे (**चिकित्वान मर्त**) ज्ञानवान् मनुष्य ! तू (**रिशादसा**) हिंसक शत्रुओंके विनाशक (**सुक्रतू**) उत्तम कर्म करनेवाले (**देवौ**) मित्र और वरुण इन दोनों देवोंको (**आ**) बुला तथा (**ऋतपेशसे**) जलका रूप धारण करनेवाले (**प्रयसे**) अन्नको उत्पन्न करनेवाले (**महे**) महान् (**वरुणाय**) वरुणके लिए (**दधीत**) हवि प्रदान कर ॥१॥

भावार्थ- मित्रदेवकी कृपा सब पर समान रूपसे रहती है । इसके लिए सभी मनुष्य समान हैं । दुष्ट उपासकके बारेमें भी सस देवके विचार उत्तम रहते हैं । उसे भी वह देव पापसे बचनेके उपाय बताता है ॥४॥

सभी मनुष्य मित्र और वरुण देवके पुत्र हैं, अतः इन दोनों देवोंसे रक्षित होकर सभी मनुष्य पापसे रहित हों, संगठनसे रहें और इन देवोंके विशाल संरक्षणमें रहें ॥५॥

ये देव अपने जिस मनुष्यको उद्योगी और परिश्रमी बनाना चाहते हैं, उसे सदा उत्तम मार्गमें ले जाते हैं । उत्तम मार्गसे जानेवाले मनुष्य सदा उपयोगी और परिश्रमी होते हैं । ऐसे सत्पुरुषोंकी और उनके पुत्रोंकी ये देव सदा रक्षा किया करते हैं ॥६॥

५८५ ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१माशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥

५८६ ता वामेषे रथाना—मुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥

५८७ अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

५८८ तदृतं पृथिवि बृह—च्छ्रवएष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्व—ति क्षरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥

अर्थ- [५८५] (हि) क्योंकि (ता) वे दोनों देव (**अविह्रुतं**) सत्पुरुषोंके लिए कुटिलतासे रहित पर (**असुर्यं**) असुर आदि शत्रुओंके विनाशक (**क्षत्रं**) बलको (**सम्यक् आशाते**) अच्छी तरह प्राप्त करते हैं, (**अध**) इसीलिए वे (**मानुषं व्रता इव**) मनुष्यमें जिस तरह कर्तृत्वशक्ति रहती है, अथवा (**स्वः न**) जिस प्रकार सूर्यमें प्रकाश होता है, उसी तरह (**दर्शतं धायि**) संसारमें बल स्थापित करते हैं ॥२॥

१ **क्षत्रं अविह्रुतं असुर्यं**- इन देवोंका बल सज्जनों के लिए कुटिलतारहित पर दुष्टोंके लिए विनाशक है ।

[५८६] हे मित्र वरुण ! (**एषां रथानां एषे**) इन रथोंके जाने के लिए (**गव्यूतिं उर्वीं**) मार्ग विस्तृत हो, इस लिए (**ता वां**) उन तुम दोनोंकी तथा (**रातहव्यस्य**) हविको प्रदान करनेवाले मनुष्यको (**स्तोमैः**) स्तुतियोंसे (**दधृक् सुस्तुतिं मनामहे**) उत्तम स्तुति करते हैं ॥३॥

[५८७] (**अधा हि**) इसलिए हे (**पूतदक्षसा अद्भुता काव्या**) पवित्र बलवाले, अद्भुत कार्य करनेवाले ज्ञानी मित्र और वरुण ! (**दक्षस्य पूर्भिः**) बलशाली मनुष्यके प्रशंसाओंसे प्रशंसित (**युवं**) तुम दोनों (**जनानां**) मनुष्योंकी प्रार्थनाओंको (**केतुना चिकेथे**) उत्तम मनसे जानो-समझो ॥४॥

[५८८] हे (**पृथिवि**) पृथिवी ! (**ऋषीणां श्रव एषे**) मंत्रदृष्टा ज्ञानियों के अन्नकी इच्छा करने पर (**ज्रयसानौ**) सर्वत्र जानेवाले ये मित्र और वरुण ! (**यामभिः**) अपने कर्मोंसे (**तत् पृथु बृहत् ऋतं**) वह बहुत सारा जल (**अरं अति क्षरन्ति**) पर्याप्त मात्रामें बरसाते हैं ॥५॥

भावार्थ- हे ज्ञानी मनुष्य ! शत्रुओंके विनाशक तथा उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण इन दोनों देवोंको बुला और जलका रूप धारण करनेवाले तथा अन्नको उत्पन्न करनेवाले वरुणको हवि प्रदान कर ॥१॥

मित्र और वरुण इन दोनोंका बल सज्जनोंकी रक्षा करनेवाला तथा दुष्टोंका विनाश करनेवाला है । जिस प्रकार मनुष्योंमें कर्तृत्वशक्ति रहती है, तथा सूर्यमें प्रकाश रहता है, उसी तरह संसारमें इन दोनोंका बल निहित है ॥२॥

हमारे रथोंको आगे जाने के लिए विस्तृत मार्ग मिले, इसलिए हम मित्र और वरुणकी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥३॥

हे पवित्र बलवाले तथा अद्भुत कार्य करनेवाले ज्ञानी देवो ! तुम दोनों हम मनुष्योंके द्वारा की गई प्रार्थनाको उत्तम मनसे सुनो ॥४॥

जब जब ज्ञानी अन्नकी इच्छा करते हैं, तब तब ये मित्र और वरुण अपने कर्मोंसे जलको पर्याप्त मात्रामें बहाते हैं ॥५॥

५८९ आ यद् वामीयचक्षसा मित्रं वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥

[६७]

[ऋषिः— यजत आत्रेयः । देवता— मित्रावरुणौ । छन्दः— अनुष्टुप् ।

५९० बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन् वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥ १ ॥
५९१ आ यद् योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥ २ ॥
५९२ विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ३ ॥

अर्थ- [५८९] हे (ईयचक्षसा मित्रा) दूर दृष्टिवाले मित्र और वरुण ! (यत्) चूंकि (वयं सूरयः) हम ज्ञानी जन (वां आ) तुम दोनोंको बुलाते है, इसलिए (व्यचिष्ठे) अत्यन्त विस्तृत (बहुपाय्ये) बहुतोंके द्वारा पालने योग्य (स्वराज्ये प्र यतेमहि) अपने राज्यमें प्रयत्न करें ॥६॥

१ **व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये यतेमहि**- अत्यन्त विस्तृत और बहुतोंके द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें प्रयत्न करते रहें ।

[६७]

[५९०] (देवा आदित्या) तेजस्वी, रसोंका आदान प्रदान करनेवाले (वरुण) वरुण तथा (अर्यमन् मित्र) श्रेष्ठ मित्र ! तुम दोनों (निष्कृतं) अपराजित (यजतं) पूज्य, (बृहत्) विस्तृत तथा (वर्षिष्ठं) अत्यन्त श्रेष्ठ (क्षत्रं आशाथे) सामर्थ्यको धारण करते हो, (इत्था बट्) यह बात सत्य है ॥१॥

[५९१] (यत्) चूंकि (हिरण्ययं) हितकारी और रमणीय (योनिं) स्थान पर, हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (आ सदथः) आकर बैठते हो, इसलिए हे (चर्षणीनां धातारा रिशादसा) मनुष्योंको धारण करनेवाले तथा शत्रुओंके विनाशक देवो ! तुम (सुम्नं यन्तं) हमें सुख प्रदान करो ॥२॥

[५९२] (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरुण, मित्र और अर्यमा ये (विश्वे हि) सभी देव (विश्ववेदसः) सभी तरहसे समृद्ध हैं, तथा (पदा इव) अपने ही स्थानके समान (व्रता सश्चिरे) उत्तम कर्मोंवाले स्थानों पर जाते हैं और (रिषः मर्त्यं पान्ति) दुष्टोंसे मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥३॥

भावार्थ- हम सदैव मित्र और वरुणको बुलाते हैं , अतः उनकी कृपासे हम अपने अत्यन्त विस्तृत तथा प्रजाओं द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें ही राष्ट्रकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहें । इस मंत्रमें "बाहुपाय्य" शब्दके द्वारा बहुत प्रजाओं द्वारा शासित प्रजातंत्र राज्यकी तरफ संकेत किया गया है । सभी प्रजातंत्र राज्यमें स्वतंत्रतापूर्वक रहकर अपने देशकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहें ॥६॥

मित्र और वरुण इन देवोंका बल किसी से भी पराजित न होनेवाला, पूज्य विस्तृत और अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥१॥

हे मनुष्योंका पालन करनेवाले तथा शत्रुओंके विनाशक मित्रावरुण ! हम तुम्हें बैठनेके लिए हितकारी और रमणीय स्थान देते हैं, अतः तुम हमें सुख प्रदान करो ॥२॥

वरुण, मित्र और अर्यमा ये सभी देव हर तरहसे समृद्ध हैं । ये देव उत्तम कर्म करनेवालेके घर उतने ही प्रेमसे जाते हैं कि मानों अपने ही घर जा रहे हों । वहां जाकर उस श्रेष्ठ मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥३॥

५९३ ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥

५९४ को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत् सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥ ५ ॥

[६८]

[ऋषिः- यजत आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री ।]

५९५ प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

५९६ सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

५९७ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

अर्थ- [५९३] (ते हि) वे देव (सत्याः) सत्यस्वरूप (ऋतस्पृशः) सनातन नियमोंका अनुसरण करनेवाले तथा (जने जने ऋतावानः) प्रत्येक मनुष्य अर्थात् जगत्में ही सद्धर्मनिष्ठ हैं । वे (सुनीथासः) उत्तम मार्गसे ले जाने वाले (सुदानवः) उत्तम रीतिसे दान देनेवाले और (अंहः चित् उरुचक्रयः) पापियोंको भी समृद्ध करनेवाले हैं ॥४॥

[५९४] हे (मित्र) मित्र ! (युवां) तुममें तू या (वरुणः) वरुण ऐसा (कः नु) कौन है कि जो (तनूनां अस्तुतः) मनुष्योंसे स्तुत नहीं होगा ? (तत् मतिः) वह हमारी बुद्धि (वां एषते) तुम्हारी तरफ दौडती है, (अत्रिभ्य मति एषते) ज्ञानी लोगोंकी बुद्धि भी तुम्हारी तरफ दौडती हैं ॥५॥

[६८]

[५९५] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (मित्राय वरुणाय) मित्र और वरुणके लिए (विपा गिरा) स्वयं स्फूर्तिसे रचे गए स्तोत्रोंसे (प्र गायत) विशेष रूपसे गान करो । हे (महिक्षत्रौ) महाबलशाली देवो ! तुम (बृहत् क्षत्रं) इन महान् स्तोत्रोंको सुनो ॥१॥

[५९६] (या) जो दोनों (मित्रः च वरुणः च देवा) मित्र और वरुण देव (सम्राजा) सबके सम्राट् (घृतयोनी) जलके उद्गम स्थान और (देवेषु प्रशस्ता) देवोंमें प्रशंसनीय है ॥२॥

[५९७] (ता) वे दोनों मित्र और वरुण देव (नः) हमें (पार्थिवस्य दिव्यस्य) पृथ्वी सम्बन्धी और द्युलोक सम्बन्धी (महः रायः) महान् ऐश्वर्यको देनेमें (शक्तं) समर्थ हैं । हे देवो ! (वां क्षत्रं) तुम दोनोंका बल (देवेषु महि) देवोंमें सर्वोत्तम है ॥३॥

भावार्थ- मित्र, वरुण और अर्यमा देव सत्यस्वरूप, सनातन नियमोंका अनुसरण करनेवाले तथा सच्चे धर्मके पालक हैं । वे लोगोंको सन्मार्गसे ले जानेवाले, उत्तम रीतिसे दान देनेवाले तथा पापियोंको भी समृद्ध करनेवाले हैं ॥४॥

हे मित्र वरुण ! तुममें ऐसा कौन है कि जिसकी स्तुति मनुष्य नहीं करते, अर्थात् इनमें कोई भी ऐसा नहीं है कि जिसकी स्तुति नहीं होती हो । क्योंकि ज्ञानी और साधारण सभी मनुष्योंका मन या बुद्ध इन्हीं देवोंमें लगी रहती है ॥५॥

हे मनुष्यो ! तुम मित्र और वरुणके लिए स्वयं स्फूर्तिसे रचे गए स्तोत्रोंको गाओ और हे देवो ! तुम भी बडे प्रेमसे उन गानोंको सुनो ॥१॥

मित्र और वरुण ये दोनों ही देव सबके स्वामी, जलको उत्तम करनेवाले होने के कारण देवोंमें प्रशंसनीय हैं ॥२॥

ये दोनों देव मनुष्योंको सभी तरहके पृथ्वी सम्बन्धी और द्युलोक सम्बन्धी ऐश्वर्य देनेमें समर्थ हैं, इसी कारण इन दोनों देवोंका बल सबसे श्रेष्ठ है ॥३॥

५९८ ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥
५९९ वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥

[६९]

[ऋषिः- उरुचक्रिरात्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

६०० त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून् त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्याऽनु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १ ॥
६०१ इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद् वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥ २ ॥

अर्थ- [५९८] (ऋतेन ऋतं सपन्ता) यज्ञसे यज्ञका उपभोग करनेवाले मित्र और वरुण (इषिरं दक्षं आशाते) शत्रु पर आक्रमण करने योग्य बलको प्राप्त करते हैं । (अ-द्रुहा देवौ) किसीसे भी द्रोह न करनेवाले दोनों देव अपने शक्तिको (वर्धते) बढाते हैं ॥४॥

[५९९] (वृष्टि द्यावा) वर्षाके जलको आकाशसे बरसानेवाले (रीत्यापा) जल प्रवाहोंको बहनेके लिए मुक्त करनेवाले (इषस्पती) अन्नके स्वामी ये दोनों मित्र और वरुण देव (दानुमत्याः) उदार मनसे युक्त होकर (बृहन्तं गर्तं आशाते) विशाल रथपर चढते हैं ॥५॥

[६९]

[६००] हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! तुम (त्री रोचना) तीन तेज, (त्रीन् द्यून्) तीन द्युलोक तथा (त्रीणि रजांसि) तीन लोकोंको (धारयथः) धारण करते हो । तुम दोनों (क्षत्रियस्य अमतिं वावृधाना) क्षत्रियके सामर्थ्यको बढाते हो, तथा (अजुर्यं व्रतं अनु रक्षमाणा) नष्ट न होनेवाले व्रतकी तुम रक्षा करते हो ॥१॥

[६०१] हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र देवो ! (वां) तुम्हारे ही कारण (धेनवः इरावतीः) गायें दुधारू होती हैं, (वां) तुम्हारे ही कारण (सिन्धवः मधुमत् दुह्रे) नदियां मधुर जल दुहती हैं । (त्रयः वृषभासः रेतोधाः द्युमन्तः) तीन बलवान्, जलको धारण करनेवाले तथा तेजस्वी दव (तिसृणां धिषणानां तस्थुः) तीन स्थानों पर रहते हैं ॥२॥

भावार्थ- यज्ञ अर्थात् अपने श्रेष्ठतम कर्मोंके कारण ही ये दोनों देव यज्ञमें दी गई हविको पानेके अधिकारी होते हैं। ये दोनों देव अपने भक्तको हर तरहसे समृद्ध करते हैं ॥४॥

वर्षाके जलको गिरा कर जल प्रवाहोंको बनानेवाले तथा इस प्रकार अन्नको उत्पन्न करनेवाले ये दोनों देव उदार मनसे युक्त होकर विशाल रथ पर चढते हैं ॥५॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव, सूर्य, विद्युत्, अग्नि इन तीन तेजोंको, भूः, भुवः, स्वः इन तीन द्युलोकोंको तथा द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीन लोकोंको धारण करते हैं। ये ही दो देव मनुष्योंको शक्ति प्रदान करके उन्हें उत्तम कर्म करनेके लिए प्रेरणा देते हैं ॥१॥

इन्हीं वरुण और मित्र देवके कारण गायें दुहती है, नदियां मधुर जल बहाती हैं, तथा अग्नि, विद्युत् और आदित्य ये तीनों जल बरसानेवाले तेजस्वी देव पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीन स्थानोंमें रहते हैं ॥२॥

६०२ प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वताते—ळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥
६०३ या धर्तारा रजसो—रोचनस्यो—तादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥ ४ ॥

[७०]

[ऋषिः- उरुचक्रिरात्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री ।]

६०४ पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्य—वो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥
६०५ ता वां सम्यगद्रुह्वाणे—षमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

अर्थ- [६०२] मैं (**प्रातः**) सुबके समय (**देवीं अदितिं**) देवी अदितिको (**जोहवीमि**) बार बार बुलाता हूँ। (**मध्यन्दिने**) मध्यान्हके समय (**उदिता सूर्यस्य**) समृद्धशाली सूर्यकी उपासना करता हूँ। हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! मैं (**राये**) धनकी प्राप्तिके लिए (**सर्वताता**) यज्ञमें तुम्हारी (**ईळे**) स्तुति करता हूँ। हे देवो! हमारे (**तोकाय तनयाय शं योः**) पुत्रों और पौत्रोंका कल्याण तथा रोगादि दूर हों ॥३॥

[६०३] (**या**) जो (**रोचनस्य रजसः**) द्युके लोकोंको तथा (**पार्थिवस्य**) पृथिवीके लोकोंको (**धर्तारा**) धारण करनेवाले हैं, वे मित्र और वरुण ! (**आदित्या**) रसका आदान प्रदान करनेवाले (**उत**) तथा (**दिव्या**) तेजस्वी हैं। हे (**मित्रावरुणा**) मित्र और वरुण ! (**वां ध्रुवाणि व्रतानि**) तुम दोनोंके अटल नियमोंको (**अमृताः देवाः न आ मिनन्ति**) अमर देव भी नहीं तोड सकते ॥४॥

१ **आदित्या दिव्या रोचनस्य पार्थिवस्य रजसः धर्तारा-** रसका आदान-प्रदान करनेवाले तेजस्वी मित्रावरुण द्यु तथा पृथिवीके लोकोंको धारण करनेवाले हैं।

२ **वां ध्रुवाणि व्रतानि अमृताः देवाः न मिनन्ति-** इन दोनोंके अटल नियमोंको देव भी नहीं तोड सकते।

[७०]

[६०४] हे (**वरुण मित्र**) वरुण और मित्र ! (**वां अवः**) तुम्हारी कृपा (**नूनं**) निश्चयसे (**पुरूरुणा चित्**) अत्यन्त विशाल और अपरम्पार है। मैं (**वां**) तुम दोनोंकी (**सुमतिं**) उत्तम बुद्धिको (**वंसि**) प्राप्त करूं ॥१॥

१ **वां अवः पुरूरुणा चित्-** इन मित्रावरुणकी कृपा निश्चयसे अपरम्पार है।

२ **वां सुमतिं वंसि-** मैं इन दोनों देवोंके उत्तम बुद्धिको प्राप्त करूं।

[६०५] हे (**अद्रुह्वाणा**) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! (**ता वां**) उन तुम्हारी कृपासे हम (**धायसे**) खाने पीनेके लिए (**इषं अश्याम**) अन्न आदि प्राप्त करें। हे (**रुद्रा**) शत्रुओंको रुलानेवाले देवो ! (**वयं ते स्याम**) हम तेरे बनकर रहें ॥२॥

१ **रुद्रा, वयं ते स्याम-** हे शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण ! हम तेरे बनकर रहें।

भावार्थ- मैं सुबहके समय अदिति देवीकी, दोपहरके समय समृद्धशाली सूर्यकी तथा यज्ञमें मित्र और वरुणकी स्तुति करता हूँ। ये सभी देव हमारे पुत्रपौत्रोंके रोगादिको दूर करके उनका कल्याण करें ॥३॥

मित्र-सूर्य तथा वरुण-जल दोनों देव रसोंका आदान प्रदान करनेवाले हैं, ये दोनों ही देव वृक्ष वनस्पतियोंमें रसकी स्थापना करते हैं। ये दोनों ही तेजस्वी हैं। इसी कारण ये सभी लोकोंको धारण करते हैं। इन दोनों देवोंके नियम इतने अटल हैं कि अमर देव भी इनके नियमोंको तोड नहीं सकते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? ॥४॥

मित्र और वरुण इन दोनों देवोंकी कृपा निश्चयसे बहुत बडी और अपरम्पार है। मनुष्य उत्तम बुद्धिको प्राप्त करके इनकी कृपाका अधिकारी बने ॥१॥

६०६ पात नो रुद्रा पायुभि॑रुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम॒ दस्यू॑न् त॒नूभि॑ः ॥ ३ ॥
६०७ मा कस्या॑द्भुतक्रतू य॒क्षं भु॑जेमा त॒नूभि॑ः । मा शेष॑सा मा तन॑सा ॥ ४ ॥

[७१]

[ऋषिः- बाहुवृक्त आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री ।]

६०८ आ नो॑ गन्तं रिशादसा वरु॑ण॒ मित्र॑ ब॒र्हणा॑ । उपे॒मं चारु॑मध्व॒रम् ॥ १ ॥
६०९ विश्व॑स्य॒ हि प्र॑चेतसा॒ वरु॑ण॒ मित्र॒ राज॑थः । ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ ॥ २ ॥
६१० उप॑ नः सु॒तमा ग॑तं॒ वरु॑ण॒ मित्र॑ दा॒शुषः॑ । अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ३ ॥

अर्थ- [६०६] हे (**रुद्रा**) शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण ! तुम (**पायुभिः**) उत्तम पालनके साधनोंसे (**नः पातं**) हमारा पालन करो, (**उत**) और (**सुत्रात्रा**) उत्तम रक्षाके साधनोंसे हमारी (**त्रायेथां**) रक्षा करो । हम (**तनूभिः**) अपने स्वस्थ शरीरोंसे (**दस्यून् तुर्याम**) दुष्टोंका विनाश करें ॥३॥

[६०७] हे (**अद्भुतक्रतू**) आश्चर्यजनक कर्म कनरेवाले मित्रावरुण ! हम (**कस्य यक्षं**) किसी दूसरेके अन्नका (**मा भुजेम**) उपभोग न करें, (**शेषसा मा**) अपने पुत्रोंके साथ [अन्यके अन्नका उपभोग] न करें, (**तनसा मा**) अपने सगे सम्बन्धियोंके साथ भी [अन्यके अन्नका उपभोग] न करें, अपितु (**तनूभिः आ**) अपने स्वस्थ शरीरोंसे ही उपभोग करें ॥४॥

१ **कस्य यक्षं न भुजेम तनूभिः आ**- हम किसी दूसरेके अन्नका उपभोग न करें, अपने शरीरसे कमाये गए अन्नको ही भोगें ।

[७१]

[६०८] हे (**रिशादसा बर्हणा**) शत्रुओंको खा जानेवाले, उनके विनाशक मित्र और वरुण ! तुम दोनों (**नः इमं चारुं अध्वरं**) हमारे इस सुन्दर यज्ञमें (**उप आ गन्तं**) आओ ॥१॥

[६०९] हे (**प्रचेतसा मित्र वरुणा**) ज्ञानी मित्र और वरुण ! तुम (**विश्वस्य हि राजथः**) सम्पूर्ण विश्वपर शासन करते हो, अतः हे (**ईशाना**) संसारके स्वामी मित्रावरुण ! तुम हमारी (**धियः पिप्यतं**) बुद्धियोंका तृप्त करो ॥२॥

[६१०] हे (**वरुण मित्र**) वरुण और मित्र देवो ! (**अस्य दाशुषः**) इस दानशील मनुष्यके (**सोमस्य पीतये**) सोमको पीनेके लिए तथा (**नः सुतं**) हमारे द्वारा भी निचोडे गए सोमरसको पीनेके लिए (**उप आ गतं**) हमारे पास आओ ॥३॥

भावार्थ- किसीसे द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! हम तुम्हारी कृपासे अच्छी तरह खाने-पीनेके लिए भरपूर अन्न आदि प्राप्त करें, तथा हम तेरे प्रिय बनकर रहें ॥२॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण ! तुम अपने पालन करनेके उत्तम साधनोंसे हमारा पालन करो और रक्षाके उत्तम साधनोंसे हमारी रक्षा करो । हम भी अपने स्वस्थ शरीरोंसे दुष्टोंका विनाश करें ॥३॥

हे मित्र और वरुण ! हम पर ऐसी कृपा करो कि हमें, हमारे पुत्रपौत्रों तथा हमारे सगे सम्बन्धियोंको दूसरेका अन्न खाकर जिन्दा न रहना पडे, अर्थात् हम दूसरोंके अन्नपर अपनी जीविका न चलायें, अपितु अपने ही स्वस्थ शरीरोंसे परिश्रम करके अन्नका सम्पादन करके अपनी जीविका चलायें ॥४॥

हे शत्रुका विनाश करनेवाले मित्र और वरुण ! तुम दोनों हमारे इस सुन्दर यज्ञमें आओ ॥१॥

हे ज्ञानी मित्र और वरुण ! तुम सब संसार पर शासन करते हो, अतः तुम हमारी बुद्धियोंको परिपुष्ट करके तृप्त करो ॥२॥

हे मित्र और वरुण ! इस दानशील मनुष्यके द्वारा तथा हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको पीनेके लिए हमारे पास आओ ॥३॥

[७२]

[ऋषिः- बाहुवृक्त आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- उष्णिक् ।]

६११ आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

६१२ व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥

६१३ मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये । नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥

[७३]

[ऋषिः- पौर आत्रेयः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- अनुष्टुप्]

६१४ यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद् वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

---

[७२]

अर्थ- [६११] (वयं) हम (मित्रे वरुणे) मित्र और वरुणको प्रसन्न करनेके लिए (अत्रिवत्) ज्ञानीके समान (गीर्भिः जुहुमः) स्तुतियोंसे आहुति देते हैं, हे देवो ! तुम (सोमपीतये) सोमरस पीनेके लिए (बर्हिषि- नि सदतं) इस यज्ञमें आकर बैठो ॥१॥

[६१२] हे (यातयज्जना) शत्रुओंका विनाश करनेवाले मित्रावरुण ! तुम अपने (धर्मणा व्रतेन) धर्मपूर्वक कर्मोंके कारण ही (ध्रुवक्षेमा स्थः) अटल सुखवाले हो । ऐसे तुम (सोमपीतये) सोमरसको पीनेके लिए (बर्हिषि नि सदतं) यज्ञमें आकर बैठो ॥२॥

१ धर्मणा व्रतेन ध्रुवक्षेमः- धर्मपूर्वक कार्य करनेसे अटल और शाश्वत सुख और कल्याण प्राप्त होता है।

[६१३] (इष्टये) हमारी कामनायें पूर्ण करनेके लिए (मित्रः च वरुणः च) मित्र और वरुण (नः यज्ञं जुषेतां) हमारे यज्ञमें आवें और (सोमपीतये) सोमरसका पान करनेके लिए (बर्हिषि नि सदतां) यज्ञमें आकर बैठें ॥३॥

[७३]

[६१४] हे (पुरुभुजा अश्विना) अनेक भुजाओं वाले अश्विदेवो ! (अद्य) आज (यत् परावति स्थः) जो तुम दूर देशमें हो, (यत् अर्वावति) अथवा जो पासके देशमें हो, (वा) अथवा (यत् पुरू) जो अनेकोंके साथ हो (यत् अन्तरिक्षे) जो अन्तरिक्षमें हो, तो भी वहांसे (आगतं) हमारे पास आओ ॥१॥

भावार्थ- हम ज्ञानियोंके समान मित्र और वरुणको प्रसन्न करनेके लिए स्तुतियोंको गाकर आहुति देते हैं। वे देव भी सब होकर हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पीनेके लिए हमारे यज्ञमें आवें ॥१॥

हे मित्र वरुण धर्मपूर्वक कर्म करते है, इसीलिए इन्हें अटल सुख और कल्याण मिलता है। इसीतरह जो मनुष्य धर्मपूर्वक उत्तम कर्मोंको करता है, उसे शाश्वत कल्याण और सुख प्राप्त होता है । और वह यज्ञमें पीनेका अधिकारी होता है ॥२॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव हमारे यज्ञमें आकर बैठें और हमारे जो भी मनोरथ हों, उन्हें पूरा करें ॥३॥

हे अश्विनी देवो ! तुम चाहे दूरके प्रदेशमें हो, या चाहे पासके प्रदेशमें होओ, अथवा तुम अकेले रहो, या, बहुतोंके साथ रहो, वहांसे हमारे पास तुम अवश्य आओ ॥१॥

६१५ इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

६१६ ईर्मान्यद् वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

६१७ तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥

६१८ आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

अर्थ- [६१५] (**इह**) इस विश्वमें (**पुरुभूतमा**) अनेकों भक्तोंसे जिनका सम्बन्ध है, (**पुरु दंसांसि बिभ्रता**) जो अनेक तरहके मनोहर रूप धारण करते हैं, जो (**वरस्या**) सर्वश्रेष्ठ तथा (**अधिगू**) अप्रतिहत गतिवाले हैं, उन (**तुविस्तमा**) उत्कृष्ट बलवाले अश्विनी देवोंको (**भुजे हुवे**) हवि आदिके लिए बुलाता हूं ॥२॥

[६१६] (**रथस्य अन्यत्**) रथका एक (**वपुः चक्रं**) सुंदर पहिया (**ईर्मा वपुषे**) गति द्वारा शोभा बढानेके लिए (**येमथुः**) तुम दोनों स्थिर कर चुके, (**अन्या**) दूसरे (**रजांसि**) लोकोंमें तथा अनेक (**नाहुषां युगा**) मानवी पुश्तोंमें (**मह्ना**) अपनी महिमासे (**परि दीयथः**) तुम चले जाते हो ॥३॥

[६१७] हे (**विश्वा**) सब देवो ! (**यत् वां अनु**) जो तुम दोनोंके अनुकूल (**स्तवे**) मैं स्तुति करता हूं, (**तत्**) वह केवल (**वां उ**) तुम दोनोंके लियेही (**एना सु कृतं**) भलीभांति की है, (**अ-रेपसा**) निर्दोष और (**नाना जातौ**) अनेक कर्मोंमें लिये प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (**अस्मे**) हमारे साथ (**बन्धुं सं ईयथुः**) बन्धुभावको ठीक प्रकार दर्शाते हो ॥४॥

[६१८] (**यत्**) जब (**सूर्या**) सूर्यकी कन्या (**वां**) तुम्हारे (**सदा**) हमेशा (**रघु-स्यदं रथं**) शीघ्रगामी रथपर (**आ तिष्ठत्**) चढ गई, तब (**घृणा**) प्रदीप्त (**आतपः**) शत्रुओंको परिताप देनेहारे (**अरुषाः वयः**) लाल रंगवाले पक्षीसदृश गतिशील घोडे (**वां परि वरन्ते**) तुम्हें घेर लेते हैं ॥५॥

भावार्थ- अश्विनीकुमार अपने सभी भक्तोंसे प्रेम करते हैं, अनेक तरहके मनोहर रूप धारण करते हैं, सर्व श्रेष्ठ हैं, उनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता, तथा वे उत्कृष्ट बलवाले हैं ॥२॥

अश्विनीकुमारोंने रथका एक पहिया स्थिर कर दिया, फिर भी वह चक्र गति करता रहा। इनकी यह महिमा दूसरे लोकोंमें भी अनेक युगों तक गाई जाती रहेगी। इन्हीं अश्विनीकुमारोंके प्रभावसे इस संसाररूपी रथका एक चक्ररूप सूर्य गति करता है, फिर भी स्थिर प्रतीत होता है ॥३॥

दोनों अश्विनीकुमार निर्दोष और अनेक तरहके उत्तम कर्मोंके लिए प्रसिद्ध हैं, अतः ये देव ऐसे ही मनुष्यके साथ बन्धुभाव दर्शाते हैं कि जो सदा उत्तम कर्म करता है। जो स्वयं निर्दोष रहकर अनेक तरहके उत्तम कर्म कुशलतासे करता है, वही प्रशंसाके योग्य है ॥४॥

जब सूर्यकी कन्या उषा इन अश्विनीकुमारोंके रथपर चढती है, तब तेजस्वी और शत्रुओंको संताप देनेवाले घोडे अश्विनीकुमारोंकी रक्षा करते हैं ॥५॥

६१९ युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥
६२० उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।
यद् वां दंसोभिरश्विना ऽत्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥
६२१ मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत् समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥
६२२ सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन् यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥
६२३ इमा ब्रह्माणि वर्धना ऽश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।
या तक्षाम रथाँ इवा ऽवोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥

अर्थ- [६१९] हे (**नरा नासत्या**) नेता अश्विदेवो ! (**अत्रिः सुम्नेन चेतसा**) ज्ञानी आनन्दित मनसे (**युवोः चिकेतति**) तुम्हारी प्रशंसा करता है, (**यत्**) जबकि (**आस्ना वां**) मुँहसे तुम दोनोंकी स्तुति करके (**अरेपसं घर्मं**) निर्दोष अग्निको (**भुरण्यति**) प्राप्त करता है ॥६॥

[६२०] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**यामेषु**) चढाइयोंमें (**वां**) तुम्हारे (**उग्रः ककुहः**) भीषण, ऊँचे (**सन्तनिः**) हमेशा आगे चलनेवाले (**ययिः**) गतिशील रथका (**शृण्वे**) शब्द सुनाई देता है, (**यत्**) जब ज्ञानी (**वां दंसोभिः**) तुम दोनोंको अपने कर्मोंसे (**आ ववर्तति**) अपनी ओर आकर्षित करता है ॥७॥

[६२१] हे (**मधूयुवा**) मधुको मिश्रित करनेवाले (**रुद्रा**) शत्रुको रुलानेवाले अश्विदेवो ! (**मध्वः सु पिप्युषी**) मधुर रससे भलीभाँति पुष्ट करनेवाली प्रशंसा तुम्हारी (**सिषक्ति**) सेवा करती है, (**समुद्रा यत्**) समुद्रोंको चूंकि (**अति पर्षथः**) तुम दोनों पारकर चले जाते हो, अतः (**वां**) तुम्हें (**पक्वाः पृक्षः भरन्त**) पके हुए अन्न दिए जाते हैं ॥८॥

[६२२] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**युवां सत्यं इत्**) तुम्हें सचमुच (**मयोभुवा आहुः वै**) सुखदायक बतलाते हैं, (**यामन्**) यात्राके समय (**ता**) वे तुम दोनों (**यामहूतमा**) युद्धोंमें बुलवाने योग्य हो, इसलिए (**यामन् मृळयत्तमा**) आक्रमणके समय वे तुम बहुत सुख देनेवाले बनो ॥९॥

[६२३] (**अश्विभ्यां**) अश्विदेवोंके लिए (**इमा ब्रह्माणि**) ये स्तोत्र (**शंतमा वर्धना सन्तु**) शान्तिदायक तथा उनका यश बढानेहारे हों, (**या**) जिन्हें (**रथान् इव**) रथोंके समान (**तक्षाम**) हम बना चुके हैं और (**बृहत् नमः अवोचाम**) बडा भारी अन्न भी देने के लिए कह चुके है ॥१०॥

भावार्थ- ज्ञानी जन आनन्दित मनसे इन अश्विनीदेवोंकी उपासना करता है, तब वह निर्दोष अग्नि प्राप्त करता है। अश्विनी प्राण और अपान हैं, ज्ञानी जन जब इन प्राण और अपानकी रक्षा करते हैं, तब शरीरस्थ यह अग्नि बलवान् होती है ॥६॥

हे अश्विदेवो ! शत्रुपर आक्रमण करते समय तुम्हारे भयंकर तथा हमेशा आगे बढनेवाले गतिशील रथोंकी ध्वनि सुनाई देती है, तब ज्ञानी अपने कर्मोंसे इन देवोंकी स्तुति करता है ॥७॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले अश्विदेवो ! मीठी वाणी से युक्त प्रशंसा तुम्हारी हर तरह सेवा करती है। जब तुम दोनों समुद्रोंको पार कर जाते हो, तब तुम्हारा हर तरहसे सत्कार किया जाता है ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों सचमुच सुखदायक हो। शत्रुपर आक्रमण करनेके समय तुम सहायता के लिए बुलाने योग्य हो, इसलिए आक्रमण के समय तुम सुख प्रदान करो ॥९॥

काव्य ऐसा हो कि जो शान्ति बढानेवाला, यश बढानेवाला और नम्रता बढानेवाला हो अथवा अन्न देनेवाला हो ॥१०॥

[७४]

[ऋषिः- पौर आत्रेयः । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।)

६२४ कूष्ठो देवावश्विनाऽद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥

६२५ कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

६२६ कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

६२७ पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

---

[७४]

अर्थ- [६२४] हे (**मना-वसू**) उत्कृष्ट मनवाले अश्विदेवो ! (**कू-स्थः**) तुम दोनों भूमिपर रहनेकी इच्छा करके (**अद्य दिवः**) आज द्युलोकसे इधर आओ । हे (**वृषण्वसू**) धनकी वर्षा करनेवाले देवो ! (**अत्रि**) ज्ञानी (**वां आ विवासति**) तुम्हारी सेवा करता है, (**तत् श्रवथः**) उसे सुनो ॥१॥

[६२५] (**नासत्या देवा दिवि**) सत्यपालक अश्विदेव द्युलोकमें या (**कुह**) किधर (**नु श्रुता**) विख्यात हैं ? (**त्या कुह**) वे दोनों कहाँ है ? (**कस्मिन् जने**) किस मनुष्यके घर (**आ यतथः**) तुम प्रयत्न करते हो ? (**वां नदीनां**) तुम्हारी नदियोंका (**कः सचा**) भला कौन सहगामी है ॥२॥

[६२६] (**वयं**) हम (**इष्टये**) इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए (**वां उश्मसि**) तुम्हारी कामना करते हैं, (**कं ह गच्छथः**) भला तुम किसके समीप जाते हो ? (**कं याथः**) किसके पास चले जाते हो ? (**कं अच्छ**) किसके प्रति पहुँचनेके लिए (**रथं युञ्जाथे**) रथको जोडते हो और (**कस्य ब्रह्माणि**) किसके स्तोत्रोंसे (**रण्यथः**) तुम रममाण होते हो ? ॥३॥

[६२७] हे (**पौर**) नागरिक ! (**पौराय**) नगरनिवासी जनके लिए (**उदप्रुतं**) जलमें डूबनेवाले (**पौरं चित् हि**) नागरिककी सहायतार्थ (**जिन्वथः**) तुमने तृप्त किया था, (**यत् गृभीत-तातये**) जब शत्रुद्वारा घेरे हुएको छुडवानेके लिए (**ई**) इसे (**द्रुहः पदे सिंहं इव**) वनमें सिंहके समान तुमने सहायता की ॥४॥

भावार्थ- हे उत्तम मनवाले अश्विदेवो ! द्युलोकमें रहनेवाले तुम आज भूमि पर रहनेकी इच्छा करते हुए हमारे पास आओ। ज्ञानी तुम्हारी सेवा करना चाहता है, अतः उसकी प्रार्थना सुनो ॥१॥

ये दोनों अश्विनीकुमार सत्यके पालक होनेके कारण सर्वत्र प्रसिद्ध हैं । सभी मनुष्योंके यहां ये जाते हैं ॥२॥

हे अश्विनी देव ! तुम कहां रहते हो, कहां जाते हो, किन स्तोत्रोंसे तुम प्रसन्न होते हो, यह बतावो, क्योंकि हम तुम्हारी स्तुति करना चाहते हैं ॥३॥

जनता की सहायता करनी चाहिए, कष्टोंसे नागरिकोंको सुरक्षा करनी चाहिए, शत्रुसे घेरे गये मनुष्योंको सहायता करके छुडाना चाहिए ॥४॥

६२८ प्र च्यवा॑नाज्जुजु॒रुषो॑ व॒व्रिमत्कं॒ न मु॑ञ्चथः ।
यु॒वा यदी॑ कृ॒थः पुन॒रा काम॑मृण्वे व॒ध्वः॑ ॥ ५ ॥
६२९ अस्ति॒ हि वा॑मि॒ह स्तो॒ता स्मसि॑ वां सं॒दृशि॑ श्रि॒ये ।
नू श्रु॒तं म॒ आ ग॑त॒मवो॑भिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥
६३० को वा॑म॒द्य पु॑रू॒णामा व॑व्ने॒ मर्त्या॑नाम् ।
को विप्रो॑ विप्रवाहसा॒ को य॒ज्ञैर्वा॑जिनीवसू ॥ ७ ॥
६३१ आ वां॒ रथो॒ रथा॑नां॒ येष्ठो॑ यात्वश्विना ।
पु॒रू चि॑दस्म॒युस्ति॒र आ॑ङ्गू॒षो मर्त्ये॒ष्वा ॥ ८ ॥
६३२ शमू॒ षु वां॑ मधूयु॒वास्माक॑मस्तु च॒र्कृतिः॑ ।
अ॒र्वा॒ची॒ना वि॑चेतसा॒ विभिः॑ श्ये॒नेव॑ दीयतम् ॥ ९ ॥

अर्थ- [६२८] (जुजुरुषः च्यवानात्) बूढे च्यवनसे (वव्रिं) ढकनेवाली चमडीको (अत्कं न) कवचके समान (प्र मुञ्चथः) तुमने उतार डाला (यदि) और (पुनः) फिर (युवा कृथः) उसे युवक बना दिया, तब वह (वध्वः कामं) वधूके द्वारा कामना करने योग्य रूपको (आ ऋण्वे) प्राप्त हुआ ॥५॥

[६२९] (वां) तुम्हारी (स्तोता इह अस्ति हि) प्रशंसा करनेवाला यहीं है, (श्रिये वां संदृशि स्मसि) शोभाके लिए तुम्हारी दृष्टिकी कक्षामें हम रहते हैं, हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनसे युक्त अश्विदेवो ! (मे नु श्रुतं) मेरी पुकार अब सुन लो और (अवोभिः आगतं) संरक्षणकी आयोजनाओंसे युक्त होकर आओ ॥६॥

[६३०] हे (विप्र-वाहसा) ज्ञानियों द्वारा सेवनीय और (वाजिनीवसू) सेनाको पास रखनेवाले अश्विदेवो! (अद्य पुरूणां) आम नागरिकोंमेंसे (कः कः विप्रः) कौन ज्ञानी, तथा (कः यज्ञैः) भला कौन पुरुष यज्ञोंसे (आ वव्ने) पूर्णतया (वां) तुम्हें स्वीकार करता है ? ॥७॥

[६३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो (रथानां) रथोंमें (येष्ठः वां रथः) विशेष वेगवाला तुम्हारा रथ (आ यातु) इधर आ जाए, (मर्त्येषु) मानवोंमें (अस्मयुः) हमारी ही कामना करनेवाला तथा (पुरु चित् तिरः) अनेक शत्रुओंको भी हटा देनेवाला (आंगूषः आ) वह प्रशंसनीय रथ इधर आये ॥८॥

[६३२] हे (मधू-युवा) मधुसे युक्त अश्विदेवो ! (अस्माकं) हमारा (वां चर्कृतिः) तुम्हारे लिए किया हुआ कर्म (सु शं अस्तु) भलीभांति सुखदायक हो, (विचेतसा) तुम विशिष्ट चेतनशक्तिसे युक्त हो, इसलिए (अर्वाचीना) हमारे सामने (श्येना इव) बाज पंछीके तुल्य (विभिः दीयतम्) वेगवान् घोडोंसे आ जाओ ॥९॥

भावार्थ- अश्विदेवोंने वृद्ध च्यवन ऋषिके शरीर पर से चमडी, कवच उतारनेके समान, उतार दी, तब वह युवा बना और वधूकी इच्छा करने लगा। औषधि योजनासे वृद्धके शरीर पर से चमडी उतार दी जाय, तो वह फिरसे तरुण बनेगा और वह तरुण स्त्रीकी कामना करनेयोग्य वीर्यवान् हो जायेगा ॥५॥

संरक्षकोंकी सेनासे युक्त वीर अपने संरक्षक साधनोंके साथ आ जायें और जनताकी सुरक्षा करें। संरक्षक दल सिद्ध रखने चाहिए और संरक्षक साधनोंसे नागरिकोंकी सुरक्षा करनी चाहिए। दुष्टों द्वारा नागरिक न मारे जायें ॥६॥

हे ज्ञानियों द्वारा प्रशंसनीय तथा सेनाको पासमें रखनेवाले अश्विदेवो ! आज मनुष्योंमेंसे किस किसने तुम्हारी स्तुति की और किसने नहीं की, यह सभी बातें तुम जानते हो ॥७॥

हे अश्विनीदेवो ! रथोंमें सर्वोत्कृष्ट तुम्हारा रथ हमारे पास आवे। मनुष्योंमें हमारी ही इच्छा करनेवाला तथा अनेक शत्रुओंको नष्ट करनेवाला तुम्हारा रथ इधर आवे ॥८॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! हम जो तुम्हारे लिए कर्म करते हैं, वह तुम्हारे लिए सुखदायक हों। तुम दोनों विशेष चेतनशक्तिसे युक्त हो, इसलिए तुम हमारे पास आओ ॥९॥

६३३ अश्विना यद्ध कर्हिचि-च्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० ॥

[७५]

[ऋषिः- अवस्युरात्रेयः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- पङ्क्तिः ।]

६३४ प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥

६३५ अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥

६३६ आ नो रत्नानि बिभ्रता-वश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥

अर्थ- [६३३] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**इमं हवं**) इस पुकारको (**यत्**) जहाँ (**कर्हि चित् ह**) कहीं भी तुम रहो लेकिन (**शुश्रुयातं**) सुन लो (**वस्वीः भुजः**) प्रशंसनीय भोजन (**वां सु**) तुम्हें ठीक प्रकार मिले इसलिए रखे हैं, (**पृचः वां**) अन्नोंको तुम्हारे लिए (**सु पृञ्चन्ति**) भलीभाँति मिश्रित करते हैं ॥१०॥

[७५]

[६३४] हे (**माध्वी**) मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! (**स्तोता ऋषिः**) प्रशंसा करनेवाला ऋषि (**वां**) तुम्हारे (**प्रियतमं**) अत्यन्त प्रिय, (**वसुवाहनं**) धन बढानेवाले और (**वृषणं रथं प्रति**) बलवान् रथका (**स्तोमेन प्रति भूषति**) स्तोत्रसे वर्णन करता है, तुम (**मम हवं श्रुतं**) मेरी पुकारको सुन लो ॥१॥

[६३५] हे (**माध्वी**) मिठाससे युक्त (**सिन्धु-वाहसा**) नदियोंमें जानेवाले ! (**हिरण्यवर्तनी**) सुवर्णके रथवाले (**सु-सुम्ना दस्रा**) अच्छे मनसे युक्त शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (**मम हवं श्रुतं**) मेरी पुकार सुन लो और (**अति आयातं**) विघ्नोंको लाँघकर इधर आ जाओ, तथा ऐसा प्रबंध करो कि (**अहं**) मैं (**सना**) हमेशा (**विश्वाः तिरः**) सभी बाधाओंको हटा सकूँ ॥२॥

[६३६] हे (**रुद्रा**) शत्रुको रुलानेवाले (**हिरण्यवर्तनी**) स्वर्णमय रथवाले (**वाजिनी-वसू**) सेनारूप धनवाले अश्विदेवो ! (**नः रत्नानि बिभ्रतौ**) हमारे लिए रत्नोंको ले आते हुए (**जुषाणा**) हमारे कथनको ध्यानपूर्वक सुनते हुए (**युवं**) तुम दोनों (**आगच्छतं**) आओ । हे (**माध्वी**) मधुरतासे युक्त ! (**मम हवं श्रुतं**) मेरी पुकार सुनो ॥३॥

भावार्थ- हे अश्विदेवो ! तुम्हारे लिए ये प्रशंसनीय अन्न तैयार करके रखे गए हैं, इसलिए तुम जहां भी हो, वहींसे हमारी यह प्रार्थना सुनकर आओ ॥१०॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! ज्ञानी ऋषि तुम्हारे अत्यन्त प्रिय तथा बलवान् रथकी स्तुति करता है, इसलिए हे देवो ! मेरी पुकार सुनो ॥१॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! तुम उत्तम मनवाले हो, अतः मेरी पुकार सुनो और जहां भी हो, वहांसे सभी विघ्नोंको पार करते हुए चले आओ तथा ऐसा करो कि मैं भी अपने रास्तेमेंसे सभी विघ्नोंको दूर कर सकूँ ॥२॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले अश्विदेवो ! मेरी पुकार सुनो और रत्नोंको प्रदान करनेके लिए हमारे पास आओ और हमारे कथनको ध्यानपूर्वक सुनो ॥३॥

६३७ सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥

६३८ बोधिन्मनसा रथ्ये—षिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥

६३९ आ वां नरा मनोयुजो—ऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥

६४० अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥

अर्थ- [६३७] हे (**वृषण्वसू**) धनोंकी वर्षा करनेवाले देवो ! मैं (**वां सुस्तुभः**) तुम दोनोंका अच्छा प्रशंसक हूँ, (**वाणीची रथे आहिता**) मेरी स्तुति तुम्हारे रथके विषयमें हो रही है (**उत**) और (**ककुहः मृगः**) महान्, तुम्हारा अन्वेषण कर्ता (**वापुषः**) बडे शरीरवाला (**वां**) तुम्हारे लिए (**पृक्षः कृणोति**) हविमार्ग तैय्यार करता है, इसलिए हे (**माध्वी**) मिठाससे पूर्ण देवो ! (**मम हवं श्रुतं**) मेरी पुकार सुन लो ॥४॥

[६३८] हे (**माधवी**) मिठाससे युक्त अश्विदेवो ! (**रथ्या**) रथपर चढे (**इषिरा**) गतिशील, (**हवन-श्रुता**) पुकार सुननेवाले और (**बोधित्-मनसा**) ज्ञानयुक्त मनवाले तुम दोनों (**अद्वयाविनं च्यवानं**) मनमें कुछ और बाहर कुछ ऐसे बर्ताव न करनेवाले च्यवानके समीप (**विभिः नि याथः**) वेगपूर्वक जानेवाले घोडोंसे पहुँचते हो, इसलिए मेरी पुकार सुनो ॥५॥

[६३९] हे (**नरा**) नेता अश्विदेवो ! (**मनोयुजः**) मनके इशारोंसे कार्यमें जुड जानेवाले, (**प्रुषितप्सवः**) धब्बेवाले रूपोंवाले (**वयः अश्वासः**) गतिशील घोडे (**वां**) तुम दोनोंको (**सुम्नेभिः सह पीतये**) सुखोंके साथ सोमपानके लिए (**आ वहन्तु**) इधर ले आयें । हे (**माध्वी**) मधुरतासे पूर्ण ! (**मम हवं**) मेरा बुलावा (**श्रुतं**) सुनो ॥६॥

[६४०] हे (**अदाभ्या**) न दबनेवाले ! (**नासत्या**) सत्यपालक (**माध्वी अश्विना**) मधुरिमावाले अश्विदेवो ! (**इह आ गच्छतं**), इधर आओ, (**मा वि वेनतं**) न उदासीन बनो, (**आर्यया**) तुम दोनों अधिपति हो, इसलिए (**तिरः चित्**) दूर देशसे भी (**वर्तिः परियातं**) घर चले आओ और (**मम**) मेरी (**हवं श्रुतं**) पुकार सुनो ॥७॥

भावार्थ- हे धनोंकी वर्षा करनेवाले देवो ! तुम मधुरतासे युक्त हो, इसलिए मैं तुम्हारी सदा प्रशंसा करता हूँ। तुम्हारी पूजा करनेवाला मनुष्य तुम्हारे लिए सदैव हवि प्रदान करता है ॥४॥

च्यवान अर्थात् ज्ञानी मनुष्य सदा गति करनेवाला, ज्ञानसे युक्त मनवाला तथा अन्दर और बाहरके व्यवहारमें सदा एक जैसा होता है । उसके मनमें कुछ हो और बाहर कुछ और व्यवहार करे, ऐसा कभी नहीं होता ॥५॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विनीकुमारो ! तुम मेरी प्रार्थना सुनो और मनमें इच्छा होते ही रथमें जुड जानेवाले तथा वेगसे जानेवाले घोडोंके रथमें बैठकर मेरे पास सोम पीनेके लिए आओ ॥६॥

किसीके दबावसे दबाना नहीं चाहिए, सत्यका सदा पालन करना चाहिए, मीठे स्वभाववाले बनना चाहिए आर्यत्वके योग्य व्यवहार करना चाहिए, कभी उदास न बनना चाहिए ।

६४१ अस्मिन् यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ८ ॥
६४२ अभूदुषा रुशत्पशु- राग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९ ॥

[७६]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

६४३ आ भात्यग्निरुषसामनीक- मुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥
६४४ न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठा- ऽन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा ॥ २ ॥

अर्थ- [६४१] हे (**शुभस्पती**) शुभोंके पालनकर्ता (**अदाभ्या माध्वी अश्विना**) न दबनेवाले, मधुरिमामय अश्विदेवो ! (**अस्मिन् यज्ञे**) इस यज्ञमें (**जरितारं**) प्रशंसक (**अवस्युं**) रक्षणकी इच्छा करनेहारे (**युवं गृणन्तं**) तुम दोनोंकी प्रशंसा करनेवालेके (**उप भूषथः**) समीप जाकर उसे अलंकृत करते हो, इसलिए (**मम हवं**) मेरी प्रार्थनाको (**श्रुतं**) सुनो ॥८॥

[६४२] हे (**माध्वी दस्रौ**) मधुरिमामय शत्रुविनाशक (**वृषण्वसू**) बलको स्थिर करनेहारे अश्विदेवो ! (**उषाः अभूत्**) प्रातःकाल हो चूका, (**ऋत्वियः**) ऋतुके अनुसार (**रुशत्-पशुः अग्निः**) प्रदीप्त तेजवाला अग्नि (**आ अधायि**) पूर्णतया रखा गया है, (**वां**) तुम्हारा (**अमर्त्यः रथः**) न नष्ट होनेवाला रथ (**अयोजि**) युक्त किया गया है, इसलिए (**मम हवं श्रुतं**) मेरी पुकार सुन लो ॥९॥

[७६]

[६४३] (**उषसां अनीकं**) प्रातःवेलाके समीप (**अग्निः आ भाति**) अग्नि पूर्णतया प्रदीप्त हो उठता है (**विप्राणां देवया वाचः**) ज्ञानियोंके देवोंको चाहनेवाले भाषण (**उत् अस्थुः**) होने लगे, हे (**रथ्या अश्विना**) रथ पर चढे हुए अश्विदेवो (**पीपिवांसं धर्मं अच्छ**) पुष्ट होनेवाले अग्निके प्रति (**नूनं इह**) अवश्य इधर (**अर्वाञ्चा यातं**) हमारे पास आओ ॥१॥

[६४४] (**संस्कृतं न प्र मिमीतः**) जो संस्कार करके सिद्ध किया है उसे वे दोनों नष्ट नहीं करते है, (**नूनं उपस्तुता**) अवश्यही प्रशंसित होनेपर अश्विदेव (**इह अन्ति गमिष्ठा**) इधर समीप आनेके लिए तैयार रहते हैं, (**अवर्ति प्रति**) दरिद्रता के समीपसे उसे हटाने के लिए (**दिवा अभिपित्वे**) दिनके प्रारंभमें (**अवसा आगमिष्ठा**) संरक्षणके साथ आनेवाले और (**दाशुषे शंभविष्ठा**) दानी पुरुषको अत्यन्त सुख देनेवाले हैं ॥२॥

१ **संस्कृत न प्र मिमीतः**- ज्ञानी और संस्कृत मनुष्यको ये अश्विदेव कभी दुःख नहीं देते ।

भावार्थ- हे अश्विदेवो ! तुम उत्तम कर्म करनेवालोंका पालन करनेवाले हो, किसीसे दबते नहीं । तुम दोनों यज्ञोंमें तुम्हारी स्तुति करनेवालेके पास जाकर उसे सुशोभित करते हो ॥८॥

हे बलोंको स्थिर करनेवाले अश्विदेवो ! अब सबेरा हो गया है, यज्ञवेदीमें अग्नि भी प्रदीप्त हो चुकी है, तुम्हारे रथमें भी घोडे जुड चुके हैं अतः तुम मेरी पुकार सुनकर मेरे यज्ञमें आओ ॥९॥

प्रातःकाल होते ही अग्नि प्रज्वलित हो उठी है, ज्ञानियोंके मुंहसे देवोंकी महिमा का वर्णन करनेवाली स्तुतियां निकलने लगी हैं । अतः हे अश्विनौ ! तुम प्रदीप्त अग्निवाले हमारे यज्ञकी तरफ आओ ॥१॥

ज्ञानी और सभ्य मनुष्यपर इन अश्विदेवोंकी सदा कृपा रहती है । उसे ये देव सदा हि दरिद्रतासे दूर रखते हैं । दानी पुरुषको ये हमेशा सुख देते हैं ॥२॥

६४५ उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥ ३ ॥
६४६ इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम्।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा ऽद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥
६४७ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा ना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥

[७७]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । । देवता- अश्विनौ । । छन्दः- त्रिष्टुप्।]

६४८ प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १ ॥

अर्थ- [६४५] (उत) और (संगवे अह्नः) दिनके उस समय जब कि गौएँ इकट्ठी होती हैं, (प्रातः) सुबह, (मध्यंदिने) दुपहरके समय, (सूर्यस्य उदिता) सूर्यके उदय होने पर (दिवा नक्तं) दिन और रात (शंतमेन अवसा) सुखदायक संरक्षणके साथ (आ यातं) इधर पधारो, (इदानीं) अबही (पीतिः) यह रसपान (अश्विना) अश्विदेवोंके साथ (आ ततान न) हो रहा है ऐसा नहीं है ।

[६४६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इदं ओकः) यह वसतिगृह (वां हि) तुम दोनोंके लिए ही (प्रदिवि स्थानं) उत्कृष्ट जगह है, उसी प्रकार (इमे गृहाः) ये घर (इदं दुरोणं) यह मकानभी तुम्हारे लिए ही हैं, (दिवः) द्युलोकसे, (बृहतः पर्वतात्) बडे भारी पहाडसे (अद्भ्यः) जलोंसे (इषं ऊर्जं वहन्ता) अन्न और बल ले आते हुए (नः आयातं) हमारे समीप आओ ॥४॥

१ ओकः प्रदिवि स्थानं- घर सदा एक उत्कृष्ट जगहके रूपमें रहे ।

[६४७] (अश्विनोः नूतनेन) अश्विदेवोंके नये (मयोभुवा अवसा) सुखकारक संरक्षणसे, (सुप्रणीती) सुन्दर नेतृत्वसे (सं गमेम) हम भली प्रकार जीवन बितायें । हे अश्विनो ! (नः रयिं आ वहतं) हमें धन ले आओ, (उत) और वैसेही (वीरान्) वीरोंको तथा (विश्वानि सौभगानि अमृता) सभी सौभाग्य हमें देदो ॥५॥

[७७]

[६४८] (प्रातः यावाना प्रथमा) सुबह सबसे प्रथम आनेवाले अश्विदेवोंकी (यजध्वं) पूजा करो, (अररुषः गृध्रात्) अदानी तथा अधिलोभीसे (पुरा पिबातः) पहले ही ये सोमको पीते हैं, क्योंकि अश्विदेव (प्रातः हि) सुबहही (यज्ञं दधाते) यज्ञके पास आते हैं और (पूर्वभाजः कवयः) पूर्वकालीन् विद्वान् उनकी (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं ॥१॥

भावार्थ- हे अश्विदेवो ! प्रातः, मध्यान्ह, सूर्यके उदय होनेके समय, दिन या रातमें अर्थात् जब चाहो तब अपने संरक्षणोंके साधनोंके साथ आओ । यह सोमरस तुम्हें हम आजही दे रहे हैं, यह बात नहीं, अपितु अनन्तकालसे हम तुम्हें देते आ रहे हैं ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! यह हमारा घर एक बहुत उत्तम स्थान है, इसलिए यह घर तुम्हारे लिए ही है । तुम द्युलोकसे तथा अन्य सभी स्थानोंसे अन्न और बलको लेकर हमारे पास आओ ॥४॥

अश्विनीकुमारोके सुखदायक संरक्षण तथा सुन्दर नेतृत्वको प्राप्त करके हम भली प्रकर जीवन व्यतीत करें । हम धन तथा हर तरहके सौभाग्य प्राप्त करें ॥५॥

६४९ प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद् यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ २ ॥

६५० हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ ३ ॥

६५१ यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभि- रनूर्ध्वभासः सदमित् तुतुर्यात् ॥ ४ ॥

६५२ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा- ना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥

अर्थ- [६४९] अश्विदेवोंके लिए (**प्रातः यजध्वं**) सुबह यजन करो, (**हिनोत**) प्रेरणा करो, (**सायं अजुष्टं**) शामको वह असेवनीय बनता है और (**देव-याः न अस्ति**) देवोंके समीप जानेवाला नहीं रहता, (**उत**) और (**अस्मत् अन्यः**) हमसे पूर्ण दूसरा कोई (**यजते**) यजन करता है तो (**वि आवः च**) उनकी विशेष तृप्ति करता है, क्योंकि (**पूर्वः-पूर्वः यजमानः**) पहले पहले जो यजन करनेवाला होता है, वही (**वनीयान्**) देवोंके लिए आदरणीय बनता है ।.२॥

[६५०] (**वां हिरण्य-त्वक्**) तुम दोनोंका सुवर्णसे ढका हुआ (**मधुवर्णः**) मनोहर रंगवाला (**घृत-स्नुः रथः**) घृत टपकाता हुआ रथ (**पृक्षः वहन्**) अन्न ढोता हुआ, (**आ वर्तते**) हमारे सामने आता है, (**मनो-जवाः**) वह मनके तुल्य वेगवान् (**वात-रंहाः**) वायुके समान तेज दौडनेवाला है, हे अश्विदेवो ! (**येन**) जिस रथसे (**विश्वा दुरिता**) सभी बुराइयोंको (**अति याथः**) पार करके चले जाते हो ॥३॥

[६५१] (**यः**). जो (**विभागे**) विभाग करनेके मौके पर (**नासत्याभ्यां**) अश्विदेवोंको (**भूयिष्ठं चनिष्ठं विवेष**) अत्यन्त अधिक मात्रामें अन्न परोसता है और (**पित्वः ररते**) अन्नका दान करता है, (**सः अस्य तोकं**) वह अपने पुत्रका (**शमीभिः पीपरत्**) शुभ कर्मोंसे पालन करता रहेगा, और (**सदमित्**) हमेशा (**अनूर्ध्व-भासः**) बहुत कम तेजवालोंको (**तुतुर्यात्**) हिंसित करेगा ॥४॥

[६५२] (**अश्विनोः नूतनेन**) अश्विदेवोंके नये (**मयोभुवा अवसा**) सुखकारक संरक्षणसे, (**सुप्रणीती**) सुन्दर नेतृत्वसे (**सं गमेम**) हम भली प्रकार जीवन बितायें । हे अश्विनो ! (**नः रयिं आ वहतं**) हमें धन ले आओ, (**उत**) और वैसे ही (**वीरान्**) वीरोंको तथा (**विश्वानि सौभगानि अमृता**) सभी सौभाग्य हमें देदो ॥५॥

भावार्थ- सुबह सबसे प्रथम आनेवाले इन अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करनी चाहिए । पूर्वकालीन विद्वान भी इनकी स्तुति करते आये हैं ॥१॥

प्रातःकाल उठकर देवोंकी पूजा करनी चाहिए । अपने पूर्व दूसरा कोई न उठे और वह हमसे पूर्व पूजा न करे । जो प्रथम पूजा करता है, उस पर देव प्रसन्न होते हैं ॥२॥

रथ सुवर्ण जैसा तेजस्वी और अत्यंत वेगवान् हो । उसमें रखकर घी तथा अन्न लाया जाय और उससे सब दुःखदायक पाप दूर किये जाय ।.३॥

जो मनुष्य अश्विनीकुमारोंको भरपूर अन्नादि देकर उनका उत्तम रीतिसे सत्कार करता है, वह अपने शुभ कर्मोंसे अपने पुत्रोंका पालन करता रहेगा और सदा अपनेसे कम तेजस्वी शत्रुओंका विनाश करता रहेगा ॥४॥

अश्विनीकुमारोंके सुखदायक संरक्षण तथा सुन्दर नेतृत्वको प्राप्त करके हम भली प्रकार जीवन व्यतीत करें । हम धन तथा हर तरहके सौभाग्य प्राप्त करें ॥५॥

[७८]

[ऋषिः- सप्तवध्रिरात्रेयः । देवता- अश्विनौ (५-९ गर्भस्राविण्युपनिषद्)।
छन्दः- अनुष्टुप्, १-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

६५३ अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥
६५४ अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥
६५५ अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥
६५६ अत्रिर्यद् वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनाऽऽगच्छतमश्विना शंतमेन ॥ ४ ॥
६५७ वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

---

[७८]

अर्थ- [६५३] हे अश्विदेवो ! (**इह आ गच्छतं**) इधर आओ, (**मा वि वेनतं**) उदास न बनो (**सुतान् उप**) निचोडे हुए सोमरसोंको समीप (**हंसौ इव आ पततं**) हंसके तुल्य वेगपूर्वक आओ ॥१॥

[६५४] हे अश्विदेवो ! (**यवसं अनु**) तृणके पीछे (**हरिणौ इव**) हिरनोंकी तरह (**गौरौ इव**) गौरमृगके समान (**सुतान् उप**) निचोडे हुए सोमोंके पास (**हंसौ इव आ पततं**) हंसोंके समान जल्दी आओ ॥२॥

[६५५] हे (**वाजिनी-वसू**) सेनाको वसानेवाले अश्विदेवो ! (**इष्टये**) इष्टिके लिए (**यज्ञं जुषेथां**) यजन करो, और (**हंसौ इव**) हंसोंके समान (**सुतान् उप आ पततं**) निचोडे हुए सोमोंके पास आओ ॥३॥

[६५६] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**यत्**) जब (**ऋबीसं अवरोहन्**) अँधेरेसे पूर्ण जेलमें उतरते समय (**अत्रिः नाधमाया योषा इव**) अत्रिने याचना करती हुई नारीके समान (**वां अजोहवीत्**) तुम दोनोंको बुलाया, तब (**शंतमेन**) शांतिदायक (**श्येनस्य नूतनेन जवसा चित्**) बाज पंछीके नये वेगसे ही (**आगच्छतं**) तुम दोनों आये ॥४॥

[६५७] हे (**वनस्पते**) वनके अधिपति पेड ! (**सूष्यन्त्याः योनिः इव**) प्रसवोन्मुख नारीकी योनिके समान (**वि जिहीष्व**) खुला रहा हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**मे हवं श्रुतं**) मेरी पुकार सुनो, (**सप्तवध्रिं मुञ्चतं च**) और सप्तवध्रिको मुक्त करो ॥५॥

भावार्थ- हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार घासके पीछे हिरण जाते हैं, उसी प्रकार तुम सोमरसके पास आओ । हमारी प्रार्थनाके प्रती उदासीन मत बनो ॥१-२॥

हे सेनाको रखनेवाले अश्विनीकुमारो ! तुम हमें अभिमत फल प्रदान करनेके लिये यज्ञमें आओ और हंसोंके समान वेगसे सोमकी तरफ आओ ॥३॥

अत्रि ऋषिको जब कारागृहमें डाला गया, तब उसने स्त्रीके समान मनोभावसे अश्विदेवोंकी प्रार्थना की । अश्विदेव शीघ्र आये और उन्होंने अत्रि ऋषिकी सहायता की ॥४॥

हे वनस्पते ! तू हमारी सहायता कर । हे अश्विनौ ! तुम भी हमारी प्रार्थना सुनो, तथा पंच तन्मात्रा, अहंकार और महत् इन सात बंधनोंमें बंधे हुए मनुष्यको मुक्त करो ॥५॥

६५८ भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥

६५९ यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥

६६० यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥

६६१ दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥

अर्थ- [६५८] हे अश्विदेवो ! (ऋषये सप्तवध्रये) ऋषि सप्तवध्रिको जोकि (भीताय नाधमानाय) भयभीत हो (सहायतार्थ) प्रार्थना कर रहा था, (मायाभिः) अपनी शक्तियोंसे (युवं) तुम दोनोंने (वृक्षं) पेडको (सं च वि च अचथ) विदीर्ण कर दिया ॥६॥

[६५९] (पुष्करिणीं) तालाब को (यथा वातः) जैसे वायु (सर्वतः सं इङ्गयति) सभी ओरसे ठीक तरह हिलाता है, (एव) वैसे ही (ते गर्भः) तेरा गर्भ (दशमास्यः) दस महिनेका होकर (एजतु) हलचल करना शुरु करदे और (निः एतु) बाहर निकल आये ॥७॥

[६६०] (यथा वातः) जैसे पवन हिलती है, (यथा वनं) जैसे जंगल हिलता डुलता है, (समुद्रः यथा एजति) समुन्दर जैसे चलायमान होता है, हे (दशमास्य) दश महिनोंके बने हुए गर्भ । (एव त्वं) उसी प्रकार तू (जरायुणा सह) वेष्टनके साथ (अव इहि) नीचे गिर जा ॥८॥

[६६१] (कुमारः) बालक (दश मासान्) दस महिनोंतक (मातरि अधि शयानः) मातामें सोता हुआ (अक्षतः जीवः) बिना किसी क्षति या व्यथाके जीवित दशामें (निः एतु) बहार निकल आये (जीवन्त्याः अधि जीवः) माताके जीवित रहते यह जीव निकल आये ॥९॥

भावार्थ- हे अश्विनौ ! सात बंधनोंसे बंधा हुआ मनुष्य जब भयभीत होकर तुम्हारी प्रार्थना करता है, तब तुम उसे पेडको तोडनेके समान बंधनोंसे मुक्त करते हो ॥६॥

जिस तरह वायु तालाबके जलको हिलाता है, उसी तरह एक गर्भ मांके पेटमें दस मास तक रहकर गर्भमें डोलता रहता है, फिर बाहर निकल आता है ॥७॥

जिस तरह पवनसे वनके वृक्ष कांपते हैं, समुद्रका जल उफनने लगता है, उसी तरह हे बालक ! तू गर्भसे बाहर निकलकर गति कर ॥८॥

गर्भ दस महिनोंतक बिना किसी कष्टके या क्षति के माताके गर्भाशयमें रहे और दसवें महिनेमें सुखसे प्रसूति हो । अश्विदेव वैद्य हैं वे इस सुखप्रसूतिके कर्ममें प्रवीण हैं । इसीलिए उनके सूक्तमें इन मंत्रोंको स्थान दिया गया है ॥९॥

[७९]

[ऋषिः- सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता- उषाः । छन्दः- पङ्क्तिः ।]

६६२ महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥

६६३ या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ २ ॥

६६४ सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

६६५ अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४ ॥

---

[७९]

अर्थ- [६६२] हे (**उषः**) उषा ! (**दिवित्मती**) दीप्तियुक्त तू (**नः महे राये**) हमें बडे धन प्राप्त करनेके लिये (**अद्य बोधय**) आज जाग्रत कर । (**यथा चित् नः अबोधयः**) जैसा तूने हमें पहिले जगाया था । हे (**सुजाते**) उत्तम रीतिसे उत्पन्न (**अश्वसूनृते**) घोडोंके लिए जिसकी प्रार्थना की जाती है वह उषा ! तू (**वाय्ये सत्यश्रवसि**) वय्य पुत्र सत्यकीर्तिवाले पर अनुग्रह कर ॥१॥

[६६३] हे (**दिवः दुहितः**) द्युलोकको पुत्री ! (**या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छः**) तूने उत्तम नेता शुद्ध रथीके लिये पूर्व समयमें प्रकाश किया था । (**सा**) वह तू उषा जो कुलीन ओर घोडोंके लिये प्रशंसित होती है वह (**सहीयसि**) बलवान् (**वाय्ये सत्यश्रवसि**) वय्य पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह कर ॥२॥

[६६४] हे (**दिवः दुहितः**) स्वर्गकन्ये ! (**आभरद्वसुः**) धन लाकर देनेवाली (**सा अद्य नः व्युच्छ**) वह आज तू हमारे लिये अन्धकारको दूर कर । हे (**सुजाते अश्वसूनृते**) उत्तम कुलमें उत्पन्न और घोडोंके संबंधमें प्रशंसित होनेवाली (**यो**) उषा (**सहियसि वाय्ये सत्यश्रवसि**) सत्य बलवाले वाय्यपुत्र सत्य किर्तिवाले पर (**व्यौच्छः**) प्रकाशित हो ॥३॥

[६६५] हे (**विभावरि**) प्रकाशनेवाली उषा ! (**ये वह्नयः त्वा**) जो तेजस्वी स्तोतागण (**त्वा स्तोमैः गृणन्ति**) तेरी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, हे (**मघोनि**) भाग्यशाली (**सुजाते अश्वसूनृते**) उत्तम कुलिन और घोडोंके विषयमें अच्छा बोलनेवाली उषा ! वे स्तोतागण (**मघैः सुश्रियः**) धनोंसे उत्तम धनवान् (**दामन्वंतः सुरातयः**) और दानके लिये प्रशंसित अतएव उत्तम धन देनेवाले होते हैं ॥४॥

भावार्थ- हे उषे ! तू तेजस्वी होकर हमें भी ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए तेजस्वी कर । तू सत्यतत्त्वका श्रवण एवं उसपर मनन करनेवाले ज्ञानीपर कृपा कर । उसके अभ्युदय और निःश्रेयस्में सहायक हो ॥१॥

हे स्वर्गकी कन्या उषे ! तू उत्तम नीतिके मार्गपर चलनेवाले, उत्तम रीतिसे संचालन करनेवाले तेजस्वी वीरको प्रकाशका मार्ग दिखा ॥२॥

हे स्वर्गकन्ये उषा ! धन लानेवाली तू आज हमारे लिये प्रकाश दे । तथा हे उत्तम कुलमें उत्पन्न और हे अश्वोंके लिये प्रशंसित उषा ! तू बलवान् वाय्य सत्यश्रवाके लिये प्रकाशित होती रहे ॥३॥

हे प्रकाशनेवाली उषा ! जो स्तोता तेरी प्रशंसा गाते है, तथा हे भाग्यवाली, उत्तम जन्मी और घोडोंके लिये प्रशंसित उषा ! वे स्तोतागण धनोंसे धनवान् होते हैं और वे दान देते हैं और दानके लिये अत्यंत प्रशंसित होते हैं ॥४॥

६६६ यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद् वष्टयो दधु- र्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ ॥
६६७ एषु धा वीरवद् यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६ ॥
६६८ तेभ्यो द्युम्नं बृहद् यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७ ॥
६६९ उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८ ॥
६७० व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत् त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९ ॥

अर्थ- [६६६] हे (**सुजाते अश्वसुनृते**) कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित होनेवाली उषा ! (**यत् चित् हि इमे गणाः**) जो भी कोई ये स्तोतागण (**मघत्तये ते छदयन्ति**) धन प्राप्तिके लिये तेरी स्तुति करते हैं, वे (**चित् वष्टयः परि दधुः**) निःसंदेह ऐश्वर्य धारण करते हैं और वे (**अ-ह्रयं रायः ददतः**) अविनाशी धन देते हैं ॥५॥

[६६७] हे (**सुजाते अश्वसूनृते**) कुलीन घोडोंके लिये प्रशंसित और (**मघोनि उषः**) धनवाली उषा ! (**एषु सूरिषु वरिवत् यशः**) इन विद्वानोंमें वीर पुत्रोंसे युक्त धन (**आधाः**) दे । (**ये मघवानः**) जो धनी (**अ-ह्रया राधांसी**) क्षीण न होनेवाले धन (**नः अरासत**) हमें देते हैं ॥६॥

[६६८] हे (**मघोनि सुजाते अश्वसूनृते उषः**) धनवाली कुलीन और घोडोंके लिये प्रसिद्ध उषा ! (**तेभ्यः द्युम्नं बृहत् यशः**) उनके लिये बडा यशस्वी धन (**आ वह**) तू दे (**ये सूरयः**) जो विद्वान् (**गव्या अश्व्या राधांसि**) गौवें घोडे आदि धन (**नः भजन्त**) हमें देते हैं ॥७॥

[६६९] हे (**सुजाते अश्वसूनृते**) कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित होनेवाली उषा ! हे (**दिवः दुहिताः**) हे स्वर्ग कन्ये ! (**नः गोमतीः इषः आवह**) हमारे लिये गौओंसे युक्त धन ले आ । (**उत**) और (**सूर्यस्य शुक्रैः शोचद्भिः अर्चिभिः रश्मिभिः साकं**) सूर्यके स्वच्छ, पवित्रता करनेवाले दीप्तिमान किरणोंके साथ इधर आओ ॥८॥

[६७०] हे (**दिवः दुहितः**) स्वर्गकन्ये उषा ! (**व्युच्छः**) प्रकाशित हो । (**अपः चिरं मा तनुथाः**) हमारे कर्ममें आनेके लिये देरी न कर । हे (**सुजाते अश्वसूनृते**) कुलीन और घोडोंके लिये प्रसिद्ध उषा ! (**यथा रिपुं स्तेनं तपाति**) जैसा राजा चोर तथा शत्रुको ताप देता है, वैसा (**सूरः अर्चिषा त्वा न इत्**) सूर्य अपने तेजसे तुम्हें कष्ट न दे ॥९॥

भावार्थ- हे उत्तम कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित उषा ! जो लोग धन प्राप्तिके लिए तेरी स्तुति करते हैं, वे धनी होते और कभी बिनष्ट न होनेवाला दान देते हैं । दान ऐसा देते हैं कि वह सतत लाभ देता रहे ॥५॥

हे उषा ! तू इन ज्ञानियोंको वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला यश और धन दे । धन चाहिये और उसके साथ वीरपुत्र भी चाहिये । अपने पुत्र ऐसे हों कि जो अपने धनका संरक्षण कर सकें ॥६॥

जो ज्ञानी गौओं घोडोंसे युक्त धन हमें देते हैं, उनको बडा तेजस्वी और यशस्वी धन दे ॥७॥

हमें गौओंके साथ धन तथा अन्न दे, और सूर्यके प्रकाशके साथ हमें प्रकाश भी दे ॥८॥

हे स्वर्गकन्ये ! हमारे यज्ञ कर्ममें प्रकाशित हो और यहां आनेमें देरी न कर । जिस तरह राजा चोर डाकूको कष्ट देता है वैसे कष्ट तुम्हें न हों । जो शत्रु और चोर होगा उसको कष्ट देना योग्य है । जिससे उसका आचरण सुधरे और वह सज्जन बने ऐसा राजप्रबंध द्वारा प्रयत्न करना योग्य है ॥९॥

६७१ एतावद् वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥

[८०]

[ऋषिः- सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

६७२ द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

६७३ एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान् पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥

६७४ एषा गोभिररुणेभिर्युजानाऽस्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥

अर्थ- [६७१] हे (**विभावरि सुजाते**) तेजस्विनी कुलीन (**अश्वसूनृते**) घोडोंके लिये प्रसिद्ध (**उषः**) उषा ! (**त्वं**) तू (**एतावत् वा इत्**) इतना और (**भूयः वा**) अधिक भी धन (**दातुं अर्हसि**) दान देनेके लिये योग्य है, समर्थ है, (**या स्तोतृभ्यः उच्छन्ती**) जो स्तोताओंके लिये अन्धकार दूर करती हुई (**न प्रमीयसे**) उनका नाश नहीं करती है ॥१०॥

[८०]

[६७२] (**द्युतत्- यामानं बृहतीं**) तेजस्वी रथवाली बडी विशाल (**ऋतेन ऋतावरीं**) सरलताके भावसे आनेवाली (**अरुणप्सुं विभातीं**) सुंदर रंगवाली चमकती हुई (**स्व आवहन्तीं**) सूर्यको लानेवाली (**देवीं उषसं**) उषा देवीकी (**विप्रासः मतिभिः प्रतिजरन्ते**) ज्ञानी लोग अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह स्तुति करते हैं ॥१॥

[६७३] (**दर्शता एषा**) यह दर्शनीय उषा (**जनं बोधयन्ती**) लोगोंको जगाती है, (**पथः सुगान् कृण्वती**) मार्गोंको सुगम बनाती है, और (**अग्रे याति**) आगे बढती है । यह (**उषा**) उषा (**बृहद्रथा बृहती**) बडे रथमें बैठनेवाली बडी (**विश्वं इन्वा**) सबमें व्यापनेवाली (**अह्नां अग्रे ज्योतिः यच्छति**) दिनोंके प्रारंभमें प्रकाशकी ज्योति देती है ॥२॥

[६७४] (**एषा**) यह उषा (**अरुणेभिः गोभिः युजानाः**) लाल रंगवाले बैलोंको जोतनेवाली (**अस्रेधन्ती**) (**रयिं अप्रायु चक्रे**) क्षीण न होनेवाली धनको स्थिर करती है । (**सुविताय पथः रदन्ती**) उत्तम गमन करनेके लिये मार्गों पर प्रकाश करती है, यह (**पुरुष्टुता विश्ववारा**) बहुतों द्वारा प्रशंसित और सबको स्वीकारने योग्य (**विभाति**) उषा विशेष चमकती है ॥३॥

भावार्थ- हे उषा ! तू इतना और इससे अधिक धन दे सकती है, स्तोताओंको प्रकाश देती है और उनका नाश कभी नहीं करती ॥१०॥

बडे सुन्दर तेजस्वी रथमें बैठकर उत्तम प्रकाशका फैलाया करती हुई उषा आती है जिसकी स्तुति ज्ञानी करते हैं ॥१॥

दर्शनीय यह उषा आकर लोगोंको जगाती है । मार्गोंको चलने के लिये सुगम करती है और आगे बढती है । प्रकाशके कारण चलना फिरना सहज और बिना कष्टके होता है । विशाल रथमें बैठनेवाली यह बडी उषा विश्वमें प्रकाशसे व्यापती हुई दिनोंके प्रारंभमें प्रकाशको देती है ॥२॥

यह उषा लाल किरणोंसे प्रकाशती है, क्षीण नहीं होती परन्तु बढती जाती है धनको स्थाई रहनेवाला करती है । मार्गपर प्रकाश करती है और विशेष प्रकाशती है ॥३॥

६७५ एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥
६७६ एषा शुभ्रा न तन्वो विदानो-र्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्यु-षा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५ ॥
६७७ एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन् योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ ॥

[८१]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- सविता । छन्दः- जगती ।]

६७८ युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इ-न्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १ ॥

अर्थ- [६७५] (**एषा व्येनी भवति**) यह निष्पाप होती है। यह (**द्विबर्हा**) दोनों ओर बाल रखनेवाली (**पुरस्तात् तन्वं आविष्कृण्वाना**) पूर्व दिशामें अपने शरीरको प्रकट करती है, (**ऋतस्य पन्थां साधु अन्वेति**) सत्यके मार्गको ठीक तरह अनुसरती है, (**प्रजानती इव दिशः न मिनाति**) ज्ञानवती स्त्रीके समान दिशाओंमें भूल नहीं करती ॥४॥

[६७६] (**एषा शुभ्रा न**) यह गौरवर्ण स्त्रीके समान (**तन्वः विदाना**) अपने शरीरावयवोंको बताती हुई (**स्नाती उर्ध्वा इव**) स्नान करके ऊपर आयी हुई स्त्रीके समान (**नः दृशये अस्थात्**) हम सबके सामने दिखानेके लिये ऊपर उठी है । (**द्वेषः तमांसि अपबाधमाना**) द्वेष करने योग्य अन्धकारको दूर हटाती हुई (**दिवः दुहिता उषाः**) द्युलोककी पुत्री उषा (**ज्योतिषा आगात्**) प्रकाशके साथ आ गई है ॥५॥

[६७७] (**एषा प्रतीची दिवः दुहिता**) यह सामने आयी स्वर्ग कन्या उषा (**नॄन् भद्रा योषा इव**) पुरुषोंके सामने कल्याणकारिणी स्त्रीके समान (**अप्सः नि रिणीते**) अपने रुपोंको प्रकट करती है। (**दाशुषे वार्याणि व्युर्ण्वती**) दाताको उत्तम धन देती है । यह (**युवतिः ज्योतिः पूर्वथा अकः**) तरुणी स्त्री अपना प्रकाश पूर्व कालके समान करती है ॥६॥

[८१]

[६७८] (**बृहत विपश्चितः विप्रस्य**) महान् बुद्धिमान् और ज्ञानी सवितामें (**विप्राः**) ज्ञानी जन (**मननः युंजते**) अपना मन लगाते हैं (**उत**) और (**धियः युंजते**) बुद्धियोंको लगाते हैं । वह (**वयुनावित्**) प्रत्येक मार्ग और कर्मको जाननेवाला है, इसलिए वह (**एकः इत्**) अकेला ही (**होत्राः विदधे**) यज्ञोंको धारण करता है । (**सवितुः देवस्य**) सविता देवकी (**परिष्टुतिः मही**) स्तुति बहुत बडी है ॥१॥

भावार्थ- यह उषा निष्पाप होती है । पूर्व दिशामें अपने शरीरको प्रकट करती है । सामने अपने शरीरावयवोंको दिखाती हैं । सहजहीसे तरुण स्त्रीयां इस तरह चलती हैं और न जानती हुई ऐसे आविर्भाव करती हैं । अवयव ढांक देनेके यत्नसे अपने अवयवोंको प्रकट करती हैं । सत्यमार्गसे अच्छी तरह चलती है ॥४॥

यह गौर वर्ण स्त्रीके समान, अपने शरीरको सहजहीसे दिखाती हुई स्नान करके ऊपर आई तरुणीके समान हमारे सन्मुख आ गयी है । उषाका उदय हुआ है । द्वेष करने अन्धकारको दूर करती हुई यह उषा प्रकाशके साथ आ गयी हैं । प्रकाश रही है ॥५॥

यह कल्याण करनेवाली उषा स्वर्गकन्या कल्याण करनेवाली स्त्रीके समान पुरुषोंके सामने अपने विविधरूपोंको प्रकट करती है । दाताको उत्तम धन देती है और प्रकाशसे जगत्को भर देती है ॥६॥

सविता देव सभी कर्मोको जाननेवाला है और वह अकेला ही सब यज्ञोंको पूरा करता है । इसीलिए उस ज्ञानी और बुद्धिमान् सविताकी स्तुति करनेमें सभी विद्वान् अपना मन और बुद्धि लगाते हैं, उसमें अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं ॥१॥

६७९ विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ २ ॥

६८० यस्य प्रयाणमन्वन्य इद् ययु- र्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ३ ॥

६८१ उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनो- त सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥ ४ ॥

अर्थ- [६७९] (**कविः**) दूरदर्शी सविता देव (**विश्वा रूपाणी प्रति मुंचते**) अपने सभी रूपोंको प्रकट करता है, तथा (**द्विपदे चतुष्पदे**) दोपाये और चौपायोंके लिए (**भद्रं प्रासावीत्**) कल्याणको उत्पन्न करता है। (**वरेण्यः सविता**) श्रेष्ठ सविता (**नाकं वि अख्यत्**) स्वर्ग या द्युलोकको प्रकाशित करता है, (**उषसः प्रयाणं अनु**) उषाके जानेके बाद (**वि राजति**) यह सुशोभित होता है ॥२॥

[६८०] (**यस्य देवस्य**) जिस देव सविताके (**महिमानं प्रयाणं**) महिमासे सम्पन्न मार्गका (**अन्ये देवाः**) दूसरे देव (**अनु इत् ययुः**) अनुसरण करते हैं और (**ओजसा**) ओजस्वी होते हैं, (**यः सविता देवः**) जिस सविता देवने (**महित्वना**) अपनी महिमासे (**पार्थिवानि रजांसि**) पृथ्वीके लोकोंको (**विममे**) नापा था, (**सः**) वह देव (**एतशः**) तेजस्वी है ॥३॥

१ **देवस्य महिमानं प्रयाणं अन्ये देवाः अनु ययुः ओजसा-** इस सविता देवके महिमापूर्ण मार्गका दूसरे देव अनुसरण करते हैं और तेजसे युक्त होते हैं ।

[६८१] हे (**सवितः**) सविता देव ! (**उत**) और तू (**त्रीणि रोचना यासि**) तीनों प्रकाशमान् लोकोंमें जाता है, (**उत**) और (**सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि**) सूर्यकी किरणोंसे संयुक्त होता है । (**उत**) और (**रात्रीं उभयतः**) रात्रीके दोनों ओरसे (**परि ईयसे**) तू आता है, (**उत**) और हे (**देव**) देव ! (**धर्मभिः मित्रः भवसि**) तू अपने गुणोंके कारण लोगोंका मित्र होता है ॥४॥

१ **सविता-सूर्य-**पूरी तरह उदय होनेके पूर्वकी सूर्यकी अवस्थाको सविता तथा अच्छी तरह उदय होनेके बाद अस्त होने तककी अवस्थाका नाम सूर्य है- "उदयात्पूर्वभावी सविता उदयास्तमयवर्ती सूर्यः" (**सायण**)

२ **धर्मभिः मित्रः भवति-** मनुष्य अपने उत्तम गुणोंके कारण ही लोगोंका मित्र बनता है ।

भावार्थ- ज्ञानी यह सविता देव अपने विविध रूपोंको प्रकट करता है । स्वयं उदय होकर सभी तरहके प्राणियोंके लिए कल्याण उत्पन्न करता है । सविताके प्रकट होने पर सबका कल्याण होता है । जब उषा आकर चली जाती है ।

सविता प्रकट होता है और अपने प्रकाशसे द्युलोकको प्रकाशित करता है ॥२॥

सविता देवकी महिमा बहुत बडी है, इसलिए दूसरे देव भी इसकी महिमाका अनुसरण करते है और तेजस्वी होते हैं । यह शुभ्रवर्ण अर्थात् तेजस्वी सवितादेव अपनी महिमासे सभी पृथ्वीके लोकोंको नापता है ॥

यह सवितादेव अपने प्रकाशसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकको भर देता है । तब सूर्यकी किरणोंसे संयुक्त होता है । अपने उत्तम गुणोंके कारण ही यह सविता सबका मित्र है ॥४॥

६८२ उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥ ५ ॥

[८२]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- सविता । छन्दः- गायत्री, १ अनुष्टुप् ।]

६८३ तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥
६८४ अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २ ॥
६८५ स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥ ३ ॥
६८६ अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥

अर्थ- [६८२] हे (**सवितः देव**) सविता देव ! (**उत**) और (**त्वं एकः इत्**) तू अकेला ही (**प्रसवस्य ईशिषे**) सभी उत्पन्न हुए जगत्का स्वामी और शासक है । तू (**यामाभिः**) अपने प्रयत्नोंसे ही (**पूषा भवसि**) इस जगत्का पोषक है । (**उत**) और तू (**इदं विश्वं भुवनं वि राजसि**) इस सारे संसारका राजा है । (**श्यावाश्वः**) तेजस्वी घोडोंवाला वीर (**ते स्तोमं आनशे**) तुझे स्तोत्र प्रदान करता है ॥५॥

१ **एकः इत् प्रसवस्य ईशिषे**- हे सविता देव ! तू अकेला ही सभी उत्पन्न हुए जगत्का स्वामी और शासक है ।

[८२]

[६८३] (**वयं**) हम (**सवितुः देवस्य**) सविता देवके (**तत् भोजनं**) वह धन (**वृणीमहे**) मांगते हैं। हम (**भगस्य**) ऐश्वर्यशाली सविताके (**तुरं**) शत्रुओंके विनाशक (**सर्वधातमं**) सबको धारण करनेवाले (**श्रेष्ठं**) श्रेष्ठ धनको (**धीमहि**) धारण करें ॥१॥

[६८४] (**अस्य सवितुः**) इस सवितादेवके (**स्वयशस्तरं**) अपने यशको बढानेवाले तथा (**प्रियं स्वराज्यं**) प्रिय स्वराज्यको (**कच्चन हि न मिनन्ति**) कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥२॥

[६८५] (**सः भगः सविता**) वह ऐश्वर्यवान् सविता देव (**दाशुषे रत्नानि सुवाति**) दानशील मनुष्यको रत्न प्रदान करता है । हम भी (**तं चित्रं भागं ईमहे**) उस ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्यको मांगते हैं ॥३॥

[६८६] हे (**सवितः देव**) सविता देव (**अद्य**) आज तू (**नः**) हमें (**प्रजावत् सौभगं सावीः**) प्रजासे युक्त उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर, तथा (**दुःष्वप्न्यं परा सुव**) बुरे स्वप्न आदियोंको दूर कर ॥४॥

भावार्थ- हे सविता देव ! तू अकेला ही सभी उत्पन्न हुए जगत्का शासक है, तू अपने प्रयत्नोंसे ही इस जगत्का पोषण करता है । वही इस सारे संसारका राजा है । तेजस्वी घोडोंवाले वीर इसकी स्तुति करते हैं ॥५॥

हम सविता देवसे उस धनको मांगते है, जो शत्रुओंका विनाशक, सबको धारण करनेवाला और श्रेष्ठ है ॥१॥

इस सविताका स्वराज्य यशको बढानेवाला तथा प्रिय है । इसके स्वराज्यको कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । राज्यका प्रबन्ध ऐसा हो कि कोई भी शत्रु इसकी स्वतंत्रतापर आक्रमण न कर सके अथवा इसके स्वराज्यको कोई नष्ट न कर सके ॥२॥

वह ऐश्वर्यवान् सवितादेव दान देनेवाले मनुष्यको रत्न प्रदान करता है । हम भी उससे धन मांगते हैं ॥३॥

हे सविता देव ! आज हमें तू प्रजासे युक्त उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर और दुःख दारिद्र्य आदिको दूर कर ॥४॥

६८७ विश्वा॑नि देव सवित-र्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद् भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ५ ॥
६८८ अना॑गसो॒ अदि॑तये दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे । विश्वा॑ वा॒मानि॑ धीमहि ॥ ६ ॥
६८९ आ वि॒श्वदे॑वं॒ सत्प॑तिं सू॒क्तैर॒द्या वृ॑णीमहे । स॒त्यस॑वं सवि॒तार॑म् ॥ ७ ॥
६९० य इ॒मे उ॒भे अह॑नी पु॒र एत्यप्र॑युच्छन् । स्वा॒धीर्दे॒वः स॑वि॒ता ॥ ८ ॥
६९१ य इ॒मा विश्वा॑ जा॒ता-न्या॑श्रा॒वय॑ति॒ श्लोके॑न । प्र च॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता ॥ ९ ॥

अर्थ- [६८७] हे (**सवितः देव**) सविता देव ! तू हमसे (**विश्वानि दुरितानि**) सभी दुर्गुणोंको (**परा सुव**) दूर कर, (**यत् भद्रं**) जो कल्याणकारी हो, (**तत् नः आसुव**) उसे हमें प्रदान कर ॥५॥

१ **देव सवितः ! विश्वानि दुरितानि परा सुव** - हे सवितादेव ! सभी दुर्गुणोंको हमसे दूर कीजिए।

२ **यत् भद्रं, तत् नः आ सुव** - जो कल्याणकारी हो, वह हमें प्रदान कीजिए ।

[६८८] (**देवस्य सवितुः सवे**) सविता देवकी आज्ञामें रहकर हम (**अदितये अनागसः**) अखण्ड भूमिके लिए निरपराधी हों तथा (**विश्वा वामानि धीमहि**) सम्पूर्ण सुन्दर धनोंको धारण करें ॥६॥

१ **सवितुः सवे अदितये अनागसः**:- सविता देवकी आज्ञामें रहकर हम अपनी मातृभूमिके प्रति निरपराधी रहें ।

[६८९] (**विश्वदेवं सत्पतिं**) सबके लिए देवरूप, सज्जनोंके पालक, (**सत्यसवं**) सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले (**सवितारं**) सविताको (**अद्य**) आज (**सूक्तैः आ वृणीमहे**) सूक्तोंसे बुलाते हैं ॥७॥

[६९०] (**यः सविता देवः**) जो सविता देव (**इमे उभे अहनी**) दिन और रात दोनों समय (**स्वाधीः**) उत्तम कर्म करता हुआ (**अप्रयुच्छन्**) प्रमाद न करते हुए (**पुरः एति**) उदय होता है, [उसे हम बुलाते हैं] ॥८॥

१ **उभे अहनी अप्रयुच्छन् सु-आधीः पुरः एति**- जो मनुष्य दिन और रात अर्थात् हमेशा प्रमाद न करते हुए उत्तम कर्म करता है, वही आगे बढता है ।

[६९१] (**यः सविता**) जो सविता देव (**इमा विश्वा जातानि**) इन सम्पूर्ण प्राणियोंको (**श्लोकेन आश्रावयति**) अपने यश सुनाता है, तथा (**प्र च सुवाति**) उन्हें उत्पन्न करता है, [उसे हम बुलाते हैं] ॥९॥

भावार्थ- हे सबको प्रेरणा देनेवाले भगवन् ! हमसे सभी दुर्गुणोंको दूर कीजिए और जो कल्याणकारी गुण हों, वे हमें प्रदान कीजिए ॥५॥

सबको प्रेरणा देनेवाले सविताकी आज्ञामें रहकर हम अपनी अखण्ड मातृभूमिके निरपराधी रहें । हम कोई ऐसा काम न करें कि जिससे मातृभूमिकी अखण्डताको चोट पहुंचे और हम मातृभूमिकी नजरोंमें अपराधी बनें । इस प्रकार मातृभूमिकी सेवा करते हुए हम सभी तरहके धन प्राप्त करें ॥६॥

हम आज सबके लिए देववत् पूज्य, सज्जनोंके पालक, सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले सविताको बुलाते हैं ॥७॥

यह सविता देव दिन और रातके समय उत्तम कर्म करता हुआ और प्रमाद न करता हुआ अपने समय पर उदय होता है, उसे हम बुलाते हैं ॥८॥

यह सविता देव सबको उत्पन्न करता है और उनके सामने अपनी महिमा प्रकट करता है ॥९॥

[८३]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- पर्जन्यः । छन्दः- त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ९ अनुष्टुप् ।]

६९२ अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

६९३ वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत् पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २ ॥

६९४ रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान् कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।
दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत् पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥ ३ ॥

६९५ प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४ ॥

---

[८३]

अर्थ- [६९२] जो (**वृषभः**) बलशाली (**जीरदानुः**) शीघ्रतासे दान देनेवाला मेघ (**कनिक्रदत्**) गर्जते हुए (**ओषधीषु**) वृक्ष वनस्पतियोंमें (**गर्भं रेतः**) गर्भको स्थापित करनेवाले वीर्यको (**दधाति**) स्थापित करता है, उस (**तवसं प्रजन्यं**) बलवान् मेघकी, हे मनुष्य ! तू (**अच्छ वद**) अच्छी तरह स्तुति कर । (**आभिः गीर्भिः स्तुहि**) इन वाणियोंसे स्तुति कर और (**नमसा विवास**) नम्रतापूर्वक उसका गुणगान कर ॥१॥

[६९३] (**यत्**) जब (**पर्जन्यः**) मेघ (**वृक्षान् विहन्ति**) वृक्षोंको काटता है, (**रक्षसः हन्ति**) राक्षसोंको मारता है, इसके (**महावधात्**) भयंकर प्रहारसे (**विश्वं भुवनं बिभाय**) सारा विश्व डरता है । यह मेघ (**स्तनयन्**) गर्जते हुए (**दुष्कृतः हन्ति**) दुष्ट जनोंको मारता है, (**उत**) तथा (**वृष्ण्यावतः**) जलकी वर्षा करते हुए (**अनागाः ईषते**) निरपराधियोंकी रक्षा करनेकी इच्छा करते है ॥२॥

[६९४] (**यत् पर्जन्यः**) जब मेघ (**नभः वर्ष्यं कृणुते**) आकाशको वृष्टिमय कर देता है, तब पर्जन्य (**रथी कशया अश्वान् अभिक्षिपन् इव**) जिस प्रकार एक रथी चाबुकसे घोडोंको शीघ्र चलाता है, उसी तरह (**दूतान् वर्ष्यान्**) शीघ्री गिरनेवाली जलधाराओंको (**आविः कृणुते**) प्रकट करता है । इसकी (**स्तनथाः**) गर्जनायें (**सिंहस्य**) सिंहकी गर्जना के समान (**दूरात् उत् ईरते**) दूरसे ही सुनाई देती हैं ॥३॥

[६९५] (**यत्**) जब (**पर्जन्यः**) मेघ (**रेतसा**) वीर्यसे सम्पन्न होकर (**पृथिवीं अवति**) पृथिवीकी तरफ जाता है, तब (**वाताः प्र वान्ति**) वायु बहने लगता है, (**विद्युतः पतयन्ति**) बिजलियां कडकने या गिरने लगती हैं, (**उत**) और (**औषधीः जिहते**) वृक्षवनस्पति आदि जल पीने लगते हैं और (**स्वः पिन्वते**) आकाश पुष्ट होने लगता है । (**इरा**) यह पृथिवी (**विश्वस्मै भुवनाय**) संपूर्ण संसारके हितके लिए (**जायते**) पुष्ट हो जाती है ॥४॥

भावार्थ- आकाशसे बरसनेवाला जल मेघके वीर्यके समान है । ये जलरूपी वीर्य वृक्ष वनस्पतियोंमें पडकर उन्हें फल फूलको उत्पन्न करनेमें समर्थ बनाते हैं । ये फल फूल मानों मेघ द्वारा वृक्षादियोंमें स्थापित किए गए गर्भ ही हैं, जो कालान्तरमें इस वृक्षादिकोंके द्वारा प्रसूत किए जाते हैं ॥१॥

जब बादल गर्जते हैं, तब उनमेंसे बिजली कडकती है, जो वृक्षों पर गिरकर उन्हें जला डालती हैं, राक्षसोंको भी मार देती है । बिजली जब कडकती है, या बादल जब गर्जते हैं तब सारा विश्व भयसे कांपने लगता है । मेघ अपने जलसे सबका पोषण करते हैं ॥२॥

जब पर्जन्यसे आकाश छा जाता है, तब वर्षाकी जलधारायें उसी तरह शीघ्रतापूर्वक बहती हैं जिस तरह सारथिके द्वारा चाबुकके मारे जाने पर घोडे दौडते है । गर्जते हुए बादलोंकी गरज दूरसे सुनाई देती है कि जैसे कोई सिंह गरज रहा हो ।.३॥

जब मेघकी जलधारायें पृथिवी पर गिरने लगती हैं, तब हवायें बहने लगती हैं, बिजलियां कडकने लगती हैं । वृक्षादि जल पीकर पुष्ट हो जाते हैं और भूमि सारे संसारके कल्याणके लिए पुष्ट हो जाती है । इस मंत्रमें प्राकृतिक वर्णन प्रेक्षणीय है ॥४॥

६९६ यस्य व्रते पृथिवी नंनमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ५ ॥

६९७ दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥ ६ ॥

६९८ अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७ ॥

६९९ महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥ ८ ॥

अर्थ- [६९६] (**यस्य व्रते**) जिस मेघके कर्मके कारण (**पृथिवी नन्नमीति**) पृथ्वी बहुत उपजाऊ होती है, (**यस्य व्रते**) जिसके कर्मके कारण (**शफवत्**) सभी प्र णी (**जर्भुरीति**) पुष्ट होते है, (**यस्य व्रते**) जिसके कर्मके कारण (**औषधिः**) वृक्ष वनस्पतियां (**विश्वरूपाः**) नानारूप धारण करती है, हे (**पर्जन्य**) मेघ ! (**सः**) वह तू (**नः महि शर्म यच्छ**) हमें बहुत सुख दे ॥५॥

[६९७] हे (**मरुतः**) मरुत् गणो ! तुम (**नः**) हमारे लिए (**दिवः वृष्टिं ररीध्वं**) द्युलोकसे वर्षा प्रदान करो । (**वृष्णः अश्वस्य धाराः**) वर्षणशील मेघकी जलधारायें हमें (**प्र पिन्वत**) पुष्ट करें । हे मेघ ! (**अनेन स्तनयित्नुना**) इस गर्जनेवाले मेघके साथ (**अर्वाङ् आ इहि**) हमारी तरफ आ (**अपः निषिचन्**) जलोंको सींचते हुए (**असुरः**) प्राणोंको देनेवाला वह मेघ (**नः पिताः**) हमारा पालन करनेवाला है ॥६॥

[६९८] हे पर्जन्य ! तू (**अभि क्रन्द**) गडगडा, (**स्तनय**) गरज और (**गर्भं आ धा**) वृक्षोंमें गर्भ स्थापित कर, तथा (**उदन्वता रथेन**) जलरूपी रथसे (**परिदीय**) चारों ओर भ्रमण कर । (**विषितं दृतिं**) जलसे पूर्ण घडेको (**नि अंचं**) नीचे मुखवाला कर तथा (**सु कर्ष**) उत्तम रीतिसे खाली कर, ताकि (**उद्वतः निपादाः**) ऊंचे और नीचे प्रदेश (**समाः**) बराबर हो जायें ॥७॥

[६९९] हे पर्जन्य ! तू अपने जलरूपी (**महान्तं कोशं**) महान् खजानेको (**उदच**) खुला कर और (**नि षिंच**) नीचेकी ओर बहा, ताकि (**विषिताः कुल्याः**) जलसे भरी हुई नदियां (**पुरस्तात् स्यन्दन्तां**) पूर्व दिशाकी ओर बहें । तू (**घृतेन**) जलसे (**द्यावापृथिवी वि उन्धि**) द्युलोक और पृथ्वीलोकको भर दे, ताकि (**अघ्न्याभ्यः**) गायोंके लिए (**सुप्रपाणं भवतु**) उत्तम पान मिले ॥८॥

भावार्थ- इसी मेघकी कृपासे पृथिवी उपजाऊ बनती है, पृथिवीसे उत्पन्न पदार्थोंको खाकर प्राणी पुष्ट होते हैं, वृक्ष वनस्पति आदि भी मेघके कारण वृद्धिको प्राप्त होते हैं और अनेकरूप धारण करते हैं ॥५॥

जब वायु आकाशसे पानी बरसाते हैं, तब मेघकी जलधारायें सबको पुष्ट करती हैं । गर्जनवाले मेघ जल बरसाते हैं और वे जल मनुष्योंको प्राण देते हैं, इसलिए ये मेघ हमारा पालन करनेवाले हैं ॥६॥

हे मेघ ! तू गडगडा और गरज, फिर जलके रथ पर बैठकर चारों ओर घूम, तथा जल बरसाकर सब तरफ इतना पानी भर दे कि ऊंची और नीची जगहमें फरक ही न रहे ॥७॥

हे पर्जन्य ! तू अपने जलरूपी महान् खजानेको खुला कर और उसे नीचेकी ओर बहा । जलसे भरी नदियां पूर्व दिशाकी ओर बहें । तू जलसे सब स्थानोंको भर दे ताकि गाय आदि सभी प्राणियोंके लिए पीनेका पानी भरपूर मात्रामें मिले ॥८॥

७०० यत् पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत् किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥

७०१ अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाऽकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० ॥

[८४]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- पृथिवी । छन्दः- अनुष्टुप् ।

७०२ बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

७०३ स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

अर्थ- [७००] हे (**पर्जन्य**) पर्जन्य ! (**यत्**) जब तू (**कनिक्रदत् स्तनयत्**) गडगडाते हुए और गर्जते हुए (**दुष्कृतः हंसि**) दुष्टोंको मारता है, तब (**यत् किंच पृथिव्यां अधि**) जो भी कुछ पृथ्वी पर है, (**इदं विश्वं**) वह सब (**प्रति मोदते**) प्रसन्न हो जाता है ॥९॥

[७०१] हे पर्जन्य ! तू (**अवर्षीः**) बहुत बरस चुका, (**उत्**) अब (**वर्षं सु गृभाय**) अपनी बरसातको पीछे खींच ले, तूने (**धन्वानि**) मरुस्थलके प्रदेशोंको (**अति एतवै अकः**) बहुत बहने योग्य बना दिया है। तूने (**कं भोजनाय**) सुखपूर्वक भोजनके लिए (**ओषधीः अजीजनः**) ओषधी वनस्पतियोंको उत्पन्न किया है। (**उत**) और (**प्रजाभ्यः मनीषां अविदः**) प्रजाओंसे स्तुति भी प्राप्त की है ॥१०॥

[८४]

[७०२] हे (**प्रवत्वति महिनि पृथिवि**) प्रकृष्ट गुणोंवाली तथा महत्तासे सम्पन्न पृथिवी ! (**या**) जो तू (**भूमिं मह्ना जिनोषि**) प्राणियोंको अपनी महिमासे तृप्त करती है, वह तू (**बट् इत्था**) निश्चयसे इस प्रकार (**पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि**) पर्वतोंके समूहको धारण करती है ॥१॥

[७०३] हे (**विचारिणि**) अनेक तरहसे विचरण करनेवाली (**अर्जुनि**) तेजोयुक्त भूमे ! (**वा त्वं**) जो तू (**वाजं न**) घोडेके समान (**हेषन्तं**) शब्द करनेवाले (**पेरुं**) मेघको (**प्र अस्यसि**) ग्रहण करती है, उस (**त्वा**) तेरी (**स्तोमासः**) स्तोतागण (**अक्तुभिः**) स्तोत्रोंसे (**प्रति स्तोभन्ति**) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे पर्जन्य ! जब तू गरजता हुआ अकाल आदि दुष्ट तत्त्वोंको मारता है, तब जो कुछ भी पृथ्वी पर है, वह सब प्रसन्न हो जाता है ॥९॥

हे मेघ ! तू बहुत बरस चुका, तेरे बरसनेके कारण मरुस्थलमें भी जलप्रवाह बहने शुरु हो गए हैं, सुखपूर्वक भोजन करनेके लिए धन्यादि भी उत्पन्न हो गए हैं, विद्वानोंने तेरी स्तुति भी की है, इसलिए तू अपनी बरसात समेट ले ॥१०॥

यह प्रकृष्ट गुणोंवाली तथा महिमासे सम्पन्न पृथिवी प्राणियोंको अपनी महिमासे तृप्त करती है, तथा अपने ऊपर पर्वतोंको धारण करती है ॥१॥

यह भूमि गडगडाते हुए मेघोंसे जल ग्रहण करती हैं, इस कारण वह उपजाऊ बनती है, और तब सभी स्तोता इस भूमि की पूजा करते हैं ॥२॥

७०४ दृळ्हा चिद् या वनस्पतीन् क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत् ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३ ॥

[८५]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- वरुणः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

७०५ प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥
७०६ वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ २ ॥
७०७ नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३ ॥

अर्थ- [७०४] हे भूमे ! (**यत्**) जब (**ते**) तेरे ऊपर (**दिवः अभ्रस्य**) द्युलोकमें स्थित मेघसे (**विद्युतः वृष्टयः**) बिजलीसे प्रेरित बरसात गिरती है, तब (**या**) जो तू (**दृळ्हा चित् क्ष्मया**) अपने दृढ सामर्थ्य और (**ओजसा**) बलसे (**वनस्पतीन् दर्धर्षि**) वृक्ष वनस्पतियोंको धारण करती है ॥३॥

[८५]

[७०५] (**शमिता चर्म इव**) जैसे कोई व्याघ्र चर्मके लिए पशुओंको मारता है, उसी तरह (**यः**) जिसने (**सूर्याय उपस्तिरे**) सूर्यके विचरण करनेके लिए (**पृथिवीं जघान**) विस्तृत द्युलोकको और अधिक विस्तृत किया, उस (**सम्राजे श्रुताय वरुणाय**) अत्यन्त तेजस्वी प्रसिद्ध वरुणके लिए (**बृहद् गभीरं प्रियं ब्रह्म**) विस्तृत, गंभीर और प्रिय लगनेवाली स्तुति (**अर्च**) कर ॥१॥

[७०६] (**वरुणः**) वरुणने (**वनेषु**) मेघोंमें (**अन्तरिक्षं**) अन्तरिक्षरूपी समुद्रको (**वि ततान**) विस्तृत किया, (**अर्वत्सु वाजं**) घोडोंमें बलको स्थापित किया, (**अस्रियासु पयः**) गायोंमें दूध रखा । (**हृत्सु क्रतुं**) हृदयोंमें कर्म करनेकी शक्ति दी (**अप्सु अग्निं**) जलोंमें अग्नि स्थापित की, (**दिवि सूर्यं अदधात्**) द्युलोकमें सूर्यको स्थापित किया और (**अद्रौ सोमं**) पर्वत पर सोमको उगाया ॥२॥

[७०७] (**वरुणः**) वरुण देवने (**रोदसी अन्तरिक्षं**) द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्षके हितके लिए (**कवन्धं**) मेघको (**नीचीनबारं**) नीचेकी ओर उसका मुख करके (**प्र ससर्ज**) मुक्त कर दिया । (**तेन**) उस वृष्टिसे (**विश्वस्य भुवनस्य राजा**) सभी भुवनोंका स्वामी यह वरुण (**वृष्टिः यवं न**) बरसात जिस तरह धान्यको पुष्ट करती है, उसी तरह (**भूम व्युनत्ति**) भूमिको उपजाऊ बनाता है ॥३॥

भावार्थ- हे भूमे ! जल द्युलोकसे बरसात गिरती है, तब तेरा सामर्थ्य और बल अत्यधिक बढ जाता है, तब तू वृक्षोंको धारण करनेमें समर्थ हो जाती है ॥३॥

इस वरुण देवने सूर्यके चलनेके लिए विस्तृत द्युलोकको और अधिक विस्तृत किया । इसलिए यह वरुण अत्यन्त स्तुत्य है ॥१॥

वरुण देवने मेघोंमें जलका समुद्र भरा, घोडोंमें शक्ति रखी, गायोंमें दूध रखा, हृदयोंमें कर्मशक्ति दी, जलोंमें भी अग्नि स्थापित की, द्युलोक अर्थात् अधरमें सूर्य स्थापित किया, और पर्वत जैसे कठोर स्थान पर सोम जैसे कोमल पदार्थको उगाया, ऐसे ऐसे आश्चर्यजनक काम इस वरुण देवने किए ॥२॥

सभी भुवनोंके राजा इस वरुणने मेघरूपी बर्तनके मुंहको नीचेकी ओर कर दिया, जिसके कारण उस मेघमें भरा हुआ सारा का सारा जल पृथ्वी पर गिर पडा । इस वृष्टिसे भूमि तो पुष्ट हुई ही हुई, पर द्यु और अन्तरिक्षका भी हित हुआ ॥३॥

७०८ उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥

७०९ इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ ॥

७१० इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥

७११ अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत् सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ ७ ॥

अर्थ- [७०८] (यदा) जब (वरुणः) वरुण (दुग्धं वष्टि) जल बरसाना चाहता है, (आत् इत्) उसके बाद ही वह (भूमिं पृथिवीं उत द्यां) भूमि, विस्तृत अन्तरिक्ष और द्युलोकको (उनत्ति) जलसे सींच देता है। तभी (पर्वतासः) पर्वत (अभ्रेण सं वसत) मेघसे आच्छादित हो जाते हैं और तब (तविषीयन्तः वीराः) बलवान् वीर मरुद्गण (श्रथयन्त) मेघोंको शिथिल कर देते हैं ॥४॥

[७०९] (यः) जिस वरुणने (अन्तरिक्षे तस्थिवान्) अन्तरिक्षमें रहकर ही (मानेन इव) दण्डके समान (सूर्येण पृथिवीं ममे) सूर्यके द्वारा पृथ्वीको मापा, उस (आसुरस्य श्रुतस्य वरुणस्य) प्राणदाता प्रसिद्ध वरुणकी (इमां महीं मायां) इस बडी मेधाकी मैं (प्र वोचं) प्रशंसा करता हूँ ॥५॥

[७१०] (यत्) जिस कारण (एनीः आसिंचन्तीः अवनयः) प्रवाहवाली, पृथ्वीको सींचनेवाली नदियां (उद्ना) अपने जलसे (एकं समुद्रं न पृणन्ति) एक समुद्रको भी नहीं भर पातीं, अतः (कवितमस्य देवस्य) अत्यन्त ज्ञानी वरुण देवके (इमां महीं मायां) इस बडी माया को (नकिः नु आ दधर्ष) आज तक कोई नष्ट नहीं कर सका ॥६॥

[७११] हे (वरुण वरुण) वरणीय वरुण देव ! (अर्यम्यं) श्रेष्ठ सज्जन पुरुषके प्रति (मित्र्यं) मित्रके प्रति (सखायं वा) अथवा अपने सहायकके प्रति (सदं इत् भ्रातरं वा) अथवा सदा भाईके समान व्यवहार करनेवाले (नित्यं वेशं वा) अथवा सदा समीप रहनेवाले (अरणं वा) अथवा अपने नेता के प्रति (यत्) यदि हमने (सीं आगः चकृम) कोई अपराध कियो हो, तो (तत्) उस अपराधसे हमें (शिश्रथः) मुक्त कर ॥७॥

१ अर्यम्यः, मित्र्य, सखायः, सदं इत् भ्रातरः, अरणः- नेता श्रेष्ठ, मित्रके समान हितकारी, तथा भाईके समान प्रेम करनेवाला हो ।

२ सीं आगः चकृमः तत् शिश्रथः- ऐसे नेताके प्रति यदि हम कोई अपराध करें, तो उस पापसे हम मुक्त हों।

भावार्थ- जब वरुण वृष्टि करना चाहता है, तब मेघ पर्वतों पर छा जाते हैं, हवायें बहने लगती हैं और उन हवाओंसे शिथिल होकर मेघ बरस जाते हैं, उस बरसातसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक गीले हो जाते हैं ॥४॥

जिस वरुणने अन्तरिक्षमें ही रहकर सूर्यरूपी मानदण्डसे इस पृथ्वीको माप लिया, उस प्राणदाता प्रसिद्ध वरुणकी इस बडी मेधाकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥५॥

यह वरुण देवकी माया है कि इतनी सारी नदियां हमेशा बहती रहती है और प्रतिदिन अपरिमित जल समुद्रमें उंडेलती रहती हैं पर इतनी सारी नदियां मिलकर भी एक समुद्रको नहीं भर पाती । यह वरुणकी माया बडी अद्भुत है, इसीलिए इस वरुणकी मायाका आज तक कोई पार न पा सका ॥६॥

हे वरुण देव ! सज्जन पुरुष, मित्र, सहायक, भाई, पडौसी तथा अपने नेताके प्रति हमने कोई अपराध किया हो, तो उस अपराधसे हमें मुक्त कर ॥७॥

७१२ कितवासो यद् रिरिपुर्न दीवि　यद् वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवा ऽधा ते स्याम वरुण प्रियासः　॥ ८ ॥

[८६]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा]

७१३ इन्द्राग्नी यमवथ　उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित् स प्र भेदति　द्युम्ना वाणीरिव त्रितः　॥ १ ॥

७१४ या पृतनासु दुष्टरा　या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभी ऽन्द्राग्नी ता हवामहे　॥ २ ॥

अर्थ- [७१२] **(कितवासः दिवि न)** जिस तरह जुआरी जुवेमें एक दूसरे पर दोषारोपण करते हैं, उसी प्रकार हम पर भी लोगोंने **(यत् रिरिपुः)** जो मिथ्या दोषारोपण किया हो, **(वा)** अथवा **(यत् सत्यं)** जो सचमुच हमने अपराध किया हो, **(उत)** और **(यत् न विद्म)** जिस अपराधको हम न जानते हों, हे **(वरुण देव)** वरुण देव ! **(शिथिरा इव)** बन्धनोंको शिथिल करनेके समान **(ता सर्वा वि ष्य)** उन सारे अपराधोंसे हमें मुक्त कर, **(अध)** ताकि हम **(ते प्रियासः स्याम)** तेरे प्रिय बने रहें ॥८॥

१ **यत् रिरिपुः यत् सत्यं, यत् न विद्म ता सर्वा वि ष्य-** जो हम पर मिथ्या दोषारोपण किया गया हो, अथवा जो अपराध हमने सचमुच किया हो, अथवा जो अपराध हमने अनजानेमें कर दिया हो, उससे हमें मुक्त कर।

२ **ते प्रियासः स्याम-** हम वरुण देवके प्रिय बने रहें ।

[८६]

[७१३] हे **(इन्द्राग्नी)** इन्द्र और अग्नि ! **(उभा)** तुम दोनों **(वाजेषु)** संग्रामोंमें **(यं मर्त्यं अवथः)** जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, **(सः)** वह **(त्रितः वाणीः इव)** ज्ञानी जिस प्रकार वाणीका मर्म समझ लेता है, उसी प्रकार **(दृळ्हा द्युम्ना चित्)** दृढ और तेजस्वी होने पर भी शत्रुकी सेनाको **(भेदति)** छिन्न भिन्न कर देता है ॥१॥

१ **वाजेषु यं अवथः सः दृळ्हा द्युम्ना चित् भेदति-** संग्रामोंमें इन्द्र और अग्नि जिसकी रक्षा करते हैं, वह मनुष्य दृढ और तेजस्वी होने पर भी शत्रुसेनाको छिन्न भिन्न कर देता है ।

[७१४] **(या)** जो इन्द्राग्नी **(पृतनासु दुस्तरा)** युद्धोंमें अपराजेय हैं, **(या)** जो इन्द्र और अग्नि **(वाजेषु श्रवाय्या)** यज्ञोंमें पूज्य है, **(या)** जो इन्द्र और अग्नि **(पंच चर्षणीभिः)** पांच तरहके मनुष्यों द्वारा वन्दनीय है, **(ता इन्द्राग्नी हवामहे)** उन इन्द्र और अग्निको हम बुलाते हैं ॥२॥

भावार्थ- हे वरुण ! किसीने हम पर यों ही मिथ्या दोषारोपण किया हो, अथवा हमने सचमुच ही कोई अपराध कर डाला हो, अथवा अनजाने ही हमसे कोई अपराध या पाप हो गया हो, उस अपराध या पापसे हमें मुक्त कर, ताकि हम तेरे प्रिय भक्त बनकर रहें ॥८॥

संग्रामोंमें ये इन्द्र और अग्नि जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह इतना शक्तिशाली हो जाता है कि उसके शत्रुकी सेना चाहे कितनी भी दृढ और तेजस्वी हो, उसे वह मनुष्य छिन्न भिन्न कर देता है ॥१॥

जो इन्द्र और अग्नि संग्रामोंमें अपराजेय हैं, जो यज्ञोंमें स्तुत्य हैं, जिन इन्द्र और अग्निकी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच प्रकारके लोग स्तुति करते हैं, उन्हें ही हम बुलाते हैं ॥२॥

७१५ तयोरिदमवच्छव—स्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्यो—र्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥

७१६ ता वामेषे रथाना—मिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥

७१७ ता वृधन्तावनु द्यून् मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित् पुरो दधे—ऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥

७१८ एवेन्द्राग्नीभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद् रयिं गृणत्सु दिधृत—मिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥ ६ ॥

अर्थ- [७१५] (**तयोः मघोनोः**) उन ऐश्वर्यशाली इन्द्र और अग्निके (**गभस्त्योः**) हाथोंमें (**तिग्मा दिद्युत्**) तीक्ष्ण वज्र रहता है, इसीलिए उन दोनोंका (**इदं शवः अमवत्**) यह बल शत्रुका विनाशक है । वे दोनों देव (**गवां**) गायोंको प्राप्त करनेके लिए तथा (**वृत्रघ्ने**) वृत्रको मारनेके लिए (**द्रुणा**) रथसे (**प्रति आ ईषते**) शत्रुओंकी ओर जाते हैं ॥३॥

[७१६] हे (**इन्द्राग्नी**) इन्द्र और अग्नि ! (**तुरस्य राधसः पती**) प्रेरणा देनेवाले ऐश्वर्योंके स्वामी (**विद्वांसा**) विद्वान् (**गिर्वणस्तमा**) अत्यन्त पूज्य (**ता वां**) उन तुम दोनोंको (**रथानां एषे**) रथोंके युद्धमें हम (**हवामहे**) बुलाते हैं ॥४॥

[७१७] (**मर्ताय अनुद्यून् वृधन्तौ**) मनुष्यको प्रतिदिन बढानेवाले (**ता देवौ**) वे दोनों देव (**अदभा**) अहिंसनीय हैं, मैं (**अर्हन्ता चित् देवौ**) अत्यन्त योग्य उन देवोंको (**अर्वते**) घोडोंकी प्राप्तिके लिए (**अंशा इव**) सोमरसके समान (**पुरः दधे**) सबसे आगे स्थापित करता हूँ ॥५॥

[७१८] (**एव**) इस प्रकार मैंने (**शूष्यं**) बलदायक (**घृतं न**) घीके समान तेजस्वी (**अद्रिभिः पूतं**) पत्थरोंसे कूट और निचोड कर पवित्र किए गए (**हव्यं**) हविको (**इन्द्रग्नीभ्यां अहावि**) इन्द्र और अग्निके लिए समर्पित किया है । (**ता**) वे दोनों देव (**सूरिषु गृणत्सु**) विद्वान् स्तोताओंको (**श्रवः बृहद्रयिं**) यश और महान् धन, (**दिधृतं**) प्रदान करें । (**गृणत्सु इषं दिधृतं**) स्तोताओंको अन्न प्रदान करें ॥६॥

भावार्थ- ऐश्वर्यशाली इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंके हाथोंमें तीक्ष्ण वज्र होने के कारण इनका बल अपराजेय है । ये दोनों देव वृत्रको मारकर गायोंको प्राप्त करनेके लिए रथ पर बैठकर शत्रुओंकी तरफ जाते हैं ॥३॥

हे इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों प्रेरणा देनेवाले ऐश्वर्योंके स्वामी, विद्वान् और अत्यन्त पूज्य हो । उन तुम दोनोंको हम रथोंके युद्धमें अपनी रक्षा के लिए बुलाते हैं ॥४॥

ये दोनों देव मनुष्यको प्रति दिन बढाते रहते हैं, उनके बलका कोई प्रतिकार नहीं कर सकता । इसलिए जिस प्रकार यज्ञोंमें सोमको सबसे आगे स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार मैं भी इन दोनों देवोंको अपना नेता बनाता हूँ ॥५॥

मैंने इन इन्द्र और अग्निको बलकारक तेजस्वी और पवित्र हवि दी है, अतः वे भी मुझ जैसे विद्वान् स्तोताको धन, अन्न और यश प्रदान करें ॥६॥

[८७]

[ऋषिः- एवयामरुदात्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- अतिजगती ।]

७१९ प्र वो॑ म॒हे म॒तयो॑ यन्तु॒ विष्ण॑वे म॒रुत्व॑ते गिरि॒जा ए॑व॒याम॑रुत् ।
प्र शर्धा॑य॒ प्रय॑ज्यवे सु॒खाद॑ये त॒वसे॑ भ॒न्दद्दि॑ष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से ॥ १ ॥

७२० प्र ये जा॒ता म॑हि॒ना ये च॒ नु स्व॒यं प्र वि॒द्मना॑ ब्रु॒वत॑ एव॒याम॑रुत् ।
क्रत्वा॒ तद् वो॑ मरुतो॒ नाधृ॑षे॒ शवो॑ दा॒ना म॒ह्ना तदे॑षा॒मधृ॑ष्टासो॒ नाद्र॑यः ॥ २ ॥

७२१ प्र ये दि॒वो बृ॑ह॒तः शृ॑ण्वि॒रे गि॒रा सु॒शुक्वा॑नः सु॒भ्व॑ एव॒याम॑रुत् ।
न येषा॒मिरी॑ स॒धस्थ॒ ईष्ट॒ आँ अ॒ग्नयो॒ न स्ववि॑द्युतः॒ प्र स्य॒न्द्रासो॒ धुनी॑नाम् ॥ ३ ॥

---

[८७]

अर्थ- [७१९] (**एवयामरुत्**) मरुतोंके अनुकरण करनेवाले ऋषिकी (**गिरि-जाः**) वाणीसे निकले हुए (**मतयः**) विचार एवं काव्यमय श्लोक (**वः**) तुम्हारे (**मरुत्-वते**) मरुतोंसे युक्त (**महे विष्णवे**) बडे व्यापक देवके पास (**प्र यन्तु**) पहुँचे । तुम्हारे (**प्र-यज्यवे**) अत्यन्त पूजनीय, (**सु-खादये**) अच्छे कडे, वलय धारण करनेहारे, (**तवसे**) बलवान् (**भन्दत्- इष्टये**) अच्छी आकांक्षा करनेवाले, (**धुनिव्रताय**) शत्रुको हटा देनेका व्रत लेनेहारे (**शवसे**) वेगपूर्वक जानेवाले (**शर्धाय**) बलके लिए ही तुम्हारे विचार एवं काव्यप्रवाह (**प्र-यन्तु**) प्रवर्तित हों ॥१॥

[७२०] (**ये**) जो अपनी निजी (**महिना**) महत्त्वसे (**प्र जाताः**) प्रकट हुए (**ये च**) और जो (**नु**) सचमुच (**स्वयं विद्मना**) अपनी निजी विद्यासे (**प्र**) प्रसिद्ध हुए, उन वीरोंका (**एवयामरुत् ब्रुवत**) एवयामरुत ऋषि वर्णन करता है । हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**वः तत् शवः**) तुम्हारा वह बल (**क्रत्वा**) कृतिसे युक्त होनेके कारण (**न आ-धृषे**) पराभूत नहीं हो सकता, (**एषां तत्**) ऐसे तुम वीरोंका वह बल (**दाना**) दानसे (**मह्ना**) तथा महत्त्वसे युक्त है । तुम तो (**अद्रयः न**) पर्वतोंके समान (**अ-धृष्टासः**) किसीसे परास्त न होनेवाले हो ॥२॥

[७२१] (**सु-शुक्वानः**) अत्यन्त तेजस्वी तथा (**सु-भ्वः**) उत्तम ढंगसे रहनेहारे (**ये**) जो वीर (**बृहताः**) विशाल (**दिवः**) अन्तरिक्षमें से जाते समय जनताकी की हुई स्तुतियाँ (**प्र शृण्विरे**) सुनते हैं, उनकी ही (**एवयामरुत् गिरा**) एवयामरुत् ऋषि अपनी वाणी द्वारा स्तुति करता है । (**येषां सधस्थे**) जिनके प्रदेशमें उनके (**इरी**) प्रेरककी हैसियतसे उनपर (**न आ ईष्टे**) कोई भी प्रभुत्व नहीं प्रस्थापित करता है, वे (**अग्नयः न**) अग्निके तुल्य (**स्व-विद्युतः**) स्वयंप्रकाशी वीर (**धुनीनां**) गर्जना करनेहारे शत्रुओंको भी (**प्र स्यन्द्रासः**) अत्यन्त विकम्पित कर डालनेवाले हैं ॥३॥

भावार्थ- ऋषि सर्वव्यापक ईश्वरके सम्बन्धमें विचार करते हैं, उसके स्तोत्रोंका गायन करते हैं और उनकी प्रतिभा-शक्ति परमात्माकी ओर मुड जाती है । उसी प्रकार, बल बढाकर शत्रुको मटियामेट करनेके गुरुतर कार्यकी ओर भी उनकी मनोवृत्ति झुक जाये ॥१॥

तुम्हारी विद्या एवं महत्ता असाधारण कोटिकी है । तुम्हारा बल इतना विशाल है कि, कोई तुम्हें पददलित तथा पराभूत या परास्त नहीं कर सकता । तुम्हारा दान भी बहुत बडा है और जैसे पर्वत अपनी जगह स्थिर रहा करता है, वैसे ही तुम जिधर भी कहीं रहते हो, उधर भले ही दुश्मन भीषण हमला करें, लेकिन तुम अपने स्थानपर अचल, अटल तथा अडिग रहकर उसे हटा देते हो ॥२॥

ये वीर तेजस्वी तथा अच्छा आचरण रखनेवाले हैं । ये स्वयं-शासित हैं, इन पर अन्य किसीकी प्रभुता नहीं प्रस्थापित है । ये स्वयंप्रकाशी होते हुए गरजनेवाले बडे बडे वीर दुश्मनोंको भी भयभीत कर देते हैं, जिससे वे काँपने लगते हैं ॥३॥

७२२ स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात् सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभि-र्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥
७२३ स्वनो न वोऽमवान् रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥
७२४ अपारो वो महिमा वृद्धशवस-स्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥
७२५ ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥

अर्थ- [७२२] (**यदा एवयामरुत्**) अब अवयामरुत् ऋषि अपने (**स्नुभिः नृभिः**) वेगवान् लोगोंके साथ (**त्मना**) स्वयं ही (**स्वात्**) अपने निवासस्थानके समीप (अधि अयुक्त) अश्व जोतकर तैयार हुआ, तब (**उरुक्रमः सः**) बडा भारी आक्रमण करनेहारा वह मरुतोंका संघ (**समानस्मात्**) सबके लिए समान ऐसे (**सदसः**) अपने निवासस्थानसे (**निः चक्रमे**) बाहर निकल पडा और (**वि-महसः**) विलक्षण तेजस्वी एवं (**शे-वृधः**) सुख बढानेवाले वे वीर (**वि-स्पर्धसः**) बिना किसी स्पर्धासे तुरन्त उधर (**जिगाति**) आ पहुँचे ॥४॥

[७२३] (**वः अम-वान्**) तुम्हारा बलवान् (**वृषा**) समर्थ, (**त्वेषः**) तेजस्वी, (**ययिः**) वेगसे जानेहारा एवं (**तविषः स्वनः**) प्रभावशाली शब्द (**एवयामरुत् न रेजयत्**) एवयामरुत् ऋषिको कंपित या भयभीत न करे। (**येन**) जिससे (**सहन्तः**) शत्रुओंका प्रतिकार करनेहारे (**स्व-रोचिषः**) अपने तेजसे युक्त, (**स्थाः-रश्मानः**) स्थायी तेज धारण करनेहारे, (**हिरण्ययाः**) सुवर्णालंकार पहननेवाले (**सु-आयुधासः**) अच्छे हथियार रखनेवाले तथा (**इष्मिणः**) अन्नका संग्रह समीप रखनेवाले तुम वीर प्रगतिके लिए (**ऋञ्जत**) प्रयत्न करते हो ॥५॥

[७२४] हे (**वृद्ध-शवसः**) प्रबल सामर्थ्यवान् वीरो ! (**वः महिमा**) तुम्हारा बडप्पन सचमुच (**अ-पारः**) असीम एवं अमर्याद है। तुम्हारा (**त्वेषं शवः**) तेजस्वी बल इस (**एवयामरुत् अवतु**) एवयामरुत् ऋषिका रक्षण करे। शत्रुका (**प्रसितौ**) आक्रमण होनेपर भी (**संदृशि**) दृष्टिपथमें ही तुम (**स्थातारः स्थन**) स्थिर रहते हो। (**अग्नयः न**) अग्नितुल्य (**शुशुक्वांसः**) तेजस्वी (**ते**) ऐसे तुम (**नः**) हमें (**निदः उरुष्यत**) निन्दकसे बचाओ ॥६॥

[७२५] (**सुमखाः**) उच्च कोटिके यज्ञ करनेवाले (**अग्नयः यथा**) अग्निके समान (**तुविद्युम्नाः**) अति तेजस्वी (**ते रुद्रासः**) वे शत्रुओंको रुलानेवाले वीर (**एवयामरुत् अवन्तु**) एवयामरुत् ऋषिका संरक्षण करें। (**दीर्घं**) विस्तीर्ण तथा (**पृथु**) भव्य (**पार्थिवं सद्म**) भूमंडलपरका निवास स्थान उन्हींके कारण (**पप्रथे**) विख्यात हो चुका है। (**अद्भुत-एनसां**) पापरहित ऐसे (**येषां**) जिन वीरोंके (**अज्मेषु**) आक्रमणोंके समय (**महः शर्धांसि**) बडे बडे बल उनके साथ (**आ**) आते हैं ॥७॥

भावार्थ- जब ऋषि इन वीरोंका सुस्वागत करनेके लिए तैयार हुआ, तब ये वीर उस अपने निवासस्थलसे जो सबके लिए समान या निकलकर स्वयं ही उसके समीप जा पहुँचे। ये वीर बडे ही तेजस्वी एवं जनताका सुख बढानेवाले थे ॥४॥

इन वीरोंकी महिमा असीम है और उनके सामर्थ्यसे ऋषियोंका रक्षण होता है। दुश्मनोंकी चढाई हो, तो वे समीप ही रहते हैं, इसलिए शीघ्र आकर जनताकी मदद करते हैं। हमारी इच्छा है कि वे हमें निन्दकों से बचायें ॥५॥

तुम्हारी ध्वनिमें सामर्थ्य है, पर यह ऋषि उस गम्भीर दहाडसे भयभीत नहीं होता, क्योंकि इसके साथ तुम अच्छे शस्त्र लेकर सबकी उन्नतिके लिए सचेष्ट रहा करते हो ॥६॥

७२६ अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद् रथ्यो३ न दंसनाऽप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥
७२७ गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ- [७२६] हे (**मरुतः**) वीर मरुतो ! (**अद्वेषः**) द्वेष न करनेवाले तुम वीरोंके (**गातुं**) काव्यको गाते समय (**नः आ इतन**) हमारे पास आओ । (**जरितुः एवयामरुत्**) स्तुति करनेवाले एवयामरुत् ऋषिकी यह प्रार्थना (**श्रोत**) सुन लो ! हे (**समन्यवः**) उत्साही वीरो ! तुम (**विष्णोः महः**) व्यापक देवकी शक्तियोंसे (**युयोतन**) एकरूप बनो । तुम (**रथ्यः न**) रथमें जोडने योग्य घोडे के समान (**स्मत्**) प्रशंसाके योग्य हो, अतः (**दंसना**) अपने पराक्रमसे-कर्मसे (**सनुतः द्वेषांसि**) गुप्त शत्रुओंको (**अप**) दूर हटाओ ॥८॥

[७२७] हे (**यज्ञियाः**) पूज्य वीरो ! (**सुशमि**) अच्छे शान्त ढंगसे (**नः यज्ञं**) हमारे यज्ञकी ओर (**गन्त**) आओ। (**अ-रक्षः**) अरक्षित ऐसे (**एवयामरुत्**) एवयामरुत् ऋषिकी (**हवं**) यह प्रार्थना (**श्रोत**) सुनो । (**वि-ओमनि**) विशेष रक्षण के कार्यमें तुम (**पर्वतासः न**) पहाडोंके तुल्य (**ज्येष्ठासः**) श्रेष्ठ हो । (**प्रचेतसः**) उत्कृष्ट ढंगसे विचार करनेवाले तुम (**तस्य निदः**) उस निन्दकके लिए (**दु-धर्तवः**) दुर्धर्ष अजेय (**स्यात**) बनो ॥९॥

भावार्थ- ये वीर अच्छे कर्म करनेवाले हैं । ये ऋषियोंका संरक्षण करते हैं । इन्होंने कारण पृथ्वी पर विद्यमान स्थान विख्यात हुआ है । ये पापरहित वीर जब शत्रुपर हमला करते हैं, तब इनकी अनेक शक्तियां व्यक्त हुआ करती हैं ॥७॥

हम वीरोंके काव्यगायन करते हैं, उसे वे आकर सुनें । परमात्माकी शक्तिसे युक्त होकर अपने अपने अनवरत उद्यमसे सभी शत्रुओंको दूर करें ॥८॥

वीर यज्ञमें आवें और काव्यगान सुनें । रक्षा करते समय स्थिर रूपसे प्रजाओंकी रक्षा करें । विचारपूर्वक निन्दकोंको हटाकर शत्रुसेनाके लिए स्वयं अजेय बननेकी कोशिश करें ॥९॥

॥ पंचम मंडल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

चतुर्थ मण्डल

सुभाषित

१. देवस्य अघ्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं- (६) उत्तम गोपालकी गायका दूध या घी पवित्र और तेज देनेवाला है।

२. धेनोः मंहना- (६) गायका दान भी श्रेष्ठ होता है।

३. यज्ञबन्धुः मनुष्यः चेतयत्- (९) यज्ञ अर्थात् संगठनके कार्योंसे प्रेम करनेवाला ही मनुष्योंको ज्ञान दे सकता है।

४. वृषभस्य विपन्या प्रथमं शर्धः आर्त- (१२) इस बलवान् अग्निकी स्तुतिसे मनुष्य सर्वोत्तम बल प्राप्त करता है।

५. ऋतस्य योना- (१२) सत्यके स्थानमें जाकर विराजता है।

६. धीभिः चकृपन्त ज्योतिः विदन्त - (१४) जो बुद्धियों द्वारा अपने को सामर्थ्ययुक्त बनाते हैं, वे ही ज्योति प्राप्त करते हैं।

७. एषां तत् अन्ये अभितः वि वोचन्- (१४) इनके उस यशका दूसरे लोग सर्वत्र गान करते हैं ॥

८. यः ते सिष्विदानः इध्मं आभरत् मूर्धानं ततपते, तस्य स्वतवान् भुवः पायुः विश्वस्मात् अघायतः उरुष्य- (२६) जो इस अग्निके लिए बहुत परिश्रम करके पसीनेसे लथपथ हो अपने सिरपर समिधायें ढोकर लाता है, उसे यह अग्नि धनवान् बनाता है और पापियोंसे चारों ओरसे उसकी रक्षा करता है।

९. यः अमृताय दाशत् दुवः कृणवते राया न वि योषत् अघायोः अंहः न परिवरत्- (२९) जो इस अमर अग्निको हवि देता और इसकी सेवा करता है, वह कभी भी निर्धन और पापी नहीं होता।

१०. त्वं यस्य मर्तस्य अध्वरं जुजोष, स प्रीता इत् असत् - (३०) वह अग्नि जिस मनुष्यके यज्ञका सेवन करता है, वह हमेशा आनन्दमें ही रहता है।

११. मर्तान् चित्तिं अचित्तिं चिनवत्- (३१) यह अग्नि मनुष्योंके पाप और पुण्योंको पृथक् पृथक् करता है।

१२. दितिं रास्व अदितिं उरुष्य - (३१) हमें दानशीलता दे और कंजूसीसे हमारी रक्षा कर।

१३. यत् देवानां जनिम आ अख्यत्, अर्यः उपरस्य आयोः वृधे- (३८) जो देवोंके जन्मोंका वर्णन करता है, वह स्वामी अपने पुत्र और अन्य मनुष्योंके पालन पोषणमें समर्थ होता है।

१४. ते अकर्म, सु अपसः अभूम- (३९) हमने इस अग्निकी सेवा की, अतः उत्तम कर्म करनेवाले हुए।

१५. तूर्णितमः स्पशः प्रति वि सृजः- (५१) हे राजन्! शीघ्रतासे काम करनेवाला तू अपने चरोंको चारों ओर प्रेरित कर।

१६. अदब्धः विशः पायुः- (५१) किसीसे भी न दबनेवाला वीर राजा अपनी प्रजाओंका पालन करनेवाला हो।

१७. यः अघशंसः दूरे अन्ति, माकिः आ दधर्षीत्- (५९) जो पापवचनों या दुष्टवचनोंको बोलनेवाला हो, वह चाहे पास हो या दूर, इन प्रजाओंको न सताये।

१८. यः ब्रह्मणे गातुं ऐरत् सः सुमतिं जानाति-

(६२) जो इस महान् अग्निकी स्तुति करता है, वह इस देवकी कृपाको प्राप्त करता है।

१९. विश्वानि दिनानि सु- (६२) उसके सभी दिन उत्तम होते हैं।

२०. अर्यः दुरः वि द्यौत्- (६२) उस श्रेष्ठ पुरुषका घर धनके कारण चमकने लगता है।

२१. यः हविषा नित्येन पिप्रीषति, सः इत् सुभगः सुदानुः- (६३) जो हविके द्वारा प्रतिदिन इस अग्निको तृप्त करना चाहता है, वह उत्तम भाग्यशाली होकर उत्तम रीतिसे दानशील अर्थात् उदार हृदयवाला होता है।

२२. यः ते आतिथ्यं आनुषक् जुजोषत्, तस्य त्राता सखा भवसि- (६६) हे अग्ने! जो तेरा अतिथिके समान सत्कार करता है, उसका तू रक्षक और मित्र होता है।

२३. त्वया वयं सधन्यः - (७०) तेरे कारण हम धन्य हैं।

२४. तव प्रणीती वाजान् अश्याम- (७०) तेरे बताये मार्गपर चलकर हम अन्नोंको प्राप्त करें।

२५. मनीषां महि साम प्र वोचत्- (७४) ज्ञानियोंके महान् ज्ञानका उपदेश सर्वत्र करे।

२६. व्यन्तः दुरेवाः अनृताः असत्याः पापासः इदं गभीरं पदं अजनत- (७६) कुमार्ग पर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिकनियमोंका उल्लंघन करनेवाले असत्यशील पापियोंने ही इस गंभीर नरकका निर्माण किया है।

२७. दिवि पृथिव्यां यत् द्रविणं अस्य त्वं क्षयसि- (८२) द्युलोक और पृथ्वीलोकमें जो कुछ धन है, उसका तू ही स्वामी है।

२८. अध्वनः परमं- (८३) जो उत्तम मार्गसे जाता है उसे उत्तम ऐश्वर्य मिलता है।

२९. निदानाः रेकु पदं न अगन्म- (८३) हम निन्दित होकर निर्धनके घर न जायें।

३०. अनिरेण फल्गवेन वचसा अतृपासः किं वदन्ति- (८५) नीरस और निष्फल वाणीके कारण अतृप्त रहनेवाले मनुष्य अग्निकी स्तुति क्या करेंगे ?

३१. अनायुधासः असता सचन्तां- (८५) शस्त्र धारण न करनेवाले पराक्रमहीन मनुष्य हमेशा दुःखी ही रहते हैं।

३२. अस्य अनीकं श्रिये दमे आ रुरोच- (८६) इस अग्निका तेज मनुष्यके कल्याणके लिए ही घरमें प्रकाशित होता है।

३३. यजीयान् ऊर्ध्वः तिष्ठति- (८७) यज्ञ करनेवाला सदा उन्नत रहता है।

३४. वेधसां मनीषा प्र तिरति- (८७) यज्ञसे बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि बढती है।

३५. मन्द्रः मधुवचाः अग्निः परि एति- (९१) आनन्द देनेवाला और मधुर भाषण करनेवाला तेजस्वी नेता अपने यशसे चारों ओर जाता है।

३६. यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते- (९१) जब यह अग्नि प्रज्वलित होता है, तब सभी लोक इससे डरते हैं।

३७. देवान् आनमं वेद, प्रियाणि वसु- (१११) जो देवोंको नमस्कार करना जानता है, वही उत्तमोत्तम धन प्राप्त करता है।

३८. बृहतः क्रतोः भद्रस्य दक्षस्य- (१२६) महान् यज्ञ या कर्मसे कल्याणकारी बलकी प्राप्ति होती है।

३९. अरूक्षितं अन्नं रूपः- (१३३) घी आदि चिकने पदार्थोंसे युक्त अन्न खानेवाला रूपवान् होता है।

४०. वेपसा गृणते स्वं- (१३४) अपने उत्तम कर्मों से परमात्माकी उपासना करनेवालेको स्वर्ग सुख मिलता है।

४१. काव्या मनीषाः राध्यानि उक्था त्वत् जायन्ते- (१३५) काव्य, उत्तम बुद्धि तथा आराधनाके योग्य स्तोत्र सब इस अग्निसे ही उत्पन्न होते हैं।

४२. शिवः देवः यं स्वस्ति, अमतिं अंहः विश्वां दुर्मतिं आरे- (१३८) कल्याणकारी देव अग्नि जिसका कल्याण करता है, उससे मूर्खता पाप और दुष्ट बुद्धिको दूर करता है।

४३. तस्मिन् अहन् त्रिः अन्नं कृणवत् सः द्युम्नैः सु अभि अस्तु- (१३९) जो प्रत्येक दिन इस अग्निको तीन बार हवि देता है, वह अपने तेजोंसे सबको परास्त कर देता है।

४४. यः शश्रमाणः अनीकं सपर्यते सः पुष्यन् अमित्रान् ध्नन् रयिं सचते- (१४०) जो परिश्रमपूर्वक इस अग्निके तेजकी सेवा करता है, वह पुष्ट होकर शत्रुओंको मारता है।

४५. **ईवतः अस्य अग्नेः मर्त्यः वीरः ईशीत**- (१५९) सर्वत्र गमन करनेवाले इस अग्निकी उपासना करनेवाला मनुष्य वीर होकर सब ऐश्वर्योंका स्वामी बनता है।

४६. **यः विश्वा भुवना अभि बभूव अमितं ववक्ष**.- (१६९) जो सारे भुवनोंको अधिकार में कर लेता है, उसका यश अपरिमित होता है।

४७. **महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ अतः चित् अस्य महिमा विरेचि**- (१६९) वह अपने महत्त्वसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है, इसी कारण उसका महत्त्व सबकी अपेक्षा अधिक है।

४८. **नृमणः कविं अच्छ गाः**- (१७३) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे ज्ञानीके पास सीधा जा।

४९. **द्युम्नहूतौ मायावान् अब्रह्मा दस्युः अर्त**- (१७३) युद्धमें कपटी और अज्ञानी दस्यु नष्ट हो जाते हैं।

५०. **दस्युघ्ना मनसा अस्तं आयाहि**- (१७४) दुष्टको मारनेके विचारसे अपने घर जाकर रहो।

५१. **सरूपा स्वे योनौ निषीदतम्**- (१७४) समान रूप या विचारवाले एकत्र रहें।

५२. **ऋतचित् नारी वां चिकित्सत्**- (१७४) सत्यज्ञानवाली स्त्री तुम दोनोंको जाने।

५३. **ओकः न रण्वा सुदृशी पुष्टिः इव**- (१७९) यह इन्द्र घरके समान सुखदायक तथा रमणीय और दीखनेमें उत्तम समृद्धि के समान पोषक है।

५४. **यः ता पुरूणि नर्या चकार**- (१८०) इन्द्रने मनुष्योंके बहुतसे हितकारक कार्य किए हैं।

५५. **सखा अकुटिलः**- (१८२) मित्र हमेशा अकुटिल हो। मित्र कुटिलतासे रहित होकर व्यवहार करे।

५६. **त्वं महान्**- (१८६) इन्द्र! तू महान है।

५७. **क्षा तुभ्यं क्षत्रं अनु**- (१८६) पृथ्वी तेरे क्षात्र-सामर्थ्यके पीछे चलती है।

५८. **मंहना द्यौः मन्यत**- (१८६) महिमासे युक्त द्युलोक भी तेरी महत्ताको स्वीकार करता है।

५९. **यः ई जजान, इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमः अभूत्**- (१८९) जिसने इस इन्द्रको उत्पन्न किया, वह इन्द्रका जन्मदाता उत्तम कर्म करनेवाला था।

६०. **कृष्टीनां राजा इन्द्रः**- (१९०) प्रजाओंका राजा इन्द्र है।

६१. **एकः भूम च्यावयति**- (१९०) वह अकेला ही बहुतसे शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट कर देता है।

६२. **यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते विश्वं एजत् दृळ्हं अस्मात् भयत्**- (१९५) जब इन्द्र वास्तवमें क्रोध करता है, तब सारा जंगम और स्थावर जगत् इससे डरता है।

६३. **अस्य रायः विभक्ताः वस्वः संभरः**- (१९६) यह इन्द्र अपने धनको बांट देता है, फिर भी इसके पास भरपूर धन रहता है।

६४. **अक्षियन्तं क्षियन्तं कृणोति**- (१९८) वह इन्द्र आश्रयरहितको आश्रय प्रदान करता है।

६५. **अस्य शर्मन् अस्य प्रियः न किः देवाः वारयन्ते, न मर्ताः...** (२०४) इस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले मित्रको न देव मार सकते हैं न मनुष्य।

६६. **अमुया मातरं पत्तवे मा कः**- (२०७) अपनी कार्य प्रवृत्तिसे अपनी मातृभूमिकी गिरावट न कर।

६७. **अयं पन्थाः अनुवित्तः पुराणः**- (२०७) यह मार्ग अनुकूलतासे धन देनेवाला और सनातन है।

६८. **अतः चित् प्रवृद्धः जनिषीष्ट**- (२०७) इस मार्ग पर चल कर मनुष्य निश्चयसे बडे होते हैं।

६९. **एतत् दुर्गहा, अतः अहं न निरय**- (२०८) यह दुर्गम मार्ग है, अतः मैं इससे नहीं जाऊंगा।

७०. **बहूनि कर्त्वानि अकृता तिरश्चता पार्श्वात् निर्गमाणि**- (२०८) मैंने बहुतसे कर्तव्य अभीतक किए नहीं हैं, इसलिए मैं दूसरे सरल मार्गसे जाऊंगा।

७१. **यं सहस्र मासाः पूर्वीः शरदः च जभार सः ऋणक् किं कृणवत्**- (२१०) जिसका बहुत मासों और वर्षों तक भरणपोषण किया गया है, वह मनुष्य अपना पोषण करनेवालेके विरुद्ध कोई काम क्यों करेगा?

७२. **जनित्वाः जातेषु अस्य प्रतिमानं नहि**- (२१०) उत्पन्न होनेवालों और उत्पन्न हुए हुओंमें इस इन्द्रके समान कोई नहीं है।

७३. **जनुषा अस्य वर्ता न अस्ति**- (२३७) जन्मसे ही इस इन्द्रका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

७४. साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः सम्राट्- (२४३) शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला और युद्धमें कुशल सम्राट् हो।

७५. यः बृहतः रायः ईशे, धृष्णुया वस्वः, तं विदथेषु स्तवाम- (२४५) जो वीर बडे धनको अपने आधीन रखता है, शत्रुओंका घर्षण करके जो धन प्राप्त करता है, उसकी हम यज्ञोंमें तथा युद्धोंमें प्रशंसा गाते हैं।

७६. सत्यः वस्वः सम्राट्- (२५१) यह इन्द्र सच्चे धनोंका सम्राट है।

७७. पूरवे वरिवः कः- (२५१) यज्ञ करनेवालेको धन देता है।

७८. यः अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति, महान् शुष्मी मघवा- (२५३) जो वज्रको धारण करके आता है, वह बडा बलवान् और धनवान् होता है।

७९. वृषा उग्रः नृतमः शचीवान् बाहुभ्यां वृषंधिं श्रिये अस्यन्- (२०४) बलवान् उग्र श्रेष्ठ नेता बलवान् वीर अपनी भुजाओंसे वज्रको यशके लिए शत्रुपर फेंकता है।

८०. महतः ता महानि विश्वेषु इत् सवनेषु प्रवाच्या- (२५७) महान् इस इन्द्रके वे महान् कर्म सभी उत्तम उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं।

८१. ते ता विश्वा सत्या- (२५८) इन्द्रके वे सभी कर्म सत्य हैं, काल्पनिक नहीं।

८२. अस्य सुदृशः सर्गाः श्रिये- (२६९) इस सुन्दर इन्द्रकी रचनायें सबके आश्रय करनेके लिए हैं।

८३. अमत्रं सख्यं प्र ब्रवाम- (२६९) शत्रुसे रक्षण करनेवाली मित्रताका हम वर्णन करते हैं।

८४. ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति- (२७१) उचित कर्तव्यकी शक्तियां अनन्त हैं।

८५. ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति- (२७१) उचित बुद्धि पापोंको नष्ट करती हैं।

८६. ऋतस्य वपूंषि दृळ्हा, धरुणानि चन्द्रा पुरूणि सन्ति- (२७२) सत्यके शरीर सुदृढ, धारणक्षम, आनंददायी और अनेक होते हैं।

८७. सः सुस्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः- (२७६) वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करनेपर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है।

८८. नरः समीके तं विह्वयन्ते- (२७७) मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिए उस वीरको बुलाते हैं।

८९. रिरिक्वांसः तन्वः त्रां कृण्वत- (२७७) तेजस्वी लोग अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं।

९०. उभयासः नरः तोकस्य तनयस्य सातौ त्यागं अग्मन्- (२७७) शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके लोग अपने पुत्रपौत्रोंके पोषणके लिए अपने सुखोंका त्याग करते हैं।

९१. उग्राः आशुषाणाः क्षितयः मिथः अर्णसातौ योगे क्रतूयन्ति- (२७८) उग्र प्रयत्नशील वीर मिलकर युद्धमें यश प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करते हैं।

९२. युध्मा विशः अभीके अववृत्रन्त आत् इत् नेमे इन्द्रयन्ते- (२७८) युद्ध करनेवाले वीर युद्धमें संगठित होते हैं, तब वे अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं।

९३. नेमे इन्द्रियं यजन्ते- (२७९) कई वीर इन्द्रियशक्तिसे सम्पन्न वीरको सम्मानित करते हैं।

९४. वृषभं जुजोष- (२७९) मनुष्य वीरकी ही सेवा करते हैं।

९५. मनायोः वृषणं शुष्मं दधत्- (२८१) मननशील वीर बलिष्ठको अधिक बल देता है।

९६. उच्चरन्तं सूर्यं ज्योक् पश्यात्- (२८९) उदय होनेवाले सूर्यको मनुष्य दीर्घकाल तक देखे।

९७. इन्द्रे सुकृत्, मनायुः, सुप्रावीः प्रियः- (२९०) इन्द्रको उत्तम कार्य करनेवाला, मननशील और उत्तम रक्षण करनेवाला प्रिय होता है।

९८. तं दभ्राः बहवः न जिनन्ति- (२९०) उसको थोडे या बहुत सारे शत्रु भी नहीं जीत सकते।

९९. अदितिः अस्मै उरुशर्म यंसत्- (२९९) प्रकृति उसको बडा सुख देती है।

१००. वीरः दुष्प्राव्यः अवाचः अवहन्ता- (२९१) वह वीर इन्द्र बुरे मार्गसे जानेवाले तथा स्तुति न करनेवालेको मारनेवाला है।

१०१. रेवता पणिना सख्यं न सं वृणीते- (२९२) धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यके साथ वह इन्द्र मित्रता नहीं करता।

१०२. अस्य नग्नं वेदः खिदति- (२९२) ऐसे कंजूस मनुष्यका धन निरर्थक होनेके कारण खेद करता है।

१०३. अहं आर्याय भूमिं अददां- (२९५) इस इन्द्रने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी है।

१०४. अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं- (२९५) इस इन्द्रने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया।

१०५. इन्द्र ! दस्यून् विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः- (३०९) हे इन्द्र ! तूने दस्युओंको सबसे नीच बना दिया।

१०६. दासीः विशः अप्रशस्ताः अकृणोः- (३०९) तूने दासभावसे युक्त प्रजाओंको निन्दाके योग्य किया।

१०७. सदावृधः चित्रः सखा- (३४०) सामर्थ्यसे सदा बढनेवाला, विलक्षण और शक्तिशाली मित्र हो।

१०८. ऊती शचिष्ठया वृता नः आभुवत्- (३४०) संरक्षणके सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारे पास आवे।

१०९. ऋभवः पितृभ्यां परिविष्टी दंसनाभिः अरं अक्रन्- (३८०) ऋभुओंने अपने माता पिताकी सेवा और उत्तम कर्मोंको करके स्वयंको सामर्थ्यशाली बनाया।

११०. देवानां सख्यं उप आयन्, मनायै पुष्टिं अहवन्- (३८०) देवोंसे मैत्री स्थापित की और अपने मनको शक्तिशाली बनाया।

१११. श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति- (३८९) कष्ट उठाये बिना देवगण मित्रता नहीं करते।

११२. सुकृत्या सखीन् चकृषे- (४०७) उत्तम कर्मोंके कारण इन्द्रने ऋभुओंको अपना मित्र बनाया।

११३. सुकृत्या देवासः अभवत्- (४०८) उत्तम कर्मोंसे ही देव बना जा सकता है।

११४. यं देवासः अवथ सः विचर्षणिः- (४१४) जिसकी रक्षा देवगण करते हैं वह विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है।

११५. धीभिः सनिता- (४२४) मनुष्य अपने उत्तम कर्मों और उत्तम बुद्धियोंके कारण श्रेष्ठ उपभोगोंसे संयुक्त होता है।

११६. यः मर्तः इन्द्रावरुणा देवौ आपी चक्रे सः वृत्रा हन्ति, प्र शृण्वे- (४४९) जो मनुष्य इन्द्र और वरुण इन दोनों देवोंको अपना भाई बनाता है, वह पापोंको नष्ट करता है और बहुत प्रसिद्ध होता है।

११७. यः बृहस्पतिं वन्दते, स इत् राजा विश्वा प्रतिजन्यानि शुष्मेण वीर्येण अभि तस्थौ- (५१८) जो वेदज्ञाता पुरोहितकी वन्दना करता है, वही राजा सभी युद्धोंमें अपनी शक्तिसे विजय प्राप्त करता है।

११८. यस्मिन् राजनि ब्रह्मा पूर्वः एति, स इत् सुधितः स्वे ओकसि क्षेति- (५१९) जिस राजाके राज्यमें ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सत्कृत होकर सबसे आगे रहता है, वही राजा अच्छी तरहसे तृप्त होकर अपने घरमें सुखसे रहता है।

११९. तस्मै इळा विश्वदानीं पिन्वते- (५१९) उसके राज्यकी भूमि प्रतिदिन पुष्ट होती रहती है।

१२०. तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते - (५१९) उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुक जाती हैं।

१२१. यः राजा अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति, तं देवाः अवन्ति- (५२०) जो राजा रक्षाके अभिलाषी ब्राह्मणको धन आदि देकर रक्षा करता है, उस राजाकी रक्षा देवगण करते हैं।

१२२. सः अप्रतीतः प्रति जन्यानि सजन्या धनानि सं जयति- (५२०) वह राजा कभी भी पराङ्मुख न होता हुआ शत्रुओंके और अपनोंके धनोंको जीतता है।

१२३. य इमे द्यावापृथिवी जजान सः इत् सुअपाः भुवनेषु आस- (५६६) जिस परमात्माने इस द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, वही उत्तम कर्म करनेवाला परमात्मा इन दोनों लोकोंमें व्याप्त है।

पंचम मण्डल

१. सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात्- (२) उत्तम मनवाला मनुष्य हमेशा उत्तम होता है ।

२. महान् देवः तमसः निरमोचि- (२) वही मनुष्य महान् देव बनकर अज्ञानान्धकारसे छूट जाता है।

३. अस्मै अमृतं ददानः अनिन्द्राः मां किं कृणवन्- (१५) इस अग्निको मैंने अमृततुल्य हवि प्रदान की है, अतः इन्द्रको न माननेवाले मेरा क्या करेंगे ? अग्निके उपासकका नास्तिक जन कुछ भी नहीं बिगाड सकते ।

४. सुदृशः श्रिया पुरु दधानाः अमृतं सपन्त- (२८) उत्तम तेजस्वी लोग समृद्धिके कारण और अधिक तेज प्राप्त कर अमृत पाते हैं ।

५. त्वत् पूर्वः यजीयान् न, परः काव्यैः नः- (२९) इस अग्निके पहले न कोई स्तुतिके योग्य था और न आगे होगा ।

६. यस्या अतिथिः भवासि स मर्तान् वनवत्- (२९) जो इस अग्निकी अतिथिके समान पूजा करता है, वह पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होता है ।

७. वयं देवेषु सुकृतः स्याम- (४४) हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों ।

८. त्रिवरूथेन शर्मणा नः पाहि- (४४) तीन मंजिले घरसे हमारी रक्षा कर ।

९. ते सखायः अशिवाः सन्तः शिवासः अभूवन्- (११०) इस अग्निके मित्र भी जब अग्निकी उपासना करना भूल गए, तब दुःखी और दुर्भाग्यशाली हो गए, पर फिर अग्निकी उपासनासे उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

१०. ऋजूयते वृजनानि ब्रुवन्तः स्वयं अधूर्षत- (११०) जो सत्याचरणी सज्जनोंसे दुष्ट वचन बोलते हैं, उन वचनोंसे वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं ।

११. पूर्व्याय दुस्तरं वयः अंहोयुवः वि तन्वते- (१२६) जो इस श्रेष्ठ अग्निके लिए अन्यों द्वारा कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्नको प्रदान करता है, वह पापसे छूटकर वृद्धिको प्राप्त होता है ।

१२. येषु चित्रा दीधितिः- (१४२) यज्ञशील मनुष्योंमें अनेक तरहके तेज होते हैं ।

१३. आसन् उक्था पान्ति- (१४२) ब्राह्मण मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं ।

१४. वृद्धाः उग्रस्य शवसः न ईरयन्ति, ह्वरः सश्चिरे- (१५०) जो अग्निकी कृपासे समृद्ध होकर भी इसके क्रोधसे डरते नहीं हैं, वे नष्ट हो जाते हैं ।

१५. सहन्तं रयिं द्युम्नस्य आ भर- (१६१) शत्रुको पराजित करनेवाला धन तेजस्वी मनुष्यको मिले ।

१६. अजरं सूर्यं इव क्षत्रं सुवीर्यम्- (१९२) क्षीण न होनेवाले सूर्यके समान, तेजस्वी और निर्बलोंका रक्षक बल हो ।

१७. इन्द्रः ऋषिः- (१९९) इन्द्र सब तरहके ज्ञानको देखता है ।

१८. जनुषा वीर्येण एता भूरि विश्वा चकृवान्- (२१२) इन्द्रने जन्मते ही अपने बलसे इस सारे विश्वको बनाया ।

१९. या चित् कृणवः तस्याः तविष्याः वर्ता न अस्ति- (२१२) यह इन्द्र जिन पराक्रमोंको करता है, उनका निवारण करनेवाला होई नहीं है ।

२०. बुबुधानाः नरः इन्द्रं अशेम- (२१५) ज्ञानवान् मनुष्य ही इन्द्रको प्राप्त करते हैं ।

२१. ते या कृत्यानि, वयं ब्रवाम- (२१६) जो तेरे कर्म हैं, उनका वर्णन हम करते हैं ।

२२. जातः मनः स्थिरं चकृषे- (२१७) उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपने मनको स्थिर किया ।

२३. युधये एकः चित् भूयसः वेषीत्- (२१७) युद्धमें अकेले होते हुए भी इन्द्रने अनेकों शत्रुओंको नष्ट किया ।

२४. त्वत् वस्यः अन्यत् नहि अस्ति- (२३०) इस इन्द्रसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ।

२५. जने सुमतिं- (२५४) मनुष्यमें इन्द्र उत्तम बुद्धि करता है ।

२६. वाजसातौ समर्यः चिकेत- (२५४) युद्धमें उपयोगी वीरको जानता है ।

२७. यत् अस्मत् अयुक्ता असन् ते अब्रह्माता ते न- (२५६) जो हमसे पृथक् हुए हैं, वे अपने अज्ञानके कारण तेरे भक्त नहीं रहे है ।

२८. समत्सु दासस्य नामः चित् ततक्षे- (२५७) युद्धोंमें दासका नाम भी हटा दिया ।

२९. यः अस्मै सोमं सुनोति द्युमान् भवति- (२६६) जो इस इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, वह तेजस्वी होता है ।

३०. यः कवासखः ततनुष्टिं तनूशुभ्रं अप ऊहति- (२६६) जो दुष्टोंका मित्र है उस ढोंगी और स्वार्थीका इन्द्र तिरस्कार करता है ।

३१. पंचभिः दशभिः आरभं न वष्टि- (२६८) पांच और दस शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके लिए भी वह दूसरेकी सहायता नहीं चाहता ।

३२. भीषणः आर्यः दासं यथावशं नयति- (२६९) अति पराक्रमी आर्यवीर दासको अपने वशमें करता है ।

३३. दाशुषे सूनरं वसु भजति- (२७०) इन्द्र दानशीलको उत्तम धन देता है ।

३४. यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्, विश्वे पुरुजनः दुर्गे आध्रियते- (२७०) जो इसके सामर्थ्यको क्रोधित करता है, उन सब शत्रुजनोंको यह इन्द्र किलेमें कैद करके रखता है ।

३५. पणेः भोजनं मुषे अजति- (२७०) दुष्टोंका धन लूटनेके लिए यह वीर आगे बढता है ।

३६. यत् इन्द्रः सुधनौ विश्वशर्धसौ जनौ अवेत्, अन्यं युजं अकृत्- (२७१) जब इन्द्र धनी और बली ऐसे दो मानवोंको जानता है, तब वह उनमेंसे योग्यको ही अपना मित्र बनाता है ।

३७. तस्मिन् क्षत्रं त्वेषं अस्तु- (२७२) मनुष्यमें क्षात्रतेज और बल हो ।

३८. चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुस्तरं अस्मभ्यं अवसे आ भर- (२७३) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले, उत्तम तथा युद्धोंमें शत्रुको दुस्तर होनेवाले सामर्थ्यको हमारेमें भरपूर स्थापित करो ।

३९. मे मनः अमतेः भिया वेपते- (२८३) मेरा मन निर्बुद्धिताके कारण भयसे कांपता है ।

४०. यस्मिन् इन्द्रः सोमं पिबति, स राजा न व्यथते- (२९०) जिस राजाके राज्यमें इन्द्र सोम पीता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता ।

४१. सत्वनैः अजति- (२९०) वह राजा बलशाली होकर शत्रुओं पर आक्रमण करता है ।

४२. सुभगः नाम पुष्यन् क्षितीः क्षेति- (२९०) अपने यशसे अपना नाम बढाता हुआ प्रजाका कल्याण करता है ।

४३. योगे क्षेमे अभि भवाति- (२९१) वह मनुष्य अप्राप्त धनको प्राप्त करने और प्राप्त धनके रक्षणमें समर्थ होता है ।

४४. सूर्ये अग्नौ प्रियः भवाति- (२९१) वह सूर्य और अग्निके लिए प्रिय होता है ।

४५. अस्याः तन्वः शिवां धार्सि- (३२७) देवगण मेरे इस शरीरकी पुष्टिके लिए कल्याणकारी अन्नको प्रदान करें ।

४६. निर्ऋतिः मे जरां जग्रसीत- (३२७) बुरी अवस्था मेरे बुढापेको ही निगले ।

४७. सूरिभिः देवहितं ब्रह्मणा यज्ञियानां देवानां सुमत्या सं- (३३४) विद्वानों और देवोंके लिए कल्याणकारक ज्ञान तथा पूज्य देवोंकी बुद्धिसे संयुक्त कर ।

४८. बृहस्पते ! तव ऊतिभिः सचमानाः अरिष्टा मघवानाः सुवीराः- (३३८) हे बृहस्पते ! तेरी रक्षासे युक्त हुए मनुष्य रोगादिसे रहित, ऐश्वर्यवान् और उत्तम पुत्र पौत्रवाले होते हैं ।

४९. अश्वदाः, गोदाः, वस्त्रदाः सुमनाः रायः- (३३८) अश्व, गाय और वस्त्र दानमें देनेवाले मनुष्य उत्तम भाग्यशाली और धनवान् होते हैं ।

५०. उक्थैः नः अपृणन्तः भुंजते एषां वित्तं विसर्माणं कृणुहि- (३३९) जो मनुष्य प्रार्थना करने पर भी हमें न देकर स्वयं ही भोगते हैं, उनके धनको नष्ट हो जानेवाला कर ।

५१. अपव्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्यात् यावयस्व- (३३९) दुष्ट कर्म करनेवाले दुष्ट मार्गसे संसारमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा ईश्वरसे द्वेष करनेवाले नास्तिकोंको सूर्यसे दूर रख ।

५२. यः देववीतौ रक्षसः ओहते, तं नियात- (३४०) जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, उसे मार डालो।

५३. यः वः शशमानस्य निन्दात्, सिच्चिदानः कामान् तुच्छ्यान् करते- (३४०) जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करनेवाले की निन्दा करता है, वह अपनी कामनाओंको तुच्छ करता है ।

५४. सु-इषुः सु-धन्वा- (३४१) वह रुद्रदेव उत्तम बाण और धनुषसे युक्त है ।

५५. विश्वस्य भेषजस्य क्षयति- (३४१) यह रुद्र सभी तरहकी ओषधियोंका स्थान है ।

५६. महे सौमनसाय असुरं देवं यक्ष्व- (३४१) अपने महान् मनको उत्तम बनानेके लिए बलवान् देवकी पूजा करनी चाहिए ।

५७. माता पृथिवी नः दुर्मतौ मा धात्- (३४६) माता पृथिवी हमें दुष्ट बुद्धिमें न रखे ।

५८. मायाभिः परः नाम ऋते आस- (३६७) जो छल कपट आदि असत्य कामोंसे दूर रहते हैं, उन्हें सत्यलोककी प्राप्ति होती है ।

५९. धारवाकेषु शोभते- (३७०) यह अग्नि विद्याको धारण करनेवालोंमें अधिक शोभित होता है ।

६०. याहश्मिन् धायि, तं अपस्यया विदत्- (३७३) मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है, उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर ही लेता है।

६१. यः स्वयं वहते स अरं करत्- (३७३) जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, वही अपने कामको पूरी तरह सिद्ध करता है ।

६२. आसां अग्निमा समुद्रं अवतस्थे- (३७४) इन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह समुद्रकी सीमातक जाकर प्रसिद्ध होती है ।

६३. यस्मिन् आयता सवनं न रिष्यति- (३७४) जिन यज्ञोंमें इन ऋचाओंका विस्तार किया जाता है, उन यज्ञोंमें किसी तरहकी हिंसा नहीं होती ।

६४. यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते, अत्र कृवणस्य हार्दि न रेजते- (३७४) जहां पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि विद्यमान होती है, वहां उत्तम कर्म करनेवालेके हृदयकी अभिलाषायें कभी व्यर्थ नहीं जाती ।

६५. यः ईं गणं भजते, सः वरा उभा प्रति एति- (३७७) जो मनुष्य इस समुदायकी उपासना करता है, वह अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनोंमें प्रगति करता है ।

६६. यजमानस्य सुतंभरः सत्पतिः- (३७८) यह यज्ञ यजमानके पुत्रका भरणपोषण करनेवाला और सज्जनोंका पालक तथा स्वामी है ।

६७. विश्वासां धियां ऊधः- (३७८) यह यज्ञ सभी तरहके कर्मोंका स्रोत है ।

६८. धेनुः रसवत् पयः भरत्- (३७८) गाय इसी यज्ञके लिए सारयुक्त दूध देती है ।

६९. अनुब्रुवाणः अधि एति, न स्वपन्- (३७८) स्तुति करनेवाला ही इस दूधको प्राप्त कर सकता है, सोनेवाला नहीं ।

७०. यः जागार, तं ऋचः कामयन्ते- (३७९) जो जागता रहता है, उसे ही ऋचायें अर्थात् ज्ञान चाहते हैं ।

७१. यः जागार, तं सामानि यन्ति- (३७९) जो सदा जागता रहता है, उसीके पास साम भी जाते हैं ।

७२. यः जागार, तं अयं सोमः आह, तव अस्मि, सख्ये नि ओकाः- (३७९) जो जागता रहता है, उससे यह सोम कहता है कि मैं तेरा हूँ और तेरी मित्रतामें ही मैं रहूंगा।

७३. सरमा ऋतस्य पथा गाः विदद्- (३८८) प्रगति करनेवाली स्त्री ऋत अर्थात् सच्चे और नैतिक मार्गसे चलने पर ही लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है ।

७४. आसां उत्सः परमे सधस्थे- (३८८) अंगिरा ऋषियोंने इन गायोंके दूधको सर्वश्रेष्ठ स्थानमें स्थापित किया।

७५. अतः अतिथीन्, नॄन् पत्नीः दशस्यत- (४१९) यज्ञमें अतिथियोंकी, विद्वानोंकी और उनकी पत्नियोंकी सेवा करनी चाहिए ।

७६. सूर्याचन्द्रमसौ इव स्वस्ति पन्थां अनुचरेम- (४३६) सूर्य और चन्द्रमाके समान हम कल्याणके मार्ग पर चलें ।

७७. पुन: ददता अध्नता जानता संगमेमहि- (४३६) बार बार दान देते हुए, एक दूसरेकी हिंसा न करते हुए तथा ज्ञानसे युक्त होकर हम सभी संगठित होकर चलें ।

७८. उक्षण: शर्वरी अति स्कन्दन्ति- (४३९) बलवान् वीर दिन या रातका तनिक भी ख्याल न करके अपना आक्रमण बराबर जारी रखते हैं ।

७९. उपमास: रभिष्ठा: पृश्ने: पुत्रा स्वया मत्या सं मिमिक्षु:- (५१६) ये मातृभूमिके सुपुत्र वीर समानतापूर्वक बर्ताव करते हैं । अविषमदशामें रहते हैं और अपने कर्तव्यको ऐक्यसे निभाते हैं ।

८०. अज्येष्ठास: अकनिष्ठास: एते भ्रातर:- (५३२) जिनमें न कोई बडा है और न कोई छोटा है, ऐसे ये सभी वीर भाईके समान प्रीतिपूर्वक रहते हैं ।

८१. सौभगाय वावृधु:- (५३२) ये मरुत् सौभाग्यकी प्राप्तिके लिए एक दूसरेको बढाते हैं ।

८२. एषां पिता रुद्र: युवा सु अपा:- (५३२) इन मरुतोंका पालनकर्ता रुद्र तरुण और उत्तम कर्म करनेवाला है ।

८३. अदेवत्रात् अराधस: पुंस: वस्यसी शशीयसी भवति- (५४१) देवको न माननेवाले और धनहीन पुरुषकी अपेक्षा धनयुक्त स्त्री अधिक प्रशंसनीय होती है ।

८४. या जसुरिं तृष्यन्तं कामिनं वि. जानाति, देवत्रा मन: कृणुते- (५४२) जो स्त्री दु:खी मनुष्यके प्यासे और धनके अभिलाषी मनुष्यके मनके भावोंको जानती है, तथा जो देवपूजामें अपने मनको लगाती है, वही स्त्री प्रशंसाके योग्य होती है ।

८५. विपश्चिता धर्मणा व्रता रक्षेथे- (५७०) बुद्धिमान् मनुष्य धर्मपूर्वक अपने व्रतनियमोंका पालन करते हैं ।

८६. ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजते- (५७०) मनुष्य अपने सत्य नियमोंके कारण ही सारे संसारमें सुशोभित होता है ।

८७. यत् गतिं अश्यां मित्रस्य पथा यायां- (५७३) जब भी मैं गति करूं, तब मित्रके मार्गसे ही जाऊं ।

८८. मित्र: अंह: चिदपि उरुक्षयाय गातुं वनते- (५८१) यह मित्रदेव पापीको भी महान् संरक्षणका उपाय बताता है ।

८९. प्रतूर्वत: विधत: अस्य मित्रस्य सुमति: अस्ति- (५८१) हिंसा करनेवाले दुष्ट उपासकके बारेमें भी इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है ।

९०. वरुणशेषस: अनेहस: सत्रा- (५८२) वरुण देवके हम सभी पुत्र पापसे रहित होकर संगठित होकर रहें ।

९१. इमं जनं यतथ: सं नयथ:- (५८३) ये देव जिस मनुष्यको प्रयत्नशील बनाते हैं, उसे उत्तम मार्गसे ले जाते हैं ।

९२. क्षत्रं अविहुतं असुर्यं- (५८५) उन देवोंका बल सज्जनोंके लिए कुटिलतारहित पर दुष्टोंके लिए विनाशक है ।

९३. व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये यतेमहि- (५८९) अत्यन्त विस्तृत और बहुतों द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें प्रयत्न करते रहें ।

९४. आदित्या दिव्या रोचनस्य पार्थिवस्य रजस: धर्तारा- (६०३) रसका आदान-प्रदान करनेवाले तेजस्वी मित्रावरुण द्यु तथा पृथिवीके लोकोंको धारण करनेवाले हैं ।

९५. वां ध्रुवाणि व्रतानि अमृता: देवा: न मिनन्ति- (६०३) इन दोनोंके अटल नियमोंको देव भी नहीं तोड सकते ।

९६. वां अव: पुरूरुणा चित्- (६०४) इन मित्रावरुणकी कृपा निश्चयसे अपरम्पार है ।

९७. वां सुमतिं वंसि- (६०४) मैं इन दोनों देवोंकी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करूं ।

९८. रुद्रा, वयं ते स्याम- (६०५) हे शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण ! हम तेरे बनकर रहें ।

९९. कस्य यक्षं न भुजेम, तनूभि: आ- (६०७) हम किसी दूसरेके अन्नका उपभोग न करें, अपने शरीरके परिश्रमसे कमाये गए अन्नको ही भोगें ।

१००. धर्मणा व्रतेन ध्रुवक्षेमः- (६१२) धर्मपूर्वक कार्य करनेसे अटल और शाश्वत सुख और कल्याण प्राप्त होता है ।

१०१. संस्कृतं न प्र मिमीतः- (६४४) ज्ञानी और सुसंस्कृत मनुष्यको ये अश्विदेव कभी दुःख नहीं देते ।

१०२. ओकः प्रदिवि स्थानं- (६४६) घर सदा एक उत्तम स्थानके रूपमें रहे ।

१०३. देवस्य महिमानं प्रयाणं अन्ये देवाः अनु ययुः, ओजसा- (६८०) इस सवितादेवके महिमापूर्ण मार्गका दूसरे देव अनुसरण करते हैं और तेजसे युक्त होते हैं ।

१०४. धर्मभिः मित्रः भवति- (६८१) मनुष्य अपने उत्तम गुणोंके कारण ही लोगोंका मित्र बनता है ।

१०५. एकः इत् प्रसवस्य ईशिषे- (६८२) हे सवितादेव ! तू अकेला ही सभी उत्पन्न हुए जगत्का स्वामी और शासक है ।

१०६. देव सवितः ! विश्वानि दुरितानि परा सुव- (६८७) हे सवितादेव ! सभी दुर्गुणोंको हमसे दूर करो।

१०७. यत् भद्रं तत् नः आ सुव- (६८७) जो कल्याणकारी हो, वह हमें प्रदान करो ।

१०८. सवितुः सवे अदितये अनागसः- (६८८) सवितादेवकी आज्ञाके रहकर हम अपनी मातृभूमिके प्रति निरपराधी रहें ।

१०९. उभे अहनी अ-प्रयुच्छन् सु-आधीः, पुरः एति- (६९०) जो मनुष्य दिन और रात अर्थात् हमेशा प्रमाद न करते हुए उत्तम कर्म करता है, वही आगे बढता है ।

११०. अर्यस्यः मित्रः सखायः सदं भ्रातरः अरणः- (७११) नेता श्रेष्ठ, मित्रके समान हितकारी तथा हमेशा भाईके समान प्रेम करनेवाला हो ।

१११. सीं आगः चकृमः तत् शिश्रथः- (७११) ऐसे नेताके प्रति यदि हम कोई अपराध करें, तो उस पापसे हम मुक्त हों ।

११२ यत् रिरिपुः, यत् सत्यं यत् न विद्म, ता सर्वा विष्य- (७१२) जो हम पर मिथ्या दोषारोपण किया गया हो, अथवा जो अपराध हमने सचमुच किया हो, अथवा जो अपराध हमने अनजानेमें कर दिया हो, उससे हमें मुक्त कर ।

११३. वाजेषु यं अवथः, स दृळ्हा द्युम्ना चित् भेदति- (७१३) संग्रामोंमें इन्द्र और अग्नि जिसकी रक्षा करते हैं, वह मनुष्य दृढ और तेजस्वी शत्रुको भी छिन्न भिन्न कर देता है ।

ॐ

ऋग्वेद का सुबोध-भाष्य

चतुर्थ मण्डल

इस मण्डलमें ऋषि, देवता, सूक्त और मंत्रोंकी संख्या इस तरह है-

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त संख्या
वामदेवो गौतमः	५५
त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः	१
पुरुमीळहाजमीळहौ सौहोत्रौ	२
	५८

ऋषिवार मंत्रसंख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
वामदेवो गौतमः	५६२
त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः	१०
पुरुमीळहाजमीळहौ सौहोत्रौ	१४
इन्द्रः	२
अदिति	१
	५८९

देवतावार मंत्रसंख्या

	देवता	मंत्रसंख्या
१	इन्द्रः	१९३
२	अग्निः	१२६
३	ऋभवः	४८
४	अश्विनौ	२३
५	दधिक्रा	१९
६	उषाः	१८
७	इन्द्रावरुणौ	१५
८	रक्षोहाऽग्निः	१५
९	वैश्वानरोऽग्निः	१५
१०	सविता	१३
११	अग्निः सूर्यो वाऽऽपो वा	११
१२	विश्वेदेवाः	१०
१३	इन्द्रवायू	९
१४	बृहस्पतिः	९
१५	इन्द्राबृहस्पती	८
१६	द्यावापृथिवी	८
१७	श्येनः	८
१८	वायुः	७
१९	त्रसदस्युः	६
२०	वामदेवः	५
२१	अग्नीवरुणौ	४
२२	इन्द्रोषसौ	३
२३	ऋतं	३
२४	क्षेत्रपतिः	३
२५	इन्द्राश्वौ	२
२६	शुनासीरौ	२
२७	सीता	२
२८	सोमकः साहदेव्यः	२
२९	शुनः	१
३०	सूर्यः	१

इस मण्डलमें भी अनेक तरहका ज्ञान ऋषियोंने दिया है।

अग्निकी महिमा

१. वृषभस्य विपन्या प्रथमं शर्धः आर्त- (१२) उस बलवान् अग्निकी स्तुतिसे मनुष्य सर्वोत्तम बल प्राप्त करता है। इस शरीरमें चेतनता जो दीख रही है, वह इसी अग्निका परिणाम है। जब तक शरीरमें उष्णता रहती है, तभी तक इस शरीरका पोषण होता है। जिस मनुष्य के शरीरमें यह अग्नि बलवान् रहता है, उसका शरीर पुष्ट होता है।

२ यः अमृताय दाशत् दुवः कृणवते, राया न वि योषत् अघायोः अंहः न परिवरत्- (२९) जो इस अमर अग्निको हवि देता और उसकी सेवा करता है, वह कभी भी निर्धन और पापी नहीं होता।

३ त्वं यस्य मर्त्यस्य अध्वरं जुजोष स प्रीता इत् असत्- (३०) वह अग्नि जिस मनुष्यके यज्ञका सेवन करता है, वह हमेशा आनन्दमें ही रहता है।

४ ते अकर्म सु अपसः अभूम- (३९) हमने इस अग्निकी सेवा की, अतः हम उत्तम कर्म करनेवाले हुए।

५ यः ब्रह्मणे गातुं ऐरत् सः सुमतिं जानाति- (६२) जो इस महान् अग्निकी स्तुति करता है, वह इस देवकी कृपाको प्राप्त करता है।

६ विश्वानि दिनानि सु- (६२) उसके सभी दिन उत्तम होते हैं।

जो मनुष्य इस अग्निमें यज्ञ करता है, उसे उत्तम आहुतियां देता है, वह सभी तरहसे स्वस्थ रहता है। यज्ञ करनेसे आसपासका वातावरण पवित्र होता है और उस पवित्र वातावरण के कारण स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है। यज्ञको सबसे श्रेष्ठ कर्म बताया गया है (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म)। यज्ञका कार्य जगहित साधक है। उसमें अग्निकी स्तुति की जाती है और उस स्तुति के कारण इस अग्निकी कृपा उस साधक पर होती है। उसकी कृपा होने पर सभी तरहका ऐश्वर्य प्राप्त होता है। और

७ अर्यः दुरः वि द्यौत्- (६२) उस श्रेष्ठ पुरुषका घर धनके कारण चमकने लगता है।

८ य हविषा नित्येन पिप्रीषति, स इत् सुभगः सुदानुः- (६६) जो हविके द्वारा प्रतिदिन इस अग्निको तृप्त करना चाहता हे, वह उत्तम भाग्यशाली होकर उत्तम रीतिसे दानशील और उदार हृदयवाला होता है।

वेदोंमें अग्निको अतिथि पदसे सम्बोधित किया गया है, क्योंकि जिस तरह अतिथि पूज्य है, उसी तरह अग्नि भी पूज्य है। जिस प्रकार अतिथि विद्वान् होकर अन्योंको भी उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है, उसी तरह यह अग्नि स्वयं सर्वज्ञाता होकर लोगोंको उत्तम मार्गमें जानेकी प्रेरणा देता है। अतः

९ यः ते आतिथ्यं आनुषक् जुजोषत्, तस्य त्राता सखा भवसि- हे अग्ने! जो तेरा अतिथिके समान सत्कार करता है, उसका तू रक्षक और मित्र होता है। तथा

१० शिवः देवः यं स्वस्तिः, अमतिं अंहः विश्वां दुर्मतिं आरे- (१३८) कल्याणकारी यह देव जिसका कल्याण करता है, उससे मूर्खता पाप और दुष्टबुद्धिको दूर करता है।

दुष्टबुद्धि और पापसे दूर होकर मनुष्य आगे बढता जाता है और एक उत्तम नेता होता है।

उत्तम नेता

१ मन्द्रः मधुवचाः अग्निः परि एति- (९१) आनन्द देनेवाला और मधुर भाषण करनेवाला तेजस्वी नेता अपने यशसे चारों ओर जाता है।

२ वृषा उग्रः नृतमः शचीवान् बाहुभ्यां वृषन्धि श्रिये अस्यत्- (२५४) बलवान्, उग्र, श्रेष्ठनेता, बलवान् वीर अपनी भुजाओंसे वज्रको यशके लिए शत्रु पर फेंकता है।

उत्तम नेताका यह कर्तव्य है कि वह सबसे मधुर भाषण करनेवाला हो, तेजस्वी हो, राष्ट्रके शत्रुओंका विनाशक हो, तथा अपने यशके कारण चारों ओर प्रसिद्ध हो। दुष्टोंको मारकर सज्जनोंकी रक्षा करना उत्तम नेताका काम है।

सज्जनोंके लिए वेदमें "आर्य" शब्द है। आर्यकी उत्पत्ति "ऋ-गतौ" धातुसे हुई है, जिसका अर्थ है गमन करना, उन्नति करना। अतः आर्यका अर्थ है आगे जानेवाला, उन्नति करनेवाला। उत्तम नेता ऐसे आर्योंकी रक्षा करके उन्हें अपने राष्ट्रमें बसाये। राष्ट्रमें वस्ती आर्योंकी ही हो, यह

देखना उत्तम नेताका कार्य है । यदि दुष्टोंके पास भूमि हो, तो उनसे छीनकर वह भूमि आर्योंको दे और राष्ट्रभरमें घोषणा कर दे कि-

३ अहं आर्याय भूमिं अददां- (२१५) मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंको ही भूमि दी है । वह यह घोषणा कर दे कि इस राष्ट्रमें केवल वे ही रह सकेंगे कि जो आर्य हैं । अनार्योंके लिए इस राष्ट्रमें कोई स्थान नहीं है । इस प्रकार एक उत्तम नेता अपने राष्ट्रका संचालन करे ।

यज्ञका महत्त्व

१ यज्ञबन्धुः मनुष्यः चेतयत्- (९) यज्ञ अर्थात् संगठनके कार्योंसे प्रेम करनेवाला ही मनुष्योंको ज्ञान दे सकता है ।

२ यजीयान् ऊर्ध्वः तिष्ठति- (८७) यज्ञ करनेवाला सदा उन्नत रहता है ।

३ वेधसां मनीषा प्र तिरति- (८७) यज्ञसे बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि बढती है ।

४ बृहतः क्रतोः भद्रस्य दक्षस्य- (१९६) महान् यज्ञसे कल्याणकारी बलकी प्राप्ति होती है ।

यज्ञका अर्थ है -देवपूजा, संगतिकरण और दान । देव-पूजासे ज्ञान बढता है और उस ज्ञानसे मनुष्य उत्तम होता है । देवपूजा, संगतिकरण और दानात्मक यज्ञ जो करता है, वह सदा उन्नत होता रहता है । वह सबसे श्रेष्ठ होता है । यज्ञानुष्ठानसे मनुष्योंकी बुद्धि बढती है और वे बुद्धिमान् होते हैं । जब मनुष्य बुद्धिको प्राप्त कर लेता है, तब वह इस महान् यज्ञके कारण कल्याणकारी बल भी प्राप्त करता है । यज्ञका एक अर्थ त्याग भी है । मनुष्य हरदम अनजाने ही यह त्यागरूप यज्ञ किया ही करता है । मनुष्यके लिए यह त्याग अनिवार्य है । यह जरूरी नहीं कि यह त्याग शिक्षित मनुष्य ही करें, अपितु शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके मनुष्य करते हैं । यथा

पुत्रोंके लिए सुखोंका त्याग

१ उभयासः नरः तोकस्य तनयस्य सातौ त्यागं अग्मन्- (२७७) शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके लोग अपने पुत्रपौत्रोंके पोषणके लिए अपने सुखोंका त्याग करते हैं । अपने पुत्र पुत्रियोंका पालन पोषण करनेके लिए शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके मनुष्य अपने सुखोंका त्याग करते हैं । हर पिताकी यही इच्छा रहती है कि वह चाहे कैसा ही रहे, पर उसकी सन्तान अच्छा खाये, अच्छा पीये, अच्छा पहने । उसे सन्तानके सुखके आगे अपने सुखकी चिन्ता नहीं रहती । सन्तानको सुख देने के बारेमें सभी समान हैं । यह त्यागरूप यज्ञ अनजाने ही सभी शिक्षित अशिक्षित कर रहे हैं । यह त्यागरूप कर्म ही वास्तविक स्वर्गसुख है।

स्वर्गसुखकी प्राप्ति

१ वेपसा गृणते खं- (१३४) अपने उत्तम कर्मोंसे परमात्माकी उपासना करनेवालेको स्वर्ग सुख मिलता है । अनजाने ही किए गए त्यागसे जब पिताको इतना सुख मिलता है, तब ज्ञानपूर्वक उत्तम कर्मों द्वारा किए गए त्यागयज्ञसे कितना सुख मिलेगा, यह सहजगम्य है । त्यागपूर्वक परमात्माकी उपासना जब की जाती है, तभी स्वर्गसुखकी प्राप्ति होती है । इस मंत्रभागसे स्पष्ट होता है कि स्वर्ग कहीं अन्यत्र नहीं है, जैसी कि कल्पना की जाती है । स्वर्ग तो इसी पृथ्वी पर है । यदि उत्तम कर्म किए जाएं, यज्ञ किए जाएं, परमात्माकी उपासना की जाए, तो इसी पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना हो सकती है । पुराणोंमें ऐसे स्वर्गका राजा इन्द्र बताया गया है । इसका स्थान बहुत ऊंचा है, अतः वेदोंमें भी इसकी बहुत महिमा गाई गई है ।

इन्द्रकी महिमा

१ त्वं महान् - (१८६) हे इन्द्र ! तू महान् है।

२ कृष्टीनां राजा इन्द्रः- (१९०) प्रजाओंका राजा इन्द्र है । वह इन्द्र सभी तरहकी प्रजाओंका राजा है । परमात्मा इन्द्र है क्योंकि वह उत्पन्न हुए संसारका स्वामी है । उसीके संकेतसे सारा संसार चल रहा है । इन्द्र इतना बलवान् है कि-

१ एकः भूम च्यावयति- (१९०) वह अकेला ही बहुतसे शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट कर देता है ।

२ यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते, विश्वं एजत् दृळ्हं अस्मात् भयत्- (१९५) जब इन्द्र वास्तवमें क्रोध करता है, तब सारा जंगम और स्थावर जगत् इससे डरता है ।

इतना वीर यह इन्द्र है । परमात्मा सर्वोत्तम बलशाली

है, उसकी शक्तिके आगे कोई टिक नहीं सकता। जब यह क्रोध करता है, तब उसके क्रोधसे सारा विश्व कांपने लगता है।

३ अस्य रायः विभक्ताः, वस्वः संभरः - (१९६) यह इन्द्र अपने धनको बांट देता है, फिर भी इसके पास भरपूर धन रहता है।

४ अक्षियन्त क्षियन्तं कृणोति- (१९८) वह इन्द्र आश्रयरहितको आश्रय प्रदान करता है।

परमात्मा सबसे बडा आश्रयदाता है। उसके जैसा आश्रय कहीं भी नहीं मिल सकता। क्योंकि इसकी शरणमें जो जाता है, वह अजेय हो जाता है।

५ अस्य शर्मन् अस्य प्रियः न किः देवाः वारयन्ते, न मर्ताः- (२०४) इस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले इसके मित्रको न देव मार सकते हैं और न मनुष्य।

इसकी शरणमें जो जाता है, वह इस ऐश्वर्यवान् परमात्माकी कृपा प्राप्त करता है।

६ जनित्वा जातेषु अस्य प्रतिमानं न हि- (२१०) उत्पन्न होनेवालों और उत्पन्न हुए हुओंमें इस इन्द्रके समान कोई नहीं है।

७ जनुषा अस्य वर्ता न अस्ति- (२३७) जन्मसे ही इस इन्द्रका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

यह इन्द्र जब उत्पन्न हुआ, तभी ये सारे लोक कांपने लग गए थे। इसका बल इतना महान् था कि इसके बलके आगे कोई टिक नहीं पाता था। तबसे आजतक कोई ऐसा नहीं निकला कि जो इस इन्द्रका नाश कर सके। इसी लिए-

८ महतः ता महानि विश्वेषु इते सवनेषु प्रवाच्या- (२५७) इस महान् इन्द्रके वे महान् कर्म सभी उत्तम उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं। क्योंकि-

९ ते ता विश्वा सत्या- (२५८) इन्द्रके वे सभी कर्म सत्य हैं। इन्द पराक्रम करता है, इसीलिए उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, पर जो पराक्रम नहीं करते, वे सदा दुःख उठाते हैं-

१ अनायुधासः असता सचन्तां- (८५) शस्त्र न धारण करनेवाले पराक्रमहीन मनुष्य हमेशा दुःखी ही रहते हैं। पराक्रम करना शस्त्रास्त्र धारण करना सुरक्षित और सुखी होनेका उपाय है। जो मनुष्य पराक्रम करता है, वह तेजस्वी होता है। ऐसा ही तेजस्वी और पराक्रमशील व्यक्ति राजा होने योग्य है और अपने कर्तव्य उत्तम रीतिसे निभा सकता है।

राजाके कर्तव्य

१ अदब्धः विशः पायुः- (५१) किसीसे भी न दबनेवाला वीर राजा अपनी प्रजाओंका पालन करनेवाला हो। राजा इसीलिए होता है कि वह प्रजाका पालन करे, प्रजाको पुत्रके समान मानकर उसे सुखी करे। प्रजापालनके कार्यमें यदि उसे शत्रुओंसे भी लडना पडे, तो भी वह शत्रुओंसे लडे और कुशलतासे युद्ध करे।

२ सम्राट् साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः- (२४३) राजा शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला और युद्धमें कुशल हो।

राजा किसी भी हालतमें पीछे न हटे। अपने पराक्रमसे सदा आगे बढता जाए। आगे बढनेवाला राजा ही शत्रुओंका धन प्राप्त कर सकता है।

३ अप्रतीतः प्रति जन्यानि सजन्या धनानि सं जयति- (५२०) कभी पीछे न हटनेवाला राजा शत्रुओंके और अपनोंके धनोंको जीतता है।

आगे बढनेवाला राजा शत्रुओंके धनोंको तो जीतता ही है, पर जब प्रजायें स्वयंको सुरक्षित पाती हैं, तो वह भी प्रेमसे अपना धन राजा को देती हैं। इस प्रकार राजा अपने राष्ट्रको बाह्यरूपसे तो सुरक्षित रखे ही, पर आन्तरिक रूपसे भी प्रजा हर तरहसे सुरक्षित रहे।

४ यः अघशंसः दूरे अन्ति, मा किः आ दधर्षीत्- (५९) जो पाप या दुष्यवचनोंको बोलनेवाला हो, वह चाहे पास हो या दूर हो, इन प्रजाओंको न सताये, राष्ट्रमें सज्जनोंको अधिकता हो, यदि दुष्ट बढ गए, तो देशमें अराजकता हो जाएगी और उस देशमें सज्जनोंका उच्चाटन हो जाएगा। इसलिए राजाको चाहिए कि वह दुष्टोंको दण्ड देकर सज्जनोंकी उत्तम रीतिसे रक्षा करे।

अपने राज्यमें सर्वत्र सुरक्षितता तथा सुख स्थापनाके लिए राजा सर्वत्र गुप्तचरोंका जाल बिछा दे।

५ तूर्णितमः स्पशः प्रति वि सृजः- हे राजन्! शीघ्रतासे काम करनेवाला तू अपने चरोंको चारों ओर प्रेरित कर। राज्य में सर्वत्र फैले हुए गुप्तचर राज्यभरका समाचार राजाको ईमानदारीसे देते रहें और राजा तदनुसार यथायोग्य काम करे। राजा के ये गुप्तचर प्रतिनिधि होते है, इन्हीं गुप्तचरोंकी आंखोंसे राजा राज्यका निरीक्षण करता है, इसीलिए राजाको सहस्राक्ष या चारचक्षुष कहा गया है। इस प्रकार राजा अपने राज्यमें सर्वत्र समृद्धि रखे।

कंजूसोंका शत्रु

राज्यमें कंजूस कोई न हो, सभी दानी हों। जो कोई कंजूस हो उसे यथायोग्य दण्ड दिया जाए। कंजूसोंके साथ राजा कभी मैत्री न करे।

१ रेवता पणिना सख्यं न सं वृणीते- (२९२) धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यके साथ वह इन्द्र मित्रता नहीं करता। क्योंकि कंजूसके पास धनका दुरुपयोग ही होता है। वह न स्वयं भोगता है और न दूसरेको भोगने देता है। खजानेकी रक्षा करनेवाले सांपकी तरह कंजूस होता है। सांप उस खजानेको न स्वयं भोगता है, और न किसी दूसरेको भोगने ही देता है। इसीलिए कंजूसके पास पडा हुआ धन सडता रहता है और दुःखी होता है-

२ अस्य नग्नं वेदः खिदति- (२९२) इस कंजूस मनुष्यका धन निरर्थक होनेके कारण खेद करता है। इसके विपरीत-

३ दाशुषे मर्त्याय वृष्टि- (२९५) दानशील मनुष्यके पास धनकी और अधिक वृष्टि होती है।

दासभावकी निन्दा

१ इन्द्र दस्यून् विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः- (३०९) हे इन्द्र! तूने दस्यु अर्थात् दुष्ट या दासमनोवृत्तिवाले मनुष्योंको सबसे नीच बना दिया।

२ दासीः विशः अप्रशस्ताः अकृणोः- (३०९) तू ने दास प्रजाओंको अपयश प्रदान किया।

दास बनकर गुलामगिरी करना बहुत नीच काम है इस वृत्तिसे मन नीच हो जाता है, वह मनुष्य सर्वथा अप्रशंसित होता है, इसलिए मनुष्य कभी दास न बने, सदा स्वतंत्र रहे। राष्ट्र भी जब किसी अन्य राष्ट्रका दास बन जाता है, तो उसकी अधोगति हो जाती है, इसलिए राष्ट्र सदा स्वतंत्र रहकर तेजस्वी हो और उत्तम प्रगति करे। तेजस्वी एवं सदा स्वतंत्र रहनेकी मनोवृत्तिवाले अपनी मातृभूमिकी सदा उन्नति करते है।

मातृभूमिकी गिरावट न कर

१ अमुया मातरं पत्तवे मा कः- (२०७) अपनी कार्य प्रवृत्तिसे अपनी मातृभूमिकी अवनति मत कर। मातृभूमिकी उन्नति या अवनति उस देशके वासियोंके कर्म पर निर्भर करती है। प्रजाओंको हमेशा ऐसा कर्म करने चाहिए कि जिससे मातृभूमिकी उन्नति हो। अपनी मातृभूमिकी जो उन्नति करते हैं, ऐसे वीरोंका सम्मान होना ही चाहिए।

वीरका सम्मान

१ नेमे इन्द्रियं यजन्ते- (२७९) लोग इन्द्रकी शक्तिसे सम्पन्न वीरको सम्मानित करते हैं।

२ वृषभं जुजोष- (२७९) प्रजायें वीरका ही आश्रय लेती हैं।

प्रजायें उसीका सम्मान करती हैं और उसीकी रक्षामें जाती है कि जो वीर होता है और प्रजाओंकी सुरक्षा करता है। वीर इन्द्र जैसा बलशाली हो, तभी वह इन्द्रको प्रिय हो सकता है।

३ इन्द्रे सुकृत् मनायुः सुप्रावीः प्रियः- (२९०) उत्तम कार्य करनेवाला, मननशील और उत्तम रक्षण करनेवाला मनुष्य ही इन्द्रको प्रिय होता है। तथा प्रजायें भी-

४ मनायोः वृषणं शुष्मं दधत्- (२८१) ऐसे मननशील वीरको और अधिक बल प्रदान करती हैं और

५ अदितिः अस्मै उरु शर्म यंसत्- (२९०) ऐसे वीरको बहुत सुख देती हैं।

संगठन

राजा वीर हो, सभी सैनिक वीर हों पर यदि प्रजाओंमें या सैनिकोंमें संगठन न हो तो राजाकी वीरता व्यर्थ ही होती है। इसलिए-

१ उग्राः आशुषाणाः क्षितयः मिथः अर्णसातौ योगे क्रतूयन्ति- (२७८) उग्र और प्रयत्नशील वीर मिलकर युद्धमें यश प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करते हैं।

२ युध्मा विशः अभीके अववृत्रन्त, आत् इत् नेमे इन्द्रयन्ते- (२७८) युद्ध करनेवाले वीर युद्धमें संगठित होते हैं, तब वे अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं ।

इन्द्र भी ऐसे ही वीरोंकी सहायता करता है कि जो स्वयं संगठित होकर प्रयत्न करते हैं । जब ये वीर स्वयं प्रयत्न करके भी सफल होते नहीं दीखते, तब वे इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, तब इन्द्र भी आकर उनकी सहायता करता है ।

तेज प्राप्तिका उपाय

तेज प्राप्तिके अनेक उपाय वेदोंमें बताये गए हैं, उदाहरणार्थ-

१ अरूक्षितं अन्नं रूपः- (१३३) घी आदि चिकने पदार्थोंसे युक्त अन्न खानेवाला रूपवान् होता है । मनुष्य घी, दुग्ध, मक्खन आदि उत्तम पदार्थोंको खानेसे उत्तम तेज प्राप्त कर सकता है । इन पदार्थोंको खानेसे शरीरमें उत्तम रस बनता है, उस रसका परिपाक होकर तेज या ओज बनता है, इसी ओजके कारण मनुष्य रूपवान् होता है । इसके अलावा यज्ञादि साधनोंसे भी तेजकी प्राप्ति होती है ।

२ सस्मिन् अहन् त्रि अन्नं कृणवत् सः द्युम्नैः सु अभिअस्तु- (१३९) जो प्रत्येक दिन इस अग्निको तीन बार हवि देता है, वह अपने तेजोंसे सबको परास्त कर देता है ।

३ यः शश्रमाणः अनिकं सपर्यते स पुष्यन् अमित्रान् ध्नन् रयिं सचते- (१४०) जो परिश्रमपूर्वक इस अग्निके तेजकी सेवा करता है, वह पुष्ट होकर शत्रुओंको मारता है ।

अग्निमें नित्य प्रति हवन करने तथा परमात्माकी उपासना करनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है । परमात्माकी उपासनासे मनोबल और आत्मबल बढता है और उस बलके कारण मनुष्य तेजस्वी होता है । पर जो दुष्ट होते हैं, नास्तिक होते हैं, वे तेजोहीन होते हैं, अतः उनका सदा पराभव होता है ।

१ द्युम्नहूतौ मायावान् अ ब्रह्मा दस्युः अर्त- (१७३) युद्धमें कपटी और अज्ञानी दस्यु नष्ट हो जाते हैं । जो सदा छलकपटका आश्रय लेते हैं ऐसे दुष्टोंका सदा पराभव ही होता है ।

पुरोहितका महत्त्व

वेदोंमें पुरोहितकी महिमा बहुत गाई गई है । पुरोहितका काम राजाको उत्तम सलाह देकर देशको आगे बढाना है । ये पुरोहित राष्ट्रमें सदा जागते अर्थात् सावधान रहें (**राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः**) जिस राष्ट्रमें पुरोहित सदा सावधान रहते हैं, वही राष्ट्र उन्नति कर सकता है । अतः राष्ट्र या राजा के लिए पुरोहित आवश्यक है, उसीकी महिमा इस मंडलमें इस प्रकार गाई गई है-

१ यः बृहस्पतिं वदन्ते सः इत् राजा विश्वा प्रति जन्यानि शुष्मेण वीर्येण अभि तस्थौ- (५१८) जो वेदज्ञाता पुरोहितकी वन्दना करता है, वही राजा सभी युद्धोंमें अपनी शक्तिसे विजय प्राप्त करता है ।

२ यस्मिन् राजनि ब्रह्मा पूर्वः एति, सः इत् सुधितः स्वे ओकसि क्षेति- (५१९) जिस राजाके राज्यमें ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सत्कृत होकर सबसे आगे रहता है, वही राजा अच्छी तरह तृप्त होकर अपने घरमें सुखसे रहता है ।

३ तस्मै इळा विश्वदानी पिन्वते- (५१९) उसके राज्यकी भूमि प्रतिदिन पुष्ट होती रहती है ।

४ तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते- (५१९) उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुक जाती है।

५ यः राजा अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति, तं देवाः अवन्ति- (५२०) जो राजा रक्षाके अभिलाषी ब्राह्मणकी धन आदि देकर रक्षा करता है, उस राजाकी रक्षा देवगण करते हैं ।

जो राजा अपने पुरोहितकी अच्छी तरह वन्दना करता है, उसके राज्यमें सदा खुशहाली रहती है, उसके राजाकी भूमि सदा उपजाऊ बनी रहती है । उसके राज्यकी प्रजाएं हृष्टपुष्ट एवं प्रसन्न तथा समृद्धि सम्पन्न होकर राजा का गुणगान करती हैं और उसका सम्मान करती हैं, तब राजा भी अपना राज्य सुखसे करता है । आपत्ति के समय भी उसकी रक्षा देवगण करते हैं ।

गायका महत्व

देशमें अन्नकी समृद्धि तभी हो सकती है कि जब

उस देशमें पशुओंकी समृद्धि हो, इसीलिए वेद गोधनके पालन एवं उसके महत्त्वपर जोर देता है-

१ देवस्य अध्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं- (६) उत्तम गोपालककी गायका दूध या घी पवित्र और तेज देनेवाला है। गायके सभी पदार्थ पवित्र हैं। दूध, दही, घी, मूत्र, गोबर ये पंच गव्य परम पवित्र माने गए हैं। इसीलिए वैदिकशास्त्रोंमें गायके दानको बहुत महत्वपूर्ण माना गया है-

२ धेनोः मंहना- (६) गायका दान भी श्रेष्ठ होता है।

गायके दूध घृत आदिके भक्षण एवं उपयोगसे बुद्धिका तेज बढता है।

बुद्धिका तेज

१ धीभिः चकृपन्त ज्योतिः विदन्त- (१४) जो बुद्धियों द्वारा अपनेको सामर्थ्ययुक्त बनाते हैं, वे ही ज्योति प्राप्त करते हैं।

२ एषां तत् अन्ये अभितः वि वोचन्- (१४) इनके उस यशका दूसरे लोग सर्वत्र गान करते हैं।

३ ऋतस्य धीतिः वृजिनानि हन्ति- (२७१) उत्तम बुद्धि पापोंको नष्ट करती है।

जिनकी बुद्धि उत्तम होती है, वे तेजस्वी होते हैं और अपने तेजके कारण सर्वत्र यशस्वी होते हैं, सभी उसके यशका गुणगान करते हैं।

ज्ञानका प्रचार

देशकी उन्नतिके लिए शिक्षाका प्रसार अत्यावश्यक है, या कहा जा सकता है कि राष्ट्रोन्नति शिक्षाकी नींव पर ही खडी की जाती है। इसलिए सभी ज्ञानी उत्तम ज्ञानका प्रसार करें।

१ मनीषां महि साम-प्र वोचत्- (७४) ज्ञानियोंके महान् ज्ञानका उपदेश सर्वत्र करे। ज्ञानियोंके ही ज्ञानका सर्वत्र प्रचार हो, दुष्टज्ञानका प्रचार न हो। उत्तम ज्ञान सदा सत्य पर आधारित होता है, इसीलिए सदा सत्यका आश्रय लेना चाहिए।

सत्य

१ ऋतस्य वपूंषि दृळ्हा धरुणानि चन्द्रा पुरूणि सन्ति- (२७२) सत्यके शरीर सुदृढ, धारणक्षम, आनन्ददायी और अनेक होते हैं।

सत्य हमेशा सुदृढ होता है, वह त्रिकालमें भी बाधित नहीं होता। सत्य सदा सत्य ही रहेगा। वह सत्य सबको धारण करता है। **"सत्येनोत्तभिता भूमिः"** इस वचनके अनुसार सत्यके कारण ही यह पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य भाषी कभी भी आपत्तिमें नहीं पडता, वह सदा आनन्दमें रहता है, यदि कभी संकट आ भी जाए, तो भी वह उसमें आनन्द ही मानता है।

दान

१ दितिं रास्व अदितिं उरुष्य- (३१) हमें दानशीलता दे और कंजूसीसे हमारी रक्षा कर। दानशीलता महापुण्य है और कंजूसी एक महापाप है। दानशीलतासे उन्नति होती है और कंजूसी से अवनति।

उत्तम मित्रके लक्षण

"अमित्रस्य कुतः सुखं" इस सुभाषितके अनुसार मनुष्यके लिए मित्रका साथ अत्यन्त आवश्यक है। पर मित्रका चुनाव मनुष्य बहुत ही सावधानी से करे, क्योंकि उत्तम मित्र मनुष्यको भाग्यसे ही मिलता है। मित्रमंडलीके आधार पर मनुष्यके चरित्रको जाना जा सकता है। जिस तरहके समाजमें वह विचरेगा, उसी तरहका वह मनुष्य भी होगा। इसलिए मनुष्य सदा उत्तम मित्रोंका ही चुनाव करे। मित्र कैसा हो, इसके बारे में ऋग्वेदका कथन है-

१ सखा अकुटिलः- (१८२) मित्र हमेशा अकुटिल हो।

२ सदावृधः चित्रः सखा-(३४०) अपने सामर्थ्यसे सदा बढनेवाला, विलक्षण और शक्तिशाली मित्र हो।

मित्र सदा कुटिलतासे रहित हो। उसके हृदयमें छलकपट न हो। सदा सत्यमार्गका ही वह अवलम्बन करे और अपने मित्रसे कभी धोखा धडी न करे। मित्र सामर्थ्यशाली हो, अपने ही सामर्थ्यसे सामर्थ्यवान् हो। ऐसा मित्र हो। ऐसे मित्र जिसके होंगे, वह निश्चयसे उन्नति करेगा। इसीलिए सबसे उत्तम यह है कि मनुष्य देवोंकी मित्रता प्राप्त करे। देवोंकी मित्रतामें रहनेवाला मनुष्य कभी भी संकटमें पडकर अवनत नहीं होता।

देवोंकी मित्रता

१ यं देवासः अवथ स विचर्षणिः- (४१४)

जिसकी रक्षा देवगण करते हैं, वह विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है ।

२ यः मर्तः इन्द्रावरुणा देवौ आपी चक्रे सः वृत्रा हन्ति, प्र शृण्वे- (४४९) जो मनुष्य इन्द्र और वरुण इन दोनों देवोंको अपना भाई बनाता है और वह पापोंको नष्ट करता है, ऐसा मैं सुनता हूँ ।

देवोंके साथ मित्रता करनेका यह प्रथम लाभ है कि वह मनुष्य विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है । वह पापोंको नष्ट करके पुण्यशाली होता है । तथा-

३ देवानां सख्यं उप आयन् मनायै पुष्टिं अवहन्- (३८०) मैंने देवोंसे मैत्री स्थापित की और अपने मनको शक्तिशाली बनाया । देवोंकी मित्रता तथा उनकी उपासना करनेसे मनमें शक्ति उत्पन्न होती है और वह शक्तिशाली बनता है । परमात्माकी उपासना और विद्वानोंके सत्संग से आत्मा की शक्ति बढती है । आत्मशक्तिके बढनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है । पर देव सब मनुष्योंके मित्र नहीं बन सकते, देवोंकी मित्रता उन्हें ही प्राप्त हो सकती है कि जो स्वयं परिश्रम करते हैं -

४ श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति- (३८९) कष्ट उठाये बिना देवगण मित्रता नहीं करते । मनुष्य जब परिश्रम करके तथा भरपूर पसीना बहानेके बाद भी अपने काममें सफल नहीं होता, तब उसकी मददके लिए देवगण आते हैं । इसलिए देवोंकी मित्रता प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है ईमानदारीसे परिश्रम करना ।

उत्तम मार्ग

१ एतत् दुर्गहा, अतः अहं न निरय- (२०८) यह दुर्गम मार्ग है, अतः मैं इससे नहीं जाऊंगा । कुमार्ग सदा दुर्गम होता है, क्योंकि उस परसे जानेवालेको अवनतिके गर्तमें गिरनेकी आशंका बनी रहती है । पर उत्तम मार्गसे जानेवाला निर्भीक होकर चला जाता है ।

२ बहूनि कर्त्वानि अकृता, तिरश्चता पार्श्वात् निर्गमाणि- (२०८) मैंने बहुतसे कर्तव्य अभी तक नहीं किए हैं, इसलिए मैं दूसरे सरल मार्गसे जाऊंगा । कुमार्गसे जानेवालेका जीवन शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसके जितने भी काम हैं, सब अधूरे ही पडे रह जाते हैं, पर जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसका जीवन दीर्घ होता है और वह अपने सभी कामों को पूरा कर लेता है ।

३ अतः चित् प्रवृद्धः जनिषीष्ट- (२०७) इस उत्तम मार्ग पर चलकर मनुष्य निश्चयसे बडे होते हैं । उत्तम मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य निश्चयसे बडा और उन्नत होता है । इस मार्ग परसे चलनेवालेको कभी भी गिरनेका डर नहीं रहता ।

उत्तम कर्म

मनुष्य कर्म करनेसे छूट नहीं सकता, वह एक क्षण भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता । इसलिए जब उसे कर्म करना ही है, तो वह उत्तम कर्म ही क्यों न करे ? उत्तम कर्म करनेसे ही उसका मानवजीवन सफल हो सकता है । इसीलिए उत्तम कर्मकी अनन्त महिमा गाई गई ।

१ ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति- (२७१) उत्तम कर्मकी शक्तियां अनन्त हैं । कर्ममें अनन्त शक्तियां भरी पडी हैं, प्रत्येक उत्तम कर्म करनेके साथ ही कर्म करनेवालेको शक्तियां प्राप्त होती हैं । इन शक्तियोंसे मानव सामर्थ्यशाली बनता है ।

२ ऋभवः पितृभ्यां परि विष्ठी दंसनाभिः अरं अक्रन्- (३८०) ऋभुओंने अपने मातापिताकी सेवा की और उत्तम कर्मोंको करके स्वयंको सामर्थ्यशाली बनाया ।

३ सुकृत्या सखीन् चकृषे- (४०७) उत्तम कर्मों के कारण इन्द्रने ऋभुओंको अपना मित्र बनाया ।

४ धीभिः सनिता- (४२४) मनुष्य अपने उत्तम कर्मों और उत्तम बुद्धियोंके कारण श्रेष्ठ उपभोगोंसे संयुक्त होता है।

माता पिताकी सेवाका बहुत महत्व है । इस उत्तम कर्म के द्वारा सभी प्रकार के फल प्राप्त किए जा सकते हैं । मनुष्य जब उत्तम कर्म करता है, तब वह श्रेष्ठ उपभोगोंको भोगता है । तभी उसे सच्चा सुख मिलता है ।

उत्तम वाणी

उत्तम कर्मका आधार उत्तम वाणी है । मनुष्य जो कुछ मन में सोचता है, उसे वाणीसे कहता है, जो कुछ वाणीसे बोलता है, उसके अनुसार कर्म करता है और जैसा कुछ कर्म करता है, तदनुसार उसका फल प्राप्त करता

है। वाणीका सदा सदुपयोग करना चाहिए। उत्तम और मधुर वाणी वशीकरणका एक साधन है। मधुर वाणी बोलकर सबके हृदयोंको अपने वशमें किया जा सकता है। वाणीका अमूल्य कोष व्यर्थ न जाए, इसलिए उसका उपयोग मनुष्य दक्षतासे करे। उसके बारेमें वेदका कहना है-

१ अनिरेण फल्गवेन वचसा अतृपासः किं वदन्ति- (८५) नीरस और निष्फल वाणीके कराण अतृप्त रहनेवाले मनुष्य अग्निकी स्तुति क्या करेंगे ? जिनकी वाणी नीरस और निष्फल होती है, वे किसी तरहके मनोरथको प्राप्त नहीं कर पाते, इसलिए वे हमेशा अतृप्त रहते हैं। उनकी अभिलाषायें अधूरी ही रहती हैं। क्योंकि उनकी वाणी कभी भी परमात्माकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त नहीं होती, अतः ऐसे मनुष्योंकी वाणी निष्फल ही होती है। पर जो उत्तम वाणीका उपयोग करते हैं, वे उत्तम धनोंसे संयुक्त होते हैं।

धन-प्राप्ति का मार्ग

१. अध्वनः परमं- (८३) जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसे उत्तम ऐश्वर्य मिलता है। ऐश्वर्यप्राप्तिका प्रथम उपाय है, उत्तम मार्गसे जाना। वेदोंमें सर्वत्र उत्तम मार्गसे ही धनार्जनका उपदेश दिया गया है। ऋग्वेदके ही एक दूसरे मंत्रमें ऋषि कहता है-

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। "हे अग्ने ! तुम हमारे सब कर्मोंको यथावत् जाननेवाले हो, अतः हमें ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए उत्तम मार्गसे ले चलो"। उत्तम मार्गसे कमाया गया धन ही दीर्घकाल तक टिकता है। धन प्राप्तिका दूसरा उपाय है-

२ देवान् आनमं वेद, प्रियाणि वसु- (११२) जो देवोंको नमस्कार करना जानता है, वही उत्तमोत्तम धन प्राप्त करता है। देवोंकी उपासनासे भी ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

३ अयं पन्थाः अनुवित्तः पुराणः- (२०७) यह मार्ग अनुकूलतासे धन देनेवाला और सनातन है। वेदोंके द्वारा बताया गया ऐश्वर्य-प्राप्तिका मार्ग बहुत प्राचीनकालका है। इससे प्राचीन मार्ग और कोई नहीं है। यह मार्ग निश्चयसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला है। अतः सब मनुष्य इस मार्ग पर चलकर ऐश्वर्यवान् बनें। कोई भी दरिद्र न रहे, क्योंकि दरिद्र होना निन्दाका कारण बनता है, अतः-

४ निदानाः रेकु पदं न अगन्म- (८३) हम निन्दित होकर निर्धनके घर न जायें। हम इतने निर्धन न हो जाएं कि हमें दर दर भटकना पडे। हम सदा ऐश्वर्यवान् रहें, यह उपदेश वेदोंका है। जो ऐश्वर्यशाली है उसके लिए यह संसार स्वर्ग है और जो दरिद्र है, उसके लिए यह संसार नरक है। स्वर्ग और नरक इसी पृथ्वी पर हैं।

नरकका स्वरूप

१ व्यन्तः दुरेवाः अनृताः असत्याः पापासः इदं गभीरं पदं अजनत- (७६) कुमार्ग पर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले असत्यशील पापियोंने ही इस गंभीर नरकका निर्माण किया है। यह संसार वस्तुतः स्वर्ग है, इसमें हर तरहके सुख प्राप्य है, पर दुष्ट और दुराचारी मनुष्य इस स्वर्गको नरक बना डालते हैं।

अतः वेदोंका यह उपदेश है कि मनुष्य उत्तम और नैतिक मार्गों पर चलकर हर तरहसे ऐश्वर्यशाली बनें, उन्नत हों और इस संसारको स्वर्ग बनायें।

इस प्रकार इस मण्डलमें अनेक बहुमूल्य उपदेशोंका संग्रह है।

ॐ

ऋग्वेद का सुबोध-भाष्य

पञ्चम मण्डल

ऋषिवार सूक्तसंख्या

	ऋषि	सूक्त
१	बुधगविष्ठिरावात्रेयौ	१
२	कुमारः आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा	१
३	वसुश्रुत आत्रेयः	४
४	इष आत्रेयः	२
५	गय आत्रेयः	२
६	सुतंभर आत्रेयः	४
७	धरुण आंगिरसः	१
८	पूरुरात्रेयः	२
९	द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः	१
१०	वव्रिरात्रेयः	१
११	प्रयस्वन्त आत्रेयाः	१
१२	सस आत्रेयाः	१
१३	विश्वसामा आत्रेय	१
१४	द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः	१
१५	गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च	१
१६	वसूयव आत्रेयाः	२
१७	त्रैवृष्णस्त्यरुणः, पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः भारतोऽश्वमेधश्च राजानाः (अत्रिर्भौम इचि केचित्)	१
१८	विश्ववारारात्रेयी	१
१९	गौरवीति शाक्त्यः	१
२०	बभ्रुरात्रेयः	१
२१	अवस्युरात्रेयः	२
२२	गातुरात्रेयः	१
२३	प्राजापत्यः संवरणः	२
२४	प्रभूवसुरांगिरसः	२
२५	भौमोऽत्रिः	१३
२६	काश्यपोऽवत्सारः	१
२७	सदापृण आत्रेयः	१
२८	प्रतिक्षत्र आत्रेयः	१
२९	प्रतिरथ आत्रेयः	१
३०	प्रतिभानु रात्रेयः	१
३१	प्रतिप्रभ आत्रेयः	१
३२	स्वस्त्यात्रेयः	२
३३	श्यावाश्व आत्रेयः	१२
३४	श्रुतविदात्रेयः	१
३५	अर्चनाना आत्रेयः	२
३६	रातहव्य आत्रेयः	२
३७	यजत आत्रेयः	२
३८	उरुचक्रिरात्रेयः	२
३९	बाहुवृक्त आत्रेयः	२
४०	पौर आत्रेयः	२
४१	सप्तवध्रिरात्रेयः	१
४२	सत्यश्रवा आत्रेयः	२
४३	एवयामरुदात्रेयः	१
		८७

ऋषिवार मंत्रसंख्या

	ऋषि	मंत्रसंख्या
१	बुधगविष्ठिरावात्रेयौ	१२
२	कुमारः आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा	१२
३	वसुश्रुत आत्रेयः	४४
४	इष आत्रेयः	१७
५	गय आत्रेयः	१४
६	सुतंभर आत्रेय	२४
७	धरुण आंगिरसः	५
८	पूरुरात्रेयः	१०
९	द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः	५
१०	वव्रिरात्रेयः	५
११	प्रयस्वन्त आत्रेयाः	४
१२	सस आत्रेयः	४
१३	विश्वसामा आत्रेयः	४
१४	द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः	४
१५	गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुर्विप्रबन्धुश्च	४
१६	वसूयव आत्रेयाः	१८
१७	त्रैवृष्णस्त्यरुणः पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः भारतोऽश्वमेधश्च राजानः (अत्रिर्भौम इति केचित्)	६
१८	विश्ववारात्रेयी	६
१९	गौरवीति शाक्त्यः	१५
२०	बभ्रुरात्रेय :	१५
२१	अवस्युरात्रेयः	२२
२२	गातुरात्रेयः	१२
२३	प्राजापत्यः संवरणः	१९
२४	प्रभूवसुरांगिरसः	१४
२५	भौमोऽत्रिः	११६
२६	काश्यपोऽवत्सारः	१५
२७	सदापृण आत्रेयः	११
२८	प्रतिक्षत्र आत्रेयः	८
२९	प्रतिरथ आत्रेयः	७
३०	प्रतिभानुरात्रेयः	५
३१	प्रतिप्रभरात्रेयः	५
३२	स्वस्त्यात्रेयः	२०
३३	श्यावाश्व आत्रेयः	१३२
३४	श्रुतविदात्रेयः	९
३५	अर्चनाना आत्रेयः	१४
३६	रातहव्य आत्रेयः	१२
३७	यजत आत्रेयः	१०
३८	उरुचक्रिरात्रेयः	८
३९	बाहुवृक्त आत्रेयः	६
४०	पौर आत्रेयः	२०
४१	सप्तवध्रिरात्रेयः	९
४२	सत्यश्रवा आत्रेयः	१६
४३	एवयामरुदात्रेयः	९
		७२७

देवतावार मंत्रसंख्या

	देवता	मंत्रसंख्या
१	अग्निः	१८४
२	विश्वेदेवाः	१२०
३	मरुतः	११८
४	इन्द्रः	१०२
५	मित्रावरुणौ	५९
६	अश्विनौ	४८
७	उषाः	१६
८	सविता	१४
९	आप्रीसूक्त	११
१०	पर्जन्यः	१०
११	वरुणः	८
१२	इन्द्राग्नी	७
१३	ऋणंचयेन्द्रौ	४
१४	अत्रिः	४
१५	तरन्तमहिषी शशीयसी	४
१६	दार्भ्यो रथवीतिः	३
१७	पृथिवी	३
१८	इन्द्रवायू	३
१९	देवपत्न्यः	२
२०	वैददश्विः पुरुमीळ्हः	१
२१	वैददश्विस्तरन्तः	१
२२	इन्द्राकुत्सौ	१
२३	सूर्यः	१
२४	मरुद्रुद्रविष्णवः	१
२५	रुद्रः	१
२६	वायुः	१
		७२७

इस पंचम मंडलमें भी अनेक विचारणीय और आचरणीय बातें ऋषियोंने लिखी हैं, जिनका विचार हम अब करेंगे ।

मंत्रोंकी रक्षा

वेदोंकी एक दूसरी संज्ञा श्रुति भी है । इनकी संज्ञा श्रुति इसलिए पडी कि इन मंत्रोंको शिष्यवर्ग अपने गुरुसे सुनता था और सुनकर कण्ठस्थ कर लेता है । इस प्रकार श्रवण करके सुननेके कारण वेदोंकी संज्ञा श्रुति हुई । इस प्रकार ब्राह्मणवर्गने इन वेदमंत्रोंको कण्ठस्थ करके उन मंत्रोंकी रक्षा की । इस बातका उल्लेख निम्न मंत्रभागमें है ।

१ आसन् उक्था पान्ति- (१४२) ब्राह्मण मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं । "ब्राह्मणोंने इन वेदोंको कण्ठस्थ करके वेदोंमें मिलावटका स्पर्श नहीं होने दिया । यह ब्राह्मणोंका हम पर महान् उपकार था । यह ब्राह्मणोंकी ही महिमा थी कि हमें आज भी वेदोंका वही शुद्ध स्वरूप प्राप्त हुआ, जो आजसे हजारों और लाखों साल पहले था । इन वेदमंत्रोंमें ऐसा तत्त्वज्ञान भरा हुआ है कि जो सर्वत्र प्रसिद्ध है-

२ आसां अग्रिमा समुद्रं अवतस्थे- (३७४) इन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह समुद्रकी सीमा तक जाकर प्रसिद्ध होती है । "योंतो सभी ऋचायें प्रसिद्ध होने योग्य हैं, पर जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह सर्वत्र फैलती है। ऋग्वेदके दसवें मंडलका १२९वां सूक्त, जो नासदीयसूक्तके नामसे प्रसिद्ध है, विदेशोंमें बहुत आकर्षक प्रमाणित हुआ। सभी देशी और विदेशी विद्वानोंने इस सूक्तकी मुक्तकंठसे सराहना की है । इसी प्रकार वे भी ऋचायें, जिनमें देवोंकी स्तुतियां की गई हैं, या उनका गुणगान किया गया है, सर्वत्र प्रसिद्ध है । इन ऋचाओंमें देवोंकी महिमा गाई गई है ।

अग्निकी महिमा

१ अस्मै अमृतं ददानः अनिन्द्राः मां किं कृणवन्- (१५) इस अग्निको मैंने अमृततुल्य हवि प्रदान की है, अतः इस इन्द्रको न माननेवाले मेरा क्या करेंगे ?" जो तेजस्वीरूप प्रभुकी प्रार्थना करता है, और उसकी सहायता प्राप्त करता है, उस आस्तिक मनुष्यकी नास्तिक कुछ भी हानि नहीं कर सकते । अपने भक्तोंकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं । उन्हें भगवान् तेज और समृद्धि प्रदान करते हैं-

२ सुदृशः श्रिया पुरुदधानाः अमृत सपन्त- (२८) उत्तम तेजस्वी लोग समृद्धिके कारण और अधिक तेज प्राप्त कर अमृत पाते हैं । अग्निरूप प्रभुकी जो उपासना करता है, वह समृद्धि और तेज प्राप्त करके अमर होता है ।

३ त्वत् पूर्वः यजीयान् न, परः काव्यैः न- (२९) इस अग्निके पहले न कोई स्तुति के योग्य था और न आगे होगा । यह अग्नि ही सदासे पूज्य रहा है । अग्नि जैसा पूज्य न कोई पहले थे ही न आगे होगा ही । यह अग्नि तो **"पूर्वेभिः ऋषिभिः ईड्यः, नूतनैः उत"** (ऋग्वेद) प्राचीन ऋषियोंके द्वारा भी स्तुत्य था और नवीनोंके द्वारा भी स्तुत्य है । अतः-

४ यस्या अतिथिः भवासि, सः मर्तान् वनवत्- (२९) जो इस अग्निकी अतिथिके समान पूजा करता है, वह पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होता है । "जिस प्रकार मनुष्य घरमें आए हुए अतिथिकी हर तरहसे पूजा करता है, उसी तरह जो मनुष्य इस अग्निकी पूजा करता है, उसे यह अग्नि पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त करता है, उसे यह अग्नि हर तरहसे समृद्ध करता है । इसलिए-

५ वयं देवेषु सुकृतः स्याम- (४४) हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों । देवोंके विषयमें हम सदा उत्तम विचार रखें । उनकी हम सदा पूजा एवं सेवा करते रहें। हम इन देवोंसे सम्पत्ति प्राप्त करके उनके प्रति कभी भी कृतघ्न न हों । क्योंकि-

६ वृद्धाः अग्रस्य शवसः न ईरयन्ति ह्वरः सश्चिरे- (१५०) जो अग्निकी कृपासे समृद्ध होकर भी इसके क्रोधसे नहीं डरते, वे नष्ट हो जाते हैं । कृतघ्नता एक बडा भारी दुर्गुण है । जो अपने ऊपर किए गए उपकारोंको भूल जाता है, वह बडा दुष्ट मनुष्य होता है । उसी तरह जो अग्नि, राजा, ज्ञानी या प्रभुसे हर तरहकी समृद्धि प्राप्त करके उनके उपकारोंको नहीं मानता, वह नष्ट हो जाता है ।

इन्द्रकी शक्ति

१ जनूषा वीर्येण एता भूरि विश्वा चकृवान्- (२१२) इन्द्रने जन्मते ही अपने बलसे इस सारे विश्वको बनाया ।

२ युधये एकः चित्त भूयसः वेषीत्- (२१७) युद्धमें अकेले होते हुए भी इन्द्रने अनेकों शत्रुओंको नष्ट किया।

३ त्वत् वस्यः अन्यत् नहीं अस्ति- (२३०) इस इन्द्रसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ।

४ यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्, विश्वे पुरुजनः दुर्गे आध्रियते- (२७०) जो इसके सामर्थ्यको क्रोधित करता है, उन सब शत्रुओंको यह किलेमें कैद करके रखता है ।

इन्द्र इस प्रकार स्वयं महापराक्रमी है, वह अपने शत्रुओंका हर तरहसे नाश कर देता है । वह दासप्रथाका भी कट्टर विरोधी है, इसीलिए-

५ समत्सु दासस्य नाम चित् ततक्षे- (२५७) इन्द्रने युद्धोंमें दासका नाम भी हटा दिया ।

६ भीषणः आर्यः दासं यथावशं नयति- (२६९) अतिपराक्रमी आर्य इन्द्र दासको अपने वशमें रखता है ।

वह इन्द्र जब अपना भयंकर रूप धारण करता है तब उसके रूपको देखकर उसके शत्रु रोने लगते हैं, उस भयंकर रूपमें वह इन्द्र रुद्र बन जाता है । वह रुद्र

१ सु-इषुः सु-धन्वा- (३४१) उत्तम बाण और उत्तम धनुष धारण करता है ।

२ विश्वस्य भेषजस्य क्षयति- (३४१) यह रुद्र सभी तरहकी ओषधियोंका स्थान है ।

३ एषां पिता रुद्रः युवा सु-अपाः- (५३२) इन मरुतोंका पालनकर्ता रुद्र तरुण और उत्तम कर्म करनेवाला है ।

इस प्रकार इन्द्र और रुद्र के वर्णनके रूपमें वेदने एक वीर शासकका वर्णन किया है । वीरशासक अपने राष्ट्रमें दासप्रथाको सर्वथा नष्ट कर दे । जो दुष्ट दासोंका व्यापार करके इस प्रथाको कामय रखना चाहते हों, उन दुष्टोंको भी यह शासक नष्ट कर दे । इसके अलावा उत्तम राजाका राज्य किस प्रकार हो सकता है, इसे वेदमें इस प्रकार बताया गया है-

उत्तम राजाका राज्य

१ यस्मिन् इन्द्रः सोमं पिबति, स राजा न व्यथते- (२९०) जिस राजाके राज्यमें इन्द्र सोम पीता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता ।

२ सत्वनैः अजति- (२९०) वह राजा बलशाली होकर शत्रुओं पर आक्रमण करता है ।

३ सुभगः नाम पुष्यन् क्षितीः क्षेति- (२९०) वह राजा अपने यशसे अपना नाम बढाता हुआ प्रजाका कल्याण करता है ।

४ योगे क्षेमे अभि भवाति- (२९१) वह राजा अप्राप्त धनको प्राप्त करने और प्राप्त धनके रक्षणमें समर्थ होता है।

५ अर्यम्यः मित्रः सखायः सदं इत् भ्रातरः अरणः- (७११) वह राजा मित्रके समान हितकारी तथा हमेशा भाईके समान प्रेम करनेवाला हो ।

इन उत्तम गुणोंसे युक्त जो राजा होता है, उसी राजाका राज्य भी उत्तम होता है । ऐसे राजाको प्रजायें अपना नेता चुनती हैं । राजाका प्रजाके द्वारा चुने जानेका उल्लेख वेदमें है । प्रजाओंके द्वारा राजाको चुने जानेकी पद्धति ही आजके शब्दोंमें "प्रजातंत्र" कहाता है । इसी प्रजातंत्रके लिए ऋग्वेदमें "बहुपाय्य स्वराज्य" शब्द आया है ।

६ व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये यतेमहि- (५८९) अत्यन्त विस्तृत और बहुतों द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें हम सब अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न करते रहें ।

समुदायकी उपासना

मनुष्य व्यक्तिकी उपासना न करके यदि समाजकी उपासना करे, तो वह बहुत श्रेष्ठ हो सकता है । इस बारेमें वेदका कथन है-

१ यः ईं गणं भजते, सः वरा उभा प्रति एति- (३७७) जो मनुष्य इस समुदायकी उपासना करता है, वह अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनोंमें प्रगति करता है ।

यह समुदायकी उपासना संघटन या संगतिकरणसे ही मनुष्यकी हर तरहसे उन्नति होती है । वैदिक परिभाषामें इसी संगतिकरणके कार्यको "यज्ञ" कहा गया है । इस यज्ञसे तेजकी प्राप्ति होती है ।

यज्ञसे तेजःप्राप्ति

१ येषु चित्रा दीधितिः- (१४२) यज्ञशील मनुष्योंमें अनेक तरहके तेज होते हैं ।

२ यजमानस्य सुतंभरः सत्पतिः- (३७८) यह

यज्ञ यजमानके पुत्रका भरणपोषण करनेवाला, सज्जनोंका पालक तथा स्वामी है।

विश्वासां धियां ऊधः- (३७८) यह यज्ञ सभी तरहके कर्मोंका स्रोत है।

सभी उत्तम कर्म इस यज्ञमें सम्मिलित हो जाते हैं, इसी लिए **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"** कहकर यज्ञको सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा है। एक दूसरे वचनसे यज्ञको विष्णु अर्थात् परमात्माका रूप बताया गया है, **(यज्ञो वै विष्णुः)** इस प्रकार यज्ञ परमात्माकी उपासना का भी एक साधन है। परमात्माकी उपासनासे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें ऋग्वेदका कथन है-

१ ते सखायः अशिवाः सन्तः शिवासः अभूवन्- (११०) इस अग्निके मित्र भी जब इस अग्निकी उपासना करना भूल गए, तब वे दुःखी और दुर्भाग्यशाली हो गए, पर फिर अग्निकी उपासना करनेसे उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ।

२ जने सुमतिं- (२५४) उपासना करनेसे इन्द्र मनुष्यमें उत्तम बुद्धि उत्पन्न करता है।

३ देवस्य महिमानं प्रयाणं अन्ये देवाः अनु ययुः, ओजसा- (६८०) इस सविता देवके महिमापूर्ण मार्गका दूसरे देव अनुसरण करते हैं और तेजसे युक्त होते हैं।

सत्य नियमोंका पालन

मनुष्य व्रत और सत्यनियमोंका पालन करे। उन्नतिके लिए व्रत और सत्यनियमोंका पालन अत्यन्त आवश्यक है। इस विषयमें वेदका कहना है-

१ विपश्चिता धर्मणा व्रता रक्षेथे- (५७०) बुद्धिमान् मनुष्य धर्मपूर्वक अपने व्रत नियमोंका पालन करते हैं।

२ ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजते - (५७०) मनुष्य अपने सत्यनियमोंके कारण ही सारे संसारमें सुशोभित होता है।

३ ध्रुवाणि व्रतानि अमृताः देवाः न मिनन्ति- (६०३) अटल नियमोंको अमरदेव भी नहीं तोड सकते।

ऐसे व्रत और सत्यनियमोंका जो पालन करता है, वह मित्र और वरुणदेवका प्रिय बनता है। उसके प्रति मित्रावरुण उदार होते हैं-

मित्रावरुणकी उदारता

१ मित्रः अंहश्चिदपि उरुक्षयाय गातुं वनते- यह मित्र देव पापीको भी महान् संरक्षणका उपाय बताता है।

२ प्रतूर्वतः विधतः अस्य मित्रस्य सुमतिः अस्ति- (५८१) हिंसा करनेवाले दुष्ट उपासकके बारेमें भी इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है।

३ वां अवः पुरूरुणा चित्- (६०४) इन मित्रावरुणकी कृपा निश्चयसे अपरम्पार है।

इस प्रकार जो उत्तम आचरण करते हैं, उनसे सभी देव मैत्री करते हैं और उन्हें उन्नतिका मार्ग दिखाते हैं, पर जो दुष्टाचरण करते हैं, उनका स्वयं नाश हो जाता है-

दुष्टाचरणसे नाश

१ ऋजूयते वृजनानि ब्रुवन्तः स्वयं अधूर्षन्त- (११०) जो सत्याचरणी सज्जनोंसे दुष्ट वचन बोलते हैं, उन वचनोंसे वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

२ यः कवासखः ततनुष्टिं तनूशुभ्रं अप ऊहति- (२६६) जो दुष्टोंका मित्र है, उस ढोंगी और स्वार्थीका इन्द्र तिरस्कार करता है।

३ पणेः भोजनं मुषे अजति- (२७०) दुष्टोंका धन लूटनेके लिए यह वीर आगे बढता है।

४ अप व्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्यात् यावयस्व- (३३१) दुष्ट कर्म करनेवाले, दुष्ट मार्गसे संसारमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा ईश्वरसे द्वेष करनेवाले नास्तिकोंको सूर्यसे दूर रख।

५ यः देववीतौ रक्षसः ओहते, तं नियात- (३४०) जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, उसे मार डालो।

६ यः वः शशमानस्य निन्दात्, सिष्विदानः कामान् तुच्छ्यान् करते - (३४०) जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी निन्दा करता है, वह अपनी कामनाओंको तुच्छ करता है।

७ क्षत्रं अविह्रुतं असुर्यं- (५८५) इन देवोंका बल सज्जनोंके लिए कुटिलता रहित पर दुष्टोंके लिए विनाशक है।

जो मनुष्य दूसरोंकी निन्दा करता है, वह स्वयं पहले लोगोंकी नजरोंसे गिर जाता है। दुष्ट स्वयं अपने दुष्ट आचरण

से नष्ट हो जाता है । ऐसे दुष्टोंकी सहायता देवगण भी नहीं करते । इसीलिए मनुष्य सदा दुष्टाचरणसे दूर रहे ।

८ मायाभिः परः नाम ऋते आस- (३६७) जो छलकपट आदि असत्य कामोंसे दूर रहते हैं, उन्हें सत्यलोककी प्राप्ति होती है ।

जो सदा सत्यका पालन करता हुआ असत्य कामोंसे दूर रहता है, उनका मन सदा उत्तम रहता है और उत्तम मनवालेकी हमेशा उन्नति होती है ।

उत्तम मनवालेकी उन्नति

१ सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात् - (२) उत्तम मनवाला मनुष्य हमेशा उन्नत होता है ।

२ महान् देवः तमसा निरमोचिं- (२) वही मनुष्य महान् देव बनकर अज्ञानान्धकारसे छूट जाता है । जो मनुष्य उत्तम मनवाला होता है, वह मनुष्य ही देव बनता है । देवका अर्थ है प्रकाशक, तेजस्वी । देव बननेके बाद मनुष्यके पास कभी भी अन्धकार नहीं आता ।

३ जातः मनः स्थिरं चकृषे- (२१७) उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपने मनको स्थिर किया ।

४ मे मनः अमते भिया वेपते- (२८३) मेरा मन निर्बुद्धिताके कारण भयसे कांपता है ।

५ महे सौमनसाय असुरं देवं यक्ष्व- (३४१) अपने महान् मनको उत्तम बनानेके लिए, बलवान् देवकी पूजा करनी चाहिए ।

६ याहशिमन् धायि, तं अपस्यया विदत्- (३७३) मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है, उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर ही लेता है ।

मनुष्यके शरीरमें मन एक ऐसा तत्त्व है, जो बहुत ही शक्तिशाली और अद्‌भुत है । जो मनुष्य अपने मनको वशमें कर लेता है, उसे यह मन देव बना देता है, पर जो इसे वशमें नहीं कर पाता, उसे यह पतित और दुष्ट बना देता है । मनको वशमें करनेके साधन हैं अभ्यास और वैराग्य । बार बार यह मन भागता है, अतः बार बार पकडकर उसी स्थान पर लानेसे मनकी चंचलता समाप्त होकर उसमें स्थिरता आ जाती है । मनमें स्थिरता आनेके साथ ही मनुष्यकी उन्नति होनी शुरु हो जाती है । अतः उन्नतिके लिए प्रथम मनको स्थिर करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

परिश्रमका महत्त्व

१ यः स्वयं वहते सः अरं करत्- (३७३) जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, वही अपने कामको पूरी तरह सिद्ध करता है । उन्नति करनेका एक और साधन है, परिश्रमशीलता । जो मनुष्य दूसरोंके भरोसे न रहकर स्वयं कष्ट उठाता है, उसका काम हमेशा सिद्ध होता है।

२ इमं जनं यतथः, सं नयथः- (५८३) ये देव जिसे उन्नत करना चाहते हैं, उसे प्रयत्नशील बना देते हैं।

३ कस्य यक्षं न भुजेम तनूभिः आ- (६०७) हम किसी दूसरेके अन्नका उपभोग न करें, अपितु अपने ही परिश्रमसे कमाये गए अन्नको ही भोगें ।

४ उभे अहनी अप्रयुच्छन् सु आधीः पुरः एति- (६९०) जो मनुष्य दिन और रात प्रमाद न करते हुए उत्तम कर्म करता है, वही आगे बढता है ।

देवगण जिसे उन्नत करना चाहते हैं, उसे प्रयत्नशील बना देते हैं । परिश्रमके द्वारा ही मनुष्य उन्नति करता है । आलसी मनुष्य कभी भी उन्नति नहीं कर सकता । दूसरोंके भरोसे रहना बडी भारी दुर्गतिका स्वरूप है । मनुष्य कभी भी दूसरेके अन्न पर अवलम्बित न रहे, अपितु अपने ही परिश्रमसे कमाये गए अन्न पर स्वयं तथा परिवारका पालन पोषण करे । परिश्रमके साथ ही यदि मनुष्यमें उत्तम बुद्धि भी हों तो उसका काम कभी भी असिद्ध नहीं होता, इसलिए बुद्धिको भी पवित्र बनानी चाहिए ।

१ यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते, अत्र क्रवणस्य हार्दिः न रेजते- (३७४) जहां पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि विद्यमान होती है, वहां उत्तम कर्म करनेवालेके हृदयकी अभिलाषायें कभी व्यर्थ नहीं जातीं ।

कल्याणका मार्ग

१ अतिथीन्, नॄन् पत्नीः दशस्यत- (४१९) अतिथियोंकी, विद्वानोंकी और उनकी पत्नियोंकी सेवा करनी चाहिए । अतिथि और विद्वानोंकी सेवा करनेसे मनुष्य कल्याण प्राप्त करता है ।

२ धर्मणा व्रतेन ध्रुवक्षेमः- (६१२) धर्मपूर्वक कार्य करनेसे अटल और शाश्वत सुख और कल्याण प्राप्त होता है।

३ धर्मभिः मित्रः भवति- (६१२) धर्मपूर्वक व्यवहार करनेसे मनुष्य लोगोंका मित्र होता है ।

स्त्री कैसी हो ?

१ सरमा ऋतस्य यथा गाः विदद्- (३३८) प्रगति करनेवाली स्त्री ऋत अर्थात् सच्चे और नैतिक मार्गसे चलने पर ही लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है ।

२ अदेवत्रात् अराधसः पुंसः वस्यवी शशीयसी भवति- (५४९) देवको न माननेवाले और धनहीन पुरुषकी अपेक्षा धनयुक्त स्त्री अधिक प्रशंसनीय होती है ।

३ या जसुरिं तृष्यन्तं कामिनं वि जानाति, क्षेत्रा मनः कृणुते- (५४२) जो स्त्री दुःखी मनुष्यके, प्यासे और धनके अभिलाषी मनुष्यके भावोंको जानती है, तथा जो देवपूजामें अपने मनको लगाती है, वही स्त्री प्रशंसाके योग्य होती है।

इस प्रकार इस पंचम मण्डलमें अनेक कल्याणकारी और व्यावहारिक उपदेश दिए गए हैं । मनुष्य इन उपदेशों पर आचरण करके अपनी उन्नति सिद्ध कर सकता है ।

ॐ

ऋग्वेद का सुबोध-भाष्य

पञ्चम मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अंसेषु व ऋष्टयः	४८०	अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिः	५३५	अध क्रत्वा मघवन्	२०३
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते	१२६	अग्ने विश्वेभिरा गहि	१८१	अध स्म यस्यार्चयः	९०
अक्नविहस्ता सुकृते	५६०	अग्ने शर्ध महते	१९५	अधा नरो न्योहते	४४७
अग्न इन्द्र वरुण मित्र	३९३	अग्ने शर्धन्तमा गणं	४९५	अधा हि काव्यो युवं	५८७
अग्न ओजिष्ठमा भर	९३	अग्ने सहन्तमा भर	१६१	अधा ह्यग्न एषां	१३२
अग्निमच्छा देवयतां	४	अग्ने सुतस्य पीतये	४२२	अध्वर्यवश्चकृवांसो	३५१
अग्निमीळेन्यं कविं	१२२	अग्नेः स्तोमं मनामहे	११३	अनवस्ते रथमश्वाय	२३२
अग्निर्जागार तमृचः	३८०	अच्छ ऋषे मारुतं	४५०	अनस्वन्ता सत्पतिः	१८७
अग्निर्जुषत नो गिरो	११४	अच्छा मही बृहती	३५६	अनागसो अदितये	६८८
अग्निर्जातो अरोचत	१२१	अच्छा वद तवसं	६९२	अनु यदीं मरुतो	२००
अग्निर्ददाति सत्पतिं	१७४	अच्छा वो अग्निमवसे	१६९	अनु श्रुताममतिं	५५९
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निः	१७२	अजातशत्रुमजरा	२६४	अनुनोदत्र हस्तयतो	३८७
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु	१०३	अजिरासस्तदप ईयमाना	४०१	अपारो वो महिमा	७२४
अग्निर्हि वाजिनं विशे	६१	अज्येष्ठासो अकनिष्ठास	५३२	अबोधि होता यजथाय	२
अग्निर्होता दास्वतः	८७	अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो	३५५	अबोध्यग्निः समिधा	१
अग्निर्होता न्यसीदद्	६	अतीयाम निदस्तिरः	४६७	अभि क्रन्द स्तनय	६९८
अग्निश्च यन्मरुतो	५३४	अतो नृ आ नृनतिथीन्	४१९	अभि न इळा यूथस्य	३२९
अग्निस्तुविश्रवस्तमं	१७३	अत्यं हविः सचते	३६८	अभि ये त्वा विभावरि	६६५
अग्निं घृतेन वावृधुः	१२३	अत्यायातमश्विना	६३५	अभि वो अर्चे पोष्यावतो	३१८
अग्निं तं मन्ये यो वसुः	५९	अत्रिर्यद् वामवरोहन्	६५६	अभूदुषा रुशत्पशुः	६४२
अग्निं स्तोमेन बोधय	११८	अधारयतं पृथिवीं	५५७	अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते	१४४
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न	१६०	अदत्रया दयते वार्याणि	४१४	अभ्राजि शर्धो मरुतो	४७५
अग्ने त्वं नो अन्तम	१६५	अदर्दरुत्समसृजो वि	२४२	अमादेषां भियसा भूमिः	५२१
अग्ने नेमिरराँ इव	११७	अद्या नो देव सवितः	६८६	अयं सोमश्चमू सुतो	४२५
अग्ने पावक रोचिषा	१७८	अद्वेषो नो मरुतो	७२६	अरा इवेदचरमा अहेव	५१६

अर्चन्तस्त्वा हवामहे	११२	आ धर्णसिर्बृहद्दिवो	३६१	आ सूर्यो यातु सप्ताश्व:	३८९
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं	७११	आ धेनव: पयसा	३४९	इति चिन्नु प्रजायै	३२७
अर्हन्तो ये सुदानवो	४४१	आ नामभिर्मरुतो	३५८	इति चिन्मन्युमध्रिज:	७८
अवर्षीर्वर्षमुदु षू	७०१	आ नो गन्तं रिशादसा	६०८	इत्था यथा त ऊतये	१५२
अव स्पृधि पितरं	३३	आ नो दिवो बृहत:	३५९	इदं वपुर्निवचनं जनास:	४०४
अव स्म यस्य वेषणे	७३	आ नो महीमरमतिं	३५४	इदं हि वां प्रदिवि	६४६
अवोचाम कवये	१२	आ नो मित्र सुदीतिभि:	५७५	इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा	२१३
अवाचचक्षं पदमस्य	२१५	आ नो रत्नानि बिभ्रतौ	६३६	इन्द्रश्च वायवेषां	४२७
अश्वा इवेदरुषास:	५२४	आपथयो विपथयो	४४६	इन्द्राकुत्सा वहमाना	२३७
अश्विना यद्ध कर्हिचित्	६३३	आ प्र द्रव हरिवो मा	२३०	इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं	३९४
अश्विना वाजिनीवसू	६५५	आ भात्यग्निरुषसां	६४३	इन्द्राग्नी यमवथ	७१३
अश्विनावेह गच्छतं	६४०, ६५३	आभूषेण्यं वो मरुतो	४८८	इन्द्राग्नी शतदाव्नी	१९२
अश्विना हरिणाविष	६५४	आ मित्रे वरुणे वयं	६११	इन्द्रो रथाय प्रवतं	२२९
असंमृष्टो जायसे	१०२	आ यज्ञैर्देव मर्त्य	१३४	इमा ब्रह्माणि वर्धना	६२३
असावि ते जुजुषाणाय	३५३	आ यद् योनिं हिरण्ययं	५९१	इमामू नु कवितमस्य	७१०
अस्ति हि वामिह	६२९	आ यद् वाँ सूर्यो रथं	६१८	इमामू ष्वासुरस्य	७०९
अस्मा इत् काव्यं वच	३०१	आ यद् वामीयचक्षसा	५८९	इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्	३६
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य	३८३	आ यस्ते सर्पिरासुते	७७	इरावतीर्वरुण धेनवो	६०१
अस्माकमग्ने अध्वरं	४४	आर्यं जना अभिचक्षे	२४०	इह त्या पुरुभूतमा	६१५
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं	२७९	आ यं नर: सुदानवो	४५९	इळा सरस्वती मही	५५
अस्माकमिन्द्रे नो	२८०	आ य: सोमेन जठरम्	२६५	ईर्मान्यद् वपुषे	६१६
अस्मिन् यज्ञं अदाभ्या	६४१	आ यात मरुतो दिव	४६१	ईळितो अग्न वावह	५०
अस्य क्रत्वा विचेतसो	१३७	आ याह्यद्रिभि: सुतं	३०२	ईळे अग्निं स्ववसं	५२८
अस्य वासा उ अर्चिषा	१३६	आ ये तस्थु: पृषतीषु	५२९	उक्षा समुद्रो अरुष:	४०२
अस्य स्तोमे मघोन:	१३१	आ वामश्वास: सुयुजो	५५८	उग्रो वां ककुहो ययि:	६२०
अस्य हि स्वयशस्तरं	१३५, ६८४	आ वां नरा मनोयुजो	६३९	उच्छन्त्यां मे यजता	५७७
आ ग्रावभिरहन्येभि:	४०९	आ वां येष्ठाश्विना	३१३	उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नी:	३९९
आ चिकितान सुक्रतू	५८४	आ विश्वदेवं सत्पतिं	६८९	उत घा नेमो अस्तुत:	५४३
आ जुहोत दुवस्यत	१९८	आ वेधसं नीलपृष्ठं	३६०	उत त्यन्नो मारुतं	३९६
आ ते अग्न इधीमहि	६२	आ वां रथो रथानां	६३१	उत त्ये न: पर्वतास:	३९७
आ ते अग्न ऋचा	६३	आ वो यन्तूदवाहासो	५१४	उत त्ये मा ध्वन्यस्य	२६३
आ ते ऽवो वरेण्यं	२७५	आ रुक्मैरा युधा नर	४४२	उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य	२६१
आ ते हनू हरिव:	२८२	आ रुद्रास इन्द्रवन्त:	५०४	उत त्ये मा मारुताश्वस्य	२६२
आ दैव्यानि पार्थिवानि	३२४	आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो	१४६	उत त्वा स्त्री शशीयसी	५४१
आद्य रथं भानुमो	११	आ सुष्टुती नमसा	३५०	उत नो गोमतीरिष	६६९
आद् रोदसी वितरं	२०२	आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्ण:	३९०	उत नो विष्णुरुत	३९५

उत ब्रह्माणो मरुतो २०१
उत मेऽरपद् युवतिः ५४४
उत मे वोचतादिति ५५३
उत यासि सवितः ६८१
उत स्म दुर्गृभीयसे ८९
उत स्म ते परुष्ण्याम् ४४५
उत स्म यं शिशुं ८८
उत स्य वाज्यरुषः ५०१
उत स्वानासो दिवि २२
उता यातं संगवे ६४५
उतेशिषे प्रसवस्य ६८२
उतो नो अस्य कस्य २९५
उत् तिष्ठ नूनमेषां ४९९
उदीरय कवितमं ३३३
उदीरयथा मरुतः ४८९
उद्यत् सहः सहस २३१
उद् यदिन्द्रो महते २४८
उनत्ति भूमि पृथिवीं ७०८
उप नः सुतमा गतं ६१०
उप वे एषे वन्द्येभिः ३१७
उप स्तुहि प्रथमं ३३७
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो ६७
उरोष्ट इन्द्र राधसो २९२
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ३४७, ३६४
उशना यत् सहस्यैः २०७
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्व ५१
ऋजीषी वज्री वृषभः ३०५
ऋतं चिकित्व ऋतं १०७
ऋतधीतय आ गत ४२३
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं ५९८
ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो ५६४
ऋतेन ऋतं धरुणं १२५
ऋतेन ऋतमपिहितं ५५५
ऋष्टयो वो मरुतो ५०९
एकं नु त्वा सत्पतिं २५२
एतं ते स्तोमं तुविजात २३
एतं मे स्तोममूर्म्ये ५५२
एता धियं कृणवामा ३८६
एतावद् वेदुषस्त्वं ६७१
एता विश्वा चकृवाँ २१२
एतो न्वद्य सुध्यो ३८५
एदं मरुतो अश्विना १८६
एवा ते अग्ने सुमतिं १८९
एवा न इन्द्रोतिभिरव २६०
एवा हि त्वामृतुथा २५३
एवा अग्निमजुर्यमुः ६८
एवां अग्निं वसूयवः १७७
एवेन्द्राग्नीभ्यामहावि ७१८
एष क्षेति रथवीतिं ५५४
एष ग्रावेव जरिता २८४
एष ते देव नेता ४२१
एषः स्तोमो मारुतं ३४५
एषा गोभिररुणेभिः ६७४
एषा जनं दर्शता ६७३
एषा प्रतीची दुहिता ६७७
एषा व्येनी भवति ६७५
एषा शुभ्रा न तन्वो ६७६
ऐतान् रथेषु तस्थुषः ४५५
ऐषु घा वीरवद् ६६७
औच्छत् सा रात्री २२७
कथा दाशेम नमसा ३२६
कथा महे रुद्रियाय ३२१
कथो नु ते परि २११
कदु प्रियाय धामहे ४०७
कमेतं त्वं युवते १४
कया नो अग्न ऋतयन् १०८
कस्मा अद्य सुजाताय ४६५
कं याथः कं ह गच्छथः ६२६
कितवासो यद् रिरिपुः ७१२
कुत्रा चिद् यस्य ७०
कुमारं माता युवतिः १३
कुह त्या कुह नु श्रुता ६२५
कुष्ठो देवावश्विना ६२४
के ते अग्ने रिपवे १०९
के मे मर्यकं वि १७
के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा ५३६
को अस्य शुष्मं तविषी २५०
को नु वां मित्रावरुणौ ३११
को नु वां मित्रास्तुतो ५९४
को वामद्य पुरुणाम् ६३०
को वेद जानमेषा ४५४
को वेद नूनमेषां ५४९
को वो महान्ति महताम् ५२३
क्रीळन् नो रश्म आ १४८
क्व वो ऽश्वाः क्वाभीशवः ५३७
क्वस्य वीरः को अपश्यत् २१४
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं १६
गन्तानो यज्ञं यज्ञियाः ७२७
गवामिव श्रियसे ५२२
गोमदश्वावद् रथवत् ५१०
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः ३०९
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत २८३
चतुः सहस्रं गव्यस्य २२८
चत्वार ईं बिभ्रति ४०३
चिकित्वन्मनसं त्वा १५९
चित्रा वा येषु दीधितिः १४२
छन्दः स्तुभः कुमन्यव ४४८
जघने चोद एषां ५३८
जनस्य गोपा अजनिष्ट १००
जनिष्ट हि जेन्यो ५
जुषस्वाग्न इळया ४०
जुष्टो दमूना अतिथिः ४१
जुहुरे वि चितयन्तो १४५
ज्यायांसमस्य यतुनस्य ३७३
तं त्वा घृतस्नवीमहे १७९
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः १६८
तं नाकमर्यो अगृभीत ४८१
तं नो अग्ने अभी ९२

तं प्रत्नथा पूर्वथा ३६६
तं वः शर्धं रथानां ४६३
तं वः शर्धं रथेशुभं ५०३
तं वो दीर्घायुशोचिषं १४१
तं हि शश्वन्त ईळते १२०
ततृदानाः सिन्धव ४६०
तत् सवितुर्वृणीमहे ६८३
तत् सु वां मित्रावरुणा ५५६
तदस्तु मित्रावरुणा ४०६
तदिन्नु ते करणं २३५
तदू षु वामेना कृतं ६१७
तदृतं पृथिवि बृहत् ५८८
तद् वीर्यं वो मरुतो ४७४
तद् वो यामि द्रविणं ४८४
तन्नो अनर्वा सविता ४१५
तमग्ने पृतनावहं १६२
तमध्वरेष्वीळते ११९
तमु नूनं तविषीमन्तं ५१२
तमु ष्टुहि यः स्विषुः ३४१
तयोरिदभवच्छवः ७१५
तव त्ये अग्ने अर्चयो ६५, ९७
तव द्युमन्तो अर्चयो १७६
तव श्रिया सुदृशो देव २८
तव श्रिये मरुतो २७
तवाहमग्न ऊतिभिः ९१
तवोतिभिः सचमाना ३३८
तां वो देवाः सुमतिं ३२८
ता अत्नत वयुनं ४०८
ता नः शक्तं पार्थिवस्य ५९७
ता बाहवा सुचेतुना ५७२
तामस्य रीतिं परशोरिव ४१०
ता वां सम्यगद्रुह्वाणा ६०५
ता वामियानोऽवसे ५८०
ता वामेषे रथानाम् ५८६, ७१६
ता वृधन्तावनु द्यून् ७१७
ता हि क्षत्रमविहरुतं ५८५
ता हि श्रेष्ठवर्चसा ५७९
तुज नस्तने पर्वताः ३१९
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो १०
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं १०४
तुभ्येदेते मरुतः २१९
तुविग्रीवो वृषभो २४
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास ५२५
ते ते देव नेतः ४१८
ते नो मित्रो वरुणो ३१२
ते नो वसूनि काम्या ५५१
तेभ्यो द्युम्नं बृहद् ६६८
ते म आहुर्य आययुः ४५६
ते रुद्रासः सुमखा ७२५
ते स्पन्द्रासो नोक्षणः ४३९
ते हि सत्या ऋतस्पृश ५९३
ते हि स्थिरस्य शवसः ४३८
त्वं चिदर्णं मधुपं २४६
त्वं चिदस्य ऋतुभिः २४६
त्वं चिदित्था कत्पयं २४७
त्वं चिदेषां स्वधया २४५
त्यस्य चिन्महतो २४४
त्री यच्छता महिषाणांम् २०६
त्री रोचना वरुण ६००
त्र्यर्यमा मनुषो १९९
त्वं तमिन्द्र मर्त्यं २७७
त्वं नो अग्ने अङ्गिरः ९९
त्वं नो अग्ने अद्भुत ९४
त्वं नो अग्न एषां ९५
त्वं हि मानुषे जने १५४
त्वमग्ने वरुणो जायसे २५
त्वमग्ने सप्रथा असि ११५
त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ ३५
त्वमपो यदवे तुर्वशाय २३६
त्वमर्यमा भवसि यत् २६
त्वमुत्सां ऋतुभिः २४३
त्वां विश्वे सजोषसो १५५
त्वामग्न ऋतायवः ७९
त्वामग्ने अङ्गिरसो १०५
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं ८०
त्वामग्ने धर्णसिं ८२
त्वामग्ने पुरुरूपो ८३
त्वामग्ने प्रदिव ८५
त्वामग्ने मानुषीरीळते ८१
त्वामग्ने वसुपतिं ३७
त्वामग्ने वाजसातमं ११६
त्वामग्ने समिधानं ८४
त्वामग्ने हविष्मन्तो ८६
त्वामस्या व्युषि देव ३२
त्वामिद् वृत्रहन्तम २७८
त्वेषं गणं तवसं ५१३
दमूनसो अपसो ये ३४२
दश क्षिपो युञ्जते ३५२
दश मासाञ्छशयानः ६६१
दिवो नो वृष्टिं मरुतो ६९७
दृळ्हा चिद् या ७०४
देवं वो अद्य सवितारं ४१२
देवं वो देवयज्यया १५६
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु ३९८
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं ५२
देवो भगः सविता रायो ३३५
द्युतद्यामानं बृहतीम् ६७२
द्विताय मृक्तवाहसे १४०
धर्मणा मित्रावरुणा ५७०
धियं वो अप्सु दधिषे ३९१
धूनुथ द्यां पर्वतान् ५०६
न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वा २५६
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने २९
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं २६८
न पर्वता न नद्यो ४९१
नराशंसः सुषूदतीं ४९
नवग्वासः सुतसोमास २१०
नव यदस्य नवतिं २०४

नवो नो अग्न आ ६६
न संस्कृतं प्र मिमीतो ६४४
न स जीयते मरुतो ४७६
नियुत्वन्तो ग्रामजितो ४७७
नि ये रिणन्त्योजसा ४९८
नीचीनवारं वरुणः ७०७
नू त आभिरभिष्टिभिः २९६
नू न इद्धि वार्यं १३८
नू न एहि वार्यं १३३
नू नो अग्न ऊतये ९८
नू मन्वान एषां ४५१
न्यग्निं जातवेदसं १५८, १८४
न्यस्मै देवी स्वधितिः २५१
पदे पदे मे जरिमा नि ३२५
पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे २५९
परावीरास एतन ५३९
परो यत् त्वं परम २१८
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो ५३०
पात नो रुद्रा पायुभिः ६०६
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः ५०८
पुरु यत् त इन्द्र २५७
पुरूरुणा चित् ६०४
पुष्यात् क्षेमे अभि योगे २९१
पोरं चिद्धयुदप्रुतं ६२७
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो ६२८
प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु ७
प्र तव्यसो नमउक्तिं ३५७
प्रति प्रयाणमसुरस्य ४१३
प्रति प्रियतमं रथं ६३४
प्रति मे स्तोममदितिः ३३२
प्र ते पूर्वाणि करणानि २३४
प्र नु वयं सुते या ते २१६
प्रथिष्ट यामन् पृथिवी ५१८
प्र यज्ञ एत्वानुषक् १८५
प्रयज्यवो मरुतो ४८५
प्र युञ्जती दिव एति ४००
प्र ये जाता महिना ७२०
प्र ये दिवो बृहतः ७२१
प्र ये मे बन्ध्वेषे ४५२
प्र ये वसुभ्य ईवदा ४१६
प्र वः स्पळक्रन् त्सुविताय ५२०
प्र व एते सुयुजो ३६९
प्रवत्वतीयं पृथिवी ४७८
प्र वाता वान्ति पतयन्ति ६९५
प्र विश्वसामन्नत्रिवत् १५७
प्र वेधसे कवये १२४
प्र वो मरुतस्तविषा ४७१
प्र वो महे मतयो ७१९
प्र वो मित्राय गायत ५९५
प्र वो रयिं युक्ताश्वं ३१५
प्र वो वायुं रथयुजं ३१६
प्र शंतमा वरुणं दीधिती ३३१
प्र शर्धाय मारुताय ४७०
प्र श्यावाश्व धृष्णुया ४३७
प्र सक्षणो दिव्यः ३१४
प्र सद्यो अग्ने अति ९
प्र सम्राजे बृहदर्चा ७०५
प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं ३४४
प्र सू महे सुशरणाय ३४३
प्राग्नये बृहते १०६
प्रातरग्निः पुरुप्रियो १३९
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि ६०२
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य २०८
प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत ६४९
प्रातर्यावाणा प्रथमा ६४८
प्रियं दुग्धं न काम्यं १४७
प्रैष स्तोमः पृथिवीं ३४६
प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु ६४
बळित्था देव निष्कृतम् ५९०
बळित्था पर्वतानां ७०२
बृहद्वयो बृहते तुभ्यं ३६३
बृहद् वयो हि भानवे १२९
बोधिन्मनसा रथ्या ६३८
भद्रमिदं रुशमा २२५
भूरि नाम वन्दमानो ३४
भीताय नाधमानाय ६५८
मंहिष्ठं वो मघोनां ३००
मध्व ऊ षु मधूयुवा ६२१
मनुष्वत् त्वा नि १५३
मरुत्वतो अप्रतीतस्य ३३६
मरुत्सु वो दधीमहि ४४०
महान्तं कोशमुदचा ६९९
महि महे तवसे दीध्ये २५४
महे नो अद्य बोधयः ६६२
मा कस्याद्भुतक्रतू ६०७
मातुष्पदे परमे शुक्र ३६२
मातेव यद् भरसे १२७
मा मामिमं तव सन्त ३०८
माया वां मित्रावरुणा ५६७
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे ८
मा वो रसानितभा ४६२
मित्रश्च नो वरुणश्च ६१३
मित्रो अंहोश्चिदादुरु ५८१
मिमातु द्यौरदितिः ५२७
मीळ्हुष्मतीव पृथिवी ४९७
मृळत नो मरुतो मा ४९३
यं मर्त्यः पुरुस्पृहं ७४
यं यज्वनौ सुधनौ २७१
यं वै सूर्य स्वर्भानुः ३१०
य इमा विश्वा जातानि ६९१
य इमे उभे अहनी ६९०
य ईं वहन्त आशुभिः ५४६
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः ४४९
य ओहते रक्षसो ३४०
यश्चिद्धि ते गणा इमे ६६६
यजमानाय सुन्वत १८२
यज्ञस्य केतुं प्रथमं १०१
यत् ते दित्सुप्रराध्यं २९९

यत् त्वा सूर्य स्वर्भानुः ३०६
यत् पर्जन्य कनिक्रदत् ७००
यत् पूर्व्यं मरुतो ४९२
यत् प्रावासिष्ट पृषतीभिः ५१७
यत्र वह्निरभिहितो ४२०
यत्र वेत्थ वनस्पते ५७
यथा चिन्मन्यसे हृदा ४९६
यथा वातः पुष्करिणीं ६५९
यथा वातो यथा वनं ६६०
यदद्य स्थः परावति ६१४
यदश्वान् धूर्षु पृषतीः ४९०
यदिन्द्र चित्र मेहना २९७
यदिन्द्र ते चतस्रो २७४
यदी गणस्य रशनामजीगः ३
यदीं सोमा बभ्रुधूता २२४
यदीमिन्द्र श्रवाय्यं २९३
यदुत्तमे मरुतो ५३३
यद्बंहिष्ठं नातिविधे ५६३
यद् वाहिष्ठं तदग्नये १७५
यन्नूनमश्यां गतिं ५७३
यन्मन्यसे वरेण्यं २९८
यन्मरुतः सभरसः ४७९
यमग्ने वाजसातम १४९
यश्चिकेत् स सुक्रतुः ५७८
यस्ते अग्ने नमसा १११
यस्ते साधिष्ठोऽवस २७३
यस्तेवा हृदा कीरिणा ४६
यस्मै त्वं सुकृते ४७
यस्य प्रयाणमन्वन्य ६८०
यस्य व्रते पृथिवी ६९६
यस्य मा परुषाः १९१
यस्यवधीत् पितरं २६७
यादृगेव ददृशे तादृक् ३७१
या धर्तारा रजसः ६०३
या पूतनासु दुष्टरा ७१४
या सुनीथे शौचद्रथे ६६३
युजं हि मामकृथा २२१
युञ्जते मन उत् ६७८
युवं नो येषु वरुण ५७६
युवं मित्रेमं जनं ५८३
युवाभ्यां मित्रावरुणा ५७४
युवा स मारुतो ५४८
युवोरत्रिश्चिकेतति ६१९
युष्माकं स्मा रथाँ ४५८
युष्मादत्तस्य मरुतो ४८२
युङ्ध्वं ह्यरुषी रथे ५००
यूयं मर्तं विपन्यवः ५५०
यूयमस्मान् नयत ४९४
यूयं रयिं मरुतः ४८३
यूयं राजानमियं जनाय ५१५
ये अग्ने चन्द्र ते गिरः ९६
ये अग्ने नेरयन्ति ते १५०
ये अञ्जिषु ये वाशीषु ४५७
ये चाकनन्त चाकनन्त २४१
येन तोकाय तनयाय ४६६
ये मे पञ्चाशतं ददुः १४३
ये वावृधन्त पार्थिवा ४४३
येषां श्रियाधि रोदसी ५४७
यो अस्मै घ्रंस उत २६६
यो जागार तमृचः ३७९
यो न आगो अभ्येनो ३१
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां ६५१
यो म इति प्रवोचत् १९०
यो मे धेनूनां शतं ५४५
यो मे शता च विंशतिं १८८
यो रोहितौ वाजिनौ २८६
रथं नु मारुतं वयं ५०२
रथं युञ्जते मरुतः ५६८
रथीव कशयाश्वां ६९४
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति २८९
वधेन दस्युं प्र हि ४२
वनेषु व्यन्तरिक्षं ७०६
वयं ते अग्न उक्थैः ४३
वयं ते त इन्द्र ये च २५८
वयमग्ने वनुयाम ३०
वयं मित्रस्यावसि ५८२
वयो न ये श्रेणीः ५२६
वरा इवेद् रैवतासो ५३१
वरुणं वो रिशादसम् ५७१
वसां राजानं वसनि १८
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा १६६
वाचं सु मित्रावरुणौ ५६९
वाजो नु ते शवसः १२८
वातत्विषो मरुतो ५०७
वातस्य पत्मन्नीळिता ५४
वातस्य युक्तान् त्सुयुजः २३८
वायवा याहि वीतये ४२६
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो ५०५
वि जिहीष्व वनस्पते ६५७
वि ज्योतिषा बृहता २१
वि वन्दते धियो ४०५
वित्वक्षणः समृतौ २६९
विदा चिन्नु महान्तो ३२३
विदा दिवो निष्यन् ३८१
विद्युन्महसो नरो ४७२
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य ४२४
वि या जानाति जसुरिं ५४२
वि वृक्षान् हन्त्युत ६९३
विशां कविं विश्पतिं ३९
विश्वस्य हि प्रचेतसा ६०९
विश्वानि देव सवितः ६८७
विश्वानि नो दुर्गहा ४५
विश्वा रूपाणि प्रति ६७९
विश्वे अस्या व्युषि ३८८
विश्वे देवा नो अद्या ४३४
विश्वे हि त्वा सजोषसो १९३
विश्वे हि विश्ववेदसो ५९२
विश्वो देवस्य नेतुः ४१७

वि षू मृधो जनुषा २२०
विसर्माणं कृणुहि ३३९
वि सूर्यो अमतिं न ३८२
वीतिहोत्रं त्वा कवे १८०
वृषा ग्रावा वृषा मदो ३०३
वृषा त्वा वृषणं २८५, ३०४
वृषा ह्यसि राधसे २७६
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती ५९९
वृष्णे यत् ते वृषणो २३३
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य ३२०
वेत्यग्रुर्जनिवान् वा ३७२
व्यक्रून् रुद्रा व्यहानि ४७३
व्युच्छा दुहितर्दिवो ६७०
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा ६१२
शभू षु वां मधूयुवा ६३२
शर्धं शर्धं व एषां ४६४
शर्धो मारुतमुच्छंस ४४४
शिवस्त्वष्टरिहा गहि ५६
शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् ७६
शुनश्चिच्छेपं निदितं १९
शुष्मासो ये ते २९४
शृणोतु न ऊर्जा ३२२
श्येन आसामदितिः ३७६
श्रिये सुदृशीरुपरस्य ३६७
संजर्भुराणस्तरुभिः ३७०
सं भानुना यतते २८७
सं यदिषो वनामहे ७१
स आ गमदिन्द्र यो २८१
सखायः सं वः सम्यंचं ६९
सखायस्ते विषुणा ११०
सखा सख्ये अपचत् २०५
सचक्मे महतो ७२२
स जिह्वया चतुरनीक ४११
सजूरादित्यैर्वसुभिः ४३१
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां ४३०
सजूर्विश्वेभिर्देवेभिः ४२९
सत्यमिद् वा उ अश्विना ६२२
स त्वं न इन्द्र धियसानो २५५
सदापृणो यजतो वि ३७७
स न राजा व्यथते २९०
सन्त साख्यं पशुम् ५४०
स नो धीति वरिष्ठया १७१
स नो बोधि श्रुधी १६७
सप्त मे सप्त शाकिन ४५३
समत्र गावोऽभितो २२३
समश्विवोरवसा ३४८, ३६५
६४७, ६५२
समिद्धस्य प्रमहसः १९६
समिद्धाग्निर्वनवत् २८८
समिद्धो अग्न आहुत १९७
समिद्धो अग्निर्दिवि १९३
समिधानः सहस्रजित १८३
समिध्यमानो अमृतस्य १९४
समिन्द्र जो मनसा ३३४
समीं पणेरजति भोजनं २७०
समुद्रमासामव तस्थे ३७४
सम्राजा उग्रा वृषभा ५६६
सम्राजा या घृतयोनी ५९६
सम्राजावस्य भुवनस्य ५६५
स स्मा कृणोति ७२
सहस्रसामाग्निवेशिं २७२
स हि क्षत्रस्य मनसस्य ३७५
स हि द्युभिर्जनानां १३०
स हि रत्नानि दाशुषे ६८५
स हि ष्मा धन्वाक्षितं ७५
स हि ष्मा विश्वचर्षणिः १६४
स हि सत्यो यं पूर्वे १७०
साकं जाताः सुभ्वः ४८७
सा नो अद्याभरद्वसुः ६६४
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टे ३३०
सुतंभरो यजमानस्य ३७८
सुता इन्द्राय वायवे ४२८
सुदेवः समहासति ४६८
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं २२६
सुप्रतीके वयोवृधा ५३
सुरूपे वां [illegible] ६३७
सुसमिद्धाय शोचिषे ४८
सूर्योऽग्निर्वे [illegible] ३८४
सृजेद् त्वं परि २३९
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे ६०
स्तुहि भोजान् स्तुवतो ४६९
स्तोमासस्त्वा गौरिवीते २०९
स्तोमासस्त्वा विचारिणि ७०३
स्थिरे हि दान अनुयानि २२२
स्थिरं मनश्चकृषे जात २१७
स्वनो न वोऽमवान् ७१३
स्वयं दधिध्वे तविषीं ४८६
स्वर्भानोरध यदिन्द्र ३०७
स्वस्तये वायुमुप ४३३
स्वस्ति नो मिमीतामश्विना ४३२
स्वस्ति पन्थामनु ४३६
स्वस्ति मित्रावरुणा ४३५
स्वाहाग्नये वरुणाय ५८
हये नरो मरुतो मृळता ५११, ५१९
ह्यो न विद्वां अयुजि ३९२
हव्यवाळग्निरजरः पिता ३८
हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो ६५०
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णम् १५
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य ५६१
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ ५६२
हृणीयमानो अप हि २०
होतारं त्वा वृणीमहे १५१

Visit Dwarkadheeshvastu.com For
FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos Educational Books, Educational Videos, Wallpapers
****
All Music is also available in CD format. CD Cover can also be print with your Firm Name
****
We also provide this whole Music and Data in PENDRIVE and EXTERNAL HARD DISK.
Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

RIGVED KA SUBODH BHASHYA

PART-3

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

षष्ठं-मण्डलम्

[१]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१ त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता ऽस्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १ ॥

२ अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥ २ ॥

[१]

अर्थ— [१] हे (अग्ने) हे तेजस्वी देव ! (त्वं प्रथमः मनोता) तू विद्वानोंके मनको सबसे प्रथम आकर्षित करनेवाला है । (दस्म) हे दर्शनीय देव ! (अस्याः धियः होता अभवः) इस बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको तू सम्पन्न करनेवाला है । (विश्वस्मै सहसे सहध्यै) सब बलवान् शत्रुओंका पराभव करनेके लिये (वृषन्) हे बलवान् देव ! (त्वं सीं दुष्टरीतु सहः अकृणोः) तू सब प्रकारसे अजेय बल प्रकट करता है ॥ १ ॥

[२] (अध) इस समय तू (यजीयान् होता) अतिशय पूजनीय और विद्वानोंको बुलानेवाला और (इषयन् ईड्यः सन्) अन्न बढानेकी इच्छा करनेके कारण प्रशंसनीय होकर (इळः पदे न्यसीदः) यज्ञकी भूमिपर बैठा है (प्रथमं देवयन्तः नरः) सबसे प्रथम देव बननेकी इच्छा करनेवाले नेता (महः राये चितयन्तः) तुझको महान् धन देनेवाला करके जानते हैं और (तं त्वा अनुग्मन्) तुझे ही अनुसरते हैं । तेरा ही अनुकरण करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी देव ! तू ज्ञानियोंके मनको अपनी ओर आकर्षित करनेवाला है । बुद्धिपूर्वक किये गए कर्मोंको तू संपन्न करता है । तू शत्रुओंको हरानेके लिए अपने अप्रतिम बलको प्रकट करता है । इसी तरह मनुष्यभी इसी अग्निके समान तेजस्वी बनकर ज्ञानियोंका मन अपनी तरफ आकर्षित करे । वह तेजसे युक्त होकर दर्शनीय बने, हर काम बुद्धिपूर्वक करे और शत्रुओंका पराभव करनेके लिए अपना बल प्रकट करे ॥ १ ॥

३ ऋतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३ ॥

४ पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ४ ॥

अर्थ— [३] (त्वे रायें जागृवांसः) तेरे आश्रयमें रहनेवाले धनको प्राप्त करनेके लिये जाग्रत रहनेवाले लोग (बहुभिः) अनेक प्रकारके (वसव्यैः) धन प्राप्त करनेके व्यवसाय करनेवालोंके साथ रहकर (ऋता इव यन्तं) ठीक मार्गसे जानेवाले (रुशन्तं दर्शतं) तेजस्वी सुन्दर, (वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसं) घृतान्नभोजी सदा देदीप्यमान ऐसे (बृहन्तं अग्निं) अग्निरूप तेजस्वी अग्रणीका (अनुग्मन्) अनुकरण करते रहे हैं ॥ ३ ॥

१ जागृवांसः रुशन्तं अग्निं अनुग्मन्— जाग्रत रहनेवाले साधक तेजस्वी अग्रणीका अनुकरण करे । अन्ध-विश्वाससे किसी असाधुके पीछे न पडे ।

२ जागृवांसः रयिं अनुग्मन्— जाग्रत रहकर प्रयत्न करनेवाले ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं ।

[४] (देवस्य पदं नमसा व्यन्तः) प्रभुके पवित्र पदको नमस्कार द्वारा प्राप्त करनेवाले साधक तथा (श्रवस्यवः अमृक्तं श्रवः आपन्) यशःप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उपासक अपराजित यशको प्राप्त करते हैं । तथा (ते भद्रायां संदृष्टौ रणयन्त) तेरे कल्याणमय सौंदर्यमें आनंदित होते हैं और प्रभुके (यज्ञियानि नामानि दधिरे) अनेक पवित्र नामोंका ध्यान करते हैं ॥ ४ ॥

१ ते भद्रायां संदृष्टौ रणयन्त— प्रभुके कल्याण करनेवाले (विश्वके) सौंदर्यमें आनन्द प्राप्त करते रहें । विश्वमें सुन्दरता है उसको देखकर मनुष्य आनन्द प्राप्त करे ।

२ यज्ञियानि नामानि दधिरे— प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करते रहें ।

भावार्थ— ज्ञानियोंको बुलानेवाला तथा अन्न प्रदान करनेवाला होनेके कारण प्रशंसनीय यह अग्नि यज्ञकी भूमि पर स्थिर है यह अग्नि सबका नेता है और दिव्य गुणोंसे युक्त होने की इच्छा करता है । इसका जो अनुसरण करता है, उसे यह धन प्रदान करता है । मनुष्य भी अग्निके समान पवित्र बनें, ज्ञानियोंके साथ रहें, अन्नसे सम्पन्न रहें तथा प्रशंसित कर्मोंको करनेके लिए सदा आगे रहें । दैवी भाव प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य धनका योग्य रीतिसे दान करनेवाले नेताका अनुसरण करें ॥ २ ॥

साधक सदा जागृत रहे, धन प्राप्त करनेका यत्न करे, योग्य मार्गसे जाए, धन प्राप्त करनेवालोंके साथ मिलकर यत्न करे । तेजस्वी नेताका अनुसरण करे । अपनी उन्नति करनेकी इच्छा करनेवाले साधक हमेशा सावधान रहकर तेजस्वी नेताका ही अनुसरण करें । अन्धविश्वास करते हुए किसी दुष्टका अनुकरण न करें । सदा जाग्रत रह कर प्रयत्न करनेवाले ही ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

प्रभुके पवित्र पदका जो मनुष्य ध्यान करते हैं, वे श्रेष्ठ यशको प्राप्त करते हैं, उनका वह यश कभी कलंकित नहीं होता । वे सर्वत्र प्रभुके कल्याणमय सौन्दर्यका ही साक्षात्कार करते हैं और उस प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करते हैं । मनुष्य ईश्वरके पवित्र पदकी विनम्र भावनासे उपासना करें, उसकी उपासनाके द्वारा विजयी यशको प्राप्त करें । सर्वत्र उसके कल्याणकारी सौन्दर्यको ही अपनी नजरोंसे देखें । सर्वत्र यह प्रभुकी महिमाका ही दर्शन करें और मनसे प्रभुके पवित्र नामोंका स्मरण करता रहे ॥ ४ ॥

५ त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥ ५ ॥

६ सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्नि- र्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांस- मुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥

७ तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७ ॥

अर्थ— [५] हे तेजस्वी प्रभो ! (त्वां क्षितयः पृथिव्यां वर्धन्ति) तुझको प्रजाजन पृथिवी पर बढाते हैं। (जनानां उभयासः रायः त्वां) लोगोंके दोनों प्रकारके धन तुझे बढाते हैं। हे (तरणे) दुःखसे तारनेवाले ! (त्वं चेत्यः, त्राता भूः) तू सबको ज्ञान देनेवाला और सबका रक्षण करनेवाला है। और तू (मनुष्याणां सदं इत् पिता माता) मनुष्योंका सच्चा पिता और माता है ॥ ५ ॥

१ तरणे ! त्वं चेत्यः त्राता भूः— हे तारक प्रभो ! तू ज्ञान देता है और तारण करता है। वैसा ही मनुष्य स्वयं ज्ञान प्राप्त करे, दूसरोंको ज्ञान देवे और उनका तारण भी करे।

२ मनुष्याणां सदं इत् माता पिता— ईश्वर मनुष्योंका सच्चा माता पिता है। सच्चा पालक है और सच्चा प्रेम करनेवाला है।

[६] (सः अग्निः सपर्येण्यः) वह अग्नि पूज्य (विक्षु प्रियः होता) प्रजाओंमें प्रिय और दाता (मन्द्रः यजीयान्) आनन्द देनेवाला और यजन करनेवाला वेदीमें (निषसाद) बैठा है। (वयं) हम (दमे दीप्यमानं तं त्वां) घरमें देदीप्यमान होनेवाले उस तुझको (ज्ञुबाधः नमसा उप आ सदेम) घुटने टेककर प्रणाम करते हुए तेरे समीप प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ विक्षु प्रियः सपर्येण्यः— जो प्रजाजनोंमें प्रिय होता है, उसकी पूजा होती है। पूजनीय नेता पर सब प्रेम करते हैं।

[७] हे (अग्ने) तेजस्वी प्रभो ! (सुध्यः सुम्नायवः देवयन्तः) शोभन बुद्धिवाले, सुखकी इच्छा वाले तथा देवत्व प्राप्त करनेवाले (वयं) हम (नव्यं तं त्वा) प्रशंसा करने योग्य ऐसे तेरी (ईमहे) स्तुति करते हैं। हे (अग्ने) तेजस्वी देव ! (त्वं बृहता रोचनेन दीद्यानः) तू अत्यन्त तेजसे प्रकाशित होकर (विशः दिवः अनयः) प्रजाओंको स्वर्गको पहुंचाता है। सुखदायक स्थानमें रखता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— परम प्रभु सबको दुःखसे तारनेवाला, सबको ज्ञान देनेवाला और सबकी रक्षा करनेवाला है। वही सबका सच्चा माता पिता है। ऐसे प्रभुका गुणगान करनेवाला मनुष्य ही ऐहिक और पारमार्थिक धनको प्राप्त करता है और इस संसारमें आनंदसे रहता है। मनुष्योंको ज्ञान–विज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्वयं ज्ञानी बनकर वह अन्योंको भी शिक्षित करके उन्हें दुःखसे तारे। जिस तरह माता पिता अपनी सन्तानोंका पालन पोषण करते हैं, उसी तरह नेता अपने अनुयायियोंका पालन पोषण करे ॥ ५ ॥

वह अग्नि पूज्य, प्रजाओंमें प्रिय, दाता और आनन्द देनेवाला है। ऐसे अग्निकी उपासना घुटने टेककर अर्थात् विनम्र भावसे करनी चाहिए। जो अग्रणी नेता प्रजाजनोंमें प्रिय होता है, वह सबके लिए पूज्य होता है। पूजनीय नेता पर सब प्रेम करते हैं। ऐसा ही नेता श्रेष्ठ आसन पर बैठ सकता है ॥ ६ ॥

×

८ विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८ ॥
९ सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभि- र्विश्वेत् स वामा दधते त्वोतः ॥ ९ ॥
१० अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थै- रा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ १० ॥

अर्थ— [८] (शश्वतीनां विशां विश्पतिं) शाश्वत प्रजाओंके पालक (कविं नितोशनं वृषभं) ज्ञानी, शत्रुओंका नाश करनेवाले, बलवान् (चर्षणीनां प्रेतीषणिं) प्रजाजनोंके पास जानेवाले (इषयन्तं पावकं राजन्तं) अन्न देनेवाले, पवित्रता करनेवाले, कान्तिमान् (यजतं रयीणां अग्निं) पूजनीय अग्निकी—अग्रणीकी धनोंकी प्राप्ति होनेके लिए हम स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

१ विशां विश्पतिः कविः— प्रजाओंका शासक ज्ञानी हो ।

२ वृषभः नितोषन — शासक बलवान् हो और शत्रुका नाश करनेवाला हो ।

३ चर्षणीनां प्रेतीषणिः— प्रजाजनोंके पास जाकर उनकी परिस्थिति देखनेवाला शासक हो ।

[९] हे (अग्ने) तेजःस्वरूप ! (सः मर्तः ईजे) वह मनुष्य तुम्हारे लिये यजन करता है । (च शशमे) और स्तुति करता है, (यः ते समिधा हव्यदातिं आनट्) जो तुझको समिधा व हविष्यान्न देता है, (यः नमोभिः आहुतिं परिवेद) और जो नमस्कारोंके साथ घृतादिकी आहुति देता है । (त्वा ऊतः सः विश्वा इत् वामा दधते) वह तेरे द्वारा सुरक्षित होकर सब धनको धारण करता है ॥ ९ ॥

[१०] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (अस्मै ते महे) इस तुम महान् नेताकी प्रीतिके लिये (नमोभिः समिधा उत हव्यैः) नमस्कारों, समिधाओं व हविर्द्रव्योंसे हम (महि विधेम) बडा यज्ञ करते हैं । हे (सहसः सूनो) बलके पुत्र अग्ने ! (वेदी गीर्भिः उक्थैः) यज्ञस्थानमें अपनी वाणियोंसे तथा स्तोत्रोंसे हम तेरी अर्चना करते हैं । और (ते भद्रायां सुमतौ आ यतेम) तेरी कल्याणमयी सुमतिमें रहकर हम अपनी उन्नतिके लिये प्रयत्न करें ॥ १० ॥

भावार्थ— जो उत्तम बुद्धिवाले, सुखकी इच्छा करनेवाले तथा देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हैं, वे इस अग्निकी स्तुति करते हैं । मनुष्य उत्तम बुद्धिको धारण करे, देवत्वको प्राप्त करे और देवोंके गुणोंको अपने अन्दर धारण करे । इस प्रकार स्वयं तेजस्वी बनकर तथा सुख प्राप्त करके दूसरोंको भी तेजस्वी और सुखी बनाये तथा इस प्रकार अपने देशको स्वर्ग बनाये । स्वर्ग वह स्थान है कि जहां अज्ञान नहीं है, जहां सब विद्वान् रहते हैं, जहां रोग तथा अपमृत्यु नहीं है, जहां खानपानकी न्यूनता नहीं है, जहां जीर्ण और क्षीण अर्थात् दुर्बल कोई नहीं होता, सब पूर्णायु बलवान् और प्रजावान् होते हैं । उत्तम वर्गके लोग जहां रहते हैं, वह स्थान सुवर्ग लोक है । सभी नेताओंको चाहिए कि वे अपने राष्ट्रको सुवर्ग या स्वर्ग बनायें ॥ ७ ॥

अग्रणी नेता प्रजाका पालन करे, ज्ञानी हो, शत्रुका पराभव करे, बलवान् बने, प्रजाओंके पास उनकी स्थिति देखनेके लिए जाता रहे और उनकी अवस्थाकी जांच पडताल करता रहे । वह अन्नका दान करे, पवित्रता करे, तेजस्वी हो, स्वयं पूज्य हो, और धन प्राप्त कराये । जिनको जरूरत पडे उन्हें वह समय पर धन भी दे ॥ ८ ॥

मनुष्य ईश्वरकी स्तुति करे, यज्ञ करे, समिधा और हव्य पदार्थोंकी आहुति दे । वह परम प्रभुको प्रणाम करे । ऐसे भक्तका संरक्षण ईश्वर करता है और उसे सब धन देता है । ईश्वरसे सुरक्षित होकर मनुष्य हर तरहके धनको प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

जो विनम्रतापूर्वक समिधाओं और हविर्द्रव्योंसे यज्ञ करता है, उस पर यह अग्रणी या महान् नेता प्रसन्न होता है । मनुष्य जब अपनी वाणियोंसे इस अग्निकी अर्चना करता है, तब उसे इस अग्निकी उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है और उत्तम बुद्धिको प्राप्त करते हुए वह अपनी उन्नति करता है ॥ १० ॥

११ आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ११ ॥
१२ नृवद् वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ १२ ॥
१३ पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ १३ ॥

[२]

[ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— अग्निः । छन्दः— अनुष्टुप्, ११ शक्वरी ।]

१४ त्वं हि क्षैतवद् यशो ऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १ ॥

अर्थ— [११] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः रोदसी) जो तू द्यावापृथिवीमें (भासा वि आ ततन्थ) अपनी कान्तिको विशेष रीतिसे फैलाता है । तथा सबका (तरुत्रः) तारक होकर तू (श्रवोभिः श्रवस्य च) यशोंसे यशस्वी होता है । हे (अग्ने) अग्ने ! (बृहद्भिः वाजैः स्थविरेभिः रेवद्भिः) बडे बलोंके साथ विशेष धनवालोंसे घिरा रहकर (अस्मे वितरं वि भाहि) हमारे लिये विशेष तारक होकर प्रकाशित हो ॥ ११ ॥

[१२] हे (वसो) धनवान् अथवा बसानेवाले प्रभो ! (नृवत् सदं इत् अस्मे धेहि) बहुत पुत्र पौत्रों और जनोंसे युक्त घर सदा हमें दे । (भूरि पश्वः) बहुत पशु आदि भी हमें दे । यह सब ऐश्वर्य (तोकाय तनयाय) हमारे बालबच्चोंके लिये भी दे । (पूर्वीः बृहतीः आरे अघा इषः) पर्याप्त, बडे और पापरहित पूर्ण अन्न तथा (भद्रा सौश्रवसानि अस्मै सन्तु) कल्याण करनेवाले यश हमें प्राप्त हों ॥ १२ ॥

[१३] हे (राजन् अग्ने) प्रकाशमान अग्नि देव ! (ते पुरूणि पुरूधा वसूनि) तेरे पासके अनेक प्रकारके धन हमें मिलें और (वसुता अश्यां) तथा धनवत्ता हमें उपभोगके लिये मिले । हे (पुरुवार अग्ने) बहुतोंसे वर्णन करने योग्य अग्नि देव ! (राजनि त्वे पुरूणि वसु त्वे विधते सन्ति) तुझ तेजस्वी देवके पास बहुत धन तेरी सेवा करनेवालोंको देनेके लिये सदा रहते हैं ॥ १३ ॥

[२]

[१४] हे (अग्ने) अग्नि देव ! (त्वं हि क्षैतवत् यशः) तू निश्चयसे वीरोंके साथ रहनेसे मिलनेवाला यश (मित्रः न पत्यसे) मित्रके समान प्राप्त करता है । इस कारणसे, हे (विचर्षणे , विशेष रूपसे सबको देखनेवाले (वसो) धनवान् तेजस्वी देव ! (त्वं श्रवः न पुष्टिं पुष्यसि) तू अन्नसे होनेवाली पुष्टिके समान पोषण करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस द्युलोकमें सूर्यके रूपमें और पृथ्वीलोकमें पार्थिवाग्निके रूपमें इसी अग्निका प्रकाश फैल रहा है । वही तेजस्वी प्रभु सबको संकटोंसे तारनेवाला है, इसी कारण वह यशोंसे यशस्वी है । वह सर्वशक्तिमान् होनेके कारण सब तरहकी शक्तियोंसे वह घिरा रहता है और सब तरहके ऐश्वर्योंसे संपन्न है ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! बहुत पुत्रपौत्रों और जनोंसे युक्त गृह हमें दे । पशु आदि ऐश्वर्य भी हमें दे । जो भी ऐश्वर्य हमें मिले, वह हमारे पुत्र और पौत्रोंके कल्याणके लिए ही मिले । उस ऐश्वर्यसे हम अपने बालबच्चोंका अच्छी तरह पोषण करें । हम जिस अन्नसे भी पोषण करें, वह पापरहित मार्गसे कमाया गया हो और इस प्रकार हम उत्तम मार्गसे चलकर कल्याणकारी यशके भागी बनें ॥ १२ ॥

हे अत्यन्त प्रकाशक अग्ने ! तेरे पास जो अनेक प्रकारके धन हैं, वे हमें मिलें, उन धनोंका हम उपभोग करें । हे अग्ने ! हम यह अच्छी तरह जानते हैं, कि जो तेरी सेवा करता है, उसे देनेके लिए हमेशा तेरे पास धन आदि ऐश्वर्य रहते हैं । इसी तरह अग्रणी नेताके पास अपने अनुयायियोंको देनेके लिए भरपूर धन रहे ॥ १३ ॥

१५ त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥

१६ सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३ ॥

१७ ऋधद् यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५] हे अग्ने ! (त्वां हि स्म चर्षणयः) तेरी ही वास्तवमें मनुष्य (यज्ञेभिः गीर्भिः ईळते) यज्ञोंसे और वाणियोंसे स्तुति करते हैं । और (अवृकः रजस्तूः विश्वचर्षणिः) हिंसारहित, लोकोंको तारनेवाला और सबको देखनेवाला (वाजी त्वां याति) बलवान् वीर तुझे प्राप्त होता है ॥ २ ॥

[१६] हे अग्ने ! (यत् ह स्यः मानुषः जनः) जब वह मानवी जनसमुदाय (सुम्नायुः अध्वरे जुह्वे) सुखकी इच्छा करता हुआ, हिंसारहित कर्ममें तेरी प्रार्थना करता है । तब (सजोषः दिवः नरः) उत्साहयुक्त मनवाले दिव्य नेता (यज्ञस्य केतुं त्वां इन्धते) यज्ञके ध्वजारूप तुझे प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१७] हे अग्ने ! (सुदानवे धिया यः मर्तः) उत्तम दान देनेवाले ऐसे तेरे लिये बुद्धिपूर्वक जो मनुष्य (शशमते) स्तुति करता है । (सः बृहतः दिवः ऊति) वह महान् कान्तिवाले तेरी रक्षासे सुरक्षित होकर (अंहः न द्विषः तरति) पापसे, शत्रुओंसे पार हो जानेके समान पार हो जाता है और वह (ऋधत्) बढता भी जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अग्रणी वीर ! तू ऐसा यश प्राप्त कर कि जिसके साथ अनेक मानव वीर रहते हैं । जैसे मित्रके साथ लोग रहते हैं, वैसे ही तेरे साथ वीर रहें । तू उन सबका निरीक्षण कर । उन सब लोगोंका निवास करानेवाला बन और धन तथा अन्नसे उन सबका पोषण कर ॥ १ ॥

हे अग्ने ! मनुष्य अपनी वाणियों और यज्ञोंसे तेरी ही स्तुति करते हैं । तुझे या तेरे तेजको वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो हिंसारहित, लोकोंकी रक्षा करनेवाला, सबको देखनेवाला तथा बलवान् वीर है । अग्रणी नेता ऐसा हो कि सब लोग उसकी तरफ आकर्षित हों और अपनी वाणियोंसे उसकी प्रशंसा करें । इसके अनुयायी बलवान् वीर हों, तथा वह हिंसा न करनेवाला, लोगोंका संरक्षण करनेवाला तथा सबका निरीक्षण करनेवाला हो ॥ २ ॥

जब मनुष्य सुखकी इच्छा करते हुए हिंसारहित शुभ कर्मोंको करते हुए इस तेजस्वी प्रभुकी प्रार्थना करते हैं, तब उत्साही मनवाले दिव्य नेता यज्ञका ज्ञान करानेवाले इस अग्निको प्रदीप्त करते हैं । सुख बढानेकी इच्छा करनेवाले सब मनुष्य एकत्रित होकर हिंसारहित कर्म करते हुए ईश्वरकी प्रार्थना करें ॥ ३ ॥

जो मनुष्य उत्तम मनसे पुण्यकारक धनका दान करनेवालेकी स्तुति करता है, उसकी रक्षा महान् कान्तिवाला अग्नि करता है, तब अग्निकी रक्षासे रक्षित होकर वह अपने सभी शत्रुओंसे ऊपर उठ जाता है, अर्थात् वह इतना तेजस्वी हो जाता है कि उसके सब शत्रु निस्तेज हो जाते हैं और निस्तेज हो जानेके कारण उनका पतन हो जाता है । दूसरी तरफ वह मनुष्य तेजस्वी होनेके कारण बढता जाता है ॥ ४ ॥

१८ समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥
१९ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥
२० अधा हि विक्ष्वीड्यो ऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७ ॥
२१ क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसे ऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयो ऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१८] हे (अग्ने) अग्ने ! (समिधा) समिधाके साथ (निशितिं आहुतिं) पवित्र आहुति (यः मर्त्यः ते नशत्) जो मनुष्य तुझे देता है। (सः) वह (वयावन्तं क्षयं पुष्यति) पुत्रपौत्रादिसे युक्त अपने गृहको बढाता और (शतायुषं) सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ समिधा निशितिं आहुतिं मर्त्यः नशत्— समिधाएं और पवित्र आहुतियां मनुष्य अग्निको समर्पण करें। मनुष्य यज्ञ करे।

२ स मर्त्यः वयावन्तं क्षयं पुष्यति— वह मनुष्य बालबच्चोंसे और धनधान्यसे भरा हुआ घर और भी परिपुष्ट करता है। और भी उसका घर बालबच्चोंसे और ऐश्वर्यसे अधिकाधिक भरता रहता है। बढता रहता है।

३ स मर्त्यः शतायुषं पुष्यति— वह मनुष्य सौ वर्षोंतक पुष्ट होता रहता है। सौ वर्षकी पूर्णायुतक हृष्टपुष्ट होता रहता है।

[१९] हे अग्ने ! (ते त्वेषः शुक्रः धूमः) तेरा तेजस्वी निर्मल धुवां (दिवि आततः सन्) अन्तरिक्षमें फैलता हुआ (ऋण्वति) सर्वत्र जा रहा है। हे (पावक) पवित्र करनेवाले अग्ने ! (सूरः न) सूर्यके समान (कृपा त्वं द्युता रोचसे हि) स्तुतिसे स्तूयमान होकर तू कान्तिसे दीप्तिमान होता है ॥ ६ ॥

[२०] हे अग्ने ! तू (विक्षु ईड्यः असि) प्रजाओंमें प्रशंसनीय है, (अध) और (हि नः अतिथिः) हमें अपने घर आये अतिथिकी तरह (प्रियः) प्रिय है। तथा (पुरि इव जूर्यः रण्वः) नगरोंमें रहनेवाले हितोपदेश वृद्ध पुरुषके समान रमणीय है। और (सूनुः न त्रययाय्यः) तू पुत्रकी तरह पालनीय है ॥ ७ ॥

[२१] हे (अग्ने) अग्ने ! (क्रत्वा द्रोणे अज्यसे हि) मन्थन रूप कर्मसे उत्पन्न होकर काष्ठमें तू गति करता है। तथा (वाजी न कृत्व्यः) वेगवान् घोडेके समान तू बडा उपयोगी कर्म करनेवाला है। और (परिज्मा इव) तू वायुकी तरह सर्वगामी है। तथा (स्वधा गयः) अन्न और गृह देनेवाला है। (शिशुः अत्यः न ह्वार्यः) बालक होनेपर भी घुडदौडके अश्वके समान सतत गतिशील है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य इस अग्निमें श्रेष्ठ समिधाके साथ पवित्र आहुति देता है, वह अपने गृहको पुत्रपौत्रादिकोंसे सम्पन्न करके सुखमय बनाता है और सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

मनुष्यका तेज अग्निके समान चारों ओर फैले और मनुष्य सूर्यके समान अपने तेजसे प्रकाशित होता रहे ॥ ६ ॥

हे अग्रणी नेता ! तू प्रजाओंमें प्रशंसनीय हो, तथा तू हमें इतना प्रिय हो कि जब तू अतिथि होकर हमारे घर आए, तो हम तेरा भरपूर सत्कार करें। जिस तरह एक ज्ञानी लोगोंको ज्ञानका सदुपदेश देता है, उसी तरह तू भी सब प्रजाओंको उत्तम मार्गका उपदेश दे। जब तू ऐसा करेगा, तो तू प्रजाओंके लिए पुत्रकी तरह पालनीय होगा ॥ ७ ॥

२२ त्वं त्या चिदच्युता ऽग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत् ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥
२३ वेषि ह्यध्वरीयता मग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥
२४ अच्छा नो मित्रमहो देव देवा नग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन् द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम
ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥

अर्थ— [२२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यवसे पशुः न) घासको पशु जैसा भक्षण करता है, उस प्रकार (त्वं त्या अच्युता) तू कठिन काष्ठोंको भी खा जाता है। हे (अजर) जरारहित ! (यत् ते शिक्वसः धाम) तेरी तेजस्वी ज्वाला (वना वृश्चन्ति ह) अरण्योंको भस्म कर देती है ॥ ९ ॥

१ त्वं त्या अच्युता — अग्नि उन न गिरनेवाले शत्रुओंको गिराता है, वैसे ही राजा नम्र न होनेवाले शत्रुको विनम्र बनावे ।

२ शिक्वसः ते धाम वना वृश्चन्ति— प्रज्वलित हुई अग्निकी ज्वाला वनोंको जलाता है, इस तरह अपने राष्ट्रकी प्रज्वलित शक्ति शत्रुका पूर्ण नाश करे ।

[२३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अध्वरीयतां विशां दमे) यज्ञ करनेवाली प्रजाओंके घरमें तू (होता वेषि हि) होता रूपसे प्रवेश करता है, अतः (विश्पते) हे प्रजाओंके पालक ! हमको (समृधः कृणु) समृद्धशाली बना । हे (अंगिरः) अंगोंमें व्यापक ! (हव्यं जुषस्व) हमारे हविष्यान्नको ग्रहण कर ॥ १० ॥

[२४] हे (मित्रमहः) जिसकी मित्रता महत्त्वयुक्त सहायक होती है, ऐसे (देव अग्ने) दिव्य गुणयुक्त अग्ने ! (रोदस्योः देवान् अच्छ) द्यावापृथिवीमें रहनेवाले देवोंके पास (नः सुमतिं वोचः) हमारी की हुई स्तुतिका वर्णन कर । (दिवः नॄन् सुक्षितिं) दिव्य नेताओंको सुन्दर निवास स्थान दे, तथा (स्वस्तिं वीहि) कल्याणकारक अवस्थाको प्राप्त कर । (द्विषः अंहांसि दुरिता तरेम) हम शत्रुओंसे, पापोंसे और कष्टोंसे मुक्त हो जाँय । तथा (ता तरेम) उन कष्टोंको हम पूर्ण रीतिसे पार कर जाँय । हे (अग्ने) अग्ने ! (तव अवसा तरेम) तेरे रक्षणसे हम सब कष्टोंसे बच जाँय ॥ ११ ॥

१ देवान् नः सुमतिं वोचः— विबुधोंके पास हमारा उत्तम संदेशकी वाणी पहुंचे ।

२ नॄन् सुक्षितिं स्वस्तिं वीहि— मनुष्योंको उत्तम घर मिले और उनका कल्याण हो ।

भावार्थ— मनुष्य घोडेके समान शक्तिशाली होकर उत्तम कार्य करता रहे। वायुके समान सर्वत्र जाकर सबकी स्थितिका निरीक्षण करे । अपने घरमें रहकर पर्याप्त अन्न प्राप्त करे ॥ ८ ॥

जिस तरह पशु घास खाता है, जिस तरह अग्नि काष्ठोंको जलाता है, उसी तरह मनुष्य या राष्ट्र अपने शत्रुका नाश करे । शत्रुको निर्मूल करे । शत्रुता करनेके लिए उसे जीवित न रहने दे ॥ ९ ॥

यज्ञ करनेवालोंके घरमें इस अग्निका सदा ही निवास होता है और उन्हें समृद्धशाली बनाता है । यह अग्नि शरीरके सब अंगोंमें व्यापक है ॥ १० ॥

इस अग्निकी मित्रता महत्त्वपूर्ण और सहायता देनेवाली होती है । मित्रका महत्त्व बढाना चाहिए। नेता अपने मित्रोंका महत्त्व बढायें । सब ज्ञानियोंके पास हमारी उत्तम बुद्धिसे प्रकट किया हुआ शुभ सन्देश पहुंचे । दिव्य नेताओंको रहनेके लिए उत्तम स्थान मिले और उनका कल्याण हो । शत्रुओंसे, पापोंसे और कष्टोंसे सब प्रजाका बचाव हो । हम सर्वथा सुरक्षित रहें । अग्निकी कृपा एवं सुरक्षा हमारे लिए सदा सुलभ्य रहे ॥ ११ ॥

[३]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२५ अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १ ॥
२६ ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २ ॥
२७ सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद् रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥ ३ ॥

[३]

अर्थ—[२५] हे (देव) अग्नि देव! (मित्रेण वरुणः) मित्र और वरुणके साथ (सजोषाः त्वं) समान विचार रखनेवाला तू (त्यजसा) अन्नसे (यं मर्तं) जिस मनुष्यकी (अंहः पासि) पापसे रक्षा करता है। हे (अग्ने) अग्नि! (सः) वह मनुष्य (ऋतपाः ऋतेजाः) सत्यका पालक, सत्यके पालनके लिये उत्पन्न हुआ (क्षेषत्) दीर्घायु प्राप्त करता है। तथा (देवयुः ते उरु ज्योतिः नशते) वह देवत्व प्राप्त करनेका इच्छुक तुम्हारा विस्तीर्ण तेज भी प्राप्त करता है ॥ १ ॥

१ ऋतपाः ऋतेजाः क्षेषत्— सत्यका पालक और सत्य पालनके लिये ही अपना जीवन देनेवाला दीर्घजीवी होता है।

२ सः देवयुः उरु ज्योतिः नशते— वह देवभक्त विस्तृत तेज प्राप्त करता है। तेजस्वी बनता है।

[२६] जो मनुष्य (ऋधत्-वाराय अग्नये ददाश) प्रशंसनीय श्रेष्ठ धन वाले अग्निको हवि अर्पण करता है, वह मनुष्य (यज्ञेभिः ईजे) अनेक यज्ञ करता है। और (शमीभिः शशमे) शान्ति देनेवाले कर्मोंसे शान्ति प्राप्त करता है। (तं यशसां अजुष्टिः) उस मनुष्यको यशस्वी पुत्रोंकी अप्राप्ति (न एव नशते) कभी नहीं होती। तथा उस (मर्तं अंहः न) मनुष्यको पाप भी नहीं लगता और (प्रदृप्तिः न) गर्व भी उसको नहीं होता ॥ २ ॥

१ ऋधद्वाराय अग्नये ददाश, यज्ञेभिः ईजे— प्रदीप्त अग्निमें हवि अर्पण करके मनुष्य अनेक यज्ञ करे।

२ तं मर्तं अंहः न, प्रदृप्तिः न— उस मनुष्यको पाप तथा गर्व नहीं होते। वह निष्पाप तथा निगर्वी होकर आनन्दसे दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। दृप्तिः— गर्व, घमंड अ-दृप्तिः— घमंड न होना, गर्वरहित होकर उत्तम व्यवहार करना।

[२७] (सूरो न यस्य) सूर्यके समान जिसका (दृशतिः) दर्शन (अ-रेपाः) निर्दोष होता है। (यत् ते शुचतः धीः) जो तेरी प्रज्वलित धारण शक्तिवाली ज्वाला (भीमा आ एति) भयंकर होकर चारों ओर फैलती जाती है। (अयं अक्तोः हेषस्वतः शु-रुधः न) यह अग्नि रात्रीमें शब्द करनेवाले प्राणीके शोकको रोकनेवालेके समान (वसतिः वनेजाः कुत्रा चित् रण्वः) लोगोंकी वसतिमें अथवा वनमें कहीं भी रहा तो भी रमणीय ही दीखता है ॥ ३ ॥

१ सूरः न अस्य दृशतिः अ-रेपाः— सूर्यके समान मनुष्यका दर्शन निष्पाप हो, रमणीय हो।

२ शुचतः धीः भीमा आ एति— तेजस्वी वीरकी बुद्धि भीरु मनुष्यको भयानक दीखती है और वह विशाल होती जाती है।

भावार्थ— मनुष्य सत्यका पालन करें, सत्यपालनके लिए कटिबद्ध रहें। वह यह समझे कि सत्यका पालन करनेके लिए ही उसका जन्म हुआ है। जो ऐसा करता है, वह देवभक्त प्रभुका तेज प्राप्त करके तेजस्वी होता है। मित्र और वरुणके साथ यह अग्नि एक मतसे अपने अन्नसे इस भक्तकी सुरक्षा करते हैं। इससे वह निर्भय होता है ॥ १ ॥

जो मनुष्य यज्ञाग्निमें हवन करता है और अनेक यज्ञकर्मोंको करके शान्ति लाभ करता है, उसे पुत्र और पौत्रोंकी प्राप्ति होती है तथा उसे पाप और घमण्ड कभी नहीं होता ॥ २ ॥

२८ तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

२९ स इदस्तेव प्रति धादसिष्य ञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तो र्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥

३० स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄ नमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६ ॥

अर्थ—[२८] (अस्य एम तिग्मं) इस अग्निका मार्ग तीक्ष्ण है । (वर्पः महि भसत्) इसका रूप तेजस्वी दीखता है । यह अग्नि (अश्वः न आसा यमसानः) अश्वकी तरह मुँहसे तृणादिका ग्रहण करता है । तथा (परशुः न) कुठारकी तरह अग्नि अपनी (जिह्वां विजेहमानः) ज्वालारूपी जिह्वाको आगे फेंकता है, और (दारु धक्षत्) लकडीको जला डालता है । तथा (द्रविः न द्रावयति) सुवर्णकारके समान सब वनको अग्निमय कर देता है । [सुनार जैसे सुवर्णको द्रवरूप अग्नि जैसा बनाता है, वैसे यह सब वनको अग्निरूप बना देता है ।] ॥ ४ ॥

[२९] (अस्ता इव प्रति धात्) बाण चलानेवाला लक्ष्यको साधकर जैसे अपना बाण फेंकता है । उसी प्रकार (स इत्) वह (असिष्यन् तेजः शिशीत) बाण फेंकते समय अपनी ज्वालाको तीक्ष्ण कर लेता है, (अयसो न धारां) जैसी परशुकी धारा तेज की जाती है । (चित्रध्रजतिः अक्तो) विचित्र गतिवाला अग्नि रात्रिके (अरतिः) अन्धकारका नाश करनेके लिये (द्रुषद्वा वेः न यः रघुपत्मजंहाः) वृक्षपर बैठे हुए शीघ्र उडनेवाले पक्षीकी तरह लकडी पर बैठता है, लकडीको जलाता है ॥ ५ ॥

[३०] (सः ईं) वह अग्नि (रेभो न) प्रशंसनीय सूर्यके समान (उस्राः प्रति वस्ते) ज्वालाओंको पहनता है । अपना प्रकाश फैलाता है । तथा (मित्रमहाः शोचिषा रारपीति) मित्रके समान महत्त्व बढानेवाला यह अग्नि अपने प्रकाशसे वारंवार शब्द करता है । (यः ईं नक्तं अरुषः) जो यह अग्नि रात्रिमें प्रकाशित होकर (दिवा नॄन्) दिनके समयके मनुष्योंको अपने कार्यमें प्रेरित करता है । तथा (यः अमर्त्यः अरुषः दिवा नॄन्) यह अमर देव प्रकाशित होकर दिनके समय भी मनुष्योंको शुभ कर्ममें प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— सूर्यके समान अग्नि भी निष्पाप दीखता है । इसकी शुद्ध बुद्धि जैसी ज्वाला विशाल होकर चारों ओर फैलती है । यह अग्नि शोकको रोकता है अर्थात् आनंद देता है । यह अग्नि लोगोंकी बस्तीमें हो या वनमें हो, सर्वत्र रमणीय ही दीखता है । इसी तरह मनुष्य निष्पाप हो, इसकी बुद्धिका प्रभाव चारों ओर फैलता रहे । यह शोकको दूर करके आनन्द बढावे और जहां भी रहे, प्रसन्नचित्त ही रहे ॥ ३ ॥

इस अग्निका मार्ग तेजपूर्ण है, इसी कारण इसका रूप भी बडा तेजस्वी है । यह परशुकी तरह सब पदार्थोंको काटता जलाता आगे बढता है । यह सब पदार्थोंको अग्निके समान ही बना देता है । इसी तरह मनुष्यका भी मार्ग तेजपूर्ण हो और उसका रूप भी बडा तेजस्वी हो । वह परशुके समान तीक्ष्ण होकर सब शत्रुओंको काटते पीटते आगे बढे । वह तेजस्वी पुरुष जिस किसी भी पुरुषके साथ संयुक्त हो, उसे भी वह तेजस्वी बना दे ॥ ४ ॥

जिस प्रकार कोई बाण चलानेवाला वीर अपने लक्ष्यको साधकर बाण फेंकता है, उसी तरह यह अग्नि अपने लक्ष्य की तरफ जाता है । मनुष्य भी बाणकी तरह अपने लक्ष्यकी तरफ सीधा जाए । वह मनुष्य अपने शत्रुओंके लिए परशुके समान तीक्ष्ण हो ॥ ५ ॥

जिस तरह सूर्य उदित होनेके बाद अपने प्रकाशको फैलाता है, उसी तरह यह अग्नि भी अपनी ज्वालाओंको फैलाता है । अपने मित्रोंका महत्त्व बढानेके समान यह अग्नि अपने प्रकाशके साथ बार बार शब्द करता है और अपने मित्रका महत्त्व बढाता है । यह अग्नि रात्रिके समय प्रकाशित होकर मनुष्योंको शुभ कर्ममें प्रेरित करता है । यह अमर अग्निदेव अपने प्रकाशसे, दिनमें भी मनुष्योंको शुभ कर्ममें प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

३१ दिवो न यस्य विधतो नवीनोद् वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥ ७ ॥

३२ धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत् स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥ ८ ॥

[४]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३३ यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥ १ ॥

अर्थ— [३१] (दिवो न विधतः) तेजस्वी सूर्यके समान प्रकाशमान (यस्य नवीनोत्) जिस अग्निका महान् शब्द होता है । (वृषा रुक्षः ओषधीषु नूनोत्) बलवान् प्रदीप्त हुआ अग्नि ओषधी आदिको जलाते समय बडा शब्द करता है । (यः घृणा न) जो प्रकाशसे प्रकाशित होनेके समान (ध्रजसा पत्मना यन्) धधकते हुए इधर उधर और ऊपरकी तरफ जाता है और (दं सुपत्नी रोदसी) हमारे शत्रुओंका दमन करनेवाली और उत्तम पालन करनेवाली द्यावापृथिवीको (वसुना आ) धनसे पूर्ण करता है ॥ ७ ॥

[३२] (यः अग्निः) जो अग्नि (धायोभिः युज्येभिः अर्कैः) धारक और रथको जोडने योग्य घोडोंके समान कान्तिसे युक्त है । और जो (विद्युत् न स्वेभिः शुष्मैः दविद्योत्) बिजलीके समान अपने तेजसे चमकता है । (यः मरुतां शर्धः वा ततक्ष) जो मरुतोंके बलको कम करता है । वह (ऋभुः न त्वेषः रभसानः अद्यौत्) अत्यंत भासमान सूर्यके समान कान्तिवाला अग्नि वेगसे प्रकाशित होता है ॥ ८ ॥

[४]

[३३] हे (होतः) देवताओंके आह्वाता ! (सहसः सूनो) बलके पुत्र अग्ने ! (यथा मनुषः देवताता) जिस प्रकार मनुष्यके यज्ञमें तू (यज्ञेभिः यजासि) हविर्द्रव्योंसे देवोंका सत्कार करता रहा, (एव) उस प्रकार (नः अद्य समानान् उशतः देवान् उशन्) हमारे इस यज्ञमें आज उनके समान दिव्य विबुधोंका सत्कार करनेकी इच्छा करके (समना यक्षि) एकाग्रचित्तसे शीघ्र ही उनका यजन कर ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सूर्यके समान प्रकाशित होता है । औषधियों और काष्ठोंको जलानेके समय इसका बडा शब्द होता है । यह अपने प्रकाश और तेजसे ऊपर की ओर ही जाता है और अपने धनसे द्युलोक और पृथिवीलोकको भर देता है ॥७॥

रथमें जोडने योग्य घोडे जिस तरह अपनी शक्तिसे युक्त होते हैं, उसी तरह यह अग्नि अपनी शक्तिसे शक्तिमान् है । यह बिजलीके समान तेजस्वी और मरुतोंकी अपेक्षा भी अधिक बलशाली है । ऐसा सूर्यके समान कान्तिमान वह अग्नि यहां वेगसे प्रदीप्त हुआ है ॥ ८ ॥

यह अग्नि देवोंका सत्कार करनेवाला है । इस अग्निमें घृत तथा अन्य पवित्र द्रव्योंकी आहुतियां पडती हैं, वे आहुतियां अन्य देवोंके पास जाकर पहुंचती हैं, और इसप्रकार देवोंका सत्कार होता है । इसी तरह यज्ञमें उत्तम गुणोंसे युक्त ज्ञानियोंका सत्कार होना चाहिए ॥ १ ॥

+

३४ स नो॑ वि॒भावा॑ च॒क्षणि॒र्न वस्तो॑ - र॒ग्निर्व॒न्दारु॒ वेद्य॒श्चनो॑ धात् ।
वि॒श्वायु॒र्यो अ॒मृतो॒ मर्त्ये॑षू - ष॒र्भुद् भूदति॑थिर्जा॒तवे॑दाः ॥ २ ॥
३५ द्यावो॒ न यस्य॑ प॒नय॒न्त्यभ्वं॒ भासां॑सि वस्ते॒ सूर्यो॒ न शु॒क्रः ।
वि य इ॒नोत्य॒जरः॑ पाव॒को ऽश्न॑स्य चिच्छिश्नथत् पू॒र्व्याणि॑ ॥ ३ ॥
३६ व॒द्मा हि सू॑नो॒ अस्य॑द्म॒सद्वा॑ च॒क्रे अ॒ग्निर्ज॒नुषाज्मान्न॑म् ।
स त्वं न॑ ऊर्जसन॒ ऊर्जं॑ धा॒ राजे॑व जेरवृ॒के क्षे॑ष्य॒न्तः ॥ ४ ॥
३७ निति॑क्ति॒ यो वा॑र॒णमन्न॒मत्ति॑ वा॒युर्न रा॒ष्ट्र्यत्ये॑त्य॒क्तून् ।
तु॒र्याम॒ यस्त॑ आ॒दिशा॒मरा॑ती॒ - रत्यो॒ न ह्रु॒तः पत॑तः परि॒ह्रुत् ॥ ५ ॥

अर्थ— [३४] (वस्तोः चक्षणिः न विभावा) दिनके प्रकाशक सूर्यके समान विशेष प्रकारसे प्रकाशनेवाला (वेद्यः सः अग्निः) सबके सम्मानके योग्य वह अग्नि (नः) हमारे लिये (वन्दारु चनः धात्) प्रशंसनीय अन्न देवे । (विश्वायुः अमृतः अतिथिः) सबके जीवनभूत, मरणरहित, अतिथिके समान पूज्य (जातवेदाः) जिससे ज्ञान प्रकाशित हुआ ऐसा (यः मर्त्येषु उषर्भुत् भूत्) वह अग्नि मनुष्योंमें उषःकालमें प्रज्वलित होता है ॥ २ ॥

[३५] (न) अभी (द्यावः यस्य अभ्वं पनयन्ति) स्तोता जिसके महान् कर्मकी स्तुति करते हैं । (सूर्यो न शुक्रः भासांसि वस्ते) सूर्यके समान शुक्लवर्णवाला अग्नि अपने तेजको धारण करता है । (यः अजरः पावकः वि इनोति) जो वृद्धावस्थासे रहित और पवित्रता करता है वह वीर विशेष रीतिसे आक्रमण करता है और (अश्नस्य चित् पूर्व्याणि शिश्नथत्) हिंसक शत्रुके पुराने नगरोंका नाश करता है ॥ ३ ॥

[३६] हे (सूनो) प्रेरक देव ! (वद्मा असि हि) तू वंदनीय है । (अद्म-सद्वा अग्निः जनुषा) प्रत्येक भक्षणीय अन्नमें बैठा हुआ अग्नि स्वभावसे ही (अज्म) गृह और (अन्नं चक्रे) अन्न प्रदान करता है। हे (ऊर्ज-सने) अन्नदायक ! (नः सः त्वं ऊर्जं धाः) हमें तू बलवर्धक अन्न प्रदान कर । तथा (राजा इव जेः) राजाकी तरह जय प्राप्त कर । (अ ॰ ॰ अन्तः क्षेषि) हिंसारहित सुरक्षित स्थानमें तू निवास करता है ॥ ४ ॥

[३७ (यः वारणं नितिक्ति) जो अन्धकारको दूर करनेवाले अपने तेजको अधिक प्रखर करता है वह (अन्नं अत्ति) अन्नका भक्षण करता है । (वायुः न राष्ट्री) वायुके समान राष्ट्रपर राष्ट्रशासक अपना अधिकार चलाता है, तद्वत् यह (अक्तून् अत्येति) रात्रीके अन्धकारको दूर करता है । (य ते आदिशां अरातीः तुर्याम) जो तेरे लिये आदेशोंका शत्रु है उसका हम नाश करेंगे । (अत्यः न, पततः ह्रुतः परिह्रुत्) शीघ्रगामी घोडेकी तरह, सम्मुख आनेवाले हिंसक शत्रुओंका भी तू नाश कर ॥ ५ ॥

१ अन्नं अत्ति— (जो ज्ञानतेज बढाता है) वह अन्न खाता है । जो ज्ञानहीन है वह अन्न नहीं प्राप्त करता ।

भावार्थ— दिनके प्रकाशक सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाला सत्कारके योग्य अग्नि हमें आदरके योग्य अन्न दे । सब विश्वको आयु देनेवाला अमर और संमानके योग्य, ज्ञानका प्रकाशक यह अग्नि सब मनुष्योंमें उषःकालमें प्रदीप्त होता है । इसी तरह मनुष्य भी सूर्यके समान तेजस्वी बने, आदरणीय बने, योग्य और हितकर अन्नका स्वयं भी भोग करे और दूसरोंको भी प्रदान करे । वह पूर्ण आयु प्राप्त करे, अमर और पूज्य बने तथा सर्वत्र ज्ञानका प्रसार करे ॥ २ ॥

स्तोता वर्णन करते हैं कि यह अग्नि सूर्यके समान अपने शुभ्र तेजसे प्रकाशित होता है । वह जरारहित और पवित्र है । वह अपने प्रकाशसे विश्वको प्रकाशित करता है । शत्रु पर आक्रमण करता है तथा हिंसक शत्रुके नगरोंका नाश करता है ॥ ३ ॥

हे प्रेरक अग्ने ! तू शुभ प्रेरणा देनेके कारण वन्दनीय है । तू हमें घर और अन्न प्रदान कर । बल बढानेवाला अन्न तू हमें दे । राजाके समान हम तेरी सहायतासे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें और विजयी बनें तथा स्वयं सुरक्षित स्थानमें रहें ॥ ४ ॥

३८ आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कै- रग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत् परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥ ६ ॥
३९ त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकै- र्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७ ॥
४० नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३८] हे (अग्ने) अग्ने ! (रोदसी भासा वि आततन्थ) तू द्यावापृथिवीको अपनी कान्तिसे विशेषरूपसे व्यापता है । जिस प्रकार (भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यः न) सूर्य अपनी तेजस्वी किरणोंसे व्यापता है । (पत्मन् औशिजः न दीयन्) अपने मार्गसे जानेवाले सूर्यके समान अपने मार्गसे जानेवाला (शोचिषा अक्तः) और तेजसे संयुक्त होनेके कारण (चित्रः तमांसि परिणयत्) वह आश्चर्यकारक अग्नि अंधकारोंको दूर करता है ॥ ६ ॥

१ भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यः न- तेजस्वी किरणोंसे सूर्य जैसा प्रकाश फैलाता है, उस प्रकार ज्ञान फैलावे ।

२ औशिजः पत्मन् दीयन्— सूर्य अपने मार्गसे जाता है वैसा मनुष्य अपने धर्म मार्गसे चले ।

[३९] हे (अग्ने) अग्ने ! (मन्द्रतमं त्वां अर्कशोकैः हि ववृमहे) अत्यन्त आनन्ददायक ऐसे तेरी पूजनीय और तेजस्वी स्तोत्रोंसे हम स्तुति करते हैं । (नः महि श्रोषि) हमारा महत्त्व युक्त स्तोत्र श्रवण कर । हे अग्ने ! (नृतमाः शवसा वायुं) सब नेता श्रेष्ठ मनुष्य बलसे वायुके समान और (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (देवता राधसा पृणन्ति) देवता स्वरूप तुझे हवि समर्पण करके प्रसन्न करते हैं ॥ ७ ॥

[४०] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः अवृकेभिः पथिभिः रायः नु स्वस्ति) हमें हिंसकोंका उपद्रव जहां नहीं है ऐसे उत्तम मार्गोंसे धन और सुख प्राप्त हो । हमें (अंहः पर्षि) पापसे पार करो । (सूरिभ्यः ता सुम्नं गृणते रासि) विद्वानोंको मिलने योग्य वह धन हम स्तोताओंको दे । (शतहिमाः सुवीराः मदेम) सौ वर्षतक वीर पुत्रादिसे युक्त होकर हम आनंदका भोग करें ॥ ८ ॥

१ अवृकेभिः पथिभिः रायः स्वस्ति नः— उपद्रवरहित मार्गोंसे धन और कल्याण हमें प्राप्त हो, जहां हिंसा और कुटिलता करनी नहीं पडती उस रीतिसे धन और सुख प्राप्त कर ।

भावार्थ— जब अग्नि अन्धकारका नाश करनेवाले अपने तेजको अधिक प्रखर बनाता है, तब वही सबका भक्षण करता है । वायु प्राण रूपसे जिस प्रकार सब पर शासन करता है, उसी तरह राष्ट्रका शासक राष्ट्र पर अपना अधिकार चलाता है । उसी तरह यह अग्नि अन्धकार पर अपना अधिकार चलाता है । जो शत्रु अग्निमें हवि डालने रूप यज्ञका विरोध करता है, उसका नाश हम शीघ्र ही करें ॥ ५ ॥

जिस तरह सूर्य अपनी किरणोंने विश्वको व्यापता है, उसी तरह यह अग्नि भी व्यापता है । उसी तरह यह मनुष्य भी अपने ज्ञानतेजसे जगत्को व्यापनेका यत्न करे । जिस तरह सूर्य अपने निश्चित मार्गसे जाता है, वैसे ही अग्नि भी अपने निश्चित मार्गसे जाता है और अपने प्रकाशसे अन्धकारको दूर करता है, उसी तरह मनुष्य अपने निश्चित मार्ग पर चलता हुआ अपने ज्ञानसे दूसरोंके अज्ञानको दूर करे ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू अत्यन्त आनन्ददायक है, इसलिए तेजस्वी स्तोत्रोंसे तेरी महिमाका हम वर्णन करते हैं । वह हमारा स्तोत्र तू श्रवण कर । हम सब श्रेष्ठ नेता बलसे युक्त वायु और इन्द्रके समान तुझ देवताको सब साहित्य-समर्पण द्वारा सन्तुष्ट करते हैं । जो आनन्द देता है, उसकी महिमाका वर्णन करना चाहिए ॥ ७ ॥

अग्निकी कृपासे हम हिंसा तथा उपद्रवरहित मार्गोंसे धन और सुख प्राप्त करें । हम पापाचरण कभी न करें । विद्वानोंका हम सदा धन आदिसे सत्कार करें तथा इस प्रकार सुखपूर्वक रहते हुए हम वीर पुत्रादिसे युक्त होकर आनंदका भोग करें ॥ ८ ॥

[५]

[ऋषिः - बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४१ इमे वंः सूनुं सहंसो युवांन् मद्रोंघवाचं मतिभिर्यविंष्ठम् ।
य इन्वंति द्रविंणानि प्रचेंता विश्ववाराणि पुरुवारों अध्रुक् ॥ १ ॥

४२ त्वे वसूंनि पुर्वणीक होत र्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियांसः ।
क्षामेव विश्वा भुवंनानि यस्मिन् त्सं सौभंगानि दधिरे पावके ॥ २ ॥

४३ त्वं विक्षु प्रदिवंः सीद आसु क्रत्वां रथीरंभवो वार्याणाम् ।
अतं इनोषि विधते चिकित्वो व्यांनुषग्जातवेदो वसूंनि ॥ ३ ॥

---

[५]

अर्थ— [४१] हे (अग्ने) अग्ने ! (सहसः सूनुं, युवानं यविष्ठं, अद्रोघवाचं) बलके पुत्र, तरुण, वेगवान् और द्रोह न करनेवाला भाषण करनेवाले तुझ अग्निका (वः मतिभिः इमे) हम मनःपूर्वक वर्णन करते हैं । (यः प्रचेताः पुरुवारः) जो विशेष ज्ञानवान् और बहुत प्रशंसनीय (अध्रुक्) द्रोह न करनेवाला अग्नि (विश्ववाराणि द्रविणानि इन्वति) सबके द्वारा प्रशंसनीय धनोंको देता है ॥ १ ॥

१ प्रचेताः पुरुवारः अध्रुक्-- ज्ञानी विज्ञानी, अनेकों द्वारा प्रशंसनीय तथा द्रोह न करनेवाला हो ।

[४२] हे (पुर्वणीक-पुरु+अनीक) बहुत ज्वालावाले ! (होतः) देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (त्वे दोषा वस्तोः) तेरेमें रात और दिन (यज्ञियासः वसूनि एरिरे) यज्ञ करनेवाले मनुष्य अन्नरूप धन समर्पित करते हैं । (विश्वा भुवनानि क्षाम इव) सब प्राणी पृथिवीमें रहनेके समान (यस्मिन् पावके सौभगानि) जिस पवित्र अग्निमें सब सौभाग्य (सं दधिरे) उत्तम रीतिसे रखते हैं ॥ २ ॥

[४३] हे अग्ने ! (त्वं प्रदिवः) तू विशेष तेजस्वी (आसु विक्षु सीद) इन प्रजाओंमें रहता है और तू ही (क्रत्वा वार्याणां रथीः अभवः) पुरुषार्थसे प्रशंसनीय धनोंको रथमें रखकर बांटता है । (अतः) इस कारण (चिकित्वः जातवेदः) हे ज्ञानी और ज्ञानको प्रकट करनेवाले ! (विधते) सेवा करनेवाले मनुष्यको तू (वसूनि आनुषक् वि इनोषि) धन निरन्तर देता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! बलके प्रेरक तरुण, द्रोहरहित भाषण करनेवाले, युवकके समान उत्साही अग्निका हम स्तोत्रोंसे गुणवर्णन करते हैं । वह अग्नि ज्ञानी, अनेकोंसे प्रशंसनीय, द्रोह न करनेवाला और स्वीकार करने योग्य धनोंको देनेवाला है ॥ १ ॥

हे तेजस्वी अग्ने ! तेरे अन्दर रात दिन यज्ञ करनेवाले अन्नोंको अर्पण करते हैं । सब पदार्थ जिस तरह पृथ्वीमें रहते हैं । उसी तरह सब सौभाग्य पवित्र अग्निमें रहते हैं । अग्नीके पास सभी तरहके पवित्र ऐश्वर्य रहें ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू विशेष तेजस्वी होकर इन प्रजाजनोंमें रहता और अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अनेक स्वीकार करनेके योग्य धनोंको रथमें रखकर बांट देता है । इस कारण, हे ज्ञानी और ज्ञानप्रकाशक देव ! कर्म करनेमें प्रवीण मनुष्यको तू अनेक तरहके धन बार बार देता रहे ॥ ३ ॥

४४ यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वै-स्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥ ४ ॥

४५ यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थै-रर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥ ५ ॥

४६ स तत् कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभि-स्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥ ६ ॥

४७ अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तो-ऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ ७ ॥

अर्थ—[४४] हे (मित्रमहः तपिष्ठ अग्ने) मित्रका महत्त्व बढानेवाले, तपानेवाले अग्ने ! (यः सनुत्यः नः अभिदासत्) जो शत्रु गुप्त स्थानमें रहकर हमको बाधा देता है। और (यः अन्तरः) जो हमारे ही बीचमें रहकर हमारा (वनुष्यात्) नाश करता है, (तं) उस शत्रुको (तपसा तपस्वान्) अपने तेजसे तेजस्वी हुआ तू (तव स्वैः अजरेभिः वृषभिः तप) अपने निज जरारहित बलयुक्त तेजोंसे जला डाल ॥ ४ ॥

१ मित्रमहः तपिष्ठः अग्निः — मित्रका महत्त्व बढानेवाला, शत्रुको तपानेवाला तेजस्वी अग्रणी हो।

[४५] हे (सहसः सूनो) बलके प्रेरक ! (यः यज्ञेन ते ददाशत्) जो मनुष्य यज्ञ द्वारा तेरी सेवा करता है। (यः समिधा उक्थैः) जो समिधासे, स्तोत्रसे (अर्केभिः) सामगानसे तेरी सेवा करता है। हे (अमृत) मृत्युरहित ! (सः मर्त्येषु प्रचेताः) वह मनुष्योंमें विशेष ज्ञानवान् होकर (राया द्युम्नेन श्रवसा विभाति) धनसे तथा तेजस्वी कीर्तिसे प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

[४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः इषितः तूयं तत् कृधि) वह तू प्रेरित होनेपर उस कार्यको शीघ्र कर, (सहस्वान् स्पृधः सहसा बाधस्व) बलवान् होकर तू स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका अपने बलसे नाश कर। (द्युभिः अक्तः वचोभिः यत् शस्यसे) तू अपने तेजोंसे युक्त, हमारे वाक्योंसे प्रशंसित हो रहा है। (तत् मन्म घोषि जरितुः जुषस्व) उस मननीय घोषित किये स्तोत्रको तू स्वीकार कर ॥ ६ ॥

[४७] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव ऊती) तेरी रक्षासे (तं कामं) उस फलको (अश्याम) हम प्राप्त करें। हे (रयिवः) धनवान् अग्ने ! (सुवीरं रयिं अश्याम) उत्तम वीर पुत्रादि युक्त धन हमें प्राप्त हो। तथा (वाजयन्तः वाजं अभि अश्याम) बलकी इच्छा करनेवाले हम बलको प्राप्त करें। हे (अजर) जरारहित अग्ने ! (ते अजरं द्युम्नं अश्याम) तेरे जरारहित कान्तिमान् यशको प्राप्त करें ॥ ७ ॥

१ तव ऊती कामं अश्याम— तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर अपनी इच्छाओंको हम पूर्ण करें।

भावार्थ— हे मित्रोंका महत्त्व बढानेवाले और तपनेवाले अग्ने ! शत्रु गुप्त स्थानमें रहकर हमें कष्ट पहुंचाता है और जो हमारे अन्दर रहकर हमारा नाश करता है, उसे अपने तेजसे तेजस्वी बना हुआ तू अपने ही बल बढानेवाली सामर्थ्यशाली ज्वालाओंसे जला डाल ॥ ४ ॥

जो इस अग्निकी यज्ञके द्वारा सेवा करता है, वह विशेष ज्ञानवान् होकर धनसे तथा तेजस्वी कीर्तिसे प्रकाशित होता है। मनुष्य बल बढानेकी प्रेरणा करे, अपमृत्यु दूर करे ॥ ५ ॥

हे अग्नी ! जिस कार्यके लिए तू नियुक्त हुआ है, वह कार्य तू शीघ्रतासे सम्पन्न कर। अपना बल बढाकर अपने बलसे स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर। तू अपने तेजोंको बढाकर प्रशंसित हो ॥ ६ ॥

प्रभुके संरक्षणसे सुरक्षित होकर मनुष्य अपनी कामना पूर्ण करे। वीर पुत्रोंसे युक्त धन प्राप्त करे। बलकी इच्छा करनेवाले बल प्राप्त करें। क्षीण न होनेवाला यश प्राप्त करें ॥ ७ ॥

[६]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४८ प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १ ॥
४९ स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २ ॥
५० वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥ ३ ॥
५१ ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥ ४ ॥

---

[६]

अर्थ— [४८] (अव इच्छमानः) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाला (नव्यसा यज्ञेन) नवीन यज्ञके साथ (गातुं सहसः सूनुं) स्तुत्य और बलके प्रेरक (वृश्चत्-वनं कृष्णयामं) वनको दग्ध करनेवाले कृष्ण मार्गवाले (रुशन्तं वीती दिव्यं होतारं) तेजस्वी कान्तिमान् दिव्य होता अग्निके पास (जिगाति) जाता है ॥ १ ॥

[४९] (सः श्वितानः) वह अग्नि गौरवर्ण (तन्यतुः रोचनस्थाः) फैलनेवाला, तेजस्वी प्रकाशमें रहनेवाला (अजरेभिः नानदद्भिः यविष्ठः) जरारहित शब्द करनेवाले किरणोंसे युक्त अत्यन्त युवा जैसा (यः पावकः) जो पवित्र (पुरुतमः अग्निः) विशाल अग्नि है वह (पुरूणि पृथूनि) बहुत स्थूल काष्ठोंको (भर्वन् अनुयाति) भक्षण करके गमन करता है ॥ २ ॥

[५०] हे (शुचे) शुद्ध (अग्ने) अग्ने ! (ते वातजूतासः शुचयः) तेरी वायुसे प्रेरित निर्मल (भामासः विष्वक् वि चरन्ति) ज्वालाएं चारों ओर विशेष प्रकारसे फैलती हैं । (तुविम्रक्षासः दिव्याः नवग्वाः) बहुत काष्ठोंको खानेवाली दिव्य नवीन (धृषता रुजन्तः) धर्षक प्रकाशसे तेजस्वी किरणें (वना वनन्ति) वनोंको खा जाती हैं ॥ ३ ॥

[५१] हे (शुचिष्मः) दीप्तिमान् ! (ते शुक्रासः ये शुचयः) तेरी शुभ्र और ज्वाला जो (क्षां वपन्ति) पृथ्वीका मुण्डन करता है । (विषितासः अश्वाः) वे तेरी ज्वालाएं खुले हुए घोडेकी तरह इधर उधर जाती हैं । (अध ते भ्रमः पृश्नेः अधि) और तेरा भ्रमणशील ज्वालासमूह अनेकरूपा पृथ्वीके ऊपरके (सानु यातयमानः उर्विया वि भाति) पर्वतशिखरके ऊपर जाता हुआ अत्यन्त प्रकाशता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो अपनी सुरक्षा चाहता है वह नवीन यज्ञके साधन लेकर प्रशंसनीय बलके प्रेरक, वनको जलानेवाले, काले धूएंके मार्गोंसे आनेवाले तेजस्वी प्रिय दिव्य यज्ञके संपादन करनेवाले अग्निके पास जाता है ॥ १ ॥

वह गौरवर्ण, फैलनेवाला, प्रकाशके साथ रहनेवाला, जरारहित, शब्द करनेवाले, किरणोंसे तरुण जैसा उत्साही, पवित्रता करनेवाला अग्नि बडे बडे काष्ठोंको भक्षण करता हुआ जाता है ॥ २ ॥

हे शुद्ध अग्ने ! वायुसे हिलनेवाली तेरी शुद्ध ज्वालाएं चारों ओर फैल रही हैं । बहुत खानेवाली दिव्य नवीन, अन्ध-कारका नाश करनेवाली तेजस्वी ज्वालाएं वनोंको खा जाती हैं । अग्निकी ज्वाला शुद्ध तेजस्वी अन्धकारका धर्षण करनेवाली तथा प्रकाशका फैलाव करनेवाली होती हैं । इस तरह अग्रणीका तेज शुद्धता फैलानेवाला, अज्ञानका नाश करनेवाला और ज्ञानका फैलाव करनेवाला हो ॥ ३ ॥

हे शुद्ध पवित्र अग्ने ! तेरी शुद्ध और शुभ्र ज्वालाएं पृथ्वीका मुण्डन करती हैं । अर्थात् पृथ्वीके बालरूप तृणादिको जलाती हैं । खुले हुए घोडेकी तरह तेरी ज्वालाएं चारों ओर फैल रही हैं और ये पर्वतके शिखरपर उत्तम प्रकाशती दीखती हैं ॥ ४ ॥

५२ अर्ध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्ने र्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥ ५ ॥
५३ आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन् वनुषो नि जूर्व ॥ ६ ॥
५४ स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥ ७ ॥

[७]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः छन्दः- त्रिष्टुप् , ६-७ जगती ।]

५५ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनाना मासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

अर्थ—[५२] (अध वृष्णः जिह्वा) और बलशाली अग्निकी ज्वाला (प्र पापतीति) विशेष रीतिसे बार बार निकलती है (गोषुयुधो सृजाना अशनिः न) इन्द्रके वज्रके समान तीक्ष्ण तथा (शूरस्य इव प्रसितिः, अग्नेः क्षातिः) शूरवीर मनुष्यके पाशके समान अग्निकी ज्वाला सहन करनेके लिये अशक्य है। (दुर्वर्तुः भीमः वनानि दयते) रोकनेके लिए कठिन और भयंकर ऐसा यह अग्नि वनोंको जलाता है ॥ ५ ॥

[५३] हे अग्ने ! (भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि) प्रकाशसे पृथ्वीपरके गमन योग्य स्थानोंको (महः तोदस्य धृषता आततन्थ) अपने महान् प्रेरक किरणोंसे भर देता है। (सः भया अप बाधस्व) वह तू सब भयके कारणोंको दूर कर। और (सहोभिः स्पृधः वनुष्यन्) अपने बलोंसे स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश कर ॥ ६ ॥

[५४] हे (चित्र) आश्चर्यकारक (चित्रक्षत्र) आश्चर्यकारक बलवान् (चन्द्र) आनन्ददायक अग्नि ! (सः चन्द्राभिः गृणते अस्मे) वह तू आनन्ददायक स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले हम सबको (चित्रं चितयन्तं चित्रतमं) विलक्षण अद्भुत ज्ञान देनेवाला अत्यन्त आश्चर्यकारक (वयोधां चन्द्रं पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) आयु बढानेवाला, आश्चर्यकारक बहुत पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त महान् धन दे ॥ ७ ॥

[७]

[५५] (दिवः मूर्धानं) द्युलोकके शिरस्थानमें रहनेवाला और (पृथिव्याः अरतिं) भूमिके ऊपर जानेवाले (वैश्वानरं) सब मनुष्योंका नेता (ऋते) और सत्यके प्रचारके लिये ही (आ जातं) उत्पन्न हुए (कविं सम्राजं) ज्ञानी, सम्राट् वा सुशोभित (जनानां अतिथिं) मनुष्योंके समीप सतत जानेवाले (आसन्) मुखस्वरूप, मुख्य (पात्रं देवाः आ जनयन्त) रक्षक अग्निको देवोंने उत्पन्न किया है ॥ १ ॥

भावार्थ— बलवान् अग्निकी ज्वाला बारबार बाहर आती है। इन्द्रके द्वारा फेंके हुए वज्रके समान तीक्ष्ण और शूरवीरके पाशके समान अग्निकी यह ज्वाला भयंकर और रोकनेके लिये कठिन है। यह वनोंको जला देती है ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तू अपने प्रकाशसे भूमिके सब स्थानोंको प्रकाशित कर और अपने प्रेरक किरणोंसे सब स्थानोंको भर दे। भयके स्थानोंको दूर कर। और स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको अपने सामर्थ्योंसे नष्ट कर ॥ ६ ॥

आनन्ददायक स्तोत्रोंसे साधक प्रभुकी स्तुति करे। इस स्तुति करनेवालेको अद्भुत ज्ञान बढानेवाला, आश्चर्यकारक, आयुको बढानेवाला, वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त विशाल धन प्रभु देता है ॥ ७ ॥

सूर्यरूपसे द्युलोकके ऊपर विराजमान, पृथ्वी पर यज्ञके लिये जानेवाले, सब मनुष्योंके संचालक अग्रणीरूप और यज्ञके लिये उत्पन्न हुए, ज्ञानी और तेजस्वी, लोगोंमें सतत जानेवाले, सबमें मुख स्वरूप वा मुख्य, सबके संरक्षक अग्निको देवोंने वा विद्वानोंने अरणिसे उत्पन्न किया है ॥ १ ॥

५६ नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

५७ त्वद् विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद् वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन् त्स्पृहयाय्याणि ॥ ३ ॥

५८ त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत् पित्रोरदीदेः ॥ ४ ॥

५९ वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५६] (यज्ञानां नाभिं) यज्ञोंका केन्द्र (रयीणां सदनं) धनोंका घर (महां आहावं) महान् आश्रयस्थान ऐसे अग्निकी (अभि सं नवन्त) सब प्रकारसे मनुष्य स्तुति करते हैं। तथा (वैश्वानरं) सर्व मनुष्योंका नेता (अध्वराणां रथ्यं) यज्ञोंके चालक (यज्ञस्य केतुं) यज्ञके ध्वजारूप अग्निको (देवाः जनयन्त) देवोंने विद्वानोंने मन्थनसे उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

[५७] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाजी त्वत् विप्रः जायते) बलवान् पुरुष तेरी सहायतासे विशेष ज्ञानी होता है। तथा (वीरासः त्वत् अभिमातिषाहः) वीर पुरुष तेरी सहायतासे शत्रुओंका पराभव करनेवाले होते हैं। हे (वैश्वानर राजन्) विश्वके नेता तेजस्वी अग्ने! (त्वं अस्मासु) तू हमको (स्पृहयाय्याणि वसूनि) प्रशंसनीय धन (धेहि) दे ॥ ३ ॥

[५८] हे (अमृत) मरणधर्म रहित अग्ने! (विश्वे देवाः) सब देव अथवा सब किरणें (जायमानं) उत्पन्न हुए (त्वां शिशुं न) तुझ बालकके (अभिसंनवन्ते) चारों ओर फैलती हैं। हे (वैश्वानर) विश्वके नेता अग्नि! (यत् पित्रोः अदीदेः) जब तू मातापिता द्यावापृथिवीके बीचमें प्रदीप्त होता है, तब (तव क्रतुभिः अमृतत्वं आयन्) तेरे कर्मोंसे मनुष्य अमरत्वको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

[५९] हे (वैश्वानर अग्ने) वैश्वानर अग्नि! (यत् पित्रोः उपस्थे) जब तूने पितरोंके समीप भागमें पके हुए (वयुनेषु जायमानः) यज्ञकर्मोंमें उत्पन्न होकर (अह्नां केतुं अविन्दः) दिनके केतुभूत सूर्यप्रकाशको प्राप्त किया तब (तव तानि व्रतानि महानि) तेरे उन प्रसिद्ध महान् कर्मोंमें (नकिः आ दधर्ष) कोई बाधा नहीं डाल सकता ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्नि यज्ञोंका केन्द्र है, धनोंका घर है, बडा आश्रय स्थान है, ऐसे अग्निकी सब लोग प्रशंसा गाते हैं। वह सब मानवोंका नेता, यज्ञोंका संचालक यज्ञकी ध्वजा है, इसको अनेक विबुध मिलकर अरणियोंसे मन्थन करके उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

इस सर्व प्रकाशक अग्निकी सहायतासे बलवान् मनुष्य विशेष ज्ञानी होता है। वीर पुरुष इसकी सहायतासे और ज्यादा बलवान् होकर शत्रुओंका पराभव करनेवाले होते हैं। अतः हे अग्ने ! तू हमें भी प्रशंसनीय धन दे। ज्ञानी बलवान् बने, और बलवान् ज्ञानी बने। सभी शूरवीर होकर अपने शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ हों। सब मानवोंका नेता राजा हो और मानवोंको प्रशंसनीय धन प्राप्त हो ॥ ३ ॥

हे अमर अग्नि! सब किरणें तू उत्पन्न होते ही तुझ बालक जैसेके चारों ओर फैलने लगती हैं। हे विश्वके नेता! जब तू माता-पिता सदृश द्यावापृथिवीके बीचमें प्रदीप्त होता है, तब तेरे यज्ञकर्मोंसे मनुष्य अमरत्वको प्राप्त होते हैं। अग्नि उत्पन्न होते ही उसका तेज चारों ओर फैलता है। जब अग्नि प्रदीप्त होता है तब उसमें जो अर्पण द्वारा यज्ञ किये जाते हैं उनसे मनुष्यको अमृतत्वकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

६० वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६ ॥
६१ वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतु- र्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथे ऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥ ७ ॥

[८]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- जगती, ७ त्रिष्टुप् ।]

६२ पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥ १ ॥

अर्थ— [६०] (अमृतस्य केतुना) अमृतकी पताका रूप (वैश्वानरस्य चक्षसा) सब लोगोंके हितकारी अग्निके तेजसे (दिवः सानूनि विमितानि) द्युलोकके शिखर प्रकाशित हुए । (तस्य इत् उ मूर्धनि विश्वा भुवना) इसके मूर्धा स्थानमें सर्व भुवन रहते हैं । तथा (वयाः इव सप्त विस्रुहः रुरुहुः) शाखाकी तरह सात संख्यावाली सात नदियां वहींसे बहती हैं ॥ ६ ॥

[६१] (यः सुक्रतुः वैश्वानरः रजांसि) जो उत्तम कर्म करनेवाले संपूर्ण मनुष्योंका हित करनेवाला यह अग्नि लोकोंका (वि अमिमीत) निर्माण करता है । तथा (दिवः रोचना कविः वि) द्युलोकके देदीप्यमान नक्षत्रादिको यह ज्ञाता ही बनाता है । (यः विश्वा भुवनानि परिपप्रथे) जिसने संपूर्ण भूतमात्रको सर्वतः विस्तारित किया है । (अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता) वह न दबनेवाला सबका रक्षण करनेवाला वीर अमृतका संरक्षक है ॥ ७ ॥

१ सुक्रतुः कविः वैश्वानरः— उत्तम कर्म करनेवाला ज्ञानी सब मनुष्योंका हित करनेवाला होता है ।

२ अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता— किसी शत्रुके सामने न दबनेवाला वीर सबका संरक्षण करता है और अमरत्वका रक्षक भी वही है ।

[८]

[६२] (पृक्षस्य वृष्णः अरुषस्य) सर्वव्यापी बलवान् तेजस्वी (जातवेदसः सहः विदथा) ज्ञानप्रसारक अग्निके बलका यज्ञमें (प्र वोचं) मैं वर्णन करता हूँ । (नव्यसी शुचिः चारुः मतिः) नवीन निर्मल सुन्दर बुद्धिपूर्वक की हुई स्तुति (वैश्वानराय अग्नये) विश्वनेता अग्निके लिये (सोम इव पवते) सोमरसके समान फैल रही है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे विश्वके नेता अग्ने ! तेरे महान् कर्मोंमें कोई रुकावट डाल नहीं सकता ऐसा तेरा सामर्थ्य है । तू अपने माता-पिताओंके समीप चले हुए यज्ञकर्मोंमें उत्पन्न होता है और दिनोंके प्रकाशक सूर्यको प्राप्त करता है । यज्ञके कर्म शुरु होनेपर दोनों अरणिरूप मातापिताके समीप भागमें अरणियोंके मन्थनसे अग्नि उत्पन्न होता है और यह अग्नि उत्पन्न होते ही सूर्योदयकी परिस्थिति आती है । इस लिये वह सूर्यको प्राप्त करता है ऐसा कहा है ॥ ५ ॥

अमृतका रूप जैसे सब लोगोंके हितकारी अग्निके तेजसे द्युलोकतक पहुंचनेवाले सब शिखर प्रकाशित होते हैं । वहीं सब भुवन अर्थात् उत्पन्न हुए सब प्राणी रहते हैं और सात नदियाँ भी वहांसे चलती हैं । सूर्यके प्रकाशमें (तथा अग्निके प्रकाशमें) अमृत अर्थात् जीवधारणका सत्त्व रहता है । सूर्यके उदय होनेके समय उसके प्रकाशसे पर्वतोंके शिखर प्रकाशित होते हैं । (अग्नि प्रज्वलित होते ही उसका प्रकाश प्रथम ऊँचे स्थानोंपर पहुंचता है ।) उन पर्वत शिखरोंपर सब भुवन-सब प्राणी रहते हैं और वहींसे सात नदियाँ उत्पन्न होकर चलती हैं । सूर्यका प्रकाश हिमालयके शिखरपर प्रथम गिरता है । वहाँ सब प्राणी प्रथम उत्पन्न हुए थे और नदियाँ भी वहींसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ६ ॥

उत्तम कर्मोंको करनेवाला सबका हितकारी यह (अग्नि) ईश्वर सब लोकोंका निर्माण करता है, द्युलोकके ऊपरके प्रकाशमान नक्षत्रोंको भी इसी ज्ञानी (ईश्वर) ने बनाया है । सब भुवनोंको यही विस्तृत करता है । यह न दबनेवाला संरक्षक और अमृतका रक्षक है ॥ ७ ॥

×

६३ स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥ २ ॥

६४ व्यस्तभ्नाद् रोदसी मित्रो अद्भुतो ऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद् वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥ ३ ॥

६५ अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥ ४ ॥

अर्थ— [६३] (सः अग्निः व्रतपाः) वैश्वानर अग्नि व्रतका पालन करनेवाला (परमे व्योमनि जायमानः) ऊपरके परम आकाशमें सूर्यरूपसे उत्पन्न होकर (व्रतानि अरक्षत) उत्तम यज्ञकर्मोंकी रक्षा करता है । (अन्तरिक्षं वि अमिमीत) और अन्तरिक्षको मापता है । अथवा अन्तरिक्षस्थ पदार्थोंको बनाता है, तथा यह (सुक्रतुः वैश्वानरः) सुकर्मा विश्वहितकारी अग्नि (महिना) अपने तेजसे (नाकं अस्पृशत्) द्युलोकको स्पर्श करता है ॥ २ ॥

[६४] (मित्रः अद्भुतः रोदसी) सबके अद्भुत मित्र अग्निने द्यावापृथिवीको (व्यस्तभ्नात्) अपने स्थानपर स्थिर किया है । तथा (ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत्) अपने तेजसे अन्धकारको दूर (अकृणोत्) किया है । (धिषणे चर्मणी इव वि अवर्तयत्) द्यावापृथिवीको दो चर्मोंकी तरह फैला दिया है । (वैश्वानरः विश्वं वृष्ण्यं अधत्त) यह सबका हितकारी अग्नि संपूर्ण बलको धारण करता है ॥ ३ ॥

१ वैश्वानरः विश्वं वृष्ण्यं अधत्त— सब मानवोंका हित करनेवाला नेता अग्रणी सब बल अपनेमें धारण करता है ।

२ ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत् अकृणोत्— अपने प्रकाशसे अन्धकारको इसने दूर किया है । इस तरह नेता ज्ञान प्रसार द्वारा लोगोंके अज्ञानको दूर करे ।

[६५] (अपां उपस्थे महिषाः) अन्तरिक्षके बीचमें जलस्थानमें बडे ज्ञानियोंने (अगृभ्णत) अग्निको धारण किया, यहां विद्युत् रूपसे अग्नि है ऐसा जान लिया । (विशः राजानं) मनुष्योंने इस राजाकी (ऋग्मियं उपतस्थुः) अर्चनीय मानकर उसकी स्तुती की । (वैश्वानरं अग्निं दूतः मातरिश्वा) इस वैश्वानर अग्निको दूत बने वायु (परावतः विवस्वतः आ अभरत्) दूर देशस्थित आदित्य मंडलसे इस लोकमें लाया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सर्वव्यापक, बलशाली, तेजस्वी और ज्ञानप्रसारक है । विश्वके नेतारूप इस अग्निके लिये, सोमरसके समान, यह नवीन पवित्र सुंदर स्तोत्र गाया जा रहा है ॥ १ ॥

यह विश्वहितकारी सर्वव्यापक अग्नि व्रतोंका पालन करनेवाला उच्च आकाशमें सूर्यरूपसे प्रकाशित होता है और यज्ञकर्मोंका पालन करता है । वह अन्तरिक्ष और उसमें स्थित सब पदार्थोंका निर्माण करता है और उत्तम कर्म करनेवाला यह विश्वका नेता अपनी महत्तासे सब आकाशको व्यापता है ॥ २ ॥

यह अग्नि सबका मित्र है, स्नेहपूर्वक सब हित करता है । इसी अग्निरूप परमेश्वरने द्यु और पृथ्वीलोकको अपने स्थानपर स्थिर किया है । वही ईश्वर सूर्यके रूपमें सर्वत्र प्रकाशित होता है और अन्धकारको दूर करता है । द्युलोक और पृथ्वीलोक इस संसारकी उसी तरह रक्षा करते हैं, जिस तरह चमडी शरीरकी रक्षा करती है ॥ ३ ॥

यह अग्नि विद्युत्के रूपमें अन्तरिक्षमें रहती है । इस विद्युत्की महिमाको ज्ञानियोंने जाना, तब मनुष्योंने अग्निरूप इस विद्युत्के महत्वको जानकर इसकी स्तुति की । वही अग्नि सूर्यके रूपमें द्युलोकमें प्रतिष्ठित है ॥ ४ ॥

६६ युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्यो ऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥ ५ ॥

६७ अस्माकमग्ने मघवत्सु धारया ऽनामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥ ६ ॥

६८ अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टे ऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥ ७ ॥

अर्थ— [६६] हे (अग्ने) अग्ने ! (युगेयुगे विदथ्यं) समय समयपर यज्ञमें (नव्यसीं गृणद्भ्यः रयिं यशसं) नवीन स्तोत्रका उच्चारण करनेवाले स्तोताओंको धन और यशस्वी पुत्र (धेहि) दे। हे (अजर राजन्) जरारहित राजाके समान तेजस्वी अग्ने ! (पव्या इव वनिनं न तेजसा) वज्रके आघातसे जैसे वृक्ष गिरता है वैसेही अपने तेजसे (अघशंसं नीचा नि वृश्च) शत्रुको नीचे गिरा ॥ ५ ॥

१ पव्या इव वनिनं न अघशंसं नीचा नि वृश्च— जैसे वज्रके आघातसे वृक्ष टूट पडता है, वैसेही पापी शत्रुको नीचे गिरा दो ।

२ अजर राजन् — जरारहित राजा हो । राजा निर्बल न हो । वृद्ध अवस्थामें भी तरुणके समान कार्य करे ।

[६७] हे (अग्ने) अग्ने ! (अस्माकं मघवत्सु) हमारे धनी लोगोंमें (अनामि अजरं सुवीर्यं क्षत्रं धारय) दूसरा जिसका हरण नहीं कर सकता ऐसा, अविनाशी, उत्तम वीरतायुक्त क्षात्रबल स्थापित कर । हे (वैश्वानर अग्ने) विश्वका हित करनेवाले अग्ने ! (तव ऊतिभिः वयं शतिनं सहस्रिणं) तेरे संरक्षणसे सौ तथा हजारों मनुष्योंके साथ रहनेवाला (वाजं जयेम) बल हम प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[६८] हे (त्रिषधस्थ इष्टे) तीनों स्थानोंमें रहनेवाले यजनीय अग्ने ! (तव अदब्धेभिः गोपाभिः अस्माकं सूरीन् पाहि) तेरे न दबनेवाले संरक्षणोंसे हमारे ज्ञानियोंकी रक्षा कर । हे (वैश्वानर अग्ने) सर्वहितकारी अग्ने ! (ददुषां नः शर्धः रक्ष च) दान देनेवाले हमारे बलकी रक्षा कर । (स्तवानः प्र च तारीः) प्रशंसित होकर तू हमारा तारण कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! सदा सर्वदा तेरी स्तुति करनेवाले स्तोताओंको धन और यशस्वी पुत्र दे। हे सदा तरुण और तेजस्वी रहनेवाले अग्ने ! वज्रके आघातसे जैसे वृक्ष टूटकर गिरता है, उसी तरह अपने तेजसे तू अपने शत्रुको नीचे गिरा ॥ ५ ॥

हमारे देशमें जो धनी हों, उनमें वीरतायुक्त बल रहे । उनके अन्दर इतनी शक्ति हो कि वे अपने धनकी सम्यक् प्रकारसे सुरक्षा कर सकें । विश्वका हित करनेवाले अग्रणीसे संरक्षण करनेवाली शक्ति प्राप्त करें ॥ ६ ॥

यह अग्नि अग्निके रूपमें पृथिवी पर, विद्युत्के रूपमें अन्तरिक्षमें और सूर्यके रूपमें द्युलोकमें स्थित है । इसी तरह अग्रणी भी अपने राष्ट्रके निम्न, मध्यम और उच्च स्तरके लोकोंमें गति करे अर्थात् सभी तरहके लोगोंमें इसकी पहुंच हो । उन सभीकी अपनी शक्तियोंसे रक्षा करे, राष्ट्रमें जो दानी हों, उनकी भी रक्षा करे । इस प्रकार राष्ट्रमें विद्वान् निर्भय हों । दाताओंका सात्विक बल बढे और उनका उत्कर्ष हो ॥ ७ ॥

[९]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् (७ प्रस्तारपंक्तिर्वा) ।

६९ अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजा ऽवातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ १ ॥

७० नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥ २ ॥

७१ स इत् तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥ ३ ॥

---

[९]

अर्थ— [६९] (कृष्णं अहः) कृष्ण वर्णवाली रात्रि (च अर्जुनं च अहः) और शुक्ल वर्णवाला दिन ये दोनों (रजसी वेद्याभिः वि वर्तेते) अपने तेजसे सर्व जगत्को रंगते हुए, अपनी नियत योजनाके अनुसार बारबार संचार करते रहते हैं । (वैश्वानरः अग्निः जायमानः न राजा) विश्वका हित करनेवाला अग्नि उत्पन्न होकर राजाके समान (ज्योतिषा तमांसि अवातिरत्) अपने तेजसे अन्धकारका नाश करता है ॥ १ ॥

[७०] (अहं तन्तुं न वि जानामि) सीधे तन्तुको मैं नहीं जानता और (ओतुं न) तिरछे सूत्रको भी नहीं जानता । (न यं समरे अतमानाः वयन्ति) जो वस्त्र स्पर्धायुद्धमें सतत प्रयत्न करनेवाले बुनते हैं उसको भी मैं नहीं जानता । (इह कस्य स्वित् पुत्रः) इस लोकमें किसका भला पुत्र (परः) श्रेष्ठ होकर (अवरेण पित्रा वक्त्वानि वदाति) अपने पासके पितासे मिलकर इस विषयके योग्य वक्तव्यको बोलता है ॥ २ ॥

[७१] (स इत् तन्तुं वि जानाति) वह वैश्वानर निःसंदेह तन्तुको जानता है और (सः ओतुं) वह तिरछे सूत्रको भी जानता है । (ऋतुथा वक्त्वानि वदाति) ऋतुके अनुसार करनेयोग्य वक्तव्योंको वह कहता है । (यः अमृतस्य गोपाः अवः चरन्) जो अमृतकी रक्षा करनेवाला नीचे भूलोकमें अग्निरूपसे संचार करता हुआ (परः अन्येन पश्यन् ईं चिकेतत्) दूर रहकर सूर्यरूपसे सम्पूर्ण जगत्को देखता है और सबको जानता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— काले रंगवाली रात्री और श्वेत रंगवाला दिन ये दोनों अपने अपने रंगोंसे सब जगत्को रंगते हुए अपनी नियत योजनासे बारबार इस जगत्में संचार करते हैं । विश्वका हित करनेवाला अग्नि उत्पन्न होते ही राजाके समान शक्तिसे बढता है, और बढकर अपने तेजसे सब प्रकारके अन्धकारोंका नाश करता है ॥ १ ॥

मैं कपडेके सीधे धागेको नहीं जानता और तिरछे धागेको भी नहीं जानता । तथा स्पर्धामें सतत घूमकर जो वस्त्र बुनते हैं उनको भी नहीं जानता । भला किसका पुत्र यहां श्रेष्ठ होकर अपने पितासे मिलकर इस सम्बन्धके योग्य वक्तव्योंको बोल सकता है ? यह मन्त्र जीवनका आलंकारिक वर्णन करता है । जन्मसे मृत्युतकका जो काल है वह एक अखंड वस्त्र है । इसमें सीधे और तिरछे ऐसे तन्तु रहते हैं । जीवन एक समर युद्ध है । इसमें विजयार्थ यत्न करनेवाले लोग इस वस्त्रको बुन रहे हैं । किसका पुत्र किस पितासे मिलकर इस विषयमें सच्चा ज्ञान कह सकता है ? दीर्घ जीवन कितना है, बीचके कालविभाग कैसे आते जाते हैं । यह किसीको पता नहीं है । इस जीवनसमरमें विजयके लिये युद्धका प्रयत्न करनेवाले अपने प्रयत्नसे यह वस्त्र बुन रहे हैं । यहां कौन ऐसा है कि जो पुत्र अपने पितासे मिलकर इस वस्त्रका ठीक ठीक वर्णन कर सकेगा । अर्थात् सर्वसाधारण जनोंमें कोई यह नहीं कह सकता ॥ २ ॥

यह वैश्वानर अग्नि निःसन्देह सीधे धागेको जानता है और वही तिरछे धागेको भी जानता है । वही ऋतुके अनुसार करनेयोग्य कर्मोंमें जो कहना चाहिये उसको कहता है । वह अमृतका संरक्षक भूलोकमें अग्निरूपसे संचार करता है और दूर आकाशमें रहकर सूर्यरूपसे सबका निरीक्षण करता है और सबको जानता भी है ॥ ३ ॥

७२ अयं होता प्रथमः पश्यतेम-मिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तो ऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥ ४ ॥
७३ ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ५ ॥
७४ वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षु-र्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद् वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ ६ ॥
७५ विश्वे देवा अनमस्यन् भियाना-स्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नो ऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥ ७ ॥

अर्थ— [७२] (अयं प्रथमः होता) यह अग्नि पहिला होता है । (इमं पश्यत) हे मनुष्यो ! तुम इस अग्निको देखो । (मर्त्येषु अमृतं इदं ज्योतिः) मरणशील प्राणियोंमें यही मरणरहित ज्योति है । (सः अयं ध्रुवः आ निषत्तः) वह यह अग्नि स्थिर शाश्वत, सर्वव्यापी (अमर्त्यः तन्वा जज्ञे वर्धमानः च) अमर और शरीरसे उत्पन्न होता है और बढता भी है ॥ ४ ॥

[७३] (ध्रुवं मनः जविष्ठं) स्थिर होनेपर भी मनसे अत्यन्त वेगवान् ज्योति (पतयत्सु अन्तः) सब जंगम प्राणियोंके मध्यमें (कं दृशये) सुखके दर्शनके लिये (निहितं) स्थापित है (विश्वे देवाः समनसः सकेताः) सब देव समान विचार करते हुए और समान प्रज्ञावाले होकर (एकं क्रतुं साधु अभि वि यन्ति) एक मुख्य कर्तृत्व करनेवालोंकी सब प्रकारसे सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

[७४] (मे कर्णा वि पतयतः) उसके विषयमें सुननेकी इच्छा करनेवाले मेरे कान उधर दौडते हैं । (चक्षुः वि) मेरी आंखें उसको देखनेकी इच्छासे उधर जाती है । (ज्योतिः हृदये आहितं) हृदयमें रखा हुआ यह प्रकाश स्वयं ज्योति है । (यत् इदं वि) जो यह बुद्धिरूप तत्व है वह भी उसीके पीछे जाता है । (दूर आधीः मे मनः वि चरति) दूरस्थ विषयका विचार करनेवाला मेरा मन इधर उधर फिरता रहता है । (किं स्वित् वक्ष्यामि) इससे अधिक मैं क्या कहूंगा, (किं उ नु मनिष्ये) और किसका अधिक विचार करूं ? ॥ ६ ॥

[७५] हे (अग्ने) वैश्वानर अग्ने ! तमसि तस्थिवांसं त्वां विश्वेदेवाः) अन्धकारमें रहनेवाले तुझको सब देव (अनमस्यन्) नमस्कार करते हैं । क्योंकि मनुष्य (भियानाः) अन्धकारसे भयभीत हुए हैं । (अमर्त्यः वैश्वानरः) अतः मरणरहित यह वैश्वानर अग्नि (नः ऊतये अवतु) हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ ७ ॥

भावार्थ — यह वैश्वानर-सब विश्वका संचालक अग्निरूपसे रहनेवाला परमात्मा पहिला याजक है । हे मनुष्यो ! तुम इसको देखो । मर्त्य प्राणियोंमें यह अमर ज्योति है । यह सबमें शाश्वतरूपसे रहता और सबको व्यापता है । यह अमर है, यह शरीरके साथ उत्पन्न होकर बढता जाता है । यहाँ अग्निरूपके वर्णनसे आत्माका वर्णन किया है । असंख्य आयुष्यका वक्ष है और दिन रात्रीके धागे इसमें बुने जा रहे हैं ॥ ४ ॥

स्थिर रहनेवाला मन भी अत्यन्त वेगवान् और तेजःस्वरूप है । इसे सब जंगम प्राणियोंमें आनन्द अनुभव करनेके लिये स्थापित किया है । सब देव एक मन और एक प्रज्ञाके साथ इसी एक मुख्य कर्मकर्ताकी सब प्रकारसे सेवा करते हैं । एक मनकी सेवा चक्षु आदि सब इन्द्रियां करती हैं । यह मन यहां मुख्य है ॥ ५ ॥

इस अन्दरकी ज्योतिके विषयमें सुननेके लिये मेरे कान दौड रहे हैं और मेरे चक्षु भी उसीको देखना चाहते हैं । वह ज्योति हृदयमें है । जो यहां यह बुद्धिरूप तत्व है वह भी उसीकी खोजमें घूम रहा है । दूरदूरके विषयोंका ध्यान करनेवाला मेरा मन तो सतत दौड रहा है । अब मैं अधिक क्या कहूं और अधिक किसका विचार करूं ? ॥ ६ ॥

[१०]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ; ७ द्विपदा विराट् ।]

७६ पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥ १ ॥

७७ तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥ २ ॥

७८ पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥ ३ ॥

---

[१०]

अर्थ— [७६] हे मनुष्यो! (मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं) तुम लोग आनन्ददायक दिव्य व प्रशंसनीय (अग्निं) अग्निको (अध्वरे यज्ञे प्रयति वः पुरः दधिध्वं) हिंसारहित यज्ञका प्रारंभ होते ही अपने सन्मुख स्थापित करो। उसको (उक्थेभिः पुरः) स्तोत्रगान करके प्रथम स्थापित करो । क्योंकि (सः विभावा जातवेदाः हि) वह देदीप्यमान ज्ञानी अग्नि है । वही (नः स्वध्वरा करति) हमारे यज्ञोंको सुफल करता है ॥ १ ॥

[७७] हे (द्युमः) दीप्तिमान् (पुर्वणीक) बहुत ज्वालावाले (होतः) देवोंको आह्वान करनेवाले (अग्ने) अग्ने ! (अग्निभिः इधानः) अन्य अग्नियोंके साथ प्रदीप्त होकर (मनुषः तं उ) मनुष्यके द्वारा की हुई उस स्तुतिको सुन । (यं स्तोमं, घृतं न शूषं) जो स्तोत्र सुखकर पवित्र घीकी तरह बलवर्धक (शुचि) शुद्ध है । (अस्मै मतयः ममता इव) इस स्तोत्रको बुद्धिमान् स्तोता ममत्वसे गानेके समान (पवन्ते) निर्दोष उच्चार करते हैं ॥ २ ॥

[७८] (सः मर्त्येषु श्रवसा पीपाय) वह मनुष्य मनुष्योंके बीचमें हविष्यान्नसे अग्निको बढाता है (यः विप्रः उक्थैः ददाश) जो बुद्धिमान् मनुष्य स्तुति द्वारा हव्य देता है, (तं चित्रशोचिः चित्राभिः ऊतिभिः) उस मनुष्यको वह विलक्षण कान्तिवाला अग्नि आश्चर्यकारक सुरक्षाओंके साथ (गोमतः व्रजस्य साता दधाति) गौओंके श्रेष्ठ बाडे देनेमें सहायक होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे वैश्वानर अग्ने! अन्धकारमें रहनेवाले तुझको सब देव नमन करते हैं। वे अन्धकारसे डरते हैं। यह अमर वैश्वानर अग्नि हमारी रक्षा करे। सबमें जो नररूपसे रहता है वह वैश्वानर है। वह विश्वका नेता है। अन्धकारमें रहनेवाले देव इंद्रियां हैं। ये इंद्रियां इस नेता-आत्माको-नमन करती हैं। इससे इनका भय दूर होता है। यही सबको निर्भय करनेवाला है। इस सूक्तके अन्तिम दो मंत्रोंने इस सूक्तको अधिक स्पष्ट किया है। यह वैश्वानर आत्मा है, मन और इंद्रियां उसकी सेवा करनेवाली हैं। दिन रात्रि ये धागे हैं और आयुष्यरूप वस्त्र बनाया जा रहा है ॥ ७ ॥

हे मनुष्यो ! तुम सब मिलकर आनन्ददायक दिव्य निर्दोष अग्निको हिंसारहित यज्ञकर्मका प्रारंभ होते ही अपने सम्मुख स्थापित करो। स्तोत्रोंसे उसकी स्तुति करके उसको बढाओ। वह ज्ञानप्रसारक तेजस्वी अग्नि हमारे यज्ञोंको सुफल कर सकता है ॥ १ ॥

मनुष्य तेजस्वी बने, बहुत वीरोंको अपने साथ रखे, विद्वानोंको अपने पास बुलावे, अन्य नेताओंके साथ रहे और प्रकाशित हो जावे। बल बढानेवाला शुद्ध पवित्र भाषण करे, ममतासे लोगोंमें पवित्रता निर्माण करे ॥ २ ॥

मनुष्योंमें अधिक यश प्राप्त करके मनुष्य अपनी उन्नतिका साधन करे। जो ज्ञानी उत्तम पवित्र भाषणके साथ दान देता है, उसको तेजस्वी नेता उत्तम संरक्षणोंके साथ गौओंके बाडे आदि धन देता है अर्थात् दान देनेवालेको धन मिलता है ॥ ३ ॥

७९. आ यः पुप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित् तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥ ४ ॥

८० नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान् त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥ ५ ॥

८१ इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन् यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ६ ॥

८२ वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ७ ॥

अर्थ — [७९] (कृष्णाध्वा यः जायमानः) कृष्णवर्त्मा अग्नि उत्पन्न होकर (दूरेदृशा भासा उर्वी आ पप्रौ) दूरसे ही दृश्यमान ऐसी अपनी कान्तिसे विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको भर देता है। (अध पावकः) फिर वह पवित्र अग्नि (ऊर्म्यायाः बहु चित् तमः शोचिषा तिरः ददृशे) रात्रीके अत्यन्त घने अन्धकारको अपने तेजसे दूर करता हुआ दिखाई देता है ॥ ४ ॥

[८०] हे (अग्ने) अग्ने ! (मघवद्भ्यः नः पुरुवाजाभिः ऊती) धनवान् हुए हमको बहुत रक्षणके साथ (चित्रं रयिं नु धेहि) चाहनेयोग्य धन शीघ्र दे। (ये राधसा श्रवसा च सुवीर्येभिः) जो सिद्धिसे यश और उत्तम वीर्यसे (अन्यान् जनान् अति अभि सन्ति) अन्य मनुष्योंसे अतिशय श्रेष्ठ हैं वैसे वीर्यवान् पराक्रमी हमें बना ॥ ५ ॥

[८१] हे (अग्ने) अग्ने ! (उशन् इमं यज्ञं चनः धाः) हविष्यान्नकी इच्छावाला तू इस यज्ञसाधनभूत अन्नको स्वीकार कर। (यं आसानः हविष्मान्) जो यहां बैठा हुआ हविर्युक्त मनुष्य (ते जुहुते) तेरे लिये हवन करता है। (भरद्वाजेषु सुवृक्तिं दधिषे) भरद्वाज गोत्रके ऋषियोंके द्वारा की गई स्तुतिको तू स्वीकार कर। (गध्यस्य वाजस्य सातौ अवीः) अन्नधनादिकी प्राप्तिके यत्नमें उन ऋषियोंकी रक्षा कर ॥ ६ ॥

१ उशन् इमं यज्ञं चनः धाः— मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छासे अपने पास अन्नका संग्रह करे।

[८२] हे अग्ने ! (द्वेषांसि वि इनुहि) शत्रुओंका नाश कर। (इळां वर्धय) हमारे लिये अन्न बढा। हम (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर पुत्रपौत्रादिसे युक्त होकर सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ— काले अन्धकारके मार्गसे जाकर वहां प्रकाश करनेवाला वीर अपने प्रकाशसे विस्तीर्ण क्षेत्रको भर देता है। पवित्रता करनेवाला नेता रात्रीके अन्धकारको दूर करता है, सर्वत्र प्रकाश करता है ॥ ४ ॥

धनवानोंको बहुत धन मिले और बहुत संरक्षण भी प्राप्त हो। जो सिद्धि, यश और पराक्रमोंसे अतिश्रेष्ठ बने हैं, उनसे भी श्रेष्ठ हम बनें ॥ ५ ॥

मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छा करे, अन्नको धारण करे, यज्ञशालामें बैठकर हवन करे। अन्नधनकी प्राप्ति करनेका यत्न जो करते हैं, उनका संरक्षण हो। जो अन्नका दान करते हैं उनकी प्रशंसा हो ॥ ६ ॥

मनुष्य शत्रुओंका नाश करे, अन्नको बहुत उत्पन्न करे और सौ वर्षतक पुत्रपौत्रोंके साथ आनन्दसे रहे ॥ ७ ॥

[११]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

८३ यजस्व होतरिषितो यजीया—ऽग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥ १ ॥

८४ त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रु—गन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासा ऽग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् ॥ २ ॥

८५ धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै ।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥ ३ ॥

[११]

अर्थ—[८३] हे (होतः) देवोंको बुलानेवाले (अग्ने) अग्ने ! तेजस्वी देव ! (यजीयान् इषितः) यज्ञ करनेवाला तू हमारे द्वारा प्रार्थना किए जानेपर (न) इस समय (प्रयुक्ति मरुतां बाधः यजस्व) यज्ञमें मरनेतक लडनेवाले वीरोंके शत्रुनाशक संघके लिये यजन कर । (मित्रावरुणा नासत्या द्यावापृथिवी) मित्र, वरुण, श्रेष्ठ देव सत्यके नेता अश्विनौ और द्यावापृथिवीको (होत्राय आ ववृत्याः) हमारे यज्ञके लिये ला ॥ १ ॥

[८४] हे अग्ने ! (त्वं मर्त्येषु अन्तः विदथा होता) तू मनुष्योंके बीच यज्ञमें देवोंको बुलानेवाला है । तू (मन्द्रतमः नः अध्रुक् देवः) अतिशय आनन्द देनेवाला और हमारा द्रोहरहित मित्र और दिव्य है । हे (अग्ने) अग्ने ! (जुह्वा पावकया आसा वह्निः) ज्वालायुक्त पवित्र मुख द्वारा हव्य वहन करनेवाला तू (तव स्वां तन्वं यजस्व) अपने स्वभूत शरीरका भी हव्यसे पोषण कर ॥ २ ॥

[८५] (यत् ह अंगिरसां वेपिष्ठः विप्रः) जब अंगिरस् ऋषियोंके बीच अतिशय स्तुति करनेमें प्रवीण विद्वान् (रेभः) स्तोता (इष्टौ मधु छन्दः भनति) यज्ञमें मधुर छन्दका गान करता है । (चित् हि देवान् प्र यजध्यै जन्म गृणते) तब देवोंका यज्ञ करनेके लिये तेरे जन्मका वर्णन करनेवालेकी (धन्या धिषणा त्वे वष्टि) धनकी इच्छा करनेवाली बुद्धि तेरी कामना करती है । तेरी भक्तिसे धन मिलता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे देवोंको बुलानेवाले तेजस्वी देव ! यज्ञ करनेवाला तू हमारे द्वारा स्तुत होकर तू मरुतोंको संगठित कर, तथा मित्र, वरुण आदि सभी देवोंको हमारे यज्ञमें बुलाकर ला । अग्रणी नेता भी वीर क्षत्रियोंको संगठित करे तथा राष्ट्र संगठन जैसे पवित्र कार्यमें देवों-विद्वानोंकी भरपूर सहायता ले ॥ १ ॥

यह अग्नि यज्ञमें देवोंको बुलाकर लानेवाला है । वह अत्यन्त आनन्द देनेवाला, मनुष्योंका द्रोहरहित मित्र और उत्तम गुणोंसे युक्त है । ज्वालारूपी मुख द्वारा हव्य भक्षण करनेवाला यह अग्नि अपने शरीरका भी पोषण करता है । अग्रणी भी राष्ट्र-संगठनरूप यज्ञके कार्यमें विद्वानोंकी सहायता लेनेवाला हो, वह सबके साथ द्रोहरहित मित्रतापूर्ण व्यवहार करे और उत्तम गुणोंसे युक्त हो । वह तेजस्वी होकर राष्ट्रमें सभी प्रजाके पोषणकी व्यवस्था करे, साथ ही अपने शरीरको भी पुष्ट और स्वस्थ बनाये ॥ २ ॥

जब अंगिरस् अर्थात् ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और स्तुति करनेमें प्रवीण विद्वान् यज्ञमें मधुर छन्दोंका गान करता है, तब देवोंका यज्ञ करनेके लिए बुद्धि इस अग्निकी कामना करती है ॥ ३ ॥

८६ अदिद्युतत् स्वपाको विभावा ऽग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥ ४ ॥
८७ वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्ना—वयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥ ५ ॥
८८ दशस्या नः पुर्वणीक होत—र्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥ ६ ॥

[१२]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

८९ मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळ—ग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात् सूर्यो न शोचिषा ततान ॥ १ ॥

अर्थ— [८६] यह (अपाकः विभावा) बुद्धिमान् और दीप्तिमान् अग्नि (सु अदिद्युतत्) विशेष रीतिसे प्रकाशित होता है । हे (अग्ने) अग्ने ! तू (उरूची रोदसी यजस्व) विस्तीर्ण द्यावापृथिवीका यजन कर । (आयुं न रातहव्याः पञ्चजनाः) अतिथिकी पूजा करनेके समान, हवि अर्पण करनेवाले पाँचों जातिके लोग (यं सुप्रयसं नमसा अञ्जन्ति) जिसको उत्तम हवि दिया जाता है, ऐसे अग्निको अन्नसे तृप्त करते हैं ॥ ४ ॥

[८७] (यत् ह नमसा अग्नौ बर्हिः वृञ्जे) जब अन्नकी अग्निमें आहुति डाली जाती है । तथा (सुवृक्तिः घृतवती स्रुक् अयामि) उत्तम दोषरहित घृतसे पूर्ण स्रुचा रखी जाती है । तब (पृथिव्याः सदने सद्म अम्यक्षि) पृथ्वीके ऊपरके यज्ञगृहमें वेदी रची जाती है । (सूर्ये न चक्षुः) सूर्यमें जिस प्रकार चक्षु आश्रय करता है । उस प्रकार (यज्ञः अश्रायि) यज्ञ यज्ञकर्ताका आश्रय करता है ॥ ५ ॥

[८८] हे (पुर्वणीक होतः अग्ने) बहुत ज्वालायुक्त और देवोंके आवाहन करनेवाले अग्ने ! (देवेभिः अग्निभिः इधानः) अन्य दिव्य अग्नियोंके साथ प्रदीप्त होनेवाला तू (नः रायः दशस्य) हमें धन दे । हे (सहसः सूनो) बलके प्रेरक अग्ने ! (वावसानाः, वृजनं न, अंहः अति स्रसेम) हविष्यान्न देनेवाले हम, शत्रुके समान, पापको भी दूर करते हैं ॥ ६ ॥

[१२]

[८९] (होता, बर्हिषः राट् अग्निः) देवोंको बुलानेवाला, यज्ञका राजा, अग्नि (तोदस्य दुरोणे मध्ये) यज्ञकर्ताके घरके बीचमें (रोदसी यजध्यै सः अयं) द्यावापृथिवीका यजन करनेके लिये बैठा है । वह यह (सहसः सूनुः) बलका प्रेरक (ऋतावा सूर्यो न दूरात्) यज्ञ करनेवाला अग्नि सूर्यकी तरह दूरसे ही (शोचिषा ततान) अपने तेजसे जगत्को प्रकाशित करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यह बुद्धिमान् और दीप्तिमान् अग्नि विशेष रूपसे प्रकाशित होता है । हे अग्ने ! तू विस्तीर्ण द्यु और पृथ्वीलोकको पुष्ट करता है । सभी तरहके मनुष्य इस अग्निको इस प्रकार सम्मानपूर्वक तृप्त करते हैं, कि जैसे कोई विद्वान् अतिथिका सत्कार करके उसे तृप्त करता है ॥ ४ ॥

इस अग्निके लिए प्रथम वेदी रची जाती है, फिर उत्तम और दोषरहित स्रुवा आदि यज्ञके साधन तैय्यार किए जाते हैं, फिर अग्निमें घृत आदि पदार्थोंकी आहुतियां डाली जाती हैं । जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे आंखोंकी ज्योति बढती है, उसी तरह यज्ञकर्ताके उद्योगसे यज्ञकी वृद्धि होती है ॥ ५ ॥

अग्रणी अपने पास पर्याप्त संरक्षक दल रखें । दिव्य विभूतियोंके साथ प्रकाशित होता रहे । अनुयायियोंको धन देवे। अनुयायियोंमें बल बढानेकी प्रेरणा करे । प्रभुकी सेवा करे । शत्रुको तथा पापको दूर करे ॥ ६ ॥

×

९० आ यस्मिन् त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद् राजन् त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ २ ॥

९१ तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन् न वृधसानो अद्यौत् ।
अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३ ॥

९२ सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्रन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ ४ ॥

अर्थ— [९०] हे (यजत्र राजन्) पूज्य और प्रकाशमान् अग्ने! तेजस्वी देव! (द्यौः सर्वताता इव) प्रकाशमान् स्तोता यज्ञमें (स्वपाके त्वे यस्मिन्) बुद्धिमान् ऐसे तुझमें (नु सु आ यक्षत्) उत्तम रीतिसे हवन करता है । (त्रिषधस्थः ततरुषः न) तीनों लोकोंमें तारक सूर्यकी तरह (मानुषा मघानि हव्या यजध्यै) मनुष्योंके प्रशंसनीय हव्योंका यजन करनेके लिये तू (जंहः) शीघ्र जानेवाला हो ॥ २ ॥

[९१] (यस्य अरतिः तेजिष्ठा वनेराट्) जिस अग्निकी ज्वाला अत्यन्त तेजवाली होकर अरण्यमें सुशोभित होती है, (वृधसानः तोदः न अध्वन् अद्यौत्) वह बढनेवाला अग्नि सबके प्रेरक सूर्यकी तरह अपने मार्गमें भी प्रकाशित होता है । (अद्रोघः न अमर्त्यः ओषधीषु) द्रोह न करनेवालेके समान मरणरहित वह अग्नि वनोंमें (द्रविता अवर्त्रः) शीघ्र फैलनेवाला और किसीसे रोका न जानेवाला (त्मन् चेतति) अपने प्रकाशसे सबको प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

[९२] (जातवेदाः सः अग्निः) वह ज्ञानी अग्नि (एतरी न अस्माकेभिः शूषैः दमे आ स्तवे) मार्गसे जानेवाले गायकके समान हमारे सुखकर स्तोत्रोंसे हमारे यज्ञगृहमें प्रशंसित होता है । (द्रन्नः वन्वन् क्रत्वा न अर्वा) वही वृक्षोंको खानेवाला, वनोंका आश्रय करनेवाला, अपना कर्म करते हुए जानेवाले घोडेके समान गतिमान् (उस्रः पिता इव यज्ञैः जारयायि) वत्सोंके पिता वृषभकी तरह याजक मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि यज्ञमें देवोंको बुलाकर लानेवाला होनेके कारण यज्ञका राजा अथवा यज्ञका पालक है । यह अग्नि यज्ञकर्ताके घरमें बैठकर द्यु और पृथ्वीलोकको पुष्ट करता है । यह बलका प्रेरक है, जब यह अग्नि शरीरमें बढता है, तब शरीरमें शक्ति भी बढती है । इसी लिए इसे बलका प्रेरक कहा गया है । यह यज्ञाग्नि दूरसे ही अपने प्रकाशको सूर्यके समान विस्तृत करता है और सारे जगत्को प्रकाशित करता है ॥ १ ॥

यज्ञमें याजक प्रदीप्त अग्निमें यजन करता है । तीनों लोकोंमें सूर्यका प्रकाश जाता है और वहां वह सूर्य सर्वत्र पवित्रता करके प्राणियोंका रोगोंसे तारण करता है । उस तरह यज्ञमें किये हवनोंका प्रभाव तीनों लोकोंमें हो और वहां पवित्रता हो ॥ २ ॥

अग्निकी ज्वाला बढनेपर वनमें शोभती है, उसके और बढ जानेपर सूर्यकी तरह वह अपने जानेके मार्गमें भी प्रकाशने लगता है । द्रोह न करनेवालेके समान यह अमर अग्नि किसीसे रोका नहीं जाता और अपने प्रकाशसे सबको प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

यह ज्ञानी अग्रणी, मार्गपरसे जानेवाले गायकके गानेके समान हमारे उत्तम स्तोत्रोंके गायनसे प्रशंसित होता है । वृक्षोंको जलानेवाला अपनी गतिसे जानेवाले घोडेके समान गतिमान्, वत्सोंके पिता बैलके समान तरुण अग्रणी याजकों द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ४ ॥

९३ अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत् तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयान् ऋणो न तायुरति धन्वा राट् ॥ ५ ॥

९४ स त्वं नो अर्वन् निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

[१३]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

९५ त्वद् विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १ ॥

९६ त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ २ ॥

अर्थ— [९३] (अध स्म) इस लोकमें लोग (अस्य भासः पनयन्ति) अग्निके किरणोंका वर्णन करते हैं। (यत् वृथा तक्षत् पृथ्वीं) जब सहज ही से यह वनोंको जलाकर पृथ्वीके ऊपर (अनुयाति) भ्रमण करता है। (यः स्पन्द्रः विषितः सद्यः धवीयान्) जो अग्नि स्वयं गतिमान् है और प्रतिबन्ध रहित होनेके कारण अत्यन्त वेगसे जाता है। वह (ऋणो न तायुः) दौडनेवाले चोरकी तरह (धन्व राट्) भूमिके ऊपर प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

[९४] हे (अर्वन् अग्ने) गतिशील अग्ने! (सः त्वं निदायाः) वह तू निन्दासे हमारी रक्षा कर। (विश्वेभिः अग्निभिः इधानः) सब अग्नियोंसे प्रज्वलित होकर (रायः वेषि) हमें धन प्रदान कर। (दुच्छुनाः वि यासि) और दुष्ट शत्रुसैन्यको दूर कर! (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्षतक हम आनन्दसे रहें ॥ ६ ॥

[१३]

[९५] हे (सुभग अग्ने) उत्तम भाग्यवान् अग्ने! (विश्वा सौभगानि त्वत् वि यन्ति) सब भाग्य तेरेसे ही निकलते हैं। (वनिनो न वयाः) जिस प्रकार वृक्षसे शाखाएं निकलती हैं। (रयिः श्रुष्टी) धन भी तुझसे ही शीघ्रतासे उत्पन्न होते हैं। (वृत्रतूर्ये वाजः) संग्राममें शत्रुओंको जीतनेके लिये बल भी तुझसे ही उत्पन्न होता है। (दिवः वृष्टिः) अन्तरिक्षसे वृष्टि तुझसे ही होती है। (ईड्यः अपां रीतिः) इसलिये स्तुतिके योग्य तू पानी लानेवाला है ॥ १ ॥

[९६] हे अग्ने! (भगः त्वं नः रत्नं आ इषे) तू भाग्यवान् हमको रमणीय धन दे। (दस्मवर्चाः परिज्मा इव क्षयसि) दर्शनीय दीप्तिमान् तू चारों तरफ जानेवाले वीरकी तरह सब जगह रहता है अथवा सब पर शासन करता है। हे (अग्ने) अग्ने! (मित्रो न, बृहतः ऋतस्य क्षत्ता असि) मित्रके समान महान् सत्य मार्गका चलानेवाला है। हे (देव) दीप्तिमान् अग्ने! (भूरेः वामस्य) तू बहुत प्रशंसनीय धनका देनेवाला है ॥ २ ॥

१ भगः त्वं नः रत्नं आ इषे— तू भाग्यवान् है इसलिये हमें भाग्य दे।

भावार्थ— लोग अग्निकी ज्वालाओंका वर्णन करते हैं। यह पृथ्वीके ऊपरके वनोंको जलाता हुआ चलता है। यह अग्नि स्वयं गतिमान् है, परंतु बंधनसे मुक्त होनेके कारण इसका वेग अधिक होता है। और यह दौडनेवाले चोरकी तरह भूमिपर चलता हुआ प्रकाशता है ॥ ५ ॥

मानव निन्दासे अपनी रक्षा करे। धनोंका दान करें। दुष्ट शत्रुसे अपनी रक्षा करें। उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्षतक आनन्दमें रहें ॥ ६ ॥

हे भाग्यवान् अग्ने! सब भाग्य, जिस तरह वृक्षसे शाखाएं निकलती हैं, उसी तरह तुझसे प्राप्त होते हैं। सब धन, शत्रुसे संरक्षण करनेवाला बल, आकाशसे होनेवाली वृष्टि यह सब तुझसे ही होता है। तू इस कारण प्रशंसनीय है। अतः तू पानी हमारे पास भेज। वृक्षसे शाखाएं सहज ही से निकलती हैं। वैसे सब भाग्य अग्नीसे मिलते हैं। सब धन इससे मिलते हैं। युद्धमें विजय देनेवाले बल इसीसे मिलते हैं ॥ १ ॥

९७ स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्र-मग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३ ॥

९८ यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थै-र्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं१ पत्यते वसव्यैः ॥ ४ ॥

९९ ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीरा ऽग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५ ॥

अर्थ— [९७] हे (अग्ने) अग्ने ! (सत्पतिः सः वृत्रं शवसा हन्ति) सज्जनोंका पालन करनेवाला वह पुरुष आवरक शत्रुका अपने बलसे नाश करता है (विप्रः पणेः वाजं विमर्ति) वह बुद्धिमान् असुरके अन्नका हरण करता है। हे (प्रचेतः) प्रकृष्ट ज्ञानवान् (ऋतजात) सत्यके रक्षणके लिये उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (अपां नप्त्रा सजोषाः) पानीको न गिरानेवाला वैद्युताग्निसे संगत होकर (त्वं यं राया हिनोषि) तू जिसको धनके लिये प्रेरित करता है वही शत्रुओंको मारता है ॥ ३ ॥

१ सः सत्पतिः वृत्रं शवसा हन्ति— वह सत्यका पालक अपने बलसे शत्रुका वध करता है। राजा सत्यका पालन करे और दुष्टका दमन करे।

२ विप्रः पणेः वाजं विमर्ति— ज्ञानी वीर दुष्ट व्यवहार करनेवालेसे अन्न या धन छीन लेता है। दुष्ट पद्धतिसे व्यापार व्यवहार करनेवालेसे राजा धन छीन ले।

[९८] हे (सहसः सूनो) बलके पुत्र अग्ने ! (ते निशितिं यः मर्तः गीर्भिः उक्थैः) तेरे तीक्ष्ण सामर्थ्यको जो मनुष्य अपने भाषणों और स्तोत्रों द्वारा (यज्ञैः वेद्या आनट्) तथा यज्ञोंद्वारा वेदीमें प्राप्त करता है। (सः) वह मनुष्य, हे (देव अग्ने) कान्तिमान् अग्ने ! (विश्वं अरं धान्यं प्रतिधत्ते) सब पर्याप्त धान्य प्राप्त करता है। और (वसव्यैः पत्यते) बहुत धनोंसे युक्त होता है ॥ ४ ॥

[९९] हे (सहसः सूनो) बलके पुत्र अग्ने ! (ता सुवीराः सौश्रवसा नृभ्यः) उन उत्तम वीरोंसे युक्त उत्तम अन्नोंको उन शत्रुओंसे हरण कर और (पुष्यसे आ धाः) पोषणके लिये हमें देदो। (शवसा भूरि पश्वः यत् वयः) तथा बलसे युक्त तूने जो बहुत पशु और अन्न (वृकाय जसुरये अरये कृणोषि) क्रूर द्वेषकर्त्ता शत्रुओंके लिये दिया है वह भी हरण करके हमें ला दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हमें उत्तम रत्न दे। तू दर्शनीय और तेजस्वी है। तू वायुकी तरह सबपर अधिकार चलाता है। मित्रके समान सत्यका प्रवर्तक है। अब तू हमें उत्तम संपत्ति देनेवाला हो ॥ २ ॥

राजा सत्यका संरक्षण करे और अपने बलसे शत्रुका नाश करे। ज्ञानी राजा दुष्ट व्यापारियोंसे धन छीन ले। वह लोगोंका बल बढावे जिससे वे अपने बलसे शत्रुका नाश कर सकें ॥ ३ ॥

जो मनुष्य इस अग्निके तीक्ष्ण सामर्थ्यको यज्ञके द्वारा प्राप्त करता है, वह सब धनधान्यको प्राप्त करता है और बहुतसे ऐश्वर्यसे युक्त होता है ॥ ४ ॥

हे अग्रणी ! अपने उत्तम वीरोंसे युक्त होकर तू शत्रुओंका पराभव कर और उनके अन्नका हरण करके पोषणके लिए हमें दे। इससे पूर्व तूने जो पशु और अन्न हमसे द्वेष करनेवाले तथा क्रूर शत्रुओंको दिया है, उसे भी उनसे छीनकर हमें दे ॥ ५ ॥

१०० वधा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

[१४]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ६ शक्वरी ।]

१०१ अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १ ॥
१०२ अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २ ॥
१०३ नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [१००] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलपुत्र अग्ने ! (विहायाः नः वधाः) तू महान् ज्ञानी हमारे लिये हितोपदेष्टा हो । (वाजिनः तोकं तनयं दाः) हमें धनधान्यसे संपन्न पुत्रपौत्र दो । (विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्यां) सब स्तोत्रोंका गान करनेसे हमारी कामनाओंकी पूर्ति हो । (सुवीराः शतहिमाः मदेम) वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्ष आनंदसे हम रहें ॥ ६ ॥

[१४]

[१०१] (यो मर्त्यः अग्ना दुवः धियं) जो मनुष्य अग्निकी सेवा बुद्धिपूर्वक (धीतिभिः जुजोष) स्तुतिके साथ करता है । (सः पूर्व्यः नु प्र भसत्) वह मनुष्य पहिला होकर प्रकाशमान् होता है । (अवसे इषं वुरीत) और अपनी सुरक्षाके लिये पर्याप्त अन्न प्राप्त करता है ॥ १ ॥

[१०२] (अग्निः इत् प्रचेताः) अग्नि ही उत्तम ज्ञानी है । (हि वेधस्तमः ऋषिः) और वह कर्ममें अत्यन्त कुशल द्रष्टा ऋषि है । (मनुषः विशः) मानवी प्रजा इस (होतारं अग्निं यज्ञेषु इळते) होता अग्निकी यज्ञमें स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

१ अग्निः प्रचेताः वेधस्तमः ऋषिः— अग्रणी ज्ञानी और कर्मप्रवीण द्रष्टा ऋषि है ।

[१०३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अर्यः रायः अवसे नाना स्पर्धन्ते) शत्रुके धन भक्तोंकी सुरक्षा करनेके लिये शत्रुसे पृथक् होकर स्पर्धा करते हैं । (आयवः दस्युं तूर्वन्तः) भक्त मनुष्य शत्रुका नाश करनेकी इच्छा करते हुए (व्रतैः अव्रतं सीक्षन्तः) व्रतोंसे व्रत विरोधियोंका पराजय करते हैं ॥ ३ ॥

१ आयवः दस्युं तूर्वन्तः व्रतैः अव्रतं सीक्षन्तः— मनुष्य शत्रुका नाश करते हैं और व्रतोंसे व्रतविरोधियोंकी पराजय करते हैं ।

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हमें हितकारक उपदेश कर । धनधान्यसे समृद्ध पुत्रपौत्र हमें प्राप्त हो । हमारी कामनाओंकी पूर्ति होती रहे । उत्तम वीर संतानोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षतक आनंदसे रहें ॥ ६ ॥

जो मनुष्य अग्रणी बुद्धिपूर्वक सेवा करता है, वह शीघ्र ही प्रमुख स्थानपर विराजमान होता है और अपनी सुरक्षाके साथ पर्याप्त अन्न प्राप्त करता है ॥ १ ॥

अग्नि–अग्रणी–उत्तम ज्ञानी और कर्ममें कुशल द्रष्टा ऋषि है । मानवी प्रजाजन इस अग्निकी यज्ञमें स्तुति गाते हैं ॥२॥

शत्रुके धन शत्रुसे पृथक् होते हैं और हमारे पास आनेको त्वरा करते हैं । वे धन हमारा संरक्षण भी करते हैं । मनुष्य शत्रुका नाश करनेके लिये और विरोधियोंका पराभव करनेके लिये यज्ञादि कर्म करते हैं ॥ ३ ॥

१०४ अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः संचक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥
१०५ अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५ ॥
१०६ अच्छा नो मित्रमहो देव देवा- नग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्
द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ६ ॥

अर्थ— [१०४] (अग्निः) यह अग्नि (अप्सां ऋतीषहं सत्पतिं वीरं ददाति) अच्छे कर्म करनेवाले, शत्रुओंका पराजय करनेवाले, सज्जनोंका पालन करनेवाले वीर पुत्रको देता है। (यस्य संचक्षि शवसः) जिस पुत्रको देखकर उसके बलसे (भिया शत्रवः त्रसन्ति) डरकर शत्रु लोग कांपने लगते हैं ॥ ४ ॥

१ अग्निः अप्सां ऋतीषहं सत्पतिं वीरं ददाति— अग्नि कर्म करनेमें कुशल, शत्रुका नाश करनेवाला, सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला वीर शूर पुत्र देता है।

२ यस्य संचक्षि शवसः भिया शत्रवः त्रसन्ति— पुत्र ऐसा हो कि जिसके दर्शनसे उसके बलके कारण शत्रु भयभीत होकर पराभूत होते हैं।

[१०५] (सहावा देवः अग्निः विद्मना मर्तं) बलवान् दिव्य अग्नि ज्ञानसे मनुष्यको (निदः उरुष्यति) निन्दकोंसे रक्षा करता है और (हि यस्य रयिः वाजेषु अवृतः) उस मनुष्यका धन युद्धोंमें (अवृतः) सुरक्षित होता है ॥ ५ ॥

१ सहावा देवः अग्निः विद्मना मर्तं निदः उरुष्यति— बलवान् अग्निदेव अपने ज्ञानसे अपने भक्तकी निंदक शत्रुसे सुरक्षा करता है।

२ यस्य रयिः वाजेषु अवृतः— उसका धन युद्धोंमें सुरक्षित रहता है। शत्रु उस धनको उससे पृथक् नहीं कर सकता।

[१०६] हे (मित्रमहः) जिसकी मित्रता महत्त्वयुक्त और सहायक होती है, ऐसे (देव अग्ने) दिव्य गुणयुक्त अग्ने! (रोदस्योः देवान् अच्छ) द्यावापृथिवीमें रहनेवाले देवोंके पास (नः सुमतिं वोचः) हमारी की हुई स्तुतिका वर्णन कर। (दिवः नॄन् सुक्षितिं) दिव्य नेताओंको सुन्दर स्थान दे तथा (स्वस्तिं वीहि) कल्याणकारक अवस्थाको प्राप्त करो। (द्विषः अंहांसि दुरिता तरेम) हम शत्रुओंसे, पापोंसे और कष्टोंसे मुक्त हो जावें तथा (ता तरेम) उन कष्टोंको हम पूर्ण रीतिसे पार कर जाएं। हे (अग्ने) अग्ने! (तव अवसा तरेम) तेरे रक्षणसे हम सब कष्टोंसे बच जाएं ॥ ६ ॥

भावार्थ— पुत्र ऐसा होना चाहिये कि जो कर्म करनेमें प्रवीण हो, शत्रुओंका पराभव करनेवाला हो, सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला हो और जिसको देखनेसे ही उसके बलसे शत्रु भयभीत होकर कांपने लगते हों ॥ ४ ॥

बलवान् अग्निदेव अपने अद्भुत ज्ञानसे अपने भक्तका संरक्षण निन्दा करनेवाले शत्रुसे करता है। तथा उसका धन युद्धोंके समय भी सुरक्षित रहता है। कोई उस धनको उससे पृथक् कर नहीं सकता ॥ ५ ॥

मित्रका महत्त्व बढाना चाहिए। नेता अपने मित्रोंका महत्त्व बढावें। सब ज्ञानियोंके पास हमारी उत्तम बुद्धिसे प्रकट किया हुआ शुभ संदेश पहुंच जाए। दिव्य नेताओंको रहनेके लिए उत्तम स्थान मिले और उनका कल्याण हो। शत्रुओंसे, पापोंसे और कष्टोंसे सब प्रजाका बचाव हो। ऐसी व्यवस्था हो कि हम निस्सन्देह सुरक्षित रहें। उत्तम संरक्षणसे हम सुरक्षित हों ॥ ६ ॥

[१५]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजो, वीतहव्य आङ्गिरसो वा। देवता- अग्निः। छन्दः-जगती; ३, १५ शक्वरी; ६ अतिशक्वरी; १०-१४, १६, १९ त्रिष्टुप्, १७ अनुष्टुप्; १८ बृहती ।]

१०७ इ॒मम् ऊ॒ षु वो॒ अति॑थिमुष॒र्बुधं॒ विश्वा॑सां वि॒शां पति॑मृञ्जसे गि॒रा ।
वेतीद्दि॒वो ज॒नुषा॒ कच्चि॒दा शुचि॒र्ज्योक् चि॑दत्ति॒ गर्भो॒ यदच्यु॑तम् ॥ १ ॥

१०८ मि॒त्रं न यं सुधि॑तं॒ भृग॑वो द॒धुर्वन॒स्पता॒वीड्य॑मू॒र्ध्वशो॑चिषम् ।
स त्वं सुप्री॑तो वी॒तह॑व्ये अद्भुत॒ प्रश॑स्तिभिर्महयसे दि॒वेदि॑वे ॥ २ ॥

१०९ स त्वं दक्ष॑स्यावृ॒को वृ॒धो भू॑र॒र्यः पर॒स्यान्त॑रस्य॒ तरु॑षः ।
रा॒यः सू॑नो सहसो॒ मर्त्ये॒ष्वा छ॒र्दिर्य॑च्छ वी॒तह॑व्याय स॒प्रथो॒ भ॒रद्वा॑जाय स॒प्रथः॑ ॥ ३ ॥

[१५]

अर्थ— [१०७] हे ऋत्वि[illegible] (त्वः) आप (इमं ऊ गिरा सु ऋञ्जसे) इस अग्निको अपनी वाणी द्वारा प्रसन्न कोजिये। यह (अतिथिं उष[illegible] विश्वासां विशां पतिं) अतिथिकी तरह पूज्य, उषःकालमें प्रबुद्ध होनेवाला, सब प्रजाओंका पालन करनेवाल[illegible] [illegible]षा शुचिः कच्चित् दिवः आवेति) जन्मसे ही पवित्र है और वह द्युलोकसे यहाँ आता है। (गर्भः) द्याव[illegible] [illegible] बीचमें यह विद्यमान रहकर (यत् अच्युतं ज्योक् चित् अत्ति) जो हवि नियमपूर्वक दी जाती है वही सदा खाता रहता है ॥ १ ॥

१ अतिथिं उषर्बुधं विश्वासां विशां पतिं इमं गिरा ऋञ्जसे— इस अतिथिवत् पूज्य, उषःकालमें जागनेवाले, सब प्रजाजनोंके पालनकर्ताकी अपनी वाणीसे प्रशंसा करो। (जो भ्रमण करके उपदेश नहीं देता, जो सबेरे जल्दी उठता नहीं, सब प्रजाओंका जो योग्य पालन नहीं करता उसकी प्रशंसा कभी नहीं होती।)

[१०८] (वनस्पतौ सुधितं, ईड्यं ऊर्ध्वशोचिषं) अरणियोंमें अच्छी तरहसे रहनेवाले, स्तुत्य, जिसकी ज्वाला ऊपर जाती है ऐसे (यं मित्रं न भृगवः दधुः) जिस मित्ररूप अग्निको भृगु आदि ऋषियोंने स्थापित किया है। हे (अद्भुत) आश्चर्यकारक अग्ने ! (सः त्वं वीतहव्ये सुप्रीतः) वह तू हवि देनेवालेपर सुप्रसन्न हो। (दिवेदिवे प्रशस्तिभिः महयसे) जो प्रतिदिन उत्तम स्तोत्रों द्वारा तेरी महिमा गाता है ॥ २ ॥

[१०९] हे अग्ने ! (सः अवृकः त्वं दक्षस्य वृधः भूः) वह क्रूरता रहित तू दक्ष मनुष्यका संवर्धन करनेवाला हो। तथा (परस्य अन्तरस्य अर्यः तरुषः) दूरके और पासके शत्रुओंसे तारनेवाला हो। हे (सहसः सूनो) बलपुत्र अग्ने ! (सप्रथः मर्त्येषु वीतहव्याय भरद्वाजाय) सब प्रकारसे बलवान् तू सब मनुष्योंमें हवि देनेवाले (भरद्वाजके लिये) अन्न समर्पण करनेवालेके लिये (रायः छर्दिः आयच्छ) धन और रहने योग्य घर दे ॥ ३ ॥

१ सः अवृकः त्वं दक्षस्य वृधः भूः— मनुष्य स्वयं क्रूरता रहित होकर दक्ष मनुष्यको बढानेवाला हो। जो कर्ममें दक्ष होता है उसीकी वृद्धि और उन्नति हो सकती है।

भावार्थ— यह अग्नि अतिथिके समान पूज्य है, उषःकालमें प्रज्वलित होनेवाला है। सब प्रजाओंका पालन करनेवाला है। यह जन्मसे ही पवित्र है। द्यु और पृथिवीके बीचमें रहकर जो हवि इसे दी जाती है, वही सदा खाता है। ऐसे अग्निकी सदा उपासना करनी चाहिए ॥ १ ॥

अरणियोंमें रहनेवाले प्रशंसा योग्य ऊर्ध्वगतिवाले मित्रवत् पूज्य अग्निको भृगुऋषि स्थापना करते हैं। हे आश्चर्यकारक अग्ने ! तू वीतहव्य ऋषिपर प्रसन्न हो। वह ऋषि प्रतिदिन स्तोत्रोंसे तेरी महिमाका वर्णन करता है ॥ २ ॥

११० द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णर—मग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभि—र्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥

१११ पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥ ५ ॥

११२ अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं
देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥ ६ ॥

अर्थ—[११०] तुम (सुवृक्तिभिः हव्यवाहं देवं) उत्तम स्तुतिद्वारा, हव्यको ले जानेवाले, दिव्य गुणयुक्त (द्युतानं वः अतिथिं स्वर्णरं) दीप्यमान, तुम सबके लिये अतिथिके समान पूज्य स्वर्गको ले जानेवाले (मनुषः होतारं स्वध्वरं विप्रं न द्युक्षवचसं अरतिं) मनुष्योंके यज्ञमें देवोंको बुलानेवाले, उत्तम हिंसारहित यज्ञ करनेवाले विद्वान्की तरह कान्तिके निवासभूत (अग्निं ऋञ्जसे) अग्निको–अग्रणीको–प्रसन्न कर ॥ ४ ॥

१११] (यः पावकया चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे) जो अग्नि पवित्र ज्ञान देनेवाली कान्तिसे भूमिपर प्रकाशता है । (उषसः न भानुना) जैसी उषा अपने प्रकाशसे प्रकाशित होती है और (एतशस्य रणे यामन् तूर्वन् न) एतशके संग्राममें शत्रुका नाश करनेके समय (यः नु आघृणे) अग्नि शीघ्र प्रदीप्त हुआ था । (ततृषाणः अजरः) वह भूख और तृषासे पीडित जरारहित अग्नि है । उस अग्निको प्रसन्न करो ॥ ५ ॥

१ पावकया चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे— पवित्र ज्ञान बढानेवाली कान्तिसे पृथ्वीपर प्रकाशित होते रहो ।

[११२] हे स्तोताओ ! (वः प्रियं प्रियं वः अतिथिं गृणीषणि) तुम अत्यन्त प्रिय अतिथिके समान पूज्य, स्तुत्य (अग्निं अग्निं समिधा दुवस्यत) अग्निकी समिधासे सेवा करो । (वः अमृतं गीर्भिः विवासत) वैसे ही तुम मरणरहित अग्निकी वाणी द्वारा सेवा करो । (हि देवेषु देवः वार्यं वनते) क्योंकि देवोंके बीच अग्निदेव ही वरणीय धनको अपने पास रखता है । (हि देवेषु देवः नः दुवः वनते) इस कारण देवोंके बीच अग्निदेव ही–अग्रणी ही–हमारी सेवाको ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि स्वयं क्रूरता रहित होकर चतुर मनुष्यका संरक्षण करनेवाला है तथा जो भरद्वाज अर्थात् अन्नके द्वारा दूसरोंका पोषण करता है अथवा जो दूसरोंको बलवान् बनाकर उनकी रक्षा करता है । उसी तरह मनुष्य स्वयं भी क्रूरता रहित होकर दूसरे मनुष्योंकी रक्षा करे, उनका पोषण करे तथा दूसरोंको बलवान् बनाकर उनकी रक्षा करे ॥ ३ ॥

हे मनुष्यो ! तुम उत्तम स्तुति द्वारा हव्यको ले जानेवाले, दिव्य गुणयुक्त, दीप्यमान, अतिथिके समान पूज्य, स्वर्गको ले जानेवाले, मनुष्योंके यज्ञमें देवोंको बुलाकर लानेवाले, विद्वान्की तरह तेजस्वी अग्रणीको प्रसन्न करो ॥ ४ ॥

जैसी उषा अपने प्रकाशसे प्रकाशती है, जैसे शत्रुसे युद्ध करनेके समय शत्रुपर विनाशक प्रहार करनेवाला वीर तेजस्वी दीखता है, वैसेही यह अग्नि पवित्र ज्ञान देनेवाले तेजसे इस पृथ्वीपर प्रकाशता है ॥ ५ ॥

हे मनुष्यो ! तुम अत्यन्त प्रिय, अतिथिके समान पूज्य और स्तुतिके योग्य अग्निकी समिधासे सेवा करो । यह अग्नि मरणरहित अर्थात् अमर्त्य है । तुम इसी अग्निकी सेवा करके धनैश्वर्य प्राप्त करो, क्योंकि यही वरणीय धनको अपने पास रखता है ॥ ६ ॥

११३ समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ ७ ॥

११४ त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥ ८ ॥

११५ विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत् ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥ ९ ॥

अर्थ— [११३] (समिद्धं अग्निं समिधा गिरा गृणे) अच्छी प्रकारसे प्रदीप्त तेजस्वी अग्निकी स्तोत्रों द्वारा मैं स्तुति करता हूँ । (शुचिं पावकं ध्रुवं) शुद्ध सबको पवित्र करनेवाले निश्चल अग्निको (अध्वरे) यज्ञमें मैं स्थापित करता हूं । (विप्रं होतारं पुरुवारं अद्रुहं) मेधावी होता बहुतों द्वारा प्रशंसनीय, द्रोह न करनेवाले (कविं जातवेदसं सुम्नैः ईमहे) ज्ञानी ज्ञानप्रसारक अग्निकी उत्तम स्तोत्रों द्वारा हम प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥

[११४] हे (अग्ने) अग्नि ! (देवासः च मर्तासः च) देवता और मनुष्य (त्वां दूतं दधिरे) तुझे दूत बनाते हैं । (अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं पायुं ईड्यं) मरणरहित, युगयुगमें हव्य वहन करनेवाले, पालन करनेवाले, स्तवनीय (जागृविं विभुं विश्पतिं) जाग्रत सर्वत्र व्याप्त प्रजाओंका पालन करनेवाले (त्वां) तुझ अग्निकी (नमसा) नमस्कार द्वारा (निषेदिरे) सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

[११५] हे (अग्ने) अग्ने ! (उभयान् विभूषन् अनुव्रता) देव और मनुष्योंको विभूषित करके यज्ञादि कर्मोंमें (देवानां दूतः रजसी समीयसे) देवोंका दूत होकर तू द्यावापृथिवीमें घूमता है । (यत् ते धीतिं सुमतिं आवृणीमहे) हम तेरे उद्देश्यसे कर्म और स्तुति करते हैं । (अध त्रिवरूथः नः शिवः भवस्व) और तीनों संरक्षणोंसे युक्त तू हमारे लिए सुखकर हो ॥ ९ ॥

भावार्थ— प्रदीप्त अग्निकी समिधाके साथ स्तोत्रद्वारा मैं स्तुति करता हूँ । अग्नि स्वयं शुद्ध है और दूसरोंको पवित्र करता है तथा वह स्थिर है । वह ज्ञानी, देवोंको बुलानेवाला, अनेकोंद्वारा प्रशंसित किसीका द्रोह न करनेवाला ज्ञानी ज्ञानप्रसारक है उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ ॥ ७ ॥

देवता और मनुष्य इस अग्निको अपना दूत बनाते हैं । यह अग्नि दूतका काम करता है । यह मनुष्योंके द्वारा दी गई हविको देवोंतक पहुंचाता है और उन्हें यज्ञोंमें बुलाकर लाता है । यह अग्नि अमृत है, यह कभी मरता या बूढा नहीं होता, यह प्रजाओंका पालन करनेवाला है । ऐसे इस अग्निको सब नमस्कार करते हैं । जो अमर, रक्षक, जाग्रत, वैभववान्, और प्रजाका पालक है । ऐसे जाग्रत, रक्षक और प्रजापालककी प्रशंसा करनी ही चाहिए । पर जो रक्षा न करनेवाला, आलसी, सुस्त और प्रजाके नाशका हेतु बने, उसका सत्कार कोई न करे ॥ ८ ॥

यह अग्नि देव और मनुष्योंको विभूषित करके यज्ञादि कर्ममें देवोंका दूत होकर द्युलोक और पृथ्वीलोकमें सर्वत्र घूमता है । यह अग्नि तीनों तरहके संरक्षणसे युक्त होकर हमारे लिए सुखकर हो । प्रजामें ज्ञानी-अज्ञानी, सबल-निर्बल, शूर-भीरु ऐसे दो प्रकारके लोग होते हैं । इन सभी लोगोंको सुख प्राप्त होना चाहिए । अपने हर श्रेष्ठ कर्ममें मनुष्य दिव्य गुणवाले ज्ञानियोंको बुलाये । इस प्रकार वह शरीर, मन और बुद्धिके तीनों तरहके संरक्षणोंसे युक्त हो ॥ ९ ॥

×

११६ तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्च॒मविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥ १० ॥

११७ तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित् पृणक्षि शवसोत राया ॥ ११ ॥

११८ त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ १२ ॥

अर्थ— [११६] (अविद्वांसः विदुष्टरं तं) अल्प ज्ञानवाले लोग उस सर्वज्ञ (सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चं) शोभनांग सुन्दर दिखनेवाले गमनशील (सपेम) अग्निकी–अग्रणीकी– परिचर्या करते हैं । (सः यक्षत्) वह अग्नि यजन करे । (विश्वा वयुनानि विद्वान्) वह संपूर्ण कर्मोंको जाननेवाला (अग्निः अमृतेषु हव्यं प्रवोचत्) अग्नि मरणरहित देवोंके बीच हमारे हव्य पदार्थोंके विषयमें वर्णन करके कहे ॥ १० ॥

१ अविद्वांसः विदुस्-तरं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चं सपेम— हम अज्ञानी हैं इसलिये हम अत्यन्त ज्ञानी, उत्तम शरीरवाले सुन्दर और प्रगतिशील नेताकी सेवा करते हैं । वह हमें ज्ञान देवें और ज्ञानी बनावें ।

२ सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चं— सुन्दर आदर्श प्रगति करनेवाला नेता पूजनीय होता है ।

३ विश्वा वयुनानि विद्वान्— मनुष्य सब कर्मोंका ज्ञान प्राप्त करे ।

[११७] हे (शूर अग्ने) शौर्यवान् अग्ने ! (यः) जो (कवये ते धीतिं आनट्) बुद्धिमान् पुरुष तेरे लिये कर्म करता है । (तं पासि) उस पुरुषकी तू रक्षा करता है । (उत तं पिपर्षि) और उसकी इच्छाओंको पूर्ण करता है । (यज्ञस्य वा निशितिं वा) जो यज्ञको वा, संस्कारको (उदितिं वा) तथा उन्नतिको करता है । (तं इत् शवसा उत राया पृणक्षि) उसको ही बलसे और धनसे तू पूर्ण करता है ॥ ११ ॥

१ कवये धीतिं आनट् तं पासि, पिपर्षि— ज्ञानीकी सेवाके लिये जो कर्म करता है, उसकी सुरक्षा वह ज्ञानी करता है और उसकी इच्छाएं वह पूर्ण करता है ।

२ निशितिं उदितिं आनट् तं शवसा राया पृणक्षि— जो तेजस्विता और उदयके लिये कर्म करता है वह बल और धनसे भरपूर होता है ।

[११८] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वनुष्यतः नि) तू हिंसक शत्रुसे हमारी सुरक्षा कर । हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (त्वं उ नः अवद्यात्) तू ही हमको पापसे बचा (त्वा ध्वस्मन्वत् पाथः सं अभ्येतु) तुझे दोषरहित अन्न प्राप्त हो । (स्पृहयाय्यः सहस्री रयिः) स्पृहा करने योग्य सहस्र प्रकारका धन हमें प्राप्त हो ॥ १२ ॥

भावार्थ — अल्प ज्ञानवाले मनुष्य इस सर्वज्ञ अग्निकी सेवा करते हैं । वे अग्निका यजन करते हैं । तब वह संपूर्ण कर्मोंको करनेवाला अग्नि मरणधर्मसे रहित देवोंमें हव्य पदार्थकी प्रशंसा करे । अज्ञानी मनुष्य अपनेसे श्रेष्ठ ज्ञानीकी सेवा करके अपने अज्ञानको दूर करे और स्वयं भी ज्ञानी बने तथा सुन्दर और आदर्श प्रगति करके स्वयं भी अग्नि या अग्रणी बने । सब कर्मोंका ज्ञान प्राप्त करे ॥ १० ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष इस अग्निकी सेवा करता है, उस पुरुषकी यह अग्नि रक्षा करता है और उसकी सब इच्छाओंको पूर्ण करता है । जो यज्ञ आदिके द्वारा स्वयंकी उन्नति करता है, उसे यह अग्नि धन और बलसे परिपूर्ण करता है ॥ ११ ॥

हे अग्रणी ! तू हिंसक शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर, तू हमें पापसे बचा । तुझे हर प्रकारके दोषरहित अन्न प्राप्त हों और तुझे अन्न देनेवाला मनुष्य अनेक तरहके धन प्राप्त करे ॥ १२ ॥

११९ अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ १३ ॥
१२० अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद् भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥ १४ ॥
१२१ अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन् वाजसाताऽग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ १५ ॥

अर्थ— [११९] (होता राजा सः अग्निः गृहपतिः) देवोंको बुलानेवाला राजा वा प्रकाशमान् वह अग्नि घरोंका पति है । तथा (जातवेदाः विश्वा जनिम वेद) वह ज्ञाता संपूर्ण प्राणिमात्रोंको जानता है । (यः देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः) जो देवों और मनुष्योंमें अतिशय यजनीय अर्थात् पूज्य है । (ऋतावा सः प्र यजतां) सत्यपालक वह अग्नि देवोंको यज्ञसे सन्तुष्ट करे ॥ १३ ॥

१ गृहपतिः जातवेदाः राजा विश्वा जनिमा वेद— गृहस्थी ज्ञानी और राजा सब प्राणियोंको जानता है । गृहस्थी तथा राजा ज्ञानी हो और सबका ज्ञान प्राप्त करे ।

२ देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः— देवों और मानवोंका वह सत्कार करे ।

३ सः ऋतावा प्र यजतां— वह सत्यपालक यज्ञ करे ।

[१२०] हे (अध्वरस्य होतः पावकशोचे अग्ने) यज्ञके होता, पवित्र कान्तिवाले, अग्नि ! (अद्य विशः यत् वेः) इस समय मनुष्यका जो कर्तव्य है उसको वर्णन करनेकी इच्छा कर । (हि त्वं यज्वा ऋता यजासि) क्योंकि तू यज्ञ करनेवाला है अतः यज्ञमें देवोंका यजन कर । (महिना यत् वि भूः) अपने माहात्म्यसे तू व्याप्त होता है । इसलिये हे (यविष्ठ) युवान् अग्नि ! (ते अद्य या हव्या वह) तेरे पास आज जो हव्य देते हैं उनका वहन कर ॥ १४ ॥

१ अध्वरस्य होतः पावकशोचे— हिंसारहित कर्मका संपादन करनेवाला पवित्र तेजस्वी हो ।

२ विशः यत् अद्य वेः— प्रजा जो चाहती है वही (राजा) करे । प्रजा जो शुभ यज्ञ कर्म करना चाहती है वही राजा करे ।

३ ऋता यजासि, महिना विभूः— सत्यसे यज्ञ करे और अपनी महिमासे सर्वत्र प्रभावी बने ।

[१२१] हे अग्ने ! (सुधितानि प्रयांसि अभिख्यः) यज्ञस्थानमें अच्छी तरहसे रखे हुए अन्नादि हव्योंको देख । (रोदसी यजध्यै नि दधीत) द्यावापृथिवीमें रहनेवाले देवोंको देनेके लिये ये रखा है । हे (मघवन् अग्ने) ऐश्वर्यवान् अग्नि ! (वाजसातौ नः अव) संग्राममें हमारी रक्षा कर (विश्वानि दुरितानि तरेम) संपूर्ण दुःखोंसे हम पार हो जाँय ॥ १५ ॥

भावार्थ— देवोंको बुलाकर लानेवाला तथा तेजस्वी वह अग्नि घरोंका स्वामी है और वह सम्पूर्ण प्राणियोंको और उनके कर्मोंको जानता है । यह अग्निदेव देवों और मनुष्योंमें अत्यधिक पूज्य है । ऐसा सत्यपालक यह अग्निदेवोंको यज्ञसे सन्तुष्ट करे । गृहपति अथवा घरका स्वामी ज्ञानी हो, राजा भी ज्ञानी हो । अपनी सब प्रजाओंके सुख दुःखसे वह परिचित रहे और देवों अर्थात् ज्ञानियोंकी रक्षाके लिए वह अपने राष्ट्रमें संगठन करे ॥ १३ ॥

हे यज्ञके होता तथा पवित्र कान्तिवाले अग्ने ! जो मनुष्य उत्तम कर्म करता है, उसकी तू प्रशंसा कर ! तू अपने ही माहात्म्यसे व्याप्त होता है । अतः हे तरुण अग्ने ! तुझे जो हवि देते हैं, उसे तू स्वीकार कर । मनुष्य भी पवित्र और तेजस्वी होकर हिंसा रहित कर्म करे । अपनी प्रजाओंका हित करे । सत्यपालनपूर्वक शुभ कर्म करे और अपने महत्वसे चारों ओर प्रकाशित होता रहे ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! यज्ञस्थानमें रखे हुए हव्योंको अच्छी तरह देख ! ये हवियां द्यु और पृथ्वीलोकमें रहनेवाले देवोंको देनेके लिए रखा हुआ है । हे अग्ने ! संग्राममें हमारी रक्षा कर, ताकि हम संपूर्ण दुःखोंसे पार हो जायं ॥ १५ ॥

१२२ अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवै- रूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६ ॥

१२३ इममु त्यमथर्ववद् अग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्- अमूरं श्याव्याभ्यः ॥ १७ ॥

१२४ जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥ १८ ॥

१२५ वयमु त्वा गृहपते जनाना- मग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥ १९ ॥

अर्थ— [१२२] हे (स्वनीक अग्ने) सुन्दर ज्वालावाले अग्ने ! (विश्वेभिः देवैः ऊर्णावन्तं योनिं) सब देवोंके साथ उनका आसन बिछाये वेदी स्थानपर आकर (प्रथमः सीद) प्रथम बैठ। (कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे) घरमें रहनेवाले और घृतसंयुक्त हवि देनेवाले (यजमानाय यज्ञं साधु नय) यजमानके यज्ञको ठीक प्रकारसे देवोंतक पहुंचा ॥ १६ ॥

[१२३] (वेधसः इमं त्यं अग्निं अथर्ववत् मन्थन्ति) कर्म करनेवाले ज्ञानी मनुष्य उस अग्निका अथर्वाके समान मन्थन करते हैं। (अंकूयन्तं अमूरं यं श्याव्याभ्यः आनयन्) इधर उधर जानेवाले गतिमान् इस ज्ञानी अग्निको अन्धकारसे यहां लाया गया है ॥ १७ ॥

१ श्याव्याभ्यः अंकूयन्तं अमूरं आनयन्— अन्धकारसे प्रगतिशील ज्ञानीको लाते हैं। ज्ञानी किसी स्थानपर रहता हो तो उसको लाकर शुभ कार्यमें लगाना चाहिये।

[१२४] हे अग्ने ! (सर्वताता जनिष्व) सबका विस्तार करनेवाले यज्ञमें तू उत्पन्न हो। (देववीतये स्वस्तये अमृतान् ऋतावृधः) देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके कल्याणके लिये मरणरहित यज्ञके वर्धक देवोंको (वक्षि) लाओ। (देवेषु यज्ञं पिस्पृशः) और देवोंको हमारे यज्ञका समर्पण करो ॥ १८ ॥

[१२५] हे (गृहपते अग्ने) गृहपते अग्ने ! (वयं उ त्वा समिधा बृहन्तं अकर्म) हम तुझे समिधा द्वारा बढाते हैं। इसलिये (नः गार्हपत्यानि अस्थूरि) हमारे घरके पास अनेक अश्ववाले रथ हों और हम (तिग्मेन तेजसा नः सं शिशाधि) बडे तेजसे युक्त हों ऐसा कर ॥ १९ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू सुन्दर ज्वालाओंवाला है अतः सब देवोंके साथ आकर इस यज्ञवेदीमें बैठ, और घरमें रहनेवाले तथा घृतसे युक्त हवि देनेवाले यजमानको हरतरहसे समृद्ध कर ॥ १६ ॥

ज्ञानी मन्थन करके अग्निको सिद्ध करते हैं। प्रथम वह इधर उधर जाता है, पर उस ज्ञानीको अन्धकारके स्थानसे लाकर यहां यज्ञस्थानमें रखते हैं ॥ १७ ॥

सब सत्कर्म करनेवालोंकी शक्ति जिससे बढे ऐसे शुभ कर्म करने चाहिये। दैवी शक्तियोंकी प्राप्ति करनी चाहिये। सबका कल्याण होना चाहिये। इसलिये सत्यमार्गको बढानेवाले अमर शक्तिवाले विभूतियोंसे अपना संबंध जोडना चाहिये ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! हम तुझे समिधा द्वारा बढाते हैं, इसलिए हमारे पास अनेक अश्वोंवाले रथ हों और हम भी उत्तम तेजसे युक्त हों। हमारे पास अनेक घोडोंवाले रथ हों। एक घोडेकी गाडी रखना दरिद्रताका चिह्न है और अनेक घोडोंवाला रथ धनवान् होनेका चिह्न है। जो शत्रुका पराभव करता है, वह अग्र तेज है, उसी तरहके हम तेजस्वी हों ॥ १९ ॥

[१६]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री; १, ६ वर्धमाना; २७, ४७-४८ अनुष्टुप्; ४६ त्रिष्टुप् ।]

१२६ त्वम॑ग्ने य॒ज्ञानां॒ होता॒ विश्वे॑षां हि॒तः । दे॒वेभि॒र्मानु॑षे॒ जने॑ ॥ १ ॥

१२७ स नो॑ म॒न्द्राभि॑रध्व॒रे जि॒ह्वाभि॑र्यजा म॒हः । आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ २ ॥

१२८ वेत्था॒ हि वे॑धो॒ अध्व॑नः प॒थश्च॑ दे॒वाञ्ज॑सा । अग्ने॑ य॒ज्ञेषु॑ सुक्रतो ॥ ३ ॥

१२९ त्वामी॑ळे॒ अध॑ द्वि॒ता भ॑र॒तो वा॒जिभिः॑ शु॒नम् । ई॒जे य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिय॑म् ॥ ४ ॥

[१६]

अर्थ— [१२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्वी देव ! (त्वं मानुषे जने) तू सब मनुष्य लोगोंके बीच (विश्वेषां यज्ञानां होता) सब यज्ञोंको करनेवाला है अतः तुझे (देवेभिः हितः) विबुधोंने यहां स्थापित किया है ॥ १ ॥

१ मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता हितः - मानवी समाजमें सब यज्ञोंको कुशलतासे करनेवालेको आदरपूर्वक सन्मानके स्थानमें रखना चाहिये ।

२ विश्वेषां यज्ञानां होता मानुषे जने हितः— सब यज्ञोंको कुशलतासे करनेवाला मानव समाजमें हितकारी होता है ।

[१२७] हे अग्ने ! (सः नः अध्वरे) वह तू हमारे हिंसारहित यज्ञ कर्ममें (मन्द्राभिः जिह्वाभिः) आनन्द देनेवाली वाणियोंके साथ (महः देवान्) महान् तेजस्वी विबुधोंको (आ वक्षि) बुला ला और (यक्षि च यज) उनके लिये यजन कर और हवन कर ॥ २ ॥

[१२८] हे (वेधः सुक्रतो) निर्माण करनेवाले और अच्छे कर्म करनेवाले (देव अग्ने) दिव्य ज्ञानी तेजस्वी देव ! तू (यज्ञेषु) यज्ञोंमें (अध्वनः पथः च) अच्छे मार्गको और बुरे मार्गोंको (अञ्जसा) अतिशीघ्र (वेत्थ हि) जानता है ॥ ३ ॥

१ वेधाः सुक्रतुः देवः— निर्माण करनेके कार्यमें विबुध कुशल होते हैं ।

२ अध्वनः पथः च अञ्जसा वेत्थ— अच्छे और बुरे मार्गोंको सत्वर जानना चाहिये । जो यह जानता है वह दिव्य ज्ञानी होता है ।

[१२९] हे अग्ने ! तेजस्वी देव ! (भरतः) भरतने (वाजिभिः) बलवान् पुरुषोंके साथ (द्विता शुनं) दोनों प्रकारके सुखोंके देनेवाले (त्वां) तेरी (ईळे) स्तुति की और (यज्ञियं) यजनीय देवका, तुम्हारा (यज्ञेषु ईजे) यज्ञोंमें यजन किया ॥ ४ ॥

१ भरतः वाजिभिः द्विता शुनं त्वां ईळे— भरणपोषण करनेवाला पुरुष अन्य बलवान् मनुष्योंके साथ दोनों प्रकारके सुख देनेवाले तुझ विबुधके गुण गाता है

भावार्थ— सब यज्ञोंको कुशलताके साथ करनेवाला विद्वान् नेता मनुष्यसमाजमें हितकारी होनेके कारण दिव्य विबुधोंद्वारा सन्मानके स्थानमें रखने योग्य है ॥ १ ॥

मनुष्योंको हिंसा तथा कुटिलतारहित कर्म करने चाहिये । इनमें दिव्य विबुधोंको बुलाना चाहिये और उनका सन्मान करना चाहिये ॥ २ ॥

मनुष्य सत्वर अच्छे और बुरे मार्गोंको जाने जो कर्म वह करे वह उत्तम कुशलतासे करे ॥ ३ ॥

भरणपोषण करनेवाला पुरुष अनेक धनवान् और बलवान् पुरुषोंके साथ मिलकर भौतिक और अभौतिक सुख देनेवाले नेताकी प्रशंसा करे और सत्कारके योग्य पुरुषोंका सत्कार करे ॥ ४ ॥

१३० त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥ ५ ॥
१३१ त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन् विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥
१३२ त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥
१३३ तव प्र यक्षि संदृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥
१३४ त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१३०] हे अग्नि ! तेजस्वी देव ! जिसप्रकार (त्वं) तूमने (इमा) ये (पुरु) बहुतसे (वार्या) स्वीकारणीय धन (सुन्वते दिवोदासाय) सोमयाजी दिवोदासको दिये, वैसे (दाशुषे भरद्वाजाय) दाता भरद्वाजको दे ॥ ५ ॥

[१३१] (अमर्त्यः दूतः) मरणधर्मरहित दूत होकर (त्वं) तू (दैव्यं जनं) दिव्यजनोंको (विप्रस्य) बुद्धिमान्की (सुष्टुतिं) उत्तम स्तुतिको (शृण्वन्) सुननेके लिये (आ–वह) बुला ला ॥ ६ ॥

[१३२] हे (अग्ने) अग्ने ! हे अग्रणे ! (देवं त्वां) तुझ तेजस्वीकी (स्वाध्यः मर्तासः) स्वाध्यायशील मनुष्य (देववीतये) देवोंके लिये किये जानेवाले यज्ञमें (ईळते) स्तुति करते हैं तेरा गुण वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

[१३३] हे अग्ने ! (तव संदृशं प्र यक्षि) तेरे सुन्दर तेजका मैं सत्कार करता हूं । (उत) और (विश्वे सुदानवः कामिनः) सब शोभन दान करनेवाले तथा तेरे अनुग्रहकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (क्रतुं जुषन्त) तेरे अच्छे कर्मकी सेवा करते हैं ॥ ८ ॥

१ संदृशं प्रयक्षि— तेजस्विताका सत्कार कर ।
२ विश्वे सुदानवः कामिनः क्रतुं जुषन्तः— सब दानी सुखकी इच्छा करते हुए शुभ कर्म करते हैं । दान देनेवाले सुखकी इच्छासे शुभ कर्म करते हैं ।

[१३४] हे (अग्ने) अग्नि ! तेजस्वी देव ! (त्वं होता मनुर्हितः) तू होता रूपसे मनुष्योंके लिये हितकारी है । (आसा वह्निः विदुष्टरः) अपने मुखद्वारा शब्दोंका हवन करनेके कारण तू अतिशय विद्वान् है ॥ ९ ॥

१ होता मनुर्हितः— हवन करनेवाला मनुष्योंका हितकारी होता है । यज्ञसे रोग दूर होते हैं और निरोगतासे मनुष्योंका हित होता है ।
२ आसा वह्निः विदुष्टरः— मुखसे शब्दोंका–मन्त्रोंका हवन करनेवाला अधिक ज्ञानी होता है ।
३ दिवः विशः यक्षि— दिव्य प्रजाका सत्कार करना चाहिए ।

भावार्थ— हे अग्ने ! जिस प्रकार तूने प्रकाशके मार्गको बतानेवाले दानीको धनैश्वर्य प्रदान किया, उसी तरह तू अन्नका दान करनेवाले, अन्न बढानेवाले मनुष्यको धनैश्वर्य दे ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तू अमर दूत है । अतः तू दिव्यजनोंको हमारे यहां बुला ला, ताकि वे हमारी उत्तम स्तुति सुन सकें ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू तेजस्वी है, इसलिए स्वाध्यायशील मनुष्य देवोंके लिए किए जानेवाले यज्ञमें स्तुति करते हैं और तेरा गुण वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! मैं तेरे सुन्दर तेजका सत्कार करता हूं । उसी प्रकार उत्तम दान देनेवाले सभी मनुष्य तथा तेरी कृपा की प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य तेरे अच्छे कर्मका अनुसरण करते हैं ॥ ८ ॥

हवन करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है । अपने मुखमें मंत्रोंका धारण करनेवाले विद्वान् होते हैं । ऐसी दिव्य प्रजाजनोंका सदा सत्कार करना उचित है ॥ ९ ॥

१३५ अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥

१३६ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठय ॥ ११ ॥

१३७ स नः पृथु श्रवाय्य—मच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

१३८ त्वामग्ने पुष्करादध्य—थर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ १३ ॥

१३९ तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरंदरम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [१३५] हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्वी देव ! तू (वीतये) हविर्भागका ग्रहण करनेके लिये और (हव्यदातये) हविर्भाग देनेके लिये (आ याहि) आ और (गृणानः बर्हिषि होता) प्रशंसित होकर तू आसनपर होता बनकर (नि सत्सि) बैठ ॥ १० ॥

[१३६] हे (अंगिरः) ज्वालारूप तेजोमय देव ! (तं त्वा) तुझे (समिद्भिः च घृतेन) समिधा द्वारा और घीसे (वर्धयामसि) हम बढाते हैं, प्रदीप्त करते हैं । इसलिये, हे (यविष्ठय) अतिशय तरुण ! तू (बृहत् शोच) अत्यन्त प्रदीप्त हो ॥ ११ ॥

[१३७] हे (देव) देव ! (सः) वह तू (पृथु श्रवाय्यं) विशेष यशस्वी और (बृहत् सुवीर्यं) बडे उत्कृष्ट बलसे युक्त धन (नः) हमें (अच्छ विवाससि) दे ॥ १२ ॥

१ पृथु श्रवाय्यं बृहत् सुवीर्यं नः अच्छ विवाससि— बडा यशस्वी और विशेष वीर्य-पौरुष-बढाने-वाला धन हमें मिले ।

[१३८] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वां) तुझे (वाघतः विश्वस्य मूर्ध्नः) आधार देनेवाले सब विश्वके मुख्य स्थान रूप (पुष्करात् अधि) पुष्करपत्रके ऊपर (अथर्वा निरमन्थत) अथर्वाने मन्थन करके उत्पन्न किया था ॥ १३ ॥

२ वाघतः विश्वस्य मूर्ध्नः पुष्करात् अधि अथर्वा त्वां निरमन्थत— आधाररूप सब विश्वके शिरस्थानमें रहनेवाले कमलसे अथर्वाने मन्थन करके अग्निको निकाला है ।

[१३९] हे अग्ने ! (वृत्रहणं) दुष्ट शत्रुओंका नाश करनेवाले, और (पुरंदरं) शत्रुके नगरोंका नाश करनेवाले, (तं उ) तुझे (अथर्वणः पुत्रः दध्यङ् ऋषिः) अथर्वाके पुत्र दध्यङ् ऋषिने प्रथम (ईधे) प्रदीप्त किया ॥ १४ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हम यज्ञकी तैयारी करके तुझे हविर्भाग ग्रहण करनेके लिए और अन्य देवों तक हविर्भाग पहुंचानेके लिए आ और हमारे द्वारा स्तुत होकर तू हमारी वेदीमें प्रतिष्ठित हो ॥ १० ॥

हे ज्वालाओंके कारण तेजस्वी देव ! हम तुझे समिधा और घीसे बढाते हैं, प्रदीप्त करते हैं, अतः हे अत्यन्त तरुण अग्ने ! तू अत्यन्त प्रदीप्त हो ॥ ११ ॥

हे देव ! वह तू विशेष यश प्रदान करनेवाले और उत्कृष्ट बल प्रदान करनेवाले धन हमें दे । धन उत्तम यश और उत्तम बल बढानेवाला हो ॥ १२ ॥

सिरमें ' सहस्रार कमल ' है । यह सब शरीरका आधार है । यहांसे मज्जातन्तु सब शरीरमें जाकर सब कार्य करते हैं । इस सिरस्थानीय कमलसे आत्मारूप अग्निका प्रकटीकरण हुआ है ॥ १३ ॥

यह अग्नि दुष्ट शत्रुओंका विनाश करनेवाला और शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाला है । इस अग्निको सर्वप्रथम अथर्वाके पुत्र दध्यङ् ऋषिने प्रदीप्त किया ॥ १४ ॥

१४० तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनंजयं रणेरणे ॥ १५ ॥
१४१ एह्यू षु ब्रवाणि ते ऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥
१४२ यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥
१४३ नहि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥
१४४ आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥ १९ ॥

अर्थ— [१४०] हे अग्नि ! (पाथ्यो वृषा) मार्गमें हितकारी तथा बलवान् ज्ञानी (दस्युहन्तमं) दुष्टोंका नाश करनेवाले और (रणेरणे धनंजयं) युद्धमें धन जीतनेवाले (तं उ त्वा) तुझे ही (समीधे) प्रज्वलित करता है ॥ १५ ॥

[१४१] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते गिरः इत्था सु ब्रवाणि) तेरे लिये यह स्तुति करता हूं । वह (एहि) यहां आ और सुन । तथा (उ इतराः) दूसरी स्तुति भी सुन, और (एभिः इन्दुभिः वर्धासे) इन सोमरसोंसे वर्धित हो ॥ १६ ॥

[१४२] हे अग्ने ! (ते मनः) तेरा मन (यत्र क्व च) जहां कहां रहता है, (तत्र उत्तरं दक्षं दधसे) वहां उत्तरोत्तर अधिक बल धारण करता है । और वहां (सदः कृणवसे) अपना स्थान भी बना लेता है ॥ १७ ॥

[१४३] हे अग्ने ! (ते पूर्तं अक्षि-पत् नहि भुवत्) तेरा प्रदीप्त तेज नेत्रका विनाशक नहीं होता है । हे (नेमानां वसो) कतिपय मनुष्योंको धन देनेवाले ! (अथ दुवः वनवसे) अब हमारी सेवा ग्रहण कर ॥ १८ ॥

१ ते पूर्तं अक्षि-पत् नहि भुवत्— अग्निका प्रज्वलित तेज आंखका विनाशक नहीं होता है ।

[१४४] (भारतः) भारतोंका हितकर्ता (वृत्रहा) वृत्रादि असुरोंका नाश करनेवाला, (पुरुचेतनः) अत्यन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ, (दिवोदासस्य सत्पतिः) दिवोदासके सज्जनोंका पालन करनेवाला (अग्निः) अग्नि (आ अगामि) आया है ॥ १९ ॥

१ पुरुचेतनः सत्पतिः— विशेष ज्ञानी ही उत्तम पालक होता है ।

भावार्थ— यह अग्नि मार्गमें सबका हित करनेवाला तथा बलवान्, ज्ञानी मनुष्य दुष्टोंका नाश करनेवाले और युद्धमें धन जीतनेवाले तुझे प्रज्वलित करता है ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! तेरे लिये यह स्तुति करता हूं । उसे यहां आकर तू सुन । दूसरी स्तुतियां भी सुन और इन सोमरसोंको पीकर तू बढ ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! तेरा मन जहां कहां भी रहता है, वहां वह उत्तरोत्तर अधिक बल भी धारण करता है और अपना स्थान भी बना लेता है । इसीप्रकार जिस मनुष्यका मन बलवान् होता है, वह कहीं पर भी जाए, वहीं अपना स्थान बना लेता है ॥ १७ ॥

हे अग्ने ! तेरी ज्वालाओंका तेज आंखोंकी ज्योतिका विनाशक नहीं होता । अग्निकी ज्वालाओंके तेजसे नेत्रोंकी ज्योति बढती है । जो सदा अग्निके सामने रहते हैं, उनकी नेत्र ज्योति बडी तीक्ष्ण होती है ॥ १८ ॥

भारतोंका पालक, वृत्रादि असुरोंका नाश करनेवाला, अत्यन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ सन्मार्गसे चलनेवाले सज्जनोंका पालक अग्नि है । अग्रणी प्रजाओंका भरणपोषण करके उनका पालन करनेवाला हो, कुटिल बुद्धिवाले शत्रुओंका नाश करनेवाला हो । ऐसा अग्रणी जहां भी जाता है, वहीं उसका सत्कार होता है ॥ १९ ॥

१४५ स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना । वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० ॥
१४६ स प्रत्नवन्नवीयसा ऽग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत् ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥
१४७ प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया । अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥
१४८ स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः । दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥
१४९ ता राजाना शुचिव्रता ऽऽदित्यान् मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४ ॥

अर्थ— [१४५] (वन्वन् अवातः अस्तृतः) शत्रुओंका नाश करनेवाला, स्वयं अपराजित, और अहिंसित (सः हि) ऐसा वह अग्नि (विश्वा पार्थिवा) सब पृथिवी परके धनोंसे (महित्वना रयिं आति दाशत्) अधिक श्रेष्ठ धन अपने सामर्थ्यसे देता है ॥ २० ॥

[१४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः) वह तू (प्रत्नवत् नवीयसा) जैसे प्राचीन वैसे अतिशय नवीन (द्युम्नेन संयता भानुना) प्रकाशमान्, स्वाधीन रहनेवाले अपने तेजसे (बृहत् ततन्थ) इस महान् अन्तरिक्षको व्याप रहा है ॥ २१ ॥

[१४७] हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम लोग (धृष्णुया वेधसे अग्नये) शत्रुका नाश करनेवाले, विधाता रूप, अग्निकी (स्तोमं गाय) स्तुतिका गान करो । तथा (यज्ञं च प्र अर्च) यज्ञका सत्कारपूर्वक अनुष्ठान करो ॥ २२ ॥

[१४८] (यः होता कविक्रतुः मानुषा युगा) जो अग्नि देवोंको बुलानेवाला तथा ज्ञानी और सत्कर्मकर्ता है वह, मनुष्योंके युगों, मनुष्योंके संघसे किये जानेवाले कर्मोंमें (च हव्यवाहनः दूतः) हविष्यान्न वहन करनेवाला दूत होता है । (स हि सीदत्) वह अग्नि यहां आकर बैठे ॥ २३ ॥

१ होता कविक्रतुः— मनुष्य विबुधोंको बुलावे और क्रान्तदर्शी ज्ञानी तथा कुशलतासे कर्म करनेवाला हो।

[१४९] हे (वसो) धनवान् ! (रोदसी) द्यावापृथिवीका (ता राजाना शुचिव्रता) उन प्रसिद्ध, तेजस्वी, पवित्र कर्म करनेवाले मित्रावरुण नामक राजाओंका (आदित्यान् मारुतं गणं) आदित्योंका और मरुतोंके गणोंका (इह) इस यज्ञमें (यक्षि) यजन कर । इनका सत्कार कर ॥ २४ ॥

१ राजाना शुचिव्रता— राजालोग शुद्ध आचरण करनेवाले हों ।

भावार्थ— वह अग्नि शत्रुओंका नाश करनेवाला होने पर भी स्वयं अपराजित है और अहिंसित है। ऐसा वह अग्नि सब धनोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ और उत्तम धन अपने सामर्थ्यसे देता है । मनुष्य स्वयं अपराजित और अजेय होकर शत्रुको पराजित करे और पृथ्वी परके सब श्रेष्ठ धनोंको प्राप्त करे ॥ २० ॥

यह अग्निदेव अपने तेजसे महान् और विस्तृत अन्तरिक्षको अर्थात् सभी लोकोंको व्याप रहा है । सभी लोकोंमें इसी अग्निका तेज फैल रहा है और उसीके कारण सब लोक प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २१ ॥

हे मित्रो ! तुम शत्रुका नाश करनेवाले, सबको बनानेवाले तथा सबको धारण करनेवाले अग्निकी स्तुतिका गान करो और यज्ञका सत्कारपूर्वक अनुष्ठान करो । यह अग्नि सभी शत्रुओंका नाश करनेवाला सबकी रचना करनेवाला तथा सबको धारण करनेवाला है ॥ २२ ॥

यह अग्नि देवोंको बुलाकर लानेवाला, ज्ञानी और उत्तम कर्मोंको करनेवाला है । वह मनुष्योंके द्वारा किए जानेवाले कर्मोंमें हविष्यान्नको ले जानेवाला दूत होता है । अग्रणी मनुष्योंके द्वारा किए जानेवाले उत्तम कर्मोंमें स्वयं भी भाग ले और अन्य विद्वानोंको भी बुलाकर लाए ॥ २३ ॥

हे धनी मनुष्य ! द्यु, पृथिवी, प्रसिद्ध तेजस्वी और उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण, आदित्य और मरुत् इन सभी देवोंका अपने यहां सत्कार कर ॥ २४ ॥

×

१५० वस्वीं ते अग्ने संदृष्टि--रिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५ ॥
१५१ क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठो ऽद्य त्वा वन्वन् त्सुरेक्णाः । मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६ ॥
१५२ ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्--वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७ ॥
१५३ अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद् विश्वं न्य१त्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २८ ॥
१५४ सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९ ॥

अर्थ— [१५०] हे (ऊर्जो न-पात् अग्ने) बलको न गिरानेवाले अग्नि ! (ते अमृतस्य) तुझ मरणरहितकी (संदृष्टिः) उत्तम दृष्टि (इषयते मर्त्याय) अन्नादिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके लिये (वस्वी) धन देनेवाली होती है ॥ २५ ॥

१ ऊर्जो न पात्— अपने बलको अधःपतित न कर ।
२ सं दृष्टिः इषयते मर्त्याय वस्वी— उत्तम दृष्टि मनुष्यको धन देनेवाली हो ।

[१५१] (अद्य) आज ही (क्रत्वा त्वा वन्वन् दाः) कर्म द्वारा तेरी सेवा करनेवाला और दान देनेवाला मनुष्य (श्रेष्ठः सुरेक्णाः अस्तु) अत्यन्त श्रेष्ठ और उत्तम धनोंसे युक्त हो । तथा (मर्तः सुवृक्तिं आ आनाश) वह मनुष्य उत्तम भाषण करनेवाला हो ॥ २६ ॥

[१५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते ते) वे तेरे भक्त (त्वोताः विश्वं आयुः इषयन्तः) तुझसे सुरक्षित होकर पूर्ण आयुतक अन्नादि भोगोंको प्राप्त करते हैं । और (अर्यः अरातीः तरन्तः) शत्रुकी आक्रमणकारी सेनाको पराजित करते हैं । (अर्यः अरातीः वन्वन्तः) और आक्रमणकारी शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ २७ ॥

[१५३] (अग्निः) अग्ने ! (तिग्मेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेजसे (विश्वं अत्रिणं) सब दुष्ट राक्षसोंका (नि यासत्) नाश करता है । और (नः अग्निः रयिं वनते) हमको अग्नि धन देता है ॥ २८ ॥

[१५४] हे (जातवेदः विचर्षणे) ज्ञानी और विशेष द्रष्टा ! (सुवीरं रयिं) उत्तम वीरोंसे युक्त धन हमारे लिये (आ भर) भर दे । और हे (सुक्रतो) अच्छे कर्म करनेवाले ! (रक्षांसि) राक्षसोंका (जहि) नाश कर ॥ २९ ॥

भावार्थ— यह अग्नि बलको क्षीण नहीं होने देता । जबतक अग्निकी गर्मी इस शरीरमें है, तबतक यह शरीर शक्तिशाली रहता है । इसीलिए इस अग्निको बलको न गिरने देनेवाला कहा है । मनुष्यकी दृष्टि सबके प्रति उत्तम रहे । जो सभीकी ओर उत्तम नजरोंसे देखता है, वह हरतरहसे समृद्ध होता है । इसीलिए उत्तम और पवित्र नजरोंको समृद्धि देनेवाली कहा है ॥ २५ ॥

मनुष्य दान देवे, कर्म द्वारा सेवा करे, तथा श्रेष्ठ धनधान्यसंपन्न हो । मनुष्य उत्तम भाषण करे । मनुष्यके मुखमें उत्तम वचन रहे ॥ २६ ॥

मनुष्य ऐसा यत्न करे कि जिससे वे अपनी पूर्ण आयुतक अन्नादि सब भोग प्राप्त करके आनन्दसे रहें । शत्रुके आक्रमणोंको दूर करें और विजय प्राप्त करें ॥ २७ ॥

इसके तेजसे शत्रु दूर हो जायें इतना तेज मनुष्य बढाए । धन प्राप्त करे और उसका दान करे ॥ २८ ॥

मनुष्य ज्ञानी बने, निरीक्षक बने और उत्तम कर्म करे । उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाला धन प्राप्त करे और दुष्टोंका दमन करे ॥ २९ ॥

१५५ त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥
१५६ यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति । तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥ ३१ ॥
१५७ त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् । मर्तो यो नो जिघांसति ॥ ३२ ॥
१५८ भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु ॥ ३३ ॥
१५९ अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ३४ ॥
१६० गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥

अर्थ— [१५५] हे (जातवेदः) जिससे ज्ञान प्रकट हुआ है ऐसे देव ! (त्वं नः अंहसः पाहि) तू पापसे हमारी रक्षा कर। हे (ब्रह्मणः-कवे) ज्ञानके द्रष्टा ! (अघायतः नः रक्ष) पापी शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर ॥ ३० ॥

[१५६] हे (अग्ने) अग्ने ! (दुरेवः यः मर्तः) दुष्ट अभिप्रायवाला जो मनुष्य है (नः वधाय आ दाशति) जो हमारे वधके लिये यत्न करता है। (तस्मात् अंहसः नः पाहि) उस पापीसे हमें बचाओ ॥ ३१ ॥

[१५७] हे (देव) तेजस्वी विबुध ! (त्वं) तू (यः मर्तः नः) जो मनुष्य हमको (जिघांसति) मारनेकी इच्छा करता है। (तं दुष्कृतं जिह्वया परि बाधस्व) उस दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्यका अपनी तीक्ष्ण ज्वालासे सब प्रकारसे नाश कर ॥ ३२ ॥

[१५८] हे (सहन्त्य अग्ने) सामर्थ्यवाले अग्ने ! तेजस्वी देव ! (भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ) भरद्वाजको सब प्रकारका यशस्वी गृह दे। तथा (वरेण्यं वसु) श्रेष्ठ धन दे ॥ ३३ ॥

[१५९] (विपन्यया) स्तोत्रोंके साथ (आहुतः समिद्धः) हवन होनेके कारण प्रदीप्त और (शुक्रः अग्निः) पवित्र तेजवाला अग्नि (द्रविणस्युः) धन देनेकी इच्छा करता हुआ (वृत्राणि जंघनत्) राक्षसादि शत्रुओंका नाश करे ॥ ३४ ॥

[१६०] (मातुः गर्भे अक्षरे) माता पृथ्वीके बीच स्थानकी अविनाशी वेदीमें (विदिद्युतानः) प्रकाशनेवाला (पितुः पिता) पिताका पिता (ऋतस्य योनिं) यज्ञकी वेदीपर (आ सीदन्) आकर बैठता है ॥ ३५ ॥

भावार्थ— मनुष्य ज्ञान प्राप्त करे, द्रष्टा बने, पापसे बचे और पापियोंसे बचे ॥ ३० ॥

हे अग्ने ! जो दुष्ट अभिप्राय अपने मनमें धारण करता है। जो हमारा वध करता है उस पापीसे हमारा बचाव करो ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य अन्योंका नाश करनेकी इच्छा करता है। उस पापीका नाश करना उचित है ॥ ३२ ॥

मनुष्य यशस्वी घर प्राप्त करे और श्रेष्ठ धन प्राप्त करे। वह भरद्वाज अर्थात् अन्नादि देकर लोगोंका भरणपोषण करनेवाला हो ॥ ३३ ॥

यह अग्नि स्तोत्रोंके साथ आहुति दिए जाने पर प्रदीप्त होता है और तब इस अग्निका तेज पवित्र होता है। ऐसा प्रदीप्त अग्नि धन देनेकी इच्छा करता हुआ राक्षस आदि शत्रुओंका नाश करे ॥ ३४ ॥

अग्नि पुत्र है, उसकी माता पृथिवी है। पृथिवीका पुत्र अग्नि है। पृथिवीका पति द्युलोक है। द्यावापृथिवी ये दो परस्पर पिता-माता है। यह अग्नि पिताका भी पिता है ! द्युलोकका भी पिता मूल अग्नितत्त्व है। मूल आग्नेय तत्त्वका केन्द्र सूर्यमें है। सूर्यसे पृथ्वीपरका अग्नि अग्रमा है। इससे यज्ञ होता है ॥ ३५ ॥

१६१ ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद् दीदयद् दिवि ॥ ३६ ॥
१६२ उप त्वा रण्वसंदृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥
१६३ उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यसंदृशः ॥ ३८ ॥
१६४ य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३९ ॥
१६५ आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरं ॥ ४० ॥

अर्थ— [१६१] हे (जातवेदः विचर्षणे अग्ने) सब पदार्थोंको जाननेवाला, विशेष द्रष्टा अग्नि ! (यत् दिवि दीदयत्) जो द्युलोकमें प्रकाशित होता है, वह (प्रजावत् ब्रह्म आ भर) पुत्रपौत्र देनेवाला अन्नरूपी धन हमें भरपूर भर दो ॥ ३६ ॥

१ प्रजावत् ब्रह्म आ भर— पुत्रपौत्रोंको बढानेवाला ज्ञान हमें चाहिये । अन्न भी ऐसा चाहिये जिससे वीर्यवान् पुत्रपौत्र उत्पन्न हो सकते हों । ब्रह्म-ज्ञान, अन्न ।

[१६२] हे (सहस्कृत अग्ने) बलपुत्र अग्ने ! (प्रयस्वन्तः) अन्न देनेवाले हम लोग (रण्वसंदृशं) देखनेमें रमणीय ऐसे (त्वां गिरः) तेरे समीप स्तुति (उप ससृज्महे) करते हैं ॥ ३७ ॥

१ प्रयस्वन्तः रण्वसंदृशं गिरः उप ससृज्महे— अन्नदान करनेवाले हम सब रमणीय ज्ञानी पुरुषकी प्रशंसा अपनी वाणीसे करते हैं ।

[१६३] हे (अग्ने) अग्नि ! (हिरण्यसंदृशः घृणेः) सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा दीप्तिमान् (ते) तेरे समीप (उप अगन्म) हम प्राप्त होते हैं और (छायां इव शर्म) छायामें जैसा सुख मिलता है । उस प्रकार तेरे समीपमें हमें सुख मिलता है ॥ ३८ ॥

[१६४] (यः) जो (उग्र इव शर्यहा) उग्रवीरकी तरह बाणोंसे शत्रुओंका नाश करनेवाला (तिग्मशृंगो न) तीक्ष्ण सींगवाले बैलकी तरह, हे (अग्ने) अग्नि ! तू (पुरः रुरोजिथ) असुरोंकी तीन पुरियोंका नाश करता है ॥ ३९ ॥

[१६५] (शिशुं जातं न) नवजात बालकको जैसे (हस्ते आ बिभ्रति) हाथमें धारण करते हैं । अथवा (खादिनं न) हिंस्र प्राणीको जैसे सावध रहकर हाथसे पकडते हैं वैसे (विशां स्वध्वरं यं अग्निं) मनुष्योंके यज्ञके निष्पादक इस अग्निकी सेवा यज्ञसे करो ॥ ४० ॥

भावार्थ— यह अग्नि सब पदार्थोंको जाननेवाला तथा विशेष द्रष्टा है । वह हमें पुत्र और पौत्र प्रदान करनेवाला अन्न प्रदान करे । ज्ञान पुत्र और पौत्रोंको बढानेवाला हो, तथा अन्न भी ऐसा हो कि जिससे वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हो सकें ॥ ३६ ॥

यह अग्नि बलका पुत्र है । जब अरणीको मथ करके इस अग्निको उत्पन्न करना होता है, तब उसे मथनेमें बहुत बल लगता है, इसीलिए इस अग्निको बलका पुत्र कहा गया है । जब मथे जानेके बाद यह प्रदीप्त होता है, तब इसका रूप बड़ा ही सुन्दर होता है और तब इसकी स्तुतियां शुरु हो जाती हैं ॥ ३७ ॥

धूपमें तपा हुआ मनुष्य जैसे छायामें आकर सुखका अनुभव करता है, वैसे ही सुख तेजस्वी नेताके समीप अनुयायीको प्राप्त होता है । इसलिये कहा है– हे अग्ने ! हे अग्रणी ! सुवर्ण जैसे तेजस्वी नेताके पास हम जाते हैं । और सुखका अनुभव करते हैं । तेजस्वीके पास जानेसे अन्धकारका भय दूर होता है । ज्ञानीके पास जानेसे अज्ञानका भय दूर होता है ॥ ३८ ॥

जिस तरह तीखे सींगोंवाला बैल अपने विरोधी पशुओंका नाश करता है, उसी तरह यह अग्नि असुरोंके नगरोंका नाश करता है ॥ ३९ ॥

नवजात बालकको जैसे हाथसे सावधानीसे पकडते हैं क्रूर हिंस्र पशुको जिस तरह सावध रहकर पकडते हैं उस तरह अत्यन्त सावधान रहकर इस अग्निकी सेवा करनी चाहिये ॥ ४० ॥

१६६ प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥ ४१ ॥
१६७ आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥ ४२ ॥
१६८ अग्ने युक्ष्वा हि ये तवा ऽश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ४३ ॥
१६९ अच्छा नो याह्या वहा ऽभि प्रयांसि वीतये । आ देवान् त्सोमपीतये ॥ ४४ ॥
१७० उदग्ने भारत द्युम दजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥ ४५ ॥
१७१ वीती यो देवं मर्तो दुवस्ये दग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्यो रुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ— [१६६] (देवं वसुवित्तमं) दीप्तिमान् और धनोंको पास रखनेवाले अग्निको (देव वीतये) देवोंको देनेके लिये (प्र भरत) अन्नका अर्पण करो। वह अग्नि (स्वे योनौ) अपनी वेदीके स्थानमें (आ नि षीदतु) आकर बैठे ॥ ४१ ॥

[१६७] (जातं अतिथिं) आये अतिथिके समान (प्रियं) प्रिय (गृहपतिं) गृहपतिको (आ शिशीत) स्थापित करो। और (जातवेदसि स्योने) ज्ञान देनेवाले सुखकर अग्निमें आदवनीय द्रव्य अर्पण करो ॥ ४२ ॥

१ अतिथि— (अतति) जो गतिमान् है। अतिथिके समान पूज्य है।

[१६८] हे (देव अग्ने) प्रकाशमान् अग्ने ! (ये तव साधवः अश्वासः) जो तेरे उत्तम घोडे हैं उन्हें अपने रथमें (युक्ष्व) जोड, वे (मन्यवे हि अरं वहन्ति) यज्ञके प्रति आनेके लिये तुझे इच्छानुसार वहन कर सकते हैं ॥ ४३ ॥

[१६९] हे अग्ने ! (नः अच्छ याहि) हमारे पास आ। (प्रयांसि देवान् वीतये सोमपीतये) अन्नोंको विबुधोंको देनेके लिये सोमपानके समय (आ वह) ले चल ॥ ४४ ॥

[१७०] हे (भारत अग्ने) भरणपोषण करनेवाले अग्नि ! (उत् शोच) ऊर्ध्व गतिसे जानेवाली ज्वालाओंसे प्रकाशित हो। हे (अजर) वृद्धावस्थासे रहित ! (दविद्युतत्) अत्यन्त प्रकाशमान व (द्युमत्) कान्तिमान् होकर (अजस्रेण) अविच्छिन्न तेजसे (वि भाहि) अच्छी तरहसे प्रकाशित हो ॥ ४५ ॥

[१७१] (यः हविष्मान् मर्तः) जो हविर्द्रव्यसे युक्त मनुष्य (वीती देवं) कान्तिमान् होकर देवकी (दुवस्येत्) परिचर्या करता है, उस (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (रोदस्योः) द्यावापृथिवीमें (होतारं सत्ययजं अग्निं) वर्तमान देवोंको बुलानेवाले सत्यरीतिसे यजन करनेवाले अग्निकी (ईळीत) स्तुति गाओ। और (उत्तानहस्तः) हाथ उठाकर (नमसा) नमस्कारसे (आ विवासेत्) सेवा करे ॥ ४६ ॥

१ उत्तानहस्तः नमसा आविवासेत्— हाथ उठाकर नमस्कार करके सेवा करे। हाथ उठाकर नमस्कार करना चाहिये।

२ मर्तः देवं दुवस्येत्— मनुष्य देवताकी सेवा करे।

भावार्थ— हे मनुष्यो ! तुम देवोंतक पहुंचानेके लिए इस तेजस्वी तथा धनको रखनेवाली अग्निमें हवि प्रदान कर, ताकि वह अग्नि इस वेदीमें प्रदीप्त हो ॥ ४१ ॥

प्रथम अग्निका स्थापन करना चाहिए, तत्पश्चात् उसे प्रदीप्त करना चाहिए और फिर उसमें हवन करना चाहिए। इसी तरह अतिथिके आनेपर उसे प्रथम आसनपर बिठलाना चाहिए, फिर उसे प्रसन्न करके उसका खान-पान आदिसे सत्कार करना चाहिए ॥ ४२ ॥

हे तेजस्वी अग्ने ! जो तेरे उत्तम घोडे हैं, उन्हें अपने रथमें जोड, ताकि वे तुझे इस यज्ञकी तरफ ले आवें ॥ ४३ ॥

हे अग्ने ! तू हमारे पास आ और हमारे द्वारा दिए गए अन्नोंको ज्ञानियोंके पास ले चल ॥ ४४ ॥

यह अग्नि भरणपोषण करनेवाला है, उसकी ज्वालायें सदा ऊपरकी तरफ उठती हैं। इसीलिए वह अजर अर्थात् क्षीणतासे रहित है। जो मनुष्य प्रकाशमान् कान्तिमान् और अविच्छिन्न तेजसे युक्त होकर अच्छीतरहसे प्रकाशित होगा, और जो सदा उन्नतिके मार्ग पर ही चलेगा, वह वृद्धावस्था अर्थात् क्षीणतासे रहित होगा ॥ ४५ ॥

१७२ आ ते अग्न ऋचा हवि-र्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ४७ ॥

१७३ अग्निं देवासो अग्रिय-मिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥ ४८ ॥

[१७]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ; १५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।]

१७४ पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥ १ ॥

अर्थ— [१७२] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते हृदा ऋचा तष्टं हविः) तुझे अन्तःकरणपूर्वक मंत्रोंसे संस्कार किये हुए अन्न (आ भरामसि) हम देते हैं । (ते) तेरे लिये (उक्षणः ऋषभासः) वहन समर्थ बैल (उत वशाः) और गौ अन्न देनेवाले (भवन्तु) हों ॥ ४७ ॥

[१७३ (येन वाजिना रक्षांसि तृळ्हा) जिस बलवान्ने राक्षसोंका नाश किया और जिस अग्निने (वसूनि आभृता) धन लाकर भर दिये हैं । उस (अग्रियं वृत्रहन्तमं अग्निं) अग्रेसर, मुख्य, शत्रुनाशक, अग्निको अग्रणीको (देवासः) विबुध लोग (इन्धते) प्रदीप्त करते हैं, प्रज्वलित करते हैं । और उसमें हवन करते हैं ॥ ४८ ॥

[१७]

[१७४] हे (उग्र) उग्र वीर ! तू (यं सोमं अभि पिब) इस सोमरसका मुख्यतः प्राशन कर । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गृणानः) स्तुति किया हुआ तू (महि ऊर्वं गव्यं तर्द) बडे विशाल गौओंके समूहको प्रकाशमें लाया । हे (धृष्णो) शत्रुका धर्षण करनेवाले, (वज्र-हस्त) वज्रको हाथमें लेनेवाले वीर ! (यः) जो तूने (शवोभिः) अपने सामर्थ्योंसे (विश्वा अमित्रिया वृत्रं) सब शत्रुओंका तथा घेरनेवाले शत्रुका (वि वधिषः) विशेष रीतिसे वध किया ॥ १ ॥

भावार्थ— जो हविर्द्रव्यसे युक्त होकर मनुष्य इस कान्तिमान् देव अग्निकी परिचर्या करता है, उस हिंसारहित यज्ञमें अग्निकी स्तुति करनी चाहिए । हाथ उठाकर नमस्कार करना चाहिए ॥ ४६ ॥

हे अग्ने ! तुझे हम अपने शुद्ध और पवित्र अन्तःकरणसे संस्कारसे पवित्र किए गए अन्न या हवि प्रदान करते हैं । ये गौ और बैल भी इसी अग्निके लिए अन्नादिक उत्पन्न करें । यह अग्नि अतिथिके समान पूज्य है । अतः जो पूज्य है अथवा जिसका भी सत्कार किया जाए, उसका सत्कार पवित्र अन्तःकरणसे पवित्र पदार्थ प्रदान करके किया जाए ॥ ४७ ॥

जो अग्नि बलवान् होकर राक्षसोंका नाश करता है और जो अपने उपासकोंको धन आदि देता है, उस अग्रणी, सबसे मुख्य, शत्रुनाशक अग्निको ज्ञानी प्रदीप्त करते हैं । उसी तरह जो अग्रणी नेता बलवान् होकर शत्रुओंका नाश करता है, उसे ज्ञानीजन श्रेष्ठ बनाकर सबसे मुख्य बनाते हैं ॥ ४८ ॥

हे वीर ! तू इस सोमरसका पान कर । तेरी प्रशंसा इस कारण हो रही है कि तू (शत्रुके द्वारा चुराई) गौओंके समूहको प्रकाशमें लाया, तूने ढूंढ निकाला । और अपने सामर्थ्योंसे सब दुर्जनों और घेरनेवाले शत्रुका वध किया ॥ १ ॥

१७५ स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद् वज्रभृद् यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥ २ ॥

१७६ एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ ३ ॥

१७७ ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१७५] (यः ऋजीषी) जो अत्यंत सरल स्वभाववाला है, (यः तरु-त्रः) जो शीघ्र तारण करता है, (यः शिप्रवान्) जो मुकुट धारण करता है, (यः मतीनां वृषभः) जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सामर्थ्य युक्त है, (सः) वह तू (ईं पाहि) इस रसका रक्षण कर । (यः गोत्रभिद्) जो मेघोंका भेदन करता है, (यः वज्रभृत्) जो वज्र धारण करनेवाला है (यः हरि-ष्ठाः) जो घोडोंके साथ रहता है, हे (इन्द्र) वीर इन्द्र ! (सः) वह तू (चित्रान् वाजान् अभि तृन्धि) विलक्षण बलवर्धक अन्न हमें दे ॥ २ ॥

[१७६] (प्रत्नथा एव पाहि) पूर्वके समान तू रक्षण कर । (त्वा मन्दतु) यह कार्य तुझे आनन्द देवे । (ब्रह्म श्रुधि) ज्ञानका काव्य श्रवण कर । (उत गीर्भिः वावृधस्व) और स्तुतिके वचनोंसे तू बढता रह। (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्यको प्रकाशित कर । (इषः पीपिहि) अन्न हमें दे दो (शत्रून् जहि) शत्रुका नाश कर । हे इन्द्र ! (गाः अभि तृन्धि) गौओंको प्रकाशमें ला ॥ ३ ॥

[१७७] हे (स्वधा-वः इन्द्र) अन्नवान् इन्द्र ! (ते इमे पीताः मदाः) वे ये पीये हुए [सोमरस] तुझे आनन्दित करें । (द्युमन्तं त्वा) तुझ जैसे तेजस्वीको ये रस (बृहत् उक्षयन्तु) आनन्दका बहुत सींचन करें । वे (मत्सरासः) आनन्द बढानेवाले सोमरस (महां अनूनं) बडे न्यून न होनेवाले (तवसं विभूतिं) बडे शक्तिमान् विभूतिरूप (प्र-साहं) शत्रुको पराजित करनेवाले वीरको (जर्हृषन्त) आनंदित करें ॥ ४ ॥

१ अनूनं महां तवसं विभूतिं प्रसाहं जर्हृषन्त— जे शक्ति जिसकी कम नहीं होती, ऐसे महान् सामर्थ्य-वान्, विभूतिमान्, शत्रुका नाश करनेवाले वीरको आनंदित करते हैं । सब लोग ऐसे वीरकी प्रशंसा करते हैं ।

भवार्थ— यह इन्द्र अत्यन्त सरल स्वभावका है, यह अपने अनुयायीको सब तरहके दुःखोंसे पार करनेवाला है । यह मुकुट धारण करता है, तथा बुद्धिमानोंके श्रेष्ठ सामर्थ्यसे युक्त है । यह वज्र हाथमें लेकर मेघोंको तोडता है । ऐसा इन्द्र हमें बलवर्धक अन्न दे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! पहलेके समान ही तू हमारी रक्षा कर । हम जो कार्य करते हैं, वह कार्य तुझे आनन्द प्रदान करे । हम जो ज्ञानपूर्वक तेरी स्तुति करते हैं, उस ज्ञानमय काव्यको तू सुन और उन स्तुतिवचनोंसे तेरा बल बढता रहे । तू सूर्यको प्रकाशित करके हमें अन्न आदि प्रदान कर और प्रकाशकिरणोंको प्रकट कर ॥ ३ ॥

ये सोमरस बहुत आनन्द देनेवाले हैं । यह तेजस्वीरस इन्द्रको भी आनंद देते हैं । अतः ये आनंद बढानेवाले सोमरस बहुत शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यशाली शत्रुको पराजित करनेके लिए वीरको आनंदित करें ॥ ४ ॥

१७८ येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानो ऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ५ ॥
१७९ तव क्रत्वा तव तद् दंसनाभि—रामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्हो—दूर्वाद् गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥ ६ ॥
१८० पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वी—मुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥
१८१ अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान् त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥

अर्थ— [१७८] (येभिः मन्दसानः) जिनसे आनन्दित होकर (सूर्यं उषसं अवासयः) सूर्यको और उषाको तूने यथास्थान बसाया । (दृळ्हानि अप दर्द्रत्) और सुदृढ शत्रुओंके स्थानोंको तोड दिया । हे इन्द्र ! (स्वात् सदसः) अपने स्थानसे (महां अद्रिं परि-अ-च्युतं सन्तं) बडे पर्वतको या पहाडी किलेको अत्यंत सुस्थिर होनेपर भी (नुत्थाः) हटाया और (गाः) गौवें प्राप्त कीं ॥ ५ ॥

[१७९] (तव क्रत्वा) अपनी प्रज्ञासे, (तव दंसनाभिः) अपनी कर्मोंसे इसी प्रकार तेरी (शच्या) शक्तिसे (आमासु) अपरिपक्व गौओंके अन्दर (तत् पक्वं नि दीधः) वह पक्व दूध तूने रखा है । (उस्रियाभ्यः) गौओंके लिये (दृळ्हा दुरः) सुदृढ किलोंके द्वार (वि और्णोः) तूने खोल दिये और (अंगिरस्वान्) अंगरसकी शक्तिसे संपन्न तूने (ऊर्वात् गाः उत् असृजः) गौओंके बाडेसे गौओंको बाहर निकाला ॥ ६ ॥

[१८०] हे इन्द्र ! तू (महि दंसः) बडे कर्मोंको करके (उर्वीं क्षां वि पप्राथ) विस्तीर्ण भूमिको विशेष रीतिसे फैलाया और (ऋष्वः) बडे शक्तिशाली तूने (बृहत् द्यां उप स्तभायः) बडे द्युलोकको ऊपर स्तब्ध किया । और (देव-पुत्रे) देव जिनके पुत्र हैं ऐसे (प्रत्ने यह्वी मातरा) पुरानी बडी माताओंके समान सबके निर्माण करनेवाली (रोदसी अधारयः) द्युलोक और पृथिवीका तुमने धारण किया ॥ ७ ॥

[१८१] (अध) अब हे इन्द्र ! (विश्वे देवाः) सब देवोंने (एकं तवसं त्वा) अकेले बलवान् तुझे (भराय) युद्धके लिये (पुरः दधिरे) आगे किया । (अ-देवः) असुर वृत्र (यत्) जब (देवान् अभ्यौहिष्ट) देवोंके साथ सामना करने लगा, तब (स्वर्षाता) उस संग्राममें मरुत् (अत्र) यहां (इन्द्रं वृणते) इन्द्रकी ही सेवा करते रहे ॥ ८ ॥

भावार्थ— इसी सोमरससे आनन्दित होकर इन्द्र सूर्य और उषाको अपने अपने स्थानोंपर स्थिर किया और सुदृढ शत्रुओंके स्थानोंको तोड दिया । इसी इन्द्रने अपने स्थानसे बडे पर्वत या पहाडी किलोंको अत्यन्त दृढ तथा स्थिर होनेके बावजूद भी नष्ट किया और गायें प्राप्त की ॥ ५ ॥

परमेश्वरकी अद्भुत प्रज्ञा, शक्ति और कर्मोंसे गौओंमें सुमधुर दूध निर्माण हुआ है । उसीने प्रकाश करके गौवोंको गोशालासे बाहर निकाला । किलेके द्वार खोले और गौवें बाहर चरनेके लिये खुली छोड दी ॥ ६ ॥

इस शक्तिशाली इन्द्रने अपने पराक्रमोंसे और श्रेष्ठ कर्मोंसे विस्तृत भूमिको और अधिक विस्तृत किया और द्युलोकको ऊपर स्तब्ध किया तथा समस्त देवोंके माता पिता रूप पृथ्वी और द्युलोकका धारण किया । द्युलोक और पृथिवी ये दोनों परस्पर पति और पत्नी हैं । ये दोनों सभी देवों और प्राणियोंके पिता और माता हैं । इन्हीं दोनोंसे सूर्य, विद्युत्, वायु आदि सभी देव उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥

१८२ अध द्यौश्चित् ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद् भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद् विश्वायुः शयथे जघान ॥ ९ ॥

१८३ अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥ १० ॥

१८४ वर्धान् यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन् वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥ ११ ॥

अर्थ— [१८२] (यत् विश्वायुः इन्द्रः) जब सब अन्नवाले इन्द्रने (अभि-ओहसानं अहिं) आक्रमण करनेवाले अहिवृत्रको (शयथे चित् नि जघन्थ) शयन करनेकी अवस्थामें पूर्ण रीतिसे मारा (अध) तब (सा द्यौः चित्) वह द्युलोक भी (द्विता) दो प्रकारोंसे (ते वज्रात्) तेरे वज्रसे तथा (स्वस्य मन्योः) ते क्रोधके, तेरे उत्साहके (भियसा) भयसे (नु अप अनमत्) विनम्र हो गया ॥ ९ ॥

[१८३] (अध) अब (उग्र) हे उग्र वीर ! (त्वष्टा) त्वष्टा कारीगरने (महः ते) बडे शक्तिमान् ऐसे तेरे लिये (सहस्र भृष्टिं) सहस्र धारोंसे युक्त और (शत-आश्रिं) सौ पर्वोंवाले (वज्रं ववृतत्) वज्रको बनाया । हे (ऋजीषिन्) सरल मनवाले वीर ! (येन) जिस वज्रसे (निकामं) हीन कामनावाले और (अर-मणसं) युद्ध करनेकी ही केवल इच्छा करनेवाले तथा (नवन्तं अहिं) शब्द करनेवाले अहिको-वृत्रको तुमने (सं पिणक्) पीस दिया, मार दिया ॥ १० ॥

[१८४] (सजोषा विश्वे मरुतः) एक विचारसे रहनेवाले सब मरुत्, वीर (यं) जिस तुझको (वर्धान्) बढाते हैं, तेरा यश गाते हैं । हे इन्द्र ! (पूषा तुभ्यं) पूषा देव तुम्हारे लिये (शतं महिषान् पचत्) सौ प्रकारके बलवर्धक अन्नोंको पकाता है । (विष्णुः) विष्णुने (त्रीणि सरांसि) तीन पात्रोंमें (अस्मै) इस इन्द्रके लिये (वृत्र-हणं मदिरं अंशुं) वृत्र मारनेकी शक्ति बढानेवाले, आनंद बढानेवाले सोमरसको तैयार करके भर रखा है ॥ ११ ॥

भावार्थ— जब देवोंका असुरोंके साथ युद्ध हुआ, तब सब देवोंने इन्द्रको ही अपना नेता बनाया । जब असुरोंका नेता वृत्र इन्द्रके सामने युद्ध करनेके लिए आया तब इन्द्रकी सहायता करनेके लिए मरुद्गण आए और सारे युद्धमें वे मरुत् इन्द्रकी सेवा करते रहे । इसी तरह जब एक राष्ट्र पर दूसरे शत्रु राष्ट्रका हमला हो, तब राष्ट्रके सभी विद्वान् शक्तिशाली क्षत्रियवीरको ही अपना नेता बनायें और अन्य वीर अपने नेताकी हर तरहकी सहायता करते रहें ॥ ८ ॥

जब सब तरहकी शक्तियोंसे सम्पन्न इन्द्रने आक्रमणकारी असुरको मारा, तब उसके वज्र, क्रोध और उत्साहको देखकर द्युलोक भी विनम्र हो गया ॥ ९ ॥

कारीगर लोग अपने राष्ट्रके वीरोंके लिये उत्तम शस्त्र अस्त्र बनावें । और वीर लोग उन शस्त्रास्त्रोंका ठीक तरहसे प्रयोग करके शत्रुका नाश करें । और अपने राष्ट्रको सुरक्षित रखें ॥ १० ॥

एक विचारसे रहनेवाले तथा मरनेतक डटकर लडनेवाले वीर इस शूरनेताकी प्रशंसा गाकर उसके यशको बढाते हैं । तथा इन्द्रका पोषण करनेवाले लोग उसके लिये अनेक अन्नोंको पकाते हैं तथा पीनेके लिए बहुत सारा सोमरस देते हैं ॥ ११ ॥

×

१८५ आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥ १२ ॥
१८६ एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥ १३ ॥
१८७ स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन् दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४ ॥
१८८ अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ ॥

अर्थ— [१८५] हे इन्द्र ! तूने (महि वृतं) बड़ा घेरा हुआ (परिष्ठितं) सब प्रकारसे स्थिर हुआ (नदीनां क्षोदः) नदीयोंका जल (आ असृजः) बहा दिया । तथा (अपां ऊर्मिं) जलोंकी लहरोंको चलाया । (तासां पन्थां) उन जलोंके मार्गोंको (प्रवतः अनु) प्रवाहित होने योग्य बनाया । और (नीचीः) निम्न मार्गोंसे जलप्रवाहोंको (अपसः समुद्रं) जलके समुद्रतक (प्र अर्दयः) जाने योग्य किया ॥ १२ ॥

[१८६] (एवा ता विश्वा चकृवांसं) इस तरह उन सब कर्मोंको करनेवाले (महां उग्रं) बडे उग्र, (अजुर्यं सहोदां) जरा रहित और बल देनेवाले, (सुवीरं स्वायुधं) उत्तम वीर तथा उत्तम शस्त्रोंसे युक्त (सुवज्रं) उत्तम वज्रधारी (इन्द्रं त्वा) तुझ इन्द्रको (अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये (नव्यं ब्रह्म) नवीन स्तोत्र (ववृत्यात्) प्रचारित करे ॥ १३ ॥

[१८७] हे इन्द्र ! (नः द्युमतः विप्रान्) हमारे तेजस्वी सब ब्राह्मणोंको (सः) वह तू (वाजाय) बलके लिये (इषे) अन्नके लिये (राये) ऐश्वर्यके लिये (नः धेहि) धारण कर । (भरद्वाजे) अन्नयुक्त—भरद्+वाजको (सूरीन् नृवतः) विद्वान् मनुष्योंसे युक्त कर । हे इन्द्र ! तू (पार्ये दिवि च नः एधि स्म) पार करने योग्य आगामी दिनमें हमारा रक्षक हो ॥ १४ ॥

[१८८] (अया) इस स्तुतिसे (देव हितं वाजं सनेम) जो विद्वानोंके लिये हितकारक अन्न या बल है उसे हम प्राप्त करेंगे । और (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सौ हिमकाल आनंदसे रहेंगे ॥ १५ ॥

भावार्थ— इन्द्रने वृत्रको मारकर नदियोंका प्रवाह रुका हुआ था, वह प्रवाह चलने योग्य बनाया । नदियां जोरसे प्रवाहित होने लगीं और वेगसे समुद्रतक पहुंची । वृत्रके कारण नदियोंका जलप्रवाह रुका हुआ था । अर्थात् नदियोंमें पानीका बर्फ बना था । सूर्य आनेसे वह बर्फ पिघलने लगा और नदियां भरकर बहने लगीं । शत्रुने यदि जलस्थानोंपर अपना अधिकार जमाया हो, तो सेनापतिको उचित है कि वह वहांसे शत्रुको दूर करके जलस्थान अपने आधीन करे और अपने लोगोंको पर्याप्त जल मिले ऐसा करे ॥ १२ ॥

वह इन्द्र सब उत्तम कर्मोंको करनेवाला, बहुत उग्र, सदा तरुण रहनेवाला और बल देनेवाला, उत्तम वीर और शस्त्रोंसे युक्त और उत्तम वज्रको धारण करनेवाला है । हम अपनी सुरक्षाके लिए नये स्तोत्रोंका प्रचार करें ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! वह तू बल, अन्न और धनके लिये हमको धारण कर । हमें बल, अन्न और धन प्राप्त हो ऐसा कर । विद्वानोंको सहायक मनुष्योंसे युक्त कर । विद्वानोंको पुत्रवान् कर । भविष्यकालमें हमें सुख मिले ऐसा कर । तेजस्वी भविष्य कालमें हमें रख ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंका हित करनेवाला अन्न हम प्राप्त करें । ज्ञानियोंका हित करनेवाला अन्न या बल हम प्राप्त करें । उत्तम वीरोंसे युक्त होकर सौ वर्षतक आनंदमें रहें ॥ १५ ॥

[१८]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१८९ तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभि- र्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥
१९० स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणा- मेकः कृष्टीनामभवत् सहावा ॥ २ ॥
१९१ त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँ- रेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत् त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥ ३ ॥

[१८]

अर्थ— [१८९] (यः) जो (अभिभूति-ओजाः (शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ, (वन्वन्) शत्रुका वध करनेवाला (अ-वातः) परंतु स्वयं अपराजित अत एव (पुरु-हूतः) बहुतोंद्वारा प्रार्थित इन्द्र है, (तं उ स्तुहि) उसीकी प्रशंसा कर। (अ-षाळ्हं) अपरा भूत (उग्रं) उग्र वीर (सहमानं) शत्रुका पराभव करनेवाले (चर्षणीनां वृषभं) प्रजाजनोंमें सांडके समान बलवान् जो इन्द्र है उसका (आभिः गीर्भिः वर्ध) इन स्तोत्रोंसे उसका यश बढा ॥ १ ॥

[१९०] (सः) वह (युध्मः) उत्तम युद्ध करनेमें कुशल, (सत्वा) बलवान् (खज-कृत्) युद्ध करनेवाला, (स-मद्-वा) लोगोंके साथ आनन्द करनेवाला, (तुवि-म्रक्षः) अनेकोंके साथ स्नेह करनेवाला, (नदनु-मान्) उत्तम वक्ता (ऋजीषी) सरल मनवाला अथवा सोम पीनेवाला (बृहद्रेणुः) बहुत धूली उडानेवाला अर्थात् वेगवान् रथमें बैठनेवाला (च्यवनः) शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला (मानुषीणां कृष्टीनां) मानवी प्रजाओंमें (एकः सहावा अभवत्) एक अद्वितीय बलवान् हुआ है ॥ २ ॥

[१९१] हे इन्द्र ! (त्वं ह नु त्यत्) तूने ही (दस्यून् अदमयः) दुष्टोंका दमन किया। तू (एकः) अकेलेने ही (आर्याय कृष्टीः अवनोः) श्रेष्ठ आर्यके अधीन सब प्रजाजनोंको दे दिया है। हे इन्द्र ! (ते तत् वीर्यं अस्ति स्वित् नु) तेरा सचमुच वह बल है ना ? अथवा (न अस्ति स्वित्) नहीं है ? (तत् ऋतु-था वि वोचः) इस विषयमें समय समयपर कहता रह ॥ ३ ॥

१ त्वं एकः आर्याय कृष्टीः अवनोः— तू अकेलेने आर्यके लिये प्रजाको दिया। अर्थात् श्रेष्ठ भद्र आर्य लोग ही सब प्रजाका राज्यशासन करें ऐसा किया।

भावार्थ— वीर शत्रुका पराभव करनेवाला, दुष्टोंका वध करनेवाला परंतु स्वयं अपराजित तथा बहुतोंद्वारा प्रशंसित, तथा कभी पराजित न होनेवाला, उग्र शत्रुको परास्त करनेवाला प्रजाजनोंमें महाबलवान् हो। इन्द्र ऐसा है इसलिये उसकी सब ज्ञानी कीर्ति और यश गाते हैं ॥ १ ॥

वह इन्द्र उत्तम युद्ध करनेमें कुशल, बलवान्, युद्ध करनेवाला, लोगोंको आनन्द देनेवाला, अनेकोंके साथ स्नेह करनेवाला, उत्तम वक्ता, सरल मनवाला, सोम पीनेवाला, बहुत धूली उडानेवाला अर्थात् वेगवान् रथमें बैठनेवाला, शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला और मानवी प्रजाओंमें अद्वितीय बलवान् है ॥ २ ॥

इस इन्द्रने अकेले ही दुष्टोंका दमन किया और और एक श्रेष्ठ आर्य शासकके अधीन सब प्रजाओंको स्थापित किया। प्रजाओंपर शासन करनेवाला श्रेष्ठ तथा सदा प्रगतिशील हो और वह असहाय होने पर भी दुष्टोंका दमन करनेमें समर्थ हो ॥ ३ ॥

१९२ सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयो ऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥
१९३ तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद् दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥ ५ ॥
१९४ स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत् समत्सु ॥ ६ ॥
१९५ स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१९२] हे (सहिष्ठ) बलवान् इन्द्र ! (तुविजातस्य) बहुतोंमें प्रसिद्ध और (तुरतः तुरस्य) हमारे घातकोंका नाश करनेवाले (ते सहः) तेरा यह बल (सत् इत् हि मन्ये) है, ऐसा निश्चयसे मैं मानता हूं। (उग्रस्य तवसः) उग्र बलवान् और (अ-रध्रस्य) स्वयं अहिंसित परंतु (रध्र-तुरः) शत्रुका नाश करनेवाले ऐसे तेरा (उग्रं तवीयः बभूव) उग्र बल होता ही है ॥ ४ ॥

[१९३] (नः प्रत्नं तत् सख्यं युष्मे अस्तु) वह हमारा पुराना सख्य तुम्हारे साथ चलता रहे। हे (अ-च्युत-च्युत्) सुदृढ शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करनेवाले (दस्म) दर्शनीय वीर इन्द्र ! (इत्था वदद्भिः अंगिरोभिः) इस तरह बोलनेवाले अंगिरोंके साथ रहकर (इषयन्तं वलं) बाणोंसे लडनेवाले वल नामक असुरको (हन्) तूने मारा। (अस्य पुरः वि ऋणोः) इस शत्रुके नगरोंको तोड दिया और (विश्वाः दुरः) सब द्वारोंको खोल दिया ॥ ५ ॥

[१९४] (ईशानकृत् उग्रः) शासकोंको निर्माण करनेवाला उग्र वीर (सः हि) वह इन्द्र निश्चयसे (महति वृत्रतूर्ये) बडे संग्राममें (धीभिः हव्यः अस्ति) बुद्धिमानोंके द्वारा बुलाने योग्य है। (सः तोकसाता तनये) वह इन्द्र पुत्रपौत्रोंके लाभ होनेपर भी वही प्रार्थनीय है। (सः वज्री) वह वज्रधारी इन्द्र (समत्सु) संग्रामोंमें (वितन्तसाय्यः अभवत्) शत्रुका विशेष नाशक होता है ॥ ६ ॥

[१९५] (स अमर्त्येन नाम्ना मज्मना) वह अविनाशी शत्रुको नम्र करनेवाले बलसे (मानुषाणां जनिम) मानवोंके संघको (अति प्र सस्रे) लांघ जाता है, संघमें अति श्रेष्ठ बनता है। (स द्युम्नेन) वह यशसे, (स शवसा) वह सामर्थ्यसे, (स राया) वह ऐश्वर्यसे, (स वीर्येण) वह वीर्यसे (नृ-तमः) सब मानवोंमें श्रेष्ठ होता है और (समोकाः) उत्तम घरवाला होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! अनेक वीरोंमें सुप्रसिद्ध और शत्रुका नाश करनेवाले तुझ जैसे वीरका ही ऐसा बल होता है। उग्र सामर्थ्यवान् और शत्रुका नाश करनेवाले वीरका विशेष प्रभाव होता है ॥ ४ ॥

जैसा पूर्व कालमें हमारे साथ इन्द्र सख्य था वैसा भविष्यमें भी सख्य रहे। ऐसा भाव मनमें रखना चाहिये। सुदृढ शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करनेवाला वीर हो ॥ ५ ॥

इन्द्र उत्तम शासकोंका निर्माण करनेवाला है, इसलिए उसकी सभी बुद्धिमान् स्तुति करते हैं। सब ऐश्वर्योंके प्राप्त होने पर भी उसकी उपासना नहीं छोडनी चाहिए। मनुष्य संकटकालमें तो प्रभुकी उपासना करता है, पर सुखके कालमें उसे भूल जाता है। पर यदि ऐश्वर्यके समयमें भी उस प्रभुकी उपासना मनुष्य करे, तो उस पर संकट आए ही न। इसलिए ऐश्वर्य प्राप्तिके कालमें भी वह उपासनीय है ॥ ६ ॥

वह शत्रुको विनम्र करनेके सामर्थ्यसे, यशसे, प्रतापसे, ऐश्वर्यसे, वीर्यसे सब मानवोंमें श्रेष्ठ होता है और बडे राजमहलमें रहने योग्य श्रेष्ठ होता है। श्रेष्ठ होनेके ये साधन हैं। यश, सामर्थ्य, ऐश्वर्य, वीर्य, शौर्यसे जो सबसे अधिक है वह सच्चा श्रेष्ठ है। ॥ ७ ॥

१९६ स यो न मुहे न मिथू जनो भूत् सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥ ८ ॥
१९७ उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राऽभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९ ॥
१९८ अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरयं ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद् दुरिता दम्भयच्च ॥ १० ॥

अर्थ— [१९६] (यः न मिथू जनः भूत्) जो मिथ्यावादी जनके समान भी नहीं होता । (स न मुहे) वह वीर कदापि मोहित नहीं होता, वह (सुमन्तु-नामा) उत्तम मननशील नामवाला वीर इन्द्र (चमुरिं धुनिं च) सर्व भक्षक, सबको हिलानेवाले (पिप्रुं शंबरं शुष्णं) सबका धन लेनेवाले, पानीको अपने आधीन करनेवाले तथा शोषक असुरोंके (पुरां चौत्न्याय शयथाय) नगरियोंका नाश करनेके लिये तथा शत्रुओंको मारनेके लिये (नू चित् वृणक्) निश्चयसे विनाशकर्ता होता है ॥ ८ ॥

१ न मिथू जनः भूत् सः न मुहे— जो वीर कदापि मिथ्यावादी जनके समान असत्यवादी नहीं होता वह वीर कदापि मोहित नहीं होता।

२ स सु-मन्तु-नामा— वह वीर मननीय यशसे युक्त होता है ।

३ सः पुरां च्यौत्न्याय शयथाय नू चित् वृणक्— वह वीर शत्रुओंकी नगरियोंको तोडने और शत्रुका नाश करनेके लिये सदा सिद्ध रहता है ।

[१९७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (उत्-अवता) उन्नतिकारक रक्षण करनेवाले (त्वक्षसा) शत्रुको क्षीण करनेवाले (पन्यसा) प्रशंसनीय बलसे युक्त तू (वृत्र-हत्याय) वृत्रका वध करनेके लिये (रथं तिष्ठ) अपने रथपर ठहर। (दक्षिणत्रा हस्ते) दक्षिण हाथमें (वज्रं आ धिष्व) वज्रको धारण कर । हे (पुरु-दत्र) बहुत धन देनेवाले वीर ! (मायाः अभि) शत्रुके कपट युद्धका सामना करके (प्र मन्द) उनका नाश कर ॥ ९ ॥

[१९८] (अग्निः न शुष्कं वनं) अग्नि जैसा शुष्क वनको जलाता है हे इन्द्र ! वैसा (हेतिः) तुम्हारा वज्र (भीमा अशनिः न) भयंकर बिजलीके समान (रक्षः नि धक्षि) राक्षसोंको जला देवे । (यः) जो वीर (गंभीरया ऋष्वया) गंभीर बडे वज्रसे (रुरोज) शत्रुका नाश करता है, (ध्वनयत्) गर्जना करता है और (दुरिता दम्भयत् च) और दुष्टोंको छिन्न भिन्न करता है ॥ १० ॥

भावार्थ— जो वीर मिथ्यावादी नहीं होता, या असत्यके मार्ग पर नहीं चलता, वह कभी भी मोहित नहीं है अर्थात् अज्ञानमें नहीं पडता। ऐसा वीर इन्द्रकी सहायता पाकर सर्व भक्षी, सबको हिलानेवाले, धनको लूंटनेवाले, जलको अपने पास ही इकट्ठा करके रखनेवाले तथा प्रजाओंका शोषण करनेवाले राक्षसोंको मारता है, उन्हें नष्ट करता है ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! उन्नति तथा रक्षण करनेवाले, शत्रुको क्षीण करनेवाले प्रशंसनीय बलसे युक्त होकर तू वृत्रका वध करनेके लिए अपने रथ पर प्रतिष्ठित हो, दायें हाथमें वज्रको धारण कर तथा शत्रुके कपट युद्धका सामना करके उसका नाश कर। शूरवीर तथा शक्तिशाली राजा प्रजाओंकी सुरक्षा करके उनकी उन्नति करे तथा स्वयं भी प्रशंसनीय बलसे युक्त हो। अपने रथ पर अच्छी तरह प्रतिष्ठित होकर तथा शस्त्रादिसे सम्पन्न होकर मायायुद्ध करनेवाले शत्रुओंका अच्छी तरह सामना करके उन्हें परास्त करे ॥ ९ ॥

जिस तरह अग्नि शुष्क वनोंको जलाता है, या बिजली गिरकर पदार्थोंका नाश करती है, उसी तरह तुम्हारा वज्र शत्रुका नाश करता है। इस रीतिसे तू दुष्टोंका नाश करता है ॥ १० ॥

१९९ आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चि- दर्देव ईशे पुरुहूत योतोः ॥ ११ ॥
२०० प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वे- र्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२ ॥
२०१ प्र तत् ते अद्या करणं कृतं भूत् कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षा- मुत् तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥ १३ ॥

अर्थ— [१९९] हे (तुवि-द्युम्न) बहुत धन वा तेजवाले (सहसः सूनो) बलके लिये प्रसिद्ध पुत्र ! हे इन्द्र ! (राया) धनसे युक्त तू (सहस्रं तुविवाजेभिः पथिभिः) सहस्रों प्रकारके बहुत बलवाले मार्गोंसे (अर्वाक् आ याहि) मेरे सन्मुख आ । हे (पुरु-हूत) बहुतोंद्वारा प्रार्थित इन्द्र ! (योतोः) धनको तुझसे पृथक् करनेके लिये (अ-देवः नू चित् ईशे) असुर समर्थ नहीं होता ॥ ११ ॥

[२००] (तुवि-द्युम्नस्य) अत्यंत तेजस्वी वा धनवान् (स्थविरस्य) श्रेष्ठ या बडा (घृष्वेः) शत्रुका निःपात करनेवाले इन्द्रकी (महिमा) महिमा (पृथिव्याः दिवः) पृथिवी और द्युलोकसे भी (प्र ररप्शे) बडी विशाल है। (पुरु-मायस्य शंयोः) बहुत प्रज्ञावाले और शान्ति और सुख देनेवाले (अस्य) इस वीरका (न शत्रुः) कोई शत्रु नहीं है, (न प्रतिमानं अस्ति) इसके समान कोई नहीं है (न प्रतिष्ठिः) न कोई इसको आश्रय है। यही सबका आश्रय है ॥ १२ ॥

१ तुवि-द्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेः महिमा पृथिव्याः दिवः प्र ररप्शे— तेजस्वी श्रेष्ठ शत्रुनाशक वीरकी महिमा पृथ्वीसे और द्युलोकसे भी बडी है।

२ पुरुमायस्य शंयोः शत्रुः न— बहुत प्रज्ञावान् और शत्रुनाशक वीरका कोई शत्रु नहीं होता।

३ पुरुमायस्य शंयोः प्रतिमानं न अस्ति— बहुत कुशल और शान्ति सुख, देनेवाले वीरके लिये तुलना नहीं है।

४ पुरुमायस्य शंयोः न प्रतिष्ठिः — उत्तम कुशल, सुख और शान्ति देनेवाले वीरोंको दूसरेके आश्रयकी जरूरत नहीं होती।

[२०१] (ते तत् कृतं करणं प्र भूत्) तेरा वह कार्य और तेरा साधन बडा प्रभावशाली हुआ है। (यत् कुत्सं आयुं अतिथिग्वं) जो तुमने कुत्स, आयु और अतिथिग्वकी सुरक्षा की और (अस्मै) इसके लिए (पुरु सहस्रा नि शिशाः) तूने बहुत सहस्रों प्रकारके धन दिये, (क्षां अभि) पृथिवीके उद्देश्यसे (धृषता) वज्रसे (तूर्वयाणं उत् निनेथ) त्वरासे गतिको उत्कर्षतक पहुंचाया ॥ १३ ॥

१ ते तत् कृतं करणं प्रभूत्— तेरा कार्य और साधन बडा प्रभावशाली है।

भावार्थ — यह इन्द्र बहुत धन और तेजवाला है तथा अपने बलके लिए प्रसिद्ध है। यह हजारों तरहके ऐश्वर्य लेकर हमारे पास आवे। यह सदा धनसे सम्पन्न रहता है और कोई भी असुर इसे ऐश्वर्यसे पृथक् नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

अत्यन्त तेजस्वी और अत्यन्त धनवान्, श्रेष्ठ और शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्रकी महिमा पृथिवी और द्युलोकसे भी विशाल है। यह बहुत ही बुद्धिमान् तथा अपने उपासकको शान्ति और सुख देनेवाला है, यह शत्रुरहित है अर्थात् यह सबसे मित्रताका व्यवहार करता है, इसलिए इसका कोई शत्रु नहीं है। यह इन्द्र किसीके आश्रयसे नहीं रहता अर्थात् इसे किसीके सहारेकी आवश्यकता नहीं होती, अपितु यही सबको सहारा देता है ॥ १२ ॥

इन्द्रके कार्य और उन कार्योंको करनेके साधन बहुत प्रभावशाली हैं। इस इन्द्रने कुत्स अर्थात् बुराईयोंको दूर करनेवाले, आयु अर्थात् मनुष्योंकी शक्ति बढाकर उनकी आयु बढानेवाले तथा अतिथिग्व अर्थात् अतिथियोंका आदर सत्कार करनेवाले मनुष्योंकी रक्षा की और उन्हें इसने अनेक तरहके धन दिए तथा पृथ्वीमें गति उत्पन्न करके उसकी उन्नति की ॥ १३ ॥

२०२ अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४ ॥

२०३ अनु द्यावापृथिवी तत् त ओजो ऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत् ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ १५ ॥

[१९]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२०४ महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत ॥ १ ॥

अर्थ— [२०२] हे (देव) प्रकाशमान् ! (त्वा अद्य विश्वे देवाः) तेरे साथ आज सब देव (अहि-घ्ने) अहिको मारनेवाले तेरे (अनु मदन्) अनुकूल रहकर आनंद करते हैं। (कवीनां कवितमं) ज्ञानियोंमें अत्यंत ज्ञानी तू है ऐसा वे मानते हैं। (यत्र) जिस समय (गृणानः) प्रशंसित होकर तूने (दिवे जनाय तन्वे) तेजस्वी मनुष्योंके तथा पुत्रके लिये (वरिवः करः) धन दान किया ॥ १४ ॥

[२०३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते तत् ओजः) तेरे उस प्रसिद्ध बलका (द्यावा-पृथिवी अनु जिहते) द्यौ और पृथिवी अनुसरण करते हैं। (अमर्त्याः देवाः) अमर देव तेरे बलका अनुसरण करते हैं। हे (कृत्नः) कर्म करनेवाले वीर ! (यत् ते अकृतं अस्ति) जो तेरा न किया कर्म है तू उसको (कृष्व) कर और (यज्ञैः नवीयः उक्थं जनयस्व) यज्ञोंके द्वारा नवीन स्तोत्र निर्माण कर ॥ १५ ॥

१ अमर्त्याः देवा ते तत् ओजः अनु जिहते— अमर देव तेरे उस सामर्थ्यका अनुसरण करते हैं।

२ हे कृत्नः ! यत् ते अकृतं अस्ति तत् कृष्व— हे पुरुषार्थी वीर ! जो तूने अबतक किया नहीं है वैसा पुरुषार्थ अब करके दिखा दे।

[१९]

[२०४] (नृवत्) नेताओं द्वारा परिवेष्टित (चर्षणिप्राः महान् इन्द्रः आ) प्रजाओंका पालन करनेवाला महान् इन्द्र हमारे पास आवे। (उत) और (द्विबर्हाः) दोनों लोकोंमें श्रेष्ठ (सहोभिः अ-मिनः) अनेक शक्तियोंके कारण अहिंसित वीर इन्द्र (अस्मद्र्यक् वीर्याय ववृधे) हमारे सन्मुख आकर वीरताके कर्म करके अपना सामर्थ्य बढाता है। (उरुः पृथुः) शरीरसे विस्तीर्ण और गुणोंसे श्रेष्ठ इन्द्र (कर्तृभिः सुकृतः भूत्) अपनी कर्तृत्व शक्तियोंके कारण सत्कृत होता है ॥ १ ॥

१ नृ-वत् चर्षणि-प्राः महान् इन्द्रः आ— जिसके पास नेता सदा उपस्थित रहते हैं, जो प्रजाजनोंका रक्षण-भरण-पोषण करता है, ऐसा महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र हमारे पास आवे और हमारा रक्षण-भरण-पोषण-संवर्धन करे।

२ पुरुः पृथुः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— वह शरीरसे बडा और गुणोंसे श्रेष्ठ होकर अपनी कर्तृत्वशक्तिके कारण सत्कार होने योग्य है। वह पुरुषार्थी लोगोंको अपने पास रखता है जो उसका सत्कार करते हैं। इस तरह उसका सामर्थ्य बढता जाता है।

भावार्थ— यह इन्द्र अहि नामक असुरको मारता है, इसलिए सब देव इसी इन्द्रके साथ रहते हैं और उसके अनुकूल व्यवहार करते हैं। यह ज्ञानियोंमें अत्यन्त ज्ञानी है। यह प्रशंसित होकर तेजस्वी मनुष्योंके लिए धन देता है। जो शासक या वीर अहि अर्थात् कुटिल शत्रुओंको मारता है, उसके साथ सारी प्रजायें रहकर उसको मदद करती हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रके बलके अनुकूल ही द्यु और पृथ्वीलोक चलते हैं। अमर देव भी इन्द्रके बलका ही अनुसरण करते हैं। इन्द्र सभी अपूर्ण कामोंको पूर्ण करता है ॥ १५ ॥

२०५ इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद् यो वावृधे असामि ॥ २ ॥
२०६ पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३ ॥
२०७ तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकै रिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित् पूर्वे जरितार आसु रनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४ ॥

अर्थ— [२०५] (धिषणा) हमारी बुद्धि (सातये बृहन्तं ऋष्वं) दानके लिये महान्, प्रगतिशील (अजरं युवानं) जरारहित, नित्यतरुण (अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं) असह्य बलसे सामर्थ्यवान् (इन्द्रं एव असामि धात्) इन्द्रको ही पूर्णतासे धारण करती है । (यः सद्यः चित्) जो इन्द्र तत्काल ही बढता है । अपना प्रभावी सामर्थ्य प्रकट करता है ॥ २ ॥

[२०६] हे इन्द्र ! (श्रवांसि) अन्न देनेके लिये (पृथू करस्ना) बडे कर्मोंको करनेमें कुशल (बहुला गभस्ती) बहुत दानशील अपने हाथ (अस्मद्र्यक् सं मिमीहि) हमारे सामने कर । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दमूनाः) शान्त मनवाले (पशुपाः पश्वः यूथा इव) पशुपालक जिस प्रकार पशुओंको प्रेरित करता है, उस प्रकार (आजौ अस्मान्) संग्राममें हमें (अभि आ ववृत्स्व) भी प्रेरित कर ॥ ३ ॥

१ श्रवांसि पृथू करस्ना गभस्ती— अन्नादिका विशेष दान करनेके लिये मनुष्यके पास हाथ दिये हैं ।

२ पशुपाः पश्वः यूथा इव— जिस तरह पशुरक्षक पशुओंके झुण्डोंको सुरक्षित रखता है, उसी तरह राजा प्रजाकी सुरक्षा करे ।

[२०७] (वाजयन्तः) बल बढानेकी इच्छा करनेवाले हम लोग (नूनं इह) निःसंदेह यहाँ (अस्य शाकैः) इसकी सब शक्तियोंके द्वारा (चतिनं तं इन्द्रं) शत्रुका नाश करनेवाले उस इन्द्रको (वः हुवेम) आपके लिये बुलाते हैं । (यथा चित्) जैसे (पूर्वे) पुरातन (जरितारः) स्तोता (अनेद्याः अनवद्याः) अनिन्द्य, पापरहित और (अरिष्टाः) अहिंसित (आसुः) हुए थे, उस प्रकार हे इन्द्र ! हम भी वैसे ही हों ॥ ४ ॥

१ यथाचित् पूर्वे अनेद्याः अनवद्याः अरिष्टाः आसुः—जिस तरह पूर्व समयके वीर अनिंदनीय, निष्पाप और अहिंसित हुए थे वैसे हम इस समय हों ।

भावार्थ— नेताओंसे युक्त तथा प्रजाओंका पालन करनेवाला महान् इन्द्र हमारे पास आवे तथा लोकोंमें श्रेष्ठ, अपने अप्रतिम सामर्थ्यके कारण किसीसे भी हिंसित न होनेवाला वीर इन्द्र हमारे पास आकर अपना सामर्थ्य बढावे । अपने शरीरसे सामर्थ्यशाली और गुणोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण ही इन्द्र सर्वत्र सत्कृत होता है । प्रजाओंका पालन करनेवाला वीर सामर्थ्यशाली होकर अजेय रहे तथा प्रजाओंके पास जाकर उनकी मददसे स्वयं सामर्थ्यशाली बने । मनुष्य सामर्थ्यशाली तथा अपने गुणोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण सर्वत्र सत्कृत होता है ॥ १ ॥

जो दान देनेमें महान्, प्रगतिशील, जरारहित, सदा तरुण तथा अत्यधिक सामर्थ्यवान् है, उसी इन्द्रकी उपासना हमारी बुद्धि करती है । मनुष्योंमें भी जो दानी, उन्नतिशील उत्साही तथा अत्यधिक सामर्थ्यशाली है, उसीकी स्तुति तथा प्रशंसा अन्य लोग भी करते हैं । वही इन्द्रके समान पूर्ण होता है तथा वह जब चाहे तब अपना सामर्थ्य प्रकट करनेमें समर्थ होता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! उत्तम कर्मोंको करनेमें कुशल तथा बहुत दान देनेवाले अपने कल्याणकारी हाथ हमारे सिरपर स्थापित कर । जिस प्रकार पशुपालक शान्त मनसे युक्त होकर पशुओंकी सुरक्षा करता है, उसी तरह तू संग्राममें हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

२०८ धृतव्र॑तो धन॒दाः सोम॑वृद्धः स हि वा॒मस्य॒ वसु॑नः पुरु॒क्षुः ।
सं ज॑ग्मिरे प॒थ्या॒३॒॑ रायो॑ अस्मिन् त्स॑मु॒द्रे न सिन्ध॑वो॒ याद॑मानाः ॥ ५ ॥

२०९ शवि॑ष्ठं न॒ आ भ॑र शूर॒ शव॒ ओजि॑ष्ठ॒मोजो॑ अभिभूत उ॒ग्रम् ।
विश्वा॑ द्यु॒म्ना वृष्ण्या॒ मानु॑षाणाम॒स्मभ्यं॑ दा हरिवो माद॒यध्यै॑ ॥ ६ ॥

२१० यस्ते॒ मदः॑ पृतना॒षाळमृ॑ध्र॒ इन्द्र॒ तं न॒ आ भ॑र शूशु॒वांस॑म् ।
येन॑ तो॒कस्य॒ तन॑यस्य सा॒तौ मं॑सी॒महि॑ जिगी॒वांस॒स्त्वोताः॑ ॥ ७ ॥

अर्थ— [२०८] (सः हि धृतव्रतः) निश्चयसे ही वह वीर व्रतका पालन करनेवाला (वामस्य वसुनः धनदाः) और प्रशंसनीय धनका दाता है । पुरुक्षुः सोमवृद्धः) वह बहुत अन्न देनेवाला और सोमरससे बढनेवाला है । (यादमानाः सिन्धवः समुद्रे न) जिस प्रकार भरपूर भरी हुई नदियां समुद्रमें जाकर मिलती हैं, उस प्रकार (अस्मिन् पथ्याः रायः सं जग्मिरे) इसके पास उत्तम मार्गसे प्राप्त किया हुआ धन इकट्ठा होता है ॥५॥

१ सः हि धृतव्रतः— वह वीर व्रतों तथा नियमोंका पालन करता है ।

२ पथ्याः रायः अस्मिन् सं जग्मिरे— सन्मार्गसे प्राप्त किये धन इस वीरके पास इकठे होते हैं ।

३ पथ्याः रायः— योग्य मार्गसे प्राप्त किये धन हों ।

[२०९] हे (शूर) शूरवीर ! (शविष्ठं शवः नः आ भर) अतिशय सामर्थ्यवान् शक्ति हमें दे । हे (अभिभूत) शत्रुओंका पराजय करनेवाले वीर ! (उग्रं ओजिष्ठं ओजः) असह्य प्रभावी सामर्थ्य हमें दे । हे (हरिवः) अश्ववाले ! (विश्वा वृष्ण्या द्युम्ना) सब बलशाली तेजस्वी धन (मानुषाणां) मनुष्योंके भोगके लिये योग्य, हमारा (मादयध्यै) आनन्द बढानेके लिये (अस्मभ्यं) हमें (दाः) दे ॥ ६ ॥

[२१०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पृतनाषाट् अमृध्रः) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला और विनष्ट न होनेवाला (यः ते मदः) जो तेरा हर्ष है, (शूशुवांसं तं) वह बढानेवाला हर्ष (नः) हमें (आ भर) दे । (त्वोता जिगीवांसः) तुमसे रक्षित, जीतनेकी इच्छावाले हम (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र और पौत्रकी प्राप्ति होनेपर (येन मंसीमहि) जिस हर्षसे आनन्दित होते हैं, वैसा हर्ष हमें प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थ— प्राचीन कालके स्तोता अनिन्द्य, पापरहित और अहिंसित थे, उसी प्रकार हम भी निन्दारहित, पापरहित और हिंसारहित हों, तथा शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्रको उसकी सब शक्तियोंके साथ अपनी उन्नतिके लिए हम बुलायें । हम प्रार्थना करें कि अपनी सब शक्तियोंके साथ इन्द्र हमारे पास आये और हमारी उन्नति करें ॥ ४ ॥

सभी वीर व्रत और नियमोंका पालन करनेवाले और उत्तम धनके दाता हों । जिस प्रकार सभी नदियोंका जल समुद्रमें जाकर इकठ्ठा होता है, उसी प्रकार सभी तरहकी धन सम्पत्तियां हमारे पास आकर इकठ्ठी हों ॥ ५ ॥

हे शूरवीर ! प्रभावी सामर्थ्य हमें भर दे । हमें प्राप्त हो । हे शत्रुका नाश करनेवाले वीर ! प्रभावी असह्य सामर्थ्य हमें प्राप्त हो । हे घोडेपर बैठनेवाले वीर ! सब प्रकारके प्रभावी बलशाली तेजस्वी धन मानवोंका आनन्द बढानेके कार्य करनेके लिये हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुमसे सुरक्षित होकर जीतनेकी इच्छा करनेवाले हम मनुष्य पुत्र, पौत्र या धनैश्वर्यके प्राप्त होने पर जो आनंद प्राप्त करते हैं उसके अलावा शत्रुको हरानेसे प्राप्त होनेवाला तथा अन्य तरहका भी जो आनन्द है, जो हमारी उन्नति करता है, वह हमें प्राप्त हो ॥ ७ ॥

×

२११ आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून् तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

२१२ आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चा—दोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वा—ङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥

२१३ नृवत् त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन् धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १० ॥

२१४ मरुत्वन्तं वृषभं वावृधान—मकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायो—ग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥

अर्थ— [२११] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वृषणं धनस्पृतं) बलवर्धक, धनदायक (शूशुवांसं सुदक्षं शुष्मं) बढनेवाला, उत्तम दक्षतायुक्त बल (नः) हमें (आ भर) दे । (तव ऊतिभिः) तेरी सुरक्षासे सुरक्षित होकर (पृतनासु) संग्रामोंमें (येन जामीन् उत अजामीन् शत्रून् वंसाम) जिस बलसे आत्मीय संबंधि और अपरिचित शत्रुओंका नाश करें ! वह बल भी हमें दे दो ॥ ८ ॥

[२१२] हे इन्द्र ! (ते वृषभः शुष्मः) तेरा सामर्थ्य बढानेवाला बल (अर्वाङ्) हमारे पास (पश्चात् आ उत्तरात् आ अधरात् आ पुरस्तात् आ एतु) पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और पूर्वकी ओरसे आवे । (विश्वतः) चारों ओरसे (अभि आ समेतु) हमारे पास आवे, हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्वर्वत् द्युम्नं अस्मे धेहि) सुखयुक्त धन हमको दे ॥ ९ ॥

१ विश्वतः वृषभः शुष्मः अर्वाङ् अभि आ समेतु— चारों ओरसे बल बढानेवाला सामर्थ्य हमारे पास एकत्रित होता रहे ।

२ स्वर्वत् द्युम्नं अस्मे धेहि— तेजस्वी धन हमें प्राप्त हो ।

[२१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नृवत्) वीरोंसे युक्त (श्रोमतेभिः) तथा यशोंसे युक्त (वामं) प्रशंसनीय धन (ते) तेरी (नृतमाभिः ऊती) अत्यन्त वीरतासे युक्त रक्षासे हम उपभोग करते हैं । हे (राजन्) राजमान् इन्द्र ! तू (हि उभयस्य) पार्थिव और दिव्य इन दोनों (वस्वः) धनोंका (ईक्षे) स्वामी है अतः (महि स्थूरं बृहन्तं रत्नं) बडा, विपुल और विशाल धन हमें (धाः) दे ॥ १० ॥

[२१४] (इह) यहाँ (नूतनाय अवसे) अभिनव रक्षाके लिये (मरुत्वंतं वृषभं) मरुतोंसे युक्त बलवान् (वावृधानं अकवारिं) वर्धमान, जिसके शत्रु बडे होते हैं ऐसे (दिव्यं शासं) दिव्य शासक (विश्वसाहं उग्रं सहोदां) सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले, उग्र, बलप्रद (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (हुवेम) बुलाते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— बलवर्धक, धनका दान करनेके लिये समर्थ, शक्तिको बढानेवाला, दक्षतायुक्त बल हमें प्राप्त हो ऐसा कर । धन ऐसा हो कि जिससे बल बढता जाय, धनका दान करनेका उत्साह बढे, सामर्थ्य बढता जाय, कार्य करनेमें जो दक्षता आवश्यक होती है वह मिले, इस तरहका बल हमें चाहिये । संरक्षणके साधनोंसे सुरक्षित होकर हम युद्धोंमें अपने आत्मसंबंधके शत्रुओंको अथवा जिनसे कोई संबंध नहीं ऐसे सर्वथा परकीय शत्रुओंको भी पराजित करेंगे । ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! सामर्थ्यको बढानेवाला तेरा बल हमारे पास पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और पूर्व दिशाकी ओरसे प्राप्त हो अर्थात् हम सभी ओरसे सुरक्षित रहें और तेजस्वी धन प्राप्त करें ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तेरी श्रेष्ठ वीरताओंके साथ रहनेवाले संरक्षक साधनोंसे संपन्न, वीरोंसे तथा यशोंसे युक्त उत्तम धन हमें प्राप्त हो । दोनों प्रकारके धनोंका तू स्वामी है । तेरे पास द्रव्य तथा पार्थिव धन है बडा, महान्, विशाल धन हमें दे ॥ १० ॥

२१५ जनं वज्रिन् महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२ ॥
२१६ वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत् स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥ १३ ॥

[२०]

[ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप्, ७ विराट् ।]

२१७ द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥

भावार्थ— [२१५] हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले वीर ! (येषु अस्मि) जिन मनुष्योंके बीचमें मैं एक हूं। (एभ्यः नृभ्यः) इन मनुष्योंमेंसे (महि मन्यमानं जनं) अपनेको ही सबसे श्रेष्ठ माननेवाले घमंडी मनुष्यको तू (रन्धय) नष्ट कर। (अध) अब हम (पृथिव्यां शूरसातौ) पृथिवीपर युद्ध होनेपर (तनये, गोषु अप्सु) पुत्र, पशु और उदक प्राप्तिके लिये (त्वा हवामहे) तेरेको बुलाते हैं ॥ १२ ॥

[२१६] हे ! (पुरुहूत) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (एभिः सख्यैः) इन शुभ कर्मोंके द्वारा, इन मित्रताओंके कार्योंसे (ते) तेरे साथ रहकर (वयं) हम (उभयानि वृत्राणि) दोनों प्रकारके शत्रुओंका (घ्नन्तः) नाश करते हुए (शत्रोः उत्तरे इत् स्याम्) शत्रुसे अधिक प्रबल होकर रहें। हे (शूर) शूरवीर ! (त्वोताः = त्वा + ऊताः) हम तेरे द्वारा सुरक्षित होकर (बृहता राया) महान् धनसे युक्त हों ॥ १३ ॥

१ एभिः सख्यैः, ते वयं, उभयानि वृत्राणि घ्नन्तः, शत्रोः उत्तरे इत् स्याम— इन मित्रताके शुभ कर्मोंको करते हुए, आन्तर और बाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश करके, शत्रुओंसे अधिक श्रेष्ठ, निःसन्देह हो जायेंगे।

[२०]

[२१७] हे (सहसः सूनो इन्द्र) बलके लिये प्रसिद्ध इन्द्र ! (यः रयिः) जो पुत्र (शवसा पृत्सु) अपने सामर्थ्यके कारण संग्रामोंमें (द्यौः न भूम) आकाशके समान विशाल होकर शत्रुपर आक्रमण करता है और (अर्यः जनान् अभिः तस्थौ) शत्रु जनोंसे सामना करता है, (सहस्रभरं) वह सहस्रों प्रकारका धन भर देनेवाला (उर्वरासां) भूमिको उपजाऊ करनेवाला (वृत्रतुरं) शत्रुओंका त्वरासे नाश करनेवाला है। (तं न दद्धि) वैसा पुत्र हमें दे दो ॥ १ ॥

भावार्थ— अभी नया संरक्षण प्राप्त करनेके लिये, वीर सैनिकोंके साथ रहनेवाले, स्वयं बलवान्, अपनी शक्तियों-को बढानेवाले, सामर्थ्यवान् शत्रुओंसे लडनेवाले, दिव्य शासक, सब शत्रुओंका पराभव करनेवाले, बल बढानेवाले, उग्रवीर इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ११ ॥

जिनमें मैं रहता हूं उन मनुष्योंमें रहकर, केवल अपने आपको ही अत्यन्त श्रेष्ठ मानकर, सब दूसरोंको जो हीन मानता है, ऐसे घमंडी मनुष्यको तू दूर कर। क्योंकि ऐसे घमंडीके कारण ही जगत्में स्पर्धा, युद्ध तथा घातपात होते हैं। इस कारण घमंडीको दूर करना योग्य है। इस पृथिवीपर जिस समय युद्ध शुरू होते हैं, उस समय पुत्रोंकी सुरक्षाके लिये गौओंकी समृद्धि करनेके लिये और पर्याप्त जल प्राप्त होनेके लिये हम ईश्वरकी सहायता प्राप्त करना चाहते हैं। पुत्रोंकी सुरक्षा, वंशकी सुरक्षाके लिये, गौओंकी सुरक्षा, खेतीके सुधार द्वारा अन्न उत्पन्न करनेके लिये, तथा पोषणके लिये और जलकी प्राप्ति सुखसे होनेके लिये प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करनी आवश्यक होती है ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! शुभ कर्मोंको करके तथा तेरे साथ मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करके हम अन्दर तथा बाहर दोनों तरहके शत्रुओंको नष्ट करके शत्रुसे अधिक सामर्थ्यशाली हों तथा तेरे द्वारा सुरक्षित होकर हम महान् धनसे युक्त हों ॥ १३ ॥

२१८ दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रा ऽसुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद् वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन् विष्णुना सचानः ॥ २ ॥
२१९ तूर्वन्नोजीयान् तवसस्तवीयान् कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत् पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३ ॥
२२० शतैरपद्रन् पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत् किं चन प्र ॥ ४ ॥

अर्थ— [२१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दिवः न) आकाशकी तरह (तुभ्यं सत्रा विश्वं असुर्यं) तुम्हारे साथ सब प्रकारका सामर्थ्य रहता है। हे (ऋजीषिन्) शत्रुको पकडनेवाले या सोम पीनेवाले इन्द्र ! (विष्णुना सचानः) विष्णुके साथ रहकर (यत्) इसी बलसे (अपः वव्रिवांसं) जलोंको रोकनेवाले, (अहिं वृत्रं) बढनेवाले और घेरनेवाले शत्रुको तूने (हन्) मारा ॥ २ ॥

१ दिवः न तुभ्यं सत्रा विश्वं असुर्यं— आकाशके समान विशाल अनेक सामर्थ्य प्रभुके पास हैं।
' असु-र्य '— असु नाम प्राणशक्तिका है, उसका जो सामर्थ्य है वह ' असुर्य ' कहलाता है।

[२१९] (यत्) जब (इन्द्रः) इन्द्रने (विश्वासां पुरां) शत्रुकी सब पुरियोंको, सब नागरिक किलोंको (दर्त्नुं) नाश करनेवाला वज्र (आवत्) प्राप्त किया, तब (तूर्वन् ओजीयान्) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला, अतिशय ओजस्वी (तवसः तवीयान्) बलवान्‌से भी अत्यन्त बलवान् (कृतब्रह्मा वृद्धमहाः) स्तोत्र जिसके बनाये जाते हैं। विशेष तेजवाला वह इन्द्र (सोम्यस्य मधुनः) सोमके मधुररसका (राजा अभवत्) राजा हुआ। स्वामी हुआ। सोमरस देने योग्य हुआ ॥ ३ ॥

[२२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अत्र अर्कसातौ) इस अन्न प्राप्तिके युद्धमें (दशोणये कवये) सोमके दस पात्र तैयार करनेवाले, कविसे डरनेवाले (पणयः) असुर लोग (शतैः अपद्रन्) सैकडों अनुयायियोंके साथ भाग गये। (अशुषस्य शुष्णस्य मायाः) अशुष्क अर्थात् बलवान् शुष्ण नामक शोषक शत्रुके कपटोंका नाश करनेके (वधैः) आयुधोंसे (पित्वः किं चन न प्र अरिरेचीत्) अन्नका थोडा भी भाग वहां रहने न दिया, शत्रुका सब अन्न हरण कर लिया ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो पुत्र अपने सामर्थ्यके कारण, युद्धोंमें निःसन्देह विजय प्राप्त करता है, और द्युलोकके समान विशाल सामर्थ्यवाला होता है। जो अपने बलके कारण शत्रुके सैनिकोंपर आक्रमण करता है। उस सहस्रों प्रकारके धन लाकर घरमें भरनेवाले, भूमिको उपजाऊ बनानेवाले, घेरनेवाले शत्रुको त्वरासे नष्टभ्रष्ट करनेवाले, शूरवीर पुत्रको हमें दे दो। ऐसा पुत्र हमें हो। उक्त लक्षणोंवाला पुत्र ही सच्चा धन है, सच्चा ऐश्वर्य और वैभव है ॥ १ ॥

इस इन्द्रके पास प्राणोंको बल देनेवाली शक्ति है। उसका सामर्थ्य असुर्य अर्थात् प्राणोंको बलवान् बनानेवाला है। ऐसा बलशाली इन्द्र विष्णुके साथ मिलकर जलोंको रोकनेवाले असुरको मारता है ॥ २ ॥

इन्द्रने शत्रुके किलोंको तोडनेवाला वज्र जब हाथमें लिया, तब शत्रुनाशक, बलवान्, सामर्थ्यवानोंमें विशेष शक्तिमान्, जिसके लिये स्तोत्र गाये जाते हैं और जिसका यश बडा है ऐसा इन्द्र सोमरसका स्वामी हुआ। जो शक्तिमान् है, जो शत्रुके किलोंको तोडता है, जिसके काव्य गाये जाते हैं, उसको मीठा सोमरस प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इस अन्न प्राप्ति करनेके लिये चलाये युद्धमें, जो सोमरसके दस कलश भरकर रखता है ऐसे बुद्धिमान् कविसे पणि नामक शत्रु डरते हैं और अपने सैकडों अनुयायियोंके साथ वहांसे वे भाग जाते हैं। जहाँ सोमरस इन्द्रके लिये तैयार करनेवाले होते हैं, वहाँ इन्द्र आता है, इसलिये वे इन्द्रसे डरते हैं। अशुष्क अर्थात् हरसाली बलवाले शक्तिमान् असुर शत्रुके कपट प्रयोगोंको हटानेके लिये, प्रयुक्त किये घातक शस्त्रोंसे, इन शत्रुओंका वध किया और उनका अन्न कुछ भी वहाँ रहने नहीं दिया। शत्रुको मारा और उसके पासका सब अन्न छीना गया ॥ ४ ॥

२२१ महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत् पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ ॥
२२२ प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥
२२३ वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन् तद् रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥
२२४ स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८ ॥

अर्थ — २२१] (यत्) जब (शुष्णः) शुष्ण नामका असुर (वज्रस्य पतने) वज्रके गिरनेसे (पादि) मृत्युको प्राप्त हुआ। तब जिसने (महः द्रुहः) उस महान् द्रोह करनेवाले शत्रुके (विश्वायुः) संपूर्ण बलको (अप धायि) परास्त किया। (सः इन्द्रः) उस इन्द्रने (सारथये कुत्साय) कुत्स सारथिको (सरथं) अपने रथपर लेकर (सूर्यस्य सातौ) सूर्यके प्रकाशमें उसको (उरु कः) विशेष सामर्थ्यवान् बना दिया ॥ ५ ॥

[२२२] जब इन्द्रने (दासस्य नमुचेः) दुष्ट नमुचिके (शिरः) सिरको (मथायन्) काटा और (ससन्तं साप्यं नमीं) सोनेवाले साप्य नमीकी (प्रावत्) रक्षा की, तब उस इन्द्रने (स्वस्ति राया इषा सं पृणक्) कल्याण करनेके लिये उसे धन और अन्न भर दिया, तब उसने (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान (अस्मै) उस इन्द्रको (मदिरं अंशुं) आनन्द देनेवाले सोमरसको (प्र) प्रदान किया ॥ ६ ॥

[२२३] हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तूने (अहिमायस्य पिप्रोः) भयंकर मायाजाल फैलानेवाले पिप्रु राक्षसके (दृळ्हाः पुरः) बलवान् दुर्गोंको (शवसा) अपने बलसे (वि दर्दः) विदीर्ण किया, नष्ट किया, तोड दिया। हे (सुदामन्) सुन्दर दान देनेवाले वीर ! तूने ही ((दात्रं) दान (दाशुषे ऋजिश्वने) देनेवाले ऋजिश्वाको (अप्रमृष्यं तत् रेक्णः) अजिक्य वह धन (दाः) दिया ॥ ७ ॥

[२२४] (स्वभिष्टिसुम्नः सः इन्द्रः) इच्छित सुख देनेवाले उस इन्द्रने (दशमायं वेतसुं, दशोणिं, तूतुजिं तुग्रं इभं) कपटी वेतसु, दशोणि, तूतुजि, तुग्र और इभ नामक दुष्टोंको (द्योतनाय) द्योतन नामक वीरके पास (शश्वत्) निरन्तर (इयध्यै) जानेके लिये उस प्रकार (उप आ सृज) वश किया, जिस प्रकार (मातुः न) माता पुत्रको वशमें करती है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब शुष्ण शोषक शत्रुका वज्रपातसे वध हुआ, तब बडे द्रोही उस शुष्णके सब सैन्यका वीरने पराभव किया। उस इन्द्रने कुत्स नामक सारथिको अपने रथपर लेकर सूर्य प्रकाशमें उसे लाकर विशेष बलशाली बना दिया। इन्द्रने अपने वज्रसे शुष्ण नामक शोषक शत्रुको मारा, उसकी सेनाको परास्त किया, भगा दिया। उस समय इन्द्रका सारथि कुत्स था, उसको अपने पास रथमें लेकर सूर्यके प्रकाशमें उसे लाकर, हृष्टपुष्ट तथा बलवान् किया ॥ ५ ॥

इन्द्रने दुष्ट नमुचिके सिरको काटा, तथा असावधान या असुरक्षित विनम्रतासे पूर्ण योग्य मनुष्यकी रक्षा की और उसे उसका कल्याण करनेके लिए धन और अन्न भरपूर दिया, तब उस योग्य मनुष्यने प्रसन्न होकर इन्द्रका सत्कार किया ॥ ६ ॥

हे वज्रधारी वीर ! तूने कपटी मायाजाल फैलानेवाले पिप्रु राक्षसके सुदृढ किलोंको अपने बलसे तोड दिया। हे दान देनेवाले वीर ! तूने दान देनेवाले ऋजिश्वा अर्थात् सरल मार्गसे जानेवाले ऋषिको अजिक्य धन दिया। जो धन शत्रु लूट नहीं सकता ऐसा धन तूने दिया था। अर्थात् धन भी दिया और उसके साथ संरक्षणका सामर्थ्य भी दिया। ॥ ७ ॥

२२५ स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद् वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९ ॥
२२६ सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्द — र्द्धन् दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १० ॥
२२७ त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भू — र्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११ ॥

अर्थ—[२२५] (गभस्तौ) हाथमें (वृत्रहणं वज्रं) शत्रुओंका नाश करनेवाले वज्रको (बिभ्रत्) धारण करनेवाला (अप्रतीत सः) अपराजित ऐसा वह इन्द्र (स्पृधः ईं) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका (वनते) नाश करता है । (अस्ता इव गर्ते) शूर जिस प्रकार रथपर आरूढ होता है उस प्रकार (हरी अधि तिष्ठत्) वह अपने अश्वोंवाले रथ पर आरूढ होता है । (वचोयुजा ऋष्वं इन्द्रं वहतः) वे अश्व वचनमात्रसे जोते जाकर सामर्थ्यवान् इन्द्रको इष्ट स्थानपर ले जाते हैं ॥ ९ ॥

[२२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते अवसा) तेरे रक्षणसे हम सुरक्षित होकर (नव्यः सनेम) अपूर्व धनका उपभोग करें । (पूरवः) सब मनुष्य (एना यज्ञैः) इन स्तोत्रोंसे प्रभुकी (प्र स्तवन्ते) स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! (यत्) जब (दासीः) शत्रुकी प्रजाका तू (दर्द्धन्) नाश करता है, तब (पुरुकुत्साय शिक्षन्) पुरुकुत्सको धन देता है । और (शारदीः सप्त पुरः) हिंसक शत्रुकी सात पुरियोंको (शर्म दर्त) वज्रसे विदारित करता है ॥ १० ॥

[२२७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं पूर्व्यः) तू पुराणपुरुष है, (काव्याय उशने) कविपुत्र उशनाको (वरिवस्यन्) धन देकर उसका तूने (वृधः भूः) उत्कर्ष किया । (स्वं न-पातं नववास्त्वं अनुदेयं) अपने न गिरनेवाले अर्थात् पक्के देने योग्य नवीन घरको (महे पित्रे) महान् पिताके पास (परा ददाथ) वापस लौटा दिया ॥ ११ ॥

भावार्थ— इष्ट सुख देनेवाला उस इन्द्रने अनेक कपटजाल फैलानेवाले, वेतसु आदि असुरोंको द्योतमान राजाके पास जानेके लिये और उसके आधीन सतत रहनेके लिये उसी तरह वशमें किया, जिस तरह माता पुत्रको वशमें करती है ॥ ८ ॥

इन्द्र हाथमें शत्रुका वध करनेके लिये वज्र धारण करता है । वह इन्द्र पीछे न हटता हुआ सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश करता है । शत्रुपर अस्त्र फेंकनेवाला वीर रथमें घोडे जोते जानेपर उस रथपर चढता है । वीर अपने रथमें चढकर बैठे और शत्रुका नाश करनेके लिये यत्न करे । शत्रुका संकेत होते ही अपने स्थानपर जाकर रहनेवाले, और इशारेसे चलनेवाले घोडे महान् शूर इन्द्रको—इन्द्रके रथको इष्ट स्थानपर पहुंचा देते हैं ॥ ९ ॥

हे प्रभो ! तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित होकर अपूर्व धन प्राप्त करें और उसका भोग लें । पुरवासी नागरिक लोग यज्ञोंसे इन देवताओंकी स्तुति करते हैं, प्रसन्नता संपादन करते हैं । शत्रुकी सेनाको हमारे वीर नष्ट-भ्रष्ट करते हैं । पूर्वोक्त प्रकार यज्ञोंसे संगठित होकर, सामर्थ्य प्राप्त करके वे शत्रुका नाश करते हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू पुराण पुरुष है, तू सबका प्राचीन गुरु है । इसलिये तूने ज्ञानी तथा ज्ञान प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेको धन देकर उसका उत्कर्ष किया । तूने ही नये जन्मे हुए पुत्रको उसके पिताके पास पहुंचाया । इस मंत्रके उत्तरार्धमें दत्तकका विधान प्रतीत होता है । जो अपने नये जन्मे बच्चेका उचित रीतिसे पालन पोषण न कर सके, वह अपने बच्चेको (महे पित्रे) जो महान् पालक हो अर्थात् जो उसका पालन पोषण अच्छी तरह कर सके, उसे दे दे । ऐसे बालकको दत्तक दिलवानेके लिए राजा समुचित व्यवस्था करे ॥ ११ ॥

२२८ त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत् समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२ ॥

२२९ तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित् तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन् दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥ १३ ॥

[२१]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः; ९, ११ विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२३० इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १ ॥

अर्थ— [२२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धुनिः) शत्रुओंको कंपानेवाला (त्वं) तू (धुनिमतीः अपः) कडनेवाले पानीको (सीरा न स्रवन्तीः ऋणोः) नदीकी तरह बहा । हे (शूर) शूरवीर ! (यत्) जब (समुद्रं अति) समुद्रको अतिक्रमण करके तू (प्र पर्षि) पार होता है, तब (तुर्वशं यदुं) तुर्वश और यदुको (स्वस्ति पारय) कल्याणपूर्वक पार करा दो ॥ १२ ॥

[२२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आजौ) संग्राममें (तव ह) तेरा ही (विश्वं त्यत्) सब कार्य होता है। (या धुनीचुमुरी) जो धुनी और चुमुरीको (सिष्वप् सस्तः) संग्राममें तूने सुलाया अर्थात् मार डाला । हे इन्द्र ! (तुभ्यं) तेरे लिये (सुन्वन्) सोमरस निकालनेवाले और (पक्थी) अन्नको पकानेवाले, (इध्मभृतिः) समिधाओंको लानेवाले (दभीतिः सोमेभिः अर्कैः) दभीतिने सोमरससे और स्तोत्रोंसे तेरा (दीदयत् इत्) सत्कार किया है । ॥ १३ ॥

[२१]

[२३०] हे (वीर) शूर इन्द्र ! (पुरुतमस्य कारोः) बहुत कार्य करनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवालेकी (इमाः हव्याः धियः) ये प्रशंसनीय बुद्धियाँ (हव्यं) प्रार्थनाके योग्य (रथे-स्थां अजरं नवीयः) रथपर बैठे हुए, जरारहित, अत्यन्त तरुण ऐसे (त्वा हवन्ते) तुझको बुलाती हैं । कारण कि, (वचस्या वि-भूतिः रयिः) वर्णनीय विशेष श्रेष्ठ ऐश्वर्य तेरी आज्ञासे ही (ईयते) प्राप्त होता है । ॥ १

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू शत्रुओंको कंपाता है तथा तू ही पानीसे भरकर नदियोंको बहाता है । तू ही संयमशील और प्रयत्नशील लोगोंको हर संकटोंसे पार करता है ॥ १२ ॥

यह इन्द्र धुनि अर्थात् हिलानेवाले अथवा उपद्रव करके प्रजाओंको कष्ट देनेवाले तथा चुमुरिः अर्थात् स्वयं ही सब कुछ भक्षण कर जाने वाले दुष्टोंको मारता है, पर जो दभीति अर्थात् किसीसे न दबने वाला शूरवीर इसके लिए सोमरस निकालता है, अन्न पकाता है और समिधा आदि लाकर इसकी अच्छी तरह सेवा करता है, उसकी यह रक्षा करता है । ॥ १३ ॥

हे शूरवीर ! बहुत शुभ कर्म करनेकी इच्छा करनेवाले कुशल कर्मचारी – क्रान्तदर्शीकी – प्रशंसनीय बुद्धियोंसे यत्नपूर्वक किये ये काव्य वर्णनीय रथमें बैठे हुए जरारहित तुझ तरुण वीरको अपने सहायार्थ अपने पास लानेके लिये गाये जा रहे हैं । इनको श्रवण करके तू यहाँ आ और हमारा सहायक हो । वर्णनीय वैभवयुक्त ऐश्वर्य तेरी प्रेरणासे ही प्राप्त होता है, इस लिये सब कवि तेरी प्रार्थना करते हैं । ॥ १ ॥

२३१ तमु॑ स्तुष॒ इन्द्रं॒ यो विदा॑नो॒ गिर्वा॑हसं गी॒र्भिर्य॒ज्ञवृ॑द्धम् ।
यस्य॒ दिव॒मति॑ म॒ह्ना पृ॑थि॒व्याः पु॑रु॒माय॑स्य रिरि॒चे म॑हि॒त्वम् ॥ २ ॥

२३२ स इत् तमो॑ऽव॒युनं॑ तत॒न्वत् सूर्ये॑ण व॒युन॑वच्चकार ।
क॒दा ते॒ मर्ता॑ अ॒मृत॑स्य॒ धामेय॑क्षन्तो॒ न मि॑नन्ति स्वधावः ॥ ३ ॥

२३३ यस्ता च॒कार॒ स कुह॒ स्वि॑दिन्द्रः॒ कमा जनं॑ चरति॒ कासु॑ वि॒क्षु ।
कस्ते॑ य॒ज्ञो मन॑से॒ शं वरा॑य॒ को अ॒र्क इ॑न्द्र कत॒मः स होता॑ ॥ ४ ॥

अर्थ— [२३१] (यः विदानः) जो सर्वज्ञ है, उस (गिर्वाहसं यज्ञप्रवृद्धं) वाणियों द्वारा वर्णनीय और यज्ञोंसे जिसका यश बढता है, (तं उ इन्द्रं) उस इन्द्रकी (स्तुषे) मैं स्तुति[१] करता हूँ । (पुरुमायस्य) बहुत बुद्धिमान् (यस्य) इस इन्द्रकी (महित्वं) महिमा (दिवं पृथिव्याः) द्युलोक और पृथिवीके (मह्ना) विस्तारसे (अति रिरिचे) बहुत ही विस्तीर्ण है ॥ २ ॥

[२३२] (सः इत्) उस इन्द्रने (अ-वयुनं) अज्ञानमय (ततन्वत् तमः) फैले हुए अन्धकारको (सूर्येण) सूर्यके प्रकाशसे (वयुनवत् चकार) प्रकाशमय किया । हे (स्वधावः) अपनी विश्वधारक शक्तिसे युक्त इन्द्र ! (मर्ताः) मनुष्य (अमृतस्य ते धाम) तेरे अमरस्थानको (इयक्षन्तः कदा न मिनन्ति) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेके कारण कभी भी नष्ट नहीं करते हैं । उसको बढाते रहते हैं ॥ ३ ॥

१ इयक्षन्तः मर्ताः ते अमृतस्य धाम कदा न मिनन्ति— यज्ञ करनेवाले मनुष्य प्रभुके धामका नाश नहीं करते । वे प्रभुके यशका संवर्धन करते हैं ।

[२३३] (यः ता चकार) जिसने वे कर्म किये, (सः इन्द्रः कुह स्वित्) वह इन्द्र इस समय कहाँ है ? (कं जनं, कासु विक्षु आचरति) किस लोकमें और किन प्रजाओंके बीच वह घूमता है ? हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कः यज्ञः ते मनसे शं) कौनसा यज्ञ तेरे मनको सुख देता है ? (वराय कः अर्कः) तेरे वरणके लिये कौनसा मन्त्र समर्थ है ? (होता सः कतमः) कौनसा वह होता है कि जो तुझे बुलानेमें समर्थ है ॥ ४ ॥

भावार्थ— अपनी वाणी द्वारा उस प्रभुका ही वर्णन होने योग्य है, वह प्रभु प्रशस्त यज्ञकर्म करनेसे प्रसन्न होता है । श्रेष्ठोंका सत्कार, आपसकी संघटना और दीनोंका उद्धार जिससे होता है वह प्रशस्त यज्ञ कर्म है, इससे प्रभुका यश बढता है । जिससे वह प्रसन्न होता है । इस श्रेष्ठ बुद्धिमान् कर्ममें कुशल प्रभुकी महिमा द्युलोक और भूलोकके विस्तारसे भी बहुत ही बडी विस्तृत है ॥ २ ॥

जिसमें मार्गका पता नहीं चलता, ऐसे गाढ अन्धकारको सूर्यके प्रकाश द्वारा इसी इन्द्रने दूर किया । जो मनुष्य यज्ञ करते हैं, वे इस इन्द्रके अमर स्थान कभी भी नष्ट नहीं करते तथा इस इन्द्रकी उपासनासे वे अपनी धारणा शक्तिको बढाते हैं ॥ ३ ॥

इस संसारमें जो गति हो रही है, सभी पदार्थ जो अपना अपना कार्य कर रहे हैं, वे सब कर्म इसी ईश्वरके हैं, पर वह ईश्वर स्वयं कहां है, यह नहीं पता चलता । वह स्वयं अज्ञात रहकर यह सब कुछ कार्य कर रहा है । वह कहां और किस स्थान पर रहता है और किन प्रजाओंमें रहता है, यह सभी कुछ अज्ञात है । इसलिए कौन सा काम ईश्वरको प्रसन्न कर सकता है, यह भी अज्ञात ही है तथा किस मंत्र या ज्ञानसे उसका वरण किया जा सकता है, यह भी अज्ञेय है । पर जो इस ज्ञानको जान लेता है, वह इस ईश्वरको प्राप्त करनेमें सफल हो जाता है ॥ ४ ॥

२३४ इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत् सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ ॥

२३५ तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात् त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥

२३६ अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत् सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥

अर्थ— [२३४] हे (पुरु - कृत्) बहुत कार्य करनेवाले ! हे (पुरु - हूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित ! (पुराजाः प्रत्नासः) पूर्व कालमें उत्पन्न प्राचीन तथा (इदा हि) इस समयके (वेविषतः ते सखायः आसुः) तेरी उपासना करनेवाले तेरे मित्र बनकर रहे थे, वे भक्त तथा (ये मध्यमासः उत नूतनासः) जो मध्यकालके और जो नवीन हैं (उत अवमस्य) और जो उनका नवीन स्तोत्र है उसको (बोधि) तुम जानो ॥ ५ ॥

[२३५] हे (वीर) शूरवीर ! (ब्रह्मवाहः इन्द्र) मन्त्रोंसे वर्णित इन्द्र ! (अवरासः तं पृच्छन्तः) आधुनिक मनुष्य तुझे पूछते हुए (ते पराणि प्रत्ना श्रुत्या) तेरे श्रेष्ठ पुराने पराक्रमोंको श्रुतिमें (अनु येमुः) प्रथित करते हैं, वर्णन करते हैं । (महान्तं त्वा अर्चामसि) हम तुझ महान्की पूजा करते हैं और (यात् एव विद्म तात्) जितना हम जानते हैं उतनेसे तुम्हारा सत्कार करते हैं ॥ ६ ॥

१ अवरासः तं पृच्छन्तः— छोटे लोग उसके गुण पूछते हैं, प्रभुके गुण जानना चाहते हैं ।
२ ते पराणि प्रत्ना श्रुत्या अनु येमुः— तेरे श्रेष्ठ पुरातन कर्मोंका वर्णन सुनते हैं और तदनुसार वर्णन करते हैं ।
३ त्वा महान्तं अर्चामसि— तुझ जैसे महान्की हम पूजा करते हैं ।
४ यात् एव विद्म तात् अर्चामसि— जितना हमें विदित है उतना हम आपका आदर करते हैं ।

[२३६] हे इन्द्र ! (रक्षसः पाजः) राक्षसोंका बल (त्वा अभि वि तस्थे) तेरे सामने चारों ओर बढ रहा है, (महि जज्ञानं तत् अभि सु तिष्ठ) तू भी शत्रुके उस बडे बलको जानकर उसका प्रतिकार कर । हे (धृष्णो) शत्रुओंका घर्षण करनेवाले इन्द्र ! (तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण) तेरे पुराने सुयोग्य, मित्रसहायक वज्रसे (ता अप नुदस्व) उस शत्रुसेनाको दूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे बहुत कर्मोंको करनेवाले और बहुत द्वारा प्रार्थित प्रभो ! मनुष्य बहुत उत्तम कर्म करें और अनेकोंकी प्रशंसा प्राप्त करे । प्राचीन पूर्वज, अब जो तेरी सेवा मित्र बनकर कर रहे हैं, जो मध्यकालके तथा जो नवीन हैं, उन सबके स्तोत्र तू सुन । ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जो छोटे अर्थात् तेरे पराक्रम एवं गुणोंसे अभी अपरिचित ही हैं, वे तेरे गुण जानना चाहते हैं । वे तेरे श्रेष्ठ पुरातन कर्मोंका वर्णन सुनते हैं और तदनुसार वर्णन करते हैं । हम भी तुझ जैसे महान्की पूजा करते हैं तथा तेरे जितने गुण हमें विदित हैं उतना हम आपका आदर करते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! असुरोंका बल तेरे चारों ओर बढ रहा है अतः तू भी उनका अच्छी तरह प्रतिकार कर, तथा अपने श्रेष्ठ, बलशाली वज्रसे उस शत्रुसेनाको दूर कर ॥ ७ ॥

×

२३७ स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥
२३८ प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥ ९ ॥
२३९ इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥ १० ॥
२४० नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

अर्थ— [२३७] हे (कारुधायः वीर इन्द्र) कविको धारण करनेवाले, वीर इन्द्र ! (सः) वह तू (नूतनस्य ब्रह्मण्यतः) इस नवीन ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवालेका कथन (तु श्रुधि) श्रवण कर। (त्वं इष्टौ आ सुहवः) तू यज्ञमें सहज ही से बुलाने योग्य है। और (प्रदिवि पितॄणां आपिः) हमारे पूर्व पितरोंका तू बन्धु होकर (शश्वत् बभूथ) चिरकाल तक रहा था। इसलिये तू इन स्तोत्रोंको सुन ॥ ८ ॥

[२३८] हे इन्द्र ! (अद्य) आज (वरुणं, मित्रं, इन्द्रं, मरुतः) वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत, (पूषणं, विष्णुं, पुरंधिं, अग्निं, सवितारं, ओषधीः च पर्वतान्) पूषा, विष्णु, पुरंधी, अग्नि, सविता, औषधियाँ और पर्वतादि देवोंको (नः ऊतये अवसे) हमारी सुरक्षाके लिये तथा प्रगतिके लिये सहायक (प्रकृष्व) करो ॥ ९ ॥

[२३९] हे (पुरु-शाक-प्र-यज्यो) बहुत शक्तिमान्, उत्कृष्ट यजमानीय इन्द्र ! (त्वा इमे जरितारः) तेरी ये स्तोता लोग (अर्कैः अभ्यर्चन्ति) स्तोत्रोंसे अर्चना करते हैं। हे (अमृत) अमर ! (हुवानः) प्रशंसित होकर तू (आ हुवतः हवं श्रुधि) स्तुति करनेवालेके स्तोत्रको सुन। (त्वावान् त्वत् अन्यः न अस्ति) तेरे समान तेरेसे भिन्न दूसरा कोई नहीं है ॥ १० ॥

[२४०] हे (सहसः सुनो) बलपुत्र इन्द्र ! (विद्वान्) तू सर्वज्ञ है इसलिये (विश्वेभिः यजत्रैः) सब यजनीय देवताओंके साथ (नु मे उप आ याहि) शीघ्र मेरे पास आ। (ये अग्नि-जिह्वाः ऋत-सापः आसुः) जो अग्नि रूप जिह्वावाले अर्थात् ज्ञानी हैं तथा जो सत्यके उपासक हैं, और (ये दसाय) जिन्होंने शत्रुओंका नाश करनेके लिये (मनुं) मननशील वीरको (उपरं चक्रुः तेः) ऊपर निर्माण करके रख दिया था, उनके साथ भी आ। ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानको धारण करनेवाले तथा ज्ञानीयोंका भरण पोषण करनेवाले इन्द्र ! तू ज्ञानीकी प्रार्थना सुन। तू यज्ञमें आसानीसे बुलाये जाने योग्य है। तू हमारा तथा पूर्वजोंका भी पालन करनेवाला है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तू वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत, अग्नि, सविता आदि देवोंको हमारी सुरक्षा करनेके लिए प्रेरित कर, ताकि हम अपनी उन्नति कर सके ॥ ९ ॥

हे अत्यन्त शक्तिशाली इन्द्र ! ये स्तोतागण तेरी स्तुति करते हैं अतः तू प्रसन्न होकर इन स्तुतियोंको सुन। तेरे समान तेरे अलावा और कोई नहीं है ॥ १० ॥

हे बलके लिये प्रसिद्ध वीर ! तू सब जानता है, इसलिये सब पूजनीय ज्ञानियोंके साथ मेरे पास आ। बलवान् और ज्ञानियोंके साथ मेरे सहायक हों। जो अग्निके समान तेजस्वी जिह्वावाले हैं अर्थात् उत्तम ज्ञानी वक्ता हैं और सनातन सत्य कर्मका ही जो आचरण करते हैं, तथा जिन्होंने दस्युओंका नाश करनेके लिये मननशील वीरको निर्माण करके शासकके स्थानपर बिठला दिया, उनके साथ तू मेरे पास आ। उत्तम ज्ञानी वक्ता, सत्यधर्मके पालक तथा शत्रुका नाश करनेवाले जो मननशील वीर हैं उनकी हमें सहायता हो ॥ ११ ॥

२४१ स नो॑ बोधि पुरए॒ता सु॒गेषू॒—त दु॒र्गेषु॑ पथि॒कृद् विदा॑नः ।
ये अश्र॑मास उ॒रवो॒ वहि॑ष्ठा॒—स्तेभि॑र्न इन्द्रा॒भि व॑क्षि॒ वाज॑म् ॥ १२ ॥

[२२]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२४२ य एक॒ इद्धव्य॑श्चर्षणी॒ना—मिन्द्रं॒ तं गी॒र्भिर॒भ्य॑र्च आ॒भिः ।
यः पत्य॑ते वृ॒ष॒भो वृष्ण्या॑वान् त्स॒त्यः सत्वा॑ पुरुमा॒यः सह॑स्वान् ॥ १ ॥

२४३ तमु॑ नः पूर्वे॑ पि॒तरो॒ नव॑ग्वाः स॒प्त विप्रा॑सो अ॒भि वा॒जय॑न्तः ।
न॒क्ष॒द्दा॒भं तत॑ुरिं पर्वते॒ष्ठा—मद्रो॑घवाचं म॒तिभिः॒ शवि॑ष्ठम् ॥ २ ॥

अर्थ— [२४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पथिकृत् विद्वानः सः) मार्ग बनानेवाला, सर्वज्ञ वह तू (सुगेषु उत दुर्गेषु) सुखसे जाने योग्य और दुःखसे जाने योग्य मार्गोंमें (नः पुरएता बोधि) हमारा नेता हो । (अश्रमासः उरवः वहिष्ठाः ये) न थकनेवाले बडे और अत्यन्त वेगसे चलनेवाले जो तेरे घोडे हैं (तेभिः नः) उनसे हमारे लिये (वाजं अभि वक्षि) बलवर्धक अन्न ले आ । ॥ १२ ॥

[२२]

[२४२] (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (एक इत् आभिः गीर्भिः हव्यः) एक ही निश्चयसे इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है । (तं इन्द्रं अभ्यर्चे) उस इन्द्रकी अर्चना करता हूँ । (यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः) जो बल देनेवाला, स्वयं बलवान् और सत्यनिष्ठ है और (सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते) अपने बलसे अनेक कौशलसे कर्म करनेवाला और शत्रुओंका पराजय करनेवाला है इस इन्द्रकी स्तुति की जाती है । ॥ १ ॥

१ एकः इन्द्रः इत् आभिः गीर्भिः हव्यः— एक ही प्रभु इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है ।

२ यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः— वही अद्वितीय बलवान् तथा सामर्थ्यशाली है और वही सत्य है ।

३ सत्वा पुरु-मायः सहस्वान् पत्यते— सत्त्ववान्, अनेक कौशल्योंसे युक्त, शत्रुका पराभव करनेवाला ही सबका स्वामी हो सकता है ।

[२४३] (पूर्वे नव-ग्वाः) पुरातन नव महिनेका यज्ञ करनेवाले (सप्त विप्रासः) सात बुद्धिमान् ज्ञानी (वाजयन्तः) हविष्यान्न सिद्ध करनेवाले (नः पितरः) हमारे पितरोंने (नक्षत्-दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठां) शत्रुनाशक, तारक और पर्वतोंपर रहनेवाले, (अद्रोघ-वाचं शविष्ठं तं उ) द्रोहरहित भाषण करनेवाले, अतिशय बलवान् ऐसे इस इन्द्रकी (मतिभिः अभि) बुद्धिपूर्वक स्तुति की थी ॥ २ ॥

भावार्थ— मार्ग बनानेवाला ज्ञानी सुगम तथा दुर्गम मार्गोंमें लोगोंका अग्रगामी नेता होकर मार्ग दर्शन करे और ज्ञानपूर्वक योग्य रीतिसे उन अनुयायियोंको चलावे और इष्ट स्थानतक पहुंचावे । न थकनेवाले बडे वाहक जो हैं उनसे हमें अन्न और बलकी प्राप्ति हो । हमारे सहायक न थकनेवाले हों ॥ १२ ॥

जो इन्द्र अकेला होते हुए भी अनेकोंके द्वारा स्तुतिके योग्य होता है, उस इन्द्रकी मैं अर्चना और स्तुति करता हूँ, क्योंकि वही अद्वितीय बलशाली और सामर्थ्यशाली है और वही सत्य तथा अविनाशी है । वह इन्द्र सत्त्ववान् तथा अनेक कुशलताओंसे युक्त तथा शत्रुका पराभव करनेवाला होनेके कारण सबका स्वामी है, अतः वही सबके लिए स्तुति करने योग्य है ॥ १ ॥

शत्रुको दबानेवाले, सबको संकटोंसे तारनेवाले, पर्वतपर रहनेवाले, द्रोहरहित भाषण करनेवाले, बलिष्ठ तथा वीरकी बुद्धिपूर्वक उपासना करनी चाहिए, ऐसे वीरका सत्कार करना चाहिए । जो नवग्व अर्थात् नौ मासतक यज्ञ करनेवाले तथा दशग्व अर्थात् दस मासतक यज्ञ करनेवाले हैं, उन ज्ञानियोंकी भी स्तुति करनी चाहिए ॥ २ ॥

२४४ तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

२४५ तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चि-ज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥

२४६ तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठा-मिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

अर्थ— [२४४] (पुरु-वीरस्य नृ-वतः पुरु-क्षोः अस्य) बहुत वीरोंसे युक्त, बहुत सहायकोंसे युक्त, बहुत अन्नसे युक्त इस (रायः) धनको (तं इन्द्रं ईमहे) उस इन्द्रके पास हम मांगते हैं। हे (हरिवः) अश्वयुक्त इन्द्र ! (यः अस्कृधोयुः अजरः स्वर्वान्) जो धन अविनाशी, क्षीण न होनेवाला और सुख देनेवाला है, (तं मादयध्यै आ भर) वह धन हमें उपभोगके लिये भरपूर भर दे ॥ ३ ॥

[२४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदि ते जरितारः पुरा चित्) जो तेरे स्तोताओंने पहिले समयमें (सुम्नं आनशुः) सुख प्राप्त किया था (तत् नः वि वोचः) तो वह सुखका मार्ग हमें बता। हे (दुध्र) दुर्धर (खिद्वः) शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरु-हूत) बहुतोंसे बुलाये जानेवाले (पुरु-वसो) बहुत ऐश्वर्यवाले इन्द्र ! (असुर-घ्नः ते) असुरोंका नाश करनेवाला तेरा (कः भागः, वयः किं) कर्तव्यका कौनसा भाग है तथा सामर्थ्यका भाग भी कौन-सा है, वह भी बता ॥ ४ ॥

[२४६] (वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं) हाथमें वज्र धारण करनेवाले, रथारूढ बहुत शत्रुओंको पकडनेवाले, बहुत कर्म करनेवाले, बल देनेवाले उस इन्द्रकी (पृच्छन्ती वेपी) अर्चना करनेवाली यागादि कर्म करनेवाली (वक्वरी गीः) गुणोंका वर्णन करनेवाली इस प्रकार स्तुति (यस्य) जिस यजमानकी होती है। वह (गातुं इषे) सुखको प्राप्त होता है और (तुम्रं अच्छ नक्षते) शत्रुका सामना करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— उस प्रभुके पास हम ऐसा धन मांगते हैं कि जिसके साथ बहुत वीर रक्षणके लिये रहते हों, जो अनेक सहायकोंको अपने पास रखता है और जिसके साथ पर्याप्त अन्न होता है, अर्थात् हमें धन चाहिये, अन्न चाहिये, सहायक चाहिये और इनके संरक्षणके लिये संरक्षक वीर भी चाहिये। वह धन विनष्ट न होनेवाला, क्षीण न होनेवाला और सुख बढाने-वाला हो। इस धनसे (मादयध्यै) हमारा आनन्द बढता जाये। हमें किसी तरह दुःख न हो। ऐसा धन हमें चाहिये ॥ ३ ॥

इन्द्रके स्तोतागण उत्तम मन प्राप्त करते हैं। प्रभुकी स्तुति गानेसे शोभन विचारवाला मन होता है। शत्रुके लिये असह्य, शत्रुनाशक, बहुतोंसे प्रशंसित, बहुत धनवाले वीर ! तेरे पास जो असुरोंका नाश करनेवाला शौर्यका भाग है वह कौन सा है ? तू जिस सामर्थ्यसे असुरोंका नाश करता है वह तेरा सामर्थ्य कौन सा है ? तेरी आयु क्या थी, तेरा सामर्थ्य कौन-सा था, जिससे तू शत्रुका नाश करता हो ? ॥ ४ ॥

वज्र हाथमें धारण करनेवाला, रथपर आरूढ होकर लडनेवाला, अनेक शत्रुओंको एक ही समयमें पकडनेवाला, अनेक प्रकारके कर्म करनेवाला, बल बढानेवाला यह इन्द्र है, इस तरह उस इन्द्रकी अर्चना जो करती है, तथा साथ साथ यज्ञ कर्मोंको करती है, ऐसी स्तुति जिसकी वाणी करती है, वह सुख प्राप्तिके मार्गसे जाता है और सुख प्राप्त करता है, और शत्रुका पराभव करनेका मार्ग भी ठीक तरह जानता है। तथा शत्रुका पराभव भी करता है ॥ ५ ॥

२४७ अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥
२४८ तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
२४९ आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
२५० भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

अर्थ— [२४७] हे (स्व-तवः) अपने निज बलसे युक्त इन्द्र ! (मनोजुवा पर्वतेन) मनोवेगी अपने आयुध वज्रसे (अया मायया वावृधानं त्यं) अपने कपट जालसे बढनेवाले उस शत्रुका तूने (वि रुजः) विशेष प्रकारसे वध किया। हे (स्वोजः) अपनी शक्तिसे बलवान् (विरप्शिन्) महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तूने (अच्युता चित् वीळिता दृळ्हा) न हिलने वाली, बलवाली और दृढ शत्रुकी पुरियोंको (धृषता) धर्षक शक्तिसे भग्न किया, तोड डाला ॥ ६ ॥

[२४८] (नव्यस्य धिया) इस अपूर्व बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति द्वारा (शविष्ठं प्रत्नं वः तं) अत्यन्त बलवान् पुरातन उस इन्द्रका (प्रत्नवत् परितंसयध्यै) प्राचीन रीतिसे अनुसार और यशका विस्तार करनेके लिये मैं प्रयत्न करता हूँ, इसको सुन कर (अनिमानः सुवह्मा) अपार महिमावाला, सुन्दर वाहनवाला (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वानि दुर्गहाणि) समस्त संकटोंसे (नः अति वक्षत्) हमें पार ले जावे ॥ ७ ॥

[२४९] हे इन्द्र ! (द्रुह्वणे जनाय) सज्जनोंका द्रोह करनेवाला दुष्टोंको हटानेके लिये (पार्थिवानि दिव्यानि) पृथिवी और द्युलोक (अन्तरिक्षा) और अन्तरिक्षके स्थानोंको (आ दीपयः) अत्यन्त तप्त कर। हे (वृषन्) बलवान् देव ! (विश्वतः तान्) चारों ओरसे उन दुष्टोंको (शोचिषा तप) अपने तेजसे तपा। (ब्रह्मद्विषे क्षां च अपः) ज्ञानके द्वेषियोंको दग्ध करनेके लिये पृथिवी और जलोंको भी तपा ॥ ८ ॥

[२५०] (त्वेषसंदृक् अ-जुर्य इन्द्र) दीप्तिमान्, जरारहित इन्द्र ! (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य लोगोंका और (पार्थिवस्य जगतः) पृथ्वीपरके लोगोंका भी (राजा भुवः) तू राजा है। (दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व) दाहिने हाथमें वज्रको धारण कर। और (विश्वाः मायाः वि दयसे) सब दुष्टोंके कपटजालोंका नाश कर ॥ ९ ॥

१ त्वेषसंदृक् अजुर्य इन्द्र— तेजःपुञ्ज दीखनेवाला जरा-क्षय आदि रहित इन्द्र है।
२ दिव्यस्य जनस्य, पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोकमें तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका वह ही राजा हुआ है।

भावार्थ— अपने ही बलसे बलवान् इस इन्द्रने अपने मनके समान वेगवान् तथा अत्यन्त दृढ एवं शक्तिशाली शस्त्र वज्रसे कपटी और मायावी होकर बढनेवाले अपने शत्रुको नष्ट किया। तथा उसकी मजबूतसे मजबूत नगरियोंको भी नष्ट किया ॥ ६ ॥

अपूर्व और बुद्धिपूर्वक किये इस स्तोत्रसे उस बलवान् पुराणपुरुष इन्द्रका प्राचीनों जैसा यश फैलानेके लिये मैं काव्यगान करता हूँ। इस स्तोत्रको सुनकर अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला वह इन्द्र सब प्रकारके संकटोंसे हमें बचाकर पार ले जावे ॥ ७ ॥

सज्जनोंसे जो द्रोह करते हैं, उन दुष्टोंको हटाना चाहिए। प्रभु इन्द्रभी इस काममें हमारा सहायक हो। वह पृथिवी, द्यु और अन्तरिक्षके स्थानोंको चारों ओरसे तप्त करे, ताकि इन सभी स्थानोंसे दुष्ट नष्ट हो जाएं। वह अपने तेजसे इन दुष्टोंको चारों ओरसे तपावे तथा ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको दग्ध करनेके लिए पृथिवी और जलोंको भी तप्त करे ॥ ८ ॥

२५१ आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

२५२ स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

[२३]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२५३ सुत इत् त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद् वा युक्ताभ्यां मघवन् हरिभ्यां बिभ्रद् वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥

अर्थ— [२५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शत्रु-तुर्याय) शत्रुओंके नाश करनेके लिये (बृहतीं अ-मृध्रां) बडी, अविनाशी, (संयतं स्वस्ति) संयममें रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति (नः आ भर) हमें दे। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यया दासानि आर्याणि करः) जिससे दासोंको आर्य बनाया जाता है और (नाहुषाणि) मनुष्योंके (वृत्रा) घेरनेवाले शत्रुओंको (सुतुका) सहज ही से नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है ॥ १० ॥

१ शत्रुतुर्याय बृहतीं अमृध्रां संयतं स्वस्ति नः आ भर— शत्रुओंका नाश करनेके लिये विशाल, अविनाशी, स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे ।

२ यया दासानि आर्याणि करः— इससे दासोंको आर्य किये जाएं ।

[२५२] हे (पुरुहूत) बहुत लोगोंसे बुलाने योग्य, (वेधः) विधाता (प्रयज्यो) विशेष पूजनीय इन्द्र ! (सः) तू (विश्ववाराभिः नियुद्भिः) सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे (नः आ गहि) हमारे पास आ (अदेवः) असुर (याः न वरते) जिन घोडोंको रोक नहीं सकता, (देवः न) और देव भी नहीं रोक सकता, (आभिः तूयं आ) उन घोडोंसे शीघ्र ही (मद्र्यद्रिक् आ याहि) मेरे पास आ ॥ ११ ॥

[२३]

[२५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमे सुते इत्) सोमका रस निकालने पर (ब्रह्मणि स्तोमे) स्तोत्रोंको पढनेके पश्चात् (उक्थे शस्यमाने) उक्थका गान होनेपर (त्वं) तू (निमिश्लः) तल्लीन होता है । और हे (मघवन् इन्द्र धनवान् इन्द्र ! (बाह्वोः बिभ्रत्) हाथमें वज्र धारण करता हुआ (यत् वा युक्ताभ्यां हरिभ्यां यासि) तथा जोडे हुए अश्वोंको रथसे गमन करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र तेजस्वी और वृद्धावस्था रहित है, तथा दिव्य तथा पृथ्वीपरके लोगोंका भी वह राजा है । यह इन्द्र दाहिने हाथमें वज्र धारण करके शत्रुओंके कपटजालोंका नाश करता है ॥ ९ ॥

यह इन्द्र हमें शत्रुओंका नाश करनेके लिए विशाल, अविनाशी और स्वाधीन रहनेवाली तथा कल्याण करनेवाली सम्पत्ति हमें दे । राष्ट्रमें जो दास या दुष्टजन हों उन्हें श्रेष्ठ और आर्य नागरिक बनाया जाए, राज्यशासनकी व्यवस्था तथा समाजकी व्यवस्था ऐसी हो कि जिससे दुष्ट मनुष्य श्रेष्ठ नागरिक बन सकें । मनुष्योंको घेरकर उन्हें कष्ट देनेवाले शत्रु दूर किए जाएं ।

हे इन्द्र ! तू बहुतसे लोगोंके द्वारा बुलाये जाने योग्य और विशेष पूजनीय है । तू सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे हमारे पास आ ! असुर भी जिन घोडोंको रोक नहीं सकते और देव भी रोक नहीं सकते, उन घोडोंसे तू हमारे पास आ ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! सोमका रस निकाले जानेपर, स्तोत्रोंके पढे जानेपर तथा स्तुतिका गान होने पर तू उन स्तुतियोंमें तल्लीन हो जाता है । हे धनवान् इन्द्र ! तू हाथमें वज्र धारण करके रथोंसे शत्रुओं पर आक्रमण कर ॥ १ ॥

२५४ यद् वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद् वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्य- दरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २ ॥
२५५ पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३ ॥
२५६ गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४ ॥
२५७ अस्मै वयं यद् वावान तद् विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थे- न्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (दिवि स्वर्गमें (शूरसातौ वृत्रहत्ये पार्ये) योद्धाओंसे चलाये जानेवाले शत्रुका वध करनेके युद्धमें दुःखसे पार होनेके लिये (सुष्विं) सोमयाजी मनुष्यको (अवसि) रक्षा करता है। (यत् वा) अथवा (दक्षस्य बिभ्युषः) यज्ञादिमें दक्ष रहनेवाले परन्तु शत्रुसे डरनेवाले मनुष्यको (अबिभ्यत्) भयरहित करता है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (यत् वा शर्धतः दस्यून्) तथा स्पर्धामें शत्रुओंको (अरन्धयः) तू विनष्ट करता है ॥ २ ॥

[२५५] (इन्द्रः सुतं सोमं पाता अस्तु) इन्द्र सोमरस पीनेवाला है। (ऊती जरितारं प्रणेनीः) अपने रक्षक साधनोंसे स्तोताओंको ठीक स्थान तक पहूँचानेवाला, (उग्रः सुष्वये वीराय लोकं कर्ता) उग्र इन्द्र सोमरसका अर्पण करनेवाले वीरके लिये विस्तृत स्थान देनेवाला, और (स्तुवते कीरये चित् वसु दाता) स्तुति करनेवाले कविको धन देनेवाला है। ॥ ३ ॥

[२५६] इन्द्र (हरिभ्यां इयन्ति सवना) अपने अश्वोंसे इतने तीनों सवनोंमें जाता है, (वज्रं बभ्रिः, सोमं पपिः) वज्र धारण करता है, सोमपान करता है, (गाः ददिः) गौएं देता है (नर्यं सर्ववीरं कर्ता) मनुष्योंका हित करनेवाले, वीरोंके साथ रहनेवाले, वीर पुत्र देता है (गृणतः हवं श्रोता) कवियोंके स्तोत्र सुनता है और (स्तोमवाहाः गन्ता) स्तोत्रोंका पाठ जहाँ होता है ऐसे यज्ञ स्थानके पास जाता है ॥ ४ ॥

[२५७] (प्रदिवः यः नः अपः कः) दिव्य इन्द्र जो हमारे लिये पोषणादि कर्म करता है। (अस्मै इन्द्राय यत् वावान) इस इन्द्रके लिये जो चाहिये, (वयं तत् वि विष्मः) हम वह करते हैं। (सोमे सुते स्तुमसि) सोमरस निकालने पर हम स्तुति करते हैं। (उक्था शंसत्) मन्त्रोंका गान करते हैं। (ब्रह्म इन्द्राय वर्धनं यथा असत्) वह स्तोत्र इन्द्रके यशको बढानेवाला होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ — यह इन्द्र योद्धा वीर जिसमें भाग लेते हैं, शत्रुको जहां मारा जाता है, शत्रुसे पार होनेका जिसमें यत्न होता है, ऐसे युद्धमें संरक्षण करता है। डरनेवाले परंतु दक्ष पुरुषको वह निर्भय करता है। स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका नाश करता है ॥ २ ॥

यह इन्द्र सोमरस प्रदान करनेवालोंको हर तरहसे सुरक्षित रखता है, और उन्हें अपने शस्त्रोंकी सहायतासे उत्तम स्थान पर पहुंचाता है। सोमरस अर्पण करनेवालेको यह इन्द्र विस्तृतस्थान देता है तथा स्तुति करनेवाले ज्ञानीको यह धन देता है ॥ ३ ॥

यह इन्द्र अपने अश्वोंसे तीनों सवनोंमें आता है, वज्र धारण करता है, सोमपान करता है, सोम अर्पण करनेवालोंको गायें देता है। मनुष्योंका हित करनेवाला, वीरोंके साथ रहनेवाला वीर पुत्र देता है। ज्ञानियों* द्वारा गाये हुए स्तोत्रोंको सुनता है तथा स्तोत्रोंका पाठ जहां होता है, ऐसे यज्ञस्थानोंको जाता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र हमारे लिए पोषणादि कर्म करता है, इसलिए इस इन्द्रके लिए हम जो वह मांगता है, वह देते हैं। उसकी हम स्तुति करते हैं, तथा उसके लिए हम मंत्रोंका गान करते हैं। हम जिन स्तोत्रोंका गान करते हैं, वे स्तोत्र इन्द्रके यशको बढानेवाले होते हैं। ॥ ५ ॥

२५८ ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत् त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शंतमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ ६ ॥
२५९ स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥ ७ ॥
२६० स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८ ॥
२६१ तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित् तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९ ॥

अर्थ— [२५८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हि) जिस कारण (ब्रह्माणि वर्धनानि चकृषे) ये स्तोत्र उत्कर्ष बढानेवाले किये गये हैं, उस कारण (तावत् ते मतिभिः विविष्मः) वे स्तोत्र तेरे लिये हम बुद्धिपूर्वक अर्पण करते हैं। हे (सुतपाः) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (सुते सोमे) सोम तैयार होनेपर (शंतमानि रान्द्र्या) अतिशय सुख देनेवाले, रमणीय और (यज्ञैः वक्षणानि) यज्ञोंके साथ गाये जानेवाले स्तोत्र (क्रियास्मः) हम करते हैं। हम गाते हैं ॥ ६ ॥

[२५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (रराणः सः) आनन्दसे सुप्रसन्न होनेवाला तू (नः पुरोडाशं बोधि) हमारे हविष्यान्नको स्वीकार कर, (गोऋजीकं सोमं तु पिब) गौका दूध दही आदि मिलाया हुआ वह सोमरस पी। (यजमानस्य इदं बर्हिः आ सीद) यजमानके दिये इस आसनपर बैठ। (त्वायत लोकं उरुं कृधि) तेरे अनुगामी हम लोगोंके लिये विस्तृत स्थान दे। हमारा उत्कर्ष कर ॥ ७ ॥

[२६०] हे (उग्र) उग्रबलशाली इन्द्र ! (सः अनु जोषं मन्दस्व) तू अपनी इच्छाके अनुसार आनंद कर। (इमे यज्ञासः त्वा प्र अश्नुवन्तु) ये यज्ञ तुझे प्राप्त हों। हे इन्द्र ! (अस्मे इमे हवासः पुरुहूतं) हमारे ये स्तोत्र तुझ अनेकों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको प्राप्त हों। (इयं धीः) यह स्तुति (त्वा अवसे आ यम्याः) तुझे हमारा रक्षण करनेके लिये हमारे पास ले आवे ॥ ८ ॥

१ इयं धीः अवसे त्वा आ यम्याः— यह बुद्धि रक्षणके लिये तुझे यहां ले आवे।

[२६१] हे (सखायः) मित्रों ! (वः सुतेषु) तुम्हारा सोमरस तैयार होनेपर (भोजं तं ईं इन्द्रं) भोजन देनेवाले उस इन्द्रकी (सोमेभिः संपृणत) सोमरससे तृप्ति करो। (तस्मै कुवित् असति उस इन्द्रके लिये यह हमारी सहायता करनेके लिये बहुत उत्तम साधन होगा। हे इन्द्र (नः भराय) हमारे पोषणके लिये प्रयत्नशील हो। (इन्द्रः सुष्विं अवसे न मृधाति) इन्द्र सोमरस अर्पण करनेवालेकी सुरक्षा करनेसे पीछे नहीं हटता ॥ ९ ॥

१ भोजं तं इन्द्रं संपृणत— भोजन देनेवाले उस इन्द्रको तृप्त करो।

भावार्थ— हमारे द्वारा किए गए स्तोत्र इन्द्रका उत्कर्ष बढानेवाले हैं, इसलिए हम ये स्तोत्र उत्तम बुद्धिसे इन्द्रको समर्पित करते हैं। सोम तैयार होने पर हम अत्यन्त सुख देनेवाले और रमणीय स्तोत्रोंका गान करते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! अत्यधिक आनन्द अनुभव करनेवाला है, अतः हमारे हविष्यान्नको स्वीकार करके तू आनन्दित हो, तथा हमारे द्वारा अर्पित किए गए सोमरसको तू पी। यजमानके द्वारा दिए गए आसन पर तू प्रेमसे बैठ तथा जो तेरे अनुयायी हैं, उनके लिए विस्तृत स्थान प्रदान कर ॥ ७ ॥

हे बलशाली इन्द्र ! तू अपनी इच्छाके अनुसार आनन्द कर। ये यज्ञ जो हम कर रहे हैं, तुझे प्राप्त हों। हम जो स्तुति करते हैं, वे स्तुतियां हमारी रक्षा करनेके लिए तुझे हमारे पास ले आवें ॥ ८ ॥

वह इन्द्र हम सबको भोजन देता है, अतः उसे भी सोमरस देकर तृप्त करना चाहिए। उसको तृप्त तथा आनन्दित करनेके लिए सोमरस एक सर्वोत्तम साधन है। इससे तृप्त होकर वह हमारे पोषणके लिए प्रयत्नशील हो, क्योंकि जो उसे सोमरस अर्पित करता है, उसकी सुरक्षा करनेसे वह इन्द्र कभी पीछे नहीं हटता ॥ ९ ॥

२६२ एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद् यथा जरित्र उत सूरि- रिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ १० ॥

[२४]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२६३ वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थै- र्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥

२६४ ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ २ ॥

अर्थ— [२६२] (मघोनः क्षयत्) धनवाले यजमानका प्रभु (इन्द्रः) इन्द्र है, वह (सोमे सुते) सोमरस तैयार होनेपर (जरित्रे सूरिः यथा असत्) स्तोताको ज्ञानी बनाता है, (उत विश्ववारस्य रायः दाता) और सबसे अधिक प्रशंसनीय धन देता है, उस इन्द्रकी (भरद्वाजेषु एव अस्तावि) भरद्वाजोंमें स्तुति हुई है ॥ १० ॥

[२४]

[२६३] (सोमेषु इन्द्रे) सोमयागमें इन्द्रको होनेवाला (मदः) हर्ष (वृषा) बल बढानेवाला होता है । (उक्था सचा श्लोकः) सामगानके मंत्र प्रशंसनीय होते हैं । (सुतपाः ऋजीषी मघवा) सोमरस पीनेवाला वेगवान् तथा धनवान् इन्द्र (नृभ्यः उक्थैः अर्चत्र्यः) मनुष्योंके लिये स्तोत्रों द्वारा अर्चनीय होता है । तथा (द्युक्षः गिरां राजा अक्षितोतिः) द्युलोकनिवासी स्तुतियोंका स्वामी इन्द्र सदाके लिये भक्तोंका संरक्षक होता है ॥ १ ॥

[२६४] (ततुरिः वीरः नर्यः) शत्रुओंका त्वरासे संहार करनेवाला शूरवीर, मनुष्योंका हित करनेवाला (विचेताः हवं श्रोता) विशेष ज्ञानी, स्तुति सुननेवाला (गृणतः उर्व्यूतिः) भक्तजनोंका उत्तमरक्षक (वसुः नरां शंसः) विपुल धनवान्, मनुष्योंको प्रशंसनीय (कारुधायाः वाजी) शिल्पियोंको धारण करनेवाला, बलवान् वा अन्नवान् वह इन्द्र (विदथेस्तुतः सन्) यज्ञमें प्रशंसित होकर (वाजं दाति) अन्न देता है ॥ २ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र धनीसे भी धनी मनुष्यका स्वामी है और सोमरसके तैय्यार होने पर या सोमरस पीकर आनन्दित होने पर वह स्तोताको ज्ञानी बनाता है, उसे वह सबसे अधिक प्रशंसनीय धन देता है । इसी कारण जो भी देव अन्नादिके द्वारा प्राणियोंका भरणपोषण करते हैं, उन सबमें यह इन्द्र सर्वाधिक प्रशंसनीय है । ॥ १० ॥

सोमपीनेके बाद इन्द्रको जो हर्ष होता है, वह उसका बल बढानेवाला होता है । उसके सोमपीनेके समय जो साम-मंत्र बोले जाते हैं, वे बहुत प्रशंसनीय होते हैं । वेगवान् और धनवान् यह इन्द्र मनुष्योंके लिये स्तोत्रोंके द्वारा अर्चनीय होता है और वह स्तुतियोंका स्वामी इन्द्र सदाके लिए भक्तोंका संरक्षक होता है ।

यह इन्द्र सत्वर शत्रुका नाश करनेवाला, मानवोंका हित करनेवाला विशेष उत्तम ज्ञानी, भक्तकी प्रार्थना सुननेवाला उत्तम संरक्षण करनेवाला, प्रजाओंका निवासक प्रजाओं द्वारा प्रशंसनीय, शिल्पियोंका भरणपोषण करनेवाला, बलवान् युद्धमें प्रशंसनीय यश प्राप्त करनेवाला और अन्नादि प्रदान करनेवाला है । ये सब वीरके लक्षण हैं । मनुष्य ये गुण अपनेमें धारण करें ॥ २ ॥

×

२६५ अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन् प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

२६६ शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४ ॥

२६७ अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषाऽर्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ ॥

अर्थ—[२६५] हे (शूर) वीर इन्द्र ! (चक्र्योः अक्षः न) आटा पीसनेके दोनों चक्रोंके अक्षकी तरह (ते मह्ना बृहन्) तेरी महिमा है वह (रोदस्योः प्ररिरिचे) द्यावापृथिवीके भी बाहर फैली है। हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित (इन्द्र) इन्द्र ! (वृक्षस्य नु वयाः) वृक्षकी शाखाओंकी तरह तुझसे (पूर्वीः ऊतयः वि रुरुहुः) बहुत संरक्षक शक्तियां फैल रही हैं। अर्थात् तू बहुत प्रकारसे मनुष्योंकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥

[२६६] हे (पुरुशाक) बहुत शक्तिमान् इन्द्र ! (गवां स्रुतयः संचरणीः इव) जिस तरह गौओंके मार्ग सर्वत्र संचारी होते हैं, उस तरह (शचीवतः ते शाकाः) तुझ शक्तिमान्की शक्तियां सब जगह कार्य करती हैं। हे (सुदामन्) शोभन दान देनेवाले (इन्द्र) इन्द्र ! (वत्सानां तन्तयः न) गोवत्सोंको बांधनेवाली रस्सीकी तरह (ते दामन्वन्तः अदामानः) तेरी बन्धका रस्सियां सचमुच बंधन करनेवाली नहीं हैं ॥ ४ ॥

[२६७] (अद्य अन्यत् कर्वरं) आज कोई एक कार्य किया, तो (अन्यत् उ श्वः) दूसरे दिन कोई दूसरा विलक्षण ही कार्य करता है। (असत् च सत्) बाहर फेंकनेका कर्म और अस्तित्वके लिये आवश्यक कर्म, (मुहुः इन्द्रः आचक्रिः) बारबार इन्द्र करता रहता है। (अत्र नः वशस्य) यहां हमारे इष्ट मनोरथको (पर्येता अस्ति) पूर्ण करनेवाला वह है। (मित्रः वरुणः पूषा च अर्यः) मित्र, वरुण, पूषा और प्रेरक सविता भी हमारे मनोरथको पूर्ण करनेवाले हों ॥ ५ ॥

भावार्थ— तेरी विशाल महिमा आटा पीसनेके चक्रोंके अक्षकी तरह, दोनों द्यावापृथिवीसे भी बाहर फैली है। जिस तरह आटा पीसनेवाले चक्रोंका अक्ष दोनों चक्रोंसे भी बाहर रहता है, उस तरह प्रभुकी महिमा पृथ्वी और द्युलोकके भी बाहर फैली है। इन दोनों चक्रोंके समान पृथ्वी और द्युलोक हैं। वृक्षकी शाखाओंकी तरह प्रभुके संरक्षण उसके चारों ओर फैले रहे हैं। जिनसे सब जनोंका संरक्षण होता है ॥ ३ ॥

प्रभु अतुल सामर्थ्यवान् है। उसकी शक्तियां सब विश्वभरमें कार्य करती हैं, जिस तरह गौवें अथवा किरणें सर्वत्र संचार करती हैं, बछडोंकी बंधनकी रस्सी जैसी खुली होती है, उस तरह प्रभुके बंधन उन्नति करनेवाले होते हैं। वे बन्धन वास्तविक बंधन नहीं होते ॥ ४ ॥

ईश्वर आज एक कार्य करता है और कल दूसरा कार्य करता रहता है। कभी चुप नहीं रहता। मनुष्य भी इसी तरह सतत कर्म करता रहे। सत् असत् कार्य यह बारंबार करता है। अच्छे कार्य मानवोंके उत्कर्षके लिये और शत्रुके नाशके कार्य उनके लिये असत् भी होते हैं। हमारे लिये इष्ट कर्म भी वह चारों ओरसे करता रहता है ॥ ५ ॥

२६८ वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठा—दुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ ६ ॥
२६९ न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद् वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७ ॥
२७० न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद् भवति गाधमस्मै ॥ ८ ॥

अर्थ— [२६८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न) पर्वतके पृष्ठसे जिस प्रकार पानीके प्रवाह चलते हैं, (त्वत् उक्थेभिः यज्ञैः) उस प्रकार तेरे पाससे सामगान और यज्ञके द्वारा (वि अनयन्त) मनोभिलषित फल मनुष्यके पास जाते हैं। हे (गिर्वाहः) स्तुतियों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (अश्वाः आजिं न) घोडे जिस प्रकार संग्राममें जाते हैं, उस प्रकार (वाजयन्तः आभिः सुष्टुतिभिः) अन्नका यज्ञ करनेवाले लोग इन उत्तम स्तुतियोंके साथ (तं त्वा जग्मुः) तेरे समीप जाते हैं ॥ ६ ॥

[२६९] (शरदः यं न जरन्ति) संवत्सर इस इन्द्रको क्षीण नहीं कर सकते, वैसे (मासाः) महीने भी क्षीण नहीं कर सकते । (द्यावः इन्द्रं न अवकर्शयन्ति) वैसे दिन भी इन्द्रको कृश नहीं करते । (वृद्धस्य चित् अस्य तनूः) इस पुराणपुरुष इन्द्रका शरीर (स्तोमेभिः उक्थैः) स्तोत्रों और सामगानोंसे (शस्यमाना वर्धतां) प्रशंसित होनेसे बढता जावे ॥ ७ ॥

१ शरदः यं न जरन्ति— वर्ष इसको वृद्ध नहीं करता ।
२ मासाः द्यावः न अवकर्शयन्ति— महीने और दिन भी इसको कृश नहीं बनाते ।
३ वृद्धस्य अस्य तनूः शस्यमाना वर्धतां— इस वृद्धका शरीर होकर बढता है ।

[२७०] (स्तवान्) स्तुति होनेपर इन्द्र (वीळवे न नमते) सुदृढ गात्रवालेके सामने भी नमता नहीं (स्थिराय न) युद्धमें स्थिर रहनेवालेके सामने भी नम्र नहीं होता (शर्धते दस्युजूताय न) हिंसा करनेवाले डाकुओंके मुखियाके सामने भी नम्र नहीं होता और (ऋष्वाः गिरयः) महान् पर्वत भी (इन्द्रस्य अज्राः) इन्द्रके गमन करनेके समय सुगम होते हैं। (गम्भीरे चित् अस्मै गाधं भवति) अगाध जल स्थान भी इस इन्द्रके लिये सहज लांघने योग्य होते हैं ॥ ८ ॥

१ वीळवे न नमते— वीर सामर्थ्यवान्के आगे भी नहीं नमता
२ स्थिराय न नमते— स्थिरके सामने भी नहीं नमता ।
३ शर्धते दस्युजूताय न नमते— हिंसक क्रूरके सामने भी नहीं नमता ।
४ ऋष्वा गिरयः अज्राः— बडे पहाड भी इस वीरके लिये सुगम हैं ।
५ गंभीरे चित् अस्मै गाधं भवति— अगाध जल भी इसके लिये सहज लांघने योग्य होता है ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! पर्वतकी चोटीसे जिसतरह पानीके प्रवाह बहते हैं, उसी तरह तेरी तरफ सामगानके प्रवाह चलते हैं और यज्ञसे मनुष्यको मनोभिलषित वस्तुयें प्राप्त होती हैं । जिसप्रकार घोडे संग्राममें जाते हैं, उसी तरह अन्नका यज्ञ करनेवाले लोग उत्तम स्तुतियोंके साथ तेरे समीप जाते हैं ॥ ६ ॥

वर्ष, मास और दिन इस इन्द्रको वृद्ध नहीं बना सकते । यह इन्द्र कालातीत होनेसे इस पर समयका जरासाभी, प्रभाव नहीं पडता और समयके कारण होनेवाले परिणामोंसे यह क्षीण ही होता है । यह प्राचीनतम पुरुष है । इसकी प्राचीनताका पता लगाना असंभव है, क्योंकि स्तोत्रों और सामगानोंसे इसका यश बढता जाता है, और यह परिपुष्ट होता जाता है ॥ ७ ॥

२७१ गम्भीरेण न उरुणामत्रिन् प्रेषो यन्धि सुतपावन् वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥ ९ ॥
२७२ सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १० ॥

[२५]

[ऋषिः– बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– त्रिष्टुप्]

२७३ या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान् न उग्र ॥ १ ॥

अर्थ— [२७१] हे (अमत्रिन्) बलवान् (सुतपावन्) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (गम्भीरेण उरुणा) गम्भीर तथा विस्तीर्ण मनसे (नः इषः वाजान् प्र यन्धि) हमें अन्न और बल दे । (अक्तोः व्युष्टौ, परितक्म्यायां) दिनमें और रात्रिमें तू (ऊती अरिषण्यन्) हमारी सुरक्षाके लिये हिंसा न करता हुआ (ऊर्ध्वः स्था ऊ षु) उद्युक्त तथा तत्पर रह ॥ ९ ॥

१ ऊती अरिषण्यन् ऊर्ध्वः स्थाः— वीर संरक्षण करनेके लिये सदा उद्यत रहे ।

[२७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नायं अभीके अवसे सचस्व) हमारे नेताका संग्राममें संरक्षण करनेके लिये तत्पर रह । (इतः वा रिषः) इस शत्रुसे (तं पाहि) उसकी रक्षा कर । और (अमा च अरण्ये) घरमें और वनमें (रिषः पाहि) उसकी शत्रुसे रक्षा कर । (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षतक आनन्द करते रहेंगे ॥ १० ॥

१ नायं अभीके अवसे सचस्व— युद्धमें रक्षणके लिये तैयार रह ।

२ रिषः पाहि— शत्रुसे रक्षा कर ।

३ अमा च अरण्ये रिषः पाहि— घरमें तथा अरण्यमें शत्रुसे रक्षण कर ।

[२५]

[२७३] हे (शुष्मिन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (ते या ऊतिः अवमा अस्ति) तेरे जो रक्षा साधन कनिष्ठ हैं, (या परमा) जो उत्तम हैं, (या मध्यमा) और जो मध्यम है (ताभिः वृत्रहत्ये) उन रक्षा साधनोंसे वृत्रके संग्राममें (नः सु अवीः) हमारी उत्तम प्रकारसे रक्षा कर । हे (उग्र) उग्र इन्द्र ! (महान्) तू महान् है । (एभिः वाजैः) इन अन्नोंसे (नः) हमें युक्त कर ॥ १ ॥

भावार्थ— स्तुतिसे यह इन्द्र इतना पुष्ट हो जाता है कि वह मजबूत शरीरवालेके सामने भी नहीं झुकता, युद्धमें स्थिर रहनेवालेके सामने भी नहीं झुकता तथा हिंसा करनेवालोंके मुखियाके सामने भी वह नम्र नहीं होता । जब इन्द्र चलता है तब पर्वत भी इसके लिए सुगम्य हो जाते हैं और अगाध जल भी इसके लिए आसानीसे पार करनेवाले हो जाते हैं । ऐसा ही वीर भी हो ! ॥ ८ ॥

हे बलवान् तथा सोमपान करनेवाले इन्द्र ! तू गंभीर तथा विशाल मनसे हमें अन्न और बल दे । तू हमारी हिंसा न करता हुआ दिन रात सावधान रहकर हमारी रक्षाके लिए उद्यत रह । वीर बलवान् राष्ट्रका संरक्षक भी अपनी प्रजाकी रक्षा करनेके लिए सदा तैयार रहे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे नेताकी संग्राममें रक्षा करनेके लिए सदा तत्पर रह । शत्रुओंसे उसकी रक्षा कर । घर और वनमें अर्थात् सर्वत्र उसकी रक्षा कर । ताकि वह सौ वर्षतक वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर आनन्दसे रहे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! जो तेरे पास साधारण, मध्यम और उत्तम तरहके रक्षाके साधन हैं, उन सभी साधनोंसे तू हमारी अच्छी तरह रक्षा कर । तू स्वयं महान् होकर हमें भी महान् बना ॥ १ ॥

२७४ आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्न्‌मित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः　　॥ २ ॥

२७५ इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः　　॥ ३ ॥

२७६ शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते　　॥ ४ ॥

अर्थ— [२७४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आभिः) इनसे (मिथतीः स्पृधः अरिषण्यन्) शत्रुसेनाका नाश करनेवाली हमारी सेनाकी रक्षा करते हुए (अमित्रस्य मन्युं व्यथय) शत्रुके क्रोधका नाश कर। (आभिः) इनसे ही (अभियुजः विषूचीः दासीः विश्वाः विशः) स्पर्धा करनेवाली, सब जगह विद्यमान्, शत्रुकी सब दास होने योग्य प्रजाओंका (आर्याय अव तारीः) आर्योंके हित करनेके लिये नाश कर ॥ २ ॥

[२७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये जामयः उत अजामयः) जो हमारे संबंधी हों अथवा बाहरके दूसरे शत्रु हों (अर्वाचीनासः वनुषः) जो हमारे सन्मुख आकर हमारा नाश करनेको उद्यत होते हैं। (एषां शवांसि त्वं विथुरा) इन दोनों प्रकारके शत्रुओंके बलोंको तू नष्ट कर। तथा (वृष्ण्यानि जहि) उनके बलोंको पराभूत कर। (पराचः कृणुहि) दोनों प्रकारके शत्रुओंको भगा ॥ ३ ॥

१ जामयः अजामयः अर्वाचीनासः वनुषः एषां शवांसि विथुरा— अपने जातिवाले अथवा पराये जो भी शत्रु हमारे ऊपर हमला करके हमारा नाश करनेके इच्छुक हैं, उनके बलोंको सत्वहीन निष्फल करना चाहिए, उनका नाश करना चाहिए, उनको परास्त करना चाहिए।

[२७६] (तनूरुचा तरुषि) जब शरीरसे तेजस्वी वीर परस्पर विरोधी होकर संग्राममें (यत् कृण्वैते) युद्ध करते हैं, (शूरः शरीरैः शूरं वा वनते) तब वीर अपने शरीरके अवयवोंके बलसे शत्रुके वीरका नाश करता है। (यत् तोके तनये वा गोषु अप्सु उर्वरासु) जब पुत्र, पौत्र, गौ, पानी तथा उपजाऊ भूमिके लिये (क्रन्दसी) परस्पर विवाद करते हुए (विब्रवैते) झगडा करते हैं, तब युद्ध होते हैं ॥ ४ ॥

१ तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते, शूर शरीरैः शूरं वनते— शरीरसे तेजस्वी वीर जब युद्ध करते हैं, तब एक शूर अपने शरीरके अवयवोंके सामर्थ्योंसे दूसरे पक्षके वीरका नाश करता है।

२ तोके तनये गोषु अप्सु उर्वरासु क्रन्दसी वि ब्रवैते— बालबच्चों, गौवों, जलप्रवाहों और उर्वरा भूमिके लिये विवाद बढता है, तब झगडे होते हैं।

भावार्थ— हे इन्द्र ! इन रक्षाके साधनोंसे शत्रुकी सेनाका नाश करनेवाली हमारी सेनाका नाश करते हुए शत्रुके क्रोधको नष्ट कर। तथा आर्योंका हित करनेके लिए युद्ध करनेवाली सब प्रजाओंका नाश कर ॥ २ ॥

जो हमारे सम्बन्धी होते हुए भी हमसे शत्रुताका व्यवहार करते हैं तथा जो शत्रु हमारे अपने सम्बन्धी नहीं है, उन सबका नाश करना चाहिए। अथवा जो छिपकर या जो प्रकट रूपसे सामने आकर हमारा नाश करना चाहते हैं, उन शत्रुओंकी शक्तिका भी नाश करना चाहिए। इसप्रकार हर तरहके शत्रुओंको भगाना चाहिए ॥ ३ ॥

जब दो वीर परस्पर विरोधी होकर संग्राममें युद्ध करते हैं, तब उनमें जो अधिक तेजस्वी होता है, वह वीर विजयी होता है। जब दो मनुष्योंके बीचमें पुत्र, पौत्र, गौ, जल तथा भूमि आदिके लिए परस्पर विवाद होता है, तब उन दोनोंमें झगडा पैदा होता है। विवाद या कलहके ये कारण हैं। एक बार जब इनके कारण विवाद उत्पन्न होता है, तब उसकी समाप्ति युद्धके बाद ही होती है। अतः प्रथम इसी बातका प्रयत्न करना चाहिए कि शाब्दिक विवाद ही उत्पन्न न हो ॥ ४ ॥

६

२७७ नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णु—र्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ५ ॥

२७८ स पत्यत उभयोर्नृम्णमयो—र्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६ ॥

२७९ अध स्मा ते चर्षणयो यदेजा—निन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ ७ ॥

अर्थ— [२७७] हे इन्द्र ! (त्वा शूरः नहि युयोधः) तेरे साथ शूरवीर युद्ध नहीं करता । (तुरः न) दूसरे शत्रुओंका नाश करनेवाला भी तेरे साथ नहीं लडता । (धृष्णुः न) शत्रुओंका धर्षक वीर भी तुमसे नहीं युद्ध करता, (मन्यमानः योधः त्वा न) युद्धमें घमंडी योद्धा भी तेरे साथ नहीं लडता । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (एषां त्वा नकिः प्रत्यस्ति) इन योद्धाओंमें कोई भी तेरा प्रतिस्पर्धी नहीं है । (विश्वा जातानि तानि अभ्यासि) सब उत्पन्न हुए सामर्थ्योंका तू पराभव करता है । सबसे अधिक सामर्थ्य तुममें ही है ॥ ५ ॥

१ त्वा शूरः न युयोध— शूर इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।

२ त्वा तुरः न युयोध— त्वरासे शत्रुनाश करनेवाला इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।

३ धृष्णुः त्वा न युयोध— शत्रुका धर्षण करनेवाला इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।

४ मन्यमानः योधः त्वा न युयोध— घमंडी योद्धा भी इस इन्द्रसे युद्ध नहीं कर सकता ।

५ एषां नकिः त्वा प्रत्यस्ति— इनमेंसे कोई भी इस इन्द्रका प्रतिस्पर्धी नहीं है ।

६ विश्वा जातानि तानि अभ्यसि— सब शत्रुके सामर्थ्योंका वह पराभव कर सकता है ।

[२७८] (महः वृत्रे वा नृवति क्षये वा) महान् शत्रुको रोकनेके युद्धमें, अथवा नेता लोगोंसे युक्त घरमें रहनेवालोंमें (यदि वितन्तसैते) जो दो मनुष्य झगडा करते हैं (अयोः उभयोः सः नृम्णं पत्यते) उनके बीच वह मनुष्य बल प्राप्त करता है । (यदि समिथे वेधसः हवन्ते) कि जो यज्ञमें ज्ञानियोंको बुलाते हैं । या हवन करते हैं ॥ ६ ॥

[२७९] (अध स्म) और भी हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते चर्षणयः) जो तेरी प्रजा (यत् एजान् त्राता भव) जो डरसे कांपती है, उनकी रक्षा कर । (उत वरूता) और उनका तारक हो । (अस्माकासः नृतमासः ये अर्यः) हमारे जो अतिशय श्रेष्ठ नेता मनुष्य हैं, उनका तू संरक्षण कर । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सूरयः नः पुरः दधिरे) जो ज्ञानी हमको आगे धारण करते हैं, उनका भी रक्षण कर । जो हमें नेता करते हैं उनका भी रक्षण कर ॥ ७ ॥

१ ते एजानः चर्षणयः त्राता उत वरूता भव— जो भयसे कांपनेवाली प्रजा है उनका रक्षक और उद्धारक बने ।

२ ये अस्माकासः नृतमासः अर्यः सूरयः नः पुरः दधिरे त्राता भव— जो हमारे श्रेष्ठ मनुष्य हैं, जो ज्ञानी हमें नेता करते हैं उनका भी रक्षक मनुष्य बने ।

भावार्थ— यह इन्द्र योद्धाओंमें सर्वाधिक तेजस्वी है, इसलिए कोई भी इसके साथ युद्ध नहीं कर सकता । जो अन्य शत्रुओंका नाश करते हैं, जो शत्रुओंका धर्षण करते हैं, तथा जो घमंडी हैं, ऐसे योद्धाओंमें भी कोई इस इन्द्रके साथ युद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि जितने भी सामर्थ्यशाली आज तक उत्पन्न हुए हैं, उन सबका पराभव इस इन्द्रने किया है, इसलिए युद्ध करनेके लिए सहसा कोई तैय्यार नहीं होता ॥ ५ ॥

मनुष्य घरमें रहें या युद्धमें रहें, जो उनमें परमेश्वरकी भक्ति करेगा वही विजयी होगा । अन्तिम विजय यज्ञ करनेवालेकी ही होगी । अन्तिम विजय ईश्वरके भक्तकी ही होगी ॥ ६ ॥

हे शूरवीर ! तेरी प्रजा जो डरसे कांपती है, उनकी रक्षा कर, उन्हें संकटोंसे पार करा, इन प्रजाओंमें जो अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य हों, उनकी भी तू रक्षा कर । जो ज्ञानी हमें अपना नेता चुनते हैं, उनका भी तू संरक्षण कर ॥ ७ ॥

२८० अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रे॒न्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८ ॥

२८१ एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥ ९ ॥

[२६]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८२ श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद् विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन् दाः ॥ १ ॥

२८३ त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥ २ ॥

अर्थ— [२८०] (महे ते इन्द्रियाय अनु दायि) तुझ जैसे महान् वीरके पास प्रभुत्वशक्ति दी है । (वृत्रहत्ये ते विश्वं सत्रा अनु दायि) युद्धमें वृत्रासुरादि शत्रुओंको मारनेके लिये तुझे सब प्रकारका संघबल दिया है । (क्षत्रं अनु दायि) तुझे क्षात्र बल दिया (सहः अनु दायि) शत्रुओंका पराभव करनेका बल तुझे दिया । हे (यजत्र) पूजनीय (इन्द्र) इन्द्र ! (ते नृषह्ये देवेभिः अनु दायि) तुझे युद्धमें देवताओंने यह बल दिया ॥ ८ ॥

[२८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (एव नः स्पृधः) इस प्रकार तू हमारी सेनाको शत्रुसेनाका वध करनेके लिये (समत्सु समज) संग्रामोंमें प्रेरित कर । (मिथतीः अदेवीः ररन्धि) हिंसा करनेवाली राक्षसी शत्रुसेनाको हमारे लिये विनष्ट कर । (उत) और हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते गृणन्तः भरद्वाजाः) तेरी स्तुति करनेवाले हम भरद्वाज (अवसा वस्तोः नूनं विद्याम) रक्षणशक्तियुक्त घर अवश्य प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[२६]

[२८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वावृषाणाः) बलवान् होनेवाले हम (महः वाजस्य सातौ) बहुत अन्नकी प्राप्तिके लिये (त्वा ह्वयामसि) तुझे बुलाते हैं । (नः श्रुधि) हमारे इस प्रार्थनाको सुन, (यत् विशः शूरसातौ) जब प्रजाजन युद्धमें (सं अयन्त) जाते हैं, तब (पार्ये अहन्) अन्तिम कठिन दिनमें (नः उग्रं अवः दाः) हमें शूरता युक्त संरक्षण दे कि जो शत्रुके लिये भयंकर प्रतीत हो ॥ १ ॥

[२८३] (वाजी वाजिनेयः) बलवान् वीर (गध्यस्य महः वाजस्य सातौ) अधिक अन्नकी प्राप्तिके लिये (त्वां हवते) तेरी प्रार्थना करता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सत्पतिं तरुत्रं त्वां) सज्जनोंके पालक और दुर्जनोंका नाश करनेवाले ऐसे तेरी (वृत्रेषु) शत्रुका आक्रमण होनेपर भक्त प्रार्थना करता है । (मुष्टिहा) मुष्टिसे शत्रुका नाश करनेवाला (गोषु युध्यन् त्वां चष्टे) गौके लिये युद्ध करते हुए तेरी ओर ही देखता है ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्रके पास यह सब बल इसलिये दिया है कि इससे वह सबकी रक्षा करे, सब शत्रुओंको दूर करे और सबका सुयोग्य योगक्षेम चलावे । प्रजाका उत्तम रीतिसे रक्षण हो ॥ ८ ॥

हमारी सेना शत्रुकी सेनाके साथ युद्ध करे और उसका पराभव करे, सब संग्रामोंमें हमारी विजय हो । राक्षसी सेनाका नाश हो । हम भरद्वाज गोत्री तेरे भक्त हैं इसलिये पर्याप्त अन्न जिसमें सदा रहता है ऐसा घर हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! बलसे युक्त हम बहुत अन्नकी प्राप्तिके लिए तुझे बुलाते हैं । हमारी इस प्रार्थनाको सुन, कि जब सब प्रजाजन युद्धमें शत्रुता करनेके लिए आते हैं, तब जिस दिन युद्धका अन्तिम निर्णय होनेवाला हो, उस दिन तू हमें उत्तम संरक्षण शक्तिसे युक्त कर; ताकि हम अपनी शक्तिको प्रकट करके उन्हें डरा सकें ॥ १ ॥

२८४ त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३ ॥

२८५ त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन् त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥

२८६ त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥ ५ ॥

अर्थ— [२८४] हे इन्द्र (त्वं) तू (अर्क-सातौ) अन्नप्राप्तिके युद्धके लिये (कविं चोदय) बुद्धिमान् कविको प्रेरित कर। (त्वं दाशुषे कुत्साय) तू दाता कुत्सके लिये (शुष्णं वर्क्) शुष्ण असुरका वध किया। (त्वं अतिथिग्वाय) तूने अतिथिग्वके लिये (शंस्यं करिष्यन्) सुख देनेकी इच्छासे (अमर्मणः शिरः पराहन्) मर्महीन असुरका सिर काटा ॥ ३ ॥

[२८५] हे इन्द्र ! (तं योधं ऋष्वं रथं प्र भरः) उस युद्धसाधनरूप, महान् रथको प्राप्त कर और (दशद्युं युध्यन्तं वृषभं) दस दिन युद्ध करनेवाले बलवान् वीरकी (आवः) रक्षा कर। (त्वं वेतसवे सचा तुग्रं अहन्) तूने वेतसुकी सहायता करनेके लिये तुग्र असुरको मारा। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं गृणन्तं तुजिं तूतोः) तूने स्तुति करनेवाले तुजिको बढाया ॥ ४ ॥

[२८६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बर्हणा त्वं तत् उक्थं कः) शत्रुओंके हिंसक ऐसे तूने प्रशंसनीय कार्य किये। हे (शूर) वीर ! (शता सहस्रा प्र दर्षि) सैकडों और हजारों शत्रुके वीरोंका नाश किया। (दासं गिरेः शम्बरं अव हन्) दस्यु अर्थात् हिंसक और पर्वतके किलेमें रहनेवाले शम्बरासुरका वध किया। (चित्राभिः ऊती दिवोदासं प्रावः) विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे दिवोदासकी अच्छी तरह रक्षा की ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! यह बलवान् वीर और अधिक अन्नकी प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करता है। तू सज्जनोंका पालक है और दुष्टोंका नाशक है अतः शत्रुके आक्रमण होनेपर भक्त तेरी प्रार्थना करता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तूने दानशील कुत्स अर्थात् सत्पुरुषको सुरक्षित रखनेके लिए शोषण करनेवाले असुर या दुष्टको मारा। अतिथिका सम्मान करनेवाले आर्यको सुख देनेकी इच्छासे निर्दय दुष्टका सिर काट डाला, और इस प्रकार अन्नकी प्राप्ति होनेवाले युद्धमें बुद्धिमान् कविको प्रेरित किया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू युद्धको सिद्ध करनेवाले रथको प्राप्त कर और दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले बलवान् वीरकी रक्षा कर। तूने वेतसु नामक ऋषिकी रक्षा करनेके लिए तुग्र नामक असुरको मारा और तूने ही स्तुति करनेवाले तुजि अर्थात् लोगोंको उत्तम प्रेरणा देनेवाले मनुष्यको बढाया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तूने शत्रुओंकी हिंसा करके सचमुच प्रशंसनीय कार्य किया तथा सैकडों और हजारों शत्रुओंको मारा। मनुष्योंको दास या गुलाम बनाकर उनसे काम लेनेवाले, प्राणियोंकी अनावश्यक हिंसा करनेवाले तथा पर्वतोंको दुर्ग बनाकर रहनेवाले असुरोंको नष्ट किया तथा अपने संरक्षणके विलक्षण साधनोंसे दिवोदास अर्थात् देवोंका दास बनकर उनकी सेवा करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यकी रक्षा की ॥ ५ ॥

२८७ त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैं-र्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन् षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥
२८८ अहं च न तत् सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत् स्तवन्ते सधवीर वीरा-स्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥ ७ ॥
२८९ वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥ ८ ॥

[२७]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । अभ्यावर्ती चायमानः (दानं) । छन्दः- त्रिष्टुप्]
२९० किमस्य मदे किम्वस्य पीता-विन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥ १ ॥

अर्थ- [२८७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (श्रद्धाभिः सोमैः मन्दसानः) श्रद्धायुक्त कर्मोंसे और सोमरसोंसे आनन्दित हुए (त्वं दभीतये चमुरिं सिष्वप्) तूने दभीतिके संरक्षण करनेके लिये, चमुरि असुरको सुला दिया अर्थात् मार डाला । (त्वं पिठीनसे रजिं दशस्यन्) तूने पिठीनस्को राज्य देते हुए (शच्या षष्टिं सहस्रा सचा अहन्) अपनी शक्तिसे शत्रुके साठ हजार वीरोंको एक साथ मार डाला ॥ ६ ॥

[२८८] हे (सधवीर) वीरोंसहित रहनेवाले (शविष्ठ) अतिशय बलवान् इन्द्र ! (वीराः त्रिवरुथेन नहुषा त्वया) वीर लोग, तीनों लोकोंका रक्षण करनेवाले तुझसे दिये (यत् सुम्नं ओजः स्तवन्ते) सुख और बलकी प्रशंसा करते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव ज्यायः तत्) तेरे द्वारा दिये गए उस श्रेष्ठ सुख और बलको (अहं च न सूरिभिः आनश्यां) मैं और सब ज्ञानी लोग भी प्राप्त करें ॥ ७ ॥

[२८९] हे (महिन) पूजनीय (इन्द्र) इन्द्र ! (ते सखायः वयं) तेरे मित्र हम (अस्यां द्युम्नहूतौ) इस धनके निमित्त किये स्तवनसे तुझे (प्रेष्ठाः स्याम) अत्यन्त प्रिय होवें । (प्रातर्दनिः प्रतर्दनका पुत्र (क्षत्रश्रीः श्रेष्ठः अस्तु) क्षत्रश्री सबसे श्रेष्ठ हो (वृत्राणां घने) शत्रुओंका वध करनेके लिये और (धनानां सनये) धनकी प्राप्तिके लिये वह श्रेष्ठ कर्म करे ॥ ८ ॥

[२७]

[२९०] (अस्य मदे इन्द्रः किं चकार) इसके हर्षमें इन्द्रने क्या किया ? (किमु अस्य पीतौ) और इसके पीनेपर क्या किया ? (अस्य सख्ये किं) इसके साथ मित्रता करनेपर इसने क्या किया ? (अस्य निषदि रणा वा ये पुरा) इसके साथ जो लोग रहते हैं (ते किं विविद्रे) उन्होंने क्या प्राप्त किया ? (नूतनासः किमु) इस समय नवीनोंको भी क्या प्राप्त हुआ ? ॥ १ ॥

भावार्थ- हे इन्द्र ! श्रद्धायुक्त कर्म तथा श्रद्धापूर्वक दिए गए सोमरसोंसे आनन्दित होकर तूने दभीति अर्थात् भयभीत हुए मनुष्यके संरक्षणके लिए चमुरि अर्थात् लूटनेवाले दुष्टको मारा । तूने अत्यन्त शक्तिशाली वीरको राज्य देते हुए अपनी शक्तिसे उसके साठ हजार वीरोंको एक साथ मार डाला ॥ ६ ॥

हे वीरोंके साथ रहनेवाले अत्यन्त बलशाली इन्द्र ! वीरगण तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले तुझसे दिए गए सुख और बलकी प्रशंसा करते हैं । हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिए गए उस श्रेष्ठ सुख और बलको हम सब ज्ञानी जन प्राप्त करें ॥ ७

हे पूज्य इन्द्र ! तेरे मित्र हम तेरी स्तुति करते हैं, अतः तुझे हम बहुत प्रिय हों । प्रतर्दन अर्थात् शत्रुओंका घर्षण करनेवाले वीरका पुत्र क्षत्रिय तेजसे सुशोभित मनुष्य सबसे श्रेष्ठ हो । शत्रुओंका वध करनेके लिये और धनकी प्राप्तिके लिये वह श्रेष्ठ कर्म करे ॥ ८ ॥

×

२९१ सदस्य मदे सद्वस्य पीता—विन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत् ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥ २ ॥

२९२ नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्ये—न्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥

२९३ एतत् त्यत् त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत् ते निहतस्य शुष्मात् स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ ४ ॥

अर्थ— [२९१] (इन्द्रः अस्य मदे सत् चकार) इन्द्रने इसके आनन्दमें उत्तम कर्म किया, (अस्य पीतौ सत्) इसके पान करनेपर भी उसने सत् कार्य किया, (अस्य सख्ये सत्) इसके साथ मैत्री करनेपर भी उसने सत्कर्म ही किया, (ये रणा वा निषदि) जो रणमें या सभागृहमें रहे हैं (पुरा ते सत् विविद्रे) उन्होंने पहिले भी सत्कर्म किये, (नूतनासः सत् उ) इस समय नवीन भी सत्कर्म ही करते हैं ॥ २ ॥

[२९२] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते समस्य महिमनः नहि विद्म) तेरे समान दूसरे किसीकी महिमा हम नहीं जानते, (मघवत्त्वस्य न) तेरे जैसा ऐश्वर्यशाली और कोई होगा भी, यह भी हम नहीं जानते । (नूतनस्य राधसोराधसः) तेरे संपूर्ण प्रशंसनीय सिद्धिको और (इन्द्र) इन्द्र ! (ते इन्द्रियं नकिः ददृशे) तेरे सामर्थ्यको भी हममेंसे कोई जानता नहीं ॥ ३ ॥

[२९३] हे इन्द्र ! (वरशिखस्य शेषः अवधीः) जिस पराक्रम द्वारा तूने वरशिख नामक असुरके पुत्रोंको मारा, (ते एतत् त्यत् इन्द्रियं अचेति) तेरा यह पराक्रम प्रसिद्ध है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् शुष्मात्) जिस पराक्रमसे (निहतस्य वज्रस्य) प्रेरित वज्रके (स्वनात् चित् परमः ददार) आवाजसे ही बडा शत्रु विदीर्ण हुआ था ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें कतिपय प्रश्न पूछे गए हैं जिनके उत्तर अगले मंत्रमें दिए गए हैं। प्रश्न है - इस सोमरसको पीकर उसके उत्साहमें इन्द्रने क्या किया ? इस सोमसे मित्रता जोडकर इन्द्रने कौनसा पराक्रम किया ? इस इन्द्रके साथ जो लोग रहते हैं उन्हें इस इन्द्रकी मित्रतासे क्या लाभ हुआ ? उन्होंने क्या प्राप्त किया ? तथा उसके जो नवीन मित्र थे, उन्हें भी उससे क्या लाभ हुआ ? ॥ १ ॥

इस मंत्रमें पिछले मंत्रोंमें पूछे गए प्रश्नोंके उत्तर दिए गए हैं, वे उत्तर इस तरह हैं - इन्द्रने इस सोमरसको पीने पर जो हर्ष हुआ, उस हर्षमें उत्तम कर्म किया, इस सोमरसको पान करके उसने सत्कार्य किए । सोमरसके साथ मित्रता करके उसने श्रेष्ठ कर्म किए । अतः जो इसके नवीन या पुरातन मित्र, जो रणमें रहते हैं या गृहमें अर्थात् जहाँ भी रहते हैं, उत्तम कर्म ही करते हैं, इन्द्रके मित्र सदा सत्कर्म करते हैं, अथवा सत्कर्मियोंको ही वह इन्द्र अपने मित्र बनाता है ॥ २ ॥

हम इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि इस इन्द्रके समान महिमाशाली और कोई नहीं है, तथा इसके समान ऐश्वर्यशाली भी कोई दूसरा नहीं है । यह इन्द्र कितनी सिद्धियाँ प्राप्त कर चुका है और इसका सामर्थ्य कितना है, यह भी कोई नहीं जानता ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! वरशिख अर्थात् पराक्रमशालियोंमें भी अत्यधिक पराक्रमी असुरको तूने मारा, इसके कारण तेरा पराक्रम सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया । तेरा वज्र इतना शक्तिशाली है कि उस पराक्रम युक्त वज्रके आवाजसे ही शत्रु नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

२९४ वधीदिन्द्रों वरशिखस्य शेषो ऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन् पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥ ५ ॥

२९५ त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥ ६ ॥

२९६ यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७ ॥

२९७ द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२९४] (इन्द्रः चायमानाय अभ्यावर्तिने शिक्षन्) इन्द्रने चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीको ईप्सित धन देकर (वरशिखस्य शेषः वधीत्) वरशिख असुरके पुत्रोंको मारा। (यत् हरियूपीयायां) जब इन्द्रने हरियूपीया नगरीके (पूर्वे अर्धे वृचीवत् हन्) पूर्व भागमें वृचीवान्‌को मारा। (अपरः भियसा दर्त) तब दूसरा पुत्र तो डरसे ही विदीर्ण हुआ ॥ ५ ॥

[२९५] हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित इन्द्र! (श्रवस्या शरवे पत्यमानाः) यशकी इच्छासे तेरी हिंसा करनेके उद्देश्यसे तेरे ऊपर हमला करनेवाले (वर्मिणः त्रिंशत् शतं वृचीवन्तः) कवचधारी तीन हजार वृचीवान्‌के सैनिकोंको (साकं यव्यावत्यां) एक साथ यव्यावतीमें (पात्रा न्यर्थानि आयन्) मिट्टीके पात्र जैसे तोडे जाते हैं वैसे उन सबको तूने तोड दिया ॥ ६ ॥

[२९६] (अरुषा सुयवस्यू रेरिहाणा) कान्तिमान् सुन्दर तृणादिकी इच्छावाले पुनः पुनः घासको चबाते हुए (यस्य गावौ अन्तः चरतः) जिस इन्द्रके दो घोडे खेतमें घूमते हैं। (सः) उस इन्द्रने (वृचीवतः दैववाताय शिक्षन्) वृचीवत्‌के पुत्र दैववातको सुखी करते हुए (सृञ्जयाय तुर्वशं परादात्) सृञ्जयके आधीन तुर्वशको दे दिया ॥ ७ ॥

[२९७] हे (अग्ने) अग्नि! (मघवा सम्राट् चायमानः अभ्यावर्ती) धनवान् सम्राट् चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीके राजाने (रथिनः वधूमतः द्वयान् विंशति गाः) स्त्रियोंसहित रथ और बीस गायें (मह्यं ददाति) मुझे दी। (पार्थवानां इयं दक्षिणा दुर्नशा) राजाओंकी इस दक्षिणाका कोई नाश नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्रने चयमान अर्थात् उत्तम कर्मोंको करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यके पुत्रको अभिलषित धन प्रदान किया और श्रेष्ठ असुरके पुत्रोंको मारा। जब इन्द्रने वृचीवान् अर्थात् कुटिलमार्गसे चलनेवाले मनुष्यको मारा, तब इन्द्रके पराक्रमको देखकर दूसरे दुष्ट तो डरके मारे ही मर गए ॥ ५ ॥

इस इन्द्रने उसे मारनेकी इच्छासे उस पर आक्रमण करनेवाले कवचधारी तीन हजार शत्रुओंको रणके मैदानमें जैसे मिट्टीके पात्र तोडे जाते है, वैसे नष्ट कर डाले ॥ ६ ॥

इस इन्द्रके घोडे तेजस्वी तथा पुष्ट हैं। इस इन्द्रने वृचीवान् नामक दुष्टका नाश करके उसके सज्जन पुत्र दैववातको सुखी किया ॥ ७ ॥

धनवान् सम्राट् चयमानके पुत्र अभ्यावर्तीके राजाने सज्जनोंको अनेक तरहकी सहायता और दक्षिणा दी। इन क्षत्रियोंके द्वारा दी गई दक्षिणाको कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[२८]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- गावः; २, ८ इन्द्रो गावो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ८ अनुष्टुप् ।]

२९८ आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न् त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे ।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒- रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥ १ ॥

२९९ इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒- त्युपेद् द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति ।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒- न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् ॥ २ ॥

३०० न ता न॑शन्ति॒ न द॑भाति॒ तस्क॑रो॒ नासा॑मामि॒त्रो व्य॒थिरा द॑धर्षति ।
दे॒वाँश्च॒ याभि॒र्यज॑ते॒ ददा॑ति च॒ ज्योगित् ताभि॑ः सचते॒ गोप॑तिः स॒ह ॥ ३ ॥

३०१ न ता अर्वा॑ रे॒णुक॑काटो अश्नुते॒ न सं॑स्कृत॒त्रमुप॑ यन्ति॒ ता अ॒भि ।
उ॒रु॒गा॒यमभ॑यं॒ तस्य॒ ता अनु॒ गावो॒ मर्त॑स्य॒ वि च॑रन्ति॒ यज्व॑नः ॥ ४ ॥

[२८]

अर्थ— [२९८] (गावः आ अग्मन्) गायें हमारे घर आयें, (उत भद्रं अक्रन्) और वे हमारा कल्याण करें। (गोष्ठे सीदन्तु) वे गोशालामें बैठें, (अस्मे रणयन्तु) और हमें आनन्दित करें, (इह पुरुरूपाः प्रजावतीः पूर्वीः) इन गौओंमें अनेक रूप तथा अनेक वर्णवाली, बछडोंवाली, बहुतसी गायें (इन्द्राय उषसः दुहानाः स्युः) इन्द्रके लिये प्रातःकालमें दूध देनेवाली हों ॥ १ ॥

[२९९] (इन्द्रः) इन्द्र (यज्वने पृणते च शिक्षति) यज्ञ करनेवाले और अन्न दान करनेवालेको सहायता देता है, (इत् उप ददाति) और धन देता है। और (स्वं न मुषायति) उसके धनका कभी भी हरण नहीं करता। (अस्य रयिं भूयोभूयः) इसके धनको वारंवार (वर्धयन्) बढाता है और (इत् देवयुं अभिन्ने खिल्ये नि दधाति) देव बननेकी इच्छावालेको न टूटे हुए सुरक्षित घरमें रखता है ॥ २ ॥

[३००] (ताः न नशन्ति) वे गौएं नाश नहीं होती। (तस्करः न दभाति) चोर भी उनकी हिंसा नहीं करता। (आमित्रः व्यथिः आसां न आ दधर्षति) शत्रुका शस्त्र इन गौओंपर आक्रमण नहीं करता। (गोपतिः याभिः देवान् च यजते) गौओंका पालक जिन गौओंसे देवोंका यजन करता है (ददाति च) और उनके दूधका दान देता है। (ताभिः सह ज्योक् इत् सचते) वैसी गौओंके साथ वह चिरकालतक रहता है ॥ ३ ॥

[३०१] (रेणुककाटः अर्वा) रेणूको उडानेवाला घोडा (ताः न अश्नुते) उन गौओंको प्राप्त नहीं करता (ताः संस्कृतत्रं) वे गौ संस्कारसे बननेकी अवस्थाको (न अभि उप यन्ति) प्राप्त न हों। (ताः गावः) वे गायें (यज्वनः तस्य मर्तस्य) यजनशील उस मनुष्यके (उरुगायं अभयं अनु वि चरन्ति) विस्तीर्ण भयरहित प्रदेशमें विचरण करें ॥ ४ ॥

भावार्थ— हमारे घरोंमें गायोंका निवास हो, वे अपने निवाससे सबका कल्याण करें। वे हमारे घरोंमें निवास करके हमें आनन्दसे युक्त करें। ये सभी गायें अनेक रूपोंवाली, अनेकों प्रजाओंवाली होकर प्रातःकालके समय हमें दूध दें ॥ १ ॥

इन्द्र यज्ञ-करनेवाले तथा अन्नदान करनेवालेको हर तरहकी सहायता देता है और उन्हें हरतरहका धन देता है। उसके धनका वह कभी हरण नहीं करता, अपितु इसके धनको बार बार बढाता है। जो देवोंके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके देव बनना चाहता है, उसे वह हर तरहसे सुखी रखता है ॥ २ ॥

गायें कभी नष्ट नहीं होतीं, चोर भी उनकी हिंसा नहीं कर सकता। शत्रुका शस्त्र इन गायों पर आक्रमण नहीं कर सकता। गौओंका पालक जिन गौओंसे देवोंका यजन करता है, उनके दूधका दान करता है, उन दुधारु गायोंके साथ वह चिरकाल तक रहता है ॥ ३ ॥

३०२ गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५ ॥

३०३ यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥

३०४ प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७ ॥

३०५ उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥

अर्थ— [३०२] (गावः भगः) गौएं ही धन हैं। (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) इन्द्र मुझे गौएं प्रदान करे। (गावः प्रथमस्य सोमस्य भक्षः) गौओंका दूध प्रथम सोममें मिलाने योग्य है। हे (जनासः) मनुष्यों ! (इमाः या गावः) ये जो गौएं हैं, (सः इन्द्रः) वह ही इन्द्र है (इन्द्रं हृदा मनसा चित् इच्छामि इत्) उस इन्द्रकी श्रद्धायुक्त मनसे मैं इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥

[३०३] हे (गावः) गौओं ! (यूयं मेदयथ) तुम हमें बलवान् बनाओ। (कृशं चित् अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ) कृश और निस्तेजको हृष्टपुष्ट और सुंदर तेजस्वी रूपवाला बनाओ। हे (भद्रवाचः) कल्याणकारी वाणीयुक्त गौओं ! (गृहं भद्रं कृणुथ) घरको कल्याणमय बनाओ। (सभासु बृहत् वयः उच्यते) सभाओंमें तुम्हारा महान् अन्नदायी यश गाया जाता है ॥ ६ ॥

[३०४] हे गौओ ! तुम (प्रजावतीः सुयवसं रिशन्तीः) बछडोंसे युक्त होवो, सुन्दर तृण भक्षण करो, (सुप्रपाणे शुद्धाः अपः पिबन्तीः) सुखसे पीने योग्य जलाशयमें निर्मल पानी पीनेवाली हों, (वः स्तेनः मा ईशत) तुम चोरके आधीन न हो, (अघशंसः मा) तुम पापीके आधीन न हो, (वः रुद्रस्य हेतिः परि वृज्याः) तुमसे रुद्रका शस्त्र दूर रहे अर्थात् रुद्रका शस्त्र तुम्हें न काटे ॥ ७ ॥

[३०५] (आसु गोषु) इन गौओंके दूधमें (इदं उपपर्चनं उप पृच्यतां) यह बलवर्धक मसाला मिलाओ। हे इन्द्र ! (तव वीर्ये ऋषभस्य रेतसि उप) तेरे बलके बढानेके लिये सोमके रसमें यह दूध मिला ॥ ८ ॥

भावार्थ— कोई शूर डाकू घोडेपर बैठकर आकर इन गौओंको न पकडे, इन गौओंपर वध करनेका आघात कोई न करे। वे गायें विशाल निर्भय स्थानमें निर्भयताके साथ विचरती रहें। गायें सदा निर्भय और आनंद प्रसन्न रहें ॥ ४ ॥

गौएं सच्चा धन है। ऐसी गौवें इन्द्रकी कृपासे हमें मिलें। सोमरसमें गौओंके दूधका एक भाग मिलानेपर वह रस भक्षण करने योग्य होता है। ये जो गौएं हैं वही स्वयं इन्द्र है अर्थात् इन्द्रने गौका रूप धारण किया है और वह इस पृथ्वीपर गोरूपसे विचर रहा है। मैं मनसे इन्द्रको प्राप्त करना चाहता हूं। इसलिये गौओंकी सेवा करना योग्य है ॥ ५ ॥

गायें अपने दूधसे मनुष्यको पुष्ट बनाती हैं। कृशको बलवान् बनाती हैं। निस्तेजको तेजस्वी बनाती हैं। घरको आनंदयुक्त बनाती हैं। इसलिये सभाओंमें गौओंका अन्न दानरूपी जो उत्तम यश है उसका वर्णन किया जाता है ॥ ६ ॥

गौवें बछडोंवाली हों, सुन्दर घास खाती रहें, उत्तम जलाशयमें निर्मल पानी पीती रहें। इनकी चोर चोरी न कर सके, ऐसे सुरक्षित स्थानमें गौवें रहें। पापीके आधीन गौवें न हों। बिजली गिरकर गौवोंकी मृत्यु न हो। सदा गौवें आनंद प्रसन्न और सुरक्षित हों। ॥ ७ ॥

[२९]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२०६ इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपु- र्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १ ॥

२०७ आ यस्मिन् हस्ते नर्या मिमिक्षु- रा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयो- राध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ २ ॥

---

[२९]

अर्थ— [२०६] (वः नरः) तुम्हारे नेता उस इन्द्रकी (सख्याय) मैत्रीके लिये (इन्द्रं महयन्तः सेपुः) उस इन्द्रका यश गाते हुए उसकी सेवा करते हैं । (सुमतये) अच्छी बुद्धिकी (चकानाः) इच्छा करते हुए (वज्रहस्तः) वज्र धारण करनेवाला इन्द्र (महः दाता अस्ति) बडा धन देता है । इसलिये (रण्वं महां उ अवसे यजध्वं) रमणीय और महान् ऐसे इन्द्रका अपनी रक्षाके लिये यजन करो ॥ १ ॥

१ सुमतये चकानाः नरः सख्याय इन्द्रं महयन्तः सेपुः— उत्तम बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले नेता वीर इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिये इन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हैं और उसकी सेवा करते हैं। इन्द्रके गुणोंका वर्णन करनेसे सुमति प्राप्त होती है ।

[२०७] (यस्मिन् हस्ते नर्या आ मिमिक्षुः) जिस इन्द्रके हाथमें मनुष्योंका हित करनेवाला धन भरपूर रहता है । (रथेष्ठाः हिरण्यये रथे आ) रथमें बैठनेवाला वह वीर सुवर्णमय रथमें बैठकर इधर आता है । (स्थूरयोः गभस्त्योः रश्मयः आ) पुष्ट हाथोंमें घोडोंकी लगाम रखता है (वृषणः अश्वासः युजानाः) जिसके बलवान् घोडे रथमें जोते हुए (अध्वन् आ) मार्गसे उसे ले आते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— इन गौओंको वह बलवर्धक पदार्थ ने दो । इन गौओंके दूधमें यह मसाला बलवर्धनके लिये मिला दो । वह दूध सोमरसमें मिला दो और ऐसा तैयार किया हुआ सोमरस इन्द्रको अर्पण करो । उस रसको इन्द्र पीवे और उससे इन्द्रका पराक्रम बढता जाय । जो मनुष्य इस तरह दुग्धमिश्रित सोमरस पीयेगा उसके शरीरमें भी वीर्य बढेगा और वह बलवान् बनेगा । ॥ ८ ॥

उत्तम बुद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले नेता वीर इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिए इन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हैं और उसकी सेवा करते हैं । इन्द्रके गुणोंपर आचरण करनेसे सुमति प्राप्त होती है । किस समय क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त होता है । इस इन्द्रकी सेवा करनेसे तथा उसका कार्य करनेसे उससे मित्रता होती है । वह वज्रधारी वीर बहुत धन देता है । वीर महत्वका स्थान प्रदान करता है । अतः इस महान् इन्द्रकी पूजा करनेसे एअकी हर तरहसे सुरक्षा होती है ॥ १ ॥

इन्द्रके अधीन मनुष्योंका हित करनेवाले धन भरपूर होते हैं । वह लोगोंके हितके कार्यमें ही अपना धन खर्च करता है । वह इतना धनवान् होते हुए भी अपने घोडोंको स्वयं चलाता है तथा अपने घोडोंकी सेवा स्वयं करता है ॥ २ ॥

३०८ श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षु— र्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३ ॥

३०९ स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद् यस्मिन् पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४ ॥

३१० न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५ ॥

३११ एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तू— ती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ ॥

अर्थ— [३०८] (श्रिये ते पादा दुवः) ऐश्वर्यके लिये तेरे चरणोंमें हम सब अपनी सेवाको (आ मिमिक्षुः) समर्पित करते हैं । तू (शवसा धृष्णुः) बलसे शत्रुओंका नाश करनेवाला (वज्री दक्षिणावान्) वज्रधारी दाता इन्द्र है । हे (नृतः) नेता इन्द्र ! (सुरभिं अत्कं) सुगंधित कवचको (दृशे वसानः) सबके दर्शनके लिये धारण करता हुआ तू (स्वः न) सूर्यकी तरह (इषिरः बभूथ) सबका उत्साह बढानेवाला होता है ॥ ३ ॥

१ श्रिये ते पादा दुवः आ मिमिक्षुः— ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये हम तेरे चरणोंकी सेवा करते हैं ।

[३०९] (यस्मिन् पक्तिः पच्यते) इस समय पकाने योग्य अन्न पकाया जाता है । (धानाः सन्ति) धाना तैयार है । (ब्रह्मकाराः नरः) स्तोत्र पढनेवाले नेता (इन्द्रं स्तुवन्तः) इन्द्रकी स्तुति करते हुए (उक्था शंसन्तः देववाततमाः) सामगान करते हैं वे देवत्वको सत्वर प्राप्त होते हैं । (सः सुतः सोमः) वह सोमरस निकालनेपर (आमिश्लतमः भूत्) उसमें दुग्धादि पदार्थ मिश्रित किये हैं । वह पीनेके लिये तैयार हुआ है ॥ ४ ॥

[३१०] (ते अस्य शवसः अन्तः) तेरे इस बलका अन्त (न धायि) नहीं है । (रोदसी महित्वा) द्यावापृथिवी भी इस बलसे (तु वि बबाधे) कांपती है, डरती है । (ता सूरिः तूतुजानः) इस बलसे ज्ञानी लोग सत्वर (ऊती समीजमानः) संरक्षण प्राप्त करके यजन करते हुए (यूथा इव अप्सु) जिस प्रकार गौओंके समूह जलस्थानमें तृप्ती प्राप्त करते हैं, उस प्रकार (आ पृणाति) तृप्त होता है ॥ ५ ॥

[३११] (एव ऋष्वः इन्द्रः सुहवः अस्तु) इस प्रकार महान् इन्द्र सुखसे बुलाने योग्य हो । (हुत् हरिशिप्रः) सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाला वीर (ऊती अनूती) संरक्षण करनेसे अथवा संरक्षण न करनेकी अवस्थामें (सत्वा) वह बलवान् ही है । (एवा हि जातः) इस प्रकार सुप्रसिद्ध वह इन्द्र (असमाति ओजाः) अनुपम तेज और बलसे (पुरु च वृत्रा हनति) बहुतसे राक्षसादिकोंका नाश करता है (दस्यून् नि) और शत्रुओंका भी नाश करता है ॥ ६ ॥

१ हरिशिप्रः ऊती अनूती सत्वा जातः— सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाला वह वीर हमारा संरक्षण करने या न करनेपर भी स्वयं निःसंदेह बलवान् ही है ।

भावार्थ— हे शत्रुओंके विनाशक, वज्रधारी और दाता इन्द्र ! ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये तेरे चरणोंमें हम अपनी सेवाओंको समर्पित करते हैं । वह इन्द्र जब सुनहरा कवच धारण करता है, तब जिस तरह सूर्यकी सुनहली किरणोंके प्रकट होते ही सर्वत्र उत्साह दौड जाता है, उसी तरह इस इन्द्रके इस सुनहले कवचको देखकर सब वीरोंके मनोंमें उत्साह दौड जाता है ॥ ३ ॥

जैसे ही इन्द्रका आगमन होता है, वैसे ही उसके लिए अन्न पकाना शुरु हो जाता है, धानको भूनकर उनकी खीलें तैयार की जाती हैं । स्तोत्र पाठ करनेवाले उसकी स्तुति करने लगते हैं और सोमरस तैय्यार किया जाता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तेरे सामर्थ्यका अन्त नहीं है । तेरे महत्वसे द्यावापृथिवी भी डरती है । द्यावापृथिवीको बाधा पहुंचती है । सत्वर कार्य करनेवाला विद्वान् उन संरक्षणोंको सम्यकया प्राप्त होकर उसी तरह संतुष्ट होता है, जिस तरह गौओंका झुण्ड जलस्थानको प्राप्त करके तृप्त होता है ॥ ५ ॥

[३०]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३१२ भूय इद् वावृधे वीर्या॑य एको॑ अजु॒र्यो दयते॒ वसू॑नि ।
प्र रि॑रिचे दि॒व इन्द्रः॑ पृथि॒व्या अर्ध॒मिद॑स्य॒ प्रति॒ रोद॑सी उ॒भे ॥ १ ॥
३१३ अधा॑ मन्ये बृहद॑सु॒र्य॑मस्य॒ यानि॑ दा॒धार॒ नकि॒रा मि॑नाति ।
दि॒वेदि॑वे॒ सूर्यो॑ दर्श॒तो भू॒द् वि सद्मा॑न्युर्वि॒या सु॒क्रतु॑र्धात् ॥ २ ॥

[३०]

अर्थ— [३१२] (भूयः इत् वीर्याय वावृधे) बहुत बार पराक्रम करनेके लिये वह वीर बडा हो गया था । (एकः अजुर्यः इन्द्रः) वह एक ही जरारहित इन्द्र (वसूनि दयते) धनोंको देता है। और (दिवः पृथिव्याः प्र रिरिचे) द्युलोक और पृथ्वीसे भी बडा है (उभे रोदसी अस्य अर्धं इत प्रति) दोनों द्यावापृथिवी इस इन्द्रका आधा भाग हैं ॥ १ ॥

१ वीर्याय भूयः इत् वावृधे— पराक्रम करनेके लिये निःसंदेह यह वीर वारंवार उत्साहसे बढ जाता है।

२ दिवः पृथिव्याः प्र रिरिचे— यह इन्द्र द्युलोक और पृथिवीसे बहुत ही बडा है।

३ उभे रोदसी अस्य अर्धं इत् प्रति— दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक इसके आधे भागके बराबर हैं।

[३१३] (अध अस्य बृहत् असुर्यं मन्ये) इस समय इस इन्द्रके बडे बलको मैं मानता हूँ। (यानि दाधार नकिः आ मिनाति) जिन कर्मोंको इन्द्र धारण करता है उनका कोई भी नाश नहीं कर सकता। (दिवेदिवे सूर्यः दर्शतः भूत्) प्रतिदिन सूर्य दर्शनीय होता है। (सुक्रतुः सद्मानि उर्विया वि धात्) शोभन कर्म करनेवाले इन्द्रने भुवनोंको विस्तीर्ण किया है ॥ २ ॥

१ अस्य बृहत् असुर्यं मन्ये— इस वीरका बडा सामर्थ्य है ऐसा मैं मानता हूँ।

२ यानि दाधार, नकिः आ मिनाति— जिन कर्मोंको यह वीर धारण करता है, उनका नाश कोई कर नहीं सकता।

३ दिवेदिवे सूर्यः दर्शतः भूत्— प्रतिदिन सूर्य दर्शनीय होकर उदित होता है। यह सब इन्द्रका ही प्रभाव है।

४ सुक्रतुः सद्मानि उर्विया वि धात्— उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने इस विश्वमें बडे बडे स्थानोंको- भुवनोंको- निर्माण किया है। उसीका बनाया यह सब विश्व है।

भावार्थ— वह इन्द्र हमारे द्वारा आसानीसे बुलाये जाने योग्य हो। सोनेका शिरस्त्राण धारण करनेवाला वह वीर इन्द्र चाहे हमारी रक्षा करनेकी अवस्थामें हो या न हो, हर हालतमें वह बलवान् ही है। इस प्रकार सुप्रसिद्ध वह इन्द्र अनुपम तेज और बलसे बहुतसे राक्षसोंका नाश करता है ॥ ६ ॥

बार बार पराक्रम करनेके लिए यह इन्द्र सदा उत्साहसे भर जाता है। सदा तरुण रहनेवाला, कभी भी वृद्धावस्थामें ग्रस्त न होनेवाला इन्द्र सभी तरहके धनोंको प्रदान करता है। वह द्युलोक और पृथ्वीलोकसे भी बडा है। दोनों द्यावापृथिवी इस इन्द्रके आधा भाग हैं ॥ १ ॥

इस इन्द्रके बलके महत्त्वको हर किसीको मानना पडता है। चाहे वह नास्तिक हो या आस्तिक, वह इस सर्वसमर्थशाली शक्तिके आगे किसी न किसी रूपमें झुकता ही है। क्योंकि जिन कर्मोंको यह प्रारंभ करता है, उनका नाश नहीं होता, उन्हे कोई भी बिगाड नहीं सकता। यह इसी इन्द्रका सामर्थ्य है कि सूर्य प्रतिदिन दर्शनीय होकर समय पर उदय होता है और समय पर अस्त होता है। उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने इन भुवनोंमें सभी बडे बडे स्थानोंका निर्माण किया। यह सब विश्व उसीका बनाया हुआ है ॥ २ ॥

३१४ अधा चिन्नू चित् तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदु — स्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ३ ॥

३१५ सत्यमित् तन्न त्वावाँ अन्यो अस्ती — न्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णो ऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥

३१६ त्वमपो वि दुरो विषूची — रिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [३१४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अधा चित् नु चित्) आज भी और पहिले भी (नदीनां तत् अपः) नदियोंके जलप्रवाहोंको (आभ्यः गातुं अरदः यत्) मार्ग खोदकर बना दिया। (अद्मसदः न) भोजनके लिये बैठनेवाले पुरुषोंकी तरह (पर्वताः निषेदुः) पर्वतोंको सुस्थिर किया। हे (सुक्रतो) शोभनकर्मकर्त्ता ! (त्वया रजांसि दृळ्हानि) तूने सब लोक सुदृढ किये हैं ॥ ३ ॥

[३१५] हे (इन्द्र इन्द्र ! (तत् सत्यं इत्) वह सब सत्य ही है कि (त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति) तेरे समान दूसरा कोई देव नहीं है। (मर्त्यः न) और कोई मनुष्य भी नहीं है। (ज्यायान्) तुमसे अधिक भी कोई नहीं है। तूने (अर्णः परिशयानं अहिं अहन्) पानीपर सोनेवाले शत्रुका नाश किया। और (समुद्रं अच्छ अपः अवासृजः) समुद्रकी ओर पानीके प्रवाहोंको प्रवाहित किया ॥ ४ ॥

१ त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति, न मर्त्यः — ईश्वरके समान अथवा उससे अधिक न कोई देव है, और न कोई मनुष्य है। तत् सत्यं— यह नितान्त सत्य है।

[३१६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं अपः दुरः विषूचीः वि) तूने जलोंके द्वारोंको खोलकर चारों ओर जलप्रवाहोंको बहा दिया (पर्वतस्य दृळ्हं अरुजः) पर्वतके दृढ भागको तोड दिया (जगतः चर्षणीनां) संसारकी प्रजाओंका (सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन्) सूर्यको द्युलोकको और उषाको एक साथ प्रकाशित किया और उसका (राजा अभवः) राजा हुआ ॥ ५ ॥

१ जगतः चर्षणीनां सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन् राजा अभवः— सब जगत्के मनुष्योंके हितार्थ द्यु, उषा और सूर्यको उत्पन्न किया और तू इस सबका राजा हुआ है।

भावार्थ— इस इन्द्रने आज भी और पहले भी नदियोंके जल प्रवाहोंको बहनेके लिए खोदकर मार्ग तैय्यार किया। नदीका मार्ग उत्तम रीतिसे तैय्यार किया। पर्वतोंको स्थिर किया और सभी लोकोंको दृढ किया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यह सत्य है कि तेरे समान दूसरा देव कोई नहीं है और न कोई मनुष्य ही है। जब तेरे समान ही कोई नहीं है, तब तुमसे अधिक कोई कैसे हो सकता है। तूने ही पानीको रोककर सोनेवाले अहि नामक शत्रुका नाश किया। और जलोंके प्रवाहोंको बहनेके लिये मुक्त किया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तूने जलप्रवाहोंके द्वारोंको खोलकर चारों ओर उन्हें बहाया। पर्वतके दृढ भागको तोडा। संसारकी प्रजाओंके हितके लिए सूर्य, द्यु और उषाको प्रकाशित किया, तथा उनका राजा या स्वामी तू बना ॥ ५ ॥

×

[३१]

[ऋषिः– सुहोत्रो भारद्वाजः । देवता– इन्द्रः । छन्दः– त्रिष्टुप्, ४ शक्वरी ।]

३१७ अभूरेको रयिपते रयीणा- मा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरे ऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १ ॥

३१८ त्वद् भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वा ऽच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ २ ॥

३१९ त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्रा- ऽशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥

---

[३१]

अर्थ– [३१७] हे (रयिपते) धनके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! (रयीणां एकः अभूः) तू सब धनोंका एकही स्वामी है । (हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः) तू अपने हाथोंमें सब प्रजाओंको रखता है । (विवाचः चर्षणयः अप्सु सूरे तोके तनये) विविध भाषा बोलनेवाले मनुष्य जलप्रवाहों तथा ज्ञानी पुत्रपौत्रके उत्कर्षके लिये (वि अवोचन्त) विशेष प्रकारसे चर्चा करते हैं ॥ १ ॥

१ त्वं रयीणां एकः अभूः— तू धनोंका एक ही स्वामी है ।

२ हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः— अपने हाथोंमें सब प्रजाजनोंको रखता है ।

[३१८] हे इन्द्र ! (त्वत् भिया) तेरे भयसे (अच्युता चित्) न हिलनेवाले (विश्वा पार्थिवानि रजांसि) सब पृथिवी स्थानीय और अन्तरिक्ष स्थानीय पदार्थ (च्यावयन्ते) कांपने लगते हैं । (ते आ-अज्मन्) तेरे आगमन होनेसे (द्यावा-क्षामा पर्वतासः वनानि) द्युलोक, पृथिवी, पर्वत और वन तथा (विश्वं दृळ्हं) सब स्थिर वस्तुमात्र (भयते) भयभीत होता हैं ॥ २ ॥

[३१९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं कुत्सेन अशुषं शुष्णं) तूने कुत्सके द्वारा शोषण न होनेवाले प्रबल शुष्ण असुरसे (अभि युध्य) युद्ध किया । (गविष्टौ कुयवं दश) गौओंके लिये किये संग्राममें कुयव नामक असुरका नाश किया । (अध प्रपित्वे) और युद्धमें तूने (सूर्यस्य चक्रं मुषायः) सूर्यके रथचक्रका हरण किया और (रपांसि अविवेः) दुष्टोंका वध किया ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू सब तरहके धनोंका अकेला ही स्वामी है, तेरे ही अधिकारमें सब प्रजायें रहती हैं । अनेक तरहकी भाषायें बोलनेवाले मनुष्य अपने उत्तम कर्मों तथा अपनी सन्तानोंकी उन्नतिके बारेमें अनेक तरहके विचार करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तेरे भयसे न हिलनेवाले सब पृथिवी स्थानीय और अन्तरिक्ष स्थानीय पदार्थ भी कांपने लगते हैं । इस इन्द्रके आगमन होते ही द्युलोक, पृथिवीलोक, पर्वत और वन आदि सभी स्थिर पदार्थ भयभीत होकर कांपने लगते हैं ॥ २ ॥

जिस शोषण करनेवाले शुष्ण नामक असुरका मुकाबला कोई भी आर्य राजा करनेमें समर्थ नहीं हुआ, उस वीर तथा अत्यधिक बलशाली शुष्णसे हे इन्द्र ! तूने युद्ध किया । गौओंके लिए किए गए संग्राममें तूने कुयव अर्थात् धान्यको नष्ट करनेवाले शत्रुको मारा और युद्धमें अन्य भी अनेक शत्रुओंका वध किया ॥ ३ ॥

३२० त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥
३२१ स सत्यसत्वन् महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक् प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥ ५ ॥

[३२]

[ऋषिः- सुहोत्रो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३२२ अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शंतमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥ १ ॥
३२३ स मातरा सूर्येणा कवीना मवासयद् रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २ ॥

अर्थ- [३२०] हे (शचीवः) बुद्धिमान् (सुतक्रे सोम प्रिय इन्द्र ! (यत्र सुन्वते दिवोदासाय) जिस समय सोमयज्ञ करनेवाले दिवोदासको (शच्या अशिक्षः) प्रज्ञाके साथ धन दिया और (गृणते भरद्वाजाय वसूनि) स्तुति करनेवाले भरद्वाजको भी धन दिया । तब (त्वं) तूने (दस्योः शंबरस्य) शंबर असुरकी (शतानि अप्रतीनिपुरः) सौ अभेद्य नगरियोंका (अव जघन्थ) नाश किया ॥ ४ ॥

[३२१] हे (सत्यसत्वन्) सत्य बलवान् और (तुविनृम्ण) बहुत धनवान् इन्द्र ! (सः महते रणाय) तू बडे संग्रामके लिये (भीमं रथं आ तिष्ठ) भयंकर रथ पर चढ । हे (प्रपथिन्) प्रकृष्ट मार्गसे जानेवाले इन्द्र ! तू (अवसा मद्रिक् उप याहि) अपने रक्षण सामर्थ्यके साथ मेरे समीप आ । हे (श्रुत) ज्ञानवान् इन्द्र ! (चर्षणिभ्यः प्र श्रावय च) प्रजाओंको उत्तम बातें सुना ॥ ५ ॥

[३२]

[३२२] (अपूर्व्या पुरुतमानि शंतमानि वचांसि) अपूर्व बहुत अतिशय सुखकारक स्तुतिरूप वाणी (आसा) मुखसे (महे वीराय तवसे) महान् वीर, बलवान्, (तुराय विरप्शिने) शीघ्रगामी, विशेष प्रकारसे स्तवनीय, (वज्रिणे स्थविराय) वज्रधारी, प्रवृद्ध (अस्मै तक्षं) इस इन्द्रके लिये स्तोत्रोंको पढता हूँ ॥ १ ॥

[३२३] (सः मातरा कवीनां) वह इन्द्र द्यावापृथिवीको बुद्धिमान् ज्ञानियोंके लिये (अद्रिं रुजत्) पर्वतका मेघका-नाश करता हुआ (सूर्येण अवासयत्) सूर्यसे प्रकाशित करता है । (गृणानः स्वाधीभिः ऋक्वभिः वावशानः) स्तुयमान् शोभन धारणाशक्तिसे स्तोताओं द्वारा वारंवार प्रशंसित होता हुआ (उस्रियाणां निदानं उत् असृजत्) गौओंको बन्धनमुक्त किया ॥ २ ॥

भावार्थ- हे बुद्धिमान् सोमप्रिय इन्द्र ! जिस समय तूने सोमयज्ञ करनेवाले दिवोदासको प्रज्ञाके साथ धन दिया और स्तुति करनेवाले भरद्वाजको भी धन दिया । तूने शंबर असुरकी अनेक नगरियोंका नाश किया ॥ ४ ॥

कभी नष्ट न होनेवाले बलसे युक्त इन्द्र ! तू शत्रुओंके साथ भयंकर युद्ध करनेके लिए इस सुदृढ रथ पर आकर बैठ। तू अपने रक्षण सामर्थ्यसे युक्त होकर मेरे समीप आ और हम सभी प्रजाओंको सदुपदेश देकर उत्तम मार्गमें प्रेरित कर ॥ ५ ॥

यह इन्द्र अत्यन्त सुखकारी, महान् वीर, बलवान्, शीघ्रगामी वज्रको धारण करनेवाला और प्रवृद्ध है । उस इन्द्रके लिए मैं स्तुतिपाठ करता हूँ ॥ १ ॥

वह इन्द्र मेघोंका नाश करके द्यु और पृथिवीको ज्ञानियोंके हितके लिए सूर्यके द्वारा प्रकाशित करता है । वह स्तुत होता हुआ सूर्यकी किरणोंको मेघोंके बंधनसे मुक्त करता है ॥ २ ॥

३२४ स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन् मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन् दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३ ॥
३२५ स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४ ॥
३२६ स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ ५ ॥

[३३]

[ऋषिः- शुनहोत्रो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३२७ य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन् त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत् स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १ ॥

अर्थ— [३२४] (पुरुकृत्वा सः) बहुत कर्मकर्ता इन्द्रने (वह्निभिः ऋक्वभिः) हवन करनेवाले, स्तुति करनेवाले (शश्वत् मितज्ञुभिः) निरन्तर घुटने टेककर प्रार्थना करनेवाले ऋषियोंके साथ मिलकर (गोषु जिगाय) गौओंके लिये असुरोंको पराजित किया। (पुरोहा सखिभिः कविभिः) पुरियोंका नाश करनेवाला मित्र बुद्धिमानोंसे (सखीयन् कवि सन्) मित्रता करता हुआ और बुद्धिमान् होकर शत्रुके (दृळ्हाः पुरः रुरोज) दृढ मजबूत नगरियोंका नाश किया करता है ॥ ३ ॥

[३२५] हे (वृषभ) बलवान् (गिर्वणः) स्तुतिसे सेवनीय इन्द्र ! (सः) तू (महः वाजेभिः च महद्भिः शुष्मैः) महान् अन्नोंसे और अतिशय बलोंसे (क्षितीनां जरितारं) प्रजाओंके बीच स्तोताके (अच्छ नव्याभिः पुरुवीराभिः) सम्मुख अत्यन्त नव्य और वीरता बढानेवालोंके साथ (सुविताय) सुख प्राप्तिके लिये (प्र याहि) आ ॥ ४ ॥

[३२६] (तुराषाट् सः इन्द्रः) हिंसकोंका पराभव करनेवाला यह इन्द्र (सर्गेण शवसा) सर्वदा उद्युक्त बलसे (अत्यैः तक्तः) सततगामी तेजस्वी अश्वोंसे युक्त हुआ (दक्षिणतः अपः इत्था सृजानाः) दक्षिण दिशामें पानीको इस प्रकार छोडनेवाला (अर्थं अप्रमृष्यं) गन्तव्य क्षोभरहित समुद्रको (दिवेदिवे अनपावृत् विविषुः) प्रतिदिन पुनः आगमन न हो इस प्रकार व्याप्त करता है ॥ ५ ॥

[३३]

[३२७] हे (वृषन्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ओजिष्ठः मदः स्वभिष्टिः दास्वान्) जो पुत्र अतिशय बलवान्, स्तुति करनेवाला, सुन्दर यज्ञ करनेवाला और हव्यान्न देनेवाला हो ऐसा (तं नः सुदाः) वह पुत्र हमें अच्छी प्रकार देओ। (यः स्वश्वः समत्सु) जो घोडेपर सवार होकर संग्राममें (सौवश्व्यं वनवत्) शोभन अश्वोंके शत्रु समूहका नाश करे। और (वृत्रा अमित्रान् सासहत्) वृत्र शत्रुओंका अतिशय पराभव करे ॥ १ ॥

१ यः ओजिष्ठः मदः दास्वान्, तं नः सुदाः— जो बलवान्, आनंद बढानेवाला, उत्तम यज्ञ करनेवाला दाता पुत्र हो वैसा हमें पुत्र दे।

भावार्थ— इस उत्तम कर्मोंको करनेवाले इन्द्रने हवन करनेवाले तथा स्तुति करनेवाले ऋषियोंके साथ मिलकर गायोंको प्राप्त करनेके लिए असुरोंको पराजित किया। शत्रुओंकी नगरियोंका नाश करनेवाला इन्द्र अपने बुद्धिमान् मित्रोंके साथ मिलकर शत्रुओंके सुदृढ नगरोंका नाश करता है ॥ ३ ॥

हे बलवान् इन्द्र ! तू अन्नों और बलोंसे युक्त होकर अपने नवीन मित्र और वीरता बढानेवाले मित्रोंके साथ सुख प्राप्तिके लिए आ ॥ ४ ॥

हिंसकोंका पराभव करनेवाला इन्द्र अपने बल और शीघ्रगामी अश्वोंसे युक्त होकर जलप्रवाहोंको समुद्रकी तरफ बहनेके लिए प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

३२८ त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणींरशायस्त्वोत इत् सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥
३२९ त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥
३३० स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ ४ ॥

अर्थ— [३२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वां हि विवाचः चर्षणयः) तुझे ही अनेक प्रकारकी स्तुति करनेवाली प्रजायें (शूरसातौ अवसे हवन्ते) युद्धमें रक्षणके लिये बुलाती हैं। (त्वं विप्रेभिः) तूने मेधावी विप्रोंके साथ (पणीन् वि अशायः) राक्षसोंका वध किया। (त्वा ऊतः इत् सनिता वाजं अर्वा) तेरे द्वारा रक्षित ही भक्तिमान् पुरुष अन्न प्राप्त करता है ॥ २ ॥

[३२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तूने (तान् उभयान् अमित्रान् वधीः) उन दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश किया। (दासा आर्या वृत्राणि च) बलादि असुरोंका और कर्मानुष्ठानकारी किन्तु आदरक ऐसे दोनों प्रकारके शत्रुओंको हे (शूर) शूरवीर ! नाश। (नृणां नृतम पृत्सु) नेताओंमें अतिशय श्रेष्ठ नेता हे इन्द्र ! संग्रामोंमें (वना इव) जिस प्रकार कुठार वृक्षोंको काटकर गिरा देता है उस प्रकार तूने (सुधितेभिः अत्कैः आ दर्षि) अच्छी तरह प्रयुक्त अपने आयुधोंसे शत्रुओंको काटा ॥ ३ ॥

१ त्वं दासा आर्या तान् उभयान् अमित्रान् वृत्राणि च वधीः— तुमने दास और आर्य इन दोनोंमें जो शत्रु थे, उन घातक शत्रुओंका वध किया।

२ नृणां नृतम ! पृत्सु वना इव सुधितेभिः अत्कैः आ दर्षि— हे वीरोंमें श्रेष्ठ वीर ! वनके वृक्षोंको काटते हैं उस तरह युद्धोंमें तीक्ष्ण शस्त्रोंसे तूने शत्रुओंको काटा।

[३३०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः त्वं अकवाभिः ऊती) उस प्रकार तू प्रशंसनीय रक्षाओंसे (नः वृधे अविता भूः) हमें बढानेके लिये रक्षक हो। (विश्वायुः सखा) सर्वत्रगामी तू हमारा मित्र हो। (नेमधिता पृत्सु) पुरुषोंसे युक्त संग्राममें (युध्यन्तः स्वर्षाता) युद्ध करते हुए अच्छे रक्षणीय धनके लिये हे (शूर) पराक्रमशाली ! (यत् ह्वयामसि) जब हम बुलायें तब हमारा रक्षक हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे बलशाली इन्द्र ! तू हमें ऐसा पुत्र दे कि जो बलवान्, देवोंकी स्तुति करनेवाला, सुन्दर यज्ञ करनेवाला और देवोंको हव्यान्न देनेवाला हो। वह घोडे पर सवार होकर संग्राममें शत्रुओंके समूहका नाश करे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुझे ही अनेक तरहकी स्तुति करनेवाली प्रजायें युद्धमें संरक्षणके लिए बुलाती हैं। तूने मेधावी विप्रोंकी सहायता लेकर राक्षसोंका वध किया। तेरे द्वारा रक्षित हुआ भक्तिमान् पुरुष ही अन्न प्राप्त करता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तूने दोनों तरहके शत्रुओंका नाश किया। जो दुष्ट कर्म करते हैं, उनका भी नाश किया और जो जलप्रवाह आदि रोककर प्रजाओंको सताते हैं, उनका भी तूने नाश किया। जिसप्रकार एक कुठार वृक्षोंको काटकर गिराता है, उसी तरह तूने अपने शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुओंको काटा ॥ ३ ॥

तू अपने प्रशंसनीय रक्षाके साधनोंसे हमें बढानेके लिए हमारा रक्षक हो। सर्वत्र व्यापक तू हमारा मित्र हो। वीर पुरुषोंसे युक्त संग्राममें युद्ध करनेवाले हम अपने ऐश्वर्य आदिकी रक्षाके लिए जब तुझे बुलायें, तब तू हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आ ॥ ४ ॥

३३१ नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन् दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ५ ॥

[३४]

[ऋषिः- शुनहोत्रो भारद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३३२ सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद् यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १ ॥

३३३ पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानोऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २ ॥

३३४ न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत् सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ ३ ॥

अर्थ— [३३१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नूनं नः स्याः) आज हमारा ही हो, (च अपराय) और अन्य समयमें भी हमारा ही हो । (उत नः अभिष्टौ मृळीकः भव) और भी हमारे सामने आनेपर तू सुख देनेवाला हो । (इत्था गृणन्तः) इस प्रकार स्तुति करते हुए (गोषतमाः महिनस्य) गौओंकी सेवा करनेवाले होकर महान् तेरे सम्बन्धी (दिवि पार्ये शर्मन् स्याम) द्योतमान दुःख और सुखमें वर्तमान रहें ॥ ५ ॥

[३३२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे पूर्वीः गिरः सं जग्मुः) तुझे पहिलेसे बहुतसी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं । (त्वत् विभ्वः मनीषाः वि यन्ति) तेरे पास वैभवयुक्त स्तोताओंकी प्रशंसायें जाती है । (पुरा नूनं च ऋषीणां स्तुतयः) पहले और इस समय भी ऋषियोंकी स्तुतियां (इन्द्रे अधि पस्पृध्रे) इन्द्रमें अधिक स्पर्धा करती हुई जाती हैं । (उक्थ अर्का) इसी प्रकार गान और पूजायें आदि भी उसके ही पास जाते हैं ॥ १ ॥

[३३३] (पुरुहूतः पुरुगूर्तः ऋभ्वा एकः यः) बहुतोंसे बुलाया जानेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित, महान्, प्रधानभूत इन्द्र (यज्ञैः पुरुप्रशस्तः अस्ति) यजनीय स्तोत्रों द्वारा बहुत प्रशंसनीय है । (इन्द्रः रथो न) इन्द्र रथकी तरह (महे शवसे युजानः) महान् बलके लिये स्तुतियोंसे युक्त होता हुआ (अस्माभिः अनुमाद्यः भूत्) हमारेसे सदा स्तवनीय है ॥ २ ॥

[३३४] (यं इन्द्रं धीतयः न हिंसन्ति) जिस इन्द्रको यज्ञ आदि कर्म बाधा नहीं देते । (वाणीः न) स्तुतियाँ भी बाधाकारक नहीं होती । किन्तु (वर्धयन्तीः अभि नक्षन्ति) उस इन्द्रको बढाती हुई प्राप्त होती हैं । (गिर्वणसं शतं स्तोतारः यदि गृणन्ति) स्तुतिसे सेवनीय उस इन्द्रकी सैकडों स्तोतालोग स्तुति करते हैं । (यत् सहस्रं तत् अस्मै शं) यदि हजारों स्तुति करते हैं तो वे स्तोत्र इन्द्रको सुखकर होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू आज भी हमारी रक्षा करनेवाला हो तथा अन्य दिनोंमें भी तू हमारी रक्षा करनेवाला हो । जब भी तू हमारे पास रहे, तभी तू हमें सुख देनेवाला हो । गौओंकी सेवा करनेवाले हम इस प्रकार तेरी स्तुति करते हुए सुख और दुःखमें सदा तेरे ही पास रहें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुझे पहलेसे ही बहुत सारी स्तुतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं । जो ऐश्वर्यशाली स्तोता हैं, वे भी तेरी प्रशंसा करते हैं । प्राचीन और नूतन ऋषियोंकी स्तुतियाँ मानो स्पर्धा सी करती हैं कि देखें कौन इन्द्रके पास जल्दी पहुंचती है ॥ १ ॥

बहुतोंसे बुलाये जानेवाला, बहुतोंसे प्रशंसित, महान् और सब देवोंमें प्रधान इन्द्र यजनीय स्तोत्रोंके द्वारा बहुत प्रशंसनीय होता है । इन्द्र रथकी तरह महान् बलकी प्राप्तिके लिए हमारे द्वारा सदा स्तुत होता है ॥ २ ॥

इस इन्द्रके कर्मोंमें कोई बाधा नहीं डाल सकता तथा स्तुतियां भी बाधा नहीं डाल सकतीं, इसके विपरीत स्तुतियां और यज्ञादि कर्म इन्द्रको बढाती हैं । इस इन्द्रकी सैंकडों लोग स्तुति करते हैं, वे सभी स्तुतियां इस इन्द्रको सुख देते हैं ॥ ३ ॥

३३५ अस्मा एतद् दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः । ॥ ४ ॥
३३६ अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद् यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ ॥

[३५]

[ऋषिः- नरो भारद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३३७ कदा भुवन् रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥ १ ॥
३३८ कर्हि स्वित् तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन् वीरैर्वीरान् नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद् धेह्यस्मे ॥ २ ॥

अर्थ— [३३५] (एतत् दिवि) इस यज्ञके दिन (अर्चा इव मासा मिमिक्षः) अर्चनाके साथ रहनेवाला मिश्रित (सोमः अस्मै इन्द्रे न्यायामि) सोमरस इस इन्द्रके लिये प्रस्तुत हुआ है । (धन्वन् अभि संयत् आपः जनं) मरुस्थलमें जिस प्रकार अभिगमन करनेवाला पानी मनुष्योंको आनंदित करता है, उस प्रकार (यज्ञैः सत्रा हवनानि वावृधुः) यज्ञमें किये हवन भी उसको आनंदित करें ॥ ४ ॥

[३३६] (अस्मै महि एतत् आंगूषं) इन्द्रके लिये महान् स्तोत्र (मतिभिः अवाचि) स्तोताओंने कहा । (विश्वायुः इन्द्रः महति वृत्रतूर्ये) सर्वत्रगामी वह इन्द्र महान् युद्धमें (यथा अविता वृधः च असत्) जिस प्रकार रक्षक और हमको वर्धित करनेवाला हो उस प्रकार (अस्मा इन्द्राय स्तोत्रं) इस इन्द्रके लिये स्तोत्र पढा गया है ॥ ५ ॥

[३५]

[३३७] हे इन्द्र ! (ब्रह्म रथक्षयाणि कदा भुवन्) हमारे स्तोत्र रथनिवासके हेतु कब होवें । (कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः) कब स्तुति करनेवाले मुझे सैकडों पुरुषोंका पोषक पुत्र या धन देंगे । (कदा अस्य स्तोमं राया वासयः) और कब मेरे स्तोताके स्तोत्रको धनसे युक्त करेंगे । (धियः वाजरत्नाः कदा करसि) हमारे बुद्धियुक्त कर्मोंको अन्नोंसे रमणीय कब करेंगे ॥ १ ॥

(३३८) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कर्हि स्वित् तत्) वह सब कब होगा (नृभिः नॄन्) हमारे वीर पुरुषोंसे शत्रुके वीर पुरुषोंको (वीरैः वीरान् हमारे वीर पुत्रोंसे शत्रुपुत्रोंको (यत् नीळयासे) कब संयुक्त करोगे । और (आजीन् जय) इन संग्रामोंमें हमारी जीत हो । (गोषु त्रिधातु गाः अधि जयासि) गमनशील शत्रुओंमेंसे दूध, दहि और घी वाली गौओंको जीत लो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्वर्वत् द्युम्नं अस्मे धेहि) तेजस्वी धन हमें दे दो ॥ २ ॥

भावार्थ— यज्ञोंमें स्तुतिके साथ प्रदान किया जानेवाला सोमरस इस इन्द्रके लिए प्रस्तुत किया जाता है । जिसप्रकार मरुस्थलमें रहनेवाला पानी वहांके मनुष्योंको आनंदित करता है, उसी प्रकार यज्ञोंमें प्रदान किए गए ये सोमरस इस इन्द्रको आनंदित करें ॥ ४ ॥

सर्वत्र जानेवाला वह इन्द्र महान् युद्धमें जिस प्रकार हमारी रक्षा करे तथा हमारा संवर्धन करे, इसलिए हम उसकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरी कृपा हम पर कब होगी, ताकि तेरी कृपा प्राप्त करके हम अनेकोंका पोषण करनेवाला धन अथवा पुत्र प्राप्त करें । तेरी स्तुति करनेवाले ऐश्वर्यसे सम्पन्न हों तथा वे बुद्धिपूर्वक कर्मोंको करके रमणीय अन्नसे युक्त हों ॥ १ ॥

३३९ कर्हि स्वित् तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥ ३ ॥
३४० स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४ ॥
३४१ तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥ ५ ॥

[३६]

[ऋषिः- नरो भारद्वाजः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

३४२ सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद् देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥ १ ॥

अर्थ— [३३९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कर्हि स्वित् तत्) वह कब होगा हे (शविष्ठ) अतिशय बलवान् इन्द्र ! (जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः यत्) स्तोताको जो बहुत अन्न दोगे और ज्ञान दोगे वह कब होगा ? (कदा धियः न नियुतः युवासे) कब हमारे कर्मों और स्तुतियोंको अपनेमें संयुक्त करोगे । (कदा गोमघा हवनानि गच्छाः) और कब गौओंके यज्ञादिका हवन करोगे ॥ ३ ॥

[३४०] हे इन्द्र ! (सः जरित्रे गोमघा अश्वचन्द्राः वाजश्रवसः पृक्षः) तू स्तोताको गोदायक, अश्वोंसे आनन्ददाता, बलोंसे प्रसिद्ध अन्न (भरद्वाजेषु अधि धेहि) अन्नदान करनेवालेको दे । (इषः सुदुघां धेनुं) वे अन्न, सुन्दर दूध देनेवाली गौको हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पीपिहि) परिपुष्ट करें । और (सुरुचः रुरुच्याः) सुन्दर कान्तिवाली हों इस प्रकार कान्तिसे युक्त हों ॥ ४ ॥

[३४१] (नूनं वृजनं अन्यथा चित्) इस समयके हमारे बाधक शत्रुका अन्य प्रकारकी योजनासे ही नाश कर । हे (शक्र) शक्तिमान् इन्द्र ! (शूरः वि दुरः) शौर्यसे युक्त तू शत्रु निहन्ता है । (यत् गृणीषे) जब हम लोग तेरा स्तवन करते हैं, (शुक्रदुघस्य धेनोः मा निररं) तब शुद्ध दूध देनेवाली गौके समान हम तुझसे दूर न हों । हे (विप्र) बुद्धिमान ! (आंगिरसान् ब्रह्मणा जिन्व) अंगिरसोंको अन्नसे प्रसन्न कर ॥ ५ ॥

[३६]

[३४२] हे इन्द्र ! (तव मदासः सत्रा विश्वजन्याः) तेरे आनन्द सचमुच सब मनुष्योंके हितके लियेही होते हैं । (अध पार्थिवासः ये रायः सत्रा) और पृथ्वीपरके सब धनसमूह भी सत्य ही मनुष्योंके हितके लिये होते हैं । (वाजानां सत्रा विभक्ता अभवः) सत्य ही तू अन्नोंका दाता है । (यत् देवेषु असुर्यं धारयथाः) जिससे तू देवोंके बीच बलको धारण करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे वीर इन्द्र ! जब ऐसा समय आए कि हमें या हमारे वीरोंको अथवा हमारे पुत्रोंको शत्रुओंसे या उनके वीरोंसे या उनके पुत्रोंसे भिडना ही पडे, तो उस समय तेरी कृपासे जीत हमारी ही हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! वह समय कब आएगा कि जब तू स्तोताको बहुत अन्न देगा और उत्तम ज्ञान देगा । कब तू हमारे कर्मों और स्तुतियोंसे स्वयंको संयुक्त करेगा ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू स्तोताको गायें, अश्व, बलदायक प्रसिद्ध अन्न प्रदान कर । वे अन्न सुन्दर दूध देनेवाली गौको परिपुष्ट करें तथा वे परिपुष्ट होकर सुन्दर कान्तिवाली हों ॥ ४ ॥

हमारे कार्यमें जो विघ्न बाधता है उस शत्रुका तू हर तरहसे नाश कर । हे शक्तिमान् इन्द्र ! शौर्यसे युक्त तू शत्रुको मारनेवाला है । जिस तरह शुद्ध दूधको देनेवाली गाय अपने पालकसे दूर या अलग नहीं रहती, उसी तरह तू शुद्ध ऐश्वर्यको देनेवाला है अतः तू हमसे दूर मत रह ॥ ५ ॥

३४३ अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥ २ ॥
३४४ तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥ ३ ॥
३४५ स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ४ ॥

अर्थ— [३४३] (अस्य ओजः जनः अनु प्र येजे) इस इन्द्रके सामर्थ्यको मनुष्य हमेशा पूजता है। (वीर्याय सत्रा अनु दधिरे) वीर कर्म करनेके लिये ही मनुष्य वीर आगे करता है। (स्यूमगृभे दुधये) शत्रुओंको पकडकर हिंसा करनेके लिये (अर्वते च क्रतुं वृत्रहत्ये वृञ्जन्ति) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले और शत्रुका नाश करनेवालेके लिये मनुष्य शुभ कर्म करते हैं ॥ २ ॥

१ अस्य ओजः जनः अनु प्र येजे— इस वीरके सामर्थ्यका लोग सत्कार करते हैं ।
२ वीर्याय सत्रा अनु दधिरे— इस वीरको वीरताके कार्य करनेके लिये आगे रखते हैं ।
३ स्यूमगृभे दुधये अर्वते च वृत्रहत्ये क्रतुं वृञ्जन्ति— शत्रुको पकडकर उसका नाश करनेके लिये, घोडोंको शत्रुनाशमें लगानेके लिये मनुष्य शुभकर्मोंको करते हैं ।

[३४४] (तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः) उस इन्द्रके साथ संरक्षण शक्तियां रहती हैं। (वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः इन्द्रं) वीर कर्म, बल और रथमें जोडे गये घोडे भी उस इन्द्रके साथ रहते हैं। (समुद्रं न सिन्धवः) जिस तरह समुद्रको नदियां प्राप्त होती हैं उस प्रकार (उक्थ-शुष्माः गिरः उरुव्यचसं आ विशन्ति) बलवाली स्तुतियां विस्तीर्ण व्यापक इन्द्रको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

१ तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः— उस वीरके साथ संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं ।
२ वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः इन्द्रं— वीरताके कर्म, बल तथा रथके घोडे उस वीर इन्द्रके साथ रहते हैं ।

[३४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गृणानः सः त्वं) स्तूयमान तू (पुरुश्चन्द्रस्य वस्वः रायः) बहुतोंको आनन्द देनेवाले, निवासक धनकी (खां उप सृज) धाराको छोड। (असमः जनानां पतिः बभूथ) तू अनुपम सर्वोत्कृष्ट सब प्राणियोंका स्वामी हुआ। (विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा) संपूर्ण भुवनोंका तू एक ही अधिपति है ॥ ४ ॥

१ त्वं पुरुश्चन्द्रस्य वस्वः रायः खां उप सृज— तू तेजस्वी धनकी धाराएं हमारे पास आने दो ।
२ जनानां असमः पतिः बभूथ— लोगोंका अनुपम स्वामी हो ।
३ विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा— सब भुवनोंका एक राजा तू ही हो ।

भावार्थ — हे इन्द्र ! तेरे आनन्द सब प्राणियोंका हित करनेवाले हैं, अर्थात् जब तू आनन्दमें होता है, तब तू सभी प्राणियोंका हित करता है । तेरे पृथ्वीपरके धन सबको आनन्द देनेवाले हैं । तू ही सब धनोंका दाता है और तू ही सब देवोंमें बलको स्थापित करता है ॥ १ ॥

इस वीर इन्द्रके सामर्थ्यका सभी प्राणी सत्कार करते हैं और इस वीरको वीरताके कार्य करनेके लिए आगे रखते हैं अर्थात् अपना नेता बनाते हैं । उसके साथ ही शत्रुको पकडकर उसका नाश करनेके लिए मनुष्य शुभ कर्म करते हैं ॥ २ ॥

उसवीर इन्द्रके साथ सभी संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं । वीरताके कर्म, बल तथा अन्य सैन्य सामग्री उस वीर इन्द्रके साथ रहते हैं । इस कारण जिस तरह नदियां समुद्रकी तरफ प्रवाहित होती हैं, उसी तरह बल देनेवाली स्तुतियां इस व्यापक इन्द्रको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

+

३४६ स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयु- र्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः।
अस़ो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥ ५ ॥

[३७]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

३४७ अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रे- न्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वा- नृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥

३४८ प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन् पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीया- द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २ ॥

३४९ आसस्राणासः शवसानमच्छे- न्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयु- र्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३ ॥

अर्थ— [३४६] हे इन्द्र ! (श्रुत्या तु श्रुधि) हमारे प्रशंसनीय स्तोत्रोंको सुन। (यः दुवोयुः अर्यः भूम रायः) जो इन्द्र हमारेसे सेवा करानेकी इच्छावाला शत्रुओंके अतिशय धनको (द्यौः न अभि) सूर्यकी तरह जीते (शवसा चकानः) अपने बलसे युक्त (युगे युगे) समय समयपर (वयसा चेकितानः यथा नः असः) अन्नसे युक्त जिस प्रकार पहिले हमारे लिये था वैसा ही अब भी हो ॥ ५ ॥

[३७]

[३४७] हे (उग्र) बलवान् वीर (इन्द्र) इन्द्र ! (युक्तासः हरयः) रथके साथ जोडे हुए अश्व (ते विश्ववारं रथं अर्वाक् वहन्तु) तेरे सबके द्वारा प्रशंसनीय रथको हमारे समीप ले आवें। (हि स्वर्वान् कीरिः चित् त्वा हवते) क्योंकि आत्मज्ञानी ऋषि तेरी स्तुति करता है और (अद्य ते सधमादः ऋधीमहि) इस समय तेरे साथ आनन्द अनुभवते हुए हम सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

[३४८] (हरयः नः कर्म प्रो अग्मन्) तेरे हरितवर्णवाले घोडे हमारे यज्ञके पास आते हैं और ये (पुनानासः द्रोणे ऋज्यन्तः अभूवन्) पवित्र सोमरस द्रोणकलशमें रखे जाते हैं। (पूर्व्यः द्यु-क्षः) पुरातन द्युलोकमें रहनेवाला (मदस्य सोमस्य राजा इन्द्रः) आनंदकारक सोमका स्वामी इन्द्र (अस्य पपीयात्) इस सोमका पान करे ॥ २ ॥

[३४९] (आसस्राणासः रथ्यासः अश्वाः ऋज्यन्तः) सर्वत्रगामी, रथमें जोडे हुए घोडे, सुगमतापूर्वक आनेवाले होते हैं (सुचक्रे शवसानं इन्द्रं) वे घोडे, सुन्दर रथमें बैठे हुए बलवान् इन्द्रको (श्रवः अच्छ वहेयुः) यज्ञके समीप ले आवे। (अमृतं वायोः नु नू चित् वि दस्येत्) अमरता देनेवाले सोमको वायुसे कोई खराबी न हो। अर्थात् इसके पहिले ही इन्द्र सोमका पान कर ले ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! प्रशंसित होनेवाला तू बहुतोंको आनन्द देनेवाले तथा सबके जीवनको श्रेष्ठ बनानेवाले धनकी धाराको हमारी तरफ मुक्त कर। तू अनुपम, सर्वोत्कृष्ट और सभी प्राणियोंका स्वामी है। तू ही सम्पूर्ण भुवनोंका स्वामी है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमारे प्रशंसनीय स्तोत्रोंको सुन। वह इन्द्र हमारे शत्रुओंके धनोंको जीते। वह हमारे लिए हमेशा ही धन और अन्नसे युक्त रहे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! आत्मज्ञानी ऋषि तेरी स्तुति कर रहा है अतः, तू अपने प्रशंसनीय घोडे हमारी ओर घुमा, ताकि हम तेरी कृपासे आनन्द प्राप्त करते हुए सिद्धिको प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तेरे तेजस्वी घोडे हमारे यज्ञके पास जब आते हैं, तब ये पवित्र सोमरस कलशमें तेरे पीनेके लिए भरे जाते हैं। तब द्युलोकमें रहनेवाला तथा आनन्ददायक सोमरसोंका स्वामी तू इन सोमरसोंका पान कर ॥ २ ॥

सर्वत्र जानेवाले, रथमें जोडे हुए घोडे सभी जगह सुगमतापूर्वक जाते हैं, ऐसे घोडे सुन्दर रथमें बैठे हुए बलवान् इन्द्रको यज्ञके पास ले आवें। अमरता देनेवाले इस सोममें वायु लगनेके कारण सड न जाए, इससे पहले ही इन्द्र इन सोमोंको पी सके ॥ ३ ॥

३५० वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ ४ ॥
३५१ इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ऽऽ ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥ ५ ॥

[३८]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

३५२ अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥
३५३ दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

अर्थ— [३५०] (वरिष्ठः तुविकूर्मितमः इन्द्रः) अत्यन्त श्रेष्ठ त्वरासे अनेक कर्म करनेवाला इन्द्र (मघोनां अस्य दक्षिणां इयर्ति) धनवानोंके बीचमें श्रेष्ठको दक्षिणा देता है। हे (वज्रिवः) वज्रवान् इन्द्र ! (यया अंहः परियासि) जिससे पाप दूर होंगे नाश होंगे। हे (धृष्णो) धर्षक इन्द्र ! (मघा सूरीन् वि दयसे) यह धन ज्ञानियोंको विशेष रूपसे लाभकारी हो ॥ ४ ॥

[३५१] (इन्द्रः) इन्द्र (स्थविरस्य वाजस्य दाता) श्रेष्ठ अन्न तथा बलका देनेवाला है। (इन्द्रः वृद्धमहाः गीर्भिः वर्धतां) इन्द्र महान् वृद्ध तेजवाला होता हुआ हमारी स्तुतियोंसे वर्धमान् हो। (सत्वा इन्द्रः वृत्रं हनिष्ठः अस्तु) सत्ववान् इन्द्र आवरक शत्रुका नाश करनेवाला हो। (सूरिः तूतुजानः ता आ पृणाति) विद्वान् इन्द्र शीघ्रतासे उन धनोंको हमें दे ॥ ५ ॥

[३८]

[३५२] (चित्रतमः न इतः अपात्) अत्यंत आश्चर्यकारक इन्द्र हमारे इस पात्रसे पान करे। (महीं द्युमतीं इन्द्रहूतिं भर्षत्) विशेष तेजस्वी प्रार्थनाको वही इन्द्र श्रवण करे। (दैव्यस्य जनस्य यामन्) दिव्य मनुष्यकी की हुई (पन्यसीं धीतिं रातिं) स्तुत्य बुद्धिको तथा दानको (सुदानुः वनते) उत्तम दाता इन्द्र स्वीकार करे, उसका सेवन करे ॥ १ ॥

[३५३] (अस्य कर्णा) इस प्रभुके कान (दूरात् चित् आ वसतः) दूरदेशसे भी सुनते हैं। (इन्द्रस्य ब्रुवाणः घोषात् तन्यति) इन्द्रकी स्तुति स्तोता उच्च स्वरसे करता है। (देवहूतिः इयं ऋच्यमाना) देवकी यह स्तुति प्रेरणा करती हुई (एनं इन्द्रं) इस इन्द्रको (मद्र्यक् आ ववृत्यात्) हमारे समीप लाती है ॥ २ ॥

१ अस्य कर्णा दूरात् चित् आवसतः— इस प्रभुके कान दूरसे भी सुनते हैं।

२ इन्द्रस्य ब्रुवाणः घोषात् तन्यति— इन्द्रकी स्तुति ऊंचे स्वरसे की जाती है। प्रभुकी स्तुति उच्च स्वरसे गावो।

भावार्थ— अत्यन्त श्रेष्ठ और शीघ्रतासे काम करनेवाला इन्द्र धनवानोंको भी धन प्रदान करनेवाला है। जो धन इन्द्र प्रदान करता है, वे पापको दूर करनेवाले तथा पापोंका नाश करनेवाले हैं, इसी कारण यह धन ज्ञानियोंको विशेष रूपसे लाभकारी होता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र श्रेष्ठ अन्न और बलको देनेवाला है, अतः यह इन्द्र महान्, अत्यन्त तेजस्वी और हमारी स्तुतियोंसे बढे। ऐसा यह बलवान् इन्द्र आवरक शत्रुका नाश करनेवाला हो तथा उन शत्रुओंका नाश करके इन्द्र शीघ्र ही उन धनोंको हमें दे ॥ ५ ॥

अत्यन्त आश्चर्यकारक कर्मोंको करनेवाला इन्द्र हमारे इस पात्रसे सोमका पान करे। विशेष तेजस्वी प्रार्थनाको वही इन्द्र श्रवण करे तथा तेजस्वी मनुष्यके द्वारा की गई स्तुत्य बुद्धिको तथा हमारे द्वारा दिए गए हविके दानको इन्द्र स्वीकार करे ॥ १ ॥

३५४ तं वो धिया परमया पुराजा- मजरमिन्द्रमभ्यर्नूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन् महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ ३ ॥

३५५ वर्धाद् यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तो- र्वर्धान् मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

३५६ एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नून- मा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ ॥

अर्थ— [३५४] हे इन्द्र ! (पुराजां अजरं तं इन्द्रं) पुरातन परंतु जरारहित, उस इन्द्रकी (वः परमया धिया अर्कैः) अत्यन्त उत्कृष्ट बुद्धिसे और अर्चनाओंसे मैं (अभ्यनूषि) उपासना करता हूँ। (अस्मिन् इन्द्रे) इस इन्द्रमें (ब्रह्म गिरः सं दधिरे) श्रेष्ठ ज्ञान और वाणियां रहती हैं। (महान् स्तोमः च अधि वर्धत्) महान् यश भी उसीसे बढता है ॥ ३ ॥

[३५५] (यं इन्द्रं यज्ञः वर्धात्) जिस इन्द्रको यज्ञ बढाता है (उत सोमः) और सोम भी बढाता है। (ब्रह्म वर्धात्) ज्ञान भी उसको बढाता है। (गिरः मन्म उक्था च) स्तोत्र और मननीय गान भी बढाते हैं। (एनं उषसः अक्तोः यामन् वर्ध) इस इन्द्रको उषा, रात्रि और प्रहर बढाते हैं। (मासाः शरदः द्यावः इन्द्रं वर्धान्) मास, संवत्सर और दिन भी इन्द्रको बढाते हैं ॥ ४ ॥

१ यज्ञः इन्द्रं वर्धात्— यज्ञ प्रभुकी महिमाको बढाते हैं।
२ ब्रह्म इन्द्रं वर्धात्— ज्ञान प्रभुकी महिमाको बढाता है।

[३५६] हे (विप्र) बुद्धिमान् (एव जज्ञानं सहसे) इस प्रकार ज्ञात शत्रुओंको पराजित करनेके लिये (असामि वावृधानं महां उग्रं) बहुत बढे हुए महान् बलका (अद्य वृत्रतूर्येषु) आज युद्धोंमें (श्रुताय राधसे च अवसे) कीर्ति, धन और रक्षणके लिये (आ विवासेम) हम आश्रय करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह प्रभु सर्वव्यापक है, इसलिए इसके कान सर्वत्र फैले हुए हैं, इसलिए यह दूरदेशमें की हुई बातें भी समझ जाता है, जब मनुष्य जो स्तुति करते हैं, उन स्तुतियोंसे आकर्षित होकर इन्द्र उन मनुष्योंके समीप जाता है ॥ २ ॥

यह इन्द्र अत्यन्त प्राचीन होते हुए भी जरारहित है, वह कभी भी बूढा नहीं होता। उसकी अत्यन्त उत्कृष्ट बुद्धि तथा अर्चनाओंसे मैं उपासना करता हूँ। इस इन्द्रमें सभी तरहके श्रेष्ठ ज्ञान और स्तुतियां रहती हैं, इस तरहका महान् यश भी उसीसे बढता है ॥ ३ ॥

प्रभुकी स्तुति गानेसे प्रभुकी महिमा बढती है। प्रभुकी स्तुतिसे ज्ञान बढता है, हमारी वाणियां, हमारे मननीय गान भी उसकी महिमाको बढाते हैं। इस प्रभुकी महिमाको प्रहर, रात्री, उषा, दिन, महिने और वर्ष भी बढाते हैं ॥ ४ ॥

ज्ञात शत्रुको पराजित करनेके लिये तथा कीर्ति, सिद्धि, धन और सुरक्षाके लिये अद्वितीय, बढे हुए महान् उग्र प्रचंड सामर्थ्यका हम आश्रय करते हैं ॥ ५ ॥

[३९]

[ऋषिः– बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवताः– इन्द्रः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।]

३५७ मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्ने–र्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवे–षो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥

३५८ अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिरृतयुग्युजानः ।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २ ॥

३५९ अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून् दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥

३६० अयं रोचयदरुचो रुचानोऽयं वासयद्व्यृतेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४ ॥

---

[३९]

अर्थ- [३५७] (मन्द्रस्य कवेः दिव्यस्य) आनंद देनेवाले, दिव्य ज्ञान बढानेवाले (वह्नेः विप्रमन्मनः वचनस्य) संचालक, बुद्धि बढानेवाले प्रशंसनीय (तस्य सचनस्य) उस सेवनीय (नः मध्वः अपाः) हमारे मधुररसको पिओ। हे (देव) कान्तिमान् ! (गृणते गोअग्राः इषः युवस्व) स्तुति करनेवालेको गोरसादि अन्नोंसे युक्त करो ॥ १ ॥

[३५८] (अयं अद्रिं परि) इसने पर्वतके ऊपर रहे (उस्राः उशानः ऋतधीतिभिः युजानः) गौओंकी रक्षा करनेकी इच्छासे सत्य धारणाशक्तियोंसे युक्त होकर (ऋतयुक्) सरलतासे युक्त होकर (बलस्य अरुग्णं सानुं वि रुजत्) बलासुरके तोडनेमें अशक्य उच्च पर्वतको भी तोडा । और (पणीन् वचोभिः इन्द्रः अभि योधत्) पणीयोंसे वचनोंसे युद्ध करके इन्द्रने उनको पराजित किया ॥ २ ॥

[३५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं इन्दुः) इस सोमने (अद्युतः अक्तून् दोषावस्तोः शरदः) अन्धेरी रात्री, दिन और वर्षोंको (वि द्योतयत्) प्रकाशित किया । (नू चित् इमं अह्नां केतुं अदधुः) और सचमुच इसको दिवसोंका ध्वज जैसा प्रज्ञापक बनाया था (उषसः शुचिजन्मनः चकार) उषःकालोंको अपने तेजसे शुद्ध तेजस्वी बनाया ॥ ३ ॥

[३६०] (अयं रुचानः अरुचः रोचयत्) यह सूर्य रूपसे दीप्तिमान् होकर अप्रकाशित लोकोंको (रोचयत्) प्रकाशित करता है । (पूर्वीः अयं ऋतेन वि वासयत्) बहुतसे उषःकालोंको इसने अपने तेजसे प्रकाशित किया । (ऋतयुग्भिः अश्वैः) इशारेसे नियोजित अश्वोंद्वारा चलाये जानेवाले (नाभिना स्वर्विदा) सुन्दर नाभीवाले तेजस्वी रथसे (चर्षणिप्राः अयं ईयते) प्रजाओंके मनोरथोंको पूर्ण करता हुआ यह वीर जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम जो यह सोमरस देते हैं, वह आनन्द देनेवाला, दिव्य ज्ञान बढानेवाला, बुद्धि बढानेवाला और मधुर है । अतः हे तेजस्वी इन्द्र ! तुझे हम जो सोमरस देते हैं, अतः तू हमें गौ दुग्ध आदिसे युक्त कर ॥ १ ॥

यह वीर पर्वतपर रही गौओंको सुरक्षित करनेकी इच्छा करता है । पर्वतपर गौवें चरती रहें और वे वहां सुरक्षित रहें, उनको कोई चुराये नहीं, ऐसी इच्छा वीर करता है। सत्य धारणाशक्तियोंसे युक्त, तथा सरलतासे योग्य कार्य करनेवाला वीर, बल असुरके अभेद्य पर्वतपरके किलेको तोडता है । अपनी शक्ति बढाकर शत्रुके अभेद्य किलोंको तोडना चाहिये ।

इस सोमने अप्रकाशित रात, दिन (पक्ष, मास, अयन) और वर्ष प्रकाशित किये । चन्द्रमाने यह कालकी गणना की । चन्द्रमाकी गतिसे दिन, मास, वर्ष आदि हुए । सचमुच यह सोम–चन्द्रमा दिनोंका ध्वज करके धारण किया गया है । उषाओंको इस चन्द्रमाने अपने तेजसे शुद्धतासे जन्मा करके प्रसिद्ध किया है । चन्द्रमासे भी कई उषाएं प्रकाशित होती हैं ॥ ३ ॥

३६१ नू गृणानो गृणते प्रत्न राज॒न्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥ ५ ॥

[४०]

[ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३६२ इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदाया ऽव स्य हरी वि मुंचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्या ऽथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १ ॥

३६३ अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रि रिन्दुं समह्यन् पीतये समस्मै ॥ २ ॥

अर्थ— [३६१] हे (प्रत्न) पुरातन ! (राजन्) प्रकाशमान् वीर ! (गृणानः वसुदेयाय गृणते) प्रशंसित होकर तू धन देने योग्य उपासकको (पूर्वीः इषः नु पिन्व) बहुत अन्न दे। (ऋचसे अपः ओषधीः) और उपासकको पानी, अन्न (अविषा वनानि गा अर्वतः) विषरहित वृक्षसमूह, गौ, अश्व आदि (नॄन् रिरीहि) मनुष्योंको दे ॥ ५ ॥

[४०]

[३६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तुभ्यं मदाय सुतः) तेरे आनंदके लिए निकाला यह रस है। (सखाया हरी अव स्य) मित्र जैसे दोनों घोडोंको रथसे खोल और (वि मुच) छोड। (उत गणे आ निषद्य) और हमारे समूहमें बैठकर (प्र गाय) गानेके लिये प्रेरणा दे। (अथ यज्ञाय गृणते) अनन्तर यज्ञके लिये गानेवालेको (वयः धाः) अन्न दे ॥ १ ॥

[३६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्य पिब) इसको पी। हे (विरप्शिन्) स्तुतिके योग्य ! (जज्ञानः मदाय क्रत्वे) उत्पन्न होते ही तूने हर्षकारक वीरकर्म करनेके लिये (यस्य अपिबः) जिसको पिया था। (तमु इन्दुं) उसी सोमका पान करो। (गावः नरः आपः अद्रिः) गौओंका दूध, मनुष्य, पानी और पत्थर (अस्मै ते पीतये) तेरे पानके लिये सोमरस बनानेको ही ये सब (समह्यन्) लाये गये हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— यह वीर स्वयं प्रकाशित होकर अप्रकाशितोंको प्रकाशित करता है। इसने अपने तीव्र प्रकाशसे पूर्व समयकी उषाओंको प्रकाशित किया। सूर्योदयके पूर्व अनेक उषायें प्रकाशित हुई वे इसीके प्रकाशसे हुई थीं। इशारेसे जोते जानेवाले घोडोंसे जोते हुए तेजस्वी सुन्दर नाभीवाले रथसे प्रजाजनोंका पालन-पोषण करनेवाला यह वीर प्रगति करता है। वीर प्रजाजनोंका पालन-पोषण करे और सबकी स्थिति स्वयं भ्रमण करके निरीक्षण करे। जो अज्ञानमें हैं उनको ज्ञान देकर प्रकाशमें ले आवे ॥ ४ ॥

हे पुरातन राजन् ! स्तुत्य बनकर तू धन देने योग्य उपासकको उत्तम अन्न दे। उपासकको जल, अन्न, निर्विष फलवाले वृक्ष, गौवें, घोडे और बल, बंधु अथवा अनुयायी मनुष्य दे। उपासना करनेवाला इनको प्राप्त करके सुखसे रहे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरे आनन्दके लिए यह सोमरस निकाला गया है। तेरे साथ मित्रकी तरह आचरण करनेवाले अपने इन दोनों घोडोंको अपने रथसे खोल और उन्हें स्वतंत्र छोड दे। हमें ऐसी प्रेरणा दे कि हम समूहमें बैठकर तेरा गायन करें। तदनन्तर यज्ञके लिए गानेवालेको अन्न प्रदान कर ॥ १ ॥

उत्पन्न होते ही आनंदके लिये वीर कर्म करनेके लिये तुमने यह सोमरस पीया था। उस सोमको तैयार करनेके लिये गौओंने दूध दिया है, ऋत्विज रूपी मनुष्योंने कूटा है, जल उसमें मिलाया है और पहाडपरके पत्थरोंसे सोम कूटा गया है। इनकी सहायतासे यह सोमरस तैयार हुआ है ॥ २ ॥

३६४ समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमी-न्द्रा याहि सुवितायं महे नः ॥ ३ ॥
३६५ आ याहि शश्वदुशता ययाथे-न्द्रं महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नो ऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥ ४ ॥
३६६ यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृध-ग्यद् वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान् त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥ ५ ॥

[४१]

[ऋषिः— ५ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप्]

३६७ अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन् त्स्वमोको अच्छे-न्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ १ ॥

अर्थ— [३६४] (अग्नौ समिद्धे सोमे सुते) अग्नि प्रदीप्त होने और सोमका रस निकालनेपर हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा वहिष्ठाः हरयः आ वहन्तु) तुझे रथमें जुडे हुए घोडे यज्ञकी ओर ले आवें (त्वायता मनसा जोहवीमि) तेरी ओर मन लगानेवाले हम मनसे तुझे बारंबार बुलाते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः महे सुविताय आ याहि) हमारे विशेष कल्याणके लिये तू यहां आ ॥ ३ ॥

[३६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शश्वत् ययाथ) बारबार तू यज्ञमें जाता है इसलिये (उशता महा मनसा) इच्छा करता हुआ प्रबल मनसे (सोमपेयं आ याहि) सोम पानके स्थानपर आ जा । और (इमा नः ब्रह्माणि) हमारे इन स्तोत्रोंको (उप शृणवः) पाससे सुन । (अथ यज्ञः) उसके बाद यज्ञका कर्ता (ते तन्वे वयः धात्) तेरे शरीरके लिए सोमरस रूप अन्न देगा ॥ ४ ॥

[३६६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पार्ये दिवि यत्) दूर देश द्युलोकमें यदि तू रहता है (यद्वा स्वे सदने यत्र असि) अथवा यदि अपने घरमें अथवा जहाँ कहाँ भी रहता है (अतः) वहाँसे आकर हे (गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नियुत्वान् मरुद्भिः सजोषाः) अश्वोंके स्वामी और मरुतोंके साथ आनंदसे रहनेवाला तू (नः अवसे यज्ञं पाहि) हमारी रक्षाके लिये यज्ञकी रक्षा कर ॥ ५ ॥ [४१]

[३६७] (अहेळमानः यज्ञं उप याहि) क्रोधरहित होकर हमारे यज्ञमें आ (तुभ्यं सुतासः इन्दवः पवन्ते) तेरे लिये ये सोमरस शुद्ध हो रहे हैं । हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (गावः न स्वं ओकः अच्छ) गौओंके समान वह सोम अपने स्थानमें, कलशमें जाता है, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यज्ञियानां प्रथमः आ गहि) यजनीय देवोंमें मुख्य तू यहां आ ॥ १ ॥

१ अहेळमानः यज्ञं उप याहि— क्रोधरहित, प्रसन्न चित्तसे यज्ञमें जा । यज्ञमें आनंदप्रसन्न होकर जाना चाहिये । आनन्दप्रसन्न रहना योग्य है ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! अग्नि प्रदीप्त होने तथा सोमरस निकालकर तैय्यार करनेके बाद तुझे तेरे रथमें जुडे हुए घोडे यज्ञकी ओर ले आवें । हमारा मन तुझमें ही लगा हुआ है, अतः हम मनसे तुझे ही बुलाते हैं । अतः तू हमारा कल्याण करनेके लिए यहां आ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञमें बार बार जाता है, इसलिए हमारे पास आनेकी इच्छा करता हुआ तू अपनी प्रबल मनशक्तिसे युक्त होकर हमारे पास आ और हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पी और आकर हमारे इन स्तोत्रोंको पाससे सुन । हमारी स्तुति सुननेके बाद यज्ञका कर्ता तेरे शरीरकी पुष्टिके लिए सोमरसरूप अन्न देगा ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू चाहे दूर द्युलोकमें रह, अथवा अपने घरमें रह अथवा तू जहां चाहे वहां रह, वहींसे हमारी स्तुति सुनकर हमारे पास आ और हमारी रक्षा करनेके लिए यज्ञकी रक्षा कर ॥ ५ ॥

३६८ या ते काकुत् सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत् पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात् सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥ २ ॥

३६९ एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥ ३ ॥

३७० सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥ ४ ॥

अर्थ— [३६८] (या ते काकुत् सुकृता) जो तेरी जिह्वा है वह अच्छी बनी हुई है, (या वरिष्ठा) जो अत्यन्त श्रेष्ठ है। (यया मध्वः ऊर्मिं) जिससे मधुर रसकी ऊर्मीको तू (शश्वत् पिबसि, तया पाहि) हमेशा पीता है उससे संरक्षण कर। (अध्वर्युः प्र अस्थात्) यज्ञका नेता अध्वर्यु आ रहा है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (गव्युः ते वज्रः सं वर्तताम्) गौओंका रक्षण करनेवाला तेरा वज्र शत्रुओंका नाश करे ॥ २ ॥

[३६९] (द्रप्सः वृषभः विश्वरूपः एषः सोमः) द्रवणशील, बलवान् और अनेक रूपोंवाला, यह सोमरस (वृष्णे इन्द्राय) बलशाली इन्द्रके लिये (समकारि) अच्छी प्रकार तैयार किया है, हे (हरिवः) अश्ववान्, (स्थातः) युद्धमें स्थिर रहनेवाले (उग्र) उग्र बलवान् इन्द्र ! (एतं पिब) इसको पी। (यस्य प्रदिवि ईशिषे) जिसका तू बहुत दिनोंसे स्वामी है। (यः ते अन्नं) जो तेरा अन्न ही है ॥ ३ ॥

[३७०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सुतः अयं सोमः) रस निकाला हुआ यह सोम (असुतात् वस्यान्) रस न निकाले हुए सोमसे श्रेष्ठ है (चिकितुषे रणाय श्रेयान्) तुझ जैसे विद्वान्के लिये यह रस आनन्द देनेवाला और श्रेयस्कर है। हे (तितिर्वः) शत्रु विनाशक वीर ! (एतं यज्ञं उप याहि) इस यज्ञके पास आ ! (तेन विश्वाः तविषीः आ पृणस्व) उससे संपूर्ण प्रकारके बलोंको पूर्ण रीतिसे उन्नत कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू क्रोधरहित होकर हमारे यज्ञमें आ क्योंकि तेरे लिए हम ये सोमरस शुद्ध कर रहे हैं। जिस प्रकार गायें अपने बाडोंमें जाती हैं, उसी तरह यह शुद्ध किया हुआ सोम अपने स्थानरूप कलशमें जाता है। तू यजनीय देवोंमें सुरूप है, अतः तू यहां हमारे पास आ ॥ १ ॥

जो तेरी उत्तम बनी जिह्वा है, जो श्रेष्ठ है, जिससे तू मधुर रसकी लहरें पीता है, उससे हमारा रक्षण कर। जिह्वासे मधुर रस पीया जाय और उत्तम भाषणसे लोगोंका संरक्षण भी किया जावे। जिह्वाके दो कार्य हैं एक पीनेका कार्य है। जिह्वासे पौष्टिक मिष्ट रस पीये जाय। जिह्वाका दूसरा कार्य बोलनेका है। ऐसा बोला जाय कि जिस भाषणसे सज्जनोंका रक्षण होता रहे। अध्वर्यु आगे बढ रहा है। (अध्वरं युनक्ति ध्वरा हिंसा, तदभावो यत्र स अध्वरः) ध्वराका अर्थ हिंसा। जिसमें हिंसा नहीं है वह कर्म अध्वर कहलाता है। हिंसारहित कर्म जो करता है वह अध्वर्यु है। वह हिंसारहित कार्य करनेवाला प्रगति करता है। आगे बढता है ॥ २ ॥

यह सोमरस प्रवाही, बलवर्धक और अनेक तरहके रूपोंवाला है। यह सोम बलवर्धक, उत्साहवर्धक और पुष्टिदायक अन्न है। इसलिए यह अन्न बलवान्, शत्रुनाशक और वीर इन्द्रके पीनेके लिए तैय्यार किया गया है। अतः वीरगण इस पौष्टिक अन्नका सेवन करें। क्योंकि इस अन्न पर चिरकालसे वीरका स्वामित्व है। इन्हीं रसोंको पीकर इन्द्र युद्धमें स्थिर रहनेवाला और उग्र वीर होता है ॥ ३ ॥

यह सोमरस रस न निकाले सोमसे अधिक श्रेष्ठ है। ज्ञानीको आनन्द देनेके लिये यह श्रेयस्कर है। ज्ञानी वीरको युद्ध करनेके समय यह रस पीना हितकर है। हे शत्रुनाशक वीर ! तू यज्ञके पास आ। और इस यज्ञका संरक्षण कर। सब प्रकारके बलोंकी वृद्धि कर। अपनेमें सब प्रकारके बल बढाने चाहिये ॥ ४ ॥

३७१ ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ५ ॥

[४२]

[ऋषिः— ४ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— अनुष्टुप्, ४ बृहती ।]

३७२ प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरंगमाय जग्मये ऽपश्चाद्दध्वने नरे ॥ १ ॥
३७३ एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिण-मिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥
३७४ यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत् तंतमिदेषते ॥३॥

अर्थ— [३७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा ह्वयामसि) तुझे हम बुलाते हैं (अर्वाङ् आ याहि) हमारे सामने आ, (सोमः ते तन्वे) सोम तेरी शरीर पुष्टिके लिये (अरं भवाति) पर्याप्त है । हे (शतक्रतो) बहुत कर्म करनेवाले इन्द्र ! (सुतेषु मादयस्व) सोमरसका पान करके आनंदित हो । (पृतनासु अस्मान्) संग्राममें हमारी (प्र अव) रक्षा कर, और (विक्षु प्र) सब प्रजाओंमें भी हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥

[४२]

[३७२] (पिपीषते विश्वानि विदुषे) रस पीनेकी इच्छावाले संपूर्ण ज्ञानी (अरंगमाय जग्मये) अन्ततक कार्यको पहुंचनेवाले गमनशील, (अपश्चात् दध्वने नरे) अग्रेसर नेता ऐसे (अस्मै) इस इन्द्रको (प्रति भर) भरपूर सोमरस अर्पण कर ॥ १ ॥

[३७३] हे ऋत्विजों ! (सोमेभिः सोमपातमं एनं इन्द्रं) सोमरसोंके साथ अतिशय सोम पीनेवाले इन्द्रके (आ प्रति एतन) पास जाओ । (सुतेभिः इन्दुभिः अमत्रेभिः) अभिषुत सोमरससे भरे हुए पात्रोंके साथ (ऋजीषिणं) बलशाली इन्द्रके समीप गमन करो ॥ २ ॥

[३७४] (सुतेभिः इन्दुभिः सोमेभिः) रस निकाले तेजस्वी सोमरसोंसे (यदि प्रति भूषथ) जब तुम इन्द्रको सुभूषित करते हैं, उस समय (मेधिरः विश्वस्य वेद) बुद्धिमान् वह इन्द्र तुम्हारी सब कामनाओंको जानता है और जानकर (धृषत् तं तं इत् इषते) शत्रुओंका धर्षक वह वीर उन उन सब कामनाओंको पूर्ण करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र वीर ! तुझे हम बुलाते हैं, हमारे पास आ जाओ । तेरे शरीरके लिये सोम पर्याप्त है । सोमरससे शरीरकी पुष्टि और बल बढता है । हे सैकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले वीर ! सोमरससे आनन्द प्राप्त कर । युद्धोंमें हमारी सुरक्षा कर । वीर सबकी सुरक्षा युद्धके समय करें । प्रजाजनोंका संरक्षण कर । प्रजामें किसी पर कोई आक्रमण कर रहा हो तो उस दुःखी प्रजाजनका रक्षण वीर करे । सोमरस शरीरके लिये उत्तम अन्न है । यह शरीरका बल, उत्साह और स्फूर्ति बढाता है । वीर इस रसको पीवे और अपना बल और उत्साह और स्फूर्ति बढावें और प्रजाजनोंका संरक्षण करें ॥ ५ ॥

सब प्रकारके ज्ञानी, कार्यके अन्ततक पहुंचनेवाले, शत्रुपर आक्रमण करनेवाले, पीछे न रहनेवाले, अग्रेसर नेता ऐसे इस पीनेकी इच्छा करनेवाले वीरके लिये भरपूर रस दो । वीर ऐसे हों कि जो ज्ञानी हों, कार्यका पूर्ण रीतिसे समाप्त करनेवाले, शत्रुपर विचारपूर्वक आक्रमण करनेवाले, कभी पीछे न रहनेवाले, अग्रेसर और जनताको शुभ मार्गपर चला सकनेवाले हों ॥ १ ॥

इन्द्रके पास सोमरसके पात्रोंके साथ जाओ और उसको यथेच्छ सोमरस अर्पण करो । जिससे वह तृप्त होकर सबका संरक्षण करेगा ॥ २ ॥

बुद्धिमान् सब जाननेवाला, शत्रुका धर्षण करनेवाला उन उन सब इच्छाओंको पूर्ण करता है । बुद्धिसे अनुयायियोंकी आकांक्षाएं जानना और शत्रुका नाश करके अनुयायियोंकी आकांक्षाएं पूर्ण करना वीरका कर्तव्य है ॥ ३ ॥

+

३७५ अस्माअस्माइदन्धसो ऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित् समस्य जेन्यस्य शर्धतो ऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥

[४२]

[ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— उष्णिक् ।]

३७६ यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १ ॥
३७७ यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ २ ॥
३७८ यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥
३७९ यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥

अर्थ— [३७५] (अस्मा अस्मा इत्) इस इन्द्रके लिये ही हे (अध्वर्यो) ऋत्विक् ! (अन्धसः सुतं प्रभर) अन्नरूप सोमरस भरपूर दे । (समस्य जेन्यस्य शर्धतः) सब जीतने योग्य स्पर्धा करनेवाले शत्रुके (अभिशस्तेः) हिंसाकर्मसे (कुवित् अवस्परत्) अनेक बार हमारी रक्षा कर, हमारा पालन कर ॥ ४ ॥

[४२]

[३७६] हे इन्द्र ! तूने (यस्य मदे शम्बरं) जिसके पीनेसे उत्साह उत्पन्न होनेपर शम्बरासुरको (दिवोदासाय) दिवोदासका हित करनेके लिये (रन्धयः) विनष्ट किया । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्यत् सः अयं सोमः) वही यह सोम (ते सुतः पिब) तेरे लिये रस निकालकर रखा है वह पी ॥ १ ॥

[३७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य तीव्रसुतं मदं) जिसका रस तीक्ष्ण है और उत्साहवर्धक है उस सोमरसका प्रातः (मध्यं च अन्तं) मध्याह्न और सायंकालमें (रक्षसे) तू संरक्षण करता है (अयं स सोमः) वह सोमरस (ते सुतः) तेरे लिये तैयार किया है (पिब) उसका पान कर ॥ २ ॥

[३७८] (यस्य मदे) जिस उत्साहवर्धक सोमरसका पान करनेपर (अश्मनः अन्तः) किलेके अन्दर रखी हुई (दृळ्हाः गाः) दृढ बन्धनसे बंधी हुई गौओंको (अव असृजः) तूने मुक्त किया । (अयं स सोमः) वह सोम तैयार करके (ते सुतः) तेरे लिये रखा है उसको तू (पिब) पी ॥ ३ ॥

[३७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यस्य अन्धसः मन्दानः) जिस सोमरूपी अन्नके पीनेसे उत्साहित होता हुआ (माघोनं शवः दधिषे) बडा बल धारण करता है (अयं स सोमः) वह सोमरस (ते सुतः) तेरे लिये तैयार रखा है उसे (पिब) पी ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे यज्ञ करनेवाले मनुष्य ! तू इस इन्द्रके लिए सोमका रस भरपूर दे, ताकि हमारे साथ स्पर्धा करनेवाले शत्रुसे यह इन्द्र हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

जिस सोमरसके पीनेसे उत्साह बढ गया और तूने दिवोदासका हित करनेके लिये शंबर असुरको मारा, वही यह सोम है । दिवोदासको शंबर असुर कष्ट दे रहा था । अतः दिवोदासकी सुरक्षा करनेके लिये इन्द्रने शंबर असुरका नाश किया । अपनी प्रजाकी सुरक्षा करनेके लिये राजाको ऐसा करना चाहिये, यह उपदेश यहां है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिसका रस तीक्ष्ण है, और उत्साहवर्धक है, उस सोमरसका तू प्रातः, मध्याह्न और सायं तीनों समय अर्थात् हर समय संरक्षण कर ॥ २ ॥

शत्रुने गौवें चुराकर किलेमें बांधकर रखी थीं । इन्द्रने सोमरस पीकर शत्रुको परास्त करके उसके किलेके द्वार खोले और गौवें मुक्त कर दीं । शासकको प्रजाजनोंके गौ आदि धन इसी तरह दुष्टोंको प्रतिबंध करके प्रजाजनोंको वापस मिलें ऐसा करना चाहिये ॥ ३ ॥

सोमरस उत्तम बलवर्धक अन्न है । उसका सेवन करनेसे बल बढता है और कार्य करनेका उत्साह वृद्धिंगत होता है ॥ ४ ॥

[४४]

[ऋषिः— शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप्, १-६ अनुष्टुप्, ७-९ (८ वा) विराट् ।]

३८० यो र॒यिवो॑ र॒यिंत॑मो॒ यो द्यु॒म्नैर्द्यु॒म्नव॑त्तमः ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ ते ऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ १ ॥

३८१ यः श॒ग्मस्तु॑विशग्म ते रा॒यो दा॒मा म॑ती॒नाम् ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ ते ऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ २ ॥

३८२ येन॑ वृ॒द्धो न शव॑सा तु॒रो न स्वाभि॑रू॒तिभिः॑ ।
सोमः॑ सु॒तः स इ॑न्द्र॒ ते ऽस्ति॑ स्वधापते॒ मदः॑ ॥ ३ ॥

३८३ त्यमु॑ वो॒ अप्र॑हणं गृणी॒षे शव॑स॒स्पति॑म् ।
इन्द्रं॑ विश्वा॒साहं॒ नरं॒ मंहि॑ष्ठं वि॒श्वच॑र्षणिम् ॥ ४ ॥

---

[४४]

अर्थ— [३८०] (रयिवः) धनवान् इन्द्र ! (यः रयिन्तमः) जो सोम अत्यंत शोभादायक है, और (यः द्युम्नैः द्युम्नवत्तमः) जो यशोंसे अतिशय यशस्वी है, हे (स्वधापते) अपनी धारणाशक्तिके पालक (इन्द्र) इन्द्र ! (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंददायक है ॥ १ ॥

[३८१] हे (तुविशग्म) बहुत आनंदी इन्द्र ! (यः शग्मः) जो सुखदायी सोम (ते मतीनां रायः दामा) तेरी मतियोंको ऐश्वर्य देनेवाला है हे (स्वधापते) अपनी धारणशक्तिके पालक (इन्द्र) इन्द्र ! (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंदकारक हो ॥ २ ॥

[३८२] (येन वृद्धः न) जिससे बडा वीर होकर (स्वाभिः ऊतिभिः) अपनी संरक्षण शक्तियोंसे और (शवसा तुरः) अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंका नाश शीघ्र करता है । (सः सोमः ते मदः अस्ति) वह सोम तेरे लिये आनंदकारक हो ॥ ३ ॥

[३८३] (वः) तुम्हारे लिये (अप्रहणं शवसः पतिं) सज्जनोंपर प्रहार न करनेवाले, बलके पालक, (विश्वासाहं नरं) सब शत्रुओंका पराजय करनेवाले नेता (मंहिष्ठं विश्वचर्षणिं) अतिशय दाता, सर्वज्ञ (त्यं उ इन्द्रं) उस इन्द्रकी (गृणीषे) स्तुति करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे धनवान् इन्द्र ! जो सोम अत्यन्त शोभादायक है, जो यशोंसे अतिशय यशस्वी है, वह सोम तेरे लिए बहुत आनन्ददायक है ॥ १ ॥

हे सदा आनन्दमें रहनेवाले इन्द्र ! जो सुखदायी सोम है, वह तेरी बुद्धियोंको ऐश्वर्य देनेवाला है । हे धारणाशक्तिके पालक इन्द्र ! तेरे लिए वह सोम आनंदकारक हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिस रसको पीकर तू बडाही वीर होता है और अपनी संरक्षण शक्तिसे और सामर्थ्यसे शत्रुओंका नाश शीघ्र करता है, सोम तेरे लिए आनन्ददायक हो ॥ ३ ॥

वह इन्द्र सज्जनोंपर प्रहार न करनेवाला, बलका पालक, सब शत्रुओंका पराजय करनेवाला नेता, अतिशय दानशील और सर्वज्ञ है ॥ ४ ॥

३८४ यं वर्धयन्तीद् गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥

३८५ तद् वं उक्थस्य बर्हणे न्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद् रोहन्ति सक्षितः ॥ ६ ॥

३८६ अविदद् दक्षं मित्रो नवीयान् पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान् स्तौलाभिर्धौतरीभि रुरुष्या पायुरभवत् सखिभ्यः ॥ ७ ॥

३८७ ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभि र्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३८४] (गिरः) ये स्तोत्र (तुरस्य राधसः पतिं) त्वराले कार्य सिद्ध करनेवालोंके स्वामीको (यं इत्) जिस बलको बढाते हैं। (अस्य) इस इन्द्रके (तं इत् शुष्मं) उसी बलकी (देवी रोदसी नु सपर्यतः) पृथ्वी और द्युलोक सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

१ गिरः तुरस्य राधसः पतिं यं इत्— स्तुति स्तोत्र त्वरासे कार्य सिद्ध करनेवालेका प्रमुख जो होता है, उसका उत्साह बढाते हैं। जो वीर त्वरासे उत्तम कार्य सिद्ध करता है उसकी प्रशंसा करनी योग्य है।

२ अस्य तं इत् शुष्मं देवी रोदसी सपर्यतः नु — इसके उस बलकी सेवा द्युलोक और पृथ्वी निश्चयसे करते हैं। वीरके पराक्रमकी प्रशंसा सब विश्व करता है।

[३८५] (वः उक्थस्य तत् बर्हणा) तुम्हारे स्तोत्रोंकी वह विस्तृत महिमा है कि जो (इन्द्राय) इन्द्रके बल (उपस्तृणीषणि) बढाते हैं। (यस्य ऊतयः विपः न) जिसकी रक्षायें बुद्धिमानोंकी तरह श्रेष्ठ होती हैं। (यत् सक्षितः वि रोहन्ति) जिसमें एकत्र रहनेवाली रक्षायें बढती रहती हैं ॥ ६ ॥

[३८६] (दक्षं अविदत्) बलवान् वीरको वह जानता है। (मित्रः नवीयान्) मित्र, अत्यन्त नवीन तरुण (पपानः देवेभ्यः वस्यः अचैत्) रसपान करनेवाला विबुधोंको उत्तम धन देता है। (ससवान्) वीर्यसे युक्त (स्तौलाभिः धौतरीभिः) स्थूल समर्थ शत्रुको कंपानेवाला (सखिभ्यः) मित्रोंका (उरुष्या पायुः अभवत्) विशेष रक्षक होता है ॥ ७ ॥

[३८७] (ऋतस्य पथि वेधाः अपायि) सत्यके मार्गमें रहकर ज्ञानीने रक्षण किया है। (मनांसि श्रिये देवासः अक्रन्) मनोंको प्रसन्न रखनेके लिये विबुध सत्कर्म करते हैं। (नाम महः वपुः दधानः) वह प्रसिद्ध वीर बडा शरीर धारण करके (वचोभिः वन्येः) प्रशंसाओंसे प्रशंसित होकर (दृशये व्यावः) दर्शनार्थ प्रकट होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ— जो बल शीघ्रतासे कार्य करनेवाले तथा सबके स्वामीको बढाते हैं, उस बलकी पृथ्वी और द्युलोक सेवा करते हैं। ये स्तुतिस्तोत्र त्वरासे कार्य सिद्ध करनेवालेका जो प्रमुख होता है, उसका उत्साह बढाते हैं। उसके बलकी सेवा द्युलोक और पृथ्वी भी निश्चयसे करते हैं। वीरके पराक्रमकी प्रशंसा सब विश्व करता है ॥ ५ ॥

तुम्हारे स्तोत्रोंकी महिमा ऐसी है कि वे स्तोत्र इन्द्रका सामर्थ्य फैलाते हैं। स्तोत्रोंसे वीरके सामर्थ्यका पता सबको लगता है। जिस वीरके संरक्षण सामर्थ्य ज्ञानी मनुष्यके समान कल्याण करनेवाले होते हैं। जो एकत्र रहनेवाले सुरक्षाके साधन बढते रहते हैं। जिसके पास सुरक्षाके साधन बढते रहते हैं वह वीर राष्ट्रकी सुरक्षा कर सकता है ॥ ६ ॥

जो दक्ष रहता है, उसको वह जानता है। दक्षतासे कार्य करनेवाला वह मनुष्य है यह परीक्षा करके जानना योग्य है। नवीन मित्र रसपान करके विबुधोंको धन देता है। विबुधोंको धन देना चाहिये। वीर्यवान् वीर शत्रुको कंपानेवाले विशाल साधनोंसे मित्रोंके लिये विशेष संरक्षक होता है। अपने पास धन विपुल हो, तथा शत्रुका नाश करनेके साधन भी प्रभावशाली हों, उनसे स्वजनोंका उत्तम संरक्षण होता रहे ॥ ७ ॥

३८८ द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९ ॥

३८९ इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० ॥

३९० मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन् प्र वृहापृणतः ॥ ११ ॥

३९१ उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन् मघोनः ॥ १२ ॥

अर्थ— [३८८] (द्युमत्तमं दक्षं अस्मे धेहि) तेजस्वी बल हमारेमें स्थापित कर । (जनानां पूर्वीः अरातीः सेध) प्रजाजनोंके बहुतसे शत्रुओंका नाश कर । (वर्षीयः वयः शचीभिः कृणुहि) बहुत अन्न शक्तियोंके साथ हमें प्रदान कर । और (धनस्य सातौ अस्मान् अविड्ढि) धनके दानके समय हमारा संरक्षण कर ॥ ९ ॥

[३८९] हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (दात्रे तुभ्यं इत् वयं अभूम) तुझ दाताके पास ही हम आ रहे हैं । (हरिवः मा वि वेनः) हे अश्वोंके स्वामी ! हमसे प्रतिकूल मत होना (मर्त्यत्रा आपिः नकिः ददृशे) मनुष्योंके बीच बन्धु तेरेसे भिन्न दूसरा कोई दीखता नहीं । हे (अंग) प्रिय ! सब लोग (त्वा रध्रचोदनं आहुः) तुझे धनका प्रेरक कहते हैं ॥ १० ॥

[३९०] हे (वृषभ) बलवान् वीर ! (जस्वने नः मा ररीथाः) हिंसक शत्रुको हमें मत सौंप देना । (रेवतः ते सख्ये मा रिषाम) तुझ धनवान्‌की मित्रतामें हमारा नाश न हो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पूर्वीः निष्षिधः जनेषु) तेरे बहुतसे निवारक, मनुष्योंमें रहे हैं इसलिये (असुष्वीन् जहि, अपृणतः प्र वृह) सब शत्रुओंको मार और कंजूसका नाश कर ॥ ११ ॥

[३९१] (अभ्राणि इव स्तनयन्) मेघ जैसे गर्जना करता है वैसा ही (इन्द्र) इन्द्र (अश्व्यानि गव्या राधांसि उत् इयर्ति) अश्व और गौरूप धन उत्पन्न करता है । (प्रदिवः त्वं कारुधायाः असि) पुरातन कालसे तू कारीगरोंको धारण करनेवाला है । (त्वा मघोनः अदामानः) तुझे धनवान् कृपण कष्ट न दे ॥ १२ ॥

भावार्थ— सत्यके मार्गमें रहकर ज्ञानी मनुष्य बल प्राप्त करता है, संरक्षण करता है । अन्याय मार्गसे कभी नहीं जाता । विद्वान् लोग अपने मनोंको आनंदप्रसन्न करनेके लिये शुभ कर्म करते हैं । बडा शरीर धारण करके, प्रशंसाओंसे प्रशंसित होकर दर्शनके लिये प्रकट होता है । अपना शरीर व्यायामादिसे बडा करे, जिससे प्रशंसा होगी, पश्चात् दिखानेके लिये प्रकट होवे ॥ ८ ॥

तेजस्वी सामर्थ्य हमें दे । हमारेमें प्रभावी बल बढे ऐसा कर । प्रजाजनोंके अनेक शत्रुओंका नाश कर । शत्रुओंको रोक । वे हमपर आक्रमण न करें ऐसा कर । बहुत अन्न शक्तियोंके साथ हमें प्रदान कर । हम अन्नवान् और शक्तिमान् हों ऐसा कर । धनका दान करनेके समय हमारा संरक्षण कर । हम सुरक्षित रहें और धन भी प्राप्त करें ऐसा कर ॥ ९ ॥

तुझ दाताके पास हम रहें । हे अश्वोंके स्वामी ! हमसे विरुद्ध न बन । मानवोंमें मित्र या बन्धु तुझसे भिन्न दूसरा कोई दीखता नहीं । तुझे इस कारण धनको या धनिकोंको प्रेरणा करनेवाला सब कहते हैं ॥ १० ॥

हिंसकके आधीन हमें न देना । तुझ धनवान्‌की मित्रतामें हमारा नाश नहीं होगा । पूर्व समयसे कई तेरा निषेध करनेवाले लोगोंमें होंगे । अभीतक भी कई लोग विरोध करते ही रहते हैं । उन शत्रुओंका नाश कर और कंजूसको दूर कर ॥ ११ ॥

३९२ अध्वर्यो वीर प्र महे सुताना—मिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
य: पूर्व्याभिरुत नूतनाभि—र्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥ १३ ॥

३९३ अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वा—निन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥ १४ ॥

३९४ पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥ १५ ॥

अर्थ- [३९२] हे (वीर) वीर ! हे (अध्वर्यो) अध्वर्यु ! (महे इन्द्राय सुतानां प्र भर) महान् इन्द्रके लिये सोमरस भरपूर दे । (स हि अस्य राजा) वह इन्द्र ही इसका राजा है । (य: पूर्व्याभिः नूतनाभिः) जो पूर्वकालीन तथा नवीन (गृणानां ऋषीणां गीर्भिः वावृधे) उपासक ऋषियोंकी स्तुतियोंसे बढता है ॥ १३ ॥

[३९३] (अस्य मदे विद्वान् इन्द्रः) इस सोमपानसे उत्साहित होनेपर इन्द्रने (पुरु वर्पांसि वृत्राणि अप्रति) बहुतसे आवरक शत्रुओंको स्वयं न हारनेवाला होकर (जघान) मारा । (मधुमन्तं तं उ सोमं) माधुर्यवान् उसी सोमको (शिप्रिणे अस्मै वीराय) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले इस वीरको (पिबध्यै प्र होषि) पीनेके लिये दे ॥ १४ ॥

[३९४] (वसुः, धीनां अविता, कारुधायाः इन्द्रः) सबको निवासस्थान देनेवाला, ज्ञानियोंकी रक्षा करनेवाला, कारीगरोंका धारण करनेवाला, वह इन्द्र (सुतं सोमं पाता अस्तु) सोमरसका पान करनेवाला हो । (मन्दसानः वज्रेण वृत्रं हन्ता) उत्साह प्राप्त होकर वह वज्रसे आवरक शत्रुका नाश करनेवाला है । (परावतः चित् यज्ञं अच्छ गन्ता) दूरदेशमें यज्ञ होनेपर भी उसके पास वह जाता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— मेघ गर्जना करके वृष्टी करता है । इन्द्र घोडे, गौवें तथा संपत्ति निश्चयसे देता है । तू प्राचीन कालसे कारीगरोंका धारण करनेवाला है । कारु—कारीगर, कुशलतासे कार्य करनेवाला । इनका धारण राष्ट्रमें होना चाहिये । तुझे धनी परंतु कृपण कष्ट न दें । धनवालोंको उदार रहना चाहिये ॥ १२ ॥

हे वीर ! परंतु अहिंसक कर्म करनेवाले शूर ! महान् इन्द्रके लिये पीनेके लिये रस भरपूर भर दे । वही इस सबका राजा है । जो प्राचीन तथा अर्वाचीन उपासक ऋषियोंकी स्तुतियोंसे बढता है । स्तुतियोंसे जिसका यश चारों ओर फैलता है । १३ ॥

इस रसपानसे प्राप्त हुए उत्साहसे विद्वान् इन्द्रने बहुत युक्तियां करनेवाले नाना प्रकारके शत्रुओंको स्वयं न हारा जाकर, मारा । उस मीठे सोमरसको शिरस्त्राण धारण करनेवाले इस वीरको पीनेके लिये दो । नाना कुटिल युक्तियां करके कष्ट देनेवाले, घेरनेवाले शत्रुको नष्ट करें ॥ १४ ॥

सबको निवासस्थान देता है, सब प्रजाजनोंको रहनेके लिये घर देता है । बुद्धिमानोंका रक्षक, वह बुद्धियोंका रक्षक है । कारीगरोंका आधार इन्द्र है । वज्रसे आवरक शत्रुका वध करता है । दूरसे भी यज्ञमें जाता है । मनुष्य दूर देशसे भी जहां यज्ञ होता है वहां अवश्य जाय । राजाके ये गुण हैं । योग्य राजा ये कार्य करे ॥ १५ ॥

३९५ इदं त्यत् पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद् यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद् व्यंहः ॥ १६ ॥
३९६ एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान् पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥ १७ ॥
३९७ आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन् कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥ १८ ॥
३९८ आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥ १९ ॥

अर्थ— [३९५] (इन्द्रपानं पात्रं) इन्द्रके पीने योग्य पात्रसे (इन्द्रस्य प्रियं त्यत् इदं अमृतं) इन्द्रको प्रिय यह अमृतरस (अपायि) इन्द्र पीये । (यथा सौमनसाय देवं मत्सत्) जिस प्रकार मनकी प्रसन्नताके लिये देव इन्द्रको उत्साह प्राप्त हो, उस प्रकार वह पान करे । (द्वेषः अस्मत्, अंहः वि युयवत्) द्वेष और पाप भी हमारेसे दूर हो जाय ॥ १६ ॥

[३९६] हे (मघवन्) धनवान् (शूर) शूरवीर ! (एना मन्दानः) इससे आनंदित होकर (जामिं अजामिं) ज्ञातिके और अज्ञातिके दोनों प्रकारके (अमित्रान् शत्रून्) अमित्र शत्रुओंको (जहि) मार । (अभिषेणान् आदेदिशानान्) हमारे सामने आये हुए आयुधोंको, हमारे सामने छोडनेवाले शत्रुओंको हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पराचः प्र मृण च जहि) दूरसे ही मार और उनका पराभव कर ॥ १७ ॥

[३९७] हे (मघवन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (नः आसु पृत्सु) हमें इन संग्रामोंमें (अस्मभ्यं महि सुगं वरिवः कः) हमको बडे सुखसे प्राप्त होनेवाले धनको दो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अपां तोकस्य तनयस्य) जलोंको, पुत्र और पौत्रोंके (जेषे सूरीन् नः अर्धं कृणुहि) जयके लिये हमें विद्वान् और समृद्ध बनाओ ॥ १८ ॥

[३९८] (त्वा) तुझे (वृषणः युजानाः) बलवान् स्वयं ही रथके साथ जुडनेवाले (वृषरथासः वृषरश्मयः) बलवान् रथके साथ रहनेवाले, बलवान् रश्मिवाले, (अत्याः अस्मत्राञ्चः) सतत चलनेवाले, हमारे समीप आनेवाले, (वृषणः वज्रवाहः सुयुजः) वीर्यवान्, वज्रके समान तीक्ष्ण, सुन्दर जुते हुए (हरयः) घोडे (वृष्णे मदाय आ वहन्तु) बलवर्धक आनंद प्राप्त करनेके लिये ले आवें ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह सोमरस इन्द्रको बहुत ही प्रिय है अतः वह अपने योग्य पात्रसे पीये । वह इस प्रकार पिये कि जिससे उस देवके मनको प्रसन्नता तथा उत्साह प्राप्त हो । उसकी कृपासे द्वेष और पाप हमसे दूर हों ॥ १६ ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! इससे आनंदित होकर स्वजातिके अथवा परजातिके अहित करनेवाले शत्रुओंको तू मार । शत्रु स्वजातिके हों अथवा परजातिके हों उनको मारना चाहिये; किसी भी शत्रुको जीवित रखना नहीं चाहिये । हमारे ऊपर सेना भेजनेवाले और हमारे नाशका आदेश देनेवाले शत्रुओंको दूरसे ही मार डाल और उनका पराजय करके उनको दूर कर ॥ १७ ॥

हमें इन स्पर्धाओंमें सुखसे प्राप्त होनेवाला बडा धन प्राप्त हो ऐसा कर । स्पर्धामें हम विजयी हों और सुखसे धन प्राप्त हो । हमें धन मिलें, बालबच्चोंकी जय हो और हम विद्वान् हों और हमें समृद्धि प्राप्त हो ॥ १८ ॥

घोडे कैसे हों ? घोडे (वृषणः) बलवान् हों, (युजानाः) रथके साथ स्वयं जुड जानेवाले हों, (वृष-रथासः) बलवान् रथके साथ रहनेवाले, (वृष-रश्मयः) जिनकी रस्सियां भी मजबूत हैं, (अत्याः) दौडसे चलनेवाले, (वज्रवाहाः) वज्रके समान तीक्ष्ण, (सु-युजः) सुगमतासे जुड जानेवाले (हरयः) घोडे हों । इन्द्रके घोडे ऐसे हैं ! घोडे पास रखनेवाले इस वर्णनसे बोध प्राप्त करें और अपने घोडोंको इस तरह सिखावें और रखें ।

घोडे बलवान्, रथमें स्वयं जुड जानेवाले, बलवान् या मजबूत रथके साथ रहनेवाले, वेगसे दौडनेवाले, वज्रके समान तीक्ष्ण और सुगमतासे जुड जानेवाले हों ॥ १९ ॥

३९९ आ ते वृषन् वृषणो द्रोणमस्थु--र्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥ २० ॥
४०० वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥ २१ ॥
४०१ अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानी--न्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥ २२ ॥
४०२ अयमकृणोदुषसः सुपत्नी--रयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥ २३ ॥

अर्थ — [३९९] हे (वृषन्) सामर्थ्यवान् वीर ! (वृषणः घृतप्रुषः ऊर्मयः न मदन्तः) बलवान् जलसे मिश्रित समुद्र तरंगोंकी तरह आनन्दित ये रस (ते द्रोणं आ अस्थुः) तेरे पात्रमें रहे हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वृष्णे वृषभाय तुभ्यं) समर्थ बलवान् वीर ऐसे तुझे (वृषभिः सुतानां सोमं प्र भरन्ति) पत्थरोंसे कूटकर निकाले ये रस ये लोग देते हैं ॥ २० ॥

[४००] (दिवः वृषा असि) तू द्युलोकका बलवान् वीर है । (पृथिव्याः वृषभः) पृथिवीका बलवान् आधार है । (सिन्धूनां वृषा) नदियोंको प्रेरणा करनेवाला है । (स्तियानां वृषभः) स्थावरोंका बलवान् उत्पादक है । हे (वृषभ) काम वर्धक इन्द्र ! (वराय वृष्णे ते) श्रेष्ठ वीर्यवान् ऐसे तेरे लिये (स्वादुः रसः मधुपेयः इन्दुः) मधुर, प्रशस्त, मीठा रस तैयार हो रहा है ॥ २१ ॥

[४०१] (देवः अयं इन्दुः) कान्तिमान् इस सोमने (इन्द्रेण युजा) मित्र इन्द्रके साथ (जायमानः) रहकर (पणिं सहसा अस्तभायत्) पणि असुरको बलसे रोका । (स्वस्य पितुः) अपने पितृरूपी (अशिवस्य आयुधानि, मायाः अमुष्णात्) अशुभ शत्रुके आयुध और कुटिल योजनाओंका नाश किया ॥ २२ ॥

[४०२] (अयं उषसः सुपत्नीः अकृणोत्) इसने उषःकालोंको सुन्दर पतिसे सूर्यसे युक्त किया । (अयं सूर्ये अन्तः ज्योतिः अदधात्) इसने सूर्यमंडलके बीचमें तेजको रखा । (त्रिधातु अयं) तीन प्रकारकी धारक शक्तियोंसे युक्त यह (दिवि रोचनेषु त्रितेषु) द्युलोकमें तीनों तेजस्वी स्थानोंमें (निगूळ्हं अमृतं विन्दत) अदृश्य रूपसे रहनेवाले अमृतको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— जब इस सोमरसमें जलका मिश्रण किया जाता है, तब इसमें तरंगें उठती हैं और फिर वे पात्रोंमें भरे जाते हैं । समर्थ और वीर तथा बलवान् ऐसे इन्द्रको यज्ञ करनेवाले पत्थरोंसे कूटकर रस प्रदान करते हैं ॥ २० ॥

इन्द्र द्युलोकका सामर्थ्यवान् वीर है, पृथिवीका आधार है, नदियोंका प्रेरक है, स्थावरोंका उत्पादक है । उस श्रेष्ठ वीरके लिये पीनेके हेतु यह मीठा रस तैयार हो रहा है ॥ २१ ॥

यह तेजस्वी सोम, इन्द्र वीरके साथ रहकर, पणि असुरको बलसे रोकता है । अपने पिता अशुभ शत्रुके आयुधोंको और उसकी कुटिल योजनाओंका नाश किया । शत्रुको बलसे रोकना चाहिये, उसके आयुध तथा उसकी दुष्ट योजनाओंको टिकने नहीं देना चाहिये । इस प्रकारसे शत्रुका प्रतिकार करना चाहिये ॥ २२ ॥

इसने उषाओंको उत्तम पतिसे संयुक्त किया । उषाके पीछे सूर्यका उदय हुआ । इसने सूर्यमें ज्योतिको रखा । तीन धारक शक्तियोंसे युक्त यह द्युलोकसे तीन तेजस्वी स्थानोंमें गुप्त रहे अमृतको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

४०३ अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ २४ ॥

[४५]

ऋषिः- शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवताः- इन्द्रः, ३१-३३ बृबुस्तक्षा । छन्दः- गायत्री, २९ अतिनिचृत्, ३१ पादनिचृत्, ३३ अनुष्टुप् ।

४०४ य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥ १ ॥
४०५ अविप्रे चिद् वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥ २ ॥
४०६ महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४०३] (अयं द्यावापृथिवी विष्कभायत्) इसने द्यावापृथिवीको स्थिर किया है। (अयं रथं सप्तरश्मिम् अयुनक्) इसीने सूर्यके रथको सात किरणोंसे युक्त किया। (अयं सोमः गोषु अन्तः) इस सोमने ही गौओंके अन्दर (पक्वं शच्या उत्सं दशयन्त्रं दाधार) पक्व दूधको शक्तिसे परिपूर्ण करके स्थापित किया। जो दस इंद्रियोंसे सुशोभित शरीरको पुष्ट करता है ॥ २४ ॥

[४५]

[४०४] (यः तुर्वशं यदुं) जो इन्द्र तुर्वश और यदु राजाको (सुनीती परावतः आनयत्) सुगमतासे दूर देशसे ले आया (युवा सः इन्द्रः नः सखा) वह तरुण इन्द्र हमारा मित्र हो ॥ १ ॥

[४०५] (अविप्रे चित्) अज्ञानी पुरुषको भी वह इन्द्र (वयः दधत्) अन्न देता है। (इन्द्रः अनाशुना चित् अर्वता) इन्द्र जल्दी न जानेवाले घोडे द्वारा भी (हितं धनं जेता) शत्रुओंका धन जीतता है ॥ २ ॥

[४०६] (अस्य प्रणीतयः महीः) इस इन्द्रकी उत्कृष्ट नीतियां महान् होती हैं, (उत प्रशस्तयः पूर्वीः) और अतिशय प्रशस्त स्तुतियां भी बहुत हैं। (अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते) इसकी रक्षायें भी कभी क्षीण नहीं होती ॥ ३ ॥

१ अस्य प्रणीतयः महीः— इसकी संचालक शक्तियां विशाल होती हैं।
२ अस्य प्रशस्तयः पूर्वीः— इसकी प्रशंसाएं सनातन कालसे चली आती हैं।
३ अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते— इसकी रक्षाके साधन भी कभी कम नहीं होती।

भावार्थ— इसने द्युलोक और पृथिवीलोकको स्थिर किया। इसने सात किरणोंवाले रथको जोता। सूर्यके किरणोंमें सात रंगके किरणोंको रखा। इस सोमने गौओंके अन्दर पक्व दूध शक्तिसे युक्त हौज जैसा रखा, वह दस इंद्रियोंवाले शरीरको परिपुष्ट करता है। गौओंको खानेके लिये सोम वल्ली दी जाय और उनका दूध पीया जाय, जिससे शरीर अच्छी तरह पुष्ट होता है ॥ २४ ॥

यह इन्द्र स्वराज्में कार्य करनेवाले तथा यत्नशील राजाको आसानीसे दूर देशसे ले आया अर्थात् ऐसे वीरोंको उसने हरतरहके संकटसे पार किया। ऐसा तरुण और उत्साही इन्द्र हमारा मित्र हो अर्थात् हमपर अत्यन्त स्नेह करनेवाला बने ॥ १ ॥

ईश्वर ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंके खानेके लिये अन्न देता है और जल्दी न दौडनेवाले घोडेसे भी शत्रुको परास्त करके धन शत्रुओंका धन जीतकर लाता है ॥ २ ॥

ईश्वरकी संचालक शक्तियां विशाल हैं। उसकी प्रशंसाएं भी अपूर्व होती हैं, पहिलेसे उसकी प्रशंसाएं चली आयी हैं। उसकी रक्षण शक्तियां भी कभी कम नहीं होती। राजा अपनी प्रजाकी उन्नतिके लिये बडी बडी नाना योजनाएं प्रयोगमें लावे। और प्रजाके सुरक्षाके अनेक साधन सदा तैयार रखे। इनको कभी कम होने न दें। ऐसे राजाकी सदा प्रशंसा होती रहेगी ॥ ३ ॥

४०७ सखा॑यो॒ ब्रह्म॑वाहसे॒ऽर्च॑त॒ प्र च॑ गायत । स हि नः॒ प्रम॑तिर्म॒ही ॥ ४ ॥
४०८ त्वमेक॑स्य वृत्रह॒न्न॑वि॒ता द्वयो॑रसि । उ॒तेदृशे॒ यथा॑ व॒यम् ॥ ५ ॥
४०९ नय॒सीद्वति॒ द्विषः॑ कृ॒णोष्यु॑क्थशं॒सिनः॑ । नृभिः॑ सु॒वीर॑ उच्यसे ॥ ६ ॥
४१० ब्र॒ह्माणं॒ ब्रह्म॑वाहसं गी॒र्भिः सखा॑यमृ॒ग्मिय॑म् । गां न दो॒हसे॑ हुवे ॥ ७ ॥
४११ यस्य॒ विश्वा॑नि॒ हस्त॑यो॒रूचुर्वसू॑नि॒ नि द्वि॒ता । वी॒रस्य॑ पृत॒ना॒षहः॑ ॥ ८ ॥

अर्थ— [४०७] हे (सखायः) स्तोताओं ! (ब्रह्मवाहसे अर्चत च प्र गायत) मन्त्रोंसे स्तवनीय इन्द्रके लिये प्रशंसा करो और उसके स्तोत्रोंको गाओ । (स हि नः मही प्रमतिः) वह इन्द्र हमें बडी बुद्धि प्रदान करनेवाला है ॥ ४ ॥

[४०८] हे (वृत्रहन्) शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं एकस्य द्वयोः अविता असि) तू एक अथवा दोनोंका ही रक्षण करनेवाला है । ऐसा नहीं पर (उत ईदृशे यथा वयं) और भी अनेक मनुष्योंका तू ही रक्षक है और हम भी तेरेसे ही सुरक्षित हुए हैं ॥ ५ ॥

[४०९] हे इन्द्र ! (इत् द्विषः अति नयसि) तू ही शत्रुओंको हमसे दूर करता है । अर्थात् उनका नाश करता है । (उक्थशंसिनः कृणोषि) अतः हमें तू प्रशंसा करनेवाले बनाता है । (नृभिः सुवीरः उच्यसे) अतः मनुष्योंद्वारा तुम उत्तम वीर कहा जाता है । अथवा तुम्हारे साथ उत्तम वीर रहते हैं ॥ ६ ॥

[४१०] (ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं सखायं ऋग्मियं) ज्ञानी, ज्ञानपूर्वक स्तवनीय, मित्रभूत प्रशंसनीय इन्द्रको (दोहसे गां न, गीर्भिः हुवे) दुहनेके लिये गौकी तरह, स्तुतियोंसे बुलाता हूँ ॥ ७ ॥

[४११] (वीरस्य पृतनासहः यस्य) वीर्यवान्, शत्रुसेनाको पराजित करनेवाले जिस इन्द्रके (हस्तयोः) हाथोंमें (विश्वानि द्विता वसूनि) सब दोनों प्रकारके धन हैं, इस प्रकार (नि ऊचुः) कहते हैं ॥ ८ ॥

१ वीरस्य पृतनासहः हस्तयोः विश्वानि वसूनि— वीर शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवालेके हाथोंमें सब प्रकारके धन रहते हैं ।

२ द्विता वसूनि— धन दो प्रकारके होते हैं । एक वैयक्तिक धन और दूसरा सामूहिक धन । धन गुप्त और प्रकट ऐसे दो प्रकारके हैं ।

भावार्थ— ज्ञानसे जो प्रशंसा गाने योग्य होता है उसीका सत्कार करो और उसीके स्तुतिस्तोत्र गाओ । वही सबको उत्तम संमति दे सकता है ॥ ४ ॥

ईश्वर एक दोका ही रक्षक नहीं है, परंतु सब मानवोंका वह रक्षक है और हम सबका संरक्षक है ॥ ५ ॥

तू शत्रुओंको दूर भगा देता है । शत्रुओंको भगा देना योग्य है । शत्रुओंका नाश करना योग्य है । तू लोगोंको प्रशंसक बनाता है । तू ऐसा कर कि जिससे लोग तेरी प्रशंसा करें । तुझको मनुष्य उत्तम वीरोंसे युक्त महावीर कहें । तू ऐसा वीर कि जिससे मनुष्य तुझे उत्तम वीर कहें ॥ ६ ॥

इन्द्र-प्रभु-ज्ञानी है, ज्ञानपूर्वक उसकी स्तुति की जाती है, वह सबका सखा है, सबसे प्रशंसनीय है । इस प्रभुकी ही सबको स्तुति करना उचित है । दोहनके समय गौको बुलाते हैं वैसा हम उस प्रभुको अपने पास बुलाते हैं ॥ ७ ॥

वह प्रभु 'वीर' है, वह शत्रुको दूर करता है, वह 'पृतना-सहः' है अर्थात् शत्रुकी सेनाका पूर्ण पराभव करनेवाला है । इस कारण इसके हाथमें सब प्रकारके गुप्त और प्रकट धन हैं ऐसा सब ज्ञानी कहते हैं ।

४१२ वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥ ९ ॥
४१३ तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥
४१४ तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥
४१५ धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥
४१६ अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥

अर्थ— [४१२] हे (अद्रिवः) वज्रधारक इन्द्र ! (शचीपते) शक्तिमान् इन्द्र ! (जनानां दृळ्हानि चित् वि वृह) शत्रुओंके दृढ मजबूत पुरियोंको और बलोंको नाश कर । हे (अनानत) सर्वोत्कृष्ट इन्द्र ! (मायाः) और उनकी कुटिलताओंका भी नाश कर ॥ ९ ॥

[४१३] हे (सत्य सोमपाः) सत्यस्वभावी, सोमका पान करनेवाले, (वाजानां पते) अन्न और बलोंके स्वामी, (इन्द्र) इन्द्र ! (श्रवस्यवः तं उ त्वा अहूमहि) अन्नकी इच्छा करनेवाले हम तेरी ही स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

[४१४] (तं उ त्वा) हम तुम्हें ही सहायार्थ बुलाते हैं, (यः पुरा हव्यः आसिथ) जो पहिले बुलाने योग्य था । (यः वा हिते धने, नूनं सः हवं श्रुधि) और तू, शत्रुओंके साथ युद्ध छिड जानेपर बुलाने योग्य है उस समय वह तू हमारा आह्वान सुन ॥ ११ ॥

[४१५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धीभिः त्वया अर्वद्भिः) बुद्धियोंसे, तथा तेरे द्वारा प्रेरित हुए अश्वोंसे (अर्वतः श्रवाय्यान्) शत्रुओंके घोडोंको, प्रशंसनीय अन्नोंको, और (हितं धनं जेष्म) शत्रुओंके पास रहे, धनको जीतें ॥ १२ ॥

१ धीभिः धनं जेष्म— बुद्धियोंके प्रयोगसे हम धनको जीतें ।

२ अर्वद्भिः श्रवाय्यान् वाजान् जेष्म— घोडोंसे अर्थात् घुडसवारोंसे हम प्रशंसनीय अन्नोंको जीतें ।

३ हितं धनं जेष्म— शत्रुके पासका धन जीतकर प्राप्त करें ।

[४१६] हे (वीर) वीर, (गिर्वणः) स्तुतिके लिये योग्य, (इन्द्र) इन्द्र ! (हिते धने) शत्रुओंके पास रहे हुए धनको प्राप्त करनेके लिये (भरे) संग्राममें (महान् वितन्तसाय्यः अभूः) तू शत्रुओंका बडा विजेता हुआ है ॥ १३ ॥

भावार्थ— स्वयं शस्त्र धारण करके, शक्तिसंपन्न बनकर, शत्रुके सुदृढ किलोंका नाश करना और उनके कपट व्यूहोंको भी विनष्ट करना चाहिये ॥ ९ ॥

यह इन्द्र सत्य स्वभाववाला है, सोमका पान करनेवाला है, अन्न और बलोंका स्वामी है । अतः अन्न और बलको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम इस इन्द्रकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १० ॥

जो प्राचीन समयसे बुलाने योग्य है अर्थात् अब तथा भविष्यकालमें भी बुलाने योग्य है । जो युद्धके छिड जानेपर बुलाने योग्य है, जिसकी सहायता प्राप्त करके शत्रुसे धन प्राप्त किया जा सकता है, उस इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं ॥ ११ ॥

हम अपनी उत्तम बुद्धिके प्रयोगसे धनको जीतें, घोडोंकी सहायतासे हम प्रशंसनीय अन्नोंको जीतें, इसप्रकार शत्रुओंके पास जो धन है, उसे हम जीतें ॥ १२ ॥

हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! शत्रुओंके पास जो धन था, उसे जीतनेके बाद ही तू शत्रुओंका विजेता हुआ । शत्रुओंके विजेताके रूपमें वही प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है कि जो शत्रुओंके धनपर अपना अधिकार कर ले ॥ १३ ॥

४१७ या ते ऊतिरमित्रहन् मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥ १४ ॥
४१८ स रथेन रथीतमो ऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥ १५ ॥
४१९ य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ १६ ॥
४२० यो गृणतामिदासिथा ऽऽपिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥
४२१ धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥
४२२ प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥
४२३ स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ २० ॥

अर्थ— [४१७] हे (अमित्रहन्) शत्रुनाशक ! (ते मक्षुजवस्तमा या ऊतिः असति) तेरी अतिशय शीघ्रगामी जो संरक्षक गति है (तया नः रथं हिनुहि) उस गतिसे हमारे रथको भी, शत्रुओंको जीतनेके लिये, शीघ्र जानेकी प्रेरणा कर ॥ १५ ॥

[४१८] हे (जिष्णो) जयशील इन्द्र ! (रथीतमः सः) अतिशय महारथी तू (अस्माकेन अभियुग्वना रथेन) हमारे शत्रुओंको पराजित करनेवाले रथसे (हितं धनं जेषि) शत्रुओंके धनको तू जीतता है ॥ १५ ॥

[४१९] (विचर्षणिः वृषक्रतुः) विशेष सर्वद्रष्टा, बलकर्मा (यः एक इत्) जो एक ही (कृष्टीनां पतिः) प्रजाओंका पति (जज्ञे) हुआ है (तमु स्तुहि) उसकी ही स्तोता स्तुति करे ॥ १६ ॥

[४२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ऊती) जो तू सुरक्षा करनेके कारण (शिवः सखा) सबका सुखकर मित्र हुआ और (गृणतां इत् आपिः आसिथ) स्तोताओंका बन्धु जैसा रक्षा हुआ (त्वं नः मृळय) वह तू हमें अब सुखी कर ॥ १७ ॥

[४२१] हे (वज्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (गभस्त्योः रक्षोहत्याय वज्रं धिष्व) हाथोंमें राक्षसोंको मारनेके लिये वज्र धारण कर, (स्पृधः अभि सासहीष्ठाः) स्पर्धा करनेवाली शत्रुसेनाका अतिशय पराभव कर ॥ १८ ॥

[४२२] (प्रत्नं रयीणां युजं) पुरातन, धनोंको देनेवाला, (सखायं) मित्रभूत, (कीरिचोदनं ब्रह्मवाहस्तमं) स्तोताओंको प्रेरणा करनेवाला, अतिशय स्तुतिके योग्य इन्द्रको मैं (हुवे) बुलाता हूं ॥ १९ ॥

[४२३] (गिर्वणस्तमः अध्रिगुः) अतिशय स्तुतिके योग्य अप्रतिहत गतिमान (सः हि) ऐसा वह इन्द्र ही (विश्वानि पार्थिवा वसूनि) संपूर्ण पृथिवीमें होनेवाले सब धनोंका (एकः पत्यते) एक ही स्वामी है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे शत्रुनाशक इन्द्र ! तेरी जो रक्षा करनेवाली शीघ्र गति है, उस गतिसे हमारे रथको ऐसी गति और प्रेरणा दे, कि उस गतिसे हम शत्रुओंको जीतें ॥ १४ ॥

हे सदा जय प्राप्त करनेवाले इन्द्र ! अत्यन्त महारथी तू शत्रुओंको पराजित करनेवाले रथसे शत्रुओंके धनको जीतता है। हमारे रथी वीर अपने वेगवाले रथसे शत्रुपर हमला करें और शत्रुका धन जीतकर ले आयें ॥ १५ ॥

जो विशेष द्रष्टा है, जो विशेष शक्तिके कर्म करता है, जो प्रजाजनोंका एक ही पालक है उस प्रभुकी प्रशंसा करना योग्य है ॥ १६ ॥

प्रभु सबका संरक्षण करता है, अतः वह सबका मित्र, भाई और सखा है। वह हमें सुखी करे ॥ १७ ॥

राक्षसोंके विनाशके लिये हाथमें शस्त्र धारण करना चाहिये। स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका संपूर्ण पराभव करना चाहिए ॥ १८ ॥

प्रभु पुराण पुरुष है, धन देनेवाले है, सबका मित्र है, ज्ञानियोंको शुभ प्रेरणा देता है, प्रशंसनीय है। ऐसे श्रेष्ठ प्रभुकी मैं प्रार्थना करता हूं ॥ १९ ॥

प्रशंसनीय, अप्रतिहत गति, ऐसा वह प्रभु सब धनोंका एकमात्र स्वामी है ॥ २० ॥

४२४ स नो॑ नि॒युद्भि॒रा पृ॑ण॒ काम॒ं वाजे॑भिर॒श्विभिः॑ । गोम॑द्भि॒र्गोप॑ते धृ॒षत् ॥ २१ ॥
४२५ तद् वो॑ गाय सु॒ते सचा॑ पुरुहू॒ताय॒ सत्व॑ने । शं यद् गवे॒ न शा॒किने॑ ॥ २२ ॥
४२६ न घा॒ वसु॒र्नि य॑मते दा॒नं वाज॑स्य॒ गोम॑तः । यत् सी॒मुप॒ श्रव॒द् गिरः॑ ॥ २३ ॥
४२७ कु॒वित्स॑स्य॒ प्र हि व्र॒जं गोम॑न्तं दस्यु॒हा गम॑त् । शची॑भि॒रप॑ नो वरत् ॥ २४ ॥
४२८ इ॒मा उ॑ त्वा शतक्रतो॒ ऽभि प्र णो॑नुवु॒र्गिरः॑ । इन्द्र॑ व॒त्सं न मा॒तरः॑ ॥ २५ ॥
४२९ दू॒णाशं॑ स॒ख्यं तव॒ गौर॑सि वीर गव्य॒ते । अश्वो॑ अश्वाय॒ते भ॑व ॥ २६ ॥

अर्थ— [४२४] हे (गोपते) गोपालक इन्द्र ! (सः नः कामं) तू हमारी इच्छाको (नियुद्भिः धृषत्) अश्वोंसे दारिद्र्यनाशन करनेमें समर्थ होकर (आपृण) पूर्ण कर । (गोमद्भिः अश्विभिः) बहुत गायोंसे तथा अश्वोंसे युक्त होकर हमारी इच्छायें पूर्ण कर ॥ २१ ॥

[४२५] (वः सुते) तुम्हारे सोमयागमें (पुरुहूताय सत्वने) बहुतों द्वारा प्रशंसित, और बलवान् इन्द्रके लिये (तत् सचा गाय) वह स्तोत्र मिलकर गाओ । (यत् शाकिने) जो शक्तिमान् इन्द्रको सुखकर हो (शं गवे न) जैसा घास गौको सुखकर होता है ॥ २२ ॥

[४२६] (वसुः) निवासस्थान देनेवाला इन्द्र (गोमतः वाजस्य) बहुत गौओंसे युक्त अन्न और बलका (दानं न घ नि यमते) दान देता है । (यत् सीं गिरः उप श्रवत्) जिस समय वह इन स्तुतियोंको सुनता है ॥ २३ ॥

[४२७] (कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं) कुवित्सकी बहुत गौओंसे युक्त गोशालाके समीप (दस्युहा प्र गमत्) शत्रुनाशक इन्द्र गया । (हि शचीभिः नः अप वरत्) और अपनी शक्तियों द्वारा हमको उन गायोंको उसने दिया ॥ २४ ॥

[४२८] हे (शतक्रतो) बहुत प्रकारके कर्मकर्ता (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा इमाः गिरः अभि प्र णोनुवुः) तेरे लिये ही ये स्तुतियां अच्छी तरह गायी जा रही हैं । (वत्सं न मातरः) जिस प्रकार वत्स माताके पास जाता है, वैसी ये स्तुतियां तुझे प्राप्त हों ॥ २५ ॥

[४२९] (तव सख्यं दूणाशं) तेरी मैत्री नाश होनेवाली नहीं होती । इसलिये हे (वीर) बलवान् ! (गव्यते गौः असि) गौकी इच्छावालेको तू गौ देनेवाला हो और (अश्वायते अश्वः भव) अश्वकी इच्छावालेको अश्वका प्रदाता हो ॥ २६ ॥

भावार्थ— प्रभु गौओंका पालन करता है । वह हमारी कामनाएं पूर्ण करे । अश्वों और गौओंसे हमें युक्त करके हमारी इच्छाएं पूर्ण करे । घरमें बहुत गौवें और घोडे होना यह धनोंका लक्षण है । ऐसे धनी हम बनें और हमारी इच्छा पूर्ण होती रहे ॥ २१ ॥

प्रभुके स्तोत्र अनेक मित्र मिलकर, संघमें बैठकर, गाया करो । इससे प्रभु संतुष्ट होगा । जिस तरह गाय उत्तम घास खानेसे संतुष्ट होती है, वैसा वह प्रभु सामूहिक उपासनासे संतुष्ट होगा ॥ २२ ॥

प्रभु सबको रहनेके लिये स्थान देता है, गौवें देता है और अन्न तथा बल देता है जब वह स्तुति सुनता है तब वह दान देता है ॥ २३ ॥

बुरी पद्धतिसे रहनेवाला शत्रु, समाज शत्रु, शत्रुकी गोशालाके पास वीर आता है और अपने सामर्थ्योंसे वह उन गौओंको वहांसे लाकर सज्जनोंको देता है ॥ २४ ॥

हे प्रभो ! तेरी स्तुतियां हम गाते हैं । वे तुझे प्राप्त हों । जिस तरह बच्चेको प्राप्त कर माताएं प्रसन्न होती हैं उस तरह तू इन स्तुतियोंसे प्रसन्न हो ॥ २५ ॥

प्रभुकी मित्रता विनाश करनेवाली नहीं होती । हे बलवान् वीर ! गायकी इच्छा करनेवालेको गाय दे और जो घोडा चाहता है उसको घोडा दे ॥ २६ ॥

४३० स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥
४३१ इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥
४३२ पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥
४३३ अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । अस्मान् राये महे हिनु ॥ ३० ॥
४३४ अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥
४३५ यस्य वायोरिव द्रवद् भद्रा रातिः सहस्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥

अर्थ— [४३०] (सः अन्धसः तन्वा) वह तू अन्नसे पुष्ट बने अपने शरीरसे (महे राधसे) महान् सिद्धिके लिये (मन्दस्व) आनन्दित हो। (स्तोतारं निदे न करः) स्तोताको निन्दकके आधीन मत कर ॥ २७ ॥

[४३१] हे (गिर्वणः) स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र ! (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (इमाः गिरः त्वा नक्षन्ते) ये स्तुतियां तुझे प्राप्त होती हैं। (धेनवः गावः वत्सं) जैसे दूध देनेवाली गायें बछडेके पास जाती हैं ॥ २८ ॥

[४३२] (वाजेभिः वाजयतां) बलोंसे बलवान् बने वीरोंके तथा (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत स्तोताओंके (विवाचि) वाणीमें (पुरूतमं) श्रेष्ठतम बनकर रहे (त्वा) तुझ प्रभुको हमारी (गिरः नक्षन्ते) स्तुतियां प्राप्त होती हैं ॥ २९ ॥

[४३३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वाहिष्ठः) अतिशय वहनीय (अस्माकं स्तोमः) हमारे स्तोत्र (ते अन्तमः भूतु) तेरे अतिशय समीप हों। (अस्मान् महे राये हिनु) हमको महान् धनकी प्राप्तिके लिये प्रेरित कर ॥ ३० ॥

[४३४] (पणीनां बृबुः) वणिजोंमें तक्षा, शिल्पी (वर्षिष्ठे मूर्धन् अधि अस्थात्) श्रेष्ठ उन्नत मूर्धावत् स्थलपर अधिष्ठित हुआ है और (गाङ्ग्यः कक्षः न उरुः) गंगाके ऊंचे तटोंकी तरह वह श्रेष्ठ हुआ है ॥ ३१ ॥

[४३५] (वायोः इव) वायुकी तरह (यस्य द्रवत्) जिसने त्वरासे (भद्रा सहस्रिणी रातिः) कल्याण-कारक, सहस्रों प्रकारका दान किया (सद्य दानाय मंहते) तत्काल ही दान देनेके लिये उसकी शक्ति बढती है ॥ ३२ ॥

यस्य द्रवत् भद्रा सहस्रिणी रातिः सद्यः दानाय मंहते— जिस प्रभुकी त्वरासे कल्याण करनेवाली सहस्रों प्रकारकी दानशक्ति तत्काल ही सहाय्यार्थ तत्पर रहती है।

भावार्थ— हे मनुष्य ! अन्नसे पुष्ट बने शरीरसे युक्त हो। अन्नसे शरीरको पुष्ट कर। महती सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आनन्दित हो। भक्तको शत्रुके आधीन न कर ॥ २७ ॥

प्रत्येक यज्ञमें ईश्वरकी स्तुतियां गायी जाती हैं, जिस तरह गौवें बछडेके पास जाती हैं। गौवें बछडेके पास ही जाती हैं उस तरह स्तुतियां प्रभुके पास जाती हैं। स्तुतियोंका ध्येय प्रभुप्राप्ति ही है ॥ २८ ॥

धनों, ऐश्वर्यों, अन्नों और बलोंसे युक्त वीरोंके तथा अनेक प्रकारसे स्तुति करनेवाले भक्तोंकी वाणीमें जो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ करके मान्य हुआ है, उसी प्रभुका हमारी वाणियां भी वर्णन करती हैं ॥ २९ ॥

हमारे स्तोत्र, हे प्रभो ! तेरे पास पहुंचे, तुझे प्रिय लगें। उनको सुनकर तू हमें उत्तम मार्गसे धन प्राप्त हो ऐसी प्रेरणा कर ॥ ३० ॥

व्यापार-व्यवहार करनेवालोंमें शिल्पी उच्च स्थानपर आरूढ होता है। क्योंकि शिल्पोंका व्यापार अधिक होता है, उससे धन अधिक प्राप्त होता है और व्यापारियोंको धनकी आवश्यकता होती है। गंगा आदि नदियोंके तट जैसे ऊंचे होते हैं वैसा ही शिल्पी उच्च स्थानोंमें विराजता है ॥ ३१ ॥

वायु जैसे त्वरासे बहकर सबपर उपकार करता है उस तरह उस प्रभुको कल्याण करनेवाली सहस्रों प्रकारकी दान क्रिया तत्काल ही दानके लिये आगे बढती हैं ॥ ३२ ॥

४३६ तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । बूबुं सहस्रदातमं
सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ ॥

[४६]

ऋषिः- १४ शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः (=विषमा बृहती, समा सतोबृहती)

४३७ त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नर- स्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

४३८ स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह: स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

४३९ यः सत्राहा विचर्षणि- रिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥ ३ ॥

अर्थ— [४३६] (सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमं) सहस्रों प्रकारके धनोंके दाता, बुद्धिमान् विद्वान् और सहस्रों दान करनेवाले (तत् बृबुं) उस शिल्पीका (नः विश्वे अर्यः कारवः) हमारे सब श्रेष्ठ कारीगर (सदा सु आ गृणन्ति) हमेशा अच्छी तरहसे वर्णन करते हैं ॥ ३३ ॥

[४६]

[४३७] (कारवः वाजस्य साता) हम शिल्पी लोग अन्नकी प्राप्तिके लिये, हे इन्द्र ! (त्वां इत् हि हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सत्पतिं त्वां नरः वृत्रेषु) सज्जनोंके पालक हुए तुझको दूसरे मनुष्य भी वृत्रादि शत्रु उत्पन्न होनेपर तुझे ही बुलाते हैं । (अर्वतः काष्ठासु त्वां) अश्वोंको दिशाओंमें विजयार्थ भेजनेके लिये तुझे ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

[४३८] हे (चित्र) आश्चर्यकारक इन्द्र ! (वज्रहस्त) वज्रधारी (अद्रिवः) शस्त्रवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (धृष्णुया महः सः त्वं) शत्रुओंको दबानेके कारण महान् बना तू (नः स्तवानः) हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें (गां रथ्यं अश्वं सं किर) गौ, रथ वहन करनेवाले अश्वको हमें दे दो । (जिग्युषे सत्रा वाजं न) जीतनेवाले वीरको जैसा बहुत अन्न देते हैं वैसा यह सब हमें दे दो ॥ २ ॥

[४३९] (यः सत्राहा विचर्षणिः) जो इन्द्र, सर्वदा सबको विशेष रीतिसे देखनेवाला है (तं इन्द्रं वयं हूमहे) उस इन्द्रको हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं । हे (सहस्र मुष्क) सहस्र वीर्य, (तुविनृम्ण) बहुत धनवान् (सत्पते) सज्जनोंके पालक ! (समत्सु नः वृधे भव) संग्रामोंमें हमारी वृद्धि करनेवाला हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— सहस्रों प्रकारके धनोंके दाता, सहस्रों प्रकारोंसे दान करनेवाले ज्ञानी विद्वान् शिल्पीकी- उस प्रभुकी- सब श्रेष्ठ कारीगर सदा उत्तम रीतिसे प्रशंसा गाते हैं । कारीगर उत्तम हों, वे सहस्रों प्रकारके धन उत्पन्न करें और उनका दान करें, अनेक प्रकारोंसे सहायता करें । वे उस श्रेष्ठ शिल्पी-जगत्स्रष्टा कारीगर- की प्रशंसाका गान करें ॥ ३३ ॥

हम शिल्पी विद्वान् धन अन्न आदिको प्राप्त करनेके लिये सहायार्थ तुझे ही बुलाते हैं । सब मनुष्य सज्जनोंके पालक बने हुए तुमको शत्रुओंके उपस्थित होनेपर सहाय्यार्थ बुलाते हैं । दिशाओंमें विजयार्थ घोडों घुडसवारों- को भेजनेके समय सहाय्यार्थ तुझे ही बुलाते हैं । तेरी सहायता मांगते हैं ॥ १ ॥

हे आश्चर्यकारक, वज्रको हाथमें धारण करनेवाले, शस्त्रास्त्रवान् इन्द्र ! वीर ऐसे शस्त्रास्त्र अपने पास रखें । शत्रुका नाश करनेकी शक्तिसे बडा बना तू गौओं और रथको जोतनेके घोडोंको हमें दे । गौवें दूध पीकर पुष्ट होनेके लिये और रथके घोडे वीरोचित कर्म करनेके लिये हमें चाहिये ॥ २ ॥

४४० बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ४ ॥
४४१ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥
४४२ त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो ऽमित्रान् त्सुषहान् कृधि ॥ ६ ॥
४४३ यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥

अर्थ— [४४०] (ऋचीषम) हे ऋचाके समान कर्मकर्ता इन्द्र ! (घृषौ मीळ्हे) शत्रुओंके घर्षक संग्राममें तू (जनान् वृषभा इव) शत्रुजनोंको बैलके समान (मन्युना बाधसे) क्रोधसे पीडित करता है। (महाधने अस्माकं अविता बोधि) महान् धन प्राप्तिके संग्राममें हमारा रक्षक हो। (तनूषु, अप्सु सूर्ये) शरीर, उदक और सूर्यके प्रकाशमें रक्षक हो ॥ ४ ॥

[४४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ज्येष्ठं ओजिष्ठं) श्रेष्ठ और बलवर्धक (पपुरि श्रवः नः आ भर) पुष्ट करनेवाला अन्न हमको दे दो। हे (चित्र) आश्चर्यकारक (वज्रहस्त) वज्र हाथमें धरनेवाले (सुशिप्र) सुन्दर मुकुट धारण करनेवाले इन्द्र ! (येन इमे उभे रोदसी आ प्राः) जिससे तुम ये द्यावापृथिवी पूर्ण रीतिसे भरते हो वह अन्न हमें दे दो ॥ ५ ॥

[४४२] हे (राजन्) राजा इन्द्र ! (देवेषु उग्रं चर्षणीसहं त्वां) देवोंके बीच उग्र वीर शत्रुके नाशक तुझे (अवसे हूमहे) रक्षणके लिये बुलाते हैं। (विश्वा पिब्दना सु विथुरा) संपूर्ण दुष्टोंको अच्छी तरह व्यथित कर। हे (वसो) निवासक इन्द्र ! (नः अमित्रान् सुषहान् कृधि) हमारे शत्रुओंको सुखसे जीतने योग्य करो ॥ ६ ॥

[४४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नाहुषीषु कृष्टिषु) मानवी प्रजाओंमें (यत् ओजः नृम्णं च) जो बल और मानसिक शक्ति है और (यत् वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नं आ भर) जो पांचों वर्गोंके पास तेज रहता है वह सब हमको दे दो। (सत्रा विश्वानि पौंस्या) और इनके साथ संपूर्ण सामर्थ्य भी रहें ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सबको विशेष रीतिसे देखता है। उस इन्द्रको हम अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं। हे अनेकों पराक्रमवाले, बहुत धनवान् और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! तू युद्धोंमें हमारी वृद्धि करनेवाला हो ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! घर्षण जिसमें होता है ऐसे संग्राममें शत्रुपक्षके जनोंको बैलके समान क्रोधसे तू बाधा पहुंचाता है। संग्राममें हमारे शरीर, जलस्थान, सूर्यप्रकाश आदिमें हमारा रक्षक हो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! श्रेष्ठ बलवर्धक पुष्टीकारक, यशोवर्धक अन्न हमें भरपूर दो। अन्न ऐसा हो कि जो बल बढावे, पोषण करे, ज्ञानसे यश बढावे और जो निर्दोष श्रेष्ठ हो। विलक्षण, शस्त्रधारी, उत्तम मुकुटधारी शत्रुनाशक वीर हो। ये द्यावापृथिवी जिससे पूर्ण रीतिसे भरे हैं ऐसा अन्न दो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! वीरोंमें विशेष शूर और शत्रुका पराभव करनेवाला तू है इसलिये तुझे हम अपने रक्षणके लिये बुलाते हैं। सबको पीसकर नष्ट करनेवाले शत्रुओंको उत्तम रीतिसे दूर कर। हे निवासक प्रभो ! हमारे शत्रुओंको सुगमतासे जीतने योग्य हमें कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! मानवी प्रजाजनोंमें जो शारीरिक बल, मानसिक सामर्थ्य, तथा जो पांच प्रकारके मानवोंमें तेज है, तथा इनके साथ जो सब सामर्थ्य रहते हैं वे सब हमें दे ॥ ७ ॥

४४४ यद् वा तुक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद् रिरीहि सं नृषाह्ये ऽमित्रान् पृत्सु तुर्वणे ॥ ८ ॥
४४५ इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥
४४६ ये गव्यता मनसा शत्रुमादभु रभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वण स्तनूपा अन्तमो भव ॥ १० ॥
४४७ अध स्मा नो वृधे भवे न्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११ ॥

अर्थ— [४४४] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (तुक्षौ यत् वा) बलयुक्त मनुष्योंमें (यत् द्रुह्यौ जने) तथा द्रोह करनेवाले मानवोंमें जो बल रहता है और (पुरौ यत् कत् च वृष्ण्यं) पुरिमें निवास करनेवालोंमें जो बल रहता है (तत् अस्मभ्यं) वह सब हमको (पृत्सु अमित्रान् तुर्वणे नृषाह्ये) संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके मनुष्योंके साथ युद्ध करनेके समय (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे दो ॥ ८ ॥

[४४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तिमत् शरणं छर्दिः) तीन धातुओंसे युक्त ठंडी, गरमी, वर्षा इन तीनों ऋतुओंमें हितकारी, कल्याणकारी, आश्रय करनेयोग्य घर (मघवद्भ्यः च मह्यं यच्छ) जैसा धनवालोंके लिये वैसा ही मुझे भी दे दो। (च एभ्यः दिद्युं यवय) और इनसे तेजस्वी शस्त्र दूर कर ॥ ९ ॥

[४४६] (ये गव्यता मनसा शत्रुं आदभुः) जो गौकी इच्छा करनेवाले मनसे शत्रुको दबा देते हैं। (धृष्णुया अधि प्रघ्नन्ति) जो धर्षण शक्तिसे प्रहार करते हैं। हे (मघवन्) धनवान् (गिर्वणः) प्रशंसनीय (इन्द्र) इन्द्र ! (अध स्म नः अन्तमः तनूपाः भव) और हमारा तू समीपवर्ती शरीर रक्षक हो और शत्रुसे हमारी रक्षा कर ॥ १० ॥

[४४७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अध नः वृधे भव स्म) और हमारे संवर्धन करनेके लिये सिद्ध रह (नायं युधि अव) हमारे नेताकी युद्धमें रक्षा कर। (पर्णिनः तिग्ममूर्धानः दिद्यवः) पंखवाले, तीक्ष्ण अग्रभागवाले, तेजस्वी बाण (यत् अन्तरिक्षे पतयन्ति) जब अन्तरिक्षसे गिरते हैं, उस समय हमारी रक्षा कर ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हलचल करनेवाले मनुष्योंमें जो बल है, द्रोह करनेवाले लोगोंमें जो बल है, पुरीमें रहनेवालोंमें जो भी कुछ बल होता है, वह सामर्थ्य हमको युद्धोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिये और शत्रुके वीरोंका पराभव करनेके लिये दे। हमें इन कार्मोंको करनेके लिये ये सब बल चाहिये ॥ ८ ॥

घर ऐसा हमें चाहिये जो (त्रि-धातु) सुवर्ण, रजत और लोहा इन धातुओंसे युक्त हो, तीन धारण शक्तियोंसे युक्त हो, (त्रि-वरूथं) सर्दी, गर्मी और वर्षामें रहने योग्य हो, (स्वस्तिमत्) कल्याण करनेवाला, हितकारी, आनन्द देनेवाला, (शरणं) इसमें रहनेके लिये लोग आ जायं, शरण आनेवालोंको आश्रय देनेवाला (छर्दिः) आश्रयस्थान, घर– घर ऐसा हो। ऐसा घर हमें चाहिये। तथा (एभ्यः दिद्युं यावया) इनसे शस्त्र दूर रहे। घर ऐसा हो कि जिसमें रहनेसे शस्त्रधारी शत्रुका आक्रमण उसपर न हो सके ॥ ९ ॥

गौको प्राप्त करनेकी कामनासे शत्रुको दबाते हैं। ये एक प्रकारके वीर हैं। जो धर्षण शक्तिसे प्रहार करते हैं, शत्रुपर आक्रमण करके शत्रुपर प्रहार करते हैं। ये दूसरे प्रकारके वीर हैं। हमारे समीप रहकर हमारे शरीरका रक्षण करनेवाला तू हो। यहाँ शरीरका रक्षण करनेके लिये शरीरके पास रहनेवाले 'शरीर रक्षक' की कल्पना है ॥ १० ॥

+

४४८ यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितृणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे३ तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥ १२ ॥

४४९ यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥ १३ ॥

४५० सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ १४ ॥

[४७]

ऋषिः- ३१ गर्गो भारद्वाजः । देवताः- इन्द्रः, १-५ सोमः, २० देव-भूमि-बृहस्पतीन्द्राः, २२-२५ सार्ञ्जयः प्रस्तोकः (दानस्तुतिः), २६-२८ रथः, २९-३० दुंदुभिः, ३१ दुंदुभीन्द्रौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, १९ बृहती, २३ अनुष्टुप्, २४ गायत्री, २५ द्विपदा त्रिष्टुप्, २७ जगती ।

४५१ स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥

अर्थ— [४४८] (यत्र शूरासः तन्व वितन्वते) जिस समय शूरवीर अपने शरीरोंको अर्पण करते हैं । युद्धके समय (पितॄणां प्रिया शर्म) पितरोंके लिये प्रिय सुख होता है । (अध स्म तन्वे च तने) इस समय शरीरके और पुत्रके लिये (छर्दिः यच्छ) सुरक्षित घर दे दो और (अचित्तं द्वेषः यावय) अविचारी शत्रुको दूर करो ॥ १२ ॥

[४४९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महाधने सर्गे असमने अध्वनि) संग्राममें उद्योगमें, विषम मार्गमें (अर्वतः) अश्वोंको (यत् चोदयासे) जब प्रेरणा करते हैं । उस समय वे घोडे (वृजिने पथि श्रवस्यतः श्येनान् इव) कुटिल मार्गमें भी अन्नरूप आमिषकी इच्छासे दौडनेवाले श्येन पक्षियोंकी तरह शीघ्र गमन करते हैं ॥ १३ ॥

[४५०] (प्रवणे आशुया यतः सिन्धून् इव) नीचेके प्रदेशमें शीघ्र गतिसे जानेवाली नदियोंकी तरह (आमिषि वयः न) मांसके लिये दौडनेवाले पक्षियोंके समान (स्वनि अनु क्रोशं) शब्दमें भय उत्पन्न होनेपर (बाह्वोः गृभीताः ये गवि आवर्वृतति) बाहुओंसे पकडे गये रास जिनके ऐसे घोडे भूमिपर दौडते आते हैं और विजय पाते हैं ॥ १४ ॥

[४७]

[४५१] (अयं स्वादु किल) यह सोम वास्तवमें स्वादु है । (उत अयं मधुमान्) और यह मीठा भी है । (अयं तीव्रः किल) यह सचमुच अति तीक्ष्ण है (उत अयं रसवान्) और यह रसवाला भी होता है (उतः अस्य पपिवांसं इन्द्रं) और इस सोमके पीनेवाले इन्द्रको (आहवेषु कः चन न सहते) संग्राममें कोई भी पराजित नहीं कर सकता ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हमारा संवर्धन करनेके लिये तत्पर रह । नेताकी युद्धमें रक्षा कर । तीक्ष्ण अग्रवाले तेजस्वी पंख लगे बाण जिस समय अन्तरिक्षमेंसे गिरने लगते हैं, उस प्रकारसे युद्धमें हमारी सुरक्षा कर ॥ ११ ॥

जिस युद्धमें शूर लोग अपने शरीरोंको अर्पण करते हैं, शरीरोंको अर्पण करनेकी तैयारीसे जहां शूरवीर युद्ध करते हैं, वैसा युद्ध पितरोंको आनन्द देनेवाला होता है । ऐसा युद्ध करना योग्य है । हे इन्द्र ! शरीरकी तथा बालबच्चोंकी सुरक्षाके लिये उत्तम सुरक्षित घर दे । ऐसा घर हो कि जिसमें बालबच्चोंकी सुरक्षा हो । अविचारी शत्रुको दूर कर । वह हमें वारंवार न सताए ऐसा कर ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! युद्धमें, नवीन उत्पत्ति करनेके व्यवसायमें, अथवा विषम मार्गमें घोडोंको जब तू दौडता है, तब कुटिल मार्गसे भी अन्न चाहनेवाले श्येन पक्षी जैसे दौडते हैं, वैसे वे घोडे दौडने लगते हैं ॥ १३ ॥

इस इन्द्रके घोडे युद्ध ध्वनि होनेपर इतने वेगसे दौडते हैं कि जिस तरह नदियोंका प्रवाह निम्न प्रदेशकी तरफ शीघ्रतासे दौडता है, अथवा मांस खानेवाले पक्षी जिस तरह मांसके टुकडेपर झपट्टा मारते हैं । इसी वेगके कारण इन्द्रके घोडे सदा विजयी होते हैं । वीरोंके घोडे भी इसी तरह वेगवान् और वीर हों ॥ १४ ॥

४५२ अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥ २ ॥
४५३ अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥
४५४ अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥ ४ ॥
४५५ अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान् महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [४५२] (इह अयं स्वादु मदिष्ठः आस) यहां यह स्वादु सोमरस पीनेपर अतिशय हर्षकारक सिद्ध हुआ, (यस्य इन्द्रः वृत्रहत्ये ममाद) जिसके पान करनेसे इन्द्र शत्रुका नाश करनेके समयमें हर्षयुक्त हुआ। (यः शम्बरस्य पुरूणि च्यौत्ना) जिसने शम्बरासुरके बहुतसे दुर्ग तथा किलोंका नाश किया। (देह्यः नवतिं नव च वि हन्) और शत्रुके निन्यानवे पुरियोंका भी जिसने नाश किया ॥ २ ॥

[४५३] (अयं पीतः मे वाचं उत् इयर्ति) सोमके पीनेसे मेरी वाणी ऊंची होकर निकलती है। (अयं उशतीं मनीषां अजीगः) यह सोम तेजस्वी बुद्धिको प्रकाशित करता है। (अयं धीरः षट् उर्वीः अमिमीत) इस बुद्धिवर्धक सोमने पृथ्वीके छः विभाग बनाये हैं। (याभ्यः आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे कोई भी अधिक भूविभाग नहीं है ॥ ३ ॥

[४५४] (सः अयं सोमः) यह वह सोम है (यः पृथिव्याः वरिमाणं अकृणोत्) जिसने पृथिवीको अत्यन्त विस्तृत किया, (दिवः वर्ष्माणं) और द्युलोकको भी अत्यन्त दृढ किया, (अयं सः) यह वही सोम है। (अयं तिसृषु प्रवत्सु पीयूषं दाधार) इस सोमने औषधियों, उदक और गायोंमें उत्तम अमृतरसको रखा है। (उरु अन्तरिक्षं) और विस्तृत अन्तरिक्षको भी धारण किया है ॥ ४ ॥

[४५५] (शुक्रसद्मनां उषसां अनीके) निर्मल अन्तरिक्ष जिनका घर ऐसी उषाओंके समूहमें (अयं चित्रदृशीकं अर्णः विदत्) यह सोम ही चित्रविचित्र ज्योतिको प्रकाशित करता है। (महान् वृषभः मरुत्वान्) महान् बलवाला और मरुतोंसे युक्त (अयं महता स्कंभनेन) यह सोम बडे मध्यवर्ती स्तंभसे (द्यां उत् अस्तभ्नात्) द्युलोकको ऊपर स्थापित करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— सोमरस स्वादु, रुचिकर, मीठा और तीखा होता है। इसके पीनेसे इन्द्रको युद्धमें कोई शत्रु जीत नहीं सकता इतनी शक्ति आती है ॥ १ ॥

यह स्वादिष्ट सोमरस बहुत ही हर्षदायक है। इसीलिए इसका पान करके इन्द्र उत्साहयुक्त होकर शत्रुओंका नाश करता है और उसी उत्साहसे युक्त होकर इस इन्द्रने असुरोंके अनेक किलोंका नाश किया ॥ २ ॥

इस सोमरसको पीनेवालेकी वाणी ऊंची और गंभीर होती है, यह सोमरस बुद्धिको प्रकाशित करता है। इस सोमने अपनी बुद्धिसे पृथ्वीके ६ हिस्से किए। इन छै हिस्सोंसे बढकर और कोई भूविभाग नहीं है ॥ ३ ॥

इसी सोमके कारण यह पृथिवी अत्यन्त विस्तृत हुई। इसी सोमके कारण द्युलोक भी अत्यन्त दृढ हुआ। इसी सोमरसके कारण औषधियों, जलों और गायोंमें उत्तम अमृत है। यही विस्तृत अन्तरिक्षको धारण करता है ॥ ४ ॥

निर्मल अन्तरिक्षमें जितनी भी उषायें प्रकाशित होती हैं, उन सभीमें सोमकी ही चित्रविचित्र ज्योति प्रकाशित हो रही है। यह सोम बहुत बलशाली, महान् और उत्साहसे युक्त होकर द्युलोकमें विराजमान् है ॥ ५ ॥

४५६ धृषत् पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६ ॥
४५७ इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ७ ॥
४५८ उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ८ ॥
४५९ वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन् रायो अर्यः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४५६] हे (शूर) शूरवीर (इन्द्र) इन्द्र ! (वृत्रहा वसूनां समरे) शत्रुनाशक तू धनोंकी प्राप्तिके संग्राममें (कलशे सोमं धृषत्) कलशमें रहे सोमको शत्रुका धर्षण करनेके लिये (पिब) पी, (माध्यंदिने सवने आ वृषस्व) मध्याह्नके सवनमें अपना बल बढा और (रयिस्थानः रयिं अस्मासु धेहि) धनका आधार बनकर तू हमें धन दे ॥ ६ ॥

[४५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (पुरएता इव नः प्र पश्य) अग्रगामीकी तरह हमको देख (वस्यः अच्छ प्रतरं नः प्र नय) श्रेष्ठ धन सुगमतासे हमें प्राप्त हों । (सुपारः भव) अच्छी तरह दुःखसे पार करानेवाला हो । (नः अतिपारयः) हमें शत्रुओंसे छुडाओ । (सुनीतिः भव) सुन्दर नीतिवान् हो अथवा पार सुगमतापूर्वक ले जानेवाला हो । (उत वामनीतिः) और प्रशंसनीय नीतिका संचालक हो ॥ ७ ॥

[४५८] हे इन्द्र ! (विद्वान् उरुं लोकं नः अनु नेषि) तू ज्ञानी है इसलिये विस्तीर्ण लोकको हमें प्राप्त करा । (स्वर्वत् अभयं स्वस्ति ज्योतिः) सुखयुक्त, भयरहित, कल्याणकारक ज्योति हमें प्राप्त करा । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्थविरस्य ते ऋष्वा बृहन्ता बाहू शरणा उप स्थेयाम) वृद्धके बडे विशाल बाहुओंकी शरणमें हम आकर तेरे समीप रहें ॥ ८ ॥

[४५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वरिष्ठे वन्धुरे नः आ धाः) श्रेष्ठ रथपर हमको बैठा । हे (शतावन्) सैकडों अश्वोंके स्वामी इन्द्र ! (वहिष्ठयोः अश्वयोः आ धाः) अतिशय वहन करनेवाले अश्वोंके रथमें हमें स्थापन कर । (इषां वर्षिष्ठां इषं आ वक्षि) अन्नोंमेंसे अत्यन्त श्रेष्ठ अन्न हमारे लिये दे । हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (अर्यः नः रायः मा तारीत्) तू धनका स्वामी है, हमारे धनका कोई शत्रु नाश न करे ऐसा हमारा संरक्षण कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे शूरवीर इन्द्र ! शत्रुनाशक तू धनोंकी प्राप्ति करानेवाले संग्राममें सोमको पी और शत्रुओंका नाश कर ! माध्यंदिन यज्ञमें अपना बल बढा और धनका आधार बनकर तू हमें धन दे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तू उत्तम नीतिमान् है, तू उत्तम प्रशंसनीय नीतिका संचालक है, अतः हमारा नेता बनकर हमारी देखभाल कर, श्रेष्ठ धनवाला तू हमें सुगमतासे दुःखसे पार ले चल । तू हमें दुःखोंसे पार ले जानेवाला हो, हमें शत्रुओंसे पार ले जा ॥ ७ ॥

तू सब जानता है इसलिये सुखदायी विस्तीर्ण प्रदेशमें हमको अनुकूलतासे ले चल । सुखमय, भयरहित, कल्याणकारक तेज हमें प्राप्त हो । तुझ वृद्ध पुरातन पुरुषके विशाल पुष्ट बडे बाहुओंकी शरण जाकर हम तेरे पास आकर रहें ! तेरे आश्रयमें रहकर आनंद प्राप्त करें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! उत्तम रथपर हमें बिठला । हम उत्तम रथपर बैठें ऐसा कर । उत्तम दौडनेवाले घोडोंके रथपर हमें बिठला । हमारे पास उत्तम चलनेवाले घोडे हों । अन्नोंमें जो श्रेष्ठ अन्न है वही हमें मिले ऐसा कर । तू स्वामी है, अतः तू ऐसा कर कि हमारा धन कोई दूसरा विनष्ट न करे ॥ ९ ॥

४६० इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत् किं चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ १० ॥
४६१ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥
४६२ इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥
४६३ तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्याऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥

अर्थ— [४६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मृळ) हमको सुखी कर । (जीवातुं मह्यं इच्छ) दीर्घ जीवन मेरे लिये मिले ऐसी इच्छा कर । (धियं चोदय) मेरी बुद्धिको अच्छे कर्मोंमें प्रेरित कर । (अयसः न धारां) लोहमय खड्ग आदिकी धाराकी तरह मेरी बुद्धि तीक्ष्ण हो । (त्वायुः इदं यत् किं च अहं वदामि) तेरी प्रीति चाहता हुआ जो कुछ मैं बोलता हूं (तत् जुषस्व) वह श्रवण कर । (मा देववन्तं कृधि) मुझे रक्षकदेवोंसे युक्त कर ॥ १० ॥

[४६१] (त्रातारं इन्द्रं) शत्रुओंसे रक्षण करनेवाले इन्द्रको, (अवितारं इन्द्रं) सब प्रकारसे संरक्षण करनेवाले इन्द्रको (हवे हवे सुहवं शूरं शक्रं) प्रत्येक समयमें सुखसे बुलानेयोग्य शूरवीर, सामर्थ्यवान् (पुरुहूतं इन्द्रं ह्वयामि) बहुजनों द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य इन्द्रको मैं बुलाता हूं । (मघवा इन्द्रः स्वस्ति नः धातु) वह धनवान् इन्द्र हमारा कल्याण करे ॥ ११ ॥

[४६२] (सुत्रामा स्ववान् इन्द्रः) अच्छी प्रकारसे रक्षण करनेवाला आत्मशक्तिसे युक्त वह इन्द्र (अवोभिः सुमृळीकः भवतु) रक्षणोंसे सुख देनेवाला हो (विश्ववेदाः द्वेषः बाधतां) सर्वज्ञ वह प्रभु हमारे शत्रुओंका नाश करनेवाला हो । (अभयं कृणोतु) निर्भयता स्थापन करे । (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) हम उत्तम बलके स्वामी बनें ॥ १२ ॥

[४६३] (यज्ञियस्य सुमतौ वयं स्याम) पूज्य पुरुषकी उत्तम बुद्धिमें हम रहें । (भद्रे सौमनसे अपि) कल्याणकारक अच्छे मनसे युक्त भी हम हों । (सुत्रामा स्ववान् सः इन्द्रः) उत्तम पालन करनेवाला, धनवान् वह इन्द्र (अस्मे आरात् चित् द्वेषः सनुतः युयोतु) हमारेसे दूर देशमें छिपे हुए शत्रुओंको सदाके लिये दूर करे ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! मुझे सुखी कर । मुझे दीर्घ जीवन प्राप्त हो ऐसी इच्छा कर । मेरी बुद्धिको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा कर । तलवारकी तीक्ष्ण धाराके समान मेरी बुद्धि तीक्ष्ण हो । तेरा प्रेम चाहता हुआ जो मैं बोलता हूं वह सुन । मुझे देवोंके साथ रहनेवाला कर । मुझे दिव्य शक्तियां प्राप्त हों ॥ १० ॥

रक्षक, पालक, सहाय्यार्थ बुलाने योग्य, शूर, समर्थ बहुत जिसको सहाय्यार्थ बुलाते हैं, ऐसे इन्द्रको मैं सहाय्यार्थ बुलाता हूं । धनवान् वह इन्द्र हमें सुख प्रदान करे ॥ ११ ॥

उत्तम रक्षक आत्मशक्तिसे शक्तिमान् बना, वह प्रभु अपने अनेक रक्षणसामर्थ्योंसे हमें उत्तम सुख देनेवाला हो । सर्वज्ञ प्रभु हमारे शत्रुओंको बाधा पहुंचावे । सर्वत्र निर्भयता स्थापित करे । हम उत्तम सामर्थ्यके स्वामी बनें । जिससे निर्भय होकर विचरें ॥ १२ ॥

पूजनीय पुरुषकी श्रेष्ठ बुद्धि हमारे लिये अनुकूल हो । कल्याणकारी उत्तम मन हमारे अनुकूल हो । उत्तम संरक्षण करनेवाला आत्मशक्तिवान् इन्द्र हमसे दूर रहनेवाले शत्रुओंको सदाके लिये दूर रखे ॥ १३ ॥

४६४ अव॒ त्वे इ॑न्द्र प्र॒वतो॒ नोर्मि॒र्गिरो॒ ब्रह्मा॑णि नि॒युतो॑ धवन्ते ।
उ॒रू न राधः॒ सव॑ना पु॒रूण्य॒पो गा व॑ज्रिन् यु॒वसे॒ समिन्दू॑न् ॥ १४ ॥

४६५ क ईं॑ स्तवत् कः पृ॑णा॒त् को य॑जाते॒ यदु॒ग्रमिन्म॒घवा॑ वि॒श्वहावे॑त् ।
पादा॑विव प्र॒हर॑न्न॒न्यम॑न्यं कृ॒णोति॒ पूर्व॒मप॑रं॒ शची॑भिः ॥ १५ ॥

४६६ शृ॒ण्वे वी॒र उ॒ग्रमु॑ग्रं दमा॒यन्न॒न्यम॑न्यमतिनेनी॒यमा॑नः ।
ए॒ध॒मा॒न॒द्विळु॒भय॑स्य॒ राजा॑ चोष्कू॒यते॒ विश॒ इन्द्रो॑ मनु॒ष्या॑न् ॥ १६ ॥

४६७ परा॒ पूर्वे॑षां स॒ख्या वृ॑णक्ति वि॒तर्तु॑राणो॒ अप॑रेभिरेति ।
अना॑नुभूतीरवधून्वा॒नः पू॒र्वीरिन्द्रः॑ श॒रद॑स्तर्तरीति ॥ १७ ॥

अर्थ— [४६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वे नियुतः गिरः) तुझे स्तोताकी वाणियां (ब्रह्माणि) स्तोत्र रूपमें पहुंचें। (ऊर्मिः प्रवतः न) जैसे जलप्रवाह नीचेके प्रदेशमें दौडते हुए (अव धवन्ते) जाते हैं। (उरु राधः पुरूणि सवना) बहुत अन्न और बहुत सोम तुझे ही प्राप्त होता है। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र (अपः गाः इन्दून् सं युवसे) वे जल गौके दूध, दही आदिको सोमरसोंके साथ अच्छी तरह मिश्रित करता है ॥ १४ ॥

[४६५] (कः ईं स्तवत्) कौन इस इन्द्रकी स्तुति करता है ? (कः पृणात्) कौन उसको प्रसन्न करता है ? (कः यजाते) कौन उसका यजन करता है ? (यत् मघवा उग्रं इत् विश्वहा अवेत्) जिससे धनवान् इन्द्र उग्रवीर होकर सदा हमारा रक्षण करे। (प्रहरन् पादौ इव) जिस प्रकार मनुष्य चलता हुआ मार्गमें पैरोंको एकके बाद दूसरा रखता है, उस प्रकार (शचीभिः पूर्वं अपरं अन्यं अन्यं कृणोति) अपनी बुद्धिद्वारा पहिले एकको पीछे दूसरेको इस प्रकार उन्नत करता रहता है ॥ १५ ॥

[४६६] (उग्रं उग्रं दमायन्) हरएक उग्र शत्रुका दमन करता है, (अन्यं अन्यं अतिनेनीयमानः) हरएक उत्तम पुरुष अत्यंत बढाता है ऐसा (वीर शृण्वे) यह वीर है ऐसा सुनते हैं। (एधमान-द्विट् उभयस्य राजा इन्द्रः) वर्धमान शत्रुओंका द्वेष करनेवाला, और द्यावापृथिवीका राजा यह इन्द्र (विशः मनुष्यान् चोष्कूयते) अपने प्रजारूपी मनुष्योंको रक्षणके लिये बारबार बुलाता है ॥ १६ ॥

[४६७] (पूर्वेषां सख्या परा वृणक्ति) पहिलोंकी मैत्रियोंको दूर करता है और (वितर्तुराणः अपरेभिः एति) शत्रुकी हिंसा करता हुआ दूसरोंके साथ चलता है। (अनानुभूतीः अवधून्वानः) अनुभवशून्य प्रजाओंको दूर करता है और इस तरह (पूर्वीः शरदः इन्द्रः तर्तरीति) पूर्व आयुके वर्षोंका यह इन्द्र अतिक्रमण करता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— स्तोताओंकी वाणियां इन्द्रकी प्रशंसा गाती हैं। तथा सोमरस गौके दूधके साथ अच्छी तरह मिलाये जाते हैं ॥ १४ ॥

कौन प्रभुकी उत्तम स्तुति कर सकता है ? कौन इस प्रभुको प्रसन्न कर सकता है ? कौन इसके लिये यज्ञ करता है ? धनवान् प्रभु सर्वदा अपने आपको उग्रवीर जानता है और अपनी नाना प्रकारकी शक्तियोंसे एकको पहिले और दूसरेको दूसरी बार ऐसा एक एकको उच्च करता रहता है। एकको पहिले ऊंचा बनाता है, तो दूसरेको पश्चात् ऊंचा बनाता है ॥ १५ ॥

यह इन्द्र हरएक शत्रुके वीरको दबाता है। हरएक उत्तम मनुष्योंको बढाता है। ऐसा यह वीर है ऐसा सुनते हैं। बढनेवाले शत्रुसे यह द्वेष करता है। दोनोंका यह इन्द्र राजा है। प्रजाजनोंका संरक्षण करता है ॥ १६ ॥

यह इन्द्र पूर्वकालके लोगोंकी मित्रताएं दूर रखता है और शत्रुका नाश करके यह नवीन नवीन लोगोंके साथ मित्रता करनेके लिये जाता है। अनुभवशून्य लोगोंको वह दूर करता है और पूर्वके वर्ष इन्द्र व्यतीत करके आगे बढता है। पूर्व समय जो मित्र हुए हैं उनके पाससे वह नवीन भक्तोंके साथ अधिक रहने लगता है। नवीनोंको उच्च बनानेका उसका हेतु है। शत्रुओंको दूर करके वह नये भक्तोंके साथ रहता है। अनुभवशून्य लोगोंको वह दूर करता है और अनुभवी लोगोंके पास रहता है। इस तरह उनके आयुके वर्ष जाते हैं। सारी आयुमें वह नवीन भक्तोंको अपने पास अधिकाधिक लानेका यत्न करता रहता है ॥ १७ ॥

४६८ रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८ ॥
४६९ युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९ ॥
४७० अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २० ॥
४७१ दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन् दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥ २१ ॥

अर्थ-[४६८] (रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक रूपके लिये वह प्रभु आदर्शरूप हुआ है। (अस्य तत् रूपं) इसका वह रूप (प्रति चक्षणाय) आदर्श करके देखनेके लिये है। (इन्द्रः मायाभिः पुरुरूपः ईयते) प्रभु अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनेक रूप बनकर जाता है, (अस्य हि दश शता हरयः युक्ताः) इसके हजारों घोडे जोते हैं ॥ १८ ॥

[४६९] (हरिता रथे युजानः त्वष्टा) हरित अश्वोंको रथमें जोतनेवाला त्वष्टा इन्द्र (इह भूरि राजति) यहां बहुत चमकता है। (उत सूरिषु आसीनेषु) और ज्ञानी लोग सभामें बैठनेपर (विश्वाहा कः द्विषतः पक्षः आसते) सदा कौन शत्रुके पक्षका सामना करके रहता है ? ॥ १९ ॥

[४७०] हे (देवाः) देवो ! (अगव्यूति क्षेत्रं आ अगन्म) गौविहीन क्षेत्रमें हम आ गये हैं। (उर्वी सती भूमिः अंहू-रणा अभूत्) बडी विस्तीर्ण क्षेत्र होनेपर यह पृथ्वी पापी शत्रुओंके युद्धक्षेत्र-सी हुई है। हे (बृहस्पते) बृहस्पति ! तू (गो-इष्टौ प्रचिकित्स) गौओंकी प्राप्ति होनेपर उनकी विशेष चिकित्सा कर (इत्था सते जरित्रे) इस प्रकार सत्य भक्त स्तोताके लिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पन्थां) अच्छा मार्ग बता ॥ २० ॥

[४७१] (सद्मनः जाः सदृशीः कृष्णाः) इन्द्रने अपने घरसे जन्मी हुई कृष्णवर्ण प्रजाको (दिवेदिवे अन्यं अर्धं) प्रतिदिन दूसरे आधे भागको (अप असेधत्) हटा दी। (वृषभः दासा वस्नयन्ता) बलवान् इन्द्रने निवास करनेकी इच्छा करनेवाले (वर्चिनं शंबरं च उदव्रजे) वर्ची और शम्बरको उनके बाहरके देशमें (अहन्) मारा, वध किया ॥ २१ ॥

भावार्थ— विश्वमें जितने रूप हैं उनके लिये आदर्शरूप प्रभु है। प्रत्येक रूपमें प्रभुका प्रतिबिंब देखनेके लिये है। प्रभु ही अनन्त शक्तियोंसे बहुरूप बना है, इसलिये उसको 'पुरुरूप, बहुरूप या विश्वरूप' कहते हैं। उसके रथको हजारों घोडे किरणरूपसे जोते हैं ॥ १८ ॥

रथको लाल रंगके घोडे जोतनेवाला सूर्य यहां प्रकाशित होता है। ज्ञानी लोग सभामें बैठनेपर सदा शत्रुके पक्षके सामने विरोधी होकर कहीं बैठता है और शत्रुका विरोध करता है ॥ १९ ॥

जहां गौएं नहीं हैं ऐसे स्थानमें हम गये, तो यह विशाल भूमि होनेपर भी पापका युद्धक्षेत्र-सी बनती है। हे ज्ञानी प्रभो ! गौओंकी इच्छा कर और गौएं प्राप्त होनेपर उनके रोगोंको उत्तम प्रकार दूर कर। इस तरह रहकर जो प्रभुका स्तोत्र गाते हैं उनको, हे प्रभो ! अच्छा मार्ग बता ॥ २० ॥

यहां जन्मी हुई एक जैसी कृष्णवर्ण प्रजाको दूसरे आधे भागमें प्रतिदिन अपने घरसे बाहर हटा देता है। सूर्य आकर यहां रही रात्रीको दूसरे देशमें प्रतिदिन भगाता है। इसी तरह राजा शत्रुकी प्रजाको दूसरे देशमें हटा दे। बलवान् इन्द्रने यहां रहनेवाले दास, वर्ची और शंबरको उनके जानेके मार्गमें ही मारा। शत्रुको दूर किया ॥ २१ ॥

४७२ प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२ ॥
४७३ दशाश्वान् दश कोशान् दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान् दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥
४७४ दश रथान् प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥
४७५ महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान् त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥
४७६ वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वाऽऽस्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ २६ ॥

अर्थ— [४७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते राधसः प्रस्तोकः) तेरी शक्तियोंकी स्तुति करनेवालेने (दश कोशयीः) सुवर्णपूर्ण दश कोश और (दश वाजिनः नु) दश घोडे (अदात्) दिये (दिवोदासात्) दिवोदाससे (अतिथि ग्वस्य शाम्बरं राधः) अतिथिको गौ देनेवालेका धन जो, शम्बरसे प्राप्त था वह भी हमने (वसु प्रति अग्रभीष्म) धन ग्रहण किया ॥ २२ ॥

[४७३] (दश अश्वान्) दश अश्व (दश कोशान्) सुवर्णपूर्ण दश कोश (अधिभोजना दश वस्त्रा) अधिक भोजन और दश वस्त्र (दशो हिरण्यपिण्डान्) दश सुवर्णपिण्ड (दिवोदासात्) दिवोदास राजासे (असानिषं) प्राप्त किये ॥ २३ ॥

[४७४] (दश प्रष्टिमतः रथान्) दश घोडोंसे युक्त रथोंको (शतं गाः) सौ गायें (अथर्वभ्यः पायवे) अथर्व गोत्रवालोंको और पालकको (अश्वथः अदात्) अश्वथने दी ॥ २४ ॥

[४७५] (विश्वजन्यं महि राधः) सब मनुष्योंके लिये हितकारक महान् धनको (दधानान् भरद्वाजान्) धारण करनेवाले भरद्वाजके पुत्रोंका (सार्ञ्जयः) सृञ्जयके पुत्रने धनका (अभ्ययष्ट) प्रदान करके सत्कार किया ॥ २५ ॥

[४७६] हे (वनस्पते) वनस्पतिविकार रथ ! तू (वीड्वंगः भूयाः) दृढ मजबूत अवयववाला (अस्मत् सखा) हमारा मित्र सहायक (प्रतरणः सुवीरः) तारक और सुन्दर शूरवीर योद्धाओंसे या पुत्रोंसे युक्त, (गोभिः संनद्धः असि) और गायके चमडेकी डोरीसे अच्छी तरह बंधा हुआ हो ॥ २६ ॥

भावार्थ— हे प्रभो ! तेरी सिद्धियोंकी प्रशंसा करनेवालेने धनके दस कोश और दस घोडे मुझे दानमें दिये । इस तरह दान करना चाहिये । दिवोदाससे, अतिथिको गौ देनेवालेका धन जो शम्बरने अपने अधिकारमें रखा था, वह धन हमने प्राप्त किया ॥ २२ ॥

जो देवोंके सेवक हैं, उनसे सोना, अन्न, वस्त्र आदि हर तरहके भोग्य पदार्थ प्राप्त किए जा सकते हैं ॥ २३ ॥

घोडोंके साथ रहनेवाले शूरवीरने दस घोडोंसे युक्त रथ, सौ गाय स्थिर मनवाले मनुष्यको प्रदान किए ॥ २४ ॥

सार्ञ्जय अर्थात् शत्रुको जीतनेवाले शूरवीरके पुत्रने भी सब मनुष्योंके लिए हित कारक महान् धनको धारण करनेवाले भरद्वाज अर्थात् अन्नके द्वारा प्रजाओंका भरणपोषण करनेवालेका धन देकर सत्कार किया ॥ २५ ॥

रथ मजबूत हो, वीरका हितकारी, दुःखसे बचानेवाला, वीरोंके बैठनेयोग्य और डोरियोंसे अच्छी तरह बंधा हो ॥ २६ ॥

४७७ दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥ २७ ॥

४७८ इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥ २८ ॥

४७९ उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥ २९ ॥

४८० आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥ ३० ॥

अर्थ— [४७७] (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथ्वीसे (उद्भृतं ओजः परि) उद्धृत किया बल इसको प्राप्त है (वनस्पतिभ्यः परि) वनस्पतियोंसे (आभृतं) इकट्ठा किया हुआ (सहः) सामर्थ्य (अपां ओज्मानं) पानीके तेजसे युक्त (गोभिः परि आवृतं) गौके चमडेकी डोरियोंसे चारों तरफसे बंधे (इन्द्रस्य वज्रं रथं) इन्द्रके वज्रका और रथका (हविषा यज) हव्यसे यजन कर ॥ २७ ॥

[४७८] (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्रका वज्र (मरुतां अनीकं) मरुतोंका सैन्य (मित्रस्य गर्भः) मित्रका गर्भ और (वरुणस्य नाभिः) वरुणकी नाभिके गुणोंसे युक्त तू है। हे (देव) कान्तिमान् इन्द्र ! (रथः सः) रमणीय गुणोंसे युक्त तू (इमां नः हव्यदातिं) हमारी इस यागक्रियाको (जुषाणः हव्या प्रति गृभाय) स्वीकार करके हमारे हवनको ग्रहण कर ॥ २८ ॥

[४७९] हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि ! (पृथिवीं उत द्यां उप श्वासय) पृथिवीको और द्युलोकको अपने जयघोषसे जीवित कर। (विष्ठितं जगत् ते पुरुत्रा मनुतां) विशेष रूपसे स्थिर हुआ जगत् तेरे शब्दको बहुत प्रकारसे सम्मान देवे। (सः इन्द्रेण देवैः सजूः) वह तू इन्द्रके तथा अन्य देवोंके साथ (दूरात् दवीयः शत्रून् अप सेध) दूरसे भी अति दूर रहनेवाले हमारे शत्रुओंको दूर कर ॥ २९ ॥

[४८०] हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि ! (आ क्रन्दय) हमारे शत्रुओंको रुला (बलं ओजः नः आ धाः) बल और ओज हमको दे (दुरिता बाधमानः निः स्तनिहि) पापियोंको बाधा करता हुआ तू अत्यन्त बडा शब्द कर। हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि ! (दुच्छुनाः इतः अप प्रोथ) हमारे दुःखका कारण बनी शत्रुसेनाको हमारे स्थानसे दूर कर। (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) तू इन्द्रकी मुष्टि है इसलिये हमें (वीळयस्व) सामर्थ्यवान् कर ॥ ३० ॥

भावार्थ— द्युलोक और पृथ्वीलोकसे जितना बल प्राप्त हो सकता है, उतना बल इस इन्द्रको प्राप्त है। इस इन्द्रका रथ भी सामर्थ्यसे युक्त, तांतोंसे चारों ओर अच्छीतरह बंधा हुआ तथा वज्रसे युक्त है ॥ २७ ॥

इन्द्रका रथ इन्द्रके वज्र, मरुतोंकी सेना, मित्रकी सहायता और वरुणका केन्द्र इन सभी सामर्थ्योंसे युक्त है। हे तेजस्वी इन्द्र ! उत्तम गुणोंसे युक्त तू हमारे इस यज्ञको स्वीकार करके हमारी हविको ग्रहण कर ॥ २८ ॥

हे दुन्दुभे ! तू अपने जयघोषसे आकाश और पृथ्वीको गुंजा दे। इस गूंजको सुनकर सारा संसार इस दुन्दुभिको सम्मान प्रदान करे। हे दुन्दुभि ! तू इन्द्र तथा अन्य देवोंके साथ रहकर अत्यन्त दूर पर रहनेवाले शत्रुओंको भी नष्ट कर ॥ २९ ॥

+

४८१ आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ३१ ॥

[४८]

ऋषिः- २२ शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) । देवताः- १-१० अग्निः, ११-१५, २०-२१ मरुतः (१३-१५ लिंगोक्ता वा), १६-१९ पूषा, २२ द्यावाभूमी च पृश्निर्वा । छन्दः- प्रगाथः= (१, ३ बृहती; २, ४ सतोबृहती; ५ बृहती, ६ महासतोबृहती; ७ महाबृहती, ८ महासतोबृहती; ९ बृहती, १० सतोबृहती; ११ ककुप्, १२ सतोबृहती), १३ पुरउष्णिक्, १४ बृहती, १५ अतिजगती, १६ ककुप्, १७ सतोबृहती, १८ पुरउष्णिक्, १९-२० बृहती, २१ महाबृहती यवमध्या, २२ अनुष्टुप् ।

४८२ यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १ ॥

अर्थ— [४८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अमूः आ अज) शत्रुओंकी सेनाको हटा दे। (इमाः प्रत्यावर्तय) हमारी सेनाको अब वापस लौटा ला। (दुन्दुभिः केतुमत् वावदीति) दुन्दुभि झंडेके साथ अत्यन्त शब्द करती रहे। (अश्वपर्णाः नः नरः सं चरन्ति) घोडेसवार और हमारे वीर शत्रुओंसे युद्ध करते हैं इसलिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्माकं रथिनः जयन्तु) हमारे रथारूढ वीर शत्रुओंको जीतें ऐसा कर ॥ ३१ ॥

१ अमूः आ अज— इस शत्रुसेनाको भगा दे।
२ इमाः प्रत्यावर्तय— इन हमारी सेनाको अब पीछे ले।
३ केतुमत् दुन्दुभिः वावदिति— ध्वजके साथ जो दुंदुभि है वह शब्द करता है।
४ नः अश्वपर्णा नरः सं चरन्ति— हमारे घुडसवार और हमारे नेता वीर संचार कर रहे हैं।
५ अस्माकं रथिनः जयन्तु— हमारे रथी वीरोंका जय हो।

[४८]

[४८२] हे स्तोताओ ! (वः यज्ञायज्ञा) तुम सब प्रत्येक यज्ञमें (दक्षसे अग्नये) वर्धमान अग्निकी (गिरा-गिरा) स्तुतिरूप वाणीसे स्तुति करो, (वयं) हम भी (अमृतं जातवेदसं मित्रं न प्रियं) अमर, हरएक वस्तुका ज्ञानी, मित्ररूप, प्रिय अग्निकी (प्र शंसिषं) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे दुन्दुभि ! तू गूंजकर शत्रुओंको इस प्रकार भयभीत कर कि वे रो पडें, हमें ओज और सामर्थ्य प्रदान कर। पापियोंका नाश करता हुआ तू उनको बुरी तरह नष्ट कर। जो हमें दुःख देती है, उस शत्रुसेनाको तू नष्ट कर। तू इन्द्रका सामर्थ्य है, अतः तू हमें भी सामर्थ्यशाली कर ॥ ३० ॥

हे इन्द्र ! तू शत्रुओंकी सेनाको पीछे हटा, तथा समय पडने पर हमारी सेनाको भी पीछे हटा। हमारी पताकाके साथ दुन्दुभिका शब्द भी गूंजता रहे। दुन्दुभिकी आवाजके साथ ही हमारे वीर उत्साहमें भरकर शत्रुओंसे युद्ध करते रहें और उन्हें जीतें। कुशल सेनापति वही होता है कि जो सेनाको आगे बढावे, पर समयकी नाजुकता पहचानकर पीछे भी हट जाए। सेनाके आगे बढनेके साथ ही साथ दुन्दुभि आदि बाजे बजते रहें और सेनाका उत्साह बढता रहे ॥ ३१ ॥

हे स्तोताओ ! तुम प्रत्येक यज्ञमें बढनेवाले अग्निकी वाणीसे स्तुति करो। हम भी अमर, हर पदार्थको जाननेवाले तथा मित्रके समान हितकारी अग्निकी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

४८३ ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ २ ॥

४८४ वृषा ह्यग्ने अजरो महान् विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥ ३ ॥

४८५ महो देवान् यजसि यक्ष्यानुषक् तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

४८६ यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥ ५ ॥

अर्थ— [४८३] (ऊर्जः नपातं) हम बल और बलके पुत्रकी प्रशंसा करते हैं (सः अयं अस्मयुः) वह अग्नि हमारे पास आनेकी इच्छा करता है । तथा (हव्यदातये दाशेम) देवोंको हव्यान्न देनेके लिये अग्निको हम हव्यान्न देते हैं । वह अग्नि (वाजेषु अविता वृधः भुवत्) संग्राममें हमारा रक्षक और वर्धक हो । (उत तनूनां त्राता) और हमारे पुत्रोंका भी रक्षक हो ॥ २ ॥

[४८४] हे (अग्ने) अग्नि ! (वृषा अजरः महान्) वृष्टिकर्ता, इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला जरारहित, महान तू (अर्चिषा विभासि) अपनी कान्तिसे प्रकाशित होता है । हे (शुचे) प्रदीप्त अग्नि ! (अजस्रेण शोचिषा) निरन्तर तेजसे (शोशुचत्) अत्यन्त दीप्तिमान् तू (सुदीतिभिः सु दीदिहि) अपनी कान्तिसे अच्छी तरह हमें प्रकाशित कर ॥ ३ ॥

१ वृषा अजरः महान् अर्चिषा विभासि— बलवान् जरारहित और जो महान् होता है वह तेजसे प्रकाशता है । (निर्बल जराग्रस्त और अल्प जो रहता है वह तेजस्वी नहीं हो सकता ।)

[४८५] हे (अग्ने) अग्नि ! तू (महः देवान् यजसि) महान् देवोंका यजन करता है । (आनुषक् यक्षि) इसलिये हमारे यज्ञमें भी निरन्तर यजन कर । (तव क्रत्वा उत दंसना सीं) और तेरी बुद्धिसे कर्म कर, तथा (अर्वाचः अवसे कृणुहि) उन देवोंको हमारी रक्षाके लिये हमारे सामने कर । (वाजा रास्व) बल दे (उत वंस्व) तथा तू भी बल बढानेवाला अन्न प्राप्त कर ॥ ४ ॥

१ महः देवान् यजसि— महान् होकर ज्ञानियोंका सत्कार करो ।

[४८६] (आपः अद्रयः वना ऋतस्य गर्भं यं पिप्रति) जल, मेघ और वन यज्ञके गर्भमें (वाडवाग्नि, वैद्युताग्नि और दावाग्नि रूपसे वर्तमान) अग्नि रहता है । (यः नृभिः सहसा मथितः) जो अग्नि नेताओंके बलद्वारा मथित होकर (पृथिव्याः अधि सानवि जायते) पृथिवीपर उत्कृष्ट यज्ञप्रदेशमें प्रकट होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— अपने बलको बढाना चाहिये । अपना बल कम हो ऐसा कोई कार्य करना नहीं चाहिये । युद्धोंमें शक्तियोंका संरक्षण करना योग्य है । अपना बल बढे ऐसा करना चाहिये । अपने स्वजनोंका संरक्षण करना चाहिये ॥ २ ॥

हे अग्ने ! इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला, जरारहित तू अपने तेजसे प्रकाशित होता है । अत्यन्त तेजस्वी तू अपनी कान्तिसे हमें तेजस्वी करता रह । मनुष्य बलवान् बने, जरारहित बने, वृद्ध होनेपर भी तारुण्यका उत्साह उसमें बना रहे । वह अपने तेजसे तेजस्वी हो, सतत उत्साहसे उत्साही बना रहे और निराशाका विचार समीप न आने दे ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तू महान् देवोंका यजन अर्थात् संगठन करता है अतः हमारे यज्ञोंमें भी देवोंका संगठन कर तथा बुद्धिपूर्वक कर्म कर । देवोंको प्रेरणा दे कि वे हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आवें । मनुष्य स्वयं महान् होकर ज्ञानियोंका सत्कार करे तथा स्वयं भी हर कामोंमें देवों अर्थात् विद्वानोंका सत्कार करे ॥ ४ ॥

४८७ आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥ ६ ॥

४८८ बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

४८९ विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥ ८ ॥

अर्थ -- [४८७] (यः भानुना उभे रोदसी आ पप्रौ) जो अग्नि अपनी कान्तिसे द्यावापृथिवीको परिपूर्ण करता है। (धूमेन दिवि धावते) और धूंएसे अन्तरिक्षमें जाता है। (अरुषः वृषा) कान्तिमान्, इष्टसिद्धीवर्धक, अग्नि (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली अन्धकारवाली रात्रिमें (तमः तिरः आ ददृशे) अंधकारको तिरस्कृत करके चारों तरफ प्रकाशित होता है। (श्यावाः आ) काली रात्रियां रहती है तब वह (अरुषः वृषा) कान्तिमान् वर्षक अग्नि प्रकाशित होता हैं ॥ ६ ॥

[४८८] हे (देव) दानादिगुणयुक्त कान्तिमान् (यविष्ठ्य) अतिशय युवान् (शुक्र) दीप्तिमान् (अग्ने) अग्नि ! (शुक्रेण शोचिषा) निर्मल तेजसे (भरद्वाजे) भरद्वाजमें (सं इधानः) सम्यक् दीप्यमान् तू (बृहद्भिः अर्चिभिः) अत्यन्त तेजसे (नः रेवत्) हमारे लिये धनसे युक्त होकर (दीदिहि) प्रदीप्त हो। हे (पावक) शोधक अग्नि ! (द्युमत् दीदिहि) तेजस्वी होकर दीप्तिमान् हो ॥ ७ ॥

[४८९] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं) तू (मानुषीणां विश्वासां विशां) संपूर्ण मानवी प्रजाओंका (गृहपतिः असि) घरका स्वामी है। हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण ! (शतं हिमाः) सौ वर्षोंतक (सं इद्धारं) तुझे अच्छी तरह प्रदीप्त करनेवाले मेरी (शतं पूर्भिः) सौ पालनकर्मों द्वारा (अंहसः पाहि) पापसे और दुष्ट शत्रुओंसे रक्षा कर। (ये च स्तोतृभ्यः ददति) और जो स्तोताओंको यज्ञकर्ममें धन देता है उनकी भी रक्षा कर ॥ ८ ॥

भावार्थ--- जलमें अग्नि है, वडवाग्नि इसे कहते हैं। अद्रि-पहाड, मेघमें वैद्युताग्नि रहता है। वनोंमें दावाग्नि उत्पन्न होता है। सत्य यज्ञके गर्भमें अग्नि होता है। जो यज्ञके मध्यमें अग्नि रहता है वह यज्ञाग्नि कहा जाता है। जो मनुष्योंके द्वारा बलसे मन्थन करके निर्माण करते हैं वह यज्ञाग्नि कहलाता है। पृथ्वीके उत्तम स्थानमें- यज्ञशालामें- यह अग्नि निर्माण किया जाता और यज्ञके लिये वह रखा जाता है। इसमें यजन होता है ॥ ॥ ५ ॥

जो अग्नि अपने प्रकाशसे दोनों द्यावापृथिवीको भर देता है। वह अग्नि अपने धुंवेंसे ऊपर आकाशमें दौडता है। तेजस्वी और बलवान् यह अग्नि काली अन्धकारमय रात्रियोंमें अन्धकारको दूर करता है ऐसा दीखता है काले अंधेरेमें वह बलवान् अग्नि प्रकाश फैलाता है। इसी तरह मनुष्य बलवान् बने, जगत्में जो अज्ञानका अन्धकार है उसे दूर करे और सबको प्रकाश बताकर उत्तम रीतिसे मार्ग बतावे ॥ ६ ॥

हे देव ! हे तरुण, बलवान् अग्ने ! तू दिव्य गुणयुक्त है, तरुण जैसा उत्साही है, वीर्यवान् है और तू उसका अग्रणी है। मनुष्य दिव्य गुणोंसे युक्त, सदा तरुण, वीर्यवान् और नेता बने। स्वच्छ तेजसे प्रकाशित होकर, धनका दान करनेवालेके लिये बडे तेजसे, धन देता हुआ, प्रकाशित होता रहे। हमारेमें जो धनका दान करता है, उसे धन दे और उन्नतिका मार्ग बता। हे पवित्रता करनेवाले। तू अपने तेजसे प्रकाशता रह। मनुष्य पवित्रता करे, तेजस्वी बने और अपने तेजसे प्रकाशता रहे ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू सब मानवी प्रजाओंका गृहस्वामी है। प्रत्येक घरमें तू रहता है, कमसे कम पकानेका कार्य तो करता है, याजकोंके घर यज्ञकार्य करता है। सौ वर्षतक तुझे प्रदीप्त करनेवालेका, सौ किलोंसे जैसा किया जाता है वैसा, पापसे या पापी शत्रुओंसे संरक्षण कर। जो उपासकोंको धन दिया जाता है उसका भी रक्षण कर ॥ ८ ॥

४९० त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥ ९ ॥
४९१ पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥ १० ॥
४९२ आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः । सृजध्वमनपस्फुराम् ॥ ११ ॥
४९३ या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥ १२ ॥

अर्थ— [४९०] हे (वसो) निवासक (अग्ने) अग्नि ! (चित्रः त्वं ऊत्या राधांसि नः चोदय) दर्शनीय तू रक्षाके साथ धनोंको हमारे पास प्रेरित कर। (अस्य रायः त्वं रथीः असि) इस धनका तू नेता है। और (नः तुचे गाधं तु विदाः) हमारे पुत्रादिकी प्रतिष्ठा जल्दी प्राप्त करा ॥ ९ ॥

[४९१] हे (अग्ने) अग्नि ! (त्वं अदब्धैः अप्रयुत्वभिः पर्तृभिः) तू किसीसे अहिंसित अपृथग्भूत यानी अलग नहीं होनेवाले पालनके साधनोंसे (तोकं तनयं पर्षि) पुत्र और पौत्रका पालन कर। (दैव्या हेळांसि नः युयोधि) दैवी क्रोधको हमारेसे दूर करो। (अदेवानि च ह्वरांसि) और मनुष्यसम्बन्धी हिंसित कर्म हमसे दूर करो ॥ १० ॥

[४९२] हे (सखायः) मित्रो ! (नव्यसा वचः) अत्यन्त नवीन शब्द द्वारा (सबर्दुघां धेनुं आ अजध्वं) पोषक दूध देनेवाली गायको ले आओ ! (अनपस्फुरां उप सृजध्वं) ऐसी न हिलनेवाली गायको बन्धनसे मुक्त करो ॥ ११ ॥

१ सखायः ! नव्यसा वचः सबर्दुघां धेनुं आ अजध्वं— हे मित्रो ! नवीन कोमल शब्दोंसे दुधारु गायको इधर ले आओ।

[४९३] (या) जिस गायने (अमृत्यु श्रवः) अमर, अन्नरूपी दूध (शर्धाय स्वभानवे) बलशाली, कान्तिमान् (मारुताय) मरुत् संघके लिये (धुक्षत) दूध दिया। (या) जिसने और (तुराणां मरुतां मृळीके) जल्दी कर्मकारी मरुतोंको सुखी किया (या) तथा जो गाय (सुम्नैः एवयावरी) सुखसाधनोंसे जानेवाली दूसरोंको भी सुखके लिये जानेवाली वह गाय प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

भावार्थ— अग्नि निवास कराता है। शरीरमें अग्नि रहता है तबतक मानव जीवित रहता है। पृथिवीमें अग्नि है तबतक ही पृथिवीपर प्राणियोंका निवास होता है। ऐसा अग्नि विलक्षण सामर्थ्यवान् है, दर्शनीय है। मनुष्यका शरीर दर्शनीय तबतक दीखता है जबतक उसमें उष्णता रहती है। वह अग्नि संरक्षण साधनोंके साथ सिद्धि देनेवाले धन हमारे पास भेजे। धन, यश देनेवाले और संरक्षक साधनोंसे युक्त चाहिये। निर्बलता और दुष्कीर्ति देनेवाले धन नहीं चाहिये ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! तू अहिंसक और पृथक् न होनेवाले रक्षा साधनोंसे पुत्रपौत्रोंका संरक्षण कर। रक्षा साधन ऐसे हों कि जो सदा अपने पास रहें और टूटें न, नष्ट न हों। ऐसे साधनोंसे हमारे बालबच्चोंका रक्षण कर। दैवी आपत्तियोंसे हमारे द्वारा युद्ध करा और उनको दूर कर। दैवी आपत्तियां हमसे दूर रहें। अदैवी – दैहिक – मानवीय कुटिलताओंको दूर रख हमसे दैवी आपत्तियां और मानवी कपट दूर रहें ॥ १० ॥

गायको कठोर शब्दसे बुलाना चाहिये। कठोर शब्दसे गायपर बुरा परिणाम होता है। दूध देनेतक न हिलनेवाली गायको बन्धनसे बाहर चरनेके लिये छोड दो ॥ ११ ॥

४९४ भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहस-मिषं च विश्वभोजसम् ॥ १३ ॥

४९५ तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥ १४ ॥

४९६ त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्व-ण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत् सुवेदा नो वसू करत् ॥ १५ ॥

४९७ आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे । अघा अर्यो अरातयः ॥ १६ ॥

अर्थ— [४९४] हे मरुतो ! (भरद्वाजाय) आपने भरद्वाजको दी (द्विता) दो प्रकारकी वस्तु (विश्वदोहसं धेनुं) सबको बहुत दूध देनेवाली गाय (च विश्वभोजसं इषं) और पर्याप्त भोगरूप अन्न (अव धुक्षत) दिया ॥ १३ ॥

[४९५] हे मरुत् गण ! (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (सुक्रतुं वरुणं इव) अच्छे कर्म करनेवाले वरुणकी तरह (मायिनं अर्यमणं न) बुद्धिमान् अर्यमाके समान (मन्द्रं विष्णुं न) सुखदायी विष्णुकी तरह (सृप्रभोजसं) अत्यंत उत्तम भोजन देनेवाले (तं वः) उस आपके संघकी (आदिशे स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥

[४९६] (न) इस समय (त्वेषं तुविष्वणि पूषणं मारुतं शर्धः) तेजस्वी, बहु प्रशंसित, पोषक, मरुतोंके समुदायरूप संघकी स्तुति करता हूं । (यथा) जिससे (चर्षणिभ्यः शता सं कारिषत्) मनुष्योंको सैकडों धनोंके साथ युक्त करो । (सहस्रा सं) सहस्र धनोंसे भी युक्त करो । (गूळ्हा वसु आ आविः करत्) गुप्त धनोंको प्रकट करो । तथा (वसु सुवेदा नः करत्) धन सरलतासे प्राप्त हों ऐसा करें ॥ १५ ॥

[४९७] हे (पूषन्) पूषक देव ! (मा आ द्रव) मेरी रक्षाके लिये आ । हे (आघृणे) दीप्तिमान् ! (अघाः अर्यः अरातयः उप) हिंसक शत्रुओंकी हिंसा करनेवाली प्रजाओंको रोको । (ते अपिकर्णे नु शंसिषं) और मैं तेरे समीपमें रहकर तेरी प्रशंसा करता हूँ ॥ १६ ॥

भावार्थ— जो मृत्युको दूर करनेवाला दूध तेजस्वी मरुतोंके गणोंको देती है । जो गाय मृत्युको दूर करनेवाला दूध तेजस्वी सैनिकोंके संघको देती है । जो स्वराभीक मरुत् (सैनिक) संघके लिये देती है । जो सुखोंके साथ सदा रहती है । गाय अमरत्व देनेवाला दूध देती है, सैनिकोंको सुख देती है, अनेक प्रकारके आनन्द देती है । इसलिये गौका पालन करना चाहिये ॥ १२ ॥

मरुतोंने भरद्वाजको सदा दूध देनेवाली गौ दी और खाने योग्य अन्न दिया ॥ १३ ॥

हे मरुतो ! तुम सब इन्द्रके समान शूरवीर, वरुणकी तरह अच्छे कर्म करनेवाले, अर्यमाके समान बुद्धिमान्, विष्णुकी तरह सुखदायी तथा अत्यन्त उत्तम भोजन देनेवाले हो, अतः मैं आपके संघकी स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥

तेजस्वी, अनेकों द्वारा प्रशंसित, पोषण करनेवाला वीर मरुतोंका यह संघ है । मानवोंको यह संघ सैकडों और हजारों धन प्राप्त हों ऐसा करे । गुप्त धन प्रकट करे धन हमें सुखसे प्राप्त हो ऐसा करे ॥ १५ ॥

हे तेजस्वी पोषणकर्ता देव ! मेरे समीप (मेरे रक्षाके लिये) आ । मेरी सुरक्षा कर । पापी कंजूस शत्रु हमारे समीप न आवे । पापी हमसे दूर हो, कंजूस हमारे समीप न आ और शत्रु हमारे पास न आवें । मैं तेरे कानमें यह कहता हूँ ॥ १६ ॥

४९८ मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥

४९९ दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥ १८ ॥

५०० परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

५०१ वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

५०२ सद्यश्चिद् यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥

अर्थ— [४९८] हे पूषा! (काकम्बीरं वनस्पतिं मा उद् वृहः) काकम्बीर वृक्षको बाधा मत पहुँचा, इसे बढने दे। (अशस्तीः वि नीनशः हि) अशंसनीय शत्रुभूत प्रजाका तू नाश कर। (उत सूरः एव मा अहः) और तेरा शत्रु भी हमारा हरण न करे। जिस प्रकार (ग्रीवाः वेः आदधते) व्याध, शिकारी लोग पक्षियोंका हरण करते हैं ॥ १७ ॥

[४९९] हे पूषा! (ते अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दृतेः इव) छिद्ररहित, परिपूर्ण दहीसे भरे पात्रके समान तेरी अविच्छिन्न मैत्री हो और (अवृकं सख्यं अस्तु) बाधारहित मैत्री हो ॥ १८ ॥

[५००] हे (पूषन्) पूषा! तू (मर्त्यैः परः असि) मनुष्योंसे श्रेष्ठ है। (श्रिया देवैः उत समः) संपत्तिसे भी तू अन्य देवोंके समान ही है। (त्वं पृतनासु नः अभि ख्यः) तू संग्रामोंमें हमको कृपादृष्टिसे देख। (यथा पुरा नूनं अव) जिस प्रकार प्राचीन मनुष्योंकी रक्षा की उस प्रकार हमारी भी रक्षा कर ॥ १९ ॥

[५०१] हे (धूतयः) शत्रुको कम्पित करनेवाले! (प्रयज्यवः मरुतः) अतिशय पूजनीय मरुत् गणो! (सूनृता प्रणीतिः अस्तु) तुम्हारी प्रिय सत्य वाणी हमारे लिये प्राप्त हो। (देवस्य वा मर्त्यस्य वा ईजानस्य वामी वामस्य) देव अथवा मनुष्य अथवा यज्ञकर्ता इनकी प्रशस्त वाणी [प्रशंसनीय धन देनेवाली हो।] ॥ २० ॥

[५०२] (यस्य चर्कृतिः) जिनके कर्म (सद्यः चित् द्यां परि एति) शीघ्र ही स्वर्गको प्राप्त होते हैं। (देवः सूर्यः न) दीप्तिमान् सूर्यकी तरह (मरुतः) मरुतोंने (त्वेषं नाम यज्ञियं शवः दधिरे) प्रदीप्त यश और प्रशंसनीय बल धारण किया है। (शवः वृत्रहं) वह बल शत्रुओंका नाश करनेवाला है, और (वृत्रहं शवः ज्येष्ठं) शत्रुनाशक वह बल सबसे अत्यन्त प्रशस्त है ॥ २१ ॥

भावार्थ— मनुष्य वनस्पतिको न सतावें। वनस्पति बढती रहे। अप्रशस्त शत्रुरूप प्रजा नष्ट हो। शत्रु न बढे। उत्तम शूर भी मेरा हरण न करे। उत्तम शत्रु भी मेरा नाश न करे। पक्षियोंका गला व्याध पकडते हैं वैसा हमारा गला कोई न पकडे ॥ १७ ॥

हे पूषा! छिद्ररहित दहीसे परीपूर्ण भरा पात्र जैसा आनन्द देता है, वैसी तेरी मित्रता कुटिलता रहित हो। ॥ १८ ॥

हे पूषा! तू मानवोंसे श्रेष्ठ है और संपत्तिसे तू अन्य देवोंके समान संपत्तिमान् है। तू युद्धोंमें हमें दयार्द्र दृष्टिसे देख। जैसा तू प्राचीन समयमें रक्षा करता था वैसी ही अब भी हमारी रक्षा कर। ॥ १९ ॥

हे मरुतो! तुम्हारे पास वाणीकी जो सत्यता है, वह हमें प्राप्त हो। दिव्य गुणोंवाले मनुष्य और यज्ञ करनेवालेकी वाणी हमेशा प्रशंसाके योग्य होती है। वैसी वाणी हमें भी प्राप्त हो ॥ २० ॥

इन मरुतोंके कर्म शीघ्रही सर्वत्र फैल जाते हैं। इनके यश और बल दीप्तिमान् सूर्यकी तरह तेजस्वी हैं। इनका यह बल शत्रुओंका नाश करनेवाला है। जो बल शत्रुओंका नाश करता है, वह सबसे अधिक प्रशस्त होता है ॥ २१ ॥

५०३ सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत् पय—स्तदन्यो नानु जायते ॥ २२ ॥

[४९]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १५ शक्वरी ।

५०४ स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभि—र्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १ ॥
५०५ विशोविश ईड्यमध्वरे—ष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥
५०६ अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥ ३ ॥

अर्थ— [५०३] (द्यौः सकृत् ह अजायत) स्वर्ग एक ही उत्पन्न हुआ है, और (भूमिः सकृत् अजायत) पृथ्वी भी एक ही उत्पन्न हुई है तथा (पृश्न्याः पयः सकृत् दुग्धं) गायका दूध भी एक ही प्रकारका होता है (तत् अन्यः न अनु जायते) दूसरा इसके समान कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ है ॥ २२ ॥

[४९]

[५०४] (सुव्रतं जनं) अच्छे कर्म करनेवाले दिव्य जनसंघकी (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिशय नवीन वाणीसे (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं ; (सुम्नयन्ता मित्रावरुणा) स्तोताओंको सुखी करनेकी इच्छावाले मित्रावरुणकी मैं स्तुति करता हूँ । (सुक्षत्रासः ते वरुणः मित्रः अग्निः) सुन्दर क्षात्रतेजवाले वे वरुण, मित्र और अग्नि (इह आ गमन्तु) इस यज्ञमें आवें और (ते श्रुवन्तु) वे हमारी स्तुतियां सुनें ॥ १ ॥

[५०५] (विशोविशः) संपूर्ण प्रजा द्वारा (अध्वरेषु) यज्ञकर्मोंमें (ईड्यं अदृप्तक्रतुं) स्तुत्य और गर्वरहित कर्म करनेवाले, (युवत्योः अरतिं) स्वर्ग और पृथ्वीमें जानेवाले (दिवः शिशुं) स्वर्गके पुत्र (सहसः सूनुं) बलके लिये उत्पन्न हुए पुत्र (यज्ञस्य केतुं) यज्ञके ध्वज रूप (अरुषं अग्निं) तेजस्वी अग्निकी (यजध्यै) यज्ञ करनेके लिये मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[५०६] (अरुषस्य विरूपे दुहितरा) सूर्यकी शुक्ला और कृष्णा दो पुत्रियाँ हैं । (अन्या स्तृभिः पिपिशे) उनमेंसे एक रात्रि नामकी पुत्री नक्षत्रोंसे प्रकाशती है और (अन्या सूरः) दूसरी दिनप्रभा नामक पुत्री सूर्यसे प्रकाशती है । (मिथस्तुरा विचरन्ती) परस्पर त्वरासे चलती है (पावके ऋच्यमाने) शुद्ध करनेवाली प्रशंसनीय (श्रुतं मन्म) श्रवणीय तथा मननीय हमारे स्तोत्रको (नक्षतः) सुनें ॥ ३ ॥

भावार्थ— द्युलोकके समान द्युलोक है, भूमिके समान भूमि है, और गायके दूधके समान गायका दूध है । इनके समान दूसरा पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ ॥ २१ ॥

मित्र और वरुण दूसरोंको सुखी करते हैं इस तरह मनुष्य दूसरोंका सुख बढाये । उत्तम वीर वरुण, मित्र और अग्नि यहां आकर हमारा रक्षण करें ॥ १ ॥

यह तेजस्वी अग्नि यज्ञकर्मोंमें सभी प्रजाओं द्वारा स्तुत्य और गर्वरहित कर्म करनेवाला, सर्वत्र गमन करनेवाला, तथा यज्ञका प्रज्ञापक है, ऐसे अग्नि देवकी मैं यज्ञ करनेके लिए स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

५०७ प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ४ ॥
५०८ स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान् मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥
५०९ पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥ ६ ॥
५१० पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

अर्थ—[५०७] (बृहती मनीषा) हमारी बडी इच्छा है कि (बृहत् रयिं विश्ववारं रथप्रां वायुं) बडे धनको साथ लेकर, सबसे सेवनीय अपने रथको धनसे भरकर वायु (अच्छ प्र) हमारे पास आवे (प्रयज्यो) हे अतिशय पूजनीय ! (द्युतत्-यामा नियुतः पत्यमानः कविः) कान्तिमान् वाहनवाला, अपने रथमें जोडी हुई घोडियोंका स्वामी बुद्धिमान् तू (कविं इयक्षसि) बुद्धिमान् की पूजा कर ॥ ४ ॥

[५०८] (अश्विनोः सः मे वपुः छदयत्) अश्विनोंका वह रथ मेरे शरीरको तेजसे तेजस्वी करे । (यः रथः विरुक्मान् मनसा युजानः) जो रथ विशेष दीप्तिमान् तथा मनके इशारे मात्रसे ही अश्वोंसे युक्त होता है । हे (नरा) नेता (नासत्या) अश्विन् देवों ! (येन वर्तिः) जिस रथसे स्तोताके घरको (तनयाय त्मने च इषयध्यै) पुत्रके लिये, उसके पिताके लिये और उनकी इच्छाओंको पूर्ण करनेके लिये (याथः) तुम दोनों आते हैं ॥ ५ ॥

[५०९] हे (वृषभा) वृष्टि करनेवाले ! (पर्जन्यवाता) पर्जन्य और वायू ! (पृथिव्याः अप्यानि पुरीषाणि) पृथिवीपरके जलयुक्त अन्न हमारे पास (जिन्वतं) प्रेरित करो । हे (सत्यश्रुतः कवयः) सत्य प्रशंसा करनेवाले ज्ञानी (जगतः स्थातः) जगत्के संस्थापक देवगण ! (यस्य गीर्भिः) वाणियोंसे (जगत् आ कृणुध्वं) सर्व जगत्का तुम निर्माण करते हो ॥ ६ ॥

[५१०] (पावीरवी कन्या चित्रायुः वीरपत्नी सरस्वती) पवित्र करनेवाली, सुन्दर, उत्तम अन्न देनेवाली, वीरोंका पालन करनेवाली, ऐसी सरस्वती देवी (धियं धात्) हमारे बुद्धिसे किये कर्मोंको धारण करे (ग्नाभिः सजोषाः) देवपत्नियोंके सहित प्रीतिसे रहनेवाली (गृणते) स्तुति करनेवालेको (अच्छिद्रं दुराधर्षं शरणं शर्म) छिद्ररहित शीतवायु आदिका दुःख जहां नहीं है ऐसा घर और सुख हमें (यंसत्) प्रदान कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— दो परस्पर विरुद्ध रूपवाली दो पुत्रियां हैं । एक रात्री काली है और दूसरी दिनप्रभा गोरी है । नक्षत्रोंके साथ रात्री रहती है और सूर्यके साथ दिनकी प्रभा रहती है । ये दोनों त्वरासे सतत चल रही हैं कभी ठहरती नहीं । ये विश्वमें पवित्रता करती हैं और ये दोनों प्रशंसनीय हैं । हम इनकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

हमारी ऐसी इच्छा है कि बडे धनको अपने रथपर रखकर वायु हमारे पास बहता रहे । उसका रथ तेजस्वी है और उसको उत्तम घोडियां जोती हैं । वह बुद्धिमान् वायु ज्ञानियोंकी पूजा धनसे करे ॥ ४ ॥

अश्विनौ देवोंका वह रथ मेरे शरीरको तेजस्वी करे । इसी रथसे ये दोनों देव स्तोताके घर उसे हर तरहका धन देनेके लिए आते हैं ॥ ५ ॥

हे पर्जन्य और वायू ! तुम वृष्टि करते हो, अतः पृथिवीपर जो जलके साथ अन्न हैं उनको हमें दो । लोग वाणियोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं कि तुम सब जगत्का निर्माण करते हो । यह स्तुति सत्य है क्योंकि वायु और पर्जन्य इस पृथ्वीपर सब वनस्पतियोंकी उत्पत्ति करते हैं । जिससे सब प्रकारका खाद्य, अन्न और पेय उत्पन्न होता है । ॥ ६ ॥

४

५११ पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥ ८ ॥
५१२ प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद् यजतं पस्त्याना—मग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥
५१३ भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न—मृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥
५१४ आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥ ११ ॥

अर्थ— [५११] (पथस्पथः परिपतिं) प्रत्येक मार्गपर अधिकारी देवे (अर्कं) अर्चनीय पूषाको (कामेन कृतः वचस्या अभ्यानट्) अपनी कामनासे प्रेरित होकर उत्तम वचनसे प्रार्थना करे। (सः पूषा) वह पूषा (नः शुरुधः चन्द्राग्राः रासत्) हमको शोकको रोकनेवाली उत्तम वाणियां प्रदान करे। (धियंधियं प्र सीषधाति) और संपूर्ण हमारे कर्म वह सिद्ध करे ॥ ८ ॥

[५१२] (प्रथमभाजं यशसं वयोधां) प्रथम भजनीय, यशस्वी, अन्न धारण करनेवाले (सुपाणिं देवं सुगभस्तिं) सुन्दर हाथवाले, दानादि गुणयुक्त, सुन्दर भुजाओंवाले (ऋभ्वं पस्त्यानां यजतं) प्रकाशमान्, प्रजाजनोंसे यजनीय, (सुहवं त्वष्टारं) पूजनीय त्वष्टाका (होता विभावा अग्निः) देवोंको बुलानेवाला, दीप्तिमान् अग्नि (यक्षत्) यजन करे ॥ ९ ॥

[५१३] (भुवनस्य पितरं रुद्रं) भुवनका पालन करनेवाले, दुःख दूर करनेवाले ईश्वरको (आभिः गीर्भिः) इन वाणियोंसे (दिवा वर्धय) दिनमें यशगान करो। (अक्तौ रुद्रं) और रात्रिमें भी उसी रुद्रका यश गाओ। और हम (कविना इषितासः) बुद्धिमान् रुद्रसे प्रेरित हुए (बृहन्तं ऋष्वं अजरं सुषुम्नं) महान्, दर्शनीय, जरारहित, उत्तम सुख देनेवाले ईश्वरकी (ऋधक् हुवेम) प्रशंसा गाते हैं ॥ १० ॥

[५१४] हे (युवानः) हमेशा तरुण, (कवयः) ज्ञानी, (यज्ञियासः) यजनीय (मरुतः) मरुतो! (गृणतः वरस्यां आ गन्त) स्तुति करनेवालेकी स्तुतिके पास आओ। हे (नरः) नेता मरुतो! (इत्था वृधन्तः नक्षन्तः अंगिरस्वत्) तुम इस प्रकार अन्तरिक्षमें बढते हो और अग्निकी किरणें (अचित्रं चित् जिन्वथ) औषधियोंसे रहित देशको भी वृष्टिसे तृप्त करती हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— सरस्वती विद्या है। वह सबको पवित्र बनाती है। विद्यासे उत्तम अन्न प्राप्त होता है, विद्या वीरताको बढाती है। बुद्धिका संरक्षण करती है। इस बुद्धिसे नाना प्रकारके उत्तम कर्म किये जाते हैं। दैवी शक्तियां विद्यासे प्राप्त होती हैं। विद्वान् उत्तम छिद्ररहित शत्रुसे जिसपर आक्रमण नहीं हो सकता ऐसा सुखदायक घर प्राप्त कर सकता है ॥ ७ ॥

प्रत्येक मार्गपर स्वामीरूपसे वर्तमान पूजनीय (पूषा देव) की हम अपनी इच्छासे वाणी द्वारा पूजा करते हैं। वह पूषा हमें शोकको दूर करनेवाली, आनंद देनेवाली वाणियां (गौवें) देवें। वह हमारे प्रत्येक बुद्धिपूर्वक किये कर्म सिद्ध करें ॥ ८ ॥

त्वष्टा देवोंके मध्यमें प्रथम पूजनीय, यशस्वी, अन्न धारण करनेवाला, सुन्दर हाथवाला, सुन्दर भुजावाला, तेजस्वी, प्रजाजनों द्वारा उपास्य है। तेजस्वी अग्नि उस त्वष्टाका यजन करे ॥ ९ ॥

विश्वके परम पिता दुःख दूर करनेवाले परमेश्वरकी हम वाणियोंसे दिनमें स्तुति गाते हैं। रात्रीमें भी उसी प्रभुकी स्तुति करते हैं। कविसे प्रेरित हुए हम बडे दर्शनीय, जरारहित, उत्तम सुख देनेवाले प्रभुकी सदा स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

५१५ प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥ १२ ॥
५१६ यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद् विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥ १३ ॥
५१७ तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत् पर्वतस्तत् सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंधिर्जिन्वतु प्र राये ॥ १४ ॥

अर्थ— [५१५] (वीराय प्र अज) वीरके समीप जा। (तवसे तुराय प्र) बलवान्, शीघ्रगामी वीरकी उपासना कर। (पशुरक्षिः यूथा इव अस्तं) पशुपालक जिस प्रकार पशुसमूहको शामको शीघ्र घरकी तरफ प्रेरित करता है, वैसे तुम भी प्रभुकी ओर शीघ्र जाओ। (सः वचनस्य विपः श्रुतस्य) वह स्तुति करनेमें प्रवीणकी स्तुति (तन्वि पिस्पृशति) शरीरको स्पर्श करती है। (स्तृभिः न नाकं) जिस प्रकार नक्षत्रोंसे आकाश तेजस्वी दीखता है, वैसा उपासक भी तेजस्वी होता है ॥ १२ ॥

[५१६] (यः विष्णुः) जिस विष्णुने (बाधिताय मनवे) असुरोंसे दुःखी हुए मनुके लिये (पार्थिवानि रजांसि) तीनों पार्थिव लोकोंका (त्रिः विममे) तीन बार आक्रमण किया। हे विष्णो ! (तस्य ते) उस प्रकार तुमने (उपदद्यमाने शर्मन्) दिये घरमें (राया तन्वा तना च मदेम) धनसे युक्त नीरोग शरीरवाले पुत्रोंसहित हम आनन्दमें रहेंगे ॥ १३ ॥

[५१७] (अहिर्बुध्न्यः) अहिर्बुध्न्य (अर्कैः नः अद्भिः तत् चनः धात्) मन्त्रोंसे स्तुत्यमान होकर हमको पानी सहित अन्न दें। (पर्वतः तत् सविता तत् रातिषाचः) पर्वत हमें अन्न दे, सविता हमें अन्न दें, और विश्वेदेव भी हमको (ओषधीभिः तत् अभि) औषधियोंके सहित अन्न दें। (पुरंधिः भगः राये प्र जिन्वतु) बहुत बुद्धिमान् भगदेव हमारे लिये धनको प्रेरित करें ॥ १४ ॥

भावार्थ— हे सदा तरुण रहनेवाले, ज्ञानी तथा पूजाके योग्य मरुतो ! तुम स्तुति करनेवालेके पास आओ। तुम अब अन्तरिक्षमें बढते हो, अब सूर्यकी किरणें द्युलोकसे पानी बरसाती है, जो ओषधियोंसे रहित देशको भी अकसे युक्त करती है ॥ ११ ॥

हे मनुष्य ! प्रभु वीर है, उसके पास आ, उसकी उपासना कर। सामर्थ्यसे त्वराके साथ कार्य करनेवाले प्रभुकी भक्ति कर। उसकी उपासना कर, उसके पास जा। गौओंका पालक जिस तरह पशुसमूहको शामके समय घरकी ओर प्रेरित करता है, उस तरह उपासक अपने पिता–प्रभु–के घरके पास जाय, अर्थात् उसकी उपासना करे। वह स्तुति करनेवाला कुशल वचनका ज्ञाता स्तुतिसे शरीरमें–मनको–स्पर्श करता है। ऐसी वेदवचनोंसे स्तुति करता है कि वह स्तुति सुननेवालेके शरीरमें घुसती है। असर परिणाम करती है ॥ १२ ॥

जिस विष्णुने दुःखित मनुके लिये तीन बार पृथिवीपरके लोकोंका आक्रमण किया। तीन बार आक्रमण करके तीनों लोकोंमें शान्ति स्थापन करके मनुका दुःख दूर किया। उस तेरे दिये घरमें धन, शरीर तथा पुत्रोंके साथ आनन्दसे रहेंगे। विष्णु तीनों लोकोंको आनन्द बढाता है, इसलिये वह मेरे घरका आनन्द बढावेगा ही ॥ १३ ॥

अनेक तरहके मंत्रोंसे स्तुत होकर अहि, पर्वत, सविता और विश्वेदेव हमें औषधियों सहित अन्न प्रदान करें। अत्यधिक बुद्धिमान् भगदेवता हमारे लिये धनको प्रेरित करें ॥ १४ ॥

५१८ नू नों र॒यिं र॒थ्यं॑ चर्षणि॒प्रां पु॑रु॒वीरं॑ म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पाम् ।
क्षयं॑ दाता॒जरं॒ येन॒ जना॒न् स्पृधो॒ अदे॑वीर॒भि च॒ क्रमा॑म॒ विश॒
आदे॑वीर॒भ्य१॒॑श्नवा॑म ॥ १५ ॥

[५०]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

५१९ हु॒वे वो॑ दे॒वीमदि॑तिं॒ नमो॑भि॒र्मृ॒ळी॒काय॒ वरु॑णं मि॒त्रम॒ग्निम् ।
अ॒भि॒क्ष॒दाम॑र्य॒मणं॑ सु॒शेवं॑ त्रा॒तॄन् दे॒वान् स॑वि॒तारं॒ भगं॑ च ॥ १ ॥

५२० सु॒ज्योति॑षः सूर्य॒ दक्ष॑पितॄननागा॒स्त्वे सु॑महो वीहि दे॒वान् ।
द्वि॒जन्मा॑नो॒ य ऋ॑त॒सापः॑ स॒त्याः स्व॑र्वन्तो यज॒ता अ॑ग्नि॒जि॒ह्वाः ॥ २ ॥

अर्थ—[५१८] हे संपूर्ण देवताओ ! (नः रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं महः ऋतस्य गोपां रयिं) हमें रथोंसे युक्त, मनुष्योंकी धनसे तृप्ति करनेवाला, बहुत वीरों, पुत्रोंसे युक्त, महान् सत्यका रक्षक ऐसा धन और (अजरं क्षयं) अक्षय घर (दात) दें । (येन जनान्) जिस धन और घरसे शत्रुओंको (च अदेवीः स्पृधः) स्पर्धा करनेवाली राक्षसी सेनाको (अभि क्रमाम) हम पराभव करें । (आदेवीः विशः अभि अश्नवाम) दैवी प्रजा जिस धन और घरसे संतुष्ट होती है ऐसा धन और घर हमको दें ॥ १५ ॥

[५०]

[५१९] हे देवो ! मैं (मृळीकाय नमोभिः) सुखके लिये नमनोंसे (वः देवीं अदितिं) तुम्हारी तेजस्विनी माता अदितिकी (वरुणं मित्रं अग्निं) वरुण, मित्र, अग्नि, (अभिक्षदां सुशेवं अर्यमणं) एवं शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले तथा अच्छी तरहसे सेवनीय, अर्यमा, (सवितारं भगं च त्रातॄन् देवान्) सविता, भग और रक्षण करनेवाले सब देवोंको नमन करता हूं, सबकी उपासना करता हूं ॥ १ ॥

[५२०] हे (सुमहः सूर्य) बडे महान् सबके प्रेरक सूर्य ! (दक्षपितॄन् सुज्योतिषः देवान्) जिनके दक्ष नामक पितर हैं ऐसे सुन्दर कान्तिवाले देवोंको (अनागास्त्वे वीहि) निष्पाप रूपमें हमारे अनुकूल कर । (ये द्विजन्मानः ऋतसापः सत्याः) जो दो बार जन्मनेवाले, सत्य आचरण करनेवाले, सत्यवादी, (स्वर्वन्तः यजताः अग्निजिह्वाः) आत्मवान्, पूजनीय, अग्निरूपी जिह्वावाले देव हैं, उनको हमारे अनुकूल करे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे देवो ! हमें रथोंसे युक्त, मानवोंकी तृप्ति करनेवाले, बहुत पुत्रपौत्रोंसे युक्त, बडे सत्य यज्ञके रक्षक धनको तथा अक्षय घरको दो । जिससे हम शत्रुके सैनिकोंपर और दुष्ट स्पर्धा करनेवालोंपर आक्रमण करें और दिव्य प्रजा जिससे संतुष्ट होती है वह धन हमें मिले ॥ १५ ॥

अदिती देवोंकी माता है । मूल प्रकृति अदिति है । अग्नि, मित्र, वरुण, अर्यमा, सविता, भग ये प्रकृतिसे बने संरक्षक देव हैं । प्रकृति यह ' प्रजा ' है । प्रजासे राज्यके संरक्षणके लिये अधिकारी चुने जाते हैं । वैसे ही ये (त्रातॄन् देवान्) रक्षक देव हैं । विश्वराज्यके विभिन्न अधिकार इनके पास हैं ॥ १ ॥

हे सबके प्रेरक बडे सूर्य ! जिनके पितर दक्ष हैं ऐसे तेजस्वी देवोंको-ज्ञानियोंको-पापरहित रूपसे हमारे अनुकूल कर । जो द्विज सत्यनिष्ठ, सत्यरूपी, आत्मबलसे युक्त, पूजनीय अग्निके समान तेजस्वी जिह्वासे तेजस्वी वक्तृत्वसे-युक्त हैं वे भी हमें अनुकूल हों ॥ २ ॥

५२१ उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद् रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नो ऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥
५२२ आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥
५२३ मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥ ५ ॥
५२४ अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद् वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२१] (उत) और भी; हे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी ! (उरु क्षत्रं करथः) तुम हमें विस्तृत क्षात्रबलसे युक्त बनाओ। हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (सुसुम्ने बृहत् शरणं) अच्छी तरह सुख देनेवाला, खूब बडा रहनेके लिये घर दो (महः वरिवः नः यथा) हमें जिस प्रकार हो उस प्रकार अधिक धन दो। हे (धिषणे) धारण करनेवाली द्यावापृथिवी ! (अस्मे अनेहः क्षयाय) हमारे घरको पापरहित करो ॥ ३ ॥

[५२२] (रुद्रस्य वसवः अधृष्टाः सूनवः) रुद्रके पुत्र, बसानेवाले, दूसरोंसे अहिंसित, (अद्य हूतासः नः आ नमन्ताम्) आज बुलानेपर हमारे पास आवें। (यत् ईं मरुतः देवान्) जो इन मरुत् देवोंको (अर्भे महति वा बाधे) छोटे अथवा महान् संग्राममें (हितासः अह्वाम) हित करनेके लिये बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[५२३] (येषु रोदसी देवी मिम्यक्ष नु) जिनके साथ तेजस्वी द्यावापृथिवी मिली हुई हैं। (अभ्यर्धयज्वा पूषा सिषक्ति) भक्तोंको समृद्ध करनेवाला पूषा जिनकी सेवा करता है। हे (मरुतः) मरुत् गण ! तुम (हवं श्रुत्वा यद्ध याथ) हमारी प्रार्थना सुनकर जब जाते हो तब (अध्वनि प्रविक्ते भूम रेजन्ते) मार्गमें जानेके लिये चलते रहने पर अन्य प्राणी कांपते हैं। इतना तुम्हारा वेग है ॥ ५ ॥

[५२४] हे (जरितः) स्तोता ! (त्यं वीरं गिर्वणसं इन्द्रं) उस वीर प्रशंसनीय इन्द्रकी (नवेन ब्रह्मणा) नवीन स्तोत्रसे (अभि अर्च) स्तुति करो। (स्तवानः) स्तुति किया हुआ वह इन्द्र (हवं उप श्रवत् इत्) हमारी प्रार्थना श्रवण करे। (गृणानः महः वाजान् च उप रासत्) और प्रशंसित इन्द्र हमें अत्यधिक बल और अन्न देवें ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे द्युलोक और हे पृथिवी ! हमें बडा क्षात्रबल प्राप्त हो ऐसा करो हे द्यावापृथिवी ! हमें सुख देनेवाला बडा घर प्राप्त हो। हमें बडा धन जैसा मिले वैसा करो। हे बुद्धिमती देवियो ! हमें निष्पाप घर मिले ऐसा करो ॥ ३ ॥

रुद्रके पुत्र जो सबका निवास कराते हैं, स्वयं अहिंसित रहते हैं, वे आज बुलानेपर हमारे पास आवें। मरुत् देवोंको छोटे या बडे युद्धमें हित करनेके लिये बुलाते हैं ॥ ४ ॥

द्युलोक और पृथिवीलोक जिनके साथ मिले हुए हैं, भक्तोंका समृद्ध करनेवाला पूषा जिनकी सेवा करता है, ऐसे मरुत् गण जब चलते हैं, तब इनके वेगको देखकर सभी प्राणी कांपने लगते हैं। मरुत्गण वायु हैं। ये अन्तरिक्ष स्थानीय देव हैं। अन्तरिक्ष ही द्युलोक और पृथिवीलोकको आपसमें मिलाता है। सबका पोषण करनेवाले मेघ भी इस वायुदेवकी सेवा करते हैं। पर जब यह वायु प्रचण्डरूप धारण करके चलता है, तब इसके वेगको देखकर संसार सभी प्राणी कांपने लगते हैं ॥ ५ ॥

५२५ ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ७ ॥
५२६ आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥
५२७ उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद् रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥ ९ ॥
५२८ उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥ १० ॥

अर्थ— [५२५] हे (आपः) जलप्रवाहो ! (मानुषीः) तुम मनुष्योंके हितके लिये हो, इसलिये (तोकाय तनयाय धात) पुत्र और पौत्रके लिये (अमृक्तं ओमानं) अहिंसित, रक्षक अन्न देओ। (हि विश्वस्य स्थातुः जगतः जनित्रीः) तुम सब स्थावर और जंगमको उत्पन्न करनेवाले हो। (यूयं मातृतमाः भिषजः स्थ) तुम सब माताओंसे भी अधिक अच्छे चिकित्सक हो। इसलिये (शं योः) तुम सब उपद्रवोंको दूर करो ॥ ७ ॥

[५२६] (यः दत्रवान्) जो धनवान् देव (उषसः न प्रतीकं) उषाका प्रतीक जैसा है वह (दाशुषे वार्याणि) मनुष्यको प्रशंसनीय धन (वि ऊर्णुते) देता है, वह (त्रायमाणः हिरण्यपाणिः यजतः सविता देवः) रक्षक, सुवर्णके समान किरणोंवाला, यजनीय, सविता देव (नः आ जगम्यात्) हमारे पास आवे ॥ ८ ॥

[५२७] (उत) और हे (सहसः सूनो) बलपुत्र अग्नि ! (त्वं अद्य नः अस्मिन् अध्वरे) तू आज हमारे इस यज्ञमें (देवान् आ ववृत्याः) देवोंको ला। और (अहं ते रातौ सदं इत् स्यां) मैं तेरे धन देनेके समय सदा उपस्थित रहूँ तथा हे (अग्ने) अग्नि ! (तव अवसा सुवीरः स्यां) तेरे रक्षणसे उत्तम वीर (पुत्रपौत्रादि) से युक्त होऊं ॥ ९ ॥

[५२८] (उत) और हे (विप्रा नासत्या) बुद्धिमान् अश्विन् देवताओ ! (त्या युवं) वे तुम दोनों (धीभिः मे हवं अंग आ जग्म्यातं) बुद्धियुक्त कर्मोंके साथ मेरे स्तोत्रके प्रति शीघ्र ही आओ। (महः तमसः अत्रिं न अमुमुक्तं) महान् अन्धकारसे जैसे अत्रि ऋषिको छुडाया था, उस प्रकार हे (नरा) नेता अश्विनो ! (अभीके दुरितात् तूर्वतं) संग्राममें पापी शत्रुसे हमें बचाओ ॥ १० ॥

भावार्थ— हे स्तुति करनेवाले मनुष्य ! तू उस प्रशंसनीय इन्द्रकी नवीन स्तोत्रसे स्तुति कर। वह इन्द्र भी स्तुति करनेवाले हम मनुष्योंकी प्रार्थना सुने और हमें अत्यधिक बल और अन्न दे ॥ ६ ॥

जल मानवोंका हित करनेवाला है। घातपात न करनेवाला संरक्षक अन्न पुत्रपौत्रोंके लिये देवे। जल स्थावर जंगमको उत्पन्न करनेवाला जल है। तथा माताओंसे भी अधिक प्रेमसे रोग दूर करनेवाले जल हैं। वे जल हमें शांति दें और दोष दूर करें ॥ ७ ॥

सविता देव धनवान्, उषाके समान प्रकाशमान्, रक्षक, सोनेके समान तेजस्वी किरणोंवाला, पूज्य और मनुष्यको प्रशंसनीय धन देनेवाला है। वह देव हमारे पास आवे ॥ ८ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! तू आज हमारे इस यज्ञमें देवोंको ला। जब तू धन दे, तब मैं सदा उपस्थित हूँ तथा तेरे रक्षणके साधनोंसे युक्त होकर मैं उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होऊं ॥ ९ ॥

हे अश्वि देवो ! तुम दोनों बुद्धिमान् हो, इसलिए बुद्धियुक्त कर्मोंके साथ मेरे स्तोत्रोंकी तरफ शीघ्र आओ और संग्राममें पापी शत्रुओंसे हमें बचाओ ॥ १० ॥

५२९ ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥ ११ ॥

५३० ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥ १२ ॥

५३१ उत स्य देवः सविता भगो नो ऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥ १३ ॥

५३२ उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ १४ ॥

अर्थ— [५२९] हे (देवाः) देवो ! (ते द्युमतः वाजवतः) तुम तेजसे, बलसे तथा (नृवतः पुरुक्षोः रायः) पुत्रादिसे युक्त हो और अत्यन्त प्रशंसनीय धनके (नः दातारः भूत) दाता हो । (दशस्यन्तः दिव्याः पार्थिवासः गोजाताः च अप्याः) दान देनेवाले, द्युलोकमें तथा पृथिवीपर रहनेवाले, गौओंके साथ रहनेवाले और अन्तरिक्षमें रहनेवाले तुम हमको सुखी करो ॥ ११ ॥

[५३०] (मीळ्हुष्मन्तः ते) मनोरथ पूर्ण करनेवाले वे (रुद्रः सरस्वती सजोषाः) रुद्र, सरस्वती, समान रूपसे प्रसन्न रहनेवाले (विष्णु वायुः ऋभुक्षाः) विष्णु, वायु ऋभुक्षा, (दैव्यः वाजः विधाता) देवोंका हितकारी बलविधाता (नः मृळन्तु) हमें सुखी करें । (पर्जन्यावाता नः इषं पिप्यतां) और पर्जन्य तथा वायु भी हमें अन्न देवें ॥ १२ ॥

[५३१ (उत स्यः सविता देवः भगः) और वह प्रसिद्ध देव सविता, भग और (दानु पप्रिः अपां नपात्) धनसे पूर्ण करनेवाला अग्नि (नः अवतु) हमारी रक्षा करे । (देवेभिः जनिभिः सजोषाः त्वष्टा) देव और स्त्रियोंके साथ प्रीतिसे रहनेवाला त्वष्टा (देवेभिः द्यौः) देवोंके साथ द्यौ और (समुद्रैः पृथिवी) समुद्रोंके साथ पृथिवी आदि सब देव हमारी रक्षा करें ॥ १३ ॥

५३२] (उत) और (अहिर्बुध्न्यः, अजः एकपात् पृथिवी समुद्रः) अहिर्बुध्न्य, अज, एक पाद, पृथिवी और समुद्र (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने । (ऋतावृधः हुवानाः स्तुता मन्त्राः) यज्ञ अथवा सत्यको बढानेवाले स्तुतिके मन्त्र तथा (कविशस्ताः विश्वेदेवाः) बुद्धिमान् ऋषियोंसे स्तुत्यमान् सब देवगण हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ १४ ॥

भावार्थ— देवो ! तुम तेजसे, बलसे तथा पुत्रादिसे युक्त हो, और अत्यन्त प्रशंसनीय धनोंको देनेवाले हो । दान देनेवाले, सभी लोकोंमें रहनेवाले, अन्तरिक्षमें निवास करनेवाले तुम हमें सुखी करो ॥ ११ ॥

रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, दिव्य बल, विधाता वे हमें सुखी करें और पर्जन्य तथा वायु हमें अन्न देकर सुखी करें ॥ १२ ॥

वह प्रसिद्ध देव सविता, भग और धनसे पूर्ण करनेवाला अग्नि हमारी रक्षा करे । देव और देवियोंके साथ प्रीतिसे रहनेवाला त्वष्टा द्युलोक तथा समुद्र आदि अन्य देवोंके साथ हमारी रक्षा करे ॥ १३ ॥

अहिर्बुध्न्य, अविनाशी, अद्वितीय देव, पृथिवी तथा समुद्र हमारी प्रार्थना सुनें । यज्ञको समृद्ध करनेवाले तथा ऋषियों से स्तुत होनेवाले देवगण हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥

५३३ एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥ १५ ॥

[५१]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १३-१५ उष्णिक्, १६ अनुष्टुप् ।

५३४ उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥ १ ॥

५३५ वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥ २ ॥

५३६ स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥ ३ ॥

अर्थ— [५३३] (एव) इस प्रकार (तस्य मम नपातः भरद्वाजाः) भरद्वाज गोत्रीय मेरे पुत्रपौत्र (धीभिः अर्कैः) बुद्धिपूर्वक किये स्तोत्रोंसे (अभि अर्चन्ति) उपासना करते हैं। हे (यजत्राः) यजनीय देवों ! (हुतासः वसवः अधृष्टाः विश्वे ग्नाः स्तुतासः भूत) हव्य द्वारा तृप्त किये गये, बसानेवाले, शत्रुसे भी अहिंसित तुम सब देवपत्नियों सहित सब देव पूजित होओ ॥ १५ ॥

[५१]

[५३४] (त्यत् चक्षुः) वह सबका आंख (महि मित्रयोः वरुणयोः प्रियं) बडे मित्र और वरुणको प्रिय (अदब्धं शुचि दर्शतं) किसीसे अहिंसित, निर्मल और दर्शनीय, (ऋतस्य अनीकं) सत्यका तेजरूप सूर्य (आ उत् एति) प्रकाशित हो रहा है। (उदिता दिवः रुक्मः न वि अद्यौत्) और प्रकाशित होकर वह तेज द्युलोकके भूषणकी तरह सुशोभित होता है ॥ १ ॥

[५३५] (यः त्रीणि विदथानि वेद) जो सूर्य तीनों लोकोंको जानता है। (एषां देवानां सनुतः जन्म च विप्रः) इन देवोंके जन्मको भी जानता है। (सूरः) वह सूर्य (मर्तेषु ऋजु वृजिना) मिनुष्यों में सरल कर्म और कुटिल कर्मोंको (च पश्यन् अभि चष्टे) देखता हुआ उनको प्रकाशित करता है, (अर्यः एवान्) वह स्वामी देव सूर्य मनुष्यों की इच्छा पूर्ण करता है ॥ २ ॥

[५३६] हे देवो ! (महः ऋतस्य) महान् यज्ञकी (गोपान् वः) रक्षा करनेवाले तुम्हारी मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ। (अदितिं मित्रं वरुणं) अदिति, मित्र, वरुण, (सुजातान् अर्यमणं भगं) उत्तम जन्मवाले अर्यमा और भग तथा (अदब्धधीतीन् सधन्यः पावकान्) अहिंसित कर्मवाले धन्य और सबको पवित्र करनेवाले ऐसे सब देवोंकी मैं (अच्छ वोचे) प्रशंसा करता हूँ। ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस तरह मैं देवोंकी उपासना करता हूँ, उसी तरह मेरे पुत्र आदि भी देवोंकी उपासना करें। हे देवो ! तुम सबको निवास करानेवाले, शत्रुओंसे अहिंसित हो, अतः तुम अपनी शक्तियोंके कारण सर्वत्र पूजित होओ ॥ १५ ॥

सूर्य संसारके सब कार्योंको देखता हुआ चलता है, इसीलिए वह सर्वद्रष्टा चक्षु है। वह अहिंसित, निर्मल, देखने योग्य और तेजोरूप है। जब वह प्रकाशित होता है, तब द्युलोकके भूषणके समान सुशोभित होता है। जिस तरह किसी वीरके कानोंमें कुण्डल सुशोभित होता है, उसी तरह यह सूर्य द्युलोकके सुनहरे कुण्डलके रूपमें सुशोभित होता है ॥ १ ॥

जो तीनों लोकोंमें चल रहा है उसको जानता है। इन देवोंके जन्म जो जानता है। वह सूर्य इस विश्वमें सरल और कुटिल जो है वह देखता और प्रकाशित करता है। वह ऐसा सच्चा शासक है। सब इस शासकका सामर्थ्य जाने और उसको चारों ओर देखकर सरल रीतिसे अपने जीवन व्यतीत करें। ॥ २ ॥

हे देवो ! तुम महान् यज्ञकी रक्षा करते हो, इस लिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। साथ ही मैं अदिति, मित्र, वरुण, अर्यमा, ऐश्वर्यशाली भग देवता तथा अन्य देवोंकी भी मैं उपासना करता हूँ ॥ ३ ॥

५३७ रिशादसः सत्पतीँरदब्धान् महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान् क्षयतो दिवो नॄनादित्यान् याम्यदितिं दुवोयु ॥ ४ ॥

५३८ द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥ ५ ॥

५३९ मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥ ६ ॥

५४० मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥ ७ ॥

अर्थ— [५३७] (रिशादसः सत्पतीन्) हिंसकोंका नाश करनेवाले, सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले, (अदब्धान् महः राज्ञः) अहिंसित, महान् शासक (सुवसनस्य दातॄन् यूनः सुक्षत्रान्) सुन्दर घर देनेवाले, नित्य तरुण, अतिशय क्षात्रबलसे युक्त, (क्षयतः दिवः नॄन्) निवास करनेवाले, द्युलोकके नेता, (आदित्यान्) अदितिके पुत्रोंकी और (दुवोयु अदितिं यामि) आशीर्वाद देनेवाली अदितिके समीप मैं जाता हूँ ॥ ४ ॥

[५३८] हे (पितः द्यौः) पिता द्युलोक, (मातः अध्रुक् पृथिवि) अद्रोही माता पृथिवि, (भ्रातः अग्ने) भाई अग्नि और (वसवः) वसुओं ! (नः मृळत) हमको सुखी बनाओ । हे (विश्वे आदित्याः) सब अदिति पुत्रों ! हे (अदिते) अदिति ! तुम सब (सजोषाः अस्मभ्यं) प्रीतिपूर्वक मिलकर हमको (बहुलं शर्म वियन्त) अत्याधिक सुख दो ॥ ५ ॥

[५३९] हे (यजत्राः) पूजनीय देवों ! (नः वृकाय वृक्ये मा रीरधत) हमको वृक और वृकीके वशमें मत करना, ((समस्मै अघायते) संपूर्ण रीतिसे जो हमारे साथ पापव्यवहार करना चाहते हैं उनके भी हाथमें हम न चले जांय । (यूयं हि नः तनूनां रथ्यः स्थ) तुम हमारे शरीरोंके नेता हो । (यूयं दक्षस्य वचसः बभूव) और तुम सब हमारे बलवर्धक भाषणके भी नेता बनो ॥ ६ ॥

[५४०] हे देवो ! (वः अन्यकृतं एनः मा भुजेम) हम तुम्हारे ही हैं, हम अन्य शत्रुओं द्वारा किये हुए पापके भोगी न बनें । हे (वसवः) वसुओं ! (यत् चयध्वे) जिस पापके लिये तुम हमको रोकते हो, (तत् मा कर्म) वह पाप हम न करें । हे (विश्वदेवाः) सब देवों ! (विश्वस्य हि क्षयथ) सब जगत्के तुम ही स्वामी हो । (रिपुः तन्वं स्वयं रिरिषीष्ट) इसलिये हमारे शत्रु स्वयं ही अपने शरीरका नाश कर डाले ॥ ७ ॥

भावार्थ— अदितिके पुत्र आदित्य हिंसकोंका नाश करनेवाले, सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले, अहिंसित महान् शासक, सुन्दर घर देनेवाले, नित्य तरुण तथा अत्यन्त बलशाली हैं । इसी तरह अदिति भी है, अतः मैं इन सबकी शरणमें आता हूँ ॥ ४ ॥

द्युलोक वर्षा गिराकर तथा अन्न पैदा करके सबका पोषण करनेवाला होनेसे सबका पिता है, पृथिवी सभी प्राणियोंपर समान रूपसे स्नेह करनेवाली माता है, अग्नि सबका सहायक होनेसे सबका भाई है । ये सभी देव हमें सुखी करें । हे देवो ! तुम सब प्रीतिपूर्वक मिलकर हमें अत्यधिक सुख प्रदान करो ॥ ५ ॥

हे पूज्य देवो ! तुम हमें कुटिल और दुष्ट लोगोंके वशमें मत करो । हमारे साथ जो पापव्यवहार करते हैं, उनके अधीन भी हम न रहें । हे देवो, तुम सब हमारे शरीरके स्वामी हो, इसलिए तुम हमारे शरीरमें बल बढाओ ॥ ६ ॥

दूसरोंका किया पाप हमें भोगना न पडे । जिसके लिये तुम दण्ड देते हैं वैसा कोई पाप न करे । विश्वके तुम स्वामी हो । शत्रु अपने शरीरको स्वयं नष्ट करे । वह हमें कष्ट देनेके लिये न रहे ॥ ७ ॥

५४१ नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥ ८ ॥

५४२ ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन् विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥ ९ ॥

५४३ ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥ १० ॥

५४४ ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥ ११ ॥

अर्थ— [५४१] (नमः इत् उग्रं) नमस्कार वास्तवमें ही सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये (नमः आ विवासे) मैं नमस्कार करता हूँ (नमः पृथिवीं उत द्यां दाधार) नमस्कार ही पृथिवी और द्युलोकको धारण करता है। मैं (देवेभ्यः नमः) देवोंको नमस्कार करता हूँ। (एषां नमः ईशे) देवोंका नमस्कार समर्थ है जिससे वे वशमें हो जाते हैं। और इसलिये (कृतं चित् एनः नमसा आ विवासे) किये हुए पापोंका मैं नमस्कार द्वारा नाश करता हूँ ॥ ८ ॥

[५४२] हे (यजत्राः) यजनीय देवों! (वः ऋतस्य रथ्यः पूतदक्षान्) तुम यज्ञके नेता, शुद्ध बलवाले, (ऋतस्य पस्त्यसदः) यज्ञशालामें रहनेवाले, (अदब्धान् उरुचक्षसः) अपराजित दूरदर्शी, (नॄन् महः तान् विश्वान् वः) नेता, ऐसे महान् तुम सबको मैं (आ नमोभिः आ नमे) नमस्कारोंसे नमन करता हूँ ॥ ९ ॥

[५४३] (ते हि श्रेष्ठवर्चसः) वे अत्यन्त श्रेष्ठ तेजसे युक्त हैं। इसलिये (ते उ नः विश्वानि दुरिता तिरः नयन्ति) वे ही हमारे संपूर्ण पापोंको दूर करते हैं। (वरुणः मित्रः अग्निः) वरुण, मित्र, अग्नि ये देव (सुक्षत्रासः ऋतधीतयः वक्मराजसत्याः) उत्तम क्षात्रबलसे युक्त, सत्य कर्म करनेवाले, और विशेष रीतिसे बोलनेमें सत्यवादी हैं ॥ १० ॥

[५४४] (क्षाम वर्धन् इन्द्रः) सुखको बढानेवाला (पृथिवी, पूषा, भगः अदितिः पंचजनाः) पृथिवी, पूषा, भग, अदिति, पञ्चजन ये देव (सुशर्माणः स्ववसः) उत्तम घर देनेवाले, उत्तम रक्षा करनेवाले (सुनीथाः) उत्तम मार्गसे चलानेवाले हमारे लिये (भवन्तु) हों। तथा वे (नः सुत्रात्रासः) हमारे उत्तम संरक्षक (सु-गोपाः) उत्तम गोपालक हों ॥ ११ ॥

भावार्थ— नमस्कार करना या वन्दना करना सर्वोत्तम रीति है, इसीलिए मैं सबको नमस्कार करता हूँ। यह नमस्कार ही पृथिवी और द्युलोकको धारण करता है। इसी नमस्कारके द्वारा सभी देव उसके वशमें होते हैं। मैं देवोंकी भक्ति करके, उनकी उपासना करके अपने पापोंका नाश करता हूँ। ॥ ८ ॥

हे देवो! तुम यज्ञके नेता, शुद्ध बलवाले, यज्ञशालामें रहनेवाले, अपराजित दूरदर्शी और मनुष्योंको उत्तम मार्गसे आगे ले जानेवाले हो! ॥ ९ ॥

वे देव अत्यन्त श्रेष्ठ तेजसे युक्त हैं, इसलिए वे हमारे संपूर्ण पापोंको दूर करें। ये सभी देव उत्तम क्षात्रबलसे युक्त सत्य कर्म करनेवाले और सदा सत्यवादी हैं ॥ १० ॥

सुखको बढानेवाले इन्द्र, पृथिवी, पूषा, भग, अदिति और पंचजन ये देव उत्तम घर देनेवाले, उत्तम रक्षा करनेवाले और उत्तम मार्गसे चलानेवाले हों। वे हमारी उत्तम रक्षा करनेवाले और गोपालक हों ॥ ११ ॥

५४५ नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥ १२ ॥

५४६ अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ १३ ॥

५४७ ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः ॥ १४ ॥

५४८ यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

अर्थ— [५४५] हे देवो ! (भारद्वाज होता) अन्नदान करनेवाला होता (सुमतिं याति) उत्तम मतिमान्को प्राप्त करता है। (दिव्यं सद्मानं नंशि) दिव्य घरको प्राप्त करता है। (यजमानः) यज्ञ करनेवाला (आसानेभिः मियेधैः) समीप बैठे हुओंके साथ (वसूयुः) रहनेवाला (देवानां जन्म ववन्द) देवोंके जन्मका उपदेश करता है ॥ १२ ॥

[५४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्यं रिपुं) उस शत्रुको (स्तेनं दुराध्यं वृजिनं) चोर, दुष्ट, पापीको (दविष्ठं सुगं कृधि) दूर रहनेवाले दुष्टको भी उत्तम रीतिसे पास जाने योग्य कर। हे (सत्पते) सत्यके पालक ! तू (अस्य अप कृधि) इस सज्जनसे उस दुष्टको दूर कर ॥ १३ ॥

[५४७] हे (सोम) शान्ति स्थापक देव ! (नः ग्रावाणः सखित्वनाय कं वावशुः) हमारे पत्थर जैसे कठिन लोग भी मित्रताके लिये सुखदायक पुरुषको ही अपने पास रखते हैं। (पणिं अत्रिणं जहि) तू कुव्यवहार करनेवाले, खानेवाले पुरुषको दण्डित कर। (हि सः वृकः हि) क्योंकि वह भेडिया ही है। समाजमें वह भेडियेके समान है ॥ १४ ॥

[५४८] (यूयं हि सुदानवः स्थ) तुम उत्तम दाता हो, (अभिद्यवः इन्द्रज्येष्ठाः) विशेष तेजस्वी इन्द्र जिनमें श्रेष्ठ है (स्थ) ऐसे तुम देव हो। (नः अध्वन् सुगं आ कर्त) हमारे मार्गको सुगम करो। हे (गोपाः) गोपालको ! (अमा) हमारे घरको सुखदायक करो ॥ १५ ॥

भावार्थ— अन्नको देनेवाला होता उत्तम बुद्धिको प्राप्त करता है। दिव्य घरको प्राप्त करता है तथा यज्ञ करनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य इन देवोंके जन्मोंके बारेमें उपदेश देता है ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! तू ऐसा कर कि हम शत्रु, चोर, दुष्ट और पापीके पास भी जा सकें, अर्थात् उनसे भी हमें कोई डर न हो। हम निडर होकर सर्वत्र संचार करें। पर यदि कोई दुष्ट अपनी दुष्टता न छोडकर सज्जनसे खराब व्यवहार करे, तो ऐसे दुष्टको तू सज्जनसे दूर ही रख ॥ १३ ॥

जो पुरुष पत्थर जैसे कठोर होते हैं, वे अपनी मित्रताके लिये सुख देनेवाले पुरुषको ही अपने पास रखते हैं। हे देव ! तू दुष्ट व्यवहार करनेवाले पुरुषको दण्डित कर, क्योंकि ऐसा दुष्ट पुरुष मानों समाजके लिये भेडिया रूप ही। जिस तरह भेडिया बकरी आदि अहिंसक प्राणियोंको मार देता है, उसी तरह दुष्ट पुरुष भी समाजमें सज्जन पुरुषोंको मार देता है ॥ १४ ॥

हे देवो ! तुम सभी उत्तम दान देनेवाले हो, तुम देवोंमें विशेष तेजस्वी इन्द्र श्रेष्ठ है। जो विशेष तेजस्वी होता है, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है। हे देवो ! तुम हमारे मार्गको सुगम करो। हे गोपालको ! हमारे घरको सुखदायक करो ! जिस घरमें गौओंका पालन होता है, वह घर सदा सुखसे पूर्ण होता है ॥ १५ ॥

५४९ अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ १६ ॥

[५२]

ऋषिः- ऋजिश्वा भारद्वाजः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ७-१२ गायत्री, १४ जगती ।

५५० न तद् दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥ १ ॥
५५१ अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥ २ ॥
५५२ किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ ३ ॥

अर्थ— [५४९] (स्वस्तिगां अनेहसं पंथां अपि अगन्म) सुखसे जाने योग्य निष्पाप मार्गसे हम जांय । (येन विश्वाः द्विषः परिवृणक्ति) जिससे सब शत्रु दूर होते हैं और (वसु विन्दते) धन मिलता है ॥ १६ ॥

[५२]

[५५०] (न तत् दिवा) न वह द्युलोकमें होगा, (न पृथिव्यां) न वह पृथिवीमें होगा, (न यज्ञेन) न वह यज्ञसे होगा, और (न उत आभिः शमीभिः) न वह इन शांतिमय कर्मोंसे होगा ऐसा मैं (अनु मन्ये) निश्चयसे मानता हूँ । (अतियाजस्य यष्टा) अति याजका—अर्थात् न करने योग्य यज्ञका याजक है (सुभ्वः पर्वतासः) उत्तम बडे पर्वत (तं उब्जन्तु) उसका विनाश करें, और वह (नि हीयतां) निःशेष रीतिसे हीन बने ॥ १ ॥

[५५१] हे (मरुतः) मरुत् वीरो ! (यः वा) अथवा जो (नः क्रियमाणं ब्रह्म) हमारे द्वारा किये जानेवाले मंत्रपाठका (अति मन्यते) अतिक्रमण करेगा, (वा यः निनित्सात्) अथवा जो हमारे मंत्रपाठकी निंदा करेगा, (तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु) उसके लिये भाग्यज्वालाएं जलानेवाली हों, (तं ब्रह्मद्विषं द्यौः अभिशोचतु) उस ज्ञानके द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक भी संतप्त करे ॥ २ ॥

[५५२] हे (अङ्ग सोम) प्रिय सोम ! (किं त्वा ब्रह्मणः गोपां आहुः) क्या तुझे ज्ञानका रक्षक कहते हैं ना ? हे (अङ्ग) प्रिय प्रभो ! (किं त्वा नः अभिशस्तिपां आहुः) क्या तुझे निन्दासे हमारा बचाव करनेवाला कहते हैं ना ? हे (अङ्ग) प्रिय ! (न निद्यमानान् पश्यसि) हमारी निन्दा करनेवालोंको तू देखता ही, है अतः (ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेके ऊपर तपा हुआ शस्त्र फेंक ॥ ३ ॥

भावार्थ— हम सुखसे जाने योग्य निष्पाप अर्थात् पापसे रहित मार्गमें जाएं । इस पापरहित मार्गसे जाने पर सब शत्रु दूर होते हैं और धन मिलता है । ॥ १६ ॥

जो न करने योग्य यज्ञको करता है, वह न द्युलोकमें रहता है, न पृथिवीमें रह सकता है और वह यज्ञसे प्राप्त करनेवाले फलोंको भी नहीं प्राप्त कर सकता । न उसे कभी शान्ति ही मिल सकेगी । ऐसे अयोग्य यज्ञको करनेवाले मनुष्यको सभी देव नष्ट करें, हीन अवस्थाको पहुंचे ॥ १ ॥

जो ज्ञानसे द्वेष करता है, जो ज्ञानकी निंदा करता है, उसके लिये ज्वालाएं जलानेवाली हों । उस ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक संतप्त करे, दुःखी करे, । ज्ञानसे द्वेष करनेवालेका कभी कल्याण नहीं होगा । ॥ २ ॥

हे सोम ! तुझे ज्ञानका रक्षक कहते हैं । तुझे निन्दासे बचानेवाला कहते हैं । ज्ञानका रक्षण करना चाहिये और किसीकी निन्दा भी नहीं करनी चाहिये । निन्दा करनेवालोंको देखते रहना योग्य नहीं है । उनको सुधारना चाहिये । ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको अच्छा दण्ड देना चाहिये । यदि वह सौम्य उपायोंसे न सुधरे तो कठक शस्त्र भी उसपर फेंकना चाहिये । इस मंत्रमें प्रभुसे पूछा है कि क्या तुझको ज्ञानका रक्षक कहते हैं ना ? तुमको निन्दासे बचानेवाला कहते हैं ना ? फिर हमारी निन्दा करनेवालोंको तुम देखते ही रहते हो यह कैसे हो रहा है । निन्दकोंपर अच्छा प्रहार करो और विश्वमें शान्ति

५५३ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासो ऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥ ४ ॥
५५४ विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद् वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥ ५ ॥
५५५ इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥ ६ ॥
५५६ विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ ७ ॥
५५७ यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥ ८ ॥

अर्थ— [५५३] (जायमानाः उषासः मा अवन्तु) प्रकट होनेवाली उषाएं मेरा संरक्षण करें, (पिन्वमानाः सिन्धवः मा अवन्तु) जलसे भरी नदियां मेरी रक्षा करें, (ध्रुवासः पर्वतासः मा अवन्तु) सुस्थिर पर्वत मेरी रक्षा करें, (पितरः देवहूतौ) पितर देवोंकी प्रार्थना करनेपर (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

[५५४] (विश्वदानीं सुमनसः स्याम) सदा ही हम उत्तम विचार करनेवाले हों । (सूर्यं उच्चरन्तं पश्येम नु) आकाशमें ऊपर संचार करनेवाले सूर्यको हम देखें । (वसूनां वसुपतिः तथा करत) धनोंका धनपति देव वैसा प्रयत्न करे कि जिससे (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) ज्ञानियोंको बुलानेवाला देव अपनी रक्षणकी शक्तिसे हमारे पास आ जावे ॥ ५ ॥

[५५५] (इन्द्रः अवसा नेदिष्ठं आगमिष्ठः) इन्द्र अपने रक्षा करनेके साधनोंसे हमारे समीप आवे । (सिन्धुभिः पिन्वमाना सरस्वती) जलके स्रोतोंसे खूब भरकर बहनेवाली सरस्वती हमारी रक्षा करे । (पर्जन्यः ओषधीभिः नः मयोभुः) पर्जन्य औषधियोंके साथ हमें सुख देनेवाला हो (सुशंसः अग्निः) प्रशंसनीय अग्नि (पिता इव सुहवः) पिताके समान सुखसे बुलाने योग्य हो ॥ ६ ॥

[५५६] हे (विश्वे देवाः) सब देवों ! (आ गत) आओ, (मे इदं हवं शृणुत) मेरी यह प्रार्थना सुनो और (इदं बर्हिः आ नि षीदत) इस आसनपर बैठो ॥ ७ ॥

[५५७] हे (देवाः) दिव्य वीरो ! (घृतस्नुना हव्येन) घृतसे भरपूर भरे हविसे (यः वः प्रतिभूषति) जो आपको समर्पण करता है (तं विश्वे उप गच्छथ) उसके पास आप सब आते जाते हैं ॥ ८ ॥

घृतस्नुना हव्येन यः प्रतिभूषति— घी जिससे टपकता है वैसे हविसे जो तुम्हारा आदरसत्कार करता है । हवन वैसे हविसे किया जाय जिसमें गौका घी भरपूर भरा हो ।

भावार्थ— जो उषायें हर रोज प्रकट होती हैं, वे मेरी रक्षा करें । जलसे भरकर बहनेवाली नदियां मेरी रक्षा करें । सदा स्थिर और दृढ रहनेवाले पर्वत मेरी रक्षा करें और पितर भी मेरी उत्तम प्रकारसे रक्षा करें ॥ ४ ॥

हम सदा मनमें उत्तम विचार रखें । मनमें कुविचार रखनेसे हानि होती है । अतः सदा अपने मनमें उत्तम ओजस्वी विचार ही रहें । सूर्य ऊपर आकाशमें आया है, ऐसा हम देखें । अर्थात् हम सूर्यका दर्शन करें । हम प्रकाशमें रहें । दीर्घ जीवन प्राप्त करें । दिव्य पुरुषोंको अपने पास लानेवाला धनपति संरक्षक शक्तिके साथ हमारे पास आवे और हमें धन देकर हमारा संरक्षण करे ॥ ५ ॥

अपने रक्षा के साधनों से युक्त होकर इन्द्र हमारे पास आवे, जलसे भरकर चलनेवाली नदियां हमारी रक्षा करें । पर्जन्य अर्थात् मेघदेव ओषधियों को उत्पन्न करके हमें सुख प्रदान करे । प्रशंसनीय अग्नि पिताके समान सुखसे बुलाने योग्य हो ॥ ६ ॥

हे देवों ! मेरी प्रार्थना सुनकर तुम आओ और इस मेरे यज्ञ में बैठो ॥ ७ ॥

५५८ उप॑ नः सू॒नवो॒ गिरः॑ शृ॒ण्वन्त्व॒मृत॑स्य॒ ये । सु॒मृ॒ळी॒का भ॑वन्तु नः ॥ ९ ॥
५५९ विश्वे॑ दे॒वा ऋ॑ता॒वृध॑ ऋ॒तुभि॑र्हवन॒श्रुतः॑ । जु॒षन्तां॒ युज्यं॒ पयः॑ ॥ १० ॥
५६० स्तो॒त्रमिन्द्रो॑ म॒रुद्ग॑ण॒स्त्वष्टृ॑मान् मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । इ॒मा ह॒व्या जु॑षन्त नः ॥ ११ ॥
५६१ इ॒मं नो॑ अग्ने अध्व॒रं होत॑र्वयुन॒शो य॑ज । चि॒कि॒त्वान् दैव्यं॒ जन॑म् ॥ १२ ॥
५६२ विश्वे॑ देवाः शृणु॒तेमं हवं॑ मे॒ ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ य उप॒ द्यवि॒ ष्ठ ।
ये अ॑ग्निजि॒ह्वा उ॒त वा॒ यज॑त्रा आ॒सद्या॒स्मिन् ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [५५८] (ये अमृतस्य सूनवः) जो अमर ईश्वरके पुत्र हैं, वे देव (नः गिरः उप शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें। वे (नः सुमृळीका भवन्तु) हमें सुख देनेवाले हों ॥ ९ ॥

अमृतस्य सूनवः— अमर ईश्वरके पुत्र ये सब अग्न्यादि देव हैं। वे सब हमें सुख देनेवाले हों।

[५५९] (विश्वे देवाः ऋतावृधः) आप सब देव सत्यमार्गको बढानेवाले हो (ऋतुभिः हवनश्रुतः) और ऋतुओंके अनुसार हवन करानेके लिये सुप्रसिद्ध हों। अतः (युज्यं पयः जुषन्तां) इस योग्य दूधका स्वीकार करो ॥ १० ॥

[५६०] (इन्द्रः मरुद्गणः) इन्द्र, वीर मरुतोंका समूह, (त्वष्टृमान्) कारीगर, सुतार आदि जिसके साथ रहते हैं वे (मित्रः अर्यमा) मित्र और श्रेष्ठ मनवाला अर्यमा ये सब देव (नः इमा हव्या जुषन्त) हमारी ये प्रार्थनाएं सुनें ॥ ११ ॥

[५६१] हे (होतः अग्ने) यज्ञसंपादक अग्ने! (नः इमं अध्वरं) हमारे इस हिंसारहित यज्ञका (दैव्यं जनं चिकित्वान्) दिव्यजनको जानकर (वयुन-शः यज) उनके कर्मके अनुसार संपादन कर ॥ १२ ॥

[५६२] हे (विश्वे देवाः) सब देवो! (ये अन्तरिक्षे) जो देव अन्तरिक्षमें हैं (ये द्यवि उप स्थ) और जो द्युलोकमें हैं वे सब देव (मे इमं हवं शृणुत) मेरी यह प्रार्थना सुनें। (ये अग्निजिह्वाः) जो देव अग्नि जैसी जिह्वावाले हैं (उत वा यजत्राः) अथवा जो यजनीय देव हैं, वे (अस्मिन् बर्हिषि आसद्य) इस आसनपर बैठकर (मादयध्वं) आनन्दित हो जाय ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे देवो! घी जिससे टपकता है, ऐसी हविसे जो तुम्हारा आदर सत्कार करता है, उसके पास तुम आते आते हो। हवनमें ऐसी हवि डाली जाए कि जिसमें घी भरपूर हो ॥ ८ ॥

अग्नि आदि सब देव अमर ईश्वर के पुत्र हैं, वे सभी देव हमें सुख देनेवाले हों। ॥ ९ ॥

सत्यमार्गकी वृद्धि करनेवाले जो होते हैं वे देव कहलाते हैं। ऋतुके अनुसार हवन करनेके लिये ये प्रसिद्ध हैं। ये दो लक्षण देवोंके हैं। सत्यका प्रचार और ऋतुके अनुसार कर्म करना ये दो लक्षण देवोंके हैं ॥ १० ॥

इन्द्र, वीर मरुतों का समूह, कारीगर, मित्र और श्रेष्ठ मनवाला अर्यमा ये सब देव हमारी प्रार्थनायें सुनें ॥ ११ ॥

हे यज्ञको पूर्ण करनेवाले अग्ने! तू हमारी दिव्यता जानकर उत्तम कर्म के अनुसार यज्ञको पूर्ण कर ॥ १२ ॥

हे देवो! जो देव अन्तरिक्षमें हैं, और जो द्युलोकमें हैं, वे सब देव मेरी प्रार्थना सुनें। जो देव अग्निके समान तेजस्वी हैं, तथा जो देव यजनीय हैं, वे इस आसन पर अर्थात् यज्ञ में बैठकर आनन्दित हों ॥ १३ ॥

५६३ विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञियां उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद् वो अन्तमा मदेम ॥ १४ ॥
५६४ ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥ १५ ॥
५६५ अग्नीपर्जन्याववतं धियं मे ऽस्मिन् हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥
५६६ स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन् नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥ १७ ॥

अर्थ— [५६३] हे (विश्वे देवाः) सब देवों ! हे (यज्ञियाः) पूजनीयो ! हे (उभे रोदसी) दोनों द्यु और पृथिवी ! (अपां नपात् च) हे जलोंको न गिरानेवाले अग्नि ! तुम सब (मम मन्म शृण्वन्तु) मेरा स्तोत्र श्रवण करो । (परिचक्ष्याणि वचांसि वः मा वोचं) निन्दाके भाषण तुम्हारे संमुख मैं कभी न कहूं । (वः सुम्नेषु अन्तमा इत् मदेम) तुम्हारे उत्तम विचारोंमें रहकर हम आनन्दित होंगे ॥ १४ ॥

[५६४] (ये के च) कोई (ज्मा) पृथिवीपर, (दिवः) द्युलोकमें तथा (अपां सधस्थे) अन्तरिक्षमें (महिनः अ-हि-मायाः) महान् कर्मकौशल्यसे युक्त देव (जज्ञिरे) प्रकट हुए हैं (ते देवाः) वे देव (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (क्षपः उस्राः) रात्र दिन (विश्वं आयुः) संपूर्ण आयु (इषये वरिवस्यन्तु) इष्ट सुखके लाभके लिये देवें ॥ १५ ॥

[५६५] हे (अग्नि-पर्जन्या) अग्नि और पर्जन्य ! (मे धियं अवतं) मेरी बुद्धिका संरक्षण करो । हे (सुहवा) सुखसे बुलाने योग्य देवों ! (अस्मिन् हवे) इस प्रार्थनामें (नः सुष्टुतिं) हमारी स्तुति तुम सुनो । (अन्यः इळां जनयत्) तुम्हारेमेंसे एक अन्नको उत्पन्न करता है, (अन्यः गर्भं) दूसरा गर्भको पुष्ट करता है, अतः हे देवों ! (प्रजावतीः इषः) प्रजा बढानेवाला अन्न (अस्मै आधत्तं) इसके लिये दे दो ॥ १६ ॥

[५६६] (बर्हिषि स्तीर्णे) आसन फैलानेपर (अग्नौ समिधाने) अग्नि प्रदीप्त होनेके बाद (नमसा महा सूक्तेन आ विवासे) मनसे बडे सूक्त बोलकर कर्म शुरु होनेपर हे (यजत्राः विश्वे देवाः) पूजनीय सब देवों ! (अद्य अस्मिन् नः विदथे) आज इस हमारे कर्ममें (हविषि मादयध्वं) अन्नसे आनन्दित होवो ॥ १७ ॥

भावार्थ— निन्दाके भाषण तुम्हारे सामने मैं कभी न कहूं । मैं कभी बुरे भाषण ही न करूं । तुम्हारे मनोंमें हमारे विषयमें अच्छे भाव ही सदा रहें और हम आनन्द प्राप्त करें ॥ १४ ॥

जो भी देव पृथिवीपर, द्युलोक में और अन्तरिक्ष में हैं, वे देव हमें ऐसे रात्री और दिन तथा आयु प्रदान करें कि हम संपूर्ण आयु सुख ही भोगते रहें ॥ १५ ॥

हे अग्नि और पर्जन्य देव ! तुम दोनों मेरी बुद्धि की रक्षा करो । हे देवो ! तुम हमारी स्तुति सुनो । तुम दोनोंमेंसे एक देव अर्थात् पर्जन्य या मेघ अन्नको उत्पन्न करता है, तो दूसरा देव अग्नि उस अन्नके अन्दर रह कर उन अन्नोंको परिपक्व या पुष्ट करता है ॥ १६ ॥

हे देवो ! जब हम आसन फैला चुकें, अग्नि प्रदीप्त हो जाए तथा मनसे मंत्रोंका बोलना शुरू हो, तब तुम सब हमारे इस कर्म में आनन्दित हों ॥ १७ ॥

[५३]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री; ८ अनुष्टुप् ।)

५६७ वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥ १ ॥
५६८ अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥ २ ॥
५६९ अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय । पणेश्चिद् वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥
५७० वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥
५७१ परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥

[५३]

अर्थ— [५६७] (पथः-पते पूषन्) हे मार्गका रक्षण करनेवाले पूषन् ! (वाजसातये रथं न) अन्नका दान करनेके लिये रथको जोतते हैं उस तरह (धिये त्वा अयुज्महि) बुद्धिके कर्म करनेके लिये तुझे प्रयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

[५६८] हे पूषन् ! (नः) हमें (नर्यं वसु) मानवोंका हित करनेवाले धन, (प्रयत-दक्षिणं वीरं) दक्षिणा देनेवाले वीरपुत्र और (वामं गृहपतिं) प्रशंसनीय गृहस्वामीके (अभि नय) पास ले चलो ॥ २ ॥

[५६९] हे (आघृणे पूषन्) प्रकाशमान् पूषन् ! (अदित्सन्तं चित्) दान न देनेवालेको (दानाय चोदय) दान देनेके लिये प्रेरित कर, (पणेः चित् मनः वि म्रद) व्यवहार करनेवालेके मनको तू विशेष नरम कर ॥ ३ ॥

[५७०] (वाज-सातये पथः वि चिनुहि) धन प्राप्तिके मार्ग ढूंढकर निकालो । (मृधः वि जहि) घातक शत्रुओंको पराजित कर । हे (उग्र) शूर पूषन् ! (नः धियः साधन्तां) हमारे कर्म सिद्ध हो जायें ॥ ४ ॥

[५७१] हे (कवे) ज्ञानी दूरदर्शी ! (पणीनां हृदया) बनियोंके हृदयोंको (आरया परि तृन्धि) चाकूसे काटो, (अथ) और (अस्मभ्यं) हमारे लिये (ईं रन्धय) इन दुष्टोंको नष्टभ्रष्ट कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— मार्गका स्वामी पोषणकर्ता ! पोषण करनेवाला योग्य मार्गको जाने और उसी मार्गपरसे वह जाय । अन्नदान अथवा अन्नप्राप्तिके लिये रथको जोतते हैं । रथमें बैठकर अन्नका दान करते हैं अथवा अन्न लाते हैं । बुद्धिके कर्म करनेके लिये तुझे प्रेरित करते हैं । मनुष्य बुद्धिको बढावे और बुद्धिसे सुयोग्य कर्म करे ॥ १ ॥

मानवोंका हित करनेवाला धन है, धन सब मानवोंका हित करनेवाला है । दक्षिणा देनेवाला वीर पुत्र या वीर पुरुष हो । उदार पुत्र हो । प्रयत्न करके दान देनेवाला वीर पुत्र हो । प्रशंसनीय जो गृहस्थ हो, उसको हम प्राप्त करें । मानवोंके हितार्थ धन देनेवाला, उदार वीर गृहस्थ जो होगा वह प्रशंसनीय तथा पास आने योग्य है ॥ २ ॥

दान न देनेवालेको भी दान देनेके लिये प्रेरित कर । जो कंजूस हैं उनको भी दान देनेमें प्रवृत्त करना चाहिये । व्यापार व्यवहार करनेवाले बनियेके मनको जरा नरम कर । बनिये दान नहीं देते, उनका मन गरीबोंकी स्थिति देख कर पिघल जाय जैसा मृदु करना चाहिये ॥ ३ ॥

धन प्राप्त करनेके मार्ग ढूंढकर निकालने चाहियें । मनुष्य उद्यमी बनें । उदास न हों । शत्रुओंको परास्त करो । धनप्राप्तिके मार्गमें जो विघ्न करते हैं उनको दूर करना चाहिये । हमारे बुद्धिपूर्वक किये कार्य सबके सब सिद्धिको प्राप्त हों । उनसे हमें लाभ मिले । हमारी इच्छाएं सिद्ध हों ॥ ४ ॥

हे ज्ञानी ! बनियोंके हृदयोंको आरेसे चारों ओरसे काट दे । उनके हृदयोंको पीडा पहुंचे ऐसा कर । हमारे हितके लिये इन दुष्टोंको नष्ट कर ॥ ५ ॥

५७२ वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥
५७३ आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥
५७४ यां पूषन् ब्रह्मचोदनी—मारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदय—मा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥
५७५ या ते अष्ट्रा गोओपशा ऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥
५७६ उत नो गोषणिं धियं—मश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये ॥ १० ॥

अर्थ— [५७२] हे (पूषन्) पोषण करनेवाले ! (आरया पणेः वि तुद) आरेसे पणीके हृदयोंको पीडा दे । (हृदि प्रियं इच्छ) हृदयमें प्रिय करनेकी इच्छा कर और (अथ ईं अस्मभ्यं रन्धय) इस दुष्टको हमारे लिये नष्ट कर ॥ ६ ॥

[५७३] हे (कवे) ज्ञानी पूषा ! (आ रिख) पूर्णतासे लिख । (पणीनां हृदया किकिरा कृणु) बनियोंके हृदय खाली कर । (अथ ईं अस्मभ्यं रन्धय) और शत्रुको हमारे लिये नष्ट कर ॥ ७ ॥

[५७४] हे (आघृणे पूषन्) तेजस्वी पूषा देव ! (यां ब्रह्मचोदनीं आरां बिभर्षि) जिस ज्ञानसे प्रेरित होनेवाली आराको तू धारण करता है, (तया समस्य हृदयं) उससे समानके हृदयको (आ रिख) अच्छी तरह लिख और (किकिरा कृणु) खाली कर ॥ ८ ॥

[५७५] हे (आघृणे) तेजस्वी वीर ! (या ते अष्ट्रा गोओपशा) जो तेरी व्यापक और गौओंकी सहायता (पशुसाधनी) पशुओंको प्राप्त करनेवाली बुद्धि है, (तस्याः ते सुम्नं ईमहे) उस तेरी बुद्धिसे हम उत्तम मनोभाव हमें मिलें ऐसा चाहते हैं ॥ ९ ॥

[५७६] (उत नः धियं) और हमारी बुद्धिको (गो-षणिं) गोसेवक (अश्व-सां) घोडोंके साथ रहनेवाली (वाज-सां) अन्न प्राप्त करनेवाली (उत नृवत्) और पुत्रपौत्रोंके साथ, मानवोंके साथ मिलजुलकर रहनेवाली (वीतये कृणुहि) विशेष उत्पादनके लिये कर ॥ १० ॥

भावार्थ— हे पूषा देव ! आरेसे पणिको काट दे । पणि वह व्यापारी है कि जो अत्यधिक लाभकी इच्छासे ग्राहकोंको ठगाता है । हृदयमें सबका भला करनेकी इच्छा कर । किसीको दुःख देनेकी इच्छा न कर । हमारे लिये शत्रुका नाश कर ॥ ६ ॥

बुरा या भला जो वृत्त हो वह यथावत् लिखकर रख । सबको विदित होवे कि वह ऐसा है । पणियोंके हृदय खाली कर । उसके अन्दर बुरी भावनाएं न रहें ऐसा कर । व्यवहार करनेवाले बुरी वृत्तिसे व्यवहार करके जनोंको न फंसावें ऐसा कर ॥ ७ ॥

तेजस्वी सबका पोषक देव ज्ञानसे प्रेरित शस्त्रको धारण करता है । शस्त्र हमेशा ज्ञानपूर्वक, विचारपूर्वक चलाया जाय । अविवेकसे कभी भी शस्त्रका उपयोग कोई न करे । हे देव ! सबके विषयमें समभाव रखनेवाला जो है, उसके हृदयके समभावको यथावत् लिखकर रख । वह सबके लिये आदर्श हृदयका भाव होगा । अतः उसके समभावको यथावत् लिख कर रखना अत्यावश्यक है । उसके हृदयको खाली कर । उसमें कुछ भी बुराई न रहे ऐसा कर । हृदय परिशुद्ध हो ऐसा कर ॥ ८ ॥

हे तेजस्वी वीर ! जो तेरी व्यापक और पशुओंको बढानेवाली बुद्धि है वह तेरे पास रहे । उस तेरी बुद्धिसे तेरा उत्तम मन भी मिला रहे । तेरे पास उत्तम पशु भी रहें और उत्तम मन भी तेरे पास हो । ऐसी बुद्धि और ऐसा उत्तम मन हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

हे देव ! हमारी बुद्धिको गौकी सेवा करनेवाली, घोडोंके साथ रहनेवाली, अन्न प्राप्त करनेवाली और पुत्रपौत्रों तथा मानवोंके साथ मिलकर रहनेवाली बना । हमारी बुद्धि ऐसी हो । ॥ १० ॥

[५४]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री ।)

५७७ सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥
५७८ समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥
५७९ पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥
५८० यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥
५८१ पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥
५८२ पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥

[५४]

अर्थ— [५७७] हे (पूषन्) पोषक देव ! (यः इदं एव इति ब्रवत्) जो यह ऐसा ही है ऐसा कहता है और (यः अनुशासति) जो योग्य उपदेश देता है (विदुषा अञ्जसा सं नय) उस विद्वान्के पास हमें ले जाओ ॥ १ ॥

[५७८] (यः गृहान् अभिशासति) जो घरोंके विषयमें अनुशासन करता है, तथा (इमे एव इति च ब्रवत्) ये ही वे हैं ऐसा जो कहता है, (पूष्णा उ संगमेमहि) पूषाके साथ हम उनके साथ रहते हैं ॥ २ ॥

[५७९] (अस्य पूष्णः चक्रं न रिष्यति) इस पूषाका चक्र दूषित नहीं होता, (कोशः न अवपद्यते) इसका कोश गिरता नहीं, (अस्य पविः नो व्यथते) इसका शस्त्र व्यथाको नहीं प्राप्त होता ॥ ३ ॥

[५८०] (यः अस्मै हविषा अविधत्) जो इस पूषाके लिये हवि अर्पण करता है, (तं पूषा अपि न मृष्यते) उसको पूषा कभी कष्ट नहीं देता है और वह (प्रथमः वसु विन्दते) पहिले धन प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[५८१] (पूषा नः गाः अनु एतु) पूषा हमारी गौवोंके पीछे जाय, (पूषा अर्वतः रक्षतु) पूषा हमारे घोडोंका रक्षण करे । (पूषा नः वाजं सनोतु) पूषा धन या अन्न हमें देवे ॥ ५ ॥

[५८२] (सुन्वतः यजमानस्य) यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये (उत स्तुवतां अस्माकं) और स्तुति करनेवाले हमारे लिये (गाः अनु प्र इहि) गौवें अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो निःसंदेह यह ऐसा ही है ऐसा अचूक कहता है वह सच्चा मनुष्य है। हे देव ! जो अनुकूल शासन करता है, योग्य उपदेश देता है, उस विद्वान्के पास शीघ्र हमें ले जा । ऐसा विद्वान् सबका हित करेगा ॥ १ ॥

पूषा अर्थात् सबका पोषण करनेवाला देव इस विश्वरूपी घरको अनुशासनमें रखता है । इस विश्वका एक कण भी अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता । इसी तरह घरका स्वामी संपूर्ण घरको अनुशासनमें रखे । उसके अनुशासनके बाहर परिवारका कोई भी सदस्य न जाए ॥ २ ॥

पूषाका चक्र और शस्त्र पीछे नहीं हटता, शत्रुपर योग्य रीतिसे आघात करता है । तथा इसका कोश-खजाना रीता (खाली) नहीं होता । सदा भरा रहता है । शस्त्रोंकी तीक्ष्णता और खजाना भरपूर भरा रहना, इस पर राज्ययंत्रकी सुरक्षितता है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य इस पूषाको मनसे हवि देता है, उसे यह पूषा भी कभी कष्ट नहीं देता और उसे यह पूषा सबसे पहले धन देता है ॥ ४ ॥

पूषा देवकी कृपासे हमारे पास गौवें, घोडे और धन या अन्न भरपूर हों ॥ ५ ॥

यज्ञ करनेवाले यजमानके लिए तथा स्तुति करनेवाले हमारे लिए गायें अनुकूलतासे प्राप्त हों ॥ ६ ॥

५८३ माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ॥ ७ ॥
५८४ शृण्वन्तं पूषणं वय मिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥
५८५ पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥
५८६ परि पूषा परस्ता द्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥

[५५]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री ।)

५८७ एहि वां विमुचो नपा दाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥
५८८ रथीतमं कपर्दिन मीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥

अर्थ— [५८३] (माकिः नेशत्) नष्ट न करे, (माकिं रिषत्) नष्ट न होवे, (के-वटे माकिं सं शारि) कुएके कुंवेमें गिरकर नष्ट न हों, (अथ अरिष्टाभिः आगहि) ऐसे अहिंसित गौवोंसे हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

[५८४] (शृण्वन्तं) प्रार्थना सुननेवाले (इर्यं) प्रेरक (अ-नष्ट-वेदसं) जिसका धन नष्ट नहीं होता ऐसे (ईशानं पूषणं) ईश पूषाके पास (वयं रायः ईमहे) हम धन मांगते हैं ॥ ८ ॥

[५८५] हे (पूषन्) पूषा देव ! (तव व्रते) तेरे व्रतमें रहेंगे तो (वयं कदाचन न रिष्येम) हम कभी भी नष्ट नहीं होंगे । (ते स्तोतारः इह स्मसि) क्योंकि तेरी स्तुति करनेवाले हम हैं ॥ ९ ॥

[५८६] (पूषा दक्षिणं हस्तं) पूषा अपने सीधे हाथको (परस्तात् परिदधातु) ऊपर धारण करे । और (नष्टं पुनः नः आ अजतु) नष्ट हुए धनको वह हमें पुनः देवे ॥ १० ॥

[५५]

[५८७] हे (आघृणे) तेजस्वी पूषन् ! (वां एहि) हम दोनोंके पास आ । (विमुचः न पात्) दुःख मुक्त करनेवालोंको न गिरानेवाले ! (सं सचावहै) हम दोनों मिलकर रहेंगे । (नः ऋतस्य रथीः भव) हमारे सत्य कर्मका चलानेवाला हो ॥ १ ॥

[५८८] (रथीतमं) श्रेष्ठ रथी वीर (कपर्दिनं) मस्तकपर केश धारण करनेवाला, (महः राधसः ईशानं) बडे धनके स्वामी ऐसे (सखायं) हमारे मित्र पूषाके पास हम (रायः ईमहे) धन मांगते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे पूषा देव ! हम तुझे नष्ट न करें, तू हमें नष्ट न कर । हम कभी भी पतन की न ओर जायें । तू भी अविनाशी गायोंको लेकर हमारे पास आ ॥ ७ ॥

यह पूषा देव प्रार्थना सुननेवाला, अविनाशी धन अपने पास रखनेवाला है, उससे हम धन मांगते हैं ॥ ८ ॥

हे पूषा देव ! तेरे व्रतमें रहते हुए हम कभी नष्ट न हों, क्योंकि हम तेरी स्तुति करनेवाले हैं । जो इन देवोंके अनुशासनमें रहकर इनके द्वारा बताये गए कर्मोंको करता है, वह कभी भी नष्ट नहीं होता ॥ ९ ॥

पूषा अपना आशीर्वाद हमें देनेके लिए अपना दाहिना हाथ हमारे ऊपर रखे और नष्ट हुए धनको हम फिर प्राप्त करें ॥ १० ॥

वीर तेजस्वी हो, विमुक्त करनेवालोंको उन्नति पथसे न गिरावे । हम दोनों मिलकर रहेंगे । समाजमें ज्ञानी-अज्ञानी, सबल-निर्बल, धनी निर्धन ऐसे दो प्रकारके लोग होते हैं उनमें संगति होनी चाहिये ॥ १ ॥

यह पूषा देव रथियोंमें सर्वश्रेष्ठ है, बहुत विशाल धनका स्वामी है, ऐसे पूषासे, जो हमारा मित्रके समान हित करनेवाला है, हम धन मांगते हैं ॥ २ ॥

५८९ रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥
५९० पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥
५९१ मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥
५९२ आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥

[५६]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- पूषा । छन्दः- गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।)

५९३ य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥
५९४ उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

अर्थ— [५८९] हे (आघृणे अजाश्व) तेजस्वी वेगवान् अश्ववाले पूषन् ! (रायः धारा असि) धनका प्रवाह तू है, (वसोः राशिः) ऐश्वर्यकी राशि है और (धीवतः धीवतः सखा) प्रत्येक बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवालेका तू मित्र है ॥ ३ ॥

[५९०] (वाजिनं अजाश्वं) बलवान्, घोडोंवाले, अजोंको घोडोंके स्थानपर जोतनेवाले (पूषणं उप स्तोषाम) पूषाकी हम स्तुति करते हैं । (यः स्वसुः जारः उच्यते) जो उषा नामक बहिनका नाश करनेवाला कहा जाता है ॥ ४ ॥

[५९१] (मातुः दिधिषुं अब्रवं) माताके सहचरको मैंने कहा है, (स्वसुः जारः नः शृणोतु) बहिनका-उषाका नाशक हमारे भाषण सुने । (इन्द्रस्य भ्राता) इन्द्रका यह भाई है (मम सखा) मेरा मित्र पूषा है ॥ ५ ॥

[५९२] (जनश्रियं पूषणं देवं निशृम्भाः) जनोंको वैभवशाली करनेवाले, पूषा देवको जानेवाले (अजासः) अज मेंढे (बिभ्रतः रथे वहन्तु) रथमें धारण करके यहां ले आवें ॥ ६ ॥

[५६]

[५९३] (यः एनं पूषणं) जो इस पूषाको (करम्भ-अद्) करंभ खानेवाला करके (आदिदेशति) स्तुति करता है, (तेन देवः न आदिशे) उससे पूषा देवकी [और अधिक अच्छी स्तुति] कोई नहीं होती ॥ १ ॥

करम्भ— दही मिश्रित आटेसे बनाया जानेका पदार्थ ।

[५९४] (उत घ सः रथीतमः) और निश्चयसे वह रथी वीरोंमें श्रेष्ठ है । (युजा सख्या) इसलिये अपने इस योग्य मित्र पूषाके साथ रहकर (सत्पतिः इन्द्रः) सज्जनोंका पति इन्द्र (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंको मारता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी और वेगवान् घोडोंवाले पूषा ! तू धनका स्रोत है, अर्थात् तुझसे ही धन निकलता है, तू ही ऐश्वर्यका खजाना है और प्रत्येक उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यका तू मित्र है ॥ ३ ॥

यहां पूषाको स्वसुः जार अर्थात् अपनी बहिनकी आयुको नष्ट करनेवाला कहा गया है, यहां पूषा सूर्य है । सूर्यके आते ही उसकी बहिन उषा नष्ट हो जाती है, इसलिए सूर्य यहां पूषाको बहिनको नष्ट करनेवाला कहा गया है ॥ ४ ॥

यह पूषा देव अर्थात् सूर्य अपनी माता अर्थात् रात्रीकी आयुको भी नष्ट करता है और अपनी बहिन उषाकी भी । सूर्यके उदय होते ही रात्री और उषा दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

यह पूषा-सूर्य इन्द्र अर्थात् विद्युत्‌का भाई है, और उत्तम मनुष्यका हितकारी है ॥ ६ ॥

यह पूषा करम्भ अद् अर्थात् कर-हाथोंसे कंभ-जलको अद्-खानेवाला है । पूषा सूर्यके रूपमें कर अर्थात् अपनी किरणोंसे पृथ्वी परके जलको पीता है । फिर उसी जलको बरसाता है, इसीलिए लोग इस पूषाकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

पूषा देव रथी वीरोंमें श्रेष्ठ है । यह पूषा इन्द्रका सच्चा मित्र है, इसलिए सज्जनोंका पालन करनेवाला इन्द्र इस पूषाकी सहायतासे शत्रुओंको मारता है ॥ २ ॥

५९५ उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद् रथीतमः ॥ ३ ॥
५९६ यदुद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत् सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥
५९७ इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥ ५ ॥
५९८ आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥

[५७]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— इन्द्रापूषणौ । छन्दः— गायत्री ।)

५९९ इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥
६०० सोममन्य उपासदत् पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

अर्थ— [५९५] (रथीतमः) रथियोंमें श्रेष्ठ पूषाने (उत) और (परुषे गवि) कठोर स्थान जैसे भूमिपरसे (अदः सूरः हिरण्ययं चक्रं) वह सूर्यका सुवर्णका चक्र (नि ऐरयत्) घुमाया है ॥ ३ ॥

[५९६] (पुरुष्टुत) हे बहुतों द्वारा प्रशंसित, (दस्र) दर्शनीय (मन्तुमः) और मननीय पूषन् ! (यत् अद्य त्वा प्र ब्रवाम) जो आज तुझे हम कहते हैं, (नः तत् मन्म सुसाधय) हम हमारा मननीय स्तोत्र उत्तम रीतिसे सिद्ध कर ॥ ४ ॥

[५९७] हे (पूषन्) पूषा देव ! तू (आरात् श्रुतः असि) तू समीपसे और दूरसे प्रसिद्ध है (इमं गवेषणं गणं) इस गौकी खोज करनेवाले जनसमूहको (सातये सीषधः) धन दानके लिये ले जा ॥ ५ ॥

[५९८] (अद्य च श्वः च) आज और कल हमारा (सर्वतातये सर्वतातये) सब प्रकारसे कल्याण हो, इसलिये (ते आरे अघां) तेरी पाप दूर करनेवाली (उप वसुं) धन देनेवाली और (स्वस्ति) कल्याण करनेवाली बुद्धिको (ईमहे) प्राप्त करनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

[५७]

[५९९] (वयं) हम सब (इन्द्रा नु पूषणा) इन्द्र और पूषाको (सख्याय स्वस्तये) मित्रताके और कल्याणके लिये तथा (वाजसातये) बल, ऐश्वर्य, अन्नादिकी प्राप्तिके लिये (हुवेम) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[६००] (अन्यः) इनमेंसे एक इन्द्र (सुतं सोमं चम्वोः पातवे) छानकर पात्रमें रखा सोमरस पीनेके लिये (उपासदत्) आसनपर बैठा है। और (अन्यः करम्भं इच्छति) और दूसरा पूषा करंभ खानेकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— सबका पोषण करनेवाले परमात्माका एक अद्भुत काम यह है कि उसने सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया। इतना दूर स्थापित करने पर भी पृथ्वीपरके लोगोंको प्रतीत यह होता है कि सूर्य उनसे बहुत दूर नहीं है। क्योंकि सूर्यकी किरणें पृथ्वीपर घूमती हैं। ॥ ३ ॥

हे बहुतों द्वारा स्तुत और प्रशंसाके योग्य पूषा देव ! जो हम आज तुझसे मांगते हैं, उसे तू हमें प्रदान कर ॥ ४ ॥

हे पूषा ! तेरे लिए पासका स्थान या दूरका स्थान कुछ भी नहीं है, क्योंकि तू सर्वत्र व्यापक है। तू सबके मनकी इच्छाओंको जानता है, इसलिए गायोंकी खोज करनेवाले इस जनसमूहको धन प्रदान कर ॥ ५ ॥

आज भी हमारा सब प्रकारसे कल्याण हो और कल भी हमारा सब प्रकारसे कल्याण हो। तेरी पाप दूर करनेवाली, धन देनेवाली और कल्याण करनेवाली बुद्धि हमें अनुकूल हो ऐसी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ६ ॥

हम स्तुति करनेवाले मनुष्य इन्द्र और पूषाको मित्रता, कल्याण, बल, ऐश्वर्य और अन्नादिकी प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ १ ॥

२२

६०१ अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य संभृता । ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥
६०२ यदिन्द्रो अनयद् रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत् सचा ॥ ४ ॥
६०३ तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥ ५ ॥
६०४ उत् पूषणं युवामहे ऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥

[५८]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता— पूषा । छन्दः— त्रिष्टुप्, २ जगती ।)

६०५ शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ १ ॥

अर्थ— [६०१] (अन्यस्य अजाः वह्नयः) इन दोनोंमेंसे एक पूषाकी गाडी खेंचनेवाले मेंढे हैं और (अन्यस्य हरी संभृता) और दूसरे इन्द्रके घोडे बडे पुष्ट हैं । (ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते) इन दोनों द्वारा वृत्र मारे जाते हैं ॥ ३ ॥

[६०२] (यत्) जब (वृषन्तमः इन्द्रः) बलवान् इन्द्रने (रितः) उत्साहित होकर (महीः अपः अनयत्) बडे जलप्रवाहोंको लाया तब (पूषा तत्र सचा अभवत्) पूषा तेरा साथी था ॥ ४ ॥

[६०३] (पूष्णः इन्द्रस्य च सुमतिं) पूषा और इन्द्रकी उत्तम बुद्धिको (वयं आरभामहे) प्राप्त करते हैं (वृक्षस्य वयां इव) वृक्षकी शाखाको पकडते हैं, उस तरह हम उसकी सुमतिके आश्रयसे रहते हैं ॥ ५ ॥

[६०४] (सारथिः अभीशून् इव) सारथी लगामोंको पकडता है उस तरह (पूषणं इन्द्रं) पूषा और इन्द्रको (मह्यै स्वस्तये) बडे कल्याणके लिये (उत् युवामहे) हम पकड कर रखते हैं ॥ ६ ॥

[५८]

[६०५] हे (स्वधा-वः) अपने धारण शक्तिसे युक्त, हे (पूषन्) पूषा ! (ते शुक्रं अन्यत्) तेरा एक रूपदिनका-प्रकाशमय है, (ते यजतं अन्यत्) और तेरा दूसरा रूप पूजनीय-रात्रिका-है । (वि-सु-रूपे अहनी) इस तरह विशेष सुंदर रूपवाले दिन और रात्रि (द्यौः इव असि) प्रकाशमान जैसे हैं । (विश्वाः मायाः अवसि हि) सब कौशल्य युक्त कर्मोंका तू रक्षण करता है । (ते भद्राः रातिः इह अस्तु) तेरा कल्याणपूर्ण दान यहां होता रहे ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र और पूषा इन दोनों देवोंमेंसे इन्द्र सोमरसको पीता है और पूषा करंभको पसन्द करता है । विद्युत् रूपी इन्द्र सदा बादलोंमें रहकर जलरूपी सोम पीता रहता है, और सूर्य रूपी पूषा अपनी किरणोंसे सदा पृथ्वी परके जलोंको बादलके रूपमें बदलता रहता है ॥ २ ॥

इन्द्र और पूषामेंसे पूषाके रथमें अविनाशी किरण रूपी घोडे जुडे हुए हैं और इन्द्रके रथमें पुष्ट घोडे जुडे हुए हैं । ये दोनों मिलकर वृत्रोंका विनाश करते हैं ॥ ३ ॥

जिस समय इन्द्रने उत्साहमें भरकर जलप्रवाहोंको बहाया, तब उस कार्यमें पूषा इन्द्रका सहायक हुआ ॥ ४ ॥

जिस तरह पक्षीगण वृक्षकी शाखाओंका आसरा लेकर सुख से रहते हैं, उसी तरह हम भी इन्द्र और पूषाकी उत्तम बुद्धिका सहारा लेकर सुखसे रहें ॥ ५ ॥

जिस तरह लगाम सारथी के हाथोंमें रहते हैं, उसी तरह इन्द्र और पूषा हमारा कल्याण करनेके लिए हमारे पास रहें ॥ ६ ॥

इस पूषाके दो रूप हैं, एक रूप इसका प्रकाशमय है और दूसरा रूप कृष्ण होते हुए भी पूजनीय है । पूषाका प्रकाशमय रूप दिन है और कृष्ण रूप रात्री है । रात्रीमें निद्राके द्वारा सबको आराम मिलता है, इसलिए रात्री भी पूजनीय है । पूषाके ये दोनों ही रूप प्रकाशमान हैं । दिन और रात सूर्यके ही रूप हैं । सूर्यकी गतिके कारण ही दिन और रात बनते हैं । इसके ये दोनों रूप हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

६०६ अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियंजिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥
६०७ यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥ ३ ॥
६०८ पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥ ४ ॥

[५९]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता — इन्द्राग्नी । छन्दः— बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।)

६०९ प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥ १ ॥

अर्थ— [६०६] (पूषा) पूषा देव (अजाश्वः) बैलोंको रथमें जोतनेवाला (पशुपाः) पशुओंका पालक (वाज-पस्त्यः) अन्नका संग्रह घरमें करनेवाला (धियं-जिन्वः) बुद्धिको स्फूर्ति देनेवाला (विश्वे भुवने अर्पितः) सब भुवनोंमें अर्पित है । यह पूषा (शिथिरां अष्ट्रां उत् वरी वृजत्) अपने तेजस्वी शस्त्रको चमकाता है और (संचक्षाणः देवः भुवना ईयते) निरीक्षण करता हुआ यह देव भुवनोंमें जाता है ॥ २ ॥

[६०७] हे (पूषन्) पूषा ! (याः ते हिरण्ययीः नावः) जो तेरी सुवर्णकी नौकाएं (अन्तरिक्षे समुद्रे अन्तः चरन्ति) अन्तरिक्षके समुद्रमें चल रही हैं (ताभिः) उनसे तू (श्रव इच्छमानः) यशकी इच्छा करता हुआ (कामेन कृत) हे स्वइच्छासे कर्म करनेवाले ! (सूर्यस्य दूत्यां यासि) सूर्यके दूतकर्मको करता है ॥ ३ ॥

[६०८] (दिवः पृथिव्याः आ) द्युलोकसे पृथिवी तक (पूषा सुबन्धुः) पूषा सबका उत्तम भाई जैसा है । (इळः पतिः मघवा दस्मवर्चाः) यह भूमिका पालन धनवान् दर्शनीय तेजसे युक्त है । (यं देवासः सूर्यायै अददुः) जिस पूषाको देवोंने उषाके लिये दिया, यह (कामेन कृतं स्वञ्चं तवसं) कामने किया सुभूषित बलयुक्त कार्य है ॥ ४ ॥

[५९]

[६०९] हे (पितरः) रक्षक वीरो ! (इन्द्राग्नी) हे इन्द्र और अग्नि ! (सुतेषु) यज्ञोंमें (यानि वीर्या चक्रथुः) जो आपने पराक्रम किये थे, (वां नु प्रवोच) तुम्हारे उन पराक्रमोंका वर्णन करते हैं । (वां देवशत्रवः हतासः) तुम्हारे देवोंके शत्रु तुमने मारे हैं । हे इन्द्र अग्नि ! (युवं जीवथः) तुम दोनों जीवित रहते हो ॥ १ ॥

भावार्थ — यह पूषा देव पशुओंका पालक, अन्नको देनेवाला, बुद्धिको स्फूर्ति देनेवाला और सभी भुवनोंमें व्याप्त है। यह पूषा अर्थात् सूर्य अपनी तेजस्वी किरणोंको चमकाता है और सब भुवनोंका निरीक्षण करता हुआ सर्वत्र गति करता है । यह सूर्यदेव अपने अमृतमय तेजसे सभी प्राणियोंके अन्दर उत्साह भरता है । सुबह होते ही सभी प्राणी तरोताजा होकर उत्साहसे अपने कामोंमें जुट जाते हैं ॥ २ ॥

सबका पोषण करनेवाले इस सूर्यकी किरणरूपी सुनहरी नौकायें अन्तरिक्ष और द्युलोकरूपी समुद्रमें घूम रही हैं । सूर्यकी किरणें जब अन्तरिक्ष और द्युलोकमें विचरती हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि सुनहली नौकायें समुद्रमें घूम रही हैं ॥ ३ ॥

द्युलोकसे लेकर पृथिवीतक जितने प्राणी हैं, उन सबका भरणपोषण करनेवाला होनेके कारण सूर्य सभी प्राणियोंका भाई है । वह भूमिपर बरसात गिराकर भूमिका पालन करता है। वही उषाको प्रकट करता है और सारे विश्वको प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

६१० बळित्था महिमा वा—मिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥
६११ ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रा न्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥
६१२ य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत् तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥
६१३ इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान् युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥

अर्थ— [६१०] हे (इन्द्र-अग्नी) इन्द्र और अग्नि देवो ! (वां महिमा) आपकी महिमा (पनिष्ठः बट् इत्था आ) सत्य और निःसंदेह है । (वां जनिता) आपका उत्पन्न कर्ता पिता (समानः) एक ही है, इस कारण (युवं यमौ भ्रातरा) तुम जुडवे भाई हो । और (इह-इह-मातरा) यहां यही तुम्हारी माता है ॥ २ ॥

[६११] (सप्ती अश्वा इव अदने) वेगवान् घोडे घास खानेको मिलनेपर जैसे आनंदित होते हैं, उस तरह (सुते सचाँ ओकिवांसा) यज्ञमें सोमरस मिलनेपर आनंदित होते हैं । हे (वज्रिणा इन्द्राग्नी अग्नी अवसा इह) हे वज्रधारी इन्द्र और अग्नि ! अपनी रक्षण शक्तिके साथ यहां आओ, ऐसी (देवा) हे देवों ! (वयं हवामहे) हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

[६१२] हे (इन्द्र-अग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सुतेषु वां यः स्तवत्) यज्ञोंमें तुम्हारी जो स्तुति करता है, (तेषु ऋता-वृधा) उनके संबंधमें तुम सत्य भाव बढानेवाले होकर (जोषवाकं वदतः) उनसे संतोषका भाषण बोलते हो । हे (पज्र-होषिणा देवा) शक्तिमान घोषणा करनेवाले देवों ! (न भसथः चन) उन भक्तोंका विनाश तुम नहीं करते ॥ ४ ॥

[६१३] (इन्द्राग्नी देवौ) हे इन्द्र और अग्नि देवों ! (कः मर्तः) कौन मानव भला (वां अस्य चिकेतति) आपके इस कार्यको पूर्णतया जान सकता है ? आपमेंसे (एकः) एक इन्द्र (समाने रथे) एक ही रथको (विषूचः अश्वान् युयुजानः) विविध दिशाओंमें जानेवाले घोडोंको जोतकर (आ ईयते) जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों रक्षक और वीर हो, यज्ञोंमें तुमने जो पराक्रम किए हैं, उन पराक्रमोंका वर्णन हम करते हैं । तुम्हारे पराक्रमके कारण ही देवोंके शत्रु मारे गए हैं । पर तुम नष्ट नहीं हुए ॥ १ ॥

इन्द्र और अग्निकी सारी महिमा सत्य है और स्तुत्य है । इन दोनोंको उत्पन्न करनेवाला भी एक ही ईश्वर है और इनकी माता अदिति भी एक ही है ॥ २ ॥

जिस तरह दाना और घास मिलनेपर घोडे आनंदित होते हैं, उसी तरह यज्ञमें सोमरसके मिलनेपर ये इन्द्र और अग्नि दोनों देव आनन्दित होते हैं । हे वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र और अग्नि ! अपनी संरक्षणशक्तिसे युक्त होकर तुम यहां आओ, ऐसी हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! हे इन्द्र और अग्ने ! यज्ञोंमें जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसके बारेमें तुम सत्यभाव बढानेवाले होकर उन्हें सन्तोष दे, ऐसे वचन तुम बोलते हो । ऐसे भक्तोंका तुम विनाश नहीं करते हो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और अग्नि देवो ! तुम्हारे कामकी मर्यादाको भला कौन मानव प्राप्त कर सकता है ? इनके काम इतने विस्तृत हैं कि इनकी मर्यादाका पता लगाना असंभव है । इन देवोंमें सूर्यरूपी इन्द्र अपने रथके किरणरूपी घोडोंको सभी दिशाओंमें पहुंचाता है ॥ ५ ॥

६१४ इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत् त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत् ॥ ६ ॥
६१५ इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥ ७ ॥
६१६ इन्द्राग्नी तपन्ति माऽघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥
६१७ इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥
६१८ इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥

अर्थ— [६१४] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इयं अपात्) यह पादरहित उषा (पद्वतीभ्यः पूर्वा अगात्) पांववालोंसे पहिले जाती है। (शिरः हित्वी) सिरको कंपित करके (जिह्वया वावदत्) जिह्वासे बोलती है और साथ-साथ (चरत्) चलती भी है। इस तरह (त्रिंशत् पदा नि अक्रमीत्) तीस पांव आक्रमण करती है ॥६॥

[६१५] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (हि नरः बाह्वोः धन्वानि) वीर नेतालोग बाहुओंपर धनुष्य (आ तन्वते) सज्ज रखते हैं। (अस्मिन् महाधने) इस युद्धमें (गविष्टिषु नः मा परा वर्क्तं) इस गौकी प्राप्तिके कार्यमें हमें छोडकर पीछे न चले जाइये ॥ ७ ॥

[६१६] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (अघाः अर्यः अरातयः) पापी दुष्ट शत्रु (मा तपन्ति) मुझे ताप देते हैं। (द्वेषांसि अपाकृतं) उन द्वेष करनेवाले शत्रुओंको दूर करो, (सूर्यात् अधि युयुतं) सूर्यसे उनको दूर करो, उनको अन्धेरेमें रखो ॥ ८ ॥

[६१७] हे इन्द्र और अग्नि ! (दिव्यानि पार्थिवा) द्युलोकमें और पृथिवीपर जो (वसु) धन है वह सब (युवोः अपि) तुम्हारा ही है। (विश्वायुपोषसं रयिं) सब आयुभर सब मानवोंका पोषण होगा, ऐसा धन (इह नः आ प्रयच्छतं) यहां हमें दे दो ॥ ९ ॥

[६१८] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! आप (उक्थवाहसा) सामगान सुननेवाले और (स्तोमेभिः हवनश्रुता) स्तोत्रोंसे प्रसन्न होनेवाले (विश्वेभिः गीर्भिः) हमारी सब प्रार्थनाओंको सुनकर (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसके पीनेके लिये (आ गतं) आओ ॥ १० ॥

भावार्थ- यह उषा पांवसे रहित है, फिर भी पांववाले प्राणियोंसे पूर्व ही उठकर वह चलने फिरने लगती है। प्राणी सोते रहते हैं, पर उषा अपने समयपर क्षितिजपर प्रकट हो जाती है और प्राणीयोंको प्रबुद्ध करती है ॥ ६ ॥

वीर नेताओंके हाथ हमेशा धनुषपर रहते हैं अर्थात् वे वीर हमेशा युद्धके लिए तैय्यार रहते हैं। ऐसे वीर धनके लिए किए जानेवाले युद्धमें सदा हमारे सहायक रहें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और अग्नि ! पापी शत्रु दुष्ट मुझे ताप दे रहे हैं, उनको दूर करो। सूर्यप्रकाशसे दूर उनको रखो। यह दण्ड उनको दो ॥ ८ ॥

सब आयुभर पोषण हो, सब मानवोंका पोषण हो। सब आयुभर अपने सब मनुष्योंका पोषण हो ऐसा धन यहां हमें दो ॥ ९ ॥

+

[६०]

(ऋषिः— बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। देवता— इन्द्राग्नी। छन्दः— गायत्री; १–३, १३ त्रिष्टुप्, १४ बृहती, १५ अनुष्टुप्।)

६१९ श्नथद् वृत्रमुत सनोति वाज—मिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात्।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥ १ ॥
६२० ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नून—मपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥ २ ॥
६२१ आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मै—रिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक्।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्रा—ऽग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥
६२२ ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्। इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥

---

[६०]

अर्थ— [६१९] (यः इन्द्रा अग्नी सहुरी सपर्यात्) जो इन्द्र और अग्निका सूर्योदयके समय पूजा करता है, वह (वृत्रं श्नथत्) शत्रुको मारता है, और (वाजं सनोति) अन्न प्राप्त करता है। वे (सहस्तमा) बलवान् (सहसा वाजयन्ता) सामर्थ्यसे शक्तिमान् हैं (भूरेः वसव्यस्य इरज्यन्ता) और बहुत धनके दाता हैं ॥ १ ॥

[६२०] हे (इन्द्र) इन्द्र! हे (अग्नि) अग्नि! (नूनं) निश्चयसे जिन्होंने (गाः अपः स्वः उषसः) गौवों, जलप्रवाहों और प्रकाश और उषाओंको (ऊळ्हाः) उठाया है, जो दूर ले गये हैं (ताः अभियोधिष्ट) उनसे लडो। हे इन्द्र और (नियुत्वान् अग्ने) उत्तम घोडोंको रथसे जोतनेवाले अग्ने! (दिशः स्वः उषसः) दिशाएं, स्वर्गीय प्रकाश, उषाएं (चित्रा गाः अपः) चित्रविचित्र गौवें और जलप्रवाहोंको (युवसे) तुम भक्तोंको दो ॥ २ ॥

[६२१] हे (इन्द्र अग्ने) इन्द्र और हे अग्ने! हे (वृत्रहणा) वृत्रोंको मारनेवालों! (वृत्रहभिः शुष्मैः) वृत्रमारक सामर्थ्योंसे और (नमोभिः) अन्नोंसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे पास आओ। हे इन्द्र और अग्ने! (युवं उत्तमेभिः अकवेभिः राधोभिः) तुम उत्तम निर्दोष धनोंके साथ (अस्मे भवतं) हमारे होकर रहो ॥ ३ ॥

[६२२] (ययोः इदं पुरा कृतं विश्वं) जिन्होंने यह विश्व पहिले किया था, (पप्ने) जिनकी प्रशंसा हो रही है। (ता हुवे) उनको मैं बुलाता हूं। वे (इन्द्राग्नी न मर्धतः) इन्द्र और अग्नि किसीका नाश नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने! तुम दोनों सामगान सुननेवाले और स्तोत्रोंसे प्रसन्न होनेवाले हो, इसलिए हमारी सब प्रार्थना सुनकर हमारे द्वारा दिए सोमरसको पीनेके लिए आओ ॥ १० ॥

सूर्यके उदय होनेके समय जो इन्द्र और अग्निकी पूजा करता है, वह अपने शत्रुओंको मारता है और अन्न प्राप्त करता है। ये दोनों देव बलवान् और सामर्थ्यसे शक्तिमान् हैं और बहुतसे धनके दाता हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र और अग्ने! जो गौ, जल, प्रकाश आदि पदार्थोंको चुरानेवाले हैं, उन शत्रुओंको तुम नष्ट करो तथा जो तुम्हारे भक्त हैं, उन्हें स्वर्गीय प्रकाश, गाय और उत्तम जलोंको प्रदान करो ॥ २ ॥

हे देवो! अपने शत्रुनाशक सामर्थ्योंसे और अन्नोंसे हमारी ओर आओ तथा शुद्ध पवित्र धनसे युक्त होकर तुम हमारे पास ही सदा रहो ॥ ३ ॥

इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंने यह सारा विश्व बनाया इसी कारण इन दोनोंकी प्रशंसा होती है। उन दोनों देवोंको मैं बुलाता हूं। वे देव किसीका भी नाश न करें ॥ ४ ॥

६२३ उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥
६२४ हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥
६२५ इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शंभुवा सुतम् ॥ ७ ॥
६२६ या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥
६२७ ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥
६२८ तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् । कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥

अर्थ— [६२३] (इन्द्राग्नी) ये इन्द्र और अग्नि (उग्रा) बलवीर हैं (मृधे विघनिना) युद्धमें शत्रुको मारनेवाले हैं, (हवामहे) इनको मैं बुलाता हूं । (ता नः ईदृशे मृळात) वे हमें ऐसे समयमें सुखी रखें ॥ ५ ॥

[६२४] हे (आर्या) आर्यों ! (वृत्राणि हतः) शत्रुओंको मारो, हे (सत्पती) सज्जनोंके पालनकर्ता ! (दासानि हतः) दासों-विनाशकोंको मारो तथा (विश्वाः द्विष अप हतः) सब शत्रुओंको मारो ॥ ६ ॥

[६२५] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इमे स्तोमाः) ये स्तोत्र (युवां अभि अनूषत) आपकी स्तुति करते हैं । हे (शंभुवा) मंगल करनेवाले देवो ! (सुतं पिबतं) यह सोमरस पीओ ॥ ७ ॥

[६२६] हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (या पुरुस्पृहः वां नियुतः) जो अनेकों द्वारा प्रशंसित, तुम्हारी घोडियां हैं (ताभिः दाशुषे आगतं) उनसे दाताके पास आओ ॥ ८ ॥

[६२७] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! हे (नरा) नेताओं ! (इदं सुतं सवनं) इस सोमरसके पास (सोमपीतये) सोम पीनेके लिये (उप आ गच्छतं) आओ ॥ ९ ॥

[६२८] (यः अर्चिषा) जो अपने ज्वालाओंसे (विश्वा वना परिष्वजत्) सब वनोंको घेरता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) जिह्वासे सबको काला करता है (तं ईळिष्व) उस अग्निकी स्तुति करो ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र और अग्नि ये दोनों देव बहुत वीर हैं और युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाले हैं, वे दोनों देव हमें हमेशा सुखी रखें ॥ ५ ॥

हे श्रेष्ठ देवो ! तुम शत्रुओंको मारो, हे सज्जनोंका पालन करनेवाले देवों, तुम दास बनानेवालोंका विनाश करो । इनके अलावा और भी जितने शत्रु हैं, उन सबका नाश करो ॥ ६ ॥

हे देवो ! ये स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम दोनों कल्याण करनेवाले हो, इसलिए हमारा कल्याण करो ॥ ७ ॥

सबको उत्तम मार्गपर ले जानेवाले इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों अपने वाहनोंसे धनको देनेवाले मनुष्योंके पास आओ ॥ ८ ॥

हे नेताओ ! हम तुम्हें पीनेके लिए ये सोमरस प्रदान करते हैं, इसलिए तुम दोनों सोम पीनेके लिए हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

यह अग्नि अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको घेरता है और जलाकर सबको काला करता है, ऐसे सर्वभक्षी अग्निकी स्तुति करनी चाहिए, ताकि वह हमपर सदा प्रसन्न रहे ॥ १० ॥

६२९ य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरां अपः ॥ ११ ॥
६३० ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ १२ ॥
६३१ उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥ १३ ॥
६३२ आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यैरुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शंभुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ १४ ॥
६३३ इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥

अर्थ— [६२९] (यः मर्त्यः) जो मनुष्य (इन्द्रस्य सुम्नं) इन्द्रके उत्तम मन होनेके लिये (इद्धे आविवासति) प्रदीप्त अग्निमें हवन करता है. (द्युम्नाय) उसके तेजके संवर्धनके लिये (अपः सुतराः) दुःखके जलप्रवाह सुखसे तैरने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥

[६३०] (ता नः वाजवतीः इषः) वे तुम हमें बल बढानेवाला अन्न देवो और (इन्द्रं अग्निं च वोळ्हवे) इन्द्र और अग्निको ले जानेके लिये (आशून् अर्वतः पिपृतं) वेगवान् घोडोंको पुष्ट करो ॥ १२ ॥

[६३१] (उभा इन्द्राग्नी) दोनों इन्द्र और अग्नि है। (वां आहुवध्यै) तुम दोनोंको हम बुलाते हैं। (उभा) दोनों (राधसः सह मादयध्यै) संसिद्ध धनसे साथ साथ प्रसन्न होते हो। (इषां रयीणां उभा दातारा) अन्नों और धनोंके तुम दोनों दाता हो। (वाजस्य सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (वां उभा हुवे) तुम दोनोंको बुलाता हूं ॥ १३ ॥

[६३२] (गव्यैः) गौवों, (अश्व्यैः) घोडों, (वसव्यैः) धनोंके साथ (नः उप आगच्छतं) हमारे समीप आओ। (सखायौ देवौ) तुम मित्र देव हो, (शंभुवा इन्द्राग्नी) कल्याण करनेवाले इन्द्र और अग्नि (ता सख्याय हवामहे) उनको मित्रताके लिये मैं अपने पास बुलाता हूं ॥ १४ ॥

[६३३] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सुन्वतः यजमानस्य) सोमरस निकालनेवाले यज्ञकर्ताकी (हवं शृणुतं) प्रार्थना सुनो। (हव्यानि वीतं) हवन द्रव्योंकी इच्छा करो। (आगतं) आओ और (सोम्यं मधु पिबतं) सोमका मधुर रस पीओ। ॥ १५ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य इन्द्रको प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए प्रदीप्त अग्निमें हवन करता है, वह इन्द्रके तेजको प्राप्त करके दुःखोंको भी आसानीसे पार कर जाता है ॥ ११ ॥

हे देवो ! तुम दोनों हमें बल बढानेवाला अन्न प्रदान करो और हम भी हमारा पोषण करनेवाले तुम्हें पुष्ट करते रहें ॥ १२ ॥

मैं इन्द्र और अग्नि दोनों देवोंको बुलाता हूँ, दोनों देव मुझे धन देकर सुखी करें। मैं अन्न प्राप्तिके लिए दोनों देवोंको बुलाता हूँ ॥ १३ ॥

हे दोनों देवो ! तुम दोनों मित्रके समान हित करनेवाले हो, तुम दोनों हमारा कल्याण करनेवाले हो, इसलिए मैं अपनी मित्रताके लिए तुम्हें बुलाता हूँ ॥ १४ ॥

हे देवो ! सोमरस निकालनेवाले यज्ञकर्ताकी प्रार्थना सुनो तथा यज्ञकर्ता जो हवि देता है, उसे प्रसन्नतासे स्वीकार करो, ऐसे मनुष्यके पास जाकर सोमका मधुर रस पीओ ॥ १५ ॥

[६१]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - सरस्वती । छन्दः- गायत्री, १-३, १३ जगती; १४ त्रिष्टुप् ।)

६३४ इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥ १ ॥

६३५ इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥ २ ॥

६३६ सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ३ ॥

६३७ प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥

---

[६१]

अर्थ— [६३४] (इयं) इस सरस्वतीने (दाशुषे वध्र्यश्वाय) दाता वध्र्यश्वके लिये (रभसं ऋणच्युतं दिवोदासं) वेगवान्, ऋण फेडनेवाला दिवोदास नामक पुत्र (अददात्) दिया। (या शश्वंतं अवसं पणिं) जिसने सदा कष्ट देनेवाले धनवान् कंजूसका (आ चखाद) नाश किया, हे सरस्वति ! (ता ते तविषा दात्राणि) वे तेरे बलशाली दान हैं ॥ १ ॥

[६३५] (इयं) यह सरस्वती (बिस-खाः इव) कमलके मूलको तोडनेवालोंके समान (शुष्मेभिः तविषेभिः ऊर्मिभिः) अपनी बलवान्, वेगवान् लहरियोंसे (गिरीणां सानु अरुजत्) पर्वतोंके ऊंचे भाग तोड देती है। हम (पारावत-घ्नी सरस्वतीं) दूसरे आघात करनेवाली सरस्वतीकी (सुवृक्तिभिः धीतिभिः) उत्तम भक्तिसे और धारणापूर्वक (अवसे आविवासेम) अपने संरक्षणके लिये सेवा करते हैं ॥ २ ॥

[६३६] हे (सरस्वती) सरस्वती ! (देव-निदः प्रजां निबर्हय) ईश्वरकी निंदा करनेवाली प्रजाका नाश कर। तथा (विश्वस्य मायिनः बृसयस्य) उसी प्रकार सब कपटी दुष्टोंकी प्रजाका नाश कर। (उत क्षितिभ्यः) और मानवोंके हितके लिये (अवनीः अविंदः) संरक्षक भू-भागको प्राप्त किया। हे (वाजिनीवति) अन्न देनेवाली ! (एभ्यः विषं अस्रवः) इन लोकोंके लिये तूने उदकके प्रवाह चलाये हैं ॥ ३ ॥

[६३७] (देवी सरस्वती) देवी सरस्वती (वाजेभिः वाजिनीवती) अन्नोंसे अन्नवाली (नः धीनां अवित्री प्र अवतु) हमारी बुद्धियोंका रक्षण करनेवाली हमारा रक्षण करें ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस सरस्वतीने दानशीलको देवोंकी भक्ति करनेवाला पुत्र दिया। इसीने कष्ट देनेवाले तथा धनवान् होनेपर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यका नाश किया ॥ १ ॥

यह सरस्वती नदी अपने वेगवान् प्रवाहोंसे पर्वतोंके ऊंचाईके भू-भागोंको तोडती है। ऐसी इस सरस्वती नदीकी सेवा हम उत्तम भक्तिभावके साथ अपना संरक्षण हो इस उद्देश्यसे करते हैं ॥ २ ॥

हे सरस्वती ! तू ईश्वरकी निन्दा करनेवाले मनुष्यका नाश कर। कपट करनेवाले दुष्टोंको नष्ट कर। सज्जनोंको मानवोंका हित करनेके लिए उपजाऊ भूमि प्रदान कर। तू जलके प्रवाह चलाकर सभी भूमिको उपजाऊ बना ॥ ३ ॥

सरस्वती अनेक प्रकारके अन्न देनेके कारण अन्नवाली है। अतएव बल देनेवाली भी है। नदीसे अन्न उत्पन्न होते हैं यह सब जानते हैं। हमारी बुद्धियोंका रक्षण करके हमारी सुरक्षा करे ॥ ४ ॥

६३८ यस्त्वा देवि सरस्व॒त्युपब्रूते धने॑ हि॒ते । इन्द्रं॒ न वृ॑त्र॒तूर्ये॑ ॥ ५ ॥
६३९ त्वं दे॑वि सरस्व॒त्यवा॒ वाजे॑षु वाजिनि । रदा॑ पू॒षेव॑ नः स॒निम् ॥ ६ ॥
६४० उ॒त स्या नः॒ सर॑स्वती घो॒रा हिर॑ण्यवर्तनिः । वृ॒त्र॒घ्नी व॑ष्टि सुष्टु॒तिम् ॥ ७ ॥
६४१ यस्या॑ अन॒न्तो अह्रु॑त॒स्त्वे॒षश्च॑रि॒ष्णुर॑र्ण॒वः । अम॒श्चर॑ति॒ रोरु॑वत् ॥ ८ ॥
६४२ सा नो॒ विश्वा॒ अति॒ द्विषः॒ स्वसॄ॑र॒न्या ऋ॒ताव॑री । अत॒न्नहे॑व॒ सूर्यः॑ ॥ ९ ॥
६४३ उ॒त नः॑ प्रि॒या प्रि॒यासु॑ स॒प्तस्व॑सा॒ सुजु॑ष्टा । सर॑स्वती॒ स्तोम्या॑ भूत् ॥१०॥

अर्थ— [६३८] हे (देवी सरस्वति) सरस्वती देवी ! (धने हिते) युद्ध शुरू होनेपर (यः त्वा उपब्रूते) जो तेरी प्रार्थना करता है [उसका रक्षण तू करती है] (वृत्रतूर्ये इन्द्रं न) वृत्र हननके लिये जैसा इन्द्रको [बुलाते हैं। वैसे लोग तुझे बुलाते हैं।] ॥ ५ ॥

[६३९] हे (वाजिनि देवि सरस्वति) हे बलशालिनी सरस्वती देवी ! (त्वं वाजेषु अव) तू युद्धोंमें हमारा रक्षण कर। और (पूषा इव) पूषाके समान (नः सनिं रद) हमें धन दे ॥ ६ ॥

[६४०] (उत घोरा हिरण्यवर्तनिः सरस्वती) और उग्रवीरा, सुवर्णके रथके चक्रवाली यह सरस्वती (वृत्रघ्नी) वृत्रनाशक है, (नः सु-स्तुतिं वष्टि) और हमारी उत्तम स्तुतिस्तोत्र सुननेकी इच्छा करती है ॥ ७ ॥

[६४१] (यस्याः) जिसका (अनंतः त्वेषः अन्हुतः) अमर्याद, वेगवान् न रुका रहनेवाला (चरिष्णुः अर्णवः अमः) नित्य चलनेवाला जलका वेग (रोरुवत् चरति) गर्जना करता हुआ चलता है ॥ ८ ॥

[६४२] (सा नः विश्वा द्विषः अति) वह सरस्वती हमारे सब शत्रुओंको दूर करती है। वह (ऋतावरी) सत्य प्रिय सरस्वती (अन्याः स्वसॄः) अन्य बहिनों–नदियोंके पार हमें ले जाती है, (सूर्यः अहा अतन् इव) जैसा सूर्य दिनमें प्रकाश फैलाता है (वैसी यह सरस्वती यश फैलावे) ॥ ९ ॥

[६४३] (उत नः प्रियासु प्रिया) और हमारे लिये यह प्रियोंमें प्रिय है और (सुजुष्टा सप्त स्वसा) उत्तम सेवाके योग्य यह सात बहिनों–सात नदियोंमें है। (सरस्वती स्तोम्या भूत्) यह सरस्वती प्रशंसनीय हुई है ॥ १० ॥

भावार्थ— हे सरस्वती ! युद्धके शुरू होनेपर जो तेरी स्तुति करता है और तुझे सहायताके लिए बुलाता है, उसकी तू रक्षा करती है। लोग वृत्रका नाश करनेके लिए जिस तरह इन्द्रको बुलाते हैं, उसी तरह शत्रुओंका नाश करनेके लिए तुझे बुलाते हैं ॥ ५ ॥

हे बलसे युक्त सरस्वती ! तू युद्धोंमें हमारी रक्षा कर और पूषाके समान हमें धन प्रदान कर ॥ ६ ॥

भयंकर वीरतासे युक्त तथा सोनेके रथपर चढकर आनेवाली सरस्वती शत्रुओंका नाश करनेवाली है, पर जो सज्जन हैं, उनकी स्तुति सुनकर प्रसन्न होती है ॥ ७ ॥

सरस्वती नदीका प्रवाह अमर्याद, वेगशाली, कभी भी न रुकनेवाला और गर्जना करता हुआ चलनेवाला है ॥ ८ ॥

यह सरस्वती देवी हमारे सब शत्रुओंको दूर करे, वह हमें अन्य नदियोंके पार ले जावे, तथा जिस प्रकार दिनमें सूर्य प्रकाश फैलाता है, उसी तरह सरस्वती हमारा यश फैलावे ॥ ९ ॥

यह सरस्वती हमारे लिए प्रियोंमें प्रिय है, तथा यह सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण यह सरस्वती सर्वाधिक प्रशंसनीय है ॥ १० ॥

६४४ आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

६४५ त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥

६४६ प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

६४७ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मापं स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत् क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥ १४ ॥

अर्थ— [६४४] (पार्थिवानी आपप्रुषी) पार्थिव धनोंको देनेवाली और (उरु रजः अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्षको अपने तेजसे भरनेवाली (सरस्वती निदः पातु) सरस्वती निन्दकोंसे हमारी सुरक्षा करे ॥ ११ ॥

[६४५] (त्रि सधस्था) तीन स्थानोंमें रहनेवाली, (सप्त धातुः) सात धारक शक्तियोंसे युक्त (पञ्च जाता वर्धयन्ती) पांच जातिके मानवोंको बढानेवाली वह सरस्वती (वाजे वाजे हव्या भूत्) प्रत्येक युद्धमें प्रार्थना करने योग्य होती है, प्रत्येक कर्ममें प्रशंसनीय है ॥ १२ ॥

[६४६] (या महिम्ना महिना) जो महत्वके योगसे, और प्रभावसे तथा (द्युम्नेभिः) तेजोंसे (आसु प्र चेकिते) इन नदियोंमें श्रेष्ठ दीखती है, (अपसां अपस्तमा अन्याः) अन्य प्रवाहोंमें जिसका प्रवाह अधिक वेगवान् है ; (रथः इव बृहती) रथके समान जो प्रशस्त है, (विभ्वने कृता) जो व्यापक प्रभुने निर्माण की है वह (चिकितुषा सरस्वती उपस्तुत्या) ज्ञानयुक्त सरस्वती प्रशंसाके लिये योग्य है ॥ १३ ॥

[६४७] हे (सरस्वती) सरस्वती ! (नः वस्यः अभिनेषि) हमें अभीष्ट धनके पास ले चल । (पयसा मा अप स्फरीः) अपने जलप्रवाहसे हमें कष्ट न पहुंचाओ । (नः मा आ धक्) हमें दूर न कर । (नः सख्या वेश्या च जुषस्व) हमारी सेवा और मित्रताका स्वीकार कर । (त्वत् क्षेत्राणि अरणानि मा गन्म) तुझे छोडकर दूसरे खेतोंमें हमें जाना न पडे ऐसा कर ॥ १४ ॥

भावार्थ— पार्थिव धनोंको देनेवाली और विशाल अन्तरिक्षको अपने तेजसे भरनेवाली यह सरस्वती निन्दा करनेवालोंसे हमारी रक्षा करे ॥ ११ ॥

यह सरस्वती तीन प्रदेशोंमें बहनेवाली तथा अपने आसपासके प्रदेशोंसे सातों धातुओंको रखनेवाली और हर तरहके मनुष्यका हित करनेवाली है, इसलिए यह प्रत्येक युद्धमें प्रार्थना करने योग्य है ॥ १२ ॥

यह सरस्वती अपने महत्त्व और प्रभावके कारण तथा अपने तेजोंसे सभी नदीयोंमें श्रेष्ठ है । अन्य नदियोंके प्रवाहोंसे इस नदीका प्रवाह वेगवान् है । इसे व्यापक प्रभुने निर्माण किया है ॥ १३ ॥

हे सरस्वती ! तू हमें अभीष्ट धनके पास ले चल । जिस तरहके धनकी हमें आवश्यकता हो, वह हमें दे । अपने जलप्रवाहसे हमें कष्ट मत पहुंचा, हमें अपने पाससे दूर मत कर ! हम जो तेरी सेवा करके तुझसे मित्रता करना चाहते हैं, उन्हें तू स्वीकार कर । तुझे छोडकर हम अन्यत्र न जाएं ॥ १४ ॥

[६२]

(ऋषिः - बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - अश्विनौ । छन्दः - त्रिष्टुप् ।)

६४८ स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता ऽश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान् युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥ १ ॥

६४९ ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमाना ऽपो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥

६५० ता ह त्यद् वर्तिर्यदरध्रमुग्रे—त्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

६५१ ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मो—प भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत् प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥ ४ ॥

अर्थ— [६४८] हे (दिवः नरा) दिव्य नेताओं ! (अस्य प्रसन्ता अश्विना) इस दृश्यमान् जगत्के प्रशासक होते हुए अश्विदेवोंकी (अर्कैः जरमाणः) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करता हुआ मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं । (सद्यः) तत्काल (उस्रा या) शत्रुको उखाड देनेवाले ये दो देव (व्युषि) उषःकालमें (ज्मः अन्तान्) पृथिवीके अन्ततक (उरु वरांसि) विशाल अन्धेरेको (परि युयूषतः) हटा देते हैं ॥ १ ॥

[६२]

[६४९] (यज्ञं शुचिभिः) यज्ञके पास निर्मल तेजोंके साथ आते हुए (ता) वे दो देव (आ चक्रमाणा) आते समय (रजोभिः) अपने तेजोंके साथ (रथस्य भानुं) रथके तेजको (रुरुचुः) प्रदीप्त करते हैं । (अमिता पुरु) असंख्य बहुतसे (वरांसि मिमाना) श्रेष्ठ धनोंको उत्पन्न करके (धन्वानि अति) मरु देशोंको पार कर (अज्रान् अपः याथः) घोडोंको जलके समीप ले चलते हैं ॥ २ ॥

[६५०] (उग्रा ता ह) उग्र शूर ये दो वीर (यत् अरध्रं) दरिद्रतासे युक्त भक्तके (त्यत् वर्तिः) उस घरके प्रति (इत्था) इस प्रकार (मनोजवेभिः) मनके तुल्य वेगवान् (इषिरैः अश्वैः) इशारेसे चलनेवाले घोडोंसे (शश्वत्) सदा (धियः ऊहतुः) बुद्धियुक्त कर्मोंको करनेके लिये आते हैं और (दाशुषः मर्त्यस्य व्यथिः) दाता मानवको कष्ट पहुंचानेवालेको (परि शयध्यै) लंबी निद्रामें सुलाते हैं ॥ ३ ॥

[६५१] (शुभं पृक्षं) उत्तम अन्न (इषं ऊर्जं वहन्ता) पुष्टि तथा बल बढानेके लिये ढोते हुए (युयुजान सप्ती ता) घोडोंको जोतनेवाले वे दोनों (नव्यसः जरमाणस्य मन्म) नये स्तोताके मननीय स्तोत्रकी (उप भूषथः) समीप जाकर शोभा बढाते हैं । (अध्रुक् प्रत्नः होता) द्रोह न करनेवाला पुराना होता (युवाना यक्षत्) युवक अश्वि देवोंको हवि अर्पण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— अश्विनी देव इस दृश्य जगत्के प्रशासक हैं, उन अश्विदेवोंकी मैं उत्तम स्तोत्रोंसे प्रशंसा करता हूं । शत्रुओंके विनाशक वे देव उषःकाल पृथ्वीपर फैले हुए अन्धकारको हटा देते हैं ॥ १ ॥

जब ये दोनों देव यज्ञके पास अपने निर्मल तेजोंसे युक्त होकर आते हैं, तब उनके तेजके कारण उनके रथ भी तेजसे दमकने लगते हैं । ॥ २ ॥

वे दोनों देव अपने दरिद्र भक्तके पास भी आते हैं, और ऐसे भक्तोंको जो कष्ट पहुंचाता है, उसे लम्बी नींदमें सुला देते हैं, अर्थात् उसे नष्ट कर देते हैं । सत्कर्म करनेवाला गरीब हो, तो भी उसे सहायता पहुंचाकर उसके यज्ञकर्मको सफल बनाना चाहिये और जो सज्जनोंको पीडा देते हैं, उनको नष्ट करना चाहिये ॥ ३ ॥

६५२ ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥ ५ ॥
६५३ ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात् तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥
६५४ वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥ ७ ॥
६५५ यद् रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥ ८ ॥

अर्थ— [६५२] (शंसते स्तुवते) विस्तारसे वर्णन करनेवाले और स्तुति करनेवालेको (या शंभविष्ठा) जो दो अश्विनी देव अत्यंत सुख देते हैं, और (गृणते चित्रराती बभूवतुः) स्तुति करनेवालेके लिये अद्भुत दान देनेवाले हो चुके हैं, (ता वल्गू दस्रा) उन दोनों सुन्दर और शत्रुनाशक (पुरुशाकतमा प्रत्ना) बहुत कार्य करनेकी शक्ति रखनेवाले पुरातन अश्विदेवोंको (नव्यसा वचसा) नवीन स्तोत्रसे (आ विवासे) पूर्णतया सन्तुष्ट करता हूं ॥ ५ ॥

[६५३] (तुग्रस्य पुत्रं भुज्युं) तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको (भुजन्ता ता) सुरक्षित रखनेवाले वे दोनों (समुद्रस्य अर्णसः) समुद्रके विशाल चमकीले (अद्भ्यः उपस्थात्) जलसमूहके समीपसे (अरेणुभिः रजोभिः) धूलिरहित स्थानोंसे (योजनेभिः) योजनापूर्वक (पतत्रिभिः विभिः) उडनेवाले पक्षीतुल्य विमानोंसे (निः ऊहथुः) उत्तम रीतिसे ले चले ॥ ६ ॥

[६५४] हे (वृषणा रथ्या) बलवान् और रथपर बैठनेवाले अश्विदेवों ! तुम (जयुषा) विजयी रथपरसे (अद्रिं वि यातं) पहाडको भी लांघकर जाते हैं ! (वध्रिमत्या हवं श्रुतं) वध्रिमतिकी पुकारको तुमने सुना । (दशस्यन्ता) दान देनेवाले तुम दोनों ! तुमने (शयवे गां पिप्यथुः) शयुके लिये गौको पुष्ट किया । (इति सुमतिं च्यवाना) इस रीतिसे उत्तम बुद्धि रखनेवाले तुम दोनों सबके (भुरण्यू) पोषणकर्ता होते हो ॥ ७ ॥

[६५५] (यत्) जो (देवानां उत मर्त्यत्रा) देवोंमें या मानवोंमें विद्यमान (प्रदिवः भूम हेळः अस्ति) अत्यन्त बडा भारी क्रोध है, (तत् तपुः अघं) वह तापदायक पापरूपी दुःख, हे आदित्यों, वसुओं, और रुद्रों तथा द्यावापृथिवी ! (रक्षो युजे दधात) राक्षसोंके लिये रखो ॥ ८ ॥

भावार्थ— ये अश्विनीकुमार उत्तम, रोगीके रोगको दूर करके उसे पुष्ट करनेवाले, पोषण तथा बल बढानेवाले अन्नको तैय्यार करके रोगीको देनेके लिये अश्विनी कुमार अपने रथमें रखकर ले जाते हैं ॥ ४ ॥

जो मनुष्य इनके कार्मोका विस्तारसे वर्णन करता है और तदनुसार इनकी स्तुति करता है, उसे ये देव अत्यन्त सुख प्रदान करते हैं । इसलिए मैं इन दोनों सुन्दर और शत्रुनाशक कार्य करनेवाले अश्विनीकुमारोंको पूर्णतया सन्तुष्ट करता हूं ॥ ५ ॥

तुग्र नरेशका पुत्र भुज्यु देशान्तरमें युद्धके लिये गया था । वहां वह पराभूत हुआ । तब अश्विदेवोंने अपने पक्षी सदृश विमानोंसे उसे आकाशमार्गसे घर पहुंचाया । धूलिरहित मार्गोंसे अन्तरिक्षके आकाशमार्गसे पक्षिसदृश विमानोंसे उसको घरतक पहुंचा दिया ॥ ६ ॥

अश्विदेव बलिष्ठ और रथपर चढनेवाले हैं । विजयी रथपरसे वे पर्वतोंको भी लांघ जाते हैं, उत्तम गतिवालेकी प्रार्थना सुनते हैं, दान देते हैं, गायोंको दुधारु बनाते हैं और अपने भक्तोंको उत्तम सलाह देते हैं ॥ ७ ॥

हे देवो ! जो क्रोध तुम्हारे और मनुष्योंके अन्दर विद्यमान हो, वह तापदायक और दुःखदायक क्रोध केवल सज्जनों और दुष्टोंके लिए हो, वह क्रोध शत्रुओंपर प्रकट न हो ॥ ८ ॥

६५६ य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥ ९ ॥
६५७ अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥ १० ॥
६५८ आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥ ११ ॥

[६३]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, ९ विराट्, ११ एकपदा त्रिष्टुप् ।)

६५९ क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥

अर्थ— [६५६] (यः ईं) जो इन (रजसः राजानौ) लोकोंके अधिपति अश्विदेवोंकी (ऋतुथा विदधत्) ऋतुके अनुसार सेवा करते हैं, उस कार्यको मित्र और वरुण (चिकेतत्) जानते हैं। और वे (अस्य हेतिं) इसके आयुधको (द्रोघाय, आनवाय वचसे चित्) द्रोह करनेवालेके ऊपर तथा असभ्रवाणी बोलनेवालेके ऊपर अथवा (गंभीराय रक्षसे) प्रबल राक्षसके नाशके लिये उपयोगमें लाते हैं ॥ ९ ॥

[६५७] (अन्तरैः चक्रैः) दूरतक जानेवाले चक्रोंसे युक्त (द्युमता नृवता रथेन) तेजस्वी मानवी वीरोंको ले जानेवाले रथपर बैठकर (तनयाय) संतानको सुख देनेके लिये (वर्तिः आयातं) घर आ जाओ। (मर्त्यस्य वनुष्यतां) मानवोंको कष्ट देनेवालेके (शीर्षा) सिर (सनुत्येन त्यजसा) तिरस्करणीय क्रोधसे (अपि ववृक्तं) अलग कर डालो ॥ १० ॥

[६५८] (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः) श्रेष्ठ, मध्यम और तीसरे दर्जेके (नियुद्भिः) वाहनोंसे (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ। (गृणते चित्रराती) स्तोताको विलक्षण दान देनेवाले तुम दोनों अश्विनौ (दृळ्हस्य चित् गोमत व्रजस्य) सुदृढ गौवोंसे भरे बाडेके (दुरः विवर्तं) द्वार खोल दो ॥ ११ ॥

[६३]

[६५९] (त्या पुरुहूता वल्गू क) वे दोनों बहुतों द्वारा प्रशंसित सुन्दर अश्विदेव कहां है ? (अद्य) आज (नमस्वान् स्तोमः) नमन युक्त स्तोत्र (दूतः न अविदत्) दूतके समान उनको प्राप्त हुआ है। (यः) जो स्तोत्र (नासत्या अर्वाक् आ ववर्त) अश्विदेवोंको हमारे समीप आकर्षित करता है। (अस्य मन्म) इस मननीय काव्यमें तुम दोनों (प्रेष्ठा हि असथः) अत्यंत रममाण हो जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य इन अश्विनी कुमारोंकी स्तुति करता है, उसके इस पवित्र कार्यको मित्र और वरुण आदि सभी देव जानते हैं। ऐसा उपासक मनुष्य भी अपने शस्त्रास्त्रोंका उपयोग द्रोह करनेवाले अथवा असभ्रवाणी बोलनेवालेके ऊपर ही करता है ॥ ९ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम दूरतक जानेवाले चक्रोंसे युक्त तथा तेजस्वी वीरोंको ले जानेवाले रथपर बैठकर सन्तानको सुख देनेके लिए घर आओ तथा जो मानवोंको कष्ट देता है उसका सिर तुम क्रोधका उपयोग करके अलग कर डालो ॥ १० ॥

हे अश्विनौ ! तुम हर तरहके वाहनोंसे हमारे पास आओ। घरके पास गौओंके बाडे हों, उनमें बहुतसी गायें रहें। ऐसे घरोंके पास वीर आवें और उनके दूध पीनेके लिए उन बाडोंके द्वार खोले जाएं ॥ ११ ॥

६६० अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रिषो न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ २ ॥
६६१ अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दाऽऽ वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥
६६२ ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात् प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥ ४ ॥
६६३ अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन् यज्ञियानाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६०] (अस्मै मे) इस मेरे पास (हवनाय अरं गन्तं) बुलानेपर तुम दोनों आओ। (यथा गृणानाः) जैसी-जैसी तुम्हारी स्तुति होगी वैसा-वैसा (अन्धः पिबाथ) सोमरस पीओ। (त्यत् वर्तिः ह) उस घरको अवश्य (रिषः परि याथः) हिंसक शत्रुसे बचाते रहो। (यत् न परः) जिस घरको न कोई दूसरा शत्रु (न अन्तरः) या न कोई समीपका शत्रु (तुतुर्यात्) नष्ट कर सके ऐसा प्रबंध करो ॥ २ ॥

[६६१] (वां अन्धसः वरीमन् अकारि) आपके लिये सोमरसको निचोडकर उत्तम स्थानमें रखा है। (सुप्रायणतमं बर्हिः) अत्यंत सुखदायक आसन तुम्हारे लिये (अस्तारि) फैलाकर रखा है। (युवयुः उत्तानहस्तः आववन्द) तुम दोनोंको चाहनेवाला हाथ ऊपर उठाकर नमन कर रहा है। (अद्रयः वां नक्षन्तः) सोम कूटनेके पत्थर तुम्हारी इच्छा करते हुए (आञ्जन्) इसको निकाल चुके हैं ॥ ३ ॥

[६६२] (अध्वरेषु वां) यज्ञोंमें अग्नि तुम दोनोंके लिये (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊर्ध्वगतिसे जल रहा है। (जूर्णिनी घृताची रातिः) गमनशील घीसे भरी कडछी (प्र एति) आगे बढ रही है। (यः हवीमन् नासत्या अयुक्त) जो हवनकर्ता मानव अश्विदेवोंके लिये हवि अर्पण करता है, वह (प्र होता) दानी (गूर्तमनाः) मन लगाकर कार्य करनेवाला (उराणः) विशेष कार्य करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

[६६३] हे (पुरुभुजा) बडी भुजावाले अश्विदेवों ! (शतोतिं रथं) सैकडों संरक्षणोंसे युक्त रथपर (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री उषा (श्रिये अधि तस्थौ) शोभाके लिये चढ बैठी है। (अत्र यज्ञियानां जनिमन्) यहां पूजनीयोंके जन्मके अवसरपर आनंदसे (नृतू) नृत्य करनेवाले (नरा मायिना) नेता कुशल अश्विदेव (मायाभिः प्रभूतं) अपनी अद्भुत शक्तियोंसे अत्यधिक प्रभावशाली बने हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— वे अश्विदेव जहांपर भी हों उनके पास इस स्तुतिको दूतके रूपमें भिजवाना चाहिए। इन स्तुतियोंसे आकर्षित होकर अश्विदेव हमारे पास आवें और हमारी स्तुतियोंमें आनन्द प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे देवो, हमारे घरपर आओ, और हमारी स्तुतियोंसे प्रशंसित होकर तुम सोमरसका पान करो। जिस घरमें तुम सोमका पान करते हो, उस घरको सदा संकटोंसे बचाते रहो। ऐसी व्यवस्था करो कि कोई भी दूर या पासका शत्रु इसे नष्ट न कर सके। वीर मनुष्य हमारे घरोंमें आवें और हमारे घरोंकी शत्रुओंसे रक्षा करें, तथा हमारे द्वारा सत्कृत होकर आनन्दसे हमारे यहां रहें ॥ २ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम्हारे लिए उत्तम सोमका रस निचोडकर रखा गया और तुम्हारे लिए सुखदायक आसन भी बिछाकर रखा हुआ है। साथ ही तुम्हें चाहनेवाला नम्रतापूर्वक तुम्हारी स्तुति कर रहा है ॥ ३ ॥

हे देवो ! यज्ञोंमें अग्नि तुम्हारे लिए जल रहा है। घीसे भरी हुई कडछी आगे बढ रही है, अर्थात् उत्तम हवि दी जा रही है। जो हवन करनेवाला मनुष्य तुम्हें प्रेमसे हवि अर्पण करता है, वह मन लगाकर कार्य करनेवाला होकर उत्तम कार्य करता है ॥ ४ ॥

६६४ युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन् नक्षद् वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥
६६५ आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जी- इषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥ ७ ॥
६६६ पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥ ८ ॥
६६७ उत मे ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥ ९ ॥

अर्थ— [६६४] हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् अश्विदेवों ! (युवं आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) तुम दोनों इन सुन्दर शोभाओंके साथ (सूर्यायाः शुभे) सूर्य पुत्री उषाके कल्याणके लिये (पुष्टिं ऊहथुः) पुष्टिकारक अन्न अपने साथ रथपर रखते हो । तथा (वां वपुषे) तुम्हारे शरीरकी पुष्टिके लिये (अनु वयः प्र पतन्) अनुकूल अन्न तुम्हें प्राप्त होता है । और (सुष्टुता वाणी) अच्छी स्तुतिकी वाणी (वां नक्षत्) तुम्हें प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

[६६५] हे (नासत्या) अश्विदेवों ! (वहिष्ठाः वयः अश्वासः) ढोनेवाले गतिशील घोडे (प्रयः वां अभि आवहन्तु) अन्नके पास तुम्हें ले आवें । (वां मनोजवः रथः) आपका मनोवेगका रथ (पूर्वीः पृक्षः) बहुतसी पुष्टिकारक (इषधः इषः अनु प्र सर्जि) अन्न सामग्रियोंको लाकर रखता है ॥ ७ ॥

[६६६] हे (पुरु भुजा) बडी भुजावालों ! (वां देष्णं पुरु हि) आपका दान बहुत होता है । (नः धेनुं) हमारे लिये तुमने गाय दी है । (असक्रां इषं पिन्वतं) दूसरेके पास न जानेवाली अन्नसामग्री तुमने दी है । (वां स्तुतः च माध्वी सुष्टुतिः च रसाः च) तुम दोनोंकी अच्छी स्तुति और मीठे सोमरस तैयार रखे हैं (ये वां रातिं अनु अग्मन्) जो तुम्हारे दानके अनुकूल रहते हैं ॥ ८ ॥

[६६७] (उत पुरयस्य रघ्वी ऋज्रे) और पुरयकी शीघ्रगामी घोडियां, (सुमीळ्हे शतं) सुमीळ्ह नरेशकी सौ गौवें (पेरुके च पक्वा) पेरुके पके फल, (हिरणिनः स्मद्दिष्टान् ऋष्वान्) सुवर्ण भूषण धारण करनेवाले सुन्दर रूपवाले दर्शनीय (अभिषाचः दश वशासः) शत्रुके पराभवकर्ता दश सेवकोंको (शाण्डः मे दात्) शाण्डने मुझे दिया है ॥ ९ ॥

भावार्थ— सैंकडों संरक्षणोंसे युक्त रथपर सूर्यकी पुत्री उषा शोभाके लिए जब बैठी तब अश्विनीकुमार अपनी अद्भुत शक्तियोंसे और अधिक शक्तिशाली बने ॥ ५ ॥

हे बुद्धिमान् अश्विनीकुमारो ! तुम सब अपनी शोभाओंके साथ पुष्टिकारक अन्न अपने साथ रखते हो । तुम्हें पुष्टिके लिये उत्तम अन्न प्राप्त होता है और उत्तम स्तुतियां भी प्राप्त होती हैं ॥ ६ ॥

वेगसे जानेवाले गतिशील घोडे अन्नके पास तुम्हें ले आवें, मनके समान वेगसे जानेवाले रथमें अनेक तरहके पुष्टिकारक अन्न रखे रहते हैं ॥ ७ ॥

हे बडी भुजाओंवाले अश्विनीकुमारो ! आपका दान बहुत महान् होता है । तुमने हमारे लिए गाय दी, जो दूसरोंके पास न हो, वैसे अन्न दिए । इसलिए तुम दोनोंके लिए मीठे सोमरस दिए गए हैं, वे सोमरस तुम्हारे दानके अनुकूल ही हैं ॥ ८ ॥

नगरकी रक्षा करनेवाले मनुष्यके पास शीघ्रगामी घोडियां हों, आनन्द प्रदान करनेवालेके पास अनेक गायें हों, सामर्थ्यवालीके पास पुष्टिकारक अन्न हों, सभी सोनेको धारण करनेवाले और सुन्दर रूपवाले हों तथा सभी शत्रुका पराभव करनेवाले हों ॥ ९ ॥

६६८ सं वां शता नासत्या सहस्रा ऽश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दा- द्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥ १० ॥
६६९ आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥ ११ ॥

[६४]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भारद्वाजः । देवता - उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६७० उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगा- न्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥ १ ॥
६७१ भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भा- स्युत् ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानो- षो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [६६८] हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवों ! (वां गिरे) तुम्हारे स्तोता (पुरुपन्थाः) पुरुपन्था नामवाले (अश्वानां शता सहस्रा) सैंकडों हजारों घोडे (सं दात्) दिये । हे (पुरु दंससा) बहुत कार्य करनेवाले अश्विदेवों ! (भरद्वाजाय गिरे) भरद्वाजकी स्तुति करनेपर (नु दात्) यह दान दिया । अब (रक्षांसि हताः स्युः) राक्षस मारे गये हैं ॥ १० ॥

[६६९] (वां वरिमन् सुम्ने) तुम दोनोंके दिये श्रेष्ठ सुखमें (सूरिभिः आ स्याम्) विद्वानोंके साथ मैं रहूं ॥ ११ ॥

[६४]

[६७०] (रोचमानाः रुशन्तः उषासः) तेजस्वी चमकनेवाली उषाएं (श्रिये) शोभा बढानेके लिये (अपां ऊर्मयः न) पानीकी लहरियोंके समान, (उत् अस्थुः) ऊपर आ रही हैं । ये उषाएं (विश्वा सुपथा) सब सुन्दर मार्गोंको (सुगानि कृणोति) सुगम करती हैं । यह (मघोनी वस्वी दक्षिणा) ऐश्वर्यवाली उषा धन देनेवाली और अपने कर्ममें दक्ष रहती हैं ॥ १ ॥

[६७१] हे (उषः) उषा ! तू (भद्रा ददृक्षे) कल्याण करनेवाली दीखती है । तू (उर्विया विभासि) विशेष रूपसे प्रकाशित होती है । हे (उषः देवि) दिव्य उषा ! (महोभिः रोचमाना) तू किरणोंसे चमकती हुई (शुम्भमाना) शोभनेवाली (वक्षः आविः कृणुषे) अपनी छाती खुली करती है ॥ २ ॥

१ भद्रा ददृक्षे— उषा कल्याण करती है, प्रकाशसे कल्याण होता है ।

२ हे उषः देवि ! महोभिः रोचमाना शुम्भमाना वक्षः आविः कृणुषे— हे उषा देवी ! तू अपने तेजसे सुशोभित होकर अपनी छाती बताती है । तरुण स्त्री इस तरह अपने तारुण्यके गर्वसे ऐसा करती है ।

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम्हारा स्तोता तथा अनेक तरहके उत्तम मार्गोंको जाननेवाला मनुष्य सैंकडों और हजारों घोडोंको देनेवाला हो । हे देवो ! जब अन्नको धारण करनेवालेने तुमसे दान मांगा, तब उसे यह दान दिया, उस दानके कारण तब अनेक राक्षस मारे गए ॥ १० ॥

हे देवो ! तुम दोनों जिस श्रेष्ठ सुखको प्रदान करते हो, उस श्रेष्ठ सुखमें मैं विद्वानोंके साथ रहकर जीवनका आनन्द भोगूं ॥ ११ ॥

जिस प्रकार जलकी लहरें उछलती हैं, उसी तरह उषाके प्रकाशकी लहर अर्थात् उषायें शोभा बढानेके लिए नीचेसे ऊपर आ रही हैं । वह सबका मार्ग सुगम करती हैं, प्रकाशसे मार्ग सुगम हो जाते हैं ॥ १ ॥

हे उषा ! तू कल्याण करनेवाली है, तेरी प्रकाश किरणें आकाशमें फैल रही हैं । हे तेजस्विनी उषे ! तू किरणोंसे प्रकाशमान् और सुशोभित होकर अपनी छातीको प्रकट कर, अपने अन्तःकरणको प्रकट कर, अपने प्रकाशसे पूर्ण अवयवोंको प्रकट कर ॥ २ ॥

६७२ वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥

६७३ सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

६७४ सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६७२] (अरुणासः रुशन्तः गावः) लाल रंगवाली तेजस्वी किरणें (सुभगां उर्विया प्रथानां सीं) उत्तम भाग्यवती विशेष प्रशंसनीय ऐसी इस उषाको (वहन्ति) उठाती हैं । (अस्ता शूर इव) अचूक बाण मारनेवाले शूर पुरुषके समान यह उषा (शत्रून् अप ईजते) शत्रुओंको दूर करती है । (अजिरः वोळ्हा न) शीघ्रगामी घुडसवार जैसा शत्रुको दूर करता है वैसी यह उषा (तमः बाधते) अन्धकारको दूर भगाती है ॥ ३ ॥

१ अस्ता शूर इव शत्रून अप ईजते— बाण मारनेवाला शूर जैसा शत्रुको दूर भगाता है । (वैसे तुम अपने शत्रुको भगाओ) ।

२ अजिरः वोळ्हा न तमः बाधते— शीघ्रगामी घुडसवार जैसा शत्रुको दूर भगाता है वैसी यह उषा अन्धकारको दूर करती है । वैसा तुम प्रकाशसे अज्ञानको दूर करो ।

[६७३] हे उषा ! (पर्वतेषु उत अवाते) पर्वतोंमें अथवा मार्गरहित प्रदेशमें (ते सुपथा सुगा) तेरे लिये उत्तम मार्ग अत्यंत सुगम होते हैं । हे (स्व-भानो) स्वयं प्रकाशी उषा ! तू (अपः तरसि) अन्तरिक्षमें संचार करती है । हे (पृथुयामन् ऋष्वे) बडे रथमें बैठनेवाली सुन्दर (दिवः दुहिता) स्वर्गकन्ये उषा ! (सा नः) वह तू हमें (इषयध्यै) प्राप्तव्य धनके लिये (आ वह) ले आ ॥ ४ ॥

[६७४] हे (उषः) उषा ! (सा वरं आ वह) वह तू श्रेष्ठ धन मेरे पास ले आ । (या अवाता जोषं अनु) जो तू अप्रतिहत गतिवाली अपनी इच्छानुसार (उक्षभिः वरं वहसि) बैलों द्वारा श्रेष्ठ धन लाती है । हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषा ! (या त्वं देवी) जो तू देवी (पूर्वहूती मंहना दर्शता भूः) प्रथम हवनके समय दर्शनीय और पूजनीय होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रकाशमान् किरणें विशाल उषाको ऊपर लाती हैं । शस्त्र चलानेमें कुशल शूर पुरुषके समान यह उषा शत्रुओंको दूर भगाती है । जिस तरह शीघ्रगामी घुडसवार अपने शत्रुको दूर भगाता है उसी तरह यह उषा अन्धकारको दूर करती है । इसी तरह सबको आत्मरक्षाके लिए शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करे ॥ ३ ॥

मार्गरहित पर्वतोंमें भी इस उषाके लिए मार्ग सुगम हो जाते हैं । यह उषा अपनी किरणोंसे अन्तरिक्षमें संचार करती है । बडे रथमें बैठनेवाली यह उषा प्राप्त करने योग्य धनको ले आती है ॥ ४ ॥

उषा श्रेष्ठ धन लाती है, उसका रथ बैलों द्वारा खींचा जाता है । प्रथम हवन करनेके समय उषाका ही सेवन होता है ॥ ५ ॥

६७५ उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन् नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाम—मुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ ६ ॥

[६५]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६७६ एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्या—स्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥
६७७ वि तद् ययुररुणयुग्भिरश्वै—श्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्ती—र्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥ २ ॥
६७८ श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्ती—र्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत् पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

अर्थ— [६७५] हे उषा ! (ते व्युष्टौ) तेरे प्रकाशित होनेपर (ये पितुभाजः नरः) जो अन्नसेवन करनेवाले नेता हैं, वे तथा (वयः चित्) पक्षी भी (वसतेः अपप्तन्) अपने रहनेके स्थानोंसे बाहर पडते हैं। हे (उषः देवि) उषा देवी ! तू (अमा सते दाशुषे मर्ताय) साथ रहनेवाले दाता मनुष्यके लिये (भूरि वामं वहसि) बहुत धन लाकर देती है ॥ ६ ॥

१ दाशुषे मर्ताय भूरि वामं वहसि— दाता मानवके लिये बहुत धन लाकर देती है ।
२ ते व्युष्टौ पितुभाजः नरः, वयः चित् वसतेः अपप्तन्— तेरे उदित होनेपर अन्न चाहनेवाले मनुष्य और पक्षी, अपने रहनेके स्थानसे बाहर आते हैं ।

[६५]

[६७६] (एषा स्या दिवोजाः दुहिता) यह वह स्वर्गमें जन्मी दिव्य कन्या उषा (नः उच्छन्तीः) हमारे लिये अन्धकार दूर करती हुई (मानुषीः क्षितीः अजीगः) मानवी प्रजाओंको जगाती है । (या रुशता भानुना) जो तेजस्वी प्रकाशसे युक्त होकर (राम्यासु अक्तून्) रात्रियोंके अन्दरके (तमसः चित् तिरः) अन्धकारको दूर करती है, ऐसा (अज्ञायि) दीखता है ॥ १ ॥

[६७७] (चन्द्ररथाः) चन्द्रमाके समान शोभनेवाले रथमें बैठनेवाली और (तत् बृहतः यज्ञस्य अग्रं नयन्ती) उस विशाल यज्ञके समीप पहुंचानेवाली (उषसः) उषाएं (अरुणयुग्भिः अश्वैः) अरुण रंगवाले घोडोंसे (वि ययुः) विशेष वेगसे जा रही हैं। वे (चित्रं भान्ति) विलक्षण तेजसे प्रकाशित हो रही हैं । (ता ऊर्म्यायाः तमः वि बाधन्ते) वे रात्रिके अन्धकारको दूर करती हैं ॥ २ ॥

[६७८] हे (उषसः) उषाओ ! (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (श्रवः वाजं इषं ऊर्जं वहन्तीः) कीर्ति, बल, अन्न और रसको ले जानेवाली तुम (मघोनीः पत्यमानाः) धनवाली तथा जानेवाली उषाएं (विधते) सेवा करनेवाले मेरे लिये (वीरवत् रत्नं अवः) वीर पुत्रोंसे युक्त रत्न और अन्न (अद्य नि धात) आज ही दो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे उषा ! तेरा प्रकाश होनेपर मनुष्य, पशु और पक्षी अपने स्थानसे उठते हैं, और अन्न ढूंढनेके कार्यमें लग जाते हैं । इस समय दाता मनुष्यके लिए उषा उत्तम धन देती है ॥ ६ ॥

यह उषा प्रकाशती है और मनुष्योंको जगाती है । यह अपने प्रकाशसे रात्रीको और अन्धकारको दूर करती है ॥ १ ॥

सुन्दर रथमें बैठनेवाली ये उषाएं यज्ञको सिद्ध करती हैं और अपने प्रकाशसे विलक्षण उत्तम तेजको प्रदान करती हैं और अन्धकारको दूर करती हैं ॥ २ ॥

६७९ इदा हि वो विधते रत्नमस्ती–दा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥ ४ ॥

६८० इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्यर्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद् देवहूतिः ॥ ५ ॥

६८१ उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद् विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्यु–रुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥

[६६]

(ऋषिः– बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता– मरुतः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

६८२ वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद् दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

अर्थ— [६७९] हे (उषासः) उषाओं ! (इदा हि वः विधते) इस समय तुम्हारी सेवा करनेवालेको देनेके लिये तुम्हारे पास (रत्नं अस्ति) रत्न है । (इदा वीराय दाशुषे) इस समय वीरको देनेके लिये धन भी है । अतः (यत् उकथा) स्तोत्र गानेवाले (मावते पुरा चित्) मेरे जैसेके लिये जैसे पूर्व समयमें दिये थे वैसे धन इस समय भी (नि वहथ स्म) दे दो ॥ ४ ॥

[६८०] हे (अद्रिसानो उषः) पर्वतपर दीखनेवाली उषा ! (ते इदा हि) तेरी कृपासे इसी समय (अंगिरसः) अंगिरस गोत्री (गवां गोत्रा) गौवोंके झुंडोंको (गृणन्ति) स्तुत करते हैं, (अर्केण ब्रह्मणा विबिभिदुः) सूर्यकिरणोंके साथ गाये स्तोत्रसे अन्धकारोंका नाश हो रहा है । (नृणां देवहूतिः सत्या अभवत्) मनुष्योंकी ईश प्रार्थना अब सत्य हो चुकी है ॥ ५ ॥

[६८१] हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषे ! (प्रत्नवत् नः उच्छ) पूर्व समयके समान इस समय हमारे लिये अन्धकार दूर कर । हे (मघोनि) धनवाली उषा ! (भरद्वाजवत् विधते गृणते) भरद्वाजके समान सेवा करनेवाले और स्तुति करनेवाले मुझे (सुवीरं रयिं रिरीहि) सुपुत्रयुक्त धन दे तथा (नः) हमारे लिये (उरुगायं श्रवः अधि धेहि) बहुतों द्वारा प्रशंसनीय अन्नका यश दे दो ॥ ६ ॥

[६६]

[६८२] (तत्) वह (धेनुः समानं नाम) धेनु करके एक ही नाम (पत्यमानं वपुः) धारण करनेवाला शरीर (नु चित्) सचमुच (चिकितुषे) ज्ञानी मनुष्यके लिये परिचित (अस्तु) है । (अन्यत्) उनमेंसे एक (मर्तेषु दोहसे पीपाय) मानवोंमें दूधका दोहन करनेके लिये पुष्ट हो रहा है । (शुक्रं सकृत्) तेजस्वी दूसरा रूप (पृश्निः) अन्तरिक्षमें मेघरूपी (ऊधः दुदुहे) दुग्धाशयसे दुहा जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे उषाओ ! तुम दाता मनुष्यको यश, अन्न और बल देती हो तथा यज्ञ करनेवालेके लिए वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला धन, अन्न और संरक्षण देती है ॥ ३ ॥

हे उषाओ ! तुम्हारे पास इस समय जो रत्न हैं, उसे उपासकके लिए तुम दो । इस दाता वीरके लिए, ज्ञानी उपासकके लिए तुम उत्तम धन दो । इसी तरह तुमने पूर्व समयमें स्तोताओंको दिया था, उसी तरह इस समय भी दो ॥ ४ ॥

अंगिरस गोत्री ऋषि पर्वत शिखरपर प्रकाश डालनेवाली उषाका गुणगान कर रहे हैं । गाये गए इन स्तोत्रोंके साथ अन्धेरा दूर हो चुका है और स्तोताओंकी प्रार्थना सत्य हो गई है ॥ ५ ॥

हे उषा ! तू पहलेके समान ही आज भी हमारे लिए अन्धेरा दूर कर । भरद्वाजके समान स्तोताके लिए वीरपुत्रोंसे युक्त धन दे और हमें प्रशंसनीय अन्न, धन और बल दे ॥ ६ ॥

६८३ ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ २ ॥
६८४ रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।
विदे हि माता महो मही षा सेत् पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥ ३ ॥
६८५ न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥ ४ ॥
६८६ मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६८३] (ये मरुतः इधानाः) जो मरुत् (इधानाः) प्रदीप्त होकर (अग्नयः न शोशुचन्) अग्निके समान प्रकाशते हैं, (यत् द्विः त्रिः) और जो द्विगुणित या त्रिगुणित बलिष्ठ होकर (वावृधन्त) बढते हैं, (एषां अरेणवः हिरण्ययासः) इनके मलरहित और सुवर्णसे चमकनेवाले रथ (नृम्णैः पौंस्यैः च साकं) बुद्धियों और बलोंसे युक्त (भूवन्) होते हैं ॥ २ ॥

[६८४] (ये मीळ्हुषः रुद्रस्य पुत्राः सन्ति) ये वीर स्नेह करनेवाले रुद्रके पुत्र हैं, (दाधृविः यान् चो नु भरध्यै) सबका धारण करनेवाली पृथिवी इन मरुतोंका भरणपोषण करनेके लिये ही है। (महः हि) बडे वीरोंकी (माता मही विदे) माता होनेके कारण ही बडी करके पृथिवी कही जाती है। (सा पृश्निः) वह पृथिवी माता ही (सुभ्वे इत्) सबका कल्याण करनेकी इच्छासे (गर्भं आधात्) गर्भ धारण करती है ॥ ३ ॥

[६८५] (अन्तः सन्तः) अन्दर रहकर (अवद्यानि पुनानाः) दोषोंको पवित्र करते हुए (ये नु) जो वीर (अया जनुषः न ईषन्ते) अपनी गतिसे जनतासे दूर नहीं जाते हैं, तथा (यत् श्रिया तन्वं अनु) जो अपनी आभासे शरीरको अनुकूलतासे (उक्षमाणाः) बलवान् करते हैं, वे (शुचयः) पवित्र वीर मरुत् (जोषं अनु निः दुह्रे) इच्छाके अनुकूल दान देते हैं ॥ ४ ॥

[६८६] (येषु) जो वीर (धृष्णु मारुतं नाम) शत्रुसेनाका धर्षण करनेवाला मरुतोंका नाम (आ दधानाः) धारण करते हैं, और जो (दोहसे चित्) जनताके पोषणके लिये (मक्षु अयाः) तत्काल ही आते हैं। ये (सुदानु) उत्तम दानी वीर (न ये अयासः स्तौनाः) शीघ्र आक्रमण करनेवाले चोरोंके समान और (उग्रान् नु चित्) भीषण डाकुओंको भी (अवयासत्) परास्त करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— 'धेनु' नामक दो माताएं हैं। एक धेनु गोमाता मानवोंके पोषणके लिये दूध देती है और दूसरी अन्तरिक्षमें मेघरूपसे जलकी वृष्टि करके सबको तृप्त करती है ॥ १ ॥

मरुतोंके रथोंपर सोनेका चमकदार भाग होता है, वह चमकता रहता है और वह बुद्धिके तथा पराक्रमोंके कार्योंके लिये प्रसिद्ध रहता है ॥ २ ॥

ये मरुत् वीर रुद्रके पुत्र हैं। पृथिवी इनका पोषण करती है। इसलिये पृथिवीको बडी माता कहते हैं। यही पृथिवी सबका भरण पोषण करनेके लिये धान्यरूपी गर्भका धारण करती है ॥ ३ ॥

ये वीर समाजमें ही रहते हैं, दोषोंको दूर हटाते और पवित्रताका वातावरण फैला देते हैं। ये कभी जनसमाजका परित्याग नहीं करते, अपने आपको दूर नहीं करते और अपना तेज बढाकर अनुकूलतापूर्वक दान देते रहते हैं ॥ ४ ॥

जिन्होंने शूरोंका नाम 'मरुत्' धारण किया है, जो जनताका पोषण करनेका यत्न करते हैं, वे क्रूर प्रबल डाकुओंको भी परास्त करते हैं ॥ ५ ॥

×

६८७ त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचि—रामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥
६८८ अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्व—नश्वश्चिद् यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तु—र्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥
६८९ नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥ ८ ॥
६९० प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ—[६८७] (ते शवसा उग्राः) वे अपने बलसे उग्रवीर हैं, और (धृष्णु-सेनाः) साहसी सेनाके वीर हैं, (सुमेके उभे रोदसी युजन्त इत्) वे सुन्दर वीर भूलोक और द्युलोकमें सुसज्य बने रहते हैं। (अध स्म) और (अमवत्सु एषु) इन बलवान् वीरोंके तैयार रहने पर (रोदसी स्वशोचिः) भूमि और आकाश अपने तेजसे युक्त होते हैं, पश्चात् (रोकः न आ तस्थौ) उनके सामने प्रतिबंध खडा नहीं होता है ॥ ६ ॥

[६८८] हे (मरुतः) मरुत् वीरों ! (वः यामः अन्-एनः अस्तु) आपका रथ दोषरहित रहे। (अन्-अश्वः) उसको घोडे जोते नहीं जाते, (अरथीः) रथपर न बैठनेवाला भी (यं अजति) जिसको चलाता है। (अन्-अवसः) जिसपर रक्षाका कोई साधन नहीं है, (अन्-अभीशुः) जिसको लगाम नहीं है, (रजस्तूः) धूली उडाता हुआ (साधन् रोदसी) इच्छा पूर्ण करता हुआ आकाश और पृथिवीके मध्यमेंसे (पथ्या वियाति) मार्गसे जाता है ॥ ७ ॥

[६८९] हे (मरुतः) वीर मरुतों ! (वाजसातौ यं अवथ) युद्धमें जिसकी तुम रक्षा करते हो, (अस्य वर्ता न) उसको घेरनेवाला कोई नहीं रहता। तथा इसका (तरुता नु न अस्ति) विनाशक भी कोई नहीं होता। (अध) और (तोके तनये गोषु अप्सु) बालबच्चोंमें गौवोंमें और जलोंमें (यं) जिसकी तुम सुरक्षा करते हो, (सः पार्ये द्योः) वह युद्धमें द्युलोककी (व्रजं दर्ता) गोशालाका भी विदारण करता है ॥ ८ ॥

[६९०] हे अग्ने ! (ये सहसा सहांसि सहन्ते) जो अपने बलसे शत्रुके आक्रमणोंको परास्त करते हैं, तब (मखेभ्यः पृथिवी रेजते) उन वीरोंकी हलचलसे भूमि कांपती है। उन (गृणते तुराय स्वतवसे) स्तुत्य, त्वराशील और बलवान् (मारुताय) वीर मरुतोंके संघके लिये (चित्रं अर्कं प्र भरध्वं) आश्चर्यकारक स्तोत्र गावो ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन वीरोंकी साहसी सेना सदैव तैयार रहती है, इस कारण इनके मार्गमें कोई रुकावट खडी नहीं रहती। इस कारण ये वीर अपना कर्तव्य पूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

मरुतोंका रथ दोषरहित है, उसको घोडे नहीं जोते जाते, रथपर न बैठनेवाला भी उसको चलाता है, लगाम नहीं और सुरक्षित रखनेका कोई साधन भी नहीं है। जब यह रथ चलता है तब धूली उडाता है और वेगसे मार्गपरसे जाता है ॥ ७ ॥

ये वीर जिसका संरक्षण करते हैं उसका नाश कोई नहीं कर सकता। पुत्र-पौत्रों गौवोंमें रहनेवालोंका संरक्षण जब ये वीर करते हैं, तब वे सब शत्रुओंका नाश करते हैं, अतः वे लोग सदा सुरक्षित रहते हैं ॥ ८ ॥

इन वीरोंके संघका जिस समय आक्रमण होता है उस समय पृथिवी कंपित होती है। इन वीरोंके संघकी स्तुति करो और उनको अन्नादिसे संतुष्ट करो ॥ ९ ॥

६९१ त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत् तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥
६९२ तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥

[६७]

(ऋषिः- ११ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता - मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६९३ विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥ १ ॥
६९४ इयं मद् वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद् वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥

अर्थ— [६९१] वे (मरुतः) मरुत् वीर (अध्वरस्य इव) हिंसारहित कर्म करनेवाले (त्विषि-मन्तः) तेजस्वी (तृषु च्यवसः) वेगसे चलनेवाले (अग्नेः जुह्वः न) अग्निकी ज्वालाओंके समान (दिद्युत् अर्चत्रयः) तेजस्वी और पूजनीय, (वीराः न) वीरोंके समान (धुनयः) शत्रुको हिलानेवाले (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी जीवनवाले (अ- धृष्टाः) पराभूत न होनेवाले हैं ॥ १० ॥

[६९२] (तं वृधन्तं) उस बढनेवाले तथा (भ्राजत्-ऋष्टिं) तेजस्वी भाले धारण करनेवाले (रुद्रस्य सूनुं मारुतं) रुद्रके पुत्र मरुतोंके गणकी (आ विवासे) मैं प्रशंसा करता हूं । इसी तरह (दिवः शर्धाय) दिव्य बलकी प्राप्तिके लिये (उग्राः शुचयः मनीषाः) उग्र पवित्र इच्छाएं (गिरयः आपः न) पर्वतसे बहनेवाली जल धाराओंके समान (अस्पृध्रन्) स्पर्धा करती हैं ॥ ११ ॥

[६७]

[६९३] (विश्वेषां वः सतां) आपके सब श्रेष्ठोंमें (ज्येष्ठतमा मित्रावरुणा) अतिश्रेष्ठ मित्र और वरुण हैं, (गीर्भिः वावृधध्यै) उनकी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । (या यमिष्ठा द्वा) जो नियमन करनेवाले ये दो देव (रश्मा इव) रस्सियोंसे पकडमें रखनेके समान (स्वैः बाहुभिः) अपने बाहुओंसे (असमा) अद्वितीय रीतिसे (जनान् सं यमतुः) लोगोंको अपने नियंत्रणमें रखते हैं ॥ १ ॥

[६९४] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (इयं मनीषा) यह स्तुति (मत् वां प्र स्तृणीते) मुझसे चलकर आपके पास पहुंचती है । (बर्हिः) तुम्हारे लिये आसन फैलाकर (नमसा उप प्रिया) नमस्कार करके आप जो प्रिय हैं उनके पास वह (अच्छ) सीधी जाती है । (अ-धृष्टं छर्दिः नः यन्तं) हमें सुरक्षित घर दो । हे (सुदानू) उत्तम दान देनेवालो ! (यत् वां वरूथ्यं) जो आपका आश्रयस्थान है ॥ २ ॥

भावार्थ— ये वीर तेजस्वी, शत्रुपर वेगसे धावा करनेवाले, शत्रुदलको हरानेवाले हैं, अतः इनका कभी पराभव नहीं होता है ॥ १० ॥

मैं इन शस्त्रास्त्र धारण करनेवाले वीरोंके गणका स्वागत करता हूं । हम अपनी आकांक्षाओंको उनके समीप बडी स्पर्धासे रखते हैं । ताकि हमें दिव्य बल प्राप्त हो जाय और अधिकाधिक बल प्राप्त हमारा बढता जाय ॥ ११ ॥

सब श्रेष्ठोंमें अतिश्रेष्ठ मित्र और वरुण हैं । जो सबको नियममें रखनेवाले दो देव अपने बाहुओंसे अद्वितीय रीतिसे सब लोगोंको अपने अधीन रखते हैं ॥ १ ॥

मैं मनःपूर्वक तुम्हारी भक्ति करता हूं उसको तुम सुनो । तुम्हारे लिये यह आसन फैलाया है, आपको हम प्रणाम करते हैं । आप हमें उत्तम सुरक्षित घर दें जो आपका आश्रय हो ॥ २ ॥

६९५ आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा ॥ ३ ॥

६९६ अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥ ४ ॥

६९७ विश्वे यद् वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद् भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥ ५ ॥

६९८ ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान् द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६९५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (आ यातं) आओ । (नमसा उप हूयमाना) प्रणाम करके आपको हम समीप बुलाते हैं । (सुशस्ति प्रिय) आप प्रिय हैं इसलिये आपकी हम स्तुति करते हैं । (यौ अप्नःस्थः) आप दोनों सत्कर्ममें प्रवृत्त हैं । (अपसा श्रुधीयतः जनान् इव) कर्मसे समृद्धिकी इच्छा करनेवाले लोगोंको जिस तरह कर्ममें प्रवृत्त करते हैं उस तरह (महित्वा चित् सं यततः) अपने महत्त्वसे आप जनोंको प्रयत्नशील हैं ॥ ३ ॥

[६९६] (या अश्वा न वाजिना) जो घोडोंके समान बलवान् हैं, (पूत-बन्धू) पवित्र भाईके समान हैं तथा (ऋता) सत्यस्वरूप हैं, (यत् अदितिः गर्भं भरध्यै) इसलिये तुम्हें अदितिने गर्भमें पोषण किया था । (या महि महान्ता प्रजायमाना) जो आप श्रेष्ठसे श्रेष्ठ जन्मे हैं, (मर्ताय रिपवे) मानवी शत्रुके लिये (घोरा) भयंकर तुम्हें (नि दीधः) बना दिया है ॥ ४ ॥

[६९७] (यत्) जब (वां मंहना मन्दमानाः) आपके महत्त्वके कारण आनन्दित हुए (विश्वे देवासः) सब देवोंने (सजोषाः क्षत्रं अदधुः) जिस समय प्रीतिपूर्वक क्षात्रबल धारण किया (उर्वी चित् रोदसी) इतनी बडी यह द्यावा पृथिवी है, पर उसको भी तुम (यत् परि भूथः) घेरते हैं, और तुम्हारे (स्पशः अदब्धासः अमूराः) दूत भी किसीके सामने न दबनेवाले और समझदार हैं ॥ ५ ॥

[६९८] (ता हि सर्वं क्षत्रं अनुद्यून् धारयेथ) वे दोनों सब प्रकारका क्षात्रबल दिन-प्रतिदिन धारण करते हैं, (द्योः सानु) द्युलोकके शिखरको (उपमात् इव दृंहेथे) समीप रहनेके समान दृढ करते हैं । (नक्षत्रः दृळ्हः) नक्षत्रोंका स्थान सुदृढ किया है (उत विश्वदेवः) और विश्वमें प्रकाशक सूर्यको भी स्थिर किया । (आयोः धासिना) मानवोंको अन्न मिले इसलिये (द्यां भूमिं आ अतान) द्यु और भूमिको पृथक् करके फैलाकर रहा है । ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे मित्र, वरुण ! नमस्कार करके आपको हम बुलाते हैं । किसीको बुलाना हो तो प्रणाम करके ही बुलाना चाहिये । ये दोनों देव प्रशंसित और प्रिय हैं । जो प्रशंसित होते हैं उनपर ही प्रेम करना चाहिये । सत्कर्ममें प्रवृत्त रहना चाहिये । कर्म करके जो श्रेयस् प्राप्त करनेके इच्छुक हैं, उनको महत्त्वसे प्रयत्नमें प्रवृत्त करते हैं । स्वयं सत्कर्म करके महत्त्व प्राप्त करना हरएकको योग्य है । ऐसे प्रयत्नशील पुरुष सतत सत्कर्ममें प्रवृत्त रहें ॥ ३ ॥

माता अदितिने देवोंको अपने गर्भमें इसलिये धारण किया, कि देव शूरवीर बन कर अपने शत्रुओंको मारें, उत्पन्न होनेके बाद देवी अदितिने देवोंको वैसी शिक्षा भी दी कि जिससे देव शूरवीर बन सकें । इसी प्रकार मातायें अपने बच्चोंको उत्तम उत्तम शिक्षायें दें, ताकि बच्चे शूरवीर होकर देशके श्रेष्ठ कर्णधार बन सकें ॥ ४ ॥

हे मित्रा वरुण ! आपके महत्त्वको देखकर आनन्दित हुए उत्साही सब देवोंने क्षात्र सामर्थ्य धारण किया । आपका सामर्थ्य देखकर सब देव भी क्षात्र कर्म करने लगे । आपके दूत भी किसीसे न दबनेवाले और चतुर हैं ॥ ५ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव क्षात्रतेज प्रतिदिन धारण करते हैं । सदा अपना बल बढाते रहते हैं । द्युलोकके शिखरको सुदृढ करते हैं । मनुष्योंको अन्न मिले इस हेतुसे द्युलोक और भूलोकको उन्होंने विस्तृत किया ॥ ६ ॥

६९९ ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत् सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत् पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥ ७ ॥
७०० ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद् वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद् वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ८ ॥
७०१ प्र यद् वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ९ ॥
७०२ वि यद् वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद् वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥

अर्थ— [६९९] (स-भृतयः सद्म यत् आ पृणन्ति) जब याजक लोग यज्ञशालामें भरते हैं, तब (जठरं पृणध्यै) पेट भरनेके लिये (ता विग्रं धैथे) वे आप दोनों आदरपूर्वक अन्न धारण करते रखते हैं। (अवाताः युवतयः न मृष्यन्ते) अविवाहित तरुण स्त्रियां अपना जीवनका अकेलापन सहन नहीं करतीं, वैसा ही (विश्वमिन्वा यत् पयः विभरन्ते) विश्वको प्रेरणा देनेवाले तुमने जब जल भर दिया तब नदियां भर कर बहने लगीं ॥ ७ ॥

[७००] (ता जिह्वया सदं इदं) वे दोनों जिह्वासे-उपदेशसे-सदा ही (सुमेधाः आ) भक्तोंको उत्तम बुद्धिवान् बनाते हैं। (यत् वां सत्यः अरतिः ऋते आ भूत) जब वह आपका सच्चा भक्त सत्यमें तत्पर होता है। हे (घृत-अन्नौ) घृतमिश्रित अन्न देनेवालो ! (तत् वां महित्वं अस्तु) वह आपका महत्व है (युवं दाशुषे अंहः वि चयिष्टं) जो आप दोनों दाताके लिये पापको हटाते हैं ॥ ८ ॥

[७०१] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुणो ! (यत् वां प्रिया धाम) जो आपको प्रिय स्थान हैं उनको (प्र स्पूर्धन्) स्पर्धा करके (युव-धिता मिनन्ति) तथा आपने धारण किये नियमोंको जो तोडते हैं वे (न ये देवासः) देव नहीं, (ओहसा न मर्ताः) मनुष्य वे मानव भी नहीं, (अ-यज्ञ-साचः) यज्ञ न करनेवाले वे (अप्यः न पुत्राः) कर्मनिष्ठ पुत्र भी नहीं हैं ॥ ९ ॥

[७०२] (कीस्तासः यत् वाचं वि भरन्ते) कोई स्तुति करनेवाले आपकी स्तुति करते हैं, (के चित् मनानाः निविदः शंसन्ति) कोई मननशील स्तोत्र गाते हैं, (आत् वां सत्यानि उक्था ब्रवामः) हम आपकी सत्य स्तुतियोंको गाते हैं कि तुम्हारा (न किः महित्वा देवेभिः यतथः) महत्व बडा है इस कारण कोई भी इस विषयमें देवोंके साथ तुलना नहीं करते ॥ १० ॥

भावार्थ — हे मित्र और वरुण ! जब लोग घरमें भरते हैं, तब पेट भरनेके लिये तुम अन्न भरकर रखते हो। अविवाहित तरुणियां अपना अकेलापन सहन नहीं करतीं, वैसी ही नदियां जलसे भरती हैं। तब वे प्रफुल्लित होकर पोषक धान्य उत्पन्न करती हैं ॥ ७ ॥

जिह्वासे ऐसा उपदेश करना चाहिये जिससे सुननेवाले उत्तम बुद्धिवान् बनें। जब देवोंका सत्यभक्त सदाचारवान् होता है तब उसकी बुद्धि बढती है। वह देवोंका ही महत्व है जो वे दाताको निष्पाप बनाते हैं ॥ ८ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! जो आपके प्रिय स्थान हैं, उन्हें जो भ्रष्ट करते हैं, तथा आपके नियमों और व्रतोंका भंग करते हैं, वे न देव होते हैं, न मनुष्य होते हैं और न उत्तमकर्म करनेवाले पुत्रके समान ही होते हैं ॥ ९ ॥

हे मित्रावरुण देवो ! कुछ लोग आपकी स्तुति करते हैं, कुछ लोग आपके लिए मननीय स्तोत्र गाते हैं, तो कुछ लोग आपके महत्वका गुणगान करते हैं, पर इन देवोंका महत्व इतना बडा है कि इनके साथ किसी भी देवकी तुलना नहीं की जा सकती ॥ १० ॥

७०३ अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद् रणे वृषणं युनजन् ॥ ११ ॥

[६८]

(ऋषिः- ११ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप्, ९-१० जगती ।)

७०४ श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविष अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥ १ ॥

७०५ ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥ २ ॥

अर्थ— [७०३] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुणो ! (वां अवोः इत्था) आप दोनोंके रक्षणके अन्दर रहनेवाले भक्त (युवोः छर्दिषः अभिष्टौ) आपसे घर प्राप्त करनेकी इच्छा करनेके कार्यमें (अस्कृधोयु) कृतकार्य होते हैं। (यत्) जिसके चारों ओर (गावः अनुस्फुरान्) गौवें घूमती रहें और जो घर (ऋजिप्यं धृष्णुं) सरल व्यवहार करनेवालोंको रहने योग्य, शत्रुका घर्षण करनेमें समर्थ (यत् रणे वृषणं युनजन्) और जो रणमें बलवान् तरुणको भेज सकता है ॥ ११ ॥

१ यत् गावः अनुस्फुरान्— जिस घरके चारों ओर गौवें घूमती हों ऐसा घर चाहिये ।

२ ऋजिप्यं धृष्णुं— सरल व्यवहार करनेवाले जहां रहते हैं और शत्रुका घर्षण करनेमें जो समर्थ हो ऐसा घर चाहिये ।

३ यत् रणे वृषणं युनजन्— जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता हो ऐसा घर चाहिये । अर्थात् प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण हों कि जो युद्धमें जा सकते हों । ऐसा घर हमें चाहिये ।

[६८]

[७०४] (इन्द्रावरुणौ) हे इन्द्र और वरुणो ! (यः यज्ञः) जो यज्ञ (अद्य महे इषे) आज बडी इच्छा-तृप्तिके लिये, (महे सुम्नाय) और बडे सुखके लिये (आ आववर्तत्) हो रहा है, वह (वां यज्ञः) आपका यज्ञ (श्रुष्टी सजोषाः) शीघ्र उत्साहवर्धक, (उद्यतः) उद्यमशील, (मनुष्वत्) मानवोंसे युक्त (वृक्त-बर्हिषः) फैले आसनोंसे युक्त (यजध्यै) यजन करनेके लिये हो ॥ १ ॥

[७०५] (ता हि देवताता श्रेष्ठा तुजा) वे दोनों सचमुच देवोंमें श्रेष्ठ मारक वीर हैं. (ता हि शूराणां शविष्ठा भूतं) वे दोनों शूरोंमें बलवान् हैं । (मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्मा) धनवानोंमें बडे और अनेक बलोंसे युक्त हैं, तथा (ऋतेन) सत्य व्यवहारसे (वृत्रतुरा सर्वसेना) शत्रुको मारनेवाले और सब प्रकारकी सेनासे युक्त हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हर मनुष्यको घर प्राप्तिकी इच्छा रहती है । सभीकी यह इच्छा होती है कि उनके अपने घर हों । पर घर ऐसा हो कि जिसके चारों ओर गायें घूमती हों । उस घरमें एक बडी सी गौशाला हो । उस घरके सभी सदस्य सरल व्यवहार करने वाले हों, कोई भी कुटिल व्यवहार करनेवाला न हो । देशके प्रत्येक घर ऐसे हों कि जिसके प्रत्येक सदस्य समय पडनेपर युद्धमें जा सके ॥ ११ ॥

यज्ञ बहुत अन्न प्राप्त करनेके लिये हो, इच्छाकी तृप्ति करनेके लिये हो । यज्ञ बडा सुख प्राप्त होनेके लिये हो । आपका यज्ञ शीघ्र ही प्राप्तिपूर्वक उद्यमयुक्त मानवों द्वारा आसन सुशोभित हुए हैं ऐसा हो । बहुत मनुष्य आ जायें, आसनोंपर बैठे और उद्यमशीलता बढे और सबका कल्याण हो । यज्ञ ऐसा हो ॥ १ ॥

इन्द्र और वरुण ये दोनों देव यज्ञ करनेवाले देवोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं । वे दोनों शूरोंमें बलवान् हैं, धनवानोंमें बडे और अनेक बलोंसे युक्त हैं तथा सत्य व्यवहारसे शत्रुको मारनेवाले तथा हर तरहकी सेनासे युक्त हैं ॥ २ ॥

७०६ ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥ ३ ॥
७०७ ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥ ४ ॥
७०८ स इत् सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद् दास्वान् वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥ ५ ॥
७०९ यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात् प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७०६] (नमस्येभिः शूषैः सुम्नैः) नमस्कार पूर्वक, उत्तम बलशाली स्तोत्रोंसे (ता चकाना इंद्रावरुणा) उन तेजस्वी इंद्र और वरुणोंकी (गृणीहि) स्तुति करो, (अन्यः वज्रेण शवसा) एक इन्द्र वज्र बलसे फेंककर (वृत्रं हन्ति) वृत्रको मारता है और (अन्यः वृजनेषु सिषक्ति) दूसरा वरुण संकटोंमें सहाय्य करता है ॥ ३ ॥

[७०७] (ग्नाः च नरः च वावृधन्त) स्त्रियां और पुरुष कितने भी बढ गये, (विश्वे देवासः) सब विबुध (नरां स्वगूर्ताः) नेताओंमें स्वकीय उद्यमसे कितने भी बढ गये, (द्यौः च पृथिवी च उर्वी) द्यु और पृथिवी कितनी भी बडी हुई तो भी (एभ्यः) इन सबसे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण (महित्वा प्र भूतं) अपने महत्वके कारण श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

[७०८] (स इत् सुदानुः) वह सचमुच उत्तम दाता है, (स्ववान् ऋतावा) वह आत्मशक्तिसे युक्त और सत्य नियमसे चलनेवाला है । हे (इंद्रावरुणा) इन्द्र और वरुणों ! (यः वां त्मन् दाशति) जो आपको स्वयं देता है । (सः दास्वान् इषा द्विषः तरेत्) वह दाता अन्नदानसे द्वेष करनेवालोंको भी तैर कर दूर करता है । (रयिवतः जनान् च रयिं वंसत्) धनवान् लोगोंको भी वह धन प्रदान करता है ॥ ५ ॥

[७०९] हे (इन्द्रावरुणौ) इन्द्र और वरुणो ! (युवं) आप दोनों, हे (देवा) देवो ! (दाशु-अध्वराय) दान और अहिंसाशील पुरुषके लिये (वसुमन्तं पुरुक्षुं यं रयिं धत्थः) ऐश्वर्ययुक्त और अन्नयुक्त जैसा धन देते हैं, (सः अस्मे अपि स्यात्) वह धन हमें भी मिले, कि (यः वनुषां अशस्तीः प्र भनक्ति) जो निन्दकोंकी निन्दाओंको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! उत्तम और बलशाली स्तोत्रोंसे तेजस्वी इन्द्र और वरुणकी स्तुति करो । इन दोनों देवोंमें एक देव इन्द्र अपने वज्रको बलसे फेंककर मारता है, और दूसरा देव वरुण संकटोंमें सहायता करता है । एक देव इन्द्र अपने बलसे वज्रको मारता है, और दूसरा देव कष्टोंके समय लोगोंकी सहायता करता है ॥ ३ ॥

स्त्री-पुरुष अर्थात् मनुष्य चाहे कितना भी बढ जाएं, सभी ज्ञानी अपने उद्यम चाहे जितना बढ जावें, द्यु और पृथ्वी चाहे जितनी भी विस्तृत हो जाय, पर इन सबसे भी इन्द्र और वरुण बडे हैं । अर्थात् इन इन्द्र और वरुणदेवोंसे कोई भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

वह सचमुच उत्तम दाता है, वह आत्मबलसे युक्त है और वह सत्य नियमोंका पालन करनेवाला है । मनुष्यको आत्मिक बल संपादन करना, सत्य नियमोंका पालन करना और उत्तम दान करना योग्य है । जो अपना धन दानमें देता है, वह श्रेष्ठ होता है । वह दाता अन्नका दान करके शत्रुओंको भी दूर करता है । दानसे शत्रु भी मित्र बनते हैं । धनवानोंको भी धन देता है ॥ ५ ॥

७१० उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान् प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥ ७ ॥
७११ नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धो ऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥ ८ ॥
७१२ प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रिय मर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥ ९ ॥
७१३ इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥ १० ॥

अर्थ— [७१०] हे इन्द्र और वरुणो ! (नः सूरिभ्यः) हमारे विद्वानोंको (उत सुत्रात्रः देवगोपाः रयिः स्यात्) उत्तम रक्षण जिससे होता है और देव भी जिसका रक्षण करते हैं ऐसा धन मिले । (येषां शुष्मः) जिनका सामर्थ्य (पृतनासु साह्वान्) युद्धोंमें विजय मिलानेवाला है, जो (ततुरिः) त्वरासे (द्युम्ना) अपने तेजसे (सद्यः प्र तिरते) तत्काल लांघकर दुःखसे परे जाता है ॥ ७ ॥

[७११] हे (देवा इन्द्रावरुणा) देव इन्द्र और वरुणो ! (गृणाना) स्तुति किये गये तुम दोनों (सौश्रवसाय नः रयिं पृङ्क्तं) यशके लिये हमें धन दे दो । (इत्था महिनस्य शर्धः गृणन्तः) इस तरह आपके महान् सामर्थ्यकी स्तुति करते हुए हम लोग (अपः नावा न) जलप्रवाहोंको नौकासे जैसे पार करते हैं वैसे ही (दुरिता तरेम) हम पापोंको दूर करेंगे ॥ ८ ॥

[७१२] (बृहते संराजे) बडे सम्राट् (देवाय वरुणाय) वरुण देवकी (स-प्रथः प्रियं मन्म) यशस्वी प्रिय ऐसे मननीय स्तोत्रसे (नु प्र अर्च) स्तुति कर । (यः अयं महिव्रतः) जो यह बडा कर्तृत्ववान् (अजरः) जरारहित (महिना उर्वी) अपने महिमासे बडी पृथिवीको (क्रत्वा शोचिषा न विभाति) कर्तृत्वसे और अपने प्रकाशसे प्रकाशनेके समान प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

[७१३] हे (सुत-पौ इन्द्रावरुणा) सोम पीनेवाले इन्द्र और वरुणो ! हे (धृतव्रता) व्रतके पालनकर्ता ! (इमं) इस (सुतं) निचोडे (मद्यं सोमं पिबतं) आनंदकारक सोमरसको पीओ । (युवो रथः) तुम्हारा रथ (सोमपीतये) सोमपानके लिये और (देववीतये) देवोंकी प्राप्तिके लिये (अध्वरं प्रति) अहिंसक यज्ञस्थानके पास (पीतये) रसपान करनेके लिये (प्रति स्वसरं उपयाति) प्रत्येक यज्ञस्थानके पास जाता है ॥ १० ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और वरुण देवो ! तुम दोनों दान देनेवाले और अहिंसाशील पुरुषके लिए ऐश्वर्ययुक्त और बलयुक्त धन देते हो, वैसा धन हमें भी प्राप्त हो । हम ऐसा धन प्राप्त करें कि जो निन्दकोंको दूर करे । दानके द्वारा निन्दकोंको भी प्रसंशक किया जा सकता है ॥ ६ ॥

हमारे ज्ञानियोंको ऐसा धन मिले, जो उत्तम रक्षा करनेवाला हो, और जिसका रक्षण देव भी सतत करते हो । ऐसे धनोंसे प्राप्त सामर्थ्य युद्धोंमें निःसन्देह विजय लाता है । त्वरासे कार्य करनेवाला अपने तेजसे शत्रुओंको पार करता है और विजयी होता है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! उत्तम कीर्ति प्राप्त करनेके लिये धन हमें दे दो । धन यश बढानेवाला हो । महान् बलकी हम स्तुति करें । पापको हम तैर कर परे जांय । जिस तरह जलोंको नौकासे पार करते हैं वैसे हम पापोंसे पार हों ॥ ८ ॥

हे मनुष्यो ! बडे सम्राट् वरुण देवके लिये प्रिय स्तोत्र यशस्वितासे गाओ । यह बडे कार्य करनेवाला जरारहित अपने महान् सामर्थ्यसे इस पृथ्वीको अपने तेजसे प्रकाशित करता है ॥ ९ ॥

७१४ इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयेथाम् ॥ ११ ॥

[६९]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्राविष्णू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७१५ सं वां कर्मणा समिषा हिनोमी- न्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्त- मरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

७१६ या विश्वासां जनितारा मतीना- मिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २ ॥

अर्थ— [७१४] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य) अति मधुर बलवर्धक सोमके रसका प्राशन, हे (वृषणा) बलवान् वीरों ! (वृषेथां) बलके साथ करो । (इदं अन्धः) यह रस (वां परिषिक्तं) आपके लिये ही तैयार करके रखा है । (अस्मिन् बर्हिषि आसद्य) इस आसनपर बैठकर (अस्मे मादयेथां) हमसे आनन्दित हो जाओ ॥ ११ ॥

[६९]

[७१५] हे (इन्द्रा-विष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्य अपसः पारे) इस कर्मके अन्तमें (वां कर्मणा सं हिनोमि) आप दोनोंको मैं कर्मसे प्रेरित करता हूं और (इषा सं) अन्नसे उत्साहित करता हूं । (यज्ञं जुषेथां) हमारे यज्ञमें तुम आओ और (द्रविणं च धत्तं) हमें धन दो तथा (अरिष्टैः पथिभिः पारयन्ता) कष्टरहित मार्गोंसे हमें दुःखोंसे पार करो ॥ १ ॥

[७१६] (या विश्वासां मतीनां जनितारा) जो सब सद्बुद्धियोंकी प्रेरणा देनेवाले हैं । हे (इन्द्रा-विष्णू) हे इन्द्र और विष्णु ! आपके लिये (सोमधाना कलशा) सोमसे भरे ये दो पात्र रखे हैं । (वां शस्यमानाः गिरः) आपकी स्तुतिके शब्द (प्र अवन्तु) हमारी रक्षा करें । और (अर्कैः गीयमानासः स्तोमासः प्र) गायन किये जानेवाले स्तोत्र हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सोमको पीनेवाले इन्द्र और वरुण देवो ! तुम दोनों निचोडे हुए इस आनंदकारक रसको पीओ । तुम्हारा रथ सोमका पान करनेके लिए और देवत्वकी प्राप्तिके लिए प्रत्येक यज्ञमें तुम दोनोंको ले जाए ॥ १० ॥

हे बलवान् वीरो ! तुम बलसे युक्त होकर इस मधुर और सोमवर्धक सोमरसको पीओ । यह रस आपहीके लिए तैय्यार करके रखा हुआ है । इस यज्ञमें आकर स्वयं भी आनंदित होओ और हमें भी आनन्द प्रदान करो ॥ ११ ॥

हे इन्द्र और विष्णु ! इस यज्ञ कर्मके अन्तमें तुम दोनोंको मैं अपने कर्मसे प्रेरित करता हूं और अन्नसे उत्साहित करता हूं । हे देवो ! हमारे यज्ञोंमें तुम आओ और हमें धन दो तथा कष्ट रहित मार्गोंसे हमें ले जाकर हमें दुःखोंसे पार कराओ ॥ १ ॥

सभी सद्बुद्धियोंको प्रेरणा देनेवाले इन्द्र और विष्णु ! तुम्हारे लिए सोमसे भरे ये दो पात्र रखे हैं । तुम्हारे लिए किए जानेवाले स्तुतिके शब्द हमारी रक्षा करें । ॥ २ ॥

+

७१७ इन्द्राविष्णू मदपती मदाना॒मा सोमं॑ यातं॒ द्रवि॑णो॒ दधा॑ना ।
सं वा॑मञ्जन्त्व॒क्तुभि॑र्मती॒नां सं स्तोमा॑सः शस्यमा॑नास उ॒क्थैः ॥ ३ ॥

७१८ आ वा॒मश्वा॑सो अभिमाति॒षाह॒ इन्द्रा॑विष्णू सध॒मादो॑ वहन्तु ।
जु॒षेथां॒ विश्वा॒ हव॑ना मती॒नामुप॒ ब्रह्मा॑णि शृणुतं॒ गिरो॑ मे ॥ ४ ॥

७१९ इन्द्रा॑विष्णू॒ तत् प॑न॒याय्यं॑ वां॒ सोम॑स्य॒ मद॑ उ॒रु च॑क्रमाथे ।
अकृ॑णुतम॒न्तरि॑क्षं॒ वरी॒योऽप्र॑थतं जी॒वसे॑ नो॒ रजां॑सि ॥ ५ ॥

७२० इन्द्रा॑विष्णू ह॒विषा॑ वावृधा॒नाग्रा॑द्वाना॒ नम॑सा रातहव्या ।
घृता॑सुती॒ द्रवि॑णं धत्तम॒स्मे स॑मु॒द्रः स्थः॑ क॒लशः॑ सोम॒धानः॑ ॥ ६ ॥

७२१ इन्द्रा॑विष्णू॒ पिब॑तं॒ मध्वो॑ अ॒स्य सोम॑स्य दस्रा ज॒ठरं॑ पृणेथाम् ।
आ वा॒मन्धां॑सि मदि॒राण्य॑ग्म॒न्नुप॒ ब्रह्मा॑णि शृणुतं॒ हवं॑ मे ॥ ७ ॥

अर्थ— [७१७] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (मदानां मदपती) आप दोनों आनन्दके अधिपति हैं, (द्रविणः दधाना) धन लेकर (सोमं आ यातं) सोम यज्ञके समीप आओ । (मतीनां अक्तुभिः) स्तोत्रोंके साथ गाये तथा (उक्थैः शस्यमानासः स्तोमासः) गायनोंसे गाये हुए स्तोत्र (वां सं अञ्जन्तु) आपको सुभूषित करें ॥ ३ ॥

[७१८] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अभिमाति-सहः) शत्रुका पराजय करनेवाले (सध-मादः) साथ रहनेसे आनन्दित होनेवाले (अश्वासः) घोडे (वां आ वहन्तु) आपको इधर ले आवें । (मतीनां विश्वा हवना जुषेथां) मतिमानोंके सब स्तोत्र सुनो, (ब्रह्माणि उपशृणुतं) ज्ञानके स्तोत्र सुनो और (मे गिरः) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ४ ॥

[७१९] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (वां तत् पनयाय्यं) आपका वह वर्णनीय पराक्रम है, (सोमस्य मदे उरु चक्रमाथे) सोमके आनन्दमें इस विस्तीर्ण विश्वमें आपने आक्रमण किया है, (अन्तरिक्षं वरीयः अकृणुतं) अन्तरिक्षको विशाल बनाया और (नः जीवसे रजांसि अप्रथतं) हमारे जीवनके लिये ये रजोलोक फैलाये हैं ॥ ५ ॥

[७२०] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! आप (हविषा वावृधाना) हविष्यान्नसे हृष्टपुष्ट होते हो, (अग्र-अद्वाना) तुम उसका प्रथम स्वीकार करते हो । (नमसा रातहव्या) नमस्कारसे तुम संतुष्ट होते हो । तुम (घृतासुती) घीकी आहुतिको प्रेमसे स्वीकारते हो, (अस्मे द्रविणं धत्तं) हमारे लिये धन देओ । (समुद्रः स्थः) समुद्र जैसे तुम गंभीर हो और (कलशः सोम-धानः) यह कलश सोमसे भरा है वैसे तुम भी परिपूर्ण हो ॥ ६ ॥

[७२१] हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु ! (अस्य मध्वः सोमस्य पिबतं) इस मधुर सोमरसको पीओ । हे (दस्रा) दर्शनीय देवो ! (जठरं पृणेथां) पेट भरकर पीओ । (अन्धांसि वां आ अग्मन्) ये सोमरस आपके पास पहुंचें । (मे हवं ब्रह्माणि उप शृणुतं) मेरी प्रार्थना और मेरे स्तोत्र सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और विष्णु देवो ! तुम दोनों आनन्दके स्वामी हो, इसलिए धन लेकर इस यज्ञके पास आओ । यज्ञमें आने पर स्तोताओंके द्वारा गाए गए स्तोत्र तुम्हें सुभूषित करें ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और विष्णू ! शत्रुका पराजय करनेवाले तथा साथ साथ रहकर आनन्दित होनेवाले घोडे तुम्हें इधर ले आवें । तुम यहां आकर बुद्धिमानोंके स्तोत्र सुनो, ज्ञानियोंके स्तोत्र सुनो और साथ ही मेरी प्रार्थना भी सुनो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और विष्णु देवो ! आपका यह पराक्रम वर्णनीय है, क्योंकि सोमके आनन्दमें इस विस्तीर्ण विश्व आपने व्याप्त किया था । आपने इस विस्तीर्ण अन्तरिक्षको फैलाया, और हमारे जीवनके लिए ये सभी लोक बनाये ॥ ५ ॥

हे देवो ! तुम हविष्यान्नसे हृष्टपुष्ट होते हो, तुम उस हविष्यान्नको सर्व प्रथम स्वीकार करते हो, तुम नमस्कारोंसे सन्तुष्ट होते हो, तुम घी की आहुतिको प्रेमसे स्वीकार करते हो । हमारे लिए धन दो ॥ ६ ॥

७२२ उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥ ८ ॥

[७०]

(ऋषिः– बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता– द्यावापृथिवी । छन्दः– जगती ।)

७२३ घृतवती भुवनानामभिश्रियो–र्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ १ ॥
७२४ असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

अर्थ– [७२२] (उभा जिग्यथुः) तुम दोनों विजय करते हो । (न परा जयेथे) कभी पराजित होते नहीं। (एनोः कतरः च) इनमेंसे एक भी (न पराजिग्ये) पराजित नहीं होता है । हे इन्द्र और विष्णु ! (यत् अपस्पृधेथां) जब तुम स्पर्धासे कार्य करते हो तब (एतत् सहस्रं) इस सहस्र भुवनोंको तुम (त्रेधा ऐरयेथां) तीन प्रकारसे हिलाते हो ॥ ८ ॥

[७०]

[७२३] (घृतवती) जलसे युक्त (भुवनानां अभिश्रिया) सब भुवनोंको आश्रय देनेवाली, (उर्वी) विस्तीर्ण (पृथ्वी) फैली हुई (मधुदुघे सुपेशसा) मधुर जलरस देनेवाली, सुन्दर (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी (अजरे) जरारहित (भूरि–रेतसा) बहुत शक्तिसे युक्त है (वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते) ये वरुणके नियमसे धारण किये गये हैं ॥ १ ॥

[७२४] (असश्चन्ती) परस्पर पृथक् रहनेवाली (भूरिधारे पयस्वती) बहुत जलप्रवाहोंसे युक्त, दूधसे भरपूर (सुकृते शुचिव्रते) सत्कर्मकर्ता और पवित्र व्रतवालेके लिये (घृतं दुहाते) घी को देती है, (अस्य भुवनस्य राजन्ती) इस भुवनको प्रकाशित करती है ऐसी (रोदसी) हे द्यावापृथिवी ! (मनुर्हितं यत् रेतः) मनुष्यके लिये जो हितकर है वह जल (अस्मे सिञ्चतं) हमारे लिये प्रवाहित करो ॥ २ ॥

भावार्थ– हे देवो ! इस मधुर सोमरसको पीओ, हे दर्शनीय देवो ! तुम पेट भरकर इस सोमरसको पीओ और मेरी प्रार्थना सुनो ॥ ७ ॥

इन्द्र और विष्णु इन दोनों देवोंमें कोई भी हारता नहीं है, दोनों ही विजय प्राप्त करते हैं। इनमें किसीको भी कोई शत्रु नहीं हरा सकता । पर जब तुम आपसमें ही स्पर्धा करने लगते हो, तब सारा लोक डरके मारे कांपने लगता है ॥ ८ ॥

द्युलोक और पृथ्वीलोक जलसे युक्त, सब भुवनोंको आश्रय देनेवाले, बहुत विस्तीर्ण, मधुर जलरस देनेवाले, अविनाशी और बहुत शक्तिसे युक्त हैं । ये दोनों लोक वरुणके नियमोंमें चलते हैं ॥ १ ॥

एक दूसरेसे बहुत दूर रहनेवाली, अनेक जलप्रवाहोंसे युक्त ये द्युलोक और पृथिवीलोक उत्तम और पवित्र कर्म करनेवालों को तेज प्रदान करते हैं । ये दोनों इन भुवनोंको प्रकाशित करते हैं । हे द्यावापृथिवी ! मनुष्योंके लिए जो हितकर है, वह जल हमारे लिए प्रवाहित करो ॥ २ ॥

७२५ यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाशं धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥ ३ ॥
७२६ घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥ ४ ॥
७२७ मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
७२८ ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [७२५] हे (रोदसी धिषणे) द्यावापृथिवी, हे धारण करनेवालो ! (यः मर्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) सरल जीवन क्रमके लिये (वां ददाश) आपको अर्पण करता है, (सः साधति) वह यश कमाता है । (धर्मणः परि) धर्मके ऊपर रहनेवाला ही (प्रजाभिः प्र जायते) पुत्रपौत्रोंसे जन्मता है क्योंकि (युवोः सिक्ता) आपसे मिले (सुव्रता विषुरूपाणि) उत्तम नियम अनेक हैं परन्तु वे सब उत्तम प्रकारके हैं ॥ ३ ॥

[७२६] (द्यावापृथिवी घृतेन अभिवृते) द्यु और पृथिवी जलसे युक्त हैं। वे (घृतश्रिया) जलकी शोभासे युक्त (घृतपृचा) जलसे स्नेहसंबंध रखनेवाले और (घृतवृधा) जलका संवर्धन करनेवाले हैं । (उर्वी पृथिवी) तुम विशाल और अमर्याद हो । (होतृवूर्ये) होताके वरण करनेके समय (पुरः हिते) आगे आप रहे हो । (सुम्नं इष्टये) सुखप्राप्तिके लिये (विप्राः इत् ते ईळते) ज्ञानी लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[७२७] हे द्यु और पृथिवी ! (नः मधु मिमिक्षतां) हमें तुम दोनों मधुररससे मिलाओ। तुम दोनों (मधुश्चुता) मधुर रसका स्राव करनेवाली, (मधु-दुघे) मधुर रसका वर्षाव करनेवाली हैं और (मधु-व्रते) मधुर रस देना तुम्हारा स्वभावही है। (यज्ञं द्रविणं देवता च दधाने) यज्ञ, धन और देवत्वको धारण करनेवाले तुम (अस्मे) हमें (सुवीर्यं वाजं महि श्रवः) उत्तम वीर्य, बल और महान् यश दे दो ॥ ५ ॥

[७२८] (नः द्यौः च पृथिवी च) हमारा द्यु और पृथिवी (ऊर्जं पिन्वतां) बल बढावें, वे हमारे (पिता माता) मातापिता हैं, तथा वे (विश्वविदा सुदंससा) सब जाननेवाले और उत्तम कार्य करनेवाले हैं । (सं रराणे रोदसी) उत्तम तेजस्वी द्यु और पृथिवी ! तुम (विश्व-शं-भुवा) सबका कल्याण करनेवाली हो, (अस्मे) हमारे लिये (सनिं वाजं रयिं) यश, बल और धन (सं इन्वतां) मिले ऐसा करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सरल जीवनके लिये जो दान करता है वह सफल होता है। जो धर्मपर रहता है वह संतानोंसे युक्त होता है । हे द्यावापृथिवी ! तुम्हारे नियम अनेक हैं और विविध प्रकारके हैं ॥ ३ ॥

द्यु और पृथिवी ये दोनों लोक जलसे युक्त हैं । ये दोनोंही लोक जलका संवर्धन करनेवाले हैं । ये दोनोंही विशाल और अमर्यादित हैं । सुखप्राप्तिके लिए ज्ञानी जन इन लोकोंकी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

हे द्यावापृथिवी ! हमें माधुर्य प्राप्त कराओ । मधुर व्रत धारण करनेवाले, मधुरताका वर्षाव करनेवाले और मधुरताका स्राव करनेवाले हो । मनुष्यका व्रत मधुरताकी वृद्धि करे । हमें उत्तम वीर बल और बडा यश मिले । मनुष्य अपना आचरण मीठा रखे और बल तथा वीर्य बढाकर यशस्वी हो ॥ ५ ॥

ये द्यावापृथिवी हमें पुत्रपौत्रयुक्त यश, अन्न, बल और धन दें । द्यावापृथिवी तेजस्वी हैं और सबका कल्याण करनेवाली हैं । ये सबके माता-पिता सब जाननेवाले और उत्तम कार्य करनेवाले हैं । माता-पिता उत्तम ज्ञानी और सत्कर्म करनेवाले हों ॥ ६ ॥

[७१]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- सविता । छन्दः- जगती, ४-६ त्रिष्टुप् ।)

७२९ उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥ १ ॥

७३० देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥ २ ॥

७३१ अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ ३ ॥

७३२ उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥ ४ ॥

---

[७१]

अर्थ— [७२९] (सविता सुक्रतुः स्यः देवः) जगत्का प्रसव करनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले उस सूर्य देवने (ऊ) निश्चयसे (सवनाय) दान देनेके लिये (हिरण्यया बाहू) अपने सुवर्णमय बाहू (उत् अयंस्त) ऊपर उठाये हैं । (सुदक्षः युवा) उत्तम दक्ष, तरुण तथा (मखः) पवित्र यज्ञस्वरूप यह देव (रजसः विधर्मणि) लोकोंके विविध रूपोंमें (घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते) जलसे युक्त अपने दोनों हाथ ऊपर उठाता है ॥ १ ॥

[७३०] (वयं) हम (सवितुः देवस्य) जगदुत्पादक सविता देवकी (श्रेष्ठे सवीमनि) श्रेष्ठ प्रेरणामें (वसुनः च दावने स्याम) और धनके दानके समय हम उपस्थित हों । (यः) जो तू (विश्वस्य द्विपदः चतुष्पदः) सब द्विपाद और चतुष्पादके (भूमनः निवेशने प्रसवे च) विश्वके विश्राम और व्यवसायमें कारण (असि) तू है ॥ २ ॥

[७३१] (अध अदब्धेभिः शिवेभिः पायुभिः) और न दबनेवाले कल्याणकारी रक्षणोंसे, हे (सवितः) जगदुत्पादक देव ! (नः गयं परि पाहि) हमारे घरकी रक्षा कर । (हिरण्य जिह्वः) सुवर्ण जिह्वावाले तू (नव्यसे सुविताय) नवीन सुखके लिये (रक्ष) हमारी रक्षा कर । (अघशंसः नः माकिः ईशत) पापी हमपर कभी शासन न करे ॥ ३ ॥

[७३२] (उ) निश्चयसे (यः दमूना सविता देवः) वह मन शान्त रखनेवाला, जगत् उत्पन्न करनेवाला सूर्य देव (दमूनाः हिरण्यपाणिः) मनको अपने आधीन रखनेवाला, सुवर्णके हाथवाला (प्रतिदोषं अस्थात्) प्रत्येक रात्रीके समाप्तिपर उदयको प्राप्त होता है । (अयः हनुः) लोहे जैसी हनुवाला (यजतः मन्द्रजिह्वः) पूज्य और आनंदकारक शब्द बोलनेवाला वह देव (दाशुषे भूरि वामं आसुवति) दाताको उत्तम धन देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाला, सबका प्रसव करनेवाला देव अपने सुवर्णके समान बाहू दान देनेके लिये ऊपर उठाता है । वह उत्तम दक्ष, तरुण और यज्ञरूप है ॥ १ ॥

वह प्रभु सब द्विपाद, चतुष्पादोंके निवास, विश्राम और उद्योगके लिये कारण है । जगत् उत्पन्न करनेवाले देवकी श्रेष्ठ प्रेरणामें तथा धन दानके समय हम उपस्थित हों ॥ २ ॥

हे सविता ! न दबनेवाले कल्याणकारी रक्षणोंसे हमारे घरकी रक्षा कर । रक्षक न दबनेवाले हों, कल्याणकारी हों । ये रक्षक हमारे घरकी रक्षा करें । हमारे घर सुरक्षित हों । उत्तम सुख हो इसलिये संरक्षण करें । पापी हमपर स्वामित्व कभी न करें । पापीके आधीन हम कभी न हों ॥ ३ ॥

७३३ उद् अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत् पृथिव्या अरीरमत् पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥ ५ ॥

७३४ वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

[७२]

(ऋषिः- ५ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- इन्द्रासोमौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७३५ इन्द्रासोमा महि तद् वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥

अर्थ— [७३३] (उपवक्ता इव बाहू उद् अयान् उ) वक्ता जैसे अपने बाहू ऊपर करता है वैसा यह (सुप्रतीका सविता हिरण्यया) उत्तम दर्शनीय सुवर्णके समान भुजाएं फैलाकर सविता उदयको प्राप्त हो रहा है। (दिवः रोहांसि अरुहत्) द्युलोकके उच्च भागोंपर चढा है। (पृथिव्याः कच्चिद् अभ्वं पतयत्) पृथ्वीपर किसी तरहके अरिष्टको बंद करता है (अरीरमत्) सबको रममाण करता है ॥ ५ ॥

[७३४] हे (देव) दिव्य (सवितः) सूर्य! (अद्य वामं उ) आज हमें उत्तम धन प्राप्त हो (श्वः वामं उ) कल भी हमें धन प्राप्त हो। (दिवे दिवे अस्मभ्यं वामं सावीः) प्रतिदिन हमें उत्तम धन दे। (भूरेः वामस्य हि क्षयस्य) तू बहुत धनका और आश्रयस्थानका स्वामी है। (अया धिया वामभाजः स्याम) इस भक्तिसे हम उत्तम धनके भागी बनें ॥ ६ ॥

(७२)

[७३५] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम! (वां तत् महित्वं महि) आपकी यह महिमा बडी है। (युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः) तुम दोनोंने बडे श्रेष्ठ कर्म किये थे। (युवं सूर्यं विविदथुः) तुमने सूर्यको प्राप्त किया, (युवं स्वः विश्वा तमांसि अहतं) तुम दोनोंने प्रकाशसे सब अन्धकारका नाश किया तथा (निदः च) निंदकोंको भी दूर किया ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सविता देव मनको शान्त रखनेवाला, जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला, मनको अपने अधीन करनेवाला, सुनहरे हाथों अर्थात् किरणोंवाला तथा हर रात्रीकी समाप्ति पर उदयको प्राप्त होता है। पूज्य और आनन्ददायक शब्दोंको बोलनेवाला यह सविता देव दाताको उत्तम धन देता है ॥ ४ ॥

जिस तरह कोई भाषण करनेवाला मनुष्य अपने बाहुओंको उठा उठाकर भाषण देता है, उसी तरह यह सविता देव अपनी सुनहरी किरणोंको ऊपर करके उदय होता है, उदय होनेके बाद वह पृथिवीपरके अन्धकारको दूर करता है और सबको आनंदित करता है ॥ ५ ॥

हे सविता देव! आज हमें उत्तम धन प्राप्त हो और कल भी हमें उत्तम धन प्राप्त हों, इस प्रकार प्रतिदिन हमें उत्तम धन दो। तुम बहुत प्रकारके धनके स्वामी हो, अतः तुम्हारी भक्ति करके हम उत्तम धनके भागी हों ॥ ६ ॥

हे इन्द्र और सोम! आपकी महिमा बहुत बडी है, क्योंकि तुम दोनोंने बहुत श्रेष्ठ कर्म किए हैं, तुमने सूर्यको प्रेरित करके उसके प्रकाशसे अन्धकारको दूर किया और निन्दकोंको भी दूर किया ॥ १ ॥

७३६ इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत् सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥
७३७ इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥ ३ ॥
७३८ इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद् दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥ ४ ॥
७३९ इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥ ५ ॥

अर्थ— [७३६] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! (उषासं वासयथः) उषाको तुमने बसाया, (ज्योतिषा सह) प्रकाशके साथ (सूर्यं उत् नयथः) सूर्यको ऊपर चढाया । (द्यां स्कंभनेन उप स्कंभथुः) द्युलोकको अपने आधारसे ऊपर स्तब्ध किया । और (पृथिवीं मातरं वि अप्रथतं) मातृभूमिको विस्तृत किया ॥ २ ॥

[७३७] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! (अपः परिष्ठां अहिं हथः) जलस्थानमें-मेघमंडलमें रहनेवाले अहि-कम न होनेवाले मेघको मारा, तथा (वृत्रं) वृत्रको मारा, वह (वां) आपका कर्म (द्यौः अनु अमन्यत्) द्युलोकके अनुकूल है ऐसा माना था । (नदीनां अर्णांसि प्र ऐरयतं) नदियोंके जलोंको प्रवाहित किया और (पुरूणि समुद्राणि आ पप्रथुः) बहुत समुद्र जलोंको भर दिया ॥ ३ ॥

[७३८] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! (आमासु अन्तः) छोटी आयुवाली (गवां वक्षणासु नि दधथुः इत्) गौवोंके दुग्धाशयमें (पक्वं) परिपक्व दूध तुम रखते हो । इसी तरह (आसु चित्रासु जगतीषु) इन चित्रविचित्र गमनशील गौओं (अन्तः) के अन्दर (अनपिनद्धं रुशत्) बंद न रहा ऐसा तेजस्वी दूध (जगृभथुः) धारण करते हो ॥ ४ ॥

[७३९] हे (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम ! हे (अंग) प्रिय ! (युवं) तुम दोनों (तरुत्रं) शीघ्र रक्षण करनेवाला (अपत्यासाचं) पुत्रोंके साथ रहनेवाला (श्रुत्यं) यशस्वी धन (रराथे) देते हैं । आप (उग्रा) उग्रवीर हैं, (युवं) आप (चर्षणिभ्यः) लोगोंके लिये (पृतनासहं) शत्रुसैन्यका पराभव करनेवाला (नर्यं शुष्मं) मानवोंका हित करनेवाला बल (सं विव्यथुः) देते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और सोम ! उषाको तुमने निवास कराया, प्रकाशमान् सूर्यको ऊपर चढाया, द्युलोकको बिना किसी आधारके ऊपर ही ऊपर स्तब्ध किया और पृथ्वीको विस्तृत किया ॥ २ ॥

हे इन्द्र और सोम ! तुमने अन्तरिक्षमें रहनेवाले मेघको मारा, वह तुम्हारा कर्म द्युलोकके समान ही बडा था। मेघोंको फोडकर तुमने नदियोंके जलोंको प्रवाहित किया और उस जलसे अनेक समुद्रोंको भरा ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और सोम ! तुमने गायोंमें पके हुए अन्नके समान शक्ति देनेवाले दूधको रखा । यह दूध गायोंके अन्दर सतत बहता रहता है, यह दूधकी धारा कभी बंद नहीं होती ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और सोम ! तुम शत्रुसे शीघ्र संरक्षण करनेवाला, बालबच्चोंके साथ रहनेवाला, कीर्ति फैलानेवाला धन देते हो । तुम दोनों लोगोंको शत्रुसैन्यका पराभव करनेवाला, मानवोंका हित करनेवाला बल देते हो । मनुष्योंमें ऐसा सामर्थ्य चाहिये ॥ ५ ॥

[७३]

(ऋषिः- ३ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- बृहस्पतिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७४० यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

७४१ जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ २ ॥

७४२ बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन् त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

---

[७३]

अर्थ— [७४०] (यः अद्रिभित्) जो शत्रुके किलोंको तोडता है (प्रथमजाः ऋतावा) जो सबसे प्रथम प्रकट हुआ, जो सत्यधर्म पालन करता है, (आंगिरसः हविष्मान्) जो आंगिरसोंमें-तेजस्वी वीरोंमें-हविष्यान्नसे युक्त है ऐसा बृहस्पति है। वह (द्वि-बर्ह-ज्मा) दो उत्तम गुणोंसे भूमिका रक्षण करनेवाला (प्राघर्मसत्) जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है। (वृषभः) बलवान् (नः पिता) वह हमारा पिता (रोदसी) द्युलोक और भूलोकमें (आ रोरवीति) गर्जना करता है ॥ १ ॥

[७४१] (यः) जो (ईवते जनाय चित्) प्रगतिशील लोगोंके हितके लिये (लोकं उ) स्थान देता है, उस (बृहस्पतिः देवहूतौ चकार) बृहस्पतिने देवयज्ञमें ऐसा ही किया था। (वृत्राणि घ्नन्) शत्रुओंको मारा, (पुरः वि दर्दरीति) शत्रुके नगरोंको तोड दिया, (शत्रून् जयन्) शत्रुपर जय प्राप्त किया और (पृत्सु अमित्रान् साहन्) युद्धोंमें शत्रुओंको पराजित किया है ॥ २ ॥

[७४२] (बृहस्पतिः वसूनि सं अजयत्) बृहस्पति धनोंको जीतता है। (एषः देवः) यह देव (गोमतः महः व्रजान्) गौओंसे युक्त गोशालाओंको जीतता है (स्वः अपः सिषासन्) स्वर्गसे जलोंको लाता है। (अ-प्रतिइतः बृहस्पतिः) अपराजित बृहस्पति (अर्कैः अमित्रं हन्ति) अपने तेजोंसे शत्रुका नाश करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— वह बृहस्पति शत्रुओंके पहाडी अर्थात् पहाडपर बने हुए या पहाडके समान सुदृढ किलोंको तोडता है। वह सत्यका पालक तथा सदा सत्यशील होनेके कारण सदा प्रथम स्थानपर रहता है। वह ज्ञान और कर्मरूप उच्च कोटिके गुणोंसे मातृभूमिकी सेवा करता है। यह हम सबका पिता बृहस्पति द्यावापृथिवीमें आवाज करता है ॥ १ ॥

बृहस्पति देव प्रगति करनेवाले लोगोंके हितके लिए उत्तम स्थान देता है। उसने स्वयं भी शत्रुओंको मारकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त की ॥ २ ॥

बृहस्पति धनोंको जयसे प्राप्त करता है। शत्रुके पास जो धन होंगे वे धन शत्रुको पराभूत करके प्राप्त करता है। यह देव गौओंसे युक्त बाडोंको जीतता है। शत्रुको पराभूत करके उनके पासकी गौवें प्राप्त करता है। उच्च स्थानसे जलोंको लाता है। अपने तेजोंसे शत्रुको मारता है। ये बृहस्पतिके गुण अपने वीरोंको अपनाने चाहिये ॥ ३ ॥

[७४]

(ऋषिः- बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । देवता- सोमारुद्रौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७४३ सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

७४४ सोमारुद्रा वि वृहतं विषूची ममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचै रस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ २ ॥

७४५ सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥

---

[७४]

अर्थ— [७४३] हे (सोमा-रुद्रा) सोम और रुद्र ! तुम दोनों (असुर्यं धारयेथां) सामर्थ्य धारण करते हैं । (इष्टयः वां अरं प्र अश्नुवन्तु) हमारे यज्ञ आपके पास निःसंदेह पहुंचते हैं । (दमे दमे सप्त रत्ना दधाना) घर घरमें सात रत्न तुम रखते हो । (नः शं भूतं) हमारे लिये कल्याण करनेवाले हो जाओ तथा (द्विपदे चतुष्पदे शं) हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंके लिये कल्याण करनेवाले हो जाओ ॥ १ ॥

[७४४] हे (सोमा रुद्रा) सोम और रुद्र ! (विषूचीं विवृहतं) विविध प्रकारके इन अनर्थोंको दूर करो, (अमीवा या नः गयं आ विवेश) जो रोग हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं (निर्ऋतिं पराचैः आरे बाधेतां) दुरवस्थाको दूर हटा दो । (अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) हमें कल्याणकारी मंगल प्राप्त हों ॥ २ ॥

[७४५] हे (सोमा रुद्रा) सोम और रुद्रो ! (युवं) तुम दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरोंमें (एतानि विश्वा भेषजानि) ये सब औषध (धत्तं) धारण करो । (यत् नः तनूषु बद्धं अस्ति) जो हमारे शरीरोंमें बंधा है, (एनः कृतं) पाप किया है वह (अस्मत् अवस्यतं) हमसे खुला करो और (मुञ्चतं) मुक्त करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे सोम और रुद्र ! तुम दोनों सामर्थ्य धारण करते हो । हमारे यज्ञ पूर्णतासे तुम्हारे पास पहुंचे । क्योंकि ये हम तुम्हारे संतोषके लिये कर रहे हैं । प्रत्येक घरमें सात रत्न धारण करते हो । हीरा, लाल, पाचू आदि सात रत्न हर घरमें रहें । ऐसा धन सबको मिले । दो आंख, दो कान, दो नाक, एक मुख ये सात रत्न हैं । प्रत्येक मानवके शरीररूपी घरमें ये रखे हैं । हमारा और द्विपादों तथा चतुष्पादोंका कल्याण हो ॥ १ ॥

हे सोम और रुद्र ! जो हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं वे रोग सबके सब सब प्रकारसे दूर हों । पेटमें अपचित अन्नसे उत्पन्न होनेवाले रोग, सब प्रकारके रोग दूर हों । चारों प्रकारोंसे, शौचशुद्धि, मलशुद्धि, कोष्ठशुद्धि आदि उपायोंसे रोग दूर हों । दुरवस्थाको दूर करो । दुरवस्था हमारे पास न रहे । हमें सब कल्याण मंगल प्राप्त हो । हमारा उत्तम यश बढे ॥ २ ॥

हे सोम और रुद्र ! तुम दोनों ये हमारे शरीरमें सब औषध रखो । औषधोंकी योजना करो जिससे हम रोगमुक्त हो जावें । हमारे शरीरोंमें जो दृढमूल दोष हुआ हो, जो हमने पाप किया हो, जिससे दोष हमारे शरीरमें रहा हो, हमसे वह दोष दूर करो और उस दोषसे हमें मुक्त करो । जिससे हमें कई रोग न हो ऐसा करो ॥ ३ ॥

×

७४६ तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥ ४ ॥

[७५]

(ऋषिः- पायुर्भारद्वाजः । देवता- (संग्रामाशिषः) १ वर्म, २ धनुः, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ इषुधिः, ६ (पूर्वार्धः) सारथिः, ६ (उत्तरार्धः) रश्मयः, ७ अश्वाः, ८ रथः, ९ रथगोपाः, १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावा-पृथिवी-पूषाणः; ११-१२, १५-१६ इषवः, १३ प्रतोदः, १४ हस्तघ्नः, १७ युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्यादयः, १८ वर्म-सोम-वरुणाः, १९ देवब्रह्माणि । छन्दः- त्रिष्टुप् ; ६, १० जगती; १२, १३ १५, १६, १९ अनुष्टुप् , १७ पङ्क्तिः ।

७४७ जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद् वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥ १ ॥

७४८ धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

अर्थ— [७४६] हे (तिग्मायुधौ तिग्महेती) तीक्ष्ण आयुधवाले, तीक्ष्ण शस्त्रवाले (सुशेवौ सोमारुद्रौ) उत्तम सेवा करने योग्य सोम और रुद्रो ! (इह नः सु मृळतं) यहां हमें उत्तम रीतिसे सुखी करो । (नः वरुणस्य पाशात् प्र मुञ्चतं) हमें वरुणके पाशसे मुक्त करो । (सुमनस्यमाना) उत्तम विचार करनेवालो (नः गोपायतं) हमारा संरक्षण करो ॥ ४ ॥

[७५]

[७४७] १ वर्म देवता — (यत् वर्मी) जब कवच धारण करके वीर (समदां उपस्थे याति) संग्रामोंमें जाता है, वह (जीमूतस्य इव प्रतीकं भवति) मेघका प्रतीकसा होता है । (त्वं अनाविद्धया तन्वा जय) घ(?)ायक न होते हुए शरीरसे जय प्राप्त कर । (वर्मणः सः महिमा) कवचका वह महिमा (त्वा पिपर्तु) तेरा बचाव करे ॥ १ ॥

[७४८] २ धनुः देवता — (धन्वना गाः) धनुसे गौवोंको प्राप्त करेंगे, और (धन्वना आजिं जयेम) धनुसे संग्राममें जय प्राप्त करेंगे । (धन्वना तीव्राः समदः जयेम) धनुष्यसे तीव्र युद्धमें विजयी होंगे । (धनुः शत्रोः अपकामं कृणोति) धनुष्य शत्रुके इष्ट फलका नाश करता है, शत्रुका पराभव करता है । (धन्वना सर्वाः प्रदिशः जयेम) धनुसे सब दिशाओंमें विजय करेंगे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सोम और रुद्र ! यहां हमें सुखी करो । वरुणके पाशसे-रोगसे हमें मुक्त करो । हमारे पास रोग न आवे ऐसा करो । उत्तम मनवालो हमारी सुरक्षा करो । उत्तम मनसे रोगमुक्त होकर सुरक्षा होती है । मनकी भावना शुद्ध रही तो रोग दूर होते हैं और अशुद्ध मन हुआ तो रोग उत्पन्न होते हैं । यह नीरोगिता प्राप्तिका सिद्धान्त सदा मनमें सुस्थिर रखने योग्य है ॥ ४ ॥

कवच पहन कर जो वीर संग्राममें जाता है वह घायल न होते हुए विजय प्राप्त करता है । यह कवचकी महिमा है । इस लिये वीर कवच धारण करके ही संग्राममें जाये ॥ १ ॥

हमारे वीरोंके पास उत्तम और दृढ धनुष हों, उनसे हमारे वीर गायोंको प्राप्त करें, तीव्र अर्थात् दारुण युद्धमें भी हमारे वीर विजयी हों तथा शत्रुओंके इष्ट फलका नाश हो, वह शत्रुका पराभव करें । इस प्रकार हम दृढ धनुषोंको लेकर हम सब दिशाओंमें विजय प्राप्त करें ॥ २ ॥

७४९ वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥ ३ ॥
७५० ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४ ॥
७५१ बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ५ ॥
७५२ रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७४९] ३ ज्या देवता— (प्रियं सखायं कर्णं परिषस्वजाना) प्रिय मित्र कर्णको आलिंगन देनेके समान (वक्ष्यन्ती इव इत्) कुछ कहनेकी इच्छा करती हुई धनुष्यकी डोरी (आगनीगन्ति) आती है । (धन्वन् अधि वितता) धनुष्यपर चढाई हुई (ज्या) धनुष्यकी डोरी (योषा इव शिङ्क्ते) स्त्रीके समान मधुर शब्द करती है । (इयं समने पारयन्ती) यह डोरी युद्धमें संकटसे पार करती है ॥ ३ ॥

[७५०] ४ आर्त्नी देवता— (ते) वे दो धनुष्यके नोक (समना इव योषा) एक मनसे रहनेवाली दो स्त्रियोंके समान (आचरन्ती) आचरण करनेवाली (माता इव पुत्रं उपस्थे बिभृतां) माता जैसी गोदमें पुत्रको लेती है वैसी ये बाणको अपनी गोदमें धरती हैं । (सं विदाने आर्त्नी) वे मिलकर रहनेवाले दोनों नोकें (शत्रून् अप विध्यतां) शत्रुका वेध करती हैं और (इमे अमित्रान् विस्फुरन्ती) ये शत्रुओंका नाश करती हैं ॥ ४ ॥

[७५१] ५ इषुधिः देवता— (बह्वीनां पिता) बहुतोंका यह तरकश पिता है, (अस्य पुत्रः बहु) इसके पुत्र भी बहुत हैं, (समना अवगत्या) समरमें आकर (चिश्चा कृणोति) चिचां करता है । (पृष्ठे निनद्धः इषुधिः) पीठपर बंधा हुआ यह बाणोंका तरकश (प्रसूतः) अपनेसे निकले बाणोंसे (सर्वाः सङ्काः पृतनाः) सब संगठित शत्रुसेनाको (जयति) जीतता है ॥ ५ ॥

[७५२] ६ सारथिः— (पूर्वार्धः) रश्मयः (उत्तरार्धः) — (सु-सारथिः) उत्तम सारथि (रथे तिष्ठन्) रथमें बैठा हुआ (यत्र यत्र कामयते) जहां जानेकी इच्छा करता है, (वाजिनः पुरः नयति) घोडोंको आगे चलाता है । (अभीशूनां महिमानं पनायत) लगामोंका महिमा देखो (मनः पश्चात्) मनके पीछे पीछे (रश्मयः अनुयच्छन्ति) रश्मियां दौडती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— धनुष्यकी डोरी इसका प्रियमित्र वीरका कान है, इसको आलिंगन देकर कुछ कहनेकी इच्छासे कानके पास आती है । धनुष्यपर चढाई डोरी स्त्रीके समान वीरके कानमें कुछ कहती है और यह डोरी युद्धके संकटसे वीरका बचाव करती है ॥ ३ ॥

धनुष्यकी दोनों नोकें एक मनसे एकत्र रहनेवाली दो स्त्रियोंके समान शत्रुका पराभव करती हैं ॥ ४ ॥

तरकश बहुतसे बाणोंको रखनेका स्थान होनेसे यह बाणोंका पिता कहा गया है और बाणोंको इसका पुत्र कहा गया है । युद्धमें तरकशसे बाणोंको निकालने और रखनेसे इसमें बडी आवाज होती है । वीरोंकी पीठपर बंधा हुआ बाणोंका यह तरकश अपनेमेंसे निकले हुए बाणोंसे संगठित हुए शत्रुओंको जीतता है ॥ ५ ॥

उत्तम सारथि रथमें बैठकर जहां जाना चाहता है, वहां घोडोंको प्रेरित करता है । यह वस्तुतः लगामोंकी ही महिमा है, कि जहां जहां सारथिको जानेका मन होता है, उसकी इच्छाके पीछे पीछे सारथिके लगाम भी जाते हैं ॥ ६ ॥

७५३ तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥ ७ ॥
७५४ रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥ ८ ॥
७५५ स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥
७५६ ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥ १० ॥

अर्थ— [७५३] ७ अश्वा देवता— (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथके साथ बलसे दौडनेवाले (वृषपाणयः अश्वाः) बैलोंसे अधिक बलवान् घोडे (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) बडे शब्द करते हैं (अमित्रान् प्रपदैः अवक्रामन्तः) शत्रुओंको अपने पावोंसे आक्रान्त करते हुए (अनपव्ययन्तः शत्रून् क्षिणन्ति) व्यय न करते हुए भी शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ७ ॥

[७५४] ८ रथः देवता— (यत्र अस्य रथवाहनं हविः) जहां इस रथको चलानेवाला हव्य रखा है, (यत्र अस्य नाम आयुधं) जहां इसका शत्रुको नमानेवाला आयुध है, जहां (अस्य वर्म निहितं) इसका कवच रखा है, (वयं सुमनस्यमानाः) हम उत्तम मनवाले (विश्वाहा) सर्वदा (तत्र शग्मं रथं उपसदेम) वहां उस सुखदायी रथपर चढकर बैठेंगे ॥ ८ ॥

[७५५] ९ रथगोपा देवता— (स्वादु संसदः) सुखदायी सहायता करनेवाले (वयोधाः) बलवान् (कृच्छ्रेश्रितः) संकट समयमें आश्रय लेने योग्य (शक्तिमन्तः) शक्तिमान् (गभीराः) गंभीर स्वभाववाले, (चित्रसेनाः) विशेष उत्तम सेनावाले (इषु बलाः) बाणोंका बल जिसके साथ है ऐसे, (अमृध्राः) शत्रुसे अहिंसित (सतो वीराः) सत्पक्षमें रहनेवाले वीर (उरवः) बहुत (व्रातसाहाः पितरः) शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवाले संरक्षक होते हैं ॥ ९ ॥

[७५६] १० ब्राह्मण-पितृ-सोम-द्यावा-पृथिवी-पूषणः देवता— (ब्राह्मणासः) ब्राह्मण, ज्ञानी पुरुष (पितरः) रक्षक, (सोम्यासः) सोम (शिवे अनेहसा द्यावापृथिवी) कल्याणकारी निष्पाप द्युलोक और पृथिवी और (पूषा) पोषक देव (दुरितात् नः पातु) पापसे हमारा बचाव करें । (ऋतावृधः रक्ष) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाले हमारी सुरक्षा करें (माकिः अघशंसः नः ईशत) कोई भी पापी हमारे ऊपर स्वामित्व न करें ॥ १० ॥

भावार्थ— रथोंको अपने बलसे खींचकर ले जानेवाले अतिशय बलवान् घोडे बहुत जोरसे हिन हिनाते हैं । वे बलशाली घोडे शत्रुओंको अपने पांवोंसे कुचलते हुए उनका संपूर्ण संहार करते हैं ॥ ७ ॥

जिस रथमें इस घोडोंको प्रेरणा देनेवाली घास रखी हुई है, उसी रथमें शत्रुको झुकानेवाला आयुध अर्थात् हथियार रखा हुआ है । उसी रथपर वीरका कवच भी रखा हुआ है । हम उत्तम मनवाले हम सब जन हररोज ऐसे सुखदायी रथोंपर चढें ॥ ८ ॥

ऐसे उत्तम रथकी रक्षा करनेवाले वीर गण सुख देनेवाले, सबकी सहायता करनेवाले, बलवान्, संकटके समय सबकी सहायता करनेवाले, शक्तिशाली, गंभीर स्वभाववाले, विशेष उत्तम सेनावाले, बाणोंके बलको अपने पास रखनेवाले, शत्रुओंसे अहिंसित और शत्रुसेनाओंका पराभव करनेवाले होते हैं ॥ ९ ॥

ब्राह्मण, ज्ञानी पुरुष, रक्षक सोम कल्याणकारी निष्पाप द्यु और पृथिवीलोक तथा सबका पोषण करनेवाला पूषा देव पापसे हमारी रक्षा करें । सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाले सभी देव हमारी रक्षा करें, कोई भी पापी हम पर शासन न करे ॥ १० ॥

७५७ सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ११ ॥

७५८ ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥

७५९ आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ १३ ॥

७६० अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १४ ॥

७६१ आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥

अर्थ – [७५७] ११-१२ इषवः देवताः— (मृगः सुपर्णं वस्ते) बाण उत्तम पंख धारण करता है, (अस्या दन्तः) इस बाणका दांत तीक्ष्ण है । (गोभिः संनद्धा प्रसूता पतति) गोचर्मकी डोरीसे मिलकर फेंका बाण शत्रुपर गिरता है । (यत्र नरः सं द्रवन्ति वि द्रवन्ति च) जिस युद्धमें वीर मिलकर या अलग होकर दौडते हैं (तत्र) वहां उस युद्धमें (अस्मभ्यं इषवः शर्म यंसन्) हमारे लिये बाण सुख देवें ॥ ११ ॥

[७५८] हे (ऋजीते) सरल जानेवाले बाण ! (नः परि वृंधि) हमारा चारों ओरसे रक्षण कर (नः तनूः अश्मा भवतु) हमारा शरीर पत्थर जैसा बने । (सोमः नः अधि ब्रवीतु) सोम हमारा उत्साह बढावे और (अदितिः शर्म यच्छतु) अदिति हमें सुख देवे ॥ १२ ॥

[७५९] १३ प्रतोदः देवता— हे (अश्वाजनि) घोडोंको चलानेवाली कशा ! तू (समत्सु प्रचेतसः अश्वान् चोदय) संग्रामोंमें समझदार घोडोंको प्रेरित कर । (एषां सानु) इनके ऊंचे भागोंपर (आ जंघन्ति) प्रहार करते हैं और (जघनान् उप जिघ्नते) नीचेके भागपर समीपसे ताडन करते हैं ॥ १३ ॥

[७६०] १४ हस्तघ्नः देवता— (अहिः इव भोगैः बाहुं पर्येति) सांपके समान बाहुपर लिपटता है, और (ज्यायाः हेतिं परिबाधमानः) धनुष्यकी डोरीके आघातोंसे बचाता है ऐसा यह (हस्तघ्नः) हस्तबंध (विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्) सब कर्मोंको जाननेवाले विद्वान् पुरुषकी तरह (पुमांसं विश्वतः परिपातु) पुरुषका चारों ओरसे रक्षण करे ॥ १४ ॥

[७६१] १५-१६ इषवो देवताः— (या आलाक्ता) जो विषसे लिपटी (रुरु-शीर्ष्णी) मृगके समान सिरवाली (अथो यस्याः अयो मुखं) जिसके मुखमें लोहेका फल लगा है (पर्जन्य-रेतसे देव्यै इष्वै) पर्जन्यबलसे जिसका वीर्य बढाया है उस बाण देवताके लिये (इदं बृहत् नमः) यह मेरा बडा प्रणाम है ॥ १५ ॥

भावार्थ— यह बाण उत्तम पंख धारण करता है, इसका अग्रभाग तीक्ष्ण होता है । ज्यापर चढाकर फेंका गया यह बाण शत्रुपर आकर गिरता है । जिस युद्धमें वीर मिलकर या अलग अलग होकर दौडते हैं, उस युद्धमें भी हम इन बाणोंसे सुरक्षित होकर रहें अर्थात् ये बाण हमपर न गिरें ॥ ११ ॥

हे सरलतासे जानेवाले बाण ! तू हमारी रक्षा कर । हमारे शरीर पत्थरकी तरह बलवान् हों । सोम देव हमारा उत्साह बढावे और अदिति हमें सुख दे ॥ १२ ॥

घोडोंको प्रेरणा देनेवाली चाबुक भी अच्छी हो । इन चाबुकोंसे घोडोंको अनावश्यक रूपसे न मारा जाए, अपितु जहां जरूरत पडे वहां चाबुकसे घोडोंके ऊंचे जघन भागपर मारा जाए ॥ १३ ॥

युद्ध करनेके समय धनुष्यकी डोरी खींचते समय डोरीके घर्षणसे कलाइयां जख्मी न हों, इसलिए वीर योद्धा हाथोंमें चमडेके दस्ताने पहनते थे, जो कोहनीके नीचे तक आते थे । यह दस्ताने बाहुओं पर सांपोंके समान लिपट जाते थे और हाथ धनुषकी डोरीके आघातोंसे बचता था । इस प्रकार यह दस्ताना वीरकी तरहसे रक्षा करता था ॥ १४ ॥

७६२ अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥ १६ ॥
७६३ यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पति- रदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १७ ॥
७६४ मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥
७६५ यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥

अर्थ— [७६२] हे (ब्रह्म संशिते शरव्ये) ज्ञान द्वारा तीक्ष्ण बनाये बाण ! (अवसृष्टा परा पत) छोडा जानेपर दूर जा (गच्छ) जा और (अमित्रान् प्र पद्यस्व) शत्रुओंपर जाकर गिर । (अमीषां कंचन मा उच्छिषः) इन शत्रुओंमेंसे किसीको भी न बचा रहने दे ॥ १६ ॥

[७६३] १७ युद्धभूमि-कवच-ब्रह्मणस्पत्यादयः देवताः— (विशिखाः कुमारा इव) शिखा रहित कुमारोंके समान (यत्र बाणाः संपतन्ति) जहां बाण गिरते हैं, (तत्र) वहां उस युद्धभूमिमें (ब्रह्मणःपति अदितिः) ब्रह्मज्ञानका पति और अदिति (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख देवे । (विश्वाहा शर्म यच्छतु) हमें सदा सुख देवे ॥ १७ ॥

[७६४] वर्म-सोम-वरुणाः देवताः— (वर्मणा ते मर्माणि छादयामि) कवचसे तेरे सब मर्मस्थानोंको आच्छादित करता हूं । (राजा सोमः त्वा अमृतेन अनु वस्तां) सोम राजा तेरे पास अपने अमरत्वके गुणसे बसता रहे । वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु) वरुण तेरे लिये श्रेष्ठका श्रेष्ठत्व देवे, अथवा श्रेष्ठ धन देवे । (जयन्तं त्वा देवाः अनु मदन्तु) जय होनेपर देव तेरा आनन्द माने अर्थात् तेरे जयसे सब देव आनंदित हों ॥ १८ ॥

[७६५] १९ देवब्रह्माणि देवता— (यः नः स्वः) जो हमारा अपना हो (अरणः) अथवा दूरका हो (यः च निष्ट्यः) जो नीच हो (जिघांसति) जो हमें मारता हो (तं) उसको (सर्वे देवाः धूर्वन्तु) सब देव विनष्ट करें । (मम अन्तरं) मेरे अन्दर (ब्रह्म वर्म) ज्ञान रूपी कवच है ॥ १९ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें अनेक तरहके बाणोंका वर्णन किया है । जो इस प्रकार है— कुछ बाण नाक अक्का अर्थात् विषमें बुझे होते हैं । प्रथम बाणको तपाकर फिर उसे विषमें बुझाते हैं । इस बाणके शरीरमें जरासा भी लगते ही सारे शरीरमें रक्त फैल जाता है और वह मर जाता है । कुछ बाण सींगके समान बहुत तीक्ष्ण होते हैं । कुछ बाण अयोमुख अर्थात् लोहेकी नोकवाले होते हैं । इन सभी बाणोंको नमस्कार हो । ऐसे बाण मेरे पास न आवें, मुझसे दूर ही रहें ॥ १५ ॥

हे बाण ! तू छोडे जानेपर दूर जाकर ही गिर, तू तो शत्रुओंपर जाकर गिर और जो हमारे शत्रु हैं, उनमेंसे एक भी न बचे ॥ १६ ॥

शिखाओंसे रहित अर्थात् अत्यन्त तीक्ष्ण कुमारोंके समान बहुत तेज बाण जहां गिरते हैं, ऐसी युद्धभूमिमें ब्रह्मणस्पति आदि देवता हमारी रक्षा करें और हमें सदा सुख दें ॥ १७ ॥

सोम वनस्पतिसे अमरत्व या दीर्घायुत्व, अथवा बाण आदिके व्रण शीघ्र ठीक होते हैं ऐसा राजा सोम, सोमवल्ली अपने अमरत्वके साथ तेरे साथ रहे ॥ १८ ॥

जो हमारा सम्बन्धी होकर भी हमें मारना चाहते हो, अथवा जो हमारा शत्रु हमें मारना चाहते हो, उसे सब देव नष्ट करें और मेरे अन्दर ज्ञानरूपी कवच रहे अर्थात् ज्ञानसे मैं अपनी रक्षा करता रहूँ ॥ १९ ॥

॥ षष्ठ मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

षष्ठ मंडल

सुभाषित

१ धियः होता अभवः— (१) बुद्धिसे ही मनुष्य होता बनता है।

२ दुस्तरीतु सहः— (२) मनुष्यका बल दुष्टोंको मारनेके लिए ही हो।

३ नरः प्रथमं देवयन्तः— (२) मनुष्य प्रथम दिव्य गुणोंसे युक्त हो।

४ महः राये चिन्तयन्तः— (२) विशेष वैभव प्राप्त करनेके लिए ज्ञानको प्राप्त करें।

५ जागृवांसः रुशन्तं अग्निं अनुग्मन्— (३) जागृत रहनेवाले साधक तेजस्वी अग्निका अनुसरण करें। अन्धविश्वाससे किसी दुष्टके पीछे न जाएं।

६ जागृवांसः रयिं अनुग्मन्— (३) जाग्रत रहकर प्रयत्न करनेवाले मनुष्य ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं।

७ देवस्य पदं नमसा व्यन्तः— (४) प्रभुके पवित्र पदको नम्रतापूर्वक उपासनासे ही प्राप्त किया जा सकता है।

८ ते भद्रायां सन्दृष्टौ रणयन्त— (४) प्रभुके कल्याण करनेवाले (विश्वके) सौन्दर्यमें आनन्द प्राप्त करते रहें। विश्वमें सुन्दरता है, उसे देखकर मनुष्य आनन्द प्राप्त करें।

९ यज्ञियानि नामानि दधिरे— (४) प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करते रहें।

१० जनानां उभयासः रायः— (५) मनुष्योंको ऐहिक धन और पारमार्थिक ज्ञानरूप धन दोनों तरहके धन प्राप्त करने चाहिए।

११ तरणे, त्वं चेत्यः त्राता भूः— (५) हे तारक प्रभो! तू लोगोंको ज्ञानवान् बनाकर उनका तारण करता है। मनुष्य ज्ञानी बनकर ही अपना उद्धार कर सकता है।

१२ मनुष्याणां सदं इत् माता पिता— (५) ईश्वर ही मनुष्योंका सच्चा माता पिता है।

१३ विक्षु प्रियः सपर्येण्यः— (७) जो प्रजाजनोंमें प्रिय होता है, उसकी पूजा होती है।

१४ विशां विश्पतिः कविः— (८) प्रजाओंका शासक ज्ञानी हो।

१५ वृषभः नितोशनः— (८) शासक बलवान् हो और शत्रुका नाश करनेवाला हो।

१६ चर्षणीनां प्रेतीषणिः— (८) प्रजाजनोंके पास जाकर उनकी परिस्थिति देखनेवाला शासक हो।

१७ मर्तः शशामे— (९) मनुष्य ईश्वरकी स्तुति करके शान्ति प्राप्त करे।

१८ त्वा ऊतः सः मर्तः विश्वा वामा दधते— (९) ईश्वरसे सुरक्षित हुआ वह मनुष्य सब धनोंको प्राप्त करता है।

१९ भद्रायां सुमतौ आयतेमहि— (१०) हम उत्तम बुद्धिके संरक्षणमें अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न करें।

२० नृवत् सदं अस्मे धेहि— (११) पर्याप्त पुत्र पौत्रादिसे भरा हुआ घर हमें मिले।

२१ भद्रा सौश्रवसानि अस्मे सन्तु— (१२) कल्याण करनेवाले यश हमें मिलें।

२२ विधते पुरूणि वसु त्वे सन्ति— (१३) उपासकको देनेके लिए प्रभुके पास बहुत सारा धन है।

२३ मर्तः सु दानवे धिया शशमते— (१७) मनुष्य उत्तम दाताकी ही स्तुति करे।

२४ पुरि जूर्यः रण्वः— (२०) नगरमें वृद्ध मनुष्य सबको उपदेश देनेके कारण सबको प्रिय होता है।

२५ कृत्वा द्रोणे अज्यते— (२१) मनुष्य अपनी उन्नतिके साधन मर्यादित होनेके बावजूद भी अपने पुरुषार्थसे अपनी उन्नति करता रहे।

२६ देवान् नः सुमतिं वोचः— (२२) विबुधों अर्थात् ज्ञानियोंके पास हमारी उत्तम सन्देशकी वाणी पहुंचे।

२७ नृन् सुक्षितिं स्वस्तिं वीहि— (२४) मनुष्योंको उत्तम घर मिले और उनका कल्याण हो।

२८ ऋतपाः ऋतेजाः क्षेषत्— (२५) सत्यका पालक और सत्यपालनके लिए ही अपना जीवन देनेवाला दीर्घजीवी होता है।

२९ सः देवयुः उरु ज्योतिः नशते— (२५) वह देवभक्त विस्तृत तेज प्राप्त करता है।

३० ऋधद्वाराय अग्नये ददाश— (२६) प्रदीप्त अग्निमें ही मनुष्य हविको अर्पित करे।

३१ तं मर्तं अंहः न, प्रदाप्तिः न— (२६) उस मनुष्यको पाप तथा गर्व नहीं होते।

३२ सूरः न अस्य दृशतिः अ-रेपाः— (२७) सूर्यके समान मनुष्यका दर्शन पवित्र और निष्पाप हो।

३३ शुचतः धीः भीमा आ पाति— (२७) तेजस्वी वीरकी बुद्धि भीरु मनुष्यको भयानक दीखती है। वह विकाश होती जाती है।

३४ मित्रमहाः शोचिषा— (३०) मित्रके महत्त्वको बढानेवाला, उसके गुणोंको प्रकट करके सर्वत्र उसकी प्रसिद्धि करनेवाला मनुष्य विशेष तेजसे युक्त होता है।

अरुषः दिवा, अरुषः नक्तं— (३०) मनुष्य जिस तरह दिनमें पापसे रहित होकर शुभ कर्म करे, उसी तरह रातमें भी पापरहित शुभ कर्मोंको करता रहे।

३५ धायोभिः युज्येभिः अर्कैः— (३२) मनुष्य धारक शक्ति, योग्यता और तेजसे युक्त हो।

३६ विद्युत् न स्वेभिः शुष्मैः दविद्योत्— (३२) वह बिजलीके समान अपनी कान्तिसे प्रकाशता रहे।

३७ विश्वायुः अमृतः अतिथिः, जातवेदाः— (३४) मनुष्य पूर्णायु, रोग अपमृत्यु आदिसे रहित, अतिथिके समान पूज्य और ज्ञानका प्रचार करनेवाला हो।

३८ मर्त्येषु उषर्भुत्— (३४) मनुष्योंमें उषःकालमें उठनेवाला हो।

३९ अश्नस्य पूर्व्याणि चित् शिश्नथत्— (३५) दुष्टोंसे पहले किए गए दुष्कर्मोंका भी बदला लेना चाहिए।

४० भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यः न— (३८) तेजस्वी किरणोंसे जिसतरह सूर्य प्रकाश फैलाता है, उसी तरह मनुष्य ज्ञानको फैलावे।

४१ औशिजः पत्मन् दीयन्— (३८) जिस तरह सूर्य अपने मार्गसे जाता है, उसी तरह मनुष्य अपने निश्चित मार्गसे चले।

४२ अवृकेभिः पथिभिः नः रायः स्वस्ति— (४०) उपद्रव रहित मार्गोंसे हमें धन और कल्याण प्राप्त हो।

४३ प्रचेताः पुरुवारः अध्रुक्— (४१) ज्ञानी मनुष्य विज्ञानमें निपुण, अनेकों द्वारा प्रशंसनीय तथा द्रोह न करनेवाला हो।

४४ मित्रमहः तपिष्ठः अग्निः— (४४) अग्रणी मनुष्य अपने मित्रोंका महत्त्व बढानेवाला, शत्रुओंको संताप देनेवाला और तेजस्वी हो।

४५ तपसा तपस्वान्— (४४) मनुष्य अपने तेजसे तेजस्वी बने।

४६ तव ऊती कामं अश्याम— (४७) अग्रणीके संरक्षणसे सुरक्षित होकर हम अपनी इच्छाओंको पूर्ण करें।

४७ वीरासः त्वत् अभिमातिषाहः— (४७) वीर क्षत्रिय भी इस प्रभुके सामर्थ्यकी सहायतासे ही शत्रुओंको हरानेमें सफल होते हैं।

४८ सुक्रतुः कविः वैश्वानरः— (६१) उत्तम कर्म करनेवाला ज्ञानी सब मनुष्योंका हित करनेवाला होता है।

४९ अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता— (८१) डरसे शत्रुके सामने न दबनेवाला वीर सबका संरक्षण करता है और अमरत्वका रक्षक भी वही है।

५० वैश्वानरः विश्वं नृम्णं अधत्त— सब मानवोंका हित करनेवाला नेता अग्रणी सब बल अपनेमें धारण करता है।

५१ ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत् अकृणोत्— (६७) अपने प्रकाशसे अन्धकारको इससे दूर किया। नेता ज्ञान क प्रसार करके लोगोंके अज्ञानको दूर करे।

५२ पव्या इव वनिनं अघशंसं नीचा नि वृश्च— (६६) जिस तरह वृक्षके आघातसे वृक्ष टूट पड़ता है, उसी तरह पापी शत्रुको नीचे गिरा दो।

५३ अजरः राजा— (६६) राजा जरा रहित हो। राजा निर्बल न हो। वह वृद्धावस्थामें भी तरुणके समान कार्य करे।

५४ अदब्धेभिः गोपाभिः सूरीन् पाहि— (६८) राजा अपनी अदम्य संरक्षणकी शक्तिसे विद्वानोंकी रक्षा करे।

५५ सः मर्त्येषु श्रवसा पीपाय— (७८) परमात्माकी उपासना करनेवाला साधक मनुष्योंमें अपने यशके कारण परिपुष्ट होता है।

५६ उशत् इमं यज्ञं चनः धाः— (८१) मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छासे अपने पास अन्नका संग्रह करे।

५७ तव स्वां तन्वं यजस्व— (८४) हे मनुष्य ! तू अपने शरीरका सत्कार कर। मनुष्य अपने शरीरको परिपुष्ट बनाकर अपने शरीरका सत्कार करे।

५८ त्वे वष्टि धिषणा धन्या— (८५) प्रभुकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धि धन्य है।

५९ अपाकः विभावा अग्निः सु अदिद्युतत्— (८६) परिपक्व बुद्धिवाला वैभवसम्पन्न अग्रणी अत्यन्त तेजस्वी दीखता है।

६० वावसानाः अंहः अति स्रसेम— (८८) भक्ति करनेवाले हम पापोंको दूर करते हैं।

६१ ऋतावा सूर्यः न दूरात् शोचिषा ततान— (८९) सत्यकी रक्षा करनेवाला वीर सूर्यके समान दूरसे ही चमकता है।

६२ अद्रोघः अमर्त्यः त्मन् चेताति— (९१) द्रोह न करनेवाला अमर होकर स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित होता है।

६३ भासः पनयन्ति— (९३) तेजकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

६४ त्वं निदायाः पाहि— (९४) हे प्रभो ! तू हमारी निन्दासे रक्षा कर। न हम किसीकी निन्दा करें और न कोई हमारी निन्दा करे।

६५ भगः त्वं, नः रत्नं आ इषे— (९६) हे प्रभो ! तू भाग्यवान् है, इसलिए हमें भी भाग्य दे। हम स्वयं भाग्यशाली होकर दूसरोंको भी भाग्यशाली बनायें।

६६ सत्पतिः वृत्रं शवसा हन्ति— (९७) सत्यका पालन करनेवाला मनुष्य अपने सामर्थ्यसे शत्रुका वध करता है।

६७ विप्रः पणेः वाजं बिभर्ति— (९७) ज्ञानी वीर दुष्ट व्यवहार करनेवालेसे अन्न वा धन छीन लेता है।

६८ विश्वायाः नः वक्षा— (१००) विशेष ज्ञानी हमें उपदेश करें।

६९ विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्यां— (१००) उत्तम वाणीका उपयोग करके हम पूर्णता प्राप्त करें।

७० मर्त्यः दुवः धियं जुजोष सः पूर्व्यः प्रभसत्— (१०१) जो मनुष्य आशीर्वादके वचन कहता है, वह सर्व श्रेष्ठ होकर प्रकाशित होता है।

७१ अग्निः प्रचेताः वेधस्तमः ऋषिः— (१०२) अग्रणी नेता ज्ञानी, कर्मप्रवीण और दूरदर्शी हो।

७२ आयवः दस्युं तुर्वन्तः व्रतैः अव्रतं सीक्षन्तः— (१०३) व्रतशील मनुष्य अपने शत्रुओंका नाश करते हैं और अपने व्रतोंसे व्रतविरोधियोंकी पराजय करते हैं।

७३ अग्निः अप्सां ऋतीषहं सत्पतिं वीरं ददाति— (१०४) अग्नि कर्म करनेमें कुशल, शत्रुका नाश करनेवाला, सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला वीर शूर पुत्र देता है।

७४ यस्य सं चक्षि शवसः भिया शत्रवः त्रसन्ति —(१०४) पुत्र ऐसा हो कि जिसका दर्शन होते ही उसके सामर्थ्यसे डरकर शत्रु कांपने लग जाएं।

७५ सहावा देवः अग्निः विद्मना मर्तं निदः उरुष्यति —(१०५) बलवान् अग्नि देव अपने ज्ञानसे अपने भक्तकी निंदक शत्रुसे सुरक्षा करता है।

७६ यस्य रयिः वाजेषु अवृतः— (१०५) उसका धन युद्धोंमें सुरक्षित रहता है।

७७ अतिथिं उषर्बुधं विश्वासां विशां पतिं इम गिरा ऋञ्जसे— (१०७) इस अतिथिवत् पूज्य, उषः-

×

कालमें जगनेवाले, सब प्रजाजनोंके पालनकर्ताकी अपनी वाणीसे प्रशंसा करनी चाहिए।

७८ यत् अच्युतं, तत् अत्सि — (१०७) जो गिरा हुआ नहीं होता, उसी अन्नको खाना चाहिए। दूसरोंके द्वारा जूठा करके छोडे हुए या फेंके हुए अन्नको खाना महापाप है।

७९ सः अवृकः दक्षस्य वृधः भूः— (१०९) मनुष्य स्वयं क्रूरतारहित होकर चतुर मनुष्यको बढानेवाला हो। जो कर्ममें दक्ष या कुशल होता है, उसीकी वृद्धि और उन्नति हो सकती है।

८० पावकया चित्तयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुचे— (१११) पवित्र ज्ञान बढानेवाली कान्तिसे पृथ्वीपर प्रकाशित होते रहो।

८१ अमूरं गृभ्णुं जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे— (११७) जो अमर रक्षक, सदा सावधान रहनेवाला, वैभवशाली और प्रजाका पालक है, उसको सभी प्रजायें नमन करती हैं।

८२ उभयान् अनुव्रता विभूषन्— (११५) राजा दोनों तरहकी प्रजाके अनुकूल आचरण करनेवाला होकर सबको सुखी रखे। राज्यमें ज्ञानी-अज्ञानी, सबल-निर्बल आदिके रूपमें दो वर्गकी प्रजायें होती हैं। राजा सबके अनुकूल होकर सबको सुखी रखे।

८३ धीतिं सुमतिं आवृणीमहे— (११५) हम धारणावती बुद्धि, कर्मशक्ति तथा सुमतिको अपने अन्दर धारण करें।

८४ अविद्वांसः विदुष्टरं सुप्रतीकं सुदृशं स्वंचं सपेम— (११६) हम अज्ञानी हैं, इसलिए हम अत्यन्त ज्ञानी उत्तम शरीरवाले सुन्दर और प्रगतिशील ज्ञानी नेताकी सेवा करें।

८५ सुप्रतीकं सुदृशं स्वंचं— (११६) सुन्दर और आदर्श रूपसे प्रगति करनेवाला नेता पूजनीय होता है।

८६ विश्वा वयुनानि विद्वान्— (११६) मनुष्य सब कर्मोंका ज्ञान प्राप्त करे।

८७ कवये धीतिं आनट्, तं पासि, पिपर्षि— (११७) ज्ञानीकी सेवाके लिए जो कर्म करता है, उसकी सुरक्षा वह ज्ञानी करता है और उसकी इच्छायें वह पूर्ण करता है।

८८ निशितिं उदितिं आनट्, तं शवसा राया पृणक्षि— (११७) जो मनुष्य तेजस्विता और उदयके लिए कर्म करता है, वह बल और धनसे भरपूर होता है।

८९ गृहपतिः जातवेदाः राजा विश्वा जनिमा वेद (११९) गृहस्थी, ज्ञानी और राजा सब प्राणियोंको जानता है। गृहस्थी अपने परिवारके नौकरचाकरोंका भी सदा ध्यान रखे और राजा अपने देशकी प्रजाके सुख दुःखका सदा ख्याल रखे।

९० देवानां उत मर्त्यानां यजिष्ठः— (११९) देवों और श्रेष्ठ मानवोंका सदा सत्कार हो।

९१ सः ऋतावा प्र यजतां— (११९) वह सत्यपालक यज्ञ करे।

९२ अध्वरस्य होतः पावकशोचे— (१२०) हिंसारहित कर्मका संपादन करनेवाला पवित्र तेजसे युक्त होता है।

९३ विशः यत् अद्य वेः— (१२०) प्रजा जो चाहती है, वही (राजा) करे।

९४ ऋता यजासि, महिना विभूः— (१२०) मनुष्य सत्यपूर्वक यज्ञ करे और अपनी महिमासे सर्वत्र प्रभावी बने।

९५ द्याव्याभ्यः अकृण्वन् अमूरं आनयन्— (१२३) उन्नतिशील या उन्नतिका मार्ग दर्शानेवाले ज्ञानीकी सहायतासे हम मनुष्योंको अन्धकारमेंसे निकालकर प्रकाशमें लाते हैं।

९६ मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता हितः— (१२६) मानवी समाजमें सब यज्ञोंको कुशलतासे करनेवालेको आदरपूर्वक सम्मानके पद पर स्थापित करना चाहिए।

९७ विश्वेषां यज्ञानां होता मानुषे जने हितः— (१२६) सब श्रेष्ठ कर्मोंको कुशलतासे करनेवाला मानव समाजमें हितकारी होता है।

९८ वेधाः सुक्रतुः देवः— (१२८) निर्माण करनेके कार्यमें विबुध कुशल होते हैं।

९९ अध्वनः पथः च अंजसा वेत्थ— (१२८) अच्छे और बुरे मार्गोंको शीघ्रही जानना चाहिए। जो यह जानता है, वह दिव्य ज्ञानी होता है।

१०० संदृशं प्रयक्षि— (१३३) तेजस्विताका सत्कार कर।

१०१ विश्वे सुदानवः कामिनः क्रतुं जुषन्त।— (१२३) सब दानी सुखकी इच्छा करते हुए शुभ कर्म करते हैं।

१०२ होता मनुर्हितः— (१३४) हवन करनेवाला मनुष्योंका हितकारी होता है।

१०३ आसा वह्निः विभुष्टरः— (१३४) मुखसे उत्तम शब्दोंका उच्चारण करनेवाला मनुष्य अधिक ज्ञानी होता है।

१०४ दिवः विशः यक्षि— (१३४) दिव्य प्रजाका सत्कार करना चाहिए।

१०५ पृथु श्रवाय्यं बृहत् सुवीर्यं नः अच्छ विवासासि— (१३०) बडा यशस्वी और विशेष वीर्य-पौरुष-बढानेवाला धन हमें मिले।

१०६ वाघतः विश्वस्य मूर्ध्नः पुष्कारत् अधि अथर्वा त्वा निरमन्थत— (१३८) आधाररूप सब विश्वके शिरस्थानमें रहनेवाले कमलसे अथर्वाने मंथन करके अग्निको निकाला।

१०७ ते पूर्ते अक्षिपत् नहि भुवत्— (१४३) अग्निका प्रज्वलित तेज आंखका विनाशक नहीं होता।

१०८ पुरुचेतनः सत्पतिः— (१४४) विशेष ज्ञानी ही उत्तम पालक होता है।

१०९ राजानः शुचिव्रताः— (१४९) राजा गण शुद्ध आचरण करनेवाले हों।

११० ऊर्जो न पात्— (१५०) मनुष्य अपने बलको अधःपतित न करे।

१११ सं दृष्टिः इषयते मर्त्याय वस्वी— (१५०) उत्तम दृष्टि मनुष्यको धन देनेवाली हो।

११२ प्रजावत् ब्रह्म आ भर— (१६१) पुत्रपौत्रोंको बढानेवाला ज्ञान हमें चाहिए।

११३ प्रयस्वन्तः रण्वसंदृशं गिरः उप ससृज्महे —(१६२) अन्नदान करनेवाले हम सब रमणीय ज्ञानी पुरुषकी प्रशंसा अपनी वाणीसे करते हैं।

११४ उत्तानहस्तः नमसा आ विवासेत्— (१७१) हाथ उठाकर नमस्कार करके सेवा करे। हाथ उठाकर नमस्कार करना चाहिए।

११५ मर्तः देवं दुवस्येत्— (१७१) मनुष्य देवता की सेवा करे।

११६ अनूनं महां तवसं विभूतिं प्रसाहं जहृषन्त —(१७७) यह शक्ति जिसकी कम नहीं होती, ऐसे महान् सामर्थ्यवान्, विभूतिमान् और शत्रुका नाश करनेवाले वीरको आनंदित करते हैं।

११७ विश्वे देवाः तवसं एकं पुरः दधिरे—(१८१) सब विद्वानोंने अकेले सामर्थ्यवान् वीरको (इन्द्र) को अपना नेता बनाया।

११८ सूरीन् नृवतः— (१८०) विद्वान् सहायक मनुष्योंसे युक्त हों।

११९ पार्ये दिवि च नः एधि— (१८७) भविष्यकालमें हमें सुख मिले।

१२० देवहितं वाजं सनेम— (१८८) इन्द्रियोंका हित करनेवाला अन्न हम प्राप्त करें।

१२१ त्वं एकः आर्याय कृष्टीः अवनोः— (१९१) इस इन्द्रने अकेले ही आर्यों अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंको प्रजा दी।

१२२ नः प्रत्नं सख्यं अस्तु— (१९३) जिस तरह पूर्वकालमें हमारी मित्रता देवोंके साथ थी, वैसी ही अब भी रहे।

१२३ अच्युतच्युत्— (१९३) वीर सुदृढ शत्रुओंको भी स्थान-भ्रष्ट करनेवाला हो।

१२४ शूरः महति वृत्रतूर्ये धीभिः हव्यः अस्ति— (१९४) शूर पुरुष बडे युद्धोंमें बुद्धिमानोंके द्वारा प्रशंसा योग्य होता है।

१२५ न मिथू जनः भूत् सः न मुह्ये— (१९६) जो वीर कदापि मिथ्यावादी जनके समान असत्यवादी नहीं होता, वह वीर कदापि मोहित नहीं होता।

१२६ सः सुमन्तु नामा— (१९६) वह वीर मननीय यशसे युक्त होता है।

१२७ तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेः महिमा पृथिव्याः दिव प्र ररप्शे— (२००) तेजस्वी, श्रेष्ठ और शत्रुनाशक वीरकी महिमा पृथ्वी और द्युलोकसे भी बडी है।

१२८ पुरुमायस्य शंयोः शत्रुः न— (२००) बहुत प्रज्ञावान् और शत्रुनाशक वीरका कोई शत्रु नहीं होता।

१२९ पुरुमायस्य शंयोः प्रतिमानं न अस्ति— (२००) बहुत कुशल और सुखशान्ति देनेवाले वीरकी कोई तुलना नहीं है।

१३० पुरुमायस्य शंयोः न प्रतिष्ठि— (२००) उत्तम कुशल, सुख और शान्ति देनेवाले वीरोंको दूसरेके आश्रयकी जरूरत नहीं होती।

१३१ ते तत् कृतं करणं प्रभूत्— (२०१) इस इन्द्रका कार्य और साधन दोनों प्रभावशाली हैं।

१३२ अमर्त्याः देवाः ते तत् ओजः अनु जिहते— (२०३) अमर देव तेरे उस सामर्थ्यका अनुसरण करते हैं।

१३३ हे कृत्नः, यत् ते अकृतं अस्ति, तत् कृण्व— (२०३) हे पुरुषार्थी वीर ! जो तूने अबतक किया नहीं है, वैसा पुरुषार्थ अब करके दिखा।

१३४ पुरुः पृथुः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— (२०४) मनुष्य शरीरसे बडा और गुणोंसे श्रेष्ठ होकर अपनी कर्तृत्वशक्तिके कारण सत्कारके योग्य होता है।

१३५ श्रवांसि पृथू करस्ना गभस्ती— (२०५) अन्नादिका विशेष दान करनेके लिए मनुष्यके पास हाथ दिए हैं।

१३६ पशुपाः पश्वः यूथा इव— (२०६) जिस तरह पशुरक्षक पशुओंके झुण्डोंको सुरक्षित रखता है, उसी तरह राजा प्रजाकी सुरक्षा करे।

१३७ यथाचित् पूर्वे अनेद्याः, अनवद्याः अरिष्टाः आसुः— (२०७) जिस तरह पूर्व समयके वीर अनिंदनीय, निष्पाप और अहिंसित हुए थे, वैसे ही हम इस समय हों।

१३८ सः हि धृतव्रतः— (२०८) वह वीर व्रतों तथा नियमोंका पालन करता है।

१३९ पथ्याः रायः अस्मिन् सं अग्मिरे— (२०८) शुभमार्गोंसे प्राप्त किए धन इस वीरके पास इकट्ठे हो जाते हैं।

१४० विश्वतः वृषभः शुष्मः अर्वाङ् अभि आ समेतु— (२१२) चारों ओरसे बल बढानेवाला सामर्थ्य हमारे पास एकत्रित होता रहे।

१४१ एभिः सख्यैः, ते वयं, उभयानि वृत्राणि घ्नन्तः, शत्रोः उत्तरे इत् स्याम— (२१०) इन मित्रताके शुभ कर्मोंको करते हुए हम आन्तर और बाह्य दोनों प्रकारके शत्रुओंका नाश करके शत्रुओंसे अधिक श्रेष्ठ हो जायें।

१४२ शवसा पृत्सु, द्यौः न भूम— (२१६) पुत्र अपने सामर्थ्यसे युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाला और द्युलोकके समान विशाल सामर्थ्यशाली हो।

१४३ दिवः न तुभ्यं सत्रा विश्वं असुर्यं— (२१८) आकाशके समान विशाल अनेक सामर्थ्य प्रभुके पास हैं।

१४४ सः अप्रतीतः स्पृधः हं वनते— (२२५) वह इन्द्र पीछे न हटता हुआ सब स्पर्धा करनेवालोंका नाश करता है।

१४५ ते अवसा नव्यः सनेम— (२२६) हे प्रभो ! तेरे संरक्षणसे हम सुरक्षित होकर अपूर्व धन प्राप्त करें और उसका उपभोग करें।

१४६ काव्याय उशाने वरिवस्यन् वृधः भूः— (२२७) शुभ कामना करनेवाले ज्ञानीको मनुष्य उत्कृष्ट धन देकर उसकी उन्नति करे।

१४७ पुरुमायस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः महा अति रिरिचे— (२३१) श्रेष्ठ, बुद्धिमान् और कर्ममें कुशल प्रभुकी महिमा द्युलोक और भूलोकके विस्तारसे भी बहुत ही बडी और विस्तृत है।

१४८ सः इत् अ-वयुनं ततन्वत् तमः सूर्येण वयुनवत् चकार— (२३१) वही प्रभु फैले हुए घने अन्धकारको सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशमय करता है।

१४९ इयक्षन्तः मर्ताः ते अमृतस्य कत्वा न मिनन्ति— (२३२) यज्ञ करनेवाले मनुष्य प्रभुके कामका नाश नहीं करते, वे प्रभुके यज्ञका संवर्धन करते हैं।

१५० अवरासः तं पृच्छन्तः— (२३५) छोटे अर्थात् अल्पज्ञानवाले मनुष्य उस प्रभुके बारेमें जिज्ञासा करते हैं।

१५१ ते पराणि प्रश्ना श्रुत्वा अनु— (२३५) ज्ञानी मनुष्य इस प्रभुके श्रेष्ठ और पुरातन कर्मोंका वर्णन करते हैं।

१५२ वीरः इन्द्रः कारुधाया— (२३७) वीर इन्द्र ज्ञानीको आश्रय देनेवाला है।

१५३ त्वावान् त्वत् अन्यः न अस्ति— (२३९) इस प्रभुके समान सामर्थ्यवान् और कोई नहीं है।

१५४ पथिकृत् विद्मनः सः सुगेषु उत दुर्गेषु नः पुरएता बोधि— (२४१) मार्ग बनानेवाला ज्ञानी सुगम तथा दुर्गम मार्गोंमें लोगोंका अग्रगामी नेता होकर मार्गदर्शन करे और ज्ञानपूर्वक योग्य रीतिसे उन अनुयायियों को चलाए और इष्ट स्थान तक पहुंचाए।

१५५ आभिः गीर्भिः एकः इन्द्र इत् हव्यः— (२४२) इन वाणियोंसे एक इन्द्र ही स्तुति करने योग्य है।

१५६ वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः— (२४२) वही इन्द्र बलवान्, सामर्थ्यशाली, सत्य और अविनाशी है।

१५७ सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते— (२४२) सत्ववान् अर्थात् सामर्थ्यशाली, अनेक कौशल्योंसे युक्त और शत्रुका पराभव करनेवाला ही सबका स्वामी हो सकता है।

१५८ त्वेषसंदृक् अजुर्यः इन्द्रः— (२५०) तेजके समूह जैसा दीखनेवाला इन्द्र जरा और क्षयरहित है।

१५९ दिव्यस्य जनस्य, पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— (२५०) द्युलोक तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका वह इन्द्र ही राजा है।

१६० शत्रुतुर्याय बृहतीं अमृध्रां संयतं स्वस्तिं नः आ भर— (२५१) शत्रुओंका नाश करनेके लिए विशाल, अविनाशी और स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे।

१६१ दासानि आर्याणि करः— (२५१) दासोंको आर्य बनाया जाए, अर्थात् जिनकी वृत्ति दासकी है अर्थात् गुलामगिरीकी है, उनकी वृत्तियोंको ऊंचा उठाकर उन्हें श्रेष्ठ बनाया जाए।

१६२ उग्रः वीराय लोकं कर्ता अस्तु— (२५५) वीर राजा अपने शूर वीरोंके लिए विस्तृत कार्यक्षेत्र देनेवाला हो।

१६३ वृक्षस्य वयाः ऊतयः वि रुरुहुः— (२६५) प्रभुके संरक्षण वृक्षकी शाखाओंकी तरह चारों ओर फैल रहे हैं। अर्थात् प्रभुकी संरक्षक शक्ति सर्वत्र व्याप्त है।

१६४ शचीवतः शाकाः गवां स्तुतयः संचरणीः— (२६६) उस सामर्थ्यशाली प्रभुकी शक्तियां किरणोंकी तरह सर्वत्र संचार करती हैं।

१६५ ते दामन्वन्तः अदामालः— (२६६) प्रभुके बंधन भी उन्नतिकारक होते हैं। प्रभुके बंधन भी वास्तविक बंधन न होकर उन्नतिके साधन होते हैं।

१६६ अद्य अन्यत् कर्वरं अन्यत् उ श्वः— (२६७) ईश्वर आज एक कार्य करता है, और कल दूसरा कार्य करता है। कभी चुप नहीं रहता। इसी तरह मनुष्य भी कभी चुप न बैठे, सतत कार्य करता रहे।

१६७ इन्द्रः सत् असत् मुहुः आचक्रिः— (२६७) इन्द्र प्रभु सत् और असत् कर्म सदा करता रहता है। इसके सत्कर्म सज्जनोंकी उन्नतिके लिए होते हैं और असत्कर्म दुष्टोंके नाशके लिए होते हैं।

१६८ शरदः यं न जरन्ति— (२६९) वर्ष इस प्रभुको वृद्ध नहीं कर सकते।

१६९ मासाः द्यावाः न अय कर्शयन्ति— (२६९) महीने और दिन भी इस प्रभुको कृश नहीं बना सकते।

१७० वृद्धस्य अस्य तनूः शस्यमाना वर्धतां— (२६९) इस सनातन प्रभुका शरीर सदा ही प्रशंसित होकर बढता है।

१७१ वीळवे न नमते— (२७०) वीर पुरुष सामर्थ्यशाली शत्रुके आगे भी नहीं झुकता।

१७२ स्थिराय न नमते— (२७०) स्थिर और दृढ शत्रुके सामने भी नहीं झुकता।

१७३ दृळ्हाय दस्युजूताय न नमते— (२७०) हिंसक क्रूरके सामने भी नहीं झुकता।

१७४ ऋष्वाः गिरयः अज्राः— (२७०) बडे बडे पहाड भी इस वीरके लिए सुगम हो जाते हैं।

१७५ गंभीरे चित् अस्मै गाधं भवति— (२७०) गहरा सागर भी इसके लिए उथलासा अर्थात् आसानीसे पार करने योग्य हो जाता है।

१७६ ऊती अरिषण्यन् ऊर्ध्वः स्थाः— (२७१) वीर पुरुष दूसरोंकी रक्षा करनेके लिए सदा उद्यत रहे।

१७७ जामयः अजामयः अर्वाचीनासः वनुषः एषां शवांसि विधुरा— (२७५) अपनी जातिवाले अथवा पराये जो भी शत्रु हमारे ऊपर हमला करके हमारा नाश करना चाहते हैं, उनके बलोंको सत्वहीन और निष्फल करना चाहिए।

१७८ तोके तनये गोषु अप्सु उर्वरासु क्रन्दसी वि ह्वयेते— (२२७) बालबच्चों, गौवों, जलप्रवाहों और उर्वरा भूमिके लिए विवाद बढता है, तब झगडे होते हैं।

१७९ विश्वा जातानि तानि अभ्यसि— (२७७) सब शत्रुके सामर्थ्योंका वह पराभव कर सकता है।

१८० ते प्रजानः वर्पणयः त्राता उत वरूता भव— (२७९) जो भयसे कांपनेवाली प्रजा है, उनका राजा रक्षक और उद्धारक बने।

१४

१८१ ये अस्माकासः नृतमासः अर्यः, सूरयः नः पुरः वधिरे, त्राता भव— (२७९) जो हमारे श्रेष्ठ मनुष्य हैं, जो ज्ञानी हैं, उनका रक्षक मनुष्य बने।

१८२ अवसा वस्तो नूनं विचाम— (२८१) हमें संरक्षणशक्ति युक्त घर प्राप्त हों।

१८३ गावः आ अग्मन्, उत भद्रं अक्रन्— (२९८) गायें हमारे घर आएं और हमारा कल्याण करें।

१८४ पुरुरूपाः प्रजावतीः उषसः दुहानाः स्युः —(२९८) अनेक वर्णोंवाली तथा बछडोंवाली गायें उषःकालमें दूध दें।

१८५ गावः भगः— (३०२) गायें ही ऐश्वर्य हैं।

१८६ इमाः याः गावः, स इन्द्रः— (३०२) ये जो गायें हैं, वे ही इन्द्र हैं। इन्द्र रूप परमात्मा ही इस पृथ्वी पर गोरूपसे विचर रहा है।

१८७ कृशं चित् अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ— (३०३) ये गायें कृश और निस्तेजको भी हृष्टपुष्ट और सुन्दर तेजस्वी रूपवाला बनाती हैं।

१८८ गृहं भद्रं कृणुथ— (३०३) गायें घरको कल्याणमय बनाती हैं।

१८९ सुमतये चकानाः नरः सख्याय इन्द्रं महयन्तः सेपुः— (३०७) उत्तम बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले नेता वीर इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिए इन्द्रके गुणोंका वर्णन करते हैं।

१९० हस्ते नर्या आ मिमिक्षुः— (३०७) वीरके हाथोंमें मानवोंका हित करनेवाले धन भरपूर हों।

१९१ श्रिये ते पादाः दुवः आ मिमिक्षुः— (३०८) ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हम प्रभुके चरणोंकी सेवा करते हैं।

१९२ ते शवसः अन्तः न धायि— (३१०) इस प्रभुके सामर्थ्यका कोई अन्त नहीं है।

१९३ तूतुजानः सूरिः ता ऊती सर्मीजमानः यूथा अप्सु इव आ पृणति— (३१०) सत्वर कार्य करनेवाला विद्वान् प्रभुके संरक्षणोंको अच्छी तरह प्राप्त होकर, जिस तरह गौओंका झुण्ड जलस्थानको प्राप्त करके तृप्त होता है, उसी तरह तृप्त होता है।

१९४ वीर्याय भूयः इत् वावृधे— (३११) पराक्रम करनेके लिए यह वीर बार बार उत्साहसे बढता है।

१९५ उभे रोदसी अस्य अर्धं इव प्रति— (३१२) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक इन्द्रके आधे भागके बराबर हैं।

१९६ अस्य बृहत् असुर्यं— (३१३) इस वीरका बहुत सामर्थ्य है।

१९७ यानि दाधार, न किः आ मिमाति— (३१३) जिन कर्मोंको यह वीर धारण करता है, उनका नाश कोई नहीं कर सकता।

१९८ त्वावान् अन्यः देवः न अस्ति, न मर्त्यः— (३१५) इस इन्द्रके समान अथवा उससे अधिक सामर्थ्यशाली या ऐश्वर्यशाली न कोई देव है और न कोई मनुष्य।

१९९ जगतः चर्षणीनां सूर्यं द्यां उषसं साकं जनयन्, राजा अभवः— (३१६) सब जगतके मनुष्योंके हितार्थ प्रभुने द्यु, उषा और सूर्यको उत्पन्न किया और वही इन सबका राजा हुआ।

२०० त्वं रयीणां एकः अभूः— (३१७) वह प्रभु सभी धनोंका अकेला ही स्वामी है।

२०१ हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः— (३१७) वही अपने हाथोंसे सब विश्वको रखता है।

२०२ यः ओजिष्ठः मदः दास्वान्, तं नः सुदाः— (३२७) जो बलवान्, आनन्द बढानेवाला, उत्तम यज्ञ करनेवाला और दाता हो ऐसा ही पुत्र हमें चाहिए।

२०३ त्वं दासा आर्या तान् उभयान् अमित्रान् वधीः— (३२९) इन्द्रने, जो दास या आर्य शत्रुताका व्यवहार करते थे, उन्हें मारा। आर्य अथवा श्रेष्ठ होनेपर भी जो शत्रुताका व्यवहार करें, उनको मारना ही चाहिए।

२०४ अस्य आजः जनः अनु प्र येजे— (३५३) इस वीरके सामर्थ्यका लोग सत्कार करते हैं।

२०५ तं ऊतयः सध्रीचीः सश्चुः— (३५४) इस वीरके साथ संरक्षक सामर्थ्य रहते हैं।

२०६ विश्वस्य भुवनस्य एकः राजाः— (३५५) वह प्रभु ही सब भुवनोंका राजा है।

२०७ अस्य कर्णा दूरात् चित् आ यसतः— (३५३) इस प्रभुके कान दूरसे भी सुनते हैं।

२०८ यज्ञः इन्द्रं वर्धात्— (३५५) यज्ञ प्रभुकी महिमाको बढाते हैं।

२०९ ब्रह्म इन्द्रं वर्धात्— (३५५) ज्ञान प्रभुकी महिमाको बढाता है।

२१० गो अग्राः इषः— (३५७) गायका रस अर्थात् गोदुग्ध अन्नरूप है।

२११ अयं रुजानः अ-रुचः अरोचयत्— (१६०) यह वीर स्वयं प्रकाशित होकर अप्रकाशितोंको प्रकाशित करता है ।

२१२ ऋचसे अपः ओषधीः अविषा वनानि गाः अर्वतः नॄन् रिरीहि— (१६१) उपासकको जल, अन्न, निर्विष फलवाले वृक्ष, गाय, घोडे, बल, बच्चे और अनुयायी मनुष्य दो ।

२१३ अहेळमानः यज्ञं उप याहि— (१६७) क्रोधरहित होकर प्रसन्न मनसे यज्ञमें सम्मिलित होना चाहिए ।

२१४ गिरः तुरस्य राधसः पतिं— (१८४) उत्तम वाणियां या प्रशंसाके बोल शीघ्रतासे कार्य करनेवाले उत्साहको बढाते हैं ।

२१५ अस्यं तं इत् शुष्मं देवी रोदसी सपर्यतः नु —(३८४) ऐसे वीरके बलकी सेवा द्यु और पृथ्वी निश्चयसे करते है ।

२१६ ऋतस्य पथि वेधाः अपायि— (१८७) सत्यके मार्गमें रहकर ज्ञानी मनुष्य अन्न प्राप्त करता है । वह अन्यायके मार्गसे कभी नहीं जाता ।

२१७ देवासः मनांसि श्रिये अक्रन्— (१८७) ज्ञानी जन अपने मनोंको आनन्दित करनेके लिए शुभ कर्म करते हैं ।

२१८ दात्रे इत् वयं अभूम— १८९ दाताके पास हम सदा रहें ।

२१९ प्रदिवः कारुधायाः— (१९१) इन्द्र प्राचीन कालसे कारीगरोंको धारण करनेवाला है ।

२२० अपां तोकस्य तनयस्य जेषे नः सूरीन् अर्धे कृणुहि— (१९७) हमें धन मिलें, बालबच्चोंकी जय हो, हम विद्वान् हों और हमें समृद्धि प्राप्त हो ।

२२१ स्वस्य अशिवस्य पितुः आयुधानि मायाः अमुष्णात्— (४०१) देव सोमने अपने अभद्र काम करनेवाले पिताके शस्त्रोंको और मायाओंको नष्ट किया ।

२२२ अस्य प्रणीतयः मह्रीः— (४०६) इस ईश्वरकी संचालक शक्तियां बहुत हैं ।

२२३ अस्य प्रशस्तयः पूर्वीः— (४०६) इसकी प्रशंसायें सनातन कालसे चली आ रही हैं ।

२२४ अस्य ऊतयः न क्षीयन्ते— (४०६) इसकी रक्षाके साधन भी कभी कम नहीं होते ।

२२५ पृतनाषहः वीरस्य हस्तयोः विश्वानि वसूनि — (४०६) शत्रु सैनिकोंका पराभव करनेवाले वीरके हाथोंमें सब प्रकारके धन रहते हैं ।

२२६ धीभिः धनं जेष्म— (४१५) बुद्धियोंका उपयोग करके हम धन जीतें ।

२२७ रक्षो हत्याय गभस्त्योः वज्रं धीष्व— (४२१) राक्षसोंके विनाशके लिए हाथमें शस्त्र धारण करना चाहिए ।

२२८ अन्धसः तन्वा— (४३०) मनुष्य अन्नसे पुष्ट बने हुए शरीरसे युक्त हो ।

२२९ द्रवत भद्रा सहस्रिणी रातिः सद्यः दानाय मंहते— (४३५) प्रभुकी शीघ्रतासे कल्याण करनेवाली हजारों प्रकारकी दानशक्ति तत्काल ही सहाय्यार्थ तत्पर रहती हैं ।

२३० सुवीर्यस्य पतयः स्याम्— (४६२) हम उत्तम सामर्थ्यके स्वामी बनें ।

२३१ यज्ञियस्य सुमतौ स्याम— (४६३) हम पूजनीय पुरुषकी उत्तम बुद्धिके अनुकूल व्यवहार करें ।

२३२ भद्रे सौमनसे अपि स्याम— (४६३) हमारा मन उत्तम और कल्याणकारी हो ।

२३३ रूपं रूपं प्रति रूपः बभूव— (४६८) प्रत्येक रूपमें उसी प्रभुका रूप है ।

२३४ इन्द्रः मायाभिः पुरुरूप ईयते— (४६८) प्रभु अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनेकरूप बनता है ।

२३५ अगव्यूति क्षेत्रं आ अगन्म, उर्वी सती भूमिः अंहूरणा अभूत्— (४७०) गायोंसे रहित क्षेत्रमें जब हम आए तो हमें वहांकी पृथ्वी विस्तीर्ण होनेपर भी शत्रुओंके युद्धक्षेत्रके समान प्रतीत हुई । गायोंसे रहित प्रदेश विस्तीर्ण होते हुए भी उजाड उजाडसे प्रतीत होते हैं ।

२३६ गो-इष्टौ प्रचिकित्स— (४७०) गायोंके प्राप्त होने पर उनकी अच्छी तरह देखभाल करनी चाहिए और उनकी अच्छी चिकित्सा करनी चाहिए ।

२३७ वृषा अजरः महान् अर्चिषा विभाति— (४८४) बलवान्, जरारहित और जो महान् होता है, वह तेजसे प्रकाशित होता है । (निर्बल और जराग्रस्त कभी भी तेजस्वी नहीं हो सकता)

२३८ महान् देवान् यजासि— (४८५) स्वयं महान् होकर ज्ञानियोंका सत्कार करना चाहिए ।

२३९ नव्यसा वचः सबर्दुघां धेनुं अज— (४९१) नवीन और कोमल शब्दोंसे पुचकार गायको बुलाना चाहिए। गायको कठोर शब्दोंसे नहीं बुलाना चाहिए। इससे कठोर शब्दोंसे बुलाने पर गायपर बुरा परिणाम होता है।

२४० ऊधः अमृत्यु— (४९२) दूध मृत्युको दूर करनेवाला है।

२४१ सुम्नैः एव यावरी— (४९३) गाय सुखोंसे युक्त होकर संचार करती है अर्थात् गायें जिन प्रदेशोंमें संचार करती हैं, वे प्रदेश सदा सुखमय होते हैं।

२४२ वनस्पतिं मा उद् वृहः— (४९८) वनस्पति अर्थात् वृक्षादिको न उखाड़ा जाए।

२४३ सख्यं अवृकं अस्तु— (४९९) मित्रता कुटिलता रहित हो।

२४४ मर्त्यैः परः असि— (५००) सबका पोषक देव मनुष्योंकी अपेक्षा बहुत श्रेष्ठ है।

२४५ श्रिया देवैः समः— (५००) सम्पत्तिमें अन्य देवोंके समान है।

२४६ सः पूषा नः शुरुधः चन्द्राग्रा रासत्— (५११) वह पूषा हमें शोकको दूर करनेवाली और आनन्द देनेवाली वाणियां दें।

२४७ आपः मानुषीः— (५२५) जल मनुष्योंका हित करनेवाले हैं।

२४८ मातृतमाः भिषजः स्थ— (५२५) ये जल माताओंसे भी अधिक प्रेमसे रोग दूर करनेवाले हैं।

२४९ सूरः गर्तेषु ऋजु वृजिना च पश्यन् अभि चष्टे— (५३५) वह सूर्य इस विश्वमें सरलता और कुटिलताको देखता हुआ प्रकाशित होता है।

२५० अर्यः एवान्— (५३९) वही सच्चा शासक है।

२५१ अन्यकृतः एनं मा भुजेम— (५४०) दूसरोंका किया हुआ पाप हमें न भोगना पड़े।

२५२ यत् चयध्वे तत् मा कर्म— (५४०) जिसके लिए तुम दण्ड देते हो, वैसा कर्म हम न करें।

२५३ अतियाजस्य यष्टा नि हीयताम्— (५५०) अविधिपूर्वक कर्म करनेवाला विनष्ट हो जावे।

२५४ यः ब्रह्म अति मन्यते, निनित्सात्, तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु— (५५१) जो ज्ञानसे द्वेष करे और ज्ञानकी निन्दा करे, उसको ज्वालायें जलानेवाली हों।

२५५ ब्रह्मद्विषं द्यौः अभि शोचतु— (५५१) इस ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक संतप्त करे।

२५६ ब्रह्मणः गोपां आहुः — (५५२) सोमको ज्ञानका रक्षक कहते हैं।

२५७ ब्रह्मद्विषे तपुषे हेतिं अस्य — (५५२) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको अच्छा दण्ड देना चाहिए।

२५८ विश्वदानीं सुमनसः स्याम— (५५४) हम सदा मनमें उत्तम विचार रखें।

२५९ अमृतस्य सूनवः — (५५८) मनुष्य अमर ईश्वरके पुत्र हैं।

२६० ऋतावृधः देवः— (५५९) सत्यमार्गकी वृद्धि करनेवाले ही देव कहलाते हैं।

२६१ परिवक्ष्याणि वचांसि मा वोचं— (५६३) निन्दाके भाषण मैं कभी न करूं।

२६२ वामं गृहपतिं अभिनय— (५६८) प्रशंसनीय गृहस्थीके पास ही हम जाएं।

२६३ अदित्सन्तं दानाय चोदय— (५६९) दान न देनेवाले मनुष्यको दान देनेके लिए प्रेरित कर।

२६४ पणेः मनः वि म्रद— (५६९) व्यापार करनेवाले बनियेके मनको जरा नरम कर।

२६५ पणीनां हृदया आरया परितृन्धि— (५७१) कंजूसोंके हृदयोंको आरोंसे काट।

२६६ आरया पणेः वि तुद— (५७२) आरेसे पणिको काट।

२६७ हृदि प्रियं इच्छ— (५७२) हृदयमें सबका भला करनेकी इच्छा करनी चाहिए।

२६८ यः इदं एव इति ब्रवत्— (५७७) "जो यह ऐसाही है" इस प्रकार सच बोलता है, वही सच्चा मनुष्य है।

२६९ धीवतः सखा— (५९८) बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालेका यह पूषा देव मित्र है।

२७० देवनिदः प्रजाः विश्वस्य मायिनः प्रजां निबर्हय— (६१६) हे देवी सरस्वती! ईश्वरकी निन्दा करनेवालोंका तथा सब कपटी लोगोंका तू नाश कर।

२७१ अपसा श्रुधीयतः जनान् महित्वा चित् संयतः— (६९५) कर्म करके जो श्रेयस प्राप्त करनेके इच्छुक हैं, उन्हें मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करते हैं।

२७२ स्वशः अदब्धासः अमूरः— (६९७) दूत किसीसे भी न दबनेवाले और चतुर हों।

२७३ अवाताः युवतयः न मृष्यन्ते— (६९९) अविवाहित तरुणियां अपना अकेलापन सहन नहीं कर पातीं।

२७४ जिह्वया सदं इदं सुमेधा आ— (७००) जिह्वासे ऐसा उपदेश करना चाहिए कि जिसे सुननेवाले उत्तम बुद्धिमान् बनें।

२७५ यत् सत्यः अरतिः ऋते आभूत्— (७०८) जब देवोंका सत्यभक्त सदाचारी होता है, तब उसकी बुद्धि बढती है।

२७६ तत् महित्वं यत् दाशुषे अंहः विचयिष्ठं— (७००) यह देवोंका ही महत्व है कि वे दाताको निष्पाप बनाते हैं।

२७७ वां प्रियं धाम प्र स्फूर्धन् युवधिता मिनन्ति, न देवासः, न मर्ताः, न अप्न्यः पुत्राः— (७०१) हे देवो! जो आपके प्रिय स्थानसे ईर्ष्या करते हैं, और आपके नियमोंको तोडते हैं, वे निश्चयसे न देव हैं, न मनुष्य हैं और कर्मकुशल पुत्र ही हैं।

२७८ यत् गावः अनुस्फुरान् छर्दिषः अभिश्रिः— (७०२) जिस घरके चारों ओर गायें घूमती हों, ऐसा घर चाहिए।

२७९ ऋजिष्यं धृष्णुं— (७०२) सरल व्यवहार करनेवाले मनुष्य जहां रहते हों, ऐसा घर हमें चाहिए।

२८० यत् रणे वृषणं युनजन्— (७०३) जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता हो, ऐसा घर चाहिए। प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण तैयार रहें कि जो समय पडनेपर युद्धमें जा सके।

२८१ यज्ञः महः इषे, महे सुम्नाय आववर्तत्— (७०४) यज्ञ बहुत अन्न प्राप्त करनेके लिए और अतिशय सुख प्राप्त होनेके लिए हो।

२८२ देवताता श्रेष्ठाः शूराणां शविष्ठा, मघोनां मंहिष्ठा— (७०५) देवोंमें यज्ञ करनेवाले श्रेष्ठ हैं, शूरवीरोंमें बलवान् श्रेष्ठ हैं, और धनिकोंमें उत्तम दान देनेवाले श्रेष्ठ हैं।

२८३ तुतुरिः द्युम्ना स्रधः प्र तिरते— (७१०) शीघ्रतासे कार्य करनेवाला अपने तेजसे शत्रुओंको पार करता है।

२८४ धर्मणः परि प्रजाभिः जायते— (७२५) जो धर्ममार्ग पर चलता है, वह सन्तानोंसे युक्त होता है।

२८५ या नः गयं आ विवेश, अमीवा विषूची विवृहतं— (७७४) जो हमारे घरमें प्रविष्ट हुए हैं, वे सबके सब रोग हमसे दूर हों।

२८६ यत् एनः कृतं, अस्मत् अवस्यतं मुंचतं— (७७५) जो हमने पाप किया हो, वह हमसे दूर हो।

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

षष्ठ मंडल

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	संख्या
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	५९
सुहोत्रो भारद्वाजः	२
शुनहोत्रो भारद्वाजः	२
नरो भारद्वाजः	२
शंयुर्बार्हस्पत्यः	४
गर्गो भारद्वाजः	१
ऋजिश्वा भारद्वाजः	४
पायुर्भारद्वाजः	१
	७५

ऋषिवार मंत्र संख्या

ऋषि मंत्र	संख्या
बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	५२९
शंयुर्बार्हस्पत्यः	९३
ऋजिश्वा भारद्वाजः	६३
गर्गो भारद्वाजः	३१
पायुर्भारद्वाजः	१९
सुहोत्रो भारद्वाजः	१०
शुनहोत्रो भारद्वाजः	१०
नरो भारद्वाजः	१०
	७६५

देवतावार मंत्र संख्या

देवता मंत्र	संख्या
इन्द्रः	२७९
अग्निः	११२
विश्वे देवाः	६५
पूषा	४०
इन्द्राग्नी	३५
अश्विनौ	२२
वैश्वानरोऽग्निः	२१
मरुतः	१८
सरस्वती	१४
उषाः	१२
इन्द्रावरुणौ	११
मित्रावरुणौ	११
इन्द्राविष्णू	८
गावः	८
इन्द्रापूषणौ	६
द्यावापृथिवी	६
सविता	६
इन्द्रासोमौ	५
सोमः	५
इषवः	४
रथः	४

सोमाकद्रौ	४
सांजैयः प्रस्तोकः	४
वृहुस्तक्षा	३
बृहस्पतिः	३
दुन्दुभिः	२
दुन्दुभीन्द्रौ	१
अश्वाः	१
आर्त्नी	१
इषुधिः	१
ज्या	१
देवब्रह्माणि	१
देवभूमिबृहस्पतीन्द्राः	१
द्यावाभूमी पृश्निर्वा	१
धनुः	१
प्रतोदः	१
ब्राह्मणपितृसोमद्यावापृथिवी पूषाणः	१
युद्धभूमिकवचब्रह्मणस्पत्यादयः	१
रथगोपाः	१
वर्म	१
वर्मसोमवरुणाः	१
सारथिरश्मयः	१
हस्तघ्नः	१
	७६५

इस प्रकार इस मंडलमें ऋषि और देवताओंकी संख्या है। इस मंडलमें मानवजीवनके लिए उपयोगी जो उपदेश मंत्रों द्वारा दिए गए हैं, उन्हें हम अब देखें।

प्रभुके विश्वमें आनन्द

मनुष्यके लिए प्रभु परोक्ष है, वह प्रभुका साक्षात् दर्शन इन आंखोंसे नहीं कर सकता। वह तो मनकी आंखोंसे ही देखा जा सकता है, पर वह भी सर्वसाधारण मनुष्योंके वशकी बात नहीं। लाखों, करोडोंमें ही एक ऐसा व्यक्ति निकलता है कि जो योगके द्वारा अपने मनकी आंखोंको खोलकर उस परम प्रभुका साक्षात् दर्शन किया करता है। पर उसका बनाया हुआ विश्व सभी देख और जान सकते हैं। जब मनुष्य कुछ जानने योग्य होता है तो वह सूर्यको उदय और अस्त होता हुआ, नदियोंको अनवरत बहता हुआ, तारोंको झिलमिल करता हुआ देखता है, तब इस संसारके सौन्दर्यसे अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। सारे संसारमें उसे आनन्द ही आनन्द प्रतीत होता है। वस्तुतः है भी यह विश्व आनन्दसे भरपूर। इस विषयमें ऋषि भरद्वाज कहते हैं—

१ ते भद्रायां सन्दृष्टौ रणयन्त— (४) प्रभुके कल्याणकारी विश्वके सौन्दर्यमें हम आनन्द प्राप्त करते रहें।

ऋषि भरद्वाजके इस कथनसे उन अवैदिक सिद्धान्तोंकी, कि जो संसारको कारागार, बंधनरूप और हेय समझते हैं, असत्यता सिद्ध हो जाती है। जो इस विश्वको अकल्याणकारी, बन्धनकारक, माया, आदि समझते और लोगोंको इस संसारको छोडकर मुक्ति या निर्वाणकी तरफ प्रवृत्त होनेका उपदेश करते हैं, वे सत्यतासे बहुत दूर हैं। यह विश्व तो कल्याणकारी है। मुक्ति या निर्वाण प्राप्त करनेसे पूर्व उन्हें भी इसी संसारमें आना पडता है। महात्मा बुद्ध, महावीर आदि जितने भी मोक्षाधिकारी हुए हैं, उन्हें भी मोक्षकी प्राप्तिके लिए इसी संसारमें आना पडा। संसारमें आए बिना मोक्ष नहीं। इस प्रकार संसार कल्याणकारी है। जब यह कल्याणकारी है तो यह आनन्द रहित कैसे होगा। आनन्दरहित पदार्थ कल्याणकारी कैसे हो सकता है? इसके अलावा जब प्रभु आनन्दमय हैं, तब उनके द्वारा बनाया गया विश्व आनन्दरहित कैसे हो सकता है? प्रत्यक्ष प्रमाण भी इसका साक्षी देता है। जल प्यासेको आनंद देता है, अग्नि शैत्यको दूर कर तथा अन्न पकाकर हमें आनंद देता है, वायुके बिना तो क्षणभर भी जीवन नहीं रह सकता, पृथ्वी हमें आधार देती है, हमारा पालन पोषण करती है, आकाश हमें चलने फिरनेके लिए अवकाश देकर हमें जीवन धारण करनेके कार्यमें समर्थ बनाता है। इस प्रकार जब पांचों भूत आनन्ददायी हैं, तो उन्हींसे बना हुआ यह विश्व आनन्दरहित कैसे हो सकता है? इसलिए विश्वको आनन्द-रहित मानना वैदिक सिद्धान्तके प्रतिकूल है। यह प्रभुका विश्व है, यह विराट् प्रभुका शरीर है, यह सूक्ष्मतम प्रभुका स्थूलतम आवरण है। इस सबमें आनन्दमय प्रभु समाया हुआ है। यह सब प्रभुकीही महिमा है। प्रभुकी महिमासेही यह विश्व महिमावान् है। सभी सूर्यचन्द्रादि ग्रह उपग्रहोंमें उसीकी महिमा जगमगा रही है। विश्वका प्रत्येक अणु उसकी महिमा गान कर रहा है। जरा कान देकर सुनो, वह क्या कह रहा है।

प्रभुकी महिमा

विश्वका प्रत्येक परमाणु प्रभुकी महिमा वेदभगवान्‌के शब्दोंमें इस तरहसे गा रहा है।

१ पुरुमायस्य महित्वं दिवः पृथिव्याः मह्ना अति रिरिचे— (२६१) श्रेष्ठ, बुद्धिमान् और कर्ममें कुशल प्रभुकी महिमा द्युलोक और भूलोकके विस्तारसे भी बडी है।

उसकी महिमाका वर्णन करना भी असंभव है। वही प्रातः सूर्यके रूपमें उदय होकर अन्धकारका नाश करता है।

२ सः इत् अ-वयुनं ततन्वत् तमः सूर्येण वयुनवत् चकार— (२६२) वही प्रभु फैले हुए घने अन्धकारको सूर्यके प्रकाशसे दूर करके विश्वको प्रकाशमय करता है।

३ त्वावान् त्वत् अन्यः न अस्ति— (२६९) इस प्रभुके समान सामर्थ्यवान् और कोई नहीं है।

४ शचीवतः शाकाः गवां स्तुतयः संचरणीः— (२६१) इस सामर्थ्यशाली प्रभुकी शक्तियां किरणोंकी तरह सर्वत्र संचार करती हैं।

इस सर्व महिमामय प्रभुके रूपको जानना भी सबके लिए आसान नहीं है। कुछ लोग जो अल्पज्ञानी हैं, इस विश्वमें अनेक चमत्कार देखकर आश्चर्यचकित होते हैं और—

५ अवरासः तं पृच्छन्तः— (२६५) वे अल्पज्ञानी मनुष्य उस प्रभुके बारेमें पूछते हैं। अनेक तरहकी जिज्ञासायें करते हैं। तब

६ ते पराणि प्रत्ना श्रुत्या अनु— (२६५) ज्ञानी मनुष्य इस प्रभुके श्रेष्ठ और पुरातन कर्मोंका वर्णन करते हैं।

प्रभु जो जीवको इस संसाररूपी बंधनमें डालते हैं, वह भी जीवके लाभके लिएही होता है। जो जो प्रभु करते हैं, वह मनुष्यके कल्याणके लिएही करते हैं। जिसे मनुष्य अमंगल समझता है, उसमें भी कोई न कोई मंगल अवश्य छिपा हुआ होता है। अतः ऋषिका कथन है—

७ ते दामन्वन्तः अदामानः— (२६६) प्रभुके बन्धन भी बन्धन न होनेके समान ही होते हैं। उसके बन्धन भी उन्नतिकारक होते हैं। उनमें बंधकर भी मनुष्य उन्नत होता है।

वेद इस सिद्धान्तका भी खण्डन करता है कि यह संसार स्वयं बन गया। वह स्पष्ट कहता है—

८ हस्तयोः कृष्टीः आ अधिथाः— (२१७) वही प्रभु अपने हाथोंमें सब विश्वको रखता है। वह केवल इसे रखता ही नहीं अपितु इस विश्वके—

९ रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव— (४१८) प्रत्येक रूपमें उसी प्रभुका रूप है।

१० इन्द्रः मायाभिः पुरुरूपः ईयते— (४१८) वह ऐश्वर्यशाली प्रभु अपनी अनन्त शक्तियोंसे अनेक रूप बनता है। इसलिए वह प्रभु इस विश्वकी हमेशा रक्षा किया करता है। उसके रक्षा करनेकी अनेक शक्तियां हैं—

११ वृक्षस्य वयाः ऊतयः वि रुरुहुः— (२१५) इस प्रभुके संरक्षण वृक्षकी शाखाओंकी तरह चारों ओर फैल रहे हैं अर्थात् प्रभुकी संरक्षणशक्ति सर्वत्र व्याप्त हो रही है।

कर्म कुशल

इतना विशाल या अनन्त विश्व जिस कुशलतासे चल रहा है, वह भी आश्चर्यकारक है। सभी ग्रह अपने केन्द्रमें तेजीसे घूमते हुए भी एक दूसरेसे टकराते नहीं। अपने अपने मार्ग पर अनन्तकालसे चले आ रहे हैं और अनन्तकाल तक चले जाएंगे। विश्वकी इस गतिके पीछे उसी प्रभुकी कार्य कुशलता है। वह भी सदा कार्यरत रहता है—

१२ अद्य अन्यत् कर्वरं अन्यत् उ श्वः— (२१७) ईश्वर आज एक कार्य करता है और कल दूसरा कार्य करता है। वह कभी शान्त या क्रियाहीन होकर नहीं बैठता। उसकी इस क्रियाशीलताके कारण ही यह संसार चल रहा है।

१३ इन्द्रः सत् असत् मुहुः आ चक्रिः— (२६७) प्रभु सत् और असत् कर्म सदा करता रहता है। यहाँ असत् कर्म और सत्कर्म दुष्ट कर्म तथा श्रेष्ठ कर्मके वाचक नहीं हैं, क्योंकि परमात्मा दुष्ट कर्म कभी नहीं करता। अतः यहां सत् और असत् कर्मका अर्थ होगा उन्नतिकारक कर्म और अवनतिकारक कर्म। प्रभु सज्जनोंके लिए उन्नतिकी ओर ले जानेवाले कर्म करता है अर्थात् उन्हें उन्नतिके मार्गमें प्रेरित करता है और दुष्टोंके लिए अवनतिके कर्म करता है। उन्हें ऐसे मार्गमें प्रेरित करता है कि जिस पर चलकर उनकी निश्चयसे अवनति होती है। इस कर्मके कारणही वह अमर है।

१४ शरदः न जरन्ति, मासाः द्यावः न अवकर्शयन्ति— (२६९) वर्ष, महीने और दिन भी इसे कृश या वृद्ध नहीं बना सकते। वह अनन्तकालसे विद्यमान है, तथापि वह वृद्ध नहीं होता, क्योंकि वह काल और स्थानके व्यवधानसे परे है। इसी सिद्धान्तको योग सूत्रमें "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

कहकर स्पष्ट किया है। वह प्रभु प्राचीनसे प्राचीन ऋषियोंका भी गुरु है, क्योंकि काल या समयका उस पर कोई परिणाम नहीं होता। वह सदा तरुण रहता है और सतत कर्म करता रहता है। इसी कर्मके कारण उसमें तरुणों सा उत्साह सदा बना रहता है।

१५ वृद्धस्य अस्य तनूः शस्यमाना वर्धतां— (२११) इस सनातन प्रभुका शरीर सदा ही प्रशंसित होकर बढता है। सदा ही इसका सामर्थ्य बढता रहता है, इसलिए—

१६ ते शवसः अन्तः न धायि— (३१०) इस प्रभुके सामर्थ्यका कोई अन्त नहीं है।

इसप्रकार साधक या मनुष्य जब सर्वत्र प्रभुकी महिमाका अनुभव करता है, तब बरबस ही उसका मन प्रभुकी उपासनाकी तरफ खिंचने लगता है। प्रभुकी उपासनासे साधकका ही मन उत्तम होता है।

प्रभुकी उपासना

१ देवस्य पदं नमसा व्यन्तः— (४) प्रभुके पवित्र पदको नम्रतापूर्वक की गई उपासनासे ही प्राप्त किया जा सकता है।

२ यज्ञियानि नामानि दधिरे— (४) प्रभुके पवित्र नामोंका ध्यान करते रहें।

३ मर्ताः शशमे— (९) मनुष्य ईश्वरकी स्तुति करके शान्ति प्राप्त करे।

४ मर्तः देवं दुवस्येत्— (१०१) मनुष्य प्रभुकी सेवा करे।

प्रभुकी उपासना करनेसे मनुष्यको अनेक तरहके ऐश्वर्योंकी प्राप्ति होती है।

प्रभुकी उपासनासे ऐश्वर्यकी प्राप्ति

१ श्रिये ते पादाः दुवः आ मिमिक्षुः— (३०८) ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हम प्रभुके चरणोंकी सेवा करते हैं।

२ विधते पुरूणि वसु स्वे सन्तु— (१२) उपासकको देनेके लिए प्रभुके पास बहुत सारा धन है।

३ सः देवयुः उरुज्योतिः नशते— (१५) देवका भक्त विस्तृत तेज प्राप्त करता है।

४ श्रिये ते पादाः दुवः आ मिमिक्षुः— (३०८) ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हम प्रभुके चरणोंकी सेवा करते हैं।

प्रभुकी उपासना करनेसे हर तरहके ऐश्वर्य और इहलौकिक और पारलौकिक दोनों तरहके धन प्राप्त हो सकते हैं। वह अपने उपासककी हरतरहसे रक्षा करता है। क्योंकि—

५ मनुष्याणां सखं इत् मातापिता— (५) वह ईश्वर ही मनुष्योंका सच्चा मातापिता है। अन्य मातापिता तो जन्म देनेके कारण मातापिता हैं, पर बिना किसी स्वार्थके सबकी रक्षा और सबका पालन पोषण करनेके कारण वह प्रभु ही सबका सच्चा मातापिता है।

इस प्रकार प्रभुकी उपासनासेही मनुष्य हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है।

उत्तम बुद्धिकी प्रशंसा

मनुष्यके अन्दर सदा उत्तम बुद्धि रहे। वह दुष्ट बुद्धिका कभी उपयोग न करे। उत्तम बुद्धिकी प्रशंसा करते हुए वेद कहता है—

१ धियः होता अभवः— (१) उत्तम बुद्धिसे ही मनुष्य होता बनता है। अपनी उत्तम बुद्धिके कारण मनुष्य सबसे श्रेष्ठ होता है। अपनी उत्तम बुद्धिका उपयोग करके वह अपनी उन्नति कर सकता है।

२ भद्रयां सुमतौ आ यतेमहि— (१०) हम उत्तम बुद्धिके संरक्षणमें अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न करें। इस उत्तम बुद्धिका उपयोग करके प्रभुकी प्राप्ति भी की जा सकती है।

३ त्वे वष्टि धिषणा धन्या— (८५) प्रभुकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धि धन्य है।

४ धीवतः सखा— (५९८) वह प्रभु भी उत्तम बुद्धिवालोंका ही मित्र बनता है। इसलिए—

५ धीतिं सुमतिं आ वृणीमहे— (११५) हम धारणावती बुद्धि तथा सुमतिको अपने अन्दर धारण करें।

६ शुचतः धीः भीमा आ एति— (२७) तेजस्वी वीरकी बुद्धि भीरु मनुष्यको भयानक दीखती है। जो दुष्ट हैं, वे सदा सज्जनसे घबराया करते हैं।

ज्ञानसे वैभवकी प्राप्ति

१ महः राये चितयन्तः— (२) विशेष वैभव प्राप्त करनेके लिए ज्ञानको प्राप्त करे।

२ अमामां अभयासः रायः— (५) मनुष्योंको

ऐहिक धन और पारमार्थिक ज्ञानरूप धन दोनों तरहके धन प्राप्त करने चाहिए।

४ तरण ! त्वं चेत्यः त्राता भूः— (५) हे तारक प्रभो ! तू लोगोंको ज्ञानवान् बनाकर उनका तारण करता है।

४ त्वा ऊतः स मर्तः विश्वा वामा दधते — (९) ईश्वरसे सुरक्षित हुआ वह मनुष्य सब धनोंको प्राप्त करता है।

५ कवये धीतिं आनट्, तं पासि, पिपर्षि— (११०) ज्ञानीकी सेवाके लिए जो कर्म करता है, उसकी सुरक्षा वह ज्ञानी करता है और उसकी इच्छायें वह पूर्ण करता है।

समाजमें ज्ञानका प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। समाजमें कोई भी अज्ञानी न रहे। इसलिए राष्ट्रमें सर्वत्र ज्ञानके प्रचारक हों। इन प्रचारकोंमें कौन कौनसे गुण हों, यह आगे बताया गया है।

ज्ञानका प्रचारक कैसा हो ?

१ विश्वायुः अमृतः अतिथिः जातवेदाः— (३४) मनुष्य पूर्णायु संपन्न, रोग अपमृत्यु आदिसे रहित, अतिथिके समान पूज्य और ज्ञानका प्रचार करनेवाला हो।

२ भानुमद्भिः अर्कैः सूर्यः न— (३८) तेजस्वी किरणोंसे जिस तरह सूर्य प्रकाश फैलाता है, उसी तरह मनुष्य ज्ञानको फैलावे।

३ प्रचेताः पुरुवारः अध्रुक्— (४१) ज्ञानी मनुष्य विज्ञानमें निपुण, अनेकोंके द्वारा प्रशंसनीय तथा द्रोह न करनेवाला हो।

४ सुक्रतुः कविः वैश्वानरः— (६१) उत्तम कर्म करनेवाला ज्ञानी सब मनुष्योंका हित करनेवाला होता है।

५ ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत् अकृणोत् — (६४) अपने प्रकाशसे यह अन्धकारको दूर करे। नेता ज्ञानका प्रसार करके लोगोंके अज्ञानको दूर करे।

६ श्यावाश्वेभ्यः अंकूयन्तं अमूरं आनयत् — (१२३) उन्नतिशील या उन्नतिका मार्ग दर्शानेवाले ज्ञानीकी सहायतासे हम मनुष्योंको अन्धकारमेंसे निकालकर प्रकाशमें लाते हैं।

७ पथिकृत् विदानः सः सुगेषु उत दुर्गेषु नः पुरएता बोधि— (२४१) मार्ग बनानेवाला ज्ञानी सुगम तथा दुर्गम मार्गोंमें लोगोंका अग्रगामी नेता होकर मार्गदर्शन करे, और ज्ञानपूर्वक योग्य रीतिसे उन अनुयायियोंको चलाए और इष्ट स्थान तक पहुंचाये।

ज्ञानका प्रचार करनेवाला मनुष्य तेजस्वी और जिस तरह सूर्यकी किरणें चारों ओर फैलती हैं, उसी तरह ज्ञानकी किरणें चारों ओर फैलानेवाला हो। ऐसे ज्ञानका प्रचार करनेवालेका सर्वत्र सम्मान हो। पर जो ज्ञानसे द्वेष करता हो, उसका नाश हो।

ज्ञानसे द्वेष करनेवालेकी दुर्दशा

१ यः ब्रह्म अति मन्यते, निनित्सात्, तस्मै तपूंषि वृजिनानि सन्तु— (५५१) जो ज्ञानसे द्वेष करे और ज्ञानकी निन्दा करे, उसे ज्वालायें जलानेवाली हों।

२ ब्रह्मद्विषं द्यौः अभिशोचतु— (५५१) उस ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको यह द्युलोक संतप्त करे।

३ ब्रह्मद्विषे तपुषे हेतिं अस्य— (५५१) ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको अच्छा दण्ड देना चाहिए।

मनुष्य ज्ञानसे कभी द्वेष न करे। ज्ञान परमात्माका प्रतीक है, इसलिए ज्ञानसे द्वेष करनेवाला मानों परमात्मासे ही द्वेष करता है। अतः ज्ञानसे द्वेष न करके उसका सर्वत्र प्रचार ही करना चाहिए।

तेजप्राप्तिका उपाय

१ मित्रमहाः शोचिषा (३०) मित्रके महत्वको बढानेवाला, उसके गुणोंको प्रकट करके सर्वत्र उसका यश बढानेवाला, मनुष्य विशेष तेजसे युक्त होता है।

२ अध्वरस्य होतः पावकशोचे (१२०) हिंसारहित कर्मका संपादन करनेवाला पवित्र तेजसे युक्त होता है।

जो अपने मित्रके दुर्गुणोंको छिपाकर सर्वत्र उसके उत्तम गुणोंका ही बखान करता है, तथा हिंसारहित उत्तम कर्मोंको करता है, वह तेजस्वी होता है।

यज्ञकी महिमा

१ ऋता यजासि, महिना विभूः— (१२०) मनुष्य सत्यपूर्वक यज्ञ करे और अपनी महिमासे सर्वत्र प्रभावी बने।

२ मानुषे जने विश्वेषां यज्ञानां होता हितः— (१२६) मानवी समाजमें सब यज्ञोंको करनेवाला मनुष्य हितकारी होता है।

३ होता मनुर्हितः— (११४) हवन करनेवाला मनुष्योंका हितकारी होता है।

४ इषयन्तः मर्ताः ते अमृतस्य कदा न मिनन्ति —(२१२) यज्ञ करनेवाले मनुष्य प्रभुके धामका नाश नहीं करते ।

५ यज्ञः इन्द्रं वर्धात्— (१५५) यज्ञ प्रभुकी महिमाको बढाते हैं ।

६ अहेळमानः यज्ञं उप याहि— (११७) क्रोध-रहित होकर प्रसन्न मनसे यज्ञमें सम्मिलित होना चाहिए ।

यज्ञ करनेसे हवाके अन्दर घूमनेवाले रोगके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और हवा शुद्ध होती है । उस शुद्ध हवासे मनुष्यका स्वास्थ्य बढता है । इस प्रकार यज्ञ करनेसे मनुष्योंका हित होता है ।

अग्निकी उत्पत्ति और महिमा

१ वाघतः विश्वस्य मूर्ध्नः पुष्करात् अधि अथर्वा त्वां निरमन्थत— (११८) आधाररूप विश्वके शिरस्थानमें रहनेवाले कमलसे अथर्वाने मंथन करके उत्पन्न किया ।

२ ते पूर्तं अक्षिपत् नहि भुवत्— (१११) अग्निका प्रज्वलित तेज आंखका विनाशक नहीं होता ।

सब विश्वका आधाररूप द्युलोकमें जो कमलके आकारका सूर्य है, उसे मथकर अथर्वा अर्थात् प्रभुने इस अग्निकी उत्पत्ति की । इसलिए अग्नि सूर्यका ही एक भाग है । इस अग्नि या सूर्यके प्रकाशसे मनुष्यके आंखोंकी ज्योति नष्ट नहीं होती । अपितु आंखोंका प्रकाश बढता है । ओगलेवाडीमें ओगले ग्लास वर्क्स नामका एक कारखाना है, उस कारखानेमें काम करनेवालोंसे एक महत्वपूर्ण बात यह ज्ञात हुई कि जो मजदूर आगकी भट्टीके सामने काम करते हैं, उनकी आंखें अन्य भागोंमें काम करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अच्छी थीं । इससे ज्ञात होता है कि अग्नि और सूर्यकी किरणोंसे आंखोंकी ज्योति बढती है ।

यह अग्नि शब्द अग्रणीका अपभ्रंश है । निरुक्तकार यास्कने " अग्निः कस्मात् ? अग्रणीः भवति " कहकर अग्नि शब्दकी व्युत्पत्ति अग्रणीसे बताई है । इसलिए इस अग्निके मंत्रोंमें अग्रणीके गुण बताये गए हैं ।

अग्रणीके गुण

१ मित्रमहः तपिष्ठः अग्निः— (४४) अग्रणी मनुष्य अपने मित्रोंका महत्व बढानेवाला, शत्रुओंको संताप देनेवाला और तेजस्वी हो ।

२ अदब्धः गोपाः अमृतस्य रक्षिता— (६१) किसी शत्रुके सामने न दबनेवाला वीर सबका संरक्षण करता है और अमरत्वका रक्षक भी वही है ।

३ वैश्वानरः विश्वं कृण्वं अधत्त - (६४) सब मानवोंका हित करनेवाला नेता अग्रणी सब बल अपनेमें धारण करता है ।

४ अजरः राजा— (६६) शासक या अग्रणी जरारहित हो । वह निर्बल न हो । वह वृद्धावस्थामें भी तरुणके समान कार्य करे ।

५ अदब्धेभिः गोपाभिः सूरीन् पाहि— (६८) राजा अपनी अदम्य रक्षा-शक्तिसे विद्वानोंकी रक्षा करे ।

६ अग्निः प्रचेताः वेधस्तमः ऋषिः— (१०२) अग्रणी नेता ज्ञानी, कर्मप्रवीण और दूरदर्शी हो ।

७ सुप्रतीकं सुदृशं स्वंचं— (११६) सुन्दर और आदर्शरूपसे प्रगति करनेवाला नेता पूजनीय होता है ।

राजा या अग्रणी राष्ट्रका कर्णधार होता है । उसी पर राष्ट्रकी उन्नति या अवनति अवलम्बित रहती है । इसलिए राजाको सभी उत्तम गुणोंसे युक्त होना चाहिए । राजाकी मित्रमंडली सज्जनोंसे संपन्न हो, राजा भी अपने मित्रोंके साथ उत्तम व्यवहार करे । मनु महाराजने राजाको मित्रोंकी सम्मतिके अनुसार कार्य करनेके लिए कहा है । पर राजा भी अपने मित्रोंको चुननेमें सावधान रहे । वे मित्र खुशामदी न हों, अपितु अपनी उत्तम सम्मति राजाको दें । इस प्रकार समय समय पर अपने मित्रोंकी सम्मति लेकर अपनी प्रजाके हितके कार्यमें सदा तत्पर रहे । अपने राष्ट्रमें राजा ज्ञानियोंकी हरतरहसे रक्षा करे, तथा वह स्वयं भी ज्ञानी और दूरदर्शी हो । ऐसा ही नेता या राजा पूजनीय होता है । वह राजा वीर और साहसी हो, ऐसे वीर राजाकी महिमा बहुत बडी होती है ।

वीरकी महिमा

१ तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेः महिमा पृथिव्याः दिवः प्र रिरिचे— (२००) तेजस्वी श्रेष्ठ और शत्रु-नाशक वीरकी महिमा पृथ्वी और द्युलोकसे भी बडी है । अपने शत्रुओंका नाश करनेवाले वीरका यश सारी पृथ्वीमें तो फैलता ही है, पर द्युलोकमें भी फैलता है अथवा जितना

पृथ्वी और द्युलोकका विस्तार है, उससे भी अधिक इस वीरका यश फैलता है। ऐसा वीर अपने एक भी शत्रुको पृथ्वी पर नहीं रहने देता, इसलिए-

२ पुरुमायस्य शत्रुः न— (२००) अत्यधिक सामर्थ्यशाली वीरका कोई शत्रु नहीं होता।

३ पुरुमायस्य शंयोः प्रतिमानं न अस्ति—(२००) ऐसे बहुत कुशल और सुखशान्ति देनेवाले वीरकी कोई तुलना नहीं है। ऐसा वीर अद्वितीय होता है।

४ पुरुमायस्य शंयोः न प्रतिष्ठि— (२००) उत्तम कुशल और सुखशान्ति देनेवाले वीरोंको दूसरेके आश्रयकी जरूरत नहीं होती। ऐसा वीर अपने ही बाहुबलके आश्रयसे सारे शत्रुओंका नाश करता है।

५ वीळवे न नमते— (२७०) ऐसा वीर सामर्थ्यशाली शत्रुके आगे भी नहीं झुकता।

६ स्थिराय न नमते— (२७०) स्थिर और दृढ शत्रुके सामने भी नहीं झुकता।

७ ऋष्वाः गिरयः अज्राः— (२७०) बडे बडे पहाड भी इस वीरके लिए सुगम हो जाते हैं।

८ गंभीरे चित् असै गाधं भवति— (२७०) गहरा सागर भी इसके लिए उथलासा अर्थात् आसानीसे पार करने योग्य हो जाता है।

ऐसे वीरके मार्गमें कोई भी विघ्न बनकर नहीं आ सकता। यदि कोई विघ्न आता भी है तो उसकी यह वीर कुछ भी परवाह नहीं करता। ऐसा वीर—

९ धृतव्रतः— (२०८) व्रतों और नियमोंको धारण करनेवाला हो।

१० ऊती अरिषण्यन् ऊर्ध्वः स्थाः— (२७१) वीर पुरुष दूसरोंकी रक्षा करनेके लिए सदा उद्यत रहे।

ऐसा वीर सर्वत्र पूजा जाता है और प्रजाओंका प्रिय होता है।

प्रजाप्रियका सम्मान

१ विक्षु प्रियः सपर्येण्यः— (६) जो प्रजाजनोंमें प्रिय होता है, उसीकी पूजा होती है।

२ पुरि जूर्यः रण्वः— (१०) नगरमें वृद्ध मनुष्य सबको उपदेश देनेके कारण सबको प्रिय होता है।

३ अमृतं पायुं आशुर्विं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे— (११४) जो अमर रक्षक, सदा सावधान रहनेवाला, वैभवशाली और प्रजाका पालक है, उसे सभी प्रजाएं नमन करती हैं।

उत्तम शासक या राजा जो होता है, उसे सभी लोग अपने प्राणसे भी अधिक मानते हैं, अपनी जान देकर भी प्रजायें उसकी रक्षा करती हैं। पर यह तभी होता है कि जब वह—

४ चर्षणीनां प्रेतीषणिः— (८) शासक प्रजाजनोंके पास जाकर उनकी परिस्थिति देखनेवाला हो।

राष्ट्रका शासक अपना भेष बदलकर प्रजाके सुख दुःखका पता लगाए और उन दुःखोंको दूर करनेका प्रयत्न करे।

५ उभयान् अनुव्रता विभूषन्— (११५) राजा दोनों तरहकी प्रजाके अनुकूल आचरण करनेवाला होकर सबको सुखी रखे। राज्यमें ज्ञानी–अज्ञानी, सबल–निर्बल आदिके रूपमें दो वर्गकी प्रजायें होती हैं। राजा सबके अनुकूल होकर सबको सुखी रखे।

६ विशः यत् अद्य वेः— (१२०) प्रजा जो चाहती है, वही राजा करे। राजा प्रजाके प्रतिकूल आचरण कभी न करे। प्रजाके प्रतिकूल आचरण करनेवाला राजा अत्याचारी होकर प्रजाओं पर मनमाने अत्याचार करता है, फिर अन्तमें वह प्रजाओंके द्वारा ही मारा जाता है। इसलिए—

७ राजानः शुचिव्रताः— (१४९) राजागण शुद्ध आचरण करनेवाले हों।

८ ते प्रजानः चर्षणयः त्राता उत वरूता भव— (२७९) जो भयसे कांपनेवाली प्रजायें हैं, उनका राजा रक्षक और उद्धारक बने।

९ सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते— (२४२) सत्त्ववान् अर्थात् सामर्थ्यशाली, अनेक कौशल्योंसे युक्त और शत्रुका पराभव करनेवाला ही सबका स्वामी हो सकता है।

ऐसा शासक अपने राष्ट्रपर उत्तम रीतिसे शासन करे। राष्ट्रमें सभी आर्य हों। सभी श्रेष्ठ हों। दास कोई न हो। जिस राष्ट्र दास्यता या गुलामगिरीकी वृत्ति प्रजाओंमें होती है, उन प्रजाओंका स्वाभिमान नष्ट हो जाता है और फिर वह राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिए प्रजाओंमें महत्वाकांक्षा हो, उन्नति करनेकी साध हो इस दिशामें राजा प्रयत्न करे।

१० दासानि आर्याणि करः—(२५१) दासोंको आर्य बनाया जाए। जिन लोगोंकी वृत्ति दासकी है अर्थात् गुलामगिरी करनेकी है, उन लोगोंकी वृत्तियोंको ऊंचा उठाकर उन्हें श्रेष्ठ बनाया जाए। इस तरह राष्ट्र भी ऊंचा हो सकता है।

वाणीका सदुपयोग

मनुष्यको परमात्माने वाणी दी है। यह उसकी विशेषता है। वह अपनी वाणीके द्वारा अपने मनोभावोंको व्यक्त कर सकता है। मनुष्यके अन्दर वाणीकी शक्ति बडी भारी है, इसलिए मनुष्य अपनी वाणीके उपयोगमें सदा सावधान रहे। वह अपनी वाणीका उपयोग उत्तम कर्मोंमें ही करे।

१ विश्वाभिः गीर्भिः पूर्तिं अभि अश्याम्—(१००) उत्तम वाणीका उपयोग करके हम पूर्णता प्राप्त करें।

२ मर्त्यः तुथः धियं जुजोष, सः पूर्व्यः प्रभसत्—(१०१) जो मनुष्य आशीर्वादके शुभवचन कहता है, वह सर्वश्रेष्ठ होकर प्रकाशित होता है।

३ आसा वह्निः विदुष्टरः—(१३७) मुखसे उत्तम शब्दोंका उच्चारण करनेवाला मनुष्य अधिक ज्ञानी होता है।

ज्ञानी मनुष्य सदा भले बुले शब्दोंका ही उपयोग करता है। अपनी वाणीका वह सदा संयम करता है, इसीलिए वह हमेशा शक्तिशाली होता है। वाणीको शक्तिशाली बनानेका एक दूसरा उपाय है—

हम निन्दा न करें

१ त्वं निदायाः पाहि—(९७) हे प्रभो! तू हमारी निन्दासे रक्षा कर। हम किसीकी निन्दा न करें।

२ परिचक्ष्याणि वचांसि मा वोचं—(५६३) निन्दाके भाषण मैं कभी न करूं।

"दूसरे हमारी निन्दा न करें," यह देखना तो मनुष्यके अपने अधीनकी बात नहीं है। क्योंकि इस संसारमें निष्कारण भी वैरी होते ही हैं, और वे वैरी निन्दा तो करेंगे ही। पर मनुष्य इतना तो कर ही सकता है कि वह स्वयं किसीकी निन्दा न करे। किसीकी निन्दा करना या न करना मनुष्यके अपने अधीनकी बात है। अतः मनुष्य भरसक यही कोशिश करे कि वह किसी की निन्दा न करे।

इस प्रकार वाणीको शक्तिसंपन्न बनानेका पहला उपाय है "किसीकी निन्दा न करना" और दूसरा उपाय है—

*

सत्यपालन

सत्यपालनकी प्रशंसा वेदोंमें बहुत गाई गई है। वेदका कहना है—

१ ऋतपाः ऋतेजाः क्षेषत्—(२५) सत्यपालक और सत्यपालनके लिए ही अपना जीवन देनेवाला दीर्घजीवी होता है।

२ ऋतावा सूर्यः न दूरात् शोचिषा तताम—(८९) सत्यकी रक्षा करनेवाला वीर सूर्यके समान दूरसे ही चमकता है।

३ सत्पतिः वृत्रं शवसा हन्ति—(९७) सत्यका पालन करनेवाला मनुष्य अपने सामर्थ्यसे शत्रुका वध करता है।

४ न मिथूजनः भूत् सः न मुहे—(१९१) जो मनुष्य कभी भी मिथ्यावादी जनके समान असत्यवादी नहीं होता, वह वीर कभी भी मोहित नहीं होता।

५ ऋतावृधः देवः—(५५८) सत्यमार्गकी वृद्धि करनेवाले ही देव कहलाते हैं।

सत्यका पालन बडा कठिन काम है, पर उसका पालन करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी, तेजस्वी और देव बनता है। जो मनुष्य सत्यका पालन करता है, वह सबसे हिलमिल कर रहता है।

झगडेका कारण

मनुष्य जो आपसमें झगडा करते हैं, उनमें मुख्य कारण वेदमें इस प्रकार बताये गए हैं—

१ तोके तनये गोषु अप्सु उर्वरासु क्रन्दसी वि ब्रवैते—(२७७) बालबच्चों गौओं, जलप्रवाहों और उर्वरा भूमिके लिए विवाद बढता है, तब झगडे होते हैं।

समाजमें होनेवाले झगडोंके मुख्यतया यही कारण होते हैं। स्त्री, पशु, जमीन और धनके कारण ही झगडे होते हैं। इन झगडोंके कारण तो कभी कभी मनुष्य सभी कुछ गंवा बैठता है। इसलिए बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिए कि वह इन विषयोंमें जरा सम्हाल कर व्यवहार करे।

पापसे बचनेका उपाय

१ अध्वराय अग्नये ददाश, तं मर्तः अंहः न, अद्भुतिः न—(२६) जो मनुष्य प्रदीप्त अग्नियोंमें हवि अर्पित करता है, उसे न पाप लिप्त होता है, न गर्व। जो

मनुष्य प्रतिदिन अग्निरूप प्रभुकी उपासना करता है, वह कभी पापी या घमण्डी नहीं होता।

२ सूरः न अस्य दृशतिः अ-रेपाः— (२७) सूर्यके समान मनुष्यका दर्शन पवित्र और निष्पाप हो। जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निमें हवि देता है, प्रभुकी उपासना करता है तथा पाप और दंभसे दूर रहता है, ऐसे निष्पाप और प्रभुके उपासकका दर्शन भी मनुष्यको निष्पाप और पवित्र करनेवाला होता है।

३ अन्यकृतः एनं मा भुजेम— (५४०) दूसरोंका किया हुआ पाप हमें न भोगना पडे। जो पापसे दूर रहता है, वह श्रेष्ठ होता है।

कौन श्रेष्ठ है ?

१ देवताता श्रेष्ठः, शूराणां शविष्ठः, मघोनां मंहिष्ठः— (७०५) देवोंमें यज्ञ करनेवाला श्रेष्ठ है, शूरवीरोंमें बलवान् श्रेष्ठ है, और धनिकोंमें उत्तम दान देनेवाले श्रेष्ठ हैं। यज्ञ करनेवाला देवोंमें भी श्रेष्ठ है, तथा बलशाली होकर भी शूरवीर हो, तो बहुत उत्तम है। जो मनुष्य शूरवीर होकर भी यदि बलशाली न हो तो उसकी शूरवीरता किस काम की? इसी तरह जो बलशाली होकर भी डरपोक हो, तो उसका बल किस काम आएगा? इसी तरह मनुष्य ऐश्वर्यशाली तो हो, पर जब तक वह दूसरोंको दान न दे, तब तक उसके ऐश्वर्यशाली होनेका समाजको क्या उपयोग? समाजके लिए तो ऐसे मदानी मनुष्यका ऐश्वर्यशाली होना और न होना सब बराबर है। इसलिए दानशीलतासे समन्वित ऐश्वर्यशालिता ही प्रशंसाके योग्य होती है।

पुरुषार्थकी प्रशंसा

मनुष्यकी पुरुष संज्ञा इसी कारण है कि उसमें पौरुषका निवास होता है। पौरुषका अर्थ है पुरुषार्थ और पुरुषार्थका अर्थ है, उत्साहसे भरकर अनवरत परिश्रम करना। इस पुरुषार्थसे मनुष्य अपने सभी मनोरथ हासिल कर सकता है। वेदभगवान् भी पुरुषार्थकी प्रशंसा करते हैं—

१ कृत्वा द्रोणे अज्यते— (२१) मनुष्य अपनी उन्नतिके साधन मर्यादित होनेके बावजूद भी अपने पुरुषार्थसे अपनी उन्नति करता रहे। मनुष्यकी उन्नतिके साधन मर्यादित तो होते ही हैं, पर यदि वह उन्हीं मर्यादित साधनोंसे पुरुषार्थ करता रहे, तो वह अपनी सिद्धि तक अवश्य ही पहुंच जाता है। महापुरुषोंकी नजर सदा साध्यकी तरफ ही रहती है। साधन कैसे भी हों, उसकी उसे परवाह नहीं रहती, वह तो उन्हीं परिमित साधनोंसे अपना साध्य प्राप्त कर लेता है।

२ पुरुः पृथुः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— (२०४) मनुष्य शरीरसे बडा और गुणोंसे श्रेष्ठ होकर भी अपने पुरुषार्थ या कर्तृत्वशक्तिके कारण ही सत्कारके योग्य होता है। मनुष्य चाहे कितनी भी दीर्घकाय और गुणी हो, पर जब तक वह पुरुषार्थ नहीं करता या उसमें कर्तृत्वशक्ति नहीं होती, तब तक वह समाजमें सत्कृत नहीं होता। मनुष्य वस्तुतः जो पूजा जाता है, तो वह अपनी कर्तृत्वशक्तिके कारण ही। इसलिए मनुष्य क्रियाशील बनकर अपने समाजकी उन्नति करे।

शुभकर्म

१ अरुषः दिवा, अरुषः नक्तं— (३०) मनुष्य जिस तरह दिनमें पापरहित होकर शुभकर्म करे, उसी तरह रातमें भी पापरहित होकर शुभकर्मोंको करता रहे।

२ विश्वेषां यज्ञानां होता मानुषे जने हितः— सब श्रेष्ठ कर्मोंको कुशलतासे करनेवाला मनुष्य मानव समाजमें हितकारी होता है।

३ विश्वे सुदानवः कामिनः क्रतुं जुषन्तः— (१३३) सब दानी सुखकी इच्छा करते हुए शुभकर्म करते हैं।

४ यत् चयध्वे तत् मा कर्म— (५४०) जिसके लिए तुम दण्ड देते हो, वैसा कर्म हम न करें।

५ अतियाजस्य यष्टा नि हीयताम्— (५५०) अविधिपूर्वक कर्म करनेवाला विनष्ट हो जाए।

६ अपसा क्षुधीयतः जनान् महित्वा चित् संयत— (६९५) कर्म करके जो अन्न प्राप्त करनेके इच्छुक हैं, उन्हें मित्र और वरुण उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करते हैं।

मनुष्यकी योनि ही कर्मयोनि है। अन्य योनियां तो भोग योनियां हैं। अन्य योनियोंमें तो मनुष्य अपने किए हुए कर्मका भोग ही करता है, पर मनुष्ययोनिमें आकर यह आत्मा कर्म करनेकी अधिकारिणी बनती है। इसलिए मनुष्य इस योनिको पाकर उत्तम ही कर्म करे।

दानकी प्रशंसा

१ श्रवांसि पृथू करस्ना गभस्ती— (२०६) अन्नादिका विशेष दान करनेके लिए भगवान्‌ने मनुष्यको हाथ दिए हैं।

२ पणेः मनः वि म्रद— (५६९) व्यापार करनेवाले बनियेको जरा नरम कर। कंजूस बनियेको भी दान देनेके लिए प्रेरित कर।

३ पणीनां हृदया आरया परि तृन्धि— (५७१) कंजूसोंके हृदयको आरोंसे काट।

४ आरया पणेः वि तुद— (५७२) आरेसे कंजूसको काट।

५ तत् मंहित्वं यत् दाशुषे अंहः विश्वधिष्ठं— (७००) यह देवोंका ही महत्त्व है कि वे दाताको निष्पाप बनाते हैं।

दान देनेके लिए भगवान्‌ने मनुष्यको हाथ दिए हैं। मनुष्य "सौ हाथोंसे धन इकट्ठा करे और हजार हाथोंसे दान दे।" मनुष्य अपने पासही धन इकट्ठा करके न रखे। यदि कोई धन अपने पासही इकट्ठा करके रखेगा, और न स्वयं खाएगा न दूसरोंको ही खानेके लिये देगा, तो उसके धनका निश्चयसे नाश हो जाएगा। इसलिए मनुष्य धनका दान अवश्य करे।

नमस्कार करनेका तरीका

१ उत्तानहस्तः नमसा आ विवासेत्— (१७१) हाथ उठाकर नमस्कार करके सेवा करे। हाथ उठाकर नमस्कार करना चाहिए। दोनों हाथ जोडकर और उनके हाथोंको सिरसे लगाकर नमस्कार करनेकी भारतीय पद्धति है।

घरका सुख

१ सुवत् सदं अस्मे धेहि— (१२) पर्याप्त पुत्र पौत्रादिसे भरा हुआ घर हमें मिले।

२ अवसा यन्तो नूनं विद्याम— (२८१) हमें संरक्षणशक्ति युक्त घर प्राप्त हों।

३ गावः आ अग्मन्, उत भद्रं अक्रन्— (२९८) गायें हमारे घर आवें और हमारा कल्याण करें।

४ यत् गावः अनुस्फुरान्, छर्दिषः अभिष्टिः— (७०१) जिस घरके चारों ओर गायें घूमती हों, ऐसा घर चाहिए।

५ ऋजिष्यं धृष्णु— (७०१) सरल व्यवहार करनेवाले मनुष्य जहां रहते हों, ऐसा घर हमें चाहिए।

६ यत् रणे वृषणं युनजन्— (७०१) जो घर युद्धमें बलवान् तरुणको भेज सकता हो, ऐसा घर चाहिए। प्रत्येक घरमें ऐसे तरुण तैय्यार रहें, कि जो समय पडने पर युद्धमें जा सकें।

घरका सुख जीवनके बडे सुखोंमेंसे एक है। जिसे घरका सुख मिल गया, उसका गार्हस्थ्य जीवन उत्तम होजाता है। घरको सुखी करनेमें पशुओंका भी समावेश है। घरमें गायें भरपूर हों, उन गायोंसे घी दूध भरपूर मिलता हो और गोरस पीकर घरके बालबच्चे स्वस्थ और पुष्ट हों, तो फिर घरके सुखका क्या कहना? घरमें मधुरभाषिणी अर्धांगिनी, उत्तम पुत्र और पुत्रियां सुखके स्रोत हैं।

उत्तम पुत्रके लक्षण

१ अप्सां ऋतीषहं सत्पतिं वीरं ददाति— (१०४) पुत्र कर्म करनेमें कुशल, शत्रुका नाश करनेवाला, सज्जनोंका उत्तम पालन करनेवाला और शूरवीर हो।

२ यस्य संचक्षि शवसः भिया शत्रवः त्रसन्ति— (१०७) पुत्र ऐसा हो कि जिसका दर्शन होते ही उसके सामर्थ्यसे डरकर शत्रु कांपने लग जाएं।

३ शवसा पृत्सुः, द्यौः न भूम— (२१७) पुत्र अपने सामर्थ्यसे युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाला और द्युलोकके समान विशाल सामर्थ्यशाली हो।

४ अमृतस्य सूनवः— (५५८) मनुष्य अमर ईश्वरके पुत्र हैं।

पुत्र वीर और सामर्थ्यशाली हो। शत्रुओंको मारकर सज्जनोंका पालन करनेवाला हो। सभी मनुष्य उस अमर ईश्वरके पुत्र हैं, इसलिए सभी उस ईश्वरकी तरह व्यवहार करें। ईश्वर इस विश्वपर शासन करते हुए दुष्टोंका संहार करता है, और सज्जनोंका पालन करता है। इसी तरह मनुष्य भी अपने राज्यपर शासन करते हुए दुष्टोंका नाश करके सज्जनोंका पालन करे।

गो महिमा

गाय वैदिक ऋषियोंकी पूज्या रही है। उन्होंने गायोंका पालन करनेका आदेश दिया है। वेदोंमें कहींपर भी गायोंको मारनेका आदेश नहीं है। इसके विपरीत गायको 'अघ्न्या' और 'अदिति' कहकर उसे न मारने योग्य बताया है।

ऋग्वेदके षष्ठम मंडलमें ऋषि भरद्वाजने गायकी महिमा इस प्रकार गायी है।

१ गावः भगः— (१०२) गायें ही ऐश्वर्य हैं।

२ इमाः याः गावः स इन्द्रः— (१०२) ये जो गायें हैं, वे ही इन्द्र हैं। इन्द्ररूप परमात्मा ही इस पृथ्वी पर गोरूपसे विचर रहा है।

३ कृशं चित् अश्रीरं चित् सुप्रतीकं कृणुथ— (१०३) ये गायें कृश और निस्तेजको हृष्टपुष्ट और सुन्दर तेजस्वी रूपवाला बनाती हैं।

४ गृहं भद्रं कृणुथ— (१०३) गायें घरको कल्याणमय बनाती हैं।

५ गो अग्राः इषः— (३५७) गायका रस अर्थात् गोदुग्ध अन्नरूप है।

गायको वेदमें परमात्माका रूप ही बताया है। श्रीकृष्णका गोपालन प्रसिद्ध ही है। श्रीकृष्ण मानों गायमय ही हो गए थे। परमात्मा ही इस पृथिवी पर गोरूपसे विचार रहा है। गायके दूधका जो निरयप्रति उपभोग करते हैं, वे चाहे जैसे कृश या दुबले पतले हों, हृष्टपुष्ट होकर स्वस्थ और सुन्दर हो जाते हैं। इस प्रकार घरके सदस्योंको तन्दुरस्त बनाकर गायें घरका कल्याण करती हैं। गायोंसे घरकी शोभा बढती है। गायोंसे रहित क्षेत्र तो उजाड उजाडसा लगता है।

६ अगव्यूति क्षेत्र आ अगन्म, उर्वी सती भूमिः अंहूरणा अभूत्— (४७०) गायोंसे रहित क्षेत्रमें जब हम आए, तो हमें वहां की पृथिवी विस्तीर्ण होने पर भी शत्रुओंके युद्धक्षेत्रके समान प्रतीत हुई। गायोंसे रहित प्रदेश चाहे जितना विस्तृत हो, पर लगता वह युद्धक्षेत्रके समान ही। जिस तरह युद्धक्षेत्र एक भयंकर नीरवताको लिए होता है, उसी तरह गोरहित प्रदेशोंमें किसी भी तरह की शोभा न होनेके कारण उजाड उजाडसा प्रतीत होता है।

६ गो-इष्टौ प्र चिकित्स— (४७०) गायोंके प्राप्त होने पर उनकी अच्छी तरह देखभाल करनी चाहिए। यदि गायें कभी बीमार हो जायें, तो उनकी ध्यान पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए।

८ नव्यसा वचः सबर्दुघां धेनुं आ— (४९२) नवीन और कोमल शब्दोंसे दुधारु गायको बुलाना चाहिए। गायों पर शब्दोंका बहुत प्रभाव पडता है। इस लिए उनके लिए कठोर शब्दोंका उपयोग नहीं करना चाहिए, उनके लिए हमेशा नरम और कोमल शब्दोंका ही उपयोग किया जाए। विदेशोंमें प्रत्येक गोष्ठ (गायोंके बाडे) में रेडियो आदि रखे हुए होते हैं और दूध निकालते समय उन्हें रेडियोके द्वारा संगीत सुनाया जाता है, जिसके कारण वे प्रसन्न मनसे ज्यादा दूध देती हैं। उन्होंके द्वारा पीट पीटकर निकाला गया दूध हानिकर ही अधिक होता है, पर जो दूध गायें प्रसन्न मनसे देती हैं, वह दूध निस्सन्देह आरोग्यकर होता है। अतः गायोंको सदैव प्रसन्न रखना चाहिए।

९ गो-अग्राः इषः— (३५७) गायका रस अर्थात् गोदूध अन्नरूप है। गायके दूधमें इतनी शक्ति रहती है कि जितनी अन्नमें।

१० अवः अमृत्युः— (४९३) यह गोरस रूपी अन्न मृत्युको दूर करनेवाला है।

११ सुम्नैः एव यावरी— (४९३) गाय सुखोंसे युक्त होकर संचार करती है। गायके अंगप्रत्यंगोंमें देवोंका निवास है, इसलिए उसके शरीरमें सदा ही सुखका भण्डार रहता है। इसलिए जिन प्रदेशोंमें गायें संचार करती हैं, वे प्रदेश सदा सुखमय होते हैं।

उत्तम अन्न

१ यत् अच्युतं तत् अद्वि— (१०७) जो गिरा हुआ नहीं होता, उसी अन्नको खाना चाहिए। दूसरोंके द्वारा जूठा करके छोडे गए या फेंके गए अन्नको नहीं खाना चाहिए। ऐसे अन्नको खाना दारिद्र्यकी निशानी है।

अन्नका सदुपयोग

१ उशान् इमं यज्ञं चनः धाः— (८१) मनुष्य यज्ञ करनेकी इच्छासे अपने पास अन्नका संग्रह करे। अन्नका उत्तम उपयोग यज्ञ करनेमें ही है। अपने पास संचित अन्नका उपयोग समाजके लोगोंको समृद्ध बनानेके कार्यमें किया जाए।

शरीरकी रक्षा

१ तव स्वां तन्वं यजस्व— (८१) हे मनुष्य! तू अपने शरीरका सत्कार कर।

२ अन्धसः तन्वा— (४३०) मनुष्य अन्नसे पुष्ट बने हुए शरीरसे युक्त हो।

मनुष्य अपने शरीरका निरादर न करे। यह देवोंका मन्दिर है, इसमें सभी देव आकर निवास कर रहे हैं, इसलिए इस मन्दिरको मनुष्य सदा स्वच्छ और उत्तम रखे। इसे वह कभी द्वेष दृष्टिसे न देखे। इसे उत्तम खान-पानसे हृष्टपुष्ट करके इसे स्वस्थ बनाये।

जल चिकित्सा

१ आपः मानुषीः— (५२५) जल मनुष्योंका हित करनेवाले हैं।

२ मातृतमाः भिषजः स्थः— (५१५) ये जल माताओंसे भी अधिक प्रेम करनेवाले हैं। जिस तरह मातायें अपने प्रेमभरे हाथोंसे अपने बच्चोंका दुःख और रोग दूर करती हैं, उसी तरह जल भी अनेक रोगोंको दूर करते हैं। जल चिकित्सा प्रसिद्ध ही है। जलसे अनेक रोग दूर होते हैं।

सावधान रहना चाहिए

१ जागृवांसः रुशन्तं अग्निं अनु ग्मन् (३) जागृत रहनेवाले साधक तेजस्वी अग्निका अनुसरण करते हैं।

२ जागृवांसः रयिं अनु ग्मन्— (३) जागृत रहकर प्रयत्न करनेवाले मनुष्य ऐश्वर्यको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य सदा सावधान रहते हैं, वे हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। उन पर कभी भी कोई दुष्ट आक्रमण नहीं कर सकता, और यदि कोई करता भी है, तो उससे आसानीसे बदला लिया जा सकता है।

दुष्टोंसे बदला

१ अघ्नस्य पूर्व्याणि चित् शिश्नथत्— (१५) दुष्टोंके द्वारा पहले किए गए दुष्कर्मोंका भी बदला लेना चाहिए। दुष्टोंको कभी सस्ता नहीं छोडना चाहिए। जब पांच पच्चीस वर्षके बाद अवसर मिले, उनसे बदला ले ही लेना चाहिए। ऐसा करने पर वे दुष्ट कभी भी प्रबल नहीं होंगे।

बलका सदुपयोग

१ दुस्तरीतुः सहः— (१) मनुष्योंका बल दुष्टोंको मारनेके लिए ही है।

२ ऊर्जः न पात्— (१५०) मनुष्य अपने बलको अधःपतित न करे।

दुष्टोंका नाश करनेमें ही अपने बलका उपयोग करे। वह अपने बलसे सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका नाश करे। यही बलका सदुपयोग है।

उन्नतिका मार्ग

१ औशिजः पत्मन् दीयन्— (३८) जिस तरह सूर्य अपने मार्गसे जाता है, उसी तरह मनुष्य अपने निश्चित मार्गसे चले।

२ अवृकेभिः पथिभिः नः रायः स्वस्ति— (४०) उपद्रवरहित मार्गोंसे हमें धन और कल्याण प्राप्त हो।

जिस तरह सूर्य अपने सीधे सरल मार्गसे प्राणियोंको अपना प्रकाश देता जाता है, उसी तरह मनुष्य भी सब पर उपकार करता हुआ सीधे और सरल मार्गसे जाए और इस प्रकार उत्तम मार्गसे चलता हुआ अपनी उन्नति करे।

इस प्रकार इस षष्ठ मण्डलमें ऋषि भरद्वाजने अनेक उत्तम उपदेश दिए हैं, जो मननीय और आचरणीय हैं।

ऋग्वेदका सुबोध – भाष्य

षष्ठ मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अकारि वामन्धसो ६६१
अक्षो नचक्रयो: शूर २६५
अगव्यूति क्षेत्रमगन्म ४७०
अग्न आ याहि वीतये १३५
अग्ना यो मर्त्यो दुवो १०१
अग्नि देवासो अग्रियम् १७३
अग्निमग्निं व: समिधा ११२
अग्निरप्सा मृतीषहं १०४
अग्निरिद्धि प्रचेता १०२
अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र १९८
अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् १५९
अग्निर्हि विघना निदो १०५
अग्निर्होता गृहपति: स ११९
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा १५३
अग्नीपर्जन्यावक्तं धियं ५६५
अग्ने यदद्य विशो १२०
अग्ने युक्ष्वा हि ये तवा १६८
अग्ने विश्वेभि: स्वनीक १२२
अग्ने स क्षेषदृतपा २५
अच्छा गो मित्रमहो देवा २४
अच्छा नो मित्रमहो देवदेवान् १०६
अच्छा नो याह्या वह १६९
अजा अन्यस्य वह्नयो ६०१
अजाश्व: पशुपा वाजपस्त्यो ६०६
अति वा यो मरुतो ५५१
अदब्धेभि: सवित: ७३१
अदब्धेभिस्तव गोपाभि: ६८
अदित्सन्तं चिदाघृणे ५६९
अदिद्युतत् स्वपाको ८६
अधा चिन्नू चित् तदपो ३१४
अध जिह्वा पापतीति ५२
अध त्वष्टा ते मह १८३
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र १८१
अध द्यौश्चित् ते अप सा १८२
अध स्मा ते चर्षणयो २७९
अध स्मा नो वृधे भव ४४७
अध स्मास्य पनयन्ति ९३
अधा मन्ये बृहद् ३१३
अधा हि विक्ष्वीड्यो २०
अधा होता न्यसीदो यजीया २
अधी बृबु: पणीनां ४३४
अधि श्रिये दुहिता ६६३
अध्वर्यो वीर प्र महे ३९२
अनु ते दायि मह २८०
अनु त्वाहिघ्ने अध २०२
अनु द्यावापृथिवी २०३
अनु प्र येजे जन ३४३
अनेनो वो मरुतो ६८८
अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय ६५७
अन्यदद्य कर्वरम् २६७
अपत्यं वृजिनं रिपुं ५४६
अपाधित उदु ३५२
अपामुपस्थे महिषा ६५
अपि पन्थामगन्महि ५४९
अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै ३२२
अभि त्वं वीरं गिर्वणसम् ५२४
अभि स्वा पाजो रक्षसो २३६
अभि नो नर्यं वसु ५६८
अभि प्रयांसि सुधितानि १२१
अभूरु वीर गिर्वणो ४१६
अभूरेको रयिपते ३१७
अयं रोचयदरुचो ३६०
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्ण: ४५५
अयं स यो वरिमाणं ४५४
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ ४५२
अयं होता प्रथम: ७२
अयं देव: सहसा ४०१
अयं द्यावापृथिवी वि ४०३
अयं द्योतयदद्युतो ३५९
अयमकृणोदुषस: ४०२
अयमुशान: पर्यद्रिम् ३५८
अयं मे पीत उदयर्ति ४५३
अया वाजं देवहितं १८८
अया ह त्यं मायया २४७
अरं मे गन्तं हवनाय ६६०

अरुषस्य दुहितरा	५०६
अर्वाग्रथं विश्ववारं	३४७
अव त्वे इन्द्र प्रवतो	४६४
अवन्तु मामुषसो जायमाना	५५३
अवसृष्टा परा पत	७६२
आविदद् दक्षं मित्रो	३८६
अविप्रे चिद् वयो दधत्	४०५
अवोरित्था वां छर्दिषो	७०३
अश्याम तं काममग्ने	४७
अश्वा न या वाजिना	६९६
असश्चन्ती भूरिधारे	७२४
अस्मा अस्माइदन्धसो	३७५
अस्मा उ ते महि महे	१०
अस्मा एतद् दिव्यर्चेव	३३५
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा	३३६
अस्माकमग्ने मघवत्सु	६७
अस्माकमिन्द्र भूतु ते	४३३
अस्मै वयं यद् वावान	२५७
अस्य पिब यस्य जज्ञान	३६३
अस्य मदे पुरु वर्पांसि	३९३
अहं चन तत् सूरिभिः	२८८
अहश्च कृष्णमहरर्जुनं	६९
अहिरिव भोगैः पर्येति	७६०
अहेळमान उप याहि	३६७
आक्रन्दय बलमोजो न	४८०
आ क्षोदो महि वृतं	१८५
आ गावो अग्मन्नुत	२९८
आग्निरगामि भारतो	१४४
आ जङ्घन्ति सान्वेषां	७५९
आ जनाय द्रुह्वणे	२४९
आ जातं जातवेदसि	१६७
आजासः पूषणं रथे	५९२
आ ते अग्न ऋचा	१७२
आ ते वृषन् वृषणो	३९९
आ ते शुष्मो वृषभ	२१२
आ ते स्वस्तिमीमह	५९८
आ त्वा हरयो वृषणो	३९८
आ नो गव्येभिरश्व्यैः	६३२
आ नो देवः सविता	५२६
आ नो भर वृषणं	२११
आ नो रुद्रस्य सूनवो	५२२
आपप्रुषी पार्थिवान्	६४४
आ परमाभिरुत	६५८
आ भानुना पार्थिवानि	५३
आभिः स्पृधो मिथतीः	२७४
आ मा पूषन्नुप द्रव	४९७
आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः	४८१
आ यं हस्ते न खादिनं	१६५
आ यः पप्रौ जायमान	७९
आ यः पप्रौ भानुना	४८७
आ यस्ततन्थ रोदसी	११
आ यस्मिन् त्वे स्वपाके	९०
आ यस्मिन् हस्ते नर्या	३०७
आ यातं मित्रावरुणा	६९५
आ याहि शश्वदुशता	३६५
आ युवानः कवयो	५१४
आ रिरथ किकिरा कृणु	५७३
आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्य	७६१
आ वां वयोऽश्वासो	६६५
आ वां सुम्ने परिमन्	६६९
आ वामश्वासो अभि	७१८
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः	६२१
आ संयतमिन्द्र णः	२५१
आ सखायः सबर्दुघां	४९२
आससाणासः शवसानम्	३४९
आ सहस्रं पथिभिः	१९९
आसु ष्मा णो मघवन्	३९७
आ सूर्यो न भानुम्	३८
इदं त्यत् पात्रमिन्द्रपानम्	३९५
इदा हि त उषो	६८०
इदा हि ते वेविषतः	२३४
इदा हि वो विधते	६७९
इन्द्रं वो नरः सख्याय	३०६
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ	४६२
इन्द्रजामय उत	२७५
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ	४४१
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्	३८९
इन्द्र त्रिधातु शरणं	४४५
इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो	३६२
इन्द्र प्र णः पुरएतेव	४५७
इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुम्	४६०
इन्द्रमेव धिषणा	२०५
इन्द्रस्य वज्रो मरुताम्	४७८
इन्द्राग्नी अपादियं	६१४
इन्द्राग्नी आ हि तन्वते	६१५
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा	६१८
इन्द्राग्नी को अस्य वां	६१३
इन्द्राग्नी तपन्ति मा	६१६
इन्द्राग्नी युवामिमेभि	६२५
इन्द्राग्नी युवोरपि	६१७
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं	६३३
इन्द्रा नु पूषणा वयं	५९९
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य	७१४
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं	७१३
इन्द्राविष्णू तत् पनयाय्यं	७१९
इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो	७२१
इन्द्राविष्णू मदपती	७१७
इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना	७२०
इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तः	७३८
इन्द्रासोमा महि तद्	७३५
इन्द्रासोमा युवमङ्ग	७३९
इन्द्रासोमावहिमपः	७३७
इन्द्रासोमा वासयथ	७३६
इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः	५५५
इन्द्रो यज्वने पृणते	२९९
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य	३५१
इम उ त्वा पुरुशाक	२३९
इमं यज्ञं चनो धा	८१
इमं च नो गवेषणं	५९७
इमं नो अग्ने अध्वरं	५६१
इममु त्यमथर्ववद्	१२३
इममू षु वो अतिथिम्	१०७
इमा उ त्वा पुरुतमस्य	२३०
इमा उ त्वा पुरुशाक	२३९
इमा उ त्वा शतक्रतो	४२८
इमा उ त्वा सुते सुते	४२१
इयं शुष्मेभिर्बिसखा	६३५

इयमददाद् रभसम् ६३४
इयं मद् वां प्र स्तृणीते ६९४
ईजे यज्ञेभिः शशमे २६
उग्रा विघनिना मृध ६२३
उच्छा दिवो दुहितः ६८१
उत धा स रथीतमः ५९४
उत त्या मे हवमा जग्म्यातं ५२८
उत त्वं सूनो सहसो नो ५२७
उत द्यावापृथिवी क्षत्रम् ५२१
उत नः प्रिया प्रियासु ६४३
उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः ७१०
उत नो गोषणिं धियं ५७६
उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोतु ५३२
उत म ऋज्रे पुरयस्य ६६७
उत स्य देवः सविता भगो ५३१
उत स्या नः सरस्वती ६४०
उतादः परुषे गवि ५९५
उत् ते वयश्चिद् वसतेः ६७५
उत् पूषणं युवामहे ६०४
उदग्ने भारत द्युमद् १७०
उदप्रुतो न वयो ३९१
उदावता त्वक्षसा १९७
उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोः ५३४
उदु श्रिय उषसो ६७०
उदु ष्य देवः सविता दमूना ७२९
उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया ७३२
उदु अयाँ उपवक्तेव ७३३
उप च्छायामिव घृणे १६३
उप त्वा रण्वसंदृशं १६२
उप नः सूनवो गिरः ५५८
उप श्वासय पृथिवीमुत ४७९
उपेदमुपपर्चनम् ३०५
उभा जिग्यथुर्न परा ७२२
उभा वामिन्द्राग्नी ६३१
उरुं नो लोकमनु नेषि ४५८
ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी ७२८
ऊर्जो नेपातं स हिनायम् ४२३
ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेषु ६६२
ऋजीते परि वृङ्धि नो ७५८
ऋतस्य पथि वेधा ३८७
ऋतस्य वो रथ्यः ५४२
ऋधद् यस्ते सुदानवे १७
एतत् त्यत् त इन्द्रियम् २९३
एना मन्दानो जहि शूर ३९६
एमेनं प्रत्येतन ३७३
एवा जज्ञानं सहसे ३५६
एवा ता विश्वा १८६
एवा नपातो मम तस्य ५३३
एवा नः स्पृधः समजा २८१
एवा पाहि प्रत्नथा १७६
एवेदिन्द्र सुते अस्तावि २६२
एवेदिन्द्रः सुहव ३११
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप ३६९
एषा स्या नो दुहिता ६७६
एहि वां विमुचो नपात् ५८७
एह्यू षु ब्रवाणि ते १४१
ओकिवांसा सुते सचाँ ६११
ओमानमापो मानुषीः ५२५
क ईं स्तवत् कः पृणात् ४६५
कदा भुवन् रथक्षयाणि ३३७
कर्हि स्वित् तदिन्द्र यज्जरित्रे ३३९
कर्हि स्वित् तदिन्द्र यन्नृभिः ३३८
किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः ५५२
किमस्य मदे किम्वस्य २९०
कुविस्सस्य प्र हि व्रजं ४२७
क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठो १५१
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसे २१
क्व त्या वल्गू पुरुहूताद्य ६५९
गन्तेयान्ति सवना २५६
गम्भीरेण न उरुणाम् २७१
गर्भे मातुः पितुष्पिता १६०
गावो भगो गाव इन्द्रो ३०२
ग्नाश्च यन्नरश्च ७०७
ग्रावाणः सोम नो हि ५४७
घृतवती भुवनानाम् ७२३
घृतेन द्यावापृथिवी ७२६
जनं वज्रिन् महि २१५
जनाय चिद् य ईवत ७४१
जनित्वा देववीतये १२४
जीमूतस्येव भवति प्रतीकं ७४७
त इद्युग्राः शवसा ६८७
तं व इन्द्रं चलितमस्य २०७
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं ४९५
तं वः सखायः सं यथा २६१
तं वृधन्तं मारुतं ६९२
तं वो धिया नव्यस्या २४८
तं वो धिया परमया ३५४
तं सध्रीचीरूतयो ३४४
तं सुप्रतीकं सुदृशं ११६
तत्तुरिर्वीरो नर्यो २६४
तत् सु नो विश्वे अर्य ४३६
तद् व उक्थस्य ३८५
तद् वो गायसुते ४२५
तं त्वा वयं सुध्यो ७
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो १३६
तन्नः पत्नं सख्यमस्तु १९३
तन्नो वि वोचो यदि २४५
तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिः ५१७
तमग्ने पास्युत तं ११७
तमा नूनं वृजनम् ३४१
तमीळिष्व यो अर्चिषा ६२८
तमीमह इन्द्रमस्य रायः २४४
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः १३९
तमु त्वा पाथ्यो वृषा १४०
तमु त्वा यः पुरासिथ ४१४
तमु त्वा सत्य सोमपा ४१३
तमु द्युमः पुर्वणीक होत ७७
तमु नः पूर्वे पितरो २४३
तमु ष्टुहि यो अभि १८९
तमु स्तुष इन्द्रं यो २३१
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं २४६
तं पृच्छन्तोऽवरासः २३५
तव क्रत्वा तव तद् १७९
तव प्र यक्षि संदृशम् १३३
तव ह त्यदिन्द्र २२९
तस्य वयं सुमतौ ४६३
ता गृणीहि नमस्येभिः ७०६

ता जिह्वया सदमेदं	७००
ता नश्यसो जरमाणस्य	६५१
ता नृभ्य आ सौश्रवसा	९९
ता नो वाजवतीरिष	६३०
ताभिरा गच्छतं नरो	६२७
ता भुज्यं निभिरद्‌भ्यः	६५३
तां पूष्णः सुमतिं वयं	६०३
तां यज्ञमा शुचिभिः	६४९
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र	६२०
ता राजाना शुचिव्रता	१४९
ता वल्गू दस्रा पुरु	६५२
ता विग्रं धैथे जठर	६९९
ता ह त्यद् वर्तिः	६५०
ता हि त्यत्रं धारयेथे	६९८
ता हि श्रेष्ठा देवताता	७०५
ता हुवे ययोरिदं	६२२
तिग्मं चिदेम महि	२८
तिग्मायुधौ तिग्महेती	७४६
तीव्रान् घोषान् कृण्वते	७५३
तुर्वनोजीयान् तवसः	२१९
ते आचरन्ती समनेव	७५०
तेजिष्ठा यस्यारतिः	९१
ते ते अग्ने त्वोता	१५२
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र	१७७
ते न इन्द्रः पृथिवी	५४४
ते नो रायो द्युमतो वाजवतो	५२९
ते नो रुद्रः सरस्वती	५३०
ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त	५४३
त्यमु वो अप्रहणं	३८३
त्रातारमिन्द्रमवितारम्	४६१
त्रिशच्छतं वर्मिण	२९५
त्रिषधस्था सप्तधातुः	६४५
त्वं रथं प्र भरो योधम्	२८५
त्वं विश्व प्रदिवः सीद	४३
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो	२२७
त्वं शतान्यव शम्बरस्य	३२०
त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः	२८७
त्वं ह नु त्यवदमायो	१९१
त्वं हि शैतवद् यशो	१४
त्वं होता मनुर्हितो	१३४
त्वं होता मन्द्रतमो नो	८४
त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता	१
त्वं कविं चोदय	२८४
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णम्	३१९
त्वद् भियेन्द्र पार्थिवानि	३१८
त्वद् विप्रो जायते	५७
त्वद् विश्वा सुभग सौभगानि	९५
त्वं तदुक्थमिन्द्र	२८६
त्वं तं देव जिह्वया	१५७
त्वं तां इन्द्रोभयां	३२९
त्वं त्या चिदच्युता	२२
त्वं दूतो अमर्त्य	१३१
त्वं देवि सरस्वती	६३९
त्वं धुनिरिन्द्र धुनि०	२२८
त्वं नः पाह्यंहसो	१५५
त्वं नश्चित्र ऊत्या	४९०
त्वमग्ने यज्ञानां	१२६
त्वमग्ने वनुष्यतो नि	११८
त्वमपो वि दुरो विषूचीः	३१६
त्वमिमा वार्या पुरु	१३०
त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता	४०८
त्वं भगो न आ हि रत्नामिषे	९६
त्वां वर्धन्ति क्षितयः	५
त्वां वाजी हवते	२८३
त्वां विश्वे अमृत	५८
त्वां हि मन्द्रतमम्	३९
त्वां हि क्ष्मा चर्षणयो	१५
त्वां हीन्द्रावसे विवाचो	३२८
त्वां दूतमग्ने अमृतं	११४
त्वामग्ने पुष्करादध्य	१३८
त्वामग्ने स्वाध्यो	१३२
त्वामिद्धि हवामहे	४३७
त्वामीळे अध द्विता	१२९
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं	४४२
त्विषीमन्तो अध्वरस्य	६९१
त्वे वसूनि पुर्वणीक	४२
त्वेषं शर्धो न मारुतं	४९६
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति	१९
दश रथान् प्रष्टिमतः	४७४
दशस्या नः पुर्वणीक होतः	८८
दशाश्वान् दश कोशान्	४७३
दिवस्पृथिव्याः पर्योज	४७७
दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं	४७१
दिवो न तुभ्यम्	२१८
दिवो न यस्य विधतो	३१
दूणाशं सख्यं तव	४२९
दूराच्चिदा वसतो	३५३
दृतेरिव तेऽवृकमस्तु	४९९
देवस्य वयं सवितुः	७३०
द्यावो न यस्य पनयन्ति	३५
द्युतानं वो अतिथिं	११०
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे	३८८
द्यौर्न य इन्द्राभि	२१७
द्यौष्पितः पृथिवि	५३८
द्वयां अग्ने रथिनो	२९७
धन्या चिद्धि त्वे धिषणा	८५
धन्वना गा धन्वनाजिं	७४८
धायोभिर्वा यो युज्येभिः	३२
धिष्व वज्रं गभस्त्यो	४२१
धीभिरर्वद्भिरर्वतो	४१५
धृतव्रतो धनदाः	२०८
धृषत् पिब कलशे	४५६
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं	७३
न घा वसुर्नि यमते	४२६
न तद् दिवा न पृथिव्यानु	५५०
न ता अर्वा रेणुककाटो	३०१
न ता नशन्ति न	३००
न ते अन्तः शवसो	३१०
नम इदुग्रं नम आ	५४१
न य ईषन्ते जनुषे	६८२
न यं हिंसन्ति धीतयो	३३४
न यं जरन्ति शरदो	२९९
नयसीद्वति द्विषः	४०९

न वीळवे नमते न २७०
नहि ते पूर्तमक्षिपद् १४३
नहि त्वा शूरो न तुरो २७७
नहि नु ते महिमनः २९२
नाना ह्यग्नेऽवसे १०३
नाभि यज्ञानां सदनं ५६
नास्य वर्ता न तरुता ६८९
नाहं तन्तुं न वि जानामि ७०
निर्तिक्ति यो वारणम् ३७
नू गृणानो गृणते ३६१
नू न इन्द्रावरुणा गृणाना ७११
नूनं न इन्द्रापराय च ३३१
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिः ८०
नू नो अग्नेऽवृकेभिः ४०
नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां ५१८
नू म आ वाचमुप २४०
नू सद्मानं दिव्यं नंशि ५४५
नृवत् त इन्द्र नृतमाभिः २१३
नृवद् वसो सदमिद् १२
पथस्पथः परिपतिं वचस्या ५११
पदं देवस्य नमसा ४
पप्राथ क्षां महि दंसो १८०
परा पूर्वेषां सख्या ४६७
परि तृन्धि पणीनाम् ५७१
परि पूषा परस्तात् ५८६
परो हि मर्त्यैरसि ५००
पर्जन्यवाता वृषभा ५०९
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वम् ४९१
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता ३९४
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीः २५५
पावकया यश्चितयन्त्या १११
पावीरवी कन्या चित्रायुः ५१०
पिबा सोममभि यमुग्र १७४
पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु ७८
पुरु हि वां पुरुभुजा ६६६
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ३३१
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया १३
पुरूतमं पुरूणां ४३२
पुरो वो मन्द्रं दिव्यं ७६
पूषणं न्वजाश्वम् ५९०
पूषन् तव व्रते वयं ५८५
पूषन्ननु प्र गा इहि ५८२
पूषा गा अन्वेतु नः ५८१
पूषा सुबन्धुर्दिव आ ६०८
पूष्णश्चक्रं न रिष्यति ५७९
पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य ६२
पृथू करस्ना बहुला २०६
प्र चित्रमर्कं गृणते ६९०
प्रजावतीः सूयवसं ३०४
प्र णो देवी सरस्वती ६३७
प्र तत् ते अद्या करणं २०१
प्र तुविद्युम्नस्य २००
प्रत्नं रयीणां युजं ४२२
प्रत्यस्मै पिपीषते ३७२
प्रथमभाजं यशसं ५१२
प्र देवं देववीतये १६६
प्र नव्यसा सहसः सूनुम् ४८
प्र नु वेत्वा सुतेषु वां ६०९
प्र यद् वां मित्रावरुणा ७०१
प्र या महिम्ना महिनासु ६४६
प्र वः सखायो अग्नये १७४
प्र वायुमच्छा बृहती ५०७
प्र वीराय प्र तवसे ५१५
प्र श्येनो न मदिरम् २२२
प्र सम्राजे बृहते ७१२
प्रस्तोक इन्नु राधस्त इन्द्र ४७२
प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं २३८
प्रो द्रोणे हरयः ३४८
बळित्था महिमा वाम् ६१०
बह्वीनां पिता बहुरस्य ७५१
बाधसे जनान् वृषभेव ४४०
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः ४८८
बृहस्पतिः समजयद् ७४१
ब्रह्मा प्रजावदा भर १६१
ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं ३१०
ब्रह्माणि हि चकृषे २५८
ब्राह्मणासः पितरः ७५६
भद्रा ददृक्ष उर्विया ६७१
भरद्वाजाय सप्रथः १५८
भरद्वाजायाव धुक्षत ४९४
भुवनस्य पितरं गीर्भिः ५१३
भुवो जनस्य दिव्यस्य २५०
भूय इद् वावृधे ३१२
भ्रक्षू न येषु दोहसे ६८६
मधु नो द्यावापृथिवी ७२७
मध्ये होता दुरोणे ८९
मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य ३५७
मरुत्वन्तं वृषभं २१४
मर्माणि ते वर्मणा ७६४
महाँ इन्द्रो नृवदा २०४
महि राधो विश्वजन्यं ४७५
महीरस्य प्रणीतयः ४०९
महो देवान् यजसि ४८५
महो द्रुहो अप विश्वायु २२१
मा काकम्बीरमुद् वृहो ४९८
माकिर्नेशन्माकीं रिषत् ५८३
मा जस्वने वृषभ नो ३९०
मातुर्दिधिषुमब्रवं ५९१
मा नो वृकाय वृक्ये ५३९
मा व एनो अन्यकृतं ५४०
मित्रं न यं सुधितं १०८
मिम्यक्ष येषु रोदसी नु ५२३
मूर्धानं दिवो अरतिं ५५
य आनयत् परावतः ४०४
य इद्ध आविवासति ६२९
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां ६१२
य ईं राजानावृतुथा ६५६
य उग्र इव शर्यहा १६४
य एक इत् तमुष्टुहि ४१९
य एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम् २४२
य एनमादिदेशति ५९३
य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु ३२७

यं युवं दाश्वध्वराय ७०९
यं वर्धयन्तीद् गिर: ३८४
य: शग्मस्तुविशग्म ३८१
य: सत्राहा विचर्षणि: ४३९
यजस्व होतरिषितो ८३
यज्ञायज्ञा वो अग्नये ४८२
यत्र यत्र च ते मनो १४२
यत्र बाणा: संपतन्ति ७६३
यत्र शूरासस्तन्वो ४४८
यथा होतर्मनुषो देवताता ३३
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ५९६
यदिन्द्र दिवि पार्ये ३६६
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ४४३
यदिन्द्र सर्गे अर्वत: ४४९
यदिन्द्रो अनयद् रितो ६०२
यदी सुतेभिरिन्दुभि: ३७४
यद् रोदसी प्रदिवो ६५५
यद् वा तृक्षौ मघवन् ४४४
यद् वा दिवि पार्ये २५४
यमापो अद्रयो वना ४८६
यस्ता चकार स कुह २३३
यस्ते मद: पृतनाषाळ् २१०
यस्ते यज्ञेन सामेधा ४५
यस्ते सूनो सहसो गीर्भि: ९८
यस्त्वा देवि सरस्वती ६३८
यस्य गा अन्तरश्मनो ३७८
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू २९६
यस्य तीव्रसुतं मदं ३७७
यस्य त्यच्छम्बरं मदे ३७६
यस्य मन्दानो अन्धसो ३७९
यस्य वायोरिव द्रवद् ४३५
यस्य विश्वानि हस्तयो ४११
यस्या अनन्तो अह्रुत: ६४१
या त ऊतिरमित्रहन् ४१७
या त ऊतिरवमा या २७३
या ते अष्ट्रा गोओपशा ५७५
या ते काकुत् सुकृता ३६८
यां पूषन् ब्रह्मचोदनीम् ५७४
या वां सन्ति पुरुस्पृहो ६२६
या विश्वासां जनितारा ७१६
या शर्धाय मारुताय ४९३
यास्ते पूषन्नावो अन्त: ६०७
युगेयुगे विदथ्यं ६६
युजाथां हरिता रथे ४६९
युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभि: ६६४
यूयं हि ष्ठा सुदानव ५४८
यूयं गावो मेदयथा ३०३
ये अग्नेयो न शोशुचन् ६८३
ये के च ज्मा महिनो ५६४
ये गव्यता मनसा ४४६
ये ते शुक्रास: शुचय: ५१
येन वृद्धो न शवसा ३८२
येभि: सूर्यमुषसं १७८
यो अद्रिभित् प्रथमजा ७४०
यो अस्मै हविषाविधन् ५८०
यो गृणतामिदासिथा ४२०
यो न: सनुत्यो अभि ४४
यो न: स्वो अरणो ७६५
यो नो अग्ने दुरेव आ १५६
यो रजांसि विममे ५१६
यो रयिवो रयिंतमो ३८०
यो वामृजवे क्रमणाय ७२५
यो वो देवा घृतस्नुना ५५७
रथवाहनं हविरस्य ७५४
रथीतमं कपर्दिनम् ५८८
रथे तिष्ठन् नयति वाजिन: ७५२
रायो धारास्याघृणे ५८९
रिशादस: सत्पतीं ५३७
रुद्रस्य ये मीळ्हुष: ६८४
रूपंरूपं प्रतिरूपो ४६८
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति ७४९
वधा सूनो सहसो नो १००
वधा हि सूनो अस्य ३६
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य २९४
वनस्पते वीड्वङ्गो हि ७७६
वपुर्नु तच्चिकितुषे ६८२
वयं त एभि: पुरुहूत २१६
वयं ते अस्यामिन्द्र २८९
वयमु त्वा गृहपते १२५
वयमु त्वा पथस्पते ५६७
वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे ४५९
वरिष्ठो अस्य दक्षिणाम् ३५०
वर्धाद् यं यज्ञ उत ३५५
वर्धान् यं विश्वे मरुत: १८४
वस्वी ते अग्ने संदृष्टि: १५०
वहन्ति सीमरुणासो ६७२
वाममद्य सवितर्वाममु ७३४
वामी वामस्य धूतय: ५०१
वि जयुषा रथ्या ६५४
वि तद् ययुररुणयुग्भि: ६७७
वि ते विष्वग्वातजूतासो ५०
वि त्वदापो न पर्वतस्य २६८
वि दृळ्हानि चिदद्रिवो ४१२
वि द्वेषांसीनुहि ८२
वि पथो वाजसातये ५७०
वि पिप्रोरहिमायस्य २२३
वि पूषन्नारया तुद ५७२
विभूषन्नग्न उभयां ११५
वि मे कर्णा पतयतो ७४
वि यद् वाचं कीस्तासो ७०२
वि यो रजांस्यमिमीत ६१
विशां कविं विश्पतिं ८
विशोविश ईड्यमध्वरे ५०५
विश्वदानीं सुमनस: ५५४
विश्वासां गृहपति: ४८९
विश्वे देवा अनमस्यन् ७५
विश्वे देवा ऋतावृध ५५९
विश्वे देवा: शृणुतेमं ५६२
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु ५६३
विश्वे देवास आ गत ५५६
विश्वे यद् वां मंहना ६९७
विश्वेषां व: सतां ६९३
वीती यो देवं मर्तो १७१
वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हि: ८७
वृतेव यन्तं बहुभि: ३
वृषा मद इन्द्रे श्लोक २६३
वृषासि दिवो वृषभ: ४००

वृषा ह्यग्ने अजरो ४८४
वेत्था हि वेधो अध्वनः १२८
वेद वस्वीणि विदथान्येषां ५३५
वेषि ह्यध्वरीयता २३
वैश्वानर तव तानि ५९
वैश्वानरस्य विमितानि ६४
व्यस्तभ्नाद् रोदसी मित्रो ६०
शचीवतस्ते पुरुशाक २६६
शतैरपद्रन् पणय २२०
शविष्ठं न आ भर शूर २०९
शुक्रं ते अन्यद् यजतं ६०५
शूरो वा शूरं वनते २७६
शृण्वन्तं पूषणं वयम् ५८४
शृण्वे वीर उग्रमुग्रं ४६६
श्नथद् वृत्रमुत सनोति ६१९
श्रवो वाजमिष मूर्जं ६७८
श्रिये ते पादा दुव आ ३०८
श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि २८२
श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः ७०४
स इत् सन्तुं स वि जानाति ७१
स इत् तमो ऽवयुनं २३२
स इत् सुदानुः स्ववाँ ७०८
स इदस्तेव प्रति * २९
स ईं रेभो न प्रति ३०
स ईं स्पृधो वनते २२५
स ईं पाहि य ऋजीषी १७५
सं वां शता नासत्या ६६८
सं वां कर्मणा समिषा ७१५
सकृद्ध द्यौरजायत ५०३
सखायो ब्रह्मवाहसे ४०७
स गोमघा जरित्रे ३४०
सचस्व नायमवसे २७२
स चित्र चित्रं चितयन् ५४
स जायमानः परमे ६३
सजोष स्त्वा दिवो नरो १६
सं च त्वे जग्मुर्गिर ३३२
स तत् कृधीषितः ४६
स तु श्रुधि श्रुत्या ३४६
स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य २३७
सत्यमित् तन्न त्वावां ३१५
सत्रा मदासस्तव ३४२
स त्वं दक्षस्यावृको १०९
स त्वं न इन्द्राकवाभिः ३३०
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त ४३८
स त्वं नो अर्वन् निदाया ९४
सदस्य मदे सद्वस्य २९१
सदिद्धि ते तुविजातस्य १९२
सद्यश्चिद् यस्य चर्कृतिः ५०२
स नः पृथु श्रवाय्यम् १३७
स नीव्याभिर्जरितारम् ३२५
सनेम तेऽवसा नव्य २२६
स नो नियुद्भिः २५२
स नो नियुद्भिरा ४२४
स नो बोधि पुरएता २४१
स नो बोधि पुरोळाशं २५९
स नो मन्द्राभिरध्वरे १२७
स नो वाजाय श्रवस १८७
स नो विभावा चक्षणिः ३४
स पत्यत उभयोः २७८
सपर्येण्यः स प्रियो ६
स प्रत्नवन्नवीयसा १४६
स मज्मना जनिम १९५
स मन्दस्वा ह्यनु २६०
स मन्दस्वा ह्यन्धसो ४३०
स मातारा सूर्येणा ३२३
समिद्धमग्निं समिधा ११३
समिद्धे अग्नौ सुत ३६४
समिधा यस्त आहुतिं १८
सम् पूष्णा गमेमहि ५७८
स मे वपुश्छदयदश्विनोः ५०८
सं पूषन् विदुषा नय ५७७
स युध्मः सत्वा १९०
स यो न मुहे न मिथू १९६
स रथेन रथीतमो ४१८
सरस्वति देवनिदो नि ६३६
सरस्वत्यभि नो नेषि ६४७
स रायस्खामुप सृजा ३४५
स वह्निभिर्ऋक्वभिः ३२४
स वेतसुं दशमायं २२४
स श्वितानस्तन्यतु ४९
स सत्पतिः शवसा हन्ति ९७
स सत्यसत्वन् महते ३२१
स सर्गेण शवसा तक्तो ३२६
स सोम आमिश्लतमः ३०९
स हि धीभिर्हव्यो १९४
स हि यो मानुषा युगा १४८
स हि विश्वाति पार्थिवा १४५
स हि विश्वानि पार्थिवाँ ४२३
सा नो विश्वा अतिद्विषः ६४२
सा वह योक्षाभिरवातो ६७४
सास्माकेभिरेतरी न ९२
सिन्धूँरिव प्रवण आशुया ४५०
सुगोत ते सुपथा ६७३
सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄन् ५२०
सुत इत् त्वं निमिश्ल २५३
सुतः सोमो असुतादिन्द्र ३७०
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या ७५७
सुवीरं रयिमा भर १५४
सूरो न यस्य दृशतिः २७
सो अग्न ईजे शशमे ९
सोममन्य उपासदत् ६००
सोमारुद्रा धारयेथाम् ७४३
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे ७४५
सोमारुद्रा वि वृहतं ७४४
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने ५६६
स्तुष उ वो मह ऋतस्य ५३६
स्तुषे जनं सुव्रतं ५०४
स्तुषे नरा दिवो अस्य ६४८
स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणः ५६०
स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः ७५५
स्वादुष्किलायं मधुमाँ ४५१
हतो वृत्राण्यार्या ६२४
हुवे वः सूनुं सहसो ४१
हुवे वो देवीमदितिं ५११
ह्वयामसि त्वेन्द्र ३७१

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मंडल

[१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- विराट्, १९-२५ त्रिष्टुप्।)

१ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥ १ ॥

२ तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [१] (नरः प्रशस्तं दूरेदृशं) नेता लोग प्रशंसा करने योग्य, दूरदर्शी (गृहपतिं अथर्युं) अपने घरोंका पालन करनेवाले प्रगतिशील (अग्निं) अग्निको (अरण्योः) दोनों अरणियोंमेंसे (हस्तच्युती) हाथोंकी कुशलतासे (दीधितिभिः जनयन्त) अपनी अंगुलियोंके द्वारा निर्माण करते हैं ॥ १ ॥

[२] (यः दक्षाय्यः) जो दक्ष रहनेवाला अथवा बलवान् (नित्यः दमे आस) सदा अपने स्थानमें रहता था, (तं सुप्रतिचक्षं अग्निं) उस उत्तम दर्शनीय अग्निको (कुतः चित्) सब ओरसे (अवसे) सबकी सुरक्षा करनेके लिये (वसवः) निवास कर्ताओंने (अस्ते नि ऋण्वन्) अपने घरमें, रहनेके स्थानमें लाकर रख दिया ॥ २ ॥

भावार्थ— नेता लोग प्रशंसाके योग्य, दूरदर्शी, अपने घरोंकी सुरक्षा करनेमें समर्थ और प्रगतिशील अग्रणीको प्रकाशित करते हैं। उसके निज तेजसे ही वह अग्रणी प्रकाशित होता है, उसे अन्य मनुष्यगण अपने प्रयत्नसे आगे बढावें। मनुष्य लोगोंको प्रशस्तमार्गसे चलावे। अपने घर, अपने समाज और अपने राष्ट्रकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। वह स्वयं भी प्रगतिशील हो ॥ १ ॥

बलवान् पुरुष सदा अपने घरमें रहे और घरकी सुरक्षा सावधानीसे करता रहे। मनुष्य भी ऐसे वीर पुरुषको सब ओरसे अपनी सुरक्षा करनेके लिये आदरसे अपने घर बुलावें और उसका भरपूर आदर करें। राष्ट्रके नागरिक ऐसे वीर पुरुषको अपनी सुरक्षाके कार्यमें नियुक्त करें। मनुष्य अपने बलके कारण ही सत्कारके योग्य होता है। ऐसा वीर अपने समाजमें संचार करके सर्वत्र निर्भयता स्थापित करे ॥ २ ॥

३ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥
४ प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥
५ दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥ ५ ॥
६ उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] हे (यविष्ठ अग्ने) तरुण अग्ने ! (प्र इद्धः अजस्रया सूर्म्या) प्रदीप्त होकर प्रचण्ड ज्वालाओंसे (नः पुरः दीदिहि) हमारे सन्मुख प्रकाशित हो । (त्वां शश्वन्तः वाजाः उपयन्ति) तेरे पास बहुत अन्न और बल आते रहते हैं । ॥ ३ ॥

[४] (अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः) अग्नियोंसे भी अधिक तेजस्वी (ते सुवीरासः अग्नयः) वे उत्तम वीररूप अग्नि (प्र निः शोशुचन्त) विशेष रीतिसे अधिक प्रकाशित होते हैं । (यत्र सुजाताः नरः) जहां उत्तम कुलीन वीर (सं आसते) संगठित होकर बैठते हैं ॥ ४ ॥

इस मंत्रके स्मरण करने योग्य वाक्य—

१ अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः सुवीरासः— अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हमारे वीर हों । हमारे पुत्र पौत्र ऐसे वीर हों कि जो अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हों ।

२ सुजाताः नरः समासते— उत्तम कुलीन पुरुष एक स्थानपर बैठते हैं । एक स्थानपर बैठकर संघटना करते हैं ।

[५] हे (सहस्य अग्ने) शत्रुका पराभव करनेमें कुशल अग्ने ! (नः) हमें (सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं) जिसके साथ वीर हों, उत्तम संतति हों, ऐसे प्रशंसित धनको (धिया दाः) बुद्धिके साथ दो । (यं यातुमावान् यावा न तरति) जिसको हिंसक शत्रु कभी बाधा नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

[६] (यं सुदक्षं) जिस उत्तम बलवानके पास (हविष्मती घृताची युवतिः) अन्नवाली घृत परोसनेवाली तरुणी (दोषा वस्तोः) रात्रीके और दिनके समय (उप एति) जाती है, (एनं स्वा वसूयुः अरमतिः उपैति) उसके पास धनके साथ रहनेवाली बुद्धि भी होती है ।

भावार्थ— तरुण अग्रणी अपने अतुल तेजसे सर्वत्र प्रकाशित होता रहे । जो ऐसा तेजस्वी होगा उसके पास अन्न और बल स्वयं उपस्थित होते रहेंगे। जो बलवान् और तेजस्वी होगा, उसे अन्न और बल स्वयं प्राप्त होते रहेंगे और उसका बल अधिकाधिक बढता जाएगा ॥ १ ॥

जहां उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वीर उत्तम रीतिसे संगठित होकर रहते हैं, वहां उत्तम वीर अग्निसे भी अधिक तेजस्वी होकर प्रकाशते हैं । इसलिये वीर अपना और अपने समाजका संगठन करें । सब एक विचारसे कार्य करें और उत्तम वीरोंको अपनी वीरता और अधिक दिखानेके लिए अवसर दें ॥ २ ॥

हे अग्ने ! हमें उत्तम वीर सन्ततियोंसे युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो । वह ऐसा हो कि जिससे शत्रुका पराभव हो । जिस धनकी रक्षा करनेके लिए वीर सन्तति होगी ही नहीं, तो वह धन निश्चित रूपसे नष्ट हो जाएगा । धन इसतरहसे प्रशंसित हो, निन्दनीय साधनोंसे धन प्राप्त न किया जाए ॥ ५ ॥

७ विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥ ७ ॥

८ आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥

९ वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥

१० इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥ १० ॥

अर्थ— [७] हे (अग्ने) अग्ने ! (विश्वाः अरातीः तपोभिः अप दह) सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला, (येभिः जरूथं अदह) जिनसे कठोर भाषी शत्रुको तूने जलाया था, तथा (अमीवां निःस्वरं प्र चातयस्व) रोगोंको निःशेष रीतिसे हटा ॥ ७ ॥

[८] हे (वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने) हे निवास हेतु शुद्ध तेजस्वी पवित्रता करनेवाले अग्ने ! (यः ते अनीकं आ इधते) जो तेरे तेजको प्रदीप्त करता है; उन (नः उतो एभिः स्तवथैः इह स्याः) हम सबके पास इन प्रशंसा स्तोत्रोंके साथ आकर यहां रह ॥ ८ ॥

[९] हे अग्ने ! (ते अनीकं) तेरा तेज, (पित्र्यासः मर्ताः नरः) पितरोंका हित करनेवाले मर्त्य लोगोंने (पुरुत्रा विभेजिरे) अनेक स्थानोंमें, अनेक देशोंमें फैलाया है, उनके समान (नः उतो एभिः सुमना इह स्याः) हमारे इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर तुम यहां रहो ॥ ९ ॥

[१०] (ये मे प्रशस्तां धियं पनयन्त) जो मेरी प्रशंसनीय बुद्धिकी स्तुति करते हैं, (इमे नरः वृत्रहत्येषु शूराः) वे ये नेता वृत्र वध करनेके लिये शुद्ध किये युद्धमें शूरवीरता करनेवाले वीर पुरुष (अदेवीः विश्वाः मायाः अभि सन्तु) सब आसुरी कपटोंको पराभूत करें ॥ १० ॥

भावार्थ— इस बलवान् अग्निके पास जलवाली और घृत परोसनेवाली एक तरुणी दिनरात जाती है । यह तरुण अग्नि है और उसके पास जानेवाली घृतसे युक्त तरुणी जुहू या स्रुवा है । स्रुवामें घी या हवि भरकर अग्निमें आहुति डाली जाती है । यह वर्णन रूपक अलंकारका एक उत्तम उदाहरण है । इस अलंकारमें यह भी कहा गया है कि यह तरुणी बुद्धि युक्त है । जो स्रुवासे हवि देता है, वह बुद्धिपूर्वक हवि प्रदान करता है ॥ ६ ॥

अपने तेजोंसेही शत्रुओंको दूर करना चाहिए, समाजमें जो कठोरभाषी हों, उन्हें दूर करना चाहिए, इसी तरह जो रोग हों, उन्हें भी दूर करना चाहिए । कठोरभाषी शत्रुको अपनेही तेजसे लज्जित करना चाहिए, इसी तरह अपने तेजोंसे शत्रुओंके तेजको निस्तेज करना चाहिए । अपनी शारीरिक सहिष्णुता तथा आत्मिक शक्तिसे रोगोंको भी दूर करना चाहिए । अन्दरका जीवनरस जिस मनुष्यमें प्रबल होता है, उसके शरीरमें रोग नहीं घुस सकते ॥ ७ ॥

लोगोंको उत्तम रीतिसे निवास करानेवाला स्वयं शुद्ध और पवित्र हो । ऐसा स्वयं तेजस्वी और सबका पवित्रता करनेवाला वीर अग्निके समान तेजस्वी होता है । इसका सैन्य या बल इसका सामर्थ्य ही है । ऐसे तेजस्वी पुरुषकी प्रशंसा सब करते हैं और यह अपने पास आकर रहे, ऐसा भी चाहते हैं । पवित्र, बलिष्ठ, तेजस्वी और सर्वत्र पवित्रता करनेवाला मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होता है । ऐसा वीर समाजमें आकर रहे ताकि समाज उन्नतिशील हो ॥ ८ ॥

अपने उपास्य देवका यश जिस तरह हमारे पूर्वज पितर देश विदेशमें फैलाया करते थे, उसी तरह हम भी करें । ऐसा करनेसे ही प्रभु प्रसन्न होंगे । देशविदेशमें धर्मका प्रचार करना चाहिए और सबको आदर्श बनाना चाहिए ॥ ९ ॥

प्रशंसा योग्य बुद्धि और उत्तम कर्मोकी सब लोग प्रशंसा करें । युद्धमें उपस्थित शूरवीर नेता असुरोंके तथा शत्रुपक्षके सब कपट जालोंको दूर करके अपनी विजयके लिए प्रयत्न करें ॥ १० ॥

११ मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥ ११ ॥
१२ यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥ १२ ॥
१३ पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ १३ ॥
१४ सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान् यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ १४ ॥

अर्थ— [११] हे अग्ने ! (शूने मा नि षदाम) पुत्र पौत्रादि रहित शून्य घरमें हम न रहें। हे (दुर्य) घरके लिये हित कर्ता ! (नृणां) मनुष्योंके बीचमें हम ही (अ-शेषसः अवीरता मा) पुत्र पौत्र रहित तथा वीरता रहित न रहें। (प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि) पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त घरोंमें हम तेरी उपासना करते हुए रहें ॥ ११ ॥

१ शूने मा निसदाम— पुत्र पौत्र रहित, संतान हीन घरमें हम न रहें। हम ऐसे घरोंमें रहें कि जहां पुत्र पौत्र प्रपौत्र बहुत हों। पुत्रोंसे घर भरे हुए हों।

२ नृणां अशेषसः अवीरता मा— मनुष्योंमें पुत्ररहित तथा वीरता रहित जीवन बहुत बुरा है, वैसा जीवन हमें कभी प्राप्त न हो।

३ नृणां मा निसदाम— दूसरे मनुष्योंके घरमें रहनेका अवसर हमें न प्राप्त हो। हम अपने घरमें रहें। रहनेका घर अपना हो।

४ प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि निसदाम— संतानोंसे युक्त घरोंमें प्रभुकी उपासना करते हुए हम रहें।

[१२] (यं यज्ञं अश्वी नित्यं उपयाति) जिसके पास पूजनीय अश्वारूढ अग्नि जैसा तेजस्वी वीर आता है (तं प्रजावन्तं स्वपत्यं) वैसा प्रजावाला उत्तम संतानवाला (स्वजन्मना शेषसा वावृधानं) अपनेसे उत्पन्न हुए औरस संतानसे बढनेवाला (क्षयं नः देहि) घर हमें दो ॥ १२ ॥

[१३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि) संबंध रखनेके लिये अयोग्य ऐसे दुष्ट राक्षसोंसे हमें बचाओ। (अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि) दुष्ट पापी धूर्तसे हमें सुरक्षित कर। (त्वा युजा पृतनायून् अभिस्यां) तुम्हारी सहायतासे सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुका भी हम पराभव करेंगे ॥ १३ ॥

[१४] (यत्र वाजी वीळुपाणिः) जहां बलवान् सुदृढ शस्त्रधारी (सहस्र-पाथाः तनयः) सहस्रों प्रकारके अन्नस्रोतोंसे युक्त अपना पुत्र (अक्षरा सं एति) अक्षरोंसे ज्ञानोंसे युक्त होता है, स्तोत्रोंसे अग्निकी उपासना करता है, (स इत् अग्निः) वही अग्नि (अग्नीन् अति अस्तु) अन्य अग्नियोंसे श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

भावार्थ— पुत्रोंसे रहित अर्थात् सन्तानहीन घरमें हमें न रहना पडे। हमारे पुत्र पौत्र हमारे घरमें रहें। हमारा घर बालबच्चोंसे भरा रहे। बाहर भी हम जिसके घरमें रहें, वे घर भी बाल-बच्चोंसे भरपूर हो। पुत्रहीन तथा वीरताहीन जीवन बुरा है। बालबच्चोंसे भरे हुए घरमें रहकर हम प्रभुकी भक्ति किया करें ॥ ११ ॥

घर ऐसे हों कि जो पुत्रपौत्रादि सन्तानोंसे युक्त हों, अपने घरमें औरस सन्तानें हों, और वे औरस सन्तानें घरकी शोभा बढानेवाली हों। दूसरेकी संतानोंको दत्तकके रूपमें न लेना पडे। औरस सन्तानोंसे ही घरकी समृद्धि बढे ॥ १२ ॥

मनुष्य राक्षसोंसे अपना बचाव करे, पापी और छली दुष्टोंसे अपने आपको सुरक्षित रखे और सेना लेकर आक्रमणकारी शत्रुका पराभव करनेके लिए तैय्यार रहे ॥ १३ ॥

१५ सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥ १५ ॥
१६ अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥
१७ त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥
१८ इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥ १८ ॥

अर्थ— [१५] (यः समेद्धारं वनुष्यतः निपाति) जो जलानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करता है, (उरुष्यात् अंहसः निपाति) बाधक पापसे बचाता है, (यं सुजातासः वीराः परिचरन्ति) जिसकी पूजा कुलीन वीर पुत्र करते हैं (सः इत् अग्निः) वही श्रेष्ठ अग्नि है ॥ १५ ॥

१ समेद्धारं वनुष्यतः निपाति— जलानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करो

२ उरुष्यात् पापात् निपाति— पापसे बचाओ,

३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति— उत्तम कुलिन वीर पुत्र बैठकर पूजा करें । जहां पुत्र ऐसा करते हैं वह घर श्रेष्ठ है ।

[१६] (यं हविष्मान् ईशानः सं इन्धे) जिसको हविष्यान्न देनेवाला ऐश्वर्यवान् याजक प्रदीप्त करता है, (यं होता अध्वरेषु परि एति) जिसको होता हिंसारहित यज्ञोंमें प्रदक्षिणा करता है (सः अयं अग्निः पुरुत्रा आहुतः) यह वह अग्नि है कि जो बहुतवार आहुतियोंसे हुत हुआ है ॥ १६ ॥

[१७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वे ईशानासः) तेरी कृपासे धनके स्वामी बने (नित्या उभा वहतू कृण्वन्तः) नित्य करने योग्य दोनों प्रकारके स्तोत्र तथा शस्त्र करनेवाले हम (मियेधे भूरि आहवनानि जुहुयाम) यज्ञमें बहुत प्रकारका हवन तेरे लिये करते हैं ॥ १७ ॥

[१८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अजस्रः इमो वीततमानि) अखंडितरीतिसे ये अत्यंत प्रिय (हव्या) हवन द्रव्य (देवतातिं अभि वक्षि) देवताओंके समूहके पास पहुंचा (अच्छ गच्छ च) और वहां सीधा जा । (नः ईं सुरभीणि प्रतिव्यन्तु) हमारे ये सुगंधित हविर्द्रव्य प्रत्येक देवताको प्रिय हों ॥ १८ ॥

भावार्थ— मनुष्यका औरस पुत्र बलवान् हो। वेदके उपर्युक्त कथनका यह अर्थ नहीं कि उसका दत्तक पुत्र बलवान् न हो, अपितु इसका मतलब यह है कि मनुष्य पर दत्तक पुत्रको लेनेकी नौबत ही न आए। क्योंकि अपने औरस पुत्र हों, यही इसका अर्थ है । ऐसा औरस पुत्र बलवान् हो, शूर हो, शस्त्रधारी हो, धन धान्य युक्त हो, विद्वान् हो । ऐसा पुत्र जिस अग्निमें हवन करता है, वही अग्नि श्रेष्ठ है । ऐसी शिक्षाका प्रबन्ध देशमें सर्वत्र होना चाहिए ॥ १४ ॥

जो अपने प्रदीप्त करनेवालेकी हर तरहसे रक्षा करता है, उसे हर पापसे बचाता है । मनुष्यके औरसपुत्र जिसकी पूजा करते हैं, वही अग्नि सबसे श्रेष्ठ है । जो हमें सावधान करके उत्तम मार्गपर चलनेके लिए प्रेरित करता है, उसकी हर तरहसे रक्षा करनी चाहिए । उसे पापसे बचाना चाहिए । घरमें सभी सदस्य मिलकर अग्निकी पूजा करें ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ अग्निको ऐश्वर्यशाली याजक अर्थात् यज्ञ करनेवाला मनुष्य प्रदीप्त करता है और हिंसारहित यज्ञोंकी प्रदक्षिणा करता है । इस अग्निमें यजमान अनेकबार आहुतियां देता है ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! तेरी कृपासे हम धनके स्वामी बनें : तेरे लिए स्तोत्र तथा आत्मरक्षाके लिए शस्त्र तैय्यार करनेवाले हम यज्ञमें बहुत प्रकारकी आहुतियां तेरे लिए प्रदान करते हैं ॥ १७ ॥

हे अग्ने ! हम यज्ञकी अग्निमें जो अखण्डित रूपसे तुझे अत्यन्त प्रिय लगनेवाले हविद्रव्य डालते हैं, उन द्रव्योंको तू देवोंके समूहतक पहुंचा । हमारे द्वारा दिए गए ये सुगंधित द्रव्य देवोंको अत्यन्त प्रिय और रुचिकर लगे ॥ १८ ॥

१९ मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥ १९ ॥

२० नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २० ॥

२१ त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥ २१ ॥

अर्थ— [१९] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः अवीरते मा परादाः) हमें पुत्रहीनता न प्राप्त हो । (दुर्वाससे च नः मा परादाः) मलिन वस्त्र परिधान करनेकी अवस्थाको हमें न पहुंचा । (अस्यै अमतये नः मा परा दाः) इस निर्बुद्धताको हमें न पहुंचा । (नः क्षुधे मा) हमें भूखके कष्ट न हों । (मा रक्षसः) राक्षस हम पर हमला न करें । हे (ऋतावः) सत्यवान् अग्ने ! (नः दमे मा) हमें घरमें कष्ट न हों (वने मा आजुहूर्थाः) हमें वनमें कष्ट न हों ॥१९॥

[२०] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नु उत् शशाधि) मेरे लिये अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर । हे (देव) तेजस्वी अग्नि देव ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिये अन्नोंको प्रेरित कर । (ते रातौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहेंगे । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ २० ॥

[२१] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (सुहवः रण्वसंदृक्) उत्तम प्रार्थित होनेवाला और रमणीय दीखनेवाला तू (सुदीती दिदीहि) ज्वालाओंसे प्रकाशित हो । (तनये नित्ये त्वे सचा) पुत्रके लिये नित्य सहायक होकर (मा आ धक्) उसे मत जला । (वीरः नर्यः मा अस्मत् वि दासीत्) वीर और मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे विनष्ट न हो ॥ २१ ॥

भावार्थ— हमारे पास पुत्रहीन अवस्था न आवे । हमें कभी बुरे वस्त्र पहनना पडे, ऐसी स्थिति भी हमें न प्राप्त हो । हम कभी बुद्धिहीन भी न हों । भूख हमें न सतावे । राक्षस हम पर हमला न करे । हम चाहे घरमें रहें, चाहे वनमें, अर्थात् हम कहीं भी रहें, हमें किसीतरहका कष्ट न हो, हम सर्वत्र प्रसन्न रहें ॥ १९ ॥

मनुष्य भक्षण करने योग्य अन्नको परिशुद्ध रीतिसे तैय्यार करे । ऐसे अन्न मलिन या मैले हाथोंसे न बनाये गए हों । जो अन्नसे युक्त हैं, उन्हें भी उत्तम अन्न मिलते रहें । प्रभुके दानके हम सब भागी हों, अर्थात् हम सबको प्रभुका दान मिलता रहे । हम प्रभुकी भक्ति करें और प्रभु हमें प्रसन्न होकर उत्तम अन्न प्रदान करते रहें । प्रभु अपने कल्याणमय हाथोंसे हमारी रक्षा सदा करते रहें ॥ २० ॥

हे अग्ने ! तू हमारे घरमें रोज प्रदीप्त होता रह और अपनी प्रदीप्त ज्वालाओंसे हमारे यहां प्रकाशित हो । हमारे घरमें जितने पुत्रपौत्र हों, उनका तू रक्षक हो, उन्हें तू कष्ट न दे । हमारा पुत्र वीर और मनुष्योंका हित करनेवाला हो, वह कभी विनष्ट या अपमृत्युका शिकार न हो । मनुष्यका पुत्र इतना सुन्दर हो कि सभी उसे देखकर प्रसन्न हों और अपने पास बुलानेकी इच्छा करें ॥ २१ ॥

२२ मा नो॑ अग्ने दुर्भृ॒तये॒ सचै॒षु दे॒वेद्धे॑ष्व॒ग्निषु॒ प्र वो॑चः ।
मा ते॑ अ॒स्मान् दु॑र्म॒तयो॑ भृ॒माच्चि॑द् दे॒वस्य॑ सूनो सहसो नशन्त ॥ २२ ॥
२३ स मर्तो॑ अग्ने स्वनीक रे॒वा॒नम॑र्त्ये॒ य आ॒जुहो॑ति ह॒व्यम् ।
स दे॒वता॑ वसु॒वनिं॑ दधाति॒ यं सू॒रिर॒र्थी पृ॒च्छमा॑न॒ एति॑ ॥ २३ ॥
२४ म॒हो नो॑ अग्ने सुवि॒तस्य॑ वि॒द्वान् र॒यिं सू॒रिभ्य॒ आ व॑हा बृ॒हन्त॑म् ।
येन॑ व॒यं स॑हसाव॒न् मदे॒मा॒ऽवि॑क्षिताम् आयु॑षा सु॒वीरा॑ः ॥ २४ ॥

अर्थ— [२२] हे अग्ने ! (सचा देवेद्धेषु एषु अग्निषु) तू हमारा साथी है अतः तू देवों द्वारा प्रदीप्त किये अग्नियोंको (नः दुर्भृतये मा प्रवोचः) हमारे भरण पोषण न करनेके लिये न कहना। हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र ! (देवस्य ते दुर्मतयः) प्रकाशमान होनेवाले तेरी बुद्धियां हमारे विषयमें कदापि दोष युक्त न हों; (भ्रमात् चित् नशंत) भ्रमसे भी हम पर तुम्हारा विरोधी भाव न हो ॥ २२ ॥

१ सचा नः दुर्भृतये मा प्रवोचः— कोई साथी अपने मित्रोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका यत्न न करे।

२ दुर्मतयः मा— कोई मित्र अपने साथीके संबंधमें बुरे विचार प्रकट न करे।

३ भ्रमात् चित् सचा मा नशंत— भ्रमसे भी मित्रके विषयमें उसका साथी बुरे विचार प्रकट न करे।

[२३] हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! (अमर्त्ये यः हव्यं आ जुहोति) अमर ऐसे तुझ अग्निमें जो हवन करता है। (सः मर्तः रेवान्) वह मनुष्य धनवान् होता है। (यं सूरिः अर्थी पृच्छमानः एति) जिसके विषयमें ज्ञानी और धनकी कामना करनेवाला पूछता हुआ आता है (सः देवता वसुवनिं दधाति) वह देवताके उद्देश्यसे धन अर्पण करता है ॥ २३ ॥

[२४] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः महो सुवितस्य विद्वान्) हमारे बडे कल्याणकारक कर्मके ज्ञाता तू है। (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आ वह) विद्वानोंके लिये उस बडे ऐश्वर्यको प्रदान कर। हे (सहसाऽवन्) बलसे संरक्षण करनेवाले अग्ने ! कि (येन वयं आयुषा अविक्षितासः) जिससे हम आयुसे क्षीण न होते हुए, पूर्णायुषी होकर, (सुवीराः मदेम) उत्तम वीर पुत्र पौत्रोंके साथ आनंदसे रहें ॥ २४ ॥

भावार्थ— मित्र कभी ऐसा काम न करे कि जिससे उसके मित्र की हानि हो। मित्रके जीवन या भरणपोषण पर आंच आवे, ऐसा कोई काम मनुष्य न करे। मित्रकी कभी निन्दा न करे। सदा उसके गुणोंका ही लोगोंके सामने बखान करे, उसके अन्दरके दुर्गुणोंको छिपाये रखे। मित्रके बारेमें कोई आकर यदि कोई कुछ भ्रम भी फैलाये, तो भी उस भ्रमकी बातोंमें आकर अपने मित्रका बुरा न करे ॥ २२ ॥

इस अमर अग्निमें जो नित्य हवन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है। मनुष्यके पास धनकी अभिलाषासे यदि कोई ज्ञानी आए, तो वह मनुष्य यह समझकर कि इस ज्ञानीके रूपमें स्वयं देवता ही धनार्थी होकर पधारे हैं, उस ज्ञानीको भरपूर धन दे ॥ २३ ॥

हे अग्ने ! तू हमें उत्तम और कल्याणकारक कर्मोंका उपदेश कर और विद्वानोंको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। हम क्षीण आयुवाले न होकर उत्तम वीर पुत्र और पौत्रोंके साथ आनन्दसे रहें। जिससे कल्याण हो, उस मार्गको जानना चाहिये। ज्ञानियोंको धनका दान करना चाहिए। मनुष्य ऐसा कर्म करे कि जिससे वह पूर्णायु भोगे और अपने वीर और उत्तम पुत्र और पौत्रोंके साथ हृष्टपुष्ट हो ॥ २४ ॥

१५

२५ नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

[२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता आप्रीसूक्तं = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

२६ जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥

२७ नराशंसस्य महिमानमेषा- मुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥

अर्थ— [२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नु उत् शशाधि) मेरे लिए अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर । हे (देव) तेजस्वी अग्ने ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिए अन्नोंको प्रेरित कर । (ते रातौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ २५ ॥

[२]

[२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः समिधं अद्य जुषस्व) हमारी समिधाका आज स्वीकार करो । (यजतं धूमं ऋण्वन्) प्रशस्त धूमको फैलाकर (बृहत् शोच) बहुत प्रकाशित हो । (दिव्यं सानु स्तूपैः रश्मिभिः उपस्पृश) अन्तरिक्षमें पहुंचे पर्वतके ऊंचे भागको अपनी तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो । (सूर्यस्य रश्मिभिः संततनः) सूर्यके किरणोंके साथ मिलकर रहो ॥ १ ॥

[२७] (ये देवाः सुक्रतवः) जो देव उत्तम यज्ञका संपादन करनेवाले हैं, (शुचयः धियंधाः) शुद्ध हैं और बुद्धिका वा कर्म शक्तिका धारण करते हैं, व (उभयानि हव्या स्वदन्ति) दोनों प्रकारके हविर्द्रव्योंका आस्वाद लेते हैं । (एषां) उनके मध्यमें (नराशंसस्य यजतस्य) नरोंद्वारा प्रशंसित तथा पूजनीय अग्निकी (महिमानं) महिमाको (यज्ञैः उपस्तोषाम) हविर्द्रव्योंके अर्पणके साथ हम वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्य भक्षण करने योग्य अन्नको परिशुद्ध रीतिसे तैय्यार करे । ऐसे अन्न मलिन या मैले हाथोंसे न बनाये गए हों । जो अन्नसे युक्त हैं, उन्हें भी उत्तम अन्न मिलते रहें । प्रभुके दानके हम सब भागी हों अर्थात् हम सबको प्रभुका दान मिलता रहे । हम प्रभुकी भक्ति करें, और प्रभु हमें प्रसन्न होकर उत्तम अन्न प्रदान करते रहें । प्रभु अपने कल्याणमय हाथोंसे हमारी रक्षा सदा करते रहें ॥ २५ ॥

हे अग्ने ! हम आज तुम्हें जो समिधायें प्रदान करते हैं, उन्हें तुम स्वीकार करो । तुम इन समिधाओंको स्वीकार करके अच्छी तरह प्रदीप्त होओ । पर्वतके ऊंचे भागोंको अपनी तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो और सूर्यकी किरणोंके साथ मिलो । पर्वतोंके शिखरों पर भी यज्ञ करने चाहिए । इन यज्ञोंसे वायुमंडल शुद्ध होता है ॥ १ ॥

जो उत्तम कर्म करनेवाले शुद्ध और बुद्धिमान् हैं, उनमें जो सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित और अधिक पूज्य हैं, उनकी महिमाका वर्णन करना चाहिए । सभी मनुष्य उत्तम कर्म करें, पवित्र हों, बुद्धि और उत्तम कर्मोंको उत्तम रीतिसे करनेकी शक्तिको धारण करें ॥ २ ॥

२८ ईळेन्यं॑ वो॒ असु॑रं सु॒दक्ष॑ – म॒न्तर्दू॒तं रोद॑सी सत्य॒वाच॑म् ।
म॒नु॒ष्वद॒ग्निं मनु॑ना॒ समि॑द्धं॒ सम॑ध्व॒राय॑ सद॒मिन्म॑हेम ॥ ३ ॥
२९ स॒प॒र्यवो॒ भर॑माणा अभि॒ज्ञु प्र वृ॑ञ्जते॒ नम॑सा ब॒र्हिर॒ग्नौ ।
आ॒जुह्वा॑ना घृ॒तपृ॑ष्ठं॒ पृष॑द्व॒ – दध्व॑र्यवो ह॒विषा॑ मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥
३० स्वा॒ध्यो॒३॒॑ वि दुरो॑ देव॒यन्तो॒ ऽशि॑श्रयू रथ॒युर्दे॒वता॑ता ।
पू॒र्वी शिशुं॒ न मा॒तरा॑ रिहा॒णे सम॒ग्रुवो॒ न सम॑नेष्वञ्जन् ॥ ५ ॥
३१ उ॒त योष॑णे दि॒व्ये म॒ही न॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ सु॒दुघे॑व धे॒नुः ।
ब॒र्हि॒षदा॑ पुरुहू॒ते म॒घोनी॒ आ य॒ज्ञिये॑ सुवि॒ताय॑ श्रयेताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [२८] (वः ईळेन्यं असुरं सुदक्षं) आप सबके लिये स्तुत्य, बलवान्, उत्तम दक्ष, (रोदसी अन्तः दूतं) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें दूतके समान कार्य करनेवाले (सत्यवाचं) सत्यभाषी, (मनुष्वत् मनुना समिद्धं) मनुष्योंके समान मनुने प्रदीप्त किये (अग्निं अध्वराय) अग्निको अहिंसामय कर्म करनेके लिये (सदं इत् संमहेम) सदा ही हम सुपूजित करते हैं ॥ ३ ॥

[२९] (सपर्यवः) अग्निकी सेवा करनेवाले (अभिज्ञु भरमाणाः) घुटने टेककर पात्रको भरते हुए (बर्हिः नमसा अग्नौ प्रवृञ्जते) दर्भोंको हविर्द्रव्यके साथ अग्निमें अर्पण करते हैं। हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो! (घृतपृष्ठं पृषद्वत्) घृतसे सिंचित स्थूल घृत बिंदुओंसे युक्त दर्भमुष्टिको (हविषा आजुह्वानाः मर्जयध्वं) हविके साथ हवन करनेके समय परिशुद्ध करके हवन करो ॥ ४ ॥

[३०] (स्वाध्यः देवयन्तः) उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले (रथयुः) रथकी कामना करनेवाले (देवताता दुरः वि अशिश्रयुः) यज्ञके अन्दर द्वारोंका आश्रय करते हैं। (समनेषु पूर्वीः) यज्ञोंमें पूर्वकी ओर अग्रभाग करके रहनेवाले जुहू आदिकोंको (शिशुं न मातरा) वत्सको गोमाताके (रिहाणे) चाटनेके समान तथा (अग्रुवः न) अग्रगामी नदियाँ क्षेत्रोंको अपने जलसे सिंचन करनेके समान (सं अंजन्) अग्निको घृतसे सिंचन करते हैं ॥ ५ ॥

[३१] (उत दिव्ये योषणे) और दो दिव्य युवतियाँ (मही बर्हिषदा) बडी और दर्भोंपर बैठनेवाली (पुरुहूते मघोनी) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाली तथा धनवाली (यज्ञिये उषा सानक्ता) पूजनीय उषा और रात्री (सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दूध देनेवाली गौके समान (नः सुविताय आ श्रयेतां) हमारे कल्याणके लिये हमें आश्रय देती रहें ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो स्तुत्य, बलवान्, दक्ष, सत्यभाषी और सेवकके समान कार्यकर्ता होता है, उसे हिंसा और कुटिलतारहित कार्यमें बुलाकर उसका सत्कार करना चाहिए। उत्तम दूत या राजदूत सदा दक्षतासे कार्य करनेवाला, सत्यभाषी और अहिंसापूर्ण कर्मोंका करनेवाला हो ॥ ३ ॥

अग्निकी सेवा करनेवाले अध्वर्युगण घुटने टेककर अर्थात् नम्र होकर दर्भोंको हविद्रव्योंके साथ अग्निमें डालते हैं। दर्भोंको घीसे सिंचित करके उनकी आहुति अग्निमें डालनी चाहिए ॥ ४ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले तथा रथ आदि ऐश्वर्योंकी कामना करनेवाले मनुष्य यज्ञोंका आश्रय लेते हैं। यज्ञमें अध्वर्युगण, जिस तरह गायें अपने बछडोंको प्रेमसे चाटती हैं, अथवा नदियाँ जिस तरह क्षेत्रोंको सींचती हैं, उसी तरह प्रेमसे इस अग्निको घीसे सींचते हैं ॥ ५ ॥

३२ विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥
३३ आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
३४ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
३५ वनस्पतेऽव सृजोप देवा-नग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥

अर्थ— [३२] हे (विप्रा जातवेदसा) ज्ञानी और धन उत्पन्न करनेवाले, (मानुषेषु कारू) मानवोंमें कुशलतासे कर्म करनेवाले दिव्य होताओ ! (वां यजध्यै मन्ये) आपकी मैं यज्ञके लिये स्तुति करता हूं । (हवेषु नः अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं) इन हवनोंमें हमारे हिंसा रहित यज्ञ कर्मको उच्च करो । (ता देवेषु वार्याणि वनथः) वे आप दोनों देवोंमें हमारे धनोंको पहुंचाइये ॥ ७ ॥

[३३] (भारती भारतीभिः सजोषा) भारती भारतियोंके साथ (देवैः मनुष्येभिः इळा अग्निः) देवों और मनुष्योंके साथ इळा रूप अग्नि और (सारस्वतेभिः सरस्वती) सारस्वतोंके साथ सरस्वती ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियाँ (अर्वाक्) पास आजांय और (इदं बर्हिः आ सदन्तु) इस आसनपर बैठें ॥ ८ ॥

[३४] हे (देव त्वष्टः) त्वष्टा देव ! (रराणः) प्रसन्न होकर तू (नः) हमें (तत् तुरीयं पोषयित्नु वि स्य स्व) उस त्वरित पुष्टि करनेवाले वीर्यका प्रदान करो । हमें वीर्यवान बनाओ । (यतः) जिस वीर्यसे (कर्मण्यः सुदक्षः) कर्म करनेमें तत्पर दक्ष (देवकामः युक्तग्रावा) देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञकर्ता (वीरः जायते) वीर होता है ॥ ९ ॥

[३५] हे (वनस्पते) वनस्पते ! (देवान् उप अव सृज) देवोंको यहां ले आ । (अग्निः शमिता हविः सूदयाति) अग्नि शान्ति करनेवाला होकर अन्नको पकाता है । (स इत् उ होता सत्यतरः यजाति) वह देवोंको बुलानेवाला अग्नि अधिक सत्य यज्ञनिष्ठ होकर यज्ञ करता है । (यथा देवानां जनिमानि वेद) वह देवोंके जन्म वृत्तान्तको यथायोग्य रीतिसे जानता है ॥ १० ॥

भावार्थ— उषा और रात्री ये दो स्त्रियां हैं । ये दोनों स्त्रियां दिव्यगुणोंसे युक्त, ऐश्वर्यवाली और सभीके द्वारा प्रशंसित हैं । उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण सब लोग इनकी प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥

कारीगर मनुष्य कुशल हों और वे विशेष रूपसे ज्ञानी तथा धनको उत्पन्न करनेवाले हों । ऐसे कारीगरोंकी सब प्रशंसा करें । यज्ञ तथा अन्य सभी सत्कर्मोंके अवसर पर उनका सत्कार किया जाए ॥ ७ ॥

भारती देशकी भाषा है । मातृभाषाकी संज्ञा भारती है । इळा मातृभूमिको कहते हैं । सरस्वती सभ्यता बहनेवाली संस्कृति है मातृभाषा, मातृभूमि और मातृसभ्यता ये तीन देवियां हैं । इन तीनों देवियोंका सत्कार यज्ञमें होना चाहिए । जो भी कर्म मनुष्य करे, वह इन तीनों देवियोंकी उन्नति करनेकी दृष्टिसेही किए जाएं । ये तीनों देवियां अग्निके रूप हैं । मातृभाषा अग्निका रूप है, क्योंकि अग्निसेही वाणी उत्पन्न होती है । मातृभूमि भी अग्निकाही रूप है, क्योंकि भूमि अग्निकाही स्थान है और सभ्यता या संस्कृति भी अग्निके समान तेजस्वी होती है । इन तीनों देवियोंकी भक्ति सदा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

मनुष्य अपने अन्दर ऐसा बलवर्धक और पोषक वीर्य उत्पन्न करें कि जिससे पुरुषार्थ करनेवाला, सावधानी और चतुराईसे कर्म करनेवाला, दिव्यगुणोंको अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला वीर पुत्र उत्पन्न हो ॥ ९ ॥

३६ आ याह्यग्ने समिधानो अर्वा—ङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥

[३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३७ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

३८ प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचि—रध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

अर्थ— [३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (समिधानः) प्रदीप्त होकर (अर्वाक्) हमारे समीप (इन्द्रेण तुरेभिः देवैः) इन्द्र और त्वरा करनेवाले देवोंके साथ (सरथं आयाहि) एक रथमें बैठकर आओ । (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रोंकी माता अदिति (नः बर्हिः आस्तां) हमारे इस आसनपर बैठे । (अमृताः देवाः स्वाहा मादयन्तां) अमर देव स्वाहाकारसे दिये अन्नसे आनंदित हों ॥ ११ ॥

[३]

[३७] (वः) आप (अग्निभिः सजोषाः) अन्य अग्नियोंके साथ रहनेवाले (यजिष्ठं) पूजा योग्य (अग्निं देवं) अग्नि देवको (अध्वरे दूतं कृणुध्वं) हिंसा रहित प्रशस्ततम कर्ममें दूत बनाइये । (यः मर्त्येषु निध्रुविः) जो मर्त्योंमें रहनेवाला, (ऋतावा) सत्यका पालन करनेवाला (तपः मूर्धा) तेजसे तपनेवाला (घृतान्नः पावकः) घी खानेवाला और पवित्रता करनेवाला होता है ॥ १ ॥

[३८] (यवसे अविष्यन्) घास खानेवाला (प्रोथत् अश्वः न) घोडा जैसा शब्द करता है, वैसा (यदा महः संवरणात् व्यस्थात्) बडे निरोधनसे अग्नि काष्ठोंपर रहता है [उस समय वह शब्द करता है और लकडियोंको खाता भी है] इस समय (अस्य शोचिः अनु) इसके प्रकाशके अनुकूल (वातः अनुवाति) वायु बहता है । (अध ते व्रजनं कृष्णं अस्ति) और तेरा मार्ग काला होता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो दिव्यज्ञानी हों, उनकी संगति करनी चाहिए, उन्हें अपने घरमें बुलाकर उनका सत्कार करना चाहिए । उन्हें उत्तम उत्तम अन्न पकाकर देना चाहिए । उन्हें जो भी कुछ दिया जाए बडे प्रेमसे और सत्यपूर्वक अर्थात् छल और कपटसे रहित होकर दिया जाए । उनके जीवनकी बातें सुनकर उनके जीवनसे शिक्षा लेकर अपने भी जीवनको दिव्य बनाया जाए ॥ १० ॥

मनुष्य स्वयं तेजस्वी बने और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले ज्ञानियोंकी संगतिमें रहें, उनके साथ रहकर कार्य करें । सभी स्त्रियां माता बनकर अपने वीर पुत्रके साथ आनन्दसे रहें, ऐसी वीर माताओंका सर्वत्र सत्कार हो । अमर देवगण भी उत्तम हवि तथा अन्न प्राप्त करके आनन्दित होते रहें । उत्तम पुत्रोंकी माता कभी दीन नहीं होती, वह सदा अदीन या अदितिही रहती है । वह हमेशा समर्थ होती है ॥ ११ ॥

जो स्वयं अग्निके समान तेजस्वी है, और जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता है, ऐसे सत्कारके योग्य पुरुषकोही दूत बनाना चाहिए । यह दूत मानवोंमें रहनेवाला हो, सत्यनिष्ठ हो, अपने तेजसे शत्रुको तपानेवाला हो, पवित्रता करनेवाला तथा घृतमिश्रित अन्न खानेवाला हो । राजदूतके पदपर ऐसेही व्यक्तिको नियुक्त करना चाहिए कि जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता हो । जो हीन साथियोंके साथ रहता हो, ऐसे हीन पुरुषको महत्वके स्थान पर नहीं रखना चाहिए ॥ १ ॥

+

३९ उद् यस्यं ते नवंजातस्य वृष्णो ऽग्ने चरंन्त्यजरां इधानाः ।
अच्छा द्यामंरुषो धूम एति सं दूतो अंग्न ईयसे हि देवान् ॥ ३ ॥
४० वि यस्यं ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥ ४ ॥
४१ तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठ मग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदायं शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥ ५ ॥

अर्थ— [३९] हे (अग्ने) अग्ने ! (नवजातस्य वृष्णः यस्य ते) नवीन उत्पन्न हुए तुझ बलशालीकी (अजराः इधानाः) जरा रहित ज्वालाएं (उत् चरन्ति) ऊपर उठती हैं । (अरुषः धूमः) इसका प्रकाशमान धूवां (द्यां अच्छ एति) द्युलोकमें सीधा जाता है । हे (अग्ने) अग्ने ! तू हमारा (दूतः देवान् हि सं ईयसे) दूत होकर देवोंके पास पहुंचता है ॥ ३ ॥

[४०] (यस्य ते पाजः पृथिव्यां) तेरा तेज पृथिवीपर (तृषु व्यश्रेत्) शीघ्रही फैलता है, (यत् अन्ना जंभैः समवृक्त) जब तू अपने काष्ठ रूप अन्नोंको अपने जबडों-ज्वालाओं-से खाने लगता है, तब (ते सेना इव सृष्टा प्रसितिः एति) तेरी सेना जैसी ज्वालाएँ तेरेसे छूटी हुई बडावेगसे हमला करती है । हे (दस्म) दर्शनीय अग्ने ! तू (यवं न जुह्वा विवेक्षि) जौ के खानेके समान ज्वालाओंसे काष्ठोंको भक्षण करता है ॥ ४ ॥

[४१] (यविष्ठं अतिथिं तं इत् अग्निं) अत्यंत तरुण, अतिथिके समान पूज्य उस अग्निको (दोषा उषसि) रात्रीके तथा उषा या दिनके समय (तं अस्य योनौ निशिशानाः नरः) उसके उत्पत्तिस्थानमें प्रदीप्त करनेवाले नेता लोग (अत्यं न) घोडेके समान (तं मर्जयन्तः) उसको शुद्ध करते वा सेवा करते हैं । (आहुतस्य वृष्णः शोचिः दीदाय) हवन हुए बलवान् अग्निकी ज्वाला अधिक प्रदीप्त होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस समय अग्नि छोटेसे रूपमें रहती है, उस समय धीमें चलनेवाली हवा भी उसे बुझा सकती है, पर जब वही अग्नि बडा रूप धारण कर लेती है तब जोरसे चलनेवाली हवा भी उसे बुझा नहीं पाती, अपितु उसे और बढाकर उसे अनुकूलता प्रदान करती है । इसी तरह मनुष्य जब छोटा होता है, तब सब उसके साथ शत्रुताका व्यवहार करते हैं, पर जब वही मनुष्य बडा हो जाता है, तो उसके शत्रु भी उसके साथ मित्रताका व्यवहार करते हैं ॥ २ ॥

अग्निका ऊर्ध्वज्वलन सर्वत्र सुप्रसिद्ध है । उसकी ज्वालायें हमेशा ऊपरकी तरफ जाती हैं । वह स्वयं भी देवोंमें जाकर बैठता है, इस प्रकार अग्निके सभी कर्म उच्च मार्गसे होता है । इसलिए अग्नि सदाही प्रगति करनेवाला देवता है । उसकी गति कभी नीचेकी तरफ नहीं होती । इसीलिए अग्निकी गणना देवताओंमें होती है । जो मनुष्य अग्निकी तरह प्रगति करेगा, उसकी भी गणना देवोंमें हो सकेगी ॥ ३ ॥

जिस तरह अग्निकी ज्वालाएं सब पदार्थोंका विनाश करती हुई सर्वत्र जाती हैं, उसी प्रकार मनुष्योंकी सेनायें भी शत्रुओं पर हमला करके उन्हें विनष्ट करती हुई सर्वत्र संचार करें ॥ ४ ॥

चाहे दिन हो या रात हो, सदाही अतिथिकी सेवा करनी चाहिए । जिस प्रकार घुडदौडके लिए घोडे पालनेवाले लोग घोडोंकी सेवा दिनरात करते हैं, उसी तरह मनुष्य भी अतिथिकी दिनरात सेवा करें । अथवा जिस तरह घोडोंको हृष्टपुष्ट किया जाता है, उसी तरह तरुणोंको भी हृष्टपुष्ट किया जाना चाहिए । तरुण राष्ट्रके आधार होते हैं, अतः उन्हें अधिक कार्यक्षम और तेजस्वी बनानेके लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए ॥ ५ ॥

४२ सुसंदृक् ते स्वनीक प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥ ६ ॥
४३ यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥
४४ या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत् सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥
४५ निर्यत् पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४२] हे (स्वनीक) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! तू (यत् रुक्मः न) जब सूर्यके समान (उपाके रोचसे) समीप स्थानमें प्रकाशित होता है, तब (ते प्रतीकं सुसंदृक्) तेरा रूप उत्तम दर्शनीय होता है, तथा (ते शुष्मः दिवः तन्यतुः न एति) तेरा प्रकाश विद्युत् के समान फैलता है। (चित्रः सूरः न) दर्शनीय सूर्यके समान (भानुं प्रति चक्षि) अपनी दीप्तिको भी तू दर्शाता है ॥ ६ ॥

[४३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अग्नये वः स्वाहा) तुझ अग्निके लिये दिये हुए हविसे तथा (इळाभिः घृतवद्भिः हव्यैः यथा परिदाशेम) गौओंके घृतसे मिश्रित हवन द्रव्योंसे जब हम तेरी सेवा करते हैं, तब तू भी (तेभिः अमितैः महोभिः) उन अपरिमित तेजोंसे (शतं आयसीभिः पूर्भिः नः नि पाहि) सैकडों लोहेके किलोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ७ ॥

[४४] हे (सहसः सूनो जातवेदः) बलसे उत्पन्न होनेवाले वेदोत्पादक अग्ने ! (दाशुषे ते या वा सन्ति) दाताके लिये हितकारी जो तुम्हारी ज्वालाएं हैं, तथा जो (अप्रधृष्टाः गिरः वा) अहिंसित वाणियां हैं, (याभिः नृवतीः उरुष्याः) जिनसे सुपुत्रवती प्रजाका तुम रक्षण करते हो, (ताभिः नः स्मत् सूरीन् जरितॄन् नि पाहि) उनसे हमारे विद्वानों और स्तोताओंको सुरक्षित कर ॥ ८ ॥

[४५] (यत् शुचिः स्वया तन्वा कृपा) जब पवित्र अग्नि अपनी फैली हुई ज्वालारूपी कृपासे (रोचमानः) प्रदीप्त होता है तब (पूता इव स्वधितिः) तीक्ष्ण शस्त्रके समान वह (निः गात्) बाहर आता है, अरणियोंसे बाहर आता है। (यः उशेन्यः) जो कामना योग्य प्रिय (सुक्रतुः पावकः) उत्तम कर्म करनेवाला, पवित्रता करनेवाला (मात्रोः आ जनिष्ट) दोनों अरणिरूप माताओंसे उत्पन्न हुआ वह (देव यज्याय) देवोंके यजन करनेके लिये ही हुआ है ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह अग्नि जब प्रदीप्त होता है, तब वह सूर्यके समान तेजस्वी होनेके कारण उत्तम और दर्शनीय रूपवाला होता है। इसका तेज या प्रकाश विद्युत्के समान सर्वत्र फैलता है। उस समय तेजस्वी सूर्यके समान इस अग्निकी दीप्ति सर्वत्र फैलती है ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! जब हम प्रजायें अनेक तरहकी हवियों तथा अन्नोंसे तेरा सत्कार करती हैं, तब तू भी अपने अपरिमित तेजोंसे तथा सैकडों लोहेके किलोंसे हमारी रक्षा कर। देशमें जितने भी नगर हों, वे सभी सुरक्षित हों, उन पर शत्रु आक्रमण न कर सके ॥ ७ ॥

यह अग्नि बलका पुत्र है, अर्थात् बलसे उत्पन्न होनेवाला है। इसकी ज्वालायें दाताके लिए हितकारी हैं। जो इस अग्निकी ज्वालाओंमें हवि प्रदान करता है, उसका हित ये अग्निकी ज्वालायें करती हैं। वाणियां अहिंसित हों। वाणीका प्रयोग मनुष्य इस प्रकार करे कि उससे किसीको कष्ट न हो। वाणीका प्रयोग मनुष्य विवेकपूर्वक करे ॥ ८ ॥

४६ एता नो अग्ने सौभंगा दिदीह्य१पि क्रतुं सुचेतंसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते चं सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४७ प्र वंः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूंतम् ।
यो दैव्यानि मानुंषा जनूंष्य१न्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥

४८ स गृत्सो अग्निस्तरुंणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिंदन् भूरिं चिदन्ना समिदंत्ति सद्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (एता सौभगा नः दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें दे । (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) और उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान् पुत्रको हम प्राप्त करें । (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च संतु) सब धन ईश्वर भक्तोंके लिये मिलते रहें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

[४]

[४७] (वः शुक्राय भानवे सुपूतं) तुम सब शुद्ध तेजस्वी अग्निके लिये उत्तम पवित्र (हव्यं मतिं च प्रभरध्वं) हव्य पदार्थ तथा उत्तम बुद्धि अर्थात् स्तोत्र भर दो, कर दो, गाओ (यः दैव्यानि मानुषा विश्वानि) जो दिव्य और मानुष ऐसे सब (जनूंषि अन्तः विद्मना जिगाति) प्राणियोंके जन्मोंमें अन्दर ही अन्दर ज्ञानसे संचार करता है ॥ १ ॥

[४८] (सः अग्निः गृत्सः तरुणः अस्तु) वह अग्नि बडा बुद्धिमान और तरुण है । (यतः मातुः यविष्ठः अजनिष्ट) जब माता रूप अरणियोंसे वह तरुण उत्पन्न होता है । (यः शुचिदन् वना संयुवते) जो तेजस्वी दांतवाला अग्नि वनोंके साथ संमिलित होता है, लकडियोंको जलाता है, तब वह (भूरिचित् अन्ना सद्यः इत् सं अत्ति) बहुत अन्नोंको तत्काल ही खाजाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जिस समय, अग्नि दोनों अरणियोंसे उत्पन्न होता है, उस समय उसका रूप इस तरह चमकता हुआ होता है कि जिस तरह तीक्ष्ण शस्त्र या तलवार म्यानसे बाहर आने पर चमकती है । जिस तरह दो अरणीरूप मातापितासे उत्पन्न हुआ अग्नि चमकता या तेजस्वी होता है, उसी तरह मातापिताके उत्पन्न हुआ पुत्र तेजस्वी होकर सर्वत्र चमकता रहे ॥९॥

हे अग्ने ! हमें सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों, हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें । हम उत्तम बुद्धिमान् और उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको प्राप्त करें । हमें पुरुषार्थी और बुद्धिशाली पुत्र प्राप्त हो । ईश्वरकी भक्ति करनेवालेको सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हो । ऐसे ईश्वरभक्तको तू कल्याणकारक उपायोंसे सुरक्षित कर ॥ १० ॥

हे मनुष्यों ! शुद्ध अग्निके लिए उत्तम पवित्र और हवनीय पदार्थ अर्पण करो और उत्तम स्तोत्र गाओ । वह अग्नि सब दिव्य और मानुष तथा अन्य प्राणियोंके अन्दर भी ज्ञानपूर्वक संचार करता है । अग्नि सब प्राणियोंमें व्यापक है ॥१॥

अरणीरूप माताका पुत्र अग्नि उत्पन्न होते ही बहुत तेजस्वी और उत्साही हो जाता है । मनुष्यका पुत्र भी इसी तरह तरुण और सदा उत्साही रहे । वह अग्निकी तरह उत्तम उत्तम अन्नोंको खाकर बुद्धि, बल और उत्साह प्राप्त करे ॥ २ ॥

४९ अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच । ॥ ३ ॥
५० अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥
५१ आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥ ५ ॥
५२ ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥

अर्थ— [४९] (अस्य देवस्य अनीके संसदि) इस देवके तेजस्वी यज्ञ सभामें (श्येतं यं मर्तासः जगृभ्रे) जिस तेजस्वी अग्निको मानवोंने धारण किया, जिसकी सेवा की । (यः पौरुषेयीं गृभं नि उवोच) जो अग्नि मनुष्यों द्वारा की गयी सेवाका स्वीकार करता है । वह (अग्निः आयवे दुरोकं शुशोच) अग्नि आयुके लिये सेवन करनेके लिये अशक्य रीतिसे प्रकाशित होता है । अत्यंत प्रकाशता है, जो प्रकाश सहन करना अशक्य है ॥ ३ ॥

[५०] (कविः प्रचेता अमृतः) ज्ञानी विशेष बुद्धिमान् अमर ऐसा (अयं अग्निः) यह अग्नि (अकविषु मर्तेषु निधायि) अज्ञानी मानवोंमें रखा गया है । हे (सहस्वः) बलवान् अग्ने ! (त्वे सुमनसः स्याम) तेरे विषयमें हम सदा उत्तम बुद्धि धारण करनेवाले हैं । इसलिये (सः त्वं अत्र नः मा जुहुरः) वह तू यहां हमें विनष्ट न कर ॥ ४ ॥

[५१] (यः देवकृतं योनिं आ ससाद) वह अग्नि देवोंद्वारा बनाये स्थानपर बैठता है, क्योंकि (हि क्रत्वा अग्निः अमृतान् अतारीत्) वह अग्नि अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अमर देवोंको भी सुरक्षित रखता है । (विश्वधायसं तं) विश्वका धारण पोषण करनेवाले इस अग्निको (ओषधीः वनिनः च भूमिः च गर्भं बिभर्ति) औषधियां, वृक्ष तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं ॥ ५ ॥

[५२] (अमृतस्य भूरेः अग्निः ईशे हि) अन्नदान बहुत करनेके लिये अग्नि समर्थ है । (सुवीर्यस्य रायः दातोः ईशे) उत्तम वीर्ययुक्त धन देनेमें अग्नि समर्थ है । हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (वयं अवीराः त्वा मा परिषदाम) हम पुत्रहीन वा वीरताहीन होकर तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें । (अप्सवः मा) रूपरहित होकर हम न बैठें । (अदुवः मा) भक्तिहीन भी हम न हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— मनुष्य इस तेजस्वी अग्निको उत्पन्न करके हवि आदि अनेक तरहके द्रव्योंसे उसकी सेवा करते हैं । अर्थात् यज्ञ करनेवाले मनुष्य अग्निको प्रदीप्त करके उसमें पोषणकारक द्रव्योंकी आहुतियां देते हैं । इन आहुतियोंके यज्ञमें पड़ने पर वह इतना प्रकाशित होता है कि उसका तेज सहना मनुष्योंके लिए असंभव हो जाता है ॥ ३ ॥

मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी, ज्ञानी, बुद्धिमान् और अमर हो । यदि वह अज्ञानी मनुष्योंमें भी रहने लगे, तो भी उसके विषयमें उत्तम विचार ही मनमें धारण करना योग्य है, क्योंकि वह ज्ञानी मनुष्य कभी भी किसीका नाश नहीं करता । ज्ञानी मनुष्य सबकी रक्षा करता है ॥ ४ ॥

जो अपने प्रयत्नोंसे सज्जनोंको संकटसे तारता है अर्थात् सज्जनों पर आए हुए संकटोंको अपने प्रयत्नोंसे दूर करता है, वह मनुष्य देवोंके द्वारा निर्मित श्रेष्ठ स्थानोंमें विराजता है । सबका धारण और पोषण करनेवाले अग्निको जिस प्रकार सभी तरहकी औषधियां, वृक्ष तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं, उसी तरह जो सबका धारणपोषण करनेवाला होता है, उसे सभी लोग अपने अन्तःकरणमें आदरसे रखते हैं ॥ ५ ॥

५३ परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥
५४ नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या ऽऽनो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥
५५ त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ ९ ॥
५६ एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

अर्थ— [५३] (अरणस्य रेक्णः परिषद्यं हि) ऋण रहित मनुष्यका धन पर्याप्त होता है । (नित्यस्य रायः पतयः स्याम) इसलिये हम नित्य रहनेवाले धनके स्वामी बनें । हे अग्ने ! (अन्यजातं शेषः न अस्ति) अन्य मनुष्यका पुत्र औरस पुत्र नहीं कहलाता । (अचेतानस्य पथः मा विदुक्षः) निर्बुद्धके मार्गको हम न जानें ॥ ७ ॥

[५४] (अन्य-उदर्यः सुशेवः अरणः) दूसरेका पुत्र सुखसे सेवा करनेवाला और ऋण न करनेवाला होनेपर भी वह पुत्र करके (ग्रभाय नहि) ग्रहण करनेके योग्य नहीं होता, इतना ही नहीं परंतु वह (मनसा मंतवै उ) मनसे माननेके लिये भी योग्य नहीं है । (अध ओकः चित् पुनः इत् स एति) क्योंकि वह अपने निज पिताके घरके पास ही खींचा जाता है । अतः (नव्यः वाजी अभीषाट् नः आ एतु) नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला पुत्र ही हमें प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

[५५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वनुष्यतः नः निपाहि) तू हिंसकोंसे हमें बचा । हे (सहसावन्) बलवान् ! (त्वं अवद्यात् नः पाहि) तू पापसे हमें बचा । (त्वा ध्वस्मन्वत् पाथः अभि एतु) तेरे पास निर्दोष अन्न पहुंचे । (स्पृहयाय्यः सहस्री रायः सं एतु) हमारे पास प्राप्त करने योग्य सहस्रों प्रकारका धन आ जाय ॥ ९ ॥

[५६] हे (अग्ने) अग्ने ! (एता सौभगा दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें प्रदान कर । (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) हम उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान् पुत्रको प्राप्त करें । (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च सन्तु) सब धन ईश्वर भक्तोंको मिलते रहें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्योंके पास बहुत अन्न हो, उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति हो । वे पुत्रहीन तथा वीरताहीन अर्थात् भीरु न बनें, कुरूप तथा सौन्दर्यहीन न हों । भक्तिहीन भी न हों । मनुष्य धनवान्, शूर, पराक्रमी, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, पुत्रपौत्रवान्, धैर्यवान्, सुन्दर, शोभायुक्त और भक्तिमान् हों । मनुष्य मलिन न रहें । अपना सौन्दर्य बढावें, शृंगार बढावें, अपने घर, उद्यान और शरीरकी सजावट करके शोभा बढावें । सभी सुन्दर रहें ॥ ६ ॥

जो मनुष्य ऋण नहीं करता, उसका धन पर्याप्त होता है । हम भी ऋणसे रहित होकर पर्याप्त धनके स्वामी बनें । मनुष्य धनका स्वामी होकर औरस पुत्रका भी स्वामी हो, क्योंकि दत्तक पुत्र औरस पुत्रके समान नहीं हो सकता । कोई भी मूर्ख मनुष्यके मार्गसे न जाए ॥ ७ ॥

दूसरेका पुत्र दत्तकके रूपमें लें और यदि वह पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला तथा ऋण न भी करनेवाला हो, तो भी वह औरस पुत्रके समान नहीं हो सकता । जो दूसरेका है, वह दूसरेका ही रहेगा । मनसे भी उसे औरस पुत्र नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसका मन तो उसके वास्तविक मातापिताकी ओर ही खिंचकर जाएगा, उसका मन अपने दूसरे पिताके घरमें रह नहीं सकता । इसलिए हमें ऐसा ही औरस पुत्र चाहिए जो शत्रुका पराभव करनेवाला हो ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तू हमें हिंसकोंसे बचा, तू हमें पापसे बचा । हम भी तुझे निर्दोष अन्न प्रदान करें । हमारे पास प्राप्त करने योग्य अनेक तरहके धन प्राप्त हों ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! हमें सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों, हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें । हम उत्तम बुद्धिमान् और उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको प्राप्त करें । हमें पुरुषार्थी और बुद्धिशाली पुत्र प्राप्त हो । ईश्वरकी भक्ति करनेवालेको सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों । ऐसे ईश्वरभक्तको तू कल्याणकारक उपायोंसे सुरक्षित कर ॥ १०

(५)

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५७ प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥ १ ॥

५८ पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥ २ ॥

५९ त्वद् भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि ।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥

६० तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाऽजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥ ४ ॥

---

[५]

अर्थ— [५७] (तवसे दिवः पृथिव्याः अरतये) वृद्धिगत हुए, द्युलोक और पृथिवीपर गमन करनेवाले (अग्नये गिरं भरध्वं) अग्निके लिये स्तोत्र भर दो, करो। (यः वैश्वानरः) जो वैश्वानर अग्नि (विश्वेषां अमृतानां उपस्थे) सब देवोंके समीप (जागृवद्भिः वावृधे) जागनेवालोंके द्वारा बढाया जाता है ॥ १ ॥

[५८] (सिन्धूनां नेता) नदियोंका चालक और (स्तियानां वृषभः) जलोंका वर्षण कर्ता (पृष्टः अग्निः) सुपूजित हुआ अग्नि (दिवि पृथिव्यां धायि) द्युलोकमें और पृथिवीपर स्थापित हुआ है। (सः वैश्वानरः वरेण वावृधानः) वह सर्वजन हितकारी अग्नि श्रेष्ठ हविसे बढता हुआ (मानुषीः विशः अभि वि भाति) मानवी प्रजाओंमें प्रकाशता है ॥ २ ॥

[५९] हे (वैश्वानर) वैश्वानर ! (त्वद् भिया) तेरी भीतिसे (असिक्नीः विशः) काली प्रजा (भोजनानि जहतीः) भोजनोंको भी त्यागती हुई (असमनाः आयन्) तितर बितर होकर भागने लगी थी। (यत् पूरवे शोशुचानः) जब तू पुरु राजाके लिये प्रकाशित होकर (पुरः दरयन् अदीदेः) शत्रुकी नगरियोंका विदारण करके प्रज्वलित हुआ था ॥ ३ ॥

[६०] हे वैश्वानर अग्ने ! (तव व्रतं त्रिधातु) तेरे व्रतका त्रिधातु अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें रहनेवाले लोग (सचन्त) पालन करते हैं। (अजस्रेण शोशुचा शाशुचानः) विशेष प्रकाशसे प्रकाशित होता हुआ (त्वं) तू अपने (भासा रोदसी आततन्थ) तेजसे द्युलोक और पृथिवी लोकको विस्तृत करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह वैश्वानर अग्नि सब देवोंके समीप प्रदीप्त करनेवालोंके द्वारा प्रदीप्त किया जाता है। प्रदीप्त होकर यह सर्वत्र संचार करता है। ऐसे अग्निके लिए स्तोत्र बोलने चाहिए ॥ १ ॥

यह अग्नि वृष्टि करता है। वृष्टिसे नदियां भरपूर भरकर बहती हैं। यह अग्नि पृथिवी पर तथा आकाशमें है और वहां पूजा लेता है। वही अग्नि यहां हवनसे बढता हुआ मानवी प्रजाओंमें यज्ञोंके अन्दर प्रकाश रहा है ॥ २ ॥

पुरु राजाके पास अग्नि था। वह अग्नि उसका सहायक था। पुरु राजाके लिए इसने शत्रुके नगरोंको जलाया, तब इस अग्निकी भीतिसे धन आदि सबको त्याग कर शत्रुकी सारी प्रजायें इधर उधर भागने लगीं। युद्धके समय शत्रुकी नगरियोंको जलाने पर शत्रुकी प्रजायें जल जानेके डरसे इधर उधर भागते समय सब सुख साधन फेंककर भागने लगती हैं ॥ ३ ॥

६१ त्वाम॑ग्ने हरि॑तो वावशा॒ना गिरः॑ सचन्ते॒ धुन॑यो घृ॒ताचीः॑ ।
पतिं॑ कृष्टी॒नां र॒थ्यं॑ रयी॒णां वै॑श्वान॒रमु॒षसां॑ के॒तुमह्ना॑म् ॥ ५ ॥
६२ त्वे अ॑सु॒र्यं१ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्वन् क्रतुं॒ हि ते॑ मित्रमहो॒ जुषन्त॑ ।
त्वं दस्यूँ॒रोक॑सो अग्न आज उ॒रु ज्योति॑र्ज॒नय॒न्नार्या॑य ॥ ६ ॥
६३ स जाय॑मानः पर॒मे व्यो॑मन् वा॒युर्न पाथः॒ परि॑ पासि स॒द्यः ।
त्वं भुव॑ना ज॒नय॑न्न॒भि क्र॒न्नप॑त्याय जातवेदो दश॒स्यन् ॥ ७ ॥

अर्थ— [६१] हे अग्ने ! (कृष्टीनां पतिं) कृषि करनेवाली प्रजाके स्वामी, (रयीणां रथ्यं) धनोंके संचालक, (उषसां अह्नां केतुं) उषाओं सहित दिनोंके ध्वजके समान (वैश्वानरं त्वां) तुझ वैश्वानरको (वावशाना हरितः) हिनहिनानेवाले घोडे (सचन्ते) सेवा करते हैं। तथा (घृताचीः धुनयः गिरः सचन्ते) घीकी हविके साथ मिलाकर पापको धोनेवाली स्तुतियां भी तेरी सेवा करती हैं ॥ ५ ॥

[६२] हे (मित्रमहः) मित्रके महत्त्वको बढानेवाले अग्ने ! (त्वे वसवः असुर्यं नि ऋण्वन्) तेरे अन्दर वसु देवोंने बलको स्थापित किया है। तथा उन्होंने (ते क्रतुं जुषन्त हि) तेरी प्रीति करनेवाले कर्मको किया है। तथा (त्वं आर्याय उरु ज्योतिः जनयन्) तूने आर्योंके लिये विशेष प्रकाश उत्पन्न करके (दस्यून् ओकसः आजः) शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड दिया है ॥ ६ ॥

[६३] (सः त्वं) वह तू (परमे व्योमन् जायमानः) अति दूरके आकाशमें सूर्य रूपसे उत्पन्न होकर (वायुः न) वायुके समान (पाथः सद्यः परिपासि) सोमरसको प्रथम ही सत्वर पीता है। हे (जातवेदः) वेदके प्रकाशक ! (त्वं भुवना जनयन्) तू भुवनों-जलोंको प्रकट करता हुआ (अपत्याय दशस्यन्) संतानकी कामनाओंको पूर्ण करता है और (अभिक्रन्) गर्जना करता है, विद्युत् रूपसे बडा शब्द करता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— अग्निके व्रतका पालन सब करते हैं, उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। वह स्वयं अजस्र प्रकाशसे प्रकाशित होकर अपने प्रकाशसे सब स्थानोंको प्रकाशित करता है। सब मनुष्योंको कार्य करनेके लिए विस्तृत स्थान मिलता है। यही इस अग्निका द्यावापृथिवीको विस्तृत करना है ॥ ४ ॥

सूर्यरूपी अग्नि उषाओं और दिनोंका मानो ध्वज ही है। दिनमें ही सब व्यवहार होकर धन प्राप्त होते हैं, इसलिए वह धनोंका प्रेरक है। यह सूर्य मानों धनोंका रथ ही है। इस कारण वह प्रजाओंका और कृषकोंका हितकारी है। इस अग्निको घोडोंसे संयुक्त रथमें रखकर चारों ओर घुमाते हैं, उस समय स्तोता इसकी प्रशंसा गाते हैं और साथ साथ हवन भी करते हैं ॥ ५ ॥

इस अग्निमें विलक्षण बल है। वह बल इसमें वसुओंने स्थापित किया है। इस बलसे युक्त अग्नि जिसका सहायक होता है, उसका बल और महत्त्व बढा देता है। यह अग्निका व्रत है। उसके नियमोंके अनुसार जो चलता है, उसीका यह सहायक होता है। पुरुषार्थी ही आर्य होते हैं। इन आर्योंका यह अग्नि सदा सहायक होता है ॥ ६ ॥

अग्नि द्युलोकमें सूर्यरूपसे प्रकाशता है और अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपसे रहकर गर्जना करता है और पृथ्वी पर रहकर मनुष्योंकी सहायता अनेक प्रकारसे करता है। अग्निका वाणीसे संबंध विद्युत् रूपी अग्निकी मेघगर्जनासे स्पष्ट अनुभवमें आता है। अग्निसे वाक्‌ प्रादुर्भूत हुई और विद्युदग्निसे गर्जना हुई। यह अग्निसे वाणीका सम्बन्ध है। अग्निसे जल उत्पन्न होनेका अनुभव भी अन्तरिक्षमें ही होता है। मेघोंमें विद्युत् चमकती है और बादमें वृष्टि होती है। यही अग्निसे जलका उत्पन्न होना है ॥ ७ ॥

६४ तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥ ८ ॥
६५ तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥ ९ ॥

[६]

(ऋषिः- ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६६ प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥ १ ॥

अर्थ— [६४] हे (जातवेद वैश्वानर अग्ने) वेदके प्रकट करनेवाले विश्वके नेता अग्ने ! (तां द्युमतीं इषं अस्मे आ ईरयस्व) इस दीप्तिमय वृष्टिको हमारे पास प्रेरित करो । (यया राधः पिन्वसि) जिससे धनका पालन तू करता है, और हे (विश्ववार) सबको स्वीकार करने योग्य अग्ने ! (पृथु श्रवः दाशुषे मर्त्याय) बडा यश दाता मनुष्यके लिये तू ही देता है ॥ ८ ॥

[६५] हे (वैश्वानर अग्ने) सब मानवोंका हित करनेवाले अग्ने ! (मघवद्भ्यः नः) हविरूपी धन धारण करनेवाले हमारे लिये (तं पुरुक्षुं रयिं) इस बहुत यश देनेवाले धनको तथा (श्रुत्यं वाजं युवस्व) कीर्ति बढानेवाले बलको दो । हे अग्ने ! (वसुभिः रुद्रेभिः सजोषाः) वसु और रुद्रोंके साथ रहनेवाला तू (नः महि शर्म यच्छ) हमारे लिये सुख दो ॥ ९ ॥

[६]

[६६] (दारुं वन्दे) शत्रुओंकी नगरियोंका नाश करनेवाले वीरको मैं प्रणाम करता हूं । (वंदमानः) उसको नमन करता हुआ मैं (सम्राजः असुरस्य पुंसः) सम्राट् बलवान् वीर (कृष्टीनां अनुमाद्यस्य) प्रजाओं द्वारा अनुमोदित (तवसः इन्द्रस्य इव) बलवान् इन्द्रके समान वैश्वानर अग्निके (कृतानि विवक्मि) किये कर्मोंका वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— अन्तरिक्षस्थ मेघोंमें स्थित अग्नि विद्युत्रूपसे चमकती है और वृष्टिको प्रेरित करती है, जिससे लोगोंको धान्यरूपी धन प्राप्त होता है । इस धान्यका दान यज्ञमें मनुष्य करते हैं । इस प्रकार ' विद्युत्-अग्नि-वृष्टि-धान्य-धन-दान-यज्ञ-यश ' का सम्बन्ध इस प्रकार है । अग्निसे यह सब होता है ॥ ८ ॥

अपने पास जो हवि है, उसे हम अग्निको प्रदान करते हैं और वह अग्नि हमें धन, बल, यश और सुख दे । हमें धन चाहिए, बल चाहिए, यश और सुख चाहिए । वह इस अग्निकी सहायतासे मिल सकता है । मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी बने और सब लोगोंके हित करनेका कार्य करे । धन ऐसा प्राप्त करे कि जिससे सबका जीवन सुखमय हो । बल ऐसा प्राप्त करे कि जिससे मनुष्यका यश सर्वत्र फैले और सबको अधिकसे अधिक सुख प्राप्त होता रहे । मानवोंके लिए अग्नि आदर्श है, इस आदर्शके अनुसार मनुष्य अपना जीवन बनाये ॥ ९ ॥

वैश्वानर अग्नि सब प्रजाओंका हित करनेवाला है । यह वैश्वानर सम्राट्, बलवान् और वीर है तथा प्रजाओं द्वारा अनुमोदित है अर्थात् प्रजाओंका अनुमोदन इसे प्राप्त है । इन्द्रके समान यह बलिष्ठ है । इसने वैसे पराक्रम भी किए हैं ॥ १ ॥

×

६७ कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥ २ ॥

६८ न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान् दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥ ३ ॥

६९ यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥

अर्थ— [६७] (कविं केतुं) ज्ञानी, सूचक, अथवा ज्ञापक (अद्रेः धासिं भानुं) किलोंका धारक, प्रकाशक, (रोदस्योः शं राज्यं) द्युलोक और पृथिवीका सुखकारक रीतिसे राज्य करनेवाला, ऐसे (पुरंदरस्य अग्नेः पूर्व्या महानि व्रतानि) शत्रुके किले तोडनेवाले अग्निके पुरातन बडे महान पुरुषार्थोंका (गीर्भिः आ विवासे) अपनी वाणीसे मैं वर्णन करता हूं। इस वर्णनसे मैं उसकी सेवा करता हूं ॥ २ ॥

[६८] (अक्रतून् ग्रथिनः) सत्कर्म न करनेवाले, वृथा भाषण करनेवाले, (मृध्रवाचः पणीन्) हिंसक वाणी बोलनेवाले, पणी अर्थात् सूदका व्यवहार करनेवाले, (अश्रद्धान् अवृधान्) अश्रद्ध और हीन अवस्थाको पहुंचनेवाले (अयज्ञान् तान् दस्यून्) यज्ञ न करनेवाले उन दस्युओंको (अग्निः प्र प्र विवाय) अग्नि निःसंदेह हटा देता है, हीन कर देता है, दूर करता है। (पूर्वः अग्निः) मुख्य अग्नि (अ-यज्यून्) यज्ञ न करनेवालोंको (अ-परान् चकार) कनिष्ठ बना देता है। श्रेष्ठ स्थानपर नहीं रखता ॥ ३ ॥

[६९] (नृतमः) उत्तम नेताने (अपाचीने तमसि) गाढ अन्धकारमें (मदन्तीः) निमग्न होकर आनंद माननेवाली परन्तु स्तुति करनेवाली प्रजाको (शचीभिः प्राचीः चकार) प्रज्ञाबुद्धिसे ऋजुगामी किया। (तं वस्वः ईशानं) उस धनके स्वामी (अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं) अदीन परंतु सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले (अग्निं गृणीषे) अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस तरह यह अग्नि ज्ञानी, प्रकाशक है, उसी तरह राजा भी ज्ञानी, दूरदर्शी, उत्तम प्रभावका सूचक, अपने किलों और नगरोंका संरक्षक, तेजस्वी और प्रजाको सुख देनेके लिए ही राज्य करनेवाला हो। ऐसे वीर राजाके पराक्रमोंका उत्तम वर्णन किया जाए ॥ २ ॥

जो शुभकर्म नहीं करते, जो केवल वृथा भाषण ही करते रहते हैं, हिंसाको बढानेवाला भाषण करते हैं, जो सूदका व्यवहार करते हैं, जो अत्यधिक सूद लेते हैं, जो ईश्वरपर श्रद्धा नहीं रखते, जो हीन अवस्थाको प्राप्त होनेके ही व्यवहार करते हैं, जो यज्ञ नहीं करते, जो डाका डालते रहते हैं, इनको राजा उच्च अधिकारके स्थानोंपर न रखे। यदि ऐसे आदमी उच्च पदोंपर हों भी तो उन्हें उन पदों परसे हटा देवे और उन स्थानोंपर जो सदा प्रशस्त तम कर्म करते हैं, जो मित, पथ्य और हितकारी भाषण करते हैं, जो सूद आदिका व्यवहार नहीं करते, जो श्रद्धालु हैं, ऐसे उन्नतिशील मनुष्योंको ही उच्च पदोंपर राजा स्थापित करे ॥ ३ ॥

उत्तम नेताका यह कर्तव्य है कि वह गाढ अन्धकारमें पडी और वहीं आनन्द मनानेवाली प्रजाको उनकी प्रज्ञा जागृत करके सीधे उन्नतिके मार्गसे चलावे। ऐसे धनके स्वामी, आत्म सम्मान रखनेवाले तथा शत्रुका दमन करनेवाले अग्निके समान तेजस्वी वीरके गीत गाए जाएं ॥ ४ ॥

७० यो देह्यो३ अनमयद् वधस्नै — र्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्नि — र्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥ ५ ॥
७१ यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्यो — राग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥
७२ आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मा — दाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥ ७ ॥

[७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७३ प्र वो देवं चित् सहसानमग्नि — मश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान् त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥ १ ॥

अर्थ— [७०] (यः देह्यः वधस्नैः अनमयत्) जो आसुरी घातकोंको अपने आयुधोंसे विनम्र करता है, (यः उषसः अर्यपत्नीः चकार) जो सूर्य पत्नी उषाको निर्माण करता है । (सः यह्वः अग्निः सहोभिः विशः निरुध्य) उस महान् अग्निने अपनी शक्तियोंसे प्रजाका निरोध करके (नहुषः बलिहृतः चक्रे) उस प्रजाको राजाको कर देनेवाली बना दिया ॥ ५ ॥

[७१] (विश्वे जनासः शर्मन्) सब लोग अपने सुखके लिये (यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः) जिसकी उत्तम बुद्धिकी प्रार्थना करके (एवैः उप तस्थुः) अपने उत्तम कर्मोंके समीप खडे रहते हैं, वह (वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका हितकर्ता अग्नि (पित्रोः उपस्थे) द्यावा पृथिवीके बीचमें (वरं आससाद) श्रेष्ठ स्थानपर बैठ गया ॥ ६ ॥

[७२] (वैश्वानरः अग्निः देवः) सब जनोंका हित करनेवाला अग्नि देव (बुध्न्या वसूनि सूर्यस्य उदिता आददे) अन्तरिक्षके अन्धकारको सूर्यके उदयके समय लेता है । (समुद्रात् अवरात् पृथिव्याः) समुद्रसे तथा इधरकी पृथिवीकी ओरसे (आ) अन्धकारको लेता है । (परस्मात् दिवः आददे) परले द्युलोकसे भी अन्धकारको लेता है । सबको प्रकाशित करता है ॥ ७ ॥

[७]

[७३] (वः देवं सहसानं) प्रकाशमान और राक्षसोंके पराभव कर्ता (अग्निं अश्वं इव वाजिनं) अग्रणीको अश्वके समान वेगवान जानकर मैं (नमोभिः चित् प्र हिषे) अन्नोंके साथ प्रेरित करता हूं । (विद्वान् नः अध्वरस्य दूतः भव) तू सब जानता है । इसलिए हमारे हिंसारहित यज्ञकर्मका तू दूत हो (त्मना देवेषु मितद्रुः विविदे) स्वयं देवोंमें वृक्षोंको जलानेवाला करके प्रसिद्ध हो ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रजाको सतानेवाले आसुरी गुण्डोंको अपने दण्डसे अथवा शस्त्रसे राजा नम्र तथा शासनानुकूल चलनेवाली बनावे । महान् शासक अपने शासनके प्रबन्धसे प्रजाको निरुद्ध करके कर देनेवाली बनाए । चूंकि राजा प्रजाका पालन करता है, इसलिए प्रजाको भी चाहिए कि वह अपने संरक्षणके लिए अपने अर्जित धनसे राजाको योग्य कर देवे । जो प्रजा आर्थिक दृष्ट्या सशक्त होने पर भी कर न दे, उसे जबर्दस्ती राजा कर देनेवाली बनाए ॥ ५ ॥

सब लोग अपनी सुरक्षाके लिए जिसकी सद्बुद्धिकी अपेक्षा करते हैं, और अपने उत्तम कर्म जिसके सामने रखते हैं, वह सर्वजन हितकारी वीर उच्च स्थान पर विराजने योग्य है । सब लोग अपनी सुरक्षाके लिए जिसकी सद्बुद्धिकी अपेक्षा करते हैं, वही वीर श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

सब जनोंका हित करनेके लिए उन सब जनोंका अज्ञान पूर्णतया दूर करना चाहिए । बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर तथा विश्व सम्बन्धी सब अज्ञानान्धकार दूर करना चाहिए । जिस तरह विश्वका अन्धकार दूर होनेसे सब मार्ग स्पष्ट रीतिसे दिखाई देते हैं, उसी तरह मानवोंके अज्ञान दूर होनेसे उन्हें भी उन्नतिके मार्ग दिखाई देंगे । इसलिए राजा या नेताको चाहिए कि वह प्रजाके अज्ञानको दूर करनेका प्रयत्न करें ॥ ७ ॥

७४ आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन् पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥ २ ॥

७५ प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥

७६ सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥

अर्थ— [७४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मन्द्रः) आनंदित होकर (देवानां सख्यं जुषाणः) देवोंके साथ मित्रता करनेवाला (पृथिव्याः सानुं शुष्मैः) पृथ्वीके ऊपरके उच्च भागको अपने शोषक तेजोंसे (नदयन्) शब्द युक्त करके (जंभेभिः विश्वं वनानि उशधक्) अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको इच्छानुसार जलाता हुआ (स्वाः पथ्याः अनु आ आ याहि) अपने मार्गोंसे इस ओर आ जा ॥ २ ॥

[७५] (यज्ञः प्राचीनः) यह पूर्वाभिमुख है । (बर्हिः हि सुधितं) दर्भासन अच्छी तरह रखा है । (ईळितः अग्निः प्रीणीत) प्रशंसित अग्नि तृप्त होता है । (होता न) और होता भी वैसा ही होता है । (विश्ववारे मातरा) विश्वके द्वारा वरणीय द्यावा पृथिवी (हुवानः) बुलाये जा रहे हैं । हे (यविष्ठ) तरुण अग्ने ! तू (यतः) जब (सुशेवः जज्ञिषे) उत्तम सेवा करने योग्य होता है, तब यह सब ऐसा ही होता है ॥ ३ ॥

[७६] (विचेतसः मानुषासः) विशेष बुद्धिमान् मनुष्य (अध्वरे रथिरं सद्यः जनन्त) हिंसारहित यज्ञमें रथमें बैठनेवाले नेता अग्निको शीघ्रतासे उत्पन्न करते हैं । (यः एषां) जो इनके हविका हवन करता है वह (विश्पतिः मन्द्रः) प्रजाओंका पालक आनन्द बढानेवाला है, (मधुवचा ऋतावा) वह मधुरभाषी सत्यनिष्ठ अग्नि (विशां दुरोणे अधायि) प्रजाओंके घरमें स्थापित हुआ है ॥ ४ ॥

भावार्थ— राक्षसों अथवा शत्रुओंका पराभव करनेवाला तेजस्वी वीर अग्रणी होता है । जो घोडेके समान वेगवान् तथा बलवान् होता है, उसका प्रणामोंसे, अन्नोंसे तथा धनोंसे सत्कार करना चाहिए । जो विद्वान् हो वही यज्ञोंमें कार्य करे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तू आनन्दित होकर देवोंके साथ मित्रता कर । पृथ्वीके ऊपरके उच्च भागको अपनी शोषक ज्वालाओंसे तप्त कर तथा अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको अपनी इच्छानुसार जलाता हुआ अपने मार्गोंसे इस ओर आ ॥ २ ॥

यज्ञशालाका द्वार पूर्वाभिमुख हो, दर्भका आसन बिछा हुआ हो । कुण्डमें प्रशंसित अग्नि प्रदीप्त होकर तृप्त हो, उसके साथ ही यज्ञ करनेवाला होता भी हवि देकर स्वयं भी तृप्त हो । द्युलोक और पृथ्वीलोकका आवाहन हो रहा है । जब यह अग्नि सेवाके योग्य होता है, तब ये सब काम शुरु होते हैं । अर्थात् जब अग्नि प्रदीप्त होकर आहुतिके योग्य बन जाता है, तब ये सभी काम शुरु हो जाते हैं ॥ ३ ॥

विशेष ज्ञानी मनुष्य हिंसारहित कर्म करते हैं और उसमें वीरका सत्कार करते हैं, क्योंकि वीर ही ऐसे कर्म कर सकता है । प्रजाओंका पालक यह राजा सबका आनन्द बढाता हुआ, मीठा भाषण करता हुआ तथा सत्यनिष्ठ रहकर प्रजाओंके स्थानोंमें ही रहे, प्रजाजनोंमें ही रहे । अपने राष्ट्रमें ही रहे । जो राजा प्रजाओंमें रहता है, वह प्रजाओंके सुखदुःखसे अच्छी तरह परिचित होता है । राजा प्रजाओंके सुखदुःखको जानकर हरतरहसे उनका हित करे ॥ ४ ॥

७७ असादि वृतो वह्निराजगन्वा-नग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥ ५ ॥
७८ एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥ ६ ॥
७९ नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८० इन्धे राजा समर्यो नमोभि-र्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥ १ ॥

अर्थ— [७७] (वृतः वह्निः ब्रह्मा) वरण किया हुआ महान् ज्ञानी (विधर्ता अग्निः) विशेष रीतिसे धारण करनेवाला अग्नि (आजगन्वान्) आ गया है और वह (नृषदने असादि) मनुष्योंके स्थानमें बैठा है । (यं द्यौः च पृथिवी च वावृधाते) जिसको द्युलोक और भूलोक बढाते हैं । और (यं विश्ववारं होता आ यजाति) जिस सबके द्वारा वरण करने योग्यका यजन होता करता है ॥ ५ ॥

[७८] (एते द्युम्नेभिः विश्वं आ तिरंत) ये हमारे लोग अन्नोंसे सब पोष्यवर्गको पुष्ट कर रहे हैं । (ये नर्याः मन्त्रं वा अरं अतक्षन्) ये मनुष्य मनन करने योग्य रीतिसे संस्कार करते हैं । (ये विशः श्रोषमाणाः प्रतिरन्त) जो प्रजाजन इसको सुनकर वीरको बढाते हैं (मे ये ऋतस्य आ दीधयन्) और मेरे वे लोग सत्यको प्रकाशित करते हैं ॥ ६ ॥

[७९] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (वसिष्ठाः वयं) हम सब वसिष्ठ (वसूनां ईशानं त्वां) धनोंके स्वामी तुमको हमारे (स्तोतृभ्यः मघवद्भ्यः इषं आनट्) स्तोता और हवि अर्पण करनेवालोंके लिये यह अन्न पहुंचा । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करके हमें सुरक्षित कर दे ॥ ७ ॥

[८]

[८०] (राजा अर्यः अग्निः नमोभिः सं इन्धे) यह श्रेष्ठ राजा-अग्नि-अन्नोंसे प्रदीप्त हो रहा है । (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतं) जिसका रूप घीके द्वारा हवन करके बढाया जा रहा है । (नरः सबाधः हव्येभिः ईळते) मनुष्य मिलकर हव्योंद्वारा इसको पूजते हैं । वह (अग्निः उषसां अग्रे आ अशोचि) अग्नि उषाओंके सामने प्रकाशित हो रहा है ॥ १ ॥

भावार्थ— जिस अग्निको द्युलोक और पृथिवी लोक बढाते हैं, जिसका उत्तम रीतिसे वरण करनेपर ही योग्य यज्ञकर्म हो सकते हैं, वह अग्नि यज्ञवेदिमें आकर बैठता है और सम्यक् रीतिसे वृत हुए ज्ञानीके द्वारा वह प्रदीप्त होता है ॥ ५ ॥

जब बडे बडे यज्ञोंके उत्सव होते हैं, उस समयका वर्णन इस मंत्रमें है । जब यज्ञ चलते हैं, तब यजमानके सेवक वर्ग यज्ञमें आए हुए लोगोंको अन्न धान्यादि देकर पुष्ट करता है, कुछ अध्वर्यु आदि मननीय संस्कार करनेमें व्यस्त रहते हैं, कुछ लोग इस अग्निको प्रदीप्त करनेके कार्यमें लगे रहते हैं, तो कुछ लोग ज्ञान या सत्यको प्रकाशित करते हैं, अर्थात् सत्यका उपदेश देते हैं ॥ ६ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! हम वसिष्ठ गोत्रके हैं, अथवा हम ऐश्वर्यमें स्थित अर्थात् ऐश्वर्यशाली हैं । ऐश्वर्यशाली होनेपर भी हम हे अग्निदेव ! तुम्हें हवि अर्पण करते हैं । मनुष्य भरपूर धनवान् होनेपर भी परमात्माको न भूले ॥ ७ ॥

८१ अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥ २ ॥
८२ कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥ ३ ॥
८३ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥ ४ ॥
८४ असन्नित् त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥

अर्थ— [८१] (स्य अयं होता मन्द्र यह्वः अग्निः) वह हवन कर्ता सुखदायी बडा अग्नि (मनुषः सुमहान् अवेदि) मानवोंमें अत्यंत महान् करके प्रसिद्ध है । वह (भाः वि अकः) प्रकाश करता है । (कृष्णपविः पृथिव्यां ओषधीभिः ववक्षे) वह काले मार्गसे जानेवाला अग्नि इस पृथिवीपर औषधियोंसे – काष्ठोंसे – बढता है ॥ २ ॥

[८२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कया नः सुवृक्तिं वि वसः) किससे हमारी उत्तम स्तुतिको स्वीकारता है ? (कः स्वधां शस्यमानः ऋणवः) किस अन्नको लेकर स्तुति करनेपर तू हमें प्राप्त होगा ? हे (सु दत्र) उत्तम दान देनेवाले ! हम (कदा दुष्टरस्य साधोः रायः पतयः) कब शत्रुके लिये अप्राप्य उत्तम धनके स्वामी और उस (वंतारः भवेम) धनका बटवारा करनेवाले होंगे ? ॥ ३ ॥

[८३] (अयं अग्निः भरतस्य प्रप्र शृण्वे) यह अग्नि भरतके यज्ञमें प्रसिद्ध हुआ है । (यत् सूर्यः न बृहद् भाः विरोचते) तब सूर्यके समान वह अत्यंत तेजसे प्रकाशता रहा । (यः पृतनासु पुरुं अभि तस्थौ) वह अग्नि युद्धोंमें पुरु नामक असुरके विरोधमें खडा रहा, (द्युतानः दैव्यः अतिथिः शुशोच) वह तेजस्वी दिव्य अतिथिके समान पूज्य होकर प्रज्वलित हुआ है ॥ ४ ॥

[८४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वे आहवनानि भूरि असन् इत्) तेरे अन्दर हविर्द्रव्यकी आहुतियाँ बहुत डाली जाती हैं । तू (विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः) अनंत तेजोंसे सुप्रसन्न होता है । (स्तुतः चित् शृण्विषे) स्तुति करनेपर तू हमको श्रवण करता है । हे (सुजात) उत्तम जन्मवाले अग्ने ! (गृणानः स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्तुति करनेपर अपने शरीरका वर्धन कर बडा हो जा ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि एक श्रेष्ठ राजा है । वह हविरूप अन्नोंसे प्रदीप्त किया जाता है । इसका तेजस्वी रूप घीके द्वारा बढाया जाता है । जब कुण्डमें घीकी आहुतियाँ दी जाती हैं, तब अग्निकी ज्वालायें बढती हैं और उसका रूप भी बढता है । तब मनुष्य यज्ञमें संगठित होकर हवि प्रदान करके इस अग्निको पूजते हैं । तब वह अग्नि उषाओंके सामने प्रकाशता है ॥ १ ॥

हवनको पूर्ण करके सुखको प्रदान करनेवाला यह अग्नि मनुष्योंमें बहुत महान् है, वह सर्वत्र प्रकाश करता है । धूमके द्वारा ज्ञात होनेवाला वह अग्नि इस पृथ्वीपर काष्ठ आदिसे बढाया जाता है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू हमारी प्रार्थनाओंको स्वीकार करके हमें ऐसा धन प्रदान कर कि जो शत्रुओंके लिए अप्राप्य हो । धन ऐसा होना चाहिए कि जो शत्रुओंके लिए अप्राप्य हो । हम वीर हों और हमें धन मिलें । उस धनको हम अपने मित्रोंमें बांट सकें ॥ ३ ॥

युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेके लिए अग्नि सदा स्थिर रहता है । इसका अर्थ यह है कि शत्रुपर अग्न्यस्त्रका प्रयोग करके उसका पराभव करना चाहिए । युद्धोंमें प्रदीप्त अग्नि शत्रुपर फेंका जाता है । अग्नि अस्त्र यही है । भरत पदका अर्थ ' भरणपोषणमें समर्थ ' और पुरुका अर्थ ' नगरमें निवास करनेवाला पुरवासी ' है अथवा ' सभी भोगसाधनोंसे परिपूर्ण शत्रु ' ही पुरु है । अग्निने भरतका हित और पुरुका नाश किया ॥ ४ ॥

राजा सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक बर्ताव करे । उत्तम और सु प्रसन्न चित्तसे वीरोंके साथ बात करे । वह सदा हंसते मुखवाला रहे । मनुष्य स्वयं प्रयत्न करके अपने शरीरको बढावे ॥ ५ ॥

८५ इदं वचः शतसाः संसहस्र—मुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥

८६ नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८७ अबोधि जार उषसामुपस्था—द्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तो—र्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥ १ ॥

अर्थ— [८५] (शतसाः संसहस्रं द्विबर्हाः) सैकडों और सहस्रों प्रकारका धन पास रखनेवाले तथा विद्या और कर्मसे श्रेष्ठ बने वसिष्ठने (इदं वचः अग्नये उत् अजनिष्ट) यह स्तोत्र अग्निके लिये बनाया है। (यत् द्युमत् अमीवचातनं रक्षोहा) जो तेजस्वी, रोग दूर करनेवाला, राक्षसोंको दूर करनेवाला तथा जो (आपये शं भवाति) बांधवोंके लिये सुखदायी होता है ॥ ६ ॥

[८६] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (वसिष्ठाः वयं) हम सब वसिष्ठ (वसूनां ईशानं त्वां) धनोंके स्वामी तुझको हमारे (स्तोतृभ्यः मघवद्भ्यः इषं आनट्) स्तोता और हवि अर्पण करनेवालोंके लिए यह अन्न पहुंचा। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) हे देवो ! तुम सदा ही अपने कल्याणकारक साधनोंसे हमारा पालन करो ॥ ७ ॥

[९]

[८७] (जारः होता मन्द्रः) सबकी वयोहानि करनेवाला, देवोंको आह्वान करनेवाला, आनन्द देनेवाला (कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी, पवित्र करनेवाला (उषसां उपस्थात् अबोधि) उषाओंके मध्यमें जाग उठा। (उभयस्य जन्तोः केतुं दधाति) दोनों प्रकारके प्राणियोंको ज्ञान देता है। (देवेषु हव्या) देवोंमें हवन द्रव्योंको और (सुकृत्सु द्रविणं) पुण्य कर्म करनेवालोंको धन देता है ॥ १ ॥

भावार्थ—अनेकों तरहका धन अपने पास रखनेवाले तथा विद्या और कर्ममें श्रेष्ठ वसिष्ठने अग्निकी स्तोत्रोंसे स्तुति की। यह अग्नि अनेक रोगोंको दूर करनेवाला, रोगकृमी रूप राक्षसोंको दूर करनेवाला और इसकी स्तुति करनेवालोंके लिए यह सुखदायी होता है ॥ ६ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! हम वसिष्ठ गोत्रके हैं, अथवा हम ऐश्वर्यमें स्थित अर्थात् ऐश्वर्यशाली हैं। ऐश्वर्यशाली होने पर भी हम, हे अग्निदेव ! तुम्हें हवि अर्पण करते हैं। मनुष्य भरपूर धनवान् होने पर भी परमात्माको न भूले ॥ ७ ॥

जार शब्दका अर्थ ' आयु नष्ट करनेवाला ' भी होता है और ' स्तुति करनेवाला ' भी। अग्निके जगाते ही अर्थात् प्रदीप्त होते ही यज्ञ स्थानमें स्तुतिके मंत्र बोले जाते हैं। अन्यान्य देवोंको भी बुलाया जाता है। यज्ञ कर्मका आरंभ होता है। इस कारण सभी आनन्दित होते हैं। यह अग्नि बहुत ही ज्ञानी और परिशोधन करनेवाला है। यह उषःकालमें ही जागृत होता है, यह स्वयं उठकर मनुष्यों, पशुओं तथा पक्षियोंको जगाता है। इसी तरह ज्ञानी उषःकालमें उठता है, अपने शरीर तथा आत्माकी पवित्रताके कर्म करता है। देवोंको प्रार्थनासे बुलाता है। स्वयं आनन्द प्रसन्न रहकर दूसरोंको भी प्रसन्न रखता है ॥ १ ॥

८८ स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूना स्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥

८९ अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रे ऽपां गर्भः प्रस्व आ विवेश ॥ ३ ॥

९० ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥ ४ ॥

९१ अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [८८] (सः सुक्रतुः) वह उत्तम कर्म करनेवाला है, (यः पणीनां दुरः वि) जिसने पणियोंके-गौको चोरनेवालेके-द्वार खोल दिये । (पुरुभोजसं अर्कं नः पुनानः) वह अधिक दुग्धरूपी भोजन देनेवाले पूजा करने योग्य गौके झुण्डको ढूंढता है । (होता मन्द्रः दमूनाः) वह देवोंको बुलानेवाला, आनंददायक, मनः संयमी है । (राम्याणां विशां तमः तिरः ददृशे) रात्रियोंका तथा प्रजाओंका अन्धेरा दूर करता है ॥ २ ॥

[८९] (यः अमूरः कविः) जो अमूढ और ज्ञानी (अदितिः विवस्वान्) अदीन और तेजस्वी (सुसंसत् मित्रः अतिथिः) उत्तम साथी, मित्र और पूज्य (नः शिवः) हमारे लिये शुभकारी (चित्रभानुः) विशेष तेजस्वी (उषसां अग्रे भाति) उषाओंके अग्र भागमें प्रकाशता है, (सः अपां गर्भः) वह जलोंका उत्पादक (प्रस्वः आ विवेश) ओषधियोंके अन्दर प्रविष्ट हुआ है ॥ ३ ॥

[९०] (वः) तू (मनुषः युगेषु) मनुष्योंके युगोंमें यज्ञके समयमें (ईळेन्यः) स्तुत्य है । (यः जातवेदाः) जो अग्नि धन और वेदका उत्पादक है, (समनगाः अशुचत्) युद्धमें सामना करनेके समयमें वह अधिक तेजस्वी होता है । (सु संदृशा भानुना) उत्तम दर्शन योग्य तेजसे (विभाति) वह प्रकाशता है । उस (समिधानं गावः प्रति बुधन्त) प्रदीप्त होनेवाले अग्निको गौवें अथवा स्तुतियाँ जगाती हैं ॥ ४ ॥

[९१] हे (अग्ने) अग्ने ! (दूत्यं याहि) दूत कर्म करनेके लिये तू जा । (देवान् अच्छ) देवोंके प्रति जा । (गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः) संघमें रहकर ब्रह्म-स्तोत्र-करनेवाले हम जैसोंका विनाश न कर । (सरस्वतीं मरुतः अश्विना अपः) सरस्वती, मरुत्, अश्विनौ और आप (विश्वान् देवान् रत्नधेयाय यक्षि) विश्वेदेवोंको रत्नोंका दान हमें देनेके लिये सुपूजित कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्नि उत्तम कर्म करता है, चोरोंको पकडता है और उनके द्वार खोलकर गौओंको मुक्त करता है । इसके बाद ये गौवें अधिक दूध देती हैं । वह अग्नि यज्ञोंका प्रेरक, सबको आनन्द देनेवाला तथा संयमी है । वह अन्धेरा दूर करता है, इसी तरह ज्ञानी प्रजाओंमें अज्ञानके अन्धकार को दूर करे ॥ २ ॥

वह अग्नि मूढ नहीं है । वह ज्ञानी, अदीन, तेजस्वी, उत्तम मित्र, पूज्य, शुभकारी, प्रकाशमान्, जलोंका उत्पादक, उषाओंका प्रकाशक और औषधियोंमें प्रविष्ट होनेवाला है ॥ ३ ॥

ज्ञानी हर समयमें स्तुति करने योग्य है । जो ज्ञान तथा धन उत्पन्न करता है, वह शत्रुके साथ युद्ध करनेमें भी अधिक उत्साही दीखता है । वह दर्शनीय तेजसे प्रकाशित होता है । इस तेजस्वी ज्ञानीके लिए गौवें प्राप्त होती हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तू दौत्य कर्म करनेके लिए जा । तू सीधा देवोंके पास जा । समुदायमें रहकर तेरी स्तुति करनेवालोंका तू विनाश मत कर । तू सरस्वती, मरुत् आदि सभी देवोंकी पूजा कर ताकि वे हमें रत्नोंको प्रदान करनेके लिए प्रेरित हों ॥५॥

९२ त्वाम॑ग्ने स॒मिधा॒नो वसि॑ष्ठो॒ जरू॑थं ह॒न् यक्षि॑ रा॒ये पुरं॑धिम् ।
पु॒रु॒णी॒था जा॑तवेदो जरस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ६ ॥

[१०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

९३ उ॒षो न जा॒रः पृ॒थु पाजो॑ अश्रेद् दवि॑द्युत॒द् दीद्य॒च्छोशु॑चानः ।
वृषा॒ हरि॒ः शुचि॒रा भा॑ति भा॒सा धियो॑ हि॒न्वा॒न उ॑श॒तीर॑जीगः ॥ १ ॥

९४ स्व१॒र्ण वस्तो॑रु॒षसा॑मरोचि य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना उ॒शिजो॒ न मन्म॑ ।
अ॒ग्निर्जन्मा॑नि दे॒व आ वि वि॒द्वान् द्र॒वद् दू॒तो दे॑व॒यावा॒ वनि॑ष्ठः ॥ २ ॥

अर्थ— [९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वां वसिष्ठः समिधानः) तुझे वसिष्ठ ऋषि प्रदीप्त करता है । (जरूथं हन्) तू कठोर भाषीका वध कर । (राये पुरंधिं यक्षि) धनके लिये बहुत बुद्धिमान् दिव्य विबुधोंका सत्कार कर । हे (जात वेदः) अग्ने ! (पुरुणीथा जरस्व) बहुत स्तोत्रोंसे देवोंकी स्तुति कर । (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात-) आप कल्याण करनेके साधनोंसे हम सबको सदा सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

[१०]

[९३] (उषः न जारः) उषाका नाश करनेवाला सूर्य है उसके समान, (पृथु पाजः अश्रेत्) बहुत तेज यह अग्नि अपनेमें धारण करता है । (दविद्युतत् दीद्यत् शोशुचानः) अत्यंत चमकनेवाला तेजस्वी और प्रकाशमान (वृषा हरिः शुचिः) बलवान् दुःखका हरण करनेवाला पवित्र अग्नि (धियः हिन्वानः) बुद्धि तथा कर्मोंको प्रेरित करता है और (भासा आभाति) अपने तेजसे प्रकाशता है । (उशतीः अजीगः) सुखकी कामना करनेवालोंको जगाता है ॥ १ ॥

[९४] (अग्निः वस्तोः) अग्नि दिनके समय (उषसां अग्रे) उषाओंके आगे (स्वः न अरोचि) सूर्यके समान प्रकाशता है । (उशिजः न यज्ञं तन्वानाः) सुखकी इच्छा करनेवाले जैसे यज्ञ फैलाते हैं और (मन्म) मननीय स्तोत्र पढते हैं, (विद्वान् दूतः देवयावा वनिष्ठः) वैसा विद्वान् देवोंका दूत देवोंके पास जानेवाला दाता (अग्निः देवः वि आ द्रवत्) अग्नि देव अनेक प्रकारसे देवोंके सहायतार्थ गमन करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तुझे वसिष्ठ ऋषि प्रदीप्त करता है । जो मनुष्य कठोर भाषण करता हो, उसका तू वध कर । तू धनके लिए बहुत बुद्धिमान् और दिव्य ज्ञानियोंका सत्कार कर । हे अग्ने ! तू हमारी स्तुति देवों तक पहुँचा तथा कल्याणकारी साधनोंसे वे देव हमें सदा सुरक्षित रखें ॥ ६ ॥

मनुष्य अपने अन्दर सूर्यके समान तेज धारण करें । अत्यन्त तेजस्वी, बलवान्, पवित्र और दुःख हरण करनेवाला ज्ञानी बुद्धियुक्त कर्मोंको करता है और अधिक तेजस्वी होता है । वह सुखप्राप्तिकी इच्छा करनेवाली प्रजाको जागृत करता है ॥ १ ॥

ज्ञानी सूर्यके समान तेजस्वी बने । सुखकी वृद्धिके लिए प्रशस्ततम कर्म करें और मननीय विचार भी मनमें धारण करें । ज्ञानी अन्य ज्ञानीयोंके साथ रहें और उनके साथ प्रगति करें । दिनमें चमकनेवाले सूर्यके समान मनुष्य तेजस्वी हों । सुख प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य प्रशस्तकर्मों और मननीय विचारोंका प्रचार करें । विद्वान् मनुष्य देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे विशेष प्रगति करें ॥ २ ॥

+

९५ अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३ ॥

९६ इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥ ४ ॥

९७ मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद् रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥ ५ ॥

अर्थ — [९५] (मतयः देवयन्तीः) बुद्धियाँ देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली और (द्रविणं भिक्षमाणाः गिरः) धनकी प्रार्थना करनेवाली वाणियाँ (सुसंदृशं सुप्रतीकं) उत्तम दर्शनीय, सुरूप, (स्वंचं हव्यवाहं) उत्तम प्रगतिशील, तथा हव्यका वहन करनेवाले, (मनुष्याणां अरतिं) मनुष्योंके स्वामी (अग्निं अच्छयन्ति) अग्निके समीप जाती हैं ॥ ३ ॥

[९६] हे अग्ने ! (वसुभिः सजोषाः) वसुओंके साथ मिलकर तू (नः इन्द्रं आवह) हमारे लिये इन्द्रको बुलाओ । (रुद्रेभिः बृहन्तं रुद्रं) रुद्रोंके साथ मिलकर महान रुद्रको बुलाओ । (आदित्यैः विश्वजन्यां अदितिं) आदित्योंके साथ मिलकर सर्वजन हितकारी अदिति माताको बुलाओ । (ऋक्वभिः विश्ववारं बृहस्पतिं आ वह) स्तुतियोग्य ज्ञानी अंगिरा देवोंके साथ मिलकर सबके द्वारा संसेवित बृहस्पतिको बुलाओ ॥ ४ ॥

[९७] (उशिजः विशः) सुखकी कामना करनेवाली प्रजाएं (मन्द्रं होतारं यविष्ठं अग्निं) स्तुत्य, आह्वान करनेवाले, तरुण अग्निकी (अध्वरेषु ईळते) हिंसा रहित यागोंमें स्तुति गाते हैं । (सः हि क्षपावान्) वह रात्रीमें रहनेवाला, (रयीणां देवान् यजथाय) धनोंके लिये देवोंका यजन करनेके लिये (अतन्द्रः दूतः अभवत्) आलस्य रहित कार्य करनेवाला दूत हुआ है ॥ ५ ॥

भावार्थ — मनुष्यकी बुद्धियां देवत्व प्राप्त करें तथा धनकी प्राप्तिकी इच्छा करें । सभी मनुष्य उत्तम और सुन्दर शरीरधारी, प्रगतिशील और बलवान् हों । मनुष्य देवत्व प्राप्त करके अपनी योग्यता बढायें और धनके लिए सुन्दर, प्रगतिशील, धनवान् और मानवोंके नेता अग्रणीके पास जाएं । मनुष्योंकी बुद्धियां देवत्व प्राप्त करनेका यत्न करें ॥ ३ ॥

जो प्रजाओंका निवास कराते हैं, उन्हें वसु कहते हैं । इन वसुओंका राजा इन्द्र है । इसी तरह राष्ट्रमें जो अग्रणी प्रजाओंका निवास कराते हैं, उन्हें वसु कहते हैं, उनका स्वामी राजा होता है । जो शत्रुओंको रुलाते हैं, उन वीर सैनिकोंका नाम रुद्र है और उन सैनिकोंके सेनापतिका नाम महारुद्र है । अदिति प्रजाको कहते हैं । प्रजाका नाश नहीं करना चाहिए । इस अदिति अर्थात् प्रजाके पुत्र राजाकी संज्ञा आदित्य है । यों तो राजा प्रजाका स्वामी है, पर चूं कि वह प्रजाओं द्वारा ही निर्वाचित होकर नियुक्त होता है, इसलिए उसे प्रजाका पुत्र भी कहा गया है । राष्ट्रमें जो ज्ञानी हैं, वे बृहस्पति हैं । इसप्रकार राष्ट्रमें वसु, रुद्र, अदिति, आदित्य और बृहस्पति आदि सभी तरहके देवता रहते हैं । वसु धनका नाम होनेसे वसुदेव धनके देव हैं । रुद्र वीर है और बृहस्पति ज्ञानी हैं । इस प्रकार बृहस्पति, रुद्र और वसु ये देव क्रमशः ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णके प्रतीक हैं । ये तीनों ही मिलकर राष्ट्र यज्ञको चलाते हैं ॥ ४ ॥

जो प्रजा सुखप्राप्तिकी इच्छा करे, वह प्रशंसनीय तरुण तेजस्वी अग्रणी नेताका प्रशस्ततम कर्म करनेके लिए तैय्यार रहे । नेता रात्रीमें जागृत रहे अर्थात् संकटके समय सदा सावधान रहे । सबको धनवान् और समृद्ध करे और अपना कर्तव्य आलस्य छोडकर करता रहे ॥ ५ ॥

[११]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

९८ महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवै- र्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥ १ ॥
९९ त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्ने ऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥ २ ॥
१०० त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान् भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥ ३ ॥
१०१ अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्या- ऽग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ता- ऽथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ४ ॥

---

[११]

अर्थ- [९८] हे अग्ने! (अध्वरस्य महान् प्रकेतः असि) तू हिंसारहित कर्मका महान ध्वज जैसा सूचक है। (त्वत् ऋते अमृताः न मादयन्ते) तेरे विना अमर देव आनंदित नहीं होते। (विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि) सब देवोंके समेत एक रथपर बैठकर आओ और (इह प्रथमः होता नि षद) यहां पहिला आह्वाता होकर बैठो ॥ १ ॥

[९९] हे (अग्ने) अग्ने! (अजिरं त्वां) प्रगतिशील तुझको (मानुषासः हविष्मन्तः) मनुष्य हवि लेकर (सदं इत्) सदा ही (दूत्याय ईळते) दूत कर्म करनेके लिये प्रार्थना करते हैं। (यस्य बर्हिः) जिसके आसनपर (देवैः आसदः) देवोंके साथ तू बैठता है (अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति) उसके लिये अच्छे दिन आते हैं ॥ २ ॥

[१००] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वे अन्तः अक्तोः वसूनि त्रिः चित् मर्त्याय दाशुषे) तेरे पास दिनमें तीन वार दाता मनुष्योंको देनेके लिये धन है ऐसा (प्रचिकितुः) सब जानते हैं। (मनुष्वत् इह नः दूतः भव, देवान् यक्षि) मनुके समान यहां हमारा दूत होकर देवोंका यजन कर और (नः अभिशस्ति-पावा भव) हमारा रक्षण शत्रुओंसे करनेवाला हो ॥ ३ ॥

[१०१] (बृहतः अध्वरस्य अग्निः ईशे) महान् हिंसारहित प्रशस्ततम कर्मका अग्नि अधिपति है। (विश्वस्य कृतस्य हविषः) सब संस्कार किये हविद्रव्यका अग्नि ही अधिपति है। (हि अस्य क्रतुं वसवः जुषन्त) इसके किये क्रतुका वसुदेव सेवन करते हैं (अथ देवाः हव्यवाहं दधिरे) और देवोंने अग्निको हव्योंका वहनकर्ता करके धारण किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— मनुष्य हिंसा और कुटिलता रहित कर्मोंका सर्वत्र प्रचार करे। जगत्में जो हिंसा और कुटिलता बढती है, उसका प्रतिकार सरल व्यवहार करनेवालोंके द्वारा ही हो सकता है। जिस राष्ट्रमें अहिंसा और सरलताका प्रचार करनेवाले नहीं होंगे, उस राष्ट्रमें श्रेष्ठ पुरुष प्रसन्नतापूर्वक नहीं रह सकते। इसलिए मनुष्य राष्ट्रके अहिंसा और सरलता युक्त कर्मोंका प्रचार करें ॥ १ ॥

राजा प्रगतिशील वीर मनुष्यको दूतकर्ममें नियुक्त करे। शीघ्रतासे कर्म करनेवाला मनुष्य दूत कर्म करनेके लिए अच्छा है। जिसके गृहमें ज्ञानीजन पधारते हैं, उसके दिन बहुत उत्तम होते हैं। दूत शीघ्रतासे कार्य करनेवाला और तत्परतासे कार्य करनेवाला हो। वह सुस्त न हो। जिसके घरके ज्ञानीजन पधारते हैं, उसके दिन सदा उत्तमतासे गुजारते हैं, पर जिनकी संगति बुरी होती है, वे रो रो कर दिन काटते हैं। इसलिए सदा ज्ञानियोंकी ही संगति करनी चाहिए ॥ २ ॥

यज्ञ करनेवाले दाता मनुष्योंको धन दिया जाए, धन इसी कार्यके लिए है, इस बातको मनुष्य सदा ध्यानमें रखें। मनुष्य ज्ञानियोंका सत्कार करे और उनको वह दुष्टोंसे रक्षा करे। जो सुरक्षा करनेवाला है, उसका धन आदिसे सत्कार करना चाहिए। मनुष्योंको चाहिए कि वह अपने घरमें दैवी सम्पत्तिवालोंका सत्कार करें और आसुरी लोगोंको दूर करे ॥ ३ ॥

१०२ आ अ॑ग्ने वह ह॒विर॑द्याय दे॒वा॒निन्द्र॑ज्येष्ठास इ॒ह मा॑दयन्ताम् ।
इ॒मं य॒ज्ञं दि॒वि दे॒वेषु॑ धेहि यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥ ५ ॥

[१२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०३ अग॑न्म म॒हा नम॑सा॒ यवि॑ष्ठं॒ यो दी॒दाय॒ समि॑द्धः॒ स्वे दु॑रो॒णे ।
चि॒त्रभा॑नुं॒ रोद॑सी अ॒न्तरु॒र्वी स्वा॑हुतं वि॒श्वत॑: प्र॒त्यञ्च॑म् ॥ १ ॥

१०४ स म॒ह्ना विश्वा॑ दुरि॒तानि॑ सा॒ह्वान॒ग्निः ष्ट॑वे॒ दम॒ आ जा॒तवे॑दाः ।
स नो॑ रक्षिषद्दुरि॒ताद॑व॒द्याद॒स्मान्गृ॑ण॒त उ॒त नो॑ म॒घोन॑: ॥ २ ॥

अर्थ— [१०२] हे (अग्ने) अग्ने! (हविरद्याय देवान् आ वह) अन्नके भक्षण करनेके लिये देवोंको यहां बुलाकर ले आ। (इह इन्द्रज्येष्ठासः मादयन्तां) इस यज्ञमें इन्द्र प्रमुख देव आनन्द प्रसन्न हों। (इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि) इस यज्ञको द्युलोकमें देवोंके अन्दर स्थापन कर। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सब हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ५ ॥

[१२]

[१०३] (यः स्वे दुरोणे समिद्धः दीदायः) जो अपने स्थानमें जागकर प्रकाशित होता है, और (उर्वी रोदसी अन्तः) विस्तीर्ण द्यावापृथिवीके मध्यमें (चित्रभानुं यविष्ठं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चं) विलक्षण प्रकाश देनेवाले तरुण उत्तम पदार्थोंसे हवन किये हुए और सब ओरसे संसेवित उस अग्निकी (नमसा अगन्म) नमस्कारसे हम सेवा करते हैं ॥ १ ॥

१ चित्रभानुं स्वाहुतं, विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं नमसा अगन्म— विलक्षण तेजस्वी, उत्तम प्रकारसे सत्कार पूर्वक अन्नका सेवन करनेवाला, सब ओरसे जिसके पास लोग आते हैं ऐसे तरुण वीरके समीप हम नमस्कार करते हुए जाते हैं। तेजस्वी उत्तम अन्नका सेवन करनेवाले, सबके प्रिय तरुण वीरका सब सत्कार करें। तेजस्वी तरुणोंका राष्ट्रमें सत्कार हो।

[१०४] (सः अग्निः मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान्) वह अग्नि अपने महत्त्वसे सब पापोंको दूर करता है, (जातवेदाः दम आ स्तवे) वह वेदोंका तथा धनोंका उत्पादक अपने स्थानमें प्रशंसित होता है। (सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्) वह पापोंसे और निंदित कर्मोंसे हमें बचावे। (गृणतः अस्मान्) स्तुति करनेवाले, हम सबकी तथा (उत नः मघोनः) हमारे धनवान यज्ञ कर्ताकी सुरक्षा करे ॥ २ ॥

भावार्थ— महान्, हिंसारहित और प्रशस्ततम कर्मका अग्नि अधिपति है। सभी संस्कारयुक्त हविष्यान्नका अग्नि ही स्वामी है। इस अग्निमें जो हव्य पदार्थ डाले जाते हैं, उन पदार्थोंका वसु गण सेवन करते हैं फिर वे देव अग्निको पुष्ट करते हैं ॥४॥

हे अग्ने! हवियोंका भक्षण करनेके लिए देवोंको यहां बुलाकर ला। इन देवोंमें जो प्रमुख देव इन्द्र है, वह आनन्द प्रसन्न हो। इस यज्ञको देवोंमें स्थापित कर। हे देवो! तुम अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमें सुरक्षित रखो। ज्ञानीजन हमारे घरमें आकर और सत्कृत होकर आनन्द प्रसन्न होते रहें। हम ऐसे उत्तम कर्म करें, कि जो ज्ञानियोंको प्रिय हो ॥५॥

सभी जन अपने स्थान अर्थात् अपने समाज और अपने राष्ट्रमें तेजस्वी होकर प्रकाशित हों। सभी अपने राष्ट्रमें आबाद रहकर प्रकाशित हों तथा राष्ट्रमें बाहर भी अपने तेजोंको फैलायें ॥ १ ॥

१०५ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[१३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१०६ प्राग्नये विश्वशुचे धियंधे ऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १ ॥

१०७ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ २ ॥

अर्थ— [१०५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वरुणः असि) तू वरुण है, (उत मित्रः) और मित्र भी तू है। (वसिष्ठाः मतिभिः त्वां वर्धन्ति) वसिष्ठ मननीय स्तोत्रोंसे तुम्हें बढाते हैं (त्वे वसु सुषणनानि सन्तु) तेरे पास सब प्रकारके धन संसेवनीय हों। (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) आप कल्याणोंके साथ हम सबको सदा सुरक्षित रखिये ॥३॥

[१३]

[१०६] (विश्वशुचे धियंधे) विश्वको प्रकाश देनेवाले, बुद्धियों और कर्मोंका धारण करनेवाले, (असुरघ्नो अग्नये) असुरोंके नाश कर्ता अग्निके लिये (मन्म धीतिं प्र भरध्वं) मननीय काव्यों और प्रशस्त कर्मोंको भर दो। (मतीनां यतये) कामनाओंके दाता और (वैश्वानराय बर्हिषि) विश्वके नेताके लिये यज्ञमें (हविः न) हविष्यान्नके समान शुद्ध अन्न (प्रीणानः भरे) संतुष्ट हुआ मैं देता हूं, अर्पण करता हूं ॥ १ ॥

[१०७] हे अग्ने ! (त्वं शोचिषा शोशुचानः) तू अपने तेजसे प्रकाशित होकर (जायमानः रोदसी अपृणः) उत्पन्न होते ही द्युलोक और पृथिवीको भरपूर भर देता है। हे (जातवेदः वैश्वानर) वेद और धनके उत्पन्न कर्ता और विश्वके नेता ! (महित्वा) अपनी महिमासे (त्वं देवान् अभिशस्तेः अमुञ्चः) तूने देवोंको शत्रुओंके द्वारा होनेवाले विनाशसे बचाया है ॥ २ ॥

१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणः— तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको भर दे।
२ जात-वेद, वैश्वानर— ज्ञानका प्रसार कर, धनका उत्पादन कर, विश्वका नेतृत्व कर।
३ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः— तू शत्रुओंसे सबको बचाओ।

भावार्थ— अग्निके समान तेजस्वी पुरुष अपने महत्व एवं तेजस्वितासे सब पापोंको दूर करता है, पापमय तथा निन्दित कर्मोंसे सबको सुरक्षित रखता है। वह ज्ञानका प्रकाशक और धनका दाता अपने स्थानमें प्रशंसित होकर प्रकाशित होता है। जो ऐसे तेजस्वी पुरुषका वर्णन करते हैं, गुणगान करते हैं, जो धनी अपने धनका दान प्रशस्ततम कर्मोंके लिए करते हैं, उनकी वह अग्नि सुरक्षा करता है। मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति बढाकर पापविचारोंको दूर करे। वह पापोंसे स्वयं सुरक्षित रहकर दूसरोंको भी सुरक्षित रखे ॥ २ ॥

अग्नि ही वरुण तथा मित्र है। मित्र और वरुण देवताके गुणधर्म इस अग्निमें हैं। जो वरणीय होता है, वह वरुण है और जो मित्रवत् आचरण करता है, वह मित्र है। अग्नि सबके द्वारा वरणीय और सबका मित्रके समान हितकारी है। इस अग्निके द्वारा प्रदान किए गए धन सुषणन अर्थात् सबके द्वारा उपभोगके योग्य हों कोई एक मनुष्य धनोंका उपभोक्ता न हो। जो अकेला ही धनोंका उपभोग करता है, वह पाप करता है ॥ ३ ॥

जो विश्वमें प्रकाशमान और शुद्ध है, जो बुद्धिमान् और पुरुषार्थी है, जो असुरोंका विनाश करता है, उसके गुणोंका गान करना चाहिए, उसकी सहायताके लिए उत्तम कर्म करने चाहिए। जो कामनाओंकी पूर्ति करता है, उस नेताके लिए अपना सर्वस्व प्रसन्नता पूर्वक समर्पित कर देना चाहिए ॥ १ ॥

तेजस्वी पुरुष अपने तेजसे प्रकाशित हो और अपनी दीप्तिसे विश्वको भर दे। ज्ञानका प्रसार करे, धनको उत्पन्न करे, विश्वका नेतृत्व करे और अपनी शक्तिसे सबको शत्रुके बचाव ॥ २ ॥

१०८ जातो यद॑ग्ने भुव॑ना व्यख्य॑: पशून् न गो॒पा इर्य॑: परि॑ज्मा ।
वैश्वा॑नर ब्रह्म॑णे विन्द गा॒तुं यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥ ३ ॥

[१४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ बृहती ।)

१०९ स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे दे॒वाय॑ दे॒वहू॑तिभिः ।
ह॒विर्भि॑: शु॒क्रशो॑चिषे नम॒स्विनो॑ व॒यं दा॑शेमा॒ग्नये॑ ॥ १ ॥

११० व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र ।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होत॒र्व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ॥ २ ॥

१११ आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒मग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः ।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०८] हे (वैश्वानर अग्ने) वैश्वानर अग्ने ! (जातः) उत्पन्न होते ही तू (इर्यः परिज्मा) सबका प्रेरक और सर्वत्र गमन कर्ता होकर (पशून् गोपाः) पशुओंका संरक्षण करता है। (यत् भुवना व्यख्यः) जब तू भुवनोंका निरीक्षण करता है, तब (ब्रह्मणे गातुं विंद) ज्ञान प्रसारके लिये मार्ग प्राप्त करता है। (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हम सबको आप कल्याणोंके द्वारा सुरक्षित रखो ॥ ३ ॥

[१४]

[१०९] (जातवेदसे) जिससे वेद प्रकट हुए उस अग्निके लिये (समिधा वयं दाशेमय) समिधाओंसे हम परिचर्या करते हैं। (देवाय देवहूतिभिः) इस अग्निदेवके लिये देवस्तुतियोंसे, तथा (शुक्रशोचिषे नमस्विनः हविर्भिः) पवित्र प्रकाशवाले अग्निके लिये अन्न लेकर हम हविकी आहुतियोंसे (दाशेम) सेवा करते हैं ॥ १ ॥

[११०] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते वयं समिधा विधेम) तेरी हम समिधाओंसे परिचर्या करते हैं। हे (यजत्र) यजनीय अग्ने ! (वयं सुष्टुतीः दाशेम) हम उत्तम स्तुतियोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं। हे (अध्वरस्य होतः) हिंसारहित यज्ञके होता अग्ने ! हम (घृतेन) घृतसे तेरी परिचर्या करते हैं। हे (भद्रशोचे देव) कल्याण प्रकाशवाले अग्ने ! हे देव ! (वयं हविषा) हम हविके अर्पणसे तेरी परिचर्या करते हैं ॥ २ ॥

[१११] हे अग्ने ! (नः देवहूतिं) हमारी देवस्तुतिरूप यज्ञके प्रति (देवेभिः) देवोंके साथ (वषट्कृतिं जुषाण) वषट् कारसे दिये अन्नका सेवन करते हुए तू (उप आ याहि) आ (देवाय तुभ्यं दाशतः स्याम) तुझ देवकी सेवा करनेवाले हम हों, (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमारी कल्याणके साधनोंसे सुरक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थ— उत्पन्न होते ही यह अग्नि सबका प्रेरक और सर्वत्र जानेवाला होकर पशुओंकी रक्षा करता है। जब यह भुवनोंका निरीक्षण करता है, तब ज्ञानके प्रसारके लिए मार्गको प्रकाशित करता है। इसी तरह नेता राष्ट्रमें सर्वत्र प्रजाका निरीक्षण करे, सबको उत्तम कर्म करनेके लिए प्रेरणा दे, सबको ज्ञानके मार्गमें प्रेरित करे ॥ ३ ॥

अग्निसे यज्ञ होता है और यज्ञमें वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं, इस कारण यहां अग्निसे वेदोंका प्रकट होना बताया गया है। वेदोंको प्रकट करनेवाले अग्निके लिए हम समिधायें प्रदान करें, समिधाओंके द्वारा प्रदीप्त करके हम ईश्वरके स्तुति-स्तोत्रोंका पाठ करें। फिर प्रदीप्त अग्निमें हम हविकी आहुतियां दें ॥ १ ॥

इस मंत्रमें भी यज्ञ करनेकी विधि बताई गई है। प्रथम उत्तम समिधायें चुनकर स्तुतिके मंत्रोंका उच्चारण करते हुए उन समिधाओंको घृतसे सींचें, फिर उन्हें प्रदीप्त करके उसमें हवियोंकी आहुतियां दी जायें ॥ २ ॥

मनुष्य मिलकरके ईश्वरकी स्तुति गावें। वषट्कार पूर्वक अन्न अथवा हवि समर्पण करें। इस प्रकार देवताओंके उद्देश्यसे यज्ञ करें। इस प्रकार किया हुआ यज्ञ सफल होता है, और उससे सबकी सुरक्षा होती है ॥ ३ ॥

[१५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता- अग्निः। छन्दः- गायत्री।)

११२ उपसद्याय मीळ्हुषे आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥ १ ॥
११३ यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥
११४ स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः । उतास्मान् पात्वंहसः ॥ ३ ॥
११५ नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् । वस्वः कुविद् वनाति नः ॥ ४ ॥
११६ स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा । अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥

---

[१५]

अर्थ— [११२] (उपसद्याय मीळ्हुषे) पास बैठने योग्य और इच्छाकी पूर्ति करनेवाले अग्निके लिये (आस्ये हविः जुहुत) उसके मुखमें हविका हवन करो। (यः नः नेदिष्ठं आप्यं) जो हमारा अत्यंत समीपका बंधु है ॥ १ ॥

[११३] (यः कविः गृहपतिः युवा) जो अग्नि ज्ञानी, गृहस्वामी और तरुण है, (पंच चर्षणीः दमे दमे) पांचों लोगोंके घर घरमें (निषसाद) रहता है ॥ २ ॥

[११४] (सः अग्निः नः आमात्यं वेदः) वह अग्नि हमारा साथ रहनेवाला धन (विश्वतः रक्षतु) सब ओरसे सुरक्षित रखे। (उत अस्मान् अंहसः पातु) और हमें पापसे बचावे ॥ ३ ॥

[११५] (दिवः श्येनाय अग्नये) द्युलोकमें श्येनपक्षीके सदृश शीघ्र गमन करनेवाले अग्निके लिये (नवं स्तोमं) नवीन स्तोत्र (जीजनं) मैं बनाता हूँ, वह अग्नि (नः) हमारे लिये (कुवित् वस्वः वनाति) बहुत धन देवे। ॥ ४ ॥

[११६] (यज्ञस्य अग्रे शोचतः) यज्ञके अग्रभागमें प्रकाशित होनेवाले अग्निकी (श्रियः) शोभा देनेवाली ज्वालाएँ (वीरवतः रयिः यथा) जैसा वीर पुत्रवालेका धन होता है, उस प्रकार (दृशे स्पार्हाः) देखनेके लिये स्पृहणीय होती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्नि हमारे अत्यन्त समीपका बन्धु है। अत्यन्त समीपका बन्धु वह है कि जो समीप बैठने योग्य हो और जो अपना हित करता है। कठिन प्रसंगपर जानेपर जो भरसक सहायता करता है, वह समीपका बन्धु होता है। इस तरहका समीपका बन्धु अग्नि है। वह अपने उपासककी हर तरहसे सहायता करता है ॥ १ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच जन हैं। इन पांचों जनोंमें अग्नि प्रदीप्त होता है, इससे ज्ञात होता है कि यज्ञ करनेका अधिकार सबको है अथवा अग्निकी सेवा करनेका अधिकार सबको है। यह सेवा करनेका तरीका सब जातियोंका पृथक् पृथक् होता है। ' यह अग्नि, ज्ञानी गृहपति युवा है ' इन शब्दोंके आधारपर ज्ञात होता है कि इन पांचों जनोंमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन आश्रमोंका विधान था। क्योंकि गृहपतिके पूर्व ब्रह्मचारीका होना आवश्यक है, इसी तरह गृहस्थीके बाद वानप्रस्थका भी क्रम आता है। इस प्रकार ये आश्रम सभी पांच जनोंमें होते थे ॥ २ ॥

अग्नि मनुष्यके लिए अमात्य धनरूप हो। अमात्य धन वह है कि जो पैतृक धनके रूपमें मनुष्यको मिलता है। जिस तरह पैतृक धन पितासे पुत्रको मिलता है, उसी तरह अग्नि भी पितासे पुत्रको प्राप्त हो अर्थात् यज्ञकी यह परम्परा अविच्छिन्न हो। प्रथम पिता आजीवन यज्ञ करता रहे, फिर पुत्र इस यज्ञकी परम्पराको चलाए ॥ ३ ॥

जब प्रदीप्त हुए अग्निकी ज्वालायें आकाशमें उठती हैं, तब वे ज्वालायें ऐसी प्रतीत होती हैं, कि मानो आकाशमें बाज पक्षी उड रहे हों। ऐसे अग्निकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ४ ॥

११७ सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥
११८ नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥
११९ क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ८ ॥
१२० उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः । उपाक्षरा सहस्रिणी ॥ ९ ॥
१२१ अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥ १० ॥
१२२ स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [११७] (यजिष्ठः हव्यवाहनः अग्निः) यजनके लिये योग्य हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला अग्नि (इमां वषट् कृतिं) हमारी दी हुई इस आहुतिको (वेतु) स्वीकारे और (नः गिरः जुषतं) हमारे वचन सुने ॥ ६ ॥

[११८] हे (नक्ष्य विशांपते) पास जानेयोग्य, प्रजाओंके अधिपते (आहुत अग्ने देव) आहुति दिये हुए अग्निदेव ! (द्युमन्तं सुवीरं त्वा नि धीमहि) तेजस्वी उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले ऐसे तेरा हम यहां स्थापन करते हैं ॥ ७ ॥

[११९] (क्षपः उस्रः च दीदिहि) रात्रिमें और दिनमें प्रदीप्त होते रहो, (त्वया वयं स्वग्नयः) तेरे कारण हम उत्तम अग्निवाले होंगे और (त्वं अस्मयुः सुवीरः) तू भी हमारे कारण उत्तम वीरोंसे युक्त होगा ॥ ८ ॥

[१२०] (त्वा नरः विप्रासः) तेरे पास नेता ज्ञानी लोग (धीतिभिः सातये उपयन्ति) बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिये आते हैं। (सहस्रिणी अक्षरा उप) सहस्रों अक्षरोंवाली हमारी वाणी भी तेरे पास पहुंचती है ॥ ९ ॥

[१२१] (शुक्रशोचिः अमर्त्यः) शुभ्र किरणवाला अमर (शुचिः पावकः ईड्यः) पवित्र शुद्धता करनेवाला स्तुत्य (अग्निः रक्षांसि सेधति) अग्नि राक्षसोंका नाश करता है ॥ १० ॥

[१२२] हे (सहसः यहो) बलके पुत्र अग्ने ! (सः ईशानः नः राधांसि आ भर) वह सबका स्वामी तू हमें भरपूर धन दो। (भगः च वार्यं दातु) भाग्यवान् देव भी हमें धन देवे ॥ ११ ॥

भावार्थ— जिसके पुत्र वीर हैं, उसका धन स्पृहणीय होता है। पुत्रहीनके पासका धन वैसा शोभादायक नहीं होता। इतना पुत्रका महत्त्व है। इस प्रकार वीरपुत्रसे युक्त धनकी जितनी शोभा होती है उतनी शोभा इस अग्निकी ज्वालाओंकी होती है ॥ ५ ॥

यज्ञके लिए योग्य हवि द्रव्योंको वहन करनेवाला अग्नि हमारे द्वारा दी गई इस आहुतिको स्वीकार करे और हमारी स्तुतिको सुने ॥ ६ ॥

हे प्रजाओंके स्वामी अग्ने ! तेजस्वी और उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले हम तेरी स्थापना यहां करते हैं। जिसके पास वीरपुत्र न हो, उसका सन्मान कम होता है। इसलिए वीरपुत्र अवश्य होना चाहिए ॥ ७ ॥

देवोंसे भक्त और भक्तोंसे देव लाभ प्राप्त करते हैं। देवसे भक्तोंको धनादि प्राप्त होता है और भक्तोंके द्वारा देवका यश और माहात्म्य बढता है ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! नेता और ज्ञानी लोग अपनी बुद्धिके साथ किए गए कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिए आते हैं, तथा हजारों अक्षरोंवाली हमारी वाणी भी इस अग्निके पास पहुंचे ॥ ९ ॥

अग्नि जिस प्रकार शुभ्र किरणोंवाला, अमर, पवित्र और शुद्धता करनेवाला है, उसी तरह मनुष्य शुभ्र तेजस्वी, सर्वत्र पवित्रता और शुद्धता करनेवाला होकर दुष्टोंका नाश करनेवाला हो ॥ १० ॥

हम राध और वार्य दोनों तरहके धनोंके स्वामी हों। जो धन परमसिद्धि तक सहायक होता है, वह धन 'राध' है। सिद्धितक पहुंचानेवाले धन अनेक तरहके होते हैं। दूसरा धन 'वार्य' है। जिससे शत्रुओंका निवारण किया जाता है, उसे 'वार्य' धन कहते हैं ॥ ११ ॥

१२३ त्वमग्ने वीरवद् यशो देवश्च सविता भगः । दितिश्च दाति वार्यम् ॥ १२ ॥
१२४ अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥ १३ ॥
१२५ अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये । पूर्भवा शतभुजिः ॥ १४ ॥
१२६ त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य ॥ १५ ॥

[१६]

(ऋषिः- १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- प्रगाथः (=विषमा बृहती, समा सतोबृहती ।)
१२७ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥

अर्थ— [१२३] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वीरवत् यशः) तू वीर पुत्रोंसे युक्त यश हमें दे, (सविता भगः च वार्यं) सविता और भाग्यवान् देव वरणीय श्रेष्ठ धन हमें देवे । (दितिः च दाति) दिति देवी भी हमें धन देवे ॥ १२ ॥

[१२४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः अंहसः रक्ष) हमारा पापसे बचाव कर । हे देव ! तू (अजरः) जरारहित है अतः तू (रिषतः तपिष्ठैः दह स्म) शत्रुओंको अपने दाहक तेजोंसे जला दे ॥ १३ ॥

[१२५] (अध अनाधृष्टः) और शत्रुओंसे आक्रान्त न होकर (नः नृपीतये) हमारे सब मानवोंकी सुरक्षाके लिये (शतभुजिः मही आयसीः पूः भव) सैंकडों मानवोंसे सुरक्षित बडी विस्तृत लोहेके प्राकारवाली पुरी जैसा तू संरक्षक हो ॥ १४ ॥

[१२६] हे (अदाभ्य) न दबनेवाले वीर ! (त्वं नः) तू हमें (दोषावस्तः) रात्रीके समय और दिनके समय (अंहसः पाहि) पापसे बचाओ और (दिवा नक्तं अघायतः) दिनमें और रात्रीमें दुष्ट पापी शत्रुओंसे बचाओ ॥ १५ ॥

[१६]

[१२७] (ऊर्जः नपातं) बलका पतन न करनेवाले (प्रियं चेतिष्ठं) प्रिय और चेतना देनेवाले (अरतिं स्वध्वरं) प्रगतिशील और उत्तम अहिंसामय यज्ञ निर्माता (विश्वस्य अमृतं दूतं) सबका अमर दूत ऐसे (एना नमसा आ हुवे) इस अग्निको नम्रतापूर्वक (वः) आप सबके हितके लिये मैं बुलाता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हमें वीरपुत्रोंसे युक्त यश प्रदान कर । इसी तरह सविता, भग आदि देव भी हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! तू हमारा पापसे बचाव कर । हे देव ! तू जरारहित है, इसलिए तू शत्रुओंको अपने दाहक तेजसे जला डाल । मनुष्य पापसे बचकर पवित्र बने और शत्रुओंका विनाश करके वे निर्भय हों, उन्नतिके लिए इन दोनोंकी आवश्यकता है ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! जिस तरह किलेमें रहनेवालोंकी किला हर तरहसे रक्षा करता है, बाहरके शत्रुओंका उनपर आक्रमण नहीं हो सकता, उसी प्रकार अग्नि अपने उपासकोंकी रक्षा करे ॥ १४ ॥

सुरक्षाका प्रबन्ध जिस तरह रात्रीके समय उसी तरह दिनके समय भी जागरूकताके साथ होना चाहिए । सुरक्षाका प्रबन्ध अन्धेरे और प्रकाशमें समान रूपसे होना चाहिए । सुरक्षा करनेवाले वीर हमेशा जागते रहें और अपना कर्तव्य करते रहें । सुरक्षाकी व्यवस्थामें शिथिलता न रहे ॥ १५ ॥

अग्नि शारीरिक बलको कम न करनेवाला, चेतना देनेवाला, उत्साह बढानेवाला, चित्तके व्यापारको चलानेवाला, प्रगतिशील, शीघ्र गति करनेवाला, उत्तम रीतिसे हिंसारहित रीतिसे प्रशस्ततम कर्म करनेवाला तथा सदा चेतना और उत्साहयुक्त दूत है । इसी तरह मनुष्य ऐसा कोई काम न करे कि जिससे उसके शरीरका बल कम हो । इस तरहका प्रिय आचरण करे कि उसका उत्साह सदा बढता रहे, वह सदा प्रगतिशील रहे, सबसे नम्रतापूर्वक व्यवहार करे ॥ १ ॥

+

१२८ स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥
१२९ उदस्य शोचिरस्थाद् आजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद् धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ ३ ॥
१३० तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद् यत् त्वेमहे ॥ ४ ॥
१३१ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२८] (सः विश्वभोजसा अरुषा) वह अग्नि विश्वको भोजन देनेवाले अपने तेजसे (योजते) युक्त होता है। प्रकाशता है। और (स दुद्रवत्) शीघ्र गतिसे जाता है। वह (स्वाहुतः सुब्रह्मा) उत्तम आहुतियोंको लेनेवाला, उत्तम ज्ञानी, (यज्ञः सुशमी) यजनीय और उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि (वसूनां देवं राधः) धनोंमें दिव्य धन (जनानां) लोगोंको देता है ॥ २ ॥

[१२९] (मीळ्हुषः आजुह्वानस्य) कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले और जिसमें हवन हो रहा है ऐसे (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) इस अग्निकी ज्वालाएं ऊपर उठती हैं। (अरुषासः दिविस्पृशः धूमासः उत्) तेजस्वी आकाशको स्पर्श करनेवाले धूम ऊपर जा रहे हैं। ऐसे (अग्निं नरः सं इन्धते) अग्निको लोग प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

[१३०] हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न हुए अग्ने! (यशस्तमं तं त्वा दूतं कृण्महे) अत्यंत यशस्वी ऐसे तुझे हम दूत करते हैं। वह तू (देवान् वीतये आवह) देवोंको हविका भक्षण करनेके लिये यहां ले आ। (यत् त्वा ईमहे) जब हम तेरे पास आते हैं तब (तत् विश्वा मर्तभोजना रास्व) सब मनुष्योंको भोगने योग्य धन हमें दो ॥ ४ ॥

[१३१] हे (विश्ववार अग्ने) सबके द्वारा वरने योग्य अग्ने! (त्वं नः अध्वरे गृहपतिः) तू हमारे यज्ञ कर्ममें गृहका संरक्षक है, (त्वं होता) तू देवोंको बुलानेवाला है, (त्वं पोता प्रचेता) तू पवित्र करनेवाला अत्यंत बुद्धिमान है अतः तू (वार्यं यक्षि वेषि च) यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाले हविरूप अन्नका यजन कर और उसको प्राप्तिकी इच्छा कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— पूज्य और तरुण वीर विश्व अर्थात् सबका रक्षक और सबको भोजन देनेवाला होकर तेजसे युक्त हो। वह उत्तम ज्ञानी हो, वह सत्कार-संगठन और दानात्मक शुभ कर्म करता रहे। वह इन्द्रियोंका संयमन करनेवाला हो। उत्तम कर्म करे तथा उत्तम लोगोंको धन देता रहे ॥ २ ॥

जिसमें आहुतियां दी जा रही हैं, ऐसे कामनाओंके पूरक अग्निकी ज्वालायें ऊपर उठती हैं। प्रदीप्त अग्निका आकाशको छूनेवाला धुंवा ऊपर जा रहा है। ऐसे अग्निको लोग प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥

हे बलसे उत्पन्न हुए अग्ने! हम तुझे दूत बनाते हैं, तू देवोंको यहां ला और वे यहां आकर हवियोंका भक्षण करें। तू भी हमें मनुष्योंके द्वारा जो जो भोगने योग्य धन हैं, वे सब धन हमें चाहिए। धन, रत्न, गाय, घोडे आदि सभी रत्न हमें चाहिए, ताकि हम सरलतासे जीवन व्यतीत कर सकें ॥ ४ ॥

मनुष्य सबका प्रिय अपने घरका स्वामी, अपने स्थानका स्वामी, देशका पालक, उत्तम बुद्धिमान् और पवित्र करनेवाला बने। अग्निके गुण मनुष्यमें देखनेसे आदर्श व्यक्तिका रूप सामने आता है ॥ ५ ॥

१३२ कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ नं ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥ ६ ॥
१३३ त्वे अंग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनाना मूर्वान् दयन्त गोनाम् ॥ ७ ॥
१३४ येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ८ ॥
१३५ स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥

अर्थ— [१३२] हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने ! (यजमानाय रत्नं कृधि) यजमानके लिये रत्न या धन दे । (हि त्वं रत्न धाः असि) क्योंकि तू रत्नोंका धारण करनेवाला है । (नः ऋते) हमारे यज्ञमें (विश्वं ऋत्विजं आशिशीहि) सब ऋत्विजोंको तेजस्वी कर । (यः सुशंसः च दक्षते) जो उत्तम प्रशंसा योग्य है उसको दक्षतासे बढाओ ॥ ६ ॥

[१३३] हे (अग्ने) अग्ने, हे (स्वाहुत) उत्तम आहुति लेनेवाले ! (ते सूरयः प्रियासः सन्तु) तुझे विद्वान् प्रिय हों । विद्वानोंके लिये तू प्रिय हो । तथा (ये यन्तारः मघवानः) जो दाता धनवान हैं और जो (जनानां गोनां ऊर्वान् दयन्त) लोगोंको गौओंके झुण्डोंको दानमें देते हैं, वे भी तुझे प्रिय हों ॥ ७ ॥

[१३४] (येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा) जिनके घरमें घी हाथमें लेकर अन्न परोसनेवाली देवी (प्राता आ निषीदति) भरपूर अन्न लेकर बैठती है । हे (सहस्य) बलवान् ! (तान् त्रायस्व) उनको सुरक्षित करो । (द्रुहः निदः) द्रोहकारी निंदक शत्रुसे उनको बचाओ । (नः दीर्घश्रुत् शर्म यच्छ) हमें दीर्घकाल टिकनेवाले यशसे युक्त सुख या घर दो ॥ ८ ॥

[१३५] हे (अग्ने) अग्ने ! (मन्द्रया आसा जिह्वया) आनन्ददायक मुखमें रहनेवाली जिह्वासे-ज्वालासे (वह्निः विदुष्टरः) हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला ज्ञानी (सः) वह अग्नि तू (मघवद्भ्यः नः रयिं आ वह) धन देनेवाले हम सबके लिये धन ले आओ, और (हव्यदातिं च सूदय) हवनीय अन्नका दान करनेवाले यजमानको प्रशस्त कर्ममें प्रेरित करो ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे उत्तम रीतिसे कर्म करनेवाले अग्ने ! तू यजमानके लिए रत्न और धन दे, क्योंकि तू रत्नोंको धारण करनेवाला है । हमारे यज्ञमें जितने भी ऋत्विज हैं, उन सबको तू तेजस्वी कर ॥ ६ ॥

अग्नि या अग्रणीको विद्वान् प्रिय हों और विद्वानोंको वह प्रिय हो । धनवान् दाता हों । धनी लोग अपने धनका दान देते रहें । उत्तम सत्पुरुषोंको गायोंके झुण्डके झुण्ड दानमें दिये जाएं ॥ ७ ॥

जिन घरोंमें देवियां घी और अन्नके भरे हुए पात्र लेकर अन्नदान करनेके लिए सिद्ध रहती हैं, उनकी रक्षा, हे अग्ने ! तू कर । द्रोही तथा निन्दकोंसे उनकी रक्षा कर तथा जिसका यश दीर्घकालतक टिका रहता है, ऐसा घर, सुख और संरक्षण हमें दे ॥ ८ ॥

विद्वानोंमें श्रेष्ठ और तेजस्वी वीर पुरुष आनन्द प्रदान करनेवाली मधुर भाषाके साथ हमें धन देवें । वह उत्तम भाषण भी करें और श्रेष्ठ अन्न भी देवें । धनवान् दानी मनुष्योंको और ज्यादा धन मिले, ताकि वे और अधिक दान देते रहें । सभी लोगोंको अन्नके दानकी प्रेरणा मिलती रहे ॥ ९ ॥

१३६ ये राधांसि दद॒त्यश्व्या॑ म॒घा कामे॑न॒ श्रव॑सो म॒हः ।
ताँ अंह॑सः पिपृहि प॒र्तृभि॒ष्ट्वं श॒तं पू॒र्भिर्य॑विष्ठ्य ॥ १० ॥
१३७ दे॒वो वो॑ द्रवि॒णोदाः॑ पू॒र्णां वि॑वष्ट्या॒सिच॑म् ।
उद् वा॑ सि॒ञ्चध्व॒मुप॑ वा पृणध्व॒मादिद् वो॑ दे॒व ओ॑हते ॥ ११ ॥
१३८ तं होता॑रमध्व॒रस्य॒ प्रचे॑तस॒म् वह्निं॑ दे॒वा अ॑कृण्वत ।
दधा॑ति॒ रत्नं॑ विध॒ते सु॒वीर्य॑म॒ग्निर्जना॑य दा॒शुषे॑ ॥ १२ ॥

[१७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- द्विपदा त्रिष्टुप् ।)

१३९ अग्ने॒ भव॑ सुष॒मिधा॒ समि॑द्ध उ॒त ब॒र्हिरु॑र्वि॒या वि स्तृ॑णीताम् ॥ १ ॥

अर्थ— [१३६] हे (यविष्ठ्य) अत्यंत तरुण वीर अग्ने ! (महः श्रवसः कामेन) बडे यशकी इच्छासे जो (राधांसि अश्व्या मघा) सिद्धिदायक अश्व युक्त धन (ददति) दानमें देते हैं, (तान् अंहसः) उनको पापसे अथवा दुष्ट शत्रुसे (पर्तृभिः शतं पूर्भिः त्वं पिपृहि) संरक्षक साधनोंसे तथा सैंकडों कीलोंवाली नगरियोंसे तू सुरक्षित रख ॥ १० ॥

[१३७] (द्रविणोदाः देवः) धन देनेवाला अग्निदेव (वः पूर्णां आसिचं विवष्टि) आपकी घृतादिसे परिपूर्ण चमसकी इच्छा करता है । (वा उत् सिञ्चध्वं) पात्र भरपूर भर दो, अथवा (वा उप पृणध्वं) पात्रको परिपूर्ण करो । (आत् इत् देवः वः ओहते) अनंतर अग्निदेव तुम्हें उच्च अवस्थाको पहुंचा देता है ॥ ११ ॥

[१३८] (देवाः प्रचेतसं तं वह्निं) देव उस ज्ञानी अग्निको (अध्वरस्य होतारं अकृण्वत) हिंसारहित कर्मका करनेवाला करके निर्माण करते हैं । वह (अग्निः विधते दाशुषे जनाय) अग्नि परिचर्या करनेवाले दाता मनुष्यके लिये (सुवीर्यं रत्नं दधाति) उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति और उत्तम धन देता है ॥ १२ ॥

[१७]

[१३९] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुषमिधा समिद्धः भव) उत्तम समिधासे प्रदीप्त हो । (उत) और (उर्विया बर्हिः विस्तृणीतां) याजक उत्तम विस्तीर्ण आसन फैलावें ॥ १ ॥

भावार्थ— जो बडे यशकी इच्छासे सिद्धि देनेवाले धन जिसमें अश्व, गौ, रथ आदिका समावेश होता है, दानमें देते हैं, उनका संरक्षण होना चाहिए । उन्हें पापसे बचाना चाहिए । राष्ट्रमें अनेक तरहके किले आदि बनाकर प्रजाओंकी रक्षा करनी चाहिए ॥ १० ॥

हे यज्ञ करनेवालो ! यह अग्निदेव आपके द्वारा घीसे भरे हुए चमसकी इच्छा करता है । इस लिए तुम पात्रको भर कर आहुतियां दो । तुम्हारी आहुतियोंसे प्रसन्न होकर अग्निदेव तुम्हें उच्च अवस्थाको पहुंचा देगा ॥ ११ ॥

देवोंने विशेष ज्ञानी और अग्निके समान तेजस्वी वीरको कुटिलतारहित कर्म करनेके लिए निर्माण किया है । वह तेजस्वी वीर कर्ता और दाता जनके लिए उत्तम वीर्य और धन देता है । मनुष्य कुटिलतारहित कर्म करें, शौर्यके कर्म करें और धन प्राप्त करें । छल कपट, भीरुता आदिके द्वारा धन कमाना अच्छा नहीं ॥ १२ ॥

यज्ञ करनेवाले मनुष्य समिधायें डालकर अग्निको प्रदीप्त करें और यज्ञशालामें बैठनेवालोंके लिए उत्तम आसन आदि बिछावें, इस प्रकार यज्ञमें आनेवाले लोगोंका सत्कार किया जाए ॥ १ ॥

१४० उत द्वारं उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥
१४१ अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान् त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३ ॥
१४२ स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद् देवाँ अमृतान् पिप्रयच्च ॥ ४ ॥
१४३ वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥ ५ ॥
१४४ त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥
१४५ ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४०] (उत उशतीः द्वारः विश्रयन्तां) और देवभक्ति करनेवाली देवियां विश्राम करें। (उत उशतः देवान् इह आ वह) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको यहां यज्ञमें ले आ ॥ २ ॥

[१४१] हे (जातवेदः) जातवेद ! (वीहि) जा (हविषा देवान् यक्षि) हविसे देवोंका यजन कर उनको (स्वध्वरा कृणुहि) उत्तम यज्ञवाले बना ॥ ३ ॥

[१४२] (जातवेदाः अमृतान् देवान्) जातवेद अग्नि अमर देवोंको (स्वध्वरा करति) उत्तम यज्ञवाला बनाता है, (यक्षत् पिप्रयत् च) यज्ञ करता और प्रसन्न करता है ॥ ४ ॥

[१४३] हे (प्रचेतः) उत्तम बुद्धिमान् अग्ने ! (विश्वा वार्याणि वंस्व) सब प्रकारके धन हमें दे और (नः आशिषः अद्य सत्या भवन्तु) हमारे आशीर्वाद आज सत्य हों ॥ ५ ॥

[१४४] हे (अग्ने) अग्ने ! (ऊर्जः नपातं त्वां) बलको न गिरानेवाले तुझको (हव्यवाहं ते देवासः दधिरे उ) हविका वहन करनेके लिये उन देवोंने धारण किया है ॥ ६ ॥

[१४५] (देवाय ते) तुझ देवके लिये (ते दाशतः स्याम) वे हम हवि देनेवाले हों और (महः इयानः) महत्त्वको प्राप्त होकर (नः रत्ना विदधः) हमें रत्नोंको दे दो ॥ ७ ॥

भावार्थ— देवोंकी भक्ति करनेवाली स्त्रियोंका भी उचित रीतिसे सर्वत्र सम्मान हो। ऐसी भक्त स्त्रियोंका यज्ञमें अच्छा सत्कार होना चाहिए ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू जा और हविसे देवोंका यजन कर, उनको उत्तम यज्ञवाला बना ॥ ३ ॥

जिससे वेद प्रकट हुए हैं अथवा जो उत्पन्न हुए सभी पदार्थोंको जानता है, ऐसा अग्नि अमर देवोंको भी उत्तम यज्ञवाला बनाता है अर्थात् अमर देवोंको भी यज्ञ करना पड़ता है, तब वे देव प्रसन्न होते हैं। अमर देव भी तभी प्रसन्न होते हैं कि जब वे यज्ञ करते हैं, इसलिए प्रसन्नताको प्राप्त करनेकी इच्छावाले मनुष्य यज्ञ किया करें ॥ ४ ॥

हे उत्तम बुद्धिमान् अग्ने ! तू सब तरहके धन हमें दे और हमारे सभी मनोरथ आज सिद्ध हों ॥ ५ ॥

अग्नि शरीरके बलको नहीं गिराता अपितु उत्साहको स्थायी रखता है। शरीरमें जब गर्मीका अभाव होकर ठंडा होने लगता है तो बल न्यून होने लगता है। शरीरमें स्थित इस अग्निको शरीरकी इन्द्रियरूपी देव धारण करते हैं। इस अग्निकी गर्मीसे इन्द्रियोंकी शक्ति बढती है ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू दिव्य गुण युक्त और तेजस्वी है, ऐसे तुझको हम हवि देनेवाले हों। हमारे द्वारा दी गई हवियोंसे तू महत्त्वको प्राप्त होकर हमें रत्न आदि प्रदान कर ॥ ७ ॥

१८

[१८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता- इन्द्रः, २२-२५ सुदाः पैजवनः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

१४६ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वा—स्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥
१४७ राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवा—ऽव द्युभिरभि विदुष्कविः सन्।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वै—स्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥ २ ॥
१४८ इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥

---

[१८]

अर्थ— [१४६] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वे ह यत् नः पितरः चित्) तेरे पाससे ही हमारे पितर (जरितारः विश्वा वामा असन्वन्) स्तुति करते हुए सब प्रकारके धन प्राप्त करते रहे। (त्वे सुदुघा गावः) तेरे पास उत्तम दूध देनेवाली गौवें हैं, (त्वे हि अश्वाः) तेरे पास उत्तम घोडे हैं, (त्वं देवयते वसु वनिष्ठः) तू देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेके लिये अत्यंत श्रेष्ठ धन देता है ॥ १ ॥

[१४७] (जनिभिः राजा इव) जैसा स्त्रियोंके साथ राजा रहता है वैसा (द्युभिः क्षेषि) दीप्तियोंके साथ तू निवास करता है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! तू (विदुः कविः सन्) ज्ञानी और दूरदर्शी, होकर (पिशा गोभिः अश्वैः) सुंदर रूपसे, गौओं और घोडोंसे (गिरः) वाणियोंको (त्वायतः अस्मान् राये अभि शिशीहि) तेरे साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले हम सबको धनके लिये संस्कार संपन्न कर ॥ २ ॥

[१४८] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वा अत्र पस्पृधानासः) तेरे वर्णन करनेमें यहां इस यज्ञमें स्पर्धा करनेवाली (मन्द्राः इमाः देवयन्तीः गिरः) आनन्ददायक और देवत्वको प्राप्त करनेवाली ये वाणियाँ (उपस्थुः) तेरे पास उपस्थित होती हैं, तेरा वर्णन करती हैं। (ते रायः पथ्या अर्वाची एतु) तेरे धनके मार्ग सीधे हमारे पास आवें। (ते सुमतौ शर्मन् स्याम) तेरी उत्तम बुद्धिमें रहकर हम सुखमें रहें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ऐश्वर्यशाली प्रभो! हमारे पितर तुम्हारी भक्ति करते थे और तुमसे हर तरहका धन प्राप्त करते थे। हमारे माता पिता जिस तरह सर्व नियन्ता प्रभुकी उपासना करते थे, वैसे ही हम भी उसी प्रभुकी उपासना करते हैं। उस प्रभुके पास सब प्रकारके धन हैं। जो उस देवकी भक्ति करता है, उसे वह सब प्रकारका धन देता है ॥ १ ॥

जिस तरह एक राजा अनेक स्त्रियोंसे युक्त होता है, उसी तरह यह इन्द्र अनेक तेजोंसे युक्त होकर रहता है। यहां इन्द्रकी अनेक दीप्तियां ही उसकी अनेक स्त्रियोंके समान हैं। वह इन्द्र धनवान्, ज्ञानी, क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी है। राजा भी इन गुणोंसे युक्त हो। राज्याधिकारी भी इन गुणोंसे युक्त हों, वे अज्ञानी और अदूरदर्शी न हों। राजा सुन्दर रूपवाला तथा अपार वैभववाला हो। वह अपनी प्रजाकी वाणीको शुभ संस्कारोंसे युक्त बनाए। प्रजाओंपर उत्तम संस्कार पडें, ऐसी व्यवस्था राजा राज्य भरमें करे ॥ २ ॥

यदि मनुष्य अपनी वाणीको दिव्य बनाना चाहे तो वह अपनी वाणीको प्रभुकी स्तुति करनेमें लगाए। प्रभुके शुभ गुणोंका गान करके उन गुणोंको अपने अन्दर धारण करके मनुष्य भी देव बन सकता है। जो इस प्रभुके दिव्य गुणोंका आश्रय लेता है, वह प्रभुकी सुमतिमें रहता है और सदा सुखी होता है ॥ ३ ॥

१४९ धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्ष॒न्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा ऽऽ न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥
१५० अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥ ५ ॥
१५१ पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद् राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४९] (सुयवसे धेनुं न) उत्तम घास जहां है ऐसी गोशालामें रहनेवाली धेनुके पास जानेके समान (त्वा दुधुक्षन् वसिष्ठः) तेरा दोहन करके बहुत धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला वसिष्ठ (ब्रह्माणि उप ससृजे) बहुत स्तोत्र निर्माण करता है। (विश्वः त्वां इत् गोपतिं मे आह) सब लोग तू ही गौओंका स्वामी है ऐसा मुझे कह रहे हैं। (नः सुमतिं इन्द्रः अच्छ आ गन्तु) हमारे स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र सीधा हमारे पास आ जावे ॥ ४ ॥

[१५०] (नव्यः इन्द्रः अर्णांसि) प्रशंसनीय इन्द्रने जलोंको (पप्रथाना) फैलाकर (सुदासे गाधानि सुपारा) सुदास राजाके लिये चलकर पार करने योग्य (अकृणोत्) किया, बनाया। (शर्धन्तं उचथस्य शिम्युं शापं) उत्साही उचथके शिम्युके पास शाप और तथा (सिन्धूनां अशस्तीः) नदियोंके घोर प्रशस्त महापूरको पहुंचने योग्य (अकृणोत्) किया, पहुंचाया ॥ ५ ॥

[१५१] (यक्षुः पुरोळाः इत् तुर्वशः) यज्ञ करनेवाला प्रगतिशील तुर्वश राजा (आसीत्) था। (मत्स्यासः राये निशिताः अपि इव) मत्स्य लोग धन प्राप्तिके लिये सिद्ध जैसे थे। (भृगवः द्रुह्यवः च श्रुष्टिं चक्रुः) भृगु और द्रुह्यु शीघ्र धन प्राप्तिके लिये स्पर्धा कर रहे थे। (विषूचोः सखा सखायं अतरत्) दोनों स्पर्धकोंमें मित्रने मित्रका संरक्षण किया ॥ ६ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार दूध दुहनेकी इच्छा करनेवाला अपनी गायोंको उत्तम घास आदि देकर पुष्ट करता है, उसी तरह उस प्रभुसे दिव्यता प्राप्त करनेके लिए प्रभुकी स्तुति करके अपनी बुद्धिको पुष्ट करता है। यह इन्द्र सभी तरहकी गायोंका स्वामी है। जीवात्मा इन्द्र है और उसकी गायें ये इन्द्रियां हैं। सूर्य इन्द्र है और गायें उस सूर्यकी किरणें हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रने सुदासको नदीसे पार कराया। जो मनुष्य दास बनकर इस ऐश्वर्यशाली प्रभुकी सेवा करता है, वह संकटरूपी नदी या भवसागरसे पार हो जाता है। उचथके ऊपर शाप और हिंसक शम्युके ऊपर नदियोंको प्रेरित करके उनका नाश किया। जो स्वयं दुष्ट होकर सज्जनोंको शाप देता है अथवा जो हिंसाके साधनोंका प्रयोग सज्जनोंपर करता है, उस शाप या हिंसाके साधनोंसे सज्जन तो नष्ट नहीं होते, अपितु वह दुष्ट स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

तुर्वश पुरोडाशको तैयार करके यज्ञ करना चाहता था। त्वरासे वश करनेवाला अथवा किसी कार्यको सत्वर या शीघ्रतासे करनेवाला तुर्वश कहलाता है। मत्स्य लोग सदा धन प्राप्तिके कार्यमें व्यस्त रहते हैं। मत्स्य उनको कहते हैं कि जो अपने जीवनके लिए दूसरोंको निगल जाते हैं। जीवन कलहमें बडा छोटेको खाता है। जो ऐसा आचरण करते हैं उनका नाम मत्स्य है। ये मत्स्यवृत्तिके लोग धन प्राप्त करनेके लिये आपसमें तीक्ष्णस्पर्धा करते हैं। स्पर्धा करना और दुर्बलोंको खा जाना ही ऐसे मत्स्य लोगोंके जीवनका एकमात्र ध्येय होता है। इसी तरह भृगु और द्रुह्युमें भी सत्वर धन प्राप्त करनेकी स्पर्धा रहती है। भृगु वह हैं कि जो अपने ही भरणपोषणके लिए गति करते हैं। इनके प्रयत्न सदा अपनी ही आजीविकाके लिए ही होते हैं। जो द्रोह करते हैं, डाका डालते हैं वे द्रुह्यु हैं। भृगु अपने जीवननिर्वाहकी ही चिन्तामें रहते हैं और द्रुह्यु द्रोह करके या डाका डालकर अपनी आजीविका चलाते हैं। ये सभी मनुष्यके शत्रु हैं। पर जो ऐसे लोगोंसे शत्रुता करता है, वही मनुष्योंका सच्चा मित्र है ॥ ६ ॥

१५२ आ प॒क्थासो॑ भला॒नसो॑ भन॒न्ता ऽलि॑नासो विषा॒णिनः॑ शि॒वासः॑ ।
आ यो॑ऽनयत् सध॒मा आर्य॑स्य ग॒व्या तृ॒त्सुभ्यो॑ अजगन् यु॒धा नॄ॒न् ॥ ७ ॥
१५३ दु॒रा॒ध्यो॒३॒॑ अदि॑तिं स्रे॒वय॑न्तो ऽचे॒तसो॒ वि ज॑गृभ्रे॒ परु॑ष्णीम् ।
म॒ह्नावि॑व्यक् पृथि॒वीं पत्य॑मानः प॒शुष्क॒विर॑शय॒च्चाय॑मानः ॥ ८ ॥
१५४ ई॒युरर्थं॒ न न्य॒र्थं परु॑ष्णी॒माशुश्च॒नेद॑भिपि॒त्वं ज॑गाम ।
सु॒दास॒ इन्द्रः॑ सु॒तुकाँ॑ अ॒मित्रा॒नर॑न्धय॒न्मानु॑षे॒ वध्रि॑वाचः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१५२] (पक्थासः) हविष्यान्नका पाक यज्ञके लिये करनेवाले, (भलानसः भल-आनसः) सुन्दर प्रसन्न मुखवाले, (अलिनासः) मलिन, तपके कारण क्षीण शरीर, (विषाणिनः) सींग हाथमें लेनेवाले, खुजली करनेके लिये अथवा शत्रुपर प्रहार करनेके लिये हाथमें कृष्ण मृगका सींग लेनेवाले, (शिवासः) सब जनोंका कल्याण करनेकी कामना मनमें धारण करनेवाले इन्द्रकी (आ भनंत) प्रशंसा करते हैं। (यः आर्यस्य सधमाः गव्याः) जो इन्द्र आर्योंकी साथ रहनेवाली गायोंके झुण्डोंको (तृत्सुभ्यः आ अनयत्) हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है। और उसने (युधा नॄन् अजगन्) युद्धसे उन शत्रुके वीरोंपर आक्रमण करके उनका वध किया ॥ ७ ॥

[१५३] (दुराध्यः अचेतसः) दुष्ट बुद्धिवाले मूढ शत्रु (अदितिं परुष्णीं) अन्न देनेवाली परुष्णी नदी— रावी नदीके तटको (स्रेवयन्तः वि जगृभ्रे) तोडते रहे। उस इन्द्रने (मह्ना पृथिवीं आविव्यक्) अपने सामर्थ्यके द्वारा पृथिवीको व्याप दिया। अर्थात् उसका यश पृथिवीपर फैल गया। और शत्रुरूपी (चायमानः कविः पत्यमानः पशुः अशयत्) चायमानका कवि वीर पशु जैसा सोया, अर्थात् इन्द्रके द्वारा उसका वध हुआ ॥ ८ ॥

[१५४] इन्द्रने परुष्णीके जलप्रवाहोंको पहलेके समान (अर्थं ईयुः) योग्य मार्गसे चलाया और (न्यर्थं परुष्णीं न ईयुः) अयोग्य मार्गसे परुष्णीके प्रति नहीं आने दिया। (आशुः चन इत्) उसका शीघ्रगामी घोडा भी (अभिपित्वं जगाम) अपने जानेके मार्गसे ही गया। (इन्द्रः सुदासे) इन्द्रने सुदासके लिये (मानुषे) मनुष्य लोकमें रहनेवाले (वध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरंधयत्) व्यर्थ बडबड करनेवाले, उत्तम पुत्रवाले शत्रुओंको मार दिया ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें याजकोंके गुण बताए गए हैं, याजक पाकक्रियामें कुशल हों, यज्ञमें हविरूपमें डालनेके लिए पुरोडाश आदि जो पकाया जाता है, उसे पकानेमें वे कुशल हों। यज्ञको सम्पन्न होते देखकर उनके चेहरे प्रसन्नतासे चमकने लगें, जो यज्ञकर्म करके थक जानेवाले हों और सबके कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले हो तथा प्रभु इन्द्रका गुणगान करनेवाले हों ॥७॥

दुष्ट शत्रुने राष्ट्रपर आक्रमण करके परुष्णी नदीके तटोंको तोड डाला, उसका परिणाम यह हुआ कि नदीका पानी इधर उधर फैल गया। तब इन्द्रने अपनी योजनासे शत्रुकी योजनाको विफल कर दिया, इससे इन्द्रका यश बहुत फैला। इसी तरह राष्ट्रपर जब शत्रुओंका आक्रमण हो और वे राष्ट्रको नष्ट करनेके लिए जो जो योजनायें बनायें, उन योजनाओंको विफल करनेवाली योजनायें राजाके पास हो। ऐसे राजाकी कीर्ति ही सर्वत्र फैलती है ॥ ८ ॥

इन्द्रने परुष्णी नदीके दोनों ओरकी बाजुओंकी दीवारोंको ठीक किया और उस नदीका प्रवाह जिस तरह पहले बहता था, उसी तरह फिर बहने योग्य बना दिया। इससे जिस हानिकी संभावना थी, वह हानि नहीं होने पाई और आसपासके प्रदेशोंकी रक्षा हो गई। इन्द्रने सुदासके लिए उसके शत्रुओंको उनके पुत्रोंके समेत नष्ट किया। राजा अपने राष्ट्रमें नदी और नहरोंकी उत्तम व्यवस्था रखें। युद्धके समय यदि शत्रु नदी और नहरकी व्यवस्थाको बिगाडे भी, तो शीघ्र ही उस व्यवस्थाको ठीक कर दें ॥ ९ ॥

१५५ इ॒युर्गावो॒ न यव॑सा॒दगो॑पा य॒थाकृ॒तम॒भि मि॒त्रं चि॒तासः॑ ।
पृश्नि॑गावः॒ पृश्नि॑निप्रेषितासः श्रु॒ष्टिं च॑क्रु॒र्नियु॑तो॒ रन्त॑यश्च ॥ १० ॥

१५६ एकं॑ च॒ यो विं॑श॒तिं च॑ श्रव॒स्या वै॑क॒र्णयो॒र्जना॒न् राजा॒ न्यस्तः॑ ।
द॒स्मो न सद्म॒न् नि शि॑शाति ब॒र्हिः शूरः॒ सर्ग॑मकृणो॒दिन्द्र॑ एषाम् ॥ ११ ॥

१५७ अध॑ श्रु॒तं क॒वषं॑ वृ॒द्धम॒प्स्व१॒॑नु द्रु॒ह्युं नि वृ॑ण॒ग्वज्र॑बाहुः ।
वृ॒णा॒ना अत्र॑ स॒ख्याय॑ स॒ख्यं त्वा॒यन्तो॒ ये अम॑द॒न्ननु॑ त्वा ॥ १२ ॥

अर्थ— [१५५] (पृश्नि-निप्रेषितासः) माताके द्वारा प्रेरित हुए (चितासः) उत्तम संगठित हुए (पृश्निगावः) नाना वर्णवाली गौवें जिनके पास हैं, ऐसे मरुत् वीर (यथाकृतं) जैसा पहिले किया था वैसा सहाय्य करनेके निश्चयसे (मित्रं) मित्र इन्द्रके पास (यवसात् अगोपाः गावः) जौके खेतके पास ग्वालियेके विना रही गौवें जाती हैं, वैसे (अभि ईयुः) गये। (रंतयः नियुतः च श्रुष्टिं चक्रुः) आनंदित हुए मरुतोंके घोडे भी चपलतासे अच्छी दौड करने लगे ॥ १० ॥

[१५६] (यः राजा श्रवस्या) इस राजाने यशकी इच्छासे (वैकर्णयोः एकं च विंशतिं च जनान्) वैकर्ण राष्ट्रोंके इक्कीस वीरोंका (नि अस्तः) वध किया। जैसा (दस्मः न) दर्शनीय युवा (सद्मन् बर्हिः नि शिशाति) अपने घरमें दर्भोंको काटता है। ऐसे युद्धोंके लिये ही (शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्) शूर इन्द्रने इन मरुतोंको निर्माण किया था ॥ ११ ॥

[१५७] (अध वज्रबाहुः) इसके पश्चात् वज्रधारी इन्द्रने (श्रुतं कवषं वृद्धं द्रुह्युं अनु) श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रुह्यु इनको क्रमसे (अप्सु निवृणक्) जलमें डुबा दिया। (अत्र ये त्वायन्तः त्वा अनु अमदन्) इस समय जिन्होंने तेरे अनुकूल रहकर तेरे लिये आनन्द होने योग्य कर्म किया, वे (सख्याय सख्यं वृणानाः) तेरे मित्रताको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्रको युद्धमें संलग्न देखकर मरुद्वीर उसकी सहायताके लिए आ पहुंचे। सैनिकोंका कर्तव्य यहां बताया गया है। सैनिकोंका कर्तव्य यह है कि वे अपने सेनापतिको युद्ध करते देखकर उसी क्षण उसकी सहायता करनेके लिए पहुंच जाएं। जिस प्रकार स्वतंत्र गायें घासको देखकर उसी तरफ दौडती हैं, उसी प्रकार वीर सैनिक अपने सेनापतिकी सहायताके लिए उसकी तरफ दौडें। ये सभी मरुद्वीर या सैनिक प्रसन्न चित्तवाले, ज्ञानी और संगठित हों ॥ १० ॥

इन्द्रके द्वारा युद्धके लिए तैय्यार किए गए मरुद्वीर दुष्ट शत्रुओंका नाश इस तरह करते हैं कि जिस तरह यज्ञमें याजक दर्भोंको काटते हैं। इसी तरह राष्ट्रके रक्षक सैनिक भी विकर्ण शत्रुओंका नाश करें। विकर्ण शत्रु वे हैं कि जो बारबार समझानेपर भी नहीं सुनते। संधिके समय तो शर्तोंको स्वीकार कर लेते हैं, पर बादमें उद्दण्डताका व्यवहार करते हैं। समझानेपर भी सुना अनसुना करके अपनी दुश्मनीसे बाज नहीं आते। ॥ ११ ॥

यदि कोई विद्वान् ज्ञानी या वृद्ध भी राष्ट्रके साथ द्रोह करें, तो शस्त्रधारी वीर उस वशमें न आनेवाले शत्रुओंको नष्ट करें। जो लोग अनुकूलतासे रहकर आनन्द बढानेवाले सहायक मित्र हैं, उनके साथ मित्रके समान बर्ताव करें। इस मंत्रमें राजनीतिका पाठ है, जो राष्ट्र द्रोही हैं वे चाहे कितने भी ज्ञानी हों, वृद्ध हों अथवा कितने भी पूज्य हों, तो भी उनका नाश करना ही चाहिए ॥ १२ ॥

+

१५८ वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषा- मिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भा- ग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥ १३ ॥
१५९ नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥ १४ ॥
१६० इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥ १५ ॥
१६१ अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१५८] (एषां विश्वा दृंहितानि पुरः) इन शत्रुओंके सब सुदृढ नगरोंके (सप्त सहसा सद्यः विदर्दः) सातों प्रकारोंको बलसे तत्काल तोड दिया, और (अनवस्य गयं तृत्सवे वि भाक्) शत्रुभूत अनुके घरको तृत्सुको दिया। हमने (मृध्रवाचं पुरुं जेष्म) असत्यवादी मनुष्योंपर विजय किया ॥ १३ ॥

[१५९] (गव्यवः अनवः द्रुह्यवः च) गौओंको चुरानेवाले अनु और द्रुह्युके अनुयायी (षष्टिः शता षट् सहस्रा षष्टिः च अधि षड् वीरासः) छियासठ हजार, छियासठ वीरोंको (दुवोयु नि सुषुपुः) सहायकोंके हित करनेके लिये निःशेष मारे गये, (विश्वा इत्) ये सभी (इन्द्रस्य वीर्या कृतानि) इन्द्रके किये पराक्रम हैं ॥ १४ ॥

[१६०] (एते दुर्मित्रासः तृत्सवः) ये दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले बाधाकारी शत्रु (प्रकलवित्) विशेष युद्ध कलाको जाननेवाले (इन्द्रेण वेविषाणाः सृष्टाः) इन्द्रके द्वारा अन्दर घुसकर हटाये गये शत्रु (आपः नः नीचीः अधवंत) जलप्रवाहोंके समान नीचे मुंह करके भागने लगे। (मिमानाः) मारे जानेपर (विश्वानि भोजना सुदासे जहुः) सब भोजन साधनरूप धनोंको सुदासके लिये छोडकर भाग गये ॥ १५ ॥

[१६१] (इन्द्रः क्षां अभि) इन्द्र मातृभूमिको देखकर (वीरस्य अर्धं) वीरका नाश करनेवाले तथा (शृतपां शर्धन्तं अनिन्द्रं परा नुनुदे) हविष्यान्न खानेवाले विनाशक शत्रुका नाश करता रहा। (इन्द्रः मन्युभ्यः मन्युं मिमाय) इन्द्रने शत्रुता करनेवालेके शत्रुके क्रोधका नाश किया। और (पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे) भागनेवालेके मार्गका अवलंबन करनेके लिये शत्रुको बाधित किया ॥ १६ ॥

भावार्थ— शत्रुओंके सब किले और नगरोंको इन्द्रने नष्ट कर दिया और शत्रुओंके धनको छीनकर मित्रोंमें बांट दिया और असत्यका व्यवहार करनेवालोंपर विजय प्राप्त की। इसी तरह राजा शत्रुओंके किलोंको नष्ट करके उन्हें भी नष्ट करे तथा उन शत्रुओंके धनोंको छीनकर अपने सहायकोंमें बांट दे ॥ १३ ॥

इन्द्रने गायोंको चुरानेवाले अनु और द्रुह्युके हजारों अनुयायियोंको नष्ट किया। यह इन्द्रका एक महान् पराक्रम था। धन लूटनेवाले डाकू और द्रोहकारी शत्रु हजारोंकी संख्यामें भी हों, तो भी उन्हें निःशेष करना चाहिए ॥ १४ ॥

दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले कलामें चाहे कितने भी निपुण हों, वे शत्रु ही होते हैं, ऐसे शत्रुओंके अन्दर प्रविष्ट होकर उनका वध करना या उन्हें भगाना चाहिए। उनके अन्दर ऐसी घबराहट उत्पन्न करनी चाहिए, कि जैसे जलप्रवाह नीचेकी ओर दौडते हैं, उसी प्रकार वे तेजीसे भाग जाएं ॥ १५ ॥

मनुष्य अपनी मातृभूमिके हितका विचार करे, तथा अपने वीरोंका नाश करनेवाले तथा भोगोंका हरण करनेवाले शत्रुओंका नाश करे या उन्हें दूर कर दे। शत्रुके क्रोधको व्यर्थ कर दे और उसे ऐसा कर दे कि भागनेके सिवाय और कोई मार्ग ही न सूझे ॥ १६ ॥

१६२ आध्रेण चित् तद्वेकं चकार सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान ।
अवं स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद् विश्वा भोजना सुदासे ॥ १७ ॥
१६३ शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन् नि जहि वज्रमिन्द्र ॥ १८ ॥
१६४ आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥ १९ ॥
१६५ न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥ २० ॥

अर्थ— [१६२] (तत् इन्द्रः आध्रेण चित् एकं चकार) तब इन्द्रने दरिद्रके द्वारा भी एक बडा काम कराया। (सिंह्यं चित् पेत्वेन जघान) प्रबल सिंहको भी बकरेसे मरवाया। (वेश्या स्रक्तीः अव अवृश्चत्) सूईसे स्तंभके कोने कटवा दिये। और (विश्वा भोजना सुदासे प्र अयच्छत्) सब भोग्य धन सुदासको दिये ॥ १७ ॥

[१६३] हे इन्द्र ! (ते शत्रवः शश्वन्तः ररधुः हि) तेरे बहुतसे शत्रु वशमें आ गये हैं। (शर्धतः भेदस्य रन्धि विंद) स्पर्धा करनेवाले भेदकर्ताको वश करनेका उपाय प्राप्त कर। (यः स्तुवतः मर्तान् एनः कृणोति) जो मर्त्योंके प्रति भी पाप करता है, (तस्मिन् तिग्मं वज्रं निजहि) उस शत्रुपर तीक्ष्ण वज्रका प्रहार कर ॥ १८ ॥

[१६४] (अत्र सर्वताता यः भेदं प्रमुषायत्) इस सर्वत्र फैले युद्धमें जिस इन्द्रने भेद करनेवाले शत्रुका वध किया, (तं इन्द्रं यमुना तृत्सवः च आवत्) इस इन्द्रका रक्षण यमुना और तृत्सुओंने किया। (अजासः च शिग्रवः यक्षवः च अश्व्यानि शीर्षाणि बलिं जभ्रुः) अज, शिग्रु तथा यक्षु लोगोंने प्रमुख घोडोंका प्रदान इन्द्रके लिये किया ॥ १९ ॥

[१६५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पूर्वाः सुमतयः न संचक्षे) तेरी पुरातन समयसे चली आयी शुभ कृपाएं अवर्णनीय हैं तथा (रायः) धन भी (उषसः न) उषाओंके समान (न संचक्षे) अवर्णनीय हैं तथा (नूत्नाः न) तुम्हारी नूतन कृपाएं भी अवर्णनीय हैं। (मान्यमानं देवकं चित् जघंथ) मान्यमान देवक शत्रुका तूने वध किया। और (त्मना बृहतः शंबरं अवभेत्) तूने स्वयं ही बडे पर्वतसे शंबर नामक असुर शत्रुका नाश किया ॥ २० ॥

भावार्थ— इन्द्रने एक दरिद्रके हाथोंसे भी एक बडा भारी काम कराया, शक्तिशाली सिंहको भी एक बकरेसे नष्ट करवाया, सुईसे स्तंभके कोने कटवाए और सब भोग्य धन सुदासको दिए। ये सब असंभव दीखनेवाले कर्म इन्द्रने अपनी शक्तिसे करवाये। इसी तरह मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी शक्ति बढावे और असंभव कार्योंको भी संभव करके दिखाए ॥ १७ ॥

वीर मनुष्य शत्रुओंको वशमें करें, अपने समाजमें फूट डालकर परस्पर स्पर्धा करानेवालेका दमन करें। जो सज्जनोंके विरुद्ध पापका आचरण करता है, उसे शस्त्रके प्रहारसे विनष्ट करें। जो समाजमें रहकर अनेक पक्षभेद उत्पन्न करते हैं, आपसमें झगडते हैं और इस प्रकार समाजका संगठन नष्ट करते हैं, वे समाजके महाशत्रु हैं इन्हें नष्ट करना चाहिए ॥ १८ ॥

यज्ञमें अथवा प्रजाकी शक्ति जिससे बढती है, ऐसे कार्यमें जो विघ्न डालकर प्रजामें परस्पर फूट डालते हैं, ऐसे लोगोंको नष्ट करना चाहिए। यमनियमका पालन करनेवाले तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर अपने नेताका संरक्षण करें। गति करनेवाले शीघ्रतासे कार्य करनेवाले तथा याजक ये सब अपने नेताको सहायता प्रदान करें। और उसे हर तरहकी सहायता प्रदान करें ॥ १९ ॥

इन्द्रने पूर्व समयमें जो कृपायें की थीं, या जो इस समय भी कृपा कर रहे हैं, वे उसकी कृपायें अवर्णनीय हैं। कृपा निष्कपट या निःस्वार्थ भावसे करनी चाहिए। धन भी नाना तरहके होनेसे अवर्णनीय हैं। घमंडी और गर्विष्ठ ही जिसकी मान्यता करते हैं, ऐसे दांभिक और तुच्छ देवताके पूजकोंको अर्थात् एक श्रेष्ठ देवकी भक्ति न करनेवाले शत्रुका वध करना चाहिए। देव और देवक इन शब्दोंमें ' देवक ' शब्द तुच्छ देवकी पूजाके निषेधार्थमें प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार देवकका ' अर्थ छोटा देव ' है ॥ २० ॥

१६६ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताऽधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ २१ ॥

१६७ द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ २२ ॥

१६८ चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥ २३ ॥

१६९ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥ २४ ॥

अर्थ— [१६६] (ये पराशरः शतयातुः वसिष्ठः) जो पराशर, सैकडों राक्षसोंका सामना करनेवाला वसिष्ठ वे (त्वायाः) तेरी भक्ति करनेवाले ऋषि (गृहात् प्र अममदुः) घरघरमें तुझे संतुष्ट करते हैं। (ते भोजस्य सख्यं न मृषन्त) वे ऋषि भोजन देनेवाले तुम्हारी मित्रताका विस्मरण नहीं होने देते। (अध सूरिभ्यः सुदिना वि उच्छान्) इन ज्ञानियोंको उत्तम दिन प्राप्त हों ॥ २१ ॥

[१६७] हे (अग्ने) अग्ने ! (देववतः नप्तुः) देव भक्तके पौत्र (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदासकी (गोः द्वे शते) दो सौ गाइयाँ (वधूमन्ता द्वा रथा) वधुओंके साथ दो रथ (दानं रेभन्) इस दानकी प्रशंसा करता हुआ मैं (अर्हन्) योग्य (होता इव सद्म परि एमि) होता यज्ञगृहमें जाता है वैसा मैं अपने घरमें जाता हू ॥ २२ ॥

[१६८] (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदास राजाके (स्मद्दिष्टयः कृशनिनः) दानमें दिये, सुवर्णके अलंकारोंसे लदे (निरेके ऋज्रासः) कठिन स्थानमें भी सरल जानेवाले ऐसे सुशिक्षित (पृथिवीष्ठाः दानाः चत्वारः) पृथिवीपर प्रसिद्ध दानमें दिये चार घोडे (तोकं मा) पुत्रवत् पालनीय मुझ वसिष्ठको (तोकाय श्रवसे वहन्ति) पुत्रोंके पास यशके साथ जानेके लिये ले जाते हैं ॥ २३ ॥

[१६९] (यस्य श्रवः उर्वी रोदसी अन्तः) जिसका यश इस बडी द्यावापृथिवीके अन्दर फैला है, (विभक्ता शीर्ष्णे विबभाज) जो मुख्य मुख्य विद्वानोंको ऐसा ही धन देता है, (सप्त इन्द्रं न इत् गृणन्ति) सात लोक इन्द्रकी स्तुति करनेके समान इसकी प्रशंसा करते हैं। उसके शत्रु (युध्यामधिं स्रवतः अभीके नि अशिशात्) युध्यामधिका नदीके समीप वध हुआ ॥ २४ ॥

भावार्थ— पराशर और वसिष्ठ ये दो ऋषि ऐसे हैं कि जो सैंकडों शत्रुओंका सामना करनेवाले होते हैं। 'परा-शर' वह है कि जो दूरतक शरसंधान करते हैं और 'वसिष्ठ' वह है कि जो शत्रुका हमला होनेपर भी अपने स्थानपर दृढ रहता है। ये दोनों ही गुण विजयके लिए आवश्यक हैं। इन नेतारूप ऋषियोंका यश घर घरमें गाया जाता था। योग्य वस्तुओंको प्रदान करनेवाले प्रभुकी भक्तिसे दूर नहीं होते थे, वे उसका नित्य स्मरण करते थे ॥ २१ ॥

इस मंत्रमें एक राजासे सौ गायें, दो रथ और रथके साथ कन्यायें दानमें मिलनेका उल्लेख है। इस तरहके दान ऋषियोंके आश्रमोंको मिलते थे, जिनपर आश्रम चलते थे। इस दानमें गायें तो छात्रोंके दूध पीनेके लिए उपयोगी हैं, रथ और घोडोंका वाहनोंमें उपयोग हो सकता है। पर ये वधूयें और कन्यायें क्यों दी जाती थीं, यह अन्वेषणीय है ॥ २२ ॥

ऋषियोंकी भक्ति करनेवाले सुदास राजाने सुवर्णके अलंकारोंसे लदे ऊबड खाबड स्थानोंमें भी सरलतासे जानेवाले चार घोडे वसिष्ठको दिए ॥ २३ ॥

दान ऐसा देना चाहिए कि जिससे चारों ओर यश फैले। विद्वानोंमें भी जो श्रेष्ठ विद्वान् हों, उन्हींको दान देना चाहिए। विद्याविहीनको दान नहीं देना चाहिए ॥ २४ ॥

१७० इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥ २५ ॥

[१९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१७१ यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
१७२ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥

अर्थ— [१७०] हे (नरः मरुतः) नेता मरुद्वीरो ! (इमं पितरं दिवोदासं न) इसके, पिता दिवोदासके समान ही इस (सुदासः अनु सश्चत) सुदासकी सहायता करो । (दुवोयु पैजवनस्य केतं अविष्टन) आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले पिजवन पुत्र सुदासके घरकी सुरक्षा करो । तथा इसका (क्षत्रं दूणाशं अजरं) क्षात्रबल बढता जाय कभी कम न हो ॥ २५ ॥

(१९)

[१७१] (यः तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींगवाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है । (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थानभ्रष्ट कर देता है, वह (सुष्वितराय वेदः प्रयंता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है ॥ १ ॥

[१७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं ह त्यत् तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने तब अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की, (यत् आर्जुनेयाय अस्मै शिक्षन्) उस अर्जुनीके पुत्र कुत्सको धन दिया और (दासं शुष्णं कुयवं नि अरंधयः) दास शुष्ण और कुयवका नाश किया ॥ २ ॥

भावार्थ— जो मरने तक डटकर लडते हैं, वे वीर मरुत् हैं । ये ही युद्धके नेता हैं, ये युद्ध संचालनकी विद्याको जानते हैं, इसी लिए इनको " नरः " कहते हैं । ये वीर्यवान् पुरुष हैं । ये सब जनताके संरक्षक हैं । ये वीर देवोंके दास अर्थात् देवोंके भक्तकी रक्षा करते हैं ॥ २५ ॥

वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान् और भयंकर हो । वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे । कोई शत्रु अपने स्थान पर स्थिर न रह सके । कंजूस और अनुदार लोगोंके स्थान भी अस्थिर रहें । ऐसे लोग राष्ट्रमें बलिष्ठ न होने पावें । जो यज्ञ करता और दान देता है उसे पर्याप्त धन प्राप्त हो । वीर यदि अकेला भी हो, तो भी वह अनेक शक्तिशाली शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड डालता है ॥ १ ॥

जो प्रजाओंपर आक्रमण करके और उनका घात करके उन्हें भ्रष्टभ्रष्ट करता है, वह " दास " है । जो समाजके लोगोंके धनों, भोगों और सुखोंका शोषण करता है, अपने सुखके लिए दूसरोंको दुःख देता है, वह " शुष्ण " है । कु-यव " वह है कि जो अपने सडे गले धान्यको भी अच्छा बताकर लोगोंको बेचता है । इस सडे गले धान्यको खाकर प्रजाके स्वास्थ्यका नाश होता है । ऐसे समाजशत्रुओंका समाजके हितके लिए नाश करना चाहिए अथवा ऐसे समाजशत्रुओंको उत्तम शिक्षा देकर उन्हें संस्कारी बनाना चाहिए ॥ २ ॥

१७३ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
१७४ त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चाऽस्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
१७५ तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥
१७६ सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१७३] हे (धृष्णो) शत्रुधर्षक इन्द्र ! तूने (धृषता वीतहव्यं सुदासं) अपने बलसे अन्नका दान करनेवाले सुदासका (विश्वाभिः ऊतिभिः प्र आवः) अनेक संरक्षणके साधनोंसे संरक्षण किया । (वृत्र हत्येषु क्षेत्र साता) वृत्रवध करनेके युद्धमें तथा क्षेत्रका बंटवारा करनेके समय (पौरुकुत्सिं त्रसदस्यु पुरुं च प्र आवः) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु तथा पुरुका संरक्षण किया ॥ ३ ॥

[१७४] हे (नृ-मनः) मनुष्योंके मनोंको आकर्षित करनेवाले इन्द्र ! अथवा जिसका मन मनुष्योंका हित करनेमें लगा है ऐसे इन्द्र ! (देववीता त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि) युद्धमें तू अपने वीरोंके द्वारा बहुत शत्रुओंको मारता है । हे (हर्यश्व) हरिद्वर्णके घोडोंवाले इन्द्र ! तूने (दभीतये सुहन्तु) दभीतिके वज्रके द्वारा दस्यु चुमुरि और धुनिको (नि अस्वापयः) सुलाया, मारा ॥ ४ ॥

[१७५] हे (वज्रहस्त) वज्रधारी इन्द्र ! (तव च्यौत्स्यानि तानि) तेरे वे प्रसिद्ध बल हैं कि जो (यत् नव नवतिं च पुरः सद्यः) तूने शत्रुके नौ और नब्बे नगरोंका भेदन तत्काल ही किया था और (निवेशने शततमा आविवेषीः) अपने ठहरनेके लिये जब सौवी नगरोंमें तूने प्रवेश किया उसी समय (वृत्रं च अहन्) वृत्रको तूने मारा और (उत नमुचिं अहन्) नमुचिको भी मारा ॥ ५ ॥

[१७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते रातहव्याय दाशुषे सुदासे) तुझे हव्य देनेवाले दानी सुदासके लिए (ता भोजनानि सना) जो तू भोगके योग्य धन दिये, वे सदा टिकनेवाले थे । हे (पुरुशाक) बहु शक्तिमान् वीर ! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तुझे लानेके लिये रथको (वृषणा हरी युनज्मि) बलशाली घोडोंको जोडता हूं । (ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) स्तोत्र बलशाली ऐसे तेरे पास पहुंचे ॥ ६ ॥

भावार्थ— जिस तरह इन्द्र अपनी शक्तिसे अनेक संरक्षणके साधनोंसे सुरक्षा करता है, उसी तरह शत्रुको दबानेके बलसे सब सुरक्षाके साधनों द्वारा प्रजाका संरक्षण करना चाहिए । युद्धोंमें तथा भूमिका बंटवारा करते समय झगडेकी जड दूर करनी चाहिये ॥ ३ ॥

प्रजाजनोंका हित करनेमें जिसका मन लगा रहता है, अथवा जिसने प्रजाओंका मन अपनी ओर आकर्षित किया है, वह " नृ-मन " है । देवोंका जहां सत्कार होता है, वह " देववीती " है । राजा मनुष्योंका हित करनेमें अपना मन लगाए । प्रजाका हित करनेमें तत्पर रहे । युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत सारे शत्रुओंका नाश करे । दुष्टोंके दमनसे जो भयभीत होता है, उसकी सुरक्षाके लिए बहुतसे दुष्टोंका वध करे ॥ ४ ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने शत्रुओंके जो अनेक नगरोंका भेदन किया, वह तेरा बल प्रसिद्ध है । शत्रुओंके किलों, प्राकारों और नगरोंका नाश करना चाहिए । उनपर अपना स्वामित्व स्थापन करना चाहिए और उनमें जो नाना रूपोंमें कष्ट देनेवाले शत्रु हों उनका नाश करना चाहिए ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! दाताके उपभोगके लिए हमेशा टिकनेवाले धन दो । बहुत शक्ति और बहुतसा सामर्थ्य प्रदान करो । बलवान् वीरकी सर्वत्र प्रशंसा हो ॥ ६ ॥

१७७ मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टा—वघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथै—स्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥
१७८ प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशी—ह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
१७९ सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाश—न्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥
१८० एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्य—मस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१७७] हे (सहसावन् हरिवः) बलशाली और घोडोंवाले इन्द्र ! (तव अस्यां परिष्टौ) तेरी इस प्रशंसामें (परादै अघाय मा भूम) दूसरोंसे सहायता लेनेका पाप हमसे न हो । (नः अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व) बाधा न करनेवाले संरक्षक साधनोंसे हमें बचाओ । (सूरिषु तव प्रियासः स्याम) ज्ञानियोंमें हम तेरे अधिक प्रिय बनें ॥ ७ ॥

[१७८] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते अभिष्टौ) तेरी स्तुति करते हुए (नरः सखायः प्रियासः शरणे इत् मदेम) हम सब नेता समान कार्य करनेवाले तुम्हें प्रिय होकर अपने घरमें आनन्दसे रहें । (अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्) अतिथि सत्कार करनेवालेके लिये प्रशंसनीय सुखकी अवस्था निर्माण करके (तुर्वशं याद्वं नि नि शिशीहि) तुर्वश और याद्व इन शत्रुओंको अपने वशमें कर ॥ ८ ॥

[१७९] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते नु अभिष्टौ उक्थशासः ये नरः सद्यः चित् उक्था शंसति) तेरी स्तुति करनेके कार्यमें स्तोत्र बोलनेवाले जो नेता तत्काल ही स्तोत्रोंको बोलते हैं । (ते हवेभिः पणीन् वि अदाशन्) उन्होंने अपने दानोंसे पणन करनेवालोंको भी दान करनेवाले बना दिया है । (तस्मै युज्याय अस्मान् वृणीष्व) उस मित्रताके लिये हमारा स्वीकार कर ॥ ९ ॥

[१८०] हे (नृतम इन्द्र) नेताओंमें अत्यंत श्रेष्ठ इन्द्र ! (तुभ्यं एते स्तोमाः मघानि ददतः) तुझे ये संघ धन देते हुए (अस्मद्र्यञ्चः) हमारी ओर आ रहे हैं । (तेषां वृत्रहत्ये शिवः भूः) इनके लिये शत्रुका नाश करनेके युद्धमें तू कल्याण करनेवाला हो, तथा तू (नृणां सखा च शूरः अविता च) मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्य शक्तिशाली बनें । दूसरेकी सहायतापर अवलम्बित न रहें, अपनी ही शक्तिसे अपना कार्य करें, स्वावलम्बी बनें । क्रूरता रहित संरक्षक साधनोंसे प्रजाजनोंका बचाव हो और ज्ञानियोंमें भी अत्यधिक विद्वान् बनकर प्रभुके प्रिय भक्त बने रहें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले तुम्हारे प्रिय बनकर हम अपने घरमें आनन्दसे रहें, आनेवाले अतिथियोंका सत्कार करें । मनुष्य धनवान् बने क्योंकि धनसे ही सब कार्य होते हैं । सब अपने देशमें सुखसे रहें । अपने देशमें रहकर भी लोग दुःख न भोगें । सभी जन अतिथियोंका सत्कार करें, शत्रुओंको वशमें रखें, उन्हें बढने न दें । सभी जन एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले, अग्रगामी होकर कार्यको सम्पन्न करनेवाले और अपने स्थानपर आनन्दसे रहनेवाले हों ॥ ८ ॥

पणी वे होते हैं कि जो पणन करते हैं, वस्तुका क्रय विक्रय करते हैं । ये लोग व्यापार व्यवहार करनेवाले हैं । ये अपना धन बढाना जानते हैं । ऐसे पणव्यवहारियोंको भी दाता बना दिया । यह परिणाम स्तुतिके काव्य पढनेसे हुआ । इसलिए इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ९ ॥

१८१ नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥

[२०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१८२ उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥ १ ॥
१८३ हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥ २ ॥

अर्थ — [१८१] हे शूर इन्द्र ! (स्तवमानः ब्रह्मजूतः) स्तुतिसे और ज्ञानसे प्रेरित होकर (तन्वा ऊती वावृधस्व) अपने शरीरसे और संरक्षणकी शक्तिसे बढता जा । (नः वाजान् उप मिमीहि) हमें अन्न और बल दो, (स्तीन् उप) हमें घर दो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभि पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित करो ॥ ११ ॥

[२०]

[१८२] (स्वधावान् उग्रः इन्द्रः वीर्याय जज्ञे) अपनी धारणाशक्तिसे युक्त वीर इन्द्र पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है । (नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे जो कर्म करना चाहता है वह कर्म वह करता ही है । (नृषदनं युवा अवोभिः जग्मिः) मनुष्योंके स्थानमें यह तरुण संरक्षणके साधनोंसे आता है । और (महः चित् एनसः नः त्राता) बडे पापसे हमारा संरक्षण करनेवाला है ॥ १ ॥

[१८३] (इन्द्र शूशुवानः वृत्रं हन्ता) इन्द्र बढता हुआ वृत्रका वध करता है । (वीरः जरितारं नु ऊती प्र आवीत्) यह वीर स्तोताका संरक्षण अपने सुरक्षाके साधनसे करता है । (सुदासे लोकं कर्ता वै उ) सुदासके लिये लोगोंको, नागरिकोंको, तैयार करता है । (दाशुषे अह वसु मुहुः दाता आ भूत्) दाताको धन वारंवार दे डालता है ॥ २ ॥

भावार्थ — मनुष्य अन्य मनुष्योंमें श्रेष्ठ बने । धनका दान करे । युद्धके समय मनुष्योंकी सहायता करके उनका कल्याण करे । वह मनुष्योंका संरक्षण करे और इसके लिए वह शूर बने और मनुष्योंके साथ मित्रताका व्यवहार करे ॥ १० ॥

मनुष्य शूर हों । देवतास्तुतिसे और ज्ञानविज्ञानसे उन्हें प्रशस्ततम कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती रहे । शरीर स्वस्थ नीरोग और बलवान् बने और उनमें संरक्षण करनेका सामर्थ्य बढे । अन्न ऐसे प्राप्त हों कि जिससे बल बढे । रहनेके लिए उत्तम घर हो । मानवोंका कल्याण होकर उनका संरक्षण भी हो ॥ ११ ॥

मनुष्य अपनी आन्तरिक धारणाशक्तिको बढावे, यह वह उग्रवीर बने, यह समझे कि उसका जीवन मानवोंका हित करने और पराक्रम करनेके लिए ही है। मानवोंका हित सिद्ध करनेके लिए जो प्रशस्ततम कर्म करने आवश्यक हों, उन्हें उत्तम रीतिसे करे । उनके करनेमें असावधानी न होने दे । मानवी समाजमें यह तरुण वीर अपने संरक्षक साधनोंके साथ जाए और उनका हित करे । उन्हें पतनके मार्गमें न गिरने दे, इस प्रकार उनका कल्याण करे ॥ १ ॥

वीर सामर्थ्यसे बढे और शत्रुओंका नाश करे । वीर नागरिकोंका संरक्षण करे, विशेष करके वीर काव्योंके निर्माताओंको सुरक्षित रखें । राजाकी सहायताके लिए नागरिकोंको उत्तम बनायें, जिससे राजाका राज्यशासन उत्तम रीतिसे चल सके । जो उदार दाता हैं, उन्हें वीर बारबार धन दे, जिससे उनका दान अखण्डित रूपसे चलता रहे ॥ २ ॥

१८४ युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥ ३ ॥
१८५ उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा ऽऽ पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन् त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥ ४ ॥
१८६ वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ ५ ॥
१८७ नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन् मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१८४] (युध्मः अनर्वा खजकृत्) योद्धा युद्धसे निवृत्त न होनेवाला युद्धमें कुशल (समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाट्) युद्धमें जानेके लिये सिद्ध शूरवीर जन्मस्वभावसे ही शत्रुका पराभव करनेवाला (अषाळ्हः स्वोजाः इंद्रः) स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला उत्तम बलशाली यह इन्द्र (पृतनाः वि आसे) शत्रुकी सेनाको अस्तव्यस्त करता है। (अध विश्वं शत्रुयन्तं जघान) और सब शत्रुके समान आचरण करनेवालोंका वध करता है ॥ ३ ॥

[१८५] हे (तुवि-ष्मः इंद्र) बहुत धनसे युक्त इंद्र ! (महित्वा तविषीभिः) अपने महत्वसे और अपने बलोंसे तू (उभे रोदसी आ पप्राथ) दोनों द्यावा = पृथिवीको भरपूर भर देता है। (हरिवान् इंद्रः वज्रं नि मिमिक्षन्) घोडोंवाला इंद्र अपने वज्रको शत्रुओंपर फेंकता है और (मदेषु वै अन्धसा सं उवोच) यज्ञोंमें अन्नको प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

[१८६] (वृषा वृषणं रणाय जजान) बलवान् पिताने बलवान् वीरपुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न किया है, (नर्यं तं उ नारी चित् ससूव) मानवोंके हित करनेवाले इस पुत्रको स्त्रीने जन्म दिया। (अध यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति) और जो मानवोंका हित करनेवाला सेनानायक प्रभावयुक्त होता है वह (सः इनः) वह सबका स्वामी होता है वह (सत्वा) शत्रुनाशक (गवेषणः) गौओंको प्राप्त करनेवाला और (धृष्णुः) शत्रुओंका घर्षण करनेवाला है ॥ ५ ॥

[१८७] (यः अस्य घोरं मनः) जो इस वीरके शूर मनको (यज्ञैः आ विवासत्) यज्ञोंद्वारा प्रसन्न करनेके लिये सेवा करता है (सः जनः नु चित् भ्रेजते) वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता, और (न रेषत्) वह क्षीण भी नहीं होता। (यः इंद्रे दुवांसि दधते) जो इन्द्रके स्तोत्र धारण करता है, अपने पास रखता है, उसके लिये (सः ऋतपाः ऋते जाः) वह सत्यपालक और सत्यके लिये उत्पन्न हुआ इंद्र (रायं क्षयत्) धन देता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीर ऐसा हो कि जो योद्धा हो, युद्ध करनेवाला हो, वह युद्धसे डरकर अथवा अन्य किसी कारणसे युद्धमें पीछे हटनेवाला न हो। वह युद्ध करनेमें कुशल, युद्धमें जानेके लिए सदा सिद्ध, शूरवीर, जन्मसे ही शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ, कभी पराभूत न होनेवाला और उत्तम बलवान् हो। ऐसा वीर ही शत्रुकी सेनाको तितर बितर कर देता है, ध्वस्त करता है और शत्रुके समान दुष्ट व्यवहार करनेवालोंका नाश करता है ॥ ३ ॥

यह इन्द्र अपने महत्व और शक्तिसे सर्वत्र व्याप्त होता है, सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त होता है। उत्तम घोडोंवाला यह इन्द्र जब अपने वज्रसे शत्रुओंको मारता है, तब सब प्रसन्न होकर उसे अनेक तरहका अन्नरस प्रदान करते हैं, और उन अन्नरसोंसे वह इन्द्र आनन्दित होता है ॥ ४ ॥

बलवान् पिताने अपने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिए उत्पन्न किया। पिता स्वयं बलवान् बने और अपनी सन्तानको भी बलवान् बनानेका प्रयत्न करे। स्त्री भी मानवोंका हित करनेमें समर्थ बलवान् पुत्रका निर्माण करे। इस तरह जहां पिता और माता ये दोनों शूर और युद्धकुशल पुत्र निर्माण करना चाहेंगे वहां वैसे ही पुत्र उत्पन्न होंगे। जो पुत्र मानवोंका हित करनेवाला, सेना संचालनमें कुशल और प्रभावी नेता हो, ऐसे पुत्रको ही उत्पन्न करनेकी इच्छा माता पिता करें ॥ ५ ॥

×

१८८ यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्ष॒न्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत् पर्यासीत दूर॒मा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥ ७ ॥

१८९ यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाश॒दसन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥ ८ ॥

१९० एष स्तोमो अचिक्रदद् वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन् त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१८८] हे (चित्र इंद्र) आश्चर्यकारक इंद्र ! (यत् पूर्वः अपराय शिक्षन्) जो धन पूर्वज वंशजको देता है, जो (देष्णं ज्यायान् कनीयसः अयत्) जो धन श्रेष्ठको कनिष्ठसे प्राप्त होता है, जो (अमृतः दूरं परि आसीत) धन मृत्युरहित होकर दूर देशमें जाकर धारण किया जाता है वह तीन प्रकारका (चित्र्यं रयिं नः आभर) विलक्षण धन हमें दे दो ॥ ७ ॥

[१८९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ते प्रियः सखा जनः ददाशत्) जो तेरा प्रिय मित्रजन तुझे देता है, हे (अद्रिवः) किलोंमें रहनेवाले वीर ! वह (ते सखा) तेरा मित्र (निरेके असत्) तेरे दानमें रहे, उसे दान मिले। (वयं अघ्नतः ते सुमतौ चनिष्ठाः) हम अहिंसित होकर तेरी कृपामें रहकर अधिकसे अधिक अन्नयुक्त, धनवान् (स्याम) हों और (नृपीतौ वरूथे) मानवोंकी सुरक्षा करनेके समय हम स्वस्थानमें सुरक्षित रहें ॥ ८ ॥

[१९०] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते वृषा एषः स्तोमः अचिक्रदत्) तेरा बल बढानेवाला यह सोम शब्द करता है। (उत स्तामुः अक्रपिष्ट) और स्तुति करनेवाला स्तुति करता है। (ते जरितारं रायः कामः आ अगन्) तेरी स्तुति करनेवाले मेरे पास धनकी कामना आ गयी है। हे (अंग शक्र) प्रिय इन्द्र ! (त्वं वस्वः नः आशकः) तू धन हमें शीघ्र दे ॥ ९ ॥

भावार्थ— जो वीरके मनको प्रसन्नता प्रदान करता है, वह मनुष्य स्थान भ्रष्ट नहीं होता और वह क्षीण भी नहीं होता, क्योंकि उसकी वह वीर मनुष्य रक्षा करता है। जो इन्द्रकी स्तुति करता है, उसके लिए वह सत्यका पालक और सत्यकी रक्षाके लिए उत्पन्न हुआ यह इन्द्र धन देता है ॥ ६ ॥

धन तीन तरहके होते हैं एक धन वह कि जो पूर्वजोंसे परम्परया प्राप्त होता है, इसे पैतृक धन कहते हैं। दूसरा धन वह है जो श्रेष्ठसे कनिष्ठको प्राप्त होता है, इसे सामाजिक धन कह सकते हैं। तीसरा धन वह है कि जो मनुष्य स्वयं मृत्युके भयसे दूर होकर दूर देशमें जाकर धन कमाता है, यह स्वयं अर्जित धन है। ये तीनों धन उत्तम हैं। इन तीनों धनोंको प्राप्त करनेके लिए मनुष्य प्रयत्न करे ॥ ७ ॥

मनुष्य परस्परकी सहायता करें। शत्रुकी सुरक्षाके लिए पर्वतोंपर किले बनाये जाएं और उनमें वीर रहें। कोई भी दुःखी और कष्टी न हो, सब धन धान्य संपन्न हों, सब लोग सुरक्षित हों और अपने निवासस्थानमें आनन्द मनाते रहें। हम दुःखी न होकर अत्यन्त धन धान्यसे संपन्न होकर प्रभुकी कृपाके भागी बनें। हम जनताकी सुरक्षा करनेके कार्यमें और उन्हें उनके स्थानमें सुरक्षित रखनेके कार्यमें हम प्रयत्न करनेवाले हों ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोमका रस निकाला जा रहा है और निचोडनेका भी शब्द हो रहा है। इस समय स्तोत्रका गान भी हो रहा है। मैं स्तोत्रका पाठ कर रहा हूँ और धनप्राप्तिकी मेरी इच्छा भी है, अतः मुझे पर्याप्त धन दे ॥ ९ ॥

१९१ स न॑ इन्द्र त्वय॑ताया इ॒षे धा॒स्त्मना॑ च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑ ।
व॒स्वी षु ते॑ जरि॒त्रे अ॑स्तु श॒क्तिर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ॥ १० ॥

[२१]

(ऋषिः — मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः — इन्द्रः । छन्दः — त्रिष्टुप् ।)

१९२ अस॑ावि दे॒वं गोऋ॑जीक॒मन्धो॒ न्य॑स्मि॒न्निन्द्रो॑ ज॒नुषे॑मुवोच ।
बोधा॑मसि त्वा हर्यश्व य॒ज्ञैर्बोधा॑ नः॒ स्तोम॒मन्ध॑सो॒ मदे॑षु ॥ १ ॥

१९३ प्र य॑न्ति य॒ज्ञं वि॒पय॑न्ति ब॒र्हिः सो॑म॒मादो॑ वि॒दथे॑ दु॒ध्रवा॑चः ।
न्यु॑ भ्रियन्ते य॒शसो॑ गृ॒भादा दू॒रउ॑पब्दो॒ वृष॑णो नृ॒षाच॑: ॥ २ ॥

१९४ त्वमि॑न्द्र॒ स्रवि॑त॒वा अ॒पस्क॒: परि॑ष्ठिता॒ अहि॑ना शूर पू॒र्वीः ।
त्वद्वा॑वक्रे र॒थ्यो॒३॒॑ न धेना॒ रेज॑न्ते॒ विश्वा॑ कृ॒त्रिमा॑णि भी॒षा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१९१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (त्वयतायाः इषे नः धाः) तेरे दिये अन्नका भोग करनेकी शक्ति हममें रहे । हमें धारण कर, हमें सुरक्षित रख । (ये च मघवानः त्मना जुनन्ति) जो धनीलोग हविष्यान्न तुझे देते हैं उनको भी सुरक्षित रख । (ते जरित्रे वस्वी सु शक्तिः अस्तु) तेरी स्तुति करनेवालेको निवास करनेकी उत्तम शक्ति रहे । (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सब सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमें सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

[२१]

[१९२] (देवं गोऋजीकं अन्धः असावि) दिव्य गोदुग्धसे मिश्रित सोमरस निचोडा गया है । (ईं इन्द्रः अस्मिन् जनुषा नि उवोच) यह इंद्र इस सोमरसमें जन्म स्वभावसे ही संगत होते हैं, प्रीति रखते हैं । हे (हर्यश्व-हरि+अश्व) हरिद्वर्णके घोडोंको जोतनेवाले वीर ! हम (त्वा यज्ञैः बोधामसि) तुम्हें यज्ञोंसे जगाते हैं, उत्साहित करते हैं । यहां (अन्धसः मदेषु नः स्तोमं बोध) सोमपानके आनन्दमें हमारे स्तोत्र पाठका श्रवण कर ॥ १ ॥

[१९३] (यज्ञं प्रयन्ति) लोग यज्ञके पास जाते हैं । यज्ञशालामें (बर्हिः विपयन्ति) आसन फैलाये जाते हैं । (विदथे सोममादः दुध्रवाचः) यज्ञमें सोम कूटनेके पत्थर कूटनेका कठोर शब्द करते हैं, सोम कूटा जाता है । (यशसः दूर-उपब्दः नृ-षाचः) यश देनेवाले, दूरसे जिनका शब्द सुनाई देता है, ऐसे मनुष्योंकी सेवा करनेवाले (वृषणः गृभात् नि भ्रियन्ते) बल बढानेवाले सोम कूटनेके पत्थर घरमेंसे लिये जाते हैं ॥ २ ॥

[१९४] हे (शूर इन्द्र) शूर इंद्र ! (त्वं अहिना परिष्ठिता पूर्वीः अपः) तूने वृत्रके द्वारा आक्रान्त होकर रुकक हुए बहुतसे जलप्रवाह (स्रवितवा कः) प्रवाहित होनेवाले बना दिये । (धेना त्वत् रथ्यः न वावक्रे) नदियाँ तेरे कारण ही रथी वीरोंके समान चलने लगी । (विश्वा कृत्रिमाणि भीषा रेजन्ते) सब कृत्रिम भुवन तेरे भयसे कांपते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम सबको अन्नके द्वारा पुष्ट करके धारण कर । प्राप्त अन्नोंका हम उपभोग कर सकें, इसलिए हमारे जीवनको सुरक्षित रख । हमें ऐसी शक्ति प्रदान कर कि हम सुखसे निवास कर सकें । हमारा कल्याण हो और साथमें हमारी सुरक्षा भी हो ॥ १० ॥

सोमयागमें सोम ओषधिका रस निकालते हैं । उसमें गायोंका दूध मिलाते हैं । इस दुग्धमिश्रित सोमका अर्पण इन्द्रादि देवोंको करते हैं । इस समय वेदमंत्रोंका गान होता है और उसके बाद इस रसका पान करते हैं ॥ १ ॥

लोग यज्ञमें जाकर शामिल होते हैं, और यज्ञशालामें फैलाये गए आसनोंपर बैठते हैं । जब सोम कूटा जाता है, तब उसके कूटनेके पत्थरोंका कठोर शब्द होता है । यह सोमरस बल बढानेवाला और यश देनेवाला होता है ॥ २ ॥

१९५ भीमो विवेषायुधेभिरेषा-मपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद् वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥
१९६ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तो-र्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥ ५ ॥
१९७ अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन् न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद् युधा ते ॥ ६ ॥

अर्थ— [१९५] (इन्द्रः नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्) इन्द्र लोगोंके हितके लिये करने योग्य सब कर्मोंको जानता है। (आयुधेभिः भीमः एषां विवेष) शस्त्रोंसे भयंकर हुआ इन्द्र इन शत्रुसेनाओंके अन्दर प्रविष्ट होता है। और (पुरः विधुनोत्) शत्रुओंके नगरोंको कंपाता है। (जर्हृषाणः महिना वज्र-हस्तः विजघान) हर्षित होकर अपनी महिमासे वज्र हाथमें लेकर शत्रुका वध करता है ॥ ४ ॥

[१९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यातवः नः न जुजुवुः) राक्षस हमारा घातपात न करें। हे (शविष्ठ) बलशाली वीर ! (वंदना वेद्याभिः न) वंदन करके हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे अन्तःशत्रु उनके जाननेके साधनोंसे हमारा नाश न कर सकें। (सः अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्) वह आर्य इन्द्र विषम मनुष्य प्राणियोंपर भी अधिकार चलानेकी इच्छा करता है। (शिश्नदेवाः नः ऋतं अपि मा गुः) शिश्नपूजक, ब्रह्मचर्यका पालन न करनेवाले, हमारे यज्ञके पास न आ जांय ॥ ५ ॥

[१९७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं क्रत्वा ज्मन् अभिभूः) तू अपने पुरुषार्थसे पृथ्वीके ऊपरके सारे शत्रुभूत प्राणियोंका पराभव करता है (अध ते महिमानं रजांसि न विव्यक्) और तेरी महिमाको सारे लोक नहीं जानते। (स्वेन शवसा हि वृत्रं जघन्थ) अपने बलसे तू वृत्रका वध करता है। (शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्) शत्रु युद्ध करके तेरा नाश नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

भावार्थ— जिसका बल कम नहीं होता, उस शत्रुका नाम अहि है। यह शत्रु हमला करके जलस्थान, नदियां आदिपर अपना अधिकार स्थापित करता है, जिसके कारण प्रजायें जलसे वंचित रह जाती है। इन्द्र इस शत्रुको परास्त करके जलस्थानों-पर अपना अधिकार प्रस्थापित करता है और जलप्रवाह सब प्रजाओंके लिए खुले करता है। इस भयंकर युद्धके कारण सब भुवन कांपने लगते हैं। अहि, वृत्र आदि नाम मेघ अथवा बर्फके हैं। सर्दीके कारण तालाब और नदियां बर्फ बनकर सख्त हो जाती हैं। पहाडोंके ऊपर बर्फ जम जाती है। बर्फके कारण जलप्रवाह बन्द हो जाते हैं। सर्दीके समाप्त होते ही सूर्यका प्रखर ताप बढने लगता है। इस तापसे बर्फ पिघलने लगती है। यही अहि और वृत्रका मारा जाना है ॥ ३ ॥

इन्द्र जनहितके कर्मोंको जानता है। शस्त्रोंको धारण करनेके कारण भयंकर प्रतीत होनेवाला इन्द्र शत्रुसेनाओंके अन्दर प्रविष्ट होता है, इसके आक्रमण करते ही शत्रुओंके नगर कांपने लगते हैं, तब हर्षित होकर यह इन्द्र शत्रुका वध करता है। जो जनहितके कर्म हैं, उन्हें प्रथम जानना चाहिए। प्रचण्ड भयंकर शस्त्रोंको लेकर शत्रुसेनामें घुसना चाहिए और उसके नगरों और सेना शिबिरोंको नष्ट करना चाहिए ॥ ४ ॥

घात करनेवाले डाकू हमारे पास न आवें। गुप्तरीतिसे अपने आपको सज्जन बताकर, हमारे समाजमें रहकर अन्दर ही अन्दरसे हमारा नाश करनेकी योजना बनानेवालोंका नाश उनके व्यवहारोंको ठीक तरह जानकर किया जावे। हमारे श्रेष्ठ पुरुष दुष्टोंका ठीक तरह शासन करें और हमारे समाजमें शिश्नपरायण अर्थात् इन्द्रिय-लोलुप मनुष्य न रहें ॥ ५ ॥

१९८ देवाश्चित् ते असुर्याय पूर्वे ऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्ये-न्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥
१९९ कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावे-शानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥
२०० सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके ऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ९ ॥

अर्थ— [१९८] हे इन्द्र ! (पूर्वे देवाः चित्) पूर्व देवों अर्थात् असुर लोगोंने (असुर्याय क्षत्राय) अपने बल और क्षात्र तेजको (ते सहांसि अनुममिरे) तेरे बलोंकी अपेक्षा हीन हो मान लिया था ; यह (इन्द्रः विषह्य मघानि दयते) इन्द्र शत्रुका पराभव करके भक्तोंके लिये धनोंका दान करता है और (वाजस्य सातौ इन्द्रं जोहुवन्त) धनकी प्राप्तिके लिये भक्त इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

[१९९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ईशानं त्वां कीरिः अवसे जुहाव हि) तुझ प्रभुकी प्रार्थना स्तोता अपने संरक्षणके लिये करता है । हे (शतं ऊते) सैंकडों साधनोंसे रक्षा करनेवाले इंद्र ! (अस्मे भूरेः सौभगस्य अवः बभूथ) हमारे बहुतसे धनोंकी सुरक्षा तू कर । तथा (अभिक्षत्तुः त्वावतः वरूता) तेरे साथ स्पर्धा करनेवाले शत्रुका निवारण कर ॥ ८ ॥

[२००] हे (इन्द्र) इंद्र ! (ते नमोवृधासः विश्वह सखायः स्याम) तेरे यशकी वृद्धि करनेवाले हम सब सदा तेरे मित्र होकर रहेंगे । हे (महिना तरुत्र) अपनी शक्तिसे तारण करनेवाले इंद्र ! (ते अवसा) तेरे संरक्षणसे (समीके अर्यः अभीतिं) संग्राममें आर्यवीर अनार्य आक्रमकोंका तथा (वनुषां शवांसि वन्वन्तु) हिंसकोंके बलोंका नाश करें ॥ ९ ॥

भावार्थ— जिस तरह इन्द्र अपने पुरुषार्थसे सभी शत्रुओंका नाश करता है, पर उसकी महिमाको सारे लोग मिलकर भी नहीं जान सकते, उसी तरह मनुष्य अपने प्रयत्नसे शत्रुओंका पराभव करें, पर अपनी शक्तिका पता–अपने शत्रुओंको न लगने दे । वह शत्रुओंका तो वध करे, पर स्वयं ऐसी सुरक्षित स्थितिमें रहे, कि शत्रु उसका वध कदापि न कर सकें ॥ ६ ॥

पूर्वदेव अर्थात् राक्षस भी, जो सदा अपनी शक्तिके घमंडमें रहते हैं, अपनी शक्तिको इन्द्रकी शक्तिसे कम ही समझते हैं । यह इन्द्र शत्रुका पराभव करके और उनसे धन प्राप्त करके उस धनको अपने अनुयायियोंमें बांटता है । इसलिए जब किसी अनुयायीको यज्ञ करनेके लिए धनकी आवश्यकता होती है, तब वह इन्द्रके पास जाकर ही धन मांगता है । असुरोंको यहां पूर्वदेव कहा गया है । ये असुर पहले सत्पुरुष या देव थे, पर बादमें वे स्वार्थ प्रवृत्तिके कारण बिगड गए, इसलिए वे राक्षस कहलाए ॥ ७ ॥

राजा अपने राष्ट्रमें स्थित कारीगरोंकी रक्षा करे । शत्रु अनेक रीतिसे आक्रमण करते हैं, इसलिए अनेक रीतिसे उनके आक्रमणोंसे अपना बचाव करना चाहिए । प्रजाओंके धनोंकी सुरक्षा होनी चाहिए और स्पर्धा करनेवाले दुष्टोंका भी नाश होना चाहिए ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! यज्ञके द्वारा तेरे यशको बढानेवाले हम तेरा सदा ही मित्र बनकर रहें तथा तेरे पराक्रमकी सहायतासे हम वीर अनार्योंका नाश करें । यज्ञ करनेवाले सदा मित्रभावसे आपसमें मिल जुलकर संघटित होकर रहें । अपनी शक्ति बढाकर
५८ लोगोंका तारण करें । युद्धमें आर्यवर्गके और अनार्यवर्गके आक्रमणकारियोंको विनष्ट करें ॥ ९ ॥

२०१ स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[२२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।)

२०२ पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥

२०३ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

२०४ बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

अर्थ— [२०१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (त्वयताया: इषे नः धा) तेरे द्वारा दिए गए अन्नका भोग करनेकी शक्ति हममें रहे, तू हमें धारण कर, हमें सुरक्षित रख। (ये च मघवानः त्मना जुनन्ति) जो धनी लोग हविष्यान्न तुझे देते हैं, उनको भी सुरक्षित रख। (ते जरित्रे वस्वी सुशक्तिः अस्तु) तेरी स्तुति करनेवालेमें निवास करनेकी उत्तम शक्ति रहे। (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) तुम सदा हे देवो ! कल्याणकारी साधनोंसे हमारी रक्षा करो ॥ १० ॥

[२२]

[२०२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमं पिब) सोमका यह रस पी। (त्वा मन्दतु) यह सोमरस तुझे आनंद देवे। हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले वीर ! (ते सोतुः बाहुभ्यां, अर्वा न सुयतः, अद्रिः यं सुषाव) तेरे लिये यह सोमरस निचोडनेवालेके बाहुओंसे, रश्मियोंसे संयमित किये घोडेके समान, ये पत्थर इस रसको निकालते हैं ॥१॥

[२०३] हे (हर्यश्व) हे घोडोंवाले इंद्र ! (ते यः युज्यः चारुः मदः) जो यह तेरे योग्य उत्तम आनंद देनेवाला सोम है। (येन वृत्राणि हंसि) जिसके पीनेसे तू वृत्रोंका वध करता है। हे (प्रभुवसो) बहुत धनवाले इंद्र ! (सः त्वां ममत्तु) वह तुम्हें आनन्द देवे ॥ २ ॥

[२०४] हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते प्रशस्तिं) तेरे प्रशंसारूप (यां इमां वाचं वसिष्ठः अर्चति) जिस स्तोत्रका पाठ वसिष्ठ कर रहा है (तां मे वाचं सु आबोध) उस मेरी वाणीको तू अच्छी तरह जान। और (इमा ब्रह्माणि सधमादे जुषस्व) इन स्तोत्रोंको यज्ञमें स्वीकृत करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम सबको अन्नके द्वारा पुष्ट करके धारण कर प्राप्त धनोंका हम उपभोग कर सकें, इसलिए हमारे जीवनको सुरक्षित रख। हमें ऐसी शक्ति प्रदान कर कि हम सुखसे निवास कर सकें। हमारा कल्याण हो और साधनोंसे हमारी सुरक्षा भी हो ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू सोमका रस पी, ये सोमरस तुझे आनंद दें। पत्थरोंसे कूटकर सोमरस निकालते हैं। दोनों हाथोंसे ये पत्थर पकडे जाते हैं। जिस तरह सावधानीसे सारथी घोडोंको संभालता है उसी तरह सावधानीसे ये पत्थर दोनों हाथोंसे संभाले जाते हैं। जिस तरह लगामको ठीक तरह न पकडनेपर घोडे इधर उधर भागते हैं, उसी तरह पत्थर भी यदि ठीक तरह न पकडे जायें तो वे इधर उधर गिरने लगते हैं ॥ १ ॥

सोम पीनेसे उत्साह और शक्ति बढती है। इसे पीनेके बाद उत्साहसे भरकर इन्द्र वृत्रोंका वध करता है। यह सोम शक्तिवर्धक है ॥ २ ॥

वसिष्ठ अर्थात् संसारमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला अथवा सर्वदा धनोंमें रहनेवाला मनुष्य इस इन्द्रकी स्तुति करता है। हे इन्द्र ! इन स्तुतियोंको तुम स्वीकार करो ॥ ३ ॥

२०५ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥
२०६ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥
२०७ भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक् कः ॥ ६ ॥
२०८ तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥

अर्थ— [२०५] हे इन्द्र ! (विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि) सोमरसका पान करनेवाले पत्थरकी इस प्रार्थनाका श्रवण कर । (अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध) पूजा करनेवाले इस ब्राह्मणकी मनकी इच्छाको जान ले । (इमा दुवांसि अन्तमा सचा कृष्व) इन सेवाओंको अन्तःकरणमें पहुंचनेवाली साथ साथ कर । ये प्रार्थनाएं तेरे अन्तःकरणमें पहुंचें ॥ ४ ॥

[२०६] हे इंद्र ! (ते असुर्यस्य विद्वान्) तेरे सामर्थ्यको जाननेवाला मैं (तुरस्य गिरः अपि न मृष्ये) शत्रुका विनाश करनेवाले ऐसे तेरी प्रशंसाके भाषणोंको नहीं छोडूंगा और (न सुष्टुतिं) नहीं तुम्हारी स्तुति करना छोडूंगा । (स्वयशसः ते नाम सदा विवक्मि) स्वतम यशस्वी ऐसे तेरा नाम मैं सदा लेता रहूंगा । ॥ ५ ॥

[२०७] हे (मघवन्) धनवान् इंद्र ! (ते सवना मानुषेषु भूरि हि) तेरे लिये सोमरस निकालनेके सवन मनुष्योंमें बहुत हैं । (मनीषी त्वां इत् भूरि हवते) ज्ञानी स्तोता तेरा ही आह्वान करता है । (अस्मत् आरे ज्योक् मा कः) हमसे दूर अपने आपको तू न कर ॥ ६ ॥

[२०८] हे (शूर) शूर ! (तुभ्य इत् इमा विश्वा सवना) तेरे लिये ही ये सब सोमके सवन हैं । (तुभ्यं वर्धना ब्रह्माणि कृणोमि) तेरे लिये ही ये यश बढानेवाले स्तोत्र हैं । (त्वं नृभिः विश्वधा हव्यः असि) तू ही मनुष्यों द्वारा प्रार्थना करने योग्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! सोमको रसके लिए कूटनेवाले इस पत्थरकी आवाजको सुन और पूजा करनेवाले इस ज्ञानीकी मनकी इच्छाको जान ले । हम जो प्रार्थना करते हैं, वे प्रार्थनायें सीधे तेरे मनमें आकर पहुंचे अर्थात् हमारे द्वारा की गई स्तुतिसे तू प्रसन्न हो ॥ ४ ॥

मनुष्य इन्द्रके सामर्थ्यको जाने और शत्रुका विनाश करनेवाले इन्द्रकी पूजाका त्याग कभी न करे, अपितु वह ऐश्वर्यशाली प्रभुका नाम सदा लेता रहे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हम यह जानते हैं कि तेरे लिए अनेक यज्ञ होते हैं और अनेक लोग तेरी स्तुति करते हैं । पर जो ज्ञानी होता है, उसीके पास तू जाता है । हम ज्ञानसे युक्त होकर तेरी स्तुति करते हैं, इसलिए तू हमारे पास आकर हमारे मनोरथ पूर्ण कर ॥ ६ ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! तेरे लिए ही ये सोमयज्ञ किए जाते हैं, तेरे लिए ही ये यश बढानेवाले स्तोत्र गाये जाते हैं, क्योंकि तू ही मनुष्योंके द्वारा प्रार्थना करनेके योग्य हैं । अर्थात् तू ही एक ऐसा देव है कि जिसकी प्रार्थना की जा सकती है ॥ ७ ॥

२०९ नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मो—दश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥

२१० ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

[२३]

(ऋषिः— मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

२११ उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्ये—न्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानो—पश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥

२१२ अयामि घोष इन्द्र देवजामि—रिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

अर्थ— [२०९] हे (दस्म) दर्शनीय वीर ! (मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति) सन्माननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते । तेरी महिमा अपार है । हे (उग्र) शूरवीर ! (ते राधः वीर्य च उत् अश्नुवन्ति) तेरे धन और वीर्यका भी पार किसीको लगता नहीं है ॥ ८ ॥

[२१०] हे (इन्द्र) इंद्र ! (ये च पूर्वे ऋषयः) जो प्राचीन ऋषि थे (ये च नूत्नाः) और जो नवीन ऋषि हैं, जो (विप्राः ब्रह्माणि जनयन्त) ज्ञानी विद्वान् स्तोत्रोंको करते हैं, (अस्मे ते सख्यानि शिवानि सन्तु) उनमें और हम सबमें तेरी मित्रताएँ कल्याण करनेवाली हों । (यूयं सदा नः) तुम सब हम सबको सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित कीजिये ॥ ९ ॥

[२३]

[२११] (श्रवस्या ब्रह्माणि उत् ऐरयत उ) यशकी इच्छासे स्तोत्रोंको इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये प्रेरित करो । हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! (समर्ये इंद्रं महय) यज्ञमें इंद्रके महत्वका वर्णन कर । (यः विश्वानि शवसा ततान) जो भुवनोंको अपने बलसे फैलाता है, (ईवतः मे वचांसि उपश्रोता) उपासना करनेवाले ऐसे मेरे स्तुतियोंको वही सुननेवाला है ॥ १ ॥

[२१२] (यत् शु-रुधः इरज्यन्त) जब शोकको रोकनेवाली कृतियां बढती हैं, तब हे इंद्र ! (विवाचि देवजामिः घोषः अयामि) हमारी स्तुतिका घोष देवताके पास में पहुंचाता हूँ । (जनेषु स्वं आयुः नहि चिकीते) लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं जानता, जिससे आयु क्षीण होती है (तानि अंहांसि इत् अस्मान् अति पर्षि) उन सब पापोंसे हमें पार ले जाओ ॥ २ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपने सामर्थ्यके कारण सबके द्वारा सन्माननीय है, इसकी महिमाका कोई पार नहीं पा सकता । इस प्रभुकी महिमा अपार है । इसके धन और वीर्यका भी कोई पार नहीं है ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! जितने भी प्राचीन ऋषि और नवीन ऋषि तेरी स्तुति करते आए हैं, उनकी स्तुतियोंसे हम प्रेम करें । उन स्तुतियोंके अन्दर भरे हुए ज्ञानसे हम प्रेम करें अर्थात् उस ज्ञानको प्राप्त करके तदनुसार आचरण करें और इस प्रकार हम उन ज्ञानियोंसे तथा सदाचरणके द्वारा तुझसे भी मित्रता रखें ॥ ९ ॥

ऐश्वर्यशाली और सामर्थ्यशाली प्रभु ही इन सब भुवनोंका यथायोग्य रीतिसे निर्माण करके उन्हें यथायोग्य स्थान पर स्थापित करता है । वही सबकी पुकार सुनता है । इसलिए उसीका यश गाना और उसे ही ग्रहण करना चाहिए ॥ १ ॥

२१३ युजे रथं गवेषणं हरिभ्या—मुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वे—न्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
२१४ आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
२१५ ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे।
एको देवत्रा दयसे हि मर्ता—नस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
२१६ एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [२१३] (गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे) गौवें प्राप्त करानेवाले इंद्रके रथको मैं दो घोडे जोडता हूं। (ब्रह्माणि जुजुषाणं उप अस्थुः) स्तोत्र हमारे सेवा करने योग्य इंद्रकी उपासना करते हैं। (स्यः इंद्रः महित्वा रोदसी वि बाधिष्ट) यह इंद्र अपनी महत्त्वसे द्यावापृथिवीको व्यापता है। (इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्) इंद्र वृत्रोंको अतुलनीय रीतिसे मारता है ॥ ३ ॥

[२१४] हे (इन्द्र) इंद्र ! (अ पः चित्, स्तर्यः गावः न पिप्युः) जलप्रवाह, प्रसूत न हुई गायकी तरह, बढते जायें। (ते जरितारः ऋतं नक्षन्) तेरे स्तोतागण यज्ञको व्यापते रहें, यज्ञ करें। (नियुतः, वायुः न, नः अच्छ याहि) घोडा वायुके समान हमारे पास सीधा आ जावे। अर्थात् इंद्र वेगसे आवे। (त्वं हि धीभिः वाजान् विदयसे) तू बुद्धियोंके साथ अन्नों और बलोंको देता है ॥ ४ ॥

[२१५] हे (इन्द्र) इंद्र ! (त्वा ते मदाः मादयन्तु) तुझे ये सोमरस आनन्द देवें। (जरित्रे शुष्मिणं तुविराधसं) तेरे उपासकको बलवान् और अनेक सिद्धि जिसको प्राप्त है ऐसा पुत्र हो। (हि देवत्रा एकः मर्तान् दयसे) देवोंमें एक ही तू देव मानवोंपर दया करता है। (अस्मिन् सवने हे शूर ! मादयस्व) इस यज्ञमें, हे शूर ! तू आनन्दित हो ॥ ५ ॥

[२१६] (वसिष्ठासः वज्रबाहुं वृषणं इंद्रं एव इत्) वसिष्ठ लोग वज्रके समान बाहुवाले बलवान् इंद्रको (अर्कैः अभि अर्चन्ति) स्तोत्रोंसे पूजते हैं। (सः स्तुतः वीरवत् गोमत् नः धातु) वह स्तुति करनेपर वीरोंसे और गौओंसे युक्त धन हमें देवे। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

भावार्थ— शोक या दुःखको दूर करनेके उपाय करने चाहिए। ईश्वरकी स्तुति शोकको दूर कर सकती है, इसलिए ईश्वरकी स्तुति करनी चाहिए। यह शोकको दूर करनेका उपाय है। अपनी आयु कितनी है, यह कोई भी नहीं जानता, पर वह यह अवश्य जान सकता है कि पापसे आयु क्षीण होती है, इसलिए मनुष्य स्वयंको पापसे बचाए ॥ २ ॥

यह प्रभु अपने सामर्थ्यसे द्यु और पृथिवी लोकको व्यापता है और अपने शत्रुओंको अप्रतिम रूपसे नष्ट करता है। ऐसे प्रभुकी स्तोत्रोंसे स्तुति करनी चाहिए ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! जिस तरह अप्रसूत गायें अधिक पुष्ट होती हैं, उसी तरह जलसे पुष्ट अर्थात् जलसे भरी हुई नदियां बहती जाएं। उन नदियोंके प्रवाहके कारण अन्नादि पदार्थ उत्पन्न हों और उस अन्नसे लोग यज्ञ करते रहें। उन यज्ञोंसे तुझे प्रसन्न करके हम तुझसे बुद्धि और बलको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! हमें ऐसा पुत्र प्रदान करो कि जो बलवान् हो और जिसे अनेक तरहकी कलायें और सिद्धियां प्राप्त हों तथा जिसके पास अनेक तरहके धन हों। पुत्र उत्तम शिक्षा प्राप्त करके अनेक सिद्धियां प्राप्त करे। यह प्रभु ही सब प्राणियोंपर दया करता है। प्राणियोंपर दया करनेवाला इस प्रभुके सिवाय और कोई नहीं है ॥ ५ ॥

×

[२४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२१७ योनि॑ष्ट इन्द्र॒ सद॑ने अकारि॒ तमा नृभि॑: पुरुहूत॒ प्र या॑हि ।
असो॒ यथा॑ नोऽवि॒ता वृ॒धे च॒ ददो॒ वसू॑नि म॒मद॑श्च॒ सोमैः॑ ॥ १ ॥

२१८ गृ॒भी॒तं ते॒ मन॑ इन्द्र द्वि॒बर्हा॑: सु॒तः सोम॒: परि॑षिक्ता॒ मधू॑नि ।
विसृ॑ष्टधेना भरते सुवृ॒क्तिरि॒यमिन्द्रं॒ जोहु॑वती मनी॒षा ॥ २ ॥

२१९ आ नो॑ दि॒व आ पृ॑थि॒व्या ऋ॑जीषिन्नि॒दं ब॒र्हिः सो॑म॒पेया॑य याहि ।
वह॑न्तु त्वा॒ हर॑यो म॒द्र्य॑ञ्चमाङ्गू॒षमच्छा॑ त॒वसं॒ मदा॑य ॥ ३ ॥

---

[२४]

अर्थ— [२१७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते सदने योनिः अकारि) तेरे बैठनेके लिये यह स्थान बनाया है। हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा सुपूजित इन्द्र ! (तं नृभिः आ प्र याहि) उस स्थानके प्रति तू अपने साथी नेताओंके साथ आ। और (नः यथा अविता वृधे च असः) हमारा संरक्षक हो और हमारे संवर्धन करनेके लिये तू सिद्ध रह। (वसूनि च ददः) अनेक प्रकारके धन दे और (सोमैः ममदः च) हमने दिये सोमरससे आनन्दित हो ॥ १ ॥

[२१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (द्विबर्हाः ते मनः गृभीतं) दोनों स्थूल और सूक्ष्म- स्थानोंमें रहनेवाले ऐसे तेरे मनको हमने अपनी ओर आकर्षित किया है। यहां (सोमः सुतः) सोमरस तैयार है। (मधूनि परिषिक्ता) शहद उसमें मिलाया है। (विसृष्टधेना इयं जोहुवती मनीषा सुवृक्तिः) मध्यम स्वरसे उचारी जानेवाली यह प्रार्थनामय मननयोग्य स्तुति (इन्द्रं भरते) इन्द्रके लिये उचारी जाती है ॥ २ ॥

[२१९] हे (ऋजीषिन्) सोमपान करनेवाले इन्द्र ! (नः इदं बर्हिः) यह हमारा आसन है, उसपर बैठकर (सोमपेयाय) सोमपान करनेके लिये (दिवः पृथिव्याः आ याहि) द्युलोकसे अथवा पृथिवीके ऊपरसे, जहां तुम हो वहांसे आ। (तवसं मद्र्यंचं त्वा) बलवान् और मेरी ओर आनेवाले ऐसे तुझे (हरयः आंगूषं अच्छ मदाय वहन्तु) घोडे स्तोत्र पाठके स्थानके पास आनन्द लेनेके लिये तुझे सीधा ले आवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— उत्तम आचरण करनेवाले ज्ञानी वज्रके समान बाहुओंवाले बलवान् इन्द्रको स्तोत्रोंसे पूजते हैं। वह वीरों तथा गौओंसे युक्त इन्द्र हमें वीरपुत्र तथा गाय आदि सम्पत्ति प्रदान करे, तथा उसकी कृपासे सभी देव हमारी रक्षा करें ॥६॥

हे इन्द्र ! यह स्थान तेरे बैठनेके लिए बनाया गया है, इसलिए तू अनेकोंसे पूजित होकर अपने सहयोगियोंके साथ हमारे पास आ। । यहां आकर तू हमारा संरक्षक होकर हमें बढानेके लिए तू हमेशा तैय्यार रह। हमें अनेक तरहके धन दे और हमारे दिए गए सोमरससे तू आनंदित हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तू सूक्ष्म और स्थूल दोनों स्थानोंमें अर्थात् सर्वत्र व्यापक होकर रहता है। जिसका जिसमें शनैः शनैः प्रयुक्त की जाती है, अर्थात् मध्यम स्वरसे जिसका उच्चारण किया जाता है, वह मननीय उत्तम वचनोंवाली ईश्वर स्तुति है। यही मानवोंकी तारक है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमने तेरे लिए यह आसन बिछाया हुआ है, उसपर बैठकर सोमपान करनेके लिए तू जहां भी हो, वहांसे चला आ। ये तेरे घोडे भी, जहां तेरे लिए आनन्ददायक स्तुतियां चल रही हों, वहां तुझे ले आवें ॥ ३ ॥

२२० आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्राऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥ ४ ॥

२२१ एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि ।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥ ५ ॥

२२२ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[२५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२२३ आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥ १ ॥

अर्थ— [२२०] हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले (सुशिप्र) उत्तम शिरस्त्राणवाले इंद्र ! (विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः) संपूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहनेवाला तू (स्थविरेभिः वरीवृजत्) युद्धनिपुण श्रेष्ठ वीरोंके साथ रहकर शत्रुका नाश करता है । (अस्मे वृषणं शुष्मं दधत्) हमें बलवान् सामर्थ्यशाली पुत्रको देता है । ऐसा तू (ब्रह्म जुषाणः नः आ याहि) स्तोत्रको सुननेके लिये हमारे पास आ ॥ ४ ॥

[२२१] (महे उग्राय वाहे) महान् वीर विश्वके संचालक इन्द्रके लिये, (धुरि इव अत्यः न) रथकी धुरामें घोडे जोतनेके समान, (वाजयन् एष स्तोमः अधायि) बल प्रकट करनेवाला यह स्तोत्र किया है । हे इन्द्र ! (त्वा अयं अर्कः वसूनां ईट्टे) तेरे पास यह स्तोता धनोंको मांगता है । वह तू (नः दिवि इव श्रोमतं अधि धाः) हमारे लिये द्युलोकमें भी यशस्वी धन या पुत्र दे ॥ ५ ॥

[२२२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः एव वार्यस्य पूर्धि) हमें संरक्षणीय धनसे परिपूर्ण कर । भरपूर धन दे डाल । (ते महीं सुमतिं प्र वेविदाम) तेरी महनीय सुमति हम सब प्राप्त करें । (मघवद्भ्यः सुवीरां इषं पिन्व) हम धनवालोंके लिये वीर युक्त धन दे डाल । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याणोंके साथ सदा हमें सुरक्षित रखिये ॥ ६ ॥

[२५]

[२२३] हे (उग्र इन्द्र) उग्र इन्द्र ! (यत् समन्यवः सेनाः समरन्त) जब उत्साहयुक्त सेना युद्ध करती है तब (महः नर्यस्य ते बाह्वोः दिद्युत्) मानवोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे बडे बाहुओंमें रहा शस्त्र (ऊती पताति) हमारी सुरक्षा करनेके लिये शत्रुपर गिरे । तेरा (विष्वद्र्यक् मनः) सर्वतोगामी मन (मा विचारीत्) इधर उधर न जाय, वह हमारे हितके कार्यमें ही लग जाय ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! संपूर्ण सुरक्षाके साधनोंसे युक्त तू युद्धमें निपुण श्रेष्ठ वीरोंके साथ रहकर तू शत्रुओंका नाश कर और हमें बलवान् और सामर्थ्यशाली पुत्र प्रदान कर । पुत्र निर्बल और निस्तेज न हो अपितु सामर्थ्यवान् हो । वीर युद्धकलामें निपुण और संपूर्ण संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त रहे ॥ ४ ॥

यह ऋषियोंका काव्य बडे और उग्रवीरके प्रभावका वर्णन करनेवाला है । हे इन्द्र ! तेरा यह स्तोता तुझसे धनोंको मांगता है, इसलिए तू तेजस्वी धन और पुत्र प्रदान कर ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमें संरक्षणके योग्य भरपूर धन दे । तेरे आशीर्वादसे युक्त होकर हम आगे बढें । उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं, वह धन हमें मिले । तेरे अलावा सभी देव भी अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारी रक्षा करते रहें ॥ ६ ॥

२२४ नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर संभरणं वसूनाम् ॥ २
२२५ शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ ३
२२६ त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥ ४ ।

अर्थ— [२२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दुर्गे ये मर्तासः अभि) युद्धमें जो शत्रुके मानव वीर हमारे सन्मुख आ रहकर (नः अमन्ति) हमारा पराभव करना चाहते हैं, उन (अमित्रान् निश्नथिहि) शत्रुओंका नाश कर। तथ (निनित्सोः तं शंसं आरे कृणुहि) निंदा करनेवाले शत्रुके उस प्रलापको दूर कर और (नः वसूनां संभरणं आ भर) हमारे पास धनोंको भरपूर ले आओ ॥ २ ॥

[२२५] हे (शिप्रिन्) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! (ते शतं ऊतयः सुदासे) तेरी सैंकडों प्रकारकी संरक्षणकी साधनें हमारे जैसे तेरे उत्तम भक्तके संरक्षणके लिये रहें । तथा (सहस्रं शंसाः सन्तु) हजारों प्रशंसाएं हों । तथा (उत रातिः) वैसा दान भी हो । (वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि) हिंसक शत्रुके मनुष्यके वधकारी शस्त्रको विनष्ट कर । और (अस्मे द्युम्नं रत्नं च अधि धेहि) हमें तेजस्वी रत्न दो ॥ ३ ॥

[२२६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वावतः क्रत्वे अस्मि हि) तेरे अनुकूल कर्ममें ही मैं दत्तचित्त रहता हूं । हे (शूर) शूर ! (अवितुः त्वावतः रातौ) तेरे अनुकूल रहकर संरक्षण करनेवालेके दान मुझे मिलें । हे (तविषीव उग्र) बलवान् उग्र वीर ! (विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व) सब दिनोंमें हमारा घर अपना ही घर कर, हमारे पास रहो । हे (हरिवः) उत्तम घोडोंवाले वीर (न मर्धीः) हमारा नाश न कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जब हमारी उत्साही सेना युद्ध करती है, तब तेरा वह शस्त्र मानवोंका अहित करनेवाले शत्रुओंपर ही गिरे । मानवोंके हित करनेका यत्न करनेवाले महान् वीरका तेजस्वी शस्त्र मानवोंका हित करनेके लिए ही शत्रुपर गिरे । इधर उधर जानेवाले वीरका मन मानवोंके हितके कार्यको छोडकर इधर उधर न भटके । उसका मन मानवोंकी रक्षाके कर्तव्यमें व्यस्त और स्थिर रहे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! युद्धमें सामने आकर जो हमारा नाश करना चाहते हैं, उनका तू नाश कर । शत्रुओंके निन्दा भरे शब्द सुनने नहीं चाहिए । इसलिए दूसरोंकी निन्दा स्वयं करने तथा दूसरेसे करवानेके पापमय कर्मसे मनुष्य सदा दूर रहे । जो दूसरोंकी बिनाकारण निन्दा करता हो, उस मनुष्यको सदा दूर रखना चाहिए । इस प्रकार मनुष्य सद्गुणोंसे युक्त होकर हर तरहसे समृद्ध हो ॥ २ ॥

उत्तम दाता भक्तके संरक्षणके लिए हजारों प्रशंसाके योग्य संरक्षक साधन सदा तैयार रहें । जो सज्जन और दाता मनुष्य हों उन्हें ही धन प्राप्त हो और उन्हें ही हर तरहके सुखसाधन प्राप्त हों । घात करनेवाले शत्रु जो हमारे प्रति शस्त्रका प्रयोग करें, उनका भी नाश हो । और हमें तेजस्वी अर्थात् चमकीले रत्न प्राप्त हों ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! मैं सर्वदा ऐसे ही कर्म करनेमें लगा रहूं कि जो तेरे अनुकूल हों । इस प्रकार तेरे अनुकूल रहकर मैं ऐश्वर्य प्राप्त करूं । तू भी हमारे घरोंको अपना ही घर समझकर सदा सर्वदा हमारे पास ही रह, कभी हमारा नाश मत कर । हम प्रभुका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिए हमेशा उसके अनुकूल कार्य करते रहें । वह प्रभु हमारे पास सदा रहे । हम भी प्रभु हमें सदा देखता रहता है, यह सोचकर सदा उत्तम कर्म ही करते रहें ॥ ४ ॥

२२७ कुत्सा एते हर्यश्वाय शूष— मिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥ ५ ॥
२२८ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[२६]

(ऋषिः— मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

२२९ न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोष— न्नृवन्नवीयः शृणवद् यथा नः ॥ १ ॥
२३० उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

अर्थ— [२२७] (एते वयं हर्यश्वाय शूषं कुत्साः) ये हम सब उत्तम घोडे पास रखनेवाले इन्द्रके लिये सुखकर स्तोत्र करते हैं। (इन्द्रे देवजूतं सहः इयानाः) इन्द्रके पाससे देवों द्वारा सेवित बल प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं। (तरुत्रा वाजं सनुयाम) दुःखसे पार होनेवाले हम बलको प्राप्त करेंगे। हे शूर ! (वृत्रा सत्रा सुहना कृधि) शत्रुओंको सदा सहज रीतिसे वधके योग्य करो। शत्रुओंका वध सहज ही हो जावे ऐसा कर ॥ ५ ॥

[२२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः एव वार्यस्य पूर्धि) हमें संरक्षणीय धनसे परिपूर्ण कर। (ते महीं सुमतिं प्र वेविदाम) तेरी स्पृहणीय उत्तम बुद्धि हम प्राप्त करें। (मघवद्भ्यः सुवीरां इषं पिन्व) हम धनवानोंके लिए वीरतायुक्त धन दे। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणकारी साधनोंसे हमें सदा सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

[२६]

[२२९] (मघवानं इन्द्रं असुतः सोमः न ममाद) धनवान् इन्द्रके लिये जो सोमरस निचोडा नहीं वह सोम आनंद नहीं देता। (सुतासः अब्रह्माणः न) रस निकालनेपर जो स्तोत्र पाठ रहित होता है वह सोम भी आनंद नहीं देता। (नः यत् उक्थं) हमारा जो सूक्त इन्द्र (जुजोषत्) स्वीकार करेगा (यथा नृवत् शृणवत्) और मनुष्योंमें बैठकर सुनेगा वैसा (नवीयः उक्थं तस्मै जनये) नवीन स्तोत्र उस वीरके लिये मैं बनाता हूं ॥ १ ॥

[२३०] (उक्थे उक्थे सोमः इंद्रं ममाद) प्रत्येक स्तोत्रमें सोम इंद्रको आनंद देता है। (सुतासः नीथे नीथे मघवानं) सोमरस प्रत्येक प्रार्थनाके मंत्रमें धनवान् इंद्रकी प्रशंसा गाते हैं, (पुत्राः पितरं न) पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं उस तरह (सबाधः समानदक्षाः ईं अवसे हवन्ते) इकट्ठे मिले समानतया दक्ष रहनेवाले लोग अपनी सुरक्षाके लिये इंद्रको बुलाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— घोडोंका उत्तम रीतिसे पालन करनेवाले शूरकी प्रशंसामें हम काव्यका गायन करें। देव भी जिसकी प्रशंसा करें, वैसा बल हमें प्राप्त हो। सज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय बल हम प्राप्त करें। दुःखोंसे पार होकर हम बल, अन्न तथा सुख प्राप्त करें। इस प्रकार हम अपना बल इतना बढायें कि शत्रुओंका नाश सहज ही में हो सके ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमें संरक्षणके योग्य भरपूर धन दे। तेरे आशीर्वादसे युक्त होकर हम आगे बढें। उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं, वह धन हमें मिले। तेरे अलावा सभी देव भी अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारी रक्षा करते रहें ॥६॥

सोमरस इन्द्रके लिए निकाला जाए, उसे अर्पण किया जाए। स्तोत्रपाठसे जो पवित्र हुआ होता है, वही सोम सदा आनन्द देता है। हम भी ऐसे स्तोत्रोंका पाठ करें जो वीरोंको प्रिय लगें और वे सभामें बैठकर हमारे स्तोत्रोंको ध्यानसे सुनें ॥ १ ॥

स्तोत्रोंके उच्चारणके साथ तय्यार किया गया सोमका हरएक पात्र इन्द्रको आनन्द देनेवाला होता है। प्रत्येक स्तोत्रमें धनवान् इन्द्रकी प्रशंसा होती है। जिस तरह पुत्र अपने पिताको बुलाते हैं, उसी तरह लोग अपनी सुरक्षाके लिए इन्द्रको बुलाते हैं ॥ २ ॥

२३१ चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥ ३ ॥
२३२ एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥
२३३ एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन् कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[२७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२३४ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत् पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ १ ॥

अर्थ- [२३१] (वेधसः सुतेषु यानि ब्रुवन्ति) स्तोत्र पाठ करनेवाले सोमरस निकालनेके समय जिन इंद्रके कर्मोंका वर्णन करते हैं, (ता नूनं चकार) वे कर्म निश्चय ही इंद्रने पूर्व समयमें किये थे, (कृणवत् अन्या) दूसरे कर्म वह अब भी करता है। वही इंद्र (सर्वाः पुरः) शत्रुके सब नगरोंको (समानः एकः) समवृत्तिसे अकेला-दूसरेकी सहायता न लेता हुआ ही (पतिः जनीः इव) पति अपनी पत्नियोंको वश करता है वैसा ही वह इन्द्र (सु नि मामृजे) उनको अपने वशमें करता है ॥ ३ ॥

[२३२] (यस्य मिथस्तुरः पूर्वीः ऊतयः) जिस इन्द्रके पास परस्पर मिले जुले अनेक अपूर्व रक्षासाधन हैं, (तं एव आहुः) उसीका सब वर्णन करते हैं, (उत शृण्वे) और सुनते हैं कि (एकः इन्द्रः मघानां विभक्ता तरणिः) वही एक इन्द्र धनोंका दाता है और सबका तारक भी है। उसकी कृपासे (अस्मे) हमें (प्रियाणि भद्राणि सश्चत) प्रिय कल्याण हमें प्राप्त हों ॥ ४ ॥

[२३३] (वसिष्ठः नॄन् कृष्टीनां ऊतये) वसिष्ठ मानवोंकी सुरक्षा करनेके लिये (वृषभं इन्द्रं एव) बलवान् इन्द्रका ही (सुते गृणाति) यज्ञमें वर्णन करता है। स्तोत्र गाता है। हे इन्द्र! (नः सहस्रिणः वाजान् उप माहि) हमें सहस्रों प्रकारके अन्न बल तथा धन दे डालो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले रक्षा साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ५ ॥

[२७]

[२३४] (यत् ताः पार्याः धियः युनजते) जब संकटोंसे बचनेके लिये बुद्धि युक्त कर्म किये जाते हैं तब (नरः नेमधिताः इन्द्रं हवन्ते) नेता लोग युद्धके समय इन्द्रको ही बुलाते हैं। वह (त्वं शूरः नृषाता) तू शूर और मनुष्योंको धन देनेवाला (शवसः चकानः) तथा बल चाहनेवाला (गोमति व्रजे त्वं नः आ भज) गौओंके स्थानमें तू हमें पहुंचाओ ॥ १ ॥

भावार्थ- सोमरस तय्यार करते समय होता इन्द्रके जिन गुणोंका वर्णन करते हैं, वे कर्म इन्द्र पहले कर चुका होता है तथा भविष्यमें भी वह ऐसे ही अनेक कर्मोंको करेगा। इन्द्र शत्रुओंकी सब नगरियोंपर अकेला ही कब्जा जमाता है ॥ ३ ॥

इन्द्रके सुरक्षाके साधन परस्पर संयुक्त हैं और शीघ्रतासे लोगोंकी रक्षा करनेवाले हैं। वह एक ही वीर धनोंका यथायोग्य रीतिसे विभाग करके सबको देता है और सबकी सुरक्षा करता है। हमें भी उसकी कृपासे प्रिय और कल्याणकारी सुख मिले ॥ ४ ॥

होतागण बलवान् इन्द्रकी इसलिए प्रशंसा गाते हैं कि वह मानवों और नेताओंकी सुरक्षा करे। वह हजारों तरहके बल और धन देवे। जो हमें धन, अन्न और बल बढानेमें सहायक हों, उसकी हम प्रशंसा करें ॥ ५ ॥

ज्ञानीजन संकटके आनेपर उससे पार होनेके लिए बुद्धिपूर्वक यत्न करते हैं और प्रभु इन्द्रकी कृपा भी प्राप्त करते हैं। नेताको चाहिए कि वह मनुष्योंको उनकी योग्यताके अनुसार धन प्रदान करे ॥ १ ॥

२३५ य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन् विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥ २ ॥

२३६ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीना-मधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥

२३७ नू चित्र इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥ ४ ॥

२३८ नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद् रथवद् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२३५] हे (पुरुहूत मघवन् इंद्र) बहुतों द्वारा प्रार्थित धनवान् इंद्र ! (ते यः शुष्मः अस्ति) तेरा जो बल है उसको तू (सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष) एक विचारसे कार्य करनेवाले मनुष्योंको दे । हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (त्वं हि दृळ्हा) तू सुदृढ किलोंको भी तोड देता है इस लिये वह तू (विचेताः परिवृतं राधः) विशेष ज्ञानी गुप्त धनको भी (न अपवृधि) निःसंदेह हमारे लिये प्रकट कर ॥ २ ॥

[२३६] (जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा) जंगम और मानव इन सबका इन्द्र ही एकमात्र राजा है । (अधि क्षमि यत् विषुरूपं अस्ति) इस पृथिवीपर जो नाना प्रकारके रूपोंवाला जो भी कुछ है, उसका भी वही राजा है । (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) इस लिये वह दाताको धन देता है । वह (उपस्तुतः चित्) स्तुति करनेपर (राधः अर्वाक् चोदत्) धनको हमारे समीप प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

[२३७] (मघवा दानः इन्द्रः) धनवान् दाता इन्द्र (नः सहूती नः ऊती वाजं नूचित् नियमते) हमारे बुलानेपर हमारी सुरक्षाके लिये शीघ्र ही हमें बल देता रहे । (यस्य अनूना अभि वीता दक्षिणा) जिसका संपूर्ण प्राप्त दान (सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय) एक विचारसे कार्य करनेवाले नेताओंके लिये धन दुहता है, देता है ॥ ४ ॥

[२३८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः राये नु वरिवः कृधि) हमारे ऐश्वर्यवृद्धिके लिये तू सत्वर ही धन दे, धन निर्माण कर । हम (ते मनः मघाय आ ववृत्याम) तेरे मनको धनके दानके लिये प्रवृत्त करते हैं। (गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः) गौओं, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन तुम्हारे पास है, उसका तू दाता है (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पात) अपने कल्याणकारक साधनोंसे तुम सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो सामर्थ्य तुझमें है, उसे तू अपने समान विचारवाले नेताओंको प्रदान कर । तू मनुष्योंको संगठित कर । तू जिस सामर्थ्यसे शत्रुओंके किलोंको तोडता है, उस अपने सामर्थ्यको ज्ञानियोंके लिए प्रदान कर ॥ २ ॥

इस पृथ्वीपर जितने कुरूप या सुरूप पदार्थ और मनुष्य हैं, उन सबमें वह प्रभु इन्द्र वास करता है। सभी स्थावर और जंगम जगत्का भी वही एकमात्र स्वामी है। वह दाताके लिए अनेक तरहके धन देता है । जो उदार चरित हैं, उन्हें प्रभु इसतरहकी समृद्धि प्रदान करता है ॥ ३ ॥

दाता धनपति हमारी प्रार्थनापर हम सबकी सुरक्षा करनेके लिए हमें बल प्रदान करे अर्थात् धनपति अपनी सुरक्षाके लिए वीरोंको धन दे और उस धनसे वे वीर संगठन करके इस धनपतिकी रक्षा करें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमारे ऐश्वर्योंकी अभिवृद्धि कर । हमें श्रेष्ठ धन दे । श्रेष्ठ साधनोंसे प्राप्त हुआ धन ही श्रेष्ठ धन कहाता है । ऐसे धनको प्राप्त करनेके लिए हम तेरे मनको अपनी ओर आकर्षित करें ॥ ५ ॥

[२८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२३९ ब्रह्मा॑ ण इन्द्रोप॑ याहि वि॒द्वान॒र्वाञ्च॑स्ते॒ हर॑यः सन्तु यु॒क्ताः ।
विश्वे॑ चि॒द्धि त्वा॑ वि॒हव॑न्त॒ मर्ता॑ अ॒स्माक॒मिच्छृ॑णुहि विश्वमिन्व ॥ १ ॥

२४० हवं॑ त इन्द्र महि॒मा व्या॑न॒ड् ब्रह्म॒ यत् पासि॑ शवसि॒न्नृषी॑णाम् ।
आ यद् वज्रं॑ द॒धिषे॒ हस्त॑ उग्र घो॒रः सन् क्रत्वा॑ जनिष्ठा॒ अषा॑ळ्हः ॥ २ ॥

२४१ तव॒ प्रणी॑तीन्द्र॒ जोहु॑वाना॒न् त्सं यन्नॄन् न रोद॑सी नि॒नेथ॑ ।
म॒हे क्ष॒त्राय॒ शव॑से॒ हि ज॒ज्ञे ऽतू॑तुर्जिं चि॒त् तूतु॑जिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

---

[२८]

अर्थ— [२३९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विद्वान् नः ब्रह्म उपयाहि) सब जाननेवाला तू हमारे स्तोत्र पाठके पास आ । (ते हरयः अर्वाञ्चः युक्ताः सन्तु) तेरे घोडे हमारी ओर आनेके लिये ही जोते हुए हों । हे (विश्वमिन्व) विश्वको संतोष देनेवाले वीर ! (त्वा विश्वे मर्ताः चित् इ विहवन्त) तुझे सारे मनुष्य पृथक् पृथक् बुलाते हैं । तथापि तू (अस्माकं इत् शृणुहि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ १ ॥

[२४०] हे (शवसिन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (यत् ऋषीणां ब्रह्म पासि) जब ऋषियोंका स्तोत्र तुम सुरक्षित रखते हो, तब (ते महिमा वि आनट्) तुम्हारी महिमा उसमें व्याप्त होती हैं । हे (उग्र) शूर वीर ! (यत् हस्ते वज्रं आ दधिषे) जब तुम हाथमें वज्रको धारण करते हो, तब (घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः) तुम भयंकर शूर बनकर अपने युद्धरूप कर्मसे अपराजित होते हो ॥ २ ॥

[२४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् तव प्रणीती जोहुवानान्) जब तुम अपनी नेतृत्वकी पद्धतिके अनुसार स्तोत्र पाठ करनेवाले (नॄन् रोदसी सं निनेथ) मानवोंको द्युलोकसे पृथिवीतक सुप्रतिष्ठित करते हो, तब तुम (महे क्षत्राय शवसे जज्ञे) महान् क्षात्र कर्म तथा बलके कार्य करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो (हि) यह यह निःसंदेह ही है । (अतूतुर्जिं तूतुजिः चित् अशिश्नत) अदाताको दाता पराजित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू सर्वज्ञ होनेके कारण हमारे मनोरथोंको जान और उनको पूरा करनेके लिए हमारे पास आ । तू सब विश्वको तृप्त करके उसे सन्तोष प्रदान करता है । इस लिए संसारके सभी प्राणी तुझे बुलाते हैं, तो भी तू हमारी प्रार्थना ध्यान देकर सुन ॥ १ ॥

इन्द्र अपनी महिमासे ऋषियोंके काव्योंकी सुरक्षा करता है और अपने हाथोंमें वज्र धारण करके दुष्टतम शत्रुओंको भी पराजित करता है । जिन काव्योंमें वीरोंकी वीरताका वर्णन है, वे काव्य सुरक्षित रहें । ऐसे वीर शस्त्रास्त्रोंको धारण करके ऐसा पराक्रम दिखाएं कि वे पराक्रम शत्रुओंके लिए असह्य हो जाएं ॥ २ ॥

जो प्रभुकी आज्ञाके अनुकूल होकर चलता है, उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है । ऐसे प्रतिष्ठित वीरपुरुष बल और शौर्यके महान् कार्य करनेके लिए ही उत्पन्न होते हैं । उदार और कंजूसोंमें कंजूस हमेशा पीछे ही रह जाता है । विश्वमें दाताका यश फैलता है और कंजूस अप्रतिष्ठित होता है ॥ ३ ॥

२४२ एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥ ४ ॥
२४३ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[२९]

(ऋषिः- ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२४४ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारो र्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥ १ ॥
२४५ ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणो ऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वो प ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २ ॥

अर्थ— [२४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते) जो दुष्ट मनुष्य हम लोगोंपर हमला करते हैं, (एभिः अहभिः नः दशस्य) उनको इन अच्छे दिनोंके साथ हमारे अधीन करो । (अनेनाः मायी वरुणः) निष्पाप कुशल वरुण (यत् अनृतं प्रति चष्टे) जो असत्य हमारे अन्दर देखेगा वह (द्विता अव सात्) द्विधा होकर हमसे दूर हो जाय ॥ ४ ॥

[२४३] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है (एनं मघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो ॥ ५ ॥

[२९]

[२४४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तुभ्यं अयं सोमः सुन्वे) तेरे लिये यह सोमरस निकालते हैं । हे (हरिवः) उत्तम घोडे रथको जोतनेवाले इन्द्र ! (तदोकाः तु आ प्रयाहि) उस स्थानपर तू सत्वर आ । (अस्य सुसुतस्य चारोः तु पिब) इस उत्तम सुन्दर रसका पान कर । हे (मघवन्) धनवान् ! (इयानः मघानि ददः) उपासना करनेपर धनोंका प्रदान कर ॥ १ ॥

[२४५] हे (ब्रह्मन् वीर) ज्ञानी वीर ! (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) ज्ञानपूर्वककी हुई इस कृतिका-स्तुतिका सेवन करके (अर्वाचीनः हरिभिः तूयं याहि) हमारी ओर मुख करके घोडोंके साथ सत्वर हमारे पास आ । (अस्मिन् सवने सु मादयस्व) इस सोमसेवनसे आनंदित हो । (नः इमा ब्रह्माणि उप शृणवः) और हमारे ये स्तोत्र श्रवण कर ॥ २ ॥

भावार्थ— जब सज्जनोंपर दुष्टजन मित्रताका छत्ररूप बनाकर आक्रमण करें, तब उन दुष्टोंका नियंत्रण करना चाहिए और सज्जनोंको उत्तम अवसर प्रदान करना चाहिए । इस नियमनका अधिकारी निष्पाप, उत्तम कर्म करनेमें प्रवीण और श्रेष्ठ हो । वह जो असत्य देखे, उसे वह दूर करे ॥ ४ ॥

जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं । इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी हर तरहसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोमरस निचोडा गया है · इस लिए सोम निचोडनेके स्थानपर तू शीघ्र जा । और उस उत्तम रसका पान कर तथा प्रसन्न होकर उपासकको उत्तम धन प्रदान कर ॥ १ ॥

+

२४६ का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाऽधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ ३ ॥
२४७ उतो घा ते पुरुष्या इदासन् येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ ४ ॥
२४८ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् दद्न्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[३०]

(ऋषिः— ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवताः — इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।)

२४९ आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥

अर्थ— [२४६] (सूक्तैः ते अरंकृतिः का अस्ति) इन सूक्तोंसे तुम्हारी शोभा कैसी हो रही है। हे (मघवन्) धनपते ! (कदा ते नूनं दाशेम) कब तुझे हम सचमुच प्रसन्न करें ? (त्वाया विश्वा मतीः आततने) तेरे लिये ही ये स्तुतियां मैं करता हूं। हे इन्द्र ! (अध मे इमा हवा शृणवः) और मेरे ये स्तोत्र श्रवण कर ॥ ३ ॥

[२४७] हे (मघवन्) धनपते ! (उत येषां पूर्वेषां ऋषीणां) और जिन प्राचीन ऋषियोंकी स्तुतियां (अशृणोः) तुमने सुनी थीं, (ते पुरुष्याः इत् आसन्) वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे। (अध अहं त्वा जोहवीमि) अतः मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं, हे इन्द्र ! (त्वं नः पिता इव प्रमतिः असि) तुम हमारे पिता जैसे उत्तम बुद्धिदाता हो ॥ ४ ॥

[२४८] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका दान हमें करता है, (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है, (एनं मघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं, (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंसे करो ॥ ५ ॥

[३०]

[२४९] हे (देव शुष्मिन् इन्द्र) प्रकाशमान् बलशाली इन्द्र ! (शवसा नः आयाहि) बलके साथ हमारे पास आ। (अस्य रायः वृधः भव) इस धनको बढानेवाला बन। हे (नृपते सुवज्र) मनुष्योंके पालनकर्ता उत्तम वज्रधारी इन्द्र ! (महे नृम्ण) बडे बलको बढानेवाला बन। हे (शूर) शूर ! (महि क्षत्राय पौंस्याय) बडे क्षात्र सामर्थ्य और विशाल पौरुषके बढानेवाले बनो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानी वीर इन्द्र ! ज्ञानपूर्वक की गई इस स्तुतिका सेवन करके अपने घोडोंपर बैठकरके हमारी ओर आ। तू इस सोमपानसे आनन्दित हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंसे तेरी शोभा बढती है, इस लिए तू हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंको सुन ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! प्राचीनकालमें जिन ऋषियोंकी स्तुति तुमने सुनी, वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे। मैं भी तेरी स्तुति करता हूँ, क्योंकि तू ही हमारा पिता और हमें उत्तम बुद्धिको देनेवाला है ॥ ४ ॥

जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम सुरक्षा करते हैं। उस इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

२५० हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥
२५१ अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान् दधो यत् केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ ३ ॥
२५२ वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥
२५३ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५०] (हव्यं त्वा विवाचि ऊं हवन्ते) प्रार्थना करने योग्य ऐसे तुम्हारी प्रार्थना विवादयुद्धमें लोग करते हैं । (शूराः सूर्यस्य सातौ तनुषु) शूर लोग सूर्यकी प्राप्ति दीर्घ कालतक शरीरोंमें हो अर्थात् सूर्यसे शरीरमें दीर्घायु प्राप्त हो इस लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । (विश्वेषु जनेषु त्वं सेन्यः) सब लोगोंमें तुम ही सेनाके लिये सुयोग्य संचालक हो । (त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय) तू उत्तम नाशक शस्त्रसे घेरनेवाले शत्रुओंका विनाश कर ॥ २ ॥

[२५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् अहा सुदिना व्युच्छान्) जब दिन अच्छे आयेंगे, (यत् समत्सु केतुं उपमं दधः) जब युद्धोंके संबंधका ज्ञान हमें तुम दोगे, हमें युद्धका कौशल प्राप्त होगा, तब (असुरः होता अग्निः) समर्थ और विबुधोंको बुलानेवाला अग्नि (सुभगाय) हमारे सौभाग्य वर्धनके लिये (देवान् हुवानः) विबुधोंको बुलाता हुआ, (अत्र नि सीदत्) यहां इस यज्ञमें प्रदीप्त होकर बैठे ॥ ३ ॥

[२५२] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र देव ! (ते वयं) तुम्हारे ही हम हैं । (ये मघानि ददतः स्तवंतः) जो धनका दान करते और तुम्हारी स्तुति करते हैं उन (सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ) विद्वानोंके लिये श्रेष्ठ धन दे दो । वे (स्वाभुवः जरणां अश्नवंत) उत्तम ऐश्वर्यवाले होकर वृद्धावस्थाका भोग करें ॥ ४ ॥

[२५३] (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है, (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है, (एनं मघवानं इन्द्रं) इस धनवान् इन्द्रकी हम (इत् वोचेम) प्रशंसा करते हैं । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रकाशमान् तेजस्वी, बलवान् उत्तम शस्त्रधारी, शूरवीर और शत्रुनाशक ऐसा मनुष्य ही मनुष्योंका राजा हो । राजा और राजपुरुषोंमें ये गुण हों । यह राजा अपनी शक्तिपूर्वक अपने कर्तव्य कर्मोंको करता रहे तथा अपने राष्ट्रके ऐश्वर्यको बढावे । अपने राष्ट्रके सामर्थ्य, बल तथा पौरुषको बढावे ॥ १ ॥

युद्धके समय शूर पुरुषोंकी सहायता करनी चाहिए । मनुष्य अपने शरीरके सामर्थ्यको बढानेके लिए सूर्यकिरणोंका आश्रय लेते हैं । सूर्यकिरणोंका स्नान करनेसे शारीरिक शक्ति बढती है । जो शूरवीर तरुण हों वे राष्ट्रकी रक्षाके लिए सैन्यमें भरती हों और उनमें भी जो विशेष शूरवीर हों वे सेनाका संचालन करें ॥ २ ॥

प्रभु जब मनुष्योंको ज्ञान प्रदान करेगा, ज्ञानियोंको प्रेरणा देनेवाला अग्नि जब सौभाग्यको बढानेके लिए ज्ञानियोंको मनुष्योंके पास भेजकर उन्हें तेजस्वी बनायेगा, वही दिन मनुष्योंके लिए सर्वश्रेष्ठ दिन होगा ॥ ३ ॥

मनुष्य यह समझें कि वे सब उस प्रभुके औरस पुत्र हैं, इस लिए वे अन्य असहाय मनुष्योंकी धनादिसे सहायता करें और ईश्वरकी स्तुति करें । हे प्रभो ! ज्ञानीयोंको धन दो और वे ज्ञानी समृद्ध और अतिवृद्ध होकर दीर्घ आयुतक जीवनका उपभोग करें ॥ ४ ॥

[३१]

ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, १०-१२ विराट् ।

२५४ प्र व॒ इन्द्रा॑य॒ माद॑नं॒ हर्य॑श्वाय गायत । सखा॑यः सोम॒पाव्ने॑ ॥ १ ॥
२५५ शंसेदु॒क्थं सु॒दान॑व उ॒त द्यु॒क्षं यथा॒ नरः॑ । च॒कृ॒मा स॒त्यरा॑धसे ॥ २ ॥
२५६ त्वं न॑ इन्द्र वाज॒यु स्त्वं ग॒व्युः श॑तक्रतो । त्वं हि॑रण्य॒युर्व॑सो ॥ ३ ॥
२५७ व॒यमि॑न्द्र त्वा॒यवो॒ ऽभि प्र णो॑नुमो वृषन् । वि॒द्धी त्व१॒॑स्य नो॑ वसो ॥ ४ ॥
२५८ मा नो॑ नि॒दे च॒ वक्त॑वे॒ ऽर्यो र॑न्धी॒ररा॑व्णे । त्वे अपि॒ क्रतु॒र्मम॑ ॥ ५ ॥
२५९ त्वं वर्मा॑सि स॒प्रथः॑ पुरोयो॒धश्च॑ वृत्रहन् । त्वया॒ प्रति॑ ब्रुवे यु॒जा ॥ ६ ॥

---

[३१]

अर्थ— [२५४] हे (सखायः) हे मित्रो ! (वः हर्यश्वाय सोमपाव्ने) तुम उत्तम घोडोंवाले और सोम पीनेवाले (इन्द्राय मादनं प्र गायत) इन्द्रके लिये आनन्दकारक काव्य गाओ ॥ १ ॥

[२५५] (उत) और (सुदानवे सत्यराधसे उक्थं) उत्तम दान देनेवाले और सत्य धन जिसका है ऐसे इन्द्रके लिये स्तोत्र (यथा नरः द्युक्षं) जैसे अन्य नेता तेजस्वी स्तोत्र गाते हैं, वैसा ही (शंस इत्) तुम भी कहो, और हम भी (चकृम) करेंगे ॥ २ ॥

[२५६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं नः वाजयुः) तू हमारे लिये धनकी अभिलाषा कर ! हमें धन देनेकी इच्छा कर । हे (शतक्रतो) सैकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले ! (त्वं गव्युः) तुम हमारे लिये गौओंकी कामना करो । हमें गौएं देनेकी इच्छा करो । हे (वसो) निवासकर्ता ! (त्वं हिरण्ययुः) तू हमारे लिये सुवर्णकी कामना कर ॥ ३ ॥

[२५७] हे (वृषन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (त्वायवः वयं अभि प्रणोनुमः) तेरी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हारी स्तुति गाते हैं । हे (वसो) निवासकर्ता ! (अस्य नः विद्धि) इस हमारे स्तोत्रको तुम ध्यानसे सुनो ॥ ४ ॥

[२५८] (अर्यः वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि) तू हमारा स्वामी है, हमको कठोर बोलनेवाले, निंदक, तथा कंजूसके अधीन मत रख । (ममः क्रतुः त्वे अपि) मेरा यज्ञ तेरे पास पहुंचे ॥ ५ ॥

[२५९] हे (वृत्रहन्) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वर्म असि) तू हमारा कवच है । (स प्रथः) तू सर्वत्र संरक्षण करनेमें प्रसिद्ध है । तू (पुरो योधः च असि) सामनेसे युद्ध करनेवाला है । (त्वया युजा प्रति ब्रुवे) तेरी सहायतासे हम शत्रुको अच्छा उत्तर दें । उनका नाश कर सकें ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो अनेक तरहकी सिद्धियां प्रदान करनेवाले धन हमें देता है, जो स्तोताके स्तोत्ररूप काव्योंकी सुरक्षा करता है, उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं । उस इन्द्रकी कृपासे अन्य देव भी हमारी हर तरहसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे मित्रो ! तुम उत्तम घोडोंवाले और सोम पीनेवाले इन्द्रके प्रशंसाकारक काव्योंका गायन करो ॥ १ ॥

जो उत्तम रीतिसे दान देता है, उसीका धन सच्चा होता है । प्रभु सबको दान देकर सबका उत्तम रीतिसे पोषण करता है, इसलिए उसकी ही प्रशंसाके गीत गाने चाहिए ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू हमें धन देनेकी इच्छा कर । हे अनेकों तरहके उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू हमें गायें भी प्रदान कर । तू हमें सोना देनेकी भी इच्छा कर ॥ ३ ॥

हे बलवान् इन्द्र ! तुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी स्तुति गाते हैं, इस हमारी स्तुतिको तू ध्यानसे सुन ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारा स्वामी है, इस लिए हम तुझसे प्रार्थना करते हैं कि तू हमें कभी भी ऐसे मनुष्योंके वशमें मत कर कि जो कठोर भाषण करनेवाले, निन्दा करनेवाले और कंजूस हों ॥ ५ ॥

२६० महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥ ७ ॥
२६१ तं त्वा मरुत्वती परि भुवद् वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥
२६२ ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन् दस्ममुप द्यवि । सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥
२६३ प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥
२६४ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥ ११ ॥

अर्थ— [२६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महान् असि) तू सबसे बडा है, (यस्य ते सहः) तेरे बलको (स्वधावरी, रोदसी अनु मम्नाते) अन्नवाली द्यावापृथिवी भी मानती है ॥ ७ ॥

[२६१] (तं त्वा सयावरी) तेरे साथ आनेवाली (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजोंके साथ फैलनेवाली (मरुत्वती वाणी) वीरों द्वाराकी स्तुति (परिभुवत्) तुझे स्वीकार करे। तेरी स्तुति सर्वत्र होती रहे ॥ ८ ॥

[२६२] (उपद्यवि त्वा दस्म) द्युलोकके समीप तुझ दर्शनीयके लिये (ऊर्ध्वासः इन्दवः भुवन्) ऊपर ऊपर चढनेवाले सोम सिद्ध हो रहे हैं। (कृष्टयः ते सं नमन्ते) और प्रजाएं तुम्हें नमन करती हैं ॥ ९ ॥

[२६३] (वः महीवृधे महे प्रभरध्वं) तुम धनका संवर्धन करनेवाले महान् वीर इन्द्रके लिये सोमरस भर दो। (प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं) विशेष ज्ञानवान् इंद्रके लिये उत्तम स्तुति करो। (चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्र चर) प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तुम प्रजाओंमें संचार कर ॥ १० ॥

[२६४] (उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृक्तिं) चारों ओर यशसे फैले और बडे इन्द्रके लिये स्तुति और (ब्रह्म विप्राः जनयन्त) हविष्यान्न ज्ञानी लोग तैयार करते हैं। (तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति) उसके संरक्षणादि व्रतोंका निषेध धीर पुरुष भी नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र हर तरहसे रक्षा करनेके कार्यमें प्रसिद्ध है, इस लिए यह इन्द्र हम प्राणियोंका कवच ही है। इस कवचसे सुरक्षित होकर हम अपने शत्रुओंका नाश करें। राजा शत्रुओंका नाश करके प्रजाकी रक्षा करे। वह प्रजाके लिए कवचके समान हो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तू सबसे महान् है, तू सबसे अधिक बलशाली है। तेरे इस बलके आगे अन्न प्रदान करनेवाले द्यु और पृथिवीलोक भी नम्र होते हैं ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तेरे साथ आनेवाली, तेजोंके साथ फैलनेवाली वीरोंके द्वारा की गई स्तुति तुझे बलशाली बनावे ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! अत्यन्त सुन्दर ऐसे तेरे लिए उल्लास प्रदान करनेवाले सोमरस तैयार किए जा रहे हैं और उसके साथ ही प्रजायें नम्रतापूर्वक तेरी स्तुति गा रही हैं ॥ ९ ॥

धनका संवर्धन करनेवाले महान् वीरके लिए सोमरस देकर उसका पूरी तरह सत्कार करना चाहिए। विशेष ज्ञानी वीरकी प्रशंसा करनी चाहिए और प्रजाओंको आवश्यकताओंकी तरफ ध्यान देनेवाला राजा प्रजाओंमें संचार करके उनकी आवश्यकताओंको जाने, उनकी अवस्थापर विचार करे ॥ १० ॥

सभी प्राणी उस प्रभुकी महिमाका गान करते हैं और सभी उसके नियमोंके अनुकूल होकर चलते है, क्योंकि ज्ञानी भी उस प्रभुके नियमोंका उल्लंघन नहीं कर सकते। तब साधारण प्राणियोंकी तो बात ही क्या ॥ ११ ॥

२६५ इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥ १२ ॥

[३२]

ऋषिः- (१-२५) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, २६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे), २६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्डके ब्राह्मणे)। देवता- इन्द्रः। छन्दः- प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट्।

२६६ मो षु त्वा वाघतश्चना ऽऽरे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥
२६७ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥
२६८ रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

अर्थ— [२६५] (सत्रा राजानं अनुत्त-मन्युं) सब विश्वका राजा और जिसका उत्साह अप्रतिम है ऐसे (इन्द्रं वाणीः सहध्यै दधिरे) इन्द्रकी प्रशंसा अपना बल बढानेके लिये की जाती है। अतः (हर्यश्वाय आपीन् सं बर्हय) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले इन्द्रकी स्तुति करनेके लिये अपने मित्रोंको उत्साहित कर ॥ १२ ॥

[३२]

[२६६] (त्वा वाघतः चन अस्मत् आरे) तेरी स्तुति करनेवाले वे स्तोता हमसे दूर (मो सु नि रीरमन्) न रमते रहें। (आरात्तात् चित् नः सधमादं आ गहि) दूरसे भी तू हमारे यज्ञगृहमें आ। (इह वा सन् उप श्रुधि) यहां रहकर हमारा स्तोत्रका श्रवण कर ॥ १ ॥

[२६७] (ते सुते इमे ब्रह्मकृतः हि) तुम्हारे लिये सोमरस निकालनेका कार्य चलनेके समय ये स्तोत्र पाठकर्ता गण (मधौ मक्षः न) शहदमें मधुमक्खियाँ बैठनेके समान (सचा आसते) साथ साथ बैठते हैं। (वसूयवो जरितारः) धन चाहनेवाले स्तोत्रपाठी (रथे न पादं) रथमें पांव रखनेके समान (इन्द्रे कामं आदधुः) इन्द्रमें अपनी इच्छाको रखते हैं ॥ २ ॥

[२६८] (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिताको पुकारता है उस तरह (रायस्कामः) धनकी कामना करनेवाला मैं (वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे) वज्रधारी उत्तम दाता इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ— राजा सदा उत्साही हो, वह कभी दीन या निरुत्साही न हो। राजपुरुष भी ऐसे ही हों। इन्द्रकी स्तुतिका गान करनेसे बल बढानेके उपाय मनुष्योंको ज्ञात होंगे। इस प्रकार मनुष्य स्वयं भी उस प्रभुकी स्तुति करे और दूसरोंको भी उसकी स्तुति करनेकी प्रेरणा दे ताकि वे भी अपना बल बढा सकें ॥ १२ ॥

हे इन्द्र! तेरी स्तुति करनेवाले स्तोता हमसे दूर रहकर आनन्दित हों अर्थात् हम कोई ऐसा काम न करें कि वे हमसे दूर रहना चाहें। तू भी हमारे यज्ञगृहमें आकर हमारे द्वारा किए जानेवाले स्तोत्रोंका श्रवण कर ॥ १ ॥

जिस तरह छत्तेमें मधुमक्खियां बैठती हैं, उसी तरह ये स्तोता यज्ञमें संगठित होकर बैठते हैं। धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले इन्द्रमें ही अपने ध्यानको केन्द्रित करते हैं ॥ २ ॥

मनुष्य इन्द्रसे ही धन पानेकी इच्छा करे। जिस तरह पिताका धन पुत्रको प्राप्त होता है, उसी तरह इन्द्रसे मुझे धन मिले, क्योंकि वह मेरा पिता है और मैं उसका पुत्र हूं ॥ ३ ॥

२६९ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥
२७० श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद् यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥ ५ ॥
२७१ स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन् त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥
२७२ भवा वरूथं मघवन् मघोनां यत् समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [२६९] हे (वज्रहस्त) वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र ! (दध्याशिरः इमे सोमासः) दहीसे मिश्रित ये सोमरस (इन्द्राय सुन्विरे) इन्द्रके लिये तैयार हो रहे हैं। तुम्हारे लिये ही हो रहे हैं। (तान् मदाय पीतये) आनन्दके लिये उनको पीनेके लिये (ओकः हरिभ्यां आ याहि) घर स्थानपर घोडोंसे आओ ॥ ४ ॥

[२७०] (श्रुत्कर्णः वसूनां ईयते) प्रार्थना सुननेके लिये तत्पर कर्णवाला इन्द्र है, उसके पास हम धनोंकी प्रार्थना करते हैं। (नः गिरः श्रवत्) वह हमारी प्रार्थना सुने। (नु चित् मर्धिषत्) कदापि हमें हिंसित न करे, हमारी प्रार्थना निष्फल न करे। (सद्यः चित् यः शता सहस्राणि ददत्) तत्काल ही वह सैंकडों और हजारोंकी संख्यामें धनोंको देता है। (दित्सन्तं न किः आ मिनत्) देनेकी इच्छा करनेवाले उसको कोई रोक नहीं सकते ॥ ५ ॥

[२७१] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (ते यः गभीरा सवनानि सुनोति) तुम्हारे लिये ये गम्भीर सोमके सवन जो करता है (आ धावति च) और तुम्हारे लिये शीघ्रता करता है (सः वीरः इन्द्रेण) वह वीर इन्द्रके द्वारा (अप्रतिष्कुतः) विरुद्ध भावसे प्रतिरोधित न होता हुआ (नृभिः शूशुवे) मानवोंके द्वारा संसेवित होता है। संमानित होता है ॥ ६ ॥

[२७२] हे (मघवन्) धनपते ! (मघोनां वरूथं भव) धनवान् दाताओंका कवच जैसा संरक्षक बनो। (यत् शर्धतः समजासि) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका निवारण करो। (त्वाहतस्य वेदनं विभजेमहि) तुम्हारे द्वारा मारे गये शत्रुके धनका हम सब बंटवारा करेंगे। (दुर्णशः गयं आभर) जिसका नाश नहीं होता ऐसा तुम हमें धन दो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! दहीसे मिश्रित ये सोमरस तेरे लिए तैय्यार किए जा रहे हैं। तू इन रसोंको पीनेके लिए हमारे पास आ ॥ ४ ॥

यह इन्द्र या ऐश्वर्यशाली प्रभु प्रार्थना सुननेके लिए सदा तत्पर रहता है, आवश्यकता है केवल हृदयसे प्रार्थना करनेकी। हृदयसे प्रार्थना किए जानेपर वह अवश्य सुनता है। वह ऐसी प्रार्थनाको कभी निष्फल नहीं करता। जब वह अपने उपासककी इच्छा पूर्ण करनेके लिए तैय्यार रहता है, तब उसे कोई रोक नहीं सकता ॥ ५ ॥

जो सच्चे हृदयसे प्रभुकी उपासना करता है, वह प्रभुके विरोधमें या प्रतिकूल कभी नहीं जाता अपितु उसके द्वारा संवर्धित होकर मनुष्योंके द्वारा संमानित भी होता है ॥ ६ ॥

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू दाताओंकी कवचके समान रक्षा कर तथा हमसे साथ जो शत्रुता करते हों, उनका तू नाश कर, तथा हमको तू अक्षय धन प्रदान कर ॥ ७ ॥

२७३ सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः ॥ ८ ॥
२७४ मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥ ९ ॥
२७५ नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति व्रजे ॥ १० ॥
२७६ गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [२७३] (वज्रिणे सोमपाव्ने इन्द्राय सोमं सुनोत) वज्रधारी सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये सोमरस निकालो। (अवसे पक्तीः पचत) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रके प्रीतिके लिए पुरोडाशादि अन्न पकाओ (कृणुध्वं इत्) इन्द्रके लिये ये सब कर्म करो। (मयः पृणन् इत् पृणते) इन्द्र सुख देता हुआ इस यज्ञकर्मको पूर्ण संपन्न करता है ॥ ८ ॥

[२७४] (सोमिनः मा स्रेधत) सोमयागसे पीछे न हटो। (दक्षत) दक्षतासे कर्म करते रहो। (महे आतुजे) बडे तथा शत्रुके विनाशक इन्द्रके लिये तथा (राये कृणुध्वं) धन प्राप्तिके लिये यज्ञ करो। (तरणिः इत् जयति) त्वरासे कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय करता है, (क्षेति पुष्यति) वह अपने घरमें निवास करता है, पुष्ट होता है, (कवत्नवे देवासः न) कुत्सित कर्म करनेवालेके सहायक देव नहीं होते ॥ ९ ॥

[२७५] (सुदासः रथं नकिः परि आस) उत्तम दाताके रथको कोई दूर नहीं रख सकता। (न रीरमत्) न उसको अन्यत्र रममाण कर सकता है। (यस्य रक्षिता इन्द्रः) जिसका रक्षक इन्द्र है और (यस्य मरुतः) जिसके रक्षक मरुत् हैं (सः गोमति व्रजे गमत्) वह गौओंवाले वाडेमें जाता है, उसके पास गौओंके झुण्ड होते हैं ॥ १० ॥

[२७६] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं यस्य अविता भुवः) तुम जिसके रक्षक होंगे, वह (मर्तः वाजयन् वाजं गमत्) मनुष्य तुम्हारा यश गाता हुआ अन्नको प्राप्त करता है। हे (शूर) शूर! (अस्माकं रथानां अविता बोधि) हमारे रथोंका रक्षक बनो। और (अस्माकं नृणां च) हमारे पुत्रपौत्रादिकोंका रक्षक होओ ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो! वज्र धारण करनेवाले तथा सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिए सोमरस तैय्यार करो। इन्द्रको प्रसन्न करके उससे अपनी सुरक्षा करवानेके लिए उसका सत्कार करो। ऐसा करनेसे इन्द्र सुख देता हुआ हर श्रेष्ठ कर्मको पूर्ण सम्पन्न करता है ॥ ८ ॥

मनुष्य श्रेष्ठ कर्म करनेसे स्वयं भी पीछे न हटे और न दूसरोंको विमुख करें। शत्रुनाशी वीरकी तन, मन और धनसे सहायता करे। जो शीघ्रतासे पर उत्तम रीतिसे कर्म करता है, वही सर्वत्र विजय प्राप्त करता है और अपने घरमें आनंदसे रहता है। ऐसे मनुष्यकी देव भी सहायता करते हैं। इसके विपरीत कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव कभी नहीं करते ॥ ९ ॥

उत्तम दाता या एक उत्तम दासके समान प्रभुकी सेवा करनेवालेकी गति सर्वत्र होती है। उसकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। ऐसे मनुष्यके रक्षक इन्द्र और मरुत् होते हैं, इसलिए वह हर तरहके ऐश्वर्यसे युक्त होता है ॥ १० ॥

हे इन्द्र! तू जिसका रक्षक होता है, वह तेरी कृपासे समृद्धि पाकर तेरा यश सर्वत्र गाता है। हे शूरवीर इन्द्र! तू हमारे रथोंका रक्षक बन और हमारे पुत्रपौत्रादिकोंकी भी रक्षा कर ॥ ११ ॥

२७७ उदिन्न्वस्य रिच्यते ऽंशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ १२ ॥
२७८ मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ १३ ॥
२७९ कस्तमिन्द्र त्वावसु मा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ १४ ॥
२८० मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभि र्विश्वा तरेम दुरिता ॥ १५ ॥

अर्थ— [२७७] (यस्य अंशः रिच्यते) जिस इन्द्रका सोमरसका भाग अन्योंकी अपेक्षा अधिक होता है, (जिग्युषः धनं न) विजयी वीरके धनके समान (उत् इत् नु) निःसंदेह (यः हरिवान् इन्द्रः सोमिनि दक्षं दधाति) जो घोडोंवाला इन्द्र सोमयाग करनेवालेमें बल धारण करता है (तं रिपः न दभन्ति) उसको शत्रु नहीं दबाते ॥ १२ ॥

[२७८] (अखर्वं सुधितं सुपेशसं मंत्रं) बडा उत्तम बनाया सुन्दर मंत्रोंका स्तोत्र (यज्ञियेषु आदधात) यज्ञके योग्य देवोंमें इंद्रके लिये ही अर्पण करो । (यः कर्मणा इंद्रे भुवत्) जो अपने स्तोत्रगानरूप कर्मसे इन्द्रके मनमें स्थान पाता है, (तं पूर्वीः प्रसितयः न तरंति चन) उसको कोई बंधन कष्ट नहीं देते ॥ १३ ॥

[२७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मर्त्यः) जो मनुष्य तुम्हारा प्रिय होता है (तं त्वा-वसुं कः आ दधर्षति) उस तुम्हारे भक्तको कौन भय दिखा सकता है ? हे (मघवन्) धनपते ! (त्वे इत् श्रद्धा) तुम्हारे ऊपर जो श्रद्धा रखता है वह (वाजी) बलवान् होता है, (पार्ये दिवि वाजं सिषासति) और पार होनेके दिनमें भी धन प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

[२८०] (मघोनः ते ये प्रिया वसु ददति) तुम जैसे धनीको जो प्रिय धन अर्पण करते हैं, उनको (वृत्र हत्येषु चोदय) वृत्रवधके समय उत्साहित करो । हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! (तव प्रणीती) तुम्हारी नीतिके द्वारा (सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम) ज्ञानियोंके साथ रहकर सब पापोंसे हम पार हो जायेंगे ॥ १५ ॥

भावार्थ— सोमयागमें इन्द्रको सोमरसका भाग अधिक दिया जाता है । जिस तरह विजयी वीरको धन अधिक मिलता है, उसी तरह इस विजयी इन्द्रको सोमरस अधिक मिलता है । ये वीर इन्द्र सोमयज्ञ करनेवालेको बल प्रदान करता है, उस बलके कारण उसके सभी शत्रु परास्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

इन्द्र सभी देवोंमें प्रमुख है । वह देवोंका राजा है, इसलिए वह सभी तरहकी स्तुतियोंके योग्य है । जो अपनी उपासनाके द्वारा इन्द्रके मनमें अपना स्थान बना लेता है, उसे किसी तरहके बंधन कष्ट नहीं देते ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! जो तेरा प्रिय भक्त होता है, उसे भला कौन भय दिखा सकता है अर्थात् इन्द्रका भक्त हर तरहसे निर्भीक होता है । जो तुझपर श्रद्धा रखता है, वह बलवान् होता है और संकटके क्षणोंमें भी ऐश्वर्यशाली बना रहता है ॥ १४ ॥

जो इन्द्रकी उपासना करता है वह शत्रुनाशके लिए किए जानेवाले युद्धमें सदा उत्साहपूर्ण रहता है । उत्तम धर्म नियमोंमें रहनेसे सब पाप दूर हो सकते हैं । ज्ञानियोंके साथ रहनेसे तो निस्सन्देह पापसे बचा जा सकता है ॥ १५ ॥

×

२८१ तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥

२८२ त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥

२८३ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १८ ॥

२८४ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ १९ ॥

अर्थ— [२८१] हे (इन्द्र) इंद्र ! (अवमं वसु तव इत्) पृथिवीपरका धन तुम्हारा ही है, (त्वं मध्यमं पुष्यसि) तू मध्यम धनको पुष्ट करता है। (विश्वस्य परमस्य राजसि) सब श्रेष्ठ धनपर भी तुम्हारा राज्य है यह (सत्रा) सत्य है। (त्वा गोषु न किः वृण्वते) तुम्हें गौओंमें रहनेसे कोई रोक नहीं सकता ॥ १६ ॥

[२८२] (त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि) तुम सब धनोंके दाता प्रसिद्ध हो। (ये आजयः ईं भवन्ति) जो युद्ध होते हैं उनमें भी तुम प्रसिद्ध हो। हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित वीर ! (अयं विश्वः पार्थिवः) ये सब पृथ्वीपरके मनुष्य (अवस्युः नाम भिक्षते) अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं ॥ १७ ॥

[२८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् यावतः त्वं) जितने धनका स्वामी तू है (एतावत् अहं ईशीय) उतना सब धन मैं प्राप्त करना चाहता हूं। हे (रदावसो) धनके दाता ! (स्तोतारं इत् दिधिषेय) स्तोताकी सुरक्षा हो ऐसी मेरी इच्छा है। (पापत्वाय न रासीय) पाप बढानेके लिये धनका दान मैं नहीं करूंगा ॥ १८ ॥

[२८४] (कुहचिद्विदे महयते) कहींपर भी रहनेवालेके उपासना करनेवाले भक्तके लिये (दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्) प्रतिदिन मैं धनका दान अवश्य करूंगा। हे (मघवन्) धनपते ! (नः आप्यं त्वत् अन्यत् नहि) तुमसे भिन्न हमारा कोई बंधु नहीं है। (वस्यः पिता चन अस्ति) न प्रशंसनीय पिता ही दूसरा है ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह सत्य है कि इस पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें और द्युलोकमें जितना भी कुछ ऐश्वर्य भरा पडा है, वह सब प्रभुका है। प्रभु ही उन सबका एकमात्र स्वामी है ॥ १६ ॥

वह प्रभु इतने बडे ऐश्वर्यका स्वामी होनेपर भी महान् दाता है। वह धनके दाताके रूपसे बहुत प्रसिद्ध है। युद्धोंमें भी या शत्रुनाशनके कार्योंमें भी वह महायशस्वी है, इसलिए अपनी सुरक्षाके लिए सभी प्राणी उसी प्रभुकी शरणमें आते हैं ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जितने धनका स्वामी तू है, उतने ही विस्तृत धनका स्वामी मैं भी होऊं। मैं धनका स्वामी होकर स्तोताकी रक्षा करूं। मैं पाप बढानेके कामोंमें कभी भी अपना धन खर्च न करूं ॥ १८ ॥

इन्द्र कहता है- 'मैं प्रतिदिन उपासकको धन देता हूं,' यह सुनकर ऋषि कहता है- हे धनपते ! तुमसे भिन्न या तेरे सिवाय हमारा बन्धु और कोई नहीं है और नाही कोई दूसरा पिता है। तू ही हमारा पिता, भाई और पिता अर्थात् सर्वस्व है ॥ १९ ॥

२८५ तरणिरित् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥ २० ॥

२८६ न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

२८७ अभि त्वा शूर नोनुमो ऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृश—मीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

२८८ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

अर्थ— [२८५] (तरणिः इत्) त्वरासे कर्म करनेवाला मनुष्य (पुरंध्या युजा वाजं सिषासति) बडी धारणावती बुद्धिके साथ युक्त होकर बल तथा अन्न प्राप्त करता है । (सुद्र्वं नेमिं त्वष्टा इव) उत्तम लकडीकी चक्रनेमिको तर्खाण नमाता है, उस तरह (गिरा वः पुरुहूतं इन्द्रं आ नमे) मैं अपनी स्तुतिसे आपके लिये बहुप्रशंसनीय इंद्रको मैं अपनी ओर लानेके लिये नवाता हूं ॥ २० ॥

[२८६] (मर्त्यः दुष्टुती वसु न विन्दते) मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन नहीं प्राप्त कर सकता । (स्रेधन्तं रयिः न नशत्) हिंसकको धन नहीं प्राप्त हो सकता । हे (मघवन्) धनपते ! (पार्ये दिवि) दुःखसे पार होनेके प्रयत्नसे युक्त दिनमें (मावते देष्णं) मेरे जैसे भक्तके लिये देनेयोग्य धन (तुभ्यं सुशक्तिः इत् विन्दते) तुमसे उत्तम शक्तिसे उत्तम कर्म करनेवाला ही प्राप्त करता है ॥ २१ ॥

[२८७] हे (शूर) शूर इंद्र ! (अस्य जगतः ईशानं) इस जंगम वस्तुजातके स्वामी तथा (तस्थुषः ईशानं) स्थावर विश्वके स्वामी ऐसे (स्वर्दृशं त्वा) विश्वदृष्टिवाले तुमको (अदुग्धाः इव धेनवः) न दुही हुई गौवें जिस तरह दोहन होनेके लिये उत्सुक होती हैं उस तरह हम (अभि नो नुमः) स्तवन करते हैं ॥ २२ ॥

[२८८] हे (मघवन् इंद्र) धनपते इंद्र ! (दिव्यः त्वावान् अन्यः न) द्युलोकमें तुम्हारे सदृश दूसरा कोई नहीं है । (न पार्थिवः जातः न जनिष्यते) पृथ्वीपर भी न कोई तुम्हारे सदृश हुआ है और ना ही होगा । (अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः) हम घोडों, गौओं और अन्नोंको चाहनेवाले (त्वा हवामहे) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ— कुशलतासे और शीघ्रतासे उत्तम काम करनेवाला शिल्पी उत्तम बुद्धिसे युक्त होनेके कारण अन्न और बलको प्राप्त करता है । वक्ता या उपदेशक अपनी वाणीके द्वारा लोगोंका मन आकृष्ट करके अन्न और बल प्राप्त करता है । वाणीमें ऐसी शक्ति चाहिए कि जिससे दूसरोंपर प्रभाव पडे ॥ २० ॥

मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन प्राप्त न करे अर्थात् वह धन प्राप्त करनेके लिए दुष्टकी प्रशंसा न करे और हिंसा करके भी धन न कमावे । मनुष्य प्रथम कुशलतासे कर्म करनेकी शक्ति प्राप्त करे फिर उस कुशलतापूर्ण कर्मसे मनुष्य धन प्राप्त करे ॥ २१ ॥

जो स्थावर और जंगमका एकमात्र प्रभु है, उसीकी उपासना करना मनुष्योंके लिए योग्य है । मनुष्य उतनी ही आतुरतासे ईश्वरस्तुति करे जितनी न दुही गायें दोहन करानेके लिए उत्सुक रहती हैं ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीपर तेरे समान समर्थ वीर कोई दूसरा न भूतकालमें हुआ, न भविष्य कालमें होगा और न इस समय है । तीनों लोकोंमें और तीनों कालोंमें तेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है । इसलिए ऐश्वर्यको चाहनेवाले सभी लोग तेरे पास ही आते हैं ॥ २३ ॥

२८९ अभी षुतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन् त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥

२९० परा णुदस्व मघवन्नमित्रान् त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥

२९१ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ २६ ॥

२९२ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपो ऽति शूर तरामसि ॥ २७ ॥

अर्थ— [२८९] हे (ज्यायः इंद्र) श्रेष्ठ इंद्र ! (कनीयसः सतः तत् अभि आ भर) मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ अतः मुझे वह धन तुम भरपूर दो । हे (मघवन्) धनपते ! (सनात् पुरुवसुः हि असि) तुम सनातन कालसे बहुत धनवाला हो और (भरे भरे हव्यः च) प्रत्येक युद्धमें तथा यज्ञमें पूज्य हो ॥ २४ ॥

[२९०] हे (मघवन्) धनपते ! (अमित्रान् परा नुदस्व) शत्रुओंको दूर कर । (नः वसु सुवेदा कृधि) हमारे लिये धन सुखसे प्राप्त होने योग्य कर । (महाधने सखीनां अविता बोधि) युद्धके समय मित्रोंका संरक्षण करनेवाला हो, (वृधः भव) धनको बढानेवाला हो ॥ २५ ॥

[२९१] हे (इन्द्र) इंद्र ! (नः क्रतुं आ भर) हमारे प्रज्ञानपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण करो । (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको धन देता है वैसा तुम (नः शिक्ष) हमें दो । हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा स्तवित हुए इंद्र ! (अस्मिन् यामनि) इस यज्ञमें (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम जीवित रहकर तेजको प्राप्त करें ॥ २६ ॥

[२९२] (अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा मा अवक्रमुः) अज्ञात रीतिसे अशुभ दुष्ट घातक शत्रु हमपर आक्रमण न करें । हे (शूर) शूर ! (त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि) तुम्हारे संरक्षणमें समर्थ होकर सब कर्मोंसे हम पार हो जायगे ॥ २७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! मैं तेरा छोटा भाई हूँ, इसलिए तू मुझे भरपूर धन दे । बडा भाई छोटे भाईको धन दे । उसकी सहायता करे । उसका भाग योग्य समय आनेपर स्वयं दे डाले, बडे भाईके पास पैतृक धन पहले जाता है । इसलिए बडे भाईको चाहिए कि वह ईमानदारीसे अपने छोटे भाईका धन उसे दे दे ॥ २४ ॥

शत्रुओंको दूर करके ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे धनप्राप्तिके व्यवहार सुखसे होते रहें । युद्धके समय मित्रोंकी रक्षा हो, मित्रोंकी समृद्धि हो, इस प्रकार मित्रोंकी शक्ति बढे ॥ २५ ॥

पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा दे, उनकी प्रज्ञा बढावे । उनमें कर्मको कुशलतासे करनेकी शक्ति प्रदान करे । मनुष्य दीर्घजीवी हो, उसका जीवन तेजस्वी हो ॥ २६ ॥

कोई भी शत्रु अज्ञातमार्गसे हमपर आक्रमण न कर सके । हमारे कल्याणके मार्गमें बाधक न हो सके । हम सामर्थ्यवान् होकर सदा अपनी उन्नतिके लिए शुभ कर्मोंको करते रहें । उन शुभ कर्मोंको हम निर्विघ्न रूपसे करते रहें ॥ २७ ॥

[३३]

(ऋषिः- (१-९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, १०-१४ वसिष्ठपुत्राः । देवता- १-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा; १०-१४ वसिष्ठः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२९३ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन् न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥
२९४ दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् ॥ २ ॥
२९५ एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारे- वेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥ ३ ॥
२९६ जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणा- मक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणे- न्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

---

[३३]

अर्थ— [२९३] इंद्र कहता है— (श्वित्यञ्चः धियंजिन्वासः) गौरवर्ण बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले (दक्षिणतस्कपर्दाः) दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले वसिष्ठ गोत्रके लोग (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे अत्यन्त आनन्द देते रहे । (बर्हिषः परि उत्तिष्ठन् नॄन् वोचे) आसनसे ऊपर उठते हुए लोगोंसे मैंने कहा कि (मे दूरात् वसिष्ठाः अवितवे न) मुझसे दूर वसिष्ठके लोग न जांय ॥ १ ॥

[२९४] वसिष्ठ कहता है— (वैशन्तं पान्तं उग्रं इंद्रं) चमसमें स्थित सोमको पीनेवाले उग्र वीर इंद्रको (सुतेन अति तिरः) इस सोमरससे उस पात्रका तिरस्कार करवा के (दूरात् आनयन्) दूरसे भी ले आये थे । (इंद्रः वायतस्य पाशद्युम्नस्य सुतात् सोमात्) इंद्रने भी वयत् पुत्र पाशद्युम्नके तयार हुए सोमको छोडकर (वसिष्ठान् अवृणीत) वसिष्ठोंको ही वर लिया ॥ २ ॥

[२९५] (एव इत् नु एभिः सिन्धुं कं ततार) इसी तरह इन्होंने सिन्धुको सुखसे पार किया । (एव इत् नु एभि भेदं कं जघान) इसी तरह इन्होंने भेदका नाश सुखसे किया, आपसकी फूटको दूर किया । (एव इत् नु दाशराज्ञे सुदासं) इसी तरह दाशराज्ञ युद्धमें सुदासको हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठो ! (वः ब्रह्मणा इन्द्रः प्रावत्) आपके स्तोत्रसे ही इन्द्रने सुरक्षित किया ॥ ३ ॥

[२९६] हे (नरः) नेता लोगो ! (वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी) आपके स्तोत्रसे पितरोंकी प्रीति होती है । (अक्षं अव्ययं) मैंने अपने रथके अक्षको चलाया है । मैं रथ अपने स्थानको आनेके लिये चलाता हूं । (न किल रिषाथ) तुम क्षीण न होओ । बलवान् बनो । हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ लोगो ! (यत् शक्वरीषु बृहता रवेण) शक्वरी ऋचाओंमें बडे आलापोंके स्वरसे, सामगानसे (इन्द्रे शुष्मं अदधात) इन्द्रमें बल धारण करो, बल बढाओ । इन्द्रका यश बढाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ —इस मंत्रमें आर्योंका वर्णन प्रतीत होता है– वे आर्य गौरवर्णके, बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवाले, दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले तथा लोगोंको निवास करानेवाले होते थे । वे हमेशा अपने पूज्य देव इन्द्रकी ही भक्ति करते थे । इन्द्र भी यही चाहता था कि ये आर्य उसकी भक्तिसे कभी दूर न जायें ॥ १ ॥

इन्द्र आर्योंका देव है । इसलिए आर्य इसी देवका सदा सत्कार करते थे । कभी कभी आर्येतर लोग भी इस इन्द्रका सत्कार करनेकी कोशिश करते तो आर्य उसे अपना सत्कार ही स्वीकार करनेकी प्रेरणा देते थे ॥ २ ॥

इन्द्रने सिन्धुको सुखसे पार करने योग्य बनाया । आपसकी फूटको दूर किया और अपने अनुयायियोंको अच्छी तरह संघटित किया । दाशराज्ञ युद्धमें सुदासकी रक्षा की । इन सब कार्मोंके लिए महर्षियोंने अपने स्तोत्रोंसे उसे प्रेरणा दी ॥ ३ ॥

२९७ उद् द्यामिवेत् तृष्णजों नाथितासो ऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रो-दुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥

२९८ दण्डा इवेद् गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥

२९९ त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेत-स्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥ ७ ॥

३०० सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

अर्थ— [२९७] (तृष्णजः वृतासः नाथितासः) तृषित घेरे हुए उन्नति चाहनेवाले वसिष्ठोंने (द्यां इव दाशराज्ञे) द्युलोकके समान दाशराज्ञ युद्धमें (उत् अदीधयुः) इन्द्रकी प्रशंसा गायी । (स्तुवतः वसिष्ठस्य इन्द्रः अश्रोत्) स्तुति करनेवाले वसिष्ठका स्तोत्र इन्द्रने सुना । और उसने (तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्) तृत्सुओंके लिये विस्तृत प्रदेश करके दिया ॥ ५ ॥

[२९८] (गो अजनासः दण्डा इव) गौओंको चलानेवाले डंडोंके समान (भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्) भरत लोग छोटे और अल्प थे । (तृत्सूनां पुरएता वसिष्ठः अभवत्) इन तृत्सुओं-भरतों-का वसिष्ठ पुरोहित हुआ (आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तबसे भरतोंकी प्रजा बढने लगी ॥ ६ ॥

[२९९ (भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति) भुवनोंमें तीन देव वीर्य निर्माण करते हैं । (ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः) ज्योति जिनके सामने रहती है ऐसे आर्य तीन प्रकारकी प्रजारूप होते हैं । (त्रयः घर्मासः उषसं सचन्ते) ये तीन उष्णताएं उषाका सेवन करती हैं । (वसिष्ठाः तान् सर्वान् इत् अनु विदुः) वसिष्ठ इन सबको उत्तम रीतिसे जानते हैं ॥ ७ ॥

[३००] हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ पुत्रो ! (एषां महिमा) आपकी महिमा (सूर्यस्य ज्योतिः इव वक्षथः) सूर्यके प्रकाशके समान फैली है और (समुद्रस्य इव गम्भीरः) समुद्रके समान गंभीर है । (वातस्य प्रजवः इव) वायुके वेगके समान (वः स्तोमः) आपका स्तोम (अन्येन अनु-एतवे न) किसी अन्यके द्वारा अनुकरण करने योग्य नहीं है । आपकी ही वह विशेषता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे नेता मनुष्यों ! अपनी विद्वत्तासे ज्ञानियोंको तृप्त करो । वाहनादि चलानेमें कुशल होओ । कभी निर्बल मत होओ, तथा अपने काव्य आदियोंसे वीरोंका उत्साह बढाओ । पुत्रोंके द्वारा रचित काव्योंको सुनकर ज्ञानी प्रसन्न होते हैं ॥ ४ ॥

भूखे, प्यासे शत्रुओंसे घिरे हुए और अपनी उन्नति चाहनेवाले आतुर भक्तोंने प्रार्थना की तो प्रभुने उनकी प्रार्थनाओंको सुना । इस लिए भक्त अन्तःकरणसे प्रभुकी प्रार्थना करे ॥ ५ ॥

जिस तरह गायोंको हांकनेके लिए डण्डे छोटे छोटे होते हैं, उसी तरह भरण पोषण करनेवाले सज्जन भी अल्प ही होते हैं । समाज या राष्ट्रमें उदार जनोंकी संख्या अल्प ही होती है । अथवा भरत शक्तिहीन थे, पर अब उन्होंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया तो वसिष्ठके प्रयत्नोंसे भरत शक्तिशाली हो गए । जिस राष्ट्रका पुरोहित उत्तम होता है, वह राष्ट्र और उस राष्ट्रकी प्रजायें समृद्ध होती हैं ॥ ६ ॥

अग्नि, वायु और सूर्य ये तीन देव त्रिभुवनोंमें वीर्य अर्थात् शक्तिका निर्माण करते हैं । प्रकाशका मार्ग जिनके सामने हमेशा रहता है, ऐसी तीन प्रकारकी प्रजायें आर्य कहलाती हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन प्रकारकी आर्य प्रजाएं हैं । इनके सामने प्रकाशका मार्ग हमेशा रहता है । यही देवमार्ग है । तीन प्रकारकी अग्नि अर्थात् तीन यज्ञ उषःकालमें शुरू होते हैं । ज्ञानी इन सब बातोंको अच्छी तरह जानते हैं ॥ ७ ॥

हे ज्ञानी ऋषियो ! आपकी महिमा सूर्यप्रकाशके समान सर्वत्र फैली हुई है समुद्रके समान अपार है । जिस तरह वायुके वेगको कोई जान नहीं सकता, उसी तरह आपके ज्ञानकी थाह भी कोई नहीं पा सकता ॥ ८ ॥

३०१ त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तो ऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

३०२ विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठा ऽगस्त्यो यत् त्वा विश आजभार ॥ १० ॥

३०३ उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठो र्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ११ ॥

३०४ स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्य ऽन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥

अर्थ— [३०१] (ते वसिष्ठाः इत्) वे वसिष्ठगण (निण्यं सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखोपशाखाओंसे युक्त इस जाननेके लिये कठिन विश्वमें (हृदयस्य प्रकेतैः अभि सं चरन्ति) अपने हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे चारों ओर संचार करते हैं। जानते तथा अनुभव लेते हैं। (यमेन ततं परिधिं वयन्तः वसिष्ठाः) नियामक प्रभुने फैलाये हुए इस वस्त्रको बुनते हुए ये वसिष्ठ गण (अप्सरसः उपसेदुः) अप्सराओंके पास आकर बैठते हैं ॥ ९ ॥

[३०२] हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! (यत् विद्युतः ज्योतिः परि संजिहानं त्वा) जब विद्युतके तेजका परित्याग करनेवाले तुझको (मित्रावरुणा अपश्यतां) मित्र और वरुणने देखा (तत् ते एकं जन्म) तब तुम्हारा वह एक जन्म हुआ था। (यत् त्वा अगस्त्यः विशः आजभार) तब तुझे अगस्त्यने प्रजाओंमेंसे बाहर लाया ॥ १० ॥

[३०३] हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! (मैत्रावरुणः असि) मित्र और वरुणका तू पुत्र है। (उत) और हे (ब्रह्मन्) ब्राह्मण ! तू (उर्वश्याः मनसः अधिजातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है। (द्रप्सं स्कन्नं) इस समय रेतका पतन हुआ। (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य मंत्रोंके साथ (विश्वे देवाः त्वा पुष्करे अददन्त) विश्वे देवोंने तुझे पुष्करमें धारण किया ॥ ११ ॥

[३०४] (सः वसिष्ठः उभयस्य प्रविद्वान्) वह वसिष्ठ द्युलोक और भूलोकके सब विषयोंका ज्ञाता (सहस्रदानः उत वा सदानः) हजारों दानोंको देनेवाला अथवा सर्वस्वका दान करनेवाला है। (यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्) नियामक प्रभुने फैलाये वस्त्रको बुननेवाला यह वसिष्ठ (अप्सरसः परिजज्ञे) अप्सरासे उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह विश्व अनेक शाखाओं और उपशाखाओंसे युक्त होनेके कारण अपार है, इसलिए इसे चर्मचक्षुओंसे जान सकना दुःसाध्य ही नहीं अपितु सर्वथा असंभव है, पर जब ज्ञानी अपने हृदय-गुहामें प्रविष्ट होकर ज्ञानकी दृष्टिसे विश्वका अवलोकन करता है, तब सारा विश्व उसके सामने वस्त्रकी तरह फैल जाता है ॥ ९ ॥

वसिष्ठने विद्युत्के समान तेजस्वी अपनी ज्योतिको बाहर निकाला। यह देहत्यागकी अवस्थाका वर्णन है। जीवका स्वरूप विद्युत्की ज्योतिके समान है। योगीजन इसे स्वेच्छासे अपने शरीरसे निकालते हैं और स्वेच्छापूर्वक इतर शरीरमें प्रवेश करते हैं। मित्र और वरुण प्राण और जीवन हैं ॥ १० ॥

वसिष्ठ अर्थात् ज्ञानी मित्रवरुण अर्थात् प्राण और जीवनका पुत्र है। ज्ञानी मनुष्य तभी हो सकता है कि जब वह अपने प्राण और जीवनको शक्तिशाली बनाता है। इसी तरह जब वह उरु-वशी अर्थात् अपनी विशाल इन्द्रियोंको वशमें करता है, तब मित्र वरुण अर्थात् प्राणका वीर्य अर्थात् शक्ति इन इन्द्रियोंमें दौडती है। इन्द्रियोंको वशमें करनेपर उन इन्द्रियोंमें प्राणोंकी शक्ति सम्यक्तया दौडने लगती है, तब मनुष्य ज्ञानी बनता है। यह ज्ञानी ही वसिष्ठ है। इस सिद्धान्तको मित्रावरुणके वीर्यसे उर्वशीमें वसिष्ठकी उत्पत्तिरूप रूपकसे समझाया है ॥ ११ ॥

३०५ सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १३ ॥
३०६ उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत् प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥ १४ ॥

[३४]

(ऋषिः- २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, । देवता- विश्वे देवाः, १६ अहिः, १७ अहिर्बुध्न्यः । छन्दः- द्विपदा विराट्, २२-२५ त्रिष्टुप् ।)

३०७ प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥
३०८ विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥ २ ॥

अर्थ— [३०५] (सत्रे ह जातौ) यज्ञमें दीक्षा लिये (नमोभिः इषिता) मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए (कुंभे रेतः समानं सिषिचतुः) मित्रावरुणोंने कुंभमें अपना रेत एक ही समय गिराया । (ततः मध्यात् ह मानः उत् इयाय) उसके बीचमेंसे माननीय अगस्त्य प्रकट हुआ तथा (ततः वसिष्ठं ऋषिं जातं आहुः) उसीसे वसिष्ठ ऋषिको जन्मा कहते हैं ॥ १३ ॥

[३०६] हे (प्रतृदः) भरत लोगों ! (वः वसिष्ठः आगच्छाति) आपके पास वसिष्ठ आ रहे हैं । (सुमनस्यमानाः एनं आध्वं) उत्तम मनोभावनासे इनका सत्कार करो । यह वसिष्ठ आनेपर यह (अग्रे उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति) पहिलेसे ही नेता होकर उक्थ और साम गायकोंको धारण करेंगे, तथा (ग्रावाणं बिभ्रत्) सोमरस निकालनेवाले अध्वर्युका भी धारण करेंगे और उन सबको (प्रवदाति) सुना भी देंगे ॥ १४ ॥

[३४]

[३०७] (शुक्रा मनीषा देवी) सामर्थ्यवाली बुद्धिदेवी (सुतष्टः वाजी रथः न) उत्तम बनावटका घोडोंसे चलाया जानेवाला रथ जैसा शीघ्र जाता है, वैसी (अस्मत् प्र एतु) हमारे पास आवे ॥ १ ॥

[३०८] (अध क्षरन्तीः आपः) बहनेवाले जलप्रवाह-जीवनप्रवाह- (दिवः पृथिव्याः जनित्रं विदुः) द्युलोक और पृथिवीकी उत्पत्तिको जानते हैं और (शृण्वन्ति) सुनते भी हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— ज्ञानी द्युलोक और भूलोकके बीचमें अर्थात् सब विश्वके ज्ञानसे सम्पन्न, उदार, विश्वकल्याणके लिए सर्वस्वको प्रदान करनेवाला और प्रभुकी विश्व रचनाके कार्यको करनेके लिए उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥

प्राण और अपानरूपी मित्र और वरुण इस जीवन रूपी यज्ञशालामें बैठकर सांवत्सरिक यज्ञ कर रहे हैं । इनकी वीर्यरूपी शक्ति प्रवाहित होकर हृदय या मस्तिष्करूपी कुंभमें एकत्रित होती है । मस्तिष्कमें एकत्रित हुई उस शक्तिसे अगस्त्य और वसिष्ठरूपी ज्ञानियोंका जन्म होता है ॥ १३ ॥

इन्द्रने भरतकी प्रजाओंसे कहा कि वे वसिष्ठको अपना पुरोहित बनावें । वे वसिष्ठ पुरोहित बनकर उनके अभ्युदयका कार्य करेंगे और उससे उनकी उन्नति होगी । वेदज्ञ पुरोहितमें राज्यकी सब व्यवस्थाओंको करनेकी शक्ति होती है । यह राष्ट्रकी हरतरहसे उन्नति करता है । इससे यह सिद्ध होता है कि वेदोंमें हरतरहका विज्ञान है ॥ १४ ॥

मनुष्य ऐसी मनीषा या उत्तम बुद्धि प्राप्त करे जो विजयकी इच्छा, व्यवहार, तेजप्राप्ति, आनन्दप्राप्ति और प्रगतिके प्रयत्नोंमें उसकी सहायता करे । यह प्रज्ञा सामर्थ्य और प्रभावसे युक्त हो ॥ १ ॥

जल जीवनका रस है । जल शान्ति देनेवाला है । " अ " से लेकर " ल " पर्यन्त जो उपयोगी होता है, उसकी संज्ञा जल है ॥ २ ॥

३०९ आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वी — र्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥
३१० आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वा — निन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥
३११ अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन् त्मना हिनोत ॥ ५ ॥
३१२ त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥
३१३ उदस्य शुष्माद् भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥ ७ ॥
३१४ ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८ ॥
३१५ अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥ ९ ॥

अर्थ — [३०९] (पृथ्वीः आपः चित्) पृथ्वीके ऊपर मिलनेवाला जल (अस्मै पिन्वन्त) इस इन्द्रकी पुष्टी करता है। (वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते) शत्रुओंके उपद्रव होनेपर उग्र शूर वीर इसी इन्द्रको बुलाते हैं। ॥ ३ ॥

[३१०] (अस्मै धूर्षु अश्वान् आदधात) इस इन्द्रको यहां लानेके लिये रथकी धुरामें घोडोंको जोतो। (हिरण्यबाहुः वज्री इन्द्रः न) जिसके बाहूपर सुवर्णके आभूषण हैं ऐसा वज्रधारी इन्द्र जिस तरह घोडे जोतता है, वैसे ही तुम जोतो ! ॥ ४ ॥

[३११] (अह इव यज्ञं अभि प्र स्थात) यज्ञके प्रति अवश्य जाओ। (त्मना याता इव) स्वयंही अपनी इच्छासे जानेवालेके समान (पत्मन् हिनोत) मार्गसे वेगसे चलो ॥ ५ ॥

[३१२] (समत्सु त्मना हिनोत) युद्धोंमें स्वयं जाओ। (वीरं हिनोत) वीरको युद्धमें जानेके लिये प्रेरित करो। (जनाय केतुं यज्ञं दधात) लोगोंके कल्याणके लिये ज्ञान बढानेवाले यज्ञका धारण करो ॥ ६ ॥

[३१३] (अस्य शुष्मात् भानुः उत् आर्त) इस बलसे सूर्य उदयको प्राप्त होता है। तथा (भूम पृथिवी न भारं बिभर्ति) सब भूत और पृथिवी भार उठाती है ॥ ७ ॥

[३१४] हे (अग्ने) अग्ने ! (अयातुः ऋतेन) अहिंसक यज्ञसे (साधन् देवान् ह्वयामि) साधना करता हुआ सहायार्थ देवोंको बुलाता हूं, (धियं दधामि च) बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मको मैं धारण करता हूं ॥ ८ ॥

[३१५] (वः अभि देवीं धियं दधिध्वं) आप दिव्य बुद्धिका धारण करो। (वः देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं) आप दिव्य विबुधोंके संबंधमें भाषण करते रहो ॥ ९ ॥

भावार्थ — पृथ्वीके ऊपर जो जीवन प्राप्त होता है, उससे मनुष्य पुष्ट होता है। शत्रुओंके उपद्रव होनेपर वीर और शूर नेताको ही लोग बुलाते हैं। ॥ ३ ॥

शत्रुओंका उपद्रव उपस्थित होनेपर वीर योद्धा संघठित हों, इतर जन इन वीरोंकी सहायता करें। वीर नेताओंके लिए उत्तम वाहनोंका प्रबन्ध हो ॥ ४ ॥

जहां यज्ञ चलता हो, वहां लोग स्वेच्छापूर्वक जाएं। अपने अन्तःकरणसे प्रेरित होकर जाएं ॥ ५ ॥

इसी तरह जहां राष्ट्रकी सुरक्षाके लिए शत्रुओंसे युद्ध चल रहा हो, वहां भी लोग स्वयंस्फूर्तिसे सैन्यमें जाकर प्रविष्ट हों। उस समय किसीके आमंत्रण या निमंत्रणकी प्रतीक्षा न करें। इस प्रकार स्वयं जाकर दूसरे वीरोंका भी उत्साह बढायें ॥ ६ ॥

इस प्रभुके सामर्थ्यके कारणही सूर्य उदय होता है और पृथ्वी सबका बोझ उठाती है। विश्वमें जो भी कार्य होता है, वह बलसेही होता है। इसलिए बलको प्राप्त करना चाहिए ॥ ७ ॥

तपःसाधना करनेके बादही देवगण उसकी सहायताके लिए आते हैं। इसलिए सदा पवित्र बुद्धिसे कुटिलतारहित कर्मोंको करना चाहिए ॥ ८ ॥

×

३१६ आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥ १० ॥
३१७ राजा राष्ट्रानां पेशो नदीना—मनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥
३१८ अविष्टो अस्मान् विश्वासु विक्ष्व—द्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥ १२ ॥
३१९ व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥
३२० अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥ १४ ॥
३२१ सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

अर्थ— [३१६] (सहस्रचक्षाः उग्रः वरुणः) सहस्र नेत्रवाला उग्र वीर वरुण (आसां नदीनां पाथः आचष्टे) इन नदियोंके जलको देखता है ॥ १० ॥

[३१७] (राष्ट्रानां राजा) यह वरुण राष्ट्रोंका शासक, (नदीनां पेशः) नदियोंका रूप (अस्मै अनुत्तं क्षत्रं) इसका क्षात्र बल उत्तम (विश्वायु) संपूर्ण आयुतक टिकनेवाला है ॥ ११ ॥

[३१८] (अस्मान् विश्वासु विक्षु अविष्टः) हमें सब प्रजाजनोंमें सुरक्षित करो और (निनित्सोः शंसं अ-द्युं कृणोत) निंदा करनेवालेके भाषणको निस्तेज करो ॥ १२ ॥

[३१९] (द्विषां दिद्युत् अशेवा विष्वक् व्येतु) शत्रुओंका शस्त्र अपरिणामी होकर चारों ओरसे दूर जावे। (तनूनां रपः विष्वक् युयोत) हमारे शारीरिक पाप हमसे दूर होजांय ॥ १३ ॥

[३२०] (हव्यात् प्रेष्ठः अग्निः नमोभिः नः अवीत्) हव्य अन्नका भक्षण करनेवाला प्रिय अग्नि हमारे नमस्कारोंसे प्रसन्न होकर हमारी सुरक्षा करे। (अस्मै स्तोमः अधायि) इसका यह स्तोत्रपाठ हमने किया है ॥ १४ ॥

[३२१] (अपां नपातं सखायं कृध्वं) जलोंको न गिरानेवाले अग्निको अपना मित्र बनाओ। वह (देवेभिः सजूः नः शिवः अस्तु) देवोंके साथ रहनेवाला अग्नि हमारे लिये कल्याण करनेवाला हो ॥ १५ ॥

भावार्थ— मनुष्य सदा दिव्य गुणोंसे युक्त बुद्धिसे प्रेरित होकर श्रेष्ठ कर्म करे और दिव्यभावसे परिपूर्ण होकर वचनोंको बोले ॥ ९ ॥

जिस तरह कोई जलप्रवाहोंको स्पष्ट रूपसे देखता है, उसी तरह वह वीर वरुण देव हमारे जीवन प्रवाहोंको देखता है, इसलिए हमेशा सावधान होकर व्यवहार करना चाहिए और सदा ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे शुद्ध आचरण हो ॥ १० ॥

राष्ट्रका जो राजा हो, उसमें ऐसा श्रेष्ठ क्षात्रबल हो कि उसकी पूरी आयुतक टिके। वह अपने राष्ट्रमें नदियोंकी इतनी सुन्दर व्यवस्था करे कि उसके राष्ट्रमें सब जगह समृद्धि ही हो ॥ ११ ॥

सब प्रजाजनोंका उत्तम संरक्षण हो। निन्दकोंके द्वारा की जानेवाली निंदा प्रभावरहित हो। निन्दक हमारी चाहे कितनी भी निन्दा करें, पर उस निन्दासे हमारा कुछ न बिगडे ॥ १२ ॥

मनुष्य शत्रुके शस्त्रोंसे सुरक्षित रहें। रक्षाकी ऐसी व्यवस्था हो कि शत्रुके शस्त्रास्त्र प्रभावरहित सिद्ध हों। सभी मनुष्य काया, वाचा, मनसा और बुद्धिसे पापरहित रहें ॥ १३ ॥

अन्नका भक्षण करनेवाला प्रिय अग्नि हमारे नमस्कारपूर्वक किए गए स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर हमारी सुरक्षा करे ॥ १४ ॥

जलोंको सुखानेवाले अग्निको अपना मित्र बनाना चाहिए, ताकि देवोंके साथ रहनेवाला वह अग्नि हमारा कल्याण करनेवाला हो ॥ १५ ॥

३२२ अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥
३२३ मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥ १७ ॥
३२४ उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥ १८ ॥
३२५ तपन्ति शत्रुं स्व१र्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥
३२६ आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥ २० ॥
३२७ प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥

अर्थ— [३२२] (नदीनां बुध्ने) नदियोंके समीप भागमें (रजःसु सीदन्) धूलिमें रहनेवाले (अप्-जां अहिं) जलको उत्पन्न करनेवाले शत्रुहन्ता अग्निको (उक्थैः गृणीषे) स्तोत्रोंसे प्रशंसित करो ॥ १६ ॥

[३२३] (बुध्न्यः अहिः नः रिषे मा धात्) अन्तरिक्षमें होनेवाला मेघनाशक विद्युत् अग्नि हमारा नाश न करे । (अस्य ऋतायोः यज्ञः मा स्रिधत्) इस सत्यके लिये जिसने अपनी आयु दी है इसका यज्ञ क्षीण न हो ॥ १७ ॥

[३२४] (उत एषु नृषु श्रवः धुः) इन हमारे लोगोंमें अन्न, धन या यश पर्याप्त रहे । इनको पर्याप्त धन प्राप्त हो । (राये शर्धन्तः अर्यः प्रयन्तु) धनप्राप्ति करनेके कार्यमें हमारे साथ जो स्पर्धा कर रहे हैं, वे हमारे शत्रु हमसे दूर भाग जाय । वहां वे असमर्थ सिद्ध हो जाय ॥ १८ ॥

[३२५] (महासेनासः एषां अमेभिः) बडी सेना साथ रखनेवाले राजा इनके बलोंसे बलवान् होकर, (स्वः न) सूर्यके समान (शत्रुं तपन्ति) शत्रुको ताप देते हैं ॥ १९ ॥

[३२६] (यत् पत्नीः) जब पत्नियाँ (नः अच्छ आ गमन्ति) हमारे समीप आती हैं तब (सुपाणिः त्वष्टा) उस समय उत्तम हाथवाला विश्वका निर्माण कर्ता (वीरान् दधातु) वीरोंको धारण करे । हमारी स्त्रियोंको वीर पुत्र हों ऐसा करे । विश्वस्रष्टा प्रभुकी कृपासे हमारी स्त्रियोंमें वीर पुत्र उत्पन्न हों ॥ २० ॥

[३२७] (नः स्तोमं त्वष्टा प्रति जुषेत) हमारे यज्ञको स्वीकार विश्वरचयिता करे । (अरमतिः अस्मे वसुयुः स्यात्) उत्तम बुद्धिवाला विश्वरचयिता हमें बहुत धन देनेवाला होवे ॥ २१ ॥

भावार्थ— प्राचीनकालमें नदियोंके किनारे रेतीके तट पर यज्ञ किए जाते थे । उनमें अग्नियोंको प्रज्वलित किया जाता था । फिर उन प्रज्वलित अग्नियोंकी स्तुति की जाती थी ॥ १६ ॥

अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें रहकर मेघोंको बरसानेवाला अग्नि हमारी रक्षा करे । जो मनुष्य जीवन भर सत्यका पालन करता आया है, उसका यज्ञ क्षीण न हो ॥ १७ ॥

हमारे सहायकोंको पर्याप्त मात्रामें धन, अन्न और यश मिले । धनप्राप्तिके कार्योंमें जो मनुष्य हमसे शत्रुता करके हमें नीचे गिराना चाहते हैं, वे हमारे शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १८ ॥

बडी सेना रखनेवाला राजा भी इन अग्नि, वायु, आदि देवोंके बलोंसे बलिष्ठ होकर सूर्यके समान तेजस्वी होते हैं और अपने तेजसे शत्रुओंको तपाते हैं । जब बडे बडे राजाको भी देवोंकी सहायताकी जरूरत होती है, तो फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? ॥ १९ ॥

जब मनुष्य अपनी पत्नियोंमें पुत्रोंको उत्पन्न करें, तो वे वीर पुत्रोंको ही उत्पन्न करें ॥ २० ॥

विश्वका निर्माण करनेवाला प्रभु हमारी उपासना तथा प्रार्थनाको स्वीकार करे और फिर वह बहुत सारा धन प्रदान करे ॥ २१ ॥

३२८ ता नो रासन् रातिषाचो वसू॒न्या रोद॑सी वरुणा॒नी शृ॑णोतु ।
वरू॑त्रीभिः सुश॒रणो नो अस्तु त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु॒ रायः ॥ २२ ॥

३२९ तन्नो॒ रायः॒ पर्व॑ता॒स्तन्न॒ आप॒स्तद्रा॑ति॒षाच॒ ओष॑धीरु॒त द्यौः ।
वन॒स्पति॑भिः पृथि॒वी स॒जोषा॑ उ॒भे रोद॑सी॒ परि॑ पासतो नः ॥ २३ ॥

३३० अनु॒ तदु॒र्वी रोद॑सी जिहाता॒मनु॑ द्यु॒क्षो वरु॑ण॒ इन्द्र॑सखा ।
अनु॒ विश्वे॑ म॒रुतो॒ ये स॒हासो॑ रा॒यः स्या॑म ध॒रुणं॑ धि॒यध्यै॑ ॥ २४ ॥

३३१ तन्न॒ इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निराप॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ जुषन्त ।
शर्म॑न्त्स्याम म॒रुता॑मु॒पस्थे॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ २५ ॥

अर्थ— [३२८] (ता वसूनि) वे हमारे लिये अभीष्ट धन (रातिषाचः नः रासन्) दान देनेवाली देवपत्नियां हमें देवें। (रोदसी वरुणानी आशृणोतु) द्यावापृथिवी और वरुणकी पत्नी हमारा स्तोत्र सुने। (सुदत्रः त्वष्टा) उत्तम दान देनेवाला त्वष्टा— विश्वरचयिता— (वरूत्रीभिः नः सुशरणः) शत्रुनिवारक शक्तियोंके साथ हमारे लिये आश्रय करने योग्य (अस्तु) होकर (रायः वि दधातु) धन हमें देवें ॥ २२ ॥

[३२९] (नः तत् रायः पर्वताः) हमारे इस धनका ये पर्वत संरक्षण करें। (नः तत् आपः) हमारे उस धनका जल संरक्षण करे, (रातिषाचः तत्) दान देनेवाली पत्नियां उस धनका संरक्षण करें। (ओषधीः उत द्यौः) औषधियां और द्यौ उसका रक्षण करें। (वनस्पतिभिः सजोषा पृथिवी) वनस्पतियोंके साथ यह पृथिवी उसका रक्षण करे। (उभे रोदसी नः तत् परि पासतः) आकाश और पृथिवी ये दो मिलकर हमारे उस धनका संरक्षण करें ॥२३॥

[३३०] (उर्वी रोदसी तत् अनुजिहातां) ये विशाल द्यावापृथिवी इसका अनुमोदन करे। (द्युक्षः इन्द्र-सखा वरुणः अनु) तेजस्वी इन्द्रका मित्र वरुण अनुमोदन करे। (ये सहासः विश्वे मरुतः अनु) जो शत्रुका पराभव करनेवाले मरुत् वीर हैं, वे अनुकूल हों। (धियध्यै रायः धरुणं स्याम) धारण करने योग्य धनके हम धारण करनेवाले बनें ॥ २४ ॥

[३३१] (नः तत्) हमारा यह स्तोत्र इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप्, ओषधियाँ (वनिनः जुषंत) वनमें रहनेवाले वृक्ष ये सब सेवन करें। हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) मरुत् वीरोंके समीप कल्याण रूप स्थानमें रहें। (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हमें आप कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ २५ ॥

भावार्थ— हम देवपत्नियों अर्थात् देवोंकी शक्तियोंसे युक्त हों, द्यु, पृथ्वी तथा वरुणकी शक्ति हमारी स्तुति सुने। उत्तम दान देनेवाला तथा विश्वका रचयिता प्रभु शत्रुको नष्ट करनेवाली शक्तियोंसे युक्त होकर हमें अपने आश्रयमें ले ॥ २२ ॥

पर्वत, नदियां, जलप्रवाह, ओषधियां, द्यौः, पृथिवी ये सब हमारे सब प्रकारके धनका संरक्षण करें। पर्वतोंसे शत्रुकी गति रुकती है और राष्ट्रका संरक्षण होता है। नदियोंके प्रवाहसे अन्नादि उत्पन्न होकर राष्ट्रकी समृद्धि होती है। औषधि वनस्पतियोंसे रोग दूर होकर प्रजाओंके स्वास्थ्यकी रक्षा होती है। इस तरह विश्वके सभी पदार्थ प्राणियोंको सहायता दे रहे हैं ॥ २३ ॥

हम जो भी काम करें, उसमें हमें द्यु, पृथिवी, इन्द्र, मित्र, वरुण, मरुत् आदि सभी देवोंका समर्थन प्राप्त हो और हम धारण करने योग्य धनोंको प्राप्त करें ॥ २४ ॥

सभी देव हमारी प्रार्थना सुनें, हमारी सहायता करें, हम सुरक्षित हों और धनसे युक्त हों ॥ २५ ॥

[३५]

(ऋषिः- १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता - विश्वे देवाः । छन्दः - त्रिष्टुप् ।)

३३२ शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥

३३३ शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

३३४ शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥

३३५ शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥

---

[३५]

अर्थ— [३३२] (इन्द्राग्नी अवोभिः नः शं भवतां) इन्द्र और अग्नि अपने संरक्षणोंसे हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (रातहव्या इन्द्रावरुणा नः शं) जिनको हवि दिया है ऐसे ये इन्द्र और वरुण हमें शांति देनेवाले हों। (इन्द्रासोमा नः शं शं सुविताय च) इन्द्र और सोम हमारे लिये शांति तथा कल्याण देनेवाले हों, और (इन्द्रापूषणा वाजसातौ नः शं योः) इन्द्र और पूषा युद्धमें हमारा कल्याण करनेवाले हों ॥ १ ॥

[३३३] (भगः नः शं अस्तु) भग हमें शांति देनेवाला हो, (शंसः नः शं उ) मनुष्योंद्वारा प्रशंसित देव हमें शांति देनेवाला हो। (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें शांति देवे और (रायः शं उ सन्तु) सब प्रकारके धन हमें शांति देवें। (सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं) उत्तम नियमपूर्वक बोला जानेवाला सत्य वचन हमें शांति देनेवाला हो। (पुरुजातः अर्यमा नः शं अस्तु) बहुत प्रशंसित अर्यमा हमें शांति देनेवाला हो ॥ २ ॥

[३३४] (धाता नः शं) आधार देनेवाला हमें शांति देनेवाला हो, (धर्ता नः शं उ अस्तु) धारणकर्ता हमें शांति देनेवाला हो। (उरूची स्वधाभिः नः शं भवतु) गति करनेवाली पृथिवी अन्नोंसे हमें शांति देनेवाली हो। (बृहती रोदसी नः शं) बडी द्यावापृथिवी हमें शांति देवे। (अद्रिः नः शं) पर्वत हमें शांति देवे। (देवानां सुहवानि नः शं सन्तु) देवोंकी स्तुतियां हमें शान्ति देनेवाली हों ॥ ३ ॥

[३३५] (ज्योतिरनीकः अग्निः नः शं अस्तु) तेजही जिसकी सेना है ऐसा अग्नि हमारे लिये शांति देनेवाला हो। (मित्रावरुणा नः शं) मित्र और वरुण, सूर्य और चंद्र हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (अश्विना शं) अश्विदेव हमें शांति देनेवाले हों। (सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु) सत्कर्म करनेवालोंके सत्कर्म हमारी शांति बढानेवाले हों। (इषिरः वातः नः शं अभि वातु) गतिशील वायु हमारे लिये कल्याण करनेवाला होकर बहता रहे ॥ ४ ॥

भावार्थ— जीवनकी स्पर्धामें विद्युत् स्वरूप अग्नि, उष्णता देनेवाला अग्नि, जल देव वरुण, सोम पूषा आदि देव हमारे सहायक हों। उनकी कृपासे जो धन हमारे पास है, उसकी रक्षा करें और जो धन नहीं है, उसकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करें ॥ १ ॥

ऐश्वर्य, प्रशंसा, विशाल बुद्धि, धन, सत्यभाषण, श्रेष्ठत्वका निर्णय करनेवाला न्यायाधिपति ये सभी हमारे अन्दर शान्ति स्थापन करनेवाले हों ॥ २ ॥

सृष्टिकी रचना करनेवाला सर्वाधार देव यह पृथिवी आकाश, पर्वत और उपासना ये सब हमें शान्ति देनेवाले हों ॥ ३ ॥

तेजस्वी अग्नि, मित्र, वरुण, अश्विनौ और वायु ये सभी देव हमें शान्ति दें। उसी प्रकार पुण्यकर्म करनेवाले महापुरुषोंके प्रशंसित कर्म भी हमारे लिए शान्ति बढानेवाले हों ॥ ४ ॥

३३६ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥ ५ ॥

३३७ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

३३८ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

३३९ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३३६] (पूर्वहूती द्यावापृथिवी नः शं) प्रथम प्रार्थना किये द्यावा पृथिवी हमें शांति प्रदान करें । (अन्तरिक्षं नः दृशये शं अस्तु) अन्तरिक्ष हमारे दर्शनके लिये शांति देनेवाला हो । (वनिनः ओषधीः नः शं भवन्तु) वनमें उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और औषधियाँ हमें शांति दें । (जिष्णुः रजसः पतिः नः शं अस्तु) विजयशाली लोकपति हमें शांति दें ॥ ५ ॥

[३३७] (देवः इन्द्रः वसुभिः नः शं अस्तु) इन्द्र देव अष्ट वसुओंके साथ हमें शांति दें । (सुशंसः वरुणः आदित्येभिः शं) प्रशंसनीय वरुण द्वादश आदित्योंके साथ हमें शांति दें । (जलाषः रुद्रः रुद्रेभिः नः शं) जल देनेवाला रुद्र एकादश रुद्रोंके साथ हमें शांति दें । (ग्नाभिः त्वष्टा इह नः शं शृणोतु) देवपत्नियोंके साथ त्वष्टा यहां शांतिसे हमारे स्तोत्र सुनें ॥ ६ ॥

[३३८] (सोमः नः शं भवतु) सोम हमें शांति दें । (ब्रह्म नः शं) ब्रह्म हमें शांति दें । (ग्रावाणः नः शं) पत्थर हमें शांति दें । (यज्ञाः नः शं उ सन्तु) यज्ञ हमें शान्ति दें । (स्वरूणां मितयः नः शं भवन्तु) यूपोंके प्रमाण हमें शांति दें । (प्रस्वः नः शं) औषधियां हमें शान्ति दें । (वेदिः नः शं उ अस्तु) वेदि हमें शांति दे ॥ ७ ॥

[३३९] (उरुचक्षाः सूर्यः नः शं उदेतु) विशाल तेजवाला सूर्य हमारी शांतिके लिये उदित हो । (चतस्रः प्रदिशः नः शं भवन्तु) चारों दिशाएँ हमें शांति दें । (ध्रुवयः पर्वताः नः शं भवन्तु) स्थिर पर्वत हमें शांति दें । (सिन्धवः नः शं) समुद्र हमें शान्ति दें । (आपः नः शं उ सन्तु) जल हमें शांति दे ॥ ८ ॥

भावार्थ— द्युलोक और पृथिवीलोक हमें शान्ति प्रदान करें । अन्तरिक्षमें हमें शान्ति देनेवाला हो । वनमें उत्पन्न होनेवाले वृक्ष औषधियां आदि हमें शान्ति दें ॥ ५ ॥

इन्द्र हमें आठ वसुओंके साथ युक्त होकर हमें शान्ति दें । वरुणदेव बारह आदित्योंसे युक्त होकर हमें शान्ति दें । ग्यारह रुद्र हमें शान्ति दें तथा देवपत्नियोंके साथ त्वष्टा देव हमारे स्तोत्र सुने ॥ ६ ॥

सोम, ब्रह्म, पत्थर, यज्ञ, यूप, औषधियां और वेदी हमें शान्ति प्रदान करें ॥ ७ ॥

विशेष तेजस्वी सूर्य हमें शान्ति प्रदान करनेके लिए उदित हो । चारों दिशायें हमें शान्ति प्रदान करें । स्थिर पर्वत हमें शान्ति दें, समुद्र और अन्य जल भी हमें शान्ति दें ॥ ८ ॥

३४० शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥
३४१ शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥
३४२ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥
३४३ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥
३४४ शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥

अर्थ— [३४०] (अदितिः व्रतेभिः नः शं भवतु) अदिति अपने व्रतोंसे हमें शांति दे । (स्वर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम तेजस्वी मरुत् वीर हमें शांति दें । (विष्णुः नः शं) विष्णु हमें शांति दें । (पूषा नः शं उ अस्तु) पूषा हमें शान्ति दें । (भवित्रं नः शं) भुवन हमें शान्ति दें । (वायुः शं उ अस्तु) वायु हमें शांति दें ॥ ९ ॥

[३४१] (त्रायमाणः सविता देवः नः शं) संरक्षणकर्ता सविता देव हमें शान्ति दें । (विभातीः उषसः नः शं भवन्तु) तेजस्वी उषाएं हमें शांति दें । (पर्जन्यः नः शं भवतु) पर्जन्य हमें शांति दें । (क्षेत्रस्य शंभुः पतिः नः प्रजाभ्यः शं अस्तु) देशका कल्याण करनेवाला अधिपति हमारी प्रजाके लिये शांति दें ॥ १० ॥

[३४२] (विश्वदेवाः नः शं भवन्तु) सब प्रकाशमान देव हमें शांति दें । (सरस्वती धीभिः सह शं अस्तु) सरस्वती बुद्धियोंके साथ हमें शांति दें । (अभिषाचः शं) यज्ञकी सेवा करनेवाले हमें शांति दें । (रातिषाचः नः शं उ) दान देनेवाले हमें शांति दें । (दिव्याः पार्थिवाः अप्याः) द्युलोक, पृथिवी और जलमें उत्पन्न होनेवाले (नः शं) हमें शांति दें ॥ ११ ॥

[३४३] (सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु) सत्यका पालन करनेवाले हमें शांति देनेवाले हों । (अर्वन्तः गावः नः शं सन्तु) घोडे और गौवें हमें शांति दें । (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शं) कुशलतासे कर्म करनेवाले उत्तम हाथवाले ऋभु हमें शांति दें । (हवेषु पितरः नः शं भवन्तु) यज्ञमें पितर हमें शांति देनेवाले हों ॥ १२ ॥

[३४४] (अजः एकपात् देवः नः शं अस्तु) एक पाद् अज देव हमें कल्याण करनेवाला हो । (अहिः बुध्न्यः नः शं) अहिबुध्न्य हमें शांति दे । (समुद्रः शं) समुद्र शांति दे । (पेरुः अपां नपात् नः शं अस्तु) आपत्तियोंसे पार करनेवाला अपां नपात् देव हमें शांति दें । (देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु) देवों द्वारा सुरक्षित गौ हमें शांति प्रदान करें ॥ १३ ॥

भावार्थ— अदिति, उत्तम तेजस्वी मरुत् वीर, विष्णु, पूषा, भुवन और वायु हमें शान्ति प्रदान करें ॥ ९ ॥

संरक्षणकर्ता सविता, तेजस्वी उषायें, पर्जन्य, देशका कल्याण करनेवाला अधिपति हमारी प्रजाके लिए शान्ति प्रदान करे ॥ १० ॥

सभी तेजस्वी देव, देवी सरस्वती उत्तम बुद्धियोंके साथ, यज्ञकी सेवा करनेवाले, दान देनेवाले, द्यु, पृथिवी और जलमें उत्पन्न होनेवाले हमें शान्ति दें ॥ ११ ॥

सत्यका पालन करनेवाले, घोडे और गायें, कुशलतासे कर्म करनेवाले उत्तम हाथोंवाले ऋभु तथा यज्ञोंमें जानेवाले पितर हमें शांति दें ॥ १२ ॥

३४५ आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ १४ ॥
३४६ ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १५ ॥

[३६]

(ऋषिः- ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३४७ प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

अर्थ— [३४५] (नवीयः क्रियमाणं इदं ब्रह्म) नवीन किया जानेवाला यह स्तोत्र है, इसका आदित्य, वसु और रुद्र स्वीकार करें । (दिव्याः) द्युलोकमें उत्पन्न (पार्थिवासः) पृथिवीपर उत्पन्न (गो जाताः) स्वर्गमें उत्पन्न अथवा गौके हित करनेके लिये उत्पन्न (उत ये यज्ञियासः) और जो यज्ञके योग्य हैं वे सब (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १४ ॥

[३४६] (ये यज्ञियानां देवानां यज्ञियाः) जो पूजनीय देवोंके लिये भी पूजनीय हैं, जो (मनोः यजत्राः ते) मनुके लिये भी पूज्य हैं वे (ऋतज्ञाः अमृताः) ऋत जाननेवाले अमर देव (अद्य उरुगायं नः रासन्तां) आज हमें विस्तृत प्रशंसनीय यश दें । विस्तृत यश प्राप्त करनेवाला पुत्र प्रदान करें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ १५ ॥

[३६]

[३४७] (ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु) सत्यके स्थानसे ज्ञान फैले । (सूर्यः रश्मिभिः गाः विससृजे) सूर्य अपने किरणोंसे वृष्टिके उदक भेजता है (उर्वी पृथिवी सानुना वि सस्रे) विशाल पृथिवी पर्वत शिखरोंसे युक्त बनी है । (अग्निः पृथु प्रतीकं अधि आ इंधे) अग्नि विस्तीर्ण पृथिवीके प्रतीक रूप वेदीपर प्रदीप्त होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— उदयके समय सूर्यका एक अंश जो ऊपर आता है, वह एकपात् कहलाता है, वह एकपात् सूर्य हमारा कल्याण करनेवाला हो । सबको आधार देनेवाला तथा कभी नष्ट न होनेवाला मूलाधार देव हमें शान्ति दे । समुद्र शान्ति प्रदान करे । जलोंको न गिरानेवाला मेघस्थ विद्युद्रूप अग्नि हमें आपत्तियोंसे पार करावे । देव जिसकी रक्षा करते हैं, या जो देवोंकी रक्षा करता है, वह माता अदिति हमारी रक्षा करे ॥ १३ ॥

यह स्तोत्र नया ही किया गया है, इस स्तोत्रको आदित्य, वसु और रुद्र स्वीकार करें । जो द्युलोकमें उत्पन्न, पृथिवी पर उत्पन्न तथा अन्तरिक्ष या स्वर्गमें उत्पन्न तथा यज्ञमें सत्कारके योग्य हैं, वे सभी देव हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १४ ॥

जो पूज्योंके लिए भी पूज्य हैं, जो मननीय विद्वान्के द्वारा भी पूज्य हैं, वे ऋत या नैतिक नियमोंके अनुसार आचरण करनेवाले देव हमें आज विस्तृत यश प्रदान करें तथा कल्याणकारी साधनोंसे हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥

सत्यके केन्द्रसे सत्यज्ञान फैलता है । यज्ञस्थानसे ज्ञानके सूक्त प्रसृत हुए हैं । यज्ञसे ज्ञानके सूक्त किस तरह प्रसृत हुए हैं ? इस विषयमें मंत्र स्पष्ट करता है– सूर्य अपनी किरणोंसे वृष्टिकी उत्पत्ति करता है । पर्वतके शिखरोंसे युक्त यह पृथिवी वृष्टि जलको ग्रहण करती है और धान्यको उत्पन्न करती है । अग्नि वेदिमें प्रदीप्त होता है, उसमें इस धान्यका हवन किया जाता है और उस समय ज्ञानके सूक्त गाये जाते हैं । इस प्रकार यज्ञस्थानमें ज्ञान सूक्तोंकी उत्पत्ति होती है ॥ १ ॥

३४८ इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्ति—मिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥
३४९ आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानो ऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥ ३ ॥
३५० गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिना—त्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥ ४ ॥
३५१ यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [३४८] हे (असुरा मित्रावरुणा) बलवाले मित्र और वरुण ! (वां इषं न) आप दोनोंके लिये अन्नके समान (नवीयः इमां सुवृक्तिं कृण्वे) इस नवीन स्तोत्रको करता हूं । (वां अन्यः इनः अदब्धः) आपमेंसे एक वरुण प्रभु है और न दबनेवाला है और (पद-वीः) धर्माधर्मका निर्णय करके योग्य स्थान देनेवाला है और (ब्रुवाणः मित्रः च जनं यतति) प्रशंसित हुआ मित्र लोगोंको धर्म मार्गमें प्रेरित करता है ॥ २ ॥

[३४९] (ध्रजतः वातस्य इत्या आ रन्ते) चलनेवाले वायुकी गति चारों ओर सुशोभित होती है । (सूदाः धेनवः न अपीपयन्त) दूध देनेवाली गौवें बढती हैं । तथा (महः दिवः सदने जायमानः) इस विशाल द्युलोकके स्थानमें उत्पन्न होनेवाला (वृषभः) वृष्टि करनेवाला मेघ (सस्मिन् ऊधन्) इस अन्तरिक्षमें (अचिक्रदत्) गर्जना करता है ॥ ३ ॥

[३५०] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! (ते प्रिया सुरथा धायू हरी) तेरे प्रिय रथमें जोते जानेवाले बलवान् घोडे हैं, (यः गिरा एता युनजत्) जो उत्तम शब्दोंके साथ इनको रथके साथ जोतता है वहां तुम जाते हैं । (यः रिरिक्षतः मन्युं प्र मिनाति) जो हिंसक शत्रुके क्रोधको दूर करता है, निष्फल बनाता है, उस (सुक्रतुं अर्यमणं आ ववृत्यां) उत्तम कर्म करनेवाले अर्यमाको मैं अपनी ओर लाता हूं ॥ ४ ॥

[३५१] (नमस्विनः ऋतस्य स्वे धामन्) अन्नवाले यज्ञके अपने स्थानमें रहकर (वयः अस्य सख्यं यजन्ते) प्रगतिशील लोग इस रुद्रकी मित्रता करनेके लिये यज्ञ करते हैं । (नृभिः स्तवानः पृक्षः वि बाबधे) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होकर रुद्र उपासकोंको अन्न देता है । (रुद्राय प्रेष्ठं इदं नमः) इस रुद्रके लिये बडा प्रियकर यह स्तोत्र है ॥ ५ ॥

× भावार्थ— मनुष्य प्रभावी सामर्थ्यसे युक्त बने, शत्रुसे न दबे । मनुष्योंकी परीक्षा करके उन्हें यथायोग्य स्थान प्रदान करे और सब लोगोंके साथ मित्रवत् आचरण करके उन्हें सत्कार्योंमें प्रवृत्त करते जाएं ॥ २ ॥

जब चलनेवाले वायुकी गति चारों ओर सुशोभित होती है, तब द्युलोकमें बहुत ऊंचाई पर रहनेवाले मेघ अन्तरिक्षमें पृथ्वीके पास आकर गर्जते हैं, तब बरसात होकर धान्यकी सम्पत्ति होती है, उससे दूध देनेवाली गायें पुष्ट होकर समृद्ध होती हैं ॥ ३ ॥

हे शूर इन्द्र ! ये सामर्थ्यवाली घोडे तेरे ही रथमें जोडे जाने योग्य हैं । अर्यमा हिंसक शत्रुओंके क्रोधको दूर करता है, उनके क्रोधको निष्फल बनाता है और स्वयं उत्तम कर्म करता है ॥ ४ ॥

उन्नति करनेवाले मनुष्य रुद्र या शत्रुओं और दुष्टोंको रुलानेवाले प्रभुकी मित्रता प्राप्त करनेके लिए यज्ञ करते हैं । वह मनुष्योंके द्वारा स्तुत होकर वह प्रभु उपासकोंको अन्न देता है ॥ ५ ॥

×

३५२ आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥ ६ ॥
३५३ उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥ ७ ॥
३५४ प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं१ न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ॥ ८ ॥
३५५ अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

अर्थ — [३५२] (सिन्धुमाता सप्तथी सरस्वती) माताके समान सिन्धु नदी और सातवी सरस्वती नदी (सुधाराः सुदुघाः याः सुष्वयन्त) उत्तम प्रवाहवाली और उत्तम दूध देनेवाली गौओंसे युक्त होकर बहती रहें । (स्वेन पयसा पीप्यानाः) अपने जलसे भरपूर होकर (याः यशसः वावशानाः) अन्न बढानेकी कामनासे (साकं अभि आ) साथ साथ बहती रहें ॥ ६ ॥

[३५३] (उत मन्दसाना वाजिनः त्ये मरुतः) आनन्द बढानेवाले बलवान वे मरुत् वीर (नः तोकं धियं च अवन्तु) हमारे पुत्रोंको और बुद्धियुक्त कर्मोंको सुरक्षित रखें । (अक्षरा चरन्ती नः परि मा ख्यत्) अविनाशी चलनेवाली वाणी हमें छोडकर किसी अन्यको न देखे, हमारे पास ही रहे । (ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्) वे मरुद्गण और वाणी हमारे योग्य धनको बढावें ॥ ७ ॥

[३५४] (वः महीं अरमतिं प्र कृणुध्वं) आप विशाल भूमिको मांगो । तथा (विदथ्यं पूषणं वीरं न) युद्धके योग्य वीर पूषाको मांगो । (नः अस्याः धियः अवितारं भगं) हमारे इस बुद्धियुक्त कर्मका संरक्षण करनेवाले भग देवके पास मांगो । तथा (पुरंधिं रातिषाचं वाजं सातौ) नगरकी धारणा करनेवाली जिसकी बुद्धि है और जो दानशील है उस बलवान् देवकी सहायता युद्धके समय मांगो ॥ ८ ॥

[३५५] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (वः अयं श्लोकः अच्छ एतु) आपका यह स्तोत्र आपके पास सीधा पहुंचे । (निषिक्तपां अवोभिः विष्णुं अच्छ) गर्भका संरक्षण अपनी संरक्षक शक्तियोंसे करनेवाले विष्णुके पास यह स्तोत्र पहुंचे । (उत प्रजायै गृणते वयः धुः) वे सन्तान और अन्न उपासकको दें । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो ॥ ९ ॥

भावार्थ — सात नदियां हैं । इनमें सिन्धु नदी माता है और सातवीं नदी सरस्वती है । इन नदियोंके तीरों पर दुधारू गायें संचार करती रहें । अपने जलसे ये नदियां भूमिका उपजाऊ गुण बढायें और पर्याप्त अन्न दें । ये नदियां सदा बहती रहें और अन्न देती रहें ॥ ६ ॥

सभी प्राणिमात्रको आनन्द देनेवाले ये बलवान् मरुत् हमारे पुत्रों और बुद्धियुक्त कर्मोंको सुरक्षित रखें । हमारी वाणी हमारी उन्नतिका साधन बने । सभी देव हमारी वाणीको प्रशस्त करें ॥ ७ ॥

मनुष्य इस पृथिवी पर अपने लिए विस्तृत कार्यक्षेत्रका निर्माण करे । युद्धमें जाकर विजय प्राप्त करनेवाले तथा वीरोंका पोषण करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करे । वह पुत्र बुद्धिपूर्वक किए गए उत्तम कर्मोंकी रक्षा करे तथा युद्धके समय नगरका संरक्षण, दान देनेमें कुशल और बलवान् हो ॥ ८ ॥

जिस तरह विष्णु अर्थात् व्यापक प्रभु अपने गर्भ रूप प्राणियोंकी रक्षा करता है, उसी तरह राजा अपनी प्रजाओंकी रक्षा करे । राष्ट्रमें जो अन्न उत्पन्न हो, उसका उपयोग राजा अपनी प्रजाओंके पोषणके लिए करे ॥ ९ ॥

[३७]

(ऋषिः- ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२५६ आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥ १ ॥

२५७ यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥ २ ॥

२५८ उवोचिथ हि मघवन् देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥ ३ ॥

२५९ त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

---

[३७]

अर्थ— [२५६] (ऋभुक्षणः वाजाः) हे तेजस्वी ऋभु देवो ! (वः वाहिष्ठः स्तवध्यै अमृक्तः रथः आ वहतु) आपको यह वाहक प्रशंसनीय और अहिंसित रथ यहां ले आवे । हे (सुशिप्राः) शोभन शिरस्त्राणवालो अथवा सुन्दर हनुवालो ! (सवनेषु मदे त्रिपृष्ठैः महोभिः सोमैः) हमारे यज्ञोंमें आनन्द करनेके लिये दूध-दहि-सत्तु मिश्रित महान सोमरसोंसे (आ पृणध्वं) अपने पेट भरो ॥ १ ॥

[२५७] हे (ऋभुक्षणः) तेजस्वी ऋभुओ ! (स्वर्दृशः यूयं) आत्मदर्शी आप लोग (मघवत्सु अमृक्तं रत्नं धत्थ) धनदान हम दाताओंके लिये अहिंसित रत्नोंका प्रदान करो । (स्वधावन्तः यज्ञेषु सं पिबध्वं) बलवान तुम लोग हमारे यज्ञोंमें सोमरसका पान करो । तथा (मतिभिः राधांसि नः दयध्वं) अपनी बुद्धियोंके साथ सिद्धि देनेवाले धनोंको हमें दे दो ॥ २ ॥

[२५८] हे (मघवन्) धनपते ! तुम (महः अर्भस्य वसुनः विभागे) बडे और अल्प धनके विभाग करनेके समय (देष्णं उवोचिथ हि) देने योग्य धनको तुम लेते हैं । (ते उभा गभस्ती) तुम्हारे दोनों बाहु (वसुना पूर्णा) धनसे भरपूर भरे हैं । (सूनृता वसव्या न नियमते) तुम्हारी उत्तम वाणी धनका प्रदान करनेके समय बाधक नहीं होती ॥ ३ ॥

[२५९] हे इन्द्र ! (स्वयशाः ऋभुक्षाः त्वं) अपने यशसे युक्त कारीगरोंका निवास करनेवाले तुम (साधुः वाजः न ऋक्वा) उत्तम साधक अश्वकी तरह पूजा योग्य (अस्तं एषि) हमारे घरके समीप आते हैं । हे (हरिवः) उत्तम घोडोंसे युक्त वीर ! (वयं वसिष्ठाः ते दाश्वांसः स्याम) अब हम वसिष्ठ तुम्हें हवि अर्पण करनेके लिये सिद्ध हैं तथा (ते ब्रह्म कृण्वन्तः) तेरा स्तोत्र भी करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ - हे तेजस्वी ऋभु देवो ! तुम सबको यह प्रशंसित और कहींसे भी न टूटा फूटा रथ यहां ले आवे । तुम हमारे यज्ञमें आकर तृप्त होओ ॥ १ ॥

ये तेजस्वी कारीगर आत्मदर्शी हों । वे परम सत्य और सुखकी ओर दृष्टि रखनेवाले हों । दुष्ट भी जिसे चुरा या लूट न सकें ऐसा धन प्रदान करें । हमारे पास उत्तम और अन्तिम सिद्धि तक पहुंचनेवाली बुद्धि हो ॥ २ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! जब धनके दानका समय आता है, तब तू उत्तम धन ही देता है । क्योंकि तेरे दोनों हाथ धनसे पूर्ण हैं । तेरी सत्यभाषण करनेवाली वाणी धनका दान करते समय किसीके द्वारा रोकी नहीं जा सकती । जब इन्द्र धन दानके लिए आज्ञा देने लगता है, उस समय उसकी आज्ञाको कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥

३६० सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद् याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥ ५ ॥
३६१ वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥ ६ ॥
३६२ अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमे त्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥
३६३ आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३६०] हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको पास रखनेवाले ! तुम (याभिः धीभिः विवेषः) जिन बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंसे सर्वत्र व्यापते हो, ऐसे तुम (दाशुषे चित् प्रवतः सनिता असि) दाताके लिये उत्तम धनके दाता होते है। हे इन्द्र ! तुम (नः कदा रायः आ दाशस्येः) हमें कब धनोंका प्रदान करोगे ! (नु ते युज्याभिः ऊती ववन्म) आज तुम्हारी योग्य सुरक्षासे हम सुरक्षित होंगे ॥ ५ ॥

[३६१] हे इन्द्र ! (नः वचसः कदा बुबोध) तुम हमारा वचन कब समझोगे ? कब हमारी प्रार्थना सुनोगे ? (त्वं नः वेधसः वासयसि इव) तुम हमारा निवास करनेवाले हो। (वाजी अर्वा) तुम्हारा बलवान् घोडा (तात्या धिया) हमारी विस्तृत वाणीसे प्रेरित होकर (सुवीरं रयिं) उत्तम वीर पुत्र युक्त धनको (पृक्षः) तथा अन्नको (नः अस्तं नि उहीत) हमारे घरमें ले आवे ॥ ६ ॥

[३६२ [(देवी निर्ऋतिः चित् यं ईशे) देवी भूमि ईशनके लिये (यं अभि नक्षन्ते) जिसकी ओर देखती है। (सुपृक्षः शरदः यं इन्द्रं) उत्तम अन्नसे युक्त वर्ष जिसको देखते हैं। (मर्ताः यं अस्ववेशं कृण्वन्तः) मनुष्य जिसको अपने घरमें ठहरने देते, (त्रिबन्धुः जरदष्टिं उप एति) वह तीनों लोकोंका भाई इन्द्र बहुत बडे बलसे हमारे समीप आ जावे। हमें बडा बल देवे ॥ ७ ॥

[३६३] हे (सवितः) सबके प्रेरक देव ! (स्तवध्यै राधांसि) प्रशंसनीय धन (नः आ यन्तु) हमारे पास आ जाय। (पर्वतस्य रातौ रायः आ) पर्वतके दानके समय धन हमारे पास आ जाय। (पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु) पालन कर्ता देव सदा हमारी सुरक्षा करे (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सदा संरक्षणोंसे हमारी सुरक्षा कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र अपने प्रयत्नसे यश कमाता है और अपने सहयोगियोंको अपने पास रखता है। राजा तथा वीर अपने प्रयत्नसे अपना यश बढावे और अपने आश्रयसे सहयोगियोंको रखे ॥ ४ ॥

मनुष्य बुद्धिपूर्वक किए गए अपने पुरुषार्थोंसे सर्वत्र यशस्वी हो अर्थात् अपने यशके द्वारा वह सर्वत्र गमन करे। सभी जन इन्द्रसे सुरक्षित होकर पुरुषार्थी हों ॥ ५ ॥

राजाके राष्ट्रमें ज्ञानी सुखसे निवास करें। राष्ट्रकी ऐसी सुव्यवस्था हो कि उत्तमसे उत्तम ज्ञानी भी आकर उस राष्ट्रमें रहें। तथा उस राष्ट्रमें सभीके घर उत्तम वीर सन्तान हों ॥ ६ ॥

भूमि जिसे अपना अधिपति मानती है, सभी संवत्सर जिसके लिए सुखमय होते हैं, मनुष्य जिसे अपने हृदयप्रदेशमें बिठाते हैं, वह हमारा प्रभु हमें उत्तम बल प्रदान करे ॥ ७ ॥

प्रशंसनीय मार्गोंसे प्राप्त हुआ अथवा जिसकी प्रशंसा होती है, ऐसा धन हमारे पास हो। पर्वतसे प्राप्त होनेवाले धन हमें प्राप्त हों। संरक्षण करनेवाले दिव्य और तेजस्वी वीर सदा हमारी सुरक्षा करें ॥ ८ ॥

[३८]

(ऋषिः ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता- १-६ सविता, ६ उत्तरार्धस्य भगो वा, ७-८ वाजिनः। छन्दः-त्रिष्टुप्।)

३६४ उदु॒ ष्य दे॒वः स॑वि॒ता य॑याम हि॒र॒ण्ययी॑म॒मतिं॒ याम॑शिश्रेत् ।
नू॒नं भगो॒ हव्यो॒ मानु॑षेभि॒र्वि यो रत्ना॑ पु॒रु॒वसु॒र्दधा॑ति ॥ १ ॥
३६५ उदु॑ तिष्ठ सवितः श्रु॒ध्य१॒स्य हिर॑ण्यपाणे॒ प्रभृ॑तावृ॒तस्य॑ ।
व्यु१॒र्वीं पृ॒थ्वीम॒मतिं॑ सृ॒जान॒ आ नृभ्यो॑ मर्त॒भोज॑नं सुवा॒नः ॥ २ ॥
३६६ अपि॑ ष्टु॒तः स॑वि॒ता दे॒वो अ॑स्तु॒ यमा॑ चि॒द् विश्वे॒ वस॑वो गृ॒णन्ति॑ ।
स नः॒ स्तोमा॑न् नम॒स्य१॒श्चनो॑ धा॒द् विश्वे॑भिः पातु पा॒युभि॒र्नि सू॒रीन् ॥ ३ ॥
३६७ अ॒भि यं दे॒व्यदि॑तिर्गृ॒णाति॑ स॒वं दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्जु॑षा॒णा ।
अ॒भि स॒म्राजो॒ वरु॑णो गृणन्त्य॒भि मि॒त्रासो॑ अर्य॒मा स॒जोषा॑ः ॥ ४ ॥

[३८]

अर्थ— [३६४] (स्यः सविता देवः) वह सविता देव (हिरण्ययीं यां अमतिं) जिस सुवर्णमयी प्रभाका (आशिश्रेत्) आश्रय करता है, उसका (उत् ययाम) उदय होता है। (नूनं भगः मनुष्येभिः हव्यः) निश्चयहीसे यह भग देव मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य है। (यः पुरूवसुः रत्ना वि दधाति) जो यह बहुत धनसे युक्त देव है वह अनेक रत्न भक्तोंको देता है ॥ १ ॥

[३६५] हे (सवितः) सबके प्रेरक देव ! तुम (उत् तिष्ठ) ऊपर आओ। उदित हो जाओ। हे (हिरण्य-पाणे) सुवर्णके आभूषणोंसे सुशोभित हाथवाले ! तुम (ऋतस्य प्रभृतौ अस्य श्रुधि) यज्ञके चलने पर इस स्तोत्रका श्रवण करो। (उर्वीं पृथ्वीं अमतिं वि सृजानः) तुम विस्तीर्ण और प्रसिद्ध प्रभाको फैलाते और (नृभ्यः मर्तभोजनं आ सुवानः) मानवोंके लिये भोगके योग्य धन, अन्न देते हो ॥ २ ॥

[३६६] (अपि सविता देवः स्तुतः अस्तु) सविता देव हमारे द्वारा प्रशंसित हो। (विश्वे वसवः यं चित् आ गृणन्ति) सब ही निवासक देव जिसकी स्तुति गाते हैं। (सः नमस्यः नः स्तोमान् चनः धात्) वह नमस्कार करने योग्य देव हमारे स्तोमोंको तथा अन्नको धारण करें। वह (विश्वेभिः पायुभिः सुरीन् नि पातु) सब संरक्षणके साधनोंसे हमारे ज्ञानियोंकी सुरक्षा करे ॥ ३ ॥

[३६७] (यं देवी अदितिः अभि गृणाति) जिस सविताकी अदिति देवी स्तुति करती है। (सवितुः देवस्य सवं जुषाणा) वह सविता देवकी प्रेरणाका पालन करती है। (सम्राजः वरुणः अभि गृणन्ति) सम्राट वरुण देव जिसकी प्रशंसा करते हैं। तथा (सजोषाः मित्रासः अर्यमा अभि) समान प्रीतिवाला अर्यमा और मित्रादि देव इसकी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह सूर्य या सविता देव उदय होते समय सुनहरे वर्णका प्रभाको धारण करता है। सूर्यका यह ऐश्वर्य निश्चयसे मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय है ॥ १ ॥

हे सबको प्रेरणा देनेवाले सविता देव ! तू उदय हो। सुनहरी किरणोंवाले देव ! यज्ञमें तेरे लिए किए जानेवाले इस स्तुतिका श्रवण कर। तू अपनी विस्तीर्ण और प्रसिद्ध प्रभाको फैलाता हुआ मानवोंके लिए अनेक तरहके भोग्य पदार्थ देता है ॥ २ ॥

हम सविता देवकी प्रशंसा करें। सभी देव इस सविता देवकी स्तुति गाते हैं। वे नमस्कारके योग्य देव हमारे लिए स्तोत्र तथा अन्नको धारण करें। वह देव सभी तरहके संरक्षणके साधनोंसे हमारे ज्ञानियोंकी सुरक्षा करे ॥ ३ ॥

३६८ अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥
३६९ अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥ ६ ॥
३७० शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः ॥ ७ ॥
३७१ वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३६८] (ये रातिषाचः वनुषः मिथः) दानशील भक्त जन मिलकर (दिवः पृथिव्याः रातिं अभि सपन्ते) द्युलोक और पृथिवी लोकके मित्ररूप सविताकी उपासना करते हैं। (बुध्न्यः अहिः उत नः शृणोतु) मध्यस्थानमें रहनेवाला प्रशंसित मान वह विद्युत् रूप अग्नि हमारा स्तोत्र सुने। (वरूत्री एकधेनुभिः नि पातु) वाग्देवी मुख्य गौओंके साथ हमारी सुरक्षा करें ॥ ५ ॥

[३६९] (इयानः जास्पतिः) प्रार्थना करनेपर सब प्रजाओंका पालक (सवितुः देवस्य तत् रत्नं) सविता देव अपने रत्नोंको, धनोंको, (नः अनुमंसीष्ट) हमारे लिये दें, देनेकी अनुमति प्रदान करें। (उग्रः भगं अवसे जोहवीति) उग्र वीर भग देवकी अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करता है। (अध अनुग्रः भगं रत्नं याति) पर जो उग्र वीर नहीं है वह भगके पास केवल रत्नोंको ही मांगता है। ॥ ६ ॥

[३७०] (मित द्रवः स्वर्काः वाजिनः) अच्छी गतिवाले स्तुतिके योग्य ये बलवान देव (देवताता हवेषु) यज्ञमें प्रार्थनाके समय (नः शं भवन्तु) हमारे लिये सुख देनेवाले हों। ये (अहिं वृकं रक्षांसि जंभयन्तः) बढनेवाले क्रूर राक्षसोंका नाश करते हुए (सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्) पुराने सब रोग हमसे दूर करें ॥ ७ ॥

[३७१] हे (वाजिनः) बल देनेवाले देवो ! (विप्राः अमृताः ऋतज्ञाः) ज्ञानी अमर और सत्य मार्गको जाननेवाले तुम सब (वाजे वाजे नः धनेषु अवत) प्रत्येक युद्धमें धनके लिये हमारा संरक्षण करो। (अस्य मध्वः पिबत) इस मधुर सोमरसका पान करो, (मादयध्वं) आनंद प्राप्त करो (तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात) तृप्त होकर देवयानके मार्गोंसे जाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— अदिति देवी इस सविता देवीकी स्तुति करती है, और उसके आदेशोंका पालन करती है। सम्राट् वरुण भी इसकी प्रशंसा करता है, समान रूपसे प्रेम करनेवाला अर्यमा और मित्र इसकी स्तुति करते हैं। ॥ ४ ॥

यह सविता देव द्युलोक और पृथिवीलोकका मित्र है। मित्रके समान इन दोनोंका हित करनेवाला है। मध्यस्थान अर्थात् अन्तरिक्षमें रहनेवाला यह विद्युत् रूप सविता हमारी प्रार्थना सुने ॥ ५ ॥

उग्र वीर भगसे संरक्षणकी शक्तिके साथ धन मांगता है, पर जो वीर नहीं है, वह केवल धन ही मांगता है। संरक्षणकी शक्ति मांगना योग्य है क्यों कि बिना शक्तिके प्राप्त धनका संरक्षण नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

सवितादेवकी किरणें प्रमाणमें गति करती हैं, उत्तम गुण धर्मवाली तथा बल बढानेवाली हैं। ये किरणें हमें सुख और शान्ति देनेवाली हों। आमाशयमें अन्नका ठीक न होनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं वे, सूर्य किरणोंके प्रयोगसे दूर हो जाते हैं। कम्प होकर बढते ही आनेवाले, भेडियेके समान क्रूर कर्म करनेवाले रोगकृमियोंको सूर्य किरणें नष्ट करती हैं ॥ ७ ॥

मनुष्य बलवान्, धनवान् और सामर्थ्यवान् बने। वह कभी अकालमृत्युसे न मरे। वह उन्नतिके सत्यमार्गको जाने और धन प्राप्तिके निमित्त होनेवाले युद्धमें वह सदा सुरक्षित रहे ॥ ८ ॥

[१९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३७२ ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत् प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्था- मृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥

३७३ प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषा- मा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ २ ॥

३७४ ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥ ३ ॥

---

[१९]

अर्थ— [३७२] (ऊर्ध्वः अग्निः वस्वः सुमतिं अश्रेत्) जिसकी गति ऊपरकी ओर होती है ऐसा ऊर्ध्वगामी अग्नि निवासकी इच्छा करनेवाले भक्तकी की हुई स्तुतिको सुने । (प्रतीची जूर्णिः देवतातिं एति) पूर्व दिशामें होनेवाली, सबको जीर्ण करनेवाली उषा यज्ञमें जाती है । (अद्री रथ्या इव पन्थां भेजाते) आदरणीय दोनों प्रकारके लोग रथ चलानेवाले मार्गका अवलंबन करते हैं इस प्रकार यज्ञ मार्गका सेवन करते हैं । (इषितः नः होता ऋतं यजाति) प्रेरित हुआ होता यज्ञको करता है ॥ १ ॥

[३७३] (एषां सुप्रयाः बर्हिः) इनका अन्नसे भरपूर भरा बर्हि यज्ञमें (प्र ववृजे) प्रयुक्त होता है । (विश्पती इव) प्रजाओंके पालक दोनों (नियुत्वान्) घडवायुक्त (वायुः पूषा) वायु और पूषा ये देव (विशां स्वस्तये) सब प्रजाओंके कल्याणके लिये (अक्तोः उषसः) रात्री और उषाके समयके (पूर्व-हूतौ) प्रथम करनेकी प्रार्थनाके समय (बीरिटे आ इयाते) अन्तरिक्षमें आ जावें ॥ २ ॥

[३७४] (अत्र वसवः देवाः ज्मया रन्त) यहां वसुदेव भूमिके साथ रममाण हों । (उरौ अन्तरिक्षे शुभ्राः मर्जयन्त) विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें तेजस्वी मरुद्गण शुद्ध करते हैं । हे (उरुज्रयः) बहुत भ्रमण करनेवाले देवो ! आपका (पथः अर्वाक् कृणुध्वं) मार्ग हमारी ओर करो, हमारी ओर आओ । (नः अस्य जग्मुषः दूतस्य श्रोत) हमारे इस तुम्हारे पास जानेवाले दूतका भाषण सुनो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अग्निकी ज्वाला सदा ऊपरकी ओर ही गमन करती है । इसी तरह मनुष्यको भी अपनी प्रगति उन्नतिकी ओर ही करनी चाहिए । मनुष्य इस संसारमें उत्तम रीतिसे निवास करनेके लिए उत्तम बुद्धिको प्राप्त करे । जिसके पास उत्तम बुद्धि होगी, वही यहां सुखसे निवास कर सकेगा ॥ १ ॥

जो यज्ञ किया जाए उसमें अन्न भरपूर हो । प्रजाका कल्याण करनेमें तत्पर राजागण सभामें आकर बैठें और उन सभाओंमें प्रजाओंके कल्याणका विचार करें । राजा और राजपुरुष प्रजाके कल्याणकी तरफ ही हमेशा ध्यान रखें और अपना कर्तव्य करें ॥ २ ॥

वसुदेव इस भूमि पर आकर आनन्दित हों । विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें तेजस्वी वायु गण पवित्र होकर बहें । हे देवो ! तुम सब हमारी ओर आओ ॥ ३ ॥

३७५ ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ॥ ४ ॥
३७६ आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥ ५ ॥
३७७ ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत् कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥
३७८ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

अर्थ— [३७५] (यज्ञेषु ते यज्ञियासः ऊमाः) यज्ञोंमें वे पूजायोग्य और रक्षक (विश्वे देवाः सधस्थं अभि सन्ति) सबके सब देव वीर साथ साथ आते हैं। हे अग्ने ! (उशतः तान् अध्वरे यक्षि) इच्छा करनेवाले इन देवोंके लिये यज्ञमें यजन करो। तथा (श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिं) सत्वर भग, अश्विदेव और नगर रक्षक इन्द्रके लिये यजन करो ॥ ४ ॥

[३७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (दिवः गिरः आ वह) द्युलोकसे स्तुति करने योग्य देवोंको ले आ (पृथिव्याः आ वह) पृथ्वीके ऊपरसे भी ले आ। मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, अर्यमा, अदिति, विष्णुको ले आ। (एषां सरस्वती मरुतः मादयध्वं) इनमें सरस्वती और मरुत् आनन्दित होकर यहां आवें ॥ ५ ॥

[३७७] (यज्ञियानां मतिभिः हव्यं ररे) पूजा योग्य देवोंके लिये हम अपनी बुद्धिपूर्वक की स्तुतियोंके साथ हव्य अन्न अर्पण करते हैं। (मर्त्यानां कामं असिन्वन् नक्षत्) मानवोंकी उन्नतिकी कामनाओंका प्रतिबंध न करता हुआ अग्नि यज्ञको करता है। (अविदस्यं सदासां रयिं धात) अक्षय और सदा स्थायी रहनेवाले धनको हमें दो और (युज्येभिः देवैः सक्षीमहि) साथी देवोंके साथ हम आज मिलेंगे ॥ ६ ॥

[३७८] (नू वसिष्ठैः रोदसी अभिष्टुते) निःसंदेह आज वसिष्ठोंने द्युलोक और पृथिवीकी स्तुति की है। (ऋतावानः वरुणः मित्रः अग्निः) यज्ञके योग्य वरुण, मित्र, अग्नि ये देव भी प्रशंसित हुए हैं। (चन्द्राः नः उपमं अर्कं यच्छन्तु) आनंद बढानेवाले ये देव हमें सर्वोत्कृष्ट पूजा योग्य अन्न तथा धन प्रदान करें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— सबके सब देव वीर और रक्षक होनेके कारण यज्ञोंमें अर्थात् पूज्योंमें भी सर्वश्रेष्ठ पूज्य हैं। उनका सत्कार करना चाहिये। ये सभी देव एक ही स्थानपर रहते हैं। एक स्थान पर संगठित होकर रहते हैं। उनमें कभी फूट नहीं होती ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! द्युलोकमें और पृथिवीपर जितने भी देव हैं, उन सभी देवोंको तू बुलाकर ला ॥ ५ ॥

पूजनीय वीरोंका बुद्धिपूर्वक आदर और सत्कार करना चाहिए। मनुष्योंके अभ्युदयके मार्गमें विघ्न न हों। हमारे धन अक्षय और स्थायी हों। हम योग्य बन्धुओंके साथ मिलकर रहें ॥ ६ ॥

आज ज्ञानियोंने द्यु और पृथिवीकी स्तुति की है। यज्ञके योग्य वरुण आदि देव भी प्रशंसित हुए हैं। आनंदको बढानेवाले ये देव हमें सबसे उत्तम धन प्रदान करें तथा अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमें सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

[४०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३७९ आ श्रुष्टिर्विदथ्याइ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥

३८० मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

३८१ सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

३८२ अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥

---

[४०]

अर्थ— [३७९] (विदथ्या श्रुष्टिः आ सं एतु) संघटनसे प्राप्त होनेवाला सुख हमें प्राप्त हो । (तुराणां स्तोमं प्रति दधीमहि) हम त्वरासे देवोंके लिये स्तोत्र करते हैं । (अद्य देवः सविता यत् सुवाति) आज सविता देव जिस धनको देता है । हम (अस्य रत्निनः विभागे स्याम) इस रत्नोंको पास रखनेवाले सविता देवके धनदानके समय रहें । हमें वे धन मिलें ॥ १ ॥

[३८०] मित्र, वरुण, (रोदसी) द्यावापृथिवी (तत् नः ददातु) उस धनको हमें दें । इन्द्र और अर्यमा हमें (द्युभक्तं ददातु) तेजस्वीयों द्वारा सेवन करनेयोग्य धन दें । (अदितिः देवी रेक्णः दिदेष्टु) अदिति देवी वह धन हमें दे (वायुः भगः च) वायु और भग ये देव (नियुवैते) हमारे लिये जिसको प्रेरित करते हैं वह धन हमें प्राप्त हो ॥ २ ॥

[३८१] हे (पृषदश्वाः) उत्तम घोडोंवाले मरुत् वीरो ! (मर्त्यं यं अवाथ) जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, (सः उग्रः, सः शुष्मी अस्तु) वह उग्र तथा बलवान् होता है । (अग्निः सरस्वती ईं उत जुनन्ति) अग्नि, सरस्वती आदि देव उसको सत्कर्ममें प्रवर्तित करते हैं । तस्य रायः पर्येता न अस्ति) उसके धनका नाश करनेवाला कोई नहीं है ॥ ३ ॥

[३८२] (अयं हि ऋतस्य नेता) यह सत्यमार्गका नेता है । मित्र, वरुण, अर्यमा, आदि (राजानः) राज्य शासक देव (अपः धुः) हमारे प्रशस्त कर्मोंका धारण करते हैं । (अनर्वा अदितिः देवी सुहवा) किसीके द्वारा प्रतिबंधित न होनेवाली अदिति देवी स्तुति करने योग्य है । (ते अरिष्टान् नः अंहः अति पर्षत्) वे सब देव बाधा-रहित ऐसे हम सबको पापसे बचावें ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो सुख संगठनसे प्राप्त होते हैं, वे सुख हमें प्राप्त हों । सविता देव जिस धनको हमें प्रदान करना चाहता है, उसे पानेके हम अधिकारी हों ॥ १ ॥

तेजस्वी वीरोंको जो धन प्रिय होता है, वह धन हमें सभी देव प्रदान करें ॥ २ ॥

देव जिसका संरक्षण करता है, वह शूरवीर तथा प्रभावी होता है । उसे विद्याकी देवी सरस्वती उत्तम कर्ममें प्रेरित करती है । असत्कर्ममें वह कभी प्रवृत्त नहीं होता और उसका धन कभी नष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥

३८३ अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥ ५ ॥
३८४ मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद् रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥ ६ ॥
३८५ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[४१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः, २-६ भगः, ७ उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ जगती ।)

३८६ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

अर्थ— [३८३] (प्रभृथे हविर्भिः एषस्य मीळ्हुषः विष्णोः अस्य देवस्य) यज्ञमें हविष्योंके द्वारा उपासनीय और इच्छाओंको पूर्ति करनेवाले इस व्यापक विष्णु देवको (वयाः) अन्य देव शाखाएं हैं । (रुद्रः रुद्रियं महित्वं विदे हि) रुद्रदेव अपना महत्व युक्त सामर्थ्य हमें प्रदान करे । हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) हमारे अन्न युक्त घरके पास आओ । हमारे यज्ञमें आओ ॥ ५ ॥

[३८४] हे (आ घृणे पूषन्) तेजस्वी पूषा देव ! (अत्र मा इरस्यः) इस कार्यमें विघात न करो । (वरूत्री) सबके द्वारा उपास्य सरस्वती (रातिषाचः) दान देनेवाली अन्य देवियां (यत् रासन्) जो धन हमें देती हैं, उसमें किसीकी रुकावट न हो । (मयोभुवः अर्वन्तः नः निपान्तु) सुख देनेवाले प्रगतिशील रक्षक देव हमें सुरक्षित रखें । (परिज्मा वातः वृष्टिं ददातु) चारों ओर जानेवाला गतिशील वायु हमें वृष्टि देवे ॥ ६ ॥

[३८५] (नू वसिष्ठैः रोदसी अभिष्टुते) निस्सन्देह आज वसिष्ठोंने द्युलोक और पृथिवीकी स्तुति की है । (ऋतावानः मित्रः, वरुणः अग्निः) यज्ञके योग्य वरुण, मित्र और अग्नि ये देव भी प्रशंसित हुए हैं । (चन्द्राः नः उपमं अर्कं यच्छन्तु) आनन्द बढानेवाले ये देव हमें सर्वोत्कृष्ट पूजाके योग्य अन्न तथा धन प्रदान करें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) हे देवो ! तुम सदा हमारी कल्याणसे रक्षा करो ॥ ७ ॥

[४१]

[३८६] हम (प्रातः अग्निं हवामहे) प्रातःकाल अग्निको बुलाते हैं, (प्रातः इन्द्रं) प्रातःकाल इन्द्रको बुलाते हैं, (प्रातः मित्रावरुणा) प्रातःकाल मित्र और वरुणको बुलाते हैं, (प्रातः अश्विना) प्रातःकाल अश्विनी कुमारोंको बुलाते हैं, (प्रातः भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं) प्रातःकाल भग, पूषा और ब्रह्मणस्पतिको बुलाते हैं । (प्रातः सोमं उत रुद्रं हुवेम) प्रातःकाल हम सोम और रुद्रको बुलाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— राजा और राजपुरुष सत्यके मार्ग परसे स्वयं चलकर जनताको चलानेवाले होकर प्रजाके उत्तम कर्मोंकी प्रशंसा करें । प्रजाओंके उत्तम कर्मोंकी सुरक्षा करें । वे नष्ट न हों । उनकी सब पापोंसे सुरक्षा हो ॥ ४ ॥

यज्ञोंसे उपास्य तथा इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले इस व्यापक प्रभुकी अन्य सभी देव शाखाओंके समान हैं । इसी एक देवके आश्रयसे अन्य देव रह रहे हैं । विश्वका सभी हिस्सा उसी एक प्रभुके अवयव हैं ॥ ५ ॥

विद्याकी देवी सरस्वती सबके द्वारा उपास्य है । विद्याकी आराधना सबको करनी चाहिए । सभी दान देनेवाले हों । कोई कंजूस न हो । संरक्षणके कार्यमें नियुक्त हुए सभी लोग सुख देनेवाले और उत्तम रक्षा करनेवाले हों ॥ ६ ॥

आज ज्ञानियोंने द्यु और पृथिवीकी स्तुति की है । यज्ञके योग्य वरुण आदि देव भी प्रशंसित हुए हैं । आनंदको बढानेवाले ये देव हमें सबसे उत्तम धन प्रदान करें और अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमें सुरक्षित रखें ॥ ७ ॥

३८७ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥
३८८ भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥
३८९ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥
३९० भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥

अर्थ— [३८७] (यः विधर्ता) जो देव विश्वका धारण करता है, उस (अदितेः पुत्रं उग्रं प्रातर्जितं भगं) अदितिके पुत्र उग्र वीर और विजयशील भग देवकी (वयं हुवेम) हम प्रातः समयमें प्रार्थना करते हैं। (आध्रः चित्) दरिद्री भी (यं मान्यमानः) जिसकी स्तुति ना करे तथा (तुरः चित् राजा चित्) सत्वर धन प्राप्त करनेवाला राजा भी (यं भगं भक्षि इति आह) जिस भग देवको ' मुझे धन दे ' ऐसा कहता है ॥ २ ॥

[३८८] हे (भग) भगवान् देव ! तू (प्रणेतः) सबका नेता संचालक है, तथा हे भग ! तू (सत्यराधः) सत्य धनसे युक्त है, तेरा धन शाश्वत टिकनेवाला है। हे (भग) भग देव ! (ददन् नः इमां धियं उदव) तुम हमें धन देकर इस हमारे बुद्धि युक्त कर्मको सुरक्षित करो। हे (भग) भग ! हम (नः गोभिः अश्वैः प्रजनय) हमें गौओं और घोडोंके साथ उन्नत करो। हे (भग) भग ! हम (नृभिः नृवंतः प्र स्याम) वीरोंके साथ रहकर मनुष्य युक्त बनेंगे ॥ ३ ॥

[३८९] (उत इदानीं भगवन्तः स्याम) हम सब इस समय भाग्यवान् हों। (उत प्रपित्वे, उत अह्नां मध्ये) प्रातः काल और दिवसके मध्य समयमें हम भाग्यसे युक्त हों। (उत सूर्यस्य उदिता) और सूर्यके उदयके समय हम भाग्यवान् हों। हे (मघवन्) भगवन् ! (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम सब देवोंकी उत्तम बुद्धिमें रहें अर्थात् हमारे विषयमें देवोंकी उत्तम बुद्धि रहे। हमारे विषयमें देवोंकी सद्भावना रहे ॥ ४ ॥

[३९०] हे (देवाः) देवो ! (भगः एव भगवान् अस्तु) भग देव ही धनवान् हों। (तेन वयं भगवन्तः स्याम) उससे हम सब धनवान हों। हे भग ! (तं त्वा सर्वः इत् जोहवीति) उस तुमको ही सब जनसमाज बुलाता है। हे भग देव ! (सः नः इह पुरएता भव) तुम इस यज्ञमें हमारे नेता बनो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हम प्रातःकाल उठकर तेजस्वी, ऐश्वर्यशाली, मित्रके समान हितकारी, वरणीय, शीघ्रतासे कर्म करनेवाले, ऐश्वर्यसम्पन्न, पोषक, ज्ञानी, आनन्ददायी तथा शत्रुओंको रुलानेवाले प्रभुकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

दरिद्री मनुष्य तथा बडा धनवान् राजा भी जिस भगदेवके पास ' मुझे धन दो ' ऐसी प्रार्थना करता है, उस प्रभुकी मैं प्रातःकाल उपासना करता हूं। वह प्रभु सबको धारण करनेवाला, वीर और सबको पराजित करनेवाला है ॥ २ ॥

हे भगदेव ! तू सबका नेता और संचालक है, तेराही धन शाश्वत रूपसे टिकनेवाला है। हे देव ! तू हमें उत्तम धन प्रदान कर ताकि हम बुद्धिपूर्वक कर्मोंको करें। हम वीरोंके साथ रहकर उन्नति करें ॥ ३ ॥

हम प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल अर्थात् सदाही सौभाग्यसे युक्त रहें। सूर्योदयके समय भी हम सौभाग्यशाली रहें। इस प्रकार सौभाग्यशाली होकर हम सदा देवोंकी उत्तम बुद्धियोंमें रहें। हमारे बारेमें देवोंकी सद्भावना रहे ॥ ४ ॥

ऐश्वर्यशाली प्रभुही हमारे उपास्य हो, उस प्रभुकी कृपासे हम भी धनवान् हों। इस प्रभुकोही सारा जनसमाज बुलाता है ॥ ५ ॥

३९१ समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥ ६ ॥

३९२ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[४२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३९३ प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १ ॥

३९४ सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥ २ ॥

अर्थ— [३९१] (शुचये पदाय) शुद्ध स्थानमें बैठनेके लिये (दधिक्रावा इव) श्वेत घोडेकी तरह (उषसः अध्वराय सं नमन्त) उषा देवताएं यज्ञके लिये आ जांय । (वाजिनः अश्वाः रथं इव) वेगवान घोडे रथको खींचते हैं उस तरह (वसुविदं भगं नः अर्वाचीनं) धनवान भगको हमारे समीप (आ वहन्तु) ले आवें ॥ ६ ॥

[३९२] (भद्राः उषसः) कल्याण करनेवाली उषाएँ (अश्वावतीः गोमतीः) अश्वों और गौओंसे युक्त (वीरवतीः) वीरोंसे युक्त तथा (घृतं दुहानाः) घीका दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब गुणोंसे युक्त होकर (नः सद्मं उच्छन्तु) हमारे घरोंको प्रकाशित करती रहें । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो ॥ ७ ॥

[४२]

[३९३] (ब्रह्माणः अंगिरसः प्र नक्षन्त) अंगिरस ब्रह्मा सर्वत्र व्याप्त हों । (क्रन्दनुः नभन्यस्य प्र वेतु) पर्जन्य स्तोत्रकी इच्छा करे । (धेनवः उदप्रुतः प्र नवंत) नदियां पानीसे भरपूर होकर बहती रहें । (अद्री अध्वरस्य पेशः युज्यन्तां) आदरणीय यजमान और पत्नी ये दोनों यज्ञकी सुंदरताको बढायें ॥ १ ॥

[३९४] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते सन-वित्तः अध्वा सुगः) तुम्हारा बहुत समयसे प्राप्त मार्ग आनेके लिये सुगम हो । (हरितः रोहितः च) श्याम वर्ण तथा लाल वर्णके घोडे और (ये च सद्मन्) जो यज्ञ गृहमें (वीरवाहाः अरुषः) वीरोंको ले जानेवाले तेजस्वी घोडे हैं (युक्ष्व) उनको तुम रथमें जोतो और इधर आओ । (सत्तः देवानां जनिमानि हुवे) मैं यज्ञमें मैं बैठकर देवोंके जन्मोंके वृत्तान्तोंको स्तोत्ररूपमें गाता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ— हमारे यज्ञोंमें उषायें और भगदेवता आवें ॥ ६ ॥

उषःकालमें हमारे घोडे और गायें हमारे घरके पास जमा हों । हमारे बालबच्चे वहां खेलें, गायोंका दूध दुहा जाए । दूधका मक्खन बनाया जाए । उसका सेवन करके सब हृष्टपुष्ट हों, ऐसे आनन्दमें हमारे घर उषःकालमें प्रकाशित होते रहें ॥ ७ ॥

अंगिरस अर्थात् ज्ञानियोंके काव्य सब जगत्‌में फैलें । मेघों पर उत्तम स्तोत्र गाये जाएं । मेघसे बरसात हो और नदियां पानीसे भरपूर होकर बहती रहें । बरसातसे धान्य बढे और धान्यसे यज्ञ सफल हो ॥ १ ॥

अग्नि या नेताके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर हम जाएं । हम वीर होकर घोडोंके शीघ्रगामी रथ पर बैठें और वीरोंके काव्योंका गान करके उनसे स्फूर्ति प्राप्त करें ॥ २ ॥

३९५ सम् उ वो यज्ञं महयन् नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥ ३ ॥

३९६ यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥ ४ ॥

३९७ इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥

३९८ एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद् वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३९५] वे (वः यज्ञं नमोभिः सं महयन्) आपके यज्ञकी महिमाको नमस्कारोंसे बढाते हैं । (मन्द्रः उपाके होता प्र रिरिचे) प्रशंसनीय यज्ञ स्थानके समीप भागमें स्थित होता सर्वोत्तम समझा जाता है । तू (देवान् सु यजस्व) देवोंका उत्तम यजन कर । हे (पुरु-अनीक) बहु तेजस्वी अग्ने ! तुम (यज्ञियां अरमतिं आ ववृत्याः) पूजा योग्य यज्ञ भूमिपर फैल जाओ । प्रदीप्त हो ॥ ३ ॥

[३९६] (अतिथिः अग्निः यदा वीरस्य रेवतः) सबके आदरणीय अतिथिरूप अग्नि जिस समय वीर और धनीके (दुरोणे स्योनशीः अचिकेतत्) घरमें सुखसे प्रदीप्त रूपमें देखा जाता है । जिस समय वह (दमे सुधितः सुप्रीतः आ) यज्ञस्थानमें उत्तम रीतिसे स्थापित होकर प्रदीप्त होता है, तब (सः) वह अग्नि (इयत्यै विशे वार्यं दाति) समीपवर्तिनी प्रजाजनोंको श्रेष्ठ धन देता है ॥ ४ ॥

[३९७] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः इमं अध्वरं जुषस्व) हमारे इस यज्ञका सेवन करो । (मरुत्सु इन्द्रे नः यशसं कृधि) मरुत् वीरोंमें तथा इन्द्रमें हमें यशस्वी करो । (नक्ता उषसा) रात्रीमें तथा उषःकालमें (बर्हिः आ सदतां) आसनों पर बैठो । (उशता मित्रावरुणा इह यज) तुम्हारे यज्ञ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मित्र तथा वरुणका यहां यजन करो ॥ ५ ॥

[३९८] (वसिष्ठः रायस्कामः एव) वसिष्ठ धनकी इच्छा करके (सहस्यं अग्निं) बलवान् अग्निकी (विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्) सब प्रकारके धनकी प्राप्तिके लिये स्तुति करने लगा । (अस्मे इषं रयिं वाजं पप्रथत्) हमें वह अन्न, धन और बल देवे । ऐसी प्रार्थना उसने की । हे देवो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

भावार्थ— यज्ञ स्थानमें अग्नि प्रदीप्त हो । उसमें देवोंके निमित्त उत्तम याजक यज्ञ करें और स्तोत्रों तथा नमस्कारोंसे यज्ञका महत्त्व बढे ॥ ३ ॥

अतिथिके समान आदरणीय अग्नि यज्ञमें प्रदीप्त होकर यजमानको धन देता है । यज्ञसे धन प्राप्त होता है जिससे यज्ञ किया जाता है ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हमारे द्वारा किए जानेवाले यज्ञका सेवन कर । हम मरुतोंमें और इन्द्रमें यशस्वी हों । हमारे इस यज्ञमें मित्र और वरुण भी आवें ॥ ५ ॥

हे देवो ! धनकी इच्छा करनेवाले ज्ञानीने जब अग्निकी स्तुति की, तब तुम सबने भी प्रसन्न होकर उस ज्ञानीकी अपने साधनोंसे रक्षा की ॥ ६ ॥

२२

[४३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।)

३९९ प्र वो॑ य॒ज्ञेषु॑ दे॒वय॑न्तो अर्च॒न् द्यावा॒ नमो॑भिः पृथि॒वी इ॒षध्यै॑ ।
येषां॒ ब्रह्मा॒ण्यस॑मानि॒ विप्रा॒ विष्व॑ग्वि॒यन्ति॑ व॒निनो॒ न शाखाः॑ ॥ १ ॥

४०० प्र य॒ज्ञ ए॑तु॒ हेत्वो॒ न सप्ति॒-रुद्य॑च्छध्वं॒ सम॑नसो घृ॒ताचीः॑ ।
स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिर॑ध्व॒राय॑ सा॒धू-र्ध्वा शो॒चींषि॑ देव॒यून्य॑स्थुः ॥ २ ॥

४०१ आ पु॒त्रासो॒ न मा॒तरं॒ विभृ॑त्राः॒ सानौ॑ दे॒वासो॑ ब॒र्हिषः॑ सदन्तु ।
आ वि॒श्वाची॑ वि॒दथ्या॑मनक्त्व-ग्ने॒ मा नो॑ दे॒वता॑ता॒ मृध॑स्कः ॥ ३ ॥

४०२ ते सी॑षपन्त॒ जोष॒मा यज॑त्रा ऋ॒तस्य॒ धाराः॑ सु॒दुघा॒ दुहा॑नाः ।
ज्येष्ठं॑ वो अ॒द्य मह॒ आ वसू॑ना॒-मा ग॑न्तन॒ सम॑नसो॒ यति॑ ष्ठ ॥ ४ ॥

---

[४३]

अर्थ— [३९९] (देवयन्तः विप्राः यज्ञेषु) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी यज्ञोंमें (नमोभिः वः इषध्यै प्र अर्चयन्) अन्नों तथा नमस्कारों द्वारा आपकी प्राप्तिकी इच्छासे स्तोत्र पाठ करते हैं। और (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोकका स्तोत्र गाते हैं। (येषां असमानि ब्रह्माणि) जिनके असीम स्तोत्र (वनिनः शाखा इव) वृक्षोंकी शाखाओंकी तरह (विष्वक् वियन्ति) चारों ओर फैलते हैं ॥ १ ॥

[४००] (यज्ञः प्र एतु) हमारा यज्ञ देवोंकी ओर पहुंचे। (हेत्वः न सप्तिः) जैसा शीघ्रगामी घोडा दौडता है। (समनसः घृताचीः उत् यच्छध्वं) एक विचारसे घृतसे भरी स्रुवाको ऊपर उठाओ। (अध्वराय साधु बर्हिः स्तृणीत) यज्ञके लिये उत्तम आसन बिछाओ। (देवयूनि शोचींषि ऊर्ध्वा अस्थुः) देवोंकी ओर जानेवाली अग्निकी ज्वालाएं ऊर्ध्वगामी होकर फैलें ॥ २ ॥

[४०१] (विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) जैसे भरण पोषण करनेयोग्य छोटे बालक माताकी गोदमें बैठते हैं, उस तरह (देवासः बर्हिषः सानौ आ सदन्तु) देव आसनोंके ऊपर बैठें। हे अग्ने! (विदथ्यां विश्वाची आ अनक्तु) यज्ञमें चारों ओर घी सींचनेवाली जुहू तुम्हारे ऊपर सिंचन करे। (देवताता नः मृधः मा कः) युद्धके समय हमारे हिंसक शत्रुओंकी सहायता न करना ॥ ३ ॥

[४०२] (यजत्राः ते) यजनीय वे देव (ऋतस्य सुदुघाः धाराः दुहानाः) जलकी दुहने योग्य जल धाराओंको बरसाते हुए (जोषं आ सीषपन्त) हमारी सेवाका स्वीकार करें। (अद्य वसूनां ज्येष्ठं वः महः) आज धनोंमें जो श्रेष्ठ महत्वपूर्ण धन है वह हमारे पास (आ गंतन) आवे तथा आप भी (समनसः यति स्थ) एक मत करके यहां यज्ञमें आओ ॥ ४ ॥

भावार्थ— देवत्वकी प्राप्ति करनेकी इच्छावाले ज्ञानीजन देवोंकी स्तुति करते हैं। वे द्यु और पृथिवीलोकका यश गाते हैं। उनके द्वारा किए जानेवाले ये स्तोत्र चारों ओर फैलते हैं ॥ १ ॥

यज्ञशालामें देवोंके लिए आसन बिछाये जायें, घीको चमससे भरकर आहुतियां दी जाएं, अग्निकी ज्वालायें प्रदीप्त होकर ऊपर उठें और हमारे द्वारा दी गई आहुतियां इन ज्वालाओंके द्वारा देवों तक पहुंचे ॥ २ ॥

जिस तरह भरणपोषण योग्य बालक अपनी माताके गोदमें प्रेमसे बैठते हैं, उसी तरह देवगण इन आसनों पर प्रेमसे बैठें। हे अग्ने! तू यज्ञमें अथवा युद्धमें हमारा घात करनेवाले शत्रुओंकी सहायता न कर ॥ ३ ॥

वे पूज्य देव जलधाराओंको बहाते हुए हमारी सेवाओंको स्वीकार करें। धनोंमें जो श्रेष्ठ तथा महत्वपूर्ण धन हो वही हमें प्राप्त हो हम भी सब एक विचारवाले होकर अपनी उन्नतिके लिए यत्न करते रहें ॥ ४ ॥

४०३ एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[४४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- दधिक्राः, १ दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्य-
द्यावापृथिव्यापः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ जगती ।)

४०४ दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषस-मग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पति-मादित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥ १ ॥

४०५ दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तो ऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥

४०६ दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्नि-मुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ॥ ३ ॥

अर्थ— [४०३] हे (अग्ने) अग्ने ! (एव विक्षु नः आ दशस्य) इस तरह प्रजाजनोंमें हमें धनका प्रदान करो ! हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (त्वया आस्क्राः वयं) तुम्हारे द्वारा वियुक्त न हुए हम सब (राया युजा) धनसे युक्त होकर (सधमादः) संगठित रहकर आनंदित होते हुए (अरिष्टाः) विनष्ट न हों। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[४४]

[४०४] (वः ऊतये प्रथमं दधिक्रां हुवे) आप सबकी सुरक्षाके लिये मैं सबसे प्रथम दधिक्रा नामक घोडेकी प्रशंसा करता हूं । इसके पश्चात् (अश्विनं) अश्विदेव (उषसं) उषा (समिद्धं अग्निं) प्रदीप्त अग्नि और (भगं) भगकी प्रार्थना करता हूं । तथा (इन्द्रं) इन्द्र, (विष्णुं पूषणं) विष्णु, पूषा, (ब्रह्मणः पतिं) ब्रह्मणस्पति, (आदित्यान्) आदित्य, (द्यावापृथिवी) द्यावा पृथिवी, (अपः) जल तथा (स्वः) सूर्यकी प्रार्थना करता हूं ॥ १ ॥

[४०५] (दधिक्रां उ नमसा बोधयन्तः) दधिक्रा देवको नमस्कारों द्वारा संबोधित करके (उदीराणाः यज्ञं उपप्रयन्तः) तथा प्रेरित करके यज्ञके समीप जाते हैं । (बर्हिषि इळां देवीं सादयन्तः) यज्ञमें इळा देवीको स्थापन करके (सुहवा विप्रा अश्विना हुवेम) उत्तम प्रार्थना करने योग्य विशेष ज्ञानी दोनों अश्विदेवोंको बुलाते हैं ॥ २ ॥

[४०६] (दधिक्रावाणं बुबुधानः) दधिक्रावाको संबोधित करता हुआ मैं (अग्निं उपब्रुवे) अग्निकी स्तुति करता हूं । तथा (उषसं सूर्यं गां) उषा सूर्य और भूमि अथवा गौकी स्तुति करता हूं । (मंश्चतोः वरुणस्य ब्रध्नं बभ्रुं) घमंडी शत्रुओंके विनाश करनेवाले वरुणके बडे तथा भूरे वर्णके घोडेका स्तवन करता हूं । (ते अस्मत् विश्वा दुरिता यावयन्तु) वे सब हमसे सब पापोंको दूर करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हम तुझसे कभी पृथक् न हों तथा तेरे द्वारा दिए गए धनसे हम सदा समृद्ध रहें । हम संगठित होकर आनंदित होकर रहें और कभी विनष्ट न हों ॥ ५ ॥

मैं रक्षाके लिए अश्व, अश्विनीकुमार, उषा, अग्नि, भग, इन्द्र, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, आदित्य, द्यु, पृथिवी, जल और सूर्यकी स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

दधिक्राको नमन करके मैं इळा और अश्विदेवोंको बुलाता हूं ॥ २ ॥

मैं अग्नि, उषा, सूर्य, भूमि अथवा गौकी स्तुति करता हूं । मैं घमंडी शत्रुओंका विनाश करनेके लिए वरुणका स्तवन करता हूं । वे देव हमसे पापोंको दूर करें ॥ ३ ॥

४०७ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वा ऽग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणा ऽऽदित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ॥ ४ ॥

४०८ आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृ तस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ॥ ५ ॥

[४५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- सविता । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४०९ आ देवो यातु सविता सुरत्नो ऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥ १ ॥

४१० उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥ २ ॥

अर्थ— [४०७] (प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा) सबमें मुख्य वेगवान् शीघ्रगामी दधिक्रावा अश्व (प्रजानन् रथानां अग्रे भवति) जानता हुआ रथके अग्रभागमें स्वयं ही होता है । और यह उषा सूर्य आदित्य वसु और अंगिराओंके साथ (सं विदानः) सहमत रहता है ॥ ४ ॥

[४०८] (दधिक्राः ऋतस्य पन्थां अनुएतवै) दधिक्रा अश्व यज्ञके मार्गसे जानेके लिये (नः पथ्यां आ अनक्तु) हमारे मार्गको जलसे सिंचित करे । (दैव्यं शर्धः अग्निः) दिव्य बल रूप वह अग्नि (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थनाका श्रवण करे तथा (विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु) सब बलवान् ज्ञानी विबुध हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ५ ॥

[४५]

[४०९] (सुरत्नः अन्तरिक्षप्राः) उत्तम रत्नोंको धारण करनेवाला, अन्तरिक्षको अपने प्रकाशसे भर देनेवाला, (अश्वैः वहमानः) घोडों द्वारा जिसका रथ चलता है ऐसा (सविता देवः आ यातु) सविता देव आ जावे । (हस्ते पुरूणि नर्या दधानः) जिसके हाथमें मानवोंका हित करनेवाला धन बहुत है और जो (भूम निवेशयन् प्रसुवन् च) प्राणियोंका निवास करता और कर्ममें प्रेरित करता है ॥ १ ॥

[४१०] (शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया अस्य बाहू) प्रसारित बडे सुवर्णसे परिपूर्ण इस सविताके बाहू हैं (दिवः अन्तान् उत् अनष्टां) द्युलोकके अन्ततक वह व्यापता है । (नूनं अस्य सः महिमा पनिष्ट) निःसंदेह इसका वह महिमा गाया जाता है । (सूरः चित् अस्मै अपस्यां अनु दात्) वह सूर्य ही इस मनुष्यके लिये शुभ कर्मकी प्रेरणा अनुकूलतासे देवे ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम शिक्षित घोडा वेगवान् तथा चपल और शीघ्रतासे दौडनेवाला होता है । कहां किस तरह खडा होना चाहिए और रथके अग्रभागमें जाकर किस तरह खडा होना चाहिए, यह स्वयं जानता है ॥ ४ ॥

सब लोग यज्ञ करें, सीधे मार्गसे जावें । दिव्य बल प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करें, सामर्थ्य प्राप्त करें । देवोंके गुण गाकर स्वयं देव जैसे बनें ॥ ५ ॥

नेता, राजा व राजपुरुष लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करें । इनके हाथोंमें मानवोंका हित करनेवाला धन बहुत हो । वह प्राणियोंका उत्तम रीतिसे निवास करावे ॥ १ ॥

वीरोंके हाथ ऐसे हों कि जो दान देनेके लिए सोनेसे भरे हुए हों और वे हाथ दान देनेके लिए फैलाये हुए हों । इस सविता देवके बाहू भी सुवर्णसे परिपूर्ण हैं । इस देवकी सुनहरी किरणें प्राणियोंको अपना प्रकाश प्रदान करनेके लिए फैली रहती हैं । इसलिए इसकी महिमा गायी जाती है । ऐसा दानी सविता मनुष्योंको भी उत्तम दान देनेकी सत्प्रेरणा दे ॥ २ ॥

४११ स घा नो देवः सविता सहावा ऽऽ साविषद् वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

४१२ इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- रुद्रः । छन्दः- जगती, ४ त्रिष्टुप् ।)

४१३ इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥

अर्थ— [४११] (सहावा वसुपतिः सः सविता देवः) शक्तिमान् और धनवान् सविता देव (वसूनि नः आ साविषत्) हमें धन देवे । वह सविता देव (उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः) विस्तृत तेजको धारण करके (अध नः मर्तभोजनं रासते) हमें मानवोंके लिये योग्य भोग्य धन दें ॥ ३ ॥

[४१२] (इमा गिरः) ये वचन, ये स्तोत्र (सुजिह्वं पूर्णगभस्तिं) उत्तम जिह्वावाले संपूर्ण धन हाथमें लिये हुए (सुपाणिं सवितारं) उत्तम हाथवाले सविता देवके गुणोंका वर्णन करते हैं । वह (चित्रं बृहत् वयः) श्रेष्ठ तथा विशाल धन (अस्मे दधातु) हमें देवे । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ४ ॥

[४६]

[४१३] (इमाः गिरः) ये स्तोत्र (स्थिर धन्वने क्षिप्रेषवे) सुदृढ धनुष्यवाले, शीघ्रगामी बाण शत्रुपर छोडनेवाले (स्वधा-व्ने वेधसे) अपनी धारण शक्तिसे युक्त विधाता (अ-षाळ्हाय) जिसका आक्रमण असह्य है तथा (सहमानाय) शत्रुके आक्रमणको सहनेवाले (तिग्मायुधाय रुद्राय देवाय) तीक्ष्ण शस्त्र धारण करनेवाले रुद्र देवके लिये (भरत) भरो, करो, गाओ । वह (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना श्रवण करें ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य दान करनेसे पूर्व स्वयं धनवान् बने । वह सामर्थ्यवान् हो । धनका स्वामी शत्रुका पराभव करनेमें असमर्थ हो । वह स्वयं धनवान् होकर प्रगतिके कार्योंको आश्रय दे । जो प्रगतिके कार्योंमें धनादि देकर भरसक अपनी सहायता देता है, ऐसा धनवान् हो ॥ ३ ॥

सवितादेव उत्तम जिह्वा अर्थात् किरणोंवाला है, वह श्रेष्ठ तथा विशाल धन हमें प्रदान करे, अन्य देव भी हमारा कल्याण करें ॥ ४ ॥

शत्रुओंको रुलानेवाले महावीरका धनुष बलवान् हो, स्थिर हो । वह शत्रुओंपर बाण छोडनेमें निपुण हो । उसके पास हर तरहके शस्त्रास्त्र हों । वह स्वधा अर्थात् अपने ही सामर्थ्यसे सामर्थ्यशाली हो । वह निर्माण कार्योंमें कुशल हो । राष्ट्रके वीर ऐसे हों ॥ १ ॥

×

४१४ स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥
४१५ या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥ ३ ॥
४१६ मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- आपः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४१७ आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥ १ ॥

अर्थ— [४१४] (सः हि क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण चेतति) वह रुद्र पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास हेतुरूपी धनसे जाना जाता है । और (दिव्यस्य साम्राज्येन) दिव्य जीवनवाले मनुष्यके साम्राज्य ऐश्वर्यसे जाना जाता है । हे रुद्र ! (नः अवंतीः अवन्) तुम हमारी अपनी सुरक्षा करनेवाली प्रजाका संरक्षण करके (नः दुरः उप चर) हमारे घरोंके पास आओ और (नः जासु अनमीवः भव) हमारे प्रजाजनोंमें नीरोगिता करनेवाला हो ॥ २ ॥

[४१५] (ते या दिद्युत् दिवस्परि अवसृष्टा) तुम्हारी जो विद्युत् आकाशसे छोडी हुई (क्ष्मया चरति) पृथिवीके साथ विचरण करती है (सा नः परि वृणक्तु) वह हमें छोड देवे, हम पर न गिरे । हे (स्वपिवात) उत्तम वायुके समान बलवान् वीर ! (ते सहस्रं भेषजा) तुम्हारे पास सहस्रों औषधियां हैं । (नः तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः) हमारे बालबच्चोंमें क्षीणता न करो ॥ ३ ॥

[४१६] हे (रुद्र) रुद्र ! (नः मा वधीः) हमारा वध न कर । (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर । (ते हीळितस्य प्रसितौ मा भूम) तुम्हारे क्रोधित होनेपर जो तुम बंधन करते हो वह हम पर न आवे । (जीवशंसे बर्हिषि) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यज्ञमें (नः आ भज) हमें रख । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणों द्वारा सुरक्षित रखो ॥ ४ ॥

[४७]

[४१७] (देवयन्तः आपः) हे देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले जलो ! (वः इन्द्रपानं) आपने इन्द्रके लिये पीने योग्य रसमें (इळः ऊर्मिं यं प्रथमं अकृण्वत) भूमिसे उत्पन्न प्रवाह रूप उदक मिलकर जो पहिले सोमपान तैयार किया था, (वः) आपके (तं शुचिं अरिप्रं) उस शुद्ध पापरहित (घृत-प्रुषं मधुमन्तं) वृष्टिजलसे मिश्रित मधुर रससे युक्त सोमरसको (वयं अद्य वनेम) हम सब आज प्राप्त करें, उसका हम आज सेवन करें ॥ १ ॥

भावार्थ— पृथ्वीपर मनुष्योंका निवास सुखपूर्वक हो ऐसी व्यवस्था राजा करे । दिव्य जीवनका साम्राज्य सर्वत्र हो । राष्ट्रके सभी जन दिव्य जीवनको व्यतीत करें । प्रजाकी सुरक्षा हो । प्रजायें नीरोग हों । सर्वत्र आरोग्यकी उत्तम व्यवस्था हो ॥ २ ॥

आकाशस्थ मेघोंसे उत्पन्न होकर जो विद्युत् पृथिवीपर गिरती है, वह किसी प्राणी पर न गिरे । इस पृथ्वीपर जो हजारों औषधियां हैं, उनसे प्राणिमात्र आरोग्य पूर्ण रहे । राष्ट्रकी सन्तानें पुष्ट हों ॥ ३ ॥

हे दुष्टोंको रुलानेवाले प्रभो ! तू हमारा वध न कर, हमारा त्याग मत कर । तेरे क्रोधित होने पर जो बंधन आते हैं, उनसे हमें कष्ट न हों । हम सदा तेरे कल्याणकारक साधनोंसे सुरक्षित रहें ॥ ४ ॥

जल इन्द्रको प्रीति करानेवाले हैं । वह सोमरसमें मिलकर उसे पीने योग्य बनाता है । सोमरसमें शुद्ध जल और मधु मिलाकर रस पीने योग्य बनाया जाता है । यदि उसमें जल न मिलाया जाए, तो वह पीने योग्य नहीं होता ॥ १ ॥

४१८ तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वो ऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥ २ ॥
४१९ शतपवित्राः स्वधया मदन्ती- र्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ ३ ॥
४२० याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो. यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- ऋभवः, ४ विश्वे देवा वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४२१ ऋभुक्षणो वाजा मादयध्व- मस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

अर्थ— [४१८] हे (आपः) जलो ! (वः मधुमत्तमं तं ऊर्मिं) आपका वह अत्यंत मीठा प्रवाह सोमरससे मिला है उसको (आशु-हेमा अपां-न-पात्) शीघ्र गतिवाला जलोंको न गिरानेवाला अग्निदेव सुरक्षित करे । (यस्मिन् इन्द्रः वसुभिः मादयाते) जिस पानसे इन्द्र वसुओंके साथ आनंदित होते हैं (तं वः अद्य) उस आपके द्वारा सिद्ध हुए सोमपानको आज (देवयन्तः अश्याम) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम प्राप्त करें, उसका पान करें ॥ २ ॥

[४१९] (शतपवित्राः स्वधया मदन्तीः) सैकडों प्रकारोंसे पवित्रता करनेवाले और अन्नके साथ आनंद देनेवाले (देवीः देवानां पाथः अपि यन्ति) दिव्य जल देवोंके यज्ञस्थानको प्राप्त होते हैं । (ताः इन्द्रस्य व्रतानि न मिनन्ति) वे जल प्रवाह इन्द्रके कार्योंका नाश नहीं करते हैं । प्रत्युत सहायक होते हैं । इसलिये आप (सिन्धुभ्यः घृतवत् हव्यं जुहोत) नदियोंके लिये घृत मिश्रित हव्यका हवन करो ॥ ३ ॥

[४२०] (सूर्यः याः रश्मिभिः आततान) सूर्य जिनको अपनी किरणोंसे फैलाता है । (याभ्यः इन्द्रः ऊर्मिं गातुं अरदत्) जिन जलोंके लिये इन्द्रने प्रवाहित होनेका मार्ग खोदकर कर दिया है । हे (सिन्धवः) नदियोंके जल प्रवाहो ! (ते वरिवः नः धातन) वे जलप्रवाह श्रेष्ठ अन्न, धन आदि हमें दें (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित रखिये ॥ ४ ॥

[४८]

[४२१] हे (ऋभुक्षणः वाजाः मघवानः नरः) कर्ममें कुशल पुरुषोंके निवासक, अन्नवान्, धनवान् नेताओ ! (अस्मे सुतस्य मादयध्वं) हमने बनाये इस सोमरससे आनन्दित हो जाओ । (यातां वः क्रतवः विभ्वः) जानेके लिये उत्सुक हुए तुम्हारे कर्मकर्ता समर्थ अश्व (अर्वाचः नर्यं रथं आवर्तयन्तु) हमारे समीप तुम्हारे मनुष्योंका हित करनेवाले रथको ले आवें । तुमको हमारे पास ले आवें ॥ १ ॥

भावार्थ— हे जलो ! तुम मधुर सोमरसमें जाकर मिलो । उस सोमरसको अग्नि सुरक्षित रखे । इस सोमरसके पानसे इन्द्र वसुओंके साथ आनंदित हो । हम भी उस रसका पान करके देवत्व प्राप्त करें ॥ २ ॥

ये दिव्य जल अनेक तरह पवित्रता करनेवाले और अन्नके साथ आनंद देनेवाले हैं । ये जलप्रवाह इन्द्रके कार्योंका नाश नहीं करते ॥ ३ ॥

सूर्यकी किरणें इन जलप्रवाहोंमें शक्ति स्थापित करती हैं, इन्द्र या मेघस्थानीय विद्युत् मेघोंके द्वारोंको खोलकर इन जलप्रवाहोंको मुक्त करता है । तब ये जलप्रवाह प्राणियोंको अन्न धान्यादिसे पुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

नेता लोग अपने राष्ट्रमें कारीगरोंका निवास करनेवाले, बलवान्, धनवान्, उत्तम रीतिसे कर्म करनेवाले और उनकी हर गति मनुष्योंका हित करनेवाली हो ॥ १ ॥

४२२ ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाता- विन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥ २ ॥
४२३ ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन् वि नृम्णम् ॥ ३ ॥
४२४ नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः
समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

[४९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- आपः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४२५ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥ १ ॥

अर्थ— [४२२] (वः ऋभुभिः ऋभुः अभि स्याम) आपके कुशल कारीगरोंके साथ रहकर हम कर्ममें कुशल हों । तथा (विभुभिः विभ्वः) तुम वैभव युक्तोंके साथ रहनेसे हम वैभव युक्त होंगे । (शवसा शवांसि) बलसे बल प्राप्त करेंगे । (वाजसातौ अस्मान् वाजः अवतु) युद्धके समय हमें अपना सामर्थ्य संरक्षण करे । (इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम) इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका नाश करेंगे ॥ २ ॥

[४२३] (ते हि पूर्वीः शासा अभि सन्ति) वे शूर शत्रुकी बहुतसी सेनाको उत्तम शस्त्रसे पराभूत करते हैं । (उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्) युद्धमें सब शत्रुओंको मारते हैं । (विभ्वा ऋभुक्षाः वाजः अर्यः) वैभव युक्त, कारीगरोंके निवासक बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाले वीर (इन्द्रः) इन्द्र और ऋभु ये सब (शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन्) शत्रुके बलको विनष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

[४२४] हे (देवासः) देवो ! (नू नः वरिवः कर्तन) हमारे लिये धनको प्रदान करो । (विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत) सब एक विचारसे रहनेवाले तुम वीर हमारी सुरक्षा करनेके लिये रहो । (वसवः अस्मे इषं सं ददीरन्) वसुदेव हमें अन्नका प्रदान करें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा सुरक्षाके कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ४ ॥

[४९]

[४२५] (समुद्रज्येष्ठाः) जिनमें समुद्र श्रेष्ठ है ऐसे जल (सलिलस्य मध्यात् यन्ति) जलके मध्य स्थानसे चलते हैं जो (पुनानाः अनिविशमानाः) पवित्र करते हैं और कहीं भी ठहरते नहीं हैं । (वज्री वृषभः इन्द्रः या रराद) वज्रधारी बलवान् इन्द्रने जिनके लिये मार्ग बना दिया था (ता देवीः आप इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मेरी सुरक्षा करें ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य कुशल पुरुषोंके साथ रहकर स्वयं भी कुशल बने । वैभवशाली पुरुषोंके साथ रहकर वैभवशाली बने । समर्थोंके साथ रहकर अनेक प्रकारके सामर्थ्योंसे युक्त हो और अन्य वीरोंके साथ मिलकर शत्रुओंका नाश करे ॥ २ ॥

शत्रुसेना बहुतसी होनेपर भी वह उत्तम शस्त्रोंसे परास्त हो सकती है । यदि वीरोंके पास उत्तम शस्त्र हों, तो युद्धमें शत्रुओंका पराभव हो सकता है ॥ ३ ॥

मनुष्योंको धन मिले, सब उत्तम प्रकारसे सुरक्षित रहें, उन्हें उत्तम अन्न मिले । सभीको अन्न, धन और उत्तम संरक्षण मिले, जिससे उनकी उन्नति हो ॥ ४ ॥

पवित्र करनेवाली, सदा बहती रहनेवाली तथा समुद्रकी ओर जानेवाली जो नदियां हैं, जिन्हें इन्द्रने प्रवाहित किया है वे नदियां हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

४२६ या आपो॑ दि॒व्या उ॒त वा॒ स्रव॑न्ति ख॒नित्रि॑मा उ॒त वा॒ याः स्व॑यं॒जाः ।
स॒मु॒द्रार्था॒ याः शुच॑यः पाव॒का॒स्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥ २ ॥
४२७ यासां॒ राजा॒ वरु॑णो॒ याति॒ मध्ये॑ सत्यानृ॒ते अ॑व॒पश्य॒ञ्जना॑नाम् ।
म॒धु॒श्चुतः॒ शुच॑यो॒ याः पा॑व॒का॒स्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥ ३ ॥
४२८ यासु॒ राजा॒ वरु॑णो॒ यासु॒ सोमो॒ विश्वे॑ दे॒वा यासूर्जं॒ मद॑न्ति ।
वै॒श्वा॒न॒रो यास्व॒ग्निः प्रवि॑ष्ट॒स्ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥ ४ ॥

[५०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ मित्रावरुणौ, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४ नद्यः । छन्दः- जगती, ४ अतिजगती शक्वरी वा ।)

४२९ आ मां॑ मित्रावरुणे॒ह र॑क्षतं कु॒ला॒य॒यद् वि॒श्वय॒न्मा न॒ आ ग॑न् ।
अ॒ज॒का॒वं दु॒र्दृशी॑कं ति॒रो द॑धे॒ मा मां॒ पद्ये॑न॒ रप॑सा विद॒त् त्सरुः॑ ॥ १ ॥

अर्थ— [४२६] (याः आपः दिव्याः) जो जल आकाशसे प्राप्त होते हैं, और (उत वा स्रवन्ति) जो नदियोंमें बहते हैं, जो (खनित्रिमाः) खोद कर कुवेसे प्राप्त होते हैं, (उत वा याः स्वयंजाः) और जो स्वयं उत्पन्न होते हैं। (याः शुचयः पावकाः) जो शुद्धता और पवित्रता करनेवाले हैं, ये सब (समुद्रार्थाः) समुद्रकी ओर जानेवाले हैं (ताः देवीः आपः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल मेरी यहां सुरक्षा करें २ ॥

[४२७] (यासां वरुणः राजा मध्ये याति) जिनका राजा वरुण मध्य लोकमें जाता है और (जनानां सत्य-अनृते अवपश्यन्) लोगोंके सत्य और अनृतका निरीक्षण करता है । (याः आपः मधुश्चुतः) जो जल प्रवाह मधुररस देते हैं (याः शुचयः पावकाः) जो पवित्र और शुद्ध हैं (ताः आपः देवीः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल यहां हमारी सुरक्षा करें ॥ ३ ॥

[४२८] (राजा वरुणः यासु) वरुण राजा जिन जलोंमें रहता है, (सोमः यासु) सोम जिनमें रहता है, (विश्वे देवाः यासु ऊर्जं मदन्ति) सब देव जिनमें अन्न प्राप्त करके आनंदित होते हैं। (वैश्वानरः अग्निः यासु प्रविष्टः) विश्व संचालक अग्नि जिनमें प्रविष्ट हुआ है। (ताः देवीः आपः इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मुझे सुरक्षित रखें ॥ ४ ॥

[५०]

[४२९] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (इह मां आरक्षतां) यहां मेरी सुरक्षा करो ! (कुलायत् विश्वयत् नः मा आगन्) स्थानमें रहनेवाला अथवा फैलानेवाला विष हमारे पास न आवे । (अजकावं दुर्दशीकं तिरः दधे) रोग और दृष्टि हीनता हमसे दूर हो । (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सर्प पांवके शब्दसे मुझे न जाने । सांप मुझसे दूर रहे ॥ १ ॥

भावार्थ— जलके चार प्रकार हैं- (१) वृष्टिके द्वारा जो द्यु या आकाशसे प्राप्त होते हैं, वे दिव्य जल कहलाते हैं, (२) जो झरनोंसे स्रवते हैं, उन्हें प्रस्रवण कहते हैं, (३) जो खोदकर कुंवे और बावडियोंसे निकाले जाते हैं (४) और जो स्वयं स्रोतके द्वारा फूटकर बाहर आते हैं । ये सभी जल निर्दोष तथा पवित्रता करनेवाले हैं ॥ २ ॥

राजा वरुण अर्थात् तेजस्वी और वरणीय प्रभुकी सर्वत्र सत्ता है, इसलिए वह प्राणिमात्रके सत्य और अनृतका निरीक्षण करता है । इस प्रभुके द्वारा प्रेरित जो मधुरतासे भरे हुए जल प्रवाह हैं, वे दिव्य जल हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

इन जलोंमें वरुण राजा रहता है, इन्हीं जलोंमें सोम रहता है । इन जलोंके द्वारा अन्न प्राप्त करके सब देव आनन्दित होते हैं । वे दिव्य जल मेरी सुरक्षा करें ॥ ४ ॥

हे मित्रके समान हितकारी तथा वरणीय प्रभो ! मेरी रक्षा कर, किसी तरहका विष हमें कष्ट न दे । हर तरहके रोग तथा दृष्टिकी हीनता हमसे दूर हो । सर्प आदि जन्तु भी मुझसे दूर रहें ॥ १ ॥

४३० यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवं—दष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ॥ २ ॥
४३१ यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ॥ ३ ॥
४३२ याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु सर्वा नद्यो
अशिमिदा भवन्तु ॥ ४ ॥

[५१]

(ऋषिः– मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता– आदित्याः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।)

४३३ आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥ १ ॥

अर्थ— [४३०] (वंदनं यत् विजामन्) वंदन नामक विष जो जन्मभर रहता है, (परुषि भुवत्) जो पर्वस्थानमें रहता है, जो (अष्ठीवन्तौ कुल्फौ परि च देहत्) जांघों और गुल्मग्रंथियोंमें फुलाता है। (अग्निः शोचन् इतः तत् अपबाधतां) अग्नि प्रकाशित होकर यहांसे उसे दूर करे। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) पांवके शब्दसे सांप मुझे न पहचाने ॥ २ ॥

[४३१] (यत् शल्मलौ भवति) जो शाल्मली वृक्ष पर होता है। (यत् नदीषु) नदियोंके जलोंमें होता है, (यत् विषं ओषधिभ्यः परिजायते) जो विष औषधियोंसे उत्पन्न होता है। (विश्वे देवाः तत् इतः निः सुवन्तु) सब देव उस विषको यहांसे दूर करें। (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने ॥ ३ ॥

[४३२] (याः प्रवतः) जो नदियां प्रवण देशमें चलती है (याः निवतः उद्वतः) जो निम्न प्रदेशमें और जो उच्च प्रदेशमें चलती हैं, (याः उदन्वतीः अनुदकाः) जो उदकसे भरी रहती है और जिनमें थोडा जल रहता है, (ता पयसा पिन्वमानाः) वे नदियां जलसे तृप्त करती हुई (अस्मभ्यं शिवाः) हमारे लिये कल्याण करनेवाली होकर वे (देवीः अशिपदाः) दिव्य नदियां शिपद रोगको दूर करनेवाली हो। (सर्वाः नद्यः अशिमिदाः भवन्तु) सब नदियां कल्याण करनेवाली हों ॥ ४ ॥

[५१]

[४३३] (आदित्यानां नूतनेन अवसा) आदित्योंके नवीन संरक्षणसे (शंतमेन शर्मणा सक्षीमहि) अत्यन्त सुखदायी कल्याणसे हम युक्त हों। (तुरासः श्रोषमाणाः) त्वरासे कर्म करनेवाले और प्रार्थना सुननेवाले आदित्य (इमं यज्ञं) इस यज्ञको तथा इस याजकको (अनागास्त्वे अदितित्वे दधतु) निष्पाप और अदीन करें ॥ १ ॥

भावार्थ— शरीरमें जो विष हो, तथा जो रोग संधि तथा पर्वस्थानोंमें रहता है, वे सब अग्निके द्वारा दूर किए जाएं। वात रोग हो जानेके कारण घुटने, कोहिनी, टखने आदि अवयव अकडसे जाते हैं और उनमें सूजन आ जाती है, तब लोहेकी शलाका गरम करके उन उन स्थानों पर दाग देनेसे वह रोग समाप्त हो जाता है, ऐसा उपाय वेदोंमें बताया है ॥ २ ॥

वृक्षों, वनस्पतियों और नदीजलोंमें होनेवाला विष नाना प्रकारके दिव्य पदार्थों अर्थात् जल, अग्नि, वायु, औषधि, सूर्यप्रकाश आदिसे दूर किया जाय ॥ ३ ॥

हमारे देशमें जो नदियां ऊंचे, नीचे और सम प्रदेशमें जलसे भरकर संचार करती हैं, वे दिव्य नदियां हमारे रोगोंको दूर करनेवाली हों ॥ ४ ॥

आदित्योंके नवीन संरक्षणसे तथा उनके द्वारा प्रदत्त सुखदायी कल्याणसे हम युक्त हों। वे आदित्य देव हमारे इस यज्ञ तथा यज्ञ करनेवालेको निष्पाप तथा दीनता रहित करें ॥ १ ॥

४३४ आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥ २ ॥
४३५ आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्वे ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[५२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- आदित्याः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४३६ आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥ १ ॥
४३७ मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥

अर्थ— [४३४] (आदित्यासः, अदितिः, मित्रः, अर्यमा, वरुणः) आदित्य अदिति, मित्र, अर्यमा, वरुण ये (रजिष्ठाः) वेगवान् देव (मादयन्तां) हर्षित हों। आनन्दित हों। (भुवनस्य गोपाः अस्माकं सन्तु) ये विश्वके संरक्षक देव हमारा हित करनेवाले हों। (अद्य नः अवसे सोमं पिबन्तु) आज हमारे संरक्षण करनेके लिये ये सोमरस पीवें ॥ २ ॥

[४३५] (विश्वे आदित्याः) सब ही बारह आदित्य (विश्वे मरुतः) सब ४९ मरुत देव (विश्वे देवाः च) सब देव (विश्वे ऋभवः) सब ऋभुदेव और (इन्द्रः अग्निः अश्विना) इन्द्र, अग्नि तथा अश्वि देव (तुष्टुवानाः) इन सबकी स्तुति की है। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमारी सुरक्षा कल्याणके साधनोंसे करो ॥ ३ ॥

[५२]

[४३६] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! हम (अदितयः स्याम) अदीन हों। हे (वसवः) वसुदेवो ! (देवत्रा पूः) देवोंमें जो संरक्षक शक्ति है वह (मर्त्यत्रा) हम मानवोंकी सुरक्षाके लिये प्राप्त हो। हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (सनन्तः सनेम) तुम्हारी सेवा करने पर हम धनको प्राप्त करेंगे। हे द्यावा-पृथिवी ! हम (भवन्तः भवेम) भाग्यवान् हों ॥ १ ॥

[४३७] (मित्रः वरुणः तत् शर्म नः मामहन्त) मित्र और वरुण उस हमारे उत्तम सुखको बढावें। (गोपाः तोकाय तनयाय) विश्वरक्षक देव हमारे बाल-बच्चोंके लिये उत्तम सुख दें। (वः अन्यजातं एनः मा भुजेम) आपके आत्मीय बने हम अन्यके किये पापका फल न भोगें। अन्यके पापका फल हमें भोगना न पडे। हे (वसवः) वसुदेवो ! (यत् चयध्वे) जिस कारण आप नाश करते हैं (तत् कर्म मा) उस कर्मको हम न करें ॥२॥

भावार्थ— आदित्य अदिति आदि देव हमारे पास आकर आनन्द युक्त हों। ये विश्वके संरक्षक देव हमारा हित करनेवाले हों ॥ २ ॥

मैंने आदित्य, मरुत, ऋभु तथा इन्द्र आदि सभी देवोंकी स्तुति की है, वे देव हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

हम दरिद्री अथवा दीन न हों। हमारा संरक्षण हो और धनवान् तथा भाग्यवान् हों ॥ १ ॥

हमारा सुख बढे, बालबच्चे आनंद प्रसन्न हों, दूसरेके द्वारा किया हुआ पाप हम पर न आ पडे। हमसे ऐसे कर्म कभी न हों कि जिससे हमारा विनाश हो। साथ ही हम ऐसे पाप कर्मके भागी न बनें कि जो दूसरोंके द्वारा किया गया हो ॥ २ ॥

४३८ तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ॥ ३ ॥

[५३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४३९ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥

४४० प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभि-र्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥ २ ॥

४४१ उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४३८] (तुरण्यवः अंगिरसः) त्वरासे कार्य करनेवाले अंगिरस (इयानाः) प्रार्थना करके (सवितुः देवस्य रत्नं नक्षन्त) सविता देवसे जिस रमणीय धनको प्राप्त करते रहे, (यजत्रः नः महान् पिता) यजन करनेवाला हमारा महान् पिता तथा (विश्वे देवाः) सब देव (समनसः जुषन्त) एक मतसे (तत्) उस धनको हमारे लिये दे दें ॥ ३ ॥

[५३]

[४३९] (यजत्रे बृहती द्यावा पृथिवी) पूजनीय बडे विशाल द्यावा पृथिवीकी (यज्ञैः नमोभिः) यज्ञों और अन्नोंके द्वारा (सबाधः ईळे) कष्टको दूर करनेके लिये प्रार्थना करता हूं । (ते चित् हि देवपुत्रे मही) वे द्यावा-पृथिवी जिनके पुत्र देव हैं तथा जो विशाल हैं उनको (पूर्वे गृणन्तः कवयः पुरः दधिरे) प्राचीन ज्ञानी स्तोता आगे रखते थे और स्तुति गाते थे ॥ १ ॥

[४४०] (नव्यसीभि गीर्भिः) नवीन स्तोत्रोंसे (ऋतस्य सदने) यज्ञके स्थानमें (पूर्वजे पितरा द्यावा पृथिवी) पूर्व जन्ममें पितर द्यावापृथिवीको (प्र कृणुध्वं) सुपूजित करो । हे (द्यावा पृथिवी) द्यावापृथिवी ! तुम (दैव्येन जनेन नः आ यातं) दिव्य जनोंके साथ हमारे पास आओ । (वां वरूथं महि) आपका धन बहुत है ॥२॥

[४४१] हे (द्यावापृथिवी) द्यावा पृथिवी ! (वां) आपके (सुदासे पुरूणि रत्न-धेयानि सन्ति) पास उत्तम दाताको देनेके लिये अनेक प्रकारके धन हैं । (यत् अ-स्कृधोयु असत्) जो बहुतसा धन होगा वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा पालन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ — शीघ्रतासे कार्य करनेवाले अंगिरस सविता देवके रमणीय धनको प्राप्त करते हैं । हमारा पालन करनेवाले सब देव हम पर कृपा करें ॥ ३ ॥

पूज्य और विशाल द्यु और पृथिवी हमारे कष्टोंको दूर कर करें । सभी देव इस विशाल द्यु और पृथ्वीके पुत्र हैं ॥ १ ॥

पूज्य द्यु और पृथिवी इस विश्वके पिता और माता है । अतः इनकी पूजा करनी चाहिए ॥ २ ॥

हे द्युलोक और पृथ्वी ! तुम्हारे पास अनेक तरहके धन हैं, उन धनोंको तुम हमें प्रदान करो ॥ ३ ॥

[५४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वास्तोष्पतिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४४२ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

४४३ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥ २ ॥

४४४ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[५५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वास्तोष्पतिः, २-८ इन्द्रः (२-८ प्रस्वापिनी उपनिषद्) ।
छन्दः- १ गायत्री, २-४ उपरिष्टाद्बृहती, ५-८ अनुष्टुप् ।)

४४५ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥ १ ॥

---

[५४]

अर्थ— [४४२] हे (वास्तोष्पते) वास्तोष्पते ! (अस्मान् प्रति जानीहि) तुम हमें अपने समझो । (नः स्वावेशः अनमीवः भव) हमारे घरको नीरोग करनेवाला हो । (यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व) जो धन हम तुम्हारे पास मांगेंगे वह हमें दे दो । (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे द्विपाद् और चतुष्पादके लिये कल्याणकारी हो ॥ १ ॥

[४४३] हे (वास्तोष्पते) गृहके स्वामिन् ! (नः प्रतरणः एधि) तुम हमारे तारक हो और (गय-स्फानः) धनके विस्तारकर्ता हो । हे (इन्दो) सोम ! (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और घोडोंसे युक्त होकर (अजरासः स्याम) हम जरारहित हों । (ते सख्ये स्याम) तेरी मित्रतामें हम रहें । (पिता पुत्रान् इव) पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है उस तरह (नः जुषस्व) हमारा पालन कर ॥ २ ॥

[४४४] हे (वास्तोष्पते) वास्तुके स्वामिन् ! (शग्मया रण्वया) सुखदायक और रमणीय (गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि) प्रगति शील ऐसी तुम्हारी सभाको हम प्राप्त हों । ऐसा स्थान हमें मिले । हम ऐसे सभास्थानके सदस्य बनें । (क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि) प्राप्त धनको तथा अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें हमारे श्रेष्ठ धनको सुरक्षित रखो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ३ ॥

[५५]

[४४५] हे (वास्तोष्पते) वास्तोष्पते ! तुम (अमीवहा) रोगोंका नाश करो । (विश्वा रूपाणि आविशन्) अनेक रूपोंमें प्रविष्ट होकर (नः सुशेवः सखा एधि) हमारा सुखकर मित्र हो ॥ १ ॥

भावार्थ— वास्तु कहते हैं घरको, उसका पति अर्थात् गृहस्वामी उस गृहमें रहनेवालोंको अपना समझे । राष्ट्रपति राष्ट्रमें रहनेवालोंको अपना समझे । उस घर या राष्ट्रमें रहनेवाले सभी निरोगी हों ॥ १ ॥

घर घरवालोंका संरक्षण करनेवाला हो, धनका विस्तार हो, घरमें साथ गायें और घोडे रहें । घरमें रहनेवाले क्षीण या निर्बल न हों, सभी नीरोग और हृष्टपुष्ट हों । घरवाले प्रभुके मित्र हों, ईश्वरभक्त हों ॥ २ ॥

घर सुखदायक, रमणीय, प्रगतिसाधक और जहां अनेक लोग मिलकर बैठ सकें, ऐसा हो । घर छोटा न हो, अपितु जहां सभी मिलकर बैठ सकें ऐसा बडा घर हो । हम अप्राप्तको प्राप्त करके उसका संरक्षण करनेमें कुशल हों ॥ ३ ॥

घरका स्वामी घरके अन्दरके तथा बाहरके रोगबीज दूर करे और अपने घरमें आरामसे रहे । उसका स्वभाव सुखदायी मित्र जैसा हो । घरका स्वामी लोगोंसे विविध रूप धारण करके व्यवहार करे ॥ १ ॥

+

४४६ यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥
४४७ स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥
४४८ त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४ ॥
४४९ सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥
४५० य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥

अर्थ— [४४६] हे (अर्जुन सारमेय पिशंग) श्वेत सरमाके पुत्र पिंगल वर्णवाले कुत्ते! (यत् दतः यच्छसे) जब तू दांत दिखाता है, तब (ऋष्टयः इव वि भ्राजन्ते) शस्त्रोंके समान वे चमकते हैं। तथा (स्रक्वेषु उप बप्सतः) होठोंमें तेरे दांत खानेके समय भी विशेष चमकते हैं। ऐसा तू अब (सु नि स्वप) अच्छी तरह सोजा ॥ २ ॥

[४४७] हे (पुनःसर सारमेय) जिस स्थानमें एक बार जाते हैं, उसी स्थानमें पुनः पुनः जानेवाले सरमाके पुत्र! (तस्करं स्तेनं वा राय) तू चोर या डाकू पर दौड। (इन्द्रस्य स्तोतॄन् किं रायसि) इन्द्रके भक्तोंपर क्यों दौडता है? इनको छोड दे। (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें क्यों बाधा करता है? (सु नि स्वप) अब तू अच्छी तरह सोजा ॥ ३ ॥

[४४८] (त्वं सूकरस्य दर्दृहि) तू सुअरको फाड। (सूकरः तव दर्दर्तु) सुअर भी तुझ पर आक्रमण करे। हे कुत्ते! तू (इन्द्रस्य स्तोतॄन् किं रायसि) इन्द्रके स्तोताओं पर क्यों दौडता है? (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें क्यों बाधा पहुंचाता है? (सु नि स्वप) अब तू अच्छीतरह सोजा ॥ ४ ॥

[४४९] (सस्तु माता, सस्तु पिता) माता पिता सो जांय। (सस्तु श्वा, सस्तु विश्पतिः) कुत्ता सोवे और प्रजा पालक भी सो जावे। (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब बन्धुबांधव सो जांय। (अभितः अयं जनः सस्तु) चारों ओरके ये सब लोग सो जांय ॥ ५ ॥

[४५०] (यः आस्ते, यः च चरति) जो यहां ठहरता है और जो चलता है, (यः जनः नः पश्यति) जो मनुष्य हमें देखता है, (तेषां अक्षाणि सं हन्मः) उनके आंखोंको हम एक केंद्रमें लाते हैं, (यथा इदं हर्म्यं तथा) जैसा यह राजप्रासाद स्थिर है वैसे उनके आंख एक केन्द्रमें स्थिर हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— घरकी सुरक्षाके लिए अच्छी अच्छी जातिके कुत्ते पाले जाएं। इन्हें उत्तम भोजन देकर पुष्ट बनाया जाए। इन्हें प्रेमसे पाला जाए, तथा इनके सोने तथा रहनेके लिए उत्तम व्यवस्था की जाए ॥ २ ॥

ऐसे पाले हुए कुत्ते उत्तम रीतिसे सुशिक्षित किए जाएं, ऐसे सुशिक्षित हों कि वे चोर, तस्कर और सज्जनोंको पहचानें। तथा पहचानकर चोरों और तस्करों पर आक्रमण करें तथा सज्जनोंकी रक्षा करें ॥ ३ ॥

घरकी सुरक्षाके लिए पाले गए कुत्तोंको बहादुर बनानेके लिए उन्हें अच्छी तरहसे प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हें वन्य शक्तिशाली जानवरोंसे युद्ध करनेके लिए छोड देना चाहिए ॥ ४ ॥

नगरकी व्यवस्था इतनी उत्तम हो कि सब लोग रातको आरामसे सो सकें। कुत्ते भी आरामसे सोयें। अर्थात् नगरमें चोर और डाकुओंका भय जरा भी न रहे। ऐसे ही नगरमें सब लोग निश्चिन्त होकर सो सकते हैं ॥ ५ ॥

४५१ सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥
४५२ प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥

[५६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मरुतः । छन्दः-त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट् ।)

४५३ क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥
४५४ नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥
४५५ अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृधन् ॥ ३ ॥

अर्थ— [४५१] (सहस्रशृंगः यः वृषभः) सहस्रों किरणोंवाला जो बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला सूर्य है वह (समुद्रात् उत्-आचरत्) समुद्रसे ऊपर आया है । (तेन सहस्येन) उस शत्रुका पराभव करनेवाले सूर्यके बलसे (वयं जनान् नि स्वापयामसि) हम सब लोगोंको सुला देते हैं ॥ ७ ॥

[४५२] (याः प्रोष्ठे-शयाः) जो आंगनमें सोती हैं, (याः नारीः वह्ये-शयाः) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं (याः तल्प-शीवरीः) जो स्त्रियां बिस्तरोंपर सोती हैं (याः पुण्यगन्धाः स्त्रियः) जो उत्तम गन्धवाली स्त्रियां हैं, (ताः सर्वाः स्वापयामसि) उन सब स्त्रियोंको हम सुला देते हैं ॥ ८ ॥

[५६]

[४५३] (अध रुद्रस्य सनीळाः मर्याः) महावीरके एक घरमें रहनेवाले (सु अश्वाः व्यक्ताः नरः) जिनके पास उत्तम घोडे हैं वे सबको परिचित नेता वीर (ईं के) भला कौनसे हैं ? ॥ १ ॥

[४५४] (एषां जनूंषि न किः वेद) इन वीरोंके जन्मके वृत्तान्तको कोई नहीं जानता । (ते मिथः जनित्रं अंग विद्रे) वे वीर परस्परके जन्मके वृत्तान्तको सचमुच जानते हैं ॥ २ ॥

[४५५] वे वीर जब (स्व-पूभिः मिथः अभिवपन्त) अपने पवित्र साधनोंके साथ जब परस्पर मिलते हैं, तब (वातस्वनसः श्येनाः अस्पृधन्) पवनके तुल्य बडा शब्द करनेवाले बाज पक्षियोंकी तरह वेगमें स्पर्धा करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिसतरह एक राजमहल विशाल होने पर भी एक स्थान पर स्थिर रहता है, उसी तरह बडे आदमियोंका ध्यान भी अपनी सुरक्षाके कार्यमें लगा रहे । जो बैठा हो, जो चलता हो, जो देखता हो, वे सभी मनुष्य अपने व्यक्तिगत काम करते रहनेपर भी संघटित होकर रहें ॥ ६ ॥

अनन्त किरणोंसे युक्त सूर्य द्युलोकरूपी समुद्रमेंसे उदय होता है, और सारे विश्वको प्रकाशित करता हुआ सब लोगोंको उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है और सबको कर्ममें नियुक्त करता है । दिनभर प्रकाशनेके बाद जब शामको सूर्य अस्त हो जाता है, तब सारा दिन काम करके थके हुए प्राणी रातको आरामकी नींद लेते हैं ॥ ७ ॥

राष्ट्र या नगरके सुरक्षाकी इतनी सुन्दर व्यवस्था हो कि स्त्रियां आंगनमें भी निर्भीक होकर सोवें । यात्रा करनेवाली स्त्रियां भी मार्गमें या वाहनोंमें निर्भीक होकर आरामसे सोयें । स्त्रियां उत्तम गंधोंसे शरीरको सजाकर रातको उत्तम शय्याओंपर सोयें ॥ ८ ॥

सभी मरुत् वीर एक ही रुद्र अर्थात् शत्रुओंको रुलानेवाले महावीरके आश्रयमें रहते हैं । वे सभी वीर उत्तम घोडोंका पालन करते हैं ॥ १ ॥

इन मरुत् वीरोंके रहस्यको इतर जन नहीं जानते, पर ये आपसमें अत्यन्त प्रेमसे रहते हैं । इसी तरह राष्ट्रके वीरोंमें कितनी ताकत है, इस बात शत्रु राष्ट्रके लोग न जान सकें । राष्ट्रके सभी वीर आपसमें घनिष्ठ प्रेमसे रहें ॥ २ ॥

ये वीर जब अपने पवित्र साधनोंसे आपसमें मिलते हैं, तब वे वीर आपसमें आगे बढनेके लिए स्पर्धा करते हैं ॥ ३ ॥

४५६ एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥
४५७ सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥ ५ ॥
४५८ यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥ ६ ॥
४५९ उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥ ७ ॥
४६० शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥ ८ ॥
४६१ सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ॥ ९ ॥
४६२ प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत् तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ १० ॥

अर्थ— [४५६] (धीरः एतानि निण्या चिकेत) बुद्धिमान् पुरुष इन वीरोंके ये कार्यकलाप जानता है। (यत्) जिन वीरोंके लिये। (मही पृश्निः ऊधः जभार) बडी गौने दुग्धाशयमें दूधका भार उठाया था ॥ ४ ॥

[४५७] (सा विट्) वह प्रजा (मरुद्भिः सुवीरा) वीर मरुतोंके कारण अच्छे वीरोंसे युक्त होकर (सनात् सहन्ती) सदा शत्रुका पराभव करनेवाली तथा (नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु) मनुष्योंके बलोंको बढानेवाली बने ॥ ५ ॥

[४५८] वे वीर शत्रुपर (यामं येष्ठाः) आक्रमण करनेका यत्न करनेवाले, (शुभाः शोभिष्ठाः) अलंकारोंसे सुहानेवाले (श्रिया संमिश्लाः) शोभासे संयुक्त हुए तथा (ओजोभिः उग्राः) सामर्थ्यसे उग्र वीर प्रतीत होते हैं ॥६॥

[४५९] (वः ओजः उग्रं) आपका सामर्थ्य उग्र है, वीरता युक्त है, (शवांसि स्थिरा) आपके बल स्थिर अर्थात् स्थायी रहनेवाले हैं। (अध) और (मरुद्भिः गणः तुविष्मान्) मरुद्वीरोंके कारण तुम्हारा संघ बलवान् हुआ है ॥ ७ ॥

[४६०] (वः शुष्मः शुभ्रः) आपका सामर्थ्य निष्कलंक है, तुम्हारे (मनांसि क्रुध्मी) मन क्रोधसे भरे हैं, तुम शत्रुपर क्रोध करनेवाले हो, परंतु (धृष्णोः शर्धस्य) शत्रुका धर्षण करनेके तुम्हारे सांघिक सामर्थ्यका (धुनिः) वेग (मुनिः इव) मुनिकी तरह मनन पूर्वक कार्य करनेवाला है ॥ ८ ॥

[४६१] वह तुम्हारा (सनेमि दिद्युं) तीक्ष्ण धारवाला तेजस्वी शस्त्र (अस्मत् युयोत) हमसे दूर रहे, हमपर उसका आघात न हो। (वः दुर्मतिः इह नः मा प्रणक्) आपकी शत्रुनाश करनेकी बुद्धि हमारा नाश न करे ॥ ९ ॥

[४६२] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (तुराणां वः) त्वरासे कार्य करनेवाले तुम्हारे (प्रिया नाम आहुवे) प्यारे नामोंसे मैं तुम्हें बुलाता हूं। (यत् वावशानाः) जिस कार्यकी इच्छा करनेवाले तुम (आतृपत्) तृप्त होते हैं वही हम करें ॥ १० ॥

भावार्थ— राष्ट्रका बुद्धिशाली नेता इन वीरोंके कार्योंपर कडी नजर रखे और वह इन वीरोंके लिए पौष्टिक आहारकी व्यवस्था करे ॥ ४ ॥

जिस राष्ट्रकी प्रजाओंमें अच्छे वीर होते हैं, वे ही प्रजायें सदा विजयी होती हैं। इसलिए प्रजायें मिलकर राष्ट्रमें वीरोंका निर्माण करें ॥ ५ ॥

सभी वीर अपने शत्रुओंपर आक्रमण करके उन्हें भगा दें, स्वयं सुशोभित रहें और अपना सामर्थ्य बढाते रहें, कभी भी सामर्थ्य कम न होने दें ॥ ६ ॥

वीरोंमें प्रभावी सामर्थ्य और सदा टिकनेवाला बल चाहिए और उनमें संघशक्ति भी उत्तम चाहिए ॥ ७ ॥

वीरोंका सामर्थ्य उत्तम चरित्रवाला तथा निर्दोष हो। वे शत्रुओं पर क्रोध तो करें, पर उनका यह क्रोध मननपूर्वक हो, अविचारसे न हो ॥ ८ ॥

हमारे वीर जिस बुद्धि तथा शस्त्रोंसे शत्रुओंके वीरोंका नाश करते हैं, वह उनकी बुद्धि तथा शस्त्र अपने ही देशवासियोंका नाश न करें ॥ ९ ॥

वीरोंको सभी प्रजायें अच्छे और प्रेम भरे शब्दोंसे बुलावें, उनका आदर करें और उन्हें अच्छे लगनेवालेही कार्य करें अर्थात् जनतामें वीरोंका आदर हो ॥ १० ॥

४६३ स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥ ११ ॥

४६४ शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥ १२ ॥

४६५ अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥ १३ ॥

४६६ प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥

४६७ यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद् यमन्य आदभदरावा ॥ १५ ॥

अर्थ—[४६३] वे वीर (सु आयुधाः) अच्छे शस्त्र अपने पास रखनेवाले (इष्मिणः सुनिष्काः) वेगवान् और आभूषण धारण करनेवाले और (स्वयं तन्वः शुम्भमानाः) वे अपनेही शरीरोंको सुशोभित करनेवाले हैं ॥ ११ ॥

[४६४] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (शुचीनां वः हव्या शुची) आप शुद्ध हैं अतः आपके अन्न भी पवित्र हैं। (शुचिभ्यः शुचिं अध्वरं हिनोमि) इन शुद्ध वीरोंके लिये मैं हिंसारहितही यज्ञको करता हूँ। (ऋत-सापः) सत्यकी उपासना करनेवाले ये (शुचि-जन्मानः) शुद्ध कुलमें जन्मे कुलीन वीर (शुचयः पावकाः) शुद्ध और पवित्रता करनेवाले (ऋतेन सत्यं आयन्) सरलतासे सत्यको प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

[४६५] हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (वः अंसेषु खादयः आ) आपके कंधोंपर आभूषण हैं, (वक्षःसु रुक्माः) छातियोंपर सुवर्ण मुद्राओंके हार (उप शिश्रियाणाः) लटक रहे हैं। (विद्युतः न रुचानाः) बिजलियोंकी तरह चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) शत्रुपर आघातोंकी वर्षा करनेवाले अपने आयुधोंसे (स्वधां अनु यच्छमानाः) अपनी धारणा शक्तिको प्रकट करते हो ॥ १३ ॥

[४६६] हे (प्रयज्यवः मरुतः) पूजनीय वीर मरुतो ! (वः बुध्न्या महांसि) तुम्हारे मौलिक अपने सामर्थ्य (प्र ईरते) प्रकट हो रहे हैं। तुम अपने (नामानि प्रतिरध्वं) यशोंके साथ परले तट तक जाओ। शत्रुतक पहुंचो (एनं सहस्रियं दम्यं) इस सहस्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण हितकारी घरके (गृहमेधिनं भागं जुषध्वं) यज्ञके भागका स्वीकार करो ॥ १४ ॥

[४६७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वाजिनः विप्रस्य हवीमन्) बलशाली ज्ञानी पुरुषके यज्ञ करनेके समय की हुई (स्तुतस्य) स्तुतिको (यदि इत्था अधीथ) यदि इस तरह तुम जानते हो, तो (सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात) उत्तम वीरतासे युक्त धनका दान तुरन्तही करो। अन्यथा (अन्यः अरावा) दूसरा कोई कंजूस शत्रु (नु चित् यं आदभत्) उसको दबा देगा, तिरस्कार देगा ॥ १५ ॥

भावार्थ— वीरोंके पास उत्तम शस्त्र हों, वे वीर वेगसे शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले हों, वे अपने शरीरोंको सुशोभित करके प्रभावी बनावें ॥ ११ ॥

वीरोंका आचार शुद्ध हो, वे पवित्र अन्नका आहार करें, स्वयं शुद्ध पवित्र और निष्पाप बनें। सत्यमय जीवनसे सत्यका व्यवहार करें, कभी टेढा व्यवहार न करें ॥ १२ ॥

वीरोंके शरीरों पर आभूषण रहें और वे उनकी शोभाको बढावें। उनके शस्त्र बिजलीकी तरह चमकनेवाले तीक्ष्ण हों, वे उन शस्त्रोंसे शत्रु पर आघातोंकी वृष्टि करें और अपनी शक्तिको प्रभावित रीतिसे दिखावें ॥ १३ ॥

वीरोंके सामर्थ्य बढते रहें, उनके यश भी बढते जायं, उनके घर अनेक तरहके हितकारी पदार्थोंसे युक्त हों और वे प्रत्येक यज्ञमें आकर यज्ञका भाग स्वीकार करें ॥ १४ ॥

२३

४६८ अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥ १६ ॥
४६९ दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥ १७ ॥
४७० आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥ १८ ॥
४७१ इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥ १९ ॥

अर्थ— [४६८] हे वीर मरुतो ! (अत्यासः न) घुडदौडके घोडेकी तरह (सु अञ्चः यक्ष-दृशः) उत्तम वेगवान् और यज्ञका दर्शन करनेके लिये आये (मर्याः न) मनुष्योंकी तरह जो (शुभयन्त) अपने आपको सुशोभित करते हैं (ते हर्म्येष्ठाः शिशवः न) वे राज प्रासादमें रहनेवाले बालकोंकी तरह (शुभ्राः) सुहानेवाले (पयोधाः वत्सासः न) दूध पीनेवाले बालकके समान (प्रक्रीडन्तः) खेलते रहते हैं ॥ १६ ॥

[४६९] शत्रुओंका (दशस्यन्तः) नाश करनेवाले तथा (सुमेके रोदसी वरिवस्यन्तः) सुस्थिर द्यावा पृथिवीको आश्रय देनेवाले (मरुतः नः मृळयन्तु) वीर मरुत् हमें सुखी बना देवें । हे (वसवः) बसानेवाले वीरो ! (गोहा नृहा वः वधः) गौका घातक और मनुष्योंका घातक शस्त्र हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे । तुम (सुम्नेभिः अस्मे नमध्वं) अपने अनेक सुखके साधनोंके साथ हमारे पास आनेके लिये चल पडो ॥ १७ ॥

[४७०] हे (वृषणः मरुतः) बलवान् वीर मरुतो ! (सत्तः सत्राचीं रातिं गृणानः) यज्ञस्थानमें बैठकर तुम्हारे सर्वत्र फैलनेवाले दानकी स्तुति करनेवाला (होता) याजक (वः आ जोहवीति) तुम्हें बुला रहा है । (यः ईवतः गोपाः अस्ति) जो प्रगतिशील संरक्षक वीर है, (सः अद्वयावी) वह अनन्यभावसे युक्त होकर (उक्थैः वः हवते) स्तोत्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करता है ॥ १८ ॥

[४७१] (इमे मरुतः तुरं रामयन्ति) ये वीर मरुत् त्वरासे काम करनेवालोंको आनन्द देते हैं । (इमे सहः सहसः आनमन्ति) ये वीर अपनी प्रभावी शक्तिके सहारे बलवान् शत्रुको विनम्र करते हैं । (इमे शंसं वनुष्यतः निपान्ति) ये वीर स्तोत्रोंका आदरसे पाठ करनेवालोंका संरक्षण करते हैं और (अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति) शत्रुओं पर बडाभारी द्वेष धारण करते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ— यज्ञ करनेवालोंको वीरतासे परिपूर्ण धनका दान मिलता रहे । धन प्राप्त करनेके बाद यदि उसकी रक्षा करने लायक शक्ति हमारे अन्दर न हो, तो वह धन नष्ट हो जाएगा । उसे कोई लूट ले जाएगा और हम ताकते रह जाएंगे । इसलिए धनके साथ साथ शरीरमें सामर्थ्य भी हो ॥ १५ ॥

यज्ञमें शामिल होनेके लिए आनेवाले लोग अच्छी तरह नहा धोकर सजधज कर जायें । जिस प्रकार राजमहलमें रहनेवाले लोग सजधजकर तथा सुन्दर होकर रहते हैं, उसी तरह सभी राष्ट्रवासी सजधजकर तथा सुन्दर होकर रहें ॥ १६ ॥

वीर शत्रुका नाश करें और लोगोंको सुखी करें । गौका नाश कर्ता और मनुष्योंका वध करनेवाला समाजसे दूर किया जाए । तथा मनुष्योंके सुखके लिए हरतरहके सुखके साधन जुटाये जावें ॥ १७ ॥

सभी वीर बलवान्, वीर्यवान् और पराक्रमी हों । लोग दान ऐसा दें कि जिसका परिणाम या लाभ सब लोगोंतक पहुंचे । संरक्षण करनेवाले वीर प्रगतिशील लोगोंकी सदा रक्षा करें ॥ १८ ॥

वीरगण त्वरासे कार्य करनेवालोंको आनंद देनेवाले हों । अपने प्रभावी सामर्थ्यसे बलवान् शत्रुको भी विनम्र कर देनेवाले हों, पर जो उनका आदर करें, ऐसे अपने मित्रोंकी रक्षा करनेवाले हों और शत्रुओंसे द्वेष करनेवाले हों ॥ १९ ॥

४७२ इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥ २० ॥

४७३ मा वो दात्रान्मरुतो निररामा मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे ।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥ २१ ॥

४७४ सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥ २२ ॥

४७५ भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥

अर्थ— [४७२] (इमे वसवः मरुतः) ये बसानेवाले वीर मरुत् (यथा रध्रं चित् जुनन्ति) जैसे समृद्धिवाले मनुष्यके पास जाते हैं, वैसे ही (भृमिं चित् जुषन्त) भीख मांगनेके लिये भटकनेवालेके पास भी जाते हैं। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (तमांसि अप बाधध्वं) अन्धेरेको दूर हटा दो और (अस्मे विश्वं तनयं तोकं धत्त) हमारे पास बाल बच्चोंको सब प्रकारसे सुखमें रखो ॥ २० ॥

[४७३] हे (रथ्यः मरुतः) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो ! (वः दात्रात् मा निः अराम) आपके दानसे हम दूर न रहें। (विभागे पश्चात् मा दघ्म) धनको बांटनेके समय हम सबसे पीछे न रहें। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (वः सुजातं यत् ईं अस्ति) आपका उच्च कोटीका जो भी धन है उस (स्पार्हे वसव्ये) उस स्पृहणीय धनमें (नः आभजतन) हमें अंशभागी करो ॥ २१ ॥

[४७४] हे (रुद्रियासः अर्यः मरुतः) महावीरके श्रेष्ठ वीरो ! (यत् शूराः जनासः) जब शूर लोग (यह्वीषु ओषधीषु विक्षु) नदियोंमें, अरण्यमें, प्रजाओंमें (मन्युभिः संनहन्त) उत्साहके साथ मिलकर शत्रुपर हमला करते हैं, (अध पृतनासु) तब ऐसे युद्धोंमें (नः त्रातारः भूतस्म) हमारे संरक्षक बनो ॥ २२ ॥

[४७५] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम (पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र) पितरोंके संबंधमें बहुतसे स्तोत्र श्रवण कर चुके हो, (वः या पुरा चित् शस्यन्ते) तुम्हारे इन स्तोत्रोंकी पहिलेसे प्रशंसा होती आयी है। (उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा) उग्र शूर वीर मरुतोंकी सहायतासे युद्धोंमें शत्रुका पराभव करता है, (मरुद्भिः अर्वा वाज सनिता) मरुतोंकी सहायतासे घोडा भी बलके कार्य करता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— मरुत् वीर जिस तरह समृद्धिशालियोंके पास जाते हैं, उसी तरह गरीबोंके पास भी जाते हैं। उसी तरह राष्ट्रके वीर भी धनी और निर्धन दोनोंकी समानरूपसे रक्षा करें, जहां पर भी वे जाएं, वहांसे अन्धकारको दूर करते जाएं और सबको सुरक्षित रखें ॥ २० ॥

जिस समय ये मरुत् धनका विभाग करते हैं, उस समय सभी पर उनकी दृष्टि रहे। सभी जन उनके दानके अंश-भागी हों ॥ २१ ॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले वीरो ! जब दूसरे शूर नदियोंमें, जंगलोंमें और प्रजाओंमें रहकर शत्रुओंपर आक्रमण करते हैं, तब उन युद्धोंमें उन शूरोंके संरक्षक बनो ॥ २२ ॥

इन मरुतोंकी प्रशंसा अनन्तकालसे चली आई है। इन्हीं मरुतोंकी सहायता पाकर ही वीर युद्धमें विजय प्राप्त करते हैं। जब ये मरुत् घोडोंपर चढते हैं, तब घोडे भी उत्साहमें आकर वीरताके कार्य करते हैं ॥ २३ ॥

४७६ अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमा ऽध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥
४७७ तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

[५७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४७८ मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥
४७९ निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

अर्थ— [४७६] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यः असु-रः जनानां विधर्ता) जो अपना जीवन देकर लोगोंका विशेष रीतिसे धारण करता है वह (अस्मे वीरः शुष्मी अस्तु) हमारा वीर बलवान् बने । (येन सुक्षितये अपः तरेम) जिसकी सहायतासे हम उत्तम सुखपूर्वक निवास करनेके लिये दुःखके समुद्रको भी हम तैरकर पार हो जायेंगे । और (वः स्वं ओकः अभिस्याम) तुम्हारे मित्र बनकर हम अपने स्वकीय घरमें आनन्दसे प्रसन्न रहेंगे ॥ २४ ॥

[४७७] (इन्द्रः वरुणः मित्रः अग्निः आपः ओषधिः वनिनः) इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप, औषधी, वनके वृक्ष, (नः तत् जुषन्त) हमें वह सुख दें, कि जिससे हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) वीरोंके समीप आनंदसे रहें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ २५ ॥

[५७]

[४७८] हे (यजत्राः) पूज्य वीरो ! (वः मारुतं नाम मध्वः) आप वीर मरुतोंका नाम मीठासका द्योतक है । ये वीर (युद्धेषु शवसा प्र मदन्ति) युद्धोंमें अपने बलके कारण आनन्दसे लडते हैं । (यत् उग्राः अयासुः) जब ये उग्र वीर शत्रुपर हमला करते हैं, तब (ये उर्वी चित् रोदसी रेजयन्ति) वे विस्तृत द्यावापृथिवीको कंपाते हैं ऐसा प्रतीत होता है । और वे (उत्सं पिन्वन्ति) जलप्रवाहको भरपूर बहा देते हैं । भर देते हैं ॥ १ ॥

[४७९] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम (गृणन्तं निचेतारः हि) काव्यका गान करनेवालोंको उत्साहित करते हो और (यजमानस्य मन्म प्र-नेतारः) यजमानके स्तोत्रके नेता बनते हो । (पिप्रियाणाः अद्य अस्माकं विदथेषु) प्रसन्न होकर आज हमारे यज्ञोंमें अथवा युद्धोंमें (वीतये बर्हिः आ सदत) अन्न सेवन करनेके लिये आसनोंपर आकर बैठो ॥ २ ॥

भावार्थ— राष्ट्रके वीर अपना जीवन देकर भी प्रजाओंकी रक्षा करें । ऐसे वीरोंके लिए प्रजायें शुभकामनायें करती हैं । इन वीरोंकी सहायता पाकर मनुष्य दुःखके समुद्रको भी तैरकर पार कर जाता है । तथा इन मरुतोंका मित्र बनकर मनुष्य अपने घरमें आनन्दसे रहता है ॥ २४ ॥

इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप आदि सभी देवता हमें सुख दें कि जिससे हम वीरोंके समीप आनन्दसे रहें, तथा उनके कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रहें ॥ २५ ॥

वीरोंके नाममें ही मिठास भरी होती है । ये वीर अपने सामर्थ्यसे आनंदित होकर ही लडते हैं । ये सामर्थ्यशाली वीर जब शत्रुओंसे लडते हैं तब वे अपने शौर्यसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको भी कंपा देते हैं ॥ १ ॥

ये वीर मरुत् स्तोत्रोंका गान करनेवालोंको उत्साहित करते हैं । जिसपर ये प्रसन्न होते हैं, उसके यज्ञोंमें आकर उसके द्वारा दिए गए हविर्भागको ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

४८० नैतावंदुन्ये मुरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥ ३ ॥
४८१ ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद् व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ४ ॥
४८२ कृते चिदत्र मुरुतो रणन्ताऽनवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥ ५ ॥
४८३ उत स्तुतासो मुरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥ ६ ॥

अर्थ— [४८०] (इमे मरुतः) ये वीर मरुत् (रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते) सुवर्ण मुद्राओंसे, आयुधोंसे और अपने उत्तम शरीरोंसे जैसे प्रकाशते हैं वैसे (न एतावत् अन्ये) दूसरे कोई नहीं। (विश्वपिशः रोदसी पिशानाः) सबको तेजस्वी बनानेवाले ये वीर द्यावा-पृथिवीको भी तेजस्वी बनाते हैं। ये अपनी (शुभे) शोभाके लिये (समानं अञ्जि) समान गणवेशको (कं आ अञ्जते) सुखसे पहनते हैं। अपने शरीरोंको प्रकाशमान करते हैं ॥ ३ ॥

[४८१] हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (यत् वः आगः) जो आपके विषयमें पाप हमसे (पुरुषता कराम) पौरुष कर्म करनेके समय हुआ हो, (सा वः दिद्युत् ऋधक् अस्तु) तो भी वह आपकी तेजस्वी तलवार हमसे दूर ही रहे। (वः तस्यां अपि मा भूम) आपके उस शस्त्रके पास भी हम न रहें। (अस्मे वः चनिष्ठा सुमतिः अस्तु) हमारे पास आपकी अन्नदान करनेवाली बुद्धि रहे ॥ ४ ॥

[४८२] (अनवद्यासः शुचयः पावकाः) अनिन्दनीय शुद्ध और पवित्र (मरुतः) वीर मरुत् (अत्र कृते चित् रणन्त) यहां पर हमारे चलाये इस यज्ञकर्ममें आकर प्रसन्न हों। हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (नः सुमतिभिः प्र अवत) हमारी सुरक्षा अपनी उत्तम बुद्धियोंसे करो। (नः वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत) हमें अन्नोंसे पुष्ट होनेके लिये संकटोंसे पार करो ॥ ५ ॥

[४८३] (उत विश्वेभिः नामभिः स्तुतासः) और अनेक नामोंसे प्रशंसित हुए ये (नरः मरुतः) नेता वीर मरुत् (हवींषि व्यन्तु) अन्नोंको सेवन करें। हे वीरो ! (नः प्रजायै अमृतस्य ददात) हमारी प्रजाको अमरपन दो और (सूनृता रायः मघानि जिगृत) सत्य मार्गसे प्राप्त होनेवाले विशाल धन दे दो ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीर मरुत् आभूषणों और आयुधोंसे सजनेपर जितने तेजस्वी दिखलाई पडते हैं, उतने और कोई नहीं। वे मानों अपने तेजसे ही सब विश्वको तेजस्वी बनाते हैं ॥ ३ ॥

हे पूजनीय वीर मरुतो ! पुरुषार्थके कर्म करते समय अनजाने ही जो पाप हमसे आपके प्रति हो गया हो तो भी आपके शस्त्र हमपर आकर न गिरें। हम आपके शस्त्रोंसे बहुत दूर रहें। हमारे पास तो केवल आपकी उत्तम बुद्धि ही रहे ॥ ४ ॥

वीर प्रशंसनीय, शुद्ध और पवित्र आचरण करनेवाले हों। धर्मके कर्ममें वे आनन्दित हों। यज्ञादिक कर्मको देखकर वे प्रसन्न होते रहें। वे वीर सबका कल्याण करनेकी उत्तम भावनाओंसे युक्त हों तथा लोगोंको अन्नसे पुष्ट करके सबको सुरक्षित रखें ॥ ५ ॥

हे वीर मरुतो ! हमारी प्रजाको अकाल मृत्युसे दूर रखो। हमारी प्रजायें दीर्घजीवी बनें। हमें सत्यमार्गके द्वारा धन और वैभव प्राप्त हों ॥ ६ ॥

×

४८४ आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[५८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४८५ प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥ १ ॥
४८६ जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ॥ २ ॥
४८७ बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥ ३ ॥

अर्थ— [४८४] हे (स्तुतासः मरुतः) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! तुम (विश्वे) सभी वीर (सर्वताता सूरीन् अच्छ ऊती) सर्वत्र फैलनेवाले यज्ञमें ज्ञानियोंकी ओर अपने संरक्षणके साथ (आ जिगात) आओ। ज्ञानियोंको सुरक्षित रखो। (ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति) ये वीर स्वयं ही हम जैसे सैकडों मानवोंको बढाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ७ ॥

[५८]

[४८५] (यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान्) वह वीर दिव्य स्थानको अपने बलसे प्राप्त करता है। (साकं-उक्षे गणाय प्र अर्चत) साथ साथ कार्य करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो। (उत अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति) और वे वीर वंशविनाश रूप आपत्तिका नाश करते हैं। और (महित्वा रोदसी नाकं नक्षन्ते) अपने महत्त्वसे द्यावा-पृथिवीको तथा सुखमय स्वर्गको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

[४८६] हे (भीमासः तुविमन्यवः) भीषण रूपवाले अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण (अयासः मरुतः) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले वीर मरुतो ! (वः जनूः त्वेष्येण चित्) तुम्हारा जन्म तेजस्वितासे युक्त है। (उत ये महोभिः ओजसा प्रसन्ति) और जो अपने महत्त्वोंसे और बलसे प्रसिद्ध होते हैं, ऐसे (वः यामन्) तुम वीरोंके शत्रुपर आक्रमण करनेके समय (स्वर्दृक् विश्वः भयते) आकाशकी ओर दृष्टी रखकर सभी लोग भयभीत होते हैं ॥ २ ॥

[४८७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात) धनी लोगोंके लिये बडी आयु दो। (नः सुष्टुतिं जुजोषन् इत्) हमारी स्तुतिका सेवन तुम करो। (गतः अध्वा जन्तुं न तिराति) जिस मार्गसे तुम जाते हो वह मार्ग प्राणिमात्रको विनष्ट करनेवाला नहीं होता है। इसी तरह (नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्रतिरेत) हमारा संवर्धन स्पृहणीय संरक्षणके साधनोंसे तुम करते रहो ॥ ३ ॥

भावार्थ— वीरजन सर्वहितकारी कर्ममें ज्ञानियोंके पास जाकर उनकी रक्षा अच्छी तरह करें। वीर वह है कि जो स्वयं अकेला होते हुए भी सैंकडों मानवोंको बढानेमें सहायता करे ॥ ७ ॥

जो शक्तिशाली है, वह दिव्यधामको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करता है। एक साथ संघटित रूपमें रहकर जो उन्नति करते हैं, उन वीरोंका सत्कार करना चाहिए। वंशका नाश करनेवाली आपत्तिको वीर नष्ट कर देते हैं, इस प्रकार वे वीर अपने स्वयंके यश और सामर्थ्यसे स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

सभी वीर विशाल शरीरवाले, अत्यन्त उत्साहसे कार्य करनेवाले और शत्रुओंपर वेगसे आक्रमण करनेवाले हों। ऐसे वीरोंके जन्म उनकी तेजस्विता, महत्ता और सामर्थ्यके लिए प्रसिद्ध होते हैं। इन गुणोंसे उनकी प्रसिद्धि होती है। इन वीरोंके आक्रमणको देखकर सभी भयभीत होते हैं ॥ २ ॥

धनीजन दीर्घ आयुवाले हों। धनीजन छोटीसी आयुमेंही मर जाते हैं, इसलिए वे ऐसे मार्गमें चलें कि जिससे उनकी आयु दीर्घ हो। वीर जिस मार्गसे जाते हैं, उस मार्गसे जानेपर किसीका नाश नहीं होता ॥ ३ ॥

४८८ युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥ ४ ॥
४८९ ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥
४९० प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[५९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १-११ मरुतः, १२ रुद्रः (मृत्युविमोचनी ऋक्) । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७-८ त्रिष्टुप्, ९-११ गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

४९१ यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन् मरुतः शर्म यच्छत ॥ १ ॥

अन्वयः-- [४८८] हे (मरुतः) मरुत वीरो ! (युष्मा-ऊतः) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ (विप्रः शतस्वी सहस्री) ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है । (युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः) तुम्हारे द्वारा संरक्षित हुआ घोडा भी शत्रुका पराजय करनेमें समर्थ होता है । (युष्मा-ऊतः संराट् वृत्रं हन्ति) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ सम्राट् घेरनेवाले शत्रुका भी नाश करता है । हे (धूतयः) शत्रुको हिलानेवाले वीरो ! (वः तत् देष्णं प्र अस्तु) तुम्हारा वह दान हमारे लिये पर्याप्त हो ॥ ४ ॥

[४८९] (मीळ्हुषः रुद्रस्य तान् आ विवासे) बलवान् रुद्रके इन वीरोंकी मैं सेवा करता हूं । (मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते) वीर मरुत हमें अनेक प्रकारसे और बार बार सहायता देते हैं । हमारे साथ मिलकर कार्य करते हैं । (यत् सस्वर्ता) जिन गुप्त अथवा (यत् आविः) जिन प्रकट पापोंके कारण वे वीर (जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं उन (तुराणां एनः अव ईमहे) शीघ्रता करनेवालोंसे हुआ पाप हम अपनेसे दूर करते हैं ॥ ५ ॥

[४९०] (मघोनां सुस्तुतिः) धनाढ्य वीरोंकी यह सुन्दर स्तुति है । (सा वाचि प्र) वह हमारे मुखमें सदा रहे । (मरुतः इदं सूक्तं जुषन्त) वीर मरुत् इस सूक्तका सेवन करें, सुनें । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! हमारे (द्वेषः आरात् चित्) द्वेषीओंको हमसे दूर करो । और (युयोत) उनको पृथक् करो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ ६ ॥

(५९)

[४९१] हे (देवासः) देवो ! (यं इदं इदं त्रायध्वे) जिसे तुम इस तरह सुरक्षित रखते हो, और (यं च नयथ) जिसे तुम अच्छे मार्गसे ले जाते हो, हे (अग्ने) अग्ने ! हे (वरुण) वरुण ! हे (मित्र) मित्र ! हे (अर्यमन्) अर्यमन् ! तथा हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (शर्म यच्छत) उसे सुख दे दो ॥ १ ॥

भावार्थ-- इन वीर मरुतोंसे रक्षित हुआ ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है । इनके द्वारा संरक्षित हुआ घोडा भी शत्रुको पराजित करनेमें समर्थ होता है । इन वीरोंसे सुरक्षित होनेपर राजा शत्रुओंसे घिर जाने पर भी उनका नाश कर देता है ॥ ४ ॥

हमारे जिन अपराधोंसे रुष्ट होकर मरुत् वीर हमसे क्रुद्ध हो गए हैं, उन अपराधोंसे हम दूर हों, तथा रुद्रके उन वीरोंकी सेवा करें ॥ ५ ॥

भक्तोंके मुखसे निकली हुई स्तुतिको मरुत् वीर प्रेमसे सुनें । हे वीरो ! हमें हमसे द्वेष करनेवालोंसे दूर रखो और उन्हें भी हमसे पृथक् करो । तथा हमें सदैव कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

हे अग्ने, वरुण, मित्र तथा अर्यमा देवो ! तुम मरुत् देवोंके साथ जिसकी सुरक्षा करते हो, और अच्छे मार्गसे ले जाते हो, वह सदैव सुखी रहता है ॥ १ ॥

४९२ युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

४९३ नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥

४९४ नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त् सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥

४९५ ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्वन्यत्र गन्तन ॥ ५ ॥

४९६ आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥

अर्थ— [४९२] हे (देवाः) देवो ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर (प्रिये अहनि ईजानः) शुभ दिवसमें यज्ञ करनेवाला (द्विषः तरति) शत्रुओंको लांघ जाता है । शत्रुओंका पराभव करता है । (यः वः वराय) जो तुम्हारे श्रेष्ठ वीरके लिये (महीः इषः विदाशति) बहुतसा अन्न देता है, (सः क्षयं प्र तिरते) वह विनाशको लांघता है, वह सुरक्षित होता है ॥ २ ॥

[४९३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वसिष्ठः वः चरमं चन) यह वसिष्ठ तुम्हारे अन्तिम वीरका भी (नहि परि मंसते) तिरस्कार नहीं करता । तुम सबका संमान करता है । (अद्य अस्माकं सुते) आज हमारे सोमयागमें सोमरस निकालनेपर तुम (कामिनः विश्वे सचा पिबत) अपनी इच्छाके अनुसार सब एक स्थानपर बैठकर इस रसका पान करो ॥ ३ ॥

[४९४] हे (नरः) नेता वीरो ! तुम (यस्मै अराध्वं) जिसको संरक्षण देते हैं, वह (वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति) तुम्हारी संरक्षण करनेकी शक्तिको युद्धोंमें कम नहीं करता । वह उसके लिये पर्याप्त होती है । (वः नवीयसी सुमतिः) तुम्हारी नवीन सुमति (अभि अर्वेत) हमारी ओर आवे । (पिपीषवः तूयं आयात) सोमपान करनेकी इच्छासे तुम हमारे पास आ जाओ । और यथेच्छ रसपान करो ॥ ४ ॥

[४९५] हे (घृष्वि-राधसः मरुतः) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीरो ! (अन्धांसि पीतये सु ओ यातन) अन्नरसका सेवन करनेके लिये तुम मिलकर यहां आओ । (हि वः इमा हव्या ररे) क्योंकि तुम्हें ये अन्न मैं देता हूं । अतः तुम अन्यत्र (मो सु गन्तन) कहीं भी न जाओ ॥ ५ ॥

[४९६] (स्पार्हाणि वसु दातवे) स्पृहणीय धन देनेके लिये (नः अवित) हमारे पास आओ । (नः बर्हिः आ सीदत च) हमारे आसनों पर आकर बैठो । हे (अस्रेधन्तः मरुतः) अहिंसक वीरो ! (इह मधौ सोम्ये) यहां इस मधुर सोमरस पानमें (स्वाहा) अपना भाग स्वीकार करो और (मादयाध्वै) आनन्दित हो जाओ ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो उत्तम दिनोंमें यज्ञ करता है, वह इन देवोंके द्वारा सुरक्षित होकर शत्रुओंको पराजित करता है । जो वीरोंके पोषणके लिये उत्तम अन्न प्रदान करता है, वह विनाशसे दूर रहता है ॥ २ ॥

कोई वीर छोटा है, यह समझकर उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए । सब वीरोंका एक समान सत्कार करे ॥ ३ ॥

ये वीर जिसकी रक्षा करते हैं, उसकी शक्ति युद्धोंमें कभी कम नहीं होती । उनकी शारीरिक शक्ति उनकी उत्तम बुद्धिसे संयुक्त होकर बढती है ॥ ४ ॥

वीरजन संघर्षमें भी सदा अपनी सिद्धिको प्राप्त करते हैं । शत्रुओंके साथ युद्ध करके अपनी विजय प्राप्त करते हैं । इसलिये ऐसे वीरोंका अन्नरसके द्वारा उत्तम पोषण करना चाहिए ॥ ५ ॥

हे वीरो ! चाहने योग्य धन देनेके लिए तुम हमारे पास आओ और आकर बैठो । हमारे द्वारा दिए गए मधुर सोमरसको तुम पीओ और आनन्दित होओ ॥ ६ ॥

४९७ सम्वक्षिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥ ७ ॥
४९८ यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायु स्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥
४९९ सांतपना इदं हवि र्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥ ९ ॥
५०० गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥ १० ॥
५०१ इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११ ॥

अर्थ— [४९७] (सस्वः चित् हि) गुप्त स्थानपर बैठकर भी अपने (तन्वः शुम्भमानाः) शरीरोंको सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील पृष्ठाः हंसासः) नील पीठवाले हंसोंके समान (सवने मदन्तः) सवनमें सोमपान करके आनंदित होते हैं। (रण्वाः नरः न) रमणीय नेताओंकी तरह (आ अपप्तन्) हमारे पास ये आ जांय और आपका (विश्वं शर्धः) सब बल (मा अभितः नि सेद) मेरी चारों ओर रहे ॥ ७ ॥

[४९८] हे (वसवः मरुतः) बसानेवाले वीर मरुतो ! (दुर्हृणायुः तिरः) अतीव क्रोधी तथा तिरस्कारके योग्य (यः नः चित्तानि) जो हमारे चित्तोंका (अभि जिघांसति) चारों ओरसे नाश करना चाहता है, (सः द्रुहः पाशान्) उस द्रोहकारीके पाशोंसे (प्रति मुचीष्ट) हमें तुम मुक्त करो और द्रोहकारीको (तं तपिष्ठेन हन्मना) अति तप्त आयुधसे (हन्तन) मार डालो ॥ ८ ॥

[४९९] हे (सान्तपनाः) शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा (रिशादसः मरुतः) शत्रुका नाश करनेवाले वीर मरुतो ! तुम (इदं तद् हविः जुजुष्टन) इस हविष्यान्नका सेवन करो और (युष्माकं ऊती) तुम्हारी संरक्षणकी शक्ति बढाओ ॥ ९ ॥

[५००] हे (गृहमेधासः) गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले (सु-दानवः मरुतः) उत्तम दानी मरुत् वीरो ! तुम (युष्माकं ऊती आगतः) अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमसे (मा अप भूतन) दूर न चले जाओ ॥ १० ॥

[५०१] (स्वतवसः) अपने स्वकीय बलसे युक्त (कवयः) ज्ञानी (सूर्यत्वचः) सूर्यके समान तेजस्वी (मरुतः) वीर मरुत् (इह इह यज्ञं वः) यहां यज्ञ करके तुम्हें मैं (आवृणे) वरण करता हूं, पास लाता हूं, सन्तुष्ट करता हूं ॥ ११ ॥

भावार्थ— सभी वीर गणवेश धारण करके सुशोभित हों और वे सब लोगोंका संरक्षण करें । उनका बल लोगोंकी रक्षा करनेके लिए ही हो । अपने बलके घमंडमें आकर लोगों पर अत्याचार न करें । लोग भी आदरसे उन्हें खानपान देकर उनका संमान करें ॥ ७ ॥

जो शत्रु हमारे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन अन्तःकरण चतुष्टय पर अपना अधिकार जमा कर हमें नष्ट करना चाहते हैं, उनके उन पाशोंसे छूटना चाहिए, तथा स्वयं छूटकर उन पाशोंका प्रयोग उन्हीं शत्रुओं पर करना चाहिए ॥ ८ ॥

वीर ऐसा हो कि जो शत्रुको ताप देनेवाला तथा उनका नाश करनेवाला हो । वीर सदा अपनी शक्ति बढायें ॥ ९ ॥

वीरोंको गृहस्थधर्मका पालन करना चाहिए और दान भी देना चाहिए । इसी तरह अपने संरक्षणके सामर्थ्यसे सबकी सुरक्षा भी करनी चाहिए ॥ १० ॥

वीर अपने बलसे बढें, ज्ञानी हों, आलसी न रहें । वे देश और कालकी परिस्थितिसे भिज्ञ रहें और सूर्यके समान तेजस्वी हों ॥ ११ ॥

५०२ त्र्य॑म्बकं यजामहे सु॒गन्धिं॑ पुष्टि॒वर्ध॑नम् ।
उ॒र्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑ना॒न्मृ॒त्योर्मु॑क्षीय॒ माऽमृता॑त् ॥ १२ ॥

[६०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ सूर्यः, २-१२ मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५०३ यद॒द्य सू॑र्य॒ ब्रवोऽनागा उ॒द्यन् मि॒त्राय॒ वरु॑णाय स॒त्यम् ।
व॒यं दे॑व॒त्राऽदिते स्याम॒ तव॑ प्रि॒यासो॑ अर्यमन् गृ॒णन्तः॑ ॥ १ ॥

५०४ ए॒ष स्य मि॑त्रावरुणा नृ॒चक्षा॑ उ॒भे उदे॑ति॒ सूर्यो॑ अ॒भि ज्मन् ।
विश्व॑स्य स्था॒तुर्जग॑तश्च गो॒पा ऋ॒जु मर्ते॑षु वृजि॒ना च॒ पश्य॑न् ॥ २ ॥

अर्थ— [५०२] (सुगन्धिं) उत्तम यशस्वी (पुष्टिवर्धनं) पोषण साधनोंका संवर्धन करनेवाले (त्र्यंबकं) तीन प्रकारसे संरक्षण करनेवाले देवकी (यजामहे) हम उपासना करते हैं। यह देव (ऊर्वारुकं इव) ककडीको मुक्त करते हैं उस तरह (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्युके बंधनसे हमें मुक्त करे, परंतु (अमृतात् मा) अमरत्वसे कभी न छुडावे, परंतु हमें अमरत्वसे संयुक्त करे ।। १२ ॥

[६०]

[५०३] हे (सूर्य) सूर्य ! (उद्यन् अद्य यत्) उदय होते ही तुम आज हमें (अनागाः ब्रवः) निष्पाप करके घोषित करो। हे (अदिते) अदीन देव ! (वयं देवत्रा) हम देवोंके बीचमें (मित्राय वरुणाय सत्यं) मित्र और वरुणके लिये सत्य रूपसे प्रिय (स्याम) हों। हे (अर्यमन्) आर्य मनवाले देव ! हम (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (तव प्रियासः स्याम) तुम्हारे लिये प्रिय हों ॥ १ ॥

[५०४] हे मित्र और वरुण ! (एषः स्यः) यह है वह (नृचक्षाः सूर्यः) मानवोंके आचरणोंको देखनेवाला सूर्य (उभे अभि ज्मन् उदेति) दोनों द्यावापृथिवीके बीचके अन्तरिक्ष मार्गसे जानेवाला उदयको प्राप्त होता है। यह (विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः) सब स्थावर जंगम जगत्का संरक्षण करनेवाला है। यह (मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्) मानवोंके सुकृतों और दुष्कृतोंको देखता है ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम यशस्वी, पोषण साधनोंका संवर्धन करनेवाले तथा तीन प्रकारसे संरक्षण करनेवाले देवकी हम उपासना करते हैं। यह देव, जिसतरह ककडी अपनी बेलसे टूट जाती है, उसी तरह हमें मृत्युके बंधनोंसे छुडावे, पर अमरत्वसे कभी न छुडाये। स्वयंके प्रमादसे भय, राष्ट्रके दोषोंसे भय तथा प्रकृतिसे भय ये तीन तरहके भय होते हैं। देव मनुष्यको इन तीनों भयसे मुक्त करें तथा इसप्रकार मृत्युके बंधनोंसे मुक्त हों, पर अमृतकी स्थितिसे कभी दूर न हों ॥ १२ ॥

हे सूर्य ! तुम उदय होते ही हमें निष्पाप घोषित करो। हम सदा निष्पाप रहें। देवोंमें हम सत्यपालकके रूपमें प्रसिद्ध हों। हम सत्यका पालन करें। जिनके मन श्रेष्ठ हैं, ऐसे सज्जनोंके लिए हम प्रिय हैं। सूर्य सबको सत्कर्ममें प्रेरित करता है, अ-दिति अर्थात् अदीन है, श्रेष्ठ है, सबका मित्र है, सबमें वरिष्ठ है, अर्यमा अर्थात् श्रेष्ठ मनवाला है ॥ १ ॥

यह सूर्य मनुष्यके सत्य-असत्य व्यवहारका निरीक्षण करनेवाला है, यह द्यु और पृथ्वीके बीचमें चलता हुआ सबके व्यवहारको देखता रहता है। यह सबका संरक्षक है। यह सूर्य महाप्रदर्शक होनेसे मनुष्योंमें कौन सरल और कौन कुटिल है, इन सब बातोंका निरीक्षण करता है। इसीतरह राजा या नेता अपनी प्रजाओंके व्यवहारोंका निरीक्षण करे, सभीके संरक्षणका प्रबन्ध उत्तम रीतिसे करे तथा प्रजाओंमें अच्छे और बुरेका निरीक्षण करे। इस तरहकी उत्तम व्यवस्था हो तो प्रजाओंका कल्याण हो सकता है ॥ २ ॥

५०५ अयु॑क्त स॒प्त ह॒रित॑: स॒धस्था॒द् या ईं॒ वह॑न्ति॒ सूर्यं॑ घृ॒ताची॑: ।
धामा॑नि मित्रावरुणा यु॒वाकु॒: सं यो यू॒थेव॒ जनि॑मानि॒ चष्टे॑ ॥ ३ ॥

५०६ उद् वां॑ पृ॒क्षासो॒ मधु॑मन्तो अस्थु॒रा सूर्यो॑ अरुहच्छु॒क्रमर्ण॑: ।
यस्मा॑ आदि॒त्या अध्व॑नो॒ रद॑न्ति मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णः स॒जोषा॑: ॥ ४ ॥

५०७ इ॒मे चे॒तारो॒ अनृ॑तस्य॒ भूरे॑र्मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णो॒ हि सन्ति॑ ।
इ॒म ऋ॒तस्य॑ वावृधुर्दुरो॒णे श॒ग्मास॑: पु॒त्रा अदि॑ते॒रद॑ब्धाः ॥ ५ ॥

५०८ इ॒मे मि॒त्रो वरु॑णो दू॒ळभा॑सो ऽचेत॒सं चि॑च्चितयन्ति॒ दक्षै॑: ।
अपि॒ क्रतुं॑ सु॒चेत॑सं॒ वत॑न्तस्ति॒रश्चि॒दंह॑: सु॒पथा॑ नयन्ति ॥ ६ ॥

अर्थ— [५०५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण देवो ! (सधस्थात् सप्त हरितः अयुक्त) साथ साथ देवोंके रहनेके स्थानसे–अन्तरिक्षसे जानेके लिये सात घोडियोंको सूर्यने अपने रथको जोता है। (याः घृताची ईं सूर्यं वहन्ति) जो जलको देती हुई सूर्यको ले चलती हैं। (यः युवाकुः धामानि जनिमानि) जो तुम दोनोंको संतुष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला सब स्थानों और जन्मोंको (यूथा इव) गोपालकके समान (संचष्टे) सम्यक् रीतिसे देखता है ॥ ३ ॥

[५०६] (वां पृक्षासः मधुमन्तः उत् अस्थुः) आपके लिये पुरोडाश आदि अन्न मीठे बनाये हैं। (सूर्यः शुक्रं अर्णः अरुहत्) सूर्य शुभ्र प्रकाशके साथ आकाशमें चढा है। (यस्मै आदित्याः अध्वनः रदन्ति) जिस सूर्यके लिये आदित्य मार्गको बनाते हैं। (मित्रः अर्यमा वरुणः सजोषाः) मित्र, वरुण, अर्यमा ये वे परस्पर प्रीति करनेवाले आदित्य हैं ॥ ४ ॥

[५०७] (इमे भूरेः अनृतस्य चेतारः सन्ति) ये आदित्य असत्य मार्गके विनाशक हैं। (इमे मित्रः वरुणः अर्यमा ऋतस्य दुरोणे वावृधुः) ये मित्र वरुण अर्यमा आदि आदित्य सत्यके स्थानमें बढनेवाले हैं। ये (अदितेः पुत्राः अदब्धाः शग्मासः) अदितिके पुत्र किसीसे न दब जानेवाले और सुख बढानेवाले हैं ॥ ५ ॥

[५०८] (इमे मित्रः वरुणः) ये मित्र, वरुण, अर्यमा आदि आदित्य स्वयं (दूळभासः) किसीसे दबाये जानेवाले नहीं हैं। (अचेतसं दक्षैः चित् चितयन्ति) अज्ञानीको भी अपने सामर्थ्योंसे ज्ञानी बनाते हैं। और (सुचेतसं क्रतुं अपि वतन्तः) उत्तम बुद्धिमान् और महान् पुरुषार्थ करनेवाले उद्यमी पुरुषको प्रगति संपन्न करते हैं, (अंहः चित् तिरः) पापीको पीछे गिराते और सुकर्म कर्ताको (सुपथा नयन्ति) उत्तम मार्गसे उन्नतिको पहुंचाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— सूर्यके रथमें सात घोडे जुडे हुए हैं। सूर्य किरणमें सात रंग हैं। अथवा आत्मा सूर्य है उसका रथ शरीर है। इसमें इन्द्रियरूपी घोडे जुडे हुए हैं, दो आंखें, दो नाक, दो कान तथा एक वाणी ये सात घोडे इस रथमें हैं। यह शरीरही सधस्थ है। सब देवोंके मिलकर रहनेका स्थान है ॥ ३ ॥

सूर्य उदय होकर जब शुभ्र प्रकाशसे युक्त होकर आकाशमें चढता है तब आदित्य इस सूर्यके लिए मार्ग बनाते हैं। आदित्य बारह मास हैं, उन्हींके नाम मित्र, वरुण, अर्यमा आदि हैं। इन महीनोंमें दक्षिणायन और उत्तरायणके अनुसार सूर्यका मार्ग बदलता रहता है। इसीलिए इन आदित्योंको सूर्यके मार्गको बनानेवाला कहा गया है ॥ ४ ॥

आदित्य असत्य मार्गके विनाशक हैं। क्योंकि सभी देव सत्यके स्थानमें वृद्धिको प्राप्त होते हैं। अतः असत्य मार्ग पर चलकर देवोंकी कृपा नहीं प्राप्त की जा सकती। तथा जो सत्यशील इन देवोंकी कृपा प्राप्त कर लेता है, वह अ–दिति अर्थात् अमृतका पुत्र होकर किसीसे न दबनेवाला तथा सुखको बढानेवाला होता है ॥ ५ ॥

वीरोंको चाहिए कि वे कभी किसी शत्रुके दबावसे न दबें। अज्ञानियोंको अनेक उपायोंसे ज्ञानसम्पन्न करें और सुस्त तथा आलसियोंको पुरुषार्थी और प्रयत्नशील बनायें। पापियोंको पीछे धकेल दें और पुण्यशालियोंको उन्नत करें ॥ ६ ॥

५०९ इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥ ७ ॥

५१० यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥

५११ अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥ ९ ॥

५१२ सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥ १० ॥

अर्थ— [५०९] (इमे दिवः पृथिव्याः) ये द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले वीर (अनिमिषा अचेतसं चिकित्वांसः) विलंब न करते हुए अज्ञानीको ज्ञानवान् बनाते हैं और (नयंति) शुभ मार्गसे ले जाते हैं । शुभ कर्ममें प्रवृत्त करते हैं । (प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति) निम्न प्रदेशमें भी नदियां गहरी होती हैं । संकटके समयमें भी अधिक कष्ट होते हैं । अतः वे वीर (अस्य विष्पितस्य नः पारं पर्षन्) इस व्यापक कर्मके पार हमें ले जांय इसकी उत्तम समाप्ति करनेमें हमारे सहायक हों ॥ ७ ॥

[५१०] (यत् गोपावत् भद्रं शर्म) जो संरक्षण करनेवाला कल्याणपूर्वक सुख (अदितिः मित्रः वरुणः) अदीन मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव (सुदासे यच्छन्ति) उत्तम दान करनेवालेके लिये देते हैं, (तस्मिन्) उस कर्ममें (तोकं तनयं आदधानाः) बालबच्चोंको हम धारण करते हैं, हम उस कर्ममें पुत्रोंको प्रेरित करते हैं । हम (तुरासः) त्वरासे काम करनेके समय (देवहेळनं मा कर्म) देवोंको क्रोध आने योग्य कर्म हम कभी न करें ॥ ८ ॥

[५११] (होत्राभिः वेदिं अव यजेत) जो वाणीसे वेदीपर बैठकर भी स्तुति न करे, यजन न करे, (सः) वह (वरुणध्रुतः काः रिपः चित्) वरुण देवसे हिंसित होकर किनकिन दुर्गतियोंको प्राप्त होता है ? अर्थात् उसकी बुरी अवस्था हो जाती है । (अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु) अर्यमा शत्रुओंसे हमें दूर रखे । हे (वृषणौ) बलवान् मित्रावरुणो ! (सुदासे उरुं लोकं) उत्तम दान करनेवालेके लिये उत्तम स्थान दो । उसकी योग्यता उच्च कर दो ॥ ९ ॥

[५१२] (एषां समृतिः सस्वः चित् हि त्वेषी) इन वीरोंकी संगति गुप्त रहती है और तेजस्वी भी होती है । ये (अपीच्येन सहसा सहन्ते) गुप्त बलसे शत्रुको पराभूत करते हैं । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (युष्मत् भिया रेजमानः) तुम्हारे भयसे शत्रु कांपने लगते हैं । (दक्षस्य महिना चित् नः मृळत) अपने बलकी महिमासे हमें सुखी करो ॥ १० ॥

भावार्थ— वीर ऐसे हों कि जो द्युलोक और पृथ्वीलोकके ज्ञानोंसे परिचित हों । ऐसे वीर ही ज्ञानहीनोंको ज्ञानी बना सकते हैं और शुभ मार्गोंसे ले जाते हैं । जिससे द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोकके अन्दर स्थित पदार्थोंकी विद्या जानी जाती है, वह विद्या है तथा अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत सम्बन्धी जो कर्म करने होते हैं, वह कर्ममार्ग है । ज्ञानसेही कर्ममार्गमें प्रवृत्ति होती है । इस कर्म मार्गमें अनेक तरहके संकट आवें तो भी उनसे डरना नहीं चाहिए ॥ ७ ॥

मनुष्य ऐसा सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करें कि जिससे अपनी सुरक्षा हो, कल्याण हो और उन्नति हो । परन्तु कभी विपरीत परिणाम न हो । ऐसे शुभ कर्मोंमें अपने बालबच्चोंकोभी प्रवीण बनावें । कामोंको शीघ्रतासे करने परभी ऐसा कोई कुकर्म मनुष्य न करे कि जिससे ज्ञानीजन रुष्ट हों ॥ ८ ॥

जो यज्ञ नहीं करता, हवन या परमात्माकी स्तुति नहीं करता, उसकी दुर्गति होती है, वह वरुण देवसे हिंसित होकर अनेक दुर्गतियोंको प्राप्त होता है । पर जो यज्ञ करता है, ऐसे सत्पुरुषोंसे अर्यमा शत्रुओंको दूर रखता है तथा उन्हें उत्तम स्थान प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

सज्जन वीरोंके साथ होनेवाली मैत्री गुप्त रहती है, स्थायी रहती है और तेजस्वी भी होती है । ऐसे ही वीर अपने बलकी महिमासे सबको सुखी करें । अपनी शक्तिका उपयोग करके सबकी सुरक्षा करें ॥ १० ॥

५१३ यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥ ११ ॥
५१४ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

[६१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५१५ उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥ १ ॥
५१६ प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत् क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥ २ ॥

अर्थ— [५१३] (वाजस्य सातौ) अन्नके दानके समय तथा (परमस्य रायः) श्रेष्ठ धनका दान करनेके समय (यः ब्रह्मणे सुमतिं आ यजाते) जो स्तोत्रपाठमें अपनी बुद्धिको लगाता है । उस (मन्युं) मननीय स्तोत्रका (अर्यः मघवानः) कर्म प्रेरक धनवान मित्रादि देवगण (सीक्षन्त) सेवन करते, श्रवण करते हैं । और उनके (उरु क्षयाय सुधातु चक्रिरे) विशाल निवासके लिये उत्तम स्थान बनाते हैं ॥ ११ ॥

[५१४] हे (देवा) मित्रावरुण देवो ! (इयं पुरोहितिः) यह उपासना (यज्ञेषु युवभ्यां अकारि) यज्ञोंमें आप दोनोंके लिये की है । (विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं) सब आपत्तियोंको हमसे दूर करो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) और तुम कल्याण साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित करो ॥ १२ ॥

[६१]

[५१५] हे (वरुणा) मित्र और वरुण ! (देवयोः वां चक्षुः) आप दोनों देवोंकी आंख जैसा यह (सूर्यः सुप्रतीकं ततन्वान्) सूर्य उत्तम प्रकाशको फैलाता हुआ (उत् एति) उदयको प्राप्त होता है । (यः विश्वा भुवनानि अभि चष्टे) जो सब भुवनोंको देखता है । (सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत) वह मनुष्योंमें रहे मनके भावको जानता है ॥ १ ॥

[५१६] हे मित्रावरुणो ! (वां मन्मानि) आपके मननीय स्तोत्र (सः ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) वह सत्यनिष्ठ अति विद्वान् बहुश्रुत ज्ञानी (प्र इयर्ति) बोलता है । प्रेरित करता है । फैलाता है । (यस्य ब्रह्माणि) जिसके ज्ञानस्तोत्रोंकी (सुक्रतू अवाथः) उत्तम कर्म करनेवाले तुम दोनों सुरक्षा करते हो । तथा (यत्) जिन कर्मोंको (क्रत्वा) करके (शरदः आ पृणैथे) अनेक संवत्सरोंतक परिपूर्णता प्राप्त करते रहते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेके समय जो भगवान्‌की स्तुतिमें अपने मनको लगाता है, उसकी स्तुतिको सब देवगण सुनते हैं । जो लोग प्रभुकी उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि शुभ कर्ममें प्रेरित होती है, और उससे उनका निवास सुखमय होता है ॥ ११ ॥

हे देवो ! मैं आपकी ही उपासना करता हूँ, इसलिए आप हमें सब आपत्तियोंसे दूर रखो, तथा अपने कल्याणमय साधनोंसे हमारी सदा सुरक्षा किया करो ॥ १२ ॥

मित्र और वरुण अर्थात् द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके लिए आंख यह सूर्य है अर्थात् यह सूर्य द्यु और पृथ्वीके आंखके समान है । वह सूर्य सब भुवनोंका निरीक्षण करता है । इतना ही नहीं, मनुष्य जो कुछ अपने अन्तःकरणमें सोचता या विचारता है, उसे भी यह सूर्य जानता है ॥ १ ॥

मनुष्य सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत और विशेष ज्ञानसंपन्न बने । उत्तम कर्म करें और अपने राष्ट्रीय महाकार्योंका संरक्षण करें । इन कार्योंके अनुसार शुभ कर्म करके सैंकडों वर्षोंतक अपने आपको पूर्ण बनाते जावें ॥ २ ॥

५१७ प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥ ३ ॥

५१८ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥

५१९ अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५१७] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (उरोः पृथिव्याः) इस अति विस्तीर्ण पृथिवीके चारों ओर पहुंचे हो और (ऋष्वात् बृहतः दिवः प्र) अपनी गतिसे बडे द्युलोकतक भी पहुंचे हो, इनसे तुम बडे हो। हे (सु-दानू) उत्तम दान देनेवाले वीर ! तुम (ओषधीषु विक्षु स्पशः दधाते) औषधियों और प्रजाओंमें रूपका धारण करते हो, उनमें सौंदर्य रखते हो । और (ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा) सत्य मार्गसे जानेवालोंकी आंखें बंद न करते हुए अर्थात् अविश्रांत रीतिसे सतत संरक्षण करते हो ॥ ३ ॥

[५१८] (मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस) मित्र और वरुणके तेजस्वी स्थानका वर्णन करो । इनका (शुष्मः) बल (महित्वा रोदसी बद्बधे) अपने महत्त्वसे द्युलोक और पृथिवीको बांधता है, अपने स्थानमें रख देता है । (अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्) यज्ञ न करनेवालोंके महिने पुत्ररहित होकर चले जांय । (यज्ञ-मन्मा वृजनं प्र तिराते) यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा होता है वे अपने बलको विशेष बढाते रहते हैं ॥ ४ ॥

[५१९] हे (अमूरा विश्वा वृषणौ) विशेष ज्ञानी व्यापक और बलवान् देवो ! (वां इमा) आपके ये स्तोत्र हैं, (यासु चित्रं न ददृशे) जिनमें आश्चर्य नहीं दीखता और (न यक्षं) न इनमें तुम्हारा सत्कार दीखता है । क्योंकि यह वर्णन यथार्थसे भी कम हो रहा है, तुम्हारी महिमा इनसे बहुत अधिक है । (जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते) जनोंके द्रोही शत्रुही असत्य प्रशंसा करते हैं । (वां निण्यानि अचिते न अभूवन्) आपके गुप्त पराक्रम भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते । वे भी ज्ञान बढाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण ये दोनों अपनी महिमाके कारण इस विशाल पृथ्वी और द्युलोकसे भी बडे हैं । इन्हीं देवोंके कारण औषधियों और मनुष्योंमें रसका निर्माण होकर वे स्वरूपवान् बनते हैं । ये दोनों देव सदा सत्यके मार्गसे चलते हुए सदाचारियोंकी सतत रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहार करनेवालोंकी स्तुति या प्रशंसा करनी चाहिए । जो सबसे मित्रवत् व्यवहार करते हैं, उनका हृदय पृथ्वीसे भी विशाल होता है, और सर्वत्र उनका यश फैलता है । जो यज्ञ अर्थात् प्रजाओंमें संघटनका काम न करके विघटनका काम करते हैं,वे हीन अवस्थामें गिरते हैं । पर यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा रहता है, वे अपना बल बढाते हैं ॥ ४ ॥

मनुष्य अपना ज्ञान बढावें, बल बढावें और सर्वत्र जाकर निरीक्षण करें, सुरक्षा करें और वहां ज्ञानका प्रचार करें । वे ऐसे महत्त्वपूर्ण काम करें, कि लोग उनकी प्रशंसा करते हुए तृप्त न हों । जो असत्यकी प्रशंसा करते हैं, वे जनताके शत्रु हैं । असत्यकी प्रशंसा प्रजाके प्रति द्रोह है । इसलिए मनुष्य कोई भी ऐसा कर्म न करे, कि जिससे देशमें असत्य या अज्ञानकी वृद्धि हो और सत्य या ज्ञानका क्षय हो ॥ ५ ॥

५२० ममुं वां यज्ञं महयं नमोभिर्- हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६ ॥
५२१ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[६२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १-३ सूर्यः; ४-६ मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५२२ उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥
५२३ स सूर्य प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचो ऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥ २ ॥

अर्थ— [५२०] हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (त्वां यज्ञं नमोभिः सं महयं उ) आपके यज्ञको नमस्कारोंसे हम महत्त्व बढाते हैं। इसलिये (सबाधः वां हुवे) बाधित होकर आपको मैं बुलाता हूं। बाधा दूर करनेके लिये बुलाता हूं। (वां ऋचसे) अपनी प्रशंसा करनेके लिये (इमानि नवानि मन्मानि कृतानि) ये नवीन मननीय स्तोत्र किये हैं। ये (ब्रह्म जुजुषन्) स्तोत्र आपको प्रसन्न करें ॥ ६ ॥

[५२१] हे (देवा) मित्र और वरुण देवो ! (इयं पुरोहितिः) यह उपासना (यज्ञेषु युवभ्यां अकारि) यज्ञोंमें आप दोनोंके लिए की है। (विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं) सब आपत्तियोंको हमसे दूर करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणमय साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित रखो ॥ ७ ॥

[६२]

[५२२] (सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) यह सूर्य बडे विशाल तेजोंका, ऊपर होता हुआ, आश्रय करता है। (मानुषाणां विश्वा जनिम) मनुष्योंके सब जीवनोंको वह देखता है। (दिवा रोचमानः समः ददृशे) दिनके समय प्रकाशता हुआ एक जैसा सबको दीखता है। वह सूर्य (क्रत्वा) सबका निर्माता (कृतः) परमात्माने स्वयं निर्माण किया है, वह (कर्तृभिः सुकृतः भूत्) यज्ञ कर्ताओंद्वारा सत्कारित हुआ है ॥ १ ॥

[५२३] हे (सूर्य) सूर्य ! (सः नः प्रति पुरः) वह तुम हमारे सामने (एभिः स्तोमेभिः) इन स्तोत्रोंसे तथा (एतशेभिः एवैः) गमनशील अश्वोंसे (उत् गाः) ऊपर चढ और (नः) हमारे संबन्धमें (मित्राय वरुणाय अर्यम्णे अग्नये च) मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्निके पास (अनागसः प्र वोचः) निष्पाप भावकी घोषणा करो ॥ २ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण इस विश्वका रचकर इसे धारण भी कर रहे हैं। यह एक शाश्वत सत्य है। पर कई अज्ञानी इस शाश्वत सत्यसे भी अनभिज्ञ रहते हैं, ऐसे अज्ञानियोंको इस शाश्वत सत्यसे परिचित कराना ज्ञानियोंका कार्य है। ज्ञानीजन लोगोंको प्रेरणा दें, ताकि वे लोग यज्ञकर्म करके महत्त्वको प्राप्त करें। इस महत्त्व प्राप्तिके मार्गमें कोई संकट आए तो, प्रभुकी उपासना करके उन संकटोंको दूर करना चाहिए। इस तरहकी उपासनासे प्रभु प्रसन्न होते हैं और उपासककी उन्नति होती है ॥ ६ ॥

हे देवो ! मैं आपकी ही उपासना करता हूं, इसलिए आप हमें सब आपत्तियोंसे दूर रखो, तथा अपने कल्याणमय साधनोंसे हमारी सदा सुरक्षा किया करो ॥ ७ ॥

मनुष्यका उदय होनेके बाद उसका तेज बढता रहे। उसमें श्रेष्ठ और कनिष्ठकी परीक्षा करनेकी शक्ति हो। उसका बर्ताव सबके साथ समान हो। वह बडे बडे पुरुषार्थ करनेवाला बने और अनेक कुशल पुरुषोंके साथ रहकर बडे विशाल कर्म उत्तम प्रकारसे निभानेवाला बने ॥ १ ॥

हे सूर्य ! तू उदय होकर अपने वेगवान् अश्वोंसे ऊपर चढ, तथा हमारे उत्तम कर्मोंको देखकर हमारी निरपराधिताको देवोंके सामने विख्यात कर ॥ २ ॥

५२४ वि नः सहस्रं शुरुधो रद न्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्क मा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥ ३ ॥
५२५ द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायो र्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥ ४ ॥
५२६ प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५ ॥
५२७ नू मित्रो वरुणो अर्यमा न स्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [५२४] (शुरुधः ऋतावानः) शोकके दुःखको दूर करनेवाले सत्यनिष्ठ (वरुणः मित्रः अग्निः) वरुण, मित्र और अग्नि ये देव (नः सहस्र विरदन्तु) हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । तथा (चन्द्राः नः उपमं अर्क आयच्छन्तु) ये आल्हाददायक देव हमें स्तुत्य और प्रशंसनीय धन दें । तथा (स्तवानाः नः कामं पूपुरन्तु) स्तुति करनेपर हमारी कामनाओंको पूर्ण करें ॥ ३ ॥

[५२५] हे (अदिते ऋष्वे द्यावाभूमी) अखंडनीय और विशाल द्यु और भूलोको ! (नः त्रासीथां) हमारा संरक्षण करो । (ये सुजनिमानः वां जज्ञुः) जो उत्तम कुलीन हम हैं वे तुम्हें जानते हैं । हम (वरुणस्य हेळे मा भूम) वरुणके क्रोधमें न जांय तथा (वायोः मा) वायुके क्रोधमें न जांय और (नृणां) मनुष्योंके क्रोधमें भी हम न जांय, (प्रियतमस्य मित्रस्य मा) प्रिय मित्रके क्रोधमें न जांय । अर्थात् इनका क्रोध होनेयोग्य बुरा आचरण हमसे न हो ॥ ४ ॥

[५२६] हे (मित्रावरुणा) मित्रावरुणो ! आप अपने (बाहवा प्र सिसृतं) बाहुओंको फैलाओ । (नः जीवसे) हमारे दीर्घ जीवनके लिये (नः गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं) हमारी गायें जानेके मार्गको जलसे सिंचन करो । (नः जने आ श्रवयतं) हमें लोगोंमें कीर्तिमान् बनाओ । हे (युवाना) तरुणो ! (मे इमा हवा श्रुतं) मेरे इन स्तोत्रोंको सुनो ॥ ५ ॥

[५२७] (मित्रः वरुणः अर्यमा) मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव (नु नः त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु) हमारे पुत्र- पौत्रोंके लिये योग्य श्रेष्ठ धन दें । (नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु) हमारे सब जानेके मार्ग हमारे लिये सुगम हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सभी देव शोकके कारणको दूर करनेवाले, दुःखको दूर करनेवाले तथा सत्यके मार्गसे जानेवाले हैं । इसी तरह मनुष्य भी देवोंके सदृश बनकर लोगोंके दुःखोंको दूर करनेका कार्य करें और सत्यमार्गसे जाएं । ऐसे मनुष्योंको देवगण आनन्ददायक और उत्तम धन देते हैं ॥ ३ ॥

हे द्युलोक तथा भूलोक ! तुम दोनों हमारी रक्षा करो । हम उत्तम कुलमें जन्म लिए हुए हैं, इसलिए हम पर वरुण, वायु और मनुष्य कभी क्रोध न करें, अपितु हम पर सदा प्रसन्न रहें । हमारा प्रिय मित्र भी हमपर कभी क्रोध न करे । अर्थात् हम कभी कोई ऐसा आचरण न करें कि जिससे इन्हें हमपर क्रोध करना पडे ॥ ४ ॥

मनुष्य बहुत सा दान देते रहें । अपने दीर्घजीवनके लिए गौओंको उत्तम जल और हरी घास देते रहें । गौओंका पालन करके गोदुग्ध और घृतका सेवन करें तथा ऐसा उत्तम आचरण करें कि जिससे जगत्में यश फैले ॥ ५ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव हमारे पुत्र पौत्रोंके लिए उत्तम धन दें । हमारे जानेके सभी मार्ग सुगम हों, तथा ये अपने कल्याणकारी साधनोंसे सदा हमारी रक्षा करते रहें ॥ ६ ॥

[६३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता - १-३ सूर्यः, ४ सूर्यो मित्रावरुणौ, ६ मित्रावरुणौ अर्यमा च । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५२८ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि ॥ १ ॥

५२९ उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥

५३० विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥ ३ ॥

---

[६३]

अर्थ— [५२८] (सूर्यः सुभगः) यह सूर्य उत्तम भाग्यसे संपन्न है (विश्वचक्षाः) सबका निरीक्षण करनेवाला (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्योंके लिए समान (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः देवः) मित्र और वरुणकी आंख जैसा यह देव (यः चर्म इव तमांसि समविव्यक्) जो चमडेकी तरह अन्धकारोंको समेटता है वह (उत् उ एति) उदय हो रहा है ॥ १ ॥

[५२९] (जनानां प्रसविता) सब लोगोंका प्रेरक (महान् केतुः) बडे ध्वजके समान सबको ज्ञान देनेवाला (अर्णवः) जीवन दाता (सूर्यस्य) यह सूर्य (उत् उ एति) उदयको प्राप्त होता है । (समानं चक्रं परि आविवृत्सन्) सबके लिये एकही कालचक्रको घुमाता हुआ, (यत् धूर्षु युक्तः एतशः वहति) जिस चक्रको धुरामें जोता हुआ अश्व चलाता है ॥ २ ॥

[५३०] यह (विभ्राजमानः उषसां उपस्थात्) विशेष प्रकाशता हुआ सूर्य उषाओंके सामने (रेभैः अनुमद्यमानः उत् एति) स्तोत्र-पाठकोंके स्तोत्रोंसे आनन्द प्रसन्न होता हुआ उदयको प्राप्त होता है । (एषः देवः सविता मे चच्छन्द) यह सविता देव मेरी कामनाकी पूर्ति करता है । (यः समानं धाम न प्रमिनाति) जो अपने समान तेजस्वी स्थानको संकुचित नहीं करता ॥ ३ ॥

भावार्थ— सूर्य भाग्यवान् और ऐश्वर्यवान् है । वह सबका निरीक्षक है, सब मनुष्योंके साथ समान रीतिसे बर्ताव करनेवाला है । मित्रावरुणकी यह आंख जैसा है । इस सूर्य देवके उदय होते ही अन्धकार सिमट जाता है ॥ १ ॥

यह सूर्य देव सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है । सूर्योदय होते ही ईश्वरस्तुति, प्रार्थना, उपासना, यज्ञ याग आदि अनेक तरहके सत्कर्म शुरु हो जाते हैं । अन्यान्य विद्याध्ययन आदिक कर्म भी सूर्योदयसे ही शुरु हो जाते हैं । इसलिए सूर्य सत्कर्मोंका सूचक एक महान् ध्वज है । सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा जीवनको पृथ्वीपर भेजता है, इसलिए वह जीवननिधि है । वह कालचक्रका प्रवर्तक है ॥ २ ॥

सूर्योदयसे पूर्व उषःकालमें उपासक लोग वैदिक स्तोत्रोंका गान करते हैं, उसके बाद सूर्य उदय होता है । उदयके समयका सूर्य सविता कहलाता है । यह सविता देव सबको आनन्द प्रसन्न करता है । इसका स्थान सब मानवोंके लिये समान है । यह किसीका पक्षपात नहीं करता ॥ ३ ॥

५३१ दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ ४ ॥
५३२ यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।
प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥ ५ ॥
५३३ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[६४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५३४ दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥ १ ॥

अर्थ— [५३१] यह सूर्य (दिवः रुक्मः उरुचक्षाः) द्युलोकको शोभा देनेवाला, विशेष तेजस्वी (दूरे अर्थः) दूर विराजमान, (तरणिः भ्राजमानः) तारणकर्ता और तेजस्वी (उत् एति) उदित होता है । (नूनं) यह निःसंदेह है कि (सूर्येण प्रसूताः जनाः) सूर्यसे प्रेरित हुए लोग अपने प्राप्तव्य (अर्थानि अयन् अपांसि कृणवन्) अर्थोंको प्राप्त करके उनसे कर्मोंको करते हैं ॥ ४ ॥

[५३२] (यत्र अमृताः अस्मै गातुं चक्रुः) जिस स्थानमें देवोंने इस सूर्यके लिये मार्ग बनाया है। वह (पाथः) मार्ग (श्येनः न दीयन्) शीघ्रगामी श्येनकी तरह अन्तरिक्षमेंसे (अनु एति) जाता है । हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण ! (सूरे उदिते सति) सूर्यका उदय होनेपर (वां) तुम्हारी (नमोभिः उत हव्यैः) नमस्कारोंसे और हवन द्रव्योंसे (प्रति विधेम) हम परिचर्या करेंगे ॥ ५ ॥

[५३३] (मित्रः वरुणः अर्यमा) मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव (नु नः त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु) हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिए श्रेष्ठ धन देवें । (नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु) हमारे सब जानेके मार्ग हमारे लिए सुगम हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ६ ॥

[६४]

[५३४] (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) तुम दोनों द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीमें रहते हो, (वां घृतस्य निर्णिजः प्र ददीरन्) तुम दोनों जलके रूपको बनाते हो । जल तुमने बनाया है । (नः हव्यं) हमारे हव्यका (मित्रः) मित्र (सुजातः अर्यमा) उत्तम कुलमें जन्मा अर्यमा और (सुक्षत्रः राजा वरुणः जुषन्त) उत्तम क्षात्र बलसे युक्त राजा वरुण सेवन करें ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सूर्यदेव द्युलोकका अलंकार है । यह दूर रहकर भी सबको जीवन प्रदान करता है । सूर्यसे प्रेरित होकर लोग अपने प्राप्तव्य अर्थोंको प्राप्त करके उनसे सत्कर्म करते हैं ॥ ४ ॥

द्युलोकमें देवोंने इस सूर्यके लिए मार्ग बनाया, उन्हीं मार्गों पर वह सूर्य अनन्तकालसे चला आ रहा है । इस सूर्यदेवके उदय होने पर मित्र और वरुणकी स्तुति की जाती है ॥ ५ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव हमारे पुत्रपौत्रोंके लिए उत्तम धन दें । हमारे जानेके सभी मार्ग सुगम हों तथा ये अपने कल्याणकारी साधनोंसे सदा हमारी रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥

ये मित्र तथा वरुण अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी पर रहते हैं और तीनों लोकोंमें व्यापते हैं । ये दोनों देव जलको रूपवान् बनाते हैं । इन्हीं देवोंके कारण जल नेत्रोंके कारण दिखाई देता है । जल पहले गैस या वायुरूप था । मित्र और वरुण ये दो वायु हैं, वे अग्निके समक्ष मिलते हैं और जलको प्रकट करते हैं ॥ १ ॥

५३५ आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टि- मव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥
५३६ मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद् यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥
५३७ यो वां गर्तं मनसा तक्षदेत- मूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥ ४ ॥
५३८ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी- र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [५३५] हे (महः ऋतस्य गोपा राजाना) बडे सत्यके पालक राजा (सिन्धुपती क्षत्रिया) नदियोंके पालनकर्ता और क्षत्रियो ! (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ । हे (जीरदानू मित्रावरुणा) शीघ्र दान देनेवाले मित्र वरुणो ! तुम (नः इळां) हमें अन्न दो (उत वृष्टिं । और वृष्टिको भी (दिवः अव इन्वतं) द्युलोकसे नीचे प्रेरित करो ॥ २ ॥

[५३६] (मित्रः वरुणः) मित्र, वरुण और (अर्यः) अर्यमा ये तीनों देव (नः तत्) हमें वहां सुखके स्थानमें (साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु) उत्तम साधनोंसे युक्त मार्गोंसे पहुंचा दें । तथा (नः सुदासे) हमारा उत्तम दाताके पास (तथा ब्रवत्) वैसा वर्णन करें कि (यथा आत् अरिः) जैसा श्रेष्ठ पुरुष करता है । (देव-गोपाः इषा सह मदेम) देवोंसे सुरक्षित हुए हम अन्नके द्वारा हम सब साथ साथ रहकर आनंदित होते रहेंगे ॥ ३ ॥

[५३७] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (यः वां एत गर्तं मनसा तक्षत्) जो आपके इस रथको मनसे निर्माण करता है, वह (ऊर्ध्वां धीतिं कृणवत्) उच्च धारण शक्ति निर्माण करता और (धारयत् च) उसका धारण भी करता है । हे (राजाना राजाओ ! (घृतेन उक्षेथां) जलसे सिंचन करो (ता) वे आप दोनों (सुक्षितीः तर्पयेथां) सुन्दर रहनेके स्थान देकर सबको प्रसन्न करो ॥ ४ ॥

[५३८] हे (मित्र वरुण) मित्र वरुण ! (तुभ्यं) आपके लिये तथा (वायवे) वायुके लिए (शुक्रः सोमः न एषः स्तोमः) बलवर्धक सोमरसके समान आनन्द बढानेवाला यह स्तोत्र मैंने (अयामि) किया है । (धियः अविष्टं) हमारी बुद्धियों तथा हमारे कर्मोंका संरक्षण करो , (पुरंधीः जिगृतं) नगर रक्षण करनेकी बुद्धिकी जागृति करो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पातं) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— राजा ऋत अर्थात् सत्यका रक्षक हो, वह शुभ कर्मोंका संरक्षक हो, वह नदियोंका पालक हो । नदियोंके जलका संरक्षण करे और उस जलका उपयोग वह प्रजाजनोंकी समृद्धिके लिए करे । वह राजा क्षत्रिय अर्थात् प्रजाओंकी दुःखसे रक्षा करनेवाला हो ॥ २ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव हमें उत्तम साधनोंसे या मार्गोंसे सुखके स्थानमें पहुंचावें । देवोंकी कृपासे हम सुरक्षित होकर एक साथ रहें और समृद्ध हों ॥ ३ ॥

हे मित्र और वरुण ! जो मनुष्य आपके गमन साधनोंको मन लगाकर परिष्कृत करता है, उस मनुष्यकी धारणशक्ति उत्तम होती है । ऐसे मनुष्यको देवगण हर तरहसे समृद्ध बनाते है ॥ ४ ॥

मित्र, वरुण और वायुके लिए मैंने यह आनन्दवर्धक स्तोत्र बनाये हैं । ये सभी देव हमारी बुद्धियों तथा कर्मोंका संरक्षण करें तथा हमारी प्रज्ञा जागृत हो ॥ ५ ॥

[६५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५३९ प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते सू॒क्तै- र्मि॒त्रं हु॑वे॒ वरु॑णं पू॒तद॑क्षम् ।
यया॑रसु॒र्य१॒॑मक्षि॑तं॒ ज्येष्ठं॒ विश्व॑स्य॒ याम॑न्ना॒चिता॑ जिग॒त्नु ॥ १ ॥

५४० ता हि दे॒वाना॒मसु॑रा॒ ताव॒र्या ता नः॑ क्षि॒तीः क॑रतमू॒र्जय॑न्तीः
अ॒श्याम॑ मित्रावरुणा व॒यं वां॒ द्यावा॑ च॒ यत्र॑ पी॒पय॒न्नहा॑ च ॥ २ ॥

५४१ ता भूरि॑पाशा॒वनृ॑तस्य॒ सेतू॑ दुर॒त्येतू॑ रि॒पवे॒ मर्त्या॑य ।
ऋ॒तस्य॑ मित्रावरुणा प॒था वा॑- म॒पो न ना॒वा दु॑रि॒ता त॑रेम ॥ ३ ॥

५४२ आ नो॑ मित्रावरुणा ह॒व्यजु॑ष्टिं घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षत॒मिळा॑भिः ।
प्रति॑ वा॒मत्र॒ वर॒मा जना॑य पृणी॒तमु॒द्नो दि॒व्यस्य॒ चारोः॑ ॥ ४ ॥

---

[६५]

अर्थ— [५३९] (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय (मित्रं पूतदक्षं वरुणं) मित्र तथा पवित्र बलवाले वरुणकी (वां सूक्तैः प्रति हुवे) आपके सूक्तोंसे उपासना करता हूं । (ययोः अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं) जिनका अक्षय और श्रेष्ठ बल (आचिता यामन्) प्राप्त होनेपर वह (विश्वस्य जिगत्नु) सबका विजय करनेवाला होता है ॥१॥

[५४०] (ता हि देवानां असुराः) वे दोनों देवोंमें अधिक बलवाले हैं । (तौ अर्यौ) वे दोनों श्रेष्ठ हैं । (ता नः क्षितीः ऊर्जयन्तीः करतं) वे दोनों हमारी प्रजाको बढाते हैं । हे मित्र और वरुण ! (वयं वां अश्याम) हम आप दोनोंको प्राप्त करते हैं । (यत्र द्यावा च) जिससे द्यु और पृथिवी (अहा च) दिन रात (पीपयन्) हमारी वृद्धि करते रहें ॥ २ ॥

[५४१] (तौ भूरिपाशौ) वे दोनों वीर बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेवाले हैं । (अनृतस्य सेतू) सेतु जैसे असत्यके पार करनेवाले हैं । वे (मर्त्याय रिपवे दुरत्येतू) मर्त्य शत्रुके लिये आक्रमण करनेके लिये अशक्य हैं । हे (मित्रावरुणा) मित्रा वरुणो ! हम (वां ऋतस्य पथा) आपके सत्य मार्गसे (नावा अपः न) नौकासे नदियोंके पार होनेके समान (दुरिता तरेम) दुःखोंको पार करेंगे ॥ ३ ॥

[५४२] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (नः हव्यजुष्टि आ) हमारे हवनके स्थानमें आओ । (इळाभिः घृतैः गव्यूतिं उक्षतं) अन्नों और जलोंसे हमारी गो चरनेवाली भूमिका सिंचन करो । (वां अत्र वरं प्रति आ) आपको यहीं श्रेष्ठ हवि मिलेगा । (दिव्यस्य चारोः उद्नः जनाय पृणीतं) स्वर्गीय रमणीय जल लोगोंके लिये भरपूर दो ॥ ४ ॥

भावार्थ— सूर्यके उदय होनेपर पवित्र बलवाले मित्र तथा देवकी मैं इन स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूं । इन देवोंके अक्षय और श्रेष्ठ बलकी सहायतासे मनुष्य सबको जीतनेवाला होता है ॥ १ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव इतर देवोंमें सर्वाधिक बलवाले हैं । वे दोनोंही श्रेष्ठ हैं, वे दोनों हमारी प्रजाओंको बढाते हैं । आपकी कृपा हम पर हो तो द्यु तथा पृथ्वीलोक दिनरात हमें समृद्ध करते रहें ॥ २ ॥

ये दोनों मित्र और वरुण अनेक तरहके पाशोंसे शत्रुओंको बांधनेवाले हैं । पुल जिस प्रकार लोगोंको असत्यके पार पहुंचाता है, उसी तरह ये देव लोगोंको असत्यके पार पहुंचाते हैं । हे मित्र और वरुण ! हम आपके सत्यमार्ग पर चलकर दुःखोंसे पार हो जाएं ॥ ३ ॥

हे मित्र और वरुण ! तुम हम पर प्रसन्न होकर अन्नों और जलोंसे हमारी गोचर भूमिको उत्तम बनाओ तथा अमृतके समान मधुर तथा रमणीय जल लोगोंको दो ॥ ४ ॥

५४३ एष स्तोमो॑ वरुण मित्र तुभ्यं॒ सोमः॑ शु॒क्रो न वा॒यवे॑ऽयामि ।
अ॒वि॒ष्टं धियो॑ जिगृ॒तं पुरं॑धी-र्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ५ ॥

[६६]

(ऋषि- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मित्रावरुणौ, ४-१३ आदित्याः, १४-१६ सूर्यः ।
छन्दः- गायत्री; १०-१५ प्रगाथः = (समा बृहती, विषमा सतोबृहती,) १६ पुर उष्णिक् ।)

५४४ प्र मि॒त्रयो॒र्वरु॑णयोः स्तोमो॑ न एतु शू॒ष्यः॑ । नम॑स्वान् तुविजा॒तयोः॑ ॥ १ ॥
५४५ या धा॒रय॑न्त दे॒वाः सु॒दक्षा॒ दक्ष॑पितरा । अ॒सु॒र्या॑य॒ प्रम॑हसा ॥ २ ॥
५४६ ता नः॑ स्तिपा त॑नूपा॒ वरु॑ण जरि॒तॄणाम् । मित्र॑ साधय॑तं॒ धियः॑ ॥ ३ ॥
५४७ यद॒द्य सूर॒ उदि॑ते ऽनागा मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ॥ ४ ॥

अर्थ— [५४३] हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र ! (तुभ्यं) आपके लिये तथा (वायवे) वायुके लिये (शुक्रः सोमः न एषः स्तोमः) बलवर्धक सोमरसके समान आनन्द बढानेवाला यह स्तोत्र मैंने (अयामि) तैय्यार किया है । (धियः अविष्टं) हमारी बुद्धियों तथा हमारे कर्मोंका संरक्षण करो । (पुरंधीः जिगृतं) नगर रक्षण करने की बुद्धिको जागृत करो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पातं) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[६६]

[५४४] (मित्रयोः वरुणयोः) मित्र और वरुण जो कि (तुवि-जातयोः) अनेक बार प्रकट होते हैं उनका (नमस्वान् शूष्यः स्तोमः) अन्नसे युक्त बल बढानेवाला स्तोत्र (नः प्र एतु) हमारे पास आ जावे ॥ १ ॥

[५४५] (देवाः) देव (सुदक्षा दक्षपितरा) उत्तम बलवान्, बलके संरक्षक (प्रमहसा) विशेष शक्तिवाले (असुर्याय धारयन्त) बल प्राप्त करनेके लिये धारण करते हैं । मित्र और वरुणका धारण करते हैं ॥ २ ॥

[५४६] (ता स्तिपाः तनूपाः) वे तुम दोनों घरोंके शरीरोंके रक्षक हो । हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! (नः जरितॄणां धियः साधयतं) हम सब स्तोताओंकी इच्छाओंको सफल बनाओ ॥ ३ ॥

[५४७] (यत् अद्य सूरे उदिते) जो धन आज सूर्यका उदय होनेके समय हमें अपेक्षित है वह (अनागाः) निष्पाप (मित्रः, अर्यमा, सविता, भगः) मित्र, अर्यमा, सविता, भग (सुवाति) हमें देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— मित्र, वरुण और वायुके लिए मैंने यह आनन्दवर्धक स्तोत्र बनाये हैं । ये सभी देव हमारी बुद्धियों तथा कर्मोंका संरक्षण करें तथा हमारी प्रज्ञा जागृत हो ॥ ५ ॥

मित्र और वरुणका स्तोत्र बल बढानेवाला है और अन्न देनेवाला है । वह अन्न हमें मिले । इस अन्नसे शक्तिशाली होकर हम इन देवोंकी स्तुतिमें स्तोत्र बनायें ॥ १ ॥

उत्तम बलोंको धारण करके उन बलोंकी रक्षा करनी चाहिए, इस प्रकार विशेष महत्व प्राप्त करना चाहिए । अपना बल बढानेका प्रयत्न करना चाहिए ॥ २ ॥

शरीरों, घरों, नगरों तथा राष्ट्रका संरक्षण करना चाहिए । हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों हम सब स्तोताओंकी इच्छाओंको सफल करो ॥ ३ ॥

आज सूर्यके उदय होने पर जो धन हम चाहते हैं, उस धनको हमें मित्र, अर्यमा, सविता और भग देव प्रदान करें ॥ ४ ॥

+

५४८ सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः । ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥
५४९ उत स्वराजो अदिति — रदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥ ६ ॥
५५० प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥ ७ ॥
५५१ राया हिरण्यया मति — रियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥ ८ ॥
५५२ ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥ ९ ॥
५५३ बहवः सूरचक्षसो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभि — र्विश्वानि परिभूतिभिः ॥ १० ॥

अर्थ— [५४८] (सः क्षयः सुप्रावीः अस्तु) वह हमारा निवास स्थान उत्तम प्रकारसे सुरक्षित हो। हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवालो ! (नु यामन् प्र) आपका आगमन हमारा रक्षण करे। (ये नः अंहः अति पिप्रति) वे तुम हमें पापसे बचाओ ॥ ५ ॥

[५४९] (ये अदितिः) जो मित्र आदि आदित्य और अदिति ये सब (अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः) न दबे व्रतके अधिष्ठाता हैं, वे (राजानः महः ईशते) अधिपति बडे धनके भी स्वामी हैं ॥ ६ ॥

[५५०] (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय (मित्रं वरुणं) मित्र वरुण और (रिशा-अदसं अर्यमणं वां) शत्रु नाशक अर्यमाको (प्रति गृणीषे) प्रत्येककी स्तुति गाऊंगा ॥ ७ ॥

[५५१] (हिरण्यया राया) सुवर्णमय धनसे युक्त (इयं मतिः) यह मेरी बुद्धि (अवृकाय शवसे) अहिंसक बलके लिये हो। हे (विप्राः) ज्ञानियो ! (इयं मेधसातये) यह मेरी बुद्धि यज्ञको सिद्ध करनेवाली हो ॥ ८ ॥

[५५२] (देव मित्र वरुण) हे देव मित्र तथा वरुण ! (सूरिभिः सह ते स्याम) विद्वानोंके साथ हम आपके गुणगान करनेवाले हों। (इषं स्वः च धीमहि) हम अन्न और जल भी प्राप्त करेंगे ॥ ९ ॥

[५५३] (बहवः सूरचक्षसः) बहुत सूर्यके सदृश तेजस्वी (अग्नि जिह्वाः ऋतावृधः) अग्नि जिनकी जिह्वा है ऐसे सत्य मार्गको बढानेवाले मित्रादिक देव वीर (ये) जो (विश्वानि त्रीणि विदथानि) सब तीनों स्थानोंपर (परिभूतिभिः धीतिभिः येमुः) शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्योंसे नियमन करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— हमारा निवासस्थान अत्यन्त सुरक्षित हो। वीरोंके आगमनसे हमभी सुरक्षित हों। हमारे राष्ट्रमें वीर आवें और वे हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

राष्ट्रके वीर ऐसे व्रतके प्रवर्तक हों, कि जो किसी शत्रुके द्वारा दबाया नहीं जा सकता। ये ही बडे धनके अधिपति हैं। जिन वीरोंके कर्म शत्रुसे नहीं मिटाये जाते, वेही वीर बडे ऐश्वर्यके स्वामी होते हैं, पर जिनके कर्म उनके शत्रु विनष्ट कर सकते हैं, उन्हें इस जगत्‌में ऐश्वर्य प्राप्त होना असंभव है ॥ ६ ॥

सूर्यके उदय होने पर मनुष्य सभी देवोंकी स्तुतिका गान करे ॥ ७ ॥

मनुष्यके पास स्वर्ण आदि ऐश्वर्य भरपूर होने पर भी उसकी बुद्धि हिंसारहित हो। धनवान् होने पर भी बुद्धि श्रेष्ठ बनी रहे। अपने धन पर घमंड करता हुआ वह हिंसामय क्रूर कर्म न करे। अपितु वह बुद्धि यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म करनेवाली ही बने ॥ ८ ॥

मनुष्योंको चाहिए कि वे सदा ज्ञानी विद्वानोंके साथ रहें, श्रेष्ठ वीरोंके काव्य गाएं और खानपान प्राप्त करनेके कार्य करें ॥ ९ ॥

जिन वीरोंमें शत्रुओंको हरानेका सामर्थ्य होता है, वे अपने सामर्थ्यसे सभी युद्ध चौकियों पर अपना ही नियंत्रण रखते हैं, उन चौकियोंको शत्रुओंके हाथमें नहीं जाने देते। ऐसे वीर सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निज्वालाके समान जिह्वावाले, उत्तम वक्ता और सत्यका संवर्धन करनेवाले हों ॥ १० ॥

५५४ वि ये दुधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ ११ ॥

५५५ तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥ १२ ॥

५५६ ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥ १३ ॥

५५७ उदु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥ १४ ॥

५५८ शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥ १५ ॥

अर्थ— [५५४] (ये) जो (शरदं मासं) वर्ष, महिना; (आत् अहः) पश्चात् दिन (आत् अक्तुं यज्ञं च ऋचं) पश्चात् रात्रिको, यज्ञ और मन्त्रको (वि दधुः) धारण करते हैं । वे मित्र वरुण अर्यमा आदि वीर (राजानः) प्रकाशित होकर (अनाप्यं क्षत्रं आशत) अन्योंके लिये अप्राप्य बलको बढाते रहे ॥ ११ ॥

[५५५] (सूरे उदिते सूक्तैः) सूर्यका उदय होनेके समय सूक्तोंसे (तत् अद्य मनामहे) उस धनकी आज हम प्रार्थना करेंगे (यत्) जिसको (मित्रः वरुणः अर्यमा) मित्र वरुण अर्यमा आदि (ऋतस्य रथ्यः यूयं) सत्यके पथ प्रदर्शक वीर (ओहते) धारण करते हैं ॥ १२ ॥

[५५६] (ऋतावानः ऋतजाताः) सत्यनिष्ठ सत्यके लिये प्रसिद्ध (ऋतावृधः अनृतद्विषः) सत्यको बढानेवाले और असत्यका द्वेष करनेवाले (घोरासः) बडे प्रभावी और आप हैं (तेषां वः) वैसे आपके (सुच्छर्दिष्टमे सुम्ने) उत्तम घरसे युक्त धनके अन्दर हम (सूरयः नरः स्याम) जो विद्वान तथा नेता हैं वे हों, वे हम रहें ॥ १३ ॥

[५५७] (त्यत् दर्शतं वपुः) वह दर्शनीय शरीर–सूर्यमंडल (दिवः प्रतिह्वरे) द्युलोकके समीपके भागमें (उत् उ एति) उदित हो रहा है । (विश्वस्मै चक्षसे अरं) संपूर्ण विश्वके दर्शनके लिये समर्थ ऐसे इस सूर्यको (यत् ईं एतशः देवः आशु वहति) शीघ्रगामी अश्व चलाता है ॥ १४ ॥

[५५८] (शीर्ष्णः शीर्ष्णः) सबके मुख्य शिर स्थानीय (तस्थुषः जगतः पतिं) स्थावर जंगमके स्वामी (रथे सूर्यं) रथमें बैठे सूर्यको (सुविताय) विश्व कल्याणके लिये (विश्वं रजः समया) सब लोकोंके समीपसे (स्वसारः सप्त हरितः आ वहन्ति) बहिनें जैसी सात घोडियां चलाती हैं ॥ १५ ॥

भावार्थ— वीर अपने अन्दर ऐसा क्षात्रसामर्थ्य बढावें कि जिसे शत्रु प्राप्त न कर सकें । वीर समयानुसार, ऋत्वनुसार व्रतोंका पालन करें ॥ ११ ॥

सूर्यके उदय होनेपर हम धनप्राप्तिके लिए देवोंकी प्रार्थना तो करें, पर सत्य पथके प्रदर्शक वीर जिसको धारण करते हैं, उस धनको ही हम चाहें ॥ १२ ॥

सत्यनिष्ठ, सत्यके लिए जीवन देनेवाले, सत्यको बढानेवाले, असत्यसे द्वेष करनेवाले और शरीरसे विशाल हों। उनके द्वारा सुरक्षित घरमें हम रहें और उनके द्वारा सुरक्षित धन हमें मिले । हम भी ज्ञानी और नेता बनें ॥ १३ ॥

द्युलोकके समीप उदय होनेवाले सूर्यका शरीर बडा ही दर्शनीय दिखाई देता है। यह सूर्य संपूर्ण विश्वको देखनेमें समर्थ है । इस सूर्यको उसकी किरणें गतिमय बनाती हैं ॥ १४ ॥

सूर्य अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को प्राण देनेके कारण सम्पूर्ण जगत्का स्वामी है । यह अपनी किरणोंके द्वारा सबको जीवन देकर सबका कल्याण करता है । सात रंगकी किरणें मानों इस सूर्यके रथकी सात घोडियां हैं ॥ १५ ॥

५५९ तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ १६ ॥
५६० काव्येभिरदाभ्या ऽऽ यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ॥ १७ ॥
५६१ दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ॥ १८ ॥
५६२ आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा ॥ १९ ॥

[६७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५६३ प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीग रच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥ १ ॥

अर्थ— [५५९] (तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः) वह देवहित करनेवाला बलवान विश्वका आंख जैसा यह सूर्य (पुरस्तात् उत् चरत्) हमारे सामने उदित हो रहा है (पश्येम शरदः शतं) उसे हम सौ वर्षतक देखते रहें, (शरदः शतं जीवेम) हम सौ वर्ष जीयें ॥ १६ ॥

[५६०] हे (अदाभ्या मित्रः वरुणः) न दबनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम (द्युमत्) तेजस्वी देव (सोमपीतये आयातं) सोमपान करनेके लिए आओ ॥ १७ ॥

[५६१] हे (अद्रुहा मित्रः वरुण) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण! और (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले वीरो ! (दिवः धामभिः) द्युलोकके अपने स्थानोंसे (आ यातं) आओ और (आतुजी) शत्रुका नाश करते हुए (सोमं पिबतं) सोमरसका पान करो ॥ १८ ॥

[५६२] हे (ऋतावृधा) सत्यको बढानेवाले (मित्रा वरुणा) मित्र और वरुणो ! हे (नरा) नेताओ ! (आहुतिं जुषाणो) आहुतिका स्वीकार करते हुए (आ यातं) आओ और (सोमं पातं) सोमरसका पान करो ॥ १९ ॥

[६७]

[५६३] हे (नृपती) जनताके पालक (धिष्ण्यौ) एवं बुद्धिमान् अश्विदेवो ! (यज्ञियेन हविष्मता मनसा) पवित्र तथा अन्न दानमें रत ऐसे अपने मनसे (वां रथं प्रति जरध्यै) तुम्हारे रथका वर्णन मैं करूंगा (यः वां दूतः न अजीगः) जो तुम्हें दूतके समान जगा चुका है, बुला चुका है (सूनुः पितरा न) पुत्र पिताके सामने जैसा बोलता है, उसी प्रकार (अच्छ विवक्मि) तुम्हारे सन्मुख वह मैं विशेष स्पष्ट रीतिसे अपना भाव बोलता हूं । अपना मनोगत प्रकट करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ— सौ वर्षतक जीयें और सौ वर्षतक हमारी आंख आदि इन्द्रियें कर्म करनेमें समर्थ रहें । यह सूर्य इन्द्रियोंका हित करनेवाला है । सूर्य प्रकाशसे सब इन्द्रियां उत्तम अवस्थामें रहती हैं । इसी तरह पृथ्वी, जल, वनस्पती, प्राणी, वायु आदि भी सूर्यके कारण उत्तम अवस्थामें रहते हैं । इसीलिए सूर्यको देवहित कहते हैं ॥ १६ ॥

मित्र और वरुण देव किसीसे न दबनेवाले और तेजस्वी हैं। ऐसे ही हमारे वीर भी किसीसे न दबनेवाले तथा तेजस्वी हों ॥ १७ ॥

वीर द्रोह न करनेवाले हों, सत्यको बढानेवाले हों और शत्रुका नाश करनेवाले हों ॥ १८ ॥

मित्र और वरुण सत्यको बढानेवाले और नेता हैं, उसी तरह सन्मार्गसे चलते हुए वीर सत्यका पालन करें और लोगोंको सन्मार्गसे ले जायें ॥ १९ ॥

मनुष्योंका पालन करनेवाले अत्यन्त बुद्धिमान् होने चाहिए । बुद्धिहीनोंसे राष्ट्रका पालन अच्छी तरह नहीं हो सकता । मनुष्य परस्पर शुद्ध और पवित्र मनसे युक्त होकर ही बातचीत करें ॥ १ ॥

५६४ अशो॑च्य॒ग्निः स॑मिधा॒नो अ॒स्मे उपो॑ अदृश्र॒न् तम॑सश्चि॒दन्ताः॑ ।
अचे॑ति के॒तुरु॒षसः॑ पु॒रस्ता॑च्छ्रि॒ये दि॒वो दु॑हि॒तुर्जाय॑मानः ॥ २ ॥

५६५ अ॒भि वां॑ नू॒नम॑श्विना॒ सुहो॑ता॒ स्तोमैः॑ सिषक्ति नासत्या विव॒क्वान् ।
पू॒र्वीभि॑र्यातं प॒थ्या॑भिर॒र्वाक् स्व॒र्विदा॒ वसु॑मता॒ रथे॑न ॥ ३ ॥

५६६ अ॒वोर्वां॑ नू॒नम॑श्विना यु॒वाकु॑र्हु॒वे यद्वां॑ सु॒ते मा॑ध्वी वसू॒युः ।
आ वां॑ वहन्तु॒ स्थवि॑रासो॒ अश्वाः॒ पिबा॑थो अ॒स्मे सुषु॑ता॒ मधू॑नि ॥ ४ ॥

५६७ प्राची॑मु देवाश्विना॒ धियं॒ मे ऽमृ॒ध्रां सा॒तये॑ कृतं वसू॒युम् ।
विश्वा॑ अविष्टं॒ वाज॒ आ पुरं॑धी॒स्ता नः॑ शक्तं शचीपती॒ शची॑भिः ॥ ५ ॥

अर्थ— [५६४] (अस्मे समिधानः अग्निः अशोचि) हमारे लिये प्रज्वलित हुआ अग्नि जगमगा रहा है। (तमसः अन्ताः चित् उप अदृश्रन्) अन्धकारका अन्तिम भाग दिखाई दे रहा है। अन्धकार समाप्त हो रहा है। (दिवः दुहितुः उषसः पुरस्तात्) द्युलोककी पुत्री उषाके सामने (जायमानः केतुः) प्रकट होनेवाला यह ध्वजरूपी सूर्य (श्रिये अचेति) शोभारूप प्रकाशके लिये प्रकट हो रहा है ॥ २ ॥

[५६५] हे (नासत्या अश्विना) हे असत्यका कभी आश्रय न करनेवाले अश्विदेवो ! (विवक्वान् सुहोता) उत्तम रीतिसे बोलनेवाला उत्तम बुलानेवाला होता (वां अभि) आपके सामने (नूनं स्तोमैः सिषक्ति) निश्चयपूर्वक स्तोत्रोंसे आपकी सेवा करता है। (वसुमता स्वर्विदा रथेन) धनवाले प्रकाशमान रथसे (पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं) प्रथम निश्चित हुए मार्गोंसे ही आगे बढो ॥ ३ ॥

[५६६] हे (माध्वी अश्विना) मधुरभाषी अश्विदेवो ! (नूनं अवोः वां युवाकुः) निश्चय ही तुम रक्षण कर्ताओंके साथ सम्बन्ध रखनेवाला मैं (यत् वसूयुः) जब धनकी कामना करता हुआ (सुते वां हुवे) इस सोमयागमें तुम्हें बुलाता हूं; तुम्हारे (स्थविरासः अश्वाः) वृद्ध घोडे (वां आवहन्तु) तुमको यहां ले आवें, और यहां आकर (अस्मे) हमारे बनाये (सुषुताः मधूनि पिबाथः) भली भान्ति निचोडे हुए मीठे सोमरसका पान करें ॥ ४ ॥

[५६७] हे (शचीपती देवा अश्विना) शक्तिके अधिपति अश्विदेवो ! (मे वसूयुं) मेरी धनकी कामना करनेहारी (अ-मृध्रां प्राचीं धियं) अहिंसित सरल बुद्धिको (सातये कृतं) धन प्राप्तिके लिये योग्य बना दो। (वाजे) युद्धमें (विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं) सब प्रकारकी बुद्धियोंका पूर्णतया रक्षण करो, (ता) तुम दोनों (शचीभिः नः शक्तं) अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बना दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रभातकालमें एक तरफ उषा धीरे धीरे अपना प्रकाश फैलाती होती है तो दूसरी तरफ पृथ्वी पर यज्ञकी अग्नि प्रदीप्त होकर जगमगाती होती है। ऊपर और नीचे दोनों तरफ प्रकाश होनेपर अन्धकार अपने आप भाग जाता है और तब सूर्य रूपी ध्वजा द्युलोकमें फहराने लगती है ॥ २ ॥

अश्विनौ देव कभी भी असत्यका आश्रय नहीं लेते, इसी तरह उन्नतिकी इच्छा करनेवाले असत्यका आश्रय कभी न लें। जो बोलनेमें कुशल हो, वही अश्विनौ देवोंको बुलावे। बुलाये जानेपर ये देव उपासकको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

ये अश्विदेव मधुरभाषी हैं, इसी तरह सभी मधुरभाषी बनें। बुलाये जानेपर ये देव सबके पास आते हैं, तद्वत् मनुष्य भी सबके घर प्रेमसे जायें ॥ ४ ॥

दोनों देव शचीपति अर्थात् शक्तिके स्वामी हैं, ये देव लोगोंके रोगोंको दूर करके उन्हें स्वस्थ बनाकर सामर्थ्य प्रदान करते हैं। ये लोगोंको धन भी प्रदान करते हैं, पर प्रथम मनुष्योंको चाहिए कि धनकी इच्छा करनेवाली बुद्धिको हिंसा-रहित, सरल और धन प्राप्तिके योग्य बनायें। युद्धमें सबकी सुरक्षा हो, इसलिए सभी सामर्थ्यशाली बनें ॥ ५ ॥

५६८ अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद् रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥
५६९ एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वाग् अश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
५७० एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥
५७१ असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥ ९ ॥

अर्थ— [५६८] हे (अश्विना) अश्वि देवो ! (आसु धीषु नः अविष्टं) इन बुद्धियों और कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो। (नः प्रजावत् रेतः अ-ह्रयं अस्तु) हमारा सुसन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो। (वां तोके तनये तूतुजानाः) तुम्हें पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये प्रवृत्त करते हुए (सुरत्नासः) उत्तम रत्नोंको धारण करके हम (देव वीतिं आ गमेम) देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[५६९] हे (माध्वीः) मधुर भाषण कर्ता अश्विदेवो ! (अस्मे रातः एषः स्यः निधिः) हमने दिया हुआ यह वह भण्डार (वां सख्ये) तुम्हारी मित्रताके लिये (पूर्व-गत्वा इव हितः) अग्रगामी वीरके समान तुम्हारे आगे रखा है। (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (हव्यं अश्नन्ता) अन्नभागका सेवन करते हुए तुम (अहेळता मनसा) क्रोध रहित मनसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे समीप आ जाओ ॥ ७ ॥

[५७०] हे (भुरणा) भरणपोषण करनेवाले अश्विदेवो ! (एकस्मिन् समाने योगे) एक समान अवसरपर (वां रथः) तुम्हारा रथ (सप्त स्रवतः) सात बहनेवाले स्रोतोंके भी आगे (परि गात्) बढ जाता है। (ये तरणयः वां धूर्षु वहन्ति) जो तारण करनेवाले घोडे हैं वे धुराओंमें तुम्हें ढोते हैं। वे (सुभ्वः देवयुक्ताः) उत्कृष्ट ढंगसे उत्पन्न देवोंके द्वारा जोते होनेके कारण (न वायन्ति) नहीं थकते हैं ॥ ८ ॥

[५७१] (ये गव्याः अश्व्याः) जो गायों और घोडों परिपूर्ण (मघानि पृञ्चन्तः) ऐश्वर्योंका दान करते हुए (बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते) बन्धुको मधुर वाणीसे दान देते हैं, और (राया मघदेयं जुनन्ति) धनसे युक्त होकर धनका दान करनेके लिये प्रेरित करते हैं, ऐसे इन (मघवद्भ्यः) वैभवशाली लोगोंके लिये (असश्चता हि भूतं) दूसरी जगह न जानेवाले बनो। अर्थात् उनके घर जाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— हम जो भी विचार करें और कर्म करें, उनमें हमारी सदा सुरक्षा हो। हम कोई भी ऐसा कुविचार या कुकर्म न करें कि जिससे हमारी सुरक्षा खतरेमें न पडे। हम सुप्रजायें उत्पन्न करनेमें समर्थ शुभ संस्कारोंसे सम्पन्न तथा वीर्यसम्पन्न हों। हमें सदा पुत्रपौत्रोंका सुख सदा मिलता रहे ॥ ६ ॥

हे देवो ! हम तुमसे मित्रता प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए जो कुछ भी हमारे पास खजाना है, उसे हमने तुम्हारे सामने रख दिया है। तुम क्रोध रहित मनसे हमारे पास आओ और हमारे द्वारा दिए गए अन्नभागका सेवन करो ॥ ७ ॥

अश्विदेव सबका भरणपोषण करते हैं। इनका रथ वेगसे बहनेवाले सात नदियोंके पार भी आसानीसे बढा जाता है। नदियोंको तैरकर पार कर जानेवाले यंत्र इनके रथोंमें लगे हुए होते हैं। और ये यंत्र अच्छी तरह लगे होनेके कारण कभी खराब नहीं होते ॥ ८ ॥

गाय, घोडे और धनोंका दान करना चाहिए। अपने बांधवोंके साथ मधुर भाषण करते जाना चाहिए। जो धनसे युक्त होकर धनका दान करते हैं उन्हें छोडकर दूसरी जगह नहीं जाना चाहिए ॥ ९ ॥

५७२ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[६८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- विराट्, ८-९ त्रिष्टुप् ।)

५७३ आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १ ॥

५७४ प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थु—रर गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥

५७५ प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

अर्थ— [५७२] हे (युवानौ अश्विनौ) तरुण अश्विदेवो! (मे हवं आ शृणुतं) मेरी प्रार्थना सुनो। (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) जिसमें अन्न है उसी घरमें जाओ। (रत्नानि धत्तं) रत्नोंको धारण करो। (सूरीन् जरतं) विद्वानोंकी सराहना करो। (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पात) कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥१०॥

[६८]

[५७३] हे (शुभ्रा स्वश्वा दस्रा) श्वेतवर्णवाले अच्छे घोडोंवाले शत्रुनाशक अश्विदेवो! (युवाकोः गिरः जुजुषाणा) तुम्हारी सेवा करनेवालेको भाषणोंका आदर पूर्वक सुनते हुए (आयातं) यहां आओ। (नः प्रतिभृता) हमारे इकट्ठे किये हुए (हव्यानि वीतं) हविर्भागका सेवन करो ॥ १ ॥

[५७४] (वां मद्यानि अन्धांसि प्र अस्थुः) तुम्हारे लिये आनन्द वर्धक अन्न रखे गये हैं। (मे हविषः वीतये) मेरे हविष्यान्नके आस्वाद लेनेके लिये (अरं गन्त) सीधे यहां आओ। (अर्यः तिरः) शत्रुओंको दूर हटा दो (नः हवनानि श्रुतं) हमारे बुलावोंको सुन लो ॥ २ ॥

[५७५] हे (सूर्यावसू) सूर्यको बसानेवाले अश्विदेवो! (वां मनोजवाः रथः शतोतिः) आपका मनके समान वेगवान् रथ सैकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त है। वह (अस्मभ्यं इयानः) हमारे पास आता है और (रजांसि तिरः प्र इयर्ति) धूलीके प्रदेशोंको दूर रखकर जाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— जहां पर्याप्त अन्न हो, और जहां दाता हों वहीं जाना चाहिए। मनुष्य स्वयं रत्नोंको धारण करे और दूसरोंको भी दें। सच्चे ज्ञानियोंकी प्रशंसा करनी चाहिए और कल्याण करनेके साधनोंसे अपनी सुरक्षा करनी चाहिए ॥१०॥

अश्विदेव श्वेत वर्णवाले, अच्छे घोडोंवाले और इनकी स्तुति करनेवालोंकी प्रार्थनाओंको आदरपूर्वक सुनते हैं ॥ १ ॥

हर्षवर्धक अन्नका सेवन करके उससे अपना बल बढाकर शत्रुको दूर हटाना चाहिए। शत्रुको दूर करना मुख्य कर्तव्य है, इसके लिए सचेत रहना हर एकका आवश्यक कर्तव्य है ॥ २ ॥

सूर्यको भी शक्ति प्रदान करनेवाले अश्विदेवोंका रथ मनके समान वेगवान् और सैकडों तरहके संरक्षणके साधनोंसे युक्त है। वह रथ हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

५७६ अयं ह यद् वां देवया उ अद्रि॑रूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥

५७७ चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥

५७८ उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः ॥ ६ ॥

५७९ उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥

अर्थ — [५७६] (अयं सोमसुत् अद्रिः ह) यह सोमका रस निचोडनेवाला पत्थर (यत् ऊर्ध्वः देवया) जब ऊंचे पदपर-सोमपर-आरूढ होकर देवोंकी ओर प्रवृत्त होता है तब (वां उ युवभ्यां विवक्ति) आप दोनोंकी ओर लक्ष्य देकर विशेष प्रकारका शब्द करता है, तब (विप्रः वल्गू) ज्ञानी याजक सुन्दर रूपवाले तुम्हें (हव्यैः आ वृतीत) हवनीय अन्नोंसे अपनी ओर आकर्षित करता है ॥ ४ ॥

[५७७] (यत् वां चित्रं भोजनं अस्ति) जो तुम दोनोंका विलक्षण अन्न रूप दान है, जो (अत्रये महिष्वन्तं नियुयोतं) अत्रिको शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया था। (यः प्रियः सन्) वह तुम्हारा प्रिय था इसलिये (वां ओमानं दधते) तुम्हारे सुखदायक आश्रयसे रहता है ॥ ५ ॥

[५७८] (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो ! (हविर्दे जुरते च्यवनाय) हवि देनेवाले वृद्ध च्यवन ऋषिके लिये (वां त्यत् प्रतीत्यं भूत) तुम्हारा वह उसके पास जाना हितकारक सिद्ध हुआ, (यत्) जो कि (इत ऊती वर्पः) इस मृत्युसे संरक्षण देनेवाला रूप तुमने उसे (अधि धत्थः) दे दिया ॥ ६ ॥

[५७९] (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो ! (त्यं भुज्युं) उस भुज्युको (दुरेवासः सखायः) बुरी चालवाले उसके मित्र उसे (समुद्रे मध्ये जहुः) समुद्रके मध्यमें छोड चुके थे (यः युवाकुः अरावा) जो तुम्हारे पास सहायार्थ आने लगा था, (ईं निः पर्षत्) उसे तुम पूर्णतया पार ले चले और सुरक्षित स्थानपर तुमने उसे पहुंचा दिया था ॥ ७ ॥

भावार्थ— जब सोम कूटनेके लिए पत्थर एक दूसरेपर रखडे जाते हैं, तब उनमेंसे शब्द प्रकट होता है, उस शब्दसे आकर्षित होकर देव आते हैं ॥ ४ ॥

अत्रि ऋषि असुरोंके कारावासमें रहनेके कारण बहुत कमजोर हो गए थे, उन्हें बलवान् और पुष्ट बनानेके लिए अश्विदेवोंने एक प्रकारका विलक्षण और पुष्टिकारक अन्न दिया जिससे अत्रि ऋषि फिरसे बलवान् बने और कार्य करनेमें समर्थ हुए। वैद्योंको भी ऐसे पुष्टिकारक अन्नोंका निर्माण करना चाहिए कि जिसे खाकर राष्ट्रकी प्रजायें पुष्ट और समर्थ बनें ॥ ५ ॥

च्यवन ऋषि बहुत वृद्ध हो गए थे, उनके पास अश्विनी देवता गए, उन्हें पौष्टिक अन्न देकर उन्हें फिरसे तरुण बना दिया और उनकी मृत्युसे रक्षा की ॥ ६ ॥

राजपुत्र भुज्यु अपने साथियोंके साथ शत्रुपर आक्रमण करने गया, पर हारकर भागा, तब उसके साथी उसे छोड गए और समुद्रमें जाते हुए उस भुज्युका वाहन भी टूट गया, तब वह समुद्रमें डूबने लगा, तब अश्विनी देवोंने उसे समुद्रमेंसे उठाकर उसके घर पहुंचाया और इस प्रकार उसकी रक्षा की ॥ ७ ॥

५८० वृकाय चिज्जसमानाय शक्त—मुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥ ८ ॥
५८१ एष स्य कारुर्जरते सूक्तै—रग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभि—र्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ९ ॥

[६९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५८२ आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥ १ ॥
५८३ स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना ॥ २ ॥

अर्थ—[५८०] हे अश्विदेवो ! (जसमानाय वृकाय चित्) क्षीण होनेवाले वृकके हितके लिये तुम शक्तिका दान देनेमें (शक्तं) समर्थ हुए, (उत) और (हूयमाना शयवे श्रुतं) बुलानेपर शयुका हित करनेके लिये उसकी प्रार्थना तुमने सुनी थी । (या शचीभिः शक्ती) जो तुम दोनों अपनी शक्तियोंसे समर्थ होनेके कारण (स्तर्यं अघ्न्यां) वन्ध्या गायको भी (अपः न) जलके समान (अपिन्वतं) दूध देनेवाली दुधारू बना चुके ॥ ८ ॥

[५८१] (स्यः एषः सुमन्मा कारुः) वह यह उत्तम मननशील कारीगर (उषसां अग्रे बुधानः) उषःकालके पहिले जागृत होकर (सूक्तैः जरते) सूक्तोंसे प्रार्थना करता है । (अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्) गौ दूधसे और अन्नसे उसको बढाती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें कल्याणकारक साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो ॥ ९ ॥

[६९]

[५८२] (वां हिरण्ययः) तुम्हारा सुवर्णमय (घृतवर्तनिः) घृतको मार्गमें देनेवाला, (पविभिः रुचानः) आरोंसे जगमगता हुआ (इषां वोळ्हा) अन्नोंको पहुंचानेवाला, (वाजिनीवान् नृपतिः) सेनासे युक्त नरेश जैसा (रोदसी बद्बधानः) आकाश और पृथिवीको अपने शब्दसे निनादित करता हुआ (वृषभिः अश्वैः आ यातु) बलिष्ठ घोडोंसे चलाया जानेवाला इधर आ जाय ॥ १ ॥

[५८३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (कुत्रचित् यामं दधाना) कहीं भी यात्राका आरंभ करते हुए (येन देवयन्तीः विशः गच्छथ) जिसपरसे तुम देवोंको प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली प्रजाओंके समीप जाते हो, (सः त्रिवन्धुरः) वह तीन सुन्दर स्थलोंसे युक्त (पञ्च भूमा पप्रथानः) पांचोंको विस्तृत स्थान देनेवाला (मनसा युक्तः अभि यातु) मनके इशारेसे चलनेवाला तुम्हारा रथ तुम्हें लेकर यहां आ जावे ॥ २ ॥

भावार्थ— इन अश्विनी कुमारोंने क्षीण होनेवाले वृकको भी शक्ति देकर समर्थ बनाया । इन्होंने शयुका हित करनेके लिए उसकी प्रार्थना सुनी । सब तरहकी शक्तियोंसे पूर्ण इन दोनोंने वंध्या गायको भी दुधारु बना दिया ॥ ८ ॥

शिल्पीजन भी उषःकालसे पूर्व उठें और अपने इष्ट देवकी उपासना करें । गाय आदि पशु अपने दूधसे उनका पोषण करें, तथा सभी देवगण भी शिल्पियोंकी रक्षा करें ॥ ९ ॥

इस मंत्रके कथनसे पता चलता है कि अश्विदेवोंका रथ नाना प्रकारके औषधियोंसे मिश्रित घृत तथा पौष्टिक अन्नोंसे तथा चिकित्साके साधनोंसे भरपूर भरा था । अश्विदेव इस रथमें बैठकर स्थान स्थानपर जाते थे और उनको चिकित्सा करके उन्हें पौष्टिक अन्न देते थे । वे स्वयं रोगियोंके घर जाते थे और उनकी चिकित्सा करते थे । इसी तरह देशके वैद्य रोगियोंके पास जाकर उनकी चिकित्सा करें और देशका स्वास्थ्य उत्तम रखें ॥ १ ॥

ये अश्विदेव अपनी यात्राका प्रारंभ करते हुए जब प्रजाओंके समीप जाना चाहते हैं, तब उनका वह सुन्दर रथ मनके इशारेसे चलता है और वे जहां जाना चाहते हैं ॥ २ ॥

५८४ स्वश्वा यशसा यातमर्वाग् दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा यादमानो ऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥ ३ ॥
५८५ युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥ ४ ॥
५८६ यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥
५८७ नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा ऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ॥ ६ ॥

अर्थ— [५८४] हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! (स्वश्वा यशसा अर्वाक् आ यातं) उत्तम घोडोंको जोतकर यशके साथ हमारे समीप आओ । यहां आकर (मधुमन्तं निधिं पिबाथः) मीठा सोमरस पीओ । (वां रथः वध्वा यादमानः) आपका रथ वधुके साथ आगे बढता है और (वर्तनिभ्यां दिवः अन्तान् विबाधते) पहियोंसे आकाशके अन्तिम विभागोंको विशेष रूपसे आन्दोलित करता है ॥ ३ ॥

[५८५] (सूरः दुहिता योषा) सूर्यकी पुत्री तरुणी उषा (परि तक्म्यायां) रात्रीके समय (युवोः श्रियं परि अवृणीत) तुम्हारी शोभाको बढानेवाले रथपर बैठ गई । (यत् देवयन्तं शचीभिः अवथः) देवोंको चाहनेवालेको अपनी शक्तियोंसे तुम सुरक्षित रखते हो ॥ ४ ॥

[५८६] हे (रथिरा) रथमें बैठनेवाले वीरो ! (यः वां स्यः रथः) जो तुम्हारा वह रथ (युजानः वर्तिः परियाति) घोडोंके साथ जोतनेपर मार्गसे घरको पहुंचता है, (तेन) उस रथसे, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकट होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः नि वहतं) हमारे लिए शान्तिकी प्राप्ति और दुःखसे वियोग कराओ ॥ ५ ॥

[५८७] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (अद्य अस्माकं सवना उपयातं) आज हमारे यज्ञके पास आ जाओ । (तृषाणा विद्युतं गौरा इव) और प्यासे तुम दोनों चमकनेवाले सोमरसको गौर मृगके तुल्य जल्दी जल्दी पी जाओ । (वां पुरुत्रा हि) तुम दोनोंको सचमुच अनेक स्थानोंपर (मतिभिः हवन्ते) बुद्धिपूर्वक बुलाते हैं । (अन्ये देवयन्तः) दूसरे देव बननेकी इच्छा करनेवाले लोग (वां मा नियमन्) आपको वहीं न रोक रखें ॥ ६ ॥

भावार्थ— शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेव यशस्वी हैं और अपने रथमें उत्तम घोडोंको जोडकर प्रजाओंके पास आते हैं और जाकर प्रेमपूर्वक मधुर रस पीते हैं ॥ ३ ॥

जो स्वयं देव बननेकी इच्छा करनेवाला है, उसे "देवयन्" कहते हैं । देवके गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला । नरसे नारायण बननेकी इच्छा करनेवाला । इस तरह अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषकी अश्विदेव अपनी अनेक शक्तियोंसे सुरक्षा करते हैं । उन्नतिके लिए प्रयत्न करनेवालेकी सुरक्षा जिस तरह होती है, वैसी सुरक्षा अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न न करनेवालेकी नहीं होती ॥ ४ ॥

हे रथी अश्विदेवो ! घोडोंसे सम्पन्न रथ जिस तरह उत्तम मार्गसे तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचाता है, उसी तरह उस रथसे प्रातःकाल हमें दुःखोंसे दूर करके सुख प्रदान करनेके लिए आओ ॥ ५ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनों हमारे यज्ञमें आकर हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पीओ । तुम्हें बुलानेवाले अनेक हैं, वे बुलानेवाले सब देव बननेकी इच्छा करते हैं, इसलिए वे तुम दोनोंको अपने पास ही न रोक रखें ॥ ६ ॥

५८८ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्त्रिधानैः।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभि र्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥
५८९ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[७०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्)

५९० आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्था दा यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥ १ ॥
५९१ सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा ऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान् त्सरितः पिपर्त्ये तग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥ २ ॥

अर्थ— [५८८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (समुद्रे अवविद्धं भुज्युं) समुद्रमें गिरे हुए भुज्युको (युवं) तुम दोनों (अस्त्रिधानैः अश्रमैः अव्यथिभिः) क्षीण न होनेवाले, जिनमें श्रम नहीं होवे और जिनमें बैठनेसे कष्ट नहीं होवे ऐसे (पतत्रिभिः) पक्षीके समान उडनेवाले विमानोंसे और (दंसनाभिः पारयन्ता) क्रियाओंसे पार करनेवाले (अर्णसः उत् ऊहथुः) समुद्रके जलसे ऊपर उठाकर पहुंचा चुके ॥ ७ ॥

[५८९] हे (युवाना अश्विना) तरुण अश्विदेवो ! (मे हवं आ शृणुतं) मेरी प्रार्थना सुनो । (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) जिसमें अन्न है, उस घरमें जाओ । (रत्नानि धत्तं) रत्नोंको धारण करो, (सूरीन् जरतं) विद्वानोंकी सराहना करो । स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पातं) कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ ८ ॥

[७०]

[५९०] हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे श्रेष्ठ अश्विदेवो ! (पृथिव्यां वां तत् स्थानं) पृथिवीपर तुम दोनोंका वह स्थान (प्र अवाचि) बडा प्रशंसित हुआ है । वहांसे (नः आगतं) हमारे पास आओ और (यत् ध्रुवसे योनिं न आ सेदथुः) इस आसनपर स्थिर बैठनेके लिये, अपने निज स्थानपर बैठनेके समान, तुम बैठो, वह स्थान (शुनः पृष्ठः वाजी अश्वः न) जिसकी पीठपर बैठना सुखदायी हो ऐसे बलिष्ठ घोडेके समान यहां (अस्थात्) रखा है । यहां बिछाया है ॥ १ ॥

[५९१] (सा चनिष्ठा सुमतिः) वह वर्णनीय अच्छी बुद्धि (वां सिषक्ति) आपकी सेवा करती है । (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (धर्मः अतापि) अग्नि प्रदीप्त हुआ है । (यः सुयुजा युजानः) जो उत्तम जोते जानेवाले (एतग्वा चित्) घोडेके समान (वां) तुम्हारे समीप जाता है और (समुद्रान् सरितः पिपर्ति) समुद्रों और नदियोंको पूर्ण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! भुज्यु समुद्रमें गिर पडा था, तब अश्विदेवोंने उसे ऊपर उठाया और अपने पक्षी सदृश विमानोंमें उसे बिठलाकर समुद्र पार कराया और उसके घर पहुंचाया ॥ ७ ॥

जहां पर्याप्त अन्न हो और जहां दाता हों, वहीं जाना चाहिए । मनुष्य स्वयं रत्नोंको धारण करे और दूसरोंको भी दे । सबे ज्ञानियोंकी प्रशंसा करनी चाहिए और कल्याणकारी साधनोंसे अपनी सुरक्षा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

हे अश्विनौ देवो ! पृथ्वीपर यह स्थान तुम्हारे लिए बहुत प्रशंसित है । तुम हमारे पास आओ और इस स्थानपर बैठो ॥ १ ॥

याजकोंकी उत्तम बुद्धि स्तोत्रपाठसे अश्विदेवोंकी सेवा कर रही है । अग्नि प्रदीप्त होकर यज्ञ शुरू हुआ है । यह यज्ञ अश्विदेवोंके पास हवि पहुंचाता है और वे सन्तुष्ट हुए देव वृष्टि द्वारा नदियोंको भर देते हैं, और वे नदियां समुद्रको भरती हैं ॥ २ ॥

५९२ यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥

५९३ चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद् योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥

५९४ शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायाऽस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥

५९५ यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५९२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (दाशुषे जनाय) दानी पुरुषके लिये तुम (इषं वहन्ता) अन्न पहुंचाते है । और (पर्वतस्य मूर्धनि) पहाडके शिखरपर (नि सदन्ता) बैठते है । (दिवः यह्वीषु ओषधीषु) द्युलोककी बडी सोम आदि औषधियोंमें तथा (विक्षु) प्रजाजनोंमें (यानि स्थानानि दधाथे) जब स्थानोंका धारण करते हैं ॥ ३ ॥

[५९३] हे (देवा) अश्विदेवो ! (यत् ऋषीणां योग्या) जो ऋषियोंके योग्य अन्न (अश्नवैथे) तुम प्राप्त करते हो, वह (ओषधीषु अप्सु चनिष्ट) औषधियोंमें जलमें सेवनीय अन्न (अस्मे) हमें दो । और (पुरूणि रत्नानि नि दधतौ) अनेक रत्न भी हमें दो, तथा (पूर्वाणि युगानि) पूर्व युगोंके समान इन युगोंको (अनुचख्यथुः) अनुकूल दीखने योग्य बना दो ॥ ४ ॥

[५९४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ऋषीणां पुरूणि ब्रह्माणि) ऋषियोंके बहुतसे स्तोत्र (शुश्रुवांसः चित्) सुनते हुए (अभि चक्षाते) तुम सबका निरीक्षण करते हो । तथा (वरं प्रति आ प्रयातं) श्रेष्ठ मनुष्यके प्रति जाते हो । (अस्मे जनाय) इस मनुष्यके लिये (वां सुमतिः) तुम्हारी बुद्धि (चनिष्ठा अस्तु) अन्न देनेवाली हो ॥ ५ ॥

[५९५] हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो ! (वां यः यज्ञः हविष्मान्) तुम्हारा जो यज्ञ हविष्यान्नसे युक्त है, (कृतब्रह्मः समर्यः भवाति) स्तोत्र निर्माण करके जिसने मनुष्योंको इकठ्ठा किया है । उस (वरं वसिष्ठं) श्रेठ जनोंको बसानेवाले यज्ञ कार्यके (उप प्र आ यातं) समीप तुम जाते हैं क्यों कि (युवभ्यां इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते) तुम्हारे वर्णन करनेके लिये ही ये स्तोत्र होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— अश्विनीकुमार दानी पुरुषके लिए अन्न पहुंचाते हैं और पहाडके शिखरपर बैठते हैं । पर्वत शिखरपर सोम आदि औषधियां होती हैं । लोग उनको लाकर उनसे यज्ञ करते हैं । अश्विदेव पर्वत-शिखरपर जाते हैं, उन औषधियोंको लाते और सुख पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

अश्विदेव जो अन्न प्रदान करते हैं, वह अन्न ऋषियोंके खानेके योग्य तथा औषधियों और जलसे बननेवाला है । इन वर्णनोंसे मालूम पडता है, कि शाक ही भोजन है, मांस नहीं ॥ ४ ॥

हे देवो ! ऋषियोंके द्वारा गाये जानेवाले बहुतसे स्तोत्र सुनते हुए तुम सबका निरीक्षण करते हो तथा श्रेष्ठ मनुष्यके प्रति जाते हो । ऐसे श्रेष्ठ मनुष्यके लिए तुम्हारी बुद्धि अन्न देनेवाली हो ॥ ५ ॥

यज्ञमें अश्विदेवोंका वर्णन किया जाता है, उन स्तोत्रोंको पढकर यज्ञ होते हैं । यज्ञोंसे मानवोंका संघटन होता है । श्रेष्ठ पुरुषोंको बसाया जाता है, ग्रामोंका निर्माण होता है, मानवोंका परस्पर व्यवहार होता है । इस तरह यज्ञ उन्नतिके कारण बनते हैं ॥ ६ ॥

५९६ इयं मनीषा इयमश्विना गी- रिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[७२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप्)

५९७ अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीरुरुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् ॥ १ ॥

५९८ उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिरामभीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥

५९९ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वै- राश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [५९६] (वृषणा अश्विना) हे बलवान् अश्विदेवो ! (इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारी वाणी है, (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो । क्योंकि (युवयूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि अग्मन्) ये स्तोत्र प्रचलित हुए हैं (नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात) हमारा सदा तुम कल्याण करनेके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[७२]

[५९७] (नक्) रात्री (स्वसुः उषसः अपजिहीते) अपनी बहन उषासे दूर हटती हैं । (अरुषाय) लाल रंगवाले सूर्यके लिये (कृष्णीः पन्थां रिणक्ति) काली रात्री मार्ग खुला कर देती है । (अश्वामघा गोमघा वां हुवेम) घोडों और गौओंके रूपमें वैभवको देनेवाले (वां हुवेम) आपको हम बुलाते हैं । (दिवा नक्तं शरुं अस्मत् युयोतं) दिन रात घातक शत्रुको हमसे दूर कर दो ॥ १ ॥

[५९८] हे (माध्वी अश्विना) मीठे स्वभाववाले अश्विदेवो ! (रथेन वामं वहन्ता) रथसे सुन्दर धन या अन्न लेकर (दाशुषे मर्त्याय उप आयातं) दानी मनुष्यके समीप आओ, (अस्मत् अनिरां-अन्+इरां) हमसे अन्नके अभावको और (अमीवां युयुतं) रोगोंको दूर करो । (नः दिवा नक्तं त्रासीथां) हमारा दिन रात रक्षण करो ॥ २ ॥

[५९९] (अवमस्यां व्युष्टौ) समीपकी उषाका उदय होनेपर (वृषणः सुम्नायवः) बलवान् और सुखसे चलनेवाले घोडे (वां रथं) तुम्हारे रथको हमारे समीप (आवर्तयन्तु) ले आवें । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ऋत-युग्भिः अश्वैः) सरलतापूर्वक जोते जानेवाले घोडोंसे (स्यूमगभस्तिं वसुमन्तं) तेजस्वी तथा धनवाले रथको (आ वहेथां) इधर ले आओ ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे बलवान् अश्विदेवो ! यह हमारी इच्छा है, यह हमारी वाणी है । इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो, क्योंकि ये स्तोत्र तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

उषासे रात्री पृथक् होती है । रात्रीसे सूर्यके लिए मार्ग खुल जाता है और वह अन्धकारको दूर करके दिनको प्रवृत्त करता है । गौओं और घोडोंके रूपमें वैभव प्राप्त करनेसे निर्धनता दूर होती है । हम धनी होकर अपने शत्रुओंको दूर करें और निर्भय होकर उन्नत होते रहें ॥ १ ॥

अश्विदेव अपने रथपर उत्तम अन्न और धनको रखकर हमारे पास आयें और हमारे अन्नके अकालको दूर करें और हमसे सब रोगोंको दूर करके हमारा संरक्षण करें ॥ २ ॥

हे देवो ! उषाके उदय होनेपर बलवान् और सुखसे चलनेवाले घोडे तुम्हारे रथको हमारे पास ले आवें तथा हमें तेज तथा धन आदि देकर सुखी करें ॥ ३ ॥

६०० यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यात-मभि यद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥ ४ ॥
६०१ युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥ ५ ॥
६०२ इयं मनीषा इयमश्विना गी-रिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[७२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६०३ आ गोमता नासत्या रथेना-ऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥ १ ॥

अर्थ— [६००] हे (नृपती नासत्या) मानवोंके रक्षक और पालक अश्विदेवो ! (वां यः रथः वसुमान्) तुम्हारा जो रथ धनयुक्त और (उस्रयामा) प्रातःकालमें जानेवाला है तथा (त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति) तीन बन्धनोंवाला और स्थानपर शीघ्र पहुंचानेवाला है, (एना नः उपयातं) इससे हमारे पास तुम आओ, (यत् विश्वप्स्न्यः) जो सर्वत्र जानेवाला रथ (वां जिगाति) तुम्हें शीघ्र वहां लाता है ॥ ४ ॥

[६०१] तुमने (जरसः च्यवानं अमुमुक्त) बुढापेसे च्यवन ऋषिको मुक्त किया, (युवं आशुं अश्वं) तुमने शीघ्रगामी घोडेको (पेदवे निऊहथुः) पेदु नरेशके पास पहुंचा दिया। (अत्रिं तमसः अंहसः निस्पर्तं) अत्रिको अन्धेरेसे और कष्टके स्थानसे दूर किया और (जाहुषं शिथिरे अन्तः) जाहुष नरेशको भ्रष्ट हुए उसके राज्यपर पुनः (नि धातं) तुमने बिठला दिया ॥ ५ ॥

[६०२] (वृषणा अश्विना) हे बलवान् अश्विदेवो ! (इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारी वाणी है. (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो। क्योंकि (युवयूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि अग्मन्) ये स्तोत्र प्रचलित हुए हैं। (नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात) हमारा सदा तुम कल्याण करनेके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ६ ॥

[७२]

[६०३] हे (नासत्या) सत्य पालक अश्विदेवो ! (गोमता अश्वावता) गायों और घोडोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रेण रथेन) तेजस्वी शोभासे युक्त रथसे (आ यातं) यहां आओ। (स्पार्हया श्रिया) स्पृहणीय शोभासे तथा (तन्वा शुभाना) उत्तम शरीरसे शोभायमान होते हुए (वां अभि) तुम्हारी (विश्वाः नियुतः सचन्ते) सब घोडे सेवा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विदेव मनुष्योंके रक्षक हैं और सत्यके पालक हैं। उनके रथपर धन रहता है। सबेरे सबेरे उनका रथ सर्वत्र घूमता है। उनका वह रथ हमारे पास आवे और हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

अश्विनीकुमारोंने वृद्ध च्यवन ऋषिको तरुण बना दिया। पेदुको उत्तम घोडा दिया, अत्रि ऋषिको अन्धकारपूर्ण तथा कष्टदायक कारावाससे मुक्त किया, जाहुषको उसके राज्यपर फिर बिठलाया ॥ ५ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! यह हमारी इच्छा है, यह हमारी वाणी है। इस सुन्दर स्तुतिको तुम स्वीकार करो, क्योंकि ये स्तोत्र तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

अश्विदेव सत्यपक्षका रक्षण करते हैं। उनके पास बहुत गायें और घोडे हैं। वे तेजस्वी रथसे आते हैं। उनका शरीर सुन्दर है और उत्तम धन उनके पास है। वे हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

६०४ आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥ २ ॥

६०५ उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥ ३ ॥

६०६ वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥ ४ ॥

६०७ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६०४] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (देवेभिः सजोषसा) देवोंके साथ रहकर (नः अर्वाक्) हमारे पास (रथेन उप आयातं) रथसे आओ। (नः युवोः हि) हमारी तुम्हारे साथ (पित्र्याणि सख्या) पितृपरंपरासे मित्रता है। (उत बन्धुः समानः) और तुम्हारा बन्धुभाव भी समान है, (तस्य वित्तं) उसको तुम जानते हैं ॥ २ ॥

[६०५] अश्विनोः स्तोमासः) अश्विदेवोंके स्तोत्र (देवीः उषसः) तेजस्वी उषाओंके (जामि ब्रह्माणि च) बन्धुवत् स्तोत्रोंको भी (उत अबुध्रन्) जाग्रत कर चुके हैं। (इमे धिष्ण्ये रोदसी) ये बुद्धिमान् द्यु और पृथिवि दोनोंकी (आविवासन् विप्रः) परिचर्या करता हुआ ज्ञानी ऋषि (नासत्या अच्छ विवक्ति) सत्यपालक अश्विदेवोंका उत्तम वर्णन करता है ॥ ३ ॥

[६०६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (उषासः वि उच्छन्ति चेत्) उषाएँ अन्धेरा हटा दें तब (वां ब्रह्माणि कारवः प्रभरन्ते) आपके स्तोत्र स्तुतिकर्ता भर देते हैं, गाते हैं। (देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत्) सविता देव ऊंचे स्थानमें जाता हुआ प्रकाशका आश्रय करता है। तब (समिधा अग्नयः बृहत् जरन्ते) समिधासे अग्नि बहुत प्रशंसित- प्रदीप्त होते हैं ॥ ४ ॥

[६०७] हे (नासत्या अश्विना) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अधरात् उदक्तात्) नीचेसे, ऊपरसे, (पश्चात् पुरस्तात्) पीछेसे अथवा आगेसे (आयातं) आओ। (पाञ्चजन्येन राया) पञ्चजनोंका हित करनेवाले धनके साथ (विश्वतः आयातं) सब ओरसे आओ। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणकारक साधनोंसे सदा संरक्षण करो ॥ ५ ॥

भावार्थ — हे अश्विदेवो ! तुम देवोंके साथ रहकर भी हमारे पास आओ। हमारी तुम्हारी मैत्री अनन्तकालसे चली आ रही है, साथ ही हम तुममें परस्पर बंधुभाव भी है, उसे तुम जानते हो ॥ २ ॥

अश्विदेवोंके स्तोत्र उषःकालमें गाए जाते हैं, जिससे बन्धुबांधव जाग्रत होते हैं और पश्चात् यज्ञका प्रारंभ होता है ॥ ३ ॥

हे अश्विदेवो ! यदि उषायें अन्धेरेको दूर कर दें, तो स्तुति करनेवाले आपकी स्तुति करें। प्रातः उदय होनेवाला सविता ज्यों ज्यों आकाशमें ऊपर चढता जाता है, त्यों त्यों उसका प्रकाश भी तीक्ष्ण होता जाता है, तथा उसके साथ ही समिधा आदिसे हवनकी शुरुआत हो जाती है ॥ ४ ॥

हे देवो ! तुम दोनों नीचेसे, ऊपरसे, पीछेसे आगेसे अर्थात् हर तरफसे हमारे पास आओ तथा अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमारी सदा रक्षा किया करो ॥ ५ ॥

[७३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६०८ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा ऽमर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ १ ॥
६०९ न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥ २ ॥
६१० अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥
६११ उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥

[७३]

अर्थ-- [६०८] (देवयन्तः स्तोमं प्रतिदधानाः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए स्तोत्रका धारण करते हैं, (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) इस अन्धेरेके पार हम चले गये हैं । (गीः) हमारी वाणी (पुरु-दंसा पुरु-तमा) बहुत कार्य करनेवाले और बडे (पुरा-जा अमर्त्या अश्विना) पूर्वकालसे प्रसिद्ध अमर अश्विदेवोंको (हवते) बुलाती है । इनका वर्णन हमारी वाणी करती है ॥ १ ॥

[६०९] हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यः यजते वन्दते च) जो यज्ञ करता है और प्रणाम करता है । ऐसा वह (होता मनुषः प्रियः नि सादि) होता मनुष्योंमें प्रिय होकर यज्ञ स्थानमें बैठ गया है । तुम दोनों (उपाके मध्वः अश्नीत) समीप जाकर मधुर सोमरस पीओ (विदथेषु प्रयस्वान्) यज्ञोंमें अन्न साथ लेकर मैं (वां आवोचे) आप दोनोंकी स्तुति करता हूं ॥ २ ॥

[६१०] हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस स्तुतिका सेवन करो । (त्वां प्रति प्रेषितः) तुम्हारी ओर भेजा हुआ (जरमानः वसिष्ठः) स्तुति करनेवाला वसिष्ठ ऋषि (श्रुष्टीवा इव) शीघ्रगामी दूतकी तरह तुम्हें (स्तोमैः अबोधि) स्तोत्रपाठोंसे जगा चुका है । (पथां उराणाः यज्ञं अहेम) मार्गोंका अनुसरण करनेवाले हम अब यज्ञको संपन्न करते हैं ॥ ३ ॥

[६११] (त्या वह्नी वीळुपाणी) वे ढोनेवाले सुदृढ हाथोंसे युक्त (रक्षो-हणा संभृता) राक्षसोंका वध करनेवाले और धनको लानेवाले अश्विदेव (नः विशं उपगमतः) हमारी प्रजाकी ओर जाते हैं । और अब (मत्सराणि अन्धांसि सं अग्मत) आनंद देनेवाले सोमरस मिलाये गये हैं इसलिये तुम (नः मा मर्धिष्टं) हमारा कष्ट न बढाओ और शीघ्र (शिवेन आ गतं) हितकारक ढंगसे इधर आओ और सोमरस पीओ ॥ ४ ॥

भावार्थ— हम देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। रात्रीके बीत जानेसे हम अन्धेरेको पार कर गए हैं और प्रकाशके उदय होनेपर हमारी वाणी अश्विनी कुमारोंकी स्तुतिमें संलग्न है ॥ १ ॥

यज्ञ शुरु हुआ । मानवोंका हितकर्ता याजक यज्ञमें प्रवृत्त हुआ है । अश्विदेवोंको रस दिया गया है और हविष्यान्न लेकर स्तोता लोग स्तोत्र पाठपूर्वक यज्ञ करते हैं ॥ २ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! इस स्तुतिका तुम सेवन करो । तुम्हारी ओरसे भेजा गया स्तोता शीघ्रगामी दूतकी तरह तुम्हें अपने स्तोत्रपाठोंसे जगा चुका है । उत्तम मार्गपर चलनेवाले हम यज्ञको सम्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

सुदृढ हाथोंसे युक्त, राक्षसोंका वध करके धनको लानेवाले अश्विदेव हमारी प्रजाकी ओर जाते हैं । हे देवो ! हम तुम्हें आनंद देनेवाले सोमरस प्रदान करते हैं, इसलिए तुम हमें कष्ट मत दो तथा हितकारक साधनोंसे सम्पन्न होकर ही हमारे पास आओ ॥ ४ ॥

६१२ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्ता॒दाश्वि॑ना यातमध॒रादुद॑क्तात् ।
आ वि॒श्वतः॒ पाञ्च॑जन्येन रा॒या यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ ५ ॥

[७४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अश्विनौ । छन्दः प्रगाथाः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

६१३ इ॒मा उ॑ वां॒ दिवि॑ष्टय उ॒स्रा ह॑वन्ते अश्विना ।
अ॒यं वा॑म॒ह्वेऽव॑से शचीवसू विशं॑विशं॒ हि गच्छ॑थः ॥ १ ॥

६१४ यु॒वं चि॒त्रं द॑दथु॒र्भोज॑नं नरा॒ चोदे॑थां सू॒नृता॑वते ।
अ॒र्वाग्रथं॒ सम॑नसा॒ नि य॑च्छतं॒ पिब॑तं सो॒म्यं मधु॑ ॥ २ ॥

६१५ आ या॑त॒मुप॑ भूषतं॒ मध्वः॑ पिबतमश्विना ।
दु॒ग्धं पयो॑ वृषणा जेन्यावसू॒ मा नो॑ मर्धिष्ट॒मा ग॑तम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [६१२] हे (नासत्या अश्विना) हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! तुम (अधरात् उदक्तात्) नीचेसे, ऊपरसे (पश्चात् पुरस्तात्) पीछेसे और आगेसे (आयातं) आओ । (पांचजन्येन राया) पंचजनोंका हित करनेवाले धनके साथ (विश्वतः आयातं) सब ओरसे आओ । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारी कल्याणकारक साधनोंसे सदा रक्षा करो ॥ ५ ॥

[७४]

[६१३] हे (वाजिनी-वसू उस्रा) शक्तिरूप धनसे युक्त और प्रकाशमान अश्विदेवो ! (इमाः दिविष्टयः) ये द्युलोकमें रहनेकी इच्छा करनेवाले भक्त (वां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं । (अवसे अयं वां अह्वे) अपनी सुरक्षाके लिये यह मैं तुम्हें बुलाता हूं । क्योंकि (विशं विशं हि गच्छथः) तुम दोनों प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ॥ १ ॥

[६१४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (युवं चित्रं भोजनं) तुम दोनों विलक्षण प्रकारका बलवर्धक भोजन (ददथुः) देते हो । और उसे (सूनृतावते चोदेथां) सत्य भाषण करनेवाले मनुष्यको प्रेरित करो तथा (समनसा रथं अर्वाक् नियच्छतं) एक मनसे अपने रथको हमारे समीप रोककर रखो और यहां (सोम्यं मधु पिबतं) सोमका मधुर रस पीओ ॥ २ ॥

[६१५] हे (जेन्या-वसू वृषणा) धनोंको जीतनेवाले बलवान् अश्विदेवो ! (आ यातं) इधर आओ, (उप भूषतं) अलंकृत होओ । (मध्वः पिबतं) मधुर रसका पान करो । (नः मा मर्धिष्टं) हमें कष्ट न दो, (आ गतं) आओ और (पयः दुग्धं) दूधका दोहन किया है, उसका सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम दोनों नीचेसे, ऊपरसे, पीछेसे, आगेसे अर्थात् हर तरफसे हमारे पास आओ तथा अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमारी सदा रक्षा किया करो ॥ ५ ॥

अश्विनीकुमार शक्तिरूप धनसे युक्त होनेके कारण तेजस्वी हैं । तेजोयुक्त लोकोंमें रहनेकी इच्छा करनेवाले भक्त इन देवोंको बुलाते हैं । मैं भी अपनी सुरक्षाके लिए इन देवोंको बुलाता हूं । मनुष्य शक्तिसे सम्पन्न बने, क्योंकि शक्ति ही धन है ॥ १ ॥

उत्तम मार्गसे ले जानेवाले अश्विनीकुमार बलवर्धक भोजन देते हैं, तथा मनुष्योंको सत्यभाषणकी तरफ प्रेरित करते हैं । इसी प्रकार नेता अपने अनुयायियोंको विविध प्रकारका पौष्टिक अन्न दें, उनका बल बढावें तथा उन्हें सन्मार्गकी ओर प्रेरित करें ॥ २ ॥

हे बलवान् अश्विदेव ! हमारे पास अलंकृत होकर आओ, तथा मधुर रसका पान करो । हमें किसी तरहका कष्ट मत दो । हमने जो दूधका दोहन किया है, उसे पीओ । घरमें जब अतिथि आवे, तब उसे मधुर रस प्रदान करके उसका सत्कार किया जाए, उसे किसी तरहका कष्ट न हो, इस बातकी सावधानी रखी जाए और गौका दोहन करके उसे ताजा दूध दिया जाए ॥ ३ ॥

+

६१६ अश्वा॑सो॒ ये वा॒मुप॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हं यु॒वां दीय॑न्ति॒ बिभ्र॑तः ।
म॒क्षु॒युभि॑र्नरा॒ हये॑भिरश्वि॒ना ऽऽ दे॑वा यातमस्म॒यू ॥ ४ ॥

६१७ अधा॑ ह॒ यन्तो॑ अश्वि॒ना पृक्षः॑ सचन्त सू॒रयः॑ ।
ता यं॑सतो म॒घव॑द्भ्यो ध्रु॒वं यशः॑ छ॒र्दिर॒स्मभ्यं॒ नास॑त्या ॥ ५ ॥

६१८ प्र ये य॒युर॑वृ॒कासो॒ रथा॑ इव नृपा॒तारो॒ जना॑नाम् ।
उ॒त स्वेन॒ शव॑सा शूशुवु॒र्नर॑ उ॒त क्षि॑यन्ति सुक्षि॒तिम् ॥ ६ ॥

[७५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६१९ व्यु१॒॑षा आ॑वो दिवि॒जा ऋ॒तेना॑ऽऽवि॒ष्कृण्वा॒ना म॑हि॒मान॒मागा॑त् ।
अप॒ द्रुह॒स्तम॑ आव॒रजु॑ष्ट॒मङ्गि॑रस्तमा प॒थ्या॑ अजीगः ॥ १ ॥

अर्थ— [६१६] (वां ये अश्वासः) आपके जो घोडे (बिभ्रतः युवां) रथको धारण करनेवाले तुम्हें (दाशुषः गृहं) दाताके घरतक (उप दीयन्ति) पहुंचा देते हैं। हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! तथा (देवा) देवतारूप तुम दोनों (अस्मयू) हमारी ओर आनेकी इच्छा करनेवाले होकर उन (मक्षुयुभिः हयेभिः) शीघ्रगामी घोडोंसे (आयातं) यहां आओ ॥ ४ ॥

[६१७] हे (नासत्या अश्विना) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अधा सूरयः) अब विद्वान् लोग (यन्तः पृक्षः सचन्तः) प्रयत्न करनेपर अन्न प्राप्त करते ही हैं। (मघवद्भ्यः अस्मभ्यं) धनिक बने हम लोगोंको (ता) वे तुम दोनों (छर्दिः) उत्तम घर और (ध्रुवं यशः) स्थिर यश (यंसतः) दे दो ॥ ५ ॥

[६१८] (ये जनानां नृपातारः) जो लोगोंके पालक हैं और (अ-वृकासः) क्रूर कर्म करनेवाले नहीं हैं, वे (रथाः इव) रथोंके समान (प्र ययुः) आगे बढते हैं। (उत नरः) तथा वे नेता (स्वेन शवसा) अपने निज बलसे (शूशुवुः) बढते और (उत सुक्षितिं क्षियन्ति) वैसे ही वे अच्छे निवास स्थानमें रहते हैं ॥ ६ ॥

[७५]

[६१९] यह (उषाः दिविजाः वि आवः) उषा अन्तरिक्षमें प्रकट होकर विशेष रीतिसे प्रकाशने लगी है। वह उषा (ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना) तेजसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई (आ अगात्) आ रही है। वह (द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः) शत्रुओं और अप्रिय अन्धकारको दूर करती है और (अंगिरस्तमा पथ्याः अजीगः) चलनेके मार्गोंको प्रकाशित करती है ॥ १ ॥

भावार्थ— शक्तिशाली घोडे इन अश्विदेवोंको दाताके घरतक पहुंचाते हैं, अतः हे अश्विनौ देवो ! तुम शीघ्रगामी घोडोंसे हमारी तरफ आओ ॥ ४ ॥

प्रयत्न करनेवाले ज्ञानी अन्न तथा भोग प्राप्त करते ही हैं। मनुष्य ज्ञान प्राप्त करे, प्रयत्न करे, धन, अन्न आदि प्राप्त करे। धनवान् होनेपर घर बनावे और स्थायी यश प्राप्त करे ॥ ५ ॥

लोगोंका या प्रजाका पालन करनेवाले क्रूर न हों, जो क्रूर न हों, उन्हें ही प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त करना चाहिए। क्रूरतारहित अधिकारी ही प्रगति करते हैं, वे ही उन्नति प्राप्त करते हैं। क्रूरतासे रहित संरक्षक वीर ही अपनी शक्तिसे बढते हैं। उनकी उन्नतिमें कोई रुकावट उत्पन्न नहीं कर सकता। ऐसे ही लोग अपने बलसे उत्तम निवासस्थान प्राप्त करके उसमें आनन्दसे निवास करते हैं ॥ ६ ॥

उषा अन्तरिक्षमें प्रकट होकर विशेष रीतिसे प्रकाशित होने लगती है। वह शत्रुओं और अप्रिय अन्धकारको दूर करती है और मार्गोंको प्रकाशित करती है। दिव्यभावोंवाले मनुष्य अपनी महिमाको प्रकट करते हैं। उषा दिव्य स्त्री है। दिव्य गुणोंके साथ प्रकट हुई है। वह सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करती है। स्त्रियां भी उषाकी तरह दिव्य गुणवाली हों। वे स्त्रियां अपने प्रभावसे दुष्टोंको दूर करें, अज्ञानान्धकारको दूर करके प्रकाशका मार्ग दिखायें ॥ १ ॥

६२० महे नो अद्य सुवितायं बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ २ ॥
६२१ एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ३ ॥
६२२ एषा स्या युजाना पराकात् पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥ ४ ॥
६२३ वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥

अर्थ— [६२०] (अद्य नः महे सुविताय बोधि) आज हमारे बड़े सुखके लिये जागो । हे (उषः) उषा देवी ! हमें (महे सौभगाय प्र यंधि) बड़े सौभाग्यका प्रदान कर । तथा (चित्रं यशसं रयिं अस्मे धेहि) विशेष श्रेष्ठ यशसे युक्त धन हमें दे । हे (मानुषि देवि) मनुष्योंका हित करनेवाली देवी ! (मर्तेषु श्रवस्युं) मनुष्योंको अन्न तथा यशवाले पुत्रको दो ॥ २ ॥

[६२१] (दर्शतायाः उषसः) दर्शनीय ऐसी इस उषाके (त्ये एते) वे ये (चित्राः अमृतासः भानवः) विलक्षण अमर प्रकाश किरणें (आ अगुः) फैल रहीं हैं । वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः) दिव्य व्रतोंको निर्माण कर रही हैं और (अन्तरिक्षा आपृणन्तः वि अस्थुः) अन्तरिक्षको भरपूर भर देती हैं और विशेष रीतिसे वहां रहती हैं ॥ ३ ॥

[६२२] (एषा स्या) यह वह उषा (पराकात्) दूरसे भी (पञ्च क्षितीः युजाना सद्यः परि जिगाति) पांचों मानवोंको उद्यमसे लगाती हुई उनके पास पहुंचती है । (जनानां वयुना अभिपश्यन्ती) लोगोंके कर्मोंको देखती हुई यह (दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी) द्युलोककी पुत्री भुवनोंकी पालना करती है ॥ ४ ॥

[६२३] (वाजिनीवती चित्रामघा) बलवर्धक अन्नसे युक्त तथा विलक्षण धनसे युक्त (सूर्यस्य योषा) सूर्यकी पत्नी (वसूनां रायः ईशा) सब धनोंके ऐश्वर्यकी स्वामीनी है । (ऋषि-स्तुता) ऋषियोंद्वारा प्रशंसित (मघोनी) ऐश्वर्यवती (जरयन्ती) सबकी आयुका नाश करनेवाली (उषाः वह्निभिः गृणाना) उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर (उच्छन्ती) प्रकाशित होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— उषा मनुष्योंका हित करनेवाली है, वह लोगोंको सुख प्राप्त करनेके लिए जाग्रत करती है । विशेष सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए लोगोंको प्रयत्नशील बनाती है तथा यश प्रदान करनेवाले धनको प्रदान करती है । स्त्रियां मनुष्योंका हित करनेवाली हों, तथा ऐसे सुपुत्रका निर्माण करें कि जो यशस्वी, धनवान् और अन्न कमानेवाला हो ॥ २ ॥

उषाके अन्तरिक्षमें प्रकट होते ही उसकी रंग बिरंगी सुन्दर किरणें सर्वत्र फैलने लगती हैं, तथा सर्वत्र दिव्य कर्मोंका आरंभ हो जाता है । इसी तरह स्त्रियां सुन्दर हों, दर्शनीय हों, रंग बिरंगे सुन्दर सुन्दर कपडे धारण करें तथा उषाके समान आकर्षक तथा रमणीय बनें । स्त्रियां दिव्य व्रतोंका पालन करें, उत्तम व्रतोंका आचरण करें । इस प्रकार सब लोगोंके हृदयोंमें अपनी श्रेष्ठताका प्रभाव भर दें ॥ ३ ॥

यह उषा स्वयं दूर रहकर सभी जनोंको उनके उनके कार्योंमें प्रवृत्त करती है । वह उदय होकर तत्काल सबके पास पहुंचती है और उन्हें सत्कर्मकी प्रेरणा देती है । लोगोंके कामोंको देखती है, सबके कर्मोंका निरीक्षण करती है । उषा दिव्य लोककी पुत्री है और त्रिभुवनका पालन करनेवाली है । इसी तरह गृहिणियां स्वयं उत्तम कर्म करती हुई अन्योंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा दें ॥ ४ ॥

उषा सूर्यकी स्त्री है, वह अनेक प्रकारके अन्न तथा धन अपने पास रखती है, धनों और वैभवोंका ईशन करती है, स्वामिनी होकर उन सब ऐश्वर्यों पर शासन करती है । वैसी ही स्त्रियां भी तेजस्विनी हों, अनेक तरहके अन्न और धनोंसे युक्त हों । स्वामिनी होकर सब ऐश्वर्यों पर शासन करें । ऐसी स्त्री (ऋषि स्तुता) की प्रशंसा सब ऋषि करते हैं । जो भी स्त्री अपने सम्पूर्ण ऐश्वर्यका योग्य रीतिसे प्रशासन करती है, उसकी प्रशंसा ऋषि करते हैं ॥ ५ ॥

६२४ प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥
६२५ सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥
६२६ नू नो गोमद् वीरवद् धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[७६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६२७ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥

अर्थ— [६२४] (द्युतानां उषसं वहन्तः) तेजस्विनी उषाको ले जानेवाले (अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रति अदृश्रन्) विलक्षण तेजस्वी घोडे दिखाई देते हैं। वह (शुभ्रा) गौरवर्ण उषा (विश्वपिशा रथेन याति) सब प्रकारसे सुन्दर रथसे जाती है। वह (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्योंको रत्न अथवा धन देती है ॥ ६ ॥

[६२५] (सत्या महती यजता देवी) सत्य बडी पूजनीय यह उषा देवी (सत्येभिः महद्भिः यजत्रैः देवेभिः) सत्य महान् पूजनीय देवोंके साथ रहकर (दृळ्हानि रुजत्) घने अन्धकारका नाश करती है, (उस्रियाणां ददत्) गौओंके लिये प्रकाश देती है, इस कारण (गावः उषसं प्रति वावशन्त) गौवें उषाकी कामना करती हैं ॥ ७ ॥

[६२६] हे (उषः) उषा देवि ! (नु अस्मे) हमें, प्रत्येकके लिये (गोमत् अश्वावत् वीरवत् रत्नं) गौओं, अश्वों और वीर पुत्रोंसे युक्त धन और (पुरुभोजः धेहि) बहुत भोजन सामग्री दो। (नः बर्हिः पुरुषता निदे मा कः) हमारा यज्ञ मानवोंके समाजमें निन्दाके योग्य न होवे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके संरक्षक साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ८ ॥

[७६]

[६२७] (अमृतं विश्वजन्यं ज्योतिः) अमर और सबके हितकारी तेजका (विश्वानरः सविता देवः उत् अश्रेत्) विश्वके नेता सविता देवने आश्रय किया है। वह (देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट) देवोंका आंख सूर्य शुभ कर्मके साथ उदय हुआ है। और (उषाः विश्वं भुवनं आविः अकः) उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया है ॥ १ ॥

भावार्थ— सूर्य किरणरूपी घोडे रथको चलाते हैं, और उस रथमें बैठकर उषा भ्रमण करनेके लिए आती है। वह घरमें नहीं रहती अपितु सर्वत्र भ्रमण करती है। स्त्रियां भी राष्ट्रमें सर्वत्र भ्रमण करें। राष्ट्रमें ऐसा प्रबन्ध हो कि जिससे स्त्रियां निर्भय होकर राष्ट्रमें सर्वत्र संचार करें। उत्तम गुणोंवाली स्त्री रानी बनकर राष्ट्रका प्रशासन भी कर सकती है ॥ ६ ॥

उषा देवी अन्य देवोंके साथ रहकर सुदृढ शत्रुओंका नाश करती है। सत्यका पालन करनेवाली उषा सत्यका पालन करनेवाले वीरोंके साथ रहकर सुदृढ बने। यह गौओंको घास आदि देती है। इसलिए गौवें उषाको चाहती हैं। घरकी स्वामिनी सबेरे उठे, गौवोंको घास पानी देवे, गौवोंका प्रेम सम्पादन करे और गौओंका दूध निकाले ॥ ७ ॥

हे उषा देवी ! जिसके साथ गायें, घोडे, वीर पुत्र और भोग रहते हैं, ऐसा धन हमें चाहिए। मानव समाजमें हमारे कर्मोंकी निन्दा न हो। सभी हमारे कर्मकी प्रशंसा करें। मानवताकी दृष्टिसे हमारे कर्म श्रेष्ठसे श्रेष्ठ हों। हमारे कर्मोंसे मानवोंकी उन्नति हो ॥ ८ ॥

विश्वका नेता, सबको चलानेवाला प्रेरक सर्वजन हितकारी अमर तेजका आश्रय करता है। जो नेता है वह सबका प्रेरक, सबको शुभ कर्म करनेकी प्रेरणा देनेवाला, प्रकाशमान् विजिगीषु, कर्तव्यदक्ष तथा सबका हित करनेवाला होकर अमर तेजको धारण करे। सूर्यका प्रकाश मरणको दूर करनेवाला है। सूर्य प्रकाश रोगबीजोंको दूर करके आरोग्य बढाता है और अपमृत्युको दूर करता है। सूर्य विश्वका चक्षु है, क्योंकि इसीके प्रकाशसे सब कुछ प्रकाशित होता है। उषा भी सब जगत्को प्रकाशित करती है ॥ १ ॥

६२८ प्र मे पन्था देवयाना अदृश्र—न्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥
६२९ तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचर—न्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥
६३० त इद् देवानां सधमाद आस—न्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन् त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥ ४ ॥
६३१ समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रता—न्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [५२८] (अमर्धन्तः वसुभिः इष्कृतासः) हिंसा न करनेवाले और निवासक तेजोंसे सुसंस्कृत हुए (देवयानाः पन्थाः) देवोंके जाने आनेके मार्ग (मे प्र अदृश्रन्) मैंने देखे हैं। मुझे दिखाई दे रहे हैं (पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत् उ) पूर्व दिशामें उषाका ध्वज-प्रकाश-फहरने लगा है। और (प्रतीची) पूर्व दिशामें उषा (हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्) बडे प्रासादोंके ऊपर प्रकाशित हो रही है ॥ २ ॥

[६२९] हे (उषः) उषा देवी ! (तानि इत् बहुलानि अहानि आसन्) वे बहुत दिन थे कि (सूर्यस्य उदिता प्राचीना) जो सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित होते थे। अर्थात् सूर्य उदयके पूर्व उषा बहुत दिन प्रकाशती रहती है। (यतः जारः इव परि आचरन्ती) क्योंकि तू पतिकी सेवा जैसी सती स्त्री करती है वैसी सेवा करती है, परन्तु (पुनः यती इव न) संन्यासिनी स्त्रीके समान पतिसे विमुख कभी तू नहीं होती ॥ ३ ॥

[६३०] जो (ऋतावानः पूर्व्यासः कवयः) सत्यके पालनकर्ता प्राचीन ज्ञानी और (सत्यमन्त्राः पितरः) जिनके मन्त्र सिद्ध किये होते थे, जो सबके पिता जैसे पालक थे, (ते इत् देवानां सधमादः आसन्) वे देवोंके साथ बैठकर सोमरसका आस्वाद लेनेवाले थे, जिन्होंने (गूळ्हं ज्योतिः अनु अविन्दन्) गुप्त सूर्यकी ज्योतीको प्राप्त किया और जिन्होंने (उषसं अजनयन्) उषाको प्रकट किया ॥ ४ ॥

[६३१] (समाने ऊर्वे) एक महत्कार्यके अन्दर वे (अधि सं-गतासः) एक होते हैं, संघटित होते हैं, और (सं जानते) अपना एक विचार करते हैं, तथा (ते मिथः न यतन्ते) वे कभी आपसमें कलह नहीं करते, (ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति) वे देवोंके अनुशासनोंका भंग कभी नहीं करते और (अमर्धन्तः) हिंसा न करते हुए (वसुभिः यादमानाः) धनोंके साथ संगत होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— उषाके प्रकट होनेसे दिव्यमार्ग हिंसासे रहित हुए हैं। उषाके आनेके पूर्व चारों ओर अन्धेरा था, पर उषाका प्रकाश फैलते ही अन्धेरा नष्ट हो गया और सारे मार्ग प्रकाशित हो गए। ऐसे प्रकाशित मार्गोंसे देवजन आते हैं, इसीलिए ऐसे मार्ग धनोंसे भरपूर होते हैं ॥ २ ॥

उषा देवी जारस्त्रीके समान अपने पति सूर्यकी सेवा करती है, संन्यासिनी स्त्री जिस तरह अपने पतिसे विमुख ही रहती है, उसी तरह यह उषा कभी अपने पति सूर्यकी सेवासे विमुख नहीं होती। जैसे एक जार स्त्री अपने जारकी आतुरतासे प्रतीक्षा करती है और उसके आने पर मन लगाकर उसकी सेवा करती है, उसी तरह स्त्री अपने पतिकी आतुरतासे प्रतीक्षा करे और आने पर उसकी सेवा मनसे करे। संन्यासिनीके समान आचरण न करे ॥ ३ ॥

पूर्व समयके ऋषि कवि अर्थात् दूरदर्शी और ज्ञानी होनेके कारण सत्यका पालन करते थे, वे मंत्रोंका साक्षात्कार करनेवाले थे, सबके पूर्वज और पालक थे। इन ऋषियोंको देवोंकी पंक्तिमें बैठकर सोम पीनेका अधिकार था। उन्होंने अपनी ज्योतिषविद्याके आधार पर ग्रहोंकी गतिका भी पता चला लिया था ॥ ४ ॥

एक महा कार्य करनेके लिए पारस्परिक विद्वेषको हटाकर आपसमें संगठन करना चाहिए तथा एक अनुशासनमें रहना चाहिए। सबके एक विचार और मत हों। आपसमें फूट पडे, ऐसा यत्न कभी नहीं करना चाहिए। देवोंके अनुशासन को कभी नहीं तोडना चाहिए, किसीकी हिंसा नहीं करनी चाहिए तथा धनोंको प्राप्त करना चाहिए ॥ ५ ॥

६३२ प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥
६३३ एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[७७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६३४ उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥
६३५ विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥

अर्थ— [६३२] हे (सुभगे उषः) उत्तम भाग्यवती उषा देवी ! (उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः) उषःकालमें जागनेवाले, स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ लोग (त्वा स्तोमैः ईळते) तुम्हारी स्तुति स्तोत्रोंसे करते हैं । (गवां नेत्री वाजपत्नी) गौओंको प्राप्त करनेवाली और अन्नका संरक्षण करनेवाली होकर (नः उच्छ) हमारे लिये प्रकाशित हो । हे (सुजाते) उत्तम जन्मवाली उषा ! (प्रथमा जरस्व) सब देवोंमें पहिली होकर प्रशंसित हो ॥ ६ ॥

[६३३] (एषा उषाः राधसः सूनृतानां नेत्री) यह उषा स्तुति करनेवालेके सद्धनोंको प्रेरित करनेवाली है । (उच्छन्ती वसिष्ठैः रिभ्यते) यह उषा अन्धकारको दूर करती है और वसिष्ठों द्वारा प्रशंसित होती है । (दीर्घश्रुतं रयिं अस्मै दधाना) बहुत प्रशंसा योग्य धन हमें देती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा उत्तम संरक्षक साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[७७]

[६३४] (युवतिः योषा न) तरुणी स्त्रीके समान यह उषा (उपो रुरुचे) सूर्यके पहिले प्रकाशित हो रही है । यह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) सब जीवोंको सर्वत्र संचार करनेके लिये प्रेरित करती है । (अग्निः मानुषाणां समिधे अभूत्) इस उषःकालमें अग्नि मनुष्योंको प्रदीप्त करना योग्य है । वह प्रदीप्त होकर (तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः) अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकट करता है ॥ १ ॥

[६३५] (विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्) सब जगत्‌के सम्मुख अत्यंत प्रसिद्ध यह उषा उदित हुई है । और वह (रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्) तेजस्वी शुभ्र वस्त्र पहन कर बढ रही है । वह (हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक्) सुवर्णके समान वर्णवाली तथा सुन्दर दर्शनीय तेजवाली (गवां माता) गौओंकी माताके समान हित करनेवाली और (अह्नां नेत्री) दिनोंका संचलन करनेवाली (अरोचि) प्रकाशित हो रही है ॥ २ ॥

भावार्थ— प्रातःकाल उठकर स्तोत्रोंसे स्तुति करनी चाहिए । जो एकत्र निवास करते हैं, वे इकट्ठे होकर स्तोत्र पाठ करें । उषा गौओंको चलानेवाली और अन्नका पालन करनेवाली है । हे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई स्त्री ! तू सबसे प्रथम ईश्वरकी स्तुति कर ॥ ६ ॥

उषःकाल इतना रमणीय होता है कि उसे देखकर कवियोंको काव्यगानका स्फुरण होता है । यह उषा अन्धकारको दूर करती है, प्रकाश देती है, इसलिए उषा प्रशंसाके योग्य है ॥ ७ ॥

उषा अपनेपति सूर्यके पहले ही उठकर अन्धकार दूर करनेका अपना कार्य करने लगती है तथा रंग बिरंगे वर्णोंसे सजती है । इसी तरह तरुणी स्त्री अपने पतिसे पहले उठे और अपने घरकी सफाई करके स्वयं भी रंग बिरंगे परिधान पहन कर पतिके सामने सजीधजी रहे । तब घरके सभी सदस्य मिलकर अग्नि प्रदीप्त करें अर्थात् यज्ञ करें और अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकाशित करें ॥ १ ॥

उषाके समान तरुणी स्त्री सबसे प्रथम उठे । तेजस्वी और चमकीले वस्त्र पहनकर कार्य करनेके लिए जाने लगे । स्त्री उषाके समान सोनेकी तरह ही तेजस्वी वर्णवाली, सुन्दर और दर्शनीय बने । स्त्रियां विशेष कर तरुणियां सजकर अपनी सुन्दरता बढावें । घरके पशु पक्षियोंका संगोपन उसी तरह करें कि जिस तरह मातायें अपने बच्चोंका संगोपन करती हैं । स्त्रियां घरके जो कार्य करने हों, उनका नेतृत्व करें ॥ २ ॥

६३६ देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥
६३७ अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छो—र्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥
६३८ अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्यु—षो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥ ५ ॥
६३९ यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धय—न्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६३६] (देवानां चक्षुः वहन्ती) देवोंके तेजको धारण करनेवाली (सुभगा) उत्तम भाग्यवाली (सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती) सुन्दर श्वेत किरणोंको—सूर्यके अश्वोंको चलानेवाली (उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) उषा किरणोंसे व्यक्त रूपमें दीखने लगी है । यह उषा (चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता) विलक्षण धनवाली संपूर्ण विश्वके सम्मुख बढ रही है ॥ ३ ॥

[६३७] (अन्तिवामा) हमारे समीप धनको लानेवाली तू (अमित्रं दूरे उच्छ) हमारे शत्रुको दूर करके प्रकाशित हो । तथा (उर्वीं गव्यूतिं नः अभयं कृधि) विस्तृत भूमिको हमारे लिये निर्भय बनाओ । (द्वेषः यवय) शत्रुओंको दूर करो, (वसूनि आभर) धनोंको ला दो । हे (मघोनि) धनयुक्त उषा ! (गृणते राधः चोदय) स्तुति करनेवालेके लिये धन भेजो ॥ ४ ॥

[६३८] हे (उषः देवि) उषा देवी ! (अस्मे श्रेष्ठेभिः भानुभिः वि भाहि) हमारे हितके लिये श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो । (नः आयुः प्रतिरन्ती) हमारी आयुको बढाओ । हे (विश्ववारे) सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य उषा देवी ! (नः इषं च) हमारे लिये अन्न (गोमत् अश्ववत् रथवत् च राधः दधती) गौओं घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन दे दो ॥ ५ ॥

[६३९] हे (दिवः दुहितः सुजाते उषः) द्युलोककी दुहिता रूप उत्तम कुलीन उषा देवि ! (यां त्वा वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति) वसिष्ठ लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं । (सा अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः) वह तू हमारे पास बडा तेजस्वी धन धारण कर । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तू हमें सदा कल्याण साधक साधनोंसे सुरक्षित रख ॥ ६ ॥

भावार्थ— भाग्यवती उषा देवोंमें प्रकाश फैलाती है, सुन्दर श्वेत अश्वोंको चलाती है, किरणोंसे प्रकट होकर सुन्दर दीखती है तथा अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त होकर विश्वके सम्मुख आती है । इसी तरह सौभाग्यवती स्त्री अपने घरमें प्रकाश करे, स्वयं तेजस्विनी होकर रहे । तरुणियां अश्वविद्यामें भी प्रवीण हों । सुशोभित होकर ही बाहर निकलें । वे कभी भी मलिन वस्त्रोंवाली तथा आभूषणोंसे रहित न हों ॥ ३ ॥

यह उषा धनको देनेवाली तथा शत्रुको दूर करनेवाली है । अपने भक्तोंके लिए यह विस्तृत भूमिको निर्भय बनाती है । धनको प्राप्त करना, शत्रुको दूर करना, प्रदेशोंको निर्भय करना, द्वेष करनेवालोंको दूर भगाना, धनसे घर भर देना तथा भक्तोंको धन देना ये मनुष्यके कर्तव्य हैं ॥ ४ ॥

हे उषा देवी ! हमारा हित करनेके लिए अपनी श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो । हमारी आयुको बढाओ तथा सबको पशु आदिसे युक्त धन दो ॥ ५ ॥

तेजसे उत्पन्न होकर उत्तम रीतिसे प्रकाशनेवाली उषे ! तू हमें प्रदान करनेके लिए तेजस्वी धन धारण कर तथा हमारी सदा कल्याणकारी साधनोंसे रक्षा कर ॥ ६ ॥

[७८]

(ऋषिः - मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता - उषसः । छन्दः - त्रिष्टुप् ।)

६४० प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥ १ ॥

६४१ प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥ २ ॥

६४२ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

६४३ अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥ ४ ॥

---

[७८]

अर्थ — [६४०] (अस्याः प्रथमाः केतवः प्रति अदृश्रन्) इस उषाके पहिले किरणें दीख रही हैं। (अस्याः अंजयः ऊर्ध्वाः वि श्रयन्ते) इसकी गतिशील किरणें ऊर्ध्व भागमें आश्रय ले रही हैं। हे (उषः) उषा देवि ! (अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन) हमारी ओर आनेवाले बडे तेजस्वी रथसे (अस्मभ्यं वामं वक्षि) हमें उत्तम धन दे ॥ १ ॥

[६४१] (समिद्धः अग्निः सीं प्रति जरते) प्रदीप्त हुआ अग्नि बढ रहा है। (विप्रासः मतिभिः गृणन्तः प्रति जरन्ते) ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे स्तुति गाते हुए अपने कर्मसे बढ रहे हैं। (उषा देवी) उषा देवी (विश्वा तमांसि दुरिता) सब अन्धकारों और पापोंको (ज्योतिषा अपबाधमाना याति) अपने तेजसे दूर करती हुई आती है ॥ २ ॥

[६४२] (एताः त्याः उषसः) ये वे उषायें (विभातीः ज्योतिः यच्छन्तीः) प्रकाशती और तेजको देती हुई (पुरस्तात् प्रति अदृश्रन्) हमारे सामने दीख रही हैं। (सूर्यं अग्निं यज्ञं अजीजनन्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको प्रकट किया है। (अजुष्टं तमः अपाचीनं अगात्) अप्रिय अन्धकारको दूर किया है ॥ ३ ॥

[६४३] (दिवः दुहिता मघोनी अचेति) द्युलोककी पुत्री धनवाली होकर आती है। (विश्वे विभातीं उषसं पश्यन्ति) सब प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते हैं। यह उषा (स्वधया युज्यमानं रथं आ अस्थात्) अन्नसे भरे रथपर चढती है। (यं सुयुजः अश्वासः आ वहन्ति) जिसको उत्तम शिक्षित घोडे इष्ट स्थानतक पहुंचाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ — उषाके आनेसे पूर्वही उषाके आगमनकी सूचक उसकी किरणें दीखने लग जाती हैं और द्युलोकमें प्रकाशित होने लगती हैं। उस समय यह उषा तेजस्वी रथमें बैठकर मनुष्योंके पास जाती है ॥ १ ॥

उषा जिस समय सब अन्धकारों और पापोंको अपने तेजसे दूर करती हुई आती है, उस समय अग्नि प्रदीप्त होकर बढने लगता है और ज्ञानी जनोंके स्तुतियोंके साथ यज्ञरूप कर्म भी प्रारंभ होते हैं ॥ २ ॥

स्वयं प्रकाशित होती हुई तथा दूसरोंको तेजस्वी बनाती हुई उषायें प्रतिदिन प्रकाशित होती हैं। इनके आते ही सूर्य, अग्नि और यज्ञ प्रकट होते हैं और उनसे अप्रिय अन्धकार दूर होता है ॥ ३ ॥

द्युलोकमें उत्पन्न होनेके कारण यह उषा द्युलोककी दुहिता है। इसके प्रकाशित होने पर सब जन उषाको देखते हैं। उषाके पास उत्तम अश्वोंका सम्भार होता है ॥ ४ ॥

६४४ प्रति॑ त्वा॒द्य सु॒मन॑सो बुधन्ता॒ऽस्माका॑सो म॒घवा॑नो व॒यं च॑ ।
तिल्वि॒लाय॑ध्वमुषसो विभा॒ती यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥ ५ ॥

[७९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप्)

६४५ व्यु१॒॑षा आ॑वः प॒थ्या॒३॒॑ जना॑नां॒ पञ्च॑ क्षि॒तीर्मानु॑षीर्बो॒धय॑न्ती ।
सु॒सं॒दृग्भि॑रु॒क्षभि॑र्भा॒नुम॑श्रे॒द् वि सूर्यो॒ रोद॑सी॒ चक्ष॑सावः ॥ १ ॥

६४६ व्य॑ञ्जते दि॒वो अन्ते॑ष्व॒क्तून् विशो॒ न यु॒क्ता उ॒षसो॒ यत॑न्ते ।
सं ते॒ गावस्तम॒ आ व॑र्तयन्ति॒ ज्योति॑र्यच्छन्ति सवि॒तेव॑ बा॒हू ॥ २ ॥

६४७ अभू॑दु॒षा इन्द्र॑तमा म॒घोन्य॑जीजनत् सुवि॒ताय॒ श्रवां॑सि ।
वि दि॒वो दे॒वी दु॑हि॒ता द॑धा॒त्यङ्गि॑रस्तमा सु॒कृते॒ वसू॑नि ॥ ३ ॥

अर्थ— [६४४] (त्वा अद्य) तुझे आज (अस्माकासः मघवानः सुमनसः) हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा (वयं च) हम सब (प्रतिबुधंत) जानते हैं, तेरा वर्णन करते हैं । हे (उषसः) उषाओ ! (विभातीः तिल्विलायध्वं) तू प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त कर । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तू सदा हमको कल्याणपूर्ण साधनोंसे सुरक्षित कर ॥ ५ ॥

[७९]

[६४५] (जनानां पथ्या उषाः वि आवः) लोगोंके लिये हितकारिणी उषा विशेष रीतिसे प्रकट हुई है । वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मानवोंके पांचों लोगोंको जगाती है । वह (सुसंदृग्भिः उक्षभिः भानुं अश्रेत्) सुन्दर गौओंके साथ तेजका आश्रय करती है । (सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः) सूर्य भी अपने तेजसे द्यावा पृथिवीको भर देता है ॥ १ ॥

[६४६] (उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते) उषाएं अपने तेजोंको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं । (युक्ताः विशः न यतन्ते) संघटित प्रजाजनोंकी तरह वे उषाएं अन्धकारके नाश करनेके लिये यत्न करती हैं । हे (उषः) उषा देवी ! (ते गावः तमः सं आ वर्तयन्ति) तेरी किरणें अन्धकारका नाश करती हैं । (सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति) सूर्य अपनी बाहुओं किरणोंको जिस तरह फैलाता है, उस तरह उषाएं अपने तेजको फैलाती हैं ॥ २ ॥

[६४७] (इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्) श्रेष्ठ स्वामिनी ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई है । (सुविताय श्रवांसि अजीजनत्) सबके कल्याणके लिये उसने अन्नोंका निर्माण किया है । (दिवः दुहिता देवी) द्युलोककी पुत्री उषा देवी (अंगिरस्तमा) अंगारके समान तेजस्विनी होकर (सुकृते वसूनि वि दधाति) सत्कर्म करनेवालेके लिये धनोंका प्रदान करती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे उषे ! हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा हम भी तेरा वर्णन करते हैं । तू प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त कर तथा हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥

लोगोंका हित करती हुई तथा सबको जागृत करती हुई उषा उदय होती है । लोगोंके लिए हितकर कर्मही करने चाहिए, सभी मानवोंको ज्ञान देना चाहिए । प्रकाशका आश्रय करना चाहिए ॥ १ ॥

जिस तरह सूर्य और उषा अपने प्रकाशसे जगत्के अन्धकारका नाश करते हैं, उस तरह पुरुष और स्त्री आलस्य छोडकर अपने ज्ञान द्वारा लोगोंके अज्ञानको दूर करें । ज्ञानका प्रकाश करें ॥ २ ॥

उत्तम शासकको इन्द्र कहते हैं । उत्तम रीतिसे शासन करनेके कारण उषाको ' इन्द्रतमा ' कहा है । उषाकी तरह स्त्रियां भी घरका शासन प्रबन्ध उत्तमसे उत्तम रीतिसे करनेवाली हों । लोगोंके कल्याणके लिए अन्नोंको सिद्ध करें तथा उत्तम कर्म करनेवालेको उसके कर्मके अनुसार धन देवे ॥ ३ ॥

+

६४८ तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
या त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ४ ॥
६४९ देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[८०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६५० प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
६५१ एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

अर्थ— [६४८] हे (उषः) उषा देवी! (यावत् राधः स्तोतृभ्यः अरदः) जितना धन तुमने स्तोताओंको पूर्व समयमें दिया था, (तावत् राधः गृणाना अस्मभ्यं रास्व) उतना धन प्रशंसित होकर हमें दे दो । (वृषभस्य रवेण यां त्वा जज्ञुः) बैलके शब्दसे तुम्हें सब जानते हैं, उषाके उदयमें बैल तथा गौवें शब्द करती हैं जिससे पता लगता है कि उषःकाल हुआ है । और (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः वि आर्णोः) सुदृढ पर्वतके किलेका द्वार खोल दिया है और गौओंको बाहर निकाला है ॥ ४ ॥

[६४९] (देवंदेवं राधसे चोदयन्ती) प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरित करती है, (अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती) हमारे सन्मुख सत्य भाषणको प्रेरित करती है । (व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः) अन्धकारको दूर करती हुई हमें धन देनेकी बुद्धिका धारण कर । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रख ॥ ५ ॥

[८०]

[६५०] (विप्रासः वसिष्ठाः) ज्ञानी वसिष्ठ गोत्रके ऋषि (प्रथमाः स्तोमेभिः) सबसे प्रथम स्तोत्रोंसे और (गीर्भिः) वाणियोंसे (उषसं प्रति अबुध्रन्) उषाको जगाते हैं । उषाके समय जागते हैं । यह उषा (समन्ते रजसी विवर्तयन्ती) समान अन्तवाली, द्यावा पृथिवीको घुमानेवाली, (विश्वा भुवना आविः कृण्वन्ती) सब भुवनोंको प्रकाशित करती है ॥ १ ॥

[६५१] (एषा स्या उषा नव्यं आयुः दधाना) यह वह उषा नवीन तारुण्यकी आयु धारण करती है, (गूढ्वी तमः ज्योतिषा) और गाढ अन्धकारको अपने तेजसे निवारण करती हुई (अबोधि) जागती है । (अग्रे) प्रारंभमें (अह्रयमाणा युवतिः एति) लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्रीके समान वह सूर्यसे पूर्व चलने लगती है । तथा (सूर्यं अग्निं यज्ञं प्र अचिकितत्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको बतलाती है ॥ २ ॥

भावार्थ— उषःकाल होते ही गायें और बैल शब्द करने लगते हैं, तब गोशालाका सुदृढ द्वार खोला जाता है और गौवें तथा बैल बाहर निकाले जाते हैं तथा चरनेके लिए उन्हें खोल दिया जाता है ॥ ४ ॥

यह उषा प्रत्येक सत्कर्म करनेवालेको ऐश्वर्यप्राप्तिके लिए प्रेरित करती है, लोगोंको सत्यभाषणके लिए प्रेरित करती है, अन्धकारको दूर करती है । प्रत्येक तरुणी धन प्राप्त करनेके लिए सिद्धिके प्राप्त होने तक प्रयत्न करे । सत्य तथा सरल भाषण करे तथा दान देनेकी बुद्धिको अन्तःकरणमें रखे ॥ ५ ॥

ज्ञानी जन अपने सर्वोत्कृष्ट स्तोत्रोंसे उषाको प्रसन्न करते हैं । द्युलोक और पृथिवी लोक परस्पर घूमते हैं ॥ १ ॥

यह तरुण आयुवाली उषा अपने तेजसे अन्धकार दूर करती हुई पतिके पूर्व जाग उठी है । लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्री पतिके पहले उठती है और अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञ करती है । पतिके पूर्व स्त्री उठे, अपने कर्तव्य कर्म करे । ऐसी तरुणी पर ही पति प्रेम करता है, पर जो स्त्री सुस्त होती है, वह पतिके लिए इतनी प्रिय नहीं होती ॥ २ ॥

६५२ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥

[८१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- उषसः । छन्दः- प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

६५३ प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥ १ ॥

६५४ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

६५५ प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥

अर्थ— [६५२] (अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः) घोडे, गौवें और वीर पुरुष-वीरपुत्र जिसके साथ है ऐसी (भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु) कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करें । ये उषायें (घृतं दुहानाः) घी अथवा जलको दुहकर देनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब ओरसे परिपुष्ट हुई हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ ३ ॥

[८१]

[६५३] (आयती उच्छन्ती दिवः दुहिता) आनेवाली अन्धकारको दूर करनेवाली द्युलोककी दुहिता उषा (प्रति अदर्शि उ) दिखाई देती है । (महि तमः अप उ व्ययति) बडे अन्धकारको दूर करती है । और (सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा देखनेके लिये प्रकाशको करती है । फैलाती है ॥ १ ॥

[६५४] (सूर्यः उस्रियाः सचा उत् सृजते) सूर्य किरणोंको साथ साथ ऊपर फेंकता है । तथा (उद्यत् नक्षत्रं अर्चिमत्) सूर्य उदय होनेके पहले नक्षत्रोंको तेजस्वी बनाता है । हे उषा देवी ! (तव इत् सूर्यस्य च व्युषि) तेरे तथा सूर्यके प्रकाशित होनेपर (भक्तेन संगमेमहि) भक्तके साथ मिलेंगे, भक्तको प्राप्त होंगे ॥ २ ॥

[६५५] हे (दिवः दुहितः उषः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (जीराः त्वा प्रति अभुत्स्महि) हम शीघ्र कर्म करनेवाले तुझे जगावेंगे । हे (वनन्वति) धनवाली उषा ! (या पुरु स्पार्हं वहसि) जो तू बहुत स्पृहणीय धनको लाती है और (दाशुषे मयः रत्नं न) दाताके लिये सुख और धन देनेके समान तू सबको सुख और धन देती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— उषःकालमें घोडे, गायें और वीरपुत्र घरसे बाहर निकलते हैं, इनसे घर शोभावाला होता है । गौओंके रहनेपर घरमें पर्याप्त घी दूध होता है । उसका सेवन करके प्राणी बहुत हृष्ट पुष्ट हों ॥ ३ ॥

द्युलोककी पुत्री उषा आती है, लोगोंको मार्ग दिखानेके लिए अन्धकार दूर करती है और प्रकाशको फैलाती है । इसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरमें प्रकाश करे और अन्धेरा दूर करे तथा घरका उत्तम प्रबंध करे ॥ १ ॥

सूर्य जब पृथ्वीके नीचे जाता है तब वह अपनी किरणोंको ऊपर फेंकता है, जिससे चन्द्रादि प्रकाशित होते हैं । यहां नक्षत्रका अर्थ चन्द्र, बुध, शुक्र आदि ग्रह है । क्योंकि नक्षत्रका स्वयं प्रकाश है और वहांतक हमारे सूर्यका प्रकाश पहुंच नहीं सकता ॥ २ ॥

सभी प्रभात समयमें उठें तथा अपने कर्तव्य कर्म अतिशीघ्र तथा अत्यन्त उत्तम रीतिसे करें, इस प्रकार वे स्पृहणीय धन तथा उत्तम सुख प्राप्त करें ॥ ३ ॥

६५६ उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

६५७ तच्चित्रं राध आ भरो॒षो यद् दीर्घश्रुत्तममम् ।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद् रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥

६५८ श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्यु॒षा उच्छदप स्रिधः ॥ ६ ॥

[८२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।

६५९ इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥ १ ॥

अर्थ— [६५६] हे (महि देवि) महति उषा देवते ! तू (व्युच्छन्ती मंहना) अन्धकार दूर करती और अपने महत्त्वको प्रकट करती है, (या स्वः दृशे प्रख्ये कृणोषि) और जो तू विश्वके दर्शन और प्रबोधनके लिये प्रकाश करती है । (तस्याः ते रत्नभाजः ई महे) इस तरह तुझ रत्नोंका सेवन करनेवालीसे हम प्रार्थना करते हैं कि (वयं मातुः सूनवः न स्याम) हम माताके जैसे पुत्र होते हैं वैसे हम तेरे पुत्र बनें ॥ ४ ॥

[६५७] हे (उषः) उषा देवी ! (यत् दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः) जो अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन है (तत् आ भर) वह हमें भर दो । हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (यत् ते मर्तभोजनं) जो तुम्हारे पास मनुष्योंके योग्य भोजन है, (तत् रास्व) वह भोजन हमें दो, हम (भुनजामहै) भोजन करेंगे ॥ ५ ॥

[६५८] हे (उषः) उषा देवी ! (सूरिभ्यः अस्मभ्यं अमृतं वसुत्वनं श्रवः) हम ज्ञानियोंके लिये अमर धन और यश तथा (गोमतः वाजान्) गौओंसे युक्त अन्न दे दो । (मघोनः चोदयित्री सूनृतावती उषाः) धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा करनेवाली और सत्य भाषणकी प्रेरणा करनेवाली उषा (स्रिधः अप उच्छत्) शत्रुओंका नाश करती है ॥ ६ ॥

[८२]

[६५९] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (युवं नः विशे जनाय) तुम दोनों हमारे प्रजाजनोंके लिये (अध्वराय) हिंसारहित सत्कर्म करनेके लिये (महि शर्म यच्छतं) बडा सुख घर आदि दे दो । तथा (दीर्घप्रयज्युं यः अति वनुष्यति) बडे यज्ञ करनेवाले सत्कर्मकर्ताको जो अत्यंत कष्ट देता है, और जो (पृतनासु दुःध्यः) युद्धोंमें पराजित होना कठिन है उस शत्रुपर (वयं जयेम) हम विजय करेंगे ॥ १ ॥

भावार्थ— उषा प्रकाशती है, उससे सब लोग जागते हैं और मार्ग देखते हैं । यह उषा रत्नोंवाली माता जैसी है । उसके हम पुत्र जैसे हों और वह हमारी माता जैसी हो । जिस तरह एक माता अपने पुत्रोंको प्रेमसे अन्न और धन देती है, उसी तरह उषा हमें अन्न, धन और सुख देवे ॥ ४ ॥

हे उषे ! जो अत्यन्त यशस्वी और विलक्षण धन है, वह हमें प्रदान कर । तथा तेरे पास जो मनुष्योंके लिए योग्य भोजन है, वह भोजन हमें दे, उस भोजनका हम उपभोग करें ॥ ५ ॥

हम ज्ञानी हैं, अतः तू हमें अमर धन, यश तथा पशु प्रदान कर । यह उषा धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा देनेवाली तथा सत्यभाषणकी प्रेरणा देनेवाली होकर शत्रुओंका नाश करती है ॥ ६ ॥

प्रजायें हिंसा और कुटिलता रहित कर्म करें, इसलिये हे इन्द्र और वरुण ! तुम उन्हें बडा सुख, बडा संरक्षण और बडा घर दो । हम स्थानोंमें प्रजायें सुखसे रहकर प्रशंसित कर्म करें । जो युद्धोंमें अजेय हैं, ऐसे शत्रुओंको भी ये प्रजायें हरायें ॥ १ ॥

६६० सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥ २ ॥
६६१ अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥ ३ ॥
६६२ युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥ ४ ॥
६६३ इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६०] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (वां) तुममेंसे (अन्यः संराट्) एक वरुण सम्राट है और (अन्यः स्वराट्) दूसरा स्वराट् है (उच्यते) ऐसा कहा जाता है । आप दोनों (महान्तौ महावसू) बडे हैं और बडे धनवाले हैं । हे (वृषणा) सामर्थ्यवालों ! (परमे व्योमनि विश्वे देवासः) परम श्रेष्ठ आकाशमें सब देवोंने (वां) तुम दोनोंके लिये (ओजः बलं च सं दधुः) ओज और बल धारण किया है ॥ २ ॥

[६६१] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्रावरुणो ! (अपां खानि ओजसा अनु अतृन्तं) जलोंके द्वार अपने बलसे तुमने खोल दिये (सूर्यं दिवि प्रभुं आ ऐरयतं) तुमने सूर्यको द्युलोकका प्रभु बनाकर प्रेरित किया । (अस्य मायिनः मदे अपितः अपिन्वतं) इस शक्तिशाली सोमके पानसे आनंदित होकर जलरहित नदियोंको तुमने भरपूर भर दिया । और (धियः पिन्वतं) हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण किया ॥ ३ ॥

[६६२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो ! (वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत्) अग्निवत् तेजस्वी वीर युद्धोंमें शत्रुसेनाओंमें तुम्हें ही बुलाते हैं । (मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां) संकुचित जानुवाले रक्षणके समय तुम्हें बुलाते हैं । (कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना) हम कारीगर लोग भूलोक और द्युलोकके स्वामी (सुहवा हवामहे) सहजहीसे बुलाने योग्य आप दोनोंको हम सहायार्थ बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[६६३] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (यत् भुवनस्य इमानि विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः) जो तुमने इस भुवनके अन्दरके इन सभी प्राणियोंको अपने बलसे निर्माण किया है, इस कारण (मित्रः क्षेमेण वरुणं दुवस्यति) मित्र सबके कल्याण करनेके हेतुसे वरुणकी सेवा करता है और (अन्यः मरुद्भिः उग्रः शुभं ईयते) दूसरा इन्द्र मरुतोंके साथ रहनेसे उग्र वीर बनकर सबका शुभ करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्र और वरुण दोनों बडे देव हैं । इनमें वरुण सम्राट् है और इन्द्र स्वराट् है । सम्राट् वह होता है जो अनेक राज्यों पर अपना शासन चलाता है और स्वराट् वह है कि जो केवल अपनेही सामर्थ्यसे अपने सब कर्म निभाता है । इस प्रकार इन्द्र और वरुण ये दोनों बडे शासक हैं । ऐसे शासकोंको सभी ज्ञानी सहायता पहुंचाते हैं । राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था हो कि जिससे सब राष्ट्र सुरक्षित हों और सब व्यवहार करनेवाले विबुध उसका बल बढाते हों ॥ २ ॥

इन्द्र और वरुणने जलोंके द्वार खोल दिए, उनसे जलोंके प्रवाह बहने लगे । सूर्य आकाशमें प्रकाशने लगा और यज्ञ कर्म शुरु हुए । अन्धकार दूर हो गया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! अग्निके समान तेजस्वी वीर भी जब शत्रुओंसे घिर जाते हैं, तब वे तुम्हें बुलाते हैं । घुटने टेककर आत्मिक क्षेमकी प्राप्तिके लिए ज्ञानी जन तुम्हें पुकारते हैं । यह ब्राह्मणोंकी पुकार है । युद्धोंमें लडनेके लिए आयी हुई शत्रुसेनाओंके साथ लडनेके समय क्षत्रिय तुम्हें बुलाते हैं । यह क्षत्रियोंकी पुकार है । कारीगर भी दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी तुम दोनोंको बुलाते हैं । यह वैश्यों और शूद्रोंकी पुकार है । इस तरह चारों वर्णोंके लोग इन्द्र और वरुणको बुलाते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! इस भुवनमें जो नाना प्रकारके पदार्थ हैं, उनको तुम दोनों अपनी शक्तिसे ही निर्माण करते हो । सबका हित करनेके लिए मित्र वरुणकी सहायता करता है । मित्र और वरुण सबका क्षेम करते हैं । शूरवीर इन्द्र भी अपने सैनिकोंके साथ सबकी सुरक्षा करता है ॥ ५ ॥

६६४ महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद् दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥ ६ ॥

६६५ न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥ ७ ॥

६६६ अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥ ८ ॥

६६७ अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद् वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥ ९ ॥

अर्थ— [६६४] (वरुणस्य त्विषे ओजः मिमाते) मित्र और वरुणका तेज बढानेके लिये बलको बढाते हैं। (महे शुल्काय) विशेष धनकी प्राप्ति हो इसलिये तथा (अस्य यत् ध्रुवं स्वं) इसका जो स्थायी निज बल है उसको बढानेके लिये यह किया जाता है। (अन्यः श्नथयन्तं अजामिं आ अतिरत्) इनमेंसे एक वरुण हिंसक शत्रुके पार हो जाता है, और (अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति) दूसरा इन्द्र अल्प साधनोंसे ही महान् शत्रुओंको घेरता है ॥ ६ ॥

[६६५] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो ! (तं मर्तं अंहः न नशते) उस मानवका नाश पाप नहीं कर सकता। (न दुरितानि) न दुष्ट कर्म उसके पास आते हैं, (कुतः च न तपः न) न किसी तरह संताप उसके पास आता है। वह इन कष्टोंसे दूर रहता है। हे (देवा) देवो ! तुम (यस्य अध्वरं गच्छथः) जिसके यज्ञके पास जाते हो, (वीथः) जिसका हित तुम चाहते हो (तं मर्तस्य परि ह्वृतिः न नशते) उसके पास मानवोंका विनाश नहीं पहुंच सकता ॥ ७ ॥

[६६६] हे (नरा इन्द्रावरुणा) नेता इन्द्रवरुणो ! (दैव्येन अवसा) दिव्य रक्षणके साथ (अर्वाङ् आगतं) हमारे पास आओ। (हवं शृणुतं) मेरी प्रार्थना श्रवण करो। (यदि मे जुजोषथः) यदि मुझपर तुम्हारी प्रीति है तो ऐसा करो। हे मित्र और वरुणो ! (युवयोः सख्यं) तुम्हारी मित्रता, (उत वा यत् आप्यं) जो बन्धुता है और जो तुम्हारा (मार्डीकं) सुख देनेका साधन है वह हमें (नि यच्छतं) दे दो ॥ ८ ॥

[६६७] हे (कृष्ट्योजसा) शत्रुको खींचनेवाले बलसे युक्त इन्द्रवरुणो ! (भरे भरे पुरोयोधा भवतं) प्रत्येक युद्धमें हमारे पक्षमें रहकर अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले बनो। (यत् उभये नरः स्पृधि वां हवन्ते) दोनों प्रकारके मनुष्य स्पर्धा करनेके समय तुम्हें बुलाते हैं (अध तोकस्य तनयस्य सातिषु) और बाल बच्चोंकी सेवाके समय भी तुम्हें बुलाते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्र और वरुणमेंसे वरुण हिंसक शत्रुओंको मारता है, तो दूसरा इन्द्र अल्प साधनोंसे ही महान् शत्रुओंको मारता है। राष्ट्रमें बल और तेज बढाना चाहिए, धन बढाना चाहिए, तथा जो धन पासमें है, उसे सुरक्षित रखना चाहिए। राज्यशासनके ये तत्व इन्द्रावरुणके इस मंत्रमें बताये हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र तथा वरुण जिसकी रक्षा करते हैं, उसके पास पाप, दुःख, दुष्कर्म, पीडा, बाधा अथवा अन्य प्रकारके कष्ट पहुंच ही नहीं सकते ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों सुरक्षाके दिव्य साधनोंके साथ हमारे पास आओ और हमारी रक्षा करो। सभी जन तुम्हारी मित्रता, बन्धुता और सुखदायिताको प्राप्त करें ॥ ८ ॥

हे शत्रुओंको अपने बलसे खींचनेवाले इन्द्रावरुणो ! हर युद्धमें तुम अग्रभागमें रहकर हमारी रक्षा करो। तुम्हें धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी ऐसे दोनों तरहके लोग बुलाते हैं, अपने बालबच्चोंकी रक्षा करनेके लिए भी तुम्हें ही बुलाते हैं ॥ ९ ॥

६६८ अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

[८३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।)

६६९ युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥ १ ॥

६७० यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥ २ ॥

अर्थ— [६६८] (इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा) इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (अस्मे) हमें (सप्रथः महि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें । (ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रं) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदितिका तेज हमारे लिये विनाशक न बने । हम (सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देवकी स्तुति करें ॥ १० ॥

[८३]

[६६९] हे (नरा मित्रावरुणा) नेता मित्र तथा वरुण ! (युवां आप्यं पश्यमानासः) तुम्हारे बन्धुभावकी ओर देखनेवाले (गव्यन्तः पृथुपर्शवः) गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले और बडे परशुको धारण करनेवाले (प्राचा ययुः) पूर्वकी ओर चले । तुम (दासा च वृत्रा आर्याणि च हतं) विनाशक घेरनेवाले शत्रु और जो क्षुद्र आर्य भी शत्रुसे मिले हैं उनको भी मारो । (सुदासं अवसा अवतं) अपने सुदासको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखो ॥ १ ॥

[६७०] (यत्र कृतध्वजः नरः समयन्ते) जहां मनुष्य अपने ध्वज उठाकर युद्धके लिये एकत्रित होते हैं, (यस्मिन् आजौ किंचन प्रियं भवति) जिस युद्धमें कुछ भी हित नहीं होता है । (यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते) जिस युद्धमें स्वर्गदर्शी लोग भयभीत होते हैं, हे इंद्र और वरुण ! (तत्र नः अधि वोचतं) वहां हमारे अनुकूल बात करो ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्र आदि देवोंकी कृपासे हमें बडा तेजस्वी और अति विस्तृत घर प्राप्त हो । वह घर हमारे लिए सुखदायी हो । सत्यमार्गका संवर्धन करनेवाली अदिति देवीका तेज सदा हमारे घरमें रहे तथा हम भी सदा सविता देवकी स्तुति करते रहें ॥ १० ॥

हे मित्रावरुण ! जो तुम्हारी ओर बन्धुभावसे देखनेवाले हों, गौओंकी प्राप्ति करनेकी इच्छा करते हों, तथा परशु आदि शस्त्रोंको धारण करते हों, उन्हें तुम उन्नतिकी ओर ले चलो । जो शत्रु विनाशक और क्षुद्र आर्य हों, उन्हें तुम मारो ॥ १ ॥

जब मनुष्य अपनी अपनी ध्वजायें उठाकर एक दूसरेसे युद्ध करते हैं, तब उस युद्धसे कुछ अच्छा परिणाम नहीं निकलता । उस युद्धसे किसीका हित नहीं होता । स्वर्गकी इच्छा करनेवाले लोग ऐसे युद्धोंसे सदा दूर ही रहते हैं । युद्धसे सुखोंका नाश होकर सदा दुःखही होते हैं, अतः मनुष्यों पर देवोंकी कृपा ऐसी हो कि वे कभी युद्ध न करते हुए सदा प्रेमसे रहें ॥ २ ॥

६७१ सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षते—न्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयो ऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥ ३ ॥
६७२ इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितिः ॥ ४ ॥
६७३ इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथो ऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥ ५ ॥
६७४ युवां हवन्त उभयास आजिष्वि—न्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥ ६ ॥

अर्थ— [६७१] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत) भूमिके सारे प्रदेश अस्तव्यस्त हुएसे दीख रहे हैं । (दिवि घोषः आरुहत्) आकाशमें सैनिकोंके आक्रमणका कोलाहल फैल गया है । (जनानां अरातयः मां उप अस्थुः) लोगोंके शत्रु मेरे सन्मुख युद्ध करनेके लिये खडे हुए हैं । (हवन श्रुता) आह्वानको सुननेवाले वीरो ! (अवसा अर्वाक् आगतं) संरक्षणकी शक्तिके साथ हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

[६७२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (वधनाभिः अप्रति भेदं वन्वन्ता) तुमने अपने वध करनेके साधनोंसे न बच सकनेवाले भेदका–आपसकी फूटका– नाश किया । भेद रूप शत्रुका नाश किया और (सुदासं प्र आवतं) सुदासका संरक्षण किया । और (एषां हवीमनि ब्रह्माणि शृणुतं) इनके संग्राममें तुमने स्तोत्र सुने । तथा इस कारण (तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्) तृत्सु लोगोंका पौरोहित्य सफल हुआ ॥ ४ ॥

[६७३] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति) शत्रुके पाप-शस्त्र-मुझे बहुत ताप दे रहे हैं । और (वनुषां अरातयः) हिंसकोंके मध्यमें जो शत्रु हैं वे भी मुझे कष्ट दे रहे हैं । (युवं हि उभयस्य वस्वः राजथः) तुम दोनों प्रकारके– ऐहिक और पारलौकिक धनके स्वामी हो । इसलिये (अध पार्ये दिवि नः अवतं स्म) स्पर्धाके दिनोंमें हमारी सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[६७४] (उभयासः वस्वः सातये) दोनों लोग धनको जीतनेके लिये (युवां इन्द्रं वरुणं च) तुम दोनों इन्द्र और वरुणको (आजिषु हवन्ते) युद्धोंमें बुलाते हैं । (यत्र तृत्सुभिः सह) जहां तृत्सुओंके साथ रहनेवाले और (दशभिः राजभिः निबाधितं) दस राजाओंके द्वारा कष्ट पहुंचाये (सुदासं प्र आवतं) सुदास राजाकी तुमने सुरक्षा की ॥ ६ ॥

भावार्थ— युद्ध होनेसे भूमिके ऊपरके प्रदेश अस्तव्यस्त हो जाते हैं । नगर, खेत, उद्यान आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । दोनों तरफके सैनिकों और घायलोंका आर्तनाद आकाशमें भर जाता है । पर यदि मानवताके शत्रु युद्धके लिए सामने आकर खडे हो ही जाएं, तो फिर संरक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर शत्रुसे लडें ॥ ३ ॥

जो देशकी प्रजाओंमें फूट डालनेका प्रयत्न करता हो, ऐसे शत्रुको मार देना चाहिए, तथा सज्जनोंकी रक्षा करनी चाहिए । वैदिक संग्राम या युद्धके समय भी बुरे शब्द न बोलें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! शत्रुओंके शस्त्र मुझे कष्ट दे रहे हैं । हिंसक मनुष्य भी मुझे बहुत कष्ट दे रहे हैं । ऐहिक और पारलौकिक धनोंके तुम स्वामी हो, अतः युद्धके दिनोंमें तुम हमारी सहायता करो ॥ ५ ॥

जो मनुष्य ऐहिक और पारलौकिक धनको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, वे युद्धोंके समय वीर देवोंको बुलाते हैं । जो राजा सज्जन होता है, तब तृत्सु अर्थात् उन्नति करनेकी इच्छा करनेवाले लोग उस सज्जन राजाकी रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥

६७५ दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु ॥ ७ ॥
६७६ दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदासं इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥
६७७ वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥ ९ ॥
६७८ अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥ १० ॥

अर्थ— [६७५] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुणो ! (अयज्यवः दश राजानः समिताः) यज्ञ न करनेवाले दस राजे इकट्ठे हुए तथापि तुम्हारी सहायता होनेसे वे (सुदासं न युयुधुः) सुदास राजाके साथ युद्ध न कर सके। (अद्मसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या) अन्नदान करनेके लिये बैठे लोगोंकी प्रार्थना सफल हुई और (एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्) इनके यज्ञोंमें सब देव उपस्थित थे ॥ ७ ॥

[६७६] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (दाश राज्ञे विश्वतः परियत्ताय) दस राजाओंके संघ द्वारा चारों ओरसे घेर गये (सुदासे शिक्षतं) सुदास राजाको तुमने बल दिया। क्योंकि (यत्र श्वित्यञ्चः कपर्दिनः) जहां निर्मल जटाधारी (धीवन्त तृत्सवः) बुद्धिमान् तृत्सु लोग (नमसा धिया असपन्त) नमस्कार पूर्वक किये शुभ कर्मसे परिचर्या करते थे ॥ ८ ॥

[६७७] हे (इन्द्रावरुण) इन्द्र और वरुण ! तुममेंसे (अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते) एक इन्द्र युद्धके समय शत्रुओंका नाश करता है। (अन्यः सदा व्रतानि अभि रक्षते) दूसरा वरुण सदा सत्कर्मोंकी सुरक्षा करता है। हे (वृषणा) बलवान् वीरो ! (वां सुवृक्तिभिः हवामहे) तुम्हारी स्तुति हम अच्छे स्तोत्रोंसे करते हैं। इसलिये (अस्मे शर्म यच्छतं) हमें सुखका प्रदान करो ॥ ९ ॥

[६७८] (इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा) इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देव (अस्मे) हमें (सप्रथः महि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान् तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें। (ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रं) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदितिका तेज हमारे लिए विनाशक न बने। हम (सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देवकी स्तुति करें ॥ १० ॥

भावार्थ— यज्ञ न करनेवाले अनार्य दस राजा भी सुदासके साथ युद्ध न कर सके अर्थात् यज्ञ न करनेवाले अनार्य राजा अनेक होनेपर भी एक सज्जन पुरुषका कुछ बिगाड नहीं सकते। क्योंकि उस सज्जन पुरुषकी रक्षा देवगण करते हैं। अन्नका दान करनेवालोंके हर मनोरथ पूर्ण होते हैं, वे कभी भी इस जगत्में पराजित नहीं होते, क्योंकि उनके यज्ञोंमें देव स्वयं उपस्थित रहते हैं ॥ ७ ॥

अन्दर और बाहरसे पवित्र रहनेवाले बुद्धिमान् तृत्सु जहां शुभ कर्मोंको करते हैं, वहां बल बढता है। ऐसे ही लोग सुदासके सहायक थे, इसीलिए सुदासका बल बढा और वह विजयी हुआ, पर दूसरे अनार्य राजा, जो सुदासके साथ लडने आए थे, परास्त हुए, क्योंकि वे शुभ कर्म करनेवाले नहीं थे। पवित्र रहकर ज्ञानपूर्वक किए गए यज्ञसे शक्ति बढती है ॥ ८ ॥

एक वीर युद्ध करता है और घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। राष्ट्रके बाह्य शत्रुका नाश करना एक महत्व पूर्ण कार्य है। दूसरा वीर लोगोंके सत्कर्मोंको सुरक्षित रखता है। यह आन्तरिक सुरक्षितता है। राष्ट्रकी सुस्थितिके लिए बाह्य शत्रुओंका नाश होकर अन्दरके सब कार्य व्यवहार सुरक्षित रीतिसे चलते रहते रहने चाहिए। तभी लोगोंको सुख मिल सकता है ॥ ९ ॥

इन्द्र आदि देवोंकी कृपासे हमें बडा तेजस्वी और अति विस्तृत घर प्राप्त हो। वह घर हमारे लिए सुखदायी हो। सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदिति देवीका तेज सदा हमारे घरमें रहे तथा हम भी सदा सविता देवकी स्तुति करते रहें ॥ १० ॥

[८४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६७९ आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥ १ ॥

६८० युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥ २ ॥

६८१ कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥ ३ ॥

६८२ अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥

[८४]

अर्थ— [६७९] हे (राजानौ इन्द्रावरुणौ) राजा इन्द्र और वरुण (अध्वरे वां हव्येभिः नमोभिः आ ववृत्यां) हिंसारहित इस यज्ञमें तुम्हें हवनों और नमनोंद्वारा इधर बुलाता हूं । (बाह्वोः दधाना विषुरूपा घृताची) विविध रूपोंवाली घीकी आहुति डालनेवाली जुहू (त्मना वां परि प्र जिगाति) स्वयं ही तुम्हारे पास जाती है । तुम्हारे लिये आहुति देती है ॥ १ ॥

[६८०] (युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति) तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र सबको प्रसन्नता देता है । (यौ सेतृभिः अरज्जुभिः सिनीथः) जो तुम दोनों बंधन करनेके रज्जुरहित रोगादि साधनोंसे पापीयोंको बांध देते हैं । (वरुणस्य हेळः नः परि वृज्याः) वरुणका क्रोध हमें छोडकर दूसरे स्थानपर जावे । (इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्) इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे ॥ २ ॥

[६८१] (नः विदथेषु यज्ञं चारुं कृतं) हमारे युद्धोंमें अथवा सभागृहोंमें यज्ञको सुन्दर बनाओ । तथा (सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं) विद्वानोंके स्तोत्रोंको प्रशंसित बनाओ । (देवजूतः रयिः नः उप एतु) देवों द्वारा प्रेरित धन हमें प्राप्त हो ! (स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं) प्रशंसा योग्य संरक्षणोंसे हमें संवर्धित करो ॥ ३ ॥

[६८२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (अस्मे) हमारे लिये (विश्ववारं वसुमन्तं पुरुक्षुं रयिं धत्तं) सबके सेवनके योग्य ऐश्वर्य युक्त और बहुत अन्नवाला धन दो । (यः आदित्यः अनृता प्र मिनाति) जो आदित्य असत्य आचरण करनेवालोंका नाश करता है, (शूरः अमिता वसूनि दयते) दूसरा शूर अपरिमित धनोंको देता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी इन्द्र और वरुण ! हिंसारहित इस यज्ञमें तुम्हें हवनों और नमनों द्वारा इधर बुलाता हूँ । अनेक रूपोंवाली घीकी स्नुवासे तुम्हें आहुतियां प्रदान करता हूँ ॥ १ ॥

इन दोनों देवोंका राष्ट्र यह विशाल द्युलोक है, वह सब लोगोंको प्रसन्न करता है । इसीतरह पृथ्वीका राजा अपनी प्रजाको प्रसन्न करे, प्रजाकी उन्नति और अभ्युदय करे । ये दोनों देव पापियोंको बंधनोंसे बांधते हैं, तथैव राजा भी अपने राज्यके डाकू, चोर आदियोंको बंधनमें डाले । हम कभी ऐसा आचरण न करें कि वरुण हमपर क्रोधित हो । वरुण हमारे लिए विस्तृत कार्यक्षेत्रका निर्माण करे ॥ २ ॥

युद्धों, सभाओं और यज्ञस्थानोंमें हम जिस यज्ञको करना चाहते हैं, वह यज्ञ उत्तमसे उत्तम और निर्दोष बने । मनुष्य सत्कर्म करे और स्वयं निर्दोष बने । विद्वान् जो स्तोत्र करें, वे प्रशंसाके योग्य हों । तथा जो धन देवगण हमें देना चाहते हैं, वह हमें शीघ्रही प्राप्त हो । इस प्रकार हमारी प्रगति तथा उन्नति होती रहे ॥ ३ ॥

सब लोग जिसे स्वीकार करते हैं, सब जिसको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, मानवोंके निवास करनेमें जो सहायक होता है, जिसके साथ अनेक प्रकारका अन्न रहता है, तथा जो अनेकों द्वारा प्रशंसित होता है, ऐसा धन हमें मिले । आदित्य देव असत्य आचरण करनेवालोंका नाश करता है ॥ ४ ॥

६८३ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[८५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८४ पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥

६८५ स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान् हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥

६८६ आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥ ३ ॥

अर्थ— [६८३] (मे इयं गीः) मेरी यह स्तुति (इंद्रं वरुणं अष्ट) इंद्र और वरुणको प्राप्त हो । मेरी स्तुति (तूतुजाना तोके तनये प्र आवत्) शीघ्र पास आकर हमारे बाल-बच्चोंकी सुरक्षा करे । हम (सुरत्नासः देववीतिं गमेम) उत्तम रत्नोंसे सुशोभित होकर देवोंके यज्ञमें जायें (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ५ ॥

[८५]

[६८४] (वां अरक्षसं मनीषां पुनीषे) आप दोनोंकी राक्षस-भाव-रहित प्रशंसाको मैं पवित्र करता हूं । (इन्द्राय वरुणाय सोमं जुह्वत्) इन्द्र और वरुणके उद्देश्यसे सोमका हवन करता हूं । (देवीं उषसं न घृतप्रतीकां) तथा देवीकी तरह तेजस्वी अवयवोंवाली हमारी यह स्तुति है । (ता) वे इन्द्र और वरुण (अभीके यामन् नः उरुष्यतां) युद्ध उपस्थित होनेपर शत्रुद्वारा आक्रमण करनेके समय हमारा संरक्षण करें ॥ १ ॥

[६८५] (अत्र देवहूये स्पर्धन्ते वै) इस संग्राममें शत्रुके और हमारे वीर परस्पर स्पर्धा करते हैं । (येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति) जिन युद्धोंमें ध्वजोंपर शस्त्र गिरते हैं । हे इन्द्र और वरुण ! (युवं तान् अमित्रान् हतं) तुम दोनों उन शत्रुओंको मारो और (शर्वा विषूचः पराचः) हिंसक शस्त्रसे चारों ओर और विरुद्ध दिशासे शत्रुओंको भगा दो ॥ २ ॥

[६८६] (आपः चित् स्व यशसः देवीः) जल मिश्रित अपने निज यशवाले दिव्य सोमरस (सदःसु इन्द्रं वरुणं देवता धुः) यज्ञके स्थानोंमें इन्द्र वरुण आदि देवताओंको धारण करते हैं । उनमेंसे (अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति) एक वरुण पृथक् पृथक् प्रजाओंका धारण करता है, (अन्य अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति) दूसरा इन्द्र अप्रतिम शत्रुओंका भी विनाश करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— देवताओंकी स्तुति पुत्र-पौत्रोंका संरक्षण करती है । देवोंका वर्णन सुनकर तद्वत् आचरण करनेके लिए मनमें स्फूर्ति उत्पन्न होती है, फिर तद्वत् आचरण करनेसे मनुष्यकी सुरक्षा होती है । पश्चात् वह आदमी उत्तम रत्न धारण करके, उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंको धारण करके जहाँ यज्ञ होता है, वहां जाता है ॥ ५ ॥

देवोंके भाव आसुर भावसे रहित होते हैं, उससे मैं स्तवनको पवित्र करता हूं । उषाके समान बुद्धि तेजोयुक्त हो । तथा युद्धोंमें जब हम पर शत्रुओंका आक्रमण हो, तब सब वीरोंकी उत्तम रक्षा हो ॥ १ ॥

जहां विजयकी इच्छा करनेवाले वीर स्पर्धा करते हैं, वह संग्राम है । इस संग्रामोंमें तीक्ष्ण शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं । ध्वजोंको देखकर शत्रुके शस्त्र एक दूसरे पर फेंकते हैं । वीरोंको चाहिए कि ऐसे शत्रुओंका वे वध करें । वीरोंके द्वारा छोडे गए घातक शस्त्रास्त्रोंसे सब शत्रु चारों ओर त्रस्त होकर भागें ॥ २ ॥

एक अधिकारी प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् धारण-पोषण करता है । वह वरुण देव है । यह प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् निरीक्षण कर उनका पालन करता है । दूसरा अधिकारी इन्द्र घेरनेवाले शक्तिशाली बाह्य शत्रुओंका नाश करता है । इसी तरह राज्यमें एक आन्तरिक अधिकारी हो जो अन्दरकी व्यवस्था रखे तथा दूसरा बाह्य अधिकारी हो जो देशकी बाहरके शत्रुओंसे रक्षा करे ॥ ३ ॥

६८७ स सुक्रतुॠतचिदस्तु होता　य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित् स सुवितायं प्रयस्वान् ।　॥ ४ ॥

६८८ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः　प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम　यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः　॥ ५ ॥

[८६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६८९ धीरा त्वस्य महिना जनूंषि　वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं　द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम　॥ १ ॥

अर्थ— [६८७] (सुक्रतुः होता ऋतचित् अस्तु) उत्तम कर्म करनेवाला होता यज्ञके विधिका ज्ञाता हो । हे आदित्यो ! (यः शवसा नमस्वान् वां) जो बलसे युक्त और अन्नसे युक्त ऐसे तुम दोनोंकी सेवा करता है, तथा (यः हविष्मान् अवसे वां आवर्तयत्) जो अन्नका यज्ञ करनेवाला अपनी सुरक्षाके लिये आपको अपने पास लाता है, (सः प्रयस्वान् सुविताय असदत् इत्) अन्नवान् होकर उत्तम फल प्राप्त करनेके लिये योग्य होता है ॥ ४ ॥

[६८८] (मे इयं गीः) मेरी यह स्तुति (इन्द्रं वरुणं अष्ट) इन्द्र और वरुणको प्राप्त हो । मेरी स्तुति (तूतुजाना तोके तनये प्र आवत्) देवोंके पास जाकर हमारे बालबच्चोंकी सुरक्षा करें । हम (सुरत्नासः देववीतिं गमेम) उत्तम रत्नोंसे सुशोभित होकर देवोंके यज्ञमें जायें । (यूय सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी कल्याणकारी साधनोंसे रक्षा करो ॥ ५ ॥

[८६]

[६८९] (अस्य जनूंषि महिना धीरा) इस वरुणके जीवन उनकी निज महिमासे धैर्यवाले कर्मोंसे युक्त हैं । (यः उर्वी रोदसी चित् वि तस्तंभ) जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोकको स्थिर करता है । (बृहन्तं नाकं) बडे विशाल सूर्यको और (ऋष्वं नक्षत्रं द्विता प्र नुनुदे) तेजस्वी नक्षत्रोंको दो समयोंमें जो प्रेरित करता है । दिनमें सूर्य और रात्रीके समय नक्षत्रोंको प्रेरित करता है तथा (भूम पप्रथत् च) भूमिको विस्तृत किया है ॥ १ ॥

भावार्थ— जो यज्ञ करनेवाला हो, उसे यज्ञकी विधि अच्छी तरहसे विदित होनी चाहिए । यज्ञ करनेवालेके पास पर्याप्त अन्न हो । उसकी अन्नका दान करनेकी इच्छा हो, इस यज्ञ करनेवालेका संरक्षण हो तथा यज्ञस्थान सुरक्षित हो । ऐसा याजकही उत्तम फल प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

देवताओंकी स्तुति पुत्र पौत्रोंका संरक्षण करती है । देवोंका वर्णन सुनकर तद्वत् आचरण करनेके लिए मनमें स्फूर्ति उत्पन्न होती है कि तद्वत् आचरण करनेसे मनुष्यकी सुरक्षा होती है । पश्चात् वह आदमी उत्तम रत्न धारण करके, उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंको धारण करके, जहां यज्ञ होता है, वहां जाता है ॥ ५ ॥

वरुणका कर्तृत्व बडा प्रभावशाली है । उसके कर्म बडे प्रभावशाली हैं । वह द्युलोक और भूलोकको यथास्थान सुस्थिर करता है । सूर्यको प्रकाशित करके दिन बनाता है और अन्धकारके समय नक्षत्रोंको प्रकाशित करता है । इसीने भूमिको ऐसी विशाल बनाया है । यह वरुण ईश्वरही है, जो यह सब करता है ॥ १ ॥

६९० उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत् कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥ २ ॥
६९१ पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षू—पो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहु—रयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥ ३ ॥
६९२ किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत् स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥ ४ ॥
६९३ अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [६९०] (उत स्वया तन्वा सं वदे) क्या मैं अपने इस शरीरसे वरुणके साथ बोलूं ? और (कदा तत् वरुणे अन्तः भुवानि) कब मैं वरुणके अन्दर हो जाऊं ? (मे हव्यं अहृणानः जुषेत किं) मेरा क्या हवनीय द्रव्य क्रोध रहित होकर वरुण स्वीकार करेगा ? (कदा सुमनाः मृळीकं अभिख्यं) कब मैं उत्तम विचारवाला होकर सुखदायी वरुणको देख सकूं ? ॥ २ ॥

[६९१] हे (वरुण) वरुण ! (दिदृक्षु तत् एनः पृच्छे) जाननेकी इच्छा करके मैं उस अपने पापके विषयमें उससे पूछता हूं। (विपृच्छं चिकितुषः उपो एमि) मैं पूछनेकी इच्छासे विद्वानोंके पास भी गया हूं, उन (कवयः चित् मे समानं इत् आहुः) ज्ञानियोंने मुझे एकही उत्तर दिया है कि (अयं वरुणः तुभ्यं हृणीते ह) निश्चयसे यह वरुण तुम्हारे ऊपर क्रोधित हुआ है ॥ ३ ॥

[६९२] हे (वरुण) वरुण ! (किं ज्येष्ठं आगः आस) क्या मेरा ऐसा कोई बडा भारी अपराध हुआ है ? (यत् सखायं स्तोतारं जिघांससि) जो तू अपने भक्त स्तोत्र पाठक मुझ जैसेको भी मारता है ? हे (दूळभ स्वधावः) न दबनेवाले तेजस्वी वरुण देव ! यदि (तत् मे प्रवोचः) वह मेरा पाप है तो मुझे कह दो जिससे मैं (अनेनाः तुरः नमसा त्वा अव इयां) निष्पाप बनकर सत्वर नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास प्राप्त होऊं ॥ ४ ॥

[६९३] हे वरुण ! (पित्र्या नः द्रुग्धानि अवसृज) हमारे पिता आदिसे हुए द्रोहको दूर करो। (वयं तनूभिः या चकृम अवसृज) हमने अपने शरीरोंसे किये जो पाप होंगे उनको भी दूर करो। हे राजन् वरुण ! (पशुतृपं तायुं न अवसृज) पशुकी चोरी करके उन पशुओंको तृप्त करनेवाले चोरको जैसे दूर करते हैं वैसे मेरे पाप दूर करो। (दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज) रस्सीसे बछडेको छोडनेके समान इस वसिष्ठको पापसे छुडाओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— क्या मैं परमेश्वरके साथ बोल सकूंगा ? मैं कब प्रभुके अन्दर पहुंचूंगा ? मेरा अर्पण किया हुआ क्या प्रभु स्वीकार करेगा ? मैं प्रभुका साक्षात्कार कब कर सकूंगा ? ऐसे विचार भक्तके मनमें उठते हैं। वह प्रभु हर एककी प्रार्थना सुनता है। वह प्रत्येक व्यक्तिके अन्दर है। अतः भक्त जो कुछ भी अर्पण करता है, उसे प्रभु स्वीकार करता है। हृदयके निर्मल होनेपर प्रभुका साक्षात्कार होता है ॥ २ ॥

मैं अपने पापके विषयमें सच सच बातें जानना चाहता हूं कि मैंने कौनसा पाप किया है जिसके कारण मुझे ये कष्ट हो रहे हैं। मैंने विद्वानोंसे भी पूछा तो सभी विद्वानोंने एक स्वरसे कहा कि तुम्हारे ऊपर प्रभुका क्रोध है ॥ ३ ॥

हे वरुण ! मुझसे ऐसा कौनसा अपराध हो गया है कि जो तू मुझे मारना चाहता है। हे देव ! यदि मुझसे कोई ऐसा अपराध हो भी गया हो तो वह मेरा पाप मुझसे बता, जिससे मैं निष्पाप बनकर नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास आऊं ॥ ४ ॥

पिता-पितामहने जो पाप हुए होते हैं, उनका संस्कार हमारे शरीर पर भी होता है। बीजरूपसे वे दोष हमारे अन्दर आते हैं, उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिए। जो पाप हम अपने शरीरसे करते हैं, उनसे भी छुटकारा प्राप्त करना चाहिए ॥ ५ ॥

६९४ न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥

६९५ अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥

६९६ अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [६९४] हे (वरुण) वरुण ! (सः स्वः दक्षः न) वह अपना निज बल पापके लिये कारण नहीं होता। (ध्रुतिः) प्रगतिमें रुकावट होनेसे पापमें प्रवृत्ति होती है, (सुरा) मद्य, शराब, (मन्युः) क्रोध, (विभीदकः) द्यूत, जूआ (अचित्तिः) अज्ञान, चित्त लगाकर कार्य न करनेकी वृत्ति ये पापमें प्रवृत्त करनेवाली प्रवृत्तियां हैं। (कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति) हीन पुरुषको श्रेष्ठ पुरुष पास रहकर पापमें प्रवृत्त करता है तथा (स्वप्नः चन अनृतस्य प्रयोता इत्) निद्रा या सुस्ती भी अनृत या पापमें प्रवृत्त करनेवाली है ॥ ६ ॥

[६९५] (मीळ्हुषे भूर्णये) इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले और भरण पोषण करनेवाले (देवाय) ईश्वरके लिये-वरुण देवकी (अनागाः) निष्पाप होकर (अहं) मैं (अरं कराणि) सेवा करता हूं। (दासः न) सेवकके समान मैं ईश्वरकी सेवा करूंगा। (अर्यः देवः अचितः अचेतयत्) वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियोंको प्रेरित करता है। (कवितरः गृत्सं राये जुनाति) वह अधिक ज्ञानी ईश्वर स्तोताको धनकी ओर प्रेरित करता है ॥ ७ ॥

[६९६] हे (स्वधावः वरुण) अन्न पास रखनेवाले वरुण ! (तुभ्यं अयं स्तोमः) तुम्हारे लिये यह स्तोत्र (हृदि चित् सु उपश्रितः अस्तु) हृदयमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला हो। तुम्हारे लिये यह हृदयंगम हो। (नः क्षेमे शं) हमारे क्षेममें कल्याण हो और (नः योगे शं अस्तु) हमारे लाभमें भी कल्याण हो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— प्रगतिमें रुकावट होनेसे पापमें प्रवृत्ति होती है। सुरा पीने, क्रोध, जुआ और अज्ञानसे पाप उत्पन्न होता है। जब मनुष्यकी प्रगतिमें कोई बाधा उत्पन्न करता है, तब मनुष्य बाधा उत्पन्न करनेवालेके प्रति मन ही मन द्वेष करता है और यह द्वेष ही उसे पापमें प्रवृत्त करता है। बड़ा छोटेको पापमें प्रवृत्त करता है। धनी निर्धनको, बलवान् निर्बलको तथा ज्ञानी अज्ञानीको पापमें प्रवृत्त करता है। निद्रा सुस्ती और आलस्य ये भी पापके प्रवर्तक हैं ॥ ६ ॥

भक्तकी सदिच्छाओंको पूर्ण करनेवाले सबका भरणपोषण करनेवाले ईश्वरकी सेवा मैं निष्पाप होकर करूं। परमेश्वर सबका पालक है और सबको निष्पाप बनानेवाला है, इसलिए उसकी सेवा करनेसे मनुष्य निष्पाप बनता है। वह श्रेष्ठ देव अज्ञानियोंको ज्ञान देकर सत्कर्ममें प्रेरित करता है और उन्हें धन-प्राप्तिकी ओर प्रेरित करता है ॥ ७ ॥

हमारे क्षेममें भी हमारा सदा कल्याण हो प्राप्त की हुई वस्तुओंकी रक्षा करनेको क्षेम कहते हैं। यह क्षेम हमारे लिए कल्याण करनेवाला हो। तथा अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करनेके लिए जो हम प्रयत्न करते हैं, उनसे भी हमारा कल्याण हो तथा हमारी सेवा प्रभुको प्रसन्न करनेवाली हो ॥ ८ ॥

[८७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

६९७ रदत् पथो वरुणः सूर्याय प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

६९८ आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत् पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥

६९९ परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥ ३ ॥

---

[८७]

अर्थ— [६९७] यह (वरुणः देवः सूर्याय पथः प्र रदत्) वरुण देवने सूर्यके लिये मार्ग नियत कर दिया है । (नदीनां अर्णांसि समुद्रियाः प्र) नदियोंके जल प्रवाह समुद्रके बन चुके हैं । (सर्गः अर्वतीः सृष्टः न) घोडा जैसा घोडियोंके पास दौडता है, उस तरह (ऋतायन् महीः अवनीः अहभ्यः चकार) शीघ्र जानेवाले सूर्यने बडी रात्रियोंको दिनोंसे पृथक् निर्माण किया है । पर वे परस्पर जुडे हैं । एकके पीछे दूसरा लगा है ॥ १ ॥

[६९८] (ते वातः आत्मा) तेरा आत्मा वायु है । वह वायु (रजः आ नवीनोत्) धूलिको चारो ओर उडाता है । (पशुः न यवसं ससवान्) पशु जैसा घाससे बलवान् होता है, उस तरह (भूर्णिः) भरण पोषण करनेवाला प्रभु बलवान् है । हे वरुण ! (इमे मही बृहती रोदसी) ये बडे द्युलोक और भूलोकके (अन्तः) मध्यमें (ते विश्वा धाम प्रियाणि) तेरे सब स्थान सब लोगोंको प्रिय हैं ॥ २ ॥

[६९९] (वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः) वरुणके चर प्रशस्त गतिवाले हैं । वे (सुमेके उभे रोदसी परि पश्यन्ति) सुन्दर रूपवाले द्युलोक और भूलोकका निरीक्षण करते हैं । (ये ऋतावानः कवयः यज्ञधीराः प्रचेतसः) जो सत्कर्म कर्ता ज्ञानी यज्ञ करनेवाले विशेष बुद्धिमान होते हैं, जो (मन्म इषयन्त) स्तोत्र पाठको प्रभुतक पहुंचाते हैं उनका भी वे चर निरीक्षण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— परमेश्वरने सूर्यका मार्ग नियत कर दिया है, वृष्टिका जल नदियों द्वारा समुद्रमें आता है और समुद्ररूप हो जाता है । सूर्य दौडता है उस कारण दिन और रात्री पृथक् होती है । सूर्य जिस तरह अपना मार्ग नहीं छोडता है, उसी तरह सज्जन भी अपना मार्ग न छोडें । वृष्टिका जल जिस तरह समुद्रमें जाकर एकरूप हो जाता है, उसी तरह सबका जीवन एकरूप हो । घोडा जिस तरह घोडीकी तरफ आकर्षित होता है, उसी तरह स्त्री पुरुष एक दूसरेकी तरफ प्रेमसे आकर्षित हों । जिस तरह दिन-रात परस्पर संगत हैं, उसी तरह स्त्री-पुरुष परस्पर संगत रहें ॥ १ ॥

यह वायु सब विश्वका प्राण है । यह चारों ओर धूलिको उडाता है अथवा अन्तरिक्षसे वृष्टिके जलको लाता है । सबका पोषण करनेवाला प्रभु सब प्रकारके अन्नसे युक्त है, इसलिए उसके सब स्थान मानवोंको प्रिय होते हैं । आत्मा सबका प्रेरक है, वह सब शरीरको चलाता है, उसी तरह सब विश्वको यह वायुरूपी प्राण चलाता है ॥ २ ॥

वरुणके गुप्तचर सर्वत्र गमन करते हैं और सबका निरीक्षण करते हैं । विश्वभरमें उनकी गति होती है और वे ज्ञानी यज्ञकर्ता कवि भक्तका भी निरीक्षण करते हैं । कोई भी उनके निरीक्षणसे नहीं छूटता । जो अच्छा काम करते हैं वे पुण्यके भागी होते हैं और जो बुरा कर्म करते हैं, वे पापके भागी होते हैं ॥ ३ ॥

७०० उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान् पदस्य गुह्या न वोचद् युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥
७०१ तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन् तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥ ५ ॥
७०२ अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥ ६ ॥
७०३ यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

अर्थ— [७००] (मेधिराय मे वरुणः उवाच) बुद्धिमान मुझसे वरुणने कहा था, (अघ्न्या त्रिः सप्त नाम बिभर्ति) गौके तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस नाम होते । पृथिवी, वाणी तथा गौके नाम इक्कीस हैं । (विद्वान् विप्रः) इस ज्ञानी बुद्धिमान वरुणने (उपराय युगाय शिक्षन्) समीप आनेवाले अपने शिष्यको सिखानेकी इच्छासे (पदस्य गुह्या न वोचत्) पदके गुप्त रहस्योंको जैसा कहते हैं वैसा कहा । वैसा उपदेश किया है ॥ ४ ॥

[७०१] (अस्मिन् अन्तः तिस्रः द्यावः निहिताः) इसके मध्यमें तीन द्युलोक हैं । द्युलोकके तीन विभाग हैं । (तिस्रः भूमीः) तीन भूमियां हैं । भूमिके तीन विभाग हैं । (उपराः षड्विधाः) इनमें छः विभाग छः ऋतुओंके कारण हुए हैं । (गृत्सः राजा वरुणः) प्रशंसनीय राजा वरुणने (एतं हिरण्ययं कं प्रेंखं) इस सुवर्ण जैसे सुखदायी प्रेक्षणीय सूर्यको (दिवि शुभे चक्रे) द्युलोकमें सब लोकोंका हित करनेवाले सूर्यको किया है ॥ ५ ॥

[७०२] (वरुणः द्यौः इव सिन्धुं अवस्थात्) वरुणने आकाशके समानही समुद्रकी स्थापना की है । यह वरुण (द्रप्सः न श्वेतः) सोमरसके समान गौरवर्ण है, (मृगः तुविष्मान्) गौरमृगके समान बलवान् है । (गंभीर-शंसः रजसः विमानः) विशाल प्रशंसावाला और अन्तरिक्षका निर्माण करनेवाला (सुपारक्षत्रः अस्य सतः राजा) उत्तम रीतिसे दुःखसे पार करनेवाला जिसका बल है और वह इस जगतका एकमात्र राजा है ॥ ६ ॥

[७०३] (यः आगः चक्रुषे चित् मृळयाति) जो पाप करनेवालेको भी सुख देता है । उस (वरुणे वयं अनागाः स्याम) वरुणमें हम निष्पाप होकर रहेंगे, निवास करेंगे । (अदितेः व्रतानि अनु ऋधन्तः) अदीन वरुणके व्रतोंका हम संवर्धन करेंगे । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ७ ॥

भावार्थ— पृथ्वी, वाणी तथा गौके इक्कीस नाम हैं । उस ज्ञानी बुद्धिमान् वरुणने अपने भक्तको पदके गुप्त रहस्य बताये । ईश्वरने ज्ञानियोंके हृदयमें मंत्रोंके गुप्त पदोंके रहस्योंको स्पष्ट किया ॥ ४ ॥

वरुणने भूमिके पासका मध्यका तथा इनके बीचका ऐसे आकाशके तीन विभाग किए । इसी तरह समुद्र तीर परकी भूमि, पर्वत शिखरोंकी भूमि तथा उन दोनोंके बीचकी भूमि इस प्रकार तीन तरहकी भूमियोंका निर्माण किया । छः ऋतुओंका भी निर्माण वरुणने किया । इन सबका राजा परमेश्वर है । उसीने सबका कल्याण करनेके लिए आकाशमें सूर्यको स्थापित किया ॥ ५ ॥

परमेश्वरने जिस तरह आकाशको ऊपरही स्थापित किया, उसी तरह समुद्रको उसके योग्य स्थापित किया । वह प्रभु निष्कलंक है, बलवान् है, प्रशंसनीय है, अन्तरिक्षका निर्माता है, इसका सामर्थ्य उपासकको दुःखसे पार करानेवाला है और वह सब जगत्का राजा है ॥ ६ ॥

परमेश्वर दयालु है, अतः वह पाप करनेवालेको भी सुख देता है । हम निष्पाप बनकर परमेश्वरके पास रहें । परमेश्वरके नियमोंका हम पालन करें और हम सुखी हों ॥ ७ ॥

[८८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः, (७ पाशविमोचनी) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७०४ प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥

७०५ अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥ २ ॥

७०६ आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥

७०७ वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः ॥ ४ ॥

[८८]

अर्थ— [७०४] हे वसिष्ठ ! (मीळ्हुषे वरुणाय) कामनापूरक वरुण देवके लिये (शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्र भरस्व) शुद्ध करनेवाली प्रिय स्तुति करो । (यः) जो वरुण (यजत्रं सहस्रामघं बृहन्तं वृषणं ईं) यजनीय, सहस्रों प्रकारके धनसे युक्त बडे बलवान् इस सूर्यको (अर्वाञ्चं करते) हमारे सन्मुख करता है ॥ १ ॥

[७०५] (अध अस्य वरुणस्य संदृशं जगन्वान्) अब मैं इस वरुणके सुंदर दर्शनको प्राप्त कर चुका हूं और (अग्नेः अनीकं मंसि) अग्निकी ज्वालाओंका वर्णन करता हूं (यत् स्वः अश्मन् अन्धः अधिपाः) जब सुखकर पत्थरपर सोमका रस निकाल कर वरुण अधिक प्रमाणमें पान करते हैं, तब (मा दृशये वपुः अभि निनीयात् उ) मुझे अपने दर्शनीय सुंदर रूपको दर्शाते हैं ॥ २ ॥

[७०६] मैं और (वरुणः च) वरुण देव ये दोनों (नावं आ रुहाव) नौकापर आरूढ होते हैं और (समुद्रं मध्ये प्र ईरयाव) समुद्रमें नौकाको हम चलाते हैं, (यत् अपां स्नुभिः) जब हम जलोंके मध्यमें अन्य नौकाओंके साथ (अधि चराव) विचरते हैं तब (शुभे कं प्रेङ्खे प्र ईङ्खयावहै) कल्याणके लिये झूलेपर हम खेलते जैसे होते हैं ॥ ३ ॥

[७०७] (वसिष्ठं ह वरुणः) वसिष्ठको वरुणने अपनी (नावि आ अधात्) नौकापर चढाया और (सु-अपाः महोभिः ऋषिं चकार) उसको उत्तम कर्म करनेवाला ऋषि अपने सामर्थ्योंसे बनाया (विप्रः स्तोतारं अह्नां सुदिनत्वे यात्) ज्ञानी वरुणने स्तोत्रपाठक वसिष्ठको दिनोंमेंसे उत्तम शुभ दिनमें सफल कर्मकर्ता बनाया । और (द्यावः यात् उषसः यात्) दिन और उषा रात्रियोंको गतिमान् बनाकर (ततनन्) फैला दिया । कालको निर्माण किया, इसमें वह साधक प्रासन्यको प्राप्त करे ऐसी योजना वरुणने बनायी ॥ ४ ॥

भावार्थ— प्रभुकी भक्ति उपासकके हृदयको शुद्ध करनेवाली और बुद्धिको प्रेमयुक्त बनानेवाली होती है । जो ईश्वर सूर्यको हमारे सामने उपस्थित करता है, वह बडा ही सामर्थ्यशाली है, इसीलिए वह स्तुतिके योग्य है ॥ १ ॥

यज्ञस्थानमें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, सोमका रस निकाला जाता है, वरुण देवको वह दिया जाता है, तब उसका रूप अधिक सुंदर दीखता है ॥ २ ॥

भक्त और वरुण एक ही नौकापर चढते हैं, वह नौका समुद्रमें तरंगोंके कारण ऊपर और नीचे होती है । इस गतिमें आनन्द और कल्याणकी प्राप्ति है । जब जीव इस शरीररूपी नौकामें आता है, उसी नौकामें परमेश्वर भी चलानेवाला बैठता है, यह नौका संसाररूपी सागरमें चलाई जाती है । आनेवाले सुखदुःखरूपी तरंगोंके कारण यह शरीररूपी नौका भी उन्नत और अवनत होती रहती है । पर यह अवस्था मनुष्यको कल्याण एवं आनन्द प्रदान करनेवाली होती है ॥ ३ ॥

यह शरीररूपी नौका ईश्वरने बनाई, इस नौकापर साधकको बिठाया और उसे ज्ञानी तथा कर्मका कर्ता बनाया । साथही कालका निर्माण करके शुभ दिनोंका सृजन किया ताकि इन शुभ दिनोंमें उत्तम कर्म करके यह जीव उत्तम स्थान पर पहुंचे ॥ ४ ॥

७०८ क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥
७०९ य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन् त्वामागांसि कृणवत् सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥ ६ ॥
७१० ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[८९]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वरुणः । छन्दः- गायत्री, ५ जगती ।)

७११ मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ १ ॥

अर्थ-- [७०८] हे (वरुण) वरुण ! (तानि नौ सख्या क्व बभूव) वे हमारे मित्रभाव अब कहां बने थे ? (पुरा चित् यत् अवृकं तत् सचावहे) प्राचीन कालका हिंसारहित जो सख्य है, वह हम चाहते हैं । हे (स्वधावः) अपनी निज धारण शक्तिसे युक्त वरुण देव ! (ते बृहन्तं मानं) मैं तेरे बडे परिमाणवाले (सहस्रद्वारं गृहं जगम) सहस्रों द्वारोंवाले घरको जाना चाहता हूं ॥ ५ ॥

[७०९] हे (वरुण) वरुण ! (यः नित्यः आपिः) जो यह वसिष्ठ तुम्हारा नित्य बन्धु और (ते सखा प्रियः सन्) तुम्हारा प्रिय मित्र होता हुआ अब (त्वां आगांसि कृणवत्) तुम्हारे संबंधमें थोडेसे अपराध करनेवाला हुआ है । हे (यक्षिन्) पूजनीय देव ! (ते एनस्वन्तः मा भुजेम) हम तुम्हारे हैं, इसलिये हमसे पाप होनेपर भी उसका भोग हमें करना न पडे ऐसी कृपा करो । (विप्रः स्तुवते वरूथं यंधि स्म) तुम ज्ञानी हो इसलिये मुझ जैसे तुम्हारे भक्तके लिये उत्तम सुखदायी घर दे दो ॥ ६ ॥

[७१०] (ध्रुवासु आसु क्षितिषु क्षियन्तः) इन स्थायी भूप्रदेशोंमें रहनेवाले हम (त्वा) तुम्हारी भक्ति करते हैं । वह (वरुणः अस्मत् पाशं वि मुमोचत्) वरुण हमें अपने पाशसे छुडावे । (अदितेः उपस्थात् अवः वन्वानाः) अदीन वरुणसे हम अपना संरक्षण प्राप्त करते हैं । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित करो ॥ ७ ॥

[८९]

[७११] हे वरुण राजन् ! (अहं मृन्मयं गृहं मो गमं) मैं मिट्टीके घरमें रहना नहीं चाहता, परंतु (सु) सुंदर घर रहनेके लिये चाहता हूं । हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्रबलवाले प्रभो ! (मृळय) मुझे सुखी कर, (मृळ) आनंदित कर ॥ १ ॥

भावार्थ— जीव और ईश्वरके बीच मित्रता प्राचीन है, सनातन है, वह कब हुई किसीको भी पता नहीं । इन दोनोंकी मित्रतामें निष्कपटता है । यह मित्रता सदा स्थिर रहे, ऐसा यह जीव चाहता है । उसकी इच्छा सदा प्रभुके विशाल घरमें रहनेकी होती है ॥ ५ ॥

भक्त कहता है— हे प्रभो ! मैं तुम्हारा सनातन बन्धु हूं, तुम्हारा प्रिय मित्र हूं । अब मुझसे थोडेसे अपराध हुए तो क्या तुम मुझे उसके लिये दण्ड दोगे ? मैं तुम्हारा भक्त हूं, तुम्हारी भक्ति अब भी कर रहा हूं, इसलिए थोडेसे पाप होनेपर भी मैं तुम्हारा ही मित्र बनकर रहूं, ऐसा करो ॥ ६ ॥

यह मनुष्य शरीर अस्थिर होते हुए भी स्थिरसा प्रतीत होता है । इस शरीरको पाकर मनुष्य परमात्माकी ही भक्ति करे । परमात्माकी भक्ति करने पर मनुष्य हर तरहके बन्धनोंसे मुक्त हो जाएगा । तब उसे सर्वशक्तिमान् परमात्माके संरक्षण प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥

मनुष्य सदा परमात्माकी भक्ति करके ऐश्वर्य प्राप्त करे । वह सदा आलीशान घरमेंही रहनेकी इच्छा करे । इस प्रकार ऐश्वर्य प्राप्त करके सदा पुष्ट एवं स्वस्थ होनेका प्रयत्न करे क्योंकि जिसके अन्दर बल होता है, वही दूसरोंको सुखी कर सकता है ॥ १ ॥

७१२ यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २ ॥
७१३ क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥
७१४ अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥
७१५ यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।
अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ५ ॥

[९०]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- वायुः, ५-७ इन्द्रवायू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७१६ प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ १ ॥

अर्थ— [७१२] हे (अद्रिवः) पर्वतके किलेमें रहनेवाले ! (यत् ध्मातः दृतिः न) जब वायुसे भरपूर भरी चमडेकी थैलीके समान मैं (प्रस्फुरन् एमि) स्फुरण प्राप्त करके चलता हूं तब हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्र तेजवाले ! (मृळ मृळय) मुझे सुखी करो, मुझे आनंदित करो ॥ २ ॥

[७१३] हे (समह शुचे) धनवान् और पवित्र ! (क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगम) कर्म करनेकी हीनताके कारण मैं प्रतिकूल परिस्थितिको प्राप्त हुआ हूं । हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्रतेजवाले ! (मृळय) इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो ॥ ३ ॥

[७१४] (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जल प्रवाहोंके मध्यमें मैं हूं तो भी मुझ जैसे (जरितारं तृष्णा अविदत्) स्तोता भक्तको प्यास लग रही है । (सुक्षत्र) हे क्षात्र तेजवाले ! (मृळय) इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो ॥ ४ ॥

[७१५] हे (वरुण) वरुण ! (दैव्ये जने यत् किं च) दिव्य जनोंके संबंधमें जो भी कुछ (मनुष्याः अभिद्रोहं चरामसि) हम मनुष्य द्रोह कर रहे हैं तथा (अचित्ती तव यत् धर्म युयोपिम) अज्ञानी अवस्थामें तेरे कर्तव्यका जो हम लोप करते हैं, हे देव ! (तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः) उस पापसे तुम हमारा नाश न कर ॥५॥

[९०]

[७१६] हे (वायो) वायो ! (वीरया वां अध्वर्युभिः शुचयः मधुमन्तः सुतासः) तुम वीरके लिये अध्वर्युओं द्वारा शुद्ध मधुर सोमरस (प्र दद्रिरे) दिये जाते हैं । अतः हे वायु ! (नियुतः वह) घोडियोंको जोतो, (अच्छ याहि) हमारे पास आओ । और (मदाय सुतस्य अन्धसः पिब) आनंदके लिये सोमरस रूप अन्नरसका पान करो ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य किले जैसे सुरक्षित स्थानमें रहे और शत्रुओंसे अपना बचाव करे । जिसमें स्फुरण है, उत्साह है, वाही प्रयत्न करके उन्नति प्राप्त करता है । दुःखसे पार होनेके तीन साधन हैं- सुरक्षित स्थान, आत्मिक बल और उत्साह ॥ २ ॥

प्रशस्त कर्म करनेकी शिथिलता ही मनुष्यकी अवनति करती है, इसलिए इस तरहकी हीनताको कोई मनुष्य अपने पास आने न दे ॥ ३ ॥

जिस तरह कोई पानीमें रहकर भी प्याससे तडपे, उसी तरह यह जीव भी परमात्माके आनन्दसागरमें रहते हुए भी आनन्दके लिए तडपता है तथा दुःखी होता है । पर उसका दुःख जब सीमाको पार कर जाता है, तब परमात्म उसे आनन्दका भागी बनाता है ॥ ४ ॥

मनुष्योंका यह स्वभाव ही है कि वे दिव्य जनोंसे सदा द्रोह किया करते हैं तथा सदा अज्ञानमें रहकर अपने अपने कर्तव्यका लोप करते हैं, अर्थात् अपने कर्तव्योंको नहीं करते । यह पाप ही है, मनुष्य इस पापसे बचनेका प्रयत्न न करे ॥ ५ ॥

हे वायो ! तुम वीर हो, इसलिए तुम्हें अध्वर्युगण शुद्ध मधुर सोमरस प्रदान करते हैं, अतः तुम हमारे पास आओ और इस सोमरसरूप अन्नका पान करो ॥ १ ॥

७१७ ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥ २ ॥
७१८ राये नु यं जज्ञतु रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ ३ ॥
७१९ उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रु— स्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥ ४ ॥
७२० ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वा— मीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥ ५ ॥

अर्थ— [७१७] हे (वायो) वायो ! (ईशानाय ते प्रहुतिं यः आनट्) ईश्वर रूप तुमको आहुति जो देता है। हे (शुचिपाः) शुद्ध रसका पान करनेवाले ! (तुभ्यं शुचिं सोमं) तुम्हारे लिये जो शुद्ध सोमरस देता है (तं मर्त्येषु प्रशस्तं कृणोषि) उसको तुम मर्त्योंमें प्रशंसनीय बना देते हो और वह (जातः जातः) सर्वत्र प्रसिद्ध होकर (अस्य वाजी जायते) इस धनको प्राप्त करनेवाला होता है ॥ २ ॥

[७१८] (इमे रोदसी यं राये जज्ञतुः) इन द्यावा पृथिवीने जिस वायुको ऐश्वर्यके लिये निर्माण किया, उस (देवं धिषणा देवी राये धाति) देवको तेजस्वी बुद्धि धनके लिये धारण करती है। (अध स्वाः नियुतः वायुं सश्चत) अपनी घोडियां उस वायुकी सेवा करती हैं। (उत श्वेतं वसुधितिं निरेके) और वे उस तेजस्वी धनका धारण करनेवालेको दरिद्रके पास पहुंचाती हैं। [तब वह उसको धन देकर धनी बना देता है।] ॥ ३ ॥

[७१९] उनके लिये (अरिप्राः सुदिनाः उषसः उच्छन्) निष्पाप दिनोंको उषायें प्रकाशित हो गयी हैं। वे दिन (दीध्यानाः उरु ज्योतिः विविदुः) प्रकाशित होकर विशेष प्रकाशको प्राप्त हुए। उन्होंने (उशिजः गव्यं ऊर्वं वि वव्रुः) इच्छा करके गौओंके समूहको प्राप्त किया। (तेषां प्रदिवः आपः अनुसस्रुः) उनका द्युलोकसे आये जल प्रवाहोंने अनुसरण किया। जल प्रवाह बहने लगे ॥ ४ ॥

[७२०] (ते सत्येन मनसा दीध्यानाः) वे सत्यनिष्ठ मनसे प्रकाशित होनेवाले (स्वेन क्रतुना युक्तासः वहन्ति) अपने यज्ञके साथ संयुक्त होनेके लिये अपने रथको चलाते हैं। हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायो ! (वां ईशानयोः वीरवाहं रथं) आप स्वामी जैसोंके वीर बैठनेवाले रथको वे वहां ले चलते हैं जहां (पृक्षः अभि सचन्ते) अन्नका प्रदान होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे वायो ! जो तुम्हें शुद्ध सोमरस देता है, उसे तुम मनुष्योंमें प्रशंसनीय बनाते हो और वह सर्वत्र प्रसिद्ध होकर इस धनको प्राप्त करनेवाला होता है ॥ २ ॥

जिस प्राणशक्तिरूपी वायुको परमात्माने उत्पन्न किया, उसे बुद्धि धारण करके ऐश्वर्यशालिनी होती है। ये घोडियां-रूपी इन्द्रियां उस प्राणशक्तिकी सेवा करती हैं और उससे तेजरूपी धन प्राप्त करती हैं ॥ ३ ॥

जो मनुष्य प्राणशक्तिसे युक्त होकर उत्साहसे सम्पन्न होते हैं, उनके लिए दिन विशेषरूपसे प्रकाशित होते हैं, उनके लिए किरणें प्रकाशित होती हैं, उनके लिए जल प्रवाह बहते हैं, । जो मनुष्य सदा उत्साहसे पूर्ण होता है वही इस प्रकृतिमें सर्वत्र सौन्दर्यके दर्शन करता है। उसे दिनके प्रकाशमें परमात्माका तेज और नदियोंके जल प्रवाहोंमें परमात्माकी गति ही दिखाई देती है ॥ ४ ॥

जिनका मन सत्यसे प्रकाशित होता है, वे यज्ञ अर्थात् उत्तम कर्मसे संयुक्त होते हैं। जो अपने शरीरका स्वामी होता है, उसे इन्द्र और वायु अर्थात् जीवात्मा और प्राणशक्ति ऐसे स्थान पर ले जाते हैं, जहां सदा अन्न अर्थात् पोषण प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

७२१ ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायु- र्वर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥ ६ ॥
७२२ अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १, ३ वायुः, २, ४-७ इन्द्रवायू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७२३ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥
७२४ उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥ २ ॥

अर्थ— [७२१] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायो ! (ये ईशानासः) जो स्वामी (गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः) गौओं, घोडों, धनों और सुवर्णोंसे युक्त (स्वः नः दधते) सुख हमें देते हैं, वे (सूरयः) ज्ञानी लोग अपने (विश्वं आयुः) संपूर्ण जीवनको (अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः) अश्वारोही वीरोंके द्वारा शत्रु सैनिकोंके मध्यमें युद्धोंमें शत्रुका पराभव करके विजयी बनाते हैं ॥ ६ ॥

[७२२] (अर्वन्तः न) घोडोंके समान (श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्नको ले जानेवाले (वाजयन्तः वसिष्ठाः) और अन्नसे अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ ऋषि (सुष्टुतिभिः सु अवसे) उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा हमारे उत्तम संरक्षणके लिये (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायुको (हुवेम) बुलाते हैं । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणरूप साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[९१]

[७२३] (पुरा ये वृधासः देवाः) प्राचीन समयके जो वृद्ध स्तोतागण (कुवित् अंग नमसा) बहुत बार प्रिय स्तोत्रोंके कारण (अनवद्यासः आसन्) प्रशंसित हुए थे वे (बाधिताय मनवे) दुःखी मानवोंके हितके लिये (वायवे) वायुको हवि देनेके समय (सूर्येण उषसं अवासयन्) सूर्यके साथ उषाकी स्तुति करते रहे ॥ १ ॥

[७२४] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र वायु ! (उशंता दूता गोपा दभाय न) तुम हितकी इच्छा करनेवाले दूत हमारा संरक्षण करते हो, परंतु कदापि हिंसाके लिये तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं होती । तुम (मासः पूर्वीः शरदः च पाथः) महिनों और पूर्ण वर्षोंमें हमारी सुरक्षा करते आये हो । तुम हमारी की हुई (सुष्टुतीः इयाना) उत्तम स्तुतिको सुनो । मैं (मार्डीकं नव्यं सुवितं च ईट्टे) सुखदायक नवीन सुविधाजनक धनकी प्रशंसा करता हूं । वैसा धन मुझे चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थ— जो स्वामी गौओं, घोडों, धनों और स्वर्णोंसे युक्त होकर प्रजाओंको सुख देता है, वह ज्ञानी होकर सब शत्रुओंको जीतकर विजयी बनता है ॥ ६ ॥

अन्न खाकर घोडोंके समान पुष्ट होनेवाले ज्ञानीजन उत्तम स्तोत्रोंसे इन्द्र और वायुको बुलाते हैं और ये दोनों देव भी कल्याणकारी साधनोंसे उनकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

प्राचीन कालके जो ज्ञानी स्तोता थे, वे अपने प्रिय स्तोत्रोंके कारण प्रशंसित हुए, वे दुःखी मानवोंको सुखी बनानेके लिए वायुकी स्तुति करते थे ॥ १ ॥

ये इन्द्र और वायु अनन्त कालसे मनुष्योंका हित करते आए हैं, पर उनकी हिंसा कदापि नहीं करते । वे ऐसा धन मनुष्योंको प्रदान करते हैं, जो सुखदायक और हर तरहकी सुविधाओंको देनेवाला होता है ॥ २ ॥

७२५ पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थु- र्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥

७२६ यावत् तरस्तन्वो यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥

७२७ नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्र- मध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥

७२८ या वां शतं नियुतो याः सहस्र- मिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक् पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७२५] (पीवो अन्नान् रयिवृधः) बहुत अन्नवाले और धनसे समृद्ध जनोंकी (सुमेधाः नियुतां अभिश्रीः श्वेतः) उत्तम मेधावाला घोडोंकी शोभा बढानेवाला श्वेतवर्ण वायु (सिषक्ति) सेवा करता है। (ते नरः) वे नेता लोग (समनसः वायवे वि तस्थुः) समान विचारवाले होकर वायुकी उपासना करते हैं। उन लोगोंने (विश्वा सु अपत्यानि चक्रुः) सब सुप्रजा निर्माण करनेके कार्य उत्तम रीतिसे किये ॥ ३ ॥

[७२६] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र वायु ! (यावत् तन्वः तरः) तुम्हारे शरीरका जितना वेग है, (यावत् ओजः) जितना बल है, (यावत् नरः चक्षसा दीध्यानाः) जितने मनुष्य ज्ञानसे तेजस्वी होते हैं, उस प्रमाणसे (शुचिपा अस्मे शुचिं सोमं पातं) शुद्ध सोमरसको पीनेवाले देव हमारे इस शुद्ध सोमरसको पीवें। (इदं बर्हिः आ सदतं) इस आसनपर आकर बैठें ॥ ४ ॥

[७२७] हे (इन्द्रवायू) इन्द्रवायू ! (स्पार्हवीरा) स्पृहणीय वीर ऐसे (नियुतः) घोडोंको अपने (सरथं नियुवाना) एकही रथमें जोतनेवाले तुम (अर्वाक् यातं) हमारे पास आओ। (इदं मध्वः अग्रं वां प्रभृतं) यह मधुर सोमका मुख्य भाग तुम्हारे लिये भरा रखा है। (अध प्रीणाना अस्मे वि मुमुक्तं) अब इससे संतुष्ट होकर तुम हमें पापसे मुक्त करो ॥ ५ ॥

[७२८] हे (इन्द्र वायू) इन्द्रवायू ! (याः नियुतः शतं वां) जो सौ घोडे तथा (याः विश्ववाराः सहस्रं सचन्ते) जो सबको वरणीय सहस्र घोडे तुम्हारी सेवा करते हैं, (आभिः सुविदत्राभिः अर्वाक् आ यातं) इन उत्तम धन देनेवाले घोडोंके साथ हमारे समीप आओ। हे (नरा) नेता लोगो ! (प्रतिभृतस्य मध्वः पातं) इस भरे रखे सोमरसका पान करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— पर्याप्त अन्न और धनवाले लोग उत्तम वायुका सेवन करते हैं और समान विचारवाले होकर सुप्रजा निर्माण करनेका कार्य करते हैं ॥ ३ ॥

जितना शरीरमें बल और सामर्थ्य है, तथा जहां तक दृष्टि जाती है, वहां तक शुद्धता और पवित्रताके प्रयत्न करना चाहिए ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम अपनी समस्त शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ, यह मधुरतासे पूर्ण अन्नका भाग तुम्हारे लिए प्रस्तुत है, तुम इसे खाकर और सन्तुष्ट होकर हमें पापसे मुक्त करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और वायु ! जो सौ या हजारों शक्तियां तुम्हारी सेवा करती हैं, उन सब शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ और हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पीओ ॥ ६ ॥

७२९ अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९२]

(ऋषिः - मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता - वायुः, २, ४ इन्द्रवायू । छन्दः - त्रिष्टुप् ।)

७३० आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥
७३१ प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद् वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥ २ ॥
७३२ प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ ३ ॥

अर्थ— [७२९] (अर्वन्तः न) घोडोंके समान (श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्नको ले जानेवाले (वाजयन्तः वसिष्ठाः) और अन्नसे अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ ऋषि (सुष्टुतिभिः सु अवसे) उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा हमारे उत्तम संरक्षणके लिए (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायुको (हुवेम) बुलाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[९२]

[७३०] हे (शुचिपाः वायो) शुद्ध सोमरसका पान करनेवाले वायो ! (नः उप आ भूष) हमारे समीप आओ। हे (विश्ववार) सबके सेवनीय ! (ते सहस्रं नियुतः) तेरी घोडियां सहस्रों हैं। (ते मद्यं अन्धः उपो अयामि) तुम्हारे लिये यह आनन्ददायक सोमरस पात्रमें भरकर लाता हूं। हे देव ! (यस्य पूर्वपेयं दधिषे) जिस रसका तुम प्रथम पान करते हो ॥ १ ॥

[७३१] (जीरः सोता) सत्वर कर्म करनेवाले रस निकालने वालेने (इन्द्राय वायवे च पिबध्यै) इन्द्र और वायुके पानेके लिये (अध्वरेषु सोमं प्र अस्थात्) यज्ञोंमें सोमको रखा है हे इन्द्रवायो ! (देवयन्तः अध्वर्यवः शचीभिः) देवत्व प्राप्तिकी कामना करनेवाले अध्वर्युगण अपनी शक्तियोंसे (यत् वां मध्वः अग्रियं प्रभरन्ति) इस सोमके प्रथम भागको आपके लिये भर रखते हैं ॥ २ ॥

[७३२] हे (वायो) वायो ! (दुरोणे इष्टये) यज्ञ स्थानमें इष्टिके लिये (दाश्वांसं याभिः नियुद्भिः अच्छ प्रयासि) दाताके पास जिन घोडियोंसे तुम जाते हो। वैसे हमारे पास आओ और (नः सुभोजसं रयिं) हमें उत्तम अन्नवाले धनको तथा (वीरं गव्यं अश्व्यं च राधः) वीर पुत्र गौ घोडे आदि वैभव (नि युवस्व) दो ॥ ३ ॥

भावार्थ— अन्न खाकर घोडोंके समान पुष्ट होनेवाले ज्ञानी जन उत्तम स्तोत्रोंसे इन्द्र और वायुको बुलाते हैं और वे दोनों देव भी कल्याणकारी साधनोंसे उनकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

सर्वत्र शुद्धता एवं पवित्रता करनेवाले वायु देवकी अनेकों शक्तियां हैं, इन शक्तियोंसे युक्त होकर वह आनन्द दायक सोमरसको पीता है ॥ १ ॥

हर काम शीघ्रतासे करनेवाले यज्ञकर्ता इन्द्र और वायुके लिए सोमको तैय्यार करते हैं। देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले अध्वर्युगण अपनी शक्तियोंसे इस सोमको इन देवताओंके लिए प्रदान करते हैं ॥ २ ॥

हे वायो ! यज्ञस्थानमें यज्ञके समय दाताके पास जिन घोडियोंसे तुम जाते हो, वैसे हमारे पास आओ तथा हमें हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ३ ॥

७३३ ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥ ४ ॥
७३४ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन् त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥

[९३]

(ऋषि- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७३५ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्ये-न्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ १ ॥
७३६ ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥ २ ॥

अर्थ— [७३३] (ये इन्द्र-मादनासः) जो इंद्रको आनंद देनेवाले तथा (वायवः) वायुको प्रसन्न करनेवाले हैं तथा (ये आ देवासः) वे देवके भक्त (अर्यः नितोशनासः) शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, वैसे हम सब (सूरिभिः वृत्राणि घ्नन्तः स्याम) विद्वान वीरोंके साथ रहकर शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा (युधा अमित्रान् नृभिः ससह्वांसः) युद्धमें शत्रुओंका वीरोंसे पराभव करनेवाले हों ॥ ४ ॥

[७३४] हे (वायो) वायो ! (नः अध्वरं यज्ञं) हमारे हिंसा रहित यज्ञके पास तुम (शतनीभिः सहस्रणीभिः नियुद्भिः उप आ याहि) सौ अथवा सहस्र घोडियोंके साथ आओ (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस सवनमें रस पीकर आनन्दित हो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो ॥ ५ ॥

[९३]

[७३५] हे (वृत्रहणा इन्द्राग्नी) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (शुचिं नवजातं स्तोमं अद्य जुषेथां) शुद्ध नवीन स्तोत्रका तुम अब सेवन करो । (सुहवा उभा हि वां जोहवीमि) उत्तम प्रशंसा योग्य तुम दोनोंको मैं बुलाता हूँ । (ता उशते वाजं धेष्ठा) वे तुम दोनों उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल वा सामर्थ्य धारण करनेवाले बनो ॥ १ ॥

[७३६] हे इन्द्र और अग्नि ! (ता सानसी शवसाना भूतं) वे आप दोनों सेवाके योग्य और बलवान् हैं । तथा (साकं वृधा शूशुवांसा) साथ साथ बढनेवाले तथा प्रभावी बनो । और (रायः भूरेः यवसस्यं क्षयन्तौ) धन और बहुत अन्नको अपने पास रखनेवाले बनो और (स्थविरस्य वाजस्य घृष्वेः पृङ्क्तं) बहुत अन्न और शत्रुनाशक बल हमें दे दो ॥ २ ॥

भावार्थ— हम विद्वान् वीरोंकी सहायतासे प्रबल हों और युद्धमें शत्रुओंका पराभव करें । हम इन्द्र और वायुको आनन्द प्रदान करके शत्रुओंको पराजित करें ॥ ४ ॥

हे वायो ! अपनी अनेक तरहकी शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे यज्ञमें आओ । प्रातःसवनमें निचोडे गए रसको पीकर तुम आनन्दित होओ । प्रातःसवनमें सोमरस निचोडा जाता है और उसी समय पीया जाता है, इसलिए उसमें मूर्छा लानेवाली मादकता नहीं होती ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों आवरण डालनेवाले वृत्रको मारनेवाले हो । तुम दोनों इस नवीन स्तोत्रका सेवन करो । तथा उन्नतिकी इच्छा करनेवालोंको तुम अन्न, बल और सामर्थ्य दो ॥ १ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों साथ साथ बढनेवाले होनेके कारण प्रभावशाली हैं तथा धन तथा अन्नको अपने पास रखनेवाले हैं तथा शत्रुविनाशक हैं । इसी तरह जो एक दूसरेको सहकार देकर बढते हैं, वे प्रभावशाली होते हैं, धन-धान्यसे युक्त होते हैं और सामर्थ्यसे युक्त होनेके कारण शत्रुविनाशक होते हैं ॥ २ ॥

७३७ उपो ह यद् विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ ३ ॥

७३८ गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

७३९ सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥ ५ ॥

७४० इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७३७] (वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः) बलवान ज्ञानी उत्तम बुद्धिकी इच्छा करनेवाले (यत् विदथं उपो गुः) यज्ञके पास जाते हैं, यज्ञमें भाग लेते हैं। वैसे (ते नरः) वे नेता लोग (अर्वन्तः न काष्ठां) घोडे युद्ध भूमिमें जानेके समान (नक्षमाणाः इन्द्राग्नी जोहुवन्त) जाते हुए इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[७३८] हे इन्द्र और अग्नि ! (प्रमतिं इच्छमानः विप्रः) विशेष बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी (यशसं पूर्वभाजं रयिं ईट्टे) यशस्वी और प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी प्रशंसा गाता है। हे (वृत्रहणा सुवज्रा इन्द्राग्नी) वृत्रका वध करनेवाले उत्तम वज्रधारी इन्द्र और अग्नि !(नव्येभिः देष्णैः नः प्रतिरतं) नवीन तथा देने योग्य धनोंसे हमें संवर्धित करो ॥ ४ ॥

[७३९] (मही मिथती) विशाल और परस्पर स्पर्धा करनेवाली (शूरसाता तनूरुचा सं यतैते) शूरोंके लिये भाग लेने योग्य शत्रुसेनाओंके मध्यमें वीर अपने शरीरके तेजसे मिलकर यशके लिये यत्न करते हैं, वहां (सोमसुता जनेन सत्रा) यज्ञ करनेवाले मनुष्यके साथ रहकर तथा (देवयुभिः) देव भक्तोंके साथ रहकर वीर (अदेवयुं विदथे हतं) देव विरोधी शत्रुका नाश करें ॥ ५ ॥

[७४०] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इमां नः सोमसुतिं) इस हमारे सोमयागके पास (सौमनसाय सु आयातं) उत्तम मनके भावको बढानेके लिये आओ। (अस्मान् नूचित् परि मम्नाथे) हमारा त्याग करनेका विचार भी तुम कदापि नहीं करते हो। (वां शश्वद्भिः वाजैः आ ववृतीय) इसलिये तुम्हें बार बार अन्नोंसे इधर बुलाता हूं। हमारी ओर आनेके लिये प्रवर्तित करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ— बलवान् ज्ञानी अपनी बुद्धिको उत्कृष्ट बनानेकी इच्छासे स्पर्धा क्षेत्रमें जाते हैं और वहां अपनी बुद्धिको प्रकट करते हैं। घोडे जिस तरह प्रगति करते हैं, वैसे ही नेतागण अपनी प्रगति करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥

बुद्धिको उत्तम बनानेकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी पुरुष प्रथम उपभोग करने योग्य यशस्वी धनका ही गुणगान करता है। यशकी वृद्धि करनेवाला धन ही प्राप्त करने योग्य है। जिनके पास उत्तम शस्त्रास्त्र होते हैं, वे ही शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ४ ॥

बडी विशाल लडनेवाली और भाग लेने योग्य शत्रुसेनाओंके युद्धके समय जिन वीरोंमें अपना तेज है, वे ही वीर मिलकर विजयके लिए प्रयत्न करते हैं। भक्तोंके साथ और यज्ञकर्ताओंके साथ रहकर देव द्वेष्टा शत्रुओंका नाश करते है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और अग्नि देवो ! हमारे मनोंमें उत्तम भावोंको बढानेके लिए सदा हमारे पास रहो। हमारा त्याग करनेका विचार भी मत करो। मैं तुम्हें बार बार अपनी ओर बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

७४१ सो अग्न एना नमसा समिद्धो ऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥
७४२ एता अग्न आशुषाणास इष्टी र्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

[९४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।)

७४३ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥ १ ॥
७४४ शृणुतं जरितुर्हव मिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

अर्थ— [७४१] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः एना नमसा समिद्धः) वह तू उत्तम मनसे प्रदीप्त होकर (मित्रं इन्द्रं वरुणं च वोचेः) मित्र इन्द्र और वरुणके पास जाकर कह कि हमने (यत् आगः सीं चकृम) जो अपराध किया है (तत् सु मृळ) उससे हमें बचाकर सुखी करो तथा (तत् अर्यमा अदितिः शिश्रथन्तु) उसको अर्यमा अदिति हमसे पृथक् करें । उस अपराधको हमसे दूर करें । हम निर्दोष हों ॥ ७ ॥

[७४२] हे (अग्ने) अग्ने ! (एताः इष्टीः आशुषाणासः) इन इष्टियोंका शीघ्र सेवन करनेवाले हम (युवोः वाजान् सचा अभि अश्याम) तुम्हारे अन्नोंको हम साथ साथ प्राप्त करेंगे । (इन्द्रः विष्णुः मरुत्) इन्द्र, विष्णु, और मरुत (नः मा परिख्यन्) हमारा त्याग न करें । यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा संरक्षण करो ॥ ८ ॥

[९४]

[७४३] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (इयं पूर्व्यस्तुतिः) यह पहिली स्तुति (अस्य मन्मनः) इस मननशील ऋषिसे (वां अभ्रात् वृष्टिः इव अजनि) आप दोनोंके लिये मेघसे वृष्टि होनेके समान हुई है, उसका श्रवण करो ॥ १ ॥

[७४४] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (जरितुः हवं शृणुतं) स्तोताकी प्रार्थना सुनो ! (गिरः वनतं) उनके वचन श्रवण करो । और (ईशाना धियः पिप्यतं) तुम स्वामी हो इसलिये हमारी बुद्धि पूर्वक किये कर्मोंको सफल बनाओ ॥ २ ॥

भावार्थ— हम अग्नि देवकी नित्य पूजा करें और मित्र, इन्द्र, वरुणकी भी स्तुति करें ताकि हमने जो अपराध किया हो, उससे हम मुक्त होकर सुखी हों, अर्यमा और अदिति भी हमें अपराधोंसे मुक्त करें । हम निर्दोष होकर व्यवहार करें ॥ ७ ॥

हम सदा ही अनेक तरहका यज्ञ करनेवाले हों, इन्द्र, विष्णु आदि देव हमारा परित्याग न करें । अपितु अपने कल्याणकारी साधनोंसे हमारी सदा रक्षा किया करें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! यह पहली स्तुति इस मननशील ज्ञानी ऋषिके मुंहसे प्रकट हुई है, इसलिये तुम इन स्तुतियोंको स्वीकार करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों स्तोताओंकी प्रार्थना सुनो, उनके वचन सुनो । तुम दोनों स्वामी हो, इसलिए बुद्धिपूर्वक किए गए कर्मोंको सफल बनाओ ॥ २ ॥

७४५ मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥ ३ ॥
७४६ इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥ ४ ॥
७४७ ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥ ५ ॥
७४८ ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे । मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥
७४९ इन्द्राग्नी अवसा गत मस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥
७५० मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [७४५] हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (नः पापत्वाय) हमारे पापके लिये (अभिस्तये) पराभवके कारण, शत्रुकृत हीनभावके दर्शनके लिये, तथा (नः निदे) हमारी निंदा हो रही तो उसके कारण (मा मा मा रीरधतं) हमें परवश न करो । हम किसी भी कारण पराधीन होना नहीं चाहते । हमारा विनाश न हो ॥ ३ ॥

[७४६] (अवस्यवः इन्द्रे अग्ना) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्र और अग्निके पास (बृहत् नमः) बहुत अन्न, (सु वृक्तिं) उत्तम स्तुति और (धिया धेनाः) बुद्धि पूर्वक बोले वचनोंको (आ ईरयामः) प्रेरित करते हैं । उनकी स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

[७४७] (ता हि) उन इन्द्र और अग्निकी सचमुच (शश्वन्तः विप्रासः) बहुतही ज्ञानी जन (ऊतये इत्था ईळते) अपने संरक्षणके लिये इस तरह स्तुति गाते हैं । तथा (सबाधः वाजसातये) समान पीडासे युक्त हुए लोग अन्न प्राप्तिके लिये इन्हींकी प्रशंसा करते हैं ॥ ५ ॥

[७४८] (विपन्यवः प्रयस्वन्तः) विशेष ज्ञानी, ज्ञानी और प्रयत्नशील (सनिष्यवः) धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोग (मेधसाता) यज्ञमें (ता वां गीर्भिः हवामहे) तुम दोनोंको अपनी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंसे बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[७४९] हे (चर्षणीसहा इंद्राग्नी) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (अस्मभ्यं अवसा आ गतं) हमारे पास अपने संरक्षणके साधनोंके साथ आओ । (दुःशंसः नः मा ईशते) दुष्टोंका शासन हमपर न हो ॥ ७ ॥

[७५०] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (कस्य अररुषः मर्त्यस्य) किसी भी शत्रुरूप मानवकी (धूर्तिः नः मा प्रणक्) धूर्तता या हिंसा हमारा नाश न करे । हमें (शर्म यच्छतं) सुख दो, हमें सुखी करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! हमारे पापके दण्डस्वरूप हमारा पराभव करनेके लिए हमें ऐसे लोगोंके अधीन मत कर, जो हमारी निन्दा करता हो अर्थात् हे प्रभो ! हमारा पराभव तुम यदि करना भी चाहते हो, तो हमें ऐसे लोगोंके वशमें करो कि जो सज्जन हों ॥ ३ ॥

सुरक्षा प्राप्त करनेकी इच्छासे हम इन्द्र और अग्निकी बहुत अन्न उत्तम स्तुति और बुद्धिपूर्वक बोले गए वचनोंसे स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

उन इन्द्र और अग्निकी ज्ञानीजन अपनी सुरक्षाके लिए उत्तम स्तुति करते हैं । बुभुक्षारूपी समान पीडासे युक्त लोग अन्न प्राप्तिके लिए उन्हीं देवोंकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

विशेष ज्ञानी और उन्नतिके लिये प्रयत्न करनेवाले तथा धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम यज्ञमें इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

दुष्टोंका राज्यशासन हमपर न हो, हम दुष्टोंके अधीन न हों । शत्रुका पराभव करनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आकर रहें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और अग्नि देवो ! किसी भी शत्रुरूप मानवकी धूर्तता या हिंसा हमारा नाश न करे । सभी हमें सुखी करें ॥ ८ ॥

७५१ गोमद्धिरण्यवद् वसु यद् वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद् वनेमहि ॥ ९ ॥
७५२ यत् सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥ १० ॥
७५३ उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥ ११ ॥
७५४ ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥ १२ ॥

[९५]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- सरस्वती, ३ सरस्वान् । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७५५ प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥ १ ॥

अर्थ— [७५१] हे (इन्द्राग्नी) इंद्र और अग्नि ! (गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वसु) गौओं, सुवर्ण और घोडोंसे युक्त धन (यत् वां ईमहे) जो तुम्हारे पास हम मांगते हैं (तत् वनेमहि) वह हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

[७५२] (सोमे सुते) सोमका रस निकालनेपर (सपर्यवः नरः) पूजा करनेवाले मनुष्य (सप्तीवन्ता इंद्राग्नी) प्रशंसित घोडोंवाले इंद्र और अग्निको (आ अजोहवुः) बुलाते हैं ॥ १० ॥

[७५३] (वृत्रहन्तमा मंदाना या) शत्रुका हनन करनेवाले और आनंदित होनेवाले इन्द्र और अग्निकी (उक्थेभिः गिरा आंगूषैः आ आविवासतः) स्तोत्रों, वचनों और काव्योंके गानसे प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥

[७५४] हे इंद्र और अग्नि ! (ता) वे तुम दोनों (दुःशंसं दुर्विद्वांसं) दुष्ट और दुष्ट विद्वान् (आ भोगं रक्षस्विनं) अपहरणशील राक्षसरूप शत्रुका (हन्मना हतं) घातक शस्त्रसे नाश करो । (उदधिं हन्मना हतं) पानीसे भरे घडेका जैसा विनाशक साधनसे नाश करते हैं वैसा शत्रुका नाश करो ॥ १२ ॥

[९५]

[७५५] (एषा सरस्वती) यह सरस्वती नदी (आयसी पूः) लोहेके प्रकारवाली नगरीके समान (धरुणं) सबकी सुरक्षाका धारण करती है । यह अपने (धायसा क्षोदसा प्र सस्रे) धारक जलके साथ दौड रही है । यह (सिन्धुः) नदी अपनी (महिना) महिमासे (विश्वाः अन्याः अपः) दूसरे सब जलोंको (रथ्या इव प्रबाबधाना) रथ चलानेवाले सारथीकी तरह बाधा पहुंचाती हुई (याति) जाती है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! गौओं सुवर्ण और घोडोंसे युक्त धन हम तुमसे मागते हैं, वह धन हमें प्राप्त हो ॥ ९ ॥

सोमका रस निकालनेके बाद पूजा करनेवाले मनुष्य उत्तम घोडोंवाले इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं ॥ १०

शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले और आनन्दित होनेवाले इन्द्र और अग्निकी लोग स्तोत्रों, वचनों और काव्योंसे प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! जो दुष्ट हों, दुष्ट विद्वान् हों अर्थात् विद्वान् होकर भी दुष्टता करें तथा जो दूसरोंकी मालमत्ता या प्राणादिका अपहरण करनेवाले राक्षस हों, उनका उसी तरहसे नाश करो जिस तरह पानीसे भरे घडेको फोडते हैं ॥ १२ ॥

सरस्वती नदीका प्रवाह अखण्ड है । यह लोहे और पत्थरोंसे बने हुए दुर्गके समान अपने पास रहनेवालोंकी रक्षा करती है । जिस तरह कोई सारथी मार्गके पत्थरों और गड्ढोंको दूर करके सरल मार्गसे रथको ले जाता है, उसी तरह यह सरस्वती नदी अपने प्रवाहके वेगसे मार्गको काटती हुई बीचके विघ्नोंको दूर करती हुई जाती है । इसी तरह मनुष्यको चाहिए कि वह विघ्नोंको दूर करके आगे बढता जाए ॥ १ ॥

७५६ एकांचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ संमुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥
७५७ स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥
७५८ उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥
७५९ इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७५६] (नदीनां शुचिः) नदियोंमें शुद्ध (गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती) पहाडोंसे समुद्र पर्यंत जानेवाली (एका सरस्वती अचेतत्) यह एकही सरस्वती नदी चेतनायुक्त सी चल रही है। (भुवनस्य भूरेः रायः चेतंती) इस पृथ्वीपरके बहुत धनोंको बताती है और (नाहुषाय पयः घृतं दुदुहे) नहुषके लिये दूध और घी देती रही ॥ २ ॥

[७५७] (नर्यः वृषा) मानवोंके लिये हितकारी बलवान् (सः शिशुः वृषभः) वह बछडे बैलके समान तरुण (यज्ञियासु योषणासु) यज्ञके लिये रखी स्त्रियोंमें गौओंमें (ववृधे) बढता है। (सः मघवद्भ्यः वाजिनं दधाति) वह यज्ञकर्ताओंके लिये बलवान् पुत्र प्रदान करता है और (सातये तन्वं वि मामृजीत) काम करनेके लिये शरीरको विशेष प्रकारसे शुद्ध करता है ॥ ३ ॥

[७५८] (उत जुषाणा सुभगा स्या सरस्वती) और प्रसन्न हुई वह भाग्यवाली सरस्वती (नः अस्मिन् यज्ञे उप श्रवत्) हमारे इस यज्ञमें हमारी की हुई स्तुति सुने। (मितज्ञुभिः नमस्यैः इयाना) घुटने टेककर नमन करनेवाले उपासक उस नदीके पास जाते हैं। (युजा राया चित्) वह नदी योग्य धनसे युक्त है और (सखिभ्यः उत्तरा) मित्रभावसे रहनेवालोंके लिये उत्तर अवस्था देती है ॥ ४ ॥

[७५९] हे (सरस्वति) सरस्वती नदी ! (इमा जुह्वाना) इन अन्नोंका यज्ञ करनेवाले हम (नमोभिः युष्मत् आ) नमस्कार पूर्वक तुमसे अधिक अन्न प्राप्त करते हैं। (स्तोमं प्रति जुषस्व) हमारे स्तोत्रका श्रवण कर। हम अपने आपको (तव प्रियतमे शर्मन् दधानाः) तुम्हारे अत्यंत प्रिय सुखमें धारण करते हैं, (शरणं न वृक्षं उप स्थेयाम) और आश्रय भूत वृक्षकी तरह तुम्हारे साथ रहें। जैसे पक्षी वृक्षके आश्रयसे रहते हैं वैसे हम तुम्हारे आश्रयसे रहें ॥ ५ ॥

भावार्थ— सरस्वती नदी सब नदियोंमें अधिक शुद्ध है। यह नदी पर्वतसे निकलकर समुद्रमें मिलती है। इसके वेगको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई चेतनावान् प्राणी हो। पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले सभी धान्यरूपी धनको यह प्रदान करती है और अपने तीर पर रहनेवालोंको यह पर्याप्त घी और दूध देती है ॥ २ ॥

तरुण मनुष्य सब मानवोंका कल्याण करनेमें तत्पर बलवान् बैल जैसा पुष्ट, तरुण बैल जैसा सामर्थ्यवान् तथा पूजनीय और पवित्र स्त्रीके साथ रहनेवाला हो। जो सब तरहसे पुष्ट होता है वह उत्तम, बलवान् और वीर पुत्र उत्पन्न करता है। ऐसा तरुण अन्दर और बाहरसे शुद्ध रहे ॥ ३ ॥

सरस्वती नदीके तीरपर उपासना करनेवाले लोग घुटने टेककर नमस्कार करते हुए स्तुति-प्रार्थना और उपासना करते हैं। सरस्वती नदी उत्तम भाग्य देनेवाली है। योग्य धन प्राप्त होनेसे परस्पर प्रेमभावसे रहनेवालोंके लिए उत्तर अवस्था देनेवाली यह नदी है ॥ ४ ॥

हे सरस्वती देवी ! हम तेरी सेवा करके तुझसे अधिक धान्य प्राप्त करें। नदीकी यदि सेवा की जाएगी, और उसकी अच्छी तरह रक्षा की जाएगी तो उसके जलका अधिक लाभ उठाया जा सकेगा। इस हालतमें पक्षी जिस तरह वृक्षके आश्रयसे रहते हैं, उसी तरह मनुष्य नदीके आश्रयसे रह सकते हैं ॥ ५ ॥

७६० अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

[९६]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- सरस्वती, ४-६ सरस्वान् । छन्दः- १-२ प्रगाथः = (१ बृहती, २ सतोबृहती), ३ प्रस्तारपङ्क्तिः, ४-६ गायत्री ।

७६१ बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

७६२ उभे यत् ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

७६३ भद्रमिद् भद्रा कृणवत् सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

अर्थ— [७६०] हे (सुभगे सरस्वति) उत्तम भाग्यशाली सरस्वती नदी ! (अयं वसिष्ठः) यह वसिष्ठ ऋषि (ते ऋतस्य द्वारौ वि आवः) तुम्हारे लिये यज्ञके दोनों द्वार खोलता है । हे (शुभ्रे ! स्तुवते वर्ध) शुभ्रवर्णवाली देवि ! स्तोताके हित करनेके लिये बढो तथा (वाजान् रासि) उसको अन्न दो । (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) तुम कल्याणके साधनोंसे हमारी सदा सुरक्षा करो ॥ ६ ॥

[९६]

[७६१] हे (वसिष्ठ) वसिष्ठ ! तुम (नदीनां असुर्या बृहत् उ वचः गायिषे) नदियोंमें बलवती नदीके बडे स्तोत्रोंका गान करो । (रोदसी सरस्वतीं) द्युलोक और भूलोकमें रहनेवाली सरस्वतीका महत्त्व (सुवृक्तिभिः स्तोमैः महय) उत्तम वचनोंके स्तोत्रोंसे वर्णन करो ॥ १ ॥

[७६२] हे (शुभ्रे) शुभ्र वर्णवाली सरस्वती नदी ! (यत् ते महिना) जिस तुम्हारी महिमा द्वारा (उभे अंधसी) दोनों प्रकारके दिव्य और पार्थिव अन्नको (पूरवः अधि क्षियन्ति) नागरिक लोग प्राप्त होते हैं । (सा अवित्री नः बोधि) वह रक्षण करनेवाली नदी हमारा रक्षण करना है यह जाने । (मरुत्सखा मघोनां राधः चोद) मरुतोंके साथ मित्रता करनेवाली वह नदी यज्ञ करनेवाले धनिकोंके पास धनको प्रेरित करे ॥ २ ॥

[७६३] (भद्रा सरस्वती भद्रं इत् कृणवत्) कल्याण करनेवाली सरस्वती निःसंदेह कल्याण करती है । तथा (अकवारी वाजिनीवती चेतति) सीधी जानेवाली और अन्न देनेवाली यह सरस्वती हमारे अन्दर चेतना उत्पन्न करे, प्रज्ञा बढावे । (जमदग्निवत् गृणाना) जमदग्नि ऋषिके द्वारा प्रशंसित होनेके समान (वसिष्ठवत् च स्तुवाना) वसिष्ठके योग्य स्तुतिसे प्रशंसित हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— ज्ञानी जन नदीके किनारे यज्ञकी रचना करते थे । प्राचीन ऋषिगण सरस्वती नदीके किनारे यज्ञोंका अनुष्ठान करते थे । इन यज्ञोंसे पवित्र हुए जलवाली वह नदी इन ऋषियोंको प्रचुर धान्य देकर समृद्ध करती थी ॥ ६ ॥

हे ज्ञानी मनुष्य ! तुम नदियोंमें श्रेष्ठ नदी सरस्वतीकी स्तुति करो । द्युलोक और भूलोकको समृद्ध बनानेवाली इस सरस्वतीके महत्त्वका गान करो ॥ १ ॥

सोमरस दिव्य अन्न है और चावल पार्थिव अन्न है । ये दोनों अन्न सरस्वती नदीपर होते हैं और यज्ञ करनेवालोंको प्राप्त होते हैं । नागरिक जन पूर्वोक्त दोनों तरहके अन्नोंको प्राप्त करते हैं । इस प्रकार सरस्वती नदी सब लोगोंका संरक्षण करनेवाली है । जो यज्ञ करता है, उनकी तरफ धनको यह सरस्वती प्रेरित करती है ॥ २ ॥

सरस्वती सबका कल्याण करनेवाली है, वह सबका कल्याण करे । यह सरस्वती एक नदी भी है और विद्या भी । जिस तरह सरस्वती नदी जलादिसे सबका कल्याण करती है, उसी तरह विद्या भी सब मानवोंका कल्याण करती है । सरस्वती सीधा उन्नतिका मार्ग बताती है । वह मनुष्योंको टेढी चाल चलनेसे रोकती है ॥ ३ ॥

७६४ जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥
७६५ ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥ ५ ॥
७६६ पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥

[९७]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- १ इन्द्रः; २,४-८ बृहस्पतिः; ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती, १० इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७६७ यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥
७६८ आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥ २ ॥

अर्थ— [७६४] (जनीयन्तः) पत्नीवाले (पुत्रीयन्तः) पुत्रकी कामना करनेवाले (सुदानवः अग्रवः) उत्तम दान देनेवाले हम अग्रेसर होकर (सरस्वन्तं हवामहे) सरस्वान् समुद्र देवकी विद्वानकी प्रशंसा गाते हैं ॥ ४ ॥

[७६५] हे (सरस्वः) समुद्र देव ! (ये ते ऊर्मयः) जो तुम्हारी लहरियाँ (मधुमन्तः घृतश्च्युतः) मीठी और घीवाली हैं, (तेभिः नः अविता भव) उनसे हमारे संरक्षक बनो ॥ ५ ॥

[७६६] (यः विश्वदर्शतः) जो विश्वका दर्शन कराता है उस (सरस्वतः पपिवांसं स्तनं) सरस्वान्-समुद्रके परिपुष्ट स्तनका हम पान करते हैं और (प्रजां इषं भक्षीमहि) सुप्रजा तथा अन्न प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

[९७]

[७६७] (यत्र देवयवः नरः मदन्ति) जहां देवत्वकी प्राप्ति करनेवाले नेता लोग आनंदित होते हैं, (यत्र इन्द्राय सवनानि सुन्वे) जहां इन्द्रके लिये सोमका रस निकालते हैं, वहां (पृथिव्याः नृषदने यज्ञे) पृथ्वी परके मनुष्योंको कल्याण करनेके यज्ञ स्थानमें (दिवः प्रथमं मदाय गमत्) द्युलोकसे सबके प्रथम इन्द्र आनंदित होनेके लिये आवे और (वयः च) उसके शीघ्रगामी घोडे भी आजांये ॥ १ ॥

[७६८] हे (सखायः) मित्रो ! हम (दैव्या अवांसि आवृणीमहे) दिव्य संरक्षणोंको प्राप्त करना चाहते हैं। (नः बृहस्पतिः आ महे) हमारे यज्ञको बृहस्पति स्वीकार करे। (यः परावतः पिता इव नः दाता) जो बृहस्पति दूरदेशसे पिता पुत्रोंको धन देता है उस तरह हमें धन देता है। उस (मीळ्हुषे यथा अनागाः भवेम) सुखदायी बृहस्पतिके सन्मुख हम जिस तरह निष्पाप होकर जांय वैसा आचरण करें ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्य पत्नीवाले, पुत्रकी कामना करनेवाले और उत्तम दान देनेवाले होकर आगे बढें तथा विद्याकी उपासना करें ॥ ४ ॥

सरस्वान्का अर्थ समुद्र और महाज्ञानी दोनों ही है। विद्याकी नदियां उस महाज्ञानीके हृदयमें आकर मिलती हैं। उसके हृदयमें जो ऊर्मियां है, वह ऊर्मियां मधुरिमाको प्रकट करनेवाली और घीके समान स्नेहको फैलानेवाली होती हैं। विद्याके समुद्र महाज्ञानीके ये ही कर्तव्य हैं ॥ ५ ॥

समुद्र, महाज्ञानी और मेघ ये तीनोंही सरस्वान् हैं। इसका स्तन वर्षा करनेवाला मेघ तथा ज्ञानरसको प्रवाहित करनेवाला उस महाज्ञानीका हृदय है। इस स्तनको पीकर मनुष्य हृष्टपुष्ट हों ॥ ६ ॥

पृथ्वी पर यज्ञका स्थान ऐसा है जो सब मानवोंका कल्याण करता है। वहां दैवी भावको अपनानेका यत्न करनेवाले लोग एकत्रित होते हैं। सोमरस निकालते हैं, वहां द्युलोकसे इन्द्र आता है और अपने घोडोंवाले रथमें बैठकर अतिशीघ्र वहां पहुंचता है। जहां यज्ञ होता है, वहां लोगोंका हित करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष अवश्य जायें ॥ १ ॥

हम दिव्य संरक्षणोंको प्राप्त करना चाहते हैं, अतः हमारे यज्ञको बृहस्पति स्वीकार करे। वह बृहस्पति, जिस तरह कोई पिता दूर देशसे भी अपने पुत्रको धन देता है, उसी तरह हमें भी धन देवे। हम ऐसा आचरण करें कि जिससे निष्पाप होकर सुखदाता बृहस्पतिके पास जाएं ॥ २ ॥

७६९ तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ३ ॥
७७० स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात् पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥ ४ ॥
७७१ तमा नो अर्कममृताय जुष्ट- मिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥ ५ ॥
७७२ तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद् यस्य नीलवत् सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७६९] (तं ज्येष्ठं सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं) उस श्रेष्ठ सेवा करने योग्य ज्ञान पतिकी (हविर्भिः नमसा गृणीषे) हवनों और नमस्कारोंके साथ स्तुति गाता हूँ । (महि इन्द्रं दैव्यः श्लोकः सिषक्तु) महान् इन्द्रकी यह दिव्य श्लोक-मन्त्र-सेवा करे । गुणगान करे । (यः देवकृतस्य ब्रह्मणः राजा) यह इन्द्र देवके द्वारा किये स्तोत्रका राजा है, अधिकारी है ॥ ३ ॥

[७७०] (प्रेष्ठः सः बृहस्पतिः नः योनिं आ सदतु) वह श्रेष्ठ ज्ञानपति हमारे यज्ञस्थानमें आकर बैठे । (यः विश्ववारः अस्ति) जो सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य है । (सुवीर्यस्य रायः कामः तं दात्) उत्तम वीर्य-युक्त धनकी जो हमारी अभिलाषा है उसको वह पूर्ण करता है । तथा वह (नः सश्चतः अरिष्टान् अतिपर्षत्) हमारे ऊपर आये उपद्रवोंसे हमें पार करे, हमारे शत्रुओंको वह हमसे दूर करे ॥ ४ ॥

[७७१] (तं अमृताय जुष्टं अर्कं) उस अमरत्वके लिये सेवन करने योग्य पूजनीय अन्नको (इमे पुराजाः अमृतासः) ये प्राचीन कालसे प्रसिद्ध अमर देव (नः आ धासुः) हमें देवें । हम (शुचिक्रन्दं पस्त्यानां यजतं) शुद्धताके लिये प्रशंसित, गृहस्थियोंके लिये पूजनीय (अनर्वाणं बृहस्पतिं हुवेम) पीछे न हटनेवाले बृहस्पतिकी स्तुति गाते हैं ॥ ५ ॥

[७७२] (शग्मासः अरुषासः) सुखदायी तेजस्वी (सहवाहः अश्वाः) साथ रहकर वहन करनेवाले घोडे (तं बृहस्पतिं वहन्ति) उस ज्ञान पतिको वहन करते हैं । (यस्य सहः चित्) जिसका बल विशाल है, (यस्य नीलवत् सधस्थं) जिसका निवास स्थान निवासके लिये सुयोग्य है । जिसके घोडे (नभः अरुषं रूपं वसानाः) आदित्यके समान तेजस्वी रूप धारण करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— मैं सेवा करने योग्य ब्रह्मणस्पति देवकी नमस्कार पूर्वक स्तुति गाता हूँ, ये दिव्य मंत्र महान् इन्द्रकी स्तुति करें । यह इन्द्र देवके द्वारा किए गए स्तोत्रका राजा है, अधिकारी है । इस मंत्रमें वेदमंत्रोंको देवकृत बताया गया है । मुख्य देव वही परमात्मा है, अतः उसीसे इन मंत्रोंकी रचना हुई है, यह ज्ञात होता है ॥ ३ ॥

हमारी इच्छा यह है कि हमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति प्राप्त हो और वीरतायुक्त धन हमें मिले । हमारे ऊपर आए हुए दुःख दूर हों । श्रेष्ठ ज्ञानपति हमारे यज्ञमें आकर आसन पर बैठें और हमें संरक्षणके सब साधन प्रदान करें ॥ ४ ॥

देवगण हमें सदा ऐसा अन्न दें कि जिसका सेवन करके हम अमरत्व प्राप्त करें । योग्य और श्रेष्ठ अन्न खाकर मृत्युको भी दूर किया जा सकता है । हम अपने मनको पवित्र करनेके लिए कभी पीछे न हटनेवाले ज्ञानीके समान आचरण करें ॥ ५ ॥

बृहस्पतिका बल अनन्त है । उसके बलकी कोई सीमा नहीं है, उसका निवास स्थान रहनेके लिए उत्तम है । उसके घोडे आदित्यके समान तेजस्वी हैं । वे घोडे बृहस्पति देवको हमारे पास ले आवें ॥ ६ ॥

७७३ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्यु- र्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥ ७ ॥
७७४ देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥
७७५ इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्ति- र्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी- र्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥
७७६ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

अर्थ— [७७३] (सः हि शुचिः शतपत्रः) वह शुद्ध है और बहुत प्रकारके वाहन अपने पास रखनेवाला है। (सः शुन्ध्युः हिरण्यवाशीः) वह शुद्धि करनेवाला और सुवर्ण जैसे आयुधोंवाला है। वह (इषिरः स्वर्षाः) प्रगतिशील और आत्मतेज देनेवाला है। (सः बृहस्पतिः स्वावेशः ऋष्वः) वह बृहस्पति उत्तम निवासस्थानवाला और दर्शनीय सुन्दर है। वह (सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः) मित्रोंके लिये बहुत अन्न देता है ॥ ७ ॥

[७७४] (देवस्य जनयित्री देवी रोदसी) बृहस्पति देवकी जननी द्यौ और पृथिवी ये देवता हैं। (महित्वा बृहस्पतिं ववृधतुः) महिमासे युक्त बृहस्पतिको ये बढाती हैं। हे (सखायः) मित्रो! (दक्षाय्याय दक्षत) बलके योग्य बृहस्पतिको बलके साथ बढाओ। वह (ब्रह्मणे) ज्ञान और अन्नके संवर्धनके लिये (सुतरा सुगाधा करत्) जलको तैरने योग्य और स्नानके योग्य पर्याप्त प्रमाणमें करता है ॥ ८ ॥

[७७५] हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्मणस्पते! तुम्हारे लिये और (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिये अर्थात् (वां) तुम दोनोंके लिये (इयं सुवृक्तिः ब्रह्म अकारि) यह उत्तम वचन युक्त स्तोत्र किया है। (धियः अविष्टं) हमारे बुद्धियुक्त कर्मोंका संरक्षण करो, (पुरंधीः जिगृतं) बहुत प्रकारकी बुद्धिका श्रवण करो और (वनुषां अर्यः अरातीः जजस्तं) भक्तोंके शत्रुओंकी सेनाओंका विनाश करो ॥ ९ ॥

[७७६] हे (बृहस्पते) बृहस्पते! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र तुम दोनों (दिव्यस्य वस्वः ईशाथे) द्युलोकमें उत्पन्न धनके तुम स्वामी हो। (उत पार्थिवस्य) और पृथ्वीपर उत्पन्न हुए धनके भी तुमही स्वामी हो। (स्तुवते कीरये चित् रयिं धत्तं) स्तुति करनेवाले कविके लिये धन दो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ॥ १० ॥

भावार्थ— बृहस्पति देवकी तरह वीर स्वयं शुद्ध रहे, अनेक वाहन अपने पास रखे, अन्योंको शुद्ध बनावे, उत्तम शस्त्रास्त्र अपने पास रखे, प्रगति करता रहे, अपनी शक्तिसे आगे बढे, उत्तम निवासमें रहे, उत्तम आभूषण धारण करके अपनी शोभा बढावे और अपने मित्रोंको उत्तम अन्न देता रहे ॥ ७ ॥

ज्ञानीकी माता द्युलोक और पृथ्वीलोक है। ये दोनों लोक ज्ञानकी रक्षा करते हैं, इसलिए ज्ञानी भी महिमासे सम्पन्न होकर बढता है। इसलिए सभी मनुष्योंको चाहिए कि वे भी ज्ञानीको बढावें ॥ ८ ॥

हे ज्ञानी! हमारी बुद्धिका संरक्षण करो, हमारे द्वारा बुद्धिपूर्वक योजनापूर्वक किए गए कर्मोंका संरक्षण करो। हमारी विशाल बुद्धिकी प्रशंसा करो। हमारे मित्रोंकी शत्रुओंकी सेनाओंका नाश करो ॥ ९ ॥

हे बृहस्पते! तू और इन्द्र दोनोंही द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले धनके स्वामी हो तथा पृथ्वीपर उत्पन्न होनेवाले धनके भी तुम स्वामी हो। अतः तुम्हारी स्तुति करनेवालेको तुम भरपूर धन दो और सदा उसकी रक्षा करो ॥ १० ॥

×

[९८]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- इन्द्रः, ७ इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७७७ अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौरात् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद् याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

७७८ यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥ २ ॥

७७९ जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

७८० यद् योधया महतो मन्यमानान् त्साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद् वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्या- स्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥

[९८]

अर्थ— [७७७] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्युओ ! (क्षितीनां वृषभाय) मानवोंमें अधिक बलिष्ठ ऐसे इन्द्रके लिये (अरुणं दुग्धं अंशुं जुहोतन) तेजस्वी दुहे हुए सोमरसका हवन करो । (अवपानं गौरात् वेदीयान् इन्द्रः) पीने योग्य रसको गौरमृगसे भी दूरसे जाननेमें समर्थ इन्द्र (सुतसोमं इच्छन्) सोम याग करनेवालेकी इच्छा करता हुआ (विश्वाहा इत् याति) सर्वदा उसके पास आता है ॥ १ ॥

[७७८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (प्रदिवि चारु अन्नं दधिषे) पूर्व समयमें सुंदर अन्न रूप सोमरसका तुम अपने उदरमें धारण करते हो, (दिवे दिवे अस्य पीतिं वक्षि इत्) प्रतिदिन इसके पानकी तुम इच्छा करते ही हो । (उत् हृदा उत् मनसा) हृदयसे और मनसे (जुषाणः उशन्) उसका सेवन करके हमारी इच्छा करके (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) यहां रखे हुए सोम रसोंका पान करो ॥ २ ॥

[७७९] हे इन्द्र ! तुम (जज्ञानः सहसे सोमं पपाथ) उत्पन्न होते ही बल बढानेके लिये सोम पीते हो । (माता ते महिमानं प्र उवाच) माता तुम्हारी महिमाका वर्णन करती है । (उरु अन्तरिक्षं आ पप्राथ) विस्तीर्ण अन्तरिक्षको तुमने अपने तेजसे भर दिया । और (युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) युद्ध करके देवोंके लिये तुमने धन भी उत्पन्न किया था ॥ ३ ॥

[७८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महतः मन्यमानान् यत् योधयाः) अपने आपको बहुत बडे करके माननेवाले शत्रुओंके साथ जब तुम्हारा युद्ध हुआ (तान् शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम) उन हिंसक शत्रुओंका हम अपने बाहुओंसे ही प्रतीकार करेंगे (यत् वा नृभिः वृतः अभियुध्याः) जिस समय तुम वीरोंके साथ रहकर शत्रुसे युद्ध करोगे उस समय (त्वया तं सौश्रवसं आजिं जयेम) तुम्हारे साथ हम रहेंगे और उस यश बढानेवाले युद्धको जीतेंगे । हम विजय प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! मनुष्योंमें अत्यधिक बलशाली ऐसे इन्द्रके लिए तेजस्वी सोमरस प्रदान करो । क्योंकि वह सोमरसको पीनेकी इच्छासे लोगोंके पास आता है ॥ १ ॥

इन्द्र सदासे सोमरसका पान करता है, वह प्रतिदिन सोमरस पीनेकी इच्छा करता है । इसलिए वह दिए गए सोमरसोंको प्रेमपूर्वक पीता है ॥ २ ॥

बालपनमें इन्द्रने अपना बल बढाया, अपने तेजसे जगत्को तेजस्वी बनाया और तरुण होतेही युद्धमें शत्रुओंका पराभव करके बहुत धन प्राप्त किया ॥ ३ ॥

जो लोग युद्धमें इन्द्रके साथ रहेंगे, वे यश देनेवाले इस संग्राममें विजयी होंगे । जब वे लोग घमंडी शत्रुओंके साथ युद्ध करते हैं, तब ज्ञानीजन भी इन वीरोंके साथ रहते हैं और अपने बाहुबलसे हिंसक शत्रुओंका पराभव करते हैं ॥ ४ ॥

७८१ प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥
७८२ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥
७८३ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[९९]

(ऋषि- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विष्णुः, ४-६ इन्द्राविष्णू । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७८४ परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥ १ ॥

अर्थ— [७८१] (इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि प्रवोचं) इंद्रके पूर्व समयमें किये पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूं । (या नूतना मघवा चकार) जो नूतन पराक्रम धनवान् इन्द्रने किये उनका भी मैं वर्णन करता हूं । (यदा इत् अदेवीः मायाः असहिष्ट) जिस समय आसुरी कुटिल कपटी आक्रमणोंको उसने परास्त किया (अथ केवलः सोमः अस्य अभवत्) तबसे केवल सोम इसीके लिये मिलने लगा है ॥ ५ ॥

[७८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इदं विश्वं पशव्यं तव इत्) यह सब विश्व जो सब पशुओंके लिये हितकारी है वह तुम्हारा ही है । (यत् सूर्यस्य चक्षसा पश्यति) जो सूर्यके तेजसे दीखता है । तू (गवां एकः गोपतिः असि) तू गौओंका एक ही गोपाल है अतः (ते प्रयतस्य वस्वः भक्षीमहि) तुम्हारे दिये धनका भोग हम करेंगे ॥ ६ ॥

[७८३] (बृहस्पते) बृहस्पते ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र दोनों (दिव्यस्य वस्वः ईशाथे) द्युलोकमें उत्पन्न धनके स्वामी हो, (उत पार्थिवस्य) और पृथ्वीपर उत्पन्न हुए धनके भी तुम्हीं स्वामी हो । (स्तुवते कीरये चित् रयिं धत्तं) स्तुति करनेवाले कविके लिए धन दो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पातं) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥

[९९]

[७८४] (परः मात्रया तन्वा वृधान विष्णो) हे अपने श्रेष्ठ शरीरसे बढनेवाले विष्णो ! (ते महित्वं न अनु अश्नुवन्ति) तुम्हारी महिमाको कोई जान नहीं सकता । (ते उभे पृथिव्याः रोदसी विद्म) तुम्हारे दोनों लोक पृथिवी और अन्तरिक्षको हम जानते हैं । परंतु हे (देव) देव ! तुम तो (त्वं परमस्य वित्से) परम लोकको भी जानते हो ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्रके अनेक पराक्रम हैं । उसने जब कपटी और कुटिल शत्रुओंके आक्रमणोंको मार हटाया, तबसे इसका सोमपर प्रथमाधिकार हुआ । वीरता प्रकट किए बिना किसीका सम्मान नहीं होता ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! सभी प्राणीमात्रका हित करनेवाला जो यह विश्व है, वह सब तेराही है । इन गौओं अर्थात् किरणोंसे युक्त जो सूर्यका तेज है, उसका भी स्वामी तू ही है ॥ ६ ॥

हे बृहस्पते ! तू और इन्द्र दोनोंही द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले धनके स्वामी हो, तथा पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाले धनके भी तुम स्वामी हो । अतः तुम्हारी स्तुति करनेवालेको तुम भरपूर धन दो और सदा उसकी रक्षा करो ॥ ७ ॥

अपने श्रेष्ठ शरीरसे बढनेवाले विष्णो ! तुम्हारी महिमा अनन्त है, इसलिए तुम्हारी महिमाका अन्त कोई भी नहीं पा सकता । हम तो केवल पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोकको ही जानते हैं, इन दोनों लोकोंके परे कौनसा लोक है, यह हम नहीं जानते, पर तुम तो उस परम लोकको भी जानते हो ॥ १ ॥

७८५ न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥ २ ॥
७८६ इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ ३ ॥
७८७ उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥
७८८ इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७८५] हे (विष्णो देव) विष्णु देव ! (ते महिम्नः परं अन्तं) तेरी महिमाका परम अन्तिमभाग (न जायमानः न जातः आप) न तो जन्म लेनेवाले और न ही जिन्होंने जन्म लिया है वे जानते हैं। (ऋष्वं बृहन्तं नाकं उत् अस्तभ्नाः) दर्शनीय विशाल ऐसे इस द्युलोकको तुमने ऊपर ही स्थिर किया है। तथा (पृथिव्याः प्राचीं ककुभं दाधर्थ) तुमने पृथिवीकी पूर्व दिशाका भी धारण किया है ॥ २ ॥

[७८६] हे (रोदसी) द्यावा पृथ्वी ! (मनुष्ये दशस्या) मनुष्योंका हित करनेकी इच्छासे तुम (इरावती धेनुमती सुयवसिनी) अन्नवाली, गौओंवाली तथा जौवाली (हि भूतं) हुई हो। हे (विष्णो) विष्णो ! (एते रोदसी वि अस्तभ्नाः) तुमने इन द्युलोक तथा पृथिवीलोकको धारण किया है तथा (मयूखैः पृथिवीं अभितः दाधर्थ) पर्वतोंसे पृथिवीको स्थिर किया है ॥ ३ ॥

[७८७] (यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः उ) यज्ञके लिये तुमने विस्तृत स्थान बनाया है। (सूर्यं उषासं अग्निं) सूर्य, उषा और अग्निको तुम दोनों (जनयन्तौ) उत्पन्न करते हो। हे (नरा) नेताओ ! हे इन्द्र और विष्णु ! (वृषशिप्रस्य दासस्य चित्) बलवान् और सुरक्षित शत्रुकी (मायाः पृतनाज्येषु जघ्नथुः) कुटिल कपटी आक्रमक योजनाओंको युद्धोंमें तुमने विनष्ट किया ॥ ४ ॥

[७८८] हे (इन्द्राविष्णु) इन्द्र और विष्णु ! तुमने (शंबरस्य दृंहिताः नव नवतिं च पुरः श्नथिष्टं) शंबर असुरकी नौ और नब्बे सुदृढ पुरियोंका विनाश किया। और (वर्चिनः असुरस्य) वर्चस्वी असुरकी (शतं सहस्रं च वीरान्) सौ और हजारों वीरोंको (अप्रति साकं हथः) अप्रतिमरीतिसे तुमने मारा ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे तेजस्वी विष्णो ! तेरी महिमा इतनी अपार है कि आज तक जितनोंने जन्म लिया है तथा आगे भी जितने जन्म लेंगे, उनमेंसे कोई भी तुम्हारी महिमाका पार नहीं पा सकता। यह तुम्हारी ही महिमा है कि तुमने इस विशाल और तेजस्वी द्युलोकको बिना आधारके ऊपर ही स्थिर किया और बिना किसी आधारके दिशाओंको भी स्थिर किया ॥ २ ॥

मनुष्योंका हित करनेके लिए ही ये द्युलोक और पृथिवीलोक अन्न तथा पशु आदियोंसे भरपूर हुए हैं। ये दोनों लोक विष्णुके कारणही स्थिर हैं और पर्वतोंके कारण पृथिवी स्थिर है ॥ ३ ॥

सृष्टिरूपी यज्ञको चलानेके लिए द्युलोक और पृथ्वीलोकने विस्तृत स्थान बनाया। इन्हीं दोनों लोकोंने सूर्य, उषा और अग्निको स्थान दिया। तब इन्द्र और विष्णुने बलवान् और सुरक्षित शत्रुकी कुटिल और कपटपूर्ण आक्रमणोंको नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और विष्णु ! तुमने असुरोंकी अनेक नगरियोंका नाश किया तथा असुरोंके असंख्य वीरोंको तुमने अप्रतिम रूपसे नष्ट किया ॥ ५ ॥

७८९ इयं मनीषा बृहती बृहन्तो—रुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥
७९० वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[१००]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- विष्णुः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७९१ नू मर्तो दयते सनिष्यन् यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥ १ ॥
७९२ त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्या—मप्रयुतामेवयावो मतिं दाः
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरे—रश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥

अर्थ— [७८९] (इयं बृहती मनीषा) यह बडी भारी मननपूर्वक की स्तुति है। यह (बृहन्ता उरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती) बडे महापराक्रमी और बलवान् ऐसे इन्द्र और विष्णुका यश बढाती है। हे (इन्द्र विष्णो) इन्द्र और विष्णु ! (विदथेषु वां स्तोमं ररे) यज्ञोंमें आपका स्तोत्र गानेके लिये देता हूं। (वृजनेषु इषः पिन्वतं) युद्धोंमें तुम हमारा अन्न बढाओ ॥ ६ ॥

[७९०] हे (विष्णो) विष्णो ! (ते आसः वषट् आ कृणोमि) तुम्हारे लिये मुखसे मैंने वषट् किया है। वषट् बोल कर अन्नका अर्पण किया है। हे (शिपिविष्ट) तेजवाले विष्णु ! (तत् मे हव्यं जुषस्व) उस मेरे दिये हविष्यान्नका सेवन करो। (मे सुष्टुतयः गिरः त्वा वर्धन्तु) मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशका संवर्धन करें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणमय साधनोंसे सदा संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[१००]

[७९१] (सः मर्तः सनिष्यन् नु दयते) वही मनुष्य धनकी इच्छा करके सत्वर धनको प्राप्त करता है (यः उरुगायाय विष्णवे दाशत्) जो बहुतों द्वारा प्रशंसनीय विष्णुके लिये हवि देता है। (यः सत्राचा मनसा प्र यजाते) जो साथ साथ कहे जानेवाले मन्त्रोंसे मननपूर्वक विष्णुके लिये यज्ञ करता है, (यः एतावन्तं नर्यं आविवासात्) जो ऐसे मनुष्योंके हितकर्ता विष्णुकी पूजा करता है ॥ १ ॥

[७९२] हे (एवयावः विष्णो) कामनाओंकी पूर्णता करनेवाले विष्णु ! तुम (विश्वजन्यां अप्रयुतां सुमतिं मतिं दाः) हमें सर्वजन हितकारी दोष रहित उत्तम विचारोंसे युक्त ऐसी बुद्धि दो। तुम (सुवितस्य अश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः) सुखसे प्राप्त होने योग्य घोडोंसे युक्त अत्यंत आल्हाददायक विपुल धनका (पर्चः यथा) संपर्क जिस तरह हो सके ऐसा करो। ऐसा धन हमें मिले ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्यों द्वारा की जानेवाली स्तुति इन्द्र और विष्णुका यश बढाती है। ये दोनों देव युद्धके समय हमारा अन्न बढायें ॥ ६ ॥

हे विष्णो ! मैंने स्तुति करके तुम्हारे लिए यह अन्न समर्पित किया है। हे तेजस्वी विष्णो ! तुम मेरे दिए गए हविको स्वीकार करो, मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशको बढावें। तुम सब देवोंके साथ मिलकर हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥

जो मनुष्य बहुतों द्वारा प्रशंसनीय विष्णुको हवि देता है, वही मनुष्य धनकी इच्छा होनेपर शीघ्र धनको प्राप्त करता है। जो मनुष्योंका हित करनेवाले विष्णुकी पूजा करता है, वह शीघ्र ऐश्वर्यशाली होता है ॥ १ ॥

हे कामनाओंके पूरक तुम ऐसी बुद्धि दो, कि जिससे हम सार्वजनिक हित करनेमें तत्पर रहें। हमारी बुद्धि प्रमाद करनेवाली न हो, उत्तम विचारोंसे युक्त हो और मननशील हो। घोडे, गौ आदि पशुओंसे युक्त आल्हादकारक धन हमें प्राप्त हो ॥ २ ॥

७९३ त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥

७९४ वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥ ४ ॥

७९५ प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामाऽर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ ५ ॥

७९६ किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ६ ॥

अर्थ— [७९३] (एषः देवः विष्णुः) इस विष्णु देवने (शतर्चसं एतां पृथिवीं) सैकडों तेजोंवाली इस भूमीपर (महित्वा त्रिः वि चक्रमे) अपनी महिमासे तीन बार पराक्रम किया। (तवसः तवीयान् विष्णुः प्र अस्तु) बडोंसे बडा यह विष्णु हमारा सहायक हो। (अस्य स्थविरस्य नाम त्वेषं हि) इस बडे देवका नाम तेजस्वी है ॥ ३ ॥

[७९४] (एषः विष्णुः एतां पृथिवीं) यह विष्णुदेव इस पृथिवीको (क्षेत्राय मनुषे दशस्यन्) निवासके लिये मनुष्योंको देनेकी इच्छासे (विचक्रमे) पराक्रम करता रहा। (अस्य कीरयः जनासः ध्रुवासः) इसके स्तोतागण यहां सुस्थिर होते हैं। यह (सुजनिमा उरुक्षितिं चकार) उत्तम जन्म लेनेवाला विस्तीर्ण निवास स्थान बनाता है ॥ ४ ॥

[७९५] हे (शिपिविष्ट) तेजस्वि विष्णो! (ते तत् नाम) तुम्हारे उस नामको तथा (वयुनानि विद्वान्) सब कर्मोंको जानता हुआ (अर्यः अद्य प्रशंसामि) मैं श्रेष्ठ बनकर तुम्हारी प्रशंसा करता हूं। मैं (अतव्यान् तं तवसं त्वा गृणामि) बडा नहीं हूं, पर तुम बडे हो, इसलिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं। तुम (अस्य रजसः पराके क्षयन्तं) इस लोकसे दूर रहते हो ॥ ५ ॥

[७९६] हे विष्णो! (किं इत् ते परिचक्ष्यं भूत्) क्या यह तुम्हारा नाम त्यागने योग्य हुआ है? (यत् प्रववक्षे शिपिविष्टः अस्मि) जो तुम ऐसा कहते हो कि मैं शिपिविष्ट हूं। (एतत् वर्पः अस्मत् मा अप गूहः) यह अपना रूप हमसे दूर न करो (यत् अन्यरूपः समिथे बभूथ) जो तुम युद्धके समय अन्य अन्य रूप धारण करते हो। अर्थात् हमारे सामने तुम्हारा एक ही दिव्य रूप रहे ॥ ६ ॥

भावार्थ— इस विष्णुने इस विशाल भूमिको अपने महत्त्वसे मापा। अत्यधिक शक्तिशाली यह विष्णु हमारा सहायक हो। यह विष्णु अत्यन्त तेजस्वी है अतः जो इसका ध्यान करता है, वह तेजस्वी होता है ॥ ३ ॥

विष्णुने यह पृथ्वी मनुष्योंको निवासके लिए देनी चाही, असुरोंको नहीं, इसलिए उसने असुरोंके साथ प्रबल युद्ध किया और उनसे भूमि लेकर मानवोंको दी। इस प्रकार उत्तम जन्म लेनेवाले विष्णुने इस पृथिवीको उत्तम निवासके योग्य बनाया ॥ ४ ॥

हे तेजयुक्त विष्णो! तुम्हारी महिमा और सब कर्मोंको जानता हुआ मैं तुम्हारी स्तुति करके श्रेष्ठ बनता हूँ। मैं बडा नहीं हूँ, बडे तो तुम्हीं हो, इसीलिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

विष्णुके तेजका वर्णन करना असंभव है। क्योंकि वह अनेक रूप धारण करता है। पर जो उसका आनन्ददायक रूप है, वह हमारी नजरोंसे दूर न हो ॥ ६ ॥

७९७ वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

[१०१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । देवता- पर्जन्यः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७९८ तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद् दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

७९९ यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत् त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे ॥ २ ॥

अर्थ— [७९७] हे (विष्णो) विष्णो ! (ते आसः वषट् आ कृणोमि) तुम्हारे लिए मुखसे मैंने वषट् किया है, वषट् बोलकर अन्नका अर्पण किया है । हे (शिपिविष्ट) तेजस्वी विष्णो ! (तत् मे हव्यं जुषस्व) उस मेरे लिए गए हविष्यान्नका सेवन करो । (मे सुष्टुतयः गिरः त्वा वर्धन्तु) मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशका संवर्धन करें । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणमय साधनोंसे सदा संरक्षण करो ॥ ७ ॥

[१०१]

[७९८] (ज्योतिरग्राः तिस्रः वाचः प्र वद) ज्योति जिसके अग्र भागमें है ऐसी तीन वाणियोंका उच्चारण करो । (याः एतत् मधुदोहं ऊधः दुह्रे) जो वाणियां इस मधुर रस देनेवाले दुग्धाशयको दुहती हैं । (सः वत्सं कृण्वन्) वह विद्युत् अग्निरूप वत्सको निर्माण करता है और (ओषधीनां गर्भं) औषधियोंके गर्भको स्थापन करता है, (सद्यः जातः वृषभः रोरवीति) वह तत्काल उत्पन्न हुआ वर्षा करनेवाला मेघ शब्द करता है ॥ १ ॥

[७९९] (यः ओषधीनां वर्धनः) जो पर्जन्य औषधियोंको बढानेवाला है और (यः अपां) जो जलोंको बढानेवाला है, (यः देवः विश्वस्य जगतः ईशे) जो पर्जन्य देव सब जगत्का स्वामी है । (सः त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्) वह पर्जन्य तीन धारक शक्तियोंसे युक्त घर तथा सुख हमें देवे । वह (त्रिवर्तु स्वभिष्टि ज्योतिः अस्मे) तीन ऋतुओंमें रहनेवाली, उत्तम प्रकारसे प्रिय ज्योति हमें देवे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे विष्णो ! मैंने स्तुति करके तुम्हारे लिए यह अन्न समर्पित किया है । हे तेजस्वी विष्णो ! तुम मेरे लिए गए हविको स्वीकार करो, मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशको बढावें । तुम सब देवोंके साथ मिलकर हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥

मेघ जब गरजता है, तो उससे पूर्व ज्योति चमकती है । पहले बिजलीकी चमक दिखाई देती है, फिर मेघोंका गर्जन सुनाई देता है । ये मेघ मधुर जलरूपी रसके भंडार हैं । वृष्टि उन मेघोंका दूध है । यह मेघ विद्युत् रूप अग्निको उत्पन्न करता है, वही मानों उसका वत्स है । वही औषधियोंमें गर्भ स्थापित करता है । जब वृष्टिका जल औषधी वनस्पतियोंमें प्रविष्ट होता है, तब उनमें फल-फूल उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

पर्जन्यसे औषधियां बढती हैं, भूमिपर जल होता है । इस जलसे तीन प्रकारका सुख होता है । खानेके लिए अन्न, पीनेके लिए जल और आरोग्यके लिए औषधियां इससे मिलती हैं । तीनों ऋतुओंमें इससे सुख होता है । इसप्रकार यह पर्जन्य मानवोंका हितकारी है ॥ २ ॥

८०० स्तरीरु त्वद् भवति सूत उ त्वद् यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥ ३ ॥
८०१ यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ४ ॥
८०२ इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥
८०३ स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [८००] (त्वत् स्तरीः उ भवति) तुम्हारा मेघका एक रूप न प्रसवनेवाली गौकी तरह होता है। (त्वत् उ सूते) तुम्हारा दूसरा रूप प्रसूत होनेवाली गौ जैसा है। (एषः तन्वं यथावशं चक्रे) यह पर्जन्य अपने शरीरको जैसा चाहे वैसा आकारवाला बनाता है। (पितुः पयः माता प्रति गृभ्णाति) पितारूपी द्युलोकसे जल भूमिमाता प्राप्त करती है। (तेन पिता वर्धते) उससे पिता भी बढता है और (तेन पुत्रः) उसीसे पुत्र भी बढता है ॥ ३ ॥

[८०१] (यस्मिन् विश्वानि भूतानि तस्थुः) जिसमें सब भूतमात्र रहे हैं, जिसमें (तिस्रः द्यावः) तीनों लोक रहे हैं, जिससे (आपः त्रेधा सस्रुः) जल तीन प्रकारसे चल रहा है। जिसके (उपसेचनासः कोशासः त्रयः) सिंचन करनेवाले कोश तीन हैं, जो (विरप्शं मध्वः अभितः श्चोतन्ति) बडे मधुर रसको चारों ओरसे बरसाते हैं ॥ ४ ॥

[८०२] (इदं वचः स्वराजे पर्जन्याय) यह स्तोत्र स्वयं तेजस्वी पर्जन्यके लिये है। यह स्तोत्र (हृदः अन्तरं अस्तु) उनके लिये हृदयंगम हो, वह (तत् जुजोषत्) इसका स्वीकार करे। (मयोभुवः वृष्टयः अस्मे सन्तु) सुखदायी वृष्टियां हमारे लिये होती रहें और इससे (देवगोपाः सुपिप्पलाः ओषधीः) देवों द्वारा सुरक्षित हुई औषधियां उत्तम फलवाली बने ॥ ५ ॥

[८०३] (सः शश्वतीनां रेतोधा वृषभः) वह पर्जन्य अनंत औषधियोंमें वीर्य-बल-रखनेवाला महा बलवान देव है। इसलिये (जगतः तस्थुषः च तस्मिन् आत्मा) जंगम और स्थावरका उसमें आत्मा ही निवास करता है। (तत् ऋतं शतशारदाय मा पातु) वह पर्जन्यका जल सौ वर्षोंके दीर्घ जीवनमें मेरा संरक्षण करे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा कल्याण करनेवाले साधनोंसे करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— मेघ दो प्रकारके होते हैं- एक केवल गर्जनेवाले तथा मेघ रूपमें दीखनेवाले, दूसरे वृष्टि करनेवाले। मेघोंके शरीर भी बदलते रहते हैं। अन्तरिक्षमें रहकर ये मेघ वृष्टि करते हैं और वह जल पृथ्वीपर आता है। इससे पृथ्वीपर धान्य उत्पन्न होता है और धान्यसे यज्ञ होते हैं। इन यज्ञोंसे वायुजल आदि देवताओंकी शक्ति बढती है और उनसे सब पृथ्वीपरके प्राणियोंकी भी शक्ति बढती है ॥ ३ ॥

मेघपर ही सब प्राणी अवलंबित हैं। मेघके विना वे रह नहीं सकते। मेघोंसे जो जल आता है वह नदी, कुंए और तालाबोंमें जाता है, और वहांसे सबको प्राप्त होता है। ये कोश जलसे परिपूर्ण होते हैं और वहांसे लोगोंको यह जल मिलता रहता है। मेघमें रहनेवाला जल बडा मधुर होता है और वही चारों ओर वृष्टिके द्वारा पहुंचता है ॥ ४ ॥

यह स्तोत्र पर्जन्य राजाके लिए किया गया है, इन स्तोत्रोंको स्वीकार करे। सुखदायी वृष्टियां हमारे लिए होती रहें तथा इन वृष्टियोंका जल पीकर तथा देवोंके द्वारा सुरक्षित होकर ये औषधियां उत्तम फलफूलवाली बने ॥ ५ ॥

इस वृष्टिजलके कारण औषधि वनस्पतियोंमें अनेक तरहके गुणधर्मोंका निर्माण होता है, जिससे स्थावरजंगम जगत्का उत्तम पालन हो रहा है। इसलिए यह पर्जन्य मानों सबकी आत्मा ही है। इस अमृत जलका सेवन करके मनुष्य सुखसे रहते हैं। इस तरह पर्जन्य सबका हित करता है ॥ ६ ॥

[१०२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । देवता- पर्जन्यः । छन्दः- गायत्री, २ पादनिचृत् ।)

८०४ पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे । स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥
८०५ यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥
८०६ तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥

[१०३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- मण्डूकाः (पर्जन्यः) । छन्दः- त्रिष्टुप् १ अनुष्टुप् ।)

८०७ संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

---

[१०२]

अर्थ— [८०४] (दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे) द्युलोकके पुत्र और सिंचन करनेवाले (पर्जन्याय प्रगायत) पर्जन्यके लिये काव्यगान करो, (सः नः यवसं इच्छतु) वह हमारे लिये औषधि वनस्पतियां तथा धान्य देवे ॥ १ ॥

[८०५] (यः पर्जन्यः) जो पर्जन्य (ओषधीनां गवां अर्वतां पुरुषीणां) औषधियों, गौवों, घोडों और मानवी स्त्रियोंमें (गर्भं कृणोति) गर्भ धारण कराता है । सबमें वीर्य उत्पन्न करके गर्भ धारण करनेवाला यह पर्जन्य है ॥२॥

[८०६] (तस्मै इत् आस्ये) उसके लिये अग्निरूप मुखमें (मधुमत्तमं हविः जुहोत) मधुर हविका हवन करो । (नः इळां संयतं करत्) वह हमारे लिये नियत अन्न देवे ॥ ३ ॥

[१०३]

[८०७] (व्रतचारिणः ब्राह्मणाः) व्रताचरण करनेवाले ब्राह्मण (संवत्सरं शशयानाः) एक वर्ष तक सत्रमें गुप्त होकर सोये हुए जैसे ये (मंडूकाः) मेंडक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं) पर्जन्यको प्रसन्न करनेवाली वाणी (अवादिषुः) बोलने लगे हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! अन्तरिक्षमें निवास करनेवाले तथा अपने जलसे भूमिका सिंचन करनेवाले पर्जन्यके लिए काव्योंका गान करो, ताकि वह प्रसन्न होकर हमारे लिए औषधि-वनस्पतियां तथा इतर प्रकारके धान्य प्रदान करे ॥ १ ॥

यह पर्जन्य औषधियोंमें गर्भकी स्थापना करता है, उनसे उत्पन्न फल-फूल खाकर नर प्राणियोंमें वीर्य उत्पन्न होता है और वे नरप्राणी फिर माताओंमें गर्भ स्थापित करते हैं । इस प्रकार पर्जन्य ही सबमें गर्भ-स्थापनाका मूल कारण है ॥ २ ॥

अग्निरूप मुखमें हवन करनेसे मेघोंकी उत्पत्ति होती है और उन मेघोंसे वृष्टि होनेपर प्राणियोंको अन्नकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

जिस तरह व्रतका आचरण करनेवाले ब्राह्मण एक वर्ष तक चलनेवाले सत्रमें व्रती होनेके कारण मौन धारण करके शान्त रहते हैं, और वर्षसमाप्तिके पश्चात् स्तोत्रपाठ करने लगते हैं, इसीतरह ये मेंढक अपने अपने स्थानोंमें वर्षभर चुपचाप रहते हैं और पर्जन्यके शुरु होतेही शब्द करने लगते हैं । मण्डूक शब्द ' मण्ड्-सुशोभित करना ' इस धातुसे बना है । सुभूषित करनेवालेको मण्डूक कहते हैं । तालाबका भूषण मण्डूक अर्थात् मेंढक है और सभाका भूषण पंडित ब्राह्मण है । इसलिए यहां मेंढकको ब्राह्मणकी उपमा दी गई है ॥ १ ॥

८०८ दिव्या आपो अभि यदेनमायन् दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥

८०९ यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अक्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥

८१० अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनो-रपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन् पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥ ४ ॥

८११ यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥

अर्थ— [८०८] (शुष्कं दृतिं न) सूखे चमडेकी थैलीके समान (सरसी शयानं) सूखे तालाबमें सोनेवाले (एनं) इस मेंढकके पास (यत् दिव्याः आपः अभि आयान्) जिस समय आकाशस्थानीय मेघके वृष्टीजल पहुंचते हैं, तब (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछडोंवाली गौवोंके शब्दके समान (अत्र मंडूकानां वग्नुः सं एति) यहां मेंढकोंका शब्द होने लगता है ॥ २ ॥

[८०९] (उशतः) जल चाहनेवाले (तृष्यावतः) प्यास जिनको लगी है ऐसे (एनान् प्रावृषि) इन मेंढकोंके पास वर्षाका समय (आगतायां) आनेपर (यत् ईं अभिवर्षीत्) जब मेघ बरसने लगता है, तब (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिताके साथ जैसा बोलता है, उस तरह (अक्खली कृत्य) 'अक्खल' ऐसा शब्द करता हुआ (अन्यः अन्यं उपवदन्तं एति) एक मेंढक दूसरेके पास जाता है ॥ ३ ॥

[८१०] (एनोः अन्यः अन्यं अनु गृभ्णाति) इनमेंसे एक दूसरेपर अनुग्रह करता है, (यत् अपां प्रसर्गे अमंदिषातां) जब पानी बरसनेपर ये मेंढक आनंदित होते हैं। (यत् अभिवृष्टः मण्डूकः कनिष्कन्) जब वृष्टि होनेपर मेंढक कूदने लगता है, तब (पृश्निः हरितेन वाचं संपृंक्ते) चितकबरा मेंढक हरित वर्णके मेंढकके साथ बातें करनेके समान शब्द करता है ॥ ४ ॥

[८११] (यत् एषां अन्यः) जब इनमेंसे एक मेंढक (अन्यस्य वाचं वदति) दूसरेके साथ बोलने लगता है, (शिक्षमाणः शाक्तस्य इव) तब शिष्य गुरुके शब्द पुनः बोलनेके समान प्रतीत होता है। (यत् अप्सु अधि सुवाचः वदथन) जब पानीके ऊपर कूदते हुए उत्तम शब्द तुम मेंढक बोलते हो, (तत् एषां पर्व समृधा इव) तब इनका शरीर समृद्ध हुआ सा दीखता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— गर्मीमें जब तालाब सूख जाते हैं, तब मेंढक भी सूखे चमडेकी थैलीके समान सूख जाते हैं, पर पर्जन्य कालमें जब वृष्टीजल उन मेंढकोंके पास पहुंचता है, उस समय वे मेंढक प्रसन्न होकर उसी तरह शब्द करते हैं कि जिस तरह बछडोंवाली गायें शब्द करती हैं ॥ २ ॥

गर्मीमें जलके न मिलनेसे मेंढक प्यासे रहते हैं। पर वर्षाकालमें जब वृष्टि होती है, तब पर्याप्त जल उन्हें मिलता है और उन्हें बडा आनन्द होता है। उस आनन्दके कारण वे मेंढक शब्द करते हुए एक दूसरेसे मिलते हैं ॥ ३ ॥

जब बरसात होती है, तब मेंढक आनन्दित होते हैं और आनन्दसे एक दूसरेके साथ कूदने लगते हैं और इस प्रकार शब्द करते हैं, मानों कि वे आपसमें बातें कर रहे हों ॥ ४ ॥

जब भरपूर पानी बरसता है, तब मेंढक आनन्दसे इधर उधर कूदते हैं। उस समय वे मेंढक जो शब्द करते हैं, उस परसे प्रतीत ऐसा होता है कि मानों कोई गुरु मंत्र बोल रहा हो और शिष्यगण उसीको दुहरा रहे हों ॥ ५ ॥

८१२ गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः । ॥ ६ ॥

८१३ ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥

८१४ ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥ ८ ॥

८१५ देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [८१२] (एकः गोमायुः) एक मेंढक गौके समान शब्द करता है, (एकः अजमायुः) दूसरा बकरेके समान शब्द करता है, (पृश्निः एकः) एक चितकबरा है तो (एषां एकः हरितः) इनमेंसे दूसरा हरिद्वर्णवाला होता है। इस तरह ये (विरूपाः) अनेक रूपोंवाले होते हुए भी (समानं नाम बिभ्रतः) एक ही मेंढक यह नाम सब धारण करते हैं। और ये (पुरुत्रा वाचं वदंतः पिपिशुः) अनेक प्रकारके शब्द करते हुए दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥

[८१३] (अतिरात्रे सोमेन) अतिरात्र नामक सोमयागमें जैसे (ब्राह्मणासः अभितः वदन्तः) ब्राह्मण मंत्र बोलते हैं, उस तरह (पूर्णं प्रावृषीणं सरः न) सरोवर वर्षामें परिपूर्ण भरनेपर, हे (मण्डूकाः) मेंढकों ! (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्षका वह दिन तुम्हारे लिये (परि स्थ बभूव) चारों ओर घूमनेके लिये होता है ॥ ७ ॥

[८१४] (संवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः) एक वर्ष चलनेवाला यज्ञ करनेवाले (सोमिनो ब्राह्मणासः) सोमयाजी ब्राह्मण जैसे (वाचं अक्रत) मन्त्र बोलते हैं और (घर्मिणः अध्वर्यवः सिष्विदानाः) यज्ञ करनेवाले अध्वर्यु पसीनेसे भीगे हुए (केचित् गुह्याः) कई याजक गुप्त स्थानमें बैठते हैं और (आविः न भवन्ति) बाहर नहीं आते हैं ॥ ८ ॥

[८१५] (एते नरः) ये नेता लोग (देवहितिं जुगुपुः) दैवी नियमका संरक्षण करते हैं। इसलिये (द्वादशस्य ऋतुं न प्रमिनन्ति) बारह महिनोंके ऋतुओंको विनष्ट नहीं करते हैं। (संवत्सरे प्रावृषि आगतायां) वर्षमें वृष्टिका समय आते ही (तप्ताः घर्माः विसर्गं अश्नुवते) तपे हुए मेंढक बाहर आते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— मेंढकोंमें कोई मेंढक गौके समान शब्द करता है, तो दूसरा बकरीके समान आवाज करता है। कोई मेंढक चितकबरे रंगका होता है तो कोई मेंढक हरे रंगका होता है। अनेक रूपोंवाले होनेपर भी इन मेंढकोंका नाम तो एक ही है। बरसातमें ये सभी मेंढक अनेक तरहके शब्द करते हुए दिखाई देते हैं ॥ ६ ॥

सोमयज्ञमें जिस तरह अनेक ब्राह्मण एक स्वरसे वेदमंत्रोंका पाठ करते हैं, उसी तरह ये मेंढक एक स्वरसे शब्द करते हैं। वर्षाकालमें ये मेंढक चारों ओर कूदते फिरते हैं ॥ ७ ॥

एक वर्ष तक चलनेवाले यज्ञमें जैसे वेदपाठी एक स्वरसे मंत्रका पाठ करते हैं। उनमें कुछ याजक तो यज्ञाग्निके पास बैठनेके कारण पसीनेसे भीग जाते हैं, तो कुछ अन्दर ही बैठकर मंत्रपाठ करते हैं, उसी तरह मेंढक एक स्वरसे शब्द करते हैं। उनमें कुछ तो बाहर निकलकर शब्द करते हैं, वे मेंढक बरसातसे भीग जाते हैं, पर दूसरे कुछ मेंढक बिलोंमें छिपे रहकर ही शब्द करते हैं ॥ ८ ॥

ये मेंढक गर्मीके ऋतुमें खूब तपते हैं, पर वृष्टि होते ही अपने बिलोंसे बाहर निकल आते हैं और खूब आनन्दसे इधर उधर कूदते हैं और शब्द करते हुए नाचते हैं। इसप्रकार ये ईश्वरीय नियमका पालन करते हैं ॥ ९ ॥

८१६ गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ १० ॥

[१०४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- (राक्षोघ्नं) इन्द्रासोमौ; ८, १६, १९-२२ इन्द्रः, ९, १२-१३ सोमः; १०, १४ अग्निः, ११ देवाः, १७ ग्रावाणः, १८ मरुतः, २३ (पूर्वार्धस्य) वसिष्ठाशीः, (उत्तरार्धस्य) पृथिव्यन्तरिक्षे । छन्दः- त्रिष्टुप्; १-६, १८, २१, २३ जगती; ७ जगती त्रिष्टुब्वा; २५ अनुष्टुप् ।)

८१७ इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥ १ ॥

८१८ इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २ ॥

अर्थ— [८१६] (गोमायुः अदात्) गौ जैसा शब्द करनेवालेने हमें धन दिया, (अजमायुः अदात्) बकरेके शब्दके समान शब्द करनेवालेने हमें धन दिया, (पृश्निः अदात्) चितकबरेने दिया है, (हरितः नः वसूनि अदात्) हरिद्वर्णवालेने हमें धन दिया है । (सहस्रसावे) सहस्रों औषधियोंको बढानेवाले वर्षा ऋतुमें (गवां शतानि ददतः मंडूकाः) सैंकडों गौवें देनेवाले मेंढक हमारी (आयुः प्रतिरते) आयु बढाते हैं ॥ १० ॥

[१०४]

[८१७] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (रक्षः तपतं) राक्षसोंको जला दो । (उब्जतं) मारो । हे (वृषणा) बलवानो ! (तमोवृधः नि अर्पयतं) अज्ञानमें बढनेवालोंको हीन बना दो । (अचितः परा शृणीतं) अज्ञानियोंको दूर करो । उनको (नि ओषतं हतं) जलाकर निःशेष करो । (नुदेथां) भगा दो । (अत्रिणः नि शिशीतं) दूसरोंको खानेवालोंको निर्बल करो ॥ १ ॥

[८१८] हे (इन्द्रासोम) इन्द्र और सोम ! (अघशंसं अघं सं अभि) पाप करनेके लिये प्रसिद्ध, महापापी दुष्टको मिलकर विनष्ट करो । वह दुष्ट (तपुः) दुःखसे तप जानेपर (अग्निवान् चरुः इव ययस्तु) अग्निमें डाली हुई भातकी आहुतिके समान जलकर विनष्ट हो जावे । (ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने) ज्ञानका द्वेष करनेवाले कच्चा मांस खानेवाले भयंकर विरूपवाले सबकुछ खानेवालेके प्रति (अनवायं द्वेषः धत्तं) निरंतर द्वेषभाव धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थ— मेंढकोंके प्रकट होनेसे वर्षा ऋतुके आनेकी सूचना मिल जाती है । उत्तम वर्षासे उत्तम घास उत्पन्न होती है, उत्तम घास खाकर गायें पुष्ट होती हैं । वर्षासे उत्तम धान्य उत्पन्न होकर उससे धन प्राप्त होता है ॥ १० ॥

हे इन्द्र और सोम देवो ! तुम दोनों सज्जनोंको कष्ट देनेवाले राक्षसोंको जला डालो जो ज्ञानी न बनकर अज्ञानमें ही बढना चाहते हैं, उन्हें हीन कर दो । अज्ञानियोंको दूर करो । दूसरोंको खानेवालोंको निर्बल करो । ज्ञानी न बनकर सदा अज्ञानमें ही रहनेकी इच्छा करनेवाले, दूसरोंको खानेवाले अर्थात् अपने स्वार्थके लिए दूसरोंको हानि पहुंचानेवाले सभी राक्षस होते हैं । ऐसे राक्षसोंका विनाश आवश्यक है ॥ १ ॥

पापकर्म करनेमें जो प्रसिद्ध हैं, जो पापमय जीवनवाले हैं, जो ज्ञानसे द्वेष करनेवाले हैं, जो कच्चा मांस खानेवाले हैं, जिनका रूप भयंकर है, जो बहुत खाऊ हैं, वे सभी राक्षस हैं, इनका नाश अवश्य करना चाहिए ॥ २ ॥

८१९ इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृतो॑ व॒व्रे अ॒न्त-र॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्र वि॑ध्यतम् ।
यथा॒ नातः॒ पुन॒रेक॑श्च॒नोदय॒त् तद् वा॑मस्तु॒ सह॑से मन्यु॒मच्छवः॑ ॥ ३ ॥

८२० इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वो व॒धं सं पृ॑थि॒व्या अ॒घशं॑साय॒ तर्ह॑णम् ।
उत् त॑क्षतं स्व॒र्यं१ पर्व॑तेभ्यो॒ येन॒ रक्षो॑ वावृधा॒नं नि॒जूर्व॑थः ॥ ४ ॥

८२१ इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वस्परि॑-ग्नित॒प्तेभि॑र्यु॒वमश्म॑हन्मभिः ।
तपु॑र्वधेभिर॒जरे॑भिर॒त्रिणो॒ नि पर्शा॑ने विध्यतं॒ यन्तु॑ निस्व॒रम् ॥ ५ ॥

८२२ इन्द्रा॑सोमा॒ परि॑ वां भूतु वि॒श्वतः॑ इ॒यं म॒तिः क॒क्ष्याश्वे॑व वा॒जिना॑ ।
यां वां॒ होत्रां॑ परिहि॒नोमि॑ मे॒धये॒-मा ब्रह्मा॑णि नृ॒पती॑व जिन्वतम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [८१९] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (दुष्कर्म कारिणः) दुष्ट कर्म करनेवालोंको (अनारम्भणे तमसि अन्तः प्र विध्यतं) अगाध अन्धकारमें विद्ध करो, (यथा एकः चन पुनः अतः न उदयत्) जिससे एक भी फिरसे वहांसे न आसके। (तत् वां मन्युमत् शवः शवसे अस्तु) वह तुम दोनोंका उत्साह पूर्ण बल शत्रुविजयके लिये समर्थ हो ॥ ३ ॥

[८२०] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (दिवः वधं सं वर्तयतं) अन्तरिक्षसे घातक आयुध उत्पन्न करो। (पृथिव्याः तर्हणं अघशंसाय) चाहे पृथिवीसे विनाशक आयुध राक्षसोंके विनाशार्थ उत्पन्न करो। अथवा (पर्वतेभ्यः स्वर्यं उत् तक्षतं) पर्वतोंसे शत्रु विनाशक आयुध तैयार करो, (येन वावृधानं रक्षः निजूर्वथः) इनसे बढनेवाले राक्षसको तुम मारो ॥ ४ ॥

[८२१] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (दिवः परिवर्तयतं) आकाशमेंसे चारों ओर आयुध फेंको। (युवं) तुम दोनों (अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः) अग्निके समान तपानेवाले पत्थरोंके समान मारनेवाले (तपुर्वधेभिः अजरेभिः) तापकारक प्रहारवाले क्षीण न होनेवाले आयुधोंसे (अत्रिणः पर्शाने नि विध्यतं) भक्षक, दुष्ट शत्रुओंके पीठ बींधो। वे बींधे गये शत्रु (निस्वरं यन्तु) चुपचाप भाग जावें ॥ ५ ॥

[८२२] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (कक्ष्या अश्वा इव) जैसी रस्सी घोडोंको बांधती है उस तरह (इयं मतिः) यह स्तुति (वाजिना वां विश्वतः परि भूतु) तुम दोनों बलवानोंको चारों ओरसे प्राप्त हो। (यां होत्रां वां मेधया परिहिनोमि) इस स्तुतिको मैं अपनी मेधासे आपके पास भेजता हूं। (नृपती इव इमा ब्रह्माणि जिन्वतं) राजाओंके समान इन काव्योंको सफल करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— दुष्ट कर्म करनेवाले मनुष्य अगाध अन्धकारमें ही सदा रहते हैं, उस अन्धकारसे वे कभी बाहर नहीं निकल सकते ॥ ३ ॥

मनुष्य सभी तरहके राक्षसोंका विनाश करनेके लिए अपने पास शस्त्रास्त्र उत्तम स्थितिमें रखें और उन दुष्टोंका नाश करें ॥ ४ ॥

हरेकको लूटलूटकर खानेवाले लोग ' अत्रिण ' कहलाते हैं। इनका हर तरहसे नाश करना चाहिए। अपने पास ऐसे शस्त्रास्त्र हों कि जिससे ये राक्षस हमें कभी भी कष्ट न दे सकें ॥ ५ ॥

जिस तरह राजागण कवियोंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उन्हें धन देते हैं, उसी तरह हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर देवगण हमें धन दें ॥ ६ ॥

८२३ प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवै—र्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ॥ ७ ॥

८२४ यो मा पाकेन मनसा चरन्त—मभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८ ॥

८२५ ये पाकशंसं विहरन्त एवै—र्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ९ ॥

८२६ यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥

अर्थ— [८२३] हे (इन्द्रासोमौ) इन्द्र और सोम ! (तुजयद्भिः एवैः प्रति स्मरेथां) वेगवान् घोडोंसे शत्रुपर आक्रमण करो। (भंगुरावतः द्रुहः रक्षसः हतं) विनाशकारी द्रोही दुष्टोंको मारो। (दुष्कृते सुगं मा भूत्) कुकर्म करनेवालेके लिये सुखसे गमन करनेकी सुविधा न हो। (यः नः कदाचित् द्रुहा अभिदासति) जो हमें किसी समय द्रोहसे विनष्ट करना चाहता है उसको विनष्ट करो ॥ ७ ॥

[८२४] (पाकेन मनसा चरन्तं मा) पवित्र मनसे चलनेपर भी मुझे (यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे) जो असत्य वचनोंसे दोषी ठहराना चाहता है, हे इन्द्र ! (काशिना संगृभीताः आपः इव) मुठ्ठीमें पकडे जलके समान वह (असतः वक्ता असन् अस्तु) असत्यभाषी नहीं जैसा हो जावे। पूर्णतासे विनष्ट हो जावे ॥ ८ ॥

[८२५] (ये पाकशंसं एवैः विहरन्ते) जो मुझ सत्यवादी पवित्र आचारवालेको भी अपने स्वार्थके कारण कष्ट देते हैं। (वा ये स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति) अथवा जो अपने पासके अन्नादि साधनोंसे मुझ जैसे कल्याण करनेवालेको भी दूषण लगाते हैं। (सोमः तान् अहये वा प्रददातु) सोम उनको शत्रुके अधीन करे (वा निर्ऋतेः उपस्थे वा दधातु) अथवा निर्धन अवस्थामें उसको पहुंचा देवे ॥ ९ ॥

[८२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः नः पित्वं रसं दिप्सति) जो हमारे अन्नके सारभूत रसका नाश करता है (यः अश्वानां) जो घोडोंका, (यः गवां) जो गौओंका और (यः तनूनां) जो अपने शरीरोंका नाश करता है वह (स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु) चोरी करनेवाला चोर समाजका शत्रु विनाशको प्राप्त होवे, (सः तन्वा तना च नि हीयतां) वह अपने शरीर और संतानके साथ विनष्ट हो जावे ॥ १० ॥

भावार्थ— तोडने फोडनेवाला तथा नाश करनेवाला भी राक्षस ही होता है, ऐसे राक्षसों पर घोडोंकी सहायतासे आक्रमण करना चाहिए अर्थात् दुष्टोंकी अपेक्षा रक्षकगण अधिक बलशाली हों। तोडफोड करनेवाले दुष्टोंको समाजमें सुख और सन्मानका स्थान प्राप्त न हो ॥ ७ ॥

पवित्र मनसे आचरण करनेवाले सज्जनको जो असत्यवचनोंसे दोषी ठहराना चाहता है, ऐसे असत्यभाषीको समाजमें कोई सन्मान न दे। इस प्रकार वह स्वयमेव नष्ट हो जाए ॥ ८ ॥

जो दुष्ट ‘ मैं तो साधनसम्पन्न हूं ’ इस प्रकार सोचकर पवित्र मनुष्यको भी पापी बनाना चाहता है और अपने साधनोंका उपयोग सज्जनोंको कष्ट देनेके कार्यमें करता है, वह अपराध करता है, ऐसे दुष्टोंका विनाश अवश्य करना चाहिए ॥ ९ ॥

जो हमारे अन्नके रसको नष्ट करता है, जो हमारे घोडों, गायों और शरीरोंको हानि पहुंचाता है, वह समाजके साथ शत्रुता करनेवाला चोर विनाशको प्राप्त हो। वह अपने शरीर तथा सन्तानके सहित नष्ट हो जाए ॥ १० ॥

८२७ प॒रः सो अ॑स्तु त॒न्वा॒३॒॑ तना॑ च ति॒स्रः पृ॑थि॒वीर॒धो अ॑स्तु॒ विश्वाः॑ ।
प्रति॑ शुष्यतु॒ यशो॑ अस्य देवा॒ यो नो॒ दिवा॒ दिप्स॑ति॒ यश्च॒ नक्त॑म् ॥ ११ ॥

८२८ सु॒वि॒ज्ञा॒नं चि॑कि॒तुषे॒ जना॑य॒ सच्चास॑च्च॒ वच॑सी पस्पृधाते ।
तयो॒र्यत् स॒त्यं य॑त॒रदृजी॑य॒स्तदित् सोमो॑ऽवति॒ हन्त्यास॑त् ॥ १२ ॥

८२९ न वा उ॒ सोमो॑ वृजि॒नं हि॑नोति॒ न क्ष॒त्रियं॑ मिथु॒या धा॒रय॑न्तम् ।
हन्ति॒ रक्षो॒ हन्त्यास॒द् वद॑न्त॒मुभा॒विन्द्र॑स्य॒ प्रसि॑तौ शयाते ॥ १३ ॥

८३० यदि॑ वा॒हमनृ॑तदेव॒ आस॒ मोघं॑ वा दे॒वाँ अ॑प्यू॒हे अ॑ग्ने ।
किम॒स्मभ्यं॑ जातवेदो हृणीषे द्रोघ॒वाच॑स्ते निर्ऋ॒थं स॑चन्ताम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [८२७] (सः तन्वा तना च परः अस्तु) वह दुष्ट राक्षस अपने शरीरसे और संतानसे रहित हो जावे, विनष्ट हो जावे। (विश्वाः तिस्रः पृथिवीः अधः अस्तु) सब तीनों पृथिवीके स्थानोंसे नीचे गिर जावे। हे (देवाः) देवो! (अस्य यशः प्रति शुष्यतु) इसका यश सूखकर विनष्ट हो जाय। (यः नः दिवा दिप्सति, यः नक्तं) जो दिन रात हमें कष्ट देता है उसका नाश हो जाए ॥ ११ ॥

[८२८] (चिकितुषे जनाय इदं सु विज्ञानं) ज्ञानी मनुष्यके लिये यह सुविदित है कि (सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते) सत्य और असत्य वचनोंकी स्पर्धा होती है। (तयोः यत् सत्यं) उनमें जो सत्य होता है, तथा (यतरत् ऋजीयः) जो सरल होता है, (तत् इत् सोमः अवति) उसका सोम संरक्षण करता है और जो (असत् हन्ति) असत् होता है उसका वह नाश करता है ॥ १२ ॥

[८२९] (सोमः वृजिनं न वै हिनोति) सोम पापीको कभी नहीं छोडता। तथा (मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न) मिथ्या व्यवहार करनेवाले बलवानको भी नहीं छोडता। वह (रक्षः हन्ति) राक्षसको मारता है तथा (असत् वदन्तं हन्ति) असत्य भाषण करनेवालेको भी मारता है। (उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते) ये दोनों अपराधी इन्द्रके बन्धनमें रहते हैं ॥ १३ ॥

[८३०] (यदि वा अहं अनृतदेवः आस) यदि मैं असत्यको ही देव माननेवाला बनूंगा। अथवा यदि मैं (देवान् मोघं अपि-ऊहे) देवोंकी व्यर्थ कपट भावसे उपासना कर रहा हूं, तो हे अग्ने! हे (जातवेदः) वेद जिससे बने हैं। वास्तवमें ऐसा नहीं है फिर (अस्मभ्यं किं हृणीषे) हमारे ऊपर तुम क्रोध क्यों करते हो? (द्रोघवाचः ते निर्ऋथं सचन्तां) द्रोहपूर्ण मिथ्याभाषी जो हैं वेही तुम्हारे द्वारा बुरी अवस्थाको प्राप्त हों ॥ १४ ॥

भावार्थ— जो दुष्ट सज्जनोंको दिन-रात कष्ट देता है, वह दुष्ट राक्षस अपने शरीर और सन्तानसे रहित हो जाए। वह एकदम पृथ्वीसे भी नीचे रसातलमें जाकर गिरे। उसका यश सूख जाए अर्थात् वह यशसे रहित हो जाए ॥ ११ ॥

ज्ञानी मनुष्य यह अच्छी तरहसे जानता है, कि सत्य और असत्य वचनोंमें सदा स्पर्धा होती है। पर उनमें जो वचन सत्य और सरल होते हैं, उन्हीं वचनोंकी रक्षा सोमदेवता करते हैं और असत्य वचनोंका नाश करते हैं ॥ १२ ॥

सोमदेव पापीको कभी नहीं छोडते, तथा मिथ्या व्यवहार करनेवालेको भी कभी नहीं छोडते। वे राक्षस और असत्य व्यवहार करनेवालेको भी मारते हैं। ये दोनों ही अपराधी इन्द्रके बन्धनमें रहते हैं ॥ १३ ॥

जो असत्यको ही अपना आराध्य देव मानता है, अथवा जो देवोंकी उपासना कपट भावसे करता है उसका विनाश अग्नि करता है। जो द्रोहके कारण मिथ्याभाषण करते हैं, वे भी नष्ट हो जाएं ॥ १४ ॥

८३१ अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ १५ ॥

८३२ यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥

८३३ प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं1 गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥ १७ ॥

८३४ वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि1च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ १८ ॥

अर्थ--[८३१] (यदि यातुधानः अस्मि अद्य मुरीय) यदि मैं दुष्ट राक्षस हूं तो मैं आज ही मर जाऊं। (यदि पुरुषस्य आयुः ततप) यदि मैंने किसी मनुष्यके जीवनको कष्ट दिये हैं, तो भी मैं आज ही मर जाऊं। (यः मा मोघं यातुधान इति आह) जो मुझे व्यर्थ ही राक्षस करके कहता है (अध सः दशभिः वीरैः वि यूयाः) वह अपने दिसों वीरपुत्रोंसे वियुक्त हो जावे। उसके सब परिवारके लोग विनष्ट हो जांय ॥ १५ ॥

[८३२] (यः मा अयातुं यातुधान इति आह) जो मुझ दैवी स्वभाववालेको राक्षस करके कहता है तथा (यः रक्षाः वा शुचिः अस्मि इति आह) जो राक्षस होनेपर भी अपने आपको पवित्र कहता है, (इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु) इंद्र उसे बडे शस्त्रसे विनष्ट करे। वह (विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट) सब प्राणियोंसे नीच होकर गिरे ॥ १६ ॥

[८३३] (या नक्तं खर्गला इव) जो राक्षसी रात्रीके समय उल्लूकी तरह (तन्वं गूहमाना) अपने शरीरको छिपाकर (अप प्र जिगाति) चलती है (सा अनंतान् वव्रान् अवपदीष्ट) वह राक्षसी अनंत गढोंमें गिरे। और (ग्रावाणः उपब्दैः रक्षसः घ्नन्तु) पत्थर शब्द करते हुए उन राक्षसोंको मारें ॥ १७ ॥

[८३४] हे (मरुतः) मरुत् वीरो! तुम (विक्षु वि तिष्ठध्वं) प्रजाओंमें रहो, (इच्छत) राक्षस कहां है यह जाननेकी इच्छा करो और उनको (गृभायत) पकडो और उन (रक्षसः सं पिनष्टन) राक्षसोंको चूर्ण करो। (ये वयः भूत्वा नक्तभिः पतयन्ति) जो पक्षी बनकर रात्रीके समय आते हैं। और (ये वा अध्वरे देवे रिपः दधिरे) जो हिंसा रहित यज्ञ शुरू होनेपर उसमें हिंसा करते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ-- मैं यदि वास्तव दुष्ट या राक्षस हूं, तो मैं आज ही मर जाऊं, अथवा यदि मैंने किसी सज्जन पुरुषको कष्ट दिया हो तो भी आज ही मैं मर जाऊं। पर मेरे कुछ न करनेपर भी जो मुझपर मिथ्या दोषारोपण करता है, उसके सब परिवारके सदस्य नष्ट हो जाएं ॥ १५ ॥

मेरा स्वभाव दैवी या दिव्य होनेपर भी जो मुझे राक्षस कहता है, तथा स्वयंका स्वभाव राक्षसी होनेपर भी जो स्वयंको देव बताता है, उसे इन्द्र अपने शस्त्रसे विनष्ट करे ॥ १६ ॥

जो दुष्ट स्वभाववाली स्त्री तथा दुष्ट स्वभावी पुरुष रातमें उल्लूकी तरह लुकता छिपता लोगोंको कष्ट देता है, वह पतनके गर्तमें ऐसा गिरे कि वह फिर कभी उठ ही नहीं सके ॥ १७ ॥

हे वीरो! तुम प्रजाओंकी रक्षा करनेके लिए सदा तैय्यार रहो। जो राक्षस हों, तथा जो यज्ञ आदि सत्कर्मोंमें विघ्न डालते हों, उनका तुम विनाश करो ॥ १८ ॥

८३५ प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्ताऽभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १९ ॥

८३६ एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २० ॥

८३७ इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन् सत एति रक्षसः ॥ २१ ॥

८३८ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

अर्थ—[८३५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दिवः अश्मानं प्रवर्तय) आकाशसे पत्थरोंको फेंको। हे (मघवन्) धनवान् ! (सोमशितं सं शिशाधि) सोमयाजकोंको संस्कार संपन्न करो। (प्राक्तात् अपाक्तात्) पूर्व और पश्चिमसे (अधरात् उदक्तात्) दक्षिण और उत्तरसे (रक्षसः पर्वतेन अभि जहि) राक्षसोंको पर्वतास्त्रसे विनष्ट करो ॥ १९ ॥

[८३६] (त्ये एते श्वयातवः उ पतयन्ति) ये ये राक्षस कुत्तोंसे काटे जाकर गिरते हैं। (ये दिप्सवः अदाभ्यं इंद्र दिप्सन्ति) जो मारनेकी इच्छासे अदम्य इन्द्रकी भी हिंसा करना चाहते हैं। (शक्रः पिशुनेभ्यः वधं शिशीते) इन्द्र उन कपटियोंका वध करनेके लिये अपने शस्त्रको तीक्ष्ण करता है। और वह (यातुमद्भ्यः अशनिं नूनं सृजत्) दुष्ट राक्षसोंपर निश्चयसे वज्र फेंकता है ॥ २० ॥

[८३७] (इंद्रः यातूनां पराशरः अभवत्) इंद्र राक्षसोंको दूर करनेवाला है। (हविर्मथीनां आविवासतां अभि) हविका नाश करनेवाले और आक्रमणकारियोंका पराभव करनेवाला इंद्र है। (परशुः यथा वनं) परशु जैसे वनको काटता है और (पात्रा भिन्दन्) मिट्टीके बर्तनोंको जैसे मुद्गर तोडता है, उस तरह (शक्रः सतः रक्षसः अभि एति) इंद्र सामने आये राक्षसोंका नाश करता है ॥ २१ ॥

[८३८] (उलूकयातुं) उल्लूके समान आचरण करनेवाले मोहवाले, (शुशुलूकयातुं) भेडियेके समान आचरण करनेवाले क्रोधी, (श्वयातुं) कुत्तेके समान आचरण करनेवाले मत्सरग्रस्त, (उत कोकयातुं) कोकपक्षीके समान आचरण करनेवाले कामी, (सुपर्णयातुं) गरुडके समान आचरणवाले गर्विष्ठ, (उत गृध्रयातुं) गीधके समान लोभी जो राक्षस हैं उनको (जहि) मारो। (दृषदा इव प्रमृण) पत्थरसे मारते हैं वैसे मारो और हे इंद्र ! हमारी रक्षा करो ॥ २२ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! यज्ञ करनेवालोंको समृद्ध करो, पर जो दुष्ट राक्षस हों उनका चारों दिशाओंसे संहार करो ॥ १९ ॥

जो दुष्ट कुत्तोंके समान मनुष्योंपर हमला करते हैं, जो मारनेकी इच्छावाले होकर शक्तिशालीको भी मारना चाहते हैं, इन्द्र उन कपटी शत्रुओंका वध करे और उन दुष्ट राक्षसोंको नष्ट करे ॥ २० ॥

इन्द्र यज्ञमें दी जानेवाली हवियोंको नष्ट करनेवाले तथा आक्रमणकारी शत्रुओंका पराभव करनेवाला है। जैसा फरसा पेडोंको काटता है अथवा मुद्गर जिस प्रकार मिट्टीके बर्तनोंको नष्ट किया करता है, उसी तरह इन्द्र सामने आए दुष्ट राक्षसोंका संहार करता है ॥ २१ ॥

उल्लूके समान आचरण करनेवाले अर्थात् मोहवाले, भेडियेके समान आचरण करनेवाले अर्थात् क्रोधी, कुत्तेके समान ईर्ष्यालु, चकवेके समान कामी, गरुडके समान घमंडी, गीधके समान लोभी दुष्ट हैं, उन्हें इन्द्र मारे ॥ २२ ॥

८३९ मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावता—मपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसो ऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

८४० इन्द्र जहि पुमांसं यातुधान—मुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ २४ ॥

८४१ प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वे—न्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यत—मशनिं यातुमद्भ्यः ॥ २५ ॥

॥ इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [८३९] (रक्षः नः अभिनट्) राक्षस हमें विनष्ट न करें, (यातुमावता मिथुना अप उच्छतु) यातना देनेवालोंके स्त्री पुरुषोंके जोडे हमसे दूर हों। (या किमीदिना) जो घातक हैं वे भी दूर हों। (पृथिवी पार्थिवात् अंहसः पातु) पृथिवी पार्थिव पापसे हमें बचावे। (अन्तरिक्षं दिव्यात् अस्मान् पातु) अन्तरिक्ष आकाशमें होनेवाले पापसे हमें बचावे ॥ २३ ॥

[८४०] हे (इन्द्र) इंद्र ! (पुमांसं यातुधानं जहि) पुरुष राक्षसका नाश करो। (उत मायया शाशदानां स्त्रियं) और कपटसे हिंसा करनेवाली स्त्री राक्षसीका भी नाश करो। (मूरदेवाः विग्रीवासः ऋदन्तु) दूसरोंको मारना ही जिनका खेल है वे राक्षस गला कट जानेपर विनष्ट हों, (ते सूर्यं उच्चरन्तं मा दृशन्) वे उदय होनेवाले सूर्यको न देख सकें। सूर्यके उदय होनेके पूर्व ही वे दुष्ट मर जांय ॥ २४ ॥

[८४१] हे (सोम) सोम ! तू और (इंद्रः च) इंद्र (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक राक्षसको देखो। (जागृतं) जागते रहो। (रक्षोभ्यः वधं अस्यतं) राक्षसोंपर वध करनेवाले अस्त्र फेंको और (यातुमद्भ्यः अशनिं) यातना देनेवालेपर वज्र फेंको और उनका नाश करो ॥ २५ ॥

भावार्थ— राक्षस हमें नष्ट न करें, यातना देनेवाले स्त्री पुरुष हमसे दूर रहें, खाऊ भी हमसे दूर ही रहें। पृथ्वी पार्थिव पापोंसे हमारी रक्षा करे तथा अन्तरिक्ष अन्तरिक्षके बारेमें होनेवाले पापोंसे हमें बचावे ॥ २३ ॥

हे इन्द्र ! यातना देनेवाले राक्षस पुरुषका नाश करो, तथा स्त्री राक्षसीका भी नाश करो। दूसरोंको मारना जो खेल समझते हैं, वे विनष्ट हो जाएं, वे उदय होनेवाले सूर्यको न देख सकें ॥ २४ ॥

हे सोम ! तू और इन्द्र दोनों मिलकर राक्षसोंपर निगरानी रखो, तुम दोनों सदा जागते रहकर हमारी रक्षा करो और दुष्ट राक्षसोंपर अपने शस्त्रास्त्रोंका प्रहार करके उनका संहार करो ॥ २५ ॥

॥ सप्तम मंडल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मण्डल

सु भा षि त

१ सुजाता नरः समासते— (४) कुलीन पुरुष संघटित रहते हैं।

२ यातुमावान् यात्रा यं रयिं न नशति—(५) हिंसक डाकू जिस धनको लूट नहीं सकता (ऐसा धन हमें दो)।

३ जरूथं अदहः– (७) कठोर भाषीको जला दो (दूर करो)।

४ यो अनीकं आ इधते— (८) जो अपनी सेनाको तेजस्वी करता है (वह वीर है।)

५ प्रशस्तां धियं पनयन्त— (१०) प्रशंसित बुद्धिका वर्णन करते हैं।

६ वृत्रहत्येषु शूराः नरः— (१०) युद्धोंमें शूर पुरुष नेता होते हैं।

७ शूने मा निषदाम— (११) पुत्र, पौत्ररहित घरमें हम न रहें।

८ प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं— (१२) सेवकोंसे युक्त, बालबच्चोंसे भरा औरस सन्तानोंसे बढनेवाला घर हो।

९ अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि– (१३) दुष्ट, पापी, धूर्तसे हम सुरक्षित हों।

१० वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः—(१४) बलवान्, सुदृढ, बलशाली सहस्रों धनोंसे युक्त पुत्र हो।

११ तनयः अक्षरा समेति— (१४) पुत्र विद्या सीखता रहे।

१२ अग्निः अग्नीन् अत्यस्तु— (१४) हमारा अग्निके समान तेजस्वी पुत्र अन्य पुत्रोंसे श्रेष्ठ बने।

१३ अवीरता नः मा दाः— (१९) वीर संतान न होनेका कष्ट हमें न हो।

१४ दुर्वाससे नः मा दाः– (१९) बुरा वस्त्र पहननेका दुर्भाग्य हमें न प्राप्त हो।

१५ अमतये नः मा दाः— (१९) बुद्धिहीनता हमें प्राप्त न हो।

१६ सखा दुर्भृतये मा प्रवोचः—(२२) कोई मित्र अपने साथियोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका भाषण न करे।

१७ भ्रमात् चित् सखा मा नशन्त— (२२) भ्रमसे भी कोई मित्रका नाश न करें।

१८ अर्थी सूरिः यं पृच्छमानः एति स मर्तः रेवान्— (२३) धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला जिसके विषयमें पूछताछ करता हुआ जिसके पास जाता है, वह मनुष्य सच्चा धनवान् है।

१९ दिव्यं सानु रश्मिभिः उपस्पृश— (२१) दिव्य उच्चताको अपने किरणोंसे स्पर्श करो। (अपने तेजसे उच्चता प्राप्त करो।

२० दिव्ये योषणे मही बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी यज्ञिये सुविताय आश्रयेतां— (११) दिव्य स्त्रियां, जो बडी सभाओंमें बैठती हैं, प्रशंसित और धनवाली होकर पूजनीय होती हैं, उनका आश्रय अपने कल्याणके लिये करो।

२१ विप्रा जातवेदसा मानुषेषु कारू— (१२) ज्ञानी विद्वान् मनुष्योंमें प्रशस्त कार्य करनेवाले होते हैं।

२२ अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं— (१२) कुटिलतारहित कर्म अधिक श्रेष्ठ बनाओ।

२३ देवैः मनुष्येभिः इळा सजोषा— (११) दिव्य गुण संपन्न मानवोंके साथ मातृभूमि सेवाके योग्य है।

२४ सारस्वतेभिः सरस्वती सजोषा— (११) सारस्वतोंके भक्तोंके साथ सारस्वती सेवनीय है।

२५ सत्यतरः देवानां जनिमानि वेद— (३५) सत्य-पर अधिक निष्ठा रखनेवाला देवोंके जन्मवृत्तान्त जानता है।

२६ अतिथिं दोषा उषसि मर्जयन्तः— (४१) अतिथिकी रात्रीमें और सवेरे सेवा करो।

२७ स्वनीक ! यत् रुक्मः रोचसे, ते प्रतीकं सुसंदृक्— (४२) हे उत्तम सेनापते ! जब तू प्रकाशता है, तब तेरा रूप अत्यंत सुंदर दीखता है।

२८ पूता शुचिः स्वधितिः रोचमानः— (४५) पवित्र शस्त्र तेजस्वी होता है।

२९ तरुणः गृत्सः अस्तु— (४८) तरुण ज्ञानी हो।

३० अनीके संसदि मर्तासः पौरुषेयीं गृभं न्युवोच— (४९) सैनिक वीरोंकी सभामें युद्धमें मरनेके लिये तैयार हुए वीर पौरुषकी ही बातें करते हैं।

३१ अवीरा वयं त्वा मा परिषदाम— (५२) पुत्रहीन होकर हम तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें। (पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम प्रभुकी भक्ति करें।)

३२ अ-प्स्वः मा, अदुवः मा— (५२) हम सुरूपरहित न हों, और भक्तिहीन भी न हों।

३३ अरणस्य रेक्णः परिषद्यं— (५३) ऋणरहित मनुष्यका धन पर्याप्त होता है। (अतः हम ऋणरहित हों।)

३४ अन्यजातं शेषः नास्ति— (५३) दूसरेका पुत्र औरस नहीं कहलाता।

३५ अन्योदर्यः सुसेवः अरणः मनसा नहि— (५४) दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, ऋण न करनेवाला होनेपर भी, औरसपुत्र करके स्वीकार करने योग्य नहीं होता।

३६ वैश्वानरः मानुषीः विशः अभिविभाति— (५८) विश्वका नेता मानवी प्रजाओंको प्रकाशित करता है।

३७ आर्याय ज्योतिः जनयन्— (५२) आर्योंके लिए प्रकाश उत्पन्न किया।

३८ अक्रतून्, ग्रथिनः, मृध्रवाचः पणीन्, अश्रद्धान्, अवृधान्, अयज्ञान् दस्यून् प्र विवाय, अपरान् चकार— (६८) सत्कर्म न करनेवाले, वृथाभाषी, हिंसक, सूदका व्यवहार करनेवाले, अश्रद्ध, हीन, यज्ञ न करनेवाले डाकुओंको दूर करें और हीन अवस्थाको पहुंचा देवें।

३९ नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार— (६९) उत्तम नेता अज्ञानान्धकारमें पडी प्रजाको अपने सामर्थ्योंसे ज्ञानाभिमुख करता है।

४० वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— (६९) धनके स्वामी, संयमी तथा सेनासे आक्रमण करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले वीरकी प्रशंसा होती है।

४१ वैश्वानरः वरं आससाद— (७१) सब जनोंका हित करनेवाला श्रेष्ठ स्थानपर बैठता है।

४२ अर्यः राजा समिन्धे— (८०) श्रेष्ठ राजा प्रकाशता है।

४३ विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः— (८४) सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नतासे बर्ताव कर।

४४ जारः मन्द्रः कवितमः पावकः उषसां उपस्थात् अबोधि— (८७) वृद्ध, आनन्द बढानेवाला, उत्तम कवि पवित्र वीर उषःकालके पहिले उठता है।

४५ मन्द्रः दमूनाः विशां तमः तिरः ददृशे— (८८) आनन्ददायी संयमी वीर प्रजाजनोंके अन्धकारको दूर करता हुआ दीखता है।

४६ ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः— (९१) संघसे ज्ञान प्रसार करनेवालोंका विनाश नहीं होता।

४७ पुरंधिं राये यक्षि— (९२) बहुत बुद्धिवालेका धन देकर सत्कार कर।

४८ धियः हिन्वानः भासा आभाति— (९१) बुद्धिसे सबको शुभ प्रेरणा करनेवाला अपने तेजसे प्रकाशित होता है।

४९ उशिजः विशः मंद्रं यविष्ठं ईळते- (९७) सुख चाहनेवाली प्रजा आनन्द प्रसन्न तरुण वीरकी प्रशंसा करती है।

५० यस्य बर्हिः देवैः आसदः अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति- (९९) जिसके आसनपर दिव्य विबुध बैठते हैं उसके लिये सब दिन शुभ दिन ही होते हैं।

५१ महा विश्वा दुरितानि साह्वन्— (१०४) अपने बडे सामर्थ्योंसे सब दुरवस्थाओंको दूर कर।

५२ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वं— (१०६) विश्वमें पवित्र, बुद्धियोंके धारणकर्ता, राक्षसोंके विनाशक वीरके लिये प्रशंसाके वाक्य बोलो और उसके आदरार्थ शुभ कर्म करो।

५३ जातवेदा वैश्वानरः- (१०७) ज्ञानी विश्वका नेता होता है।

५३ जातः परिज्मा इर्यः— (१०८) उत्पन्न होनेपर चारों ओर भ्रमण करो और सबको शुभ कर्मकी प्रेरणा दो।

५५ शुक्रशोचिः शुचिः पावकः ईड्यः— (१२१) बल और तेजसे युक्त स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला वीर प्रशंसायोग्य है।

५६ ईशानः नः राधांसि आभर- (१२२) ईश्वर हमें धन देवे।

५७ हे अदाभ्य ! दिवानक्तं अंहसः अघायतः नः पाहि— (१२६) हे अदम्य वीर ! दिनरात पापसे तथा पापियोंसे हमें बचा।

५८ ऊर्जः नपातं प्रियं चेतिष्ठं अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य अमृतं दूतं नमसा आहुवे — (१२७) बलका नाश न करनेवाले, प्रिय सज्जनता देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम हिंसारहित कार्य करनेवाले सबके अमर सहायकको नमस्कार करके बुलाते हैं।

५९ सूरयः प्रियासः सन्तु— (१३१) विद्वान् सबको प्रिय हों।

६० द्रुहः निदः त्रायस्व— (१३४) द्रोही निंदकोंसे सबको बचाओ।

६१ दीर्घश्रुत शर्म यच्छ— (१३४) विशाल कीर्तिवाला सुख या घर हमें दे दो।

६२ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा माता आ निषत्ति तान् त्रायस्व— (१३५) जिनके घरमें घी और अन्नसे भरे पात्र लेकर पोषनेवाली रहती है, उनकी सुरक्षा करो।

६३ विदुष्टरः मन्द्रया आसा जिह्वया नः रयिं— (१३५) श्रेष्ठ ज्ञानी प्रसन्न मुख तथा मधुरभाषणसे हमें ज्ञानरूप धन देवे।

६४ स्वध्वरा कृणुहि— (१४१) कुटिलता हिंसारहित कार्य कर।

६५ सुमतौ शर्मन् स्याम— (१४८) उत्तम बुद्धिसे और सुखसे हम युक्त हों।

६६ सखा सखायं अतरत्- (१५१) मित्र मित्रको कष्टसे पार करता है।

६७ दुराध्यः अचेतसः अवयन्तः— (१५३) दुष्ट बुद्धिवाले मूढ लोग विनाश ही करते हैं।

६८ राजा श्रवस्या वैकर्णयोः जनान् न्यस्त— (१५४) राजाने यशके लिये बिलकुल न सुननेवाले शत्रुके वीरोंका नाश किया।

६९ मृध्रवाचं जेष्म— (१५८) असत्यभाषीपर हम विजय करें।

७० शर्धन्तं अनिन्द्रं परानुनुदे— (१६१) ईश्वरके हिंसक द्वेषी शत्रुको दूर किया।

७१ मन्यमानं देवकं अघन्थ— (१६५) घमंडी तुच्छ देवके पूजकका नाश कर।

७२ क्षत्रं दूणाशं अजरं— (१७०) क्षात्रबल नष्ट न हो, पर बढता जाय।

७३ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः च्यावयति— (१७१) एक ही वीर सब शत्रु सैनिकोंको भगा देता है।

७४ आशुषः गयस्य च्यावयति— (१७१) कंजूस शत्रुके घरको वीर उखाड देता है।

७५ दभीतये भूरिणि हंसि— (१७४) भयभीत लोगोंकी सुरक्षाके लिये बहुत दुष्टोंका वध कर।

७६ सूरिषु प्रियासः स्याम— (१७७) विद्वानोंमें हम प्रिय हों।

७७ तन्वा ऊती वावृधस्व (१८१) शारीरिक शक्ति तथा संरक्षक बल बढाओ।

७८ स्वधावान् उग्रः वीर्याय जज्ञे— (१८२) अपनी धारकशक्तिसे युक्त वीर पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ होता है।

७९ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः— (१८२) मानवोंका हित करनेवाला जो करना चाहता है, वह कार्य कर जाता है।

८० युध्मः अनर्वा खजकृत्, समद्वा शूरः अनुषा सत्राषाट् अषाळ्हः स्वोजाः पृतना व्यासे, विश्वं शत्रूयन्तं जघान— (१८४) युद्ध करनेवाला, युद्धसे पीछे न हटनेवाला, युद्धमें कुशल, युद्धमें जानेमें उत्साही, शूर, अपनेसे ही शत्रुका पराभव करनेवाला, स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला, निजबलसे समर्थ वीर शत्रुसेनाको अस्तव्यस्त करता है, और सब शत्रुओंका वध करता है।

८१ महित्वा तविषीभिः आ पप्राथ— (१८५) वीर अपने महत्त्वसे अपनी शक्तियोंके द्वारा विश्वमें प्रसिद्ध होता है।

८२ वृषा वृषणं रणाय जजान— (१८६) बलवान् पिता बलशाली पुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न करता है।

८३ नारी नर्यं ससूव— (१८६) पत्नी मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करती है।

८४ यः नृभ्यः सेनानीः प्रास्ति— (१८६) वह मानवोंका हित करनेवाला वीर सेनापति होता है।

८५ यः अस्य घोरं मनः आविवासत्, स जनः तुचित् क्षेजते, न रेषत्— (१८७) जो इसके प्रभावी मनको प्रसन्न रखता है वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता और नाही क्षीण होता है।

८६ यः इन्द्रे दुवांसि दधते स ऋतपा ऋतेजाः राये क्षयत्— (१८७) जो प्रभुपर भक्ति रखता है, वह सत्यपालक, सत्यप्रवर्तक धनके लिये रहता है, धन प्राप्त करता है।

८७ धरुत्री शक्तिः स्वस्तु— (१९१) सुखसे निवास करनेकी शक्ति हमारे अन्दर अच्छी तरहसे रहे।

८८ इन्द्रः नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— (१९५) इन्द्र वीर जनताके हित करनेके सब कार्य जानता है।

८९ वंदना वेद्याभिः नः न जुजुषुः— (१९६) वंदन करके नम्रभाव दिखाकर हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे अन्तःशत्रु, उनके ज्ञानपूर्वक बर्ते गये साधनोंके साथ हमारे अन्दर न रहें।

९० शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः— (१९६) शिश्नको ही देव माननेवाले कामी लोग हमारे सत्यधर्मके स्थानपर न आयें।

९१ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्— (१९७) प्रभुकी महिमाको भोगी लोग नहीं जान सकते।

९२ शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्— (१९७) शत्रु युद्ध करके तेरी शक्तिका अन्त न जान सके (ऐसी शक्ति धारण कर।)

९३ भूरेः सौभगस्य अत्रः— (१९९) सब प्रकारके ऐश्वर्योंका संरक्षण होना चाहिये।

९४ नमोवृधासः विश्वहा सखायः स्याम— (२००) अन्नकी अधिक उपज करनेवाले सब सर्वदा आपसमें मित्र होकर रहें। एक ही कार्यमें दत्तचित्त रहें।

९५ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उद् अश्नुवन्ति— (२०९) सन्मान योग्य ऐसी इस प्रभुकी महिमाका कोई पार नहीं कर सकता।

९६ ते राधः वीर्यं न उदश्नुवन्ति— (२०९) प्रभुके धन और पराक्रमका पार कोई नहीं पा सकता।

९७ ते सख्यानि अस्मे शिवानि सन्तु— (२१०) प्रभुकी मित्रता हमारे लिये कल्याण करनेवाली होगी।

९८ शुरुधः इरज्यन्त— (२१२) शोकको रोकनेवाली कृतियाँ बढायी जाय।

९९ शुष्मिणं तुविराधसं— (२१५) बलवान् तथा सिद्धि जिसे प्राप्त है ऐसा पुत्र प्राप्त हो।

१०० देवत्रा एकः मर्तान् दयते— (२१५) देवोंमें एक ही (इन्द्र) मनुष्योंपर दया करता है।

१०१ वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति— (२१६) वज्रधारी बलवान् वीरकी सब पूजा करते हैं।

१०२ ते महीं सुमतिं प्रवेविदाम— (२१२) प्रभुकी प्रसन्नता हमें प्राप्त हो।

१०३ मनः विष्वद्र्यक् मा विचारीत्— (२२३) मन इधर उधर न भटकता रहे (किसी एक कार्यमें मन लगे।)

१०४ निनित्सोः शंसं आरे कृणुहि— (२२४) निंदककी निंदा हमसे दूर रहे।

१०५ अस्मे प्रियाणि भद्राणि सश्चत— (२३२) हमें प्रिय कल्याण प्राप्त हों।

१०६ नरः पार्या धियः युनजते— (२३४) नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये अपनी बुद्धियोंका उपयोग करते हैं।

१०७ यः ते शुष्मः अस्ति, सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष— (२३५) जो तेरा सामर्थ्य है वह अपने मित्र नेताओंको सिखा।

१०८ जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा— (२३६) जंगम पदार्थों और मानवोंका इन्द्र राजा है।

१०९ अधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति— (२३६) पृथिवीपर जो कुरूप या सुरूप वस्तुमात्र है (उसका भी राजा वही प्रभु है।)

११० हे विश्वमिन्व ! त्वा विश्वे मर्ताः चित् विह्वन्त— हे विश्वको संतोष देनेवाले वीर ! तुझे सब मानव बुलाते हैं।

१११ तूतुजिः अत् तुजिं अशिश्नत्— उदार कंजूसको पीछे रखता है।

११२ अनेनाः मायी वरुणः— निष्पाप कर्ममें कुशल वरुण है।

(ऋ० ७।३०)

११३ विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब मनुष्योंमें शूर ही सेनामें भरती करने योग्य है।

११४ अहा सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन होकर प्रकाशित होते रहें।

११५ स्वाभुवः जरणां अश्नवंत— उत्तम ऐश्वर्यवाले वृद्धावस्थाका भोग करें।

(ऋ० ७।३१)

११६ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं— विशेष ज्ञानीकी प्रशंसा करो।

११७ चर्षणिप्राः विशः प्रचर— किसानोंकी इच्छाएं पूर्ण करता है तो प्रजाजनोंके भ्रमण करो।

११८ विप्राः ब्रह्म जनयन्त— ज्ञानी ज्ञानका प्रचार करते हैं।

११९ तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति— उस प्रभुके नियमोंका धीर पुरुष निषेध नहीं करते।

१२० अनुत्तमन्युः राजा— राजा उत्साही हो।

(ऋ० ७।३२)

१२१ श्रुत्कर्ण वसूनां इयते— प्रार्थना सुननेवाले प्रभुके पास वीर धनके लिये जाते हैं।

१२२ दित्सन्तं न किः आ मिनत्— वह देने लगा तो उसे कोई रोक नहीं सकता।

१२३ तरणिः इत् जयति— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला विजयी होता है।

१२४ तरणिः इत् क्षेति — त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही सुखसे यहां रहता है।

१२५ तरणिः इत् पुष्यति— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही यहां पुत्र पौत्र धन धान्यसे पुष्ट होता है।

१२६ कवत्नवे देवासः न— कुत्सित कर्म करनेवालेकी देव सहायता नहीं करते।

१२७ सुदासः रथं नकिः पर्यास— उत्तम दाताके रथको कोई रोक नहीं सकता।

१२८ हे इन्द्र ! त्वं यस्य अविता भुवः, मर्तः वाजयन् वाजं गमत्— हे प्रभो ! तू जिसका संरक्षक होता है वह मनुष्य अपना बल बढाकर बलवान् होता है।

१२९ सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम— विद्वानोंकी सहायतासे सब कष्टोंको पार करें।

१३० हे इन्द्र ! त्वं अवमं मध्यमं वसु पुष्यसि विश्वस्य परमस्य राजसि— हे प्रभो ! तू निकृष्ट मध्यम और श्रेष्ठ धनको बढाता है और उसपर प्रभुत्व करता है।

१३१ पापत्वाय न रासीय— पाप बढानेके लिये धनका उपयोग नहीं करूंगा।

१३२ हे मघवन् ! नः आप्यं त्वत् अन्यत् नहि— हे प्रभो ! तू ही हमारा बन्धु है, तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं।

१३३ दुष्टुती मर्त्यः वसुः न विन्दते— दुष्टकी प्रशंसा करनेवाला मनुष्य धन नहीं प्राप्त कर सकता।

१३४ स्रेधन्तं रयिः न नशत्— हिंसकको धन नहीं मिलता।

१३५ पार्ये सुशक्तिः देष्णं विन्दते— दुःखसे पार होनेके समयमें अच्छी शक्तिवाला ही धन प्राप्त करता है।

१३६ अस्य तस्थुषः जगतः स्वर्दृशं ईशानं अभिनोनुमः— इस स्थावर जंगम विश्वके दिव्य दृष्टिवाले ईश्वरको हम सब प्रणाम करते हैं।

१३७ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते— द्युलोकमें अन्तरिक्षमें और पृथ्वीपर तेरेसे भिन्न कोई दूसरा ईश्वर न हुआ और न होगा।

१३८ पुत्रेभ्यः पिता, तथा त्वं नः क्रतुं शिक्ष, आभर— हे प्रभो, जैसा पुत्रोंको पिता वैसा तू हमें शुभकर्मोंकी शिक्षा दो और हमारी शक्ति बढा दो।

१३९ अज्ञाता अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः— अज्ञातमार्गसे अशुभ दुष्ट हिंसक हमपर आक्रमण न करें।

१४० वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अतितराम— हम सब अपना संरक्षण करनेमें समर्थ होकर, सदा कर्मोंको निर्विघ्नतया कर सकेंगे।

(ऋ० ७।३३)

१४१ ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः— ज्योतिको अग्रभागमें रखनेवाले आर्य (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) ये तीन प्रकारके प्रजाजन हैं।

१४२ भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति— भुवनोंमें ये तीन (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वीर्य शक्ति बढाते हैं।

१४३ सूर्यस्य ज्योतिः, समुद्रस्य गंभीरः, वातस्य प्रजवः— सूर्यकी ज्योति, समुद्रकी गंभीरता, वायुका वेग ये शक्तियां हैं। मनुष्यमें तेज गंभीरता और वेग हो।

१४४ हृदयस्य प्रकेतैः निण्यं सहस्रवल्शं अभि-संचरन्ति— हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे गुप्तरीतिसे सहस्रों वर्षोंतक (ज्ञानी इस विश्वमें) चारों ओर संचार करते हैं।

१४५ यमेन ततं परिधिं वयन्तः— यमके द्वारा फैलाये आयुष्य रूपी वस्त्रको लोग बुनते जाते हैं।

१४६ वः वसिष्ठः आगच्छति, सुमनस्यमानाः एनं आध्वं— तुम्हारा निवास करानेवाला ज्ञानी तुम्हारे पास आरहा है, प्रसन्नचित्तसे तुम उसका आदर करो।

१४७ शुक्रा मनीषा देवी— बल बढानेवाली बुद्धि देवी है।

१४८ वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते— शत्रुओंका हमला होनेपर शूर वीर ही आगे होते हैं।

१४९ जनाय केतुं यज्ञं दधात— लोगोंके हितके लिये ज्ञान और कर्म करते रहो।

१५० शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति— अपने सामर्थ्यसे ही पृथ्वी भारको धारण करती है।

१५१ भूम शुष्मात् भारं बिभर्ति— उत्पन्न हुए भूत बलसे भार उठाते हैं।

१५२ देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं— दिव्य भावोंको प्रकट करनेवाली वाणी बोलो।

१५३ तनूनां रपः विष्वक् वियुयोत— शारीरिक पाप हमसे दूर हो।

१५४ अग्रं न-पातं सख्यायं कृध्वं— जीवनको न गिरानेवालोंको अपना मित्र बनाओ।

१५५ अस्य क्रत्वायोः यज्ञः मा स्रिधत्— सत्यके लिये जिसने अपनी आयु दी है उसका यश नष्ट न हो।

(ऋ० ७।३५)

१५६ पुरंधिः नः शं— विशाल बुद्धि हमें शान्ति देनेवाली हो।

१५७ सुयमस्य सत्यस्य शंसः शं— उत्तम संयम पूर्वक किया हुआ सत्यका वर्णन शान्ति बढानेवाला हो।

१५८ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— सत्पुरुषोंकी पुण्यकारक कृतियां हमें शान्ति देनेवाली हों।

१५९ क्षेत्रस्य पतिः नः प्रजाभ्यः शं अस्तु— देशका राजा हमारी सब प्रजाके लिये शान्ति देनेवाला हो।

१६० सत्यस्य पतयः नः शं— सत्यके पालन करने-वाले हमारे लिये शान्ति देनेवाले हों।

(ऋ० ७।३६)

१६१ इनः अदब्धः पदवीः— स्वामी न दबनेवाला हो और लोगोंकी परीक्षा करके उनको योग्यस्थान देनेवाला हो।

१६२ मह्यां अरमतिं प्रकृणुध्वं— पृथ्वीपर विशाल कार्यक्षेत्र अपने लिये निर्माण करो।

१६३ धियः अवितारं भगं प्रकृणुध्वं— बुद्धिपूर्वक किये कर्मका संरक्षण करनेवाले भाग्यवान् पुत्रको निर्माण करो।

१६४ सूनृता वसव्या न नियमने— सत्यभाषण करनेवाली वाणीको धन देनेके समय कोई नहीं रोकता।

१६५ युज्याभिः ऊती वयम्— योग्य साधनोंसे संरक्षण हम प्राप्त करें।

(ऋ० ७।३८)

१६६ नृभ्यः मर्तभोजनं आसुवानः— मनुष्योंको मानवोंके योग्य भोजन दो।

(ऋ० ७।३९)

१६७ वस्वः सुमतिं अश्रेत्— निवासके उपयोगी धन प्राप्त करनेकी सुबुद्धिका आश्रय किया जाय।

१६८ शुभ्राः मर्जयन्त— शुद्ध वीर अधिक स्वच्छता करते हैं।

१६९ ऊमाः यजत्रियासः— वीर संरक्षण करते हैं वे पूज्य हैं।

१७० मर्त्यानां कामं अरिणन् वक्षन्— मानवोंकी उन्नतिकी इच्छाका प्रतिबंध न करो और उसमें प्रगति करो।

(ऋ० ७।४०)

१७१ यं मर्त्यं अवाथः, स उग्रः शुष्मी— जिस मनुष्यकी परमात्मा सुरक्षा करता है, वह शूरवीर और बलवान् होता है।

१७२ सरस्वती ईं जुनति— विद्यादेवी उसे प्रशस्त-कर्ममें प्रेरित करती है।

(ऋ० ७।४१)

१७३ तुरः राजा मन्यमानः— त्वरासे उत्तम कार्य करनेवाला राजा माननीय होता है।

१७४ प्रणेतः सत्यराधः भगः— उत्तम नेता सच्चे धनवाला भाग्यवान है।

(ऋ० ७।४२)

१७५ सनवित्तः अध्वा सुगः— बहुत समयसे चला हुआ मार्ग सुगम होता है।

(ऋ० ७।४३)

१७६ विप्राः देवयन्तः— ज्ञानी देव बननेका यत्न करते हैं।

१७७ समनसः यति स्थ— एक विचारसे यत्न करो।

(ऋ० ७।४६)

१७८ दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन स चेतति— दिव्य जीवनवाले मनुष्योंके साम्राज्यसे वह प्रकाशित होता है।

१७९ [illegible] अरक्षन्— [illegible] रक्षण करनेवाली [illegible] वह प्रभु रक्षण करता है।

(ऋ० ७।४९)

१८० राजा वरुणः जनानां सत्यानृते अवपश्यन् याति— राजा वरुण लोगोंके पुण्य पाप देखता हुआ जाता है।

१८१ आपः मधुश्चुतः शुचयः पावकाः मां अवन्तु— जलप्रवाह मधुर रसमय स्वयं शुद्ध और पवित्र करनेवाले हैं वे मेरी सुरक्षा करें।

(ऋ० ७।५२)

१८२ अन्यजातं एनः मा भुजेम— दूसरेका किया पाप हमें न भोगना पडे।

(ऋ० ७।५५)

१८३ विश्वा रूपाणि आविशन्, नः सुशेवः सखा एधि— सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर हमारा सुखदायी मित्र बन।

१८४ माता, पिता, विश्पतिः, जनः सस्तु, सर्वे ज्ञातयः सस्तु— (सुरक्षित नगरमें) माता, पिता, प्रजापालक राजा, सब जनता, सब जातियां सुखसे सो जायें।

१८५ प्रोष्ठेशयाः वह्येशयाः, तल्पशीवरीः पुण्यगन्धाः स्त्रियः ताः सर्वाः स्वापयामसि— आंगनमें, वाहनमें, बिछौनोंपर सोनेवाली जो उत्तम सुगन्धवाली स्त्रियां हैं, वे सब स्त्रियां (सुरक्षित नगरमें) सुखसे सोजाय।

(ऋ० ७।५६)

१८६ वः शुष्मः उग्रः, मनांसि क्रुध्मी— आपका बल उग्र है और मन क्रोधसे भरे हैं।

१८७ धृष्णोः शर्धस्य धुनिः— शत्रुका नाश करनेवाले सांघिक बलका आपका वेग प्रचण्ड है।

१८८ ऋतसापः शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन्— ये वीर सत्यका पालन करनेवाले, शुद्ध जन्मवाले, स्वयं शुद्ध और दूसरोंको पवित्र करनेवाले हैं, ये सरलतासे सत्यको प्राप्त करते हैं।

१८९ इयतः अद्वयावी गोपाः— प्रगतिशीलोंका अनन्य भावसे संरक्षण करनेवाला वीर है।

१९० सहः सहसः आनमन्ति— अपनी शक्तिसे साहसी शत्रुको विनम्र करते हैं।

(ऋ० ७।५७)

१९१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः— निष्पाप शुद्ध और पवित्र ये वीर हैं।

(ऋ. ७।५८)

१९२ तुविष्मान् दैव्यस्य धाम्नः— बलवान् दिव्य धामको प्राप्त करता है।

१९३ साकं उक्षे गणाय प्रार्चत— साथ रहकर अपनी उन्नति करनेवाले संघका सत्कार करो।

(ऋ. ७।५९)

१९४ यस्मै अराध्वं, वः ऊतीः पृतनासु नहि मर्धति— जिसका तुम संरक्षण करते हो, तुम्हारे संरक्षणसे वह युद्धोंमें सुरक्षित रहता है।

१९५ मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय— मृत्युके बंधनसे छुडाओ।

(ऋ० ७।६०)

१९६ हे सूर्य ! उद्यन् अद्य अनागाः ब्रुवः— उदय होनेपर हमें प्रथम निष्पाप करके घोषित करो।

१९७ हे अर्यमन ! तव प्रियासः स्याम— हे आर्य मनवाले ! हम तेरे प्रिय होकर रहें।

१९८ विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपा— यह सब स्थावर जंगमका संरक्षक है।

१९९ मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्— मनुष्योंमें सरल और टेढा कौन है यह देखता है।

२०० इमे दिवः पृथिव्याः अचेतसं अनिमिषा चिकित्वांसः नयन्ति— ये ज्ञानी वीर द्युलोक तथा भूलोकको न जाननेवाले अज्ञानीको अविलंबसे ज्ञानी बना देते हैं।

२०१ यः वेदिं अवयजेत स रिपः चित्— जो वेदीमें यज्ञ नहीं करता वह शत्रु है।

२०२ एषां समृतिः सस्वः स्वेपी— इन वीरोंकी मित्रता परस्पर सहायक तथा तेजस्वी होती है।

(ऋ ७।६१)

२०३ सूर्यः विश्वा भुवना अभिचष्टे— सूर्य सब भुवनोंको देखता है।

२०४ सः मर्त्येषु मन्युं आचिकेत— वह मानवोंमें रहनेवाला उत्साह जानता है।

२०५ सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः— उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानोंको रक्षण करते हैं।

२०६ ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा— दैप सत्यमार्गसे चलनेवालोंका सतत संरक्षण करते हैं।

२०७ अयज्वनां मासाः अवीरा आयन्— यज्ञ न करनेवालोंके महिने वीरतारहित अवस्थामें जायगे।

२०८ यज्ञमन्मा वृजनं प्रतिराते— यज्ञ करनेमें जिनका मन लगता है वे अपना बल बढाते हैं।

२०९ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे कार्य अज्ञान बढानेके लिये न हों।

(ऋ० ७६२)

२१० सूर्यः मानुषाणां विश्वा जानिम— सूर्य मनुष्योंके जन्मवृत्त जानता है।

२११ जावसे गव्यूतिं घृतेन औक्षतं— दीर्घजीवनके लिये गौओंका आनेजानेका मार्ग जलसे सिंचित करो।

२१२ नः विश्वाः सुपथानि सुगाः सन्तु— हमारे लिये सब मार्ग जानेके लिये सुगम हों।

(ऋ० ७।६३)

२१३ सूर्येण प्रसूताः जनाः अर्थानि अयन् अपांसि कृण्वन्— सूर्यसे उत्पन्न हुए ये मनुष्य अर्थोंको प्राप्त करके उत्तम कर्मोंको करते हैं।

(ऋ० ७।६४)

२१४ सुक्षत्रः राजा वरुणः— उत्तम क्षात्रबलसे युक्त राजा वरुण है।

२१५ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्— उच्च धैर्यकी स्थिति करनी और उसको धारण करना चाहिए।

(ऋ० ७।६५)

२१६ अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु— अक्षय रहनेवाला श्रेष्ठ बल विश्वका विजय करनेवाला है।

२१७ असुरा आर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं— बलवान् आर्य वीरोंको सामर्थ्यवान् निर्माण कर।

२१८ अनृतस्य सेतुः— असत्यसे पार होनेका सेतु बन।

२१९ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम— सत्यके मार्गसे हम पापोंसे बचें।

(ऋ० ७।६६)

२२० सूरे उदिते रिशादसं अर्यमणं प्रतिगृणीषे— सूर्यका उदय होते ही शत्रुनाशक श्रेष्ठ मनवाले आर्य वीरका काव्यगान करो।

२२१ सूरिभिः सह स्याम— विद्वानोंके साथ हम रहें।

२२२ अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत— शत्रुके लिये प्राप्त करना कठिन ऐसा क्षात्रबल राजा लोग प्राप्त करें।

२२३ ऋतस्य रथ्यः यूयं ओहते तत् मनामहे— सत्यके पथ प्रदर्शक आप जिसका विचार करते हैं, उसीका हम मनन करते हैं।

२२४ ऋतावानः ऋतजाताः ऋतावृधः अनृतद्विषः घोरासः, वः सुम्नच्छर्दिष्टमे सुम्ने सूरयः नरः स्याम— सत्यपालक, सत्यके लिये जन्मे, सत्यका संवर्धन करनेवाले, असत्यका द्वेष करनेवाले बडे घोर दीखनेवाले वीरोंके उत्तम घरमें रहनेसे प्राप्त होनेवाले सुखको हम सब ज्ञानी नेता प्राप्त करें।

२२५ तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः उच्चरत्— वह देवोंका हित करनेवाला बलवान् शुद्ध आंख जैसा तेज उदय हुआ है।

२२६ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं— सौ वर्षतक देखें और जीवें।

२२७ अदाभ्या शुमत्— तुम न दबनेवाले हो इस लिये तेजस्वी हो।

(ऋ० ७।६७)

२२८ नृपती धिष्ण्या— राजा बुद्धिमान होने चाहिये।

२२९ तमसः अन्ताः उपादृशन्— अज्ञानान्धकारका अन्त दिखाई दिया है।

२३० शचीभिः नः शक्तं— शक्तियोंके योगसे हमें समर्थ बनाओ।

२३१ तोके तनये तूतुजाना— बालबच्चोंको त्वरासे समर्थ बनाओ।

(ऋ० ७।६८)

२३२ ऊती वर्पः अधि धत्थः— मृत्युसे बचानेवाला रूप तुमने उसे दे दिया।

२३३ यौ शचीभिः शची स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं— तुम दोनोंने अपने सामर्थ्योंसे वंध्या गौओंको दुधारू बना दिया।

(ऋ० ७।७०)

२३४ कृतब्रह्मा समर्यः भवति- ज्ञानका प्रचार करनेवाला मनुष्योंका संघटन करनेवाला होता है।

(ऋ० ७।७२)

२३५ पित्र्या सख्यानि, उत समानः बन्धुः, तस्य वित्तं— पितासे चली आयीं मित्रताएं, और समानतासे उत्पन्न होनेवाला बन्धुभाव, इनको भूलना नहीं।

(ऋ० ७।७३)

२३६ वीळुपाणी रक्षोहणा संभृता— शस्त्रधारी शत्रुका नाश करनेवाले वीर इकट्ठे हों।

(ऋ० ७।७५)

२३७ दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी- द्युलोककी पुत्री भुवनोंका पालन करनेवाली है।

२३८ वाजिनीवती चित्रामघा वसूनां रायः ईशे- अन्नवाली और धनवाली यह स्त्री धनोंकी स्वामिनी है।

२३९ पुरुषता नः बर्हिः निदे मा कः— पुरुषोंमें हमारे कर्मोंकी निन्दा न हो।

(ऋ. ७।७६)

२४० देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट— देवोंकी आंख सूर्य-उत्तम कर्मके साथ प्रकट हुआ है।

२४१ देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त— दिव्य मार्ग हिंसा रहित होते हैं।

(ऋ. ७।७७)

२४२ युवतिः योषा न उपो रुरुचे— तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर तरुण पतिके साथ चमकती है।

(ऋ. ७।७९)

२४३ देवं देवं राधसे चोदयन्ती— प्रत्येक कर्मकर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरणा देती है।

(ऋ. ७।८२)

२४४ विश्वे देवासः ओजः बलं संदधुः— सब देव ओज और बल धारण करते हैं।

२४५ तं मर्तं न अंहः, न दुरितानि, न तपः, नशते यस्य अध्वरं गच्छथः— उस मनुष्यको पाप, दुष्कृत्य, संताप कष्ट नहीं देते, जिसके यज्ञमें देव जाते हैं।

(ऋ० ७।८३)

२४६ आजौ किंचन प्रियं न भवति- युद्धसे कुछ भी प्रिय नहीं होता।

२४७ यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते— युद्धसे ज्ञानी लोग भयभीत होते हैं।

२४८ भूम्याः अन्ताः ध्वसिताः समदृक्षत- भूमीके ऊपरसे प्रदेश ध्वस्त हो जाते हैं।

२४९ सुदासं प्रावतं— उत्तम दानी सज्जनको सुरक्षित रखो।

(ऋ० ७।८६)

२५० नः पित्र्या द्रुग्धानि अवसृज— हमारे पिताके पापोंको दूर कर।

२५१ वयं तनूभिः या चकृम अवसृज— हमने अपने शरीरोंसे जो पाप किये हों, उनको दूर कर।

२५२ स्वप्नः अनृतस्य प्रयोता- सुस्ती असत्यका प्रवर्तन करती है।

२५३ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ईश्वर अज्ञानियोंको ज्ञान देता है।

(ऋ. ७।८७)

२५४ ते विश्वा धाम प्रियाणि— तुम्हारे सब धाम हमारे लिये प्रिय हैं।

२५५ वरुणस्य स्पशः इषिराः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति— वरुणके दूत चलते हुए द्यावा पृथिवीमें सबको देखते हैं।

२५६ विद्वान् विप्रः उपराय युगाय शिक्षन् पदस्य गुह्या वोचत्— विद्वान् विशेष बुद्धिवान् समीप आनेवाले शिष्यको सिखानेकी इच्छासे पदके गुह्य अर्थको समझाता है।

२५७ सुपारक्षत्रः गंभीर शंसः अस्य सतः राजा- उत्तम रीतिसे दक्षतासे दुःखके पार होनेवाला, गंभीर कीर्तिसे युक्त ऐसा यह इस विश्वका राजा है।

२५८ आगः चक्रुषे मिळयाति, वरुणे वयं अनागा स्याम— पाप करनेवालेको भी सुख देता है, उस वरुणके सामने हम निष्पाप होकर रहेंगे।

(ऋ० ७।८८)

२५९ पुरा चित् अवृकं सचामहे— प्राचीन कालसे चलता आया अकुटिल सख्य हो ऐसा हम चाहते हैं।

(ऋ. ७।८९)

२६० अहं मृण्मयं गृहं मो गमं— मुझे मिट्टीके घरमें रहना न पडे।

२६१ समह शुचे ! क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगाम मृळय— हे भगवान् पवित्र देव ! कर्म शक्तिकी न्यूनताके कारण मैं दुःखको प्राप्त हुआ हूं, इसलिये मुझे सुखी कर ।

२६२ दैव्ये जने यत् मनुष्या अभिद्रोहं चरामसि अचित्ती तव यत् धर्मा युयोपिम, तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः— दिव्य मनुष्यके संबंधमें जो द्रोह हम मनुष्योंने किया हो, न समझते हुए जो कर्तव्यका लोप हमसे हुआ हो, उस पापसे हमारा नाश न कर ।

(ऋ. ७।९१)

२६३ बाधिताय मनवे अनवद्यासः आसन्— दुःखी मनुष्यके हितके लिये यत्न करनेवाले प्रशंसित होते हैं ।

(ऋ. ७।९३)

२६४ नरः काष्ठां नक्षमाणाः— नेता लोग उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुंचना चाहते हैं ।

(ऋ० ७।९४)

२६५ पापत्वाय अभिशस्तये निदे मा रीरधत— पाप निंदा हीनत्व आदिके कारण हमारा नाश न हो ।

२६६ धिया धेनाः वेरयामः— बुद्धिसे वाणीको हम प्रेरित करते हैं ।

२६७ दुःशंसः नः मा ईशत— दुष्ट हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे ।

(ऋ० ७।९५)

२६८ एषा सरस्वती आयसी पूः धरुणं— यह विद्या देवी लोहेके किलेके समान सबका रक्षण करनेवाली है ।

२६९. एका सरस्वती अचेतत्— यह एकही विद्या-देवी चेतना उत्पन्न करती है ।

२७० भुवनस्य भूरेः रायः चेतन्ती— विश्वके अनेक प्रकारके धनोंको यह विद्यादेवी बताती है ।

२७१ सुभगा सरस्वती— उत्तम भाग्यवाली यह विद्या देवी है ।

(ऋ. ७।९६)

२७२ मघोनां राधः चोद— धनवानोंके धनको सत्कर्ममें प्रेरित कर ।

२७३ भद्रा सरस्वती भद्रं इत् कृणवत्— कल्याण करनेवाली सरस्वती अधिक कल्याण करती है ।

२७४ अकवारी वाजिनीवती चेतति— सीधा मार्ग बतानेवाली अन्न देनेवाली विद्या देवी स्फुरण देती है ।

(ऋ. ७।९७)

२७५ मीळ्हुषे अनागाः भवेम— सुख देनेवाले उस प्रभुके सामने हम निष्पाप होकर रहें ।

(ऋ. ७।९९)

२७६ ते महित्वं न अश्नुवन्ति— प्रभुकी महिमाको कोई नहीं जान सकता ।

२७७ त्वं परमस्य वित्से— प्रभु परम श्रेष्ठ ज्ञानको जानता है ।

२७८ ते महिम्नः परं अन्तं न जायमानः न जातः आप— हे प्रभो, तेरी महिमाके पारको कोई न जन्मनेवाला और न कोई जन्मा हुआ जान सकता है ।

२७९ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः— यज्ञके लिये प्रभुने विस्तृत स्थान बनाया है ।

(ऋ. ७।१००)

२८० तवसः तवीयान् विष्णुः प्रास्तु— समर्थसे समर्थ यह व्यापक प्रभु हमारा सहायक हो ।

२८१ अस्य स्थविरस्य नाम त्वेषं हि— इस बडे देवका नाम बडा तेजस्वी है ।

२८२ एष विष्णुः एतां पृथिवीं मनुषे क्षेत्राय दशस्यन्— इस व्यापक प्रभुने इस बडी पृथिवीको मानवोंके लिये निवासार्थ दिया है ।

२८३ अस्य कीरयः जनासः ध्रुवासः— इसके भक्त यहां स्थिर होते हैं ।

२८४ सुजनिमा उरुक्षितिं चकार— कुलीन वीर इस पृथिवीको निवासके लिये उत्तम बनाता है ।

(ऋ. ७।१०४)

२८५ ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने अनवायं द्वेषः धत्तं— ज्ञानके द्वेषी, कच्चा मांस खानेवाले, भयंकर रूपवाले, सब कुछ खानेवालेके संबंधमें निरंतर द्वेष धारण करो ।

२८६ दुष्कृतः अनारंभणे तमसि अन्तः प्रविध्यतं— दुष्कर्म करनेवालेका अगाध अन्धकारमें विनाश करो ।

२८७ पाकेन मनसा चरन्तं मां, यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे, असतः वक्ता असन् अस्तु— पवित्र मनसे व्यवहार करनेवाले मुझे भी, जो असत्यभाषणोंसे निंदा करता है, उसका वह असत्यभाषण असत्यही सिद्ध हो ।

२८८ ये पाकशंसं एवैः विहरन्ते, ये स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति, तान् अहये प्रददातु, निर्ऋतेः उपस्थे वा दधातु— मुझ जैसे सत्यवादीको अनेक उपायोंसे जो कष्ट देते हैं, जो अपनी शक्तिके कारण हितकर्ताको भी दूषण देते हैं, उनको अधीन करो अथवा उनको निर्धन अवस्थाको पहुंचा दो।

२८९ सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते, तयोः यत् सत्यं, यतरत् ऋजीयः, तत् सोमः अवति, असत् हन्ति— सत् और असत भाषणोंकी स्पर्धा होती है, जो सत्य और जो सरल होता है, उसका रक्षण सोम करता है जो असत् होता है उसका नाश करता है।

२९० सोमः वृजिनं नैव हिनोति— सोम पापीको नहीं छोडता।

२९१ मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न हिनोति— मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको भी वह नहीं छोडता।

२९२ रक्षः असत् वदन्तं हन्ति, उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते— राक्षसों और असत्यभाषण करनेवालेका वह वध करता है। वे दोनों इन्द्रके बन्धनमें पडते हैं।

२९३ यदि यातुधानः अस्मि अद्य मुरीय— यदि मैं राक्षस बनूं तो आज ही मर जाऊं।

२९४ यदि पुरुषस्य आयुः ततप— यदि मैंने किसीको कष्ट दिये हैं (तो मैं आजही मर जाऊं।)

२९५ यः मा मोघं यातुधान इति आह, सः दशभिः वीरैः वियूयाः— जो मुझे व्यर्थ राक्षस करके कहता है वह अपने दसों पुत्रोंके साथ मर जाय।

२९६ यः मा अयातुं यातुधान इत्याह, यः रक्षः शुचिः अस्मि इत्याह, इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु, सः विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट— जो मैं राक्षस न होते हुए मुझे राक्षस कहता है, जो स्वयं राक्षस होते हुए अपनेको शुद्ध करके पुकारता है, इन्द्र उसका वध बडे शस्त्रोंसे करे, वह सब प्राणियोंमें हीन दशाको प्राप्त हो जाय।

२९७ उलूकयातुं, शुशुलूकयातुं, श्वयातुं, कोकयातुं, सुपर्णयातुं, उत गृध्रयातुं प्रमृण, रक्ष च— उल्लूके समान, भेडियेके समान, कुत्तेके समान, चिडियेके समान, गरुडके समान, गीधके समान चाल चलनवाले जो राक्षस हैं, उनका वध कर और हमारी रक्षा कर।

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मण्डल

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः ३१ + ७१ =	१०२
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः शक्तिर्वासिष्ठो वा	१
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः वसिष्ठपुत्राः वा	१
	१०४

ऋषिवार मंत्र संख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	८३४
शक्तिर्वासिष्ठः	२
वसिष्ठपुत्राः	५
	८४१

देवतावार मंत्रसूची

देवता	मंत्रसंख्या
१ इन्द्रः	१७१
२ अग्निः	११८
३ विश्वेदेवाः	८१
४ अश्विनौ	५६
५ मरुतः	५०
६ उषसः	४१
७ मित्रावरुणौ	३८
८ इन्द्रावरुणौ	१०
९ वरुणः	२७
१० इन्द्राग्नी	२०
११ वैश्वानरोऽग्निः	१९
१२ आदित्याः	१६
१३ सूर्यः	११
१४ विष्णुः	११
१५ सविता	१०
१६ इन्द्रवायू	१०
१७ मण्डूकः (पर्जन्यः)	१०
१८ इन्द्रासोमौ	१०
१९ पर्जन्यः	९
२० वायुः	९
२१ सरस्वती	८
२२ आपः	८
२३ बृहस्पतिः	६
२४ रुद्रः	५
२५ भगः	५
२६ वसिष्ठः	५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मण्डल

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः ३१ + ७१ =	१०२
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः शक्तिर्वासिष्ठो वा	१
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः वसिष्ठपुत्राः वा	१
	१०४

ऋषिवार मंत्र संख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	८३४
शक्तिर्वासिष्ठः	२
वसिष्ठपुत्राः	५
	८४१

देवतावार मंत्रसूची

देवता	मंत्रसंख्या
१ इन्द्रः	३७२
२ अग्निः	११८
३ विश्वेदेवाः	८१
४ अश्विनौ	५३
५ मरुतः	५०
६ उषसः	४१
७ मित्रावरुणौ	३८
८ इन्द्रावरुणौ	१०
९ वरुणः	२७
१० इन्द्राग्नी	२०
११ वैश्वानरोऽग्निः	१९
१२ आदित्याः	१६
१३ सूर्यः	११
१४ विष्णुः	११
१५ सविता	१०
१६ इन्द्रवायू	१०
१७ मण्डूकाः (पर्जन्यः)	१०
१८ इन्द्रासोमौ	१०
१९ पर्जन्यः	९
२० वायुः	९
२१ सरस्वती	८
२२ आपः	८
२३ बृहस्पतिः	६
२४ रुद्रः	५
२५ भगः	५
२६ वसिष्ठः	५

उत्पन्न हुआ। महातपस्वी अगस्त्य ऋषि शम्याके समान उत्पन्न हुआ। [शम्या वह कीलक है जो गाड़ीको बैल जोतनेके स्थानपर लगाया होता है। इसकी ऊंचाई बीस अंगुल होती है। अगस्ति ऋषि जन्मके समय इतना था। इसका माप किया था इसलिये इसको यहां 'मान्य' कहा गया है। अथवा यह कुम्भसे उत्पन्न हुआ इसलिये कुम्भसे भी इसका परिमाण हुआ। कुम्भ यह भी एक मापनेका साधन है। वहांसे जल ले जानेपर वसिष्ठ कमलमें खडा रहा और उस कमलको चारों ओरसे देवोंने सहारा दिया था।" वहांसे निकलनेपर वसिष्ठने बडा तप किया।

यह कथा जैसी यहां लिखी है वैसी ही हुई होगी, ऐसा दीखता नहीं है। क्योंकि उर्वशीको देखते ही मित्र और वरुण इन दो आदित्योंका वीर्य पतन हो गया हो और वह कुम्भमें इकट्ठा हुआ हो और वहां इकट्ठा होते ही उस वीर्यसे इन दो ऋषियोंका जन्म हुआ हो, यह ठीक दीखता नहीं है।

मित्र और वरुण ये दो देव परस्पर पृथक् हैं, ये एक ही नहीं हैं। इसलिये इन दोनोंका वीर्य एक समय ही किसी एक पात्रमें गिरना यह असंभवसा प्रतीत होता है। अतः यह कथा रूपकात्मक होगी। तथापि इसकी पूरी खोज यहां नहीं हो सकती।

अगस्ति ऋषि दक्षिण दिशाको निर्भय करनेवाले थे। इन्होंने समुद्रके पार भी प्रवास किया था। आज 'कंबोडिया' जिस भूविभागको कहते हैं, वह 'कुम्भज-द्वीप' ही है। वहां अगस्ति गये थे। दक्षिणमें आतापी वातापी ये राक्षस प्रवासियोंका वध करते थे। वहां अगस्ति गये और इस अगस्त्यको इन्होंने नरमांस खिलाया। यह बात जब इसको विदित हुई तब इन्होंने बायां हाथ अपने पेटपर फिराया और कहा कि इसको तो मैंने हजम किया है। इस तरह यह अगस्त्य ऋषि वीर वृत्तिका था। इसका प्रवास दक्षिण भारत, बालीद्वीप, जावा, सुमात्रा आदितक हुआ था और वहां इन्होंने वैदिकधर्मका खूब प्रचार किया था। वसिष्ठके कुटुंबी भाई ऐसे प्रभावशाली थे।

वसिष्ठके पूर्वज

यहां वसिष्ठके पूर्वजोंका विचार करना चाहिये। इसका वंशवृक्ष इस तरह है—

प्रजापति
|
मरीची
|
कश्यप (इसकी १३ स्त्रियां थी। अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, विश्वा, वरिष्ठा, सुरभि, विनता, कद्रू। ये दक्षकी पुत्रियां थी और कश्यपके साथ विवाहित हुई थी।)

कश्यप×अदिति
|
१२ आदित्य

[भग-अर्यमा-अंश-" मित्र-वरुण " -धाता-विधाता-विवस्वान्-त्वष्टा-पूषा-इन्द्र-विष्णु]

अर्थात् अपने मित्रावरुण कश्यपके पुत्र हैं। इन मित्रावरुणोंसे पूर्वोक्त प्रकार अगस्त्य और वसिष्ठका जन्म उर्वशीके कारण हुआ। वसिष्ठके पूर्वजोंके विषयमें इतने ही नाम मिलते हैं। मित्र-वरुण देव थे, आदित्य थे, ऐसा ऊपर कहा है। वे राजा थे ऐसा निरुक्तकार लिखते हैं—

> दक्षस्य वाऽदिते जन्मानि व्रते राजाना मित्रा-
> वरुणा विवाससि। ऋ० १०।६४।५
> जन्मनि व्रते कर्मणि राजानौ मित्रावरुणौ परि-
> चरसि। निरुक्त

यहां मन्त्रके पदोंके आधारसे मित्रावरुण राजा हैं ऐसा निरुक्तकारने कहा है। मंत्रोंमें भी मित्र वरुणको राजा कहा है। विश्वराज्यके शासन कर्ममें वे नियुक्त हुए हैं यह इसका अर्थ है।

ऊपर जो वसिष्ठकी उत्पत्तिकी कथा दी है वह मंत्रोंके पदोंसे भी वैसी ही दीखती है, वे मंत्रभाग ये हैं—

> उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसो-
> ऽधिजातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे
> देवाः पुष्करे त्वाददन्त॥ (ऋ० ७।३३।११)

"हे ब्रह्मन् वसिष्ठ! तू (मैत्रावरुणः) तू मित्र और वरुणसे जन्मा और (उर्वश्याः मनसः अधिजातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है। (द्रप्सं स्कन्नं त्वा) जलमें गिरे हुए तुझे (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य ज्ञानसे (विश्वेदेवाः त्वा पुष्करे आददन्त) सब देवोंने तुझे कमलमें धारण किया था।"

मित्र और वरुणका मिलकर वसिष्ठ पुत्र है, उर्वशीका प्रभाव मनपर पड़ा और उससे रेतका पतन हुआ। कमलमें देवोंने इसका धारण किया। इत्यादि कथाके सूचक पद मंत्रमें हैं। इन शब्दोंसे ही पता चलता है कि यह रूपकालंकार है और वास्तविक कथा नहीं है। वसिष्ठके महत्त्वके विषयमें तैत्तिरीय संहितामें निम्न लिखित वचन देखने योग्य हैं—

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन्।
तं वसिष्ठः प्रत्यक्षं अपश्यत्। ...
तस्मै एतान् स्तोमभागानब्रवीत्। तै० सं० ३।५।२

'ऋषि इन्द्रका-आत्माका-प्रत्यक्ष दर्शन न कर सके। उसका दर्शन वसिष्ठने किया।' यह वसिष्ठकी श्रेष्ठताका सूचक वचन है। सबसे प्रथम वसिष्ठने इन्द्रका साक्षात् दर्शन किया, इसलिये वसिष्ठ सब ऋषियोंमें श्रेष्ठ और माननीय बना।

वसिष्ठ ऋषिका तत्त्वविज्ञान

अब वसिष्ठ ऋषिके तत्त्वज्ञानका विचार करना है। इसका विचार करनेके समय 'ऋत और सत्य' का विचार प्रथम आता है। इस विषयमें निम्न लिखित वचन देखने योग्य हैं।

२१४ ऋतं यक्षन्।

'ऋतका फैलाव करो,' ऐसा करो कि लोगोंके व्यवहारमें ऋत आ जावे। यह इन्द्रके वर्णनमें वचन है। इन्द्र ऋतको बढाता है, वैसा मनुष्य करे। वैसा राजा अपने राष्ट्रमें ऋतको बढावे। ऋतका अर्थ 'सत्य, सरलता, सीधापन और कुटिलता रहित व्यवहार' है। मनुष्य सरल व्यवहार करें, उसमें छल, कपट, टेढापन, कुटिलता' न हो। ऐसा मानवोंका व्यवहार हुआ तो इस पृथ्वीपर स्वर्गधाम आ जायगा। ऋत और सत्य ये दो अटल तथा स्थायी नियम हैं। सब विश्व इनपर चल रहा है। अतः ये नियम मानवोंके व्यवहारमें आने चाहियें। ऋतका भाव 'गति, प्रगति' है। 'ऋ गतौ' यह धातु इस पदमें है। गतिमान्, प्रगतिमान् यह भाव इसमें है। सत्यका भाव 'सदा, जो वैसा है।' 'अस् भुवि' यह धातु इस पदमें है, जो है, जो अस्तित्ववान् है। अतः 'ऋत और सत्य' का मूल यौगिक भाव यह है कि 'प्रगति और अस्तित्व'। मनुष्यको अपना अस्तित्व टिकाना चाहिये और मनुष्यको प्रगति भी करनी चाहिये। यह प्रगति सरल सत्य श्रेष्ठ मार्गसे होनी चाहिये। संपूर्ण विश्व ऋत और सत्यपर ठहरा और वह सतत गति कर रहा है। मनुष्यको यह देखना चाहिये और ये दो अटल नियम अपने जीवनमें ढालना चाहिये, उषादेवीके वर्णनमें भी यह आया है—

६१९।१ दिविजा ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना
आ अगात्।

'द्युलोकमें उत्पन्न हुई उषा ऋतसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई आ गयी है।' उषा आती है, वह ऋतके साथ आती है। इसलिये वह आते ही ऋतके कारण वह प्रकाश फैला सकती है और उसको देखते ही सब जगत्को अत्यंत आनंद होता है। जो ऋतवान् है, उससे इसी तरह जगत्में आनंद फैलता है। इसी तरह—

८२८ सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते, तयोः
यत् सत्यं, यतरद् ऋजीयः, तत् इत् सोमो
अवति, हन्ति असत्।

'सत् और असत् भाषण परस्पर स्पर्धा करते हुए मनुष्यके पास आते हैं, उनमें एक सत्य और दूसरा असत्य होता है, सत्यमें भी एक सत्य है और दूसरा ऋजु है। इस सत्य और ऋजुका तो ईश्वर संरक्षण करता है और असत्यका तथा कुटिलका नाश करता है। अर्थात् ईश्वर सत्य और ऋतका संरक्षक है और असत्यका और कुटिलताका नाश करनेवाला है। यहां 'ऋत' के लिये 'ऋजीयः, ऋजु' ये पद आये हैं। इनका अर्थ 'सरलता' है। इसके आगेके मंत्रमें और कहा है—

८२९ सोमः वृजिनं, मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं,
रक्षः असद्वदन्तं हन्ति।

'सोम कुटिलताको, मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको भी, जो असत्य बोलता है उसको विनष्ट कर देता है।' यहां असत्का अधिक स्पष्टीकरण है। 'वृजिन, मिथुया धारयन्, असत् वदन्' कपटी, मिथ्या व्यवहारी और असत्यभाषणी' इनका नाश होता है। इसलिये मनुष्य ऋत और

सत्यका पालन करे। मनुष्यकी शुद्धि आचार व्यवहारमें दीखनी चाहिये। मन-वचन-कर्ममें मनुष्यको ऋत और सत्यका पालन करना चाहिये।

इस विषयमें वसिष्ठ ऋषिके देखे मंत्रोंमें बहुत उपदेश है, पर यहां संक्षेपसे ही देखना है। इसलिये यहां संक्षेपसे ही दिग्दर्शन किया है। इसी तरह आगे भी संक्षेपसे ही बतायेंगे-

अपनी पवित्रता

अपनी पवित्रता रखनेके विषयमें ऋषियोंके उपदेश स्पष्ट हैं। 'शौच-संतोष' ये नियमोंमें प्रथम आ गये हैं। इनका अनुष्ठान इस तरह होता है—

४८ स शुचिदन् भूरिचित् अन्ना सद्यः समत्ति।

अग्निके वर्णनमें यह मन्त्रभाग है। 'वह शुद्ध दांतवाला अग्नि तत्काल बहुत अन्न खाता है।' इस मन्त्रभागका 'शुचि-दन्' यह पद महत्त्वपूर्ण है। देवताके दांत शुद्ध रहते हैं, वैसे उपासकके हों यह प्रेरणा यहां है। उपास्यके समान उपासकने बनना है। अथर्ववेदमें 'अ-शोणा दन्ताः' (अ० कां० १९।६०।१) दांत स्वच्छ रहने चाहिये। दांत मलीन होनेसे शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। उनको दूर करनेके लिये यह प्रेरक वाक्य इस मंत्रमें है। सब दांतोंकी, मुख तथा जिह्वाकी स्वच्छता, तथा सब इंद्रियों और अवयवोंकी स्वच्छता इस तरह सूचित होती है।

चलनेका वेग

अथर्ववेदमें (१९।६०।१ में) कहा है कि 'जंघयोर्जवः' जंघाओंमें वेग हो। अर्थात् चलनेका वेग अच्छा होना चाहिये। मन्दगतिसे चलना उचित नहीं है। यही बात हम वसिष्ठके मंत्रोंमें देखते हैं।

३११ यज्ञं अभि प्रस्थात, रंहसा यात, पत्मन् रंहसा हिनोत।

"यज्ञके स्थानपर वेगसे जाओ, शत्रुपर हमला वेगसे करो और मार्गपरसे भी वेगसे जाओ।' मनुष्यमें वेग और उत्साह होना चाहिये। शिथिलता नहीं दीखनी चाहिये। चलना हो तो वेगसे चलो, शत्रुपर हमला करना हो तो वेगसे करो, यज्ञस्थानपर जाना हो तो भी वेगसे जाओ। वेग अपने जीवनमें रहे, सुस्ती नहीं चाहिये। वेगसे चलनेसे शरीर स्वस्थ रहता है यह यहां पाठक समझें। जो प्रतिदिन ४।५ मील चलते हैं वे स्वस्थ तथा दीर्घायु होते हैं।

कामक्रोधादि अन्तः शत्रु

कामक्रोधादि अन्तःशत्रुओंका दमन करनेके लिये एक मंत्रमें वसिष्ठ ऋषिने कहा है, वह मंत्र देखिये—

८३८ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥

(कोकयातुं) कोकपक्षीके समान आचरण अर्थात् काम, (शुशुलूकयातुं) भेडियेके समान आचरण अर्थात् क्रोध, (गृध्रयातुं) गीधके समान आचरण अर्थात् लोभ, (उलूकयातुं) उल्लूके समान आचरण अर्थात् मोह (सुपर्णयातुं) गरुडके समान आचरण अर्थात् गर्व, (श्वयातुं) कुत्तेके समान आचरण अर्थात् मत्सर ये छः अन्तःशत्रु हैं। इनका दमन करना चाहिये।

'कोक' पक्षी बडा कामी होता है यह चीडिया जैसा है। भेडिया क्रोधके लिये प्रसिद्ध है। गीध लोभी है, स्वार्थ साधनके लिये प्रसिद्ध है, कथाओंमें इसका यही गुण लिखा है। उल्लूको अज्ञानी माना है, गरुड गर्वसे आकाशमें भ्रमण करता है, वह किसीकी पर्वा नहीं करता। और कुत्ता स्वजातियोंसे झगडता रहता है और अन्य जातियोंके संरक्षणके लिये दत्तचित्त रहता है। ये अन्तःशत्रु दमनसे शान्त करने चाहिये। इनको प्रबल होने नहीं देना चाहिये।

९८० वरुणस्य हेळः मः परिवृज्याः

'वरुण देवका क्रोध हमें न कष्ट देवे।' अर्थात् हमसे ऐसा दुराचरण कभी न होवे कि जिससे वरुणके क्रोधका आघात हमपर हो जाय। वरुण देव श्रेष्ठ प्रभु है। वह हमारे आचरणसे प्रसन्न चित्त हो अतः ऐसा उत्तम आचरण हमारा हो जाय।

८३१ (१) यदि यातुधानः अस्मि, अद्य मुरीय।
(२) यदि पुरुषस्य आयुः ततप, अद्य मुरीय।
(३) यः मा मोघं यातुधान इत्याह, स दशभिः वीरैः वियूयाः।

(१) यदि मैं सचमुच राक्षस हूं, तो मैं आज ही मर जाऊं तो अच्छा है, (२) यदि किसी मनुष्यकी आयुको मैंने कष्ट दिये हैं, तो भी मैं आज ही मर जाऊं तो अच्छा ही होगा। (३) पर यदि कोई दुष्ट मनुष्य निष्कारण

राक्षस करके मेरी व्यर्थ निंदा करता है, तब तो वह दुष्ट अपने दसों वीर पुत्रोंके साथ नष्ट हो जाय।

अर्थात् मैं किसीको कष्ट नहीं दूंगा और कोई मुझे कष्ट न दे। हम परस्पर सहकार्यसे मित्रभावसे रहेंगे और आनंद प्राप्त करेंगे। यह परस्पर सहकारका उद्देश्य इस मंत्रमें दिखता है और यही मनुष्यका ध्येय होना चाहिये। इसी तरह—

८३२ (१) यः मा अयातुं यातुधान इत्याह,
(२) यः रक्षः शुचिः अस्मि इत्याह,
(३) स अधमः पदीष्ट

' (१) मैं राक्षस नहीं हूं, तथापि जो मुझे राक्षस कहके निंदता है, (२) और जो स्वयं राक्षस होता हुआ भी अपने आपको पवित्र करके घोषित करता है, (३) वह अधम है, वह नीच अवस्थाको पहुंचे।'

किसीकी व्यर्थ निंदा नहीं करनी चाहिये, ऐसी निंदा करना बहुत बुरा है, ऐसा निंदक अधम कहलाता है और नीच अवस्थाको पहुंचता है। इसलिये कोई मनुष्य किसीकी निंदा न करे। निंदा करनेसे जिसकी वह निंदा करता है उसका कुछ भी बिगडता नहीं, पर उसकी वाणी प्रथम बिगड जाती है और पश्चात् मन बिगडता है और इस कारण उसकी अवस्था निकृष्ट बनती है, इसलिये निंदा करना किसीको भी योग्य नहीं है।

समाजमें किसीको शोक न हो ऐसा प्रबंध होना चाहिये। इस विषयमें वसिष्ठका मन्त्र देखने योग्य है—

२१२ यत् शुरुधः इरज्यन्त, देवजामिः घिवाधि घोषः अयामि।

'जब (शु-रुधः) शोकको रोकनेकी स्पर्धा समाजमें चलती है, तब देवोंतक वह घोषणा पहुंचती है।' समाजमें शोकके सब कारण दूर करनेकी स्पर्धा होनी चाहिये। समाजका प्रत्येक मनुष्य अपने समाजसे सब शोक दुःखके कारण दूर करनेका यत्न करे और इस समाज सेवा करनेमें वे सब स्पर्धा करें। इससे समाज दुःखोंसे दूर हो जायगा और समाजमें सुख बढेगा। तब जनताकी एक ही पुकार, एक ही घोषणा देवोंतक पहुंच जायगी कि दुःखके दूर करनेमें हमें यश मिले। और यह घोषणा देव सुनेंगे और उनको यश देंगे। इस तरह मनुष्योंमें इस विषयकी स्पर्धा होना अच्छा है। मनुष्य यत्न करके सब प्रकारका सुधार कर सकते हैं और व्यक्तिकी तथा समाजकी अर्थात् राष्ट्रकी सुस्थिति बहुत सुधार सकते हैं।

शिस्नदेव समाजमें न रहें।

१९६१५ शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः।

'शिश्नदेव हमारे यज्ञस्थानमें न आवें।' वे हमारे समाजसे दूर रहें। हमारा समाज 'ऋत' मार्गसे जानेका यत्न करता है, उसमें शिश्न देवोंसे विघ्न होगा, इसलिये शिश्नदेव हमारे समाजसे दूर हो जांय! व्यभिचारी, स्त्री विषयक अत्याचार करनेवालोंका नाम शिश्नदेव है। इनसे समाजमें कैसे दुःख फैलता है इसका पता सबको है। इसलिये अपने राष्ट्रमें ऐसे दुष्ट रहने नहीं चाहिये। यह वसिष्ठने देखा हुआ समाजस्वास्थ्यका सिद्धान्त तीनों कालोंमें सत्य है। समाजमें व्यभिचारी दुराचारी लोग नहीं रहने चाहिये।

अज्ञानीकी निंदा

वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें अज्ञानकी निंदा और ज्ञानकी प्रशंसा बहुत है पीछे बताया गया है कि वसिष्ठ ऋषि ज्ञान विज्ञानमें सबसे अधिक थे, इसलिये अज्ञानकी निंदा करना उनके लिये स्वभाविक ही है। देखिये—

५३।४ अचेतनस्य पथः मा विदुक्षः

"मूर्खोंके मार्गसे हम न जांय।" यह इच्छा प्रत्येक मनुष्यको अपने अन्तःकरणमें धारण करनी चाहिये। तथा—

५०९।२ चिकित्वांसः अचेतसं अनिमिषा नयन्ति- ज्ञानी लोग अज्ञानियोंको जागते हुए सुमार्गसे ले जाते हैं। ज्ञानी अज्ञानियोंको सन्मार्गसे प्रमाद न करते हुए चलाते हैं। राष्ट्रमें ज्ञानियोंका यही कर्तव्य है कि वे अज्ञानियोंको सज्ञान करें और जाग्रत रहकर उनको सन्मार्गसे अभ्युदय तक ले जांय।

६९५ अयं देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ज्ञानी अज्ञानीको ज्ञान देता है और ज्ञान विज्ञान संपन्न बना देता है। राष्ट्रमें ज्ञानीको यही करना चाहिये।

८१७ अचितः परा शृणीत्— अज्ञानियोंको दूर करो; अपने समाजमें कोई अज्ञानी न रहे ऐसा यत्न करना चाहिये।

अपने समाजमें सब ज्ञानी बनें। अतः जो अज्ञानी होंगे अथवा अज्ञानी ही रहना पसंद करेंगे, उनको समाजसे बहिष्कृत करना चाहिये। तथा—

५८८।४ मां निचयामि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे गुप्त प्रयत्न अज्ञान बढानेके लिये न होते रहें। तुम्हारे प्रयत्नसे तुम्हारे अज्ञान न बढें।

इस तरह अज्ञानकी निंदा करके राष्ट्रमें सब लोगोंको ज्ञान मिले इसलिये किस तरहके प्रयत्न होने चाहियें और इस राष्ट्रोपयोगी कार्यके लिये ज्ञानी लोगोंने किस तरहके महान प्रयत्न करने चाहिये, इस विषयमें ये निर्देश विचार करने योग्य हैं।

सुशिक्षा

२९१ यथा पुत्रेभ्यः पिता, (तथा त्वं) नः शिक्ष, अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि— जिस तरह अपने पुत्रोंको पिता सुशिक्षण देता है, वैसा तू हमें ज्ञान दे, हम इसी समय ज्ञान तेज प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसा विचार अज्ञानी लोगोंके मनमें चाहिये। । वे अज्ञानी ज्ञान लेनेकी इच्छा करें। ज्ञान तेज प्राप्त करनेकी आतुरता उनमें हो और ज्ञानी लोग उनको ज्ञान देनेका यत्न करें। इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न होना चाहिये।

यदि ज्ञानी अपने ज्ञानी होनेकी घमंडमें रहें और अज्ञानियोंकी ओर न जांय, अथवा अनाडी लोग ज्ञान लेनेकी इच्छा न करें और अपनी स्थितिमें ही सन्तुष्ट रहें, ज्ञानीके पास जानेका यत्न भी न करें, तो कुछ भी उन्नति नहीं हो सकती। इसलिये इस मंत्रमें कहा है कि अनाडी लोगोंमें ' अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि '— हम शीघ्रातिशीघ्र ज्ञान तेज प्राप्त करके तेजस्वी विद्वान बनेंगे ऐसी प्रबल इच्छा चाहिये। ऐसे लोगोंकी सहायता विद्वानोंको करनी चाहिये। इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न हुए तो राष्ट्रका राष्ट्र ज्ञान विज्ञान संपन्न होनेमें देरी नहीं लगेगी।

विद्या देवी

१५३।२ अक्षरा चरन्ती नः परि मा क्रमत्— अक्षर अमरतावाली विद्यादेवी प्रगति करती हुई हमें न छोड देवे।

३८८।२ सरस्वती ईं जुनाति— विद्यादेवी हमें उत्तम कर्मोंमें प्रेरित करती है।

यह विद्याकी प्रशंसा है। विद्याका स्वरूप ' अक्षरा ' है, अक्षरोंके रूपमें विद्या रहती है। ' अक्ष र ' आंख जिसमें रमते हैं ऐसे सुंदर अक्षरोंमें ज्ञान रहता है। यह प्रगति करनेवाला ज्ञान हमें न छोडे और किसी अन्यके पास न पहुंचे। ज्ञानमें हम प्रवीण हों और प्रगति करें। क्योंकि सरस्वती सत्कर्म करनेकी प्रेरणा करती है। विद्या न रही, ज्ञान न मिला तो मनुष्य असंस्कृत रहनेके कारण किसी तरह अपनी उन्नति नहीं कर सकता। इसलिये ज्ञानीके पास जाकर मनुष्यको उचित है कि वह विद्याकी उपासना करे।

सरस्वती वह है कि जो किसी जातिके पास हजारों वर्षोंसे ज्ञान परंपरा द्वारा रहती और प्रवाहरूपसे चलती रहती है। इसलिये विद्यासे सरस्वतीका महत्त्व अधिक है। विद्या केवल ज्ञानरूप है, परंतु सरस्वती जीवित प्रवाहरूप है जो सहस्रों वर्षोंसे चलती रहती है, परंतु सूखती नहीं। हजारों वर्षोंका लाखों विद्वानोंका ज्ञानमय जीवन सरस्वतीके प्रवाहमें मिला रहता है। विद्या ही नदी जैसी अखंड ज्ञान विज्ञानके प्रवाहरूप बनी और सहस्रों वर्ष टिकने लगी तो वह सरस्वती बनती है।

ऊपरके दो मंत्रोंमें ' अक्षरा ' और ' सरस्वती ' ये दो पद हैं। इनका यह भाव मनन करने योग्य है। ' अक्षरा ' का अर्थ ' शब्द विद्या, अक्षरोंमें–शब्दोंमें–रहनेवाली विद्या। ' और ' सरस्वती ' वह है जो ज्ञान नदी सहस्रों वर्ष प्रवाह रूपसे चलती रहती है। राष्ट्रमें अक्षरा विद्या भी बढनी चाहिये और सरस्वतीका प्रवाह भी अखंड चलता रहना चाहिये। दोनोंसे मानवी मनोंपर संस्कार होते हैं, इन संस्कारोंसे मानवी संस्कृति अथवा सभ्यता बनती है। यही संस्कृति मानवी मनपर संस्कार करते करते उसको नारायण भाव तक पहुंचाती है, वही मनुष्यकी अन्तिम अवस्था है कि जहां पहुंचनेके लिये मनुष्य वारंवार जन्म लेता है और अनुभव अपने अन्दर संगृहित करता जाता है।

तीन देवियां

३३।१ भारतीभिः भारती— उपभाषाओंके साथ भारती यह राष्ट्र भाषा है।

३३।२ देवेभिः मनुष्यैः इळा— दिव्य मनुष्योंके साथ मातृभूमि पूज्य है।

११।२ सारस्वतीभिः सरस्वती— विद्या-सरस्वती-देवीके उपासकोंके साथ विद्या देवी मनुष्योंको आदरणीय होनी चाहिये।

ये तीन देवियां सब मनुष्योंको आदर करने योग्य हैं। मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति ये तीन देवियां हैं जो मनुष्यको सुख देती हैं। इनमेंसे एक न रही तो मनुष्य अधूरा बन जाता है। मातृभूमि न रही तो मनुष्यके रहनेके लिये स्थानही नहीं मिलेगा, मातृभाषा न रही तो वह बोलेगा किस तरह और ज्ञान कैसे प्राप्त करेगा? मातृसभ्यता न रही तो मनुष्य पशुवत् ही बन जायगा। इसलिये वेदने कहा है कि ये तीन देवियां मनुष्योंको उपासनीय हैं। मातृभाषा माताकी गोदमें बैठा बैठा बालक सीखता जाता है, मातृभूमि उसको रहनेके लिये स्थान-घर तथा खानेके लिये अन्न देती है। और मातृसभ्यता उसको सभ्य संस्कार संपन्न तथा मानवोच बना देती है। इसलिये ये तीनों आदरणीय हैं।

सुमति

१४८।४ ते सुमतौ शर्मन् स्याम— हम सब तेरी सुमतिमें रहकर सुखी हो जांय।

१७५।४ नः सुमतिं इन्द्रः आगन्तु— हमारी सुमतिसे कहे स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र हमारे पास आ जाय।

१८९।३ मघवन: वसिष्ठाः वयं सुमतौ स्याम— हम वसिष्ठ रीतिसे रहनेवाले धनधान्यसंपन्न होकर तेरी सुमतिमें रहेंगे। तेरी प्रसन्नता हमपर रहे।

२२०।२ ते महीं सुमतिं प्रवविदाम— तेरा बडा उत्तम आशीर्वाद हमें मिले।

५६३।२ पवित्रेण मनसा अच्छ विवक्मि— पवित्र मनसे मैं बोलता हूं।

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसभ्यतासे मनुष्यके अन्दर जो स्वाभाविक रीतिसे संस्कार होते हैं, उससे उसकी मति सुसंस्कारोंसे संपन्न होती है। जो विशेष सुमतिसंपन्न होते हैं उनको देव कहते हैं, उनसे जो कम होते हैं वे विद्वान् अथवा संस्कारसंपन्न ज्ञानी कहते हैं। मनुष्य देवों तथा विद्वानोंकी सुमति प्राप्त करें, उनकी प्रसन्नता संपादन करें, जिससे मनुष्यकी उन्नति होनेका मार्ग सुगम होगा। देवोंके साथ रहकर देव बन जानेकी संभावना होती है। मनुष्य जब अपने अन्दर सुमति बढायेगा, तभी तो देव उसको अपने साथ रहने देंगे और उसपर अपनी प्रसन्नता प्रकट करेंगे। सुमति मानवी उन्नतिके लिये सहायक है इसीलिये उसको प्राप्त करना चाहिये।

देवत्वकी प्राप्ति

९५।१ देवयन्तीः मतयः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धियाँ हों।

२९९ देवयन्तः विप्राः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले विप्र होते हैं।

'देव इव आचरन्ति इति देवयन्तः' देवके समान जो आचरण करते हैं उनको 'देवयन्तः' कहते हैं। इसीका स्त्रीलिंग नाम 'देवयन्तीः' है। बृहस्पति जैसा ज्ञान विज्ञान-संपन्न होना, इन्द्र जैसा शूरवीर और शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ होना, मरुतों जैसा शत्रुपर वेगसे आक्रमण करना, सूर्यके समान प्रकाशना और अन्धकार-अज्ञानान्धकार-को दूर करना, अग्निके समान अग्रणी बनकर लोगोंको सन्मार्गसे ले चलना, और अन्तिम सिद्धितक पहुंचाना, वायुके समान शत्रुका विध्वंस करना और लोगोंको सुरक्षित रखकर उनको प्राणदान देना।

देवत्व प्राप्त करनेका यह भाव है। देवोंका अध्यवसाय देखना और स्वयं वैसा आचरण करना; यह देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान है। यह मनुष्यको ऊंचा बना देता है। देव मनुष्यको अपने आचरणसे सन्मार्ग बताते हैं, मनुष्य वह उपदेश लें और वैसा आचरण करें और उन्नत हो जांय।

सन्मार्ग

३७१ तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात— संतुष्ट होकर देवयान मार्गोंसे वापस आओ।

३७२।३ ऋच्या पथ्यां भेजाते— सीधीके मार्गका सेवन करो; कुमार्गसे न जाओ।

३७४ पथः अर्वाक् कृणुध्वं— मार्ग समीपका करो। जो मार्ग समीपसे पहुंचाता है वैसा मार्ग बनाओ।

३९४ सनवित्तः अध्वा सुगः— चिरकालसे चलता हुआ मार्ग सुगम होता है।

५२७।२ नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु— हमारे सब सुपथ सुगम हों।

५३६।१ साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु — उन्नतिके लिये सहायक मार्गोंसे हमें वे ले जावें।

५१५ ऋतस्य रथ्यः यत् ओहते, तत् मनामहे — सत्यके मार्गसे जो मिलता है, उसीका हम विचार करेंगे।

६१७।३ अंगिरस्तमाः पथ्याः अजीगः — उषा प्रकाशसे मार्ग बताती है।

६२८।१ देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त — देवोंके मार्ग हिंसा रहित हैं।

६२८।२ देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः — देवयान मार्ग धनोंसे युक्त हैं।

देवोंके जाने आनेके मार्ग अच्छे स्वच्छ सुगम और आनंददायक होते हैं। उस मार्गसे जाने आनेवालोंको सुख होता है। जो मार्ग (सनवित्तः) बहुत वर्षोंसे, अनंतकालसे चालू है वह सुगम होता है। इसीलिये वह चालू रहा है। उस मार्गसे जाना सुखकर है। मनुष्य मार्ग ऐसे बनावे कि जो (सुगः अध्वा) जाने आनेके लिये सुगम हो, जाने आनेवालोंको कष्ट न हों। (पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः) मार्ग धनोंसे सुखदायी होते हैं। धनका उपयोग करनेसे मार्ग बनते हैं और उनपर सुख साधन उपस्थित किये जा सकते हैं। देवयान मार्ग प्रकाशका मार्ग है और दूसरा पितृयान मार्ग है वह अन्धकारमय है। तीसरा असुरमार्ग है वह गाढ अन्धकारका और घातपातका मार्ग है वह बड़ा दुःखदायी है इसलिये असुरमार्गसे कोई न जाय। पितृमार्गपर अन्धकार रहता ही है, पर वहां (पितरः पातारः) संरक्षक रहते हैं इसलिये वह असुरमार्गके समान दुःखदायी नहीं होगा। यद्यपि वह देवयानके समान सुखदायक भी नहीं है। अस्तु यहां तीन मार्ग हैं, उनमें देवयान मार्ग सबसे सुगम है। अतः वैसा मार्ग बनाया जाय और वह समीपका हो। (रथ्यः) रथ जाने आनेके लिये सुखकर मार्ग हो। यहां अपने देशमें और नगरमें मार्ग कैसे हों इसका भी वर्णन है और नरका नारायण बननेवाले मार्गका भी उपदेश है। साधक इसका विचार करें और अपने लिये सन्मार्ग पकडें और सुखसे आगे बढें।

बुद्धि

१०।१ प्रशस्तां धियं पनयन्त — प्रशस्त बुद्धि तथा कर्म शक्तिकी प्रशंसा करो।

२३७।१ नरः पार्याः धियः युनजते — नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करते हैं।

२६३।२ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं — बुद्धिमान ज्ञानीके विषयमें सुमति धारण करो, उनकी प्रशंसा करो।

३०७ शुक्रा मनीषा देवी — पवित्र बुद्धि दिव्य होती है।

३१४ धियं दधामि — धारणवती बुद्धिका धारण करता हूं।

३१५ देवीं धियं अभि दधिध्वं, देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं — दिव्य बुद्धि धारण करो और देवोंका गुण वर्णन वाणीसे करो।

३६०।१ धीभिः विवेष — अपनी बुद्धियों और कर्मोंसे व्याप्त होओ। सब ओर परिणाम करो। सबको प्रभावित करो।

३७२।२ वस्वः सुमतिं अश्रेत् — धनके साथ सुमतिको धारण करो।

३८८।२ ददत् धियं उत् भव — दान देते हुए बुद्धिका संरक्षण कर।

४०२।२ समनसः यति स्थ — एक विचारसे यत्नमें रहो, यत्न करो।

५२८।१ धियः अविष्टं — बुद्धियोंकी सुरक्षा करो।

५३८।२ पुरंधीः जिगृतं — नगरधारक बुद्धि जगाओ। सार्वजनिक हित करनेकी बुद्धि जाग्रत करो। विशाल बुद्धि धारण करो।

५६८।१ धीषु नः अविष्टं — बुद्धिके कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो।

६८७।१ अरक्षसं मनीषां पुनीषे — राक्षस भावसे रहित बुद्धिको पवित्र करो।

७०४ शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्रभरस्व — शुद्ध करनेवाली श्रेष्ठ बुद्धिको भर दो परिपुष्ट कर दो।

बुद्धि संकटोंसे पार करनेवाली हो, संकटोंके समय भ्रांत न हो जाय। प्रशंसा करने योग्य बुद्धि हो, अधिक वीर्यवती मनन करनेमें समर्थ दिव्य सामर्थ्यसे युक्त बुद्धि हो। विशाल बुद्धि हो तथा सर्वजनोंका हित करनेवाली बुद्धि हो। बुद्धिमें राक्षसी और आसुरीभाव न हों। अत्यंत इष्ट मति हो अधिक विचार उसमें न आवे। यह बुद्धिका वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इन मंत्रोंमें बुद्धिकी शक्तिके विषयमें कितना सूक्ष्म विचार भरा है।

सज्जनोंके साथ रहनेसे, उत्तम गुरुके पास रहनेसे, सुविद्याके संस्कार होनेसे, स्वयं पवित्रता और शुद्धता धारण करनेसे बुद्धि अच्छी सूक्ष्म होती है। इस समयतक [illegible] जो प्रकाश आये हैं और उनमें जो मार्ग दर्शन हुआ है, उस प्रकार करनेसे उत्तम विशाल प्रभावी बुद्धि प्राप्त हो सकती है।

बुद्धिमें सद्भावना चाहिये, दिव्यता चाहिये शुद्धता चाहिये, कर्मकुशलता चाहिये, अत्यंत कठिन प्रसंगमें भी उसमें [illegible] उत्पन्न होना नहीं चाहिये। जितना भयानक [illegible] प्राप्त हो, उसको [illegible] बुद्धिमें चाहिये, क्योंकि [illegible] ([illegible]) [illegible] साधनोंसे [illegible]। ऐसी बुद्धि होनी चाहिये कि जिससे यह सब [illegible] हो सके।

ज्ञान

[illegible] तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि— तुम्हारे लिये ये ज्ञानके सूक्त मैं शक्ति बढ़ानेके लिये करता हूं।

[illegible] ब्रह्मकृतिं [illegible]— ज्ञानपूर्वक की हुई कृतिका संरक्षण कर।

[illegible] हे [illegible] वीर! ब्रह्मकृतिं जुषाणः— हे ज्ञानी वीर! ज्ञान पूर्वक कृतिका तू सेवन कर।

[illegible] ये पूर्व्याणि ऋषीणां अशृणोः, ते पुरुष्या आसन्— जिन पूर्व ऋषियोंके स्तोत्र तुमने सुन लिया था, वे सभी मानवोंका हित करनेवाले थे।

[illegible] ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु— सत्यके केन्द्रसे ज्ञान चले।

इन मंत्रोंमें (ब्रह्माणि वर्धनानि) ज्ञानके सूक्त शक्तिका संवर्धन करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्म-कृतिं अविष्टः) ज्ञानकी कृतिका संरक्षण करो। क्योंकि (ऋषयः पुरुष्याः) जो ऋषि हैं वे सब मानवोंका हित करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) उनकी जो ज्ञानकी कृति स्तोत्र रूप होती है, उसका आदर करना योग्य है। इसका कारण यह है कि, इस ज्ञानसे ही सब मानवोंका हित होनेवाला है। यह ज्ञान (ऋतस्य सदनात्) सत्य यज्ञके स्थानसे फैलता है, जिससे चारों ओर जाता है और वहां इस ज्ञानसे सबका कल्याण होता है। इसलिये यह ज्ञान सबको आदरके योग्य है। ऐसा यह ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य स्वयं ज्ञानी बने। जो ज्ञानी होगा वही वंदनीय होता है।

ज्ञानीका आदर

२४।१ महः सुवितस्य विद्वान्— बडे कल्याणका मार्ग जो जानता है वह ज्ञानी है।

८८।२ मन्द्रः दमूनाः विशां राम्याणां तमः तिरः ददृशे— आनंदित तथा मनका संयम करनेवाला ज्ञानी वीर प्रजाजनोंके लिये रात्रियोंका अन्धेरा दूर करता है। सबके लिये प्रकाश करता है। ज्ञानी अज्ञान दूर करके अपने ज्ञानसे सबको मार्ग दर्शन करता है। सूर्य वा अग्नि जैसा अन्धेरा दूर करता है वैसा ज्ञानी अज्ञान दूर करें।

८९ अमूरः कविः अदितिः विवस्वान् सुसंसत् मित्रः अतिथिः चित्रभानुः शिव उषसां अग्रे भाति— ज्ञानी दूरदर्शी अदीन-उत्साही, तेजस्वी, उत्तम साथी मित्र पूज्य प्रभावी हमारे लिये कल्याणकारी ऐसा ज्ञानी उषःकालके पहिले ही जागता है।

९४ उशिजः यज्ञं मन्म च तन्वानाः, वनिष्ठः विद्वान् देवयावा वि आ वृषत्— सुखकी इच्छा करनेवाला विद्वान् प्रशस्त कर्म और सुविचारोंका प्रचार करता है, यही दानशील विद्वान् देवत्व प्राप्तिकी इच्छासे विशेष प्रगति करता है। विशेष प्रयत्न करता है।

१७७।५ सूरिषु प्रियासः स्याम— विद्वानोंमें हम अधिक प्रिय हों। हम अधिक ज्ञानी हों और हम विद्वानोंमें प्रिय हों।

४०८ विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु— सब बलवान् ज्ञानी सबका सुनें। ज्ञानी शक्तिशाली हों और वे सबका सुनें और उनको योग्य उपदेश दें।

५१६।१ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ बहुश्रुत ज्ञानी होता है।

इन वेद वचनोंमें ज्ञानीका वर्णन है। ये वचन मनन पूर्वक देखने योग्य हैं। (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह) ज्ञानियोंको धन दो, पर्याप्त दक्षिणा दो। यह आदेश है। ज्ञानी लोग विचारे मांगेंगे नहीं, चुप बैठेंगे; इसलिये उनको भूखा रहना पडेगा। इसलिये यह सूचना दी है कि उनकी आजीविकाका प्रबंध करो। ज्ञानियोंके घरमें विद्यार्थी पढनेके लिये आते हैं, अतः ज्ञानियोंका सब समय पढाईमें जाता है,

वे धन किस तरह कमा सकते हैं ? इस कारण उनको घर बैठे ही धन मिलना चाहिये । ये ज्ञानी (महः सुवितस्य विद्वान्) बडी सुविधाका प्रबंध करनेका ज्ञान रखते हैं । ज्ञानी निश्चिंत हुए तो वे उपदेश द्वारा सबके कल्याणका मार्ग सबको बता सकते हैं । इसलिये उनको धन मिलना चाहिये अर्थात् आजीविकाकी तंगी उनको न सताये, इतना प्रबंध होना चाहिये ।

(अमृतः सहस्वः प्रचेताः कविः अकविषु मर्तेषु निधायि) अमरबलसे युक्त विशेष बुद्धिमान् ज्ञानी अज्ञानी मानवोंमें अपना ज्ञान रखता है और उनको सज्ञान करता है । समाजमें या राष्ट्रमें ज्ञानीका यह कार्य है । अज्ञानीयोंको ज्ञानी बनाना । यह कार्य महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसलिये ज्ञानीको धन देना चाहिये और उसका आदर करना चाहिये ।

(कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी जो होता है वह पवित्र करनेवाला होता है । बाह्य आभ्यंतर शुद्धता वह करता है । अपवित्र भाव कहीं भी रहने नहीं देता । पवित्र करके उन्नतिको पहुंचा देता है । (केतुं दधाति) अज्ञानियोंको वह ज्ञान देता है । ज्ञान ही पवित्रता करनेका उत्तम साधन है । (मन्द्रः विशां तमः तिरः दधे) यह सदा प्रसन्न रहनेवाला ज्ञानी प्रजा जनोंके अज्ञानको दूर कर देता है । सदुपदेश द्वारा वह सबको ज्ञान देता है ।

ज्ञानी कैसा होता है देखिये । (अमूरः कविः) वह मूढता रहित होता है, कवि अर्थात् क्रांतदर्शी, दूरदर्शी होता है, (अदितिः=अदीनः) दीनता उसके पास नहीं होती तथा (अदितिः=अन्नदाता) अन्न उत्पन्न करनेकी आयोजना यशस्वी करता है । (विवस्वान्) सूर्यके समान तेजस्वी होता है, (सुसंसत् मित्रः) उसकी संगतिमें रहने योग्य है, वह उत्तम साथी होता है, हित करनेवाला मित्र होता है, (अतिथिः=अतति) जो उपदेश करता हुआ सतत भ्रमण करता है, भ्रमण करके जनताको सदुपदेश देता है, (शिवः) कल्याण करनेवाले उपदेश देता है कल्याण करनेका मार्ग बताता है । ये पद ज्ञानी कैसा होता है, क्या करता है और उसको क्या करना चाहिये इस विषयका वर्णन करते हैं । इसका मनन करनेसे ज्ञानीके सामाजिक कर्तव्योंका बोध प्राप्त हो सकता है ।

(ब्रह्मणे गातुं विद) ज्ञानके प्रसारका मार्ग वह जानता है और वैसा ज्ञानका प्रसार वह करता है । (सूरिभ्यः सुदिना) ज्ञानियोंके लिये उत्तम दिन प्रकाशित होते हैं क्योंकि उनके ज्ञानसे दुरवस्था दूर होती है और उन्नतिका मार्ग उनके लिये सुगम होता है । इसलिये (सूरयः प्रियासः) ज्ञानी प्रिय होते हैं सबको उचित है कि वे ज्ञानियोंके साथ प्रेमका व्यवहार करें और उनको प्रसन्न रखें ।

(ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) सन्मार्गसे जानेवाला जो बहुश्रुत होता है उसको विप्र कहते हैं । (सत्य-मन्त्राः) इनके विचार सत्य होते हैं, असत् विचार वे अपने पास नहीं रखते । ऐसे ज्ञानी (गुह्या पदा प्रवोचत्) गुह्य विद्याका उपदेश करता है, सबको गुप्तज्ञान देता है और विद्वान् बना देता है । (विद्वान् विप्रः मेधिराय युगाय शिक्षन्) उत्तम प्रकारका विद्वान् ज्ञानी बुद्धिमान शिष्यको उपदेश देकर ज्ञान देता है । धारणा शक्तिवाला शिष्य हुआ तो ही वह उत्तम गुरुसे उत्तम विद्या प्राप्त करता है । जो बुद्धिहीन होता है वह गुरुके प्रयत्न करनेपर भी ज्ञानमें विशेष प्रगति नहीं कर सकता ।

इस तरह ज्ञानीके कर्तव्योंका वर्णन वसिष्ठके सूक्तोंमें हमें मिलता है । ज्ञानी बननेसे ही सब प्रकारका हित होनेकी संभावना है । यह अनुभव इन वचनोंमें टपकता है । ज्ञानके बिना मनुष्यका अभ्युदय या निःश्रेयस कुछ भी बनता नहीं है । इसलिये यावत् शक्य मनुष्यको ज्ञानीके पास रहकर ज्ञान विज्ञान प्राप्त करना चाहिये । यह इन वचनोंका तात्पर्य है ।

ज्ञानके साथ भक्ति

५२१५ मयं अक्रतुः मा— हम भक्तिहीन न हों ।

ज्ञानका महात्म्य इससे पूर्व वर्णन किया है । अब इस वचनमें कहते हैं कि हम भक्तिहीन न हों । ज्ञान और भक्तिका सामंजस्य होना चाहिये । इसका कारण यह है कि ज्ञान भक्तिके साथ न रहा तो नास्तिकता बढ जाती है और भक्ति ज्ञानके साथ न रही तो वह अन्धविश्वास बढाती है । इसलिये अविश्वास भी न बढे और अन्धविश्वास भी न बढे, ऐसा मध्यम मार्ग प्राप्त करनेके लिये ज्ञानसे आंखें भी खोल दी हैं और भक्तिसे हृदयकी सहृदयता भी सिद्ध की है । इस तरह यहां ज्ञान और भक्तिका समन्वय बताया है ।

समाजमें ज्ञानहीन भक्ति न बढे, ज्ञानहीन भक्ति बढनेसे लोग भोले बनेंगे, जिनको कोई ठगकर लूट सकेगा । इसी

[illegible] नष्किहीन ज्ञान भी बुरा है जो नास्तिकता और भोगी [illegible] बढाता है, इससे भ्रष्ट क्रूर राक्षस पैदा होते हैं, इसलिये राष्ट्रमें ज्ञान सार्वत्रिक होना चाहिये और साथ साथ [illegible] भी चाहिये। प्रारंभसे ही ऐसा शिक्षा प्रबंध रहना चाहिये।

घुटने टेककर प्रार्थना

११२ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते— घुटने [illegible] कल्याणके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं।

[illegible] सरस्वती मितज्ञुभिः नमस्ये इयाना सुभगा [illegible] युजा— घुटने टेककर प्रार्थना करनेवालोंसे सरस्वती [illegible] है

[illegible] ' [illegible], मितज्ञवः ' पद हैं। घुटने जोडकर [illegible] घुटने टेककर बैठना और प्रार्थना करना ऐसा इसका [illegible] है। घुटने जोडकर वीरासन होता है और घुटने टेककर [illegible] बनता है। मध्यकालीन पद्धतिके [illegible] कर्ममें एक ऐसा कर्म किया [illegible] घुटने टेककर ही बैठता है और [illegible] है। ' अवानेक्तृत जानुः ' ऐसे पद [illegible] है इसका अर्थ- घुटनोंसे भूमिको स्पर्श [illegible] होता है। [illegible] ऐसे बैठकर प्रार्थना [illegible] नहीं जाता। [illegible] है। [illegible], [illegible], पद्मासन [illegible] है।

[illegible] विजय

[illegible]— जो स्वयं तैर जाता है, [illegible] है, वह विजय प्राप्त करता है।

[illegible] इत् क्षेति— जो स्वयं तैरकर दुःखोंसे [illegible] है वह [illegible] आनंदसे रहता है। और [illegible] है, [illegible] भी होता है।

[illegible] देवासः न— कुत्सित कर्म करने- [illegible] नहीं करते। अच्छा कर्म करनेसे [illegible] होते हैं जिनसे विजय मिलता है।

[illegible] घनं— विजयी वीरका ही धन होता है। [illegible] होता है उसका संबंध ' तरणि ' शब्दसे किया है। ' तरणि ' नाम सूर्यका है, वह अन्धकारसे झगडता है और उसका पराभव करके स्वयं विजयी होता है। तरणि उत्तम तैरनेवालेका नाम है। आकाश रूपी महासागरमें उत्तम रीतिसे तैरता है इसलिये सूर्य विजयी होता है। जो ऐसा दुःखों, संकटों और शत्रुओंसे पार होगा, इनको परास्त करेगा वही विजयी होगा और वही (क्षेति) यहाँ आनंदसे रह सकेगा। त्वरासे अपना कर्तव्य करना और शत्रुओंसे पार होना बीचमें डूबना नहीं, इतनी बातें हैं जिनसे विजय होता है। मनुष्यको विजय चाहिये और विजयसे ही मनुष्यको धन चाहिये। यह धन (जिग्युषः धनं) विजयी वीरको ही मिलता है। इसलिये धन चाहनेवाले मनुष्य वीर बने तथा दुःखोंसे पार होनेका पुरुषार्थ करें।

शरीरका संवर्धन

८४।२ हे सुजात! स्वयं तन्वं वर्धस्व— हे कुलीन! तू स्वयं अपने शरीरका संवर्धन कर। अपने शरीरको हृष्ट पुष्ट तथा बलवान् बनाओ।

१२७ ऊर्जः न-पात्— बलको कम न करनेवाला बन। इस जगत्में जय, यश या धन जो भी कमाना होगा, वह शरीर स्वस्थ तथा बलवान् होनेसे ही होगा। सब यशोंके लिये शरीरकी आवश्यकता है। विना शरीर स्वस्थ रहे कुछ भी नहीं हो सकता। शरीरमें ऊर्ज, ओज, और बल रहना चाहिये। यह (स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्वयं यत्न करो, स्वयं प्रयत्न करो तब हो सकता है। तुम्हारे लिये दूसरा कोई व्यायाम करे और अच्छा अन्न खावे, तो तुम्हारा शरीर हृष्टपुष्ट नहीं हो सकता, उसके प्रयत्नसे उसका शरीर स्वस्थ रहेगा। इसलिये मंत्रमें कहा है (स्वयं) स्वयं प्रयत्न करके शरीरको बढाओ। यह स्वकीय प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाली बात है। विचार, उच्चार, आचार अच्छे रहनेसे शरीर अच्छा रहता है और शरीर बलवान् रहनेसे यश प्राप्त हो सकता है।

तेजस्विता

९।३ वृषा शुचिः धियः हिन्वति, भासा आभाति, पृथु पाजः अश्रेत्— बलवान् पवित्र वीर अपनी बुद्धियों द्वारा शुभ कर्मोंको करता है, अपने तेजसे प्रकाशता है, और बहुत बल या सामर्थ्य प्राप्त करता है।

९४।१ वस्तोः स्वः न अरोचि— दिनके समय जैसा सूर्य प्रकाशता है वैसा प्रकाशित हो जाओ।

१०७।१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी आपृणाः— तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको परिपूर्ण कर दो।

२९।१२ अस्मिन् यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि इसी समयमें हम सब जीव, मनुष्य तेजस्विता प्राप्त करना चाहते हैं।

५२२।१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि अश्रेत्— सूर्य बहुत बडे तेजोंको प्राप्त करता है, वैसा तुम तेजस्वी बनो।

५२२।२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिमा ददर्श — सूर्य मनुष्योंके सब जन्म देखता है।

५२२।३ दिवा रोचमानः समः ददर्श— दिनके समय प्रकाशता है और सबको समान दीखता है।

बल, शुचिता और बुद्धि होनेसे तेजस्विता मनुष्यमें रहती है। (वृषा शुचिः धियः भाः) ये चार शब्द मननीय हैं। बल, पवित्रता, बुद्धि और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर धारण करनी चाहिये। शारीरिक बल, अन्तर्बाह्य पवित्रता, बुद्धियाँ और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर बढानी चाहिये। इसके लिये (पृथु पाजः) बहुत पर्याप्त अन्न चाहिये, वह अन्न शुद्ध और पवित्र चाहिये।

सब मनुष्य चाहते हैं कि (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम तेजस्विता प्राप्त करें। कोई ऐसा नहीं चाहता है कि मैं निस्तेज निर्वीर्य बनूं। परंतु ' अन्न बल, शुचिता, बुद्धि और पश्चात् तेजस्विता ' यह क्रम है। योग्य अन्न न मिला तो शरीरमें बल नहीं बढेगा, शुचिता न रही तो वह बल प्राप्त होनेपर भी टिकेगा नहीं, बुद्धि न रही तो बल प्राप्त होनेपर भी उससे अपनी उन्नति नहीं हो सकती। इस तरह ' अन्न, बल, पवित्रता, बुद्धि ' इनका योग्य साहचर्य मिला तो ही तेजस्विता प्राप्त होती है। यहां बुद्धिमें ज्ञान तथा विद्याका समावेश हुआ है।

(मानुषाणां विश्वा जनिमा ददर्श) मनुष्योंके सब जन्म-वृत्त देखो। इस इतिहासके मननसे पता लग जायगा कि किन दिव्य विभूतियोंने तेजस्विता प्राप्त की थी, वैसा बननेका यत्न करो। और जिन्होंने वैसा आचरण नहीं किया इस कारण जो अवनतिको प्राप्त हुए उनके मार्गसे न जाओ। तेजस्वी पुरुषही श्रेष्ठ होते हैं।

कीर्ति

५२६।३ अने नः अश्रवयत— लोगोंमें हमारी कीर्ति हो। लोगोंमें, राष्ट्रमें, समाजमें हमारा यश चारों ओर फैले। केवल इच्छा मात्रसे वह यश नहीं फैल सकता। ज्ञान, विज्ञान, संपन्नता जिसके पास होगी, जो शौर्य, वीर्य पराक्रममें विशेष प्रभावी होगा, जिसके पास बहुत धन होगा और जो उसका उपयोग दानमें करता जायगा; जनताके कल्याणके कार्य जो करता रहेगा, जो शिल्पी होगा और अप्रतिम कुशल होगा, उसका यश फैलता है। चारों दिशाओंमें ऐसे मनुष्योंकी कीर्ति गाते हैं।

जिन्होंने जनहितके महान महान कार्य किये हैं, उनकाही यश गाया गया है। जो जनताका अहित करते हैं, जो आत्म-भोगके लिये दूसरोंको कष्ट देते हैं। उनका नाम भी कोई नहीं लेता। प्रत्येक मनुष्य यश और कीर्ति तो चाहते हैं, परंतु जनहित करनेके लिये आत्म समर्पण नहीं करते. उनका यश कैसे फैलेगा? इसलिये मनुष्य कीर्ति चाहें और उसके लिये आवश्यक आत्म यज्ञ भी करें।

सौंदर्यकी इच्छा

५२१४ वयं अप्सवः मा— हम सौंदर्यहीन न हों। अर्थात् हम सुन्दर बने, अपनी सुंदरता बढावें।

१४७ पिशा अस्मान् अभिशिशीहि— सौंदर्यसे हमें युक्त करो।

सब लोग सुंदरता चाहते हैं। (वयं अ-प्सवः मा) हम कुरूप न बनें। हमारी सुंदरता बढे। हम सुंदर होवें। (पिशा अस्मान् अभिशिशीहि) सौंदर्यसे हम सुंदर होवें। ऐसी इच्छा मनुष्यकी रहती है। परमेश्वर (सु-रूप-कृत्नु। ऋ०) सुंदर रूप बनानेवाला है। जो सुंदरता इस विश्वमें दीखती है वह परमेश्वर बनाता है। प्रत्येक रूपमें जो आकर्षकता है वह ईश्वरसे प्राप्त है। विश्वभरमें सौंदर्य ओतप्रोत भरा है। आकाशमें सूर्य चन्द्र नक्षत्रका सौंदर्य, पृथ्वीपर पर्वत, नदियां, वृक्ष, वनस्पति, फूलपत्तों आदिकी सुंदरता अपूर्व है। प्रत्येक फूल पत्ता, तृण, वनस्पति आदि सबमें सौंदर्य है। इस विश्वमें सुन्दर नहीं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। चारों ओर सब वस्तुएं सज धज कर सुन्दर बनकर ऊपर आ रही है, ऐसे सुंदर विश्वमें कोई मनुष्य आना चाहे तो वह सुंदर बनकरही आ जावे। अपनी सुंदरता बढानेका यत्न करना मनुष्यको योग्य है। विश्व परमेश्वरका रूप है अतः वह सुंदर है, उसमें सुंदर बनकरही आना चाहिये। वस्त्र, अलंकार, पुष्पमाला आदि धारण करके मनुष्य अपनी

सुंदरता बढावे और वह यज्ञादि समारंभ जहां होते हैं वहां जाय।

मं० ६२७-३५ ये मंत्र उषाका वर्णन करते हुए तरुण स्त्रीका वर्णन करते हैं। तरुण स्त्री किस तरह बर्ताव करे यह उपदेश उषाके मंत्रोंसे विदित हो सकता है। इसलिये यहां उषाके कुछ मंत्र देखिये—

उषा

६२९।१ सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्— सूर्यके पूर्व उदित बहुत दिन थे। सूर्यके उदय होनेके पूर्व बहुत दिन उषःकालके जाते हैं।

६२९।२ उषा जारः इव पर्याचरन्ती, यतीव न— उषा जारकी सेवा करनेके समान पतिसेवा करती है, संन्यासिनीके समान पतिके विषयमें उदास नहीं रहती।

६३२ गवां नेत्री वाजपत्नी— गौओंको चलानेवाली उषा अन्न पकाती है।

सूर्यका उदय होनेके पूर्व (बहुलानि अहानि आसन्) बहुत दिन होते हैं। इन दिनोंमें उषःकालही होता है और सूर्य दर्शन नहीं होता है। उत्तर ध्रुवके पास ऐसी स्थिति है। १० दिन तक वहां उषःकाल ही रहता है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। इस तरह उदित हुआ सूर्य कः मासतक ऊपरही रहता है। यहां सूर्यके उदय होनेके पूर्व उषा उठती है। इससे पतिके पूर्व प्रातःकाल पत्नीको उठना चाहिये यह बोध मिलता है।

उषा उठकर गौओंकी सेवा करती है, अन्नपानका प्रबंध करती है, वैसा स्त्री उठे, गौओंसे दूध निकाले और प्रातःकालके उपहारका प्रबंध करे। जैसी जारिणी अपने जारकी सेवा करती है वैसी प्रत्येक स्त्री अपने पतिकी सेवा करे, संन्यासिनी जैसी पतिके विमुख न होवे। यद्यपि जारिणीकी उपमा हीन है तथापि सेवाकी तत्परताकी दृष्टिसे वह उत्तम है। तत्परताही यहां देखनी है बाकी बातें लेनी या देखनी नहीं है।

धनवाली स्त्री

६३१ मघोनी योषणे नः सुविताय आश्रयेतां— धनवाली दो स्त्रियोंका हमारी सुविधाके लिये हम आश्रय करें। यहां स्त्रियां भी धनवाली होती हैं और वे लोगोंको आश्रय देती हैं। ऐसा कहा है।

१४७ जनिभिः राजा— अनेक स्त्रियोंके साथ राजा रहता है।

६२० मानुषी देवी मर्तेषु अवस्युं धेहि— हे मनुष्योंमें देवि उषा! मानवोंमें संरक्षक संतान दे।

६२३।२ (स्त्री) ऋषिस्तुता— ऋषियोंद्वारा प्रशंसित स्त्री हो।

६२३।३ मघोनी वसूनां ईशे— धनवती स्त्री धनोंपर स्वामित्व करती है।

६२४ शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति— शुभ्र उषा सबसे तेजस्वी रथसे जाती है।

६२४ विधते जनाय रत्नं दधाति— प्रयत्नशील मनुष्यको उषा धन देती है।

स्त्री ऐसी विदुषी हो कि वह धनकी स्वामिनी बन कर रहे। स्त्रीके पास धन हो या न हो इस विषयमें आजके लोग संदेह करते हैं। इस विषयमें वेदने निर्णय दिया है कि (मघोनी योषणे) स्त्री धनवाली हो, स्त्रीके अधिकारमें धन रहे। (मघोनी वसूनां ईशे) धनवाली स्त्री धनोंपर अधिकार चलावे। इस तरह स्त्री धनकी स्वामिनी होती है और उसके अधिकारमें नाना प्रकारके धन होते हैं।

स्त्री (ऋषि-स्तुता) ऋषियों द्वारा प्रशंसित होने योग्य हो। ऐसी विदुषी और ऐसी कर्तृत्व शालिनी हो कि सब विद्वान् उसकी प्रशंसा करें। ऐसी धनवती स्त्री (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्यको वह रत्न देती है, धन देती है। (शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति) श्वेत वस्त्र पहनकर वह सुंदर रथमें बैठकर बाहर जाती है।

यह विदुषी स्त्री (मानुषी देवी) मनुष्योंके घरमें देवीके समान पूज्य होकर रहती है और (अवस्युं दधाति) संरक्षक वीर पुत्र उत्पन्न करती है। विदुषी स्त्रीके अंदर विद्वान् सुयोग्य पतिके द्वारा उत्तम वीर संतान उत्पन्न होते हैं।

(जनिभिः राजा) स्त्रियोंके साथ राजा रहता है इस वेदवचनसे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा लोग अनेक स्त्रियां भी करते हैं। एक पुरुषकी एक स्त्री यह नियम होगा, परंतु कई प्रसंगोंमें एक पुरुषको अनेक स्त्रियां करनेका भी अधिकार होगा। दशरथकी अनेक स्त्रियां थीं, चन्द्रकी अनेक स्त्रियोंका आलंकारिक वर्णन है। इस तरह अनेक स्त्रियां भी होनेके

भी वर्णन है । विचार करना चाहिये कि इन दोनों प्रकारके वर्णनोंकी संगति किस तरह लगाती है ।

अपना घर ।

२११३ नृणां मा निषदाम— दूसरोंके घरमें हम न रहें । हम अपने घरमें रहें । रहनेका घर अपना हो ।

१०३१६ स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय— अपने घरमें प्रदीप्त होकर तेजस्वी बन । अपने स्थानमें जागते हुए प्रकाशित हो । अग्नि अपने वेदीरूप घरमें रहकर प्रदीप्त होता है वैसा मनुष्य अपने घरमें रहे और प्रकाशित होवे ।

१७८१२ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम— हम सब एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले नेता, अग्रगामी होकर अपने घरमें आनंदसे रहेंगे ।

३६११२ नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः— हमारा घर उत्तम वीर संतानसे युक्त हो और धन तथा अन्नसे भरपूर हो ।

३६२ मर्ताः यं अस्ववेशं कृण्वन्तः— मनुष्य उसको अपने निज घरमें रहने नहीं देते । उसको सब भुलाते हैं ।

दूसरेके घरमें नहीं रहेंगे

यहां कहा है कि (नृणां मा निषदाम) दूसरोंके घरमें न रहें । दूसरोंके घरमें रहनेकी आपत्ति हमपर न आवे । हम अपने घरमें रहें । मनुष्योंकी प्राप्ति जहां नहीं होती वहां हम न रहें । जहां मानवोंका आना जाना होता है ऐसे स्थानपर हम रहें, क्योंकि हमें मानवोंमें संघटना करना है । अतः जहां मानव न होंगे वहां रहकर हमें करना क्या है ?

(स्वे दुरोणे समिद्धः) अपने निजके घरमें हम प्रकाशित होंगे, जैसा अग्नि अपने घरमें, वेदीमें रहता है और वहां प्रदीप्त होता है, वैसे हम अपने घरमें रहकर प्रकाशित होते रहेंगे, दूसरोंको सन्मार्ग दिखाते जायगे ।

(सखायः नरः शरणे मदेम) एक कार्य करनेवाले अर्थात् सुसंघटित होकर, नेता अग्रणी बनकर हम अपने घरमें आनन्द प्राप्त करेंगे और अपने अनुयायियोंको भी आनन्द प्राप्तिका मार्ग बतायेंगे ।

(नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः) हमारा घर उत्तम वीर संतानों-पुत्र पौत्रोंसे, धनसे और अन्नसे भरपूर हो । किसी प्रकारकी न्यूनता न हो । वीर पुत्रोंसे युक्त घरमें हम रहेंगे ।

मिट्टीके घरमें नहीं रहेंगे

(७११ अहं मृण्मयं गृहं मो, गमं नु)- मैं मिट्टीकी झोपडीमें नहीं रहूंगा, परन्तु सुन्दर पक्के घरमें मैं निवास करूंगा । जो समझते हैं कि ऋषि लोग मिट्टीके घरोंमें रहते हैं और वैदिक सभ्यता हमें मिट्टीके झोपडीमें रहना सिखाती है, वे इस मंत्रको देखें और समझें कि वसिष्ठ ऋषि तो कहते हैं कि मैं मिट्टीके घरमें नहीं रहूंगा । परन्तु सुन्दर पक्के घरमें रहूंगा । यह ठीक भी है क्योंकि वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलमें हजारों छात्र पढते थे, वे सब मिट्टीकी झोपडीमें किस तरह रह सकेंगे ।

हजार द्वारोंवाला घर

आगे वे ही कहते हैं कि (७०८ बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगम) बडे विशाल आकारवाले हजार द्वार जिसमें हैं ऐसे घरमें जाकर हम निवास करेंगे । (६१७ ध्रुवं छर्दिः) स्थिर टिकनेवाला घर हो । आज तैयार किया, जोरसे हवा आयी, नदीका प्रवाह बढ गया और वह घर बह गया, तो वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलका- कि जहां सहस्रों छात्र पढते थे— क्या बनेगा ! इसलिये पक्के मकानोंमें रहना ही योग्य है । ' बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं ' बडे विशाल परिमाणवाला घर हो जिसको हजार द्वार हैं ऐसा विशाल घर हो । जहां हजारों छात्रोंको पढना है वहां हजार द्वारोंवालाही घर होना चाहिये । एक एक कमरेके लिये दो तीन द्वार रहे तो ३००।४०० कमरेवाला तो यह घर होगाही । ऐसे घरोंमें रहनेकी इच्छा करना योग्य है । सहस्रों छात्रोंके साथ रहनेवाले ऋषि ऐसे ही विशाल मकानोंमें रहते होंगे, इसमें संदेह नहीं हो सकता ।

घरोंका संरक्षण

१३४ द्रुहः निदः पाहि ।

५४८ क्षयः सुमावीः अस्तु ।

' निंदकोंसे और द्रोहियोंसे घरका संरक्षण कर । घर सुरक्षित हो । ' उस घरपर कोई हमला न करे, चोर लुटेरे डाकू उस घरको कष्ट न पहुंचा सकें । ऐसा सुरक्षित घर हो ।

यशस्वी घर हो

(१२४ दीर्घश्रुत् शर्म) अत्यंत कीर्तिसे युक्त घर हो । यशस्वी घर हो । जिसकी कीर्ति सुनकर लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हों ऐसा घर हो ।

(८१४ क्षयेण चेतति) घरसे उत्तेजना मिले, घर देखनेसे उत्साह बढ जाय ऐसा घर हो । घर देखनेसे सब उत्साह दूर हो ऐसा घर न हो ।

मंत्र १९२ कहा है कि 'घोडे गौवें तथा बालबच्चे घरके चारों ओर घूमें, उषःकालके सूर्य किरण (सवं उच्छन्तु) घरको प्रकाशित करें ऐसा घर हो।

(५७२ दुरावत् वर्तिः) घर धनधान्यसे संपन्न हो। दरिद्रता दुःख हानि घरके पास न आवे। ऐसे घर मनुष्यके हों। मनुष्य ऐसे उत्तम घरमें रहें और आनन्द प्रसन्न हों, घर बालबच्चे, पुत्रपौत्रसे युक्त हों और ऐश्वर्यसे संपन्न हों।

उत्तम पुत्र

११।१ शून्ये मा निषदाम— संतानरहित घरमें हम न रहें।

११।२ नृणां अशेषस्त्वः अवीरता मा— मनुष्योंको संतान-हीनता और अवीरता न प्राप्त हो।

११।४ प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम— पुत्रपौत्रोंसे युक्त घरोंमें हम रहें।

१२ यं अश्वी नित्यं उपयाति, प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं नः धेहि— जिस घरके पास घोडेपर बैठे वीर नित्य जाते हैं, वैसा सन्तानवाला उत्तम पुत्रोंवाला औरस संतानोंसे बढनेवाला अपना निवास स्थान हो।

१४ वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः अक्षरा समेति— बलवान शस्त्रधारी सहस्रों धनोंसे युक्त पुत्र ज्ञानोंको प्राप्त करता है। पुत्र ज्ञानी भी हो और वीर तथा धनवान् भी हो।

१५।३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति— उत्तम कुलीन वीरपुत्र ईश्वरकी पूजा करते हैं। वीर ईश्वरकी भक्ति करें।

२१।१ तनयं मा आधक्— हमारा पुत्र न मरे।

२१।२ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत्— मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे दूर न हो।

२१।३ सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः— प्रेमसे बुलाने योग्य रमणीय और बलवान् पुत्र हो।

३४ तत् तुरीयं पोषयित्नु विष्यस्व, यतः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः जायते— वह सत्वर पोषण करनेवाला वीर्य हममें हो, कि जिससे कर्ममें कुशल, उत्तम दक्ष और ईश्वर भक्ति करनेवाला वीरपुत्र उत्पन्न होता है। पुरुषका वीर्य उत्तम निर्दोष हुआ तो संतान उत्तम होती है, इसलिये पुत्रकी कामना करनेवाले लोग अपना वीर्य उत्तम प्रभावशाली बनानेका यत्न करें।

३६ सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्ताम्— जिसके उत्तम तेजस्वी पुत्र है वह माता अदिति यहां आसनपर बैठे। सुपुत्रोंकी माताका सब सत्कार करें।

४५।२ मात्रोः सुक्रतुः पावकः देवयज्यायै आजनिष्ट— मातापितासे उत्तम कर्म करनेवाला पवित्र पुत्र दिव्य कर्म करनेके लिये ही उत्पन्न होता है। ऐसा ही दो अरणियोंसे अग्नि यज्ञ करनेके लिये उत्पन्न होता है।

५२।३ वयं अवीराः मा- हम निर्वीर्य न बनें, हम पुत्र हीन न बनें।

५३।२ अन्यजातं शेषः नास्ति— दूसरेका पुत्र अपना औरस पुत्र नहीं हो सकता, औरस पुत्रकी योग्यता दत्तक पुत्रको नहीं हो सकती।

५४।१ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि— दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, अपने पास आनेवाला होनेपर भी औरस पुत्रके समान ग्रहण करने योग्य नहीं होता।

५४।२ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि— दूसरेका पुत्र मनसे अपने औरस पुत्रके समान मानने योग्य नहीं होता।

५४।३ सः (अन्योदर्यः) ओकः एति— वह दूसरेका पुत्र अपने मातापिताके घरही जायगा। उसका मन इधर नहीं लगेगा।

५४।४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु— नवीन बलवान् और शत्रुका पराभव करनेवाला औरस पुत्र हमें उत्पन्न हो।

१८६।१ वृषा वृषणं रणाय जजान— बलवान् पिताने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिये निर्माण किया है।

१८६।२ नारी नर्यं ससूव— जो मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करे। मनुष्यका यह ध्येय रहे।

१८६।३ यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति— जो मानवोंका हित करनेवाला तथा सेनाका संचालन करनेवाला प्रभावी नेता हो सकता है ऐसा पुत्र मातापिता उत्पन्न करें।

१८६।४ स इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः— वह पुत्र स्वामी, सत्ववान्, गौओंकी खोज करनेवाला तथा शत्रुका धर्षण करनेवाला हो।

२१५ जरित्रे शुष्मिणं सुविराधसं— ज्ञानीको बलवान् कलाओंमें प्रवीण पुत्र हो।

२२०।१ वृषणं शुष्मं वीरं वृधन्— हमें बलवान् और सामर्थ्यवान् पुत्र चाहिये।

२२०।२ हर्यश्वः सुशिप्रः— पुत्र शीघ्रगामी घोडे और उत्तम कवच धारण करनेवाला हो ।

२२०।३ विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः षरीवृजत्— वह वीर पुत्र सब प्रकारके संरक्षक साधनोंसे युक्त, उत्साही और निपुणोंके साथ रहे और शत्रुओंको दूर करे।

२२१।४ नः श्रोमतं अधिधाः— हमें धन कमानेवाला पुत्र चाहिये ।

२३० पुत्राः पितरं न सबाधः समान दक्षाः अवसे हवन्ते— पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं, उस तरह इकट्ठे मिले समान भावसे दक्ष रहनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रको बुलाते हैं ।

२२६ सुपाणिः त्वष्टा पत्नीः वीरान् दधातु— निर्माता प्रभु हमारी पत्नियोंमें उत्तम वीर निर्माण करे ।

४०१ विभृत्रासः पुत्रासः मातरं— भरण पोषण होनेवाले पुत्र माताकी गोदमें बैठते हैं ।

४४३ पिता पुत्रान् इव नः जुषस्व— पिता पुत्रोंका पालन करता है वैसा तुम हमारा पालन कर ।

५१०।२ तस्मिन् तोकं तनयं दधानाः— उस शुभ कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको रखेंगे, प्रवीण बनायेंगे ।

५६३।३ सूनुः पितरा न विवक्मि— पुत्र पिताके साथ जैसा बोलता है, वैसा मैं बोलता हूँ ।

५६८।३ तोके तनये तूतुजानाः— बालबच्चोंके लिये त्वरा करो ।

७६४ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः— स्त्रीवाले पुत्र चाहनेवाले दाता अग्रेसर हों ।

संतानोंसे भरे हुए घर हों

घरका भूषण संतान है । जिसमें बालबच्चे हैं ऐसा घर हो । (११ शूने मा निषदाम) हम संतान रहित घरमें नहीं रहेंगे । हम ऐसे घरमें रहेंगे कि जिस घरमें बाल बच्चे बहुत हों । बाल बच्चोंसे शून्य घरमें रहनेका दुर्भाग्य हमें कदापि प्राप्त न हो । (११ प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम) जिस घरमें बाल बच्चे बहुत हैं उस घरमें हम रहेंगे । (११ नृणां अशेषसः मा) मनुष्योंके दैवसे पुत्रहीनता न हो । पुत्र हीनता बडी बुरी अवस्था है । यह महादुर्दैव है । पुत्र-हीनता हमें कदापि प्राप्त न हो । (१२ प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं नः धेहि) बालबच्चोंसे भरा, अपने निज संतानोंसे परिपूर्ण, औरस पुत्रोंसे बढनेवाला घर हमें मिले । हमारे घरमें औरस पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र हों । पुत्र पौत्रोंसे हमारा घर भरा हो । (५२ वयं अवीरा मा) हम कभी वीर संतानसे रहित न हों अर्थात् हमें सन्तान हों और वीर सन्तान हों ।

दत्तक पुत्र नहीं चाहिये

दत्तक पुत्रकी निंदा वसिष्ठ मंत्रोंमें दीखती है । (५३ अन्यजातं शेषः नास्ति) दूसरेका गोदमें लिया दत्तक पुत्र औरस संतानकी योग्यता नहीं पा सकता । औरस संतानका मूल्य कुछ और ही है ।

५४ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि ।

दूसरेके पेटसे जन्मा उत्तम सेवा करनेवाला, प्रेमसे पास आनेवाला होनेपर भी वह औरसपुत्र जैसा स्वीकारके योग्य नहीं होता । वह (अ-रणः) न लडनेवाला भी हुआ तो भी वह औरस जैसा नहीं समझा जायगा । जो दूसरेका पुत्र है वह दूसरेकाही रहेगा और जो अपना होगा वह अपनाही रहेगा । इसलिये दत्तक पुत्र लेनेका दुर्दैव हमारे नसीबमें न हो । हमारे पास अपना औरस वीर पुत्र हो । ऐसे सुपुत्रोंसे हमारा घर भरा रहे ।

५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि ।

' दूसरेका पुत्र दत्तक लेनेकी बात मनमेंभी लाने योग्य नहीं है । ' वह दूसरेका पुत्र (५४ सः ओकः एति) अपने घर ही जायगा । अपने मातापिताओंके पास ही आकर्षित होगा । वह हमारे पास कदापि नहीं रहेगा । इस दत्तक पुत्र लेनेकी बात मनमें लाने योग्य भी नहीं है ।

ज्ञानी वीर धनी पुत्र हो

केवल औरस सन्तान नहीं चाहिये, परंतु वह ज्ञानी वीर पुरुषार्थी विजयी धन प्राप्त करनेमें समर्थ ऐसा संतान हो—

१४ वाजी वीळुपाणी सहस्रपाथः तनयः
अक्षरा समेति ।

बलवान्, शस्त्रधारी, सहस्रों मार्गोंसे धन कमानेवाला पुत्र ज्ञानी भी हो । पुत्र ऐसा सुलक्षणी होना चाहिये । (१५ सुजाताः वीराः परिचरन्ति) उत्तम कुलीन सुपुत्र जिस समय अपनी सेवा करनेके लिये तत्पर रहते हैं उस समय अपने घरका सच्चा आनंद मिल सकता है । इस तरह इस संसारसे आनंद प्राप्त करना चाहिये ।

२१ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत् ।

' जनताका हित करनेवाला वीर पुत्र हमें उत्पन्न हो और वह हमसे दूर न जाय । ' यही पुत्र घरकी शोभा है । (२१ सुहवः रण्व-संदृक् सहसः सूनुः)— उत्तम प्रेमसे बुलानेयोग्य रमणीय और बलवान् पुत्र हो (३४ कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः) पुरुषार्थी, दक्ष, ईश्वरभक्त और वीर पुत्र हो ।

५४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु ।

' नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ पुत्र हमें उत्पन्न हो । ' (१८६ वृषा रणाय जज्ञे) बलवान् पुत्र शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये उत्पन्न होता है ऐसा वीरपुत्र हमें चाहिये । (१८६ नारी नर्यं ससूव) पत्नी जनताका हित करनेवाले सुपुत्रको उत्पन्न करती है । सब लोगोंके कल्याण करनेवालेको ' नर्य ' (नरेभ्यो हितं) कहते हैं । ' पाञ्च-जन्यं ' (पञ्चजनेभ्यो हितं) पांचों प्रकारके मनुष्योंका हित करनेवाला पुत्र हो, सार्वजनिक हित करनेके कार्यमें तत्पर पुत्र हो यह भाव यहां है ।

१८६ यः नृभ्यः सेनानीः अस्ति ।

जो पुत्र मानवोंका हित करनेके लिये सेनानीका कार्य कर सकता है ऐसा पुत्र हो । मनुष्य (७६४ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः) पत्नी करें, पुत्रवान हों, दान दें और अप्रमादमें रहकर धुराका कार्य करें ।

यह इच्छा होनी चाहिये । मेरे पुत्र विद्वान् हों, वीर हों, युद्धमें जानेके लिये उत्सुक हों, अनेक उद्योग करके धन कमानेवाले हों, धन कमाकर उत्तम रीतिसे दान दें, उत्तम सत्पात्रमें दान दें, जनताका सुख बढानेके कार्य करें, कार्य करनेमें तत्परतासे आगे बढें, अनुयायियोंको लेकर आगे बढें, अपना, अपने घरका तथा राष्ट्रका संरक्षण करें, अपने घरको शत्रुकी बाधा होने न दें (२१ तनये मा आधक्) घरके बालबच्चे न मरें । वे दीर्घजीवी हों ।

(३६ सुवृक्ता बर्हिः आस्तां) उत्तम वीर पुत्रोंकी माताका सन्मान होता रहे । समाजमें वीर पुत्रोंका प्रसव करनेवाली माताका आदर हो ।

वसिष्ठ मंत्रोंमें पुत्रके विषयमें ये भाव प्रकट हुए हैं । अत्यंत श्रेष्ठ वीर (७२५ सु अपत्यानि चक्रुः) उत्तम संतान निर्माण करते हैं । सुप्रजा निर्माण करनेका यत्न हरएकको करना चाहिये ।

गोरक्षण

१४९।१ दुधुक्षन् सुयवसे धेनुं उपससृजे— दूध दुहनेकी इच्छा करनेवाला उत्तम घासके पास अपनी गौको पहुंचाता है ।

१४९।३ विश्वः इन्द्रं गोपतिं आह— सब कोई इन्द्रको गौओंका स्वामी करके वर्णन करता है ।

१५२।१ यः आर्यस्य सधमाः गव्याः तृत्सुभ्यः आ अनयत्— जो इन्द्र आर्यके घरमें रहनेवाले गौओंके झुण्ड हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है । ' सध-माः गव्याः '— गौवें घरमें रहती थीं । गोशालामें साथ साथ बांधी जाती थीं ।

२१५।१ स्तर्यः गावः न आपः चित् पिप्युः— प्रसूत न हुई गौओंकी तरह जल प्रवाह बहते हैं ।

२३५।५ नः गोमति व्रजे त्वं आभज— हमें गौओंके बाडेमें स्थान दे ।

२७५ यस्य रक्षिता इन्द्रः मरुतः च स गोमति व्रजे गमत्— जिसके रक्षक इन्द्र और मरुत् हैं, वह गौओं-वाले बाडेमें जाता है, उसके पास बहुत गौवें होती हैं ।

३८८।३ गोभिः अश्वैः नृभिः प्रजनय, नृवंतः स्याम— गौएं, घोडे और वीरोंसे हमें युक्त कर, इनसे हम वीरवान बनें ।

५८० शचीभिः स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं— अपनी अद्भुत शक्तियोंसे वंध्या गौको दुधारू बनाया ।

५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धन्— गौ दूधसे उसे पुष्ट करती है ।

६२५।३ उस्रियाणां ददत्, गावः उपसं वावशंत— उषा गौओंको देती है, गौवें उषाको चाहती हैं ।

७०० अघ्न्या त्रिःसप्त नाम बिभर्ति— गौके २१ नाम हैं ।

९१९ गोसनिं वाचं उदेयं, वर्चसा मां अभ्युदिहि, त्वष्टा मे पोषं दधातु— गोसेवाकी प्रतिज्ञा मैं करता हूं, मुझे तेजस्वी कर, त्वष्टा मेरा पोषण करे ।

१०८ पशून् गोपाः— पशुओंका संरक्षण कर ।

वैदिक धर्ममें गोरक्षणका महत्त्व अत्यंत है । विना गौके यज्ञ नहीं और विना यज्ञके वैदिक धर्म नहीं । इतना गोरक्षणके साथ धर्मका संबंध है (१४९ सुयवसे धेनुं

उपससृजे) उत्तम जौके घासको खानेके लिए गौको छोड़ता हूं। गौ विना बंधनके घासके खेतमें जाय और पर्याप्त घास स्वेच्छासे खाय। इस तरह गौवें हृष्टपुष्ट हों।

(२१७ नः गोमति व्रजे आभज) हमें गौओंके बाडेमें रख। जहां गौवें हों वहां हम रहेंगे। इनका प्रेम गौओंपर होना चाहिये। जैसे घरके मनुष्य वैसी ही गौवें घरमें रहें। घरके मनुष्य और घरकी गौओंके कोई फरक नहीं होना चाहिये। जिसका संरक्षण इन्द्र करता है, वह गौओंके बाडेमें रहता है।

वन्ध्या गौको दुधारू बनाना

अश्विनी कुमार इस वन्ध्या गौको दुधारू बनानेकी विद्याको जानते थे। उन्होंने ' स्तर्यं अघ्न्यां शचीभिः अपिन्वतं ' (५८०) वंध्या गौको पुष्ट करके दुधारू बनाया था। (५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धयत्) गौ अपने दूधसे उस कृश मनुष्यको पुष्ट करती है। मनुष्यको हृष्ट पुष्ट बनानेके लिये गौका दूध अच्छा होता है। इसलिये (२१९ गोसनिं वाचं उदेयं) गोसेवा की ही बात करनी चाहिये। गोसेवा करना ही मनुष्योंका धर्म है। मनुष्य पुष्ट होना चाहता है और तेजस्वी होना चाहता है। यह गौके दूधसे हो सकता है, इसलिये गौसेवा करना मनुष्योंका कर्तव्य है।

गौसे पञ्चगव्य उत्पन्न होता है जो मनुष्यके लिये अत्यंत हितकारी है। गौके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थ हितकारी हैं। इस तरह गौ मनुष्यके लिये हितकारी है।

उत्तम दिन

१९।२ यस्य बर्हिः देवैः आससाद अस्मै सुदिनानि भवन्ति— जिसके घरके आसनपर श्रेष्ठ विद्वान आकर बैठते हैं, उसके लिये उत्तम दिन आते हैं।

२५१।१ अहा सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन हों।

जिसके घरमें आकर ज्ञानी पुरुषार्थी वीर बैठते हैं वे दिन उस घरके लिये सुदिन होते हैं। श्रेष्ठोंकी संगतिसे दिन सुदिन बनते हैं। श्रेष्ठ पुरुषोंकी अनुकूलतासे सब दिन सुदिन होते हैं। प्रत्येक दिनको सुदिन करनेका यही एक उपाय है। आप श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी संगतिमें अपने दिन व्यतीत कीजिये, तो वे दिन आपके लिये सुदिन हो जायगे। अर्थात् दुष्ट मनुष्योंके साथ जो दिन जायगे वे दिन अच्छे होनेपर भी वे कुदिन या दुर्दिन ही कहे जायगे।

दीर्घ आयु

२४ आयुषा अविक्षितासः— आयुसे हम क्षीण न हों। हम दीर्घायु बनें।

५१६।३ कृत्वा शरदः आपृणैथे— पुरुषार्थसे अनेक वर्षोंको पूर्णतया प्राप्त कर सकते हैं।

५२६ नः जीवसे गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं— हमारे दीर्घ जीवनके लिये हमारा मार्ग घीसे सिंचित हो। हमें भरपूर घी मिले।

५१९ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं— सौ वर्ष देखें और सौ वर्ष जीवें।

१४७ सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीर होकर सौ वर्ष आनन्दमें रहेंगे।

(आयुषा अविक्षितासः) आयुसे हम क्षीण न हों, हमारी आयु कम न हो। जो आयु हमें मिले वह रोगादि पीडाओंसे जर्जरित न हो। उत्तम स्वास्थ्यके साथ हमें दीर्घ आयु मिले। (कृत्वा शरदः आपृणैथे) पुरुषार्थकी भरपूर आयु हमें प्राप्त हो। हमें दीर्घ आयु मिले और उसमें हमसे भरपूर पुरुषार्थ होते रहें। घी, गौका घी दीर्घ आयु देनेवाला है इसलिये वह हमें भरपूर मिलता रहे। हम सौ वर्ष जीते रहें और वीरताके कर्म करते हुए आनन्दसे रहें। हमारी दीर्घ आयु हो।

२१२ जनेषु स्वं आयुः नहि चिकीते— लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं प्रकाशित करता।

६३८।१ नः आयुः प्रतिरंती— हमें दीर्घ आयु चाहिये। लोगोंको अपनी आयु कितनी होगी, अर्थात् मैं कितनी आयुतक जीवित रहूंगा, इसका पता नहीं होता। इसी तरह अपनी आयु इतनी है यह भी ठीक ठीक कोई नहीं बताना चाहता। पर प्रत्येक चाहता है कि हमें अतिदीर्घ आयु प्राप्त हो। केवल इच्छासे दीर्घ आयु प्राप्त होगी ऐसा मानना उचित नहीं है। (कृत्वा शरदः आपृणैथे) पुरुषार्थसे सौ वर्ष पूर्ण हो सकते हैं। इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। सुनियमोंका पालन करना चाहिये, मनका संयम करना चाहिये, विचार उच्चार आचार पर स्वाधीनता चाहिये। सत्पुरुषोंकी संगतिमें रहना चाहिये। मन पवित्र विचारोंसे भर देना चाहिये। इत्यादि रीतिसे रहनेवाला पुरुष दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है।

ईश्वर

२८७ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः— इस स्थावर जंगम विश्वके अपनी दृष्टीसे देखनेवाले स्वामी ईश्वरको हम प्रणाम करते हैं।

२८८ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते— द्युलोकमें तथा पृथिवीपर तुम्हारे समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान् न हुआ और न होगा। और न इस समय है।

२८३ अस्य विष्णोः देवस्य वयाः— इस विष्णु सर्वव्यापक देवकी शाखाएं अन्य देव हैं। सब विश्वही उस विष्णु देवकी शाखाएं हैं।

५०४।१ एष नृचक्षाः सूर्यः उभे जमन् उदेति— वह मनुष्योंका निरीक्षक सूर्य दोनों लोकोंमें उदय होता है। वह सबका निरीक्षण करता है।

५०४।२ सः विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः— वह ईश्वर स्थावर जंगमका रक्षक है।

५०४।३ मर्त्येषु ऋजु वृजिना पश्यन्— वह ईश्वर मानवोंमें सरल और कुटिल को देखता है।

इससे पूर्व जो आकांक्षाएं प्रकट की हैं, सुपुत्र हो, वह वीर और ज्ञानी तथा प्रभावी हो, दीर्घायु प्राप्त हो, जीवन यशस्वी होना आदि जो मनुष्यकी आकांक्षाएं हैं वे सिद्ध होने और करनेके लिये ईश्वरकी भक्ति करना एक प्रमुख साधन है। अन्य अनेक साधन हैं पर उन सबमें ईश्वरकी भक्ति मुख्य साधन है।

ईश्वर कैसा है यह जानना, उसके श्रेष्ठ गुणोंका मनन करना और उन गुणोंको अपने जीवनमें ढालना यह साधन है। जीवका शिव बनना है, वह शिवके गुण जीवमें ढालनेसे ही होनेकी संभावना है।

वह स्थावर जंगम विश्वका स्वामी है (जगतः तस्थुषः ईशानं) सब विश्वका वह सच्चा अधिपति है। वह अधिपति अपने सामर्थ्यसे बना है, किसीकी दयासे नहीं। उसके समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान नहीं है इसलिये वह सबका स्वामी है। वह (स्वःदर्शः) अपनी दृष्टीसे सबका निरीक्षण करता है, दूसरे प्रेषितकी सिफारस उसको नहीं लगती। वह सर्वत्र है और सबको अपनी आंखसे देखता है और (मर्त्येषु ऋजु वृजिना पश्यन्) मानवोंमें सरल कौन है और कुटिल कौन है यह जानता है। यह कार्य वह अपनी शक्तिसे करता है। (त्वावान् अन्यः न जातः जनिष्यते) तुम्हारे समान दूसरा कोई न समर्थ हुआ और न है तथा न कोई होगा। वह स्थावर जंगमका रक्षक है और सब अन्य देव तथा पदार्थ वृक्षके आश्रयसे शाखाएं रहती हैं वैसे हैं। संपूर्ण विश्व इसीके आश्रयसे रहता है। वह सबका उपास्य है।

ईश्वर उपासना

१४८।१-२ त्वा पस्पृधानासः देवयन्तीः मन्द्रा गिरः उपस्थुः— तुम्हारे वर्णन करनेकी स्पर्धा करनेवाली देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छुक आनंद बढानेवाली हमारी वाणियां तुम्हारी उपासना करती हैं।

१९७।२ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्— तेरी महिमाको रजोगुणी लोक नहीं जान सकते। तेरी महिमाको वे लोक नहीं जान सकते।

२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति— सम्माननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते। तुम्हारी संपूर्ण महिमा कोई जान नहीं सकता।

२०९ ते राधः वीर्यं न उत् अश्नुवन्ति— तेरे धन और पराक्रमका पार नहीं लग सकता।

२२१ महे उग्राय वाहे वाजयन् एष स्तोमः अधायि— बडे उग्र वीरके अर्थात् तुम्हारे प्रभावका वर्णन करनेवाला यह काव्य किया है। यह प्रभुकी स्तुति है।

२२७।१ हर्यश्वाय शूषं कुत्सः— उत्तम घोडोंको वेगवान् साधनोंको अपने पास रखनेवाले वीरकी प्रशंसा गाते हैं।

२२९ नवीयः उक्थं जनये— नवीन स्तोत्र मैं बनाता हूं। नृवत् शृणवत्— वह मनुष्योंमें बैठकर सुने।

२३६ क्षमि अधि यत् विषुरूपं अस्ति, तस्य जगतः चर्षणीनां राजा इन्द्रः— पृथ्वीपर जो विरूप या सुरूप है उस जंगम प्रजाओंका राजा इन्द्र है। स्थावरका भी वही प्रभु है।

२४०।२ ते महिमा व्यानट्, ऋषिणां ब्रह्म पासि— तेरी महिमा जिनमें फैली है उन ऋषियोंके काव्योंका संरक्षण तू करता है।

२९६।१ वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी— तुम्हारे काव्यसे पितरोंकी प्रसन्नता होती है। तुम्हारे काव्योंका गान सुननेसे सब आनंदित होते हैं।

२९६।४ शक्करीषु बृहता रथेण इन्द्रे शुष्मं आदधातन— बडे स्वरसे सामगान करके इन्द्रका यशगान करो। बड स्वरसे प्रभुका यश गाओ।

इस तरह वेदमें तथा वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें ईश्वरके गुणोंका वर्णन अर्थात् उस प्रभुकी महिमाका वर्णन है। यह इसलिये किया है कि मनुष्य इस आदर्श पुरुषका वर्णन देखे और सुने और वैसा बननेका यत्न करे।

ईश्वर अपने सामर्थ्यसे सब विश्वका राज्य करता है। इससे स्पष्ट है कि जिसमें सामर्थ्य होगा, वह इस पृथ्वीपर राज्य करेगा। ईश्वरसे अधिक सामर्थ्यवान् कोई दूसरा नहीं है, वैसेही हम अद्वितीय सामर्थ्यवान बनें तो हम भी अपने स्थानपर टिके रहेंगे। सामर्थ्यसे सब कोई टिक सकता है। वह ईश्वर सबका निरीक्षण करता है हम भी अपने आधीन जो है उसका निरीक्षण करें और योग्य कौन है और अयोग्य कौन है यह जानें। इस तरह ईश्वरके गुण अपने अन्दर ढाले जाते हैं। यही उपासनासे लाभ होता है।

मातृभूमि

२७४ वसवः देवाः उमया रन्त— धनवान् निवास कर्ता विबुध मातृभूमिके साथ रमते रहते हैं।

जो निवास करानेवाले होते हैं उनको वसु कहते हैं। (ये निवासयन्ति ते वसवः) जनताका निवास सुखका करनेमें जो यत्न करते हैं, सहायक होते हैं वे 'वसु' हैं। ये वसुदेव सबका निवास करानेवाले हैं। ये (उमया रन्त) भूमिके साथ रमते है। मातृभूमिके साथ रहनेमें प्रसन्न होते हैं। जो मातृभूमिके साथ रहनेसे प्रसन्न रहते हैं वेही जनताका सुखसे निवास करनेवाले होते हैं। जो अपनी मातृभूमिका द्रोह करेंगे, जो मातृभूमिके शत्रुओंका हित करनेके लिये तत्पर रहेंगे वे जनताका निवास सुखमय करनेवाले नहीं होंगे।

'वसवः उमया रन्त' निवास करानेवाले मातृभूमिके साथ रमते हैं। मातृभूमिके साथ रमनेवाले, मातृभूमिकी भक्ति करनेवाले जनताका निवास मातृभूमिमें सुखसे हो, इसके लिये बलवान् होंगे। अथर्ववेदमें काण्ड १२।१ में मातृभूमिका सूक्त है। उस सूक्तमें ६२ मंत्र हैं। उन मंत्रोंका मनन पाठक यहां करें। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।' 'तुभ्यं बलिहृतः स्याम' यह मातृभूमि हमारी है और मैं उसका पुत्र हूं। मैं इस माताके लिये अपना बलि देता हूं। ये उस सूक्तके मंत्र हैं। यह सब सूक्त यहां देखने योग्य है।

संघटना

९१ गणेन अक्षकृतः मा रिषण्यः— संघके द्वारा ज्ञानका प्रसार करनेवालोंका नाश न कर। संघसे ज्ञान प्रचार करनेवालोंकी सहायता करो।

२९८।१-२ गो-अजनासः दण्डा इव भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्— गौमें चलानेके दण्डे जैसे भरत लोग निर्बल, तथा बालक जैसे थे। असंघटित और बिखरे हुए थे।

२९८।३-४ तृत्सूनां पुरएता वसिष्ठः अभवत्, आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्तः— तृत्सूओंका नेता वसिष्ठ हुआ, तबसे तृत्सुओंकी प्रजाएं बढ गयीं, उन्नत हुई, संघटित हुई, समर्थ बनी।

३७५ विश्वेदेवाः सधस्थं अभिसन्ति— सब देव एक स्थानपर रहते हैं। नियत समय एक स्थानपर आकर बैठना यह संघटनाके लिये आवश्यक है।

४०३ सधमादः अ-रिष्टाः— संघटित होनेवाले विनष्ट नहीं होंगे।

६३१।१ समाने ऊर्वे अधिसंगतासः— वे एकही बडे कार्यमें मिलकर संघटित हुए।

६३१।१-२ संजानते, न मिथः न यतन्ते— जो ज्ञानी होते हैं वे आपसमें लडते नहीं।

६७२।१ अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता— अप्रति भेदको वधसे नष्ट करो। आपसमें भेद बढ जानेके पूर्व ही उसको दूर करो, नष्ट करो। आपसमें फूट रहने न दो।

७४७ सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते— समान दुःखमें रहे ज्ञानी बलके लिये प्रार्थना करते हैं। समान दुःखमें रहनेवाले संघटित होते हैं और अन्न तथा बल प्राप्त करते हैं।

९१५ नः सर्वः इत् जनः संगत्या सुमनाः असत्— हमारे सब लोग अपनी संघटना करनेके लिये उत्तम मनसे मिलते रहते हैं।

वसिष्ठ मन्त्रोंमें संघटनाके विषयमें ऐसे उत्तम निर्देश मिलते हैं। (९१ गणेन मा रिषण्यः) संघमें, गणमें रहनेसे तुम्हारा नाश नहीं होगा। यह संघटनाका पहिलाही सूत्र यहां कहा है। गणशः अपनी संघटना बलवती करनी चाहिये।

प्रथम (भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्) भारत लोग आपसमें असंघटित थे, इसलिये वे बालक जैसे निर्बल थे। परिच्छिन्न होना, छोटे छोटे फिरकोंमें समाजका बंट जाना यह निर्बलताका चिन्ह है। इस कारण समाजको परिच्छिन्न, छिन्न विच्छिन्न नहीं होने देना चाहिये। (पुरएता वसिष्ठः अभवत्) फिर उन भारतीयोंका नेता वसिष्ठ हुआ। वसिष्ठ उसको कहते हैं कि (वासयति इति वसिष्ठः) जो संघटना करनेमें चतुर होता है, बसानेमें चतुर हो। भारतीयोंको ऐसा उत्तम पुरोहित मिला और उन्होंने जो भारतीय बालक जैसे निर्बल थे उनको बलवान और सुसंघटित बनाया। तब भरतोंकी (विशः अप्रथन्त) प्रजाएं सामर्थ्यवान् बनी और बढने लगी। सामर्थ्यवान् हो गयी।

जो (सध- स्थं अभिसन्ति—) एक स्थानपर आकर नियत समयपर बैठते और अपनी संघटना करनेका विचार करते हैं, वे (सध-मादः अ-रिष्टाः) एक स्थानपर जमा होनेवाले, संघटित होकर अपने आपको विनाशसे बचाते हैं। संघटन होनेसे विनाशसे बच सकते हैं। अपने अन्दरका भेद दूर करना, अपने अन्दर एकात्मता उत्पन्न करना और एक कार्यमें अपने आपको बांध लेना ये संघटनाके लिये आवश्यक है। (समाने ऊर्वे अधिसंगतासः) एक बडे कार्यके अन्दर संमिलित होना, उस कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना यह संघटनके लिये अत्यंत आवश्यक है। (सबाधः विप्राः) एक बाधामें एक आपत्तिका अनुभव जिनको होगा, वे उस बाधाको दूर करनेके लिये संघटित होंगे। इस लिये जिनको संघटित करना है, उन सबको एक कष्टमें वे सब है, सबके संघटित होनेसे वह सबको सतानेवाला भय दूर हो सकता है, इसका यथार्थ ज्ञान देना चाहिये। इससे उन सबकी उत्तम संघटना होगी। (सर्वः जनः संगत्यां सुमनाः) संघटित होनेवाले सब लोग अपने संघटनमें उत्तम मनसे संमिलित हों। किसीका किसीके विषयमें विपरीत मनोभाव न हो। इस तरह संघटित समाज करनेके विषयमें वसिष्ठके मंत्रोंमें सूचना मिलती हैं। जो सदा ध्यानमें धरने योग्य हैं।

अग्रणी कैसा हो !

१ नरः दूरेदृशं प्रशस्तं गृहपतिं अथर्युं अग्निं जनयन्त— नेता लोग अपनेमेंसे दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील अग्रणीको प्रमुख बनाते हैं।

अग्रणी वह बने कि जो दूरका देखनेवाला, प्रशंसायोग्य कार्य करनेवाला, गृहस्थ धर्म पालन करनेवाला, अचंचल अर्थात् स्थिर पद्धतिसे अपना कर्तव्य करनेवाला, अग्निके समान तेजस्वी तथा अपने प्रकाशसे दूसरोंको मार्ग बतानेवाला हो।

यहां अग्रणी गृहपति हो ऐसा कहा है। ब्रह्मचारी या संन्यासी नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी और संन्यासीको आगापीछा नहीं होता, इसलिये ग्रामकार्य अथवा राष्ट्रकार्यमें वह ठीक तरह अपना कर्तव्य नहीं कर सकता, पर जो गृहस्थी होता है उसके सर्वत्र संबंधी होते हैं, इसलिये वह जानता है कि अपना उत्तरदायित्व क्या है। इसलिये अध्यक्ष अथवा नेता गृहस्थीही होना उचित है।

दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील तेजस्वी अग्रणी हो।

८ वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने— जनताका निवास करानेवाला, बलवान् वीर्यवान्, तेजस्वी, पवित्रता करनेवाला अग्रणी हो।

२७ सुक्रतवः शुचयः धियंधाः वयं नराशंसस्य यजतस्य महिमानं उपस्तोषाम— उत्तम कर्म करनेवाले, पवित्र बुद्धिमान होकर हम सब मानवोंमें प्रशंसित और पूजनीय नेताकी महिमाका वर्णन करें। हम उत्तम कर्म करें, पवित्र बनें, ज्ञानी बनें और श्रेष्ठ महात्माका ही वर्णन करें।

२८ ईळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय सदं इत् तं महेम— प्रशंसनीय, बलवान, उत्तम दक्ष, सत्य भाषण करनेवाला जो है उसी नेताका हम सदा वर्णन करते हैं।

५१।१ यः क्रत्वा अमृतान् अतारीत् सः देवकृतं योनिं आससाद— जो अपने पुरुषार्थसे दिव्य विबुधोंका तारण करता है वह देवोंके बनाये श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है। वह मुख्य स्थानपर बैठता है। वही नेता होता है।

५८ वैश्वानरः वरेण साधनः मानुषीः विशः अभि विभाति— सब मनुष्योंका श्रेष्ठ नेता श्रेष्ठ साधनसे बढता हुआ अपने मानवी प्रजाजनोंको अधिक प्रकाशित करता है। सब लोगोंका अग्रणी अपना सामर्थ्य बढाकर अपने अनुयायियोंका भी तेज बढाता है।

६१।१ नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार— मनुष्योंमें श्रेष्ठ वह है कि जो अज्ञानान्धकारमें पडे रहनेपर भी उसीमें आनंद माननेवाले लोगोंको शक्तियोंसे संपन्न उदयोन्मुख करता है।

६९।२ वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— धनके स्वामी उन्नत और सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले नेताकी प्रशंसा करो।

७१।१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः- सब लोग अपनी सुरक्षाके सुखके लिये जिसकी सद्बुद्धिको चाहते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है।

७१।२ विश्वे जनासः एवैः यं उपतस्थुः— सब लोग अपने कर्मोंके साथ जिसके पास पहुंचते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है। अपने कर्मोंकी परीक्षा यहां होगी, ऐसा जिसके संबंधमें सब मानते हैं वह श्रेष्ठ है।

७१।३ वैश्वानरः वरं आससाद— सबका जो श्रेष्ठ नेता है, वह श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है। श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है।

७३ सहमानं देवं अग्निं नमोभिः प्रहिषे— शक्तिमान दिव्य अग्रणीको मैं नमस्कार करता हूं। उसका मैं सम्मान करता हूं।

७६।१ विपेतसः मानुषासः अध्वरे रथिरं सद्यः अमन्त— ज्ञानी मनुष्य हिंसारहित शुभकर्ममें रथमें बैठकर जानेवालेको तत्काल नियुक्त करते हैं। मुख्य स्थानमें रखते हैं। नेता बनाते हैं।

७६।२ यः एषां मन्द्रः विश्पतिः मधुवचा ऋतावा विशां दुरोणे अधायि — जो इन लोगोंका आनन्ददायक प्रजापालक है वह मधुरभाषणी सत्यपालक प्रजाओंके घरमें सम्मानके स्थानमें स्थापित होता है। बैठता है।

९५।२ सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहं मनुष्याणां अरतिं अच्छ यन्ति— सुन्दर, सुडौल, प्रगतिशील, बलवान् मानवोंके नेताके पास मनुष्य आते हैं। उनके साथ रहें और उन्नतिके कार्य करें।

९८।५ इह प्रथमः निषद्— यहां पहिला मुख्य बनकर रह। नेताको मुख्य स्थानपर बिठलाना योग्य है।

१०६।१ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने अग्नये मन्म धीतिं प्रभरध्वम्— विश्वमें तेजस्वी बुद्धिमान् पुरुषार्थी दुष्टोंका नाश करनेवाले अग्रणी नेताका सम्मान करो।

१०६।२ प्रीणानः वैश्वानराय हविः भरे— मैं सन्तुष्ट होकर सबके नेताके लिये अर्पण करता हूं, सम्मान करता हूं।

१०७।२ जातवेदः वैश्वानरः— जो ज्ञानी है वह विश्वका नेता होता है।

१०८।१ जातः परिज्मा इर्यः— प्रकट होते ही चारों ओर घूमनेवाला नेता सबको प्रेरणा करता है।

११३ कविः गृहपतिः युवा पंचचर्षणीः दमे दमे निषसाद— ज्ञानी गृहस्थ तरुण पांचों प्रजाजनोंके घरोंमें जाकर बैठता है।

२४१।१ तव प्रणीती नृन् रोदसी सं निनेथ— तुम्हारी पद्धति मानवोंको इस विश्वमें सम्यक् रीतिसे उन्नतिकी ओर ले चलती है।

यहां प्रायः अग्निके वर्णनमें ही नेताका वर्णन किया है। अग्नि ही अग्रणी है। अग्-र-णी, अग्-नी, अग्नि। इस तरह अग्नि ही अग्रणी अथवा अग्रणी ही अग्नि है। अग्नि अपने प्रकाशसे सब विश्वको मार्गदर्शन करता है और उनको उन्नतिके मार्गसे चलाता है। इसलिये अग्नि ही अग्रणी है। इस कारण अग्निके वर्णनमें 'अग्रणी' के गुण दिये हैं।

अग्रणी (दूरे-दृशः) दूरदर्शी, दूरका देखनेवाला, भविष्यमें क्या होगा, इसकी जिसको यथार्थ कल्पना है, ऐसा (प्रशस्तः) प्रशंसित, प्रशंसाके योग्य, सबको आदरणीय (अ-ध्रुः) जो वंचक नहीं, जो क्षणक्षणमें बदलता न हो, जो स्थायीरूपसे उन्नतिके कार्य करता हो, (अग्निः) जो प्रगतिशील है, अपने तेजसे अज्ञानान्धकारको दूर हटाता है, मार्ग बताता है और प्राप्तव्यस्थान पर पहुंचाता है, बीचमें ही नहीं छोडता, (वसिष्ठः) जो अनुयायियोंको सुखपूर्वक निवास कराता है, जो (पावकः) पवित्रता करनेवाला है, अन्तर्बाह्य शुद्धता करनेवाला है, (शुक्रः) जो बलवान् वीर्यवान् तथा पराक्रमी है। (दीदिवः) जो तेजस्वी है, प्रकाशमान है, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला, (शुचिः) जो शुद्ध है, (विप्रः) जो बुद्धिमान है, योग्य समय पर योग्य संमति देता है, (असु-रः) जो बलवान् है, प्राणके बलसे सामर्थ्यवान् है, (सु-दक्षः) जो उत्तम दक्ष है, प्रत्येक कार्य उत्तम दक्षतासे जो करता है, शिथिलता जिसमें होती नहीं, (सत्य-वाक्) जो सत्यभाषण करता है, जो असत्य भाषण करता नहीं, (वैश्वा-नरः) सब नरोंका सब मनुष्योंका जो नेता है, (नृ-तमः) सब मानवोंमें जो अत्यंत श्रेष्ठ है, (ईशानः) शासन शक्तिसे जो युक्त है, जो प्रभुत्व होने योग्य है, (अनानतः) जो उच्च है, जो श्रेष्ठ है, (पृतन्यून दमयन्) जो शत्रुसेनाका दमन कर करता है, शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला, (सहमानः) शत्रुका पराभव करनेवाला, शत्रुका

आक्रमण रोकनेवाला, (वि-चेता:) जो विशेष ज्ञानी है, सामर्थ्यवान चित्तवाला, (अ-ध्वरे रथिरं) हिंसारहित, अकुटिल श्रेष्ठ कर्ममें सत्वर आनेवाला, (मन्द्रः) आनंददायक, प्रसन्नचित्त, (मधु-वचा:) मधुर भाषण करनेवाला, (ऋता वा) सरल स्वभाव, सत्य कर्मको करनेवाला, (विश्-पति:) प्रजाका उत्तम पालन करनेवाला, (सु संदृशं) सुन्दर दीखनेवाला, (सु-प्रतीकं) उत्तम आदर्शवान, (स्वञ्चं, सु-अञ्चं) प्रगतिशील, (मनुष्याणां अरतिः) मनुष्योंको उच्च स्थान तक ले जानेवाला, (प्रथमः) जो प्रथम स्थानमें रहनेयोग्य है, (विश्व-शुच्) सबमें शुद्ध, सबका प्रकाशक, (अं सुरंध्र) दुष्ट आततायियोंका नाश करनेवाला, (जात-वेदः) जिससे वेद प्रकट होते हैं, जिससे ज्ञान फैलता है, जो ज्ञानका प्रचार करता है, (परि ज्मा) अनुयायियोंमें चारों ओर घूमनेवाला, घूम घूमकर चारों ओर जाकर अनुयायियोंकी परिस्थिति देखनेवाला, (कविः) ज्ञानी दूरदर्शी, विद्वान्, अतीन्द्रिय विषयोंका ज्ञाता, (गृहपतिः) अपने घरका पालन करनेवाला, गृहरक्षक, (युवा) तरुण, जो वृद्ध अतएव कार्य करनेमें असमर्थ नहीं हुआ है, (पञ्च-चर्षणिः) पांचों जातियोंके मनुष्योंका हित करनेवाला, जो (अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार) गाढ अन्धकारमें पडे लोगोंको ज्ञानका प्रकाश दिखाता है, यह जिसके अन्दर शक्तियां है, (यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः शर्मन्) जिसकी संमतिके अनुसार चलनेवालोंको निःसंदेह सुख ही प्राप्त होता है। (विश्वे जनासः यं उपतस्थुः) सब लोग कठिन प्रसंगके समय जिसके पास जाते हैं और जो शुभसंमति प्रदान करके उनका योग्य मार्गदर्शन करता है, जो (विशां दुरोणे अधायि) जो प्रजाजनोंके घरमें जाता है और वहां आदरका स्थान पाता है। इस तरहके शुभगुणोंसे जो युक्त होगा वह नेता, अग्रणी, प्रमुख, अध्यक्ष होने योग्य है। पाठक इन गुणोंका मनन करें और ऐसे गुण जिसमें होंगे उसीको अध्यक्ष बनाएँ।

ये गुण प्राय: ऊपर दिये मंत्रोंमें क्रमशः आये हैं। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषको ही अपना नेता बनाना उचित है। इसके विपरीत जो होगा वह नेता बनने अयोग्य है।

राष्ट्रकी तैयारी

६८०।१ बृहत् राष्ट्रं इन्वति— बडा राष्ट्र प्रसन्नता देता है।

६८०।४ इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्— इन्द्र हमारे लिये विस्तृत स्थान बनावे। हमारा राष्ट्र विस्तृत करे।

९२४ त्रयोदश भौवनाः पञ्चमानवाः— हमारे राष्ट्रमें तेरह प्रांत हैं और पांच जातियां है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच प्रकारके लोग हमारे राष्ट्रमें हैं, हमारे राष्ट्रमें तेरह भुवन हैं, तेरह प्रांत है। राष्ट्रके तेरह विभाग है।

'बृहत् राष्ट्रं' बडा राष्ट्र ये शब्द अन्य छोटे छोटे राष्ट्रोंका भी बोध कराते हैं। अर्थात् बडे और छोटे राष्ट्र होते हैं। दाशराज्ञयुद्ध इस वसिष्ठके मंत्रोंमेंही पाठक देखेंगे। सूक्त १३ और ८३ देखो। यहां दश राजाओंके संघका सुदासके साथ युद्ध हुआ और इसमें सुदासका विजय हुआ। अर्थात् यहां दस छोटे छोटे राष्ट्र थे और उनकी अपेक्षासे सुदासका राष्ट्र बडा था। अनेक राष्ट्रोंका संघटना होना, उनके संमिलित सैन्यसे चढाई होनी और दश राजाओंके संघका पराभव होना यह वर्णन इन सूक्तोंमें है। इससे सिद्ध है कि राष्ट्र छोटे भी होते थे और बडे भी होते थे। सुदास राजा भारतियोंका था, वह निर्बल था, क्योंकि भारतीयोंमें आपसकी फूट थी और छोटी छोटी दलबंदी भी थी। इन्होंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया, वसिष्ठने राष्ट्रीय संघटना भारतियोंकी बनायी, और वे प्रबल बने और दिग्विजय करने लगे। पुरोहित लोग राष्ट्रीय संघटनाका कार्य करते थे।

यह पुरोहितका कार्य है, वसिष्ठके अथर्ववेदके मंत्रोंमें यह बात स्पष्ट लिखी है—

९०२ जिनका मैं पुरोहित हूं, उनका क्षात्रबल मैं तीक्ष्ण बनाता हूं अक्षय बल उनका मैं निर्माण करता हूं।

९०३ इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी बना देता हूं। इनका ओज-बल और वीर्य मैं बढाता हूं। इनके शत्रुओंके बाहुओंको मैं काटता हूं।

९०४ इनके शत्रु नीचे गिर जाय, मैं ज्ञानसे अपने लोगोंको उन्नत करता हूं और शत्रुओंको क्षीण करता हूं।

९०५ जिनका मैं पुरोहित हूं, उनके शस्त्र मैं तीक्ष्ण बनाता हूं।

९०६ इनके शस्त्र तीक्ष्ण करता हूं, इनका राष्ट्र उत्तम वीरतासे समर्थ बनाता हूं,। इनका क्षात्र तेज कभी क्षीण नहीं होगा।

९०७ अपने अपने ध्वज को, उत्साहमय हर्षसे शत्रुपर चढाई करो। अपनी सेना शत्रुपर आक्रमण करे।

९०८ चढो, चढाई करो, विजय प्राप्त करो। तुम्हारे बाहुओंमें बडा बल है। तुम्हारे शत्रुओंका बल क्षीण हुआ है। इसलिये उनको मारो।

९०९ शत्रुपर टूट पडो, आगे बढो, शत्रुके सैनिकोंमेंसे मुख्य मुख्य वीरको मारो। उनमेंसे कोई न बचे।

यह सेना तैयार करना, उनके शस्त्रास्त्र तैयार करना, शत्रुके शस्त्रोंसे अपने शस्त्र अधिक प्रभावी करना, शत्रुपर आक्रमण किस समय कैसा करना, इसका निश्चय करना आदि ये सब कार्य पुरोहितके हैं। राजा युद्ध करेगा, सैनिक भी युद्ध करेंगे, परंतु सब तैयारी प्रथम पुरोहित करेगा। यह वैदिक व्यवस्था यहां वसिष्ठके मंत्रोंमें दीखती है। इस तरह राष्ट्र निर्माणका कार्य पुरोहितका है, राष्ट्रमें सेनाको तैयार करना, उसको उत्साहसे भर देना, शत्रुपर करनेके आक्रमणोंकी सब तैयारी करना, यह सब पुरोहितके कार्य है। रामेश्वर जानेवाले रामजी भी धनुष्यबाण और दक्षिणा पुरोहितकोही देते हैं। गणेश पुराणमें काशीराजाके पुरोहित श्रीगणेशनेही सेनाकी तैयारी की थी और जिससे उसको विजय मिला। ये कार्य पुरोहितके हैं।

किसानोंका पालक

राजा केवल प्रजाका स्वामी नहीं है वह 'कृष्टीनां पतिः' वह प्रजाजनोंका पालक है, विशेषतः कृषि करनेवालोंका प्रतिपाल करनेवाला है। क्षत्रिय अपने अधिकारके बलसे तथा वैश्य अपने धनके बलसे अपना पालन करनेमें समर्थ होते हैं। कृषक वर्ग ही निर्बल रहता है। इसलिये निर्बलोंका पालन करनेवाला राजा है ऐसा कहनेसे सब प्रजाका पालक वह है यह सिद्ध हुआ। यही राजाका कर्तव्य है। अधिकार चलाना यह राजाका कर्तव्य नहीं है, प्रत्युत उत्तम प्रकारसे प्रजाका पालन करना और उनमें भी कृषकोंका पालन करना राजाका मुख्य कर्तव्य है।

'रयीणां रथ्यः' वह राजा धनोंके रथपर बैठता है, उसका अधिकार नाना प्रकारके धनोंपर रहता है। प्रजाकापालन धनसे ही हो सकता है। इसलिये राजाके पास धन, कोश भरपूर होना ही चाहिये। इसकी सूचना इस पदसे मिलती है। 'विश्वा-नरः' यह राजा सब राष्ट्रका नेता, अगुआ, अग्रगामी, अग्रणी है, प्रजाका योग्य रीतिसे संचालन करनेवाला यह है।

यह प्रजापालक राजा (अनेनाः =अन्+एनाः) निष्पाप रहना चाहिये। किसी तरहका पापाचरण उसके जीवनमें उससे न हो। राजा राष्ट्रमें आदर्श पुरुष है इसलिये उससे पाप कदापि होना नहीं चाहिये। (मायी) प्रवीण, कुशल, कर्म करनेमें कुशल राजा हो। किसी तरह अपने प्रजापालन कर्ममें न्यून न हो। (सत्रा-राजा) साथ साथ सब प्रजाजनोंको लेकर प्रकाशित होनेवाला राजा हो। प्रजाजनोंके साथ मिलकर रहे, अपने आपको पृथक् न समझे। (अनु-त्तमन्युः) जिसका उत्साह अत्यंत हो, जिसके पास निराशा कभी आती न हो। यहां 'मन्यु' का अर्थ 'उत्साह' है। इसका दूसरा अर्थ, 'क्रोध' भी है। राजाका क्रोध और प्रसाद विफल न होनेवाला हो। (उग्रः) राजा उग्र हो, निस्तेज न हो, अजागलके स्तन जैसा निरर्थक न हो। (सहस्राक्षः) हजारों आंखोंसे देखनेवाला हो। 'चारैः पश्यन्ति राजानः' गुप्त चरोंसे राजा सबका निरीक्षण करता है। गुप्तचर विभाग राजाके पास उत्तम कार्यक्षम हो। जो अपने देशके अन्दरकी सब बातें जाने और परदेशमें क्या चल रहा है यह सब यथावत् जाने। यह ज्ञान प्राप्त करनेमें राजा कसर न करे।

३१७ राजा राष्ट्रानां पेशः— राजा राष्ट्रोंका सौंदर्य है, राष्ट्रको सुंदर रूप देनेवाला राजा हो। राजा उत्तम रहा और उसका शासनप्रबंध अच्छा रहा तो राष्ट्र तेजस्वी होता हैं। इसके विपरीत शासनप्रबंध ढीला रहा तो प्रबल राष्ट्र भी क्षीण और दुर्बल होता है। (अस्मै अनुत्तं क्षत्रं) राजाके पास उत्तम क्षत्रियोंका सामर्थ्य हो, उत्तम सेना हो और उसमें उत्तम वीर पुरुष हो।

३४८ इनः अ-दृब्धः— राजा किसीके दबावसे न दब जानेवाला हो। किसीके दबावसे न दबे। सत्य पालन करे और दुष्टोंके दबावमें कभी न फंसे।

इसप्रकार वसिष्ठऋषिने मानवके जीवनको उन्नत करनेवाली अनेक व्यावहारिक बातें बताई हैं।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

सप्तम मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अंसेष्वा मरुतः खादयो ४६५
अगन्म महा नमसा १०३
अग्नि वो देवमग्निभिः ३७
अग्नि नरो दीधितिभिः १
अग्निरीशे बृहतो १०१
अग्नी रक्षांसि सेधति १२१
अग्ने भव सुषमिधा १३९
अग्ने याहि दूत्यं ९१
अग्ने रक्षा णो अंहसः १२४
अग्ने वीहि हविषा १४१
अचेति दिवो दुहिता ६४३
अच्छा गिरो मतयो ९५
अच्छायं वो मरुतः २५५
अतारिष्म तमसः ६०८
अत्यासो न ये मरुतः ४६८
अद्या मुरीय यदि ८३१
अध श्रुतं कवषं १५७
अधान्वस्य संदृशं ७०५
अधा मही न आयस्यन् १२५
अधा ह यन्तो अश्विना ६१७
अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं ७७७
अनु तदुर्वी रोदसी ३३०
अनु तन्नो जास्पतिः ३६९
अन्तिवामा दूरे ६३७
अन्यो अन्यमनु गृभ्णाति ८१०
अन्वपां खान्यतृन्तं ६६१
अप स्वसुरुषसो ५९७
अपां मध्ये तस्थिवांसं ७१४
अपि ष्टुतः सविता ३६६
अबोधि जार उषसाम् ८७
अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे ३२२
अभि क्रत्वेन्द्र भूरध १९७
अभि त्वा शूर नोनुमो २८७
अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं ३११
अभि यं देवी निर्ऋतिः ३६२
अभि यं देव्यदितिः ३६७
अभि ये मिथो वनुषः ३६८
अभि वां नूनमश्विना ५६५
अभि वो देवीं धियं ३१५
अभि स्वपूभिर्मिथो ४५५
अभी षतस्तदाभर २८९
अभूदुषा इन्द्रतमा ६४७
अमीवहा वास्तोष्पते ४४५
अमूरः कविरदितिः ८९
अमूरा विश्वा वृषणौ ५१९
अयं सु तुभ्यं वरुण ६९६
अयं सो अग्निराहुतः १६
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं २४४
अयं ह यद् वां देवया ५७६
अयं हिनेता वरुण ३८२
अयं कविरकविषु ५०
अयमु ते सरस्वति ७६०
अयमु ष्य सुमहाँ ८१
अयामि घोष इन्द्र २१२
अयुक्त सप्त हरितः ५०५
अरं दासो न मीळ्हुषे ६९५
अर्णांसि चित् पप्रथाना १५०
अर्ध वीरस्य शृतपां १६१
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा ७२२, ७२९
अर्वाङ्नरा दैव्येन ६६६
अव द्रुग्धानि पित्र्या ६९३
अव वेदिं होत्राभिः ५११
अव सिन्धुं वरुणो ७०२
अविष्टं धीष्वश्विना न ५६८
अविष्टो अस्मान् विश्वासु ३१८
अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः ३२०
अवोर्वां नूनमश्विना ५६६
अशोच्यग्निः समिधानो ५६४
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो ३९२, ६५२
अश्वासो ये वामुप ६१६
असश्चित् स्थे आहवनानि ८४
असश्चता मघवद्भ्यो ५७१
असादि वृतो वह्निः ७७

असावि देवं गोऋजीकं	१९२
अस्माकमिन्द्रावरुणा	६६७
अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं	६८२
अस्मे इन्द्रो वरुणो	६६८, ६७८
अस्मे वीरो मरुतः	४७६
अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिः	६३८
अस्य देवस्य मीळ्हुषो	३८३
अस्य देवस्य संसदि	४९
अहा यदिन्द्र सुदिना	२५१
अहेम यज्ञं पथामुराणा	६१०
आ गोमता नासत्या	६०३
आग्ने गिरो दिव आ	३७६
आग्ने वह हविरद्याय	१०२
आ च नो बर्हिः	४९६
आ चष्ट आसां पाथो	३१६
आ ते मह इन्द्रोत्युग्र	२२३
आत्मा ते वातो रज	६९८
आदित्यानामवसा नूतनेन	४३३
आदित्या रुद्रा वसवो	३४५
आदित्या विश्वे मरुतश्च	४३५
आदित्यासो अदितयः	४३६
आदित्यासो अदितिः	४३४
आ देवो ददे बुध्न्या	७२
आ देवो यातु सविता	४०९
आ दैव्या वृणीमहे	७६८
आ धूर्ष्वस्मै दधाता	३१०
आध्रेण चित् तद्वेकं	१६२
आ नो दधिक्राः पथ्यां	४०८
आ नो दिव आ	२१९
आ नो देव शवसा	२४९
आ नो देवेभिरुप देवहूतिं	१११
आ नो देवेभिरुप यातं	६०४
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिः	७३४
आ नो मित्रावरुणा	५४२
आ नो राधांसि सवितः	३६३
आ नो विश्वाभिरूतिभिः	२२०
आ पक्थासो भलानसो	१५२
आ पश्चातान्नासत्या	६०७, ६१२
आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो	२१४
आदश्चिदस्मै पिन्वन्त	३०९
आपश्चिद्धि स्वयशसः	६८६
आ पुत्रासो न मातरं	४०१
आपो यं वः प्रथमं	४१७
आ भारती भारतीभिः	३३
आ मां मित्रावरुणेह	४२९
आ यत् साकं यशसो	३५२
आ यद् रुहाव वरुणश्च	७०६
आ यन्नः पत्नीर्गमन्ति	३२६
आ यस्ते अग्न इधते	८
आ यातमुप भूषतं	६१५
आ यातं मित्रावरुणा	५६२
आ याह्यग्ने पथ्या	७४
आ याह्यग्ने समिधानो	३६
आ यो योनिं देवकृतं	५१
आ राजाना मह	५३५
आवदिन्द्रं यमुना	१६४
आ वां रथमवमस्यां	५९९
आ वां रथो रोदसी	५८२
आ वां राजानावध्वरे	६७९
आ वातस्य ध्रजतो रन्त	३४९
आ वायो भूष शुचिपा	७३०
आ विश्ववाराश्विना गतं	५९०
आ वो वाहिष्ठो वहतु	३५६
आ वो होता जोहवीति	४७०
आ शुभ्रा यातमश्विना	५०३
आ स्तुतासो मरुतो	४८४
इदं वचः पर्जन्याय	८०२
इदं वचः शतसाः	८५
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युं	२६५
इन्द्र क्रतुं न आ भर	२९१
इन्द्र जहि पुमांसं	८४०
इन्द्रं नरो नेमधिता	२३४
इन्द्र नो अग्ने वसुभिः	९६
इन्द्राग्नी अवसा गतं	७४९
इन्द्रावरुणा यदिमानि	६६३
इन्द्रावरुणा युवमध्वराय	६५९
इन्द्रावरुणा वधनाभिः	६७२
इन्द्रावरुणाभ्या तपन्ति	६७३
इन्द्राविष्णू दृंहिताः	७८८
इन्द्रासोमा तपतं रक्ष	८१७
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे	८१९
इन्द्रासोमा परि वां भूतु	८२२
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवः	८२१
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो	८२०
इन्द्रासोमा समघशंसं	८१८
इन्द्रे अग्ना नमो	७४६
इन्द्रेणैते तृत्सवो	१६०
इन्द्रो यातूनामभवत्	८३७
इन्द्रो राजा जगतः	२३६
इन्धे राजा समर्यो	८०
इम इन्द्राय सुन्विरे	२६९
इमं नरो मरुतः	१७०
इमं नो अग्ने अध्वरं	३९७
इमा उ त्वा पस्पृधानासो	१४८
इमा उ वां दिविष्टय	६१३
इमां वा मित्रावरुणा	३४८
इमा गिरः सवितारं	४१२
इमा जुह्वाना युष्मदा	७५९
इमामू षु सोमसुतिं	७४०
इमा रुद्राय स्थिरधन्वने	४१३
इमे चेतारो अनृतस्य	५०७
इमे तुरं मरुतो रामयन्ति	४७१
इमे दिवो अनिमिषा	५०९
इमे नरो वृत्रहत्येषु	१०
इमे मित्रो वरुणो	५०८
इमे रध्रं चिन्मरुतो	४७२
इमे हि ते ब्रह्मकृतः	२६७
इमो अग्ने वीततमानि	१८
इयं वामस्य मन्मन	७४३
इयं वां ब्रह्मणस्पते	७७५
इयं देव पुरोहितिः	५१४, ५२१
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट	६८८
इयं मनीषा इयं अश्विना	५९६, ६०२
इयं मनीषा बृहती	७८९
इरावती धेनुमती हि	७८६
इहेह वः स्वतवसः	५०१
ईळेन्य वो असुरं	२८

ईळन्यो वो मनुषो ९०
ईयुरर्थं न न्यर्थं १५४
ईयुर्गावो न यवसात् १५५
ईशानाय प्रहुतिं यस्त ७१७
ईशानासो ये दधते स्वर्णो ७२१
ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य ५२
उक्थेउक्थे सोम इन्द्रं २३०
उक्थभृतं सामभृतं ३०६
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा ७५३
उग्रं व ओजः स्थिरा ४५९
उग्रो जज्ञे वीर्याय १८२
उच्छन्ती या कृणोषि ६५६
उच्छन्नुषसः सुदिना ७१९
उत त्यद् वां जुरते ५७८
उत त्यं भुजुमश्विना ५७९
उत त्ये नो मरुतो ३५३
उत द्वार उशतीर्वि १४०
उत न एषु नृषु श्रवो ३२४
उत योषणे दिव्ये ३१
उत स्तुतासो मरुतो ४८३
उत स्या नः सरस्वती ७५८
उत स्वया तन्वा सं ६९०
उत स्वराजो अदितिः ५४९
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोः ३०३
उतेदानीं भगवन्तः ३८९
उतो घा ते पुरुष्या २४७
उतो हि वां रत्नधेयानि ४४१
उत् सूर्यो बृहदर्चींषि ५२२
उदस्य बाहू शिथिरा ४१०
उदस्य शुष्माद् भानुः ३१३
उदस्य शोचिरस्थात् १२९
उदक्निस्यस्य रिच्यते २७७
उदु ज्योतिरमृतं ६२७
उदु तिष्ठ सवितः ३६५
उदु त्यद् दर्शतं वपुः ५५७
उदु ब्रह्माण्यैरत २११
उदु ष्य देवः सविता ३६४
उदु स्तोमासो अश्विनोः ६०५
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः ६५४
उद् द्यामिवेत् तृष्णजो २९७
उद् यस्य ते नवजातस्य ३९
उद् वां चक्षुर्वरुण ५१५
उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो ५०६
उद्वेति प्रसवीता जनानां ५२९
उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः ५२८
उप त्या वह्नी गमतो ६११
उप त्वा सातये नरो १२०
उप यमेति युवतिः ६
उपसद्याय मीळ्हुष ११२
उपायातं दाशुषे ५९८
उपो रुरुचे युवतिर्न ६३४
उपो ह यद् विदथं ७३७
उभे चिदिन्द्र रोदसी १८५
उभे यत् ते महिना ७६२
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु ७८७
उरुव्यचसे महिने २६४
उलूकयातुं शुशुलूकयातं ८३८
उवाच मे वरुणो ७००
ऊँवोचिथ हि मघवन् ३५८
उशन्ता दूता न दभाय ७२४
उषो न जारः पृथु ९३
ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो २६२
ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं ३७२
ऋतावान ऋतजाता ५५६
ऋधक् सा वो मरुतो ४८१
ऋभुक्षणो वाजा ४२१
ऋभुर्ऋभुभिरभि वः ४२२
एकं च यो विंशतिं १५६
एकस्मिन् योगे भुरणा ५७०
एकाचेतत् सरस्वती ७५६
एत उ त्ये पतयन्ति ८३६
एता अग्न आशुषाणास ७४२
एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् ६४२
एतानि धीरो निण्या ४५६
एता नो अग्ने सौभगा ४६, ५६
एते त्ये भानवो दर्शतायाः ६२१
एते द्युम्नेभिर्विश्वं ७८
एते स्तोमा नरां १८०
एना वो अग्निं १२७
एभिर्न इन्द्राहभिः २४२
एवाग्निं सहस्यं वसिष्ठो ३९८
एवा तमाहुरुत शृण्व २३२
एवा न इन्द्र वार्यस्य २२२, २२८
एवा नो अग्ने विक्ष्वा ४०३
एवा वसिष्ठ इन्द्रं २३३
एवेदिन्द्रं वृषणं २१६
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिः २९५
एष स्तोमो अचिक्रदद् १९०
एष स्तोमो मह उग्राय २२१
एष स्तोमो वरुण मित्र ५३८, ५४३
एष स्य कारुर्जरते ५८१
एष स्य मित्रावरुणा ५०४
एष स्य वां पूर्वगत्वेव ५६९
एषा नेत्री राधसः ६३३
एषा स्या नव्यमायुः ६५१
एषा स्या युजाना ६२२
ओश्रुष्टिविदथ्या३ समेतु ३७९
ओ षु घृष्विराधसो ४२५
क ईं व्यक्ता नरः ४५३
कथा नो अग्ने वि वसः ८२
कविं केतुं धासिं ६७
कस्तमिन्द्र त्वावसुं २७९
का ते अस्त्यरंकृतिः २४६
कार्व्येभिरदाभ्याऽऽयातं ५६०
किमाग आस वरुण ६९२
किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं ७९६
कीरिश्चिद्धि त्वामवसे १९९
कुत्सा एते हर्यश्वाय २२७
कुविदङ्ग नमसा ये ७२३
कृतं नो यज्ञं विदथेषु ६८१
कृते चिदत्र मरुतो ४८२
कृधि रत्नं यजमानाय १३२
क्रत्वः समह दीनता ७१३
क्व त्यानि नौ सख्या ७०८
क्षप उस्रश्च दीदिहि ११९
गमद् वाजं वाजयन् २७६
गिरा य एता युनजत् ३५०

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिं ७३८
गृभीतं ते मन इन्द्र २१८
गृहमेधास आ गत ५००
गोमद्धिरण्यवद् वसु ७५१
गोमायुरदादजमायुरदात् ८१६
गोमायुरेको अजमायुः ८१२
चकार ता कृणवन् २३१
चत्वारो मा पैजवनस्य १६८
चनिष्टं देवा ओषधीषु ५९३
चित्रं ह यद् वां भोजनं ५७७
जज्ञानः सोमं सहसे ७७९
जनीयन्तो न्वग्रवः ७६४
जनूश्चिद् वो मरुतः ४८६
जातो यदग्ने भुवना १०८
जुषस्व नः समिधमग्ने २६
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः २९६
ज्मया अत्र वसवो ३७४
त इद् देवानां सधमाद ६३०
त इन्निण्यं हृदयस्य ३०१
तं शुभ्मासो अरुषासो ७७२
तं होतारमध्वरस्य १३८
तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रं ५५९
तच्चित्रं राध आ भरः ६५७
तद् वो अद्य मनामहे ५५५
तं त्वा दूतं कृण्महे १३०
तं त्वा मरुत्वती परि २६१
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो ३३१, ४७७
तन्नस्तुरीपमध ३४
तं नो अग्ने मघवद्भ्यः ६५
तन्नो रायः पर्वतास्तन्न ३२९
तपन्ति शत्रुं स्वर्ण ३२५
तमग्निमस्ते वसवो २
तमा नो अर्कममृताय ७७१
तमिद् दोषा तमुषसि ४१
तमु ज्येष्ठं नमसा ७६९
तमूर्मिमापो मधुमत्तमं ४१८
तरणिरित् सिषासति २८५
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त १७५
तव त्रिधातु पृथिवी ६०
तव प्रणीतीन्द्र २४१
तवेदं विश्वमभितः ७८२
तवेदिन्द्रावमं वसु २८१
तस्मा इदास्ये हविः ८०६
ता नः स्तिपा तनूपा ५४६
तां वा रुद्रस्य मीळ्हुषो ४८९
तानीदहानि बहुलानि ६२९
ता नो रासन् रातिषाचः ३२८
ता भूरिपाशावनृतस्य ५४१
तामग्ने अस्मे इषं ६४
तावदुषो राधो अस्मभ्यं ६४८
ता वां गीर्भिर्विपन्यवः ७४८
ताविद् दुःशंसं मर्त्यं ७५४
ता सानसी शवसाना ७३६
ता हि देवानामसुरा ५४०
ता हि शश्वन्त ईळत ७४७
तिस्रो द्यावो निहिता ७०१
तिस्रो वाचः प्रवद ७९८
तुभ्येदिमा सवना २०८
तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त ४३८
ते चिद्धि पूर्वीरभि ४२३
ते ते देवाय दाशतः १४५
ते त्वा मदा इन्द्र २१५
ते सत्येन मनसा ७२०
ते सीषपन्त जोषमा ४०२
ते स्याम देव वरुण ५५२
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ३७५
त्मना समत्सु हिनोत ३१२
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु २९९
त्रिर्देवः पृथिवीमेष ७९३
त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुः १००
त्र्यम्बकं यजामहे ५०२
त्वं वरुण उत मित्रो १०५
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः १७२
त्वं वर्मासि सप्रथः २५९
त्वं विश्वस्य धनदा २८२
त्वं विष्णो सुमतिं ७९२
त्वं सूकरस्य दर्दृहि ४४८
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः १७२
त्वद् भिया विश ५९
त्वं धृष्णो धृषता १७३
त्वं न इन्द्र वाजयुः २५६
त्वं नः पाह्यंहसो १२६
त्वं नृभिर्नृमणो १७४
त्वमग्ने गृहपतिः १३१
त्वमग्ने वनुष्यतो नि ५५
त्वमग्ने वीरवद् यशो १२३
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान १०७
त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् २१
त्वमिन्द्र स्रवितवा १९४
त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा ३५९
त्वामग्ने समिधानो ९२
त्वामग्ने हरितो ६१
त्वामीळते अजिरं ९९
त्वामु ते दधिरे १४४
त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे २२६
त्वे अग्ने आहवनानि १७
त्वे अग्ने स्वाहुत १३३
त्वे असुर्यं व वसवो ६२
त्वे ह यत् पितरः १४६
दण्डा इवेद् गोअजनास २९८
दधिक्रां वः प्रथमं ४०४
दधिक्रामु नमसा ४०५
दधिक्रावाणं बुबुधानो ४०६
दधिक्रावा प्रथमो ४०७
दश राजानः समिता ६७५
दशस्यन्तो नो मरुतो ४६९
दा नो अग्ने धिया ५
दाशराज्ञे परियत्ताय ६७६
दिवि क्षयन्ता रजसः ५३४
दिवो धामभिर्वरुण ५६१
दिवो रुक्म उरुचक्षा ५११
दिव्या आपो अभि ८०८
दुराध्यो३ अदितिं १५३

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन	२९४
देवंदेवं राधसे	६४९
देवहिर्ति जुगुपुर्द्वादशस्य	८१५
देवानां चक्षुः सुभगा	६३६
देवश्चित् ते असुर्याय	१९८
देवी देवस्य रोदसी	७७४
देवो वो द्रविणोदाः	१३७
द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां	५२५
द्वे नप्तुर्देववतः शते	१६७
धीरा त्वस्य महिना	६८९
धेनुं न त्वा सूयवसे	१४९
ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु	७१०
नकिः सुदासो रथं	२७५
नकिरेषां जनूंषि	४५४
न त इन्द्र सुमतयो	१६५
न तमंहो न दुरितानि	६६५
न ते गिरो अपि	२०६
न ते विष्णो जायमानो	७८५
न त्वावां अन्यो दिव्यो	२८८
न दुष्टुति मर्त्यो विन्दते	२८६
न यातव इन्द्र जूजुवुः	१९६
नरा गौरेव विद्युतं	५८७
नराशंसस्य महिमानं	२७
नवं नु स्तोममग्नये	११५
न वा उ सोमो वृजिनं	८२९
न स स्वो दक्षो वरुण	६९४
न सोम इन्द्रमसुतो	२२९
नहि ग्रभायारणः	५८
नहि व ऊतिः पृतनासु	४९४
नहि वश्चरमं चन	४९३
नि गव्यवोऽनवो	१५९
निचेतारो हि मरुतो	४७९
नि त्वा नक्ष्य विश्पते	११८
नि दुर्ग इन्द्र श्नथिहि	२२४
नियुत्वाना नियुतः	७२७
निर्वत् पूतेव स्वधितिः	४५
नू इन्द्र राये वरिवः	२३८
नू इन्द्र शूर स्तवमान	१८१
नू चित् स भ्रेषते	१८७
नू चिन्न इन्द्रो मघवा	२३७
नू चिन्नु ते मन्यमानस्य	२०९
नू त्वामग्न ईमहे	७९, ८६
नू देवासो वरिवः	४२४
नू नो गोमद् वीरवद्	६२६
नू मर्तो दयते	७९१
नू मित्रो वरुणो अर्यमा	५२७, ५३३
नू मे ब्रह्माण्यग्न	२०, २५
नू मे हवमा शृणुतं	५७२, ५८९
नू रोदसी अभिष्टुते	३७८, ३८५
नैतावदन्ये मरुतो	४८०
न्यक्रतून् ग्रथिनो	६८
न्यु प्रियो मनुषः सादि	६०९
परः सो अस्तु तन्वा	८२७
परा णुदस्व मघवन्	२९०
परिषद्यं ह्यरणस्य	५३
परि स्पशो वरुणस्य	६९९
परो मात्रया तन्वा	७८४
पर्जन्याय प्र गायत	८०४
पाहि नो अग्ने रक्षसो	१३
पिबा सोममिन्द्र	२०२
पीपिवांसं सरस्वतः	७६६
पीवोअन्नां रयिवृधः	७२५
पुनीषे वामरक्षसं	६८४
पुरोळा इत् तुर्वशो	१५१
पृच्छे तदेनो वरुण	६९१
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः	५८
प्र क्षोदसा धायसा सस्र	७५५
प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट	७९५
प्रति केतवः प्रथमा	६४०
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्व	८४१
प्रति त्वा दुहितर्दिव	६५५
प्रति त्वाद्य सुमनसो	६४४
प्रति त्वा स्तोमैरीळते	६३२
प्रति द्युतानामरुषासो	६२४
प्रति नः स्तोमं त्वष्टा	३२७
प्रति वां रथं नृपती	५६३
प्रति वां सूर उदिते मित्रं	५५०
प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः	५३९
प्रति षीमग्निर्जरते	६४१
प्रति स्तोमेभिरुषसं	६५०
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिः	८२३
प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो	४
प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती	६५३
प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी	४३९
प्र पूर्वजे पितरा	४४०
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य	८३
प्र बाहवा सिसृतं	५२६
प्र बुध्न्या व ईरते	४६६
प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो	३९३
प्र ब्रह्मैतु सदनात्	३४७
प्र मित्रयोर्वरुणयोः	५४४
प्र मे पन्था देवयाना	६२८
प्र यज्ञ एतु हेत्वो न	४००
प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति	१९३
प्र या जिगाति खर्गलेव	८३३
प्र याभिर्यासि दाश्वांसं	७३२
प्र ये गृहादममदुः	१६६
प्र ये ययुरवृकासो	६१८
प्र व इन्द्राय मादनं	२५४
प्र वः शुक्राय भानवे	४७
प्र वर्तय दिवो अश्मानं	८३५
प्र वां रथो मनोजवा	५७५
प्र वां स मित्रावरुणौ	५१६
प्र वामन्धांसि मद्यानि	५७४
प्र वावृजे सुप्रया	३७३
प्र वीरया शुचयो	७१६
प्र वो देव चित्	७३
प्र वो महीमरमतिं	३५४
प्र वो महे महिवृधे	२६३
प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो	३१९
प्र शुक्रैतु देवी मनीषा	३०७
प्र शुन्ध्युवं वरुणाय	७०४
प्र सम्राजो असुरस्य	६९
प्र साकमुक्षे अर्चता	४८५

प्र सा वाचि सुष्टुतिः ४९०
प्र सोता जीरो अध्वरेषु ७३१
प्राग्नये तवसे भरध्वं ५७
प्राग्नये विश्वशुचे १०६
प्राचीनो यज्ञः सुधितं ७५
प्राचीम् देवाश्विना धियं ५६७
प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं ३८६
प्रातर्जितं भगमुग्रं ३८७
प्रिया वो नाम हुवे ४६२
प्रियास इत् ते मघवन् १७८
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि ३
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा ७८१
प्रोदयश्वो न यवसे ३८
प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः ५१७
प्रोष्ठेशया वह्यशया ४५२
बहवः सूरचक्षसो ५५३
बृहदु गायिषे वचो ७६१
बृहद् वय मघवद्भ्यो ४८७
बृहस्पते युवमिन्द्रः ७७६, ७८३
बोधा सु मे मघवन् २०४
ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृति २४५
ब्रह्मा ण इन्द्रोप २३९
ब्राह्मणासः सोमिनो ८१४
ब्राह्मणासो अतिरात्रे ८१३
भग एव भगवां अस्तु ३९०
भग प्रणेतर्भग ३८८
भद्रमिद् भद्रा कृणवत् ७६३
भवा वरूथं मघवन् २७२
भीमो विवेषायुधेभिः १९५
भूरिचक्र मरुतः ४७५
भूरि हि ते सवना २०७
मघोनः स्म वृत्रहत्येषु २८०
मध्वो वो नाम मारुतं ४७८
मन्त्रमखर्वं सुधितं २७८
मन्द्रं होतारमुशिजो ९७
महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो ९८
महाँ उतासि यस्यते २६०
महे नो अद्य सुविताय ६२०
महे शुल्काय वरुणस्य ६६४
मही नो अग्ने सुवितस्य २४
मा कस्य नो अररुषो ७५०
मा ते अस्यां सहसावन् १७७
माश्र पूषन्नाघृण ३८४
मा नो अग्ने दुर्भृतये २२
मा नो अग्नेऽवीरते १९
मा नो अज्ञाता वृजना २९२
मा नो निदे च वक्तवे २५८
मा नो रक्षो अभि नड्यातु ८३९
मा नो वधी रुद्र ४१६
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे ३२३
मा पापत्वाय नो ७४५
मा वो दात्रान्मरुतो ४७३
मा शूने अग्ने नि ११
मा स्रेधत सोमिनो २७४
मित्रस्तन्नो वरुणो देवो ५३६
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त ४३७
मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी ३८०
मो षु त्वा वाघतः २६६
मो षु वरुण मृन्मयं ७११
य आपिर्नित्यो वरुण ७०९
य आस्ते यश्च चरति ४५०
य इन्द्र शुष्मो २३५
यः पञ्च चर्षणीरभि ११३
यच्छल्मली भवति ४३१
यजन्ते अस्य सख्यं ३५१
यज्ञे दिवो नृषदने ७६७
यत् किं चेदं वरुणः ७१५
यत्रा चक्रुरमृता ५३२
यत्रा नरः समयन्ते ६७०
यत् सोम आ सुते नर ७५२
यथा वः स्वाहाग्नये ४३
यदद्य सूर उदिते ५४७
यदद्य सूर्य ब्रवः ५०३
यदर्जुन सारमेय ४४६
यदा वीरस्य रेवतो ३९६
यदिन्द्र पूर्वो अपराय १८८
यदिन्द्र यावतस्त्वं २८३
यदि वाहमनृतदेव ८३०
यदि स्तुतस्य मरुतो ४६७
यदीमेनां उशतो ८०९
यदेमि प्रस्फुरन्निव ७१२
यदेषामन्यो अन्यस्य ८११
यद् गोपावददितिः ५१०
यद् दधिषे प्रदिवि ७७८
यद् योधया महतो ७८०
यद् विजामन् परुषि ४३०
यं त्रायध्व इदमिदं ४९१
यमश्वी नित्यमुपयाति १२
यस्त इन्द्र प्रियो जनो १८९
यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो १७१
यस्ते मदो युज्यः २०३
यस्मिन् विश्वानि भुवनानि ८०१
यस्य शर्मन्नुप विश्वे ७१
यस्य श्रवो रोदसी १६९
या आपो दिव्या उत ४२६
याः प्रवतो निवत ४३२
याः सूर्यो रश्मिभिः ४२०
या ते दिद्युदवसृष्टा ४१५
या धारयन्त देवाः ५४५
यानि स्थानान्यश्विना ५९२
यां त्वा दिवो दुहितः ६३९
यामं ज्येष्ठाः शुभा ४५८
यावत् तरस्तन्वो ७२६
या वां शतं नियुतो ७२८
या वा ते सन्ति दाशुषे ४४
यासां राजा वरुणो याति ४२७
यासु राजा वरुणो ४२८
युजे रथं गवेषणं २१३
युध्मो अनर्वा खजकृत् १८४
युवं चित्रं ददथुः ६१४
युवं च्यवानं जरसो ६०१
युवं भुज्युमवविद्धं ५८८
युवां हुवन्त उभयास ६७४
युवां नरा पश्यमानास ६६९
युवामिद् युत्सु पृतनासु ६६२
युवोः श्रियं परि योषावृणीत ५८५
युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति ६८०

युष्माकं देवा अवसाहनि ४९२
युष्मोतो विप्र मरुतः ४८८
यूयं ह रत्नं मघवत्सु ३५७
ये च पूर्वे ऋषयो २१०
ये ते सरस्व ऊर्मयो ७६५
ये देवानां यज्ञियां ३४६
ये पाकशंसं विहरन्त ८२५
ये राधांसि ददति १३६
ये वायव इन्द्रमादनास ७३३
येषामिळा घृतहस्ता १३४
यो अपाचीने तमसि ६९
यो गर्भमोषधीनां ८०५
यो देह्योऽ अनमयद् ७०
योनिष्ट इन्द्र सदने २१७
यो नो मरुतो अभि ४९८
यो नो रसं दिप्सति ८२६
यो ब्रह्मणे सुमति ५१३
यो मा पाकेन मनसा ८२४
यो मायातुं यातुधान ८३२
यो मृळयाति चक्रुषे ७०३
यो वर्धन ओषधीनां ७९९
यां वां यज्ञो नासत्या ५९५
यो वां रथो नृपती ६००
यो वां गर्तं मनसा ५३७
यो ह स्य वां रथिरा ५८६
रदत् पथो वरुणः ६९७
ररे हव्यं मतिभिः ३७७
राजा राष्ट्रानां पेशो ३१७
राजेव हि जनिभिः १४७
रायस्कामो वज्रहस्तं २६८
राया हिरण्यया मतिः ५५१
राये नु यं जज्ञतू ७१८
वंस्व विश्वा वार्याणि १४३
वनस्पतेऽव सृजोप ३५
वयं ते अग्ने समिधा ११०
वयं ते त इन्द्र ये २५२
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि २५७
वषट् ते विष्णवास आ ७९०, ७९७
वसिष्ठं ह वरुणो ७०७
वाजिनीवती सूर्यस्य ६२३
वाजेवाजेऽवत वाजिनो ३७१
वासयसीव वेधसस्त्वं ३६१
वास्तोष्पते प्रतरणो न ४४३
वास्तोष्पते प्रति जानीहि ४४२
वास्तोष्पते शग्मया ४४४
वि चक्रमे पृथिवीमेष ७९४
वि चेदुच्छन्त्यश्विना ६०६
वि तिष्ठध्वं मरुतो ८३४
विदुः पृथिव्या दिवो ३०८
विद्युतो ज्योतिः परि ३०२
वि नः सहस्रं शुरुधो ५२४
विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु ३२
विभ्राजमाना उपसां ५३०
वि यस्य ते पृथिव्यां ४०
वि ये ते अग्ने भेजिरे ९
वि ये दधुः शरदं ५५४
विश्वं प्रतीची सप्रथा ६३५
विश्वा अग्नेऽप दहारातीः ७
वि सद्यो विश्वा १५८
वृकाय चिज्जसमानाय ५८०
वृशाणन्यः समिथेषु ६७७
वृषा जनान वृषणं १८६
वोचेमेदिन्द्रं मघवानं २४३, २४८, २५३
व्यञ्जते दिवो अन्तेषु ६४६
व्युषा आव पथ्या ६४५
व्युषा आवो दिविजा ६१९
व्येतु दिद्युद् द्विषां ३१९
शंसा मित्राय वरुणस्य ५१८
शंसेदुक्थं सुदानव २५५
शतं ते शिप्रिन्नूतयः २२५
शतपवित्राः स्वधया ४१९
शं न इन्द्राग्नी भवताम् ३३२
शं न इन्द्रो वसुभिः ३३७
शं नः सत्यस्य पतयो ३४३
शं नः सूर्य उरुचक्षा ३३९
शं न सोमो भवतु ३३८
शं नो अग्निर्ज्योतिः ३३५
शं नो अज एकपाद् ३४४
शं नो अदितिर्भवतु ३४०
शं नो देवः सविता ३४१
शं नो देवा विश्वदेवा ३४२
शं नो द्यावापृथिवी ३३६
शं नो धाता शमु ३३४
शं नो भगः शमु ३३३
शं नो भवन्तु वाजिनो ३७०
शश्वन्तो हि शत्रवो १६३
शिक्षेयमिन्महयते २८४
शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतः ५५८
शुचिं नु स्तोमं नवजातं ७३५
शुची हव्या मरुतः ४६४
शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी ४६०
शुश्रुवांसा चिदश्विना ५९४
शृणुतं जरितुर्हवं ७४४
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं ६५८
श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते २७०
श्रुधी हवं विपिपानस्य २०५
श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतः २९३
स आ नो योनिं सदतु ७७०
सं यद्धनन्त मन्युभिः ४७४
सं यन्मही मिथती ७३९
संवत्सरं शशयाना ८०७
सखायस्त इन्द्र विश्वह २००
स गृत्सो अग्निस्तरुणः ४८
स घा नो देवः सविता ४११
स जायमानः परमे ६३
सजूर्देवेभिरपां नपातं ३२१
सत्या सत्येभिर्महती ६२५
सत्रे ह जाताविषिता ३०५
सद्यश्चिन्नु ते मघवन् १७९
सद्यो अध्वरे रथिरं ७६
स न इन्द्र त्वयताया १९१, २०१
सना ता त इन्द्र १७६
सनितासि प्रवतो ३६०
सनेम्यस्मद् युयोत ४६१
स नो राधांस्या भरे १२२

स नो वेदो अमात्यं	११४
स पप्रथानो अभि पञ्च	५८३
सपर्यवो भरमाणा	२९
स प्रकेत उभयस्य	३०४
समध्वरायोषसो नमन्त	३९१
स मन्द्रया च जिह्वया:	१३५
स मर्तो अग्ने स्वनीक	२३
स मह्ना विश्वा दुरितानि	१०४
समान ऊर्वे अधि	६३१
समिधा जातवेदसे	१०९
समुद्रज्येष्ठा: सलिलस्य	४२५
समु वां यज्ञं महयं	५२०
समु वो यज्ञं महयन्	३९५
सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा	६७१
सम्राळन्य: स्वराळन्य	६६०
स योजते अरुषा	१२८
स रेतोधा वृषभ:	८०३
स वावृधे नर्यो योषणासु	७५७
स वीरो अप्रतिष्कुत	२७१
स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु	६८७
स सुक्रतुर्यो वि दुर: पणीनां	८८
स सूर्यं प्रति पुरो न	५२३
सस्तु माता सस्तु पिता	४४९
सस्वश्चिद्धि तन्व:	४९७
सस्कश्चिद्धि समृति:	५१२
सहस्रशृङ्गो वृषभो	४५१
स हि क्षयेण क्षम्यस्य	४१४
स हि शुचि: शतपत्र:	७७३
सांतपना इदं हवि:	४९९
सा विट् सुवीरा	४५७
सिषक्ति सा वां सुमति:	५९१
सुमस्ते अग्ने सनवित्तो	३९४
सुनोता सोमपाव्ने	२७३
सुप्रावीरस्तु स क्षय:	५४८
सुविज्ञानं चिकितुषे	८२८
सुसंदृक् ते स्वनीक	४२
सूर्यस्येव वक्षथो ज्योति:	३००
सेदग्निरग्नींरत्यस्त्वन्यान्	१४
सेदग्निर्यो वनुष्यतो	१५
सेदुग्रो अस्तु मरुत:	३८१
तेमां वेतु वषट्	११७
सो अग्न एना नमसा	७४१
स्तरीरु त्वद् भवति सूत	८००
स्तेनं राय सारमेय	४४७
स्पर्धन्ते वा उ देवहूये	६८५
स्पार्हा यस्य श्रियो	११६
स्वध्वरा करति जातवेदा	१४२
स्वर्णं वस्तोरुषसां	९४
स्वश्वा यशसा यातं	५८४
स्वाध्यो३ वि दुरो	३०
स्वायुधास इष्मिण:	४६३
हन्ता वृत्रमिन्द्र:	१८३
हवं त इन्द्र महिमा	२४०
हवन्त उ त्वा हव्यं	२५०
ह्वयापि देवां अयातु:	३१४

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

अष्टम - मण्डल ।

[१]

[ऋषिः- १-२ प्रगाथो (घौरः) काण्वः; ३-२९ मेधातिथि-मेध्यातिथी काण्वौ, ३०-३३ प्लायोगिरासङ्गः, ३४ आङ्गिरसी शश्वती ऋषिका । देवता- इन्द्रः, ३०-३४ आसङ्गः । छन्द- १-४ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), ५-३२ बृहती, ३३-३४ त्रिष्टुप् ।]

१ मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
२ अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ— [१] हे (सखायः) मित्रो ! (अन्यत् चित् मा शंसत) तुम किसी दूसरे देवकी स्तुति मत करो । किसी दूसरे देवकी स्तुति करके (मा रिषण्यत) दुःखी मत होओ । (सुते) सोमरसके निचोडे जानेवाले यज्ञमें (वृषणं इन्द्रं इत्) बलशाली इन्द्रकी ही (सचा स्तोत) एक साथ मिलकर स्तुति करो, (च) और (उक्था) इन्द्रके स्तोत्रोंको (मुहुः शंसत) बार बार बोलो ॥ १ ॥

१ अन्यत् चित् मा शंसत, मा रिषण्यत– ऐश्वर्यशाली परमात्माको छोडकर और किसी देवकी स्तुति मत करो और दुःखी मत होओ ।

[२] (यथा वृषभं अवक्रक्षिणं) बलशाली बैलके समान शत्रुओंके विनाशक (अजुरं) कभीभी क्षीण या वृद्ध न होनेवाले (गां न चर्षणीसहं) गौके समान मनुष्योंका पालन पोषण करनेवाले, (विद्वेषणं) उपासकोंके हृदयोंसे द्वेषको दूर करनेवाले, (संवननं) सबके द्वारा भजनीय (उभयंकरं) निग्रह-अनुग्रह दोनों करनेवाले (मंहिष्ठं) अत्यन्त महिमाशाली (उभयाविनं) चर-अचर इन दोनों जगत्की रक्षा करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करो ॥ २ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली परमात्माको छोडकर अन्य देवकी उपासना करनेसे मनुष्य संकटमें पडकर दुःखी होता है । वही परमात्मा संकटोंसे उपासकको उबारनेवाला है, अतः हर यज्ञमें उसी एक परमात्माकी स्तुति करनी चाहिए और बार बार स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

यह इन्द्र बलशाली बैलके समान शत्रुओंका विनाशक, कभी क्षीण न होनेवाला, गौके समान मनुष्योंका पालनपोषण करनेवाला, भक्तोंके हृदयोंसे द्वेषको दूर करनेवाला, शत्रुओंका निग्रह करके भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला, अत्यन्त महिमाशाली तथा चर और अचर दोनों जगत्की रक्षा करनेवाला है । ऐसे ही इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए ॥ २ ॥

३ यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु ते ऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
४ वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितो ऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥
५ महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ५ ॥
६ वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् चित्) यद्यपि (इमे जनाः) ये सभी प्रजायें (ऊतये) अपनी रक्षाके लिए (त्वा नाना हवन्ते) तुझे अनेक प्रकारसे बुलाते हैं, तो भी (अस्माकं ब्रह्म इत्) हमारी स्तुति ही (विश्वा अहा) सब दिन (ते वर्धनं भूतु) तेरी महिमाको बढानेवाली हो ॥ ३ ॥

[४] हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली प्रभो ! (विपश्चितः अर्यः) विद्वान् और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष, (जनानां विपः) मनुष्योंका विशेष रूपसे पालन करनेवाले तेरे उपासक तेरी कृपा पाकर (तर्तूर्यन्ते) संकटोंसे पार हो जाते हैं। हे इन्द्र ! तू (उप क्रमस्व) हमारे पास आ तथा (ऊतये) हमारी रक्षाके लिए (पुरुरूपं) अनेकों रूपोंवाले (नेदिष्ठं) अत्यन्त समीप रहनेवाले (वाजं) बलको (आ भर) हमें प्रदान कर ॥ ४ ॥

१ विपश्चितः अर्यः जनानां विपः तर्तूर्यन्ते— विद्वान्, श्रेष्ठ और प्रजाओंका पालन करनेवाले भक्त प्रभुकी कृपासे संकटोंसे पार हो जाते हैं।

[५] हे (अद्रिव, शतामघ) वज्रको धारण करनेवाले तथा सैंकडों तरहके ऐश्वर्यवाले प्रभो ! मैं (त्वा) तुझे (महे शुल्काय चन) बहुत बडी संपत्तिके लिए भी (परा दद्यां) दूसरोंको न दूं। हे (वज्रिव) वज्रधारी इन्द्र ! मैं तुझे (सहस्राय न) हजारके लिए भी न दूं, (अयुताय न) दस हजारके लिए भी न दूं, (शताय न) असंख्य या अपरिमितके लिए भी न दूं ॥ ५ ॥

१ शतामघ-त्वा महे शुल्काय चन परा देयाम्— हे सैंकडों तरहके ऐश्वर्यवाले प्रभो ! मैं तुम्हें बहुत बडे धनके लिए भी न बेचूं।

[६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (मे पितुः वस्याँ असि) मेरे पिताकी अपेक्षा भी अधिक धनवान् है, (अभुंजतः भ्रातुः उत) धनका उपभोग न करनेवाले अर्थात् कंजूस भाईकी अपेक्षा भी तू अधिक धनवान् है, पर (मे माता च समा) मेरी माता और तू दोनों समान हैं अतः हे (वसो) सबको बसानेवाले प्रभो ! (राधसे वसुत्वनाय) धन और निवासकी प्राप्तिके लिए मुझे (छदयथः) तुम दोनों समर्थ बनाओ ॥ ६ ॥

१ मे माता च समा— माता और प्रभु दोनों समान होते हैं।

भावार्थ— इस प्रभुकी सभी प्रजायें स्तुति करती हैं, पर जब एक सच्चा उपासक हृदयसे इस प्रभुकी उपासना करता है, तभी उस प्रभुकी महिमा बढती है ॥ ३ ॥

विद्वान्, श्रेष्ठ तथा प्रजाओंके रक्षक मनुष्यों पर प्रभुकी कृपा होती है और वे हर तरहके संकटोंसे पार हो जाते हैं. वह प्रभु हमें भी अनेक तरहका बल प्रदान करे, ताकि हम अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हों ॥ ४ ॥

प्रभु कोई बेचनेकी वस्तु नहीं है, वह तो भक्तका सर्वस्व होता है। अतः यदि कोई हजार, दसहजार या अपरिमित धन लेकर आए, और उस धनको देकर प्रभुको खरीदना चाहे, तो भक्त उस धनको ठुकराकर प्रभुको ही अपनाता है। भक्तके लिए प्रभुका मूल्य उस धनकी तुलनामें कहीं अधिक है ॥ ५ ॥

प्रभुका महत्त्व पिता और भाईसे भी बढकर है, पर माताका महत्त्व प्रभुके महत्त्वके समान ही है। माताका महत्त्व इतना अधिक होता है कि वह प्रभुके समान ही होती है। क्योंकि वह प्रभुकी तरह संसारका निर्माण करती है ॥ ६ ॥

७ क्वे॑यथ॒ क्वेद॑सि पु॒रु॒त्रा चि॒द्धि ते॒ मनः॑ ।
अल॑र्षि युध्म खजकृत् पुरंदर॒ प्र गा॑य॒त्रा अ॑गासिषुः ॥ ७ ॥
८ प्रास्मै॑ गाय॒त्रम॑र्चत वा॒वातु॒र्यः पु॑रंद॒रः ।
याभि॑ः का॒ण्वस्योप॑ ब॒र्हिरा॒सदं॒ यास॑द् व॒ज्री भि॒नत् पुर॑ः ॥ ८ ॥
९ ये ते॒ सन्ति॑ दश॒ग्विनः॑ श॒तिनो॒ ये स॑ह॒स्रिण॑ः ।
अश्वा॑सो॒ ये ते॒ वृष॑णो रघु॒द्रुव॒स्तेभि॑र्न॒स्तूय॒मा ग॑हि ॥ ९ ॥
१० आ त्व॒द्य स॑ब॒र्दुघां॑ हु॒वे गा॑य॒त्रवे॑पसम् ।
इन्द्रं॑ धे॒नुं सु॒दुघा॒मन्या॒मिष॑मु॒रुधा॑राम॒रंकृ॑तम् ॥ १० ॥

अर्थ— [७] (क्व इयथ) हे इन्द्र! तू कहां जाता है और (क्व इत् असि) कहां रहता है, यह नहीं जाना जा सकता, (हि) क्योंकि (ते मनः पुरुत्रा चित्) तेरा मन सभी जगह जानेवाला है। हे (युध्म खजकृत् पुरंदर) युद्ध करनेमें कुशल, युद्ध करके शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाले इन्द्र! तू हमारे पास (अलर्षि) आ, क्योंकि (गायत्राः) स्तुति गानेमें कुशल हम (प्र अगासिषुः) तेरी स्तुति गाते हैं ॥ ७ ॥

[८] (यः पुरंदरः वावातुः) जो शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र भक्त पर कृपा करता है, (अस्मै) उस इन्द्रके लिए (गायत्रं अर्चत) गायत्री छन्दमें बनी हुई स्तुतिको गाओ। (याभिः) जिन स्तुतियोंसे प्रेरित होकर वह (काण्वस्य) कण्वके पुत्रके (बर्हिः उप आसदं यासत्) यज्ञके आसनके पास जाए, तथा (वज्री पुरः भिनत्) हाथोंमें वज्र धारण करके शत्रुके नगरोंको तोडे ॥ ८ ॥

[९] हे इन्द्र! (ते) तेरे (ये दशग्विनः सन्ति) जो दस योजन तक जानेवाले (शतिनः) सैकडों योजन भागनेवाले तथा (सहस्रिणः) हजारों योजन जानेवाले घोडे हैं, तथा (ते) तेरे (ये वृषणः अश्वासः) जो बलवान् घोडे हैं तथा (रघुद्रुवः) तेज दौडनेवाले हैं, (तेभिः) इन घोडोंके द्वारा तू (नः तूयं आ गहि) हमारे पास शीघ्रतासे आ ॥ ९ ॥

[१०] (अद्य इन्द्रं आ) आज इन्द्रका सत्कार करनेके लिए (सबर्दुघां) हर तरहकी कामनाओंको दुहनेवाली (गायत्रवेपसं) गायत्री रूपी छन्दसे युक्त शरीरवाली, (सुदुघां) सरलतासे फल देनेवाली (अन्यां) सब गुणोंसे युक्त (इषं) अन्न प्रदान करनेवाली (उरुधारां) अनेको धाराओंवाली तथा (अलंकृतां) अलंकारसे युक्त (धेनुं हुवे) स्तुति रूपी वाणीको बोलता हूं ॥ १० ॥

१ सबर्दुघा सुदुघा अन्या अलंकृता— वाणी कामनाओंको दुहनेवाली, उत्तम फल देनेवाली, गुणोंसे युक्त तथा उत्तम अक्षरोंसे युक्त हो।

भावार्थ— परमात्मा सर्वव्यापी होनेसे वह कब कहां जाता है और कब कहां रहता है, यह कहना या उसका पता लगाना ही असंभव है क्योंकि वह तो सदा ही सर्वत्र संचार किया करता है। वह तो सबके पास जाता है, पर सब उसकी स्तुति नहीं करते, केवल भक्त ही उसकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

वह इन्द्र अपने भक्तों पर कृपा करता है, अतः उसके भक्त भी उसकी स्तुति करते हैं। इसी तरह राजा भी अपने अनुयायियोंकी हर तरहसे रक्षा करे, तभी उसके अनुयायी उस राजाकी प्रशंसा करेंगे ॥ ८ ॥

इन्द्र अर्थात् राजाओंके पास तेजीसे दौडनेवाले तथा एकही समयमें सैकडों मीलका रास्ता तय करनेवाले घोडे होने चाहिए, ताकि वह राज्यमें सर्वत्र संचार कर सके। अध्यात्ममें आत्माके वाहन इन्द्रिय रूपी घोडे इतने बलवान् हों कि कई वर्षों तक कार्यक्षम रह सकें ॥ ९ ॥

सब कामनाओंको देनेवाली, गायत्री छन्दवाली, सरलतासे उत्तम फल देनेवाली, सब गुणोंसे युक्त, अन्न प्रदान करनेवाली तथा उत्तम अक्षरोंसे युक्त वेदवाणीसे स्तुति करने पर इन्द्र-प्रभु प्रसन्न होते हैं ॥ १० ॥

११ यत् तुदत् सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुः त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम् ॥ ११ ॥
१२ य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसु-रिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ १२ ॥
१३ मा भूम निष्ट्या इवे-न्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥
१४ अमन्महीदनाशवो ऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत् सु ते महता शूर राधसा ऽनु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

अर्थ— [११] (यत्) जब (सूरः) सूर्यने (वातस्य) वायुके (वंकू पर्णिना) टेडी मेडी गतिवाले पत्तोंसे (एतशं तुदत्) मेघको झकझोरा, तब (शतक्रतुः) सैकडों उत्तम काम करनेवाले इन्द्र अर्थात् विद्युत (आर्जुनेयं कुत्सं) अत्यन्त चमकीले प्रकाशको (वहत्) ले गया, और तब वह (अस्तृतं गन्धर्वं) किसीसे भी हिंसित न होनेवाले मेघके पास (त्सरत्) पहुंचा ॥ ११ ॥

आर्जुनेय— अर्जुन = सफेद— अर्जुनसे उत्पन्न आर्जुनेय = चमकीला.
कुत्सः = कु — अन्धकारको त्स = दूर करनेवाला प्रकाश.

[१२] (यः) जिस इन्द्रने (अभिश्रिषः ऋते चित्) पट्टीके बिना भी (जत्रुभ्यः आतृदः पुरा) गर्दनसे खूनकी धारा बहनेसे पूर्व ही (संधिं संधाता) उस घावकी संधियोंको जोड दिया, वही (मघवा पुरूवसुः) ऐश्वर्यवान् तथा अनेक तरहके धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र (विह्रुतं पुनः इष्कर्ता) घावको फिर सुधार देता है ॥ १२ ॥

[१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (निष्ट्याः इव मा भूम) नीच मनुष्योंकी तरह न हों । तथा (त्वत्) तेरी कृपासे (अरणाः इव) आनन्दसे रहित भी न हों (प्रजहितानि वनानि न) शाखा आदिसे रहित ठूंठे वृक्षोंकी तरह हम न हों । हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (दुः ओषासः अमन्महि) दूसरोंके द्वारा न जलाये जाने योग्य घरोंमें रहकर हम तुम्हारी स्तुति करें ॥ १३ ॥

[१४] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! हम (अनाशवः) शीघ्रता न करते हुए (अनुग्रासः) उग्र न होते हुए (अमन्महि) तेरी स्तुति करें । हे (शूर) शूर इन्द्र ! (ते) तेरे लिए हम (सकृत्) एक बारके लिएही सही, पर (महता राधसा) अत्यधिक धनसे (सु स्तोमं अनु मुदीमहि) उत्तम यज्ञको सम्पन्न करें ॥ १४ ॥

१ अनाशवः अनुग्रासः अमन्महि— शीघ्रता न करते हुए तथा उग्र न होते हुए हम प्रभुकी स्तुति करें ।

भावार्थ— जब सूर्यने वायुकी टेढी मेढी लहरोंको प्रेरित करके मेघको झकझोरा, तब मेघोंके घर्षणसे विद्युतकी उत्पत्ति हुई और उससे चमकीला प्रकाश चारों ओर फैल गया, तब मेघ भी नीचे गिरने लगा ॥ ११ ॥

इन्द्र शल्य क्रिया और घावोंकी चिकित्सामें भी प्रवीण है । वह युद्धमें अपने वीरोंके कहीं घाव लगने पर उस घावमेंसे खून रिस भी नहीं पाता कि टांके आदि लगा कर उस घावको जोड देता है और उसे चिकित्साके द्वारा भर देता है । इस मंत्रसे स्पष्ट होता है कि वैदिककालमें शल्य क्रिया या शल्य चिकित्सा की जाती थी ॥ १२ ॥

हम इन्द्रकी कृपासे कभी भी नीच मनुष्योंकी तरह व्यवहार न करें, तथा कभी भी आनन्द रहित न हों । नीच मनुष्योंकी तरह व्यवहार करनेवाले लोग सदा आनंदसे रहित ही होते हैं । इन्द्र प्रभुकी कृपासे हम शाखा आदिसे रहित ठूंठे पेडकी तरह पुत्रपौत्रादिसे रहित भी न हों । हम अपने पुत्रपौत्रादिकोंके साथ उत्तम और विशाल घरोंमें रहते हुए प्रभुकी स्तुति किया करें ॥ १३ ॥

प्रभुकी स्तुति करते समय मनुष्य शीघ्रता न करे, और न अपने मनमें क्रोध, द्वेष आदि दुष्ट भावनाओंकोही उत्पन्न होने दे । सदा प्रेमपूर्वकही प्रभुकी स्तुति करे । मनुष्य अपने जीवनमें एक बारही सही, पर बहुत धन खर्च करके यज्ञ करे और उसे प्रभुको समर्पित कर दे ॥ १४ ॥

१५ यदि॒ स्तोमं॒ मम॒ श्रव॑द॒स्माक॒मिन्द्र॒मिन्द॑वः ।
ति॒रः प॒वित्रं॑ ससृ॒वांस॑ आ॒शवो॒ मन्द॑न्तु तुग्र्या॒वृधः॑ ॥ १५ ॥

१६ आ त्व१॒॑द्य स॒धस्तु॑तिं वा॒वा॒तुः स॒ख्युरा ग॑हि ।
उप॑स्तुतिर्म॒घोनां॒ प्र त्वा॑व॒त्वधा॑ ते वश्मि सुष्टु॒तिम् ॥ १६ ॥

१७ सोता॒ हि सोम॒मद्रि॑भि॒रेमे॑नम॒प्सु धा॑वत ।
ग॒व्या वस्त्रे॑व वा॒सय॑न्त॒ इन्नरो॒ निर्धु॑क्षन्व॒क्षणा॑भ्यः ॥ १७ ॥

१८ अध॒ ज्मो अध॑ वा दि॒वो बृ॑ह॒तो रो॑च॒नादधि॑ ।
अ॒या व॑र्धस्व त॒न्वा॑ गि॒रा ममा ऽऽ जा॒ता सु॑क्रतो पृण ॥ १८ ॥

अर्थ— [१५] (यदि) जब वह इन्द्र (मम स्तोमं श्रवत्) मेरे स्तोत्रको सुने, तथा (अस्माकं) हमारे स्तोत्रको सुने, तब (तिरः पवित्रं ससृवांसः) उत्साह देनेवाले, छलनीमें जानेवाले (आशवः) शीघ्रतासे बहनेवाले तथा (तुग्र्यावृधः) जलसे बढनेवाले (इन्दवः इन्द्रं मन्दन्तु) सोमरस इन्द्रको आनन्दित करें ॥ १५ ॥

[१६] हे इन्द्र ! (वावातुः सख्युः) तेरी सेवा करनेवाले तेरे मित्रकी (सधस्तुतिं) साथ मिलकर की गई स्तुतिको (अद्य) आज सुनकर तू (आ गहि) हमारे पास आ। (मधोनां उप स्तुतिः) दूसरे धनवानोंकी स्तुति भी (त्वा प्र अवतु) तेरे पास पहुंचे। (अध) अब तो मैं (सुष्टुतिं वश्मि) तेरी उत्तम स्तुति करना चाहता हूं ॥ १२ ॥

[१७] हे ऋत्विजो ! (अद्रिभिः सोमं सोत) पत्थरोंसे कूटकर सोमको निचोडो, (आ) उसके बाद (एनं अप्सु धावत) इस सोमको जलोंमें मिलाओ। (गव्या वस्त्रा इव) जैसे बैलके चमडेसे लोग भूमिको ढकते हैं, उसी तरह मेघोंको (आच्छादयन्तः) व्यापते हुए (नरः) मरुत् गण (वक्षणाभ्यः निर्धुक्षन्) नदियोंके लिए जलकी धाराओंको दुहते हैं ॥ १७ ॥

[१८] हे इन्द्र ! (अध) इस समय तू चाहे (ज्मः) पृथ्वीपर हो, (अध वा) अथवा (दिवः) अंतरिक्षमें हो अथवा (बृहतः रोचनात् अधि) इस विशाल तथा प्रकाशमान द्युलोकसे भी ऊपर हो, तो भी (अया तन्वा गिरा) इस छोटीसी स्तुतिसे भी तू (वर्धस्व) वृद्धिको प्राप्त हो, तथा हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (मम जाता पृण) मुझसे उत्पन्न मेरे पुत्रादिकोंको तू पूर्ण कर, उन्हें स्वस्थ एवं सुखी कर ॥ १८ ॥

भावार्थ— जब जब मनुष्य इन्द्रकी स्तुति करें, तब तब वे जलकी तरह छाने हुए तथा शीघ्र आनन्द उत्पन्न करनेवाले सोमरस इन्द्रको देकर उसे आनन्दित करें ॥ १५ ॥

मेरे तथा अन्योंके द्वारा मिलकर की गई इन्द्रकी स्तुति उसके पास पहुंचकर उसे आनन्दित करे ॥ १६ ॥

जिस तरह लोग पशुओंके चर्मसे पृथ्वीको आच्छादित करते हैं, उसी तरह मरुत् अर्थात् वायु प्रथम मेघोंको व्यापते हैं, और फिर उनसे जलको बरसाते हैं, जिससे नदियोंमें जल जाता है ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! तू चाहे इस समय पृथ्वीपर हो, अन्तरिक्षमें हो, या द्युलोकमें हो, तो भी तू मेरी इस स्तुतिको सुन और वृद्धिको प्राप्त हो, तथा स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमारी सन्तानोंको पुष्ट कर ॥ १८ ॥

१९ इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद् विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥ १९ ॥
२० मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥ २० ॥
२१ मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥ २१ ॥
२२ शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥ २२ ॥

अर्थ— [१९] हे स्तोताओ ! (इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए (मदिन्तमं) अत्यन्त आनन्द देनेवाले (वरेण्यं सोमं सोत) तथा श्रेष्ठ सोमरसको निचोडो ; ताकि (शक्रः) वह इन्द्र (विश्वया धिया हिन्वानं) अपनी संपूर्ण बुद्धिसे स्तुति करनेवाले, तथा (वाजयुं) अन्न प्राप्तकी इच्छा करनेवाले इस यजमानको (पीपयत्) पूर्ण करे ॥ १९ ॥

[२०] हे इन्द्र ! (अहं) मैं (सवनेषु) यज्ञोंमें (सोमस्य गल्दया गिरा) सोमको छानने रूप क्रिया तथा स्तुतिसे (त्वा) तुझे सदा प्रसन्न करूं, पर मैं (सदा याचन्) 'मुझे यह दे, मुझे यह दे' इस प्रकार हमेशा कुछ न कुछ मांगता हुआ मैं (मृगं न भूर्णिं) सिंहके समान सबके स्वामी (त्वा मा चुक्रुधं) तुझे क्रुद्ध न कर दूं। अथवा (ईशानं कः न याचिषत्) अपने प्रभुसे कौन नहीं मांगता ? अर्थात् सभी मांगते हैं ॥ २० ॥

१ ईशानं कः न याचिषत्— अपने प्रभुसे कौन नहीं मांगता ?

[२१] (मदेन इषितं) आनन्दसे तैय्यार किए गए इस (उग्रं मदं) वीर्यशाली तथा आनन्ददायक सोमरसको इन्द्र पीए और (उग्रेण शवसा) अत्यधिक शक्तिसे युक्त हो फिर वह (मदे) आनन्दमें (नः) हमें (विश्वेषां तरुतारं) सभी शत्रुओंका विनाश करनेवाले, तथा (मदच्युतं) शत्रुओंके मद-अभिमानको क्षीण करनेवाले पुत्रको (ददाति) दे ॥ २१ ॥

[२२] (विश्वगूर्तः अरिष्टुतः देवः) संसारकी रक्षा करनेवाला तथा शत्रुओंसे भी प्रशंसित होनेवाला देव इन्द्र (शेवारे दाशुषे मर्ताय) सुखदायक कर्म करनेवाले तथा दान देनेवाले मनुष्यको (पुरु वार्या रासते) बहुत सा वरणीय अर्थात् श्रेष्ठ धन प्रदान करता है। (सः) वही देव (सुन्वते स्तुवते च) सोम देनेवाले तथा स्तुति करनेवाले मनुष्यको भी धन प्रदान करता है ॥ २२ ॥

भावार्थ— जिस यजमानकी ओरसे उसके स्तोता इन्द्रको अत्यन्त आनन्द देनेवाले तथा श्रेष्ठ सोमरसको प्रदान करते हैं, वह इन्द्र प्रसन्न होकर उस यजमानकी सारी अभिलाषायें पूर्ण करता है ॥ १९ ॥

मनुष्य अपने प्रभुसे अवश्य याचना करे, पर जो प्रभुसे हमेशा कुछ न कुछ मांगता ही रहता है, उससे प्रभु भी क्रुद्ध हो जाते हैं। अतः मनुष्य प्रभुसे मर्यादित याचना ही करे ॥ २० ॥

सोमरस शक्ति बढानेवाला तथा आनन्द बढानेवाला होता है। इस सोमरसको पीकर इन्द्र यथेच्छ वर प्रदान करता है ॥ २१ ॥

इस इन्द्रकी शत्रु भी प्रशंसा करते हैं। वीर ऐसा हो कि उसकी वीरता देखकर शत्रु भी प्रशंसा करें। वह वीर इन्द्र कल्याणकारी कर्म करनेवाले, दान देनेवाले, यज्ञ करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको अनेक तरहके श्रेष्ठ धन प्रदान करता है ॥ २२ ॥

२३ एन्द्रं याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥ २३ ॥

२४ आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ २४ ॥

२५ आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥ २५ ॥

२६ पिबा त्व१स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥

अर्थ— [२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आ याहि) तू आ और हे (देव) तेजस्वी इन्द्र ! (चित्रेण राधसा मत्स्व) चाहने योग्य धन देकर तू हमें आनन्दित कर । (सपीतिभिः सोमेभिः) सुनहरे रंगके सोमरसोंसे तू (उरु स्फिरं उदरं) विशाल और बडे पेटको (सरः न) तालाबके समान (प्रासि) पूर्ण कर डाल ॥ २३ ॥

[२४] (हिरण्यये रथे युक्ताः) सोनेके रथमें जोडे गए (ब्रह्मयुजः केशिनः) मंत्रसे जुडनेवाले तथा अयालवाले (सहस्रं हरयः) हजारों घोडे (सोमपीतये त्वा आ वहन्तु) सोम पीनेके लिए तुझे ले आवें, तथा (शतं आ) सौ घोडे तुझे ले आवें ॥ २४ ॥

[२५] हे इन्द्र ! (विवक्षणस्य मध्वः अन्धसः) जिसकी तू इच्छा करता है, ऐसे आनन्दकारी सोमरसको (पीतये) पीनेके लिए (त्वा) तुझे (मयूरशेप्या शितिपृष्ठा) मोरके समान रंगवाले तथा सफेद पीठोंवाले (हरी) दो घोडे (त्वा हिरण्यये रथे आ वहतां) तुझे सोनेके रथमें यहां ले आवें ॥ २५ ॥

[२६] हे (गिर्वणः) वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्र ! (पूर्वपाः इव) जिस तरह तू पहले पीता था, उसी तरह आज भी (अस्य सुतस्य परिष्कृतस्य रसिनः) इस निचोडे गए तथा अच्छी तरहसे तैयार किए गए इस सोमरसको तू (पिब) पी । (इयं चारुः आसुतिः) यह सुन्दर और निचोडा गया सोमरस (मदाय पत्यते) तुझे आनन्द देनेके लिए बह रहा है ॥ २६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारे पास आकर हमारे द्वारा दिए गए सोनेके रंगवाले सोमरसको खूब पी और हमें उत्तम धन देकर हमें आनन्दित कर ॥ २३ ॥

इन्द्रका रथ सोनेका है, जिसमें हजारों घोडे जोडे जाते हैं और वे घोडे इन्द्रको सर्वत्र ले जाते हैं ॥ २४ ॥

जिन आनन्दकारी सोमरसोंको इन्द्र पीना चाहता है, उन्हें पीनेके लिए मोर जैसे रंगवाले तथा सफेद पीठवाले घोडे तुझे सोनेके रथमें बिठाकर हमारे पास ले आवें ॥ २५ ॥

हे इन्द्र ! अच्छी तरहसे निचोडे गए तथा दूध आदि डालकर अच्छी तरहसे तैयार किए गए ये सोमरस तेरे लिए हैं, तू इन्हें पी और आनन्दित हो ॥ २६ ॥

32

२७ य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत् स शिप्री न स योषदा गम—द्धवं न परि वर्जति ॥ २७ ॥

२८ त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥ २८ ॥

२९ मम त्वा सूर उदिते मम मध्यंदिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वस—वा स्तोमासो अवृत्सत ॥ २९ ॥

३० स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥ ३० ॥

अर्थ— [२७] (यः) जो इन्द्र ! (एकः) अकेला–अद्वितीय (दंसना महान्) अपने उत्तम कर्मोंके कारण सबसे बडा (उग्रः) पराक्रमी तथा (व्रतैः अभि) अपने व्रतोंके कारण सबसे श्रेष्ठ है, ऐसा (सः शिप्री) सुन्दर रूपवाला वह इन्द्र (गमत्) हमारे पास आवे, (सः न योषत्) वह हमसे दूर न हो, (हवं आ गमत्) हमारे यज्ञमें वह आवे, (न परिवर्जति) वह हमारे यज्ञको न छोडे ॥ २७ ॥

[२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् त्वं) जब तूने (वधैः) अपने शस्त्रास्त्रोंसे (शुष्णस्य चरिष्ण्वं पुरं) शुष्ण असुरके चलते फिरते नगरको (सं पिणक्) तोडा, तथा (त्वं) तूने (भाः अनुचरः) प्रकाश मार्गका अनुसरण किया (अधः) उसके बादही तू (द्विता हव्यः भुवः) दो तरहसे प्रशंसनीय हुआ ॥ २८ ॥

१ भाः अनु चरत्, हव्यः भुवत्— जो प्रकाश मार्गका अनुसरण करता है, वह हर तरहसे प्रशंसनीय होता है।

[२९] हे (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (सूरे उदिते) सूर्यके उदय होनेपर (मम स्तोमासः) मेरे स्तोत्र (त्वा अवृत्सत) तुझे प्राप्त हों, (दिवः मध्यंदिने मम) दिनके मध्याह्न कालमें भी मेरे स्तोत्र तुझे प्राप्त हों, (प्रपित्वे अपि शर्वरे) दिनके अस्त होने तथा रात्रिके शुरू होनेपर भी (मम आ) मेरे स्तोत्र तुझे प्राप्त हों ॥ २९ ॥

[३०] हे (मेध्यातिथे) मेध्यातिथे ! (ते एते) तेरे, ये लोग (मघोनां मघस्य मंहिष्ठासः) धनवानोंके बीचमें धनोंको अत्यधिक देनेवाले, (निन्दिताश्वः) दूसरोंको नीचा दिखानेवाले घोडोंसे युक्त (प्रपथी) उत्तम मार्गवाले तथा (परमज्या) उत्तम धनुषवाले हैं, अतः तू इनकी (स्तुहि स्तुहि) बार बार प्रशंसा कर ॥ ३० ॥

मेध्य–अतिथिः– ज्ञानवान् अतिथि

भावार्थ— यह इन्द्र अद्वितीय है, इसके समान कोई नहीं है, पर यह अपने उत्तम कर्मोंके कारणही सबसे बडा हुआ है तथा उत्तम व्रतोंका आचरण करनेके कारणही यह अन्योंसे श्रेष्ठ भी हुआ है। यह इन्द्र सदा हमारे पासही रहे कभी भी हमसे दूर या अलग न हो ॥ २७ ॥

इस इन्द्र–अर्थात् सूर्यने अन्धकाररूपी असुरकी चलती फिरती नगरी रात्रिको तोडा और सर्वत्र प्रकाश फैलाया। प्रातः होते ही चर-अचर दोनों प्रकारकी सृष्टियां इस इन्द्र–सूर्यकी स्तुति करने लगीं ॥ २८ ॥

सूर्यके उदय होनेके समय अर्थात् प्रातःकाल, दिनके मध्यमें–मध्याह्न तथा सूर्य अस्त होने तथा रात्रीके शुरू होनेके समय अर्थात् सायं सन्ध्याके समय इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए। इस मंत्रमें प्रातः सवन माध्यन्दिन सवन तथा सायंसवन का विधान है ॥ २९ ॥

ज्ञानवान् अतिथि जहांपर भी और जिस घरमें भी जाए, वहींसे उसे अत्यधिक धन मिले और वह अतिथि सबकी प्रशंसा करे ॥ ३० ॥

३१ आ यदश्वान् वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥ ३१ ॥

३२ य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगा ऽऽसंगस्य स्वनद्रथः ॥ ३२ ॥

३३ अध प्लायोगिरति दासदन्या नासंगो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ ३३ ॥

३४ अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्ता दनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं बिभर्षि ॥ ३४ ॥

अर्थ— [३१] (यत्) जब (अहं) मैं (वनन्वतः) मेरी भक्ति करनेवाले मनुष्यके (अश्वान् श्रद्धया आरुहम्) घोडोंपर श्रद्धासे चढा, और (रथे आ) रथ पर चढा, तब (यः) जो (याद्वः) मनुष्योंमें श्रेष्ठ और (पशुः) पशुओंवाला है, उसने (वामस्य वसुनः चिकेतति) सुन्दर धनको देना चाहा ॥ ३१ ॥

[३२] (यः) जिसने (मह्यं) मुझे (ऋज्रा) सत्ययुक्त (हिरण्यया) सोने तथा (त्वचा सह) मृगचर्म आदिसे युक्त धन (ममहे) दिए, (एषः) वह यह मनुष्य (विश्वानि सौभगा अभि अस्तु) सम्पूर्ण सौभाग्योंको प्राप्त करके सबसे श्रेष्ठ बन जाए, तथा (आसंगस्य) इस धनवान्‌का (स्वनत् रथः) रथ सदा आवाज करता रहे ॥ ३२ ॥

[३३] हे (अग्ने) तेजस्वी देव! (अध) अतः (प्लायोगिः आसंगः) प्लयोगके पुत्र आसंगने (दशभिः सहस्रैः) दसों, हजारों तरहके धन देकर (अन्यान् अति दासत्) दूसरे दानियोंसे ऊपर बढ गया है, (अधः) इसके बाद (मह्यं) मुझे दिए गए (दश रुशन्तः उक्षणः) दस तेजस्वी बैल (सरसः नळाः इव) तालाबसे जैसी घास उगती है, उसी तरह ((निरतिष्ठन्) अत्यधिक विस्तृत हुए ॥ ३३ ॥

[३४] (शश्वती नारी) ज्ञानसे युक्त स्त्री (अभिचक्ष्य आह) सब कुछ देखकर कहती है कि (अस्य) इस इन्द्रका (स्थूरं पुरस्तात् ददृशे) स्थूलरूप पहले दिखाई देता है, पर इस स्थूलरूपके पीछे (अनस्थः ऊरुः अवरम्बमाणः) अस्थिसे रहित, विस्तृत तथा सर्वत्र व्याप्त रूप है। हे (अर्य) श्रेष्ठ इन्द्र! तू ही (सुभद्रं) उत्तम कल्याणकारी (भोजनं बिभर्षि) भोजन धारण करता है ॥ ३४ ॥

भावार्थ— जब जब कोई ज्ञानी अतिथि किसीके घरमें प्रेमसे पधारे, तब तब वह यजमान उस अतिथिका धनादिसे सत्कार करे ॥ ३१ ॥

धन प्राप्त करके वह ज्ञानी अतिथि यजमानको इस प्रकार आशीर्वाद दे कि जिस यजमानने मुझे सोना, मृगचर्म आदि अनेक तरहके धन दिए हैं, वह दाता सदा सौभाग्योंसे युक्त रहे और उसका रथ सदा गति करता रहे अर्थात् वह सदा रथपर चढकर घूमा करे ॥ ३२ ॥

मनुष्य यथाशक्ति दान देनेकी कोशिश करे तथा बैल यदि देने हों, तो ऐसे गाय बैल दे कि जिनसे सन्तति होकर उनका विस्तार हो। बूढी गायें या बूढे बैल दानमें न दे ॥ ३३ ॥

ज्ञानसे युक्त स्त्री अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे प्रभुके रूपको जानकर कहती है कि आंखोंके सामने जो संसार है, वह प्रभुका स्थूलरूप है, पर इस संसारके पीछे जो प्रभूका सूक्ष्मरूप है, वह पंचतत्त्वसे परे, विस्तृत और सर्वव्यापक है। वही सूक्ष्मरूप प्रभु सारे संसारके लिए भोजनादि प्रदान करता है ॥ ३४ ॥

[२]

(ऋषिः- १-४० मेधातिथिः काण्वः, आङ्गिरसः प्रियमेधश्च, ४१-४२ मेधातिथिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः, ४१-४२ विभिन्दुः । छन्द- गायत्री, २८ अनुष्टुप् ।)

३५ इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन् ररिमा ते ॥ १ ॥
३६ नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥
३७ तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इन्द्र त्वास्मिन् सधमादे ॥ ३ ॥
३८ इन्द्र इत् सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः । अन्तर्देवान् मर्त्यांश्च ॥ ४ ॥
३९ न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् । अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥ ५ ॥
४० गोभिर्यदीमन्ये अस्मन् मृगं न व्रा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥

[२]

अर्थ— [३५] हे (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (इदं सुतं अन्धः) इस निचोडे गए अन्नरूपी सोमरसको (सुपूर्णं उदरं पिब) पूरे पेट भरने तक पी । हे (अन् आभयिन्) किसीसे भी न डरनेवाले इन्द्र ! (ते ररिम) तुझे हम ये रस प्रदान करते हैं ॥ १ ॥

[३६] ये सोम (नृभिः धूतः) मनुष्योंके द्वारा तोडकर लाए गए (अश्नैः सुतः) पत्थरोंसे कूटे गए तथा (अव्यः वारैः परिपूतः) भेडके बालोंसे छानकर पवित्र किए गए तथा (अश्वः न) घोडेके समान (नदीषु निक्तः) जलोंमें मिलाए गए हैं ॥ २ ॥

[३७] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिए हम (यवं यथा) जौसे बने पुरोडासके समानही (तं) उस सोमरसको (गोभिः श्रीणन्तः) गायके दूधमें मिश्रित करके (स्वादुं अकर्म) स्वादिष्ट बनाते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वां अस्मिन् सधमादे) तुझे इस यज्ञमें हम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[३८] (देवान् मर्त्यान् च अन्तः) देवों और मनुष्योंके बीचमें (एकः इन्द्रः इत्) एक इन्द्रही (सोमपाः) सोमरसको पीनेवाला है । (सुतपाः इन्द्रः विश्वायुः) सोमरसको पीनेवाला इन्द्रही दीर्घायु होता है ॥ ४ ॥

[३९] (यं उरुव्यचसं सुहार्दं) जिस अत्यन्त विस्तृत और उत्तम हृदयवाले इन्द्रको (शुक्रः न अपस्पृण्वते) तेजस्वी सोमरस प्रसन्न नहीं करता हो, ऐसी बात नहीं, (दुराशीः न) कठिनतासे पीनेके लिए मिलनेवाला सोमरस प्रसन्न नहीं करता हो, ऐसी बात नहीं, तथा (तृप्राः) तृप्त करनेवाले सोमरस (न) तृप्त न करते हों, ऐसी भी बात नहीं ॥ ५ ॥

[४०] (अस्मत् अन्ये) हमारे अलावा दूसरे लोग भी (यत्) जब (ईं) इस इन्द्रको (गोभिः) गोदुग्ध आदि लेकर (व्राः मृगं न) जिस प्रकार शिकारी हिरणोंको खोजते हैं, उसी प्रकार (मृगयन्ते) खोजते फिरते हैं, तब वे (धेनुभिः) उत्तम स्तुतियोंसे युक्त होकर उस इन्द्रके पास (अभित्सरन्ति) आते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तुझे ये सोमरस प्रदान करते हैं, तू इन रसोंको पेट भरने तक पी ॥ १ ॥

सोम पहले तोडकर लाए जाते हैं, फिर पत्थरों द्वारा कूटकर उनका रस निकाला जाता है, फिर भेडके ऊनसे बनी हुई छलनीसे उसे छाना जाता है, फिर जिस प्रकार घोडेको नदीमें नहलाया जाता है, उसी तरह उस सोमरसमें पानी मिलाया जाता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम इस सोमरसको उसमें दूध आदि मिश्रित करके स्वादिष्ट बनाते हैं और तुम्हें बुलाते हैं ॥ ३ ॥

देवों और मनुष्योंमें यह इन्द्रही भरपूर सोमरस पीनेवाला है, इसीलिए उसकी आयु भी दीर्घ होती है । सोमरसका पान करनेवाले की आयु दीर्घ होती है ॥ ४ ॥

इस अत्यन्त विस्तृत तथा उत्तम हृदयवाले इन्द्रको सोमरस हर तरहसे तृप्त करते हैं ॥ ५ ॥

दूसरे लोगभी इस इन्द्रको आनेका प्रयत्न करते हैं, फिर आन लेनेके बाद उसकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

४१ त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतपान्नः ॥ ७ ॥
४२ त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥
४३ शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥
४४ इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः । शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥
४५ ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि । रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ ११ ॥
४६ हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥

अर्थ— [४१] (सुतपाव्नः देवस्य इन्द्रस्य) सोमरसोंको पीनेवाले देव इन्द्रके पीनेके लिए (स्वे क्षये) मनुष्योंके सुखदायक घरोंमें (त्रयः) तीनों समयमें (सुतासः सोमाः सन्तु) निचोडे हुए सोम तैय्यार रहें ॥ ७ ॥

[४२] (समाने भार्मन् अधि) एक ही यज्ञमें (त्रयः कोशासः श्चोतन्ति) तीन बर्तन सोमरस चुआते हैं और (तिस्रः सुपूर्णाः चम्वः) तीन सोमरससे पूर्ण चमचे आहुति देते हैं ॥ ८ ॥

[४३] हे सोम ! तू (शुचिः असि) शुद्ध और पवित्र है, (पुरु निष्ठा) अनेकोंके हृदयोंमें तू रहनेवाला है तथा (मध्यतः क्षीरैः आशीर्तः) बीच बीचमें दूधसे मिश्रित होता है, तथा (दध्ना) दहीसे भी मिश्रित होता है, और तू (शूरस्य मन्दिष्ठः) शूरको और उत्साह देनेवाला होता है ॥ ९ ॥

[४४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अस्मे सुतासः) हमारे द्वारा निचोडे गए (इमे तीव्राः शुक्राः सोमाः) ये तीखे और तेजस्वी सोमरस (आशिरं याचन्ते) दूध आदिकी इच्छा करते हैं ॥ १० ॥

[४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमं पुरोळाशं) इस पुरोडाश तथा (आशिरं सोमं) दूधसे मिश्रित सोमरस अर्थात् (तान्) उन सबको तू (श्रीणीहि) भक्षण कर, (हि) क्योंकि मैं (त्वां रेवन्तं शृणोमि) तुझे धनवान् सुनता हूँ ॥ ११ ॥

[४६] (सुरायां दुर्मदासः न) सुरा पीनेके बाद दुष्ट मस्त होकर परस्पर युद्ध करते हैं, उसी तरह हे इन्द्र ! (पीतासः) पिए गए ये सोमरस (हृत्सु) तेरे हृदयमें (युध्यन्ते) परस्पर युद्ध करते हैं । तथा (ऊधः न) जिस तरह भरे हुए थनोंवाली गायकी जिस तरह लोग प्रशंसा करते हैं, उसी तरह (नग्नाः जरन्ते) स्तोता तेरी स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— हर मनुष्यके घरमें प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन यज्ञ हों और उन यज्ञोंमें इन्द्रको सोमरस अर्पित किया जाए ॥ ७ ॥

तीनों सवनोंमें इस इन्द्रके लिए सोमरसकी आहुति दी जाती है ॥ ८ ॥

यह सोम पीनेवालेके हृदयोंको उत्साहसे भर देता है । ये सोमरस स्वादमें तीखे होनेके कारण इसमें दूध और दही आदि मिलाकर पिया जाता है ॥ ९ ॥

सोमरस तेजस्वी और स्वादमें तीखे होते हैं, अतः जब उनमें गायका दूध मिलाया जाता है, तभी वे पीनेके योग्य होते हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू धनवान् है अतः मेरे द्वारा दिए गए इस पुरोडाश तथा दुग्धमिश्रित सोमरसको पीकर हमें धन प्रदान कर ॥ ११ ॥

सोम पीनेके बाद वे सोमरस शरीरमें उत्साहका संचार करते हैं ॥ १२ ॥

४७ रेवाँ इद् रेवतः स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥
४८ उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥
४९ मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः । शिक्षा शचीवः शचीभिः ॥ १५ ॥
५० वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १६ ॥
५१ न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ १७ ॥
५२ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ १८ ॥

अर्थ— [४७] हे (हरिवः) तेजसे युक्त इन्द्र! तेरी (स्तोता रेवान् स्यात्) स्तुति करनेवाला धनवान् हो, क्योंकि (त्वावतः रेवतः मघोनः) तेरे जैसे धनवान् और ऐश्वर्यशालीका स्तोता भी (प्र इत् उ) धनवान् होताही है ॥ १३ ॥

[४८] (अगोः अरिः) स्तुति न करनेवालोंका शत्रु वह इन्द्र (गीयमानं गायत्रं) गाये जाते हुए तथा (शस्यमानं उक्थं चन) बोले जाते हुए स्तोत्रको भी (आ चिकेत न) जानताही है ॥ १४ ॥

[४९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः पीयत्नवे मा दाः) हमें हिंसकोंके हाथोंमें मत सौंप, (शर्धते मा परा) जो अत्याचारी है उसके हाथोंमें भी हमें मत सौंप, अपितु हे (शचीवः) शक्तियोंसे सम्पन्न इन्द्र ! (शचीभिः शिक्ष) अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ १५ ॥

[५०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वायन्तः सखायः) तेरी शरणमें रहनेवाले तेरे मित्र (कण्वाः) ज्ञानीजन (तत् इत् अर्थाः) उसी ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छासे (उक्थेभिः जरन्ते) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, तथा (वयं उ त्वा) हम भी तेरी स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

[५१] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (अपसः नविष्टौ) कार्यको तथा स्तुति करनेके समय (अन्यत् न घ ईं आ पपन) और दूसरा कुछ भी काम न करूं, मैं केवल (तव इत् स्तोमं उ चिकेत) तेरेही स्तोत्रको करना जानता हूँ ॥ १७ ॥

[५२] (देवाः) देवगण (सुन्वन्तं इच्छन्ति) यज्ञ करनेवालेकीही इच्छा करते हैं (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) सोनेवाले मनुष्यके पास आनेकी इच्छा वे कभी नहीं करते, (अतन्द्राः) स्वयं कभी आलस्य न करनेवाले वे देवगण (प्रमादं यन्ति) आलसीको छोड जाते हैं ॥ १८ ॥

१ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, न स्वप्नाय— देवगण सदा यज्ञ करनेवालेके पासही जाना चाहते हैं, कभी आलसीके पास नहीं ।

२ अतन्द्राः प्रमादं यन्ति— आलस्य न करनेवाले देव आलसीका परित्याग कर देते हैं ।

भावार्थ— कोई मनुष्य किसी धनवानकी प्रशंसा या स्तुति करता है, तो वह भी धनवानही होता है, तो फिर उस प्रभुकी स्तुति करनेवाला धनवान् क्यों न हो ॥ १३ ॥

प्रभु नास्तिकोंका शत्रु है । जो प्रभुकी स्तुति नहीं करते, वे नष्ट हो जाते हैं । वह प्रभु तो सर्वव्यापी है, अतः वह सबकी स्तुतियों और प्रार्थनाओंको जानता है ॥ १४ ॥

हिंसकों और अत्याचारियोंके अधीन होना भी प्रभुकी अकृपाही है, अतः मनुष्यको चाहिए कि वह कभी भी हिंसकों और अत्याचारियोंके वशमें न हो ॥ १५ ॥

इस प्रभुसे मित्रता करनेवाले ज्ञानी जन भी ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए इसी प्रभुकी प्रार्थना करते हैं, फिर साधारण लोगोंकी तो बातही क्या ? ॥ १६ ॥

प्रभुकी स्तुति रूप कार्य करते समय मनुष्य और कोई काम न करे, अपितु उस समय वह केवल प्रभुकी स्तुतिही करे ॥ १७ ॥

जो सदा यज्ञरूप सत्कर्म करता रहता है, वही देवगणोंका प्रिय होता है, और देवगण उसीके पास जाते हैं । पर जो आलस्य और प्रमाद करता है, उसका वे परित्याग कर देते हैं ॥ १८ ॥

५३ ओ षु प्र याहि वाजेभि--र्मा हृणीथा अभ्यस्मान् । महाँ इव युवजानिः ॥ १९ ॥
५४ मो ष्वद्य दुर्हणावान् त्सायं करदारे अस्मत् । अश्रीर इव जामाता ॥ २० ॥
५५ विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् । त्रिषु जातस्य मनांसि ॥ २१ ॥
५६ आ तू षिञ्च कण्वमन्तं न घा विद्म शवसानात् । यशस्तरं शतमूतेः ॥ २२ ॥
५७ ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय । भरा पिबन्नर्याय ॥ २३ ॥
५८ यो वेदिष्ठो अव्यथि--ष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः । वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥

अर्थ— [५३] हे इन्द्र ! (अस्मान् अभि मा हृणीथाः) तू हमारे ऊपर कभी भी क्रोधित मत हो, अपितु (महान् युवजानिः इव) जिस तरह कोई मनुष्य महान् होनेपर भी अपनी पत्नीके पास जाता है, उसी तरह तू (वाजेभिः) घोडोंसे (ओ षु प्र याहि) हमारी तरफ आ ॥ १९ ॥

[५४] (दुर्हणावान्) शत्रुओंसे असह्य बलवाला इन्द्र (अस्मत् आरे) हमारे पास आवे, वह (अश्रीरः जामाता इव) लक्ष्मीहीन दरिद्र जामाताके समान (सायं मा करत्) सायंकाल न करे ॥ २० ॥

[५५] हम (अस्य वीरस्य) इस वीर इन्द्रकी (भूरिदावरीं सुमतिं) बहुत ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली उत्तम बुद्धि तथा (त्रिषु जातस्य) तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध इस इन्द्रके (मनांसि) मनोंको भी (विद्म) जानते हैं ॥ २१ ॥

[५६] हे मनुष्य तू (कण्वमन्तं) ज्ञानसे युक्त इन्द्रको (तु आ सिंच) सोमरससे सींच क्योंकि (शवसानात् शतं ऊतेः) अत्यन्त बलशाली तथा सैंकडों तरहके रक्षाके साधनोंसे युक्त इस इन्द्रकी अपेक्षा (यशस्तरं) अधिक यशस्वी (न घा विद्म) हम नहीं जानते ॥ २२ ॥

[५७] हे (सोतः) सोम तैयार करनेवाले मनुष्य ! (ज्येष्ठेन) सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण (वीराय शक्राय अर्याय इन्द्राय) वीर, शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ इन्द्रके लिए (सोमं भर) सोमरस प्रदान कर, तथा वह इन्द्र ((पिबत्) पीए ॥ २३ ॥

[५८] (यः) जो इन्द्र (अव्यथिषु) कभी दुःखी न होनेवाले लोगोंकी (वेदिष्ठः) यज्ञवेदी पर आकर बैठता है, वह इन्द्र (जरितृभ्यः स्तोतृभ्यः) मंत्र बोलकर स्तुति करनेवालोंको (अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं) घोडे और गायोंसे युक्त ऐश्वर्यको प्रदान करता है ॥ २४ ॥

भावार्थ— मनुष्य कभी ऐसा काम न करे कि जिससे इन्द्र उसके ऊपर क्रोधित हो, अपितु जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी पत्नी की तरफ आकर्षित होता है, उसी तरह इन्द्र उसकी तरफ आकर्षित होकर जाए ॥ १९ ॥

जिस तरह कोई दरिद्र जामाता अपने ससुराल आनेमें आनाकानी करता है, उसी तरह इन्द्र हमारे पास आनेमें आनाकानी न करे ॥ २० ॥

तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध प्रभुका मन सभी प्राणियों पर उदार होता है, तथा वह सब प्राणियोंको उदार मनसे सहायता देता है, यह बात विद्वान् जानते हैं ॥ २१ ॥

इस बलशाली तथा सुरक्षाके साधनोंसे युक्त इन्द्रकी अपेक्षा अधिक यशस्वी और कोई नहीं है, इसलिए वही एक पूजाके योग्य है ॥ २२ ॥

वह इन्द्र सबसे श्रेष्ठ, सबसे अधिक शक्तिशाली तथा तेजस्वी होनेके कारण पूजाके योग्य है । जो शक्तिशाली और तेजस्वी होता है, वही पूजाके योग्य होता है ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यके यज्ञमें इन्द्र जाता है, वह कभी भी दुःखी नहीं होता अपितु घोडे, गाय आदि ऐश्वर्योंसे युक्त होता है ॥ २४ ॥

५९ पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय । सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥
६० पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् । नि यमते शतमूतिः ॥ २६ ॥
६१ एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् । गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥
६२ स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥ २८ ॥
६३ स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय । इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥
६४ गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि । सत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥

अर्थ— [५९] हे (सोतारः) सोमरस निचोडनेवाले मनुष्यो ! (मद्याय वीराय शूराय) आनन्दयुक्त, वीर तथा शूर इन्द्रके लिए (पन्यं पन्यं सोमं इत्) प्रशंसाके योग्य सोमको ही (आ धावत) प्रदान करो ॥ २५ ॥

[६०] (सुतं पाता) सोमरसको पीनेवाला तथा (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (अस्मत् आ गमत्) हमारे पास आवे, (न आरे) हमसे दूर न जाए। तथा (शतं ऊतिः) सैंकडों तरहके रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर वह इन्द्र (नियमते) हमारे शत्रुओंपर नियंत्रण करे ॥ २६ ॥

[६१] (ब्रह्मयुजा-शग्मा हरी) ज्ञानसे युक्त, सुखकारी घोडे (गीर्भिः श्रुतं) स्तुतियोंसे प्रसिद्ध तथा (गिर्वणसं सखायं) स्तुतिके योग्य मित्रके समान हितकारी इन्द्रको (इह आ वक्षतः) यहां ले आवें ॥ २७ ॥

[६२] हे (शिप्रिन् ऋषीवः शचीवः) सुन्दर रूपवाले, ज्ञानयुक्त और शक्तियुक्त इन्द्र ! (स्वादवः सोमाः) स्वादिष्ट सोम तैय्यार हैं, तू (आ याहि) आ जा, (सोमाः श्रीताः) सोम निचोड लिए गए हैं, तू (आ याहि) आ जा। (न) अब (अयं) यह तेरा भक्त (सधमादं) आनन्द प्रदान करनेवाले तुझे (अच्छ) बुलाता है ॥ २८ ॥

[६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कारिणं) उत्तम कर्मोंके कर्ता तुझे (वृधन्तः) बढाती हुई (याः) जो स्तुतियां (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढाती हैं, वह तू (स्तुतः) स्तुतिको प्राप्त करके (महे राधसे नृम्णाय) महान् ऐश्वर्य तथा मनुष्योंके लिए हितकारी धन प्रदान कर ॥ २९ ॥

[६४] हे (गिर्वाहः) प्रशंसनीय इन्द्र ! (याः ते गिरः सन्ति) जो तेरी स्तुतियां हैं, (तुभ्यं उक्था च) तेरे लिए लिए जानेवाले स्तोत्र हैं, (तानि सत्रा) वे एक साथ मिलकर (शवांसि दधिरे) तुझमें शक्तिको उत्पन्न करते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ— यह इन्द्र आनन्दसे युक्त, वीर और शूर है, ऐसे श्रेष्ठ देवके लिए प्रशंसा योग्य पदार्थ ही देने चाहिए ॥ २५ ॥

सोमरसको पीनेवाला वह इन्द्र प्रसन्न होकर हमारे पास आवे और हमारे शत्रुओंको दूर करें ॥ २६ ॥

इन्द्रके पशु भी ज्ञानसे युक्त तथा सुखकारी हैं। इसी तरह वीर या राजाके घोडे भी समझदार तथा सुख देनेवाले हों ॥ २७ ॥

हे सुन्दर रूपवाले ज्ञानी तथा शक्तिशाली इन्द्र ! ये सोमरस निचोडकर तैय्यार कर दिए गए हैं, और भक्त तुझे बुला भी रहा है, अतः तू आ ॥ २८ ॥

उत्तम कर्मोंको करनेवाला यह इन्द्र स्तुतियोंसे शक्तिशाली एवं प्रसन्न होकर मनुष्योंको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ २९ ॥

जो भी स्तुतियां या स्तोत्र इन्द्रके लिए किए जाते हैं, वे इन्द्रकी शक्तिको बढाते हैं ॥ ३० ॥

६५ एवेदेष तुविकूर्मि — र्वाजाँ एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ॥ ३१ ॥
६६ हन्ता वृत्रं दक्षिणेने — न्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान् महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥
६७ यस्मिन् विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च । अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥ ३३ ॥
६८ एष एतानि चकारे — न्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे । वाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥
६९ प्रभर्ता रथं गव्यन्त — मपाकाच्चिद् यमवति । इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥
७० सनिता विप्रो अर्वद्भि — र्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः । सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

अर्थ— [६५] (एषः एव इत्) यह ही इन्द्र (तुविकूर्मिः) अनेक तरहके उत्तम कर्मोंको करनेवाला है, यह (एकः) अद्वितीय (वज्रहस्तः) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाला (सनात् अमृक्तः) सदासे शत्रुओंसे अहिंसित है, ऐसा इन्द्र (वाजान् दयते) अन्नोंको प्रदान करता है ॥ ३१ ॥

[६६] (दक्षिणेन वृत्रं हन्ता) चतुरतासे वृत्रको मारनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (महीभिः शचीभिः) अपनी बडी बडी शक्तियोंके कारण (महान्) महान् है, इसलिए (पुरू) सर्वत्र व्यापी वह इन्द्र (पुरुहूतः) अनेकों प्राणियोंके द्वारा बुलाया जाता है ॥ ३२ ॥

[६७] (विश्वाः चर्षणयः) सारी प्रजायें (उत च्यौत्ना) और सारी शक्तियां (च) तथा (ज्रयांसि) विजय (यस्मिन्) जिस इन्द्रमें स्थित हैं, (मघोनः) उस ऐश्वर्यशाली इन्द्रको (अनु घ इत् मन्दी) निश्चयसे आनन्दित करना चाहिए ॥ ३३ ॥

[६८] (यः अति शृण्वे) जो अत्यन्त शक्तिशाली और पराक्रमी सुना जाता है (एषः) उसी (इन्द्रः) इन्द्रने (एतानि विश्वा चकार) इन सभी पराक्रमोंको किया। वही (मघोनां) ऐश्वर्यशालियोंको भी (वाजदावा) अन्न देनेवाला है ॥ ३४ ॥

[६९] (प्रभर्ता) सबका पोषण करनेवाला इन्द्र (यं गव्यन्तं रथं) जिस जाते हुए रथकी (अपाकात् चित्) शत्रुसे भी (अवति) रक्षा करता है, (इनः) सबका स्वामी होकर (सः हि) वही इन्द्र (वसु वोळ्हा) धनको ले जानेवाला होता है ॥ ३५ ॥

[७०] (विप्रः) वह ज्ञानी इन्द्र (अर्वद्भिः सनिता) घोडोंसे सर्वत्र जाता है, (शूरः) वह शूरवीर इन्द्र (नृभिः) नेताओंकी सहायतासे (वृत्रं हन्ता) वृत्र-शत्रुको मारता है, तथा वह (सत्यः) अविनाशी इन्द्र (विधन्तं अविता) अपनी सेवा करनेवालेकी रक्षा करनेवाला है ॥ ३६ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अनेक उत्तम कर्मोंको करनेवाला, अद्वितीय, वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाला तथा शत्रुओंके लिए अजेय है ॥ ३१ ॥

महान् शक्तिशाली होनेपर भी इस इन्द्रने वृत्रको चतुरतासे मारा। वह सर्वत्र व्यापी है और सबसे बुलाया जाता है ॥ ३२ ॥

इसी इन्द्रमें सारी प्रजायें, सारी शक्तियां और विजय प्राप्त करनेका पराक्रम स्थित हैं। ऐसे ऐश्वर्यशाली इन्द्रको प्रसन्न करना चाहिए ॥ ३३ ॥

अपने प्रसिद्ध पराक्रमके कार्योंके कारण यह इन्द्र सर्वत्र विख्यात है। धनीसे धनी मनुष्यको भी वही इन्द्र अन्न देता है। कोई चाहे जितना भी धनी हो पर उसे अन्न देनेवाला तो परमात्मा ही है ॥ ३४ ॥

जो वीर तेजीसे दौडते हुए अपने रथकी शत्रुओंसे रक्षा करता है, अर्थात् युद्धमें पराक्रम दिखाता है, वही वीर सबका स्वामी होकर धनवान् होता है ॥ ३५ ॥

यह ज्ञानी इन्द्र अपने सहायकोंकी सहायतासे शत्रुओंको मारता है और अपने सहायकोंकी रक्षा करता है इसी तरह राजा घोडे पर चढकर अपने वीरोंकी सहायतासे शत्रुओंको मारे और अपने सहायकोंकी रक्षा करे ॥ ३६ ॥

७१ यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा । यो भूत् सोमैः सत्यमद्वा ॥ ३७ ॥
७२ गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् । कण्वासो गात वाजिनम् ॥ ३८ ॥
७३ य ऋते चिद् गास्पदेभ्यो दात् सखा नृभ्यः शचीवान् । ये अस्मिन् काममश्रियन् ॥ ३९ ॥
७४ इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् । मेषो भूतोऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥
७५ शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥
७६ उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या । जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥

अर्थ— [७१] (यः सोमैः सत्यमद् वा भूत्) जो इन्द्र सोमरस पीनेके कारण सच्ची शक्तिसे युक्त होता है, (एनं इन्द्रं) इस इन्द्रकी हे (प्रियमेधाः) यज्ञसे प्रेम करनेवाले मनुष्यो ! (सत्राचा मनसा) श्रद्धासे युक्त मनसे (यजध्वं) पूजा करो ॥ ३७ ॥

[७२] हे (कण्वासः) ज्ञानी मनुष्यो ! तुम (गाथश्रवसं) जिसका यश सर्वत्र गाया जाता है, (सत्पतिं) जो सत्पुरुषोंका पालक है, (श्रवस्कामं) जो यशकी कामना करनेवाला है, (पुरुत्मानं) बहुत आत्मशक्तिवाले इन्द्रके यशका (गात) गान करो ॥ ३८ ॥

[७३] (पदेभ्यः ऋते चित्) पैर आदि अवयवोंके न होने पर भी (यः सखा शचीवान्) जिस मित्र और शक्तिशाली इन्द्रने (नृभ्यः गाः दात्) मनुष्योंके लिए वाणियां प्रदान की। (ये अस्मिन् कामं अश्रियन्) जो मनुष्य इस इन्द्रमेंही अपनी सारी कामनायें स्थापना करते हैं ॥ ३९ ॥

[७४] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (इत्था धीवन्तं) इस प्रकार स्तुति करते हुए (काण्वं) ज्ञानी (मेध्यातिथिं) पूजाके योग्य अतिथिके पास तू (मेषः भूतः अभि यन् अयः) मेष होकर गया ॥ ४० ॥

[७५] हे (विभिन्दो) शत्रुओंको भेदनेवाले इन्द्र ! तूने (अस्मै) इस ज्ञानीके लिए (चत्वारि अयुता ददत्) चार गुना दस हजार अर्थात् चालीस हजारकी संख्यामें धन दिया, (परः) उसके अलावा (अष्टा सहस्रा) आठ हजार धन और भी दिए ॥ ४१ ॥

[७६] (उत) और (पयोवृधा) जलको बढानेवाले (माकी) सबके निर्माता (रणस्य नप्त्या) स्तोताके पतनको न होने देनेवाले द्यावा पृथ्वीकी मैं (जनित्वनाय) उत्तम धान्य आदिकी उत्पत्तिके लिए (मामहे) स्तुति करता हूं ॥ ४२ ॥

भावार्थ— सोमरसोंको पीनेसे शक्ति आती है, इन्हीं सोमरसोंके कारण इन्द्र शक्तिशाली है, इसीलिए इसकी सब लोग पूजा करते हैं ॥ ३७ ॥

राजाके यशको सभी गाएं, वह सज्जनोंका पालन करे, वह यश की कामना करनेवाला हो, तथा आत्मशक्तिसे युक्त हो। ऐसे वीर राजाके यशका गान ज्ञानी जन भी करते हैं ॥ ३८ ॥

ऐश्वर्यशाली प्रभु मनुष्योंका मित्रके समान हित करनेवाला है। निराकार होनेके कारण पैर आदि अवयवोंसे रहित होनेपर भी उसने मनुष्योंको वाणी प्रदान की, अतः ज्ञानीजन अपने मनोरथोंकी पूर्तिके लिए उसी प्रभुकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३९ ॥

ज्ञानी और पूज्य अतिथिका सदा सत्कार करना चाहिए ॥ ४० ॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्र ज्ञानीके लिए असंख्य धन प्रदान करता है ॥ ४१ ॥

द्युलोक और पृथ्वीलोक ये दोनों ही लोक सभीके निर्माता तथा उत्तम धान्यको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ४२ ॥

[३]

(ऋषिः— मेध्यातिथिः काण्वः । देवता— इन्द्रः, २१–२४ कौरयाणः पाकस्थामा । छन्द— प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ अनुष्टुप्, २२–२३ गायत्री, २४ बृहती ।)

७७ पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥
७८ भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥
७९ इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥
८० अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

---

[३]

अर्थ— [७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः सुतस्य) हमारे द्वारा निचोडे गए तथा (गोमतः) गायके दूधसे मिश्रित (रसिनः) रससे युक्त सोमरसको (पिब) पी और (मत्स्व) आनन्दित हो । (सधमाद्यः आपिः) आनन्दित होनेवाला तथा भाईके समान हितकारी तू (नः वृधे) हमारी उन्नतिके लिए (बोधि) सदा जागता रह । (ते धियः) तेरी बुद्धियां (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

[७८] हे इन्द्र ! (वयं) हम (ते सुमतौ) तेरी उत्तम बुद्धिमें रहकर (वाजिनः भूयाम) अन्नादिसे युक्त हों । तू (अभिमातये) किसी शत्रुका हित करनेके लिए (नः मा स्तः) हमें मत मार, अपितु (अभिष्टिभिः) ग्रहण करने योग्य तथा (चित्राभिः) अनेक तरहके संरक्षणके साधनोंसे तू (अस्मान् अवतात्) हमारी रक्षा कर, तथा (नः सुम्नेषु आ यामय) हमें सुखोंमें रहनेवाला कर ॥ २ ॥

[७९] हे (पुरुवसो) बहुत धनवान् इन्द्र ! (याः मम इमाः) जो मेरी ये स्तुतियां हैं, वे (गिरः) स्तुतियां (त्वा वर्धन्तु) तुझे बढावें । (पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः) अग्निके समान तेजस्वी तथा पवित्र ज्ञानीजन (स्तोमैः अभि अनूषत) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[८०] (अयं) यह इन्द्र (सहस्रं ऋषिभिः) हजारों ऋषियोंके द्वारा (सहः कृतः) बलवान् बनाया गया, अतः वह (समुद्रः इव पप्रथे) समुद्रके समान विस्तृत हो गया । (अस्य) इस इन्द्रकी (सः सत्यः महिमा) वह अविनाशी महिमाका (यज्ञेषु विप्रराज्ये) यज्ञोंमें तथा ब्राह्मणोंकी सभामें (गृणे) वर्णन किया जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारे द्वारा निचोडे गए तथा गायके दूधसे मिश्रित होनेके कारण रससे युक्त सोमरसको पी तथा हमारी उन्नति कर । तेरी बुद्धि मेरी सदा रक्षा करे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हम सदा तेरी बुद्धिमें रहें, तथा धन–धान्यसे समृद्ध हों । तू शत्रुका हित करनेके लिए हमारी हिंसा मत कर अपितु अपने अनेक तरहके सुरक्षाके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ताकि हम सदा सुखमें ही रहें ॥ २ ॥

हमारे द्वारा की गई स्तुतियां इन्द्रके यशको बढावें । भक्तोंके द्वारा की गई स्तुति प्रभुकी महिमाको बढाती है । उस प्रभुकी सभी ज्ञानी स्तुति करते हैं और अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ॥ ३ ॥

जब ऋषियोंने इस इन्द्रको बलसे युक्त किया तो वह समुद्रके समान विस्तृत हो गया और उसकी कभी नष्ट न होनेवाली महिमाका वर्णन यज्ञों और ज्ञानियोंकी सभामें होने लगा ॥ ४ ॥

८१ इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥

८२ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥ ६ ॥

८३ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ ७ ॥

८४ अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ ८ ॥

अर्थ— [८१] (देवतातये) देवोंके लिए किए जानेवाले यज्ञमें हम (इन्द्रं इत् हवामहे) इन्द्रको ही बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति इन्द्रं) यज्ञके शुरु होनेपर हम इन्द्रको ही बुलाते हैं, (समीके) युद्धमें भी (वनिनः) इन्द्रकी स्तुति करनेवाले हम (इन्द्रं) इन्द्रकोही बुलाते हैं, तथा (धनस्य सातये) धनको प्राप्त करनेके कार्यमें भी हम (इन्द्रं) इन्द्रकोही बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[८२] (इन्द्रः) इन्द्रने (शवः मह्ना) बलकी महिमासे (रोदसी पप्रथत्) द्युलोक और पृथिवी लोकको विस्तृत किया, (इन्द्रः) इन्द्रने (सूर्यं अरोचयत्) सूर्यको प्रकाशित किया। (विश्वा भुवनानि) सारे भुवन या लोक (इन्द्रे ह येमिरे) इन्द्रमें ही नियंत्रित होते हैं, (सुवानासः इन्दवः) निचोडे जाते हुए सोमरस भी (इन्द्रे) इन्द्रमें ही रहते हैं ॥ ६ ॥

[८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आयवः) सभी मनुष्य (पूर्वपीतये) सोमरसका पान सर्वप्रथम करनेके लिए (त्वा स्तोमेभिः अभि) तुझे स्तोत्रोंसे बुलाते हैं। (समीचीनासः ऋभवः) परस्पर संगठित हुए ऋभुगण तथा (रुद्राः) रुद्र भी (सं अस्वरन्) एकस्वरसे तेरी स्तुतिका गान करते हैं और (पूर्व्यं गृणन्त) सबसे प्राचीन तथा सनातन तेरी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

[८४] (विष्णवि सुतस्य मदे) यज्ञमें निचोडे गए सोमरसको पीकर उसके आनंदमें वह (इन्द्रः) इन्द्र (अस्य इत् वृष्ण्यं शवः) इस यज्ञ करनेवालेके वीर्य और बलको (वावृधे) बढाता है। (आयवः) सभी मनुष्य (अद्य) आज मिलकर (पूर्वथा) पहलेकी तरह ही (अस्य) इस इन्द्रकी (तं महिमानं अनु स्तुवन्ति) उस महिमाका गान करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— देवोंके लिए किए जानेवाले किए जानेवाले यज्ञके प्रारंभ होने पर, युद्धके शुरु होने पर तथा धनको प्राप्त करनेके कार्यमें भी हम इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ५ ॥

ऐश्वर्यशाली प्रभुने अपने सामर्थ्यसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको विस्तृत किया तथा द्युलोकमें सूर्यको प्रकाशित किया। सारे लोक उसी प्रभुमें स्थित हैं और उसी प्रभुके द्वारा नियंत्रित हो रहे हैं ॥ ६ ॥

यह इन्द्र सबसे प्राचीन और सनातन है, अतः यही देव सोमरसको पीनेका सबसे पहला अधिकारी है। सभी ऋभु और रुद्र आदि देव इसी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

इस प्रभुकी महिमा प्राचीन कालसे ऋषिमुनि गाते चले आ रहे हैं, उसी तरह आज भी लोग गारहे हैं। प्रभुका गुण गानेसे मनुष्योंमें संगठन होता है और ऐसे संगठनसे मनुष्योंका बल बढता है ॥ ८ ॥

८५ तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ९ ॥
८६ येना समुद्रमसृजो महीरप स्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ १० ॥
८७ शग्धी न इन्द्र यत् त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥ ११ ॥
८८ शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृप मिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥

अर्थ— [८५] हे इन्द्र ! तूने (येन) जिस बलसे (यतिभ्यः भृगवे) यतियोंको और भृगुके लिए ऐश्वर्य दिया था, तथा (धने हिते) संग्राममें (येन) जिस बलसे तूने (प्रस्कण्वं आविथ) ज्ञानीकी रक्षा की थी, (तत् वीर्यं) उस बल तथा (तत् ब्रह्म) उस ज्ञानको मैं (पूर्वचित्तये) सबसे प्रथम ज्ञानी होनेके लिए (त्वा यामि) तुझसे मांगता हूं ॥ ९ ॥

[८६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (येन) जिस बलसे (समुद्रं) समुद्रको और (महीः अपः असृजः) बडी बडी नदियोंका रचा, वह (ते शवः) तेरा बल (वृष्णि) सब कामनाओंको प्रदान करनेवाला है । (यं) इन्द्र की जिस महिमाका (क्षोणीः अनुचक्रदे) द्यु और पृथिवी अनुकरण करते हैं, (अस्य सः महिमा) इस इन्द्रकी उस महिमाका अन्त (सद्यः न संनशे) शीघ्रतासे कोई नहीं पा सकता ॥ १० ॥

[८७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा) तुझसे मैं (यत् सुवीर्यं रयिं यामि) जिस उत्तम पराक्रम या बलसे युक्त ऐश्वर्यको मांगता हूँ, उस ऐश्वर्यको तू (नः शग्धि) हमें प्रदान कर । (प्रथमं वाजाय सिषासते) सर्व प्रथम अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको तू (शग्धि) अन्न प्रदान कर, हे (पूर्व्य) सर्वश्रेष्ठ इन्द्र देव ! (स्तोमाय) तेरी स्तुति करनेवालेके लिए तू (शग्धि) ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ ११ ॥

[८८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् ह) जिस बलसे तूने (पौरं आविथ) अपने पुरजनोंकी रक्षा की, उस बलको तू (धियः सिषासतः अस्य) बुद्धिपूर्वक काम करनेवाले इस मनुष्यको तथा (नः) हमें (शग्धि) प्रदान कर । (यथा) जिस बलकी सहायतासे तूने (रुशमं) तेजस्वी (श्यावकं) बच्चेके समान पवित्र (स्वर्णरं) धनोंके दाता तथा (कृपं) अन्यों पर कृपा करनेवाले मनुष्यकी (प्र अवः) अच्छी तरहसे रक्षा की थी वही बल तू हमें भी (शग्धि) प्रदान कर ॥ १२ ॥

भावार्थ— हे प्रभो ! तुम अपने जिस बलसे ज्ञानियोंकी रक्षा करते हो उस बल और ज्ञानको मैं तुमसे मांगता हूं, ताकि मैं लोगोंमें सर्व श्रेष्ठ ज्ञानी होऊं ॥ ९ ॥

यह प्रभुकी महिमा है कि उसने इतने भारी भारी सागरोंको बनाया और इतनी बडी बडी नदियां प्रवाहित कीं। उसीकी महिमाके कारण ये द्यु और पृथ्वी लोक उसका अनुकरण करते हैं ॥ १० ॥

हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तुम हमें ऐसा ऐश्वर्य प्रदान करो कि जो बलसे युक्त हो और प्राप्त हुए ऐश्वर्यकी रक्षा करनेके लिए हमें बलवान् भी बनाओ, साथ ही हमें अन्न भी प्रदान करो ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! जिस बलसे तुम सब प्राणियोंकी रक्षा करते हो, तथा बुद्धिपूर्वक काम करनेवाले तेजस्वी, बच्चेके समान पवित्र हृदयवाले, दयावान् मनुष्यकी रक्षा करते हो, वही बल हमें देकर हमें भी सामर्थ्यशाली बनाओ ॥ १२ ॥

×

८९ कथत्र्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १३ ॥
९० कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ १४ ॥
९१ उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १५ ॥
९२ कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद् धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

अर्थ— [८९] (अतसीनां तुरः) स्तुतियोंको प्रकट करनेवाला (मर्त्यः) मनुष्य (कत् नव्यः गृणीतः) भला कौनसी नवीन स्तुति करे ? (स्वः गृणन्तः) प्राचीन कालसे स्तुति करनेवाले भी (अस्य) इस इन्द्रकी (महिमानं इन्द्रियं) महिमासे युक्त शक्तिको (न हि आनशुः) नहीं जान सके ॥ १३ ॥

[९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (कत् उ देवता) ऐसा कौनसा देवता है कि जो (स्तुवन्तः) तेरी स्तुति करते हैं और (ऋतयन्तः) यज्ञ करते हैं । (कः ऋषिः विप्रः ओहते) कौनसा मंत्रद्रष्टा ज्ञानी तेरी कृपा प्राप्त करता है ? हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू (सुन्वतः) सोमरस निचोडनेवालेकी (हवं) प्रार्थनाको (कदा) कब सुनता है ? तथा (स्तुवतः) स्तुति करनेवालेके पास तू (कत् उ आ गमः) कब आता है ? ॥ १४ ॥

[९१] जिस प्रकार (सत्राजितः) युद्धोंको जीतनेवाले (धनसा) धनसे युक्त (अक्षित-ऊतयः) नाशरहित सुरक्षाके साधनोंसे युक्त तथा (वाजयन्तः) बलशाली (रथाः इव) रथ युद्धमें दौडते चले जाते हैं, उसी तरह हे इन्द्र ! (मधुमत्तमाः गिरः स्तोमासः) अत्यन्त मधुरतासे पूर्ण वाणियां और स्तुतियां (त्ये उत् उ ईरते) तेरी तरफ जाती हैं ॥ १५ ॥

[९२] (कण्वाः इव) ज्ञानी जिस तरह सर्वत्र संचार करते हैं, तथा (भृगवः सूर्याः इव) गाय अर्थात् किरणोंको धारण करनेवाले सूर्यकी किरणें जिस तरह सर्वत्र व्यापती हैं, उसी तरह (प्रियमेधासः आयवः) प्रिय मेधाबुद्धिवाले मनुष्य (स्तोमेभिः महयन्तः) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए (इन्द्रं अस्वरन्) इन्द्रकी एक स्वरसे उपासना करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थ— जब प्राचीन कालसे स्तुति करते हुए चले आनेवाले ऋषि मुनि भी जब इस प्रभुकी महिमा और शक्तिको जान नहीं पाए, तब आज स्तोता भला ऐसी कौनसी नवीन स्तुति करे, ताकि वह प्रभुकी महिमाका पूरी तरह गान कर सके ? अर्थात् शब्दोंके द्वारा उसकी महिमा या शक्तिका पूरी तरह वर्णन करना असंभव है ॥ १३ ॥

जो प्रभुकी उपासना करते हैं, और यज्ञ करके सोम प्रदान करते हैं, वे ही सच्चे देव, ज्ञानी और मंत्रद्रष्टा होते हैं, ऐसे ज्ञानियोंके ऊपर ही प्रभुकी कृपा होती है ॥ १४ ॥

जिस तरह युद्धके आरंभ होनेपर सभी रथ उस युद्धकी तरफ ही दौडे आते हैं, उसी तरह मनुष्योंके द्वारा की गई स्तुतियां उसी एक प्रभुकी तरफ जाती है ॥ १५ ॥

जिस तरह सूर्यकी किरणें सर्वत्र घूम फिर कर सब स्थानोंको पवित्र करती हैं, उसी तरह ज्ञानी सर्वत्र घूम फिर कर सबको ज्ञान देकर पवित्र बनावें ॥ १६ ॥

९३ युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन् त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥
९४ इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥ १८ ॥
९५ निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥ १९ ॥
९६ निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ २० ॥

अर्थ— [९३] हे (वृत्रहन्तम इन्द्र) शत्रुओंके संहारक इन्द्र ! तू (हरी युक्ष्व) अपने रथमें घोडे जोड और (परावतः अर्वाचीनः) दूरके देशसे भी हमारी तरफ आ। हे (उग्र मघवन्) वीर तथा ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (सोमपीतये) सोमरसका पान करनेके लिए (ऋष्वेभिः आ गहि) सुन्दर रूपवाले मरुतोंके साथ आ ॥ १७ ॥

[९४] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (कारवः इमे विप्रासः) स्तुति करनेवाले ये ज्ञानी (मेधसातये) मेधा बुद्धिको प्राप्त करनेके लिए (धिया ते वावशुः) बुद्धिपूर्वक तेरी उपासना करते हैं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (वेनः न) जिस तरह कोई कामी अपनी प्रियाकी बातें ध्यानपूर्वक सुनता है, उसी तरह [तू] (नः हवं शृणुधी) हमारी प्रार्थनाओंको सुन ॥ १८ ॥

[९५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बडे बडे धनुषोंसे (वृत्रं निः अस्फुरः) वृत्रको मारा। उसी तरह (अर्बुदस्य मायिनः मृगयस्य) अर्बुद तथा माया करनेवाले मृगयको भी (निः) मारा तथा (पर्वतस्य) पर्वतके द्वारा छिपायी गई (गाः) गायोंको (आजः) प्रकट किया ॥ १९ ॥

[९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! जब तूने (महां अहिं) बहुत शक्तिशाली अहिको (अन्तरिक्षात् नि अधमः) अन्तरिक्षसे नीचे गिरा दिया और (तत् पौंस्यं कृषे) उस अपने पराक्रमको प्रकट किया, तब (अग्नयः निः रुरुचुः) सभी अग्नियां अच्छी तरह प्रदीप्त हुईं, (सूर्यः निः) सूर्य भी अच्छी तरह प्रकाशित हुआ तथा (इन्द्रियः रसः सोमः निः) इन्द्रको प्रिय लगनेवाला रससे युक्त सोम भी अच्छी तरह उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

भावार्थ— हे शत्रुओंके संहारक इन्द्र ! तू दूर देशसे भी हमारे पास आ। मरुतोंके साथ आकर हमारी सहायता कर ॥ १७ ॥

सभी ज्ञानी मेधा बुद्धिको प्राप्त करनेके लिए बुद्धिपूर्वक उस प्रभुकी उपासना करते हैं। हे प्रभो ! तुम हमारी प्रार्थनायें सुनो ॥ १८ ॥

इन्द्रने अपने शक्तिशाली शस्त्रोंसे शत्रुओंको मारा और गायोंकी रक्षा की। राजा भी अपने राष्ट्रमें गायोंका वध करनेवालोंका वध करके गायोंकी रक्षा करे ॥ १९ ॥

अन्तरिक्षमें जब अहि अर्थात् मेघ चारों ओर छा गया, तब इन्द्र अर्थात् विद्युत्ने उस अहिको मारकर पानीके रूपमें नीचे गिरा दिया, तो चतुर्मासके कारण जो यज्ञ बंद हो गए थे, वे फिरसे शुरू हो गए, सूर्य अच्छी तरह प्रकाशित होने लगा, और इन्द्रियोंकी शक्ति बढानेवाला सोम पानी पाकर अत्यधिक उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥

९७ यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

९८ रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम् ।
अदाद् रायो विबोधनम् ॥ २२ ॥

९९ यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः ।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥ २३ ॥

१०० आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।
तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥ २४ ॥

अर्थ— [९७] (दिवि धावमानं उप इव) द्युलोकमें दौडते हुए सूर्यके समान तेजस्वी तथा (विश्वेषां त्मना शोभिष्ठं) सभी ऐश्वर्योंमें अपने तेजसे अत्यन्त सुशोभित होनेवाले (यं) जिस धनको (इन्द्रः मरुतः मे दुः) इन्द्र और मरुतोंने मुझे दिया, वही धन मुझे (कौरयाणः पाकस्थामा) शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले तथा पवित्र बलवाले वीरने मुझे दिया ॥ २१ ॥

[९८] (पाकस्थामा) पवित्र बलवाले वीरने मुझे (रोहितं अदात्) सोना दिया (सुधुरं कक्ष्य प्रां) उत्तम धुरावाले और चारों ओरसे दृढतासे बंधे हुए रथ मुझे दिए तथा (विबोधनं रायः) ज्ञान देनेवाला धन मुझे दिया ॥ २२ ॥

[९९] (वयः तुग्र्यं अस्तं न) जिस प्रकार तुग्रयको पक्षी उसके घर ले गए थे उसी प्रकार (यस्मै) जिस वीरको (अन्ये दश वह्नयः) दूसरे दस घोडे (धुरं प्रति वहन्ति) रथके जुयेको घरकी ओर ले जाते हैं ॥ २३ ॥

[१००] यह (आत्मा) आत्मा (पितुः तनूः) अपने पिता परमात्माका सच्चा पुत्र है, वह (वासः) निवास करानेवाला (ओजोदा) ओज और तेजको देनेवाला (अभ्यं जनं) प्रकट होनेवाला है । ऐसे (तुरीयं) अत्यन्त श्रेष्ठ (रोहितस्य दातारं) तेजको देनेवाले (भोजं) बल देनेवाले (पाकस्थामानं) पवित्र बलवाले आत्माकी मैं (अब्रवम्) स्तुति करता हूं ॥ २४ ॥

भावार्थ— धन ऐसा हो जो सूर्यके समान तेजस्वी हो और अपने ही तेजसे सभी ऐश्वर्योंमें प्रकाशित होता हो । वीर राजा शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाला और पवित्र बलवाला हो । वीरका बल लोगोंपर अत्याचार करनेके लिए न होकर लोगोंकी रक्षा करनेके लिए हो । रक्षक बल ही पवित्र होता है ॥ २१ ॥

रथ उत्तम धुरावाले और चारों ओरसे दृढ बंधनोंवाले हों तथा ऐश्वर्य ज्ञानको देनेवाला हो । धन ऐसा हो कि जो मद या अहंकार उत्पन्न न करके ज्ञान प्रदान करनेवाला हो ॥ २२ ॥

वीरके पास अनेक घोडे हों और वे सुशिक्षित होकर रथकी धुराको खींचनेवाले हों ॥ २३ ॥

यह मनुष्यका आत्मा परमात्माका सच्चा पुत्र है । यह जब तक शरीरमें रहता है, तभी तक मनुष्य जीवित रहता है इसलिए मनुष्यको निवास करानेवाला यही आत्मा है यह शरीरमें रहकर शरीरको ओज और तेज प्रदान करता है । यह शरीरके माध्यमसे प्रकट होता है । यह रोहित-लोहित अर्थात् रक्त आदि धातुओंका उत्पादक है, और पवित्र बल बल देनेवाला है ॥ २४ ॥

[४]

(ऋषिः- देवातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रः, १५-१८ पूगा वा, १९-२१ कुरुङ्गः ।
छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), २१ पुर उष्णिक् ।)

१०१ यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवे ऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

१०२ यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

१०३ यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ ३ ॥

१०४ मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद् दधिषे सहः ॥ ४ ॥

---

[४]

अर्थ— [१०१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तू (नृभिः) मनुष्योंके द्वारा (प्राक् अपाक्) पूर्व पश्चिम (उदक् न्यक् वा) ऊपर और नीचेसे (हूयसे) बुलाया जाता है, तब हे (सिम) श्रेष्ठ इन्द्र ! तू (आनवे) अत्यन्त नम्र हुए उपासकके लिए (पुरू नृषूतः असि) अत्यधिक सोमरस पीनेवाला होता है, हे (प्रशर्ध) शत्रुओंके हिंसक इन्द्र ! तू (तुर्वशे) शत्रुओंके संहारक वीरके लिए सोमरस पीनेवाला होता है ॥ १ ॥

[१०२] (वा) अथवा (यत्) जब तू हे (इन्द्र) इन्द्र ! (रुमे रुशमे श्यावके कृपे) स्तुति करनेवाले, तेजस्वी, बर्फके समान निर्मल हृदयवाले तथा दयालु मनुष्यके पास जाकर (सचा मादयसे) उनके पास बैठकर आनन्दित होता है, तब (स्तोमवाहसः) स्तोत्रोंका ज्ञान रखनेवाले (कण्वासः) ज्ञानी जन (ब्रह्मभिः त्वा आ यच्छन्ति) स्तुतियां तुझे प्रदान करते हैं अतः हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (आ गहि) आ ॥ २ ॥

[१०३] (यथा) जिस प्रकार कोई (गौरः) हिरण (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा कृतं) जल पीनेके लिए (इरिणं अव एति) नदीके तृणसे रहित प्रदेशमें आता है, उसी तरह हे इन्द्र ! (नः आपित्वे प्रपित्वे) हमारे साथ भाईपनके स्थापित होने पर (तूयं आ गहि) तू शीघ्र ही आ और (कण्वेषु सचा सु पिब) ज्ञानियोंमें आकर एक साथ बैठकर अच्छी तरह सोमरस पी ॥ ३ ॥

[१०४] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! ये (इन्दवः) सोमरस (सुन्वते राधोदेयाय) सोम यज्ञ करनेवालेको धन देनेवाले (त्वा) तुझे (मन्दन्तु) आनंदित करें । तू (चमू सुतं) निचोडकर बर्तनमें रखे गए (सोमं) सोमको (आमुष्य अपिबः) जबर्दस्तीसे पी लिया, (तत्) इसीकारण (तत् ज्येष्ठं सहः दधिषे) उस श्रेष्ठ बलको तूने धारण किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह वीर इन्द्र जोकि मनुष्योंके द्वारा सब ओरसे बुलाया जाता है पर वह जाता उसीके पास है कि जो अत्यन्त नम्र या विनीत होता है या जो शूरवीर होता है । उसके पास जाकर वह सोमरसका पान करता है ॥ १ ॥

जब इन्द्र सज्जन पुरुषोंके पास जाकर आनन्दित होता है, तब ज्ञानी जन भी उसे बुलाते हैं ॥ २ ॥

जिस तरह कोई प्यासा हिरण किसी नदीके किनारे जाता है, उसी तरह तू हे इन्द्र ! हमारे पास आकर सोमरसका पान कर ॥ ३ ॥

जब इन्द्र सोमरस पीकर आनन्दित होता है, तब वह सोमरस निचोडनेवालेको ऐश्वर्य प्रदान करता है और वह इन्द्र स्वयं भी सोमरसको पीकर श्रेष्ठ बलको धारण करता है ॥ ४ ॥

१०५ प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा ।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षा इव येमिरे ॥ ५ ॥

१०६ सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम् ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः ॥ ६ ॥

१०७ मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत् ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥ ७ ॥

१०८ सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०५] इस इन्द्रने (सहसा) अपने बलसे (सहः) शत्रुके बलको (चक्रे) क्षीण कर दिया तथा (ओजसा) अपने ओजसे (मन्युं बभंज) शत्रुओंके क्रोधको तोड दिया। हे (यह इन्द्र) महान् इन्द्र! (ते) तेरे (विश्वे पृतनायुवः) सारे शत्रु (वृक्षाः इव नि येमिरे) वृक्षोंके समान स्थिर हो गए ॥ ५ ॥

[१०६] हे (इन्द्र) इन्द्र! (यः) जो मनुष्य (ते) तेरे लिए (उपस्तुतिं आनट्) स्तुतिको प्रदान करता है, वह (सहस्रेण यवीयुधा) हजारों शस्त्रोंसे (इव सचते) मानों युक्त हो जाता है। जो (नमः उक्तिभिः दाश्नोति) नम्र होकर उत्तम वचनोंके द्वारा तुझे हवि देता है, वह (सुवीर्ये प्रावर्गं पुत्रं) उत्तम पराक्रमवाले संग्राममें शत्रुओंको नष्ट करनेवाले पुत्रको (कृणुते) प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[१०७] हे इन्द्र! हम (उग्रस्य तव) पराक्रमी तेरी (सख्ये) मित्रतामें रहकर किसीसे भी (मा भेम) न डरें और (मा श्रमिष्म) न दुःखी हों, अपितु (वृष्णः ते) बलशाली तेरे (महत् कृतं अभिचक्ष्यं) महान्‌का वर्णन सर्वत्र करें और (तुर्वशं यदुं पश्येम) शत्रुओंके संहारक तथा पराक्रमी पुत्रको हम देखें ॥ ७ ॥

[१०८] यह बलशाली इन्द्र (सव्यां स्फिग्यं अनु वावसे) अपने बाईं कमरके इतने हिस्सेसे सारे जगत्‌को व्याप्त करता है। (दानः अस्य न रोषति) दानशील मनुष्य इसे कभी क्रोधित नहीं कर सकता। हे इन्द्र! ये सोमरस (सारघेण मध्वा संपृक्ताः) मधुमक्खीके शहदसे संयुक्त और (धेनवः) गायोंके दूधसे मिश्रित हैं, अतः तू (तूयं एहि, द्रव, पिब) शीघ्र आ, दौड और पी ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्रने अपने बल और पराक्रमसे शत्रुओंको बलको क्षीण करके उनका क्रोध और अहंकार तोड डाला, तब उसके सारे शत्रु निर्वीर्य होकर वृक्षोंके समान जडवत् हो गए ॥ ५ ॥

जो विनम्रभावसे स्तुतिवचनोंको कहता हुआ इन्द्रको आहुतियाँ प्रदान करता है, वह इतना बलशाली हो जाता है कि मानो वह अनेक तरहके शस्त्रास्त्रोंसे युक्त हो और वह ऐसा पुत्र प्राप्त करता है जो कठिनसे कठिन संग्राममें भी शत्रुओंका विनाशक होता है ॥ ६ ॥

जो प्रभुकी मित्रतामें रहता है, वह न तो कभी डरता है और न कभी दुःखी ही होता है, अपितु प्रभुके उत्तम कर्मोंका वर्णन करता हुआ वह पुत्र पौत्रोंके बीच आनंदसे रहता है ॥ ७ ॥

इन्द्र अपने विराट् शरीरके एक छोटेसे भागसे सारे विश्वको व्याप्त करता है। जो विनम्रतापूर्वक इस इन्द्रको हवि देता है, उसपर वह इन्द्र कभी भी क्रोध नहीं करता ॥ ८ ॥

१०९ अश्वी रथी सुरूप इद् गोमाँ इदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥ ९ ॥
११० ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन् दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥ १० ॥
१११ अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ११ ॥
११२ स्वयं चित् स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

अर्थ— [१०९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते सखा) तेरा मित्र (अश्वी रथी) घोडोंवाला, रथोंवाला, (सुरूपः इत्) उत्तम रूपवाला (गोमान् इत्) गायोंवाला होता है। वह (वयसा श्वात्रभाजा सचते) उत्तम आयु देनेवाले धनसे संयुक्त होता है और वह (सदा) हमेशा (सभां) सभामें (चन्द्रः) चन्द्रके समान आल्हादकारक होकर (उप याति) जाता है ॥ ९ ॥

ते सखा चन्द्रः सभां उप याति— इस इन्द्रका मित्र चन्द्रके समान आनन्द देनेवाला होकर सभामें जाता है।

[११०] हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (ऋश्यः न तृष्यन्) मृगके समान प्यासा होकर तू (अवपानम् आ गहि) इस सोमरसके पास आ और (सोमं) को (वशां अनु पिब) इच्छानुसार पी। तू (दिवेदिवे निमेघमानः) प्रतिदिन वृष्टि करता हुआ (ओजिष्ठं सहः दधिषे) ओजसे युक्त बलको धारण करता है ॥ १० ॥

[१११] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! (त्वं द्रावय) तू शीघ्रता कर, (इन्द्रः सोमं पिपासति) इन्द्र सोम पीना चाहता है। उसने (नूनं) निश्चयसे (वृषणा हरी) बलवान् घोडोंको रथमें जोड लिया है और वह (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (आ च जगाम) आ भी गया है ॥ ११ ॥

[११२] हे इन्द्र ! (यत्र सोमस्य तृम्पसि) जिसके घरमें आकर तू सोमरससे तृप्त होता है, (सः दाशुरिः जनः) वह दानशील व्यक्ति (स्वयं चित् मन्यते) स्वयंको अत्यन्त श्रेष्ठ मानता है। हे इन्द्र ! (ते युज्यं) तेरे लिए योग्य (इदं अन्नं समुक्षितं) यह अन्न तैयार किया गया है, (एहि, द्रव) आ, शीघ्र आ और (तस्य पिब) उस रसको पी ॥ १२ ॥

भावार्थ— इस इन्द्र-प्रभुका मित्र अश्व, रथ, गाय, आयु और अन्य ऐश्वर्योंसे सदा युक्त रहता है और वह प्रभुका भक्त जहां जाता है, वहीं आनन्द फैल जाता है और वहीं वह चन्द्रके समान सुशोभित होता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तू हिरनके समान प्यासा होकर पीनेके लिए इस सोमरसके पास आ और इस रसको इच्छानुसार पी। तथा प्रतिदिन उत्तम जलकी वर्षा कर तथा बलसे युक्त हो ॥ १० ॥

हे अध्वर्यु ! तू शीघ्रता कर क्योंकि यह इन्द्र सोम पीना चाहता है। सोम पीनेकी इच्छासे उसने अपने रथमें घोडे जोड लिए हैं और वह यहां आ भी गया है ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यके घरमें जाकर यह इन्द्र सोमरसका पान करता है, वह मनुष्य स्वयंको अत्यन्त श्रेष्ठ समझता है। इसी लिए सभी उससे प्रार्थना करते हैं कि– हे इन्द्र ! तेरे योग्य यह सोमरस रूपी अन्न हमने तैयार किया हुआ है, अतः तू हमारे पास शीघ्र आ और इन रसोंको पी ॥ १२ ॥

११३ रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥ १३ ॥

११४ उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥ १४ ॥

११५ प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम् ।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥ १५ ॥

११६ सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ— [११३] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु गणो ! (रथेष्ठाय इन्द्राय) रथमें बैठनेवाले इन्द्रके लिए (सोमं सोतन) सोमको निचोडो । (ब्रध्नस्य अधि) ऊंचे स्थानपर रखे हुए (सुन्वन्तः अद्रयः) सोमरस निचोडनेवाले पत्थर (दाश्वध्वरं) दानशील यजमानके यज्ञको (वि चक्षते) विशेष रूपसे प्रकाशित करते हैं ॥ १३ ॥

[११४] (ब्रध्नं वावाता) अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले (वृषणा हरी) दो बलवान् घोडे (इन्द्रं अपसु उप वक्षतः) इन्द्रको इस यज्ञके समीप ले आएं । हे इन्द्र ! (अध्वरश्रियः सप्तयः) यज्ञके आश्रयसे रहनेवाले घोडे (त्वा) तुझे (अर्वाञ्चं) हमारी ओर (सवना इत् उप) हमारे यज्ञके पास ले आवें ॥ १४ ॥

[११५] (युज्याय) योग्य मित्रताके लिए (पुरूवसुं पूषणं) बहुत धनवाले तथा पोषण करनेवाले इन्द्रको हम बुलाते हैं । हे (पुरुहूत शक्र) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले शक्तिशाली तथा (विमोचन) संकटोंसे मुक्त करनेवाले इन्द्र ! (तुजे राये) शत्रुओंकी हिंसा तथा ऐश्वर्यकी प्राप्ति करनेके लिए (सः) वह तू (नः धिया शिक्ष) हमें बुद्धिपूर्वक धन प्रदान कर ॥ १५ ॥

[११६] हे (विमोचन) संकटसे मुक्त करनेवाले इन्द्र (भुरिजोः क्षुरं इव) नाईके छुरेके समान (नः सं शिशीहि) हमारी बुद्धियोंको तू तीक्ष्ण कर तथा (रायः रास्व) धन प्रदान कर । हे इन्द्र ! (यं त्वं मर्त्यं हिनोषि) जिस धनको तू मनुष्यकी ओर प्रेरित करता है, (त्वे) तुझमें स्थित (तत् उस्रियं वसु) वह गायसे युक्त धन (नः सुवेदं) हमें आसानीसे प्राप्त होनेवाला हो ॥ १६ ॥

भावार्थ— हे अध्वर्यु गण ! रथमें बैठनेवाले इन्द्रके लिए सोमरसको निचोडो ! ऊंचे स्थानपर रखे हुए पत्थरोंसे ज्ञात पडता है कि यज्ञ चल रहा है ॥ १३ ॥

इन्द्रके घोडे यज्ञके आश्रयसे रहते हैं, यज्ञके द्वारा वे बल प्राप्त करते हैं, अतः वे हमेशा इन्द्रको यज्ञकी ओर ही ले जाते हैं ॥ १४ ॥

यह इन्द्र बहुत धनवाला तथा पोषण करनेवाला है, ऐसे इन्द्रको हम अपनी मैत्रीके लिए बुलाते हैं । यह इन्द्र हमें ऐश्वर्यकी प्राप्ति कराकर तथा शत्रुओंका नाश करके हमें संकटसे मुक्त करे ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तू हमें संकटसे मुक्त करनेवाला है, अतः हमारी बुद्धिको तू तीक्ष्ण कर । जिन धनोंको तू मनुष्यकी ओर प्रेरित करता है, वे सब धन तुझमेंही प्रतिष्ठित हैं, अतः वे सब हमें आसानीसे प्राप्त होनेवाले हों ॥ १६ ॥

११७ वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे वेमि स्तोतव आघृणे ।
न तस्य वेम्यरणं हि तद् वसो स्तुषे पज्राय साम्ने ॥ १७ ॥

११८ परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

११९ स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

१२० धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

अर्थ— [११७] हे (वसो पूषन्) सबको बसानेवाले तथा पुष्ट करनेवाले इन्द्र ! (स्तुषे पज्राय साम्ने) स्तुतिके योग्य, शत्रुओंके विनाशक तथा सज्जनोंके लिए सुखदायक (त्वा) तुझे (ऋंजसे वेमि) मैं प्रसन्न करना चाहता हूं, हे (आघृणे) सभी ओरसे तेजस्वी इन्द्र ! तेरी (स्तोतवे) स्तुति करनेके लिए (वेमि) मैं इच्छा करता हूं। (तस्य न वेमि) तेरे अलावा और किसीकी स्तुति करना नहीं चाहता, (हि) क्योंकि (तत् अरणं) अन्य देवकी स्तुति असुखकारक होती है ॥ १७ ॥

[११८] हे (आघृणे) सब ओरसे तेजस्वी इन्द्र ! (कच्चित्) कभी कभी (गावः) हमारी गायें (यवसं) घास खानेके लिए (परा) दूर जाती हैं, तब हे (अमर्त्य) मरणरहित इन्द्र ! वह हमारा (रेक्णः) गौ रूपी धन (नित्यं) अक्षय रहे। हे (पूषन्) सबके पोषक इन्द्र ! तू (अस्माकं अविता) हमारी रक्षा करनेवाला, तथा (शिवः भव) सुखकारी हो, (वाजसातये) हमारी अन्न प्राप्तिके समय तू (मंहिष्ठः) अत्यधिक देनेवाला हो ॥१८॥

[११९] (त्वेषस्य शुभगस्य) तेजस्वी, उत्तम ऐश्वर्यवाले (कुरुंगस्य) शत्रुओंको जीतनेवाले (राज्ञः) राजाके (दिविष्टिषु रातिषु) दिव्य दानोंमें अर्थात् दिव्य दानको देनेके समय (तुर्वशेषु) मनुष्योंके बीचमें हमही (स्थूरं शताश्वं राधः) अत्यधिक तथा सैंकडों घोडोंसे युक्त ऐश्वर्यको (अमन्महि) प्राप्त करें ॥ १९ ॥

[१२०] (काण्वस्य वाजिनः सातानि) ज्ञानी और बलवान्के द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य तथा (प्रियेमेधैः अभि द्युभिः धीभिः) उत्तम मेधाबुद्धिवाले तथा तेजस्वी एवं उत्तम धारणा शक्तिसे युक्त मनुष्यों द्वारा प्राप्त किए जानेवाले (निर्मजां गवां) अत्यन्त पवित्र गायोंके (षष्टिं सहस्रा यूथानि) साठ हजारके झुण्डोंको (ऋषिः अनु निः अजे) ऋषिने प्राप्त किया ॥ २० ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सबको बसानेवाला, शत्रुओंका संहारक तथा सज्जनोंके लिए सुखदायक है, अतः उसीकी उपासना करनी चाहिए। अन्य देवकी उपासना दुःखदायक होती है ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! जब हमारी गायें घास चरते चरते दूर चली जाएं, तो वहां भी वे सुरक्षित रहें। उन्हें मारनेवाला कोई न हो। गोरूपी धन हमारे पास सदा बना रहे। उनके कारण हम अन्नसे युक्त हों ॥ १८ ॥

जबको तेजस्वी राजा दान देनेकी इच्छा करे, तब उस दिव्य दानको प्राप्त करनेके अधिकारी हमही हों ॥ १९ ॥

जिन गायोंको ज्ञानी और उत्तम मेधाबुद्धिवाले तेजस्वी जन प्राप्त करते हैं, उन पवित्र गायोंको मैं भी प्राप्त करूं ॥२०॥

×

१२१ वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अराारणुः ।
गां भजन्त मेहना ऽश्वं भजन्त मेहना ॥ २१ ॥

[५]

(ऋषिः- ३९ ब्रह्मातिथिः काण्वः । देवताः- अश्विनौ, ३७ (उत्तरार्धस्य)- ३९ चैद्यः कशुः ।
छन्दः- गायत्री, ३७-३८ बृहती, ३९ अनुष्टुप् ।)

१२२ दूरादिहेव यत् सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १ ॥
१२३ नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोषसम् ॥ २ ॥
१२४ युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥
१२५ पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥

अर्थ— [१२१] (मे अभि पित्वे) मेरे द्वारा गौरूपी धनको प्राप्त कर लिए जानेपर (वृक्षाः चित् अरारणुः) वृक्ष भी चिल्लाने लगे कि इन्होंने (मेहना गां भजन्त) प्रशंसनीय गायोंको प्राप्त कर लिया । इन्होंने (मेहना अश्वं भजन्त) प्रशंसनीय घोडोंको प्राप्त कर लिया ॥ २१ ॥

[५]

[१२२] (यत्) जब (अरुणप्सुः) लाल रंगवाली उषा (दूरात् इह इव सती) दूरसेही मानों इधरही आती हुई सी (अशिश्वितत्) क्रमशः श्वेत वर्णवाली हुई, तब वह (भानुं) सूर्यको (विश्वधा) सभी प्रकारसे (वि अतनत्) फैला चुकी थी ॥ १ ॥

[१२३] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (नृवत्) तुम नेताके समान हो और (मनो-युजा) मनमें इच्छा करतेही आते हो और (पृथुपाजसा रथेन) बडे विशाल बल या अन्नवाले रथसे (उषसं सचेथे) उषाके साथ साथ चलने लगते हो ॥ २ ॥

[१२४] हे (वाजिनी-वसू) धनको बसानेवाले अश्विदेवो ! (युवाभ्यां प्रति) तुम्हारी ओर (स्तोमाः अदृक्षत) स्तोत्र आते हुए दीख पडते हैं; (दूतः यथा) दूत जैसा करता है, वैसेही (वाचं ओहिषे) वाणीको मैं तुम्हारेतक पहुंचाता हूं ॥ ३ ॥

[१२५] (नः ऊतये) हमारी सुरक्षाके लिये (पुरुप्रिया) बहुतोंके प्यारे (पुरुमन्द्रा) बहुतोंको अत्यन्त हर्षित करनेवाले (पुरुवसू) अधिक धन देनेवाले अश्विदेवोंकी (कण्वासः स्तुषे) ज्ञानी मैं स्तुति करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ— जब ऋषि या ज्ञानी सज्जन पुरुष उत्तम धन प्राप्त करते हैं, तब सभीको यहां तक कि वृक्ष आदि स्थावरोंको भी प्रसन्नता होती है, क्योंकि वे जानते हैं कि ज्ञानियोंको धन मिलनेपर वे उससे दूसरोंको सुखही देंगे ॥ २१ ॥

जब लाल रंगवाली उषा श्वेत वर्णकी बनने लगी, तब विशेष प्रकाश हुआ और सूर्य भी चमकने लगा ॥ १ ॥

ये अश्विदेव नेता हैं, लोगोंको सन्मार्ग पर ले जानेवाले हैं । जो मनसे इनकी भक्ति करता है, उसके पास ये जाते हैं ॥ २ ॥

अश्विदेव धनको देते हैं, इसलिये उनके स्तोत्र गाये जाते हैं, और सेवकके समान उनके विषयमें वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

ये अश्विनीकुमार हमारी रक्षा करनेवाले, बहुतोंको प्रिय और अपने उपासकोंको अत्यन्त हर्षित करनेवाले हैं, अतः वे स्तुतिके योग्य हैं ॥ ४ ॥

१२६ मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥
१२७ ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् । घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥
१२८ आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः । यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥
१२९ येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना । त्रीँरक्तून् परिदीयथः ॥ ८ ॥
१३० उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा । वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥
१३१ आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् । वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥
१३२ वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२६] (मंहिष्ठा) अत्यन्त महनीय, (वाजसातमा) यथेष्ट अन्न, बल देनेहारे (शुभस्पती) शुभ कार्योंके पालनकर्ता (इषयन्ता) अन्न उत्पन्न करनेहारे और (दाशुषः गृहं) दानी पुरुषके-घरपर (गन्तारा) जानेवाले अश्विदेव हैं ॥ ५ ॥

[१२७] (सुदेवाय) अच्छे तेजस्वी (दाशुषे) दानीके लिये (ता) वे विख्यात तुम दोनों अश्विदेव (अवितारिणीं) नष्ट न होनेवाली (सुमेधां) अच्छी बुद्धि तथा (गव्यूतिं घृतैः उक्षतं) गौओंकी सुरक्षा करनेवाली शक्तिको घृतोंसे सींच देवें ॥ ६ ॥

[१२८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (श्येनेभिः) श्येनपक्षीके समान (आशुभिः अश्वेभिः) शीघ्रगामी घोडोंसे (नः स्तोमं उप) हमारे यज्ञके समीप (तूयं द्रवत्) जल्दी और दौडते दौडते (आ यातं) आओ ॥ ७ ॥

[१२९] (तिस्रः दिवः) तीन दिन और (त्रीन् अक्तून्) तीन रातोंतक (परावतः) दूर देशसे (येभिः) जिन घोडोंकी सहायतासे (विश्वानि रोचना) सभी जगमगाते तेजो-गोलोंके (परि-दीयथः) इर्दगिर्द तुम संचार करते हो उन्हींपर बैठकर इधर आओ ॥ ८ ॥

[१३०] हे (अहर्विदा) दिनको जतलानेहारे ! (उत) और एक बात है कि (नः गोमतीः इषः) हमें गायोंसे युक्त अन्न (उत सातीः) और बाँटनेयोग्य संपत्तियाँ दो, (सातये) ठीक दान करनेके लिये (पथः वि सितं) मार्ग बतला दो ॥ ९ ॥

[१३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (नः) हमें (अश्वावतीः इषः) घोडोंसे पूर्ण अन्न (सुरथं सुवीरं रयिं) अच्छे रथ तथा वीर संतानसे युक्त धन (आ वोळ्हं) पहुँचा दो ॥ १० ॥

[१३२] हे (शुभः- पती) शुभ कार्योंके अधिपति ! (दस्रा) शत्रुविनाशक ! (हिरण्यवर्तनी) स्वर्णमय रथवाले अश्विदेवो ! (वावृधाना) बढते हुए तुम दोनों (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरससे मिलाये शहदका पान करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— बडे, अन्नदान करनेवाले, शुभ कार्य करनेवाले, अन्न उत्पन्न करनेवाले, दाताकी सहायतार्थ उसके घर जानेवाले, अश्वि देव हैं । (देवोंकी मनुष्य धर्म) ॥ ५ ॥

अच्छे दाताकी धारक और गोरक्षण-बुद्धिको और संरक्षणशक्तिको अश्विदेव घृतादिसे अधिक समर्थ बनावें, घृतादि पदार्थोंका सेवन करके अपनी धारक-शक्ति, सुबुद्धि और गोरक्षणकी शक्ति बढावें ॥ ६ ॥

इन देवोंके घोडे पक्षियोंके समान बहुत वेगवान् हैं । अतः वे जहां जाना चाहते हैं, वहां वे शीघ्रतासे पहुंच जाते हैं ॥ ७ ॥

अश्विदेवोंके यान श्येनपक्षीके सदृश आकाशमें तीन दिन और तीन रातोंतक अविरल रूपसे संचार करते थे ॥ ८ ॥

हे देवो ! तुम दोनों हमें गायोंसे युक्त उत्तम ऐश्वर्य दो, साथही यह भी मार्ग बतलाओ कि हम किस तरह उस ऐश्वर्यका सदुपयोग करें ॥ ९ ॥

हे अश्विदेवो ! हमें शुभ घोडे, गाय, रथ तथा वीर संतानोंसे युक्त धन प्रदान करो ॥ १० ॥

ये दोनों सदा शुभ कार्य करते हैं, इसीलिए ये दोनों शुभ कार्यके स्वामी हैं तथा ये दोनों ही देव शत्रुओंके विनाशक भी हैं ॥ ११ ॥

१३३ अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवंद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥
१३४ नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गंतम् । मो ष्व१न्यॉं उपारतम् ॥ १३ ॥
१३५ अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥
१३६ अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥
१३७ पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयंन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गंतम् ॥ १६ ॥
१३८ जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥
१३९ अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥
१४० यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥

अर्थ— [१३३] हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले ! (अस्मभ्यं) हमें (मघवद्भ्यः च) और धनिकोंको (सप्रथः) अत्यन्त विस्तीर्ण (अदाभ्यं छर्दिः यन्तं) दबानेमें असंभव याने सुदृढ घर दो ॥ १२ ॥

[१३४] (या) जो तुम दोनों (जनानां ब्रह्म) जनताके ज्ञानको (सु नि अविष्टं) भली भाँति खूब सुरक्षित रख चुके, ऐसे तुम (तूयं आगतं) बहुत जल्दी आओ (अन्यान्) दूसरोंके (उप) समीप (मो सु आरतं) कभी मत जाओ ॥ १३ ॥

[१३५] हे (धिष्ण्या अश्विना) पूजनीय अश्विदेवो ! (अस्य चारुणः) इस सुन्दर (मदस्य मध्वः) हर्षजनक, मीठे सोमको जोकि (रातस्य) दान दिया जा चुका है (पिबतं) तुम पीजाओ ॥ १४ ॥

[१३६] हे अश्विदेवो ! (पुरुक्षुं) बहुतोंको निवास देनेवाले (विश्वधायसं) सभीका धारण करनेहारे (शतवन्तं सहस्रिणं रयिं) सैकडों हजारों संख्यावाले धनको (अस्मे आ वहतम्) हमें पहुँचा दो ॥ १५ ॥

[१३७] (मनीषिणः नराः) मननशील नेता (वां) तुम्हें (पुरुत्रा चित् हि) सभी स्थानोंमें जरूर (विह्वयन्ते) विशेष रूपसे बुलाते हैं, इसलिए (वाघद्भिः आ गतं) वाहनोंसे आओ ॥ १६ ॥

[१३८] (वृक्तबर्हिषः) कुशासन फैलाये हुए (हविष्मन्तः अरंकृतः) हविवाले, अलंकृत (जनासः) लोग (युवां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं ॥ १७ ॥

[१३९] (अद्य) आज हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अस्माकं अयं) हमारा यह (वां वाहिष्ठः) तुम्हारे प्रति अत्यन्त आतुरतासे जानेवाला (स्तोमः) स्तोत्र (युवाभ्यां अन्तमः भूतु) तुम्हारे अतीव निकट चला जाय ॥ १८ ॥

[१४०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां रथचर्षणे) तुम्हारे रथके देखनेयोग्य भागमें (यः मधुनः दृतिः) जो मधुका बर्तन (आहितः ह) रखा हुआ है, (ततः पिबतं) उससे पान करो ॥ १९ ॥

भावार्थ— इन दोनों देवोंका धन इनकी सेना ही है। इस धनके सहारे ये देव अन्य भी धन प्राप्त करते हैं और अपने उपासकोंको भी हर तरहसे आनन्दमें रखते हैं ॥ १२ ॥

मनुष्योंके पास जो बुद्धि एवं ज्ञान है, उसे ये देव और अधिक पुष्ट करते और सुरक्षित रखते हैं। ऐसे ये देव सदा सज्जनोंके पासही जाते हैं, दुष्टोंके पास कभी नहीं जाते ॥ १३ ॥

हे देवो ! तुम्हारे लिए ये आनन्ददायक और मधुर सोमरस अर्पित किए गए हैं, उन्हें तुम पीओ ॥ १४ ॥

हे देवो ! हमें ऐसा धन दो जो बहुतोंको जीवन देनेवाला तथा उनके जीवनको धारण करनेवाला हो ॥ १५ ॥

मननशील ज्ञानी जन इन अश्विदेवोंको सभी स्थानोंमें पुकारते हैं और उनसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं ॥ १६ ॥

सभी लोग हवि लेकर और आसन तैयार करके इन दोनों देवोंको आदरसे बुलाते हैं ॥ १७ ॥

हे अश्विदेवो ! हमारा यह स्तोत्र तुम्हारी ओर आतुर होकर जाए और तुम्हें प्राप्त कर ले ॥ १८ ॥

हे देवो ! तुम दोनों उत्तम बर्तनमें रखे हुए सोमरसका पान करो ॥ १९ ॥

१४१ तेनं नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहंतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥
१४२ उत नो दिव्या इषं उत सिन्धूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः ॥ २१ ॥
१४३ कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा । यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥ २२ ॥
१४४ युवं कण्वाय नासत्या ऽपिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥ २३ ॥
१४५ ताभिरा यातमूतिभि- र्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः । यद् वां वृषण्वसू हुवे ॥ २४ ॥
१४६ यथा चित् कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् । अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥ २५ ॥
१४७ यथोत कृत्व्ये धने- ऽशुं गोष्वगस्त्यम् । यथा वाजेषु सोभरिम् ॥ २६ ॥

अर्थ— [१४१] हे (वाजिनी-वसू) यज्ञक्रियाको धन माननेवाले अश्विदेवो ! (नः पश्वे तोकाय) हमारे पशु तथा संतान और (गवे) गौके लिए (शं) सुखकारक हो इस ढंगसे (पीवरीः इषः) पुष्ट अन्नसामग्रियाँ (तेन वहतं) उस रथसे इधर ले आओ ॥ २० ॥

[१४२] हे (अहः विदा) दिनको जतलानेहारे ! (उत) और (नः) हमें (दिव्याः इषः) उच्चकोटिकी अन्नसामग्रियाँ (उत सिन्धून्) तथा बहनेवाले जलसमूहोंको, (द्वारा इव) मार्गसे जल जैसे छोडे जाते हैं वैसे ही, (अप वर्षथः) तुम वारिश लगातार कर देते रहो ॥ २१ ॥

[१४३] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (समुद्रे जहितः तौग्र्यः) समुन्दरमें फेंका हुआ तुग्रका पुत्र (वां कदा विधत्) तुम्हारी स्तुति भला कब कर चुका ? (वां रथः) तुम्हारा रथ (यत् विभिः पतात्) जब पक्षी जैसा उडते हुए आगया था ॥ २२ ॥

[१४४] हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अपिरिप्ताय कण्वाय) दुःखी कण्वको (युवं) तुम (शश्वत्) हमेशा (हर्म्ये) ऊँचे महलमें (ऊतीः दशस्यथः) अनेक संरक्षण देते हो ॥ २३ ॥

[१४५] हे (वृषण्वसू !) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (यत् वां हुवे) चूँकि मैं तुम्हें बुला रहा हूँ इसलिए (नव्यसीभिः सुशस्तिभिः) नई भलीभाँति प्रशंसनीय बातोंसे और (ताभिः ऊतिभिः) उन संरक्षणोंसे युक्त होकर (आ यातं) इधर आओ ॥ २४ ॥

[१४६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यथा शिञ्जारं अत्रिं) जैसे शिंजारको, अत्रिको, (उपस्तुतं प्रियमेधं कण्वं चित्) उपस्तुतको, प्रियमेधको और कण्वको भी (आवतं) तुमने सुरक्षित किया ॥ २५ ॥

[१४७] (उत) और (यथा कृत्व्ये धने) जैसे संपादन करनेयोग्य धनको पानेमें (अंशुं) अंशुको (गोषु अगस्त्यं) गौओंकी प्राप्तिमें अगस्त्यको (यथा सोभरिं वाजेषु) जैसे सोभरिको युद्धोंमें तुमने बचाया था ॥ २६ ॥

भावार्थ— ये अश्विदेव यज्ञ क्रियाको ही सच्चा धन मानते हैं। ये देव सभी प्राणियोंका कल्याण करके उन्हें सुख देनेवाले हैं और अपने रथ अन्न-सामग्री रखकर उसे सर्वत्र पहुंचाते हैं ॥ २० ॥

हे देवो ! तुम ऐसी कृपा करो कि समयपर वृष्टि होती रहे और हमें भरपूर अन्न मिलता रहे ॥ २१ ॥

तुग्रके पुत्रको उसके शत्रुओंने समुद्रमें फेंक दिया था। उसने वहींसे अश्विदेवोंकी प्रार्थना की, तब अश्विदेव पक्षियों पर सवार होकर गए और उन्होंने उसे बचाया ॥ २२ ॥

ये देव सदा सत्यपक्षकी रक्षा करके सत्यका पालन करते हैं, इसीलिए इन्हें न-असत्या कहा जाता है। अश्विदेव असत्यकी रक्षा कभी नहीं करते। जो सत्य बोलता है, उसे ऊंचे ऊंचे महल अर्थात् धनैश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ २३ ॥

हे अश्विदेवो ! मैं तुम्हें बुलाता हूँ, अतः तुम मेरी रक्षा करनेके लिए उत्तम वास्तविकोंसे युक्त होकर आओ ॥ २४ ॥

इन अश्विदेवोंने अत्रि, उपस्तुत आदि अनेकों ऋषियोंकी रक्षा की ॥ २५ ॥

धनको प्राप्त करनेके कार्यमें अंशुको, गो-प्राप्तिके कार्यमें अगस्त्यको तथा युद्धमें सोभरिकी इन अश्विदेवोंने रक्षा की थी ॥ २६ ॥

१४८ एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना । गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥ २७ ॥
१४९ रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ २८ ॥
१५० हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः । उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥
१५१ तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् । उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥
१५२ आ वहेथे पराकात् पूर्वीरश्नन्तावश्विना । इषो दासीरमर्त्या ॥ ३१ ॥
१५३ आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना । पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥
१५४ एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः । अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥

अर्थ— [१४८] वैसेही हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां गृणन्तः) तुम्हारी सराहना करते हुए (एतावत्) इतना (अतः भूयः वा) या इससे भी अधिक (सुम्नं ईमहे) सुखकी याचना हम करते हैं ॥ २७ ॥

[१४९] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (हिरण्यवन्धुरं) सुवर्णमय कठ्ठवाले (हिरण्य-अभीशुं) सुनहरे चाबुक या लगामवाले (दिवि-स्पृशं) द्युलोकको छूनेवाले (रथं आ स्थाथः हि) रथपर तुम अवश्य चढ जाते हो ॥ २८ ॥

[१५०] (वां रभिः ईषा हिरण्ययी) तुम्हारी आलंबन देनेवाली लकडी सुनहली है, (अक्षः हिरण्ययः) पहियेकी धुरी सुवर्णमय है (उभा चक्रा हिरण्यया) दोनों पहिये भी सुवर्णके बने हुए हैं ॥ २९ ॥

[१५१] हे (वाजिनी-वसू) बलको धन समझनेवाले ! (तेन) उस रथसे (इमां मम सुष्टुतिं) इस मेरी अच्छी स्तुतिको सुननेके लिये (नः) हमारे पास (परावतः चित्) दूर देशसे भी (उप आ गतं) समीप आओ ॥ ३० ॥

[१५२] हे (अमर्त्या) अ-मरणशील अश्विदेवो ! (पूर्वीः दासीः इषः) बहुतसी दासोंकी अन्नसामग्रियाँ (अश्नन्तौ) प्राप्त करते हुए (पराकात् आ वहेथे) सुदूर देशसे इधर आ पहुँचते हो ॥ ३१ ॥

[१५३] हे (पुरु-चन्द्रा अश्विना) बहुतोंको आनन्द देनेवाले एवं सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (नः) हमारे समीप (द्युम्नैः श्रवोभिः राया) धनों, अन्नों तथा वैभवसे युक्त होकर (आ यातं) आओ ॥ ३२ ॥

[१५४] (इह) इधर (पर्णिनः) पंखवाले (प्रुषितप्सवः वयः) स्निग्धरूपवाले एवं गतिशील पक्षी जैसे घोडे (स्वध्वरं जनं अच्छ) अच्छे अहिंसक कार्य करनेवाले लोगोंके प्रति (वां आ वहन्तु) तुम्हें ले जायँ ॥ ३३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम दोनों धनकी रक्षा करनेवाले हो, अतः हम सब तुम्हारी स्तुति करते हुए यही प्रार्थना करते हैं कि तुम हमें इतना धन दो कि हम सदा सुखी रहें ॥ २७ ॥

इन अश्विनौ देवोंके रथोंमें सोनेके दण्ड लगे होते हैं, इनकी चाबुक भी सोनेकी ही होती है । ऐसे रथों पर चढकर ये सर्वत्र संचार करते हैं ॥ २८ ॥

इन देवोंके रथोंकी लकडी सुनहली है, उस रथके पहिए भी सुनहरे हैं और धुरा भी सोनेकी ही है । इसप्रकार इनका पूरा रथ ही सुनहरा है ॥ २९ ॥

हे अश्विनी देवो ! हमारी इन अच्छी स्तुतियोंको सुनकर तुम दूर देशसे भी हमारे पास आओ ॥ ३० ॥

हे देवो ! दासोंके पास जितनी भी अन्न सामग्री हो, वह उनसे छीनकर हम आर्योंको दो । कोई भी मनुष्य दास न बने, क्योंकि सभी देव दासोंके शत्रु हैं ॥ ३१ ॥

हे अश्वि देवो ! हमारे पास यश देनेवाले धनोंसे युक्त होकर तुम आओ । धन पाकर मनुष्यकी कीर्ति फैले, ऐसे काम वह करे । धनमदमें कुकर्म न करे ॥ ३२ ॥

पंखवाले गतिमान् पक्षी तुम्हें मनुष्योंके पास ले जाएं कि जो यज्ञिक हों । हिंसा न करनेवालोंसे ये देव स्नेह करते हैं ॥ ३३ ॥

१५५ रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह । न चक्रमभि बाधते ॥ ३४ ॥

१५६ हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः । धीजवना नासत्या ॥ ३५ ॥

१५७ युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू । ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥ ३६ ॥

१५८ ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३७ ॥

१५९ यो मे हिरण्यसंदृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥ ३८ ॥

अर्थ— [१५५] (यः इषा सह वर्तते) जो अन्नके साथ रहता है उस (वां अनुगायसं रथं) तुम्हारे रथको जिसके पीछे स्तुति करनेवाले लोग रहते हैं (चक्रं न अभि बाधते) शत्रुसैन्य कष्ट नहीं पहुँचाता है ॥ ३४ ॥

[१५६] हे (धी जवना नासत्या) बुद्धिके तुल्य वेगवाले सत्यपूर्ण अश्विदेवों ! (द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः) दौडते हुए घोडोंसे और (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णमय रथसे आओ ॥ ३५ ॥

[१५७] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे ! (युवं वा) तुम दो (जागृवांसं मृगं स्वदथः) जागृत एवं ढूँढनेयोग्य सोमका सेवन करते हो, ऐसे (ता) वे दोनों तुम (नः रयिं) हमारे धनको (इषा पृङ्क्तं) अन्नसे जोड दो ॥ ३६ ॥

[१५८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! ऐसे तुम विख्यात (ता) वे दोनों (मे) मेरे लिए (नवानां सनीनां) नये और देनेके योग्य धनोंको (विद्यातं) जान लो। (यथा) जिस तरह (चैद्यः) चिद् अर्थात् ज्ञानके पुत्र ज्ञानी तथा (कशुः) तेजस्वी दाताने मुझे (उष्ट्रानां शतं) सौ ऊंट तथा (गोनां दशसहस्रा) दस हजार गायें मुझे (ददत्) दीं ॥ ३७ ॥

[१५९] (यः) जिस तेजस्वी राजाने (मे) मुझे (हिरण्यसंदृशः) सोनेके समान वर्णवाले अर्थात् तेजस्वी (दश राज्ञः) दस राजाओंको (अमंहत) प्रदान किया। (चैद्यस्य) ऐसे ज्ञानीके (कृष्टयः अधः पदाः इत्) सारी प्रजायें नीचेही रहती हैं और (अभितः जनाः) चारों ओरके लोग (चर्मम्ना) उसके पास शरणमें आते हैं ॥ ३८ ॥

भावार्थ— इन अश्विदेवोंके रथोंमें अन्न सदा भरपूर प्रमाणमें रहता है और इन रथोंके पीछे सदा इन देवोंके अनुयायी चलते हैं, अतः शत्रुगण इनके रथोंको कोई भी नुकसान नहीं पहुंचा पाते ॥ ३४ ॥

अश्विदेवोंके रथ मनके समान शीघ्र गतिवाले हैं। ऐसे सुनहरे और वेगवान् रथोंमें बैठकर ये देव सर्वत्र संचार करते हैं ॥ ३५ ॥

दोनों अश्विदेव धनकी वर्षा करनेवाले हैं, अतः ये दोनों ऐसे व्यक्तिकी खोज करते हैं कि जो सदा जागृत रहकर इन्हें सोम प्रदान करता है। आलसी लोगोंके पास ये दोनों देव नहीं जाते ॥ ३६ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनों सर्वज्ञ हो अतः तुम मेरे मनोरथोंको जानतेही हो। जिस प्रकार मुझे दूसरे ज्ञानी और तेजस्वी दाता दान देते हैं, उसी तरह या उससे भी अधिक दान तुम दोनों मुझे दो ॥ ३७ ॥

उत्तम ज्ञानीके पास बडे बडे राजा भी दासके समान आकर रहते हैं। सारी प्रजायें ऐसे ज्ञानीके अधीन रहती हैं। और चारों तरफके लोग इस ज्ञानीकी शरणमें आकर रहते हैं ॥ ३८ ॥

१६० माकिरेना पथा गाद् येनेमे यन्ति चेदयः ।
अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ॥ ३९ ॥

[६]

(ऋषिः- वत्सः काण्वः । देवता- इन्द्रः, ४६ ४८ तिरिन्दिरः पार्शव्यः । छन्दः- गायत्री ।)

१६१ महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

१६२ प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥

अर्थ— [१६०] (येन इमे चेदयः यन्ति) जिस मार्गसे ये ज्ञानी जाते हैं, (एना पथा माकिः गात्) उस मार्गसे दूसरे मूर्ख जन नहीं जा सकते । इन ज्ञानियोंकी अपेक्षा (भूरिदावत्तरः) और अधिक दान देनेवाला तथ (सूरिः) विद्वान् (अन्यः जनः न) और कोई मनुष्य नहीं है ॥ ३९ ॥

[६]

[१६१] (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (ओजसा) अपने बलके कारण (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वृष्टि करनेवाले बादलके समान (महान्) ऊंचा है, [वह इन्द्र] (वत्सस्य स्तोमैः) वत्सऋषिकी स्तुतियोंसे (वावृधे) महान् प्रतीत होता है ॥ १ ॥

१ यः इन्द्रः ओजसा वृष्टिमान् पर्जन्यः इव महान्— जो इन्द्र अपने बलके कारण, वर्षा करनेवाले बादलके समान, महान् है ।

२ वत्सस्य स्तोमैः वावृधे— वह इन्द्र वत्सकी स्तुतियोंसे महान् होता है ।

३ वत्स— पुत्र, बछडा, ऋषि,

[१६२] (ऋतस्य प्रजां) यज्ञके प्रजारूपी इन्द्रको [मार्गको अपनी गतिसे] (पिप्रतः) भर देनेवाले (वह्नयः) घोडे (यत् प्रभरन्त) जब ढोते हैं, [तब] (विप्राः) ज्ञानी (ऋतस्य वाहसा) यज्ञको सिद्ध करनेवाले स्तोत्रसे [उस इन्द्रका गुणगान करते हैं] ॥ २ ॥

१ ऋतस्य प्रजा— इन्द्र यज्ञमें आता है । यज्ञसे इन्द्रका अस्तित्व प्रकट होता है । इसलिये इन्द्रको यज्ञकी प्रजा माना है ।

२ पिप्रतः— पूर्ण करते हुए ' पृण् पूरणे '

३ वह्निः— अग्नि, घोडा, ' वह्निरिति अश्व नाम ' (निघं. १।१४)

भावार्थ— जिस श्रेष्ठ मार्गसे ज्ञानी जाता है, उस मार्गसे मूर्ख लोग नहीं जा सकते । तथा इस ज्ञानीकी अपेक्षा अधिक दाता और विद्वान् भी दूसरा कोई नहीं होता ॥ ३९ ॥

वृष्टि करनेवाला मेघ वृष्टीद्वारा अन्न उत्पन्न करके सबका पालन करता है, इस कारण पालन कर्ता होनेसे मेघ महान् है । वैसाही इन्द्र सबका रक्षक होनेसे महान् है ॥ १ ॥

जहां जहां यज्ञ होता है और सोम निचोडा जाता है, वहां वहां इन्द्र प्रकट होता है, अतः इन्द्रको यज्ञका पुत्र माना जाता है । ऐसे सभी यज्ञोंमें इन्द्रके गुणोंका गान किया जाता है ॥ २ ॥

१६३ कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥
१६४ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ४ ॥
१६५ ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ५ ॥
१६६ वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥

अर्थ— [१६३] (कण्वाः) ज्ञानी जनोंने (यत्) जब (ऋतस्य साधनं इन्द्रं) यज्ञको सिद्ध करनेवाले इन्द्रको (स्तोमैः अकृत) स्तोत्रोंसे प्रार्थना की तब शत्रुके (आयुधं) शस्त्र (जामि ब्रुवत) भाई हुए ऐसा कहने लगे ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य साधनं इन्द्रम्— इन्द्र यज्ञको सिद्ध करनेवाला है । यज्ञका साधन है ।

२ आयुधं जामि ब्रुवत— शत्रुके शस्त्रको भाई है ऐसा कहने लगे ।

[१६४] (अस्य मन्यवे) इस इन्द्रके क्रोधित हो जानेपर (विश्वाः कृष्टयः विशः) सभी मानवी प्रजायें (सिन्धवः समुद्राय इव) जैसे नदियां समुद्रके लिए उसी प्रकार (सं नमन्ते) नमन करती हैं ॥ ४ ॥

१ अस्य मन्यवे विश्वाः कृष्टयः विशः सं नमन्ते— इन्द्रके क्रोधित हो जानेपर सभी मनुष्य उसको प्रणाम करते हैं ।

[१६५] (अस्य तत् ओजः) इसका वह बल (तित्विषे) प्रकाशित होता है, (यत्) जिस बलसे (इन्द्रः) वह इन्द्र (उभे रोदसी) दोनों द्यु और पृथिवीके साथ (चर्म इव) चमडेके समान (सं-अवर्तयत्) व्यवहार करता है ॥ ५ ॥

१ इन्द्रः रोदसी चर्म इव सं अवर्तयत्— इन्द्र अपने बलसे द्यु और पृथ्वीसे चमडेके समान व्यवहार करता है । अर्थात् चमडेके समान वह कभी इनको फैला देता है, और कभी समेट लेता है ।

२ अस्य तत् ओजः— इस इन्द्रका ऐसा बल है ।

[१६६] उस इन्द्रने (दोधतः वृत्रस्य चित्) [जगत्को] कंपानेवाले वृत्रासुरके (शिरः) शिरको (शतपर्वणा वृष्णिना वज्रेण) सैकडों धाराओंवाले, बलवान् वज्रसे (वि बिभेद) काट डाला ॥ ६ ॥

१ दोधतः— कंपानेवाले 'धूञ् कम्पने'

२ शतपर्वणा वृष्णिना वज्रेण— सैकडों धारावाले बलवान वज्रसे । अपने अस्त्र शत्रुके अस्त्रोंसे अधिक मारक चाहिये ।

भावार्थ— जब ज्ञानियोंके द्वारा स्तुति किए जानेपर उनके पास इन्द्र आता है, तब इन्द्र उनकी रक्षा करता है और तब शत्रुके शस्त्र भी उन ज्ञानियोंके मित्र बन जाते हैं अर्थात् शत्रुके शस्त्र भी उन ज्ञानियोंका कुछ बिगाड नहीं सकते ॥ ३ ॥

जब इन्द्र क्रोधित होता है, तब सारे प्राणि घबराने लगते हैं । सभी उसके क्रोधसे डरते हैं, अतः सब उसके क्रोधको शांत करनेके लिए उसे प्रणाम करते हैं, उसके पास विनीत भावसे जाते हैं ॥ ४ ॥

इस इन्द्रका बल अप्रमेय है । उसकी कोई सीमा नहीं है । उसके बलके आगे सारा जगत् तुच्छ है । इसीलिए वह द्युलोक और पृथ्वी जैसे बडे बडे लोकोंको भी चमडेके समान कभी लपेट देता है, तो कभी फैला देता है । प्रलयकालमें वह इन दोनों लोकोंको समेट देता है तो सृष्टिकालमें फैला देता है ॥ ५ ॥

जो दुष्ट कर्म करनेवाले होते हैं, उनसे सारा जगत् कांपता है । ऐसे दुष्टोंको इन्द्र मारता है और जगत्को भयरहित करता है ॥ ६ ॥

×

१६७ इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः । अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥
१६८ गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः । कण्वा ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥
१६९ प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् । प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥ ९ ॥
१७० अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १० ॥
१७१ अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे ॥ ११ ॥

अर्थ— [१६७] (विपां अग्रेषु) विद्वानोंके आगे (इमाः) इन (अग्नेः शोचिः न) अग्निकी ज्वालाके समान (दिद्युतः) तेजस्वी (धीतयः) स्तोत्रोंको हम (अभि प्र णो नुमः) बारंबार बोलते हैं ॥ ७ ॥

[१६८] (गुहा सतीः) बुद्धिमें रहनेवाली (यत् धीतयः) स्तुतियां (उप प्र शोचन्त) प्रकाशित होती हैं, उनको (कण्वाः) ज्ञानी जन (ऋतस्य धारया) यज्ञको धारण करनेवाली [वाणी] से बोलते हैं ॥ ८ ॥

१ शोचन्त— प्रदीप्त होती है, प्रकाशित होती हैं । ' शुच् दीप्तौ ' ।

२ कण्वाः— कण्व ऋषिके पुत्र, ज्ञानी, ' कण्व इति मेधाविनाम ' (निघं. ३।१५)

३ गुहा सतीः धीतयः— अन्तःकरणमें रहनेवाली भक्तोंकी स्तुतियां ।

[१६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (गोमन्तं अश्विनं) गौवोंवाले, घोडोंवाले (तं रयिं) उस ऐश्वर्यको (प्र नशीमहि) अच्छी तरह प्राप्त करें । तथा (पूर्व चित्तये) पूर्ण ज्ञानकी प्राप्तिके लिए (ब्रह्म) ज्ञानको भी (प्र) प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[१७०] (ऋतस्य पितुः) यज्ञके पालक [इन्द्र] की (मेधां) बुद्धिको (अहं इत्) मैंनेही (परिजग्रभ) प्राप्त किया है [इस कारण] (अहं सूर्य इव अजनि) मैं सूर्यके समान [तेजस्वी] हो गया हूं ॥ १० ॥

१ ऋतस्य पितुः मेधां अहं जग्रभ, सूर्य इव अजनि— यज्ञ तथा सत्यके पालक इन्द्रकी बुद्धि प्राप्त करनेसे मनुष्य सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है ।

[१७१] (कण्ववत् अहं) ज्ञानीके समान मैं (प्रत्नेन मन्मना) प्राचीन स्तोत्रसे अपने (गिरः) वाणीको (शुम्भामि) अलंकृत करता हूँ । (येन इन्द्रः) जिससे इन्द्र (शुष्मं इत् दधे) बलको धारण करता है ॥ ११ ॥

१ मन्मना गिरः शुम्भामि— परमात्माकी स्तुतिसे वाणीको उत्तम सुशोभित करता हूं ।

भावार्थ— विद्वानोंके आगे अग्निदेवके गुणोंका वर्णन करना चाहिए । अग्निदेवके गुणोंको और महत्त्वको विद्वान्‌ही समझ सकते हैं, मूर्ख नहीं ॥ ७ ॥

प्रभुको की जानेवाली स्तुतियां भक्तके अन्तःकरणमें रहती हैं । पर वे भक्तके अन्तःकरणको सदा पवित्र किए रहती हैं और उसके अन्तःकरणसेही वे स्तुतियां सदा प्रकट होती रहती हैं । ज्ञानी जन इस प्रकार अपने अन्तःकरणमें स्थित स्तुतियोंको अपनी वाणीके द्वारा प्रकट किया करते हैं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हम एक तरफ गाय और घोडोंवाले भौतिक ऐश्वर्यको भी प्राप्त करें, तो दूसरी तरफ उस ऐश्वर्यका सदुपयोग करनेके लिए ज्ञानको भी प्राप्त करें तथा पूर्णज्ञानी बनें ॥ ९ ॥

जो मनुष्य इन्द्रकी स्तुति करके उससे ज्ञान और बुद्धियां प्राप्त करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी होता है ॥ १० ॥

परमात्माकी स्तुति करनेसे मनुष्यकी वाणी उत्तम और पवित्र होती है और मनुष्यके द्वारा की गई स्तुतिसे प्रभुका महत्त्व सब ओर प्रकाशित होता है ॥ ११ ॥

१७२ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवु- र्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥
१७३ यदस्य मन्युरध्वनीद् वि वृत्रं पर्वशो रुजन् । अपः समुद्रमैरयत् ॥ १३ ॥
१७४ नि शुष्णे इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि । वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥ १४ ॥
१७५ न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । न विव्यचन्त भूमयः ॥ १५ ॥
१७६ यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् । नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१७२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये) जो मनुष्य (त्वां न तुष्टुवुः) तेरी स्तुति नहीं करते और (ये च ऋषयः तुष्टुवुः) जो ऋषि स्तुति करते रहे, [उन सबमें] (मम इत्) मेरीही स्तुतिसे (सुष्टुतः) अच्छी प्रकार प्रशंसित हुआ तू (वर्धस्व) बढ ॥ १२ ॥

[१७३] (यत् अस्य मन्युः) जब इसका क्रोध (वृत्रं पर्वशः वि रुजन्) वृत्रको टुकडे टुकडे करके मारता हुआ (अध्वनीत्) शब्द करता है, [तब इन्द्र] (अपः) जलोंको (समुद्रं ऐरयत्) समुद्रकी तरफ प्रेरित करता है ॥ १३ ॥

१ अपः समुद्रं ऐरयत्— तब जल समुद्र तक प्रवाहित होता है ।
२ वृत्रः— मेघ, घेरनेवाला शत्रु
३ मन्युः— क्रोध, उत्साह

[१७४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तुमने (शुष्णे दस्यवि) शुष्णनामक राक्षस पर (धर्णसिं वज्रं) धारवाले वज्रको (नि जघन्थ) मारा [उससे] हे (उग्र) शूर और तथा बलवान् इन्द्र ! तुम (शृण्विषे) प्रसिद्ध हुए ॥ १४ ॥

१ इन्द्र ! शुष्णे दस्यवि धर्णसिं वज्रं नि जघन्थ— हे इन्द्र तू शुष्ण असुरको तीक्ष्ण वज्रसे मारता है ।
२ उग्र शृण्विषे— तब वह वीर इन्द्र प्रसिद्ध होता है ।
३ धर्णसि— तीक्ष्ण धारवाला
४ शुष्णः— शोषण करनेवाला,

[१७५] (द्यावः) द्युलोक (ओजसा) बलसे (इन्द्रं) इन्द्रको (न विव्यचन्त) व्याप्त नहीं कर सकते, (अन्तरिक्षाणि) अन्तरिक्ष लोक इस (वज्रिणं) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रको (न) नहीं घेर सकते, (भूमयः न) और भूमियां भी [उस इन्द्रको] नहीं घेर सकती ॥ १५ ॥

[१७६] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ते महीः अपः) तुम्हारे बडे बडे जलप्रवाहोंको (यः) जो वृत्रासुर (स्तभूयमान आशयत्) रोक करके रह रहा था, (तं) उसको तुमने (पद्यासु) बहनेवाले जलोंमेंही (नि शिश्नथः) मार डाला ॥ १६ ॥

भावार्थ— कुछ लोग ऐसे नास्तिक होते हैं कि जो प्रभुकी स्तुतिही नहीं करते तो कुछ लोग आस्तिक तो होते हैं और वे प्रभुकी स्तुति भी करते हैं, पर उनकी स्तुति प्रेमभरी और हृदयसे नहीं होती, तीसरे लोग वे होते हैं, कि जो प्रभुकी स्तुति बडेही प्रेमसे और हृदयसे करते हैं । प्रभु ऐसे तीसरे वर्गके लोगोंकी स्तुतिही सुनता है ॥ १२ ॥

जब इन्द्र क्रोधित होता है, अर्थात् बिजली चमकती है, तब मेघके टुकडे टुकडे होते हैं और उनसे जल बरसता है और वे जल समुद्रकी तरफ बहते हैं ॥ १३ ॥

जब इन्द्रने शुष्ण नामक असुरपर अपने तीक्ष्ण धारवाले वज्रको गिराया, तब वह असुर मर गया और तब वह बलवान् इन्द्र प्रसिद्ध हुआ । इसी तरह राजा अपने शत्रुओंको मारकरही प्रसिद्ध होता है ॥ १४ ॥

द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी लोक इस इन्द्रको घेर नहीं सकते, इतना वह इन्द्र अनन्त सामर्थ्यवाला है, अथवा वह सब जगह व्याप्त होनेसे ये तीनों लोक उसको घेर नहीं सकते ॥ १५ ॥

इन्द्रने बडे बडे जल प्रवाहोंको रोककर पडे हुए बादलोंको फाडा और पानीके रूपमें उन्हें बहाया ॥ १६ ॥

१७७ य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् । तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥
१७८ य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः । ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥ १८ ॥
१७९ इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ १९ ॥
१८० या इन्द्र प्रस्वस्त्वाऽऽसा गर्भमचक्रिरन् । परि धर्मेव सूर्यम् ॥ २० ॥
१८१ त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः । त्वां सुतास इन्दवः ॥ २१ ॥
१८२ तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ २२ ॥

अर्थ— [१७७] (यः) जिस वृत्रने (इमे मही समीची) इन विस्तृत तथा मिले हुए द्यावा पृथ्वीको (सं- अजग्रभीत्) पकड लिया, हे इन्द्र ! (तं) उस वृत्रको (तमोभिः गुहः) अन्धकारोंसे ढक दे ॥ १७ ॥

[१७८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ये यतयः त्वा) जिन यतियोंने तेरी (तुष्टुवुः) स्तुति की, (च) और (ये भृगवः) जिन भृगुओंने [तेरी स्तुति की] उनमें हे (उग्र) शूरवीर इन्द्र ! (मम हवं श्रुधी) मेरे स्तोत्रको सुन ॥ १८ ॥

[१७९] हे (इन्द्र) इन्द्र (ते) तुम्हारी (ऋतस्य पिप्युषीः) यज्ञको बढानेवाली (इमा पृश्नयः) ये गायें (एनां आशिरं घृतं) इस दूध और घीको (दुहत) दुहती हैं ॥ १९ ॥

१ ते इमा पृश्नयः आशिरं घृतं दुहत— इन्द्रके पास अनेक गायें हैं, जो घी दूध देती हैं।

२ ऋतस्य पिप्युषीः— गायें यज्ञको बढाती हैं, अतः हर यज्ञ करनेवालेको गायें पालनी चाहिए।

[१८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (याः प्रस्वः) जो [बच्चे] उत्पन्न करनेवाली गायें (सूर्यं परि धर्म इव) सूर्यके चारों ओर पानीके समान, (त्वा) तेरे वीर्यको (आसा) मुखसे खाकर (गर्भं अचक्रिरन्) गर्भमें धारण करती है ॥ २० ॥

[१८१] हे (शवसस्पते) बलके स्वामिन् (त्वां इत्) तुझको ही (कण्वाः) ज्ञानी (उक्थेन वावृधुः) स्तोत्रसे उत्साहित करते हैं और (सुतासः इन्दवः त्वां) सोमरस भी तुझे हर्षित करते हैं ॥ २१ ॥

[१८२] हे (अद्रि-वः इन्द्र) पर्वतोंके किलोंमें वास करनेवाले इन्द्र ! जो (वितन्तसाय्यः यज्ञः) विस्तृत यज्ञ किये जाते हैं, [उन] (प्रणीतिषु) यज्ञोंमें (तव प्रशस्तिः) तेरी ही प्रशंसा [गाई जाती है] ॥ २२ ॥

१ प्रणीतिषु तव प्रशस्तिः— यज्ञोंमें इन्द्रकी प्रशंसा होती है। वीरकी प्रशंसा की जाती है।

भावार्थ— वृत्र अर्थात् मेघने जब द्यु और पृथ्वी लोकको आच्छादित कर लिया, तब सर्वत्र अन्धकार छा गया ॥ १७ ॥

सब यति अर्थात् त्यागी जन भी इसी इन्द्रकी स्तुति करते हैं, और सबका भरण पोषण करनेवाले संसारी जन भी इसी इन्द्रकी स्तुति करते हैं। अर्थात् सभी लोग इसी प्रभुकीही स्तुति करते हैं ॥ १८ ॥

इन्द्र गायोंका पालन करनेवाला है, अतः उसकी गायें भरपूर प्रमाणमें दूध देती हैं। उन दूध और घृतसे यज्ञकी अग्नि प्रदीप्त होती है। इसी तरह राष्ट्रमें गायोंका पालन हो, तथा उन गायोंके दूध, दही और घृतसे यज्ञकी वृद्धि हो ॥ १९ ॥

सूर्यकी गायें अर्थात् किरणें इन्द्र अर्थात् विद्युत्के वीर्य अर्थात् जलको अपने मुंहसे पीती हैं और उस जलको बादलोंमें स्थापित करती हैं। इस प्रकार वे बादल उन जलोंके द्वारा गर्भित होते हैं ॥ २० ॥

इस इन्द्रको ज्ञानी जन अपने स्तोत्रोंसे उत्साहित करते हैं और सोमरस उसे हर्षित करते हैं ॥ २१ ॥

मेघरूपी किलेमें यह विद्युत्रूपी इन्द्र वास करता है और उन मेघोंसे पानी बरसानेपर सर्वत्र अन्न धान्यकी समृद्धि होती है, और इस अन्न-धान्यसे यज्ञ आदि किए जाते हैं, उन यज्ञोंमें इन्द्रकी स्तुति गाई जाती है ॥ २२ ॥

१८३ आ नं इन्द्र मही॒मिषं॒ पुरं॒ न द॑र्षि॒ गोम॑तीम् । उ॒त प्र॒जां सु॒वीर्य॑म् ॥ २३ ॥
१८४ उ॒त त्यदा॒श्वश्व्यं॒ यदि॑न्द्र॒ नाहु॑षी॒ष्वा । अग्रे॑ वि॒क्षु प्र॒दीद॑यत् ॥ २४ ॥
१८५ अ॒भि व्र॒जं न त॑त्नि॒षे सूर॑ उपा॒कच॑क्षसम् । यदि॑न्द्र मृ॒ळया॑सि नः ॥ २५ ॥
१८६ यदु॒ङ्ग त॑वि॒षीय॑स॒ इन्द्र॑ प्र॒राज॑सि क्षि॒तीः । म॒हाँ अ॑पा॒र ओज॑सा ॥ २६ ॥

अर्थ— [१८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (मही गोमती पुरं) बडे गौवोंसे युक्त नगरको, (इषं) अन्नको (उत) और (प्रजां सु-वीर्यं) प्रजा तथा उत्तम बलको (नः आदर्षि) दे ॥ २३ ॥

१ मही गोमती पुरं— बडे गौओंसे भरे नगरको हमें दो।

२ इष— अन्नको दे दो।

३ प्रजां सुवीर्यं नः आदर्षि— प्रजा और उत्तम वीर्यको हमें दे दो।

नगरमें बहुत गौवें हैं तथा अन्न। प्रजा और उत्तम वीर्य लोगोंके पास हो।

[१८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तुमने (अग्रे) पहले (नाहुषीषु विक्षु) नहुष राजाकी प्रजाओंको (यत् आशु अश्व्यं) जिस शीघ्र दौडनेवाले घोडेके समूहको (प्रदीदयत्) दिया था, (उत त्यद् आ) उसकोही [हमें दो] ॥ २४ ॥

नहुष— इस नामका एक राजा, मनुष्य 'नहुष इति मनुष्यनाम' (निघं. २।३)
शीघ्र दौडनेवाले घोडे अपने पास होने चाहिये।

[१८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब हमें सुखी करते हो, तब (सूर) हे विद्वान् इन्द्र ! तुम (उपाक चक्षसं व्रजं न) पासमें दीखनेवाले गोष्ठको (अभितत्निषे) विस्तृत करते हो ॥ २५ ॥

१ उपाक- चक्षसं गोष्ठं अभितत्निषे— वह इन्द्र समीपके गोष्ठको गायोंसे भरकर विस्तृत करता है।
गायोंका पालन करना चाहिये।

[१८६] हे (अंग इन्द्र) प्रिय इन्द्र ! तुम (यत् तविषीयसे) जब अपना बल प्रकट करते हो तब (महाँ अपार ओजसा) अपने महान्, अनन्त बलसे (क्षितीः प्रराजसि) मनुष्योंपर शासन करते हो ॥ २६ ॥

१ महां अपार ओजसा क्षितीः प्रराजसि— यह महान् इन्द्र अपने अनन्त बलसे सब मनुष्योंपर शासन करता है।

२ क्षितयः— मनुष्य, पृथ्वी, 'क्षितयः मनुष्यनाम' (निघं. २।३)

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमें गायोंसे युक्त नगर, अन्न, उत्तम सन्तान तथा उत्तम बल प्रदान कर ॥ २३ ॥

मनुष्योंके राजाओंके पास दौडनेवाले घोडे हों, ताकि शत्रुपर आक्रमण करनेके समय वे उपयोगमें आ सकें ॥ २४ ॥

इन्द्र जिस मनुष्यको सुखी करना चाहता है, उसके गोष्ठको गायोंसे भर देता है। गायोंकी समृद्धिमेंही मनुष्योंकी समृद्धि है ॥ २५ ॥

यह इन्द्र अपने महान् और अनन्त बलके सहारेही सब विश्वपर शासन करता है। जो बलशाली है, वही प्रजाओंपर शासन कर सकता है ॥ २६ ॥

१८७ तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये । उरुज्रयसमिन्दुभिः ॥ २७ ॥
१८८ उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥ २८ ॥
१८९ अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति । यतो विपान एजति ॥ २९ ॥
१९० आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवा ॥ ३० ॥

अर्थ— [१८७] हे इन्द्र ! (तं) उस (उरुज्रयसं त्वा) महान् बलवाले तुझको (हविष्मतीः विशः) हवि देनेवाली प्रजायें (ऊतये) अपने रक्षणके लिए (इन्दुभिः उपब्रुवत) सोमरसोंको तयार करके पास बुलाती है ॥ २७ ॥

१ उरु - ज्रयस्— विशाल बलवाला,

२ हविष्मतीः विशः— हवि तैयार करके यज्ञ करनेवाली प्रजायें ।

३ उरुज्रयसं विशः ऊतये उपब्रुवत— अधिक बलवान् वीरको प्रजाएं अपने संरक्षणके लिये बुलाती हैं ।

[१८८] (गिरीणां उपह्वरे) पहाडोंके उतार पर (च) और (नदीनां संगथे) नदियोंके संगमपर [मनुष्य] (धिया) बुद्धिसे (विप्रः अजायत) ज्ञानी बनता है ॥ २८ ॥

१ गिरीणां उपह्वरे— पहाडोंकी उतराईपर ।

२ नदीनां संगमे— नदीयोंके संगमपर

३ धिया विप्रः अजायत— बुद्धिको बढानेसे मनुष्य ज्ञानी बनता है ।

[१८९] (विपानः यतः एजति) व्यापक इन्द्र जिस स्थानसे गति करता है (उद्वतः अतः) ऊपरवाले उस स्थानसे (चिकित्वान्) बुद्धिमान् इन्द्र (समुद्रं अव पश्यति) जल मिश्रित सोमको या समुद्रको नीचे मुख करके देखता है ॥ २९ ॥

समुद्र— जल, समुद्र

[१९०] (दिवा परः) द्युलोकसे भी परे [यह इन्द्र] (यत् इध्यते) जब प्रकाशित होता है (आत् इत्) उसके अनन्तरही (प्रत्नस्य रेतसः) अति पुरातन वीर्यवान् [इस इन्द्रकी] (वासरं ज्योतिः) दिनको बनानेवाली ज्योतिको [मनुष्य] (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ ३० ॥

१ परः दिवा यत् इध्यते— द्युलोकके ऊपर जब प्रकाशित होता है तब

२ प्रत्नस्य रेतसः वासरं ज्योतिः पश्यन्ति— पुरातन वीर्यसंपन्न इन्द्रकी दिनको बनानेवाली ज्योतिको मनुष्य देखते हैं ।

भावार्थ— अपनी रक्षा करनेके लिए सारे प्राणी इसी बलशाली इन्द्रकी स्तुति करते हैं । बलशालीका सारी प्रजायें सत्कार करती हैं ॥ २७ ॥

पहाडोंकी उतराईपर अथवा नदीयोंके संगमपर मनुष्य ध्यान धारणा करके, विद्याध्ययन द्वारा अपनी बुद्धि बढानेसे ज्ञानी होता है ॥ २८ ॥

यह इन्द्र जहां जहां गति करता है, वहां वहांसे जलके समुद्रको खाली कर देता है । जहां जहां विद्युत् गति करती है, वहां वहांके बादल जलसे खाली हो जाते हैं । उनका सारा पानी पृथ्वीपर बरस जाता है ॥ २९ ॥

जब द्युलोकमें इन्द्र [illegible] प्रकाशित होता है, तब चारों ओर उसका तेजस्वी प्रकाश फैल जाता है और उसकी ज्योति दिनको प्रकट करती है ॥ ३० ॥

१९१ कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् । उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥ ३१ ॥
१९२ इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव । उत प्र वर्धया मतिम् ॥ ३२ ॥
१९३ उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः । विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥ ३३ ॥
१९४ अभि कण्वा अनूषताऽऽपो न प्रवता यतीः । इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥ ३४ ॥

अर्थ— [१९१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विश्वे कण्वासः) सब ज्ञानी जन (ते मतिं पौंस्यं) तेरी बुद्धि और बलको (वर्धन्ति) बढाते हैं, (उत) और हे (शविष्ठ) बलशाली इन्द्र ! (वृष्ण्यं) तेरे पराक्रमको भी [बढाते हैं] ॥ ३१ ॥

१ विश्वे कण्वासः ते मतिं पौंस्यं वृष्ण्यं वर्धन्ति— सभी ज्ञानी जन तेरी बुद्धि, बल और वीर्यको बढाते हैं। पौंस्यं, वृष्ण्यं, शवः— बल, पराक्रम, वीर्य ' शवः पौंस्य मिति बलनाम ' (निघं. २।९). बल बढाना मनुष्यका कर्तव्य है।

[१९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मे इमां सुष्टुतिं जुषस्व) मेरी इन स्तुतियोंको स्वीकार कर और (मां सु प्र अव) मेरा अच्छी तरह संरक्षण कर (उत) और (मतिं प्रवर्धय) मेरी बुद्धिको बढा ॥ ३२ ॥

१ मे सुष्टुतिं जुषस्व— मेरी इस उत्तम स्तुतिको स्वीकार कर।

२ मां सु प्र अव— मेरा उत्तम संरक्षण कर।

३ मतिं प्रवर्धय— मेरी बुद्धिका संरक्षण कर।

बुद्धिका संवर्धन करना और अपना संरक्षण करना चाहिये।

[१९३] हे (प्रवृद्ध वज्रिवः) सबसे बडे तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (ब्रह्मण्याः विप्राः वयं) ब्रह्म ज्ञानी हम (जीवसे) अपने दीर्घ जीवनके लिए (तुभ्यं अतक्ष्म) तेरी स्तुति करते हैं ॥ ३३ ॥

१ प्रवृद्ध वज्रिवः— बडे और वज्रधारी शूर।

२ ब्रह्मण्याः विप्राः— ब्रह्मज्ञानी विप्र, ज्ञानी।

३ जीवसे तुभ्यं अतक्ष्म— हम दीर्घ जीवनके लिये और तेरी प्राप्तिके लिये स्तोत्र करते हैं।

[१९४] (कण्वाः) ज्ञानी जन (अभि अनूषत) [इन्द्रकी ही] स्तुति करते हैं, [उनके द्वारा की हुई] (मतिः) स्तुति (यतीः आपः प्रवता न) जैसे बहते हुए जल प्रवाह नीची भूमिकी ओर जाते हैं, उसी तरह (इन्द्रं वनन्वती) इन्द्रकोही प्राप्त होती है ॥ ३४ ॥

१ मतिः इन्द्रं वनन्वती— सारी स्तुतियां उसी एक परमात्माकोही प्राप्त होती हैं।

भावार्थ— सभी ज्ञानी अपनी अपनी स्तुतियोंसे इस इन्द्रके बल, बुद्धि, पराक्रम और उत्साहको बढाते हैं। राष्ट्रमें विद्वान ब्राह्मण भी अपने ओजस्वी वचनोंसे राजाके बल और पराक्रमको बढावें ॥ ३१ ॥

हे इन्द्र ! मेरी इन स्तुतियोंको स्वीकार कर और मेरी अच्छी तरह रक्षा कर तथा मेरी बुद्धिको बढा ॥ ३२ ॥

ब्रह्मज्ञानी और शूर होकर दीर्घ जीवनके लिये स्तोत्र गान करना योग्य है ॥ ३३ ॥

सभी ज्ञानी उसी एक ऐश्वर्यशाली परमात्माकी स्तुति करते हैं। जिस तरह विभिन्न दिशाओंमें बहनेवाली सारी नदियां उसी एक समुद्रमें जाकर मिलती हैं, उसी तरह ज्ञानियोंके द्वारा अनेक तरहसे की गई स्तुतियां उसी एक प्रभुके पास आती हैं ॥ ३४ ॥

१९५ इन्द्रमुक्थानि वावृधुः	समुद्रमिव सिन्धवः	। अनुत्तमन्युमजरम्	॥ ३५ ॥
१९६ आ नो याहि परावतो	हरिभ्यां हर्यताभ्याम्	। इममिन्द्र सुतं पिब	॥ ३६ ॥
१९७ त्वामिद् वृत्रहन्तम	जनासो वृक्तबर्हिषः	। हवन्ते वाजसातये	॥ ३७ ॥
१९८ अनु त्वा रोदसी उभे	चक्रं न वर्त्येतशम्	। अनु सुवानास इन्दवः	॥ ३८ ॥
१९९ मन्दस्वा सु स्वर्णर	उतेन्द्र शर्यणावति	। मत्स्वा विवस्वतो मती	॥ ३९ ॥

अर्थ— [१९५] (सिन्धवः समुद्रं इव) जैसे नदियां समुद्रको बढाती हैं, इसी प्रकार सब (उक्थानि) स्तोत्र (अनुत्तमन्युं अ-जरं इन्द्रं) सबसे अधिक उत्साहित, सदा तरुण इन्द्रको ही (वावृधुः) बढाते हैं ॥ ३५ ॥

१ अनुत्तमन्युः— जिसका उत्साह कभी कम नहीं होता। उत्साह कम नहीं होना चाहिये।

२ अ-जरः— क्षीण नहीं होना चाहिये। सदा तरुण रहना योग्य है।

३ उक्थानि अनुत्तमन्युं अजरं वावृधुः— स्तोत्र उत्साहित जरारहित वीरका सामर्थ्य बढाते हैं।

[१९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हर्यताभ्यां हरिभ्यां) तेजस्वी दो घोडोंसे (परावतः) दूर देशसे (नः आ याहि) हमारे पास आओ, और (इमं सुतं पिब) इस सोम रसको पिओ ॥ ३६ ॥

[१९७] हे (वृत्रहन्तम) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (वृक्तबर्हिषः जनासः) ऋत्विक् जन (वाजसातये) धन तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए (त्वां इत्) तुझेही (हवन्ते) बुलाते हैं ॥ ३७ ॥

१ वृक्तबर्हिषः— ऋत्विग्, जिन्होंने आसन फैलाये हैं ' वृक्तबर्हिष इति ऋत्विङ्नाम ' (निघं ३।१८)

२ वाजसातये त्वां हवन्ते— अन्न प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं। परमात्माकी प्रार्थनासे धन तथा अन्नकी प्राप्ति होती है।

[१९८] हे इन्द्र ! (चक्रं न एतशं वर्ति) चक्र जैसे घोडेके पीछे चलता है, इसी प्रकार (उभे रोदसी त्वा अनु) ये दोनों द्यावापृथ्वी तेरे अनुकूल होकर चलते हैं, तथा (सुवानासः इन्दवः) निचोडे जानेवाले सोम भी (अनु) [तेरे] अनुकूल [चलते हैं] ॥ ३८ ॥

१ एतशः— घोडा ' एतश इति अश्व नाम ' (निघं. १।१४)

उभे रोदसी त्वा अनु— ये दोनों द्यावापृथिवी तेरे अनुकूल होकर चलते हैं।

[१९९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शर्यणावति स्वर्ण-रे) शर्यणावत् प्रदेशमें होनेवाले यज्ञमें (सु मन्दस्व) अच्छी तरह आनन्दित हो, (उत) तथा (विवस्वतः) यज्ञ करनेवालेकी (मतीः) स्तुतिसे भी (मत्स्व) आनन्दित हो ॥ ३९ ॥

भावार्थ— जिस तरह नदियोंका पानी समुद्रको बढाता है उसी तरह सब स्तोत्र इन्द्रके उत्साह और पराक्रमको बढाते हैं ॥ ३५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने तेजस्वी दो घोडोंसे दूर देशसे हमारे पास आओ ॥ ३६ ॥

आसनादि बिछाकर उत्तम रीतिसे सत्कार करनेवाले ऋत्विज अन्न तथा धनकी प्राप्तिके लिए इन्द्रकोही बुलाते हैं ॥ ३७ ॥

रथके घोडे जिस तरफ जाते हैं, उसी तरफ रथके पहिए भी जाते हैं, उसी तरह जिधर इन्द्र चाहता है, उधरही सारा विश्व जाता है। यह सारा विश्व इन्द्रके शासनमेंही चलता है ॥ ३८ ॥

हे इन्द्र ! तू उत्तम यज्ञोंमें जाकर आनन्दित हो और उन यज्ञोंमें की जानेवाली स्तुतियोंसे भी तू आनंदित हो ॥ ३९ ॥

२०० वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् । वृत्रहा सोमपातमः ॥ ४० ॥
२०१ ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा । इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ४१ ॥
२०२ अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहन्तु हरयः ॥ ४२ ॥
२०३ इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् । कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ४३ ॥
२०४ इन्द्रमिद् विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः । इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥ ४४ ॥

अर्थ— [२००] (वावृधानः) सबसे बडे (वृषा) बलवान् (वज्री) वज्रको धारण करनेवाले (वृत्रहा , वृत्रको मारनेवाले, (सोम-पा-तमः) बहुत अधिक सोम पीनेवाले इस इन्द्रने (उप द्यवि) पासही द्युलोकमें (अरोरवीत्) शब्द किया ॥ ४० ॥

[२०१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पूर्वजाः) सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले तुम (ऋषिः असि) सर्वज्ञ हो, तथा (एकः) अकेले ही (ओजसा) अपने बलसे (ईशानः) सब पर शासन करनेवाले हो, तुम [मनुष्योंको] (वसु) धन (चोष्कूयसे) देते हो ॥ ४१ ॥

१ पूर्वजाः— इस इन्द्रकी सत्ता पहलेसे है।
२ एकः ओजसा ईशानः— वह अकेले ही अपने बलसे सब जगत् पर शासन करता है।
३ वसु चोष्कूयसे— वह धन भी देता है।
४ चोष्कूयसे — देना ' चोष्कूयमाण इन्द्र भूरिवामं ददिन्द्र वहु वननीयम् (निरु. ३।२२)
५ इन्द्रः एकः पूर्वजाः ऋषिः ओजसा ईशानः— इन्द्र अकेलाही सबसे प्रथम था, वह ज्ञानी अपनी शक्तिसे सबका ईश्वर है।

[२०२] हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे तेरे (वीत पृष्ठाः शतं हरयः) उत्तम पीठवाले सैंकडों घोडे (अस्माकं सुतान् प्रयः) अभि हमारे द्वारा तैयार किये सोम रसरूपी अन्नकी ओर (उप वहन्तु) ले जावें ॥ ४२ ॥

प्रयः— अन्न ' प्रय इति अन्न नाम ' (निघं. २।७)

[२०३] (सु पूर्व्यां) अति प्राचीन, (मधोघृतस्य पिप्युषीं) मीठे जलको बढानेवाले (इमां धियं) इस [यज्ञ] कर्मको (कण्वाः) ज्ञानी जन (उक्थेन वावृधु) मंत्रोंसे बढाते हैं ॥ ४३ ॥

घृतं जल, घी ' घृतमिति उदक नाम ' (निघं. १।१२)

[२०४] (वि-महीनां) बडे बडे [देवों]के बीचमेंसे (इन्द्रं इत्) इन्द्रको ही (मेधे) यज्ञमें (मर्त्यः वृणीत) मनुष्य वरण करते हैं, चुनते हैं, तथा (सनिष्युः) युद्ध करनेकी इच्छावाला [मनुष्य] भी (ऊतये) संरक्षणके लिए [इन्द्रको ही चुनता है] ॥ ४४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सबसे महान्, बलवान्, वज्रको धारण करनेवाला, वृत्रको मारनेवाला तथा सोमको पीनेवाला है। ऐसा यह इन्द्र अपने पराक्रमको सर्वत्र प्रकट करता है ॥ ४० ॥

यह इन्द्र- प्रभु सबसे पहला ऋषि मंत्रद्रष्टा ज्ञानी है और यह अकेले ही अपने बलसे सारे संसार पर शासन करता है। संसार पर शासन करनेके लिए इसे किसी दूसरेके बलकी आवश्यकता नहीं पडती ॥ ४१ ॥

हे इन्द्र ! तेरे उत्तम पीठवाले सैंकडो घोडे हमारे द्वारा तैयार किए गए सोमरसोंकी ओर तुझे ले जावें ॥ ४२ ॥

यज्ञके द्वारा जल बढता है। यज्ञसे बादल बनते हैं, और बादलोंसे वृष्टि होती है। (' यज्ञाद्भवति पर्जन्यः ' भ. गी.) अतः ज्ञानी जन यज्ञोंको अपने मंत्रोंसे उद्योत करते हैं ॥ ४३ ॥

यज्ञमें इन्द्रको ही मनुष्य स्वीकारते हैं। संग्राममें भी संरक्षणके लिए इन्द्रको ही बुलाया जाता है। धनेच्छुक मनुष्य भी इन्द्रको ही पास बुलाते हैं ॥ ४४ ॥

२०५ अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥
२०६ शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे । राधांसि याद्वानाम् ॥ ४६ ॥
२०७ त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् । ददुष्पज्राय साम्ने ॥ ४७ ॥
२०८ उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् । श्रवसा याद्वं जनम् ॥ ४८ ॥

[७]

(ऋषिः- पुनर्वत्सः काण्वः । देवता- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

२०९ प्र यद् वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् । वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥
२१० यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् । नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

अर्थ— [२०५] हे (पुरुष्टुत:) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित (त्वा) तुझे (प्रियमेध स्तुता हरी) प्रियमेधके द्वारा प्रशंसित घोडे (अर्वाचं) हमारी ओर (सोमपेयाय वक्षतः) सोम पीनेके लिए ले आयें ॥ ४५ ॥

[२०६] (याद्वानां अहं) मनुष्योंमें उत्तम मैं (पर्शौ तिरिन्दिरे) पर्शुके पुत्र तिरिन्दिरके यज्ञमें (शतं सहस्रं राधांसि) सैकडों और हजारों धन (आ ददे) स्वीकार करता हूँ ॥ ४६ ॥

[२०७] (साम्ने) यज्ञमें (पज्राय) पज्रको कोणोंमें (अर्वतां त्रीणि शतानि) तीन सौ घोडे तथा (गोनां दश सहस्रा) दस हजार गायें (ददुः) दीं ॥ ४७ ॥

[२०८] (याद्वं जनं) अनेक मनुष्योंका तथा (चतुर्युजः उष्ट्रान्) चार सोनेके जोरोंसे कसे हुए ऊंटोंको देकर मनुष्य (श्रवसा) अपने यशसे (ककुहः) उन्नत होकर (दिवं उत् आनट्) द्युलोक तक पहुंच गया ॥ ४८ ॥

[७]

[२०९] हे (मरुतः) वीर मरुत गण ! (यत् विप्रः) जब ज्ञानी पुरुष (वः) तुम्हारे लिये (त्रिष्टुभं) त्रिष्टुभ् छन्दमें बनाया हुआ स्तोत्र पढकर (इषं प्र अक्षरत्) अन्न अर्पण कर चुका, तब तुम (पर्वतेषु विराजथ) पर्वतोंमें विराजमान होते हो ॥ १ ॥

[२१०] (तविषी-यवः) बलवान् (शुभ्राः) सुहानेवाले (अङ्ग) प्रिय तथा वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम अपना (यामं) गमनके लिए निश्चित किया हुआ रथ (अचिध्वं) सुसज्ज करते हो, तब (पर्वता नि अहासत) पर्वत भी चलायमान हो उठते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! उत्तम मेधा बुद्धिवाले ज्ञानियोंके द्वारा प्रशंसित घोडे तुझे हमारे पास ले आयें ॥ ४५ ॥

मनुष्योंमें जो उत्तम होता है, उसेही सब तरहका ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

यज्ञमें विद्वान् ज्ञानीको भरपूर प्रमाणमें धन और पशु आदि देने चाहिए ॥ ४७ ॥

उत्तम दान देनेसे मनुष्यका यश सर्वत्र फैलता है और उसका यश द्युलोक तक जा पहुंचता है । ४८ ।

एक समय जब ज्ञानी उपासकने मरुतोंको हृदयमें रखकर त्रिष्टुभ छन्दका सामगायन किया और उन्हें अन्न प्रदान किया तब वे वीर पर्वत श्रेणियोंमें आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे थे ॥ १ ॥

बल बढानेवाले वीर जब शत्रु पर चढाई करनेकी लालसासे अपना रथ सुसज्जित कर लेते हैं, तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि, मानों पहाड भी हिलने लगते हैं ॥ २ ॥

२११ उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः । धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥ ३ ॥
२१२ वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् । यद् यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥
२१३ नि यद् यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे । महे शुष्माय येमिरे ॥ ५ ॥
२१४ युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान् दिवा हवामहे । युष्मान् प्रयत्यध्वरे ॥ ६ ॥
२१५ उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते । वाश्रा अधि ष्णुना दिवः ॥ ७ ॥
२१६ सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ८ ॥

अर्थ— [२११] (वाश्रासः) गर्जना करनेवाले (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले वीर मरुत् (वायुभिः) वायु-प्रवाहोंकी सहायतासे (उद् ईरयन्त) मेघोंको इधर-उधर ले चलते हैं और तदनुसार (पिप्युषीं इषं धुक्षन्त) पुष्टिकारक अन्नका सृजन करते हैं ॥ ३ ॥

[२१२] (मरुतः) वीर मरुतोंका यह दल (यत् वायुभिः) जब वायुओंके साथ (यामं यान्ति) दौडने लगते हैं, तब (मिहं वपन्ति) वे वर्षा करने लगते हैं, और (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतश्रेणियोंको कंपायमान कर देते हैं ॥ ४ ॥

[२१३] (यत्) जब (वः यामाय) तुम्हारी गतिशीलता एवं प्रगतिसे भयभीत होकर (गिरिः नि) पर्वत एवं (वि-धर्मणे) विशेष ढंगसे अपना धारण करनेवाले तुम्हारे (महे) बडे एवं महनीय (शुष्माय) बलसे डरकर (सिन्धवः) नदियाँ (नि येमिरे) अपने आपको नियंत्रित कर देती हैं, [अर्थात् रुक जाती हैं, तब तुम यथेष्ट वर्षा करते हो ।] ॥ ५ ॥

[२१४] हमारी (ऊतये) रक्षाके लिए (युष्मान् उ) तुम्हें ही हम (नक्तं) रात्रीके समय (हवामहे) बुलाते हैं, (दिवा) दिनकी वेलामें भी (युष्मान्) तुम्हेंही हम पुकारते हैं (प्रयति अध्वरे) प्रारंभित हिंसारहित कर्मोंके समय भी हम (युष्मान्) तुम्हींको बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[२१५] (त्ये) वे (अरुण-प्सवः) लालिमायुक्त (चित्राः) आश्चर्यकारक (वाश्राः) गर्जना करनेवाले वीर मरुत् (यामेभिः) अपने रथोंमेंसे (दिवः अधि) द्युलोकके ऊपर (स्नुना) पर्वतोंकी ऊँची चोटियों परसे (उदु ईरते उ) उडान लेने लगते हैं ॥ ७ ॥

[२१६] (सूर्याय यातवे) सूर्यके जानेके लिए (रश्मिं पन्थां) किरणरूपी मार्गको (ओजसा सृजन्ति) वो अपनी शक्तिसे बना देते हैं, (ते) वे (भानुभिः वि तस्थिरे) तेजद्वारा संसारको व्याप्त कर देते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— पवनकी झकोरोंसे बादल इधर-उधर जाने लगते हैं और कुछ कालके उपरान्त उनसे वर्षा होती है, तथा अन्न भी यथेष्ट मात्रामें उत्पन्न होता है। इसी अन्नसे जीवसृष्टिका भरणपोषण होता है । निस्संदेह मरुतोंका यह कार्य वर्णनीय है ॥ ३-४ ॥

मरुतोंमें विद्यमान वेग तथा बलसे भयभीत होकर पर्वत स्थिर हुए और नदियाँ धीमी चालसे चलने लगी ॥ ५ ॥

कार्य करते समय, दिन एवं रात्रीकी वेलामें अपने संरक्षणके लिए परम पिता परमात्मासे प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ६ ॥

लाल वर्णवाला गणवेश पहनकर और रथ पर बैठकर ये वीर पर्वतों परसे भी संचार करने लगते हैं ॥ ७ ॥

मरुतोंमें यह शक्ति विद्यमान है कि, वे सूर्यको भी प्रकाशका मार्ग बतलाते हैं और सभी जगह तेजस्वी किरणोंको फैला देते हैं ॥ ८ ॥

२१७ इमां मे मरुतो गिर- मिमं स्तोममृभुक्षणः । इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥
२१८ त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु । उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥ १० ॥
२१९ मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उप गन्तन ॥ ११ ॥
२२० यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे । उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥
२२१ आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् । इयर्ता मरुतो दिवः ॥ १३ ॥
२२२ अधीव यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् । सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥ १४ ॥

अर्थ— [२१७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (इमां मे गिरं) इस मेरी स्तुतिपूर्ण वाणीको (वनत) स्वीकार करो; हे (ऋभु-क्षणः) शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज वीरो ! तुम (इमं स्तोमं) इस मेरे स्तोत्रका और (मे इमं हवं) मेरी इस प्रार्थनाका स्वीकार करो ॥ ९ ॥

[२१८] (पृश्नयः) मरुतोंकी माताओंने (वज्रिणे) इन्द्रके लिए (त्रीणि सरांसि) तीन झीलें, (मधु) मिठाससभरा (उत्सं) जलपूर्ण कुंड और (उद्रिणं) पानीसे भरा हुआ (कवन्धं) जल धारण करनेवाला बृहदाकार पात्र या मेघ (दुदुह्रे) दोहन कर भरा है ॥ १० ॥

[२१९] हे (मरुतः) वीर मरुद्गण ! (यत् ह) जब (वः) तुम्हें, (सुम्नायन्तः) सुखी होनेकी लालसा करनेवाले हम (दिवः हवामहे) द्युलोकसे बुलाते हैं, उस समय (आ तु) तुरन्त ही तुम (नः उप गन्तन) हमारे समीप आ जाओ ॥ ११ ॥

[२२०] हे (सु-दानवः !) भली प्रकार दान देनेवाले (रुद्राः) शत्रुसंघको रुलानेवाले तथा (ऋभु-क्षणः) शस्त्र धारण करनेवाले वीरो ! (यूयं उत हि) तुम सचमुचही जब अपने (दमे) घरमें या यज्ञमें (मदे) आनन्दमें रहते हो, एवं सोमरसका सेवन करते हो, तब (प्र-चेतसः स्थ) तुम्हारी बुद्धि अधिक चेतनायुक्त बन जाती है ॥ १२ ॥

[२२१] हे (मरुतः) मरुत् संघ ! (नः) हमारे लिए (मद्-च्युतं) शत्रुओंके गर्वका भंग करनेवाले, (पुरु-क्षुं) सबके लिए पर्याप्त (विश्व-धायसं) तथा सबके पोषणकी क्षमता रखनेवाले (रयिं) धनको (दिवः आ इयर्त) द्युलोकसे ला दो ॥ १३ ॥

[२२२] हे (शुभ्राः) तेजस्वी वीरो ! (गिरीणां अधि इव) पर्वतमय प्रदेश पर चढ जानेके समय जिस ढंगसे सुसज्ज कर रखते हैं वैसेही (यत्) जब तुम (यामं अचिध्वं) रथको तैयार कर चुकते हो, उस समय (सुवानैः इन्दुभिः) निचोडे हुए सोमरसकी धाराओंसे (मन्दध्वे) तुम हर्षित होते हो ॥ १४ ॥

भावार्थ— भूमि, गौ तथा वाणी मरुतोंकी माताएँ हैं। भूमिसे अन्न तथा जल, गौसे दुग्ध और वाणीसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। तीनोंके तीन सेवनीय तथा आस्वादनीय वस्तुएँ हैं। मरुतोंकी माताओंने त्रिविध द्रव्यसे तीन झीलें भरकर तैयार कर रखी हैं ताकि वीर मरुतोंका भरणपोषण सुचारु रूपसे एवं भली भाँति हो जाए ॥ ९–१० ॥

ये वीर बडे उदार, शत्रुओंका नाश करनेवाले सदैव शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज हैं और जिस समय ये अपने प्रासादोंमें तथा निवासस्थलोंमें सुखपूर्वक दिन बिताते हैं अथवा यज्ञभूमिमें सोमरसका सेवन करते हैं, तब इनकी बुद्धि अतीव चेतनाशील होती है ॥ ११–१२ ॥

हमें जो धन मिले वह, इस भाँतिका हो कि (१) उस धनसे शत्रुदलका गर्व विनष्ट हो जाए, (२) वह इतनी मात्रामें उपलब्ध हो कि सब सुखपूर्वक रह सकें, (३) सबकी पुष्टि हो जाए, सभी बलिष्ठ बनें। यदि ये तीन बातें हो जायँ, तो ही वह धन समीप रखनेयोग्य समझना उचित है, अन्य किसी प्रकारका नहीं ॥ १३ ॥

पर्वतोंपर चढते समय जैसे रथको तैयार करना पडता है, वैसेही वीर मरुत् जब रथको पूर्णतया सिद्ध या ठीक बना रखते हैं, तब वे सोमरसके सेवनसे प्रसन्न एवं हर्षित हो उठते हैं। प्रथमतः सोमरस पीकर पश्चात् रथको तैयार रखकर पार्वतीय सडकों परसे शत्रुदलपर धावा करके, उनकी धज्जियाँ उडानेके लिए मरुत् गमन करते हैं ॥ १४ ॥

२२३ एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥ १५ ॥
२२४ ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ १६ ॥
२२५ उदु स्वानेभिरीरत उद् रथैरुदु वायुभिः । उत् स्तोमैः पृश्निमातरः ॥ १७ ॥
२२६ येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् । राये सु तस्य धीमहि ॥ १८ ॥
२२७ इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः । वर्धान् काण्वस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥
२२८ क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः । ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥ २० ॥

अर्थ— [२२३] (मर्त्यः) मानव (एतावतः चित्) इस प्रकार सचमुचही (अ-दाभ्यस्य) न दबाये जानेवाले प्रभुके (मन्मभिः) मननीय काव्योंसे (एषां) इनसे (सुम्नं भिक्षेत) उत्तम सुखकी याचना करें ॥ १५ ॥

[२२४] (ये) जो (अ-क्षितं उत्सं) कभी न घटनेवाले झरनेको-मेघको (दुहन्तः) दुहते हैं, वे वीर (वृष्टिभिः) वर्षाओंकी सहायतासे (द्रप्साः इव) मानों बारिशकी बूँदोंसे (रोदसी अनु धमन्ति) समूचे आकाश एवं भूमंडलको व्याप्त कर देते हैं ॥ १६ ॥

[२२५] (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले वीर (स्वानेभिः उ) अपने शब्दों तथा अभिभाषणोंसे (उत् ईरते) ऊपर चढते हैं, (रथैः उत्) रथोंसे ऊर्ध्वगामी बनते हैं, (वायुभिः उ उत्) वायुओंसे ऊंचे पदपर आरूढ होते हैं, (स्तोमैः उत्) यज्ञोंसे भी ऊपर उठ जाते हैं ॥ १७ ॥

[२२६] (येन) जिस शक्तिके सहारे (तुर्वशं यदुं) तुर्वश उपाधिधारी यदुनरेशका तुमने (आव) प्रतिपालन किया, (येन) जिससे (धन-स्पृतं कण्वं) धनको चाहनेवाले कण्वका संरक्षण किया, (तस्य) उस तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्तिका हम (राये) धनकी प्राप्तिके लिये (सु धीमहि) भली भाँति ध्यान करते हैं ॥ १८ ॥

[२२७] हे (सु-दानवः) उत्तम दानी वीरो ! (घृतं न) घीके समान (इमाः पिप्युषीः इषः) ये पुष्टिकारक अन्न (कण्वस्य मन्मभिः) कण्वपुत्रके मनन करनेयोग्य काव्य या स्तोत्रद्वारा (वः वर्धान्) तुम्हारे यशकी वृद्धि करें ॥ १९ ॥

[२२८] हे (सु-दानवः) सुचारु रूपसे दान देनेवाले तथा (वृक्त-बर्हिषः) कुशासनोंपर बैठनेवाले वीरो ! (क्व नूनं मदथ) भला तुम किधर हर्षित हो रहे थे ? (कः ब्रह्मा) भला वह कौन ब्राह्मण है, जो (वः सपर्यति) तुम्हारी पूजा उपासना करता है ? ॥ २० ॥

भावार्थ— परम पिता परमात्मा किसी भी शत्रुके दबावसे दबनेवाला नहीं है, क्योंकि वह असीम सामर्थ्यवान् है। मानव उसके सम्बन्धमें मननीय काव्यकी निर्मिति करें तथा सज्ञानचेता बन गायन करें। मनकी उन्नत दशामें जो सुख मिल सकता है, उसे पानेकी चेष्टा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

मरुत् मेघोंसे वर्षा करते हैं और वर्षाकी बूँदोंसे अखिल विश्वको परिपूर्ण कर डालते हैं ॥ १६ ॥

ये वीर भूमिको अपनी माता समझकर उसकी सेवा करनेवाले हैं और अपने अभिभाषणों, रथों, वायुयानों एवं यज्ञोंसे ऊंची दशा पाते हैं। इन्हीं साधनोंद्वारा वे अपनी प्रगति करनेमें पर्याप्त सफलता पाते हैं ॥ १७ ॥

इन वीरोंने तुर्वश यदु तथा धनेच्छुक कण्वकी यथावत् रक्षा की। हमारी इच्छा है कि ये वीर उसी तरह हमें बचा दें, ताकि हम उनकी छत्रछायामें अधिकाधिक धनधान्यसंपन्न हों और उस वैभव एवं संपत्तिके बलबूतेपर विविध यज्ञ संपन्न कर समूची जनताका कल्याण करेंगे ॥ १८ ॥

उच्च कोटिके पुष्टिकारक अन्नोंके प्रदान एवं मननीय काव्योंके गायनसे वीरोंका यश बढने लगता है ॥ १९ ॥

हे वीरो ! चूँकि तुम शीघ्र मेरे समीप नहीं आ सके, अतः यह सवाल हठात् मेरे मनमें उठ खडा होता है कि किस जगह भला वे आमन्दोल्लासमें चूर हो बैठे हों और शायद ऐसा कौन उपासक इनसे प्रार्थना करता होगा कि, वहांसे शीघ्र प्रस्थान करना इन वीरोंको दूभर प्रतीत होता हो ॥ २० ॥

२२९ नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः । शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥
२३० समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ २२ ॥
२३१ वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः । चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥
२३२ अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् । अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥ २४ ॥
२३३ विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः । शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥ २५ ॥

अर्थ— [२२९] (वृक्त-बर्हिषः) हे दर्भासनपर बैठनेवाले वीरो ! (नहि स्म) क्या यह सच नहीं है कि (यत् ह) सचमुच यहाँपर (पुरा) पहले तुम (व स्तोमेभिः) अपने प्रशंसा करनेवाले अभिभाषणोंसे (ऋतस्य शर्धान्) सत्यके सैनिकोंको अर्थात् धर्मके लिए लडनेवाले सिपाहियोंको (जिन्वथ) प्रोत्साहित कर चुके हो ॥ २१ ॥

[२३०] (त्ये) इन वीरोंने (महतीः आपः) बहुतसा जल (उ सं दधुः) धारण किया, (क्षोणी सं [दधुः]) पृथ्वीको धर दिया और (सूर्यं उ सं [दधुः]) सूर्यको भी आधार दिया; इन्होंनेही (वज्रं पर्वशः सं [दधुः]) अपने वज्रको हर पोरसें या गांठमें सुदृढ बना दिया है ॥ २२ ॥

[२३१] (वृष्णि) बलवाली (पौंस्यं) पौरुषपूर्ण कार्य (चक्राणाः) करनेवाले इन (अ-राजिनः) संघशासक वीरोंने (वृत्रं पर्वशः वि ययुः) वृत्रके हर गांठके टुकडे टुकडे किये और (पर्वतान् वि [ययुः]) पहाडोंको भी विभिन्न कर राह बना डाली ॥ २३ ॥

[२३२] (युध्यतः त्रितस्य) लडते हुये त्रितके (शुष्मं उत क्रतुं) बल एवं कार्यशक्तिका तुमने (अनु आवन्) संरक्षण किया और (वृत्र-तूर्ये) वृत्रहत्याके अवसरपर (इन्द्रं अनु) इन्द्रको भी सहायता दी ॥ २४ ॥

[२३३] (विद्युत्-हस्ताः) बिजलीकी नाईं चमकनेवाले हथियार हाथमें धारण करनेवाले (अभि-द्यवः) तेजस्वी तथा (शुभ्राः) गौरवर्णवाले ये वीर (शीर्षन्) अपने सरपर (हिरण्ययीः शिप्राः) सुवर्णके बने साफे (श्रिये) शोभाके लिये (वि अञ्जत) रख देते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ— सद्धर्मके लिए लडनेवाले सैनिकोंको प्रोत्साहन मिले, इसलिए वीर उत्तम प्रभावोत्पादक भाषणों द्वारा उनका उत्साह बढाते हैं ॥ २१ ॥

इन मरुतोंने मेघोंको, द्यावापृथिवीको, सूर्यको अपनी अपनी जगह भली भाँति धर दिया है और उनका स्थान अटल तथा स्थिर किया है। इन्हीं वीर मरुतोंने अपने वज्र नामक शस्त्रको स्थानस्थानपर ठीक तरह जोडकर उसे बलिष्ठ बना डाला है। अन्य वीर भी अपने हथियार अच्छी तरह तैयार करनेमें सतर्क रहें और शत्रुके हथियारोंसे भी अत्यधिक मात्रामें उन्हें प्रबल तथा कार्यक्षम बना दें ॥ २२ ॥

ये वीर ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं कि, जिनमें बल, वीर्य तथा शूरताकी अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है। ये किसी एक नियामक राजाकी छत्रछायामें नहीं रहते हैं। [इन्हें संघशासक नाम दिया जा सकता है, अर्थात् इनका समूचा संघही इनपर शासन करता है। ऐसे] इन वीरोंने वृत्रके टुकडे टुकडे कर डाले और पर्वतोंका भेदन कर आगे बढनेके लिए सडक बना दी ॥ २३ ॥

इन वीरोंने त्रित नरेशको लडाईमें सहायता पहुंचाकर उसके बल, उत्साह तथा कर्तृत्वशक्तिको अक्षुण्ण बना रखा, अतः त्रित विजयी बन गया और इसी भाँति इन्द्रको भी वृत्रवधके मौकेपर मदद करके उसे भी विजयी बना दिया ॥ २४ ॥

ये वीर चमकीले शस्त्र हाथोंमें रखते हैं। ये तेजस्वी तथा गौरकाय हैं और उनके सिरपर स्वर्णमय शिरस्त्राण सुहाते हैं। अन्य वीर भी इसी भाँति अपने शस्त्रोंको पुराने या जीर्ण होने न दें, सदैव विद्युल्लताके समान प्रकाशमान एवं चमकीले रूपमें रख दें ॥ २५ ॥

२३४ उशना यत् परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन । द्यौर्न चक्रदद् भिया ॥ २६ ॥
२३५ आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः । देवास उप गन्तन ॥ २७ ॥
२३६ यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः । यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥ २८ ॥
२३७ सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति । ययुर्निचक्रया नरः ॥ २९ ॥
२३८ कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् । मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ ३० ॥

अर्थ— [२३४] तुम हित करनेकी (उशनाः) इच्छा करनेवाले (यत्) जब (परावतः) दूरके प्रदेशोंसे (उक्ष्णः रन्ध्रं) मेघोंमें (अयातन) जाते हो, तब (द्यौः न) द्युलोकके समानही अन्य सभी लोग (भिया चक्रदत्) डरके मारे विकंपित हो उठते हैं ॥ २६ ॥

[२३५] हे (देवासः) देवतागण! तुम (नः मखस्य दावने) हमारे यज्ञकी देन देनेके समय (हिरण्य-पाणिभिः) हाथों एवं पैरोंमें सुवर्णके अलंकार पहने हुए (अश्वैः) घोडोंके साथ (उप आ गन्तन) हमारे समीप आओ ॥ २७ ॥

[२३६] (यत् एषां रथे) जब इनके रथमें (पृषतीः) धब्बे धारण करनेवाली हरिणियाँ लगाई जाती हैं, तब (प्रष्टिः) धुराको कंधेपर धारण करनेवाला (रोहितः) एक लाल रंगका हिरन भी आगे (वहति) खींचने लगता है, उस समय अति वेगके कारण (अपः रिणन्) पसीनेका जल बहने लगता है और (शुभ्राः यान्ति) वे गौरवर्णके वीर आगे बढने लगते हैं ॥ २८ ॥

[२३७] (सु-सोमे) उत्कृष्ट सोमवल्लियोंसे युक्त (आर्जीके) ऋजीक नामक भूविभागमें (शर्यणावति) शर्यणावत् नामक झीलके समीप विद्यमान (पस्त्या-वति) गृहमें (नरः) नेतृत्वगुणयुक्त वीर (निचक्रया) पहियोंसे रहित रथमें बैठकर (ययुः) चले जाते हैं ॥ २९ ॥

[२३८] हे (मरुतः) वीर मरुतो! (इत्था) इस ढंगसे (हवमानं) प्रार्थना करते हुए, पुकारते हुये तथा (नाधमानं) सहायताकी लालसा रखनेवाले (विप्रं) ज्ञानी पुरुषके समीप भला तुम (कदा) कब (मार्डीकेभिः) सुखवर्धक धनवैभवोंके साथ (गच्छाथ) आनेवाले हो? ॥ ३० ॥

भावार्थ— सबका कल्याण करनेकी इच्छासे जब मरुत् वर्षाका प्रारम्भ करनेके लिये मेघोंमें संचार करने लगते हैं, उस समय आकाशमें भीषण गर्जना शुरू होती है, जिससे हरएकके दिलमें भयका संचार होता है ॥ २६ ॥

इन वीरोंके घोडे सुनहले आभूषणोंसे विभूषित होते हैं। ऐसे अश्वोंपर बैठ इस हमारे यज्ञमें वीर मरुत् आ उपस्थित हों ॥ २७ ॥

वीर मरुतोंका रंग गोरा है और उनके रथमें धब्बेवाली हरिणियाँ लगी रहती हैं। उनके आगे एक लाल रंगका हरिण जोता जाता है। इस भाँति उनका रथ सज्ज हो जाए, तो अति वेगसे वह आगे बढने लगता है, जिससे उसे खींचनेवाले पसीनेसे तर हो जाते हैं। ऐसे रथोंपर बैठकर मरुत् जाने लगते हैं ॥ २८ ॥

ऋजीक देशके एक सूबेको 'आर्जीक' कहते हैं। 'शर्यणावत्' शर्यणा नदी या बडे झीलके तटपर अवस्थित भूविभाग। 'पस्त्यावत्' जहाँ रहनेके लिए मकान हों, उस जगह वे शूर मरुत् चक्ररहित रथमें बैठकर जाते हैं ॥ २९ ॥

प्रार्थना करनेवाले तथा सहायता पानेके लिए लालायित ज्ञानी लोगोंको ये वीर सहायता पहुँचाते हैं और अपने साथ सुखको वृद्धिगत करनेवाले धनोंको लेकर गमन करते हैं ॥ ३० ॥

२३९ कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन । को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥
२४० सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः । स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥
२४१ ओ षु वृष्णः प्रयज्यून् आ नव्यसे सुविताय । ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥
२४२ गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः । पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥
२४३ आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः । धातारः स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥
२४४ अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६ ॥

अर्थ— [२३९] हे (कध-प्रियः) कथाप्रिय वीर मरुतो ! (इन्द्रं) इन्द्रको (नूनं) सचमुच (अजहातन) तुम छोड चुके हो, (यत् कत् ह) भला कभी ऐसा भी हुआ होगा ? (कभी नहीं) तो फिर (वः सखित्वे) तुम्हारी मित्रता पानेके लिए (कः ओहते) कौन भला दूसरा लालायित हो उठा है ? ॥ ३१ ॥

[२४०] हे (नः कण्वासः) हमारे कण्वो ! (वज्र-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः) हाथमें वज्र धारण करनेवाले तथा सुवर्णरंजित कुल्हाडियोंका उपयोग करनेवाले (मरुद्भिः सहो) मरुतोंके साथ विद्यमान (अग्निं) अग्निकी (सु स्तुषे) भली भाँति सराहना करो ॥ ३२ ॥

[२४१] (वृष्णः) वीर्यवान् (प्र-यज्यून्) अत्यंत पूजनीय तथा (चित्र-वाजान्) आश्चर्यजनक बलसे युक्त ऐसे तुम्हें (नव्यसे सुविताय) नये धनकी प्राप्तिके लिए (सु आ ववृत्यां उ) मेरे निकट आनेके लिए आकर्षित करता हूँ ॥ ३३ ॥

[२४२] (मन्यमानाः पर्शानासः) अभिमान करनेवाले शिखरोंके साथ (गिरयः चित्) बडे पर्वत भी इन वीरोंके आगे (नि जिहते) अपने स्थानसे विचलित होते हैं और (पर्वताः चित्) पहाड भी (नि येमिरे) नियमपूर्वक रहते हैं ॥ ३४ ॥

[२४३] (अक्ष्ण-यावानः) नेत्रोंकी निगाहकी नाई अति वेगसे दौडनेवाले और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाशमेंसे उडनेवाले साधन (स्तुवते) उपासकके लिए (वयः धातारः) अन्नकी समृद्धि करनेवाले इन वीरोंको (आ वहन्ति) ढोते हैं ॥ ३५ ॥

[२४४] (अग्निः हि) अग्नि सचमुच (अर्चिषा) तेजसे (छन्दः) बडा हुआ है और (सूरः न) सूर्यके समान वह (पूर्व्यः जानि) पहले प्रकट हुआ तथा पश्चात् (ते भानुभिः) वे वीर मरुत् अपने तेजोंसे (वि तस्थिरे) स्थिर हो गये ॥ ३६ ॥

भावार्थ— ये वीर बहुतही कथाप्रिय हैं, अर्थात् ऐतिहासिक वीरगाथाओंको सुनना इन्हें अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है। इन्द्रको इन्होंने कभी छोडा नहीं। एक बार यदि ये वीर किसीको अपना लें, तो उसे ये कभी त्यागने या छोडनेके लिए तैयार नहीं होते हैं। वीरोंको इसी भाँति बर्ताव रखना चाहिए। जो सत्यधर्मके अनुसार कार्य करने लगता है, वह शीघ्र ही मरुतोंका प्रेमपात्र बनता है ॥ ३१ ॥

ये वीर वज्र एवं कुठारको काममें लाते हैं और अग्निके उपासक तथा सहायक हैं ॥ ३२ ॥

ये वीर अतीव वीर्यवान्, पूजनीय तथा भाँति भाँतिकी विलक्षण शक्तियोंसे युक्त हैं। ये हमारे निकट आ जायँ और हमें नया धन प्रदान करें ॥ ३३ ॥

इन वीरोंके आगे बडे बडे शिखरोंवाले पर्वत एवं छोटेमोटे पहाड भी मानों झुक जाते हैं। इन वीरोंका पराक्रम इतना महान् है और इनमें इतना प्रचंड पुरुषार्थ समाया हुआ है कि, बडे बडे पर्वतोंको लाँघना इनके लिए कोई असंभव तथा दुरूह बात नहीं है, क्योंकि ये बडी सुगमतासे सभी कठिनाइयोंको हटा देते हैं ॥ ३४ ॥

इन वीरोंके वाहन बडे वेगवान् तथा शीघ्रगामी होते हैं और उन पर चढकर ये आकाशपथमेंसे विहार करते हैं, तथा भक्तोंको पर्याप्त अन्न देते हैं ॥ ३५ ॥

सूर्यके समानही अग्नि अपने तेजसे प्रकाशमान होता है और यज्ञमें पहले पहले व्यक्त हो जाता है। पश्चात् वीर मरुतोंका समुदाय अपने अपने स्थान पर आ बैठ जाता है। (अध्यात्म) व्यक्तिके शरीरमें भी प्रथम उष्णता संचारित हुआ करती है और पश्चात् प्राणोंका आगमन होता है। ध्यानमें रहे कि, व्यक्तिमें प्राण मरुत् ही हैं ॥ ३६ ॥

[८]

(ऋषिः– सध्वंसः काण्वः । देवता– अश्विनौ । छन्दः– अनुष्टुप् ।)

२४५ आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥

२४६ आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥

२४७ आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥ ३ ॥

२४८ आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

---

[८]

अर्थ— [२४५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! हे (दस्रा) शत्रुविध्वंसक ! हे (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णमय रथवाले ! (युवं) तुम दोनों (विश्वाभिः ऊतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके साथ (नः आगच्छतं) हमारे समीप आओ और (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरसरूपी मीठे रसका पान करो ॥ १ ॥

[२४६] हे (भुजी) भोगयोग्य साधनोंसे पूर्ण ! हे (हिरण्यपेशसा) सुवर्णके बने अलंकार धारण करनेहारे ! हे (कवी गंभीरचेतसा) क्रान्तदर्शी विशाल मनवाले अश्विदेवो ! (नूनं) अब सचमुच (सूर्यत्वचा रथेन आ यातं) सूर्यसदृश कांतिवाले रथपर चढकर इधर पधारो ॥ २ ॥

[२४७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतियोंके कारण आकर्षित होकर (अन्तरिक्षात् नहुषः परि) अन्तरिक्षमेंसे या मानवी लोकमेंसे भी (आ यातं) आओ और कण्वोंके (सवने सुतं) यज्ञमें निष्पादित (मधु पिबाथः) मीठे सोमरसको पी जाओ ॥ ३ ॥

[२४८] (दिवः परि) द्युलोकसे तथा (आ अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे भी (नः आ यातं) हमारे समीप आओ; हे (अधप्रिया) अधोभाग अर्थात् भूलोकको चाहनेवालो ! (कण्वस्य पुत्रः) कण्वके पुत्रने (इह) इस जगह (वां) तुम्हारे लिए (सोम्यं मधु सुषाव) सोमसे युक्त शहदका सृजन किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम अपने सुवर्णमय रथपर चढकर तथा संरक्षणके अपने उत्तम साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ और मीठे सोमरसका पान करो ॥ १ ॥

ये दोनों देव सभी तरहके उपभोगके साधनोंसे युक्त और ज्ञानी तथा उदार मनवाले हैं । वे इन भोगसाधनोंका वितरण करनेके लिए सर्वत्र संचार करते हैं ॥ २ ॥

हे देवो ! तुम चाहे अन्तरिक्षमें होओ या उससे भी परे और किसीलोकमें, वहींसे तुम हमारी इन प्रार्थनाओंको सुनो और यहां आकर मीठे सोमरसोंको पीओ ॥ ३ ॥

हे देवो ! तुम द्युलोक या अन्तरिक्षलोकमें जहांपर भी हो, वहींसे हमारे पास आओ और मीठे सोमरसोंका पान करो ॥ ४ ॥

×

२४९ आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥
२५० यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥
२५१ दिवश्चिद् रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥
२५२ किमन्ये पर्यासतेऽस्मत् स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥
२५३ आ वां विप्र इहावसेऽह्वत् स्तोमेभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥

अर्थ— [२४९] हे (नरा कवी) नेता और क्रान्तदर्शी अश्विदेवों ! तुम (स्वाहा स्तोमस्य प्र वर्धना) सर्वस्व त्यागद्वारा स्तोत्रके बढानेहारे हो, इसलिए (नः उपश्रुति) हमारे यज्ञमें (धीतिभिः सोम-पीतये आ यातं) कर्मोंके साथ किये जानेवाले सोमपानके लिए आओ ॥ ५ ॥

[२५०] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (पुरा ऋषयः) पहले ऋषियोंने (यत् चित्) जब कभी (अवसे) रक्षाके लिए (वां हि जुहूरे) तुम्हेंही पुकारा था तब तुमने उसे सुना किया था, इसलिए अब भी (आ यातं) आओ; (मम इमां सुस्तुतिं) मेरी इस अच्छी स्तुतिको सुनकर (उप आ गतं) समीप आजाओ ॥ ६ ॥

[२५१] (स्वः-विदा) हे स्वकीय शक्तिको जाननेवाले ! (हवनश्रुता) हमारी पुकारको सुननेवालो ! (वत्स-प्रचेतसा) पुत्रपर करनेयोग्य प्रेम करनेवाले ! (स्तोमेभिः धीभिः) स्तोत्रोंसे और कर्मोंसे (रोचनात् दिवः चित्) जगमगाते द्युलोकसे भी (नः अधि आ गन्तम्) हमारे समीप आओ ॥ ७ ॥

[२५२] (अस्मत् अन्ये) हमें छोडकर दूसरे लोग (किं स्तोमेभिः) क्या स्तोत्रोंसे (अश्विना परि आसते) अश्विदेवोंके चारों ओर प्रार्थना करनेके लिए बैठते हैं ? (कण्वस्य पुत्रः) कण्वके पुत्र वत्स ऋषिने (वां) तुम्हें (गीर्भिः अवीवृधत्) स्तुतिसे खूब बढाया है— प्रोत्साहित किया है ॥ ८ ॥

[२५३] हे (अ-रिप्रा) दोषरहित तथा (वृत्रहन्तमा) वृत्रके अत्यन्त विनाशकर्ता अश्विदेवों ! (इह अवसे) इधर रक्षाके लिए (विप्रः) ज्ञानी पुरुष (वां आ अह्वत्) तुम्हें बुलाता है (ता) वे विख्यात तुम दोनों (नः मयोभुवा भूतं) हमारे लिये सुखदायक बनो ॥ ९ ॥

भावार्थ— ये दोनोंही देव लोगोंको सन्मार्ग पर ले जानेवाले तथा ज्ञानी हैं। जो इनकी स्तुति करता है, उसके सामर्थ्यको ये बढाते हैं ॥ ५ ॥

ऋषियोंने जब जब इन्हें अपनी रक्षाके लिए पुकारा तब तब ये देव उनकी रक्षाके लिए उनके पास गए। ये स्तुति करनेवालोंकी रक्षा करनेके लिए सदा तैय्यार रहते हैं ॥ ६ ॥

अश्विदेव सदा अपने सामर्थ्यसे परिचित रहते हैं, भक्तोंकी पुकार सुननेवाले हैं और अपने उत्तम कर्मोंके कारण वे तेजस्वी हैं। उत्तम कर्म करनेवाला सदा तेजस्वी होता है ॥ ७ ॥

ज्ञानीयोंसे ज्ञान प्राप्त किए बिना ही जो अश्विदेवोंकी स्तुति करता है, वह उनकी यथार्थ स्तुति नहीं कर पाता, अतः वे देव उनकी स्तुति सुनते भी नहीं। अतः प्रथम ज्ञान प्राप्त करके स्तुति करनी चाहिए। ज्ञानपूर्वक की गई स्तुतिसे देवोंका बल बढता है ॥ ८ ॥

हे दोष रहित तथा शत्रुके संहारक अश्विदेवो ! जो तुम्हें भक्तिसे अपनी रक्षाके लिए तुम्हें बुलाता है, उसके लिए तुम सुख देने वाले बनो ॥ ९ ॥

२५४ आ यद् वां योषणा रथ—मतिष्ठद् वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १० ॥
२५५ अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद् वचो ऽशंसीत् काव्यः कविः ॥ ११ ॥
२५६ पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविम—मभि वह्नी अनूषाताम् ॥ १२ ॥
२५७ आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥ १३ ॥
२५८ यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥

अर्थ— [२५४] हे (वाजिनी-वसू) बलशाली धनवाले अश्विदेवों ! (यत् वां रथं) जब तुम्हारे रथपर (योषणा आ अतिष्ठत्) महिला पूर्णतया चढ गयी थी, तब (युवं) तुम दोनों (विश्वानि धीतानि) सभी ध्यानमें रखे हुए विषयोंके समीप (प्र अगच्छतं) प्रकर्षसे चले गये थे ॥ १० ॥

[२५५] (कविः) विद्वान् (काव्यः वत्सः) कविका पुत्र ऋषि वत्स (वां) तुम दोनोंके लिए (मधुमत् वचः अशंसीत्) मधुर भाषण कह चुका, (अतः) इसलिए हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (सहस्र—निर्णिजा रथेन आ यातं) सहस्र प्रकारसे तेजस्वी रथपर चढकर आओ ॥ ११ ॥

[२५६] हे (रयीणां मनोतरा) धनसंपदाओंके मनःपूर्वक देनेवाले ! (पुरुमन्द्रा) बहुत आनन्द देनेवाले ! (पुरूवसू) अधिक धनवाले अश्विदेवों ! तुम (वह्नी) ढोनेवाले हो और (मे इमं स्तोमं) मेरे इस स्तोत्रको (अभि अनूषातां) सुनकर प्रशंसित करो ॥ १२ ॥

[२५७] हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (नः) हमें (विश्वानि अह्रया राधांसि) सभी प्रकारके लज्जा न करनेवाले धन (आ धत्तं) लाओ, (नः ऋत्वियावतः कृतं) हमें समयके अनुकूल कार्य करनेवाले बना दो और (निदे) निन्दकके लिए (नः मा रीरधतं) हमें न दे डालो [अर्थात् हम निन्दकसे कोसों दूर रह सकें ऐसा प्रबंध कर डालो] ॥ १३ ॥

[२५८] हे (सहस्रनिर्णिजा = नासत्या अश्विना) हजारों तरहके धन रखनेवाले तथा असत्यका पालन न करनेवाले अश्विदेवो ! तुम चाहे (परावति) दूर देशमें हो, (यद् वा) अथवा जो (अम्बरे अधिस्थ) द्युलोकमें हो, (अतः) इस स्थानसे तुम (रथेन आ यातं) रथके द्वारा आ जाओ ॥ १४ ॥

भावार्थ— ये अश्विदेव सबके रक्षक होनेके कारण स्त्रियोंकी भी रक्षा करनेवाले हैं ॥ १० ॥

ज्ञानीकी तरह उसका पुत्र भी इन देवोंकी उपासना करता है। अर्थात् घरके सभी जन इन देवोंकी उपासना करें ॥ ११ ॥

ये देव जिसे भी धनसंपत्ति देते हैं, उसे प्रेमपूर्वक ही देते है, साथ ही बहुत आनंदके देनेवाले हैं ॥ १२ ॥

हम पवित्रता और उत्तम कर्मसे धन कमायें, ताकि हमें उस धनके कारण लज्जा न उठानी पडे, उसी तरह हम समयके अनुकूल कार्य करें और हम किसीकी निन्दा न करें, और जो हमारी निन्दा करनेवाला हो, उससे हम सदा दूर रहें ॥ १३ ॥

हे देवो ! तुम चाहे कहीं भी रहो, पर हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे पास आ जाओ और हमें सुखी करो ॥ १४ ॥

२५९ यो वाँ नासत्यावृषि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिज—मिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ १५ ॥
२६० प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुत—मश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वाँ सुम्नाय तुष्टवद् वसूयाद् दानुनस्पती ॥ १६ ॥
२६१ आ नो गन्तं रिशादसे—मं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरे—मा दातमभिष्टये ॥ १७ ॥
२६२ आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणा—मश्विना यामहूतिषु ॥ १८ ॥
२६३ आ नो गन्तं मयोभुवा ऽश्विना शंभुवा युवम् ।
यो वाँ विपन्यू धीतिभि—र्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ १९ ॥

अर्थ— [२५९] हे (नासत्या) सत्यके पालक देवो ! (यः ऋषिः वत्सः) जिस ज्ञानी और सबको प्रिय मनुष्यने (वां गीर्भिः अवीवृधत्) तुम दोनोंको स्तुतियोंसे बढाया, (तस्मै) उस मनुष्यको तुम (सहस्रनिर्णिजं) हजारों बल बढानेवाला (घृतश्चुतं) घीसे युक्त (इषं धत्तं) अन्न प्रदान करो ॥ १५ ॥

[२६०] हे (दानुनःपती) दानके अधिपति अश्विदेवो ! (यः सुम्नाय) जो सुखके लिए (वां तुष्टवत्) तुम्हारी स्तुति कर चुका है और (वसू-यात्) धनकी कामना करने लगे, (अस्मै) इसके लिए (युवं) तुम दोनों (घृतश्चुतं ऊर्जं प्र यच्छतं) घी टपकानेवाले बलकारी अन्न देओ ॥ १६ ॥

[२६१] हे (नरा) नेता ! (रिशादसा पुरुभुजा) हिंसकोंके विनाशकर्ता और बहुत भोगवाले ! (नः इमं स्तोमं) हमारे इस स्तोत्रको सुनकर (आ गन्तं) आओ, (नः सुश्रियः कृतं) हमें सुन्दर शोभासे युक्त करो और (अभिष्टये इमा दातं) सुखकी प्राप्तिके लिए इन आवश्यक वस्तुओंको दे दो ॥ १७ ॥

[२६२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अध्वराणां राजन्तौ वां) हिंसारहित कार्योंमें विराजमान तुम्हें (याम-हूतिषु) यात्रामें सम्मिलित होनेके लिए किये जानेवाले स्तोत्रपाठोंमें (विश्वाभिः ऊतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके साथ आनेके लिये (प्रियमेधाः आ अहूषत) प्रियमेध लोगोंने पूर्णतया तुम्हें बुलाया है ॥ १८ ॥

[२६३] हे (विपन्यू) प्रशंसनीय (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं नः आ गन्तं) तुम दोनों हमारे समीप आओ; (यः वत्सः) जो वह वत्स ऋषि (मयो-भुवा शंभुवा वां) सुखदायक एवं शान्तिदायक तुम्हें (धीतिभीः गीर्भिः अवीवृधत्) कर्मोंसे तथा भाषणोंसे प्रशंसित करता है ॥ १९ ॥

भावार्थ— हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! जो ज्ञानी तथा सबसे स्नेह करनेवाला मनुष्य तुम्हें स्तुतियोंसे बढाता है, ऐसे मनुष्यको तुम उत्तम अन्न तथा घी दूधसे बढाओ ॥ १५ ॥

अश्विदेव दानके स्वामी हैं । अतः जो उनकी स्तुति करता है और धनकी कामना करता है, उसे वे देव धन प्रदान करते हैं ॥ १६ ॥

हे शत्रुओंके संहारक तथा उत्तम नेता अश्विदेवो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, अतः हमें सुखकी प्राप्तिके लिए सभी आवश्यक साधन प्रदान करो ॥ १७ ॥

उत्तम मेधा बुद्धिवाले लोग इन दोनों देवोंको हिंसारहित कार्योंमें, स्तोत्रपाठोंमें तथा सभी संरक्षणकी आयोजनाओंमें बुलाते हैं ॥ १८ ॥

ज्ञानी तथा सबसे स्नेह करनेवाले हम, हे देवो ! तुम्हें बुलाते हैं, अतः तुम आकर हमें सुख और शान्ति प्रदान करो ॥ १९ ॥

२६४ याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ २० ॥
२६५ याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥ २१ ॥
२६६ प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥
२६७ त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥ २३ ॥

[९]

(ऋषिः- शशकर्णः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- अनुष्टुप्; १, ४, ६, १४-१५ बृहती; २, ३, २०, २१ गायत्री; ५ ककुप्; १० त्रिष्टुप्; ११ विराट्; १८ जगती ।)

२६८ आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

अर्थ— [२६४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (याभिः) जिनकी सहायतासे मेधातिथि कण्वकी (याभिः दशव्रजं वशं) जिनसे दस बाडे रखनेवाले वश की और (याभिः गो-शर्यं आवतं) जिनसे जीर्णशीर्ण गायें रखनेवालेकी रक्षा की थी, (ताभिः नः अवतं) उनसे हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥

[२६५] (कृत्व्ये धने) निःशाहनीय धनके बारेमें जिनसे त्रसदस्युकी (आवतं) रक्षा की थी, (ताभिः) उनसे (अस्मान्) हमें (वाजसातये) धनका बँटवारा करनेके लिए (सु प्र अवतं) भलीभाँति सुरक्षित रखो ॥ २१ ॥

[२६६] हे (पुरुत्रा) बहुत लोगोंके त्राणकर्ता और (वृत्रहन्तमा) वृत्रके अत्यन्त विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (वां सुवृक्तयः गिरः) तुम दोनोंको भलीभाँति रचे हुए भाषण और (स्तोमाः प्र वर्धयन्तु) स्तोत्र खूब बढावें, (ता) वे विख्यात तुम दोनों (नः पुरुस्पृहा भूतं) हमारे लिए अत्यंत स्पृहणीय बनो ॥ २२ ॥

[२६७] अश्विदेवोंके (गुहा) गुहामें रखे हुए (त्रीणि पदानि) तीन पद (परः आविः सन्ति) परले स्थानमें प्रकट हुए हैं; (ऋतस्य पत्मभिः) ऋतके मार्गोंसे (कवी) विद्वान् अश्विदेव (जीवेभ्यः अर्वाक्) जीवोंके लिए अभिमुख होकर (परि) ऊपरसे आते हैं ॥ २३ ॥

[९]

[२६८] हे अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (नूनं) अब सचमुच (वत्सस्य अवसे आगतं) वत्सकी रक्षाके लिए आओ (अस्मै) इसे (पृथु) विस्तीर्ण (अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं) वृक-सदृश जैसे क्रोधी लोगोंसे रहित घर देदो; पश्चात् (याः अरातयः युयुतं) जो शत्रु हैं, उन्हें दूर कर दो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुमने जिन सुरक्षाके साधनोंसे उत्तम मेधावाले ज्ञानीके पशुओंकी रक्षा की थी, उन्हीं साधनोंसे हमारी भी रक्षा करो ॥ २० ॥

हे देवो ! तुम दुष्टोंको भयभीत करनेवाले वीरकी हर तरहसे रक्षा करते हो, अतः तुम हमारी भी रक्षा करो ॥ २१ ॥

हे देवो ! हमारे द्वारा भलीप्रकार बोले गए स्तोत्र तुम्हारे सामर्थ्यको बढावें तथा तुम दोनों हमारे लिए बहुत पूज्य बनो ॥ २२ ॥

अश्विदेवोंके तीन पद आँखोंसे ओझल रहते हैं, और उनका चौथा पद सत्यके मार्गसे जीवोंके सामने प्रकट होता है। विराट् परमात्माके तीन पद अप्रकटही रहते हैं और चौथे पदसे वह इस संसारके रूपमें प्रकट होता है ॥ २३ ॥

हे देवो ! जो सबसे प्यार करनेवाला है, उसे ऐसा विस्तीर्ण घर दो, जो क्रोधी मनुष्योंसे रहित हो । तथा जो
३५ शत्रु हों, उन्हें तुम दूर करो ॥ १ ॥

२६९ यदुन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥
२७० ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
२७१ अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥
२७२ यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥
२७३ यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

अर्थ— [२६९] हे अश्विदेवो ! (यत् नृम्णं अन्तरिक्षे) जो धन अन्तरिक्षमें (यत् दिवि) जो द्युलोकमें (यत् पञ्च मानुषान् अनु) जो पांच तरहके मानव-वर्गोंके पास पाया जाता है, (तत् धत्तं) उसे हमारे लिए धर दो ॥ २ ॥

[२७०] हे अश्विदेवो ! (ये विप्रासः) जो ज्ञानी (वां दंसांसि) तुम्हारे कर्मोंको (परि ममृशुः) पूर्णतया सोच चुके हैं, (एव इत्) उसी प्रकार (कण्वस्य बोधतं) कण्व पुत्रकी प्रार्थनाको जान लो ॥ ३ ॥

[२७१] हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले ! (वां) तुम्हारेलिए (अयं घर्मः) यह यज्ञ (स्तोमेन) स्तोत्रपाठके साथ (परि सिच्यते) पूर्णतया सींचा जाता है; (मधुमान् अयं सोमः) मधुरिमामय यह सोम है (येन) जिससे, तुम (वृत्रं चिकेतथः) वृत्रको पहचान लेते हो ॥ ४ ॥

[२७२] हे (पुरु-दंससा) विविध कार्यवाले ! (यत् ओषधीषु) जो औषधियोंमें (यत् वनस्पतौ) जो बडे भारी पेडमें तथा (यत् अप्सु) जो जलोंमें (कृतं) तुमने कार्य किया है, (तेन) उसीसे (मा अविष्टं) मेरी भी रक्षा करो ॥ ५ ॥

[२७३] हे (देवा) दानी या शोभमान सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (यत् भुरण्यथः) जो तुम भरणका कार्य करते हो, (यत् वा) या जो तुम (भिषज्यथः) औषध देकर वैद्यका कार्य करते हो (अयं वत्सः) यह वत्स (वां) तुम्हें (मतिभिः न विन्धते) बुद्धियोंसे नहीं पाता है, क्योंकि तुम (हविष्मन्तं हि गच्छथः) हवि साथ रखनेवालेके पासही जाते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे देवो ! जो धन अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा अन्य लोगोंके पास पाया जाता है, उस धनसे हमें समृद्ध बनाओ ॥ २ ॥

ज्ञानीजन इन देवोंके सभी कर्मोंको जान जाते हैं, अतः वे उसके अनुकूल ही प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

जब ये देव स्तुतिके साथ साथ निचोडे जानेवाले सोमरसका पान करते हैं, तब वे सामर्थ्यसे युक्त हो जाते हैं और अपने शत्रुओंका संहार करते हैं ॥ ४ ॥

हे देवो ! जिस सामर्थ्यसे तुम औषधी, पेड तथा जल आदिकी रक्षा करते हो, उसी सामर्थ्यसे हमारी रक्षा करो ॥५॥

सबका भरणपोषण करनेवाले तथा सबको स्वस्थ रखनेवाले इन अश्विदेवोंको केवल ज्ञानके द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, इन्हें तो स्तुति या भक्तिके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है ॥ ६ ॥

२७४ आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥

२७५ आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥

२७६ यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ९ ॥

२७७ यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ १० ॥

२७८ यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [२७४] (नूनं) सचमुच ऋषि (अश्विनोः स्तोम) अश्विदेवोंके स्तोत्रको (वामया आ चिकेत) उत्कृष्ट बुद्धिसे पूर्णतया पहचाना है (मधुमत्तमं सोमं घर्मं) अत्यन्त मीठे सोमको तथा घर्मको (अथर्वणि आ सिञ्चत्) अथर्वामें सींच चुका है ॥ ७ ॥

[२७५] (नूनं) सचमुच (रघुवर्तनिं रथं) शीघ्रगामी रथपर हे अश्विदेवों ! (आ तिष्ठाथः) तुम चढते हो; (मम इमे स्तोमाः) मेरे ये स्तोत्र (नभः न) आकाशकी तरह विशाल (वां) तुम्हारे (आ चुच्यवीरत) पास पहुँचे हैं ॥ ८ ॥

[२७६] हे असत्यसे रहित अश्विदेवों ! (यत्) जब (उक्थैः) स्तोत्रोंसे (अद्य वां) आज दिन हम तुम्हें (आचुच्युवीमहि) अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं, (यत् वा वाणीभिः) या साधारण भाषणोंसे ऐसा करते हैं, तो (काण्वस्य एव इत् बोधतं) निश्चय जानो कि यह कण्वपुत्रकाही कार्य है ॥ ९ ॥

[२७७] हे अश्विदेवों ! (वां यत्) तुम्हें जब कक्षीवान्‌ने (उत यत्) और जब व्यश्वने तथा (यत् वां दीर्घतमाः जुहाव) जिस समय तुम्हें दीर्घतमाने बुलाया था; (सदनेषु यत् वैन्यः पृथी) घरोंमें जब कि वेनपुत्र पृथीने (वां) तुम्हें पुकारा था, तब तुमने उधर ध्यान दिया, (अतः एव) इसीलिए अबकी बार भी (चेतयेथां) हमारी पुकारको पहचान लो ॥ १० ॥

[२७८] हे (छर्दिःपौ) घरके संरक्षक ! (यातं) आओ (उत) और (नः परःपा भूतं) हमारे अत्यन्त उच्च कोटिके रक्षक बनो, तथा (जगत्पौ) गतिशीलके रक्षक (उत नः तनूपाः) एवं हमारे शरीरके संरक्षक हो-ओ, (तोकाय तनयाय) पुत्रपौत्रके हितके लिए (वर्तिः यातं) घरपर आया करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— ज्ञानियोंने प्रथम अपनी बुद्धि और ज्ञानके द्वारा अश्विदेवोंके स्तोत्रोंको रचा, फिर उन स्तोत्रोंके द्वारा अश्विदेवोंको प्रसन्न किया ॥ ७ ॥

जब ये अश्विदेव अपने शीघ्रगामी रथपर चढते हैं, तब ज्ञानी जन इनकी प्रशंसा करके इनका सामर्थ्य बढाते हैं ॥ ८ ॥

हे देवो ! जब कभी कोई तुम्हें भक्ति और प्रेमसे बुलाता है, तब तुम यह समझ लो कि वह कार्य किसी ज्ञानीकाही है ॥ ९ ॥

इन देवोंको सभी लोग बुलाते हैं, और ये देव भी उनकी प्रार्थनाको सुनकर तथा उनके मनोगत प्रेमपूर्ण भावोंको जानकर उनके पास आते हैं ॥ १० ॥

दोनों देव अपने भक्तके घरोंकी रक्षा करते हैं, साथही उसकी भी रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

२७९ यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ १२ ॥

२८० यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सह स्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ १३ ॥

२८१ आ नूनं यातमश्विने मा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदा विमे कण्वेषु वामथ ॥ १४ ॥

२८२ यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ १५ ॥

२८३ अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

अर्थ— [२७९] हे अश्विदेवों ! (यत् इन्द्रेण) जो तुम इन्द्रके साथ (सरथं याथः) एक रथपर बैठकर चले जाते हो, (यद् वा) अथवा (वायुना समोकसा भवथः) वायुके साथ एकही घरमें रहते हो, (यत्) या अब (आदित्येभिः ऋभुभिः) अदितिके पुत्रों या ऋभु-संज्ञक कारीगरोंके (सजोषसा) साथ प्रेमपूर्वक निवास करते हो, (यद् वा) किंवा जब (विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः) विष्णुके विशेष संचारोंमें तुम उपस्थित होते हो, [पर हमारे समीप अवश्य आओ] ॥ १२ ॥

[२८०] (अद्य यत्) आज जब कि (वाजसातये) अन्नका बँटवारा करनेके लिए (अहं अश्विनौ हुवेय) मैं अश्विदेवोंको बुलाऊँ तो वे अवश्य आयेंगे, क्योंकि (अश्विनोः तत् अवः) अश्विदेवोंका वह संरक्षण (श्रेष्ठं यत् पृत्सु) उत्कृष्ट है, जो युद्धोंमें (तुर्वणे सहः) शत्रुवध करनेमें पूर्ण क्षमता रखता है ॥ १३ ॥

[२८१] हे अश्विदेवों ! (नूनं) अवश्य (आ यातं) आओ, (वां इमा हव्यानि हिता) तुम दोनोंके लिए ये हविर्भाग रखे हुए हैं; (इमे सोमासः) ये सोम (तुर्वशे यदौ अधि) तुर्वश एवं यदुके घरपर पाये जाते हैं, (इमे कण्वेषु) ये कण्वोंके मकानपर विद्यमान हैं (अथ वां) और अब ये तुम्हारे लिए रखे हैं ॥ १४ ॥

[२८२] हे (प्रचेतसा नासत्या) उत्कृष्ट मनवाले तथा असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवों ! (यत् पराके) जो दूर देशमें (अर्वाके) समीप भी (भेषजं अस्ति) औषध विद्यमान् है, (तेन) उससे (विमदाय वत्साय) मदसे रहित ऋषि वत्सके लिए (नूनं) निश्चयसे (छर्दिः यच्छतं) घर दे डालो ॥ १५ ॥

[२८३] (अहं) मैं (अश्विनोः) अश्विदेवोंकी (देव्या वाचा साकं) दिव्यगुणसंपन्न वाणीके साथ (प्र अभुत्सि) विशेष रीतिसे जागृत हो चुका हूँ, इसलिए हे (देवि) द्योतमान उषे ! (मर्त्येभ्यः) मानवोंको (मतिं रातिं) बुद्धि तथा देनको (वि आवः) अँधेरा हटाकर स्पष्ट करो ॥ १६ ॥

भावार्थ— ये दोनों देव इन्द्र, वायु, ऋभु और विष्णुके साथ रथोंमें बैठकर सर्वत्र संचार करते हैं। अर्थात् अन्य देव भी अश्विदेवोंके उत्तम कार्योंमें अच्छी सहायता करते हैं ॥ १२ ॥

अश्विदेवोंके पास संरक्षणके साधन बहुत उत्तम हैं और वे शत्रुवध करनेके कार्यमें पूर्ण रूपसे सामर्थ्यशाली भी हैं ॥ १३ ॥

हे देवो ! तुम्हारे ज्ञानी भक्तोंने ये सोमरस तैय्यार करके तुम्हारे लिए रखे हैं, अतः तुम आकर पिओ ॥ १४ ॥

हे अश्विदेवो ! जो तुम्हारे पास या दूर देशमें औषध हैं, उन औषधोंसे तुम मद अर्थात् अहंकारसे रहित भक्तको सामर्थ्यशाली बनाओ ॥ १५ ॥

अश्विदेवोंके लिए की जानेवाली स्तुति उत्तम गुणोंसे युक्त होती है, और वह स्तोताको उत्तम ज्ञानसे युक्त करती है। हे उषे ! तुम भी अश्विदेवोंके उपासकोंकी बुद्धिको ज्ञानसे युक्त करके अज्ञानान्धकारको दूर करो ॥ १६ ॥

२८४ प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ १७ ॥
२८५ यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ १८ ॥
२८६ यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद् वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ १९ ॥
२८७ प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ २० ॥
२८८ यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद् वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ २१ ॥

अर्थ— [२८४] हे उषोमाता ! (सूनृते) भलीभाँति से चलनेवाली (महि) पूजनीय उषे ! तू अश्विदेवोंको (प्र बोधय) जागृत कर; हे (यज्ञहोतर्) यज्ञमें हवन करनेवाले ! (आनुषक्) सततरूपसे (मदाय) हर्ष उत्पन्न करनेके लिए (बृहत् श्रवः) बडे भारी अन्नको भी दे दो ॥ १७ ॥

[२८५] हे उषे ! (यत् भानुना यासि) जो तू किरणसे युक्त हो चली जाती है, और (सूर्येण सं रोचसे) सूर्यके साथ अत्यन्त जगमगाती है उसी समय (अश्विनोः अयं रथः ह) अश्विदेवोंका यह रथ निश्चयसे (नृपाय्यं वर्तिः आ याति) मानवोंने पालन करनेयोग्य घर चला जाता है ॥ १८ ॥

[२८६] (ऊधभिः गावः न) थनोंसे गायें जिस प्रकार दूध देती हैं वैसेही (यत्) जब (आपीतासः अंशवः) पीये हुए सोमरस (दुह्रे) दोहन करते हैं, (यत् वा) या जब (देवयन्तः) देवोंकी कामना करनेहारे (वाणीः) वाणियोंसे (अश्विना प्र अनूषत) अश्विदेवोंकी खूब स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥

[२८७] हे (प्रचेतसा) उत्कृष्ट ज्ञानवाले अश्विदेवों ! (द्युम्नाय) धनके लिए, (शवसे) बलके लिए (नृ-साह्याय शर्मणे) जिससे मानवोंमें सहनशक्ति बढे ऐसे सुखके लिए (दक्षाय) दक्षताके लिए (प्र) खूब आयोजना करो ॥ २० ॥

[२८८] (उक्थ्या अश्विना !) हे प्रशंसनीय अश्विदेवों ! (नूनं यत्) सचमुच जब (पितुः योना) पिताके स्थानमें (धीभिः यत् वा सुम्नेभिः) कार्योंसे अथवा सुखोंसे (नि-सीदथः) बैठ जाते हो ॥ २१ ॥

भावार्थ— हे उषे ! तू अश्विदेवोंको जगा, उन्हें प्रेरित कर और मनुष्योंमें हर्षको उत्पन्न करनेके लिए उन्हें उत्तम अन्न प्रदान कर ॥ १७ ॥

जब उषाकी किरणें प्रकट होती हैं और सूर्य भी उदय होनेको होता है, उस समय अश्विदेव सबके पास आकर सबको स्वास्थ्य प्रदान करते हैं । प्रातःकाल उठना स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होता है ॥ १८ ॥

गायें जिस प्रकार दूध देती हैं, उसी प्रकार यज्ञ करनेवाले भी इन अश्विदेवोंको सोमरस प्रदान करते हैं और उनकी खूब स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥

हे देवो ! तुम हमें ऐसे कर्म करनेकी प्रेरणा दो कि जिससे हमें धन, बल, सहनशक्ति तथा उत्तम कार्य करनेकी दक्षता प्राप्त हो ॥ २० ॥

हे देवो ! तुम हमारे पिता होकर हमारा पालन करते हो, अतः जैसे पिता अपने पुत्रको हर तरहके सुख प्रदान करता है, उसी तरह तुम हमें सुख प्रदान करो ॥ २१ ॥

[१०]

(ऋषिः- प्रगाथो (घौरः) काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- १ बृहती, २ मध्येज्योतिः, ३ अनुष्टुप् (पिंगलमतेन-शंकुमती), ४ आस्तारपंक्तिः, ५-६ प्रगाथः = (५ बृहती, ६ सतोबृहती) ।)

२८९ यत् स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद् वादो रोचने दिवः ।
यद् वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥
२९० यद् वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत् काण्वस्य बोधतम् ।
बृहस्पतिं विश्वान् देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥ २ ॥
२९१ त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥
२९२ ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

---

[१८]

अर्थ— [२८९] हे अश्विदेवों ! (यत्) जो तुम (दीर्घप्रसद्मनि) ऊंचे घरोंसे युक्त लोकमें (यत् वा) अथवा (अदः दिवः रोचने) उस द्युलोकके जगमगाते स्थानमें (स्थः) रहते हो, (यत् वा) या (अध्याकृते गृहे) चारों ओर ठीक बनाये घरमें, (समुद्रे अधि) समुन्दरमें रहो, परन्तु (अतः) वहाँसे (आ यातम्) इधर आओ ॥ १ ॥

[२९०] (मनवे यज्ञं) मनुके लिए यज्ञको (यत् वा संमिमिक्षथुः) जिस ढंगसे तुमने ठीक तरह सिक्त किया था, (काण्वस्य एव इत्) कण्वपुत्रके यज्ञको भी उसी तरह (बोधतं) समझ लो, (अहं) मैं बृहस्पतिको (विश्वान् देवान्) सभी देवोंको, इन्द्र एवं विष्णुको तथा (आशुहेषसा अश्विनौ हुवे) शीघ्रगामी घोडोंसे युक्त अश्विदेवोंको बुलाता हूँ ॥ २ ॥

[२९१] (त्या) उन दोनों (सुदंससा) अच्छे कर्म करनेवाले (गृभे कृता अश्विना) ग्रहण करनेके लिए उत्पन्न हुए अश्विदेवोंको, (ययोः) जिनकी (नः सख्यं) हमसे मित्रता (देवेषु अधि आप्यं) देवोंमें प्राप्त करनेयोग्य (प्र अस्ति) उच्च कोटिकी है, (नु हुवे) अभी बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[२९२] (ययोः अधि) जिन दोनोंके (यज्ञा प्र सन्ति) प्रकर्षसे होते हैं, जो (असूरे सूरयः) अविद्वानोंमें विद्वान् बनकर कार्य करते हैं, (ता) वे दोनों (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसारहित यज्ञके (प्रचेतसा) अच्छे ज्ञाता हैं, तथा (या) जो (स्वधाभिः) अपनी धारक शक्तियोंसे (सोम्यं मधु पिबतः) सोमयुक्त मधु पी लेते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम चाहे अपने जगमगाते घर अर्थात् द्युलोकमें रहो, अथवा अन्तरिक्ष लोकमें रहो, पर हमारे द्वारा सहायताके लिए बुलाये जाने पर हमारे पास आओ ॥ १ ॥

मननशील ज्ञानी मनुष्यके यज्ञको ये देव पूर्णता तक पहुंचाते हैं । तथा ऐसे मनुष्यके यज्ञमें ये दोनों देव इन्द्र, विष्णु तथा इतर देवोंके साथ आते हैं ॥ २ ॥

ये दोनों देव उत्तम कर्म करनेवाले हैं, अतः इनके साथ सदा हमारी मैत्री रहे और वह मैत्री भी उच्च कोटिकी रहे । मनुष्य सदा उत्तम कर्म करनेवालोंके साथ निश्छल और निष्कपट मैत्री करे ॥ ३ ॥

ये दोनों देव अज्ञानियोंमें जाकर ज्ञानका प्रचार करके उन्हें ज्ञानी बनाते हैं और हिंसारहित यज्ञका संचालन बडी कुशलतासे करते हैं ॥ ४ ॥

२९३ यदद्याश्विनावपाग् यत् प्राक् स्थो वाजिनीवसू ।
यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥
२९४ यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद् वेमे रोदसी अनु ।
यद् वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥ ६ ॥

[११]

(ऋषिः- वत्सः काण्वः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री, १ प्रतिष्ठा, २ वर्धमाना, १० त्रिष्टुप् ।)

२९५ त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥
२९६ त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २ ॥
२९७ स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥ ३ ॥
२९८ अन्ति चित् सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः ॥ ४ ॥

अर्थ— [२९३] हे (वाजिनीवसू) सेनारूपी धनवाले अश्विदेवों ! (अद्य यत्), आज जो तुम (अपाक्) पश्चिम दिशामें (यत् प्राक्) या पूर्व दिशामें (स्थः) रहो, (यत्) जो तुम द्रुह्यु, अनु, तुर्वश यदुके पास रहो, पर (वां हुवे) मैं तुम्हें बुलाता हूँ (अथ) अच्छा अब (मा आ गतम्) मेरे निकट आओ ॥ ५ ॥

[२९४] हे (पुरुभुजा) बहुत बडी भुजावाले अश्विदेवों ! (यत्) जो तुम (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्षमें उड्डान करते हो, (यत् वा इमे रोदसी अनु) अथवा इन दो द्युलोक या भूलोकके बीच चले जाते हो, (यत् वा) या कभी (रथं स्वधाभिः अधितिष्ठथः) रथपर अपनी धारक शक्तियोंसे चढ जाते हो, (अतः आ यातं) इधरसे इधर आओ ॥ ६ ॥

(१)

[२९५] हे (देव अग्ने) दिव्यगुण युक्त अग्ने ! (त्वं मर्त्येषु आ व्रतपा असि) तू मनुष्यों तथा देवोंके मध्यमें उत्तम व्रतोंका रक्षक है, इसलिये (यज्ञेषु त्वं ईड्यः) यज्ञोंमें तू स्तुतिके योग्य है ॥ १ ॥

[२९६] हे (सहन्त्य अग्ने) शत्रुओंको पराजित करनेवाले अग्ने ! (त्वं विदथेषु प्रशस्यः अध्वराणां रथीः असि) तू यज्ञोंमें स्तुति करनेके योग्य और हिंसारहित यज्ञोंका नेता है ॥ २ ॥

[२९७] हे (जातवेदः अग्ने) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! (सः त्वं अस्मत् द्विषः अप युयोधि) वह तू हमसे शत्रुओंको दूर कर । तथा (अदेवीः अरातीः) आसुरी शत्रु सेनाको भी हमसे परे हटा ॥ ३ ॥

[२९८] हे (जातवेदः) स्वभावसे ज्ञानवान् प्रकाशशील अग्ने ! तू (अह रिपोः मर्तस्य) हमारे शत्रुजनके (अन्ति चित् सन्तं) समीपस्थ विद्यमान रहनेवाले (यज्ञं न उप वेषि) यज्ञकी कामना नहीं करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम पूर्व, पश्चिम या किसी भी दिशामें रहो, पर हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे पास आओ ॥ ५ ॥

हे शक्तिशाली भुजावाले देवो ! जब भूलोक और द्युलोकके मध्यके अन्तरिक्ष लोकसे जाते हो, तब अपनी संपूर्ण धारक शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू देवों और मनुष्योंके द्वारा किए जानेवाले उत्तम व्रतोंका रक्षक है और तू शत्रुओंको पराजित करनेवाला है, इसलिए सभी तरहके यज्ञोंमें तेरी ही स्तुति होती है ॥ १-२ ॥

हे अग्ने ! तू हमसे शत्रुओंको दूर कर और असुरोंकी सेनाको भी हमसे दूर ही रख । अपने शत्रुके यज्ञमें, चाहे वह कितने ही पासके स्थानमें हो रहा हो, तू कभी नहीं आता, इसके विपरीत अपने भक्तके यज्ञमें, भले ही वह दूर हो, अवश्य आता है ॥ ३-४ ॥

२९९ मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रासो जातवेदसः ॥ ५ ॥
३०० विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥ ६ ॥
३०१ आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् । अग्ने त्वांकामया गिरा ॥ ७ ॥
३०२ पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
३०३ समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे । वाजेषु चित्रराधसम् ॥ ९ ॥
३०४ प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि ।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वाऽस्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥ १० ॥

अर्थ— [२९९] हे अग्ने ! (जातवेदसः विप्रासः मर्ताः) ज्ञानसे उत्पन्न हुए हुए ज्ञानी ब्राह्मणजन (अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे) मरणरहित तेरे विस्तृत नामका मनन करते हैं ॥ ५ ॥

[३००] (विप्रासः मर्तासः) विप्र और मरणधर्मवाले मनुष्य हम (विप्रं देवं अग्निं) मेधावी, दिव्यगुणयुक्त अग्निको (अवसे ऊतये गीर्भिः हवामहे) हव्यके द्वारा प्रसन्न करके, अपनी रक्षाके निमित्त स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[३०१] हे (अग्ने) अग्ने (परमात् चित् सधस्थात्) परम उत्कृष्ट उत्तम वास स्थान द्युलोकसे भी (ते मनः वत्सः) तेरे मनको पुत्ररूप उपासक जन (त्वां कामया गिरा) तेरी अभिलाषा करनेवाली वाणीसे (आ यमत्) अपनी ओर आकर्षित करते हैं ॥ ७ ॥

[३०२] हे अग्ने ! (हि पुरुत्रा सदृङ् असि) निश्चयसे तू बहुत देशोंमें समानरूपसे देखनेवाला है । (विश्वाः विशः अनु प्रभुः) समस्त प्रजाओंका अधिपति है । ऐसे तुझको हम (समत्सु हवामहे) संग्राममें बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[३०३] हम (वाजयन्तः वाजेषु समत्सु अवसे चित्रराधसं अग्निं हवामहे) अन्नकी कामनावाले होकर अन्न और बलके प्राप्त होनेवाले संग्राममें अपनी रक्षाके लिये अनेक ऐश्वर्योंको धारण करनेवाले अग्निको बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[३०४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अध्वरेषु ईड्यः च हि कं प्रत्नः) यज्ञोंमें स्तुत्य और सुखदायक और अत्यन्त प्राचीन है (च सनात् होता च नव्यः सत्सि) और चिरकालसे ही होता एवं स्तुतिके योग्य होकर यज्ञमें विराजमान होता है । तू (स्वां तन्वं पिप्रयस्व) अपने शरीरको हविसे संतुष्ट कर (च अस्मभ्यं सौभगं आ यजस्व) और हमको भी सौभाग्यशाली बना ॥ १० ॥

भावार्थ— अग्निका नाम मनन करने योग्य है उसके अनेक नाम होनेसे वह बड़ा विस्तृत है । ऐसे उस अग्निको सभी ज्ञानी अपनी रक्षाके लिए स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि सबको समान दृष्टिसे देखता है, इसके लिए न कोई शत्रु है न मित्र है । इसलिए वह सब प्रजाओंका स्वामी है । इसे सभी मनुष्य अपनी उत्तम उत्तम स्तुतियोंके द्वारा बुलाते हैं और इसकी सहायताको पानेकी इच्छा करते हैं ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य सुखदायक और अत्यन्त प्राचीन होनेके कारण सभीके द्वारा बुलाया जा कर यज्ञमें लाया है तथा स्वयं हविसे सन्तुष्ट होकर यज्ञ करनेवालोंको भी सौभाग्यशाली बनाता है । इसीलिए अन्न और बल प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इस अग्निको बुलाते हैं ॥ ९-१० ॥

[१२]

(ऋषिः- पर्वतः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक्, २६ दाङ्कुमती (पिंगलमतेन) ।)

२०५ य इ॑न्द्र सोम॒पात॑मो॒ मद॑ः शविष्ठ॒ चेत॑ति । येना॒ हंसि॒ न्य१॒॑त्रिणं॒ तमी॑महे ॥ १ ॥
२०६ येना॒ दश॑ग्व॒मध्रि॑गुं वे॒पय॑न्तं॒ स्व॑र्णरम् । येना॑ समु॒द्रमावि॑था॒ तमी॑महे ॥ २ ॥
२०७ येन॒ सिन्धुं॑ म॒हीर॒पो रथाँ॑ इव प्र॒चोद॑यः । पन्था॑मृ॒तस्य॒ यात॑वे॒ तमी॑महे ॥ ३ ॥

---

[१२]

अर्थ— [२०५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो तुम (सोमपातमः) अत्यधिक सोम पीनेवाले (शविष्ठः) बलवान् (मदः चेतति) आनन्दित होनेवाले तथा सब जाननेवाले हो, [उस तुमने] (येन) जिस [बल] से (अत्रिणः न हंसि) राक्षसोंको मारा (तं) उस बलको [हम तुमसे] (ईमहे) मांगते हैं ॥ १ ॥

१ येन अत्रिणः नि हंसि— जिस बलसे तुमने राक्षसोंको मारा ।

२ तं ईमहे— हम उस बलको मांगते हैं ।

३ अत्रिणः— खानेवाले, खाऊ, दूसरेके भोगोंको स्वयं खानेवाले ।

[२०६] हे इन्द्र ! (येन) जिस [बल] से (दशग्वं अध्रिगुं) दशग्व तथा अध्रिगु ऋषि और (वेपयन्तं स्वर्ण-रम्) [भयसे] कांपते हुए दान दाता [यजमान] की (आविथ) रक्षा की थी और (येन) जिस [बलसे] (समुद्रं) समुद्रकी [रक्षा की थी] (तं ईमहे) उस बलको हम मांगते हैं ॥ २ ॥

१ ईमहे— मांगते हैं, ' ईमह इति याञ्चा कर्मा ' (निघं. ३।१९)

२ स्वर्ण-रं— धनका दान करनेवाला, सुवर्णका दान करनेवाला ।

३ अध्रि-गु— आगे जानेवाला, प्रगति करनेवाला ।

४ दश-ग्वं— दस गौओंका पालन करनेवाला ।

५ समुद्रः (सं-उद्-र)— मिलकर उन्नति करनेके लिये दान देनेवाला, समुद्र ।

६ येन स्वर्ण-रं अविथ तं ईमहे— जिस बलसे तुमने धन दाताकी रक्षा की वह बल हम चाहते हैं ।

[२०७] हे इन्द्र ! (येन) जिस सामर्थ्यसे (रथान् इव) रथोंके समान (महीः अपः) बडे बडे जलप्रवाहोंको (सिन्धुं) समुद्रको [ओर] (प्रचोदयः) प्रेरित किया बहाया (ऋतस्य पन्थां यातवे) यज्ञके मार्गपर जानेके लिए (तं ईमहे) उस सामर्थ्यको मांगते हैं ॥ ३ ॥

१ ऋतस्य पन्थां यातवे तं ईमहे— यज्ञके मार्गपर जानेके लिए सामर्थ्यको हम प्राप्त करते हैं ।
सत्य या यज्ञके मार्गपरसे जानेके लिये सामर्थ्य चाहिये ।

भावार्थ— हे बलवाली तथा आनंदयुक्त रहनेवाले इन्द्र ! जिस बलसे तुमने राक्षसोंको मारा था, उस बलसे हमें युक्त करो ॥ १ ॥

जो गौओंका पालन करता है और सदा आगे उन्नति करता जाता है, उसकी रक्षा इन्द्र करता है । इन्द्रके उस बलको हम भी मांगते हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! अपने जिस सामर्थ्यसे तुमने बडी बडी नदियोंको प्रवाहित किया, उसी तेरे सामर्थ्यको हम इसलिए मांगते हैं कि हम सत्यके मार्गमें चल सकें । सत्य मार्गके अनुसरणमें ही अपनी शक्ति लगानी चाहिए ॥ ३ ॥

३०८ इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः । येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ४ ॥
३०९ इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते । इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥
३१० यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे । दिवो न वृष्टिं प्रथयन् ववक्षिथ ॥ ६ ॥
३११ ववक्षुरस्य केतवः उत वज्रो गभस्त्योः । यत् सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥
३१२ यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः । आदित् त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥

अर्थ— [३०८] हे (अद्रि-वः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (घृत न पूतं) घीके समान पवित्र (इमं स्तोमं) इस स्तोत्रको (अभिष्टये) हमें इष्ट धनका दान देनेके लिए सुनो (येन) जिससे [तुम] (ओजसा) बलसे युक्त होकर (सद्यः ववक्षित) शीघ्र [इष्ट धनको] दे सकते हो ॥ ४ ॥

१ पूतं स्तोमं अभिष्टये— पवित्र स्तुति अर्थात् शुद्ध मनसे की गई स्तुतिसेही इच्छित पदार्थकी प्राप्ति हो सकती है ।

२ अभिष्टिः— सब प्रकारसे इष्ट ।

[३०९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! [तुम] (विश्वाभिः ऊतिभिः ववक्षिथ) संपूर्ण संरक्षणोंके साथ हमारा संरक्षण करते हो, अतः हे (गिर्वणः) स्तुतियोंके द्वारा सेवनके योग्य इन्द्र ! जैसे (समुद्र इव पिन्वते) समुद्र बढता है, वैसेही बढनेवाले [तुम] (इमं) इस स्तुतिको (जुषस्व) सुनो ॥ ५ ॥

१ विश्वाभिः ऊतिभिः ववक्षिथ— इन्द्र अपने भक्तका हर प्रकारसे संरक्षण करता है ।

[३१०] (यः देवः) जो देव इन्द्र (परावतः) दूर देशसे (नः सखित्वनाय) हमारी मित्रताके लिए [धनोंको] (मामहे) देता है, ऐसे तुम हे इन्द्र ! (दिवः वृष्टिं न) जैसे द्युलोकसे वर्षाको [फेंकाते हो] वैसेही [धनोंको] (प्रथयन्) फैंकाते हुए [तुम] (ववक्षिथ) [हमारे पास] पहुंचाते हो ॥ ६ ॥

१ देवः सखित्वनाय मामहे— देव मित्रताके लिए धन देता है । इन्द्र अपने भक्तोंको ऐश्वर्य देता है ।

२ मामहे— देता है -' मंहतेर्दानकर्मणः ' (निघ. ३।२०) मामहे — पूजा करना ' मह पूजायाम् '

[३११] (यत्) जब यह इन्द्र (सूर्यः न) सूर्यके समान (रोदसी अवर्धयत्) द्यावा-पृथिवीको बढाता है, तब (अस्य केतवः ववक्षुः) इसकी किरणें फैलती हैं (उत) और (गभस्त्योः वज्रः) हाथोंमें वज्र भी वह लेता है ॥ ७ ॥

केतुः— पताका, किरण,
गभस्ती— बाहू- गभस्ती इति बाहुनाम (निघं. २।४)

[३१२] (प्रवृद्ध सत्पते) हे महान् तथा सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (यदि) जब तुमने (सहस्रं महिषान्) हजारों बडे बडे शक्तिशाली असुरोंको (अघः) मारा, (आत् इत्) उसके बाद ही (ते इन्द्रियं) तुम्हारा बल (महि प्र वावृधे) अत्यधिक बढा ॥ ८ ॥

१ यदि सहस्रं महिषान् अघः— इन्द्रने जब हजारों बडे बडे सामर्थ्यवान् असुरोंको मारा ।
२ ते इन्द्रियं वावृधे— तेरी शक्ति बढी ।

भावार्थ—किसी मनोरथकी सिद्धि करनी हो, तो सच्चे और पवित्र मनसेही प्रभुकी भक्ति करनी चाहिए, तभी उस मनोरथ की सिद्धि हो सकती है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जिस तरह समुद्र नदियोंके पानीसे बढता है, उसी तरह तुम स्तुतियोंसे बढो और हमारी हर तरहसे रक्षा करो ॥ ५ ॥

वह ऐश्वर्यशाली देव दूर देशसे भी हमें धन प्रदान करता है । इसलिए हम उससे सदा मैत्री रखना चाहते हैं ॥ ६ ॥

जिस तरह सूर्य जब अपनी किरणोंको फैलाता है, तब द्युलोक और भूलोक प्रकाशित होकर विस्तृतसे दिखाई पडते हैं, उसी तरह इन्द्रकी किरणें चारों ओर फैलकर सारे विश्वको विस्तृत करती हैं ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जब तूने सहस्रों राक्षसोंको मारा तब तेरा सामर्थ्य बढा । शत्रुओंको मारनेसे अपना सामर्थ्य बढता है ॥ ८ ॥

३१३ इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति । अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥
३१४ इयं ते ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी । सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥ १० ॥
३१५ गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् । स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥
३१६ सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये । प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥ १२ ॥
३१७ यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः । घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥ १३ ॥

अर्थ— [३१३] (इन्द्रः) इन्द्र (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्यकी किरणोंसे (अर्शसानं) त्रासदायक शत्रुको (अग्निः वना इव) जैसे अग्नि वनोंको जला डालती है, उसी प्रकार (नि ओषति) बिलकुल जला डालता है, और (सासहिः) शत्रुको पराजित करनेवाला यह इन्द्र (प्र वावृधे) बढता है ॥ ९ ॥

१ इन्द्रः अर्शसानं सूर्यस्य रश्मिभिः नि ओषति— इन्द्र त्रासदायक शत्रुको सूर्यकी किरणोंसे जलाता है ।

२ ओषति— जलाना ' उष दाहे '

[३१४] हे इन्द्र (इयं) यह (ऋत्वियावती) यज्ञमें की जानेवाली (नवीयसी) नवीन (सपर्यन्ती) सत्कार करनेवाली, (पुरु-प्रिया) बहुतोंको प्रिय (धीतिः) स्तुति (ते एति) तेरे पास आती है, और (मिमीते इत्) तेरे गुणोंका वर्णन करती है ॥ १० ॥

[३१५] (यज्ञस्य गर्भः) यज्ञको उत्पन्न करनेवाला तथा (देवयुः) देवोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला ऋत्विज् (आनुषक्) निरन्तर [अपने] (क्रतुं) कर्मको (पुनीते) पवित्र रीतिसे करता रहता है, तथा (इन्द्रस्य स्तोमैः वावृधे) इन्द्रकी स्तुतिसे वह बढता है, तथा (मिमीते इत्) [इन्द्रके] गुणोंका वर्णन करता है ॥ ११ ॥

[३१६] (मित्रस्य सनिः) मित्रको धन देनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (सोमस्य पीतये) सोम पानके लिए (सुन्वते प्राची वाशी इव) सोमयाग करनेवालेकी उत्तम स्तुतिको सुननेसे (पप्रथे) प्रसिद्ध होता है और उसमें (मिमीते इत्) उसका गुण वर्णन होता है ॥ १२ ॥

— मित्रस्य सनिः— मित्रकी सहायता करनी योग्य है ।

[३१७] (विप्राः उक्थवाहसः आयवः) ज्ञानी तथा स्तुतिकर्ता मनुष्य (यं अभिप्रमन्दुः) जिसको आनन्दित करते हैं । [उसके] (आसनि) मुखमें (ऋतस्य यत्) यज्ञका जो हव्य सोमरस है उसे (घृतं न) घीके समान (पिप्ये) पिलाता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ— सूर्यकी किरणोंसे त्रासदायक शत्रु अर्थात् रोगके कीटाणु मर जाते हैं । रोज सूर्य स्नान करनेसे शरीर स्वस्थ रहता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! यज्ञमें की जानेवाली यह स्तुति तुझसे ही सम्बन्धित है । इसमें तेरे ही उत्तम गुणोंका वर्णन है ॥ १० ॥

देवोंकी प्राप्तिकी कामना करनेवाला ऋत्विज् निरन्तर अपने कर्मको पवित्र रीतिसे करता है । अच्छे गुणोंको प्राप्त करनेवाले मनुष्यको अपना कर्म पवित्र हो ऐसा करना चाहिए । वह इन्द्रकी स्तुतिसे बढता है, परमात्माकी स्तुतिसे मनुष्यकी उन्नति होती है ॥ ११ ॥

यह इन्द्र देव सदा ही मित्रको धन देकर उसकी सहायता करता है । सबको अपने मित्रकी सदा सहायता करनी चाहिए ॥ १२ ॥

ज्ञानी और स्तुति करनेवाले लोग सदा इस इन्द्रकी स्तुति करते हैं और उसे सोमरस प्रदान करते हैं ॥ १३ ॥

३१८ उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् । पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥१४॥
३१९ अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये । न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५॥
३२० यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद् वा घ त्रित आप्त्ये । यद् वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥१६॥
३२१ यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥१७॥
३२२ यद् वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥१८॥

अर्थ— [३१८] (उत) और (अ-दितिः) अखण्डनीय स्तोताने (स्व- राजे इन्द्राय) स्वयं प्रकाशमान इन्द्रके लिए (ऊतये) संरक्षणके लिए (ऋतस्य यत् पुरु-प्रशस्तं स्तोमं), यज्ञका जो बहुत प्रशंसित स्तोत्र है [उसे] (जीजनत्) बनाया है ॥ १४ ॥

[३१९] (वह्नयः[1]) ऋत्विग्गण (ऊतये प्रशस्तये) संरक्षण तथा प्रशंसाके लिए [इन्द्रकी] (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं, हे (न देव) प्रशंसित देव इन्द्र ! (विव्रता हरी) विविध कर्म करनेवाले तेरे घोडे (ऋतस्य यत्) यज्ञका जो स्थान है [उसकी तरफ तुझे ले जावें] ॥ १५ ॥

1 वह्नि- अग्नि, पावन, गाडी, यज्ञकर्ता, मरुतोंका विशेषण, सोम, घोडा

[३२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (विष्णवि) यज्ञमें (यत् सोमं मन्दसे) जिस सोमको पीकर आनन्दित होते हो, (वा घ) और (यत् त्रित आप्त्ये) जिसको त्रित आप्त्यके यज्ञमें पीते हो, (वा) और (यत् मरुत्सु) जिसको मरुतोंमें [बैठकर] पीते हो, [उसी प्रकार हमारे] (इन्दुभिः सं) सोमोंसे भी अच्छी तरह आनन्दित होओ ॥ १६ ॥

[३२१] (यदि वा) जैसे (परावति) दूर देशमें (समुद्रे अधिमन्दसे) बहनेवाले सोममें आनन्दित होते हो, वैसे (अस्माकं सुते इत्) हमारे सोमयागमें भी (इन्दुभिः सं रण) सोमरस द्वारा अच्छी तरह आनन्दित होओ ॥ १७ ॥

[३२२] हे (सत्पते) सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्र ! (यत् यस्य उक्थे) जब जिसके यज्ञमें तुम (इन्दुभिः वा) सोमरसोंसे (सं रण्यसि) अच्छी प्रकार आनन्दित होते हो, उस समय (सुन्वतः यजमानस्य) सोम याग करनेवाले यजमानको (वृधः असि) बढाते हो ॥ १८ ॥

भावार्थ— अखण्डनीय स्तोताने स्वराजके बढानेके अपने संरक्षणके लिये प्रशंसनीय स्तोत्र बनाये। जिससे स्वराज्यकी शक्ति बढेगी और [illegible] संरक्षण हो जायगा ॥ १४ ॥

संरक्षणके लिये तथा प्रशंसाके लिये स्तुति करते हैं। स्तुतिमें जो गुण वर्णन किये जाते हैं, उनको अपनानेसे अपना संरक्षण होता है और अपनी प्रशंसा जनतामें भी होती है ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अन्य यज्ञकर्ताओंके यज्ञमें जिस प्रकार सोम पीकर आनन्दित होते हो, उसी तरह हमारे यज्ञमें भी सोम पीकर आनन्दित होओ ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार तुम दूरके देशोंमें सोमरस पीकर आनन्दित होते हो, उसी प्रकार हमारे यज्ञमें सोम पीकर आनन्दित होओ ॥ १७ ॥

जिस यज्ञकर्ताके यज्ञमें यह इन्द्र सोम पीकर आनन्दित होता है, उसी तरह वह हमारे यज्ञमें भी सोम पीकर आनन्दित हो ॥ १८ ॥

३२३ देवंदेवं वोऽवसे इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि । अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥१९॥
३२४ यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् । होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥२०॥
३२५ महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥२१॥
३२६ इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः । इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥२२॥
३२७ महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् । अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥२३॥
३२८ न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् । अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥२४॥

अर्थ— [३२३] (वः अवसे) तुम सबके रक्षणके लिए (देवं देवं इन्द्रं इन्द्रं) देव देव इन्द्रकी (गृणीषणि) स्तुति करता हूँ, वे स्तुतियां (अधा) पश्चात (तुर्वणे) शत्रुको मारनेके लिए तथा (यज्ञाय) यज्ञके लिए [इन्द्रको] (वि- आनशुः) पहुंचे ॥ १९ ॥

[३२४] (यज्ञवाहसं सोमपातमं इन्द्रं) यज्ञमें बुलाने योग्य तथा सबसे अधिक सोम पीनेवाले इन्द्रको [याजक] (यज्ञेभिः, सोमेभिः, होत्राभिः) यज्ञोंसे, सोमोंसे तथा स्तुतियोंसे (वावृधुः) बढाते हैं, तथा [इन्द्रको] (व्यानशुः) प्राप्त करते हैं ॥ २० ॥

[३२५] (अस्य प्रणीतयः महीः) इसकी नीतियाँ बहुत हैं, (उतः) और इसकी (प्रशस्तयः) प्रशंसाएं भी (पूर्वीः) पूर्वकालसे आयी हैं, इसके (विश्वावसूनि) सम्पूर्ण धन (दाशुषे) दाताको (वि-आनशुः) प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

१ विश्वा वसूनि दाशुषे वि आनशुः- इन्द्रके सम्पूर्ण धन दान देनेवालेको प्राप्त होते हैं।

[३२६] (देवासः) देवोंने (वृत्राय हन्तवे) वृत्रको मारनेके लिए (इन्द्रं पुरः दधिरे) इन्द्रको आगे किया, अतः [उसके] (ओजसे) बलके लिए (वाणीः सं अनूषत) वाणियां इसीकी स्तुति करती हैं ॥ २२ ॥

[३२७] (महिना महान्तं) अपने बल तथा यशसे बडे (हवनश्रुतं) प्रार्थनाको सुननेवाले इन्द्रका (ओजसे) उसके बलके लिए (वयं स्तोमेभिः अर्कैः) हम यज्ञोंसे तथा स्तोत्रोंसे (अभि प्र णो नुमः) सत्कार करते हैं ॥ २३ ॥

[३२८] (यं वज्रिणं) जिस वज्रधारी इन्द्रको (रोदसी न विविक्तः) द्यावा पृथिवी अपनेसे पृथक् नहीं कर सकते, (अन्तरिक्षाणि न) अन्तरिक्ष लोक भी पृथक् नहीं कर सकते। ऐसे (अस्य अमात् ओजसः इत्) इस इन्द्रके बल तथा ओजसेही [सब जगत्] (तित्विषे) प्रकाशित हो रहा है ॥ २४ ॥

भावार्थ— मेरी स्तुतियाँ शत्रुको मारनेके लिए और यज्ञके लिए इन्द्रको प्राप्त हों, अर्थात् मेरी स्तुतियां शत्रुको मारनेके लिए तथा यज्ञमें आनेके लिए इन्द्रको प्रेरित करें। संरक्षणके लिये मैं ईश्वरकी स्तुति करता हूं। देवताकी स्तुतिके साथ अपने संरक्षण होनेका बडा संबंध है। स्तुतिमें वर्णित गुण अपनेमें बढानेसे अपना संरक्षण होता है ॥ १९ ॥

देवोंमें सबसे अधिक सोम इन्द्र ही पीता है, इसीलिए वह सब यज्ञोंमें सोमपानके लिए बुलाया जाता है ॥ २० ॥

इन्द्रकी नीतियां बहुत हैं। वह बहुत चतुर है। इसीलिए बहुत प्राचीनकालसे इसकी प्रशंसा होती आ रही है। जो दान देता है, उसीको इसके धन प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

देवोंने वृत्रको मारनेके लिए इन्द्रको नेता बनाया, इन्द्र इतना बलवान् है। बलके लिये हमारी वाणियां उस इन्द्रकी मिलकर स्तुति करती हैं ॥ २२ ॥

वह अपने बलसे बडा है, उसे बडे होनेके लिए किसी दूसरेसे सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं। वह हवनमें, यज्ञमें प्रसिद्ध है। हम बलके लिये उस वीरका सत्कार करते हैं। बलके कारण सत्कार होता है ॥ २३ ॥

इन्द्रके सब जगह व्याप्त होनेसे, द्यावा पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष अपनेसे उसको पृथक् नहीं कर सकते। इसके बल तथा ओजसेही सारा संसार प्रकाशित हो रहा है ॥ २४ ॥

३२९ यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२५॥
३३० यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२६॥
३३१ यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे । आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२७॥
३३२ यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२८॥
३३३ यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२९॥
३३४ यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः । आदित् ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०॥

अर्थ— [३२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवाः) देवोंने (पृतनाज्ये संग्राममें (त्वा) तुझे (यत्) जब (पुरः दधिरे) आगे किया (आत् इत्) उसके अनन्तर ही (हर्यता हरी) दो तेजस्वी घोडे (ते ववक्षतुः) के तुझे गये ॥ २५ ॥

[३३०] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यदा) जब तुमने (नदी वृतं वृत्रं) नदीके पानीको रोकनेवाले वृत्रको (शवसा अवधीः) बलसे मारा, (आत् इत्) उसी समय (हर्यता हरी) दो तेजस्वी घोडे (ते ववक्षतुः) तुम्हें ले चले ॥ २६ ॥

[३३१] हे इन्द्र ! (यदा ते विष्णुः) जब तुम्हारे विष्णुने (ओजसा) बलसे (त्राणि पदा) तीन पांवोंसे (विचक्रमे) विक्रम किया (आत् इत्) तबही (हर्यता हरी) दो तेजस्वी घोडे (ते) तुम्हें (ववक्षतुः) ढोकर ले गए ॥ २७ ॥

१ विष्णु उपेन्द्र है । इन्द्र देवेन्द्र है । विष्णु सूर्य है ।

[३३२] हे इन्द्र ! (यदा ते हर्यता हरी) जब तेरे तेजस्वी घोडे (दिवे दिवे वावृधाते) प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हुए, (आत् इत्) तभी (ते) तूने (विश्वा भुवनानि) सम्पूर्ण लोकोंको (येमिरे) नियमोंमें रखा ॥ २८ ॥

१ ते विश्वा भुवनानि येमिरे– तूने सब भुवनोंको नियमोंमें रखा है ।

[३३३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यदा) जब (ते मारुतीः विशः) तुम्हारी मरुद् रूपी प्रजायें (तुभ्यं) तेरे लिए [सारे प्राणियोंको] (नि येमिरे) नियंत्रित करती हैं, (आत् इत्) तभी (ते) तुम (विश्वा भुवनानि येमिरे) सम्पूर्णलोकोंका नियमन करते हो ॥ २९ ॥

[३३४] हे इन्द्र ! (यदा) जब तुमने (अमुं शुक्रं, ज्योतिः सूर्यं) इस तेजस्वी तथा प्रकाशमान् सूर्यको (दिवि अधारयः) द्युलोकमें स्थापित किया, (आत् इत्) तभी (ते) तुमने (विश्वा भुवनानि येमिरे) सम्पूर्ण भुवनोंको नियमित किया ॥ ३० ॥

शुक्रं ज्योतिः सूर्यं दिवि अधारयः– शुद्ध प्रकाशमान सूर्यको तुमने द्युलोकमें स्थापित किया है ।

भावार्थ— देवोंने सेनासे हमला होनेपर इन्द्रको आगे धर दिया, युद्धका नेता बनाया । इसी प्रकार वीर शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें सबसे आगे रहे ॥ २५ ॥

इन्द्रने नदीके पानीको रोकनेवाले वृत्रको अपने बलसे मारा । नदीके जलका बर्फ करनेवाले वृत्रको इन्द्रने मारा । बर्फको पिघलाया ॥ २६ ॥

सूर्यने अपने बलसे तीन पांवोंसे आक्रमण किया । सूर्य मध्याह्न समयमें ऊपर चढ गया ॥ २७ ॥

इन्द्र जब सामर्थ्यशाली होता है, तब उसने सब भुवनोंको अपने शासनमें रखा । जब मनुष्य सामर्थ्यशाली होता है, तब वह लोगोंको शासनमें रखता है ॥ २८ ॥

संपूर्ण लोकोंको नियंत्रित करनेके कार्यमें इन्द्रकी सहायता मरुत् करते हैं । इसी तरह सब प्रजाओंको शासनमें रखनेके कार्यमें वीर राजाकी सहायता उसके सैनिक करें ॥ २९ ॥

जब इन्द्रने द्युलोकमें प्रकाशमान् सूर्यको स्थापित किया तभी सारा विश्व प्रकाशित हुआ और उस पर इन्द्रका शासन हुआ ॥ ३० ॥

३३५ इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः । जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥३१॥
३३६ यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् । नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२॥
३३७ सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः । होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥३३॥

[१३]

(ऋषिः- नारदः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक् ।)

३३८ इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् । विदे वृधस्य दक्षसो महान् हि षः ॥१॥
३३९ स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः । सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥२॥

अर्थ— [३३५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जामिं पदा इव) जैसे कोई अपने बन्धुको उत्कृष्ट स्थान पर ले जाता है, उसी प्रकार (विप्रः) ज्ञानी (इमां पिप्रतिं) इस प्रसन्नता वर्धक (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुतिको (धीतिभिः) यज्ञोंके कर्मोंके साथ (अध्वरे इयर्ति) यज्ञमें ले जाता है ॥ ३१ ॥

[३३६] (यज्ञस्य नाभा दोहना) यज्ञके केन्द्रमें [सोमका] रस निकालने पर (अस्य प्रिये धामनि अध्वरे) इस [इन्द्र] के प्रिय यज्ञस्थानमें [स्तोता] (समीचीनासः) संघटित होकर (अस्वरन्) स्तुति करते हैं ॥ ३२ ॥

[३३७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः) हमें (सु-वीर्यं, सु-अश्व्यं, सु-गव्यं) उत्तम बल, उत्तम घोडे और उत्तम गायोंवाला धन (दद्धि) दो, मैं (अध्वरे) यज्ञमें (होता इव) होताके समान (पूर्व चित्तये) सबसे प्रथम ज्ञानवान्, होनेके लिए तुम्हारी (प्र) उत्तम स्तुति करता हूँ ॥ ३३ ॥

१ नः सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यं दद्धि- हमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति, उत्तम घोडे और उत्तम गायें दे दो ।

[१३]

[३३८] (इन्द्रः) इन्द्र (सोमेषु सुतेषु) सोमका रस निकालने पर (वृधस्य दक्षसः विदे) बढानेवाले बलको प्राप्त करनेके लिए (क्रतुं उक्थ्यं पुनीते) यज्ञ तथा स्तोत्रको पवित्र करता है (हि) क्योंकि (सः महान्) वह महान् है ॥ १ ॥

१ दक्षः- बल "दक्ष इति बल नाम" (निघं. २।९)

२ विदे- प्राप्त करनेके लिए "विद्लृ लाभे"

[३३९] (सु-पारः) उत्तमतासे [दुःखोंसे] पार करानेवाला, (सु-श्रव-स्तमः) उत्तम यशवाला तथा (सं-अप्सुजित्) अन्तरिक्षमें शत्रुओंको जीतनेवाला (सः) वह इन्द्र (देवानां सदने) देवोंके स्थान (प्रथमे व्योमनि) विस्तृत आकाशमें [रहकर सबका] (वृधः) बढानेवाला है ॥ २ ॥

१ अप्सु- अन्तरिक्ष लोकोंमें 'आप इति अन्तरिक्षनाम' (निघं १।३)

भावार्थ— जिस तरह कोई मनुष्य ऊंचे स्थान पर पहुंचकर अपने भाईको भी ऊंचे स्थान पर पहुंचाता है, उसी तरह ज्ञानी स्वयं उन्नत होकर इस इन्द्रको भी अपनी स्तुतियोंसे ऊंचा उठाते हैं ॥ ३१ ॥

जब यज्ञ शुरु होते हैं, तब इन्द्रके प्रिय स्थान उन यज्ञोंमें इन्द्रको सोमरस देनेके लिए सब लोग संघटित होकर स्तुति करते हैं ॥ ३२ ॥

हे इन्द्र ! हमें तू उत्तम बल, उत्तम घोडे तथा उत्तम गायोंवाला धन दे । हे देव ! मैं यज्ञमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ३३ ॥

इन्द्र बल बढानेके लिये यज्ञ या पवित्र कर्म करता है । पवित्र कर्मसे बल बढता है ॥ १ ॥

वह इन्द्र उत्तम यशवाला तथा अन्तरिक्षमें रहनेवाले शत्रुओंको जीतनेवाला है । दुःखोंसे पार करनेवाला और शत्रुओंको जीतनेवाला बडा होता है ॥ २ ॥

३४० तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् । भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३॥
३४१ इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४॥
३४२ नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत् त्वा सुन्वन्त ईमहे । रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥५॥
३४३ स्तोता यत् ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः । वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥६॥
३४४ प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् । मदेमदे ववक्षिथा सुकृत्वने ॥७॥
३४५ क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः । अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥८॥

अर्थ— [३४०] मैं (तं शुष्मिणं इन्द्रं) उस बलवान् इन्द्रको (वाजसातये भराय) अन्न प्राप्त होनेवाले संग्रामके लिए (अह्वे) बुलाता हूँ । हे इन्द्र ! तुम (सुम्ने) सुखके लिए (नः अन्तमः भव) हमारे समीप आ जाओ, तथा (वृधे) हमें बढानेके लिए (सखा) हमारे मित्र बन जाओ ॥ ३ ॥

[३४१] हे (गिर्वणः इन्द्र) प्रशंसनीय इन्द्र ! (सुन्वतः इयं रातिः) सोम यागमें दी हुई यह सोमाहुति (ते) तुम्हारे लिए (क्षरति) बह रही है । तुम (मन्दानः) आनन्दित होते हुए (अस्य बर्हिषः वि राजसि) इस आसन पर विराजमान हो ॥ ४ ॥

[३४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् त्वा) जिस धनको तुमसे (सुन्वन्तः ईमहे) सोम याग करते हुए हम मांगते हैं, (तत् नः नूनं दद्धि) उस धनको हमें अवश्य दो । तथा (स्वः विदं चित्रं) सुखको प्राप्त करानेवाले अनेक प्रकारके (रयिं नः आ भर) ऐश्वर्यको हमें दो ॥ ५ ॥

स्वर्विदं चित्रं रयिं नः आभर– सुख देनेवाला अनेक प्रकारका धन हमें भरपूर दो । धन सुख देनेवाला चाहिये ।

[३४३] हे इन्द्र ! (यत् विचर्षणिः स्तोता) जब बुद्धिमान् स्तोता (ते गिरः) तेरी स्तुति (अति प्रशर्धयत्) शत्रुके पराजय करनेके लिए करता है, और (यत् जुषन्त) जब [वे स्तुतियां तेरे पास] पहुंचती हैं, तब [तुझमें सारे गुण] (वयाः इव) शाखाओंके समान (अनु रोहते) अनुकूलतासे बढते हैं ॥ ६ ॥

[३४४] (प्रत्नवत्) पहलेके समान (गिरः जनय) स्तुतियाँ करो (जरितुः हवं शृणुधी) स्तोताकी प्रार्थना सुनो । (मदे मदे) आनन्दित होने पर (सु-कृत्वने) अच्छे कर्म करनेवालेको धन (ववक्षिथ) दे दो ॥ ७ ॥

सुकृत्वने ववक्षिथ– अच्छे कर्म जो करता है उसे धन दे दो ।

[३४५] (अस्य) इस इन्द्रकी (सूनृताः) स्तुतियां [इसकी ओर] (प्रवता यतीः आपः न) नीचेकी ओर बहनेवाले जलप्रवाहोंकी तरह (क्रीळन्ति) जाती हैं, (यः दिवः पतिः) जो द्युलोकका स्वामी (अया धिया उच्यते) इस स्तुति द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— उस बलवान् इन्द्रको अन्न प्राप्त होनेवाले संग्रामके लिए सहायार्थ बुलाता हूँ । सुखके लिए हमारे पास आ जाओ । परमात्माके समीप होनेसे आनन्द मिलता है ॥ ३ ॥

हे स्तुतिके योग्य इन्द्र ! यज्ञमें दी गई यह सोमाहुति तेरे लिए बह रही है । तू इस रसको पीकर आनन्दित हो ॥४॥

हे इन्द्र ! हम तुझे सोम देते हैं, और यही तुझसे मांगते हैं कि हमें वही धन दे कि जो हमें सुख प्राप्त करानेवाला है । धन सदा सुख देनेवाला ही होना चाहिए ॥ ५ ॥

जब इन्द्र शत्रुका पराजय करनेके लिए जाता है, तब स्तोता उसकी स्तुति करते हैं, उन स्तुतियोंसे इन्द्रका बल पेडोंकी शाखाओंकी तरह बढता है । इसी तरह राष्ट्रका राजा जब शत्रुओंसे युद्ध करने जाए, तब कवि गण अपनी कविताओंसे राजा और सैनिकोंका सामर्थ्य और उत्साह बढायें ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारी उत्तम स्तुतियां सुनो और हमारे बीचमें जो उत्तम कर्म करनेवाला हो, उसे ही धन दो ॥ ७ ॥

जब द्युलोकके स्वामी इन्द्रकी स्तुति की जाती है, तब ये स्तुतियां उसकी तरफ उसी तरह बहती हैं कि जिस तरह नीचे स्थानकी तरफ नदियां ॥ ८ ॥

३४६ उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद् वशी । नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥९॥
३४७ स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा । गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥१०॥
३४८ तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः । आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥११॥
३४९ इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय । श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥१२॥
३५० हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यंदिने दिवः । जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥१३॥

अर्थ— [३४६] (यः) जो इन्द्र (नमोवृधैः) गुणवर्णनको बढानेवालों तथा (अवस्युभिः) संरक्षणकी इच्छा करनेवालोंके द्वारा (वशी) सबको वशमें करनेवाला (उत) और (कृष्टीनां एक इत् पतिः उच्यते) मनुष्योंका एक ही राजा कहलाता है, वह तू (सुते रण) सोमयागमें आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[३४७] हे मनुष्य ! (विपश्चितं श्रुतं स्तुहि) विद्वान् तथा प्रसिद्ध इन्द्रका गुणवर्णन करो, (यस्य प्रसक्षिणा हरी) जिसके शत्रुको पराजित करनेवाले घोडे (नमस्विनः दाशुषः गृहं) स्तुति करनेवाले तथा दान देनेवाले यजमानके घरको (गन्तारा) जाते हैं ॥ १० ॥

[३४८] हे (महे मते) महान् बुद्धिवाले इन्द्र ! (तूतुजानः) शीघ्रता करते हुए तुम (प्रुषितप्सुभिः आशुभिः अश्वेभिः) तेजस्वी रूपवाले तथा तेज दौडनेवाले घोडोंसे (यज्ञं आ याहि) हमारे यज्ञमें आओ (हि) क्योंकि (ते शं इत्) तुम्हारा आना कल्याणकारक है ॥ ११ ॥

१ महामतिः— इन्द्र महान् विद्वान् है । मतिमान है ।
२ ते शं इत्— तुम्हारा आना कल्याणकारक है ।
३ प्रुषित-प्सुः— तेजस्वी रूप " प्सुरिति रूप नाम (निघं. ३।७)

[३४९] हे (शविष्ठ सत्पते इन्द्र) बलवान् तथा सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्र ! (गृणत्सु रयिं धारय) स्तोताओंको धन दे दो । तथा (सूरिभ्यः) विद्वानोंको (अमृतं वसुत्वनं श्रवः) नष्ट न होनेवाले धनके साथ अन्न दो ॥ १२ ॥

१ सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वनं श्रवः— विद्वानोंको नष्ट न होनेवाला धनसे युक्त यशवाला अन्न दे दो ।
२ गृणत्सु रयिं धारय— उपासकोंको धन दे दो ।
३ सत्पतिः शविष्ठः— उत्तम पालन करनेवाला बलवान होता है ।

[३५०] हे इन्द्र ! मैं (त्वा) तुझे (सूरे उदिते) सूर्यके उदय होने पर (हवे) बुलाता हूँ और (दिवः मध्यंदिने हवे) दिनके मध्यभागमें भी बुलाता हूँ, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जुषाणः) [हमारी प्रार्थनाओंको] सुनते हुए (सप्तिभिः न आगहि) घोडोंसे हमारे पास आओ ॥ १३ ॥

भावार्थ— वह इन्द्र सबको वशमें करनेवाला तथा मनुष्योंका एक ही राजा है । अपने इन्द्रिय आदिको वशमें रखनेवाला मानवोंका उत्तम राजा होता है ॥ ९ ॥

प्रभुको प्रसन्न करनेवाला अपने भक्तके घर जाता है । राजाको भी अपने अनुयायियोंके घर जाकर समय समय पर उनकी पूछताछ करनी चाहिए ॥ १० ॥

हे उत्तम बुद्धिवाले इन्द्र ! तुम अपने तेजस्वी घोडोंसे हमारे यज्ञमें आओ, क्योंकि तुम्हारा आना कल्याणकारक है । महापुरुषोंका किसीके घर जाना सदा कल्याणकारक ही होता है ॥ ११ ॥

हे बलवान् तथा सज्जनोंके पालक इन्द्र ! तुम स्तोताओंको तथा विद्वानोंको धन दो । राजा बलवान् और सज्जनोंका पालक हो, तथा वह ज्ञानियोंको धन देकर उनका पालन पोषण करे ॥ १२ ॥

मैं प्रातःकाल, मध्याह्न अर्थात् सब समय इन्द्रको बुलाता हूं । वह मेरे पास आवे सबेरे और मध्य दिनमें प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १३ ॥

35

३५१ आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥१४॥
३५२ यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् । यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥१५॥
३५३ इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः । इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥१६॥
३५४ तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः । इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन् वया इव ॥१७॥
३५५ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥१८॥
३५६ स्तोता यत् ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे । शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥१९॥
३५७ तदिद् रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु । मनो यत्रा वि तद् दधुर्विचेतसः ॥२०॥

अर्थ— [३५१] हे इन्द्र ! (तु आ गहि) तू आ और (प्र तु द्रव) दौडकर आ, फिर (गोमतः सुतस्य मत्स्व) गोदुग्ध मिश्रित सोम रससे आनन्दित हो, फिर (यथा पूर्व्यं) पहलेके समान (विदे) धनकी प्राप्तिके लिए (तन्तुं तनुष्व) यज्ञका प्रसार कर ॥ १४ ॥

[३५२] हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! (यत् परावति असि) जो तुम दूर देशमें हो, हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (यत् अर्वावति) जो पासके देशमें हो (वा) अथवा (यत् समुद्रे) जो अन्तरिक्षमें हो, वहांसे (अन्धसः) सोम पीकर हमारा (अविता इत् असि) संरक्षण करनेवाले बनो ॥ १५ ॥

[३५३] (नः गिरः इन्द्रं वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां इन्द्रका वर्णन करें, तथा (सुतासः इन्दवः इन्द्रं) सोम निकाले हुए रस इन्द्रको बढावें । (हविष्मतीः विशः) यज्ञ करनेवाली प्रजायें (इन्द्रे अराणिषुः) इन्द्रमें आनन्दित होती हैं ॥१६॥

[३५४] (अवस्यवः विप्राः) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी जन (प्रवत्वतीभिः ऊतिभिः) शीघ्रकार्य करनेवाले संरक्षणके साधनोंके साथ रहनेवाले (तं इत्) उस इन्द्रका (अवर्धयन्) वर्णन करते हैं । तथा (क्षोणीः) पृथिवी पर रहनेवाले लोक भी (वयाः इव) वृक्षकी शाखाओंके समान (इन्द्रं) इन्द्रका ही वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥

[३५५] (त्रिकद्रुकेषु) यज्ञोंमें (देवासः) याजकोंने (यज्ञं चेतनं) पूजनीय तथा ज्ञानवान् इन्द्रका (अत्नत) वर्णन किया (तं सदावृधं इत्) उस सदा बढनेवाले इन्द्रका ही (नः गिरः वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां वर्णन करें ॥१८॥

[३५६] (ते अनुव्रतः स्तोता) तेरे नियमके अनुसार चलनेवाला स्तोता (ऋतुथा) ऋतुओंमें (यत् उक्थानि दधे) जब स्तोत्रोंसे तेरा गुणवर्णन करता है तब (सः) वह (अद्भुतः शुचिः पावकः उच्यते) अद्भुत शुद्ध तथा पवित्र करनेवाला कहा जाता है ॥ १९ ॥

[३५७] (यत्र) जिसमें (विचेतसः) ज्ञानी जन (तत् मनः विदधुः) उस मनको लगाते हैं, (रुद्रस्य तत् इत् यह्वं) रुद्रका वह ही महान् बल (प्रत्नेषु धामसु) प्राचीन स्थानोंमें (चेतति) प्रसिद्ध होता है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारे पास आ और सोमपान करके हमारे यज्ञको विस्तृत कर ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! दूरसे, पाससे अथवा अन्तरिक्षसे अर्थात् सब ओरसे हमारा संरक्षण करो ॥ १५ ॥

यज्ञ करनेवाली प्रजायें इन्द्रमें रमती हैं । यज्ञ करनेवाले इन्द्रमें प्रेम रखते हैं और यज्ञसे इन्द्रको बढाते हैं ॥ १६ ॥

अपने संरक्षणकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी उत्तम रक्षणके साधनोंके साथ रहनेवाले इन्द्रका उत्तम वर्णन करते हैं । जैसे वृक्षकी शाखायें वृक्षके आश्रयसे रहती हैं, उसी तरह सभी लोक इसी इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं ॥ १७ ॥

यज्ञोंमें इस इन्द्रकी स्तुति देवोंने की थी, उसी इन्द्रको हमारी स्तुतियां भी बढायें ॥ १८ ॥

इन्द्रके नियमके अनुसार चलनेवाला तथा ऋतुके अनुसार आचरण करनेवाला मनुष्य अद्भुत, शुद्ध और पवित्र होता है ॥ १९ ॥

ज्ञानी जहां मन लगाते हैं, रुद्रका वह ही महान् बल लोकोंमें प्रसिद्ध हो रहा है ॥ २० ॥

३५८ यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः । येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥२१॥
३५९ कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः । कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥२२॥
३६० उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् । अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥२३॥
३६१ तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः । नि बर्हिषि प्रिये सददध द्विता ॥२४॥
३६२ वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः । धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥२५॥
३६३ इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः । ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥२६॥

अर्थ- [३५८] हे इन्द्र ! (यदि) यदि तुम (मे सख्यं आवर) मेरी मित्रता स्वीकारते हो तो (इमस्य अन्धसः पाहि) इस सोमको पिओ (येन) जिससे हम (विश्वा द्विषः) सम्पूर्ण शत्रुओंको (अति अतारिम) पराजित कर सके ॥ २१ ॥

१ विश्वा द्विषः अति अतारिम— हम सम्पूर्ण शत्रुओंको जीते ।

[३५९] हे (गिर्वणः इन्द्र) प्रशंसनीय इन्द्र ! (ते स्तोता कदा शंतमः भवाति) तेरा स्तोता कब अत्यन्त सुखी होगा ? तथा (नः) हमें (गव्ये अश्व्ये वसौ) गायों, घोडों और ऐश्वर्यमें (कदा दधः) कब रखेगा ॥ २२ ॥

१ नः गव्ये अश्व्ये वसौ कदा दधः ?— हमें गौवें, घोडे और धन कब देगा ? इनकी प्राप्तिसे स्तोता सुखी होगा ।

[३६०] (उत) और (मदिन्तमं यं ईमहे) अधिक आनंद युक्त ऐसे जिस इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं, इस (अजुर्यस्य ते) जरारहित तुझ इन्द्रको (रथं) रथको (सु-स्तुता वृषणा हरी) अच्छी प्रकार प्रशंसित तथा बलवान् घोडे (वहतः) ले जावें ॥ २३ ॥

१ अ-जुर्य— बुढापा रहित । वह इन्द्र सदा तरुण रहता है ।

[३६१] (पुरु-स्तुतं यह्वं तं) बहुत प्रशंसित इस महान् इन्द्रकी (प्रत्नाभिः ऊतिभिः) प्राचीन संरक्षणके साधनोंके साथ (ईमहे) हम उपासना करना चाहते है । वह हमारे (प्रिये बर्हिषि) प्रिय यज्ञमें (द्विता अध नि सदद्) दो बार आकर बैठे ॥ २४ ॥

[३६२] हे (सु-पुरु-स्तुत) अत्यधिक प्रशंसित इन्द्र ! (ऋषिस्तुताभिः ऊतिभिः) ऋषियों द्वारा प्रशंसित संरक्षणके साधनोंसे हमें (वर्धस्व) बढाओ (च) और (पिप्युषीं इषं) पोषक अन्नको (नः अवधुक्षस्व) हमें दो ॥ २५ ॥

१ ऊतिभिः वर्धस्व— संरक्षक साधनोंसे हमें बढाओ !

२ पिप्युषीं इषं नः अवधुक्ष— पुष्ट करनेवाला अन्न हमें दो ।

[३६३] हे (अद्रि-वः इन्द्र) वज्रको हाथमें धारण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तुम (इत्था स्तुवतः) इस प्रकार स्तुति करनेवाले यजमानके (अविता इत् असि) संरक्षण करनेवाले हो, अतः मैं भी (ते मनोयुजं धियं) तुम्हारे मनको प्रसन्न करनेवाला स्तुति (इयर्मि) करता हूँ ॥ २६ ॥

त्वं अविता असि— तू रक्षण करनेवाला है ।

भावार्थ— इन्द्रसे मित्रता करने वाला सब शत्रुओंको जीत लेता है ॥ २१ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने स्तोताको गाय, घोडे, आदि पशु प्रदान करके उसे शीघ्र सुखी कर ॥ २२ ॥

इन्द्र सदा तरुण रहता है, वह कभी वृद्ध नहीं होता । ऐसे इन्द्रको सभी हरसहित करते हैं ॥ २३ ॥

बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इस इन्द्रकी हम स्तुति करना चाहते हैं, वह आकर हमारे पास बैठे ॥ २४ ॥

हे इन्द्र ! अपने संरक्षणके साधनोंसे हमें बढाओ और पोषण अन्न हमें दो । अन्न वही है, जो पोषण करता है ॥ २५ ॥

यह इन्द्र ही उनको स्तुति करनेवाले यज्ञ कर्ताओंका संरक्षण करनेवाला है, उसके संरक्षणको प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं भी इसकी स्तुति करता हूँ ॥ २६ ॥

३६४ इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये । हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥२७॥
३६५ अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् । उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥२८॥
३६६ इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद् दिवि । नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥२९॥
३६७ अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे । मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥३०॥
३६८ वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी । वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥३१॥
३६९ वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥३२॥

अर्थ— [३६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्या सधमाद्या प्रतद्वसू) उन साथ-साथ आनन्दित होनेवाले तथा विशेष धन्यतावाले (हरी) घोडोंको [अपने रथमें] (युजानः) जोडकर (सोमपीतये) सोमपानके लिए (इह अभि स्वर) यज्ञकी ओर आओ ॥ २७ ॥

[३६५] हे इन्द्र ! (ये तव रुद्रासः) जो तुम्हारे रुद्रवीर हैं, वे (अभि स्वरन्तु) हमारी ओर आवें और (श्रियं सक्षत:) शोभाको प्राप्त हों । (उत) और (मरुत्वतीः विशः) मरुतोंसे युक्त प्रजायें (प्रयः अभि) अन्नकी ओर आवें ॥ २८ ॥

[३६६] (अस्य) इस इन्द्रकी (इमाः प्रतूर्तयः) ये शत्रुका पराभव करनेवाली प्रजायें (दिवि यत् पदं) द्युलोकमें जो स्थान है, उसको (जुषन्त) प्राप्त करती हैं और (यथा विदे) जिससे धन प्राप्त हो, उसके लिए (यज्ञस्य नाभौ संदधुः) यज्ञके केन्द्रमें संघटित होकर रहती हैं ॥ २९ ॥

[३६७] (अयं) यह विद्वान् (प्राचि अध्वरे प्रयति) पूर्व दिशामें यज्ञके प्रारम्भ होने पर (दीर्घाय चक्षसे) दूर दृष्टिके लिए (यज्ञं आनुषक् विचक्ष्य) यज्ञको निरन्तर देख कर (मिमीते) इन्द्रका गुणवर्णन करता है ॥ ३० ॥

[३६८] हे (इन्द्र) इन्द्र (अयं ते रथः) यह तुम्हारा रथ (वृषा) बलवान् है, (उत) और (ते हरी वृषणा) तुम्हारे घोडे भी बलवान हैं, हे (शतक्रतो) अनेकों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वृषा) तुम स्वयं भी बलवान् हो तथा (हवः वृषा) तुम्हारी प्रार्थना कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है ॥ ३१ ॥

हवः वृषा— इन्द्रकी प्रार्थना बल बढानेवाली है ।

[३६९] (ग्रावा वृषा) [सोम पीसनेके] पत्थर मजबूत हैं, (अयं सुतः सोमः वृषा) यह निकाला हुआ सोमरस बलवान् है, तथा (मदः वृषा) [सोमपानसे उत्पन्न] आनन्द भी उत्तम है, (यं यज्ञं इन्वसि) जिस यज्ञमें तुम जाते हो वह भी (वृषा) कामनाओंको पूर्णकरनेवाला है, (हवः वृषा) तुम्हारी प्रार्थना भी कामनाको पूर्ण करनेवाली है ॥ ३२ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले तथा हर तरहसे तुम्हारी सहायता करनेवाले घोडोंसे हमारे पास आओ । घोडों ऐसे हों कि जो सदा आनन्दमें रहें और अपने स्वामीकी सहायता करनेवाले हों ॥ २७ ॥

हे इन्द्र ! जो तुम्हारे वीर सहायक हैं, वे शत्रुओंको रुलानेवाले हैं और शोभासे युक्त हैं । प्रजायें भी इन मरुतोंकी सहायता प्राप्त करें । राजाके भी जो सहायक हों, वे वीर और शत्रुओंको रुलानेवाले हों तथा हमेशा सजे धजे रहें, वे सभी प्रजाकी सहायता करनेवाले हों ॥ २८ ॥

शत्रुओंको पराजित करनेवाले वीर सैनिक द्युलोकको प्राप्त करते हैं, अर्थात् इनका यश द्युलोक तक जा पहुंचता है । इन वीरोंसे रक्षित होकर प्रजाएं यज्ञके शुभ कार्यको संघटित होकर करती हैं ॥ २९ ॥

प्राची दिशामें उदय होते ही विद्वान् जन यज्ञका प्रारंभ करते हैं, उन यज्ञोंमें दूर दृष्टीवाले ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ३० ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा रथ और घोडे सभी बलवान् हैं, तथा तुम स्वयं भी बलवान् हो, अतः तुम्हारी स्तुति स्तोताके कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है । वीरोंके सभी साधन बलवान् हों और वे स्वयं भी बलवान् हों ॥ ३१ ॥

इन्द्रके लिए सोम पीसनेके साधन, सोमरस, उसे पीनेसे उत्पन्न होनेवाला आनंद, यज्ञ और यज्ञमें की जानेवाली स्तुती सभी बलदायक हैं ॥ ३२ ॥

३७० वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥१३॥

[१४]

(ऋषिः- गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

३७१ यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१॥

३७२ शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

३७३ धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

३७४ न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [३७०] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (वृषा) बलवाला मैं (वृषणं) बलवाले (चित्राभिः ऊतिभिः) अनेक प्रकारके संरक्षण साधनोंके साथ रहनेवाले (त्वा) तुमको (हुवे) बुलाता हूँ। (हि) क्योंकि (प्रति स्तुतिं) तुम्हारे प्रति की गई स्तुतिको तुम (वावन्थ) सुनते हो (हवः वृषा) तुम्हारी प्रार्थना कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है ॥ १३ ॥

[१४]

[३७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यथा त्वं) जैसे तुम (वस्वः एक इत्) धनके अकेले ही स्वामी हो उसी प्रकार (यत् अहं ईशीय) जब मैं स्वामी हो जाऊं तो (मे स्तोता) मेरा स्तोता (गो सखा स्यात्) गायोंसे युक्त हो जावे ॥ १ ॥

[३७२] हे (शचीपते) इन्द्र ! शक्तियोंके स्वामी (यत् अहं गोपतिः स्यां) यदि मैं गायोंका स्वामी हो जाऊं, तो मैं (अस्मै मनीषिणे) इस बुद्धिमान्के लिए (दित्सेयं) धन देनेकी इच्छा करूं और (शिक्षेयं) उसकी सहायता करूं ॥ २ ॥

१ शिक्ष्- समर्थ होनेकी इच्छा, चेष्टा करना सीखना, सहायता करना, सिखाना ।

[३७३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पिप्युषी सूनृता धेनुः) तेरी बढनेवाली वाणी रूपी गाय (सुन्वते यजमानाय) सोम याग करनेवाले यजमानके लिए (गां अश्वं दुहे) गाय, घोडे आदि [ऐश्वर्यों] को देती है ॥ ३ ॥

[३७४] (यत् स्तुतः) जब प्रशंसित हो कर (मघं दित्ससि) ऐश्वर्य देनेकी इच्छा करते हो, तब हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते राधसः) तुम्हारे धनको (न देवः वर्ता अस्ति) न देव रोक सकता है, (न मर्त्यः) न मनुष्य ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! चूं कि तुम अपने भक्तोंकी प्रार्थनाओंको ध्यानपूर्वक सुनते हो, और उसकी हर कामनाओंको पूर्ण करते हो, अतः मैं बलशाली होते हुए भी तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ १३ ॥

यह इन्द्र सब धनोंका अकेला ही स्वामी है, अतः उसकी उपासना करके मैं भी धनका अकेला ही स्वामी बन जाऊं, तब मेरी स्तुति करनेवाला भी धनसम्पन्न हो जाए। धन किसी एक ही के पास न रहे अपितु सबके पास बहता रहे ॥ १ ॥

यदि मैं गायोंका स्वामी बनूं तो इस विद्वान्को धन दे दूं। मुझे धन मिलेगा तो मैं उसका दान सत्पुरुषोंको करूंगा ॥ २ ॥

इन्द्रकी स्तुति करनेसे सभी तरहके पशु आदि धन मिलते हैं। स्तुति करनेसे वाणी शुद्ध होती है और वाणीके शुद्ध होनेसे हरतरहका ऐश्वर्य मिलता है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जब प्रशंसित होकर तुम यजमानको धन देना चाहते हो, तब तुम्हारे धन दानको न देव रोक सकता है, न मनुष्य, अर्थात् कोई भी नहीं रोक सकता ॥ ४ ॥

×

३७५ यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
३७६ वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥
३७७ व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ ७ ॥
३७८ उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ८ ॥
३७९ इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ९ ॥

अर्थ— [३७५] इन्द्रने (दिवि ओपशं चक्राणः) द्युलोकमें विश्राम स्थान बनाकर (यत्) जब (भूमिं व्यवर्तयत्) भूमिको फैलाया, तब (यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्) यज्ञने इन्द्रके यशको बढाया ॥ ५ ॥

१ यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत् - यज्ञने इन्द्रको बढाया। "इन्द्र इदं हविरजुषतावीवृधत महो ज्यायोऽकृत" (तै. ब्रा. ३।५।१०।३)

२ ओपश- विश्राम स्थान, गद्दी, तकिया, सहारा, खम्भा।

[३७६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वावृधानस्य विश्वा धनानि जिग्युषः) वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा सम्पूर्ण [शत्रुओंके] धनोंको जीतनेवाले (ते) तुम्हारे (ऊतिं) संरक्षणको (वयं वृणीमहे) हम वरना चाहते हैं ॥ ६ ॥

ते ऊतिं वयं वृणीमहे- तेरे संरक्षणको हम वरना चाहते हैं।

[३७७] (इन्द्रः) इन्द्रने (सोमस्य मदे) सोमके उत्साहमें (यत् वलं अभिनद्) जब बलको मारा, तब (रोचना अन्तरिक्षं) प्रकाशमान् अन्तरिक्षको (वि अतिरत्) विस्तृत किया ॥ ७ ॥

[३७८] इन्द्रने (गुहा सतीः गाः) गुफामें रखी हुई गायोंको (आविष्कृण्वन्) प्रकाशित करते हुए (अंगिरोभ्यः) अंगिरा ऋषियोंके लिए उन्हें (उद् आजत्) बाहर निकाला, और (वलं अर्वाञ्चं नुनुदे) बलको नीचे मुखवाला किया ॥ ८ ॥

१ गुहा सतीः गाः अंगिरोभ्यः उद् आजत्- इन्द्रने गुहामें छिपाई हुई गायोंको अंगिरा ऋषियोंके लिए बाहर निकाला।

[३७९] (इन्द्रेण) इन्द्रने (दिवः) द्युलोकके सभी (रोचना) प्रकाशमान नक्षत्रोंको (दृळ्हानि दृंहितानि च) दृढ किया और बढाया, इन (स्थिराणि) स्थिर नक्षत्रोंको कोई (न पराणुदे) गिरा नहीं सकता ॥ ९ ॥

१ इन्द्रेण दिवः रोचना दृळ्हानि दृंहितानि च- इन्द्रने द्युलोकके प्रकाशमान नक्षत्रोंको दृढ किया और बढाया।

दृंहितानि- बढाया ' दृह दृहि बृहि वृद्धौ '

भावार्थ— सर्वशक्तिमान् प्रभुने जब द्युलोक और पृथ्वीलोकका विस्तार किया, तब पृथ्वी पर यज्ञ होने लगे और इन यज्ञोंमें प्रभुकी स्तुति गाई जाने लगी ॥ ५ ॥

इन्द्रके संरक्षण भक्तकी सम्पन्नता बढानेवाले, उसे भौतिक ऐश्वर्यसे युक्त करनेवाले हैं। ऐसे संरक्षणकी सभी कामना करें ॥ ६ ॥

इन्द्रने सोमके उत्साहमें बलको मारा। प्रकाशमान् अन्तरिक्षको उसने फैलाया ॥ ७ ॥

इन्द्रने गुहामें छिपाकर रखी हुई गायोंको बाहर निकाला तथा बलको नीचे मुहवाला किया। विद्युत्‌ने काले मेघ रूपी गुहाओंमें छिपी हुई प्रकाश किरणोंको बाहर निकाला और मेघको नीचेकी तरफ मुंहवाला करके उसे निर्वीर्य कर दिया ॥ ८ ॥

प्रभुकी शक्ति इतनी बडी है कि उसने बहुत पहले द्युलोक और उसमें नक्षत्रोंको इस प्रकार दृढतासे स्थिर कर दिया कि आजतक भी कोई उन्हें गिरा नहीं सका है ॥ ९ ॥

३८० अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ १० ॥
३८१ त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ ११ ॥
३८२ इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥ १२ ॥
३८३ अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥
३८४ मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ १४ ॥
३८५ असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥ १५ ॥

अर्थ— [३८०] हे (इन्द्र) इन्द्र (अपां ऊर्मिः मदन् इव) जैसे समुद्रकी लहर उत्तेजित होकर जाती है, उसी प्रकार (स्तोमः) तेरा स्तोत्रभी तेरे पास (अजिरायते) शीघ्र जाता है और (ते मदाः अराजिषुः) तेरे उत्साह उज्वल होते हैं ॥ १० ॥

[३८१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं हि) तुम ही (स्तोमवर्धनः) स्तोत्रको बढानेवाले (उक्थवर्धनः) तथा स्तुतिको बढानेवाले (उत) और (स्तोतृणां भद्रकृत्) स्तोताओंका कल्याण करनेवाले (असि) हो ॥ ११ ॥

[३८२] (केशिना हरी) बालोंवाले घोडे (सु-राधसं इन्द्रं इत्) उत्तम धनवाले इन्द्रको (सोमपेयाय) सोमपानके लिए (यज्ञं उपवक्षतः) यज्ञके पास ले आवें ॥ १२ ॥

[३८३] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) जब (विश्वा स्पृधः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको तुमने (अजयः) जीत लिया, तब (अपां फेनेन) जलके झागसे (नमुचेः शिरः उत् अवर्तयः) नमुचिका सिर काट दिया ॥ १३ ॥

[३८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तुमने (मायाभिः उत् सिसृप्सतः) कुशलतासे सर्वत्र फैलनेकी इच्छा करनेवाले और (द्यां आरुरुक्षतः) द्युलोक पर चढनेकी इच्छावाले (दस्यून्) राक्षसोंको (अव अधूनुथाः) अच्छी तरह कंपाया ॥ १४ ॥

अधूनुथाः– कंपाया " धूञ् कंपने "
दस्यून् अव अधूनुथाः– दुष्टोंका नाश किया ।

[३८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोम-पाः उत्-तरः भवन्) सोम पीनेवाले तथा उत्तम होते हुए तुमने (अ-सुन्वां वि-षूचीं संसदं) सोमयाग न करनेवालोंके परस्पर विरोध करनेवालोंके संगठनको (वि अनाशयः) नष्ट किया ॥ १५ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार समुद्रकी लहरें सदा उत्तेजित होकर उछलती रहती हैं, उसी तरह वीरोंके हृदयोंमें उत्साह सदा उछलता रहे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्रको बढानेवाले और स्तोताओंका कल्याण करनेवाले हो । वीर राजा सदा अपने अनुयायियोंका कल्याण करे ॥ ११ ॥

उत्तम और सुन्दर रूपवाले घोडे इस इन्द्रको सोमपीनेके लिए यज्ञके पास ले जाते हैं ॥ १२ ॥

इन्द्रने समुद्रके झागसे नमुचिका सिर काट डाला । नमुचिका अर्थ है जल्दी न जानेवाला ऐसा रोग । रोग समुद्री झागके अनुपानसे नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

इन्द्रने अपनी मायाके बलसे द्युलोक पर चढनेकी इच्छा करनेवाले राक्षसोंको अच्छी तरह नष्ट किया । मेघ असुर है, जो नानारूप धारण करके सारे आकाशमें छा जानेकी कोशिश करते हैं । बिजली उन मेघोंको कंपा कर नीचे गिरा देती और उन्हें नष्ट कर देती है ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! तुमने सोमयाग न करनेवालोंके और परस्पर विरोधसे भिन्न-भिन्न मार्गोंसे आनेवालोंके संगठनको नष्ट किया । यज्ञ न करनेसे समाजका संगठन नहीं होता और संगठन अथवा अखण्डताके न होनेसे समाज नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

[१५]

(ऋषिः- गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । देवता- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक् ।)

३८६ तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतं । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ १ ॥

३८७ यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ २ ॥

३८८ स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥

३८९ तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥

३९० येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥

---

[१५]

अर्थ— [३८६] हे स्तोताओ ! (पुरु-हूतं पुरु-स्तुतं तं उ) बहुतोंके द्वारा बुलाये गए तथा बहुतों द्वारा प्रशंसित उस इन्द्रकेही [गुणोंको] (अभि प्र गायत) गाओ (तविषं इन्द्रं) महान् इन्द्रकी (गीर्भिः आ विवासत) स्तुतियोंसे सेवा करो ॥ १ ॥

[३८७] (द्विबर्हसः यस्य) दोनों स्थानोंमें बढनेवाले इन्द्रके (बृहत् सहः) बडे बलको (रोदसी दाधार) द्यावा पृथिवी धारण करते हैं, वह इन्द्र (वृषत्वना) अपने बलसे (अज्रान् गिरीन्) शीघ्र चलनेवाले मेघोंको तथा (स्वः अपः) रहनेवाले जलोंको [धारण करता है] ॥ २ ॥

[३८८] हे (पुरु-स्तुत इन्द्र) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (सः) वह तुम (राजसि) प्रकाशित होते हो, और (जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे) जीतने योग्य धन और यशको प्राप्त करनेके लिए (एकः वृत्राणि जिघ्नसे) अकेलेही वृत्रोंको मारते हो ॥ ३ ॥

[३८९] हे (अद्रि-वः) पर्वतोंके किलोंमें रहनेवाले इन्द्र ! हम (ते तं) तेरे उस (वृषणं, पृत्सु सासहिम्) बलवान्, युद्धोंमें शत्रुओंके जीतनेवाले (लोक-कृत्नुं) लोकोंको उत्पन्न करनेवाले और (हरि-श्रियं) घोडोंके आश्रयसे रहनेवाले (मदं) उत्साहका (गृणीमसि) वर्णन करते हैं । ॥ ४ ॥

१ अद्रि-वः ते तं मदं गृणीमसि- हे पर्वतोंके किलोंमें रहनेवाले इन्द्र ! हम तेरे उस उत्साहका वर्णन करते हैं ।

२ अद्रि-वः- वज्रधारी, किलेमें रहनेवाला

३ पृत्सु सासहिः- युद्धोंमें विजयी

[३९०] हे इन्द्र ! (येन) जिस सामर्थ्यसे तुमने (आयवे मनवे च) आयु और मनुके लिए (ज्योतींषि विवेदिथ) सूर्यादिकोंको प्रकाशित किया, (मन्दानः) उस सामर्थ्यसे आनंदित होकर (अस्य बर्हिषः) इस आसनपर (वि राजसि) विराजमान होओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! बहुतों द्वारा अपनी रक्षाके लिए बुलाये जानेवाले तथा अत्यंत प्रशंसित इन्द्रकी स्तुति तुम गाओ, स्तुतियोंसे तुम उसकी सेवा करो ॥ १ ॥

वह इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शीघ्र चलनेवाले मेघोंको और बहनेवाले जलोंको धारण करता है । ऐसे इन्द्रके बलको द्युलोक और पृथ्वीलोक धारण करते हैं ॥ २ ॥

वह इन्द्र जीतने योग्य धन और यशको प्राप्त करनेके लिए अकेलेही वृत्रोंको मारता है, इसीलिए वह तेजस्वी होता है । शत्रुओंको मारकरही तेज प्राप्त किया जाता है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! पर्वतोंके किलोंमें रहनेवाले, बलवान्, युद्धोंमें शत्रुओंको जीतनेवाले और घोडोंकी सहायतासे शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले इन्द्रके उत्साहका हम वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जिस बलसे तुमने सूर्यादिको चमकाया, उस बलके साथ तुम इस आसन पर विराजमान होओ ॥ ५ ॥

३९१ तदद्या चित् त उक्थिनो ऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥
३९२ तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ ७ ॥
३९३ तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥
३९४ त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ९ ॥
३९५ त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे । सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥ १० ॥
३९६ सत्रा त्वं पुरुष्टुत एको वृत्राणि तोशसे । नान्य इन्द्रात् करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥

अर्थ— [३९१] हे इन्द्र ! (ते तत्) तेरे उस बलकी (पूर्वथा अद्य चित्) पहलेके समान आज भी (उक्थिनः अनुष्टुवन्ति) स्तोतागण प्रशंसा करते हैं। तुम (वृषपत्नीः अपः) बरसनेवाले मेघोंकी पत्निरूप जलोंको (दिवे दिवे) प्रतिदिन (जय) जीतो ॥ ६ ॥

[३९२] हे इन्द्र ! (तव त्यद् बृहत् इन्द्रियं) उस तेरे महान् पराक्रम, (शुष्मं) बल (उत) और (क्रतुं) कर्म तथा (वरेण्यं वज्रं) स्वीकारने योग्य वज्रका (धिषणा शिशाति) स्तुति गुण वर्णन करती है ॥ ७ ॥

[३९३] हे इन्द्र ! (द्यौः) द्युलोक (तव पौंस्यं) तुम्हारे बलको तथा (पृथिवी) पृथिवी (श्रवः) तुम्हारे यशको (वर्धति) बढाती है। (त्वां) तुम्हें (आपः पर्वतासः च) जल तथा मेघ (हिन्विरे) प्रसन्न करते हैं ॥ ८ ॥

द्यौः तव पौंस्यं श्रवः वर्धति– द्युलोक तेरे पौरुषका और यशका वर्णन करता है।

[३९४] हे इन्द्र ! (बृहन् क्षयः) महान् निवासका हेतु (विष्णुः मित्रः, वरुणः) विष्णु, मित्र और वरुण (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति करते हैं (मारुतं शर्धः) मरुतोंका बल भी (अनु मदति) तुझे उत्साहित करता है ॥ ९ ॥

[३९५] हे इन्द्र ! (त्वं वृषा) तुम बलवान् हो, और (जनानां) जनोंके बीचमें (मंहिष्ठः जज्ञिषे) सबसे महान् समझे जाते हो, तुम (सु-अपत्यानि सत्रा) सुन्दर पुत्रादिके सहित (विश्वा) सम्पूर्ण धनोंको (दधिषे) धारण करते हो ॥ १० ॥

[३९६] हे (पुरु-स्तुत) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (त्वं) तुम (एकः) अकेलेही (वृत्राणि सत्रा) शत्रुओंको एक साथ (तोशसे) मारते हो, (इन्द्रात् अन्यः) इन्द्रसे भिन्न कोई दूसरा ऐसा (करणं) कर्म (भूयः न इन्वति) बारंबार नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

सत्रा– एक साथ, महान् ' महन्नामैतत् इति सायणः '

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरे उस बलकी पहलेके समान आज भी स्तोतागण प्रशंसा करते हैं। अतः तुम बरसनेवाले मेघोंके जलोंको प्रतिदिन बरसाओ ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तेरा पराक्रम, बल, कर्मशक्ति और श्रेष्ठ वज्र इनकी हमारी बुद्धि प्रशंसा करती है ॥ ७ ॥

द्युलोक इस इन्द्र बलका तथा पृथिवी इन्द्रके यशका वर्णन करके उसका यश बढाती है, तब जल तथा मेघ भी उस इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ॥ ८ ॥

जो सब प्राणियोंके निवासको सहज बनानेवाले हैं, ऐसे विष्णु, मित्र और वरुण भी इस इन्द्रकी स्तुति करते हैं और मरुतोंका बल भी इसउस इन्द्रको उत्साहित करता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तुम जनोंके बीचमें सबसे महान् हो। उत्तम पुत्रोंके साथ सब धनोंको धारण करते हो। सभी प्राणी इन्द्रके पुत्र हैं, पर उत्तम कर्म करनेवाले पर इन्द्रका स्नेह अधिक रहता है ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम अकेलेही वृत्रोंको एक साथ मार देते हो। ऐसे कार्यको इन्द्रसे भिन्न दूसरा कोई नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

३९७ यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये । अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥
३९८ अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् । इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥ १३ ॥

[१६]

(ऋषिः- इरिम्बिठिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

३९९ प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
४०० यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
४०१ तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥
४०२ यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥ ४ ॥

अर्थ— [३९७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जिस समय (ऊतये) संरक्षणके लिए (त्वा) तुम्हें लोग (मन्मशः) स्तोत्रसे (नाना हवन्ते) अनेक प्रकारसे बुलाते हैं, (अत्र) उसी समय (अस्माकेभिः नृभिः) हमारे नेताओंके साथ रहकर (स्वः जय) धनोंको जीतो ॥ १२ ॥

[३९८] हे स्तोता ! (नः महे क्षयाय) हमारे बडे निवासके लिए तथा (जैत्राय) जयके लिए (विश्वा रूपाणि आ विशन्) सम्पूर्ण रूपोंमें रहकर तुम (अरं शचीपतिं इन्द्रं हर्षय) सामर्थ्यवान्, शक्तियोंके स्वामी इन्द्रको प्रसन्न करो ॥ १३ ॥

[१६]

[३९९] हे स्तोता ! (चर्षणीनां सम्राजं) मनुष्योंके सम्राट् (गीर्भिः नव्यं) स्तुतियोंसे प्रशंसनीय (नरं) नेता (नृ-षाहं) शत्रुको पराजित करनेवाले (मंहिष्ठं) सबसे महान् (इन्द्रं प्र स्तोत) इन्द्रकी प्रशंसा करो ॥ १ ॥

[४००] (यस्मिन्) जिस इन्द्रमें (विश्वानि उक्थानि श्रवस्या च) सम्पूर्ण स्तोत्र और यश (समुद्रे अपां अवः न) समुद्रमें जल तरङ्गके समान (रण्यन्ति) शोभित होते हैं ॥ २ ॥

[४०१] मैं (ज्येष्ठराजं) महान् राजा, (भरे महः कृत्नुं) संग्राममें महान् कर्म करनेवाले (वाजिनं) बलवान् (तं) उस इन्द्रकी (सनिभ्यः) धन प्राप्तिके लिए (सु-स्तुत्या) उत्तम वाणीसे (आ विवासे) प्रशंसा करता हूं ॥ ३ ॥

[४०२] (यस्य मदाः) जिसके पराक्रम (अ-नूनाः) महान्, (गभीराः) गम्भीर, (उरवः) विस्तृत (तरुत्राः) त्वरासे शत्रुको मारनेवाले (शूरसातौ हर्षुमन्तः) युद्धमें अधिक उत्तेजित होनेवाले हैं [ऐसे इन्द्रकी स्तुति करता हूँ] ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस समय तुझे लोग संरक्षणके लिए बुलाते हैं, उस समय तू उनके पास जा और शत्रुओंको जीतनेमें उनकी सहायता कर ॥ १२ ॥

सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर सामर्थ्यवान् इन्द्रको प्रसन्न करो । सब रूपोंमें निरीक्षण करके सर्व व्यापक इन्द्रको वहां देखकर उसे प्रसन्न करो । महान् निवास तथा विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करो ॥ १३ ॥

हे मनुष्यो ! मानवोंके सम्राट् नेता, शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले बडे इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

जिस तरह समुद्रमें उठनेवाली लहरें समुद्रमेंसेही उठती हैं, और उसीमें लीन भी हो जाती हैं, उसी तरह सभी स्तोत्र उस इन्द्रमेंसे उठते हैं और उसीमें विलीन भी हो जाते हैं ॥ २ ॥

श्रेष्ठ राजा, युद्धमें महान् कर्म करनेवाले बलवान् उस वीरकी प्रशंसा करता हूं ॥ ३ ॥

इन्द्रका उत्साह कभी क्षीण नहीं होता, वह सदा गंभीर रहता है । उसी उत्साहसे प्रेरित होकर इन्द्र सदा शत्रुको मारता है ॥ ४ ॥

४०३ तमिद् धनेषु हितेष्व्ऽधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ ५ ॥
४०४ तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः । एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥
४०५ इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषि-रिन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान् महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥
४०६ स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः । एकश्चित् सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥
४०७ तमर्केभिस्तं सामभि-स्तं गायत्रैश्चर्षणयः । इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४०३] (धनेषु हितेषु) संग्रामोंके प्रारम्भ हो जाने पर (तं इत्) उसी इन्द्रकोही (अधिवाकाय) अपनी तरफसे लडनेके लिए लोग (हवन्ते) बुलाते हैं, क्योंकि (येषां इन्द्रः) जिनके पक्षमें इन्द्र होता है (ते जयन्ति) वे ही जीतते हैं ॥ ५ ॥

[४०४] (तं) उस इन्द्रको लोग (च्यौत्नैः इत्) बलके कार्योंसेही (आर्यन्ति) प्राप्त कर सकते हैं, और (चर्षणयः) मनुष्य (तं) उस इन्द्रको (कृतेभिः) कर्मोंसेही [पा सकते हैं] (एषः इन्द्रः वरिवः कृत्) यह इन्द्र धनका देनेवाला है ॥ ६ ॥

[४०५] (इन्द्रः ब्रह्मा) इन्द्र ज्ञानी है, (इन्द्रः ऋषिः) इन्द्र सर्व द्रष्टा है, (इन्द्रः पुरू पुरुहूतः) इन्द्र बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाया जाता है, तथा (महीभिः शचीभिः महान्) अपनी बडी बडी शक्तियोंसे वह महान् है ॥७॥

१ इन्द्रः ब्रह्मा— इन्द्र ज्ञानी है ।
२ इन्द्रः ऋषिः— इन्द्र द्रष्टा है ।
३ इन्द्रः पुरुहूतः— इन्द्र बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाया जाता है ।
४ महीभिः शचीभिः महान्— इन्द्र अपनी बडी शक्तियोंसे महान है ।

[४०६] (सः स्तोम्यः) वह इन्द्र स्तुतिके योग्य है, (सः हव्यः) वह बुलाने योग्य है, (सत्यः) अविनाशी (सत्वा) [अपने सामर्थ्यसे] बलवान् है, (तुवि-कूर्मिः) बहुत कर्म शीघ्र करनेवाला है, और (एकः चित् सन् अभिभूतिः) अकेला होते हुए भी शत्रुओंको हरानेवाला है ॥ ८ ॥

१ सत्वा— सत्ता, बल, सत्व गुण, प्राण, चैतन्यता, शक्ति, दृढता, उत्साह, आत्मानुशासन, शत्रुको दुःख पहुंचानेवाला ' शत्रूणां अवसादयिता इति सायणः '

[४०७] (चर्षणयः क्षितयः) ज्ञानी मनुष्य (अर्केभिः सामभिः गायत्रैः च) ऋचा, साम और गायत्री छंदमंत्रोंसे (तं तं तं इन्द्रं अभि वर्धन्ति) उस इन्द्रके यशको चारों ओर बढाते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— संग्रामके प्रारम्भ हो जाने पर उसी इन्द्रको लोग बुलाते हैं। जिनके पक्षमें इन्द्र होता है, वे जीतते हैं ॥५॥

इस इन्द्रकी प्राप्ति सदा उत्तम पराक्रम तथा उत्तम उत्साहसेही हो सकती है। इन्द्रको प्राप्त करनेके येही दो साधन हैं ॥ ६ ॥

इन्द्र ज्ञानी है, वह सर्वज्ञ और सब कुछ देखनेवाला है। इसीलिए वह सबके द्वारा बुलाया जाता है। वह अपनी शक्तियोंके कारणही महान् है। कोई भी मनुष्य अपनीही शक्तिके कारण महान् बन सकता है। दूसरोंकी शक्तिके आधार पर महान् बनना असंभव है ॥ ७ ॥

वह इन्द्र स्तुतिके योग्य है, इसीलिए वह बुलाने योग्य है। वह अविनाशी होते हुए भी अपनी शक्तिसेही बलवान् है। बलवान् होनेके लिए उसे दूसरेकी शक्तिकी आवश्यकता नहीं पडती। वह बहुत शीघ्र कर्म करनेवाला है, इसीलिए वह अकेला होते हुए भी अनेक शत्रुओंको हरानेवाला है ॥ ८ ॥

ज्ञानी मनुष्य अनेक छन्दोंसे स्तोत्रोंका गान करके इस इन्द्रका उत्साह बढाते हैं ॥ ९ ॥

४०८ प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥
४०९ स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ११ ॥
४१० स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ १२ ॥

[१७]

(ऋषिः- इरिम्बिठिः काण्वः । देवता- इन्द्रः, १४ वास्तोष्पतिर्वा । छन्द- गायत्री प्रगाथः = (१४ बृहती, १५ सतोबृहती) ।)

४११ आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

अर्थ— [४०८] (वस्यः अच्छ प्रणेतारं) धनका दान करानेवाले, (समत्सु ज्योतिः कर्तारं) युद्धोंमें प्रकाश करनेवाले (युधा अमित्रान् सासह्वांसं) युद्धमें शत्रुओंको जीतनेवाले [इन्द्रका मनुष्य यश गाते हैं] ॥ १० ॥

१ समत्सु ज्योतिः कर्ता— युद्धोंमें प्रकाश करनेवाला,

२ युधा अमित्रान् सासह्वान्— युद्धमें शत्रुओंको पराजित करनेवाला इन्द्र है ।

[४०९] (सः नः पप्रिः) वह हमारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, (पुरु-हूतः इन्द्रः) ऐसा बहुतों द्वारा बुलायेजानेवाला वह इन्द्र (विश्वा द्विषः) सम्पूर्ण शत्रुओंसे हमें (नावा) नाव द्वारा (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक (अति पारयाति) पार करा दे ॥ ११ ॥

१ इन्द्रः विश्वा द्विषः नावा स्वस्ति अति पारयाति— इन्द्र सब शत्रुओंसे हमें, नौका द्वारा जैसे पार करते हैं वैसे कल्याण पूर्वक पार कर दे ।

[४१०] हे (इन्द्र) इन्द्र (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः दशस्य) बलोंसे, अन्नोंसे युक्त धन दे, (च) और (गातुय) जाने योग्य मार्ग दिखा । (च) तथा (नः) हमें (सुम्नं अच्छ नेषि) सुखके पास पहुंचा ॥ १२ ॥

१ वाजेभिः दशस्य— बलों और अन्नोंके साथ धन दे ।

२ गातुय— उत्तम मार्ग बता ।

३ सुम्नं अच्छनेषि— सुखके पास ले जा ।

[१७]

[४११] हे (इन्द्र) इन्द्र (आ याहि) आओ, और (ते हि सु-षुम) तुम्हारे लिए अच्छी प्रकार निकाले गए (इमं सोमं पिब) इस सोमको पियो, (मम इदं बर्हिः आसद) मेरे इस आसन पर बैठो ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र लोगोंके द्वारा धनका दान कराता है, युद्धोंमें सर्वत्र अपने तेजका प्रकाश फैलाता है और अपने तेजके सहारे शत्रुओंको जीतनेवाला है, इसीलिए लोग इस इन्द्रका यश गाते हैं । जो वीर ऐसे गुणोंसे युक्त होगा, उस वीरकी प्रशंसा सब जगह होगी ॥ १० ॥

इन्द्र प्राणियोंकी हर कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, इसीलिए सब प्राणी उसे बुलाते हैं । ऐसा वह इन्द्र हमें शत्रुओंसे भरे संग्रामके उस पार उसी तरह ले जाए, कि जिस तरह लोग नावसे नदीके उस पार जाते हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! हमें तू उत्तम बल और अन्नसे युक्त धन देकर हमें आगे बढनेके लिए उत्तम मार्ग दिखा, उस उत्तम मार्गसे चलकर हम सुख प्राप्त करें ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! हमारे पास आकर इस आसन पर बैठो और हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पी । वीरोंका इसी तरह सत्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

४१२ आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥
४१३ ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
४१४ आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥
४१५ आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥
४१६ स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वे तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥
४१७ अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

अर्थ—[४१२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ब्रह्म-युजा) कहने मात्रसे [रथमें] जुड जानेवाले, (केशिना हरी) अयाल वाले घोडे (त्वा आवहतः) तुम्हें यहाँ ले आवें, और तुम (नः ब्रह्माणि उप शृणु) हमारे स्तोत्रोंको पाससे सुनो ॥२॥

ब्रह्मयुजा हरी— हमारे मात्रसे रथके साथ जुड जानेवाले घोडे ।

[४१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमपां त्वा) सोम पीनेवाले तुमको (सोमिनः सुतावन्तः) सोमयाग करनेवाले (वयं ब्रह्माणः) हम ज्ञानी (युजा हवामहे) साथ बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[४१४] हे इन्द्र ! (सुतावतः नः) सोमयाग करनेवाले हमारी (सु-स्तुतीः उप आ याहि) उत्तम स्तुतियोंके पास आओ, और हे (सु-शिप्रिन्) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! (अस्माकं अन्धसः पिब) हमारे सोमरसों को पीओ ॥ ४ ॥

[४१५] हे इन्द्र ! मैं (ते कुक्ष्योः) तुम्हारे कुक्षियोंको (आ सिंचामि) सोमसे भरता हूँ, वह सोम तुम्हारे (गात्रा अनु वि धावतु) प्रत्येक अंगमें दौडे, तुम (मधु) सोम (जिह्वया गृभाय) जीभसे चखो ॥ ५ ॥

[४१६] हे इन्द्र ! (सं-सु-दे ते) उत्तम धनोंका देनेवाले तुम्हारे लिए यह (मधुमान्) शहद मिश्रित सोम (स्वादुः अस्तु) स्वादिष्ट हो, तथा (सोमः) यह सोम (तव तन्वे) तुम्हारे शरीर और (ते हृदे) तुम्हारे हृदयके लिए (शं अस्तु) सुखकारी हो ॥ ६ ॥

[४१७] हे (विचर्षणे इन्द्र) दूरदर्शी इन्द्र ! (अयं सोमः) यह सोम (जनीः इव) जैसे स्त्रियां सफेद कपडोंसे ढंकी रहती हैं, उसी प्रकार (अभि संवृतः) गायके दूधसे मिश्रित होकर (त्वा प्र सर्पतु) तुम्हारी ओर बढे ॥ ७ ॥

भावार्थ— संकेत मात्रसे जुडजानेवाले घोडे इन्द्रको हमारे पास ले आवें, ताकि वह हमारे स्तोत्रको पाससे सुन सके । घोडे ऐसे सुशिक्षित हों ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सोमपान करनेवाले तेरे लिए हमने यह सोमरस तैय्यार करके रखा हुआ है, और हम ज्ञानी तुझे बुलाते भी हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हमने सोमरसको निचोडकर तैय्यार करके रखा हुआ है, अतः तुम हमारे पास आकर इन सोमरसोंको पीओ ॥ ४ ॥

सोमरस पीनेके बाद इन्द्रके शरीरके प्रत्येक अंगमें उस रसके कारण उत्साह दौड जाता है । सोमरस उत्साह प्रदान करता है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम उत्तम धनोंको देनेवाले हो, अतः यह शहदमिश्रित सोम तुम्हें स्वादिष्ट लगे और तुम्हारे शरीर और हृदयको सुख देनेवाला हो । सोमरस शरीर और हृदयको सुख देता है । अतः सोमरसको नशीला कहना दोषपूर्ण है, क्योंकि नशा हृदय और शरीरको सुख नहीं देता ॥ ६ ॥

जिस तरह स्त्रियें सफेद और शुभ्र कपडोंमें बहुत सुन्दर लगती हैं, उसी तरह, गायके दूधसे मिश्रित होनेके कारण शुभ्र और तेजस्वी हुआ सोमरस बहुत सुशोभित होता है । सोमरस तैय्यार करनेके बाद उसमें गायका दूध मिलाया जाता है ॥ ७ ॥

४१८ तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥
४१९ इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥
४२० दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥ १० ॥
४२१ अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ११ ॥
४२२ शाचिगो शाचिपूजनाऽयं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ १२ ॥

अर्थ— [४१८] (तुवि-ग्रीवः, वपु-उदरः, सु-बाहुः इन्द्रः) बलवान गलेवाला, बडे पेटवाला तथा उत्तम भुजाओंवाला इन्द्र (अन्धसः मदे) सोमके उत्साहमें (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंको मारता है ॥ ८ ॥

१ सु-बाहुः इन्द्रः वृत्राणि जिघ्नते— उत्तम भुजाओंवाला इन्द्र शत्रुओंको मारता है।

[४१९] (विश्वस्य ईशान इन्द्र) हे विश्व पर शासन करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तुम (ओजसा पुरः प्र इहि) सामर्थ्य युक्त होकर आगे आगे चलो और हे (वृत्र हन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तुम (वृत्राणि जहि) शत्रुओंको मारो ॥ ९ ॥

[४२०] हे इन्द्र ! (येन सुन्वते यजमानाय) जिससे सोम याग करनेवाले यजमानके लिए (वसु प्रयच्छसि) धन देते हो, वह (ते अङ्कुशः) तुम्हारा आयुध (दीर्घः) बहुत बडा है ॥ १० ॥

१ ते अङ्कुशः दीर्घः— हे इन्द्र ! शासन करनेकी तुम्हारी शक्ति बहुत बडी है।

[४२१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अयं सोमः) यह सोम (बर्हिषि अधि) यज्ञमें (नि-पूतः) पवित्र करके रखा है (ईं) अब (आ इहि, द्रव) आ, दौड, (अस्य पिब) इस सोमको पी ॥ ११ ॥

[४२२] हे (शाचि-गो) शक्तिशाली गौओंवाले तथा (शाचि-पूजन) प्रसिद्ध यशवाले इन्द्र ! (ते रणाय) तुम्हें आनन्दित करनेके लिए (अयं सुतः) यह सोम है। हे (आखण्डल) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! तुम (प्र हूयसे) हमारे द्वारा बुलाये जाते हो ॥ १२ ॥

१ आखंडल— शत्रुके टुकडे टुकडे करनेवाला।

२ शाचि-गो— शक्तिशाली इंद्रियोंवाला, गौओंवाला।

भावार्थ— इन्द्रका शरीर देखनेमें बहुत सुन्दर है, उसकी गर्दन मोटी है, उत्तम भुजायें हैं, ऐसी भुजाओंसे वह इन्द्र सोमके उत्साहमें भरकर वृत्रोंको मारता है। ऐसा शरीर और उत्साह वीरोंका भी होना चाहिए ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम बलसे युक्त होकर आगे आगे चलो। यह इन्द्र आत्यधिक बलवान् होनेसे युद्धोंमें सबसे आगे रहता है। हे इन्द्र ! शत्रुओंको मारो ॥ ९ ॥

इन्द्रकी शक्ति इतनी अधिक है कि वह दूर देशमें भी रहकर सारे विश्व पर शासन करता है। उसका अंकुश सबको नियंत्रणमें रखता है। इसी तरह राजाका नियंत्रण सारे राष्ट्रको शासित करे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! यज्ञमें यह सोमरस तेरे लिए पवित्र करके रखा गया है, उसे तू पी ॥ ११ ॥

इन्द्रका स्वरूप शक्तिशाली है, अपनी शक्तिके कारणही वह सर्वत्र पूजा जाता है। इसी शक्तिके कारण लोग इसे सोमरस पीनेके लिए बुलाते हैं ॥ १२ ॥

४२३ यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ १३ ॥

४२४ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांऽसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ १४ ॥

४२५ पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।
भूर्णिमश्वं नयत् तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ १५ ॥

[१८]

(ऋषिः- इरिम्बिठिः काण्वः । देवता- आदित्याः; ४, ६, ७, अदितिः; ८ अश्विनौ; ९ अग्निसूर्यानिलाः।
छन्दः- उष्णिक् ।)

४२६ इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥ १ ॥

अर्थ— [४२३] हे (शृंगवृषः न-पात्) किरणोंकी वर्षा करनेवाले सूर्यको न गिरानेवाले इन्द्र ! (ते प्र-न-पात्) तुम्हें न गिरानेवाला (यः कुण्डपाय्यः) जो कुण्डपाय्य यज्ञ है, (अस्मिन्) इस यज्ञमें ऋषिगण (मनः आ निदध्रे) मनको लगाते हैं ॥ १३ ॥

१ शृंगवृषः— ऋषि, [शृंग] किरणोंको (वृषः) बरसाने वाला सूर्य ।
२ कुण्डपाय्यः— एक यज्ञ विशेष ।
३ प्र-न-पात्— न गिरानेवाला, ऊंचा उठानेवाला

[४२४] हे (वास्तोष्पते) गृहपते ! [हमारे घरका] (स्थूणा) खम्भा (ध्रुवा) दृढ हो, तथा (सोम्यानां) सोमपान करनेवाले हमारे (अंस-त्र) शरीरका संरक्षक हो, (शश्वतीनां पुरां भेत्ता) बहुत कालसे बसी हुई शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला (द्रप्सः) सोम पीनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (मुनीनां सखा) ऋषियोंका मित्र हो ॥ १४ ॥

१ शश्वतीनां पुरां भेत्ता इन्द्रः— बहुत कालसे बसी हुई शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला यह इन्द्र है ।

[४२५] (पृदाकुसानुः) सर्पके समान ऊंचे सिरवाला, (यजतः) पूज्य (गवेषणः) संशोधन करनेवाला, यह इन्द्र (एकः सन्) एक होते हुए भी (भूयसः अभि) अनेक शत्रुओंको पराजित करता है, ऐसे (भूर्णि) भरण-पोषण करनेवाले (अश्वं) सर्वत्र व्याप्त (इन्द्रं) इन्द्रको (सोमस्य पीतये) सोमपानके लिए (तुजा गृभा) साथ होकर (पुरः नयत्) आगे ले जाओ ॥ १५ ॥

१ तुज्— पहुंचना, विस्तृत करना, पहुंचाना मारना, रक्षा करना, कपडे पहनना, रहना, देना, आगे बढना
२ गवेषणः— संशोधन करनेवाला, ढूंढ निकालनेवाला, गायकी इच्छा करनेवाला

[१८]

[४२६] (इदं नूनं) यह निश्चित है कि (एषां आदित्यां) इन आदित्य देवोंके (सवीमनि) नियममें रहनेवाला (मर्त्यः) मनुष्य (अपूर्व्यं सुम्नं भिक्षेत) अपूर्व- जो पहले कभी प्राप्त नहीं किया, ऐसे सुखको प्राप्त करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रकाश किरणोंको सर्वत्र बिखरानेवाले सूर्यको यह इन्द्रही धारण करता है, और इस इन्द्रको यज्ञ धारण करते हैं, और इन यज्ञोंको धारण करनेवाले ऋषि हैं ॥ १३ ॥

हे गृह देवता ! हमारे घरके खंभे दृढ हों, तथा हमारे घरमें प्रतिदिन यज्ञ होता रहे, उस घरमें हमारे शरीरोंकी रक्षा हो । उस घरमें इन्द्र भी आकर रहे और हम ज्ञानियोंकी सदा रक्षा करे ॥ १४ ॥

जिस तरह सर्पके सिरमें शक्ति रहती है, उसी तरह इन्द्रके सिरमें शक्ति है । इन्द्रके सिरमें ज्ञानकी शक्ति है । अपने ज्ञानशक्तिके आधार पर वह अकेला होते हुए भी अनेक शत्रुओंसे युद्ध करता है । मनुष्य ज्ञानसे युक्त होकर अनेक शत्रुओंसे अकेला ही युद्ध कर सकता है ॥ १५ ॥

इन आदित्य देवोंकी प्रेरणाके अनुसार आचरण करनेवाला मनुष्य ऐसा सुख प्राप्त करता है कि जो उसने कभी प्राप्त न किया हो, यह बात सर्वथा निश्चित है ॥ १ ॥

४२७ अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् । अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ २ ॥
४२८ तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा । शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥
४२९ देवेभिर्देव्यदिते ऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत् सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥
४३० ते हि पुत्रासो अदिते—र्विदुर्द्वेषांसि योतवे । अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥
४३१ अदितिर्नो दिवा पशु—मदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ॥ ६ ॥
४३२ उत स्या नो दिवा मति—रदितिरूत्या गमत् । सा शंताति मयस्करदप स्रिधः ॥ ७ ॥

अर्थ— [४२७] (एषां आदित्यानां) इन आदित्य देवोंके (पंथाः) मार्ग (अनर्वाणः अदब्धाः सन्ति) कुटिलतासे रहित तथा हिंसासे रहित हैं। आदित्य देवोंके मार्ग (पायवः) मनुष्योंका पालन करनेवाले तथा (सुगेवृधः) सुखको बढानेवाले हैं ॥ २ ॥

[४२८] (सविता भगः वरुणः मित्रः अर्यमा) सविता, भग, वरुण, मित्र और अर्यमा देव (तत् सप्रथः शर्म) उस अत्यन्त विस्तीर्ण सुखको (सु यच्छन्तु) प्रदान करें (यत् ईमहे) जिस सुखको हम चाहते हैं ॥ ३ ॥

[४२९] हे (देवि) उत्तम गुणोंवाली (अरिष्टभर्मन्) हिंसारहित मार्गोंसे सबका भरण-पोषण करनेवाली (पुरुप्रिये) बहुतोंसे स्नेह प्राप्त करनेवाली (अदिते) अविनाशी देवी ! तू (सूरिभिः) विद्वानोंके साथ (सुशर्मभिः) उत्तम सुखोंके साथ तथा (देवेभिः) सभी देवोंके साथ (स्मत् आ गहि) हमारे पास आ ॥ ४ ॥

[४३०] (अदितेः) अदिति माताके (ते) वे (उरुचक्रयः) विशाल कर्म करनेवाले (अनेहसः) पापसे रहित (पुत्रासः) पुत्र (द्वेषांसि अंहोश्चित्) अपने द्वेषाओं-शत्रुओं तथा पापियोंको (यातवे) दूर करना (विदुः हि) निश्चयसे जानते हैं ॥ ५ ॥

[४३१] (अदितिः) अविनाशी देवी अदिति (नः पशुं दिवा) हमारे पशुओंकी दिनमें रक्षा करे, (अद्वयाः अदितिः) कपटसे रहित अदिति माता (नक्तं) रात्रीमें हमारे पशुओंकी रक्षा करे तथा (सदावृधा अदितिः) हमेशा अपने पुत्रों- प्राणियोंको बढानेवाली अदिति माता हमें (अंहसः पातु) पाप करनेसे बचावे ॥ ६ ॥

[४३२] (उत) और (स्या मतिः अदितिः) वह बुद्धिशालिनी अदिति (ऊत्या दिवा) अपनी संरक्षण शक्तिसे युक्त होकर (नः आ गमत्) हमारे पास आवे, और आकर (सा) वह अदिति (शंताति मयः) शान्ति प्रदान करनेवाले सुखको (करत्) हमें प्रदान करे तथा (स्रिधः अप) हमारे शत्रुओंको हमसे दूर करे ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन देवोंके मार्ग कुटिलतासे रहित होनेके कारण हिंसासे भी रहित हैं। हिंसा वहीं होती है कि जहां कुटिलता भी हो। कुटिलता तथा हिंसासे रहित होनेके कारण ये मार्ग मनुष्योंका पालन करनेवाले तथा उनका सुख बढानेवाले हैं। राज्यके मार्ग भी देवमार्गकी तरह हिंसा तथा कुटिलतासे रहित होकर मनुष्योंके सुखको बढानेवाले हों ॥ २ ॥

हम जिस सुखको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, उस विस्तृत सुखको हमें सभी देव प्रदान करें ॥ ३ ॥

देवी अदिति हिंसारहित उपायोंसे सबका भरणपोषण करती है, इसीलिए सभी प्राणी अदिति- प्रकृति माता पर प्रेम करते हैं। प्रकृति मातामें सभी सुख विद्यमान हैं, पर प्रकृति माताके नियमोंके अनुसार चलनेवालाही उस सुखको प्राप्त कर सकता है ॥ ४ ॥

अदितिके पुत्र देव स्वयं अहिंसक रहकर बडे बडे काम करते हैं, पर जब उन्हें उनके शत्रु और पापी छेडते हैं, तब वे देव उन शत्रुओं और पापियोंको अपनेसे दूर करना भी जानते हैं। इसी तरह मनुष्य स्वयं अहिंसक हो, पर यदि कोई शत्रु उसे पीडित करे, तो शत्रुको नष्ट करनेका उपाय भी जाने ॥ ५ ॥

अदिति- प्रकृति माता अन्दर और बाहरसे एक होनेके कारण कुटिलतासे रहित है, ऐसी माता हमारे पशुओंकी रातदिन रक्षा करे और हमें भी पापकर्मोंसे बचावे ॥ ६ ॥

यह अदिति माता बुद्धिशालिनी है, वह अपनी संरक्षण शक्तिसे हमारी सदा रक्षा करे। वह हमें शान्ति देनेवाला सुख प्रदान करे। सुख दो प्रकारके होते हैं- अशान्तिकारक सुख- शान्तिकारक सुख। वैषयिक सुख अशान्तिकारक हैं और अलौकिक सुख शान्तिकारक है। ऐसा अलौकिक सुख ही हमें चाहिए ॥ ७ ॥

४३३ उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना । युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥ ८ ॥
४३४ शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः । शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः ॥ ९ ॥
४३५ अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् । आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ १० ॥
४३६ युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम् । ऋधग्द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥ ११ ॥
४३७ तत् सु नः शर्म यच्छताऽऽदित्या यन्मुमोचति । एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥ १२ ॥
४३८ यो नः कश्चिद् रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः । स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥ १३ ॥

अर्थ— [४३३] (उत) और (त्या दैव्या भिषजा) वे दिव्य चिकित्सक (अश्विना) अश्विनी कुमार (नः शं करतः) हमें सुख प्रदान करें, तथा (इतः) हमसे (रपः) पापको (युयुयातां) पृथक करें, तथा (स्रिधः अप) हमारे शत्रुओंको भी हमसे दूर करें ॥ ८ ॥

[४३४] (अग्निः) अग्नि (अग्निभिः) अपनी ज्वालाओं और तेजोंसे (शं करत्) हमारा कल्याण करे, (सूर्यः) सूर्य (नः शं तपतु) हमारे लिए सुखकारक होकर तपे, (अरपाः वातः) दोषोंसे रहित वायु (शं वातु) हमारे लिए सुख कारक होकर बहे तथा इस प्रकार हमारे (स्रिधः) शत्रुओंको वे देव (अप) दूर करें ॥ ९ ॥

[४३५] हे (आदित्यासः) आदित्य देवो ! तुम हमसे (अमीवां अप) रोगोंको दूर करो, (स्रिधं अप) शत्रुओंको दूर करो, (दुर्मतिं अप सेधत) हमसे दुष्ट बुद्धियोंको दूर करो, तथा (नः) हमें (अंहसः युयोतन) पापसे दूर करो ॥ १० ॥

[४३६] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! (अस्मत्) हमसे (शरुं आ युयोत) शत्रुओंको दूर करो, (उत अमतिं) और बुरी बुद्धिको भी दूर करो । हे (विश्ववेदसः) सब विद्याओंके ज्ञाता देवो ! तुम (द्वेषः) हमसे द्वेष करनेवालोंको (ऋधक् कृणुत) अलग करो ॥ ११ ॥

[४३७] हे (सु दानवः आदित्याः) उत्तम दान देनेवाले आदित्य देवो ! (यत्) जो सुख (एनस्वन्तं चित् एनसः मुमोचति) पापीको भी पाप कर्मसे छुड़ा देता है, (तत् शर्म नः सु यच्छत) वह सुख तुम हमें प्रदान करो ॥ १२ ॥

[४३८] (यः मर्त्यः) जो कोई मनुष्य (रक्षस्त्वेन) राक्षसभाव धारण करके (नः रिरिक्षति) हमें मारना चाहता है, (सः जनः) वह मनुष्य (स्वैः एवैः) अपने ही कर्मोंसे (रिरिषीष्ट) मारा जाये तथा वह हमसे (युः) दूर हो जाए ॥ १३ ॥

भावार्थ— दोनों अश्विनी कुमार उत्तम वैद्य होनेसे दिव्य भिषज कहाते हैं । वे दोनों हमारे अन्दरके रोगोंको दूर करके हमें सुख प्रदान करें, तथा हमसे पाप तथा शत्रुओंको दूर करें । रोग स्वयंमें बड़ा भारी पाप और शत्रु है, अतः इसे सर्वप्रथम दूर करना चाहिए ॥ ८ ॥

अग्नि अपनी ज्वालाओंके तेजसे, सूर्य अपनी किरणोंसे तथा वायु अपनी लहरोंसे हमारे शरीरके रोगरूपी शत्रुओंको नष्ट करे, तथा हमें सुख प्रदान करे ॥ ९ ॥

हे आदित्य देवो ! तुम हमारे शरीरोंमेंसे रोग-कीटाणुरूपी शत्रुओंको दूर करके हमें नीरोग करो, हमारी दुष्ट बुद्धियोंको दूर करके हमें उत्तम बुद्धि दो, इसप्रकार हमें पापोंसे दूर रखो ॥ १० ॥

हे देवो ! हमसे हमारे शत्रुओंको दुष्ट बुद्धिको और हमसे द्वेष करनेवालोंको दूर करो ॥ ११ ॥

हे उत्तम दान देनेवाले आदित्यो ! जो अलौकिक सुख पापियोंको भी पापोंसे छुड़ा देता है, वह अलौकिक सुख हमें प्रदान करो ॥ १२ ॥

हे देवो ! जो मनुष्य मनमें राक्षसभाव धारण करके हमें मारना चाहता है, वह अपने भावोंके कारण स्वयं मारा जाए, या हमसे दूर हो जाए । जो मनुष्य किसी निरपराधीको मारना चाहता है, वह अपने कर्मोंसे स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

४३९ समित् तमघमश्नवद् दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् । यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥ १४ ॥
४४० पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् । उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥ १५ ॥
४४१ आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद् रपस्कृतम् ॥ १६ ॥
४४२ ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः । अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥ १७ ॥
४४३ तुचे तनाय तत् सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे । आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ १८ ॥
४४४ यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत । युष्मे इद् वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥ १९ ॥

अर्थ— [४३९] (यः) जो मनुष्य (अस्मत्रा) हमसे (उपद्वयुः) कपटका व्यवहार करता है, तथा (दुर्हणावान्) हमारी हिंसा करना चाहता है, (तं दुःशंसं रिपुं मर्त्यं) उस दुष्ट और शत्रु मनुष्यको (अघं इत् सं अश्नवत्) उसका पाप ही खा जाए ॥ १४ ॥

[४४०] हे (वसवः देवाः) सबको बसानेवाले देव आदित्यो ! (द्वयुं अद्वयुं च मर्त्यं) कपटी और कपट-रहित मनुष्यको तुम (हृत्सु जानीथ) अपने हृदयोंमें जान लो, तथा (पाकत्रा स्थन) जो पवित्र मनुष्य हों, उन्हींके पास तुम रहो ॥ १५ ॥

[४४१] हम (पर्वतानां उत अपां शर्म) पर्वतोंमें और जलोंमें जो सुख है, उसे (आ वृणीमहे) हम प्राप्त करना चाहते हैं। (द्यावाक्षामा) द्युलोक और पृथ्वीलोक (अस्मत्) हमसे (रपः आरे कर्त) पापोंको दूर करें ॥ १६ ॥

[४४२] हे (वसवः) सबको वास करानेवाले देवो ! (ते) वे तुम सब (भद्रेण शर्मणा) कल्याणकारक सुखरूपी (युष्माकं नावा) तुम्हारी नावके द्वारा (विश्वानि दुरिता अतिपिपर्तन) सम्पूर्ण दुष्कर्मोंके पार उतार दो ॥ १७ ॥

[४४३] (सुमहसः आदित्यासः) हे महान् आदित्य देवो ! (नः तुचे तनाय जीवसे) हमारे पुत्र और पौत्रोंके दीर्घ जीवनके लिए (तत् आयुः) उनकी आयुको (द्राघीयः सु कृणोतन) दीर्घ और उत्तम बनाओ ॥ १८ ॥

[४४४] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (हीळः) जिस यज्ञमें तुम आना चाहते हो, वह (यज्ञः) यज्ञ (वः अन्तरः अस्ति) तुम्हारे समीपही हो रहा है। (वः सजात्ये) तुम्हारी मित्रतामें रहनेवाले हम (युष्मे अपि स्मसि) तुम्हारी मित्रतामेंही सदा रहें ॥ १९ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य निरपराधी और साधु मनुष्यसे कपटका व्यवहार करता है, या उसे मारना चाहता है, उस दुष्टको उसका पापकर्म ही मार डालता है ॥ १४ ॥

हे देवो ! कपटी और कपट रहित मनुष्य कौन है, इसे अच्छी तरह जानकर जो कपट रहित पवित्र मनुष्य हो, उसीके पास रहो। देवगण पवित्रहृदयवाले मनुष्यके पास ही रहते हैं ॥ १५ ॥

पर्वतों और जलोंमें भी सुख निहित हैं, पर जो इनका अच्छा और ज्ञानपूर्वक उपयोग करता है, उसीको यह सुख मिलता है। द्युलोक और पृथ्वीलोक भी उसे सुखी करते हैं ॥ १६ ॥

हे संपूर्ण दुष्टकर्मरूपी सागरसे पार जानेके लिए सुकर्मरूपी नावही है। उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य ऐसे सागरको पार कर सकता है ॥ १७ ॥

हमारे पुत्र पौत्रोंके जीवनको देवगण लम्बा और सुखपूर्ण बनायें ॥ १८ ॥

हे देवो ! हम तुम्हारे मित्र होकर तुम्हारे लिए यज्ञ करें, तथा तुम उन यज्ञोंमें सदा आते रहो, और हम भी सदा सदा तुम्हारी मित्रतामें रहें ॥ १९ ॥

४४५ बृहद् वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥ २० ॥
४४६ अनेहो मित्रार्यमन् नृवद् वरुण शंस्यम् । त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥ २१ ॥
४४७ ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि । प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥ २२ ॥

[१९]

(ऋषिः- सोभरिः काण्वः । देवता- अग्निः, ३४-३५ आदित्याः, ३६-३७ त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः ।
छन्दः- १-२६ प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), २७ द्विपदा विराट्,
२८-३३ प्रगाथः = (समा ककुप्, विषमा सतोबृहती), ३४ उष्णिक्,
३५ सतोबृहती, ३६ ककुप्, ३७ पङ्क्तिः ।)

४४८ तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे । देवत्रा हव्यमोहिरे ॥ १ ॥
४४९ विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

अर्थ- [४४५] हम (मरुतां त्रातारं देवं) मरुतोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्र देवको (अश्विना मित्रं वरुणं) अश्विदेवों, मित्र, वरुण तथा (बृहत् वरूथं) महान् गृहपति वास्तोष्पति देवको हम (स्वस्तये) अपने कल्याणके लिए (ईमहे) बुलाते हैं ॥ २० ॥

[४४६] हे (मित्र अर्यमन् वरुण) मित्र, अर्यमा तथा वरुण देवो ! तथा (मरुतः) हे मरुतो ! तुम (नः) हमें (अनेहः) हिंसासे रहित, (शस्यं) प्रशंसनीय (त्रिवरूथं छर्दिः यन्तः) तीन मंजिलोंवाला घर दो ॥ २१ ॥

[४४७] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (ये चित् हि मनवः) जो कि हम सब मनुष्य (मृत्युबंधवः स्मसि) मृत्युके भाईबंद हैं, तो भी (नः जीवसे) हमारे दीर्घजीवनके लिए (आयुः सु तिरेतन) हमारी आयुको अच्छी तरह दीर्घ करो ॥ २२ ॥

[१९]

[४४८] हे स्तोता लोगो ! जिस (स्वर्णरं देवं अरतिं देवासः दधन्विरे) सुवर्णको देनेवाले दिव्यगुण युक्त, स्वामी अग्निको देवगण अपने अन्दर धारण करते हैं ; तथा (देवत्रा हव्यं आ ऊहिरे) विद्वान् मनुष्य जिस अग्निको हवि प्रदान करते हैं (तं गूर्धय) उस प्रसिद्ध अग्निकी तुम सब स्तुति करो ॥ १ ॥

[४४९] हे (विप्र सोभरे) मेधाविन् और उत्तम रीतिसे प्रजाके पोषण करनेवाले ऋषे ! तुम (अध्वराय) यज्ञके लिये (विभूतरातिं चित्रशोचिषं) बहुत दान देनेवाले अद्भुत तेजस्वी (अस्य सोम्यस्य, मेधस्य यन्तुरं पूर्व्यं) इस सोम यज्ञके नियन्ता और सबके पूर्वसे विद्यमान ऐसे गुणोंसे सम्पन्न (ईं अग्निं प्र ईळिष्व) इस अग्निकी अच्छी प्रकारसे पूजा करो ॥ २ ॥

भावार्थ— हम इन्द्र आदि देवोंको अपने कल्याणके लिए बुलाते हैं । वे आकर हमारा कल्याण करें ॥ २० ॥

हे देवो ! हमें एक बड़ा सा घर दो, ताकि हम उसमें सुखसे रह सकें ॥ २१ ॥

जो कि सभी मनुष्य मृत्युके भाईबंद हैं, अन्तमें मरनेवाले ही हैं, तो भी प्रयत्न करके यदि देवोंकी कृपा प्राप्त की जाए, तो आयुको दीर्घ किया जा सकता है और दीर्घकाल तक जीवित रहा जा सकता है ॥ २२ ॥

यह अग्नि स्वर्णको देनेवाला, उत्तम गुणोंसे युक्त, सबका स्वामी, बहुत दान देनेवाला, अत्यन्त तेजस्वी और यज्ञोंको सिद्ध करनेवाला है । इसी कारण सब विद्वान् इसकी पूजा करते हैं और अपने अन्दर इसे धारण करते हैं ॥ १-२ ॥

४५० यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥
४५१ ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥
४५२ यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये । यो नमसा स्वध्वरः ॥ ५ ॥
४५३ तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥ ६ ॥
४५४ स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ७ ॥

अर्थ— [४५०] हे अग्ने ! हम सब, (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं, होतारं) इस यज्ञको उत्तमतासे पूरा करनेवाले, देवोंके बुलानेवाले (अमर्त्यं देवत्रा देवं, यजिष्ठं त्वा ववृमहे) कभी भी न मरनेवाले, देवताओंके मध्यमें अत्यन्त श्रेष्ठ गुणोंवाले, पूजनीय ऐसे तेरा वरण करते हैं ॥ ३ ॥

[४५१] (ऊर्जः नपातं सुभगं सुदीदितिं श्रेष्ठशोचिषं अग्निं) बलको न गिरने देनेवाले, ऐश्वर्यवान्, अच्छे प्रकाशसे युक्त श्रेष्ठ कान्तिवाले अग्निकी स्तुति करते हैं। (सः नः दिवि मित्रस्य वरुणस्य सुम्नं आ यक्षते) वह अग्नि हमारे लिये प्रदीप्त यज्ञमें मित्रके तथा वरुणके सुखको प्रदान करे। तथा (सः अपां) वह अग्नि जलके प्राप्त होनेवाले सुखोंको भी प्रदान करनेवाला हो ॥ ४ ॥

[४५२] (यः सु अध्वरः मर्तः) जो उत्तम अहिंसक यज्ञशील मनुष्य (नमसा) अन्नसे (यः समिधा) जो काष्ठसे, (यः आहुती) जो आहुतिसे, (यः वेदेन) जो ज्ञानसे, (अग्नये ददाश) अग्निके लिये आहुति प्रदान करता है, वह मनुष्य उत्तम सुखसे युक्त होता है ॥ ५ ॥

[४५३] जो मनुष्य अग्निका यजन करता है (तस्य इत् आशवः अर्वन्तः रंहयन्ते) उसके ही वेगसे जानेवाले घोडे तेजी दौडते हैं (तस्य यशः द्युम्नितमं) उस मनुष्यका ही यश अत्यन्त उज्ज्वल होता है। (देवकृतं अंहः कुतश्चन तं न नशत्) देवताओंके प्रति किया हुआ पाप उसको किसी भी प्रकार नष्ट नहीं करता, और (न मर्त्यकृतं) न मनुष्योंके प्रति किया हुआ पाप ही उसे नष्ट करता है ॥ ६ ॥

[४५४] हे (सहसः सूनो ऊर्जां पते) बलके पुत्र, बलके स्वामी अग्ने ! हम लोग (वः अग्निभिः, सु अग्नयः स्याम) तेरे गार्हपत्यादि अग्नियोंसे सुन्दर अग्निवाले होवें। और (त्वं अस्मयुः सुवीरः) तू हम लोगोंको उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त बना ॥ ७ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सब तरहके यज्ञोंको पूरा करनेवाला, देवोंको बुलाकर लानेवाला, अमर और देवोंके बीचमें सबसे अधिक श्रेष्ठ गुणवाला है, ऐसे बल प्रदान करनेवाले, ऐश्वर्यवान् उत्तम तेजवाले अग्निकी स्तुति करनी चाहिए। वह मित्र, वरुण और जलसे प्राप्त होनेवाले सुखोंको प्रदान करता है। मित्र-सूर्य, वरुण-वर्षा और जलसे आरोग्य प्राप्त होकर अनेक तरहके सुख मिलते हैं। इस मंत्रमें वेद प्राकृतिकचिकित्साकी ओर संकेत करता है ॥ ३-४ ॥

जो हिंसा न करनेवाला मनुष्य अन्नसे, समिधासे, आहुतिसे और ज्ञानसे इस अग्निकी सेवा करता है, वह ऐश्वर्यवान् होता है, वह उत्तम घोडोंका स्वामी बनता है, वह यशस्वी होता है। यदि कभी प्रमादवश वह देवों और मनुष्योंके प्रति अपराध कर भी दे; तो भी वह उस अपराधके कारण नष्ट नहीं होता ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि बलका स्वामी है, इसके सहारेसे भक्त अग्निके समान तेजस्वी होते हैं और वीर सन्तानोंसे युक्त होते हैं ॥ ७ ॥

४५५ प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥ ८ ॥
४५६ सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः । स धीभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥
४५७ यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् ॥ १० ॥
४५८ यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः । हव्या वा वेविषद्विषः ॥ ११ ॥
४५९ विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥ १२ ॥

अर्थ— [४५५] (अग्निः अतिथिः न प्रशंसमानः) अग्नि अतिथिके समान प्रशंसाके योग्य, (रथः न वेद्यः) रथके समान सबसे जानने योग्य (मित्रियः) मित्रोंका हित साधक है। हे अग्ने ! (त्वे साधवः क्षेमासः अपि सन्ति) तेरे आश्रयमें रहकर साधना करनेवाले सब प्रकारके कल्याणसे युक्त होते हैं, क्योंकि (त्वं रयीणां राजा) तू सम्पूर्ण धनोंका राजा है ॥ ८ ॥

[४५६] हे (अग्ने) अग्ने ! जो (मर्तः दाश्वु-अध्वरः सः अद्धा) मनुष्य दानी और हिंसारहित कर्म करनेवाला है, वह सत्य फलसे भी युक्त हो। हे (सुभग) शोभन ऐश्वर्यवाले अग्ने ! (सः प्रशंस्यः) वह तू प्रशंसनीय है। तथा (सः धीभिः सनिता अस्तु) वह तू कर्मों और उत्तम बुद्धियोंसे हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ ९ ॥

[४५७] हे अग्ने ! जिस मनुष्यके (अध्वराय त्वं ऊर्ध्वः तिष्ठसि) यज्ञमें जानेके लिये तू तैय्यार रहता है (सः क्षयद्वीरः साधते) वह पुत्रादि वीरोंका स्वामी होकर अपने सब कामोंको सिद्ध करता है। (सः अर्वद्भिः कृतं सनिता) वह अपने अश्वोंसे किये हुये राज्यका भोक्ता होता है। (सः विपन्युभिः) वह मेधावी लोगोंसे युक्त होता है। तथा (सः शूरैः सनिता) वह बलवालोंसे भी आदरणीय होता है ॥ १० ॥

[४५८] (विश्ववार्यः वपुः अग्निः) सबसे वरण करनेयोग्य रूपवान् अग्नि (यस्य गृहे स्तोमं चनः दधीत) जिसके घरमें स्तोत्र और हव्यान्न ग्रहण करता है, उसका (हव्या वा विषः वेविषत्) हव्यादि पदार्थ सर्वत्र व्याप्त देवताओंको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

[४५९] हे (सहसः यहो वसो) बलके पुत्र और सबके निवास करानेवाले अग्ने ! (स्तुवतः) स्तुति करनेवाले (विविदुषः) विशेष विद्वान् (वा रातिषु मक्षूतमस्य) और हविर्दान करनेमें अतिशीघ्रकारी कुशल तथा (विप्रस्य) ज्ञानी पुरुषके (वचः) स्तुतियोंको (अवो देवं उपरिमर्त्यं कृधि) देवोंसे नीचे और मनुष्योंसे ऊपर कर ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अतिथिके समान पूज्य, रथके समान जानने योग्य और अपने प्रिय भक्तोंका हित करनेवाला है। इसीके सहारे रहनेवाले भक्त सब प्रकारके कल्याणों और धनोंसे युक्त होते हैं ॥ ८ ॥

जो दान और हिंसारहित कर्म करता है, वह सत्य फलसे युक्त होता है, और यह अग्नि उसीके यज्ञमें जानेके लिए सदा तैय्यार रहता है। वही मनुष्य वीर पुत्रोंसे, घोडोंसे और मेधावी लोगोंसे युक्त होता है और वह सब वीर पुरुषोंके द्वारा आदरणीय होता है ॥ ९-१० ॥

यह अग्नि अत्यन्त रूपवान् और सबके द्वारा वरण करने योग्य है, इस अग्निमें जो द्रव्य डाले जाते हैं, वह सर्वत्र व्याप्त देवोंको पहुंचता है। हे अग्ने ! तू उत्तम ज्ञानी तथा प्रतिदिन हवि देनेवाले एवं स्तुति करनेवाले मनुष्यकी स्तुतियोंको देवोंकी वाणियोंसे भले ही ज्यादा महत्व न दे, पर साधारण मनुष्योंकी वाणियोंसे उसको महत्व अवश्य अधिक दे ॥ ११-१२ ॥

×

४६० यो अग्निं हव्यदातिभि- र्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति । गिरा वाजिरशोचिषम् ॥ १३ ॥

४६१ समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः ।
विश्वेत् स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् ॥ १४ ॥

४६२ तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासहत् सदने कं चिदत्रिणम् । मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥ १५ ॥

४६३ येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।
वयं तत् ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि ॥ १६ ॥

४६४ ते घेदग्ने स्वाध्यो३ ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् । विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥ १७ ॥

अर्थ— [४६०] (यः हव्यदातिभिः वा नमोभिः सुदक्षं अग्निं आविवासति) जो हव्य पदार्थोंसे और नमस्कारोंसे कुशल अग्निकी पूजा करता है, (वा गिरा, अजिरशोचिषं) तथा वाणि द्वारा स्तोत्र पाठसे प्रकाश होनेवाले दीप्तिसे युक्त अग्निकी सेवा करता है वह धन धान्यादि उत्तम पदार्थोंसे समृद्ध होता है ॥ १३ ॥

[४६१] (यः मर्त्यः अदितिं अस्य निशिती समिधा दाशत्) जो मनुष्य अखण्डनीय इस अग्निके लिये अतितीक्ष्ण बुद्धिसे युक्त होकर समिधा प्रदान करता है (सः धामभिः धीभिः द्युम्नैः विश्वेत् जनान्) वह मनुष्य तेजसामर्थ्योंसे, उत्तम कर्मोंके द्वारा ऐश्वर्यसे समस्त जनोंको (उद्नः इव तारिषत्) जलके समान पार कर जाता है। और (सुभगः) उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त होता है ॥ १४ ॥

[४६२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू अपने (तत् द्युम्नं आ भर) उस उज्ज्वल प्रकाश युक्त तेजको हमें भरपूर दे। (यत् सदने कंचित् अत्रिणं सासहत्) जो घरमें आये हुये किसी भी राक्षसको पराजित कर सके (दूढ्यः मन्युं) और पाप बुद्धिवाले मनुष्योंके क्रोधको नष्ट कर सकनेमें समर्थ हो ॥ १५ ॥

[४६३] हे अग्ने ! तेरे (येन वरुणः मित्रः अर्यमा चष्टे) जिस तेजसे वरुण, मित्र और अर्यमा प्रकाशित होते हैं। और (येन नासत्या भगः) जिससे दोनों अश्विनौ और भजनीय अन्य देव प्रकाशित होते हैं, ऐसे (ते तत्) तेरे उस तेजको (शवसा गातुवित्तमाः) अपने बलसे अपने जाने योग्य मार्गोंको उत्तम बनानेवाले तथा (इन्द्र त्वोताः वयं) इन्द्र और तुझसे रक्षित होकर हम (विधेमहि) प्राप्त करें ॥ १६ ॥

[४६४] (विप्र देव अग्ने) ज्ञानी और तेजस्वी अग्ने ! (ये विप्रासः) जो ज्ञानी ब्राह्मण (नृचक्षसं सुक्रतुं त्वा निदधिरे) मनुष्योंके सब कर्मोंका देखनेवाले और उत्तम कर्म करनेवाले तुझे अपने हृदयोंमें धारण करते हैं, (ते घ इत् सु आध्यः) वे ही उत्तम रीतिसे सबसे श्रेष्ठ होते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— जो बुद्धि और भक्तिसे इस अमर और अखण्डनीय अग्निकी सेवा करता है, वह मनुष्य तेज, सामर्थ्य, उत्तम कर्म और ऐश्वर्योंसे समस्त मनुष्योंसे ऊपर बढ जाता है और हर तरहके ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥ १३-१४ ॥

इस अग्निके तेजसे वरुण, सूर्य और चन्द्रमा तथा दोनों अश्विनीकुमार एवं भग देवता प्रकाशित होते हैं और जिस तेजके कारण सभी आक्रमक शत्रु विनष्ट होते हैं, उस तेजसे युक्त होकर हम बलशाली हों और अपने मार्गोंको उत्तम बनानेमें समर्थ हों ॥ १५-१६ ॥

यह अग्नि मनुष्यके अन्दर रह कर उसके सभी कर्मोंका निरीक्षण करता है तथा स्वयं भी उत्तम कर्म करता हुआ दूसरोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है। जो हमेशा उस अग्निका ध्यान करते हुए उत्तम कर्म करते हैं वे ही श्रेष्ठ होते हैं ॥ १७ ॥

४६५ त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

४६६ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः । भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

४६७ भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥ २० ॥

४६८ ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥ २१ ॥

४६९ तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः ॥ २२ ॥

अर्थ— [४६५] हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्यवाले अग्ने ! (ये त्वे कामं न्येरिरे) जो तुझमें अपनी कामनायें स्थापित करते हैं (ते इत् वेदिं चक्रिरे) वे ही तेरे लिये यज्ञ वेदी बनाते हैं। (त आहुतिं) वे तुझको आहुति प्रदान करते हैं। (ते दिवि सोतुं) तेज युक्त यज्ञमें तेरे लिये सोम रस निकालते हैं। इस प्रकार पुरुषार्थ करनेवाले (ते इत् वाजेभिः महत् धनं जिग्युः) वे ही बल पराक्रमसे बडे भारी धनको जीतते हैं ॥ १८ ॥

[४६६] (आहुतः अग्निः नः भद्रः) हविसे तर्पित अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो। उसका दिया हुआ (रातिः भद्रा) दान हमारे लिए मंगलकारी हो। हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् अग्ने ! हमारा (अध्वरः भद्रः) यज्ञ सुखप्रद हो। (उत प्रशस्तयः भद्राः) और उत्तम स्तुतियाँ भी कल्याण करनेवाली हों ॥ १९ ॥

[४६७] हे अग्ने ! (येन समत्सु सासहः) जिस मनसे तू संग्रामोंमें अपने शत्रुओंको पराजित करता है। (भद्रं मनः वृत्रतूर्ये कृणुष्व) उसी प्रकार कल्याणकारी शोभन मेरा मन भी दुष्टोंको नाश करनेवाले इस संग्राममें कर। और (शर्धतां भूरि स्थिरा अव तनुहि) हिंसक शत्रुओंके अधिक दृढ सैन्योंको भी पराजित कर जिससे हम (अभिष्टिभिः ते वनेम) अभिलषित सुखोंसे युक्त होकर तेरी सेवा करें ॥ २० ॥

[४६८] (यं यजिष्ठं हव्यवाहनं दूतं अरतिं देवाः न्येरिरे) जिस अतिपूज्य, उत्तम अन्नको ग्रहण करके ले जानेवाले, देवोंके दूत और ऐश्वर्यवान् अग्निको विद्वान् लोग स्तुति द्वारा प्रेरित करते हैं। ऐसे (मनुः हितं गिरा ईळे) मनुष्योंके हितकारी उस अग्निकी मैं भी वाणीके द्वारा स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥

[४६९] हे मनुष्य ! (यः) जो तू (तिग्मजम्भाय राजते अग्नये) तीक्ष्ण दाढवाले तथा प्रकाशमान् अग्निके लिए (प्रयः गायसि) आनन्दसे स्तोत्र गाता है, वह (सूनृताभिः घृतेभिः आहुतिः अग्निः) उत्तम स्तुतियों एवं घीसे आहुति हुआ अग्नि तुझे (सुवीर्यं पिंशते) उत्तम बलसे संयुक्त करता है ॥ २२ ॥

भावार्थ— जो यह समझते हैं कि तेरे प्रसन्न होने पर ही उनकी कामनायें पूर्ण होंगी, वे ही वेदि बनाकर उसमें तुझे प्रदीप्त करके तुझे आहुति देते हैं, वे ही सोम रस निचोडते हैं। उन्हींका तू कल्याण करता है, तेरे द्वारा दिया गया धन भी उन्हींका कल्याण करता है, यज्ञ भी उनके लिए सुखप्रद होता है और स्तुतियां भी उनका कल्याण करती हैं, ऐसे मनुष्य ही ऐश्वर्योंको जीतते हैं ॥ १८-१९ ॥

युद्धोंमें अपने मनको दृढ करके शत्रुओंसे युद्ध करना चाहिए और उनको पराजित करना चाहिए। यदि मनमें साहस हो तो इससे दृढ शत्रुसेनाका भी नाश किया जा सकता है। मनुष्य अपने मनकी संकल्पशक्तिसे कठिनसे कठिन कार्य भी आसानीसे कर सकता है। पर यह संकल्पशक्ति तभी बढ सकती है, जब मनुष्य उस तेजस्वी परमात्माका ध्यान करे ॥ २० ॥

यह अग्नि अति पूज्य, देवोंका दूत और मनुष्योंका हित करनेवाला है। ऐसे उत्तम ज्वालाओंवाले तेजस्वी अग्निको जो प्रदीप्त करता है और उसके लिए आनन्दसे स्तोत्र गाता है, वह अग्निके तेज और बलसे युक्त होता है ॥ २१-२२ ॥

४७० यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च । असुर इव निर्णिजम् ॥ २३ ॥
४७१ यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥ २४ ॥
४७२ यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहसः सूनवाहुत ॥ २५ ॥
४७३ न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥ २६ ॥
४७४ पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥ २७ ॥
४७५ तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो । सदा देवस्य मर्त्यः ॥ २८ ॥

अर्थ— [४७०] (घृतेभिः आहुतः अग्निः यदि उच्च च अव वाशीं भरत) घृत धाराओंसे आहुति प्राप्त कर अग्नि जब ऊपर और नीचेके स्थानोंको अपने शब्दोंसे भर देता है, तब वह (असुरः इव निर्णिजं) महा पराक्रमी सूर्यके समान अपने तेजको प्रकट करता है ॥ २३ ॥

[४७१] (यः मनुः हितः देवः सुगन्धिना आसा हव्यानि ऐरयत) जो अग्नि स्वयं मनुष्योंका हित करनेवाला, दिव्य गुण युक्त और अपने शोभन गन्धवाले मुखसे हव्योंको देवोंके प्रति पहुँचाता है; तथा जो (सु अध्वरः होता देवः अमर्त्यः) तथा जो सुन्दर और हिंसारहित कर्मोंको करनेवाला देवोंको बुलानेवाला, तेजस्वी और अविनाशी है। वह अग्नि (वार्याणि विवासते) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है ॥ २४ ॥

[४७२] हे (सहसः सूनो, आहुतः मित्रमहः) बलके पुत्र, उपासना योग्य और मित्रके समान पूजनीय अग्ने ! (मर्त्यः अहं यत् त्वं) मरणधर्मवाला मैं यदि तेरी उपासना करूं तो (अमर्त्यः स्यां) मैं भी अमर हो जाऊं ॥ २५ ॥

[४७३] हे (वसो) सबको बसानेवाले अग्ने ! मैं (त्वा अभिशस्तये न रासीय) तेरी किसी हिंसात्मक कर्म करनेके लिए स्तुति न करूं, (पापत्वाय न) किसी पाप कर्म करनेके लिए तेरी स्तुति न करूं ! हे (सन्त्य) पूज्य ! (मे स्तोता अमतीवा न) मेरा स्तोता बुरी बुद्धिवाला न हो, (न दुर्हितः स्यात्) हमारा कोई शत्रु न हो, हे (अग्ने) अग्ने ! (न पापया) वह हमें पापसे दुःख न दे ॥ २६ ॥

[४७४] (नः पितुः पुत्रः सुभृतः) जिस प्रकार पितासे पुत्र अच्छी प्रकारसे पालन पोषण करने योग्य होता है, उसी प्रकार हमसे धारण करने योग्य यह अग्नि (दुरोणे देवान् आ नः हविः प्र एतु) यज्ञगृहमें देवोंकी ओर हमारी हविको अच्छी प्रकारसे ले जाये ॥ २७ ॥

[४७५] हे (वसो अग्ने) सब प्राणियों और लोकोंको बसानेहारे अग्ने ! (देवस्य तव नेदिष्ठाभिः ऊतिभिः) उत्तम गुणोंसे युक्त तेरी अति समीपतम रक्षाओंसे सुरक्षित होकर (मर्त्यः अहं) मरणधर्मवाला मैं (सदा जोषं आ सचेय) तेरी प्रसन्नताको प्राप्त करूं ॥ २८ ॥

भावार्थ— जब अग्निमें घृतकी आहुतियां दी जाती हैं, तब यह इतने जोरसे प्रज्वलित होता है, कि इसके जलनेके शब्दसे सारी जगह भर जाती है और तब यह दूसरे ही सूर्यके समान चमकता दिखाई देता है। इस प्रकार यह प्रदीप्त होकर यह मनुष्योंका हित करता और अपनी ज्वालाओंसे यह हवियोंको देवोंतक पहुंचाता है। यह हमेशा हिंसारहित कर्मोंको करता और तेजस्वी तथा अविनाशी है। ऐसा अग्नि श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है ॥ २३-२४ ॥

जो मनुष्य इस अमर अग्निकी उपासना करता है, वह मनुष्य भी अमर हो जाता है। जो हमेशा उत्तम पुरुषों और ज्ञानियोंकी संगतिमें रहता है, वह भी उत्तम और ज्ञानी होता है ॥ २५ ॥

हे अग्ने ! किसी बुरे काम, हिंसा या पापकर्म करनेके लिए तेरी सहायताकी इच्छा न करें और न उन कामोंके लिए तेरी स्तुतिही करें। मेरी स्तुति करनेवाला बुद्धिहीन न हो, तथा कोई भी हमारा शत्रु हमें कष्ट न दे ॥ २६ ॥

जिस प्रकार पुत्र पिताके द्वारा सदा पालन और पोषणके योग्य होता है, उसी प्रकार यह अग्नि मनुष्यों द्वारा पोषणीय है। यह अग्नि पुष्ट होकर देवों अर्थात् शरीरस्थ इन्द्रियोंतक हवि या जीवनरस पहुंचाता है। इस प्रकार इन्द्रियोंके पुष्ट होने पर मनुष्य हमेशा स्वस्थ एवं प्रसन्न रहता है ॥ २७-२८ ॥

४७६ तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभि—रग्ने तव प्रशस्तिभिः ।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममा—ऽग्ने हर्षस्व दातवे ॥ २९ ॥
४७७ प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः । यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ३० ॥
४७८ तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ ३१ ॥
४७९ तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे । सम्राजं त्रासदस्यवम् ॥ ३२ ॥
४८० यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ३३ ॥

अर्थ— [४७६] हे (अग्ने) उत्तम कर्म अर्थात् यज्ञसे युक्त होऊं (तव रातिभिः) तेरे दानोंसे मैं युक्त होऊं। और (तव प्रशस्तिभिः) तेरी प्रशंसाओंसे मैं युक्त होऊं। हे (वसो) सबको बसानेवाले ! ज्ञानीजन (त्वामित् प्रमतिं आहुः) तुझकोही सबसे उत्कृष्ट और ज्ञानवाला बतलाते हैं। अतः हे (अग्ने) अग्ने ! (मम दातवे हर्षस्व) मुझे देनेके लिये प्रसन्न हो ॥ २९ ॥

[४७७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं यस्य सख्यं आवरः) तू जिसके मित्रभावको स्वीकार करता है (सः वाजभर्मभिः सुवीराभिः तव ऊतिभिः) वह मनुष्य ज्ञान, बल और अन्नादिसे भरण पोषण करनेवाली तथा उत्तम वीरोंका संरक्षण करनेवाली तेरी रक्षाओंके द्वारा (प्रतिरते) विशेष रूपसे बढता है ॥ ३० ॥

१ त्वं यस्य सख्यं आवरः प्रतिरते— तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह बढता है।

[४७८] हे (सिष्णो) सबको जीवनसे सींचनेवाले अग्ने ! (द्रप्सः नीलवान् वाशः ऋत्वियः इन्धानः) ज्वालाओंवाले, नीले रङ्गके धुँयेवाले; कान्तिसे युक्त, ऋतु ऋतुमें यज्ञ करने योग्य, प्रकाशित होनेवाले, ऐसे (तव आददे) तेरे लिये हम आहुतियोंको प्रदान करते हैं (त्वं महीनां उषसां प्रियः असि) तू पूजाके योग्य और उषाओंका प्रिय है। तथा (क्षपः वस्तुषु राजसि) रात्रीमें वस्तुओंको प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥

[४७९] (सोभरयः अवसे) उत्तम रीतिसे भरणपोषण करनेवाले हम लोग अपनी रक्षाके लिये (सहस्र-मुष्कं सु-अभिष्टिं, सम्राजं, त्रासदस्यवं) हजारों तेजवाले, उत्तम अभिलाषावाले, सुन्दर रूपसे युक्त, दस्युओं अर्थात् चोर लुटेरे तथा अन्य दुष्कर्मियोंको कष्ट देनेवाले (तं आगन्म) उस अग्निको प्राप्त हों ॥ ३२ ॥

त्रासदस्युः— यह अग्नि दुष्कर्मियोंको दण्ड देकर उन्हें भय पहुंचानेवाला है।

[४८०] हे (अग्ने) अग्ने ! (यस्य ते अन्ये अग्नयः वयाः इव उपक्षितः) जिस तेरी दूसरी अग्नियाँ वृक्षकी शाखाकी तरह तुझसे बल प्राप्त करती हैं उसी प्रकार मैं भी (तव जनानां क्षत्राणि वर्धयन्) तेरे मनुष्योंके बलों और धनोंकी वृद्धि करता हुआ (विपः न द्युम्ना नि युवे) अन्य स्तोताकी तरह बहुतसे धनों और यशोंको प्राप्त करूँ ॥ ३३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! मैं तेरी सेवा हमेशा करता रहूँ, तुझे हमेशा हवि देता रहूँ, तेरी स्तुति सदा करता रहूँ, क्योंकि तू उत्तम बुद्धिवाला है। मैं यह जानता हूँ कि तू जिसके साथ मित्रता करता है, उस मनुष्यको तू प्रसन्न होकर धन देता है और उसकी रक्षा करके तू उसे हर तरहसे बढाता है ॥ २९-३० ॥

यह अग्नि अपनी उष्णतासे शरीरमें जीवन रसका संचार करता है। कान्तिसे युक्त, ऋतुके अनुसार काम करनेवाला तथा उषाओंका प्रिय है। अग्नि उषःकालमें प्रदीप्त किया जाता है, उस समय इस यज्ञाग्निकी किरण उदय होते हुए सूर्यकी किरणोंके साथ संयुक्त होती है। यह अग्नि दिनमें प्रकाशित होता ही है, पर रातमें भी प्रकाशित होता हुआ अन्य पदार्थोंको भी प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥

यह अग्नि तेजस्वी, उत्तम रूपवान्, दुष्टोंको दण्ड देनेवाला है। यह अन्य अग्नियोंका पोषण करनेवाला है। मैं इस अग्निके भक्तोंकी उन्नति करता हुआ स्वयं भी उसकी कृपासे उन्नत होता जाऊं ॥ ३२-३३ ॥

४८१ यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् । मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥३४॥
४८२ यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु ।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन् स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥३५॥
४८३ अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् । मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६॥
४८४ उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥३७॥

[२०]

ऋषिः- सोभरिः काण्वः । देवता- मरुतः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती) १४ सतो विराट् ।

४८५ आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः । स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥

अर्थ— [४८१] हे (अद्रुहः सुदानवः आदित्यासः) द्रोह न करनेवाले तथा उत्तम दान देनेवाले आदित्यो ! (विश्वेषां मघोनां) सभी ऐश्वर्यवालोंके बीचमें (यं मर्त्यं) जिस मनुष्य पर तुम कृपा करते हो, उसे संकटोंके (पारं नयथ) पार ले जाते हो ॥ ३४ ॥

[४८२] हे (चर्षणीसहः राजानः) शत्रुओंका पराभव करनेवाले तेजस्वी देवो ! (यूयं) तुम सब (मानुषान् क्षयन्तं) मनुष्योंको क्षीण करनेवाले (कंचित् अनु) किसीको भी मत छोडो । (वरुण मित्र अर्यमन्) हे वरुण, मित्र और अर्यमा देवो ! (ते वयं) तेरे हम सब (वः ऋतस्य) तुम्हारे यज्ञके (रथ्यः स्याम) संचालन करनेवाले हों ॥ ३५ ॥

[४८३] (मंहिष्ठः अर्यः सत्पतिः) अत्यंत पूज्य, श्रेष्ठ और सज्जनोंका पालन करनेवाले (पौरुकुत्स्यः त्रसदस्युः) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्युने (मे) मुझे (पंचाशतं वधूनां अदात्) पचास स्त्रियां दीं ॥ ३६ ॥

पुरुकुत्स— जो बहुत सी बुराइयोंको दूर करता है ।

त्रसदस्युः— जो दस्युओं- दुष्टोंको डराता है ।

[४८४] (उत) और (सुवास्त्वाः तुग्वनि अधि) सुवास्तवा नदीके किनारे (वयियोः प्रयियोः मे) वस्त्रादि लेकर जाते हुए मुझे (तिसृणां सप्ततीनां) दोसौ दस गायें तथा (श्यावः प्रणेता) तथा उत्तम रीतिसे ले जानेवाला एक काला बैल यह सब (वसुः भुवत्) धन दिया, अतः वह दाता (दियानां पतिः) दाताओंका स्वामी हुआ ॥ ३७ ॥

[२०]

[४८५] हे (प्रस्थावानः) वेगपूर्वक जानेवाले वीरो ! (आ गन्त) हमारे समीप आओ, (मा रिषण्यत) आनेसे इनकार न करो । हे (स-मन्यवः !) उत्साहसे परिपूर्ण वीरो ! (स्थिरा चित्) जो शत्रु स्थिर एवं अटल हो चुके हों, उन्हें भी (नमयिष्णवः) तुम झुकानेवाले हो, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि हमसे तुम (मा अप स्थात) दूर न रहो ॥ १ ॥

भावार्थ— किसीसे भी द्रोह न करनेवाले तथा उत्तम दान देनेवाले ये देव सभी मनुष्योंके बीचमें जिस पर कृपा करते हैं, उस पर किसी तरहका संकट नहीं आने देते ॥ ३४ ॥

हे देवो ! जो दुष्ट मनुष्योंको क्षीण करनेवाले हों, उन्हें तुम नष्ट करो और हम भी तुम्हारा सामर्थ्य बढानेवाले यज्ञोंको करें । यज्ञसे देवोंका सामर्थ्य बढता है ॥ ३५ ॥

अनेक तरहकी दुष्टताको दूर करनेवाले तथा दुष्टोंको डरानेवाले वीरने स्त्रियोंको भी शिक्षित किया । राष्ट्रमें स्त्रियां भी शिक्षित हों ॥ ३६ ॥

दाता गण ब्राह्मणोंको गाय और बैल आदि पशुओंका दान करें ॥ ३७ ॥

इन वीरोंमें इतनी क्षमता विद्यमान है कि प्रबल तथा सुस्थिर शत्रुको भी वे विनम्र कर सकते हैं । इनका यह महान् पराक्रम विख्यात है । हमारी यही कामना है कि, वे हमारे समीप आ जाएँ और हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

४८६ वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥

४८७ विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् । विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥

४८८ वि द्वीपानि पापतन् तिष्ठद् दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥ ४ ॥

४८९ अच्युता चिद् वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः । भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥

अर्थ [४८६] (हे ऋभुक्षणः) वज्रधारी (रुद्रासः) शत्रु संघको रुलानेवाले (मरुतः) वीर मरुतो ! (सुदीतिभिः) अत्यन्त तेजस्वी (वीळुपविभिः) सुदृढ वज्रोंसे युक्त होकर (आ गत) इधर आओ । हे (पुरुस्पृहः) बहुतों द्वारा अभिलषित तथा (सोभरीयवः) सोभरी ऋषि पर अनुग्रह करनेकी इच्छा करनेवाले वीरो ! (नः यज्ञं) हमारे यज्ञोंमें (अद्य इषा आ आ) आज अन्नके साथ आओ ॥ २ ॥

[४८७] (विष्णोः एषस्य) व्यापक आकांक्षाओंकी पूर्ति करनेवाले (मीळ्हुषां) वृष्टि करनेवाले (शिमीवतां) उद्योगशील (रुद्रियाणां) रुद्रके पुत्र ऐसे (मरुतां) मरुतोंके (उग्रं) वीर भाव पैदा करनेवाले (शुष्मं) बलको (विद्माहि) हम जानतेही हैं ॥ ३ ॥

[४८८] हे (शुभ्र-खादयः) सुफेद हस्तभूषण धारण करनेवाले (स्व-भानवः !) स्वयं तेजस्वी वीरो ! (यत्) जब तुम (एजथ) जाते हो, शत्रुदल पर धावा बोलनेके लिए हलचल करते हो, तब (द्वीपानि वि पापतन्) टापू तक नीचे गिर जाते हैं । (तिष्ठत्) सभी स्थावर चीजें (दुच्छुना) विपत्तिसे युक्त बन जाते हैं; (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक तथा भूलोक कांपने (युजन्त) लगते हैं । (धन्वानि) मरुभूमिकी बालू (प्र ऐरत) अधिक वेगसे उडने लगती है ॥ ४ ॥

[४८९] (वः अज्मन्) तुम्हारी चढाईके मौके पर (अच्युता चित्) न हिलनेवाले बडे बडे (पर्वतासः) पहाड तथा (वनस्पतिः) पेड भी (आ नानदति) दहाडने लगते हैं, वैसेही तुम (यामेषु) जब शत्रुदलपर आक्रमणार्थ यात्रा करना शुरु करते हो, तब (भूमिः रेजते) पृथ्वी विकंपित हो उठती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— वज्र धारण करनेवाले तथा समूची जनताके प्यारे ये वीर मरुत् अपने तेजस्वी एवं प्रभावशाली हथियारोंके साथ इधर चले आवें और वे इस यज्ञमें यथेष्ट अन्न लावें ताकि यह यज्ञ उचित ढंगसे पूर्ण हो ॥ २ ॥

मरुत् वर्षा करनेवाले वीर उद्योगमें निरत तथा पराक्रमी हैं । उनका बल अनूठा है ॥ ३ ॥

साफसुथरे गहने पहन कर ये तेजःपूर्ण वीर जब शत्रुदल पर चढाई करनेके लिए अति वेगसे प्रस्थान करना शुरू करते हैं, तब भूमिके ऊपरी भाग नीचे गिर पडते हैं, वृक्ष जैसे स्थावर भी टूट गिरते हैं, आकाश एवं पृथ्वीमें कँपकँपी पैदा हो जाती है और रेगिस्तानकी बालुका तक वेगसे ऊपर उडने लगती है । इतनी भारी हलचल विश्वमें मचा देनेकी क्षमता वीरोंके आन्दोलनमें रहती है ॥ ४ ॥

(आधिदैविक क्षेत्रमें) वायु जोरसे बहने लग जाए, आँधी या तूफान प्रवर्तित हो जाए, तो पर्वतोंपरके वृक्ष तक डावाँडोल हो जाते हैं, तथा ऊँची पहाडी चोटियों पर पवनकी गति अतीव तीव्र प्रतीत होती है । वृक्षोंके परस्पर एक दूसरेसे घिस जानेसे भीषण ध्वनि प्रादुर्भूत होती है, तथा भूमि भी चलायमान प्रतीत होती है । (आधिभौतिक क्षेत्रमें) शत्रुओं पर जब वीर सैनिक धावा बोलते हैं, तब दृढमूल होने पर भी शत्रु विचलित हो जडमूलसे उखड जाता है ॥ ५ ॥

४९० अमा॑य वो मरुतो॒ यात॑वे॒ द्यौ- र्जिही॑त॒ उत्त॑रा बृ॒हत् ।
यत्रा॒ नरो॒ देदि॑शते॒ तनू॒-ष्वा त्वक्षां॑सि बा॒ह्वोज॑सः ॥ ६ ॥
४९१ स्व॒धामनु॒ श्रियं॒ नरो॒ महि॑ त्वे॒षा अम॑वन्तो॒ वृष॑प्सवः । वह॑न्ते॒ अह्रु॑तप्सवः ॥ ७ ॥
४९२ गोभि॑र्वा॒णो अ॑ज्यते॒ सोभ॑रीणां॒ रथे॒ कोशे॑ हिर॒ण्यये॑ ।
गोब॑न्धवः सुजा॒तास॑ इ॒षे भु॒जे म॒हान्तो॑ नः॒ स्पर॑से॒ नु ॥ ८ ॥
४९३ प्रति॑ वो वृषदञ्जयो॒ वृष्णे॒ शर्धा॑य॒ मारु॑ताय भरध्वम् । ह॒व्या वृष॑प्रयाव्णे ॥ ९ ॥
४९४ वृ॒षण॒श्वेन॑ मरुतो॒ वृष॑प्सुना॒ रथे॑न॒ वृष॑नाभिना ।
आ श्ये॒नासो॒ न प॒क्षिणो॒ वृथा॑ नरो ह॒व्या नो॑ वी॒तये॑ गत ॥ १० ॥

अर्थ— [४९०] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः अमाय) तुम्हारी सेनाको (यातवे) जानेके लिए (यत्र) जिस ओर (बाहु-ओजसः) बाहु बलसे युक्त (नरः), तथा नेताके पद पर अधिष्ठित तुम वीर (त्वक्षांसि) सभी शक्तियोंको अपने (तनूषु) शरीरोंमें एकत्रित कर (आ देदिशते) प्रहार करते हो उधर (द्यौः) आकाश भी (उत्तरा) ऊपर ऊपर (बृहत्) विस्तृत एवं बृहदाकार बनते बनते (जिहीते) जा रहा है, ऐसा प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

[४९१] (त्वेषाः) तेजस्वी, (अमवन्तः) बलवान्, (वृषप्सवः) बैलके जैसे हृष्टपुष्ट तथा (अ-ह्रुत-प्सवः) सरल स्वभाववाले (नरः) नेताके नाते वीर (स्व धां अनु) अपनी धारकशक्तिके अनुकूल अपनी (श्रियं महि) शोभा एवं आभाको अत्यधिक मात्रामें (वहन्ति) बढाते हैं ॥ ७ ॥

[४९२] (सोभरीणां हिरण्यये रथे) ऋषि सोभरिके सुवर्णमय रथके (कोशे) आसनपर (गोभिः) स्वरोंके साथ अर्थात् गानोंसहित (वाणः अज्यते) वाण नामक बाजा बजाया जाता है, (गो-बन्धवः) गौके बंधु यानी गौको अपनी बहनके समान आदरकी दृष्टिसे देखनेवाले (सु-जातासः) अच्छे कुलमें उत्पन्न (महान्तः) और बडे प्रभावशाली ये वीर (नः इषे) हमारे अन्नके लिए (भुजे) भोगोंके लिए तथा (स्परसे) फलोंके लिए (नु) तुरन्त ही हमारे सहायक बनें ॥ ८ ॥

[४९३] (वृषद्-अञ्जयः !) सोमको सम्मानपूर्वक अर्पण करनेवाले हे याजको ! तुम (वः) तुम्हारे समीप आनेवाले (वृष्णे) बलवान् तथा (वृष-प्रयाव्णे) बैलके समान इठलाते हुए जानेवाले (मारुताय) मरुतोंके समुदायके (शर्धाय) बल बढानेके लिए (हव्या प्रति भरध्वं) हविष्यान्न प्रत्येकको पर्याप्त मात्रामें प्रदान करो ॥ ९ ॥

[४९४] हे (नरः मरुतः !) नेतृत्वगुणसे संपन्न वीर मरुतो ! (वृषन्-अश्वेन) बलिष्ठ घोडोंसे युक्त, (वृष-प्सुना) बैलके समान सुदृढ दिखाई देनेवाले (वृष-नाभिना) और प्रबल नाभिसे युक्त (रथेन) रथसे (नः हव्या) हमारे हविर्द्रव्योंके (वीतये) सेवनार्थ (श्येनासः पक्षिणः न) बाज पंछियोंकी नाईं वेगसे (वृथा आ गत) बिना किसी कष्टके आओ ॥ १० ॥

भावार्थ— इन वीरोंकी सेना जिस ओर मुड कर जाने लगती है और जिस दिशामें ये वीर शत्रु पर चढाई करते हैं, उसी ओर मानों स्वयं आकाशही विस्तृत एवं चौडा मार्ग बना दे रहा है, ऐसा प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

तेजयुक्त बलिष्ठ जीवनका बलिदान करनेवाले और सरल प्रकृतिवाले वीर अपनी शक्तिके अनुसार निज शोभा बढाते हैं ॥ ७ ॥

सोभरी नामसे विख्यात ऋषियोंके सुवर्णविभूषित रथमें आसनपर बैठकर रमणीय गायनके स्वरोंसे वाण, बाजा बजाया जा रहा है, इस गानको सुनकर गोसेवामें निरत एवं उच्च परिवारमें उत्पन्न महान् वीर हमें अन्न, उपभोग तथा उत्साह दे दें ॥ ८ ॥

शक्तिमान् तथा प्रतापी मरुतोंको याजक बडे सम्मान एवं आदरसे हविसे परिपूर्ण अन्नकूट पर्याप्त रूपसे दें ॥ ९ ॥

बलवान् घोडोंसे युक्त एवं सुदृढ रथ पर बैठकर हविष्यान्नके सेवनार्थ वीर पुरुष बहुत जल्द एवं बडे वेगसे हमारे समीप आ आयँ ॥ १० ॥

४९५ समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु । दविद्युतत्यृष्टयः ॥ ११ ॥
४९६ त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वो ऽनीकेष्वधि श्रियः ॥ १२ ॥
४९७ येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद् भुजे । वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥
४९८ तान् वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [४९५] (एषां) इन सभी वीरोंका (अञ्जि) गणवेश (समानं) एकरूप है, इनके गलेमें (रुक्मासः) सुवर्णके बनें हुए सुन्दर हार (वि भ्राजन्ते) चमकते हैं और (बाहुषु अधि) भुजाओं पर (ऋष्टयः) हथियार (दविद्युतति) प्रकाशमान हो रहे हैं ॥ ११ ॥

[४९६] (उग्रासः) मनमें किंचित् भयका संचार करानेवाले, (वृषणः) बलिष्ठ (उग्र-बाहवः) तथा सामर्थ्ययुक्त बाहुओंसे युक्त (ते) वे वीर मरुत् (तनूषु) अपने शरीरोंकी रक्षा करनेके कार्यमें (नकिः येतिरे) जुतरां प्रयत्न नहीं करते हैं। हे वीरो ! (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (स्थिरा) अनेक अटल एवं दृढ (धन्वानि) धनुष्य तथा (आयुधा) कई हथियार हैं, अतएव (अनीकेषु अधि) सेनाके अग्रभागोंमें तुम्हें (श्रियः) विजयजन्य शोभा अलंकृत करती है ॥ १२ ॥

[४९७] (अर्णः न) हलचलसे युक्त जलप्रवाहकी नाईं (सप्रथः) चतुर्दिक् फैलनेवाले (त्वेषं) तेजःपूर्ण ढंगका जो (शश्वतां येषां) इन शाश्वत वीरोंका (नाम) यशोवर्णन है, (एकं इत्) यही एकमात्र (सहः) सामर्थ्य देनेवाला है और (पित्र्यं वयः न) पितासे प्राप्त अन्नके समान (भुजे) उपभोगके लिए सर्वथैव योग्य है ॥ १३ ॥

[४९८] (तान् मरुतः) उन मरुतोंका (वन्दस्व) अभिवादन करो, (तान् उपस्तुहि) उनकी सराहना करो, (हि) क्योंकि (धुनीनां तेषां) शत्रुओंको हिलानेवाले उन वीरोंमें (अराणां चरमः न) श्रेष्ठ एवं कनिष्ठ यह भेदभाव नहीं के बराबर है, अर्थात् सभी समान हैं और किसी भी प्रकारकी विषमताके लिए जगह नहीं है, (तत् एषां तत् एषां) इनके (दाना मह्ना) दान बडे महत्त्वपूर्ण होते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ— इन सभी वीरोंकी वेशभूषोंमें कहीं भी विभिन्नताका नाम तक नहीं पाया जाता है। इनके गणवेषकी एकरूपता या समानता प्रेक्षणीय है। सबके गलेमें समान रूपके हार पडे हुए हैं और सभीके हाथोंमें सदा हथियार झिलमिल कर रहे हैं ॥ ११ ॥

ये वीर बडे ही बलिष्ठ तथा उग्र हैं और इनकी भुजाओंमें असीम बल एवं शक्ति विद्यमान है। शत्रुदलसे जूझते समय अपने प्राणोंकी भी पर्वाह ये नहीं करते हैं। इनके रथोंमें सुदृढ धनुष्य रखे जाते हैं, तथा हथियार भी पर्याप्त मात्रामें रखे जाते हैं। यही कारण है कि, युद्धभूमिमें ये ही हमेशा विजयी ठहरते हैं ॥ १२ ॥

जिसमें वीरोंके तेजस्वी तथा शाश्वत यशका बखान किया हो, वही काव्य शक्ति बढानेमें सहायक होता है। वह जलके समान सभी जगह फैलनेवाला तथा बपौतीके जैसे भोग्य और स्फूर्तिदायक है ॥ १३ ॥

मरुतोंका अभिवादन करके उनकी सराहना करनी चाहिए। सभी प्रकारके शत्रुओंको विकंपित तथा विचलित करनेकी क्षमता इन वीरोंमें है। इनमें किसी प्रकारकी विषमता नहीं है, अतः कोई भी ऊँचा या नीचा मरुतोंके संघमें नहीं पाया जाता है। सभी साम्यावस्थाकी अनुभूति पाते हैं। इनके दान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं ॥ १४ ॥

×

४९९ सुभगः स वं ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु । यो वां नूनमुतासति ॥ १५ ॥
५०० यस्यं वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥ १६ ॥
५०१ यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः । युवानस्तथेदसत् ॥ १७ ॥
५०२ ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये ।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥ १८ ॥
५०३ यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा । गाय गा इव चर्कृषत् ॥ १९ ॥

अर्थ— [४९९] हे (मरुतः !) मरुतो ! (उत पूर्वासु व्युष्टिषु) पहलेके दिनोंमें (यः) जो (वां नूनं असति) तुम्हारा ही बनकर रहा, (सः) वह (वः ऊतिषु) तुम्हारी संरक्षणकी आयोजनाओंसे सुरक्षित होकर सचमुच (सु- भगः आस) भाग्यशाली बन गया ॥ १५ ॥

[५००] हे (धूतयः नरः !) शत्रुओंको विकम्पित कर देनेवाले वीर नेतागण ! (यूयं) तुम (यस्य वा वाजिनः) जिस अन्नयुक्त पुरुषके समीप विद्यमान (हव्या) हविर्द्रव्योंके (वीतये) सेवनार्थ (आ गथ) जाते हो, (सः) वह (द्युम्नैः) रत्नोंके (उत) तथा (वाज-सातिभिः) अन्न-दानोंके फलस्वरूप (वः सुम्ना) तुम्हारे सुखोंको (अभि नशत्) पूर्ण रूपसे भोगता है ॥ १६ ॥

[५०१] (असु-रस्य वेधसः) जीवन देनेवाले ज्ञानी (रुद्रस्य युवानः सूनवः) वीरभद्रके पुत्र तथा युवा वीर मरुत् (दिवः) स्वर्गसे आकर (यथा) जैसे (वशन्ति) इच्छा करेंगे, (तथा इत्) उसी प्रकार हमारा बर्ताव (असत्) रहे ॥ १७ ॥

[५०२] (ये) जो (सु-दानवः मरुतः) भली भाँति दान देनेवाले मरुतोंका (अर्हन्ति) सत्कार करते हैं (ये च) और जो (मीळ्हुषः) उन दयासे पिघलनेवाले वीरोंके अनुकूल (स्मत् चरन्ति) आचरण रखते हैं, हम भी ठीक उन्हींके समान बर्ताव रखते हैं, (अतः चित्) इसीलिए हे (युवानः !) नवयुवक वीरो ! (वस्यसा हृदा) उदार अन्तःकरणपूर्वक (नः) हमारी ओर (उप आ आ ववृध्वं) आगमन करके हमारी समृद्धि करो ॥ १८ ॥

[५०३] हे (सोभरे !) ऋषि सोभरि ! (यूनः) युवक (वृष्णः) बलवान् तथा (पावकान्) पवित्रता करनेवाले वीरोंको लक्ष्यमें रखकर (नविष्ठया गिरा) अभिनव वाणीसे, स्वरसे, (चर्कृषत्) खेत जोतनेवाला किसान (गाः इव) जिस प्रकार बैलोंके लिए गाने या तराने कहता है, वैसे ही (सु अभि गाय) भली भाँति काव्य गायन करो ॥ १९ ॥

भावार्थ— यदि कोई एक बार इन वीरोंका अनुयायी बन जाए, तो सचमुच उसे भाग्यवान् समझनेमें कोई आपत्ति नहीं । उसके भाग्य खुल जावेंगे, इसमें क्या संशय ? ॥ १५ ॥

ये वीर जिसके अन्नका सेवन करते हैं, वह रत्न, अन्न तथा सुखोंसे युक्त होता है ॥ १६ ॥

दूसरोंकी रक्षाके लिए अपना जीवन देनेवाले नवयुवक वीर स्वर्गीय स्थानमेंसे हमारे निकट आ जायँ और हमारा आचरण भी उनकी निगाहमें अनुकूल एवं प्रिय बने ॥ १७ ॥

वीर मरुत् दानी हैं और करुणाभरी निगाहसे सहायता करते हैं : चूँकि हम उनका सत्कार करते हैं, अतः ये वीर हमारे समीप आ जायँ और हम पर अनुग्रह करें ॥ १८ ॥

हल चलाते समय जैसे काश्तकार बैलोंको रिझानेके लिए गाना गाता रहता है, वैसे ही युवक, बलिष्ठ एवं पवित्र वीरोंके वर्णनोंसे युक्त वीरगीतोंका गायन तुम करते रहो ॥ १९ ॥

५०४ साह्वा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥ २० ॥
५०५ गावश्चिद् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः । रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥
५०६ मर्तश्चिद् वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥ २२ ॥
५०७ मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः । यूयं सखायः सप्तयः ॥ २३ ॥
५०८ याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥ २४ ॥

अर्थ— [५०४] (होतृषु) शत्रुको चुनौती देनेवाले (विश्वासु पृत्सु) सभी सैनिकोंमें (हव्यः मुष्टि-हा इव) चुनौती देनेवाले मुष्टियोद्धा मल्लकी नाईं (सह्वाः सन्ति) और युद्धके भीषण आक्रमणको सहन करनेकी क्षमता रखते हैं, उन (वृष्णः) बलिष्ठ (चन्द्रान् न) चन्द्रमाके समान आनन्ददायक (सु-श्रवस्तमान्) निर्मल यशसे युक्त (मरुतः अह) मरुत् वीरोंकी ही (गिरा वन्दस्व) सराहना अपनी वाणीसे करो ॥ २० ॥

[५०५] हे (स-मन्यवः मरुतः !) उत्साही वीर मरुतो ! (गावः चित्) तुम्हारी माताएँ गौएँ (स-जात्येन) एकही जातिकी होनेके कारण (स-बन्धवः) अपनेही आत्मीय-बन्धुओंको, बैलोंको (ककुभः) विभिन्न दिशाओंमें जाने पर भी (मिथः रिहते घ) एक दूसरेको प्रेमपूर्वकही चाटती रहती हैं ॥ २१ ॥

[५०६] हे (नृतवः) नृत्य करनेवाले तथा (रुक्म-वक्षसः मरुतः !) सुवर्णके हार छाती पर धारण करनेवाले वीर मरुत् गण ! (मर्तः चित्) मानव भी (वः भ्रातृत्वं) तुम्हारे भाईपनको (उप आ अयति) पानेके लिए योग्य ठहरता है, इसीलिए (नः अधि गात) हमारे साथ रहकर गायन करो, (हि) क्योंकि (वः आपित्वं) तुम्हारी मित्रता (सदा) हमेशा (नि-ध्रुवि अस्ति) न टलनेवाली है ॥ २२ ॥

[५०७] (सु-दानवः) दानी, (सखायः) मित्रवत् बर्ताव रखनेवाले तथा (सप्तयः) सात सात पुरुषोंकी एक पंक्ति बनाकर यात्रा करनेवाले (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (नः) हमारे लिए (मारुतस्य भेषजस्य) वायुमें विद्यमान औषधि द्रव्यको (आ वहत) ले आओ ॥ २३ ॥

[५०८] हे (मयो-भुवः) सुख देनेवाले (अ-सच-द्विषः) एवं अजातशत्रु वीरो ! (याभिः ऊतिभिः) जिन संरक्षक शक्तियोंसे तुम (सिन्धुं अवथ) समुद्रकी रक्षा करते हो (याभिः तूर्वथ) जिन शक्तियोंके सहारे शत्रुका विनाश करते हो, (याभिः) जिनकी सहायतासे (क्रिविं दशस्यथ) जलकुंड तैयार कर देते हो, उन्हीं (शिवाभिः) कल्याणप्रद शक्तियोंके आधार पर (नः मयः भूत) हमें सुख देनेवाले बनो ॥ २४ ॥

भावार्थ—शत्रुओंपर धावा करनेवाले सभी सैनिकोंमें जिस भाँति मुष्टियोद्धा पहलवान अधिक बलवान् होता है, उसी प्रकार सभी वीर शत्रुदलका आक्रमण बरदाश्त कर सकें ऐसे बलिष्ठ, आनन्द बढानेवाले तथा कीर्तिमान् वीरोंकी प्रशंसा करो ॥ २० ॥

मरुतोंकी माताएँ-गौएँ भले ही किसी भी दिशामें चली जाएँ, तो भी प्यारसे एक दूसरेको चाटने लगती हैं। (अधिभूतमें) वीरोंकी दयालु माताएँ अपने भाइयों, बहनों एवं वीर पुत्रों और सभी वीरोंको प्यारसे गले लगाती हैं ॥ २१ ॥

वीर सैनिक हर्षपूर्वक नृत्य करनेवाले तथा कई अलंकार अपने वक्षःस्थल पर धारण करनेवाले हैं। मानवको भी उनकी मित्रता पाना सुगम है, योग्यता बढने पर वह मरुतोंका साथी बन जाता है और वह मित्रतापूर्ण सम्बन्ध एक बार प्रस्थापित होने पर अटूट बना रहता है ॥ २२ ॥

ये वीर एक एक पंक्तिमें सात सात इस तरह मिलकर चलनेवाले हैं और अच्छे ढंगके उदारचेता मित्र भी हैं। हमारी इच्छा है कि ये हमारे लिए वायुमंडलमें विद्यमान औषधिको ले आएँ ॥ २३ ॥

ये वीर अपनी शक्तियोंसे समुद्र एवं नदियोंकी रक्षा करते हैं, शत्रुदलको मटियामेट कर देते हैं, जनताको पानी पीनेको मिले, इसलिए सुविधाएँ पैदा कर देते हैं और सभी लोगोंकी सुविधाका प्रबन्ध कर डालते हैं ॥ २४ ॥

५०९ यत् सिन्धौ यदसिक्न्यां यत् समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः । यत् पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥
५१० विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ २६ ॥

[२१]

ऋषिः-१८ सोभरिः काण्वः। देवता- इन्द्र १७-१८ चित्रः। छन्द-प्रगाथः-(विषमा ककुप्, समा सतो बृहती)।

५११ वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
५१२ उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
५१३ आ याहीम इन्दवो ऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥

अर्थ— [५०९] हे (सु-बर्हिषः मरुतः !) उत्तम तेजस्वी वीर मरुतो ! (यत्) जो (सिन्धौ भेषजं) सिन्धुनदीमें औषधिद्रव्य है, (यत् असिक्न्यां) जो असिक्नीके प्रवाहमें है, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रमें है और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों पर है, वह सभी औषधिद्रव्य तुम्हें विदित है ॥ २५ ॥

[५१०] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (विश्वं पश्यन्तः) सब कुछ देखनेवाले तुम (तनूषु) हमारे शरीरोंमें (आ बिभृथ) पुष्टि उत्पन्न करो और (तेन) उस ज्ञानसे (नः अधि वोचत) हमसे बोलो; इसी प्रकार (नः आतुरस्य) हममें जो बीमार हो, उसके (रपः क्षमा) दोषकी शांति करके (विह्रुतं) टूटे हुए अवयवको (पुनः इष्कर्त) फिरसे ठीक बिठाओ ॥ २६ ॥

[२१]

[५११] हे (अ-पूर्व्य) अपूर्व इन्द्र ! (भरन्तः अवस्यवः वयं) अन्न देनेवाले, तथा रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम (चित्रं त्वां) विलक्षण शक्तिवाले तुमको (कच्चिद् स्थूरं न) जैसे कोग किसी विद्वान्को बुलाते हैं, उसी तरह (वाजे) संग्राममें (हवामहे) बुलाते हैं ॥ १ ॥

[५१२] हे इन्द्र ! हम (कर्मन्) संग्रामादि कामोंमें (ऊतये) संरक्षणके लिए (त्वा उप) तुमकोही पास [बुलाते हैं], (यः धृषत्) जो शत्रुओंको मारता है, (सः उग्रः युवा) वह वीर तथा तरुण इन्द्र (नः चक्राम) हमारे पास आवे। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सखायः) हम सब मित्रगण (सानसिं) दान देनेवाले और (अवितारं) संरक्षण करनेवाले (त्वां इत् ववृमहे) तुम्हें ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

[५१३] हे (अश्व-पते, गो-पते, उर्वरा-पते) घोडे, गाय और भूमिके स्वामिन् इन्द्र ! (इमे इन्दवः) ये सोम [तुम्हारे लिए हैं] अतः (आ याहि) आओ और हे (सोम-पते) सोमके पालक इन्द्र ! (सोमं पिब) सोम पियो ॥ ३ ॥

भावार्थ— सिन्धु, असिक्नी, समुद्र तथा पर्वतों पर जो रोगनिवारक औषधि हों, उन्हें जानना वीरोंके लिए अनिवार्य है ॥ २५ ॥

ये वीर चिकित्सा करनेवाले कविराज या वैद्य हैं और विविध औषधियोंसे भली भाँति परिचित हैं। वे हमें पुष्टिकारक औषध प्रदान कर हृष्टपुष्ट बना दें। जो कोई रोगग्रस्त हो, उसके शरीरमें पाये जानेवाले दोषको हटाकर और छिन्नविच्छिन्न अंगको फिर ठीक प्रकारसे जोडकर पहले जैसे कार्यक्षम बना दें ॥ २६ ॥

हे अपूर्व शक्तिशाली इन्द्र ! संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हें संग्राममें सहायार्थ बुलाते हैं ॥ १ ॥

वह वीर और तरुण इन्द्र हमारे समीप आवे, हम सब मित्रगण संरक्षण करनेवाले तुझ इन्द्रका ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

हे पशुओंके स्वामिन् इन्द्र ! तुम्हारे लिए ये सोमरस निचोडकर रखे हुए हैं, अतः तुम इन्हें पीओ ॥ ३ ॥

५१४ वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥ ४ ॥
५१५ सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे । अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥
५१६ अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद् वि दीधयः ।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥ ६ ॥
५१७ नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः । विद्मा पुरा परीणसः ॥ ७ ॥
५१८ विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्यमा ते ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥

अर्थ— [५१४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अ-बन्धवः वयं) बन्धु- बान्धव रहित हम (विप्रासः) ज्ञानी (बन्धुमन्तं त्वा हि) भाइयोंवाले तुमकोही [भाईके रूपमें] (येमिम) मानते हैं, हे (वृषभः) कामनाओंके पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! (ते या धामानि) तुम्हारे जो तेज हैं, (तेभिः विश्वेभिः) उन समस्त तेजोंके साथ (सोम पीतये) सोम- पानके लिए (आ गहि) आओ ॥ ४ ॥

[५१५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (गो-श्रीते) गौके दूध, दहीसे मिश्रित हुए, (मदिरे) उत्साहको देनेवाले, (विवक्षणे) अत्यन्त प्रिय (ते मधौ) तेरे इस सोमके यज्ञमें (वयः यथा) पक्षियोंके समान (सीदन्तः) बैठे हुए हम (त्वां अभि नोनुमः) तुम्हारी ही स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[५१६] हे इन्द्र हम (एना नमसा) इस स्तुतिके द्वारा (त्वा च अच्छ वदामसि) तुम्हारी उत्तम प्रशंसा करते हैं, तुम (मुहुः किंचिद् वि दीधयः) बार बार क्या सोचते हो ? हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! हमारी (कामासः सन्ति) अभिलाषायें हैं, (त्वं ददिः) तुम [उनको] देनेवाले हो (वयं स्मः) हम हैं, तथा (नः धियः सन्ति) हमारी स्तुतियां भी हैं ॥ ६ ॥

[५१७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते ऊती) तुम्हारे संरक्षणमें (वयं नूत्नाः इत् अभूम) हम [सर्वदा] नये ही होते हैं । हे (अद्रि-वः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (पुरा) पहले तुमको (परीणसः न हि विद्म) सर्वत्र व्याप्त नहीं जानते थे, (नु) पर अब (ते) तुमको वैसा जानते हैं ॥ ७ ॥

[५१८] हे (शूर वज्रिन्) शूरवीर तथा वज्रधारी इन्द्र ! हम (सखित्वं उत भोज्यं विद्म) तुम्हारी मित्रता और भोग्य पदार्थोंको जानते हैं, अतः (ते ता आ ईमहे) तुमसे उनको मांगते हैं, (उत) और हे (वसो शिप्रिन्) सबको बसानेवाले तथा शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! (गो-मति अस्मिन् वाजे) गौओंवाले इस अन्नमें (नः सं आ शिशीहि) हमें रख ॥ ८ ॥

भावार्थ— भाइयोंसे रहित हम, हे इन्द्र ! तुम्हें ही भाईके रूपमें स्वीकार करते हैं, अतः तुम्हारे जो तेज हैं, उन समस्त तेजोंके साथ आओ ॥ ४ ॥

सोमरसमें गायका दूध और दही मिलाया जाता है, तब वे रस पीनेके योग्य स्वादिष्ट होते हैं । उन सोमरसोंको तैय्यार करनेके साथ ही साथ स्तोत्र भी बोले जाते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हम कबसे तुम्हारी प्रार्थना कर रहे हैं, तुम फिर सोच विचार क्या करते हो, तुम शीघ्र आकर हमारी अभिलाषायें पूर्ण करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तेरे संरक्षणमें हम सदा नये ही रहते हैं । अतः सर्वत्र व्याप्त तुमको हम पूरी तरह नहीं जान सकते । भगवान्‌को पूर्ण रीतिसे जानना सर्वथा असंभव है ॥ ७ ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! हम तुमसे मित्रता और भोग्य पदार्थोंको मांगते हैं । हे निवासक तथा शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! गौओंसे मिलनेवाले इस अन्नमें हमें सम्यक् रीतिसे रख । हमें ऐसा अन्न मिले ऐसा कर ॥ ८ ॥

५१९ यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥
५२० हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ १० ॥
५२१ त्वया ह स्विद् युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि । संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ११ ॥
५२२ जयेम कारे पुरुहूत कारिणो ऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चा ऽवेरिन्द्र प्र णो धियः ॥ १२ ॥
५२३ अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥
५२४ नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ १४ ॥

अर्थ— [५१९] हे (सखायः) मित्रो ! (यः) जो इन्द्र (पुरा) पहले (इदं इदं वस्यः) इस धनको (नः) हमारे लिए (प्र आ निनाय) लाया था, (तं इन्द्रं उ) उसी इन्द्रकी (वः ऊतये) तुम्हारे संरक्षणके लिए (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

[५२०] (यः अमन्दत) जो आनन्दित होता है, (सः हि) वह ही (हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं) हरित वर्णके घोडेवाले, सज्जनोंके पालक, शत्रुओंका पराजय करनेवाले इन्द्रकी (स्म) स्तुति करता है (सः) वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओंके लिए (शतं गव्यं अश्व्यं) सैकडों गायों और घोडोंसे युक्त धन (तु आ वयति) देता है ॥ १० ॥

[५२१] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (त्वया युजा स्वित्) तुम्हारी सहायतासे ही (वयं) हम (गोमतः जनस्य संस्थे) गायोंवाले मनुष्योंकी संस्थामें रहकर (श्वसन्तं) लम्बी सांसें लेनेवाले थके शत्रुको (प्रति ब्रुवीमहि) योग्य उत्तर दें ॥ ११ ॥

[५२२] हे (पुरु-हूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! हम (कारे) युद्धमें (कारिणः) हिंसा कर्म करनेवाले शत्रुओंको (जयेम) जीतें, तथा (दु-ढ्यः) दुष्ट बुद्धिवालों पर भी (अभि तिष्ठेम) शासन करें। (नृभिः) मरुतोंकी सहायतासे (वृत्रं हन्याम) वृत्रको मारें, फिर तुम्हारा (शूशुयाम) यश बढावें। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः धियः प्र अव) हमारी बुद्धियोंकी रक्षा करो ॥ १२ ॥

[५२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं जनुषा अ-भ्रातृव्यः) तुम जन्मसे ही शत्रुरहित हो, तथा (सनात्) चिरकालसे (अना अनापिः असि) बन्धुरहित हो, तुम (आपित्वं) बन्धुत्वको (युधा इत् इच्छसे) युद्धसे ही चाहते हो ॥ १३ ॥

[५२४] हे इन्द्र तुम (रेवन्तं) धनवान्को ही (सख्याय न किः विन्दसे) मित्रताके लिए प्राप्त नहीं करते हो, क्योंकि (सुरा-श्वः) शराब पीकर धनकी वृद्धिको प्राप्त हुए वे लोग (ते पीयन्ति) तुम्हारी हिंसा करना चाहते हैं, (यदा) जब (नदनुं) स्तुति करनेवालेको (कृणोषि) धनवाला करते हो, (सं ऊहसि) और उसका पोषण करते हो, (आत् इत्) तब (पिता इव हूयसे) पिताके समान बुलाये जाते हो ॥ १४ ॥

भावार्थ— जो इन्द्र हमें धन प्रदान करता है, उसी इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं, ताकि वह हमारी रक्षा करे ॥ ९ ॥

सज्जनोंके पालन करनेवाले इन्द्रकी सदा हर्षयुक्त चित्तसे प्रार्थना करनी चाहिए। तब वह प्रसन्न होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करेगा। दूसरोंकी प्रशंसा सदा निर्मल चित्तसे ही करनी चाहिए ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुमसे अच्छी तरह सुरक्षित होकर हम युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करें ॥ ११ ॥

युद्धमें शत्रुता करनेवाले शत्रुओंको हम जीतें। दुष्टबुद्धिवालोंपर शासन करें। वीरोंके साथ रहकर शत्रुको मारें, यश बढायें। अतः हे इन्द्र ! हमारी बुद्धियोंकी सुरक्षा कर ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! तुम जन्मसे ही शत्रुरहित हो। तुम सदा बन्धुरहित-शत्रुरहित हो। तुम बन्धुपन युद्धसे चाहते हो ॥ १३ ॥

यज्ञ न करनेवाले धनवान्को तुम मित्र नहीं बनाते हो, क्योंकि वे शराबसे मस्त होकर तुम्हारी हिंसा करना चाहते हैं। इन्द्र अहंकारियोंका सहायक कभी नहीं होता ॥ १४ ॥

५२५ मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः । नि षदाम सचा सुते ॥ १५ ॥

५२६ मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥ १६ ॥

५२७ इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु । त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥

५२८ चित्र इद् राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्टया सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥

[२२]

(ऋषि- १८ सोभरिः काण्वः । देवता- अश्विनौ १-६ प्रगाथ = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती),
छन्द- ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप्, १२ मध्येज्योतिः प्रगाथः= (९, १३, १५, १७ ककुप्; १०, १४, १६, १८ सतोबृहती) ।

५२९ ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १ ॥

अर्थ— [५२५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तुम्हारे हम (त्वावतः सख्ये) तुम्हारी मित्रतामें (मूरासः यथा) मूर्खोंके समान (अमाजुरः मा) घरमेंही वृद्ध न हों, हम (सुते) सोमयागमें (सचा निषदाम) संघटित होकर बैठेंगे ॥ १५ ॥

[५२६] हे (गो-दत्र) गाय आदिको देनेवाले इन्द्र ! (ते राधसः मा निरराम) तेरे धनसे हम पृथक् न हों । हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (ते) तुझसे भिन्न मनुष्यसे धन (मा गृहामहि) न लें । हे (अर्यः) स्वामिन् ! तू (दृळ्हा चिद् प्रमृश) बलशाली धनोंको हमें दे; (आ भर) अच्छी तरह भर दे, (ते दामानः न आ दभे) तेरे दानको कोई दबा नहीं सकता ॥ १६ ॥

[५२७] (दाशुषे) दान देनेवाले मुझे (इयत् मघं) इतना सारा ऐश्वर्य (इन्द्रः वा घ इत्) या तो इन्द्रने दिया, (वा) अथवा (वसुः) इतना धन (सुभगा सरस्वती ददिः) उत्तम ऐश्वर्यशालिनी सरस्वतीने दिया (वा) या फिर हे (चित्र) वरणीय राजन् ! (त्वं) तूने दिया ॥ १७ ॥

[५२८] (सरस्वतीं अनु) सरस्वतीके पास रहनेवाले (अन्यके राजकाः यके इत्) दूसरे राजा तो छोटे ही हैं, केवल (चित्रः इत् राजा) चित्र ही बडा राजा है, क्योंकि उसने (पर्जन्यः वृष्टया ततनत् इव) जिस तरह मेघ वृष्टिके द्वारा जलको चारों ओर फैलाता है, उसी तरह (सहस्रं अयुता ददत्) हजारों और लाखों धन दिए ॥ १८ ॥

[२२]

[५२९] (ओ) आह, (अद्य) आज (त्यं) उस (दंसिष्ठं रथं) अत्यन्त दर्शनीय रथको, (यं) जिसपर (सुहवा) सुखपूर्वक बुलानेयोग्य (रुद्रवर्तनी) दुःखको दूर करनेके मार्गसे जानेहारे अश्विदेव (सूर्यायै आ तस्थथुः) सूर्याके लिए चढ चुके थे, (ऊतये आ अह्वे) संरक्षणके लिए मैं उनको बुलाता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम्हारी मित्रतामें रहकर हम घरमें ही निष्क्रिय बैठकर वृद्ध न हों, अपितु सदा याग करते हुए संघटित होकर बैठेंगे ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तेरा जो ऐश्वर्य है, उस ऐश्वर्यसे हम कभी दूर न हों । अतः तू हमें सदा बलसे युक्त धन दे । हम उस धनकी रक्षा करनेमें समर्थ हों और उसे कोई शत्रु छीन न सके ॥ १६ ॥

दान देनेवाले दाताको सभी देव तो ऐश्वर्य प्रदान करते ही हैं, पर मनुष्य भी उसकी धन द्वारा सहायता करते हैं ॥ १७ ॥

जो राजा या ऐश्वर्यशाली ज्ञानसे युक्त होकर भी अच्छी तरह दान नहीं देते, वे बडे होते हुए भी छोटे ही हैं । पर जो मेघकी तरह दानकी वर्षा करते हैं, वेही सच्चे राजा और सबके द्वारा वरणीय होते हैं ॥ १८ ॥

अश्विदेव उषाके प्रकाशक हैं । इन्हींके कारण सर्वत्र प्रकाश होता है, इसीलिए ये बुलानेयोग्य हैं ॥ १ ॥

५३० पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥

५३१ इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ३ ॥

५३२ युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद् वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥

५३३ रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुत-स्तेन नासत्या गतम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५३०] हे (सोभरे) सोभरी ऋषि ! (पूर्वा-पुषं) पहले आनेवाले स्तोताओंके पोषणकर्ता, (सुहवं) सुगमतापूर्वक बुलानेयोग्य, (पुरु-स्पृहं) बहुतसे लोग जिसकी इच्छा करते हैं ऐसे, (भुज्युं) भुज्युको, भोजन देनेवाले, (वाजेषु पूर्व्यं) युद्धोंमें सबसे पहले जाकर खडे होनेवाले, (सचनावन्तं) साथी लोगोंसे युक्त, (वि-द्वेषसं) शत्रुओंका विशेष रूपसे द्वेष करनेवाले एवं (अनेहसं) त्रुटिरहित अश्विदेवोंके रथको तू (सुमतिभिः) अच्छी मननीय स्तुतियोंसे प्रशंसित कर ॥ २ ॥

[५३१] (त्या) वे दोनों (दाशुषः गृहं गन्तारा) दानी पुरुषके घर जानेवाले, (देवा) तेजस्वी और (पुरु-भूतमा) बहुत अधिक मात्रामें उपस्थित होनेवाले अश्विदेवोंको (इह) इधर (नमोभिः) नमनपूर्वक (स्ववसे) भलीभाँति रक्षा करनेके लिए (अर्वाचीना करामहे) हमारे अभिमुख करते हैं ॥ ३ ॥

[५३२] (युवोः रथस्य चक्रं) तुम्हारे रथका चक्र (परि ईयते) चारों ओर चला जाता है और (अन्यत्) दूसरा पहिया (ईर्मा वां इषण्यति) प्रेरणकर्ता तुम्हें प्राप्त होता है इसलिए हे (शुभस्पती) शुभके अधिपति ! (वां सुमतिः) तुम्हारी अच्छी बुद्धि, (धेनुः इव) गायके तुल्य जोकि अपने बछडेके समीप दौडी चली आती है, (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हमारे समीप जल्द दौडती आजाय ॥ ४ ॥

[५३३] हे (नासत्या अश्विना) सत्यमय अश्विदेवों ! (वां यः) तुम दोनोंको जो (त्रिवन्धुरः हिरण्य-अभीशुः) तीन स्थानोंमें सुन्दर प्रतीत होनेवाला और सुवर्णमय चाबुकसे युक्त रथ (श्रुतः) विख्यात है तथा (द्यावा-पृथिवी परि भूषति) द्युलोक एवं भूलोकको अलंकृत करता है (तेन आ गतं) उससे इधर पधारो ॥ ५ ॥

भावार्थ— अश्विनौने भुज्युकी रक्षा की, अतः हे ऋषि ! तू इन देवोंकी रक्षा कर, जो अपने भोजन देनेवालेकी रक्षा करता है, उसकी रक्षा ज्ञानी करते हैं ॥ २ ॥

दोनों देव तेजस्वी और सर्वत्र संचार करनेवाले हैं और वे दानी पुरुषोंके घर ही जानेवाले हैं । अतः हम भी दानी होकर उन्हें अपने घर बुलायें ॥ ३ ॥

हे देवो ! तुम्हारा रथ सर्वत्र जानेवाला है, ये सब जगह जाकर कल्याणका विस्तार करते हैं । अतः उनकी अच्छी बुद्धि हमें भी प्राप्त हो और हम भी सबका कल्याण करें ॥ ४ ॥

चारों ओर दृढतासे बंधा हुआ अश्वि देवोंका रथ सब जगह बिना किसी रुकावटके जाता है, इनके रथके कारण द्यु और पृथ्वी दोनों लोक सुशोभित होते हैं । इसी तरह मनुष्योंके रथ भी सर्वत्र जानेवाले हों तथा जहां वे जाएं वहां वे सुशोभित हों ॥ ५ ॥

५३४ दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥ ६ ॥
५३५ उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७ ॥
५३६ अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥
५३७ आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू । युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥
५३८ याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥ १० ॥

अर्थ— [५३४] हे (शुभस्पती) शुभके पालनकर्ता अश्विदेवो ! (मनवे पूर्व्यं) मनुको पहले विद्यमान धन आदि (दिवि दशस्यन्ता) द्युलोकमें देते हुए तुम (वृकेण यवं कर्षथः) हलसे जौको भूमिपर खींचते हो अर्थात् कृषिकर्म करते हो (अद्य) आज (ता वां) ऐसे विख्यात तुम दोनोंको (सुमतिभिः) अच्छी प्रसन्न बुद्धियोंसे (प्र स्तुवीमहि) खूब प्रशंसित करते हैं ॥ ६ ॥

[५३५] हे (वाजिनी-वसू) अन्न या सेनारूपी धनवाले और (वृषणा) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (येभिः ऋतस्य पथिभिः) जिन ऋतके मार्गोंसे त्रसदस्युके पुत्र तृक्षिको (महे क्षत्राय) बडेभारी क्षत्रियोचित वीरताके लिए (जिन्वथः) प्रेरित करने जाते हो उन्हीं मार्गोंसे (नः उप यातं) हमारे समीप आओ ॥ ७ ॥

[५३६] हे (नरा) नेता एवं (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (अयं सोमः) यह सोमरस (वां) तुम दोनोंके लिए (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया है; (सोमपीतये आ यातं) सोमपानके लिए आजाओ और (दाशुषः गृहे पिबतं) दानीके घर उसका पान करो ॥ ८ ॥

[५३७] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (हिरण्यये कोशे रथे) सुवर्णमय भांडारवत् रथपर (आ रुहतं हि) चढकर बैठो और (पीवरीः इषः युञ्जाथां) पुष्ट करनेवाली सुसमृद्ध अन्नसामग्रियोंका संयोग करदो ॥ ९ ॥

[५३८] हे अश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (पक्थं अवथः) पक्थ नरेशकी रक्षा करते हो, (याभिः अध्रिगुं) जिनसे ऐसे नरेशको बचाते कि जिसकी गतिमें कोई रुकावट न डाल सकता हो और (याभिः वि-जोषसं बभ्रुं) जिनकी मददसे विशेष सेवा करनेवाले बभ्रु नरेशकी सेवा करते हो, (ताभिः) उनसे युक्त होकर (नः तूयं) हमारे समीप शीघ्र (मक्षु आ गतं) तुरन्त आओ तथा (यत् आतुरं) जो कोई बीमार दीख पडे उसकी (भिषज्यतं) औषधादिद्वारा चिकित्सा करो ॥ १० ॥

भावार्थ— ये दोनों कल्याणका पालन करनेवाले हैं। ये दोनों देव होकर खेतीका काम करते हैं। खेतीका काम सर्व श्रेष्ठ काम है, जिसे देव भी करते हैं ॥ ६ ॥

अश्विदेव लोगोंको उत्तममार्गसे चलकर वीरता प्राप्त करनेके लिए प्रेरणा देते हैं। मनुष्य वीरता प्राप्त करें, पर अधर्म मार्गसे नहीं, अपितु सत्यके मार्ग पर चलकर ही वीर बनें ॥ ७ ॥

ये दोनों देव धनकी वर्षा करनेवाले हैं, पर ये धनकी वर्षा उसी पर करते हैं, जिसके घर सोम पीते हैं, और ये सोम उसीके घर पीते हैं, जो दानी होता है ॥ ८ ॥

इनका रथ स्वर्णके भांडारसे समृद्ध है, तथा पोषण करनेवाले अन्नोंसे भी युक्त है ॥ ९ ॥

अश्विदेवोंने पवित्र मार्गसे चलनेवालेकी, लोगोंका भरण पोषण करनेवालेकी, तथा ऐसे क्षत्रिय वीरकी कि जिसकी गति कहीं रुकती नहीं, रक्षा की थी। सब एक दूसरेका भरण पोषण करें, स्वयं पवित्र मार्गसे चलें ॥ १० ॥

×

५३९ यदद्रिगावो अद्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे । वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥
५४० ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥ १२ ॥
५४१ ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे । ता ऊ नमोभिरीमहे ॥ १३ ॥
५४२ ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥ १४ ॥
५४३ आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी । हुवे पितेव सोभरी ॥ १५ ॥

अर्थ— [५३९] (यत्) जबकि (विपन्यवः) बुद्धिमान् (अद्रिगावः वयं) रुकावटका अनुभव न करते हुए हम (गीर्भिः) भाषणोंसे (अह्नः इदा चित्) दिनके इस समय भी (अद्रिगू अश्विना) अप्रतिहत गतिवाले अश्विदेवोंको (हवामहे) बुलाते हैं तो वे अवश्यही आयेंगे ॥ ११ ॥

[५४०] हे (वृषणा) बलवानो ! (मे) मेरी (विश्वप्सुं) सभी रूप धारण करनेवाली एवं (विश्ववार्यं हवं) सबने स्वीकरणीय पुकारको सुनकर (आ) हमारे अभिमुख होकर (ताभिः उप यातं) उन शक्ति या युक्तियोंसे सज्ज हो या समीप आओ, हे (पुरु-भूतमा) अधिकतया उपस्थित होनेवाले ! (मंहिष्ठा नरा) अतिशय दान देनेवाले एवं नेता अश्विदेवो ! (याभिः क्रिविं वावृधुः) जिन शक्तियोंसे तुमने कुएँको जलपूर्ण कर दिया (ताभिः इषा आ गतम्) उनसे और अन्नसे युक्त हो इधर आओ ॥ १२ ॥

[५४१] (अह्नां इदा चित्) दिनोंके इस अवसरपरही (तौ) उन दोनों अश्विदेवोंको (वन्दमानः) नमन करता हुआ, (तौ उप ब्रुवे) उनके समीप जाकर मैं अपना वक्तव्य कहता हूँ, (नमोभिः) नमनपूर्वक (तौ उ ईमहे) उन्हींको हम चाहते हैं ॥ १३ ॥

[५४२] (तौ शुभस्पती) उन दो अच्छोंके पालक अश्विदेवोंको (दोषा इत्) रात्रीके मौकेपर भी, (तौ उषसि) उन्हें प्रातःकाल भी, (ता रुद्रवर्तनी) उन दो वीरभद्रके पथपर चलनेवाले अश्विदेवोंको (यामन्) यात्रा करते समय हम बुलाते हैं । हे (वाजिनी-वसू रुद्रौ) बलरूपी धनवाले ! शत्रुको रुलानेवाले ! (नः) हमें (रिपवे मर्ताय) शत्रुभूत मानवके लिए (मा परः अति ख्यतं) न कभी आगे कह दो । शत्रुको हमारा पता न लगे ॥ १४ ॥

[५४३] मैं सोभरी (पिता इव हुवे) पिता जिस तरह पुत्रोंको बुलाता है वैसेही बुलाता हूँ; (सक्षणी) सेवनीय अश्विदेवो (सुग्म्याय) सुख पानेकी योग्यता रखनेवालेको (प्रातः) सुबह (रथेन वा) चाहे तो रथपरसे (सुग्म्यं आ) सुख पहुँचानेके लिए आओ ॥ १५ ॥

भावार्थ— यदि बुद्धिमान् मनुष्य हृदयसे अश्विदेवोंको बुलायें तो वे उसकी प्रार्थना अवश्य सुनते हैं और वे अवश्यही आते हैं ॥ ११ ॥

हे बलवान् देवो ! हमारी प्रार्थनाको सुनकर तुम सभी शक्तियोंसे सज्ज होकर आओ । जिस प्रकार कुंआ जलसे पूर्ण होता है, उसी तरह तुम अन्नसे पूर्ण होकर हमारे पास आओ ॥ १२ ॥

प्रतिदिन मैं अश्विदेवोंका नमन करता हूँ, नम्रतापूर्वक उनकी वंदना करता हूँ ॥ १३ ॥

शुभका पालन करो, वीरोंके मार्गसे गमन करो, बलरूपी धन पाओ, शत्रुको अपना पता न हो, अपना स्थान सुरक्षित रखो ॥ १४ ॥

पिता जैसे अपने पुत्रोंका पालन करता है, उसी तरह अश्विदेव हमारा पालन करें ॥ १५ ॥

५४४ मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुंगमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद् भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥ १६ ॥
५४५ आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा । गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥
५४६ सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥ १८ ॥

[२३]

(ऋषि- ३० विश्वमना वैयश्वः । देवता- अग्निः । छन्द- उष्णिक् ।)

५४७ ईळिष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम् । चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥ १ ॥
५४८ दामानं विश्वचर्षणे ऽग्निं विश्वमनो गिरा । उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥ २ ॥

अर्थ— [५४४] हे (मनो-जवसा) मनवत् वेगसे जानेवाले ! (वृषणा) बलवान् ! (पुरु-भोजसा) बहुत लोगोंको भोगके साधन देनेवाले ! (मदच्युता) शत्रुके मदको हटानेवाले ! अश्विदेवो ! (अस्मे अवसे) हमारी रक्षाके लिए (पूर्वीभिः) बहुतसी तथा (मक्षुं-गमाभिः ऊतिभिः) शीघ्र गतिवाली रक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर (आरात्तात् चित्) समीप ही (भूतं) तुम रहने लगो ॥ १६ ॥

[५४५] हे (मधु-पातमा) अत्यन्त मधुर सोमरस पीनेहारे ! (दस्रा) शत्रुविनाशक ! (नरा) नेता अश्विदेवो ! (नः गोमत् अश्वावत्) हमारे गोधन एवं वाजिधनसे पूर्ण (हिरण्यवत् वर्तिः आ यासिष्टं) सुवर्णयुक्त निवासस्थलमें आओ ॥ १७ ॥

[५४६] हे (वाजिनी-वसू) बलरूपी धनवाले ! (रक्षस्विना अनाधृष्टं) रक्षणशक्तिसे युक्त पुरुषके द्वारा भी जिसपर हमला करना असंभव हुआ हो, (सुप्रावर्गं) सुगमतासे प्रदान करनेयोग्य और (सुवीर्यं सुष्ठु वार्यं) अच्छी वीरतासे युक्त अतः भलीभाँति स्वीकरणीय ऐसे गुणोंसे युक्त (विश्वा वामानि) सभी धनोंको (वां अस्मिन् आयाने) तुम दोनोंके इस आगमनसे (आ धीमहि) हम धारण करते हैं ॥ १८ ॥

[२३]

[५४७] हे स्तोताओ ! तुम सब (प्रतीव्यं ईळिष्व) शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले अग्निकी स्तुति करो । और (चरिष्णुधूमं, अगृभीतशोचिषं जातवेदसं हि यजस्व) जिसका धूम सब ओर फैलता है, जिसकी ज्वाला पकडनेमें कोई समर्थ नहीं ऐसे संसारके सब पदार्थोंके जाननेवाले अग्निकी स्तुति और पूजा करो ॥ १ ॥

[५४८] हे (विश्वचर्षणे विश्वमनः) संसारके सब पदार्थोंको देखनेवाले तथा सबपर मनन करनेवाले मनुष्य तुम (विस्पर्धसः, रथानां दामानं अग्निं) विविध प्रकारकी स्पर्धा करनेवाले मनुष्योंको रथादिकोंके देनेवाले अग्निकी (उत गिरा स्तुषे) स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करो ॥ २ ॥

१ विस्पर्धसः रथानां दामानः— यह अग्नि स्पर्धा करनेवाले मनुष्योंको रथ प्रदान करता है ।

भावार्थ— ये दोनों देव मनके समान वेगवाले, बलवान्, लोगोंको सुखके साधन देनेवाले और शत्रुके अभिमानको चूर चूर करनेवाले हैं । वे हमारे पास रक्षण शक्तिसे युक्त होकर आवें ॥ १६ ॥

हे सोमपान करनेवाले देवो ! तुम शत्रुविनाशक हो, अतः तुम स्वर्ण आदि धनसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ १७ ॥

धन ऐसा हो कि जिसे शत्रु हमला करके छीन न सकें, जो आसानीसे दूसरोंको दिया जा सके, अच्छी वीरतासे युक्त हो और उत्तम गुणोंसे युक्त हो ॥ १८ ॥

यह अग्नि संसारमें उत्पन्न हुए हुए सब पदार्थोंको जानने और देखनेवाला है । इसकी ज्वालाको कोई पकड नहीं सकता । ऐसा यह अग्नि उन्हीं लोगोंको धन प्रदान करता है, जो संसारमें स्पर्धा करते हुए आगे बढते हैं । इसके विपरीत जो सदा सुस्त होकर बैठे रहते हैं, कुछ भी परिश्रम नहीं करते, उन्हें यह किसी प्रकारकी सहायता नहीं देता ॥ १-२ ॥

५४९ येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे । उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥
५५० उदस्य शोचिरस्थाद् दीदियुषो व्य१जरम् । तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥ ४ ॥
५५१ उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा । अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥५॥
५५२ अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक् । यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥ ६ ॥
५५३ अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम् । तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे ॥ ७ ॥

अर्थ—[५४९] (आबाधः ऋग्मियः वह्निः) दुष्टोंको सब ओरसे पीडित करनेवाला, ऋचाओंसे स्तुति करने योग्य अग्नि (येषां इषः च पृक्षः निग्रभे) जिनके अन्न और सोमरसको ग्रहण करता है वे (उपविदा वसु विन्दते) विवेकपूर्वक हवि प्रदान द्वारा धन प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

१ आबाधः येषां इषः निग्रभे वसु विन्दते— दुष्टोंको सब ओरसे पीडित करनेवाला यह अग्नि जिस मनुष्यकी हवि स्वीकार करता है, वह धन प्राप्त करता है।

[५५०] (दीदियुषः तपुः जम्भस्य सुद्युतः, गणश्रियः) देदीप्यमान, शत्रुओंको संताप देनेवाले शस्त्रोंसे युक्त, शोभनकान्तियुक्त, दर्शनीय शोभासे व्याप्त, (अस्य वि अजरं शोचिः उत् अस्थात्) इस अग्निका अविनाशी तेज ऊपर प्रदीप्त होता है ॥ ४ ॥

१ दीदियुषः गणश्रियः तपुः जम्भस्य शोचिः उत् अस्थात्— जो मनुष्य तेजस्वी दलके अन्दर रहकर शत्रुओंको पीडित करता है, उसका तेज सबसे श्रेष्ठ हो जाता है।

[५५१] हे (सु अध्वर) सुन्दर यज्ञ करनेवाले मनुष्य ! तू (अभिख्या, भासा बृहता, शुशुक्वनिः स्तवानः) कीर्ति, तेज और महानतासे युक्त होकर निरन्तर तेजस्वी रहते हुए एवं अग्निकी स्तुति करते हुए (देव्या कृपा उत्तिष्ठ उ) इस अग्नि देवकी कृपासे उन्नत हो ॥ ५ ॥

१ देव्या कृपा अभिख्या, भासा बृहता उत्तिष्ठ— मनुष्य अग्नि देवकी कृपासे कीर्ति, तेज, महानतासे युक्त होकर उन्नत होता है।

[५५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा हव्यवाहनः दूतो बभूथ) चूंकि तू देवोंके लिए हव्य ले जानेवाला दूत बना है, अतः (सुशस्तिभिः हव्या आनुषक् जुह्वानः याहि) शोभन स्तोत्रोंके साथ, उत्तम हव्योंको निरन्तर ग्रहण करते हुये देवोंको हव्य प्रदान करनेके लिये जा ॥ ६ ॥

[५५३] मैं (चर्षणीनां होतारं पूर्व्यं अग्निं हुवे) मनुष्योंके होता अत्यन्त प्राचीन अग्निको बुलाता हूँ। और (तं अया वाचा वः गृणे) उस अग्निको बुला करके इस पवित्र वाणीसे तुम सबके लिये स्तुति करता हूँ। तथा (तं उ वः स्तुषे) उसका ही तुम सब मनुष्योंको स्तुति करनेके लिये उपदेश देता हूँ ॥ ७ ॥

१ तं उ वः स्तुषे— उसी अग्निकी स्तुति करनेके लिए तुम्हें उपदेश देता हूँ।

भावार्थ—इस अग्निकी प्रसन्नता वरदान रूप होती है। यह जिस मनुष्यकी हवि स्वीकार करता है, वह हर तरहके ऐश्वर्यसे युक्त होता है। उसी तरह जिस मनुष्यके द्वारा खाया हुआ भोजन जाठराग्नि स्वीकार कर लेती है, अर्थात् पचा डालती है, वह मनुष्य उत्तम स्वास्थ्यरूपी ऐश्वर्यको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

जो समाजमें या अपने दलके सदस्योंके साथ हिलमिल कर रहता है, और समाजके शत्रुओंको पीडित करता है, उसका तेज उसके अन्य साथियोंकी अपेक्षा बढ जाता है और वह उस समाजका अग्नि- अग्रणी बन जाता है ॥ ४ ॥

तेजस्वी और श्रेष्ठतम होनेके लिए अग्निकी उपासना एकमात्र उपाय है। जो इस अग्निकी मनसे बुद्धिपूर्वक उपासना करता है, उसपर इस अग्निदेवकी कृपा बरसती है और वह उस कृपासे तेज, महानता, कीर्ति और शोभासे युक्त होकर हर तरहसे उन्नत होता है ॥ ५ ॥

यह अग्नि प्राचीनकालसे देवोंका दूत बना हुआ है। यह अग्नि देवोंका मुखरूप है। अतः इसमें डाली गई हवि देवोंतक पहुंचती है। जिस प्रकार कोई दूत प्रजाका संदेश राजातक और राजाका संदेश प्रजातक पहुंचाता है, उसी तरह यह अग्नि मनुष्योंकी हवि देवोंतक और देवोंकी कृपा मनुष्योंतक पहुंचाता है। इसीलिए यह पूज्य है ॥ ६-७ ॥

५५४ यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् । मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥ ८ ॥
५५५ ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥ ९ ॥
५५६ अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः । होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥ १० ॥
५५७ अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद् भाः । अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥
५५८ स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् । प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥
५५९ यद् वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि । विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ १३ ॥

अर्थ— [५५४] (अद्भुतक्रतुं, मित्रं न, सुधितं यं) अद्भुत ज्ञान और कर्मवाले, मित्रके समान हितकारी, उत्तम रीतिसे तर्पित जिस अग्निको, उपासक लोग (यज्ञेभिः सूदयन्ते) यज्ञोंके द्वारा घृत प्रदान करते हैं, उस (ऋतावनि जने) यज्ञ करनेवाले मनुष्य पर अग्नि (कृपा) अपनी कृपा बरसाता है ॥ ८ ॥

१ ऋतावनि जने कृपा— यज्ञ करनेवाले मनुष्य पर अग्निकी कृपा रहती है।

[५५५] (ऋतायवः) यज्ञकी कामना करनेवाले उपासको ! (ऋतावानं यज्ञस्य साधनं नमसः पदे) सत्य ज्ञानके दाता, यज्ञके साधनभूत, प्रतिष्ठाके पद पर स्थापित (एनं गिरा उपो जुजुषुः) इस अग्निकी स्तोत्रों द्वारा पूजा करो ॥ ९ ॥

१ ऋतावानः नमसः पदे— सत्यके मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य प्रतिष्ठाके पद पर अधिष्ठित होता है।

[५५६] (यः विक्षु होता यशस्तमः अस्ति) जो अग्नि प्रजाओंमें होमका कर्ता और अत्यन्त यशस्वी है। उसी (अङ्गिरस्तमं अच्छ नः यज्ञासः आ संयतः यन्तु) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी अग्निके पास हमारे सब यज्ञ सब ओरसे पहुँचे ॥ १० ॥

[५५७] हे (अजर अग्ने) जरारहित अग्ने ! (तव त्ये इन्धानासः वृषणः बृहत् भाः) तेरा वह अत्यन्त देदीप्यमान, शुभ कामनाओंको पूर्ण करनेवाला रश्मियोंका महान् प्रकाश जाल (अश्वाः इव) अनेक अश्वोंकी तरह (तविषीयवः) अधिक शक्तिशाली है ॥ ११ ॥

[५५८] हे (ऊर्जां पते) अन्नोंके स्वामी अग्ने ! (सः त्वं नः सुवीर्यं रयिं रास्व) वह तू हमें उत्तम वीर्य युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर। और (समत्सु नः तोके तनये प्राव) संग्राममें हमारे पुत्र पौत्रोंकी अच्छी प्रकार रक्षा कर ॥ १२ ॥

[५५९] (यद् उ विश्पतिः शितः सुप्रीतः मनुषः विशि) जब भी प्रजाओंका पालक हवियोंसे तीक्ष्ण हुआ अग्नि अच्छी प्रकार प्रसन्न होकर गृहमें निवास करता है, उस समय वह (अग्निः विश्वेत् रक्षांसि प्रति सेधति) अग्नि समस्त दैत्योंका नाश कर देता है ॥ १३ ॥

भावार्थ— इस अग्निका काम बड़ा आश्चर्यकारक है। यह अपने ज्ञान द्वारा मनुष्योंका हित करता है। जो उपासक इसकी विशेष सेवा करता है, वह इस अग्निकी कृपासे हर तरहसे उन्नत एवं समृद्ध होता है ॥ ८ ॥

सत्यको प्राप्त करनेकी इच्छावाले जो मनुष्य सत्यके मार्ग पर चलते हैं, वे यज्ञको सिद्ध करके उत्तम पद पर प्रतिष्ठित होते हैं और अग्निके समान पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

इस अग्रणीकी किरणें अश्वके समान बहुत अधिक शक्तिशाली हैं। इन्हीं किरणोंके कारण यह अत्यन्त तेजस्वी और जरारहित है। इसी कारण यह प्रजाओंमें सबसे अधिक यशस्वी है। सारे उत्तम कर्म इसीको लक्ष्य करके किए जाते हैं ॥ १०-११ ॥

घरमें जब यह यज्ञाग्नि उत्तम सामग्री आदि हवियोंसे अच्छी तरह प्रदीप्त होता है, तब उस अग्निके प्रभावसे घरके सारे कृमि-जन्तु आदि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार रोगजन्तुओंके नष्ट हो जानेसे उस घरके स्वामी उसके पुत्र एवं पौत्र आदि सन्तानें स्वास्थ्यरूपी ऐश्वर्य पाकर आनन्दसे उस घरमें रहते हैं। इस प्रकार यह यज्ञाग्नि प्रजाओंका पालन करती है ॥ १२-१३ ॥

५६० श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते । नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥
५६१ न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः । यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥ १५ ॥
५६२ व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥ १६ ॥
५६३ उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् । आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् ॥ १७ ॥
५६४ विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत । श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ १८ ॥
५६५ इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः । पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥ १९ ॥

अर्थ— [५६०] हे (वीर विश्पते अग्ने) शूरवीर प्रजाओंके पालक अग्ने ! तू (मे स्तोमस्य श्रुष्टी) मेरे स्तोत्र वचनोंको श्रवण करके शीघ्र ही (मायिनः रक्षसः तपुषा नि दह) मायावी राक्षसोंको अपने सन्तापक तेजसे भस्म कर दे ॥ १४ ॥

[५६१] (यः हव्यदातिभिः अग्नये ददाश) जो उपासक ऋत्विजोंके द्वारा हविको अग्निके लिये प्रदान करता है (तस्य रिपुः मर्त्यः मायया चन) उस पर शत्रु मनुष्य भी अपनी कुटिल बुद्धिसे (ईशीत न) अपना अधिकार भी नहीं कर सकता है ॥ १५ ॥

१ यः अग्नये ददाश तस्य रिपुः मर्त्यः मायया चन न ईशीत— जो अग्निको प्रेमपूर्वक हवि देता है, उस पर शत्रु मनुष्य मायासे भी अधिकार नहीं जमा सकता है ।

[५६२] हे अग्ने ! (उक्षण्युः ऋषिः वि-अश्वः, वसु विदं त्वा अप्रीणात्) समस्त संसारको अपनी शक्तिसे सिंचित करनेवाले और सुखोंके वर्धक तुझको, चाहनेवाला ऋषि ऐश्वर्यके प्रदाता तुझको हव्योंसे तृप्त करता है । (तं उ महः राये त्वा समिधीमहि) उसी प्रकार हम भी बडे ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये तुझको सम्यक् प्रकारसे प्रज्वलित करते हैं ॥ १६ ॥

[५६३] हे अग्ने ! (काव्यः उशना) स्तुति करनेवाले तथा कामना करनेवाले उपासकने (मनवे) मनुष्य-मात्रके कल्याणके लिये (होतारं आयजिं, जातवेदसं त्वा नि असादयत्) होमनिष्पादक, यजन योग्य, संसारके सब पदार्थोंके ज्ञाता तुझको अपने गृहमें स्थापित किया ॥ १७ ॥

[५६४] हे (देव) प्रकाश स्वरूप अग्ने ! (सजोषसः विश्वे देवासः हि त्वा दूतं अक्रत) समान प्रीतिसे एक साथ रहनेवाले देवगणोंने तुझको अपना दूत बनाया । तू (श्रुष्टी प्रथमः यज्ञियः भुवः) शीघ्रतासे करनेके कारण यज्ञमें सबसे प्रथम पूज्य हुआ ॥ १८ ॥

[५६५] (वीरः मर्त्यः) कर्म करनेमें समर्थ पराक्रमशील हे मनुष्य ! तू (अमृतं, पावकं, कृष्णवर्तनिं, विहायसं) मरणधर्मरहित, पवित्र करनेवाले, जानेके पश्चात् अपने मार्गको काला करके छोडनेवाले और महान् शक्ति-वाले ऐसे (इमं घ दूतं कृण्वीत) इस अग्निकोही अपना दूत बना ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अच्छी तरह प्रदीप्त होकर उपासकके सब शत्रुओंको नष्ट कर देता है । इसलिए अग्निके उपासक पर शत्रु मायासे भी अपना अधिकार नहीं कर सकते । इस प्रकार अग्नि अपने उपासककी हर तरहसे रक्षा करता है ॥ १४–१५ ॥

देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी ऋषिने मनुष्य मात्रके कल्याणके लिए इस यज्ञाग्निका आविष्कार किया और गृह गृहमें यज्ञ करनेकी पद्धति शुरु की । उस ऋषिने इस यज्ञाग्निको हविसे तृप्त किया और स्वयं भी शक्तिमान् हो गया । अतः शक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छावाले हर मनुष्यको चाहिए कि वह ऐसे अग्निको प्रदीप्त करे ॥ १६–१७ ॥

राष्ट्रका दूत अमर, पवित्र, समय आने पर भेद आदि कुटिल मार्गोंका भी अनुसरण करनेवाला, विशाल हृदयवाला तथा महान् शक्तिशाली हो । ऐसे मनुष्यकोही राजा अपना दूत बनावे । ऐसा राजा सर्वत्र पूजा जाता है तथा उसकी प्रजायें भी एक साथ संघटित होकर रहनेके कारण उत्तम गुणवाली होती हैं ॥ १८–१९ ॥

५६६ तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् । विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥ २० ॥
५६७ यो अस्मै हव्यदातिभि- राहुतिं मर्तोऽविधत् । भूरि पोषं स धत्ते वीरवद् यशः ॥ २१ ॥
५६८ प्रथमं जातवेदस- मग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् । प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥ २२ ॥
५६९ आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत् । मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥
५७० नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् । ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥ २४ ॥
५७१ अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् । विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥ २५ ॥

अर्थ— [५६६] (सुभासं, शुक्रशोचिषं विशां ईड्यं अजरं प्रत्नं तं अग्निं) उत्तम कान्तिवान्, सुन्दर दीप्तिसे युक्त, मनुष्योंके द्वारा स्तुति किए जानेके योग्य, जरारहित, पुरातन उस अग्निको हम (यतस्रुचः हुवेम) हाथमें स्रुचा उठाकर बुलाते हैं ॥ २० ॥

[५६७] (यः मर्तः हव्यदातिभिः अस्मै आहुतिं अविधत्) जो मनुष्य ऋत्विजोंके द्वारा इस अग्निके लिये आहुति प्रदान करता है (सः भूरिपोषं वीरवत् यशः धत्ते) वह बहुत पुष्टिकारक धन और वीर पुत्र पौत्रादिसे युक्त यश प्राप्त करता है ॥ २१ ॥

१ यः मर्तः अस्मै आहुतिं अविधत्, स भूरिपोषं यशः धत्ते— जो मनुष्य इस अग्निको आहुति देता है, वह अनेकोंकी पुष्टि करनेवाला अन्न प्राप्त करता है।

[५६८] (प्रथमं जातवेदसं पूर्व्यं अग्निं) देवोंमें प्रधान, सब उत्पन्न पदार्थोंके ज्ञाता, सबसे पुरातन अग्निको लक्ष्य करके (यज्ञेषु हविष्मती स्रुक् नमसा प्रति एति) यज्ञोंमें हविसे युक्त चमचा नमस्कारपूर्वक स्तोत्रोंसे अग्निके प्रति जाता है ॥ २२ ॥

१ जातवेदसं यज्ञेषु पूर्व्यम्— सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त मनुष्य पूजनीय मनुष्योंमें सर्व प्रथम या सर्व श्रेष्ठ होता है।

[५६९] हम (शुक्रशोचिषे अग्नये) शुद्ध तेजवाले अग्निके लिये (व्यश्ववत् ज्येष्ठाभिः मंहिष्ठाभिः आभिः मतिभिः विधेम) अश्वके समान बलवान् होकर सर्वश्रेष्ठ उत्तम इन वाणियों और बुद्धियोंसे उपासना करते हैं ॥ २३ ॥

[५७०] हे (वैयश्व ऋषे) जितेन्द्रिय ज्ञानदर्शिन् ऋषे ! तू (दम्याय विहायसे अग्नये) शत्रुओंके दमन करनेमें समर्थ महान् अग्निका (नूनं स्थूरयूपवत् स्तोमेभिः अर्च) इस समय ही स्थूलयूपके समान वेदमंत्रोंसे पूजन कर ॥ २४ ॥

[५७१] (मानुषाणां अतिथिं, वनस्पतीनां सूनुं प्रत्नं अग्निं) मनुष्योंके लिए अतिथिवत् पूज्य, वनस्पतियों द्वारा उत्पन्न, प्राचीन अग्निकी (विप्राः अवसे ईळते) विद्वान् पुरुष अपनी रक्षाके लिये स्तुति करते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि उत्तम कान्तिमान्, सुन्दर दीप्तिसे युक्त, जरारहित तथा सबसे प्राचीन है। ऐसे इस अग्निको जो आहुति देता है, वह पुष्टिकारक अन्न प्राप्त करता है ॥ २०-२१ ॥

जो मनुष्य हर तरहके ज्ञानसे युक्त होता है, वह सब मनुष्योंमें श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार जिस राष्ट्रमें सब प्रजायें शिक्षित होती हैं, वह राष्ट्र विश्वके सब राष्ट्रोंमें सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ होता है ॥ २२ ॥

यह अग्नि शत्रुओंका दमन करनेवाला, महान् है। उसी प्रकार राष्ट्रका अग्रणी भी शत्रुओंका दमन करनेवाला, महान् और जितेन्द्रिय होना चाहिए। इस प्रकार जो जितेन्द्रिय नेता अश्वके समान बलवान् होता है, वह सबके द्वारा पूजित होता है ॥ २३-२४ ॥

यह अग्नि मनुष्योंके लिए अतिथिके समान पूज्य, वनस्पतियोंका पुत्र अर्थात् लकडियों अरणियोंसे उत्पन्न और प्राचीन है। इसकी सब अपनी रक्षाके लिए स्तुति करते हैं ॥ २५ ॥

५७२ महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा । अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥२६॥
५७३ वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः । सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥ २७ ॥
५७४ त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय । सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८॥
५७५ त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः । महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥२९॥
५७६ अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह । ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥३०॥

[२४]

(ऋषिः- विश्वमना वैयश्वः । देवता- इन्द्रः, २८-३० वरुः सौषाम्णिः । छन्दः- उष्णिक्, ३० अनुष्टुप् ।)

५७७ सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १ ॥

अर्थ— [५७२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (महः विश्वान् सतः अभिषत्सि) अपने सामर्थ्यसे सभी विद्यमान पदार्थोंको व्यापता है । तू (मानुषा हव्यानि अभि) मनुष्यसम्बन्धी हव्योंको स्वीकार करता है । तथा (अधि बर्हिषि नमसा नि सत्सि) इस यज्ञमें स्तुति द्वारा पूजित होकर विराजता है ॥ २६ ॥

[५७३] हे अग्ने ! (नः पुरु वार्या वंस्व) हमें बहुतोंसे वरणीय ऐसे उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर । तथा (पुरुस्पृहः प्रजावतः, सुवीर्यस्य यशस्वतः रायः वंस्व) अनेकोंसे स्पृहणीय, पुत्र पौत्रादि प्रजाओंका उत्पादक, शौर्य पराक्रमका देनेवाला, यशकीर्ति, अन्नादिसे युक्त धन प्रदान कर ॥ २७ ॥

[५७४] हे (वरो वसो यविष्ठ अग्ने) वरण करने योग्य, निवासप्रद, अतिशय बलशाली अग्ने ! (त्वं शश्वते सुषाम्णे जनाय) तू बहुतस्तोतृजनोंके हितके लिये (सदा रातिं चोदय) हमेशा धनको प्रेरित कर ॥ २८ ॥

[५७५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं हि सु प्रतूः असि) तू ही उत्तम रीतिसे धन प्रदान करनेहारा दानी है । (त्वं नः गोमतीः इषः महः रायः सातिं अपा वृधि) तू हमें गायोंसे युक्त सुसम्पन्न अन्नादिसे युक्त अपने बडे ऐश्वर्यके भागको प्रदान कर ॥ २९ ॥

[५७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं यशा असि) तू देवोंके मध्यमें यशस्वी है । तू (ऋतावाना, सम्राजा पूतदक्षसा मित्रावरुणा आ वह) सत्यनिष्ठ, अत्यन्त तेजस्वी, पवित्र बलवाले मित्र और वरुणको यहां ले आ ॥ ३० ॥

[२४]

[५७७] हे (सखायः) मित्रो ! (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिए हम (ब्रह्म आ शिषीमहि) स्तोत्रका गान करें । (वः) तुम भी (धृष्णवे नृतमाय) शत्रुओंके संहारक तथा अत्यन्त श्रेष्ठ नेता इन्द्रके लिए (सु स्तुष) अच्छी तरह स्तुति करो ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपनी महत्तासे सब पदार्थोंमें व्याप्त रहता है और मनुष्यों द्वारा दिए गए सब हव्योंको स्वीकार करता है और यज्ञमें बैठता है । उसी तरह राष्ट्रके नेताको चाहिए, कि वह अपनी महत्तासे सब प्रजाओंमें पूजा जाए और प्रजाओं द्वारा चलाये गए सब उत्तम कर्मोंमें सम्मिलित हो ॥ २६ ॥

हे सबके द्वारा वरणीय तथा सबको निवास करनेवाले बलशाली अग्ने ! तू स्तोत्र करनेवालोंके लिए उत्तम ऐश्वर्य, उत्तम प्रजायें और पराक्रम आदि सद्गुण प्रदान कर ॥ २७-२८ ॥

हे अग्ने ! तू सबको उत्तम धन प्रदान करता है, अतः हमें भी उत्तम उत्तम गायोंसे युक्त धन प्रदान कर तथा मित्रके समान हितकारी और वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनोंको हमारे पास बुला ला ॥ २९-३० ॥

इन्द्र वज्रको धारण करनेवाला, शत्रुओंका संहारक तथा सर्व श्रेष्ठ नेता है, ऐसे वीरकी ज्ञानपूर्वक स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

५७८ शर्वसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥
५७९ स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् । निरेके चिद् यो हरिवो वसुर्दुदिः ॥ ३ ॥
५८० आ निरेकमुत प्रिय- मिन्द्र दर्षि जनानाम् । धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥ ४ ॥
५८१ न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः । न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥ ५ ॥
५८२ आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः । आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥
५८३ विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम । उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥ ७ ॥

अर्थ— [५७८] हे इन्द्र ! (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला तू (वृत्रहत्येन शवसा) अपने वृत्रको मारनेवाले बलके कारण (श्रुतः असि) सर्वत्र प्रसिद्ध है । हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! तू (मघोनः) ऐश्वर्यशालीको (मघैः अति दाशसि) और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ २ ॥

[५७९] हे इन्द्र ! (सः) वह तू (स्तवानः) हमारे द्वारा स्तुत होता हुआ (चित्र श्रवस्तमं रयिं) ग्रहण करने योग्य और अत्यन्त उत्तम यश देनेवाले ऐश्वर्यको (नः आ भर) हमें भरपूर दे । हे (हरिवः) उत्तम घोडोंसे युक्त इन्द्र ! (यः) जो तू (निरेके चित् वसुः ददिः) ऐश्वर्यशालियोंको ही धन देता है ॥ ३ ॥

[५८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू हम (जनानां) जनोंको (प्रियं निरेकं) उस प्रिय धनको (आ दर्षि) भरपूर दे । हे (धृष्णो) शत्रुनाशक इन्द्र ! तू (स्तवमानः) हमसे स्तुत या प्रशंसित होता हुआ (धृषता) बलके साथ उस धनको हमें (आ भर) प्रदान कर ॥ ४ ॥

[५८१] हे (हरिवः) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! (आमुरः) तुझसे युद्ध करनेवाले शत्रु (गविष्टिषु) युद्धोंमें (ते सव्यं न वरन्त) तेरे बायें हाथको नहीं रोक सकते (न दक्षिणं हस्तं) और न तेरे दायें हाथकोही हटा सकते हैं, तथा (परिबाधः न) तेरे कार्योंमें बाधा डालनेवाले भी तेरा कुछ नहीं बिगाड सकते ॥ ५ ॥

[५८२] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (गोभिः व्रजं इव) जिस तरह कोई गोपाल गायोंके साथ गायोंके बाडेको जाता है, उसी तरह मैं (गीर्भिः त्वा आ ऋणोमि) स्तुतियोंसे युक्त होकर तेरे पास आता हूँ । तू (जरितुः कामं आ) स्तोताकी इच्छाको पूरा कर और उसके (मनः आ पृण) मनको भी शान्तिसे पूर्ण कर दे ॥ ६ ॥

[५८३] हे (वृत्रहन्तम) शत्रुओंको बुरी तरह नष्ट करनेवाले (उग्र) वीर (प्रणेतः) उत्तम रीतिसे आगे ले जानेवाले और (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (विश्वमनसः नः) सबसे मनःपूर्वक प्रेम करनेवाले हमारे (विश्वानि) सब कर्म (धिया) बुद्धिपूर्वक हों, उन्हें तू (सु अधि गहि) अच्छी तरह जान ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्र अपने शत्रुस्वरूप बलके कारण ही सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ । जो अपने शत्रुओंका विनाश करता है, उसका यश सर्वत्र फैलता है । जो ऐश्वर्यशाली होते हुए भी दान देते हैं, उनका ऐश्वर्य और अधिक बढता है ॥ २ ॥

धन ऐसा हो जो ग्रहण करने योग्य हो और उत्तम यशको देनेवाला हो । ऐसा धन मनुष्यको सच्चा ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥ ३ ॥

धन प्रिय हो और बलसे युक्त हो । धन प्राप्त करके उसकी रक्षाके लिए सामर्थ्यकी भी आवश्यकता होती है, अतः धन सदा बलसे युक्त हो ॥ ४ ॥

इन्द्रके शत्रु युद्धोंमें इस इन्द्रको रोक नहीं सकते । ऐसी अप्रतिहत गतिवाला यह इन्द्र है ॥ ५ ॥

जिस तरह कोई ग्वाला अपनी गायोंपर पूर्ण प्रेम करता है, उसी तरह जो इन्द्र पर पूर्ण रूपसे प्रेम करता है, उसकी सब इच्छायें पूरी होती हैं और उसका मन शान्तिसे पूर्ण होता है ॥ ६ ॥

जो सबको अपना समझकर व्यवहार करता है, उसके सभी कर्म बुद्धिपूर्वक होते हैं । सदाचारवेत्ता मनुष्य बिना विचारे कोई कर्म नहीं करता । इसीकारण ऐसे मनुष्यके पास सभी देवगण आते हैं ॥ ७ ॥

×

५८४ वयं ते अस्य वृत्रहन् विद्याम शूर नव्यसः । वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥८॥
५८५ इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः । अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥ ९ ॥
५८६ आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे । दृळ्हश्चिद् दृह्य मघवन् मघत्तये ॥१०॥
५८७ नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः । मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११॥
५८८ नह्यङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे । राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥१२॥
५८९ एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु । प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३॥

अर्थ— [५८४] हे (वृत्रहन् शूर पुरुहूत) वृत्रको मारनेवाले, शूरवीर तथा अनेकों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (वयं) हम (ते) तेरे (अस्य) इस (नव्यसः) प्रशंसनीय (स्पार्हस्य) चाहने योग्य (राधसः वसोः) सब मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले धनको (विद्याम) प्राप्त करें ॥ ८ ॥

[५८५] हे (नृतः इन्द्र) उत्तम नेता इन्द्र ! (यथा ते शवः) जिस प्रकार तेरा बल (अपरीतं हि अस्ति) शत्रुओंके द्वारा नहीं मापा जा सकता, उसी तरह हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जाने योग्य इन्द्र ! (दाशुषे) दाताको दिए जानेवाले तेरे (रातिः अमृक्ता) दान भी अविनाशी हैं ॥ ९ ॥

[५८६] हे (महामह नृतम) बडोंके लिए भी पूज्य और उत्तम नेता इन्द्र ! (महे राधसे) महान् ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए हमें (आ वृषस्व) बलयुक्त कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू हमें (मघत्तये) ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए (दृळ्हश्चित् दृह्य) दृढसे दृढ शत्रुको भी नष्ट कर ॥ १० ॥

[५८७] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (नः आशसः) हमारी अभिलाषायें (नु त्वत् अन्यत्र) तुझे छोडकर अन्यके पास (जग्मुः) गईं पर अब हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू (तव ऊतिभिः) अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (तत् शग्धि) उस धनको हमें प्रदान कर ॥ ११ ॥

[५८८] हे (अंग नृत गिर्वणः) प्रिय, नेता और स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (राधसे राये द्युम्नाय शवसे च) सिद्धि, ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्तिके लिए (त्वत् अन्यं नहि विन्दामि) तुझसे भिन्न और किसीको मैं नहीं पाता ॥ १२ ॥

[५८९] हे मनुष्यो ! (इन्द्राय इन्दुं सिञ्चत) इन्द्रके लिए सोमरस तैयार करो, वह (सोम्यं मधु पिबाति) शान्तिदायक सोमरसको पीता है और (महित्वना) अपने बलसे और (राधसा) ऐश्वर्यसे (प्र चोदयाते) लोगोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है ॥ १३ ॥

भावार्थ— धन प्रशंसाके योग्य है । धनका उपयोग जब लोकहितके लिए होगा, तभी लोग उस धनकी प्रशंसा करेंगे और वैसा धनही लोगोंके ऐश्वर्यको बढानेवाला होगा ॥ ८ ॥

इन्द्रका बल अपरिमित होनेसे शत्रु इसे किसी तरह नष्ट नहीं कर सकते, उसी तरह इन्द्रके दानको भी कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

यह इन्द्र महान् है अतः जो महान् है, उनके लिए भी यह पूज्य है । यह इन्द्र अपने भक्तोंको बल प्रदान करता है, ताकि वे ऐश्वर्यको प्राप्त कर सकें । उनकी सहायताके लिए वह दृढसे दृढ शत्रुको भी नष्ट करता है ॥ १० ॥

जब मनुष्य इन्द्रको छोडकर किसी अन्यके पास अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिए जाता है, तब उसकी इच्छायें अपूर्ण ही रह जाती हैं क्योंकि उनकी इच्छाओंको केवल इन्द्र ही पूर्ण कर सकता है ॥ ११ ॥

इन्द्रसे अभिन्न और कोई ऐसा नहीं है, जो स्तुतिकर्ताओंके मनोरथोंकी सिद्धि करके उन्हें ऐश्वर्य, तेज और बल आदि दे सके ॥ १२ ॥

इन्द्र जब शान्तिदायक सोम पीता है, तब वह प्रसन्न होकर अपने बल और ऐश्वर्यसे लोगोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है ॥ १३ ॥

५९० उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥१४॥
५९१ नह्यङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् । नकी राया नैवथा न भन्दना ॥१५॥
५९२ एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥१६॥
५९३ इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥१७॥
५९४ तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥१८॥
५९५ एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१९॥

अर्थ— [५९०] (हरीणां पतिं) घोडोंके स्वामी (दक्षं) चतुर, कार्यकुशल तथा (पृंचन्तं) सबसे हिलमिलकर रहनेवाले, हे इन्द्र, तेरा (उप अब्रवम्) वर्णन मैंने किया, तू भी (अश्व्यस्य) घोडे प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले तथा (स्तुवतः) स्तुति करनेवाले मेरी प्रार्थनाको (नूनं श्रुधि) निश्चयसे सुनो ॥ १४ ॥

[५९१] हे (अंग) वीर इन्द्र ! (पुरा चन) पहले भी (त्वत् वीरतरः नहि जज्ञे) तुझसे अधिक वीर और कोई पैदा नहीं हुआ, (राया नकि) ऐश्वर्यमें तुझसे अधिक कोई नहीं हुआ (एवथा नकि) बलमें भी कोई नहीं हुआ और (न भन्दना) न तुझसे अधिक स्तुत्य स्तुतिके योग्य कोई हुआ ॥ १५ ॥

[५९२] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यु ! (मध्वः अन्धसः) मीठे अन्नरूप (मदिन्तरं) आनन्ददायी रससे पूर्ण सोमरसको (आ इत् सिंच) निश्चयसे इन्द्रको प्रदान कर ; (एवा हि) क्योंकि (सदावृधः वीरः स्तवते) सोम देनेवालेको सदा बढानेवाला वह वीर इन्द्र प्रशंसित होता है ॥ १६ ॥

[५९३] (हरीणां स्थातः इन्द्र) हे घोडोंके स्वामिन् इन्द्र ! (ते पूर्व्यस्तुतिं) तेरी पहले की गई स्तुतिको कोई भी दूसरा (शवसा न भन्दना) बलसे न योग्यतासे ही (उदानंश) आजतक प्राप्त कर सका ॥ १७ ॥

[५९४] (वः) तुम्हारे (तं वाजानां पतिं) उस बलोंके स्वामी तथा (वावृधेन्यं) वृद्धिके योग्य इन्द्रको (श्रवस्यवः) अन्न और यशको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम (अप्रायुभिः यज्ञेभिः) सम्मिलित होकर किए जानेवाले यज्ञोंके द्वारा (अहूमहि) बुलाते हैं ॥ १८ ॥

[५९५] हे (सखायः) मित्रो ! (एत) आओ, (यः एकः इत्) जो अकेला होते हुए भी (विश्वाः कृष्टीः अभि अस्ति) सम्पूर्ण प्राणियों पर शासन करता है, उस (स्तोम्यं इन्द्रं स्तवाम) स्तुतिके योग्य उत्तम नेता इन्द्रकी स्तुति करें ॥ १९ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपने कार्य करनेमें बहुत ही कुशल तथा लोगोंसे हिलमिलकर रहनेवाला है । राजा भी इसी तरह अपने कार्यमें कुशल तथा अपनी प्रजासे मिलजुलकर रहनेवाला हो ॥ १४ ॥

इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है । इसकी श्रेष्ठता प्राचीन कालसे चली आ रही है । बल, वीरता, धन और प्रशंसामें इससे अधिक आजतक कोई नहीं हुआ ॥ १५ ॥

सोमका रस मीठा और आनन्दको देनेवाला होता है । इसको प्राप्त करके इन्द्र यज्ञकर्ताको बढाता है ॥ १६ ॥

इस इन्द्र की स्तुति प्राचीन कालसे ऋषिमुनि करते आ रहे हैं, आज तक इस स्तुतिको और कोई दूसरा देव प्राप्त न कर सका, क्योंकि दूसरा कोई भी देव योग्यता और बलकी दृष्टिसे इन्द्रसे अधिक नहीं है ॥ १७ ॥

इन्द्र सब तरहके बलोंका स्वामी है और वृद्धिके योग्य है । उसकी स्तुतिसे हम यश और अन्नको प्राप्त करें ॥ १८ ॥

इस संसारमें करोडों अरबों प्राणी हैं, उन सब प्राणियों पर इन्द्र अकेला ही शासन करता है । इसी कारण वह स्तुतिके योग्य है ॥ १९ ॥

५९६ अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२०॥
५९७ यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥२१॥
५९८ स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥२२॥
५९९ एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२३॥
६०० वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥२४॥
६०१ तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने । द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥२५॥

अर्थ— [५९६] (अगोरुधाय) गायोंको नष्ट न करनेवाले अपितु (गविषे) गायोंकी रक्षा करनेवाले (द्युक्षाय) तेजस्वी इन्द्रके लिए (घृतात् मधुनश्च स्वादीयः) घी और शहदसे भी अधिक मधुर और स्वादिष्ट (वचः वोचत) स्तोत्रोंको गाओ ॥ २० ॥

[५९७] (यस्य वीर्या अमितानि) जिसके पराक्रम अपरिमित हैं, (राधः न परि एतवे) जिसके ऐश्वर्यके चारों ओर चक्कर नहीं लगाया जा सकता, तथा जिसका (दक्षिणा) दान (ज्योतिः न) प्रकाशके समान (विश्वं अभि अस्ति) सबको व्याप्त करता है ॥ २१ ॥

[५९८] (अनूर्मिं वाजिनं यमं) हिंसित न होनेवाले बलशाली तथा सब विश्वको नियंत्रणमें रखनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रकी (व्यश्ववत्) व्यश्व ऋषिके समान (स्तुहि) स्तुति करो। वह (अर्यः) श्रेष्ठ इन्द्र (दाशुषे) दाताको (मंहमानं गयं) प्रशंसनीय धनको प्रदान करता है ॥ २२ ॥

[५९९] हे (वैयश्व) वैयश्व ऋषे ! (चरणीनां नवं दशमं) मनुष्योंमें नौ प्राणोंके अलावा दसवें प्राणरूपसे रहनेवाले (सुविद्वांसं चर्कृत्यं) उत्तम ज्ञानी तथा पूजाके योग्य इस इन्द्रकी (एव नूनं उप स्तुहि) निश्चयसे तू उपासना कर ॥ २३ ॥

[६००] हे (वज्रहस्त) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले इन्द्र ! जिस प्रकार (शुंध्युः) सबको शुद्ध करनेवाला सूर्य (अहरहः) प्रतिदिन (परिपदां इव) प्राणियोंके स्थानसे अपवित्रता दूर करता है, उसी तरह तू हे इन्द्र ! (निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ) दरिद्रताके दूर करनेके उपायको जानता है ॥ २४ ॥

[६०१] हे (दंसिष्ठ इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्र ! (कृत्वने येन) उत्तम कर्म करनेवालोंकी जिससे तू रक्षा करता है, (तत् अवः) उस संरक्षणके साधनको (आ भर) हमें प्रदान कर। जिस साधनसे तूने (कुत्साय) कुत्सकी रक्षाके लिए (द्विता शिश्नथः) दो प्रकारसे शत्रुओंको मारा था, उस साधनको तू हमारी ओर (नि चोदय) प्रेरित कर ॥ २५ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र गायोंको नष्ट नहीं करता, इसके विपरीत वह गायोंकी रक्षा ही करता है। ऐसे इन्द्रके लिए प्रेमसे ऐसे स्तोत्रोंको गाना चाहिए कि जो घी और शहदसे भी मीठे और स्वादिष्ट हों ॥ २० ॥

इस इन्द्रके बल अनन्त हैं, अतः इसकी सीमाका पता नहीं लगाया जा सकता, इसका ऐश्वर्य भी अनन्त होनेके कारण उसके चारों ओर जाकर उसका भी अन्त नहीं पाया जा सकता। जिस तरह प्रकाश सारे विश्वको व्याप्त करता है, उसी तरह इस इन्द्रके दान सभी विश्वमें व्याप्त हो रहे हैं ॥ २१ ॥

यह इन्द्र अहिंसित है, कोई भी इसका विनाश नहीं कर सकता, क्योंकि यह बलशाली है, इसीलिए यह सारे विश्व पर नियंत्रण करता हुआ उसे अपने शासनमें रखता है ॥ २२ ॥

मनुष्योंके शरीरमें नौ प्राणोंके अलावा जीवात्माके रूपमें यह इन्द्र दसवां प्राण है। यह जीवात्मा उत्तम ज्ञानी है, क्योंकि इसका स्वरूप ही ज्ञान है, अत एव यह पूजाके योग्य भी है। आत्माकी सदा पूजा करनी चाहिए ॥ २३ ॥

सूर्यके उदय होने पर उसकी किरणें जिस जगह जाकर गिरती हैं, उस जगहकी अपवित्रता दूर होकर वह स्थान पवित्र हो जाता है, उसी तरह मनुष्य इन्द्रकी उपासना करके अपने घरमें जहां जहां दरिद्रता हो, वहां वहांसे उस दरिद्रताको दूर करके अपने घरको सम्पन्न और समृद्ध बनावे ॥ २४ ॥

हे इन्द्र ! जिस संरक्षणके साधनसे तूने उत्तम कर्म करनेवालेकी रक्षा की थी, तथा कु-त्स अर्थात् बुराइयोंको दूर करनेवाले श्रेष्ठ जनकी रक्षा की थी, उसी साधनसे तू हमारी भी रक्षा कर ॥ २५ ॥

६०२ तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे । स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥२६॥
६०३ य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वार्यात् सप्त सिन्धुषु । वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७॥
६०४ यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम् । व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥२८॥
६०५ आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः । स्थूरं च राधः शतवत् सहस्रवत् ॥२९॥
६०६ यत् त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते । एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥३०॥

अर्थ— [६०२] हे (दंसिष्ठ) अत्यन्त श्रेष्ठ दानी इन्द्र ! (तं उ त्वा) उस तुझसे (नव्यं सन्यसे) स्तुत्य धन प्रदान करनेके लिए (नूनं ईमहे) निश्चयसे प्रार्थना करते हैं। (सः त्वं) वह तू (विश्वाः अभिमातीः सक्षणिः) संपूर्ण शत्रुओंको विनष्ट कर ॥ २६ ॥

[६०३] (यः) जिस इन्द्रने अपने उपासकोंको (ऋक्षात् अंहसः मुचत्) राक्षसों और पापोंसे छुडाया, तथा (यः) जिस इन्द्रने (सप्त सिन्धुषु) सातों नदियोंमें (आर्यात्) जलको प्रवाहित किया, तथा (दासस्य वधः) दास बनानेवाले दुष्टोंका वध किया, उस तुझे हे (तुविनृम्ण) अत्यधिक बलशाली इन्द्र ! हम (नीनमः) बार बार नमन करते हैं ॥ २७ ॥

[६०४] हे (वरो) श्रेष्ठ मनुष्य ! तू (सुषाम्णे सनिभ्यः) उत्तम और शांत मनुष्यको तथा मांगनेवाले (व्यश्वेभ्यः) उत्तम प्रगतिवाले मनुष्योंको (रयिं आ वह) धन प्रदान कर, तथा (सुभगे वाजिनीवति) उत्तम भाग्यवाली तथा समृद्धिसे युक्त स्त्री ! तू भी (यथा) यथा योग्य दान दे ॥ २८ ॥

व्यश्व- वि-विशेष रूपसे; अश-गति प्रगति करनेवाला ।

[६०५] (नार्यस्य सोमिनः) नरों-मनुष्योंका हित करनेवाले तथा सोमयज्ञ करनेवाले मनुष्यके (दक्षिणा) दान (वि-अश्वान् आ एतु) उत्तम रीतिसे प्रगति करनेवाले मनुष्योंके पास पहुंचे, तथा (शतवत् सहस्रवत्) सैंकडों और हजारोंकी संख्यामें (स्थूरं राधः च) स्थूल धन भी पहुंचे ॥ २९ ॥

[६०६] हे (कुहयाकृते) मायाओंको नष्ट करनेवाली देवि ! (यः ईजानः) जो यज्ञ करता हुआ (कुहया त्वा पृच्छात्) मायासे तुझसे कुछ पूछना चाहे, तो (एषः) ऐसा (वलः) वल असुर (अपश्रितः) निराश्रित होकर (गोमतीं अव तिष्ठति) गायोंके प्रदेशमें जाकर रहे ॥ ३० ॥

कुहू— माया, जादूगरी ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तेरी उपासना करते हैं, अतः तू हमें प्रशंसनीय धन प्रदान कर और हमारे संपूर्ण शत्रुओंको मार ॥ २६ ॥

इस इन्द्रने अपने उपासकोंको पाप और राक्षसोंके डरसे मुक्त किया, इसी इन्द्रने नदियोंमें जलको प्रवाहित किया तथा लोगोंको अपना दास बनाकर उन्हें कष्ट देनेवाले दुष्टोंको नष्ट किया। दूसरोंको दास बनाना बहुत बडी दुष्टता है ॥ २७ ॥

पति-पत्नी दोनोंही उत्तम रीतिसे दान देनेवाले हों, पर ये दान उन्नतिशील मनुष्योंकोही दें ॥ २८ ॥

जो मनुष्योंका हित करनेवाला है और यज्ञ करनेवाला है, ऐसे उत्तम मनुष्यका श्रेष्ठ धन उन्नतिशील आदमीकोही मिले, अधमको नहीं। ऐसे उन्नतिशीलको रुपया आदि स्थूल धन भी प्राप्त हो, ताकि उससे मनुष्य समाजका हित हो सके ॥ २९ ॥

जो झूठमूठका यज्ञ करनेका ढोंग करके माया या धोखेबाजीसे लोगोंको ठगना चाहे, वह वल हीन और निराश्रित होकर जंगलमें चला जाए। ऐसे दुष्टको समाजमें न रहने दिया जाए ॥ ३० ॥

[२५]

(ऋषिः- विश्वमना वैयश्वः । देवता- मित्रावरुणौ, १०- २ विश्वे देवाः । छन्दः- उष्णिक्, २८ उष्णिग्गर्भा ।)

६०७ ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया । ऋतावाना यजसे पूतदक्षसा ॥ १ ॥
६०८ मित्रा तना न रथ्या३ वरुणो यश्च सुक्रतुः । सनात् सुजाता तनया धृतव्रता ॥ २ ॥
६०९ ता माता विश्ववेदसा ऽसुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥ ३ ॥
६१० महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा । ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥ ४ ॥
६११ नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू । सृप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥ ५ ॥

[२५]

अर्थ— [६०७] हे मित्रावरुण ! (वां) तुम दोनों (विश्वस्य गोपा) विश्वके रक्षक, (देवा) दिव्य तेजस्वी (देवेषु यज्ञिया) देवोंमें भी पूजनीय (ऋतावाना) सत्य तथा यज्ञके पालक तथा (पूतदक्षसा) पवित्र बलवाले हो। हे मनुष्य ! (ता यजसे) उन दोनों देवोंकी तू पूजा कर ॥ १ ॥

[६०८] (सुक्रतुः मित्रा वरुणः) उत्तम कर्म करनेवाला मित्र और वरुण दोनों (तना) अत्यन्त विशाल (रथ्या) रथसे सर्वत्र जानेवाले, (सनात् सुजाता) प्राचीन कालसे उत्तम रीतिसे उत्पन्न (तनया) अदिति देवीके पुत्र और (धृतव्रता) व्रतोंको धारण करनेवाले हैं ॥ २ ॥

[६०९] (ऋतावरी मही अदिति माता) सत्य मार्गपर चलनेवाली बडी अदिति माताने (असुर्याय) असुरोंके नाश करनेके लिए (विश्ववेदसा) सम्पूर्ण जगत्को जाननेवाले (प्रमहसा) अत्यन्त महान् और तेजस्वी मित्रा वरुणको (जजान) पैदा किया ॥ ३ ॥

[६१०] (महान्ता सम्राजा) महान्, अत्यन्त तेजस्वी (देवा) दिव्य गुणोंसे युक्त (असुरा) प्राणशक्ति देनेवाले और (ऋतावाना) यज्ञके रक्षक [मित्रावरुणा] (बृहत् ऋतं आ घोषतः) महान् यज्ञको और तेजस्वी बनाते हैं ॥ ४ ॥

[६११] (महः शवसः नपाता) महान् बलको नष्ट न करनेवाले, (दक्षस्य सूनू) बलसे उत्पन्न (सुक्रतू) उत्तम कर्म करनेवाले (सृप्रदानू) दानका विस्तार करनेवाले ये मित्रावरुण (इषः वास्तु अधि क्षितः) अन्नके स्थानमें रहते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों संसारके रक्षक, उत्तम तेजस्वी, देव होते हुए भी देवोंमें सर्व श्रेष्ठ, सत्यके मार्गका अनुसरण करनेवाले हो। इसीलिए उपासक तुम्हारी पूजा करता है ॥ १ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम कर्म करनेवाले, अत्यन्त महान्, रथसे सर्वत्र संचार करनेवाले और व्रतोंको धारण करनेवाले हैं ॥ २ ॥

सत्यमार्गपर चलनेवाली, श्रेष्ठ अदिति माताने अपने तेजस्वी पुत्र मित्रावरुणको इसलिए उत्पन्न किया कि वे असुरोंका नाश करें। इसी तरह सापूनरको माताये सत्यमार्गपर चलनेवाली हों, और ये सब अपनी सन्तानोंको तेजस्वी बनाकर उन्हें दुष्टों और शत्रुओंके विनाश कार्यकी तरफ प्रेरित करें ॥ ३ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव अत्यन्त तेजस्वी, दिव्य गुणोंसे युक्त, प्राण शक्तिको बलवान् बनाकर मानवजीवनरूपी यज्ञके रक्षक और उसे तेजस्वी बनानेवाले हैं ॥ ४ ॥

मित्र और वरुण दोनों देव महान् बलको उत्पन्न करके उसकी रक्षा करनेवाले हैं। दोनों ही उत्तम कर्म करनेवाले हैं तथा दान आदि सत्कर्मोंको फैलानेवाले हैं ॥ ५ ॥

६१२ सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः । नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥ ६ ॥
६१३ अधि या बृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यतः । ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥ ७ ॥
६१४ ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू । धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८ ॥
६१५ अक्ष्णश्चित् गातुवित्तराऽनुल्बणेन चक्षसा । नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥ ९ ॥
६१६ उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या । उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥
६१७ ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः । अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

अर्थ— [६१२] हे मित्र और वरुण ! (या) जो तुम दोनों (दानूनि) देने योग्य दानोंको (सं येमथुः) प्रदान करते हो, (दिव्याः पार्थिवीः इषः) दिव्य और पार्थिव अन्नोंको प्रदान करते हो । ऐसे (वां) तुम दोनोंकी (नभस्वतीः वृष्टयः) आकाशसे गिरनेवाली वृष्टियां (चरन्तु) सेवा करें ॥ ६ ॥

[६१३] (ऋतावाना सम्राजा) सत्य मार्गके अनुयायी, उत्तम तेजस्वी (नमसे हिता) नम्रभावके मनुष्योंका हित करनेवाले (या) जो मित्र और वरुण (बृहतः दिवः) महान् द्युलोकसे (यूथा इव) जैसे नेता अपने अनुयायियोंके समूहोंको देखता है, उसी तरह (अधि अभि पश्यतः) अच्छी प्रकारसे देखते हैं ॥ ७ ॥

[६१४] (ऋतावाना सुक्रतू) सत्यका पालन करनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले दोनों मित्र और वरुण (साम्राज्याय) उत्तमतासे शासन करनेके लिए ही (नि सेदतुः) अपने स्थानपर बैठे हैं । (धृतव्रता क्षत्रिया) व्रतोंको धारण करनेवाले तथा संकटोंसे लोगोंकी रक्षा करनेवाले दोनों देवोंने (क्षत्रं आशतुः) बल प्राप्त किया ॥ ८ ॥

[६१५] (अक्ष्णः चित् गातुवित्तरा) आंखोंवालोंकी अपेक्षा भी अधिक उत्तमतासे सन्मार्गको जाननेवाले (निमिषन्ता) सबको जागृत करनेवाले (निचिरा) अत्यन्त प्राचीन मित्र और वरुण दोनों देव (अनुल्बणेन चक्षसा) अत्यन्त दुःसह तेजसे (नि चिक्यतुः) बहुत पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

[६१६] (उत) और (देवी अदितिः) तेजसे युक्त अदिति माता (नः) हमारी रक्षा करे, (नासत्या उरुष्यतां) सत्यका पालन करनेवाले अश्विनीदेव हमारी रक्षा करें, (वृद्धशवसः मरुतः उरुष्यन्तु) बढे हुए बलवाले मरुत् हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

[६१७] हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले मरुतो ! (ते) वे तुम (नावं) नावकी तरह (दिवानक्तं नः उरुष्यत) रातदिन हमारी रक्षा करो, तथा (अरिष्यन्तः) हिंसित न होते हुए हम (पायुभिः सचेमहि) संरक्षणके साधनोंसे संयुक्त हों ॥ ११ ॥

भावार्थ— आकाशसे समय पर बरसात गिरे तथा उस बरसातसे द्युलोकमें और पृथ्वीलोकमें उत्पन्न होनेवाले अन्न तथा अन्य दान भी हमें प्राप्त हों ॥ ६ ॥

मित्र और वरुण दोनों देव सदा सत्य मार्गसे चलनेवाले, उत्तम तेजस्वी, नम्रभावसे युक्त मनुष्योंका हित करनेवाले है । ये दोनों द्युलोकपरसे जगत्का निरीक्षण करते हुए उसका संचालन करते हैं ॥ ७ ॥

सत्यके मार्गपर चलनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य ही उत्तमतासे शासन कर सकता है और वही साम्राज्यके सर्वोच्च शासनपर बैठ सकता है । ऐसा उत्तम व्रतधारी शासक जब अपनी प्रजाओंको संकटोंसे बचाता है, तब उसे सारी प्रजाओंका बल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

आंखोंवाले प्राणियोंकी अपेक्षा भी ये दोनों देव अपने मार्गको अधिक उत्तमतासे जान लेते हैं, ये ही देव सबको जागृत करके अपने अपने कामोंमें संयुक्त करते हैं । इनका तेज बहुत दुस्सह है, इसी तेजके कारण ये सर्वत्र पूजित होते हैं ॥ ९ ॥

तेजसे युक्त अदिति, अश्विनी कुमार तथा उत्तम बलवाले मरुद्गण हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

मरुद्गण दिनरात हमारी रक्षा करें और उनके द्वारा सुरक्षित होकर हमारा उत्तम रीतिसे पालन होता रहे ॥ ११ ॥

६१८ अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे । श्रुधि स्वयावन् त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥
६१९ तद् वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् । मित्रो यत् पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥
६२० उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना । इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥ १४ ॥
६२१ ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् । तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥
६२२ अयमेक इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः । तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥ १६ ॥
६२३ अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम । मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥

अर्थ— [६१८] (अरिष्यन्तः वयं) अहिंसित होते हुए हम (अघ्नते सुदानवे) अहिंसक और उत्तम दान देनेवाले (विष्णवे) विष्णुके लिये हवि देते हैं। हे (स्वयावन् सिन्धो) स्वयं प्रवाहित होनेवाली नदी! (पूर्वचित्तये) हमारी इच्छाओंको सबसे पहले जाननेके लिए तू हमारी प्रार्थना (श्रुधि) सुन ॥ १२ ॥

[६१९] (यत् मित्रः वरुणः) जिस धनकी मित्र, वरुण (यत् अर्यमा पान्ति) जिस धनकी अर्यमा रक्षा करते हैं, (तत् वरिष्ठं) उस अत्यन्त श्रेष्ठ (गोपयत्यं) सबकी रक्षा करनेवाले तथा (वार्यं) संग्रहणीय धनको हम (वृणीमहे) मांगते हैं ॥ १३ ॥

[६२०] (उत) और (नः) हमारे (तत्) उस धनकी रक्षा (अपां सिन्धुः) जलसे भरी हुई नदियां, (मरुतः) मरुत् गण (तत् अश्विना) उस धनकी रक्षा अश्विदेव (इन्द्रः विष्णुः) इन्द्र विष्णु (मीढ्वांसः सजोषसः) मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाले तथा साथ साथ रहनेवाले देव करें ॥ १४ ॥

[६२१] (ते हि वनुषः) वे पूजाके योग्य (भूर्णयः) वेगवान् गतिवाले (नरः) उत्तम नेता देव (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी शत्रुके अभिमानको उसी प्रकार (प्रतिघ्नन्ति) तोड देते हैं, जिस प्रकार (तिग्मं क्षोदः न) तेज जलका प्रवाह वृक्षोंको तोड देता है ॥ १५ ॥

[६२२] मित्रावरुणमेंसे (एकः) एक (विश्पतिः) प्रजाओंका पालक (अयं) यह मित्र (इत्था) इस प्रकार (पुरु उरु) बहुतसे और विस्तृत विश्वको (वि चष्टे) देखता है, विश्वका निरीक्षण करता है, हे मनुष्यो! हम (वः) तुम्हारे कल्याणके लिए (तस्य व्रतानि चरामसि) उस मित्रके व्रतोंका आचरण करते हैं ॥ १६ ॥

[६२३] (साम्राज्यस्य दीर्घश्रुत् वरुणस्य) सबपर शासन करनेवाले बहुत प्रसिद्ध वरुणके (ओक्या व्रता) इस विश्वरूपी घरका हित करनेवाले व्रतोंका (अनु सश्चिम) आचरण करते हैं, उसी तरह (मित्रस्य) मित्रके व्रतोंका भी आचरण करते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— हम उत्तम दाता और अहिंसक विष्णुकी स्तुति करते हैं अतः विष्णुके साथ अन्य देवगण भी हमारी स्तुतियोंको सुनें ॥ १२ ॥

धन ऐसा हो कि जो देवोंके द्वारा रक्षित हो। सत्यमार्गसे अर्जित धनकी ही देव रक्षा करते हैं। अतः ऐसा ही धन मनुष्य अर्जन करे, ऐसा ही धन सबसे श्रेष्ठ और उस धनवानकी रक्षा करनेवाला होता है ॥ १३ ॥

हमारे उस श्रेष्ठ धनकी रक्षा सिन्धु, अश्विनौ, इन्द्र विष्णु आदि देव करें ॥ १४ ॥

देवोंकी गति बहुत ही वेगवान् होनेके कारण उनके आगे कोई भी शत्रु नहीं टिक पाता अपितु सभी शत्रुओंका अभिमान उसी तरह टूट जाता है, जिस तरह वेगवान् जलप्रवाहकी चपेटमें आकर बडे बडे वृक्ष भी टूटकर गिर जाते हैं। इसी तरह मनुष्यको भी वेगयुक्त शक्तिसे युक्त होना चाहिए ॥ १५ ॥

मित्र और वरुण इन दोनों देवोंमेंसे एक देव मित्र सभी प्रजाओंका पालक होकर इस विस्तृत जगत्का निरीक्षण करता है। उस मित्रके व्रत-नियमोंके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है ॥ १६ ॥

सबपर शासन करनेवाले प्रसिद्ध वरुणके नियम इस संसारका हित करनेवाले हैं, उसी तरह मित्रके नियम भी जगत्के लिए हितकारक हैं, ऐसे मित्र और वरुणके नियमोंका हम आचरण करें ॥ १७ ॥

६२४ परि यो रश्मिना दिवो ऽन्तान् ममे पृथिव्याः । उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥
६२५ उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः । अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥ १९ ॥
६२६ वचो दीर्घप्रसद्मनी ऽशे वाजस्य गोमतः । ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥
६२७ तत् सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे । भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥ २१ ॥
६२८ ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥ २२ ॥
६२९ ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥ २३ ॥

अर्थ — [६२४] (यः) जिस मित्रने अपनी (रश्मिना) मापनेकी डोरीसे (दिवः पृथिव्याः अन्तान् परि ममे) द्यु और पृथिवीके अन्तको माप लिया, वह और वरुण (उभे) ये दोनों देव (महित्वा) अपनी महिमासे (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वी लोकको (आ पप्रौ) पूर्ण कर देते हैं ॥ १८ ॥

[६२५] (स्यः सूर्यः) वह सूर्य (दिवः शरणे) द्युलोकरूपी घरमें जब (ज्योतिः उत् अयंस्त) अपनी ज्योति या तेजको ऊपर प्रकट करता है, तब (अग्निः न शुक्रः) अग्निके समान तेजस्वी वह सूर्य (समिधानः) और तेजस्वी होनेके कारण (आहुतः) सबके द्वारा बुलाया जाता है ॥ १९ ॥

[६२६] हे मनुष्य ! (दीर्घप्रसद्मनि) विशाल यज्ञगृहमें (वचः) तू स्तोत्र कह । वह मित्र (गोमतः वाजस्य) गायसे युक्त अन्नका (ईशे) स्वामी है, (हि) वही (अविषस्य पित्वः) विषसे रहित अन्नको (दावने) देनेमें (ईशे) समर्थ है ॥ २० ॥

[६२७] मैं (तत् सूर्यं) उस सूर्यके तेज तथा (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोककी (उप ब्रुवे) स्तुति करता हूं । हे देव ! (भोजेषु) भोजनके विषयमें तू (सदा) सदा (अस्मान् अभि उत् चर) हमारी ओर ही गति कर ॥ २१ ॥

[६२८] (उक्षण्यायने) बैलोंके समूहसे युक्त (हरयाणे) तथा घोडोंके समूहसे युक्त (सुसामणि) यज्ञमें हमने (ऋज्रं) वेगसे चलनेवाले (रजतं युक्तं) चांदी सोनेसे सुशोभित (रथं असनाम) रथको प्राप्त किया ॥ २२ ॥

[६२९] (हरीणां कृत्व्यानां अश्व्यानां) तेजस्वी, कर्ममें कुशल घोडोंके समूहमें (मे) मुझे (ता) वे (नितोशना) शत्रुओंके विनाशक तथा (नृवाहसा) नेताओंको ले जानेवाले दो घोडे (नु) निश्चयसे मिले ॥ २३ ॥

भावार्थ— मित्र अपनी मापनेकी डोरी अर्थात् किरणोंसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको माप लेता है और मित्र और वरुण ये दोनों देव द्यु और पृथ्वीको अपनी महिमासे भर देते हैं ॥ १८ ॥

जब वह सूर्य द्युलोकमें ऊपर उठकर अपने तेजको प्रकट करता है, तब उस सूर्यका तेज अग्निके समान देदीप्यमान हो जाता है, उसी समय यज्ञ शुरु होते हैं, जिनमें सूर्यके लिए आहुतियां दी जाती हैं ॥ १९ ॥

वही मित्र सभी तरहके अन्नोंका स्वामी होनेके कारण उत्तम और विषरहित अन्न देनेमें वही समर्थ है, अतः उसीकी स्तुति करनी चाहिए । सूर्य अन्नका स्वामी है । सूर्यकिरणोंके कारण ही अन्नमें स्थित जन्तु आदि नष्ट होकर अन्न विषरहित बनता है । सूर्यकी किरणोंको पीनेवाले अन्न अधिक पुष्टिकारक होते हैं ॥ २० ॥

मैं सूर्यके तेज तथा दोनों लोकोंकी स्तुति करता हूं, अतः वे देव हमें उत्तम अन्न प्रदान करें ॥ २१ ॥

बडे बडे यज्ञ जब किए जाते हैं, तब उसका विस्तार बहुत होता है और उसमें सम्मिलित होनेवालोंकी संख्या अत्यधिक होनेके कारण उस यज्ञस्थलके आसपास आनेवालोंके घोडों और बैलोंका समूह हो जाता है । ऐसे यज्ञोंमें ब्राह्मणोंको रथ आदि भी दक्षिणामें दिए जाते हैं ॥ २२ ॥

तेजस्वी और कर्मकुशल घोडोंके समूहमें भी वे ही घोडे अधिक प्रशंसनीय होते हैं कि जो शत्रुओंके विनाशक और वीर क्षत्रियोंको ले जानेवाले अर्थात् बलशाली होते हैं ॥ ॥ २३ ॥

+

६३० स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्ठया मती । महो वाजिनावर्वन्ता सचासनम् ॥ २४ ॥

[२६]

(ऋषिः- विश्वमना वैयश्वः, व्यश्वो वाङ्गिरसः । देवता- अश्विनौ, २०-२५ वायुः । छन्दः- उष्णिक्; १६-१९, २१, २५ गायत्री; २० अनुष्टुप् ।)

६३१ युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु । अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥
६३२ युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या । अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥
६३३ ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू । पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥
६३४ आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा । उप स्तोमान् तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥ ४ ॥
६३५ जुहुराणा चिदश्विना ऽऽमन्येथां वृषण्वसू । युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६३०] मैंने (महः) महान् दाताके पाससे (न विष्ठया मती) अत्यन्त नवीन स्तुतिकी सहायतासे (स्मदभीशू) सुन्दर लगामोंवाले (कशावन्ता) उत्तम चाबुकवाले (विप्रा) ज्ञानसे युक्त (अर्वन्ता) वेगसे दौडनेवाले (वाजिना) दो बलवान् घोडोंको (सचा असनम्) एक साथ प्राप्त किया ॥ २४ ॥

[२६]

[६३१] हे (अतूर्त-दक्षा) ऐसे बल धारण करनेवाले कि जिसे दूसरा कोई नष्ट न कर सके और (वृषणा) बलवान् तथा (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (सूरिषु) विद्वानोंमें (सधस्तुत्याय) एकही साथ प्रशंसा करनेके लिए (युवोः रथं उ) तुम्हारे रथको ही (सु हुवे) भलीभाँति बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[६३२] हे (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले ! (वृषणा) बलिष्ठ तथा (वृषण्वसू) धनकी वृष्टि करनेवाले अश्विदेवों ! (युवं) तुम (सुसाम्ने महे तने) सुसामन्‌के लिए बडा धन मिले इस इच्छासे (अवोभिः याथः) संरक्षणोंसे युक्त होकर यात्रा करते हो उसी तरह मेरे लिए भी प्रयत्न करो, ऐसी प्रार्थना (वरो) हे वरु नरेश ! तू कर ॥ २ ॥

[६३३] हे (वाजिनी-वसू) बलयुक्त धनवाले अश्विदेवो ! (क्षपः अति) रात्रीके बीत जानेपर (अद्य ता वां) आज उन विख्यात तुम्हें जोकि (पूर्वीः इषः इषयन्तौ) बहुतसी अन्नसामग्रियोंको चाहते हो (हव्येभिः हवामहे) हवनीय वस्तुओंके प्रदानके साथ हम बुलाते हैं ॥ ३ ॥

[६३४] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां वाहिष्ठः) तुम्हें खूब जगह जगह पहुँचानेवाला और (श्रुतः) विख्यात रथ (आ यातु) इधर चला आवे; पश्चात् (तुरस्य स्तोमान्) शीघ्रतया कार्य करनेवालेके स्तोत्रोंका (श्रिये) शोभाके लिए (उप दर्शथः) समीप जाकर दर्शन करो ॥ ४ ॥

[६३५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (जुहुराणा चित् आ मन्येथां) कुटिल प्रकृतिके लोगोंको भी मान्यता दे दो क्योंकि (युवं रुद्रा हि) तुम तो शत्रुको रुलानेवाले हो और (द्विषः अति पर्षथः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पार करके आगे बढते हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— घोडे वही उत्तम होते हैं, जो बलवान्, वेगवान् और ज्ञानी हों अर्थात् समयके अनुसार काम करनेवाले हों ॥ २४ ॥

अश्विदेव ऐसे बलको धारण करते हैं कि जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता । इसीलिए विद्वानोंमें इनकी स्तुति होती है ॥ १ ॥

हे असत्यसे दूर रहकर धनकी वृद्धि करनेवाले देवो ! जिस तरह उत्तम सामगान करनेवालेकी रक्षा करते हो, उसी तरह तुम मेरी भी करो ॥ २ ॥

हे बलवान् अश्विदेवो ! रातके बीत जाने पर प्रभातमें हम यज्ञ करके उसमें तुम्हें हविको ग्रहण करनेके लिए बुलाते हैं ॥ ३ ॥

अश्विदेवोंका रथ इन्हें ये जहां जाना चाहते हैं, वहां पहुंचा देता है और ये देव सर्वत्र जाकर स्तुति श्रवण करते हैं ॥ ४ ॥

हे देवो ! तुम दोनों शत्रुओंको रुलानेवाले हो और द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पराभूत करके आगे बढ जाते हो, उसी तरह जो कुटिल प्रकृतिके लोग हैं, उन्हें भी शत्रु मानकर उन्हें रुलाओ ॥ ५ ॥

६३६ दस्रा हि विश्वमानुषङ् मक्षूभिः परिदीयथः । धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥
६३७ उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह । मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥
६३८ आ मे अस्य प्रतीव्य१—मिन्द्रनासत्या गतम् । देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥
६३९ वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् । सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥
६४० अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित् ते श्रवतो हवम् । नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥ १० ॥
६४१ वैयश्वस्य श्रुतं नरो—तो मे अस्य वेदथः । सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ११ ॥

अर्थ— [६३६] हे (दस्रा) दर्शनीय ! (मधु-वर्णा) मधुर वर्णवाले ! (धियं-जिन्वा) बुद्धि या कर्मोंको ठीक प्रकार प्रीणन करनेवाले ! (शुभः पती) शुभ कार्योंके अधिपति ! अश्विदेवों ! (मक्षुभिः) शीघ्रगामी घोड़ोंके साथ (विश्वं आनुषक्) सबके समीप लगातार (परि दीयथः) चतुर्दिक् चले जाते हो इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥

[६३७] हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न ! (अन्-अपच्युता) न पदभ्रष्ट हुए (सुवीरौ) अच्छे वीर अश्विदेवों ! (नः) हमारे समीप (विश्वपुषा राया सह) सबकी पुष्टि करनेवाले धनसे युक्त होकर (उप यातं) आओ ॥ ७ ॥

[६३८] हे (इन्द्र नासत्या) इन्द्र एवं सत्यभक्त अश्विदेवों ! तुम (देवा) दानी और (देवेभिः सचनस्तमा) विद्वानोंसे अत्यन्त अधिक मात्रामें युक्त होनेवाले हो, अतः (अद्य मे अस्य प्रतीव्यं) आज मेरे इस स्तोत्रके प्रत्युत्तरके रूपमें (आ गतं) इधर पधारो ॥ ८ ॥

[६३९] हे (विप्रौ) ज्ञानी अश्विदेवों ! (वयं व्यश्ववत्) हम व्यश्वके समान ही, (उक्षण्यन्तः) इच्छा करते हुए (वां हि हवामहे) तुम्हें ही बुलाते हैं, इसलिए (सुमतिभिः इह) अच्छी बुद्धियों एवं विचारोंसे युक्त होकर इधर (उप आ गतं) समीप आओ ॥ ९ ॥

[६४०] हे ऋषिवर ! तू अश्विदेवोंकी (सु स्तुहि) भलीभाँति सराहना कर, क्योंकि वे दोनों (ते हवं) तेरी पुकारको (कुवित् श्रवतः) बहुत बार सुन लेते हैं, (उत) और (पणीन्) स्वार्थी व्यापारियोंको एवं (नेदीयसः) समीप पहुँचे हुए शत्रुओंको (कूळयातः) विनष्ट कर डालते हैं ॥ १० ॥

[६४१] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (वैयश्वस्य श्रुतं) व्यश्वके पुत्रके कथनको सुन लो (उत) और (अस्य मे वेदथः) इस मेरे भाषणको ठीक तरह जान लो; (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरुण, मित्र एवं अर्यमा (सजोषसा) इकट्ठे हो इधर आजायँ ॥ ११ ॥

भावार्थ— दोनों अश्विदेव मधुर वाणीवाले, बुद्धिको उत्तम ज्ञानसे तृप्त करनेवाले, शुभ कर्मोंके स्वामी और सर्वत्र संचार करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

हे ऐश्वर्यशाली तथा पदभ्रष्ट न होनेवाले वीर अश्विदेवो ! तुम सब तरहका पोषण करनेवाले धनसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ७ ॥

हे ऐश्वर्यशाली तथा सत्यकी भक्ति करनेवाले देवो ! तुम विद्वत्तासे अत्यधिक युक्त हो, अतः तुम हमारे बुलाने पर आओ ॥ ८ ॥

हे ज्ञानी अश्विदेवो ! हम व्यश्वके समान ही उत्तम ऐश्वर्यको पानेकी इच्छा करते हुए तुम्हें बुलाते हैं, अतः उत्तम बुद्धि एवं विचारोंसे युक्त होकर हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

हे ज्ञानी ! तू अश्विनी देवोंकी अच्छी तरह स्तुति कर, क्योंकि वे दोनों देव तेरी प्रार्थनाको अनेक बार सुनकर स्वार्थी व्यापारियों और शत्रुओंको नष्ट कर चुके हैं। राज्यमें अधिक मुनाफा करनेवाले जो स्वार्थी व्यापारी हों, उन्हें नष्ट कर देना चाहिए ॥ १० ॥

हे अश्विदेवो ! मेरी इस प्रार्थनाको ठीक तरह सुनो और वरुण, मित्र और अर्यमा एक साथ मिलकर मेरे पास आवें ॥ ११ ॥

६४२ युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः । अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥
६४३ यो वां यज्ञेभिरावृतो ऽधिवस्त्रा वधूरिव । सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥
६४४ यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् । वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥
६४५ अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् । विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥ १५ ॥
६४६ वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥
६४७ यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

अर्थ— [६४२] हे (धिष्ण्या वृषणा) प्रशंसार्ह एवं इच्छापूर्ति करनेहारे अश्विदेवो ! (सूरिभिः) विद्वानोंको (युवानीतस्य युवा दत्तस्य) तुम लाकर जो धन दे चुके हो उसे (अहः अहः) हरदिन (मह्यं शिक्षतं) मुझे दे डालो ॥ १२ ॥

[६४३] (अधि-वस्त्रा वधूः इव) कपडे ओढी हुई नववधूके समान (यः) जो मानव (वां यज्ञेभिः आवृतः) तुम्हारे यज्ञोंसे पूर्णतया ढका हुआ हो, उसे (सपर्यन्ता) अभीष्ट चीजोंके प्रदानसे पूजित करते हुए अश्विदेव (शुभे चक्राते) अच्छी दशामें वह रहे ऐसा प्रबन्ध कर देते हैं ॥ १३ ॥

[६४४] हे अश्विदेवो ! (यः) जो (उरुव्यचस्तमं) अत्यन्त विस्तीर्ण तथा (नृ-पाय्यं) नेताओंद्वारा सुरक्षित रखनेयोग्य स्थानको (वां चिकेतति) तुम्हारे लिए बतलाता है, उसके (वर्तिः) घरतक (अस्मयू) हमारी चाह रखनेवाले तुम (परि यातं) चारों ओरसे चले जाओ ॥ १४ ॥

[६४५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे रक्षणीय घरको (अस्मभ्यं) हमारे हितके लिए (सु यातं) भलीभाँति जाओ, क्योंकि तुम (गिरा यज्ञं) भाषणसे यज्ञको (विषु-द्रुहा इव ऊहथुः) सभी शत्रुओंके वधकर्ता बाणकी तरह उठा ले गये ॥ १५ ॥

[६४६] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (हवानां) तुम्हें जो बुलावे भेजे जाते हैं उनमें (वां वाहिष्ठः) तुम्हें अत्यधिक मात्रामें पास होनेवाला (स्तोमः दूतः हुवत्) हमारा स्तोत्र दूत बनकर इधर बुलाए और वह (युवाभ्यां) तुम्हें प्रिय (भूतु) प्रतीत हो ॥ १६ ॥

[६४७] हे (अ-मर्त्या) अमर अश्विदेवो ! (यत् दिवः) जो तुम द्युलोकमें (अर्णवे) समुद्रमें (इषः गृहे वा) या अभीष्टके घरमें (मदथः) हर्षित होते हो, परन्तु (मे अदः) मेरा वह भाषण (श्रुतं इत्) तुम अवश्य सुन लेना ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! विद्वान्‌को तुम जैसा उत्तम धन देते हो, वैसा ही उत्तम धन तुम मुझे भी दो ॥ १२ ॥

जिस तरह नववधू अच्छे कपडोंमें अच्छी तरह छिपटी हुई होती है, उसी तरह जो लोग उत्तम कर्मोंसे युक्त होते हैं वे सदा ही अच्छी दशामें रहते हैं ॥ १३ ॥

जो नेता या उत्तम ज्ञानी मनुष्य अश्विदेवोंके लिए स्थान सुरक्षित रखता है, उसके घर अश्विदेव सदा जानेकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम जिसके भी घर जाते हो, वहां पहुंचकर वहां होनेवाले यज्ञमें इकट्ठे हुए जनसमूहको अपने मधुर भाषणोंसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते हो ॥ १५ ॥

हे अश्विदेव ! जितने भी लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सबमें हमारी ही स्तुति तुमतक पहुंचे और तुम हमारे पास आओ ॥ १६ ॥

हे अमर अश्विदेवो ! चाहे तुम द्युलोकमें हो, चाहे समुद्रमें या चाहे तुम अपने किसी भक्तके घरमें आनंद कर रहे होओ, तो भी तुम हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे पास चले आओ ॥ १७ ॥

६४८ उत स्या श्वैतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् । सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥
६४९ स्मदेतया सुकीर्त्या ऽश्विना श्वेतया धिया । वहेथे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥
६५० युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आन्नो वायो मधु पिबा ऽस्माकं सवना गहि ॥ २० ॥
६५१ तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत । अवांस्या वृणीमहे ॥ २१ ॥
६५२ त्वष्टुर्जामातरं वय मीशानं राय ईमहे । सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥ २२ ॥
६५३ वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम् । वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३ ॥

अर्थ— [६४८] (उत) और भी (नदीनां वां वाहिष्ठा) नदियोंमें तुम्हें ही अधिक इष्ट स्थानपर पहुँचानेवाली (स्या श्वेतयावरी) वह शुभ-निर्मल गतिवाली (हिरण्यवर्तनिः) सुवर्णतुल्य तेजस्वी मार्गवाली (सिन्धुः) नदी है ॥ १८ ॥

[६४९] हे (शुभ्र-यावाना अश्विना) निष्कलंक गतिवाले अश्विदेवों ! (एतया सुकीर्त्या) इस अच्छी कीर्तिवाली (श्वेतया धिया) सफेद-निष्कलंक बुद्धिसे तुम दोनों (स्मत् वहेथे) कल्याणकी ओर-जाते हो- शुभ एवं हितप्रद मार्गके पथिक बनते हो ॥ १९ ॥

[६५०] हे (वसो) सबको बसानेवाले वायो ! (त्वं) तू (रथा सहा) रथको खींचनेमें समर्थ दो घोडियोंको (युक्ष्वा) जोड तथा (पोष्या) अच्छी तरहसे पुष्ट दो घोडियोंको (युवस्व) जोड । हे (वायो) वायो ! (आत्) इसके बाद (अस्माकं सवना आ याहि) हमारे यज्ञमें आओ और (नः मधु पिब) हमारे मीठे सोमरसोंको पीओ ॥ २० ॥

[६५१] हे (ऋतः पते) सत्कर्मोंके पालन कर्ता (त्वष्टुः जामाता अद्भुत वायो) त्वष्टाके जामाता अपूर्व वायो ! हम (तव अवांसि वृणीमहे) तेरे संरक्षणके साधनोंकी इच्छा करते हैं ॥ २१ ॥

[६५२] (त्वष्टुः जामातारं ईशानं वायुं) त्वष्टाके जामाता तथा ऐश्वर्यशाली वायुकी (जनासः) हम लोग (राये ईमहे) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते हैं । (वयं) हम सब (द्युम्ना) उसके तेजसे (सुतावन्तः) ऐश्वर्यशाली हों ॥ २२ ॥

[६५३] (वायो) हे वायो ! तुम हमारे पास (दिवः शिवः) दिव्य कल्याणको लेकर (आ याहि) आओ, तथा (सुअश्व्यं) उत्तम अश्वोंके संघको (वहस्व) चारों ओर ले जाओ । (महः) हे महान् वायो ! तुम (रथे) अपने रथमें (पृथु पक्षसा) महान् बलसे युक्त दो घोडियोंको (वहस्व) जोडो ॥ २३ ॥

भावार्थ — नदियोंमें शुभ्र निर्मल तथा सुनहरे रंगकी प्रवाहवाली सिन्धु नदी सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वह नदी ही अश्विनी देवोंकी हर तरहसे सहायता करती है ॥ १८ ॥

अश्विदेव सदा सन्मार्गसे चलनेवाले हैं, इसीलिए इनकी गति निष्कलंक है । यह अपनी कीर्तिवाली तथा कलंकरहित बुद्धिके द्वारा लोगोंको कल्याणके मार्गमें प्रेरित करते हैं ॥ १९ ॥

वायुके कारण ही सब जीवन धारण करते हैं । यह वायुदेव अपनी लहररूपी घोडियोंपर चढकर सर्वत्र संचार करता है और इस मनुष्य जीवनरूपी यज्ञको धारण करता है ॥ २० ॥

वायुदेव उत्तम कर्मोंका पालन करनेवाले हैं । अतः हम चाहते हैं कि उसके संरक्षणके साधन हमें प्राप्त हों ॥ २१ ॥

ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम ऐश्वर्यशाली वायुकी प्रार्थना करते हैं, उस वायुके तेजसे हम समृद्ध और सम्पन्न हों ॥ २२ ॥

हे वायो ! तुम हमें दिव्य कल्याणको प्रदान करो, हम सदा कल्याणके मार्गपर ही चलें । तुम चारों ओर अच्छी तरह संचार करो ॥ २३ ॥

६५४ त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे । ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥
६५५ स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः । कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥

[२७]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

६५६ अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ १ ॥
६५७ आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥
६५८ प्र सू न एत्वध्वरो३ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

अर्थ— [६५४] हे वायो ! (सुप्सरस्तमं) अत्यन्त रूपवान् (मंहना अश्वपृष्ठं) और अपने महत्त्वसे सर्वत्र व्याप्त (त्वां) तुम्हें (नृषदनेषु) मानवोंके घरोंमें-यज्ञोंमें (ग्रावाणं न) सोम पीनेके पत्थरके समान (हूमहे) बुलाते हैं ॥ २४ ॥

[६५५] (देव अग्रियः वायो) कान्तिमान् तथा देवताओंमें अग्रणी वायो ! (सः त्वं) वह तू (मनसा मन्दानः) स्वयं मनसे प्रसन्न होता हुआ (नः) हमारे लिए (वाजान् अपः धियः कृधि) अन्न, पानी तथा बुद्धिको प्रदान कर ॥ २५ ॥

[२७]

[६५६] (उक्थे अध्वरे) इस प्रशंसनीय यज्ञमें (अग्निः पुरोहितः ग्रावाणः बर्हिः) अग्नि, पुरोहित, सोम कूटनेके पत्थर और आसन आदि सबकुछ तैय्यार है । अब मैं (ऋचा) वेदमंत्रोंके द्वारा (मरुतः ब्रह्मणस्पतिं देवान्) मरुत, ब्रह्मणस्पति तथा अन्य देव और (वरेण्यं अवः) चाहने योग्य संरक्षणको (यामि) मांगता हूँ ॥ १ ॥

[६५७] हे अग्ने ! तू हमें (पशुं) पशुको (पृथिवीं) भूमि (वनस्पतीन्) उत्तम वनस्पति (उषासानक्तं) उत्तम प्रातःकाल और उत्तम रात्री तथा (ओषधीः) उत्तम औषधियां (आ गासि) प्रदान कर । हे (विश्ववेदसः विश्वे वसवः) सब पदार्थोंको जाननेवाले सभी वसुगण ! (नः धीनां प्र अवितारः भूत) तुम हमारी बुद्धियोंकी उत्तम रीतिसे रक्षा करनेवाले होओ ॥ २ ॥

[६५८] (नः पूर्व्यः अध्वरः) हमारा यह श्रेष्ठ यज्ञ (अग्ना) अग्निके पास तथा (आदित्येषु) आदित्य (धृतव्रते वरुणे) व्रतोंको धारण करनेवाले वरुण और (विश्वभानुषु मरुत्सु) सर्वत्र व्याप्त तेजवाले मरुतोंके पास तथा (देवेषु) अन्य देवोंके पास (प्र सु एतु) उत्तम रीतिसे जाए ॥ ३ ॥

भावार्थ— वायुदेव अपने महत्त्वसे सर्वत्र व्याप्त हैं । उसके प्रत्येक कण कणमें वायु व्याप्त हो रहा है ॥ २४ ॥

हे वायो ! प्रसन्न होता हुआ तू हमें अन्न, पानी और उत्तम बुद्धिको प्रदान कर । मनुष्योंको भोजनके लिए उत्तम अन्न, पीनेके लिए उत्तम पानी और अनेक कर्म करनेके लिए उत्तम बुद्धि चाहिए ॥ २५ ॥

इस प्रशंसनीय यज्ञको पूर्ण करनेके लिए सभी सामग्रियां तैय्यार हैं, अतः अब मैं सभी देवोंको बुलाकर उनसे मैं संरक्षकी प्रार्थना करता हूं ॥ १ ॥

अग्नि हमें पशु, जमीन, उत्तम वनस्पति और औषधी आदि प्रदान करे, तथा वसु हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करें, ताकि हम अग्निसे प्राप्त ऐश्वर्यका सदुपयोग कर सकें और दिन और रात उत्तम रीतिसे बिता सकें ॥ २ ॥

हमारा यज्ञ अग्नि, आदित्य, वरुण तथा तेजस्वी मरुत् एवं अन्य देवोंको प्रसन्न करनेके लिए उनके पास पहुंचे ॥ ३ ॥

६५९ विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥

६६० आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।
ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ॥ ५ ॥

६६१ अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन ।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ॥ ६ ॥

६६२ वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ॥ ७ ॥

६६३ आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥

अर्थ— [६५९] (विश्ववेदसः रिशादसः) सब विश्वके ज्ञाता तथा शत्रुओंके विनाशक (विश्वे हि) सभी देवगण (मनवे वृधे भुवन्) मनुष्यको बढानेवाले हों। (विश्ववेदसः) सब तरहके धनको प्राप्त करनेवाले देवगण (अरिष्टेभिः पायुभिः) नष्ट न होनेवाले संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करें, तथा (नः) हमें (अवृकं छर्दिः यन्त) हिंसकोंसे रहित घर प्रदान करें ॥ ४ ॥

[६६०] (समनसः विश्वे) समान मनवाले अर्थात् पक्षपात रहित सभी देव (नः ऋचा गिरा) हमारे द्वारा बोले जानेवाले वेदमंत्रों और स्तुतियोंसे आकृष्ट होकर (सजोषसः आ गन्त) संघटितरूपसे हमारे पास आवें। (मरुतः) हे मरुतो ! (महि देवि अदिते) पूज्य देवी अदिति ! तुम भी (पस्त्ये सदने) हमारे उत्तम घरमें आओ ॥ ५ ॥

[६६१] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः) तुम्हारे (या प्रिया अश्व्या) जो प्रिय घोडोंके समूह हैं, उनके द्वारा (अभि प्रयाथन) हमारे यज्ञकी तरफ आओ। हे (मित्र) मित्र ! (हव्या) हविभक्षणके लिए तू भी आ। (इन्द्रः) इन्द्र (वरुणः) वरुण (तुराः नरः) शीघ्रतासे कर्म करनेवाले नेता ऋभु तथा (आदित्यासः) आदित्य (नः बर्हिः आ सदन्तु) हमारे यज्ञमें आकर बैठें ॥ ६ ॥

[६६२] हे (वरुण) वरुण आदि देवो ! (मनुष्वत्) ज्ञानीके समान (सुतसोमासः) सोमरस तैय्यार करके (वृक्त बर्हिषः) आसन बिछाकर (इद्धाग्नयः) यज्ञाग्नियां प्रज्वलित करके तथा (हितप्रयसः) उनमें आहुति आदि दे करके (वयं) हम (वः) तुम सबको (आनुषक् हवामहे) बार बार बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[६६३] (मरुतः विष्णो अश्विना पूषन्) मरुत, विष्णु, अश्विदेव तथा पूषा देवो ! (मामकीनया धिया) मेरी स्तुतिसे आकृष्ट होकर (आ प्र यात) मेरे पास आओ। (यः वृषा) जो बलवान् है और (वृत्रहा गृणे) वृत्रको मारनेवालेके रूपमें जो प्रसिद्ध होता है, वह (इन्द्रः) इन्द्र (सनिष्युभिः) अपने सहायकोंके साथ (प्रथमः आ यातु) सबसे पहले हमारे पास आवे ॥ ८ ॥

भावार्थ— सब संसारको जाननेवाले तथा शत्रुओंके विनाशक देव मनुष्योंकी उत्तम साधनोंसे रक्षा करें और इस प्रकार मनुष्योंकी वृद्धि हो। साथ ही वे देवगण हिंसकोंसे रहित घर भी मनुष्योंको प्रदान करें ॥ ४ ॥

सभी देवोंका मन सब प्राणियोंके प्रति समान रहता है, अर्थात् वे किसीके प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करते। ऐसे वे देव सदा संघटित होकर रहते हैं। उन देवोंकी माता अदिति घरमें रहती है। सभी मनुष्योंका पारस्परिक व्यवहार पक्षपातरहित हो, सभी संघटित होकर रहें ॥ ५ ॥

सभी देवगण हमारे यज्ञोंमें आकर बैठें और हमारे द्वारा दी गई हविका भक्षण करें ॥ ६ ॥

अपने यज्ञमें देवोंके सत्कारके लिए सभी सामग्रियां तैय्यार करके हम देवोंको बुलाते हैं, वे हमारे यज्ञोंमें आवें ॥ ७ ॥

वृत्रको मारनेवालेके रूपमें जो प्रसिद्ध है, वह इन्द्र अपने सहायक अन्य देवोंके साथ मेरी स्तुतिसे आकृष्ट होकर आवे ॥ ८ ॥

६६४ वि नो देवासो अद्रुहो ऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद् दूराद् वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥ ९ ॥
६६५ अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥ १० ॥
६६६ इदा हि व उपस्तुति-मिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्यु-राँ असृक्ष्यन्यामिव ॥ ११ ॥
६६७ उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयो ऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनो ऽविश्रन् पतयिष्णवः ॥ १२ ॥
६६८ देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवमभिष्टये ।
देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ १३ ॥

अर्थ — [६६४] हे (अ-द्रुहः वसवः देवासः) किसीसे द्रोह न करनेवाले तथा सबको बसानेवाले देवो ! (यत् वरुथं) जिस घरको कोई शत्रु (दूरात् नु चित् अन्तितः) दूरसे और पाससे भी (न आ दधर्षति) नष्ट नहीं कर सकता, ऐसे (अच्छिद्रं शर्म) छिद्र अर्थात् दोषरहित घरको (नः वि यच्छत) हमें प्रदान करो ॥ ९ ॥

[६६५] हे (रिशादसः देवासः) हिंसकोंके शत्रु देवो ! (वः सजात्यं अस्ति) तुममें आपसमें एक जातीयता है, (आप्यं अस्ति) आपसमें भाईपन भी है । अतः तुम (पूर्वस्मै सुविताय) सबसे श्रेष्ठ अभ्युदय तथा (नव्यसे सुम्नाय) अत्यन्त नवीन सुखके लिए (मक्षु) शीघ्र ही (नः प्र वोचत) हमें उत्तम उपदेश दो ॥ १० ॥

[६६६] हे (विश्ववेदसः) सब पदार्थोंको जाननेवाले देवो ! (नमस्युः) अन्नकी इच्छा करनेवाला मैं (इदा वामस्य भक्तये) अभी सुन्दर धनकी प्राप्तिके लिए (अन्यां इव उपस्तुतिं) अनन्य अर्थात् अद्भुत स्तुतिको (वः) तुम्हारे लिए (आ असृक्षि) करता हूँ ॥ ११ ॥

[६६७] हे (सु प्रणीतयः) उत्तम नेता देवो ! (वः) तुम्हारे मध्यमें (ऊर्ध्वः) श्रेष्ठ (वरेण्यः) उत्तम वरणीय (स्यः सविता) वह सूर्य देव (उत् अस्थात्) उदय होता है, तब (अर्थिनः) इच्छा करनेवाले (द्विपादः चतुष्पादः पतयिष्णवः) दोपाये– मनुष्य, चौपाये– पशु तथा उडनेवाले पक्षी (अविश्रन्) अपने अपने काममें लग जाते हैं ॥ १२ ॥

[६६८] हम (देव्या धिया गृणन्तः) दिव्य स्तुतिसे स्तुति करते हुए (वः) तुममेंसे (देवं देवं) अत्यन्त तेजस्वी देवको (अवसे) अपनी रक्षाके लिए (हुवेम) बुलाते हैं (देवं देवं अभिष्टये) तेजस्वी देवको (अभिष्टये) अपनी इच्छित वस्तुको प्राप्त करनेके लिए बुलाते हैं, (देवं देवं) अत्यन्त तेजस्वी देवको (वाजसातये) अन्नकी प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— घर ऐसी सुदृढतासे बांधा गया हो, कि जिसे कोई शत्रु तोड फोड न सके । ऐसे दृढ और दोषरहित घरमें हम रहें ॥ ९ ॥

इन देवोंमें आपसमें एक जातीयता है, अर्थात् इनमें छोटापन और बडप्पनका भेदभाव नहीं है, इसी कारण इनमें भाईचारा भी है । ये देव हमें शीघ्र ही सबसे श्रेष्ठ अभ्युदयके लिए तथा नवीनतम सुखके लिए शीघ्र ही हमें उत्तम उपदेश दें ॥ १० ॥

अन्नकी इच्छा करनेवाला मैं सुन्दर धनकी प्राप्तिके लिए इन देवोंकी अद्भुत स्तुति करता हूँ ॥ ११ ॥

जब देवोंमें श्रेष्ठ और वरणीय सूर्य देव उदय होते हैं, तब विश्वके सभी प्राणी अपने अपने कार्योंमें लग जाते हैं और काम करके अपनी इच्छाओंकी पूर्ति करते हैं ॥ १२ ॥

हम अपनी रक्षाके लिए, इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए अत्यन्त तेजस्वी देवको बुलाते हैं ॥ १३ ॥

६६९ देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥ १४ ॥

६७० प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥ १५ ॥

६७१ प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥

६७२ ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥ १७ ॥

अर्थ— [६६९] (समन्यवः विश्वे देवासः) शत्रुओं पर क्रोध करनेवाले सभी देव (मनवे) मननशील मानवके लिए (साकं सरातयः) एक साथ धन देनेवाले हों। (ते) वे देव (नः) हमारे लिए (अद्य) आज भी ऐश्वर्य देनेवाले हों, (ते) वही देव (अपरं) दूसरे दिन भी ऐश्वर्य देनेवाले हों। वे देव (नः तुचे) हमारे पुत्रादियोंके लिए भी (वरिवोविदः) धन प्राप्त करानेवाले हों ॥ १४ ॥

[६७०] हे (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले देवो ! (उपस्तुतीनां संस्थे) स्तुतियोंके स्थानमें (वः प्र शंसामि) तुम्हारी मैं स्तुति करता हूँ हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र ! (यः) जो मनुष्य (वः धामभ्यः अविधत्) तुम्हारे तेजसे युक्त होता है, (तं मर्त्यं न धूर्तिः) उस मनुष्यको कोई नहीं मार सकता ॥ १५ ॥

[६७१] हे देवो ! (यः) जो मनुष्य ! (वराय) श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिए (वः दाशति) तुम्हें आहुति देता है, (सः) वह (महीः इषः) महान् पोषकतासे युक्त अन्नोंको प्राप्त करके (क्षयं वि तिरते) अपने घरको समृद्ध बनाता है। (सः धर्मणः परिः) वह उत्तम धर्मसे युक्त होकर (प्रजाभिः प्र जायते) प्रजाओंके कारण वृद्धिको प्राप्त होता है, (अरिष्टः) अहिंसित होकर (सर्वः एधते) हर तरहसे बढता है ॥ १६ ॥

[६७२] (सरातयः मित्रः वरुणः अर्यमा) उत्तम दान देनेवाले मित्र, वरुण और अर्यमा देव (सजोषसः यं त्रायन्ते) संघटित होकर जिसकी रक्षा करते हैं, (सः) वह मनुष्य (युधः ऋते) युद्धके बिना भी (विन्दते) धन प्राप्त कर लेता है और (सुगेभिः) उत्तम गतियोंसे (अध्वनः याति) सुमार्ग पर चलता है ॥ १७ ॥

भावार्थ— शत्रुओं पर क्रोध करनेवाले देवगण शत्रुओं पर क्रोध करें, पर हम पर प्रसन्न होकर हमें तथा हमारे पुत्रादियोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हों ॥ १४ ॥

जो मनुष्य इन देवोंके तेजसे युक्त होता है, उन देवोंके तेजके कारण सुरक्षित होता है, उस मनुष्यको कोई नहीं मार सकता ॥ १५ ॥

जो मनुष्य श्रेष्ठता प्राप्त करनेके लिए इन देवोंको प्रसन्न करता है, वह पोषक अन्नसे अपने घरको समृद्ध करता है, वह धर्मसे युक्त होता है और पुत्रादियोंके कारण वृद्धिको प्राप्त होता है और अहिंसित होकर हर तरहसे बढता है ॥ १६ ॥

उत्तम दान देनेवाले देव संघटित होकर जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह युद्धके बिना भी धन प्राप्त करता है और सदा सन्मार्ग पर चलता रहता है ॥ १७ ॥

×

६७३ अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥ १८ ॥

६७४ यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद् वा मध्यंदिने दिवः ॥ १९ ॥

६७५ यद् वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद् वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥ २० ॥

६७६ यदद्य सूर उदिते यन्मध्यंदिन आतुचि ।
वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥ २१ ॥

६७७ वयं तद् वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।
अश्याम तदादित्या जुह्वतो हविर्येन वस्योऽनशामहे ॥ २२ ॥

अर्थ— [६७३] हे देवो ! (अस्मै) इस वीरके लिए (अज्रे चित्) न जीते जानेवाले शत्रुके किलेमें भी (नि अंचनं कृणुथ) आसानीसे जाने योग्य कर दो, (दुर्गे चित्) कठिनतासे प्रवेश पाने योग्य किलेको भी (सुसरणं) आसानीसे जाने योग्य बना दो, (एषा अशनिः) यह शत्रुका वज्र (अस्मात् परः) इस वीरसे दूर ही रहे, तथा (सा) वह शत्रुका वज्र (अस्रेधन्ती) किसी भी वीरका विनाश न करता हुआ (विनशयतु) स्वयं नष्ट हो जाए ॥ १८ ॥

[६७४] हे (प्रियक्षत्राः विश्ववेदसः) बलसे प्रेम करनेवाले सर्वज्ञ देवो ! तुम (अद्य यत् सूर्ये उद्यति) आज जब सूर्य उदय होता है, (यत् निम्रुचि) जब अस्त होता है (प्रबुधि) उषःकालमें (यद्वा) अथवा (दिवः मध्यन्दिने) दिनके मध्यभागमें (ऋतं दध) कल्याणको धारण करो ॥ १९ ॥

[६७५] हे (असु-राः) प्राणशक्ति देनेवाले देवो ! (यद्वा) अथवा (ऋतं यते अभिपित्वे) तुम्हारे कल्याण करने पर तुम (दाशुषे) दाताको (छर्दिः वि येम) घर प्रदान करो, (तत्) तब हे (विश्ववेदसः वसवः) सर्वज्ञ वसु देवो ! (वयं) हम (वः मध्ये आ उप स्थेयाम) तुम्हारे बीचमें जाकर बैठें ॥ २० ॥

[६७६] हे (विश्ववेदसः) सर्वज्ञ देवो ! (यत्) जब (अद्य सूर्ये उदिते) आज सूर्य उदय हो जाए, (यत् मध्यंदिने) जब मध्याह्न हो, तथा (आतुचि) सूर्यास्तके समय (जुह्वानाय प्रचेतसे) यज्ञ करनेवाले तथा ज्ञानी (मनवे) मनुष्यके लिए (वामं धत्थ) उत्तम धन प्रदान करो ॥ २१ ॥

[६७७] हे (सम्राजः) अत्यन्त तेजस्वी देवो ! (वयं आ वृणीमहे) हम तुमसे यही वर मांगते हैं कि हम (पुत्रः न) पुत्र जिस तरह अपने पितासे मांगता है, इसी तरह तुमसे (बहुपाय्यं तत्) बहुतोंका पालन करनेवाले उस धनको (अश्याम) प्राप्त करें, तथा (आदित्याः) हे आदित्य देवो ! (हविः जुह्वतः) हविकी आहुति देनेवाले हम (येन) जिस धनकी सहायतासे (वस्यः अनशामहे) सुख प्राप्त करें ॥ २२ ॥

भावार्थ— देवोंकी कृपासे हमारे वीर शत्रुओंके अपराजित तथा दुर्गम किलोंमें भी आसानीसे प्रविष्ट हो जाएं, तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे हमारे वीर सर्वथा सुरक्षित रहें, शत्रुओंके वे शस्त्र हमारे किसी भी वीरको न मार पायें और वे स्वयं नष्ट हो जाएं ॥ १८ ॥

क्षत्र अर्थात् बलसे प्रेम करनेवाले देवो ! तुम सुबह उषःकालमें सूर्योदयसे लेकर सूर्यके अस्त होने तक हमारा कल्याण ही करो ॥ १९ ॥

हे प्राणशक्ति देनेवाले देवो ! तुम हमारा कल्याण करो, तथा हमें एक अच्छासा घर प्रदान करो, तब हम भी तुम्हारे कल्याणके द्वारा देवत्व प्राप्त करके तुम्हारे बीचमें बैठनेके अधिकारी हों ॥ २० ॥

हे देवो, सूर्योदय, मध्यान्ह और सूर्यास्तके समय यज्ञ करनेवाले ज्ञानी मनुष्यके लिए उत्तम धन प्रदान करो ॥ २१ ॥

धन वही उत्तम है कि जो अनेकोंका पालन करता है, जो परोपकारके लिए खर्च होता है। जो स्वार्थके लिए खर्च किया जाता है, वह धन तो पापमय होता है। ऐसे पापमय धनसे सुख प्राप्तिकी आशा नहीं की जा सकती। सच्चा सुख तो उत्तम धनसे ही मिल सकता है ॥ २२ ॥

[२८]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- गायत्री, ४ पुरउष्णिक् ।)

९७८ ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥

९७९ वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः । पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥

९८० ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् । पुरस्तात् सर्वया विशा ॥ ३ ॥

९८१ यथा वशन्ति देवास्तथेदसत् तदेषां नकिरा मिनत् । अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥

९८२ सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम् । सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥

[२९]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः, कश्यपो वा मारीचः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

९८३ बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥ १ ॥

---

[२८]

अर्थ- [९७८] (ये त्रिंशति परः त्रयः) जो तीससे अधिक तीन अर्थात् तैंतीस (देवासः) देव (बर्हिः आसदन्) यज्ञमें आये, इन्होंने (विदन्) हमारी इच्छाओंको जाना और (द्विता असनन्) दो तरहके ऐश्वर्य प्रदान किए ॥ १ ॥

[९७९] (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरुण, मित्र, अर्यमा और (स्मद्रातिषाचः) हमारी आहुतियोंको स्वीकार करनेवाली (पत्नीवन्तः अग्नयः) मनुष्योंका पालन करनेवाली अग्नियां (वषट् कृताः) हमारे द्वारा सत्कार प्राप्त करें ॥ २ ॥

[९८०] (ते) वे सब देव (सर्वया विशा) अपने अनुयायियोंके साथ (नः) हमारी (पुरस्तात् गोपाः) सामनेकी ओरसे रक्षा करनेवाले हों, (ते उदक्) वे देव उत्तर दिशासे (ते अपाच्या) वे देव पश्चिम दिशासे (ते न्यक्) वे देव नीचेकी दिशाकी ओरसे हमारी रक्षा करनेवाले हों ॥ ३ ॥

[९८१] (देवाः यथा वशन्ति) देवगण जैसी इच्छा करते हैं, (तथा इत् असत्) वैसाही वह होता है, (एषां तत्) उन देवोंकी उस इच्छाको (अरावा मर्त्यः चन) शत्रु मनुष्य भी (न किः आ मिनत्) विपरीत नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

[९८२] (सप्तानां) सात मरुतोंके (ऋष्टयः सप्त) शस्त्र भी सात तरहके हैं, (एषां) इन मरुतोंके (द्युम्नानि सप्त) तेज भी सात तरहके हैं, वे (सप्त श्रियः अधि धिरे) सात तरहके तेज धारण करते हैं ॥ ५ ॥

[२९]

[९८३] (एकः) एक देव (बभ्रुः) तेजस्वी (विषुणः) सर्वत्र संचार करनेवाला (सूनरः) उत्तम नेता (युवा) तरुण रहकर (हिरण्ययं अंजि अंक्ते) सुनहरे रूपमें प्रकट होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यज्ञमें तैंतीस देव आकर बैठें और वे यज्ञकर्ताको अभ्युदय और निःश्रेयसको सिद्ध करनेवाले ऐश्वर्यको प्रदान करें ॥ १ ॥

सभी देव तथा द्यु-अग्नि, अन्तरिक्षाग्नि, पार्थिवाग्नि अथवा आत्माग्नि, प्राणाग्नि, तथा जठराग्नि ये तीन प्रकारकी अग्नियां हमारा पालन करें, तथा हम भी उनका सत्कार करें ॥ २ ॥

सभी देव गण हमारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण अर्थात् सभी ओरसे रक्षा करनेवाले हों ॥ ३ ॥

देवगण जैसा चाहते हैं, वैसाही वह होता भी है । उनकी इच्छाको शत्रु भी अन्यथा नहीं कर सकते फिर मित्र की तो बातही क्या ? ॥ ४ ॥

मरुतोंके सात गण हैं, वे सभी विभिन्न शस्त्रास्त्र धारण करके जब चलते हैं, तब लगता है कि मानों सात तेज चमक रहे हों ॥ ५ ॥

वीर तेजस्वी, सर्वत्र संचार करनेवाला, उत्तम नेता और तरुण नेता सदा उत्साही हो ॥ १ ॥

६८४ योनिमेक आ ससाद द्योतनो ऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥ २ ॥
६८५ वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥ ३ ॥
६८६ वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥ ४ ॥
६८७ तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥
६८८ पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम् ॥ ६ ॥
६८९ त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥
६९० विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥
६९१ सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

अर्थ— [६८४] (एकः) एक दूसरा देव (द्योतनः मेधिरः) तेजस्वी और बुद्धिशाली होकर (देवेषु अन्तः योनिं) देवोंके बीचवाले स्थानमें (आ ससाद) आकर बैठता है ॥ २ ॥

[६८५] (एकः) एक तीसरा देव (देवेषु अन्तः निध्रुविः) वीरोंके मध्यमें दृढतासे रहकर (हस्ते) अपने हाथमें (आयसीं वाशीं बिभर्ति) लोहेके शस्त्रको धारण करता है ॥ ३ ॥

[६८६] (एकः) एक चौथा देव (हस्ते) हाथमें (आहितं वज्रं बिभर्ति) रखे हुए वज्रको धारण करता है, और (तेन वृत्राणि जिघ्नते) उस वज्रसे शत्रुओंको मारता है ॥ ४ ॥

[६८७] (एकः) एक पांचवां (जलाष-भेषजः) जलके द्वारा रोगोंको दूर करनेवाला तथा (शुचिः उग्रः) पवित्र तथा वीर देव (हस्ते तिग्मं आयुधं बिभर्ति) हाथमें तीक्ष्ण शस्त्र धारण करता है ॥ ५ ॥

[६८८] (एकः) एक छठा देव (पथः पीपाय) मार्गोंको सुरक्षित रखता है और (तस्करः यथा) चोरके समान (एषः निधीनां वेद) यह देव सभी छिपे हुए खजानोंको जानता है ॥ ६ ॥

[६८९] (यत्र देवासः मदन्ति) जिन तीनों लोकोंमें देवगण आनंदसे रहते हैं, उन तीनों लोकोंको (उरुगायः एकः) बहुत ही स्तुत्य एक देवने (वि चक्रमे) अपने पदसे नाप दिया ॥ ७ ॥

[६९०] (द्वा) दो देव (विभिः चरतः) पक्षियों द्वारा सर्वत्र संचार करते हैं तथा (प्रवासा इव) जिस तरह दो प्रवासी पुरुष एक ही गाडीसे सर्वत्र जाते हैं, उसी तरह ये दोनों देव (एकया सह) एक ही गाडीसे (वसतः) सर्वत्र जाते हैं ॥ ८ ॥

[६९१] (उपमा द्वा) अत्यन्त तेजस्वी दो देव (सर्पिरासुती सम्राजा) घृतकी आहुति प्राप्त करनेवाले तथा सम्राट् हैं, वे दोनों (दिवि सदः चक्राते) द्युलोकमें स्थान बनाते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— दूसरा ज्ञानी, तेजस्वी और बुद्धिशाली होकर विद्वानोंके बीचमें बैठनेयोग्य हो ॥ २ ॥

तीसरा वीर सैनिक वीरोंके सामने भी दृढतासे खडा रहता है और अपने हाथमें सदा शस्त्रास्त्र धारण करता है ॥ ३ ॥

चौथा इन्द्र देव अपने हाथमें वज्रको धारण करके शत्रुओंका नाश करता है ॥ ४ ॥

पांचवा देव रुद्र जलचिकित्साकेद्वारा रोगोंको दूर करता है, तथा वह वीर देव शत्रुओंका नाश करनेके लिए हाथमें तीक्ष्ण शस्त्रको भी धारण करता है ॥ ५ ॥

छठा देव पूषा सभी मार्गोंको शत्रुओंसे सुरक्षा करता है और धनका स्वामी होनेसे सभी गुप्त और प्रकट खजानोंको जानता है ॥ ६ ॥

सातवें देव विष्णुने अपने पैरोंसे तीनों लोकोंको नाप दिया ॥ ७ ॥

दो देव अश्विनी कुमार पक्षीरूप विमानों पर चढकर सर्वत्र जाते हैं, तथा एक ही रथसे सब पृथ्वीका चक्कर लगाते हैं ॥ ८ ॥

दो देव मित्रावरुण इस जगत्‌के सम्राट् हैं तथा द्युलोकमें रहते हैं ॥ ९ ॥

६९२ अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥ १० ॥

[३०]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः। देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- १ गायत्री, २ पुरउष्णिक् ३ बृहती, ४ अनुष्टुप् ।)

६९३ नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः । विश्वे सतोमहान्त इत् ॥ १ ॥

६९४ इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च । मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥

६९५ ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥

६९६ ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ ४ ॥

[३१]

(ऋषिः- मनुर्वैवस्वतः । देवता- १-४ यज्ञः यजमानश्च, ५-९ दंपती, १०-१८ दंपत्याशिषः ।
छन्दः- गायत्री, ९, १४ अनुष्टुप् १० पादनिचृत् १५-१८ पङ्क्तिः ।)

६९७ यो यजाति यजात इत् सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥

अर्थ— [६९२] (एके महि साम मन्वत) कुछ ज्ञानी वर्णनीय सामका गान करते हैं, (अर्चन्तः) पूजा करते हुए उन्होंने (तेन) उस अपने कर्मसे (सूर्यं अरोचयन्) सूर्यको प्रकाशित किया ॥ १० ॥

[३०]

[६९३] हे (देवासः) देवो ! (वः) तुम्हारे मध्यमें (अर्भकः नहि अस्ति) कोई छोटा बच्चा नहीं है, (न कुमारकः) कोई किशोर भी नहीं है। (विश्वे सतः महान्तः इत्) सभी देव ज्ञानी और महान् हैं ॥ १ ॥

[६९४] हे (रिशादसः मनोः यज्ञियासः देवाः) हिंसकोंके विनाशक, ज्ञानीके द्वारा पूज्य देवो ! (ये) जो तुम (त्रिंशत् च त्रयः च) तीस और तीन अर्थात् तैंतीस हो, वे तुम (स्तुतासः असथ) स्तुतिके योग्य हो ॥ २ ॥

[६९५] हे देवो ! (ते) वे तुम (नः त्राध्वं) हमारी रक्षा करो, (ते अवत) वे तुम हमें बचाओ, (ते नः अधि वोचत) वे तुम सब हमें उत्तम उपदेश दो। (पित्र्यात् मानवात् पथः) हमारा पालन करनेवाले ज्ञानयुक्त मार्गसे (परावतः दूरं मा नैष्ट) दूसरी तरफ दूर मत ले जाओ ॥ ३ ॥

[६९६] हे (वैश्वानराः देवासः) सब मनुष्योंको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले देवो ! (ये विश्वे) जो तुम सब (इह स्थन) यहां पर विद्यमान हो, वे तुम सब हमारे (गवे अश्वाय अस्मभ्यं) गाय घोडे आदि पशु तथा हमारे लिए (शर्म यच्छत) घर तथा सुख प्रदान करो ॥ ४ ॥

[३१]

[६९७] (यः) जो यजमान (यजाति यजात) स्वयं यज्ञ करता है, तथा दूसरोंसे करवाता है, (सुनवत् पचाति च) स्वयं सोमरस निचोडता है और दूसरोंसे तैय्यार करवाता है, वह (इन्द्रस्य ब्रह्म इत् चाकनत्) इन्द्रके ज्ञानकोही प्राप्त करता है ॥ १ ॥

भावार्थ— ऋषियोंने सभी देवोंकी सामगान द्वारा पूजाकी और सूर्यको प्रकट किया ॥ १० ॥

इन देवोंमें कोई भी बच्चा जैसा अज्ञानी नहीं है और कोई किशोर जैसा उच्छृंखल या अनुशासन हीन नहीं है, अपितु सभी देव ज्ञानी और महान् हैं ॥ १ ॥

जितने भी तैंतीस देव हैं, वे सब हिंसकोंके शत्रु, ज्ञानी और पूज्य होनेके कारण स्तुतिके योग्य हैं ॥ २ ॥

हे देवो ! हमें तुम बचाओ, हमारी रक्षा करो, हमें सदा सदुपदेश दो, तथा हमारा पालन करनेवाला जो कल्याणकारी मार्ग है, उससे हमें दूर ले जाकर कुमार्गमें प्रेरित मत करो ॥ ३ ॥

हे देवो ! तुम सदा हमारे पास ही रहो, तो हमारे पशु और मनुष्योंके लिए सुखपूर्ण घर प्रदान करो ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण स्वयं यज्ञ करता है और दूसरोंसे करवाता है, वह प्रभुके ज्ञानसे युक्त होता है ॥ १ ॥

६९८ पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् । पादित् तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥
६९९ तस्य द्युमाँ असद् रथो देवजूतः स शूशुवत् । विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥
७०० अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे । इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥
७०१ या दंपती समनसा सुनुत आ च धावतः । देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥
७०२ प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते । न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥
७०३ न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः । श्रवो बृहद् विवासतः ॥ ७ ॥
७०४ पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः । उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

अर्थ— [६९८] (यः) जो यज्ञकर्ता (अस्मै) इस इन्द्रको (पुरोळाशं आशिरं सोमं ररत) पुरोडाश तथा गोदुग्ध मिश्रित सोमरस देता है, (तं इत्) उसी मनुष्यको (इन्द्रः) इन्द्र (अंहसः पातु) पापसे बचाता है ॥ २ ॥

[६९९] (तस्य) उस यज्ञ कर्ताके पास (देवजूतः द्युमान् रथः असत्) देवों द्वारा प्रेरित तथा तेजस्वी रथ होता है। वह (विश्वा अमित्रिया) अपने सभी शत्रुओंको (वन्वन्) नष्ट करता है, और (सः शूशुवत्) हर तरहसे बढता है ॥ ३ ॥

[७००] (अस्य गृहे) इस यज्ञकर्ताके घरमें (प्रजावती असश्चन्ती धेनुमती) बछडोंसे युक्त, स्वैर संचार करनेवाली कामदुधा गाय (दिवे दिवे इळा दुहे) प्रतिदिन अन्न दुहती है ॥ ४ ॥

[७०१] (या समनसा दंपती) जो मिले हुए मनवाले पति-पत्नी (सुनुतः) सोम निचोडते हैं, (आ च धावतः) और सर्वत्र पवित्रता रखते हैं, हे (देवासः) देवो! वे (नित्यया आशिरा) रोज गोदुग्धसे युक्त हों ॥ ५ ॥

[७०२] (ता) वे दोनों पतिपत्नी (प्राशव्यां प्रति इतः) खाने योग्य अन्नोंको प्राप्त करते हैं, तथा (सम्यंचा) समान मनवाले होकर वे (बर्हिः आशाते) यज्ञमें बैठते हैं, वे दोनों कभी भी (वाजेषु न वायतः) पोषक अन्नसे वियुक्त नहीं होते ॥ ६ ॥

[७०३] ऐसे उत्तम पति-पत्नी (देवानां न अपि ह्नुतः) देवोंका अपमान नहीं करते, (सुमतिं न जुगुक्षतः) अपनी उत्तम बुद्धिको नष्ट नहीं होने देते, और (बृहत् श्रवः विवासतः) महान् यशको प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

[७०४] (ता उभा) वे दोनों पति-पत्नी (हिरण्यपेशसा) सोनेके अलंकारोंसे युक्त होकर (पुत्रिणा कुमारिणा) पुत्र और कुमारोंके साथ आनन्द करते हुए (विश्वं आयुः व्यश्नुतः) सम्पूर्ण दीर्घ आयुका भोग करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— जो यज्ञ करनेवाला मनुष्य इस इन्द्रका सोमरस देकर इसका सत्कार करता है, वह मनुष्य पाप कर्मोंसे बचाता है ॥ २ ॥

जो यज्ञकर्ता है, उसके पास तेजस्वी रथ होता है और वह उस रथ पर बैठकर सभी शत्रुओंको मारता है और स्वयं वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

इस यज्ञकर्ताके घरमें बछडोंसे युक्त स्वैर संचार करनेवाली कामदुधा गाय प्रतिदिन भरपूर दूध देती है, अर्थात् यज्ञकर्ताके घरमें गायें रहती हैं ॥ ४ ॥

जिस घरमें पतिपत्नी प्रेमसे रहकर देवोंका पूजन करते हों, उस घरमें सदा देव निवास करते हैं और वह घर सदा गोदुग्ध आदि अन्नोंसे समृद्ध रहता है ॥ ५ ॥

जो पति-पत्नी परस्पर प्रेमपूर्ण मनसे युक्त होकर यज्ञ करते हैं, वे सदाही खाने योग्य अन्न प्राप्त करते हैं और ऐसे अन्नोंसे रहित वे कभी नहीं होते ॥ ६ ॥

ऐसे उत्तम पति-पत्नी कभी भी देवों या विद्वानोंका अपमान नहीं करते, ज्ञानियोंकी संगतिमें रहनेके कारण उनकी बुद्धि सदा उत्तम रहती है और उस उत्तम बुद्धिकी सहायतासे वे दोनों महान् यशको प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

वे दोनों पतिपत्नी सोनेके अलंकारोंसे युक्त होकर अर्थात् ऐश्वर्यशाली होकर पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर संपूर्ण मानवीय आयुको भोगते हैं ॥ ८ ॥

७०५ वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९ ॥
७०६ आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् । आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १० ॥
७०७ ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः । उरुरध्वा स्वस्तये ॥ ११ ॥
७०८ अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा । आदित्यानामनेह इत् ॥ १२ ॥
७०९ यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः । सुगा ऋतस्य पन्थाः ॥ १३ ॥
७१० अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ १४ ॥

अर्थ— [७०५] (वीतिहोत्रा) तेजयुक्त वाणीवाले (कृतद्वसू) धनका दान करनेवाले (कं दशस्यन्ता) लोगोंको सुखकारक अन्न देनेवाले वे पति-पत्नी (ऊधः रोमशं सं हतः) बडे बडे थनोंवाली गाय और बडे बडे रोमोंवाली भेड आदि पशुओंको प्राप्त करते हैं और (अमृताय) अमरताकी प्राप्तिके लिए (देवेषु दुवः कृणुतः) देवोंकी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

[७०६] (पर्वतानां शर्म) पर्वतों पर जो सुख है, (नदीनां) नदियोंमें जो सुख है तथा (सचाभुवः विष्णोः) देवोंके साथ रहनेवाले विष्णुका जो सुख है, उसे हम (आ वृणीमहे) मांगते हैं ॥ १० ॥

[७०७] (रयिः भगः स्वस्ति सर्वधातमः पूषा) धनवान्, ऐश्वर्यशाली, कल्याणकारी तथा सबको धारण करनेवाला पूषा देव (आ एतु) हमारे पास आवे, तथा उसकी कृपासे (उरुः अध्वा स्वस्तये) विस्तीर्ण मार्ग भी हमारे कल्याणके लिए हो ॥ ११ ॥

[७०८] (अनर्वणः) शत्रु द्वारा पराजित न होनेवाले (देवस्य) देवकी (विश्वः) सभी लोग (मनसा अरमतिः) मनसे स्तुति करते हैं, (आदित्यानां अनेह इत्) अदितिके पुत्रों देवोंकी कृपा पापका नाश करनेवाली होती है ॥ १२ ॥

[७०९] (यथा) चूं कि (नः गोपाः) हमारी रक्षा करनेवाले (मित्रः अर्यमा वरुणः सन्ति) मित्र, अर्यमा और वरुण हैं, अतः हमारे (ऋतस्य पन्थाः सुगाः) सत्यके मार्ग सुगम हों ॥ १३ ॥

[७१०] (सपर्यन्तः वः) अर्चना करनेवाले तुम लोगोंके बीचमें मैं (वसूनां) धनकी प्राप्तिके लिए (पुरुप्रियं) बहुतोंको प्रिय (क्षेत्रसाधसं) मनुष्यशरीररूपी क्षेत्रको सिद्ध करनेवाले (पूर्व्यं देवं) मुख्य देव (अग्निं) अग्निको (मित्रं न ईळे) मित्रके समान स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थ— सोम प्रभुकी स्तुति करनेवाले दोनों पतिपत्नी धनका दान करते हैं, लोगोंका सुखकारक अन्न देते हैं, तथा पशुओं समृद्ध होकर देवोंकी स्तुति करते हुए अमरताको प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

पर्वतके अन्दर, नदियोंके अन्दर निहित जो सुख है, वह सुख इन पतिपत्नीको मिले ॥ १० ॥

ऐश्वर्यवान् कल्याणकारी पूषा देव हम पर कृपा करे, ताकि सम्पूर्ण जीवनका मार्ग हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥ ११ ॥

सभी जन पूषा देवकी मनसे स्तुति करें. तो पूषा देव भी उन पर अपनी पापनाशिनी कृपा करते हैं ॥ १२ ॥

जिनकी रक्षा मित्र, वरुण आदि देव करते हैं, उनका जीवन सत्यमय होता है, और उनके जीवनके मार्गमें कभी कठिनाइयाँ नहीं आतीं ॥ १३ ॥

धनकी प्राप्तिके लिये मुख्य देव अग्निकी स्तुति करनी चाहिए, क्योंकि वही मनुष्यशरीररूपी क्षेत्रका स्वामी है ॥ १४ ॥

७११ मक्षू देवव॑तो रथः शूरो॑ वा पृत्सु कासु॑ चित् ।
देवानां य इन्मनो यज॑मान इय॑क्ष॒त्यभीदय॑ज्वनो भुवत् ॥ १५ ॥

७१२ न य॑जमान रिष्यसि न सु॑न्वान न दे॑वयो ।
देवानां य इन्मनो यज॑मान इय॑क्ष॒त्यभीदय॑ज्वनो भुवत् ॥ १६ ॥

७१३ नकि॒ष्टं कर्म॑णा नश॒न्न प्र यो॑षन्न यो॑षति ।
देवानां य इन्मनो यज॑मान इय॑क्ष॒त्यभीदय॑ज्वनो भुवत् ॥ १७ ॥

७१४ अस॒दत्र॑ सुवीर्यं॑मुत त्यदा॒श्वश्व्य॑म् ।
देवानां य इन्मनो यज॑मान इय॑क्ष॒त्यभीदय॑ज्वनो भुवत् ॥ १८ ॥

अर्थ – [७११] (कासुचित् पृत्सु शूरः वा) किन्हीं युद्धोंमें जिस तरह शूर मनुष्य तेजीसे आगे बढता है, उसी तरह (देववतः रथः मक्षु) देवोंको प्रिय मनुष्यका रथ तेजीसे जाता है। (यः यजमानः) जो यजमान (देवानां मनः इयक्षति) देवोंकी मनःपूर्वक पूजा करता है, वह (अयज्वनः अभि भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है ॥ १५ ॥

[७१२] हे (यजमान) यज्ञ करनेवाले ! (न रिष्यसि) तू कभी दुःखी नहीं होगा, हे (सुन्वानः) सोमरस तैय्यार करनेवाले ! (न) तू कभी दुःखी नहीं होगा, हे (देवयो) देवकी स्तुति करनेवाले ! (न) तू कभी दुःखी नहीं होगा। (यः यजमानः) जो यजमान (मनः देवानां इयक्षति) मनसे देवोंकी पूजा करता है, वह (अयज्वनः अभि भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है ॥ १६ ॥

[७१३] (यः यजमानः) जो यजमान (मनः इत् देवानां इयक्षति) मनसे देवोंकी पूजा करता है, (तं कर्मणा नकिः नशत्) उसे अपने कर्मसे कोई नष्ट नहीं कर सकता, (न प्र योषत्) उसे ऐश्वर्यसे कोई भ्रष्ट नहीं कर सकता, (न योषति) न वह स्वयं भ्रष्ट होता है। अपितु वह (अयज्वनः इत् अभि भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजितही करता है ॥ १७ ॥

[७१४] (यः यजमानः) जो यजमान (मनः इत् देवानां इयक्षति) मनसे देवोंकी पूजा करना चाहता है, (अत्र सुवीर्यं असत्) उसको उत्तम बल मिलता है, (त्यत् आश्वश्व्यं) उसे घोडोंका समूह मिलता है और वह (अयज्वनः अभि इत् भुवत्) यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— जिस तरह यज्ञमें शूरवीरका रथ तेजीसे भागता है, उसी तरह देवोंके प्रिय मनुष्यका रथ तेजीसे दौडता है, जो मनुष्य देवोंको मनसे पूजा करता है, वह नास्तिकोंको पराजित करता है ॥ १५ ॥

यज्ञ करनेवाला, सोम प्रदान करनेवाला तथा देवोंकी स्तुति करनेवाला कभी दुःखी नहीं होता, अपितु जो सदा यज्ञ करता है, वह स्वयं उन्नत होकर नास्तिकोंको पराजित करता है ॥ १६ ॥

जो यजमान मनसे देवोंकी पूजा करता है, वह सदा पवित्र कर्मही करनेके कारण उसके कर्म उसे नष्ट नहीं कर सकते, न उसे कोई ऐश्वर्यसे भ्रष्ट कर सकता है, और न वह स्वयंही भ्रष्ट होता है। इसके विपरीत जो नास्तिक उस आस्तिकको नष्ट करना चाहता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

जो मनुष्य मनसे देवोंकी पूजा करना चाहता है, वह उत्तम बल और घोडोंके समूहसे युक्त होकर अपने शत्रुओंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

[३२]

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

७१५ प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया । मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥
७१६ यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् । वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥
७१७ न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ ३ ॥
७१८ प्रति श्रुताय वो धृषत् तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥ ४ ॥
७१९ स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः । पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥
७२० यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः । आरादुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥

---

[३२]

अर्थ—[७१५] हे (कण्वाः) हे कण्वो ! (ऋजीषिणः इन्द्रस्य) शीघ्रतासे काम करनेवाले इन्द्रके (सोमस्य मदे कृतानि) सोमपानसे उत्पन्न उत्साहमें किए गए कार्योंका वर्णन (गाथया प्रवोचत) गाथाके रूपमें गाओ ॥ १ ॥

[७१६] (यः उग्रः) जो उग्र वीर है, उस इन्द्रने (अपः रिणन्) जल प्रवाहोंको खुला करते हुए (सृबिन्दं अनर्शनिं पिप्रुं अहीशुवं दासं वधीत्) सृबिन्द, अनर्शनि, पिप्रु, अहीशु और दास इन शत्रुओंका वध किया था ॥ २ ॥

[७१७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बृहतः अर्बुदस्य) बडे भारी अर्बुदके (वर्ष्माणं विष्टपं नि तिर) विशाल देहको और किलेको तुम गिरा दो, (तत् पौंस्यं कृषे) यह पराक्रम तुम्हीं करते हो ॥ ३ ॥

[७१८] (वः श्रुताय ऊतये) हे मनुष्यो ! तुम्हारे ज्ञान और संरक्षणके लिए (धृषत्) शत्रुका धर्षण करनेवाले (सुशिप्रं प्रति हुवे) शिरस्त्राणधारी वीर इन्द्रको मैं बुलाता हूँ, (तूर्णाशं गिरेः अधि न) जिस तरह स्रोतको पहाडसे लाते हैं ॥ ४ ॥

[७१९] हे (शूर) शूर इन्द्र ! (सः) वह तू (मन्दानः) आनन्दित होते हुए (गोः अश्वस्य व्रजं) गौ और घोडेके बाडेको (सोम्येभ्यः) सोमयाग करनेवालोंके लिए (पुरं) शत्रुनगरके द्वारको खोलनेकेसमान (वि दर्षसि) खोलता है ॥ ५ ॥

[७२०] (मे सुते उक्थे वा) मेरे सोमरसमें और स्तोत्रपाठमें (यदि रारणः) यदि तू अनुरक्त है, (चनः दधसे) और यदि मुझे अन्न देना चाहता है तो (आरात् स्वधा उप आ गहि) दूरसे भी अन्नके साथ हमारे पास आ ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सोमपान करनेके बाद उत्साहमें आकर जल प्रवाह खुले करता है और इन जल प्रवाहोंके मार्गमें जो विघ्न डालते हैं, ऐसे असुरोंको मारता है ॥ १-२ ॥

असुरोंके शरीरों और किलोंको नष्ट करनेका पराक्रम केवल इन्द्रही कर सकता है, अतः लोग उसी शिरस्त्राणधारी इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिए बुलाते हैं । शूरवीरसेही सुरक्षा हो सकती है ॥ ३-४ ॥

सोमपानसे आनन्दित हुआ इन्द्र शत्रुके किलेको तोडकर शत्रुसेनाको विनष्ट करता है, और अपने अनुयायियोंको अन्न प्रदान करता है । ऐसे कार्यके लिए विचार करने योग्य मनकी आवश्यकता होती ही है ॥ ५-६ ॥

×

७२१ वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतारं इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥
७२२ उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन् भूरि ते वसु ॥ ८ ॥
७२३ उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः । इळाभिः सं रभेमहि ॥ ९ ॥
७२४ बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥
७२५ यः संस्थे चिच्छतक्रतु—रादीं कृणोति वृत्रहा । जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥ ११ ॥
७२६ स नः शक्रश्चिदा शकद् दानवाँ अन्तराभरः । इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

अर्थ— [७२१] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुत्य इन्द्र ! (ते वयं अपि घ स्तोतारः स्मसि) तेरे ही हम उपासक हैं । हे (सोमपाः) सोमरस पीनेवाले इन्द्र ! (त्वं नः जिन्व) तू हमें तृप्त कर ॥ ७ ॥

[७२२] हे (मघवन्) ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! (उत सं रराणः) और तू प्रसन्न होकर (अविक्षितं पितुं) अविनाशी धन (नः आ भर) हमें भरपूर दे ! क्योंकि (ते वसु भूरि) तेरे पास धन बहुत है ॥ ८ ॥

[७२३] (उत) और हे इन्द्र ! तू (नः गोमतः हिरण्यवतः अश्विनः कृधि) हमें गायवाला, सोनेवाला तथा घोडोंसे युक्त कर । हम (इळाभिः सं रभेमहि) अन्नोंसे युक्त होकर अच्छी तरहसे आनन्दित हों ॥ ९ ॥

[७२४] हम (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (सृप्रकरस्नं) सबसे प्रथम हाथ आगे करनेवाले (अवसे साधु कृण्वन्तं) संरक्षणके लिए उत्तम कर्म करनेवाले, (बृबदुक्थं) जिसके काव्य गाये जाते हैं ऐसे वीरको (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ १० ॥

[७२५] (यः संस्थे शतक्रतुः) जो राज्य संस्थामें सैंकडों उत्तम कार्य करता है, (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला है, (आत् ईं कृणोति चित्) वह ऐसे ही शत्रुवधके कार्य करता है, वह (जरितृभ्यः पुरुवसुः) स्तोताओंको बहुत धन देनेवाला है ॥ ११ ॥

[७२६] (सः शक्रः नः चित् आ शकत्) वह शक्तिशाली इन्द्र हमें भी शक्तिशाली करे । (दानवान् इन्द्रः) दान देनेवाला इन्द्र (विश्वाभिः ऊतिभिः अन्तः आ भरः) अपने संपूर्ण सुरक्षाके साधनोंसे हमारी आन्तरिक पूर्णता करे ॥ १२ ॥

भावार्थ— मनुष्य इन्द्रका सत्कार करके उसे सोमरस देकर तृप्त करें और इन्द्र भी प्रसन्न मनसे मनुष्योंको अविनाशी धन और पोषक अन्न देकर तृप्त करे । अन्न सदा नीरोग हो ॥ ७–८ ॥

अपनी सुरक्षाके लिए हम तत्काल सहाय्यार्थ अपना हाथ बढानेवाले वीरको बुलाते है, हम शुभ कर्म करनेवाले वीरको अपनी रक्षाके लिए बुलाते है । वह हमारे पास आकर गाय, घोडे और सुवर्ण प्रदान करे । यहां सुवर्ण पद सोनेके सिक्केका वाचक है ॥ ९–१० ॥

सैंकडों प्रशस्त कर्मोंको करनेवाला अपनी संस्थामें निस्सन्देह शुभ कार्य करता है । किसी संस्थाको उन्नत करनेके लिए ऐसे ही पुरुषकी आवश्यकता होती है । जो स्वयं समर्थ होता है, वही दूसरोंको सामर्थ्यवान् कर सकता है । दाता वीर अपनी अनेक संरक्षक शक्तियोंसे हमारे अन्दरके छिद्र दूर कर सकता है । वीर तथा परहितके लिए आत्मार्पण करनेवाला ही अपने सामर्थ्यसे दूसरोंके दोष दूर कर सकता है और न्यूनताओंको पूर्ण कर सकता है ॥ ११–१२ ॥

७२७ यो रायो॒ऽवनि॑र्म॒हान्त्सु॑पा॒रः सु॑न्व॒तः सखा॑	। तमिन्द्र॑म॒भि गा॑यत		॥ १३ ॥
७२८ आ॒य॒न्ता॒रं॒ महि॑ स्थि॒रं पृत॑नासु श्रवो॒जित॑म्	। भूरे॒रीशा॑न॒मोज॑सा		॥ १४ ॥
७२९ नकि॑रस्य॒ शची॑नां नियन्ता सू॒नृता॑नाम्	। नकि॑र्व॒क्ता न दा॒दिति॑		॥ १५ ॥
७३० न नू॒नं ब्र॒ह्मणा॑मृ॒णं प्रा॑शू॒नाम॑स्ति सुन्व॒ताम्	। न सोमो॑ अप्र॒ता प॑पे		॥ १६ ॥
७३१ पन्य॒ इदुप॑ गायत पन्यं॑ उ॒क्थानि॑ शंसत	। ब्रह्मा॑ कृणोत॒ पन्य॒ इत्		॥ १७ ॥
७३२ पन्य॒ आ द॑र्दिरच्छ॒ता स॒हस्रा॑ वा॒ज्यवृ॑तः	। इन्द्रो॒ यो यज्व॑नो वृ॒धः		॥ १८ ॥
७३३ वि षू च॑र स्व॒धा अनु॑ कृष्टी॒नामन्वा॑हु॒वः	। इन्द्र॒ पिब॑ सु॒ताना॑म्		॥ १९ ॥

अर्थ— [७२७] (यः) जो इन्द्र (रायः अवनिः) ऐश्वर्यवाला, संरक्षक तथा (महान् सुपारः) संकटोंसे पार होनेका बडा भारी साधन है, (सुन्वतः सखा) यज्ञ करनेवालोंका मित्र है, (तं इन्द्रं अभि प्रगायत) हे मनुष्यो ! इस इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो ॥ १३ ॥

[७२८] (आयन्तारं) शत्रुओं पर नियमन करनेवाले, (महि पृतनासु स्थिरं) बडे बडे युद्धोंमें भी स्थिर रहनेवाले, (श्रवः जितं) यशको जीतनेवाले, (ओजसा भूरेः ईशानं) अपने तेजसे असंख्य शत्रुओं पर भी शासन करनेवाले इन्द्रके गुणोंका गान करो ॥ १४ ॥

[७२९] (अस्य) इस इन्द्रकी (सूनृतानां शचीनां) उत्तम और सत्य शक्तियोंका (नियन्ता नकिः) शासन करनेवाला कोई नहीं है । (न दात्) यह इन्द्र धन नहीं देता, ऐसा भी कोई कहनेवाला (न किः) नहीं है ॥ १५ ॥

[७३०] (सुन्वतां प्राशूनां) सोमरस निकालनेवाले तथा सोमरस पानेवाले (ब्रह्मणां नूनं ऋणं न अस्ति) ब्राह्मणों पर निश्चयसे कोई ऋण नहीं रहता । (अप्रता सोमः न पपे) कोई भी धनहीन मनुष्य सोमरस नहीं पी सकता ॥ १६ ॥

[७३१] (पन्ये इत् उप गायत) प्रशंसनीय वीर इन्द्रकाही यश गाओ, (पन्ये उक्थानि शंसत) प्रशंसनीय वीरके स्तोत्र पढो । (पन्ये इत् ब्रह्म कृणुत) प्रशंसनीय वीरकेही ज्ञानरूप काव्यका निर्माण करो ॥ १७ ॥

[७३२] (यः वाजी) जिस बलवान् इन्द्रने (शता सहस्रा आ दर्दिरत्) सैकडों और हजारों शत्रुओंका नाश किया, वह यह (इन्द्रः) इन्द्र (अवृतः पन्यः) शत्रुओं द्वारा न घिरनेवाला, स्तुत्य, (यज्वनः वृधः) यज्ञ करनेवालको बढानेवाला है ॥ १८ ॥

[७३३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अनु आहुवः) बुलाये जानेके अनुसार (कृष्टीनां स्वधा) मनुष्योंकी स्वकीय धारक शक्तिको देनेवाले अन्नके (अनु) अनुकूल होकर (विचर) विचरण कर, और (सुतानां पिब) सोमरसका पान कर ॥ १९ ॥

भावार्थ— जो धनकी ठीक तरहसे रक्षा कर सकता है, वह दुःखोंसे पार करानेवाला बडा मित्र ही है । धन हर स्थानमें सहायता कर सकता है, इसलिए धनका रक्षक बडा सहायक है । ऐसे धनकी रक्षा वही कर सकता है जो वीर युद्धोंमें अपने स्थानमें स्थिर रहकर लडनेवाला, सबको नियंत्रणमें रखनेवाला और अपनी शक्तिसे महान् अधिपति होता है ॥ १३–१४ ॥

इस इन्द्रकी सच्ची शक्तियोंको नियमन करनेवाला कोई नहीं है । इन्द्रही सर्वोच्च देवता है, अतः उसके ऊपर शासन करनेवाला कोई नहीं है । उसे जो प्रसन्न करता है, वह ज्ञानी धनादिसे सम्पन्न होता है और इस पर कोई किसीका भी ऋण नहीं रहता ॥ १५–१६ ॥

यह बलवान् वीर इन्द्र स्वयं तो हजारों शत्रुओंका नाश करता है, पर वह स्वयं किसी भी शत्रु समूहसे घेरा नहीं जा सकता । वह अपने अनुयायियोंको हर तरहसे बढाता है, इसीलिए वह हर जगह प्रशंसित होता है ॥ १७–१८ ॥

हे इन्द्र ! मनुष्य तुम्हें तुम्हारी धारक शक्तिके लिए बुलाते हैं, तुम उनको पौष्टिक अन्नका दान करके उनके लिये स्तुति योग्य होओ और इन्होंने दिया हुआ सोमरसका पान करो ॥ १९ ॥

७३४ पिब स्वधैनवाना॒मु॒त यस्तुग्र्ये॒ सचा॑ । उ॒तायमि॑न्द्र॒ यस्तव॑ ॥ २० ॥
७३५ अती॑हि मन्युषा॒विणं॑ सुषु॒वांस॑मु॒पार॑णे । इ॒मं रा॒तं सु॒तं पि॑ब ॥ २१ ॥
७३६ इ॒हि ति॒स्रः प॑रा॒वत॑ इ॒हि पञ्च॒ जनाँ॒ अति॑ । धेना॑ इन्द्राव॒चाक॑शत् ॥ २२ ॥
७३७ सूर्यो॑ र॒श्मिं यथा॑ सृ॒जा ऽऽ त्वा॑ यच्छन्तु॒ मे गिरः॑ । नि॒म्नमापो॒ न स॒ध्र्य॑क् ॥ २३ ॥
७३८ अध्व॑र्य॒वा तु हि षि॒ञ्च सोमं॑ वी॒राय॑ शि॒प्रिणे॑ । भरा॑ सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ ॥ २४ ॥
७३९ य उ॒द्नः फ॑लि॒गं भि॒नन्न्य१॒॑क् सिन्धूँ॑रवासृ॒जत् । यो गोषु॑ प॒क्वं धा॒रय॑त् ॥ २५ ॥
७४० अह॑न् वृ॒त्रमृ॒चीष॑म औ॒र्णवा॒भम॑ही॒शुव॑म् । हि॒मेना॑विध्य॒दर्बु॑दम् ॥ २६ ॥

अर्थ— [७३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्व- धैनवानां) अपने गायोंके दूधसे मिश्रित (उत) और (यः तुग्र्ये सचा) जो जलसे मिश्रित है, (उत यः अयं तव) और तुम्हारे लिए रखा हुआ है, उस सोमका तू पान कर ॥ २० ॥

[७३५] हे इन्द्र ! (मन्युषाविणं अति इहि) क्रोधसे यज्ञ करनेवालेको लांघ कर चले आओ, (उपारणे सुषुवांसं) और जो प्रतिकूल - हीन स्थानमें यज्ञ करता है, उसे भी लांघ जाओ। (इमं रातं सुतं पिब) हमारे द्वारा दिए गए इस सोमरसका पान कर ॥ २१ ॥

[७३६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धेनाः अवचाकशत्) हमारी वाणियां सुन, और सुनकर (परावतः तिस्रः इहि) दूरसे भी हमारे तीनों सवनोंमें आ, (पंचजनान् अति इहि) पांचों प्रकारके मानवोंको लांघ कर हमारे पास आ ॥ २२ ॥

[७३७] (सूर्यः यथा रश्मिं) सूर्य जिस तरह किरणोंको देता है, उसी तरह हमें (सृज) धन दे। (मे गिरः त्वा सध्र्यक् आ यच्छन्तु) मेरी प्रशंसा परक वाणियां तेरे पास उसी तरह सीधे पहुंच जावें, जिस तरह (आपः निम्नं न) जलप्रवाह नीचेकी ओर बहते हैं ॥ २३ ॥

[७३८] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! (शिप्रिणे वीराय) शिरस्त्राणधारी वीरके लिए (सोमं तु हि आ सिंच) सोमरस शीघ्र ही अर्पण कर, (सुतस्य पीतये च भर) और सोमरसको पीनेके लिए पात्रमें भर ॥ २४ ॥

[७३९] (यः) जिस इन्द्रने (उद्गः फलिगं भिनत्) पानीके लिए मेघको छिन्नभिन्न किया, (सिन्धून् न्यक् अवासृजत्) नदियोंको नीचेकी ओर बहने दिया, तथा (यः) जिस इन्द्रने (गोषु पक्वं अधारयत्) गायोंमें पक्व दूधको स्थापित किया ॥ २५ ॥

[७४०] (ऋचीषमः) सर्वत्र समान रूपसे जिसकी प्रशंसा होती है, उस इन्द्रने (वृत्रं और्णवाभं महीशुवं अहन्) वृत्र, और्णवाभ, महीशु असुरको मारा, तथा (अर्बुदं हिमेन अविध्यत्) अर्बुद असुरको बर्फसे मारा ॥ २६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तुम्हारा सोमरस देकर सत्कार करते हैं, अतः तुम प्रसन्न होकर हमारे साथ ऐसा व्यवहार करो कि तुम्हारी सारी प्रजायें अर्थात् हम सब शक्तिशाली होकर अपनेको तथा अपने राष्ट्रको धारण कर सकें ॥ २० ॥

हे इन्द्र ! हमारे सभी यज्ञोंमें तुम आओ तथा तुम जहां जहां जाओ, वहां वहांसे तुम क्रोधसे यज्ञ करनेवाले तथा निंदित तथा हीन स्थानमें यज्ञादि शुभ कार्य करनेवाले मनुष्योंको दूर करो। शुभ कार्य सदा प्रसन्न मनसे तथा शुभ स्थानोंमें करना चाहिए ॥ २१–२२ ॥

हे मनुष्यो ! तुम इस इन्द्रके लिए सोमरस देकर उसका सत्कार करो, ताकि वह सूर्य जिस तरह किरणें देता है तथा नदियां नीचेकी ओर बहती हैं, उसी तरह हमें धन प्रदान करे ॥ २३–२४ ॥

इन्द्रने अनेक शत्रुओंको मारा, तथा मेघको छिन्नभिन्न करके नदियोंमें जल प्रवाहोंको प्रेरित किया, और गायोंमें मधुर तथा सुपक्व अन्न स्थापित किया ॥ २५–२६ ॥

७४१ प्र वं उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ २७ ॥
७४२ यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः । इन्द्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥
७४३ इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥
७४४ अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥

[३३]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- बृहती, १६-१८ गायत्री, १९ अनुष्टुप् ।)

७४५ वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥
७४६ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥

अर्थ— [७४१] हे स्तोताओ ! (वः) तुम सब (उग्राय) उग्र वीर (निष्टुरे) त्वरासे कार्य करनेवाले (अषाळ्हाय प्रसक्षिणे) सदा साथमें रहनेवाले तथा शत्रुका नाश करनेवाले, इन्द्रके लिए (देवत्तं ब्रह्म गायत) देवोंको प्रसन्न करनेवाला स्तोत्र गाओ ॥ २७ ॥

[७४२] (अन्धसः सोमस्य मदे) अन्न रूप सोमके उत्साहमें (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (विश्वानि व्रता) सम्पूर्ण कर्मोंका ज्ञान (देवेषु चेतति) देवोंमें जगाता है ॥ २८ ॥

[७४३] (त्या सधमाद्या) वे साथ साथ आनन्दित होनेवाले (हिरण्यकेश्या हरी) सुनहरे बालोंवाले दो घोडे (हितं प्रयः) हितकारी अन्नको (इह अभि वोळ्हां) यहां हमारी तरफ ले आवें ॥ २९ ॥

[७४४] हे (पुरुस्तुत) अनेकोंके द्वारा स्तुत होनेवाले इन्द्र ! (त्वा) तुझे (प्रिय मेधस्तुता) यज्ञसे प्यार करनेवाले मनुष्यके द्वारा स्तुत हुए (हरी) दो घोडे (सोमपेयाय) सोम पीनेके लिए (अर्वाचं वक्षतः) हमारी ओर ले आवें ॥ ३० ॥

[३३]

[७४५] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (सुतवन्तः) सोमका रस निकालकर (आपः न) जल प्रवाहके पास बैठनेके समान (पवित्रस्य प्रस्रवणेषु) पवित्र छलनीसे नीचे स्रवनेवाले सोमरसोंके पास (वृक्तबर्हिषः) आसनोंको फैलाकर (वयं घ स्तोतारः त्वा परि उपासते) हम उपासक तेरे चारों ओर बैठते हैं ॥ १ ॥

[७४६] हे (वसो इन्द्र) निवासक इन्द्र ! (सुते निरेके) सोमरसके नीचे उतरनेके समय (उक्थिनः नरः) गायक नेतागण (त्वा स्वरन्ति) तेरा ही यशोगान करते हैं । (सुतं तृषाणः) सोम पीनेके लिए प्यासा होकर (स्वब्दी इव वंसगः) शब्द करते हुए जानेवाले बैलके समान (कदा ओकः आ गमः) कब तू हमारे घर आएगा ॥ २ ॥

भावार्थ— सोमपानके बाद होनेवाले उत्साहमें वह इन्द्र स्वयं उत्तम कर्म करता है और दूसरे देवोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है, ऐसे उग्रवीर, शीघ्रतासे कार्य करनेवाले, शत्रुपर प्रचंड आक्रमण करनेवाले और सदा सज्ज रहनेवाले वीर इन्द्रकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥ २७-२८ ॥

हे इन्द्र ! यज्ञको प्रेमपूर्वक करनेवाले उत्तम यजमानके यज्ञमें तू आ, और तेरे घोडे भी तुझे इस यज्ञकी तरफ ले आवें ॥ २९-३० ॥

हे शत्रुओंको मारकर सज्जनोंका निवास करानेवाले इन्द्र ! हम आसन बिछाकर तुझे सोमरस अर्पण करके तेरा सत्कार करते हैं, अतः तू भी हमारे पास सोमका अभिलाषी होकर आ ॥ १-२ ॥

७४७ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥
७४८ पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥
७४९ यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥ ५ ॥
७५० यो धृषितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः ।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥
७५१ क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ७ ॥

अर्थ— [७४७] हे (धृष्णो) शत्रुका धर्षण करनेवाले इन्द्र ! (कण्वेभिः सहस्रिणं वाजं आ दर्षि) कण्वोंके लिए हजार गुना सामर्थ्य दो । हे (मघवन् विचर्षणे) धनवान् और दूरदर्शी इन्द्र ! (धृषत् पिशंगरूपं गोमन्तं) शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ, पीले रंगवाला, गौओंसे युक्त (वाजं मक्षु ईमहे) अन्न हम शीघ्र मांगते हैं ॥ ३ ॥

[७४८] हे (मेध्यातिथे) हे मेध्यातिथे ! (पाहि) सोमपान कर ! (अन्धसः मदे इन्द्राय गाय) इस अन्न रूप सोमके उत्साहमें इन्द्रका स्तोत्र गाओ । (यः) जो इन्द्र (हर्योः संमिश्लः) दो घोडे अपने रथमें जोतता है, (यः च सुते सचा) और जो सोमयागमें साथ रहता है, (वज्री) जो हाथमें वज्र धारण करता है और जिसका (रथः हिरण्ययः) रथ सोनेसे मंडित है ॥ ४ ॥

[७४९] (यः सुषव्यः सुदक्षिणः इनः) जिस इन्द्रका बांया हाथ उत्तम है, दाहिना हाथ भी उत्तम है, जो सबका स्वामी है, (यः सुक्रतुः) जो उत्तम कर्म करता है, (यः सहस्रा आकरः) जो सहस्रों शुभ गुणोंकी खान है, (यः शतमघः) जो सैकडों तरहके धनोंसे युक्त हो, (यः पूर्भित्) जो शत्रुओंके किलोंको तोडता है, (आरितः) जो यज्ञोंमें जाता है, (इन्द्रः गृणे) उस इन्द्रकी स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

[७५०] (यः धृषितः) जो शत्रुओंका विनाश करता है, (यः अवृतः) जो शत्रुओंके द्वारा कभी घेरा नहीं जा सकता, (यः श्मश्रुषु अस्ति) जो दाढीमूंछवाले शत्रुओंमें घुसकर युद्ध करता है, (यः विभूत द्युम्नः च्यवनः) जो अनेक धनोंसे युक्त, शत्रुओंको हिलानेवाला, (पुरुस्तुतः) अनेकों द्वारा प्रशंसित है वह (क्रत्वा शाकिनः) प्रयत्न करनेवाले शक्तिमानके लिए (गौः इव) गायके समान है ॥ ६ ॥

[७५१] (सुते सचा) सोमरस साथ-साथ बैठकर पीनेवाले इन्द्रको (कः वेद) कौन जानता है ? (कत् वयः दधे) कौन उसे अन्नका अर्पण करता है ? (यः अयं इन्द्रः शिप्री) जो यह शिरस्त्राण धारण करनेवाला, (अन्धसः मन्दानः) अन्नरूप सोमरससे उत्पादित होनेवाला (ओजसा पुरः विभिनत्ति) अपने तेजसे शत्रुओंके नगरोंको तोडता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— वज्रको धारण करनेवाले तथा सोनेके रथ पर बैठनेवाले इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं और उससे हम शत्रु पर जिसकी सहायतासे हमला किया जा सके, तथा जिसके साथ गायें रहती हैं, ऐसा सामर्थ्य हम मांगते हैं ॥ ३-४ ॥

जिसके बायां और दाहिना दोनों हाथ उत्तम काम करते हों, वही स्वामी योग्य है । दोनों हाथोंसे उत्तम कर्म करना चाहिए । उत्तम कार्य करनेवाला, हजारों गुणोंकी खान, शत्रु नगरोंको तोडनेवाला वीर ही उत्तम होता है ॥ ५ ॥

शत्रुओं पर जोरदार हमला करनेवाला, पर शत्रुओंसे कभी न घिरनेवाला ऐसा पराक्रमी वीरही प्रशंसाके योग्य होता है, ऐसा वीरही अपने बल और पराक्रमसे शत्रुओंके किलोंको तोडता है ॥ ६-७ ॥

७५२ द्राना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ ८ ॥
७५३ य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥
७५४ सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥ १० ॥
७५५ वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन् वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥

अर्थ— [७५२] (द्राना वारणः मृगः) मदकी धाराओंको धारण करनेवाला हाथी जिस तरह अपने शत्रुओंको ढूंढता फिरता है, उसी तरह इन्द्र सोमरसके उत्साहमें (पुरुत्रा चरथं दधे) अनेक स्थानोंमें जाता है। हे इन्द्र ! (त्वा नकिः नियमत्) तुझ पर कोई शासन नहीं कर सकता। (सुते आ गमः) सोमरस तैय्यार हो जाने पर आओ। (महान् ओजसा चरसि) तुम अपने महान् तेजसे युक्त होकर सर्वत्र विचरते हो ॥ ८ ॥

[७५३] (यः उग्रः सन् अनिष्टृतः) जो इन्द्र वीर होनेके कारण कभी भी पीछे नहीं हटता, अपितु (स्थिरः रणाय संस्कृतः) जो सदा युद्धमें स्थिर रहता है, वह (मघवा) इन्द्र (यदि स्तोतुः हवं शृणवत्) यदि स्तोताकी पुकारको सुन ले, तो वह कभी (न योषत्) अन्यत्र नहीं जाता, और (आ गमत्) वह अवश्यही स्तोताके पास आता है ॥ ९ ॥

[७५४] हे (उग्र) वीर इन्द्र ! (सत्यं) यह सत्य है कि तू (इत्था वृषा इत् असि) इस प्रकारका बलवान्ही है। तू (वृषजूतिः अवृतः) बलवानोंके पास आकर्षित होकर जाता है, और शत्रुओंके द्वारा कभी घेरा नहीं जाता। (वृषा हि शृण्विषे) तू बलवान्के रूपमेंही सर्वत्र प्रसिद्ध है, (परावति वृषा अर्वावति श्रुतः) दूरके देशोंमें और पासके देशोंमें भी तू बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

[७५५] हे (मघवन्) इन्द्र ! (ते अभीशवः वृषणः) तेरे लगाम बलशाली हैं, (हिरण्ययी कशा वृषा) सोनेकी चाबुक भी बलयुक्त है, (रथः वृषा, हरी वृषणा) तेरा रथ बलशाली है, तेरे दोनों घोडे भी बलशाली हैं तथा हे (शतक्रतो) सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वृषा) तू स्वयं भी बलवान् है ॥ ११ ॥

भावार्थ— शत्रुको ढूंढनेवाला वीर चारों ओर भ्रमण करता है, ऐसे शत्रुको कोई भी अपने शासनमें नहीं रख सकता अर्थात् ऐसा वीर कभी परास्त नहीं होता। वह अपने बलके कारणही बडा होकर विचरता है। ऐसा प्रचंडवीर पराजित न होता हुआ युद्धमें स्थिर रहता है ॥ ८-९ ॥

सत्य और बलशाली वीर वही है कि जिसके रथ, घोडे, लगाम, चाबुक आदि सब युद्ध साहित्य उत्तम और श्रेष्ठ बलसे युक्त हो, किसीमें भी किसी तरहकी न्यूनता न हो और जो अपने देशमें और परदेशमें भी बलवान्के रूपमें प्रसिद्ध हो ॥ १०-११ ॥

७५६ वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥ १२ ॥
७५७ एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् ।
नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥ १३ ॥
७५८ वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः ।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥ १४ ॥
७५९ अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शंतमा मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥ १५ ॥
७६० नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति । यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ १६ ॥

अर्थ— [७५६] हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र ! (वृषा सोता ते सुनोतु) बलवान् सोम निचोडनेवाला तेरे लिए सोमरस निचोडे । हे (ऋजीपिन् आभर) सोम पीनेवाले इन्द्र ! हमें धन भरपूर दे । हे (हरीणां स्थातः) घोडोंको स्थिर करनेवाले इन्द्र ! (वृषा) बलवान् सोमयाजी (तुभ्यं) तेरे लिए (वृषणं नदीषु दधन्वे) बलवान् सोमको नदियोंमें रखता है ॥ १२ ॥

[७५७] हे (शविष्ठ इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (सोम्यं मधु पीतये आ याहि) शान्तिदायक सोमरसको पीनेके लिए आ । (अयं सुक्रतुः मघवा) यह उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र (गिरः ब्रह्म उक्था च अच्छ शृणवत्) हमारी वाणी, ज्ञान और स्तोत्रको अच्छी तरह सुने ॥ १३ ॥

[७५८] हे (वृत्रहन् शतक्रतो) वृत्रको मारनेवाले तथा सैंकडों उत्तम काम करनेवाले इन्द्र ! (रथस्थां अर्यं त्वा) रथमें बैठनेवाले तुझ स्वामीको (रथयुजः हरयः) रथमें जुडे हुए घोडे (अन्येषां या सवनानि) दूसरोंके जो यज्ञ हैं, उनका (तिरः चित्) तिरस्कार करते हुए (आ वहन्तु) यहां हमारे यज्ञमें ले आवें ॥ १४ ॥

[७५९] हे (महामह) पूज्योंके लिए भी पूज्य इन्द्र ! (अद्य) आज (अन्तमं अस्माकं स्तोमं धिष्व) हमारे पासके इस स्तोत्रका श्रवण करो, हे (द्युक्ष सोमपाः) तेजस्वी सोमपान करनेवाले वीर ! (ते मदाय) तेरे आनन्दके लिए (अस्माकं सवना शंतमा सन्तु) हमारे यज्ञ सुखदायी हों ॥ १५ ॥

[७६०] (यः वीरः) जो वीर इन्द्र (अस्मान् आ नयत्) हमारा नेता हुआ है (सः) वह इन्द्र (तव शास्त्रे तेरे शासनमें रहना (नहि रण्यति) नहीं पसन्द करता, (मम न रण्यति) न मेरे ही शासनमें रहना पसन्द करता है । (अन्यस्य अपि न रण्यति) न किसी दूसरेके शासनमें ही रहना पसन्द करता है ॥ १६ ॥

भावार्थ— सोमरस पहले निचोडे जाते हैं, फिर उसमें नदियोंका निर्मल जल मिलाया जाता है । फिर उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रको यह सोमरस मंत्रोंको गाकर दिया जाता है । यह रस शान्तिदायक है । इसे पीनेसे शान्ति मिलती है ॥ १२–१३ ॥

जो लोग मनसे यज्ञ न करके केवल यज्ञ करनेका ढोंग करते हैं, ऐसे यज्ञ कर्ताओंके यज्ञोंका इन्द्र तिरस्कार करता है, पर जो सच्चे मनसे यज्ञ करते हैं, उनके यज्ञमें जाकर इन्द्र सोमपान करता है, और ऐसे यज्ञ यज्ञकर्ताओंके लिए सुखदायी होते हैं ॥ १४–१५ ॥

इन्द्र वीर होनेके कारण वह किसीके शासनमें नहीं रहता । वीर तो दूसरों पर शासन करनेके लिए ही जन्म लेते हैं, दूसरोंके शासनमें रहनेके लिए नहीं । इसी लिए वे किसी दूसरे तीसरेके शासनमें रहना पसन्द नहीं करते ॥ १६ ॥

७६१ इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥
७६२ सप्ती चिद् घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् । एवेद् धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ १८ ॥
७६३ अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ १९ ॥

[३४]

(ऋषिः- १-१५ नीपातिथिः काण्वः; १६-१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः ।
छन्दः- अनुष्टुप्, १६-१८ गायत्री ।)

७६४ एन्द्र याहि हरिभि-रुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥
७६५ आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

अर्थ- [७६१] (इन्द्रः चित् घ तत् अब्रवीत्) इन्द्रने भी वही बात कही थी कि (स्त्रियः मनः अशास्यं) स्त्रीके मन पर शासन करना असंभव है, (उत अह क्रतुं रघुं) और उसकी बुद्धि तथा कर्मशक्ति छोटी होती है ॥ १७ ॥

[७६२] (मदच्युता सप्ती) मदमत्त दो घोडे (रथं) इन्द्रके रथको (मिथुना चित् घ वहतः एव इत्) एक जोडमें ही ले जाते हैं । (वृष्णः) उस इन्द्रके रथकी (धूः उत्तरा) धुरा अधिक उत्तम है ॥ १८ ॥

[७६३] (अधः पश्यस्व) हे स्त्री ! तू सदा नीचे देखा कर (मा उपरि) ऊपर मत देख, (पादकौ संतरां हर) पैरोंके पास रखते हुए चल, (ते कशप्लकौ मा दृशन्) तेरे शरीरके दोनों भाग मुख और पिंडलियां (मा हि दृशन्) न दिखाई दें, (हि) क्यों कि (ब्रह्मा स्त्री बभूविथ) तू ब्रह्माकी स्त्री थी ॥ १९ ॥

[३४]

[७६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरिभिः) घोडोंसे (कण्वस्य सु-स्तुतिं उप आ याहि) कण्वकी उत्तम स्तुतिके पास आओ, हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १ ॥

[७६५] हे इन्द्र ! (इह) इस यज्ञमें (सोमी ग्रावा) सोमको कूटनेवाला पत्थर (वदन्) शब्द करता हुआ (घोषेण) आवाजके साथ (त्वा आ यच्छतु) तुम्हारे पास आवे, हे (दिवा-वसो) हे द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकमें जाओ ॥ २ ॥

भावार्थ- स्त्रियोंके मनको संयममें रखना कठिन है, उनके मन पर काबू पाना असंभव है । उनके कर्म छोटे होते हैं, उनकी क्रियाशक्ति कम होती है और उनकी बुद्धि भी छोटी होती है ॥ १७ ॥

इस बलवान् इन्द्रके घोडे सदा संयुक्त होकर ही इसके रथको खींचते हैं । इसी कारण इस इन्द्रके रथकी धुरा सदा दृढ और उत्तम रहती है ॥ १८ ॥

स्त्री सदा विनम्रतासे व्यवहार करे, वह कभी उद्धत न हो, साथ ही लज्जाका भाव लेकर वह चले फिरे, वह कभी निर्लज्ज न हो । वह चलते समय पैर फैलाकर या लम्बे-लम्बे डग भरकर न चले अपितु पैर सटाकर तथा छोटे छोटे डग भरकर चले । उसके शरीरके सभी अवयव अच्छी तरह ढके रहें । स्त्रीका यदि कोई भाग खुला रहेगा, तो उसे देखकर पुरुषोंके मनमें कुभाव जगेंगे और कामवासना पैदा होगी । अतः स्त्रीके सभी अवयव ढके रहें । इस मंत्रमें स्त्रियोंके लिए उत्तम उपदेश है ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! इस यज्ञमें सोम कूटनेवाले पत्थरोंकी आवाज हो, और वह आवाज तुम तक पहुंचे, तब अपने घोडोंके द्वारा तुम इस यज्ञमें आकर सोमरसका पान करो ॥ १-२ ॥

७६६ अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥
७६७ आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥
७६८ दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥
७६९ स्मत्पुरंधिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥
७७० आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥
७७१ आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥

अर्थ — [७६६] (अत्र) इस यज्ञमें (एषां) इन पत्थरोंको (नेमिः) सोमलता (उरां वृकः न) भेडको भेडियेके समान (वि धूनुते) कंपाती है, हे (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ३ ॥

[७६७] हे इन्द्र ! (इह) यहां यज्ञमें (त्वा कण्वाः) तुझे कण्वके पुत्र (अवसे वाजसातये) संरक्षण तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए (आ हवन्ते) बुलाते हैं । हे (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतो) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ४ ॥

[७६८] हे इन्द्र ! मैं (वृष्णे पूर्वपाय्यं न) जैसे वायुके लिए सबसे प्रथम पेय दिया जाता है, उसी प्रकार (ते सुतानां दधामि) तुझे सोम रस देता हूं । (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ५ ॥

[७६९] हे (स्मत् पुरन्धिः विश्वतोधीः) हमारे बुद्धिमान् तथा चारों ओर बुद्धिको फैलानेवाले हे इन्द्र ! (नः ऊतये आ गहि) हमारे संरक्षणके लिए आओ । हे (दिवावसो) द्युलोकके वासी इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोक जाओ ॥ ६ ॥

[७७०] हे (महेमते) महान् बुद्धिवाले, (सहस्र ऊते) हजारों संरक्षणके साधन रखनेवाले, (शतामघ) सैकडों प्रकारके धनवाले इन्द्र ! (नः आ याहि) हमारे पास आओ, तथा (दिवावसो) हे द्युलोकके वासी इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकमें जाओ ॥ ७ ॥

[७७१] (देवत्रा ईड्यः) देवोंमें स्तुत्य (मनुः हितः) मनुष्योंका हित करनेवाला यह (होता) अग्नि हे इन्द्र ! (त्वा नः आ वक्षत्) तुम्हें हमारे पास ले आवे, हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें वास करनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम (दिवं यय) द्युलोक जाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम्हें ज्ञानीके पुत्र अपनी रक्षा तथा अन्नको प्राप्त करनेके लिए बुलाते हैं, उस समय वे पत्थरोंकी सहायतासे सोमरसको निचोडते हैं । अतः तुम आओ और सोमरसका पान करो ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारी बुद्धिको उत्तम करके उसका यश सर्वत्र फैलानेके लिए हमारे पास आओ । हम तुम्हें जैसे वायुके लिये सबसे प्रथम पेय दिया जाता है, इसी प्रकार सोमरस प्रदान करते हैं ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि देवोंमें स्तुत्य, और मनुष्योंका हित करनेवाला है । इन्द्र बहुत बुद्धिमान्, हजारों तरहके संरक्षणके साधनोंसे युक्त है । इस प्रकार दोनों ही देव महिमाशाली हैं ॥ ७-८ ॥

७७२ आ त्वा मदुच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥

७७३ आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥

७७४ आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥

७७५ सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः संभृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥

७७६ आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥

७७७ आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥

अर्थ— [७७२] हे इन्द्र ! (श्येनं पक्षा इव) जैसे बाजको उसके पंख ले जाते हैं, उसी प्रकार (मदच्युता हरी) मद चुआनेवाले घोडे (त्वा आ वक्षतः) तुम्हें ले आवें । हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिव शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ ९ ॥

[७७३] हे (अर्यः) स्वामिन् इन्द्र ! (सु-आहा सोमस्य पीतये) उत्तमतासे समर्पित सोमको पीनेके लिए (आ परि आ याहि) आओ । हे (दिवावसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिव शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १० ॥

[७७४] हे इन्द्र ! (उक्थेषु श्रुति) स्तोत्रोंको सुनकर (इह) इस यज्ञमें (नः उप आ याहि) हमारे पास आओ और हमें (रणय) आनन्दित करो । हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस लोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकका जाओ ॥ ११ ॥

[७७५] हे (संभृताश्वः) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र ! (संभृतैः सरूपैः) पुष्ट तथा समान रूपवाले घोडोंसे (नः सु आगहि) हमारे पास आओ ! हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें बसनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १२ ॥

[७७६] हे इन्द्र ! (पर्वतेभ्यः समुद्रस्य विष्टपः अधि) पर्वतोंसे तथा अन्तरिक्षके प्रदेशोंसे (आ याहि) आओ, हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १३ ॥

[७७७] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! तुम (नः) हमें (सहस्रा गव्यानि अश्व्या) हजारों गाय और घोडे (आ दर्दृहि) दो, हे (दिवा-वसो) द्युलोकके वासी इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम सोमरसको पीनेके लिए घोडोंसे उसी तरह आओ, जिस तरह पक्षी अपने पंखोंके आश्रयसे जाते हैं ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! अपने पुष्ट घोडोंसे हमारे पास आओ, और सोमरस पीकर हमें आनंदित करो ॥ ११-१२ ॥

हे इन्द्र ! तुम पर्वत, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक अर्थात् जहां पर भी हो, वहींसे तुम हमारे पास आकर हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ १३-१४ ॥

७७८ आ नः सहस्रशो भरा ऽयुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥
७७९ आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥
७८० य ऋज्रा वातरंहसो ऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजन्ते सूर्या इव ॥ १७ ॥
७८१ पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु । तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥

[३५]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवताः- अश्विनौ । छन्द - उपरिष्टाज्ज्योतिः (त्रिष्टुप्),
२२, २४ पङ्क्तिः, २२ महाबृहती ।)

७८२ अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुना ऽऽदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥
७८३ विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥

अर्थ— [७७८] हे इन्द्र ! (नः) हमें (सहस्रशः) हजारों प्रकारसे (शतानि अयुतानि च) सैकडों तथा हजारों प्रकारके धन (आ भर) दो । हे (दिवा-वसो) द्युलोकमें रहनेवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन करनेवाले तुम फिर (दिवं यय) द्युलोकको जाओ ॥ १५ ॥

[७७९] (वसु-रोचिषः) ऐश्वर्यसे तेजस्वी हुए हम तथा (इन्द्र च) इन्द्र (सहस्रं ओजिष्ठं अश्व्यं पशुं) हजारों प्रकारके बलवान् अश्व आदि पशुको (आ दद्वहे) प्राप्त करें ॥ १६ ॥

[७८०] (ये) जो (ऋज्राः) सरल (वातरंहसः) वायुके समान वेगवाले (अरुषासः) तेजस्वी (रघुष्यदः) शीघ्र चलनेवाले घोडे (सूर्याः इव) सूर्यके समान (भ्राजन्ते) चमक रहे हैं ॥ १७ ॥

[७८१] (पारावतस्य रातिषु) पारावतके द्वारा दिए गए (आशुषु) घोडोंसे युक्त (द्रवत् चक्रेषु) दौडते हुए चक्रोंसे युक्त (वनस्य मध्ये) रथके बीचमें (आ तिष्ठं) मैं बैठूं ॥ १८ ॥

[३५]

[७८२] हे अश्विदेवों ! तुम (अग्निना इन्द्रेण वरुणेन विष्णुना आदित्यैः) अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, आदित्यों (वसुभिः रुद्रैः) वसुओं एवं रुद्रोंके संघोंसे (सचा-भुवा) युक्त होकर (उषसा सूर्येण च सजोषसा) और उषा तथा सूर्यसे मिलकर (सोमं पिबतम) सोमरसका सेवन करो ॥ १ ॥

[७८३] हे (वाजिना) बलवान् अश्विदेवो ! (दिवा पृथिव्या) द्युलोक एवं भूलोकवर्ती लोगोंसे, (अद्रिभिः) न दौडनेवालोंसे, (विश्वाभिः धीभिः भुवनेन सचाभुवा) सभी बुद्धियों एवं भुवनसे युक्त हो तथा (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा और सूर्यसे सम्मिलित होकर (सोमं पिबतं) सोमपान करो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुम हम पर कृपा करके हमें अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करो, हम भी ऐश्वर्यशाली होकर उत्तम धनवाले हों ॥ १५-१६ ॥

वीरके घोडे वायुके समान वेगवान्, तेजस्वी तथा सूर्यके समान कान्तियुक्त हों । ऐसे घोडोंको रथमें संयुक्त करके वीर उस रथमें बैठे ॥ १७-१८ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम उत्तम बुद्धिसे युक्त हो, अतः तुम अग्नि, इन्द्र आदि सभी देवोंके साथ मिलकर सोमरसका पान करो ॥ १-२ ॥

७८४ विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाऽद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥
७८५ जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥
७८६ स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥
७८७ गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥
७८८ हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ७ ॥
७८९ हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥

अर्थ— [७८४] हे अश्विदेवो ! (इह) यहाँपर (त्रिभिः एकादशैः विश्वैः देवैः) सभी तैंतीस देवोंके, (भृगुभिः मरुद्भिः अद्भिः) भृगुओं, वीरमरुतों तथा जलोंसे (सचाभुवा) संगत होकर और (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा एवं सूर्यके साथ रहकर (सोमं पिबतम्) सोमपान करो ॥ ३ ॥

[७८५] हे अश्विदेवो ! (यज्ञं जुषेथां) यज्ञका सेवन करो, (मे हवस्य बोधतं) मेरी प्रार्थना जान लो, (देवौ) दानी तुम दोनों (इह विश्वा सवना अव गच्छतं) इधर सभी सवनोंके निकट आ पहुँचो, पश्चात् (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा एवं सूर्यके साथ (नः इषं वोळ्हं) हमें अन्न पहुँचा दो ॥ ४ ॥

[७८६] हे (देवौ) दानी या द्योतमान अश्विदेवो ! (कन्यनां युवशा इव) कन्या–कमनीय युवतियोंको युवक जैसे चाहते हैं वैसेही (स्तोमं जुषेथां) हमारे स्तोत्रका सेवन करो, तथा (विश्वा सवना) सभी सवनोंमें (इह अगच्छतं) इधर आकर पहुँच जाओ; (उषसा सूर्येण च सजोषसा) सूर्य एवं उषःवेलाके समय तुम दोनों (नः इषं वोळ्हं) हमें अन्न पहुँचा दो ॥ ५ ॥

[७८७] (इह गिरः जुषेथां) यहाँपर हमारे भाषणोंको स्वीकार करो, (अध्वरं जुषेथां) हिंसारहित कार्यके लिए आदरपूर्वक उपस्थित रहो (देवौ) दानी होकर तुम (विश्वा सवना अव गच्छतं) सभी सवनोंमें आओ, हे अश्विनौ ! (उषसा सूर्येण नः इषं वोळ्हं) सूर्योदय तथा उषावेलामें हमें अन्न पहुँचा दो ॥ ६ ॥

[७८८] हे अश्विदेवो (सुतं सोमं) निचोडकर रखे हुए सोमके प्रति (महिषा इव अव गच्छथः) भैंसोंके तुल्य–बहुत प्यासे होकर जाते हो, (वना) जलोंके समीप (हारिद्रवा इव) पंछीके तुल्य (उप पतथः इत्) चले जाते हो, (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषःकाल एवं सूर्योदयके समय (वर्तिः त्रिः यातं) घरके समीप तीन बार जाओ ॥ ७ ॥

[७८९] (हंसौ इव) हंसोंकी नाईं, (अध्वगौ इव) पथिकके तुल्य (पतथः) तुम ऊपरसे आगिरते हो (सुतं सोमं महिषा इव आ गच्छथः) निचोडकर रखे सोमको पीनेके लिए, जैसे दो भैंसे तालाबके समीप जाते हैं वैसेही, तुम आते हो; (उषसा सूर्येण सजोषसा वर्तिः त्रिः यातं) उषा एवं सूर्यसे युक्त हो तीन बार घर चले जाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम दोनों दान देनेवाले हो, अतः हमारी प्रार्थना सुनकर हमारे यज्ञमें आओ, तथा तैंतीस देव तथा अन्य देवोंके साथ मिलकर हमें अन्न प्रदान करो ॥ ३–४ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम हमारे हिंसारहित कार्योंमें श्रद्धापूर्वक उपस्थित होओ, तथा हमारी प्रार्थनाओंको ध्यान पूर्वक सुनकर हमें उत्तम अन्न प्रदान करो ॥ ५–६ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनों हंसोंके समान तेजस्वी हो, जिस तरह पक्षी सूर्योदयके होते ही दानेके लिए घर घर जाते हैं, उसी तरह वे देव सोमरस पान करनेके लिए सूर्योदय होने पर घर–घर जाते हैं ॥ ७–८ ॥

७९० श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥
७९१ पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥
७९२ जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥
७९३ हतं च शत्रून् यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥
७९४ मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽऽदित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥
७९५ अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽऽदित्यैर्यातमश्विना ॥ १४ ॥
७९६ ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽऽदित्यैर्यातमश्विना ॥ १५ ॥

अर्थ— [७९०] (हव्य-दातये) अन्नका दान करनेके लिए (श्येनौ इव पतथः) बाज पंछीके समान वेगसे जाते हो, (सुतं सोमं महिषा इव गच्छथः) तैयार सोमरसको पीनेके लिए भैंसोंके तुल्य शीघ्रगतिसे जाते हो; हे अश्विदेवों ! (सूर्येण उषसा सजोषसा त्रिः वर्तिः यातं) उषःकाल एवं सूर्योदयकी वेलामें तीन बार जाओ ॥ ९ ॥

[७९१] (पिबतं तृष्णुतं च) सोमरस पी जाओ और तृप्त बनो तथा (आ गच्छतं च) आ जाओ; (प्रजां द्रविणं च धत्तं) सन्तान एवं धनवैभवको दे डालो; हे अश्विदेवों ! (उषसा सूर्येण च सजोषसा) सूर्य एवं उषाके साथ रहते हुए तुम (नः ऊर्जं धत्तं) हमें बल देओ ॥ १० ॥

[७९२] हे अश्विदेवों ! (जयतं, प्रस्तुतं च) तुम जीत लो और प्रशंसा करो, (प्र अवतं) खूब रक्षा करो; (प्रजां च द्रविणं च धत्तं) सन्तति तथा द्रव्यका दान करो, (उषसा सूर्येण सजोषसा नः ऊर्जं धत्तम्) उषा एवं सूर्यके साथ रहते हुए हमें बल दे दो ॥ ११ ॥

[७९३] (शत्रून् हतं) दुश्मनोंका वध करो और (मित्रिणः यततं) मित्रोंको पानेका यत्न करो (प्रजां च द्रविणं च धत्तं) प्रजा तथा धनका दान करो, हे अश्विदेवों ! (उषसा सूर्येण सजोषसा नः ऊर्जं धत्तं) उषा एवं सूर्यसे सम्मिलित हो हमें बल दो ॥ १२ ॥

[७९४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (मित्रावरुणवन्ता) मित्र, वरुण (उत) और (धर्मवन्ता) धर्मसे युक्त (मरुत्वन्ता) वीर-मरुतोंके साथ (जरितुः हवं गच्छथः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले आते हो, (उषसा सूर्येण आदित्यैः च सजोषसा यातम्) उषा, सूर्य तथा अदितिके पुत्रोंके साथ (यातं) तुम गमन करो ॥ १३ ॥

[७९५] (अंगिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता) अंगिरस तथा विष्णुके साथ तथा (मरुत्वन्ता) मरुतोंके साथ (जरितुः हवं गच्छथः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले आते हो। तुम (उषसा सूर्येण आदित्यैः च सजोषसा यातं) उषा, सूर्य तथा अदितिके पुत्रोंके साथ गमन करो ॥ १४ ॥

[७९६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (ऋभुमन्ता वाजवन्ता) ऋभुओं तथा अन्नके साथ (वृषणा) बलवान् बनकर (जरितुः हवं गच्छथः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले आते हो, (उषसा सूर्येण आदित्यैः च सजोषसा यातं) उषा, सूर्य तथा अदितिके पुत्रोंके साथ तुम गमन करो ॥ १५ ॥

भावार्थ— जिस तरह श्येनपक्षी वेगसे आता है, उसी तरह तुम दान देनेके लिए वेगसे आओ । तुम सोमरससे तृप्त होकर हमें वैभव प्रदान करो ॥ ९-१० ॥

हे अश्विदेवो ! तुम शत्रुओंका वध करो, उन्हें जीत लो, तथा मित्रोंकी प्राप्त करके उनकी प्रशंसा करो ॥ ११-१२ ॥

हे अश्विदेवों ! तुम इन्द्र, विष्णु आदि सभी तैंतीस देवोंके साथ हमारे पास आओ, तथा बलवान् बनकर स्तोताओंकी प्रार्थना सुनो ॥ १३-१४-१५ ॥

७९७ ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥
७९८ क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन् हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १७ ॥
७९९ धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १८ ॥
८०० अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ १९ ॥
८०१ सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २० ॥

अर्थ— [७९७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (रक्षांसि हतं) राक्षसोंका वध करो, (अमीवाः सेधतं) रोगोंको दूर करो, (ब्रह्म जिन्वतं) ज्ञानको संतुष्ट रखो, (उत धियः जिन्वतं) और कार्यको संतुष्ट रखो, (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले देवो ! तुम (उषसा सूर्येण च) उषा और सूर्यके साथ (सोमं सुन्वतः) सोम निचोडनेवालेके पास जाकर सोमपान करो ॥ १६ ॥

[७९८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (रक्षांसि हतं) राक्षसोंका वध करो, (अमीवाः सेधतं) रोगोंको दूर करो (क्षत्रं जिन्वतं) क्षात्र तेजको संतुष्ट रखो, (उत) और (नॄन् जिन्वतं) नेतृत्वके गुणोंको संतुष्ट रखो । (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले देवो ! तुम (उषसा सूर्येण च उषा और सूर्यके साथ (सोमं सुन्वतः) सोमको निचोडनेवालेके पास जाओ ॥ १७ ॥

[७९९] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (रक्षांसि हतं) राक्षसोंको मारो, (अमीवाः सेधतं) रोगोंको दूर करो, (धेनूः जिन्वतं) गायोंको पुष्ट करो, (उत) और (विशः जिन्वतं) प्रजाओंको पुष्ट करो । हे (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले देवो ! तुम (उषसा सूर्येण च) उषा और सूर्यके साथ (सोमं सुन्वतः) सोम निचोडनेवालेके पास जाओ ॥ १८ ॥

[८००] हे (मदच्युता अश्विना) शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले अश्विदेवो ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोमरस निचोडकर तैय्यार करते हुए श्यावाश्वकी (पूर्व्यस्तुतिं) प्रथम स्तुतिको (अत्रेः इव) जैसे तुम अत्रिकी प्रशंसाको सुन चुके थे, वैसेही (शृणुतं) सुनो ! (सजोषसौ) एक साथ रहनेवाले तुम दोनों (तिरः अन्ह्यं) कल तैय्यार किए गए सोमका (उषसा सूर्येण च) उषा और सूर्यके साथ पान करो ॥ १९ ॥

[८०१] हे (मदच्युता) शत्रुओंके गर्वका हरण करनेवाले अश्विदेवो ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोमरस निचोडकर तैय्यार करते हुए श्यावाश्वको (सुष्टुतिं) उत्तम स्तुतिको, (सर्गान् इव उप सृजतं) समीप आकर देवोंके समान दान दो । (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले तुम दोनों (उषसा सूर्येण) उषा और सूर्यके साथ (तिरः अह्न्यं) कल तैय्यार किए गए सोमरसोंको पीओ ॥ २० ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम मनुष्योंके रोगोंको दूर करके उनके ज्ञान, कार्य, क्षात्र तेज, नेतृत्वशक्ति, गौ आदि प्राणियों तथा उनके पुत्र पौत्रादिकोंको पुष्ट करो ॥ १६-१८ ॥

८०२ रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाऽश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २१ ॥

८०३ अर्वाग् रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २२ ॥

८०४ नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २३ ॥

८०५ स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ २४ ॥

अर्थ— [८०२] हे (मदच्युता) शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले अश्विदेवो ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोम निचोडनेवाले श्यावाश्वके (अध्वरान् उप) यज्ञोंको समीपसे (रश्मीन् इव यच्छतं) लगामके समान (यच्छतं) नियंत्रित करो । (सजोषसा) एक साथ रहनेवाले तुम दोनों (उषसा सूर्येण) उषा और सूर्यके साथ (तिरः अह्न्यं) कल तैय्यार किए गये सोमका पान करो ॥ २१ ॥

[८०३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (आ यातं आ गतं) तुम आओ, चले आओ, (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें बुलाता हूँ, (रथं) अपने रथको (अर्वाक् नि यच्छतं) हमारी ओर हांको, (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरस मिलाये हुए मधुका पान करो तथा (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाताको रत्न प्रदान करो ॥ २२ ॥

[८०४] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम (आ यातं आ गतं) आओ और चले आओ, (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें बुलाता हूं । (विवक्षणस्य प्रस्थिते) विशेष ढंगसे हवि देनेवालेके द्वारा किए जानेवाले (नमोवाके अध्वरे) नमन तथा हिंसारहित कार्यमें (पीतये) सोमरस पीनेके लिए (नरा) हे नेता अश्विदेवो ! आओ तथा (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाताको रत्न प्रदान करो ॥ २३ ॥

[८०५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (आ यातं आ गतं) आओ और अवश्य आओ, (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें बुलाता हूं, (स्वाहाकृतस्य सुतस्य अन्धसः) हवन किए तथा निचोडे हुए अन्न रसका पान करके (देवौ तृम्पतं) दानी तुम तृप्त होओ, इसके बाद (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दानीके लिए रत्न दो ॥ २४ ॥

भावार्थ— शत्रुओंके गर्वको नष्ट करनेवाले अश्विदेवो ! तुम सोमरस निचोडते हुए स्तोताकी स्तुति सुनकर उसके पास जाओ और उसके यज्ञको उत्तम रीतिसे चलाकर उसे देवोंके समान भरपूर ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ १९-२१ ॥

हे अश्विदेवो ! तुम दोनो हमारे पास आओ, तथा यज्ञमें डाले गए अन्नरूप सोमरसका पान करके तृप्त होओ । हम तुमसे रक्षण चाहते हैं, अतः तुम हमारे इस हिंसारहित यज्ञमें आओ और तुम हमें रत्न आदि ऐश्वर्य दो ॥ २१-२४ ॥

[३६]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- शक्वरी, * महापङ्क्तिः ।)

८०६ अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥

८०७ प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥

८०८ ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥

---

[३६]

अर्थ— [८०६] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभकर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (सुन्वतः वृक्तबर्हिषः अविता असि) सोम निचोडनेवालोंका और आसन फैलानेवालोंकी रक्षा करनेवाला है । इसलिए तू (मदाय) आनन्दके लिए (कं सोमं पिब) सुखकारक सोमको पी । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (यं भागं आधारयन्) सोमका जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुकी सेनाको हरानेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (सं अप्सुजित्) पानियोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ १ ॥

[८०७] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभकर्म करनेवाले तथा (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (स्तोतारं अव अव) स्तोताकी रक्षा कर, तथा (मदाय सोमं पिब) आनन्दके लिए सोम पी, यह सोम (त्वां कं) तुझे सुखकर हो । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (यं भागं आधारयन्) सोमका जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सब शत्रुसेनाको जीतनेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (अप्सु जित्) जलोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ २ ॥

[८०८] हे (शतक्रतो) सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू (ओजसा ऊर्जा देवान् अवसि) ओजसे और बलसे देवोंकी रक्षा करता है । अतः तू (मदाय सोमं पिब) आनन्दके लिए सोम पी, यह सोम (त्वां कं) तेरे लिए सुखकर हो । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको हरानेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (अप्सुजित्) जलोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू सोम निचोडने तथा यज्ञ करनेवालोंकी रक्षा करनेवाला है । तू सज्जनोंकी रक्षा करनेवाला है । अतः तू मरुतोंके साथ सोमरसके लिए हुए भागको पी ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने सामर्थ्यसे स्तोताओंकी और देवोंकी रक्षा करनेवाला है । अतः तुझे हम सोमरसका भाग देते हैं, तू उसे पी ॥ २-३ ॥

×

८०९ जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

८१० जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥

८११ अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥

८१२ श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८०९] हे (शतक्रतो) सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू (दिवः जनिता) द्युलोकको पैदा करनेवाला तथा (पृथिव्याः जनिता) पृथ्वीको उत्पन्न करनेवाला है, इसलिए तू (मदाय कं सोमं पिब) आनन्दके लिए सुखदायक सोमको पी । (हे सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए सोमका (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको हरानेवाला (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (सं अप्सुजित्) जलोंको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंसे युक्त तू पी ॥ ४ ॥

[८१०] हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (अश्वानां जनिता गवां जनिता असि) घोडोंको और गायोंको उत्पन्न करनेवाला है । तू (मदाय कं सोमं पिब) आनन्दके लिए सुखकारी सोमको पी । (हे सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए सोमका (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सब शत्रुसेनाको जीतनेवाला, (उरुज्रयः) सर्वत्र फैलनेवाला (सं अप्सुजित्) जलोंके स्थानको जीतनेवाला और (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ ५ ॥

[८११] हे (अद्रि-वः शतक्रतो) वज्रधारी तथा सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू (अत्रीणां स्तोमं महः कृधि) अत्रि ऋषियोंके स्तोत्रको महान् कर और (मदाय कं सोमं पिब) आनन्दके लिए सुखदायक सोम पी । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (ते) तेरे लिए सोमका (यं भागं अधारयन्) जो भाग निश्चित कर दिया गया है, उसे (विश्वाः पृतनाः सेहानः) सम्पूर्ण शत्रुसेनाको हरानेवाला, (उरुज्रयः) बडा पराक्रम करनेवाला (सं अप्सुजित्) जलोंके स्थानको जीतनेवाला तथा (मरुत्वान्) मरुतोंके साथ तू पी ॥ ६ ॥

[८१२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (कर्माणि कृण्वतः) यज्ञ कर्मोंको करते हुए (अत्रेः यथा अशृणोः) अत्रि ऋषिकी प्रार्थनाको जिस प्रकार सुना था, तथा उसी प्रकार (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोम निचोडते हुए श्यावाश्वकी प्रार्थना सुन । हे इन्द्र ! तूने (नृषाह्ये) युद्धमें (एकः इत्) अकेलेही (ब्रह्माणि वर्धयन्) ज्ञानोंको बढाते हुए (त्रसदस्युं आविथ) त्रसदस्युकी रक्षा की थी ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! द्यु, पृथिवी आदि लोक तथा गाय, घोडे आदि पशुओंको तू उत्पन्न करनेवाला है, अतः तू हमारे यज्ञमें आकर आनन्दित हो ॥ ४-५ ॥

हे वज्रधारी तथा अनेकों उत्तम यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! तू अत्रि ऋषियोंके स्तोत्रोंके महत्वको बढा, उसी तरह अन्य ऋषियोंकी प्रार्थनाओंको भी सुन तथा हमारे ज्ञानको बढाते हुए दस्युओंको नाश देनेवालोंकी तू रक्षा कर ॥ ६-७ ॥

[३७]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- महापङ्क्तिः, १ अतिजगती ।)

८१३ प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥

८१४ सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ २ ॥

८१५ एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ३ ॥

८१६ सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ४ ॥

---

[३७]

अर्थ— [८१३] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! तूने (वृत्रतूर्येषु) युद्धोंमें (इदं ब्रह्म) इस स्तोत्र बोलनेवालेका तथा (सुन्वतः) सोम यज्ञ करनेवालेको (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण रक्षणके साधनोंसे (आविथ) रक्षा की। हे (अनेद्य, वज्रिवः वृत्रहन्) अनिंद्य, वज्रधारिन् और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (माध्यन्दिनस्य सवनस्य) माध्यन्दिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ १ ॥

[८१४] हे (उग्र शचीपते) वीर और शक्तियोंके स्वामिन् तथा (अनेद्य, वज्रिवः वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारी और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंसे (द्रुहः पृतनाः सेहानः) शत्रुकी सेनाको हराते हुए (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिब) माध्यन्दिन सवनके सोमको पी ॥ २ ॥

[८१५] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! तू (अस्य भुवनस्य) इस भुवनका (एकराट् राजसि) एक राजाके रूपमें सुशोभित होता है। हे (अनेद्य, वज्रिवः, वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारी और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (माध्यन्दिनस्य सवनस्य) माध्यन्दिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ३ ॥

[८१६] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! (त्वं एकः इत्) तू अकेलाही (सस्थावाना यवयसि) एक साथ जुडे हुए शत्रुके लोकोंको पृथक् करता है। हे (अनेद्य, वज्रिवः, वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारिन्, वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब संरक्षणके साधनोंके साथ (माध्यन्दिनस्य सवनस्य) माध्यन्दिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ४ ॥

१ त्वं एकः सस्थावाना यवयसि— तू अकेला संघटित रहे शत्रुओंको विभक्त करता है। शत्रुको निर्बल करनेकी यह युक्ति है।

२ विश्वाभिः ऊतिभिः— सब संरक्षणके साधन अपने पास सुरक्षित रखना।

भावार्थ— हे इन्द्र ! तूने शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धोंमें इस स्तोत्रको बोलनेवाले तथा यज्ञ करनेवालेकी रक्षा की थी, अतः तू अपने शस्त्रोंसे सभी शत्रुओंको हटाते हुए हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पी ॥ १-२ ॥

हे इन्द्र ! तू इस सम्पूर्ण विश्वका अकेलाही स्वामी है, तू अकेला होते हुए अच्छी तरहसे संघटित हुए शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर देता है। अतः हमारी रक्षाके लिए तू सोम पीकर पुष्ट हो ॥ ३-४ ॥

८१७ क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ५ ॥
८१८ क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ ६ ॥
८१९ श्यावाश्वस्य रेभत स्तथा शृणु यथाशृणो रत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ७ ॥

[३८]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवताः- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री ।)

८२० यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

अर्थ— [८१७] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! (त्वं) तू ही (क्षेमस्य प्रयुजः च ईशिषे) प्राप्त और अप्राप्त धनों पर स्वामित्व करता है । हे (अनेद्य, वज्रिवः, वृत्रहन्) अनिन्द्य, वज्रधारिन् और वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (माध्यंदिनस्य सवनस्य) माध्यंदिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ५ ॥

[८१८] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! (त्वं क्षत्राय अवसि) तू बलके लिए जगत्का रक्षण करता है, पर (त्वं) तू स्वयं (न आविथ) किसीसे रक्षित नहीं होता । हे (अनेद्य, वज्रिवः वृत्रहन्) अनिंद्य, वज्रधारिन्, वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (माध्यंदिनस्य सवनस्य) माध्यंदिन सवनके (सोमस्य पिब) सोमको पी ॥ ६ ॥

१ त्वं क्षत्राय अवसि— तू क्षात्र तेजका रक्षण करता है ।

२ त्वं न आविथ— तू किसीसे रक्षित नहीं होता अर्थात् तू स्वयं सुरक्षित रहता है ।

३ विश्वाभिः ऊतिभिः— तू सब रक्षणके साधनोंसे युक्त हो ।

[८१९] हे इन्द्र ! तूने (कर्माणि कृण्वतः) कर्मोंको करते हुए (अत्रेः यथा अशृणोः) अत्रि ऋषिकी प्रार्थनाको जिस प्रकार सुना, (तथा) उसी प्रकार (रेभतः श्यावाश्वस्य) स्तुति करनेवाले श्यावाश्वकी प्रार्थना (शृणु) सुन । हे इन्द्र ! तूने (नृषाह्ये) युद्धमें (एकः इत्) अकेलेही (क्षत्राणि वर्धयन्) क्षात्रोंको बढाते हुए (त्रसदस्युं आविथ) त्रसदस्युकी रक्षा की थी ॥ ७ ॥

[३८]

[८२०] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सस्नी) शुद्ध और पवित्र तुम दोनों (यज्ञस्य हि ऋत्विजा स्थः) यज्ञके ऋत्विज हो, अतः (वाजेषु कर्मसु) यज्ञादिक कर्मोंमें तुम आओ, तथा (तस्य बोधतं) उस मेरी अभिलाषाको तुम जानो ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो धन हमें प्राप्त है, और जो प्राप्त नहीं है, उन सब धनोंका तू अकेलाही स्वामी है, । तू क्षात्र तेजकी रक्षा करनेवाला है, पर तू स्वयं सुरक्षित है अर्थात् तू दूसरोंकी रक्षा तो करता है, पर अपनी रक्षाके लिए तुझे किसी दूसरेके मददकी जरूरत नहीं होती, तू स्वसामर्थ्यसेही अपनी रक्षा कर लेता है ॥ ५–६ ॥

हे इन्द्र ! तूने उत्तम कर्मोंको करते हुए जिस प्रकार अत्रि ऋषिकी रक्षा की थी, उसी तरह तू उत्तम जोशोंको रक्षनेवाले वीरकी रक्षा कर तथा युद्धके आने पर तू युद्धमें दस्युको नष्ट करनेवाले वीरकी रक्षा कर ॥ ७ ॥

८२१ तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥
८२२ इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
८२३ जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ४ ॥
८२४ इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ५ ॥
८२५ इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥ ६ ॥
८२६ प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥
८२७ श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ८ ॥

अर्थ— [८२१] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों (तोशासा) शत्रुओंके विनाशक (रथयावाना) रथोंसे आनेवाले (वृत्रहणा) वृत्रोंको नष्ट करनेवाले पर स्वयं (अपराजित) पराजित न होनेवाले हो, वे तुम (तस्य बोधतं) इस मेरी अभिलाषाको जानो ॥ २ ॥

[८२२] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (वां) तुम दोनोंके लिए (नरः) यज्ञकर्ताओंने (अद्रिभिः) पत्थरोंसे (इदं मदिरं मधु) इस आनन्ददायक मधुर सोमरसको (अधुक्षन्) निकाला है, तुम दोनों (तस्य) इस यज्ञ कर्ताके मनोरथको (बोधतं) समझो ॥ ३ ॥

[८२३] हे (सधस्तुती नरा इन्द्राग्नी) एक साथ बैठकर स्तुति सुननेवाले नेता इन्द्र और अग्नि ! (इष्टये यज्ञं जुषेथां) हमारी अभिलाषाको पूरा करनेके लिए हमारे यज्ञमें आओ, तथा (सुतं सोमं आ गतं) निचोडे हुए सोमको प्राप्त करो ॥ ४ ॥

[८२४] हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (येभिः हव्यानि ऊहथुः) जिन सामर्थ्योंसे तुम हवियोंको ले जाते हो, उन्हीं सामर्थ्योंसे (इमा सवनानि जुषेथां) इन यज्ञोंका सेवन करो, तथा (आ गतं) हमारे यज्ञोंमें पधारो ॥ ५ ॥

[८२५] हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि ! (मम गायत्रवर्तनिं) मेरी गायत्री छन्दवाली (इमां सुस्तुतिं) इस उत्तम स्तुतिको (जुषेथां) तुम सुनो और (आ गतं) हमारे पास आओ ॥ ६ ॥

[८२६] हे (जेन्यावसू इन्द्राग्नी) शत्रुओंके धनोंको जीतनेवाले इन्द्र और अग्नि ! (प्रातः यावभिः देवेभिः) प्रातःकाल आनेवाले देवोंके साथ (सोमपीतये आ गतं) सोमपान करनेके लिए आओ ॥ ७ ॥

[८२७] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोम निचोडनेवाले श्यावाश्वकी तथा (अत्रीणां शृणुतं हवं) अत्रि ऋषियोंके पुकारको सुनो तथा (सोमपीतये) सोमपान करनेके लिए आओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्नि ! यज्ञोंको करनेवाले तुम दोनों यज्ञादिक कर्मोंमें आओ, तथा मेरी अभिलाषाको जानकर उसे पूरा करो ॥ १–२ ॥

हे देवो ! तुम दोनोंके लिए हमने यह सोमरस निकाला है, तुम उसे पीओ और हमारी अभिलाषाको पूरा करनेके हमारे यज्ञमें आओ ॥ ३–४ ॥

हे देवो ! जिन सामर्थ्योंसे तुम हविको ले जाते हो, उन्हीं सामर्थ्योंसे तुम हमारे यज्ञोंमें आकर हमारी स्तुतियोंको सुनो ॥ ५–६ ॥

हे देवो ! प्रातःकाल आनेवाले देवोंके साथ तुम सोमपान करनेके लिए आओ तथा ऋषियोंकी प्रार्थनाओंको सुनो ॥ ७–८ ॥

८२८ एवा वा॑मह्व ऊ॒तये॑ यथाहु॑वन्त मेधि॑राः । इन्द्रा॑ग्नी सोम॑पीतये ॥ ९ ॥
८२९ आहं सर॑स्वतीवतो॒रिन्द्रा॒ग्न्योरवो॑ वृणे । याभ्यां॑ गाय॒त्रमृ॒च्यते॑ ॥ १० ॥

[३९]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः । देवता- अग्निः । छन्दः- महापङ्क्तिः ।)

८३० अ॒ग्निम॑स्तोष्यृ॒ग्मिय॑म॒ग्निमी॒ळा य॒जध्यै॑ ।
अ॒ग्निर्दे॒वाँ अ॑नक्तु न उ॒भे हि वि॒दथे॑ क॒वि-
-र॒न्तश्चर॑ति दू॒त्यं॑ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १ ॥
८३१ न्य॑ग्ने॒ नव्य॑सा॒ वच॑स्त॒नूषु॒ शंस॑मेषाम् ।
न्यरा॑ती॒ ररा॑व्णां॒ विश्वा॑ अ॒र्यो अरा॑ती-
-रि॒तो यु॑च्छन्त्वा॒मुरो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ २ ॥

अर्थ— [८२८] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! (सोमपीतये) सोमपान करनेके लिए (यथा मेधिराः अहुवन्त) जिस तरह तुम्हें ज्ञानियोंने बुलाया था, (एवा) इसी तरह मैं (ऊतये वां अह्वे) अपनी रक्षाके लिए तुम्हें बुलाता हूँ ॥ ९ ॥

[८२९] (याभ्यां गायत्रं ऋच्यते) जिन देवोंकी गायत्री छन्दवाले मंत्र बोले जाते हैं, उन (सरस्वतीवतोः इन्द्राग्न्योः) ज्ञानसे युक्त इन्द्र और अग्निके (अवः अहं वृणे) संरक्षणको मैं चाहता हूँ ॥ १० ॥

[३९]

[८३०] मैं (ऋग्मियं अग्निं अस्तोषि) ऋग्मंत्रोंके द्वारा पूजे जाने योग्य इस अग्निकी स्तुति करता हूँ, (यजध्यै अग्निं इळा) यज्ञके लिए भी इसी अग्निकी स्तुतिसे पूजा करता हूँ । वह (अग्निः नः विदथे देवान् अनक्तु) अग्नि हमारे यज्ञमें देवोंको हव्योंसे प्रकाशित करे । (कविः उभे अन्तः दूत्यं चरति) दूरदर्शी ज्ञानी मनुष्य और देव इन दोनोंके बीचमें दूतका कार्य करता हुआ विचरण करता है, उससे हमारे (समे अन्यके नभन्तां) अन्य समस्त शत्रुगण नाशको प्राप्त हों ॥ १ ॥

[८३१] हे (अग्ने) अग्ने ! हमारे (तनूषु एषां शंसं नव्यसा वचः नि) शरीरमें स्थिर हुए हुए इन शत्रुओंके प्रहारको अभिनव शस्त्रों द्वारा विनष्ट कर (रराव्णां अरातीः नि) और दानशीलोंके बीचमें जो अदानशील हैं उन सबोंको नष्ट कर । हम पर (विश्वाः अर्याः आमुरः अरातीः इतः नि युच्छन्तु) आक्रमण करनेवाले सभी मूढ या हिंसक शत्रु यहाँसे दूर हो जावें । तथा (समे अन्यके नभन्तां) समस्त अन्य दुष्टाचारी लोग भी नष्ट हो जायें ॥ २ ॥

१ तनूषु एषां नि- शरीरोंमें रहनेवाले इन रोगजन्तुरूप शत्रुओंका नाश हो जाए ।
२ रराव्णां अरातीः नि- दानशीलोंके बीचमें रहनेवाले अदानी नष्ट हो जावें ।

भावार्थ— हे देवो ! जिस तरह तुम्हें ज्ञानी बुलाते हैं, उसी तरह मैंने भी गायत्री छन्दोंमें मंत्रोंके द्वारा तुम्हें बुलाया है ॥ ९-१० ॥

राष्ट्रका दूत ऐसा हो जो अपने ज्ञानके द्वारा साधारण जनता और बडे बडे विद्वानोंके बीचमें सम्बन्ध स्थापित कर सके । विद्वानोंका ज्ञान साधारण जनता तक और साधारण जनताकी कठिनाइयां देशके नेताओं तक पहुंचा सके । ऐसे अग्रणी दूतकीही प्रजायें अपनी वाणियोंसे प्रशंसा करती हैं । ऐसा करनेसे राष्ट्रमें एकता होती है, उनके सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

इस शरीरमें रोगोंको पैदा करनेवाले अनेक शत्रु हैं, जो (अर्याः) मनुष्यों पर हमला करके उन्हें (आ-मुर) मरणावस्था तक पहुंचा देते हैं । ये शत्रु तभी नष्ट हो सकते हैं, जब शरीरकी अग्नि बलशाली हो । इसी प्रकार राष्ट्र शरीरमें जब विद्वान् और वीर आदि अग्रणी बलवान् होते हैं, तब राष्ट्रके सभी शत्रु बलहीन हो जाते हैं । इसके साथही देशकी आर्थिक अवस्था भी सुधरी रहे, इसलिए राष्ट्रमें दानियोंको प्रोत्साहन मिलना चाहिए और जो संचयशीलता या पूंजीवादको बढावा देते हैं, उनका नाश करना चाहिए ॥ २ ॥

८३२ अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः
शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

८३३ तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे
विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

८३४ स चिकेत सहीयसा ऽग्निश्चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत
इनोति च प्रतीव्यं नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

अर्थ — [८३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (तुभ्यं आसनि न कं घृतं मन्मानि जुह्वे) तेरे मुख अर्थात् ज्वालामें मैं अब सुखकारी घृतकी आहुति डालता हुआ मनन करनेयोग्य स्तोत्रोंको बोलता हूँ । (सः प्र चिकिद्धि) वह प्रसिद्ध तू इसको जान । (हि त्वं पूर्व्यः शिवः विवस्वतः दूत असि) क्योंकि तू पूर्णज्ञानी, कल्याणकारी, विविध वसुओंका स्वामी और देवोंका दूत है । तेरे द्वारा हमारे (समे अन्यके नभन्तां) अन्य समस्त शत्रुगण नाशको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

[८३३] (यथा यथा कृपण्यति) जिस जिस प्रकारका अन्न उपासक चाहता है (अग्निः तत्तत् वयः दधे) अग्नि उस उस प्रकारका अन्न उसे प्रदान करता है । (ऊर्जाहुतिः वसूनां शं योः मयः दधे) बलकी आहुति देनेवाला अग्नि देशवासियोंके कल्याणके लिये कल्याणकारी सुख और रोगनाशक पदार्थोंको धारण करता है । (च विश्वस्यै देवहूत्यै, समे अन्यके नभन्तां) और सब देवताओंके यज्ञोंमें बुलाया जानेवाला अग्नि हमारे सब शत्रुओंका संहार करे ॥ ४ ॥

१ ऊर्जाहुतिः वसूनां शं योः मयः दधे– अपने बलकी आहुति देनेवाला अग्रणी वीर अपने देशवासियोंके लिए सुखकारक और रोगनाशक पदार्थ धारण करता है ।

[८३४] (सः अग्निः सहीयसा चित्रेण कर्मणा चिकेत) वह अग्नि, अपने अत्यधिक बलवाले अद्भुत कर्मसे जाना जाता है । (सः शश्वतीनां होता सः दक्षिणाभिः अभीवृतः प्रतीव्यं इनोति) और नित्यरूपसे रहनेवाले, देवोंको बुलानेवाला वह अग्नि अपनी बलवती शक्तियोंसे घिरा हुआ होकर आक्रमण करने योग्य शत्रुतक पहुँचता है । और अपने (समे अन्यके नभन्तां) समस्त छोटे मोटे शत्रुओंका नाश कर देता है ॥ ५ ॥

१ अग्निः सहीयसा कर्मणा चिकेत– वह अग्रणी अपने पराक्रम युक्त कर्मोंके द्वाराही पहचाना जाता है ।

भावार्थ — जो दूत पूर्णज्ञानी कल्याणकारी विविध विषय वसुओंका स्वामी और विद्वान् हो, उसे हमेशा घृत आदिसे परिपुष्ट करना चाहिए, ताकि वह देशकी सेवा चिरकालतक कर सके और देशके शत्रुओंका नाश कर सके ॥ ३ ॥

जो अग्रणी देशकी सेवामें अपने बलकी भी आहुति दे देता है, अर्थात् जो तन, मन, धनसे देशकी सेवा करता है, वह देशको हर प्रकारके रोगोंसे दूर रखकर सदा सुखदायक और समृद्ध रखता है । तथा देशमें जिस प्रकारके अन्नोंकी आवश्यकता होती, वैसा वैसा धान्य वह उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

किसी भी राष्ट्रका नेता अपने पराक्रमसे युक्त कर्मोंके कारणही प्रजाओंमें प्रसिद्ध होता है । और तभी वह अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर अपने शत्रुओंको परास्त करता है ॥ ५ ॥

८३५ अग्निर्जाता देवानामग्निर्वेद मर्तानामपीच्यम् ।
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते
स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥

८३६ अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा ।
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति
देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥

८३७ यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तम-
मग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥

अर्थ— [८३५] (अग्निः देवानां जाता) अग्नि देवोंके जन्मोंको जानता है । (अग्निः मर्तानां अपीच्यं वेद) अग्नि मनुष्योंके रहस्योंको जानता है । इसी प्रकार (सः अग्निः द्रविणोदाः) वह अग्नि ऐश्वर्यका देनेवाला है । तथा (अग्निर्नवीयसा सु आहुतः द्वारा व्यूर्णुते) अग्नि नये नये मन्त्रादि द्वारा अच्छी प्रकार आहुत होकर धनके द्वारोंको खोल देता है । ऐसे गुणोंवाले अग्निसे (समे अन्यके नभन्तां) समस्त शत्रु नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

१ अग्निः मर्तानां अपीच्यं वेद– अग्नि मनुष्योंके रहस्योंको जानता है ।

[८३६] (अग्निः देवेषु संवसुः) अग्नि देवोंके मध्यमें अच्छी प्रकार निवास करता है । (सः यज्ञियासु विक्षु) वह यज्ञ करनेवाले प्रजाओंके बीच यज्ञाग्निके रूपमें विद्यमान रहता है । (सः भूम विश्वं इव मुदा पुरुकाव्या पुष्यति) वह, भूमि जैसे विश्वको पुष्ट करती है, उसी तरह अति प्रसन्नतापूर्वक बहुतसे योग्य कार्योंको पूर्णरूपसे पुष्ट करता है । इस लिये (देवेषु देवः यज्ञियः) देवोंके मध्यमें दिव्यगुण युक्त अग्नि पूजाके योग्य होता है । ऐसे गुणोंसे युक्त अग्निके (समे अन्यके नभन्तां) समस्त शत्रुनाशको प्राप्त हों ॥ ७ ॥

१ मुदा पुरुकाव्या पुष्यति, देवेषु यज्ञियः– जो प्रसन्नतासे उत्तम कार्योंको करता है, वह देवोंमें पूज्य होता है ।

[८३७] (यः अग्निः सप्तमानुषः विश्वेषु सिन्धुषु श्रितः) जो अग्नि सात होताओं और समस्त नदियोंमें विद्यमान रहता है, तथा (त्रिपस्त्यं, मन्धातुः) भूमि, अन्तरिक्ष द्यौ वा उदर, हृदय और मूर्धा तीनों स्थानोंमें उपस्थित रहता हुआ ज्ञानी जनोंका धारण व रक्षण करता है : ऐसे (दस्युहन्तमं यज्ञेषु पूर्व्यं तं अग्निं आगन्म) अनिष्टकारी दुष्ट जनोंका सर्वोपरिनाशक व यज्ञमें सर्वश्रेष्ठ उस अग्निको हम प्राप्त करें । जिससे हमारे (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नाशको प्राप्त हों ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि मनुष्योंके सब जन्मोंको और उनके सब रहस्योंको जानता है । इसलिए उससे छिपकर कुछ भी काम नहीं किया जा सकता । मनमें सोची हुई बुरी बातको भी वह जान जाता है । इसीलिए जो उपासक उससे डरते हुए उसको आहुति प्रदान करते हैं, उनके लिए वह धनके द्वार खोल देता है और उनके सब शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

यह अग्नि देवोंमें अच्छी प्रकार निवास करता है । यज्ञ करनेवाले पुरुषोंके बीचमें वह यज्ञाग्निके रूपमें रहता है । जो ज्ञानी जन इस अग्निको प्रसन्न करना जानते हैं, उनके शरीरमें यह अग्नि प्रसन्नतासे रहता है । जो मनुष्य हर कामको प्रसन्नतासे करता है, रो रोकर नहीं, वह सब ज्ञानियोंमें पूजा जाता है और उसी परिश्रमीके सब शत्रु नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

यह अग्नि सभी नदियोंमें निवास करता है । तथा तीनों लोकोंमें रहनेवाला यह अग्नि ज्ञानी जनोंकी रक्षा करके उनका पालनपोषण करता है । यह शत्रुओंका अतिशय विनाशक है, इसीलिए यह अत्यन्त पूज्य है । जो अग्रणी अपने शत्रुओंका विनाश करता है, वह सर्वत्र पूजा जाता है ॥ ८ ॥

८३८ अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रीँरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो
विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

८३९ त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि ।
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥

[४०]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः । देवता:- इन्द्राग्नी । छन्दः- महापंक्तिः, २ शक्वरी, १२ त्रिष्टुप् ।)

८४० इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम् ।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चित् साहिषीमह्य-
ग्निर्वनेव वात इन्नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

अर्थ — [८३८] (कविः अग्निः त्रीणि विदथा त्रि धातूनि आ क्षेति) दूरदर्शी अग्नि तीनों तैजस् रूपसे तीनों जानने योग्य स्थानोंमें रहता है, निवास करता है। (दूतः विप्रः सः परिष्कृतः इह यक्षत्) देवोंका दूत बुद्धिमान् वह अग्नि शुद्ध होकर इस यज्ञमें देवोंको हव्य प्रदान करता है। (च नः पिप्रयत) और हमें भी तृप्त करता है (समे अन्यके नभन्तां) ऐसे अग्निके द्वारा हमारे समस्त शत्रु नाशको प्राप्त हों ॥ ९ ॥

१ विप्रः परिष्कृतः दूतः यक्षत्— ज्ञानी और शुद्ध, पवित्र दूत पूज्य होता है।

[८३९] हे (पूर्व्यः अग्ने) प्राचीन अग्ने ! (त्वं आयुषु एकः नः वस्वः इरज्यसि) तू अकेलाही सब मनुष्योंके ऐश्वर्यका स्वामी है। (देवेषु त्वं) देवोंमें भी तू सबसे बढकर है। (परिस्रुतः स्वसेतवः आपः त्वां परियन्ति) सब ओरसे बहनेवाली स्वयं बद्ध जलधारायें तुझको प्राप्त होती है। इस प्रकारके तुम्हारे द्वारा हमारे (समे अन्यके नभन्तां) समस्त शत्रु नाशको प्राप्त हों ॥ १० ॥

[४०]

[८४०] हे (सहन्ता इन्द्राग्नी) शत्रुओंके संहारक इन्द्र और अग्नि ! (युवं नः सु रयिं दासथः) तुम दोनों हमें उत्तम धन दो (येन) जिस धनकी सहायतासे हम (समत्सु) युद्धोंमें (दृळ्हा चित् वीळु) दृढ शत्रुसेनाको भी (वातः अग्निः वना इव) वायु और अग्नि जिस प्रकार वनको नष्ट कर देते हैं, उसी तरह (साहिषीमहि) विनष्ट करें (अन्यके समे नभन्तां) हमारे दूसरे शत्रु स्वयं नष्ट हो जायं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्नि पृथिवीमें भौतिक अग्निके रूपमें, अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें और द्युमें सूर्यके रूपमें रहता है। वह शुद्ध और प्रदीप्त होकर देवोंको हवि पहुंचानेका अपना काम मुस्तैदीसे करता है, इसीलिए वह सर्वत्र पूजा जाता है ॥ ९ ॥

मनुष्योंमें जितना ऐश्वर्य है, उन सबका यह अग्नि एकही स्वामी है। इसी कारण देवोंमें भी सर्वोत्तम है। सब ओरसे बहनेवाली नदियां भी इसी अग्निकी सेवा करती हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र अग्नि ! तुम दोनों हमें उत्तम धन दो, ताकि उस धनकी सहायतासे हम दृढसे दृढ शत्रुओंको नष्ट कर सकें और निर्बल शत्रु स्वयं ही नष्ट हो जायं ॥ १ ॥

+

८४१ नहि वां वव्रयामहे ऽथेन्द्रमिद् यजामहे शविष्ठं नृणां नरम् ।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये
गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

८४२ ता हि मध्यं भराणा-मिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते
सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

८४३ अभ्यर्च नभाकव-दिन्द्राग्नी यजसा गिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जग-दियं द्यौः पृथिवी मह्यु१-
-पस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

८४४ प्र ब्रह्माणि नभाकव-दिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत
इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

अर्थ- [८४१] हे इन्द्र और अग्ने ! (वां) तुम दोनोंका हम (नहि वव्रयामहे) तिरस्कार नहीं करते, (अथः इत्) अपितु (नृणां नरं) नेताओंमें सर्वोत्तम नेता तथा (शविष्ठं) सर्वश्रेष्ठ दलशाली (इन्द्रं यजामहे) इन्द्रकी पूजा करते हैं। (सः) वह इन्द्र (वाजसातये) अन्न आदि देनेके लिए (अर्वता) घोडेसे (नः कदा आ गमत्) हमारे पास कब आएगा ? (मेधसातये आ गमत्) यज्ञमें उपस्थित रहनेके लिए कब आएगा ? ताकि (अन्यके समे नभन्तां) हमारे दूसरे शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जाएं ॥ २ ॥

[८४२] (ता इन्द्राग्नी) वे दोनों इन्द्र और अग्नि (भराणां मध्यं अधिक्षितः) संग्रामके मध्यमें निवास करते हैं। हे (नरा) नेताओ ! (कवित्वना कवी) अपने ज्ञानसे ज्ञानी बने हुए (पृच्छ्यमाना) सबके द्वारा पूछे जानेवाले (ता उ) वे तुम दोनों (सखीयते) तुमसे मित्रता चाहनेवाले अपने उपासकके हितके लिए (धीतं सं अश्नुतं) उसके कर्मको स्वीकार करो तथा (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सब शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ३ ॥

[८४३] हे मनुष्य ! तू (नभाकवत्) नभाक ऋषिके समान (यजसा गिरा) यज्ञ और स्तुतिसे (इन्द्राग्नी अभ्यर्च) इन्द्र और अग्निकी स्तुति कर, (ययोः) जिन देवोंमें (इदं विश्वं जगत्) यह सारा विश्व समाया हुआ है, (इयं मही द्यौः पृथ्वी) यह महान् द्युलोक और पृथिवीलोक समाये हुए हैं, जो दोनों (उपस्थे वसु बिभृतः) अपने पास धनको धारण करते हैं, उनके कारण (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ४ ॥

[८४४] उपासक (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र और अग्निके लिए (नभाकवत्) नभाक ऋषिके समान (ब्रह्माणि प्र इरज्यत) स्तोत्रोंको प्रेरित करता है (या) दोनों देवोंने (सप्त बुध्नं जिह्मबारं अर्णवं) सात मूलवाले ढंके हुए द्वारवाले सागरको (अप ऊर्णुत) खोला। (इन्द्रः ओजसा ईशान) इन्द्र अपने ओज और तेजकी सहायतासे सब पर शासन करता है। (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ५ ॥

भावार्थ- हे इन्द्र और अग्ने ! हम तुम दोनोंका अपमान कभी न करें, अपितु इन दोनों देवोंकी सदा पूजा करें। वह इन्द्र हमारे पास आए, ताकि हमारे शत्रु स्वयमेव नष्ट हो जाएं ॥ २ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों ही देव सदा युद्धमें निवास करते हैं। सदा शत्रुओंसे युद्ध करते हैं। वे अपने ज्ञानसे ज्ञानी हैं, इसीलिए सब उनकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्र अग्नि इन दोनों देवोंमें यह सारा जगत् समाया हुआ है, ये द्युलोक और पृथ्वीलोक भी समाये हुए हैं। ऐसे इन देवोंकी अर्चना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंने मन्द द्वारवाले सागर रूपी मेघोंके मुंहको खोल दिया, तो पानीकी धारा निकलने लगी। इन दोनों देवोंमें इन्द्र अपने तेजके कारण सब पर शासन करता है ॥ ५ ॥

८४५ अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय ।
वयं तदस्य संभृतं वस्विन्द्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥
८४६ यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥
८४७ या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः ।
इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो
यान् त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥
८४८ पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः ।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

अर्थ — [८४५] हे इन्द्र ! (पुराणवत्) पहलेके समानही तू अब भी (व्रततेः गुष्पितं इव) बेलसे ढकी हुई डालको जिस प्रकार काटते हैं, उसी तरह (अपि) तू भी शत्रुओंको (वृश्च) काट । (दासस्य ओजः दंभय) दासके तेजको नष्ट कर । (वयं) हम (इन्द्रेण) इन्द्रकी सहायतासे (अस्य) इस असुरके द्वारा (संभृतं तत् वसु) छिपाकर रखे हुए उस धनको (विभजेमहि) प्राप्त करें (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ६ ॥

[८४६] (यत्) जब (इमे जनाः) ये मनुष्य (तना गिरा) अपने शरीर तथा वाणीसे (इन्द्राग्नी विह्वयन्ते) इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं, तब (वयं) हम (अस्माकेभिः नृभिः) अपने वीर सैनिकोंकी सहायतासे (पृतन्यतः सासह्याम) शत्रुसेनाका पराभव करें । तथा (वनुष्यतः) हमारी भक्ति करनेवालोंकी (वनुयाम) हम भी भक्ति करें । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ७ ॥

[८४७] (या श्वेतौ) जो सत्त्वगुणसे युक्त इन्द्र और अग्नि (द्युभिः) अपने तेजोंसे (दिवः अवः) द्युलोकसे नीचे तथा (उप) उसके पास तथा (उत्) ऊपर भी (चरतः) संचार करते हैं, (यान् सिन्धवः) जिन नदियोंको इन देवोंने (सीं बन्धात् अमुञ्चतां) चारों ओरके बंधनसे छुडाया, उन्हीं (इन्द्राग्न्योः) इन्द्र और अग्निके (कर्म अनु) कर्मके अनुसार (उहानाः) हवि देनेवाले यज्ञ कर्ता (यन्ति) चलते हैं । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ८ ॥

[८४८] हे (हरिवः सूनो इन्द्र) वज्रवाले तथा सर्वोत्पादक इन्द्र ! (हिन्वस्य वीरस्य वस्वः आ पृचः) तू तुझे प्रसन्न करनेवाले वीरको धन प्रदान कर । (ते उपमातयः पूर्वीः) तेरी उपमायें बहुत हैं, (उत) और (प्रशस्तयः पूर्वीः) तेरी प्रशंसायें भी अनेक हैं, (याः नः धियः साधन्त) जिन्होंने हमारी बुद्धियोंको उत्तम बनाया । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ९ ॥

भावार्थ — हे इन्द्र ! जिस तरह बेलाओंसे अच्छी तरह ढकी हुई डालको भी लोग काटते हैं, उसी तरह तू शक्तिसे अच्छी तरह शक्तिवाले शत्रुओंको भी काट डाल । इन्द्रकी सहायतासे हम असुरोंके धनको आपसमें बांट लें ॥ ६ ॥

हम अपने तन और मनसे इन्द्र–अग्निकी स्तुति करते हुए अपने वीरोंकी सहायतासे शत्रुओंका पराभव करें, पर जो हमसे प्रेम करते हैं, उनसे हम भी प्रेमपूर्वक व्यवहार करें ॥ ७ ॥

इन्द्र और अग्नि दोनों देव सत्त्वगुणसे युक्त हैं तथा ये द्युलोकमें सर्वत्र संचार करते हैं । ये दोनों देव नदियोंको प्रवाहित होनेके लिए बन्धनसे मुक्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे वज्रधारी तथा सर्वोत्पादक इन्द्र ! तू तुझे प्रसन्न करनेवाले वीरको धन प्रदान कर । तेरी उपमायें तथा प्रशंसायें बहुत हैं । तेरी प्रशंसा करनेसे हमारी बुद्धि उत्तम हुई है और हमारे सब शत्रु नष्ट हो गए हैं ॥ ९ ॥

८४९ तं शिशीता सुवृक्तिभि- स्त्वेषं सत्वानमृग्मियम् ।
उतो नु चिद् य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति
जेषत् स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥
८५० तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम् ।
उतो नु चिद् य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेद-
त्यजैः स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ ११ ॥
८५१ एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १२ ॥

[४१]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः । देवता- वरुणः । छन्दः- महापङ्क्तिः ।)

८५२ अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्यो ऽर्चा विदुष्टरेभ्यः ।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

अर्थ— [८४९] (उत) और (यः) जिस इन्द्रने (ओजसा) अपने तेजसे (शुष्णस्य अण्डानि भेदति) शुष्ण असुरकी सन्तानोंको नष्ट किया, तथा (स्वर्वतीः अपः जेषत्) शब्द करनेवाली या सुख देनेवाली नदियोंको जीता, (तं त्वेषं सत्वानं ऋग्मियं) उस तेजस्वी, बलशाली और ऋचाओंके द्वारा स्तुत्य इन्द्रको (सुवृक्तिभिः) उत्तम वचनोंसे (सं शिशीत) उत्तम रीतिसे तेजस्वी करो । (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १० ॥

[८५०] (उत) और (यः ओहते) जो सर्वत्र संचार करता है, तथा (शुष्णस्य आण्डा भेदति) शुष्ण असुरकी सन्तानोंको नष्ट करता है, (स्वर्वतीः अपः अजैः) सुख देनेवाले जलोंको जीतता है, (तं सु अध्वरं सत्यं सत्वानं ऋग्मियं) उस उत्तम मार्गके प्रदर्शक, अविनाशी, बलशाली और स्तुत्य इन्द्रको (शिशीत) तेजस्वी करो, (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ११ ॥

[८५१] (एव) इस प्रकार मैंने (इन्द्राग्निभ्यां) इन्द्र और अग्निके लिए (पितृवत् मन्धातृवत् अंगिरस्वत्) पिताके समान, मान्धाताके समान और अंगिराके समान (नवीयः अवाचि) नवीन स्तुति की है; वे दोनों देव (त्रिधातुना शर्मणा) तीन धातुओंसे समृद्ध अथवा तीन मंजिलोंवाले घरसे (अस्मान पातं) हमारी रक्षा करें, और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्योंके स्वामी हों ॥ १२ ॥

[४१]

[८५२] हे स्तोता ! (यः) जो वरुण (धीता) अपने कर्मसे (मानुषाणां पश्वः) मनुष्योंके पशुओंकी (गाः इव रक्षति) गायोंके समान रक्षा करता है, (अस्मा प्रभूतये वरुणाय) उस बहुत धनवाले वरुणके लिए तथा (विदुष्टरेभ्यः मरुद्भ्यः अर्च) अत्यन्त विद्वान् मरुतोंकी पूजा कर, (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने अपने तेजसे शुष्ण असुरकी सन्तानोंको भी मारा, तथा नदियोंको बहनेके लिये मुक्त किया। इसी तरह शत्रुओंको कुल और वंशसहित नष्ट कर देना चाहिए, ताकि वे सर्वथा नष्ट हो जाएं ॥ १० ॥

शुष्ण असुरकी सन्तानोंको नष्ट करनेवाले तथा सुखदायक जलको प्रवाहित करनेवाले, सत्य मार्गके प्रदर्शक तथा स्वयं भी सत्यका पालन करनेवाले इन्द्रको तेजस्वी बनाना चाहिए ॥ ११ ॥

इन्द्र और अग्निकी उत्तम और नवीन स्तुति करनी चाहिए । हमारे घर सोना, चांदी और तांबा इन तीन धातुओंसे भरपूर हो, और तीन मंजिलोंवाला हो । इस प्रकार ऐश्वर्योंके स्वामी होकर रहें ॥ १२ ॥

. जिस तरह मनुष्य अपने पशुओंकी रक्षा करता है, उसी तरह वरुण देव मनुष्योंकी रक्षा करते हैं । अतः उनकी पूजा-अर्चा करनी चाहिए ताकि उनकी कृपासे हमारे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १ ॥

८५३ तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभि—र्यः सिन्धूनामुपोदये
सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥
८५४ स क्षपः परि षस्वजे न्युस्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रत—मुषस्तिस्रो अवर्धयन् नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥
८५५ यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
स माता पूर्व्यं पदं तद् वरुणस्य सप्त्यं
स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
८५६ यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या ।
स कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

अर्थ— [८५३] (यः सिन्धूनां उप उदये) जो नदियोंके पास (सप्तस्वसा मध्यमः सः) सात बहिनोंवाला अन्तरिक्षस्थानीय वरुण है, (तं) उस वरुणकी (समना गिरा) मनःपूर्वक की गई स्तुतिसे, (पितॄणां च मन्मभिः) पितरोंके स्तोत्रोंसे तथा (नाभाकस्य प्रशस्तिभिः) नाभाक ऋषिकी प्रशंसाओंसे स्तुति करता हूं। (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ २ ॥

[८५४] (सः) वह वरुण (क्षपः परिषस्वजे) रात्रियोंको संयुक्त करके रखता है, (दर्शतः उस्रः) दर्शनीय तथा त्यागशील वह वरुण (मायया) अपनी कुशलतासे (विश्वं परि दधे) सम्पूर्ण जगत्का निर्माण करता है। (वेनीः) ऐश्वर्य आदिकी कामना करनेवाले लोग (तस्य व्रतं) उस वरुणके कर्मको (तिस्रः उषः) तीन दिन तक (अनु अवर्धयन्) बढाते हैं। (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ३ ॥

[८५५] (यः दर्शतः) जिस दर्शनीय वरुणने (पृथिव्यां अधि) पृथिवीके ऊपर (ककुभः निधारयः) दिशाओंको स्थापित किया, वही (माता) सबका निर्माता है, (वरुणस्य तत् पूर्व्यं पदं) वरुणका वह उत्तम स्थान (सप्त्यं) प्राप्य है (इर्यः सः) सबका स्वामी वह वरुण (गोपाः इव) गोपालके समान सबका रक्षक है। उसकी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ४ ॥

[८५६] (यः) जो वरुण (भुवनानां धर्ता) भुवनोंका धारण करनेवाला है, (यः) जो वरुण (उस्राणां) किरणोंके (अपीच्या गुह्या नामानि) अप्रकाशित और छिपे हुए नामोंको (वेद) जानता है। (कविः सः) ज्ञानी वह वरुण (काव्या पुरु रूपं द्यौः इव पुष्यति) अपने ज्ञानसे अपने अनेक रूपोंको द्युलोकके समान पुष्ट करता है। उसकी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ५ ॥

भावार्थ— वरुण सात किरणोंसे युक्त है, और अन्तरिक्षमें रहता है। इस वर्णन परसे प्रतीत होता है कि वरुण अन्तरिक्ष स्थानीय विद्युत् है। विद्युत्में स्थित सात रंगकी किरणेंही इस वरुणकी सात बहिनें हैं ॥ २ ॥

वह वरुण रात्रियोंको उत्तम बनाता है, और अपनी कुशलतासे सम्पूर्ण जगत्का निर्माण करता है। ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उस वरुणको हर तरहसे बढाते हैं ॥ ३ ॥

इसी वरुणने पृथिवीकी दिशाओंको स्थापित किया, उसीने सबका निर्माण किया। उस वरुणका स्थान उत्तम और सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य है। सबका स्वामी होनेके कारण वह वरुण सबका रक्षक भी है ॥ ४ ॥

यह वरुण देव सभी भुवनोंको धारण करनेवाला है। वह ज्ञानी है। वह अपने ज्ञानसे अनेक तरहके रूप धारण करता है ॥ ५ ॥

८५७ यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे
युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥

८५८ य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम् ।
परि धामानि मर्मृशद् वरुणस्य पुरो गये
विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥ ७ ॥

८५९ स समुद्रो अपीच्य--स्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे ।
स माया अर्चिना पदा ऽस्तृणान्नाकमारुह--न्नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥

८६० यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतु--र्वरुणस्य ध्रुवं सदः
स सप्तानामिरज्यति नभन्तामन्यके समे ॥ ९ ॥

अर्थ-- [८५७] (यस्मिन्) जिस वरुणमें (चक्रे नाभिः इव) चक्रमें नाभिके समान (विश्वानि काव्या श्रिता) सभी ज्ञान आश्रित हैं, उस (त्रितं) तीनों लोकोंका विस्तार करनेवाले वरुणको (जूती सपर्यत) शीघ्र ही स्तुति अर्पण करो, क्योंकि (गावः व्रजेन) गायें जिस तरह बाडेमें बांधी जाती हैं, उसी तरह शत्रुओंने (संयुजे युजे) अपने रथके जुएमें (अश्वान् अयुक्षत) अश्वोंको जोड लिया है ॥ ६ ॥

[८५८] (यः) जो वरुण (विश्वा जातानि) सम्पूर्ण पदार्थोंको (अत्कः) कवचके समान (आसु आशये) आच्छादित किए रहता है, वह (एषां धामानि परि मर्मृशत्) इन देवोंके सामर्थ्यको बढाता है, (पुरः गये) युद्धमें (विश्वे देवाः) सभी देव (वरुणस्य व्रतं) वरुणके कर्मका (अनु) अनुसरण करते हैं। (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ७ ॥

[८५९] (समुद्रः अपीच्यः सः) समुद्रोंका राजा तथा सर्वव्यापक वह वरुण (तुरः) शीघ्र ही (द्यां इव रोहति) सूर्यकी तरह ऊपर चढ जाता है। (यत् आसु यजुः दधे) जब वह इन दिशाओंमें कर्म स्थापित करता है, तब (सः) वह (मायाः) असुरोंकी मायाको (अर्चिना पदेन) प्रकाशमान् स्थानसे (अस्तृणात्) समाप्त कर देता है। (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ८ ॥

[८६०] (अधिक्षितः यस्य) अन्तरिक्षमें रहनेवाले जिस वरुणके (श्वेता विचक्षणा) शुभ्र तेजने (तिस्रः भूमिः त्रिः उत्तराणि पिप्रतुः) तीन भूमि और तीन द्युलोकको विस्तृत किया, उस (वरुणस्य) वरुणका (सदः ध्रुवं) स्थान अचल है, (सः सप्तानां इरज्यति) वह वरुण नदियों पर शासन करता है। (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ९ ॥

भावार्थ-- जिस प्रकार रथचक्रकी नाभिमें-उस चक्रके सभी अरे आश्रित रहते हैं, उसी तरह इस वरुणमें सभी ज्ञान आश्रित हैं। इसी वरुणने तीनों लोकोंका विस्तार किया है ॥ ६ ॥

जिस तरह मनुष्य कवचसे अपने सारे शरीरको आच्छादित करता है, उसी तरह वरुणने इस संसारको व्यापकर रखा है। वही देव सब देवोंके सामर्थ्यको बढाता है, इसलिए सभी देव वरुणके कर्मका अनुसरण करते हैं ॥ ७ ॥

यह वरुणदेव समुद्रोंका राजा, सर्व व्यापक तथा सूर्यकी तरह प्रकाशमान् है। वह चारों दिशाओंमें कर्मोंको स्थापित करता है और शत्रुओंके पराक्रमोंको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

[illegible]के शुभ्र तेजके कारण ही भूमिके और द्युलोकके तीन-तीन स्तरोंको विस्तृत किया। इस वरुणका स्थान [illegible] स्थान पर बैठकर वह सभी नदियों पर शासन करता है ॥ ९ ॥

८६१ यः श्वेताँ अधिनिर्णिज॑श्चक्रे कृष्णाँ अनु॑ व्रता ।
स धाम॑ पूर्व्यं म॑मे यः स्कम्भेन॑ वि रोद॑सी
अ॒जो न द्यामधा॑रय॒न्नभ॑न्तामन्यके स॑मे ॥ १० ॥

[४२]

(ऋषिः- नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा । देवताः- १-३ वरुणः, ४-६ अश्विनौ ।
छन्दः- १-३ त्रिष्टुप्, ४-६ अनुष्टुप् ।)

८६२ अस्त॑भ्नाद् द्यामसु॑रो वि॒श्ववे॑दा अमि॑मीत वरि॒माणं॑ पृथि॒व्याः ।
आसी॑दद् विश्वा॒ भुव॑नानि स॒म्राड् विश्वेत् ता॒नि वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ ॥ १ ॥

८६३ ए॒वा व॑न्दस्व॒ वरु॑णं बृ॒हन्तं॑ नम॒स्या धीर॑म॒मृत॑स्य गो॒पाम् ।
स नः॒ शर्म॑ त्रि॒वरू॑थं॒ वि यं॑सत् पा॒तं नो॑ द्यावापृथिवी उ॒पस्थे॑ ॥ २ ॥

८६४ इ॒मां धियं॒ शिक्ष॑माणस्य देव॒ क्रतुं॒ दक्षं॑ वरुण॒ सं शि॑शाधि ।
ययाति॒ विश्वा॑ दुरि॒ता तरे॑म सु॒तर्मा॑णम॒धि नावं॑ रुहेम ॥ ३ ॥

अर्थ— [८६१] (यः) जिस वरुणने (व्रता अनु) अपने कर्मोंके अनुसार अपने (निर्णिजः) तेजोंको (श्वेतान् कृष्णान् चक्रे) सफेद और काला बनाया, (यः) जिस वरुणने (अजः द्यां न) सूर्य जिस तरह द्युलोकको धारण करता है, उसी तरह (स्कंभेन रोदसी वि धारयन्) स्कंभसे द्यु और पृथिवीको धारण किया, (सः पूर्व्यं धाम ममे) उसने उत्कृष्ट स्थानका निर्माण किया, उसकी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ १० ॥

[४२]

[८६२] (विश्ववेदाः असुरः) सबको जाननेवाले, प्राणोंके दाता वरुणने (द्यां अस्तभ्नात्) द्युलोकको स्थिर किया, (पृथिव्याः वरिमाणं अमिमीत) पृथिवीकी सीमाको नापा । उस (सम्राट्) तेजस्वी वरुणने (विश्वा भुवनानि आसीदत्) सम्पूर्ण भुवनों पर आधिपत्य किया, (तानि विश्वा व्रतानि वरुणस्य इत्) ये सभी पराक्रम वरुणके ही हैं ॥ १ ॥

[८६३] हे मनुष्य ! (बृहन्तं वरुणं एवा वन्दस्व) महान् वरुणको इस प्रकार वन्दन करो, (अमृतस्य गोपां) अमृतकी रक्षा करनेवाले तथा ((धीरं) धैर्यशाली वरुणको (नमस्य) नमन करो । (सः) वह वरुण (नः) हमें (त्रिवरूथं शर्म यंसत्) तीन मंजिलोंवाला घर प्रदान करे तथा (उपस्थे नः) पासमें ही वर्तमान हमारी (द्यावा-पृथिवी पातं) द्युलोक और पृथिवीलोक रक्षा करें ॥ २ ॥

[८६४] हे (देव वरुण) तेजस्वी वरुण देव (शिक्षमाणस्य) दान देनेवाले मेरी (इमां धियं) इस बुद्धिको (क्रतुं दक्षं) क्रियाशीलता तथा चतुरताको (सं शिशाधि) तीक्ष्ण कर । (यया) जिस बुद्धिकी सहायतासे हम (विश्वा दुरिता तरेम) सम्पूर्ण संकटोंको पार कर जाएं तथा (सुतर्माणं नावं अधि रुहेम) उत्तमतासे पार करानेवाली नाव पर हम चढें ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह वरुण अपने कर्मोंके अनुसार अपने तेजको दिनके समय सफेद और रातके समय काला बनाता है तथा अपनी धारक शक्तिसे ही द्युलोकको धारण करता है, इसीलिए उसका स्थान उत्तम है ॥ १० ॥

सर्वज्ञ तथा प्राणस्वरूप परमेश्वरने द्युलोकको स्थिर किया, उसीने पृथ्वीकी सीमा नापी, वही सारे भुवनोंका स्वामी है । ये सब पराक्रम वरुणके ही हैं ॥ १ ॥

वरुण अमृतकी रक्षा करनेवाला तथा धैर्यशाली है, उसे नमन करना चाहिए । ताकि वह हम पर प्रसन्न होकर हमें तीन मंजिलोंवाला घर प्रदान करे ॥ २ ॥

हे वरुण देव ! दान देनेवाले मेरी बुद्धिको तू उत्तम कर तथा मेरी क्रियाशीलता और चतुरताको भी बढा । हम अपनी उत्तम बुद्धिकी सहायतासे सभी संकटोंको पार कर जाएं ॥ ३ ॥

८६५ आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥
८६६ यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥
८६७ एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥

[४३]

(ऋषिः- विरूप आङ्गिरसः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

८६८ इमे विप्रस्य वेधसो ऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमास ईरते ॥ १ ॥
८६९ अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥ २ ॥

अर्थ— [८६५] हे (नासत्या अश्विना) सत्यके प्रवर्तक अश्विदेवो ! (सोमपीतये) सोमपानके लिए (वां) तुम दोनोंके लिए (विप्राः ग्रावाणः) ज्ञानी और सोम कूटनेके पत्थर (आ अचुच्यवुः) रस टपकाते रहे हैं। तुम्हारी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ४ ॥

[८६६] हे (नासत्या अश्विना) सत्यके प्रवर्तक अश्वि देवो ! (यथा विप्रः अत्रिः) जैसे ऋषि अत्रिने (वां गीर्भिः अजोहवीत्) तुम्हें भाषणों द्वारा बुलाया था, तथा तुम्हारी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे शत्रु नष्ट हो गए ॥ ५ ॥

[८६७] (नासत्या अश्विना) हे सत्यके प्रवर्तक अश्वि देवो ! (यथा मेधिराः अहुवन्त:) जैसे विद्वानोंने तुम्हें बुलाया था, (एव) वैसे ही (वां ऊतये अह्वे) तुम्हें रक्षा करनेके लिए बुलाता हूँ । तुम्हारी कृपासे (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे सभी शत्रु नष्ट हो जाएं ॥ ६ ॥

[४३]

[८६८] (इमे स्तोमासः) ये स्तुति करनेवाले जन (विप्रस्य वेधसः अस्तृतयज्वनः अग्नेः) मेधावी विद्वान्, जगत्के कर्ता, दानशील, यज्ञ कर्ताके नाश न करनेवाले अग्निके लिए (गिरः ईरते) वेदवाणीका उच्चारण करते हैं ॥ १ ॥

[८६९] हे (जातवेदः विचर्षणे अग्ने) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले सर्वज्ञ, सर्व प्रकाशक अग्ने ! (अस्मै प्रति हर्यते ते) इस प्रत्येक जीवको चाहनेवाले तेरे लिए, (सुष्टुतिं जनामि) मैं सुन्दर स्तोत्र बोलता हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सत्यका पालन करनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनोंको प्रसन्न करनेके लिए ज्ञानी सोम कूटनेके पत्थरोंसे पीसकर सोमरस प्रदान करते हैं । तुम्हारी कृपा प्राप्त करके वे ज्ञानी अपने शत्रुओंको नष्ट करें ॥ ४ ॥

हे सत्यके पालक अश्वि देवो ! तुम्हें जैसे अत्रि ऋषिने बुलाया था, तथा जैसे ज्ञानियोंने बुलाया था, उसी प्रकार हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम्हारी हमपर कृपा हो और हमारे शत्रुओंका नाश हो ॥ ५-६ ॥

जो सब पदार्थोंको जाननेवाला, अपनी प्रजाओंके सब कामोंको देखनेवाला और अपनी प्रजाओंको चाहनेवाला अग्रणी होता है, उस ज्ञानी और दानशील पुरुषकी आवाज देशमें सर्वत्र गूंजती है ॥ १-२ ॥

८७० आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः । दद्भिर्वनानि बप्सति ॥ ३ ॥
८७१ हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्नयः ॥ ४ ॥
८७२ एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत । उषसामिव केतवः ॥ ५ ॥
८७३ कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः । अग्निर्यद् रोधति क्षमि ॥ ६ ॥
८७४ धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति । पुनर्यन् तरुणीरपि ॥ ७ ॥
८७५ जिह्वाभिरह नन्नमदर्चिषा जञ्जणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥ ८ ॥
८७६ अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥ ९ ॥
८७७ उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम् । निंसानं जुह्वो मुखे ॥ १० ॥

अर्थ— [८७०] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव तिग्माः त्विषः) तेरी तीक्ष्ण और दीप्तिमान् ज्वालायें (आरोका इव) प्रकाशकी तरह (दद्भिः वनानि बप्सति) अपने दांतोंसे जंगलोंका भक्षण करती हैं ॥ ३ ॥

[८७१] (हरयः धूमकेतवः) रसोंको हरनेवाली, धूमरूप ध्वजावाली (वातजूताः अग्नयः) वायुसे प्रेरित हुई अग्नियां (द्यवि वृथक् उप यतन्ते) अन्तरिक्षमें अलग-अलग रूपसे गमन करती हैं ॥ ४ ॥

[८७२] (एते त्ये अग्नयः) ये वे अग्नियां पृथक् रूपसे प्रज्वलित हो करके (उषसां इव केतवः) उषाकालमें प्रकट होनेवाली ध्वजाओंके समान (समदृक्षत) दर्शनीय होती हैं ॥ ५ ॥

[८७३] (जातवेदसः अग्निः) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाला अग्नि (यत् क्षमि रोधति) जब भूमिपर जाता है, तब जानेके पश्चात् (प्रयाणे) लौटने पर (पत्सुतः रजांसि कृष्णा) पत्ते धूली आदिको काले रंगसे युक्त कर देता है ॥ ६ ॥

[८७४] (अग्निः ओषधीः धासिं कृण्वानः बप्सत्) अग्नि नाना प्रकारकी औषधियोंको अन्न मानकर उन्हें खाकर भी (न वायति) तृप्त नहीं होता, अपितु (पुनः अपि तरुणीः यन्) फिर भी तरुणावस्था प्राप्त करके औषधियोंमें व्याप्त होता है ॥ ७ ॥

[८७५] (अग्निः जिह्वाभिः अह नन्नमत्) अग्नि वनस्पतियोंको अपनी जिह्वाओंसे चाटता हुआ (अर्चिषा जञ्जणाभवन् वनेषु रोचते) स्वतेजसे अत्यधिक प्रदीप्त होता हुआ जंगलोंमें सुशोभित होता है ॥ ८ ॥

[८७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव सधिः अप्सु) तेरा मेघस्थ जलोंके अन्दर प्रवेश है (सः ओषधीः अनुरुध्यते) वह तू औषधियोंको प्राप्त होता है, और (पुनः गर्भे सन् जायसे) फिर गर्भमें होकर उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

[८७७] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव तत् अर्चिः) तेरी वह ज्वाला (घृतात् आहुतं) घृतसे आहुति प्राप्त करके (जुह्वः मुखे निंसानं उत् रोचते) घृतपूर्ण चमचके मुखको चाटकर अत्यन्त सुशोभित होती है ॥ १० ॥

भावार्थ— अग्निकी किरणें रसोंका ग्रहण करती हैं, धुंएसे पहचानी जाती हैं, तथा वायुसे प्रेरित होती हैं, अन्तरिक्षमें चलती हैं। अग्निकी ये किरणें समिधाओंको उसी तरह खा जाती हैं, जिस प्रकार प्रकाश अन्धकारको ॥ ३-४ ॥

उषःकालमें ये अग्नियां प्रज्वलित होती हैं, इसलिए मानो ये अग्नियां उषःकालके आगमनकी सूचना देनेवाली उसकी ध्वजायें हैं। जब यह अग्नि प्रदीप्त होकर भूमिपर चलता है, तब इसके जानेका पीछेका मार्ग काला पड जाता है ॥५-६॥

यह अग्नि काष्ठोंमें ही रहता है अर्थात् लकडियोंमें व्याप्त रहता है, पर उन्हीं लकडियोंको वह अपना भोजन मानकर खाता भी है, पर खूब खाकर भी तृप्त नहीं होता, इसके विपरीत उन काष्ठोंको अपनी जिह्वाओंसे चाटता हुआ प्रदीप्त होता है और पहलेकी अपेक्षा ज्यादा तरुण ही होता है ॥ ७-८ ॥

यह अग्नि मेघमें रहता है और वर्षाकी बूंदोंके द्वारा वह इस पृथ्वी पर आता है, वर्षाको जब वनस्पतियां पीती हैं, तब उस पानीके द्वारा यह वनस्पतियोंमें आकर उनके अन्दर प्रविष्ट हो जाता है और उनके गर्भमें जाकर निवास करता है, फिर वही अग्नि अरणियों द्वारा अपने गर्भसे बाहर प्रकट किया जाता है, तब वह प्रदीप्त होकर घृतसे भरे चमचका मुंह चाटता है, अर्थात् प्रदीप्त अग्निमें चमचेसे घीकी आहुतियां दी जाती हैं ॥ ९-१० ॥

×

८७८ उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ११ ॥
८७९ उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिद्भिरीमहे ॥ १२ ॥
८८० उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥ १३ ॥
८८१ त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन् त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥ १४ ॥
८८२ स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् । अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ १५ ॥
८८३ अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

अर्थ— [८७८] (उक्षान्नाय, वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे अग्नये) जलको रससे सिंचित करनेवाले तथा जलको रमणीय बनानेवाले सोम पीठवाले, जगत् विधाता अग्निकी (स्तोमैः विधेम) स्तोत्रोंसे उपासना करते हैं। ११॥

[८७९] (उत होतः वरेण्यक्रतो अग्ने) और हे देवोंके बुलानेवाले सर्व श्रेष्ठ ज्ञानवान् अग्ने ! (त्वा वयं) तुझको हम (नमसा समिद्भिः ईमहे) नम्रतापूर्वक समिधाओंसे प्रज्वलित कर स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥

[८८०] (उत शुचे आहुत अग्ने) हे स्वभावसेही शुद्ध, बुलाये जानेवाले अग्ने ! हम लोग (भृगुवत् मनुष्वत् अङ्गिरस्वत् हवामहे) पापोंको दग्ध करनेमें समर्थ तपस्वी जनोंके समान, मननशील ज्ञानी पुरुषोंके समान और देहमें संचार करनेवाले रसोंके ज्ञाता तेजस्वी लोगोंके सदृश होकर तुमको बुलाते हैं ॥ १३ ॥

[८८१] जिस प्रकार (विप्रः विप्रेण) विद्वान पुरुष विद्वान्से मिलकर अधिक ज्ञानका प्रकाश करता है। (सन् सता) सज्जन पुरुष, सज्जन लोगोंसे मिलकर प्रसन्न होता है। और (सखा सख्या) स्नेही मित्रसे स्नेहवान् जन मिलकर अधिक हर्षित होता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अग्निना हि) तुम भी अपने सदृश दूसरे अग्निसे मिलकर अधिक प्रकाशमान होते हो ॥ १४ ॥

१ विप्रः विप्रेण सन् सता, सखा सख्या— ज्ञानी ज्ञानीसे, सज्जन सज्जनसे और स्नेही अपने स्नेहीसे मिलकर प्रसन्न होता है।

[८८२] हे (अग्ने) अग्ने ! (स त्वं) वह प्रसिद्ध तू (विप्राय दाशुषे) मेधावी हवि प्रदान करनेवालेके लिये (सहस्रिणं रयिं) सहस्रोंकी संख्यासे युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीं इषं देहि) पुत्र पौत्रादि सहित अन्न प्रदान कर ॥ १५ ॥

[८८३] हे (भ्रातः सहस्कृत, रोहिदश्व, शुचिव्रत अग्ने) हे भ्रातृवत् स्नेहकारिन् , हे बलशाली, हे तेजस्वी ज्वालाओंवाले ! हे पवित्र व्रत धारिन् ! तू (मे इमं स्तोमं जुषस्व) मेरे इस स्तुति वचनको प्रेमपूर्वक स्वीकार कर ॥१६॥

भावार्थ— यह अग्नि सब धान्योंको रससे सिंचित करता है। यह अग्निही सूर्य और चन्द्रका रूप धारण कर धान्यों और वनस्पतियोंमें रस भरता है। इस प्रकार उन्हें रमणीय बनाता है। ऐसे अग्निको सब समिधाओंसे प्रज्वलित करते हैं ॥ ११-१२ ॥

समान शील स्वभाववालोंकी परस्पर संगति उत्तम होती है। विद्वान्की मूर्खके साथ, सज्जनकी दुष्टके साथ कभी संगति नहीं बैठ सकती। अपने समान शील स्वभाववालोंके साथ बैठकरही मनुष्य प्रकाशमान् होता है। उसी प्रकार एक अग्नि दूसरे अग्निके साथ मिलकर और ज्यादा प्रकाशित होता है। तब उसकी तपस्वीजन, मननशील ज्ञानी उपासना करते हैं ॥ १३-१४ ॥

अग्रणीको चाहिए कि वह सबके साथ भाईके समान स्नेह करनेवाला, बलयुक्त और तेजस्वितासे सम्पन्न बने, उसके द्वारा किए जानेवाले कर्म पवित्र हों, तथा वह अपने राष्ट्रके विद्वानोंको बहुत धन देकर उनका पालन पोषण करे ॥१५-१६॥

८८४ उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥
८८५ तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥
८८६ अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः । अद्मसद्याय हिन्विरे ॥ १९ ॥
८८७ तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् । वह्निं होतारमीळते ॥ २० ॥
८८८ पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे ॥ २१ ॥
८८९ तमीळिष्व य आहुतो ऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृणवद्धवम् ॥ २२ ॥

अर्थ— [८८४] (उत अग्ने) और भी हे अग्ने ! (प्रतिहर्यते गोष्ठं गाव इव) पुकारनेवाले और माताको चाहनेवाले बछडेकी तरफ जिस तरह गायें भागती हैं, उसी प्रकार (मम स्तुतः त्वा आशत) मेरी स्तुतियाँ तुझको प्राप्त हों ॥ १७ ॥

[८८५] हे अग्नेः) हे अग्ने ! हे (अङ्गिरस्तम) प्राणोंकी विद्याको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ (ताः विश्वाः सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम प्रजायें (कामाय) कामना करने योग्य (तुभ्यं) तेरी अलग अलग रीतिसे पूजा करता हैं ॥ १८ ॥

[८८६] (मनीषिणः मेधिरासः विपश्चितः) मनको सन्मार्ग पर चलानेवाले मेधावी, विद्वान् लोग अपने (धीभिः अद्मसद्याय अग्निं हिन्विरे) उत्तम कर्मोंसे प्रत्येक घरमें रहनेवाले अग्निको प्रसन्न करते हैं ॥ १९ ॥

[८८७] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाजिनं वह्निं होतारं तं त्वां) बलवान्, वहन करनेमें समर्थ, देवोंको बुलानेवाले ऐसे उस प्रसिद्ध तेरी (अज्मेषु अध्वरं तन्वानाः ईळते) घरोंमें यज्ञको विस्तृत करते हुये यजमान स्तुति करते हैं ॥ २० ॥

[८८८] हे अग्ने ! तू (हि पुरुत्रा विश्वाः विशः अनु सदृङ् प्रभुः असि) बहुतसे प्रदेशोंमें रहनेवाली सम्पूर्ण प्रजाओंको समान रूपसे देखनेवाला स्वामी है। अतः हम सब (त्वा समत्सु हवामहे) तुझको ही संग्रामोंमें बुलाते हैं ॥ २१ ॥

१ पुरुत्रा विश्वाः विशः अनु सदृङ् प्रभुः— जो विभिन्न प्रदेशोंमें रहनेवाली प्रजाओंको समान दृष्टिसे देखता है, वह ही प्रभु होता है ।

[८८९] (यः अग्निः घृतैः आहुतः विभ्राजते) जो अग्नि घृतसे आहुत किया गया होकर प्रदीप्त होता है । हे मनुष्य ! तू (तं ईळिष्व) उस अग्निकी ही स्तुति किया कर, क्योंकि वही (नः इमं हवं शृणवत्) हमारी इस स्तुतिको श्रवण करता है ॥ २२ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार चरकर लौटती हुई गायें अपने बछडोंका रंभाना सुनकर बाडेकी तरफ भागती हैं, उसी प्रकार सभी स्तुतियां इसी अग्निकी ओर जाती हैं और सब प्रकारकी कामना करनेवाली प्रजायें अपनी कामनाओंकी पूर्तिके लिए इसी अग्निकी उपासना करती हैं ॥ १७-१८ ॥

देशका अग्रणी मनन करके बुद्धिपूर्वक काम करनेवाला हो, तब स्वयं सन्मार्गपर चलता दूसरोंको भी सन्मार्ग पर चलानेवाला हो, घर घरमें उसकी पहुंच हो, अर्थात् वह कुछ ही व्यक्तियोंतक सीमित न रहकर सर्व साधारण जनताकी भी खोज खबर लेता रहे । ऐसे अग्रणीको देशकी प्रजायें अपने घरोंमें उत्तम उत्तम समारोहोंका आयोजन कर आदरपूर्वक बुलाती हैं ॥ १९-२० ॥

अग्रणीको चाहिए कि अपने राष्ट्रमें प्रान्तीयवाद या जातिवाद आदि वादोंको पनपने न दे । सभी प्रजाको समान दृष्टिसे देखे । किसीसे पक्षपात न करे । वह सबकी प्रार्थना सुने । ऐसे अग्रणीकी सभी प्रशंसा करते हैं और उसे हर कामोंमें सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ २१-२२ ॥

८९० तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् । अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥
८९१ विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् । अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ २४ ॥
८९२ अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् । सप्तिं न वाजयामसि ॥ २५ ॥
८९३ घ्नन् मृध्राण्यप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा । अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥ २६ ॥
८९४ यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम । अग्ने स बोधि मे वचः ॥ २७ ॥
८९५ यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥ २८ ॥
८९६ तुभ्यं घेत् ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । धासिं हिन्वन्त्यत्तवे ॥ २९ ॥
८९७ ते घेदग्ने स्वाध्यो ऽहा विश्वा नृचक्षसः । तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥ ३० ॥

अर्थ— [८९०] हे (अग्ने) अग्ने ! (जातवेदसं शृण्वन्तं द्विषः अपघ्नन्तं तं त्वा) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले, हमारी प्रार्थनाको सुननेवाले, समस्त शत्रुओंको विनष्ट करनेवाले ऐसे उस प्रसिद्ध तुझको (वयं हवामहे) हम लोग बुलाते हैं ॥ २३ ॥

[८९१] (विशां राजानं धर्मणां अद्भुतं अध्यक्षं) प्रजाओंके राजा समस्त धर्मोंके अद्भुत द्रष्टा (इमं अग्निं ईळे) इस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ। (स उ श्रवत्) वही वस्तुतः हमारे वचनोंको सुननेवाला है ॥ २४ ॥

१ धर्मणां अध्यक्षः विशां राजा— धर्मका अध्यक्ष ही प्रजाओंका राजा होने योग्य है ।

[८९२] (विश्वायुवेपसं) समस्त लोगोंको चलानेवाले (वाजिनं मर्यं न हितं) बलशाली, मनुष्यकी तरह सर्व हितकारी (सप्तिं न अग्निं वाजयामसि) अश्वकी तरह तीव्रगामी अग्निको हम अन्नरूप हव्यादिसे बलवान् बनाते हैं ॥ २५ ॥

[८९३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मृध्राणि द्विषः अपघ्नन्) हिंसकोंको, द्वेष करनेवालोंको मारता हुआ तथा (रक्षांसि दहन्) विघ्नकारी राक्षसोंको जलाता हुआ (विश्वहा तिग्मेन दीदिहि) सर्वदा तीव्र तेजसे प्रकाशित हो ॥२६॥

[८९४] हे (अङ्गिरः तम अग्ने) अति तेजस्विन् अग्ने ! (यं त्वा जनासः मनुष्वत् इन्धते) जिस तुझको मनुष्य, मननशील ज्ञानीके समान होकर प्रकाशित करते हैं । (सः मे वचः बोधि) वह तू मेरी स्तुतिको जान ॥ २७ ॥

[८९५] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् दिविजाः असि) तू आकाशमें उत्पन्न सूर्य है, (वा अप्सुजाः) अथवा जलमें उत्पन्न विद्युत् है वही (सहस्कृतः) बलसे अर्थात् मन्थनसे उत्पन्न तू भौतिक अग्नि है । ऐसे (तं त्वा गीर्भिः हवामहे) उस प्रसिद्ध तेरी हम उत्तम वाणियोंसे स्तुति करते हैं ॥ २८ ॥

[८९६] हे अग्ने ! (घ इत् ते इमे जनाः) निश्चयसे ही वे और ये सब मनुष्य लोग तथा (विश्वाः सुक्षितयः) सम्पूर्ण प्रजायें (तुभ्यं धासिं अत्तवे पृथक् हिन्वन्ति) तेरे लिये अन्नको अलग अलग रूपसे प्रदान करती हैं ॥ २९ ॥

[८९७] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते घेत् सु आध्यः) तेरे लिये निश्चयसे उत्तम कर्म करनेवाले और (विश्वा अहा नृचक्षसः) सब दिन उत्तम पदार्थोंको देखनेवाले होकर हम (दुर्गहा तरन्तः स्याम) दुःखसे पार करने योग्य संकटोंका तर जानेवाले हों ॥ ३० ॥

सु-आध्यः नृचक्षसः दुर्गहा तरन्तः— उत्तम कर्म करनेवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले मनुष्य दुःखसे पार करने योग्य संकटोंका भी पार कर जाते हैं ।

भावार्थ— जो धर्मका पालन करता है, और धर्मके मार्गपर चलता है, वह ही प्रजाओंका उत्तम राजा हो सकता है । जो अधर्मके मार्गपर चलता है, वह कभी भी प्रजाओंका भला नहीं कर सकता । यह अग्नि भी अपने उपासकोंका भला करता है, क्योंकि वह सदा धर्मके मार्गपर चलता है । वह सब शत्रुओंका नाश करता है ॥ २३-२४ ॥

हिंसकोंको, द्वेष करनेवालों, राक्षसोंको मारना राष्ट्रकी सुरक्षाके लिए आवश्यक है । इस प्रकार राष्ट्रके सुरक्षित होने पर ही राष्ट्र निवासियोंका हित हो सकता है । राष्ट्रमें वेगवान् अश्व भी हों ॥ २५-२६ ॥

यह अग्नि आकाशमें सूर्यके रूपमें उत्पन्न होता है, मेघों या जलोंमें विद्युत् रूपमें उत्पन्न होता है, तथा पृथिवी पर वह मन्थनके द्वारा भौतिक अग्निके रूपमें प्रकट होता है । भौतिक अग्निको लोग प्रकाशित करते हैं ॥ २७-२८ ॥

सभी प्रजायें इस अग्निको हवि भक्षण करनेके लिये प्रेरित करती हैं । इस प्रकार अग्निको आदर्शके रूपमें सामने रखकर उत्तम कर्म करनेवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले मनुष्य कठिनसे कठिन संकटोंसे भी पार हो जाते हैं ॥२९-३०॥

८९८ अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् । हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ॥ ३१ ॥
८९९ स त्वमग्ने विभावसुः सृजन् त्सूर्यो न रश्मिभिः । शर्धन् तमांसि जिघ्नसे ॥ ३२ ॥
९०० तत् ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति । त्वदग्ने वार्यं वसु ॥ ३३ ॥

[४४]

(ऋषिः– विरूप आङ्गिरसः । देवता:– अग्निः । छन्दः– गायत्री ।)

९०१ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥
९०२ अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना । प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥
९०३ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥
९०४ उत् ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ॥ ४ ॥

अर्थ— [८९८] (मन्द्रं पुरुप्रियं पावकशोचिषं शीरं अग्निं) आनन्दप्रद, बहुतोंको प्रिय, पवित्रकारक तेजवाले, यज्ञमें अत्यन्त तेजस्वी अग्निको हम (हृद्भिः ईमहे) प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों द्वारा हर्षित करते हैं ॥ ३१ ॥

[८९९] हे (अग्ने) अग्ने ! (स विभावसुः त्वं) वह तेजरूपी धनवाला तू (सृजन् सूर्यः न) उगते हुये सूर्यके समान (रश्मिभिः शर्धन्) अपनी किरणोंसे बलकी वृद्धि करते हुये (तमांसि जिघ्नसे) अन्धकारका नाश करता है ॥ ३२ ॥

[९००] हे (सहस्वः अग्ने) सबसे महान् बलवान् अग्नि ! (यत् ते वार्यं वसु न उपदस्यति) जो तेरा सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होता है (तत् दात्रं त्वत् ईमहे) वह तेरा प्रदान करने योग्य ऐश्वर्य हम तुझसे मांगते हैं ॥ ३३ ॥

[४४]

[९०१] हे ऋत्विक् लोगो ! (अतिथिं अग्निं) अतिथिवत् प्रिय अग्निको (समिधा दुवस्यत) समिधाके द्वारा परिचर्या करो । और (घृतैः बोधयत) घृतसे प्रज्वलित करो । तथा (अस्मिन् हव्या आ जुहोतन) इस अग्निमें हव्य आदि उत्तम पदार्थोंकी आहुति दो ॥ १ ॥

[९०२] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे स्तोमं जुषस्व) मेरे स्तोत्रको ग्रहण कर । (अनेन मन्मना वर्धस्व) इस मनन करने योग्य स्तोत्रसे वृद्धिको प्राप्त हो और (नः सूक्तानि प्रति हर्य) हमारे सूक्तोंकी अभिलाषा कर ॥ २ ॥

[९०३] (दूतं हव्यवाहं अग्निं पुरः दधे) देवोंके दूत, हव्यको देवोंके प्रति ले जानेवाले अग्निको अपने आगे स्थापित करता हूँ । और उसकी (उपब्रुवे) स्तुति करता हूँ । वह (इह देवान् आ सादयात्) इस यज्ञमें देवताओंको बुलाकर बैठावे ॥ ३ ॥

[९०४] हे (दीदिवः अग्ने) कान्तियुक्त अग्ने ! (समिधानस्य ते बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः) अत्यन्त प्रदीप्त होने पर तेरी, अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई शुभ्रवर्णवाली ज्वालायें (उत् ईरते) ऊपरकी ओर जाती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि लोगोंके लिए अत्यन्त प्रिय, पवित्रकारक तेजसे युक्त और अत्यन्त तेजस्वी है। जिस प्रकार उगता हुआ सूर्य अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर कर देता है, उसी तरह यह अग्नि भी अपनी किरणोंसे अन्धकारको दूर कर देता है। इसका दिया हुआ धन कभी नष्ट नहीं होता,सदा अक्षय बना रहता है. इसीलिए लोग इससे ऐश्वर्य मांगते हैं ॥ ३१–३३ ॥

हे मनुष्यो ! समिधाओंसे इस अग्निको प्रदीप्त करके धीरे जगाओ और अतिथिकी तरह इसका सत्कार करो । हे अग्ने ! तू भी हमारे द्वारा किए जानेवाले मनन करने योग्य स्तोत्रोंको सुन और वृद्धिको प्राप्त हो ॥ १–२ ॥

हर उत्तम काममें अग्निको मुख्यता देनी चाहिए और उसकी स्तुति करनी चाहिए ताकि वह देवोंकी सहायता हमें दिला सके । हम भी इस पवित्रकारक अग्निको इतनी अच्छी तरह प्रदीप्त करें, कि उसकी उत्तम वर्णकी ज्वालायें ऊपरकी ओर बढें ॥ ३–४ ॥

९०५ उप॑ त्वा जु॒ह्वो॒३॑ मम॑ घृ॒ताची॑र्यन्तु हर्यत । अग्ने॑ ह॒व्या जु॑षस्व नः ॥ ५ ॥
९०६ म॒न्द्रं होता॑रमृ॒त्विजं॑ चि॒त्रभा॑नुं वि॒भाव॑सुम् । अ॒ग्निमी॑ळे॒ स उ॑ श्रवत् ॥ ६ ॥
९०७ प्र॒त्नं होता॑र॒मीड्यं॒ जुष्ट॑म॒ग्निं क॒विक्र॑तुम् । अ॒ध्व॒राणा॑मभि॒श्रिय॑म् ॥ ७ ॥
९०८ जु॒षा॒णो अ॑ङ्गिरस्तमे॒मा ह॒व्यान्या॑नु॒षक् । अग्ने॑ य॒ज्ञं न॑य ऋतु॒था ॥ ८ ॥
९०९ स॒मि॒धा॒न उ॑ सन्त्य॒ शुक्र॑शोच इ॒हा व॑ह । चि॒कि॒त्वान् दैव्यं॒ जन॑म् ॥ ९ ॥
९१० विप्रं॒ होता॑रम॒द्रुहं॑ धू॒मके॑तुं वि॒भाव॑सुम् । य॒ज्ञानां॑ के॒तुमी॑महे ॥ १० ॥
९११ अग्ने॒ नि पा॑हि न॒स्त्वं प्रति॑ ष्म देव॒ रीष॑तः । भि॒न्धि द्वेषः॑ सहस्कृत ॥ ११ ॥
९१२ अ॒ग्निः प्र॒त्नेन॒ मन्म॑ना॒ शुम्भा॑नस्त॒न्वं१॒॑ स्वाम् । क॒विर्विप्रे॑ण वावृधे ॥ १२ ॥

अर्थ— [९०५] हे (हर्यत अग्ने) उत्तम कामना करनेवाले अग्ने ! (मम घृताचीः जुह्वः त्वा उपयन्तु) मेरी घृतवाली स्रुचायें तुझको प्राप्त हों। तू (नः हव्या जुषस्व) हमारे हव्योंको भक्षण कर ॥ ५ ॥

[९०६] मैं (मन्द्रं होतारं) सुखजनक देवोंका बुलानेवाला (ऋत्विजं; चित्रभानुं) ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाले, अद्भुत सौम्य कान्तिवाले (विभावसु अग्निं ईळे) और दीप्तिमान् धनोंके स्वामी अग्निकी स्तुति करता हूँ। (स उ श्रवत्) वह ही हमारी प्रार्थना सुने ॥ ६ ॥

[९०७] मैं उस (प्रत्नं होतारं ईड्यं) प्राचीन, देवोंको बुलानेवाले स्तुत्य (जुष्टं कविक्रतुं) सेवा करनेके योग्य क्रान्तदर्शी और (अध्वराणां अभिश्रियं अग्निं) यज्ञोंको सुशोभित करनेवाले ऐसे अग्निकी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥

[९०८] हे (अङ्गिरस्तम अग्ने) प्राणोंके प्राण अग्ने ! तू हमारे (इमा हव्यानि आनुषक् जुषाणः) इन हव्योंका निरन्तर सेवन करता हुआ (ऋतुथा यज्ञं नय) ऋतुके अनुसार यज्ञको चला ॥ ८ ॥

[९०९] हे (सन्त्य शुक्रशोच) भजनशील, शुद्ध उज्वल कान्तियुक्त अग्ने ! तू (चिकित्वान् समिधानं उ) सब कुछ जाननेवाला तथा दर्शनीय दीप्तिवाला है, इसलिए (दैव्यं जनं इह आवह) दिव्य गुणयुक्त जनोंको हमारे यज्ञमें यहाँ ले आ ॥ ९ ॥

[९१०] (विप्रं होतारं अद्रुहं धूमकेतुं विभावसुं) मेधावी देवोंको यज्ञमें बुलानेवाला, द्रोहरहित, धूमकी ध्वजावाला, विशेष कान्ति सम्पन्न और (यज्ञानां केतुं ईमहे) यज्ञोंके पताकरूप अग्निकी हम प्रार्थना करते हैं ॥ १० ॥

[९११] हे (सहस्कृत देव अग्ने) बलसे सम्पन्न, तेजस्विन् अग्ने ! (त्वं नः रिषतः प्रति निपाहि) तू हम लोगोंकी हिंसक शत्रुओंसे रक्षा कर और (स्म द्वेषः भिन्धि) हमसे द्वेष करनेवालेको छिन्न भिन्न कर ॥ ११ ॥

[९१२] (कविः अग्निः) दूरदर्शी अग्नि (प्रत्नेन मन्मना स्वां तन्वं शुम्भानः) अनादि ज्ञान वेदोंसे अपने शरीरको शोभायमान करता हुआ (विप्रेण वावृधे) विद्वान् पुरुषके द्वारा बढता है ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सुखको उत्पन्न करनेवाला ऋतुके अनुकूल यज्ञ करनेवाला, उत्तम कान्तिवाला है, वह हमारे द्वारा दिए गए घीका सेवन करे ॥ ५–६ ॥

यह अग्नि प्राचीन, स्तुतिके और सेवाके योग्य है, वही यज्ञको सुशोभित करता है, वही प्राणोंका प्राण है। ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेसे हर तरहका सुख मिलता है ॥ ७–८ ॥

अग्नि, उत्तम बुद्धिमान, द्रोहरहित धूमसे जाना जानेवाला, यज्ञका प्रज्ञापक और विशेष कांतिसम्पन्न सब कुछ जाननेवाला और सुन्दर तेजवाला है। वही उत्तम मनुष्योंको अपने साथ लाता है ॥ ९–१० ॥

हे अग्ने ! तू हिंसा करनेवालोंसे हमारी रक्षा कर तथा द्वेष करनेवालोंको नष्ट कर। नेताको चाहिए कि वह बाहरके आक्रमणकारियों अत्याचारियों और हिंसकोंसे प्रजाओंकी रक्षा करे, तथा अन्दरूनी शत्रुओं एवं देशद्रोहियोंसे भी रक्षा करे। देशमें ज्ञानका प्रसार करे तथा विद्वान् पुरुषोंकी वृद्धि करता रहे ॥ ११–१२ ॥

९१३ ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥ १३ ॥
९१४ स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ १४ ॥
९१५ यो अग्निं तन्वो दमे देवं मर्तः सपर्यति । तस्मा इद् दीदयद् वसु ॥ १५ ॥
९१६ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १६ ॥
९१७ उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते । तव ज्योतींष्यर्चयः ॥ १७ ॥
९१८ ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः । स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ १८ ॥

अर्थ— [९१३] मैं (अस्मिन् स्वध्वरे यज्ञे) इस उत्तम हिंसारहित यज्ञमें (ऊर्जः नपातं पावकशोचिषं अग्निं आ हुवे) बलको क्षीण न करनेवाले पवित्र दीप्तिसे सम्पन्न अग्निको बुलाता हूँ ॥ १३ ॥

[९१४] हे (अग्ने) अग्ने ! (स त्वं मित्रमहः, शुक्रेण शोचिषा) वह प्रसिद्ध तू मित्रोंके द्वारा पूजाके योग्य, उज्ज्वल तेजसे युक्त, (देवैः बर्हिषि आसत्सि) देवताओंके साथ उत्तम आसन पर प्रतिष्ठित हो ॥ १४ ॥

[९१५] (यः मर्तः दमे तन्वः देवं अग्निं सपर्यति , जो मनुष्य अपने घरमें ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये दिव्यगुण युक्त अग्निकी सेवा करता है (तस्मा इत् दीदयत्) उसी पुरुषको ही वह अग्नि ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ १५ ॥

१ यः मर्तः दमे अग्निं सपर्यति, तस्मा इत् वसु दीदयत्— जो मनुष्य घरमें अग्निकी सेवा करता है, उसीको यह धन प्रदान करता है ।

[९१६] (मूर्धा, दिवः ककुत् पृथिव्याः पतिः अयं अग्निः) देवोंमें सर्वश्रेष्ठ, आकाशमें सूर्यवत् उन्नत और पृथ्वीका स्वामी यह अग्नि (अपां रेतांसि जिन्वति) स्थावर जंगमादि जीवोंका अपने सामर्थ्यसे पालन करता है ॥ १६ ॥

[९१७] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव शुचयः शुक्राः भ्राजन्तः अर्चयः) तेरी पवित्रकारक शुभ्रवर्णवाली, दीप्तमान ज्वालायें (तव ज्योतींषि उत् ईरते) तेरे तेजको उत्तमरीतिसे प्रकट करती हैं ॥ १७ ॥

[९१८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (स्वर्पतिः वार्यस्य दात्रस्य हि ईशिषे) समस्त सुखोंका पालक और वरण करने योग्य श्रेष्ठ दातव्य धनका स्वामी है । अतः मैं तेरे (शर्मणि तव स्तोता स्याम्) सुखमय शरणमें रहकर तेरी स्तुति करनेवाला होऊँ ॥ १८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि (ऊर्जः न पात्) बलको न गिरानेवाला है । जबतक शरीरमें अग्नि रहती है, तबतक बल क्षीण नहीं होता, और अग्निके समाप्त होनेके साथ ही बल भी समाप्त हो जाता है । अग्निके रहनेपर यह शरीर तेजस्वी दिखाई देता है और उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त होता है । इसीलिए साधक इसकी पूजा करते हैं, और इसे उच्चपदपर प्रतिष्ठापित करते हैं ॥ १३–१४ ॥

जो अपने घरमें इस अग्निकी सेवा करता है, अर्थात् हमेशा यज्ञ करता है, वह हर तरहके धनसे युक्त होता है । वही सब देवोंमें श्रेष्ठ, उन्नत और सामर्थ्यवान् होता है । यह अग्नि अपने सामर्थ्यसे सब चराचर विश्वका पालन करता है ॥ १५–१६ ॥

जो अपने तेजसे अत्यन्त तेजस्वी होकर अपनी किरणोंको चारों ओर फैलाता है, वही समस्त सुखोंको प्राप्त करता और उत्तम उत्तम धनोंका स्वामी होता है । ऐसे व्यक्तिके शरणमें रहनेवाला मनुष्य कभी भी दुःखी नहीं होता, हमेशा सुखसे रहता है ॥ १७–१८ ॥

९१९ त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १९ ॥
९२० अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा । अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥ २० ॥
९२१ अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः । शुची रोचत आहुतः ॥ २१ ॥
९२२ उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥
९२३ यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥
९२४ वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥ २४ ॥

अर्थ— [९१९] हे (अग्ने) अग्ने ! (मनीषिणः त्वां मनको सन्मार्ग पर चलानेवाले ज्ञानके अभिलाषी तुझको चाहते हैं। और (त्वां चित्तिभिः हिन्वन्ति) तुझको कर्मोंसे प्रसन्न करते हैं। (नः गिरः त्वां वर्धन्तु) हमारी स्तुतियाँ भी तुझको ही बढावें ॥ १९ ॥

[९२०] (अदब्धस्य, स्वधावतः दूतस्य रेभतः अग्नेः) विनाशरहित, बलवान्, देवोंके दूत, ज्ञानके उपदेष्टा अग्निके (सख्य सदा वृणीमहे) मैत्रीको हम सदा स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥

[९२१] (शुचिव्रततमः, शुचिः विप्रः, शुचिः कविः) अत्यन्त पवित्र कर्मोंवाला, पवित्र मेधावी विद्वान्, शुद्ध दूरदर्शी ऐसे गुणोंसे युक्त (अग्निः शुचिः आहुतः रोचते) अग्नि शुद्धतासे दिये आहुतियों द्वारा सुशोभित होता है ॥ २१ ॥

[९२२] (उत अग्ने) और भी हे अग्ने ! (मम धीतयः गिरः त्वा विश्वहा वर्धन्तु) मेरे उत्तम कर्म और मेरी वाणियाँ तुझको सर्वदा बढावें। और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्र भावको जान ॥ २२ ॥

[९२३] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् अहं त्वं स्यां) जो मैं तू हो जाऊँ, और (त्वं वा घ अहं स्याः) तू मैं बन जा, तब (इह ते आशिषः सत्याः स्युः) इस लोकमें तेरे आशीर्वाद सत्य हों ॥ २३ ॥

[९२४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विभावसुः वसुः वसुपतिः असि) दीप्तियुक्त, सबको बसानेवाला और समस्त धनोंका स्वामी है। (हि अपि कं ते सुमतौ स्याम) निश्चयसे हम सब भी सुखकी कामना करते हुये तेरी सुमतिमें रहनेवाले हों ॥ २४ ॥

१ कं ते सुमतौ स्याम— सुखकी कामना करनेवाले इस अग्निके उत्तम बुद्धिके अनुकूल चलें।

भावार्थ— यह अग्नि अविनाशी, बलवान् और हमेशा ज्ञानका उपदेश देता है। इसके साथ मैत्री करनेवाले हमेशा आनन्दमें रहते हैं, इसलिए ज्ञानीजन उसके साथ सदा मैत्री रखते हैं (मनीषी) मनको सदा उत्तम मार्ग पर चलानेवाले ज्ञानी इस अग्निको सदा अपने उत्तम कर्मोंसे सन्तुष्ट करते हैं ॥ १९–२० ॥

राष्ट्रका नायक अत्यन्त पवित्र कर्मोंको करनेवाला, पवित्र बुद्धिवाला तथा दूरदर्शी हो। उसकी बुद्धि सदा राष्ट्रोन्नतिके कामोंमें ही लगे, तथा हर काम दूरके परिणामोंपर विचार करके ही करे। इस प्रकार यह नायक अपने उत्तम उपदेशों द्वारा प्रजाको बढाता रहे, और सभी उसके मित्र बनें ॥ २१–२२ ॥

उपासककी तन्मयता अपने उपास्यमें इतनी प्रगाढ होनी चाहिए कि उपासक और उपास्यमें किसी प्रकारकी भिन्नता न रह जाए। जब उपासक उपास्यमें मिल जाता है और उपास्य उपासकमें, तब उन दोनोंमें सारी भिन्नतायें समाप्त हो जाती हैं और वे दोनों एक हो जाते हैं, तब उपासक उस तेजोमय परमात्माके अविनाशी आशीर्वाद अर्थात् आनन्दका उपभोग करता है ॥ २३ ॥

जो इस अग्निकी उत्तम बुद्धिके अनुकूल अपना आचरण बनाता है, वह उत्तम तेजसे युक्त होकर समस्त धनोंका स्वामी बनता है ॥ २४ ॥

९२५ अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः । गिरो वाश्रास ईरते ॥ २५ ॥
९२६ युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् । अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ २६ ॥
९२७ यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये ॥ २७ ॥
९२८ अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळय ॥ २८ ॥
९२९ धीरो ह्यस्यद्मसद् विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदयसि द्यवि ॥ २९ ॥
९३० पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर ॥ ३० ॥

[४५]

(ऋषिः- त्रिशोकः काण्वः । देवता- इन्द्रः, १ अग्नीन्द्रौ । छन्दः- गायत्री ।)

९३१ आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

अर्थ— [९२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाश्रासः गिरः धृतव्रताय ते ईरते) मेरी सुन्दर शब्दवाली स्तुतियाँ उत्तम कर्मोंको धारण करनेवाले तेरी ओर उसी तरह जाती हैं (इव सिन्धवः समुद्राय) जिस प्रकारसे नदियां समुद्रकी ओर जाती हैं ॥ २५ ॥

[९२६] (युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं) नित्य तरुण, प्रजाओंके स्वामी, ज्ञानी, सम्पूर्ण हविको भक्षण करनेवाले और (पुरुवेपसं अग्निं मन्मभिः शुम्भामि) नाना प्रकारके उत्तम कर्मोंके कर्ता ऐसे अग्निको मैं मननीय स्तोत्रोंसे अलंकृत करता हूँ ॥ २६ ॥

[९२७] (यज्ञानां रथ्ये तिग्मजम्भाय वीळवे अग्नये) यज्ञोंके बीचमें नायक, तीक्ष्ण ज्वालावाले, बलवान् अग्निके लिये (वयं स्तोमैः इषेम) हम सब स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ २७ ॥

[९२८] हे (पावक सन्त्य अग्ने) शुद्ध करनेवाले भजनीय अग्ने ! (अयं जरिता, त्वे अपि भूतु) यह स्तुतिकर्ता तुझमें मग्न हो । तू (तस्मै मृळय) उस स्तुतिकर्ताको सुखी कर ॥ २८ ॥

[९२९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विप्रः न हि धीरः असि) मेधावी पुरुषके समान धीर है । (अद्मसत् जागृविः) हविको भक्षण करते हुये प्रजाके हितमें सदा चैतन्य रहता है । और (सदा द्यवि दीदयसि) हमेशा अन्तरिक्षमें प्रकाशता है ॥ २९ ॥

[९३०] हे (कवे वसो अग्ने) ज्ञानी तथा सबको बसानेहारे अग्ने ! (दुरितेभ्यः पुरा, मृध्रेभ्यः पुरा) पापोंसे पूर्व और हिंसकोंके आक्रमणके पूर्वही (नः आयुः प्रतिर) हमारी आयु अर्थात् जीवनशक्तिकी वृद्धि कर ॥ ३० ॥

[४५]

[९३१] (ये) जो मनुष्य (घ अग्निं आ इन्धते) उत्तमतासे अग्निको प्रज्वलित करते हैं, तथा (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका तरुण इन्द्र मित्र है, वे (बर्हिः आनुषक् स्तृणन्ति) आसनको ठीक तरह बिछाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ — सभी उपासक अपनी अपनी रीतिसे नित्य तरुण, समस्त प्रजाओंके स्वामी, नाना प्रकारके उत्तम कर्मोंके कर्ता इस अग्निकी स्तुति करते हैं, पर सब स्तुतियां उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले इस अग्निकी तरफ उसी प्रकार जाती हैं, जिस प्रकार नदियां समुद्रकी तरफ ॥ २५-२६ ॥

यज्ञोंको उत्तम रीतिसे चलाकर उन्हें पूर्ण करनेवाला, तीक्ष्ण ज्वालाओंवाला बलवान् अग्नि उसी स्तोताको सुखी करता है, जो उसकी उपासनामें पूरी तरह मग्न हो जाता है ॥ २७-२८ ॥

यह अग्नि सदा उत्तम बुद्धिको प्रदान करता है और प्रजाओंमें सदा जागृत रहता है । मनुष्य भलेही सो जाए, पर यह अग्नि उसमें भी प्राणके रूपमें सदा जागता रहता है । यह अग्नि जिस मनुष्यमें जितना बलवान् होता है, वह मनुष्य उतनाही शक्तिमान् होता है । पापी और हिंसक उस मनुष्यका कुछ भी नहीं बिगाड सकते, इस प्रकार वह दीर्घायु प्राप्त करके चिरकालतक आनन्दसे जीवन गुजारता है ॥ २९-३० ॥

जो अग्नि जलाते हैं, और आसन बिछाते हैं, उनका तरुण इन्द्र मित्र होता है । यज्ञ करनेवालोंका इन्द्र मित्र होता है ॥ १ ॥

+

९३२ बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥
९३३ अयुद्ध इद् युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥
९३४ आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद् वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ ४ ॥
९३५ प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् । यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥
९३६ उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद् वीळयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥
९३७ यदाजिं यात्याजिकृ दिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥
९३८ वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन् विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥

अर्थ— [९३२] (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका तरुण इन्द्र मित्र है (एषां) इनकी (इध्म बृहत् इत्) समिधा बडी होती है (शस्तं भूरि) स्तोत्र बडा होता है और (स्वरुः पृथुः) यज्ञ भी विशाल होता है ॥ २ ॥

[९३३] (येषां युवा इन्द्रः सखा) जिनका तरुण इन्द्र मित्र होता है, वह (शूरः) वह वीर (अ-युद्धः इत्) युद्धके बिना ही (युधावृतं) योद्धाओंसे घिरे हुए शत्रुको (सत्वभिः) अपने बलोंसे (आजति) नम्र कर देता है ॥ ३ ॥

[९३४] (जातः वृत्र-हा) उत्पन्न होते ही इन्द्रने (बुन्दं आ ददे) धनुष्बाण हाथमें लिया और अपनी (मातरं विपृच्छत्) मातासे पूछा कि (के के उग्राः शृण्विरे) कौन कौन वीर सुने जाते हैं ॥ ४ ॥

बुन्दः—बाण " बुन्द इषुर्भवति, बुन्दो वा, भिन्दो वा, भयदो वा, भासमानो द्रवतीति वा " (निरु. ६।६।४) बुन्द बाण होता है, क्योंकि यह शत्रुओंको तोडता है, उन्हे डराता है, और चमकता हुआ चलता है ।

[९३५] तब हे इन्द्र ! (त्वा शवसी प्रति वदत्) तुझसे तेरी बलवती माता बोली कि (यः ते शत्रुत्वं आ चके) जो तेरे साथ शत्रुता करता है, वह (गिरौ अप्सः न) पहाडमें हाथीके समान (यो धिषत्) युद्ध करता है ॥ ५ ॥

[९३६] (उत) और भी हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वं शृणु) तुम सुनो, (यः ते वष्टि) जो तुमसे (धनादि) मांगता है, (तत् ववक्षि) वह उसे दो, तथा (यद् वीळयासि) जिसे तुम बलवान् करते हो, (तत् वीळु) वह सामर्थ्यवान् होता है ॥ ६ ॥

[९३७] (यत्) जब (आजि कृत इन्द्रः) युद्ध करनेवाला इन्द्र (सु-अश्व-युः) उत्तम घोडोंको जोडनेवाला (आजिं उप याति) युद्ध करनेके लिए जाता है, तब (रथीनां रथीतमः) सब रथियोंमें सर्वश्रेष्ठ रथी होता है ॥ ७ ॥

[९३८] हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तुम (विश्वा अभियुजः) सम्पूर्ण शत्रुओंको (यथा) जैसे हो वैसे (विष्वग्) चारों ओरसे (वि वृह) मारो, तथा (नः सु-श्रवः तमः भव) हमारे मध्यमें उत्तम यशवाले बनो ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिनका तरुण इन्द्र मित्र होता है, इनका स्तोत्र विशाल होता है और उनका यज्ञ भी विशाल होता है ॥ २ ॥

जिसका इन्द्र मित्र होता है, वह युद्धके बिना ही शत्रुको अपनी शक्तिसे नम्र कर देता है ॥ ३ ॥

इन दोनों मंत्रोंमें माता अपने पुत्रको वीर कैसे बना सकती है, यह बताया गया है । जब पुत्र अपनी मातासे शत्रुओंके बारेमें पूछे, तो वह अपने बच्चेको घबराहटमें न डालकर उसे प्रेरणा और उत्साह दे ॥ ४-५ ॥

जो इस इन्द्र धनादि मांगता है, उसे वह देता है और उस धनसे वह बलवान् और सामर्थ्यवान् होता है ॥ ६ ॥

युद्ध करनेवाला इन्द्र उत्तम घोडोंकी इच्छा करते हुए शत्रुओंसे युद्ध करता है ; पश्चात् उन्हें हराकर उनके घोडे छीन लेता है ॥ ७ ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! सम्पूर्ण शत्रुओंको चारों ओरसे मारो और हमारे बीचमें उत्तम यशवाले होओ । जो वीर प्रजाओंके शत्रुओंको मारता है, वह प्रजाओंमें प्रशंसित होता है ॥ ८ ॥

९३९ अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये । न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ९ ॥
९४० वृज्याम ते परि द्विषो ऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥ १० ॥
९४१ शनैश्चिद् यन्तो अद्रिवो ऽश्वावन्तः शतग्विनः । विचक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥
९४२ ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जरितृभ्यो विमंहते ॥ १२ ॥
९४३ विद्मा हि त्वा धनंजय मिन्द्र दृळ्हा चिदारुजम् । आदारिणं यथा गयम् ॥ १३ ॥
९४४ ककुहं चित् त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः । आ त्वा पणिं यदीमहे ॥ १४ ॥

अर्थ— [९३९] (यं धूर्तयः न धूर्वन्ति) जिस इन्द्रकी शत्रु हिंसा नहीं कर सकते वह (इन्द्रः) इन्द्र (अस्माकं सातये) हमारे लाभके लिए (सु-रथं पुरः कृणोतु) अपने उत्तम रथको आगे करे ॥ ९ ॥

१ यं धूर्तयः न धूर्वन्ति- उस इन्द्रकी शत्रुके लोग हिंसा नहीं कर सकते ।

२ सुरथं पुरः कृणोतु- अपने उत्तम रथको आगे करता है ।

[९४०] हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! हम (ते द्विषः अरं परि वृज्याम) तेरे शत्रुओंसे पूर्ण रीतिसे दूर रहेंगे । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (दावने) दानके समय (गोमतः ते) गौवोंवाले तुमको (गमेम इत्) अवश्य प्राप्त करेंगे ॥ १० ॥

द्विषः अरं परि वृज्याम- हम शत्रुओंसे दूर रहेंगे ।

[९४१] हे (अद्रि-वः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (शनैः चिद् यन्तः) धीरे धीरे चलते हुए हम (अश्वावन्तः) घोडोंसे युक्त, (शतग्विनः) सैकडों गौवोंसे युक्त (वि-चक्षणाः) संपत्ति लानेवाले तथा (अनेहसः) निष्पाप हों ॥ ११ ॥

शनैः चिद् यन्तः विचक्षणाः अनेहसः- धीरे धीरे चलकर हम संपत्तिवान तथा निष्पाप होंगे ।

[९४२] हे इन्द्र ! (ते जरितृभ्यः) तुम्हारे स्तोताओंको [यजमान] (दिवेदिवे प्रतिदिन (शता सहस्रा ऊर्ध्वा सूनृता) सैकडों, हजारों प्रकारके उत्तम धन (हि वि मंहते) देता है ॥ १२ ॥

१ सूनृता- वाणीकी देवी, उत्तम गान, अन्न, धन

२ मंहते- देना ' मंहतिर्दानकर्मा '

[९४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धनंजयं) धनको जीतनेवाले, (दृळ्हा चित् आरुजं) दृढ दुर्गोंको भी तोडनेवाले, (आदारिणं) शत्रुओंको मारनेवाले (त्वा हि) तुमको हम (गयं यथा) घरके समान [आश्रय] (विद्म) समझते हैं ॥ १३ ॥

१ धनंजयं दृळ्हा चित् आरुजं आदारिणं त्वा विद्म- तू युद्धमें विजयी । दृढ शत्रुको तोडनेवाला, शत्रुको मारनेवाला है ऐसा हम जानते है ।

[९४४] हे (कवे, धृष्णो) दूरदर्शी तथा शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! (यत्) जब हम (ककुहं त्वा) सर्व श्रेष्ठ तुमसे (पणिं) धन (ईमहे) चाहते हैं, तब हमारे (इन्दवः चित् त्वा मन्दन्तु) सोम तुम्हें तृप्त करें ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र इतना सामर्थ्यवान् है कि उसकी हिंसा दुष्ट नहीं कर सकते । उपासक भी इन्द्रके शत्रुओंसे दूर ही रहें, क्योंकि जो इन्द्रके शत्रुओंसे मैत्री करेगा, वह इन्द्रका शत्रु ही होगा ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! हम धीरे धीरे उन्नति करते हुए गायोंवाले और घोडोंवाले हों तथा निष्पाप हों, क्योंकि तू अपने उपासकोंको हजारों तरहके दान देता है ॥ ११-१२ ॥

हे इन्द्र ! तू युद्धमें विजयी, दृढ शत्रुओंको तोडनेवाला और शत्रुओंको मारनेवाला है, ऐसा हम जानते हैं । साथ ही यह भी जानते हैं कि सोमसे तृप्त होकर तुम धन देते हो, अतः तुम हमारे सोमसे तृप्त होओ ॥ १३-१४ ॥

९४५ यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर ॥ १५ ॥
९४६ इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥
९४७ उत त्वाबधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये । दूरादिह हवामहे ॥ १७ ॥
९४८ यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः ॥ १८ ॥
९४९ यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ १९ ॥
९५० आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररभ्मा शवसस्पते । उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥
९५१ स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने । नकिर्यं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥
९५२ अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ २२ ॥

अर्थ— [९४५] हे इन्द्र ! (यः अ दाशुरिः रेवान्) जो कंजूस परंतु धनवान् मनुष्य (मघत्तये ते) धन देनेवाले तुमसे (प्र ममर्ष) ईर्ष्या करता है, (तस्य वेदः नः आ भर) उसका धन हमारे लिए ले आ ॥ १५ ॥

[९४६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमे सोमिनः सखायः) ये सोमयाग करनेवाले मित्रजन (पुष्टावन्तः) पुष्टीकारक अन्न लेकर (पशुं यथा) पशुको देखते है उस तरह (वि चक्षते) तुम्हें देखते हैं ॥ १६ ॥

[९४७] हे इन्द्र ! (अ बधिरं) बधिरतासे रहित (उत) और (श्रुत् कर्णं सन्तं) अच्छी तरहसे सुननेवाले (त्वा) तुमको (वयं) हम (ऊतये) संरक्षणके लिए (दूरात् इह) दूरसे यहां (हवामहे) बुलाते हैं ॥ १७ ॥

वयं त्वा ऊतये हवामहे— हम तुझे संरक्षणके लिये बुलाते हैं।

[९४८] हे इन्द्र ! (यत्) जब (इमं हवं शुश्रूयाः) इस प्रार्थनाको सुनोगे, तो तुम (दुर्मर्षं चक्रियाः) असहनीय बल दिखावोगे, (उत) और (नः अन्तमः आपिः भवेः) हमारे निकटतम बन्धु हो जावोगे ॥ १८ ॥

[९४९] (अपि चित्) और भी हे इन्द्र ! (यत्) जब (व्यथिः जगन्वांसः) दुःखसे पीडित, और प्रवासी अवस्थामें रहे हम (ते अमन्महि) तेरी स्तुति करते हैं, तब (इन्द्र) इन्द्र ! (गो-दा इत्) गायोंको देकर (नः बोधि) हमारी प्रार्थनाको समझ लो ॥ १९ ॥

[९५०] हे (शवसः पते) बलके स्वामिन् इन्द्र ! हम (त्वा) तेरा (जिव्रयः रम्भं न) जैसे बूढे डंडेका सहारा लेते हैं, उसी प्रकार तेरा (आ ररभ्म) सहारा लेते है, और (सधस्थे) यज्ञमें हम (त्वा) तुम्हारी (आ उश्मसि) कामना करते हैं ॥ २० ॥

जिव्रयः रम्भं न— बुढे डंडा लेते हैं उस प्रकार,
आ ररभ्म— हम तेरा सहारा लेते हैं।

[९५१] (यं युधि न किः वृण्वते) जिसे युद्धमें कोई नहीं हटा सकता, उस (सत्वने) बलशाली (पुरु-नृम्णाय) बहुत बडे पराक्रम करनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके (स्तोत्रं गायत) गुणोंका गान करो ॥ २१ ॥

१ यं युधि न किः वृण्वते— उस इन्द्रको युद्धमें कोई हटा नहीं सकता।

[९५२] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! मैं (सुते) सोमयागमें (त्वा पीतये) तेरे पीनेके लिए (सुतं अभि सृजामि) सोमरसको तैय्यार करता हूँ। हे इन्द्र ! तुम (तृम्प) तृप्त हो और (मदं वि अश्नुहि) उत्साहको प्राप्त होवो ॥ २२ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य धनवान् होने पर भी कंजूसी करता है और यज्ञादि नहीं करता, उसका सारा धन इन्द्र ले लेता है। वह निर्धन हो जाता है। पर जो यज्ञ करते हैं, वे अन्न तथा पशुओंसे युक्त होकर समृद्ध होता है ॥ १५-१६ ॥

हे इन्द्र ! प्रार्थनाओंको ध्यानपूर्वक सुननेवाले तुम्हें हम अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं, तुम हमारे पास आकर अपने श्रेष्ठ सामर्थ्यको दिखाओ तथा हमारी रक्षा करके हमारे निकटतम बन्धु हो जाओ ॥ १७-१८ ॥

हे इन्द्र ! जब हम प्रवासीकी अवस्थामें होकर पीडित हो रहे हों और तब तुम्हारी शरणमें जानेकी इच्छासे तुम्हारी प्रार्थना करते हों, तब तुम हमें अपनी शरणमें लो और जिस तरह बूढोंके लिए डंडा सहारा देता है, उसी तरह तुम हमें सहारा दो ॥ १९-२० ॥

हे स्तोताओ ! जिस इन्द्रको युद्धमें कोई हरा नहीं सकता, उस इन्द्रकी स्तुति तुम गाओ और उसे सोमरस प्रदान करो, ताकि वह सोमके उत्साहमें तुम्हारी हर तरहकी सहायता करे ॥ २१-२२ ॥

९५३ मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् । माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥
९५४ इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥
९५५ या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे । ता संसत्सु प्र वोचत ॥ २५ ॥
९५६ अपिबत् कद्रुवः सुत-मिन्द्रः सहस्रबाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥ २६ ॥
९५७ सत्यं तत् तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् । व्यानट् तुर्वणे शमि ॥ २७ ॥
९५८ तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥ २८ ॥
९५९ ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २९ ॥
९६० यः कृन्तदिद् वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् । गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥

अर्थ — [९५३] हे इन्द्र ! (मूराः अविष्यवः) मूर्ख परंतु अपने रक्षणकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (मा त्वा आ दभन्) तुझे कष्ट न दें। (उपहस्वानः मा) उपहास करनेवाले भी तुझे कष्ट न दें। तू (ब्रह्म द्विषः) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंका (माकीं वनः) आश्रय मत बन ॥ २३ ॥

[९५४] हे इन्द्र ! (इह) यहां यज्ञमें मनुष्य (महे राधसे) बडे धनके लिए (गो-परीणसा) गौ-दुग्ध मिश्रित सोमके द्वारा (त्वा मन्दन्तु) तुम्हें आनन्दित करें, और तुम सोमको (गौरः सरः यथा) जैसे सफेद हिरण पानी पीता है उसी प्रकार (पिब) पियो ॥ २४ ॥

[९५५] (वृत्रहा) वृत्र वधकर्ता इन्द्रने (परावति) पूर्व समयमें (या) जो (सना नवा च) पुराने और नये धन (चुच्युवे) दिये (ता) उनका तुम (संसत्सु) सभाओंमें (प्र वोचत) वर्णन करो ॥ २५ ॥

[९५६] (कद्रुवः सुतं) कद्रु ऋषि द्वारा निकाले गए सोमको (इन्द्रः अपिबत्) इन्द्रने पिया, और (सहस्र-बाह्वे) हजारों भुजाओंवाले [शत्रुको मारा] (अत्र) इस समय उस इन्द्रका (पौंस्यं अदेदिष्ट) पौरुष चमका ॥ २६ ॥

[९५७] हे इन्द्र ! (तुर्वशे यदौ) तुर्वश और यदुके (तत् सत्यं शमि विदानः) उस सत्य कर्मको जान कर [उनके लिए] (अह्नवाय्यं) अह्नवाय्य नामक शत्रुको (तुर्वणे) संग्राममें (वि-आनट्) मारा ॥ २७ ॥

शमि-कर्म ' शची शमी इति कर्मनामसु पाठात् '

[९५८] मैं (वः जनानां) तुम मनुष्योंको (तरणिं) [दुःखोंसे] तारनेवाले, (त्रदं) शत्रुको मारनेवाले, (गो-मतः वाजस्य) गौयुक्त अन्न देनेवाले इन्द्रकी (समानं उ प्रशंसिषं) समान रूपसे प्रशंसा करता हूं ॥ २८ ॥

जनानां तरणिं त्रदं प्रशंसिषम् — जनोंको दुःखोंसे तारनेवाले, शत्रुको मारनेवाले वीरकी प्रशंसा करता हूं।

[९५९] (ऋभुक्षणं) महान् (न) और (तुग्र्यावृधं) जलको बढानेवाले (इन्द्रं) इन्द्रका (सुते सोमे) सोम यज्ञमें (वर्तवे) वरण करनेके लिए (सचा) एक साथ बैठकर (उक्थेषु) स्तोत्रोंके द्वारा [गुणगान करते हैं] ॥ २९ ॥

१ ऋभु-क्षणः — कारीगरोंका निवास करनेवाला, महान्।

[९६०] (यः इत्) जिस इन्द्रने (योन्यं) जलके लिये (पृथुं गिरिं) महान् बादलको (त्रिशोकाय) त्रिशोक ऋषिके लिए (वि कृन्तत्) तोडा वही (गोभ्यः निरेतवे) जलोंके जानेके लिए लिए (गातुं) पृथ्वी पर [मार्ग बनाता है] ॥ ३० ॥

भावार्थ — हे इन्द्र ! जिस किसी भी उपायसे अपनी रक्षा करनेवाले मूर्ख तथा तेरा उपहास करनेवाले तुझे कष्ट न दें अपितु जो सत्पुरुष हैं, वे तुम्हें सदा आनन्दित करते रहें ॥ २३-२४ ॥

इन्द्रने हजारों भुजाओंवाले शत्रुको मारा तब उसका बल चमका और तब उसने धन दिए और उसकी प्रशंसा सर्वत्र होने लगी ॥ २५-२६ ॥

इन्द्रने वीरोंके सत्य कर्मको जानकर उनके लिए अनेक शत्रुओंको मारा। ऐसे जनोंको दुःखोंसे तारनेवाले, शत्रुको मारनेवाले वीरकी प्रशंसा सर्वत्र होती है ॥ २७-२८ ॥

इन्द्र महान् और जलको बढानेवाला है। वही मेघोंको तोडकर पानी बरसाता है और उन बरसे हुए जलोंको प्रवाहित करनेके लिए पृथ्वी पर मार्ग बनाता है ॥ २९-३० ॥

९६१ यद् दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि । मा तत् करिन्द्र मृळय ॥ ३१ ॥
९६२ दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि । जिगात्विन्द्र ते मनः ॥ ३२ ॥
९६३ तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३३ ॥
९६४ मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु । वधीर्मा शूर भूरिषु ॥ ३४ ॥
९६५ बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः । दस्मादहमृतीषहः ॥ ३५ ॥
९६६ मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद् भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥

अर्थ— [९६१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मन्दानः) प्रसन्न होकर (यद् दधिषे) जिस धनको तुम धारण करते हो, (मनस्यसि) जिसकी इच्छा करते हो, (प्र इत् इयक्षसि) जिसका दान करते हो, (तत् मा कः) वह [मेरे लिए] क्यों नहीं करते हो, हे इन्द्र ! (मृळय) हमें सुखी करो ॥ ३१ ॥

[९६२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वावतः) तुम्हारे समान देवताका (दभ्रं चित् हि कृतं) थोडासा भी कार्य (क्षमि अधि) पृथ्वी पर (शृण्वे) प्रसिद्ध हो जाता है। (ते मनः) तुम्हारा ध्यान (जिगातु) मेरे ऊपर हो ॥ ३२ ॥

[९६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब हमें सुखी करते हो, तब (तव इत्) तुम्हारी ही (सु-कीर्तयः प्रशस्तयः असन्) उत्तम कीर्ति और प्रशंसा होती है ॥ ३३ ॥

[९६४] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (एकस्मिन् आगसि) एक अपराधके होने पर (नः मा वधीः) हमें मत मार (द्वयोः उत त्रिषु मा) दो या तीन अपराधोंके होने पर भी हमें न मार और (भूरिषु मा) बहुत अपराध हो जाने पर भी हमें न मार ॥ ३४ ॥

[९६५] हे इन्द्र ! (त्वावतः) तुम्हारे समान (उग्राद्) वीरसे (अभि-प्रभंगिणः) शत्रुओं पर प्रहार करनेवाले, (दस्माद्) पापियोंके विनाशक (ऋतीषहः) शत्रुओंको पराजित करनेमें समर्थ देवसे (अहं) मैं (बिभय) हमेशा डरूं ॥ ३५ ॥

> उग्रात् अभि प्रभंगिणः दस्मात् ऋतीषाहः अहं बिभय— वीरसे, शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले, शूरसे, पापियोंके विनाशकसे शत्रुओंको पराजित करनेवालेसे मैं डरता हूं।

[९६६] हे (प्रभूवसो) बहुत ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! मैं (सख्युः शूनं मा वि आ विदे) अपने मित्रके धनको मैं नहीं मांगता (पुत्रस्य मा) न पुत्रके धनको मैं नहीं मांगता, (ते मनः आवृत्वद् भूतु) तेरा मन मेरी ओर हो जाए ॥ ३६ ॥

> १ सख्युः पुत्रस्य शूनं मा आ विदे— मैं अपने मित्र और पुत्रके धनको मैं नहीं मांगता हूं।
> २ ते मनः आवृत्वात् भूतु— तेरा मन मेरी ओर अनुकूल होकर आ जाय।

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू प्रसन्न होकर जिस धनको धारण करता है, तथा जिसकी इच्छा करता है, जिसका दान करता है, वह धन तू हमें प्रदान कर, तेरा छोटा भी कार्य पृथ्वी पर अत्यधिक प्रशंसित होता है ॥ ३१-३२ ॥

यह इन्द्र ! सत्पुरुषोंकी प्रशंसा करता है, इसीलिए इसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। हे इन्द्र ! यदि हमसे कोई छोटा-मोटा अपराध हो गया हो, तो उस अपराधके कारण हमें मत मारो ॥ ३३-३४ ॥

शत्रुओं पर प्रहार करनेवाले शूरसे, पापियोंके विनाशकसे और शत्रुओंको पराजित करनेवाले इन्द्रसे डरना चाहिए। मनुष्य अपने मित्र और पुत्रके धनको हडपनेका प्रयत्न कभी न करे ॥ ३५-३६ ॥

९६७ को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ॥ ३७ ॥
९६८ एवारे वृषभा सुते ऽसिन्वन् भूर्यावयः । श्वघ्नीव निवता चरन् ॥ ३८ ॥
९६९ आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥ ३९ ॥
९७० भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४० ॥
९७१ यद्वीळाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४१ ॥
९७२ यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ४२ ॥

अर्थ— [९६७] हे (मर्याः) मनुष्यो ! (अ-मिथितः सखा) क्रोधरहित मित्र इन्द्र (सखायं अब्रवीत्) अपने मित्रसे पूछता है, कि मैंने (कः नु जहा) किस [निरपराध मनुष्य] को मारा, या (कः अस्मत् ईषते) कौन मुझसे दूर भागता है ॥ ३७ ॥

[९६८] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (एवारे सुते) एवार नामक मनुष्यके सोमयाग करने पर (निवता चरन् श्वघ्नी आवयः इव) पहाडोंमें विचरनेवाला शिकारी जैसे जवान पशुओंको प्राप्त करता है, उसी प्रकार उसको भी (भूरि असिन्वन्) बहुत धन तुमने दिया ॥ ३८ ॥

१ निवत्— घाटी, पर्वतकी उपत्यका

[९६९] हे इन्द्र ! मैं (ते) तुम्हारे (वचः युजा) कहनेसे ही रथमें जुड जानेवाले (सं-उद्-रथा) तथा रथको उत्तमतासे ढोनेवाले (एता हरी) इन घोडोंको मैं अपने पास (आ गृभ्णे) बुलाता हूँ (यत्) जब (ईं) इस धनको तुमने (ब्रह्मभ्यः इत् ददः) ब्राह्मणोंके लिए ही दिया ॥ ३९ ॥

[९७०] हे इन्द्र ! (विश्वाः द्विषः) सम्पूर्ण शत्रुओंको (अप भिन्धि) मार दो, तथा (बाधः मृधः परि जहि) हिंसक शत्रुओंको दूर करो, तथा (तत् स्पार्हं वसु आ भर) उस उत्तम धनको ले आओ ॥ ४० ॥

[९७१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् वीळौ) जो धन सुदृढ स्थानमें है, (यत् स्थिरे) जो धन स्थिर भूमिमें है, तथा (यत् स्पर्शाने पराभृतं) जो धन स्पर्श न करने योग्य स्थानमें रखा हुआ है, (तत् स्पार्हं वसु आ भर) उस उत्तम धनको ले आओ ॥ ४१ ॥

[९७२] (ते) तुम्हारे द्वारा (दत्तस्य) दिए गए (यस्य भूरेः) जिस उत्तम धनको (विश्व मानुषः वेदति) सभी मनुष्य जानते हैं, (तत् स्पार्हं वसु आ भर) उस स्पृहणीय धनको ले आओ ॥ ४२ ॥

भावार्थ— इन्द्र निरपराधी पर कभी क्रोध नहीं करता, इस लिए निरपराधी और सत्कर्म करनेवाला मनुष्य उस इन्द्रसे कभी दूर नहीं भागता, अपितु उससे प्रेम ही करता है। वह इन्द्र भी ऐसे सत्पुरुषको हर तरहसे ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥ ३७-३८ ॥

इन्द्रके दोनों घोडे अच्छी तरहसे सुशिक्षित, संकेतमात्रसे रथमें जुड जानेवाले हैं। इन घोडोंकी सहायतासे इन्द्र सभी हिंसक शत्रुओंको दूर करता है ॥ ३९-४० ॥

सुदृढ स्थान, स्थिर स्थान और स्पर्श करनेके लिए कठिन ऐसे तीन स्थानोंमें धन सुरक्षित रखा जाता है। ऐसे स्थानोंमें रखे हुए धनको भी इन्द्र जानता है तथा वह उत्तम धन अपने उपासकोंको देता है ॥ ४१-४२ ॥

[४९]

(ऋषिः- वशोऽश्व्यः । देवताः- इन्द्रः, २६-२४ कानीतः पृथुश्रवाः; २५-२८, ३२ वायुः । छन्दः- गायत्री,
१ पादनिचृत्, ५ ककुप्, ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ९ सतोबृहती, ११-१२ विपरीतोत्तरः प्रगाथः=
(बृहती, विपरीता), १३ द्विपदा जगती, १४ बृहती पिपीलिकमध्या, १५ ककुम्न्यंकुशिरा,
१६ विराट्, १७ जगती, १८ उपरिष्टाद् बृहती, १९ बृहती, २० विषमपदा बृहती,
२१, २४ पङ्क्तिः; २२ संस्तारपङ्क्तिः, २५-२८ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती),
३० द्विपदा विराट्, ३१ उष्णिक्, ३२ पङ्क्तिः ।)

९७३ त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ १ ॥
९७४ त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् । विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥
९७५ आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥
९७६ सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥ ४ ॥
९७७ दधानो गोमदश्ववत् सुवीर्यमादित्यजूत एधते । सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥
९७८ तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥

[४६]

अर्थ— [९७३] हे (पुरूवसो प्रणेतः हरीणां स्थातः इन्द्र) बहुतोंके निवासक, उत्तम नेता तथा घोडों पर स्वामित्व करनेवाले इन्द्र ! (वयं त्वावतः स्मसि) हम तेरे होकर ही रहें ॥ १ ॥

[९७४] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (सत्यं) यह सत्य है कि हम (त्वां हि) तुझे ही (इषां दातारं विद्म) अन्नोंका देनेवाला मानते हैं, तुझे ही (रयीणां दातारं विद्म) धनोंका देनेवाला मानते हैं ॥ २ ॥

[९७५] हे (शतमूते शतक्रतो) सैकडों संरक्षणके साधन अपने पास रखनेवाले तथा सैकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (यस्य ते महिमानं) जिस तेरी महिमाका (कारवः गीर्भिः गृणन्ति) स्तोता स्तुतियोंसे वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

[९७६] (यं अ-द्रुहः मरुतः अर्यमा मित्रः पान्ति) जिस मनुष्यकी द्रोह न करनेवाले मरुत्, अर्यमा और मित्र रक्षा करते हैं, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सुनीथः) उत्तम मार्गसे जानेवाला है, (घा) यह सत्य है ॥ ४ ॥

[९७७] (आदित्यजूतः) अखण्डनीय इन्द्रसे रक्षित हुआ मनुष्य (गोमत् अश्ववत् सुवीर्यं) गाय और घोडोंसे युक्त बलको (दधानः) धारण करता हुआ (एधते) सदा बढता है, तथा (पुरुस्पृहा राया) बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य धनसे भी (सदा) हमेशा बढता है ॥ ५ ॥

[९७८] हम (शवसानं, अभीर्वं, ईशानं तं इन्द्रं) बल युक्त, निडर, सबके स्वामी उस इन्द्रसे (दानं ईमहे) दान मांगते हैं, (रायः ईमहे) धन मांगते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू अविनाशी, वज्रधारी, अन्नोंको देनेवाला तथा धनोंको देनेवाला है, अतः हम सदा तेरे ही होकर रहें ॥ १-२ ॥

हे इन्द्र ! तेरी महिमाका वर्णन सभी स्तोता करते हैं । तू तथा अन्य देव जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह सदा उत्तम मार्गसेही जाता है । जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसीकी रक्षा देवगण करते हैं ॥ ३-४ ॥

जो मनुष्य इन्द्रसे रक्षित होता है वह गाय और घोडोंसे युक्त होकर बलको धारण करता है और धनसे भी सदा बढता रहता है । अतः हम भी उस इन्द्रसे रक्षा की तथा धनकी कामना करते हैं ॥ ५-६ ॥

९७९ तस्मिन् हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥

९८० यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य आददिः स्वर्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥

९८१ यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥ ९ ॥

९८२ गव्यो षु णो यथा पुरा ऽश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह ॥ १० ॥

९८३ नहि ते शूर राधसो ऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥

९८४ य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत् स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगे ऽन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥ १२ ॥

अर्थ— [९७९] (तस्मिन्) उस इन्द्रके आश्रयमें (ऊतयः विश्वाः अ-भीरवः) रक्षा करनेवाली सब निडर सेनायें (सचा) एकसाथ रहती हैं। (तं पुरूवसुं मदाय) उस बहुत धनवान् इन्द्रके आनन्दके लिए (सप्तयः हरयः) वेगसे दौडनेवाले घोडे (सुतं आ वहन्तु) सोम यज्ञके प्रति इन्द्रको ले आवें ॥ ७ ॥

[९८०] हे इन्द्र ! (ते यः वरेण्यः मदः) जो तेरा श्रेष्ठ उत्साह है और (यः वृत्रहन्तमः) जो शत्रुओंको मारनेवाला है और (यः नृभिः स्वः आददिः) जो शत्रुसे मनुष्योंसे धन लूट लेता है, तथा (यः पृतनासु दुस्तरः) जो युद्धोंमें शत्रुओंसे पराजित नहीं होता [ऐसा उत्साह हमें प्राप्त हो] ॥ ८ ॥

[९८१] (यः वाजेषु दुस्तरः) जो उत्साह युद्धोंमें कठिनतासे परास्त करने योग्य, (श्रवाय्यः) बलशाली और (तरुता अस्ति) मनुष्योंका दुःखोंसे तारण करानेवाला है, (सः) वह, हे (विश्ववार शविष्ठ वसो) सबके द्वारा वरणीय, अत्यन्त बलवान् और सबको बसानेवाले इन्द्र ! तू (नः सवना आ गहि) हमारे यज्ञोंमें आ हम (गोमति व्रजे गमेम) गायोंसे युक्त बाडोंमें जायें ॥ ९ ॥

[९८२] हे (महामह) बहुत धनवान् इन्द्र ! (पुरा यथा) पहलेके समानही तू (नः गव्या अश्वया उत रथया) हमें गायें घोडे और रथ देनेकी इच्छासे (सु वरिवस्य) आज भी अच्छी तरहसे आ ॥ १० ॥

[९८३] हे शूर इन्द्र ! (सत्रा हि) वह सत्य है कि मैं (ते राधसः अन्तं न विन्दामि) तेरे ऐश्वर्यका अन्त नहीं पाता हूँ। इसलिए हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (नः दशस्य) हमें धन दे, तथा हे (अद्रि-वः) शस्त्रधारी इन्द्र ! तू (वाजेभिः धियः आविथ) अपने बलोंसे हमारे कर्मोंकी रक्षा कर ॥ ११ ॥

[९८४] (यः ऋष्वः श्रावयत्सखा पुरुष्टुतः) जो महान्, यशस्वियोंका मित्र तथा बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र है, (सः जनिमा वेद) वह हमारे सब जन्मोंको जानता है। (यतस्रुचः विश्वे मानुषाः) स्रुचासे आहुति देनेवाले सब मनुष्य (तं तविषं इन्द्रं) उस बलवान् इन्द्रके लिए (युगा हवन्ते) सदा हवन करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— सभी सेनायें उस इन्द्रके आश्रयमें रहती हैं इसीलिए निडर भी होती हैं। इन्द्रका उत्साह श्रेष्ठ है, शत्रुओंको मारनेवाला है और शत्रुओंसे कभी पराजित नहीं होता ॥ ७-८ ॥

इन्द्रका उत्साह युद्धोंमें शत्रुओंके द्वारा अजेय, बलदायक और मनुष्योंको दुःखोंसे तारनेवाला है। वह इन्द्र हमारे यज्ञोंमें आकर हमें गौवें प्रदान करके समृद्ध बनावे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तेरे ऐश्वर्यकी कोई सीमा नहीं है। तेरे पास गाय आदि पशुरूप समृद्धिकी भी कोई सीमा नहीं है। तू अपने बलोंसे हमारे कर्मोंकी रक्षा कर ॥ १०-११ ॥

+

९८५ स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरःस्थाता । मघवा वृत्रहा भुवत् ॥ १३ ॥
९८६ अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥
९८७ ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमथ ॥ १५ ॥
९८८ विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः । कृपयतो नूनमत्यथ ॥ १६ ॥
९८९ महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये ।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥ १७ ॥
९९० ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम् ।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८ ॥

अर्थ— [९८५] (पुरूवसुः, पुरः स्थाता, मघवा वृत्रहा सः) बहुतोंको बसानेवाला, सदा आगे रहनेवाला, ऐश्वर्यवान् तथा वृत्रको मारनेवाला वह इन्द्र (वाजेषु नः अविता भुवत्) युद्धोंमें हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ १३ ॥

[९८६] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अन्धसः मदेषु) सोमको निचुड़जाने पर (वीरं विचेतसं, नाम श्रुत्यं, शाकिनं) वीर, विद्वान्, यशस्वी, प्रसिद्ध तथा बलवान् (इन्द्रं) इन्द्रका (यथा) जैसे मालूम हो वैसे (महा गिरा वचः) महान् स्तुत्य वाणियोंसे (गाय) गुणवर्णन करो ॥ १४ ॥

[९८७] हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! तू (नूनं) शीघ्र ही (तन्वे रेक्णं ददिः) मेरे शरीरकी पुष्टिके लिए धन दे, (वसुः ददि) निवास करानेवाले धन दे, तथा (नूनं) शीघ्र ही (वाजेषु वाजिनं ददिः) युद्धोंमें बल दे ॥ १५ ॥

[९८८] हम (विश्वेषां वसूनां इरज्यन्तं) सम्पूर्ण धनों पर शासन करनेवाले, (अस्य कृपयतः सासह्वांसं) इस सामर्थ्यवान् शत्रुको भी हरानेवाले इन्द्रकी (नूनं अति) निश्चयसे सबसे ज्यादा स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

[९८९] हम (मीळ्हुषे अरंगमाय जग्मये) बलवान्, सहायक, तथा सर्वत्र जानेवाले इन्द्रकी (अरं इषे) पर्याप्त अन्नकी प्राप्तिके लिए (यज्ञेभिः गीर्भिः) पूजनीय स्तोत्रोंसे (स्तवामहे) स्तुति करते हैं, (वः) तुम भी (महः सु) उस महान् इन्द्रकी उत्तम स्तुति करो । हे इन्द्र ! (विश्व मनुषां मरुतां इयक्षसि) सब मनुष्योंके द्वारा और मरुतोंके द्वारा तुम पूजे जाते हो, मैं (नमसा गिरा त्वा गाये) नम्रवाणीसे तेरा गुणवर्णन करता हूँ ॥ १७ ॥

[९९०] (ये) जो मरुत (अज्मभिः स्नुभिः) बलों और प्रवाहोंसे युक्त (एषां) इन (गिरीणां) पर्वतोंके जलोंको (पातयन्ते) नीचे गिराते हैं, उन (महिष्वणीनां) बहुत गर्जना करनेवाले मरुतोंके लिए मैं (यज्ञं) यज्ञ करता हूँ, उन (तुविष्वणीनां) बड़ी गर्जना करनेवाले मरुतोंकी सहायतासे (अध्वरे सुम्नं) यज्ञमें सुख प्राप्त करता हूँ ॥ १८ ॥

भावार्थ — यह इन्द्र महान्, यशस्वियोंका मित्र, अनेकोंके द्वारा प्रशंसित और हमारे सब जन्मोंका ज्ञाता है । इस इन्द्रको सभी प्राणि दुर्गों-पुरोंसे बुलाते हैं और यह इन्द्र अपने उपासकोंकी रक्षा करता है ॥ १०-१३ ॥

हे स्तोता ! तू सोमको निचोड़कर तू जैसा जानता है, वैसाही तू अपने शब्दोंमें बल बलवान् इन्द्रकी स्तुति कर । वह इन्द्र भी तुझे तेरे शरीरकी पुष्टिके लिए धन देगा और युद्धोंमें शत्रुओंका नाश करनेके लिए बल देगा ॥ १४-१५ ॥

संपूर्ण धनों पर शासन करनेवाले सामर्थ्यवाली शत्रुको भी हरानेवाले इन्द्रकी हम सबसे अधिक स्तुति करें ॥ १६ ॥

बलवान्, सहायक और सर्वत्र जानेवाले इन्द्रकी उत्तम रीतिसे स्तुति करनी चाहिए, ताकि हमें उत्तम समृद्धि प्राप्त हो । इन्द्रकी सदा नम्रवाणीसे ही स्तुति करनी चाहिए ॥ १७ ॥

बलके प्रवाहोंसे युक्त तथा जलके प्रवाहोंको बहानेवाले, अत्यधिक गर्जना करनेवाले मरुतोंकी हर तरहसे पूजा और सत्कार करना चाहिए, ताकि यज्ञ कर्ताओंको सुख प्राप्त हो ॥ १८ ॥

९९१ प्रभङ्गं दुर्मतीना- मिन्द्र शविष्ठा भर ।
रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ज्येष्ठं चोदयन्मते ॥ १९ ॥
९९२ सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥ २० ॥
९९३ आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीते ऽस्या व्युष्याददे ॥ २१ ॥
९९४ षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासन- मुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥ २२ ॥
९९५ दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः । मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥
९९६ दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन् मंहिष्ठः सूरिरभू- द्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥ २४ ॥

अर्थ— [९९१] हे (चोदयन्मते) प्रेरणा देनेवाली बुद्धिसे युक्त तथा (शविष्ठ) बलवान् इन्द्र ! तू (अस्मभ्यं) हमें (दुर्मतीनां प्रभंगं) दुष्ट बुद्धिवालोंको नष्ट करनेवाले, (ज्येष्ठं युज्यं रयिं) श्रेष्ठ और योग्य धनको (आ भर) भरपूर दे ॥ १९ ॥

[९९२] हे (सनितः) दानदाता, (सु-सनितः) बलवान् (उग्रः चित्र चेतिष्ठ सूनृत) वीर, विलक्षण सामर्थ्यवान् चेतनावान् तथा सत्य युक्त (प्रासहा सम्राट्) शत्रुओंको मारनेवाले और उत्तम तेजस्वी इन्द्र ! तू हमें (वाजेषु) संग्रामोंमें (सहुरिं सहन्तं भुज्युं पूर्व्यं) शत्रुओंको हरानेवाले, सहनशीलता देनेवाले, उपभोगके योग्य, तथा प्रवृद्ध धनको दे ॥ २० ॥

[९९३] (यथा चित्) जब (वशः अश्व्यः) अश्वके पुत्र वशने (पृथुश्रवसि कानीते) पृथुश्रवाके पुत्र कानीतसे (अस्याः व्युष्टौ) इस उषाके उदय होनेपर (आ ददे) धन प्राप्त किया, अतः (यः अदेवः) जिस मनुष्यने (ईवत् पूर्तं आ ददे) इतना भरपूर धन प्राप्त किया, (सः आ एतु) वह हमारे पास आवे ॥ २१ ॥

[९९४] मैंने (षष्टिं सहस्रा अयुता अश्व्यस्य असनं) साठ हजार और दस हजार अर्थात् सत्तर हजार घोडे प्राप्त किए, (विंशतिं शता उष्ट्राणां) बीस सौ अर्थात् दो हजार ऊंट प्राप्त किए, (शता दश श्यावीनां) एक हजार कृष्णवर्णकी घोडियें मुझे मिलीं, तथा (त्रि-अरुषीणां) तीन जगहसे सफेद पट्टीवाली (दश सहस्रा गवां) दस हजार गायें मुझे मिलीं ॥ २२ ॥

[९९५] (ऋधत् रयः) अत्यन्त वेगवान् (वीतवारासः) बलवान् (मथ्राः) शत्रुओंको मथनेवाले (दश श्यावाः आशवः) दस काले घोडे (नेमिं नि वावृतुः) मेरे रथकी धुराको खींचते हैं ॥ २३ ॥

[९९६] (सुराधसः पृथुश्रवसः कानीतस्य) उत्तम ऐश्वर्यशाली पृथुश्रवस् कानीतके (दानासः) दान उत्तम हैं। उसने मुझे (हिरण्ययं रथं ददत्) सोनेका रथ दिया है, अतः वह (मंहिष्ठः सूरिः अभूत्) अत्यन्त श्रेष्ठ दाता और ज्ञानी हो गया, मैंने (वर्षिष्ठं श्रवं अकृत) उसके यशको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाया ॥ २४ ॥

भावार्थ— हे प्रेरक बुद्धिसे युक्त तथा बलवान् इन्द्र ! हमें ऐसा धन दो कि हम दुष्ट बुद्धिवालोंको नष्ट करें। हे बलवान् इन्द्र ! तू वीर, विलक्षण सामर्थ्यशाली, चेतनावान् तथा सत्युक्त हैं, तू अपने जैसा ही हमें बना ॥ १९-२० ॥

मनुष्य सदा धनीके सम्पर्कमें रहे; ताकि वह भी धनीकी तरह ही ऐश्वर्यशाली हो ॥ २१ ॥

विद्वान्, मंत्रज्ञ ऋषिको ऐसी उत्तम दक्षिणा देनी चाहिए ॥ २२ ॥

ज्ञानी विद्वान्, पुरोहित ऐसे धनवान् हों। वे सदा रथ पर चढकर सर्वत्र घूमें ॥ २३ ॥

जब कोई दाता अपने पुरोहितको अनेक तरहके धन आदि देकर ऐश्वर्ययुक्त करे, तब पुरोहितका भी कर्तव्य है कि वह अपने यजमानकी कीर्तिको विस्तृत करे ॥ २४ ॥

९९७ आ नो वायो मुहे तने याहि मुखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥
९९८ यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम् ।
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६ ॥
९९९ यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने ।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥ २७ ॥
१००० उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥ २८ ॥
१००१ अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् । अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥ २९ ॥
१००२ गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥ ३० ॥

अर्थ— [९९७] हे (वायो) वायो ! (महे तने) बहुत धनके दानके लिए (मखाय पाजसे) यज्ञरूप बलके लिए (नः आ याहि) हमारे पास आ । (भूरिदावने) बहुत धन देनेवाले (ते हि) तेरी (सद्यः चित् महि दावने) शीघ्रही महान धन देनेके लिए (वयं आचकृम) हम स्तुति करते हैं । २५ ॥

[९९८] (यः अश्वेभिः वहते) जो घोडोंसे विचरण करता है, तथा जो (सप्ततीनां त्रिः सप्त) तीन गुना सात बार फिर उसका सत्तर गुना (१४७०) (उस्राः वस्ते) गायोंका आश्रयस्थान है, वह (सोमपाः शुक्रपूतपाः) सोमपान करानेवाला, वीर्य संवर्धन और पवित्रता करनेवाला (एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः) इन सोमोंके तथा सोमरसके तैय्यार करनेवालोंके साथ (दानाय) दान देनेके लिए घूमता है । २६ ॥

[९९९] (यः मे इमं) जो वायु मुझे इस (चित्रं दावने) विलक्षण दानको देनेके लिए (त्मना चित्) स्वयं ही (अमन्दत्) आनन्दित होता है, वह (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला अपने धनको (अरट्वे) युवा (अक्षे) व्यवहार कुशल (सुकृत्वनि) उत्तम कार्यमें कुशल (नहुषे) मनुष्यमें (सुकृत्तराय) अधिक उत्तम कर्म करनेवालेके हितार्थ देता है ॥ २७ ॥

[१०००] (घृतस्नाः वायो) हे घृतके समान शुद्ध वायो ! (यः) जो पुरुष (उचथ्ये वपुषि) स्तुत्य शरीरमें (स्वराट्) स्वयं शासक होता है, उस पुरुषको तुम (अश्वेषितं, रजेषितं शुनेषितं) घोडे, ऊंट तथा कुत्ते आदि प्राणियोंद्वारा लाया गया (इदं तत् प्राज्म) यह वह अन्न प्रदान करते हो ॥ २८ ॥

[१००१] (अध) अब (इषिराय प्रियं) बलवान्‌के लिए प्रिय लगनेवाले (षष्टिं सहस्रानां वृष्णां अश्वानां) साठ हजार बलवान् घोडोंको (असनं) मैंने दानमें प्राप्त किया ॥ २९ ॥

[१००२] (गावः यूथं न) गायें जिस प्रकार अपने झुण्डमें जाती हैं, उसी तरह (वध्रयः मा उप यन्ति) बैल मेरे पास आते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थ— हे वायुदेव ! बहुत सारा धन देनेके लिए हम तेरी स्तुति करते हैं, तू हमारे पास आकर बहुत सा धन दे ॥ २५ ॥

जो अनेक गाय और घोडोंका आश्रय स्थान है, वह शक्तिशाली और पवित्र वायुदेव हमें दान दे ॥ २६ ॥

यह वायु उत्तम कर्म करनेवाले, अवर्णनीय, आधार देनेवाले मनुष्यको उत्तमोत्तम कर्म करनेके लिए उत्साह देता है ॥ २७ ॥

जो शरीरका सच्चा स्वामी है, जो अपना शरीर अपने आधीन पूर्णतया रखता है, उसको उत्तम अन्न मिलता है । अपने शरीरपर अपनी पूर्ण स्वाधीनता रखना श्रेष्ठ कर्तव्य है ॥ २८ ॥

मुझे गाय घोडे आदि पशु अनेकोंकी संख्यामें प्राप्त हों ॥ २९-३० ॥

१००३ अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् । अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥ ३१ ॥

१००४ शतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥ ३२ ॥

१००५ अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम् । अधिरुक्मा वि नीयते ॥ ३३ ॥

[४७]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवता- आदित्याः, १४-१८ आदित्योषसः (दुःष्वप्नघ्नं) । छन्दः- महापङ्क्तिः ।)

१००६ महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नश-
-दनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १ ॥

अर्थ— [१००३] (अध) बादमें (चारथे उष्ट्रां गणे) विचरनेवाले ऊंटोंके समूहमेंसे (शतं अचिक्रदत्) सौ ऊंट दिए, (अध) और (श्वित्नेषु) सफेद गायोंमेंसे (विंशति शता) बीस सौ गायें दीं ॥ ३१ ॥

[१००४] (तरुक्षः) सबको आश्रय देनेवाला (विप्रः) बुद्धिमान (बल्बूथे) बलशाली वायु (शतं दासे) सैंकडों जनोंको (आ ददे) आश्रय देता है । हे (वायो) वायो ! (ते इमे जनाः) वे स्तुति करनेवाले ये जन (इन्द्रगोपाः) इन्द्रसे रक्षित होकर (मदन्ति) आनन्दित होते हैं तथा (देवगोपाः) देवों अर्थात् विद्वानोंसे रक्षित होकर (मदन्ति) आनन्दित होते हैं ॥ ३२ ॥

[१००५] (अध) इसके बाद (स्या) वह (अधिरुक्मा) स्वर्णालंकारोंसे सजी हुई वह (मही प्रतीची योषणा) बडी उत्कृष्ट स्त्री (अश्व्यं वशं विनीयते) अश्व्य वशके प्रति ले जाई जाती है ॥ ३३ ॥

[४७]

[१००६] हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! (महतां वः अवः) तुम जैसे श्रेष्ठोंका संरक्षण (दाशुषे महि) दाताके लिए बहुतही प्राप्त होता है । हे (आदित्याः) आदित्यो ! (यं द्रुहः अभि रक्षथ) जिसे द्रोही शत्रुसे तुम सुरक्षित रखते हो, (ईं अघं न नशत्) उसे पाप कष्ट नहीं देता, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारी सुरक्षायें निष्पाप हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारी रक्षायें उत्तम हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य ऊंट, गाय आदि अनेक पशु अपने पास पालें ॥ ३१ ॥

सबको आश्रय देनेवाला बुद्धिमान् तथा बलशाली वायु सबको प्राण प्रदान करता है । सभी प्राणि इन्द्रसे रक्षित होकर आनन्दित होते हैं ॥ ३२ ॥

उत्कृष्ट और स्वर्ण अलंकारोंसे सजी हुई स्त्री उसीको मिलती है कि जो पुरुष अश्वको भी वशमें कर सके अर्थात् वह इतना बलशाली हो ॥ ३३ ॥

हे देवो ! जिस दाताकी तुम रक्षा करते हो, तथा जिस शत्रुसे तुम उस दाताका बचाव करते हो, वह सभी तुम्हारे सुरक्षाके साधन निष्पाप हैं और उत्तम हैं ॥ १ ॥

१००७ विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छता-
-नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ २ ॥
१००८ व्यस्मे अधि शर्म तत् पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहे
ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ३ ॥
१००९ यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशते
ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ४ ॥
१०१० परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्य-
-नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१००७] हे (देवाः आदित्यासः) हे देव आदित्यो ! (अघानां अपाकृतिं विद) हमारे पापोंको नष्ट करनेका ज्ञान तुम्हें है। (वयः यथा पक्षा उपरि) पक्षी जिस तरह अपने बच्चों पर पंखोंकी छाया करते हैं, वैसा (शर्म अस्मे यच्छत) सुख हमें दो। (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारी सुरक्षायें निष्पाप हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारी रक्षायें उत्तम हैं ॥ २ ॥

[१००८] (अस्मे अधि तत् शर्म) हमपर तुम्हारा वह सुख रहे, (पक्षा वयः न वि यन्तन) जिस तरह पक्षी अपने पंखोंसे बच्चोंको संरक्षण देते हैं, उसी प्रकार तुम हमें संरक्षण दो। हे (विश्ववेदसः) सर्वज्ञ देवो ! (विश्वानि वरूथ्या मनामहे) सब प्रकारके संरक्षण हम चाहते हैं। (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण निष्पाप हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ३ ॥

[१००९] हे (प्रचेतसः) ज्ञानी देवो ! (यस्मै क्षयं जीवातुं च अरासत) जिसे आश्रय और जीवनसाधन तुम देते हो, उसके लिएही (इमे आदित्याः) ये आदित्य (विश्वस्य घ इत् मनोः रायः) सब मानवोंके धनों पर (ईशते) अधिकार स्थापित करते हैं। हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ४ ॥

[१०१०] (दुर्गाणि यथा) जिस तरह कठिनताओंको दूर करते हैं, उसी तरह (नः अघा परि वृणजन्) हम पापोंको दूर करते हैं। (इन्द्रस्य शर्मणि स्याम) इन्द्रके आश्रयमें हम रहें (उत आदित्यानां अवसि) और आदित्योंकी सुरक्षामें भी हम रहें (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे देवो ! तुम जानते हो कि हमारे पाप किस रीतिसे नष्ट हो सकते हैं। अतः हमारे पापोंको नष्ट करके जिस तरह पक्षी अपने बच्चोंको सुख देते हैं, उसी तरह हमें भी सुख दो ॥ २ ॥

जिस तरह पक्षी अपने बच्चोंको उत्तम सुख और संरक्षण देते हैं, उसी तरह हमें भी देव सुख और संरक्षण प्रदान करें। हम देवोंके उत्तम और पापरहित संरक्षणको चाहते हैं ॥ ३ ॥

इन्हीं देवोंकी कृपासे मनुष्योंको आश्रय स्थान और जीवन साधन मिलते हैं। ये ही देव सब मानवोंके धनके स्वामी हैं ॥ ४ ॥

हम इन्द्रकी शरणमें आयें तथा आदित्योंके संरक्षणमें हम सदा रहें, इसप्रकार हम पापोंको उसी तरह दूर करें कि जिस तरह लोग कठिनताको दूर करते हैं ॥ ५ ॥

१०११ परिह्वृतेदना जनो　युष्मादत्तस्य वायति ।
देवा अदभ्रमाश वो　यमादित्या अहेतना—
—नेहसो व ऊतयः　सुऊतयो व ऊतयः　॥ ६ ॥

१०१२ न तं तिग्मं चन त्यजो　न द्रासदभि तं गुरु ।
यस्मा उ शर्म सप्रथ　आदित्यासो अराध्व—
—मनेहसो व ऊतयः　सुऊतयो व ऊतयः　॥ ७ ॥

१०१३ युष्मे देवा अपि ष्मसि　युध्यन्त इव वर्मसु ।
यूयं महो न एनसो　यूयमर्भादुरुष्यता—
—नेहसो व ऊतयः　सुऊतयो व ऊतयः　॥ ८ ॥

१०१४ अदितिर्न उरुष्यत्व—दितिः शर्म यच्छतु ।
माता मित्रस्य रेवतो　ऽर्यम्णो वरुणस्य चा—
—नेहसो व ऊतयः　सुऊतयो व ऊतयः　॥ ९ ॥

अर्थ— [१०११] (परिह्वृता इत् अना जनः) दुःखी अवस्थामें रह कर भी जीवित रहनेवाला तुम्हारा भक्त मानव (युष्मादत्तस्य धनं वायति) तुम्हारे दिए धनको प्राप्त करता है । हे (आशवः देवाः) शीघ्रगामी देवो ! (यं अहेतन) जिसके पास तुम जाते हो (सः अदभ्रं) वह विपुल धन प्राप्त करता है, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं । ॥ ६ ॥

[१०१२] (तं तिग्मं चन त्यजः न द्रासत्) उसको तीक्ष्ण शस्त्र भी कष्ट नहीं देता, (तं गुरु) बडा कष्ट भी उसे नहीं सताता है (आदित्यासः) हे आदित्यो ! (सप्रथः यस्मा उ शर्म अराध्वं) जिसको तुम आश्रय देते हो वह सुखी होता है । (वः ऊतयः अनेहसः) हे देवो ! तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ७ ॥

[१०१३] हे (देवाः) देवो ! (युध्यन्तः वर्मसु) जैसे युद्ध करनेवाले वीर कवचोंमें सुरक्षित रहते हैं, उसी तरह (युष्मे अपि स्मसि) तुम्हारे होकर हम रहें । (यूयं) तुम (नः महः एनसः उरुष्यत) हमें बडे पापसे बचाओ । (यूयं अर्भात्) तुम छोटे पापसे भी बचाओ । (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ८ ॥

[१०१४] (नः अदितिः उरुष्यतु) हमें अदिति बचावे, (अदितिः शर्म यच्छतु) अदिति हमें सुख देवे, (मित्रस्य रेवतः अर्यम्णः वरुणस्य च माता) मित्र, धनवान् अर्यमा और वरुणकी माता अदिति हमें सुख दें । (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥९॥

भावार्थ — दुःखी अवस्थामें रहकर भी जो मनुष्य इन देवोंकी भक्ति करता है, वह अन्तमें इन देवों द्वारा दिए गए धनको प्राप्त करता है, अर्थात् देवगण इसकी भक्ति पर प्रसन्न होकर अत्यधिक धन प्रदान करते हैं ॥ ६ ॥

ये देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसे तीक्ष्ण शस्त्र या बडेसे बडे कष्ट भी कभी नहीं सताते, जिसे ये देव आश्रय देते हैं, वह सुखी होता है ॥ ७ ॥

हे देवो ! जिस तरह युद्धमें कवचसे सुरक्षित वीर हर तरह शस्त्रास्त्रोंसे सुरक्षित रहता है, उसी तरह तुमसे रक्षित हुआ मनुष्य छोटे और बडे पापोंसे सर्वथा सुरक्षित रहता है ॥ ८ ॥

हमें अदिति देवी पापोंसे बचाकर उत्तम सुख दे, मित्र, वरुण, अर्यमा आदि देव भी हमें सुख प्रदान करें ॥ ९ ॥

१०१५ यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् ।
त्रिधातु यद्वरूथ्यं१ तदस्मासु वि यन्तना—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १० ॥

१०१६ आदित्या अव हि ख्यता—धि कूलादिव स्पशः ।
सुतीर्थमर्वतो यथा—नु नो नेषथा सुग—
—मनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ११ ॥

१०१७ नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यते
ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १२ ॥

१०१८ यदाविर्यदपीच्यं१ देवासो अस्ति दुष्कृतम् ।
त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद् दधातना—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १३ ॥

अर्थ-[१०१५] हे (देवाः) देवो ! (यत् शर्म शरणं) जो कवच सुखदायी (यत् भद्रं) जो कल्याणकारी और (यत् अनातुरं) जो निरोगिता देनेवाला है, (यत् त्रिधातु) जो तीन तरहसे धारण करनेवाला है, (यत् वरूथ्यं) जो सुरक्षा करनेवाला है, (तत् अस्मासु वि यन्तन) वह कवच हमें प्रदान करो। (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १० ॥

[१०१६] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (कूलात् अधि स्पशः) नदीतीर परसे जैसे नीचे देखते हैं, वैसेही (अव हि ख्यत) तुम हमारी ओर नीचे देखो, (सुतीर्थं अर्वतः यथा) जैसे उतारके मार्गसे घोडोंको ले जाते हैं, उसी तरह (नः सुगं अनुनेषथ) हमें सुगम मार्गसे ले चलो, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ ११ ॥

[१०१७] (इह रक्षस्विने भद्रं न) यहां राक्षसी जनोंका कल्याण न हो, (अवयै न) घातकोंका कल्याण न हो, (उत) और (उपयै न) उपद्रवी लोगोंका कल्याण न हो। (गवे च भद्रं) गायोंका कल्याण हो। (धेनवे, वीराय श्रवस्यते च) गाय, वीर और यशके लिए यत्न करनेवालेका कल्याण हो, (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण हे देवो ! पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १२ ॥

[१०१८] हे (देवासः) देवो ! (यत् आविः अस्ति) जो पाप प्रकट हुआ हो, तथा (यत् दुष्कृतं) जो पाप (अपीच्यं) गुप्त रूपसे हुआ हो, (तत् विश्वं आप्त्ये त्रिते) वह सब मुझ त्रित आप्त्यमें न रहे, (अस्मत् आरे दधातन) उस पापको हमसे दूर भेज दो। (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हों, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हों ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे देवो ! जो सुखदायी, कल्याणकारी और निरोगिता देनेवाला कवच है, उस कवचको हमें प्रदान करो, ताकि उससे हमें आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधि दैविक शान्ति मिले, और हमारी हर तरहसे सुरक्षा हो ॥ १० ॥

जैसे ऊंचे नदी तीरपर खडा होकर मनुष्य नीचेके सब दृश्योंको देखता है, उसी तरह देव हमारा निरीक्षण सदा करते रहते हैं। वे हमें सदा उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं ॥ ११ ॥

इस संसारमें राक्षसों, घातकों और उपद्रवी लोगोंका कल्याण न हो, अपितु जो गाय, वीर और यशः प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेवाले हों उन्हींका कल्याण हो ॥ १२ ॥

हे देवो ! जो पाप हमसे प्रकटरूपसे हुआ हो अथवा गुप्त रूपसे हुआ हो, वे सभी पाप हमसे दूर रहें। हम कभी किसी तरहका पाप न करें ॥ १३ ॥

१०१९ यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः ।
त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वह—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १४ ॥

१०२० निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्य—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥

१०२१ तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्ष्वप्न्यं वह—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥

१०२२ यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं संनयामसि ।
एवा दुष्ष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्य—
—नेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥

अर्थ— [१०१९] हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषे ! (यत् च गोषु यत् च अस्मे) जो गौओंमें और जो हममें (दुष्ष्वप्न्यं) बुरा स्वप्न बाधाकारी हो, हे (विभावरि) तेजस्विनि उषे ! (तत् आप्त्याय त्रिताय) उसे त्रित आप्त्यसे-मुझसे (परा वह) दूर कर। (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १४ ॥

[१०२०] हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषे ! (निष्कं वा घ वा स्रजं कृणवते दुष्ष्वप्न्यं) अलंकार बनानेवाले सुनारके अथवा माला बनानेवाले मालीके जो दुष्ट स्वप्न हों, (सर्वं) वह सब (आप्त्ये त्रिते) त्रित आप्त्यको छोडकर (परि दद्मसि) दूर भगा देते हैं। (वः ऊतयः अनेहसः) हे देवो ! तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १५ ॥

[१०२१] (तत् अन्नाय) वह अन्न लेनेवाला, (तत् अपसे) वह कर्म करनेवाला (तं भागं उपसेदुषे) अथवा इस भोगका अंश स्वीकार करनेवाला (त्रिताय द्विताय) त्रित और द्वित है, हे (उषः) उषे ! (दुष्ष्वप्न्यं वह) उसके पाससे वह दुष्ट स्वप्न दूर ले जा। हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण है ॥ १६ ॥

[१०२२] (यथा कलां) जैसे सूद (यथा ऋणं) जैसे ऋण (यथा शफं) जैसे मूल धन (संनयामसि) हम पूरी तरह दे डालते हैं, (एव) उसी तरह (सर्वं दुष्ष्वप्न्यं) सब दुष्ट स्वप्न (आप्त्ये सं नयामसि) आप्त्यके पास पूर्णतया दूर ले जाते हैं। हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पाप रहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे देवि उषे ! जो दुष्ट स्वप्न या विचार हममें और गौओंमें हो, वे सब मुझसे दूर हों और हम पाप रहित हों ॥ १४ ॥

अलंकार बनानेवाले सुनार अथवा मालायें बनानेवाले माली जो झूठ और चोरीका व्यापार करते हैं, उस पापसे हम दूर रहें तथा देवोंके उत्तम संरक्षणमें हम सदा रहें ॥ १५ ॥

अन्न सदा पापसे रहित होकर ही लिया और दिया जाए। अथवा उस अन्न-भोगके अंशको स्वीकार करनेवाला भी पापरहित हो ॥ १६ ॥

जिस तरह सूद, उसका मूलधन और अन्य तरहका ऋण मनुष्य पूरी तरह उतार देते हैं, उसी तरह मनुष्य पापोंको भी अपने पाससे दूर कर दे ॥ १७ ॥

+

१०२३ अजैष्माद्यासनाम चाऽभूमानागसो वयम् ।
उषो यस्माद् दुष्वप्न्या-दभैष्माप तदुच्छतु-
-अनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १८ ॥

[४८]

(ऋषिः- प्रगाथो घौरः काण्वः । देवताः- सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५ जगती ।)

१०२४ स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि संचरन्ति ॥ १ ॥

१०२५ अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्य-वयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ २ ॥

१०२६ अपाम सोमममृता अभूमा-गन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०२३] (वयं अद्य अजैष्म) हमने आज विजय प्राप्त कि है, (असनाम च) और लाभ प्राप्त किया है, (अनागसः अभूम) हम निष्पाप बन चुके हैं, हे (उषः) उषे ! (यस्मात् दुष्वप्न्यात् अभैष्म) जिस दुष्ट स्वप्नसे हम भय भीत हुए थे, (तत् अप उच्छतु) वह भय दूर हो । हे देवो ! (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारे संरक्षण पापरहित हैं, (वः ऊतयः सु ऊतयः) तुम्हारे संरक्षण उत्तम संरक्षण हैं ॥ १८ ॥

[१०२४] (यं) जिस सोमको (विश्वे देवाः उत मर्त्यासः) सभी देव और मनुष्य (मधु ब्रुवन्तः) 'मीठा है, मीठा है' ऐसा कहते हुए (अभि संचरन्ति) घूमते हैं, उस (वरिवोवित्तरस्य स्वादोः वयसः) अत्यन्त पूज्य, और स्वादिष्ट अन्नरूप सोमरसको (सुआध्यः सुमेधाः अभक्षि) उत्तम अध्ययन करनेवाले तथा उत्तम मेधा-बुद्धिवाले मैंने खाया ॥ १ ॥

[१०२५] हे (इन्दो) सोम ! तू (अन्तः प्र अगाः) अन्दर जाता है. हे (अदितिः) अविनाशी सोम ! तू (दैव्यस्य हरसः अवयाता भवासि) दिव्य क्रोधको दूर करनेवाला है । (इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः) इन्द्रकी मित्रताको स्वीकार करके (श्रौष्टी धुरं इव) घोडे जिस तरह रथकी धुरामें जोडे जाते हैं, उसी तरह तू (राये अनु ऋध्याः) धन प्रदान करनेके लिए प्रवृत्त होता है ॥ २ ॥

[१०२६] हमने (सोमं अपाम) सोमको पी लिया है और (अमृताः अभूम) अमर हो गए हैं (ज्योतिः अगन्म) ज्योतिको प्राप्त कर लिया है और (देवान् अविदाम) देवोंको जान लिया है । अब हे (अमृत) अमर सोम ! अब (अरातिः) शत्रु मनुष्य (किं नूनं अस्मान् कृणवत्) हमारा भला क्या बिगाड सकेगा ? (मर्त्यस्य) शुद्र मनुष्यका (धूर्तिः किं) धूर्त मनुष्य क्या बिगाड सकेगा ? ॥ ३ ॥

भावार्थ— देवोंकी उत्तम संरक्षण शक्ति तथा उषाकी कृपा प्राप्त करके हमने विजय प्राप्त की, धन प्राप्त किया और जिससे हम भयभीत हुए थे, उन पापोंसे भी दूर हो गए ॥ १८ ॥

यह सोम अत्यन्त मीठा और उत्साहदायक होनेके कारण सभी देव और मानव इसकी प्रशंसा करते हैं । इसे उत्तम अध्ययनशील तथा उत्तम मेधाबुद्धिवाले ही प्राप्त कर सकते हैं ॥ १ ॥

जब सोमरस शरीरके अन्दर जाता है, तब मनुष्य चाहे कितना भी क्रोधी हो, वह शान्त हो जाता है । सोम इन्द्रका मित्र है, इसलिए सोमरस तैय्यार करनेवालेके पास इन्द्र आता है और वह धनवान् होता है ॥ २ ॥

मनुष्य सोम पीकर अमर हो जाता है, उसे प्रकाशका मार्ग मिल जाता है, उस मार्गपर चलकर वह देवोंकी महिमा जान लेता है । तब उस मनुष्यका उसके शत्रु और धूर्त लोग कुछ भी नहीं बिगाड सकते ॥ ३ ॥

१०२७ शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥ ४ ॥

१०२८ इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥ ५ ॥

१०२९ अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥ ६ ॥

१०३० इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०२७] हे (इन्दो) सोम ! (हृदे आ पीतः) हृदय अर्थात् पेटमें पिए जानेपर तू (नः शं भव) हमारे लिए कल्याणकारी हो । हे (सोम) सोम ! (सूनवे पिता इव) पुत्रके लिए पिताके समान (सख्ये सखा इव) मित्रके लिए मित्रके समान तू हमारे लिए (सुशेवः) सुखकारी हो । हे (उरुशंस सोम) बहुतोंसे प्रशंसित सोम । (धीरः त्वं) बुद्धिमान् तू (जीवसे) हमारे जीनेके लिए (आयुः तारीः) आयुको दीर्घ कर ॥ ४ ॥

[१०२८] (यशसः उरुष्यवः) यशस्वी और रक्षाकी इच्छा करनेवाले (इमे पीताः) ये पिए गए सोमरस (गावः रथं न) बैल जैसे रथको खींचते हैं, उसी तरह (मा पर्वसु समनाह) मेरी सन्धियोंको सुदृढ करें । (उत) और (ते) वे सोमरस (विस्रसः चरित्रात्) डगमगाते हुए कदमोंसे (मा रक्षन्तु) मेरी रक्षा करें, (इन्दवः) ये सोमरस (स्रामात् मा यवयन्तु) रोगसे मुझे पृथक् करें ॥ ५ ॥

[१०२९] हे (सोम) सोमरस ! (मथितं अग्निं न) प्रदीप्त हुई अग्निके समान (मा सं दिदीपः) मुझे देदीप्यमान कर, (प्र चक्षय) मुझे तेजस्वी कर । (नः वस्यसः कृणुहि) हमें धनवान् कर । (अथ) इसके बाद हमें (मदे) आनन्दमें (ते मन्ये) तेरी स्तुति करता हूँ, तू (रेवान् इव) धनवान्के समान (प्रचर) सर्वत्र संचार कर और (पुष्टिं अच्छ) पोषण प्रदान कर ॥ ६ ॥

[१०३०] (इषिरेण मनसा) इच्छायुक्त मनसे (सुतस्य ते) निचोडे गए तुझे (पित्र्यस्य रायः इव) पिताके धनका उपभोग जिस तरह पुत्र करता है, उसी तरह हम (भक्षीमहि) खाएं, हे (राजन् सोम) तेजस्वी सोम ! (सूर्यः वासराणि अहानि इव) सूर्य जिस तरह निवास करानेवाले दिनोंका विस्तार करता है, उसी तरह तू (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुको दीर्घ कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे सोम ! पेटमें जाकर तू हमारे लिए कल्याणकारी हो, जिस तरह एक पिता अपने पुत्रको, तथा एक मित्र अपने मित्रको हर तरहसे सुख देता है, उसी तरह हे सोम ! तू हमें सुख दे, और उत्तम रीतिसे जीनेके लिए तू हमारी आयु दीर्घ कर ॥ ४ ॥

सोमरसके पीनेसे शरीरमें उत्साह उत्पन्न होता है और शरीरके प्रत्येक जोड दृढ होते हैं । पैरोंमें भी शक्ति आती है और शरीर रोगोंसे सदा दूर रहता है । सोमरसको पीनेसे रोगोंका भय नहीं रहता ॥ ५ ॥

सोमपीनेसे मनुष्य जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी और देदीप्यमान होता है, वह धनवान् होता है । सोमरसमें पोषकतत्त्व भी भरपूर होते हैं ॥ ६ ॥

सोमरसको प्रेमपूर्वक पीनेसे मनुष्य पुष्ट होता है और उसकी आयु दीर्घ होती है ॥ ७ ॥

१०३१ सोमं राजन् मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्याुस्तस्य विद्धि ।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥ ८ ॥
१०३२ त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत् ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥ ९ ॥
१०३३ ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ॥ १० ॥
१०३४ अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन् तमिषीचीरभैषुः ।
आ सोमो अस्माँ अरुहद् विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१०३१] हे (राजन् सोम) तेजस्वी सोम ! (स्वस्ति नः मृळय) हमारे कल्याणके लिए हमें सुखी कर, (व्रत्याः तव स्मसि) व्रतका पालन करनेवाले हम तेरे हैं (तस्य विद्धि) इस बातको तू जान। हे (इन्दो) सोम ! (दक्षः उत मन्युः अलर्ति) चतुरता तथा सात्विक क्रोध हमें प्राप्त हो, (नः अर्यः अनुकामं मा परा दाः) हमें शत्रुओंकी इच्छाके अधीन मत कर ॥ ८ ॥

[१०३२] हे (सोम) सोम ! (त्वं हि नः तन्वः गोपाः) तू हमारे शरीरका रक्षक है। इसलिए (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला तू (गात्रे गात्रे) हमारे शरीरके प्रत्येक अंगमें (निषसत्था) प्रविष्ट हो। (यत्) यद्यपि (ते व्रतानि) तेरे नियमोंको (वयं प्रमिनाम) हम तोड देते हैं तो भी हे (देव) देव ! (सः) वह तू (वस्यः नः) श्रेष्ठ हमारा (सु सखा) उत्तम मित्र होकर (मृळ) हमें सुखी कर ॥ ९ ॥

[१०३३] हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र मैं (ऋदूदरेण) आसानीसे पचने योग्य सोमकी (सख्या सचेय) मित्रतासे युक्त होऊं, (य पीतः) जो सोम पिए जाने पर (नः मा रिष्येत्) हमें दुःखी न करे। (अयं यः सोमः) यह जो सोम (अस्मे न्यधायि) हमारे अन्दर प्रविष्ट हुआ है, (तस्मै) उस सोमके लिए (प्रतिरं आयुः) दीर्घ आयुः (इन्द्रं एमि) इन्द्रसे मांगता हूँ ॥ १० ॥

[१०३४] (विहाया सोमः) महान् सोम (अस्मान् आ अरुहत्) हमें प्राप्त हो गया है, इसलिए (त्याः अनिराः अमीवाः) वे मुश्किलसे जानेवाले रोग भी (अप अस्थुः) दूर चले जाये, जिन (तमिषीचीः निः अत्रसन्) बलवान् रोगोंने हमें पीडा दी है और (अभैषुः) हमें बहुत डराया है, वे चले जाएं और (यत्र आयुः प्रति रन्ते) जहां सोम आयुको बढाते हों, वहां (अगन्म) हम जाएं ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे सोम ! हमारा कल्याण करनेके लिए ही हमें सुखी कर। व्रतका पालन करनेवाले हम तेरे अपने ही हैं, इस बातको तू अच्छी तरह जान ले। हमें तू चतुरता और सात्विक क्रोध प्रदान कर और हमें शत्रुओंकी इच्छा अधीन मत कर ॥ ८ ॥

यह सोम शरीरके प्रत्येक अंगमें जाकर उसे शक्ति प्रदान करता है, शरीरमें उत्साह भरता है। यदि कभी नियमका उल्लंघन भी हो जाए, तो भी इस सोमका सेवन करनेसे शरीर सशक्त ही रहता है ॥ ९ ॥

सोमरस आसानीसे पचने योग्य है। इसीलिए यह बहुत मात्रामें पिए जानेपर भी पीनेवालेको कष्ट नहीं देता। यह सोम आयुको दीर्घ करनेवाला भी है ॥ १० ॥

सोमरसका पान करनेसे कठिनसे कठिन और अत्यन्त पीडा देनेवाले रोग भी दूर हो जाते हैं और मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है ॥ ११ ॥

१०३५ यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतो ऽमर्त्यो मर्त्यौं आविवेश ।
तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृळीके अस्य सुमतौ स्याम ॥ १२ ॥

१०३६ त्वं सोम पितृभिः संविदानो ऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।
तस्मै त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १३ ॥

१०३७ त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १४ ॥

१०३८ त्वं नः सोम विश्वतो वयोधा—स्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।
त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१०३५] हे (पितरः) ज्ञानीजन ! (यः अमर्त्यः इन्दुः) जो अमर सोमरस (पीतः) पिये जाने पर (नः मर्त्यान् हृत्सु आ विवेश) हम मनुष्योंके हृदयमें प्रविष्ट होता है, हम (तस्मै सोमाय) उस सोमकी (हविषा विधेम) हविद्वारा सेवा करते हैं, हम (अस्य मृळीके सुमतौ स्याम) इस सोमके सुख और उत्तम बुद्धिमें रहें ॥ १२ ॥

[१०३६] हे (सोम) सोम ! (त्वं पितृभिः सं विदानः) तू ज्ञानियोंसे संयुक्त होकर (द्यावापृथिवी अनु आ ततन्थ) द्युलोक और पृथ्वीलोकका विस्तार करता है । हे (इन्दो) सोमरस ! (तस्मै ते) उस तेरी हम (हविषा विधेम) हविसे सेवा करते हैं । (वयं) हम (रयीणां पतयः स्याम) धनोंके स्वामी हों ॥ १३ ॥

[१०३७] हे (त्रातारः देवाः) रक्षक देवो ! (नः अधि वोचत) हमें उत्तम उपदेश दो, (नः निद्रा मा ईशत) हम पर आलस्य अधिकार न करे, (उत मा जल्पिः) और व्यर्थका बडबडाना भी हम पर अधिकार न करे । (वयं) हम (विश्वह) प्रतिदिन (सोमस्य प्रियासः) सोमके प्रिय हों, तथा (सुवीरासः) उत्तम पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर हम (विदथं आ वदेम) इस सोमकी स्तुति गायें ॥ १४ ॥

[१०३८] हे (सोम) सोम ! (त्वं नः विश्वतः वयोधाः) तू हमें सब ओरसे अन्नको देनेवाला हो, (स्वर्वित् नृचक्षाः त्वं) सुखको जाननेवाला तथा मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला तू (आ विश) हमारे अन्दर प्रविष्ट हो, हे (इन्दो) सोम ! (सजोषाः) प्रसन्न होकर तू (ऊतिभिः) अपने संरक्षणोंसे (नः पश्चातात् पुरस्तात् पाहि) हमारी पीछेसे और आगेसे रक्षा कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— यह सोमरस स्वयं अमर है और पीनेवालेको भी अमर बनाता है । ऐसे सोमकी सेवा करनेसे सुख और उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है ॥ १२ ॥

ज्ञानियोंकी सहायतासे इस सोमने द्युलोक और पृथ्वी लोकका ज्ञान दिया । उस ज्ञानको प्राप्त करके मनुष्य धनी हों ॥ १३ ॥

मनुष्य अपना समय आलस्य और गप्प मारनेमें न गंवाये । वह ज्ञानियोंके पास जाकर सदा उत्तम उपदेश ग्रहण करता रहे । जो ऐसा करता है, वही सोमका प्रिय बनता है और उत्तम सन्तानोंसे युक्त होता है ॥ १४ ॥

सोम उदरमें प्रविष्ट होकर शरीरका पोषण करनेवाला होनेसे अन्नरूप ही है । वह हमें प्रतिदिन प्राप्त हो और हमारी सब ओरसे रक्षा करे ॥ १५ ॥

४४

[४९]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०३९ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

१०४० शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

१०४१ आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥

१०४२ अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥

[४९]

अर्थ— [१०३९] हे मनुष्यो ! (यः मघवा पुरू-वसुः) जो ऐश्वर्यवान् बहुतोंको बसानेवाला इन्द्र (जरितृभ्यः) स्तोताओंको (सहस्रेण इव) सहस्रों प्रकारसे धन (शिक्षति) देता है, ऐसे (सु-राधसं) उत्तम धनवाले (वः इन्द्रं) अपने इन्द्रकी (यथा विदे) जैसा ज्ञान हो, वैसे (अभि प्र अर्च) उत्तम अर्चन करो ॥ १ ॥

[१०४०] (धृष्णुया) शत्रुओंको मारनेकी शक्तिसे युक्त इन्द्र (शत-अनीका-इव) सैंकडों शत्रुओंकी सेनाओंको (प्र जिगाति) अपने आधीन करता है । तथा (दाशुषे वृत्राणि हन्ति) दाताके शत्रुओंको मारता है, (अस्य पुरु-भोजसः) इस बहुत अन्नवाले इन्द्रके (दत्राणि) दिये धन, (गिरेः रसाः इव) जैसे बादलके पानी जगत्को तृप्त करते हैं, उसी प्रकार (प्र पिन्विरे) तृप्त करते हैं ॥ २ ॥

[१०४१] हे (वज्रिन्, शूर गिर्वणः इन्द्र) वज्रको धारण करनेवाले शूरवीर प्रशंसनीय इन्द्र ! (मदाः) उत्साहको देनेवाले (ये इन्दवः सुतासः) जो सोमरस निकाले गए हैं, वे (राधसे) संसिद्धिके लिए (ओक्यं) शरणमें जाने योग्य (त्वा) तुमको (सरः आपः न) तालाबको जैसे जल पूर्ण करते हैं, वैसे (आ अनु पृणन्ति) पूर्ण करते हैं ॥ ३ ॥

[१०४२] हे (धृषत्) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! (अनेहसं) पाप रहित (प्र-तरणं) विशेष तारण करनेवाले (वि-वक्षणं) अत्यधिक प्रशंसनीय (मध्वः स्वादिष्ठं) शहदसे स्वादिष्ठ (ईं पिब) इस सोमको पी । तथा (यथा मन्दसानः) जिससे आनन्द युक्त होकर (त्मना क्षुद्रा इव) जैसे निर्धनोंको अपने आप धन देते हो उसी प्रकार (नः आ किरासि) हमें भी धन दो ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपने स्तोताओंको अनेक प्रकारकी शिक्षा देता है । अनेक प्रकारका धन देता है । अतः धन प्राप्तिके लिए इन्द्रका सत्कार करो । परमात्माकी स्तुति करनेसे धनकी प्राप्ति होती है । जैसा ज्ञान हो उसके अनुसार इन्द्रका सत्कार करो ॥ १ ॥

शत्रुको मारनेकी शक्तिसे युक्त इन्द्र सैंकडों सेनाओंको अपने आधीन करता है । दाताका कल्याण करनेके लिये शत्रुओंको मारता है । इसके धन दाताको संतुष्ट करते हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तालाबमें जल प्रवाह जाते हैं उस तरह ये सोमरस तेरे पेटमें चले जाय ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंको मारनेवाले; निष्पाप, विशेष प्रशंसनीय रसको पीओ । ऐसा अन्न सेवन करना योग्य है ॥ ४ ॥

१०४३ आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन् त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥ ५ ॥

१०४४ उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥ ६ ॥

१०४५ यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥

१०४६ अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०४३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यं) जिस यज्ञको (ते धेनवः) तुम्हारी गायें तथा तुम्हारे द्वारा (कण्वेषु रातयः) कण्वोंको दिए गए धन (स्वदयन्ति) उत्तम बनाते हैं, हे (स्वधावन्) अन्नवाले इन्द्र ! (नः सोतृभिः स्तोमं उप) हमारे सोमयाग करनेवालोंके द्वारा किए गए स्तोत्रके पास (हियानः अश्वः न) प्रेरित हुए घोडेके समान (आ द्रवत्) दौडकर आओ ॥ ५ ॥

[१०४४] हम (वीरं वि-भूतिं अ-क्षित-वसुं) वीर, विविध ऐश्वर्यवाले, क्षीण न होनेवाले धनसे युक्त इन्द्रके (उप) पास (उग्रं न) जैसे मनुष्य, वीर मनुष्यकी शरणमें जाते हैं उसी प्रकार (नमसा) नमस्कार करते हुए (सेदिम) जाते हैं, हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! हमारी (धीतयः) अङ्गुलियां [सोमको] (उद्री अवतः इव न) जैसे कुंएसें पानी आता है, उसी प्रकार (सिंचते) धनादिसे युक्त करनेवाले तेरे लिए (क्षरन्ती) निचोडती हैं ॥ ६ ॥

१ धीति— पीना, प्यास, अंगुलियां, विचार, भक्ति, अनादर
२ उद्री— जल

[१०४५] हे (महेमते) महान् बुद्धिमान् इन्द्र ! तुम (यत् वा यज्ञे) यज्ञमें हो अथवा (यत् वा पृथिव्यां अधि) पृथिवी पर हो अथवा (यत् ह नूनं) जहां कहीं भी हो, (अतः) उस स्थानसे हे (उग्र) वीर इन्द्र ! (उग्रेभिः) तेज और (आशुभिः) शीघ्र चलनेवाले घोडोंके द्वारा (नः यज्ञं) हमारे यज्ञमें (आ गहि) आओ ॥ ७ ॥

[१०४६] हे इन्द्र ! (ये ते) जो तुम्हारे (वाताः इव प्रसक्षिणः) वायुके समान वेगसे जानेवाले, (अजिरासः आशवः) वेगवाले, शीघ्रगामी (हरयः) घोडे हैं, (येभिः मनुषः अपत्यं परि ईयसे) जिनसे मनुके पुत्र या यज्ञके पास जाते हो, (येभिः विश्वं स्वः दृशे) जिनसे सम्पूर्ण द्युलोकको देखते हो [उन घोडोंसे हमारे यज्ञमें आओ ॥ ८ ॥

मनुषः अपत्यं— मनुष्य पुत्र, मनुष्य द्वारा किया यज्ञ ।

भावार्थ— यज्ञको गायें उत्तम बनाती हैं। गायोंके द्वारा घृत आदि पदार्थ मिलते हैं और इनसे यज्ञ होते हैं ॥ ५ ॥
वीर विभूति मान, अक्षय धनवाले उग्रवीर जैसे इन्द्रके पास नम्र होकर हम जाते हैं ॥ ६ ॥
हे वीर इन्द्र ! तुम किसी यज्ञमें होओ, या पृथिवीपर हो, या कहीं भी हो, वहींसे हमारे पास आओ ॥ ७ ॥
इन्द्रके घोडे वायुके समान वेगवान् और बलवान् हैं, उन घोडोंके द्वारा इन्द्र सर्वत्र संचार करता है। वीरोंके घोडे इसी तरहके होने चाहिए ॥ ८ ॥

१०४७ एतावंतस्त ईमह इन्द्रं सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥ ९ ॥
१०४८ यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनी न्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥ १० ॥

[५०]

(ऋषिः- पुष्टिगुः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०४९ प्र सु श्रुतं सुराधस मर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥
१०५० शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ २ ॥

अर्थ— [१०४७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (धने) संग्राममें (यथा मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं) जैसे मेध्यातिथि और पीनातिथिका (प्र अवः) उत्तम प्रकार संरक्षण किया [वैसा हमारा भी करो] हम (एतावतः ते) इन गुणोंसे युक्त तुमसे हम (गोमतः सुम्नस्य) गौवोंसे युक्त धनको (ईमहे) मांगते हैं ॥ ९ ॥

[१०४८] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुमने (यथा कण्वे) जैसे कण्वको (त्रसदस्यवि) त्रसदस्युको, (यथा पक्थे दशव्रजे) जैसे पक्थ और दशव्रजको तथा (यथा गोशर्ये ऋजिश्वनि) जैसे गोशर्य तथा ऋजिश्वी इनको (गोमत् हिरण्यवत्) गो तथा सोनेसे युक्त धन दिया । उसी प्रकारके धनको हम मांगते हैं] ॥१०॥

[५०]

[१०४९] (यः) जो इन्द्र (सुन्वते स्तुवते) सोमयाग करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको (काम्यं वसु) अभिलषित धन (सहस्रेण इव मंहते) हजारों प्रकारसे देता है, उस (श्रुतं) प्रसिद्ध, (सु-राधसं) उत्तम धनवाले (शक्रं) शक्तिशाली इन्द्रकी (अभिष्टये) इच्छित धनकी प्राप्तिके लिए (प्र सु अर्च) अच्छी प्रकार सत्कार करो ॥ १ ॥

[१०५०] (यत् ईं सुताः अमन्दिषुः) जब इस इन्द्रको सोम उत्साह युक्त करते हैं, तब (अस्य इन्द्रस्य शतानीकाः) इस इन्द्रके सैंकडों धारावाले, (दुः तराः) न हटाये जानेवाले, (समिषः) ठीकरीतिसे फेंके जानेवाले (महीः) बडे बडे (हेतयः) शस्त्रास्त्र (भुज्मा गिरिः न) जैसे उत्पादक मेघ भूमिको ऐश्वर्यसे पूर्ण करते हैं उसी प्रकार (मघवत्सु पिन्वते) ऐश्वर्यवालोंको पूर्ण करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुमने जिस प्रकार प्राचीन ऋषि मुनियोंकी रक्षा की थी, उसी तरह हमारी भी रक्षा करो । हम उत्तम गुणोंसे युक्त होकर ही तुमसे धन आदि मांगते हैं । उत्तम गुणवाला ही इन्द्रसे धन प्राप्त कर सकता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तुमने जिस तरह अनेक ऋषियोंको धन दिया, उसी तरह तुम हमें भी धन दो ॥ १० ॥

सोमयाग करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको यह इन्द्र अभिलषित धन देता है । अतः अभिलषित धनकी प्राप्तिके लिए इन्द्रका अच्छी तरह सत्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

इसके हजारों धाराओंवाले शस्त्र ऐश्वर्यवानोंको पूर्ण बलवान करते हैं । शत्रुपर फेंकाजानेवाला अस्त्र, जो शत्रुको मार कर पुनः मारनेवालेके पास आजाता है ॥ २ ॥

१०५१ यदीं सुतास इन्दवो ऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघाइवोप दाशुषे ॥ ३ ॥
१०५२ अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥
१०५३ आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन् त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥ ५ ॥
१०५४ प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥
१०५५ यद्ध नूनं परावति यद् वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥

अर्थ — [१०५१] (यद्) जब (सुतासः इन्दवः) निकाले गए सोमोंने (ईं प्रियं अभि अमन्दिषुः) इस प्रिय इन्द्रको उत्साह युक्त किया, तब हे (वसो) सबको बसानेवाले इन्द्र ! तुमने (दाशुषे मे) दान देनेवाले मेरे लिए (सवनं) यज्ञको (आपः न) जलके समान तथा (दुघा इव) दुधार गायके समान (आ धायि) सफल किया ॥३॥

[१०५२] ऋत्विजो ! (वः धीतयः) तुम्हारी अंगुलियां (ऊतये) संरक्षणके लिए (हवमानं अनेहसं) प्रशंसनीय तथा शत्रुसे न मारे जानेयोग्य इन्द्रके लिए (मध्वः क्षरन्ति) सोमको निचोड रही हैं। हे (वसो) बसानेवाले इन्द्र ! (त्वा) तेरे लिए (हवमानासः इन्दवः) प्रशंसाके योग्य ये सोम (स्तोत्रेषु उप आ दधिरे) यज्ञोंमें तेरे सामने रखे हुए हैं ॥ ४ ॥

[१०५३] हे (स्वदावन् दाता) इन्द्र ! (ते) तेरी (गूर्तयः) स्तुतियां (यं) जिस तुझको (स्वदन्ति) आनन्दित करती हैं, तथा तू (पौरे हवं छन्दयसे) मनुष्योंमें स्तुति की इच्छा करता है। वह इन्द्र (नः सोमे अध्वरे) हमारे सोम यागमें (अत्यः न इयानः) घोडेके समान चलता हुआ (आ तोशते) [हमारे शत्रुओंको] मारता है ॥ ५ ॥

[१०५४] मैं (वीरं, उग्रं विविचिं,) वीर, तेजस्वी ज्ञानवान् (धन स्पृतं, विभूतिं) धन देनेवाले, विविध ऐश्वर्यवाले इन्द्रसे (महः राधसः) बडे धनको (प्र) मांगता हूँ, क्योंकि हे वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तू (दाशुषे) दानशील मनुष्यको (वसुत्वना) धनसे (उद्री अवतः इव) जलसे युक्त कुंवेके समान (सदा पीपेथ) सदा तृप्त करता है ॥ ६ ॥

[१०५५] हे (महे मत इन्द्र) महा बुद्धिमान् इन्द्र ! (यद् पृथिव्यां दिवि वा) यदि तुम पृथ्वीमें या द्युलोकमें हो, (वा) अथवा (परावति नूनं) कहीं दूर देशमें हो, तो (ऋष्वः) महान् तू (ऋष्वेभिः हरिभिः युजानः) बलवान् घोडोंको [रथमें] जोडकर (आ गहि) आओ ॥ ७ ॥

भावार्थ — हे सबको बसानेवाले इन्द्र ! दान देनेवाले मेरे यज्ञको सफल करो। हम तुम्हें सोमरस देकर उत्साहित करते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अपने संरक्षणके लिए हम तुझे यह सोमरस निचोडकर दे रहे हैं। ये प्रशंसाके योग्य सोमरस हम तुझे यज्ञोंमें देते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमारी स्तुतियां तुझे आनन्दित करती हैं, इसलिए तू हमारी स्तुतियोंकी इच्छा करता हुआ हमारे पास शीघ्रतासे आ ॥ ५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्र ! तू दानशील मनुष्यको धनसे सदा तृप्त करता है। अतः मैं इन्द्रसे बडे धनको मांगता हूँ ॥६॥

हे इन्द्र ! तू चाहे पासके देशमें हो या दूरके देशमें, तू हमारी स्तुतियोंको सुनकर हमारे पास आ ॥ ७ ॥

+

१०५६ रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥ ८ ॥
१०५७ एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥ ९ ॥
१०५८ यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥ १० ॥

[५१]

(ऋषिः- श्रुष्टिगुः काण्वः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०५९ यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।
नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥ १ ॥
१०६० पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद् गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥ २ ॥

अर्थ— [१०५६] हे इन्द्र ! (ते) तेरे (ये रथिरासः अ-स्रिधः हरयः) जो रथके योग्य, शत्रुरहित घोडे हैं, (ये भिः) जिनके द्वारा तू (मनुषः दस्युं) मनुष्यके शत्रुको (नि निघोषयः) रुलाता है तथा (येभिः स्वः परि ईयसे) जिनसे द्युलोकमें चारों ओर जाते हैं वे घोडे (वातस्य ओजः पिप्रति) वायुके बलको [अपने अन्दर] भरते हैं ॥ ८ ॥

[१०५७] हे (वसो, शूर) सबको बसानेवाले शूरवीर इन्द्र ! तूने (यथा धने कृत्व्ये) जैसे संग्रामके आरम्भ हो जाने पर (एतशं प्र अवः) एतश ऋषिकी रक्षा की, (दशव्रजे यथा वशं) दस शत्रुओंसे घिर जाने पर वश ऋषिकी रक्षा की, (एतावतः नव्यसः ते विद्याम) इतने पराक्रमसे युक्त, स्तुतिके योग्य तुम हो ऐसा हम जानते हैं ॥ ९ ॥

[१०५८] हे (अद्रि-वः मघवन्) वज्रधारी ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (यथा) जैसे (मेधे) यज्ञमें (कण्वे) कण्वको, (अ-ध्वरे) यज्ञमें (दमूनसि दीर्घनीथे) परिवारको प्रिय दीर्घनीथको तथा (यथा गोशर्ये) जैसे गोशर्यको (हरिश्रियं गोत्रं असि-षासः) सोनेके समान कान्तिवाले धनको दिया था, उसी प्रकार (मयि) मुझे भी दो ॥१०॥

[५१]

[१०५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (यथा) जिस प्रकार (सांवरणौ मनौ) संवरणके पुत्र मनुके यज्ञमें (सुतं सोमं अपिबः) तैय्यार किए सोमको पिया था, उसी प्रकार हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (नीपातिथौ मेध्यातिथौ पुष्टि गौ श्रुष्टिगौ सचा) नीपातिथि, मेध्यातिथि, पुष्टिगु और श्रुष्टिगु [आदि ऋषियोंके यज्ञ] में भी [सोम पी] ॥ १ ॥

[१०६०] हे इन्द्र ! जब (पार्षद्वाणः) पार्षद्वाण नामक शत्रुने (उद्धितं, शयानं जिव्रिं प्रस्कण्वं) ऊपरके देशमें सोए हुए वृद्ध प्रस्कण्वको (सं असादयत्) पीडित किया, तब (त्वा ऊतः) तुझसे रक्षित हुए (दस्यवे वृकः) शत्रुको काटनेवाले (ऋषिः) उस ऋषिने (गवां सहस्राणि) हजारों गौवोंको (असिषासद्) प्राप्त किया ॥ २ ॥

भावार्थ—इन्द्रके घोडे रथमें जोडे जाने योग्य और शत्रुओंको रुलानेवाले हैं। इन घोडोंके द्वारा वह सर्वत्र संचार करता है ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! संग्रामके शुरु होनेपर ऋषियोंकी रक्षा की थी। तुम इतने पराक्रमसे युक्त हो, यह सबको ज्ञात ही है॥९॥
हे इन्द्र ! जैसे तूने ज्ञानी, दूरदर्शी, गोपालक मनुष्यको धन दिया था, वसी तरह तू मुझे भी दे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तूने मनु, मेध्यातिथि आदि अनेकों ऋषियोंके यज्ञमें सोमरसका पान किया था। और प्रस्कण्वको इतना वीर बनाया कि उसने अपने शत्रुको मारकर अनेक गायें प्राप्त कीं। जो शत्रुका नाश करता है वह धनवान् होता है ॥१-२॥

१०६१ य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्य१रिष्यन्तं न भोजसे ॥ ३ ॥

१०६२ यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचु स्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्विश्मा विश्वा भुवनानि चिक्रद् दादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥ ४ ॥

१०६३ यो नो दाता वसूना मिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥ ५ ॥

१०६४ यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ ६ ॥

अर्थ— [१०६१] (यः) जो इन्द्र ! (उक्थेभिः) स्तोत्रोंके द्वारा (नः चिकित् विन्धते) हमारे ज्ञानको जानता है, (यः ऋषि-चोदनः) जो ऋषियोंका प्रेरक है, ऐसे (तं इन्द्रं) उस इन्द्रके लिए नवस्या मर्त्यो) नए नए स्तोत्रोंको (भोजसे अरिष्यन्तं न) [जैसे कोई मनुष्य] पालनके लिए अहिंसककी स्तुति करता है, उसी प्रकार (अच्छ वद) कहो ॥ ३ ॥

[१०६२] (यस्मै) जिस इन्द्रके लिए मनुष्य (उत्तमे पदे) उत्तम स्थानमें (सप्त शीर्षाणं) सात ऋचाओंवाले (त्रिधातुं) तीन धारण शक्तिवाले (अर्कं) स्तोत्रको (आनृचुः) पढते हैं, (सः तु) वह इन्द्र (इमा विश्वा भुवनानि) इन सारे भुवनोंको (चिक्रदत्) बनाता है, (आत् इत्) उसके बादही (पौंस्यं जनिष्ट) अपने बलको प्रकट करता है ॥ ४ ॥

[१०६३] (यः नः वसूनां दाता) जो हमें धनोंका देनेवाला है, ऐसे (इन्द्रं वयं हूमहे) इन्द्रको सहायार्थ हम बुलाते हैं, (हि) क्योंकि हम (अस्य नवीयसीं सुमतिं विद्म) इसकी नवीन उत्तम स्तुतिको जानते हैं, उसके द्वारा हम (गोमति व्रजे) गौवोंसे युक्त गोठको (गमेम) प्राप्त हों ॥ ५ ॥

[१०६४] हे (वसो) भुवनोंको बसानेवाले इन्द्र ! (यस्मै दानाय शिक्षसि) जिसको दान देनेकी शिक्षा देते हो, (सः रायस्पोषं अश्नुते) वह धनसे पोषणको प्राप्त करता है, हे (गिर्वणः मघवन् इन्द्र) स्तुत्य, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (तं त्वा) उस तुझको (सुतावन्तः वयं) सोम याग करनेवाले हम (हवामहे) सहायार्थ बुलाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— स्तोत्रोंके द्वारा यह इन्द्र स्तोताओंके ज्ञानको जानता है। यही इन्द्र ऋषियोंका प्रेरक है। उन्हें नये नये स्तोत्र बनानेके लिए प्रेरणा देता है ॥ ३ ॥

प्रथम इन्द्र इन सारे भुवनोंका निर्माण करके अपने बलको प्रकट करता है, तब इस इन्द्रके लिए ऋचाओं द्वारा स्तुति की जाती है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र धनोंको देनेवाला होनेके कारण इस इन्द्रको हम बुलाते हैं। हम इसकी स्तुति करके गौओंको प्राप्त करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जिस मनुष्यको तुम दान देनेकी शिक्षा देते हो, वह पुष्टिकारक धनको प्राप्त करता है। जो दान देता है उसे ही धन मिलता है ॥ ६ ॥

१०६५ कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ७ ॥

१०६६ प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत् प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥ ८ ॥

१०६७ यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥ ९ ॥

१०६८ तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवो ऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ १० ॥

अर्थ— [१०६५] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (दाशुषे) दान दाता यजमानका (कदाचन न स्तरीः असि) कभी भी विनाशक नहीं होता, अपितु (सश्चसि) उसकी सहायता करता है, (ते देवस्य दानं) तुझ देवका दान (उप उप इत् नु) मेरे पास आता है, और (भूयः इत् नु पृच्यते) अधिक ही प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

१ दाशुष कदाचन न स्तरीः असि— तू दान दाताका कभी नाश नहीं करता ।

[१०६६] (यदा इत्) जब (प्रथयन्) बढनेवाले असुरने (अमूं दिवं अस्तम्भीत्) इस द्युलोकको रोक दिया, तब (यः) जिस इन्द्रने (वधैः) शस्त्रोंसे (क्रिविं शुष्ण) हिंसा करनेवाले शुष्ण नामक राक्षसको (निघोषयन्) चिल्लाते हुए (ओजसा अभि प्र ननक्षे) अपने बलसे मारा उसी इन्द्रने (आत् इत्) उसके बादही (पार्थिवः जनिष्ट) पृथ्वीके पदार्थोंको पैदा किया ॥ ८ ॥

नक्ष्— समीप गमन करना मारना ।

[१०६७] (अयं विश्वः आर्यः दासः) ये सम्पूर्ण आर्य और दास (यस्य शेवधि-पाः) जिसके कोषकी रक्षा करते हैं, वह सबका (अरिः) स्वामी है, हे इन्द्र ! (अर्ये रुशमे पवीरवि) श्रेष्ठ रुशम और पवीरु ऋषियोंका (तिरः चित् सः रयिः) छिपा हुआ वह धन (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे कारण ही प्रकट हुआ ॥ ९ ॥

[१०६८] (तुरण्यवः विप्रासः) शीघ्रतासे यज्ञ करनेवाले ज्ञानी (मधुमन्तं) मधुर (घृत श्चुतं) जलके प्रेरक तथा (अर्कं) पूजनीय इन्द्रकी (अर्चन्ति) अर्चना करते हैं, वह (अस्मे) हममें (रयिः, वृष्ण्य, शवः पप्रथे) धन, वीर्य तथा बलको बढावे तथा (अस्मे) हमें (सुवानासः इन्दवः) सोमरसोंको देवे ॥ १० ॥

भावार्थ— इन्द्र आदि देव दान देनेवालेकी कभी हिंसा नहीं करते, अपितु वे उस दानी की हर तरहसे सहायता ही करते हैं । इन्द्रसे एक बार प्राप्त किया हुआ दान सदा बढता ही जाता है, कभी कम नहीं होता ॥ ७ ॥

जब शुष्ण नामक असुरने सारे द्युलोकको आच्छादित कर दिया था, तब इन्द्रने उसे मारा तो वह असुर चिल्लाने लगा । जब मेघ सारेको ढंक लेता है, तब बिजली उस मेघको बरसाती है, उस समय वह मेघ जोर जोरसे गर्जना करने लगता है ॥ ८ ॥

ये सारे आर्य और दास इन्द्रके खजानेकी रक्षा करते हैं । श्रेष्ठ रुशम और पवीरु ऋषिका गुप्त धन इन्द्रके कारण ही प्रकट हुआ ॥ ९ ॥

इन्द्र देवका स्वभाव मधुर है और इसके द्वारा प्रेरित जल भी मधुर होता है । यह जल बरसाकर सारे संसारका पोषण करता है, इसलिए सारे प्राणी इसकी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

[५२]

(ऋषिः- आयुः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०६९ यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्या—यौ मादयसे सचा ॥ १ ॥

१०७० पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनी—न्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥ २ ॥

१०७१ य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥ ३ ॥

१०७२ यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥

१०७३ यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसु—र्गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥ ५ ॥

---

[५२]

अर्थ— [१०६९] हे (शक्र) सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तूने (यथा विवस्वति मनौ) जिस प्रकार विवस्वानके पुत्र मनुके यज्ञमें (सुतं सोमं अपिबः) निकाले गए सोमको पिया, (यथा त्रिते छन्दः जुजोषसि) जिस प्रकार त्रित ऋषिके यज्ञमें छन्दोंको सुना, उसी प्रकार (आयौ) आयु ऋषिके यज्ञमें भी (सचा) एक साथ बैठकर (मादयसे) आनन्दित होते हो ॥ १ ॥

[१०७०] हे (इन्द्र) इन्द्र (यथा सुवाने पृषध्रे, मेध्ये, मातरिश्वनि, दशशिप्रे) जिस प्रकार सोमयाग करनेवाले पृषध्र, मेध्य, मातरिश्वा, दशशिप्र (दशोण्ये स्यूमरश्मौ ऋजूनसि) दशोण्य, स्यूमरश्मि, ऋजूनस् आदि ऋषियोंके यज्ञोंमें (सोमं अमन्दथाः) सोम पीकर तुम आनन्दित हुए ॥ २ ॥

[१०७१] (यः केवला उक्था दधे) जो केवल स्तोत्रोंको धारण करता है, (यः धृषिता सोमं अपिबत्) जिस शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रने सोमको पिया, (यस्मै) तथा जिसके लिए (विष्णुः) विष्णुने (मित्रस्य धर्मभिः) मित्रके धर्मोंके द्वारा (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीन पदोंसे सबको नाप लिया, [वह इन्द्र हमें सुखी करे] ॥ ३ ॥

[१०७२] (वाजिन् शतक्रतो इन्द्र) हे बलवान् तथा सैंकडों शुभ-कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वं यस्य स्तोमेषु वाजे) तू जिसके स्तोत्रोंके पाठमें तथा यज्ञमें (चाकनः) तृप्त होता है, (तं त्वा) उस तुझको (श्रवस्यवः) अन्नकी इच्छा करनेवाले (वयं) हम (गोदुहः सु-दुघां इव) जैसे गायको दुहनेवाले गायको घास आदिसे तृप्त करते हैं, उसी प्रकार (जुहूमसि) [हविसे] तृप्त करते हैं ॥ ४ ॥

[१०७३] (यः नः दाता) जो इन्द्र हमें धन देनेवाला है, (सः महान्, उग्रः ईशान्-कृत्) वह महान्, वीर तथा ईशन करनेवाला इन्द्र (नः पिता) हमारा पिता है । (अ-यामन् उग्रः, मघवा, पुरु-वसुः) [युद्धमें] पीछे न हटनेवाला, वीर, ऐश्वर्यवान् तथा बहुतोंको आश्रय देनेवाला वह इन्द्र (नः) हमें (गोः अश्वस्य प्र दातु) गायें और घोडे देवे ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तूने जिस तरह मननशील ज्ञानीके यज्ञमें सोमरस पिया था और त्रित ऋषिके यज्ञमें स्तुतियोंको सुना था, उसीतरह तू आयु ऋषिके यज्ञमें भी आनंदित हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम ऋषियोंके यज्ञोंमें सोम पीकर आनन्दित होओ ॥ २ ॥

इस इन्द्रने सोमको पिया और अपने तीन कदमोंसे सभी भुवनोंको नाप लिया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञमें स्तोत्रोंसे तृप्त होता है अतः हम तुझे गायको घाससे तृप्त करनेके समान स्तुतियोंसे तृप्त करते हैं ॥ ४ ॥

वह धन देनेवाला, महान्, वीर तथा सबका स्वामी इन्द्र हमारा पिता है । युद्धमें पीछे न हटनेवाला वीर, तथा ऐश्वर्यवान् वह इन्द्र हमें पशु आदि प्रदान करे ॥ ५ ॥

१०७४ यस्मै॒ त्वं व॑सो दा॒नाय॒ मंह॑से॒ स रा॒यस्पोष॑मिन्वति ।
व॒सू॒यवो॒ वसु॑पतिं श॒तक्र॑तुं॒ स्तोमै॒रिन्द्रं॑ हवामहे ॥ ६ ॥
१०७५ क॒दा च॒न प्र यु॑च्छस्यु॒भे नि पा॑सि॒ जन्म॑नी ।
तुरी॑यादित्य॒ हव॑नं त इन्द्रि॒यमा त॑स्थाव॒मृतं॑ दि॒वि ॥ ७ ॥
१०७६ यस्मै॒ त्वं म॑घवन्निन्द्र गिर्वणः॒ शिक्षो॒ शिक्ष॑सि दा॒शुषे॑ ।
अ॒स्माकं॒ गिर॑ उ॒त सु॑ष्टु॒तिं व॑सो कण्व॒वच्छृ॑णु॒धी हव॑म् ॥ ८ ॥
१०७७ अस्ता॑वि॒ मन्म॑ पू॒र्व्यं ब्रह्मेन्द्रा॑य वोचत ।
पू॒र्वीर्ऋ॒तस्य॑ बृह॒तीर॑नूषत॒ स्तो॒तुर्मे॒धा अ॑सृक्षत ॥ ९ ॥

अर्थ— [१०७४] हे वसो ! हे सबके आश्रय इन्द्र ! (त्वं यस्मै दानाय मंहसे) तू जिसको दान देनेके लिए आज्ञा देता है, (सः रायः पोषं इन्वति) वह धन और पुष्टिको प्राप्त करता है, (वसू यवः) धनको चाहनेवाले हम (वसु-पतिं शतक्रतुं इन्द्रं) धनके स्वामी, सैकडों कर्मोंके करनेवाले इन्द्रको (स्तोमैः हवामहे) स्तोत्रोंसे सहायार्थ बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[१०७५] हे इन्द्र ! (कदाचन प्र युच्छसि) तुम कभी भी प्रमाद नहीं करते हो, (उभे जन्मनी नि पासि) दोनों तरहके प्राणियोंका पालन करते हो, हे (तुरीय) सर्वोत्तम (आदित्य) प्रकाशमान् इन्द्र ! (ते हवनं अ-मृतं इन्द्रियं) तुम्हारी प्रार्थनाके योग्य, न नष्ट होनेवाली शक्ति (दिवि आ स्थात्) द्युलोकमें स्थित है ॥ ७ ॥

१ कदाचन प्रयुच्छसि - इन्द्र कभी भी प्रमाद नहीं करता।
२ ते हवनं अमृतं इंद्रियं दिवि आस्थात्- तेरी प्रार्थना करने योग्य नष्ट न होनेवाली शक्ति द्युलोकमें दीखती है ॥।

[१०७६] हे (मघवन् गिर्वणः शिक्षः इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, वाणियोंसे पूज्य, शिक्षक इन्द्र ! (यस्मै दाशुषे शिक्षसि) जिस दानशील यजमानको [धन] देनेकी इच्छा करते हो, उस धनके लिए ही (अस्माकं गिरः उत सु-स्तुतिं हवं) हमारी वाणी और उत्तम स्तुति तथा प्रार्थनाको भी हे (वसो) सबका निवास करनेवाले इन्द्र (कण्ववत्) जैसे कण्वकी प्रार्थना सुनी उसी प्रकार (शृणुधी) सुनो ॥ ८ ॥

[१०७७] (पूर्व्यं मन्म) जिस प्राचीन स्तोत्रसे [पहले इन्द्रकी] (अस्तावि) स्तुति की, उसी (ब्रह्म) स्तोत्रका [अब भी] (इन्द्राय वोचत) इन्द्रके लिए गान करो, (ऋतस्य पूर्वीः बृहतीः अनूषत) यज्ञके प्राचीन तथा बडे बडे गानोंको गाओ, और (स्तोतुः मेधा असृक्षत) स्तोताकी बुद्धिको बढाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू जिसे धनका दान देता है, वह धनके साथ पुष्टिको भी प्राप्त करता है। अतः धनको चाहनेवाले हम स्तोत्रोंसे इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम कभी भी प्रमाद नहीं करते हो, तथा दो पाये-चौपाये दोनों तरहके प्राणियोंका पालन करते हो। तुम्हारी कभी नष्ट न होनेवाली शक्ति द्युलोकमें स्थित है ॥ ७ ॥

हे ऐश्वर्यशाली, वाणियोंसे पूज्य इन्द्र ! तू दानशीलको धन देनेकी इच्छा करता है। उस धनको प्राप्त करनेके लिए ही हम तेरी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

हे मनुष्य ! जिस प्राचीन स्तोत्रसे इन्द्रकी तुमने पहले स्तुति की थी, उसी स्तुतिका अब इन्द्रके लिए गान करो, यज्ञमें बडी बडी स्तुतियोंको गाओ, और स्तोताकी बुद्धिको बढाओ ॥ ९ ॥

१०७८ समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥ १० ॥

[५३]

(ऋषिः- मेध्यः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०७९ उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥

१०८० य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥ २ ॥

१०८१ आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०७८] जिस (इन्द्रः) इन्द्रने (बृहतीः रायः सं अधूनुत) बडे बडे ऐश्वर्योंको ठीक तरह रखा, (क्षोणी सं) द्यावा पृथिवीको उत्तम प्रकार बनाया, (उ) और (सूर्यं सं) सूर्यकी उत्तम प्रकार रचना की, उस (इन्द्रं) इन्द्रको, (शुक्रासः, शुचयः, गवाशिरः सोमाः) पवित्र, तेजस्वी, गौ दुग्ध मिश्रित सोमरस (सं सं सं अमन्दिषुः) अच्छी प्रकार आनन्दित करते हैं ॥ १० ॥

[५१]

[१०७९] हे (मघवन्) धनवान इन्द्र ! (मघोनां उपमं) ऐश्वर्यवानोंमें सर्वोत्कृष्ट उपमा देने योग्य (वृषभाणां च ज्येष्ठं) बलिष्ठोंमें सर्व श्रेष्ठ (पूः-भित्तमं) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले, (गो-विदं) गौवोंको प्राप्त करानेवाले (ईशानं) सबके स्वामी (त्वा) तुझसे हम (रायः ईमहे) धन मांगते हैं ॥ १ ॥

[१०८०] (यः) जिस तूने (आयुं, कुत्सं अतिथिग्वं) आयु, कुत्स और अतिथिग्वको (वावृधानः) बढाते हुए (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अर्दयः) उच्च बनाया, (तं) उस (हरि-अश्वं शतक्रतुं) हरि नामक घोडोंवाले सैकडों शुभ कर्म करनेवाले (त्वा) तुझे (वाजयन्तः वयं) बलकी इच्छावाले हम सहायार्थ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ २ ॥

[१०८१] (विश्वेषां नः) हम सभीके (अद्रयः) पत्थर (मध्वः रसं आ सिंचन्तु) सोमके रसको निचोडें, (ये परावति जनेषु सुन्विरे) जो दूर देशके मनुष्योंमें निचोडे गए हैं, तथा (ये इन्दवः अर्वावति सुन्विरे) जो सोम पासके देशमें निचोडे गये हैं [वे सब इन्द्रको आनन्दित करें] ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने बडे बडे ऐश्वर्योंको स्थापित किया, द्यावा पृथिवीको उत्तम रीतिसे बनाया और सूर्यकी उत्तम प्रकारसे रचना की । उस इन्द्रको सब आनन्दित करें ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तू ऐश्वर्यशालियोंमें सर्वश्रेष्ठ, बलिष्ठोंमें भी बलिष्ठतम, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला तथा सबका स्वामी है, तुझसे हम धन मांगते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिस तूने आयु, कुत्स आदि ऋषियोंको उन्नत किया, उस सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले तुझे बल प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले तुझे हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

सभी मनुष्य इन्द्रको आनन्दित करनेके लिए सोमरसको निचोडें और वे सोमरस इन्द्रको आनन्दित करें ॥ ३ ॥

१०८२ विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥ ४ ॥

१०८३ इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभि-रा स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥

१०८४ आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

१०८५ यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०८२] (यत्र सोमस्य तृम्पसि) जिस [यजमान] के सोमसे तृप्त होते हो, उसके (विश्वा द्वेषांसि जहि) सारे शत्रुओंको पराजित करो, (अव च) और उसकी रक्षा करो (च) और (कृधि) [उसे उन्नत] करो, उसे (विश्वे) सभी मनुष्य (वसु आ सन्वन्तु) धन देवें, (शीष्टेषु चित्) ज्ञानियोंके (अंशवः) सोम (ते मदिरासः) तुम्हें आनन्दित करें ॥ ४ ॥

[१०८३] हे (शंतम सु-आपे इन्द्र) अत्यन्त सुखकर, उत्तम बन्धु इन्द्र ! तू (मित-मेधाभिः, शंतमाभिः, अभिष्टिभिः) अपरिमित बुद्धिसे युक्त, अत्यन्त सुख देनेवाले, इच्छित पदार्थ देनेवाले (सु-आपिभिः) अत्यन्त प्रिय मित्र जैसे (ऊतिभिः) रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर (नेदीय इत् आ इहि) हमारे पास ही आ ॥ ५ ॥

[१०८४] हे इन्द्र ! (प्रजासु) प्रजाओंमें होनेवाले (आजितुरं) संग्रामोंको त्वरासे जीतनेवाले (सत्पतिं) सज्जनोंके पालनकर्ता (विश्व चर्षणिं) सम्पूर्ण मनुष्योंका हित करनेवाले (भगं) ऐश्वर्यका (आ कृधि) दान हमें करो, तथा (ये ते उक्थिनः) जो तुम्हारे स्तोता हैं, उन्हें (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (प्र सू तिर) अच्छी तरहसे बढा, तथा (क्रतुं आनुषक् पुनत) यज्ञको निरन्तर पवित्र कर ॥ ६ ॥

[१०८५] (यः ते साधिष्ठः) जो तेरी साधना करता है, उसे हम (अवसे) रक्षणके लिए [बुलाते हैं] । हे इन्द्र ! (ते) वे हम (भरेषु ते स्याम) संग्रामोंमें तेरे ही होकर रहें, (स ससवांसः) अन्नकी इच्छावाले हम (होत्राभिः उत देवहूतिभिः) स्तोत्र तथा प्रार्थनाओं द्वारा (यं) इस इन्द्रकी (मनामहे) उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस मनुष्यके सोमसे तुम तृप्त होते हो, उसके सारे शत्रुओंका तुम नाश करो और उसकी रक्षा करके उसे उन्नत करो ॥ ४ ॥

हे उत्तम बन्धु इन्द्र ! अपरिमित बुद्धिवाला, अत्यन्त सुख देनेवाला और इच्छित पदार्थ देनेवाला तू उत्तम रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥ ५ ॥

प्रजाओंमें होनेवाले संग्रामोंको त्वरासे जीतनेवाले सज्जनोंके पालनकर्ता, सब मनुष्योंके हितकरनेवाले धनको हमें दो । धन ऐसा चाहिये ॥ ६ ॥

जो साधना करता है, उसे हम अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं । हे इन्द्र ! संग्रामोंमें हम तेरे ही होकर रहें और तेरी ही उपासना करें ॥ ७ ॥

१०८६ अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयु-राजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयु-र्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥ ८ ॥

[५४]

(ऋषिः- मातरिश्वा काण्वः । देवताः- इन्द्रः, ३-४ विश्वे देवाः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१०८७ एतत् त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन् धीतिभिः ॥ १ ॥

१०८८ नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

१०८९ आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गम-ञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥

अर्थ—[१०८६] हे (हरिवः) अश्ववान् इन्द्र! (वाजयुः) अन्नकी इच्छा करता हुआ (अहं) मैं (ते ऊतिभिः सदा) तेरे संरक्षणसे सदा रक्षित होता हुआ (ब्रह्म आजिं यामि) बडे बडे युद्धमें भी चला जाता हूँ। (अश्वयुः गव्युः) घोडे तथा गायोंकी इच्छावाला मैं (अमे) संग्राममें (मथीनां अग्रे) शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ (तं त्वा इत् एव) उस तेरा ही [आश्रय लेता हूँ] ॥ ८ ॥

[५४]

[१०८७] हे (इन्द्र) इन्द्र! (कारवः) ऋत्विज (ते एतत् वीर्यं) तेरे इस वीर्यका (गीर्भिः) वाणियोंसे (गृणन्ति) वर्णन करते हैं, (ते स्तोभन्तः) उन स्तोताओंने (ऊर्जं आवन्) अन्नको प्राप्त किया, तथा (पौरासः) प्रजाओंने भी (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (घृतः श्चुतं) घीको देनेवाली गायको (नक्षन्) प्राप्त किया ॥ १ ॥

कारवः ते वीर्यं गृणन्ति— कार्य करनेवाले तेरे पराक्रमोंका वर्णन करते हैं।

[१०८८] हे इन्द्र! (येषां सुतेषु मन्दसे) जिनके सोम यज्ञोंमें तू आनन्दित होता है, वे (अवसे) संरक्षणके लिए (सु-कृत्यया) अपने उत्तम कर्मोंसे (इन्द्रं) इन्द्रको (नक्षन्ते) प्राप्त करते हैं। (यथा संवर्ते अमदः) जैसे संवर्त ऋषिके यज्ञमें आनन्दित हुए, (यथा कृशे) जैसे कृश ऋषिके यज्ञमें [आनन्दित हुए], हे (इन्द्र) इन्द्र (एव) उसी प्रकार (अस्मे मत्स्व) हमारे यज्ञमें आनन्दित होवो ॥ २ ॥

अवसे सुकृत्यया इन्द्रं नक्षन्ते— संरक्षणके लिये उत्तम कर्मोंको करनेवाले इन्द्रको प्राप्त करते हैं।

[१०८९] (सजोषसः विश्वे देवासः) प्रीतिपूर्वक रहनेवाले सभी देव (नः उप आ गन्तन) हमारे पास आवें। (वसवः रुद्राः अवसे नः आ गमन्) वसु और रुद्र हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आवें। (मरुतः नः हवं शृण्वन्तु) मरुद्गण हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र! मैं तेरे संरक्षणोंसे सदा बडे युद्धोंमें भी जाता हूं। युद्धमें वीरोंके आगे मैं रहता हूं। मैं तुझसे रक्षित होकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ होऊं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र! ऋत्विज तेरे इस पराक्रमका वर्णन करते हैं। उन्होंने तुझसे अन्न प्राप्त किया तथा प्रजाओंने स्तुतियोंसे गायको प्राप्त किया ॥ १ ॥

हे इन्द्र! जिनके सोम यज्ञोंमें तू आनन्दित होता है, वे अपने उत्तम कर्मोंके कारण तेरी शक्तिको प्राप्त करते हैं। हे इन्द्र! तू हमारे यज्ञमें आकर आनन्दित हो ॥ २ ॥

सभी देव हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आवें और हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ३ ॥

+

१०९० पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥ ४ ॥
१०९१ यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥ ५ ॥
१०९२ आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥ ६ ॥
१०९३ सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान् नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥ ७ ॥
१०९४ वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०९०] (पूषा विष्णुः सरस्वती सप्त सिन्धवः) पूषा, विष्णु, सरस्वती और सातों नदियां (मे हवनं अवन्तु) मेरे यज्ञकी रक्षा करें। (आपः वातः पर्वतासः वनस्पतिः पृथिवी हवं शृणोतु) जल, वायु, पर्वत, वनस्पति और पृथिवी मेरी प्रार्थना सुनें ॥ ४ ॥

[१०९१] हे (मघवत्तम इन्द्र) सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (यत् ते) जो तेरा (माघोनं राधः अस्ति) ऐश्वर्य प्रद धन है, (तेन) उससे हे (सध माद्यः भगः, वृत्रहन्) साथ साथ यज्ञमें बैठकर आनन्दित होनेवाले, ऐश्वर्यवान् तथा वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (नः) हमें (वृधे) बढनेके तथा (दानाय) दान मिलनेके मार्गको (बोधि) बताओ ॥ ५ ॥

[१०९२] हे (आजिपते नृपते सु-क्रतो) संग्रामके स्वामी, प्रजापालक और उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! (वाजे) संग्राममें (त्वं इत् नु हि) (नः आवक्षि) हमें सुरक्षित करता है, (ससवांसः) अन्नकी कामनावाले स्तोतागण (देव-वीतिभिः) देवोंके लिये यज्ञ करानेवाली; (वीतिभिः होत्राभिः) ज्ञानयुक्त स्तुतियोंसे (वि शृण्विरे) प्रसिद्ध होते हैं ॥ ६ ॥

[१०९३] (हि) क्योंकि (जनानां आयुः आशिषः) प्राणियोंका जीवन तथा ऐश्वर्य (अर्ये इन्द्रे सन्ति) स्वामी इन्द्रके अधीन हैं, अतः हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (अवसे) संरक्षणके लिए (अस्मान्) हमें (उप नक्षस्व) अपने समीप करो तथा (पिप्युषीं इषं) पालन करनेवाले अन्नको हमें (धुक्षस्व) दो ॥ ७ ॥

[१०९४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं ते) हम तेरे हैं, और (त्वं अस्माकं) तू हमारा है, इसलिए हम (स्तोमेभिः विधेम) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (महि स्थूरं, शशयं अ-ह्रयं राधः) महान् बडे सदा रहनेवाले, अनिंदनीय अथवा कम न होनेवाला धन (प्रस्कण्वाय नि तोशय) प्रस्कण्वके लिए दो ॥ ८ ॥

वयं ते— हम तेरे हैं
त्वं अस्माकं— तू हमारा है
महि स्थूरं शशयं अह्रयं राधः नितोशय — बडे महान् सदा रहनेवाले कम न होनेवाले धनको हमें दे दो।

भावार्थ— पूषा, विष्णु आदि सभी देव मेरी प्रार्थना सुनें और मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! जो तेरा धन है, उसे प्राप्त करके हम आनन्दित हों। तू हमें आगे बढनेका मार्ग दिखा ॥५॥

हे युद्धमें प्रवीण नरपते उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! युद्धमें तू ही हमारी रक्षा करता है ॥ ६ ॥

सभी प्राणियोंका जीवन तथा ऐश्वर्य स्वामी इन्द्रके ही अधीन है। अतः हे इन्द्र ! हमारी रक्षा करनेके लिए तू हमें अपने पास कर और पुष्टि कारक अन्न दे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरे हैं और तू हमारा है, इसीलिए हम स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं। तू ज्ञानीको आनन्द देनेवाला धन प्रदान कर ॥ ८ ॥

[५५]

(ऋषिः- कृशः काण्वः । देवताः- इन्द्रः प्रस्कण्वश्च । छन्दः- गायत्री, ३, ५ अनुष्टुप् ।)

१०९५ भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं१ व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥ १ ॥

१०९६ शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥

१०९७ शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।

शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥

१०९८ सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः । अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥

१०९९ आदित् साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः ।

श्यावीरतिध्वसन् पथश्चक्षुषा चन संनशे ॥ ५ ॥

[५५]

अर्थ— [१०९५] (इन्द्रस्य भूरि इत् वीर्यं) इन्द्रका महान् पराक्रम ही (अभि व्यख्यं आयति) चारों ओर प्रकाशित हो रहा है । हे (दस्यवे वृक) दस्युको काटनेवाले इन्द्र ! (ते राधः) तेरा धन [हमें प्राप्त हो] ॥ १ ॥

१ इन्द्रस्य भूरि इत् वीर्यं अभि व्यख्यं आयति— इन्द्रका महान् पराक्रम ही चारों ओर प्रकाशित हो रहा है ।

२ दस्यवे वृक— दुष्टको काटनेवाला वीर ।

[१०९६] हे इन्द्र ! [तेरे द्वारा दिए गए] (शतं श्वेतासः उक्षणः) सौ सफेद बैल (दिवि तारः न रोचन्ते) द्युलोकमें तारोंके समान चमक रहे हैं, वे अपनी (मह्ना) शक्तिसे (न) मानों (दिवं तस्तभुः) द्युलोकको आधार देते हैं ॥ २ ॥

[१०९७] [इन्द्रने कृश ऋषिको] (शतं वेणून्) सौ वेणू दिए, (शतं शुनः) सौ कुत्ते दिए, (शतं म्लातानि चर्माणि) सौ कोमल [हिरणकी] खालें दीं, (मे शतं बल्बजस्तुकाः) मुझे सौ घासोंके गट्ठे दिए, तथा (अरुषीणां चतुः शतं) चार सौ लाल घोडे दिए ॥ ३ ॥

[१०९८] हे (काण्वायनाः) कण्वके पुत्रो ! (वयः वयः विचरन्तः) पक्षियोंके समान विचरते हुए (सुदेवाः स्थ) उत्तम देव बनो, तथा (अश्वासः न) घोडोंके समान (चङ्क्रमत) विचरो ॥ ४ ॥

[१०९९] हे मनुष्यो ! (आत् इत्) इसके अनन्तर (साप्तस्य चर्किरन्) उस सातों लोकोंके स्वामी इन्द्रकी स्तुति करो, क्योंकि (अ-नूनस्य) उस पूर्ण पुरुषका (श्रवः महि) यश महान् है, और जो (श्यावीः पथः अति ध्वसन्) काले अर्थात् दोष पूर्ण मार्गोंको पार कर जाता है, [वह उस इन्द्रको] (चक्षुषा चन संनशे) आंखसे भी देख सकता है ॥ ५ ॥

१ अ-नूनस्य श्रवः महि— उस पूर्ण पुरुषका यश महान् है ।

२ श्यावीः पथः अति ध्वसन् चक्षुषा चन संनशे— बुरे मार्गोंको पार करता हुआ मनुष्य इन्द्रको आंखसे भी देख सकता है ।

भावार्थ— दुष्टोंका नाश करनेवाले इन्द्रका महान् पराक्रम चारों ओर प्रकाशित हो रहा है । जो दुष्टोंका नाश करता है, उसका पराक्रम चारों ओर प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

इन्द्र द्वारा दिए गए सौ सफेद बैल अपनी शक्तिसे द्युलोकको थामे हुए हैं । सौ सफेद बैल- वे द्युलोकमें दीखनेवाले तारे होंगे ॥ २ ॥

इन्द्रने ऋषियोंको अनेक तरहके दान और पशु दिए ॥ ३ ॥

हे ज्ञानियो ! तुम उत्तम तेज और गुणोंसे युक्त होकर पक्षियोंके समान सर्वत्र घूम कर उत्तम उपदेश दो ॥ ४ ॥

जो ज्ञानी उत्तम मार्गपर चलता है, वह इन्द्रका साक्षात्कार कर सकता है । ऐसे ज्ञानी पुरुषका यश महान् होता है ॥ ५ ॥

[५६]

(ऋषिः- पृषध्रः काण्वः । देवताः- इन्द्रः, प्रस्कण्वश्च ५ अग्निसूर्यौ । छन्दः- गायत्री, ५ पङ्क्तिः ।)

११०० प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदर्श्यह्रयम् । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

११०१ दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः । नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥

११०२ शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः ॥ ३ ॥

११०३ तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता । अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥ ४ ॥

११०४ अचेत्यग्निश्चिकितु- र्हव्यवाट् स सुमद्रथः ।
अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत् सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥ ५ ॥

[५७]

(ऋषिः- मेध्यः काण्वः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११०५ युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभि- रिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥ १ ॥

---

[५६]

अर्थ— [११००] हे (वृक) शत्रुको काटनेवाले इन्द्र ! (ते अ-ह्रयं राधः) तेरा उज्वल धन (दस्यवे प्रति अदर्शि) शत्रुके लिए प्रतिकूल देखा गया है, तथा तेरा (शवः) बल (प्रथिना) विस्तारमें (द्यौः न) द्युलोकके समान है ॥ १ ॥

[११०१] (पौत क्रतः) हे पवित्र कर्म करनेवाले इन्द्र ! तूने (मह्यं) मेरे लिए (दश सहस्रा दस्यवे) दस हजार शत्रुओंको (वृकः) काट डाला, और [शत्रुओंके] (नित्यात्) शाश्वत कोषसे (रायः) धन (अमंहत) दिया ॥ २ ॥

[११०२] (मे इन्द्रने मुझे (गर्दभानां शतं) सौ गधे दिए (ऊर्णावतीनां शतं) सौ भेडें दीं, (शतं दासान्) सौ दास दिए, तथा (अति स्रजः) अनेकों मालायें दीं ॥ ३ ॥

[११०३] (वि-अक्ता) अनेक प्रकारसे गति करनेवाले इन्द्रने (तत्र अपि) स्वर्गमें भी (पूत क्रतायै) पूतक्रताके लिए (अश्वानां यूथ्यं इत्) घोडोंके झुण्डको (प्र-आनीयत) ला करके दिया ॥ ४ ॥

[११०४] (हव्यवाट् सुमद्रथः सः अग्निः) हविको प्राप्त करनेवाला तथा स्वशक्तिसे सर्वत्र जानेवाला वह अग्नि (चिकितुः अचेति) ज्ञानीको जानता है । (बृहन् सूरः अग्निः) श्रेष्ठ ज्ञानी अग्नि (शुक्रेण शोचिषा) अपने शुभ्र तेजसे (अरोचत) पृथ्वीपर शोभित होता है, तो (सूर्यः दिवि अरोचत) सूर्य द्युलोकमें प्रकाशित होता है ॥५॥

[५७]

[११०५] हे (देवा) देवतारूपी ! (यजत्रा) हे पूजनीय ! हे सत्यके पालक ! (युवं) तुम दोनों (पूर्व्येण क्रतुना युक्ता) पूर्वकालीन कार्यसे युक्त होकर (रथेन तविषं आऽगच्छतं) रथपरसे बलपूर्वक हाँकते हुए आओ; (शचीभिः) शक्तियोंसे (इदं तृतीयं सवनं पिबाथः) इस तीसरे सवनमें सोम पी जाओ ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरा धन शत्रुके लिए प्रतिकूल होता दीखता है। तेरा बल विस्तारसे द्युलोकके समान है ॥ १ ॥

पवित्र कर्म करनेवाला इन्द्र अपने उपासकोंके अनेकों शत्रुओंको नष्ट करता है और उन्हें अपरिमित धन देता है ॥२॥

इन्द्रने ज्ञानियोंको अनेक तरहके पशु प्रदान किए ॥ ३ ॥

पवित्र कर्म करनेवाले मनुष्यके लिए इन्द्र घोडे आदि अनेक पशुओंका समूह प्रदान करता है ॥ ४ ॥

अपनी शक्तिसे सर्वत्र जानेवाला अग्नि अपने शुभ्र तेजसे पृथ्वीपर सुशोभित होता है, तो सूर्य द्युलोकमें प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

हे तेजस्वी, पूज्य तथा सत्यके पालक अश्वि देवो ! अपने प्राचीन पराक्रमसे युक्त होकर तुम हमारे पास आओ और अपनी शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे सोमको पीओ ॥ १ ॥

११०६ युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥ २ ॥
११०७ पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३ ॥
११०८ अयं वां भागो निहितो यजत्रे--मा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥ ४ ॥

[५८]

(ऋषिः- मेध्यः काण्वः । देवताः- विश्वे देवाः, १ ऋत्विजो वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

११०९ यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति ।
यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत् का स्वित् तत्र यजमानस्य संवित् ॥ १ ॥

अर्थ— [११०६] (त्रयः एकादशासः) तीनगुने ग्यारह याने ३३ (सत्याः देवाः) सच्चे देव, (युवां) तुम दोनों (सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे) सत्यके आगे दीख पडे, हे (दीद्यग्नी) जगमगाते अग्निके सदृश तेजस्वी अश्विदेवों ! (अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा) हमारे यज्ञ तथा सवनका सेवन करते हुए (सोमं पातं) सोमका पान करो ॥ २ ॥

[११०७] (अश्विना) हे अश्विदेवो ! (वां तत् कृतं) तुम्हारा वह कार्य (पनाय्यं) प्रशंसनीय है, जोकि (दिवः) द्युलोकसे (पृथिव्याः) भूमंडलके हितके लिए (रजसः वृषभः) जलकी वर्षा करनेवाला हुआ है; (ये गविष्टौ) जो गायोंके ढूंढनेमें (सहस्रं शंसाः) हजारों कहने योग्य कार्य होते हैं, (तान् सर्वान् इत्) उन सभी स्थलोंके समीप जरूर (पिबध्यै उप यात) पीनेके लिए चले जाओ ॥ ३ ॥

[११०८] हे (यजत्रा) पूजनीय अश्विदेवों ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग या हिस्सा रखा है (इमाः गिरः उप यातं) इन भाषणोंको सुननेके लिए हमारे समीप आओ (अस्मे मधुमन्तं सोमं पिबतं) हमारे लिए मधु डाले हुए सोमका पान करो और (दाश्वांसं शचीभिः) दानीको अपनी शक्तियोंसे (प्र अवतं) यथेष्ट मात्रामें सुरक्षित रखो ॥ ४ ॥

[११०९] (सचेतसः ऋत्विजः) ज्ञानसे युक्त ऋत्विज (यं बहुधा कल्पयन्तः) जिस यज्ञको अनेक प्रकारसे करते हुए (इमं यज्ञं वहन्ति) इस यज्ञको पूरा करते हैं, इस यज्ञकर्ममें (यः अनूचानः ब्राह्मणः) जो विद्वान् ब्राह्मण (युक्तः आसीत्) नियुक्त हुआ था, (तत्र यजमानस्य का स्वित् संवित्) उस विषयमें यज्ञ करनेवालेका ज्ञान कैसा था ? ॥ १ ॥

भावार्थ — हे अश्वि देवो ! तुम दोनों सत्यका पालन करनेवाले हो और जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी हो, तुम हमारे पास आकर सोमरसका पान करो ॥ २ ॥

हे अश्विदेवो ! तुमने पृथ्वीका हित करनेके लिए द्युलोकसे जलकी वर्षा की, यह तुम्हारा कार्य सचमुच प्रशंसाके योग्य है ॥ ३ ॥

हे पूजाके योग्य अश्विदेवो ! तुम दोनोंके लिए यह सोमरसका भाग रखा हुआ है, तुम हमारे पास आकर सोम रसका पान करो ॥ ४ ॥

ज्ञानवान् यज्ञ कर्ता अनेक तरहसे यज्ञोंको करते हुए यज्ञकार्यको पूर्ण करते हैं। जो भी विद्वान् यज्ञकर्ममें नियुक्त हुआ हो, उसे चाहिए कि वह यज्ञक्रियाका पूरा ज्ञान रखे ॥ १ ॥

८५

१११० एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥ २ ॥
११११ ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ॥ ३ ॥

[५९]

(ऋषिः- सुपर्णः काण्वः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।)

१११२ इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥ १ ॥
१११३ निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥ २ ॥

अर्थ- [१११०] (एकः एव अग्निः) एकही अग्नि (बहुधा समिद्धः) अनेक तरहसे प्रदीप्त होता है, (एकः सूर्यः) एकही सूर्य (विश्वं अनु) सबमें प्रविष्ट होकर (प्रभूतः) अनेक तरहसे प्रकट होता है, (एका एव उषाः) अकेली ही उषा (इदं सर्वं वि भाति) इस सब विश्वको प्रकाशित करती है, (एकं वा) अकेला ही प्रभु (इदं सर्वं वि बभूव) इस सब विश्वके रूपमें प्रकट होता है ॥ २ ॥

[११११] (ज्योतिष्मन्तं) चमचमानेवाले (केतुमन्तं) ध्वजावाले (त्रिचक्रं) तीन चक्रोंवाले (सुखं) सुखदायक (सुषदं) उत्तमतासे बैठने योग्य, (यस्य रथं) जिस रथको (योगे) जोडनेके लिए (चित्रामघा अधिजज्ञे) विलक्षण ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई, (तं) उस रथमें बैठकर (अतिरिक्तं पिबध्यै) बाकी बचे हुए सोमरसको पीनेके लिए (वां हुवे) तुम देवोंको बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[५९]

[१११२] (यत्) चूंकि हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों (सुन्वते यजमानाय शिक्षथ) सोमयज्ञ करनेवाले यजमानको ऐश्वर्य देते हो; और (सवना यज्ञे यज्ञे) हर सवनके प्रत्येक यज्ञमें (भुरण्यथः) तुम जाते हो, इसलिए (इमानि भागधेयानि) ये हिस्से (वां सिस्रते) तुम दोनोंके लिए दिए हैं । (सुतेषु) सोमरसके तैय्यार हो जानेपर (महे) पूजाके लिए मैं (वां हुवे) तुम दोनोंको बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[१११३] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (या) जो तुम दोनों (रजसः अध्वनः पारे सिस्रतुः) अन्तरिक्ष मार्गके उस पार हो, (ययोः) जिन दोनोंका (अदेवः शत्रुः नकिः ओहते) नास्तिक शत्रु कोई भी नहीं है, ऐसे तुम दोनों (आस्तां) रहते हो, तब (ओषधीः आपः निष्षिध्वरीः) ओषधी-वनस्पतियां और जल रससे युक्त होते हैं, और (महिमानं आशत) महिमाको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ- पार्थिव, बाडव, दाव आदिके रूपमें अग्निके अनेक प्रकार हैं, पर इन सबमें रहनेवाला अग्नितत्त्व एकही है । जिस तरह एक सूर्य और उषा सारे विश्वको प्रकाशित करती है । इसी तरह एकही प्रभु इस सम्पूर्ण विश्वमें प्रकाशित हो रहा है ॥ २ ॥

वीरोंका रथ चमचमानेवाला, ध्वजावाला, अनेक चक्रोंवाला, सुखदायक और उत्तमतासे बैठने योग्य हो। उस रथमें ऐश्वर्य भरपूर हो ॥ ३ ॥

इन्द्र और वरुण दोनों सोमयज्ञ करनेवालेको ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । इसीलिए ये दोनों देव प्रत्येक यज्ञमें आते हैं, उन यज्ञोंमें इन दोनों देवोंको उनका हिस्सा दिया जाता है ॥ १ ॥

इन्द्र और वरुण ये दोनों देव अन्तरिक्षसे ऊपर द्युलोकमें रहते हैं । इन दोनों देवोंकी निन्दा करनेवाला इनका शत्रु कोई नहीं है । इन्हीं देवोंके कारण वनस्पतियोंमें और जलोंमें रस होता है और उन्हीं रसोंके कारण उनकी महिमा है ॥ २ ॥

११११४ सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः ।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥ ३ ॥
१११५ घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य ।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुत स्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥ ४ ॥
१११६ अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।
अस्मान् त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुत स्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥ ५ ॥
१११७ इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे ।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१११४] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (कृशस्य तत् सत्यं) कृश ऋषिका यह कथन सत्य है। (वां) तुम्हारे लिए (सप्तवाणीः) सात छन्दोंवाली स्तुतियां (वां) तुम्हारे लिए (मध्वः ऊर्मिः दुहते) सोम-रसकी धारको दुहती हैं। (यः अदब्धः) जो भक्त आलस्यरहित होकर (चित्तिभिः) मनःपूर्वक (वां अभि पाति) तुमसे संरक्षण मांगता है, हे (शुभः पती) कल्याणकी रक्षा करनेवाले देवो ! तुम उस (दाश्वांसं) दानशीलकी (ताभिः अवतं) उन स्तुतियोंकी सहायतासे रक्षा करो ॥ ३ ॥

[१११५] (घृतप्रुषः) घी से सिंचित, (सौम्याः) शान्त (जीर दानवः) शीघ्रतासे बहनेवाली (सप्त स्वसारः) सात बहनें (ऋतस्य सदने) यज्ञ गृहमें रहती हैं। (याः घृतश्चुतः) जो घी चुआनेवाली बहनें, हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (वां) तुम दोनोंके लिएही हैं, (ताभिः) उनकी सहायतासे (यजमानाय शिक्षतं धत्तं) यजमानको धन दो और उसे धारण करो ॥ ४ ॥

[१११६] हे (शुभः पती इन्द्रावरुणा) शुभका पालन करनेवाले इन्द्र और वरुण ! (त्वेषाभ्यां) अत्यन्त तेजस्वी तुम दोनोंकी (इन्द्रियं सत्यं महिमानं) इन्द्रकी शक्तिको बढानेवाली अविनाशी महिमाको हम (महते सौभगाय) अपने महान् सौभाग्यके लिए (अवोचाम) कहते हैं। तुम दोनों (घृतश्चुतः अस्मान्) घृत प्रदान करनेवाले हमारी (त्रिभिः साप्तेभिः) इक्कीस बार (अवतं) रक्षा करो ॥ ५ ॥

[१११७] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! तुमने (ऋषिभ्यः) ऋषियोंको (अग्रे) प्राचीन कालमें (यत् मनीषां) जो विचार (वाचः) वक्तृत्वशक्ति, (मतिं) बुद्धि और (श्रुतं अदत्तं) ज्ञान दिया था, तथा (यज्ञं तन्वानाः धीराः) यज्ञोंको करते हुए बुद्धिमानोंने (यानि स्थानानि असृजन्त) जिन स्थानोंका निर्माण किया, उन्हें मैंने (तपसा अभि अपश्यम्) तपसे अच्छी तरह देख लिया है ॥ ६ ॥

भावार्थ — इन्द्र और वरुणके लिए सात छन्दोंसे युक्त ऋचायें बोलकर सोमरस तैय्यार किया जाता है। जो मनसे इन देवोंका संरक्षण मांगते हैं, उनकी ये दोनों रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

सात छन्दोंवाली ऋचायेंही सात बहनें हैं। इन ऋचाओंको बोलकर यज्ञमें घृत डाला जाता है और सोम तैय्यार किया जाता है। फिर ये सोमरस और ऋचारूप स्तुतियां इन्द्र और वरुणको दी जाती हैं। उनसे प्रसन्न होकर वे दोनों देव यजमानको धन देकर उसका संरक्षण करते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! अत्यन्त तेजस्वी तुम दोनों देवोंकी शक्ति और अविनाशी महिमाका मैं वर्णन करता हूं, उससे हमारा सौभाग्य बढे। हे देवो ! तुम दोनों हमारी सदा रक्षा करो ॥ ५ ॥

इन्द्र और वरुणने ऋषियोंको प्राचीन कालमें जो विचार, वक्तृत्वशक्ति, बुद्धि और ज्ञान दिया था, और उसके आधार पर उन ऋषियोंने जिन यज्ञस्थानोंका निर्माण किया था, उनको तपके द्वाराही देखा जा सकता है ॥ ६ ॥

१११८ इन्द्रा॑वरुणा सौमनुसमदृ॑सं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धत्तम् ।
प्र॒जां पुष्टिं॑ भूति॑म॒स्मासु॑ धत्तं दीर्घायुत्वाय॒ प्र ति॑रतं न॒ आयुः॑ ॥ ७ ॥

॥ इति वालखिल्यं समाप्तम् ॥

[६०]

(ऋषिः- भर्गः प्रागाथः । देवताः- अग्निः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१११९ अग्न॒ आ या॑ह्य॒ग्निभि॒र्होता॑रं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वाम॑नक्तु॒ प्रय॑ता ह॒विष्म॑ती॒ यजि॑ष्ठं ब॒र्हिरा॒सदे॑ ॥ १ ॥
११२० अच्छा॒ हि त्वा॑ सहसः सूनो अङ्गिरः॒ स्रुच॒श्चर॑न्त्यध्व॒रे ।
ऊ॒र्जो नपा॑तं घृ॒तके॑शमीमहे॒ ऽग्निं य॒ज्ञेषु॑ पू॒र्व्यम् ॥ २ ॥
११२१ अग्ने॑ क॒विर्वे॒धा अ॑सि॒ होता॑ पावक॒ यक्ष्यः॑ ।
म॒न्द्रो यजि॑ष्ठो अध्व॒रेष्वीड्यो॒ विप्रे॑भिः शुक्र॒ मन्म॑भिः ॥ ३ ॥

अर्थ- [१११८] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों (यजमानेषु) यज्ञ करनेवालोंको (सौमनसं) नम्रता, (अदृप्तं) निरभिमानिता अर्थात् उदारता और (रायः पोषं) पुष्टि देनेवाला ऐश्वर्य (धत्तं) प्रदान करो, तथा (अस्मासु) हमें (प्रजां पुष्टिं भूतिं) प्रजा, पोषण और ऐश्वर्य (धत्तं) प्रदान करो, (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु भोगनेके लिए (नः आयुः प्रतिरतं) हमारी आयु बढाओ ॥ ७ ॥

[६०]

[१११९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अग्निभिः आ याहि) अन्य अग्नियोंके साथ यहाँ आ। (होतारं त्वा वृणीमहे) देवोंके बुलानेवाले तेरा हम वरण करते हैं । (यजिष्ठं त्वां बर्हिः आसदे) पूजित तुझको यज्ञमें स्थापित करते हैं । यज्ञमें प्रज्वलित होनेवाले तुझको (प्रयता हविष्मती आ अनक्तु) अध्वर्युके हाथोंमें नियत घृतवाली स्रुचा सब ओरसे सींचे ॥ १ ॥

[११२०] हे (सहसः सूनोः अङ्गिरः) बलके पुत्र तथा अंगरसोंके ज्ञाता अग्ने ! (अध्वरे त्वा अच्छ स्रुचः चरन्ति) यज्ञमें तुझको अभिलक्ष्य करके स्रुचायें चलती हैं । हम (ऊर्जः नपातं, घृतकेशं पूर्व्यं अग्निं) बलको न गिरानेवाले, प्रदीप्त ज्वालारूपी केशोंको धारण करनेवाले, सबसे पुरातन श्रेष्ठ ऐसे तुझ अग्निकी (यज्ञेषु ईमहे) यज्ञोंमें उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[११२१] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कविः वेधाः असि) मेधावी और विधाता है । हे (पावक) पवित्र करनेहारे ! और हे (होता) होम निष्पादक अग्ने ! तू (यक्ष्यः) पूज्य है । हे (शुक्र) दीप्तिमान् ! तू (मन्द्रः) हर्ष प्रदाता है । तू (यजिष्ठः अध्वरेषु मन्मभिः विप्रेभिः ईड्यः) सबसे बडा तू यज्ञोंमें उत्तम मन्त्रोंद्वारा विद्वानोंसे स्तुत्य है ॥ ३ ॥

भावार्थ- हे देवो ! यज्ञ करनेवालोंको नम्रता, उदारता और पोषणकारक ऐश्वर्य प्रदान करो तथा हमें भी प्रजा, पोषण, ऐश्वर्य और दीर्घायु प्रदान करो ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू आहवनीय, गार्हपत्य आदि अग्नियोंके साथ हमारे यज्ञोंमें आकर विराजमान हो और यहाँ अच्छी तरह प्रदीप्त हो, ताकि हम स्रुचाओं द्वारा तुझे अच्छी तरह सींच सकें । तू बलपूर्वक मथनेपर प्रकट होता है, तू अंगोंमें रहते हुए उन्हें बल प्रदान करता है । तू सबसे श्रेष्ठ और सबसे प्राचीन है । अतः हम तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ १-२ ॥

११२२ अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥ ४ ॥

११२३ त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ५ ॥

११२४ शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥ ६ ॥

अर्थ– [११२२] हे (यविष्ठ्य,) अत्यन्त बलवान् अग्ने ! तू (अद्रोघं, उशतः देवान्) द्रोह न करनेवाले मेरे पास कामना करनेवाले देवोंको (वीतये अजस्र आ वह) हवि भक्षणके लिये प्रतिदिन ले आ । हे (वसो) सबको बसानेवाले अग्ने ! (सुधिता प्रयांसि अभि गहि) उत्तम भावसे रखे हुए अन्नोंको प्राप्त कर । और हमारी (धीतिभिः हितः मन्दस्व) स्तुतियोंसे पूजित होकर हर्षित हो ॥ ४ ॥

[११२३] हे अग्ने) अग्ने ! (त्वं इत् त्रातः ऋतः कविः सप्रथाः असि) तू ही हमारा रक्षक, सत्यस्वरूप, बुद्धिमान् और सबसे महान् है । हे (समिधान) देदीप्यमान् ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् अग्ने ! (विप्रासः वेधसः त्वा आ विवासन्ति) मेधावी, विद्वान् स्तोतागण तेरी सब प्रकारसे सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

[११२४] हे (शोचिष्ठ) अति तेजस्विन् अग्ने ! तू (शोच) उत्तम रीतिसे प्रकाशित हो । स्तोत्रे विशे मयः रास्व) स्तुति करनेवाली प्रजाके लिये सुख प्रदान कर । तू (देवानां महान् असि) देवोंके बीचमें सबसे महान् है । (मम शर्मन् सूरयः सन्तु) मेरे घरमें सदा विद्वान् रहें तथा (शत्रुषाहः सु-अग्नयः , शत्रुओंको परास्त करनेवाली उत्तम अग्नियाँ प्रज्वलित होती रहें ॥ ६ ॥

१ देवानां महान् असि— यह अग्नि सब देवोंमें महान् है ।
२ मम शर्मन् सूरयः शत्रुषाहः सु अग्नयः सन्तु— मेरे घरमें सदा विद्वान् और शत्रुओंको परास्त करनेवाली उत्तम अग्नियां निवास करती रहें । अर्थात् मेरे घरमें सदा विद्वान् निवास करते रहें और नित्य प्रति यज्ञ होता रहे ।

भावार्थ— अग्रणी मेधावी और परिस्थितियोंको पहचानकर काम करनेवाला हो, सर्वत्र पवित्रता रखनेवाला हो, सबोंको हर्षित करनेवाला हो, और विद्वानों द्वारा प्रशंसनीय हो, ऐसा अग्रणी द्रोह न करनेवाले देवोंको अपने पास रखे । तथा हमेशा अन्नसे भरापूरा रहे । इस प्रकार प्रजाजनोंसे पूजित होकर वह हर्षित हो ॥ १-४ ॥

जो अग्रणी सब प्रजाओंका रक्षक , सत्यमार्गपर चलनेवाला, भविष्यकी ओर देखकर काम करनेवाला और उत्तम मार्गोंको विस्तृत करनेवाला और स्वयं तेजस्वी होकर सर्वत्र अपना तेज फैलाता है, उसकी सब विद्वान् प्रशंसा करते हैं ॥ ५ ॥

जिस घरमें सदा सर्वदा विद्वान् निवास करते हैं, और यज्ञाग्निकी पवित्र ज्वालायें प्रदीप्त होती रहती हैं, उस घरमें देवता निवास करते हैं और उस घरमें रहनेवाले सदा सुखी रहते हैं ॥ ६ ॥

+

११२५ यथा चिद् वृद्धमंतस—मग्ने संजूर्वसि क्षमि ।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग् दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥ ७ ॥
११२६ मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥
११२७ पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥
११२८ पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥

अर्थ—[११२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथाचित् क्षमि वृद्धमतसं संजूर्वसि) जिस प्रकार तू पृथ्वीपर पडे सूखे काष्ठको जला देता है, (एव मित्रमहः) उसी प्रकारसे हे मित्रोंमें पूज्यतम अग्ने ! (यः अस्मध्रुक्, कः च दुर्मन्मा वेनति दह) जो हमसे द्रोह करनेवाला है, और कोई भी दुष्टबुद्धिवाला जो हमारे पराभवकी इच्छा करता है उसको भी तू अपनी ज्वालासे जला दे ॥ ७ ॥

१ यः दुर्मन्मा अस्मध्रुक् वेनति, दह— जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष हमसे द्रोह एवं हमारे पराभवकी कामना करता है, उसे हे अग्ने ! तू जला डाल ।

[११२६] हे (यविष्ठ्य) अतिशय बलशालिन् अग्ने ! तू (नः रिपवे मर्ताय रक्षस्विने, मा रीरिधः) हमें शत्रु मनुष्य और दुष्ट लोगोंके लिए पीडित न कर । तू हमें (अघशंसाय मा) पापकी शिक्षा देनेवालोंके अधीन न कर । तथा तू (अस्रेधभिः तरणिभिः शिवेभिः पायुभिः पाहि) अहिंसक, संकटोंसे पार उतारनेवाली कल्याणकारी अपनी रक्षाशक्तियोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ८ ॥

१ रिपवे मर्ताय, रक्षस्विने, अघशंसाय नः मा रीरिधः— हे अग्ने ! शत्रुओं, राक्षसों और पापियोंको प्रसन्न करनेके लिए हमें पीडित मत कर ।

[११२७] हे (वसो) सबको बसानेवाले तथा (ऊर्जां पते अग्ने) नाना अन्नोंके पालक अग्ने ! तू (एकया नः पाहि) एक प्रार्थनासे हम लोगोंकी रक्षा कर । (उत द्वितीयया पाहि) दूसरी प्रार्थनासे रक्षा कर । (तिसृभिः गीर्भिः पाहि चतसृभिः पाहि) तीसरी प्रार्थनाओं और चौथी प्रार्थनाओंसे रक्षा कर ॥ ९ ॥

[११२८] हे अग्ने ! (विश्वस्मात् रक्षसः अराव्णः पाहि) सम्पूर्ण राक्षसों और अदानशील शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर । (वाजेषु नः प्र अव स्म) संग्राममें हमें अच्छी प्रकारसे बचा । हम (देवतातये त्वामित् हि नेदिष्ठं आपिं वृधे नक्षामहे) यज्ञकी सिद्धिके लिये तुझको अतिनिकटका अपना बन्धु जानकर उन्नति करनेके लिए प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— अग्रणीको चाहिए कि वह सज्जनोंकी रक्षा करे, दुष्टों और राक्षसोंको प्रसन्न रखनेके लिए वह सज्जनोंको कभी पीडा न दे । जिस राष्ट्रमें पापकी शिक्षा देनेवालोंको प्रसन्न किया जाता है और विद्वानों तथा सज्जनोंको कष्ट दिया जाता है, वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है । अतः राजा सज्जनोंको कभी कष्ट न दे, इसके विपरीत वह दुष्ट बुद्धिवालोंको नष्ट करके अपनी संकटोंसे तारनेवाली तथा कल्याणकारिणी शक्तियोंसे सज्जनोंकी रक्षा करे ॥ ७-८ ॥

हे अग्ने ! हमारी सभी प्रार्थनाओंको सुन और सभी राक्षसों और कंजूसोंसे हमारी रक्षा कर, संग्रामोंमें हमें बचा, ताकि हम सदा यज्ञोंमें घृतादियोंसे तुझे तृप्त करते रहें । तू ही हमारा सर्वश्रेष्ठ बन्धु है ॥ ९-१० ॥

११२९ आ नो॑ अग्ने वयो॒वृधं॑ र॒यिं पा॑वक॒ शंस्य॑म् ।
रास्वा॑ च न उपमाते पुरु॒स्पृहं॑ सु॒नीती॒ स्वय॑शस्तरम् ॥ ११ ॥

११३० येन॒ वंसा॑म॒ पृत॑नासु॒ शर्ध॑त॒स्तर॑न्तो अ॒र्य आ॒दिशः॑ ।
स त्वं नो॑ वर्ध॒ प्रय॑सा शचीवसो॒ जिन्वा॒ धियो॑ वसु॒विदः॑ ॥ १२ ॥

११३१ शिशा॑नो वृष॒भो य॑था॒ग्निः शृङ्गे॒ दवि॑ध्वत् ।
ति॒ग्मा अ॑स्य॒ हन॑वो॒ न प्र॑ति॒धृषे॑ सु॒जम्भः॒ सह॑सो य॒हुः ॥ १३ ॥

११३२ न॒हि ते॑ अग्ने वृषभ प्रति॒धृषे॒ जम्भा॑सो॒ यद्वि॒तिष्ठ॑से ।
स त्वं नो॑ होतः सु॒हुतं॑ ह॒विष्कृ॑धि॒ वंस्वा॑ नो॒ वार्या॑ पु॒रु ॥ १४ ॥

११३३ शेषे॒ वने॑षु मा॒त्रोः सं त्वा॒ मर्ता॑स इन्धते ।
अत॑न्द्रो ह॒व्या व॑हसि हवि॒ष्कृत॒ आदिद्दे॒वेषु॑ राजसि ॥ १५ ॥

अर्थ— [११२९] हे (पावक अग्ने) पवित्र करनेहारे अग्ने ! (नः वयोवृधं शंस्यं रयिं आ रास्व) हम लोगोंको आयुकी वृद्धि करनेवाला और प्रशंसनीय धन प्रदान कर। हे (उपमाते) मित्रवत् हितकारी अग्ने ! तू (नः सुनीतिः, पुरुस्पृहं स्वयशस्तरम्) हम लोगोंको उत्तम रीतिसे बहुतोंसे चाहे जाने योग्य और स्वयशको अत्यन्त वृद्धि करनेवाला धन प्रदान कर ॥ ११ ॥

[११३०] हे (शचीवसो) शक्तिके धनी अग्ने ! (सः त्वं नः प्रयसा वर्ध) वह प्रसिद्ध तू हमको अन्नसे बढा और हमारे (वसुविदः धियः जिन्व) ऐश्वर्य और प्रजाओंको प्राप्त करानेवाले बुद्धिको तृप्त कर। (येन पृतनासु शर्धतः आदिशः अर्यः तरन्तः वंसाम) ताकि हम संग्राममें वीरता दिखाते हुये तथा शस्त्रोंको फेंकते हुए शत्रुओंको पार करते हुए उन्हें मार सकें ॥ १२ ॥

[११३१] (वृषभः यथा शृङ्गे शिशानः दविध्वत्) जैसे बैल अपनी सींगोंको तीक्ष्ण करते समय अपने सिरको हिलाता है, उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि भी अपनी ज्वालायें हिलाता है। (अस्य तिग्माः हनवः न प्रतिधृषे) इसके तीक्ष्ण शस्त्रोंका निवारण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। वह (सहसः यहुः सुजम्भः) बलका पुत्र एवं सुन्दर जबडोंवाला है ॥ १३ ॥

[११३२] हे (वृषभ) वर्धक अग्ने ! (ते जम्भासः नहि प्रतिधृषे) तेरे जबडे स्थानीय ज्वालाएं किसीसे कभी रोकी नहीं जा सकतीं। (यत् वितिष्ठसे) क्योंकि तू अपनी ज्वालाको अनेक प्रकारसे प्रवर्धित करता है। हे (होतः) होम निष्पादक ! (स त्वं हविः सुहुतं कृधि) वह प्रसिद्ध तू हमारे द्वारा दी हुई हविको सफल कर। (नः पुरु वार्या वंस्व) हमको बहुतोंसे वरण करने योग्य धन प्रदान कर ॥ १४ ॥

[११३३] हे अग्ने ! तू (वनेषु मात्रोः शेषे) वनोंमें माताओंमें शयन करता है। (त्वा मर्तासः सं इन्धते) तुझको मनुष्य अच्छे प्रकारसे प्रकाशित करते हैं। पश्चात् प्रज्वलित हुआ हुआ तू (अतन्द्रः हविष्कृतः हव्या वहसि) आलस्यरहित होकर यजमानोंके हव्योंको देवोंके प्रति ले जाता है। (आत् इत् देवेषु राजसि) फिर उन देवोंके बीचमें शोभायमान होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हमें आयु बढानेवाला और प्रशंसनीय धन दे, मित्रोंके समान हमारा हित कर, हमारे यशको बढा, हमें अन्नसे बलशाली बनाकर हमें बुद्धिमान् भी बना, ताकि बडे बडे संग्रामोंमें भी हम अपनी वीरता दिखाते हुए तथा शस्त्रोंको फेंकते हुए शत्रुओंको मार सकें ॥ ११-१२ ॥

जिस प्रकार बैल अपने सींगोंको तेज करता है, उसी प्रकार जब यह अग्नि अपनी ज्वालाओंको तेज करने लगता है, तब उसे रोकनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता। इसकी ज्वालायें बडी तीक्ष्ण हैं ॥ १३-१५ ॥

११३४ सप्त होतारस्तमिदीळते त्वा ऽग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्त्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥ १६ ॥

११३५ अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा ऽऽ होतारं चर्षणीनाम् ॥ १७ ॥

११३६ केतेन शर्मन् त्सचते सुषामण्य ग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ १८ ॥

११३७ अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ १९ ॥

११३८ मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुध मग्ने सेध रक्षस्विनः ॥ २० ॥

अर्थ— [११३४] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुत्यजं अह्रयं, तं त्वा इत् सप्त होतारः ईळते) उत्तमदाता, अक्षीण उस तेरीही सात ऋत्विक् गण स्तुति करते हैं । तू (अद्रिं तपसा शोचिषा विभिनत्ति) मेघको अपने तपके तेजसे विदीर्ण करता है । हे (अग्ने) अग्ने ! (जनान् अति प्रतिष्ठ) लोगोंको लाँघ कर आगे बढ ॥ १६ ॥

[११३५] हे मनुष्यो ! (वृक्तबर्हिषः वः अध्रिगुं अग्निं) आसन बिछाकर हम तुम्हारे लिये सदा गृहमें वर्तमान अग्निकी ओर (शाश्वतीषु होतारं अग्निं अग्निं) बहुतसी प्रजाओंमें होम निष्पादक तेजस्वी अग्निकेही (चर्षणीनां हितप्रयसः आ हुवेम) मनुष्योंके हितके लिये हवि धारण करनेवाले होकर बुलाते हैं ॥ १७ ॥

[११३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुषामणि शर्मन् चिकित्वना केतेन तुभ्यं) उत्तम सामवाले सुखदायक यज्ञमें श्रेष्ठ ज्ञानवान् होतादिकोंके साथ यजमान् ज्ञापक स्तोत्रोंसे तेरे लिये यजन करता है । तू (इषण्यया नः पुरुरूपं वाजं) इच्छापूर्वक हमारे लिये नाना प्रकारके ऐश्वर्यको (नेदिष्ठं ऊतये आ भर) अति समीपतासे, हमारी रक्षाके लिये सब ओरसे प्रदान कर ॥ १८ ॥

[११३७] हे (देव, जरितः अग्ने) दिव्य गुणयुक्त तथा स्तुतिके योग्य अग्ने ! तू (रक्षसः तेपानः) राक्षसोंको संताप देनेवाला (विश्पतिः, अप्रोषिवान गृहपतिः) प्रजाओंका पालक, कभी भी घरको छोडकर न जानेवाला घरका स्वामी, (महान् दिवः पायुः दुरोणयुः असि) अत्यन्त पूज्य, द्युलोकका रक्षक और उपासकके घरमें सदा वर्तमान रहनेवाला है ॥ १९ ॥

[११३८] हे (आघृणीवसो) तेजस्वी धनोंसे युक्त अग्ने ! (रक्षः न) राक्षसादि हमारे अन्दर (आ मा वेशीत) किसी भी प्रकार न प्रवेश कर सकें । (यातुमावतां यातुः मा) पीडादायक दुःख रोग और राक्षसोंकी यातनायें भी हममें न प्रवेश करें । हे (अग्ने) अग्ने ! (अनिरां क्षुधं रक्षस्विनः परोगव्यूति अप सेध) विना अन्नके भुखमरी और राक्षसोंको हमसे कोसों दूर कर ॥ २० ॥

१ रक्षः यातुमावतां यातुः नः मा आवेशीत्— राक्षस और पीडा देनेवालोंकी पीडायें हममें प्रवेश न करें
२ अनिरां क्षुधं रक्षस्विनः परो गव्यूति अपसेध— अन्नके अभावमें भुखमरी तथा राक्षसोंको हमसे कोसों दूर कर ।

भावार्थ— हे अग्ने ! तू ही उत्तम दाता और क्षीण न होनेवाला है, इसीलिए सब तेरी स्तुति करते हैं, तू ही सूर्य और विद्युत्के रूपमें मेघको अपनी किरणोंसे विदीर्ण करके पानी बरसाता है । इसी कारण सब मनुष्य तुझे अच्छी तरह प्रकाशित करते हैं । तू भी आलस्यरहित होकर हमारी हवियोंको देवोंके पास पहुंचा ॥ १५-१६ ॥

हे अग्ने ! जिसमें उत्तम उत्तम और मधुर साममंत्रोंका गान किया जाता है, ऐसे यज्ञोंमें हम तुम्हें प्रज्वलित करते हैं । तुम हमारे घरोंमें सदा रहो, कभी भी हमारे घरको छोडकर न जाओ । तुम्हीं मनुष्योंका हित करनेवाले हो ॥ १७-१८ ॥

हे अग्ने ! तू शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला, प्रजाओंका पालक, कभी भी उपासकका घर छोडकर न जानेवाला, सभी घरोंका स्वामी, अत्यन्त पूज्य है । अतः हमें ऐसा बलवान् बना कि हममें राक्षस और पीडादायक शत्रु रोग आदि न घुस सकें, साथ ही भुखमरी आदि दुर्दैव भी कोसों दूर रख ॥ १९-२० ॥

[६१]

(ऋषिः- भर्गः प्रागाथः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती,) १७ शंकुमती ।)

११३९ उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

११४० तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

११४१ आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहि- मधृष्टं चिद् दधृष्वणिम् ॥ ३ ॥

११४२ अप्रामिसत्य मघवन् तथेदस- दिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥

---

[६१]

अर्थ— [११३९] (इन्द्रः) वह इन्द्र (नः इदं उभयं वचः) हमारे इन दोनों प्रकारकी स्तुतियोंको (अर्वाग्) समीपसे (शृणवत्) सुने, तथा (शविष्ठः, मघवा) बलवान् और ऐश्वर्यवान् इन्द्र (सत्राच्या धिया) यज्ञमें साथ बैठकर की गई स्तुतिसे प्रेरित होकर (सोमपीतये आ गमत्) सोमपानके लिए आवे ॥ १ ॥

[११४०] (तं स्वराजं वृषभं तं) उस स्वयं प्रकाशित होनेवाले तथा बलवान् इन्द्रको (धिषणे) द्यावा पृथिवी (ओजसे) बलके लिए (निः-ततक्षतुः) उत्तम बनाते हैं, हे इन्द्र ! (उत) और (उपमानां) उपमाके योग्य देवोंके मध्यमें तुम (प्रथमः नि सीदसि) मुख्य होकर बैठते हो, (हि) क्योंकि (ते मनः सोमकामं) तेरा मन सोमकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

[११४१] हे (पुरू-वसो इन्द्र) बहुत धनवान् इन्द्र (सुतस्य अन्धसः) सोमरूपी अन्नकी (आ वृषस्व) वर्षा कर, हे (हरि-वः) घोडोंसे युक्त इन्द्र ! (पृत्सु सासहिं) युद्धोंमें शत्रुको हरानेवाले, (अ-धृष्टं चिद् दधृष्वणिं) स्वयं न पराभूत होते हुए भी दूसरोंको मारनेवाले (त्वा) तुझको हम (विद्म) जानते हैं ॥ ३ ॥

[११४२] हे (अ-प्रामिसत्य मघवन् इन्द्र) सत्यका सदा पालन करनेवाले तथा ऐश्वर्यवाले इन्द्र ! तुम (क्रत्वा यथा वशः) कर्मसे जैसी कामना करते हो, (तथा इत् असत्) वैसाही होता है, हे (अद्रि-वः शिप्रिन्) वज्र धारण करनेवाले तथा शिरस्त्राण पहननेवाले इन्द्र ! (तव अवसा) तेरे संरक्षणमें (मक्षू चिद् यन्तः) शीघ्रही [शत्रुओंको] जीतते हुए (वाजं सनेम) अन्नको प्राप्त हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— वह इन्द्र हमारे द्वारा प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे की गई स्तुतिको सुने। वह बलवान् और ऐश्वर्यवान् इन्द्र यज्ञमें बैठकर हमारे द्वारा की गई स्तुतिको वह इन्द्र सुनकर हमारे पास आवे ॥ १ ॥

उस स्वयं प्रकाशित तथा बलवान् इन्द्रको द्युलोक और पृथिवीलोक बलशाली और उत्तम बनाते हैं। इसलिए वह इन्द्र सब देवोंमें मुख्य है। जो बलशाली और उत्तम होता है, वह सबमें मुख्य होता है ॥ २ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू हमें सोमरूप अन्न दे। हम जानते हैं कि तू युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाला और स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू कर्मसे जैसी कामना करता है, वैसा ही होता है। कर्मोंसे सब कामनायें पूर्ण होती हैं। तेरे संरक्षणसे चलनेवाले हम बल या अन्न प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥

११४३ शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुवि॑द—मनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥

११४४ पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवाम—स्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥

११४५ त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद् वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥

११४६ त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरंदरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥

११४७ अविप्रो वा यदविध—द्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत् त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

अर्थ— [११४३] हे (शचीपते इन्द्र) शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! (विश्वाभिः ऊतिभिः) सम्पूर्ण संरक्षणोंसे हमें (शग्धि) समर्थ कर, हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! हम (भगं न) भाग्यके समान (यशसं) यशस्वी (वसु-विदं) धनको प्राप्त करानेवाले होकर (त्वा) तेरी (अनुचरामसि) सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

[११४४] हे (देव) देव ! तू (पौरः) प्रजाओंका स्वामी है, (गवां अश्वस्य पुरु कृत्) गायों तथा घोडोंको बहुत बनानेवाला है तथा (हिरण्ययः उत्सः असि) सोने आदि धनका स्रोत है, हे इन्द्र ! (त्वे दानं हि न किः परिमर्धिषत्) तेरे दानको कोई नष्ट नहीं कर सकता, तुझसे (यत् यत् यामि) जो जो मांगता हूँ, (तत् आ भर) उसे दो ॥ ६ ॥

[११४५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं हि एहि) तू आ, और (चेरवे) तेरी सेवा करनेवाले हमें (वसुत्तये) धन दानके लिए (भगं विद) ऐश्वर्य प्रदान कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गविष्टये) गायकी इच्छा करनेवाले हमें (उत् आ वृषस्व) गाय दे तथा (अश्वं इष्टये उत्) अश्वकी इच्छा करनेवाले हमें घोडे दे ॥ ७ ॥

[११४६] हे इन्द्र ! (त्वं) तू (पुरू सहस्राणि शतानि च) बहुत, हजारों, सैंकडों (यूथा) गाय घोडोंके झुण्डोंको (दानाय मंहसे) दानके लिए देता है, (गायन्तः) गान करते हुए (विप्रवचसः) ज्ञान युक्त स्तुति करनेवाले हम (पुरन्दरं इन्द्रं) शत्रुओंकी नगरीको तोडनेवाले इन्द्रकी (अवसे) संरक्षणके लिए (चकृम) स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[११४७] हे (शतक्रतो, प्राचा-मन्यो,) सैंकडों कर्म करनेवाले, अप्रतिहत क्रोधवाले तथा (अहं-सन इन्द्र) अपने अभिमानको प्रकट करनेवाले इन्द्र ! (अ-विप्रः विप्रः वा) अज्ञानी अथवा ज्ञानी (यत् वा) अथवा जो कोई भी (ते वचः अविधत्) तेरी स्तुति करता है, (सः) वह (त्वाया) तेरे कारण (प्र ममन्दत्) बहुत आनन्दित होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! संपूर्ण रक्षणके साधनोंसे हमें सामर्थ्यवान कर। भाग्यवानके समान यशस्वी धनवान ऐसे तेरा अनुसरण करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तू सोने आदि धनका उद्गम स्थान है। इसलिए तेरे दानको कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी सेवा करते हैं, इसलिए तू हमें ऐश्वर्य प्रदान कर ताकि हम धनका दान कर सकें। तू हमें गाय और घोडे आदि पशु भी दे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू अनेक गायों और घोडोंके झुण्डोंको दानके लिए देता है, इसलिए ज्ञान पूर्वक स्तुति करनेवाले हम शत्रुओंकी नगरीको तोडनेवाले इन्द्रकी अपनी रक्षाके लिए स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

अज्ञानी या ज्ञानी जो कोई भी इन्द्रकी स्तुति करता है, वह आनन्दित होता है ॥ ९ ॥

११४८ उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरंदरो यदि मे शृणवद्धवम् ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥
११४९ न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।
यदिन्न्विन्द्रं सचा सुते सखायं कृणवामहै ॥ ११ ॥
११५० उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम् ।
वेदा भृमं चित् सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥ १२ ॥
११५१ यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १३ ॥
११५२ त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥

अर्थ— [११४८] (उग्र बाहुः) बडी भुजाओंवाला, (म्रक्ष कृत्वा) शत्रुओंका वध करनेवाला, तथा उनकी (पुरं दरः) शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र (यदि मे हवं शृणवद्) यदि मेरी प्रार्थना सुन ले, तो (वसूयवः) धनकी इच्छावाले हम (वसु-पतिं शतक्रतुं इन्द्रं) धनके स्वामी, सैकडों कर्मोंके करनेवाले इन्द्रको (स्तोमैः हवामहे) स्तोत्रोंसे सहायार्थ बुलावें ॥ १० ॥

[११४९] (यत् इत्) जिस कारण (वृषभं इन्द्रं) बलवान् इन्द्रको (सुते) सोमयागमें हम (सचा) एक साथ मिलकर (सखायं कृणवामहै) अपना मित्र बनाते हैं, इस कारण हम उसे (पापासः न मनामहे) पापी नहीं मानते, (न अ-रायसः) न दरिद्री मानते हैं, (न जल्हवः) न अ-यज्ञ कर्ता मानते हैं ॥ ११ ॥

[११५०] हम (पृतनासु सासहिं) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाले (ऋणकातिं) ऋणको दूर करनेवाले (अ-दाभ्यं) न दबनेवाले (उग्रं) वीर इन्द्रको हम अपने पक्षमें (युयुज्म) संयुक्त करते हैं, वह (रथीतमः) रथियोंमें श्रेष्ठ इन्द्र (भृमं वाजिनं वेद) दौडनेवाले घोडेकी परीक्षा करता है, तथा (यं इत्) जिसको (नशत्) वह प्राप्त होता है, [वह सुखी होता है] ॥ १२ ॥

[११५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (यतः भयामहे) जहां जहांसे डरते हैं, (नः) हमें (ततः) वहां वहांसे (अभयं कृधि) भय रहित करो, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (तव तत् ऊतिभिः) अपने उन संरक्षणोंसे (नः) हमें (शग्धि) समर्थ कर, तथा (द्विषः मृधः जहि) हमारा द्वेष करनेवालोंको तथा हिंसकोंको पराभूत कर ॥ १३ ॥

[११५२] हे (राधस्पते) धनके स्वामी इन्द्र ! (त्वं हि) तू ही (विधतः) यजमानके (महः राधसः क्षयस्य असि) बडे ऐश्वर्यको तथा घरको [बढानेवाला] है, हे (गिर्वणः मघवन् इन्द्र) स्तुत्य, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (सुतावन्तः वयं) सोमयाग करनेवाले हम (तं त्वा) उस तुझको सहायार्थ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ— बडी भुजावाला, शत्रुओंका वध करनेवाला, शत्रुओंके नगर तोडनेवाला मेरी प्रार्थना सुने । वह हमारे स्तोत्रोंको सुनकर हमारे पास आवे ॥ १० ॥

हम इन्द्रको सोमयज्ञमें मित्र बनाते हैं, क्योंकि वह इन्द्र न पापी है, न दरिद्री है और न अयज्ञशील है । मनुष्य पुण्यशाली, धनवान् और आस्तिक मनुष्यको ही अपना मित्र बनाए ॥ ११ ॥

युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले, ऋणको दूर करनेवाले, न दबनेवाले उग्र वीरको अपने पक्षमें लेते हैं । वह श्रेष्ठ रथी दौडनेवाले घोडेको जानता है ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय होता है वहांसे हमें निर्भय कर । अपने संरक्षणोंसे हमें बलवान् कर । द्वेष करनेवालों तथा हिंसकोंको पराभूत कर ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञ करनेवालेके ऐश्वर्यको और घरको अधिक बढाता है । इसीलिए सोमयज्ञ करनेवाले हम तुझे अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १४ ॥

११५३ इन्द्रः स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात् पातु नः पुरः ॥ १५ ॥

११५४ त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात् पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।
आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ १६ ॥

११५५ अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन् त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १७ ॥

११५६ प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः संमिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥

अर्थ— [११५३] (इन्द्रः) वह इन्द्र (स्पट्) सबका ज्ञाता है, (उत) और (वृत्र-हा) वृत्रको मारनेवाला है, (परः पा) श्रेष्ठोंका पालनेवाला है, तथा (नः वरेण्यः) हमारा स्वीकरणीय है, (सः) वह इन्द्र (नः) हममेंसे (चरमं रक्षिषत्) उत्तमकी रक्षा करे, (स मध्यमं) वह मध्यमकी रक्षा करे, तथा (सः नः पश्चात् पुरः पातु) वह हमारा पीछेसे और आगेसे सरक्षण करे ॥ १५ ॥

१ परस्पा नः वरेण्यः चरमं मध्यमं रक्षिषत्— वह संरक्षक और श्रेष्ठ वीर हमारे उत्तम और मध्यमका संरक्षण करे ।

[११५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (पश्चात्, पुरः अधरात्, उत्तरात् विश्वतः) पीछे, आगे, नीचे, ऊपर और सब ओरसे (नः नि पाहि) हमारी रक्षा कर । तथा (दैव्यं भयं) दैवी भयको (अस्मत् आरे कृणुही) हमसे दूर कर, और (अ-देवीः हेतीः आरे) असुरोंके शस्त्रोंको भी हमसे दूर कर ॥ १६ ॥

[११५५] (अद्य अद्य श्वः श्वः) आज और कल तथा (परे) अन्य दिन भी हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः त्रास्व) हमारा संरक्षण कर । हे (सत्पते) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (विश्वा अहा दिवा नक्तं च) सम्पूर्ण दिन और रात (नः जरितॄन्) हम स्तुति करनेवालोंका (रक्षिषः) संरक्षण कर ॥ १७ ॥

१ अद्य श्वः परे नः त्रास्व— आज कल या दूसरे दिन हमारा संरक्षण कर ।

२ विश्वा अहा दिवा नक्तं च नः रक्षिषः— सर्वदा दिन रात हमारा संरक्षण कर ।

[११५६] वह इन्द्र (प्रभंगीः) शत्रुओंको मारनेवाला, (शूरः) वीर, (मघवा) ऐश्वर्यवान् (तुवीमघः) बहुत धनवाला तथा (वीर्याय) उत्साह प्राप्तिके लिए सोममें (कं सं मिश्लः) जलको मिलानेवाला है, हे (शतक्रतो) बहु ज्ञानवान् इन्द्र ! (या वज्रं नि मिमिक्षतुः) जो वज्रको धारण करते हैं, (ते उभा बाहू वृषणो) तेरे वे दोनों भुजायें बलवान् हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— वह इन्द्र सर्वज्ञ, सब शत्रुओंको मारनेवाला, श्रेष्ठोंका पालन करनेवाला होनेसे हमारे लिए स्वीकरणीय है । वह हममेंसे जो उत्तम और मध्यम वीर हों, उनकी रक्षा करे ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तू सब शत्रुओंसे हमारा रक्षण कर, दैवी आपत्तिको हमसे दूर कर । असुरोंके शस्त्र हमसे दूर कर ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! आज, कल और अन्य भी दिन अर्थात् सदा सर्वदा तेरी स्तुति करनेवाले हमारी रक्षा कर ॥ १७ ॥

वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रकी दोनों भुजायें बलवान् हैं । वह इन्द्र ऐश्वर्यशाली तथा बहुत धनवाला है । वह उत्साह प्राप्त करनेके लिए सोमरसका पान करता है ॥ १८ ॥

[६२]

(ऋषिः- प्रगाथो घौरः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- पङ्क्तिः, ७-९ बृहती ।)

११५७ प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥

११५८ अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

११५९ अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति ।
प्रवाच्यमिन्द्र तत् तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥

११६० आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

[६२]

अर्थ— [११५७] (यत्) यदि वह इन्द्र (जुजोषति) सेवन करे, तो हे ऋत्विजो ! (अस्मै उपस्तुतिं प्रो भरत) इसके लिए स्तुतिको कहो, (सोमिनः) सोमयाग करनेवाले (इन्द्रस्य) इस इन्द्रके (माहिनं वयः) महान् सोमरूपी अन्नको (उक्थैः वर्धन्ति) स्तुतियोंसे बढाते हैं, क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं ॥ १ ॥

[११५८] (अ-युजः) अकेला (अ-समः) अद्वितीय (नृभिः एकः) मनुष्योंमें मुख्य (अयास्यः) अविनाशी इन्द्र (पूर्वीः कृष्टीः) प्राचीन मनुष्योंको तथा (विश्वा जातानि) सम्पूर्ण उत्पन्न हुओंको (ओजसा) बलसे (अति प्र वावृधे) अत्यधिक बढाता है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ २ ॥

[११५९] (जीर दानुः) शीघ्र दाता इन्द्र (अ-हितेन चिद् अर्वता) दौडनेवाले घोडेसे (सिषासति) जाना चाहता है, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वीर्याणि करिष्यतः) पराक्रम करते हुए (तव) तेरा (तत्) वह यश (प्रवाच्यम्) प्रशंसनीय है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ३ ॥

[११६०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आ याहि) आ, हम (ते वर्धना ब्रह्माणि कृणवाम) तेरे उत्साह वर्धक उन स्तोत्रोंका गान करेंगे (येभिः) जिनके द्वारा हे (शविष्ठ) बलवान् इन्द्र ! तू (इह श्रवस्यते भद्रं चाकन) यहां यश की इच्छा करनेवाले (यजमान) का कल्याण करना चाहता है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं, अतः इससे धन प्राप्त करनेके लिए इस इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

इन्द्र सबको अपनी शक्तिसे विशेष उन्नत करता है । अकेला अद्वितीय एक अविनाशी वीर है ॥ २ ॥

धनादि शीघ्रतासे देनेवाला इन्द्र शीघ्रगामी घोडेसे सर्वत्र जाता है । उसका वह पराक्रम सचमुच प्रशंसनीय है और उसके दान कल्याणकारी हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरे उत्साहको बढानेवाले स्तोत्रोंका गान करेंगे, क्योंकि तू यशकी इच्छा करनेवाले यज्ञशील मनुष्यका कल्याण करना चाहता है, और तेरे दान भी कल्याणकारी हैं ॥ ४ ॥

+

११६१ धृषतश्चिद् धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत् त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥
११६२ अव चष्ट ऋचीषमो ऽवताँ इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥
११६३ विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥
११६४ गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

अर्थ— [११६१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् त्वं) जब तू (तीव्रैः सोमैः सपर्यतः) तीखे सोमरसोंसे [तेरा] सत्कार करनेवाले; (नमोभिः प्रतिभूषतः) नमस्कारोंसे तुझे सत्कृत करनेवाले (धृषतः) शत्रुओंके घर्षण करनेवाले [यजमानके] (मनः) मनको (धृषत् कृणोषि) और अधिक बलवान् करता है, तब तुझ (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान कल्याणकारी होते हैं ॥ ५ ॥

धृषतः मनः धृषत् कृणोषि— धैर्यवान् शूरका मन अधिक सामर्थ्यवान करता है ।

[११६२] (ऋचीषमः) ऋचाओंको पसन्द करनेवाला यह इन्द्र (मानुषः अवतान् इव) जैसे [प्यासा] मनुष्य कुंवोंको देखता है उसी प्रकार (अव चष्टे) सबको देखता है, और [देखकर] (जुष्ट्वी) प्रसन्न हुआ यह इन्द्र (दक्षस्य सोमिनः) समृद्ध हुए सोमयाग करनेवालेको (युजं सखायं कृणुते) अपना योग्य मित्र बना लेता है, (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ६ ॥

१ दक्षस्य सोमिनः युजं सखायं कृणुते— बलवान् तथा सोमयाग करनेवालेको यह अपना योग्य मित्र बना लेता है ।

[११६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते अनु) तेरे पीछे चलकर (विश्वे देवाः) सभी देवोंने (वीर्यं क्रतुं ददुः) बल और बुद्धिको धारण किया, हे (पुरु-स्तुत) अनेकोंसे प्रशंसित इन्द्र ! तू (विश्वस्य भुवः गो-पतिः) सम्पूर्ण भुवनोंका और गायोंका स्वामी है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके स्वामी धन कल्याणकारी हैं ॥ ७ ॥

[११६४] हे (शचीपते) शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! (यत्) जिस कारण तूने (ओजसा) बलसे (वृत्रं हंसि) वृत्रको मारा, (तत्) इसलिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते उपमं शवः) तेरे उत्तम बलका (देवतातये) यज्ञमें (गृणे) वर्णन करता हूं । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो सोमरस देकर तेरा सत्कार करते हैं और नमस्कारोंसे तेरी पूजा करते हैं, उनके मनको तू अधिक बलवान् बनाता है और उन्हें कल्याणकारी धन देता है ॥ ५ ॥

ऋचाओंको पसन्द करनेवाला यह इन्द्र सभी मनुष्योंका निरीक्षण करता है, और सोमयज्ञ करनेवाले पर प्रसन्न होकर उसे अपना मित्र बना लेता है और उसे कल्याणकारी धन प्रदान करता है ॥ ६ ॥

जब देवोंने इन्द्रका अनुकरण किया, तब उन देवोंने बल और बुद्धिको धारण किया । इन्द्रके नियमोंका अनुकरण करनेसे बल और बुद्धि प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जिस शक्ति और बलसे तूने वृत्रको मारा, उस उत्तम बलकी मैं यज्ञमें प्रशंसा करता हूं और तेरे उत्तम कल्याणकारी धनको प्राप्त करना चाहता हूं ॥ ८ ॥

११६५ समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९ ॥

११६६ उज्जातमिन्द्र ते शव उत् त्वामुत् तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधु-र्मघवन् तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १० ॥

११६७ अहं च त्वं च वृत्रह-न्त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवो ऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ११ ॥

११६८ सत्यमिद् वा उ तं वय-मिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १२ ॥

अर्थ— [११६५] (समना इव वपुष्यतः कृणवत्) जैसे समान मनवाली स्त्री बलवान् पुरुषको वशमें करती है, उसी प्रकार (इन्द्रः) इन्द्र भी (मानुषा युगा) मनुष्योंको तथा युगोंको अपने वशमें (विदे) करता है, तथा (तत् चेतनं अध) उस ज्ञानयुक्त कर्मको करके वह (श्रुतः) प्रसिद्ध होता है, (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ९ ॥

[११६६] हे (भूरि-गो, मघवन् इन्द्र) बहुत गायवाले, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (तव शर्मणि) तेरे सुखमें रहते हुए यजमान (ते जातं शवं उत् भूरि वावृधुः) तेरे उत्पन्न हुए बलको बहुत बढाते हैं, (त्वां उत्) तुझे भी बढाते हैं, (तव क्रतुं) तेरे कर्मको भी बढाते हैं । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ १० ॥

[११६७] हे (वृत्रहन्) वृत्रके हन्ता इन्द्र ! (सनिभ्यः) धन प्राप्तिके लिए (अहं च त्वं च) मैं और तू दोनों (सं युज्याव) अच्छी तरह मिल जावें । (अद्रि-वः शूर) वज्रधारी शूरवीर इन्द्र ! (अ-रातीवा चित्) अदानशील दरिद्र भी (नौ अनु मंसते) हम दोनोंका समर्थन करेगा । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी हैं ॥ ११ ॥

[११६८] (वयं) हम (तं सत्यं इन्द्रं उ स्तवाम) उस सच्चे इन्द्रकी ही स्तुति करते हैं, (न अनृतम्) झूठे की नहीं, (असुन्वतः महान् वधः) सोमयाग न करनेवालेका महान् नाश होता है, पर (भूरि ज्योतींषि सुन्वतः) बहुत सोमको तैय्यार करनेवालेके लिए (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके धन कल्याणकारी होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— सभी प्राणी और काल इन्द्रके वशमें हैं । वह इन सबका निरीक्षण करता रहता है । वह ज्ञानयुक्त कर्म करके सर्वत्र प्रसिद्ध होता है जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक कर्म करता है, वह सर्वत्र यशस्वी होता है ॥ ९ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! यज्ञ करनेवाले मनुष्य तेरे सुखमें रहते हुए तेरे बलको बढाते हैं और तेरे कर्मको भी बढाते हैं ॥ १० ॥

इन्द्रके साथ एक हो जाने पर इन्द्र उस भक्तको धन प्रदान करता है । तब सभी लोग उस भक्तके समर्थक बन जाते हैं, क्योंकि इन्द्रके धन सबको कल्याण करते हैं ॥ ११ ॥

सोमयाग न करनेवालेका महान् नाश होता है । बहुत सोमरसोंको तैय्यार करनेवालोंके लिए इन्द्रके धन कल्याणकारी होते हैं ॥ १२ ॥

[६३]

(ऋषिः- प्रगाथः काण्वः । देवताः- इन्द्रः, १२ देवाः । छन्दः- गायत्री; १, ४-५, ७ अनुष्टुप्, १२ त्रिष्टुप् ।)

११६९ स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥ १ ॥
११७० दिवो मानं नोत्सदन् त्सोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥
११७१ स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥
११७२ स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥
११७३ आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥
११७४ इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥

---

[६३]

अर्थ— [११६९] (यस्य द्वारा) जिस इन्द्रके पास पहुंचनेके (धियः) उपायोंको (देवेषु) देवोंमें (पिता मनुः) पालन कर्त्ता मनुने (आनजे) प्राप्त किया, (सः महानां) वह पूज्य (पूर्व्यः) प्राचीन (वेनः) कान्तिमान् इन्द्र (क्रतुभिः) कर्मोंके साथ [यज्ञको] (आनजे) प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥

[११७०] (सोमपृष्ठासः अद्रयः) सोम पीसनेवाले पत्थर तथा (शंस्या उक्था ब्रह्म च) प्रशंसाके योग्य स्तोत्र और ज्ञान (दिवः मानं) द्युलोकको बनानेवाले इन्द्रको (न उत्सदन्) न छोडें ॥ २ ॥

[११७१] (सः विद्वान् इन्द्रः) उस विद्वान् इन्द्रने (अङ्गिरोभ्यः) अङ्गिरा ऋषियोंके लिए (गाः) गायोंको (अप अवृणोत्) बाहर निकाला, (तत्) इसलिए (अस्य पौंस्यं स्तुषे) इसके बलकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ३ ॥

[११७२] (कविवृधः, वाकस्य वक्षणिः शिवः) ज्ञानियोंको बढानेवाला, स्तुतिको प्राप्त करनेवाला, सुखकारी (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (प्रत्नथा) पहलेके समान (अस्मत्रा अर्कस्य होमनि) हमारे सोमके यज्ञमें (अवसे) संरक्षणके लिए (आ गन्तु) आवे ॥ ४ ॥

[११७३] (आत् ऊ) इसके बादही (स्वाहावरस्य यज्यवः) अग्निमें यज्ञ करनेवाले तथा (अर्काः) स्तोतागण (गोत्रस्य दावने) धनके दानके लिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते क्रतुं अनु श्वात्रं अनूषत) तेरे कर्मका शीघ्रही वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

[११७४] (अर्काः) स्तोतागण (यं) जिस इन्द्रको (अ-ध्वरं विदुः) अहिंसक मानते हैं, उस (इन्द्रे) इन्द्रमें (कृतानि कर्त्वानि च) किए गए तथा आगे किये जानेवाले (विश्वानि वीर्या) सम्पूर्ण पराक्रम हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रको प्राप्त करनेका मार्ग देवों और मनुष्योंमें सर्व प्रथम मननशील ज्ञानीने ही पता लगाया। वह इन्द्र प्राचीन, तेजस्वी प्रशंसाके योग्य और ज्ञानी है ॥ १-२ ॥

वह इन्द्र ज्ञानियोंको बढानेवाला और स्तुति करनेवालोंको सुख देनेवाला है। उसने अंगिरा ऋषियोंके लिए गायें प्रदान कीं ॥ ३-४ ॥

स्तोताओंकी यह इन्द्र कभी हिंसा नहीं करता, इसीलिए वे भूतकालमें किए गए और आगे किए जानेवाले पराक्रमके लिए इन्द्रकी स्तुति करते हैं। तब इन्द्र उन्हें धन प्रदान करता है ॥ ५-६ ॥

११७५ यत् पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽर्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥
११७६ इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥
११७७ अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥
११७८ तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे ॥ १० ॥
११७९ बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः । जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥
११८० अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ॥ १२ ॥

अर्थ— [११७५] (यत् पांचजन्यया विशा) जब पंचजन प्रजाके द्वारा (इन्द्रे घोषा असृक्षत) इन्द्रके लिए स्तुतियां की जाती हैं, तब वह अपने (बर्हणा) सामर्थ्यसे शत्रुओंको (अस्तृणाद्) मारता है, ऐसा (अर्यः सः) सबका स्वामी वह इन्द्र (विपः) ज्ञानवान् मेरे (मानस्य क्षयः) सत्कारका पात्र होता है ॥ ७ ॥

[११७६] हे इन्द्र ! तूने (तानि पौंस्या चकृषे) उन [वृत्रवधादिके] पराक्रमोंको किया, इसलिए (इयं अनु स्तुतिः ते) यह अनुकूल स्तुति तेरे लिए है, हे इन्द्र ! हमारे रथके (चक्रस्य) पहियेके (वर्तनिं) मार्गका (प्र अव) उत्तमतासे संरक्षण कर ॥ ८ ॥

[११७७] सब मनुष्य (अस्य वृष्णः) इस बलवान् इन्द्रसे (पश्वः न) पशुके समान (यवं आ ददे) जौ आदि अन्न प्राप्त करते हैं, तथा (वि ओदने) अन्नके प्राप्त होनेपर ही (जीवसे) जीवनके लिए (उरु क्रमिष्ट) महान् कर्म करते हैं ॥ ९ ॥

[११७८] (मरुत्वतः वृधे) मरुतोंके स्वामी इन्द्रके यशको बढानेके लिए (तत् दधानाः) उस यशको धारण करते हुए (अवस्यवः) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम (युष्माभिः) तुम लोगोंके साथ (दक्ष-पितरः स्याम) अन्नके स्वामी हों ॥ १० ॥

[११७९] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (ऋत्वियाय) यज्ञके पालक (धाम्ने) तेजस्वी तेरी (ऋक्वभिः) स्तोत्रोंसे (वट् नोनुम) निश्चयसे स्तुति करते हैं, हे (इन्द्र) इन्द्र (त्वया युजा) तेरी सहायतासे [हम शत्रुओंको] (जेषाम) जीतें ॥ ११ ॥

[११८०] (यः पज्रः) जो बलशाली इन्द्र (शंसते स्तुवते) प्रशंसा करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेके पास (धायि) जाता है, वह तथा (रुद्राः) रुद्र (अस्मे मेहनाः पर्वतासः) हमारे लिए वृष्टि करनेवाले मेघ तथा (इन्द्रज्येष्ठाः सजोषाः देवाः) इन्द्र जिनमें मुख्य है, ऐसे एक साथ रहनेवाले देव (वृत्रहत्ये भरहूतौ) वृत्रको मारनेवाले संग्राममें (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

भावार्थ— जब चार वर्ण और निषाद ये पांचजन मिलकर इन्द्रके लिए स्तुतियां करते हैं, तब वह इन्द्र इन स्तुतियोंसे वृद्धिको प्राप्त होकर अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंको मारता है ॥ ७-८ ॥

सब मनुष्योंको अन्नका दान यही इन्द्र करता है। उस इन्द्रसे अन्न प्राप्त करनेके लिए सभी प्राणी कर्म करते हैं तथा इन्द्रकी प्रशंसा करके उसके यशको बढाते हैं और इस प्रकार अन्नके स्वामी होते हैं ॥ ९-१० ॥

हे शूरवीर इन्द्र ! यज्ञके पालक तथा तेजसे युक्त तेरी हम स्तुति करते हैं, तेरी सहायता प्राप्त करके हम शत्रुओंको जीतें ॥ ११ ॥

बलशाली इन्द्र, रुद्र, वृष्टि करनेवाले मेघ तथा अन्य देव आपत्तिके समय हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

[६४]

(ऋषिः- प्रगाथः काण्वः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

११८१ उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
११८२ पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
११८३ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
११८४ एहि प्रेहि क्षयो दिव्या३घोषञ्चर्षणीनाम् । ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥
११८५ त्यं चित् पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् । वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥
११८६ वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे । अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥
११८७ क्व१ स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥
११८८ कस्य स्वित् सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति । इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥

---

[६४]

अर्थ- [११८१] हे इन्द्र ! (त्वा स्तोमाः उत् मदन्तु) तुझे स्तोत्र आनन्दित करें, हे (अद्रि-वः) वज्रवान् इन्द्र ! हमारे लिए (राधः कृणुष्व) अन्न दे, (ब्रह्म द्विषः अव जहि) ज्ञानके द्वेषी मनुष्योंको मार दे ॥ १ ॥

[११८२] हे इन्द्र ! (पणीन् अ-राधसः) कंजूस तथा यज्ञके लिए धन न देनेवालोंको (पदा नि बाधस्व) पैरसे कुचल डालो, तू (महां असि) महान् हो, (त्वा कश्चन प्रति नहि) तेरा कोई प्रति द्वन्दी नहीं है ॥ २ ॥

१ त्वा कश्चन प्रति नहि— तेरा कोई प्रतिद्वन्दी नहीं है ।

२ पणीन् पदा नि बाधस्व— कंजूसोंको पैरसे कुचल डालो ।

[११८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं सुतानां ईशिषे) तुम सोमरसोंके स्वामी हो, (त्वं अ-सुतानां) न निकाले गए सोमोंके भी स्वामी हो, (त्वं जनानां राजा) तुम मनुष्योंके राजा हो ॥ ३ ॥

[११८४] हे इन्द्र ! (चर्षणीनां एहि) मनुष्योंके यज्ञमें आओ, फिर (आघोषयन्) घोषणा करते हुए (दिवि क्षयः प्रेहि) द्युलोकमें अपने घर चले जाओ । (उभे रोदसी) तुम दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोकको [अपने तेजसे] (आ पृणासि) पूर्ण करते हो ॥ ४ ॥

[११८५] हे इन्द्र ! (त्वं चित्) उस (शतवन्तं सहस्रिणं पर्वतं) सैकडों तथा हजारों पर्ववाले (गिरिं) बादलको (स्तोतृभ्यः रुरोजिथ) स्तोताओंके हितके लिए तोडो ॥ ५ ॥

[११८६] हे इन्द्र ! (वयं उ) हम (सुते) सोमयागमें (त्वा) तुझे (दिवा हवामहे) दिनमें सहायार्थ बुलाते हैं, और (वयं नक्तं) हम तुझे रातमें भी बुलाते हैं, तुम (अस्माकं कामं) हमारी कामनाको (आ पृण) पूर्ण करो ॥ ६ ॥

[११८७] (स्यः) वह (वृषभः, युवा) बलवान्, तरुण (तुविग्रीवः अनानतः) विशाल गर्दनवाला, कभी न नीचा होनेवाला इन्द्र (क्व) कहां रहता है, तथा (तं) उसका (कः ब्रह्मा सपर्यति) कौन ज्ञानी सत्कार करता है ? ॥ ७ ॥

[११८८] (वृषा) वह बलवान् इन्द्र (कस्य स्वित्) किसके (सवनं जुजुष्वान् अव गच्छति) यज्ञका सेवन करनेके लिये आता है ? और (कः उ स्वित्) कौन मनुष्य (इन्द्रं आ चके) इन्द्रको जानता है ? ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरा कोई शत्रु नहीं है । तू ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको और कंजूसोंको नष्ट कर डाल ॥ १-२ ॥

हे इन्द्र ! तू निकाले गए और न निकाले गए सभी तरहके सोमरसोंका स्वामी है और तू ही मनुष्योंका राजा है । तू अपने तेजसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! तू मनुष्योंका हित करनेके लिए अनेक पर्वोंवाले मेघको तोड । हम सभी मनुष्य हमारी सहायता करनेके लिए तुझे हमेशा बुलाते हैं । अतः तू आकर हमारी कामनाओंको पूर्ण कर ॥ ५-६ ॥

बलवान्, तरुण तथा पराक्रमशाली इन्द्र कहां रहता है, किसके पास कब और कहां आता जाता है इसको कोई नहीं जानता । राष्ट्रनेताकी गतिविधियां इसी तरह हों कि उसे कोई भी मनुष्य जान न पाए ॥ ७-८ ॥

११८९ कं ते दाना असक्षत वृत्रहन् कं सुवीर्या । उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥
११९० अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते । तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥
११९१ अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः । आर्जीकीये मदिन्तमः ॥ ११ ॥
११९२ तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये । एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

[६६]

(ऋषिः- प्रगाथः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री)

११९३ यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः । आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥
११९४ यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे । यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥

अर्थ - [११८२] हे (वृत्र हन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (ते दानाः कं असक्षत) तेरे दिए हुए धन किस मनुष्यको प्राप्त होते हैं, और (कं सु-वीर्या) किसको बल प्राप्त होते हैं, तथा (उक्थे) यज्ञमें (क उ स्वित्) कौन मनुष्य तेरे (अन्तमः) पास बैठता है ॥ ९ ॥

[११९०] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (अयं) यह सोम (मानुषे जने पूरुषु) मनुष्यों तथा श्रेष्ठ नागरिकोंके बीचमें (सूयते) निचोडा जाता है, (एहि प्र द्रव) आ, दौडकर आ और (तस्य पिब) उसको पी ॥ १० ॥

[११९१] (शर्यणावति सुषोमायां अधि) शर्यणावत प्रदेशमें सुषोमा नदी पर होनेवाला तथा (आर्जीकीये) पात्रमें रखा हुआ (ते प्रियः मदिन्तमः) तुझे प्रिय तथा उत्साहको देनेवाला (अयं) यह सोम है ॥ ११ ॥

[११९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तं चारुं) उस उत्तम सोमको (महे राधसे) बडे धन देनेके लिए (घृष्वये) शत्रुओंको मारनेके लिए (मदाय) आनन्दके लिए (एहि द्रव पिब) दौडकर आओ और पियो ॥ १२ ॥

[६६]

[११९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नृभिः) जो तू मनुष्यों द्वारा (प्राग्, अपाग्, उदङ् न्यग् वा) आगे, पीछे, ऊपर और नीचेकी ओरसे [सहायार्थ] (हूयसे) बुलाया जाता है अतः (तूयं) शीघ्र ही (आशुभिः आ याहि) शीघ्रगामी घोडोंसे आ ॥ १ ॥

[११९४] (यत् वा दिवः प्रस्रवणे) अथवा द्युलोकके जलके उद्गम स्थानमें (मादयासे) आनन्दित होते हो, अथवा (स्वः नरे) स्वर्गको प्राप्त करानेवाले यज्ञमें (यत् वा) अथवा (अन्धसः समुद्रे) सोमरसके प्रवाहमें [आनन्दित होते हो] ॥ २ ॥

भावार्थ — इन्द्रके द्वारा दिए गए धनको कौन प्राप्त करता है, उसके बलको कौन प्राप्त करता है, यह भी जानना कठिन है, पर यह निश्चित है कि उसका सत्कार सभी मनुष्य करते हैं ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोम अच्छी तरह तैय्यार करके पात्रमें रखा हुआ है, तू इसे पीकर आनन्दित हो और उस आनन्द या उत्साहको प्राप्त करके तू शत्रुओंको मार ॥ ११-१२ ॥

हे इन्द्र ! तुझे जब लोग चारों ओरसे बुलाते हैं, तब तू द्युलोकसे आकर हमारे साथ आनन्दित हो, और सोमरस पीकर उत्साहित हो ॥ १-२ ॥

११९५ आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे । इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
११९६ आ त इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥ ४ ॥
११९७ इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् । एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥
११९८ सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे । इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥
११९९ यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥
१२०० इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण इन्द्र तत् पिब ॥ ८ ॥
१२०१ विश्वाँ अर्यो विपश्चितो ऽति ख्यस्तूयमा गहि । अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥
१२०२ दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् । मा देवा मघवा रिषत् ॥ १० ॥

अर्थ— [११९५] मैं हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महां उरुं) महान् विशाल (त्वा) तुझे (सोमस्य पीतये) सोमपानके लिए (गीर्भिः) वाणियोंसे (भोजसे गां इव) जैसे खिलानेके लिए गायको बुलाते हैं, उसी तरह (हुवे) बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[११९६] हे (देव इन्द्र) दिव्य इन्द्र ! (महः महिमानं बिभ्रतः ते) महान् यशको धारण करनेवाले तेरे (ते हरयः) वे घोडे तुझे (रथे वहन्तु) रथमें ले आवें ॥ ४ ॥

[११९७] हे (उग्रः महान्, ईशान कृत् इन्द्र) वीर, महान् तथा सबके स्वामी इन्द्र ! मैं तेरा (गृणीषे) गुणवर्णन करता हूं (उ) और तेरी (स्तुषे) स्तुति करता हूँ, (एहि) तू आ और (नः सुतं पिब) हमारे सोमको पी ॥ ५ ॥

[११९८] (सुतावन्तः प्रयस्वन्तः वयं) सोमयाग करनेवाले तथा अन्नवाले हम (त्वां) तुझे (नः इदं बर्हिः आसदे) हमारे इस आसन पर बैठनेके लिए (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[११९९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् चित् हि) जिस कारण (त्वं) तू (शश्वतां) बहुतोंके द्वारा (साधारणः) एक साथ धारण किए जाता (असि) है; इसलिए (तं त्वा) उस तुझको (वयं हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[१२००] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नरः) यज्ञकर्त्ता (ते) तेरे लिए (अद्रिभिः) पत्थरोंसे (इदं मधु सोम्यं) इस मीठे सोमको (अधुक्षन्) तैय्यार करते हैं, तू (जुषाणः) प्रसन्न होता हुआ (तत् पिब) उसको पी ॥ ८ ॥

[१२०१] हे (अर्यः) स्वामी इन्द्र ! तू (तूयं आ गहि) शीघ्र आ, तथा (विश्वान् विपश्चितः अतिख्यः) सभी ज्ञानियोंको देख, तथा (अस्मे बृहत् श्रवः धेहि) हमें बहुत अन्न दे ॥ ९ ॥

[१२०२] (हिरण्यवीनां पृषतीनां राजा) सुनहरे रंगवाली गौवोंका राजा वह इन्द्र (मे दाता) मुझे धन देनेवाला है, हे (देवाः) देवो ! (मघवा मा रिषत्) इन्द्र कभी हिंसित न हो ॥ १० ॥

१ मघवा मा रिषत्— वह इन्द्र कभी दुःखी न हो ।

भावार्थ— हे महान् इन्द्र ! सोमपानके लिए तुझे मैं स्तुतियोंसे बुलाता हूँ । तू अपने यशस्वी घोडोंकी सहायतासे हमारे पास आ ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! मैं तेरे गुणोंका वर्णन करता हूँ और तेरी स्तुति करता हूँ । तू आकर हमारे द्वारा दिए गए आसन पर बैठ ॥ ५-६ ॥

इन्द्र यज्ञकर्ताओंके मध्यमें आकर जब बैठता है, तब वह किसी तरहका घमण्ड नहीं करता, वह बडे प्रेमसे आकर उनके मध्यमें बैठता है । इसलिए यज्ञकर्ता भी उस इन्द्रके लिए बडे प्रेमसे सोमरस तैय्यार करते हैं ॥ ७-८ ॥

हे इन्द्र ! तू शीघ्र आकर सभी ज्ञानियोंका निरीक्षण कर । उन ज्ञानियोंकी तू कभी हिंसा मत कर, अपितु उन्हें धन आदि देकर रक्षा कर ॥ ९-१० ॥

१२०३ सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत् पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥ ११ ॥
१२०४ नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत ॥ १२ ॥

[६६]

(ऋषिः- कलिः प्रगाथः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) १५ अनुष्टुप् ।

१२०५ तरोभिर्वो विदद्वसु मिन्द्रं सबाध ऊतये ।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥
१२०६ न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥
१२०७ यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृति मिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥

अर्थ— [१२०३] मैं (सहस्रे पृषतीनां अधि) हजारों गायोंपर आधारित (चन्द्रं बृहत् पृथु शुक्रं हिरण्यं) प्रसन्नताकारक, महान्, विस्तृत, तेजस्वी स्वर्णको (आ ददे) प्राप्त करता हूँ ॥ ११ ॥

[१२०४] (न-पातः दुः-गहस्य मे) असहाय तथा दुःखमें पडे हुए मेरे लोग (सहस्रेण सु-राधसः) हजारों प्रकारसे उत्तम धनवाले हों, और (देवेषु श्रवः अक्रत) देवोंमें यशको प्राप्त करें ॥ १२ ॥

[६६]

[१२०५] हे ऋत्विजो ! (वः) तुम (स बाधः ऊतये तरोभिः) बाधाओंसे संरक्षण करनेके लिए वेगवान् घोडोंसे आनेवाले (विदद्-वसुं इन्द्रं) धन प्राप्त करानेवाले इन्द्रके (बृहत्) बडे यशका (अ-ध्वरे सुत-सोमे) हिंसारहित सोमयज्ञमें (गायन्तः) गान करो, मैं (भरं) भरण पोषण करनेवाले इन्द्रको (कारिणं न) जैसे हित-कारी मनुष्यको लोग बुलाते हैं, उसी प्रकार सहायार्थ (हुवे) बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[१२०६] (सु-शिप्रं यं) शिरस्त्राण धारण करनेवाले जिस इन्द्रको युद्धमें (न दुध्राः वरन्ते) न असुर हटा सकते हैं, (न स्थिराः) न देव हटा सकते हैं और (न मुरः) ना ही मनुष्य हटा सकते हैं, (यः) वह ही (अन्धसः मदे आदृत्य) सोमको आनन्दका आदर करके (शशमानाय जरित्रे सुन्वते) गान करनेवाले, स्तुति करनेवाले, सोमयाग करनेवाले यजमानके लिए (उक्थ्यं) स्तुत्य धनको (दाता) देता है ॥ २ ॥

[१२०७] (यः शक्रः, मृक्षः, अश्व्यः) जो इन्द्र सामर्थ्यशाली शत्रुको मारनेवाला, घोडोंवाला है (वा) तथा (यः कीजः हिरण्ययः) जो अद्भुत और धनवान् है, (सः वृत्रहा इन्द्रः) वह वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (ऊर्वस्य गव्यस्य अपावृति) विशाल गौओंके रोकनेवालेको (रेजयति) कंपाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्रकी कृपासे मुझे हजारों गायोंसे युक्त, प्रसन्नताको देनेवाला तेजस्वी स्वर्ण मिले, साथ ही असहायावस्था तथा दुःखमें पडे हुए मेरे अपने लोग भी इन्द्रकी कृपासे उत्तम धनवाले होकर यशस्वी हों । ११-१२ ॥

हे मनुष्यो ! संकटके समय संरक्षण करनेवाले, धन देनेवाले इन्द्रके यशका गान सोमयज्ञमें करो। जैसे हितकारी मनुष्यको लोग बुलाते हैं, उसी तरह तुम इन्द्रको बुलाओ ॥ १ ॥

शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रको असुर, देव और मनुष्य कोई भी युद्धमें नहीं हटा सकता । वह इन्द्र सोमरसके द्वारा आनन्द देनेवाले यज्ञकर्ताको प्रशंसनीय धन प्रदान करता है ॥ २ ॥

यह इन्द्र महान् गौसमूहके रोकनेवालेको कंपाता है । गौओंको चुरानेवालेको भयभीत कराता है । वह अद्भुत शक्तिशाली और धनवान् है ॥ ३ ॥

×

१२०८ निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं वसू- दिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत् करदि- न्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥

१२०९ यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
वयं तत् त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥ ५ ॥

१२१० सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।
त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्ठः सुन्वते भुवः ॥ ६ ॥

१२११ वयमेनमिदा ह्यो ऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा ऽऽ नूनं भूषत श्रुते ॥ ७ ॥

अर्थ— [१२०८] (यः) जो इन्द्र (दाशुषे) देनेवाले यजमानके लिए (निखातं पुरु-संभृतं वसु चित्) गाडकर बहुतसे इकट्ठे किए गए धनको (उत् इत् वपति) बाहर निकालता है । वह (सु-शिप्रः, वज्री, हर्यश्वः इन्द्रः) शिरस्त्राण धारण करनेवाला, वज्रधारी, घोडोंवाला इन्द्र (यथा वशत्) जैसा चाहता है, वैसा ही (क्रत्वा इत् करत्) कामोंको करता है ॥ ४ ॥

[१२०९] हे (पुरु-ष्टुत शूर इन्द्र) हे बहुतोंके द्वारा प्रशंसित, शूरवीर इन्द्र ! तूने (पुरा चित्) पहले (नृणां) यज्ञ कर्ताओंसे (यत् वावंथ) जिसकी इच्छा की, (ते) तेरे लिए (तत् यज्ञं उक्थं वचः) उस यज्ञ, स्तोत्र तथा प्रशंसाको (तुरं) शीघ्र ही (वयं सं भरामसि) हम करते हैं ॥ ५ ॥

[१२१०] हे (पुरु हूत, वज्रिवः द्युक्ष, सोमपाः) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले, वज्रधारी, तेजस्वी, सोमको पीनेवाले इन्द्र ! तू (मदाय) आनन्दके लिए (सोमेषु) सोम यज्ञोंमें (सचा) संयुक्त हो, (हि) क्योंकि (त्वं इत्) तू ही (ब्रह्म कृते सुन्वते) स्तोत्रके करनेवाले तथा सोमयज्ञ करनेवालेको (काम्यं वसु) इष्ट धनको (देष्ठः भुवः) देनेवाला है ॥ ६ ॥

[१२११] (वयं) हमने (एनं वज्रिणं) इस वज्रधारी इन्द्रको (ह्यः इदा) कल और आज (इह) यहां यज्ञमें [सोमसे] (अपीपेम) तृप्त किया, हे ऋत्विजो ! (अद्य उ) आज भी (तस्मै) उस इन्द्रके लिए (स-मना) समान मनवाले होकर (सुतं भर) सोमको दो, वह (नूनं) निश्चयसे (श्रुते) स्तोत्रसे (आ भूषत) अलंकृत होगा ॥ ७ ॥

भावार्थ— दाताके लिए वह इन्द्र गडे हुए धनको भी बाहर निकालता है । इन्द्र जैसा चाहता है, वैसा ही कामोंसे करता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तूने यज्ञ करनेवालोंसे जिस स्तोत्रकी कामना की थी, उस स्तोत्रको हम तेरे लिए बोलते हैं ॥ ५ ॥

हे वज्रधारी सोम ! तू आनंद प्राप्त करनेके लिए हमारे यज्ञोंमें आ, क्योंकि तू सोमयज्ञ करनेवालेको उसकी इच्छानुसार धन देनेवाला है ॥ ६ ॥

इन्द्रके लिए दिया जानेवाला वास्तविक अलंकार सोमरस ही है । सोमरससे इन्द्रका उत्साह और तेज बढता है और उस तेजसे वह अलंकृत होता है ॥ ७ ॥

१२१२ वृकश्चिदस्य वारण उरामथि॒रा व॒युने॑षु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं॑ जुजुषा॒ण आ ग॒हीन्द्र॒ प्र चि॒त्रया॑ धि॒या ॥ ८ ॥

१२१३ कदू॒ न्व१॒॑स्याकृ॑त॒मिन्द्र॑स्यास्ति॒ पौंस्य॑म् ।
केनो॒ नु कं॒ श्रोम॑तेन॒ न शु॑श्रुवे ज॒नुषः॒ परि॑ वृत्र॒हा ॥ ९ ॥

१२१४ कदू॑ म॒हीरधृ॑ष्टा अस्य॒ तवि॑षीः॒ कदु॑ वृत्र॒घ्नो अस्तृ॑तम् ।
इन्द्रो॒ विश्वा॑न् बे॒कना॒टाँ अ॑ह॒र्दृश॑ उ॒त क्रत्वा॑ प॒णीँर॒भि ॥ १० ॥

१२१५ व॒यं घा॑ ते॒ अपू॑र्व्ये॒न्द्र ब्रह्मा॑णि वृत्रहन् ।
पु॒रू॒तमा॑सः पुरुहूत वज्रिवो भृ॒तिं न प्र भ॑रामसि ॥ ११ ॥

१२१६ पू॒र्वीश्चि॒द्धि त्वे तु॑विकूर्मिन्ना॒शसो॒ हव॑न्त इन्द्रो॒तयः॑ ।
ति॒रश्चि॑द॒र्यः सव॑ना वसो गहि॒ शवि॑ष्ठ श्रु॒धि मे॒ हव॑म् ॥ १२ ॥

अर्थ— [१२१२] (वारणः उरामथिः वृकः चित्) सबको हटानेवाला, पथिकोंका विनाशक चोर भी (अस्य वयुनेषु आ भूषति) इस इन्द्रके मार्गोंका [अनुकूल होकर] अलंकृत करता है, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (सः) वह तू (नः इमं स्तोमं जुजुषाणः) हमारे इस स्तोत्रका सुनते हुए (चित्रया धिया) उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर (प्र आ गहि) आ ॥ ८ ॥

[१२१३] (कत् नु पौंस्यं अस्ति) ऐसा कौनसा पौरुष है जो (अस्य इन्द्रस्य अकृतं) इस इन्द्रके द्वारा नहीं किया गया, तथा (केन उ श्रोमतेन) किस मनुष्यने इसके (कं न शुश्रुवे) किस पराक्रमको नहीं सुना, यह (वृत्र-हा) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (जनुषः परि) जन्मसे ही प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

[१२१४] (अस्य महीः तविषीः) इनका महान् बल (कत् उ अ-धृष्टाः) कब शत्रुको मारनेवाला नहीं रहा ? (वृत्र-घ्नः) वृत्रके शत्रु इन्द्र द्वारा [मारा जानेवाला] (कत् उ अ-स्तृतम्) कब अहिंसित रहा है, यह (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वान् बेकनाटान्) सभी सूदखोरोंका तथा (अहर्दृशः पणान्) दिन गिननेवाले कजूसोंको (क्रत्वा) अपने कर्मसे (अभि) दबाता है ॥ १० ॥

[१२१५] हे (पुरु-हूत, वज्रिवः, वृत्रहन् इन्द्र) हे बहुतों द्वारा बुलाये गए, वज्र धारण करनेवाले, वृत्रहन्ता इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (पुरूतमासः वयं) उत्तम जन हम (अपूर्व्या ब्रह्माणि) नए नए स्तोत्रोंको (भृतिं न) कर अथवा वेतनके समान (प्र भरामसि) करते हैं ॥ ११ ॥

[१२१६] हे (तुवि कूर्मिन् इन्द्र) बहु कर्मा इन्द्र ! (हि) क्योंकि (त्वे) तुझमें (पूर्वीः चित् आशसः ऊतयः) बहुतसी आशायें तथा रक्षणके साधन हैं, अतः तुझे (हवन्ते) बुलाते हैं, हे (वसो शविष्ठ) बसानेवाले बलवान् इन्द्र ! (मे हवं श्रुधि) मेरी प्रार्थना सुनो, और दूसरोंका (तिरः चित्) तिरस्कार करके हमारे (सवना आ गहि) यज्ञोंमें आ ॥ १२ ॥

भावार्थ — सबका निवारक, पथिकोंका विनाशक चोर भी इसके मार्गोंको अनुकूल होकर अलंकृत करता है। चोर जैसा दुष्ट भी इस इन्द्रके शासनमें आकर उसके अनुकूल हो जाता है ॥ ८ ॥

कौनसा ऐसा पराक्रम है, जो इस इन्द्रके द्वारा नहीं किया गया ; किस कानवालेने इसके पराक्रमको नहीं सुना। वृत्रका हन्ता इन्द्र जन्मसे ही प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥

इसका महान् बल कब शत्रुको मारनेवाला नहीं रहा ? वृत्रके शत्रु इन्द्र द्वारा [मारा जानेवाला] कब अहिंसित रहा है। इन्द्र सम्पूर्ण सूदखोर तथा कंजूसोंको दबाता है ॥ १० ॥

जिस तरह कोई सेवक अपनी सेवाके बदले वेतन लेता है, उसी तरह हम इन्द्रकी सेवा करते हैं, अतः वह इन्द्र हमें धन प्रदान करे ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुझमें ही बहुतसी आशायें और रक्षणके साधन हैं। तू अनेक तरहसे पराक्रम दिखाता है। इसलिए हम तुझे बुलाते हैं। तू हमारी प्रार्थना सुनकर दूसरोंके यज्ञोंका तिरस्कार करके हमारे पास ही आ ॥ १२ ॥

१२१७ वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥ १३ ॥
१२१८ त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥ १४ ॥
१२१९ सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा बिभीतन ।
अपेदेष ध्वस्मायति स्वयं घैषो अपायति ॥ १५ ॥

[६७]

(ऋषिः- मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः । देवताः- आदित्याः, १०-१२ अदितिः । छन्दः- गायत्री ।)

१२२० त्यान् नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषामहे । सुमृळीकाँ अभिष्टये ॥ १ ॥
१२२१ मित्रो नो अत्यंहतिं वरुणः पर्षदर्यमा । आदित्यासो यथा विदुः ॥ २ ॥

अर्थ— [१२१७] हे (पुरु-हूत, मघवन् इन्द्र) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ते वयं घा विप्राः अपि) तेरे हम ज्ञानी जन भी (त्वे इत् ष्मसि) तेरे ही अधीन रहें, क्योंकि (त्वत् अन्यः कश्चन) तुमसे भिन्न कोई दूसरा (मर्डिता नहि अस्ति) सुखी करनेवाला नहीं है ॥ १३ ॥

[१२१८] हे (शचिष्ठ गातु विद्) शक्तिशाली, तथा मार्गोंको जाननेवाले इन्द्र ! (त्वं) तू (नः) हमें (अस्याः अ-मतेः, क्षुधः अभि-शस्तेः) इस दरिद्रता, भूखके अभिशापसे (अव स्पृधि) छुडा, और (त्वं) तू (नः) हमें (तव ऊती, चित्रया धिया) अपने रक्षण तथा, विलक्षण कर्मोंसे (शिक्ष) समर्थ करो ॥ १४ ॥

[१२१९] हे (कलयः) कलि ऋषिके पुत्रो ! (वः इत् सुतः सोमः अस्तु) तुम्हारा तैय्यार किया गया सोम इन्द्रके लिए हो, (मा बिभीतन) मत डरो, क्योंकि (एषः ध्वस्मा) यह हिंसक मनुष्य (अप इत् अयाति) दूर भाग रहा है, (एषः स्वयं अप अयति) यह अपने आप दूर भागा जा रहा है ॥ १५ ॥

[६७]

[१२२०] हम (अभिष्टये) अपनी कामनाकी पूर्तिके लिए (सुमृळीकान्) उत्तम सुख देनेवाले, (क्षत्रियान्) शत्रुओंके आक्रमणसे रक्षा करनेवाले (त्यान् आदित्यान्) उन आदित्योंसे (अवः याचिषामहे) संरक्षण मांगते हैं ॥ १ ॥

[१२२१] (मित्रः वरुणः अर्यमा आदित्यासः) मित्र, वरुण, अर्यमा और आदित्य (यथा विदुः) जैसे जानते हों, उस तरह (नः) हमें (अंहतिं अति पर्षत्) पापसे पार ले जाएं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम ज्ञानी पुरुष तेरे अधीन ही रहें । तुमसे भिन्न और कोई सुखी करनेवाला नहीं है ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तू हमें इस दरिद्रता और भूखके अभिशापसे छुडा, तथा अपने संरक्षण तथा विलक्षण कर्मोंसे हमें समर्थ और शक्तिशाली बना ॥ १४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रको सोमरस प्रदान करो । इन्द्रको सोम प्रदान करनेके बाद तुम्हें किसीसे डरना नहीं पडेगा । इन्द्रके डरसे सभी हिंसक मनुष्य स्वयं दूर भाग जायेंगे ॥ १५ ॥

अपनी अभिलाषा की पूर्तिके लिए हम उत्तम सुख देनेवाले तथा शत्रुओंके आक्रमणसे रक्षा करनेवाले आदित्य आदि देवोंको बुलाते हैं । वे देव हमें पापसे पार ले जाएं ॥ १-२ ॥

१२२२ तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरूथमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरंकृते ॥ ३ ॥
१२२३ महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवांस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥
१२२४ जीवान् नो अभि धेतना ऽऽदित्यासः पुरा हथात् । कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥
१२२५ यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः । तेना नो अधि वोचत ॥ ६ ॥
१२२६ अस्ति देवा अंहोरुर्व स्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्भुतैनसः ॥ ७ ॥
१२२७ मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥
१२२८ मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥
१२२९ उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥ १० ॥

अर्थ- [१२२२] (दाशुषे अरंकृते) दाता और सामर्थ्यशालीको प्रदान करनेके लिए (तेषां आदित्यानां) उन आदित्योंके पास (चित्रं उक्थ्यं वरूथं अस्ति) स्वीकरणीय और प्रशंसनीय धन रहता है ॥ ३ ॥

[१२२३] हे (वरुण मित्र अर्यमन्) वरुण, मित्र और अर्यमा देवो ! (महतां वः) महान् तुम्हारे (अवः महि) संरक्षण भी महान् है। हम तुमसे (अवांसि आ वृणीमहे) संरक्षणोंको चाहते हैं ॥ ४ ॥

[१२२४] हे (हवन श्रुतः आदित्यासः) प्रार्थनाको सुननेवाले आदित्यो ! (नः जीवान् अभि धेतनः) हमारे जीवित रहते हुए ही तुम दौडो। (हथात् पुरा कत् स्थ) मारे जानेसे पूर्व ही कहीं भी होओ, आ जाओ ॥५॥

[१२२५] (श्रान्ताय सुन्वते) श्रम करनेवाले तथा सोमरस निचोडनेवालोंको (यत् वरूथं यत् छर्दिः अस्ति) जो धन और निवास गृह देने योग्य हो, (तेन नः अधि वोचत) उससे हमें भी युक्त करो ॥ ६ ॥

[१२२६] हे (देवाः) देवो ! (अंहः) दुष्टोंका पाप (उरु अस्ति) महान् है, (अनागसः रत्नं) पापरहितोंके पुण्य रमणीय होते हैं। हे (आदित्याः) आदित्यो ! (अद्भुत-एनसः) हम निष्पाप – पाप रहित हैं ॥ ७ ॥

[१२२७] (नः) हमें (अयं सेतुः) यह बन्धन (मा सिषेत्) रुकावट न डाले, अपितु (नः महे) हमें उत्तम कार्य करनेके लिए (परि वृणक्तु) छोड दे। (श्रुतः इन्द्रः इत्) प्रसिद्ध इन्द्र ही (वशी) सबको वशमें करनेवाला है ॥ ८ ॥

[१२२८] हे (अविष्यवः देवाः) रक्षा करनेकी इच्छा करनेवाले देवो ! (वृजिनानां रिपूणां) कुटिल शत्रुओंकी (मृचा) हिंसा (नः मा) हमें कष्ट न दे, (अभि प्र मृक्षत) उस हिंसासे हमें मुक्त करो ॥ ९ ॥

[१२२९] (उत) और हे (महि देवि अदिते) बडी देवी अदिति ! (अभिष्टये) इच्छित मनोरथकी प्राप्तिके लिए (सुमृळीकां त्वां) उत्तम सुख देनेवाले तेरी (अहं उप ब्रुवे) मैं स्तुति करता हूं ॥ १० ॥

भावार्थ- दाता और सामर्थ्यशालीको मनुष्यको देनेके लिए आदित्य आदि देवोंके पास धन और संरक्षणके साधन रहते हैं ॥ ३-४ ॥

हे आदित्यो ! जबतक हम जीवित हैं, तभी तक तुम हमारी रक्षा करो। परिश्रम करनेवाले तथा सोमयज्ञ करनेवालोंको जो धन और निवासगृह तुम देते हो, उस धन और निवासगृहसे हमें युक्त करो ॥ ५-६ ॥

यदि पापियोंका पाप महान् होता है, तो पुण्यशालियोंका पुण्य भी बडा होता है। पर पुण्यशाली और पापी दोनोंपर इन्द्रका प्रभुत्व रहता है। उसकी कृपासे सभी पुण्यशाली बन्धनसे छूट जाते हैं और वे बडे बडे कार्य करते हैं ॥७-८॥

हे देवो ! कुटिल शत्रुओंकी हिंसा हमें कष्ट न दे, उस हिंसासे हमें मुक्त करो। हे देवी अदिति ! तुम महान् सुख देनेवाली हो, हमारे मनोरथोंको पूर्ण करो ॥ ९-१० ॥

१२३० पर्षि दीने गंभीर आँ उग्रंपुत्रे जिघांसतः	। माकिंस्तोकस्य नो रिषत्	॥ ११ ॥
१२३१ अनेहो नं उरुव्रज उरूचि वि प्रसंर्तवे	। कृधि तोकायं जीवसें	॥ १२ ॥
१२३२ ये मूर्धानंः क्षितीना-मदंब्धासः स्वयंशसः	। व्रता रक्षन्ते अद्रुहंः	॥ १३ ॥
१२३३ ते न आस्नो वृकाणा-मादित्यासो मुमोचत	। स्तेनं बद्धमिवादिते	॥ १४ ॥
१२३४ अपो षु णं इयं शरु-रादित्या अप दुर्मतिः	। अस्मदेत्वजंघ्नुषी	॥ १५ ॥
१२३५ शश्वद्धि वंः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम्	। पुरा नूनं बुंभुज्महे	॥ १६ ॥
१२३६ शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः	। देवाः कृणुथ जीवसें	॥ १७ ॥
१२३७ तत् सु नो नव्यं सन्यंस आदित्या यन्मुमोचति	। बन्धाद्बद्धमिवादिते	॥ १८ ॥

अर्थ— [१२३०] हे (उग्रपुत्र) वीर पुत्रोंवाली देवी अदिति ! (दीने गभीरे) हमारी दीन या अच्छी दोनों ही अवस्थाओंमें (जिघांसतः) मारनेकी इच्छा करनेवाले लोग (नः तोकस्य मा किः रिषत्) हमारे पुत्रादियोंकी हिंसा न करें ॥ ११ ॥

[१२३१] हे (उरुव्रज) विस्तीर्ण अदिते ! (अनेहः नः) पाप रहित हमारे (प्र सर्तवे) जानेके लिए (उरु चि) तेरा विस्तार उपयोगी हो। (तोकाय जीवसे कृधि) हमारे पुत्रादियोंको जीनेके लिए समर्थ करो ॥ १२ ॥

[१२३२] (ये मूर्धानः) जो मुख्य (अदब्धासः) आलस्य रहित (अद्रुहः) द्रोह रहित तथा (स्व यशसः) उत्तम यशस्वी देव (क्षितीनां व्रता रक्षन्ते) हम मनुष्योंके व्रतकी रक्षा करते हैं ॥ १३ ॥

[१२३३] हे (आदित्यासः आदिते) आदित्यो और अदिति ! (बद्धं स्तेनं इव) बंधे हुए चोरको जैसे मुक्त करते हैं, उसी तरह (ते) वे तुम (नः) हमें (वृकाणां आस्नः मुमोचत) दुष्टोंके मुंहसे छुडाओ ॥ १४ ॥

[१२३४] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (इयं शरुः) यह हिंसा (अजघ्नुषी) हमें न मारती हुई (अस्मत् सु अपः एतु) हमसे दूर चली जाए तथा (दुर्मतिः अपः) दुष्ट बुद्धि भी दूर चली जाए ॥ १५ ॥

[१२३५] हे (सुदानवः आदित्याः) उत्तम दान देनेवाले आदित्यो ! (वः ऊतिभिः) तुम्हारे संरक्षणोंसे सुरक्षित होकर (वयं) हम (पुरा नूनं) पहले और अब भी अर्थात् (शश्वत्) हमेशा (बुभुज्महे) भोगोंको भोगते रहें ॥ १६ ॥

[१२३६] हे (प्रचेतसः देवाः) ज्ञानी देवो ! (शश्वन्तं प्रतियन्तं चित्) सदा हम पर आक्रमण करनेवाले शत्रुको भी (जीवसे) दीर्घजीवनके लिए (एनसः कृणुथ) पापोंसे मुक्त करो ॥ १७ ॥

[१२३७] हे (आदित्याः अदिते) आदित्यो और अदिति ! (बद्धं बन्धात् इव) जिस तरह किसी बंधे हुए को बन्धनसे मुक्त करते हैं, उसी तरह (यत्) जो तुम्हारा सामर्थ्य (नः मुमोचति) हमें बन्धनोंसे छुडाता है, तुम्हारा (तत्) वह सामर्थ्य (नव्यं) स्तुतिके योग्य तथा (सन्यसः) सेवाके योग्य हो ॥ १८ ॥

भावार्थ— हे अदिति देवी ! अच्छी या बुरी दोनों ही अवस्थाओंमें हिंसकशत्रु हमारी हिंसा न कर सकें, इसके विपरीत पापरहित हमारे जानेके मार्ग सर्वथा सुरक्षित हों और हमारे पुत्रादि भी दीर्घायु प्राप्त करें ॥ ११-१२ ॥

प्रधान, आलस्यरहित, उत्तम यशस्वी देव हमारे उत्तम व्रतोंकी रक्षा करें और हमें दुष्टोंके चुंगुलसे बचायें ॥ १३-१४ ॥

हे देवो ! हिंसा करनेवाले साधन हमारी हिंसा करते हुए हमसे दूर चले जाएं और दुष्ट बुद्धि भी दूर चली जाए, तथा हम तुम्हारे संरक्षणोंसे सुरक्षित होकर हमेशा उत्तम भोगोंको भोगते रहें ॥ १५-१६ ॥

हे देवो ! जो हम पर सदा आक्रमण करता है, उसे भी तुम दुष्ट मार्गको छोडकर सन्मार्ग पर चलनेके लिए प्रेरित करो और उसे पापोंसे मुक्त करके उसका जीवन दीर्घ करो। जो तुम्हारा सामर्थ्य हमें बन्धनोंसे मुक्त करता है, उस सामर्थ्यकी हम स्तुति करें ॥ १७-१८ ॥

१२३८ नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत ॥ १९ ॥

१२३९ मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत् ॥ २० ॥

१२४० वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् । विष्वग्वि वृहता रपः ॥ २१ ॥

[६८]

(ऋषिः- प्रियमेध आङ्गिरसः । देवता:- इन्द्रः; १४-१९ ऋक्षाश्वमेधौ । छन्दः- गायत्री, अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः = (अनुष्टुप् + गायत्री) १, ४, ७, १० अनुष्टुप्, १६ शंकुमती ।)

१२४१ आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि । तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥

१२४२ तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

१२४३ यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥ ३ ॥

१२४४ विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१२३८] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! जो बल हमें (अतिष्कदे) संकटोंसे पार कर सकता है, (तत् तरः) वह बल (अस्माकं न अस्ति) हमारे पास नहीं है। अतः (यूयं अस्मभ्यं मृळत) तुम हमें सुखी करो ॥ १९ ॥

[१२३९] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (विवस्वतः) यमके (कृत्रिमा शरुः हेतिः) कृत्रिम और हिंसक शस्त्र (नः) हमें (जरसः पुरा मा वधीत्) बुढापेसे पहले न मारें ॥ २० ॥

[१२४०] हे (आदित्यासः) आदित्यो ! (द्वेषः सु वि) द्वेष करनेवालोंको अच्छी तरह नष्ट करो, (अंहतिं वि) पापीको नष्ट करो, (संहितं वि) ऐसे पापियोंके संगठनको नष्ट करो, तथा (रपः विष्वक् वि वृहत) पापको चारों ओरसे नष्ट करो ॥ २१ ॥

[६८]

[१२४१] हे (शविष्ठ सत्पते इन्द्र) बलवान् और सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (रथं यथा) जिस प्रकार रथको लौटाते हैं, उसी प्रकार (तुविकूर्मिं, ऋतीषहं त्वा) बहुत बलवान्, और शत्रुओंके हरानेवाले तुझे (ऊतये सुम्नाय) अपने संरक्षण व सुखके लिए (आवर्तयामसि) अपने पास लौटाते हैं ॥ १ ॥

[१२४२] हे (तुविशुष्म, तुविक्रतो शचीवः मते) बहुत बलवान्, बहुत कर्म करनेवाले, बहुत शक्तिशाली तथा पूज्य इन्द्र ! तू अपने (विश्वया महित्वना आ पप्राथ) सम्पूर्ण महत्वसे सर्वत्र फैलता है ॥ २ ॥

[१२४३] (महः यस्य ते) महान् जिस तेरे (महिना) महत्वसे युक्त (हस्ता) हाथ (ज्मायन्तं हिरण्ययं वज्रं) सब जगह जानेवाले स्वर्णयुक्त वज्रको (ईयतुः) पकडते हैं ॥ ३ ॥

[१२४४] (विश्वानरस्य अनानतस्य शवसः पतिं) सम्पूर्ण शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले तथा स्वयं शत्रुके आगे कभी न झुकनेवाले बलके स्वामी तथा (रथानां एवैः च) रथोंमें बैठकर तेजीसे जानेवाले इन्द्रको मैं (चर्षणीनां ऊती) तुम मनुष्योंके रक्षणके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे देवो ! यमके हिंसक शस्त्र हमें बुढापेसे पूर्व नष्ट न करें, क्योंकि उन शस्त्रोंसे बचनेके लिए जो सामर्थ्य हमारे पास होना चाहिए, वह हमारे पास नहीं है, इसलिए तुम हमारी रक्षा करो ॥ १९-२० ॥

हे देवो ! हमसे द्वेष करनेवाले शत्रुओं, पापियों, उनके संघटनों तथा उनके द्वारा किए जानेवाले पापोंको नष्ट करो ॥ २१ ॥

हे इन्द्र ! बहुत बलवान् और शत्रुओंका पराभव करनेवाला तुझे अपने संरक्षणके लिए और सुखके लिए हम अपने पास बुलाते हैं ॥ १ ॥

बहुत बलवान्, बहुत कार्य करनेवाला, शक्तिशाली और बुद्धिमान् वीर अपने सम्पूर्ण महत्वसे प्रसिद्ध होता है। ऐसा वीर उत्तम कार्य करता है और विश्वमें प्रसिद्ध होता है ॥ २ ॥

सब शत्रुओंसे लडनेवाले, पर किसीके सामने न झुकनेवाले बलवान् वीरको संरक्षणके लिये बुलाता हूँ। वह सामर्थ्यशाली हाथोंसे वज्रको पकडकर हमारे संरक्षणके लिए आवे ॥ ३-४ ॥

१२४५ अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः । नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥
१२४६ परोमात्रमृचीषम- मिन्द्रमुग्रं सुराधसम् । ईशानं चिद्वसूनाम् ॥ ६ ॥
१२४७ तंतमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये । यः पूर्व्यामनुष्टुति- मीशे कृष्टीनां नृतुः ॥७॥
१२४८ न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः । नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥
१२४९ त्वोतासस्त्वा युजा ऽप्सु सूर्ये महद्धनम् । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥
१२५० तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥
१२५१ यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२४५] (स्वर्मीळ्हेषु) युद्धोंमें (ऊतये) संरक्षणके लिए तथा (अभिष्टये) इच्छित धनकी प्राप्तिके लिए (नरः) मनुष्य (यं सदावृधं) जिस सदा बढनेवाले इन्द्रको (नाना हवन्ते) अनेक प्रकारसे बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[१२४६] (परो मात्रं) अपरिमित, (ऋचीषमं) स्तुति प्रिय, (उग्रं, सुराधसं, वसूनां चित् ईशानं इन्द्रं) वीर, उत्तम ऐश्वर्यवान्, धनोंके स्वामी इन्द्रको [हुवे] बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

[१२४७] (यः नृतुः) जो नेता है तथा जो (कृष्टीनां पूर्व्यां अनुष्टुतिं ईशे) मनुष्यों द्वारा की गई प्राचीन स्तुतियोंका स्वामी है, ऐसे (तं तं इन्द्रं) उसी इन्द्रको (महे राधसे) महान् ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए (पीतये चोदये) सोम पीनेके लिए प्रेरित करता हूँ ॥ ७ ॥

[१२४८] हे (शवसान) बलवान् इन्द्र ! (यस्य ते) जिस तेरी (सख्यं) मित्रताकी बराबरी (मर्त्यः न आनंश) कोई मनुष्य नहीं कर सकता, उसी प्रकार (ते शवांसि) तेरे बलोंकी भी (न किः नशत्) कोई बराबरी नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

[१२४९] (वज्रिवः) हे वज्रधारी इन्द्र ! (त्वा ऊतासः) तुझसे रक्षित होकर हम (त्वा युजा) तेरी सहायतासे (सूर्ये अप्सु) सूर्यके उदय होने पर होनेवाले यज्ञ कर्मोंमें तथा (पृत्सु) संग्रामोंमें (महत् धनं जयेम) बहुत धनको जीतें ॥ ९ ॥

१ पृत्सु महत् धनं जयेम— युद्धोंमें बडा धन जीत कर प्राप्त करेंगे ।

[१२५०] हे (गिर्वणस्तम) अत्यन्त पूजनीय इन्द्र ! (तं त्वा) उस तुझे (यज्ञेभिः ईमहे) यज्ञोंके द्वारा बुलाते हैं, तथा (तं) उस तुझे (गीर्भिः) स्तुतियोंके द्वारा बुलाते हैं, (यथा) जिससे तू (पुरुमाय्यं) बहुत ज्ञानवान् मेरी (वाजेषु) युद्धोंमें (चित् आविथ) रक्षा कर ॥ १० ॥

१ पुरुमाय्यं वाजेषु आविथ— बहुत कुशल वीरका युद्धोंमें रक्षण करते हो ।
२ पुरु-माय्यः— बहुत कुशल वीर, कुशलतासे युद्ध करनेवाला कपट प्रयोगोंसे युद्ध करनेवाला ।

[१२५१] (यस्य ते सख्यं स्वादु) जिस तेरी मित्रता मधुर है, तथा हे (अद्रिवः) वज्रवाले इन्द्र ! तेरा (प्रणीतिः स्वाद्वी) प्रेम भी मधुर है । अतः तेरे लिए (यज्ञः वितन्त साय्यः) यज्ञ विस्तृत करने योग्य होता है ॥११॥

१ प्रणीतिः स्वाद्वी— तेरी नीति उत्तम मधुर है ।

भावार्थ— युद्धोंमें संरक्षणके लिये और इष्टकी पूर्तिके लिये नेता लोग सदा बढनेवाले वीरको अपने सहाय्यके लिये बुलाते हैं ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ उग्रवीर उत्तम दाता धनोंका स्वामी ऐसे इन्द्र वीरको हम अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं ॥ ६ ॥

जो नेता है, प्रजाओंको सन्मार्गसे ले जाता है, वही प्रजाओंकी स्तुतिके योग्य होता है । वही प्रजाके द्वारा सत्कृत होता है । ऐसे नेताके मित्रताकी और उसके बलकी बराबरी कोई दूसरा मनुष्य नहीं कर सकता ॥ ७-८ ॥

हे इन्द्र ! तुझसे रक्षित होकर हम तेरी सहायता प्राप्त करके यज्ञ कर्मोंको करें तथा संग्रामोंमें बहुत सारे धनको जीतें । तुम अत्यन्त कुशल वीरका युद्धमें रक्षण करते हो ॥ ९-१० ॥

इन्द्रकी मैत्री मधुरतासे पूर्ण है, और उसका प्रेम भी मधुरतासे युक्त है । इसीलिए सभी उस इन्द्रका सत्कार करनेके लिए यज्ञ करते हैं ॥ ११ ॥

१२५२ उरु णस्तन्वे३ तन उरु क्षयाय नस्कृधि । उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥
१२५३ उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥ १३ ॥
१२५४ उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या । तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥
१२५५ ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि । आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥
१२५६ सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥
१२५७ षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः । सचा पूतक्रतौ सनम् ॥ १७ ॥
१२५८ ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी । स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥
१२५९ न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः । अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥

अर्थ— [१२५२] हे इन्द्र ! (नः तन्वे) हमारे पुत्रोंके लिए (उरु तन) धनको विपुल कर, तथा (नः क्षयाय उरु कृधि) हमारे निवासके लिए घर विस्तृत कर तथा (नः जीवसे उरु यन्धि) हमारे जीनेके लिए दीर्घायु प्रदान कर ॥ १२ ॥

[१२५३] हम (नृभ्यः) अपने मनुष्योंके लिए (उरुं) विस्तीर्ण धन चाहते हैं, (गवे उरुं) गायोंके लिए विस्तीर्ण क्षेत्र चाहते हैं, तथा (रथाय उरुं पन्थां) रथके लिए विस्तीर्ण मार्ग चाहते हैं, और इसलिए (देववीतिं मनामहे) यज्ञको हम करते हैं ॥ १३ ॥

[१२५४] (सोमस्य हर्ष्या) सोम पीकर हर्षित हुए (षड् नरः) छै लोग (द्वाद्वा) दो-दो की जोडीमें (स्वादु रातयः) उत्तम दान लेकर (मा उप तिष्ठन्ति) मेरी तरफ आ रहे हैं ॥ १४ ॥

[१२५५] (इन्द्रोते ऋज्रौ आ ददे) इन्द्रोतके पाससे सरलतासे चलनेवाले दो घोडे मिले, (ऋक्षस्य सूनवि हरी) ऋक्षके पुत्रसे दो काले घोडे, तथा (आश्वमेधस्य रोहिता) अश्वमेधके पाससे दो लाल रंगके घोडे मिले ॥ १५ ॥

[१२५६] (आतिथिग्वे सुरथां) अतिथिग्वके पुत्रसे उत्तम रथ, (आर्क्षे सु अभीशून्) ऋक्षके पुत्रसे उत्तम लगाम, (आश्वमेधे सुपेशसः) अश्वमेधके पुत्रसे सुन्दर रूपवाले घोडे प्राप्त किए ॥ १६ ॥

[१२५७] (आतिथिग्वे इन्द्रोते) अतिथिग्वके पुत्र इन्द्रोतसे (पूतक्रतौ) उसके पवित्र यज्ञमें वधूमतः षड् अश्वान्) मादाओंसे युक्त छः घोडे मैंने (सचा सनम्) एक साथ प्राप्त किए ॥ १७ ॥

[१२५८] (एषु ऋज्रेषु अन्तः) इन सरलगामी घोडोंके बीचमें (वृषण्वती अरुषी) बलयुक्त, तेजयुक्त (सु अभीशुः कशावती) उत्तम लगाम और चाबुकवाली घोडी (आ चेतत्) दूरसे ही दीख पड रही है ॥ १८ ॥

[१२५९] हे (वाजबन्धवः) युद्ध प्रिय बान्धवो ! (निनित्सुः मर्त्यः चन) निन्दा करनेवाला मनुष्य भी (युष्मे) तुम पर (अवद्यं न अधि दीधरत्) निन्दाका आरोप नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हमें विपुल धन और विशाल गृह देकर उसे भोगनेके लिए दीर्घ आयु भी दे। साथ ही हमारे मित्रादिकोंको भी बहुत सा धन, पशुओंके लिए विस्तीर्ण क्षेत्र और हमारे वाहनोंके लिए विस्तृत मार्ग दे ॥ १२-१३ ॥

उत्तम ज्ञानी ब्राह्मणोंको सभी राजा तथा धनी लोगोंकी ओरसे उत्तम-उत्तम दान मिले ॥ १४-१५ ॥

ज्ञानी ब्राह्मणोंको उत्तम घोडे, रथ और उस वाहनके योग्य अन्य साधनोंको दानमें देना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

जो सदा युद्धसे प्यार करते हैं, उनके पास सभी साधनोंसे युक्त घोडे आदि पशु तैय्यार रहने चाहिए। ऐसे वीरोंकी निन्दा वे भी नहीं कर सकते, जो सामान्यतया सबकी निन्दा करते रहते हैं ॥ १८-१९ ॥

×

[६९]

(ऋषिः- प्रियमेध आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः, ११ (अर्धर्चस्य) विश्वे देवाः, ११ (उत्तरार्धस्य)- १२ वरुणः । छन्दः- अनुष्टुप्, २ उष्णिक्, ४-६ गायत्री, ११, १६ पङ्क्तिः, १७ १८ बृहती ।)

१२६० प्रप्र॑ व॒स्त्रिष्टुभ॒मिषं॑ म॒न्दद्वी॑राये॒न्द॑वे । धि॒या वो॑ मे॒धसा॑तये॒ पुरं॒ध्या वि॑वासति ॥ १ ॥
१२६१ न॒दं व॒ ओद॑तीनां न॒दं योयु॑वतीनाम् । पतिं॑ वो॒ अघ्न्या॑नां धे॒नूना॑मिषुध्यसि ॥ २ ॥
१२६२ ता अ॑स्य सू॒ददो॑हसः॒ सोमं॑ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
जन्म॑न् दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वा रो॑च॒ने दि॒वः ॥ ३ ॥
१२६३ अ॒भि प्र गोप॑तिं गि॒रेन्द्र॑मर्च॒ यथा॑ वि॒दे । सू॒नुं स॒त्यस्य॒ सत्प॑तिम् ॥ ४ ॥
१२६४ आ हर॑यः ससृज्रि॒रेऽरु॑षी॒रधि॑ ब॒र्हिषि॑ । यत्रा॒भि सं॒नवा॑महे ॥ ५ ॥
१२६५ इन्द्रा॑य॒ गाव॑ आ॒शिरं॑ दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑ । यत् सी॑मुपह्व॒रे वि॒दत् ॥ ६ ॥

---

[६९]

अर्थ— [१२६०] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (मन्दद् वीराय इन्दवे) वीरोंको हर्षित करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रके लिए (त्रिष्टुभं इषं) स्तुतिके योग्य अन्नको (प्र प्र) दो । वह इन्द्र (वः मेधसातये) तुम्हारे यज्ञके लिए (पुरन्ध्या धिया) अपनी विशाल बुद्धिसे तथा कर्मसे तुम्हारी (आ विवासति) सहायता करता है ॥ १ ॥

[१२६१] वह इन्द्र (ओदतीनां नदं) उषाओंका उत्पादक है, (योयुवतीनां नदं) नदियोंका प्रेरक है, (अघ्न्यानां पतिं) अवध्य गायोंका स्वामी है, ऐसे इन्द्रको (वः) तुम्हारी सहायताके लिए बुलाते हैं । तू (धेनूनां इषुध्यसि) गायोंके दुग्धरूपी अन्नको लेना चाहता है ॥ २ ॥

[१२६२] (देवानां जन्मन्) देवोंके जन्मस्थान द्युलोकमें (दिवः रोचने) सूर्यके प्रकाशित होनेपर (विशः त्रिषु) मनुष्यके तीनों सवनोंमें (सूददोहसः ताः पृश्नयः) विपुल दूध देनेवालीं वे गायें (अस्य सोमं श्रीणन्ति) इस इन्द्रके सोमको अपने दूधसे मिश्रित करती हैं ॥ ३ ॥

[१२६३] (यथा विदे) तुम जिस प्रकार जानते हो, उसी प्रकार (गोपतिं सत्यस्य सूनुं सत्पतिं) गायोंके स्वामी, सत्यके प्रचारक तथा सज्जनोंके पालक (इन्द्रं) इन्द्रका (गिरा अर्च) अपनी वाणीसे स्तुति करो ॥ ४ ॥

१ गोपतिः— गौवोंका स्वामी, पृथिवीका पति, वाणीका पति ।

२ सत्यस्य सूनुः— सत्यका पुत्र, सत्यप्रिय, सत्यप्रसारक ।

[१२६४] (यत्र अभि सं नवामहे) जिसमें हम इन्द्रकी स्तुति करते हैं, उस (अरुषीः बर्हिषि अधि) तेजस्वी यज्ञमें (हरयः) घोडे इन्द्रको (आ ससृज्रिरे) ले आवें ॥ ५ ॥

[१२६५] (यत्) जब इन्द्रने (उपह्वरे) समीपमें ही (सीं विदत्) इस सोमको प्राप्त किया, तब (गावः) गायोंने (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिए (मधु आशिरं दुदुह्रे) मधुर दूधको दुहा ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! वीरोंको हर्षित करनेवाले इन्द्रके लिए प्रशंसनीय अन्न प्रदान करो, क्योंकि वह इन्द्र तुम्हारे यज्ञकी पूर्णताके लिए तुम्हारी सहायता करता है । वही इन्द्र नदियोंमें प्रवाह लाता है और वही गायोंका स्वामी है ॥ १-२ ॥

द्युलोकमें सूर्यके प्रकाशित होनेपर पृथ्वी पर यज्ञ किए जाते हैं, उन यज्ञोंमें गो-दुग्धसे मिश्रित सोमकी आहुति दी जाती है तथा उन यज्ञोंमें अपने अपने ज्ञानके अनुसार इन्द्रकी स्तुति की जाती है ॥ ३-४ ॥

यज्ञोंमें हम इन्द्रकी स्तुति करते हैं और उन यज्ञोंमें इन्द्रको गो-दुग्धसे मिश्रित सोमरस प्रदान किया जाता है ॥ ५-६ ॥

१२६६ उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥

१२६७ अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ८ ॥

१२६८ अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

१२६९ आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥

१२७० अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ११ ॥

अर्थ — [१२६६] (यत्) जब (इन्द्रः) इन्द्र (च) और मैं दोनों (ब्रध्नस्य विष्टपं गृहं) सूर्यके मूल स्थान अथवा गृहको (उत् गन्वहि) जावें, तब (सख्युः) मित्र इन्द्रके (त्रिः सप्त पदे) इक्कीसवें स्थान पर हम दोनों (मध्वः पीत्वा) मधुर सोमरसको पीकर (सचेवहि) परस्पर मिलेंगे ॥ ७ ॥

[१२६७] (अर्चत प्र अर्चत) इन्द्रका विशेष सत्कार करो । हे (प्रियमेधासः) प्रियमेध ऋषिके पुत्रो ! तुम (अर्चत) इन्द्रकी स्तुति करो । (उत) और (पुत्रकाः) तुम्हारे पुत्र भी (अर्चन्तु) इन्द्रकी स्तुति करें । (धृष्णु पुरं न) जिस प्रकार लोग अपने मजबूत नगरकी प्रशंसा करते हैं, उसी तरह (अर्चत) तुम भी इन्द्रकी स्तुति करो ॥ ८ ॥

[१२६८] (गर्गरः अव स्वराति) गर्गर शब्दवाले बाजे बज रहे हैं, तथा (गोधाः) दस्ताने (परि स निष्वणत्) चारों ओर शब्द कर रहे हैं, (पिंगा परि चनिष्कदत्) धनुषकी डोरियें भी चारों ओर शब्द कर रहीं हैं, ऐसे समय (इन्द्राय ब्रह्म उद्यतं) इन्द्रके लिए स्तोत्र कहो ।

गोधा— दस्ताने, हाथोंकी रक्षा करनेवाला चर्मनिर्मित एक प्रकारका साधन, जो युद्धके समय हाथोंमें पहना जाता है, ताकि धनुषकी डोरीसे हाथोंमें घाव न हों ।

पिंगा— धनुषकी डोरी, ज्या ।

[१२६९] (यत्) जब (सुदुघाः एन्यः) उत्तम प्रकारसे दूध देनेवाली सफेद रंगकी गायें (अन्-अपस्फुरः) न हिलती हुई (आ पतन्ति) आती हैं, तब (इन्द्राय पातवे) इन्द्रको पिलानेके लिए (अपस्फुरं सोमं) हिलाये हुए सोमको (गृभायत) हाथमें लो ॥ १० ॥

[१२७०] (इन्द्रः अपात्) इन्द्रने सोमरस पिया, (अग्निः अपात्) अग्निने सोमरस पिया, तथा (विश्वे देवाः अमत्सत) सम्पूर्ण देव सोम पीकर आनन्दित हुए । (वरुणः इत् इह क्षयत्) वरुण भी यहीं रहे, (सं-शिश्वरीः वत्सं इव) बछडेकी ओर जानेवाली गायके समान (आपः) हमारे सभी कर्म (तं अभि अनुषत) उस वरुणकी महिमा प्रकट करें ॥ ११ ॥

भावार्थ— सभी मनुष्य इन्द्रकी बार बार स्तुति करें । स्तुति करनेवालोंके साथ इन्द्रकी मित्रता होती है ॥ ७–८ ॥

जब युद्धकी परिस्थिति हो, चारों ओर बाजे बज रहे हों, वीरोंके हाथमें पहने हुए दस्ताने भी शब्द कर रहे हों, चारों ओर धनुषकी टंकार सुनाई दे रही हो, तब इन्द्रकी मदद मांगनी चाहिए, और उसको गो–दुग्ध मिश्रित सोमरस देकर उसका सत्कार करना चाहिए ॥ ९–१० ॥

१२७१ सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥
१२७२ यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्को नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥
१२७३ अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत् कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ १४ ॥
१२७४ अर्भको न कुमारको ऽधि तिष्ठन् नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥
१२७५ आ तू सुशिप्र दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १६ ॥

अर्थ— [१२७१] हे (वरुण) वरुण ! (यस्य ते) जिस तेरे सामर्थ्यके कारण (सप्तसिन्धवः) सातों नदियां (सूर्म्यं सुषिरां इव) रश्मियोंका जाल जिस तरह सूर्यकी तरफ जाता है, उसी तरह (काकुदं अनु क्षरन्ति) समुद्रकी ओर बहती हैं ॥ १२ ॥

[१२७२] (यः) जो इन्द्र (व्यतीन् सुयुक्तान्) विविध प्रकारसे गति करनेवाले और रथमें अच्छी तरह जुडे हुए घोडोंको (दाशुषे उप) दानशील यजमानके पास जानेके लिए (अफाणयत्) प्रेरित करता है, तथा (यः) जो (तक्वः, नेता) गतिशील, नेता तथा (उपमा वपुः) उपमा देने योग्य शरीरवाला इन्द्र (तत् इत् अमुच्यत) उन घोडोंको वहां छोड देता है ॥ १३ ॥

[१२७३] (शक्रः इन्द्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्र (विश्वाः द्विषः अति ओहते) सब शत्रुओंके परे जाता है तथा (गिरा परः) वर्णनसे भी परे तथा (कनीनः) अत्यन्त सुन्दर वह इन्द्र (पच्यमानं ओदनं) जलसे भरे मेघको (भिनत्) तोडता है ॥ १४ ॥

[१२७४] (सः) वह इन्द्र (अर्भकः कुमारकः न) छोटे कुमारके समान (नवं रथं अधि तिष्ठत्) नवीन रथ पर बैठा, तथा (पित्रे मात्रे) अपने पिता माताके लिए (विभुक्रतुं महिषं मृगं पक्षत्) बहुत पराक्रमी, बलवान् मृगासुरको मारा ॥ १५ ॥

[१२७५] हे (सुशिप्र दम्पते) सुन्दर ठोडीवाले पति पत्नी ! तुम (हिरण्ययं, द्युक्षं, सहस्रपादं) सोनेके कामवाले, तेजस्वी, हजारों किरणवाले (अरुषं, गां, अनेहसं रथं) चमकनेवाले, तेजीसे दौडनेवाले, अद्वितीय रथपर (स्वस्ति अधि तिष्ठ) उत्तम रीतिसे चढो, (अध) बादमें हम (सचेवहि) तुम्हारे साथ बैठेंगे ॥ १६ ॥

भावार्थ— सभी देव सोमरस पीकर तृप्त होकर आनन्दित होते हैं । मनुष्योंके सभी यज्ञ कर्मोंमें इन देवोंकी स्तुति होती है । उन देवोंमें जलके देवता वरुणके कारण जलके प्रवाह समुद्रको ओर बहते हैं । इसी तरह सभी कर्मोंसे इन देवोंकी महिमा प्रकट हो रही है ॥ ११–१२ ॥

वह इन्द्र अनेक तरहसे गति करनेवाले घोडोंसे संयुक्त अपने रथको दानशील यजमानके पास जानेके लिए प्रेरित करता है । अर्थात् दानशील यज्ञकर्ताको धन देता है ॥ १३ ॥

सामर्थ्यशाली इन्द्र सब शत्रुओंका नाश करता हुआ आगे चला जाता है । वह अत्यन्त सुन्दर इन्द्र जलसे भरे मेघको तोडकर उससे वृष्टि करता रहता है ॥ १४ ॥

इन्द्र एक छोटे कुमारके समान उत्साहसे युक्त होकर रथपर चढता है और बलवान्से बलवान् राक्षसोंको भी आसानीसे मारता है ॥ १५ ॥

हे सुरूपवान् पतिपत्नी ! तुम सदा सोनेसे मढे हुए होनेके कारण चारों ओर प्रकाश फैलानेवाले, अत्यन्त वेगवान् रथपर बैठो और कल्याणको प्राप्त होओ । सभी दम्पती धन्य हों, और सम्पन्नताकी स्थिति में रहें ॥ १६ ॥

१२७६ तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १७ ॥
१२७७ अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १८ ॥

[७०]

(ऋषिः- पुरुहन्मा आङ्गिरसः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- बृहती; १-६ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती), १२ शंकुमती, १३ उष्णिक्, १४ अनुष्टुप्, १५ पुरउष्णिक् ।)

१२७८ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥
१२७९ इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [१२७६] (नमस्विनः) नमन करनेवाले अध्वर्यु (स्वराजं तं ईं उपासते) स्वयं तेजस्वी उस इस इन्द्रकी उपासना करते हैं । (यत्) जब (एतवे) गतिशील इन्द्रको (दावने) सोम देनेके लिए (आवर्तयन्ति) अपनी तरफ लौटाते हैं, तब वे (अस्य सुधितं अर्थं) इसके बुद्धिसे युक्त धनको प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥

[१२७७] (पूर्वां प्रयतिं अनु) मुख्य यज्ञके लिए (वृक्तबर्हिषः) आसन बिछानेवाले तथा (हित प्रयासः) हितकारक अन्न देनेवाले (प्रियमेधासः) प्रियमेध ऋषिके पुत्रोंने (एषां प्रत्नस्य ओकसः) इन देवोंके प्राचीन घरोंको (अनु आशत) प्राप्त किया ॥ १८ ॥

[७०]

[१२७८] (यः चर्षणीनां राजा) जो मनुष्योंका राजा है, ऐसे (रथेभिः याता) रथोंसे जानेवाले (अध्रिगुः) अप्रतिहत गतिवाले, विश्वासां पृतनानां तरुता) सब शत्रुके वीरोंकी हिंसा करनेवाले, (ज्येष्ठः) श्रेष्ठ तथा (यः वृत्र हा) जो वृत्रको मारनेवाला है, ऐसे इन्द्रकी (गृणे) मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१२७९] हे (पुरुहन्मन्) पुरुहन्मन् ऋषे ! (यस्य विधर्तरि द्विता) जिस तेरे धारण करनेवाले इन्द्रमें उग्र और सौम्य दो प्रकारकी शक्तियां हैं, (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (अवसे शुम्भ) अपने संरक्षणके लिए सत्कार कर । (दिवे सूर्यः न) प्रकाशके लिए जैसे सूर्य उदय होता है, उसी तरह वह अपने (हस्ताय) हाथमें (दर्शतः महः वज्रः प्रतिधायि) दर्शनीय महान् वज्रको धारण करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— नम्रतापूर्वक उपासना करनेवाले लोग अपने तेजसे तेजस्वी उस इन्द्रकी उपासना करते हैं, तब इन्द्र प्रसन्न होकर उन्हें उत्तम धन और बुद्धि प्रदान करता है ॥ १७ ॥

मेधाबुद्धिको धारण करनेवाले ऋषियोंने भक्तिके द्वारा देवोंके स्थान स्वर्ग या मोक्षको प्राप्त किया ॥ १८ ॥

यह इन्द्र मनुष्योंका राजा, रथोंसे सर्वत्र जानेवाला, सर्वत्र बेरोकटोक गमन करनेवाला, सभी शत्रुवीरोंका विनाश करनेवाला और सब देवोंमें मुख्य है ॥ १ ॥

इन्द्रमें दो तरहकी शक्तियां हैं- उग्र और सौम्य । शत्रुओंके लिए उसकी शक्ति उग्र है, और मित्रके लिए उसकी शक्ति सौम्य है । वह शत्रुका संहार करनेके लिए अपने हाथमें वज्रको धारण करता है ॥ २ ॥

१२८० नकिष्टं कर्मणा नश॒द्यश्च॒कार॑ स॒दावृ॑धम् ।
इन्द्रं॒ न य॒ज्ञैर्वि॒श्वगू॑र्तमृभ्व॑स॒मधृ॑ष्टं धृ॒ष्णवो॑जसम् ॥ ३ ॥
१२८१ अषा॑ळ्हमु॒ग्रं पृत॑नासु सास॒हिं यस्मि॑न् म॒हीरु॑रु॒ज्रयः॑ ।
सं धे॒नवो॒ जाय॑माने अनोनवु॒र्द्यावः॒ क्षामो॑ अनोनवुः ॥ ४ ॥
१२८२ यद्द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन् त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥ ५ ॥
१२८३ आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न् विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न् गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभिः॑ ॥ ६ ॥

अर्थ— [१२८०] (यः) जो (विश्व गूर्तं, ऋभ्वसं) सबोंसे स्तुत्य, महान् (अधृष्टं धृष्णु-ओजसं) स्वयं कभी न हिंसित होनेवाले, पर दूसरोंको घर्षण करनेवाले बलसे युक्त, (सदावृधं) हमेशा बढनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रको (यज्ञैः) यज्ञोंके द्वारा (चकार) अपने अनुकूल बना लेता है, (तं कर्मणा नकिः नशत्) उसे अपने कर्मसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

[१२८१] (यस्मिन् जायमाने) जिसके उत्पन्न होने पर (महीः उरुज्रयः) बडी बडी तथा वेगवाली (धेनवः) गायें (अनोनवुः) नमन करती हैं, तथा (द्यावः क्षामः अनोनवुः) द्युलोक और पृथ्वी लोक भी जिसे नमन करते हैं, उस (अषाळ्हं उग्रं) असह्य वीर तथा (पृतनासु सासहिं) युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

[१२८२] हे इन्द्र ! (यद्) यदि (द्यावः शतं स्युः) द्युलोक सौ हो जायें (उत) अथवा (भूमिः शतं स्युः) भूमियां सौ हो जायें, (सहस्रं सूर्याः) हजारों सूर्य भी हो जाएं तो भी (त्वा न अष्ट) तेरी बराबरी कर नहीं सकते । और (जातं) प्रकट हुई तेरी (रोदसी न अष्ट) द्यावा पृथ्वी भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

[१२८३] हे (शविष्ठ वृषन्) बलवान् तथा अभिलषित फल देनेवाले इन्द्र ! तू अपने (महिना शवसा) महत्त्वसे और बलसे (विश्वा वृष्ण्या आ पप्राथ) सम्पूर्ण शत्रुकी सेनाओंको घेर लेता है । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र तथा (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! अपने (चित्राभिः ऊतिभिः) विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे (गोमति व्रजे) गायोंके लिए होनेवाले युद्धमें (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर ॥ ६ ॥

१ महिना शवसा विश्वा वृष्ण्या आपप्राथ— अपने बलसे संपूर्ण शत्रुसेनाओंका पराभव करता है । इतना अपना बल बढाना चाहिये ।

भावार्थ— जो सभीके द्वारा स्तुत्य, शत्रुओंके संहारक इन्द्रको अपने उत्तम कर्मोंसे अपने अनुकूल बना लेता है, उसको कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

इन्द्रके प्रकट होते ही बडे बडे प्राणी तथा सभी लोक भी उसे नमन करने लगते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्र इतना महान् और वीर है कि यदि द्युलोक सौ हो जाएं, या पृथ्वी भी सौ हो जाएं अथवा सूर्य भी हजारोंकी संख्यामें हो जाएं, तो भी वे सब इन्द्रकी बराबरी नहीं कर सकते ॥ ५ ॥

हे बलशाली इन्द्र ! तू अपने महत्त्व और बलसे संपूर्ण शत्रुओंकी सेनाको घेर लेता है । तू अपने विलक्षण संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ ६ ॥

१२८४ न सीमदेव आप॒दिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥ ७ ॥

१२८५ तं वो महो महाय्य॒मिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

१२८६ उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन् मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥

१२८७ त्वं न इन्द्र ऋतयु॒स्त्वानिदो नि तृम्पसि ।
मध्ये वसिष्व तुविनृम्णोर्वो॒र्नि दासं शिश्नथो हथैः ॥ १० ॥

१२८८ अन्यव्रतममानुष॒मयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥

अर्थ— [१२८४] (इन्द्रः) इन्द्र (हरी) जिन घोडोंको (युयोजते) अपने रथमें जोडता है, उन्हीं (एतग्वा एतशा) सर्वत्र गमन करनेवाले घोडोंको जो मनुष्य अपने रथमें (युयोजते) जोडता है, ऐसा (अ-देवः मर्त्यः) नास्तिक मनुष्य (सीं इषं न आपत्) इस अन्नको नहीं पा सकता ॥ ७ ॥

[१२८५] (यः गाधेषु हव्यः) जो साधारण स्थानोंमें बुलाने योग्य है, (यः आरणेषु हव्यः) जो आश्रयके योग्य स्थानमें बुलाने लायक है, (यः वाजेषु हव्यः अस्ति) जो युद्धोंमें बुलाने योग्य है, ऐसे (महाय्यं सक्षणिं इन्द्रं) पूज्य, मित्रभूत इन्द्रकी हे मनुष्यो ! (महः वः) महान् तुम (दानाय) दानके लिए स्तुति करो ॥ ८ ॥

[१२८६] हे (शूर, वसो) हे शूरवीर तथा धनवान् इन्द्र ! (नः महे राधसे उत् मृशस्व) हमें महान् धनकी प्राप्तिके लिए उन्नत कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (मह्यै मघत्तये उत्) महान् ऐश्वर्यके लिए उन्नत कर तथा (महे श्रवसे उत्) महान् अन्नकी प्राप्तिके लिए उन्नत कर ॥ ९ ॥

[१२८७] हे इन्द्र ! (ऋतयुः त्वं) यज्ञकी कामना करनेवाला तू (त्वा निदः) तेरी निन्दा करनेवालोंके धनसे (नः तृम्पसि) हमें तृप्त करता है। हे (तुविनृम्णः) बहुत बलशाली इन्द्र ! तू हमें (ऊर्वोः मध्ये वसिष्व) अपने विशाल आश्रयमें बसा ले, तथा (दासं हथैः शिश्नथः) दासको हथियारोंसे मार डाल ॥ १० ॥

[१२८८] (अन्यव्रतं) अधार्मिक कामोंको करनेवाले (अमानुषं) मनुष्यतासे रहित (अयज्वानं) यज्ञ न करनेवाले, (अदेवयुः) दिव्य अर्थात् उत्तम कर्म न करनेवाले मनुष्यको (सखा पर्वतः) तेरा मित्र पर्वतऋषि (स्वः अव दुधुवीत) स्वर्गसे नीचे गिरा देता है, तथा (दस्युं) ऐसे दस्युको (पर्वतः) पर्वतऋषि (सुघ्नाय) अच्छी तरह मारनेवाले वीरके हाथमें दे देता है ॥ ११ ॥

भावार्थ— जो इन्द्रके साथ अपनी तुलना करके उसके साथ अपनी बराबरी करना चाहता है, वह नास्तिक है, क्योंकि वह इन्द्रको नहीं मानता। ऐसा नास्तिक व्यक्ति समृद्धि प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

यह इन्द्र स्वयं अत्यन्त महान् होते हुए भी इसे अपनी महत्तापर घमंड नहीं है। इतना महान् होते हुए भी वह साधारण लोगोंके पास भी जाकर उनकी सहायता करता है। इसीलिए वह सबका पूज्य है और महान् है। जो वीर महान् होते हुए भी साधारण मनुष्यकी सहायता करता है, वही सबके लिए पूज्य होता है ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हम महान् धन प्राप्त कर सकें, इसलिए तू हमें उन्नत कर। महान् अन्नकी प्राप्ति हम कर सकें, इसलिए हमें उन्नत कर ॥ ९ ॥

यह इन्द्र, जो इसकी निन्दा करता है, नास्तिक है, उसके धनको जीतकर अपने भक्तों-आस्तिकोंको प्रदान करता है। हे इन्द्र ! हमें अपने विशाल आश्रयमें ले ले तथा जो दुष्ट हों, उन्हें शस्त्रोंसे मार डाल ॥ १० ॥

जो अधार्मिक काम करता है, मनुष्यतासे रहित है, यज्ञ नहीं करता है, तथा उत्तम काम नहीं करता, वह कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसा मनुष्य तो नाशको ही प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

१२८९ त्वं न॑ इन्द्रासां हस्ते॑ शविष्ठ दावने॑ ।
धानानां न सं गृ॑भायास्मयु–र्द्विः सं गृ॑भायास्मयुः ॥ १२ ॥
१२९० सखा॑यः क्रतु॑मिच्छत कथा रा॑धाम शुरस्य॑ । उप॑स्तुतिं भोजः सूरियो॑ अह्र॑यः ॥१३॥
१२९१ भूरि॑भिः समह ऋषि॑भि–र्ब॒र्हिष्म॑द्भिः स्तविष्यसे ।
यदि॒त्थमेक॑मेकमि–च्छर॑ व॒त्सान् प॑रा॒दद॑ः ॥ १४ ॥
१२९२ कर्णगृह्या॑ मघवा॑ शौरदेव्यो व॒त्सं न॑स्त्रिभ्य आन॑यत् । अ॒जां सूरिर्न धातवे ॥ १५ ॥

[७१]

(ऋषिः– सुदीति-पुरुमीळ्हावाङ्गिरसौ, तयोर्वान्यतरः । देवताः– अग्निः । छन्दः– गायत्री, १०–१५ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१२९३ त्वं नो॑ अग्ने म॒हो॑भिः पाहि विश्व॑स्या अरा॑तेः । उत द्वि॒षो मर्त्य॑स्य ॥ १ ॥

अर्थ—[१२८९] हे (शविष्ठ, अस्मयुः इन्द्र) बलवान् तथा हमारी कामना पूर्ण करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तू (नः दावने) हमें देनेके लिए (आसां हस्ते संगृभाय) इन गायोंको हाथमें,उसी तरह पकड (धानानां न) जिस तरह लोग खीलोंको पकडते हैं। हे (अस्मयुः) हमारी इच्छा करनेवाले इन्द्र ! (द्विः संगृभाय) फिर दूबारा हाथमें ले ॥१२॥

[१२९०] (यः भोजः सूरिः अह्रयः) जो अन्न देनेवाला, विद्वान् और कुटिलतासे रहित हो, ऐसे (क्रतुं इच्छतः) पराक्रम करनेकी इच्छा करनेवाले (शरस्य) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले इन्द्रकी, हे (सखायः) मित्रो ! हम (कथा स्तुतिं उपराधामः) किस प्रकार स्तुति करें ॥ १३ ॥

[१२९१] हे (शर, समह) शत्रुओंके हिंसक और पूज्य इन्द्र ! (यत्) जब तू (इत्थं) इस प्रकार (एकं एकं इत्) एक एक करके (वत्सान् परा ददः) बछडोंसे युक्त बहुत सी गायोंको दे देता है, तब (भूरिभिः ऋषिभिः) बहुतसे ऋषियों द्वारा तथा (बर्हिष्मद्भिः) यज्ञ करनेवालोंके द्वारा (स्तविष्यसे) प्रशंसित होता है ॥१४॥

[१२९२] (मघवा) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (शौर-देव्यः) शूरतासे प्राप्त होने योग्य, दिव्य गायोंको (वत्सं) बछडेके साथ (त्रिभ्यः) शत्रुओंसे छीनकर (कर्णगृह्य) कानोंसे पकडकर (नः आनयत्) उसी प्रकार लावे, (सूरिः धातवे अजां न) जिस प्रकार विद्वान् दूध पीनेके लिए बकरीको लाते हैं ॥ १५ ॥

१ त्रिभ्यः— हिंसकेभ्यः, हिंसक शत्रुओंसे

[७१]

[१२९३] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं नः महोभिः पाहि) तू हमारी अपने महान् शक्तियों द्वारा रक्षा कर । और (विश्वस्याः अरातेः मर्त्यस्य द्विषः) सब तरहके शत्रु और उत्तम मनुष्योंसे द्वेष करनेवालेसे भी हमको बचा ॥ १ ॥

१ अग्ने ! त्वं नः महोभिः विश्वस्याः अरातेः उत मर्त्यस्य द्विषः पाहि— हे अग्ने ! तू हमें अपनी शक्तियोंका उपयोग करके सभी अदानशील और उत्तम मनुष्यसे द्वेष करनेवालोंसे बचा ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! हमें देनेके लिए गायोंको अपने पास रख । तू विद्वान् है पर कुटिलतासे रहित है ॥१२–१३॥ यह इन्द्र यज्ञ करनेवाले ऋषियोंको बछडोंके सहित गायोंको दानमें दे ॥ १४–१५ ॥

यह अग्नि अपनी शक्तियोंका उपयोग सज्जनोंकी रक्षाके लिए करता है, वह कभी भी सज्जनोंको पीडित नहीं करता । इसी तरह देशके अग्रणीको भी चाहिए कि वह हमेशा सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करे ॥ १ ॥

१२९४ नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षपावान् ॥ २ ॥
१२९५ स नो विश्वेभिर्देवेभि-रूर्जो नपाद्भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥
१२९६ न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥ ४ ॥
१२९७ यं त्वं विप्र मेधसाता-वग्ने हिनोषि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥
१२९८ त्वं रयिं पुरुवीर-मग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥ ६ ॥

अर्थ— [१२९४] हे (प्रियजात) उत्पन्न होते ही सबको प्रिय लगनेवाले अग्ने ! (वः पौरुषेयः मन्युः न ईशे) तेरे उपासकोंपर किसी दुष्ट पुरुषका क्रोध प्रभुत्व न करे, (त्वं इत् क्षपावान् असि) तू रात्रीमें भी अत्यन्त प्रकाशमान होता है ॥ २ ॥

१ वः पौरुषेयः मन्युः न ईशे– इस अग्निके भक्तोंपर किसी दुष्ट मनुष्यका क्रोध शासन नहीं कर सकता ।

[१२९५] हे (ऊर्जः नपात्) बलको न गिरने देनेहारे (भद्रशोचे) कल्याणकारी ज्वालाओंवाले अग्ने ! (सः नः विश्वेभिः देवेभिः) वह प्रसिद्ध तू हमें सब देवोंद्वारा (विश्ववारं रयिं देहि) सब जनोंसे वरण करने योग्य श्रेष्ठ ऐश्वर्य दिलवा ॥ ३ ॥

[१२९६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (यं दाश्वांसं त्रायसे) जिस दाताकी रक्षा करता है (तं मर्तं अरातयः रायः न युवन्त) उस मनुष्यको अदानशील शत्रु कभी श्रेष्ठ धनोंसे पृथक् नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

१ यं दाश्वांसं त्रायसे, तं मर्तं अरातयः रायः न युवन्त— जिस दानीकी यह अग्नि रक्षा करता है, उसे कोई भी अदानशील व्यक्ति ऐश्वर्यसे पृथक् नहीं कर सकता ।

[१२९७] हे (विप्र अग्ने) मेधाविन् अग्ने ! (त्वं यं धनाय मेधसातौ) तू जिस मनुष्यको धनलाभके लिये यज्ञकर्ममें (हिनोषि) प्रेरित करता है (स तव ऊती गोषु गन्ता) वह तेरी रक्षाके द्वारा गौओंसे सम्पन्न होता है ॥५॥

[१२९८] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं दाशुषे) तू दान देनेवालेके लिये (पुरुवीरं रयिं) बहुतसे वीरोंसे सम्पन्न धन देता है, अतः (नः वस्यः अच्छ प्रणय) हमें भी उत्तम धन भरपूर प्रदान कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपने भक्तोंकी रक्षा इतनी सावधानीसे करता है, कि उसपर कोई दुष्ट पुरुष शासन नहीं कर सकता, वह रात्रीमें भी सदा जाग्रत और प्रकाशमान रहकर उनकी रक्षा करता है । इसी प्रकार राष्ट्रका नेता भी दिनरात जाग्रत रहकर सावधानीसे अपने पक्षवाले सज्जनोंकी रक्षा करे, ताकि कोई दुष्ट पुरुष उन्हें सता न सके ॥ २ ॥

यह अग्नि बलको क्षीण न करके उसे बढानेवाला है, जबतक यह अग्नि शरीरमें उत्तमतासे रहता है, तबतक यह शरीर भी उत्तम रीतिसे काम करता है । इसकी ज्वालायें कल्याण करनेवाली हैं, जहां भी इसकी ज्वालायें प्रकाशित होती हैं, वहांके सब जन्तु नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार वह सर्वत्र पवित्रता करता है । तब उस स्थलपर सभी देव आकर उस मनुष्यको उत्तम उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

अग्निकी यह महिमा है कि वह जिस किसी भी दानी मनुष्यकी रक्षा करता है, उसे अदानी मनुष्य किसी भी तरहका नुकसान नहीं पहुंचा सकते, और न उसे ऐश्वर्योंसे हीन ही कर सकते हैं ॥ ४ ॥

यह अग्रणी देव जिस मनुष्यको यज्ञ करनेके लिये प्रेरित करता है, वह अनेक तरहकी गायें, उत्तम वीर पुत्र पौत्र और उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ५-६ ॥

×

१२९९ उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्ये३ मर्ताय ॥ ७ ॥
१३०० अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिषे वसूनाम् ॥ ८ ॥
१३०१ स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य । सखे वसो जरितृभ्यः ॥ ९ ॥
१३०२ अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १० ॥
१३०३ अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ ११ ॥

अर्थ — [१२९९] हे (जातवेदः) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! तू (नः उरुष्य) हमारी रक्षा कर। और हमको (अघायते, दुराध्ये मर्ताय मा परा दाः) पाप करनेवाले तथा हिंसा करनेवाले दुष्ट मनुष्यको मत सौंप ॥ ७ ॥

१ अघायते, दुराध्ये मर्ताय मा परा दाः— पाप करनेवाले तथा हिंसा करनेवाले मनुष्यके हाथोंमें हे अग्ने ! हमें न सौंप।

[१३००] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवस्य ते रातिं अदेवः माकिः युयोत) प्रकाशमान् तेरे द्वारा दिये हुये दानको अदानशील कोई भी दुष्ट व्यक्ति हमसे पृथक् न करे। (त्वं वसूनां ईशिषे) तू ही सब धनोंका स्वामी है ॥ ८ ॥

[१३०१] हे (ऊर्जः नपात्) बलके पुत्र (सखे) स्नेहकारिन् (वसो) सबको बसानेवाले अग्ने ! (सः जरितृभ्यः नः माहिनस्य वस्वः उपमासि) वह प्रसिद्ध तू, स्तुति करनेवाले हम लोगोंके लिये महिमासे युक्त उत्तम धन समीपसे प्रदान कर ॥ ९ ॥

[१३०२] (शीरशोचिषं, दर्शतं पुरुवसुं पुरुप्रशस्तं) भक्षणशील ज्वालावाले, दर्शनीय, प्रभूत धनवाले, बहुत प्रशंसनीय ऐसे अग्निको (यज्ञासः, नमसा नः गिरः ऊतये अच्छ यन्तु) हमारे सब यज्ञ, और नम्रतापूर्वक हमारी स्तुतियाँ हमारी रक्षाके लिए सरलतासे प्राप्त हों ॥ १० ॥

[१३०३] (यः मर्त्येषु अमृतः अभूत्) जो मरण धर्मवाले मनुष्योंमें रहते हुये भी अमर है। और (विशि होता मन्द्रतमः द्विता) प्रजाओंमें होम निष्पादक, अति हर्षयुक्त, दो रूपवाला है ऐसे (सहसः सूनुं जातवेदसं अग्निं वार्याणां दानाय) बलके पुत्र, संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्निके वरणके योग्य, गवादि श्रेष्ठ धन दानके लिये मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ११ ॥

१ मर्त्येषु अमृतः— यह अग्नि मरणशील मनुष्योंके बीचमें रहता हुआ भी अमर है।

भावार्थ— हे अग्ने ! तू सब तरहके धनोंका स्वामी है, इसलिए हम तुझसे प्रार्थना करते हैं कि तेरे द्वारा दिए गए धनसे हम कभी पृथक् न हों अर्थात् हम तेरी कृपासे दूर कभी न हों और तू भी कभी क्रोधित होकर हमें पापी या हिंसकोंके हाथोंमें मत सौंप ॥ ७–८ ॥

यह अग्निदेव श्रेष्ठ मनुष्योंसे स्नेह करनेवाला, तथा मित्रके समान हित करनेवाला है, और इस प्रकार यह सबको बसानेवाला है, उसकी कृपाके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता। पर जो उसकी कृपाका पात्र बन जाता है, वह बलवान् होकर उत्तम-उत्तम धन प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

यह अग्नि भक्षण करनेवाली ज्वालाओंसे युक्त, देखनेमें सुन्दर, प्रशंसनीय मरणशीलोंमें भी अमर, प्रजाओंको यज्ञमें प्रेरित करनेवाला तथा अत्यन्त आनन्दमें रहनेवाला है, ऐसे अग्निकी प्रार्थना करनेसे मनुष्य सुखी और सम्पन्न हो सकता है ॥ १०–११ ॥

१३०४ अ॒ग्निं वो॑ दे॒वय॒ज्यया॒ऽग्निं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ।
अ॒ग्निं धी॒षु प्र॑थ॒मम॒ग्निमर्व॑त्य॒ग्निं क्षैत्रा॑य॒ साध॑से ॥ १२ ॥

१३०५ अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु न॒ ईशे॒ यो वार्या॑णाम् ।
अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये॒ शश्व॑दीमहे॒ वसुं॒ सन्तं॑ तनू॒पाम् ॥ १३ ॥

१३०६ अ॒ग्निमी॑ळि॒ष्वाव॑से॒ गाथा॑भिः शी॒रशो॑चिषम् ।
अ॒ग्निं रा॒ये पु॑रुमीळ्ह श्रु॒तं नरो॒ऽग्निं सु॑दी॒तये॑ छ॒र्दिः ॥ १४ ॥

१३०७ अ॒ग्निं द्वेषो॒ योत॒वै नो॑ गृणीमस्य॒ग्निं शं योश्च॒ दात॑वे ।
विश्वा॑सु वि॒क्ष्व॑वि॒तेव॒ हव्यो॒ भुव॒द्वस्तु॑र्ऋ॒षूणा॑म् ॥ १५ ॥

अर्थ— [१३०४] (देवयज्यया अग्निं) देव यज्ञके निमित्तसे मैं अग्निकी स्तुति करता हूँ। (अध्वरे प्रयति अग्निं) यज्ञके प्रज्वलित होने पर भी अग्निकी स्तुति करता हूँ। (धीषु अर्वति अग्निं प्रथमं) सब कामोंमें विराजमान अग्निकी सबसे प्रथम पूजा करता हूँ। तथा (क्षैत्राय साधसे) क्षेत्रके लाभके निमित्त भी स्तुति करता हूँ ॥ १२ ॥

१ धीषु अर्वति अग्निं प्रथमं — सभी तरहके बुद्धियुक्त कार्योंमें इस अग्निकी पूजा प्रथम करनी चाहिए।

[१३०५] (यः अग्निः वार्याणां ईशे) जो अग्नि श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, वही (सख्ये इषां ददातु) अपने स्नेही मित्रोंके लिये अन्न प्रदान करे। हम (वसुं सन्तं तनूपां अग्निं तोके तनये शश्वत् ईमहे) सबके भीतर बसे हुए, सदा वर्तमान, सब देहोंके पालक उस अग्निके पुत्र पौत्रादिके लिए बहुत चाहते हैं ॥ १३ ॥

[१३०६] हे (पुरुमीळ्ह) बहुत स्तुति करनेवाले मनुष्य ! तू (शीरशोचिषं अग्निं अवसे राये गाथाभिः ईळिष्व) व्यापक तेजवाले अग्निकी अपनी रक्षाके लिये और धन प्राप्तिके लिये वेदवाणियोंसे स्तुति कर। इस (श्रुतं नरः) बहुत विद्वान् अग्निको अन्य लोग भी चाहते हैं। वह अग्नि (सुदीतये छर्दिः) उत्तम तेजवालेके लिये गृह प्रदान करता है ॥ १४ ॥

[१३०७] हम लोग (नः द्वेषः योतवै अग्निं गृणीमसि) अपने शत्रुओंको दूर करनेके लिये अग्निकी स्तुति करते हैं। और (शं च योः दातवे अग्निं) सुख देने तथा दुःख नाशके लिये अग्निकी उपासना करते हैं, वह अग्नि (विश्वासु विक्षु अविता इव ऋषूणां वस्तुः हव्यः भुवत्) सब प्रजाओं पर राजाकी तरह रक्षक, ऋषियोंको बसानेवाला और स्तुत्य है ॥ १५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि देव अन्य सभी देवोंसे उत्कृष्ट होनेके कारण सबसे प्रथम पूज्य है। प्रज्वलित यज्ञमें, अन्य देवयज्ञोंमें इसकी पूजा की जाती है। इसी प्रकार बुद्धिपूर्वक किए जानेवाले कामोंमें भी इसीकी सर्व प्रथम पूजा की जाती है ॥ १२ ॥

यही सभी प्रकारके श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, वही अपने स्नेह करनेवाले मित्रोंके लिए अन्न देता है। मनुष्य भी सब शरीरोंमें रहनेवाले उस अग्निकी अपनी मनोकामनाओंकी पूर्तिके लिए पूजा करते हैं। अपनी रक्षाके लिए भी लोग उसीकी स्तुति करते हैं, तब वह प्रसन्न होकर उनका उत्तम आश्रय स्थान लोगोंको प्रदान करता है ॥ १३–१४ ॥

सभी श्रेष्ठ मनुष्य शत्रुओंको दूर करने, सुख प्राप्त करने तथा रोगोंके शमन और उनको दूर करनेके लिए, इसी अग्निकी शरणमें जाते हैं। यह अग्नि भी अपने भक्तोंकी उसी प्रकार रक्षा करता है, जिस प्रकार एक राजा अपनी प्रजाओंकी ॥ १५ ॥

[७२]

(ऋषिः- हर्यतः प्रागाथः। देवताः- अग्निः हर्वींषि वा। छन्दः- गायत्री।)

१३०८ हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः । विद्वाँ अस्य प्रशासनम् ॥ १ ॥
१३०९ नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि । जुषाणो अस्य सख्यम् ॥ २ ॥
१३१० अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया । गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ ३ ॥
१३११ जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम् । दृषदं जिह्वयावधीत् ॥ ४ ॥
१३१२ चरन् वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते । वेति स्तोतव अम्ब्यम् ॥ ५ ॥
१३१३ उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥ ६ ॥

---

[७२]

अर्थ— [१३०८] हे हविकर्ता लोगो! तुम सब शीघ्र (हविः कृणुध्वं) हविका सम्पादन करो, जिससे अग्निका (आगमत्) आगमन हो। जो (अध्वर्युः अस्य प्रशासनं विद्वान्) अध्वर्यु इस हविको अग्निके लिये प्रदान करनेमें विद्वान् है, वह (पुनः वनते) फिर भी अग्निकी सेवा करता है ॥ १ ॥

१ अध्वर्युः अस्य प्रशासनं विद्वान्, वनते— जो अध्वर्यु इस अग्निकी पूजा करनेमें कुशल है, वही इसकी उत्तम सेवा करता है।

[१३०९] (होता तिग्मं अंशुं निषीदत्) यज्ञ करनेवाला तीक्ष्ण किरणवाले उस अग्निके पास बैठता है। वह (अस्य सख्यं मनावधि जुषाणः) इस अग्निके मित्रभावको प्राप्त होनेवाला और भक्तके प्रीतिका सम्पादन करनेवाला है ॥ २ ॥

१ होता अस्य सख्यं जुषाणः— होम करनेवाला ही उस अग्निकी मित्रता प्राप्त कर सकता है।

[१३१०] ऋत्विकलोक (तं रुद्रं जने मनीषया परः इच्छन्ति) उस रुद्ररूप अग्निको यजमानके घरमें अपनी उत्तम बुद्धिसे स्थापित करनेकी इच्छा करते हैं। वे ही पश्चात् (ससं जिह्वया गृभ्णन्ति) सोये हुयेके समान व्याप्त अग्निको अपनी स्तुति द्वारा प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

[१३११] (वयोधाः जामि) अन्नका दाता अग्नि अत्यन्त प्रज्वलित होकर (धनुः अतीतपे) अन्तरिक्षको तपाता है। (वनं अरुहत्) जलपर आरूढ होता है। तथा अपनी (जिह्वया दृषदं अवधीत्) ज्वालासे मेघको मारता है ॥ ४ ॥

[१३१२] अग्नि (वत्सः चरन् रुशन्) बछडेकी तरह विचरता उछलता कूदता हुआ तेजस्वी होकर (इह निदातारं न विदन्ते) इस लोकमें अपना कोई भी निन्दक नहीं प्राप्त करता किन्तु अग्नि अपने (स्तोतवे अम्ब्यं वेति) स्तुति करनेके लिए स्तोताकी इच्छा करता है ॥ ५ ॥

[१३१३] (उतो नु अस्य) और इस अग्निका (अश्वावत् यत् महत् बृहत् योजनं) घोडेसे युक्त जो महिमायुक्त और विस्तृत रथ है, वह और (रथस्य दामा ददृशे) उसके रथके लगाम भी दिखाई देने लगे हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि, जहां यज्ञ होता है, वहां जाकर, विराजमान होता है। तथा जो मनुष्य इस अग्निकी एकाग्रतासे पूजा करता है, वही इसकी भक्ति और सेवा कर सकता है ॥ १ ॥

होम करनेवाला प्रथम इस तीक्ष्ण किरणवाले अग्निके पास जाकर बैठता है, तब उस रुद्ररूप अग्निको वेदीमें स्थापित करनेकी इच्छासे उसे अपनी स्तुतियोंसे प्रज्वलित करता है। इस प्रकार भक्तिसे कार्य करनेवाला ही उस अग्निकी मित्रता प्राप्त कर सकता है ॥ २-३ ॥

अन्नको उत्पन्न करनेवाला अग्नि जब अपनी ज्वालाओंको फैलाकर अन्तरिक्षमें जाकर मेघोंको मारकर पृथ्वीपर पानी बरसाता है, तब इस अग्निकी बिजलीके रूपमें उछल कूद देखकर लोग इसकी प्रशंसा करते हैं, इसकी कोई निन्दा नहीं करता, इसके विपरीत लोग इसकी स्तुति करते हैं ॥ ४-५ ॥

१३१४ दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥ ७ ॥
१३१५ आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् । खेदया त्रिवृता दिवः ॥ ८ ॥
१३१६ परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी । मध्वा होतारो अञ्जते ॥ ९ ॥
१३१७ सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम् । नीचीनबारमक्षितम् ॥ १० ॥
१३१८ अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥ ११ ॥
१३१९ गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १२ ॥

अर्थ - [१३१४] (सप्त एकां दुहन्ति) सात ऋत्विज मिलकर एकका ही दोहन करते हैं। उनके बीचमें (द्वा पञ्च सिन्धोः तीर्थे स्वरे अधि उप सृजतः) दो और पाँच नदियोंके तीर्थस्थानपर ऊँचे स्वरमें अग्निका स्तोत्र गान करके अन्योंको प्रेरित करते हैं ॥ ७ ॥

[१३१५] (विवस्वतः दशभिः इन्द्रः) यजमानके दसों अङ्गुलियोंसे पूजित होकर अग्निने (कोशं दिवः त्रिवृता खेदया आ अचुच्यवीत्) मेघको आकाशसे अपनी तीन रंगोंवाली रश्मियोंसे पूर्णरूपसे विदारित करके गिरा दिया ॥ ८ ॥

[१३१६] (त्रिधातु जूर्णिः नवीयसी अध्वरं परि) कृष्ण, लोहित और शुक्ल भेदसे तीन वर्णवाला वेगवान् यह अग्नि अपनी नवीन ज्वालासे यज्ञको जाता है। (होतारः मध्वा परि अञ्जते) होम निष्पादक अध्वर्यु आदि ऋत्विक-गण घृतादिकी आहुतिसे अग्निको सब ओरसे सींचते हैं ॥ ९ ॥

[१३१७] (अवतं, उच्चाचक्रं परिज्मानं नीचीनबारं अक्षितं) यज्ञीय देवता, जिसके ज्वालाओंका चक्र ऊपर घूमता है, जो चारों ओरसे व्याप्त है, नीचे पानीके द्वारवाला है, और क्षीण न होनेवाला है, ऐसे अग्निको ऋत्विक् आदि (नमसा सिञ्चन्ति) नमनपूर्वक घृतादिसे सींचते हैं ॥ १० ॥

[१३१८] (अवतस्य विसर्जने) कुओंके भी सूख जाने पर अग्निसे प्रेरित (अद्रयः) मेघ (अभ्यारं इत्) पृथ्वीके पास आकर (पुष्करे) तालाबोंको (मधु निषिक्तं) मीठे पानीसे भर देते हैं ॥ ११ ॥

[१३१९] हे (गावः) गायो ! तुम (अवतं उप आवत) तालाबोंके पास आओ, जहां तुम पुष्ट होती हो, उस (यज्ञस्य) यज्ञमय देशकी (मही) भूमि (रप्सुदा) अत्यन्त उपजाऊ अर्थात् फलप्रद होती है, उस देशके लोगोंके (उभा कर्णा हिरण्यया:) दोनों कान सोनेके होते हैं ॥ १२ ॥

१ यज्ञस्य मही रप्सुदा— जहां गायें पुष्ट होती हैं उस यज्ञमय देशकी भूमि बडी उपजाऊ होती है।

२ उभा कर्णा हिरण्यया— उस देशके लोगोंके शरीर सोनेके अलंकारोंसे सजे रहते हैं।

भावार्थ - इस अग्निका रथ बडा विस्तृत और चमकीला है। जब यह अपने रथपर चढकर मेघोंमें संचार करने लगता है, तब इसके रथके बिजलीरूपी चमकीले लगाम दूरसे ही दीखने लगते हैं। तब सातों लोक इस अग्निसे पानी दुहते हैं अर्थात् सातों लोकोंको यह अग्नि जल प्रदान करता है। तब अन्य लोग भी सर्वत्र बैठकर ऊंचे स्वरसे इसकी स्तुति करते हैं ॥ १-७ ॥

धुंवेकी अवस्थामें कृष्णवर्णवाला, थोडा जलनेपर लालवर्णवाला और अत्यन्त प्रज्वलित होनेपर अत्यन्त शुभ्रवर्णवाला यह अग्नि अपनी ज्वालाओं सहित यज्ञमें जाता है, वहां अध्वर्यु आदि इस अग्निको सब ओरसे घीसे सींचते हैं। तब दसों अंगुलियोंसे सिंचित होकर यह अग्नि मेघोंमें जाकर अपनी किरणोंसे उसे मार गिराता है और पानी बरसाता है ॥ ८-९ ॥

इस अग्निकी ज्वालायेंसदा ऊपर ही चलती हैं, उसकी ज्वालायें चारों तरफ व्याप्त होती हैं। वह पानीके द्वारोंको खोल देता है, तब उसकी सब ऋत्विज स्तुति करते हैं ॥ १० ॥

जब अवर्षासे कुंवे भी सूख जाते हैं, तब लोग इस अग्निकी स्तुति करते हैं, तब यह अग्नि अपनी किरणोंको फैलाता है और तब अग्निसे प्रेरित होकर मेघ पानीसे भरे होनेके कारण पृथ्वीपर झुक जाते हैं और तब वे खूब बरस बरसकर मीठे मीठे पानीसे तालाबोंको भर देते हैं ॥ ११ ॥

वर्षाके बरसनेपर जब सारे कुंवे और तालाब भर जाते हैं, तब गायें पानीके लिए उन तालाबोंके पास आती हैं तथा पानी पीकर और हरी घास खाकर वे पुष्ट होती हैं। इस प्रकार जिस देशमें ये गायें पुष्ट होती हैं, वहांकी भूमि उपजाऊ होकर वह देश धन-धान्यसे समृद्ध होता है और वहांके निवासी भी स्वर्ण आदि धनोंसे बडे सम्पन्न होते हैं, पर यह बात यज्ञमय देशमें ही हो सकती है ॥ १२ ॥

१३२० आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥ १३ ॥
१३२१ ते जानत स्वमोक्यं१ सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ॥ १४ ॥
१३२२ उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ १५ ॥
१३२३ अधुक्षत् पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः । सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥ १६ ॥
१३२४ सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजम् ॥ १७ ॥
१३२५ उतो न्वस्य यत् पदं हर्यतस्य निधान्यम् । परि द्यां जिह्वयातनत् ॥ १८ ॥

अर्थ— [१३२०] हे लोगो ! तुम (रोदस्योः अभिश्रियं, सुते श्रियं, आसिञ्चत) द्यावापृथ्वीके बीचमें सर्वत्र कान्तिमान तथा यज्ञके आश्रयसे रहनेवाले अग्निको सिंचित करो । जिससे (रसा वृषभं दधीत) पृथ्वी वर्षा करनेवाले मेघको धारण कर सके ॥ १३ ॥

[१३२१] (वत्सासः न मातृभिः मिथः) बछडे जिस प्रकार माताओंसे परस्पर मिलते हैं, उसी प्रकार (ते स्वं ओकं जानत जामिभिः) वे गौवें भी अपने निवास स्थानको जानती हुई अपने बन्धुबान्धवों-परिवारोंके साथ (सं नसन्तः) मिलती हैं ॥ १४ ॥

[१३२२] (स्रक्वेषु बप्सतः धरुणं दिवि उप कृण्वते) इस अग्निके मुखमें डाली हुई हविको यह अग्नि अन्तरिक्षमें पहुंचाता है (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) इन्द्र और अग्निके आश्रयसेही पृथ्वीका अन्न और प्रकाश होता है ॥ १५ ॥

[१३२३] (अरिः) वेगसे चलनेवाला वायु (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) सूर्यकी सात किरणों द्वारा (पिप्युषीं इषं) पुष्टिकारक अन्न (ऊर्जं सप्तपदीं) रस और सर्पणशील चरणवाली अन्तरिक्षस्थ गौरूप मेघको (अधुक्षत्) दोहन करता है ॥ १६ ॥

[१३२४] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! (सूरे उदिता सोमस्य आ ददे) सूर्यके उदय होनेपर बलकारक सोम ओषधि मैं तैय्यार करता हूँ, क्योंकि (तत् आतुरस्य भेषजं) वह व्याधिपीडित अर्थात् रोगी मनुष्यकी औषधि है ॥ १७ ॥

[१३२५] (उतो नु) और भी निश्चय करके (अस्य हर्यतस्य) इस कान्तिमान् अग्निका (यत् पदं निधान्यं) जो स्थान निश्चित है, उसपर विराजमान होकर (द्यां परि जिह्वया अतनत्) समस्त आकाशमें अपनी ज्वालारूपी जीभको विस्तृत करता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— यज्ञोंके करनेसे पृथ्वीमें भी शक्ति उत्पन्न होती है, और तब वह वर्षा जलको सोखकर बडी उपजाऊ बनती है ! जितने ज्यादा यज्ञ किए जाएंगे, उतनी ज्यादा जलसोखनेकी शक्ति इस भूमिमें बढेगी । इस प्रकार उपजाऊ होने पर खूब धान्य और चारा उत्पन्न होगा, तब सभी गायें आपसमें मिलकर उस देशमें चरेंगी और पुष्ट होंगी ॥ १३-१४ ॥

इस अग्निके मुंहमें जो घी डाला जाता है, वह सूक्ष्म होकर अन्तरिक्षमें जा पहुंचता है, तब वहां इस अग्निके किरणोंका संयोग सूर्यकी किरणोंके साथ होता है जो मेघोंके दोहन करने उन्हें बरसानेमें कारण बनता है । इस प्रकार सूर्य और अग्नि दोनों जल बरसाकर इस पृथ्वीको धारण करते हैं ॥ १५-१६ ॥

सब मनुष्योंको चाहिए कि वे सबेरे उठकर रोज सोमरसका पान करें, क्योंकि वह सोम सब रोगोंके लिए अत्युत्तम औषध है ॥ १७ ॥

अपने निश्चित स्थान यज्ञकी वेदिमें बैठकर अग्नि अपनी ज्वालाओंको विस्तृत करता है और आकाशको पूर्ण रूपसे प्रकाशित करता है ॥ १८ ॥

[७३]

(ऋषिः- गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।)

१३२६ उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥
१३२७ निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥
१३२८ उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ३ ॥
१३२९ कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥
१३३० यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५ ॥
१३३१ अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ६ ॥
१३३२ अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ७ ॥
१३३३ वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ८ ॥

---

[७३]

अर्थ— [१३२६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ऋतायते उदीराथां) सरल मार्गसे जानेवालेके लिए तुम आओ, (रथं युंजाथां) रथको तैय्यार करो। (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारी रक्षा सदैव हमारे निकट रहे ॥ १ ॥

[१३२७] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (निमिषः चित् जवीयसा) पलकसे भी वेगवान् (रथेन आ यातं) रथसे आओ। (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण सदा हमारे पास रहें ॥ २ ॥

[१३२८] (अत्रये) अत्रि ऋषिके लिए (घर्मं हिमेन) गर्म अग्निको बर्फसे (उप स्तृणीतं) ढक चुके हो। (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहें ॥ ३ ॥

[१३२९] (कुह स्थः) भला तुम कहां रहते हो ? (कुह जग्मथुः) तुम किधर गए थे ? (श्येना इव कुह पेतथुः) बाजकी तरह तुम किधर गए थे ? ॥ ४ ॥

[१३३०] (अद्य) आज (यत्) अगर (कर्हि चित्) कहीं भी (इमं हवं शुश्रुयातं) इस प्रार्थनाको सुनो तो (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास आ जाए ॥ ५ ॥

[१३३१] (यामहूतमा अश्विना) ठीक ठीक समय बुलाने योग्य अश्विदेवोंको (नेदिष्ठं आप्यं यामि) अपना निकटतम बन्धु समझकर उनके पास जाता हूं। (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण हमारे पास सदैव रहें ॥ ६ ॥

[१३३२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवं अत्रये) तुमने अत्रिके लिए (अवन्तं गृहं कृणुतं) रक्षणमें समर्थ घर बनाया। अब (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदैव रहें ॥ ७ ॥

[१३३३] (वल्गु वदते अत्रये) सुन्दर ढंगसे भाषण करनेवाले अत्रिके लिए (आतपः अग्निं वरेथे) चारों ओरसे धधकती हुई अग्निको हटाते हो। (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण हमारे पास सदा रहें ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे देवो अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे रथकी गति कहीं भी न रुके, अपितु सरल मार्गसे सर्वत्र जाए। ऐसे वेगवान् रथसे तुम हमारे पास आओ और अपने संरक्षणमें हमारी सदा रक्षा करो ॥ १–२ ॥

हे देवो ! तुमने अत्रि ऋषिको संकटोंसे बचाया। तुम्हारी गतिका वेग ऐसा है कि तुम किस समय कहां रहते हो, यह जानना कठिन है ॥ ३–४ ॥

हे देवो ! मैं तुम्हें अपना बांधव समझकर ही तुमसे प्रार्थना करता हूं। अतः तुम अपनी संरक्षणशक्तिसे युक्त होकर हमारे पास आओ और हमारी रक्षा करो ॥ ५–६ ॥

हे देवो ! तुम सुन्दर भाषण बोलनेवालेकी रक्षा करते हो, तथा उसे गृह आदि हर तरहका सुख प्रदान करते हो ! तुम हमारी सदा रक्षा करो ॥ ७–८ ॥

१३३४ प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ९ ॥
१३३५ इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १० ॥
१३३६ किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ११ ॥
१३३७ समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १२ ॥
१३३८ यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १३ ॥
१३३९ आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १४ ॥
१३४० मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १५ ॥
१३४१ अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१३३४] (सप्तवध्रिः) सप्तवध्रिने (आशसा) आशापूर्ण प्रशंसासे (अग्नेः धारां प्र अशायत) अग्निकी ऊंची लपटको भूमितक बिछाया। (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण हमारे पास सदा रहें ॥ ९ ॥

[१३३५] हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले ! (मे इमं हवं शृणुतं) हमारी इस प्रार्थनाको सुन लो और (इह आ गतं) यहां हमारे पास आओ, (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) सदा हमारे पास रहें ॥ १० ॥

[१३३६] (वां) तुम दोनोंके बारेमें (किं इदं) यह क्या है ? (जरतोः पुराणवत् शस्यते) बूढोंको जैसी पुरानी बात अच्छी लगती है, वैसे ही बताया जाता है। (वां अवः) तुम्हारे संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहें ॥ ११ ॥

[१३३७] (वां सजात्यं समानं) तुम्हारा उत्पन्न होना समान है, और हे (अश्विना) अश्वि देवो ! (बन्धुः समानः) बांधव भी समान है। (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण सदा हमारे पास रहें ॥ १२ ॥

[१३३८] (वां यः रथः) तुम्हारा जो रथ (रोदसी रजांसि वियाति) द्युलोक, भूलोक तथा अन्य लोकोंको पार करके चला जाता है, (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहे ॥ १३ ॥

[१३३९] (नः सहस्रैः) हमारे समीप हजारों (गव्येभिः अश्व्यैः) गायों और घोडोंके झुण्डोंके साथ (आ उप गच्छतं) समीप आओ (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) सदा हमारे पास रहे ॥ १४ ॥

[१३४०] (सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्यैः) हजारों गौओं और घोडोंके झुण्डोंके साथ (नः मा अति ख्यतं) हमें छोड मत जाओ, (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) सदा हमारे पास रहे ॥ १५ ॥

[१३४१] (उषाः अरुणप्सुः) उषःकाल लालरूपवाला (अभूत्) हो गया है, (ऋतावरी ज्योतिः अकः) ऋतसे युक्त यह उषा प्रकाशका सृजन कर चुकी है, अतः (वां अवः) तुम्हारा संरक्षण (अन्ति सत् भूतु) हमारे पास सदा रहे ॥ १६ ॥

भावार्थ— हम अग्निकी ज्वालाओंको प्रदीप्त करके, हे अश्विनी देवो ! हम तुम्हें बुलाते हैं, तुम हमारे यज्ञमें आकर हमें संरक्षण प्रदान करो ॥ ९-१० ॥

जिस तरह बूढोंको सदा पुरानी बातें ही अच्छी लगती हैं, उसी तरह अश्विदेवोंकी प्राचीन स्तुतियां अच्छी लगती हैं। जो इनकी उपासना करता है, उसके साथ ये अपने भाईके समान व्यवहार करते हैं ॥ ११-१२ ॥

इन अश्विदेवोंका रथ सर्वत्र गमन करनेवाला है, उनके रथकी गति कहीं नहीं रुकती। हे देवो ! तुम हमारे समीप आकर हमारी रक्षा करो ॥ १३-१४ ॥

हे देवो ! हमारा त्याग मत करो, अपितु घोडे गाय आदि समूहोंके साथ हमारे पास आओ। जब उषा अपना प्रकाश प्रकट कर चुके, तब तुम हमारे पास आकर हमारी रक्षा करो ॥ १५-१६ ॥

१३४२ अश्विना सु विचाकशद् वृक्षं परशुमाँ इव । अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १७ ॥
१३४३ पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा । अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १८ ॥

[७४]

(ऋषिः- गोपवन आत्रेयः । देवता:- अग्निः, १३-१५ आर्क्षः श्रुतर्वा । छन्दः- १-१२ अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः = (अनुष्टुप् + गायत्र्यौ), १३-१५ अनुष्टुप् ।)

१३४४ विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥
१३४५ यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥
१३४६ पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद् दिवि ॥ ३ ॥
१३४७ आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥

अर्थ— [१३४२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (परशुमान् वृक्षं इव) हाथमें कुल्हाडी रखनेवाला जिस तरह पेडको तोड डालता है, वैसे ही सूर्य अन्धेरेको मिटाकर (विचाकशत्) प्रकाशित हो गया है । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारा संरक्षण सदा हमारे पास रहे ॥ १७ ॥

[१३४३] हे (धृष्णो) साहसी ! (कृष्णया विशा बाधितः) काली प्रजासे पीडित तू (पुरं न रुज) शत्रुनगरीको जैसे इन्द्रने नष्ट किया था, वैसे ही उस काली प्रजाका नाश कर । (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारे संरक्षण सदा हमारे पास रहे ॥ १८ ॥

[७४]

[१३४४] हे मनुष्यो ! (वः वाजयन्तः विशोविशः अतिथिं पुरुप्रियं अग्निं) तुम सब अन्नकी कामना करते हुये, समस्त प्रजाओंके पूज्य अतिथि, बहुतोंके प्रिय अग्निका स्तुतियों द्वारा पूजन करो । और मैं भी (वः शूषस्य दुर्यं वचः मन्मभिः स्तुषे) तुम्हारे सुख लाभके लिये अरणिमें निहित अग्निकी वचन और मननीय स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१३४५] (हविष्मन्तः जनासः) उत्तम हविको हाथमें लेकर मनुष्य लोग (यं सर्पिरासुतं मित्रं न) जिस घृतसे प्रदीप्त करने योग्य अग्निकी मित्रकी तरह (प्रशस्तिभिः प्रशसन्ति) श्रेष्ठ स्तोत्रोंसे प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

[१३४६] (यः देवतातिं उद्यता हव्यानि दिवि ऐरयत्) जो अग्नि, यज्ञमें उत्तम रीतिसे प्राप्त हव्यपदार्थोंको द्युलोकमें देवोंके लिये प्रेरित करता है, उस (जातवेदसं पन्यांसं) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले सर्वज्ञ, स्तुतिके योग्य अग्निको हम सब प्राप्त करें ॥ ३ ॥

[१३४७] (यस्य अनीके बृहन् आर्क्षः श्रुतर्वा एधते) जिस अग्निके ज्वालाके समूहरूप सेनासे महान् शत्रुको पीडित करनेमें समर्थ प्रसिद्ध योद्धा वृद्धिको प्राप्त होता है । (वृत्रहन्तमं ज्येष्ठं आनवं अग्निं आ अगन्म) उस पापोंको पूर्णरूपसे नष्ट करनेवाले, सबसे बडे मनुष्योंके हितैषी अग्निको सब ओरसे प्राप्त हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— जिस तरह कोई परशुधारी मनुष्य पेडोंको आसानीसे काट डालता है, उसी तरह सूर्य अन्धकारका विनाश करता है । हे देवो ! तुम काली अर्थात् दुष्ट कर्म करनेवाले राक्षसोंकी प्रजाओंका नाश करके हमारी रक्षा करो ॥ १७-१८ ॥

हे मनुष्यो ! अन्नकी इच्छा करते हुए तुम इस पूज्य अग्निकी स्तुति करो और मैं भी तुम्हारे सुखके लिए तथा हितके लिए अग्निकी प्रशंसा और स्तुति करता हूँ ॥ १-२ ॥

यह अग्नि आहुतिरूपमें डाले गए हव्य पदार्थोंको बहुत सूक्ष्म बनाकर ऊपर द्युलोकमें पहुंचाता है, और उसके द्वारा वायुमण्डलको शुद्ध बनाकर सारे संसारका हित करता है । इसी अग्निकी सहायतासे वीर शत्रुओंका नाश करते हैं ॥ ३-४ ॥

+

१३४८ अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥
१३४९ सबाधो यं जना इमे ऽग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः ॥ ६ ॥
१३५० इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतो ऽमूर दस्मातिथे ॥ ७ ॥
१३५१ सा ते अग्ने शंतमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥
१३५२ सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥ ९ ॥
१३५३ अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः ॥ १० ॥

अर्थ— [१३४८] (अमृतं जातवेदसं तमांसि तिरः दर्शतं) अमृत स्वरूप, संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाला, अन्धकारको दूर करके सत्यज्ञानको दर्शानेवाला और (घृताहवनं ईड्यं) घृतसे आहुत किये जाने योग्य, स्तुत्य अग्निकी इस माननीय स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[१३४९] (इमे सबाधः जुह्वानासः यतस्रुचः) ये सब लोग यज्ञ करते हुये हाथमें स्रुवेके दण्डको धारण किये हुये (यं अग्निं हव्येभिः ईळते) जिस अग्निकी हवियोंसे स्तुति करते हैं, उसे हम प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[१३५०] हे (मन्द्र, सुजात, सुक्रतो, अमूर दस्म अतिथे अग्ने) हर्षजनक सुखस्वरूप शुभ कर्म और प्रज्ञावाले मेधावी दर्शनीय और अतिथिवत् पूज्य अग्ने ! (ते इयं नव्यसी मतिः अस्मत् अधायि) तेरी यह स्तुतिके योग्य ज्ञानमयी बुद्धि हमारेमें स्थिर हो ॥ ७ ॥

१ ते इयं नव्यसी मतिः अस्मत् अधायि— तेरी यह स्तुतिके योग्य बुद्धि हमारे अन्दर स्थिर हो ।

[१३५१] हे (अग्ने) अग्ने ! (सा शंतमा चनिष्ठा ते प्रिया भवतु) वह हमारे द्वारा की गई स्तुति अत्यन्त सुखकारी, अन्नवती और तेरे लिये प्रियकारी हो । (तया सुष्टुतः वर्धस्व) उस स्तुतिसे अच्छी प्रकार प्रशंसित होकर तू वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ८ ॥

[१३५२] हे अग्ने ! हमारी (सा द्युम्नैः द्युम्निनी) वह प्रकाशमान यथेष्ट तेजवाली स्तुति (वृत्रतूर्ये श्रवसि बृहत् श्रवः उपोप दधीत) रणक्षेत्रमें यशोंमें श्रेष्ठ विशाल यशको शत्रुओंसे छीनकर हमें प्रदान करनेवाली हो ॥ ९ ॥

[१३५३] (गां अश्वं इत्) गौके समान, अश्वके समान (रथप्रां) महारथीके समान (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (सत्पतिं त्वेषं) सज्जनोंके पालक दीप्तिमान् अग्निकी मनुष्य परिचर्या करते हैं । (यस्य श्रवांसि च पन्यं पन्यं तूर्वथ) जिस अग्निके बलसे लोग श्रेष्ठ अन्नों और उत्तम ऐश्वर्योंको प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपने मित्रकी शक्तिको बढानेवाला, अमृतरूप तथा अन्धकारको हटाकर सत्य ज्ञानको दिखानेवाला है । इस अग्निको प्रसन्न करनेके लिए मनुष्य यज्ञमें घृतकी आहुतियां देते हैं ॥ ५-६ ॥

हे अग्ने ! हमारे अन्दर तेरी स्तुतिके योग्य बुद्धि स्थिर हो और उस उत्तम बुद्धिसे प्रेरित होकर हम तेरी अत्यन्त उत्तम स्तुति करें । वह स्तुति हमारे लिए भी सुखकारी एवं अन्नको देनेवाली हो, साथ ही तुझे भी उन्नत करे ॥ ७-८ ॥

हे अग्ने ! हमें ऐसा बल दे कि हम शत्रुओंको हराकर विशाल यश प्राप्त करें तथा तेरी इन्द्रके समान सेवा करें और सज्जनोंका पालन करें । इस प्रकार तेरी कृपासे हम उत्तम ऐश्वर्योंको प्राप्त करें ॥ ९-१० ॥

१३५४ यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥
१३५५ यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधि वृत्रतूर्ये ॥ १२ ॥
१३५६ अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥ १३ ॥
१३५७ मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन् वयो न तुग्र्यम् ॥ १४ ॥
१३५८ सत्यमित् त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥ १५ ॥

[७५]

(ऋषिः- विरूप आङ्गिरसः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१३५९ युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥ १ ॥

अर्थ— [१३५४] हे (पावक अंगिरः अग्ने) पवित्र करनेवाले तेजस्विन् अग्ने ! (यं त्वा) जिस तुझे (गोपवनः) वाणीके पालक ऋषिने (गिरा चनिष्ठत्) अपनी वाणीके द्वारा अतिशय बलशाली बनाया। (सः हवं (श्रुधि वह प्रसिद्ध तू हमारे आह्वानको भी सुन ॥ ११ ॥

[१३५५] हे अग्ने ! (यं त्वा) जिस तुझे (जनासः सबाधः) स्तोतालोग तथा बाधासे पीडित दुःखीजन (वाजसातये ईळते) बलकी प्राप्तिके लिए बुलाते हैं, (सः वृत्रतूर्ये बोधि) वह तू शत्रुओंके नाश अथवा पापक्षयके लिए हमें ज्ञानयुक्त कर ॥ १२ ॥

[१३५६] (मदच्युति आर्क्षे श्रुतर्वणि) शत्रुओंके अहंकारको नष्ट करनेवाले ऋक्षके पुत्र श्रुतर्वाके यज्ञमें (हुवानः अहं) बुलाये गये मैंने (स्तुकाविनां शर्धांसि इव) भेडोंके बालोंके समान (चतुर्णां शीर्षा मृक्षा) चार घोडोंके सिरोंको शुद्ध किया ॥ १३ ॥

[१३५७] (शविष्ठस्य) बलशाली श्रुतर्वणके (सुरथासः) उत्तम रथोंवाले (द्रवित्नवः चत्वारः आशवः) शीघ्रगामी चार घोडोंने (मां) मुझे (प्रयः अभि वक्षन्) मेरे लक्ष्य स्थान पर उसी तरह पहुंचा दिया, (वयः तुग्र्यं न) जिस तरह पक्षियोंने तुग्रके पुत्र भुज्युको उसके स्थान पर पहुंचाया था ॥ १४ ॥

[१३५८] हे (महेनदि परुष्णि) महानदी परुष्णि ! (त्वा) तुझसे मैं (सत्यं इत् अव देदिशं) सचमुच ही कहता हूँ, हे (आपः) जलो ! तुमसे भी सच कहता हूँ कि (ईम् शविष्ठात्) इस बलवान् श्रुतर्वाकी अपेक्षा अधिक (अश्व दातरः) घोडे देनेवाला (मर्त्यः न अस्ति) मनुष्य और कोई नहीं है ॥ १५ ॥

[७५]

[१३५९] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवहूतमान् अश्वान् रथी इव युक्ष्व) देवताओंको बुलाकर लानेवाले वेगवान् अश्वोंको सारथीके समान अपने रथमें जोड, और (होता पूर्व्यः निषदः) होम निष्पादक और सबसे मुख्य होकर रथमें विराजमान हो ॥ १ ॥

भावार्थ— जो ज्ञानी पुरुष उत्तम रीतिसे अपनी वाणीका पालन करता है, वही पुरुष अपने शरीरस्थ अग्निको प्रदीप्त करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता, अपितु शक्तिशाली होता है। मौन पालन करनेसे मनुष्यकी शक्ति बढती है, इस कारण वह कभी दुःखी नहीं होता ॥ ११-१२ ॥

ज्ञानी वीरके यज्ञमें ज्ञानी ब्राह्मणोंको घोडे दानमें दिए जाते थे ॥ १३ ॥

घोडे शीघ्रगामी, बलशाली तथा रथके स्वामीको उसके लक्ष्य स्थान पर पहुंचानेवाले हों। ज्ञानी ब्राह्मणको अधिकसे अधिक घोडोंका दान किया जाए ॥ १४-१५ ॥

१३६० उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः । श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥
१३६१ त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥ ३ ॥
१३६२ अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ ४ ॥
१३६३ तं नेमिमृभवो यथा ऽऽनमस्व सहूतिभिः । नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ ५ ॥
१३६४ तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥
१३६५ कमु ष्विदस्य सेनया ऽग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥ ७ ॥
१३६६ मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ ८ ॥

अर्थ-- [१३६०] हे (देव) दिव्य गुण युक्त अग्ने! तू (विदुष्टरः नः देवान् अच्छा वोचः) उत्तम विद्वान् होकर हम सब विद्वानोंको उपदेश दे। (उत विश्वा वार्या श्रत् कृधि) और सम्पूर्ण वरण करने योग्य ज्ञानोंको सत्य रूपमें प्रकट कर ॥ २ ॥

[१३६१] हे (यविष्ठ्य, सहसः सूनो, आहुत) सबसे अधिक तरुण, बलके पुत्र और आहुति द्वारा प्रज्वलित किये गये अग्ने! (त्वं यत् ह ऋतावा यज्ञियः भुवः) तू चूंकि सत्यका पालक और यज्ञके योग्य है, इसीलिए तेरी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥

[१३६२] (अयं अग्निः) यह अग्नि (शतिनः सहस्रिणः, वाजस्य पति) सैकडों और हजारों संख्यावाले अन्नका स्वामी (रयीणां मूर्धा कविः) ऐश्वर्योंका शिरःस्थानीय प्रमुख और मेधावी है ॥ ४ ॥

[१३६३] हे (अङ्गिरः) अंगारसोंके ज्ञाता अग्ने! (यथा ऋभवः नेमि) जिस प्रकार विद्वान् शिल्पी लोग रथनेमिको उत्तम बनाते हैं, उसी प्रकार तू भी (सहूतिभिः नेदीयः तं यज्ञं नमस्व) समान रूपसे आह्वान करने योग्य देवोंके साथ अत्यन्त समीप उस यज्ञको उत्तम और पूज्य बना ॥ ५ ॥

[१३६४] हे (विरूप) विशेषरूपवान् जन! तू (तस्मै अभिद्यवे वृष्णे) उस तेजस्वी बलवान् अग्निकी (नित्यया वाचा नूनं सुष्टुतिं चोदस्व) अविनाशी वाणीसे निश्चयरूपसे उत्तम स्तुति कर ॥ ६ ॥

[१३६५] (अस्य अपाकचक्षसः अग्नेः) इस विशाल दृष्टिवाले अग्निकी (सेनया) ज्वालासे हम (गोषु कमु स्वित् पणिं स्तरामहे) गौवोंके बीचमें स्थित किस पणिनामक राक्षसको उस गौवोंकी प्राप्तिके निमित्तसे मारें ॥ ७ ॥

[१३६६] हे अग्ने! (देवानां विशः) सब देवोंकी प्रजाएं (प्रस्नातीः उस्राः इव नः मा हासुः) दूध देनेवाली गौवोंकी तरह हम लोगोंको न छोडें। जिस प्रकार (अघ्न्याः कृशं न) गायें अपने निर्बल बच्चोंको नहीं त्यागती हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार कुशल रथी उत्तम घोडोंको रथमें जोडकर उसपर विद्वानोंके साथ बैठते हैं, उसी प्रकार यह अग्नि भी यज्ञका सम्पादन उत्तम रीतिसे करता हुआ उस यज्ञमें श्रेष्ठ विद्वानोंके साथ विराजमान् होवे। अग्नि स्वयं भी विद्वान् और श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, इसलिए वह दूसरे विद्वानोंका सम्मान करता है और उनको सशक्तिमान् बनाना जानता है ॥ १-२ ॥

यह अग्रणी हमेशा सत्यके मार्गपर चलनेवाला और सत्यकी रक्षा करनेवाला होनेके कारण पूज्य है। इस प्रकार पूज्य होनेके कारण वह अनेक तरहके अन्नोंका स्वामी है और सभी तरहकी सम्पत्तियोंपर अधिकार करता है ॥ ३-४ ॥

जिस प्रकार कारीगर रथकी नाभिको नवाकर उसे सुन्दर और सरलतासे चलने योग्य बनाते हैं, उसी प्रकार हे अग्ने! तू भी हमारे यज्ञोंको सुन्दर बनाकर उनमें देवोंको बुला ला। हे सुन्दर रूपवान् मनुष्य! तू भी अपनी उत्तम और मधुर वाणीसे इस बलवान् अग्निकी रोज स्तुति किया कर ॥ ५-६ ॥

यह अग्नि अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टिवाला है अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थोंके बारेमें भी सब कुछ जानता है। यह अपनी ज्वालाओंसे अन्धकाररूपी असुरोंको मार भगाता है। तथा अपने उपासकोंकी हर तरहसे रक्षा करता है जिस प्रकार दुधारु गायें अपने बछडोंपर बहुत ज्यादा प्रेम करती हैं और कभी भी उनका त्याग नहीं करतीं, उसी तरह अग्नि भी अपने उपासकोंका कभी त्याग नहीं करता ॥ ७-८ ॥

१३६७ मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ९ ॥
१३६८ नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥ १० ॥
१३६९ कुवित् सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ ११ ॥
१३७० मा नो अस्मिन् महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥ १२ ॥
१३७१ अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥ १३ ॥
१३७२ यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥ १४ ॥
१३७३ परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर । यत्राहमस्मि ताँ अव ॥ १५ ॥

अर्थ— [१३६७] (न ऊर्मिः नावं आ) जिस प्रकार समुद्रकी तरङ्ग नौकाको सब ओरसे आघात पहुँचाती है, उसी प्रकार (समस्य, परिद्वेषसः दूढ्यः अंहतिः मा वधीत्) सबसे सब प्रकारसे द्वेष करनेवाले पाप बुद्धिवालेकी आघात पहुँचनेकी प्रवृत्ति हम लोगोंको कभी भी पीडित न करे ॥ ९ ॥

[१३६८] हे (देव अग्ने) तेजस्विन् अग्ने ! (ते ओजसे कृष्टयः नमः गृणन्ति) तेरे बलके लिये सब मनुष्य विनयपूर्वक नमस्कार करते हैं। तू अपने (अमैः अमित्रं अर्दय) बलोंसे शत्रुका नाश कर ॥ १० ॥

[१३६९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (नः गविष्टये कुवित् रयिं संवेषिषः) हमको गौ अथवा भूमिको प्राप्त करनेके लिये बहुत धन अच्छी प्रकार प्रदान कर। तू (उरुकृत्, नः उरु कृधि) हर प्रकारकी उन्नति करनेवाला है अतः हमारे धनकी वृद्धि कर ॥ ११ ॥

[१३७०] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा भारभृत्) जिस प्रकार बोझको ढोनेवाला थककर बोझको दूर फेंक देता है, उसी प्रकार तू (नः अस्मिन् महाधने मा परा वर्क्) हमारा इस महा संग्राममें मत परित्याग कर, अपितु (संवर्गं रयिं संजय) शत्रुओंके धनका विजय कर ॥ १२ ॥

[१३७१] हे (अग्ने) अग्ने ! तेरी (इयं दुच्छुना अस्मत् अन्यं भिये सिषक्तु) यह दुःखदायिनी शक्ति हमसे भिन्न दूसरेको भयभीत करे। तू (नः अमवत् शवः वर्ध) हमारे बलसे युक्त वेगको बढा ॥ १३ ॥

[१३७२] (यस्य नमस्विनः वा अदुर्मखस्य शमीं अग्निः अजुषत) जिस नमस्कारके करनेवाले अथवा अदोषयुक्त यज्ञके करनेवालेके कर्मको अग्नि स्वीकार कर लेता है, (तं घ इत् वृधा अवति) उसकी वह वृद्धियुक्त संपदासे रक्षा करता है ॥ १४ ॥

[१३७३] हे अग्ने ! (परस्याः संवतः अवरान् अभि अधि आ तर) शत्रुओंकी सेनाकी अपेक्षा हमारी सेनामें सम्मिलित होकर उसका उद्धार कर। और (यत्र अहं अस्मि तान् अव) जिस सेनामें मैं हूँ उसकी रक्षा कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! लोग तुझसे सामर्थ्यको प्राप्त करनेके लिए तेरी स्तुति करते हैं, अतः तू उन्हें सामर्थ्य प्रदान करके उनके शत्रुओंका नाश कर ताकि तेरे उपासकोंके शत्रु उपासकोंका नाश न कर सकें ॥ ९-१० ॥

हे अग्ने ! जिस प्रकार एक बोझ ढोनेवाला भारसे तंग आकर उसे दूर फेंक देता है, उसी प्रकार तू भी हमसे तंग आकर हमें दूर न फेंक दे, अपितु तू हमारी हर तरहसे सहायता करके हमें शत्रुओंका धन दिला, ताकि उस धनसे हम गाय और भूमि आदि प्राप्त कर सकें। इस प्रकार हमारी हर तरहसे उन्नति कर ॥ ११-१२ ॥

इस अग्निकी सन्ताप देनेवाली शक्ति शत्रुओंको ही भयभीत करती है, अपने मित्रोंको नहीं। इसके विपरीत जिस नम्रतापूर्वक उपासना करनेवाले और दोषरहित यज्ञ करनेवालेके कर्मकी यह अग्नि प्रशंसा करता है, उसकी सेनाकी शक्तिको बढाकर अग्नि उसकी हर तरहसे रक्षा करता है ॥ १३-१५ ॥

१३७४ विद्म हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ १६ ॥

[७६]

(ऋषिः- कुरुसुतिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

१३७५ इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा । मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥
१३७६ अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥
१३७७ वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥ ३ ॥
१३७८ अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥ ४ ॥
१३७९ मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम् । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥ ५ ॥
१३८० इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

अर्थ— [१३७४] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा अवसः पितुः) जिस प्रकार रक्षक पिताके उत्तम सुखको पुत्र चाहता है, उसी प्रकार (ते सुम्नं पुरा हि विद्म) रक्षक तेरे सुखको हम जैसे पहले जानते थे, वैसा ही अब भी जानते हैं । (अधा ते ईमहे) अब उस सुखकी ही तुझसे हम याचना करते हैं ॥ १६ ॥

[७६]

[१३७५] मैं (मायिनं) प्रज्ञावाले (ओजसा ईशानं) बलसे सब पर शासन करनेवाले, (मरुत्वन्तं) मरुतोंसे युक्त (न) प्रशंसित (इमं इन्द्रं) इस इन्द्रको (वृञ्जसे) शत्रुओंको मारनेके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥१॥

[१३७६] (मरुत्सखा अयं इन्द्रः) मरुतोंकी सहायतासे युक्त इस इन्द्रने (शत पर्वणा वज्रेण) सैकडों धाराओंवाले वज्रसे (वृत्रस्य शिरः) वृत्रके सिरको (वि अभिनत्) काट डाला ॥ २ ॥

[१३७७] (मरुत्सखा वावृधानः इन्द्रः) मरुतोंके मित्र, बढते हुए इन्द्रने (समुद्रिया अपः सृजन्) अन्तरिक्षमें स्थित पानियोंको बहाते हुए (वृत्रं वि ऐरयत्) वृत्रको मारा ॥ ३ ॥

[१३७८] (अयं ह) यह ही [वह इन्द्र है] (येन इन्द्रेण) जिस इन्द्रने (सोमपीतये) सोमपानके लिए (मरुत्वता इदं स्वः जितं) मरुतोंकी सहायतासे इस स्वर्गको जीत लिया था ॥ ४ ॥

[१३७९] (मरुत्वन्तं, ऋजीषिणं) मरुतोंसे युक्त, सरल स्वभाववाले (ओजस्वन्तं विरप्शिनं) ओजवाले तथा महान् (इन्द्रं) इन्द्रको हम (गीर्भिः) स्तुतियोंसे सहायार्थ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[१३८०] हम (प्रत्नेन मन्मना) प्राचीन स्तोत्रसे (मरुत्वन्तं इन्द्रं) मरुतोंकी सहायतावाले इन्द्रको (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमको पीनेके लिए (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! यह हम अच्छी तरह जानते थे और अब भी इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि तू ही एकमात्र सब सुखोंका प्रदान करनेवाला है । तेरे सिवाय और कोई सुख प्रदान करनेवाला नहीं है । इसीलिए हम तुझसे सुखकी कामना करते हैं । तू हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर हमारे पक्षमें आ मिल और हमारी उन्नति कर ॥ १५–१६ ॥

उत्तम बुद्धिवाले तथा बलसे सब पर शासन करनेवाले, मरुतोंकी सहायतासे युक्त इन्द्रने अपने उपासकोंकी प्रार्थना पर शत्रुओंका विनाश किया ॥ १–२ ॥

मरुतों अर्थात् वायुकी सहायतासे इस इन्द्र अर्थात् विद्युतने वृत्र मेघोंको मारकर अन्तरिक्षरूपी समुद्रमें भरे हुए जलोंको पृथ्वी पर बहनेके लिए मुक्त किया ॥ ३–४ ॥

हम अपनी मधुर प्रार्थनाओंसे सरल स्वभाववाले, ओजस्वी और महान् इन्द्रको सोमपान करनेके लिए बुलाते हैं ॥ ५–६ ॥

१३८१ मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो । अस्मिन् यज्ञे पुरुष्टुत ॥ ७ ॥
१३८२ तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः । हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥
१३८३ पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥
१३८४ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ १० ॥
१३८५ अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ ११ ॥
१३८६ वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १२ ॥

[७७]

(ऋषिः- कुरुसुतिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री १०-११ प्रगाथः = (बृहती, सतोबृहती) ।)

१३८७ जज्ञानो नु शतक्रतु र्वि पृच्छादिति मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥ १ ॥

अर्थ— [१३८१] हे (मरुत्वान् मीढ्वः शतक्रतो पुरु-स्तुत इन्द्र) मरुतोंसे युक्त, सुखकी वर्षा करनेवाले, सैकडों शुभकर्मोंके कर्ता तथा अनेकोंसे बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (अस्मिन् यज्ञे सोमं पिब) तू इस यज्ञमें सोम पी ॥७॥

[१३८२] हे (अद्रिवः इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (मरुत्वते तुभ्या इत्) मरुतोंवाले तेरे लिए ही जिन्होंने (सोमासः सुताः) सोमोंको निचोडा है, ऐसे (उक्थिनः) स्तोता गण तुझे (हृदा हूयन्ते) हृदयसे बुलाते हैं ॥८॥

[१३८३] हे (मरुत्सखा इन्द्र) मरुतोंके मित्र इन्द्र ! हमारे (दिविष्टिषु इत्) यज्ञोंमें ही (ओजसा वज्रं शिशानः) बलसे वज्रको तीक्ष्ण करते हुए (सुतं सोमं पिब) सोमको पी ॥ ९ ॥

[१३८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (चमू सुतं सोमं) पात्रमें निकाले गए सोमको (पीत्वी) पीकर (ओजसा सह उत्तिष्ठन्) बलके साथ उठकर अपने (शिप्रे अवेपयः) शिरस्त्राणको कंपा ॥ १० ॥

[१३८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यद्) जब तू (दस्यु-हा भवः) राक्षसको मारते हो, तब (क्रक्षमाणं त्वा) शत्रुको मारनेवाले तुझको (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक (अनु अकृपेताम्) समर्थ करते हैं ॥ ११ ॥

१ क्रक्षमाणं इन्द्रं उभे रोदसी अकृपेताम्— शत्रुको मारनेवाले इन्द्रको दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोक सामर्थ्यवान् करते हैं ।

[१३८६] (अष्टापदीं नवस्रक्तिं, ऋतस्पृशं तन्वं) आठ पदोंवाली, नौ स्रक्तियोंवाली, यज्ञमें प्रयुक्त, विस्तृत (वाचं) स्तुतिको (अहं) मैं (इन्द्रात् परि ममे) इन्द्रके लिए करता हूँ ॥ १२ ॥

[७७]

[१३८७] (जज्ञानः नु शतक्रतुः) उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपनी (मातरं इति वि पृच्छत्) मातासे इस प्रकार पूछा, कि (के के ह उग्राः शृण्विरे) कौन कौन वीर सुने जाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ — हे वज्रधारी इन्द्र ! मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाले तेरे लिए ही यह सोमरस निचोडकर रखा गया है, अतः सुखकी वर्षा करनेवाला और सैकडों शुभ कर्मोंको करनेवाला तू हमारे पास आकर सोम पी ॥ ७-८ ॥

हे मरुतोंके मित्र इन्द्र ! यज्ञोंमें अपने बलको प्रकट करके तू इन सोमरसोंको पी और हर्षको प्राप्त हो ॥ ९-१० ॥

जब इन्द्र राक्षसोंको मारता है, तब सभी लोक इस इन्द्रकी शक्तिको बढाते हैं, और उसके लिए स्तुतियां की जाती हैं ॥ ११-१२ ॥

१३८८ आदीं शवस्यब्रवी—दौर्णवाभमहीशुवम् । ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ २ ॥
१३८९ समित् तान् वृत्रहाखिदत् खे अराँ इव खेदया । प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ॥ ३ ॥
१३९० एकया प्रतिधापिबत् साकं सरांसि त्रिंशतम् । इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥ ४ ॥
१३९१ अभि गन्धर्वमतृण—दबुध्नेषु रजःस्वा । इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे ॥ ५ ॥
१३९२ निराविध्यद्गिरिभ्य आ धारयत् पक्वमोदनम् । इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६ ॥
१३९३ शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत् । यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥ ७ ॥
१३९४ तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे । सद्यो जात ऋभुष्ठिर ॥ ८ ॥

अर्थ— [१३८८] (आत्) पूछनेके बाद ही (शवसी ईं अब्रवीत्) बलवती माताने इन्द्रसे कहा, कि हे (पुत्र) पुत्र ! (और्णवाभं अहीशुवं) और्णवाभ और अहीशुव ये दो असुर (ते निस्तुरः सन्तु) तेरे द्वारा मारने योग्य हों ॥ २ ॥

[१३८९] तब (वृत्र-हा) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने (तान् सं इत्) उन असुरोंको एक साथ ही (खे अरान् इव) जैसे रथकी नाभिमें अरोंको बांधते हैं, उसी प्रकार (खेदया) बन्धनसे (अखिदत्) बांध दिया, और तब (दस्यु-हा) असुरोंको मारनेवाला वह इन्द्र (प्र-वृद्धः अभवत्) बढा ॥ ३ ॥

[१३९०] (इन्द्रः) यह इन्द्र (सोमस्य) सोमके (त्रिंशतं काणुका सरांसि) तीस सुन्दर पात्रोंको (साकं) एक साथ (एकया प्रतिधा अपिबत्) एक ही सांसमें पी गया ॥ ४ ॥

प्रतिधा— पीनेके लिए पात्रमें होंठ लगाना

[१३९१] (इन्द्रः) इन्द्रने (ब्रह्मभ्यः इत् वृधे) ज्ञानियोंको बढानेके लिए (अ-बुध्नेषु रजःसु) मूल रहित लोकोंमें स्थित (गन्धर्वं) मेघको (अभि आ अतृणत्) चारों ओरसे मारा ॥ ५ ॥

[१३९२] (इन्द्रः) इन्द्रने (गिरिभ्यः निः अविध्यत्) मेघोंसे [पानीको] निकाला और (सु आततं बुन्दं) विस्तृत शस्त्रको तथा (पक्वं ओदनं) पके हुए अन्नको (आ धारयत्) धारण किया ॥ ६ ॥

[१३९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यं युजं चकृषे) जिसको [अपने धनुषमें] संयुक्त करता है, वह (तव इषुः) तेरा बाण (शत ब्रध्नः) सैकडों धाराओंवाला, तथा (सहस्रपर्णः) हजारों पंखवाला तथा (एकः इत्) एक ही है ॥ ७ ॥

१ तव इषुः शतब्रध्नः, सहस्रपर्णः, एकः इत्— हे इन्द्र ! तेरा बाण सौ धाराओंवाला, हजारों पंखवाला तथा एक ही है।

[१३९४] हे (ऋभु-स्थिर) संग्राममें स्थिर रहनेवाले इन्द्र ! (सद्यः जातः) शीघ्र ही उत्पन्न होकर तू (तेन) उस बाणसे (स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः) स्तोताओं, मनुष्यों और स्त्रियोंके (अत्तवे) खानेके लिए [अन्न] (आ भर) ले आ ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्रने उत्पन्न होते ही अपने शत्रुओंके बारेमें जानकर उनका नाश करना शुरु कर दिया। वीर वही होते हैं कि जो अपने शत्रुओंको नहीं रहने देते ॥ १-२ ॥

वीर इन्द्रने सब असुरोंको बन्धनमें उसी तरह बांध दिया कि जिस तरह रथकी नाभिमें अरे बंधे हुए होते हैं, और फिर उनको मारनेके लिए वह बलशाली हुआ। शत्रुओंका नाश करके यह इन्द्र सोम पीकर हर्षित होता है ॥ ३-४ ॥

इन्द्रने पृथ्वी पर ज्ञानियोंको सम्पन्न करनेके लिए निराधार होने पर भी टिके हुए अन्तरिक्षमें पडे हुए मेघोंको प्रेरित करके पानी बरसाया और उस वृष्टिसे अन्न उत्पन्न किया ॥ ५-६ ॥

इन्द्रके बाणोंमें अनेक धार हैं। उन बाणोंसे वह शत्रुओंका नाश करके अपने उपासकों और अन्य प्रजाओंको अन्नादिसे सम्पन्न करता है ॥ ७-८ ॥

१३९५ एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि परीणसा । हृदा वीड्वधारयः ॥ ९ ॥

१३९६ विश्वेत् ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥ १० ॥

१३९७ तुविक्षं ते सुकृतं सुमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः ।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा ॥ ११ ॥

[७८]

(ऋषिः- कुरुसुतिः काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, १० बृहती ।)

१३९८ पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर । शता च शूर गोनाम् ॥ १ ॥

१३९९ आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् । सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

अर्थ— [१३९५] हे इन्द्र ! (एता वर्षिष्ठानि च्यौत्नानि ते कृता) ये बलवान् सेनायें तेरे द्वारा संगठित की गई हैं, अतः इनको (वीडु परीणसा हृदा) स्थिर तथा कोमल हृदयसे (अ धारयः) धारण कर ॥ ९ ॥

[१३९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वा इषितः) तुझसे प्रेरित हुआ (उरु क्रमः) महान् पराक्रमवाला (विष्णुः) विष्णु (शतं महिषान्) सौ बलवान् बैलोंको (क्षीर-पाकं ओदनं) दूधमें पके हुए भात तथा (एमुषं वराहं) जलसे भरे हुए मेघ (ता विश्वा इत्) उन संपूर्ण पदार्थोंको (आभरत्) ले आया ॥ १० ॥

[१३९७] हे इन्द्र ! (ते धनुः) तेरा धनुष (तुविक्षं) बहुत बाण फेंकनेवाला, (सु-कृतं) अच्छी तरह बनाया हुआ और (सुमयं) अत्यन्त सुखकारी है, तथा तेरा (बुन्दः) बाण भी (साधुः) उत्तम और (हिरण्ययः) सोनेसे युक्त है, तथा (ते उभा बाहू) तेरी दोनों भुजायें (रण्या सु-संस्कृत) सुखकारी, उत्तम (ऋत् रूपे) शत्रुके नाशक तथा (ऋधूवृधा चित्) यज्ञको बढानेवाली हैं ॥ ११ ॥

[७८]

[१३९८] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र ! सोमरूप (अन्धसः) अन्नके (सहस्रम्) सहस्र (पुरोडाशम्) पुरोडाश और (गोनाम्) गौओंके (शता च) सैकडों झुण्ड (नः) हमारे लिये (आ भर) ला ॥ १ ॥

[१३९९] हे इन्द्र ! तू अन्नादिके संस्कारक (वि-अञ्जनम्) व्यञ्जन, (गाम्) गाय, (अश्वम्) घोडा (अभि-अञ्जनम्) तेल और (सचा) साथ ही (मना) मननीय (हिरण्यया) स्वर्ण-आदि वस्तु (नः) हमारे पास (आ भर) ला ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्र एक उत्तम संगठनकर्ता है, इसलिए सबसे यथायोग्य वर्तन करता है। इसी इन्द्रसे प्रेरित होकर विष्णु भी शत्रुओंका संहार करता है ॥ ९-१० ॥

हे इन्द्र ! तेरा धनुष बहुत बाण फेंकनेवाला, अच्छी तरह बनाया हुआ, और अत्यन्त सुखकारी है। तेरा बाण उत्तम और सोनेवाला है। तेरी दोनों भुजाएं सुखकारी, उत्तम और शत्रुके नाशक तथा यज्ञको बढानेवाली हैं ॥ ११ ॥

इन्द्रके निमित्त पुरोडाश दिया जाता है वह भी इन्द्रसे ही प्राप्त होता है। राजा प्रजाको धन-सम्पन्न करे तभी उसे अधिक कर प्राप्त होगा ॥ १ ॥

इन्द्र दही, शाक, दाल आदि व्यञ्जन, पशु और स्वर्ण आदि धन प्रदान करता है ॥ २ ॥

×

१४०० उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर । त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥
१४०१ नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत । नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥
१४०२ नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे । विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥
१४०३ स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते । पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥
१४०४ क्रत्व इत् पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः । वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥ ७ ॥
१४०५ त्वे वसूनि संगता विश्वा च सोम सौभगा । सुदात्वपरिह्वृता ॥ ८ ॥

अर्थ— [१४००] हे (धृष्णो) शत्रु-नाशक (वसो) धन-सम्पन्न इन्द्र ! (उत) और (पुरूणि) बहुतसे (कर्ण-शोभना) कानके आभूषण (नः) हमारे लिये (आ भर) ला, क्योंकि (त्वं हि) तू ही यजमानोंकी बात (शृण्विषे) सुनता है ॥ ३ ॥

[१४०१] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तुझे (वृधीकः) बडा बनानेवाला कोई (नकीम्) नहीं है। तुझे (सु-साः) बाँटने और धनादि (सु-दाः) देनेवाला अन्य कोई (न न) नहीं है अर्थात् तू स्वतः महान् और सबका दाता है। (वाघतः) ऋत्विजोंका, (त्वत्) तुझसे (अन्यः) भिन्न, नेता भी (न) नहीं है ॥ ४ ॥

[१४०२] (इन्द्रः) इन्द्र (नि-कर्तवे) काटा (नकीम्) नहीं जा सकता, (शक्रः) शक्तिशाली वह (परि-शक्तवे) पराजित (न) नहीं किया जा सकता। वह (विश्वम्) सब कुछ (शृणोति) सुनता और (पश्यति) देखता है ॥ ५ ॥

[१४०३] (सः) वह (अदब्धः) न दबनेवाला इन्द्र, दुष्ट (मर्त्यानाम्) मनुष्योंका, (मन्युम्) क्रोध (नि चिकीषते) नीचा कर देता है। उनकी (निदः) निन्दासे (पुरा) पहलेही उनका क्रोध शान्त (चिकीषते) कर देता है ॥ ६ ॥

[१४०४] (तुरस्य) त्वरा करनेवालोंकी कामनाओंके (विधतः) पूरक, (वृत्र-घ्नः) वृत्र-नाशक (सोम-पाव्नः) सोम पीनेवाले (क्रत्वः) कर्म-शील इन्द्रका (इत् उदरम्) पेट सचमुच (पूर्णम्) भरा हुआ (अस्ति) है ॥ ७ ॥

[१४०५] हे (सोम) सोमवाले इन्द्र ! (अपरि-ह्वृता) कुटिलता-रहित (सु-दात्रु) उत्तम दान (वसूनि) धन (विश्वा च) और समग्र (सौभगा) सौभाग्य (त्वे) तुझमें (सम्-गता) संयुक्त हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र भोजन ही नहीं कर्ण आदिमें धारण करने योग्य आभूषण भी देता है। शरीरको यथाशक्ति आभूषणसे सजाना चाहिये, परन्तु आभूषणके भारसे शरीरको पीडित और घरको दरिद्र नहीं बनाना चाहिये ॥ ३ ॥

इन्द्र ही सबकी वृद्धि करता है उससे भिन्न वर्धक कोई नहीं। उसी प्रकार इन्द्र स्वतः महान् है उसे कोई धनादि नहीं देता, वही सबको देता है। वही स्तोताओंका एक-मात्र सहारा है। वीर लोग अपनी शक्तिसे ऐश्वर्य कमाते और लोगोंमें बाँटते हैं। वे दूसरोंसे दान नहीं माँगते ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने चारों द्वारा शत्रुओंका सब वृत्तान्त सुनता और अपनी दृष्टिसे देखता है, उसे कोई शत्रु काट या हरा नहीं सकता। कोई शत्रु वीरको नीचा नहीं दिखा सकता, शस्त्रसे काट नहीं सकता, न हरा सकता है ॥ ५ ॥

दुष्ट लोग इन्द्र पर क्रोध करते हैं, वे उसकी निन्दा और हानि पर तत्पर होते हैं, परन्तु वह अपने दण्डसे उनके क्रोध और निन्दाको शान्त कर देता है। वीर लोग शत्रुको बढने नहीं देते, निन्दा करने योग्य होनेसे पूर्व ही उसे दबा देते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रका पेट सोम-रसादिसे भरा रहता है। उद्यमी कभी भूखा नहीं मरता ॥ ७ ॥

इन्द्र सोम पीकर ऐश्वर्य प्राप्त करता है अतः इन्द्रके ऐश्वर्य सोमके ही हैं। वीरोंके पास सर्व ऐश्वर्य स्थिर रहते हैं ॥ ८ ॥

१४०६ त्वामिद्यवयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामश्वयुरेषते ॥ ९ ॥
१४०७ तवेदिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।
दिनस्य वा मघवन्त्संभृतस्य वा पूर्धि यवस्य काशिना ॥ १० ॥

[७९]

(ऋषिः- कृत्नुर्भार्गवः । देवताः- सोमः । छन्दः- गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।)

१४०८ अयं कृत्नुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः । ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥
१४०९ अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम् । प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥
१४१० त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः । उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥
१४११ त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् । यावीरघस्य चिद् द्वेषः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४०६] (मम) मेरा (यव-युः) जौ (गव्युः) गाय (हिरण्य-युः) सुवर्ण और (अश्व-युः) घोडेकी इच्छावाला (कामः) काम (त्वां त्वां इत्) तुझे ही (आ ईषते) चाहता है, प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

[१४०७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अहम्) मैं (तव इत्) तेरी ही (आ-शसा) आशासे (दात्रं चन) दात्रको (हस्ते) हाथमें (आ ददे) लेता हूं । हे (मघ-वन्) धनी इन्द्र ! तू मेरे (दिनस्य वा) काटे या, कुचलकर (सम्-भृतस्य वा) रखे (यवस्य) जौकी (काशिना) मुट्ठीसे, मेरा घर (पूर्धि) पूर्ण कर दे ॥ १० ॥

[७९]

[१४०८] (अयं सोमः) यह सोम (कृत्नुः) सब कर्मोंको करनेवाला, (अगृभीतः) शत्रुओंसे पकडा न जानेवाला, पर (विश्वजित्) सम्पूर्ण शत्रुओंको जीतनेवाला (उत् भित्) पृथ्वीको फोडकर निकलनेवाला (ऋषिः विप्रः) मंत्रद्रष्टा, ज्ञानी तथा (काव्येन) स्तोत्रसे स्तुत्य है ॥ १ ॥

[१४०९] यह सोम (यत् नग्नं) जो वस्त्र रहित है, उसे वस्त्रसे (अभि ऊर्णोति) चारों ओरसे आच्छादित कर देता है । (यत् तुरं) जो रोगी है, उसके (विश्वं भिषक्ति) सब रोगोंकी चिकित्सा करता है । (अन्धः) जो अन्धा है, (ईं) उसे (प्र अख्यत्) देखने योग्य बनाता है, जो (श्रोणः) पंगु है, वह (निः भूत्) चलने लग जाता है ॥ २ ॥

[१४१०] हे (सोम) सोम ! (त्वं) तू (तनूकृद्भ्यः) शरीरको क्षीण करनेवाले, (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) शत्रुओंके द्वारा किए जानेवाले द्वेषोंसे (यन्ता) संरक्षण करनेवाला, (उरु वरूथं असि) एक महान् कवच है ॥ ३ ॥

[१४११] हे (ऋजीषिन्) सरल गतिवाले सोम ! (त्वं) तू (तव चित्ती दक्षैः) अपने बुद्धि और चतुरतासे (दिवः पृथिव्याः) द्युलोक और पृथ्वीलोकसे (अघस्य द्वेषः यावीः) हमें मारनेवाले शत्रुओंको दूर कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— मनकी अभिलाषाएं अनेक हैं । वे इन्द्रके पास ही पूर्ण हो सकती हैं, अतः सबादिके अभिलाषी इन्द्रको ही चाहते हैं या उसीके पास जाते हैं ॥ ९ ॥

कृषक प्रजा हाथमें दात्र (दरांती, हंसिया) लेती है और इन्द्रसे प्रभूत अन्नकी आशा करती है । कृषि स्वयं करनी चाहिये, तभी अन्नसे घर भर सकता है ॥ १० ॥

यह सोम निर्धनको धनवान्, रोगीको निरोगी, अज्ञानीको ज्ञानी और अविद्वान्को विद्वान् बनाता है । वह स्वयं भी अपने ज्ञानके कारण ज्ञानी और मंत्रद्रष्टा है ॥ १-२ ॥

यह सोम शरीरको क्षीण करनेवाले रोग रूप शत्रुओंको नष्ट करता है और एक कवचके समान वह शरीरका संरक्षण करता है । इन लोकोंमें जो भी रोग कारक कीटाणु हैं, उनका नाश यह सोमरस करता है ॥ ३-४ ॥

१४१२ अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम् । ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥
१४१३ विदद्यत् पूर्व्यं नष्ट—मुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ॥ ६ ॥
१४१४ सुशेवो नो मृळयाकु—रदृप्तक्रतुरवातः । भवा नः सोम शं हृदे ॥ ७ ॥
१४१५ मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् । मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥
१४१६ अव यत् स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।
राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥ ९ ॥

[८०]

(ऋषिः- एकद्यूर्नौधसः । देवताः- इन्द्रः १० देवाः । छन्दः- गायत्री, १० त्रिष्टुप् ।)

१४१७ नह्य१न्यं बळाकरं मर्डितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय ॥ १ ॥

अर्थ— [१४१२] (अर्थिनः चेत् अर्थं यन्ति) धनाभिलाषी जन धनकी तरफ जाते हैं, वे (ददुषः रातिं गच्छान्) दाताके दानकी ओर जाते हैं । (तृष्यतः) ऐसे अभिलाषी जन भी (कामं ववृज्युः) अपनी अभिलाषाको पूरा कर लेते हैं ॥ ५ ॥

[१४१३] सोमकी कृपासे मनुष्य (पूर्व्यं नष्टं विदत्) पहले नष्ट हुए धनको प्राप्त करता है, (ईं ऋतायुं ईरयत्) इस यज्ञको प्रेरित करता है, (ईं अतीर्णं आयुः तारीत्) तथा अपनी छोटी आयुको दीर्घ करता है ॥ ६ ॥

[१४१४] हे (सोम) सोम ! तू (नः हृदे) हमारे हृदयमें (मृळयाकुः भव) सुख देनेवाला हो, (सुशेवः) सुखकारक तू (अदृप्तक्रतुः) उन्मत्तताको नष्ट करनेवाला है, तू (अवातः शं) वातरहित होकर हमारे लिए शान्तिदायक हो ॥ ७ ॥

[१४१५] हे (सोम) सोम ! (नः मा सं वीविजः) हमें कंपित मत कर । हे (राजन्) तेजस्वी सोम ! हमें (मा वि बीभिषथा) भयभीत मत कर । (त्विषा) अपने तेजसे (नः हार्दि) हमारे हृदयमें (मा वधीः) घाव मत कर ॥ ८ ॥

[१४१६] (स्वे सधस्थे) हमारे घरों पर (देवानां दुर्मतीः अव) देवोंकी अवकृपा न हो, हे (राजन्) राजन् ! (यत् ईक्षे) जब तू देखता है, तब (द्विषः अप सेध) शत्रुओंको तू दूर कर, हे (मीढ्वः) सुखदायक सोम ! तू (स्रिधः अप सेध) हिंसकोंको दूर कर ॥ ९ ॥

[८०]

[१४१७] हे (शत-क्रतो) सैंकडों कर्मवाले इन्द्र ! (बळा) सत्यमेव, मैंने तुझसे (अन्यम्) भिन्नको अपना (मर्डितारम्) सुखदाता (नहि) नहीं (अकरम्) बनाया । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वम्) तू ही (नः) हमें (मृळय) सुखी कर ॥ १ ॥

भावार्थ— इस सोमदेवकी कृपासे धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले दाताके पास जाकर इच्छानुसार धन प्राप्त करते हैं । उसीकी कृपासे नष्ट हुए धन भी प्राप्त होते हैं, तथा आयु भी दीर्घ होती है ॥ ५-६ ॥

सोमरसको पीनेसे हृदयको सुख मिलता है । उसे पीनेसे उन्मत्तता उत्पन्न नहीं होती, अपितु शरीरमें पहलेसे जो उन्मत्तता होती है, वह नष्ट होकर उसकी जगह उत्साह उत्पन्न होता है । इसके पानसे वात आदि रोग भी नष्ट होते है । इस मंत्र परसे स्पष्ट है कि सोमरसको शराब समझना असंगत है ॥ ७ ॥

हे सोमरस ! हमारे शरीरमें जाकर हमारे शरीरको कंपित मत कर, हमें भयभीत भी मत कर, तथा अपने तेजसे हमारे शरीरको नुकसान भी मत पहुंचा । अपितु हमारे शरीरमें जो रोग – कीटाणु आदि हिंसक शत्रु हों, उन्हें दूर कर ॥ ८-९ ॥

इन्द्रके बिना प्रजाओंका सुखदाता और कोई नहीं । परमेश्वर बिना अन्यको सुखदाता मत मानो वही सबको सुख प्रदान करता है ॥ १ ॥

१४१८ यो नः शश्वत् पुराविथा—ऽमृध्रो वाजसातये । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥ २ ॥
१४१९ किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि । कुवित् स्विन्द्र णः शकः ॥ ३ ॥
१४२० इन्द्र प्र णो रथमव पश्चाच्चित् सन्तमद्रिवः । पुरस्तादेनं मे कृधि ॥ ४ ॥
१४२१ हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि । उपमं वाजयु श्रवः ॥ ५ ॥
१४२२ अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित् परि । अस्मान् त्सु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥
१४२३ इन्द्र दृह्यस्व पूरसि भद्रा त एति निष्कृतम् । इयं धीर्ऋत्वियावती ॥ ७ ॥

अर्थ— [१४१८] (यः) जिस (अमृध्रः) हिंसा-रहितने (शश्वत्) निश्चयसे (पुरा) पहले (नः) हमें (वाज-सातये) अन्न-प्राप्तिके लिये (आविथ) सुरक्षित किया था, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (त्वम्) तू (नः) हमें (मृळय) सुखी कर ॥ २ ॥

[१४१९] (किम्) क्यों हे (अङ्ग) प्रिय इन्द्र ! (रध्र-चोदनः) दाताका प्रेरक तू (सुन्वानस्य) यज्ञ कर्ताका (अविता इत्) रक्षक ही (असि) है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (कुवित्) बहुत, देनेमें (सु शकः) समर्थ हो ॥ ३ ॥

[१४२०] हे (अद्रि-वः) वज्रधारिन् (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमारे (पश्चात् चित्) पीछे भी (सन्तम) रहनेवाले (रथम्) रथकी (प्र अव) रक्षा कर। तू (मे) मेरे लिए (एनम्) इसे सबके (पुरस्तात्) आगे (कृधि) कर दे ॥ ४ ॥

[१४२१] (हन्तो नु) हे शत्रुका हनन करनेवाले इन्द्र ! तू (किम्) क्यों चुप (आससे) बैठा है? (नः) हमारा (रथम्) रथ (प्रथमम्) सर्वप्रथम (कृधि) कर दे। (वाज-यु) बलदेनेवाला (श्रवः) अन्न तेरे (उपमम्) समीप है ॥ ५ ॥

[१४२२] हे इन्द्र ! (ते) तेरे लिये (किं इत्) कोई भी कर्म (परि) सब ओर (सु-करम्) सुगम है। तू (नः) हमारे (वाज-युम्) अन्न युक्त (रथम्) रथकी (अव) रक्षा कर, तथा (अस्मान्) हमें (सुजिग्युषः) श्रेष्ठ विजेता (कृधि) कर ॥ ६ ॥

[१४२३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू कामनाओंका (पूः) पूरक (असि) है, अतः (दृह्यस्व) बढ, दृढ हो। (इयम्) यह (ऋत्विय-वती) यज्ञोपयोगी (भद्रा) कल्याणी (धीः) वाणी (ते) तेरे निमित्त (निः-कृतम्) किये कर्मके पास (एति) जाती है ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्र अन्न-प्राप्तिके लिये युद्धादिमें स्तोताओंकी रक्षा करता है। राजा शत्रुओंकी हिंसा करे, शत्रुको परास्त कर प्रजाको सुखी करे ॥ २ ॥

इन्द्र यज्ञ करनेवालोंकी रक्षा करता और उसे बहुत दान देता है। राजा उद्योगी प्रजाकी रक्षा करे ॥ ३ ॥

इन्द्र पिछडे सैनिकोंके रथोंकी रक्षाका प्रबन्ध करता है और उन्हें आगे कर देता है। सेनापति पिछडे और भूले-भटके सैनिकोंका ध्यान रखे और सहायता देकर उन्हें आगे बढाये ॥ ४ ॥

इन्द्र कभी चुप नहीं बैठता, वह स्तोताओंके रथको आगे बढाता है और शक्तिवर्धक अन्न प्रास करता है। जिसके पास अन्न है वही अन्नका उपयोग कर सकते हैं। वीर लोग भोजनसे उत्साहित होकर लडते हैं और विजयके अनन्तर प्रभूत धन प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रके लिये कोई कर्म दुष्कर नहीं है, वह रथकी रक्षा करता और सर्वोत्तम विजेता बनाता है। वीर सेनापति ही सेनाकी रक्षा और राष्ट्रको विजेता करनेमें समर्थ है ॥ ६ ॥

इन्द्र कामनाओंकी पूर्ति करता है, अतः कवि उसकी स्तुति करते जाते हैं। आतिथ्यमें भोजनके साथ मधुर भाषा भी अवश्य होनी चाहिये ॥ ७ ॥

१४२४ मा सीमवद्य आ भागु—र्वी काष्ठा हितं धनम् । अपावृक्ता अरत्नयः ॥ ८ ॥

१४२५ तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि । आदित् पतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥

१४२६ अवीवृधद्वो अमृता अमन्दी—देकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः ।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १० ॥

[८१]

(ऋषिः– कुसीदी काण्वः । देवताः– इन्द्रः । छन्दः– गायत्री)

१४२७ आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय । महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

१४२८ विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् । तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [१४२४] इन्द्र (उर्वी) विशाल (काष्ठा) युद्ध-क्षेत्रोंमें (हितम्) स्थित (धनम्) धन (अवद्ये) निन्दित लोगोंमें (मा) न (आभाक्) बँटे । हमसे (अरत्नयः) अप्रिय शत्रु (अप-आ वृक्ताः) दूर हो जायँ ॥ ८ ॥

[१४२५] हे इन्द्र ! (आत् इत्) जिस कारण, हमारा (पतिः) स्वामी तू (नः) हमें (ओहसे) प्राप्त कराता है, अतः (यदा) जो तूने (तुरीयम्) चौथा (यज्ञियम्) यज्ञ-सम्बन्धि (नाम) नाम (करः) किया है, हम (तत्) उसको (उश्मसि) चाहते हैं ॥ ९ ॥

[१४२६] हे (देवाः उत याः च देवीः) देवो और देवियो ! (एकद्यूः) एकद्यूने (अमृता अमन्दीत्) अमृतसे तुम्हें आनन्दित किया, तथा (वः अवीवृधत्) तुम्हारी महत्ता बढाई, अतः तुम (तस्मा प्रशस्तं राधः कृणुत) प्रशंसनीय ऐश्वर्य प्रदान करो । (धियावसुः) बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला अग्नि (प्रातः मक्षू जगम्यात्) प्रातःकाल शीघ्र ही आवे ॥ १० ॥

[८१]

(१४२७) हे (इन्द्र) इन्द्र (महा-हस्ती) लम्बे हाथवाला तू अपने (दक्षिणेन) दाएँ हाथसे (क्षु-मन्तम्) प्रशंसनीय, (चित्रम्) सुन्दर (ग्राभम्) धन (नः) हमारे लिये (आ तु सं गृभाय) दे दो ॥ १ ॥

[१४२८] हे इन्द्र ! (अवः-भिः) रक्षा साधनोंसे युक्त (तुवि- कूर्मिम्) बहुत कर्म (तुवि- देष्णम्) बहुत दान (तुवि-मघम्) बहुत धन और युद्धादि साधनोंकी (तुवि-मात्रम्) बहुत मात्रावाले (त्वा) तुझे, हम (विद्म हि) जानते ही हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— विजय हमारी हो, अर्थात् विजयश्री हमें प्राप्त हो । शत्रु निन्दनीय हैं, उन्हें धन न मिले अपितु वे यहाँसे दूर भगा दिये जायँ । युद्धकुशल वीर ही शत्रुको राष्ट्रसे दूर भगाते और विजयलक्ष्मीका उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रने वस्तुओंके नाम और गुण निर्धारित किये हैं, नक्षत्रनाम गुह्यनाम प्रकाशनाम और सोमयाजी ये चार नाम हैं इनमें यज्ञ सम्बन्धि चौथा उत्तम है । यज्ञ सर्वोत्तम कर्म है, यज्ञमें ही देव अर्थात् विद्वान् और वीरोंकी पूजा होती है । यज्ञमें नाम कमाना ही उत्तम है ॥ ९ ॥

हे देवो ! जो अमृत रूपी सोमरस देकर तुम्हें तृप्त करता है, उसे तुम प्रशंसनीय धन देकर उसे सम्पत्तिशाली बनाओ ॥ १० ॥

इन्द्र अपने दक्षिण हाथसे उत्तम धन हमें देता है । राजा प्रजाके लिये उपयोगी पदार्थोंका संग्रह करे ॥ १ ॥

इन्द्रके पास रक्षाके अनेक साधन हैं । वह अनेक कर्म करता, बहुत देता, बहुत धनी और बहुत साधनोंवाला है । राजाके पास साधन और धनकी कोई कमी नहीं रहनी चाहिये ॥ २ ॥

१४२९ नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥
१४३० एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम् । न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥
१४३१ प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत् साम गीयमानम् । अभि राधसा जुगुरत् ॥ ५ ॥
१४३२ आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश । इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥ ६ ॥
१४३३ उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम् । अदाशूष्टरस्य वेदः ॥ ७ ॥
१४३४ इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः । अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥
१४३५ सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः । वशैश्च मक्षू जरन्ते ॥ ९ ॥

अर्थ— [१४२९] हे (शूर) शूर इन्द्र ! (देवाः) देव और (मर्तासः) मनुष्य (दित्सन्तम्) देनेकी इच्छा वाले (त्वा) तुझे (भीमं गां न) जैसे भयंकर बैलको, वैसे (नहि न) नहीं (वारयन्ते) निवारण करते ॥ ३ ॥

[१४३०] हे मनुष्यो ! (एत) आओ । हम (वस्वः) धनके (ईशानम्) स्वामी और (स्व-राजम्) स्वतः तेजवाले (इन्द्रम्) इन्द्रकी (नु) शीघ्रतासे (स्तवाम) स्तुति करें । जिससे कोई दूसरा (राधसा) धनसे (नः) हमारी (मर्धिषत् न) बराबरी न कर सके ॥ ४ ॥

[१४३१] वह इन्द्र हमारे स्तोत्रोंको (प्र स्तोषत्) पढे, छन्दोंको (उप गासिषत्) गाये, हमारे (गीयमानम्) गाये जानेवाले (साम) साम-गानको (श्रवत्) सुने और हमारे ऊपर (राधसा) धनसे (अभि (जुगुरत्) अनुग्रह करे ॥ ५ ॥

[१४३२] हे इन्द्र ! (नः) हमारे लिये (दक्षिणेन) दायें हाथसे धन (आ भर) ले आ। और (सव्येन) बायें हाथसे भी (अभि प्र मृश) दे । (नः) हमको (वसोः) ऐश्वर्यसे (मा निः भाक्) पृथक् मत कर ॥ ६ ॥

[१४३३] हे (धृष्णो) शत्रु-नाशक इन्द्र ! तू (उप क्रमस्व) तैय्यार हो । (जनानाम्) मनुष्योंमें जो (अदाशूः- तरस्य) अत्यन्त दान न करनेवाला है उसका (वेदः) धन अपने (धृषता) बलसे (आ भर) छीन ला ॥ ७ ॥

[१४३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः उ नु) जो कि (ते) तेरा (विप्रेभिः) बुद्धिमानोंसे (सनित्वः) बाँटने योग्य (वाजः) धन है, (तम्) उसे (अस्माभिः) हमारेमें (सु सनुहि) बाँट ॥ ८ ॥

[१४३५] हे इन्द्र ! (ते) तेरे (सद्यः-जुवः) तत्काल प्राप्त होनेवाले और (विश्व-चन्द्राः) सबके आह्लाददायक (वाजाः) धन हैं वे (अस्मभ्यम्) हमें (वशैः च) और अन्य वशमें रहनेवालोंको (मक्षु) शीघ्र (जरन्ते) देते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— जब इन्द्र किसीको दान करना चाहता है तब देव या मनुष्य उसे रोक नहीं सकते, जैसे भयङ्कर साँडको कोई रोक नहीं सकते। महापुरुष जब कुछ करना चाहता है तब संसारकी विघ्न-बाधायें उसे रोक नहीं सकतीं ॥ ३ ॥

इन्द्रका स्तोता धनमें किसीसे कम नहीं रहता, जो मनुष्य राज-शक्ति बढाता है उसका अतुल ऐश्वर्य बढता है ॥ ४ ॥

इन्द्र स्तोताओं पर प्रसन्न होकर उनके स्तोत्र, गान और सामको गाता और सुनता है तथा उन्हें धन प्रदान करता है ॥ ५ ॥

इन्द्र दोनों हाथोंसे धन देता है । जो कोई अच्छा कार्य करे, उसे धन देना चाहिए ॥ ६ ॥

इन्द्र युद्धके लिये तैयार होता है और अपने अदानी शत्रुका धन छीन कर ले आता है । शत्रु आससे धन नहीं छोडते, उनसे बलपूर्वक ही धन लेना चाहिये ॥ ७ ॥

मेधावीओंकी स्तुति होने पर इन्द्र आता है और धन देता है ॥ ८ ॥

इन्द्रका ऐश्वर्य स्तोताओंके पास स्वयं आकर उनकी प्रशंसा करता है ॥ ९ ॥

[८२]

(ऋषिः- कुसीदी काण्वः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।)

१४३६ आ प्र द्रव परावतो ऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥ १ ॥
१४३७ तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः । पिबा दधृग्यथोचिषे ॥ २ ॥
१४३८ इषा मन्दस्वादु ते ऽरं वराय मन्यवे । भुवत् त इन्द्र शं हृदे ॥ ३ ॥
१४३९ आ त्वशत्रवा गहि न्यु१क्थानि च हूयसे । उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥
१४४० तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम् । प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥
१४४१ इन्द्र श्रुधि सु मे हव मस्मे सुतस्य गोमतः । वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥

[८२]

अर्थ — [१४३६] हे (वृत्र-हन्) वृत्र-घातक इन्द्र ! तू हमारे (प्र-भर्मणि) यज्ञमें (परावितः) दूर (अर्वा-वतः च) और निकट कहींसे भी (मध्वः प्रति) मधुर सोमके लिये (आ प्र द्रव) आ ॥ १ ॥

[१४३७] हे इन्द्र ! ये (तीव्राः) तीखे (मादयिष्णवः) आनंद देनेवाले (सोमासः) सोम (सुतासः) तैयार हैं, तू (आ गहि) आ। (यथा) जिस प्रकार तू सोमका (ऊचिषे) सेवन कर सकता है, वैसे (दधृक्) प्रगल्भ होकर उन्हें (पिब) पी ॥ २ ॥

[१४३८] हे (इन्द्र) इन्द्र (इषा) अन्नसे (मन्दस्व) प्रसन्न हो। वह अन्न खानेके (आत् उ) पश्चात् (ते) तेरे (वराय) उत्तम, तीक्ष्ण (मन्यवे) क्रोधके लिये (अरम्) पर्याप्त हो। वह (ते) तेरे (हृदे) हृदयके लिये (शम्) सुखकर (भुवत्) हो ॥ ३ ॥

[१४३९] हे (अशत्रो) शत्रु-रहित इन्द्र ! तू (रोचने) तेजस्वी (उप-मे) यज्ञमें (उक्थानि च) स्तोत्रोंके पास (नि हूयसे) बुलाया जाता है, अतः (दिवः) द्यु-लोकसे यहां (आ तु आ गहि) आ ॥ ४ ॥

[१४४०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयम्) यह (अद्रि-भिः) पाषाणोंसे (सुतः) रस निकाला और छान कर (गोभिः) गो-दुग्धसे (श्रीतः) पकाया हुआ (कम्) सुखदायी (सोमः) सोम (मदाय) आनन्दके लिये (तुभ्यं) तुझे (प्र हूयते) दिया जाता है ॥ ५ ॥

[१४४१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मे) मेरी (हवम्) पुकार (सु) सम्यक् (श्रुधि) सुन, (अस्मे) हमारे द्वारा (सुतस्य) बनाये हुए (गो-मतः) गो-दुग्ध मिश्रित सोमके (पीतिम्) पान और उससे उपलब्ध (तृप्तिम्) तृप्तिको (वि अश्नुहि) प्राप्त कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्र दूर हो या पास हो वह यज्ञमें सोमके लिये अवश्य आवे। वीर कहीं हों, उन्हें बुलाना ही चाहिये ! बुलाने पर सहायताके लिये वे आवे ॥ १ ॥

इन्द्रके लिये तैयार किये सोम तीखे और आनन्ददायक हैं। इन्द्र उन्हें वीरताके कार्य करनेके लिये पीता है भोजनमें शक्ति और आनन्दवर्धक सत्व अधिक होना चाहिये ॥ २ ॥

भोजन इन्द्रका उत्साह बढानेमें समर्थ होता और उसके हृदयमें शान्ति भी उत्पन्न करता है। भोजनमें उत्साहवर्धक और हृदयमें सुख उपजानेवाली शक्ति होनी चाहिये ॥ ३ ॥

इन्द्रने पराक्रमसे अपने शत्रु नष्ट कर दिये हैं, अब वह अशत्रु बन गया है। वह स्तुतिके लिये द्यु-लोकसे बुलाया जाता है। राष्ट्रका नेता अपने पराक्रमसे राष्ट्रको बाहरी शत्रुसे बचा कर, अन्तःशत्रुओंके नाशार्थ, यत्न करे ॥ ४ ॥

दूधमें पका सोम ही इन्द्रका अन्न है। इन्द्रको गो-दूध प्रिय है ॥ ५ ॥

इन्द्र गायके दूधसे मिलाये सोम रसको पीता और उससे तृप्त होता है। गायके दूधमें सोम रस मिलाकर पीनेसे तृप्ति और आनन्द उपलब्ध होता है ॥ ६ ॥

१४४२ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ७ ॥
१४४३ यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥
१४४४ यं ते श्येनः पदाभरत् तिरो रजांस्यस्पृतम् । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥

[८३]

(ऋषिः- कुसीदी काण्वः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- गायत्री ।)

१४४५ देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ १ ॥
१४४६ ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥
१४४७ अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्याः ॥ ३ ॥
१४४८ वामं नो अस्त्वर्यमन् वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (सोमः) सोम (चमसेषु) चमसों और (चमूषु) पात्रोंमें (ते) तेरे लिये (आ सुतः) बनाया गया है, (त्वम्) तू (अस्य) इसका (ईशिषे) स्वामित्व करता है, अतः उसे (पिब इत्) पी ॥ ७ ॥

[१४४३] हे इन्द्र ! (यः) जो (सोमः) सोम (चमूषु) चमुओंमें, (अप्-सु) आकाशमें (चन्द्रमाः इव) चन्द्रमाके समान, (ददृशे) दिखाई देता है, (त्वम्) तू (अस्य) इसका (ईशिषे) स्वामी है, अतः इसे (पिब इत्) पी ही ॥ ८ ॥

[१४४४] हे इन्द्र ! (रजांसि) लोकोंको (तिरः) नीचे दबाते हुए (श्येनः) श्येन ने (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (अस्पृतम्) स्पर्श रहित सोमको (पदा) पांवसे नीचे (आ अभरत्) ला दिया, (त्वम्) तू सबका (ईशिषे) स्वामी है, (अस्य) उसे (पिब इत्) पी ही ॥ ९ ॥

[८३]

[१४४५] (वृष्णां देवानां इत्) बलशाली देवोंके (महत् अवः) महान् संरक्षणकी (वयं) हम (अस्मभ्यं ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (आ वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[१४४६] (ते वरुणः मित्रः अर्यमा) वे वरुण, मित्र और अर्यमा देव (नः सदा युजः सन्तु) हमारी सदाही सहायता करनेवाले हों, (प्रचेतसः च वृधासः) वे ज्ञानी देव हमें बढानेवाले हों ॥ २ ॥

[१४४७] हे (ऋतस्य रथ्याः) यज्ञके नायको ! (नौभिः अपः न) नावोंसे जिसतरह नदियोंको पार किया जाता है, उसी तरह (यूयं) तुम (विष्पिता पुरु) फैले हुए अनेक संकटोंसे (नः अति पर्षथ) हमें पार ले जाओ ॥ ३ ॥

[१४४८] हे (अर्यमन्) अर्यमा देव ! (नः वामं अस्तु) हमें सुन्दर पदार्थ प्राप्त हो, हे (वरुण) वरुण ! (शंस्यं वामं) हमें प्रशंसनीय धन प्राप्त हो, (हि) क्योंकि हम (वामं आ वृणीमहे) सुन्दर धन ही मांगते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ- इन्द्रके निमित्त चमसे और पात्रोंमें सोम भरा रहता है, इसका अधिकारी वही है। अतः वही इसे पीये ॥ ७ ॥ जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमा सुन्दर दिखाई देता है, उसी प्रकार सोमके कलशोंमें सोमकी शोभा होती है। इन्द्र उसे प्रेमसे पीता है ॥ ८

श्येन स्वर्गसे सोम ले आया, और ऋत्विजोंने उसे इन्द्रकी सेवामें समर्पित किया ॥ ९ ॥

वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देव सदा ही हमारी सहायता करें, तथा हमें बढायें। हम उनके संरक्षणकी कामना करते हैं ॥ १-२ ॥

हे देवो ! तुम हमें हर संकटोंसे पार ले जाओ, तथा तुम्हारे आशीर्वादसे हमें सुन्दर पदार्थ तथा प्रशंसनीय धन प्राप्त हो ॥ ३-४ ॥

×

१४४२ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ७ ॥
१४४३ यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥
१४४४ यं ते श्येनः पदाभरत् तिरो रजांस्यस्पृतम् । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥

[८३]

(ऋषिः- कुसीदी काण्वः । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- गायत्री ।)

१४४५ देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् । वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥ १ ॥
१४४६ ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा । वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥
१४४७ अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्याः ॥ ३ ॥
१४४८ वामं नो अस्त्वर्यमन् वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [१४४२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (सोमः) सोम (चमसेषु) चमसों और (चमूषु) पात्रोंमें (ते) तेरे लिये (आ सुतः) बनाया गया है, (त्वम्) तू (अस्य) इसका (ईशिषे) स्वामित्व करता है, अतः उसे (पिब इत्) पी ॥ ७ ॥

[१४४३] हे इन्द्र ! (यः) जो (सोमः) सोम (चमूषु) चमुओंमें, (अप्-सु) आकाशमें (चन्द्रमाः इव) चन्द्रमाके समान, (ददृशे) दिखाई देता है, (त्वम्) तू (अस्य) इसका (ईशिषे) स्वामी है, अतः इसे (पिब इत्) पी ही ॥ ८ ॥

[१४४४] हे इन्द्र ! (रजांसि) लोकोंको (तिरः) नीचे दबाते हुए (श्येनः) श्येन ने (ते) तेरे लिये (यम्) जिस (अस्पृतम्) स्पर्श रहित सोमको (पदा) पांवसे नीचे (आ अभरत्) ला दिया, (त्वम्) तू सबका (ईशिषे) स्वामी है, (अस्य) उसे (पिब इत्) पी ही ॥ ९ ॥

[८३]

[१४४५] (वृष्णां देवानां इत्) बलशाली देवोंके (महत् अवः) महान् संरक्षणकी (वयं) हम (अस्मभ्यं ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (आ वृणीमहे) प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

[१४४६] (ते वरुणः मित्रः अर्यमा) वे वरुण, मित्र और अर्यमा देव (नः सदा युजः सन्तु) हमारी सदाही सहायता करनेवाले हों, (प्रचेतसः च वृधासः) वे ज्ञानी देव हमें बढानेवाले हों ॥ २ ॥

[१४४७] हे (ऋतस्य रथ्याः) यज्ञके नायको ! (नौभिः अपः न) नावोंसे जिसतरह नदियोंको पार किया जाता है, उसी तरह (यूयं) तुम (विष्पिता पुरु) फैले हुए अनेक संकटोंसे (नः अति पर्षथ) हमें पार ले जाओ ॥ ३ ॥

[१४४८] हे (अर्यमन्) अर्यमा देव ! (नः वामं अस्तु) हमें सुन्दर पदार्थ प्राप्त हो, हे (वरुण) वरुण ! (शंस्यं वामं) हमें प्रशंसनीय धन प्राप्त हो, (हि) क्योंकि हम (वामं आ वृणीमहे) सुन्दर धन ही मांगते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ- इन्द्रके निमित्त चमसे और पात्रोंमें सोम भरा रहता है, इसका अधिकारी वही है। अतः वही इसे पीये ॥ ७ ॥

जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमा सुन्दर दिखाई देता है, उसी प्रकार सोमके कलशोंमें सोमकी शोभा होती है। इन्द्र उसे प्रेमसे पीता है ॥ ८

श्येन स्वर्गसे सोम ले आया, और ऋत्विजोंने उसे इन्द्रकी सेवामें समर्पित किया ॥ ९ ॥

वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देव सदा ही हमारी सहायता करें, तथा हमें बढायें। हम उनके संरक्षणकी कामना करते हैं ॥ १-२ ॥

हे देवो ! तुम हमें हर संकटोंसे पार ले जाओ, तथा तुम्हारे आशीर्वादसे हमें सुन्दर पदार्थ तथा प्रशंसनीय धन प्राप्त हो ॥ ३-४ ॥

×

१४४९ वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः । नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥
१४५० वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना । देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥
१४५१ अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥ ७ ॥
१४५२ प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥ ८ ॥
१४५३ यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः । अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥

[८४]

(ऋषिः- उशना काव्यः । देवता:- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१४५४ प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् ॥ १ ॥
१४५५ कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध द्विता । नि मर्त्येष्वादधुः ॥ २ ॥

अर्थ— [१४४९] हे (रिशादसः प्रचेतसः) शत्रुओंके विनाशक और ज्ञानी देवो ! तुम (वामस्य ईशानासः) सुन्दर धनके स्वामी हो । हे (आदित्याः) आदित्यो ! (अघस्य यत्) पापियोंके पास जो धन हो (ईं) उसे हमें दो ॥ ५ ॥

[१४५०] हे (सुदानवः देवाः) उत्तम दाता देवो ! (क्षियन्तः अध्वन् यान्तः) घरमें रहते हुए तथा मार्गमें जाते हुए (वयं । हम । वृधाय) अपनी उन्नतिके लिए (वः इत् आ हूमहे) तुम्हें ही बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[१४५१] (इन्द्र विष्णो मरुतः अश्विना) हे इन्द्र, विष्णु, मरुत् और अश्वि देवो ! (नः) हमें (एषां सजात्यानां आ अधि) इन स्वबान्धवोंके बीचमें सर्वोपरि करो ॥ ७ ॥

[१४५२] हे (सुदानवः) उत्तम दाता देवो ! (मातुः गर्भे) माताके गर्भमें (द्विता) दो तरहसे रहनेवाले (समान्या) समान रूपसे व्यवहार करनेवाले तुम्हारे (भ्रातृत्वं) भाईपनका (प्रभरामहे) हम वर्णन करते हैं ॥८॥

[१४५३] हे (सुदानवः) उत्तम दानशील देवो ! (यूयं) तुम (इन्द्रज्येष्ठाः अभिद्यवः) इन्द्रको मुख्य माननेवाले तथा तेजस्वी हो, (अधा चित् उत) इसीलिए मैं (वः उप ब्रुवे) तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥

[८४]

[१४५४] हे मनुष्यो ! मैं (वः) तुम लोगोंके कर्मकी सिद्धिके लिये (प्रेष्ठं, अतिथिं, मित्रं इव प्रियं) सबसे अधिक प्रिय अतिथिवत् पूज्य, मित्रके समान प्रीतिकारक और (रथं न वेद्यं अग्निं स्तुषे) रथके समान धन प्राप्तिके हेतु ऐसे अग्निकी स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१४५५] (अध) और भी (देवासः कविं प्रचेतसं इव) इन्द्रादि देवोंने महान् ज्ञानी विद्वान्के समान (यं मर्त्येषु द्विता नि आदधुः) जिस अग्निको मनुष्योंके बीचमें दो प्रकारसे प्रतिष्ठित किया है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे देवो ! हम घरमें रहते हुए तथा मार्गमें जाते हुए अपनी उन्नतिके लिए तुम्हारी उपासना करते हैं। अतः हे देवो ! तुम धनादि देकर हमें ऐश्वर्य सम्पन्न बनाओ ॥ ५-६ ॥

सभी देवोंकी कृपासे हम उन्नतिको प्राप्त हों तथा अपने सम्बन्धियोंके मध्यमें हम सर्वोपरि हों ॥ ७ ॥

ये सभी देव अदिति माताके पुत्र होनेके कारण परस्पर समान हैं और इनमें परस्पर भाईके समान प्रीति है । ये सभी देव इन्द्रको मुख्य मानते हैं और सभी तेजस्वी हैं ॥ ८-९ ॥

यह अग्नि मनुष्योंमें गार्हपत्य, आहवनीय; पति-पत्नी; पिता-पुत्र, भौतिक और जाठर इन रूपोंमें रहता है । यह दूरदर्शी, बुद्धिशाली मित्रके समान लोगोंका हित करनेवाला, अत्यन्त पूज्य तथा हर प्रकारकी ऐश्वर्य-प्राप्तिका कारण है । ऐसे इस अग्निकी पूजा हर एकको करनी चाहिए ॥ १-२ ॥

१४५६ त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ३ ॥
१४५७ कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् । वराय देव मन्यवे ॥ ४ ॥
१४५८ दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो । कदु वोच इदं नमः ॥ ५ ॥
१४५९ अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः । वाजद्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥
१४६० कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते । गोषाता यस्य ते गिरः ॥ ७ ॥
१४६१ तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु । स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
१४६२ क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः । अग्ने सुवीर एधते ॥ ९ ॥

अर्थ— [१४५६] हे (यविष्ठ) अत्यन्त बलवान् अग्ने ! (त्वं दाशुषः नॄन् पाहि) तू दान देनेवाले मनुष्योंकी रक्षा कर। उनकी (गिरः शृणुधि) स्तुतियोंको चित्तसे सुन। (उत तोकं त्मना रक्ष) और उनके पुत्रादि सन्ततिकी अपने आत्मसामर्थ्यसे रक्षा कर ॥ ३ ॥

१ दाशुषः नॄन् पाहि— यह अग्नि दानी मनुष्योंकी रक्षा करता है।

२ तोकं त्मना रक्ष— तथा उनके सन्तानोंकी हर तरहसे रक्षा करता है।

[१४५७] हे (अङ्गिरः ऊर्जः नपात्) देहमें रसका संचार करानेवाले बलको न गिरने देनेवाले ! (देव अग्ने) थोतमान् अग्ने ! (वराय मन्यवे ते कया उपस्तुतिं) वरण करने योग्य, तेजस्वी, मननशील तेरे लिये, किस प्रकारकी वाणीसे स्तुति करूँ ॥ ४ ॥

[१४५८] हे (सहसः यहो) बलके पुत्र अग्ने ! (कस्य यज्ञस्य मनसा इदं नमः) किस मनुष्यके मनसे युक्त होकर हम तुझको यह हवि अथवा नमस्कार (कत् वोचे उ) किस समय दे सकेंगे अथवा कह सकेंगे ॥ ५ ॥

[१४५९] हे अग्ने ! (अध त्वं हि नः गिरः विश्वा सुक्षितीः करः) अनन्तर तू ही निश्चय करके हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण प्रजाओंके निवासके लिये उत्तम घर प्रदान कर और (अस्मभ्यं वाजद्रविणसः) हमारे लिये उस घरको उत्तम उत्तम अन्न और धनोंसे युक्त कर ॥ ६ ॥

[१४६०] हे (दंपते) गृहरक्षक अग्ने ! (यस्य ते गिरः गोषाता) जिस तेरी स्तुति गौवोंके लिये होती है वह (नूनं कस्य परीणसः धियः जिन्वसि) तू किस प्रकारके पुरुषकी उत्तम बुद्धियोंको तृप्त करता है ॥ ७ ॥

[१४६१] मनुष्य लोग (तं सुक्रतुं, आजिषु पुरः यावानं, वाजिनं) उस उत्तम कर्मवाले, संग्रामोंमें शत्रुके हननके लिये आगे प्रयाण करनेहारे और बलवान् अग्निको (स्वेषु क्षयेषु मर्जयन्त) अपने घरोंमें स्थापित करके उसको प्रज्वलित करते हैं ॥ ८ ॥

[१४६२] (यः क्षेमेभिः साधुभिः क्षेति) जो मनुष्य कल्याणकारी तथा सज्जन पुरुषोंके सहित अपने घरमें निवास करता है, (यं नकिः घ्नन्ति) जिसको कोई शत्रु मार नहीं सकता, और (यः हन्ति) जो अपने शत्रुको मार सकता है, हे (अग्ने) अग्ने ! ऐसा पुरुष तुझसे रक्षित होकर (सुवीरः एधते) उत्तम पुत्र-पौत्रादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तुम दानी मनुष्योंकी रक्षा करते हो, तथा उनके सन्तानोंका भी रक्षा करते हो, तुम अंगोंमें रसका संचार करते हो, और इस प्रकार शरीरके बलको गिरने नहीं देते, ऐसे गुणोंसे युक्त होनेके कारण तुम बहुत महान् हो और मैं बहुत अल्प हूँ। अतः तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार करूं, वह मार्ग तुम मुझे बताओ ॥ ३-४ ॥

हे अग्ने ! तुम किस प्रकारकी स्तुतिसे प्रसन्न होते हो, हम किस प्रकार मन लगाकर स्तुति करें कि तुम प्रसन्न होकर सब प्रजाओंको उत्तम उत्तम घर प्रदान करो और धन धान्यसे युक्त करो ॥ ५-६ ॥

हे अग्ने ! तेरी स्तुति गौवोंको प्रदान करनेवाली होती है, यह हमें मालुम है, तथा सभी मनुष्य ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये तझे अपने अपने घरोंमें प्रदीप्त करते हैं, यह भी सत्य है पर तू किस तरहके मनुष्य पर प्रसन्न होता है और किस तरहके मनुष्यकी बुद्धियोंको तू तृप्त करता है, यह हमें मालुम नहीं अतः हमें बता, ताकि हम उसी तरहसे तुझे प्रसन्न करें ॥ ७-८ ॥

कल्याण करनेवाले सज्जनोंको अपने साथ हमेशा रखना चाहिए, क्योंकि वे हमेशा कल्याणका ही मार्ग बताते हैं, उनके द्वारा दिखाए गए मार्गपर जो चलता है, वह अपने शत्रुओंसे कभी पराजित नहीं होता अपितु अपने शत्रुओंको हमेशा नष्ट करता रहता है। और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर अपनी सन्तानोंके साथ बढता रहता है ॥ ९ ॥

[८५]

(ऋषिः- कृष्ण आङ्गिरसः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- गायत्री ।)

१४६३ आ मे हवं नासत्या ऽश्विना गच्छतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥
१४६४ इमं मे स्तोममश्विने—मं मे शृणुतं हवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥
१४६५ अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥
१४६६ शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥
१४६७ छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
१४६८ गच्छतं दाशुषो गृह—मित्था स्तुवतो अश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥
१४६९ युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥
१४७० त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥
१४७१ नू मे गिरो नासत्या ऽश्विना प्रावतं युवम् । मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥

[८५]

अर्थ— [१४६३] हे (**नासत्या**) सत्यपालक वीरो ! (**अश्विना**) नेता अश्विदेवों ! (**युवं**) तुम दोनों (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुरिमामय सोमको पीनेके लिए (**मे हवं आ गच्छतं**) मेरी पुकारको सुनकर आओ ॥ १ ॥

[१४६४] हे (**अश्विना**) अश्विदेवो ! (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (**मे इमं हवं**) मेरी इस पुकारको (**मे इमं स्तोम**) मेरे इस स्तोत्रको (**शृणुतं**) सुन लो ॥ २ ॥

[१४६५] हे (**वाजिनीवसू अश्विना**) सेनाको ही धन समझनेवाले अश्विदेवो ! (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (**अयं कृष्णः**) यह कृष्ण ऋषि (**वां हवते**) तुम्हें बुलाता है ॥ ३ ॥

[१४६६] हे (**नरा**) नेता अश्विदेवो ! (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (**जरितुः कृष्णस्य**) स्तोता कृष्णके (**स्तुवतः**) प्रशंसा करते समय (**हवं शृणुतं**) उसकी पुकारको सुन लो ॥ ४ ॥

[१४६७] हे (**नरा**) नेता अश्विदेवों ! (**स्तुवते विप्राय**) प्रशंसा करनेवाले ज्ञानीको (**अदाभ्यं छर्दिः**) न दबनेवाला घर (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मीठे सोमके पानके लिए (**यन्तं**) देदो ॥ ५ ॥

[१४६८] हे (**अश्विना**) अश्वि देवो ! (**इत्था स्तुवतः**) इस प्रकारसे सराहना करते हुए (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुर सोमको पीनेके लिए (**दाशुषः गृहं गच्छतं**) दानीके घर पहुंचो ॥ ६ ॥

[१४६९] हे (**वृषण्वसू**) धनकी वर्षा करनेवाले अश्वि देवो ! (**वीडु- अंगे रथे**) सुदृढ रथमें (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (**रासभं युंजाथां**) हिनहिनानेवाले घोडोंको जोड दो ॥ ७ ॥

[१४७०] हे (**अश्विना**) अश्विनी देवो ! (**त्रिवृता**) तिकोने आकारके (**त्रिवन्धुरेण रथेन**) तीन लट्ठोंसे युक्त रथोंसे (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (**आ यातं**) आओ ॥ ८ ॥

[१४७१] हे (**नासत्या अश्विना**) सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (**युवं**) तुम दोनों (**मे गिरः**) मेरे वचनोंको (**मध्वः सोमस्य पीतये**) मधुर सोमरसको पीनेके लिए (**नु प्र अवतम्**) प्रेमसे सुनो ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! मधुर सोमरसको पीनेके लिए मेरी इस प्रार्थनाको सुनो और हमारे पास आओ ॥ १-२ ॥ हे अश्विनौ ! इस मधुर सोमरसको पीनेके लिए ऋषि तुम्हें बुलाते हैं, तुम उनकी पुकार सुनकर आओ ॥ ३-४ ॥ हे देवो ! मीठे सोमरसको पीनेके लिए तुम दानीके घर जाओ और उसे उत्तम घर और ऐश्वर्य प्रदान करो ॥५-६॥ हे अश्विदेवो ! मधुर सोमरसको पीनेके लिए मेरे वचनोंको प्रेमसे सुनो, तथा अपने रथमें हिनहिनानेवाले घोडोंको जोडकर हमारे पास आओ ॥ ७-९ ॥

[८६]

(ऋषिः- कृष्ण आङ्गिरसः, विश्वको वा कार्ष्णिः । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- जगती ।)

१४७२ उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवो॒भा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ १ ॥
१४७३ कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ २ ॥
१४७४ युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ३ ॥
१४७५ उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे ।
यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥

[८६]

अर्थ— [१४७२] हे (दस्रा) दर्शनीय वीरो ! (उभा हि मयोभुवा) तुम दोनोंही सुखदायक (भिषजा) वैद्य हो और (दक्षस्य वचसः) दक्षतासे किये भाषणके लिये (उभा बभूवथुः) तुम दोनों योग्य हो; (तनूकृथे ता वां) शरीरकी सुरक्षाके लिए तुम दोनोंको (विश्वकः हवते) यह विश्वक ऋषि बुलाता है (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमें आपकी मित्रतासे दूर न करो और (मुमोचतं) हमें मुक्त करो । दुःखसे हमें मुक्त करो ॥ १ ॥

[१४७३] (विमना नूनं) विमना ऋषिने सचमुच (वां कथा उप स्तवत्) तुम्हारी कैसे प्रशंसा की थी ? (वस्य-इष्टये) प्रशस्त धनको पानेके लिए (युवं धियं ददथुः) तुमने हमें बुद्धि दी है । (विश्वकः तनूकृथे वां हवते) विश्वक शरीरकी सुरक्षाके लिये तुम्हें बुलाता है. (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमारी मित्रताको मत दूर करो और हमें दुःखसे (मुमोचतं) मुक्त कर दो ॥ २ ॥

[१४७४] हे (पुरुभुजा) अनेकोंको भोजन देनेवाले वीरो ! (विष्णाप्वे) विष्णापूके लिए (युवं हि स्म) तुम दोनोंने सचमुच (इमं एधतुं) इस समृद्धिको (वस्य-इष्टये ददथुः) धनकी इष्टिके लिए दे दिया था । (ता वां) ऐसे तुम दोनोंको (तनूकृथे) शरीरकी सुरक्षाके हेतु विश्वक हवते) बुलाता है (नः सख्या) हमारी मित्रताको (मा वि यौष्टं) दूर न करो और हमें (मुमोचतं) इस दुःखसे मुक्त करो ॥ ३ ॥

[१४७५] (उत त्यं) और उस (धनसां ऋजीषिणं वीरं) धनका बँटवारा करनेवाले और सोम अपने पास रखनेवाले वीरको, (यस्य सुमतिः) जिसकी अच्छी बुद्धि (यथा पितुः स्वादिष्ठा) पिताके समान अत्यन्त मधुर रहती है, उसको (दूरे सन्तं चित्) दूर रहनेपर भी (अवसे हवामहे , अपनी रक्षाके लिये हम बुलाते हैं । हे वीरो ! (सख्या) मित्रताके कारण (नः मा वि यौष्टं) हमें दूर न करो, (मुमोचत) और हमें दुःखसे छुडाओ ॥ ४ ॥

भावार्थ— नासिकामें रहनेवाले प्राण ही अश्विनौ देव हैं, ये प्राण शरीरके लिए सुखदायक हैं और शरीरके समस्त रोगोंको दूर करते हैं । रोगोंको दूर करके ये शरीरकी सुरक्षा करते हैं ॥ १ ॥

जिस मनुष्यको ये अश्विदेव धन देना चाहते, उसे उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं, उत्तम बुद्धिके द्वारा वह धन भी प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥

विष्णा-पू— सर्व व्यापक परमात्माकी उपासना करनेवालेके प्राण उत्तम रहते हैं और इस उपासकको हर तरहकी समृद्धि प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

अपने पासके धनको सबको देनेवाले और सोमरस पीनेवालेकी बुद्धि उत्तम होती है । जिस तरह कोई पिता अपने पुत्रका पालन करता है, इसी तरह ये अश्वि देव सभी प्राणियोंका प्रेमसे पालन करते हैं ॥ ४ ॥

१४७६ ऋतेन॑ दे॒वः स॑वि॒ता श॑मायत ऋ॒तस्य॑ शृङ्ग॑मुर्वि॒या वि प॑प्रथे ।
ऋ॒तं सा॑साह॒ महि॑ चित् पृतन्य॒तो मा नो॒ वि यौ॑ष्टं स॒ख्या मु॒मोच॑तम् ॥ ५ ॥

[८७]

(ऋषिः- कृष्ण आङ्गिरसो, वासिष्ठो वा द्युम्नीकः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । देवताः- अश्विनौ ।
छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१४७७ द्यु॒म्नी वां॒ स्तोमो॑ अश्विना क्रिवि॒र्न सेक॒ आ ग॑तम् ।
मध्वः॑ सु॒तस्य॒ स दि॒वि प्रि॒यो न॑रा पा॒तं गौ॒राव॑ि॒वेरि॑णे ॥ १ ॥

१४७८ पिब॑तं घ॒र्मं मधु॑मन्तमश्विना ऽऽ ब॒र्हिः सी॑दतं नरा ।
ता म॑न्दसा॒ना मनु॑षो दुरो॒ण आ नि पा॑तं॒ वेद॑सा॒ वयः॑ ॥ २ ॥

१४७९ आ वां॒ विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑ प्रि॒यमे॑धा अहूषत ।
ता व॒र्तिर्या॑तमुप॑ वृ॒क्तब॑र्हिषो॒ जुष्टं॑ य॒ज्ञं दिवि॑ष्टिषु ॥ ३ ॥

अर्थ-- [१४७६] (देवः सविता) द्योतमान सूर्य (ऋतेन शमायते) ऋतसे सायंकालके समय शान्त होता है और (ऋतस्य शृङ्गं) ऋतके ऊँचे भागको (उर्विया वि पप्रथे) अत्यन्त विशाल रीतिसे फैलाता है; (महि पृतन्यतः चित्) बडी बडी सेनाके साथ आक्रमण करनेवालोंको भी (ऋतं सासाह) ऋत पराभूत करता है, (नः मा वि यौष्टं) हमारा तुमसे विछोड न हो और (सख्या मुमोचतं) मित्रतासे हमें कष्टसे छुटकारा दो ॥ ५ ॥

[८७]

[१४७७] हे अश्विदेवों ! (सेके क्रिविः न) जल सींचनेपर कुआँ जिस प्रकार पानीसे भरा रहता है, वैसेही (वां स्तोमः द्युम्नी) तुम्हारा स्तोत्र तेजस्वी हो जाता है, (आ गतं) तुम आओ, हे (नरा) नेता वीरो ! (सुतस्य मध्वः) सोमका मधुर रस (सः दिवि प्रियः) द्युलोकमें भी प्यारा हो रहा है, (इरिणे गौरौ इव पातं) जल स्थानपर दो मृग जैसे पीते हैं वैसेही तुम भी इस रसका पान करो ॥ १ ॥

[१४७८] हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (मधुमन्तं घर्मं पिबतं) मीठे सोमरसका पान करो, (बर्हिः आ सीदतं) कुशासनपर आकर बैठ जाओ; (मनुषः दुरोणे) मानवके घरपर (मन्दसाना ता) हर्षित होनेवाले तुम दोनों (वेदसा वयः आ नि पातं) धनसे हमारी आयुका रक्षण करो ॥ २ ॥

[१४७९] (प्रियमेधाः) यज्ञको प्यारभरी दृष्टिसे देखनेवाले प्रियमेध ऋषियोंने (वां विश्वाभिः ऊतिभिः अहूषत) तुम्हें सभी संरक्षणकार्योजनाओंके साथ अपने पास बुलाया है । (वृक्तबर्हिषः वर्तिः) कुशासन जिसने फैला रखा है, ऐसे मानवके घर (ता उप यातं) वे तुम दोनों वीर चले आओ, (दिविष्टिषु यज्ञं जुष्टं) दिव्य स्थानमें किये जानेवाले कार्योंमें यज्ञका सेवन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— ऋत अर्थात् नैतिक नियम जगत्में सर्वत्र है । इसी नैतिक नियमके कारण तेजस्वी सूर्य सायंकालके समय अस्त होता है । इस ऋतका विस्तार सर्वत्र है । इस ऋतके प्रतिकूल चलनेवाले बडे बडे वीरोंका भी पराभव होता है, फिर सामान्य मनुष्यकी तो बातही क्या ? ॥ ५ ॥

हे देवो ! जिस तरह बारबार जल निकालने पर भी कुआं जलसे भराही रहता है, उसी तरह तुम्हारा स्तोत्र बारबार गाये जाने पर भी तेजसे भराही रहता है । देवोंकी स्तुति गानेसे तेज बढताही है ॥ ॥ १ ॥

हे देवो ! तुम हमारे घर आओ, हम तुम्हारा सत्कार करते हैं । जो तुम्हारा सत्कार करता हो, उसीके घर आओ ॥ २-३ ॥

१४८० पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना ऽऽ बर्हिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥ ४ ॥
१४८१ आ नूनं यातमश्विना ऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥
१४८२ वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धिया ऽश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥ ६ ॥

[८८]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१४८३ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४८०] हे (अश्विना) अश्विदेवो! (सुमत् बर्हिः आ सीदतं) सुखकारक कुशासनपर आकर बैठो। (मधुमन्तं सोमं पिबतं) मीठे सोमरसका पान करो। (इरिणं गौरौ इव) जलाशयके समीप दो हिरण जैसे जाते हैं, वैसेही (दिवः ता वावृधाना) द्युलोकसे आकर तुम दोनों बढते हुए (सुष्टुतिं उप गन्तं) अच्छी स्तुतिके समीप बैठकर सुनो ॥ ४ ॥

[१४८१] हे (दस्रा) शत्रुविनाशकर्ता ! (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णके रथसे युक्त (शुभस्पती) सज्जनोंके पालक ! और (ऋतावृधा अश्विना) ऋतके बढानेहारे अश्विदेवो ! (नूनं) सचमुच अब (प्रुषितप्सुभिः अश्वेभिः) दीप्त स्वरूपवाले घोडोंसे (आ यातं) आओ, और (सोमं पातं) सोमका पान करो ॥ ५ ॥

[१४८२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वयं विपन्यवः विप्रासः) हम विद्वान्, ज्ञानी लोग (वाजसातये) अन्नका बँटवारा करनेके लिए (वां हि हवामहे) तुम्हेंही बुलाते हैं, इसलिए (ता वल्गू दस्रा) वे तुम सुन्दर रूपवाले शत्रुविध्वंसक (पुरु-दंससा) विविध कार्यवाले और (धिया) बुद्धिमान् तुम दोनों (श्रुष्टी आ गतं) जल्दी आ जाओ ॥ ६ ॥

[८८]

[१४८३] हम (दस्मं, ऋतीषहं) दर्शनीय और शत्रुको मारनेवाले, (वसोः अन्धसः मन्दानं) निवासक सोमरससे आनन्दित होनेवाले (तं वः इन्द्रं) उस तुम्हारे इन्द्रकी (स्वसरेषु) सब दिन (धेनवः वत्सं अभि न) जिस प्रकार गायें बछडेके लिए शब्द करती हैं, उसी प्रकार (गीर्भिः नवामहे) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— ये दोनों देव शत्रुओंका विनाश करनेवाले और सज्जनोंके पालक तथा सत्यकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ ४–५ ॥

विद्वानोंका स्वभाव ही यह होता है कि वे सदा कार्योंका परमार्थकी प्रवृत्तिसे करते हैं। वे सभी भोगोंका उपभोग बांटकर करते हैं। मनुष्य भी अपने समाजमें बांटकर भोगोंका उपभोग करें ॥ ६ ॥

यह इन्द्र दर्शनीय, शत्रुको नष्ट करनेवाला, सोमरससे आनन्दित होनेवाला है। उस इन्द्रकी सभी यज्ञोंमें स्तुति होती है ॥ १ ॥

१४८४ द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

१४८५ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

१४८६ योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥ ४ ॥

१४८७ प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥ ५ ॥

१४८८ नकिः परिष्टिर्मघवन् मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४८४] (द्युक्षं सु-दानुं) तेजस्वी उत्तम दान करनेवाले (गिरिं न) जैसे पहाड मेघोंसे घिरे रहते हैं उसी प्रकार (तविषीभिः आवृत) बलोंसे घिरे हुए (पुरु भोजसं) बहुतोंके पालक (क्षुमन्तं) हर्षित होकर शब्द करनेवाले इन्द्रसे हम (शतिनं सहस्रिणं गोमन्तं) सैंकडों हजारों गौवोंवाले (वाजं) धनको (मक्षू ईमहे) शीघ्र मांगते हैं ॥ २ ॥

[१४८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बृहन्तः वीळवः अद्रयः) बडे बडे दृढ पर्वत भी (त्वा न वरन्ते) तुझे नहीं हटा सकते, (स्तुवते मावते) स्तुति करनेवाले मेरे जैसेके लिए तू (यत् वसु दित्ससि) जो धन देना चाहता है, (ते तत् न किः आ मिनोति) तेरे उस धनका कोई नाश नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

[१४८६] हे इन्द्र ! तू (क्रत्वा, शवसा योद्धा असि) कर्मसे और बलसे योद्धा है, (उत) और (दंसना मज्मना) कर्मसे और बलसे (विश्वा जाता) सम्पूर्ण प्राणियोंपर (अभि) शासन करता है। (यं) जिस तुझे (गोतमाः अजीजनन्) गोतमके पुत्रोंने प्रकट किया, उस (त्वा) तुझे (अर्कः अयं , स्तुति करनेवाला यह मनुष्य (ऊतये) संरक्षणके लिए (आ ववर्तति) बारंबार बोलता है ॥ ४ ॥

[१४८७] हे इन्द्र ! तू (ओजसा) अपने बलसे (दिवः अन्तेभ्यः परि) द्युलोककी सीमाओंसे आगे भी (प्र रिरिक्षे) शासन करता है, (त्वा) तुझे (पार्थिवं रजः) पृथ्वीका लोक भी (न विव्याच) नहीं व्याप्त कर सकता, हे इन्द्र ! हमारे लिए तू (स्वधां) अन्नको (अनुववक्षिथ) ले आ ॥ ५ ॥

[१४८८] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (यत्) जब धनको (दाशुषे दशस्यसि) दानशीलके लिए देना चाहता है, तब (ते मघस्य) तेरे धनका (परिष्टिः) रोकनेवाला (न किः) कोई नहीं है, हे (चोदिता मंहिष्ठः) सबको प्रेरित करनेवाले, दाताओंमें उत्तम इन्द्र (वाजसातये) अन्न दानके लिए (अस्माकं उचथस्य) हमारे स्तोत्रको (बोधि) जान ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र तेजस्वी, उत्तम दाता मेघोंसे घिरे हुए पहाडके समान सदा धनसे घिरा हुआ, विश्वका पालक तथा गौ आदि धनका स्वामी है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! बडे बडे दृढ पर्वत भी तुझे नहीं हिला सकते। तू जो धन देना चाहता है उसको कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने कर्म और बलके कारण योद्धा कहाता है। तू कर्मसे और बलसे सम्पूर्ण प्राणियोंपर शासन करता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू अपने बलसे द्युलोककी सीमाओंसे परे भी शासन करता है। पृथिवीका विस्तृत लोक भी इस इन्द्रकी मर्यादाको नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ५ ॥

जब यह इन्द्र किसीको धन देना चाहता है, तब उसे कोई रोक नहीं सकता। यही सब विश्वको प्रेरणा देता है। इसलिए उससे बढकर शक्तिशाली और कोई नहीं है। इसलिए इसके कामोंमें कोई बाधा नहीं डाल सकता ॥ ६ ॥

[८९]

(ऋषिः- नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- १-४ प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ५-६ अनुष्टुप्, ७ बृहती ।)

१४८९ बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥

१४९० अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाऽथेन्द्रो द्युम्न्याभवत् ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ २ ॥

१४९१ प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

१४९२ अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित् ते असद्बृहत् ।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

---

[८९]

अर्थ— [१४८९] हे (ऋतावृधः मरुतः) यज्ञको बढानेवाले मरुतो ! (येन जागृवि देवं ज्योतिः अजनयत्) जिस सामसे तुमने हमेशा जाग्रत रहनेवाले तेजपूर्ण ज्योतिको उत्पन्न किया, उस (वृत्रहन्तमं बृहत्) शत्रुको मारनेवाले बृहत् नामक सामको (देवाय इन्द्राय गायत) तेजस्वी इन्द्रके लिए गावो ॥ १ ॥

१ ऋतावृध मरुतः— सत्य मार्गको बढानेवाले मरुत् होते है ।

२ येन जागृवि देवं ज्योतिः अजनयत्— जिसने सदा जाग्रत रहनेवाला दिव्य तेज फैलाया ।

[१४९०] हे (बृहद्भानो मरुद्गण) अत्यंत तेजस्वी मरुतगणो ! (अ-शस्ति-हा इन्द्रः) बुरे कार्य करनेवालोंको मारनेवाले इन्द्रने (अभिशस्तीः अपाधमत्) हिंसा करनेवाले सब शत्रुओंको मारा (अथ) और जिससे (द्युम्नी अभवत्) वह तेजस्वी हुआ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवाः ते सख्याय येमिरे) सब देव तेरी मित्रताके लिए तेरे पास आते हैं ॥ २ ॥

[१४९१] हे (मरुतः) मरुतो ! (बृहते इन्द्राय ब्रह्म अर्चत) महान् इन्द्रके लिए स्तोत्र गाओ । वह (शतक्रतुः वृत्रहा) सैंकडों शुभ काम करनेवाला तथा शत्रुको मारनेवाला इन्द्र (शतपर्वणा वज्रेण) सैंकडों धारवाले वज्रसे (वृत्रं हनति) वृत्रको मारता है ॥ ३ ॥

[१४९२] हे (धृषन्मनः) सुदृढ मनवाले इन्द्र ! (बृहत् श्रवः) जो उत्तम अन्न है, वह (ते चित् असत्) तेरा ही है, उस अन्नको (धृषता) अपने शक्तिशाली मनसे हमें (अभि प्रभर) भरपूर दे । (मातरः आपः जवसा वि अर्षन्तु) मातारूपी जल प्रवाह वेगसे बहें, हे इन्द्र ! तू (वृत्रं हनः) वृत्रको मार और (स्वः जय) जलोंको जीत ॥ ४ ॥

भावार्थ— ऋत-नियमके अनुसार चलनेवाले वीर उस दिव्य तेजको प्राप्त करते हैं कि जो उन्हें सदा जागृत रखता है । वह दिव्य तेज उन्हें आलस्यसे दूर रखता है ॥ १ ॥

दुष्टोंके नाश करनेवाले इन्द्रने सब शत्रुओंका नाश किया । वह तेजस्वी बना । सब देव तेरे सख्यके लिए प्रयत्न करते हैं । जो शत्रुओंको मारकर यशस्वी होता है, उसकी मित्रता करनेकी सब अभिलाषा धारण करते हैं ॥ २ ॥

जो सैकडों शुभ कर्म करता है तथा उत्तम तीक्ष्ण शस्त्रसे शत्रुका वध करता है, उस वीरकी सब स्तुति करते हैं । अपने शस्त्र अति तीक्ष्ण रखने चाहिये । उससे शत्रुका वध करना चाहिये । जो वीर ऐसा करता है उसकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुका विनाश करनेके विचार हमारे मनमें स्थापित कर; तेरे धैर्यशाली मनसे हमें भरपूर अन्नका दान कर । शत्रुको मार । अपना जय हो ऐसा कर ॥ ४ ॥

×

१४९३ यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत् पृथिवीमप्रथय-स्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥
१४९४ तत् ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥
१४९५ आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन् तपता सुवृक्तिभि-र्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ७ ॥

[९०]

(ऋषि:- नृमेध-पुरुमेधावाङ्गिरसौ । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः (विषमा बृहती, समा सतोबृहती))
१४९६ आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥

अर्थ— [१४९३] हे (अपूर्व्य मघवन्) हे विलक्षण काम करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तूने (वृत्रहत्याय) वृत्रको मारनेके लिए (यत् जायथाः) जिस बलको प्रकट किया (तत्) उसी बलसे (पृथिवीं अप्रथयः) तूने पृथिवीको विस्तृत किया (उत) और (तत् द्यां अस्तभ्नाः) उसी बलसे द्युलोकको स्थिर किया ॥ ५ ॥

[१४९४] हे इन्द्र ! (तत् ते यज्ञः अजायत) उस तेरे लिए यज्ञ हुआ, (तत् अर्कः) तेरे लिए मंत्र बोले गए, (उत) और (हस्कृतिः) वषट्कार पूर्वक मंत्र भी तेरे लिए बोले गए, (यत् जातं यच्च जन्त्वम्) जो कुछ पैदा हुआ या जो कुछ होनेवाला विश्व है, (तत् विश्वं अभिभूः असि) उस सबको तू अधिकारमें रखता है ॥ ६ ॥

१ यत् जातं यत् च जन्त्वं तत् विश्वं अभिभूः असि— जो बना और जो बननेवाला है उस सबपर तेरा अधिकार चलता है ।

[१४९५] हे इन्द्र ! तूने (आमासु पक्वं ऐरयः) गायोंमें पक्के दूधको प्रेरित किया, और (दिवि सूर्यं आ रोहयः) द्युलोकमें सूर्यको चढाया । (घर्मं सामन् न) घर्म अर्थात् प्रवर्ग्य यज्ञको जिस प्रकार सामोंसे बढाते हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! तुम इन्द्रको (सुवृक्तिभिः तपत) उत्तम स्तोत्रोंसे बढाओ और (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) पूज्य इन्द्रके लिए प्रिय लगनेवाले बृहत् नामक सामका गान करो ॥ ७ ॥

[९०]

[१४९६] (वृत्रहा, परमज्याः, ऋचीषमः) वृत्रको मारनेवाला, उत्तम धनुषकी डोरीवाला, स्तोत्र देनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा (विश्वासु समत्सु हव्यः) सब युद्धोंमें सहायार्थ बुलाये जाने योग्य वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः ब्रह्माणि सवनानि आ उप भूषतु) हमारे मंत्रोंको तथा यज्ञोंको अलंकृत करे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तूने वृत्रको मारनेके लिए जिस बलको प्रकट किया था, उसी बलको तूने पृथिवीको विस्तृत करनेके लिए किया और उसी बलसे तूने द्युलोकको स्थिर किया ॥ ५ ॥

इस संसारमें जितना भी कुछ ज्ञान है, उस सबको इन्द्र जानता है । इसके अलावा इस विश्वमें जितना भी कुछ उत्पन्न हुआ पदार्थ है, अथवा जितना भी कुछ भविष्यमें होनेवाला है, उन सबका स्वामी इन्द्र ही है ॥ ६ ॥

यह इन्द्रकी महिमा है कि उसने गायोंमें पक्के हुए दूधको स्थापित किया । गोदुग्ध स्वयंमें एक पकवान है । इसी इन्द्रने द्युलोकमें सूर्यको स्थापित किया ॥ ७ ॥

शत्रुओंका संहारक तथा उत्तम शस्त्रोंको धारण करनेवाला होनेके कारण यह इन्द्र सभीके द्वारा युद्धमें सहायताके लिए बुलाया जाता है ॥ १ ॥

१४९७ त्वं दाता प्रथमो राधसाम्-स्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥
१४९८ ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजने-न्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥
१४९९ त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे ।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषे ऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥ ४ ॥
१५०० त्वमिन्द्र यशा अस्यृ-जीषी शवसस्पते ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इद-नुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

अर्थ— [१४९७] हे इन्द्र ! तू (राधसां प्रथमः दाता असि) तू धनोंको सबसे पहले देनेवाला है, और तू (सत्यः ईशानकृत् असि) सत्य और सब पर शासन करनेवाला है । हम (तुविद्युम्नस्य शवसः पुत्रस्य महः) अत्यन्त तेजस्वी, बलके पुत्र और महान् तेरे (युज्या वृणीमहे) योग्य धनोंको चाहते हैं ॥ २ ॥

[१४९८] हे (गिर्वणः हर्यश्व इन्द्र) पूज्य तथा घोडोंको पासमें रखनेवाले इन्द्र ! हम (ते) तेरे लिए (या अनतिद्भुता ब्रह्मा) जिन यथार्थरूपवाले स्तोत्रोंको (अमन्महि) मनन पूर्वक बोलते हैं और (क्रियन्ते) दूसरोंके द्वारा यजन कराये जाते हैं, (इमा योजना जुषस्व) उन योजनाओंका तू सेवन कर ॥ ३ ॥

[१४९९] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वं हि सत्यः अनानतः) तू सचाईसे किसीके सामने न झुकनेवाला नहीं है, तू (भूरि वृत्रा न्यृंजसे) बहुतसे वृत्रोंको मारता है । हे (शविष्ठ वज्रहस्त) बलवान् और हाथोंमें वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (दाशुषे रयिं अर्वाचं कृधि) दाताके लिए धनको उसकी तरफ प्रेरित कर ॥ ४ ॥

१ त्वं हि सत्यः अनानतः— तू किसीके सामने झुकता नहीं है ।
२ त्वं भूरि वृत्रा न्यृंजसे— तू बहुत शत्रुओंका वध करता है ।
३ त्वं दाशुषे रयिं अर्वाचं कृधि— तू दाताके पास पर्याप्त धन रख ।

[१५००] हे (शवसस्पते इन्द्र) बलोंके स्वामी इन्द्र ! (त्वं) तू (यशाः ऋजीषी असि) यशस्वी और सोम पीनेवाला है । (त्वं एकः इत्) तू अकेला ही (चर्षणीधृता) मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले अपने वज्रसे (अनुत्ता, अप्रतीनि वृत्राणि हंसि) जिनका मुकाबला नहीं किया जा सकता ऐसे कभी पीछे न हटनेवाले वृत्रोंको मारता है ॥ ५ ॥

१ त्वं एकः चर्षणीधृता अनुत्ता अप्रतीनि वृत्राणि हंसि— तू अकेला ही शस्त्र धारण करके अप्रतिम शत्रुओंको मारता है ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू धनोंका दान करनेमें पहिला दाता है । तू सच्चा स्वामी निर्माण करनेवाला है । तेजस्वी और बलके लिए प्रसिद्ध ऐसे महान योग्य सामर्थ्य हम चाहते हैं । हमें ऐसे सामर्थ्य प्राप्त हों ऐसा चाहते हैं कि जिनसे तेजस्विता और बल बढता रहता है ॥ २ ॥

इन्द्र इतना शूरवीर है कि उसे कोई भी शत्रु झुका नहीं सकता । वह सदा उत्साहमें भरकर शत्रुओंका वध करता है । इसलिए उसकी सब स्तुति करते हैं ॥ ३-४ ॥

यह इन्द्र अकेला होते हुए भी अपने वज्रसे अन्योंसे अपराजेय शत्रुओंको मारता है और अपने इस पराक्रमके कारण यशस्वी होता है ॥ ५ ॥

१५०१ तमुं त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन् ॥ ६ ॥

[९१]

(ऋषिः- आत्रेयी अपाला । देवताः- इन्द्रः । छन्दः अनुष्टुप्, १-२ पङ्क्तिः ।)

१५०२ कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत् ।
अस्तं भरन्त्यब्रवी—दिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥ १ ॥

१५०३ असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत् ।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिण—मपूपवन्तमुक्थिनम् ॥ २ ॥

१५०४ आ चन त्वा चिकित्सामो ऽधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवे—न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

१५०५ कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित् पतिद्विषो यती—रिन्द्रेण संगमामहै ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५०१] (भागं इव) जिस प्रकार पुत्र अपने पितासे धनका भाग मांगता है, उसी प्रकार हे (असु-र) प्राण रक्षक इन्द्र ! (तं त्वा प्रचेतसं) उस तुझ बुद्धिमान्से (राधः ईमहे) हम धन मांगते हैं । हे इन्द्र ! (ते शरणा) तेरा आश्रय (मही कृत्तिः इव) बहुत बडे कवचके समान है, (ते सुम्ना नः अश्नवत्) तेरे सुख हम भोगें ॥ ६ ॥

[९१]

[१५०२] (वारवायती कन्या) नदीकी तरफ स्नानके लिये जाती हुई कन्याने (स्रुतौ) मार्गमें (सोमं अपि अविदत्) सोमको प्राप्त कर लिया । उसे (अस्तं भरन्ती अब्रवीत्) घरको लाती हुई बोली कि मैं (त्वा इन्द्राय सुनवै) तुझे इन्द्रके लिए निचोडूँगी, मैं (त्वा शक्राय सुनवै) तुझे सामर्थ्यवान् इन्द्रके लिए निचोडूंगी ॥ १ ॥

[१५०३] हे इन्द्र ! (यः असौ) जो यह (वीरकः) वीर तू (विचाकशत्) तेजस्वी होता हुआ (गृहं गृहं एषि) प्रत्येकके घर जाता है, वह तू (धानावन्तं, करम्भिणं, अपूपवन्तं उक्थिनं) खीलोंवाले, दही मिश्रित, पुओंसे युक्त तथा प्रशंसनीय (इमं जम्भसुतं पिब) इस पीनेके लिये निचोडे गए सोमको पी ॥ २ ॥

[१५०४] हे इन्द्र ! हम (त्वा चन चिकित्सामः) तुझे जानने की इच्छा करते हैं, पर (चन त्वा न अधि ईमसि) अभी तुझे हम पहचान नहीं सकते । हे (इन्दो) सोम ! तू (शनैः इव शनकैः इव) धीरे धीरे (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिए बह ॥ ३ ॥

[१५०५] वह इन्द्र हमें (कुवित् शकत्) बहुत बार सामर्थ्य युक्त करे, (कुवित् करत्) हमें बहुत श्रेष्ठ करे तथा हमें (कुवित्) बहुत बार (वस्यसः करत्) धनवान् करे । (पतिद्विषः यतीः) पतिके क्रोधके कारण भाई हुई मैंने (इन्द्रेण) इन्द्रकी (कुवित् संगमामहै) बहुत बार उपासना की है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तुझ बुद्धिमान्के पास पिताके धनका भाग पुत्र मांगता है, उस प्रकार धनका भाग हम मांगते हैं । तेरे आश्रयमें रहनेवाले हम, बडे कवचसे सुरक्षित होनेके समान सुरक्षित होकर तुझसे सुख प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

स्त्रियां भी स्नान आदिसे पवित्र होकर यज्ञ करें और उसमें सोम रस तैय्यार करके इन्द्रको बुलाकर उसका सत्कार करें । स्त्रियोंको भी यज्ञ करनेका अधिकार है, यह इन दो मंत्रोंसे प्रतिपादित होता है ॥ १-२ ॥

इन्द्रके रूप अनेक हैं । अतः वह अनेक रूपोंमें प्रकट होता है । इसी अनेकताके कारण वह सर्वत्र व्यापक होते हुए भी उसे पहचानना कठिन होता है । इसलिए उसे जाननेकी इच्छा करनेवाले ज्ञानीजन भी उसे पहचान नहीं सकते ॥ ३ ॥

उस इन्द्रकी उपासना हम करें, तो हम अनेक बार सामर्थ्यशाली तथा अनेक बार धनवान् हो सकते हैं ॥ ४ ॥

१५०६ इमानि त्रीणि विष्टपा तानींन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरा—मादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥
१५०७ असौ च या न उर्वरा—दिमां तन्वं मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥
१५०८ खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पू—त्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥

[९२]

(ऋषिः- श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, १ अनुष्टुप् ।)

१५०९ पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

अर्थ— [१५०६] हे इन्द्र! मेरे (ततस्य शिरः) पिताका सिर, (उर्वरां) उसकी सुपीक भूमि और (मे उदरे उप) मेरे पेटके पासका स्थान, (इमानि त्रीणि विष्टपा) ये तीन स्थान हैं, (तानि वि रोहय) उन्हें उत्तम कर ॥५॥

१ ततस्य शिरः विरोहय— पिताका सिर उन्नत कर ।
२ ततस्य उर्वरां विरोहय— पिताकी उपजाऊ भूमि धान्य उगे ऐसा कर ।
३ मे उदरे उप विरोहय— मेरे पेटका आरोग्य बढा ।
४ इमानि त्रीणि विष्टपा— ये तीन स्थान सुधरें ।

[१५०७] (नः) हमारे पिताकी (या उर्वरा) जो भूमि है उसे (आत् मम इमां तन्वां) और मेरे इस शरीरको (अथो ततस्य यत् शिरः) और पिताका जो सिर है, (ताः सर्वाः) उन सबको (रोमशाः कृधि) रोमोंवाला कर ॥ ६ ॥

[१५०८] (रथस्य खे) रथके छिद्रसे (अनसः खे) गाडीके छिद्रसे (युगस्य खे) रथके जुएके छिद्रसे, हे (शतक्रतो) सैकडों पराक्रमके कार्य करनेवाले इन्द्र ! तू (अपालां त्रिः पत्वी) अपालाको तीन बार पवित्र करके उसे (सूर्यत्वचं अकृणोः) सूर्यके समान तेजस्वी चमडीसे युक्त किया ॥ ७ ॥

[९२]

[१५०९] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अन्धसः पान्तं) सोमको पीनेवाले (विश्वासाहं) सभी शत्रुओंको पराजित करनेवाले (शतक्रतुं) सैकडों शुभ काम करनेवाले (चर्षणीनां मंहिष्ठं) मनुष्योंके लिए पूज्य ऐसे (इन्द्रं अभि प्रगायत) इन्द्रके स्तोत्रोंका गान करो ॥ १ ॥

भावार्थ— मनुष्य ऐसे कर्म करे कि जिससे उसके पिताका सिर सदा गर्वसे ऊंचा रहे, वह सम्पत्तिशाली बने तथा स्वास्थ्य उत्तम बने ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! हमारी उपजाऊ भूमिको पाकवाली कर ; मेरे शरीरको बालोंवाला करो अर्थात् तरुण करो । पिताका सिर बालवाला करो । उसके बाल नष्ट न हों ॥ ६ ॥

रथ, गाडी और जूएके छिद्रसे अपालाको तीन बार पवित्र करके उसको सूर्यके समान तेजस्वी बनाया । अपालाको रथपर तथा गाडीपर बिठलाया, उससे जू ठीक किया । इससे अपाला कन्या सामर्थ्यवती बनी । उसका शरीर ठीक हुआ ॥७॥

हे मनुष्यो ! तुम सभी शत्रुओंको नष्ट करनेवाले, तथा अनेकों शुभ कार्य करनेके कारण मनुष्योंमें पूज्य इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

१५१० पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥
१५११ इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः । महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ॥ ३ ॥
१५१२ अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः । इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥
१५१३ तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये । तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥
१५१४ अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा । विश्वाभि भुवना भुवत् ॥ ६ ॥
१५१५ त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ॥ ७ ॥
१५१६ युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् । नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१५१०] हे मनुष्यों! तुम (पुरुहूतं पुरुष्टुतं) बहुतोंद्वारा बुलाये जानेवाले, और बहुतोंद्वारा प्रशंसित, (गाथान्यं सनश्रुतं) यशस्वी और अनन्त कालसे प्रसिद्ध ऐसे (इन्द्रं ब्रवीतन) इन्द्रके गुणोंका वर्णन करो ॥ २ ॥

[१५११] (इन्द्रः इत् नः महानां वाजानां दाता) इन्द्र ही हमें बहुत अन्नोंको देनेवाला है, और (नृतुः) सबको आगे ले जानेवाला है, वह (महान्) महान इन्द्र (अभिज्ञु आ यमत्) घुटनोंतक झुके हुए अर्थात् विनम्र हुए हुए हमें धन देवे ॥ ३ ॥

[१५१२] (शिप्री) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रने (प्रहोषिणः सुदक्षस्य) श्रद्धापूर्वक हवि देनेवाले सुदक्षके (यवाशिरः इन्दोः अन्धसः) जौके आटेसे मिश्रित चमकनेवाले सोमको (अपात्) पिया ॥ ४ ॥

सोमरसमें आटा मिलाकर पिया जाता है।

[१५१३] (सोमस्य पीतये) सोम पीनेके लिए (तं इन्द्रं अभि प्र अर्चत) उस इन्द्र की स्तुति करो, (तत् अस्य वर्धनं इत्) वह सोम इस इन्द्रको बढानेवाला है ॥ ५ ॥

सोमरस पीनेसे शक्ति बढती है।

[१५१४] यह (देवः) तेजस्वी इन्द्र (अस्य मदानां पीत्वा) इस सोमके आनन्द कारक रसोंको पीकर (देवस्य ओजसा) दिव्य ओजसे (विश्वा भुवना अभि भुवत्) सारे भुवनों पर शासन करता है ॥ ६ ॥

[१५१५] हे मनुष्य ! (सत्रासाहं) सब शत्रुओंको एक साथ हरानेवाले (वः विश्वासु गीर्षु आयतम्) तुम्हारे सभी स्तोत्रोंमें प्रशंसित होनेवाले (त्यं उ) उस इन्द्रकोही (ऊतये आच्यावयसि) अपने संरक्षणके लिए बुला ॥ ७ ॥

[१५१६] (अनर्वाणं सन्तं युध्मं) बिना घोडोंके भी उत्तमतासे युद्ध करनेवाले (सोमपां) सोमको पीनेवाले (अन्-अपच्युतम्) अपने स्थानसे न हिलनेवाले (नरं) उत्कृष्ट नेता (अवार्यक्रतुं) न हटाये जाने योग्य इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र ही बहुत सारे अन्नको देनेवाला तथा उत्तम नेता है। वह अनन्तकालसे प्रसिद्ध होनेके कारण अत्यन्त यशस्वी है। वह अत्यन्त विनम्र हुए हमें ऐश्वर्यसे सम्पन्न करे ॥ २-३ ॥

इन्द्र श्रद्धापूर्वक हवि देनेवालेके द्वारा दिए गए सोमरसको पीता है। जो हृदयसे इन्द्रकी स्तुति करता है, उसके सोमरसको इन्द्र स्वीकार करता है ॥ ४-५ ॥

तेजस्वी इन्द्र इन सोमरसोंको पीकर उत्साहमें भर जाता है और ओजस्वी होकर वह सारे भुवनों पर शासन करता है। उस वीर इन्द्रकी प्रशंसा सभी लोग स्तोत्रोंसे करते हैं। सोमको पीनेसे उत्साह और शक्ति बढती है ॥६-७॥

युद्ध करनेवाले, अपने स्थानसे न हटनेवाले नेता इन्द्रको उसके निश्चित किये कार्यसे हटाया नहीं जा सकता। और यही है कि वह एक बार जो निश्चित कर लेता है, उससे वह कभी भी पीछे नहीं हटता ॥ ७-८ ॥

१५१७ शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम । अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥
१५१८ अतश्चिदिन्द्र ण उपा ऽऽ याहि शतवाजया । इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥
१५१९ अयाम धीवतो धियो ऽर्वद्भिः शक्र गोदरे । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥
१५२० वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि ॥ १२ ॥
१५२१ विश्वा हि मर्त्यत्वना ऽनुकामा शतक्रतो । अगन्म वज्रिन्नाशसः ॥ १३ ॥
१५२२ त्वे सु पुत्र शवसो ऽवृत्रन् कामकातयः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥
१५२३ स नो वृषन् त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा । धिया विड्ढि पुरंध्या ॥ १५ ॥

अर्थ— [१५१७] हे (ऋचीषम इन्द्र) उत्तम मार्गसे जानेवाले इन्द्र ! (विद्वान्) विद्वान् तू (नः पुरु रायः शिक्ष) हमें बहुत सारा धन दे और (पार्ये धने) शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें (नः अव) हमारी रक्षा कर ॥ ९ ॥

[१५१८] (अतः चित्) इसी लिए हे इन्द्र ! (शतवाजया सहस्रवाजया इषा) सैकडों और हजारों प्रकार बल देनेवाले अन्नके साथ (नः उप आयाहि) हमारे पास आ ॥ १० ॥

अन्न बल बढानेवाला हो । वैसा अन्न हमें मिले ।

[१५१९] हे (शक्र गोदरे) शक्तिमान् और पर्वतोंको तोडनेवाले इन्द्र ! (धीवतः धियः अयाम) बुद्धिमान् हम कर्मोंको करें और हे (वज्रिवः) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तेरे द्वारा दिए गए (अर्वद्भिः) घोडोंके द्वारा हम (पृत्सु जयेम) संग्रामोंमें विजय प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[१५२०] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभ कार्य करनेवाले इन्द्र ! (यवसेषु गावः न) जिस प्रकार जौके खेतोंमें गायें आनन्दित होती हैं, उसी प्रकार (वयं उ त्वा) हम तुझे (उक्थेषु रणयामसि) स्तोत्रोंसे आनन्दित करते हैं ॥ १२ ॥

स्तोत्र गानेसे इन्द्रका आनंद बढता है ।

[१५२१] हे (शतक्रतो) सैकडों शुभकर्म करनेवाले इन्द्र ! (विश्वा हि मर्त्यत्वना) सभी मनुष्य (अनुकामा) अभिलाषाके पीछे चलते हैं, हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! हम भी वैसे (आशसः अगन्म) धनकी अभिलाषा करते हैं ॥ १३ ॥

[१५२२] हे (शवसः पुत्र इन्द्र) बलके पुत्र इन्द्र ! (कामकातयः) कामना करनेवाले मनुष्य (त्वे सु अवृत्रन्) तेरे साथ उत्तमतासे व्यवहार करते हैं । हे इन्द्र ! (त्वां न अति रिच्यते) तुझसे बढकर और कोई नहीं है ॥ १४ ॥

[१५२३] हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र ! (सः) वह तू अपने (सनिष्ठया) धन देनेवाली पर शत्रुओंके लिए (घोरया) भयंकर और उन्हें (द्रवित्न्वा) भगानेवाली (पुरंध्या धिया) अनेक शुभ गुणोंको धारण करनेवाली बुद्धिसे (नः विड्ढि) हमारी रक्षा कर ॥ १५ ॥

भावार्थ— हे विद्वान् इन्द्र ! तू हमें ऐश्वर्यसे युक्त कर और साथ ही हमारी रक्षा कर । बल बढानेवाले अनेक तरहके अन्नसे युक्त होकर तू हमारे पास आ ॥ ९-१० ॥

हम बुद्धिमान् होकर बुद्धिके ही कार्य करते हुए आगे बढें । घोडोंसे युद्धमें जय प्राप्त करें । युद्धमें घोडोंका उपयोग करें ॥ ११ ॥

जिस तरह जौसे भरे हुए खेतोंको देखकर गाय आनन्दित होती है, उसी प्रकार स्तोत्रोंको देखकर इन्द्र आनन्दित होता है और उसी तरह अपनी अभिलाषाओंको पूर्ण होते देखकर मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥ १२-१३ ॥

ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले मनुष्य इन्द्रकी भक्ति करते हैं, क्योंकि उस इन्द्रसे बढकर और कोई नहीं है । इन्द्रकी बुद्धि शत्रुओंके लिए भयंकर और सज्जनोंके लिए अनेक शुभ गुणोंको धारण करनेवाली है ॥ १४-१५ ॥

१५२४ यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः । तेन नूनं मदे मदेः ॥ १६ ॥
१५२५ यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तमः । य ओजोदातमो मदः ॥ १७ ॥
१५२६ विद्मा हि यस्ते अद्रिवस्त्वादत्तः सत्य सोमपाः । विश्वासु दस्म कृष्टिषु ॥ १८ ॥
१५२७ इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १९ ॥
१५२८ यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २० ॥
१५२९ त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ २१ ॥
१५३० आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः । न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥
१५३१ विव्यक्थ महिना वृषन् भक्षं सोमस्य जागृवे । य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २३ ॥

अर्थ— [१५२४] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों तरहके शुभकर्म करनेवाले इन्द्र ! (यः द्युम्नितमः मदः) जिस तेजस्वी आनन्ददायक सोमरसको (ते नूनं) तेरे लिए निश्चयसे दिया, (तेन) इस कारण उस सोमके (मदे) आनन्दमें (नूनं मदेः) तू निश्चयसे आनन्दित हो ॥ १६ ॥

[१५२५] हे इन्द्र ! (यः चित्र श्रवस्तमः) जो विलक्षण तथा अत्यन्त यशस्वी सोमरस है, (यः वृत्रहन्तमः) जो वृत्रको मारनेवाला रस है, तथा (यः ओजदातमो मदः) जो ओजको देनेवाला आनन्ददायक रस है, उसे (ते) तेरे लिए हमने तैयार किया है ॥ १७ ॥

१ चित्रः श्रवस्तमः वृत्रहन्तमः ओजदातमः मदः ते — विलक्षण, यशस्वी, शत्रुको मारनेवाला, बल बढानेवाला यह आनन्ददायक रस तेरे लिए तैयार किया है ।

[१५२६] हे (अद्रिवः सत्य सोमपाः दस्म) वज्र धारण करनेवाले, अविनाशी, सोम पान करनेवाले तथा दर्शनीय इन्द्र ! (विश्वासु कृष्टिषु) सब मनुष्योंको (त्वा दत्तः) तेरे द्वारा दिया गया (यः) जो धन है, उस (ते) तेरे धनको (विद्म) हम जानते हैं ॥ १८ ॥

[१५२७] (मद्वने इन्द्राय) आनन्दित होनेवाले इन्द्रके लिए (सुतं) निचोडे गए सोमको (नः गिरः परिष्टोभन्तु) हमारी स्तुतियाँ प्रशंसित करें, तथा (कारवः) स्तोता (अर्कं अर्चन्तु) उस तेजस्वी सोमका सत्कार करें ॥ १९ ॥

[१५२८] (यस्मिन् विश्वाः श्रियः अधि) जिस इन्द्रके पास सब तरहके ऐश्वर्य हैं, तथा (सप्त संसदः) सात होता (रणन्ति) जिसकी स्तुति करते हैं, उस (इन्द्रं) इन्द्रको हम (सुते हवामहे) सोम यागमें बुलाते हैं ॥२०॥

[१५२९] (देवासः) देवगण (त्रिकद्रुकेषु) तीन दिनतक चलनेवाले उत्सवोंमें (यज्ञं अत्नत) यज्ञका विस्तार करते हैं । (नः गिरः) हमारी स्तुतियां भी (तं इत् वर्धन्तु) उस इन्द्रको ही बढायें ॥ २१ ॥

[१५३०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सिन्धवः समुद्रं इव) जिसप्रकार नदियां समुद्रमें घुसती हैं, उसी तरह (इन्दवः त्वा आ विशन्तु) सोमरस तुझमें प्रविष्ट हों, (त्वां न अतिरिच्यते) तुझसे बढकर और कोई कुछ नहीं है ॥ २२ ॥

[१५३१] हे (वृषन् जागृवे इन्द्र) बलवान् और सदा जागृत रहनेवाले इन्द्र ! (यः ते जठरेषु) जो सोमरस तेरे पेटमें जाता है, उस (सोमस्य भक्षं) सोमके पानको तू अपनी (महिना) महिमासे (विव्यक्थ) प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

भावार्थ— सोमरस तेजस्वी और आनन्दायक होते हैं । उन्हें पीकर इन्द्र भी विलक्षण शक्तिशाली, यशस्वी, शत्रुको मारने तथा अपने भक्तोंके बलको बढानेवाला होता है ॥ १६-१७ ॥

हम जानते हैं कि हमें जो कुछ ऐश्वर्य मिला हुआ है, वह सब इन्द्रकी कृपासे ही मिला हुआ है, इसीलिए हम उस इन्द्र की स्तुति करते हैं ॥ १८-१९ ॥

उस इन्द्रके पास सब तरहके ऐश्वर्य भरे पडे हैं । वही सब यज्ञोंमें प्रशंसित होनेवाला है, इसलिए तीनों सवनोंमें किए जानेवाले यज्ञ भी उसी इन्द्रके लिए किए जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

जिस तरह सभी नदियोंका प्रवाह समुद्रकी तरफ ही जाता है, उसी तरह सबके द्वारा दिए गए सोमरस इन्द्रके पास ही पहुंचते हैं, और उस सोमकी महिमासे इन्द्र यशस्वी होता है ॥ २२-२३ ॥

१५३२ अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् । अरं धामभ्य इन्दवः ॥ २४ ॥
१५३३ अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥
१५३४ अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि । अरं ते शक्र दावने ॥ २६ ॥
१५३५ पराकात्ताच्चिदद्रिव--स्त्वां नक्षन्त नो गिरः । अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥
१५३६ एवा ह्यसि वीरयु--रेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ २८ ॥
१५३७ एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २९ ॥
१५३८ मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयु--र्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥

अर्थ-- [१५३२] हे (वृत्रहन् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (सोमः) हमारे द्वारा दिया गया सोम (ते कुक्षये) तेरे पेटके लिए (अरं भवतु) पर्याप्त हो, तथा (इन्दवः) ये चमकनेवाले सोमरस तेरे (धामभ्यः अरं) तेजोंको बढानेके लिए पर्याप्त हों ॥ २४ ॥

[१५३३] (श्रुत कक्षः) श्रुतकक्ष नामका ऋषि (अश्वाय अरं गायति) घोडेको पानेके लिए पर्याप्त स्तुति करता है, (गवे अरं)-गायको पानेके लिए पर्याप्त स्तुति करता है, और (इन्द्रस्य धाम्ने अरं) इन्द्रके तेजको पानेके लिए पर्याप्त स्तुति करता है ॥ २५ ॥

[१५३४] हे इन्द्र ! (नः सुतेषु सोमेषु) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसोंको तू (अरं भूषसि) अच्छी तरह सुशोभित करता है। (ते शक्रदावने अरं) धन आदिको देनेवाले तुझे हमारे सोम पर्याप्त हों ॥ २६ ॥

[१५३५] हे (अद्रिवः) वज्रवाले इन्द्र ! (नः गिरः) हमारी स्तुतियां (पराकात्तात् चित्) दूरसे भी (त्वां नक्षन्त) तुझे प्राप्त हो जाती हैं। हे इन्द्र ! (वयं) हम (ते) तेरे धनको (अरं गमाम) अधिक तादादमें प्राप्त करें ॥ २७ ॥

[१५३६] हे इन्द्र ! तू (वीरयुः एव असि) वीरोंकी कामना करनेवाला है, (शूरः उत स्थिरः) तू शूर और युद्धमें स्थिर रहनेवाला है। (ते मनः राध्यं एव) तेरा मन आराधना करने योग्य है ॥ २८ ॥

[१५३७] हे (तुवीमघ) बहुत धनवान् इन्द्र ! (विश्वेभिः धातृभिः) धारण पोषण करनेवाले यजमानोंके द्वारा तेरा (रातिः धायि एव) धन धारण किया जाता है, (अध) इसलिए हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मे चित् सचा) मुझे भी धनसे संयुक्त कर ॥ २९ ॥

[१५३८] हे (वाजानां पते) बलोंके स्वामी इन्द्र ! तू (तन्द्रयुः ब्रह्म इव) आलसी ब्राह्मणके समान (मा सु भुवः) मत हो, अपितु (गोमतः सुतस्य) गायके दूधसे मिश्रित सोम पीकर (मत्स्व) आनन्दित हो ॥ ३० ॥

१ ब्रह्म तन्द्रयुः मा सु भव-- ज्ञानी होकर आलसी न बन। ज्ञानी प्रयत्नशील होना चाहिये।

भावार्थ-- सोमरसको पीकर उसे पचानेसे तेजको बढाते हैं। क्योंकि इन्हीं सोमरसोंको पीकर इन्द्र तेजस्वी हुआ ॥ २४-२५ ॥

हे इन्द्र ! हमारे द्वारा दिए गए सोमरसोंको तू प्रीतिपूर्वक स्वीकार कर। हम तेरी स्तुति करके अधिक प्रमाणमें हम तुझसे धन प्राप्त कर सकें ॥ २६-२७ ॥

हे इन्द्र ! तू वीरोंसे युक्त है, तुम्हारे साथ अनेक वीर हैं। तू युद्धमें शूर है और स्थिर रहता है। भागता नहीं। तेरा मन आराधना करने योग्य है। वीर युद्धमें स्थिर रहे, पलायन न करे। ऐसे वीरका मन आराधना करने योग्य है ॥ २८ ॥

सब धारणकर्ताओंके द्वारा तेरा दान धारण किया जाता है। इस जगतमें जितने धनी हैं, उन सबके धनोंका स्वामी यही इन्द्र है। इसी इन्द्रसे सब लोग धन प्राप्त करते हैं ॥ २९ ॥

१५३९ मा न इन्द्राभ्याऽदिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् । त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥
१५४० त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः । त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥
१५४१ त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् । सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥

[९३]

(ऋषिः- सुकक्ष आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः, ३४ इन्द्र-ऋभवश्च । छन्दः- गायत्री ।)

१५४२ उद्धेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेषि सूर्य ॥ १ ॥
१५४३ नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २ ॥
१५४४ स न इन्द्रः शिवः सखाऽश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

अर्थ— [१५३९] हे इन्द्र ! (आ दिशः सूरः) उपदेश करनेवाले विद्वान् मनुष्य (अक्तुषु) रात्रिमें भी (नः मा यमन्) हमसे दूर न जाएं अपितु (अभि आ) हमारे पास ही आवें, हम (त्वा युजा) तेरी सहायतासे (तत् वनेम) उस विद्वानोंके समूहको प्राप्त करें ॥ ३१ ॥

[१५४०] हे इन्द्र ! (वयं त्वया युजा) हम तेरी सहायतासे ही (स्पृधः प्रतिब्रुवीमहि) शत्रुओंका मुकाबला करें । (त्वं अस्माकं) तू हमारा है और (तव स्मसि) हम तेरे हैं ॥ ३२ ॥

१ वयं त्वया स्पृधः प्रतिब्रुवीमहि— हम तेरे साथ रह कर स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका मुकाबला करेंगे ।

२ त्वं अस्माकं, तव स्मसि— तू हमारा सहायक हो और हम तेरे साथी हैं ।

[१५४१] हे इन्द्र ! (त्वायवः) तेरी कामना करनेवाले, (अनोनुवतः) क्रमशः स्तुति करनेवाले (सखायः कारवः) मित्र स्तोता (त्वां इत् हि चरान्) तेरी ही स्तुति करते हैं ॥ ३३ ॥

[९३]

[१५४२] हे (सूर्य) तेजस्वी इन्द्र ! तू (श्रुतामघं, वृषभं नर्यापसं) प्रसिद्ध धनवाले, बलवान् और मनुष्योंके हितकारी कामोंको करनेवाले तथा (अस्तारं) उदार मनुष्यके कार्यमें ही (अभि उत् एषि) जानेवाला है ॥ १ ॥

[१५४३] (यः वृत्रहा) जिस वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने अपने (बाह्वोजसा) भुजाओंके बलसे (नवनवतिं पुरः) शत्रुकी निन्यानवे नगरियोंको (बिभेद) तोडा और (अहिं अवधीत्) अहिको मारा ॥ २ ॥

[१५४४] (शिवः सखा सः इन्द्रः) कल्याणकारी मित्र वह इन्द्र (नः) हमारे लिए (उरु धारा इव) बहुत दूध देनेवाली गायके समान (अश्वावत् गोमत् यवमत् दोहते) घोडे, गाय और धान्यसे युक्त धनको दुहता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— ब्राह्मणका आलसी होना उसके विनाशका कारण बनता है । इसलिए ब्राह्मणको सदा उत्साही और आनन्दसे युक्त होना चाहिए । ऐसे ज्ञानीको सब लोग अपने पास ही रखना चाहते हैं ॥ ३०-३१ ॥

हे इन्द्र ! तेरी सहायता प्राप्त करके हम शत्रुओंका मुकाबला करें । हम सदा तेरे प्रिय होकर ही रहें ; क्योंकि जो तेरी स्तुति करता है, वही तेरा प्रिय होता है ॥ ३२-३३ ॥

हे इन्द्र ! तू प्रसिद्ध और यशस्वी धनवाला, बलवान् और मनुष्योंके लिए हितकारी कामोंको सदा करनेवाला है, तथा उदार है, दाता है, उसके कार्यमें आनेवाला है ॥ १ ॥

इस वृत्रनाशक इन्द्रने अपने बाहुबलसे शत्रुके निन्यानवे नगर तोडे और अहिको भी मारा । निन्यानवे नगरोंको तोडना यह कितने सामर्थ्यका कार्य है उसका विचार कीजिये । शत्रुके ९९ किले, उनमें रहा सैन्य यह सविनष्ट करनेके लिये जितना सैन्य और अन्य युद्ध सामान जितना चाहिये उतना इन्द्रके पास था, उसका उपयोग करके वह शत्रुका पराजय करता था ॥२॥

इन्द्र हमें घोडे, गौवें, जौ आदि देता है, अतः वह हमारा उत्तम मित्र है ॥ ३ ॥

१५४५ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥
१५४६ यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥ ५ ॥
१५४७ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वाँस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥
१५४८ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ ७ ॥
१५४९ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥
१५५० गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥
१५५१ दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः । त्वं च मघवन् वशः ॥ १० ॥

अर्थ— [१५४५] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले (सूर्य) तेजस्वी इन्द्र ! (अद्य) आज (यत् कत् च अभि उत् अगाः) जिस किसी पदार्थको लक्ष्य करके तू उदय हुआ है, हे इन्द्र ! (सर्वं तत् ते वशे) वह सब तेरे वशमें है ॥ ४ ॥

[१५४६] हे (प्रवृद्ध सत्पते) उन्नतिशील तथा सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (न मरै इति यत् मन्यसे) मैं मरनेवाला नहीं, ऐसा जो तू मानता है, (तव तत् सत्यं इत्) तेरा वह मानना सत्य ही है ॥ ५ ॥

[१५४७] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (ये सोमासः) जो सोमरस (परावति सुन्विरे) दूरके देशमें निचोडे जाते हैं, (ये अर्वावति) और जो पासके देशमें निचोडे जाते हैं, (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सभी सोमरसोंके पास तू जाता है ॥ ६ ॥

[१५४८] (महे वृत्राय हन्तवे) महान् वृत्रको मारनेके लिए हम (तं इन्द्रं वाजयामसि) उस इन्द्रको बलवान् बनाते हैं। (सः वृषा वृषभः भुवत्) वह बलवान् इन्द्र और अधिक बलशाली होता है ॥ ७ ॥

[१५४९] (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (दामने कृतः) दान देनेके लिए उत्पन्न हुआ है, (सः ओजिष्ठः मदे हितः) वह अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र आनन्दमें रहता है। (सः सोम्यः द्युम्नी श्लोकी) वह सोमको पीनेवाला इन्द्र तेजस्वी और सुप्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

[१५५०] (वज्रः न) वज्रके समान (गिरा संभृतः) स्तुतिसे तीक्ष्ण किया गया, (सबलः अनपच्युतः) बलशाली, अपने स्थानसे न हटनेवाला (ऋष्वः) दर्शनीय (अस्तृतः) और शत्रुसे न हारनेवाला वह वीर इन्द्र (ववक्षे) मनुष्योंको धन देना चाहता है ॥ ९ ॥

[१५५१] हे (गिर्वणः मघवन् इन्द्रः) स्तुत्य और ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गृणानः त्वं वशः) प्रशंसित होता हुआ तू वशमें रह, प्रसन्न हो और (नः) हमारे लिए (दुर्गं चित् सुगं कृधि) कठिन स्थान भी सरलतासे जाने योग्य कर ॥ १० ॥

भावार्थ— सूर्यका उदय होता है और उसके आधीन सब पदार्थ रहते हैं। सबपर वह प्रकाशता रहता है ॥ ४ ॥

नहीं मरूंगा ऐसा जो मानता है वह उसका मन्तव्य सत्य होता है। 'मैं नहीं मरूंगा' ऐसा मनुष्यको अपने मनमें विचार स्थिर रखना चाहिये, इससे मनुष्यका दीर्घ जीवन होता है ॥ ५ ॥

सोमरस निचोडकर इन्द्रादि देवोंको पीनेके लिये दिए जाते हैं। देवोंके पान करनेके पश्चात् ऋत्विज आदि पीते हैं। सोमरस पीनेसे शरीरमें उत्साहकी वृद्धि होती है ॥ ६ ॥

हम इन्द्रादि देवोंका उत्साह बढाते हैं और वीरोंका शौर्यका भाव भी बढाते हैं ॥ ७ ॥

वह इन्द्र दानके लिए प्रसिद्ध है। वह बलवान् आनन्दमें रहता है। वह आनंदी, तेजस्वी और प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥

वह वीर वज्रके समान बलवान् और वाणीसे प्रशंसित है। वह बलवान्, युद्धमें अपने स्थानसे न हिलनेवाला, दर्शनीय और अपराजित है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे लिये कठिन स्थान भी सुगम कर। कठिन स्थान पर सुगमतासे पहुंचें ऐसा कर ॥ १० ॥

१५५२ यस्यं ते नू चिंदादिशं न मिनन्ति स्वराज्यंम् । न देवो नाध्रिंगुर्जनंः ॥ ११ ॥
१५५३ अधा ते अप्रंतिष्कुतं देवी शुष्मं सपर्यतः । उभे सुशिप्र रोदंसी ॥ १२ ॥
१५५४ त्वमेतदंधारयः कृष्णासु रोहिंणीषु च । परुंष्णीषु रुशत् पयंः ॥ १३ ॥
१५५५ वि यदहेरधं त्विषो विश्वें देवासो अक्रमुः । विदन्मृगस्य ताँ अमंः ॥ १४ ॥
१५५६ आदुं मे निवरो भुवद् वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् । अजांतशत्रुरस्तृंतः ॥ १५ ॥
१५५७ श्रुतं वो वृत्रहन्तंमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् । आ शुंषे राधंसे महे ॥ १६ ॥
१५५८ अया धिया चं गव्यया पुरुंणामन् पुरुंष्टुत । यत् सोमेंसोम आभंवः ॥ १७ ॥

अर्थ— [१५५२] हे इन्द्र ! (यस्यते) जिस तेरे (आदिशं स्वराज्यं) आदेश और स्वराज्यका (देवः अध्रिगुः जनः चित्) देव और अप्रतिहत गतिवाले मनुष्य भी (न मिनन्ति) उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ११ ॥

[१५५३] (अध) इसके बाद हे (सुशिप्र) सुन्दर ठोडीवाले इन्द्र ! (उभे देवी रोदसी) दोनों तेजयुक्त द्यावापृथिवी (ते अप्रतिष्कुतं शुष्मं सपर्यतः) तेरे कहीं न रुकनेवाले बलकी पूजा करते हैं ॥ १२ ॥

[१५५४] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने ही (कृष्णासु, रोहिणीषु परुष्णीषु) काली, लाल और चितकबरी गायोंमें (एतत् रुशत् पयः) इस तेजस्वी दूधको (अधारयः) स्थापित किया ॥ १३ ॥

[१५५५] (अध) इसके बाद (यत्) जब (अहेः त्विषः) अहिनामक असुरके तेजसे डर कर (विश्वे देवासः अक्रमुः) सब देव भाग गए, तब इन्द्रने (मृगस्य तां अमः विदत्) खोजने योग्य उस शत्रुके उस बलको जान लिया ॥ १४ ॥

[१५५६] (आत्) उसके बादही (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने (मे निवरो भुवत्) मेरे शत्रुका निवारण किया, तबसे इन्द्र भी (आजातशत्रुः अस्तृतः) शत्रुरहित और अपराजित हो गया ॥ १५ ॥

[१५५७] हे मनुष्यों ! (वृत्रहन्तमं) वृत्रको मारनेवाले (शर्धं) बलवान् (चर्षणीनां) मनुष्योंके लिए हितकारी (श्रुतं) तथा प्रसिद्ध इन्द्रको (वः) तुम्हारे लिए मैं (महे राधसे) बहुत सारा धन देनेके लिए (आ शुषे) देता हूँ ॥ १६ ॥

[१५५८] हे (पुरुणामन् पुरुष्टुत) बहुतसे नामोंवाले तथा बहुतोंद्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तू (यत् सोमे सोमे आभवः) जब हमारे प्रत्येक सोमयज्ञमें आता है, तब हम (गव्यया अया धिया) गायोंको दिलानेवाली इस बुद्धिसे युक्त होते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जिस तेरे आदेशके अनुसार चलनेवाला स्वराज्य दिव्य और आगे प्रगति करनेवाला मनुष्य भी तोड नहीं सकता, अर्थात् तेरे आदेशानुसार चलनेवाला स्वराज्य शासनका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता। तेरा आदेश ही अखंड रहकर स्वराज्यशासन चला सकता है ॥ ११ ॥

जब इन्द्र सोम पीकर उत्साही होता है, तब कहीं भी न रुकनेवाले इन्द्रकी द्युलोक और पृथिवीलोक प्रशंसा करते हैं ॥ १२ ॥

अनेक रंगकी गायोंसे जो तेजस्वी दूध निकलता है, वह इन्द्रकी ही महिमा है। गौ-दुग्ध तेजस्वी है और तेजको देनेवाला है ॥ १३ ॥

जब अहि नामक असुरके तेजसे डरकर, सब देव भाग गए, तब इन्द्रने उस असुरको खोज निकाला तथा उसे मारकर देवोंको निर्भय किया ॥ १४ ॥

सामर्थ्यशाली इन्द्र शत्रुओंको हराकर अपराजित हो गया। तबसे वह बलवान्, मनुष्योंके लिए हितकारी इन्द्र सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ ॥ १५-१६ ॥

१५५९ बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः । शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ १८ ॥
१५६० कया त्वं न ऊत्याऽभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९ ॥
१५६१ कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान् वृषभो रणत् । वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥
१५६२ अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम् । प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥ २१ ॥
१५६३ पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये । अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥ २२ ॥
१५६४ इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे । अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥
१५६५ इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥

अर्थ - [१५५९] (भूर्यासुतिः वृत्रहा शक्रः) जिसके लिये बहुत सोम निचोडा जाता है, ऐसा वृत्रको मारनेवाला सामर्थ्यवान् इन्द्र (नः मना बोधित् अस्तु) हमारे मनोंको जाननेवाला हो और हमारे (आशिषं शृणोतु) स्तोत्रोंको सुने ॥ १८ ॥

[१५६०] हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र ! (त्वं) तू (कया ऊत्या नः अभि प्रमन्दसे) किस संरक्षणशक्तिसे हमें आनन्दित करेगा और (कया स्तोतृभ्यः आभर) किस शक्तिसे तू स्तोताओंको धन भरपूर देगा ? ॥ १९ ॥

[१५६१] (वृषा नियुत्वान् वृषभः वृत्रहा) बलवान्, घोडोंवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (सोमपीतये) सोम पीनेके लिए (कस्य सुते) किसके सोम यज्ञमें (सचा रणत्) सहायक होकर आनन्दित होगा ॥ २० ॥

[१५६२] हे इन्द्र ! (मन्दसानः त्वं) सोमसे आनन्दित हुआ हुआ तू (नः सहस्रिणं रयिं) हमें हजारों तरहके धन (सु) अच्छी तरह दे और (दाशुषे प्रयन्ता) दाताको प्रेरणा देनेवाला तू हमारी प्रार्थनाओंको (बोधि) जान ॥ २१ ॥

[१५६३] (पत्नीवन्तः इमे सुताः) पालन करनेवाले जलोंसे युक्त ये निचोडे गए सोमरस (वीतये उशन्तः) देव हमें पीयें ऐसी इच्छा करते हुए (यन्ति) बढते हैं । (निचुम्पुणः अपां जग्मिः) पीनेवालेको तृप्त करनेवाले ये सोमरस जलोंमें प्रविष्ट होते हैं ॥ २२ ॥

सोमरसमें पानी मिलाया जाता है और पश्चात् उसे पीते हैं ।

[१५६४] (अध्वरे वृधासः इष्टाः होत्राः) यज्ञसे बढानेवाली अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले यज्ञ (इन्द्रं) इन्द्रको (ओजसा) अपने बलसे (अवभृथं अच्छ असृक्षत) यज्ञके अन्तिम दिन तक ले जाते हैं ॥ २३ ॥

[१५६५] (सधमाद्या हिरण्यकेश्या) संग्राममें एक साथ आनन्दित होनेवाले और सुनहरे बालोंवाले (त्या हरी) इन्द्रके वे दोनों घोडे इन्द्रको (इह हितं) इस यज्ञमें रखे हुए (प्रयः अभि वोळ्हां) सोमरूपी अन्नकी ओर ले आएं ॥ २४ ॥

भावार्थ — सोमयज्ञमें सोममें गोदुग्ध मिलाया जाता है, और फिर उसे पिया जाता है । उसे पीनेसे बुद्धि बढती है । उत्तम बुद्धिसे इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए स्तोत्र प्रकट होते हैं ॥ १७-१८ ॥

उत्तम, सामर्थ्यशाली, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा शत्रुहन्ता इन्द्र सोम पीनेके लिए किसके यज्ञमें आकर आनन्दित होगा, यह उपासकको जानना चाहिए ॥ १९-२० ॥

हे सोमसे आनन्दित होनेवाले इन्द्र ! तू हमें अनेक तरहका धन दे । हमारी अभिलाषाओंको तू जान । ये सोमरस तुझे प्रदान किए जाते हैं, तू उन्हें पीकर आनन्दित हो ॥ २१-२२ ॥

जब भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला इन्द्र यज्ञमें जाता है, तब यज्ञ पूर्ण होता है । वह उत्तम घोडों पर बैठकर हमारे यज्ञमें आए और अन्नरूपी सोमरसका पान करे ॥ २३-२४ ॥

१५६६ तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो । स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥
१५६७ आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे । स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥
१५६८ आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो । स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥
१५६९ भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २८ ॥
१५७० स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २९ ॥
१५७१ त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥
१५७२ उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥
१५७३ द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥

अर्थ— [१५६६] हे (विभावसो) अग्ने ! (इमे सोमाः) ये सोमरस (तुभ्यं सुताः) तेरे लिए निचोडे गए हैं, तथा (बर्हिः स्तीर्ण) आसन बिछाये गए हैं, तू (स्तोतृभ्यः इन्द्रं आ वह) स्तोताओंके लिए इन्द्रको बुला ला ॥ २५ ॥

[१५६७] हे मनुष्य ! (ते दाशुषे) तुझ दाताके लिए इन्द्र (विरोचना दक्षं) तेज, बल और (रत्ना दधत्) रत्नोंको देवे, तथा मनुष्यो ! (स्तोतृभ्यः इन्द्रं अर्चत) स्तोताओंके लिए इन्द्रकी पूजा करो ॥ २६ ॥

[१५६८] हे (शतक्रतो) सैंकडों काम करनेहारे इन्द्र ! मैं (ते) तेरे लिए (इन्द्रियं विश्वा उक्था) शक्ति बढानेवाले सम्पूर्ण स्तोत्रोंको (दधामि) तैय्यार करता हूँ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्तोतृभ्यः मृळय) स्तोताओंको सुखी कर ॥ २७ ॥

[१५६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब तू हमें सुखी करना चाहता है, तब हे (शतक्रतो) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (नः भद्रं भद्रं इषं ऊर्जं) हमें कल्याणकारी अन्न और बल (भर) भरपूर दे ॥ २८ ॥

[१५७०] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडो शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (यत् नः मृळयासि) जब हमें सुखी करना चाहता है, तब (सः) वह तू (नः) हमें (विश्वा नि सुवितानि आ भर) सम्पूर्ण कल्याणकारी धन भरपूर दे ॥ २९ ॥

[१५७१] हे (वृत्रहन्तम इन्द्र) शत्रुओंको मारनेमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्र ! (यत्) जब (सुतावन्तः) सोम यज्ञ करनेवाले हम (त्वां इत् हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं, तब (नः मृळयासि) तू हमें सुखी करता है ॥ ३० ॥

[१५७२] हे (मदानां पते) आनन्द देनेवाले सोमोंके स्वामिन् इन्द्र ! (हरिभिः नः सुतं उप याहि) घोडोंके द्वारा हमारे सोम यज्ञके पास आ । (हरिभिः नः सुतं उप याहि) घोडोंके द्वारा हमारे सोम यज्ञके पास आ ॥ ३१ ॥

[१५७३] (यः वृत्रहन्तमः शतक्रतुः इन्द्रः) जो वृत्रको मारनेवाला, सैकडों शुभ कार्य करनेवाला इन्द्र (द्विता विदे) दो तरहके मार्ग जानता है, वह इन्द्र (हरिभिः नः सुतं उप) घोडोंके द्वारा हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसके पास आवे ॥ ३२ ॥

भावार्थ— यज्ञ करनेवालेको इन्द्र तेज, बल और रत्नोंको प्रदान करे तथा स्तोतागण इन्द्रको सोमरस देकर आनन्दित करे ॥ २५–२६ ॥

हे इन्द्र ! मैं तेरे लिए शक्ति बढानेवाले इन स्तोत्रोंको कहता हूँ, तो उन स्तोत्रोंको गानेवालोंको सुखी कर ॥ २७–२८ ॥

जब इन्द्र किसीको सुखी करना चाहता है, तब वह उस मनुष्यको कल्याणकारी धन प्रदान करता है । कल्याणमार्गसे प्राप्त हुआ धन ही मनुष्यको सुखी बना सकता है । अथवा तो मनुष्य सोमयज्ञके द्वारा सुखी हो सकता है ॥ २९-३० ॥

यह इन्द्र उपासकोंको धन देने और उनका संरक्षण करनेका मार्ग जानता है ॥ ३१–३२ ॥

१५७४ त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि । उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३३ ॥
१५७५ इन्द्रः इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् । वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ३४ ॥

[९४]

(ऋषिः- बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । देवताः- मरुतः । छन्दः- गायत्री ।)

१५७६ गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥ १ ॥
१५७७ यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते । सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २ ॥
१५७८ तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः । मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥
१५७९ अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः । उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५७४] हे (वृत्रहन् ! शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्र ! (त्वं हि) तू ही (एषां सोमानां पाता असि) इन सोमरसोंको पीनेवाला है, वह तू (हरिभिः नः सुतं उप) घोडोंके द्वारा हमारे द्वारा निचोडे गए सोमरसके पास आ ॥ ३३ ॥

[१५७५] (इन्द्रः) इन्द्र (नः) हमें (इषे) अन्न प्राप्तिके लिए (ऋभुक्षणं ऋभुं रयिं) कौशल्य पूर्ण ऋभुओंके ऐश्वर्यको (ददातु) प्रदान करे, तथा (वाजी) वह बलवान् इन्द्र (वाजिनं ददातु) हमें बल प्रदान करे ॥३४॥

[९४]

[१५७६] (रथानां वह्निः) रथोंको खींचनेवाली, (युक्ता) योग्य, (श्रवस्युः) यशकी इच्छा करनेहारी (मघोनां मरुतां माता) धनाढ्य वीर मरुतोंकी माता (गौः) गाय या पृथ्वी उन्हें (धयति) दूध पिलाती है ॥ १ ॥

[१५७७] (यस्याः उप-स्थे) जिसके समीप रहकर (विश्वे देवाः) सभी देवता अपने अपने (व्रता धारयन्ते) कर्तव्य उचित ढंगसे निभाते हैं । (सूर्या-मासा) सूर्य तथा चंद्र भी जनताको (दृशे कं) प्रकाश देनेके लिए जिसके समीप रहते हैं ॥ २ ॥

[१५७८] (नः) हमारे (अर्यः) अत्यन्त पूज्य (विश्वे कारवः) सभी कवि, काव्यरचनामें कुशल, (सदा) हमेशा तुम्हारे (तत्) उस बलकी (सु आ गृणन्ति) भली भाँति स्तुति करते हैं । हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (सोम-पीतये) सोमपान करनेके लिए तुम इधर आओ ॥ ३ ॥

[१५७९] (अयं सोमः) यह सोमरस (सुतः अस्ति) पूर्णतया निचोडा जा चुका है । (अस्य) इसका (स्व-राजः मरुतः) स्वयं तेजस्वी मरुत्-वीर (उत) उसी प्रकार (अश्विना) अश्विनी-देव भी (पिबन्ति) पान करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— अपने उपासकोंको धन देना तथा उस धनकी सुरक्षाके लिए उन्हें सामर्थ्य देना ये दोनों बातें इन्द्र जानता है । ऐसे ज्ञानी इन्द्रके लिए सोमरस दिए जाएं और वह हमारे पास आकार सोमरस पीए ॥ ३३ ॥

इन्द्र हमें कुशलता और कारीगरी प्रदान करे, ताकि हम उससे अन्न और बल प्राप्त कर सकें ॥ ३४ ॥

रथोंको जोती हुई मरुतोंकी माता गौ उन्हें दूध पिलाती है और वह चाहती है कि मरुतोंका यश प्रतिपल बढे ॥ १ ॥

समूचे देवता तथा सूर्यचन्द्र भी गौ (पृथ्वी) के निकट रहकर अपने अपने कर्तव्य करते हैं । (गौकी रक्षा करते हैं । अर्थात् यहाँपर गौमाताका बडप्पन बतलाया है) ॥ २ ॥

सभी कवि काव्यका सृजन करके वीरोंके इस बलकी सराहना करते हैं । इसीलिए सोम पीनेके लिए वे इधर अवश्य आ जायँ ॥ ३ ॥

यह सोमरस पूर्णरूपेण सिद्ध है । तेजस्वी वीर एवं अश्विनी-देव इसका ग्रहण करें ॥ ४ ॥

१५८० पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः । त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥
१५८१ उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः । प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥
१५८२ कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः । अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥ ७ ॥
१५८३ कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे । त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥
१५८४ आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन् रोचना दिवः । मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥
१५८५ त्यान् नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥
१५८६ त्यान् नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

अर्थ—[१५८०] (मित्रः अर्यमा वरुणः) मित्र, अर्यमा एवं वरुण (त्रि-सध-स्थस्य) तीन स्थानोंमें रखे हुए (तना पूतस्य) छलनीसे पवित्र किए हुए एवं (जा-वतः) सभी जनोंके सेवनके योग्य सोमरसको (पिबन्ति) पी लेते हैं ॥ ५ ॥

[१५८१] (उतो) और (इन्द्रः नु) इन्द्र भी (प्रातः होता इव) प्रातःकालके समय होताकी नाईं (गो-मतः) गोदुग्धके मिलावटसे तैयार किये हुए (अस्य) इस (सुतस्य) निचोडे हुए सोमका (जोषं) सेवन करके (मत्सति) हर्षित हो उठता है ॥ ६ ॥

[१५८२] वे (सूरयः) ज्ञानी तथा (स्रिधः) शत्रुविनाशक वीर (तिरः) टेढी राहसे जानेवाले (आपः इव) जलप्रवाहोंकी नाईं (अत्विषन्त) प्रकाशमान होते हैं और वे (पूत-दक्षसः) पवित्र बल धारण करनेहारे वीर (कत्) भला कब हमारी ओर (अर्षन्ति) पधारेंगे ? ॥ ७ ॥

[१५८३] (त्मना च) स्वाभाविक ढंगसे (दस्म-वर्चसां) सुन्दर आकारवाले (देवानां) तेजस्वी एवं (महानां) बडे महनीय (वः) तुम जैसे सैनिकोंसे (अवः) संरक्षणकी (अद्य कत्) आज भला कब मैं (वृणे) याचना करूँ ? ॥ ८ ॥

[१५८४] (ये) जो (विश्वा पार्थिवानि) सभी भूमंडलस्थ वस्तुओंको और (दिवः रोचना) द्युलोकके तेजस्वी पदार्थोंको (आ पप्रथन्) विस्तृत कर चुके, उन (मरुतः) वीर मरुतोंको (सोम-पीतये) सोमपान करनेके लिए मैं बुलाता हूँ ॥ ९ ॥

[१५८५] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (पूत-दक्षसः) पवित्र बलसे युक्त और (दिवः) तेजस्वी (त्यान् वः) ऐसे तुम्हें (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसके पानके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥ १० ॥

[१५८६] (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (रोदसी) आकाश एवं भूलोकको (वि तस्तभुः) विशेष ढंगसे आधार दे चुके, (त्यान् नु) उन्हें अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमका सेवन करनेके लिए (हुवे) मैं बुलाता हूँ ॥ ११ ॥

भावार्थ— तीन स्थानोंमें विद्यमान तीन छलनियोंमेंसे शुद्ध किए हुए सोमरसका सेवन ये सभी वीर करते हैं। कारण यही है कि सोमरस सबके पीनेके लिए योग्य है ॥ ५ ॥

इन्द्र भी सोमरसमें दूध मिलाकर उस पेयका सेवन करता है और प्रसन्नचेता बनता है ॥ ६ ॥

जैसे ढलती जगहसे गिरनेवाला जलप्रवाह चमकने लगता है, वैसेही ये ज्ञानी वीर अपने पराक्रमसे जगमगाने लगते हैं। पवित्र कार्यके लिए अपने बलका उपयोग करनेवाले ये वीर सैनिक हमारे यज्ञमें आ जावें ॥ ७ ॥

ये तेजस्वी एवं शक्तिशाली वीर हमारी रक्षा करनेका बीडा उठावें ॥ ८ ॥

आकाशस्थ एवं भूमंडलस्थ सभी वस्तुओंको मरुतोंने विस्तृत किया है, इसीलिए मैं उन्हें सोमपान करनेके लिए बुलाता हूँ ॥ ९ ॥

बलवान् एवं तेजस्वी वीरोंको आदरपूर्वक बुलाकर सोमपानके प्रदानसे उनका सत्कार करना चाहिए ॥ १० ॥

सबको आधार देनेका कार्य वीर करते हैं, इसलिए उन्हें सोमपानमें सम्मिलित होनेके लिए बुलाना चाहिए ॥ ११ ॥

१५८७ त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥

[९५]

(ऋषिः- तिरश्चीराङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

१५८८ आ त्वा गिरो रथीरिवा ऽस्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषते न्द्र वत्सं न मातरः ॥ १ ॥
१५८९ आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्वऽस्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥ २ ॥
१५९० पिबा सोमं मदाय क मिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥
१५९१ श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥

अर्थ— [१५८७] (त्यं) उस (गिरि-स्थां) पर्वतपर रहनेवाले (वृषणं) बलवान् (मारुतं गणं) वीर मरुतोंके समुदायको (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसको पीनेके लिए (हुवे) बुलाता हूँ ॥ १२ ॥

[९५]

[१५८८] हे (गिर्वणः) वाणियोंसे स्तुत्य इन्द्र ! (रथीः इव) रथपर बैठनेवाला जैसे अपने स्थानको शीघ्र पहुंच जाता है, उसी प्रकार (सुतेषु) सोमरसोंके निचोडे जानेपर (गिरः) हमारी स्तुतियां (त्वा अस्थुः) तुझे प्राप्त होती हैं । तथा (मातरः वत्सं न) जिस प्रकार गायें अपने बछडेको देखकर शब्द करती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! (त्वा अभि) तुझे सामने देखकर हमारी स्तुतियां (सं अनूषत) मिलकर तेरे पास जाती हैं ॥ १ ॥

[१५८९] हे (गिर्वणः) स्तुत्य इन्द्र ! (सुतासः शुक्राः) निचोडे गए तेजस्वी सोमरस (त्वा अचुच्यवुः) तेरे पास शीघ्र पहुंचें, हे इन्द्र ! तू (अस्य अन्धसः नु पिब) इस अन्नको शीघ्र पी, (सर्वासु ते हितम्) सभी दिशाओंमें तेरे लिए सोम रखा हुआ है ॥ २ ॥

[१५९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (श्येनाभृतं सुतं) श्येन पक्षीके द्वारा लाये तथा निचोडकर रखे गए (कं सोमं) सुखदायक सोमको (मदाय पिब) आनन्दके लिए पी । (हि) क्योंकि (त्वं) तू (शश्वतीनां विशां पतिः राजा असि) बहुत सी प्रजाओंका स्वामी तथा राजा है ॥ ३ ॥

[१५९१] हे इन्द्र ! (यः त्वा सपर्यति) जो तेरा सत्कार करता है, उस (तिरश्च्याः) तिरश्चि ऋषिकी (हवं श्रुधी) प्रार्थना सुन । तथा (सुवीर्यस्य गोमतो रायः पूर्धि) उत्तम पुत्र तथा गाय आदि पशु युक्त ऐश्वर्यसे उसे पूर्ण कर, (महान् असि) तू महान् है ॥ ४ ॥

भावार्थ— पर्वतपर रहकर सबका संरक्षण करनेहारे वीरोंको सोमरसका ग्रहण करनेके लिए बुलाना चाहिए ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! जिस तरह रथपर बैठनेवाला वीर अपने गन्तव्य स्थान पर शीघ्र पहुंच जाता है, उसी तरह ये सोमरस तेरी तरफ बह रहे हैं । इस अन्नरूप सोमरसको पी ॥ १-३ ॥

तिरश्चि अर्थात् टेढे मार्गसे चलनेवालोंको मारनेवाले सज्जन पुरुषके द्वारा किए गए सत्कारको यह इन्द्र स्वीकार करता है, उसे उत्तम सन्तान और गाय आदि पशुओंसे सम्पन्न करता है । यही इन्द्र सब प्राणियोंका स्वामी है ॥ ३-४ ॥

१५९२ इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ ५ ॥
१५९३ तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ६ ॥
१५९४ एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान् ममत्तु ॥ ७ ॥
१५९५ इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥ ८ ॥
१५९६ इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ९ ॥

अर्थ— [१५९२] हे इन्द्र ! (यः) जो मनुष्य (ते) तेरे लिए (नवीयसीं मन्द्रां गिरं अजीजनत्) नवीन और आनन्ददायक स्तुतिको उत्पन्न करता है, उसके लिए तू (प्रत्नां ऋतस्य पिप्युषीं) प्राचीन तथा ऋत अर्थात् सत्यका पोषण करनेवाली, (चिकित्विन्) ज्ञान प्रदान करनेवाली (मनसं धियं) मननीय बुद्धि प्रदान कर ॥ ५ ॥

[१५९३] (यं इन्द्रं गिरः उक्थानि वावृधुः) जिस इन्द्रको स्तुतियां और स्तोत्र बढाते हैं, (तं उ स्तवाम) उसीकी स्तुति हम करते हैं । (अस्य पुरूणि पौंस्या) इसके बहुतसे बलोंको (सिषासन्तः) प्राप्त करते हुए इसकी (वनामहे) हम स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

[१५९४] (आ इत) हे मनुष्यो आओ, (शुद्धेन साम्ना) शुद्ध सामसे हम (शुद्धं इन्द्रं स्तवाम) शुद्ध इन्द्रकी स्तुति करें, तथा (शुद्धैः उक्थैः वावृध्वांसं) शुद्ध स्तोत्रोंके द्वारा बढाये जानेवाले इस इन्द्रको (शुद्धः आशीर्वान् ममत्तु) शुद्ध और गायके दूधसे मिश्रित सोम आनन्दित करे ॥ ७ ॥

[१५९५] हे (शुद्धः इन्द्र ! नः आ गहि) पवित्र इन्द्र हमारे पास आ, (शुद्धः) पवित्र होकर तू (शुद्धाभिः ऊतिभिः) शुद्ध संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ, (शुद्धः) पवित्र हुआ तू (रयिं निधारय) धन दे तथा (शुद्धः सोम्यः ममद्धि) पवित्र होकर तथा सोमके योग्य होकर आनन्दित हो ॥ ८ ॥

[१५९६] हे इन्द्र ! (शुद्धः) पवित्र होकर (नः रयिं) हमें धन दे, तथा (दाशुषे) दानशीलके लिए (शुद्धः रत्नानि) पवित्र होकर तू रत्नोंको दे. (शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे) शुद्ध होकर तू वृत्रोंको मारता है, (शुद्धः वाजं सिषाससि) शुद्ध होकर तू अन्न प्राप्त करना चाहता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— जो इन्द्रको आनन्द देनेवाली स्तुति करता है, उसे इन्द्र सत्यका पोषण करनेवाली, ज्ञान प्रदान करनेवाली तथा मननीय बुद्धि प्रदान करता है । बुद्धि ऐसी हो कि जो मनुष्यको उत्तम ज्ञान देकर उसे सत्यके मार्गमें प्रेरित करनेवाली हो ॥ ५ ॥

सभी मनुष्योंकी वाणी इसी इन्द्रकी महिमाका गान करती है, इससे इस इन्द्रका यश सर्वत्र फैलता है । हम भी अपनी वाणीसे इन्द्रके स्तोत्रको गाएं तथा उसका यश बढाकर उसके आशीर्वादको प्राप्त करें ॥ ६-७ ॥

हे पवित्र इन्द्र ! तू पवित्र होकर हमारे पास आ, तथा अपने संरक्षणके पवित्र साधनोंसे हमारी रक्षा कर । साथही हमें रत्न आदि कल्याणकारी ऐश्वर्य भी प्रदान कर । हम तुझे सदा पवित्र सोमरूपी अन्न प्रदान करें ॥ ८-९ ॥

[९६]

(ऋषि- तिरश्चीराङ्गिरसो, द्युतानो वा मारुतः । देवताः- इन्द्रः १४ इन्द्रामरुतः १५ इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप्, ४ विराट्, २१ पुरस्ताज्ज्योतिः ।)

१५९७ अस्मा उषास आतिरन्त याम- मिन्द्राय नक्तमूर्म्याः सुवाचः ।
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थु- र्नृभ्यस्तराय सिन्धवः सुपाराः ॥ १ ॥

१५९८ अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्या- द्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ २ ॥

१५९९ इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः ।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥ ३ ॥

१६०० मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।
मन्ये त्वा सत्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥ ४ ॥

[९६]

अर्थ -[१५९७] (उषासः) उषाओंने (अस्मै यां आ तिरन्त) इस इन्द्रके कारण ही अपनी यात्रा बढाई, तथा (ऊर्म्याः नक्तं) रात्रिके अपर कालमें अर्थात् चौथे पहर (इन्द्राय सुवाचः) इन्द्रके लिए उत्तम स्तुतियां बोली जाती हैं, (आपः) जलसे भरी हुई (सप्त मातरः) सात नदियें (अस्मै तस्थुः) इसी इन्द्रके कारण चलती हैं, तथा (नृभ्यस्तराय) मनुष्योंके तरनेके लिए (सिन्धवः सुपाराः) समुद्र सरलतासे पार करने योग्य हो गए ॥ १ ॥

[१५९८] (विथुरेण) किसी सहायकके बिना अकेले ही इस इन्द्रने (अस्त्रा) वज्रसे (संहिता) इकट्ठे हुए हुए (त्रिः सप्त) इक्कीस (गिरीणां) पर्वतोंके (सानु) शिखरोंको (अति विद्धा) तोड डाले । (प्रवृद्धः वृषभः) वृद्धिको प्राप्त हुए तथा बलवान् उस इन्द्रने (यानि चकार) जिन पराक्रमोंको किया, (तत्) उन पराक्रमोंको (न देवः मर्त्यः तुतुर्यात्) देव और मनुष्य नहीं कर सकते ॥ २ ॥

[१५९९] (इन्द्रस्य आयसः वज्रः निमिश्लः) इन्द्रका लोहेका वज्र अत्यन्त तीक्ष्ण है, इसीलिए (इन्द्रस्य बाह्वोः भूयिष्ठं ओजः) इन्द्रकी भुजाओंमें बहुत बल है, (निरेके) युद्धके लिए निकलने पर (इन्द्रस्य शीर्षन् क्रतवः) इन्द्रके मस्तिष्कमें पराक्रमके बहुतसे विचार रहते हैं, उन विचारोंको उसके (आसन्) मुंहसे (श्रुत्या) सुननेके लिए (उपाके) पास रहनेवाली प्रजायें (एषन्त) बहुत चाहती हैं ॥ ३ ॥

[१६००] हे इन्द्र ! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां यज्ञियं) पूज्योंमें सबसे ज्यादा पूज्य (मन्ये) मानता हूँ, तुझे (अच्युतानां च्यवनं मन्ये) अपने स्थानसे न डिगनेवाले शत्रुओंको भी डिगानेवाला मानता हूँ । (त्वा) तुझे (सत्वनां केतुं मन्ये) प्राणियोंमें सबसे अधिक बुद्धिमान् मानता हूँ, तथा (त्वा) तुझे (चर्षणीनां वृषभं मन्ये) मनुष्योंमें सबसे अधिक बलवान् मानता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ — ऐश्वर्यशाली प्रभुके कारण ही उषायें प्रकट होती हैं, उसी उषःकालमें प्रभुकी स्तुति और उपासना की जाती है । यज्ञ किए जाते हैं । उसी प्रभुकी शक्तिसे प्रेरित होकर नदियां बहती हैं ॥ १ ॥

शूरवीर इन्द्रने अकेले ही अपने शस्त्रोंकी सहायतासे शत्रुओंका नाश किया । तब वृद्धिको प्राप्त हुए तथा बलवान् इन्द्रने जिन पराक्रमोंको किया, उन पराक्रमोंको न कोई देव ही कर सकता है, और न मनुष्य ही कर सकता है ॥ २ ॥

इन्द्रके द्वारा धारण किया जानेवाला वज्र लोहेका बना हुआ है, उसे वह हाथोंमें धारण करता है, इसीलिए उसकी भुजाओंमें बल है, उसकी वाणीसे भी सदा पराक्रमपूर्ण तथा ओजस्वी विचार निकलते हैं, जिसे सुननेके लिए प्रजायें सदा लालायित रहती हैं । वीरोंकी भुजाओंमें शक्ति हो, तथा उनकी वाणीमें ओज हो, तेज हो, ताकि उसकी वाणीको सुननेके लिए प्रजाएं सदा उत्सुक रहें ॥ ३ ॥

इन्द्र वीर और ओजस्वी वक्ता होनेके कारण पूज्योंमें भी सबसे अधिक पूज्य है । वह अपने स्थानसे न डिगनेवाले शत्रुवीरोंको भी डिगानेवाला होनेके कारण वह सबसे अधिक बलवान् है और सबसे अधिक बुद्धिमान् है ॥ ४ ॥

१६०१ आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ ।
प्र पर्वता अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥ ५ ॥
१६०२ तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भि-रुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥ ६ ॥
१६०३ वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्व-थेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ ७ ॥
१६०४ त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ८ ॥

अर्थ— [१६०१] (इन्द्र) हे इन्द्र ! (यत्) जब तू (मदच्युतं अहये हन्तवै उ) मदमस्त अहिको मारनेके लिए (वज्रं बाह्वोः धत्से) वज्रको हाथोंमें धारण करता है, तब (पर्वताः अनवन्तः) उस इन्द्रके सामने पर्वत झुकते हैं, (गावः प्र) गायें झुकतीं हैं, तथा (ब्रह्माणः इन्द्रं अभि नक्षन्त) ज्ञानी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[१६०२] (यः इमा जजान) जो इनको पैदा करता है, (तं उ स्तवाम) उसीकी हम स्तुति करते हैं, (विश्वा जातानि) सभी उत्पन्न हुए हुए पदार्थ (अस्मात् अवराणि) इस इन्द्रके बाद उत्पन्न हुए हैं, हम (गीर्भिः) स्तुतियोंके द्वारा (इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम) इन्द्रके साथ मैत्री स्थापित करें, तथा (नमोभिः) नमस्कारोंके द्वारा (वृषभं उप विशेम) बलवान् इन्द्रके पास बैठें ॥ ६ ॥

[१६०३] हे इन्द्र ! (ये सखायः) जो तेरे मित्र थे, वे (विश्वे देवाः) सब देव (वृत्रस्य श्वसथात् ईषमाणाः) वृत्रकी गर्जनासे डरकर भाग गए और (त्वा अजहुः) तुझे छोड गए । हे इन्द्र ! (मरुद्भिः) मरुतोंके साथ, (ते सख्यं अस्तु) तेरी मित्रता हो, (अथ) इसके बाद (विश्वाः पृतनाः जयासि) सब शत्रु सेनाओंको तू जीत ॥ ७ ॥

[१६०४] (उस्राः राशयः इव) बैलोंके झुण्डके समान संगठित हुए (त्रिषष्टिः) तिरेसठ (मरुतः त्वा वावृधानाः) मरुत तुझे बढाते हुए (यज्ञियासः) पूज्य हो गए । हम (त्वा उप इमः) तेरे पास आते हैं, (नः भागधेयं कृधि) हमें ऐश्वर्य प्रदान कर, हम भी (एना हविषा) इस सोमकी हविसे (ते शुष्मं विधेम) तेरा बल बढाते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब इन्द्रने मदमस्त अहि असुरको मारनेके लिए वज्रको हाथोंमें धारण किया तब उसके क्रोधको देखकर सब भयभीत हो गए और उस इन्द्रको शान्त तथा प्रसन्न करनेके लिए वे सब इन्द्रकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥

इस विश्वमें उत्पन्न हुए सभी पदार्थ इसी ऐश्वर्यशाली प्रभुसे उत्पन्न हुए हैं । हम अपनी स्तुतियोंकी सहायतासे उस प्रभुके साथ मैत्री स्थापित करें और नम्रतापूर्वक उस प्रभुकी उपासना करें, अर्थात् उस प्रभुके समीप जाकर बैठें ॥ ६ ॥

वृत्रकी गर्जना सुनकर भयभीत होकर सब देव इन्द्रको छोडकर भाग गए, तब इन्द्रने मरुतोंकी सहायतासे वृत्रको मारा । जब मेघरूपी वृत्र आकाशको घेरकर गर्जना करने लगता है, तब सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देव छिप जाते हैं और इन्द्ररूपी विद्युत्का साथ छोड जाते हैं । तब इन्द्र वायु रूपी मरुतोंकी सहायता लेकर वृत्रका मुकाबला करता है और मेघको नष्टभ्रष्ट करके उसे बरसाता है ॥ ७ ॥

मरुतोंने संगठित होकर इन्द्रकी सहायता की । अपने इस कर्मके कारण मरुत् पूज्य हो गए । जो समाज संगठित होकर उन्नति करते हैं, उस समाजके सभी मनुष्य पूज्य होते हैं ॥ ८ ॥

१६०५ तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष ।
अनायुधासो असुरा अदेवा—श्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥ ९ ॥
१६०६ मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः ।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वी—र्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥ १० ॥
१६०७ उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ॥ ११ ॥
१६०८ तद्विविड्ढि यत् त इन्द्रो जुजोषत् स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥ १२ ॥

अर्थ—[१६०५] हे इन्द्र ! (ते तिग्मं आयुधं) तेरे तीक्ष्ण आयुधको, (वज्रं) वज्रका तथा (मरुतां अनीकं) मरुतोंकी सेनाका (कः प्रति दधर्ष) कौन विरोध कर सकता है ? हे (ऋजीषिन्) सोमवान् इन्द्र ! (अन्-आयु-धासः अ-देवाः असुराः) जो आयुध रहित तथा देवोंको न माननेवाले असुर हैं, (तान् चक्रेण अप वप) उन्हें चक्रसे नष्ट कर दे ॥ ९ ॥

[१६०६] हे मनुष्य ! तू (महे उग्राय) महान्, वीर (तवसे शिवतमाय) बलवान् तथा कल्याणकारी इन्द्रकी तरफ (पश्वः) पशु आदिकी प्राप्तिके लिए (सुवृक्तिं प्रेरय) स्तुतिको प्रेरित कर । (गिर्वाहसे इन्द्राय) स्तुतियोंके योग्य इन्द्रके लिए (पूर्वीः गिरः) बहुतसी स्तुतियां (धेहि) कर, ताकि (अंग) हे प्रिय ! वह इन्द्र (तन्वे) हमारे पुत्रके लिए (कुवित् वेदत्) बहुतसा धन देगा ॥ १० ॥

[१६०७] हे मनुष्य ! (द्रुणा नदीनां पारं न) जिस प्रकार मल्लाह नावके द्वारा लोगोंको नदीके पार पहुंचाता है, उसी तरह (उक्थ्ये वाहसे) स्तुतियोंको प्राप्त करनेवाले, (विभ्वे) महान् इन्द्रके पास (मनीषां ईरय) अपनी बुद्धिको प्रेरित कर । तब (श्रुतस्य जुष्टतरस्य) सर्वत्र प्रसिद्ध तथा सेवाके योग्य इन्द्रके धनको (धिया) बुद्धिपूर्वक (तन्वि नि स्पृश) अपने पुत्रके पास पहुंचा, हे (अंग) प्रिय मनुष्य ! इन्द्र भी तुझे (कुवित् वेदत्) बहुत धन प्राप्त करायेगा ॥ ११ ॥

[१६०८] हे मनुष्य ! (ते इन्द्रः यत् जुजोषत्) तेरा इन्द्र जिसे पसन्द करे, (तत् विविड्ढि) उस स्तुतिको तू कर (सु-स्तुतिं स्तुहि) अच्छी तरह प्रशंसित होनेवाले इन्द्रकी तू स्तुति कर, तथा (नमसा विवास) नमस्कारसे उसका सत्कार कर । हे (जरितः) स्तोता ! (उप भूष) स्वयंको अलंकृत कर, (मा रुवण्यः) मत रो, (वाचं श्रावय) अपनी प्रार्थना तू इन्द्रको सुना, तब हे (अंग) प्रिय ! वह तुझे (कुविद् वेदत्) बहुत धन प्राप्त करायेगा ॥ १२ ॥

भावार्थ— ऐसा कोई भी वीर नहीं है कि जो इस इन्द्रके तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों और तेरी सेनाका विरोध कर सके । यह इन्द्र नास्तिक असुरोंको अपने शस्त्रोंसे नष्ट कर देता है । वीरोंकी सेना तथा शस्त्र नास्तिकोंका नाश करनेके लिए ही हों ॥ ९ ॥

हे मनुष्य ! तू पशु आदि ऐश्वर्यको प्राप्त करनेके लिए बलवान् और कल्याणकारी इन्द्रकी स्तुति कर । स्तुति प्राप्त करके वह इन्द्र तुझे बहुत सारा धन देगा ॥ १० ॥

हे मनुष्य ! जिस तरह एक मल्लाह लोगोंको नदीके पार पहुंचाता है, उसी तरह तू स्तुतियोंको इन्द्र तक पहुंचा । वह इन्द्र तेरी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर तुझे बहुत धन देगा ॥ ११ ॥

हे मनुष्य ! जिस स्तुतिको इन्द्र पसन्द करे, उसी स्तुतिको तू कर, नम्रतापूर्वक उस इन्द्रका सत्कार कर, तो तू कभी निर्धन नहीं होगा, और न तू कभी दुःखी होगा ॥ १२ ॥

१६०९ अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ—दियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्त—मप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ १३ ॥

१६१० द्रप्सम॑पश्यं विषुणे चर॑न्त—मुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांस—मिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ १४ ॥

१६११ अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थे ऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्ती—र्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ १५ ॥

१६१२ त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानो ऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१६०९] (दशभिः सहस्रैः) दसहजार सेनाओंके साथ (कृष्णः) कृष्णासुरने (द्रप्सः इयानः) जल्दी जल्दी चलते हुए, (अंशुमतीं अव अतिष्ठत्) अंशुमति नदीपर पहुँचकर अपना पडाव डाला। तब (शच्या धमन्तं तं) अपनी शक्तिसे धमधमाकर आते हुए उस कृष्णासुरका (इन्द्रः आवत्) इन्द्रने मुकाबला किया, तथा (नृमणाः) अत्यन्त उत्तम नेता इन्द्रने (स्नेहितीः अप अधत्त) शत्रुकी सब हिंसक सेनाओंको नष्ट कर दिया ॥ १३ ॥

[१६१०] मैंने (अंशुमत्याः नद्यः उपह्वरे) अंशुमती नदीके किनारे (विषुणे चरन्तं द्रप्सं) गुफामें विचरते हुए द्रप्सको (अपश्यं) देखा है। (नभः न) जैसे सूर्यको सब देखते हैं, उसी तरह मैंने (अवतस्थिवांसं कृष्णं) सामने खडे हुए कृष्णको देखा है, हे (वृषणः) बलवान् मरुतो ! (वः इष्यामि) तुम्हारी सहायता मैं चाहता हूँ, तथा तुम (आजौ युध्यत) युद्धमें युद्ध करो ॥ १४ ॥

[१६११] (अधः) इसके बाद (अंशुमत्याः उपस्थे) अंशुमती नदीके किनारे (द्रप्सः) द्रप्सने (तित्विषाणः) तेजस्वी होते हुए (तन्वं अधारयत्) शरीरको धारण किया। तब (बृहस्पतिना युजा) बृहस्पतिके साथ (इन्द्रः) इन्द्रने (अभि आचरन्तीः अदेवीः विशः) चारों ओरसे आक्रमण करती हुई आती हुई नास्तिक शत्रु-सेनाको (ससाहे) पराजित किया ॥ १५ ॥

[१६१२] हे इन्द्र ! (त्वं ह) तू (जायमानः) उत्पन्न होते ही (त्यत् अशत्रुभ्यः सप्तभ्यः) उन शत्रुओंसे रहित सात असुरोंके लिए (शत्रुः अभवः) शत्रु हुआ, तथा तूने (गूळ्हे द्यावापृथिवी अनु अविन्दः) छिपे हुए द्युलोक व पृथिवीलोकको खोज निकाला तथा (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः रणं धाः) महत्त्वपूर्ण लोकोंके लिए आनन्द दिया ॥ १६ ॥

भावार्थ— कृष्ण नामक असुर अपने दस हजार सैनिकोंके साथ आक्रमण करने लगा; अंशुमती नदी पर उन्होंने अपना स्थान बनाया; शक्तिसे गर्विष्ट हुए उसको इन्द्रने पकडा; नेता इन्द्रने उस हिंसक शत्रुका नाश किया ॥ १३ ॥

इन्द्रने अंशुमती नदीके किनारे गुफामें बंद सोमको देखा और तब उसने मरुतोंकी सहायतासे कृष्णासुरका पराभव करके सोमको मुक्त किया ॥ १४ ॥

इस द्रप्स अर्थात् सोमरसमें जब दूध, दही, घी, मधु आदि पदार्थ मिलाए गए, तब इस रसका रूप तेजस्वी हो गया। उसे पीकर इन्द्रमें उत्साह उत्पन्न हुआ और उसी उत्साहमें उसने देवोंकी निन्दा करनेवाले असुरोंको मारा ॥ १५ ॥

इन्द्र उत्पन्न होते ही शत्रुओंसे रहित सात असुरोंका शत्रु बन गया। तथा उसने द्युलोकको और पृथ्वीलोकको प्रकाशित करके लोकोंको आनन्द दिया। जब सात पर्ववाला मेघ सूर्यको ढंक देता है, तब पृथ्वीपर अन्धकार सा छा जाता है, तब बिजली उन मेघोंको बरसा कर सूर्यको प्रकाशित करता है और पृथ्वी पर प्रकाश फैलाता है ॥ १६ ॥

१६१३ त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ १७ ॥

१६१४ त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां घनो वृत्राणां तविषो बभूथ ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥ १८ ॥

१६१५ स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥

१६१६ स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत् तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।
स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥ २० ॥

अर्थ— [१६१३] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (धृषितः त्वं) शत्रुओंके धर्षण करनेवाले तूने (वज्रेण) वज्रके द्वारा (ओजः अ प्रतिमानं) बलसे अतुलनीय (त्यत् जघन्थ) उस असुरको मारा, (त्वं) तूने (वधत्रैः) आयुधोंसे (शुष्णस्य अवातिरः) शुष्णासुरको काट डाला, तथा (त्वं) तूने (शच्या इत्) अपने सामर्थ्यसे ही (गाः अविन्दः) गायोंको प्राप्त किया ॥ १७ ॥

[१६१४] हे (चर्षणीनां वृषभः) मनुष्योंमें बलवान् इन्द्र ! (त्वं ह) तू ही (त्यत् वृत्राणां घनः) उन वृत्रोंको मारकर (तविषः बभूथ) बलवान् हुआ, (त्वं) तूने ही (तस्तभानान्) रोकी गई (सिन्धून् असृजः) नदियोंको बहाया, तथा (त्वं) तूने ही (दास पत्नीः) दास नामक असुर द्वारा अधिकारमें रखे (अपः अजयः) जल प्रवाहोंको जीता ॥ १८ ॥

[१६१५] (यः सुतेषु रणिता) जो सोम यज्ञोंमें रमण करनेवाला है, (यः एकः इत्) जो अकेला ही (नर्यि अपांसि कर्ता) मनुष्योंके संग्राममें पराक्रम करनेवाला है, ऐसा (सः सुक्रतू) वह उत्तम कर्म करनेवाला, (अनुत्त-मन्युः) अप्रतिहत क्रोधवाला, (अहा इव रेवान्) दिनोंके समान धनवान् तथा (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला (अन्यं प्रति) दूसरे असुरोंको भी मारता है, (इत् आहुः) ऐसा कहते हैं ॥ १९ ॥

[१६१६] (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला तथा (चर्षणीधृत्) मनुष्योंका भरणपोषण करनेवाला है. ऐसे (तं हव्यं) उस बुलाने योग्य इन्द्रको हम (सुस्तुत्या हुवेम) उत्तम स्तुतिसे बुलाते हैं । (सः) वह (प्र अविता) हमारी रक्षा करनेवाला (मघवा) ऐश्वर्यवान् (नः अधिवक्ता) हमारे ऊपर शासन करनेवाला है, (सः वाजस्य श्रवस्यस्य दाता) वह बल व अन्नका देनेवाला है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने वज्रके द्वारा अतुलनीय बलवाले उस असुरको मारा तथा अपने सामर्थ्यसे किरणोंको प्रकट किया ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंको मारनेके कारण तू सामर्थ्यशालीके रूपमें सर्वत्र विख्यात हुआ और शत्रुके द्वारा बांधकर रखे हुए जल प्रवाहोंको बहाया । विद्युत्से आहत होकर मेघ बरस पडे और वे जलप्रवाहके रूपमें बह निकले ॥ १८ ॥

यह इन्द्र सोमयज्ञोंमें आनन्द करनेवाला है, अकेला ही संग्राममें पराक्रम दिखानेवाला है । इसका क्रोध कभी व्यर्थ नहीं जाता । वीर भी सदा उत्तम कामोंमें आनन्द ले । उसका क्रोध कभी व्यर्थ न जाए । वह जिसपर क्रोध करे, वह नष्ट हो जाए ॥ १९ ॥

वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाला और मनुष्योंका भरणपोषण करनेवाला है । हमारी रक्षा करनेवाला ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही हमपर शासन करनेवाला है । प्रजाओंपर वही शासन करे कि जो उनकी रक्षा करनेमें समर्थ हो ॥ २० ॥

१६१७ स वृ॒त्र॒हेन्द्र॑ ऋभु॒क्षाः स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ बभूव ।
कृ॒ण्वन्नपां॑सि॒ नर्या॑ पु॒रूणि॒ सोमो॒ न पी॒तो हव्यः॒ सखि॑भ्यः ॥ २१ ॥

[९७]

(ऋषिः- रेभः काश्यपः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- बृहती, १०, १३ अतिजगती, ११-१२ उपरिष्टाद्बृहती, १४ त्रिष्टुप्, १५ जगती ।)

१६१८ या इ॑न्द्र॒ भुज॒ आभ॑रः॒ स्व॑र्वाँ॒ असु॑रेभ्यः ।
स्तो॒तार॒मिन्म॑घवन्नस्य वर्धय॒ ये च॒ त्वे वृ॒क्तब॑र्हिषः ॥ १ ॥

१६१९ यमि॑न्द्र दधि॒षे त्वमश्वं॒ गां भा॒गमव्य॑यम् ।
यज॑माने सुन्व॒ति दक्षि॑णावति॒ तस्मि॒न् तं धे॑हि॒ मा प॒णौ ॥ २ ॥

१६२० य इ॑न्द्र॒ सस्त्य॑व्र॒तो॑ऽनु॒ष्वाप॒मदे॑वयुः ।
स्वैः ष एवै॑र्मुमुर॒त् पोष्यं॑ र॒यिं स॑नु॒तर्धे॑हि॒ तं ततः॑ ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६१७] (सः ऋभुक्षाः वृत्रहा इन्द्रः) वह कारीगरोंके साथ रहनेवाला तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र (जज्ञानः सद्यः हव्यः बभूव) उत्पन्न होनेके बाद शीघ्रही बुलाने योग्य हो गया। (पुरूणि नर्या अपांसि कृण्वन्) बहुतसे मनुष्योंके लिए हितकारी कार्योंको करता हुआ वह इन्द्र (पीतः सोमः न) पिये गए सोमके समान (सखिभ्यः हव्यः) मित्रों द्वारा बुलाने योग्य हो गया ॥ २१ ॥

[९७]

[१६१८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्वः-वान्) स्वसामर्थ्यसे युक्त तूने (असुरेभ्यः) असुरोंसे (याः) जो (भुजः) धन (आ अभरः) छीने हैं, हे (मघ-वन्) ऐश्वर्यके स्वामी ! (अस्य) इस धनसे तू (स्तोतारं इत्) स्तोताकोही (वर्धय) बढा, (ये च) और जिन्होंने (त्वे) तेरे लिये (वृक्त-बर्हिषः) आसन बिछाया है, उन्हें भी बढा ॥ १ ॥

[१६१९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वम्) तू (यम्) जिस (अश्वम्) घोडा, (गाम्) गाय और (अव्ययम्) नाश न होनेवाले (भागम्) धनको (दधिषे) धारण कर रहा है, (तम्) उस धनको (तस्मिन्) उस (सुन्वति) यज्ञ कर्ता (दक्षिणा-वति) दक्षिणा देनेवाले (यजमाने) यजमानमेंही (धेहि) रख (पणौ) धन कमानेवाले दानरहितमें (मा) नहीं ॥ २ ॥

[१६२०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः) जो (अव्रतः) व्रतरहित (अदेव-युः) देवोंको न चाहनेवाला असुर (अनु-स्वापम्) गाढ निद्रामें (सस्ति) सोता है अर्थात् जिसे स्वकर्तव्यका ध्यान नहीं, (सः) वह (स्वैः) अपने (एवैः) व्यवहारसेही (पोष्यम्) पुष्टिकारक (रयिम्) धनको (मुमुरत्) नष्ट करता है । तू (तम्) उस धनको (ततः) उससे (सनुतः) गुप्त दशामें (धेहि) पहुँचा दे ॥ ३ ॥

भावार्थ— ऋभुओंके साथ रह कर शत्रुओंको मारनेवाला वह इन्द्र उत्पन्न होते ही पूजाके योग्य हो गया। वह इन्द्र मनुष्योंके लिए हितकारी कार्य करता है, इसलिए सभी इसे मित्रके रूपमें बुलाते हैं ॥ २१ ॥

इन्द्र असुरोंसे धन छीन कर स्तोताओंको देता है ॥ १ ॥

यजमान इन्द्रको हविष्यान्न देवें, अतः इन्द्रका दान यजमानकोही मिले, पणिको नहीं ॥ २ ॥

इन्द्र कुमार्गी और आलसीका धन उसके पास नहीं रहने देता। जो दान नहीं देता उसका धन दुर्व्यसनमें व्यय होता और अन्तमें सारा नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

१६२१ यच्छ॑क्रासि॑ परा॒वति॒ यद॑र्वा॒वति॑ वृत्रहन् ।
अत॑स्त्वा गी॒र्भिर्द्यु॒गदि॑न्द्र के॒शिभिः॑ सु॒तावाँ॒ आ वि॑वासति ॥ ४ ॥
१६२२ यद्वा॑सि॑ रोच॒ने दि॒वः स॑मु॒द्रस्याधि॑ वि॒ष्टपि॑ ।
यत् पार्थि॑वे॒ सद॑ने वृत्रहन्तम॒ यद॒न्तरि॑क्ष॒ आ ग॑हि ॥ ५ ॥
१६२३ स न॒ः सोमे॑षु सोमपाः सु॒तेषु॑ शवसस्पते ।
मा॒दय॑स्व॒ राध॑सा सू॒नृता॑व॒तेन्द्र॑ रा॒या परी॑णसा ॥ ६ ॥
१६२४ मा न॑ इन्द्र॒ परा॑ वृण॒ग्भवा॑ नः सध॒माद्यः॑ ।
त्वं न॑ ऊ॒ती त्वमिन्न॒ आप्यं॒ मा न॑ इन्द्र॒ परा॑ वृणक् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१६२१] हे (शक्र) शक्तिशाली (वृत्र-हन्) वृत्र-नाशक (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) चाहे तू (परा-वति) बहुत दूर (असि) है (यत्) चाहे (अर्वा-वति) अति समीप है परंतु (सुत-वान्) यज्ञ करनेवाला है (अतः) अतः वहाँसेही (द्यु-गत्) द्युमें स्थित (केशि-भिः) चमकीली किरणोंसे युक्त (गीः-भिः) वाणियोंसे (त्वा) तुझे हम (आ विवासति) प्रेम-पूर्वक बुलाता है ॥ ४ ॥

[१६२२] हे (वृत्रहन्-तम) वृत्र-नाशकोंमें श्रेष्ठ इन्द्र ! (यत् वा) चाहे तू (दिवः) दिव्यलोकके (रोचने) प्रकाशमय स्थानमें (असि) हो, चाहे (समुद्रस्य) समुद्रकी (विष्टपि अधि) तलोंमें । (यत्) चाहे तू (पार्थिवे) पृथिवीके किसी (सदने) घरमें रहता हो (यत्) चाहे (अन्तरिक्षे) आकाशमें; तू वहांसे ही हमारे पास (आ गहि) आ जा ॥ ५ ॥

[१६२३] हे (शवसः पते) बलके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! (सः) वह (सोम-पाः) सोम पीनेवाला तू (सुतेषु सोमेषु) सोमरस तैयार होनेपर (सूनृता-वता) मीठी वाणीसे युक्त (राधसा) धनसे और (परीणसा) बहुत (राया) धनसे (नः) हमें (मादयस्व) आनन्दित कर ॥ ६ ॥

[१६२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें अपनेसे (मा) मत (परा वृणक्) दूर फेंक । तू (नः) हमारा (सध-माद्यः) साथ आनंद करनेवाला (भव) हो । (त्वम्) तू (नः) हमारा (ऊती) रक्षक है, (त्वम्) तू (इत्) ही (नः) हमारा (आप्यम्) बान्धव है अतः हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें अपनेसे (परा मा वृणक्) दूर मत कर । हमारा साथ मत छोड ॥ ७ ॥

भावार्थ— यज्ञकर्ता अपनी आकर्षित करनेवाली मनोहर वाणीसे, इन्द्र कहीं भी हो, उसे सहायार्थ बुलाते हैं । जो अपनेको प्रिय हो, वह कहीं भी रहे, उसेही पुकारते हैं, उसीको चाहते हैं । दूसरा पासमें हो, तो भी उसे नहीं चाहते ॥ ४ ॥

इन्द्र कहीं भी हो, वह वहांसे हमारे पास आ पहुंचे । शूर राजाको राज्यमें सर्वत्र घूमकर प्रजा और राज्यका निरीक्षण करते रहना चाहिये ॥ ५ ॥

इन्द्र मीठी वाणी बोलकर भोजनादि देता है और यजमानको धनसे परिपूर्ण कर देता है । राजा और राजपुरुष प्रजासे कर प्राप्त कर उन्हें संरक्षणादिसे सुखी रखें ॥ ६ ॥

इन्द्र यज्ञ कर्ताओंका रक्षक और भाई है । उसका ऐसा ही व्यवहार है, इसीलिये वे यज्ञकर्ता ही उसका साथ छोड देना नहीं चाहते ॥ ७ ॥

×

१६२५ अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।
कृधी जरित्रे मघवन्नवो मह दस्मे इन्द्र सचा सुते ॥ ८ ॥
१६२६ न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।
विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥ ९ ॥
१६२७ विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १० ॥
१६२८ समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ११ ॥
१६२९ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ १२ ॥

अर्थ— [१६२५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे) हमारे (सुते) यज्ञमें, (सचा) एक साथ (मधु) मीठा रस (पीतये) पीनेके लिये, (नि सद) बैठ । हे (मघ-वन्) धन-सम्पन्न ! तू (जरित्रे) स्तुति कर्ताके लिये (महत्) बड़ा (अवः) रक्षा साधन (कृधि) कर, दे । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (अस्मे) हमारे (सुते) यज्ञमें, (सचा) साथ मिलकर रह ॥ ८ ॥

[१६२६] हे (अद्रि-वः) वज्रधारी इन्द्र ! (देवासः) देवोंने (त्वा) तुझे (न) नहीं (आशत) पाया, तेरी बराबरी नहीं की (मर्त्यासः) मनुष्योंने भी (न) नहीं । तू अपने (शवसा) बलसे (विश्वा) सारे (जातानि) जन्मधारियोंको (अभि-भूः) पराजित करनेवाला (असि) है, क्योंकि (देवासः) देव (त्वा न आशत) तेरी समता नहीं कर सके ॥ ९ ॥

[१६२७] स्तोता लोगोंने (विश्वाः) सारी (पृतनाः) शत्रुओंकी सेनाको (अभि-भूतरम्) दबानेवाले (नरम्) नेता (इन्द्रम्) इन्द्रको (स-जूः) साथ-साथ (ततक्षुः) बनाया, उत्साहसे भर-पूर किया, (उत) और (राजसे) प्रकाशित होनेके लिये अपने (क्रत्वा) कर्मसे (वरिष्ठम्) श्रेष्ठ, (वरे) श्रेष्ठ पदार्थोंकी प्राप्तिमें शत्रुओंके (आ-मुरिम्) मारक, (उग्रम्) न दबनेवाले, (ओजिष्ठम्) ओजसे भरपूर, (तवसम्) वृद्धि युक्त और (तरस्विनम्) वेगवान् इन्द्रको (जजनुः च) उत्पन्न किया ॥ १० ॥

[१६२८] (रेभासः) याजक लोगोंने (ईम्) इस (इन्द्रम्) इन्द्रको (सोमस्य) सोमके (पीतये) पीनेके लिये (सं अस्वरन्) प्रार्थना की । (यत्) जब उन्होंने (ईम्) इस (स्वः-पतिम्) स्वर्गके स्वामीको (वृधे) बढनेके लिये उत्साहित किया तब (धृत-व्रतः हि) व्रतधारी वह इन्द्र (ओजसा) बल और (ऊति-भिः) रक्षाके साधनोंसे (सम्) युक्त हो गया ॥ ११ ॥

[१६२९] (विप्राः) बुद्धिमान् लोग, (चक्षसा) दर्शनसे और (अभि-स्वरा) स्तुतिसे, (नेमिम्) नम्र और (मेषम्) स्पर्द्धाशील इन्द्रको (नमन्ति) नमस्कार करते हैं । हे (सु-दीतयः) उत्तम तेज वाले (अद्रुहः) द्रोह-रहित (तरस्विनः) कार्यमें शीघ्रता करनेवाले स्तोता लोगो ! (वः) तुम उस इन्द्रके (कर्णे) कानके समीप (ऋक्व-भिः) स्तुतियों द्वारा (अपि सम्) खूब प्रशंसा करो ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्र स्तोताकी रक्षाके लिये बहुत बड़ा साधन देता है और स्वयं रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर उसकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

देव और मनुष्य इन्द्रकी बराबरी नहीं कर सकते, क्योंकि जन्मधारियोंमें वह सबसे बड़ा है । जो विद्या, बल और ऐश्वर्यमें सबसे आगे हो, वही दुष्टोंको दबा, सज्जनोंकी रक्षा कर, उत्तम शासक बन सकता है ॥ ९ ॥

स्तोता शत्रुओंका वध करनेके लिये इन्द्रको अपने यहाँ बुलाते हैं । प्रजा ही राजाको रक्षा कर सकने योग्य बनाती है । उसमें रक्षाके गुण पहलेसे वर्तमान होते हैं अतः उसे राज्याधिकार देकर मानों नया जन्म देती है ॥ १० ॥

स्तोता इन्द्रका बल बढानेके निमित्त उसका यश गाते हैं । उस यशसे इन्द्रमें रक्षा करनेकी शक्ति बढती है ॥ ११ ॥

इन्द्रमें नम्रता और शत्रुके प्रति कठोरता ये दोनों गुण विद्यमान हैं । बड़ोंके समीप जाकर कोई बात शान्तिसे कहनी चाहिये, ऊँचा बोलना असभ्यता है ॥ १२ ॥

१६३० तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १३ ॥
१६३१ त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै ।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥ १४ ॥
१६३२ तन्म ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन् दुरिताति पर्षि भूरि ।
कदा न इन्द्र राय आ दशस्येर्विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥ १५ ॥

[९८]

(ऋषिः- नृमेध आङ्गिरसः । देवताः- इन्द्रः । छन्दः- उष्णिक्; ७, १०-११ ककुप्; ९, १२ पुरउष्णिक् ।)

१६३३ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥
१६३४ त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

अर्थ— [१६३०] मैं (तम्) उस (मघवानम्) ऐश्वर्यवान्, (उग्रम्) निर्भय, (सत्रा) सदा (शवांसि) बलोंके (दधानम्) धारक और (अप्रति-स्कुतम्) पीछे न हटनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्रको (जोहवीमि) बार-बार बुलाता हूं। वह (मंहिष्ठः) अतिशय पूज्य (यज्ञियः) यज्ञके योग्य इन्द्र हमारी (गीः-भिः च) वाणियों द्वारा यज्ञमें (आ ववर्तत्) प्रवृत्त हो। वह (वज्री) वज्र धारक (राये) ऐश्वर्यके निमित्त (नः) हमें (विश्वा) सारे (सु-पथा) उत्तम मार्ग (कृणोतु) प्राप्त कराये ॥ १३ ॥

[१६३१] हे (शविष्ठ) बलधारी (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वम्) तू (ओजसा) शक्तिसे (नाशयध्यै) नष्ट करनेके लिए शत्रुके (एनाः) इन (पुरः) नगरोंको (वि चिकित्) उत्तम प्रकारसे जानता है। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (विश्वा) सारे (भुवनानि) भुवन (द्यावा पृथिवी च) और द्यौ-पृथिवी दोनों लोक (त्वत् भीषा) तेरे भयसे (रेजेते) कांपते हैं ॥ १४ ॥

[१६३२] हे (शूर) शूर (चित्र) आश्चर्यके योग्य (इन्द्र) इन्द्र ! (तत्) वह तेरा (ऋतम्) सत्य (मा) मेरी (पातु) रक्षा करे। हे (वज्रिन्) वज्रधारी ! तू, (अपः न) जैसे जलको नाविक, वैसे हमारे (भूरि) बहुत, असंख्य (दुः-इता) दुर्गति, पाप और कठिनाइयोंको (अति पर्षि) पार कर दे। हे (राजन्) तेजस्वी (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (विश्व-प्स्न्यस्य) अनेक रूपवाला (स्पृहयाय्यस्य) चाहने योग्य (रायः) धन (कदा) कब (आ दशस्येः) देगा ॥ १५ ॥

[९८]

[१६३३] हे मनुष्यो ! (विप्राय बृहते) ज्ञानी, महान्, (धर्मकृते विपश्चिते, पनस्यवे) धर्मके काम करनेवाले, विद्वान् तथा प्रशंसनीय (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (बृहत् साम गायत) बृहत् नामक सामका गान करो ॥ १ ॥

[१६३४] हे इन्द्र ! (त्वं अभिभूः असि) तू शत्रुओंका पराभव करनेवाला है, (त्वं सूर्यं अरोचयः) तूने सूर्यको प्रकाशित किया, तू (विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि) विश्वको बनानेवाला, विश्वको प्रकाशित करनेवाला तथा महान् है ॥ २ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली इन्द्र बलोंको धारण करनेवाला, कभी पीछे न हटनेवाला, अत्यन्त पूज्य और यज्ञके योग्य है। वह हमें धन प्राप्तिके हेतु उत्तम मार्ग दिखाए। धन सदा उत्तम मार्गसे ही प्राप्त करे ॥ १३ ॥

इन्द्र शत्रुके नगरोंको तोडनेकी विधि जानता है। जब वह शत्रु पर क्रोध करता है उस समय दोनों लोक सारा संसार कांप उठता है ॥ १४ ॥

इन्द्रका सत्य-नियम प्रजाकी सदा रक्षा करता है। इन्द्र मनुष्यको दुर्गुण रूप नदीके पार पहुँचा देता है ॥ १५ ॥

सभी शत्रुओंका पराभव करनेवाला इन्द्र सूर्यको प्रकाशित करता है। वही विश्वको बनानेवाला तथा उसे प्रकाशसे युक्त करनेवाला है। उस इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए सामगान करना चाहिए ॥ १-२ ॥

१६३५ विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥
१६३६ एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥
१६३७ अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥
१६३८ त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥
१६३९ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥ ७ ॥
१६४० वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥
१६४१ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥
१६४२ त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१६३५] हे इन्द्र ! तू (ज्योतिषा) अपने तेजसे (दिवः विभ्राजन्) सूर्यको प्रकाशित करते हुए (स्वः अगच्छः) स्वर्गलोकको गया । तब (ते देवाः) वे देव (रोचनं इन्द्रं) तेजस्वी इन्द्रके पास (सख्याय येमिरे) मित्रताके लिए आये ॥ ३ ॥

[१६३६] हे (प्रियः) प्रिय (सत्राजित्) सब शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले, (अ-गोह्यः) जिसे कोई छिपा नहीं सकता, ऐसे (गिरिः न विश्वतः पृथुः) पर्वतके समान सब जगह फैले हुए (दिवः पतिः) द्युलोकके स्वामी (इन्द्र) इन्द्र ! (नः आ गधि) हमारे पास आ ॥ ४ ॥

[१६३७] हे (सत्य सोमपा) अविनाशी और सोमको पीनेवाले इन्द्र ! तू (उभे रोदसी अभि बभूथ) दोनों द्यावापृथिवियोंका पराभव करता है, तथा (सुन्वतः वृधः असि) तू सोमयज्ञ करनेवालेको बढानेवाला है, और (दिवः पतिः असि) द्युलोकका स्वामी है ॥ ५ ॥

[१६३८] हे इन्द्र ! (त्वं हि) तू (शश्वतीनां पुरां दर्ता असि) शत्रुके बहुतसे नगरोंको तोडनेवाला है, (दस्योः हन्ता) दस्युओंको मारनेवाला है, (मनोवृधः) मानसिक शक्तिको बढानेवाला है तथा (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी है ॥ ६ ॥

[१६३९] हे इन्द्र ! (उदा यन्तः उदभिः इव) जिस प्रकार पानी ले जानेवाले मित्र पानीसे खेलते हैं, उसी प्रकार हे (गिर्वण) स्तुतियोंसे पूज्य इन्द्र ! (त्वा) तेरे पास हम (महः कामान्) बडी बडी कामनाओंके साथ (ससृज्महे) आते हैं ॥ ७ ॥

[१६४०] (यव्याभिः वाः न) जैसे नदियोंद्वारा समुद्र बढाया जाता है, उसी प्रकार हे (शूर अद्रिवः) शूरवीर और वज्रधारी इन्द्र ! (वावृध्वांसं त्वा) बढाने योग्य तुझे (दिवे दिवे) प्रतिदिन (ब्रह्माणि वर्धन्ति) स्तोत्र बढाते हैं ॥ ८ ॥

[१६४१] (इषिरस्य) गमनशील इन्द्रके (उरु युगे उरौ रथे) महान् धुराओंवाले महान् रथमें स्तोता गण (इन्द्र वाहा वचोयुजा) इन्द्रको ले जानेवाले तथा वाणीसे जुड जानेवाले (हरी) दो घोडोंको (गाथया) स्तोत्रसे (युञ्जन्ति) जोडते हैं ॥ ९ ॥

[१६४२] हे (शतक्रतो विचर्षणे इन्द्र) सैकडों पराक्रमके कार्य करनेवाले तथा ज्ञानी इन्द्र ! (त्वं नः) तू हमें (ओजः नृम्णं पृतनाषहं वीरं) ओज, धन और शत्रुओंको हटानेवाले वीर पुत्रको (आ भर) दे ॥ १० ॥

भावार्थ— जब इन्द्रने अपने तेजसे सूर्यको प्रकाशित करके सारे विश्वको प्रकाशसे युक्त किया, तब सभी देवोंने मिलकर इन्द्रकी स्तुति की । यह द्युलोकका स्वामी इन्द्र सर्व व्यापक है ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! तू द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों लोकोंपर शासन करता है । इसलिए तू ही इन दोनों लोकोंका स्वामी है । तू मनुष्योंकी मानसिक शक्तिको बढाता है ॥ ५-६ ॥

हे इन्द्र ! हम बडी बडी कामनायें लेकर तेरे पास आते हैं और जिस तरह नदियोंके द्वारा समुद्रको बढाया जाता है, उसी तरह स्तोत्रोंके द्वारा हम तेरा यश बढाते हैं ॥ ७-८ ॥

गतिशील इन्द्रके महान् धुराओंवाले रथमें उत्तम घोडे जोडे जाते हैं । ऐसा वह इन्द्र हमें ओज, धन और वीर पुत्र प्रदान करे ॥ ९-१० ॥

१६४३ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ११ ॥
१६४४ त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्त- मुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

[९९]

(ऋषिः- नृमेध आङ्गिरसः । देवता:- इन्द्रः । छन्दः- प्रगाथः = (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।)

१६४५ त्वामिदा ह्यो नरो ऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्यु- प स्वसरमा गहि ॥ १ ॥
१६४६ मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः ।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥
१६४७ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥

अर्थ -- [१६४३] हे (वसो शतक्रतो) सबको बसानेवाले तथा सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! (त्वं हि नः) तू ही हमारा (पिता माता बभूविथ) पिता और माता है । (अध) इसलिए (ते सुम्नं ईमहे) हम तुझसे सुख मांगते हैं ॥ ११ ॥

[१६४४] हे (शुष्मिन् पुरुहूत शतक्रतो) बलवान्, बहुतोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाने योग्य तथा सैकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! (वाजयन्तं त्वा) बल देनेवाले तेरी (उपब्रुवे) मैं स्तुति करता हूँ । (सः) वह तू (नः सुवीर्यं रास्व) हमें उत्तम बल दे ॥ १२ ॥

[९९]

[१६४५] हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (त्वां) तुझे (भूर्णयः नरः) उपासक जनोंने (इदा ह्यः) आज और कल (अपीप्यन्) सोम पिलाया, (सः) वह तू (स्तोमवाहसां) स्तोत्र बोलनेवालोंके स्तोत्रोंको (इह श्रुधि) यहां सुन और (स्वसरं आ गहि) घर आ ॥ १ ॥

[१६४६] हे (सु शिप्र हरिवः गिर्वणः इन्द्र) सुन्दर हनुवाले, घोडोंवाले और स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (वेधसः त्वे आ भूषन्ति) स्तोतागण तुझे अलंकृत करते हैं, तू (मत्स्व) आनन्दित हो, हम (सुतेषु) यज्ञोंमें तुझसे (तव तत्) तेरे उन (उपमा नि उक्थ्या श्रवांसि) उपमाके योग्य प्रशंसनीय अन्नोंको (ईमहे) मांगते हैं ॥ २ ॥

[१६४७] हे मनुष्यो ! (सूर्यं श्रायन्तः इव) जिस प्रकार किरणें सूर्यका सेवन करती हैं, उसी प्रकार तुम भी (इन्द्रस्य विश्वा भक्षत) इन्द्रके सब सामर्थ्योंका भोग करो । वह इन्द्र (ओजसा) अपने बलसे (वसूनि) अपने धनोंको (जाते जनिमानि) उत्पन्न हुई और उत्पन्न होनेवालोंमें (प्रति) विभक्त कर देता है, हम भी (भागं न) अपने पिताके धनके भागके समान उसे (दीधिमः) धारण करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ-- हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू ही हमारा माता और पिता है । तू ही हमारा पालन करनेवाला है । इसलिए हम तुझसे ही धन और सुख मांगते हैं । तू हमें हमारे द्वारा मांगे गए सुख और धन प्रदान कर ॥ ११-१२ ॥

हे उत्तम घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! हम तुझे सुन्दर और यशस्वी बनाते हैं, तू आनन्दित होकर हमारे यज्ञोंमें आ । हमारे घरोंमें आकर हमें आनन्द दे ॥ १-२ ॥

किरण सूर्यका आश्रय करते हैं । इन्द्रके सब सामर्थ्य प्रशंसनीय है । इन्द्र अपने सामर्थ्यसे अनेक धनोंको धारण करता है, वैसा हम करें । धनोंको, जो उत्पन्न हुई और उत्पन्न होगी उनको विभागके समान धारण करेंगे । अर्थात् जिस धनको जिस समय धारण करना योग्य है उसको उसी समय धारण करेंगे ॥ ३ ॥

१६४८ अनंशराति वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ४ ॥
१६४९ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ५ ॥
१६५० अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६ ॥
१६५१ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१६४८] हे उपासक ! (अनशराति वसुदां उप स्तुहि) निष्पाप दान करनेवाले तथा धन देनेवाले इन्द्रकी स्तुति कर, (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान कल्याणकारी हैं, क्योंकि (मनः दानाय चोदयन्) अपने मनको दानके लिए प्रेरित करता हुआ (सः) वह (अस्य विधतः कामं न रोषति) इस स्तोताकी अभिलाषाका नाश नहीं करता ॥ ४ ॥

[१६४९] (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (प्रतूर्तिषु) संग्रामोंमें (विश्वाः तरुष्यतः स्पृधः) सभी हिंसा करनेवाले तथा स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको (अभि असि) पराजित करनेवाला है । हे (तूर्य) शत्रु नाशक इन्द्र ! (त्वं) तू (जनिता) सबको पैदा करनेवाला (अशस्ति हा) उत्तमतासे शासन न करनेवालोंको मारनेवाला और (विश्व-तूः असि) सब शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है ॥ ५ ॥

[१६५०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मातरा शिशुं न) जिस प्रकार मातायें बच्चेके पीछे चलती हैं उसी प्रकार (क्षोणी) ये द्यावा पृथिवी दोनों (ते तुरयन्तं शुष्मं अनु ईयतुः) तेरे शत्रुनाशक बलके पीछे चलती हैं । तू (यत् वृत्रं तूर्वसि) जिस मन्युसे वृत्रको मारता है उस (तेरे मन्यवे) तेरे मन्युके आगे (विश्वाः स्पृधः श्नथयन्त) सभी शत्रु ढीले पड जाते हैं ॥ ६ ॥

[१६५१] हे मनुष्यों ! (वः) तुम (अजरं, प्रहेतारं) जरा रहित, वीरोंको प्रेरणा देनेवाले, (अप्रहितं) किसीके द्वारा न भेजे गए अर्थात् स्वयं अपनी मर्जीसे आनेवाले (आशुं जेतारं हेतारं , शीघ्र काम करनेवाले, विजय प्राप्त करनेवाले, प्रेरक (रथीतमं, अतूर्तं) रथियोंमें सर्व श्रेष्ठ, अहिंसित (तुग्र्यावृधं) जलोंको बढानेवाले इन्द्रको (ऊती) अपने संरक्षणके लिए (इतः) यहां बुलाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— निर्दोष दान देनेवालेकी प्रशंसा कर, सदोष दान करनेवाला प्रशंसनीय नहीं है । दान कल्याण करनेवाले हों । मन दान देनेके लिये प्रेरित कर । वह दाताकी इच्छाको रोकता नहीं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! सब युद्धोंमें तू सब स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है । शूर ऐसे बने । हे शत्रुके विनाशक वीर ! तू अप्रशस्तोंका नाशक और सब शत्रुओंको दूर करनेवाला है । वीर ऐसे हों ॥ ५ ॥

द्यावा पृथिवी तेरे शत्रुको विनष्ट करनेवाले बलके पीछे चलते हैं । शत्रुको विनष्ट करनेके बलके साथ वीर रहते हैं । तेरे क्रोधके आगे सब स्पर्धा करनेवाले ढीले पडते हैं ॥ ६ ॥

हे मनुष्यो ! तुम प्रेरणा देनेवाले विजयी, रथीश्रेष्ठ, अहिंसित वीरको अपनी सुरक्षाके लिये यहां बुलाओ ॥ ७ ॥

१६५२ इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम्
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥ ८ ॥

[१००]

(ऋषिः- १-३, ६-१२ नेमो भार्गवः, ४-५ इन्द्रः । देवताः- इन्द्रः, ८ सुपर्णः, ९ वज्रो वा, १०-११ वाक् । छन्दः- त्रिष्टुप्, ६ जगती, ७-९ अनुष्टुप् ।)

१६५३ अयं त एमि तन्वा पुरस्ता-द्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रा-ऽऽदिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥

१६५४ दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मे ऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥ २ ॥

१६५५ प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईं ददर्श कमभि ष्टवाम ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६५२] (इष्कर्तारं अनिष्कृतं) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले पर स्वयं अहिंसित (सहस्कृतं) बलसे कार्य करनेवाले (शतमूतिं शतक्रतुं) सैंकडों प्रकारसे रक्षा करनेवाले, सैंकडों तरहके शुभ कर्म करनेवाले (समानं) हमेशा एक सा रहनेवाले, (वसवानं) जगत्‌को व्याप्त करनेवाले (वसूजुवं) धनको प्रेरित करनेवाले (इन्द्रं अवसे हवामहे) इन्द्रको हम अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[१००]

[१६५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयम्) यह मैं अपने (तन्वा) शरीरसे (ते) तेरे (पुरस्तात्) आगे (एमि) प्राप्त होता हूँ और (विश्वे) सारे (देवाः) देव (पश्चात्) पीछे (मा) मेरी (अभि यन्ति) ओर आते हैं, मेरे पीछे चले आ रहे हैं। (यदा) जब तू (मह्यम्) मेरे लिये (भागम्) भोग्य धनादि (दीधरः) धारण करता है (आत् इत्) तब (मया) मेरे साथ (वीर्याणि) पराक्रम भी (कृणवः) करता है । मेरे साथ पराक्रम भी रहते हैं ॥ १ ॥

[१६५४] हे इन्द्र ! मैं (ते) तेरे लिये (मधुनः) सोमका (भक्षम्) भक्ष्य तेरे (अग्रे) आगे (दधामि) रखता हूँ । (ते) तेरा, (सुतः) बनाया हुआ (सोमः) सोम रूप (भागः) भाग, तेरे लिये (हितः) सुरक्षित रखा (अस्तु) हो । (त्वम्) तू (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (मे) मेरा (सखा) मित्र (असः च) बनकर रह । (अध) तब हम दोनों (भूरि) बहुत (वृत्राणि) वृत्रोंका (जंघनाव) हनन करें ॥ २ ॥

[१६५५] हे (वाज-यन्तः) बलके अभिलाषी मनुष्यों ! (यदि) यदि इन्द्र (सत्यम्) सचमुच कोई शक्तिवान् (अस्ति) है तो उस (इन्द्राय) इन्द्रके निमित्त (सत्यम्) अवश्य (स्तोमम्) स्तुति (प्र सु भरत) करो। परन्तु यह (नेमः) नेम (उ) तो (आह) कहता है कि (इन्द्रः) इन्द्र करके (त्वः) कोई (न अस्ति इति) नहीं है । यदि है, तो (कः) किसने (ईम्) उसे (ददर्श) देखा है ? यदि नहीं है तो हम (कम्) किसकी (अभि स्तवाम) स्तुति करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले पर स्वयं अहिंसित रहनेवाले, बलसे कार्य करनेवाले, सैंकडों तरहसे कार्य करनेवाले धनको प्रेरित करनेवाले इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रके स्तोता विजयके लिये इन्द्रसे आगे-आगे रहते हैं और देव उनके पीछे-पीछे । यह इन्द्र स्तोताओंको भी धन और सामर्थ्य देता है ॥ १ ॥

इन्द्र स्तोताओंकी सहायताके लिये दक्षिण हाथके समान दायें-बायें रहता है । तब दोनों मित्रके समान रहकर अनेक वृत्रोंका नाश करते हैं ॥ २ ॥

नेमको शंका हुई कि इन्द्र है या नहीं । यदि है तो वह दिखाई क्यों नहीं देता ? यदि नहीं है तो उसकी स्तुति क्यों करें ? ॥ ३ ॥

१६५६ अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥
१६५७ आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥
१६५८ विश्वेत् ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते ।
पारावतं यत् पुरुसंभृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥ ६ ॥
१६५९ प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत् ।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७ ॥
१६६० मनोजवा अयमान आयसीमतरत् पुरम् ।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

अर्थ— [१६५६] हे (जरितः) स्तुति करनेवालो ! मैं (अयम्) यह (अस्मि) हूँ, (इह) यहाँ (मा) मुझे (पश्य) देख । मैं अपने (मह्ना) महत्त्वसे (विश्वा) सारे (जातानि) जन्मधारियोंको (अभि अस्मि) हरा देता हूँ । (ऋतस्य) ऋत की (प्र-दिशः) दिशायें (मा) मुझे (वर्धयन्ति) बढाती हैं । शत्रुओंका (आ-दर्दिरः) विदारक मैं सारे (भुवना) भुवनोंको (दर्दरीमि) नष्ट कर सकता हूँ ॥ ४ ॥

[१६५७] (यत्) जब (वेनाः) स्तुतियाँ, (हर्यतस्य) पूज्य (ऋतस्य) यज्ञके (पृष्ठे) अन्दर (एकम्) अकेले (आसीनम्) बैठे (मा) मुझ इन्द्रको (आ अरुहन्) होने लगी तब मेरे (मनः चित्) मनने (मे) मेरे (हृदे) हृदयके लिये (आ प्रति अवोचत्) कहा कि ये (शिशु-मन्तः) बाल-बच्चोंवाले (सखायः) मित्र मुझे (अचिक्रदन्) बुला रहे हैं ॥ ५ ॥

[१६५८] हे (मघ-वन्) धनवान् (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जो तूने (ऋषि-बन्धवे) बन्धुरूप ऋषि (शरभाय) शरभके निमित्त (पुरु-संभृतम्) बडी संख्यामें एकत्र (पारावतम्) परावान् का (वसु) धन (अप-अवृणोः) अपने अधीन किया और (सुन्वते) यज्ञ करनेवालेके लिये तूने (या) जो दान (चकर्थ) किये हैं (ते) तेरे (ता) वे (विश्वा इत्) सारेही कर्म (सवनेषु) यज्ञके समय (प्र-वाच्या) कहने योग्य हैं ॥ ६ ॥

[१६५९] हे वीरो ! (नूनम्) निश्चय अब तुम, (पृथक्) एक-एक, शत्रुकी ओर (प्र धावत) दौडो । (इह) यहाँ ऐसा कोई वीर (न) नहीं है (यः) जो (वः) तुम्हें (अवावरीत्) रोके । देखो ! (इन्द्रः) इन्द्रने (वृत्रस्य) वृत्रके (मर्मणि) कोमल स्थान पर (वज्रम्) वज्रका (नि सीं अपीपतत्) प्रहार कर दिया है ॥ ७ ॥

[१६६०] (सुपर्णः) उत्तम पंखोंवाला सुपर्ण (मनोजवा अयमानः) मनके वेगसे जाते हुए (आयसीं पुरं अतरत्) लोहेके नगरको पार कर गया और (दिवं गत्वाय) द्युलोकको जाकर वह (वज्रिणे सोमं आभरत्) वज्रधारी इन्द्रके लिए सोम ले आया ॥ ८ ॥

भावार्थ— [इन्द्र शंकित स्तोताको अपना परिचय देता है ।] संसारका कोई पदार्थ मुझसे बडा नहीं है । यज्ञमें दिये हुए भाग मुझे बढाते हैं । मैं सारे शत्रुओंका नाश करता हूँ ॥ ४ ॥

स्तोता संकटमें इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं । इसीसे इन्द्रको उनके संकटका ज्ञान होता है ॥ ५ ॥

यज्ञमें इन्द्रके सारे दान और पराक्रम वर्णन करने चाहियें । विद्वान् लोग राष्ट्रके सारे वीरोंके चरित्र सुरक्षित रखें और उत्सवोंमें वे चरित्र गाये जायें ॥ ६ ॥

इन्द्रने शत्रुओंको ऐसा मिटा दिया है कि कोई मार्ग रोकनेवाला नहीं रह गया ॥ ७ ॥

सोम द्युलोकमें एक लोहेकी नगरीके अन्दर रखा हुआ था, उसे लानेके लिए इन्द्रने सुपर्णको भेजा और सुपर्ण उस लोहेकी नगरीको पार करके उस सोमको ले आया ॥ ८ ॥

१६६१ समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः ।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरःप्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥

१६६२ यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥ १० ॥

१६६३ देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥ ११ ॥

१६६४ सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः ॥ १२ ॥

अर्थ- [१६६१] इन्द्रका (वज्रः) वज्र (उद्ना) जलसे (अभि-वृतः) घिरा हुआ (समुद्रे) आकाशके (अन्तः) बीच (शयते) है। उसके भयसे (सं-यतः) संग्रामके (पुरः-प्रस्रवणाः) सामनेसे भागनेवाले शत्रु (अस्मै) इस इन्द्र या उसके वज्रके लिये (बलिम्) बलि (भरन्ति) अर्पित कर रहे हैं ॥ ९ ॥

[१६६२] (अविचेतना नि वदन्ती) अज्ञानियोंको ज्ञानसे युक्त करती हुई तथा (देवानां मन्द्रा) विद्वानोंको हर्षित करती हुई (यत् राष्ट्री वाक्) जो तेज युक्त वाणी (निषसाद) यज्ञमें बोली जाती है, तब (चतस्रः) चारों दिशायें (ऊर्जं पयांसि दुदुहे) अन्न और दूध आदिको उत्पन्न करती हैं। (अस्याः) इस वेदवाणीका (परमं) मूल स्थान (क्व स्वित् जगाम) कहां है, पता नहीं ॥ १० ॥

[१६६३] (देवाः) देवोंने (देवीं वाचं अजनयन्त) इस दिव्य वेदवाणीको प्रकट किया, (तां) उस वाणीको (विश्वरूपाः पशवः वदन्ति) अनेक रूपवाले पशु बोलते हैं। (मन्द्रा सा) आनन्द देनेवाली वह वाणी (नः) हमें (इषं ऊर्जं दुहाना) अन्न और तेजको प्रदान करे (सु स्तुता धेनुः वाक्) अच्छी तरहसे स्तुत हुई वह वाणी रूपी गाय (अस्मान् उप एतु) हमारे पास आवे ॥ ११ ॥

[१६६४] हे (सखे) मित्र (विष्णो) विष्णु देव! तू (वि-तरम्) अधिक (वि क्रमस्व) विक्रम दिखा। हे (द्यौः) द्युलोक! तू हमारे (वज्राय) वज्रके (वि-स्कभे) ठहरनेके लिये अधिक (लोकम्) स्थान (देहि) दे। हे विष्णो! हम दोनों मिलकर (वृत्रम्) वृत्रको (हनाव) मारें और (सिन्धून्) जलोंको (रिणचाव) बहा दें। वे जल (वि-सृष्टाः) मुक्त होते ही (इन्द्रस्य) इन्द्रकी (प्र-सवे) आज्ञामें (यन्तु) बहा करें ॥ १२ ॥

भावार्थ- वज्रके भयसे शत्रु युद्धसे भागते और इन्द्रको अपना बलि देते हैं। राजाके पास उत्तम अस्त्र-शस्त्र हों तो शत्रु भयभीत होकर स्वयं वशमें आ जाते हैं ॥ ९ ॥

यह वेदवाणी अज्ञानियोंको ज्ञानसे युक्त करती है, तथा देवों और विद्वानोंको प्रसन्न करती है। यह वाणी स्वयं तेजसे युक्त होकर इसे बोलनेवालेको भी तेजसे युक्त करती है। यज्ञमें जब वेदोंका पाठ होता है, तब वह यज्ञ हर तरहसे समृद्ध होता है। वेदवाणीके इतने सारे कार्य प्रत्यक्ष होनेपर भी ये वेद किस स्थानसे प्रकट हुए यह पता नहीं चलता ॥ १० ॥

वाणीका मूल रूप एक ही है। इस वाणीको भगवान्ने प्रकट किया था। पर इस एक ही वाणीको सभी प्राणी अलग-अलग रूपसे बोलते हैं। वह वाणी जब प्रसन्न होती है, तब मनुष्य हर तरहसे समृद्ध होता है ॥ ११ ॥

इन्द्र विष्णुकी सहायतासे वृत्रको मार कर सदा जल बहाया करता है ॥ १२ ॥

×

[१०१]

(ऋषिः- जमदग्निर्भार्गवः । देवताः- मित्रावरुणौ, ५ मित्रावरुणादित्याः, ६ आदित्याः, ७-८ अश्विनौ, ९-१० वायुः, ११-१२ सूर्यः, १३ उषाः सूर्यप्रभा वा, १४ पवमानः, १५-१६ गौः । छन्दः- १-२ प्रगाथः= (बृहती, सतोबृहती), ३ गायत्री, ४ सतोबृहती, ५-१३ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती,) १४-१६ त्रिष्टुप् ।)

१६६५ ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ १ ॥

१६६६ वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

१६६७ प्र यो वां मित्रावरुणाऽजिरो दूतो अद्रवत् । अयःशीर्षा मदेरघुः । ॥ ३ ॥

१६६८ न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥ ४ ॥

---

[१०१]

अर्थ— [१६६५] (यः) जो मनुष्य (अभिष्टये अपनी इच्छाकी प्राप्तिके लिए तथा (हव्य दातये) हवि प्रदान करनेके लिए (मित्रावरुणौ आ चक्रे) मित्र और वरुणको अपनी ओर करता है, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (ऋधक्) सचमुच (इत्था) इसप्रकार (देवतातये) देवोंको प्रसन्न करनेके लिए (शशमे) आहुति प्रदान करता है ॥ १ ॥

[१६६६] (वर्षिष्ठक्षत्रा) अत्यन्त बलशाली (उरुचक्षसा) विशाल दृष्टिवाले, (नराः) उत्तम नेता, (राजाना) तेजस्वी (दीर्घश्रुत्तमा) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानी (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (बाहुता न) दोनों हाथोंके समान (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यकी किरणोंके साथ (दंसना) यज्ञ कर्ममें (रथर्यतः) जाते हैं ॥ २ ॥

[१६६७] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (यः) जो (वां अजिरः दूतः) तुम्हारी सदा सेवा करनेवाला दूत बनकर (अद्रवत्) तुम्हारे पास आता है, वह (अयः शीर्षा) सोनेसे शोभित सिरवाला होकर (मदेरघुः) आनन्ददायक ऐश्वर्यमें रहता है ॥ ३ ॥

[१६६८] (यः) जो मनुष्य (सं प्रश्ने न रमते) किसी विद्याकी जिज्ञासामें आनन्द प्राप्त नहीं करता, (न पुनः हवीतवे) न यज्ञादि कर्ममें जिसे आनन्द मिलता है, (न संवादाय रमते) न किसी शुभ संवादमें जिसे आनंद मिलता है, हे मित्र वरुण ! (अद्य) आज (तस्मात् समृतेः) उस नास्तिकके संग्रामसे (नः उरुष्यतं) हमारी रक्षा करो, (बाहुभ्यां न उरुष्यतं) अपनी बाहुओंसे हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण दोनों देव अत्यन्त बलशाली, विशाल दृष्टिवाले, उत्तम नेता, तेजस्वी और श्रेष्ठ ज्ञानी हैं, इन दोनों देवोंकी जो स्तुति करता है, वह अपने इच्छित फलको प्राप्त करता है ॥ १-२ ॥

जो इन दोनों देवोंकी सदा सेवा करता है, वह स्वर्ण अलंकार आदिसे सुशोभित होकर आनन्द दायक ऐश्वर्यमें रहता है, पर जो मनुष्य किसी विद्याको प्राप्त करनेके कार्यमें आनन्द नहीं लेता, यज्ञादि उत्तम कर्मोंमें जिसे आनंद नहीं मिलता, जो किसी प्रवचन आदिमें नहीं जाता, वह दुष्ट है । ऐसे दुष्टों पर इन दोनों देवोंकी अवकृपा रहती है ॥ ३-४ ॥

१६६९ प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ५ ॥
१६७० ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम् ।
ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥ ६ ॥
१६७१ आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥
१६७२ रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥
१६७३ आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६६९] हे (ऋतावसो) यज्ञको स्थापित करनेवाले यज्ञकर्ता ! (मित्राय अर्यम्णे) मित्र और अर्यमा देवके लिए (सचथ्यं वरूथ्यं) सेवाके योग्य और वरणीय स्तोत्रको गाओ । (वरुणे छन्द्यं वचः) वरुणके लिए प्रशंसनीय स्तोत्रका गान करो । (राजसु स्तोत्रं गायत) तेजस्वी देवोंके लिए स्तोत्रका गान करो ॥ ५ ॥

[१६७०] (ते) वे देव (अरुणं) लाल वर्णके (जेन्यं) जयके साधन भूत (वसु) सबको बसानेवाले (तिसृणां एकं पुत्रं) पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों लोकोंके एक पुत्र सूर्यको (हिन्विरे) प्रकट होनेके लिए प्रेरित करते हैं । तथा उसकी सहायतासे (अदब्धाः ते) आलस्यरहित वे देव (मर्त्यानां अमृता धामानि) मनुष्योंके अमर स्थानोंको (अभि चक्षते) देखते हैं ॥ ॥ ६ ॥

[१६७१] हे (नासत्या) सत्यपालक वीर अश्विदेवो ! (उभा सजोषसा) दोनों मिलकर ही (हव्यानि वीतये) हविर्भागका आस्वाद लेनेके लिए (मे) मेरे (उत् यता द्युमत्तमानि) अत्यन्त प्रकाशमान (कर्त्वा वचांसि) कार्य कलाप और भाषणके (प्रति आ यातं) समीप आओ ॥ ७ ॥

[१६७२] हे (नरा) नेताओ ! (वाजिनी वसू) सेनारूपी धनवाले अश्विदेवो ! (यत् युवाभ्यां) जब तुम दोनोंसे (अरक्षसं रातिं) राक्षसोंकी पीडाओंसे रहित दानको (हवामहे) हम चाहते हैं, तब (जमदग्निना गृणाना) जमदग्निसे प्रशंसित तुम दोनों (प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तौ) पूर्वाभिमुख प्रशंसाको बढाते हुए (इतं) इधर आओ ॥ ८ ॥

[१६७३] हे (वायो) वायो ! (नः दिविस्पृशं यज्ञं) हमारे द्युलोकको स्पर्श करनेवाले यज्ञके पास (सुमन्मभिः) उत्तम मननीय स्तोत्रोंके साथ (आ याहि) आ । क्योंकि (अन्तः पवित्रः) अन्दरसे पवित्र तथा (उपरि श्रीणानः) बाहरसे अच्छी तरह निचोडा हुआ (अयं शुक्रः) यह स्वच्छ सोमरस (ते) तेरे लिए (अयामि) मैं देता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण देव लाल सूर्यके समान तेजस्वी, जय प्रदान करनेवाले, सबको निवास देनेवाले होकर सूर्यको प्रकट करते हैं । आलस्यरहित होकर वे देव मनुष्योंके सभी स्थानोंका निरीक्षण करते हैं । इन देवोंकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ५–६ ॥

हे देवो ! हमें ऐसा धन दो, कि जिसके कारण हमें कोई पीडा और संकट न उठाना पडे । तुम दोनों हमारे यशको बढाते हुए हमारी तरफ आओ और हमारे अत्यन्त तेजस्वी भाषाको तुम सुनो ॥ ७–८ ॥

१६७४ वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् ॥ १० ॥
१६७५ बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यते ऽद्धा देव महाँ असि ॥ ११ ॥
१६७६ बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ १२ ॥
१६७७ इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य१न्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥
१६७८ प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयु१र्न्य१न्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥ १४ ॥

अर्थ— [१६७४] (नियुत्वः) हे नियुत नामक अश्वनाले वायो ! (अध्वर्युः) यज्ञका ऋत्विक् (वीतये) तुम्हारे भक्षणके लिए (हव्यानि) हविको (रजिष्ठैः पथिभिः) सरलतम मार्गोंसे (प्रति वेति) ले जाता है । (अधा) पश्चात् (नः) हमारे (शुचिं गवाशिरं) शुद्ध तथा गोदुग्ध मिश्रित (उभयस्य सोमं) दोनों प्रकारके सोमको (पिब) पियो ॥ १० ॥

[१६७५] हे (सूर्य) सूर्य ! तू (बट् महान् असि) सचमुच महान् है, हे (आदित्य) आदित्य ! (बट् महान् असि) तू वास्तवमें महान् है, । (महः सतः ते) महान् होनेके कारण तेरी (महिमा पनस्यते) महिमा सर्वत्र गाई जाती है । (अद्धा) अतः, हे (देव) तेजस्वी सूर्य ! तू (महां असि) महान् है ॥ ११ ॥

[१६७६] हे (सूर्य) सूर्य ! (बट्) सचमुच तू (श्रवसा महान् असि) बलके कारण महान् है । हे (देव) देव ! (सत्रा) सचमुच (देवानां) देवोंके मध्यमें (मह्ना) अपनी महिमाके कारण तू (महान् असि) महान् है । तू (असुर्यः) असुरोंको मारनेवाला, (पुरोहितः) आगे बढकर प्राणियोंका हित करनेवाला, (विभुः) व्यापक है और तेरा (ज्योतिः) तेज (अदाभ्यं) किसीसे नष्ट होनेवाला नहीं है ॥ १२ ॥

[१६७७] (इयं या) यह जो (नीची) नीचेकी ओर मुख किए हुई (अर्किणी) स्तुतिके योग्य (रूपा) रूपवती (रोहिण्या) प्रकाशवाली सूर्य प्रभा (कृता) उत्पन्न हुई, वह (अन्तः) विश्वमें (दशसु बाहुषु) दस बाहुओंमें (आयती) आती हुई (चित्रा इव) चित्राके समान (प्रति अदर्शि) दिखाई दी ॥ १३ ॥

[१६७८] जो (तिस्रः प्रजाः) तीनों लोकोंमें प्रजायें (अत्यायं ईयुः) निर्माण हुई हैं, (अन्याः) वे सभी प्रजायें (अर्कं अभितः विविश्रे) सूर्यका चारों ओरसे आश्रय लेती हैं । (बृहत्) वह महान् सूर्य (भुवनेषु अन्तः तस्थौ) भुवनोंके अन्दर व्यापक है । (पवमानः) पवित्र करनेवाला वायु (हरितः आ विवेश) सभी दिशाओंमें प्रविष्ट हो रहा है ॥ १४ ॥

भावार्थ— हे वायु ! हमारे द्वारा किए जानेवाले इन यज्ञोंकी ज्वालायें द्युलोकको स्पर्श करती हैं । तू इन यज्ञोंमें आ । यज्ञ करनेवाला तेरे लिए उत्तम मार्गसे हवि प्रदान करता है । तू उसके द्वारा दिए सोमरसको पी ॥ ९-१० ॥

हे सूर्य ! तू महान् है, इसीलिए तेरी महिमा सर्वत्र गाई जाती है । इसी महिमाके कारण तू महान् है ॥ ११ ॥

हे सूर्य ! तू अपने बलके कारण महान् है । इन सभी देवोंके बीचमें अपनी महिमाके कारण तू महान् है । तू आगे बढकर प्राणियोंका हित करनेवाला और व्यापक है, और तेरा तेज किसीसे नष्ट होनेवाला नहीं है ॥ १२ ॥

द्युलोकसे नीचेकी तरफ अपने प्रकाशको बिखेरती हुई सूर्यप्रभा दसों दिशाओंमें अपने प्रकाशको फैलाती है । सभी प्राणी इस सूर्यप्रभाके आश्रयसे रहते हैं और उससे जीवन प्राप्त करते हैं । उस महान् सूर्य और वायुका प्रभाव सभी दिशाओं और विश्वके सभी पदार्थोंमें व्याप्त है ॥ १३-१४ ॥

१६७९ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ १५ ॥

१६८० वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥ १६ ॥

[१०२]

(ऋषिः- भार्गवः प्रयोगः, अग्निर्बार्हस्पत्यः, पावको वा, सहसः पुत्रौ गृहपति-यविष्ठौ तयोर्वान्यतरः । देवताः- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

१६८१ त्वमग्ने बृहद्वयो दधासि देव दाशुषे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥ १ ॥

१६८२ स न ईळानया सह देवाँ अग्ने दुवस्युवा । चिकिद्विभानवा वह ॥ २ ॥

१६८३ त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन यविष्ठ्य । अभि ष्मो वाजसातये ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६७९] यह गौ (रुद्राणां माता) रुद्र देवोंकी माता (वसूनां दुहिता) वसुदेवोंकी पुत्री (आदित्यानां स्वसा) आदित्य देवोंकी बहिन और (अमृतस्य नाभिः) अमृतका केन्द्रस्थान है । मैं (चिकितुषे जनाय नु प्रवोचं) ज्ञानी मनुष्यसे यही कहता हूँ कि (अनागां अदितिं गां) निरपराध और न मारने योग्य गायको (मा वधिष्ट) मत मार ॥ १५ ॥

[१६८०] (वचोविदं) वाणीको प्रेरणा देनेवाली (विश्वाभिः धीभिः उपतिष्ठमानां) सब तरहसे वर्णित होनेवाली, (देवेभ्यः) मुझे देवत्व देनेके लिए (मां उप ईयुषीं) मेरी तरफ आनेवाली तथा (वाचं उदीरयन्तीं) स्नेहपूर्ण वाणीको व्यक्त करती हुई (गां) गायको (दभ्रचेताः मर्त्यः) अल्प ज्ञानी मनुष्य (मा अवृक्त) त्याग देता है ॥ १६ ॥

[१०२]

[१६८१] हे (देव अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! (त्वं, दाशुषे, बृहद्वयः दधासि) तू दान देनेवालेके लिये महद् अन्न प्रदान करता है । तू (कविः गृहपतिः युवा) दूरदर्शी, गृहका स्वामी और नित्य तरुण है ॥ १ ॥

[१६८२] हे (विभानो अग्ने) विशेष कान्तियुक्त अग्ने ! (सः चिकित्) वह ज्ञानवान् तू (नः दुवस्युवा ईळानया सह देवान् आवह) हमारी श्रद्धा और करुणासे भरी वाणीसे प्रेरित होकर देवताओंको यहाँ ले आ ॥ २ ॥

[१६८३] हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त बलवान् अग्ने ! (चोदिष्ठेन त्वया युजा स्वित् ह वयं) मनुष्योंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले तुझ सहयोगीके साथ ही हम (वाजसातये अभिष्मः) बल लाभके लिये शत्रुओंको पराजित करनेवाले होवें ॥ ३ ॥

भावार्थ— गाय रुद्रोंकी माता, वसुदेवोंकी पुत्री, आदित्य देवोंकी बहिन है । इस गायमें सभी देवगण निवास करते हैं । इसमें दूधरूपी अमृत है । अतः गाय सब तरहसे पूज्य है । इसीकारण वह वधके योग्य नहीं है । जो प्राणियोंमें सबसे अधिक सरल इस गायका वध करता है, वह पाप करता है । गायकी हर तरहसे रक्षा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

गायकी महिमा सर्वत्र गाई गई है । उसका शब्द बहुतही स्नेहपूर्ण होता है । वह सब मनुष्योंकी माता होनेसे सबके प्रति अपना स्नेह व्यक्त करती है । पर उसके स्नेहको ज्ञानी जनही जान पाते हैं । जो अज्ञानी और मूर्ख होते हैं, वे गायके महत्त्वको न जाननेके कारण उसे त्याग देते हैं या उसका वध करते हैं ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! ज्ञानसे युक्त तू हमारे घरोंका स्वामी तथा दानियोंकी सहायता करता है । तू दूरदर्शी है अतः हमारे अन्दरकी सब बातोंको एवं भविष्यमें होनेवाली सभी चीजोंको जानता है । अतः तू हमारी प्रार्थनाओंके अन्दर भरी हुई श्रद्धा और करुणाको जान और सब देवोंको हमारी सहायताके लिए बुला ला ॥ १-२ ॥

१६८४ और्वभृगुवच्छुचि- मप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ४ ॥
१६८५ हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्द्यं सहः । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ५ ॥
१६८६ आ सवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ६ ॥
१६८७ अग्निं वो वृधन्त- मध्वराणां पुरूतमम् । अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ ७ ॥
१६८८ अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या । अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥
१६८९ अयं विश्वा अभि श्रियो ऽग्निर्देवेषु पत्यते । आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥
१६९० विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम् । अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ १० ॥

अर्थ— [१६८४] (समुद्रवाससं शुचिं अग्निं) बडवानलके रूपमें समुद्रमें स्थित पवित्र अग्निको मैं (और्व भृगुवत्) और्व, भृगुके समान और (अप्नवानवत् आ हुवे) अप्नवानके समान पुकारता हूँ ॥ ४ ॥

[१६८५] (वातस्वनं कविं, पर्जन्यक्रन्द्यं) वायुके समान शब्दवान्, मेधावी, मेघके सदृश गर्जनशील, (सहः समुद्रवाससं अग्निं हुवे) सब कुछ सहन करनेवाले बलवान् और सागरमें शयन करनेवाले अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ५ ॥

[१६८६] (आ सवितुः सवं यथा) सब ओरसे देवोंके प्रेरक सूर्यके समान, (भगस्य इव भुजिं, समुद्रवाससं, अग्निं हुवे) भगके समान ऐश्वर्यके भोक्ता तेजस्वी और बडवानलके रूपमें समुद्रमें स्थित ऐसे अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ६ ॥

[१६८७] (अध्वराणां नप्त्रे, सहस्वते वृधन्तं पुरुतमं अग्निं) अहिंसक यज्ञोंका नाती, बलवान्, ज्वालाओंसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाला, सबसे बडे पालक अग्निको (वः अच्छ) तुम सब अच्छी प्रकार उपासना करो ॥७॥

[१६८८] (तक्ष्या रूपा इव यथा अयं त्वष्टा नः आभुवत्) जैसे बढई छीलछाल कर बनाने योग्य पदार्थोंको रूप देता है, उसी प्रकार यह सबका बनानेवाला अग्नि हमें भी बनाता है । हम भी (अस्य क्रत्वा यशस्वतः) इस अग्निके प्रज्ञानसे यशस्वी हों ॥ ८ ॥

१ क्रत्वा यशस्वतः— मनुष्य अपने कर्म और परिश्रमसे यशस्वी होता है ।

[१६८९] (अयं अग्निः देवेषु विश्वाः श्रियः अभिपत्यते) यह अग्नि ही देवोंके मध्यमें सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ प्राप्त करता है । अतः यह अग्नि (वाजैः नः उप आगमत्) सम्पत्तियोंके साथ हमारे यहाँ आगमन करे ॥ ९ ॥

१ अयं अग्निः देवेषु विश्वाः श्रियः अभिपत्यते— यह अग्नि देवोंमें सबसे ज्यादा सम्पत्तिशाली है ।

[१६९०] हे मनुष्य ! तुम, (विश्वेषां होतॄणां यशस्तमं) सम्पूर्ण होताओंमें सबसे अधिक यशस्वी, (यज्ञेषु, पूर्व्यं अग्निं इह स्तुहि) यज्ञोंमें मुख्य अग्निकी हमारे इस यज्ञमें स्तुति करो ॥ १० ॥

भावार्थ— (और्व) विशाल ख्यातिवाले (भृगु) भरण पोषण करनेवाले और (अप्नवान) आप्त सज्जनोंके समान मैं भी समुद्र, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें रहनेवाले अग्निकी प्रार्थना करता हूँ, वह हमें शक्ति देवे, ताकि हम शत्रुओंको पराभूत कर सकें ॥ १–४ ॥

सूर्यके उदय होनेके साथ ही सभी जगत् अपने अपने कामोंमें लग जाता है, अतः सूर्यको सबका प्रेरक कहा गया है, उसी प्रकार अग्निके प्रदीप्त होने पर सभी यज्ञ कर्म शुरु हो जाते हैं, अतः सूर्यके समान अग्नि लोगोंको सत्कर्म करनेके लिए प्रेरित करता है । वह घृतादिका जब भोग करता है, तब प्रदीप्त होनेपर उसका शब्द हवाके समान और मेघोंकी गडगडाहटके समान हो जाता है, सब उसकी सब प्रार्थना करते हैं ॥ ५–६ ॥

यह अग्नि यज्ञका नाती है । यज्ञके पुत्र अध्वर्यु और अध्वर्युका पुत्र यह अग्नि है, इसलिए [illegible] गया है । यह अग्नि सब पदार्थोंका उत्तम रूप देता है, इसीलिए इसे त्वष्टा कहा है, अर्थात् जैसे एक बढई लकडीको छील कर उसे उत्तम रूप देता है, उसी प्रकार यह अग्नि मनुष्योंको उत्तम रूप देता है । यह अग्नि अपने परिश्रम एवं प्रयत्नसे यशस्वी होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने कर्म या प्रयत्नसे ही यशस्वी होता है ॥ ७–८ ॥

यह अग्नि देवोंमें सबसे अधिक सम्पत्तिशाली है इसलिए यह सबसे अधिक यशस्वी है । जो मनुष्य अपने प्रयत्नों एवं परिश्रमसे सम्पत्तिमान् बनता है वही यशस्वी भी हो सकता है । बिना परिश्रमके सम्पत्ति और [illegible] पाना असम्भव है ॥ ९–१० ॥

१६९१ शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा । दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ॥ ११ ॥
१६९२ तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम् । मित्रं न यातयज्जनम् ॥ १२ ॥
१६९३ उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः । वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १३ ॥
१६९४ यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसंदिनम् । आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ १४ ॥
१६९५ पदं देवस्य मीळ्हुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः । भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ १५ ॥
१६९६ अग्ने घृतस्य धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ १६ ॥

अर्थ— [१६९१] (यः ज्येष्ठः दीर्घश्रुत्तमः दमेषु आ दीदाय) जो देवोंमें सबसे बड़ा, विद्वान् अग्नि घरोंमें सब ओरसे प्रकाशित होता है, उस (शीरं पावकशोचिषं) सर्वव्यापक, पवित्र दीप्तिवाले अग्निकी स्तुति करो ॥ ११ ॥

[१६९२] हे (विप्र) मेधाविन्! तू (अर्वन्तं न सानसिं) अश्वकी तरह सेवा करने योग्य, (शुष्मिणं, मित्रं न यातयज्जनं) अत्यन्त बलसे युक्त, मित्रकी तरह सुखप्रद, शत्रुहन्ता (तं गृणीहि) उस अग्निकीही स्तुति कर ॥ १२ ॥

[१६९३] हे अग्ने! (हविष्कृतः गिरः जामयः देदिशतीः) यज्ञशील पुरुषकी स्तुतियाँ, भगिनियोंके समान तेरे गुणोंका वर्णन करती हुई (त्वा उप) तुझको प्राप्त करती हैं। और (वायोः अनीके अस्थिरन्) वायुके समीपमें तुझको अच्छी प्रकारसे बताती हुई स्थापित करती हैं ॥ १३ ॥

[१६९४] (यस्य त्रिधातु अवृतं असन्दिनं, बर्हिः तस्थौ) जिस अग्निके लोक खुले हुए और अबद्ध हैं, उनमें पूजनीय अग्नि रहता है, और उसके साथ (आपः चित् पदं नि दध) जल भी स्थिरपद प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

[१६९५] (मीळ्हुषः देवस्य पदं अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, द्योतमान अग्निका स्थान, शत्रुओंसे पराजित न होनेवाली रक्षाओंसे युक्त है। और (उपदृक् सूर्य इव भद्रा) आँखके समीप होनेपर भी उसका प्रकाश सूर्यके समान कल्याणकारी है ॥ १५ ॥

१ उपदृक् सूर्य इव भद्रा— इस अग्निका प्रकाश भी सूर्यके समान आंखोंके लिए कल्याणकारी है।

[१६९६] हे (देव अग्नि) तेजस्वी अग्ने! (घृतस्य धीतिभिः तेपानः शोचिषा) घृतकी दीप्तियों और तपते हुये ज्वालासे (देवान् आ वक्षि च यक्षि) देवोंको बुला और उनका पूजन कर ॥ १६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सबसे बड़ा, अत्यन्त विद्वान् और सब घरोंमें पूजा जाता है। यह बलसे युक्त तथा मित्रकी तरह सुखदायक और शत्रुहन्ता है। इसी प्रकार जो गुणोंमें सबसे बड़ा और अत्यन्त विद्वान् होता है, उसीकी सब घरोंमें पूजा होती है ॥ ११–१२ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु ये तीनों लोक इस अग्निके हैं। ये तीनों लोक खुले हुए और स्वतंत्र हैं, इन तीनों लोकोंमें अग्नि रहता है। पर अन्तरिक्षमें इस अग्निके साथ साथ पानी भी रहता है। मेघोंमें पानीके साथ साथ बिजलीके रूपमें अग्नि भी रहती है ॥ १३–१४ ॥

इस अग्निके सब स्थान अच्छी तरह सुरक्षित हैं। इस अग्निका प्रकाश आंखोंके लिए बड़ा लाभदायक है। जिस प्रकार रोज सूर्य दर्शन करनेसे आंखोंकी रोशनी बढती है, उसी प्रकार अग्निको देखनेसे भी आंखोंकी ज्योति बढती है। इसकी ज्वालाओंसे सभी इन्द्रियें बलवान् होती हैं ॥ १५–१६ ॥

१६९७ तं त्वांजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः । हव्यवाहममर्त्यम् ॥ १७ ॥
१६९८ प्रचेतसं त्वा कवे ऽग्ने दूतं वरेण्यम् । हव्यवाहं नि षेदिरे ॥ १८ ॥
१६९९ नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति । अथैतादृग्भरामि ते ॥ १९ ॥
१७०० यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २० ॥
१७०१ यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥ २१ ॥
१७०२ अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः । अग्निमीधे विवस्वभिः ॥ २२ ॥

अर्थ— [१६९७] हे (अङ्गिरः) अंगरसके ज्ञाता अग्ने ! (कविं अमर्त्यं, हव्यवाहं तं त्वा) ज्ञानी मरणरहित, हव्यको ढोनेवाले ऐसे उस प्रसिद्ध तुझको (देवासः मातरः अजनन्त) विद्वान् लोगोंने माताकी तरह उत्पन्न किया ॥ १७ ॥

[१६९८] हे (कवे अग्ने) मेधावी अग्ने ! (प्रचेतसं, वरेण्यं, दूतं, हव्यवाहं त्वा) उत्तम ज्ञानवाले, वरण करने योग्य श्रेष्ठ, देवोंके दूत, हविको ढोनेवाले ऐसे तुझको देवगण (नि षेदिरे) आदरपूर्वक बैठाते हैं ॥ १८ ॥

[१६९९] हे अग्ने ! (मे अघ्न्या नहि अस्ति) मेरे पास दूध देनेवाली गौ नहीं है, और (न स्वधितिः वनन्वति) न समिधा काटनेवाली कुल्हाडी ही है, (अथ एतादृक् ते भरामि) तो भी मंगलके लिये इस प्रकार ही तेरा भरणपोषण करता हूँ ॥ १९ ॥

[१७००] हे (यविष्ठ्य अग्ने) नित्य तरुण अग्ने ! (यत् ते कानि कानि चित् दारूणि आ दध्मसि) जो हम तेरे लिये कई प्रकारकी नाना समिधायें प्रदान करते हैं, तू (ता जुषस्व) उनको स्वीकार कर ॥ २० ॥

[१७०१] हे अग्ने ! (यत् उपजिह्विका अत्ति) जिन समिधाओंको तेरी ज्वाला जला डालती है, अथवा (यत् वम्रः अति सर्पति) जिन समिधाओं पर तेरी ज्वालायें आक्रमण करती हैं (तत् सर्वं ते घृतं अस्तु) वे सभी काष्ट तेरे लिए घृतके समान हों ॥ २१ ॥

[१७०२] (अग्निं इन्धानः मनसा धियं सचेत) अग्निको काष्ठसे प्रज्वलित करनेवाला पुरुष श्रद्धायुक्त मनसे कर्म करे । तब (विवस्वभिः अग्निं ईधे) ऋत्विक् लोगोंके द्वारा अग्निको प्रज्वलित करावे ॥ २२ ॥

१ अग्निं इन्धानः मनसा धियं सचेत— अग्निको समिधाओंसे प्रज्वलित करनेवाला पुरुष श्रद्धायुक्त मनसे कर्म करे ।

भावार्थ— जिस प्रकार माता बालकको उत्पन्न करती है, उसी प्रकार देव अग्निको उत्पन्न करते हैं, और उत्पन्न करनेके बाद उस ज्ञानी और सेवा किए जाने योग्य अग्निको आदरपूर्वक अपने घरमें स्थान देते हैं और उसका सम्मान करते हैं ॥ १७–१८ ॥

एक निर्धन उपासकके ये उद्‌गार हैं, वह कहता है, कि हे अग्ने ! न मेरे पास गायें हैं, ताकि तुम्हें मैं घृत दूध आदि दे सकूं और न मेरे पास कुल्हाडा ही है ताकि समिधायें काटकर तुझे अर्पण कर सकूं । उस पर भी मैं परिश्रमसे किसी प्रकार समिधायें इकठ्ठा कर तुझे प्रदान करता और तुझे प्रज्वलित करता हूँ, अतः तू उनका तिरस्कार न करके प्रेमपूर्वक स्वीकार कर, यही मेरी प्रार्थना है ॥ १९–२० ॥

मनुष्य अग्निकी जब भी उपासना करे, हमेशा श्रद्धायुक्त मनसे ही उसकी उपासना करे । या प्रथम श्रद्धासे युक्त मन वाला हो और फिर यज्ञका प्रारंभ करे । प्रारंभ करनेके बाद उस अग्निमें श्रद्धा पूर्वक आहुति प्रदान करे ॥ २१–२२ ॥

[१०३]

(ऋषिः- सोभरिः काण्वः। देवताः- अग्निः; १४ अग्नामरुतः। छन्दः- बृहती; ५ विराड्रूपा; ७, ९, ११, १३ सतोबृहती; ८, १२ ककुप्; १० ह्रसीयसी; १४ अनुष्टुप्।)

१७०३ अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ १ ॥

१७०४ प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥ २ ॥

१७०५ यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ३ ॥

१७०६ प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥

---

[१०३]

अर्थ— [१७०३] (यस्मिन् व्रतानि आदधुः) जिस अग्निमें लोग अपने कर्मोंको स्थापित करते हैं, वह (गातुवित्तमः अदर्शि) हर उत्तम मार्गोंको उत्तमतासे जाननेवाला अग्नि दीखने लग गया है (आर्यस्य वर्धनं सुजातं) उस श्रेष्ठ जनोंको बढानेवाले और अच्छी प्रकारसे प्रदीप्त हुए (अग्निं नः गिरः उपो नक्षन्तः) अग्निको हमारी वाणियाँ अच्छी प्रकार प्राप्त हों ॥ १ ॥

[१७०४] (दैवोदासः अग्निः देवान्) तेज वा प्रकाश देनेवाला अग्नि अपनी किरणोंको (मातरं पृथिवीं) माता पृथ्वीके प्रति (मज्मना न प्र अच्छ विवावृते) बडे वेगके साथ साथ भेजता है, और स्वयं (नाकस्य सानवि तस्थौ) द्युलोककी समुन्नत चोटीपर विराजमान हो जाता है ॥ २ ॥

१ आर्यस्य वर्धनः— यह अग्नि श्रेष्ठ आदमियोंको ही बढाता है।

[१७०५] (यस्मात् चर्कृत्यानि कृण्वतः कृष्टयः रेजन्ते) जिस कारणसे शुभ कर्म करनेवालोंसे दूसरे उत्तम कर्म न करनेवाले भयसे काँपते हैं। इसलिये हे मनुष्यो! तुम सब भी (सहस्रसां अग्निं) सहस्रों प्रकारके धनोंको देनेवाले अग्निकी (मेधसातौ) यज्ञमें (त्मना धीभिः सपर्यत) अपने स्तोत्रोंसे सेवा करो, जिससे तुम्हें भी किसीसे भयभीत होकर काँपना न पडे ॥ ३ ॥

[१७०६] हे (वसो अग्ने) सबको निवास देनेवाले अग्ने! तू (यं राये प्र निनीषसि) जिसको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये सन्मार्गपर प्रेरित करनेकी इच्छा करता है, और (यः मर्तः ते दाशत्) जो मनुष्य प्रेरित होकर तुमको हव्यादि पदार्थ प्रदान करता है (सः उक्थशंसिनं सहस्रपोषिणं वीरं धत्ते) वह मनुष्य अपने लिये उत्तम वेदवचनोंके वक्ता, सहस्रोंके पोषक वीर पुत्रको धारण करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— जब अग्निरूपी सूर्य स्वयं द्युलोकके उन्नतम मार्गपर स्थित होकर अपनी तेजस्वी किरणोंको पृथ्वीपर भेजता है, तब सारे मार्ग प्रकाशित हो जाते हैं। उसी समय ज्ञानी जन अपने यज्ञादिक कर्म करने लगते हैं और उनकी स्तुति रूप वाणियाँ सूर्यके पास पहुंचने लगती हैं। १-२ ॥

यह अग्नि जिस मनुष्य उत्तम मार्गमें चलनेकी प्रेरणा देता है और जो मनुष्य इससे प्रेरित होकर अग्निको हवि आदि प्रदान करता है, वह वेद पढनेवाले तथा हजारोंके पोषण करनेवाले वीर पुत्रको प्राप्त करता है और तब उस उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यसे दूसरे बुरे कर्म करनेवाले मनुष्य डरते हैं। अतः मनुष्योंको चाहिए कि वे भी उस दानी अग्निकी सेवा किया करें ॥ ३-४ ॥

×

१७०७ स इ॒ळ्हे चि॑द॒भि तृ॑ण॒त्ति वाज॒मर्व॑ता स ध॑त्ते॒ अक्षि॑ति॒ श्रवः॑ ।
त्वे दे॑व॒त्रा सदा॑ पुरूवसो॒ विश्वा॑ वा॒मानि॑ धीमहि ॥ ५ ॥
१७०८ यो विश्वा॒ दय॑ते॒ वसु॒ होता॑ म॒न्द्रो जना॑नाम् ।
म॒धोर्न पात्रा॑ प्रथ॒मान्य॑स्मै॒ प्र स्तोमा॑ यन्त्य॒ग्नये॑ ॥ ६ ॥
१७०९ अश्वं॒ न गी॒र्भी र॒थ्यं॑ सु॒दान॑वो मर्मृ॒ज्यन्ते॑ देव॒यवः॑ ।
उ॒भे तो॒के तन॑ये दस्म विश्पते॒ पर्षि॒ राधो॑ म॒घोना॑म् ॥ ७ ॥
१७१० प्र मंहि॑ष्ठाय गायत ऋ॒ताव्ने॑ बृह॒ते शु॒क्रशो॑चिषे ।
उप॑स्तुतासो अ॒ग्नये॑ ॥ ८ ॥
१७११ आ वं॑सते म॒घवा॑ वी॒रव॒द्यशः॒ समि॑द्धो द्यु॒म्न्याहु॑तः ।
कु॒विन्नो॑ अ॒स्य सु॑म॒तिर्नवी॑य॒स्यच्छा॒ वाजे॑भिरा॒गम॑त् ॥ ९ ॥

अर्थ— [१७०७] हे (पुरूवसो) बहुतसे धनोंके स्वामी अग्ने ! जो मनुष्य तेरी स्तुति करता है, (सः इळ्हे चित् वाजं अर्वता अभि तृणत्ति) वह दृढ शत्रुके मजबूत नगरमें भी रखे हुए अन्नको अपने अश्वसे नष्ट कर देता है । और (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश धारण करता है । अग्ने ! (त्वे देवत्रा विश्वा वामानि सदा धीमहि) तुझ परम दानीके आश्रयमें रहकर हम भी सम्पूर्ण उत्तम धनोंको सर्वदा प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[१७०८] (होता, मन्द्रः यः विश्वा वसु जनानां दयते) होता मंगलमय जो अग्नि सम्पूर्ण धनोंको मनुष्योंके लिये प्रदान करता है । ऐसे (अस्मै अग्नये) उस अग्निके लिये (मधोः न) मधुर पदार्थोंसे पूर्ण पात्रोंके समान (प्रथमानि स्तोमाः प्रयन्ति) सर्व श्रेष्ठ उत्तम स्तुति मन्त्र हमारे हृदयसे बाहर आते हैं ॥ ६ ॥

[१७०९] हे (दस्म विश्पते) दर्शनीय समस्त प्रजाओंके पालक अग्ने ! (सुदानवः देवयवः रथ्यं अश्वं न गीर्भिः मर्मृज्यन्ते) उत्तम दानशील, दिव्यगुणोंकी इच्छा करनेवाले मनुष्य रथ योग्य उत्तम अश्वोंको जिस प्रकार शुद्ध करते हैं उसी प्रकार तुझे स्तुतियोंसे शुद्ध करते हैं, तू हम सबके (उभे तोके तनये मघोनां राधः पर्षि) दोनों पुत्र पौत्रादिको धनवानोंका धन प्रदान कर ॥ ७ ॥

[१७१०] हे (उपस्तुतासः) स्तोताओ ! तुम लोग (मंहिष्ठाय ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे अग्नये) अत्यधिक पूजनीय, सत्य ज्ञानमय, महान , शुद्धप्रकाश स्वरूप अग्निके लिये (प्र गायत) उत्तम स्तोत्रोंका गान करो ॥ ८ ॥

[१७११] (मघवा द्युम्नी) ऐश्वर्ययुक्त और तेजस्वी अग्नि (आहुतः समिद्धः वीरवद्यशः आ वंसते) आदरपूर्वक बुलाये जानेपर और प्रदीप्त किए जानेपर पुत्रोंसे युक्त अन्न और यश मनुष्यको सब प्रकारसे प्रदान करता है। (अस्य नवीयसी सुमतिः वाजेभिः न कुवित् अच्छ आगमत्) इस अग्निकी बहुत उत्तम और स्तुतिके योग्य बुद्धि अन्नोंके साथ हमें बार बार अच्छी प्रकार प्राप्त हो ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस अग्निकी जो स्तुति करता है, वह शत्रुके मजबूत किलेमें भी रखे हुए अन्नको अपने घोडोंके द्वारा आक्रमण करके अपने अधिकारमें कर लेता है और इस प्रकार वह अक्षय यश प्राप्त करता है । उसके साथ ही वह सम्पूर्ण उत्तम धनोंको प्राप्त करता है । अतः जिस प्रकार पात्रके भर जानेपर उसमेंसे मीठा पदार्थ बहने लगता है, उसी प्रकार भक्त जनोंके हृदयसे उस अग्निके लिए मधुर मधुर स्तोत्र निकलने लगते हैं ॥ ५–६ ॥

जिस प्रकार लोग उत्तम अश्वोंको शुद्ध करते हैं उसी प्रकार इस अग्निको शुद्ध करते हैं । तब सत्यज्ञानमय यह अग्नि अत्यन्त पूजित होकर उपासकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ७–८ ॥

१७१२ प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम् । अग्निं रथानां यमम् ॥ १० ॥

१७१३ उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति ।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥ ११ ॥

१७१४ मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः । यः सुहोता स्वध्वरः ॥ १२ ॥

१७१५ मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।
कीरिश्चिद्धि त्वामीट्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥ १३ ॥

१७१६ आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।
सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥ १४ ॥

॥ इत्यष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [१७१२] हे (आसावा) स्तोता लोगो ! (प्रियाणां प्रेष्ठं अतिथिं, रथानां यमं अग्निं) प्रियोंमें सबसे प्रिय और सबसे अधिक पूज्य सब चलने फिरनेवाले ग्रहोंके नियामक अग्निकी (उ स्तुहि) निश्चयसे स्तुति करो ॥ १० ॥

[१७१३] (धिया वाजं सिषासतः यस्य) अपने परिश्रमसे अन्नको जीतनेकी इच्छावाले जिस अग्रणीकी ज्वालाओंको (प्रवणे ऊर्मयः न) बहुत ऊंची उठनेवाली समुद्रकी तरंगोंकी तरह (दुस्तराः) पार करना कठिन है, तथा (यः वेदिता यज्ञियः) जो ज्ञानी और पूजनीय अग्नि (उदिता निदिता वसु आ ववर्तति) छिपे हुए और प्रकट धनोंको प्रदान करता है, उसकी स्तुति करो ॥ ११ ॥

[१७१४] (यः अग्निः) जो अग्नि (सुहोता, सु अध्वरः, वसुः, पुरु प्रशस्तः) अच्छी प्रकारसे देवोंको बुलानेवाला, उत्तम हिंसारहित यज्ञका करनेवाला, अभ्यागतके समान प्रिय, सबको बसानेवाला और बहुत ही स्तुति करने योग्य सर्वश्रेष्ठ है । इस प्रकारके सद्गुणोंसे युक्त (एषः मा हृणीतां नः) यह अग्नि किसीसे भी न रोके जाते हुये हमारी कामना पूर्ण करे ॥ १२ ॥

[१७१५] हे (वसो अग्ने) सबको बसानेवाले अग्ने ! (ये अच्छोक्तिभिः केभिः चित् एवैः हि ते मो रिषन्) जो मनुष्य उत्तम वचनों और किसी भी प्रकारके उत्तम साधनोंसे तेरी उपासना करता है वह कभी भी पीडित नहीं होता, (रातहव्यः सु अध्वरः कीरिः चित् दूत्याय त्वां ईट्टे) हवि देने और यज्ञ करनेवाला स्तोता दूतका कार्य करनेवाले तेरी उपासना करता है ॥ १३ ॥

[१७१६] हे (अग्ने) अग्ने ! (मरुत्सखा) मरुतोंका मित्र तू (स्वर्णरे) यज्ञमें (रुद्रेभिः) रुद्रोंके साथ (सोमपीतये आ याहि) सोमको पीनेके लिए आ, तथा (सोभर्याः सुस्तुतिं उप मादयस्व) सोभरि ऋषिकी स्तुतिमें आनन्दको प्राप्त कर ॥ १४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि प्रियोंमें भी अत्यन्त प्रिय और पूज्य तथा सम्पूर्ण विश्वका नियामक है । इस अग्निकी यदि सच्चे हृदयसे प्रार्थना की जाए, तो वह उत्तम बुद्धि और अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ९–१० ॥

जो अत्यधिक परिश्रम करके धन जीतता है, उसीकी पूजा होती है । उसके तेजको कोई पार नहीं कर सकता और वही सब तरहके धनोंको प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

यह अग्नि उत्तम रीतिसे देवोंको बुलानेवाला, उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाला, पूज्य और सभीके द्वारा प्रशंसित होता है । जो उसकी उत्तम वचनों और अन्य साधनोंसे स्तुति करता है वह हर तरहके सुख प्राप्त करता है ॥ १२–१३ ॥

अग्नि मरुतोंका मित्र और हितकारी है । वह शत्रुओंको रुलानेवाले वीरोंके साथ यज्ञमें जाए, और सबका भरण-पोषण करनेवाले ऋषिके यज्ञमें उसकी स्तुतियोंको सुनकर आनंदको प्राप्त हो ॥ १४ ॥

" अष्टम मंडल समाप्त "

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

अष्टम मण्डल

सुभाषित

१ अन्यत् चित् मा शंसत, मा रिषण्यत (१) मनुष्यो! परमात्माको छोड़कर और किसी देवकी स्तुति मत करो और दुःखी मत होओ।

२ इमे जना ऊतये नाना हवन्ते- (३) ये सभी प्राणी अपनी रक्षाके लिए इन्द्रको अनेक तरहसे बुलाते हैं।

३ विपश्चितः अर्यः जनानां विपः तर्तूर्यन्त (४) विद्वान्, श्रेष्ठ और प्रजाओंका पालन करनेवाले भक्त प्रभुकी कृपासे संकटोंसे पार हो जाते हैं।

४ शतामघ त्वा महे शुल्काय चन न परा देयाम्- (५) हे सैकड़ों तरहके ऐश्वर्योंवाले प्रभो! मैं तुम्हें बहुत अधिक धनके लिए भी न बेचूं।

५ मे पितुः वस्यान् असि, मे माता च समा- (६) हे प्रभो! तू मेरे पिताकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, पर मेरी माताकी तुलनामें तू उसके समान है।

६ सबर्दुघा सुदुघा अह्रया अनंकृता- (१०) मनुष्योंकी वाणी कामनाओंको दुहनेवाली, उत्तम फल देनेवाली, गुणोंसे युक्त और उत्तम अक्षरोंसे युक्त हो।

७ यः अभिश्रिषः ऋते चित् जत्रुभ्यः आतृदः पुरा संधिं संधाता- (१२) जिस इन्द्रने पहिले पिता भी गर्दनसे खूनकी धारा बहनेसे पूर्वही उस घावका संधियोंको जोड़ दिया।

८ निष्ट्या इव, अरणाः इव, प्रजहितानि वनानि न मा भूम- (१३) प्रभुकी कृपासे हम नीच मनुष्योंकी तरह, आनन्दसे रहितकी तरह तथा शाखा आदिसे रहित ठूंठ वृक्षोंकी तरह न हों।

९ अनाशवः अनुग्रासः अमन्महि- (१४) शीघ्रता न करते हुए तथा उग्र न होते हुए हम प्रभुकी उपासना करें।

१० मम जाता पृण- (१८) हे प्रभो! मुझसे उत्पन्न भी पुत्रादिकोंको तू पूर्ण कर, उन्हें स्वस्थ एवं सुखी कर।

११ विश्वया धिया हिन्वानं पीपयत्- (१९) अपनी संपूर्ण बुद्धिसे स्तुति करनेवालेको प्रभु हर तरहसे पूर्ण करता है।

१२ सदा याचन् त्वां मा चुक्रुधं- (२०) तुझसे सदा कुछ न कुछ मांगते हुए तुझे क्रुद्ध न कर दूं।

१३ ईशानं कः न याचिषत्- (२०) अपने प्रभुसे कौन नहीं मांगता।

१४ सः विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं ददाति- (२१) वह इन्द्र हमें सभी शत्रुओंका विनाश करनेवाले तथा शत्रुओंके अभिमानको क्षीण करनेवाले पुत्रको दे।

१५ दंसना महान्, व्रतैः उग्रः– (२७) वह इन्द्र अपने उत्तम कर्मोंके कारण सबसे महान् तथा अपने व्रतोंके कारण पराक्रमी है।

१६ भाः अनुचरन्, ईड्यः भुवन्– (२८) जो प्रकाशमार्गका अनुसरण करता है, वह प्रशंसनीय होता है।

१७ स्तोता रेवान् स्यात्– (३७) स्तुति करनेवाला धनवान् हो।

१८ नः पीयते शर्धते मा परा दाः– (४९) हे प्रभो! हमें हिंसकों और अत्याचारियोंके हाथोंमें मत सौंप।

१९ त्वावन्तः सखायः कण्वाः– (५०) हे प्रभो! तेरे मित्र ज्ञानी हो होते हैं।

२० नकिष्टौ अन्यत् न प्र ईं आ पपन– (५१) स्तुति या उपासनाके समय दूसरा कुछ ना कभी न करूं।

२१ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, स्वप्नाय न स्पृहयन्ति– (५२) देवगण सदा यज्ञ करनेवालेके पास ही जाना चाहते हैं, आलसीके पास नहीं।

२२ अतन्द्राः प्रमादं यन्ति– (५२) आलस्य न करनेवाले देव आलसीका परित्याग कर देते हैं।

२३ इन्द्रः महीभिः शचीभिः महान्– (६६) इन्द्र अपनी बड़ी बड़ी शक्तियोंके कारण महान है।

२४ विश्वाः चर्षणयः, स्पौंस्या त्वष्टा वा सस्मिन्– (६७) सारी प्रजायें, सारी शक्तियां और विजय इसी इन्द्रमें स्थित हैं।

२५ पदेभ्यः अनेचित् शचीवान् इन्द्रः नृभ्यः वाः धात्– (७१) पैर आदि अवयवोंके न होने पर भी शक्तिशाली इन्द्रने मनुष्योंके लिए वाणियां प्रदान की।

२६ वृधे बोधि– (७७) मनुष्य अपनी उन्नतिके लिए सदा जागता रहे।

२७ वयं सुमतौ वाजिनः भूयाम– (७८) हम उत्तम बुद्धिमें रहकर बलशाली बनें।

२८ अभिमातये नः मा स्तः– (७८) हे इन्द्र! तू शत्रुका हित करनेके लिए हमें मत मार।

२९ इन्द्रः शवः मह्ना रोदसी पप्रथत्– (८२) इन्द्रने अपने बलकी महिमासे द्युलोक और पृथिवीलोकको विस्तृत किया।

३० इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्– (८२) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया।

३१ विश्वा भुवनानि इन्द्रे ह ये मिरे– (८२) सारे भुवन इन्द्रमें ही नियन्त्रित होते हैं।

३२ ऋषिः विप्रः ओहते– (९०) मंत्र द्रष्टा ज्ञानी प्रभुकी कृपा प्राप्त करता है।

३३ महां अहिं अन्तरिक्षात् नि अधमः, पौंस्यं कृत्वे अग्नयः नि शुशुचुः, सूर्यः निः– (९६) जब इन्द्रने महान् अहि असुरको अन्तरिक्षसे नीचे गिराकर अपना पराक्रम प्रकट किया, तब अग्नियां प्रज्वलित हुई, तथा सूर्य प्रकट हुआ।

३४ आत्मा पितुः तनूः– (१००) आत्मा अपने पिता परमात्माका सच्चा पुत्र है।

३५ यः नमः उक्तिभिः दाशनोति सहस्रेण वाजियुधा इव सचते भावयं पुत्रं कृणुते– (१०५) जो नम्र होकर उत्तम वचनोंके द्वारा तुझे हवि देता है, वह हजारों शस्त्रोंसे मानों युक्त होता है और वह शत्रुनाशी पुत्रको प्राप्त करता है।

३६ उग्रस्य सख्ये मा भेम, मा श्रमिष्म– (१०७) हम इस वीर इन्द्रकी मित्रतामें रहकर किसीसे भी न डरें और न दुःखी हों।

३७ तं सखा चन्द्रः सभां उप याति– (१०९) इस इन्द्रका मित्र चन्द्रके समान तेजस्वी और आनंद देनेवाला होकर सभामें जाता है।

३८ यत्र सोमस्य तृम्पसि, सः दाशुरिः जनः स्वयं चित् मन्यते– (११२) जहां यह इन्द्र सोम पीकर तृप्त होता है, वह दानशील व्यक्ति स्वयंको अत्यन्त श्रेष्ठ मानता है।

३९ अस्माकं ब्रह्म सु नि यच्छतं– (११४) हे अश्विनौ! तुम दोनोंसे जनताके ज्ञानको सुरक्षित रखो।

४० नः पश्वे तोकाय एते भुवा धीवरी– (१२१) हमारे पशु, पुत्रादि तथा गायोंके लिए अन्न सामग्रियां पुष्टि कारक हों।

४१ अपिरिप्ताय कण्वाय हर्म्ये ऊती– (१३४) ज्ञानी होने पर भी दुःखी रहनेवाले मनुष्यको ये अश्विदेव ऊंचे महलमें संरक्षण देते हैं।

४२ येन इमे वेदयः यन्ति एना पथा माकिः गात्– (१५०) जिस मार्गसे ये ज्ञानी जाते हैं, उस मार्गसे दूसरे मूर्खजन नहीं जा सकते।

४३ भूरिदावत्तरः सूरिः अन्यः जनः न– (१६०) इन ज्ञानियोंकी अपेक्षा और अधिक दान देनेवाला तथा विद्वान् और कोई मनुष्य नहीं है।

४४ यः इन्द्रः ओजसा वृष्टिमान् पर्जन्यः इव महान्– (१६१) जो इन्द्र अपने बलके कारण वर्षा

करनेवाले बादलके समान महान् है ।

४५ ऋतस्य साधनं इन्द्रः- (१६३) इन्द्र यज्ञको सिद्ध करनेवाला है ।

४६ अस्य मन्यवे विश्वाः कृष्टयः सं नमन्ते- (१६४) इस इन्द्रके क्रोधित हो जाने पर सभी मनुष्य उसे प्रणाम करते हैं ।

४७ इन्द्रः रोदसी चर्म इव सं अवर्तयत्- (१६५) इन्द्र अपने बलसे द्यु और पृथ्वीको चमडेके समान लपेटता और फैलाता है ।

४८ ऋतस्य पितुः मेधां अहं जग्रभ, सूर्यः इव अजनि- (१७०) यज्ञ तथा सत्यके पालक इन्द्रकी बुद्धि प्राप्त करनेसे मनुष्य सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है ।

४९ मन्मभिः गिरः शुंभामि- (१७१) परमात्माकी स्तुतिसे मैं अपनी वाणीको उत्तम और सुशोभित करता हूँ ।

५० द्यावः अन्तरिक्षाणि भूमयः इन्द्रं न विव्यचन्त- (१७५) द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीलोक इस इन्द्रको घेर नहीं सकते, इतना शक्तिशाली वह इन्द्र है ।

५१ इमाः पृश्नयः आशिरं घृतं दुहत- (१७९) इन्द्रके पास अनेक गायें हैं, जो घी दूध देती हैं ।

५२ ऋतस्य पिप्युषीः- (१७९) गायें यज्ञको बढाती हैं ।

५३ उपाक चक्षसं गोष्ठं अभितत्निषे- (१८५) वह इन्द्र समीपके गोष्ठको गायोंसे भरकर विस्तृत करता है ।

५४ मह्नां अपार ओजसा क्षितीः प्र राजसि- (१८६) वह महान् इन्द्र अपने अनन्त बलसे सब मनुष्यों पर शासन करता है ।

५५ उरुज्रयसं विशः ऊतये उपब्रुवत- (१८७) अधिक बलवान् वीरको प्रजायें अपने संरक्षणके लिए बुलाती हैं ।

५६ गिरीणां उपह्वरे नदीनां संगमे धिया विप्रः अजायत- (१८८) पहाडोंकी गुफामें तथा नदियोंके संगम पर मनुष्य बुद्धिको बढाकर ज्ञानी बनता है ।

५७ विश्वे कण्वासः ते मतिं पौंस्यं वृष्ण्यं वर्धन्ति- (१९१) सभी ज्ञानी जन तेरी बुद्धि, बल और वीर्यको बढाते हैं ।

५८ मतिः इन्द्रं वनन्वती- (१९४) सारी स्तुतियां उसी एक परमात्माको ही प्राप्त होती हैं ।

५९ उग्रबाहुः अनुत्त मन्युं अजरं वावृधुः- (१९५) क्रोध उत्साहसे युक्त और जरारहित वीरका सामर्थ्य बढाते हैं ।

६० वाज सातये त्वां हवन्ते- (१९७) सभी मनुष्य अन्न प्राप्तिके लिए तेरी प्रार्थना करते हैं । परमात्माकी प्रार्थनासे धन तथा अन्नकी प्राप्ति होती है ।

६१ उभे रोदसी अनु- (१९७) दोनों द्यावापृथिवी इन्द्रके अनुकूल होकर ही चलते हैं ।

६२ एकः ओजसा ईशानः- (२०१) वह अकेले ही अपने बलसे सब जगत् पर शासन करता है ।

६३ वः यामाय गिरिः सिन्धवः नि येमिरे- (२११) इन मरुतोंकी प्रगतिसे डरकर पर्वत और नदियां उनके शासनमें रहती हैं ।

६४ सूर्याय यातवे रश्मिं पंथां ओजसा सृजन्ति- (२१६) सूर्यके जानेके लिए किरणरूपी मार्गको ये मरुत अपनी शक्तिसे बना देते हैं ।

६५ ते भानुभिः वितस्थिरे- (२२६) वे तेजसे संसारको व्याप्त कर देते हैं ।

६६ मर्त्यः अदाभ्यस्य सुम्नं भिक्षेत- (२२६) मनुष्य किसीसे भी न दबाये जानेवाले प्रभुसे ही उत्तम सुखकी याचना करे ।

६७ पृश्निमातरः स्वानेभिः उत् ईरते- (२२५) भूमिको माता माननेवाले ये मरुत् अपने ओजस्वी भाषणोंके कारण ही उन्नति करते हैं ।

६८ त्ये महतीः अपः, क्षोणीः सूर्यं सं उ दधुः- (२३०) उन वीर मरुतोंने बहुत सा जल, पृथ्वी और सूर्यको धारण किया ।

६९ मयोभुवा शंभुवा- (२६३) दोनों अश्विदेव सुखदायक तथा शान्तिदायक हैं ।

७० गुहा त्रीणि पदानि परः आविः सन्ति- (२६७) अश्विदेवोंके गुहामें रखे हुए तीन पद परे स्थानोंमें प्रकट हुए हैं ।

७१ पृथु अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं- (२६८) हे अश्विदेवो ! तुम हमें विस्तीर्ण और भेडिये जैसे क्रोधी लोगोंसे रहित घर दो ।

७२ अयं वत्सः मतिभिः न विन्धते- (२७२) यह ज्ञानी भी अपनी बुद्धियोंसे इन अश्विनी देवोंके सामर्थ्यका पार नहीं पा सकता ।

७३ अश्विनोः तत् अवः श्रेष्ठं यत् पृत्सु तुर्वणे सहः- (२८०) अश्विदेवोंका वह संरक्षण श्रेष्ठ है, जो युद्धोंमें शत्रुवध करनेमें पूर्ण क्षमता रखता है ।

७४ मर्त्येभ्यः मतिं वि आवः- (२८३) हे उषे ! मानवोंकी बुद्धिको अन्धकारसे हटाकर प्रकाशयुक्त कर ।

७५ असुरे सुरयः अध्वरस्य यज्ञस्य प्रचेतसा- (५९२) अविद्वानोंमें विद्वान् बनकर कार्य करनेवाले अश्विदेव हिंसारहित यज्ञके अच्छे ज्ञाता हैं।

७६ येन आंभ्रणः नि हंसि तं ईमहे- (१०५) हे इन्द्र ! जिस बलसे तूने शत्रुओंको मारा, उस बलको हम मांगते हैं।

७७ ऋतस्य पंथां यातवे तं ईमहे- (१०७) यज्ञ सत्यके मार्ग पर जानेके लिए सामर्थ्यको हम प्राप्त करते हैं।

७८ पूतं स्तोमं अभिष्टये- (१०८) पवित्र अर्थात् शुद्ध मनसे की गई स्तुतिसेही इच्छित पदार्थकी प्राप्ति हो सकती है।

७९ विश्वाभिः ऊतिभिः ववक्षिथ- (१०९) इन्द्र अपने भक्तका हर तरहसे संरक्षण करता है।

८० देवः सखित्वनाय मामहे- (११०) देव मित्रताके लिए धन देता है।

८१ इन्द्रस्य स्तोमैः वावृधे- (११५) मनुष्य इन्द्रकी स्तुति करके बढता है। परमात्माकी स्तुतिसे मनुष्यकी उन्नति होती है।

८२ मित्रस्य सानिः- (११६) मित्रकी सहायता करनी चाहिए।

८३ अदितिः स्वराजे ऊतये ऋतस्य पुरु प्रशस्तं स्तोम आजनत्- (११८) अखण्डनीय स्तोताने स्वराज्यके उद्देश्यसे अपने संरक्षणके लिए प्रशंसनीय स्तोत्र बनाये।

८४ विश्वा वसूनि दाशुषे वि आनशुः- (१२५) इन्द्रके संपूर्ण धन दान देनेवालेको प्राप्त होते हैं।

८५ महिना महान्तं अर्कैः प्रणोनुमः-(१२७) अपने बलसे बलशाली वीरका हम सत्कार करते हैं। बलके कारण सत्कार होता है।

८६ वज्रिणं द्यावापृथिवी अन्तरिक्षाणि न विविक्ताः- (१२८) इन्द्रके सब जगह व्याप्त होनेसे पृथिवी, द्यु और अन्तरिक्ष अपनेसे उसको पृथक् नहीं कर सकते।

८७ अस्य अमात् ओजसः इत् तितिषे- (१२८) इसके बल तथा ओजसे ही सारा संसार प्रकाशित हो रहा है।

८८ ते विश्वा भुवनानि येमिरे- (११९) देवोंने सब भुवनोंको नियममें रखा हुआ है।

८९ शुक्रं ज्योतिः सूर्यं दिवि अधारयः- (११४) शुद्ध प्रकाशमान् सूर्यको प्रभुने द्युलोकमें स्थापित किया।

९० इन्द्रः वृषस्य दक्षस्य चिदे क्रतुं दुर्मति- (१३८) इन्द्र अपना बल बढानेके लिए यज्ञ या पवित्र कर्म करता है।

९१ सुपारः अपस्युजित् वृधः- (१३९) दुःखोंसे पार करनेवाला और शत्रुओंको जीतनेवाला बड़ा होता है।

९२ सुम्ने नः उन्तमः भव- (१४०) सुखके लिए हमारे पास आओ। परमात्माके समीप होनेसे आनन्द मिलता है।

९३ सुकृत्यने वदक्षिथ- (१४४) जो अच्छे कर्म करता है, उसे धन दो।

९४ वशी कृष्टीनां एकः इत् पतिः- (१४६) वह इन्द्र सबको वशमें करनेवाला तथा मनुष्योंका एक ही राजा है।

९५ सत्पतिः शविष्ठः- (१४९) उत्तम पालन करनेवाला ही बलवान् होता है।

९६ विचेतसः यत्र मनः विदधुः रुद्रस्य तत् इदं यहं धामस्तु चेतति- (१५७) ज्ञानी जिसबलका ध्यान करते हैं, रुद्रका वही बल लोकोंमें प्रसिद्ध हो रहा है।

९७ इमाः प्रतूर्तयः दिवि धर्तुं जुषन्त- (१६२) शत्रुका पराभव करनेवाली प्रजायें द्युलोक अर्थात् तेजयुक्त स्थानको प्राप्त करती हैं।

९८ मे स्तोता गोसखा स्यात्- (१०१) मेरा अर्थात् इन्द्रका स्तोता गायोंका मित्र और उनका हित करनेवाला होता है।

९९ यत् अहं गोपतिः स्यां, अस्मै मनीषिणे दित्सेयम्- (१७२) यदि मैं गायोंका स्वामी बनूं तो इस विद्वान्को धन दूं।

१०० यत् स्तुतः मघं दित्ससि, ते राधसः न देवः वर्ता अस्ति, न मर्त्यः- (१७४) जब प्रशंसित होकर यह इन्द्र किसीको धन देना चाहता है, तब उसके उस दानको न कोई देव रोक सकता है, न कोई मनुष्य।

१०१ यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्- (१७५) यज्ञने इन्द्रको बढाया।

१०२ इन्द्रेण दिवः रोचना दृळ्हानि दृंहितानि च- (१७९) इन्द्रने द्युलोकके प्रकाशमान नक्षत्रोंको दृढ किया।

१०३ ते तत् पूर्वथा अद्य चित् उक्थिनः अनु स्तुवन्ति- (१९१) हे इन्द्र ! तेरे उस बलकी पहलेके समान आज भी स्तोतागण प्रशंसा करते हैं।

१०४ विद्वा रूपाणि आ विशन् अरं इन्द्र हर्यत- (४९८) सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर सामर्थ्यवान् इन्द्रको प्रसन्न करो। सब रूपोंमें प्रसन्न करके सर्वव्यापक इन्द्रको वहां देखकर उसे प्रसन्न करो।

१०५ धनेषु हितेषु तं इत् हवन्ते- (४०२) संग्राम के प्रारंभ हो जानेपर उसी इन्द्रको लोग बुलाते हैं।

१०६ येषां इन्द्रः ते जयन्ति- (४०३) जिनके पक्षमें इन्द्र होता है, वे जीतते हैं।

१०७ तं चर्षणयः कृतेभिः इत् आर्यन्ति- (४०४) उस प्रभुको मनुष्य कर्मोंसे ही प्राप्त कर सकते हैं।

१०८ ते अंकुशः दीर्घः- (४२०) हे इन्द्र! शासन करनेकी तेरी शक्ति बहुत बड़ी है।

१०९ एषां आदित्यानां सचीमनि मर्त्यं अपूर्वं सुम्नं भिक्षेत- (४२६) इन आदित्य देवोंके नियममें रहनेवाला मनुष्य अपूर्व सुखको प्राप्त करता है।

११० एषां आदित्यानां पंथाः अनर्वाणः, अदब्धाः पायवः सुगेवृधः- (४२७) इन आदित्यदेवोंका मार्ग कुटिलता रहित और हिंसारहित होनेके कारण मनुष्योंका पालन करनेवाला तथा सुखको बढानेवाला है।

१११ यो मर्त्यः रक्षस्वेन नः रिरिक्षति, सः जनः स्वैः एवैः रिरिषीष्ट- (४३८) जो कोई मनुष्य राक्षस-भाव धारण करके हमें मारना चाहता है, वह मनुष्य अपने ही कर्मोंसे मारा जाए।

११२ यः असमश उपद्रयुः, दुर्हनावान्, तं दुःशंसं रिपुं मर्त्यं अघं इत् सं अश्नवत्- (४३९) जो मनुष्य हमसे कपटका व्यवहार करता है, हमारी हिंसा करना चाहता है, उस दुष्ट और शत्रु मनुष्यको उसका पाप ही खा जाए।

११३ द्रयुं अद्रयुं च मर्त्यं हृत्सु जानीथ, पाकत्रा स्थन- (४४०) हे देवो! कपटी और कपटरहित मनुष्यको तुम अपने हृदयोंमें जान लो, तथा जो पवित्र मनुष्य हो, उन्हींके पास तुम रहो।

११४ मरुतः नः अनेहः शस्यं त्रिवरूथं छर्दिः यन्त- (४४१) हे मरुतो! तुम हमें हिंसासे रहित प्रशंसनीय तीन मंजिलोंवाला घर दो।

११५ मनवः मृत्युबंधवः स्मसि, नः जीवसे आयुः सु तिरेतन- (४४७) जो कि सभी मनुष्य मृत्युके भाईबंद हैं, तो भी हमारे दीर्घजीवनके लिए हमारी आयुको अच्छी तरह दीर्घ करो।

११६ त्वं यस्य सख्यं आवरः, प्रतिरसे- (४७७) हे अग्ने! तू जिसके साथ मित्रता करता है, वह बढता है।

११७ आय दस्युः- (४७९) यह अग्नि दुष्कर्मियोंको दण्ड देकर उन्हें भय पहुंचानेवाला है।

११८ अबन्धवः वयं इन्द्र त्वा हि येमिम- (५१४) भाइयोंसे रहित हम, हे इन्द्र! तुम्हें ही भाईके रूपसे स्वीकार करते हैं।

११९ इन्द्र, ते ऊती वयं नूत्ना इत् अभूम- (५१७) हे इन्द्र! तेरे संरक्षणमें हम सदा नये ही रहते हैं।

१२० शूर! ते सखित्वं उत ओज्यं ईमहे- (५१८) हे शूरवीर इन्द्र! हम तुमसे मित्रता और भोग्य पदार्थोंको मांगते हैं।

१२१ सनात् अनापिः असि- (५२१) हे इन्द्र! तुम सदासे शत्रु रहित हो।

१२२ रेवन्तं सख्याय नहि विन्दसे- (५२४) यज्ञ न करनेवाले धनवान्‌को तुम मित्र नहीं बनाते।

१२३ सुराश्वः ते पीयन्ति- (५२४) क्योंकि वे शराबसे मस्त होकर तुम्हारी हिंसा करना चाहते हैं।

१२४ त्वावतः सख्ये अमा जुरः मा- (५२५) हे इन्द्र! तुम्हारी मित्रतामें रहकर हम घरमें ही निष्क्रिय बैठकर वृद्ध न हों।

१२५ ते दामान न आ दभे- (५२६) तेरे धनको कोई दबा नहीं सकता।

१२६ दीद्युषः गणश्रियः तपुः जम्भस्य शोचिः उत् अस्थात्- (५५०) जो मनुष्य तेजस्वी दलके अन्दर रहकर शत्रुओंको पीडित करता है, उसका तेज सबसे श्रेष्ठ होता है।

१२७ देव्या कृपा अभिख्या, भासा बृहता उशिक्ष (५५१) मनुष्य अग्निदेवकी कृपासे कीर्ति, तेज और महानतासे युक्त होकर उन्नत होता है।

१२८ ऋतावनि अग्ने कृपा- (५५४) यज्ञ करनेवाले मनुष्य पर अग्निकी कृपा रहती है।

१२९ ऋतावानः नमसः पदे- (५५०) सत्यके मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य प्रतिष्ठाके पद पर अधिष्ठित होता है।

१३० यः अग्नये ददाश तस्य रिपुः मायया चन न ईशीत- (५६१) जो अग्निको प्रेमपूर्वक हवि देता है, उसपर शत्रु मनुष्य मायासे भी अधिकार नहीं जमा सकता।

१३१ यः मर्तः अस्मै आहुतिं अविधत्, स भूरि-पोषं यशः धत्ते- (५६७) जो मनुष्य इस अग्निको

आहुति देता है, वह अनेकोंकी पुष्टि करनेवाला अन्न प्राप्त करता है।

१३२ जातवेदसं यज्ञेषु पूर्व्यं- (५६८) सब प्रकारके ज्ञानसे युक्त मनुष्य पूजनीय मनुष्योंमें सर्व प्रथम या सर्व श्रेष्ठ होता है।

१३३ मघवन् मघत्तये दृळ्हाश्चित् दृह्य- (५८६) हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए दृढसे दृढ शत्रुको भी नष्ट कर !

१३४ राधसे राये द्युम्नाय शवसेच त्वत् अन्यं नहि छिन्दयामि- (५८८) सिद्धि, ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्तिके लिए तुझसे भिन्न और किसीको मैं नहीं पाता।

१३५ एकः इत् विश्वाः कृष्टीः अभि अस्ति-(५९५) अकेला होते हुए भी वह इन्द्र संपूर्ण प्राणियोंपर शासन करता है।

१३६ निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ- (६००) इन्द्र दरिद्रताके दूर करनेके उपायको जानता है।

१३७ या बृहतः दिवः अधि अभि पश्यतः- (६१३) मित्र और वरुण महान् द्युलोकसे चारों ओर निरीक्षण करते हैं।

१३८ सुक्रतू साम्राज्याय नि सेदतुः- (६१४) उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण उत्तम रीतिसे शासन करनेके लिए ही अपने स्थान पर बैठते हैं।

१३९ अक्ष्णः चित् गातु वित्तरा- (६१५) मित्र और वरुण आंखोंवालोंकी अपेक्षा भी अधिक उत्तमतासे सन्मार्गको जाननेवाले हैं।

१४० नरः कस्य चित् अभिमातिं प्रति घ्नन्ति- (६२१) उत्तम नेता देव किसी भी शत्रुके अभिमानको तोड डालते हैं।

१४१ एकः विशांपतिः पुरु उरु विचष्टे- (६२२) मित्र-वरुणमेंसे एक प्रजाओंका पालक देव विस्तृत विश्वका निरीक्षण करता है।

१४२ विश्वे हि मनवे वृधे भुवन्- (६५९) सभी देवगण मनुष्यको बढानेवाले हों।

१४३ यत् वरूथं दूरात् नु चित् अन्तितः न आ दधर्षति, अच्छिद्रं शर्म नः वि यच्छत- (६६४) जिस घरको कोई शत्रु दूरसे और पाससे भी नष्ट नहीं कर सकता, ऐसे छिद्र अर्थात् दोषरहित घरको हमें प्रदान करो।

१४४ हे सम्राजः, वयं आ वृणीमहे, बहुपाय्यं सत् अश्याम- (६७०) हे अत्यन्त तेजस्वी देवो ! हम तुमसे यही वर मांगते हैं, कि हम बहुतोंका पालन करनेवाले उस धनको प्राप्त करें।

१४५ देवासः, वः अर्भकः नहि अस्ति, न कुमारकः, विश्वे सतः महान्तः इत्- (६९३) हे देवो, तुम्हारे मध्यमें न कोई छोटा बच्चा है, न कोई किशोर ही है, अपितु सभी देव ज्ञानी और महान् हैं।

१४६ पित्र्यात् मानवात् पथः पराव्रतः दूरं मा नैष्ट- (६९५) हे देवो, हमारा पालन करनेवाले ज्ञानयुक्त मार्गसे दूसरी तरफ दूर मत ले जाओ।

१४७ यः यजाति यजात इत् सुनवत् च पचाति वेधा इत् इन्द्रस्य प्रसूत- (६९७) जो स्वयं यज्ञ करता है तथा दूसरोंसे करवाता है, वह प्रभुके ज्ञानसे युक्त होता है।

१४८ यः अस्मै पुरोळाशं रसत, तं इन्द्रः अंहसः पातु- (६९८) जो यज्ञकर्ता इस इन्द्रको पुरोडाश देता है, उसे वह इन्द्र पापसे बचाता है।

१४९ सः विश्वा अमित्रिया वन्वन् शूशुवत्- (६९९) वह अपने सभी शत्रुओंको नष्ट करता हुआ हर तरहसे बढता है।

१५० अस्य गृहे प्रजावती असश्चन्ती धेनुमती दिवे दिवे इळा दुहे- (७००) इस यज्ञकर्ताके घरमें बछडोंसे युक्त, स्वैर संचार करनेवाली कामदुघा गाय प्रतिदिन अन्न दुहती है।

१५१ या समनसा दंपती धावतः नित्यया आशिरा- (७०१) जो परस्पर अनुकूल मनवाले दंपती घरमें सर्वत्र पवित्रता रखते हैं, वे प्रतिदिन गोदुग्धसे युक्त होते हैं।

१५२ ता सयंचा बर्हिः आशाते, वाजेषु न वायतः (७०२) वे दोनों पति-पत्नी समान मनवाले होकर यज्ञमें बैठते हैं, और वे दोनों कभी भी पोषक अन्नसे वियुक्त नहीं होते।

१५३ देवानां न अपि ह्नुतः, सुमतिं न जुगुक्षतः, बृहत् श्रवः विवासतः- (७०३) ऐसे उत्तम पति पत्नी देवोंका अपमान नहीं करते, अपनी उत्तम बुद्धिको नष्ट नहीं होने देते और महान् यशको प्राप्त करते हैं।

१५४ ता उभा हिरण्यपेशसा पुत्रिणा कुमारिणा विश्वं आयुः व्यश्नुतः- (७०४) वे दोनों दंपती सोनेके अलंकारोंसे युक्त होकर पुत्र और पुत्रियोंके साथ आनन्द करते हुए संपूर्ण दीर्घ आयुका भोग करते हैं।

१५५ यजमानः सुन्वानः, देववो ! न रिष्यसि- (७१२) हे यज्ञ करनेवाले, सोम निचोडनेवाले, तथा देवोंकी स्तुति करनेवाले मनुष्य ! तू कभी भी दुःखी नहीं होगा।

१५६ यः यजमानः मनः देवानां इयक्षति अयज्वनः अभिभुवत्- (७१२) जो यज्ञ करनेवाला मनुष्य मनःपूर्वक देवोंकी स्तुति करता है, वह यज्ञ न करनेवालोंको पराजित करता है।

१५७ यः यजमानः मनः इत् देवानां इयक्षति तं कर्मणा नकिः मदात्, न प्र योषत् (७१३) जो यज्ञ कर्ता मनसे देवोंकी स्तुति करता है, उसे अपने कर्मसे कोई नष्ट नहीं कर सकता, उसे ऐश्वर्यसे कोई भ्रष्ट नहीं कर सकता।

१५८ सुन्वतः सखा- (७२७) यह इन्द्र यज्ञ करनेवालोंका मित्र है।

१५९ इन्द्रः चित् तत् अब्रवीत् स्त्रियाः मनः अशास्यं- (७६१) इन्द्रने भी यही बात कही थी कि स्त्रीके मन पर शासन करना असंभव है।

१६० अधः पश्यस्व, मा उपरि, पादकौ संतरां हर, ते कशप्लकौ मा दृशन्- (७६२) हे स्त्री ! तू सदा नम्र बनकर रह, ऊपर मत देख, उद्धत मत बन, कदमोंको पास पास रखते हुए चल, तेरे शरीरकी पिंडलियां-घुटनेके नीचेके भाग न दिखाई दें।

१६१ त्वं क्षत्राय अवसि, त्वं न आविथ- (८१८) हे शक्तियोंके स्वामिन् इन्द्र ! तू संकटसे बचानेके लिए जगत्की रक्षा करता है, पर तू स्वयं किसीसे रक्षित नहीं होता।

१६२ तनूषु प्सवो नि- (८३१) शरीरमें रहनेवाले इन रोगजन्तुरूप शत्रुओंका नाश हो जाए।

१६३ रराव्णां अरातीः नि- (८३१) दानशीलोंके बीचमें रहनेवाले अदानी नष्ट हो जाएं।

१६४ अग्निः सहीयसा कर्मणा निवेत्त- (८३४) यह अग्रणी अपने पराक्रम युक्त कर्मोंके द्वाराही पहचाना जाता है।

१६५ सुप्रा पुरुक्रत्वा पुष्यसि, देवेषु यज्ञियः- (८३६) जो प्रसन्नतासे उत्तम कार्योंको करता है, वह देवोंमें पूज्य होता है।

१६६ विप्रः परिष्कृतः दूतः यक्षत्- (८३८) ज्ञानी शुद्ध और पवित्र दूत पूज्य होता है।

१६७ इन्द्रः ओजसा ईशानः- (८४७) इन्द्र अपने तेज और ओजकी सहायतासे सब पर शासन करता है।

१६८ इर्यः सः गोपाः इव- (८५५) सबका स्वामी वह वरुण गोपालके समान सबका रक्षक है।

१६९ कविः सः काव्या पुरुरूपं द्यौः इव पुष्यति- (८५६) ज्ञानीवह वरुण अपने ज्ञानसे अपने अनेक रूपोंको द्युलोकके समान पुष्ट करता है।

१७० यस्मिन् विश्वानि काव्या श्रिता- (८५७) इस वरुणमें सभी ज्ञान आश्रित हैं।

१७१ युधः गये विश्वे देवाः वरुणस्य व्रतं अनु- (८५८) युद्धमें सभी देव वरुणके कर्मका अनुसरण करते हैं।

१७२ वरुणस्य सदः ध्रुवं- (८६०) वरुणका स्थान अचल है।

१७३ सः सप्तानां इरज्यति- (८६०) वह वरुण ... देवोंपर शासन करता है।

१७४ विप्रः विप्रेण, सन् सता, सखा सख्या- (८८०) ज्ञानी ज्ञानीसे, सज्जन सज्जनसे और स्नेही अपने स्नेहीसे मिलकर प्रसन्न होता है।

१७५ पुरुप्रः विश्वाः विशः अनु सचक्षे प्रभु- (८८९) जो विभिन्न प्रदेशोंमें रहनेवाली प्रजाओंको समान दृष्टिसे देखता है, वही प्रभु होता है।

१७६ धर्मणां अध्यक्षः विशां राजा- (८९२) धर्मका अध्यक्ष ही प्रजाओंका राजा होने योग्य है।

१७७ सु- आप्यः नृचक्षसः दुर्गहा तरन्तः- (८९७) उत्तम कर्म करनेवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले मनुष्य दुःखसे पार करने योग्य संकटोंको भी पार कर जाते हैं।

१७८ यः मर्तः इमं अग्निं सपर्यति, तस्मै इत् वसु दीदयत्- (९१५) जो मनुष्य इसी इस अग्निकी सेवा करता है, उसीको यह धन प्रदान करता है।

१७९ कं ते सुमतौ स्याम- (९२४) सुखकी कामना करनेवाले हम अग्निके उत्तम बुद्धिके अनुकूल चलें।

१८० धूर्तयः न धूर्वन्ति- (९३९) उस इन्द्रको शत्रुके लोग हिंसा नहीं कर सकते।

१८१ युधि नकिः वृण्वते- (९५१) उस इन्द्रको युद्धमें कोई हरा नहीं सकता।

१८२ जनानां तरणिं श्रवः प्रशंसियम्- (९५८)

जनोंको दुःखोंसे तारनेवाले, शत्रुको मारनेवाले वीरकी प्रशंसा करता हूँ।

१८३ सख्युः पुत्रस्य, शुल्कं मा आ विदे- ([illegible]) अपने मित्र और पुत्रके धनको मैं नहीं मांगता हूँ।

१८४ वयः यथा पक्षा उर्वि शर्म अस्मे यच्छत (१००७) पक्षी जिस तरह अपने बच्चोंपर पंखोंकी छाया करते हैं, वैसी सुरक्षा हमें दो।

१८५ नः अधिवोचत, नः निद्रा मा ईशत, उत मा अपिवः- (१०१७) हे देवो! हमें उत्तम उपदेश दो। हम पर आलस्य अधिकार न करे, और व्यर्थ का बकवास भी हमपर अधिकार न करे।

१८६ दाशुषे कदाचन न स्तरीः असि- (१०६५) हे इन्द्र! तू दानदाताका कभी नाश नहीं करता।

१८७ कदाचन प्रयुच्छसि- (१०७५) हे इन्द्र! तू कभी भी प्रमाद नहीं करता।

१८८ इन्द्रस्य भूरि इत् वीर्यं अभि वयक्षं आयति- (१०९५) इन्द्रका महान् पराक्रमही चारों ओर प्रकाशित हो रहा है।

१८९ अ-नूनस्य अवः महि- (१०९९) उस पूर्ण पुरुषका यश महान् है।

१९० दुर्गाणि पथः अति व्रजन् चक्षुषा चन संनशे- (१०९९) बुरे मार्गोंको पार करके उत्तम मार्ग पर चलनेवाला मनुष्य इन्द्रको आंखसे भी देख सकता है।

१९१ एकः एव अग्निः बहुधा समिद्धः- (१११०) एकही अग्नि अनेक तरहसे प्रदीप्त होता है।

१९२ एकं वा इदं सर्वं वि बभूव- (१११०) एकही परब्रह्म इस सब विश्वके रूपमें प्रकट होता है।

१९३ मम शर्मन् सूरयः शत्रुषाहः सु अग्नयः सन्तु- (११२३) मेरे घरमें सदा विद्वान् और शत्रुओंको परास्त करनेवाली उत्तम अग्नियां निवास करती रहें। मेरे घरमें सदा विद्वान् निवास करें और नित्य प्रति यज्ञ होता रहे।

१९४ यः दुर्मन्मा अस्मध्रुक् चेनति, दह- (११२५) जो दुष्ट बुद्धिवाला पुरुष हमसे द्रोह एवं हमारे पराभवकी कामना करता है, हे अग्ने! उसे तू जला डाल।

१९५ रिपवे मर्ताय, रक्षस्विने, अघशंसाय नः मा रीरिधः- (११२६) हे अग्ने! शत्रुओं, राक्षसों और पापियोंको प्रसन्न करनेके लिए हमें पीडित मत कर।

१९६ रक्षः यातु मावतां यातुः नः मा आवेशीत्- (११३८) राक्षसों और पीडा देनेवालोंकी पीडायें हममें प्रवेश न करें।

१९७ इन्द्र! यथा वशः कामः तथा [illegible] (११४२) हे इन्द्र! तू जैसी [illegible] कामनाको अपने पुरुषार्थसे सिद्ध कर लेता है।

१९८ अविप्रः विप्रः वा [illegible] अविधत् सः प्र ममन्दत्- (११४७) अज्ञानी या ज्ञानी जो कोई भी इन्द्रकी स्तुति करता है, वह आनन्दित होता है।

१९९ यतः भयामहे, ततः नः अभयं कृधि- (११५१) हे इन्द्र! जहां जहांसे हमें भय हो, वहां वहांसे हमें अभय कर।

२०० अ-सुन्वतः महान् वधः- (११६८) सोमयज्ञ न करनेवालेका महान् नाश होता है।

२०१ सुशिप्रं दुध्रः स्थिरः सुरः न वरन्ते- (१२०६) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्रको असुर, देव और मनुष्य कोई भी युद्धमें नहीं हटा सकता।

२०२ वारणः उरामथिः वृकः चित् अस्य वयुनेषु आ भूषति- (१२१२) शत्रुका निवारक और पशुओंका विनाशक चोर भी इसके मार्गोंके अनुकूल होकर चलता है।

२०३ कत् नु पौंस्यं अस्ति, (यत्) अस्य इन्द्रस्य अकृतम्, केन श्रोमतेन कं न शुश्रुवे, वृत्रहा जनुषा परि- (१२१३) ऐसा कौनसा पराक्रम है, जो इस इन्द्रके द्वारा नहीं किया गया; किस कानवालेने इसके पराक्रमको नहीं सुना? क्योंकि वृत्रका हन्ता इन्द्र तो जन्मसे ही अपने पराक्रमके लिए प्रसिद्ध है।

२०४ वयं विप्राः त्वे इत् स्मसि, त्वत् अन्यः कश्चन मर्डिता नहि- (१२१७) हे इन्द्र! हम ज्ञानी पुरुष तेरे अधीन ही रहें, क्योंकि तुझसे भिन्न और कोई सुखी करनेवाला नहीं है।

२०५ आदित्याः! त्रिवरुथता कृत्रिमा शरुः द्विषः नः जरसः पुरा मा वधीत्- (१२२९) हे आदित्यो! यमके कृत्रिम और हिंसक शस्त्र हमें बुढापेसे पहले न मारें।

२०६ अंहतिं संहितं वि- (१२४०) हे आदित्यो! पापियोंके संगठनको नष्ट करो।

२०७ यः पौरुषेयः मन्युः न ईशे- (१२५४) इस अग्निके भक्तोंपर किसी दुष्ट मनुष्यका क्रोध शासन नहीं कर सकता।

२०८ यं दाश्वांस आयसे, तं मर्तं अरातयः रायः

न युष्मन्त- (१२९६) जिस दानीकी यह अग्नि रक्षा करता है, उसे कोई भी अदानशील व्यक्ति ऐश्वर्यसे पृथक् नहीं कर सकता।

२०९ मर्त्येषु अमृतः- (१३०३) यह अग्नि मरणशील मनुष्योंके बीचमें रहता हुआ भी अमर है।

२१० धीषु अर्वति अग्निः प्रथमं - (१३०४) सभी तरहके बुद्धियुक्त कार्योंमें इस अग्निकी पूजा प्रथम करनी चाहिए।

२११ होता अस्य सख्यं जुषाणः- (१३०९) होम करनेवाला ही उस अग्निकी मित्रता प्राप्त कर सकता है।

२१२ यज्ञस्य मही रप्सुदा- (१३१८) जहां गायें पुष्ट होती हैं, उस यज्ञमय देशकी भूमि बडी उपजाऊ होती है।

२१३ अक्षमाणं इन्द्रं उभे रोदसी अकृपेताम्- (१३८५) शत्रुको मारनेवाले इन्द्रको दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक सामर्थ्यवान् करते हैं।

२१४ ते धनुः तु विक्षं सुकृतं सुमयं- (१३९७) हे इन्द्र! तेरा धनुष बहुत बाण फेंकनेवाला अच्छी तरह बनाया हुआ और अत्यन्त सुखकारी है।

२१५ ते उभा बाहू रथ्या सुसंस्कृत ऋतू रूपे अपधूनुषा- (१३९७) हे इन्द्र! तेरी दोनों भुजायें सुखकारी, उत्तम, शत्रुके नाशक तथा यज्ञको बढानेवाली हैं।

२१६ यत् नग्नं अभि ऊर्णोति, यत् तुरं विश्वं भिषक्ति, अन्धः प्र अख्यत्, श्रोणः नि भूत्- (१४०९) सोम देवता जो वस्त्ररहित है, उसे वस्त्रसे चारों ओरसे आच्छादित कर देता है, जो रोगी है उसके सब रोगोंकी चिकित्सा करता है, जो अन्धा है उसे दृष्टि देकर देखने योग्य बनाता है और जो पंगु है वह सोमदेवकी कृपासे चलने योग्य हो जाता है।

२१७ सदे सधस्थे देवानां दुर्मतीः अव- (१४१६) हे सोम! हमारे घरों पर देवोंकी अवकृपा न हो।

२१८ यः क्षेमेभिः साधुभिः क्षेति, सुवीरैः एधते- (१४६२) जो मनुष्य कल्याणकारी तथा सज्जन पुरुषोंके सहित अपने घरमें निवास करता है, वह उत्तम पुत्रपौत्रादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है।

२१९ ऋत्वा शवसा योद्धा असि, दंसना मज्मना विश्वा जाता अभि- (१४८६) हे इन्द्र! तू अपने कर्म और बलके कारण योद्धा कहाता है और अपने कर्मसे और बलसे संपूर्ण प्राणियों पर शासन करता है।

२२० यत् जातं यत् च जन्त्वं तत् विश्वं अभिभूः असि- (१४९४) जो बना और जो बननेवाला है, उस सब पर तेरा अधिकार चलता है।

२२१ ब्रह्म तन्द्रयुः मा सु भव- (१५१८) ज्ञानी होकर आलसी न बन।

२२२ विश्वा भुवनानि द्यावापृथिवी च त्वत् भीया रेजन्ते- (१६३१) हे इन्द्र! सारे भुवन और द्यौ पृथिवी दोनों लोक तेरे भयसे कांपते हैं।

२२३ हे शतक्रतो! त्वं हि नः पिता माता बभूविथ, अध ते सुम्नं ईमहे- (१६७३) हे सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र! तू ही हमारा माता पिता है, इसलिए हम तुझसे सुख मांगते हैं।

२२४ रुद्राणां माता, वसूनां दुहिता, (आदित्यानां स्वसा) अमृतस्य नाभिः- (१६७९) यह गाय रुद्रदेवोंकी माता, वसुदेवोंकी पुत्री, आदित्य देवोंकी बहिन और अमृतका केन्द्र स्थान है।

२२५ चिकितुषे जनाय प्रवोचं, अनागां अदितिं गां मा वधिष्ट- (१६७९) मैं ज्ञानी मनुष्यसे यही कहता हूँ कि निरपराध और न मारने योग्य गायको मत मार।

२२६ वाचं उदीरयन्तीं गां दभ्रचेताः मर्त्यः आ अवृक्त- (१६८०) स्नेह पूर्ण वाणीको व्यक्त करती हुई गायको अल्पज्ञानी मनुष्य त्याग देता है।

२२७ क्रत्वा यशस्वतः- (१६८८) मनुष्य अपने कर्म और परिश्रमसे यशस्वी होता है।

२२८ अयं अग्निः देवेषु विश्वाः श्रियः आविवेश- (१६८९) यह अग्नि देवोंमें सबसे ज्यादा सम्पत्तिशाली है।

२२९ उपदृक् सूर्य इव भद्रा- (१६९५) इस अग्निका प्रकाश भी सूर्यके समान प्राणियोंके लिए कल्याणकारी है।

२३० अग्निं इन्धानः मनसा धियं सचेत- (१७०२) अग्निको समिधाओंसे प्रज्वलित करनेवाला पुरुष श्रद्धायुक्त मनसे कर्म करे।

॥ इति अष्टमं मंडलम् ॥

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

अष्टम मण्डल

इस अष्टम मंडलमें कुल १०३ सूक्त हैं। इन सूक्तों १७१६ मंत्र हैं। इस मंडलके ऋषि सूक्त, मंत्र और देवताओंकी संख्या इस प्रकार है-

ऋषिवार सूक्त संख्या

मनुर्वैवस्वतः	५
सोभरिः काण्वः	५
विश्वमना वैयश्वः	४
श्यावाश्वः आत्रेयः	४
नाभाकः काण्वः	४
प्रगाथो (घौरः) काण्वः	३
इरिम्बिठिः काण्वः	३
विरूप आंगिरसः	३
मेध्यः काण्वः	३
प्रगाथः काण्वः	३
कुरुसुतिः काण्वः	३
कुसीदी काण्वः	३
कृष्ण आंगिरसः	३
मेधातिथिः काण्वः	२
मेध्यातिथिः काण्वः	२
वत्सः काण्वः	२
गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ	२
भर्गः प्रागाथः	२
प्रियमेध आंगिरसः	२
नृमेध पुरुमेधावांगिरसौ	२
नृमेध आंगिरसः	२
प्रगाथो घौरः काण्वः, मेधातिथि मेध्यातिथी काण्वौ, प्लायोगिरासंगः, आंगिरसीशश्वती ऋषिका	१
देवातिथिः काण्वः	१
ब्रह्मातिथिः काण्वः	१
पुनर्वत्सः काण्वः	१
सध्वंसः काण्वः	१
शशकर्णः काण्वः	१
पर्वतः काण्वः	१
नारदः काण्वः	१
नीपातिथिः काण्वः	१
त्रिशोकः काण्वः	१
वशोऽश्व्यः	१
त्रित आप्त्यः	१
प्रस्कण्वः काण्वः	१
पुष्टिगुः काण्वः	१
श्रुष्टिगुः काण्वः	१
आयुः काण्वः	१
मातरिश्वा काण्वः	१
कृशः काण्वः	१
पृषध्रः काण्वः	१
सुपर्णः काण्वः	१
कलिः प्रागाथः	१
मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः, बहवो वा मत्स्याः जालनद्धाः	१

पुरुहन्मा आंगिरसः	१
सुदीतिपुरुमीळ्हावांगिरसौ	१
हर्यतः प्रागाथः	१
गोपवनः आत्रेय, सप्तवध्रिर्वा	१
गोपवन आत्रेयः	१
कृत्नुर्भार्गवः	१
एक द्यूर्नौधसः	१
उशना काव्यः	१
नोधा गौतमः	१
आत्रेयी अपाला	१
श्रुत कक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः	१
सुकक्षः आंगिरसः	१
बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः	१
तिरश्चीरांगिसः	१
तिरश्चीरांगिरसो, द्युतानो वा मारुतः	१
रेभः काश्यपः	१
नेमो भार्गवः इन्द्रः च	१
जमदग्निर्भार्गवः	१
भार्गवः प्रयोगः, अग्निर्बार्हस्पत्यः पावको वा, सहसः पुत्रौ, गृहपति यविष्ठौ तयोर्वान्यतरः	१
	१०१

ऋषिवार मंत्र संख्या

सोभरिः काण्वः	१११
विश्वमना वैयश्वः	१०९
विरूप आंगिरसः	७९
मेधातिथिः काण्वः	७३
मनुर्वैवस्वतः	५९
वत्सः काण्वः	५८
इरिम्बिठिः काण्वः	४९
श्यावाश्वः आत्रेयः	४८
मेध्यातिथिः काण्वः	४३
त्रिशोकः काण्वः	४२
ब्रह्मातिथिः काण्वः	३९
भर्गः प्रागाथः	३८
नाभाकः काण्वः	३८
प्रियमेध आंगिरसः	३७
प्रगाथः काण्वः	३६
पुनर्वत्सः काण्वः	३६
प्रगाथो (घौरः) काण्वः	३५
सुकक्षः आंगिरसः	३४
पर्वतः काण्वः	३१
नारदः काण्वः	३१
वशोऽश्व्यः	३१
गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा	३१
कुरुसुतिः काण्वः	३१
श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आंगिरसः	३१
गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ	२८
मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ	२७
कुसीदी काण्वः	२७
सध्वंसः काण्वः	२३
भार्गवः प्रयोगः, अग्निर्बार्हस्पत्यः, पावको वा सहसः पुत्रौ गृहपति-यविष्ठौ, तयोर्वान्यतरः	२२
शशकर्णः काण्वः	२१
मत्स्यः साम्मदः, मैत्रावरुणिर्मान्यः बहवो वा मत्स्याः जालनद्धाः	२१
तिरश्चीरांगिरसः द्युतानो वा मारुतः	२१
देवातिथिः काण्वः	२१
कृष्ण आंगिरसः	२०
नृमेध आंगिरसः	२०
हर्यतः प्रागाथः	१८
त्रित आप्त्यः	१८
जमदग्निर्भार्गवः	१६
नीपातिथिः काण्वः	१५
मेध्यः काण्वः	१५
कलि प्रागाथः	१५
पुरुहन्मा आंगिरसः	१५
सुदीतिपुरुमीळ्हावांगिरसौ तयोर्वान्यतरः	१५
रेभः काश्यपः	१५
नृमेधपुरुमेधावांगिरसौ	१३
बिन्दुः पूतदक्षो वा आंगिरसः	१२
प्रस्कण्वः काण्वः	१०
पुष्टि गुः काण्वः	१०
श्रुष्टिगुः काण्वः	१०
आयुः काण्वः	१०
एकद्यूर्नौधसः	१०
नेमो भार्गवः	१०

कृत्नुर्भार्गवः	९
उशना काव्यः	९
तिरश्चीराङ्गिरसः	९
मातरिश्वा काण्वः	८
सुपर्णः काण्वः	७
आत्रेयी अपाला	७
नोधा गौतमः	६
कृशः काण्वः	५
पृषध्रः काण्वः	५
प्लायोगिरासङ्गः	४
सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः	३
इन्द्रः	२
आङ्गिरसी शाश्वती ऋषिका	१
	१७१६

देवतावार मंत्र संख्या

इन्द्रः	८६७
अग्निः	२७१
अश्विनौ	१९८
मरुतः	७४
विश्वेदेवाः	५८
आदित्याः	५१
सोमः	२४
इन्द्राग्नी	१२
मित्रावरुणौ	११
वरुणः	१४
वायुः	१३
[illegible]	९
इन्द्रावरुणौ	७
अदितिः	६
ऋक्षाश्वमेधौ	६
आदित्योषसः	५
आर्जव	५
दम्पती	५
कौरयाणः पाकस्थामा	४
पूषा	४
मित्रावरुणौ	४
यज्ञः यजमानश्च	४
कानीतः पृथुश्रवाः	३
कुहंगः	३
तिरिन्दरः पार्शव्यः	३
वरुः सौषाम्णिः	३
आर्क्षः श्रुतर्वा	३
विभिन्दुः	२
त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः	२
चित्रः	२
सूर्यः	२
गौः	२
देवाः	२
इन्द्रामरुतः	२
वाक्	२
वास्तोष्पतिः	१
अग्निसूर्यानिलाः	१
अग्नीन्द्रौ	१
मित्रावरुणादित्याः	१
सुपर्णः	१
वज्रः	१
अग्निसूर्यौ	१
उषाः	१
ऋत्विजः	१
इन्द्रऋभवः	१
पवमानः	१
अग्नामरुतः	१

इस अष्टम मण्डलमें भी अनेकों अनुकरणीय बातोंका उपदेश है। इस मंडलमें कण्व गोत्रीय ऋषियोंके मंत्रोंकी संख्या अधिक है। इनके अलावा इतर भी ऋषि हैं, कण्व-गोत्रोत्पन्न ऋषि २९ हैं और उनके मंत्रोंकी संख्या ९८७ है। अष्टममण्डलके मंत्रोंमें इन्द्र देवताका जो गुणवर्णन आया है, उसकी समालोचना हम यहां करते हैं।

इन्द्रका सामर्थ्य

इन्द्र विशेष सामर्थ्यवान् है, ऐसा वर्णन इन्द्रके सूक्तोंमें सर्वत्र दिखाई देता है, देखिये—

१ तुरयः— (७४) बलवान्, सामर्थ्यवान्.

२ मंहिष्ठः— (८८) महान्, श्रेष्ठ.

३ शक्रः— (१०५) शक्तिमान्

४ एकः देवत्रा महान् असि— (११६) इस [illegible] दी है कि जो अपने कर्मोंसे महान है।

५ व्रतैः उग्रः– (११) अपने व्रतोंसे जो शूरवीर तथा भयंकर है।

६ शचीवः– (१४१) शक्तिमान.

७ महाभिः शचीभिः महान्– (१४७) महती शक्तियोंसे महान है।

८ शचीवान् सखा– (२५४) शक्तिमान मित्र।

९ पूर्वथा अद्य आयवः अस्य महिमानं अनुष्टुवन्ति– (१६१) पूर्वके समान आज भी सब मनुष्य इसीकी महिमा गाते हैं।

१० उभयावी– (८८) दोनों प्रकारके आत्मिक और भौतिक सामर्थ्य इस इन्द्रके पास रहते हैं

११ अजुर– (८८) जरा रहित, वृद्धावस्था रहित।

१२ जनानां वेपः अर्यः– (९०) शत्रुके लोगोंको कंपानेवाला श्रेष्ठ वीर।

१३ वीरः शक्रः नर्यः इन्द्रः– (१३८) वीर, सामर्थ्यवान्, सब लोगोंका हित करनेवाला इन्द्र है।

१४ वीरः शूरः मद्यः– (१४०) वह इन्द्र शूरवीर व आनंदित है।

१५ शतं ऊतीः नियमते– (१४१) सैंकडों संरक्षणके साधनोंका वह नियमन करता है अर्थात् वह संरक्षणके सैंकडों साधन योग्य रीतिसे उपयोगमें लाता है।

१६ ते सुमतौ वयं वाजिनः भूयास्म– (१५७) तेरी उत्तम मतिमें रहकर हम बडे बलवान् बनेंगे।

१७ वृष्ण्यं शवः वावृधे– (१५१) इन्द्रका सामर्थ्य युक्त बल बढता है।

१८ अस्य महिमा शवः विप्रराज्ये यज्ञेषु गृणे– (१५९) इस इन्द्रकी महिमा और सामर्थ्य ब्राह्मणोंके यज्ञके राज्यमें प्रशंसित होता है।

१९ शवसानात् शतं ऊतेः यशस्तरं न विद्म– (१३०) इस बलवान और सैंकडों संरक्षणके साधनोंको अपने पास रखनेवाले इन्द्रसे अधिक दूसरा कोई यशस्वी है, ऐसा हम नहीं जानते।

२० विश्वाः चर्षणयः यस्मिन्, उत ज्यांसि च्योत्न्या– (१४८) सब प्रजाजन जिस इन्द्रमें शत्रुको पराजित करनेके बल हैं ऐसा जानते हैं।

२१ मघोनां वाजदाया इन्द्रः एतानि विश्वा चकार– (१५९) धनिकोंको बल देनेवाला इन्द्र इन सब विश्वके पदार्थोंको बनाता है।

२२ इन्द्रः मह्ना रोदसी पप्रथयत्– (१६१) इन्द्रने अपनी महिमासे द्यावा पृथिवीको ऐसा विस्तीर्ण बनाया है।

२३ इन्द्रे विश्वा भूतानि येमिरे– (१६१) इन्द्रके सामर्थ्यनेही सब भूतोंका नियमन किया है।

२४ इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्– (१६१) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया है।

२५ अस्य सूनृतानां शचीनां न कि नियन्ता– (१५७) इस इन्द्रके सच्चे सामर्थ्योंका नियमन करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। वही अपने सामर्थ्योंका योग्य रीतिसे उपयोग करता है।

२६ शविष्ठः इन्द्रः– (२२२) इन्द्र बलवान् है।

२७ महामहः– (२२४) वह इन्द्र महा सामर्थ्यवान् है।

२८ इन्द्रः ओजसा महान्– (२४१) इन्द्र अपने सामर्थ्यसे महान् है।

२९ अस्य मन्यवे विश्वाः कृष्टयः विशः सं नमन्ते– (२४६) इस इन्द्रके क्रोधके सामने सब प्रजाजन नम्र होते हैं।

३० अस्य ओजः तित्विषे– (२४७) इन्द्रके सामर्थ्यका तेज चारों ओर फैला है।

३१ महान् अपारः ओजसा क्षितीः प्रराजसि– (२५८) इन्द्र अपने अपार सामर्थ्यसे सब मानवोंपर राज्यशासन करता है।

३२ हे इन्द्र! उग्र ज्यायसे त्वां ऊतये विशः आहुवत– (२६९) हे इन्द्र! विशेष सामर्थ्यके कारण तुझे अपने संरक्षणके लिये सब प्रजाजन सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

३३ महिना महान्– (३१०) तू अपनी महिमाके कारण महान हुआ है।

३४ वज्रिणं द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षाणि न विविक्ते– (३११) वज्रधारी इन्द्रको पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक अपनेमेंसे पृथक् कर नहीं सकते।

३५ अस्य अमात् ओजसः इत् तिविषे– (३१२) इस इन्द्रके सामर्थ्यसे और प्रभावसे सब प्रकाशित हो रहा है।

३६ यः नमोवृधैः अवस्युभिः वची कृष्टीनां एकः इत् पतिः उच्यते– (३२९) स्तुति करनेवाले और अपना संरक्षण हो ऐसी इच्छा करनेवाले उपासक, सबको अपने वशमें रखनेवाले इन्द्रको सब प्रजाजनोंका एकही स्वामी है ऐसा वर्णन करते हैं।

३७ ते रथः वृषा, ते हरी वृषणा, त्वं वृषा, द्यवः

वृषा– (३५१) हे इन्द्र ! तेरा रथ बलवान है, तेरे घोडे बलवान हैं, तू बलवान हो और तेरी प्रार्थना भी बल देनेवाली है ।

३८ नः महे क्षयाय जैत्राय, विश्वारूपाणि आविशन्, अरं शचीपतिं इन्द्रं हर्षय– (३८१) हमारे महान घरके लिये, विजयके लिये, अनेक रूपोंमें प्रवेश करनेवाले महा शक्तिमान इन्द्रको प्रसन्न करो ।

३९ चर्षणीनां सम्राजं गीर्भिः स्तव्यं नरं नृषाहं मंहिष्ठं इन्द्रं प्रस्तात– (३८२) प्रजाजनोंका सम्राट, वाणीसे स्तुति करने योग्य, नेता, शत्रुओंका पराभव करनेवाले महान इन्द्रकी स्तुति करो ।

४० ज्येष्ठराजं भरे महः कृतस्नुं, वाजिनं, तं सनिभ्यः सुवृक्त्या आविवासे– (३८४) सबका श्रेष्ठ राजा युद्धोंमें बडा पराक्रम करनेवाला, बलवान, दान देनेके लिये प्रसिद्ध उस इन्द्रकी उत्तम स्तुतिसे सेवा करते हैं ।

४१ यस्य मदाः अनूनाः गभीराः उरवः तरुत्राः शूरसातौ हर्षमन्तः– (३८५) जिस इन्द्रके आनन्द कम न होनेवाले, गंभीर, विशाल, सत्वर संरक्षण करनेवाले और युद्धोंमें प्रसन्न करनेवाले होते हैं ।

४२ धनेषु हितेषु तं इत् अधिवाकाय हवन्ते, येषां इन्द्रः ते जयन्ति– (३८६) युद्धोंके प्रारंभ होने पर उसी इन्द्रको अपने पक्षमें लानेके लिये– सहायता करनेके लिये बुलाते हैं । जिनके पक्षमें इन्द्र होता है वे ही जीतते हैं ।

४३ इन्द्रः ब्रह्मा, ऋषिः पुरुहूतः महीभिः शचीभिः महान्– (३८८) इन्द्र ब्रह्मा है, ज्ञानी है, उसको बहुत लोक अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं, वह महती शक्तियोंसे महान् है ।

४४ तुविकूर्मिः एकः सत्वा चित् सन् अभिभूतिः– (३८९) सत्वर कार्य करनेवाला अद्वितीय बलवान् होनेके कारण शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र है ।

४५ समत्सु ज्योतिः कर्तारं, युधा अभिभ्रान् सासंहासं– (३९१) युद्धोंमें अपना तेज प्रकट करनेवाला, तथा युद्धसे शत्रुओंको पराजित करनेवाला इन्द्र है ।

४६ स पुरुहूत इन्द्र विश्वाः द्विषः अतिपारयाति– (३९२) वह बहुतों द्वारा सहाय्यार्थ बुलाया गया इन्द्र अपने सब शत्रुओंको परास्त करता है ।

४७ तुविग्रीवः वपोदरः सुबाहुः इन्द्रः वृत्राणि जिघ्नते– (४०१) वह पुष्ट गर्दनवाला, बलवान् बडे पेटवाला, उत्तम मजबूत बाहुवाला इन्द्र शत्रुओंको मारता है ।

×

४८ हे इन्द्र ! त्वं ओजसा पुरः प्रेहि, वृत्राणि जहि– (४०२) हे इन्द्र ! तू अपने सामर्थ्यसे आगे बढ और शत्रुओंका नाश कर ।

४९ शाचिगो शाचिपूजन आखण्डल रणाय मंहयसे– (४०५) हे शक्तिशाली इन्द्रियवाले, सामर्थ्यके कारण पूजनीय इन्द्र ! युद्धके लिये ही तुम्हें बुलाया जाता है ।

५० शश्वतीनां पुरां भेत्ता, मुनीनां सखा– (४०७) शत्रुके नगरीयोंको तोडनेवाला, मुनिजनोंका मित्र इन्द्र है ।

५१ हे महेमते सहस्र ऊते शतामघ नः आयाहि– (४३१) हे महाबुद्धिमान्, सहस्रों प्रकारके रक्षण करनेके साधनोंको साथ रखनेवाले, सैकडों प्रकारके धनवाले इन्द्र ! तू हमारे पास आओ ।

५२ संभृताश्वः– (४३६) उत्तम प्रकारसे घोडोंको हृष्टपुष्ट करनेवाले इन्द्र !

५३ सहस्रबाहे अत्र पौंस्यं अदीदिष्ट– (४६८) सहस्रों बाहुवाले शत्रुको इन्द्रने मारा, उसमें उसका पौरुष चमका ।

५४ जनानां तर्षिं, भद्रं, गोमतः वाजस्य समानं, प्रशंसिषम्– (४७०) सब जनोंका तारण करनेवाला, शत्रुको त्रास देनेवाला और गौओंसे उत्पन्न अन्नका दाता इन्द्र है उसकी स्तुति करता हूं ।

५५ त्वावतः उग्रात् दस्मात् ऋतीषहः अहं बिभाय– (४७७) तुम्हारे जैसे वीरसे, पापियोंके विनाशक शत्रुओंको परास्त करनेवालेसे हम डरते हैं ।

५६ यत इन्द्र भयामहे ततः नः अभयं कृधि– (५६०) हे इन्द्र ! जहांसे हमें भय होता है वहांसे हमें निर्भय कर ।

५७ तव ऊतिभिः न शग्धि– (४६०) तेरे संरक्षणके साधनोंसे हमें सामर्थ्यवान कर ।

५८ द्विषः मृधः जहि– (४६०) द्वेष करनेवाले हिंसकोंको परास्त कर ।

५९ वृषभः युवा तुविग्रीवा अनानतः– (५९५) बलवान तरुण, बलवान गर्दनवाला, किसीके सामने न नमनेवाला इन्द्र है ।

६० यं सुशिप्रं न दुधाः, न स्थिराः, न मुराः वरन्ते– (६१४) जिस उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवालेको असुर हटा नहीं सकते, देव नहीं हटा सकते, नहीं मनुष्य हटा सकते हैं ।

६१ इन्द्रः यथा वशत्, कत्वा इत् करत्- (५१६) इन्द्र जैसा चाहता है वैसा अपने सामर्थ्यसे कर देता है।

६२ कत् नु पौंस्यं अस्ति अस्य इन्द्रस्य अकृतं, केन श्रोतेभिः न श्रुतम्। वृत्रहा जनुषा परि- (६२१) ऐसा कौनसा पौरुष है जो इस इन्द्रने नहीं किया। किस मनुष्यने किस पराक्रमको नहीं सुना जो इन्द्रने नहीं किया। यह वृत्रको मारनेवाला जन्मसेही पुरुषार्थ करनेमें प्रसिद्ध है।

इन मंत्रभागोंसे इन्द्रका सामर्थ्य प्रकट होता है। इन्द्रका शरीर मजबूत है, प्रत्येक अवयव सुदृढ है, गला मोटा है, बाहु पुष्ट हैं, पेट भी पुष्ट है। हाथ बलवान हैं। इन हाथोंसे वह अपना वज्र पकडता है और शत्रुपर फेंकता है, जिससे शत्रुके टुकडे टुकडे होते हैं। यह वज्र फौलादका बना होता है। मुष्टि युद्ध भी इन्द्र करता है। कपटी शत्रुसे इन्द्र कपट युद्ध करनेमें भी प्रवीण है। स्वयं इन्द्र किसीसे द्वेष नहीं करता, पर शत्रु द्वेष करके घातपात करने लगा, तो उस द्वेष करनेवाले शत्रुका नाश जिस योजनासे हो सके, वह निश्चयसे करता है। इन्द्रकी सेना मरुतोंकी है। यह हरएक युद्धमें उसका सहाय्य करता है। शत्रुकी कितनी भी फौज हो, और वह घेर कर भी आक्रमण करे, तो भी उस शत्रुसेना का इन्द्र समूल नाश करता है। इन्द्रका ऐसा अद्वितीय सामर्थ्य है। इसका विचार पाठक करें।

शस्त्रधारी इन्द्र

इन्द्र धनुष्य बाण, वज्र आदि शस्त्रोंको धारण करता है, इसके वर्णन ये हैं—

१ वज्री (९१) - वज्रधारी, वज्रसे लडनेवाला,

२ अद्रिवान् - (९१) वज्र धारण करनेवाला, पर्वतपरके किलेमें रह कर लडनेवाला,

३ ओजसा वज्रं शिशानः- (६३६) अपने सामर्थ्यसे वज्रको धार लगाता और तीक्ष्ण करता है।

४ तव इषुः शतब्रध्नः सहस्रपर्णः एकः इत्- (६४६) तेरा बाण सैंकडों धारोंवाला और सहस्रों कार्य अकेला ही करनेवाला है।

५ ते धनुः तुविक्षं सुकृतं सुमयं। इषुः साधुः हिरण्ययः। - (६५०) तेरा धनुष्य बहुत सामर्थ्यवान्, उत्तम कार्यक्षम और सुखदायी है। तेरा बाण उत्तम है और सुवर्णके समान तेजस्वी है। तीक्ष्ण है।

६ एता च्यौत्नानि वर्षिष्ठानि ते कृता, अतः बीडु धरिमसा दृढा अवावृधः- (६५८) तेरे शस्त्रोंने बडे बलवान पराक्रमके कार्य किये हैं, इसलिये आपके कार्योंकी बलवत्ताके विषयमें हृदयका निश्चय हो गया है।

७ दुर्हणावान्- (१३५) भयानक शस्त्रोंका उपयोग करनेवाला इन्द्र है।

इस तरह इन्द्रके भयानक शस्त्रोंका वर्णन इन मंत्रोंमें है। ऐसे शस्त्र इन्द्र बर्तता था, उनको तीक्ष्ण रखता था और विजय प्राप्त करता था।

शत्रुका पराजय करनेवाला इन्द्र

१ वृत्रहा इन्द्रः- (८५) वृत्र असुरोंका नाश करनेवाला इन्द्र है।

२ भृष्णुः- (११२) शत्रुओंका नाश करनेवाला,

३ अवक्रक्षी- (८८) शत्रुओंको समूल उखाडनेवाला,

४ चर्षणीसहः- (८८) शत्रुसैनिकोंका पराभव करनेवाला,

५ विद्वेषणः- (८८) शत्रुओंका विशेष द्वेष करनेवाला,

६ युध्मः- (९१) युद्ध करनेमें प्रवीण,

७ खजकृत्- (९१) महायुद्ध करनेमें कुशल,

८ पुरंदरः- (९१) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाला,

९ पुरुधा ते मनः- (९१) सब शत्रुओंको पराजित करनेमें तेरा मन लगा रहता है।

१० पुरः भिनत्- (९४) शत्रुके नगरोंको इन्द्र तोडता है।

११ त्वं वधैः शुष्णस्य चरिष्णुं पुरं अपिवाक्- (११४) तू शस्त्रोंसे शुष्णके गतिमान नगरका नाश किया।

१२ अनाभयी- (११६) इन्द्र निर्भय है।

१३ दक्षिणेन वृत्रं हन्ता इन्द्रः- (१४७) दक्षिण हाथसे वृत्रको इन्द्र मारता है।

१४ नृभिः वृत्रं हन्ता- (१५१) सेनासे वृत्रके सैन्यका हनन करता है।

१५ हे इन्द्र ! बृहतीभ्यः धनुभ्यः वृत्रं, मायिनः अर्बुदस्य मृगयस्य निः अस्फुरः- (१७४) हे इन्द्र ! तूने अपने बडे धनुष्योंसे वृत्रको मारा, और कपटी अर्बुद और मृगयका नाश किया।

१६ पर्वतस्य गाः नि आजः- (१७४) पर्वतकी गुहामें जो गौवें रखी थी उनको तूने बाहर निकाला।

१७ इन्द्रः महां अद्रिं अन्तरिक्षं नि अधमः, तत् पौंस्यं कृधे- (१७५) इन्द्रने बडे अद्रिको तथा अन्तरिक्षको कंपायमान कर दिया, यह उसका पौरुष प्रचण्ड था।

१८ उग्रः अपः रिणन् सृबिन्दं अवधीत्- (१८१) -वे जलके प्रवाह चलाये और सृबिंदका वध किया।

१९ पृतनासु स्थिरः, ओजसा भूरेः ईशानः- (१९१) युद्धोंमें वह इन्द्र स्थिर रहता है, उसके सामर्थ्यसे इ बडे ऐश्वर्यका स्वामी हुआ है।

२० यः वाजी शता सहस्रा आ दर्दिरत्- (१९७) वह बलवान इन्द्र सैकडों या सहस्रों शत्रुओंका विदारण करता है।

२१ अवृतः इन्द्रः पन्यः- (१९७) शत्रुके द्वारा घिरा न जानेवाला इन्द्र स्तुतिके योग्य है।

२२ ऋजीषमः वृत्रं और्णवाभं अहीशुवं अहन्- (२०५) शत्रुको नष्ट करनेवाले इन्द्रने वृत्र, और्णवाभ और अहीशुवको मारा।

२३ अर्बुदं आवध्यत्- (२०५) इन्द्रने अर्बुदका वध किया।

२४ उग्रः निष्टुरः अषाळ्हः- (२०६) इन्द्र उग्रवीर है, शत्रुके विषयमें वह निष्ठुर है, और शत्रुका पराभव करनेवाला है।

२५ धृषितः, अवृतः, समत्सु श्रितः, विभूततुम्नः, च्यवनः, क्रत्वा शाकिनः- (२१५) शत्रुका धर्षण करनेवाला, शत्रुसे घेरा न जानेवाला, युद्धोंमें रहनेवाला, बहुत तेजस्वी, शत्रुको हिलानेवाला, अपने पौरुषसे शक्तिशाली इन्द्र है।

२६ पूर्भित् (२१४); ओजसा पुरः विभिनत्ति- (२१९) शत्रुके नगरोंको अपने सामर्थ्यसे तोडनेवाला इन्द्र है।

२७ उग्रः अभिस्तृतः स्थिरः, रणाय संस्कृतः मघवा इन्द्रः- (२२८) उग्रवीर, अपराजित, रणभूमिपर स्थिर रहनेवाला, युद्धके संस्कारोंसे संपन्न और धनवान इन्द्र है।

२८ हे उग्र ! सत्यं इत्था वृषा असि, वृषजूतिः नः अवृतः, पराधति वृषा शृण्विषे, अर्वावति वृषः श्रुतः- (२१९) हे उग्रवीर इन्द्र ! यह सच है कि तू ऐसा बलवान है, तुम्हारे अन्दर बलवान् उत्साह है, तू शत्रुसे घेरा नहीं जाता, दूर भी तुम बलवान् हैं ऐसा मानते हैं, वैसा पास भी बलवान् करके तू प्रसिद्ध है।

२९ प्र शर्धः-(२१९) इन्द्र शत्रुओंको मारनेवाला है।

३० हे इन्द्र ! सहसा सहः चकर्थ, ओजसा मन्युं वर्धत, ते विश्वे पृतना युधः नियेमिरे-(२३१) हे इन्द्र ! शत्रुको पराभूत करनेके सामर्थ्यसे तूने अपना सामर्थ्य प्रकट किया है, तूने अपने सामर्थ्यसे शत्रुके क्रोधको छिन्नभिन्न किया है, वे सब सैन्य लेकर हमला करनेवाले चुप हो गये हैं।

३१ उग्रस्य तव सख्ये मा भेम, मा श्रमिष्म- (२३५) तुझ जैसे उग्र वीरकी मित्रतामें हम डरेंगे नहीं और श्रान्त भी नहीं होंगे।

३२ वृषण्वः ते महत्कृतं अभिचक्ष्यं- (२३५) बलवान् ऐसे तूने बडा भारी देखने योग्य कार्य किया है।

३३ ते सखा अश्वी रथी गोमान् सुरूप ग्वाशाना वयसा सचते, सदा चन्द्रः सभां उपयाति- (२३७) जो तेरा मित्र होगा वह घोडोंवाला, रथवाला, गौओंवाला, सुरूप, सामर्थ्ययुक्त आयुसे युक्त होता है, वह आनंदित होकर सभामें जाकर बैठता है।

३४ वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण तोशतः वृत्रस्य शिरः बिभेद- (२४८) बलशाली सैकडों धारावाले वज्रसे हिंसक वृत्रका सिर इन्द्रने काटा।

३५ अस्य मन्युः वृत्रं पर्वशः विरुजन्- (२५५) इस इन्द्रके क्रोधने वृत्रके शरीरके जोडोंपर टुकडे किये।

३६ शुष्णे दस्यावि घर्णांसि वज्रं निजघन्थ- (२५६) शुष्ण रूपी दस्युपर भयानक वज्रका आघात इन्द्रने किया।

३७ द्यावः अन्तरिक्षाणि भूमयः इन्द्रं न वि व्यचन्त- (२५७) द्युलोक अन्तरिक्ष और भूमि इस इन्द्रको पृथक् नहीं कर सकते।

३८ येन अत्रिणः निहंसि तं ईमहे- (२८८) जिससे सर्व भक्षक दुष्टोंका वध करता है, उस तुझको हम प्राप्त करते हैं।

३९ विश्वाभिः ऊतिभिः वक्षिथ- (२९१) सब संरक्षणोंके साधनोंसे युक्त होकर वह आता है।

४० प्रवृद्ध सत्पते ! यदि सहस्रं महिषान् अघः आत् इत् ते इन्द्रियं महि प्रवावृधे- (२९५) हे महान् शासक ! यदि तूने सहस्रावधि बलाढ्य शत्रुओंको आजही नष्ट किया तो उससे तेरा ही बल बढता है।

४१ देवासः वृत्राय हन्तवे इन्द्रं पुरः दधिरे- (३०९) देवोंने वृत्रको मारनेके लिये इन्द्रको आगे खडा किया है।

४२ हे वज्रिन् ! वृत्रं शवसा अवधीः- (३२६) हे वज्रधारी इन्द्र ! तूने वृत्रको अपने सामर्थ्यसे मारा।

४३ हे इन्द्र ! यातुधानस्य विश्वा धनानि जिग्युषः ते ऊतिं वयं वृणीमहे- (३५९) हे इन्द्र ! अपनी शक्तिसे चलनेवाले और शत्रुके सब धनोंको विजयसे प्राप्त करनेवाले

तेरे संरक्षणको हम प्राप्त करते हैं।

४४ यत् वलं अभिनत्, रोचना अन्तरिक्षं वि अतिरत्– (३६०) जब वल राक्षसको इन्द्रने मारा, तब अन्तरिक्षमें प्रकाश फैल गया। नक्षत्र चमकने लगे।

४५ हे इन्द्र ! यत् विश्वाः स्पृधः अजयः, अपां फेनेन नमुचेः शिरः उदवर्तयः– (३६६) हे इन्द्र ! जब संपूर्ण स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंपर तूने विजय प्राप्त किया, तब जलोंके फेनसे नमुचीका सिर काट कर फेंक दिया। जलोंका फेन (अपां फेनः) साधारण सा हथियार।

४६ हे इन्द्र ! मायाभिः उत्सिसृप्सतः, द्यां आरुरुक्षतः दस्यून् अवधूनुथाः– (३६७) हे इन्द्र ! जब कपट करनेवाले द्युलोक पर चढनेवाले सब शत्रुओंको तूने कंपायमान किया था।

४७ एकः वृत्राणि जिघ्नसे– (३७१) तू अकेला हि सब शत्रुओंको मारता है।

४८ तव त्यत् महते इन्द्रियं शुष्मं क्रतुं वरेण्यं वज्रं धिषणा शिशाति– (३७५) तेरा वह बडा सामर्थ्य जो बलशाली पौरुषका कार्य करनेवाले श्रेष्ठ वज्रको बुद्धिपूर्वक तीक्ष्ण करता है।

४९ त्वं एकः वृत्राणि सत्रा सोशसे। इन्द्रात् अन्यः करणं भूयः न इन्वति– (३७९) हे इन्द्र ! तू अकेला हि अनेक शत्रुओंको एक साथ मारता है। इन्द्रसे भिन्न दूसरा कोई विशेष साधनको अपने पास नहीं रख सकता।

५० त्वं जनुषा अभ्रातृव्यः, सनात् अना अनापि– (४२१) तू जन्मसे शत्रुरहित हो। सदा तुम्हारे लिये दूसरा कोई नेता नहीं है। तू ही स्वयं योग्य नेतृत्व करता है।

५१ येषां इन्द्रः सखा, स अयुद्धः सन्, युद्धावृतं सत्वभिः आतति– (४४५) जिनका मित्र इन्द्र है, वह युद्ध न करनेपर भी युद्धसे घेरनेवाले शत्रुको अपने सामर्थ्योंसे बडा प्रतीत होता है।

५२ जातः वृत्रहा तुन्दं आददे मातरं वि पृच्छत्, के के उग्राः शृण्विरे– (४४६) जन्मते ही इन्द्रने बाण लिया और मातासे पूछा कि यहां कौन कौन शूरवीर हैं ? हमारे कौन शत्रु हैं ?

५३ त्वा शवसी प्रतिवदत्, यः ते शत्रुत्वं आचके, योधिषत्– (४४७) उस इन्द्रसे उसकी बलवती माताने उत्तर दिया, जो तेरा शत्रुत्व करेगा वह युद्ध ही करेगा।

५४ यत् आजिकृत इन्द्रः सु-अश्व-युः आजिं उपयाति, रथानां रथीतमः– (४४८) जब युद्ध करनेकी इच्छा करके इन्द्र उत्तम घोडोंको रथसे जोतकर युद्धमें जाता है, तब वह रथियोंमें श्रेष्ठ रथि होता है।

५५ हे वज्रिन् ! विश्वाः अभियुजः यथा विष्वक् विवृह, नः सुश्रवस्तमः भव– (४५०) हे वज्रधारी इन्द्र ! जब सब शत्रुओंसे तूने पृथक् पृथक् युद्ध किया, तब तू बडा प्रशंसनीय हुआ।

५६ यं धूर्तयः न धूर्वन्ति– (४५१) जिस इन्द्रको दुष्ट लोग कष्ट नहीं दे सकते।

५७ हे इन्द्र ! धनंजयं, दृळ्हा चित् आरुजं, आदारिणं त्वा विद्म– (४५५) हे इन्द्र तू युद्धमें जीतनेवाला, सुदृढ शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला, उसका विदारण करनेवाला करके तुझे हम जानते हैं।

५८ यं युधि न किः वृण्वते, सत्वने पुरुनृम्णाय इन्द्राय सोमं गाय– (४६१) जिसका युद्धमें कोई पराभव नहीं कर सकते, उस सामर्थ्यवान् विशेष पौरुषवान इन्द्रके लिये स्तोत्रका गायन करो।

५९ विश्वाः द्विषः अप जहि, बाधामृधः परि अहि– (४८२) सब द्वेष करनेवाले शत्रुओंका नाश कर, बाधा करनेवाले दुष्टोंको पराजित कर।

६० धृष्णुया प्र जिगाति, दाशुषे वृत्राणि हन्ति– (४८६) अपनी शत्रुनाशक शक्तिसे वह इन्द्र आगे बढता है और दाताका हित करनेके लिये उसके सब शत्रुओंको मारता है।

६१ वीरं उग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं मंहः राधसः प्र– (५००) उग्रवीर ज्ञानी धनदाता विशेष ऐश्वर्यवान् इन्द्रके बडे धन दानकी प्रशंसा होती है।

६२ यः वधैः कियेधं शुष्णं निघोषयन् ओजसा अभि प्रनक्षे– (५१२) जो शस्त्रोंसे दुष्ट शुष्णको बुरा है ऐसा घोषित करके अपने सामर्थ्यसे विनष्ट करता है।

६३ हे हरिवः ! पृत्सु सासहिं अधृष्टं त्वा विद्म– (५५१) हे घोडोंको रखनेवाले इन्द्र ! हम तुम्हें युद्धोंमें शत्रुको हरानेवाले परंतु शत्रुसे कभी पराजित न होनेवाले ऐसा जानते हैं।

६४ तव अवसा मक्षु चित् यन्तः वाजं सनेम– (५५१) तेरे संरक्षणसे सुरक्षित होकर आगे प्रगति करनेवाले हम बल तथा अन्न प्राप्त करेंगे।

इस रीतिसे इन्द्रके वर्णनमें उनके शत्रुनाशक सामर्थ्यका वर्णन आता है। इन्द्रके वैसे सैंकडों प्रशंसनीय गुण हैं पर

उन सबमें शत्रुका नाश करना, इस कार्यके लिये आवश्यक हुआ तो छोटा या बडा युद्ध भी करना और विजय प्राप्त करके जनताका संरक्षण करके उनका प्रतिपालन करना यह सबसे मुख्य गुण है। इसी कारण इन्द्रकी सब प्रशंसा करते हैं, यज्ञमें बुलाकर उसको प्रथम स्थान देकर उसका संमान करते हैं, क्योंकि वह याजकोंकी सुरक्षा करता है। यज्ञ होते रहें ऐसी शान्ति प्रस्थापित करता है। जनताका संरक्षण करता है।

शत्रुका नाश करनेके लिये इन्द्र तत्पर रहता है। एक साथ संघटित होकर शत्रुसैनिक हमला करने लगे, तो उन सबका नाश इन्द्र करता है और फिर वैसे उपद्रव कोई न करे ऐसा प्रबंध करता है। सब जनताका यह विश्वास होता है कि इन्द्रके संरक्षणमें हम निर्भय हैं। इन्द्रको सब लोकोंका एकही अधिराजा सब मानते हैं। शत्रु अपने सैनिकोंसे घेरने लगे तो उस शत्रुसेनाका नाश करके जनताको सुरक्षित करना इन्द्रका महत्त्वका कार्य है।

कपटी शत्रु कपटसे युद्ध करने लगे, तो यह इन्द्र उनके साथ कपट युद्ध करके उनको स्थानसे हटा देता है और अपनी प्रजाको सुरक्षित स्थितिमें रखकर उन्नति करनेके लिये जो करना आवश्यक होगा वह सब करता है। ये इन्द्रके सुप्रसिद्ध कर्म हैं।

सैंकडों कर्म करनेवाला इन्द्र

इन्द्र प्रजाका संरक्षण करनेके लिये सैंकडों प्रकारके कार्य जलदीसे तथा उत्तम रीतिसे करता है, इस लिये उसका वर्णन ऐसा किया जाता है—

१ शतक्रतुः– (८६) सैंकडों कार्य उत्तमरीतिसे करनेवाला.

२ विश्वगूर्तः– (१०८) सब कार्य मन लगाकर उत्तम-रीतिसे करनेवाला।

३ अरि-स्तुतः– (१०८) (अरि) प्रगति करने-वालोंके द्वारा इन्द्र प्रशंसित होता है।

४ तुविकूर्मिः वज्रहस्तः सनात् अमृक्तः एकः वाजान् दयते– (१४६) बहुत कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाला, वज्रको हाथमें धरनेवाला, अनादि कालसे परि-शुद्ध सामर्थ्यवाला अकेलाही अन्नोंको देनेवाला इन्द्र है।

५ ऊतये सुप्रकरस्नं साधु कृण्वन्तं वृषदुक्थं हुवा-महे– (१८९) हमारे संरक्षणके लिये अपने बाहुओंका फैलाने-वाले, उत्तम कार्योंको करनेवाले, महान यश प्राप्त करनेवाले इन्द्रको हम सहाय्यके लिये बुलाते हैं।

६ यस्य संस्थे शतक्रतुः आत् ईं कृणोति, वृत्रहा अरिगूर्तः पुरुवसुः– (१९०) जिसकी संस्थामें सैंकडों कर्म करनेवाला इन्द्र शत्रुओंका नाश करता है, वह वृत्रको मारनेवाला स्तोताओंको बहुत धन देता है।

७ सः शग्ध्रः नः आशकत्, दामवान् इन्द्रः विश्वाभिः ऊतिभिः अन्तः आभरत्– (१९१) वह सामर्थ्यवान् इन्द्र हमें सामर्थ्ययुक्त करता है, वह दान देनेवाला इन्द्र सब प्रकारके संरक्षणके साधनोंसे हमें भरपूर धन देता है।

८ सुसव्यः सुदक्षिणः इनः सः सहस्रा आकरः शतामघः– (२१४) वह इन्द्र दोनों हाथोंसे उत्तम सहस्रों प्रकारके या सैंकडों प्रकारके धन भरपूर देता है।

इस तरह अनेक प्रकारके कर्म इन्द्र करता है। ये सब कर्म लोगोंको सुख देने लिये होते हैं। जनताके संरक्षणके लिये वह अपने दोनों हाथ ऊपर उठाता है। आवश्यक हुआ तो हाथोंसे धनका दान करता है अथवा दूसरी रीतिसे आवश्यक होनेपर वज्र हाथमें धारण करके सब शत्रुओंको मार कर हटा देता है।

स्तुति करनेवालोंके घरके संसार, सार्वजनिक हितके लिये करनेके अनेक कार्य, शत्रुनिर्दलनके विविध कार्य तथा याजकोंके करनेके यज्ञ उत्तम रीतिसे समाप्त करनेमें वह हरएक प्रकारकी सहायता करता है।

धनवान् इन्द्र

इन्द्रका नामही ' मघवा ' है। इसका अर्थ ' धनवान ' है। इसका धनवान् होनेका भाव वर्णन करनेवाले मंत्रभाग ये हैं, देखिये—

१ शतामघ– (९१) सैंकडों प्रकारके धन अपने पास रखनेवाला इन्द्र है।

२ मे पितुः वस्यान्– (९२) मेरे पितासे तू अधिक धनवान् है।

३ रेवन्तं त्वा शृणोमि– (१२६) तू धनवान् है ऐसा मैं सुनता हूं।

४ रेवतः स्तोता रेवान् स्यात्– (१२८) धनवान् इन्द्रकी स्तुति करनेवाला भी धनवान् होता है।

५ देवः दाशुषे पुरूवार्या रासते– (१०८) इन्द्र देव दाताको बहुत धन देता है।

६ हे वसो! वसुत्वनाय राधसे मे माता च समा छदयतः– (९२) हे निवासक इन्द्र! निवास करने और

धन प्राप्त करनेके लिये तू और मेरी माता समान रीतिसे मेरे सहायक हैं।

७ अस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिं आ विद्म- (१६६) इस वीर इन्द्रकी उत्तम दान देनेवाली उत्तम बुद्धिको हम जानते हैं।

८ अपाकात् अवति स इनः वसु वोळ्हा - (१५०) अपवित्रतासे रक्षण करता है वह स्वामी इन्द्र धन देनेवाला है।

९ धने हिते येन यतिभ्यः भृगवे- (१६४) युद्ध छिड जाने पर इन्द्रने यतियोंसे धन छीन कर गृहस्थी भृगुको दिया।

१० यः रायः अवनिः, महान् सुपारः सखा, तं इन्द्रं अभिप्रगायत- (१९२) जो धनका रक्षक और दुःखोंसे उत्तम रीतिसे पार करनेवाला मित्र है, उस इन्द्रकी स्तुतिका गान करो।

११ हे मघवन् ! पिशंगरूपं धृषत् गो मन्तं मक्षु ईमहे- (२१२) हे धनवान् इन्द्र ! सुवर्णके समान चमकनेवाला, शत्रुका धर्षण करनेवाला गाइयोंसे युक्त धन हमें तत्काल मिले ऐसी हम इच्छा करते हैं।

१२ स्वर्विदं चित्रं रयिं नः आभर- (३२५) आत्म-ज्ञानी विलक्षण सामर्थ्यवान् धन हमें भरपूर दो।

१३ गृणत्सु रयिं सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वं श्रवः धारय- (३३२) स्तुति करनेवालोंको धन, ज्ञानियोंको अमरत्व देनेवाला धन युक्त यश दे दो।

१४ तत् स्पार्हं वसु आभर- (४८२) वह स्पृहणीय धन हमें भरपूर दो।

१५ यत् वीळौ, यत् स्थिरे, यत् पर्शाने आभृतं, तत् स्पार्हं वसु आभर- (४८३) जो सुरक्षित स्थानमें रखा है, जो स्थिर स्थानमें रखा है, जो खजानेमें रखा है वह स्पृहणीय धन हमें दो।

१६ ते दत्तस्य भूरेः विश्वमानुषः वेदति तत् स्पार्हं वसु आभर- (४८४) तुम्हारे दिये हुए धनको सर्व मनुष्योंका हित करनेवाला धन है ऐसा जानते हैं, वह स्पृहणीय धन हमें भरपूर दो।

१७ गर्दभानां शतं, ऊर्णावतीनां शतं, शतं दासान् अतिस्रजः- (५४६) सौ गधे, सौ ऊनवाली भेडियां और सौ दास तुमने दिये।

१८ पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे (५५५) सहस्रों और सेंकडों झुंड दानके लिये दिये गये हैं।

१९ अराधसः पणीन् पद्वा वि बाधस्व, त्वा कश्चन प्रति नहीं- (५५०) दान न देनेवाले पणीयोंको पांवसे कुचल, तुझे कोई रोकेगा नहीं।

२० दाशुषे पुरुसंभृतं वसु उद्वपति- (६१६) दाताको बहुत इकठ्ठा किया धन इन्द्र देता है।

इन्द्र धनवान् है और वह दूसरे सज्जनोंको धन दान-रूपमें देता भी है। सब मानवोंका कल्याण करनेका इन्द्रका उद्देश्य है। जो सार्वजनिक हित करनेके लिये यज्ञ करते हैं, उनको इन्द्र धन देता है। वे यज्ञ करें और उससे मानवोंका कल्याण हो यह इन्द्रका उद्देश्य होता है।

इन्द्रके घोडे

इन्द्रके घोडे कैसे थे उसका वर्णन अब देखिये। इन्द्रका नाम 'हरिवः' (१२८) है इसका अर्थ घोडे पालनेवाला, घोडोंको सुरक्षित करनेवाला, घोडोंके कुलका सुधार करनेवाला। इन्द्र [illegible] जिसको घोडे देने चाहिये उसको घोडे देता भी था। इन्द्रके वर्णनमें आया है---

१ सूरचक्षसः हरयः- (७८) सूर्यके समान तेजस्वी घोडे इन्द्रके थे।

२ हरयः- (७८) लाल रंगके इन्द्रके घोडे थे। पीले रंगके घोडे थे। 'हिरण' ऐसा भी इनका अर्थ है।

३ केशिभिः हरिभिः नः सुतं उपयाहि- (८१) लंबे बालवाले, लंबी अयालवाले घोडोंसे हमारे सोमयागमें आओ।

४ शतिनः सहस्रिणः वृष्णः रघुद्रुवः अश्वासः- (९५) सेंकडों और हजारों बलवान् और शीघ्र दौडनेवाले इन्द्रके घोडे हैं।

५ शतं सहस्रं केशिनः हरयः ब्रह्मयुजः- (११०) सेंकडों और हजारों अयालवाले इशारेसे जुडजानेवाले इन्द्रके घोडे हैं।

६ मयूरं कश्या श्वितिपृष्ठा हरी- (१११) मोरके समान रंगवाले जिनके केश हैं ऐसे सफेद पीठके घोडे इन्द्रके हैं।

७ ब्रह्मयुजा शग्मासः हरी- (१४१) इशारेसे रथके साथ जुड जानेवाले सुन्दर घोडे।

८ सधमाद्या हिरण्यकश्या हरी- (२०८) साथ रहनेवाले सोनेरी बालोंवाले घोडे।

९ मदच्युता मिथुना सप्ती रथं वहतः- (२२७) मद चूनेवाले दो घोडे इन्द्रके रथको ढोते हैं।

१० रथा वीतपृष्ठा शतं हरयः अस्मान् प्रयः उप वहन्तु- (१८४) तुझे श्वेत पीठवाले सैंकडों घोडे यज्ञमें ले आवें।

११ मंहिमते ! तूतुजानः प्रपिल्प्सुभिः आशुभिः अश्वेभिः यज्ञे आयाहि- (१२१) हे महाबुद्धिमान् इन्द्र ! त्वरा करके पुष्ट शरीरोंके जलदी दौडनेवाले घोडोंसे हमारे यज्ञमें आओ।

ऐसे घोडे इन्द्र पालता है, उनको सुशिक्षित करता है और वह उनको जिनको आवश्यकता होती है उनको देता भी है। देखिये—

१२ सः नः इमं कामं गोभिः अश्वैः आपृण-(८६) वह तू इन्द्र हमारा इस कामनाको, गौओं और घोडोंको हमें देकर, पूर्ण करो।

१३ नः गोमतः हिरण्यवतः अश्वावतः कृधि-(१८८) हमें गौओंवाले, सुवर्णवाले और घोडोंवाले कर अर्थात् हमें गौवें, सुवर्ण और घोडे प्रदान कर।

१४ हे इन्द्र ! नः सुवीर्यं, सु अश्व्यं, सुगव्यं कृधि- (३२०) हे इन्द्र ! हमें उत्तम वीर्यवान्, उत्तम घोडों और गौओंसे युक्त कर।

१५ हे अश्वपते गोपते उर्वरापते- (४११) हे घोडों और गौओंके स्वामी ! हे भूमिके स्वामी इन्द्र !

१६ उपाकचक्षसं मजं अभितिष्ठसि, नः मृळयासि (२६७) देखभाल करके गोशालाको तेजस्वी तू बनाता है और हमें सुखी करता है।

१७ गुहा सतीः गाः अंगिरोभ्यः उत् आजत, वलं अर्वाञ्चं नुनुदे- (१६१) वल राक्षसने गौवें चोरीं और पर्वतकी गुहाओंमें रखीं, इन्द्रने उन गौओंको गुहाओंमेंसे बाहर निकाला और बलको नीचे मुख करके भगाया।

इन्द्रने घोडे और गौवें पालीं, हृष्टपुष्ट बनाईं, शत्रुके पाससे उनको छुडाकर ऋषियोंके आश्रममें भेज दी। ऐसे कार्य इन्द्रने किये इसलिये सब सज्जन इन्द्रकी प्रशंसा करने लगे।

इन्द्रका सुखदायक रथ

इन्द्रका रथ सुवर्णका अर्थात् सुवर्ण जैसा चमकनेवाला था, देखिये—

१ हिरण्ययः रथः- (११०) सुवर्ण जैसा चमकनेवाला इन्द्रका रथ था। इस रथपर सुवर्णका नकशीकाम किया था। इसलिये वह सुवर्णका बनाया है ऐसा दीखता था।

२ इन्द्रं सुखतमे रथे हरी उपवक्षतः- (७९) उत्तम सुखदायक रथमें बिठलाकर इन्द्रको दो घोडे ले चलते हैं।

३ हिरण्ययः रथः हर्योः संमिश्लः- (२११) इन्द्रका रथ सुवर्णका बनाया दीखता है और उस रथके साथ दो घोडे जोते रहते हैं।

ऐसा उत्तम रथ इन्द्रका है और उस रथको दो घोडे जोते जाते हैं। इस रथसे इन्द्र जहां जाना होता है वहां जाता है।

ज्ञानी इन्द्र

इन्द्र ज्ञानी है ऐसा वर्णन वेदमंत्रोंमें है वह अब देखिये—

१ विप्रः- (२५१) ज्ञानी, विद्वान्।

२ सूरः- (२६७) विद्वान्, महाज्ञानी।

३ विचर्षणिः- (२१२) द्रष्टा, दूरदर्शी।

४ पूर्वजाः ऋषिः असि- (२८६) इन्द्र ऋषि है अर्थात् महाज्ञानी है, द्रष्टा है।

५ सत्यः- (१५१) इन्द्र सत्य भक्त है।

६ एकः ओजसा ईशानः वसु वि अदयसे- (२८१) इन्द्र अकेला अपने ज्ञान सामर्थ्यसे ईश्वर बनकर धन देता है।

७ गोमन्तं अश्विनं तं रयिं प्र म क्षीमहि, पूर्वचित्तये ब्रह्म प्र नक्षीमहि- (२५१) गौओं और घोडोंसे युक्त धन हम इन्द्रसे प्राप्त करते हैं, और अपूर्व चित्तके बननेके लिये ज्ञान भी चाहते हैं। अर्थात् यह ज्ञान मिलने पर हमारा चित्त प्रगल्भ होगा। यह महाज्ञान इन्द्रके पास है।

८ गिरीणां उपह्वरे, नदीनां संगमे च धिया विप्रो अजायत- (२७०) पहाडोंकी उतराईपर तथा नदीयोंके संगमपर रहकर बुद्धिपूर्वक साधना करनेसे विप्र अर्थात् महाज्ञानी होता है। इन्द्रने इस तरह ज्ञान प्राप्त किया था क्योंकि इन्द्रका ही यह वर्णन है।

९ हे इन्द्र ! मां सु अव, उत मतिं प्रवर्धय- (२७४) हे इन्द्र ! मेरा उत्तम प्रकारसे रक्षण कर और मेरी बुद्धिको बढा दो। इन्द्र महाबुद्धिमान् होनेसे वह बुद्धिको बढा सकता है।

१० हे प्रवृद्ध वज्रिवः ! ब्रह्मण्या विप्रासः जीवसे तुभ्यं अनक्षन्- (२७५) हे महान् वज्रधारी इन्द्र ! सब ज्ञानी ब्राह्मण हम सब जीवनके लिये तेरे पास आते हैं, तू हमारा जीवन बनाओ। ज्ञानी ब्राह्मणोंका जीवन इन्द्र बनाता है।

इन्द्र रक्षक है

१ अविता- (१५१) संरक्षण करनेवाला इन्द्र है।

२ अनुत्तमन्युः अजरः इन्द्रः- (३७७) जिसका उत्साह कम नहीं हुआ है ऐसा तरुण इन्द्र है। इन्द्र सदा तरुण रहता है। कितनी भी आयु हुई तो भी वह वृद्ध नहीं होता।

३ उभे रोदसी त्वा अनुव्रते- (२८०) दोनों द्युलोक और भूलोक तेरे अनुकूल होकर सुरक्षित रहते हैं।

सब विश्वका संरक्षक इन्द्र है। सब विश्व उसके अनुकूल रहा तो इस विश्वका संरक्षण होता है, अथवा विश्वका संरक्षण वह इन्द्र करता है। इस कारण इन्द्र संसेव्य है--

संसेव्य इन्द्र

सबका उत्तम रीतिसे संरक्षण करनेके कारण इन्द्र सबके लिये संसेव्य है देखिये-

१ संजननः- (८८) इन्द्र सबकी उपासना करनेके लिये योग्य है। सेवा करनेके लिये योग्य है।

२ उभयंकरः- (८८) इन्द्र शत्रुका निग्रह और मित्रोंपर अनुग्रह ये दोनों कार्य करनेमें समर्थ है।

इस कारण इन्द्र संसेव्य है।

इन्द्र अन्न देता है

१ वाजेभिः अस्मान् अभि सु प्र आहि- (१२४) अन्नोंके साथ हमारे समीप आ जाओ। अर्थात् हमें अनेक प्रकारके अन्न दो।

२ जरितृभ्यः अश्ववन्तं गोमन्तं वाजं- (१२९) स्तुति करनेवालोंको घोडे जहां होते हैं और गौवें जहां होती हैं, ऐसा अन्न भरपूर दे दो। अर्थात् घोडोंपरसे लाया अन्न और गौओंसे उत्पन्न हुआ दूध दही घी आदि अन्न हमें दे दो।

स्त्रियोंके विषयमें इन्द्रकी संमति

१ इन्द्रः अब्रवीत्, स्त्रियाः मनः अशास्यम्, क्रतुं रघु- (२११) इन्द्रने कहा कि स्त्रियोंका मन शासनमें रहता नहीं, तथा उनके कार्य छोटे होते हैं।

२ अधः पश्यस्व मा उपरि, संतरां पादकौ हर, मा ते कशप्लकौ दृशन्, हि ब्रह्मा स्त्री बभूविथ- (२१८) हे स्त्रि,! तू नीचे देख, ऊपर नहीं, अपने पांवोंसे शनैः शनैः चल, तेरे पांवके टखने न दीखे क्योंकि ज्ञानी स्त्री बनी है। स्त्री ज्ञानी होवे और वह अपनी मर्यादासे सब व्यवहार करे।

व्रण ठीक करनेवाला इन्द्र

इन्द्र युद्ध करता है, उसके सैनिक युद्धमें जखमी होते हैं। उनकी जखमें वह ठीक करता है। देखिये-

१ यः पुरा अभिभ्रेयः ऋते अभुग्धः आतृदः, संधिं संधाता. विह्रुतं पुनः इष्कर्ता- (९८) इन्द्र संधिके पास प्रथम काटता है. संधिको जोडता है, कटे हुएको ठीक करता है। यह सब आवश्यकता जैसी होती है वैसा करता है।

इन्द्र शस्त्रक्रिया करता है और उस व्रणको जलदी ठीक करता है। व्रण ठीक करनेके कार्यमें इन्द्र अत्यंत कुशल है।

सूर्यके समान इन्द्र

१ सूर्यः नः रोदसी अवर्धयत्, अस्य केतवः ववक्षुः- (२९४) सूर्यने हमारे लिये द्युलोक और भूलोकका विस्तार किया है, इस इन्द्रके किरण सूर्यके समान चारों ओर फैले हैं।

सूर्य प्रकाशता है वैसा इन्द्र विद्युद्रूप भी प्रकाशता है। दोनों अपने किरण फैलाते हैं। इस तरह दोनोंकी समानता है।

देवोंकी इच्छा

देवोंकी इच्छा सब लोग पुरुषार्थ करें ऐसी है देखिये-

१ देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति, स्वप्नाय न स्पृहयन्ति- (१११) देव यज्ञ करनेवालेको चाहते हैं, सुस्तको चाहते नहीं। लोग कर्म करें ऐसा देव चाहते हैं। आलस्यमें बैठे रहें ऐसा वे इच्छते नहीं।

२ अतन्द्राः प्र-मादं यन्ति- (१११) आलस्य रहित होकर जो सतत शुभकर्म करते हैं वे विशेष आनन्दको प्राप्त करते हैं। प्र-मादः- विशेष बडा आनन्द।

३ देवाः पूर्भाज्ये त्वा पुरः दधिरे- (११२) देवोंने युद्धमें तुझ इन्द्रको आगे रखा है क्योंकि इन्द्र बडा पौरुष करनेवाला है। इसीलिये इन्द्र देवोंका मुखिया हुआ है।

४ रेवतः नः सखे। अमाजुरः मा- (४२१) तुझ जैसेकी मित्रतामें रहनेवाले घरमें बैठकर ही वृद्ध न हों। पुरुषार्थ प्रयत्न करके वृद्ध हो।

स्तुति न करनेवाला शत्रु

१ अ-स्तोः अरिः– (१२९) स्तुति न करनेवाला शत्रु होता है ।

देवोंकी स्तुति करनेसे शुभ गुण ये हैं ऐसा पता लगता है । उन शुभ गुणोंका अपने अन्दर धारण करनेसे तथा बढानेसे उपासकमें देवत्व प्राप्त होता है । स्तुति न करनेवालेको ये लाभ नहीं होते । इसलिये स्तुति न करनेवाला शत्रु कहलाता है ।

प्रकाशके मार्गसे जाओ

त्वं मा अनुसर– (११४) तू प्रकाशके मार्गसे चल अंधकारके मार्गसे न चल । इससे तेरी उन्नति होती रहेगी ।

कोई हीन न बने

१ निष्ट्या इव मा भूम– (९९) हम हीन जैसे न बनें ।

२ त्वत् अरणा इव मा भूम– (९९) तेरेसे दूर हम न जांय ।

३ प्रजहितानि वनानि न भूम– (९९) परित्यक्त वनोंके समान हम न बनें । जहां कोई जाता नहीं ऐसे वनोंके समान हम न बनें, अर्थात् हम हीन न बनें, हमसे लोकोपयोगी कार्य होते रहें । हम सब रीतिसे लोगोंके लिये आदरणीय बन कर रहें ।

पुत्र कैसा हो ?

१ विश्वेषां तरतारं (वीरं) नः दद्धाति– (१०१) सबका त्वरासे तारण करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो ।

वेदमंत्रोंमें पुत्रका नाम 'वीर' है और पुत्रीका नाम 'सुवीरा' है । दोनोंका अर्थ 'दुष्टोंको दूर करनेवाला' ही है ।

इस प्रकार कण्वोंके मंत्रोंका विचार है । पाठक इसको पढें और योग्य बोध प्राप्त करें । योग्य बोध यही है कि इन गुणोंको अपने अन्दर धारण करना, इन गुणोंको अपने अन्दर बढाना और श्रेष्ठ बनना । वेदके अध्ययनका यही मुख्य उद्देश्य है ।

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

अष्टम मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अक्षण्श्चिद गातुवित्तरा ६१५
अगोरुधाय गविषे ५९६
अग्न आ याह्यग्निभिः ११११
अग्निं वः पूर्व्यं हुवे ५५३
अग्निं वः पूर्व्यं गिरा ७१०
अग्निं विश्वायुवेपसं ८९२
अग्निं वो देवयज्यया १३०४
अग्निं वो वृधन्तं १६८७
अग्निं सूनुं सहसो १३०३
अग्निः प्रत्नेन मन्मना ९१२
अग्निः शुचिव्रततमः ९२१
अग्निनेन्द्रेण वरुणेन ७८२
अग्निं दूतं पुरो दधे ९०३
अग्निं द्वेषो योतवै १३०७
अग्निं धीभिर्मनीषिणो ८८६
अग्निं न मा मथितं १०२९
अग्निमग्निं वो अध्रिगुं ११३५
अग्निमस्तोष्यृग्मियं ८३०
अग्निमिन्धानो मनसा १७०२
अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः १३०६
अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं ८९८
अग्निरिषां सख्ये ददातु १३०५
अग्निरुक्थे पुरोहितो ६५६
अग्निर्जाता देवानां ८३५
अग्निर्देवेषु संवसुः ८३६
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् ९१६
अग्निर्हि जानि पूर्व्यः २४४
अग्निस्त्रीणि त्रिधातूनि ८३८
अग्ने कविर्वेधा असि ११२१
अग्ने घृतस्य धीतिभिः १६०६
अग्ने जरितर्विश्पतिः ११३७
अग्ने तव त्ये अजर ५५७
अग्ने त्वं यशा अस्या ५७६
अग्ने धृतव्रताय ते ९२५
अग्ने नि पाहि नस्त्वं ९११
अग्ने भ्रातः सहस्कृत ८८३
अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं ८३२
अग्ने पाकिष्टे देवस्य १३००
अग्ने याहि सुशस्तिभिः ५५९
अग्ने स्तोमं जुषस्व मे ९०२
अघ्नते विष्णवे वयं ६१८
अङ्गिरस्वन्ता उत ७९५
अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् ११०४
अच्युता चिद्वो ४८९
अच्छा च त्वैना नमसा ५१६
अच्छा नः शीरशोचिषं १३०२
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं ५५६
अच्छा हि त्वा सहसः ११२०
अजिरासो हरयो ये त आशवो १०४६
अजैष्माद्यासनाम च १०२३
अत्रे चिदस्मै कृणुथा ६७३
अतः समुद्रमुद्वतः १८९
अतः सहस्रनिर्णिजा २५५
अतश्चिदिन्द्र ण उपा १५१८
अतिथिं मानुषाणां ५७१
अति नो विष्पिता पुरु १४४७
अतिविद्धा विथुरेणा १५९८
अतीहु शुक्र ओहत १२७३
अतिहि मन्युषाविणं ७३५
अत्रा वि नेमिरेषां ७६६
अत्रीणां स्तोममद्रिवो ८११
अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुति ८००
अदब्धस्य स्वधावतो ९२०
अदर्शि गातुवित्तमो १७०३
अदान्मे पौरुकुत्स्यः ४८६
अदितिर्न उरुष्यत्व १९१४
अदितिर्नो दिवा पशु ४३१
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र ११५५
अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य ११२२
अधः पश्यस्व मोपरि ७६६
अध ज्मो अध वा दिवो १८
अध द्रप्सो अंशुमत्या १६११
अध प्रियमिषिराय १००१
अध प्लायोगिरति ३३
अध यच्चारथे गणे १००१

अद्य त्वा योषणा मयी	१००५
अधा ते अप्रतिष्कुतं	१५५३
अधा त्वं हि नस्करो	१४५९
अधा हीन्द्र गिर्वणः	१६३९
अधि न इन्द्रैषां	१४५१
अधि या बृहतो दिवः	६१३
अधीव यद् गिरीणां	२२२
अधुक्षत् पिप्युषीमिषं	१३२२
अध्वर्यवा तु हि षिञ्च	७३८
अध्वर्यो द्रावया त्वं	१११
अनर्वाणो ह्येषां पन्था	४२७
अनर्शरातिं वसुदामुप	१६४८
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः	१६५०
अनु प्रत्नस्य यूथ्यतः	२३२
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणं	१३८५
अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं	१९८
अनु पूर्वाण्योक्या	६२३
अनु प्रत्नस्यौकसः	१२७७
अनेहसं वो हवमानमूतये	१०५२
अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं	१०४२
अनेहो न उरुव्रजे	१२३१
अनेहो मित्रार्यमन्	४४६
अन्तरिच्छन्ति तं जने	१३१०
अन्तश्च प्रागा अदितिः	१०२५
अन्ति चित् सन्तमह	२९८
अन्यमस्मद्भिया इयं	१३७१
अन्यव्रतममानुष	१२८८
अन्वस्य स्थूरं ददृशे	३४
अप त्वा अस्थुरनिरा	१०३४
अपादिन्द्रो अपादग्निः	१२७०
अपादु शिप्र्यन्धसः	१५१२
अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहा	१४९०
अपाम सोममभृता	१०२६
अपामीवामप स्रिधं	४३५
अपामूर्मिर्मदन्निव	३८०
अपां फेनेन नमुचेः	३८३
अपिबत् कद्रुवः	९५६
अपि वृश्च पुराणवद्	८४५
अपो षु ण इयं	१२३४
अप्रामिसत्य मघवन्	११४२
अप्स्वग्ने सधिष्टव	८७६
अभि कण्वा अनूषत	१९४
अभि गन्धर्वमतृणत्	१३९१
अभि त्वा पूर्वपीतये	८३
अभि त्वा वृषभा सुते	९५२
अभि प्र गोपतिं गिरा	१२६३
अभि प्र भर धृषत्	१४९२
अभि प्रयः सुराधस	१०३९
अभि प्रिया मरुतो	६६१
अभि वह्नय ऊतये	३११
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु	९८६
अभि व्रजं न तत्निषे	१८५
अभिष्टये सदावृधं	१२४५
अभि स्वरन्तु ये तव	३६५
अभि हि सत्य सोमपा	१६३७
अभी षु णस्त्वं रयिं	१५६२
अभूत्यु प्र देव्या	२८३
अभ्यर्च नभाकवत्	८४३
अभ्वारमिदद्रयो	१३१८
अभ्यूर्णोति यन्नग्नं	१४०९
अभ्रातव्यो अना त्वं	५२३
अमन्महीदनाशवो	१४
अमाय वो मरुतो	४९०
अमूरं जातवेदसं	१३४८
अयं यथा न आभुवत्	१६८८
अयं वां कृष्णो अश्विना	१४६५
अयं वां घर्मो अश्विना	२७२
अयं वामद्रिभिः सुतः	५३६
अयं वां भागो निहितो	११०८
अयं विश्वा अभि श्रियो	१६८९
अयं सहस्रमृषिभिः	८०
अयं ह येन वा इदं	१३७८
अयं कृत्नुरगृभीतो	१४०८
अयं त इन्द्र सोमो	४२१
अयं त एमि तन्वा	१६५३
अयं ते मानुषे जने	११९०
अयं ते शर्यणावति	११९१
अयं दीर्घाय चक्षसे	३६७
अयमग्निः सहस्रिणो	१३६२
अयमग्ने त्वे अपि	९२८
अयमस्मि जरितः पश्य	१६५६
अयमिन्द्रो मरुत्सखा	१३७६
अयमु त्वा विचर्षणे	४१७
अयमेक इत्था पुरु	६२२
अया धिया च गव्यया	१५५८
अयाम धीवतो धियो	१५१९
आयुजो असमो नृभिः	११५८
अयुद्ध इद् युधा वृतं	९३३
अरं हि ष्मा सुतेषु णः	१५३४
अरं क्षयाय नो महे	३९८
अरं त इन्द्र कुक्षये	१५३२
अरमतिरनर्वणो	७०८
अरमश्वाय गायति	१५३३
अरुणप्सुरुषा अभू	१३४१
अर्चत प्रार्चत	१२६७
अर्चन्त एके महि साम	६९२
अर्थिनो यन्ति चेदर्थं	१४१२
अर्भको न कुमारको	१२७४
अर्वाग् रथं नि यच्छतं	८०३
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत	२०५, ७४४
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत	७४४
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं	२
अव चष्ट ऋचीषमो	११६२
अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठ	१६०९
अवन्तमत्रये गृहं	१३३२
अव यत् स्वे सधस्थे	१४१६
अव स्वराति गर्गरो	१२६८
अवा नो वाजयुं रथं	१४२२
अविताासि सुन्वतो	८०६
अविप्रो वा यदविधत्	११४७
अवीवृधद्वो अमृता	१४२६
अवोचाम महते सौभगाय	१११६
अश्वं न गीर्भी रथ्यं	१७०९
अश्वमिद्गां रथप्रां	१३५३
अश्विना यामहूतमा	१३३१
अश्विना सु विचाकशत्	१३४२

अश्विना स्वृषे स्तुहि	६४०
अश्वी रथी सुरूप इत्	१०९
अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं	१२८१
असदत्र सुवीर्यं	७१४
असुन्वामिन्द्र संसदं	३८५
असौ च या न उर्वरात्	१५०७
असौ य एषि वीरको	१५०३
अस्तभ्नाद् द्यामसुरो	८६२
अस्तावि मन्म पूर्व्यं	१०७७
अस्ति देवा अंहोरुर्वं	१२२६
अस्ति सोमो अयं सुत:	१५७९
अस्ति हि व: सजात्यं	६६५
अस्मभ्यं वाजिनीवसू	१३३
अस्मभ्यं सु वृषण्वसू	६४५
अस्मा उषास आतिरन्त	१५९७
अस्मा ऊ षु प्रभूतये	८५२
अस्माकं सु रथं पुर	९३९
अस्माकं त्वा सुतां उप	२०२
अस्माकमद्य वामयं	१३९
अस्माकमधान्तमं	७५९
अस्मे आ वहतं रयिं	१३६
अस्मे इन्द्र सचा सुते	१६२५
अस्मे रुद्रा मेहना	११८०
अस्मै ते प्रतिहर्यते	८९६
अस्य पिबतमश्विना	१३५
अस्य पीत्वा मदानां	१५१४
अस्य प्रजावती गृहे	७००
अस्य वृष्णो व्योदन	११७७
अस्येदिन्द्रो वावृधे	८४
अहं हि ते हरिवो	१०८६
अहं भुवान आर्कं	१३५६
अहं च त्वं च वृत्रह	११६७
अहन् वृत्रमृचीषम	७४०
अहमिद्धि पितुष्परि	१७०
अहं प्रत्नेन मन्मना	१७१
अहितेन चिदर्वता	११५९
आक्षयावानो वहन्ति	२४३
आ गन्ता मा रिषण्यत	४८५
आगम्य वृत्रहन्तमं	१३४७
आग्ने याहि मरुत्सखा	१७१६
आ घा ये अग्निमिन्धते	९३१
आ चन त्वा चिकित्सामो	१५०४
आजितुरं सत्पतिं	१०८४
आजिपते नृपते त्वमिद्धि	१०९२
आ त इन्द्र महिमानं	११९६
आ त एता वचोयुजा	९६९
आ तू गहि प्र तु द्रव	३५१
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं	१४२७
आ तू षिञ्च कण्वमतं	५६
आ तू सुशिप्र दंपते	१२७५
आ ते दक्षं वि रोचना	१५६७
आ ते दधामीन्द्रियं	१५६८
आ ते वत्सो मनो	३०१
आ ते सिंचामि कुक्ष्योः	४१५
आत्मा पितुस्तनूर्वासः	१००
आ त्व द्य सबर्दुघां	१६
आ त्व द्य सबर्दुघां	१०
आ त्वशत्रवा गहि	१४३९
आ त्वा कण्वा इहावसे	७६७
आ त्वा गिरो रथीरिवा	१५५८
आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं	११९५
आ त्वा गोभिरिव व्रजं	५८२
आ त्वा ग्रावा वदन्निह	७६५
आ त्वा ब्रह्मयुजा	४१२
आ त्वा मदच्युता	७७२
आ त्वा रथं यथोतये	१२४१
आ त्वा रथे हिरण्यये	२५
आ त्वा रम्भं न जिव्रयो	९५०
आ त्वा विशन्त्विन्दवः	१५३०
आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः	१५८९
आ त्वा सहस्रमा	२४
आ त्वा सुतास इन्दवो	१०४१
आ त्वा होता मनर्हितो	७७?
आ दशभिर्विवस्वत	१३१५
आदित् प्रत्नस्य रेतसो	१९०
आदित्या अव हि ख्यता	१०१६
आदित् साप्तस्य चर्किरन्	१०९९
आदीं शकस्यचक्षी	१३८८
आदू मे निवरो भुवत्	१५५६
आदू नु ते अनु क्रतुं	११७३
आ न इन्द्र महिमिषं	१८३
आ न: सहस्रशो भरा	७७८
आ न: सोम स्वध्वर	१०५३
आ न: स्तोममुप द्रवत्	१०४३
आ न: स्तोममुप द्रवत्	१२८
आ नार्यस्य दक्षिणा	६०५
आ निरेकमुत प्रियं	५८०
आ नूनं यातमश्विना रथेन	२४६
आ नूनं यातमश्विनाश्वेभिः	१४८१
आ नूनं यातमश्विनेमा	२८१
आ नूनं रघुवर्तनिं	२७५
आ नूनमश्विना युवं	२६८
आ नूनमश्विनोर्ऋषिः	२७४
आ नो अग्ने वयोवृधं	११२९
आ नो अद्य समनसो	६६०
आ नो अश्वावदश्विना	५४५
आ नो गन्तं रिशादसेमां	२६१
आ नो गन्तं मयोभुवा	२६३
आ नो गव्यान्यश्व्या	७७७
आ नो गव्येभिरश्व्यैः	१३३९
आ नो गोमन्तमश्विना	१३१
आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिः	१५३
आ नो भर दक्षिणेनाभि	१४३२
आ नो भर व्यञ्जनं	१३९९
आ नो मखस्य दावने	२३५
आ नो यज्ञं दिविस्पृशं	१६७३
आ नो यातं दिवस्परि	२४८
आ नो यातमुपश्रुति	२४९
आ नो याहि परावतो	१९६
आ नो याहि महेमते	७७०
आ नो याहि सुतावतो	४१४
आ नो याहृषुपश्रुति	७७४
आ नो रयिं मदच्युतं	२२१
आ नो वायो महे तने	९९७
आ नो विश्वान्यश्विना	२५७
आ नो विश्वाभिरूतिभिः	२४५
आ नो विश्वासु हव्य	१४९६

५४

आ नो विश्वेषां रसं १०८१
आ नो विश्वे सजोषसो १०८९
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या १२८३
आ पशुं गासि पृथिवीं ६५७
आ प्र द्रव परावतो १४३६
आ प्र यात मरुतो ६६३
आ बुन्दं वृत्रहा ददे ९३४
आभिर्विधेमाग्नये ५६९
आमासु पक्वमैरय १४९५
आ मे अस्य प्रतीव्यं ६३८
आ मे वर्चांस्युद्यता १६७१
आ मे हवं नासत्या १४६३
आ मह् पतस्येन्य: १२६९
आ यदश्वान् वनन्वत: ३१
आ यदिन्द्रश्च दद्वहे ७७९
आ यद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र १६०१
आ यद् वां योषणा रथं २५४
आयन्तारं महि स्थिरं ७२८
आ यन्मा वेना १६५७
आ यस्य ते महिमानं ९७५
आ यातं नहुषस्परि २४७
आ याहि कृणवाम त ११६०
आ याहि पर्वतेभ्य: ७७६
आ याहि सुषुमा हि ४११
आ याहीम इन्दवो ५१२
आ याह्यर्य आ परि ७७३
आ ये विश्वा पार्थिवानि १५८४
आरोका इव घेदह ८७०
आ वंसते मघवा १७११
आ वहेथे पराकात् १५२
आ वां वाहिष्ठो अश्विना ६३४
आ वां विप्र इहावसे २५३
आ वां विश्वाभिरूतिभि: १४७९
आ वां विश्वाभिरूतिभि: २६२
आ वां ग्रावाणो ८६५
आ वृषस्व पुरूवसो ११४१
आ वृषस्व महामह ५८६
आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे ७०६
आ शर्म पर्वतानामोतापां ४४१

आ स एतु य ईवदा ९९३
आ सर्वं सवितुर्यथा १६८६
आ सुष्वाय सुष्वयं ५४३
आ सुते सिञ्चत श्रियं १३२०
आहं सरस्वतीवतो ८२९
आ हरय: ससृज्रिरे १२६४
आ हि रुहतमश्विना ५३७
इच्छन्ति देवा: सुन्वन्तं ५२
इत ऊती वो अजरं १६५१
इति स्तुतासो असथा ६९४
इत्था धीवन्तमद्रिव: ७४
इदं वसो सुतमन्ध: ३५
इदं वां मदिरं मधु ८२२
इदं ह नूनमेषां ४२६
इदं ते सोम्यं मधु १२००
इदा हि उपस्तुतिं ६६६
इन्द्र इत् सोमपा एक ३८
इन्द्र इषो महानां १५११
इन्द्र इषे ददातु न: १५७५
इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर ३५३
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ३२६
इन्द्र: स दामने कृत १५४९
इन्द्र: सुतेषु सोमेषु ३३८
इन्द्र: सूर्यस्य रश्मिभि: ३१३
इन्द्र: गृणीष उ स्तुषे ११९७
इन्द्र त्वमवितेदसी ३६३
इन्द्र दृह्यस्व पूरसि १४२३
इन्द्र नेदीय एदिहि १०८३
इन्द्रं तं शुम्भ १२७९
इन्द्र प्र णो रथमव १४२०
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं ४१९
इन्द्रमित् केशिना ३८२
इन्द्रमिद् देवतातय ८१
इन्द्रमिद् विमहीनां २०४
इन्द्रमुक्थानि वावृधु: १९५
इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना १३८०
इन्द्र म उ नु ते अस्ति १४३४

इन्द्र यथा ह्यस्ति ते ५८२
इन्द्र यस्ते नवीयसीं १५९२
इन्द्र शविष्ठ सत्पते ३४९
इन्द्र शुद्धो न आ गहि १५९५
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं १५९६
इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत् ७६१
इन्द्र श्रुधि सु मे हव १४४१
इन्द्र स्थातर्हरीणां ५९३
इन्द्र: स्पळुत वृत्रहा ११५२
इन्द्रस्य वज्र आयसो १५९९
इन्द्राग्नी युवं सु न: ८४०
इन्द्राय गाव आशिरं १२६५
इन्द्राय मद्वने सुतं १५२७
इन्द्राय साम गायत १६३३
इन्द्राय सु मदिन्तमं १९
इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो १११७
इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं १११८
इन्द्रेण रोचना दिवो ३७९
इन्द्रे विश्वानि वीर्या ११७४
इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषि: ४०५
इन्द्रो मह्ना रोदसी ८२
इन्द्रो वा घेदियन्मघं ५२७
इम उ त्वा वि चक्षते ९४६
इमं स्तोममभिष्टये ३०८
इमं घा वीरो अमृतं ५६५
इमं जुषस्व गिर्वण: ३०९
इमं नु मायिनं हुव १३७५
इमं मे स्तोममश्विने १४६४
इमा अभि प्र णोनुमो १६७
इमा अस्य प्रतूर्तय: ३६६
इमा उ त्वा पुरूवसो ७९
इमा उ व: सुदानवो २२७
इमा सुपूर्व्या धियं २०३
इमां गायत्रवर्तनिं ८२५
इमां जुषेथां सवना ८२४
इमानि त्रीणि विष्टपा १५०६
इमानि वां भागधेयानि १११२

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं	३३५
इमां धियं शिक्षमाणस्य	८६४
इमां म इन्द्र सुष्टुतिं	१९२
इमां मे मरुतो गिरं	२१७
इमास्त इन्द्र पृश्नयो	१७९
इमे त इन्द्र सोमा	४४
इमे मा पीता यशस	१०२८
इमे विप्रस्य वेधसो	८६८
इमे हि ते कारवो	९४
इयं या नीच्यर्किणी	१६७७
इयं त इन्द्र गिर्वणो	३४१
इयं त ऋत्वियावती	३१४
इयं ते नव्यसी	१३५०
इयमु ते अनुष्टुतिं	११७६
इषा मन्दस्वादु ते	१४३८
इषिरेण ते मनसा	१०३०
इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं	१६५२
इष्टा होत्रा असृक्षते	१५६४
इह त्या पुरुभूतमा देवा	५३१
इह त्या सधमाद्या युजानः	३६४
इह त्या सधमाद्या हरी	७४३,१५६५
इह त्वा गोपरीणसा	९५४
इहा गतं वृषण्वसू	१३३५
इहि तिस्रः परावतः	७३६
ईळिष्वा हि प्रतीव्यं	५४७
ईळे गिरा मनुर्हितं	४६८
ईशिषे वार्यस्य हि	९१८
उक्थं चन शस्यमानं	४८
उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां	१६०७
उक्षान्नाय वशान्नाय	८७८
उग्रं युयुज्म पृतनासु	११५०
उग्रं न वीरं नमसोप	१०४४
उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरंदरो	११४८
उचथ्ये वपुषि यः	१०००
उज्जातमिन्द्र ते शव	११६६
उत ते सुष्टुता हरी	३६०
उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं	१४७५
उत त्यदाश्वश्व्यं	१८४
उत त्या दैव्या	४३३
उत त्वं मघवञ्छृणु	९३६
उत त्वाग्ने मम स्तुतो	८८४
उत त्वा धीतयो मम	९२२
उत त्वा नमसा वयं	८७९
उत त्वाबधिरं वयं	९४७
उत त्वा भृगुवच्छुचे	८८०
उत त्वा मदिते महि	१२२९
उत नः कर्णशोभना	१४००
उत नः पितुमा भर	७२२
उत नः सिन्धुरपां	६२०
उत नो गोमतस्कृधि	७२३
उत नो गोमतीरिषं	१३०
उत नो दिव्या इष	१४२
उत नो देव देवाँ	१३६०
उत नो देव्यदितिः	६१६
उत ब्रह्मण्या वयं	१९३
उत मे प्रयियोर्वयियो	४८४
उत सु त्ये पयोवृधा	७६
उत स्या नो दिवा	४३२
उत स्या श्वेतयावरी	६४८
उत स्वराजे अदितिः	३१८
उतो न्वस्य जोषमाँ	१५८१
उतो न्वस्य यत् पदं	१३२५
उतो न्वस्य यन्महत्	१३१३
उतो पतिर्य उच्यते	३४६
उत्तिष्ठन्नोजसा सह	१३८४
उत् ते बृहन्तो अर्चयः	९०४
उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः	११८१
उदग्ने तव तद् घृता	८७७
उदग्ने शुचयस्तव	९१७
उदस्य शोचिरस्थाद्	५५०
उदानट् ककुहो दिवं	२०८
उदिता यो निदिता	१७१३
उदीरयन्त वायुभिः	२११
उदीराथामृतायते	१३२६
उदु तिष्ठ स्वध्वर	५५१
उदु त्ये अरुणप्सव	२१५
उदु त्ये मधुमत्तमा	९१
उदु ष्य वः सविता	६६७
उदु ष्य शरणे दिवो	६२५
उदु स्वानेभिरीरत	२२५
उदू षु णो वसो महे	१२८६
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य	३७८
उद्वेदभि श्रुतामघं	१५४२
उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं	१२६६
उप क्रमस्वा भर	१४३३
उप त्वा कर्मन्नूतये	५१२
उप त्वा जामयो गिरो	१६९३
उप त्वा जुह्वो मम	९०५
उप नो यातमश्विना	६३७
उप नो वाजिनीवसू	५३५
उप नो हरिभिः सुतं	१५७२
उप ब्रह्मं वावाता	११४
उपमं त्वा मघोनां	१०७९
उप मा षड् द्वाद्वा	१२५४
उप स्तृणीतमत्रये	१३२८
उप स्वसेषु बप्सतः	१३२२
उपह्वरे गिरीणां संगथे	१८८
उपो हरिणां पतिं	५९०
उभयं शृणवच्च न	११३९
उभा हि दस्रा भिषजा	१४७२
उरु णस्तन्वे तन	१२५२
उरुं नृभ्य उरुं गव	१२५३
उरुष्या णो मा परा	१२९९
उशना काव्यस्त्वा	५६३
उशना यत् परावत	२३४
ऊर्जो देवाँ अवस्योजसा	८०८
ऊर्जो नपातं सुभगं	४५१
ऊर्जो नपातमा हुवे	९११
ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे	९४२
ऋजमुक्षण्यायने	९२८
ऋज्राविन्द्रोत आ ददे	१२५५
ऋतावानमृतायवो	५५५

ऋतावाना नि षेदतुः ६१४
ऋतेन देवः सविता १४७६
ऋते स विन्दते युधः ६७६
ऋदूदरेण सख्या सचेय १०३३
ऋधगित्था स मर्त्यः १६६५
ऋभुक्षणं न वर्तव ९५९
ऋभुमन्ता वृषणा ७९६
ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा ११०
ऋषिर्हि पूर्वजा असि २०१

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध १११०
एकया प्रतिधापिबत् १३९०
एकराळस्य भुवनस्य ८१५
एतत् त इन्द्र वीर्यं १०८७
एता च्यौत्नानि ते कृता १३९५
एतावतश्चिदेषां सुम्नं २२३
एतावतस्त ईमहे १०४७
एतावतस्ते वसो १०५७
एतावद् वां वृषण्वसू १४८
एते त्ये वृथगग्नय ८७२
एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं १५९४
एतोन्विन्द्रं स्तवाम सखायः ५९५
एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं १४३०
एदु मध्वो मदिन्तरं ५९२
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत ५८९
एन्द्र नो गधि प्रियः १६३६
एन्द्र याहि पीतये ७५७
एन्द्र याहि मत्स्व २३
एन्द्र याहि हरिभिः ७६४
एवा नूनमुप स्तुहि ५९९
एवा पातिस्तुवीमघ १५३७
एवारे वृषभा सुते ९३८
एवा वन्दस्व वरुणं ८६३
एवा वामह्व ऊतये (इन्द्राग्नी) ८२८
एवा वामह्व ऊतये (नासत्या) ८६७
एवा ह्यसि वीरयुः १५३३
एवेदेष तुविकूर्मिः ६९५
एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो ८५१
एष एतानि चकारेन्द्रो ६८
एह वां प्रुषितप्सवो १५४

एह हरी ब्रह्मयुजा ६१
एहि प्रेहि क्षयो दिवीवि ११८४
ऐतु पूषा रयिर्भगः ७०७
ऐषु चेतद्वृषण्वती १२५८
ओजस्तदस्य तित्विषे १६५
ओ त्यमह्व आ रथं ५२९
ओ षु प्र याहि वाजेभिः ५३
ओ षु वृष्णः प्रयज्यून् २८१
और्वभृगुवच्छुचि १६८४

क ईं वेद सुते सचा ७५१
ककुहं चित् त्वा कवे ९४४
कण्वा इन्द्रं यदक्रत १६३
कण्वा इव भृगवः ९२
कण्वास इन्द्र ते मति २९१
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् ७४७
कथा नूनं वां विमना १४७३
कदत्विषन्त सूरयः १५८२
कद्धा गच्छाथ मरुतः २३८
कदा चन प्र युच्छस्य १०७५
कदा चन स्तरीरसि १०६५
कदा त इन्द्र गिर्वण ३५९
कदा वां तौग्र्यो विधत् १४२
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त ९०
कदू न्वस्याकृत १२१३
कदू महीरधृष्टा अस्य १२१४
कद्ध नूनं कधप्रियो २३९
कद्धो अद्य महानां १५८३
कं ते दाना असक्षत ११८९
कन्नव्यो अतसीनां ८९
कन्या वारवायती १५०२
कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेः १३६५
कथा ते अग्ने अङ्गिरः १४५७
कथा त्वं न ऊत्याभि १५६०
कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यो १२९२
कविमिव प्रचेतसं १४५५
कस्य नूनं परीणसो १४६०
कस्य वृषा सुते सचा १५६१
कस्य स्वित् सवनं वृषा ११८८
किमङ्ग रध्रचोदनः १४११

किमन्ये पर्यासते २५२
किमिदं वां पुराणवत् १३३६
कुविच्छकत् कुवित् करत् १५०५
कुवित् सु नो गविष्टये १३६९
कुह स्थः कुह जग्मथुः १३२९
कृष्णा रजांसि पत्सुतः ८७३
केतेन शर्मन् त्सचते ११३६
को नु मर्या अमिथितः ९६७
क्रत्व इत् पूर्णमुदरं १४०४
क्रीळन्त्यस्य सूनृता ३४५
क्व नूनं सुदानवो २२८
क्व स्य वृषभो युवा ११८७
क्वेयथ क्वेदसि ७
क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं ७९८
क्षपाय त्वमवसि न ८९८
क्षेति क्षेमेभिः साधुभिः १४६२
क्षेमस्य च प्रयुजश्च ८१७
खे रथस्य खेऽनसः १५०८
गच्छतं दाशुषो गृहं १४६८
गर्भो यज्ञस्य देवयुः ३१५
गव्यो षु णो यथा पुरा ९८२
गाथश्रवसं सत्पतिं ७२
गाव उपावतावतं १३१९
गावश्चिद्घा समन्यवः ५०५
गावो न यूथमुप यन्ति १००२
गिरयश्चिन्नि जिहते २४२
गिरश्च यास्ते गिर्वाहः ६४
गिरा वज्रो न संभृतः १५५०
गिरो जुषेथामध्वरं ७८७
गुहा सतीरुप त्मना १९८
गृणे तदिन्द्र ते शव ११६४
गोभिर्यदीमन्ये अस्मन् ४०
गोभिर्वाणो अज्यते ४९२
गोधायति मरुतां १५७६
घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः १११५
घ्नन् मृध्राण्यप द्विषो ८९३
चरन् वत्सो रुशन्निह १३१२
चित्र इद् राजा राजका ५२८
छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय १४६७

जमानो शतक्रतु	१३८७
जमासो वृक्तबर्हिषो	१३८
जनिता दिवो जनिता	८०९
जनिताश्वानां जनिता	८१०
जयतं च प्र स्तुतं	७९२
जयेम कारे पुरुहूत	५२२
जाम्यतीतपे धनु:	१३११
जिह्वाभिरह नन्नमद्	८७५
जीवान् नो अभि	१२२४
जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा	९०८
जुषेथां यज्ञमिष्टये	८२३
जुषेथां यज्ञं बोधतं	७८५
जुहुराणा चिदश्विना	६३५
ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय	५७
ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं	११११
त इद् वेदिं सुभग	४६५
त उग्रासो वृषण	४९६
तं वो दस्ममृतीषहं	१४८३
तं वो महो महाय्यं	१२८५
तं वो वाजानां पतिं	५९४
तं शिप्रीता सुवृक्तिभिः	८४९
तं शिशीता स्वध्वरं	८५०
तं सुष्टुत्या विवासे	४०१
तं हि स्वराजं वृषभं	११४०
तं हुवेम यतस्रुचः	५६६
तं गूर्धया स्वर्णरं	४४८
तं घेमित्था (अर्धं चिद)	१२७६
तत्तदग्निर्वयो दधे	८३३
ततो यज्ञो अजायत	१४९४
तत् ते सहस्व ईमहे	९००
तत्त्वा यामि सुवीर्यम्	८५
तन्नो अपि प्राणीयत	११०३
तत् सु नः शर्म यच्छता	४३७
तत् सु नः सविता भगो	४२८
तत्सु नो नव्यं सन्यस	१२३७
तत्सु नो विश्वे (मरुतः)	१५७८
तत् सूर्यं रोदसी उभे	६२७
तदस्य शुष्मसा भर	४६२
तदश्वा चित्त उक्थिनो	३१२
तद्दक्षाय तवसे	१०२१
तदिद् रुद्रस्य चेतति	३५७
तदिन्द्राव आ भर	६०१
तद्धाना अवस्यवो	११७८
तद् वार्यं वृणीमहे	६१९
तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो	१६०८
तं तमिद्राधसे मह	१२४७
तं ते मदं गृणीमसि	३८९
तं ते यवं यथा गोभिः	३७
तं त्वजनन्त मातरः	१६९७
तं त्वा मज्मेषु वाजिनं	८८७
तं त्वा यज्ञेभिरीमहे	१२५०
तं त्वा वयं हवामहे	८९०
तं त्वा हुवीष्मती:	९८७
तं नेमिमृभवो यथा	१३६३
तन्न ऋतमिन्द्र शूर	१६३२
तमच्छ राधसे महे	११९२
तमर्कभिस्तं सामभिः	४०७
तमर्वन्तं न सानसिं	१६९२
तमह्वे वाजसातय	३४०
तमागन्म वाजसातय	३४०
तमागन्म सोभरयः	४७९
तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति	४०४
तमिद् धनेषु हितेषु	४०३
तमिद् विप्रा अवस्यवः	३५४
तमिन्द्रं वाजयामसि	१५४८
तमिन्द्रं जोहवीमि	१६३०
तमिन्द्रं दानमीमहे	९७८
तमीळिष्व य आहुतो	८८९
तमीमहे पुरुष्टुतं	३६१
तमु त्वा नूनमसुर	१५०१
तमु त्वा नूनमीमहे	६०२
तमु ष्टवाम य इमा	१६०२
तमु ष्टवाम यं गिर	१५९३
तमू षु समना गिरा	८५३
तं मर्जयन्त सुक्रतुं	१४६१
तम्वभि प्र गायत	३८६
तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं	१५१३
तरणिं वो जनानां	१५८
तरोभिर्वो विदद्वसुं	१२०५
तव क्रत्वा सनेयं	४७६
तव त्यदिन्द्रियं बृहत्	३९२
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं	३९३
तव द्रप्सो नीलवान्	४७८
तव वायवृतस्पते	६५१
तवाहमग्न ऊतिभिः	४७५
तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत	१८२
तवेदिन्द्राहमाशसा	१४०७
तवेदु ताः सुकीर्तयो	९६३
तस्मिन् हि सन्त्यूतयो	९७९
तस्मै नूनमभिद्यवे	१३६४
तस्य द्युमाँ असद् रथो	६९९
तस्येदर्वन्तो रंहयन्त	४५३
ता अस्य सूददोहसः	१२५२
तां आशिरं पुरोळाशं	४५
तान् वन्दस्व मरुतस्तां	४९८
ताभिरायातं वृषणोप	५४०
ताभिरायातमूतिभिः	१४५
ता माता विश्ववेदसा	६०९
ता मे अश्विना सनीनां	१५८
ता मे अश्व्यानां	६२९
ता वां विश्वस्य गोपा	६०७
ता वामद्य हवामहे	६३३
ताविदा चिदहानां	५४१
ताविद्दोषा ता उषसि	५४२
ता सुदेवाय दाशुषे	१२७
ता हि मध्यं भराणां	८४२
तिग्मजम्भाय तरुणाय	४६९
तिग्ममायुधं मरुतामनीकं	१६०५
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम् (?)	६८७
ति वो वृषन्तमो	४९१
तीव्राः सोमास आ गहि	१४३७
तुचे तनाय तत्	४४३
तुभ्यं सोमाः सुता इमे	१५६६
तुभ्यं येत् ते जना इमे	८९६
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम	८८५
तुभ्यायमद्रिभिः सुतो	१४४०
तुभ्येदिन्द्र मदस्वते	१३८२

तुरण्यवो मधुमन्तं १०६८
तुरीयं नाम यज्ञियं १४२५
तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं १३९७
तुविग्रीवो वपोदर: ४१८
तुविशुष्म तुविक्रतो १२४२
तुतुजानो महेमते ३४८
ते घेदग्ने स्वाध्यो ये ४६४
ते घेदग्ने स्वाध्योऽहाविश्वा ८९७
ते जानत स्वमेक्यं १३२१
ते न आस्नो वृकाणां १२३३
ते न: सन्तु युज: सदा १४४६
तेन नो वाजिनीवसू परावत: १५१
तेन नो वाजिनीवसू पश्वे १४१
तेन स्तोतृभ्य आ भर १३०८
ते नस्त्राध्वं ते ६९५
ते नो गोपा अपाच्या: ६८०
ते नो नावमुरुष्यत ६१७
ते नो भद्रेण शर्मणा ४४२
तेषां हि चित्रमुक्थ्यं १२३२
ते हिन्विरे अरुणं जेन्यं १६७०
ते हि पुत्रासो अदिते: ४३७
ते हि ष्मा वनुषो नरो ६२१
तोशासा रथयावना ८२१
त्यं चित् पर्वतं गिरिं ११८५
त्यं नु मारुतं गणं १५८७
त्यमु व: सत्रासाहं १५१५
त्यान् नु क्षत्रियाँ अव १२२०
त्यान् नु पूतदक्षसो १५८५
त्यान् नु ये वि रोदसी १५८६
त्या न्व श्विना हुवे २९१
त्रय इन्द्रस्य सोमा: ४१
त्रय: कोशासश्चोतन्ति ४२
त्रातारो देवा अधि १०२७
त्रि:षष्टिस्त्वा मरुतो १६०४
त्रिकद्रुकेषु चेतनं (नो गिर:) १५२९
त्रिकद्रुकेषु चेतनं (नो गिर:
सधावृधम्) ३५५

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता १४७०
त्रीणि पदान्यश्विनो २६७
त्रीणि शतान्यर्वतां २०७
त्रीणि सरांसि पृश्नयो २१८
त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे ६८९
त्वं यविष्ठ दाशुषो १४५६
त्वं रयिं पुरुवीरं १२९८
त्वं वरो सुषाम्णे ५७४
त्वं वृष जनानां ३९५
त्वं सोम तनूकृद्भ्यो १४१०
त्वं सोम पितृभि: संविदानो १०३६
त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो १६१२
त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो १६१३
त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां १६१४
त्वं ह यद्यविष्ठ्य १३६१
त्वं हि न: पिता वसो १६४३
त्वं हि नस्तन्व: सोम १०३२
त्वं हि राधस्पते राधसो ११५२
त्वं हि वृत्रहन्नेषां १५७४
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र १६३८
त्वं हि सत्यो १४९९
त्वं हि सुप्रतूरसि ५७५
त्वं हि स्तोमवर्धन ३८१
त्वं ह्यग्ने अग्निना ८८१
त्वं ह्येहि चेरवे ११४५
त्वं चित्ती तव दक्षै: १४११
त्वं दाता प्रथमो १४९७
त्वं न इन्द्र ऋतयु १२८७
त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो १६४२
त्वं न इन्द्रासां हस्ते १२८९
त्वं न: पश्चादधरादुत्तरात् ११५४
त्वं न: सोम विश्वतो १०३८
त्वं नो अग्न आयुषु ८३९
त्वं नो अग्ने महोभि: १२९३
त्वं नो अस्या अमतेरुत १२१८
त्वमग्ने बृहद्वयो १६८१
त्वमग्ने व्रतपा असि २९५
त्वमसि प्रशस्यो २९६
त्वमित् सप्रथा अस्य ११२३

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्व १६४९
त्वमिन्द्र यशा अस्य १५००
त्वमिन्द्राभिभूरसि १६३४
त्वमीशिषे सुतानां ११८३
त्वमेतदधारय: १५५४
त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना १६३१
त्वं पुरं चरिष्ण्वं २८
त्वं पुरू सहस्राणि ११४६
त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्ठेन
१६८३
त्वया ह स्विद् युजा वयंप्रति ५२१
त्वयेदिन्द्र युजा वयं १५४०
त्वष्टुर्जामातरं वयं ६५२
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो ३९४
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत १६४४
त्वां हि सत्यमद्रिवो ९७४
त्वां हि सुप्सरस्तमं ६५४
त्वामग्ने मनीषिण ९१९
त्वामिच्छवसस्पते कण्वा १८१
त्वमिदा ह्यो नरो १६४५
त्वामिद्धि त्वायवो १५४१
त्वामिद्यवयुर्मम १४०६
त्वामिद्वृत्रहन्तम (हवन्ते) १९७
त्वामिद् वृत्रहन्तम सुतावन्तो १५७१
त्वावत: पुरूवसो ९७३
त्वे वसूनि संगता १४०५
त्वे सु पुत्र शवसो १५२२
त्वोतासस्त्वा युजा १२४९
ददि रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ९८७
दधानो गोमदश्ववत् ९७७
दधामि ते मधूनो १६५४
दधामि ते सुतानां ७६८
दध्नं चिद्धि त्वावत: ९६२
दश मह्यं पौतक्रत: ११०१
दश श्यावा ऋधद्रयो ९९५
दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं ५३४
दसा हि विश्वमानुषङ् ६३६
दाता मे पृषतीनां १२०२
दाना मृगो न वारण: ७५२

दानसः पृथुश्रवसः	९९६
दामानं विश्वचर्षणे	५४८
दाशेम कस्य मनसा	१४५८
दिविश्चिद् रोचनाद्	२५१
दिवो मानं नोत्सदन्	११७०
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो	४२०
दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि	१५५१
दुहन्ति सप्तैका	१३१४
दूरादिहेव यत् स	१२२
देवंदेवं वोऽवस इन्द्रं इन्द्रं	३२३
देवंदेवं वोऽवसे देवंदेवं	६६८
देवानामिदवो महत्	१४४५
देवासो हि ष्मा मनवे	६६९
देवीं वाचमजनयन्त	१६६३
देवेभिर्देव्यदिते	४२९
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं	१४८४
द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना	१४७७
द्रप्समपश्यं विषुणे	१६१०
द्विता यो वृत्रहन्तमो	१५७३
धासिं कृण्वान ओषधीः	८७४
धीभिः सातानि काण्वस्य	१२०
धीरो ह्यस्यद्मसद्	९२९
धृषतश्चिद् धृषन्मनः	११६१
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता	३७३
धेनूं जिन्वतमुत जिन्वतं	७९९
नकिः परिष्टिर्मघवन्	१४४८
नकिरस्य शचीनां	७२९
नकिष्टं कर्मणा नशद्	१२८०
नकिष्टं कर्मणा नशन्न	७१३
नकीं वृधीक इन्द्र ते	१४०१
नकीमिन्द्रो निकर्तवे	१४०२
नकीरेवन्तं सख्याय	५२४
नक्षन्त इन्द्रमवसे	१०८८
न घेमन्यदा पपन	५१
न तं तिग्मं चन त्यजो	१०१२
न तमग्ने अरातयो	१२९९
न तस्य मायया	५६१
न ते वर्तास्ति राधस	३७४
न ते सव्यं न दक्षिणं	५८१
न त्वा देवास आशत	१६२६
न त्वा बृहन्तो अद्रयो	१४८५
न त्वा रासीयाभिशस्तये	४७३
नद्यं व ओदतीनां	१२६१
न देवानामपि ह्नुतः	७०३
न द्याव इन्द्रमोजसा	१७५
न नूनं ब्रह्मणामृणं	७३०
नपाता शवसो महः	६११
नपातो दुर्गहस्य मे	१२०४
न पापासो मनामहे	११४९
नमस्ते अग्न ओजसे	१३६८
नमो वाके प्रस्थिते अध्वरे	८०४
न यं विविक्तो	३२८
न यं शुक्रो न दुराशी	३९
न यः संपृच्छे न	१६६८
न यजमान रिष्यसि	७१२
न यं दुध्रा वरन्ते	१२०६
न यस्य ते शवसान	१२४८
न युष्मे वाजबन्धवो	१२५९
नव यो नवतिं पुरो	१५४३
न सीमदेव आप	१२८४
नहि ते अग्ने वृषभ	११३२
नहि ते शूर राधसो	९८३
नहि त्वा शूर देवा	१४२९
नहि मन्युः पौरुषेय	१२९४
नहि मे अस्त्यघ्न्या	१६९९
नहि वां ववयामहे	८४१
नहि वो अस्त्यर्भको	६९३
नहि षस्तव नो मम	७६०
नहि ष्म यद्ध वः पुरा	२२९
नह्यङ्ग नृतो त्वद्	५८८
नह्यङ्ग पुरा चन	५९१
नह्यन्यं बळाकरं	१४१७
नास्माकमस्ति तत् तर	१२३८
निखातं चिद्यः पुरुसंभृतं	१२०८
नि तिग्ममभ्यंशुं	१३०९
निमिषश्चिज्जवीयसा	१३२७
नि यद् यामाय वो गिरि	२१३
निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो	९६
निराविध्यद्गिरिभ्य आ	१३९२
निरिन्द्र बृहतीभ्यो	९५
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं	१७४
नि षु ब्रह्म जनानां	१३४
निष्कं वा घा कृणवते	१०२०
निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्ता	१११३
नू अन्यत्रा चिदद्रिवः	५८७
नूनं इदिन्द्र ते वयं	५१७
नूनं तदिन्द्र दद्धि नो	३४२
नूनमर्च विहायसे	५७०
नू मे गिरो नासत्या	१४७१
नृभिर्धूतः सुतो अश्नै	३६
नृवद् दस्रा मनोयजा	१२३
नेमिं नमन्ति चक्षसा	१६२९
नेहं भद्रं रक्षस्विने	१०१७
न्यग्ने नव्यसा वच	८३१
न्यर्बुदस्य विष्टपं	७१७
पत्नीवन्तः सुता इम	१५६३
पथ एकः पीपाय	६८८
पदं देवस्य मीळ्हुषो	१३९५
पदः पर्णीरराधसो	११८२
पनाय्यं तदश्विना कृतं	११०७
पन्य आ दर्दिरच्छता	७३२
पन्य इदुप गायत	७३१
पन्यंपन्यमित् सोतार	५९
पप्रथानं जातवेदसं	१३४६
परस्या अधि संवतो	१३७३
पराकात्ताच्चिदद्रिव	१५३५
परा गावो यवसं	११८
परि णो वृणजन्नघा	१०१०
परि त्रिधातुरध्वरं	१३१६
परि यो रश्मिना	६२४
परिह्वृतेदना जनो	१०११
परोमात्रमृचीषम मिन्द्रमुग्रं	१२४६
पर्षि दीने गभीर आँ	१२३०
पाकत्रा स्थन देवा	४४०
पाता वृत्रहा सुतं	६०
पान्तमा वो अन्धस	१५०९
पारावतस्य रातिषु	७८१

पार्षद्वाण: प्रस्कण्वं १०६०
पाहि गायान्धसो मद ७४८
पाहि नो अग्न एकया ११२७
पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्ण: ११२८
पितुर्न पुत्र: सुभृतो ४७४
पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना १४८०
पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना १४७८
पिबतं च तृष्णुतं ७९१
पिबन्ति मित्रो अर्यमा १५८०
पिब स्वधैनवानां ७३४
पिबा त्वस्य गिर्वण: २६
पिबा सुतस्य रसिनो ७७
पिबा सोमं मदाय १५९०
पिबेदिन्द्र मरुत्सखा १३८३
पुत्रिणा ता कुमारिणा ७०४
पुरं न धृष्णवा रुज १३४३
पुराग्ने दुरितेभ्य: ९३०
पुरुत्रा चिद्धि वां नरा १३७
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि ३०२, ८८८
पुरुप्रिया ण ऊतये १२५
पुरुमन्द्रा पुरूवसू २५६
पुरुहूतं पुरुष्टुतं १५१०
पुरोळाशं यो अस्मै ६९८
पुरोळाशं नो अन्धस १३९८
पूर्वापुषं सुहवं ५३०
पूर्वीश्चिद्धि त्वे १२१६
पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातय: ८४८
पूषा विष्णुर्हवनं मे १०९०
पृदाकुसानुर्यजतो ४२५
पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनी १०७०
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् ११४४
प्र कृतान्यृजीषिण: ७१५
प्र चक्रे सहसा सहो १०५
प्रचेतसं त्वा कवे १६९८
प्रजामृतस्य पिप्रत: १६२
प्रजा ह तिस्रो १६७८
प्रणेतारं वस्यो ४०८
प्र तमिन्द्र नशीमहि १६९
प्रति ते दस्यवे वृक ११००
प्रति त्वा शवसी वदद् ९३५
प्रति प्राशव्याँ इत: ७०२
प्रति वो दृषदञ्जये ४९३
प्रपि श्रुताय वो धृषत् ७१८
प्रत्नं होतारमीड्यं ५०७
प्रत्नवज्जनया गिर: ३४४
प्रत्नो हि कमीड्यो ३०४
प्रथमं जातवेद ५६८
प्र दैवोदासो अग्नि: १७०४
प्र द्युम्नाय प्र शवसे २८७
प्र नूनं धावता पृथङ् १६५९
प्र पूषणं वृणीमहे ११५
प्रप्र वस्त्रिष्टुभं १२६०
प्र बोधयोषो अश्विना २८४
प्र ब्रह्माणि नभाकवद् ८४४
प्रभङ्गं दुर्मतीना ९९१
प्रभङ्गी शूरो मघवा ११५६
प्रभर्ता रथं गव्यन्त ६९
प्र भ्रातृत्वं सुदानवो १४५२
प्र मंहिष्ठाय गायत १७१०
प्र मित्राय प्रार्यम्णे १६६९
प्र यं राये निनीषसि १७०६
प्र यद् वस्त्रिष्टुभमिषं २०९
प्र यो ननक्षे अभ्योजसा १०६६
प्र यो वां मित्रावरुणा १६६७
प्र व इन्द्राय बृहते १४९१
प्र व उग्राय निष्टुरे ७४१
प्र व: शंसाम्यद्रुह: ६७०
प्र वां स्तोमा: २६६
प्र वीरमुग्रं विविचिं १०५४
प्रशंसमानो अतिथिर्न ४५५
प्र स क्षयं तिरते ६७१
प्र सप्तवध्रिराशसा १३३४
प्र सम्राजं चर्षणीनां ३९९
प्र सु श्रुतं सुराधस १०४९
प्र सु स्तोमं भरत १६५५
प्र सू न एत्वध्वरो ६५८
प्र सो अग्ने तवोतिभि: ४५७
प्र स्तोषदुप गासिष १८३१
प्र हि रिरिक्ष ओजसा १४८७
प्रातर्यावभिरा गतं ८२६
प्राव स्तोतारं मघव ८०७
प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतं २६०
प्रास्मै गायत्रमर्चत ८
प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ ८१३
प्रेष्ठं वो अतिथिं १४५४
प्रेष्ठमु प्रियाणां १७१२
प्रो अस्मा उपस्तुतिं ११५७
बण् सूर्य श्रवसा महाँ १६७६
बळृत्वियाय धाम्न ११७९
बण्महाँ असि सूर्य १६७५
बभ्रुरेको विषुण: सूनरो ६८३
बिभया हि त्वावत ९६५
बृबदुक्थं हवामहे ७२४
बृहदिन्द्राय गायत १४८९
बृहद् वरूथं मरुतां ४४५
बृहन्निदिध्म एषां ९३२
बोधिन्मना इदस्तु नो १५५९
ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं ७९७
ब्रह्माणस्त्वा वयं ४१३
ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वण: १४९८
भद्रं भद्रं न आ भर १५६६
भद्रं मन: कृणुष्व ४६७
भद्रो नो अग्निराहुतो ४६६
भिन्धि विश्वा अप द्विष: ९७०
भूयाम ते सुमतौ ७८
भूरिभि: समह ऋषिभि: १२९१
भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं १०९५
मंहिष्ठा वाजसातमेषा १२६
मक्षू देववतो रथ: ७११
मत्स्वा सुशिप्र १६४६
मदेनेषितं मदं २१
मनोजवसा वृषणा ५४४
मनोजवा अयमान १६६०
मन्दन्तु त्वा मघवन् १०४
मन्दस्वा सु स्वर्णर १९९
मन्द्रं होतारमृत्विजं ९०६
मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियाना १६००

मम त्वा सूर	२९
मरुतो मारुतस्य	५०७
मरुतो यद्ध वो दिवः	२१९
मरुत्वन्तमृजीषिणं	१३७९
मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः	१३८१
मर्तश्चिद् वो नृतवो	५०६
मर्ता अमर्त्यस्य ते	२९९
मह उग्राय तवसे	१६०६
महः सु वो अरमिषे	९८९
महाँ इन्द्रो य ओजसा	१६१
महान्तं महिना वयं	३२७
महान्ता मित्रावरुणा	६१०
महि वो महतामवो (दाशुषे)	१००६
महि वो महतामवो (अर्यमन्)	१२२३
महीरस्य प्रणीतयः	३२५
महे चन त्वामद्रिवः	५
महो विश्वाँ अभि	५७२
माकिरेना पथा गात्	१६०
मा चिदन्यद् वि शंसत	१
मा चत्वार आशवः	१३५७
माता रुद्राणां दुहिता	१६७९
मा ते अमाजुरो	५२५
मा ते गोदत्र निरराम	५२६
मा त्वा मूरा अविष्यवो	९५३
मा त्वा सोमस्य गल्दया	२०
मा न इन्द्र परा वृणक्	१६२४
मा न इन्द्र पीयत्नवे	४९
मा न इन्द्राभ्यादिशः	११३९
मा न एकस्मिन्नागसि	९६४
मा नः समस्य दूढ्यः	१३६७
मा नः सेतुः सिषेदयं	१२२७
मा नः साम मं वीविजो	१४१५
मा नो अस्मिन् महाधने	१३७०
मा नो गव्येभिरश्व्यैः	१३८०
मा नो देवानां विशः	१३६६
मा नो मर्ताय रिपवे	११२६
मा नो मृचा रिपूणां	१२२८
मा नो रक्ष आ	११३८
मा नो हृणीतामतिथिः	१७१४
मा नो हेतिर्विवस्वतः	१२३९
मा भूम निष्ट्या इवे	१३
मा भेम मा श्रमिष्मो	१०७
मायाभिरुत्सिसृप्सत	३८४
मा सख्युः शूनमा विदे	९६६
मा सीमवद्य आ भाग्	१४२४
मित्रा तना न रथ्या	६०८
मित्रावरुणवन्ता उत	७९४
मित्रो नो अत्यंहति	१२२१
मो ते रिषन्ये अच्छोक्तिभिः	१७१५
मो षु ब्रह्मेव	१५३८
मो ष्वद्य दुर्हणावान्	५४
य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो	१०८०
य आस्वत्क आशये	८५८
य इन्द्र चमसेष्वा	१४४२
य इन्द्र यतयस्त्वा	१७८
य इन्द्र सस्त्यव्रतो	१६२०
य इमे रोदसी मही	१७७
य उक्था केवला दधे	१०७१
य उक्थेभिर्न विन्धते	१०६१
य उग्रः सन्ननिष्टृतः	७५३
य उग्रः फलिगं	७३९
य ऋक्षादंहसो	६०३
य ऋज्रा मह्यं मामहे	९३२
य ऋज्रा वातरंहसो	७८०
य ऋते चिदभिश्रिषः	१२
य ऋते चिद्गास्पदेभ्यः	७३
य ऋष्वः श्रावयत्सखा	९८४
य एको अस्ति दंसना	२७
यं विप्रा उक्थवाहसो	३१७
यः ककुभो निधारयः	८५५
यः कृन्तदिद् वि योन्यं	९६०
यः शक्रो मृक्षो अश्व्यो	१२०३
यः श्वेताँ अधिनिर्णिज	८६१
यः संस्थे चिच्छतक्रतु	७२५
यः समिधा य आहुती	४५२
यः सुषव्यः सुदक्षिण	७४९
यः सृबिन्दमनर्शनिं	७१६
यच्च गोषु दुष्ष्वप्न्यं	१०१९
यच्चिद्धि ते अपि व्यथिः	९४९
यच्चिद्धि त्वा जना इमे	३
यच्चिद्धि वां पुर ऋषयः	२५०
यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र	११९९
यच्छक्रासि परावति (अतस्त्वा)	१६२१
यच्छक्रासि परावति (यद्वा)	३५२
यच्छुश्रूया इमं हवं	९४८
यजध्वैनं प्रियमेधा	७१
यजिष्ठं त्वा ववृमहे	४५०
यज्जायथा अपूर्व्य	१४९३
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्	३७५
यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा	८२०
यज्ञानां रथ्ये वयं	९२७
यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं	५५४
यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं	३२४
यज्ञो हीळो वो अन्तर	४४४
यं जनासो हविष्मन्तो	१३४५
यत इन्द्र भयामहे	११५१
यत् तुदत् सूर एतशं	११
यत् त्वा पृच्छादीजानः	६०६
यत् पाञ्चजन्यया	११७५
यत् सिन्धौ यदसिक्न्यां	५०९
यत्सोममिन्द्र विष्णवि	३२०
यत् स्थो दीर्घप्रसद्मनि	२८९
यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि	१०४८
यथा कण्वे मघवन् मेधे	१०५८
यथा कलां यथा शफं	१०२२
यथा गौरो अपा कृतं	२०३
यथा चित् कण्वमावतं	१४६
यथा चिद् वृद्धमतसं	१२५५
यथा नो मित्रो अर्यमा	७०९
यथा मनौ विवस्वति	१०६९
यथा मनौ सांवरणौ	१०५९
यथा रुद्रस्य सूनवो	२०१
यथा वरो सुषाम्णे	६०४
यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्	६८१

यथा वामत्रिरश्विना ८९६
यथोत् कृत्व्ये धने १४७
यदग्ने कानि कानि चित् १७००
यदग्ने दिविजा अस्य ८९५
यदग्ने मर्त्यस्त्वं ४७२
यदग्ने स्यामहं त्वं ९२३
यदङ्ग तविषीयवो २१०
यदङ्ग तविषीयस १८६
यदत्त्युपजिह्विका १७०१
यददो दिवो अर्णव ६४७
यदद्य कच्च वृत्रहन् १५४५
यदद्य कर्हि कर्हि चित् १३३०
यदद्य वां नासत्योक्थैः २७६
यदद्य सूर उदिते ६७६
यदद्य सूर्य उद्यति ६७४
यदद्याश्विनावपाग् २९३
यदद्याश्विनावहं २८०
यदध्रिगावो अध्रिगू ५३९
यदन्तरिक्षे पतथः २९४
यदन्तरिक्षे यद्दिवि २६९
यदप्सु यद् वनस्पतौ २७२
यदस्य धामनि प्रिये २३६
यदस्य मन्युरध्वनीद् १७३
यदाजिं यात्याजिकृत् ९३७
यदा ते मारुतीर्विशः ३३३
यदा ते विष्णुरोजसा ३३१
यदा ते हर्यता हरी ३३२
यदापीतासो अंशवो २८६
यदावीर्यदपीच्यं १०१८
यदा वृत्रं नदीवृतं ३३०
यदा सूर्यममुं दिवि ३३४
यदिन्द्र पृतनाज्ये ३२९
यदिन्द्र प्रागपागुदङ् (आ याहि) ११९३
यदिन्द्र प्रागपागुदङ् (सिमा) १०१
यदिन्द्र मन्मशस्त्वा १९७
यदिन्द्र राधो अस्ति ते १०९१
यदिन्द्राग्नी जना इमे ८४६
यदिन्द्राहं यथा त्वं ३७१
यदिन्द्रेण सरथं २७९
यदि प्रवृद्ध सत्पते ३१२
यदि मे रारणः सुत ७२०
यदि मे सख्यमावर ३५८
यदि स्तोमं मम श्रवत् १५
यदी सुतास इन्दवो १०५१
यदी घृतेभिराहुतो ४७०
यदुषो यासि भानुना २८५
यदेषां पृषती रथे २३६
यद् दधिषे मनस्यसि ९६१
यद्देवाः शर्म शरणं १०१५
यद्द्याव इन्द्र ते शतं १२८२
यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे १०४५
यद्ध नूनं परावति १०५५
यद्वः श्रान्ताय सुन्वते १२२५
यद्वा उ विश्पतिः शितः ५५९
यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि १६६२
यद् वां कक्षीवाँ उत २७७
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते १५४६
यद्वा प्रस्रवणे दिवो ११९४
यद् वाभिपित्वे असुरा ६७५
यद् वा यज्ञ मनवे २९०
यद् वा रुमे रुशमे १०२
यद्वावन्थ पुरुष्टुत १२०९
यद् वा शक्र परावति ३२१
यद्वासि रोचने दिवः १६२२
यद्वासि सुन्वतो वृधो ३२२
यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे ९७१
यं ते श्येनः पदाभरत् १४४४
यं त्वं विप्र मेधसाता १२९७
यं त्वा गोपवनो गिरा १३५४
यं त्वा जनास इन्धते ८९४
यं त्वा जनास ईळते १३५५
यन्नासत्या पराके २८२
यन्नासत्या परावति २५८
यन्नासत्या भुरण्यथो २७३
यन्नूनं धीभिरश्विना २८८
यमादित्यासो अद्रुहः ४८१
यमिन्द्र दधिषे त्वं १६१९
यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः ११०९
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः ९७
ययोरधि प्र यज्ञा २९२
यस्त इन्द्र महीरपः १७६
यस्ते चित्रश्रवस्तमो १५२५
यस्ते नूनं शतक्रत १५२४
यस्ते मदो वरेण्यो ९८०
यस्ते रेवाँ अदाशुरिः ९४५
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् ४२३
यस्ते साधिष्ठोऽवसे १०८५
यस्मा अन्ये दश प्रति ९९
यस्मा अरासत क्षयं १००९
यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचु १०६२
यस्माद्रेजन्त कृष्टय १७०५
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति ४००
यस्मिन् विश्वा अधि १५२८
यस्मिन् विश्वानि काव्या ८५७
यस्मिन् विश्वाश्चर्षणय ६७
यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे १०७४
यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि १०६४
यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र १०७६
यस्य ते अग्ने अन्ये ४८०
यस्य ते नू चिदादिशं १५९२
यस्य ते महिना महः १२४३
यस्य ते विश्वमानुषो ९७२
यस्य ते स्वादु सख्यं १२५१
यस्य त्रिधात्ववृत्तं १६९४
यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु १०७२
यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय ४५७
यस्य द्विबर्हसो ९८७
यस्य वा यूयं प्रति ५००
यस्य श्येता विचक्षणा ८९०

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं ४५८
यस्याजुषन्नमस्विनः १३७२
यस्या देवा उपस्थे १५७७
यस्यानूना गभीरा ४०२
यस्यामितानि वीर्या ५९७
यस्यायं विश्व आर्यो १०९७
या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा १८०
या इन्द्र भुज आभरः १६१८
यातं छर्दिष्पा उत नः २७८
या दंपती समनसा ७०१
या नु श्वेताववो दिव ८४७
याभिः कण्वं मेधातिथिं २६४
याभिः पक्थमवथो ५३८
याभिः सिन्धुमवथ ५०८
याभिर्नरा त्रसदस्यु २६५
या वृत्रहा परावति ९५५
युक्ष्वा हि त्वं रथासहा ६५०
युक्ष्वा हि देवहूतमाँ १३५९
युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम ९३
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य १६४१
युञ्जाथां रासभं रथे १४६९
युध्म सन्तमनर्वाणं १५१६
युयोता शरुमस्मदाँ ४३६
युवं वरो सुषाम्णे ६३२
युवं हि स्मा पुरुभुजेममेधतुं १४७४
युवं कण्वाय नासत्या १४४
युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण ११०५
युवं मृगं जागृवांसं १५७
युवादत्तस्य धिष्ण्या ६४२
युवानं विश्पतिं कविं ९३६
युवां देवास्त्रय एकादशासः ११०६
युवाभ्यां वाजिनीवसू १२४
युवो रथस्य परि ५१२
युवोरु षू रथं हुवे ६३१
युष्मां उ नक्तमूतये २१४
युष्मे देवा अपि ष्मसि १०१३
यूनं ऊ षु नविष्ठया ५०३
यूयं राजानः कश्चित् ४८२
यूयं हि ष्ठा सुदानव (अथा चिद्) १४५३
यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा २२०
ये चर्हिन्ति मरुतः ५०२
ये चिद्धि मृत्युबन्धव ४४७
ये ते सन्ति दशग्विनः ९
ये त्रिंशति त्रयस्परो ६७८
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुः १७२
ये देवास इह स्थन ६९६
ये द्रप्सा इव रोदसी २२४
येन चष्टे वरुणो ४६३
येन ज्योतींष्यायवे ३९०
येन वंसाम पृतनासु ११३०
येन सिन्धुं महीरपो ३०७
येना दशग्वमध्रिगुं ३०६
येनाव तुर्वशं यदु २२६
येना समुद्रमसृजो ८६
ये पातयन्ते अज्मभिः ९९०
येभिस्तिस्रः परावतो १२९
ये मूर्धानः क्षितीनां १२३२
ये वां दंसांस्यश्विना २७१
येषामर्णो न सप्रथो ४९७
येषामावाध ऋग्मिय ५४९
ये सोमासः परावति १५४७
यो अग्निं हव्यदातिभिः ४६०
यो अग्निः सप्तमानुषः ८३७
यो अग्निं तन्वो दमे ९१५
यो अप्सु चन्द्रमा इव १४४३
यो अश्वेभिर्वहते वस्त ९९८
यो अस्मै हव्यदातिभि ५६७
यो दुष्टरो विश्ववार ९८१
योद्धासि क्रत्वा शवसोत १४८६
यो धर्ता भुवनानां ८५६
यो धृषितो योऽवृतो ७५०
यो न इदमिदं पुरा ५१९
यो न इन्दुः पितरो १०३५
यो नः कश्चिद्रिरिक्षति ४३८
यो नः शश्वत् पुराविथा १४१८
योनिमेक आ ससाद ६८४
यो नो दाता वसूनां १०६३
यो नो दाता स नः पिता १०७३
यो नो देवः पुरावतः ३१०
यो म इमं चिदु ९९९
यो मे हिरण्यसंदृशो १५९
यो यजाति यजात इत् ६९७
यो राजा चर्षणीनां १२७८
यो रायोवनिर्महान् ७२७
यो वां यज्ञेभिरावृतो ६४३
यो वां रजांस्यश्विना १३३८
यो वां नासत्यावृषि २५९
यो वामुरुव्यचस्तमं ६४४
यो विश्वा दयते वसु १७०८
यो विश्वान्यभि व्रता ७४२
यो वेदिष्ठो अव्यथिषु ५८
यो व्यतींरफाणयत् १२७२
यो ह वां मधुनो दृतिः १४०
यो हव्यान्यैरयता ४७१
रयिं वामनुगायसं १५५
रथं हिरण्यवन्धुरं १४९
रथिरातो हरयो ये ते १०५६
रथेष्ठायाध्वर्यवः ११३
रथो यो वां त्रिवन्धुरो ५३३
रश्मीरिव यच्छतमध्वरां ८०२
राति यद्वामरक्षसं हवामहे १६७२
रेवां इद् रेवतस्तोता ४७
रोहितं मे पाकस्थामा ९८
वंस्वा नो वार्या पुरु ५७३
वचो दीर्घप्रसद्मनीशे ६२६
वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं १६८०
वज्रमेको बिभर्ति हस्त ६८६
वधान्नु श्रियं नरो ४९१
वपन्ति मरुतो मिहं २१२
वयं घो वृक्तबर्हिषो ६६२
वयं हि त्वा बन्धुमन्तं ५१४
वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो ६३९
वयं हि वां हवामहे विपन्यवो १४८२
वयं च त्वा सुतावन्त ७४५

वयं घा ते अपि ष्मसि	७२१
वयं घा ते अपूर्व्येन्द्र	१२१५
वयं घा ते त्वे इत्	१२१७
वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम	१०९४
वयं तद् वः सम्राज	६७७
वयं ते अस्य वृत्रहन्	५८४
वयमिद्व: सुदानव:	१४५०
वयमु त्वा तदिदर्था	५०
वयमु त्वा दिवा सुते	११८६
वयमु त्वामपूर्व्य	५११
वयमु त्वा शतक्रतो	१५२०
वयमेनमिदा ह्यो	१२११
वरुणो मित्रो अर्यमा	६७९
वरेये अग्निमातपो	१३३३
वर्धस्वा सु पुरुष्टुत	३६२
वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा	१६६६
ववक्षुरस्य केतव	३११
वसुर्वसुपतिर्हि	९२४
वस्याँ इन्द्रासि मे	६
वहन्तु त्वा रथेष्ठां	७५८
वाचमष्टापदीमहं	१३८६
वामं नो अस्त्वर्यमन्	१४४८
वामस्य हि प्रचेतस	१४४९
वायो याहि शिवा	६५३
वार्ण त्वा यव्याभि	१६४०
वावृधान उप द्यवि	२००
वावृधानस्य ते वयं	३७६
वावृधाना शुभस्पती	१३२
वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो	१३७७
वाशीमेको बिभर्ति हस्त	६८५
वास्तोष्पते ध्रुवा	४२४
वाहिष्ठो वां हवानां	१४६
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो	१६६
वि तर्तूर्यन्ते मघवन्	४
विदत् पूर्व्यं नष्टं	१४१३
विद्मा देवा अघानां	१००७
विद्मा सखित्वमुत	५१८
विद्मा हि ते पुरा वयं	१३७४
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि	१४२८
विद्मा हि त्वा धनंजय	९४३
विद्मा हि यस्ते अद्रिव:	१५२६
विद्मा हि रुद्रियाणां	४८७
विद्मा ह्यस्य वीरस्य	५५
विद्युद्धस्ता अभिद्यव:	२३३
वि द्वीपानि पापतन्	४८८
वि नो देवासो अद्रुहो	६६४
विप्रं विप्रासोऽवसे	३००
विप्रं होतारमद्रुहं	९१०
विप्रस्य वा स्तुवत:	४५९
विभिर्द्वा चरत एकया	६९०
विभूतरातिं विप्र	४४९
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व	१६३५
वि यदहेरध त्विषो	१५५५
वि वृत्रं पर्वशो	२३१
विव्यक्थ महिना वृषन्	१५३१
विशां राजानमद्भुतं	८९१
विशोविशो वो अतिथिं	१३४४
विश्वं पश्यन्तो बिभृथा	५१०
विश्वा: पृतना अभिभूतरं	१६२७
विश्वा द्वेषांसि जहि	१०८२
विश्वानरस्य वस्पतिं	१३४४
विश्वाँ अर्यो विपश्चितो	१२०१
विश्वानि विश्वमनसो	५८३
विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना	७८३
विश्वा हि मर्त्यत्वना	१५२१
विश्वे त इन्द्र वीर्यं	११६३
विश्वेत् ता ते सवनेषु	१६५८
विश्वेत् ता विष्णुराभर	१३९६
विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां	९८८
विश्वेषामिह स्तुहि	१६९०
विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो	५६४
विश्वे हि ष्मा मनवे	६५९
विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहा	७८४
वि षु द्वेषो व्यंहति	१२४०
वि षु विश्वा अभियुजो	९३८
वि षू चर स्वधा अनु	७३३
वीळुपविभिर्मरुत०	४८६
वीतिहोत्रा कृतद्वसू	७०५
वृकश्चिदस्य वारण	१२१२
वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे	१२१
वृज्याम ते परि द्विषो	९४०
वृषस्य त्वा स्वसथादीषमाणा	१६०३
वृषण्वश्वेन मरुतो	४९४
वृषणस्ते अभीशवो	७५५
वृषा ग्रावा वृषा मदो	३६१
वृषा त्वा वृषणं हुवे	३७०
वृषायमिन्द्र ते रथ	३६८
वृषा सोता सुनोतु ते	७५६
वेत्था हि निर्ऋतीनां	६००
वेत्यध्वर्युः पथिभी	१६७४
वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे	११७
वैयश्वस्य श्रुत नरो	६४१
व्यन्तरिक्षमतिरन्	३७७
व्ययस्त्वा वसुविदम्	५६२
व्यस्मै अधि शर्म तत्	१००८
शग्धी न इन्द्र यत्त्वा	८७
शग्धी नो अस्य यद्ध	८८
शग्ध्यू षु शचीपत	११४३
शतं वेणून्छतं शुन:	१०९७
शतं श्वेतास उक्षणो	१०९६
शतं दासे बल्बूथे	१००४
शतब्रध्न इषुस्तव	१३९३
शतमहं तिरिन्दिरे	२०६
शतं मे गर्दभानां	११०२
शतानीका हेतयो अस्य	१०५०
शतानीकेव प्र जिगाति	१०४०
शनैश्चिद् यन्तो अद्रिवो	९४१
शं नो भव हृद आ पीत	१०२७
शमग्निरग्निभि: करत्	४३४
शवसा ह्यसि श्रुतो	५७८
शश्वद्धि व: सुदानव	१२३५
शश्वन्तं हि प्रचेतस:	१२३६
शाचिगो शाचिपूजना	४२२
शिक्षा ण इन्द्र राय आ	१५१७
शिक्षा विभिन्दो अस्मै	७५
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं	३७२
शिशानो वृषभो यथा	११३१

शीरं पावकशोचिषं १६९१
शुचिरसि पुरुनिष्ठाः ४३
शृणुतं जरितुर्हवं १४६६
शेषाने वार्या २२
शेषे वनेषु मात्रोः ११३३
शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे ११२४
श्यावाश्वस्य रेभत ८१९
श्यावाश्वस्य सुन्वत ८१२
श्यावाश्वस्य सुन्वतो ८२७
श्येनाविव पतथो ७९०
श्रायन्त इव सूर्यं १६४७
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं १५५७
श्रुष्टी हवं तिरश्च्या १५९१
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे ५६०
षळश्वां आतिथिग्व १२५७
षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासन ९९४
सं या दानूनि येमथुः ६१२
स सर्पः परि षस्वजे ८५४
सखाय आ शिषामहि ५७७
सखायः क्रतुमिच्छत १२९०
सखे विष्णो वितरं १६६४
स गोरश्वस्य वि व्रजं ७१९
सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो १२१०
स चिकेत सहीयसा ८३४
सत्यं तत् तुर्वशे ९५७
सत्यं तदिन्द्रावरुणा १११४
सत्यमिद् त्वा महेनदि १३५८
सत्यमित्था वृषेदसि ७५४
सत्यमिद् वा उ तं वय ११६८
सत्रा त्वं पुरुष्टुतं ३९६
स त्वं विप्राय दाशुषे ८८२
स त्वं न इन्द्र वाजेभिः ४१०
स त्वं न ऊर्जां पते ५५८
स त्वं नो देव ६५५
स त्वमग्ने विभावसुः ८९९
स त्वमस्मदप द्विषो २९७
स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति १७०७
सदो द्वा चक्राते ६९१
सद्योजुवस्ते वाजा १४३५
स न इन्द्रः शिवः सखा १५४४
स न इळानया सह १६८२
स नः पप्रिः पारयाति ४०९
स नः शक्रश्चिदा ७२६
स नः सोमेषु सोमपाः १६२३
स न स्तवान आ भर ५७९
सनितः सुसनितरुग्र ९९२
सनिता विप्रो अर्वद्भिः ७९
सनिमित्रस्य पप्रथः २१६
स नो मित्रमहस्त्वं ९१४
स नो वस्व उप १३०१
स नो वाजेष्वविता ९८५
स नो विश्वान्या भर १५७०
स नो विश्वेभिर्देवेभि १२९५
स नो वृषन् त्सनिष्ठया १५२३
सन्ति ह्यर्य आशिष १०९३
सं नः शिशीहि ११६
स पूर्व्यो महानां ११६९
सप्त होतारस्तमिदीळते त्वा ११३४
सप्तानां सप्त ऋष्टयः ६८२
सप्ती चिद् घा मदच्युता ७६२
स प्रत्नथा कविवृध ११७२
स प्रथमे व्योमनि ३३९
सबाधो यं जना इमे १३४९
समत्स्वग्निमवसे २०३
समनेव वपुष्यतः ११६५
स मन्युं मर्त्यानां १४०३
समस्य मन्यवे विशो १६४
समानं वां सजात्यं १२३७
समानमञ्ज्येषां ४९५
समित् तमघमश्नवद् ४१९
समित् तान् वृत्रहाखिदत् १३८९
समिद्धाग्निं वनवत् ९०१
समिद्धान उ सन्त्य ९०९
समिधा यो निशिती ४६१
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत १०७८
समीं रेभासो अस्वर १६२८
समु त्ये महतीरपः २३०
समुद्रे अन्तः शयत १६६१
स राजसि पुरुष्टुतं ३८८
सरूपैरा सु नो गहि ७७५
सर्गां इव सृजतं ८०१
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य १२७१
स वृत्रहेन्द्र ऋभुक्षाः १६१७
स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत् १६१६
सव्यामनु स्फिग्यं १०८
स समुद्रो अपीच्य ८५९
स सुक्रतू रणिता १६१५
सः स्तोम्यः स हव्यः ४०६
सस्थावाना यवयसि ८१६
सहस्रेणेव सचते १०६
सहस्रे पृषतीनां १२०३
सहो षु णो वज्रहस्तैः २४०
सा ते अग्ने शंतमा १३५१
सा द्युम्नैर्द्युम्निनी १३५२
साह्वा ये सन्ति ५०४
सिञ्चन्ति नमसावत १३१७
सीदन्तस्ते वयो यथा ५१५
सुताव्यन्तस्त्वा वयं ११९८
सुदेवाः स्थ काण्वायना १०९८
सुदेवो असि वरुण १२७१
सुनीथो घा स मर्त्यो १७६
सुप्रावर्गं सुवीर्यं ५४६
सुभगः स व ऊतिः ४९९
सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूंरार्क्षे १२५६

सुवीर्यं स्वश्व्यं ३३७
सुषेधो नो मृळयाकु १४१४
सुषोमे शर्यणाव २३७
सूर्यो रश्मि यथा सृजा ७३७
सृजन्ति रश्मिमोजसा २१६
सेहान उग्र पृतना ८१४
सो अद्धा दाश्वध्वरो ४५६
सोता हि सोममद्रिभिः १७
सोम इद्वः सुतो अस्तु १२१९
सोम राजन् मृळया १०३१
सोमस्य मित्रावरुणो १३२४
स्तुतश्च यास्त्वा ६३
स्तुहि श्रुतं विपश्चितं ३४७
स्तुहि स्तुहीदेते ३०
स्तुहीन्द्रं व्यश्ववद् ५९८
स्तोता यत् ते अनुव्रत ३५६
स्तोता यत् ते विचर्षणिः ३४३
स्तोत्रमिन्द्राय गायत ९५१
स्तोमं अर्षेया युवशेव ७८६
स्थूरं राधः शताश्वं ११९
स्मत्पुरंधिर्न आ गहि ७६९
स्वदभीशू कशावन्ता ६३०
स्वदेतया सुकीर्त्या ६४९
स्वग्नयो वो अग्निभिः ४५४
स्वधामनु श्रियं नरो ४९१
स्वयं चित् स मन्यते ११२
स्वरन्ति त्वा सुते नरो ७४६
स्वादवः सोमा आ ६२
स्वादुष्टे अस्तु ४१६
स्वादोरभक्षि वयसः १०२४
स्वाहाकृतस्य तृम्पतं ८०५
हंसाविव पतथो ७८९
हतं च शत्रून् यततं ७९३
हन्ता वृत्रं दक्षिणेने ६९
हन्तो नु किमाससे १४२१
हरयो धूमकेतवो ८७१
हर्यश्वं सत्पतिं ५२०
हविष्कृणुध्वमा गम १३०८
हुवे त्वा सूर उदिते ३५०
हारिद्रवेव पतथो वनेदुप ७८८
हिरण्ययी वां रथि ५५०
हिरण्ययेन रथेन १५६
हुवे वातस्वनं कविं १६८५
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते ४६

ऋग्वेद

मण्डल ९-१०

स्वाध्याय मण्डल

किल्ला पारडी

(जिला वलसाड)

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य

चतुर्थ भाग

[मण्डल ९-१०]

भाष्यकार

पद्मभूषण डा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स्वाध्याय मण्डल

पारडी

प्रकाशक
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय मण्डल, पारडी
[जि० बलसाड]

This book has been published with financial assistance from the Ministry of Education and Culture, Government of India

1985

Rs. 460 for 10 Vols.

मुद्रक
मेहरा आफसेट प्रिंटर्स, नई दिल्ली

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

नवम मण्डल

[१]

(ऋषिः- मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ॥ १ ॥
२ रक्षोहा विश्वचर्षणि- रभि योनिमयोहतम् । द्रुणा सधस्थमासदत् ॥ २ ॥
३ वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः । पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ३ ॥

---

[१]

अर्थ— [१] (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेको देनेके लिये (सुतः) सोमका रस निकाला है, वह तू, हे (सोम) सोमरस ! (स्वादिष्ठया मदिष्ठया) स्वादयुक्त तथा हर्ष बढानेवाली (धारया) धारासे (पवस्व) बहता रह ॥ १ ॥

सामवल्ली कूट कर उससे रस निकालते हैं और उस रसको इन्द्रदेवताके लिये यज्ञमें समर्पण करते हैं।

[२] (रक्षोहा) राक्षसोंका वध करनेवाला तथा (विश्वचर्षणिः) सबको देखनेवाला यह सोम (अयो-हतं) लोहेके खीलोंसे मजबूत बनाये (योनिं) स्थानपर (द्रुणा सधस्थं आसदत्) द्रोण कलशमें बैठता है ॥ २ ॥

१ रक्षोहा—सोमरस पीनेसे शक्ति बढती है और वह वीर राक्षसोंको मारता है।

२ विश्वचर्षणिः— सबका उत्तम निरीक्षण करनेमें वह वीर समर्थ होता है।

३ अयोहतं योनिं द्रुणा सधस्थं आसदत्— लोहेके खीलोंसे मजबूत बनाये कलशमें वह सोमरस ठीक रीतिसे रखा रहता है। कलश मजबूत रहे, हिले नहीं, ऐसा सावधानता पूर्वक रखा रहता है।

[३] (वरिवोधातमः भव) अत्यंत धन देनेवाला तू हो। तथा (मंहिष्ठः वृत्रहन्तमः) महान और शत्रुक नाश करनेवाला तू हो। (मघोनां राधः पर्षि) धनवान शत्रुके धन हमें दो ॥ ३ ॥

१ वरिवो-धा-तमः भव— बहुत धन देनेवाला हो।

२ मंहिष्ठः वृत्रहन्तमः— महान बनकर शत्रुका नाश करनेवाला हो।

३ मघोनां राधः पर्षि— धनवाले शत्रुओंका धन हमें दो।

४ अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ४ ॥
५ त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवेदिवे । इन्दो त्वे न आशसः ॥ ५ ॥
६ पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ६ ॥
७ तमीमण्वीः समर्य आ गृभ्णन्ति योषणो दश । स्वसारः पार्ये दिवि ॥ ७ ॥
८ तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम् । त्रिधातु वारणं मधु ॥ ८ ॥

अर्थ— [४] (महानां देवानां) बडे देवोंके (वीतिं) यज्ञके पास (अन्धसा अभ्यर्ष) अन्नके साथ पहुंचो, तथा (वाजं उत श्रवः अभि) बल और अन्न हमें देवो ॥ ४ ॥

१ महान्तं देवानां वीतिं अभि अर्ष— बडे देवोंके लिये जहां यज्ञ हो रहा हो वहां तुम पहुंचो । यज्ञके स्थानपर जाना योग्य है ।

२ वाजं उत श्रवः अभि— बल और अन्न हमें देओ । अन्न और बल बढाना योग्य है । मनुष्योंको अपना बल तथा बल बढानेवाला अन्न बहुत प्राप्त करना चाहिये ।

[५] हे सोम ! (त्वां अच्छा चरामसि) तेरी ही उत्तम सेवा हम करते हैं । (दिवे दिवे) प्रतिदिन (तत् इत् अर्थं) वही निश्चयसे हमारा उद्देश्य रहता है । हे (इन्दो) सोम ! (त्वे नः आशसः) तेरे समीप ही हमारी सब इच्छाएं जातीं है ॥ ५ ॥

१ त्वां अच्छा चरामसि— तेरी सेवा-उपासना हम करते हैं ।

२ दिवे दिवे तत् इत् अर्थम्— प्रतिदिन तुम्हारी सेवा करनेके लिये ही हमारे प्रयत्न हो रहे हैं ।

३ हे इन्दो ! त्वे न आशसः— हे सोम ! तुझमें हमारी आशाएं, इच्छाएं समर्पित रहती हैं ।

[६] (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री (ते परिस्रुतं सोमं) तेरेसे निकले सोमरसको (शश्वता तना वारेण) शाश्वत फैले हुए वस्त्रसे (पुनाति) पवित्र करती है ॥ ६ ॥

१ सूर्यस्य दुहिता— सूर्यकी पुत्री, प्रातः समयकी वेला ।

२ शश्वता तना वारेण— शाश्वत फैले हुए वस्त्रसे, सोमका रस निकालने पर उसको छानते हैं । सोमका रस निकालते हैं और पश्चात् उसको कपडेमेंसे छानते हैं । इससे सोमरसमें रहे सोमवल्लीके अंश दूर होकर, केवल सोमका शुद्ध रस ही रहता है । यह रस दूधके साथ मिला कर पिया जाता है ।

[७] (समर्ये) यज्ञके (पार्ये दिवि) श्रेष्ठ दिनमें (दश योषणः स्वसारः अण्वीः) दस स्त्रीरूपी अंगुलियांरूपी बहिनें (तं आ गृणन्ति) उस सोमवल्लीको पकडती है ॥ ७ ॥

यज्ञके दिनमें दस अंगुलियों उस सोमवल्लीको पकडती हैं और अपनी अंगुलियोंसे दबाकर उससे रस निकालती हैं । हाथमें सोमको अच्छी तरह पकडकर, उसको दबाकर, उससे रस निकाला जाता है ।

[८] (तं ईं) उस सोमको (अग्रुवः हिन्वन्ति) अंगुलियां लाती हैं, (बाकुरं दृतिं धमन्ति) तेजस्वी दीखनेवाले इस सोमका रस निकालते हैं । यह रस (मधु) मीठा होता है तथा (त्रिधातु) तीन शक्तियोंसे युक्त तथा (वारणं) दुःखका निवारण करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

१ तं ईं अग्रुवः हिन्वन्ति— उस सोमको अंगुलियां यज्ञ स्थानमें लाती हैं ।

२ बाकुरं दृतिं धमन्ति— तेजस्वी दीखनेवाले इस सोमका रस निकालते है ।

३ मधु— यह सोमरस मधुर होता है ।

४ वारणं— दुःखका निवारण करके आनंदको बढाता है ।

५ त्रिधातु— तीन प्रकारकी शक्तियां इसमें रहती है, जिससे शरीर, मन और बुद्धिको सामर्थ्य प्राप्त होता है ।

९ अभी॒ममघ्न्या॑ उ॒त श्री॒णन्ति॑ धे॒नवः॒ शिशु॑म् । सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ ९ ॥
१० अ॒स्येदिन्द्रो॒ मदे॒ष्वा विश्वा॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते । शूरो॑ म॒घा च॑ मंहते ॥ १० ॥

[२]

(ऋषिः- मेधातिथिः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

११ पव॑स्व देव॒वीरति॑ प॒वित्रं॑ सोम॒ रंह्या॑ । इन्द्र॑मिन्दो॒ वृषा वि॑श ॥ १ ॥
१२ आ व॑च्यस्व॒ महि॒ प्सरो॒ वृषे॑न्दो द्यु॒म्नव॑त्तमः । आ योनिं॑ धर्णसिः॒ सदः ॥ २ ॥
१३ अधु॑क्षत प्रि॒यं मधु॒ धारा॑ सु॒तस्य॑ वे॒धसः॑ । अ॒पो व॑सिष्ट सु॒क्रतुः॑ ॥ ३ ॥

अर्थ— [९] (इमं शिशुं) इस पुत्रस्वरूप सोमके साथ (अघ्न्याः धेनवः उत) अवध्य गौवें (इन्द्राय पातवे सोमं) इन्द्रको पीनेके लिये इस सोमरसके साथ (अभि श्रीणन्ति) अपने दूधको मिलाती हैं ॥ ९ ॥

१ इन्द्राय पातवे इमं शिशुं— इन्द्रको पीनेके लिये देनेके अर्थ गौका दूध इस सोमरसमें मिलाया जाता है । सोमरसमें गौका दूध मिलाते हैं और वह मिश्रण इन्द्रको अर्पण किया जाता है । और पश्चात् अन्य यज्ञकर्ता पीते है ।

२ धेनवः अघ्न्याः— गौवें अवध्य हैं । गौओंका वध कदापि नहीं होना चाहिये ।

[१०] (अस्य मदेषु इत्) इस सोमरस पानके आनन्दोंमें रहकर ही (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वा वृत्राणि) सब घेरनेवाले शत्रुओंको (आ जिघ्नते) मारता है । और वह (शूरः) वीर इन्द्र (मघा च मंहते) धनोंका दान करता है ॥ १० ॥

१ अस्य मदेषु इत् इन्द्रः विश्वा वृत्राणि आ जिघ्नते— इस सोमरसके पीनेसे जो उत्साह बढता है, उस उत्साहमें रहकर इन्द्र सब शत्रुओंको मारता है ।

२ शूरः मघा मंहते— वह शूर इन्द्र अपने धनोंको भक्तोंको देता है । भक्तोंको धनवान् बनाता है ।

[२]

[११] हे (सोम) सोम ! तू (देव-वीः) देवोंके पास जानेवाला हो, अतः (अति पवस्व) उत्तम रीतिसे रसको अपनेमेंसे निकालो । (पवित्रं रंह्या) तू पवित्र है और आनंद देनेवाला है । अतः हे (इन्दो) सोम ! (वृषा) अपने सामर्थ्यसे (इन्द्रं विश) इन्द्रमें प्रवेश कर ॥ १ ॥

सोमरस दिव्य जन पीते हैं । इससे उनकी कर्तृत्व शक्ति बढती है । और वे उत्तम कार्य यशस्वी रीतिसे करनेमें समर्थ होते हैं । इससे कार्य करनेके समय मन सुप्रसन्न रहता है । और कार्य उत्तम प्रकार यशस्वी होता है ।

[१२] हे (इन्दो) सोम ! तू (महि प्सरः वृषा) महान् जीवन बलयुक्त करनेवाला है, तू (द्युम्नवत्तमः) तेज बढानेवाला है । तू (आ वच्यस्व) ये गुण हमें प्राप्त कराओ । तू (धर्णसि योनिं आसदः) धारण करनेवाला है, अतः स्वकीय यज्ञस्थानमें बैठ ॥ २ ॥

सोम जीवनका बल बढानेवाला है, तेजस्विताको बढाता है । धारण करनेकी शक्ति बढाता है । इस तरहका गुणवान सोम हमारे यज्ञस्थानमें रहे और यज्ञकर्ताओंकी शक्ति बढावे ।

[१३] (वेधसः सुतस्य धारा) इष्ट सिद्ध करनेवाले सोमरसकी धारा (प्रियं मधु अधुक्षत) प्रिय मधुरता देती है । यह (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला सोम (अपः वसिष्ट) पानीमें मिलाया जाता है, वह रस पानीके साथ रहता है ॥ ३ ॥

१ वेधसः सुतस्य धारा प्रियं मधु अधुक्षत— इष्ट फल देनेवाले इस सोमरसकी धारा प्रिय ऐसा मधुर रस देती है । सोमरस मधुर होता है अतः वह पीनेवालेका प्रिय भी होता है ।

२ सुक्रतुः अपः वसिष्ट— उत्तम कर्म करनेका उत्साह देनेवाला यह सोमरस पानीमें मिलाया जाता है । और इसको पीछेसे पीते हैं । सोमरसमें पानी मिलाकर पीते हैं ।

१४ महान्तं त्वा महीर॒न्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ४ ॥
१५ समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः । सोमः पवित्रे अस्मयुः ॥ ५ ॥
१६ अचिक्रदद्वृषा हरि॒र्महान् मित्रो न दर्शतः । सं सूर्येण रोचते ॥ ६ ॥
१७ गिरस्त इन्दु ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भसे ॥ ७ ॥
१८ तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे । तव प्रशस्तयो महीः ॥ ८ ॥
१९ अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयु॒र्मध्वः पवस्व धारया । पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ॥ ९ ॥

अर्थ— [१४] (यत्) जब (गोभिः वासयिष्यसे) गौके दूधके साथ तेरा मिश्रण किया जाता है, तब (महान्तं त्वा) महान शक्तियुक्त ऐसे तेरे पास (महीः आपः सिन्धवः अनु अर्षन्ति) महान जलप्रवाह तेरे पास आते हैं ॥ ४ ॥

जब सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है, तब बढे हुए तुझमें उत्तम जल भी मिलाया जाता है। सोमरसमें जल तथा गोदुग्ध मिलाया जाता है और पश्चात् वह मिश्रण पीया जाता है।

[१५] (समुद्रः) समुद्रके समान जलमय (दिवः धरुणः) दिव्य भावको धारण करनेवाला (विष्टम्भः) सुस्थिर रहनेवाला (अप्सु मा मृजे) सोम जलके साथ मिलाया जाता है। यह (सोमः) सोमरस (पवित्रे अस्मयुः) पवित्र छाननीमेंसे हमारे समीप आता है ॥ ५ ॥

सोमरसमें जल मिलाते हैं, छानते हैं और उसका हवन करनेके पश्चात् वह रस पीया जाता है।

[१६] (वृषा) बल बढानेवाला (हरिः) दुःखोंको दूर करनेवाला (महान् मित्रः न दर्शतः) बडे मित्रके समान दर्शन करने योग्य सोम (अचिक्रदत्) शब्द करता है और (सूर्येण सं रोचते) सूर्यके समान प्रकाशता है ॥ ६ ॥

१ सोम (वृषा हरिः) बल बढाता है और दुःख दूर करता है।

२ वह सोम (महान् मित्रः न दर्शतः) बडे मित्रके समान देखनेमें है।

३ वह सोमरस पात्रमें डालनेके समय शब्द करता है।

४ और वह सूर्यके समान तेजस्वी है।

[१७] हे (इन्दो) सोम ! (ते गिरः) तेरे स्तोत्र (ओजसा) बलसे (अपस्युवः) सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देते हैं और (मर्मृज्यन्ते) शुद्धता करते हैं। (याभिः) जिनसे तू (मदाय शुम्भसे) आनन्द प्राप्त करनेकी प्रेरणा देता है ॥ ७ ॥

१ ते गिरः ओजसा अपस्युवः— तेरे स्तोत्र बल बढाकर सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देते हैं।

२ ते गिरः मर्मृज्यंते— तेरे स्तोत्र बोलनेवालेकी शुद्धता करते हैं।

३ याभिः मदाय शुम्भसे— जिन स्तुतियोंसे तू आनंद प्राप्त करनेके उपाय प्रकाशित करता है।

[१८] हे सोम (तव प्रशस्तयः महीः) तेरी प्रशंसाएं बडी विशाल हैं। (लोककृत्नुं ईहसे) तूं लोकोंको सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देनेकी इच्छा करता है। (तं त्वा मदाय घृष्वये) उस तुझको हमें उत्साह देनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ ८ ॥

१ त्वं लोककृत्नुं ईहसे— तूं लोकोंको सत्कार्य करनेकी प्रेरणा देता है।

२ तं त्वा मदाय घृष्वये— हमें उत्साह प्रदान करो यह हमारी प्रार्थना तुम्हारे समीप है।

[१९] हे (इन्दो) सोम ! (अस्मभ्यं) हमको (इन्द्रयुः) इन्द्रके पास पहुंचानेवाला तूं है। (मध्वः धारया पवस्व) मधुर सोम रसकी धारासे हमें पवित्र कर। जिस प्रकार (वृष्टिमान् पर्जन्य इव) वृष्टि करनेवाला पर्जन्य पवित्रता करता है ॥ ९ ॥

१ अस्मभ्यं इन्द्रयुः— हमको इन्द्रके पास पहुंचानेवाला तूं हो।

२ मध्वः धारय पवस्व— सोमरसकी मधुर धारासे हमें पवित्र कर।

३ वृष्टिमान् पर्जन्य इव— वृष्टी करनेवाला पर्जन्य जैसा आनंद देता है वैसा आनंद हमको तूं देते रहो।

२० गोषा इन्दो नृषा अस्य—श्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ १० ॥

[३]

(ऋषिः- आजीगर्तिः शुनःशेपः, कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२१ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ १ ॥
२२ एष देवो विपा कृतो ऽति ह्वरांसि धावति । पवमानो अदाभ्यः ॥ २ ॥
२३ एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः । हरिर्वाजाय मृज्यते ॥ ३ ॥
२४ एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः । पवमानः सिषासति ॥ ४ ॥

अर्थ— [२०] हे (इन्दो) सोम ! तू (यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा) यज्ञका पहिला आधार है ऐसा तू (गो-षा) गौवें देनेवाला (नृ-षा) पुत्र अथवा मनुष्य देनेवाला, (अश्व-सा) घोडे देनेवाला तथा (वाजसा) अन्न देनेवाला हो ॥ १० ॥

१ यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा— यज्ञका मुख्य आधार तू है ।

२ गोषा, नृषा, अश्वसा, वाजसा— गौवें, मनुष्य, घोडे तथा अन्न देनेवाला तू है । इसमें ये पदार्थ देखो ।

[३]

[२१] (एष अमर्त्यः देवः) यह अमर सोम देव (द्रोणानि अभि आसदं) पात्रोंमें जाकर बैठनेके लिये (पर्णवीः इव) पक्षीके समान (दीयति) दौडता रहता है ॥ १ ॥

[२२] (एषः देवः) यह देव (विपा कृतः) अंगुलियोंसे दबाकर निकाला (अदाभ्यः) न दबनेवाला सोमरस (पवमानः) शुद्धता करता हुआ (ह्वरांसि अति धावति) शत्रुओंके आगे दौडता है ॥ २ ॥

१ एषः विपा कृतः देवः — यह अंगुलियोंसे दबाकर निकाला हुआ दिव्य सोमरस है ।

२ पवमानः अदाभ्यः— यह सोमरस शुद्धता करता है और अपना शुद्धताका कार्य करनेसे किसीसे दबकर अपना कर्तव्य छोडता नहीं ।

३ ह्वरांसि अतिधावति— शत्रुओंका अतिक्रमण करके स्वयं शुद्ध रहता है । यह वीर शत्रुओंको पीछे निकालकर स्वयं आगे जाता है ।

[२३] (एष देवः) यह दिव्य सोम (विपन्युभिः ऋतायुभिः) विद्वान यज्ञ कर्ताओंके द्वारा (पवमानः) रस निकाला जानेपर (वाजाय हरिः) युद्धके लिये जैसा घोडा प्रशंसित होता है, उस प्रकार (मृज्यते) स्तुति करके शुद्ध किया जाता है ॥ ३ ॥

विद्वान यज्ञ करनेवाले याज्ञिक सोमवल्लीका रस निकालते हैं, और उस सोमकी प्रशंसा स्तोत्रोंसे करते हैं । जिस प्रकार युद्धमें जानेवाले घोडेकी प्रशंसा की जाती है, जिस प्रकार घोडा युद्धमें जाता है और वहां वह शौर्यके कार्य करनेवाले वीरोंकी सहायता करता है, ठीक उस प्रकार सोम यज्ञमें जाता है और याज्ञिकोंकी सहायता करता है । यज्ञसे रोगबीज नष्ट करनेमें यह सोम सहायक होता है ।

[२४] (एष शूरः) यह शूरवीर (पवमानः) सोमरस निकालने पर (सत्वभिः यन्निव) अपने बलोंके साथ चलनेवाले शूरके समान (विश्वानि वार्या) सब प्रकारके धन (सिषासति) आक्रमण करके अपने पास रखता है ॥ ४ ॥

शूरवीर शत्रुपर आक्रमण करनेके समय सब प्रकारके धन अपने पास सुरक्षित रखता है, उस प्रकार यह सोम सब प्रकारके सामर्थ्य अपने समीप रखता है । शूर अपने सब धन सुरक्षित रखे और शत्रुपर आक्रमण करे । अपने धनोंको शत्रुके आधीन होने न दे । यह युद्धके समयकी नीति है ।

२५ एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति । आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥ ५ ॥
२६ एष विप्रैरभिष्टुतो ऽपो देवो वि गाहते । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ६ ॥
२७ एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया । पवमानः कनिक्रदत् ॥ ७ ॥
२८ एष दिवं व्यासरत् तिरो रजांस्यस्पृतः । पवमानः स्वध्वरः ॥ ८ ॥
२९ एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ ९ ॥
३० एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः । धारया पवते सुतः ॥ १० ॥

अर्थ— [२५] (एष देवः) यह सोम देव (रथर्यति) रथकी इच्छा करता है, (पवमानः) रस निकाल शुद्ध किया हुआ यह सोम (दशस्यति) हमें धन देनेकी इच्छा करता है। (वग्वनुं आविष्कृणोति) शब्दोंका आविष्कार करता है ॥ ५ ॥

१ एष देवः रथर्यति— यह देव रथमें बैठनेकी इच्छा करता है ।
२ पवमानः दशस्यति— शुद्ध होनेपर धन देनेकी इच्छा करता है ।
३ वग्वनुं आविष्कृणोति— शब्द बोलकर उपदेश देता है ।

[२६] (विप्रेभिः अभिष्टुतः एष देवः) ब्राह्मणोंने प्रशंसा किया हुआ यह देव सोम (अपः वि गाहते) जलोंमें मिल जाता है । (दाशुषे रत्नानि दधत्) दाताको रत्न देता है ॥ ६ ॥

१ विप्रेभिः अभिष्टुतः एष देवः— ब्राह्मण वेदमंत्रोंसे इस दिव्य सोमकी स्तुति करते हैं ।
२ एष देवः अपः विगाहते— यह सोमदेव जलसे मिश्रित होता है ।
३ दाशुषे रत्नानि दधत्— दाताको रत्न अर्थात् धन देता है ।

[२७] (एषः) यह सोम (पवमानः) रस निकालकर शुद्ध करनेपर (धारया) अपनी धारासे (रजांसि तिरः) लोकोंका तिरस्कार करता हुवा (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (दिवं विधावति) द्युलोककी ओर दौडता है ॥ ७ ॥

१ एषः पवमानः— इस सोमका प्रथम रस निकालते हैं और उस रस को शुद्ध करते हैं ।
२ एषः धारया रजांसि तिरस्कुर्वन्— वह सोमरस अपनी धारासे लोकोंको तिरस्कृत करता है । लोकोंको अपनेसे कम मानता है ।
३ कनिक्रदत् दिवं विधावति— शब्द करता हुवा स्वर्गपर जानेके लिये दौडता है । अर्थात् इस सोमरसके पान करनेका विशेष महत्व है ऐसा माना जाता है ।

[२८] (एष) यह (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक यज्ञस्वरूप (पवमानः) रस निकाला हुवा सोम (अ-स्पृतः) अहिंसित होकर (रजांसि तिरः) लोकोंको तिरस्कृत करके (दिवं व्यसरत्) द्युलोकमें पहुंचता है ॥ ८ ॥
यह उत्तम यज्ञस्वरूप सोम अहिंसक रीतिसे शुद्ध होकर, किसी अन्य स्थानमें न जाता हुवा, स्वर्गलोकको पहुंचता है । इस कारण इस सोमके उपासक सीधे स्वर्गको पहुंचते हैं

[२९] (हरिः) हरिद्वर्णका (एष देवः) यह दिव्य सोम (प्रत्नेन जन्मना) प्रथम उत्पन्न होते ही (देवेभ्यः सुतः) देवोंको देनेके लिये रस निकाला हुआ (पवित्रे अर्षति) छाननीमें जाता है ॥ ९ ॥
सोमका रस निकालते हैं, उस समय वह हरे रंगका होता है । यह देवोंको अर्पण करनेके लिये निकाला जाता है । वह रस निकालकर छाननीमें डालकर छानते है और पश्चात् देवोंको अर्पण किया जाता है ।

[३०] (स्यः एष उ) यह ही (पुरुव्रतः) अनेक कार्य करनेवाला (जज्ञानः) उत्पन्न होते ही (इषः जनयन्) अन्नोंको उत्पन्न करता हुआ (सुतः) रसस्वरूप यह सोम (धारया पवते) धारासे शुद्ध किया जाता है ॥ १० ॥

१ एष पुरुव्रतः— यह सोम अनेक कार्य करता है ।
२ जज्ञानः इषः जनयन्— उत्पन्न होते ही अन्नोंको निर्माण करता है ।
३ सुतः धारया पवते— रस निकालने पर धारासे पवित्र किया जाता है ।

[४]

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३१ सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १ ॥
३२ सना ज्योतिः सना स्व१ र्विश्वा च सोम सौभगा । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ २ ॥
३३ सना दक्षमुत क्रतु मप सोम मृधो जहि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ३ ॥
३४ पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ४ ॥
३५ त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ५ ॥

[४]

अर्थ—[३१] हे (महि श्रवः) महान् अन्नरूप (पवमान सोम) रस निकाले हुए सोम! (सन) देवोंका यज्ञमें स्वागत कर । (जेषि च) और राक्षसोंपर विजय प्राप्त कर । (अथ) और (नः) हमको (वस्यसः कृधि) अन्नोंसे युक्त कर ॥ १ ॥

१ महि श्रवः पवमान सोम— हे बडे अन्न युक्त रस निकाले हुए सोम !
२ सन— यज्ञमें यहां देवोंका स्वागत कर ।
३ जेषि च— शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ।
४ नः वस्यसः कृधि— हमें अन्नोंसे युक्त कर । हमारे समीप बहुत अन्न रहें ऐसा कर ।

[३२] हे (सोम) सोमरस ! (ज्योतिः सना) तू तेज हमें प्रदान कर । (स्वः सना) स्वर्गसुख हमें प्रदान कर । (विश्वा सौभगा) सब प्रकारके सौभाग्य हमें दो । (अथ नः वस्यसः कृधि) और हमें अन्नोंसे युक्त कर ॥ २ ॥

१ ज्योतिः सन— तेज हमें दो ।
२ स्वः सना— स्वर्गसुख हमें दो ।
३ विश्वा सौभगा सन— सब प्रकारके सौभाग्य हमें दो ।
४ नः वस्यसः कृधि— हमको अन्नोंसे युक्त करो ।

[३३] (सोम दक्षं सन) हे सोम ! हमें बल दो (उत क्रतुं) और प्रज्ञानमय कर्म करनेकी शक्ति दो । (मृधः अपजहि) शत्रुओंको निःशेष करके जीतो । और हमें अन्नोंसे युक्त कर ॥ ३ ॥

१ दक्ष सन— हमें बल दो ।
२ क्रतुं सन— कर्म उत्तम रीतिसे करनेकी शक्ति हमें दो ।
३ मृधः अपजहि – शत्रुओंको पराजित करो ।
४ नः वस्यसः कृधि— हमें अन्नोंसे युक्त करो ।

[३४] (पवीतारः) सोमसे रस निकालनेवाले ऋत्विज (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये (सोमं पुनीतन) सोमका रस निकालें । और हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ ४ ॥

[३५] हे सोम ! (तव क्रत्वा) तेरे कर्तृत्वसे (तव ऊतिभिः) तेरे संरक्षणोंसे (त्वं नः सूर्ये आ भज) तू हमें सूर्यके प्रकाशमें पहुंचा दो । और हमें अन्नोंसे युक्त कर ॥ ५ ॥

१ तव क्रत्वा, तव ऊतिभिः नः त्वं सूर्ये आ भज— तेरे कर्तृत्वसे, और तेरे रक्षणोंके साथ हमको तू सूर्यके प्रकाशमें पहुंचाओ ।

३६ तव क्रत्वा तवोतिभि-र्ज्योक् पश्येम सूर्यम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ६ ॥
३७ अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ७ ॥
३८ अभ्यर्षानपच्युतो रयिं समत्सु सासहिः । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ८ ॥
३९ त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ ९ ॥
४० रयिं नश्चित्रमश्विन-मिन्दो विश्वायुमा भर । अथा नो वस्यसस्कृधि ॥ १० ॥

[५]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- आप्रीसूक्तं= (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळा, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । छन्दः- गायत्री, ८-११ अनुष्टुप् ।)

४१ समिद्धो विश्वतस्पतिः पवमानो वि राजति । प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् ॥ १ ॥
४२ तनूनपात् पवमानः शृङ्गे शिशानो अर्षति । अन्तरिक्षेण रारजत् ॥ २ ॥

अर्थ— [३६] (तव क्रत्वा) तेरे कर्तृत्वसे (तव ऊतिभिः) तेरे संरक्षणोंसे (ज्योक्) चिरकाल तक (सूर्यं पश्येम) सूर्यको हम देखेंगे । और हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ ६ ॥

१ ज्योक् सूर्यं पश्येम— चिरकाल हम सूर्यको देखते रहेंगे । सूर्यको देखना हितकारक है । सूर्य प्रकाशसे रोगबीज दूर होते हैं ।

[३७] हे सोम ! हे (स्वायुध) उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले वीर ! (द्विबर्हसं रयिं) द्यावा पृथिवीमें जो धन है वह (अभ्यर्ष) हमें दे दो । और हमें अन्नसे युक्त करो ॥ ७ ॥

[३८] (समत्सु सासहिः) युद्धोंमें शत्रुका पराजय करनेवाला तथा (अनपच्युतः) शत्रुओंसे जिसपर आघात नहीं हुए ऐसा (रयिं) धनको तू (अभ्यर्ष) हमें दे दो । और हमें धनसे युक्त करो ॥ ८ ॥

[३९] हे (पवमान) रस निकाले हुए सोम ! (त्वा) तुझे (यज्ञः विधर्मणि अवीवृधन्) यज्ञोंसे अपनी धारणा करनेके लिये बढाते हैं । अब हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ ९ ॥

[४०] हे (इन्दो) सोम ! (चित्रं आश्विनं रयिं) सर्व प्रकारका अश्वयुक्त धन (विश्वायुं नः आभर) सर्व आयुष्यमें हमें दे दो । और हमें अन्नोंसे युक्त करो ॥ १० ॥

[५]

[४१] (समिद्धः) प्रदीप्त किया हुआ (विश्वतः पतिः) सबका स्वामी (पवमानः) रस निकाला (प्रीणन्) सबको संतुष्ट करता हुआ यह (वृषा) बलवान सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता है ॥ १ ॥

उत्तम रीतिसे तेजस्वी, यज्ञका सब प्रकारका स्वामी, रस निकाला हुआ सबको आनंद देनेवाला सोम, शब्द करता हुआ सोमपात्रमें जाता है । सोमरस निकालने पर वह रस चमकता है, और सबको प्रसन्न रखता है । इस रसको सोमपात्रमें रखा जाता है ।

[४२] (तनूनपात्) शरीरको न गिरानेवाला (पवमानः) पवित्र करनेवाला यह सोमरस (शृंगे शिशानः) उच्च भागसे शोभायमान होकर (अन्तरिक्षेण रारजत्) अन्तरिक्षसे चमकता हुआ पात्रमें गिरता है ॥ २ ॥

सोमरस शरीरको सुदृढ करता है, इस कारण वह शरीरको न गिरानेवाला कहा है । यह पवित्रता उत्पन्न करता है । ऊंचे भागसे चमकता हुआ सोमपात्रमें गिरता है । सोमरसको छाननेके लिये उस रसको ऊपरसे छाननेपर गिराते हैं और छाननीपर गिरकर वह रस छाना जाता है ।

४३ ईळेन्यः पवमानो रयिर्वि राजति द्युमान् । मधोर्धाराभिरोजसा ॥ ३ ॥
४४ बर्हिः प्राचीनमोजसा पवमानः स्तृणन् हरिः । देवेषु देव ईयते ॥ ४ ॥
४५ उदातैर्जिहते बृहद् द्वारो देवीर्हिरण्ययीः । पवमानेन सुष्टुताः ॥ ५ ॥
४६ सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति । नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥
४७ उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे । पवमान इन्द्रो वृषा ॥ ७ ॥
४८ भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही ।
इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः ॥ ८ ॥

अर्थ—[४३] (इळेन्यः) प्रशंसनीय (पवमानः) सोम (रयिः) अभीष्ट धन देनेवाला (द्युमान्) तेजस्वी होकर (मधोः धाराभिः) मधुर रसकी धाराओंसे (ओजसा विराजति) अपने सामर्थ्यसे शोभता है ॥ ३ ॥

सोमरस चमकता है, मधुर होता है, बलवर्धन करता है और अपनी चमकसे शोभता है ।

[४४] (हरिः) हरे रंगका (देवः) दिव्य सोम (पवमानः) रस निकालनेके समय (देवेषु) यज्ञस्थानीय देवोंमें (बर्हिः प्राचीनं स्तृणन्) आसन पूर्वाभिमुख फैलाकर (ओजसा ईयते) बलसे आगे बढता है ॥ ४ ॥

सोमवल्ली हरे रंगकी होती है, वह (देवः) चमकती है, उसका रस निकालते हैं । देवोंके स्थानोंमें आसन फैला-कर उस आसनपर उसे रखते हैं। यह सोमरस अपने बलके लिये प्रसिद्ध हुआ है । सोमरस पीनेसे बल बढता है ।

[४५] (पवमानेन सुष्टुताः) सोमके साथ उत्तम रीतिसे स्तुति की गई (हिरण्ययीः द्वार देवीः) सुवर्णमयी द्वार देवताएं (बृहत् आतैः उत् जिहते) बडी विस्तृत दिशाओंसे बाहर आती हैं ॥ ५ ॥

सोमके साथ दिशाओंकी भी यज्ञमें स्तुति की जाती है । इस स्तुतिसे दिशाओंके सुवर्ण जैसे द्वार खुले होते हैं । जिनसे देवताएं यज्ञमें आती हैं । और यज्ञ उत्तम रीतिसे हो जाता है ।

[४६] (सुशिल्पे) उत्तम सुंदर (बृहती मही) बडे महान (-न दर्शते) और दर्शनीयके समान (नक्तोषासा) रात्री और उषाकी (पवमानः) सोम (वृषण्यति) इच्छा करता है ॥ ६ ॥

सोम चाहता है कि सुंदर दर्शनीय उषःकाल शीघ्र जाय और सोमरस यज्ञके लिये तैयार हो जाय ।

[४७] (नृचक्षसा) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (दैव्या होतारा) दिव्य होता (उभा देवा) दोनों देवोंकी अर्थात् पवमान सोम और इन्द्र इन दोनों देवोंकी (हुवे) मैं प्रार्थना करता हूं ।

ये दोनों देव सोम तथा इन्द्र यज्ञमें आ जाय, हमारी प्रार्थना सुनें ।

[४८] (भारती) भारतकी राष्ट्रभाषा, (सरस्वती) विद्या और (मही इळा) बडी वाणी ये (सुपेशसः तिस्रः देवीः) सुंदर रूपवाली तीन देवियां (पवमानस्य इमं नः यज्ञं) सोमके हमारे इस यज्ञमें (आगमन्) आयें ॥ ८ ॥

राष्ट्रभाषा, विद्या और बडी मातृभूमि ये तीनों उत्तम रूपवाली देवियां हमारे इस सोमयागमें आ जाय और यहां बडी प्रसन्नतासे रहें । इनके सन्मुख हमारा यह यज्ञ होता रहे ।

४९ त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावानमा हुवे ।
इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥ ९ ॥
५० वनस्पतिं पवमान मध्वा समङ्ग्धि धारया ।
सहस्रवल्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम् ॥ १० ॥
५१ विश्वे देवाः स्वाहाकृतिं पवमानस्या गत ।
वायुर्बृहस्पतिः सूर्यो ऽग्निरिन्द्रः सजोषसः ॥ ११ ॥

[६]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

५२ मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः । अव्यो वारेष्वस्मयुः ॥ १ ॥
५३ अभि त्यं मद्यं मद-मिन्दविन्द्र इति क्षर । अभि वाजिनो अर्वतः ॥ २ ॥

अर्थ— [४९] (अग्रजां गोपां) प्रथम उत्पन्न प्रजाके पालनकर्ता (पुरः यावानं त्वष्टारं) आगे जानेवाला जगदुत्पादक त्वष्टाको (आ हुवे) मैं प्रार्थना करके बुलाता हूं। (हरिः पवमानः इन्दुः) हरे रंगवाला रस निकाला हुआ सोम, (इन्द्रः) इन्द्र (वृषा प्रजापतिः) कामना पूर्ण करनेवाला प्रजापालक, इनको मैं इस यज्ञमें बुलाता हूं ॥ ९ ॥

१ अग्रजां गोपां पुरः यावानं त्वष्टारं आ हुवे— प्रथम उत्पन्न हुआ सबका पालन कर्ता और सबसे आगे जानेवाला अग्रेसर त्वष्टा इनको मैं इस यज्ञमें आनेके लिये बुलाता हूं ।

२ (इन्दुः) सोम (इन्द्रः) इन्द्र तथा (प्रजापतिः) प्रजाका पालन करनेवाला प्रजापति है उनको मैं इस यज्ञमें बुलाता हूं ।

[५०] हे (पवमान) सोम ! (हरितं) हरे रंगके (हिरण्ययं) सुवर्णके समान चमकनेवाले (भ्राजमानं) तेजस्वी (सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखावाले (वनस्पतिं) वनस्पति रूप सोमको (मध्वा धारया समङ्ग्धि) सोमरसकी मधुर धारासे संस्कारयुक्त करता हूं ॥ १० ॥

सोमरसकी मधुर धारा पात्रमें डालकर उस रसको संस्कारयुक्त करते हैं ।

[५१] वायु, बृहस्पति, सूर्य, अग्नि, इन्द्र ये देव (सजोषसः विश्वे देवाः) सब देव मिलकर (पवमानस्य स्वाहाकृतिं आगत) सोममें स्वाहाकार यज्ञमें आ जांय ॥ ११ ॥

ये सब देव सोमयागमें मिलकर आ जांय और सोमयागको योग्य रीतिसे पूर्ण करें ।

[६]

[५२] हे सोम ! तू (देवयुः) देवोंके समीप जानेवाला (वृषा) शक्तिमान (मन्द्रया धारया पवस्व) आनंद देनेवाली धारासे शुद्ध हो जावो । (अस्मयुः) हमारे पास आनेवाला तू (वारेषु अव्यः) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जा ॥ १ ॥

सोम यज्ञमें देवोंको अर्पण किया जाता है । इसलिये उसका रस निकालते हैं और मेंढीके बालोंकी छाननीसे उसको छानते हैं । और पश्चात् उसका यज्ञमें अर्पण देवोंके लिये करते हैं ।

[५३] हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्रः इति) ईश्वर है इस कारण (त्यं मद्यं मदं अभि क्षर) उस आनंदकारक रसको अपनेमेंसे निकालो । तथा (अर्वतः वाजिनः अभि) बलवान घोडोंको भी निकालो ॥ २ ॥

हमारे लिये तुम्हारा रस मिले तथा घोडे भी हमें प्राप्त हों ।

५४	अभि त्यं पूर्व्यं मदं सुवानो अर्ष पवित्र आ	अभि वाजमुत श्रवः	॥ ३ ॥
५५	अनु द्रप्सास इन्दव आपो न प्रवतासरन्	पुनाना इन्द्रमाशत	॥ ४ ॥
५६	यमत्यमिव वाजिनं मृजन्ति योषणो दश	वने क्रीळन्तमत्यविम्	॥ ५ ॥
५७	तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये	सुतं भराय सं सृज	॥ ६ ॥
५८	देवो देवाय धारयेन्द्राय पवते सुतः	पयो यदस्य पीपयत्	॥ ७ ॥
५९	आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः	प्रत्नं नि पाति काव्यम्	॥ ८ ॥

अर्थ— [५४] हे सोम ! (सुवानः) रस निकालनेके समय (पूर्व्यं त्यं मदं) पूर्वसे प्रसिद्ध, उस आनंद बढानेवाले रसको लेकर (पवित्रे अभि अर्ष) पवित्र करनेवाले उस स्थानमें आगमन करो। तथा (वाजं उत श्रवः अभि) बल और अन्न भी हमें दे दो ॥ ३ ॥

सोमसे रस निकालनेके समय वह सोमरस निकालनेके स्थानपर लाया जाता है, उसको पवित्र पात्रमें रखा जाता है और उससे रस निकाला जाता है। इस रससे बल और अन्न मिलता है।

[५५] (द्रप्सासः) शीघ्रताके साथ जानेवाले (पुनानाः) स्वच्छ होनेवाले (इन्दवः) सोमरस (प्रवता आपो न) शीघ्रगामी जलप्रवाहके समान (इन्द्रं अनु असरन्) इन्द्रके समीप जाने लगे। और वे सोमरस (आशत) फैलने लगे ॥ ४ ॥

जैसे जल प्रवाह फैलते रहते हैं, उस प्रकार ये स्वच्छ होनेवाले सोमरस इन्द्रके पास जानेके लिये, सिद्ध हुए। सोमरस निकालनेके बाद, उनको छानकर, उन रसोंको इन्द्रके समीप रखा जाता है।

[५६] (अत्यविं) पवित्र होनेके स्थानसे दूर रहे (वने क्रीडन्तं) वनमें रहनेवाले (यं) जिस सोमको (दश योषणः) दश अंगुलियां (अत्यं वाजिनं इव) चपल घोडेके समान (मृजन्ति) सेवा करती हैं ॥ ५ ॥

वनमें उत्पन्न हुए, यज्ञमें शुद्ध करनेके स्थानसे दूर रहे सोमकी सेवा, चपल घोडेकी सेवा करनेके समान, दस अंगुलियां करती हैं। हाथकी दसों अंगुलियां सोमको पकडती हैं और रस निकालनेकी तैयारी करती हैं यही सोमकी सेवा है। हाथकी अंगुलियां यह सेवा करती हैं।

[५७] (वृषणं) बलको बढानेवाले (देववीतये) देवोंको (मदाय सुतं) आनंद देनेके लिये निकाले (तं रसं) उस सोमरसको (भराय गोभिः सं सृज) मिश्रित करनेके लिये गौके दूधके साथ मिला दो ॥ ६ ॥

सोमरस बल बढानेवाला है, वह यज्ञमें आये देवोंको पीनेको देनेके लिये निकाला जाता है। उसमें गौका दूध मिलाकर देवोंको पीनेके लिये दे दो।

[५८] (देवाय इन्द्राय सुतः) इन्द्र देवके लिये निकाला (देवः) यह दिव्य सोमरस (धारया पवते) धारासे पात्रमें गिरता है। (यत् अस्य पयः पीपयत्) जो इस इन्द्रके लिये पुष्टी करता है ॥ ७ ॥

इन्द्र देवको देनेके लिये निकाला यह दिव्य सोमरस धारासे पात्रमें गिरता है और इस रसमें दूध मिलाया जाता है और वह रस इन्द्रको दिया जाता है।

[५९] (यज्ञस्य आत्मा) यज्ञका आत्मा जैसा (सुतः) यह सोमरस (सुष्वाणः) यजमानकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये (रंह्या पवते) वेगसे पात्रमें उतरता है तथा (प्रत्नं काव्यं नि पाति) अपने काव्यकी सुरक्षा करता है ॥ ८ ॥

यह सोमरस यज्ञका आत्मा जैसा यज्ञमें प्रमुख है। यह सोमरस यजमानकी सब इच्छाएं परिपूर्ण करता है, इसके लिये यह सोमरस वेगसे पात्रमें गिरता है तथा इस समय स्तोत्र गाये जाते हैं।

×

६० एवा पुनान इन्द्रयु॒र्मदं मदिष्ठ वीतये । गुहा चिद्दधिषे गिरः ॥ ९ ॥

[७]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

६१ असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः । विदाना अस्य योजनम् ॥ १ ॥
६२ प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते । हविर्हविष्षु वन्द्यः ॥ २ ॥
६३ प्र युजो वाचो अग्रियो वृषाव चक्रदद्वने । सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥ ३ ॥
६४ परि यत् काव्या कवि र्नृम्णा वसानो अर्षति । स्वर्वाजी सिषासति ॥ ४ ॥

अर्थ— [६०] (मदिष्ठ) आनंद बढानेवाले सोम ! (इन्द्रयुः) इन्द्रके पास जानेवाला तू (वीतये) इन्द्रके पीनेके लिये ही उस इन्द्रका (मद पुनानः) आनंद बढानेवाला होकर (गुहा) यज्ञशालामें (गिरः चित् दधिषे) स्तुतिकी वाणियोंका धारण करता है ॥ ९ ॥

सोमरस आनंद बढानेवाला है । सोमरस पीनेसे मन प्रसन्न होता है । इन्द्रको पीनेको देनेके लिये ही यहां हम सोमसे रस निकालते हैं और उसको यज्ञस्थानके समीप रखते हैं और उसकी स्तोत्र गायनसे स्तुति करते हैं ।

[७]

[६१] (सुश्रियः) उत्तम शोभासे युक्त (अस्य योजनं विदानाः) अपना इस इन्द्रके साथ संबंध है यह जाननेवाले (इन्दवः) सोमरसको (धर्मन्) इस यज्ञके धार्मिक कार्यमें (ऋतस्य पथा असृग्रं) सत्यके मार्गसे ही निकालते हैं ॥ १ ॥

अपना इन्द्र देवके साथ संबंध है यह जाननेवाले सोमरस, उत्तम शोभासे युक्त होकर, यज्ञके कार्यमें निकाले जाते हैं । यज्ञके कार्यको योग्य रीतिसे करनेके लिये यज्ञके स्थानपर ही सोमसे रस निकाले जाते हैं ।

[६२] (हविष्षु वन्द्यः) हवियोंमें मुख्य (हविः) हविर्द्रव्यरूपी यह सोम (महीः आपः विगाहते) बडे जलोंमें मिलाया जाता है । उस (मध्वः) उस मधुर सोमकी (धाराः) धाराएं (अग्रियः) अग्रभागमें (विहागते) बहती हैं ॥ २ ॥

१ हविष्षु वन्द्यः हविः— हविर्द्रव्योंमें मुख्य हविर्द्रव्य यह सोम ही है ।
२ महीः आपः विगाहते— वह सोम जलोंमें मिलाया जाता है ।
३ मध्वः धाराः अग्रियः विगाहते— उसकी मधुर धाराएं आगे चलती रहती हैं ।

[६३] (वृषा) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (सत्यः अध्वरः) सत्य रूपसे हिंसा रहित (अग्रियः) मुख्य सोम (सद्म) यज्ञगृहके (अभि) पास (वने युजः) उदकसे युक्त होकर (वाचः) वाणियां (अव चक्रदत्) बोलता है ॥ ३ ॥

कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सच्ची रीतिसे हिंसा न करनेवाला यह मुख्य सोम यज्ञस्थानके समीप रहकर शब्दोंको बोलता है । जिस समय सोमरस पात्रमें रखते हैं, उस समय सोमरस पात्रमें गिरनेका शब्द होता है ।

[६४] (कविः) दिव्य दृष्टिवाला (नृम्णा वसानः) धनोंसे युक्त होकर सोम स्तोताओंके (काव्या) काव्य (यत् परि अर्षति) जब देखता है, तब (स्वः वाजी) स्वर्गमें रहनेवाला बलवान इन्द्र (सिषासति) यज्ञमें आनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

सोम यज्ञमें जब सोमकी स्तुति स्तोत्रों द्वारा गाई जाती है, तब इन्द्र भी स्वर्गसे यज्ञमें आनेकी तैयारी करता है ।

६५ पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति । यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥ ५ ॥
६६ अव्यो वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति । रेभो वनुष्यते मती ॥ ६ ॥
६७ स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति । रणा यो अस्य धर्मभिः ॥ ७ ॥
६८ आ मित्रावरुणा भगं मध्वः पवन्त ऊर्मयः । विदाना अस्य शक्मभिः ॥ ८ ॥
६९ अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये । श्रवो वसूनि सं जितम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [६५] (यत् ईं) जिस समय इस सोमको (वेधसः ऋण्वन्ति) यज्ञ कर्ता प्रेरित करते हैं, तब (पवमानः) रस निकाला हुआ सोम (स्पृधः) स्पर्धा करनेवाले दुष्टोंको तथा (विशः) दुष्ट मनुष्योंको (राजा इव अभि सीदति) राजाके समान विनष्ट करता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार राजा अपने राज्यसे दुष्टोंको दूर करता है, उस प्रकार यज्ञ कर्ता सोमका रस निकाल कर यज्ञस्थानसे यज्ञके विरोधियोंको दूर करता है ।

[६६] (हरिः) हरे वर्णका यह सोम (प्रियः) देवोंको प्रिय है । यह सोम (वनेषु) जलसे मिलकर (अव्यः वारे परि सीदति) भेडोंके बालोंकी छाननीपर छाना जानेके लिये बैठता है और (रेभः) शब्द करता हुआ (मती मनुष्यते) अपनी स्तुतिसे प्रशंसित होता है ॥ ६ ॥

हरे वर्णका यह सोम सब देवोंको प्रिय है । वह सोमरस जलके साथ मिलाकर भेडीके बालोंकी छाननीसे छाना जाता है । उस समय सोमरसके छाना जानेका शब्द होता है । और यज्ञकर्ता लोग उस सोमकी प्रशंसा करनेवाले स्तोत्रों-का गायन करते हैं ।

[६७] (यः) जो यजमान (अस्य धर्मभि रण) इस सोमके गुणों और धर्मोंसे आनंदित होता है, वह (वायुं इन्द्रं अश्विना साकं) वायु, इन्द्र, अश्विनौको (मदेन) आनंदके साथ प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

जो यजमान इस सामके गुणधर्मोंसे प्रसन्न होता है वह वायु, इन्द्र, अश्विनौ देवोंको आनदके साथ प्रसन्न करता ह। वे देव प्रसन्न होकर उस यजमानकी सहायता करते हैं ।

[६८] जिन यजमानोंके (मध्वः ऊर्मयः) मधुर सोमरसकी लहरें (मित्रावरुणौ भगं) मित्र, वरुण, भग आदि देवोंके समीप (पवन्ते) जाती हैं वे यजमान (अस्य विदानाः) इस सोमका महत्त्व जानते हैं वे (शक्मभिः) सुखोंको प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

जो यजमान यज्ञ करते हैं और मित्र, वरुण, भग आदि देवोंके लिये सोमका अर्पण करते हैं, वे आनंदको प्राप्त करते हैं । यज्ञसे आनंद प्राप्त होता है ।

[६९] हे (रोदसी) द्युलोक और भूलोको ! (मध्वः वाजस्य सातये) मधुर अन्नके लाभके लिये (अस्मभ्यं) हम लोगोंके लिये (रयिं) धन, (श्रवः) अन्न तथा (वसूनि) सब प्रकारके धन (सं जितं) उत्तम प्रकारसे दे दो ॥ ९ ॥

हमें मधुर अन्न सतत मिलता रहे, इसलिये धन, बलवर्धक अन्न तथा सब प्रकारके निवासके लिये उत्तम सहाय करनेवाले पदार्थ उत्तम रीतिसे दे दो ।

१ **मध्वः वाजस्य सातये**— मधुर अन्न मिलता रहे इसलिये आवश्यक होनेवाला सहाय करो । सुमधुर अन्न सदा हमें प्राप्त होता रहे ।

२ **रयिं श्रवः वसूनि सं जितम्**— धन, अन्न और सब प्रकारके निवासके लिये आवश्यक पदार्थ उत्तम रीतिसे हमें प्राप्त होते रहें । ऐसी सुव्यवस्था होनी चाहिये ।

[८]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

७० एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् । वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥ १ ॥
७१ पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना । ते नो धान्तु सुवीर्यम् ॥ २ ॥
७२ इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ ३ ॥
७३ मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः । अनु विप्रा अमादिषुः ॥ ४ ॥

---

[८]

अर्थ— [७०] (एते सोमाः) ये सोमरस (अस्य वीर्यं वर्धन्तः) इस इन्द्रके पराक्रमोंको बढाते हैं । और (इन्द्रस्य कामं प्रियं) इन्द्रको अभीष्ट और प्रिय लगनेवाले रसको देते हैं ॥ १ ॥

१ सोमाः वीर्यं वर्धन्तः— सोमरस वीर्यकी वृद्धि करते हैं । शरीरमें वीर्यको बढाते हैं । सोमरस पीनेसे शरीरमें वीर्य बढता है ।

२ इन्द्रस्य प्रियं कामं वर्धन्तः— इन्द्रकी प्रिय इच्छाको भी बढाते है । पुरुषार्थ करनेकी इच्छा सोमरस पीनेसे वृद्धिंगत होती है ।

[७१] (ते पुनानासः) वे पवित्रता करनेवाले सोमरस (चमूसदः) पात्रोंमें रखे हुए (वायुं अश्विना गच्छन्तः) वायुको तथा अश्विनौ देवोंको प्राप्त होते हैं, (ते सुवीर्यं न धान्तु) वे रस उत्तम बल हमारेमें धारण करें ॥ २ ॥

सोमरस निकालनेपर उनको पात्रोंमें रखा जाता है, वहां वायुके साथ उनका संबंध होता है तथा अश्विनौ देवोंके साथ भी उनका संबंध होता है । इससे वे रस उत्तम वीर्यको शरीरमें बढानेके लिये समर्थ होते हैं । अश्विनौ ये वैद्य हैं, रोगोंको दूर करते हैं । इस रोगोंको दूर करनेके कार्यमें सोमरसका उपयोग वैद्य लोग कर सकते हैं ।

[७२] हे सोम ! (पुनानः) रसको पवित्र करके (इन्द्रस्य हार्दि राधसे) इन्द्रको हृदयमें रही अभिलाषाकी सिद्धिके लिये (ऋतस्य योनिं) यज्ञके स्थानमें (आसदं) आकर इन्द्र बैठ जाय, इसलिये उस इन्द्रको (चोदय) प्रेरित कर ॥ ३ ॥

१ हे सोम ! पुनानः इन्द्रस्य हार्दि राधसे ऋतस्य योनिं आसदं इन्द्रं चोदय— हे सोम ! तू पवित्र किया जानेपर अर्थात् छाना जानेपर, इन्द्रकी हृदयकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये यज्ञके स्थानपर बैठ और इन्द्रको प्रेरित करो कि वह इन्द्र भी वहां आकर आसनपर बैठ जाय ।

[७३] हे सोम ! (त्वा दश क्षिप मृजन्ति) तेरी दस अंगुलियां सेवा करती हैं । (सप्त धीतयः त्वा हिन्वन्ति) सात हवन् करनेवाले होतागण तुझे प्रसन्न करते हैं, तथा (विप्राः अनु अमादिषुः) विप्र लोक तुझे सन्तुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥

१ त्वा दश क्षिपः मृजन्ति— सोमकी सेवा दस अंगुलियां करती हैं । ये अंगुलियां दबाकर सोमका रस निकालती हैं ।

२ सप्त धीतयः त्वा हिन्वन्ति— सात हवन कर्ता तुझे प्रसन्न करते हैं ।

३ विप्राः अनु अमादिषुः— तथा विप्र तुम्हें सन्तुष्ट करते हैं ।

७४ देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥ ५ ॥
७५ पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥ ६ ॥
७६ मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः । इन्दो सखायमा विश ॥ ७ ॥
७७ वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि । सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥ ८ ॥
७८ नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् । भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [७४] हे सोम ! (मेष्यः) मेढीके बालोंकी छाननीसे तथा (कं) जलसे (अति सृजानं त्वा) शुद्ध करनेके लिये छाननेपर तुझे (देवेभ्यः मदाय) देवोंको आनंद देनेके लिये (गोभिः सं वासायिष्यसि) गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है ॥ ५ ॥

१ मेष्यः सोमः— मेढीके बालोंकी छाननीसे सोमरस छाना जाता है।

२ कं अति सृजानं त्वा— जलके साथ मिलाकर शोधित किया जाता है।

३ देवेभ्यः मदाय गोभिः संवासयिष्यसि— देवोंको देनेके लिये गौके दूधसे मिलाया जाता है। और पश्चात् सोमरसको पीया जाता है।

[७५] (पुनानः कलशेषु) छाना जानेपर सोमरस कलशोंमें रखा जाता है। (अरुषः हरिः) तेजस्वी हरे रंगका सोमरस (गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत) गौके दूधरूपी वस्त्रोंमें आच्छादित किया जाता है ॥ ६ ॥

सोमरस निकालनेपर कलशोंमें सुरक्षित रखा जाता है। उस चमकनेवाले हरे रंगके सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है। मानो गौके दूधरूपी वस्त्र उसपर पहनाये जाते हैं।

[७६] हे (इन्दो) सोम ! (मघोनः नः) धनसे युक्त ऐसे हमारे लिये (आ पवस्व) रस निकालो। (विश्वा द्विषः अप जहि) सब शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर। (सखायं आ विश) मित्र इन्द्रके अन्दर प्राप्त हो ॥ ७ ॥

१ मघोनः नः आ पवस्व — हम धनवानोंके लिये रस निकालो।

२ विश्वा द्विषः अपजहि— सब शत्रुओंको पराभूत कर।

३ सखायं आ विश— मित्र इन्द्रके अन्दर प्रविष्ट होओ। इन्द्र तुम्हारा पान करे।

[७७] हे (सोम) सोम ! (दिवः वृष्टिं परिस्रव) द्युलोकमेंसे वृष्टि करो। (पृथिव्याः अधि) पृथिवीके ऊपर (द्युम्नं) अन्न उत्पन्न करो। (नः सहः) हमारा बल (पृत्सु धाः) युद्धोंमें प्रकट हो ऐसा कर ॥ ८ ॥

१ दिवः वृष्टिं परि स्रव— द्युलोकसे वृष्टि होवे।

२ पृथिव्या अधि द्युम्नं— पृथिवीके ऊपर अन्न उत्पन्न होवे।

३ नः सहः पृत्सु धाः— हमारा बल युद्धोंमें प्रकट हो।

[७८] हे सोम ! (नृचक्षसं) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (स्वर्विदं) सर्वज्ञ (इन्द्रपीतं त्वा) इन्द्रने पीये तुझे अर्थात् सोमरसको पीनेवाले (वयं) हम (प्रजां इषं भक्षीमही) संतान और अन्नको प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले, सब ज्ञान देनेवाले, इन्द्रने पीये इस सोमरसको पीनेवाले हम प्रजा तथा अन्नको अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं।

[९]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः-पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री।)

७९ परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः । सुवानो याति कविक्रतुः ॥ १ ॥
८० प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहे । वीत्यर्ष चनिष्ठया ॥ २ ॥
८१ स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् । महान् मही ऋतावृधा ॥ ३ ॥
८२ स सप्त धीतिभिर्हितो नद्यो अजिन्वदद्रुहः । या एकमक्षि वावृधुः ॥ ४ ॥
८३ ता अभि सन्तमस्तृतं महे युवानमा दधुः । इन्दुमिन्द्र तव व्रते ॥ ५ ॥

---

[९]

अर्थ— [७९] (कविः कविक्रतुः) बुद्धिवान और बुद्धिके कार्य करनेवाला सोम (नप्त्योः हितः) रस निकालनेके स्थान पर रखा हुवा (सुवानः) रस निकालनेके समय (दिवः परि) द्युलोकसे श्रेष्ठ (वयांसि याति) ऐसे रस निकालनेके स्थानपर जाता है ॥ ९ ॥

१ कविः कविक्रतुः— सोमरस काव्य करनेका उत्साह तथा स्फुरण देता है ।

२ दिवः परि वयांसि याति— सोमरस पीनेसे द्युलोकके ऊपरके स्थानोंपर मनुष्य जाता है । इतना ऊंचा उसके विचारोंका स्थान होता है ।

[८०] हे सोम ! (प्र प्र क्षयाय) अत्यंत उत्तम आधार देनेवाले (अद्रुहे पन्यसे जनाय) द्रोह न करनेवाले स्तुत्य जनके लिये (जुष्टः) सेवनीय (चनिष्ठया अर्ष) अन्नसे युक्त होकर आगे बढ ॥ २ ॥

द्रोह न करनेवाले मनुष्यको निवासस्थान देनेके लिये सोम तैयार रहता है । सोम यज्ञ करनेवालोंको उत्तम निवासस्थान मिलते हैं ।

[८१] (जातः शुचिः महान् सः) प्रसिद्ध शुद्ध और बडा वह सोम नामक (सूनुः) पुत्र (मही ऋतावृधा) बडी यज्ञकी महती ऋद्धि करनेवाली (जाते मातरा) विश्वको उत्पन्न करनेवाली दो माताएं—अर्थात् दोनों द्यावापृथिवी-को दीप्तिमान् करता है ॥ ३ ॥

वह सोम उत्पन्न होते ही, अर्थात् सोमरस निकालते ही, द्यावापृथिवीको प्रकाशसे युक्त करता है । अपने प्रकाशसे प्रकाशित करता है । सोमरस तेजस्वी अर्थात् चमकनेवाला होता है । वह स्वयं प्रकाशता है और अन्योंको भी प्रकाशित करता है ।

[८२] (याः) जो नदियां (एकं अक्षि वावृधुः) एक क्षीण न होनेवाले सोमका संवर्धन करती हैं (सः) वह (धीतिभिः) अंगुलियोंसे (हितः) सुरक्षित रखा हुआ (अ-द्रुहः) द्रोह न करनेवाला सोम (सप्त नद्यः अजिन्वत्) सातों नदियोंको आनंदित करता है ॥ ४ ॥

सात नदियोंका जल सोमरसमें मिलाया जाता है, इस कारण सोमरससे सातों नदीयां प्रसन्न होती हैं ।

[८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ताः) वे अंगुलियां (सन्तं अस्तृतं) उनके अंदर रहनेवाले अहिंसित (युवानं इन्दुं) तरुण सोमको (महे) बडे (तव व्रते) तेरे यज्ञरूपी महान कर्ममें (अभि आ दधुः) सब प्रकारसे धारण करती हैं ॥ ५ ॥

यज्ञ कर्ताके हाथोंकी अंगुलियां अपने पास सोमवल्लीको धारण करके रखती हैं । समयपर उसका रस निकाला जाता है और वह सोमरस यज्ञमें देवताओंको अर्पण किया जाता है ।

८४ अभि वह्निरमर्त्यः सप्त पश्यति वावहिः । क्रिविर्देवीरतर्पयत् ॥ ६ ॥
८५ अवा कल्पेषु नः पुम—स्तमांसि सोम योध्या । तानि पुनान जङ्घनः ॥ ७ ॥
८६ नू नव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः । प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥ ८ ॥
८७ पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ॥ ९ ॥

[१०]

(ऋषिः– काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

८८ प्र स्वानासो रथा इवा—ऽर्वन्तो न श्रवस्यवः । सोमासो राये अक्रमुः ॥ १ ॥

अर्थ— [८४] जो (वह्निः) यज्ञको चलानेवाला (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित और (वावहिः) देवोंतक हवन किये पदार्थ पहुंचाता है, ऐसा सोम (सप्त) सात नदियोंको (पश्यति) देखता है, वह (क्रिविः) कूवेके समान जलसे पूर्ण होकर रहता है और (देवीः अतर्पयत्) दिव्य नदीयोंकी तृप्ती करता है ॥६ ॥

१ अमर्त्यः वह्निः वावहिः— अमर अग्नि देवोंके पास हवन किये हवनीय पदार्थ पहुंचाता है ।

२ सप्त पश्यति— सात नदियोंको देखता है । सात नदियोंका जल सोमरसमें मिलाया जाता है ।

३ क्रिविः देवीः अतर्पयत्— कूवेके समान जलसे युक्त होकर देवोंको तृप्त करता है । सोमरसमें नदियोंका जल मिलाकर उसको पीया जाता है ।

[८५] हे (पुमः) पुरुष सोम ! (कल्पेषु नः अव) सब कल्पोंमें हमारा रक्षण कर । हे (पुनान सोम) पवित्र करनेवाले सोम ! तू (योध्या तानि तमांसि) युद्ध करनेके योग्य अंधकार अर्थात् ज्ञानहीन उन राक्षसोंका (जंघन) नाश कर ॥ ७ ॥

१ पुमः ! कल्पेषु नः अव— हे पुरुषार्थ करनेवाले सोम ! तू सब समयोंमें हमारा संरक्षण कर ।

२ तानि तमांसि योध्या— उन ज्ञानहीन राक्षसोंसे युद्ध कराओ ।

३ जंघन— राक्षसोंका पूर्ण नाश कर ।

[८६] हे सोम (नव्यसे नवीयसे) हमारे प्रशंसनीय तथा उत्तम (सूक्ताय) सूक्त सुननेके लिये (पथः साधय) उत्तम मार्गसे आओ और (प्रत्नवत रुचः रोचय) पूर्वके समान अपना तेज प्रकट कर ॥ ८ ॥

[८७] हे (पवमान) सोम ! तू (वीरवत्) वीरपुत्रसे युक्त (महि श्रवः) बहुत अन्न (गां अश्वं च) गौ और घोडा (रासि) इनको देता है । (मेधां सन) बुद्धि हमें दो तथा (स्वः सन) हमें आवश्यक वह सब धनोंको दे दो ॥ ९ ॥

१ वीरवत् महि श्रवः सन— वीर पुत्र सहित बहुत अन्न हमें देओ ।

२ गां अश्व मेधां स्वः सन— हमें गौवें, घोडे, बुद्धि तथा सब प्रकारके धन देओ ।

[१०]

[८८] (प्र स्वानासः सोमासः) शब्द करनेवाले सोम (रथाः इव) रथोंके समान (अर्वन्तः न) तथा घोडोंके समान शब्द करते हुए (श्रवस्यवः) अन्नकी इच्छा करनेवाले (राये अक्रमुः) यजमानके समीप आते हैं ॥ १ ॥

सोमरस निकालनेके समय वह रस शब्द करता हुआ रसपात्रमें पडता है ।

८९ हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः । भरासः कारिणामिव ॥ २ ॥
९० राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ३ ॥
९१ परि सुवानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा । सुता अर्षन्ति धारया ॥ ४ ॥
९२ आपानासो विवस्वतो जनन्त उषसो भगम् । सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ५ ॥
९३ अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः । वृष्णो हरस आयवः ॥ ६ ॥
९४ समीचीनास आसते होतारः सप्तजामयः । पदमेकस्य पिप्रतः ॥ ७ ॥

अर्थ— [८९] सोमवल्ली (रथाः इव) रथोंके समान (हिन्वानासः) गमन करनेवाले, तथा (कारिणां भरासः इव) भार वाहकोंके बोझोंके समान (गभस्त्योः दधिरे) दोनों हाथोंसे पकडी जाती है ॥ २ ॥

१ रथाः इव हिन्वानासः— रथोंके समान यज्ञके स्थानके समीप सोम जाते हैं। सोमवल्लीको यज्ञस्थानके समीप ले जाते हैं।

२ कारिणां भरासः इव गभस्त्योः दधिरे— भार वाहकोंका भार जिस प्रकार दोनों हाथोंसे पकडा जाता है, उस प्रकार सोमको दोनों हाथोंसे पकड कर, दबाकर उसका रस निकालते हैं।

[९०] (राजानः प्रशस्तिभिः न) – राजाओंकी जैसी प्रशंसाओंसे (सप्त धातृभिः यज्ञः न) तथा सात हवन कर्ताओंसे जैसे यज्ञकी प्रशंसा होती है उस प्रकार (सोमासः गोभिः अंजते) सोम गौके दूधसे सुमधुर किया जाता है ॥ ३ ॥

१ राजानः प्रशस्तिभिः न – राजाओंकी जैसी प्रशंसा होती है।

२ सप्त धातृभिः यज्ञः न – सात याजकोंसे जैसा यज्ञ प्रशंसित होता है।

३ सोमासः गोभिः अञ्जते— उस प्रकार सोम गौके दूधसे सुमधुर किया जाता है।

[९१] (सुवानास इन्दवः) रस निकाले हुए सोमरस (बर्हणा गिरा) बडी स्तुति रूप वाणीसे (मदाय) आनंद बढानेके लिये (सुताः) रस निकालनेके समय (धारया अर्षन्ति) धारासे पात्रमें गिरते हैं ॥ ४ ॥

सोमका रस निकालनेकें समय उस सोमकी स्तुती की जाती है। उस समय वह सोमका रस धारा प्रवाहसे पात्रमें गिरता है।

[९२] (विवस्वतः आपानासः उषसः) इन्द्रको पीनेके लिये उपयोगी पडनेवाली उषाएं (भगं जनन्त) भाग्यशाली काल उत्पन्न करती हैं। (सूराः अण्वं वितन्वते) इस समय ये सोमरस शब्द करते हैं ॥ ५ ॥

उषःकालमें इन्द्रका सोमरस पीनेके लिये देते हैं। वह भाग्यशाली समय होता है। इस समय सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें गिरता है।

[९३] (कारवः) स्तुति करनेवाले तथा (वृष्णोः हरसः आयवः) बलवर्धक सोमका रस निकालनेवाले याज्ञिक (प्रत्ना) प्राचीनकालसे चले आये (मतीनां द्वारा अप ऋण्वन्ति) बुद्धि द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंके द्वार खोलते हैं ॥ ६ ॥

यज्ञ करनेवाले याजक लोग यज्ञस्थानके द्वार लोकोंके लिये खोलकर खुले रखते हैं। यह इसलिये करते हैं कि लोक यज्ञमें आजांय और यज्ञसे होनेवाला लाभ प्राप्त करके प्रसन्न हो जांय।

[९४] (जामयः) संबंधित लोगोंके समान (सप्त होतारः) सात हवन करनेवाले ऋत्विज (समीचीनासः आसते) प्रसन्नचित्त होकर यज्ञमें बैठते हैं। वे (एकस्य पदं पिप्रतः) यज्ञके एक महत्वके स्थानको पूर्णतासे सफल करते हैं ॥ ७ ॥

९५ नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुश्चित् सूर्ये सचा । कवेरपत्यमा दुहे ॥ ८ ॥
९६ अभि प्रिया दिवस्पद मध्वर्युभिर्गुहा हितम् । सूरः पश्यति चक्षसा ॥ ९ ॥

[११]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

९७ उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे । अभि देवाँ इयक्षते ॥ १ ॥
९८ अभि ते मधुना पयो ऽथर्वाणो अशिश्रयुः । देवं देवाय देवयु ॥ २ ॥
९९ स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ३ ॥
१०० बभ्रवे नु स्वतवसे ऽरुणाय दिविस्पृशे । सोमाय गाथमर्चत ॥ ४ ॥

अर्थ— [९५] हम (नाभिं) यज्ञमें मुख्य सोमको (नः नाभा आददे) हमारे नाभिस्थानमें धारण करते हैं, अर्थात् सोमरसको पीते हैं । इससे हमारा (चक्षुः) आंख (सूर्ये सचा) सूर्यके साथ लगा रहता है: इस कार्यके करनेके लिये (कवेः अपत्यं आ दुहे) सोमके संतानरूपी सोमरसको निकालते हैं ॥ ८ ॥

यज्ञमें सोमका स्थान सबमें मुख्य है । अतः हम मुख्य स्थानमें उस सोमको रखते हैं । और उससे रस निकाल कर उसको यज्ञमें समर्पण करके उसको पीते हैं ।

[९६] (सूरः) उत्तम वीर्यवान इन्द्र (चक्षुषा) अपने आंखसे (दिवः प्रिया) तेजस्वी अतः प्रिय स्थानको (अध्वर्युभिः गुहा हितं) अध्वर्युओंने अपने हृदयमें रखा है ऐसा देखता है ॥ ९ ॥

सोमरसको यज्ञकर्ता अध्वर्युओंने अपने पेटमें रखा है, सोमरसका पान किया है, ऐसा इन्द्र जानता है ।

[११]

[९७] हे (नरः) नेता ऋत्विजो ! (देवान्) इन्द्रादि देवोंके लिये (इयक्षते) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले (पवमानाय अस्मै इन्दवे) रस निकाले इस सोमके लिये (उप गायत) मंत्रोंका गायन करो ॥ १ ॥

सोमवल्लीसे यज्ञस्थानमें रस निकालनेके समय मंत्रोंका गायन किया जाता है ।

[९८] हे सोम ! (अथर्वाणः) अथर्ववेदी याजक (ते) तेरे अन्दर (देवं देवयु) दिव्य तथा देवोंको देने योग्य (मधुना पयः) मधुर दूधसे (देवाय) इन्द्रादि देवोंको देनेके लिये (अभि अशिश्रयुः) उत्तम रीतिसे मिलाते हैं ॥ २ ॥

अथर्ववेदी याजक इन्द्रादि देवोंको अर्पण करनेके लिये सोमरसमें गौका मधुर दूध मिलाते हैं और वह मिश्रित सोमरस देवोंको दिया जाता है । सोमरसमें गौका दूध मिलाकर वह पिया जाता है ।

[९९] हे (राजन्) तेजस्वी सोम ! (नः गवे शं पवस्व) हमारे गौओंको सुख देनेके लिये रस निकालो, (जनाय शं) हमारे पुत्रादि जनोंको सुख देनेके लिये, (अर्वते शं) हमारे घोडोंको सुख देनेके लिये तथा (ओषधीभ्यः शं पवस्व) हमारी औषधि वनस्पतियोंको सुख पंहुचानेके लिये रस निकालो ॥ ३ ॥

हमारे पुत्रादि जन, घोडे तथा औषधि आदिको सुख देनेके लिये सोमका रस निकाला जाय । सोमरससे सबको सुख प्राप्त हो ।

[१००] (बभ्रवे) भूरे वर्णके (स्व-तवसे) स्वयं बलशाली (अरुणाय) तेजस्वी (दिवि-स्पृशे) द्युलोकको स्पर्श करनेवाले (सोमाय) सोमके लिये (गाथं अर्चत) स्तुतिके स्तोत्र गाओ ॥ ४ ॥

सोमका रस निकालनेके समय उसके स्तोत्रोंका गायन करो ।

×

१०१ हस्तंच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन । मधावा धावता मधु ॥ ५ ॥
१०२ नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥ ६ ॥
१०३ अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे । देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥ ७ ॥
१०४ इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे । मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥ ८ ॥
१०५ पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि नः । इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥ ९ ॥

[१२]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१०६ सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य सादने । इन्द्राय मधुमत्तमाः ॥ १ ॥
१०७ अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न मातरः । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

अर्थ— [१०१] हे ऋत्विजो ! (हस्तच्युतेभिः अद्रिभिः) हाथमेंसे चलाये पत्थरोंसे (सुतं सोमं पुनीतन) निकाले रसको छीनो और (मधौ मधु धावता) मधुर सोमरसमें मधुर दूध मिलावो ॥ ५ ॥

पत्थरोंसे कूट कर सोमवल्लीसे रस निकालो, इस रसको छीनो और उसमें मीठा गौका दूध मिलावो ।

[१०२] हे ऋत्विजो ! (नमसा इत् उप सिदत) नमस्कार करके तुम सोमके पास जाओ, (दध्ना इत् अभि श्रीणीतन) दहीके साथ उसको मिश्रित करो और पश्चात् (इन्द्रे इन्दुं दधातन) इन्द्रके लिये यह सोमरस अर्पण करो ॥ ६ ॥

[१०३] हे सोम ! (अमित्र-हा) शत्रुओंका नाश करनेवाला (विचर्षणिः) विशेष रीतिसे देखनेवाला तू (गवे शं पवस्व) हमारी गौवोंके लिये सुख देओ तथा (देवेभ्यः अनुकामकृत्) देवोंके लिये अनुकूल कार्य करो ॥ ७ ॥

सोमवल्ली गौवोंको सुख देनेवाली होती है । तथा सब प्रकारकी अनुकूलता करके सुख देती है ।

[१०४] हे सोम ! (मनः चित्) मनको जाननेवाला (मनसः पतिः) मनका स्वामी तू (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये तथा (मदाय) उसको आनंद देनेके लिये (परि षिच्यसे) तुम्हारा रस पात्रोंमें निकाला जाता है । ॥ ८ ॥

१ मनः चित्— मनको ठीक रीतिसे परीक्षा करके जानना चाहिये

२ मनसः पतिः— मनपर स्वामित्व रखना चाहिये । मन स्वाधीन रहना चाहिये ।

[१०५] हे (इन्दो पवमान सोम) आनंदवर्धक रस निकाले सोम ! तू (सुवीर्यं रयिं) उत्तम पराक्रम बढानेवाला धन (नः इन्द्रेण युजा) हमें इन्द्रके सहाय्यसे (रिरीहि) दे दो ॥ ९ ॥

१ सुवीर्यं रयिं नः इन्द्रेण युजा रिरीहि— वीरताको बढानेवाला धन हो । ऐसा धन हमें प्राप्त हो ।

[१२]

[१०६] (सुताः मधुमत्तमाः इन्दवः सोमाः) रस निकाले अति मधुर प्रकाशित होनेवाले सोमरस (ऋतस्य सादने) यज्ञके सदनमें (असृग्रम्) प्रवाहित हो रहे हैं ॥ १ ॥

यज्ञके स्थानमें सोमके मधुर रस निकाले जा रहे हैं । वहां वे तेजस्वी दीखते हैं ।

[१०७] (विप्राः) ब्राह्मण (सोमस्य पीतये) सोमरसका पान करनेके लिये (इन्द्रं अभि अनूषत) इन्द्रको बुलाते हैं, (मातरः गावः) गो माताएं (वत्सं न) अपने बच्चेको जैसी बुलाती हैं ॥ २ ॥

यज्ञ स्थानमें ब्राह्मण इन्द्रको सोमरस निकालकर उस रसका पान करनेके लिये बुलाते हैं । जैसी गौवें अपने बच्चेको बुलाती हैं ।

१०८ मुदुच्युत् क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् । सोमो गौरी अधि श्रितः ॥ ३ ॥
१०९ दिवो नाभा विचक्षणो ऽव्यो वारे महीयते । सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥ ४ ॥
११० यः सोमः कलशेष्वाँ अन्तः पवित्र आहितः । तमिन्दुः परि षस्वजे ॥ ५ ॥
१११ प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि । जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥ ६ ॥
११२ नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धीनामन्तः सबर्दुघः । हिन्वानो मानुषा युगा ॥ ७ ॥
११३ अभि प्रिया दिवस्पदा सोमो हिन्वानो अर्षति । विप्रस्य धारया कविः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१०८] (मदच्युत् सोमः) आनंद देनेवाला सोम (सादने क्षेति) अपने स्थानमें ही रहता है। विपश्चित्) ज्ञान बढानेवाला सोम (सिन्धोः ऊर्मा) नदीके जलके आश्रयसे रहता है। तथा यह सोम यज्ञस्थानमें (गौरी अधि श्रितः) वाणीके आधीन रहता है ॥ ३ ॥

सोम आनंद देता है और वह अपने हिमालयके स्थानमें रहता है और वहां ही बढता है। यज्ञके स्थानमें उस सोमको लाते हैं और नदीके जलसे मिश्रित करके उसको बढाते हैं और मंत्र बोलकर उसका यज्ञ करते हैं और स्वीकार करते हैं।

[१०९] (यः सुक्रतुः कविः) जो उत्तम यज्ञ करनेवाला ज्ञानी (विचक्षणः सोमः) विशेष दृष्टीवाला सोम (दिवा नाभा) अन्तरिक्षके नाभिस्थानमें (अव्यः वारे) मेंढीके बालोंकी छाननीमें रखकर (महीयते) उसकी प्रशंसा की जाती है ॥ ४ ॥

यह सोम उत्तम यज्ञ करनेवाला ज्ञानी है। यह यज्ञके स्थानमें सदा उत्तम रीतिसे निरीक्षण करता है। यह मेंढीके बालोंको छाननीमेंसे छाना जाता है। इस छाने हुए सोमरसको प्रशंसा यज्ञमें सदा की जाती है।

[११०] (यः सोमः कलशेषु आ) जो सोमरस पात्रोंमें रखा है, (पवित्रे अन्तः आहितः) छाननीमें जो रखा गया है, (तं इन्दुः) उसमें यह सोमरस (परिषस्वजे) मिलाया जाता है ॥ ५ ॥

प्रथम निकाला सोमरस पात्रोंमें रखा रहता है, उसमें नया निकाला सोमरस मिलाया जाता है। और इस मिश्रण किये सोमरसका यज्ञ किया जाता है।

[१११] (इन्दुः समुद्रस्य विष्टपि अधि) सोम अन्तरिक्षमें रहकर (मधुश्चुतं कोशं जिन्वन्) मधुर जल देनेवाले मेघको प्रसन्न करता है और (वाचं इष्यति) शब्द करता है ॥ ६ ॥

सोम छाननीके ऊपर रहता है, मधुर रस देनेसे मेघको भी आनंदित करता है। और वहांसे शब्द करता हुआ नीचेके पात्रमें उतरता है। सोमरस इस प्रकार छाना जाता है। उस समय उसके छाने जानेका शब्द होता है।

[११२] (नित्यस्तोत्रः) जिसकी सतत स्तुतियां होती हैं तथा (सबर्दुघः) अमृतके समान रस देनेवाला (वनस्पतिः) सोम (मानुषा युगा हिन्वानः) मानवोंको सत्कर्मोंकी प्रेरणा देता है (धीनां अन्तः) और बुद्धियोंको उत्तम उत्साह देता है ॥ ७ ॥

सोमकी यज्ञमें सदा स्तुति की जाती है। वह सोम अमृतके समान उत्साहवर्धक रस देता है। मानवोंको सत्कर्मों-को करनेका उत्साह बढाता है और बुद्धियोंको शुभ कर्म करनेकी प्रेरणा देता है।

[११३] (कविः सोमः) ज्ञान बढानेवाला यह सोम (दिवः हिन्वानः) अन्तरिक्षसे प्रेरणा देता हुआ (विप्रस्य) बुद्धिमानको (धारया) धारासे (प्रिया पदा अभि अर्षति , प्रिय स्थानके प्रति जाता है ॥ ८ ॥

यह सोमरस ज्ञान तथा काव्यशक्ति बढानेवाला है। यह सोमरस दिव्य ज्ञान देकर सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देता है। अपनी रसकी धारासे प्रिय ऐसे यज्ञस्थानको जाता है, और सत्कर्मोंको करवाता है।

११४ आ पवमान धारय रयिं सहस्रवर्चसम् । अस्मे इन्दो स्वाभुवम् ॥ ९ ॥

[१३]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

११५ सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः । वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥

११६ पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत । सुष्वाणं देववीतये ॥ २ ॥

११७ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः । गृणाना देववीतये ॥ ३ ॥

११८ उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः । द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

११९ ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥ ५ ॥

अर्थ— [११४] हे (पवमान इन्दो) शुद्धता करनेवाले सोम ! तू (सहस्र वर्चसं) सहस्रों तेजोंसे युक्त (स्वाभुवं रयिं) स्वकीय शोभासे युक्त धनको (अस्मे धारय) हमारे लिये दे दो ॥ ९ ॥

हमें धन दो। यह धन सहस्रों तेजोंसे युक्त हो, स्वयं सुशोभित हो और हमारा महत्त्व बढानेवाला हो। हमें धन ऐसा चाहिये कि जो हमारा महत्त्व बढावे।

[१३]

[११५] यह (पुनानः सोमः) छाना जानेवाला सोमरस (अर्षति) छाननीसे नीचे उतरता है। यह (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे (अति-अविः) छाननीसे नीचे उतरता है। (वायोः इन्द्रस्य निष्कृतं) वायु और इन्द्रको देनेके लिये पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

सोमरस छाना जानेके समय छाननीसे हजारों धाराओंसे नीचे रखे पात्रमें उतरता है। वह छाना जानेके पश्चात् वायु और इन्द्रको दिया जाता है।

[११६] (अवस्यवः) अपना रक्षण करनेकी इच्छा करनेवाले यज्ञकर्ता लोग (पवमानं विप्रं) रस निकाले जानेवाले इस ज्ञानी सोमका (देववीतये) देवताको देनेके लिये (सुष्वाणं) रस निकालनेके समय (अभि प्र गायत) मुख्यतया इसके शुभ गुणोंका गान करते हैं ॥ २ ॥

सोमरस निकालनेके समय यज्ञकर्ता याजक लोग सोमके शुभ गुणोंका उत्तम गायन करते हैं।

[११७] (वाजसातये) अन्नके लाभ प्राप्त करनेके लिये तथा (देव वीतये) देवोंकी प्रीतिके लिये (सहस्र-पाजसः सोमाः) सहस्रों बलोंसे युक्त सोमकी (गृणानाः) स्तुति करके (पवन्ते) रस निकाले जाते हैं ॥ ३ ॥

सोमरससे अनेक लाभ होते हैं। सोमसे अन्न मिलता है। सोमरस उत्तम अन्नरूप है। सोम देवोंको देनेसे देवोंकी प्रीति मिलती है। सोमसे उत्तम यज्ञ किया जा सकता है।

[११८] (उत नः) और हमारे लिये (वाजसातये) भोजन प्राप्त हो इसलिये हे (इन्दो) सोम ! (बृहतीः इषः) बडे अन्नको तथा (द्युमत् सुवीर्यं) तेजस्वी पराक्रम करनेवाला बलको (पवस्व) प्राप्त कराओ ॥ ४ ॥

१ नः वाजसातये बृहतीः इषः पवस्व— हमें पर्याप्त अन्न मिले इसलिये बडी रस धाराओंसे पात्रमें गिरो।

२ द्युमत् सुवीर्यम्-- हमें तेजस्वी पराक्रम करनेका सामर्थ्य प्राप्त हो।

[११९] (सुवानाः देवासः) रस निकाले दिव्य (ते इन्दवः) वे सोम (सहस्रिणं रयिं) सहस्र प्रकारके धन तथा (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम करनेका बल (नः आ पवन्तां) हमें दें ॥ ५ ॥

१ देवासः इन्दवः सहस्रिणं रयिं सुवीर्यं नः आपवन्ताम्— वे दिव्य सोमरस सहस्र प्रकारके धन और उत्तम प्रकारका बल हमें दे।

१२० अत्या॑ हियाना न हेतृभि॒रसृ॑ग्रं वाज॑सातये । वि वार॒मव्य॑मा॒शवः॑ ॥ ६ ॥
१२१ वाश्रा अ॑र्षन्तीन्द॑वो॒ ऽभि व॒त्सं न धे॒नवः॑ । द॒ध॒न्वि॒रे गभ॑स्त्योः ॥ ७ ॥
१२२ जुष्ट॒ इन्द्रा॑य मत्स॒रः पव॑मान॒ कनि॑क्रदत् । विश्वा॒ अप॒ द्विषो॑ जहि ॥ ८ ॥
१२३ अ॒प॒घ्नन्तो॒ अरा॑व्ण॒ः पव॑मानाः स्व॒र्दृशः॑ । योना॑वृ॒तस्य॑ सीदत ॥ ९ ॥

[१४]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१२४ परि॑ प्रा॒सि॑ष्यदत् क॒विः सिन्धो॑रू॒र्मावधि॑ श्रि॒तः । का॒रं बिभ्र॑त् पुरु॒स्पृह॑म् ॥ १ ॥

अर्थ— [१२०] (वाजसातये) युद्धके लिये (हियाना) प्रेरित हुए (अत्याः न) घोडोंकी तरह (हेतृभिः आशवः) प्रेरणा देनेवाले याजकों द्वारा प्रेरित किये गये शीघ्रगामी सोमरस (अव्यं वारं वि असृग्रं) भेडीके बालोंसे बनी छाननीके समीप जाते हैं ॥ ६ ॥

जिस प्रकार घोडे युद्धमें प्रेरित किये जाते हैं, उसी प्रकार ये सोमरस भेडीके बालोंकी छाननीके पास छाने जानेके लिये जाते हैं।

[१२१] (धेनवः वत्सं अभि अर्षन्ति न) गौवें अपने बछडेके पास जाती हैं, उस तरह (वाश्राः इन्दवः) शब्द करते हुए सोमरस (गभस्त्योः दधन्विरे) हाथोंसे पकडे जाते हैं ॥ ७ ॥

सोमरस शब्द करते हुए पात्रमें गिरते हैं, उस समय सोमको हाथोंसे पकडते हैं । हाथोंसे पकडकर सोमसे रस निकाला जाता है । वह रस पात्रमें गिरता है और उसको पात्रमें रखते हैं ।

[१२२] (इन्द्राय जुष्टः मत्सरः) इन्द्रके लिये प्रिय ऐसा यह सोम है । (कनिक्रदत् पवमान) हे शब्द करनेवाले सोमरस ! (विश्वाः द्विषः) सब प्रकारके शत्रुओंको (अप जहि) जीतो ॥ ८ ॥

१ इन्द्रके लिये यह सोमरस बहुत प्रिय है ।

२ हे पवमान ! विश्वाः द्विषः अप जाहि— हे सोम ! तू सब प्रकारके शत्रुओंको पराजित करके उनको दूर कर । सब शत्रुओंका नाश करो ।

[१२३] (अराव्णः अपघ्नन्तः) दान न देनेवालोंका नाश करनेवाले (स्वर्दृशः) प्रकाशके मार्गका निरीक्षण करनेवाले (पवमानाः) सोमरस (ऋतस्य योनौ सीदत) यज्ञके स्थानमें रहते हैं ॥ ९ ॥

१ अ-राव्णः अपघ्नन्तः— दान न देनेवालोंका नाश होता है । दान देनेसे मित्र बढते हैं । और दान न देनेवाले स्वार्थियोंके शत्रु अधिक होते हैं । इस कारण दान देना उचित है ।

२ स्वर्दृशः— (स्वर्-दृशः) प्रकाशको देखनेवाले, प्रकाशके मार्गसे जानेवाले ।

३ ऋतस्य योनौ सीदत— सत्यके स्थानमें रहना, सत्यका आश्रय करके जीवन व्यतीत करना ।

[१४]

[११४] (कविः) क्रान्तदर्शी सोमरस (सिन्धोः ऊर्मौ) सिन्धुके जलमें (अधिश्रितः) आश्रित होकर (पुरुस्पृहं कारं बिभ्रत्) विशेष वर्णन करने योग्य शब्दको धारण करके (परि प्रासिष्यत्) मिश्रित होता है ॥ १ ॥

१ कविः— सोम कवि है, काव्य करनेकी स्फूर्ति देता है ।

२ सिन्धोः ऊर्मौ अधिश्रितः— सिन्धुके जलके साथ मिश्रित किया जाता है ।

३ पुरुस्पृहं कारं बिभ्रत् प्रासिष्यत्— बडे शब्दको करता हुआ पात्रमें रहता है ।

१२५ गिरा यदी सबन्धवः पञ्च व्राता अपस्यवः । परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम् ॥ २ ॥
१२६ आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत । यदी गोभिर्वसायते ॥ ३ ॥
१२७ निरिणानो वि धावति जहच्छर्याणि तान्वा । अत्रा सं जिघ्रते युजा ॥ ४ ॥
१२८ नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा । गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ५ ॥
१२९ अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या । वग्नुमियर्ति यं विदे ॥ ६ ॥
१३० अभि क्षिपः समग्मत मर्जयन्तीरिषस्पतिम् । पृष्ठा गृभ्णत वाजिनः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१२५] (सबन्धवः पञ्च व्राताः) बन्धुभावसे रहनेवाले पंच जन, यजमान (अपस्यवः) यज्ञकर्म करनेकी इच्छा करनेवाले (ईं) इस (धर्णसिं) धारण करनेकी शक्तिसे युक्त इस सोमको (गिरा) स्तुतिसे (परिष्कुर्वन्ति) अंकृत करते हैं ॥ २ ॥

पंचजन यज्ञ करनेकी इच्छा करते हैं और सब मिलकर यज्ञस्थानमें सोमका वर्णन करके उसकी स्तुति करते हैं।

[१२६] (आत्) रस निकालनेके पश्चात् (अस्य शुष्मिणः रसे) इस बलवर्धक सोमरसमें (विश्वे देवाः अमत्सत) सब देव आनंद प्रसन्न होते हैं। (यदि गोभिः वसायते) जिस समय गौके दूधसे उसका मिश्रण किया जाता है ॥ ३ ॥

सोमसे रस निकालते हैं, उस रसमें गौका दूध मिलाते हैं, और उस रसको देवता पीते हैं और आनंदित होते हैं।

[१२७] (निरीणानः) छाननीसे छाना जाकर (विधावति) नीचे दौडता है। उस समय यह सोमरस (तान्वा युजा) छाननीसे युक्त होकर (शर्याणि जहत्) छाननीके द्वारोंको बंद करता है और (अत्र) इस यज्ञमें (युजा सं जिघ्रते) अपने इन्द्र नामक मित्रके साथ मिल जाता है ॥ ४ ॥

सोमरस छाना जाता है, उस समय छाननीके छिद्र यह सोम बंद करता है। और छाना जाकर इन्द्रके साथ मिलता हैं।

[१२८] (विवस्वतः) यज्ञकर्ता यजमानकी (नप्तीभिः) अंगुलियोंसे (मामृजे) शुद्ध होता है और (शुभ्रः न दीप्तः युवा) शुभ्र तेजस्वी तरुण घोडेके समान दीखता है। (गाः) गौवोंके दूधको (निर्णिजं न) अपने घर जैसा बनाता है ॥ ५ ॥

यजमानकी अंगुलियोंसे दबाकर सोमसे रस निकाला जाता है, उस समय वह सोमरस शुभ्र तेजस्वी घोडेके समान दीखता है। गौके दूधसे वह सोमरस मिलाया जाता है।

[१२९] (अण्व्या) अंगुलियोंसे दबाकर निकलनेवाला सोमरस (गव्या श्रिति) गौके दूधमें मिश्रित होनेके लिये (तिरश्चता अति जिगाति) तिरछी गतिसे नीचे उतरता है। (यं विदे) इसको जाननेवाले यजमान ज्ञानके लिये (वग्नुं इयर्ति) शब्द करता है ॥ ६ ॥

अंगुलियोंसे दबाकर सोमसे रस निकालते हैं, पश्चात् उसको गौके दूधसे मिश्रित करते हैं। यह सोम नीचे पात्रमें उतरनेके समय शब्द करता हुआ, नीचेके पात्रमें आता है।

[१३०] (क्षिपः) अंगुलियां (इषस्पतिं मर्जयन्तः) अन्नके पति सोमको स्वच्छ करती हैं, उस समय वे अंगुलिया (अभि समग्मत) आपसमें मिलती हैं और (वाजिनः पृष्ठा गृभ्णत) बलवान् सोमको पकडती हैं ॥ ७ ॥

सोमको अंगुलियोंसे पकडा जाता है और अंगुलियोंसे दबाकर उससे रस निकाला जाता है।

१३१ परिं दिव्यानि मर्मृशद् विश्वानि सोम पार्थिवा । वसूनि याह्यस्मयुः ॥ ८ ॥

[१५]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१३२ एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ १ ॥
१३३ एष पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥ २ ॥
१३४ एष हितो वि नीयते ऽन्तः शुभ्रावता पथा । यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ॥ ३ ॥
१३५ एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ॥ ४ ॥
१३६ एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः । पतिः सिन्धूनां भवन् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१३१] हे (सोम) सोम ! (दिव्यानि) दिव्य तथा (पार्थिवा) पृथिवीके ऊपरका (विश्वानि वसूनि) सब प्रकारके धन (परि मर्मृशत्) सब प्रकारसे लेकर (अस्मयुः याहि) हमारे पास आओ ॥ ८ ॥

द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीके ऊपरके सब धन लेकर तू हमारे पास और तू हमारे साथ रह ।

[१५]

[१३२] (एषः) यह सोम (शूरः) पराक्रमी शूर है, (अण्व्या धिया याति) अंगुलियोंसे बुद्धि पूर्वक निकाला रस इन्द्रके पास जाता है । यह (आशुभिः रथेभिः) शीघ्रगामी रथोंसे (इन्द्रस्य निष्कृतं गच्छन्) इन्द्रके पास जानेके लिये पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

सोमसे रस निकालकर इन्द्रदेवताको समर्पित करते है ।

[१३३] (एषः) यह सोम (पुरु धियायते) बहुत कर्मोंको बुद्धिपूर्वक कराता है । (बृहते देवतातये) बडे यज्ञके लिये जाता है (यत्र अमृतासः आसते) जहां देवतागण रहते हैं ॥ २ ॥

यज्ञस्थानमें देव आकर बैठते हैं, वहां यह सोम बुद्धिपूर्वक यज्ञकर्मोंको करता रहता है ।

[१३४] (एषः) यह सोम (हितः) यज्ञ पात्रमें रखकर (विनीयते) लिया जाता है । और (भूर्णयः) अध्वर्युगण (शुभ्रावता पथा अन्तः) शुद्ध मार्गसे इसको यज्ञस्थानके अन्दर ले जाते हैं (यदि) तब इसको देवोंको (तुञ्जन्ति) अर्पण करते हैं ॥ ३ ॥

[१३५] (एष :) यह सोम (ओजसा नृम्णा दधानः) अपने सामर्थ्यसे सब प्रकारके धन धारण करके, (यूथ्यः वृषा) संघातमें रहनेवाला बैल जैसा युद्धके लिये तैयार होकर अपने सींग हिलाता है उस प्रकार यह सोम भी अपना सामर्थ्य बताता है ॥ ४ ॥

[१३६] (शुभ्रेभिः अंशुभिः) शुभ्र किरणोंसे युक्त (एषः वाजी) यह बलवान सोम (सिन्धूनां पतिः भवन्) नदियोंका पति होकर (रुक्मीभिः ईयते) अध्वर्युओंके साथ यज्ञस्थानमें जाता है ॥ ५ ॥

१ शुभ्रेभिः अंशुभिः एष वाजी— शुभ्र किरणोंसे युक्त होकर सुशोभित हुआ यह बलशाली सोम है । सोमरस पीनेसे बल बढता है ।

२ सिन्धूनां पतिः भवन्— यह सोम नदियोंका पति है । अर्थात् इसमें नदियोंका पानी मिलाया जाता है ।

३ रुक्मीभिः ईयते — तेजस्वी ज्ञानी याजकोंके साथ यह सोम रहता है । उनके साथ यह सोम यज्ञमें जाता है ।

१३७ एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवाँ अति । अव शादेषु गच्छति ॥ ६ ॥
१३८ एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः । प्रचक्राणं महीरिषः ॥ ७ ॥
१३९ एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सप्त धीतयः । स्वायुधं मदिन्तमम् ॥ ८ ॥

[१६]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१४० प्र ते सोतार ओण्यो३ रसं मदाय घृष्वये । सर्गो न तक्त्येतशः ॥ १ ॥
१४१ क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा । गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ २ ॥

अर्थ— [१३७] (एषः) यह सोम (वसूनि पिब्दना) धनके कारण कष्टसे युक्त हुए (परुषा ययिवां अति) राक्षसोंको दूर करके (शादेषु अव गच्छति) शासनमें रहनेवालोंके पास जाता है ॥ ६ ॥

१ एष वसूनि पिब्दना परुषा ययिवान् अति शादेषु अवगच्छति— यह सोम धन न होनेके कारण कष्टमें पडे राक्षसोंका अतिक्रमण करके शासनमें रहनेवाले जनोंके पास जाकर रहता है ।

[१३८] (महीः इषः प्रचक्राणं) बहुत अन्न देनेवाले (मर्ज्यं एतं) शुद्ध इस सोमका (आयवः) अध्वर्यु (द्रोणेषु) पात्रोंमें (उप मृजन्ति) मिलकर रस निकालते हैं ॥ ७ ॥

१ महीः इषः प्रचक्राणं मर्ज्यं एतं— यह सोमरस बहुत अन्न देनेवाला है, अतः इस सोमरसको अध्वर्यु शुद्ध करते हैं ।

२ आयवः द्रोणेषु उप मृजन्ति— अध्वर्युगण पात्रोंमें इस रसको शुद्ध करके रखते हैं ।

[१३९] (दश क्षिपः) दस अंगुलियां तथा (सप्त धीतयः) सात यज्ञ कर्तागण (त्यं एतं उ) उस सोमको (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं । यह सोम (मदिन्तमं सु-आयुधं) उत्तम आनंद देनेवाला और उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले वीरके समान वीरता बढानेवाला है ॥ ८ ॥

१ मदिन्तमं सु-आयुधं— यह सोमरस अत्यंत आनंद देनेवाला है तथा यह उत्तम शस्त्रधारी वीरके समान शूरता बढानेवाला होता है । सोमरस पीनेसे शौर्यका भाव वीरमें बढता है ।

२ दश क्षिपः एतं मृजन्ति— दस अंगुलियां इसको शुद्ध करती हैं ।

[१६]

[१४०] हे सोम ! (ते सोतारः) तेरा रस निकालनेवाले ऋत्विज (ओण्योः) द्यावा पृथिवीके बीचमें (घृष्वये मदाय) शत्रुनाशक उत्साह बढानेके लिये (रसं) रसको निकालते हैं वह रस (तक्ति) पात्रमें जाकर रहता है ॥ १ ॥

१ घृष्वये मदाय रसं तक्ति— शत्रुका नाश करनेकी शक्ति बढानेके लिये सोमरस निकालते हैं और उसको पात्रमें रखते हैं ।

२ एतशः सर्गो न— जैसा घोडेको सुशिक्षित करते है वैसे इस सोमरसको संस्कारोंसे सुसंस्कृत करते हैं ।

[१४१] (दक्षस्य रथ्यं) बलको देनेवाले (अपः वसानं) जलके साथ मिश्रित किये (अन्धसा) अन्नसे युक्त तथा (क्रत्वा) कर्म करनेकी शक्तिसे युक्त (गोषां) गौओंके दूधके साथ मिलाये (अण्वेषु सश्चिम) सोमको अंगुलियोंसे हम धारण करते हैं ॥ २ ॥

१ दक्षस्य रथ्यं— सोम बलको बढता है ।

२ अपः वसानं— सोमरस जलमें मिलाया जाता है ।

३ अन्धसा— अन्नकी शक्ति उसमें है ।

४ क्रत्वा— सोमरस कर्म करनेका सामर्थ्य बढाता है ।

५ गोषा— गौके दूधमें वह सोम मिलाया जाता है ।

१४२ अनप्तमप्सु दुष्टरं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३ ॥
१४३ प्र पुनानस्य चेतसा सोमः पवित्रे अर्षति । क्रत्वा सधस्थमासदत् ॥ ४ ॥
१४४ प्र त्वा नमोभिरिन्दव इन्द्र सोमा असृक्षत । महे भराय कारिणः ॥ ५ ॥
१४५ पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ६ ॥
१४६ दिवो न सानु पिप्युषी धारा सुतस्य वेधसः । वृथा पवित्रे अर्षति ॥ ७ ॥
१४७ त्वं सोम विपश्चितं तना पुनान आयुषु । अव्यो वारं वि धावसि ॥ ८ ॥

[१७]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१४८ प्र निम्नेनेव सिन्धवो घ्नन्तो वृत्राणि भूर्णयः । सोमा असृग्रमाशवः ॥ १ ॥

अर्थ— [१४२] (अनप्तम्) शत्रुओंसे अनाक्रान्त (अप्सु) जलोंके साथ मिलाये (दुष्टरं) दुष्टोंके आक्रमणसे दूर रहे सोमरसको (पवित्रे आ सृज) छाननीके ऊपर रखो । (इन्द्राय पातवे पुनीहि) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये उस सोमरसको छानकर रखो ॥ ३ ॥

१ अनप्तं— जिसपर शत्रुका हमला नहीं होता ।

२ दुष्टरं— शत्रुका आक्रमण जिसपर नहीं होता ।

३ इन्द्राय पातवे पुनीहि— इन्द्रको पीनेको देनेके लिये सोमको छानकर रखो ।

[१४३] (चेतसा) बुद्धिपूर्वक (पुनानस्य) पवित्र करनेवालेका (सोमः) सोम (पवित्रे अर्षति) छाननेके साधनमेंसे नीचे गिरता है । (क्रत्वा सधस्थं आसदत्) इस क्रियासे वह सोमरस अपने स्थानमें बैठता है ॥ ४ ॥

[१४४] हे इन्द्र ! (त्वा) तुझे (नमोभिः) स्तोत्रोंकेसे (इन्दवः) सोम (प्र असृक्षत) प्राप्त होते हैं । ये सोम (कारिणः) कार्य करनेवाले (महे भराय) महान संग्रामको करनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

१ कारिणः महे भराय— कार्यमें प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाले ये सोम बडे संग्रामको करनेवाले होते हैं। सोम रस पीनेसे वीरता मनमें बढती है और इस कारण वीर बडे युद्ध कर सकते हैं ।

[१४५] (अव्यये रूपे पुनानः) मेंढीकी छाननीमें छाना जानेवाला सोमरस (विश्वाः श्रियः अभि अर्षन) सब शोभाएं प्राप्त करता है जिस प्रकार (शूरः न गोषु तिष्ठति) शूर गौवोंमें रहता है ॥ ६ ॥

सोमरस छाना जानेसे अधिक शोभित दीखता है । जैसा शूर पुरुष गौवोंमें शोभता है, वैसा सोमरस गोदुग्धमें शोभता है ।

[१४६] (दिवः सानु न) द्युलोकसे जलधारा जैसी शिखर पर पडती है, (सुतस्य वेधसः) उस प्रकार यज्ञीय सोमरसकी धारा (पवित्रे वृथा अर्षति) छाननीसे सहज रीतिसे पात्रमें गिरती है ॥ ७ ॥

[१४७] हे सोम ! (त्वं) तू (विपश्चितं आयुषु) ज्ञानीको मनुष्योंमें (तना पुनानः) छाननीसे छाना जानेसे सुरक्षित रखता है । छाननेके समय (अव्यः वारं विधावसि) मेंढीके बालोंकी छाननी पर दौडकर जाता है ॥ ८ ॥

सोम छाना जानेसे पीने योग्य होता है और वह पीया जानेसे पीनेवालोंको सुरक्षित रखता है ।

[१७]

[१४८] (सिन्धवः निम्नेन इव) नदियां नीचेके मार्गसे ही जाती हैं वैसे (वृत्राणि घ्नन्तः) दुष्टोंका नाश करनेवाले (भूर्णयः सोमाः) जल्दीसे छाने जानेवाले सोमरस (आशवः असृग्रन्) शीघ्रतासे छाननीमेंसे नीचे उतरते हैं ॥ १ ॥

×

१४९ अभि सुवानास इन्दवो वृष्टयः पृथिवीमिव । इन्द्रं सोमासो अक्षरन् ॥ २ ॥
१५० अत्यूर्मिर्मत्सरो मदः सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ ३ ॥
१५१ आ कुलशेषु धावति पवित्रे परि षिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥ ४ ॥
१५२ अति त्री सोम रोचना रोहन् न भ्राजसे दिवम् । इष्णन् त्सूर्यं न चोदयः ॥ ५ ॥
१५३ अभि विप्रा अनूषत मूर्धन् यज्ञस्य कारवः । दधानाश्चक्षसि प्रियम् ॥ ६ ॥
१५४ तमु त्वा वाजिनं नरो धीभिर्विप्रा अवस्यवः । मृजन्ति देवतातये ॥ ७ ॥
१५५ मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः । चारुर्ऋताय पीतये ॥ ८ ॥

अर्थ— [१४९] (वृष्टयः पृथिवीं इव) वृष्टी जैसी पृथिवीपर गिरती है (सुवानासः इन्दवः) रस निकाले जानेवाले (सोमासः) सोम (इन्द्रं अक्षरन्) इन्द्रके पास जाते हैं ॥ २ ॥

सोमरस निकालनेके बाद वह इन्द्रको दिया जाता है।

[१५०] (अति- ऊर्मिः मत्सरः मदः) उत्साह बढानेवाला आनंद और स्फुरण देनेवाला (सोमः) सोमरस (देवयुः) देवोंके पास जानेवाला (रक्षांसि विघ्नन्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (पवित्रे अर्षति) छाननीके ऊपर जाता है ॥ ३ ॥

[१५१] यह सोमरस (कलशेषु आ धावति) कलशोंमें दौडता है। (पवित्रे परि षिच्यते) छाननीमेंसे छाना जाता है। (यज्ञेषु उक्थैः वर्धते) यज्ञोंमें स्तोत्रोंसे बढता रहता है ॥ ४ ॥

[१५२] हे (सोम) सोम! तेरी (त्री रोचना) तीनों लोकोंके ऊपर (अति रोहन् दिवं न भ्राजसे) रहकर जैसा द्युलोकको तेजस्वी करता है तथा (इष्णन् सूर्यं न चोदयः) इच्छापूर्वक सूर्यको भी प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

सोम तीनों लोकोंमें सबसे ऊपर रहता है, और वहांसे द्युलोकको प्रकाशित करता है तथा सूर्यको भी प्रेरित करता है। इस तरह सोम सब विश्वको तेजस्वी करता है।

[१५३] (चक्षसि प्रियं दधानाः) सोमके विषयमें प्रेम रखनेवाले (यज्ञस्य कारवः) यज्ञ करनेवाले याजक (विप्राः) ज्ञानी लोग (मूर्धन्) यज्ञके मुख्य भागमें (अभि अनूषत) बैठते हैं ॥ ६ ॥

सोमयागमें प्रेम करनेवाले यज्ञकर्ता ऋत्विज यज्ञस्थानके मुख्यभागमें बैठते हैं और यज्ञ करते हैं।

[१५४] (अवस्यवः) अपना रक्षण करनेकी इच्छा करनेवाले (विप्राः) ज्ञानी (नरः) लोग (धीभिः) बुद्धि युक्त किये कर्मोंसे (तं त्वा वाजिनं उ) उस तुझ अन्नवान सोमको (देवतातये) यज्ञके लिये (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ ७ ॥

अपनी सुरक्षा करनेवाले ज्ञानी नेता जन अपनी बुद्धिके द्वारा कहे स्तोत्रोंसे सोमरसको हि यज्ञ करनेके लिये शुद्ध करते हैं। और पश्चात् उससे यज्ञ करते हैं।

[१५५] हे सोम! (मधोः धारां अनु क्षर) मधुर रसकी धाराके रूपमें पात्रमें गिरता रह। (तीव्रः) तीव्रतासे (सधस्थं आसदः) छाननेके स्थानमें बैठ। (चारुः) गमनशील तू (ऋताय) यज्ञके लिये तथा (पीतये) देवोंके पीनेके लिये तैयार हो जाओ ॥ ८ ॥

[१८]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१५६ परि॑ सुवा॒नो गि॑रि॒ष्ठाः प॒वित्रे॒ सोमो॑ अक्षाः । मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ १ ॥
१५७ त्वं विप्र॒स्त्वं क॒विर्मधु॒ प्र जा॒तमन्ध॑सः । मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ २ ॥
१५८ तव॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सो दे॒वासः॑ पी॒तिमा॑शत । मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ ३ ॥
१५९ आ यो विश्वा॑नि॒ वार्या॒ वसू॑नि॒ हस्त॑योर्द॒धे । मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ ४ ॥
१६० य इ॒मे रोद॑सी म॒ही सं मा॒तरे॑व॒ दोह॑ते । मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ ५ ॥
१६१ परि॒ यो रोद॑सी उ॒भे स॒द्यो वाजे॑भिरर्ष॑ति । मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ ६ ॥
१६२ स शु॒ष्मी क॒लशे॒ष्वा पु॒ना॒नो अ॑चिक्रदत् । मदे॑षु सर्व॒धा अ॑सि ॥ ७ ॥

---

[१८]

अर्थ— [१५६] यह (सोमः) सोम (पवित्रे) छाननोमेंसे (परि अक्षाः) गिरता है। (सुवानः) रस निकालकर देनेवाला तू (गिरिष्ठाः) पर्वत पर रहनेवाला हो (मदेषु सर्वधा असि) आनंद देनेवालोंमें सबसे अधिक तू है ॥ १ ॥

सोमरस छाननीमेंसे शुद्ध होकर नीचे पात्रमें गिरता है। यह सोम पर्वतके ऊपरसे लाया है। यह सोम आनंद देनेवाले पदार्थोंमें अधिक आनद देनेवाला है।

[१५७] (त्वं विप्रः) तू ज्ञानी है, (त्वं कविः) तू कवि है अतः तू (अन्धसः प्रजातं मधु) अन्नसे उत्पन्न होनेवाला मधुर रस देता है। अतः तू आनंद देनेवालोंमें मुख्य है ॥ २ ॥

[१५८] (विश्वे सजोषसः देवासः) सब प्रीति करनेवाले देव (तव पीतिं आशत) तेरा पान करते हैं। (मदेषु सर्वधाः असि) आनंद देनेवाले पदार्थोंमें तू अधिक आनंद देनेवाला है ॥ ३ ॥

[१५९] (यः) जो सोम (विश्वानि वार्या वसूनि) सब उत्कृष्ट धन (हस्तयोः आदधे) भक्तोंके हातोंमें देता है वह तू आनंद देनेवालोंमें विशेष आनंद देनेवाला हो ॥ ४ ॥

[१६०] (यः) जो सोम (इमे मही रोदसी) इन दोनों द्यु और पृथिवीका (मातरा इव सं दोहते) माताओंके समान दोहन करता है, इनका सत्व ग्रहण करता है, वह सोम आनंद देनेवालोंमेंसे विशेष आनंद देनेवाला है ॥ ५ ॥

सोममें अत्यंत मधुर रस रहता है, अतः वह सब आनंद देनेवाले पदार्थोंमें अधिक आनंद देता है।

[१६१] (यः) जो सोम (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथिवीकी (वाजेभिः) अन्नोंसे (सद्यः परिअर्षति) तत्काल उत्तम सेवा करता है, अतः वह आनंद देनेवालोंमें श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

[१६२] (यः) जो सोम (शुष्मी) बलवर्धक है वह (कलशेषु) कलशोंमें (पुनानः) पवित्र करनेके समय (आ अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ प्रवेश करता है, वह आनंद देनेवाले पदार्थोंमें अधिक आनंद देनेवाला है ॥ ७ ॥

[१९]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१६३ यत् सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु । तन्नः पुनान आ भर ॥ १ ॥
१६४ युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥
१६५ वृषा पुनान आयुषु स्तनयन्नधि बर्हिषि । हरिः सन् योनिमासदत् ॥ ३ ॥
१६६ अवावशन्त धीतयो वृषभस्याधि रेतसि । सूनोर्वत्सस्य मातरः ॥ ४ ॥
१६७ कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः पुनानो गर्भमादधत् । याः शुक्रं दुहते पयः ॥ ५ ॥

---

[१९]

अर्थ— [१६३] हे (सोम) सोम ! (यत् चित्रं) जो चित्तको आकर्षण करनेवाला (उक्थ्यं) स्तुत्य (दिव्यं पार्थिवं वसु) दिव्य तथा पार्थिव धन है (तत्) वह सब धन (पुनान) पवित्र होकर (नः आभर) हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

हमें ऐसा धन प्राप्त हो, कि जो द्युलोकमें तथा पृथिवीपर प्रशंसनीय समझा जाता है ।

[१६४] हे (सोम) सोम ! तू और (इन्द्रः च) इन्द्र ये दोनों (युवं) तुम (स्वर्पती) सबके स्वामी (स्थ) हो, तथा (गोपती) गौओंके पालन करनेवाले हो । तुम दोनों (ईशाना) सबके स्वामी हो, अतः हमारे (धियः पिप्यतं) बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंका पोषण करो ॥ २ ॥

१ गोपती— गौओंका पालन करना चाहिये ।

२ स्वः-पती— अपनी संपत्तिका रक्षण करना चाहिये ।

३ ईशाना धियः पिप्यतं— अधिकारी जन उत्तम कर्मोंका संरक्षण करें ।

[१६५] (वृषा)कामनाओंको पूर्ण करनेवाला सोम (आयुषु) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंमें (पुनानः सन्) छाना जानेके समय (स्तनयन्) शब्द करता हुआ (बर्हिषि अधि) आसनके ऊपर (हरिः सन्) हरे रंगका (योनिं आसदत्) अपने स्थानमें बैठता है ॥ ३ ॥

१ वृषा— सोमरस बल बढानेवाला (आयुषु) याजकोंकी इच्छाएं पूर्ण करनेवाला होता है ।

२ पुनानः सन् स्तनयन्— छाननेके समय शब्द करता है ।

३ हरिः— यह सोम हरे रंगका होता है ।

[१६६] जिस प्रकार (सुनोः वत्सस्य मातरः) माताएं प्रिय पुत्रकी इच्छा करती है, उस प्रकार (धीतयः) यज्ञपात्र (रेतसि अधि) यज्ञस्थानमें (वृषभस्य अवावशन्त) बलवर्धक सोमकी इच्छा करती हैं ॥ ४ ॥

[१६७] (वृषण्यन्तीभ्यः पुनानः) सोमकी इच्छा करनेवाले जलोंसे पवित्र होनेवाला सोम (गर्भं आदधत्) जलोंके गर्भ स्थानमें रहता है । (कुवित्) बहुत रीतिसे (याः) जो (शुक्रं पयः दुहते) शुद्ध जल सोममें मिश्रित करनेके लिये देता है ॥ ५ ॥

१ वृषण्यन्तीभ्यः पुनानः— बलवान् सोमको जलोंसे शुद्ध किया जाता है ।

२ पुनानः गर्भं आदधत्— पवित्र होनेवाला सोम जलोंके अन्दर गर्भ जैसा होकर रहता है ।

३ कुवित् गाः शुक्रं पयः दुहते— अनेक प्रकारोंसे शुद्ध जल सोममें मिश्रित किया जाता है ।

१६८ उप शिक्षापतस्थुषों भियसमा धेहि शत्रुषु । पवमान विदा रयिम् ॥ ६ ॥
१६९ नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं नि शुष्मं नि वयस्तिर । दूरे वा सतो अन्ति वा ॥ ७ ॥

[२०]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१७० प्र कविर्देववीतये ऽव्यो वारेभिरर्षति । साह्वान् विश्वा अभि स्पृधः ॥ १ ॥
१७१ स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥ २ ॥
१७२ परि विश्वानि चेतसा मृशसे पवसे मती । स नः सोम श्रवो विदः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१६८] हे (पवमान) सोम ! तूं (अपतस्थुषः उप शिक्ष) हमारेसे दूर रहनेवाले मित्रोंको हमारे समीप ले आओ । (शत्रुषु भियसं आधेहि) हमारे शत्रुओंमें भय उत्पन्न कर और (रयिं विदा) धन हमें दो ॥ ६ ॥

१ अपतस्थुषः उप शिक्ष— हमसे दूर रहनेवाले मित्रोंको हमारे पास लाओ ।
२ शत्रुषु भियसं आधेहि— हमारे शत्रुओंमें भय रहे ऐसा कर ।
३ रयिं विदा— हमें धन दो ।

[१६९] हे सोम ! तू (शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर) शत्रुका सामर्थ्य नष्ट कर । शत्रुका (शुष्मं नि तिर) तेज नष्ट कर । (वयः नि तिर) शत्रुका अन्न विनष्ट कर । जो शत्रु (दूरे वा सतः)दूर रहे (अन्ति वा) वा समीप रहे ॥ ७ ॥

शत्रु दूर हो या समीप हो, उसका सब प्रकारका सामर्थ्य नष्ट हो जाय ।

१ शत्रोः वृष्ण्यं नि तिर— शत्रुका बल नष्ट कर ।
२ शत्रोः शुष्मं नि तिर— शत्रुका तेज नष्ट कर ।
३ शत्रोः वयः नि तिर— शत्रुका अन्न नष्ट कर ।
४ दूरे वा अन्ति वा सतः— शत्रु दूर हो वा पास हो, उसका सब सामर्थ्य नष्ट करना चाहिये ।

[२०]

[१७०] (कविः) ज्ञानी सोम (देववीतये) देवोंके पीनेके लिये (अव्यः वारेभिः प्र अर्षति) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे नीचे उतरता है । छाननीमेंसे छाना जाता है । (विश्वाः स्पृधः अभि साह्वान्) सब शत्रुओंका पराभव करता है ॥ १ ॥

सोमरस छाना जाता है । इस प्रकार छाननेसे वह शुद्ध होता है । और पीनेके योग्य होता है ।

[१७१] (सः हि) वह सोम (पवमानः) शुद्ध होनेपर (जरितृभ्यः) स्तोताओंके लिये (सहस्रिणं गोमन्तं वाजं) सहस्रों प्रकारका गोदुग्ध युक्त अन्न (आ इन्वति स्म) देता है ॥ २ ॥

[१७२] हे (सोम) सोम ! तू (चेतसा) अनुकूल बुद्धिसे (विश्वानि परि मृशसे) सब प्रकारके धन देता है । (मती पवसे) स्तुति सुनकर रस देता है । (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (श्रवः विदः) अन्न दो ॥ ३ ॥

१ विश्वानि परि मृशसे— तू सब धन देता है ।
२ मती पवसे — बुद्धि बढानेवाला रस देता है ।
३ सः नः श्रवः विदः — वह तू हमारे लिये अन्न दे ।

१७३ अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् । इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥
१७४ त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ । पुनानो वह्ने अद्भुत ॥ ५ ॥
१७५ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः । सोमश्चमूषु सीदति ॥ ६ ॥
१७६ क्रीळुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ७ ॥

[२१]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१७७ एते धावन्तीन्दवः सोमा इन्द्राय घृष्वयः । मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १ ॥

अर्थ— [१७३] (बृहत् यशः अभ्यर्ष) बडा यश हमें प्राप्त कराओ । (मघवद्भ्यः ध्रुवं रयिं) धनी लोगोंको स्थिर रहनेवाला धन देवो । (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) स्तोताओंको अन्न भरपूर दो ॥ ४ ॥

१ बृहद् यशः अभ्यर्ष— हमें बडा यश दो ।

२ मघवद्भ्यः ध्रुवं रयिं अभ्यर्ष— धनी लोगोंके लिये चिरकाल टिकनेवाला धन दो ।

३ स्तोतृभ्यः इषं आ भर— स्तुति करनेवालोंको अन्न दो ।

[१७४] हे (सोम) सोम ! ((सुव्रतः पुनानः त्वं) उत्तम व्रत करनेवाला शुद्ध होनेवाला तू (गिरः आ विवेशिथ) स्तुतियोंको प्राप्त करता है । हे (वन्हे) तेजस्वी सोम ! (अद्भुतः) अद्भुत प्रशंसनीय है ॥ ५ ॥

१ सुव्रतः पुनानः त्वं— तू उत्तम व्रत करनेवाला तथा शुद्ध होनेवाला है ।

२ वन्हे अद्भुत— तू तेजस्वी और अद्भुत सामर्थ्यवान् हो ।

[१७५] (सः वह्निः) वह सोम यज्ञोंका वहन करता है । वह (अप्सु दुष्टरः) अन्तरिक्षके जलस्थानमें रहता है और अन्य शत्रुओंसे पार करनेके लिये अशक्य है । (गभस्त्योः मृज्यमानः) दोनों हाथोंसे शुद्ध किया जाता है । ऐसा वह (सोमः) सोम (चमूषु सीदति) पात्रोंमें रहता है ॥ ६ ॥

सोमरस जलमें मिलाकर, हाथों द्वारा पकडकर शुद्ध किया जाता है और पात्रोंमें भरा जाता है और पात्रोंमें रखा जाता है ।

[१७६] हे (सोम) सोम ! तू (क्रीळुः) क्रीडा करनेमें समर्थ और (मंहयुः) दान देनेकी इच्छा करनेवाला (मखः न) यज्ञमें दानके समान (पवित्रं गच्छसि) छाननीमें जाता है और (स्तोत्रे) स्तुति करनेवालेके लिये (सुवीर्यं दधत्) उत्तम बल देता है ॥ ७ ॥

१ क्रीळुः सोमः— सोमरस क्रीडा करनेकी शक्ति बढाता है ।

२ मंहयुः— दान देनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न करता है ।

३ मखः— सोम यज्ञरूप ही है ।

४ पवित्रं गच्छसि— सोमरस छाननीसे छाना जाता है और शुद्ध होता है ।

५ सुवीर्यं दधत्— उत्तम पराक्रम करनेका बल बढाता है ।

[२१]

[१७७] (एते सोमाः) ये सोमरस (इन्दवः) तेजस्वी (घृष्वयः) युद्ध करनेकी प्रेरणा देनेवाले (मत्सरासः) आनंद बढानेवाला और (स्वर्विदः) ज्ञान देनेवाले (इन्द्राय धावन्ति) इन्द्रके पास जानेके लिये दौड रहे हैं ॥ १ ॥

सोमरस तेजस्वी हैं, युद्ध करनेका सामर्थ्य बढाते हैं, आनंद बढाते हैं, सत्यज्ञान बढाते हैं, ये इन्द्रको पीनेके लिये दिये जाते हैं ।

१७८ प्रवृण्वन्तो अभियुजः सुष्वये वरिवोविदः । स्वयं स्तोत्रे वयस्कृतः ॥ २ ॥
१७९ वृथा क्रीळन्त इन्दवः सधस्थमभ्येकमित् । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ॥ ३ ॥
१८० एते विश्वानि वार्या पवमानास आशत । हिता न सप्तयो रथे ॥ ४ ॥
१८१ आस्मिन् पिशङ्गमिन्दवो दधाता वेनमादिशे । यो अस्मभ्यमरावा ॥ ५ ॥
१८२ ऋभुर्न रथ्यं नवं दधाता केतमादिशे । शुक्राः पवध्वमर्णसा ॥ ६ ॥
१८३ एत उ त्ये अवीवशन् काष्ठां वाजिनो अक्रत । सतः प्रासाविषुर्मतिम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [१७८] (प्र वृण्वन्तः) विशेष रीतिसे सहाय्य करनेवाले (अभियुजः) अनेक प्रकारसे उपयोगी (सुष्वये वरिवो विदः) रस निकालनेवालेको धन देनेवाले (स्तोत्रे) स्तुति करनेवालेके लिये (स्वयं वयस्कृतः) स्वयं अन्न देनेवाले ये सोम हैं ॥ २ ॥

[१७९] (वृथा क्रीडन्तः इन्दवः) सहज खेलते हुएसे ये सोमरस (एकं सधस्थं इत्) एक पात्रमें (सिन्धो ऊर्मा) नदीके जलमें (वि अक्षरन्) गिरते हैं ॥ ३ ॥

ये सोमरस सहज रीतिसे एक पात्रमें रहे नदीके जलमें मिलाये जाते हैं। पात्रमें नदीका जल रहता है। उस जलमें सोमरस मिलाया जाता है।

[१८०] (एते) ये सोमरस (पवमानासः) शुद्ध होते हुए (विश्वानि वार्या) सब स्वीकार करने योग्य धन (आशत) प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

१ रथे हिताः सप्तयः— रथमें जोडे हुए घोडे जैसे धन्यता प्राप्त करते हैं वैसे सोमरस धन्यता देते हैं।

२ पवमानासः विश्वानि वार्या आशत— शुद्ध हुए सोमरस सब धन प्राप्त करते हैं। यजमान सोमयाग करनेसे धन्य होता है।

[१८१] हे (इन्दवः) सोम ! (अस्मिन्) इस यजमानमें (पिशंगं वेनं) अनेक प्रकारका धन (आदिशे-आ दधात) दान देनेके लिये देकर रखो। (यः) जो यजमान (अस्मभ्यं अरावा) हम सबको उस धनका दान करता है ॥ ५ ॥

यजमानके पास पर्याप्त धन हो, जिस धनका दान वह यजमान यज्ञमें कर सके।

[१८२] (ऋभुः न) तेजस्वी स्वामी जैसा (नवं रथ्यं) नवीन रथ चलानेवालेको रथ चलानेके कार्यमें लगाता है उस प्रकार (केतं आदिशे) ज्ञान हमारेमें (दधात) रखो और (शुक्राः अर्णसा पवध्वं) शुद्ध सोम जलके साथ पवित्र होकर चलें ॥ ६ ॥

१ ऋभुः न नवं रथ्यं केतं आदिशे— तेजस्वी स्वामी जैसा नवीन उत्तम सारथीको रथ चलानेके लिये लगाता है, उस प्रकार हमें उत्तम यज्ञके कार्यमें लगावो। हमसे यज्ञ उत्तम रीतिसे होते रहें।

२ शुक्रा अर्णसा पवध्वं— शुद्ध सोमरस छाने जांय। और उन सोमरसोंका यज्ञमें उपयोग हो।

[१८३] (एते त्ये उ) वे सोम यज्ञकी (अवीवशन्) इच्छा करते हैं। (वाजिनः) बलवान वे सोम (काष्ठां अक्रत) अपने स्थानपर यज्ञमें गये। और (सतः मतिं प्रासाविषुः) यजमानकी बुद्धिको यज्ञ करनेकी उन्होंने प्रेरणा दी ॥ ७ ॥

[२२]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१८४ एते सोमा॑स आ॒शवो॒ रथा॑ इव॒ प्र वा॒जिनः॑ । सर्गाः॑ सृ॒ष्टा अ॑हेषत ॥ १ ॥

१८५ एते वाता॑ इवो॒रवः॑ प॒र्जन्य॑स्येव वृ॒ष्टयः॑ । अ॒ग्नेरि॑व भ्र॒मा वृथा॑ ॥ २ ॥

१८६ एते पू॒ता वि॑प॒श्चितः॒ सोमा॑सो॒ दध्या॑शिरः । वि॒पा व्या॑नशु॒र्धियः॑ ॥ ३ ॥

१८७ एते मृ॒ष्टा अम॑र्त्याः सस॒वांसो॒ न श॑श्रमुः । इय॑क्षन्तः प॒थो रजः॑ ॥ ४ ॥

१८८ एते पृ॒ष्ठानि॒ रोद॑सो॒र्विप्र॒यन्तो॒ व्या॑नशुः । उ॒तेदमु॑त्त॒मं रजः॑ ॥ ५ ॥

१८९ तन्तुं॑ तन्वा॒नमु॑त्त॒मम॑नु॒ प्र॒वत॑ आशत । उ॒तेदमु॑त्त॒माय्य॑म् ॥ ६ ॥

[२२]

अर्थ— [१८४] (एते सोमासः) ये सोम (सृष्टाः आशवः) रस निकाले शीघ्रतासे छाननीसे नीचे (सर्गाः अहेषत) उतरते हुए शब्द करते हैं, (रथाः इव) रथोंके समान अथवा (वाजिनः प्र इव) घोडोंके समान शब्द करते हैं ॥ १ ॥

रथ चलनेके समय शब्द करते हैं, तथा घोडे शब्द करते हैं, उस प्रकार ये सोमरस निकालकर छाननीमेंसे छाने जानेके समय शब्द करते हुए नीचे रखे पात्रमें उतरते हैं ।

[१८५] (एते) ये सोमरस (वाताः इव) वायुके समान (उरवः) बडे जोरसे जाते हैं । (पर्जन्यस्य वृष्टयः) पर्जन्यकी वृष्टीके समान तथा (अग्नेः भ्रमा वृथा इव) अग्निकी ज्वालायें जैसी जोरसे चलती हैं वैसे चलते हैं ॥ २ ॥

सोमरस छाननीसे वैसे जोरसे नीचेके पात्रमें गिरते हैं , जैसे वायु वेगसे चलते हैं, वृष्टी जैसी होती है, तथा अग्निकी ज्वालाएं चलती हैं ।

[१८६] (एते सोमासः) ये सोमरस (पूताः) शुद्ध हुए (विपश्चितः) ज्ञान देनेवाले (दध्याशिरः) दहींके साथ मिलाये गये हैं । ये (विपा) विशेष ज्ञानसे युक्त होकर (धियः व्यानशुः) बुद्धिपूर्वक किये यज्ञकर्ममें आते हैं ॥ ३ ॥

सोमरस छानकर शुद्ध होनेपर दहीके साथ मिलाये जाते हैं और उनका यज्ञकर्ममें विनियोग किया जाता है ।

[१८७] (एते मृष्टाः) ये सोमरस छाने जाकर शुद्ध होनेपर (अमर्त्याः) अमर देवोंके सदृश (ससृवांसः) छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें उतरते है । इस समय वे सोमरस (पथः रजः) अपने मार्गों और स्थानोंको (इयक्षन्तः) जानेकी इच्छा करते हैं । परंतु वे (न शश्रमुः) श्रांत नहीं होते ॥ ४ ॥

[१८८] (एते) ये सोमरस (रोदस्योः पृष्ठानि) द्युलोक और भूलोकके पृष्ठ भागोंपर (विप्रयन्तः) विविध प्रकारसे जाते हैं और (व्यानशुः) सब स्थानोंपर फैलते हैं । (उत इदं उत्तमं रजः) और इस उत्तम द्युलोकमें भी फैलते हैं ॥ ५ ॥

सोमरस भूमी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोकमें फैलते हैं और वहां प्राप्त होते हैं । सोमरसोंका प्रभाव तीनों लोकोमें होता है ।

[१८९] (तन्तुं तन्वानं) यज्ञको फैलानेवाले (उत्तमं) उत्कृष्ट सोमको (प्रवतः अनु आशत) नदियां प्राप्त होती हैं । (उत) और वह सोम (इदं उत्तमाय्यम्) इस उत्तम यज्ञकर्मको पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

१ तन्तुं तन्वानं प्रवतः अनुआशत— यज्ञको फैलानेवाले सोमके साथ नदीयोंके जल मिलाये जाते हैं ।

२ इदं उत्तमाय्यम्— यह उत्तम यज्ञकर्म उस सोमसे किया जाता है ।

सोमरसमें नदीका जल मिलाया जाता है और उस मिश्रणसे-सोम और जलके मिश्रणसे सोमयज्ञ किया जाता है ।

१९० त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः । ततं तन्तुमचिक्रदः ॥ ७ ॥

[२२]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१९१ सोमा असृग्रमाशवो मधोर्मदस्य धारया । अभि विश्वानि काव्या ॥ १ ॥
१९२ अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः । रुचे जनन्त सूर्यम् ॥ २ ॥
१९३ आ पवमान नो भरा-ऽर्यो अदाशुषो गयम् । कृधि प्रजावतीरिषः ॥ ३ ॥
१९४ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् । अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [१९०] हे (सोम) सोम ! (त्वं) तू (पणिभ्यः) पणिजनोंसे (गव्यानि वसु) गौसंबंधी पदार्थ तथा धन (आ धारयः) लाकर धारण करता है । वैसाहि (तन्तुं ततं) यज्ञको फैलाकर (अचिक्रदः) शब्द करता है ॥ ७ ॥

१ त्वं पणिभ्यः गव्यानि आ धारयः— तू पणिजनोंसे गौके संबंधी पदार्थ दूध, दही, घृत आदि लाकर अपने पास यज्ञस्थानमें रखता है ।

२ तन्तुं ततं अचिक्रदः— यज्ञको फैलानेके लिये उपदेश करता है ।

" पणि " जन व्यापार करते हैं, गौवें रखते हैं, उनसे हवनीय घी आदि पदार्थ मिलते हैं, जिनसे यज्ञ होते हैं ।

[२२]

[१९१] (विश्वानि काव्या अभि) अनेक काव्यरूपी स्तोत्र कहते हुए (मदस्य मधोः धारया) मधुर सोमकी धारासे (सोमाः) सोमरस (आशवः असृग्रम्) शीघ्रतासे निकाले जाते हैं ॥ १ ॥

सोमरस निकालनेके समय वैदिक सूक्त बोले जाते हैं और यज्ञके स्थानमें सोमसे रस निकाला जाता है । यह सोमरस मधुर रहता है ।

[१९२] (प्रत्नासः आयवः) पुराने घोडे (नवीयः पदं अनु अक्रमुः) नवीन स्थान आक्रमण करते हैं, (रुचे सूर्यं जनन्त) प्रकाशके लिये सूर्यको उत्पन्न करते हैं । वैसे सोमरस हैं ॥ २ ॥

घोडे नवीन स्थानपर जाकर रहते हैं, वैसे सोम यज्ञस्थानमें जाकर यज्ञकार्य करता है । प्रकाशके लिये सूर्य बनाया है उस तरह यज्ञके लिये सोम तैयार किया है और यज्ञस्थानमें रखा है ।

[१९३] हे (पवमान) सोम ! तू (नः) हमारे लिये (अर्यः) शत्रुरूपी (अदाशुषः गयं) दान न देनेवाले शत्रुका घर या धन (आभर) लाकर हमें देओ । (प्रजावतीः इषः कृधि) प्रजा युक्त अन्न भी देओ ॥ ३ ॥

१ अदाशुषः अर्यः गयं नः आभर— दान न देनेवाले शत्रुका घर हमारे लिये भरपूर रीतिसे दे दो । दान न देनेवालेके घरका धन हमें दे दो ।

२ प्रजावतीः इषः कृधि— प्रजा उत्पन्न करनेवाला वीर्य बढानेवाला अन्न हमें दे दो । उस अन्नको खानेसे हमारेमें वीर्य बढेगा और हमें संतति पर्याप्त होगी ।

[१९४] (आयवः सोमासः) छाने जानेवाले सोमरस (मद्यं मदं) आनंद देनेवाला रस (अभि पवन्ते) नीचे गिराते हैं । (मधुश्चुतं कोशं अभि) मधुररस रखनेके पात्रमें गिरते हैं ॥ ४ ॥

छाने जानेवाले सोमरस आनंद बढाते हैं । वे रसपात्रमें छानकर रखे रहते हैं ।

×

१९५ सोमो॑ अर्षति धर्ण॒सि॒र्दधा॑न इन्द्रि॒यं रस॑म् । सु॒वीरो॑ अभिशस्ति॒पाः ॥ ५ ॥
१९६ इन्द्रा॑य सोम पवसे दे॒वेभ्यः॑ सध॒माद्यः॑ । इन्दो॒ वाजं॑ सिषाससि ॥ ६ ॥
१९७ अ॒स्य पी॒त्वा मदा॑ना॒मिन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ति । ज॒घान॑ ज॒घन॑च्च॒ नु ॥ ७ ॥

[२४]

(ऋषिः- काश्यपोऽसितो देवलो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

१९८ प्र सोमा॑सो अधन्विषुः॒ पव॑माना॒स इन्द॑वः । श्री॒णा॒ना अ॒प्सु मृ॑ञ्जत ॥ १ ॥
१९९ अ॒भि गावो॑ अधन्विषु॒रापो॒ न प्र॒वता॑ य॒तीः । पु॒ना॒ना इन्द्र॑माशत ॥ २ ॥

अर्थ— [१९५] (धर्णसि) धारणशक्तिसे पूर्ण (इन्द्रियं रसं दधानः) इन्द्रियोंकी शक्ति बढानेवाले रसको धारण करनेवाला (सुवीरः) उत्तम वीरके समान शौर्य बढानेवाला (अभिशस्तिपाः) हिंसक शक्तियोंको दूर करनेवाला (सोमः अर्षति) सोमरस पात्रमें जाता है ॥ ५ ॥

१ धर्णसिः— धारण करनेकी शक्तिसे युक्त ।

२ इंद्रियं रसं दधानः— इंद्रियोंकी शक्ति बढाता है ।

३ सुवीरः— उत्तम वीर बनाता है । सोमरस पान करनेसे वीरता बढती है ।

४ अभिशस्तिपाः— हिंसक शक्तियोंको दूर करता है ।

[१९६] हे (सोम) सोम ! तू (सध- माद्यः) यज्ञके लिये योग्य हो । (इन्द्राय देवेभ्य पवसे) इन्द्रके लिये तथा देवोंके लिये तुझसे रस निकाला जाता है । हे (इन्दो) सोम ! तूं हमारे लिये (वाजं सिषाससि) अन्न देता है ॥ ६ ॥

१ सोमका रस निकालकर यज्ञमें देवोंको दिया जाता है ।

२ इन्द्राय देवेभ्यः पवसे— इन्द्रके लिये तथा देवोंके लिये सोमसे रस निकालते हैं ।

३ इन्दो ! वाजं सिषाससि— हे सोम ! तूं बल बढानेवाला अन्न देता है । सोमरस बल बढानेवाला है ।

[१९७] (मदानां) आनंदमय उत्साह बढानेवाले (अस्य पीत्वा) इस सोमरसको पीकर (वृत्राणि) घेरनेवाले शत्रुओंके (अप्रति) ऊपर आक्रमण न करके ही इन्द्र (जघान) शत्रुओंका नाश करता रहा (नु जघनत् च) और नाश करता है ॥ ७ ॥

सोमरस पीकर इन्द्र घेरनेवाले सब शत्रुओंका नाश करता रहा और संप्रति भी शत्रुओंका नाश करता है ।

[२४]

[१९८] (पवमानासः इन्दवः सोमासः) छाने जानेवाले तेजस्वी सोमरस (प्र अधन्विषुः) छाननीसे नीचे उतरते हैं । (श्रीणानाः) गौके दूधके साथ मिश्रित किये जाते हैं तथा (अप्सु मृञ्जत) जलोंके साथ मिलाये जाते हैं ॥ १ ॥

१ पवमानासः इन्दवः सोमासः श्रीणानाः प्र अधन्विषुः— छाने जानेवाले तेजस्वी सोमरस जलके तथा गौके दूधके साथ मिलाकर छाने जाते हैं ।

२ अप्सु मृञ्जत— जलोंके साथ मिलाये जाते हैं ।

[१९९] (गावः) गमनशील सोमरस (अभि अधन्विषुः) छाननीके नीचे छानकर जाते हैं (आपः न) जैसे जल प्रवाह (प्रवता यतीः) उच्च स्थानसे नीचे जाते हैं । ये सोमरस (पुनानाः) छाने जाकर (इन्द्रं आशत) इन्द्रके समीप पहुंचते हैं ॥ २ ॥

सोमरस छाननेके पश्चात् इन्द्रके पास पहुंचाया जाता है ।

२०० प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय पातवे । नृभिर्यतो वि नीयसे ॥ ३ ॥
२०१ त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीसहे । सस्निर्यो अनुमाद्यः ॥ ४ ॥
२०२ इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि । अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ ५ ॥
२०३ पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ६ ॥
२०४ शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतस्य मध्वः । देवावीरघशंसहा ॥ ७ ॥

[२५]

(ऋषिः- दृळ्हच्युत आगस्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२०५ पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे । मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥ १ ॥

अर्थ— [२००] हे (पवमान सोम) हे छाने जानेवाले सोम (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये (प्रधन्वसि) तूं जाता है । (नृभिः यतः वि नीयसे) ऋत्विजोंके द्वारा तू ले लिया जाता है ॥ ३ ॥

सोमरस निकालकर, उसको छानकर इन्द्रके पास लिया जाता है और यज्ञकर्ता उस सोमरसको इन्द्रको पीनेके लिये अर्पण करते हैं ।

[२०१] हे (सोम) सोम ! (त्वं नृमादनः) तू मनुष्योंको आनंद देनेवाला है । तूं (चर्षणीसहे) मानवोंका द्वेष करनेवालोंका विनाश करनेवाले इन्द्रके लिये (पवस्व) रस निकालो । तू (सस्निः) शुद्ध है और (अनुमाद्यः) स्तुत्य है ॥ ४ ॥

१ त्वं नृमादनः— सोमरस मनुष्योंका आनंद बढानेवाला है ।
२ चर्षणीसहे पवस्व— दुष्टोंका पराभव करनेवाले इन्द्रके लिये रस निकालो ।
३ सस्निः— तू शुद्ध है ।
४ अनुमाद्यः— तू स्तुति करनेके योग्य हो ।

[२०२] हे (इन्दो) सोम ! (यत्) जब (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला तू रस (पवित्रं परिधावसि) छाननीपर छाना जाता है तब (इन्द्रस्य धामने अरं) इन्द्रके पेटके लिये पर्याप्त होता है ॥ ५ ॥

पत्थरोंसे कूटकर निकाला हुआ सोमका रस छाननीसे छाना जाता है । वह सोमरस पीनेको देनेके लिये योग्य होता है ।

[२०३] हे (वृत्र हन्तम) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! तूं (पवस्व) रस निकालो । (उक्थेभिः अनुमाद्यः) स्तोत्रोंसे प्रशंनीय तू है । तू (शुचिः पावकः अद्भुतः) पवित्र, शुद्ध करनेवाला तथा अद्भुत हो ॥ ६ ॥

[२०४] (सुतस्य मध्वः सोमः) रस निकाले मधुर सोमरसको (शुचिः) शुद्ध और (पावकः) पवित्र करनेवाला (उच्यते) कहा जाता है । वह सोमरस (देवावीः) देवोंका संरक्षण करनेवाला तथा (अघ-शंस हा) पापीयोंका विनाश करनेवाला है ॥ ७ ॥

१ सोमः मध्वः शुचिः पावकः उच्यते— सोमरस मधुर शुद्ध तथा शुद्ध करनेवाला होता है ।
२ सोम देवावीः अघशंसहा— सोम देवोंका रक्षक तथा दुष्टोंका नाश करनेवाला है ।

[२५]

[२०५] हे (हरे) हरे रंगके सोम ! (दक्ष-साधनः) बल देनेवाला और (मदः) आनंद देनेवाला तू (देवेभ्यः) देवोंके तथा (मरुद्भ्यः वायवे) मरुतों और वायुके (पीतये पवस्व) पीनेके लिये रस निकालो ॥ १ ॥

सोमका रस देवोंको, मरुतोंको तथा वायुको दिया जाता है ।

२०६ पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत् । धर्मणा वायुमा विश ॥ २ ॥
२०७ सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥
२०८ विश्वा रूपाण्याविशन् पुनानो याति हर्यतः । यत्रामृतास आसते ॥ ४ ॥
२०९ अरुषो जनयन् गिरः सोमः पवत आयुषक् । इन्द्रं गच्छन् कविक्रतुः ॥ ५ ॥
२१० आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ६ ॥

[२६]

(ऋषिः- इध्मवाहो दार्ढच्युतः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२११ तममृक्षन्त वाजिनमुपस्थे अदितेरधि । विप्रासो अण्व्या धिया ॥ १ ॥
२१२ तं गावो अभ्यनूषत सहस्रधारमक्षितम् । इन्दुं धर्तारमा दिवः ॥ २ ॥

अर्थ— [२०६] हे (पवमान) सोम ! (धिया हितः) अंगुलियोंसे पकडा हुआ तू (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (योनिं अभि विश) पात्रमें प्रवेश कर । (धर्मणा वायुं आ विश) धर्मके अनुकूलतासे वायुके समीप जा ॥ २ ॥

अंगुलियोंसे पकडा हुआ सोमसे निकलनेवाला रस शब्द करता हुआ नीचे रखे पात्रमें पडता है । उस समय उस रसका संबंध वायुसे भी होता है ।

[२०७] (वृषा) बलवर्धक (कविः) ज्ञानी (प्रियः) प्रियकर (वृत्रहा) शत्रुओंको मारनेवाला (देववीतमः) देवोंको अत्यतं प्रिय (योनौ अधि) अपने आश्रय स्थानमें (देवैः सं शोभते) देवोंके साथ शोभता है ॥ ३ ॥

१ वृषा कविः प्रियः वृत्रहा देववीतमः योनौ अधि देवैः सं शोभते— बलवान । ज्ञानी, प्रिय, शत्रुओंका विनाश करनेवाला, देवोंको प्रिय, अपने यज्ञके स्थानमें अनेक देवोंके साथ शोभता है ।

[२०८] (विश्वा रूपाणि आविशन्) सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर (पुनानः) पवित्र होकर यह सोम (हर्यतः याति) सुशोभित होकर जाता है (यत्र) जहां (अमृतासः आसते) देव रहते हैं ॥ ४ ॥

जहां देव बैठते हैं उस यज्ञके स्थानमें अनेक रूपोंसे शुद्ध हुआ यह सोमरस जाता है । यज्ञमें सब देव आकर बैठते है, वहां यह सोम भी जाकर अपने स्थानमें बैठता है । यज्ञमें सोमके लिये नियत स्थान रहता है ।

[२०९] (अरुषः सोमः) तेजस्वी सोम (गिरः जनयन्) शब्द करता हुआ (पवते) छाना जाता है । (आयुषक्) प्रीति करनेवाला (इद्रं गच्छन्) इन्द्रके पास जानेवाला (कविक्रतुः) ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाला यह सोम है ॥ ५ ॥

[२१०] हे (मदिन्तम) आनंददायक (कवे) ज्ञानी सोम ! तू (पवित्रं) छाननीके अन्दरसे (धारया आ पवस्व) धारासे छाना जा । (अर्कस्य) पूजनीय इन्द्रके (योनिं आसदं) स्थानको प्राप्त कर ॥ ६ ॥

[२६]

[२११] (विप्रासः) ऋत्विज लोक (अण्व्या धिया) सूक्ष्म बुद्धिसे (तं वाजिनं) उस बलवान सोमको (अदितेः उपस्थे) यज्ञ भूमिमें उपर (अधि अमृक्षन्त) विशेष रीतिसे शुद्ध करते हैं ॥ १ ॥

[२१२] (तं दिवः धर्तारं) उस द्युलोकका धारण करनेवाले (अक्षितं) कम न होनेवाले (सहस्र धारं) हजारों धाराओंसे रस देनेवाले (इन्दुं सोमकी (गावः अभ्यनूषत) स्तोत्र प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

अनेक स्तोत्र सोमका वर्णन करते हैं ।

२१३ तं वेधां मेधयांह्यन् पवमानमधि द्यवि । धर्णसिं भूरिधायसम् ॥ ३ ॥
२१४ तमह्यन् भुरिजोर्धिया संवसानं विवस्वतः । पतिं वाचो अदाभ्यम् ॥ ४ ॥
२१५ तं सानावधि जामयो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । हर्यतं भूरिचक्षसम् ॥ ५ ॥
२१६ तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः पवमान गिरावृधम् । इन्दविन्द्राय मत्सरम् ॥ ६ ॥

[२७]

(ऋषिः– नृमेध आङ्गिरसः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

२१७ एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते । पुनानो घ्नन्नप स्रिधः ॥ १ ॥
२१८ एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते । पवित्रे दक्षसाधनः ॥ २ ॥
२१९ एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः । सोमो वनेषु विश्ववित् ॥ ३ ॥

अर्थ— [२१३] (वेधां) सबको धारण करनेवाले (धर्णसिं) सबके आधाररूप (भूरिधायसं) बहुतोंके धारण कर्ता (तं पवमानं) उस सोमको (अधि द्यवि) द्युलोकके पास (मेधया अह्यन्) बुद्धिसे पहुंचाते हैं ॥ ३ ॥

सोम सबका आधार, सबका धारण करनेवाला, सबको आश्रय देनेवाला है। उसको द्युलोकके समीप यज्ञ कर्ता लोक अपनी बुद्धिसे पहुंचाते हैं। सोमवल्ली पहाडोंपर हिमालयमें सबसे उच्च स्थानमें होती है अतः वह स्वर्गमें रहती है ऐसा कहा है।

[२१४] (वाचः पतिं) वाणीके स्वामी (अदाभ्यं) किसीसे न दबनेवाले (विवस्वतः) ऋत्विजोंके (भुरिजोः) बाहुओंमें अर्थात् हाथोंमें (संवसानं) रहनेवाले (तं) उस सोमको (अह्यन्) ले जाते हैं और यज्ञ-स्थानमें पहुंचाते हैं ॥ ४ ॥

ऋत्विज लोक यज्ञस्थानमें सोमको हाथोंसे धारण करके पहुंचाते हैं और यज्ञमें उसको समर्पित करते हैं।

[२१५] (जामयः) अंगुलियां (तं हरिं) उस हरे रंगके (हर्यतं) सुंदर (भूरिचक्षसं) बहुतोंको देखनेवाले सोमको (सानौ अधि) उच्च प्रदेशमें रखकर (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं ॥ ५ ॥

सोमवल्लिको यज्ञस्थानमें ऊंचे स्थानमें रखकर पत्थरसे कूटते हैं और उससे रस निकालते हैं। सोमवल्ली हरे रंगकी होती है और वह चमकती है।

[२१६] हे (पवमान) सोम ! (वेधसः तं त्वा हिन्वन्ति) ज्ञानीलोक उस तुझको प्रेरित करते हैं। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय मत्सरं) इन्द्रको आनंद देनेवाले तुम सोम (गिरावृधं) स्तुतिस्तोत्रोंसे प्रशंसित होनेवाले हो ॥ ६ ॥

[२७]

[२१७] (एषः) यह सोम (कविः अभिष्टुतः) ज्ञानी करके उसकी स्तुति की जानेपर (पवित्रे अधि तोशते) छाननीपर जाता है। वहां (पुनानः) पवित्र होकर (स्रिधः अपघ्नन्) शत्रुओंका नाश करता है ॥ १ ॥

[२१८] (एषः दक्षसाधनः) यह बल बढानेका साधन होनेवाला सोम (स्वर्जित्) स्वर्गमें विजय प्राप्त करनेवाला (इन्द्राय वायवे) इन्द्र और वायु इन देवोंको देनेके लिये (पवित्रे परिषिच्यते) छाननीपर छाना जाता है ॥ २ ॥

सोमरस छाना जानेके पश्चात् यज्ञमें इन्द्र तथा वायुको दिया जाता है।

[२१९] (एषः सुतः सोमः) यह सोमका निकाला रस (वृषा) बलवर्धक (दिवः मूर्धा) द्युलोकके मुख्य स्थानमें रहने योग्य (वनेषु विश्ववित्) वनमें उत्पन्न हुए पदार्थोंमें मुख्य और सर्वज्ञ है (नृभिः विनीयते) यह यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा यज्ञस्थानमें लिया जाता है ॥ ३ ॥

२२० एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ४ ॥
२२१ एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि । पवित्रे मत्सरो मदः ॥ ५ ॥
२२२ एष शुष्म्यसिष्यद दन्तरिक्षे वृषा हरिः । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ ६ ॥

[२८]

(ऋषिः- प्रियमेध आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२२३ एष वाजी हितो नृभि र्विश्वविन्मनसस्पतिः अव्यो वारं वि धावति ॥ १ ॥
२२४ एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः । विश्वा धामान्याविशन् ॥ २ ॥
२२५ एष देवः शुभायते ऽधि योनावमर्त्यः । वृत्रहा देववीतमः ॥ ३ ॥

अर्थ— [२२०] (एषः) यह सोमरस (गव्युः) गोदुग्धकी इच्छा करनेवाला (हिरण्ययुः) धनकी इच्छा करता है, (इन्दुः) तेजस्वी (सत्राजित्) शत्रुओंको जीतनेवाला (अस्तृतः) अपराजित (पवमानः) सोमरस (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है ॥ ४ ॥

१ एषः गव्युः— यह सोमरस गौके दूधमें मिलाया जाता है ।

२ इन्दुः सत्राजित् अस्तृतः— यह सोमरस शत्रुओंको जीतता है, परंतु कभी यह स्वयं पराभूत नहीं होता है । सोमरस विजय करा देता है ।

३ पवमानः अचिक्रदत्— यह सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें उतरता है ।

[२२१] (एष पवमानः) यह सोमरस (मदः मत्सरः) आनंद देनेवाला और प्रसन्नता करनेवाला है, इसको (अधि द्यवि पवित्रे) द्युलोकके समान छाननीके ऊपर (सूर्येण हासते) सूर्यके द्वारा ही रखा जाता है ॥ ५ ॥

सोमरस छाना जाता है, वह सूर्य प्रकाशमें छाना जाता है । सूर्यका प्रकाश सोमरस पर गिरनेसे सोम अधिक शुद्ध होता है ।

[२२२] (एषः शुष्मी) बल बढानेवाला सोमरस (अन्तरिक्षे) छाननीके ऊपरसे (असिष्यदत्) नीचे गिरता है । यह सोमरस (वृषा) बल बढानेवाला (हरिः) हरे रंगका (पुनानः इन्दुः) पवित्र होनेके समय तेजस्वी दीखता है और यह (इन्द्रं आ) इन्द्रको दिया जाता है ॥ ६ ॥

सोमरस छाननेके समय तेजस्वी दीखता है । वह रस चमकता है ।

[२८]

[२२३] (एष वाजी) यह सोमरस बलवान (नृभिः हितः) ऋत्विजोंने पात्रमें रखा (विश्ववित्) सर्वज्ञानी, सर्व जाननेवाला (मनसः पति) मनका स्वामी, मननीय स्तोत्रोंका स्वामी (अव्यः वारं विधावती) मेंढीके बालोंकी छाननी पर दौडकर जाता है ॥ १ ॥

मेंढीके बालोंकी छाननीपर डालकर सोमरसको छाना जाता है । और पश्चात् इस रसका यज्ञमें उपयोग करते हैं ।

[२२४] (एषः सोमः) यह सोमरस (देवेभ्यः सुतः) देवोंको देनेके लिये निकाला (पवित्रे अक्षरत्) छाननीमेंसे नीचे पात्रमें गिरता है । (विश्वा धामानि आविशन्) सब देवोंके स्थानोंको पहुंचाता है ॥ २ ॥

यह सोमरस देवोंको देनेके लिये निकाला हुआ रस है । वह छाननीमेंसे छाना जाता है और सब देवोंके स्थानोंमें जाता है । देव इस रसको यज्ञमें स्वीकारते हैं ।

[२२५] (एष देवः) यह देव सोम (अमर्त्यः) मरण धर्मरहित (वृत्रहा) शत्रुओंका नाश करनेवाला (देववीतमः) देवोंको प्रिय है । (योनौ अधि शुभायते) यह यज्ञस्थानमें शोभता है ॥ ३ ॥

२२६ एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः । अभि द्रोणानि धावति ॥ ४ ॥
२२७ एष सूर्यमरोचयत् पवमानो विचर्षणिः । विश्वा धामानि विश्ववित् ॥ ५ ॥
२२८ एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति । देवावीरघशंसहा ॥ ६ ॥

[२९]

(ऋषिः- नृमेध आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२२९ प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसा । देवाँ अनु प्रभूषतः ॥ १ ॥
२३० सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा । ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम् ॥ २ ॥
२३१ सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ३ ॥
२३२ विश्वा वसूनि संजयन् पवस्व सोम धारया । इनु द्वेषांसि सध्र्यक् ॥ ४ ॥
२३३ रक्षा सु नो अररुषः स्वनात् समस्य कस्य चित् । निदो यत्र मुमुच्महे ॥ ५ ॥

अर्थ— [२२६] (एषः वृषा) यह बलवान सोम (दशभिः जामिभिः यतः) दस अंगुलियोंसे पकडा हुआ (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (द्रोणानि) यज्ञ पात्रोंके पास (अभि धावति) जाता है ॥ ४ ॥

[२२७] (एष विचर्षणिः पवमानः) यह सबको देखनेवाला सोमरस (विश्ववित्) विश्वको जाननेवाला (विश्वा धामानि) सब यज्ञस्थानोंको तथा (सूर्यं) सूर्यको (अरोचयत्) प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

[२२८] (एषः सोमः) यह सोमरस (शुष्मी) बलवान (अदाभ्यः) न दबनेवाला (देवावीः) देवोंका रक्षक (अघशंसहा) पापियोंका नाश करनेवाला (पुनानः) छाना जाकर पात्रमें (अर्षति) उतरता है ॥ ६ ॥

[२९]

[२२९] (अस्य वृष्णः) इस बलवान (सुतस्य) रस निकाले सोमरसकी (धाराः) धाराएं (ओजसा) वेगसे (प्र अक्षरन्) चल रही है । (देवान् अनु प्रभूषतः) देवोंके अनुकूल वे धाराएं भूषण रूप होती हैं ॥ १ ॥

सोमका रस निकालनेके पश्चात् उस रसकी धाराएं देवोंको आनंद देती हुई चलती हैं ।

[२३०] (सप्तिं) छाने जानेवाले सोमरसको (गृणन्तः) स्तुति करनेवाले (वेधसः) अध्वर्युगण (कारवः) यज्ञकर्ता (गिरा) स्तुति करते हुए (मृजन्ति) निकालते हैं । यह सोमरस (ज्योतिः) तेजस्वी (जज्ञानं उक्थ्यं) उत्पन्न होते ही स्तुति करने योग्य है ॥ २ ॥

[२३१] हे (सोम) सोम ! (प्रभूवसो) बहुत धन युक्त ! (पुनानाय ते) छाने जानेके समय तेरे (तानि) वे तेज (सुषहा) सुंदर होते हैं । अब तू (उक्थ्यं समुद्रं वर्ध) स्तुतिके योग्य जलके पात्रको वृद्धिंगत कर ॥ ३ ॥

जलके पात्रमें सोमरस मिलाया जाता है । अतः कहा है कि जलके पात्र बढाओ । भरपुर रससे भरो ।

[२३२] (विश्वा वसूनि संजयन्) सब धनोंको जीतकर (सोम) हे सोम ! (धारया पवस्व) धारासे छाना जा । (द्वेषांसि सध्र्यक् इनु) सब शत्रुओंको दूर देशमें भेजो ॥ ४ ॥

[२३३] हे सोम ! (नः सुरक्ष) हमारी उत्तम रीतिसे सुरक्षा करो । (अररुषः स्वनात्) दान न देनेवालेके बुरे शब्दोंसे तथा (समस्य कस्य चित्) उनके समान किसी दुष्टसे, (निदः) तथा निंदा करनेवालेसे हमारा रक्षण करो (यत्र मुमुच्महे) जहां हम दुष्टोंसे मुक्त होकर आनंदसे रह सकेंगे ॥ ५ ॥

२३४ एन्दो पार्थिवं रयिं दिव्यं पवस्व धारया । द्युमन्तं शुष्ममा भर ॥ ६ ॥

[३०]

(ऋषिः- बिन्दुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२३५ प्र धारा अस्य शुष्मिणो वृथा पवित्रे अक्षरन् । पुनानो वाचमिष्यति ॥ १ ॥
२३६ इन्दुर्हियानः सोतृभि- मृज्यमानः कनिक्रदत् । इयर्ति वग्नुमिन्द्रियम् ॥ २ ॥
२३७ आ नः शुष्मं नृषाह्यं वीरवन्तं पुरुस्पृहम् । पवस्व सोम धारया ॥ ३ ॥
२३८ प्र सोमो अति धारया पवमानो असिष्यदत् । अभि द्रोणान्यासदम् ॥ ४ ॥
२३९ अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥
२४० सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥ ६ ॥

अर्थ— (२३४] हे (इन्दो) सोम! तू (धारया आ पवस्व) अपनी धारासे सब प्रकारसे रस दो। (पार्थिवं रयिं) पृथिवीपरका धन और (दिव्यं) दिव्य धन (पवस्व) दो। तथा (द्युमन्तं शुष्मं आ भर) तेजस्वी बल भरपूर दो ॥ ६ ॥

[३०]

[२३५] (शुष्मिणः अस्य) बलवान इस सोमकी (धाराः) धाराएं (पवित्रे वृथा प्र अक्षरन्) छाननीमें सहज ही चलती हैं। (पुनानः वाचं इष्यति) पवित्र होता हुआ यह सोम स्तुति सुननेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

सोमरस छाना जाता है, उस समय छाननीसे नीचे इस सोमरसकी धाराएं चलती हैं, उस समय ऋत्विज गण इसकी स्तुति गाते हैं।

[२३६] यह इन्दुः) सोम (सोतृभिः हियानः) रस निकालनेवाले ऋत्विजोंके द्वारा प्रेरित हुआ और (मृज्यमानः) शुद्ध होता हुआ (कनिक्रदत्) शब्द करता है और (इन्द्रियं वग्नुं इयर्ति) इन्द्रियोंको यज्ञका कार्य करनेकी प्रेरणा देता है ॥ २ ॥

[२३७] हे (सोम) सोम! तू (नः) हमारे लिये (शुष्मं) बलवर्धक (नृषाह्यं) शत्रुओंका पराभव करनेवाला (वीरवन्तं) वीरता बढानेवाला (पुरु-स्पृहं) बहुतों द्वारा स्तुति करनेके लिये योग्य सोमरसको (धारया पवस्व) धारासे नीचे के पात्रमें गिरो ॥ ३ ॥

[२३८] यह (पवमानः सोमः) सोमरस (धारया अति) धारासे (द्रोणानि अभि आसदम्) पात्रोंमें बैठनेके लिये (असिष्यदत्) आगे जाता है ॥ ४ ॥

सोमरस धारासे छाना जाता है और यज्ञके पात्रोंमें रखा जाता है।

[२३९] हे (इन्दो) सोम! (अप्सु) जलोंमें (मधुमत्तमं) अत्यंत मधुर (हरिं त्वा) हरे रंगके तुझ सोमरसको (अद्रिभिः) पत्थरोंसे कूटकर (इन्द्राय पितये) इन्द्रके पीनेके लिये (हिन्वन्ति) प्रेरित क हैं ॥ ५ ॥

सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं और उससे मधुर रस निकालते हैं और उस रसको इन्द्रको पीनेके लिये देते हैं।

[२४०] हे ऋत्विजो! (मधुमत्तमं) अतिमधुर (मत्सरं) आनंद देनेवाले (शर्धाय चारुं) बलके संवर्धन करनेके लिये उत्तम सहायक (सोम) सोमका (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रको देनेके लिये (सुनोत) रस निकालो ॥ ६ ॥

[३१]

(ऋषिः- गोतमो राहूगणः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२४१ प्र सोमा॑सः स्वा॒ध्य१॑ः पव॑मानासो अक्रमुः । र॒यिं कृ॑ण्वन्ति॒ चेत॑नम् ॥ १ ॥

२४२ दि॒वस्पृ॑थि॒व्या अधि॒ भवे॑न्दो द्यु॒म्न॒वर्ध॑नः । भवा॒ वाजा॑नां॒ पति॑ः ॥ २ ॥

२४३ तुभ्यं॒ वाता॑ अ॒भि॒प्रिय॒स्तुभ्य॑मर्षन्ति॒ सिन्ध॑वः । सोम॒ वर्ध॑न्ति ते॒ महः ॥ ३ ॥

२४४ आ प्या॑यस्व॒ समे॑तु ते वि॒श्वत॑ः सोम॒ वृष्ण्य॑म् । भवा॒ वाज॑स्य संग॒थे ॥ ४ ॥

२४५ तुभ्यं॒ गावो॑ घृ॒तं पयो॒ बभ्रो॑ दुदु॒ह्रे अक्षि॑तम् । वर्षि॑ष्ठे अधि॒ सान॑वि ॥ ५ ॥

२४६ स्वा॒यु॒धस्य॑ ते सु॒तो भुव॑नस्य पते व॒यम् । इन्दो॑ सखि॒त्वमु॑श्मसि ॥ ६ ॥

---

[३१]

अर्थ— [२४१] (स्वाध्यः) ज्ञान बढानेवाले (पवमानासः सोमासः) छाने जानेवाले सोमरस (चेतनं रयिं कृण्वन्ति) चैतन्य देनेवाले धनका दान हमारे लिये करते हैं ॥ १ ॥

सोमरससे चैतन्य बढानेवाला धन प्राप्त होता है।

[२४२] हे (इन्दो) सोम ! तू (दिवः पृथिव्या अधि) द्युलोकपर तथा पृथिवीके ऊपर (द्युम्नवर्धनः) हमारा तेज बढानेवाला तथा (वाजानां पतिः) अन्नोंका स्वामी (भव) हो ॥ २ ॥

[२४३] हे (सोम) सोम ! (तुभ्यं वाताः अभिप्रियः) तुम्हारे लिये वायु प्रिय करनेवाले हैं। (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (सिन्धवः अभि अर्षन्ति) नदियां चल रही हैं। ये सब (ते महः वर्धान्ति) तेरा महत्व बढाते हैं ॥ ३ ॥

[२४४] हे सोम ! (आप्यायस्व) तू वृद्धिको प्राप्त हो, । (ते वृष्ण्यं) तेरे लिये बल (विश्वतः समेतु) सब स्थाननोंसे प्राप्त हो। (वाजस्य संगथे भव) तू युद्धके समय अन्न देनेवाला हो ॥ ४ ॥

१ आप्यायस्व— सब प्रकारसे उत्तम वृद्धि प्राप्त करो।

२ ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु— तुझे बल चारों तरफसे प्राप्त हो।

३ वाजस्य संगथे भव— युद्धके समय अन्न देनेवाला तू हो।

[२४५] हे (बभ्रो) भूरे रंगके सोम (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (गावः) गौवें (घृतं पयः) घी और दूध (अक्षितं दुदुह्रे) विपुल प्रमाणमें देती रहें। तू (वर्षिष्ठे सानवि अधि) उच्च पर्वत पर रहता है ॥ ५ ॥

सोम ऊंचे पर्वतके शिखरपर होता है। उसके सोमरसमें गौवें अपना दूध तथा घी मिलानेके लिये देती हैं। यह मिलाकर सोमका रस पीया जाता है।

[२४६] (भुवनस्य पते) भूतमात्रके स्वामिन् हे (इन्दो) हे सोम ! (वयं) हम सब (स्वायुधस्य ते) उत्तम शस्त्रसे युक्त तेरे (सखित्वं उश्मसि) मित्रताको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥

१ वयं स्वायुधस्य सखित्वं उश्मसि— हम उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले वीरके साथ मित्रता करनेकी इच्छा करते हैं। मित्रता उनके साथ करनी चाहिये कि जिसके पास उत्तम शस्त्र रहते हैं अर्थात् जो वीर उत्तम शस्त्रोंको अपने पास रखता है।

×

[३२]

(ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२४७ प्र सोमा॑सो मदु॒च्युत॒: श्रव॑से नो म॒घोन॑: । सु॒ता वि॒दथे॑ अक्रमुः ॥ १ ॥
२४८ आदीं॑ त्रि॒तस्य॒ योष॑णो॒ हरिं॑ हिन्व॒न्त्यद्रि॑भिः । इन्दु॒मिन्द्रा॑य पी॒तये॑ ॥ २ ॥
२४९ आदीं॑ हं॒सो यथा॑ ग॒णं विश्व॑स्यावीवशन्म॒तिम् । अत्यो॒ न गोभि॑रज्यते ॥ ३ ॥
२५० उ॒भे सो॑माव॒चाक॑शन् मृ॒गो न त॒क्तो अ॑र्षसि । सीद॑न्नृ॒तस्य॒ योनि॒मा ॥ ४ ॥
२५१ अ॒भि गावो॑ अनूषत॒ योषा॑ जा॒रमि॑व प्रि॒यम् । अग॑न्ना॒जिं यथा॑ हि॒तम् ॥ ५ ॥

---

[३२]

अर्थ— [२४७] (सोमासः) सोमरस (मदच्युतः) आनंद देनेवाले (सुताः) रस निकाले (विदथे) यज्ञमें (मघोनः अवसे) यज्ञ कर्ताके रक्षणके लिये (अक्रमुः) निकाले जाते हैं ॥ १ ॥

यज्ञमें यज्ञ कर्ताके संरक्षण करनेके लिये सोमसे रस निकालते हैं। उनसे यज्ञ किया जाता है। इससे यज्ञ कर्ता संरक्षण होता है। यज्ञ सब यज्ञकर्ताओंका संरक्षण करता है। " ऋतु संधिषु वै व्याधिर्जायते। ऋतु संधिषु य क्रियन्ते।" ऋतुओंकी संधिकालमें रोग होते हैं, अतः ऋतुओंके संधिकालमें यज्ञ किये जाते हैं। इन यज्ञोंसे रोग होते हैं और मानवोंको आरोग्य प्राप्त होता है।

[२४८] (आत् ईं) और इस (हरिं) हरे रंगके सोमको (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटते हैं। (त्रितस्य योषणा) त्रित ऋषिकी अंगुलियां (इन्द्राय पीतये इन्दुं) इन्द्रके पीनेके लिये सोमसे रस निकालती है ॥ २ ॥

त्रित ऋषि यज्ञ करता है। उस यज्ञमें उस ऋषिकी अंगुलियां सोमको पकडती हैं और उस सोमको दबाकर उसमेंसे रस निकालती है।

[२४९] (आत् ईं) और यह सोम (हंसो यथा गणं) हंस जिस प्रकार समुदायमें जाता है, और (विश्वस्य मतिं) सबकी बुद्धि (अवीवशन्) अपने वशमें करता है उस प्रकार, तथा (अत्यः न गोभिः अज्यते) जैसा घोडा उदकोंसे धोया जाता है वैसा यहभी उदकोंसे धोया जाता है और गौके दूधसे मिलाया जाता है ॥ ३ ॥

सोम प्रथम पानीसे धोया जाता है और पश्चात् उसमें गौका दूध मिलाया जाता है।

[२५०] हे सोम! (उभे अवचाकशन्) दोनों द्यु और पृथिवीको तू देखता है। (मृगः न) हरिणके समान (तक्तः अर्षसि) दूधके साथ यज्ञमें जाता है। (ऋतस्य) यज्ञके स्थानपर (आसीदन्) जाकर बैठता है ॥ ४ ॥

[२५१] हे सोम! तेरी (गावः) मंत्र (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं। (योषाः प्रियं जारं इव) जिस प्रकार स्त्री अपने प्रियकी स्तुति करती है। (यथा) जिस प्रकार (हितं आजिं अगन्) वीर हितकारक युद्धमें जाते हैं और इस वीरकी प्रशंसा होती है ॥ ५ ॥

१ गावः (सोमं) अभि अनूषत— मंत्र सोमकी स्तुति करते हैं।
२ योषा प्रियं जारं इव— स्त्री अपने प्रिय पतिकी स्तुति करती है।
जारः— (जॄवयो हानौ)- स्त्रीकी वयकी न्यूनता करनेवाला। स्त्रीका उपभोग करनेवाला।
३ वीरः हितं आजिं अगम्— वीर हितकारक युद्धमें जाता है, उसकी स्तुति होती है।

२५२ अस्मे धेहि द्युमद्यशो मघवद्भ्यश्च मह्यं च । सनिं मेधामुत श्रवः ॥ ६ ॥

[३२]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२५३ प्र सोमासो विपश्चितो ऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ १ ॥
२५४ अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ २ ॥
२५५ सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमा अर्षन्ति विष्णवे ॥ ३ ॥
२५६ तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः । हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ४ ॥
२५७ अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः । मर्मृज्यन्ते दिवः शिशुम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५२] हे सोम ! (अस्मे) हमारे लिये (मघवद्भ्यः च मह्यं च) धनसे यज्ञ करनेवालोंके लिये तथा मेरे लिये (द्युमत् यशः धेहि) तेज बढानेवाला अन्न दो । (सनिं) धन, (मेधां) बुद्धि और (उत श्रवः) अन्न दो ॥ ६ ॥

हमारे लिये तेज बढानेवाला अन्न दो तथा यज्ञ करनेवालोंके लिये धन, बुद्धि और अन्न दो ।

[३२]

[२५३] (विपश्चितः) ज्ञान बढानेवाले (सोमासः) सोमरस (अपां ऊर्मयः न) पानीकी लाटोंकी तरह (वनानि महिषा इव) भैसे जिस तरह वनोंमें जाते हैं उस तरह (प्रयन्ति) जाते हैं ॥ १ ॥

ज्ञान बढानेवाले सोमरस पात्रमें वैसे जाते है, जैसी पानीकी लाटें जाती हैं, अथवा भैसे वनमें जाते हैं ।

[२५४] (बभ्रवः शुक्राः) भूरे रंगके शुद्ध सोमरस (ऋतस्यः धारया) अमृत रसकी धारासे (द्रोणानि अभि) पात्रोंमें (गोमन्तं वाजं) गोदुग्ध युक्त अन्नके पास (अक्षरन्) जाते हैं ॥ २ ॥

भूरे रंगके सोमरस यज्ञके अन्दर धारासे पात्रोंमें गौका दूध रखा रहता है, उसमें मिलानेके लिये जाते हैं । गौके दूधके साथ सोमके रस पात्रोंमें मिलाये जाते हैं ।

[२५५] (सुताः सोमाः) रस निकाले हुए सोमरस (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वायवे) वायुके लिये (वरुणाय) वरुणके लिये (विष्णवे) विष्णुके लिये (मरुद्भ्यः) मरुतोंके लिये (अर्षन्ति) दिये जाते हैं ॥ ३ ॥

सोमका रस निकालकर वह रस इन्द्र, वायु, वरुण, विष्णु तथा मरुतोंके लिये दिया जाता है ।

[२५६] (तिस्रः वाचः उदीरते) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद ये तीन वेदोंके मंत्र बोले जाते हैं (धेनवः गावः मिमन्ति) दूध देनेवाली गौवें शब्द करती हैं । (हरिः कनिक्रदत् एति) हरे रंगका सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है ॥ ४ ॥

यज्ञमें ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मंत्र बोले जाते हैं, गौवें अपना दूध यज्ञमें अर्पण करनेके लिये शब्द करती हैं, उस समय सोमरस शब्द करता हुआ पात्रमें लिया जाता है ।

यह यज्ञ स्थानका वर्णन है । यज्ञके स्थानमें ऐसा होता ही है ।

[२५७] (ब्रह्मीः) ब्राह्मणोंसे प्रेरित हुई (यह्वीः) बडी (ऋतस्य मातरः) यज्ञको निर्माण करनेवाली (अभि अनूषत) ऋचाएं बोली जाती हैं । (दिवः शिशुं) द्युलोकके पुत्र सोमको (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध किया जाता है ॥ ५ ॥

ब्राह्मण वेद मंत्र बोलते हैं और द्युलोकमें उत्पन्न हुए इस सोमके रसको शुद्ध करते हैं ।

२५८ रायः समुद्रांश्चतुरो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणः ॥ ६ ॥

[३४]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२५९ प्र सुवानो धारया तने- न्दुर्हिन्वानो अर्षति । रुजद्दृळ्हा व्योजसा ॥ १ ॥
२६० सुत इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २ ॥
२६१ वृषाणं वृषभिर्यतं सुन्वन्ति सोममद्रिभिः । दुहन्ति शक्मना पयः ॥ ३ ॥
२६२ भुवत् त्रितस्य मर्ज्यो भुवदिन्द्राय मत्सरः । सं रूपैरज्यते हरिः ॥ ४ ॥
२६३ अभीमृतस्य विष्टपं दुहते पृश्निमातरः । चारु प्रियतमं हविः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५८] हे (सोम) सोम ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये (विश्वतः) सब प्रकारसे (रायः चतुरः समुद्रान्) धनके चारों समुद्र अर्थात् पर्याप्त धन (सहस्रिणः) सहस्रों प्रकारोंसे (अस्मभ्यं आ पवस्व) हमारे लिये देओ ॥ ६ ॥

हमारे लिये पर्याप्त प्रमाणमें धन प्राप्त हो ऐसा करो ।

[३४]

[२५९] (इन्दुः) सोम (सुवानः) रस निकाला हुआ (हिन्वानः) ऋत्विजोंके द्वारा प्रेरित होकर (तना) रस पात्रमें (धारया अर्षति) धारासे गिरता है । (दृळ्हा) सुदृढ शत्रुके किलोंको (ओजसा विरुजत्) अपने बलसे तोडता है ॥ १ ॥

१ दृळ्हा ओजसा विरुजत्— शत्रुके सुदृढ किलोंको तोडता है ।
२ धारया तना अर्षति— धारासे सोमरस पात्रमें जाता है ।

[२६०] (सुतः सोमः) रस निकाला हुआ सोम इन्द्र, वरुण, वायु, मरुत्, विष्णु इन देवोंको देनेके लिये पात्रमें जाता है ॥ २ ॥

[२६१] (वृषाणं यतं सोमं) बलवर्धक नियंत्रित सोमको (वृषभिः अद्रिभिः) बलवान पत्थरोंसे (सुन्वन्ति) कूटकर रस निकालते हैं । (शक्मना) शक्तिसे (पयः दुहन्ति) दूध दुहते हैं ॥ ३ ॥

सोमवल्लीसे पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं । यह शक्तिसे दोहन करना है ।

[२६२] (त्रितस्य) त्रित ऋषिके द्वारा किया (मत्सरः) आनंद दायक सोमरस (मर्ज्यः भुवत्) शुद्ध हुआ, वह (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये तैयार हुआ (रूपैः) गोदूध आदिके रूपसे (हरिः) हरे रंगका यह सोमरस (सं अज्यते) मिश्रित किया जाता है ॥ ४ ॥

१ मत्सरः मर्ज्यः भुवत्— आनंद देनेवाला सोमरस शुद्ध किया जाता है ।
२ इन्द्राय रूपैः हरिः सं अज्यते— इन्द्रको देनेके लिये यह गोदुग्ध आदिमें हरे रंगका सोमरस मिलाया जाता है ।

[२६३] (ईं) इस सोमका (ऋतस्य विष्टपं) यज्ञके स्थानमें (पृश्निमातरः) मरुत (अभि दुहते) रस निकालते हैं । यह सोमरस (प्रियतमं चारु हविः) अत्यंत प्रिय और सुन्दर हवनीय है ॥ ५ ॥

यज्ञके स्थानमें मरुत इस सोमका रस निकालते हैं । यह सोमरस देवोंके लिये अत्यंत प्रिय और सुन्दर हवनीय पदार्थ है ।

२६४ समेनमह्रुता इमा गिरो अर्षन्ति सस्रुतः । धेनूर्वाश्रो अवीवशत् ॥ ६ ॥

[३५]

(ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२६५ आ नः पवस्व धारया पवमान रयिं पृथुम् । यया ज्योतिर्विदासि नः ॥ १ ॥
२६६ इन्दो समुद्रमीङ्खय पवस्व विश्वमेजय । रायो धर्ता न ओजसा ॥ २ ॥
२६७ त्वया वीरेण वीरवो ऽभि ष्याम पृतन्यतः । क्षरा णो अभि वार्यम् ॥ ३ ॥
२६८ प्र वाजमिन्दुरिष्यति सिषासन् वाजसा ऋषिः । व्रता विदान आयुधा ॥ ४ ॥

अर्थ — [२६४] (अह्रुताः इमा गिरः) योग्य स्तुतिके ये हमारे स्तोत्र (एनं सं अर्षन्ति) इस सोमके पास जाते हैं। वे स्तोत्र (सस्रुतः) उसके समीप जाकर (वाश्रः धेनूः) वत्सकी इच्छा करनेवाली गौके समान सोमरसकी इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥

[३५]

[२६५] हे (पवमान) सोम ! तू (धारया नः पवस्व) धारासे हमारे लिये रस दे। (रयिं) धन (पृथू) बहुत दे। (यया) जिस धारासे (ज्योतिः नः विदासि) तेज हमें तू देता है ॥ १ ॥

हे सोम ! तू धारासे पात्रमें रस दे। बहुत धन दे और पर्याप्त तेज हमें दे ॥

[२६६] हे (इन्दो) सोम ! (समुद्रं इङ्खय) जलके लिये प्रेरित कर; हे (विश्वमेजय) सब शत्रुओंको कंपायमान करनेवाले सोम (ओजसा) अपने बलसे (रायः धर्ता नः) हमारे लिये धनका धारण करनेवाला हो और (पवस्व) रस निकालो ॥ २ ॥

हे सोम ! जलको अपनेमें मिलानेके लिये प्रेरित करो। हे शत्रुनाशक सोम ! तू अपने बलसे हमारे लिये धन दो और अपनेमेंसे रस निकालो।

[२६७] हे (वीरवः) वीरतायुक्त सोम ! (वीरेण त्वया) वीर रूपी तेरे सहाय्यसे (पृतन्यतः अभिष्याम) सेनाकेसाथ हमला करनेवाले शत्रुओंका हम मुकाबला करेंगे। (नः) हमारे लिये (वार्यं अभि क्षर) वीरतायुक्त धन देओ ॥ ३ ॥

१ त्वया वीरेण पृतन्यतः अभिष्याम— तुझ जैसे वीरके साथ रहकर हम सेनाके साथ हमला करनेवाले शत्रुका मुकाबला करेंगे।

२ नः वार्यं अभिक्षर— हमें वीरतासे युक्त धन दो।

[२६८] (इन्दुः) सोम (वाजं प्र इष्यति) अन्न देता है। यह सोम (ऋषिः) द्रष्टा है और (वाजसा सिषासन्) अन्नके साथ रहता है। यह सोम (व्रता) व्रतोंको (विधानः) जानता है और (आयुधा) आयुध साथ रखता है ॥ ४ ॥

१ इन्दुः वाजं प्र इष्यति — सोम अन्न देता है।

२ इन्दुः ऋषिः— यह सोम ऋषि अर्थात् ज्ञान देनेवाला है।

३ इन्दुः वाजसा सिषासन्— यह सोम अन्नके साथ रहता है।

४ व्रता विधानः— यह सोम व्रतों अर्थात् नियमोंको जानता है।

५ इन्दुः आयुधा— यह सोम आयुधोंको पास रखता है। यह सशस्त्र रहता है।

२६९ तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि । सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ५ ॥
२७० विश्वो यस्य व्रते जनो दाधार धर्मणस्पतेः । पुनानस्य प्रभूवसोः ॥ ६ ॥

[३६]

(ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२७१ असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः । कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत् ॥ १ ॥
२७२ स वह्निः सोम जागृविः पवस्व देववीरति । अभि कोशं मधुश्चुतम् ॥ २ ॥
२७३ स नो ज्योतींषि पूर्व्य पवमान वि रोचय । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु ॥ ३ ॥
२७४ शुम्भमान ऋतायुभि- र्मृज्यमानो गभस्त्योः । पवते वारे अव्यये ॥ ४ ॥
२७५ स विश्वा दाशुषे वसु सोमो दिव्यानि पार्थिवा । पवतामान्तरिक्ष्या ॥ ५ ॥

---

[२६९] (तं गीर्भिः) उस सोमकी स्तुति स्तोत्रोंसे मैं करता हूं । (वाचं ईंखयं पुनानं) स्तुतिकी प्रेरणा देनेवाले और शुद्धता करनेवाले उस सोमको (वासयामसि) हम यज्ञस्थानमें रखते हैं । (जनस्य गोपतिं सोमं) लोकोंका तथा गौओंका पालन करनेवाले सोमको हम रखते हैं ॥ ५ ॥

१ जनस्य गोपतिं सोमं वासयामसि— जनताकी और गौओंकी सुरक्षा करनेवाले इस सोमको हम यज्ञमें सुरक्षित रखते हैं ।

[२७०] (धर्मणः पतेः) धर्मके पालन करनेवाले (पुनानस्य) शुद्ध किये जानेवाले (प्रभूवसोः) बहुत धनवाले (यस्य व्रते) जिस सोमके व्रतमें (विश्वाः जनः) सब लोक अपने मनको (दाधार) धारण करते हैं ॥ ६ ॥

सोम यज्ञमें सबके मन लगे रहते हैं । क्योंकि यह सोम धर्मका पालन करता है, शुद्ध होनेवाला यह सोम पर्याप्त धन रखता है जिससे यज्ञ होता है ।

[३६]

[२७१] (यथा कार्ष्मन् रथ्यः वाजी न्यक्रमीत्) जैसा युद्धमें रथको घोडा जाता है वैसा (चम्वोः सुतः सोमः) पात्रमें निकाला सोमरस (पवित्रे ससर्जि) छाननेके पात्रमें जाता है ॥ १ ॥

[२७२] हे (सोम) सोम ! (सः वह्निः) वह वहन करके जानेवाला (जागृविः) जागनेवाला (देववीः) देवोंके प्रति जानेकी इच्छा करनेवाला तू (मधुच्युतं कोशं) मधुर रस रखनेके पात्रमेंसे (अभि पवस्व) छाना जा ॥ २ ॥

[२७३] हे (पूर्व्य) पुराकालसे चले आये (पवमान) सोम ! (नः ज्योतींषि) हमारे तेजस्वी स्थान (वि रोचय) विशेष प्रकाशित कर । तथा (क्रत्वे) यज्ञके लिये तथा (दक्षाय) बल प्राप्त करनेके लिये (नः हिनु) हमें प्रेरित कर ॥ ३ ॥

१ नः ज्योतींषि विरोचय— हमारे तेज फैलाओ ।

२ क्रत्वे दक्षाय नः हिनु— विशेष कर्म तथा विशेष बलके कार्य करनेके लिये हमें प्रेरित कर ।

[२७४] (ऋतायुभिः शुम्भमानः) याजकों द्वारा सुशोभित हुआ (गभस्त्योः मृज्यमानः) हाथोंसे शुद्ध होनेवाला सोम (अव्यये वारे) भेडीके बालोंसे बने छाननेके अंदर (पवते) छाना जाता है ॥ ४ ॥

[२७५] (सः सोमः) वह सोम (दाशुषे) दाताके लिये (दिव्यानि) द्युलोकके (आन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्षके और (पार्थिवा) पृथिवीके (विश्वा वसु) सब धन (पवतां) देवे ॥ ५ ॥

२७६ आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयुः शवसस्पते ॥ ६ ॥

[३७]

(ऋषिः- रहूगण आङ्गिरसः। देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः- गायत्री।)

२७७ स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥
२७८ स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः । अभि योनिं कनिक्रदत् ॥ २ ॥
२७९ स वाजी रोचना दिवः पवमानो वि धावति । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ ३ ॥
२८० स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् । जामिभिः सूर्यं सह ॥ ४ ॥
२८१ स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः । सोमो वाजमिवासरत् ॥ ५ ॥

अर्थ—[२७६] हे (शवसः पते) बलके स्वामी! (सोम) सोम! तू (अश्वयुः) घोडेकी इच्छा करनेवाला, (गव्ययुः) गौओंकी इच्छा करनेवाला, (वीरयुः) वीर पुत्रोंकी इच्छा करनेवाला (दिवः पृष्ठं आ रोहसि) द्युलोकके स्थान पर चढता रहता है ॥ ६ ॥

१ अश्वयुः गव्ययुः वीरयुः दिवः पृष्ठं आरोहसि— घोडोंकी इच्छा करनेवाला, गौओंकी इच्छा करनेवाला तथा वीर पुत्रोंकी इच्छा करनेवाला द्युलोकके ऊंचे भाग पर चढा हुआ होता है।

[३७]

[२७७] (सः सोमः) वह सोमरस (पीतये सुतः) देवोंको पीनेके लिये देनेके लिये निकाला रस (वृषा) बलवान होकर (पवित्रे) छाननीमें (अर्षति) जाता है, (रक्षांसि विघ्नन्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (देवयुः) देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है ॥ १ ॥

[२७८] (सः विचक्षणः) वह सबको देखनेवाला (हरिः) हरे रंगका (धर्णसिः) सब यज्ञका धारण करनेवाला (पवित्रे) छाननीमें (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (योनिं) अपने स्थानमें (अभि अर्षति) जाता है ॥ २ ॥

सोमका रस छाना जानेके समय शब्द करता हुआ छाननीमेंसे नीचे रखे पात्रमें उतरता है।

[२७९] (सः वाजी) वह गमनशील (दिवः रोचना) स्वर्गको प्रकाशित करनेवाला (पवमानः) शुद्ध किया जानेवाला सोमरस (रक्षो-हा) राक्षसोंका नाश करनेवाला (अव्ययं वारं) भेडीके बालोंसे बनायी छाननीमेंसे (विधावति) दौडता है, छाननीमेंसे छाना जाकर नीचे के पात्रमें उतरता है ॥ ३ ॥

[२८०] (सः) वह सोम (त्रितस्य सानवि अधि) त्रित महर्षिके यज्ञमें (पवमानः) रस निकाला जाने पर (जामिभिः सह) संबंधी जनोंके साथ (सूर्यं अरोचयत्) सूर्यको प्रकाशित करता रहा ॥ ४ ॥

सोमका रस यज्ञस्थानमें निकाला जानेपर सूर्य प्रकाशने लगा। सूर्योदयके पूर्व ही सोमका रस निकालकर यज्ञ-स्थानमें रखा था। पश्चात् सूर्यका उदय हुआ।

[२८१] (स वृत्रहा वृषा) वह सोम वृत्रासुरका वध करता है और बलवान है (सुतः) रस निकाला हुआ वह (सोमः) सोम (वरिवोवित्) बहुत धनयुक्त (अदाभ्यः) न दबनेवाला (वाजं इव असरत्) संग्राममें वीरके जानेके समान आगे बढता है ॥ ५ ॥

वह बलवान सोम वीरपुरुष संग्राममें जाता है उस वीरके समान आगे बढता है।

२८२ स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति । इन्दुरिन्द्राय मंहना ॥ ६ ॥

[३८]

(ऋषिः– रहूगण आङ्गिरसः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– गायत्री ।)

२८३ एष उ स्य वृषा रथोऽव्यो वारेभिरर्षति । गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥
२८४ एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
२८५ एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः । याभिर्मदाय शुम्भते ॥ ३ ॥
२८६ एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति । गच्छञ्जारो न योषितम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [२८२] (सः) वह (देवः) तेजस्वी (इन्दुः) सोम (कविना इषितः) ज्ञानीके द्वारा प्रेरित हुआ (द्रोणानि अभि धावति) पात्रोंकी ओर दौडता है । (इन्द्राय मंहना इन्दुः) इन्द्रके लिये महत्वपूर्ण वह सोम होता है ॥ ६ ॥

सोम इन्द्रके लिये अत्यंत प्रिय है । ऐसा यह सोम रस निकालने पर इन्द्रको देनेके लिये पात्रोंमें रखा जाता है और यज्ञमें इन्द्र देवको अर्पण किया जाता है ।

[३८]

[२८३] (स्यः एष) वह यह रस निकाला सोम (वृषा रथः) बलवान् रथके समान जानेवाला (अव्यः वारेभिः अर्षति) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे जाता है । (सहस्रिणं वाजं गच्छन्) हजारों मनुष्योंके लिये अन्न देनेके लिये जाता है ॥ १ ॥

यह सोमरस बलवान् रथके समान सामर्थ्यवान् होकर भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे गुजरता है और हजारोंको अन्न देता है । सोम यज्ञमें हजारों मनुष्योंको अन्न प्राप्त होता है ।

[२८४] (एतं हरिं इन्दुं) इस हरे रंगके सोमको (त्रितस्य योषणः) त्रित ऋषिकी अंगुलियां (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटकर रस निकालती हैं ॥ २ ॥

त्रित ऋषि सोमको अपने हाथोंमें पकडता है, पत्थरोंसे उस सोमको कूटता है और इन्द्रको पीनेको देनेके लिये उस सोमसे रस निकालता है ।

[२८५] (एतं त्यं) इस सोमको अध्वर्युके (दश हरितः) दश अंगुलियां (अपस्युवः) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाली (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध करती हैं । (याभिः) जिन अंगुलियोंसे (मदाय शुम्भते) इन्द्रका आनन्द उत्तेजित होता है ॥ ३ ॥

अध्वर्युकी दोनों हाथोंकी दस अंगुलियां यज्ञ करनेके लिये सोमको पकडती हैं और इन्द्रका आनंद बढानेके लिये उसको दबाकर उससे रस निकालती हैं । यह सोमका रस इन्द्रको दिया जाता है ।

[२८६] (स्यः एषः) वह यह सोम (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाजनोंमें (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान (आ सीदति) आकर बैठता है, (योषितं जारः गच्छन् न) स्त्रीके समीप उस स्त्रीका पति जैसा जाता है ॥ ४ ॥

स्त्रीके पास जैसा पति जाता है, उस प्रकार यह सोम मनुष्योंके पास यज्ञ स्थानमें आकर बैठता है । " जार " का अर्थ वयोहानि करनेवाला । स्त्रीका भोग करनेवाला स्त्रीकी वयोहानि करता है ।

२८७ एष स्य मद्यो रसो ऽव चष्टे दिवः शिशुः । य इन्दुर्वारमाविशत् ॥ ५ ॥
२८८ एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः । क्रन्दन् योनिमभि प्रियम् ॥ ६ ॥

[३९]

(ऋषिः- बृहन्मतिराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२८९ आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना । यत्र देवा इति ब्रुवन् ॥ १ ॥
२९० परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः । वृष्टिं दिवः परि स्रव ॥ २ ॥
२९१ सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा । विचक्षाणो विरोचयन् ॥ ३ ॥
२९२ अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ । सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् ॥ ४ ॥

अर्थ— [२८७] (एषः स्यः) वह यह (मद्यः रसः) आनंददायक सोमरस (अव चष्टे) सर्वत्र देखता है । यह सोमरस (दिवः शिशुः) द्युलोकमें उत्पन्न हुआ है, (यः इन्दुः) जो तेजस्वी सोमरस (वारं आविशत्) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ ५ ॥

सोमरस पीनेवालेको आनंद देता है । वह तेजस्वी होनेसे चमकता रहता है । यह सोम उच्च स्थानमें उत्पन्न होता है, इस कारण वह द्युलोकका पुत्र कहा जाता है । यह चमकता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[२८८] (एषः स्यः) यह वह सोम (पीतये सुतः) पीनेके लिये निकाला रस (हरिः) हरे रंगका है । यह (धर्णसिः) सब बज्ञका धारण करनेवाला है । यह रस (प्रियं योनिं) प्रिय यज्ञस्थानमें (अभि क्रन्दन्) शब्द करता हुआ (अभि अर्षति) पात्रमें छानकर उतरता है ॥ ६ ॥

[३९]

[२८९] हे (बृहन्मते) बडी बुद्धिवाले सोम ! (प्रियेण धाम्ना) अपने प्रिय शरीरसे (आशु) अति शीघ्र (परि अर्ष) छाना जा । (यत्र देवा) जहां देव हैं उस स्थानमें जाता हूं (इति ब्रुवन्) ऐसा कहकर जा ॥ १ ॥

जहां देव रहते हैं उस यज्ञ स्थानमें जाता हूं ऐसा कहो और हे सोम ! तू छाना जाकर यज्ञमें जाकर रहो ।

[२९०] (अनिष्कृतं परिष्कृण्वन्) असंस्कृतको संस्कृत करके (जनाय) यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये (इषः यातयन्) अन्न देते हुए (दिवः वृष्टिं परिस्रव) द्युलोकसे वृष्टि गिरा दो ॥ २ ॥

१ अनिष्कृतं परिष्कुर्वन्— असंस्कृतको संस्कृत बनाओ ।
२ जनाय इषः यातयन्— लोगोंके लिये भरपूर अन्न दो ।
३ दिवः वृष्टिं परिस्रव— द्युलोकसे वृष्टि करो, जिससे पर्याप्त प्रमाणमें अन्न उत्पन्न हो सकेगा ऐसा करो ।

[२९१] (सुतः) रस निकाला सोम (पवित्रे) छाननीमें (आ एति) आता है । (ओजसा त्विषिं दधानः) अपने बलसे तेजको धारण करके (विचक्षाणः) सब देखता हुआ (विरोचयन्) सबको तेजस्वी करता है ॥ ३ ॥

सोमका रस निकालने पर वह छाननीमें आता है और सबको देखकर सबको तेजस्वी बनाता है । सोमके तेजसे सब अन्य यज्ञके पदार्थ चमकने लगते हैं ।

[२९२] (अयं यः सः) यह वह सोम (पवित्रे आ) छाननीमें आता है, और (रघुयामा) शीघ्रतासे (दिवस्परि) द्युलोकके ऊपर देवोंके पास जाता है । (सिन्धोः ऊर्मा व्यक्षरत्) जलके स्थानमें उतरता है ॥ ४ ॥

सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है और शीघ्रही देवोंको दिया जाता है, उस समय वह रस पानीमें मिलाया जाता है । पानीमें मिलाकर सोमरस पिया जाता है ।

×

२९३ आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः । इन्द्राय सिच्यते मधु ॥ ५ ॥
२९४ समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । योनावृतस्य सीदत ॥ ६ ॥

[४०]

(ऋषिः- बृहन्मतिराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

२९५ पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः । शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥ १ ॥
२९६ आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रं वृषा सुतः । ध्रुवे सदसि सीदति ॥ २ ॥
२९७ नू नो रयिं महामिन्दो ऽस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ ३ ॥
२९८ विश्वा सोम पवमान द्युम्नानीन्दवा भर । विदाः सहस्रिणीरिषः ॥ ४ ॥

अर्थ— [२९३] (सुतः) यह सोमरस (परावतः अथः) दूर तथा (अर्वावतः) पास रहनेवाले देवोंके लिये (आविवासन्) दिया जाता है । (इन्द्राय मधु सिच्यते) इन्द्रके लिये यह मधुर रस दिया जाता है ॥ ५ ॥

देव जो दूर रहते हैं तथा जो पास रहते हैं, उन सब देवोंके लिये यह सोमरस दिया जाता है । इन्द्रके लिये तो यह रस विशेष करके दिया जाता है ।

[२९४] (समीचीनाः अनूषत) मिलकर ऋत्विज लोग स्तुति करते हैं । (हरिं अद्रिभिः हिन्वन्ति) हरे रंगके सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं। उस समय (ऋतस्य योनौ सीदत) यज्ञके स्थानमें बैठो ॥ ६ ॥

१ समीचीनाः अनुषत— सब ऋत्विज यज्ञ स्थानमें बैठें ।

२ हरिं अद्रिभिः हिन्वन्ति— हरे सोमको पत्थरोंसे कूटते हैं ।

३ ऋतस्य योनौ सीदत— यज्ञके स्थानमें बैठो । सब लोक यज्ञके स्थानमें बैठें ।

[३२]

[२९५] (पुनानः) शुद्ध किया जानेवाला सोमरस (विचर्षणिः) सबको देखता है (विश्वाः मृधः) सब शत्रुओंको (अभि अक्रमीत्) दूर करता है और (विप्रं) ज्ञानीको (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (शुंभन्ति) सुशोभित करते हैं ॥ १ ॥

१ पुनानः विचर्षणिः विश्वाः मृधः अभि अक्रमीत्— शुद्ध किया जानेवाला यह ज्ञानी सोम सब शत्रुओंको दूर करता है ।

२ विप्रं धीतिभिः शुंभन्ति— ज्ञानीको यह सोम धारण शक्तिसे सुशोभित करता है ।

[२९६] यह (अरुणः) अरुण वर्णवाला सोम (योनिं आ रुहत्) अपने स्थानमें रहता है । वहांसे (इन्द्रं गमत्) इन्द्रके पास जाता है । यह (वृषा सुतः) बलसे निकाला सोमरस (ध्रुवे सदसि सीदसि) स्थिर यज्ञ-स्थानमें रहता है ॥ २ ॥

यज्ञके स्थानमें सोमसे रस निकालते हैं और सुस्थिर यज्ञस्थानमें उसे रख देते हैं ।

[२९७] हे (सोम इन्दो) सोमरस ! (नः) हमारे लिये (नु) सत्य रीतिसे (सहस्रिणं रयिं) हजारों प्रकारके धन (विश्वतः) सब ओरसे (आ पवस्व) दे दो ॥ ३ ॥

नः सहस्रिणं रयिं विश्वतः आ पवस्व— हमारे लिये सहस्रों प्रकार के सब ओरसे धन दे दो ।

[२९८] हे (पवमान इन्दो सोम) शुद्ध होनेवाले तेजस्वी सोम ! तू हमारे लिये (विश्वा द्युम्नानि) सब प्रकारके धन (आ भर) भरपूर दे दो । तथा (सहस्रिणीः इषः विदाः) सहस्रों प्रकारके अन्न हमें दे दो ॥ ४ ॥

२९९ स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे सुवीर्यम् । जरितुर्वर्धया गिरः ॥ ५ ॥
३०० पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् । वृषन्निन्दो न उक्थ्यम् ॥ ६ ॥

[४१]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३०१ प्र ये गावो न भूर्णय-स्त्वेषा अयासो अक्रमुः । घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥ १ ॥
३०२ सुवितस्य मनामहे ऽति सेतुं दुराव्यम् । साह्वांसो दस्युमव्रतम् ॥ २ ॥
३०३ शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः । चरन्ति विद्युतो दिवि ॥ ३ ॥
३०४ आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावद्वाजवत् सुतः ॥ ४ ॥
३०५ स पवस्व विचर्षण आ मही रोदसी पृण । उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२९९] हे सोम ! (सः) वह तू (नः) हम सब (स्तोत्रे पूनानः) स्तोताओंके लिये शुद्ध होता हुआ (सुवीर्यं रयिं) उत्तम पराक्रम करानेवाला धन दो तथा (जरितुः) स्तुति करनेवालेको (गिरः वर्धय) स्तोत्रोंको बढाओ ॥ ५ ॥

[३००] हे (इन्दो सोम) तेजस्वी सोम ! (पुनानः) तू शुद्ध होता हुआ (द्विबर्हसं रयिं) द्यु और पृथिवी इन दोनों स्थानोंमें होनेवाला धन (आ भर) हमें भरपूर दे दो । हे (वृषन् इन्दो) धन देनेवाले सोम ! (नः उक्थ्यम्) हमें प्रशंसनीय धन दो ॥ ६ ॥

भूमि और स्वर्गमें जो धन है वह हमें भरपूर दे दो । हमें प्रशंसनीय धन भरपूर दे दो ।

[४१]

[३०१] (ये) जो सोमरस (गावः न) गायोंके दूधके मिश्रणके समान (भूर्णयः) जल्दीसे (कृष्णां त्वचं अपघ्नन्तः) काली चमडीका नाश करते हुए (त्वेषाः अयासः प्र अक्रमुः) शीघ्रतासे चलकर जाते रहे हैं ॥ १ ॥

सोमरसमें गौका दूध मिश्रित करनेपर उस सोमका रंग बदलता है । हरे रंगका सोम सफेद रंगका होता है ।

[३०२] (अव्रतं दस्युं साह्वांसः) व्रत पालन न करनेवाले शत्रुका पराभव करनेवाले हम (सुवितस्य) उत्तम और (दुराव्यं सेतुं) दुष्टोंका नाश करनेवाले सोमकी स्तुति (मनामहे) करते हैं ॥ २ ॥

१ अव्रत दस्युं साह्वांसः— व्रतका पालन न करनेवाले शत्रुका हम पराभव करते हैं ।

२ सुवितस्य दुराव्यं सेतुं मनामहे— उत्तम आचरण करनेवाले और दुष्टोंका नाश करनेवालेकी हम प्रशंसा करते हैं ।

[३०३] (वृष्टेः स्वनः इव) वृष्टिके शब्दके समान (शुष्मिणः पवमानस्य) बलवान सोमरसका शब्द (शृण्वे) मैं सुनता हूं । (दिवि विद्युतः चरन्ति) द्युलोकमें बिजलीयां चमक रही हैं ॥ ३ ॥

[३०४] हे (इन्दो) सोम ! (सुतः) रस निकाला गया तू (गोमत्) गौवोंवाले (अश्वावत्) घोडोंवाले (वाजवत्) अन्नवाले (महीं इषं) बडे अन्नको हमें (आ पवस्व) दे दो ॥ ४ ॥

सोमयज्ञ करनेपर हमें गौवें, घोडे, अन्न तथा ऐसे अन्नरूप सब पदार्थ पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त होते रहें ।

[३०५] हे (विचर्षणे) विशेष रीतिसे देखनेवाले सोम ! वह तू (पवस्व) रस निकालकर देओ । ये (महि रोदसी आ पृण) ये द्यु और पृथिवी ये दोनों बडे स्थान (आ पृण) पूर्ण भर दो । (रश्मिभिः उषा सूर्यः न) जिस प्रकार उषःकालके पश्चात् सूर्य अपने किरणोंसे विश्वको भर देता है ॥ ५ ॥

सूर्य जैसा उदित होनेके पश्चात् अपने किरणोंसे विश्वको भर देता है, उस प्रकार यह सोम अपने प्रकाशसे यज्ञस्थानको भर दे ।

३०६ परिं णः शर्मयन्त्या धारंया सोम विश्वतः । सरां रसेवं विष्टपम् ॥ ६ ॥

[४२]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३०७ जनयंन् रोचना दिवो जनयंन्नप्सु सूर्यम् । वसानो गा अपो हरिः ॥ १ ॥
३०८ एष प्रत्नेन मन्मंना देवो देवेभ्यस्परिं । धारंया पवते सुतः ॥ २ ॥
३०९ वावृधानाय तूर्वये पवन्ते वाजसातये । सोमाः सहस्रंपाजसः ॥ ३ ॥
३१० दुहानः प्रत्नमित् पयः पवित्रे परिं षिच्यते । क्रन्दंन् देवाँ अंजीजनत् ॥ ४ ॥
३११ अभि विश्वानि वार्या ऽभि देवाँ ऋतावृधंः । सोमंः पुनानो अंर्षति ॥ ५ ॥
३१२ गोमंन्नः सोम वीरव दश्वांवद्वाजंवत् सुतः । पवंस्व बृहतीरिषंः ॥ ६ ॥

अर्थ—[३०६] हे (सोम) सोम ! तू (नः) हमको (शर्मयन्त्या धारया) सुखदायी धारासे (विश्वतः परि सर) सब ओरसे प्राप्त हो (रसा इव) जैसी नदी (विष्टपं) भूलोकमें चलती रहती है ॥ ६ ॥

नदी भूलोकमें चलती है और लोकोंको जल देती है, उस तरह सोमरस उत्तम चलनेवाली धारासे यज्ञकर्ता ऋत्विजोंको प्राप्त हो ।

[४२]

[३०७] (दिवः रोचना जनयन्) यह द्युलोकमें नक्षत्रोंको उत्पन्न करके (अप्सु सूर्यं जनयन्) अन्तरिक्षमें सूर्यका निर्माण करके (हरिः) हरे रंगका यह सोम (अपः गाः वसानः) जलमें और गौके दूधमें मिश्रित होकर रहता है ॥ १ ॥

[३०८] (एषः देवः) यह दिव्य सोम (प्रत्नेन मन्मना) पुराने स्तोत्रोंसे स्तुति किया गया और (सुतः) रस निकाला (देवेभ्यः) देवोंके लिये (धारया पवते) धारासे गिरता है ॥ २ ॥

[३०९] (सहस्रपाजसः) सहस्रों प्रकारके बलोंसे युक्त (सोमाः) सोमके पास (वावृधानाय तूर्वये) बढनेवाले शीघ्रतासे (वाजसातये) अन्नका लाभ हो इसलिये (पवन्ते) रस निकाले जाते हैं ॥ ३ ॥

१ सोमाः सहस्रपाजसः— सोमरस सहस्र प्रकारके बलोंसे युक्त होते हैं ।

२ वावृधानाय तूर्वये वाजसातये पवन्ते— बहुत बडे बलका लाभ हो इसलिये सोमरस निकाले जाते है । सोमरस पीनेसे बल बढता है, उत्साह बढता है ।

[३१०] (प्रत्नं इत्) पुराणा (पयः दुहानः) रस निकाला सोम (पवित्रे परि षिच्यते) छाननीपरसे छाना जाता है । (क्रन्दन्) शब्द करता हुआ (देवान् अजीजनत्) देवोंको पास लाता है ॥ ४ ॥

[३११] यह (पुनानः सोमः) छाना जानेवाला सोम (विश्वानि वार्या) सब धनोंको (अभि अर्षति) सब प्रकारसे देता है । (ऋतावृधः देवान्) सत्यको धारण करनेवाले देवोंको अपने समीप लाता है ॥ ५ ॥

[३१२] हे सोम ! तू (नः) हमारे लिये (गोमत्) गौओंसे युक्त (वीरवत्) वीर पुत्रोंसे युक्त (अश्वावत्) घोडोंसे युक्त तथा (वाजवत्) बलसे युक्त (बृहतीः इषः पवस्व) बडा अन्न दो ॥ ६ ॥

वीरपुत्र, गौवें, घोडे तथा अन्य बल बढानेवाले पदार्थ उत्तम वीर मानवोंके पास रहने योग्य हैं ।

[४३]

(ऋषिः- मेध्यातिथिः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३१३ यो अत्यं इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ १ ॥
३१४ तं नो विश्वा अवस्युवो गिरः शुम्भन्ति पूर्वथा । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ २ ॥
३१५ पुनानो याति हर्यतः सोमो गीर्भिः परिष्कृतः । विप्रस्य मेध्यातिथेः ॥ ३ ॥
३१६ पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् । इन्दो सहस्रवर्चसम् ॥ ४ ॥
३१७ इन्दुरत्यो न वाजसृत् कनिक्रन्ति पवित्र आ । यदक्षारति देवयुः ॥ ५ ॥
३१८ पवस्व वाजसातये विप्रस्य गृणतो वृधे । सोम रास्व सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

[४४]

(ऋषिः- अयास्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३१९ प्र ण इन्दो महे तन ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि । अभि देवाँ अयास्यः ॥ १ ॥

---

[४३]

अर्थ— [३१३] (यः) जो सोम (अत्यः इव) घोडेके समान (गोभिः) गौके दूध आदिसे (मृज्यते) शुद्ध करके मिश्रित किया जाता है, जिसने (मदाय) आनंदके लिये (हर्यतः) वह सबको प्रिय होता है, उस सोमको हम (गोर्भिः तं वासयामसि) स्तुतियोंसे यज्ञ स्थानमें रखते हैं ॥ १ ॥

घोडेको जैसा गौका दूध बल उत्पन्न करनेवाला होता है उसी प्रकार सोमरसमें गौका दूध मिलानेसे वह मिश्रण बल बढानेवाला होता है ।

[३१४] (तं) उस सोमको (नः) हमारा (विश्वाः अवस्युवः गिरः) सब रक्षण करनेवाली स्तुतियां (पूर्वथा) पूर्व स्तुतियोंके समान (शुम्भन्ति) सुशोभित करती हैं । (इन्द्राय पीतये इन्दुं) इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसको तैयार करती हैं ॥ २ ॥

[३१५] (पुनानः) पवित्र किया हुआ (सोमः) सोमरस (गीर्भिः परिष्कृतः हर्यतः) स्तुतियोंसे सुसंस्कार-युक्त हुआ (विप्रस्य मेध्यातिथेः) ज्ञानी मेधातिथिके यज्ञके लिये (याति) लिया जाता है ॥ ३ ॥

मेधातिथिके यज्ञमें सोम स्तोत्रोंसे सुसंस्कृत होकर लिया जाता है ।

[३१६] हे (पवमान सोम) रस निकाले (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (अस्मभ्यं) हमारे लिये (सहस्र-वर्चसं सुश्रियं रयिं) हजारों तेजोंसे युक्त, उत्तम शोभायुक्त धनको (विदा) दे दो ॥ ४ ॥

[३१७] यह (इन्दुः) सोम (वाजसृत्) संग्राममें जानेवाले (अत्यः न) घोडेके समान (पवित्रे आ कनिक्रन्ति) छाननीमें शब्द करता हुआ (देवयुः) देवोंके पास जानेकी इच्छा करता हुआ (यत् अति अक्षाः) जाता है ॥ ५ ॥

[३१८] हे (सोम) सोम ! (गृणतः विप्रस्य वृधे) स्तुति करनेवाले विप्रकी वृद्धि करनेके लिये तथा (वाजसातये) अन्नके लाभार्थ (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य (रास्व) प्रदान करो ।

[४४]

[३१९] हे (इन्दो) सोम ! तू (नः) हमारे (महे तने) बडे धनके लिये (प्र अर्षसि) जाता है । (नः) अभी (अयास्यः) अयास्य नामक ऋषि तेरे (ऊर्मिं) लहरियोंको (बिभ्रत्) धारण करके (देवान् अभि) देवोंके समीप पहुंचता है ॥ १ ॥

१ न महे तने प्र अर्षसि— हम बहुत धन मिले इस लिये सोम यज्ञमें जाता है ।

२ अयास्यः ऊर्मिं बिभ्रत् देवान् अभि अर्षति— अयास्य ऋषि सोमरसको लेकर देवोंके पास उनको सोमरस देनेके लिये जाता है ।

३२० मती जुष्टो धिया हितः सोमो हिन्वे परावति । विप्रस्य धारया कविः ॥ २ ॥
३२१ अयं देवेषु जागृविः सुत एति पवित्र आ । सोमो याति विचर्षणिः ॥ ३ ॥
३२२ स नः पवस्व वाजयुश्चक्राणश्चारुमध्वरम् । बर्हिष्माँ आ विवासति ॥ ४ ॥
३२३ स नो भगाय वायवे विप्रवीरः सदावृधः । सोमो देवेष्वा यमत् ॥ ५ ॥
३२४ स नो अद्य वसुत्तये क्रतुविद्गातुवित्तमः । वाजं जेषि श्रवो बृहत् ॥ ६ ॥

अर्थ— [३२०] (कविः) ज्ञानी (सोमः) सोमरस (विप्रस्य मती जुष्टः) ज्ञानीकी बुद्धिसे स्तुति द्वारा संसेवित होकर (धिया हितः) बुद्धिपूर्वक किये यज्ञमें (परावति धारया हिन्वे) दूरके स्थानमें अपनी रसधारासे जाता है ॥ २ ॥

ज्ञान बढानेवाला सोम है, उसकी स्तुति ज्ञानी ब्राह्मण यज्ञमें करते हैं। और सोमरसकी धारा यज्ञस्थानमें बहती रहती है। उसके समर्पणसे यज्ञ होता रहता है।

[३२१] (जागृविः) जागृत रहनेवाला (अयं सोम) यह सोम (देवेषु सुतः) देवोंको देनेके लिये रस निकालने पर (आ एति) आगे देवोंके पास जाता है। और (विचर्षणिः सोमः) उत्तम देखनेवाला यह सोम (पवित्रे याति) छाननीमें छाना जानेके लिये जाता है ॥ ३ ॥

देवोंको देनेके लिये सोमका रस निकालते हैं, छाननीमेंसे उसे छानते हैं और पश्चात् देवोंको अर्पण करते हैं।

[३२२] हे सोम ! जिस तेरी (बर्हिष्मान् आ विवासति) यज्ञकर्ता सेवा करता है (सः) वह तू (नः) हम सबके लिये (वाजयुः) अन्न देनेवाला हो और (अध्वरं चारुं चक्राणः) हिंसारहित यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाला होकर (पवस्व) रस निकालकर दे दो ॥ ४ ॥

१ नः वाजयुः सः त्वं अध्वरं चारुं चक्राणः पवस्व— हमारे लिये अन्नको पर्याप्त प्रमाणमें दे दो और हमारे यज्ञ उत्तम रीतिसे अहिंसामय रहकर परिपूर्ण हों ऐसा करो।

[३२३] (सः) वह रस निकाला (सोमः) सोम (वायवे भगाय) वायु और भग देवोंके लिये (विप्र-वीरः) ज्ञानी ब्राह्मणोंके द्वारा प्रेरित हुआ (सदा-वृधः) सदा बढनेवाला होकर (नः) हमारे लिये (देवेषु) देवोंमें रहनेवाला धन (आयमत्) देवे ॥ ५ ॥

१ सः सोमः विप्रवीरः सदावृधः नः देवेषु आयमत्— वह ज्ञानियोंमें अति ज्ञानी वीर सदा बढने-वाला सोम देवोंसे पास रहनेवाला धन हमें देवे।

[३२४] हे सोम ! (क्रतुवित्) यज्ञको जाननेवाला (गातुवित् तमः) पुण्य कर्म करनेवालोंके मार्ग जानने-वाला तू (अद्य) आज इस यज्ञमें (वसुत्तये) धनका लाभ हो इस लिये (वाजं) बल और (बृहत् श्रवः) बडा अन्न (जेषि) विजयसे प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

यज्ञके विधि तथा पुण्य कर्म करनेवालोंके सब मार्ग जाननेवाला तू आज हमें धन, बल और अन्न अपने विजयसे प्राप्त हो ऐसा करो। अपने विजयसे धन, बल और अन्न प्राप्त हो ऐसा करना मानवोंका कर्तव्य है।

[४५]

(ऋषिः- अयास्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३२५ स पवस्व मदाय कं नृचक्षा देववीतये । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १ ॥

३२६ स नो अर्षाभि दूत्यं१ त्वमिन्द्राय तोशसे । देवान् त्सखिभ्य आ वरम् ॥ २ ॥

३२७ उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥

३२८ अत्यू पवित्रमक्रमीद् वाजी धुरं न यामनि । इन्दुर्देवेषु पत्यते ॥ ४ ॥

३२९ समी सखायो अस्वरन् वने क्रीळन्तमत्यविम् । इन्दुं नावा अनूषत ॥ ५ ॥

३३० तया पवस्व धारया यया पीतो विचक्षसे । इन्दो स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ ६ ॥

---

[४५]

अर्थ – [३२५] हे (इन्दो) सोम ! (नृचक्षाः सः त्वं) मनुष्योंको देखने वाला तू (देववीतये) देवोंको देनेके लिये तथा (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (मदाय) उनका आनंद बढानेके लिये (कं पवस्व) सुखसे रस निकाल दो ॥ १ ॥

देवोंको तथा इन्द्रको पीनेके लिये देनेके लिये यज्ञमें सोमका रस निकालते हैं। उसका यज्ञ होता है और वह रस देवोंको पीनेके लिये दिया जाता है।

[३२६] हे सोम ! (सः) वह (त्वं) तू (नः दूत्यं अभि अर्ष) हमारे दूतका कार्य कर तथा (इन्द्राय तोशसे) इन्द्रके पीनेके लिये (सखिभ्यः) मित्रोंके लिये (वरं) श्रेष्ठ धन (देवान्) देवोंको देनेके लिये (आ) देवो ॥ २ ॥

१ इन्द्राय तोशसे सखिभ्यः वरं देवान् आ अर्ष— इन्द्रके पीनेके लिये, मित्रोंके तथा देवोंके पीनेके लिये श्रेष्ठ सोमका रस देओ।

[३२७] (उत त्वां) और तुझ (अरुणं) अरुण वर्णवाले सोमको (मदाय) आनंद बढानेके लिये तथा (कं) सुखके लिये (गोभिः अञ्ज्मः) गौके दूधसे मिश्रित करते हैं, ऐसा तू (राये) धन प्राप्त करनेके लिये (नः दुरः विवृधि) हमारे द्वार खोल दो ॥ ३ ॥

[३२८] (वाजी) घोडा (यामनि धुरं न) चलनेमें रथकी धुराको जैसा (अति अक्रमीत्) चलता है, उस प्रकार (पवित्रं अक्रमात्) छाननीमेंसे सोमरस चलता है और (इन्दुः) सोमरस (देवेषु पत्यते) देवोंतक पहुंचता है ॥ ४ ॥

घोडा जिस प्रकार रथकी धुराको चलाता है उस प्रकार छाननीमेंसे सोमरस छाना जाता है और छाननेके पश्चात् वह रस देवोंके पास पहुंचता है ॥

[३२९] (अति-अविं) छाननीसे छाने गये (क्रीळन्तं इन्दुं) खेलनेवाले इस सोमको (वने) यज्ञके स्थानमें (सखायः) मित्रोंके समान यज्ञ करनेवाले याजक (सं अस्वरन्) स्तुति करते हैं। (नावाः) वाणियां (इन्दुं अनूषत्) सोमकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

सोमरस छाननीसे छाना जाता है, उस समय याजक सोमकी स्तुति करते हैं।

[३३०] हे (इन्दो) सोम ! (यया पीतः विचक्षसे) जिस धारासे पिया गया तू सोम ज्ञानी (स्तोत्रे सुवीर्यं) यज्ञकर्ताके लिये उत्तम वीर्य देता है (तया धारया पवस्व) उस धारासे नीचे पात्रमें पडो ॥ ६ ॥

[४६]

(ऋषिः- अयास्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३३१ असृग्रन् देववीतये ऽत्यासः कृत्व्या इव । क्षरन्तः पर्वतावृधः ॥ १ ॥
३३२ परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती । वायुं सोमा असृक्षत ॥ २ ॥
३३३ एते सोमास इन्दवः प्रयस्वन्तश्चमू सुताः । इन्द्रं वर्धन्ति कर्मभिः ॥ ३ ॥
३३४ आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना । गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ४ ॥
३३५ स पवस्व धनंजय प्रयन्ता राधसो महः । अस्मभ्यं सोम गातुवित् ॥ ५ ॥

---

[४६]

अर्थ— [३३१] (पर्वतावृधः) पर्वत पर उत्पन्न होकर बढनेवाले (क्षरन्तः) रस निकाले हुए सोम (अत्यासः कृत्व्या इव) दौडनेवाले घोडोंके समान (देववीतये) देवोंको देनेके लिये (असृग्रन्) पात्रमें गिरते हैं ॥ १ ॥

पर्वत पर सोमवल्ली उगती है । उस सोमका रस निकालते हैं और वह रस पीनेके लिये देवोंको दिया जाता है । जैसे दौडनेवाला घोडा अपने स्थान पर दौडता हुआ पहुंचता है, वैसा यह सोमरस देवोंके पास पहुंचता है ।

[३३२] (इन्दवः सोमाः) तेजस्वी सोमरस (परिष्कृतासः) अलंकृत होकर (पित्र्यावती योषा इव) पिताकी पुत्रीके समान (वायुं असृक्षत) वायुके समीप जाते हैं ॥ २ ॥

पिता जीवित है ऐसी पुत्री अलंकृत होकर अपने पतिके घर जाती है, उस प्रकार ये सोमरस वायुके समीप यज्ञस्थानमें रखे जाते हैं और पश्चात् उनका यज्ञमें अर्पण किया जाता है ।

[३३३] (इन्दवः) तेजस्वी (एते सोमासः) ये सोमरस (चमू सुताः) पात्रमें रस निकाल कर रखे (प्रयस्वन्तः) अन्नसे संयुक्त होकर (कर्मभिः) अपने यज्ञकर्मोंसे (इन्द्रं वर्धन्ति) इन्द्रको संतुष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

तेजस्वी सोमरस निकालकर यज्ञपात्रोंमें रखे जाते हैं । वे सोमरस गौका दूध आदि अन्नसे मिश्रित होकर अपने यज्ञके कर्मोंसे इन्द्रका बल बढाते हैं ।

[३३४] (सुहस्त्यः) उत्तम हस्तसे यज्ञ करनेवाले ऋत्विजो तुम (आ धावत) मेरे पास आओ । (मन्थिना) मन्थन करनेके साधनके साथ (शुक्रा गृभ्णीत) बलवान सोमको लीजिये और (गोभिः मत्सरं श्रीणीतः) गौके दूधसे सोमरस मिलाओ ॥ ४ ॥

उत्तम पवित्र कार्य अपने हाथोंसे करनेवाले ऋत्विजो, मेरे पास आओ । सोमको कूटनेके साधनोंको अपने हाथमें लो, उस सोमका रस निकालो और उस रसमें गौका दूध मिलाओ ।

[३३५] हे (धनंजय सोम) शत्रुके धनको जितनेवाले सोम ! (गातुवित्) योग्य मार्गको जाननेवाला (अस्मभ्यं) हमारे लिये (महः राधसः प्रयन्ता) बडे धनका देनेवाला (सः) वह तू (पवस्व) सोमरस देदो ॥ ५ ॥

१ धनंजय— धन तथा युद्ध जितनेवाला सोम है ।

२ गातुवित्— सुयोग्य मार्ग बतानेवाला सोम है ।

३ अस्मभ्यं महः राधसः प्रयन्ता— हमें बडा धन देनेवाला यह सोम है ।

३३६ एतं मृंजन्ति मर्ज्यं पवमानं दश क्षिपः । इन्द्राय मत्सरं मदम् ॥ ६ ॥

[४७]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३३७ अया सोमः सुकृत्यया महश्चिदभ्यवर्धत । मन्दान उद्वृषायते ॥ १ ॥

३३८ कृतानीदस्य कर्त्वा चेतन्ते दस्युतर्हणा । ऋणा च धृष्णुश्चयते ॥ २ ॥

३३९ आत् सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रसा भुवत् । उक्थं यदस्य जायते ॥ ३ ॥

३४० स्वयं कविर्विधर्तरि विप्राय रत्नमिच्छति । यदी मर्मृज्यते धियः ॥ ४ ॥

३४१ सिषासतू रयीणां वाजेष्वर्वतामिव । भरेषु जिग्युषामसि ॥ ५ ॥

अर्थ— [३३६] (एतं मर्ज्यं) इस सम्यक् शोधनीय (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (पवमानं) रस निकाले (मत्सरं मदं) आनंद देनेवाले सुखदायी सोमको (दश क्षिपः) दस अंगुलियां (मृजन्ति) शुद्ध करती है ॥ ६ ॥

१ इन्द्रको पीनेके लिये सोमरस दिया जाता है ।

२ मत्सरं मदं— यह रस आनंद बढानेवाला है ।

३ दश क्षिपः मृजन्ति— दश अंगुलियां सोमसे रस निकालती हैं ।

[४७]

[३३७] (सोमः) यह सोम (अया सुकृत्यया) इस उत्तम यज्ञीय कर्म द्वारा (महः चिद्) बडे देवोंके पास (अभ्यवर्धत) बडा होकर पहुंचता है । (मन्दानः) आनंदित होकर यह (उद्वृषायते) बलवान बनता है ॥ १ ॥

यह सोम यज्ञमें बडा होकर सन्मानके साथ देवोंके पास जाता है । आनंदित होकर यह बलवान बनता है ।

[३३८] (अस्य) इस सोमके (दस्यु- तर्हणा कर्त्वा) शत्रुका नाश करनेके (कृतानि) कार्य वह (इत्) निश्चयसे (धृष्णुः) धैर्यवान् होकर करता है और (ऋणा च चयते) ऋण भी दूर करता है ॥ २ ॥

सोम शत्रुका नाश करता है और धैर्यसे यज्ञ करनेवालेके ऋण भी दूर करता है ।

[३३९] (यत्) जिस समय (अस्य) इस इन्द्रका (उक्थं) स्तोत्र (जायते) बोला जाता है, (आत्) उसी समय (इंद्रियः) इन्द्रको प्रिय यह सोमरस (वज्रः) वज्र जैसा (सहस्रसा) सहस्र प्रकारके अन्न देनेवाला (जायते) होता है ॥ ३ ॥

[३४०] (यदि स्वयं कविः) जिस समय स्वयं कवि जैसा यह सोम (धियः) अंगुलियोंसे (मर्मृज्यते) शुद्ध किया जाता है उस समय (विधर्तरि विधाता) यह सोम (विप्राय रत्नं इच्छति) ज्ञानीको धन प्राप्त हो ऐसी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

[३४१] हे सोम तू ! (भरेषु) युद्धोंमें (जिग्युषां) विजय प्राप्त करनेवालोंके (रयीणां) धनोंका (सिषासतुः) विभाग करनेकी इच्छा करनेवालोंके समान-है । (वाजेषु अर्वतां इव) युद्धोंमें घोडे जैसा कार्य करते हैं वैसा कार्य तू करता है ॥ ५ ॥

युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाले वीर जैसा धन बांटते हैं, वैसा सोम यज्ञोंमें आपसमें यज्ञकर्ता बांट कर लेते हैं ।

×

[४८]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३४२ तं त्वा॑ नृ॒म्णानि॒ बिभ्र॑तं स॒धस्थे॑षु म॒हो दि॒वः । चारुं॑ सुकृ॒त्यये॑महे ॥ १ ॥
३४३ संवृ॑क्तधृष्णुमु॒क्थ्यं॑ म॒हाम॑हिव्रतं॒ मद॑म् । श॒तं पुरो॑ रुरु॒क्षणि॑म् ॥ २ ॥
३४४ अत॑स्त्वा र॒यिम॒भि राजा॑नं सुक्रतो दि॒वः । सु॒प॒र्णो अ॑व्य॒थिर्भ॑रत् ॥ ३ ॥
३४५ विश्व॑स्मा॒ इत् स्व॑र्दृ॒शे साधा॑रणं रज॒स्तुर॑म् । गो॒पामृ॒तस्य॒ विर्भ॑रत् ॥ ४ ॥
३४६ अधा॑ हिन्वा॒न इ॑न्द्रि॒यं ज्याया॑ महि॒त्वमा॑नशे । अ॒भि॒ष्टि॒कृद्विच॑र्षणिः ॥ ५ ॥

---

[४८]

अर्थ — [३४२] (महः दिवः) बडे द्युलोकके (सधस्थेषु) स्थानोंमें रहनेवाले (नृम्णानि बिभ्रतं) धनोंको धारण करनेवाले (चारुं तं त्वा) सुन्दर ऐसे तुझ सोमको (सुकृत्यया ईमहे) उत्तम यज्ञकार्यसे हम प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं ॥ १ ॥

सोम द्युलोकमें पर्वतके उच्च स्थानमें रहता है। वह पीनेमें सुखदायक लगता है। यज्ञमें उस सोमको हम प्राप्त करना चाहते हैं।

[३४३] हे सोम ! (संवृक्तधृष्णुं) शत्रुका नाश करनेवाले (उक्थ्यं) वर्णनीय (महामहिव्रतं) बडे महान कार्योंको करनेवाले (मदं) आनंद देनेवाले (शतं पुरः रुरुक्षणिं) शत्रुके सेकडों नगरोंका नाश करनेवाले सोमकी हम प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

१ संवृक्त- धृष्णुः— शत्रुओंका नाश करनेवाला।
२ शतं पुरः रुरुक्षणिः— शत्रुके सेकडों नगरोंका नाश करनेवाला।
३ महामहिव्रतः— बडे महत्वपूर्ण कार्य करनेवाला।
४ उक्थ्यः— प्रशंसनीय कार्य करनेवाला।
ये वीर प्रशंसाके योग्य हैं।

[३४४] हे (सुक्रतो) उत्तम यज्ञ करनेवाले सोम ! (रयिं अभि) धनोंके प्रति (राजानं त्वा) राजाके समान तुझ सोमको (अतः दिवः) इस द्युलोकसे (सुपर्णः) श्येन पक्षीने (अव्यथिः) विना कष्टके (भरत्) लाया है ॥ ३ ॥

सोमको श्येन पक्षी पर्वतके शिखरके ऊपरसे लाता है, जिस सोमका यज्ञमें मुख्यतः उपयोग किया जाता है।

[३४५] (रजस्तुरं) उदकको प्रेरित करनेवाले (ऋतस्य गोपां) यज्ञका संरक्षण करनेवाले (विश्वस्मै स्वर्दृशे) सबका निरीक्षण करनेवाले देवके लिये (साधारणं इत्) सबको धारण मिलनेवाले सोमको (विः भरत्) पक्षी लाता है ॥ ४ ॥

१ विः ऋतस्य गोपां रजस्तुरं सोमं भरत्— श्येन पक्षी यज्ञका संरक्षण करनेवाले सोमको पर्वतके शिखरके ऊपरसे यज्ञ लाता है।

[३४६] (अध) अब (विचर्षणिः) यज्ञकर्मोंका विशेष रीतिसे करनेवाला (अभिष्टिकृत्) याजकोंके इष्ट फल देनेवाला और (इन्द्रियं हिन्वानः) अपनी आत्मशक्तिको प्रेरित करनेवाला यह सोम (ज्यायः महित्वं आनशे) अधिक महत्वका स्थान यज्ञमें प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

यज्ञमें सोमका विशेष स्थान रहता है। यह सोम यज्ञके कार्य करता है, यज्ञ करनेवालोंको इष्ट फल देता है। इस कारण सोमका यज्ञमें विशेष महत्वका स्थान निश्चित हुआ है।

[४९]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३४७ पवस्व वृष्टिमा सु नो ऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥ १ ॥
३४८ तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥ २ ॥
३४९ घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः । अस्मभ्यं वृष्टिमा पव ॥ ३ ॥
३५० स न ऊर्जे व्य१व्ययं पवित्रं धाव धारया । देवासः शृणवन् हि कम् ॥ ४ ॥
३५१ पवमानो असिष्यद्-द्रक्षांस्यपजङ्घनत् । प्रत्नवद्रोचयन् रुचः ॥ ५ ॥

[५०]

(ऋषिः- उचथ्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३५२ उत् ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः । वाणस्य चोदया पविम् ॥ १ ॥

---

[४९]

अर्थ— [३४७] हे सोम ! तू (दिवः वृष्टिं) द्युलोकसे वर्षाको (नः) हमारे लिये (आसु पवस्व) उत्तम रीतिसे गिराओ । तथा (अपां ऊर्मिं) जलोंकी लहरोंको द्युलोकसे नीचे भेजो । तथा (अयक्ष्माः) रोग रहित (बृहतीः इषः) बहुत अन्न भेजो ॥ १ ॥

द्युलोकसे वृष्टि भेजो, जलोंकी लहरोंको नीचे हमारे लिये भेजो तथा रोग रहित अन्न भेजो ।

[३४८] हे सोम ! (तया धारया पवस्व) उस धारासे नीचे गिरो, (यथा) जिस धारासे (जन्यासः गावः इह नः गृहं आगमन्) शत्रुकी गौवें यहां हमारे घर आ जाय ॥ २ ॥

हमारे पास गौवें आजांय और हमारे पास रहें ऐसा यह सोम करे । सोम गौवोंको प्रिय है, अतः जहां सोम बहुत रहता है वहां गौवें रहती हैं ॥

[३४९] हे सोम ! (यज्ञेषु देववीतमः) यज्ञोंमें देवोंके लिये प्रिय होकर (धारया घृतं पवस्व) धारासे उदकको देवो (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वृष्टिं आ पव) जलकी वर्षा उत्तम रीतिसे देवो ॥ ३ ॥

धारासे वृष्टि होकर हमारे लिये अन्न आदि भरपूर प्राप्त होता रहे ।

[३५०] हे सोम ! रस निकाला तूं (नः ऊर्जे) हमारे अन्नके लिये (धारया) धारासे (पवित्रं धाव) छाननीसे नीचे दौडकर चल । इस समय (देवासः) देव (हि कं शृणवन्) तेरे शब्दको सुने ॥ ४ ॥

सोमरस छाननीमेंसे नीचे उतरनेके समय शब्द करता हुआ उतरे । इस समय सब यज्ञ स्थानीय देव इस सोमके शब्दको सुनें ॥

[३५१] (रक्षांसि अवजंघनत्) राक्षसोंको मारता हुआ (रुचः) तेजको (प्रत्नवत् रोचयन्) पहिलेके समान चमकाता हुआ यह (पवमानः) सोमरस (असिष्यदत्) नीचेके पात्रमें गिरता है ॥ ५ ॥

१ रक्षांसि अवजंघनत्— सोम राक्षसोंका नाश करता है ।

२ प्रत्नवत् रुचः रोचयन्— पहिलेके समान अपना तेज फैलाता है ।

३ पवमानः असिष्यदत्— यह सोमरस नीचेके पात्रमें गिरता है ।

[५०]

[३५२] हे सोम ! (ते शुष्मासः) तेरे वेग (ऊत् ईरते) ऊपर जाते हैं, जैसे (सिन्धोः ऊर्मेः स्वनः इव) सिन्धुके तरंगका शब्द होता है । वह तूं (वाणस्य) वाणके (पविं) शब्दको (चोदय) प्रेरित कर ॥ १ ॥

सोमका रस निकालकर उस रसको पात्रमें रखनेके समय सोमरसका शब्द सुनाई देता है, जैसा जलके तरंगोंका शब्द होता है ।

३५३ प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः । यदव्य एषि सानवि ॥ २ ॥
३५४ अव्यो वारे परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । पवमानं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥
३५५ आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे । अर्कस्य योनिमासदम् ॥ ४ ॥
३५६ स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ ५ ॥

[५१]

(ऋषिः- उचथ्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३५७ अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ सृज । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ १ ॥
३५८ दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे । सुनोता मधुमत्तमम् ॥ २ ॥

अर्थ— [३५३] (ते प्रसवे) तेरे उत्पन्न होनेके समय (मखस्युवः) यज्ञकर्ता ऋत्विज (तिस्र वाचः उदीरते) ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद की तीन वाणियोंके मंत्र बोलते हैं। (यत्) जब तू सोम (सानवि अव्ये एषि) ऊंचे मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे तू जाता है ॥ २

जब सोमसे रस याजक लोग निकालते हैं उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मंत्र बोलते है और उस रसको छानते हैं।

[३५४] (प्रियं हरिं) देवोंको प्रिय हरे रंगके (अद्रिभिः) पत्थरोंसे कूटकर निकाले (मधुश्चुतं) मधुर रस (पवमानं) सोमको (अव्यः वारे परि हिन्वन्ति) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे छानते हैं ॥ ३ ॥

यह सोमरस देवोंको प्रिय है। यह हरे रंगका होता है। पत्थरोंके द्वारा कूटकर इस सोमरसको ऋत्विज लोग यज्ञके समय निकालते हैं। मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे इस रसको छाना जाता है। छाननेके पश्चात् इस रसको पीते हैं।

[३५५] हे (मदिंतम) अत्यंत आनन्द देनेवाले (कवे) क्रान्तदर्शी सोम! (अर्कस्य योनिं आसदं) पूजनिय इन्द्रके स्थानको प्राप्त करनेके लिये (पवित्रं) छाननीमेंसे (धारया आ पवस्व) धारासे नीचेके पात्रमें जा ॥ ४ ॥

पूजनीय इन्द्रको प्राप्त करनेके लिये सोमरस धारासे छाननीमेंसे नीचे रखे पात्रमें उतरता है। और छाननेके पश्चात् वह रस इन्द्रको दिया जाता है।

[३५६] (मदिन्तम) आनन्द देनेवाले सोम! (अक्तुभिः गोभिः) तुम्हारे अन्दर मिलाने योग्य गौके दूधके साथ (अञ्जानः) मिलाये जाने पर हे (इन्दो) सोम! (इन्द्राय पीतये पवस्व) इन्द्रको पीनेके लिये छाना जा ॥ ५ ॥

सोमरस आनंद देनेवाला है, वह गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है, और इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है।

[५१]

[३५७] हे (अध्वर्यो) यज्ञके करनेवाले ऋत्विज! (अद्रिभिः सुतं) पत्थरोंसे कूटकर निकाले गये (सोमं) सोमरसको (पवित्रे आ सृज) छाननीमेंसे छान (इन्द्राय पातवे) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये (पुनीहि) छाननीसे छान ॥ १ ॥

[३५८] हे अध्वर्युजनो! (दिवः उत्तमं पीयुषं मधुमत्तमं सोमं) द्युलोकके उत्तम अमृत जैसे अति मधुर सोमरसको (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रको देनेके लिये (सुनोत) तैयार करो ॥ २ ॥

१ दिवः उत्तमं पीयूषं मधुमत्तमं सोमं सुनोत— द्युलोकके उत्तम अमृत जैसा सोमके रसको निकालो।
२ वज्रिणे इन्द्राय सुनोत— वज्रधारी इन्द्रके लिये सोमका रस निकालो।

३५९ तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्यश्नते । पवमानस्य मरुतः ॥ ३ ॥
३६० त्वं हि सोम वर्धयन् त्सुतो मदाय भूर्णये । वृषन् त्स्तोतारमूतये ॥ ४ ॥
३६१ अभ्यर्ष विचक्षण पवित्रं धारया सुतः । अभि वाजमुत श्रवः ॥ ५ ॥

[५२]

(ऋषिः- उचथ्य आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३६२ परि द्युक्षः सनद्रयि-र्भरद्वाजं नो अन्धसा । सुवानो अर्ष पवित्र आ ॥ १ ॥
३६३ तव प्रत्नेभिरध्वभि-रव्यो वारे परि प्रियः । सहस्रधारो यात् तना ॥ २ ॥
३६४ चरुर्न यस्तमीङ्खये-न्दो न दानमीङ्खय । वधैर्वधस्नवीङ्खय ॥ ३ ॥
३६५ नि शुष्ममिन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । यो अस्माँ आदिदेशति ॥ ४ ॥
३६६ शतं न इन्द ऊतिभिः सहस्रं वा शुचीनाम् । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ ५ ॥

अर्थ— [३५९] हे (इन्दो) सोम ! (तव मधोः पवमानस्य) तुझ मधुर रसरूप (अन्धसः) अन्नको (त्ये देवाः मरुतः) वे देव और मरुत (व्यश्नते) प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

सब देव तथा सब मरुत् नामक सैनिक सोमके मधुर अन्नरूप रसका सेवन करते हैं।

[३६०] हे (सोम) सोम ! (सुतः) रस निकाला (त्वं) तू (वर्धयन्) देवोंकी शक्ति बढाते हुए (वृषन्) कामनाकी पूर्ति करते हुए (भूर्णये मदाय) उत्तम आनंद प्राप्त करनेके लिये (ऊतये) और संरक्षण करनेके लिये (हि वृषन्) सहायक होता है ॥ ४ ॥

[३६१] हे (विचक्षण) विशेष रीतिसे देखनेवाले सोम ! (धारया) धारासे (पवित्रं अभि अर्ष) छाननीमेंसे छाना जा । (सुतः) और तेरा रस (वाजं उत श्रवः अभि अर्ष) अन्न तथा यश हमें देवे ॥ ५ ॥

सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है और अन्न तथा यश देता है। यज्ञ करनेसे यश मिलता है।

[५२]

[३६२] (द्युक्षः) तेजस्वी (सनद् रयिः) धन देनेवाला सोम (नः) हमारे लिये (वाजं) बल (अन्धसा) अन्नके साथ (परि भरत) भरपूर देवे। हे सोम ! तू (सुवानः) रस निकाला हुआ (पवित्रे आ अर्ष) छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें उतर ॥ १ ॥

[३६३] हे सोम ! (तव प्रियः) तुझे प्रिय (सहस्रधारः रसः) सहस्रों धाराओंसे पात्रमें आनेवाला (तना) विस्तृत रस (प्रत्नेभिः अध्वभिः) पुराने मार्गोंसे (अव्यः वारे) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (परियात्) नीचे उतरता है ॥ २ ॥

[३६४] (चरुः न) चरुके समान (यः) जो है उसको (तं ईङ्खय) हमारे पास प्रेरित करो। और हे (इन्दो) सोम ! (नः) अभी (दानं ईङ्खय) दान भी प्रेरित करो। हे (वधस्नो) कूटे जानेवाले सोम ! (वधैः) पत्थरोंके कूटनेके आघातोंसे (ईङ्खय) रसको बाहर प्रेरित करो ॥ ३ ॥

सोम हमारे पास आवे। उस सोमको यज्ञमें हम लेते हैं और उसको पत्थरोंसे कूटते हैं और उससे रस निकालते हैं।

[३६५] हे (पुरुहूत इन्दो) बहुत स्तुति किये गये सोम ! (यः) जो तू (शुष्मं) बल बढानेका (अस्मान् जनानां) हम लोगोंको (आदि देशति) आदेश दे रहा है। वह हमारे लिये उत्तम उपदेश है ॥ ४ ॥

[३६६] हे (इन्दो) सोम ! (मंहयद्-रयिः) धन देनेवाला तू (नः ऊतिभिः) हमारे संरक्षणोंसे (शुचीनां वा सहस्रं) सहस्रों प्रकारके शुद्धिके साधनोंसे (रयिः मंहयत् पवस्व) धन देकर रस निकालो ॥ ५ ॥

[५३]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३६७ उत् ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः । नुदस्व याः परिस्पृधः ॥ १ ॥
३६८ अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते । स्तवा अबिभ्युषा हृदा ॥ २ ॥
३६९ अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या । रुज यस्त्वा पृतन्यति ॥ ३ ॥
३७० तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ ४ ॥

[५४]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री)

३७१ अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः । पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १ ॥

---

[५३]

अर्थ— [३६७] हे (अद्रिवः) सोम ! (ते शुष्मासः) तेरे वेग (रक्षः भिन्दन्तः) राक्षसोंका नाश करके (उत् अस्थुः) ऊपर ही विजयी होकर रहते हैं। (याः स्पृधः) जो शत्रुकी सेनाएं हमें दुःख देती हैं उन शत्रुओंको (नुदस्व) प्रतिबंध कर ॥ १ ॥

१ ते शुष्मासः रक्षः भिन्दन्तः उत् अस्थुः— तेरे सैनिकोंके वेग दुष्ट राक्षसोंका नाश करके सदा विजयी होकर ऊपर ही रहते हैं। शत्रुसे तेरे बल अधिक सामर्थ्यवान हैं अतः सदा विजयी हो कर रहते हैं।

२ याः स्पृधः नुदस्व— जो हमसे स्पर्धा करनेवाले हमारे शत्रु हैं, उनको दूर करके रखो। वे समीप न आ सके ऐसा करो।

[३६८] हे सोम ! तू (अया) इस कार्यसे (ओजसा) अपने बलसे (निजघ्निः) शत्रुओंका नाश करता है (रथसंगे धने हिते) रथोंके द्वारा युद्ध होनेपर हम (अबिभ्युषा हृदा) निर्भय हृदयसे (स्तवै) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

तू इस प्रकार अपने बलसे शत्रुका नाश करता है और निर्भय हृदयसे प्रभुकी स्तुति करते है।

[३६९] हे सोम ! (अस्य पवमानस्य व्रतानि) इस सोमके कर्म (दूढ्या) दुर्बुद्धिके राक्षसों द्वारा (नाधृषे) नष्ट करनेकी शक्यता नहीं है। (यः) जो दुष्ट राक्षस (त्वा पृतन्यति) तेरे ऊपर सेना भेजता है उसका (रुज) नष्ट कर ॥ ३ ॥

दुष्ट शत्रुओंके द्वारा इस सोमके कर्म नष्ट करना अशक्य है। जो शत्रु तुम्हारे ऊपर सेना भेजकर तुम्हारी हानि करना चाहता है उस शत्रुका नाश करो।

[३७०] (तं मदच्युतं) उस आनंद देनेवाले (हरिं) हरे रंगके (मत्सरं) संतोष देनेवाले (वाजिनं) बलवान (इन्दुं) तेजस्वी सोमको (नदीषु) नदीके जलोंमें (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (हिन्वन्ति) मिलाते हैं ॥ ४ ॥

यज्ञ करनेवाले याजक सोमरसको नदीके जलोंको यज्ञ स्थानमें लाकर उनमें मिलाते हैं, और वह जलोंसे मिश्रित सोम इन्द्रको समर्पण करके देते हैं।

[५४]

[३७१] (अह्रयः) याजक लोग (अस्य) इस सोमके (प्रत्नां द्युतं अनु) पुराने तेजस्वी शरीरके अनुकूल (शुक्रं दुदुह्रे) शुद्ध रसको निकालते हैं वह रस (सहस्रसां ऋषिं) हजारों प्रकारके धन देता है तथा जो द्रष्टा होता है ॥ १ ॥

याजक लोग इस सोमसे प्रथमसे चली आयी यज्ञकी रीतिसे अनुसार इस सोमका रस निकालते हैं। यह सोमका रस यज्ञमें सहस्रों प्रकार लाभ पहुंचाता है।

३७२ अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति । सप्त प्रवत आ दिवम् ॥ २ ॥
३७३ अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि । सोमो देवो न सूर्यः ॥ ३ ॥
३७४ परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः । पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ४ ॥

[५५]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३७५ यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव । सोम विश्वा च सौभगा ॥ १ ॥
३७६ इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः । नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥ २ ॥
३७७ उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ३ ॥

अर्थ— [३७२] (अयं) यह सोम (सूर्यः इव) सूर्यके समान (उपदृक्) सबको देखनेवाला है। (अयं) यह सोम (सरांसि) जल पात्रोंके प्रति (धावति) दौडता है और यह सोम (दिवं) द्युलोकमें देवोंके पास जानेके लिये (सप्त आ प्रवत) सात नदियोंके जलोंमें मिलकर रहता है ॥ २ ॥

यह सोम तेजसे चमकता है। यह जलोंमें मिलकर रहता है। यह सोम सात नदियोंके जलोंमें मिलकर देवोंके समीप जानेके लिये तैयार रहता है। नदियोंके जलके साथ मिलता है।

[३७३] (पुनानः) छाना जाकर (अयं सोमः) यह सोम (विश्वानि भुवना उपरि) सब भुवनोंके ऊपर (सूर्यः देवः न) सूर्य देवके समान (तिष्ठति) रहता है ॥ ३ ॥

यज्ञमें सोम सबसे अधिक माना गया है, अतः वह सब पदार्थोंमें मुख्य कहा है, जैसा सूर्य अपनी ग्रह मालामें मुख्य रहता है।

[३७४] हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्रयुः) इन्द्रके पास जानेकी इच्छा करनेवाला (पुनानः) शुद्ध होनेवाला तू (देववीतये) देवोंके समीप जानेके लिये (गोमतः वाजान्) गोदुग्ध युक्त सब अन्नोंको (परि अर्षसि) सब प्रकारसे देता है ॥ ४ ॥

सोमरस शुद्ध होकर इन्द्र तथा अन्य देवोंके समीप जानेके लिये गौके दूधके साथ मिले अन्नोंके साथ यज्ञमें रहता है।

[५५]

[३७५] हे (सोम) सोमरस ! तू (नः) हमारे लिये (पुष्टं पुष्टं) पुष्टि कारक (यवं यवं) रस युक्त खाद्य पदार्थ (अन्धसा) अन्नके रूपमें (परिस्रव) दे दो ; तथा (विश्वा च सौभगा) सब प्रकारके सौभाग्य भी दे दो ॥ १ ॥

हमें पोषण करनेवाला धान्य, तथा सब प्रकारका अन्न और सब प्रकारके सौभाग्य दे दो ॥

[३७६] हे (इन्दो) सोम ! (अन्धसः तव यथा स्तवः) अन्न रूप तेरा जैसा यह स्तोत्र है (यथा ते जातं) जैसा तेरा जन्म हुआ है, वैसा तू (बर्हिषि) इस यज्ञमें (प्रिये) प्रिय स्थानमें (निषदः) बैठ कर रहो ॥ २ ॥

यज्ञमें सोम महत्त्वपूर्ण स्थानमें रखा जाता है। वह अन्नके रूपसे यज्ञमें रहता है और यज्ञीय पदार्थोंमें मुख्य यज्ञीय पदार्थ होता है।

[३७७] (उत) और हे (सोम) सोम ! (नः गोविद्) हमें गौवें देनेवाला तथा (अश्ववित्) घोडे देनेवाला (मक्षूतमेभिः अहभिः) अति शीघ्रतासे आनेवाले दिनोंमें (अन्धसा पवस्व) अन्नके साथ तेरा रस निकाल कर दे दो ॥ ३ ॥

याजकोंके पास पर्याप्त गौवें हों और घोडे भी हों। तथा पर्याप्त अन्न भी उनके पास रहे। इनसे यज्ञमें सफलता होती है।

३७८ यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य । स पवस्व सहस्रजित् ॥ ४ ॥

[५६]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३७९ परि सोम ऋतं बृहदाशुः पवित्रे अर्षति । विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥ १ ॥
३८० यत् सोमो वाजमर्षति शतं धारा अपस्युवः । इन्द्रस्य सख्यमाविशन् ॥ २ ॥
३८१ अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत । मृज्यसे सोम सातये ॥ ३ ॥
३८२ त्वमिन्द्राय विष्णवे स्वादुरिन्दो परि स्रव । नॄन् त्स्तोतॄन् पाह्यंहसः ॥ ४ ॥

[५७]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३८३ प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः । अच्छा वाजं सहस्रिणम् ॥ १ ॥

अर्थ-- [३७८] हे (सहस्रजित्) सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाला सोम (यः) जो (जिनाति) शत्रुओंको मारता है, परंतु (न जीयते) शत्रुओंसे पराभूत नहीं होता। वह (अभीत्य) हमला करके (शत्रुं) शत्रुओंको (हन्ति) मारता है ॥ ४ ॥

१ सहस्रजित्— सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाला।

२ यः जिनाति, न जीयते— जो शत्रुओंका नाश करता है, पर जिसका नाश शत्रु नहीं कर सकते।

३ अभीत्य शत्रुं हन्ति— वह हमला करके शत्रुका नाश करता है।

[५६]

[३७९] (आशुः) कार्य शीघ्रतासे करनेवाला (देवयुः) देवोंके पास जानेवाला (सोमः) सोम (पवित्रे) छाननीमें रहकर (रक्षांसि निघ्नन्) राक्षसोंका नाश करता हुआ (बृहत् ऋतं) बडा अन्न हमें (परि अर्षति) देता है ॥ १ ॥

[३८०] (यत्) जिस समय (अपस्युवः) यज्ञकी इच्छा करनेवाली (शतं धाराः) सैंकडों सोमरसकी धाराएं (इन्द्रस्य सख्यं आविशन्) इन्द्रके साथ मित्रता करनेके लिये प्राप्त हुईं, तब यह (सोमः) सोम (वाजं अर्षति) अन्न देता रहा ॥ २ ॥

जब सोमरसकी अनेक धाराएं यज्ञमें शुद्ध हो चुकी, तब सोमसे यज्ञमें अन्न मिलना प्रारंभ हुआ। सोमकी धाराएं अन्नरस भी देती हैं। सोम अन्न रूप भी होता है।

[३८१] हे (सोम) सोम ! (त्वा) तुझे (दश योषणः) दस अंगुलियां (कन्या) पुत्रियां (जारं न) प्रिय पतिको बुलाती है वैसो (अभि अनूषत) बुलाती हैं। उन अंगुलियोंसे (सातये) रसके लाभके लिये (मृज्यसे) तू सोम शुद्ध किया जाता है ॥ ३ ॥

सोमको दोनों हाथोंकी मिलकर दस अंगुलिया दबाकर उससे रस निकालती हैं। मानो ये अंगुलियां पतिको ही पकडती है।

[३८२] हे (इन्दो) सोम ! (स्वादुः) तू मीठा रस (इन्द्राय विष्णवे) इन्द्रके लिये और विष्णुके लिये (परिस्रव) निकालो। (नॄन् स्तोतॄन्) स्तुति करनेवाले ऋत्विज जनोंको (अंहसः पाहि) पापसे बचाओ ॥ ४ ॥

[५७]

[३८३] हे सोम ! (ते असश्चतः धाराः) तेरी सतत गिरनेवाली धाराएं (सहस्रिणं वाजं अच्छ) सहस्र प्रकारका अन्न हमें देती हैं। (न) जिस प्रकार (दिवः वृष्टयः यन्ति) द्युलोकसे वृष्टियां गिरती हैं और अन्न देती हैं। ॥ १ ॥

३८४ अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति । हरिस्तुञ्जान आयुधा ॥ २ ॥
३८५ स मर्मृजान आयुभि-रिभो राजेव सुव्रतः । श्येनो न वंसु षीदति ॥ ३ ॥
३८६ स नो विश्वा दिवो वसू-तो पृथिव्या अधि । पुनान इन्दवा भर ॥ ४ ॥

[५८]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३८७ तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः । तरत् स मन्दी धावति ॥ १ ॥
३८८ उस्रा वेद वसूनां मर्तस्य देव्यवसः । तरत् स मन्दी धावति ॥ २ ॥
३८९ ध्वस्रयोः पुरुषन्त्यो-रा सहस्राणि दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ॥ ३ ॥
३९० आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे । तरत् स मन्दी धावति ॥ ४ ॥

अर्थ— [३८४] (हरिः) हरे रंगका यह सोम (विश्वा प्रियाणि काव्या) सब प्रिय कर्मोंको (चक्षाणः) देखनेवाला (आयुधा तुंजानः) अपने शस्त्रोंको शत्रुओंपर फेंकता हुआ (अभि अर्षति) आगे बढता है ॥ २ ॥

यह सोम सब प्रिय स्तोत्रोंको सुनता है, सब कर्मोंको देखता है, शस्त्रोंको शत्रुपर फेंकता है और आगे बढता है। वीर लोग सोमरस पीकर शत्रुसे उत्तम प्रकार लडते रहते हैं। सोमरस पीनेसे उत्साह बढता है।

[३८५] (सुव्रतः सः) उत्तम यज्ञकर्म करनेवाला वह सोम (आयुभिः मर्मृजानः) ऋत्विजोंसे शुद्ध होता हुआ (इभः) निर्भय (राजा इव) राजाके समान तथा (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान (वंसु सिदति) उदकोंमें जाकर बैठता है ॥ ३ ॥

सोम यज्ञकर्म करनेमें मुख्य पदार्थ है इसलिये वह उत्तम व्रत करता है। उत्तम व्रत यज्ञका व्रत ही है। वह सोमरस उदकमें मिलाया जाता है। और उससे यज्ञ किया जाता है।

[३८६] हे (इन्दो) सोम ! (सः पुनानः) वह सोम शुद्ध होता हुआ (दिवः अधि) द्युलोकमें तथा (पृथिव्याः अधि) पृथिवीपर रहे (विश्वा वसु) सब धन (नः आभर) हमें भरपूर प्रमाणमें देओ ॥ ४ ॥

[५८]

[३८७] (मन्दी) आनंद देनेवाला (सः) वह सोम (तरत्) तारण करनेवाला (धावति) पात्रोंमें जाता है, दौडकर शीघ्रतासे पात्रोंमें जाता है। (सुतस्य अन्धसः) रस निकाले अन्नरूप सोमकी (धारा) धाराएं दौडती हैं। (तरत् स मन्दी धावती) तारण करता हुआ वह आनंद देनेवाला सोम यज्ञके पात्रोंमें दौडता जाता है ॥ १ ॥

[३८८] (वसूनां उस्रा) धनोंको देनेवाली सोमवल्ली (देवी) दिव्य शक्तिवाली (मर्तस्य) मनुष्यका, यजमानका (अवसः वेद) संरक्षण करना जानती है (तरत् स मन्दी धावती) तारण करनेवाली वह सोमवल्ली आनंद देनेके लिये अपने पात्रमें दौडकर जाती है ॥ २ ॥

[३८९] (ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः) ध्वस्र और पुरुषन्ति नामक राजाओंके (सहस्राणि आदद्महे) सहस्रों प्रकारके धन हमने प्राप्त किये हैं। (तरत् स मन्दी धावती) उनका तारण करनेके लिये वह सोम आनंदसे दौडता है ॥ ३ ॥

[३९०] (ययोः) जिन ध्वस्र और पुरुषन्ती के (त्रिशतं सहस्राणि) तीनसौ सहस्र (तना) वस्त्र हमने (आ दद्महे) लिये हैं। (तरत् स मन्दी धावती) उसका तारण करनेवाला यह सोम आनंदसे दौडता है ॥ ४ ॥

×

[५९]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३९१ पवस्व गोजिदश्वजि-द्विश्वजित् सोम रण्यजित् । प्रजावद्रत्नमा भर ॥ १ ॥
३९२ पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः पवस्वौषधीभ्यः । पवस्व धिषणाभ्यः ॥ २ ॥
३९३ त्वं सोम पवमानो विश्वानि दुरिता तर । कविः सीद नि बर्हिषि ॥ ३ ॥
३९४ पवमान स्वर्विदो जायमानोऽभवो महान् । इन्दो विश्वाँ अभीदसि ॥ ४ ॥

[६०]

(ऋषिः- अवत्सारः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री, ३ पुरउष्णिक् ।)

३९५ प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् । इन्दुं सहस्रचक्षसम् ॥ १ ॥
३९६ तं त्वा सहस्रचक्षस-मथो सहस्रभर्णसम् । अति वारमपाविषुः ॥ २ ॥

---

[५९]

अर्थ—[३९१] हे (सोम) सोम! (गोजित्) शत्रुकी गौवोंको जीतकर उनको अपने अधिकारमें लानेवाले, (अश्वजित्) शत्रुके घोडोंको जीतनेवाले (विश्वजित्) शत्रुके सर्वस्वको जीतनेवाले (रण्यजित्) शत्रुके पासके रमणीय पदार्थोंको जीतनेवाले तू (पवस्व) रसकी धारा पात्रमें छोडो और (प्रजावत् रत्नं आभर) प्रजायुक्त धन हमें भरपूर देओ ॥ १ ॥

[३९२] (अद्भ्यः पवस्व) जलोंमें मिला देनेके लिये रस निकालो, (अदाभ्यः ओषधिभ्यः पवस्व) न दब जानेवाला तू औषधियोंके उन्नतिके लिये रस निकालो (धिषणाभ्यः पवस्व) यज्ञमें सोम कुटनेके पत्थरोंके हितार्थ अपना रस निकालो ॥ २ ॥

[३९३] हे (सोम) सोम ! तू (पवमानः) शुद्ध होनेवाला (विश्वानि दुरिता तर) सब राक्षसों द्वारा बनाये संकट दूर करो और (कविः) ज्ञानी होकर (बर्हिषि निषीद) अपने आसन पर बैठ ॥ ३ ॥

[३९४] हे (पवमान) सोम ! तू (स्वर्विदः) सब जाननेवाला है, अतः सब उत्तम फल यजमानके लिये दे। तथा तू (जायमानः) उत्पन्न होतेही (महान् अभवः) बडा हुआ है। हे (इन्दो) सोम! तू (विश्वान् इत्) सब शत्रुओंको (अभि असि) दूर कर ॥ ४ ॥

१ स्वः विदः— तू सब जाननेवाला है। जो सब जानता है वह सबसे बडा होता है।
२ जायमानः महान् अभवः— उत्पन्न होतेही बडा हुआ है। जन्मसे ही बडी शक्तिसे युक्त तू है।
३ विश्वान् इत् अभि असि— सब शत्रुओंको परास्त करके सब शत्रुओंको दूर करनेवाला तू है।

[६०]

[३९५] (विचर्षणिं) विशेष रीतिसे सबका निरीक्षण करनेवाले (सहस्र-चक्षसं) हजारों अवस्थाओंको देखनेवाले (पवमानं इन्दुं) छाने जानेवाले सोमको (गायत्रेण) गायत्री छंदके सामगानसे उसकी स्तुति स्तोत्रोंका (गायत) गायन करो ॥ १ ॥

सोमरस निकालनेके समय गायत्री छंदके स्तोत्रोंका सामगान करना चाहिये।

[३९६] हे सोम ! (सहस्र चक्षसं) हजारोंको देखनेवाले (अथो) और (सहस्र भर्णसं) हजारोंका भरण पोषण करनेवाले (तं त्वा) उस तुझे (वारं अति अपाविषुः) बालोंकी छाननीमेंसे छानते हैं ॥ २ ॥

सोमरसको भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छानकर ऋत्विज लोक शुद्ध करके लेते हैं।

३९७ अति वारान् पवमानो असिष्यदत् कलशाँ अभि धावति । इन्द्रस्य हार्द्याविशन् ॥ ३ ॥
३९८ इन्द्रस्य सोम राधसे शं पवस्व विचर्षणे । प्रजावद्रेत आ भर ॥ ४ ॥

[६१]

(ऋषिः- अमहीयुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

३९९ अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा । अवाहन् नवतीर्नव ॥ १ ॥
४०० पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् । अध त्यं तुर्वशं यदुम् ॥ २ ॥
४०१ परि णो अश्वमश्वविद् गोमदिन्दो हिरण्यवत् । क्षरा सहस्रिणीरिषः ॥ ३ ॥
४०२ पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [३९७] (पवमानः) शुद्ध होनेवाला सोम (वारान् अति असिष्यत्) बालोंकी छाननीसे छाना जाता है। तथा (इन्द्रस्य हार्दि आविशन्) इन्द्रके हृदयमें प्रवेश करता हुआ (कलशान् अभि धावति) कलशोंमें दौडकर पहुंचता है ॥ ३ ॥

सोमरस शुद्ध करनेके लिये भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है । और छाननेके पश्चात् इन्द्रके हृदयमें वह प्रवेश करनेके लिये कलशोंमें जाकर बैठता है ।

[३९८] हे (विचर्षणे) विशेष रीतिसे देखनेवाले सोम ! तू (इन्द्रस्य राधसे) इन्द्रके प्रेमके लिये (शं पवस्व) शान्ति देनेवाला रस देवो और हमें (प्रजावत् रेतः आ भर) संतान देनेवाला वीर्य भरपूर दओ ॥ ४ ॥

१ इन्द्रस्य राधसे शं पवस्व— इन्द्रका प्रेम प्राप्त होनेके लिये उत्तम रस दे ।

२ प्रजावत् रेतः आभर— प्रजा उत्पन्न कर सकनेवाला वीर्य हममें भरपूर बढाओ ।

[६१]

[३९९] हे (इन्दो) सोम ! (अया वीती) इस रसको इन्द्रके भक्षणके लिये (परी स्रव) निकालो । (ते) तेरा (यः) जो रस (मदेषु) संग्रामोंमें (नवतीः नव) निन्यानवे शत्रुके नगरोंको (जघान) विनष्ट करता है ॥ १ ॥

१ ते यः मदेषु नवतीः नव जघान— तेरा वह रस संग्रामोंमें शत्रुके निन्यानवे नगरोंको नष्ट करता है । रस पीकर जो उत्साह सैनिकोंमें बढता है, उससे शत्रुके अनेक किले परास्त किये जा सकते हैं । और उन किलों पर अपना स्वामित्व प्रस्थापित किया जा सकता है ।

[४००] (सद्यः) उसी समय (पुरः) शत्रुके नगरोंको तोडकर (इत्थाधिये दिवोदासाय) सत्यकर्म करनेवाले दिवोदासके हितार्थ (शंबरं तुर्वशं यदुं) शंबर, तुर्वश तथा यदुको जीतकर सोमने यश प्राप्त किया ॥ २ ॥

सैनिकोंने सोमरस पीकर उत्साह बढाया और दिवोदासके हितार्थ शंबर, तुर्वंश तथा यदुको जीतकर विजय प्राप्त किया और उनके नगर तोड दिये ।

[४०१] (नः) हमारे लिये, हे (इन्दो) सोम ! तू (अश्ववित्) अश्वविद्या जाननेवाला होकर (अश्वं) घोडे दे दो, तथा (गोमत्) गौवोंसे युक्त (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि धनसे युक्त (सहस्रिणीः इषः क्षर) सहस्रों प्रकारके अन्न युक्त धन प्रदान करो ॥ ३ ॥

हमारे लिये घोडे, गौवें तथा सुवर्ण आदि सहस्रों प्रकारका धन प्राप्त हो ऐसा करो ।

[४०२] हे सोम ! (ते पवमानस्य) तुम सोमकी (वयं) हम (पवित्रं अभ्युन्दतः) पवित्रीकरण करते हुए (सखित्वं आ वृणीमहे) मित्रता संपादन करना चाहते हैं ॥ ४ ॥

४०३ ये ते पवित्रमूर्मयो ऽभिक्षरन्ति धारया । तेभिर्नः सोम मृळय ॥ ५ ॥
४०४ स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् । ईशानः सोम विश्वतः ॥ ६ ॥
४०५ एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् । समादित्येभिरख्यत ॥ ७ ॥
४०६ समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ । सं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ८ ॥
४०७ स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् । चारुर्मित्रे वरुणे च ॥ ९ ॥
४०८ उच्चा ते जातमन्धसो दिवि षद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ॥ १० ॥
४०९ एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ॥ ११ ॥
४१० स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः । वरिवोवित् परि स्रव ॥ १२ ॥

अर्थ— [४०३] (ते ये ऊर्मयः) जो तेरे रस (धारया अभि क्षरन्ति) धारासे छाननीके नीचे उतरते हैं, हे (सोम) सोम ! (तेभिः नः मृळय) उनसे हमें सुखी कर ॥ ५ ॥

[४०४] हे (सोम) सोम ! (विश्वतः ईशानः) संपुर्ण जगत्का स्वामी (सः पुनानः) वह पवित्र होनेवाला सोम तू (नः) हमारे लिये (विरवतीं इषं) वीरपुत्र उत्पन्न करनेवाला अन्न तथा (रयिं) धन (आभर) भरपूर दे दो ॥ ६ ॥

[४०५] (सिन्धुमातरं त्यं) नदियां जिसकी माताएं हैं (एतं) इस सोमको (दशक्षिपः) दस अंगुलियां (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं वह सोम (आदित्येभिः सं अरव्यत) आदित्य प्रकाशसे मिलकर रहता है ॥ ७ ॥

नदीके पानीमें सोमरस मिलाया जाता है और वह शुद्ध करनेके बाद सूर्य प्रकाशमें रखा जाता है ।

[४०६] (सुतः) रस निकाला सोम (पवित्रे आ एति) छाननीके ऊपर जाता है वहां (इन्द्रेण वायुना) इन्द्र तथा वायुके द्वारा (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्यके किरणोंसे उस सोमका संबंध हो जाता है ॥ ८ ॥

[४०७] हे सोम ! (मधुमान् चारुः) मधुर और सुंदर (सः) वह रस (नः) हमारे यज्ञमें (भगाय वायवे) भग और वायुके लिये (पूष्णे) पूषाके लिये (मित्रे वरुणे च) मित्र और वरुणके लिये मिले ॥ ९ ॥

[४०८] हे सोम ! (ते अन्धसः) तेरे संबंधी रसका जन्म (उच्चा जातं) ऊंचे स्थानमें हुआ है । (दिवि-षद्) द्युलोकमें तू रहता है वह (भूमिः आददे) लेती है । वह (उग्रं शर्म) बडा सुखकारक और (महिश्रवः) महान अन्नरूप है ॥ १० ॥

सोमका जन्म ऊंचे पहाडके शिखरपर हुआ है । वहांसे वह सोम पृथिवी पर लाया जाता है । वह सोम बडा सुख देनेवाला अन्नरूप रहता है ।

[४०९] (एना) इस सोमसे (मानुषाणां विश्वा द्युम्नानि) मनुष्योंके सब अन्न इस (आ अर्यः) प्राप्त करते हैं, और उनका (वनामहे) उपभोग भी करते हैं ॥ ११ ॥

सोमसे अनेक अन्न तैयार किये जा सकते हैं, पकानेकी विद्यासे ये सोमके अनेक खाद्य पदार्थ तैयार हो सकते हैं ।

[४१०] हे सोम ! (वरिवोवित्) धनसे युक्त सोम (नः यज्यवे) हमारे यज्ञके योग्य (इन्द्राय वरुणाय मरुद्भ्यः) इन्द्र, वरुण तथा मरुतोंके लिये (परिस्रव) रस निकाल कर देओ ॥ १२ ॥

इस सोमका रस तैयार करेंगे और वह रस इन्द्र, वरुण तथा मरुतोंको अर्पण करेंगे । यज्ञमें यह समर्पण किया जाता है ।

४११ उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ १३ ॥
४१२ तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव । य इन्द्रस्य हृदंसनिः ॥ १४ ॥
४१३ अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ १५ ॥
४१४ पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् । ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥ १६ ॥
४१५ पवमानस्य ते रसो मदो राजन्नदुच्छुनः । वि वारमव्यमर्षति ॥ १७ ॥
४१६ पवमान रसस्तव दक्षो वि राजति द्युमान् । ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ १८ ॥

अर्थ— [४११] (सुजातं) उत्तम रीतिसे उत्पन्न हुए (अप्तुरं) जलमें मिश्रित होनेके लिये सिद्ध हुए (भङ्गं) शत्रुका नाश करनेवाले (गोभिः परिष्कृतं) गोदुग्धसे मिश्रित हुए (इन्दुं) सोमके पास (देवाः) सब देव (उप अयासिषुः) पहुंचे ॥ १३ ॥

सोमसे रस निकाला, उस रसमें जलका मिश्रण किया, गौका दूध उस रसमें मिलाया, ऐसे सोमका सेवन करनेके लिये यज्ञमें सब देव आकर पहुंचे हैं ॥

[४१२] (यः) जो सोम (इन्द्रस्य हृदंसनिः) इन्द्रके अतंःकरणमें रहता है, (तं इत्) उस सोमको ही (नः गिरः) हमारी स्तुतिरूप वाणियां (सं शिश्वरीः वत्सं इव) माता अपने बालकका सहाय्य करती है उसके समान स्तुति करके संवर्धन करें ॥ १४ ॥

[४१३] हे (सोम) सोम ! तू (नः गवे शं अर्ष) हमारी गौके लिये सुख दे दो । और (पिप्युषीं इषं धुक्षस्व) पोषक अन्न देओ । तथा (उक्थ्यं समुद्रं वर्ध) प्रशंसनीय जलको बढाओ ॥ १५ ॥

१ नः गवे शं अर्ष— हमारी गौवोंको सुख देओ ।

२ पिप्युषीं इषं धुक्षस्व — पोषण करनेवाला अन्न देवो ।

३ उक्थ्यं समुद्रं वर्ध — प्रशंसनीय जलको वृद्धिगत करो । उत्तम शुद्ध जल पर्याप्त प्रमाणमें लेना योग्य है ।

[४१४] (पवमानः) सोम (बृहत् वैश्वानरं ज्योतिः) बडी वैश्वानर अग्निकी ज्योति (तन्यतुं चित्रं न) विद्युतके समान विशेष शोभायमान (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥ १६ ॥

सोमरस चमकता है उसका तेज शोभायमान दीखता है । ज्योतीके समान वह सोम दीखता है । विद्युतके समान वह चमकता है ।

[४१५] हे (राजन्) सोम ! (पवमानस्य ते रसः) छाने जानेवाले तेरा रस (अदुच्छुनः) दुष्टता रहित तथा (मदः) आनंद बढानेवाला होकर (अव्यं वारं वि अर्षति) मेंढाके बालोंकी छाननीमेंसे नीचे उतरता हुआ छाना जाता है ॥ १७ ॥

सोमरस आनंद बढाता है, किसी प्रकार हानि नहीं करता । ऐसा यह रस मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[४१६] हे (पवमान) सोम ! (तव रसः) तेरा रस (दक्षः) बलवान होकर (द्युमान्) तेजस्वी तथा (विराजति) विशेष प्रकाशमान होता है (विश्वं ज्योतिः स्वर्दृशे) सर्व विश्वको प्रकाशमान करता है ॥ १८ ॥

१ ते रसः दक्षः द्युमान् विराजति— तेरा रस बलवर्धक तथा तेजस्वी होकर शोभता है ।

२ विश्वं ज्योतिः स्वर्दृशे— सब विश्वको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करता है ।

४१७ यस्ते मदो वरेण्य—स्तेना पवस्वान्धसा । देवावीरघशंसहा ॥ १९ ॥
४१८ जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे । गोषा उ अश्वसा असि ॥ २० ॥
४१९ संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ २१ ॥
४२० स पवस्व य आविथे—न्द्रं वृत्राय हन्तवे । वव्रिवांसं महीरपः ॥ २२ ॥
४२१ सुवीरासो वयं धना जयेम सोम मीढ्वः । पुनानो वर्ध नो गिरः ॥ २३ ॥
४२२ त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः । सोम व्रतेषु जागृहि ॥ २४ ॥

अर्थ— [४१७] हे सोम ! (यः ते मदः) जो तेरा आनंद देनेवाला (वरेण्यः) श्रेष्ठ (देवावीः) देवोंको प्रिय तथा (अघशंसहा) पापियोंका नाश करनेवाला रस है (तेन) उस रसके साथ (अन्धसा पवस्व) अन्नरूपमें प्राप्त होओ ॥ १९ ॥

सोमरस आनंद देनेवाला अतः देवोंको प्रिय है, पापका भाव नष्ट करता है और वह रस उत्तम अन्नके रूपमें प्राप्त होता है । सोमरस उत्तम अन्न है ।

[४१८] हे सोम ! तू (अमित्रिय मित्रं जघ्निः) शत्रुरूप अमित्रका नाश करता है । तथा (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वाजं सस्निः) युद्ध करता है तथा तू (गोषा) गौवें देनेवाला तथा (अश्वसा) घोडे देनेवाला (असि) हो ॥ २० ॥

१ अमित्रियं मित्रं जघ्नि— शत्रुरूप होकर भी मित्रके भावको बतानेवाले शत्रुका नाश करो ।

२ दिवे दिवे वाजं सस्निः— प्रतिदिन शत्रुसे युद्ध कर ।

३ गोषा अश्वसा असि— गौवें और घोडे हमें देनेवाला तू हो ।

[४१९] हे सोम ! तू (सु उपस्थाभिः धेनुभिः) सुखसे रहनेवाली गौओंके दूधके साथ मिश्रित होकर (अरुषः भव) तेजस्वी होता है जैसा (श्येनः न) श्येन पक्षी (योनिं आ सीदन्) अपने स्थानमें आकर बैठता है । वैसा सोम गौके दूधसे मिश्रित होकर यज्ञमें बैठा रहे, और तेजस्वी दीखे ॥ २१ ॥

[४२०] हे सोम ! (यः) जो तू (महीः अपः वव्रिवांसं) बडे जलप्रवाहोंको रोकनेवाले (वृत्राय हन्तवे) वृत्रका नाश करनेके लिये (इंद्रं आविथ) इन्द्रका संरक्षण करता है वह तू (पवस्व) रसके रूपमें यहां रहो ॥ २२ ॥

[४२१] (सुवीरासः) उत्तम वीर पुरुष होकर (वयं) हम (धना जयेम) शत्रुके धनोंको जीतेंगे । (मीढ्वः सोम) रस निकाले सोम ! (पुनानः) शुद्ध होकर (नः गिरः वर्ध) हमारी स्तुतियोंको बढाओ ॥ २३ ॥

१ सुवीरासः वयं धना जयेम— उत्तम वीर पुरुष बनकर हम शत्रुके धनोंको जीतकर उन धनोंको अपने आधीन करेंगे ।

२ नः गिरः वर्ध— हमारी स्तुतिके स्तोत्रोंको बढावो ।

[४२२] हे (सोम) सोम ! (तव अवसा) तेरे रक्षणसे (त्वोतासः) सुरक्षित बने हमे (वन्वन्तं) शत्रुके समान आचरण करनेवालोंको (आमुरः) नाश करनेवाले (स्याम) होंगे । हे (सोम) सोम ! तू (व्रतेषु जागृहि) अपने नियमोंमें जाग्रत रहो ॥ २४ ॥

१ व्रतेषु जागृहि— अपने सुनियमोंमें जाग्रत रहकर उन सुनियमोंका पालन करना योग्य है ।

२ वन्वन्तं आमुरः— शत्रुका नाश करना चाहिये ।

४२३ अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥ २५ ॥
४२४ महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः । रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥ २६ ॥
४२५ न त्वा शतं चन ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन् । यत् पुनानो मखस्यसे ॥ २७ ॥
४२६ पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने । विश्वा अप द्विषो जहि ॥ २८ ॥
४२७ अस्य ते सख्ये वयं तवेन्दो द्युम्न उत्तमे । सासह्याम पृतन्यतः ॥ २९ ॥

अर्थ— [४२३] (मृधः अपघ्नन्) शत्रुओंको मारकर, (अराव्णः अपघ्नन्) दान न देनेवाले शत्रुओंको मारकर (सोमः) सोमरस (इन्द्रस्य निष्कृतिं गच्छन्) इन्द्रके स्थानको जाता है ॥ २५ ॥

१ मृधः अपघ्नन्— शत्रुओंका नाश करना चाहिये ।

२ अराव्णः अपघ्नन्— दान न देनेवाले शत्रुओंका नाश करना चाहिये ।

३ इन्द्रस्य निष्कृतिं गच्छन्— इन्द्रके यज्ञीय स्थानके पास जाना चाहिये ।

[४२४] हे (पवमान) सोम (नः) हमारे लिये (महः रायः आभर) बहुत धन भरपूर दो, (मृधः जहि) हिंसक शत्रुओंको पराजित करो और हे (इन्दो) सोम ! तू हमें (वीरवत् यशः रास्व) वीर पुत्रवाला यश दे ॥ २६ ॥

१ नः महः रायः आभर— हमें बहुत धन दे ।

२ मृधः जहि— हिंसक शत्रुओंको पराजित करो ।

३ वीरवत् यशः रास्व— वीरपुत्र युक्त यश दो ।

[४२५] हे सोम ! (यत्) जब तू (पुनानः) शुद्ध होकर (मखस्यसे) यज्ञ करनेकी इच्छा करता है और (राधः दित्सन्तं) यज्ञ कर्ताओंको धन देनेकी इच्छा करता है, तब (शतं ह्रुतः) सेंकडो शत्रु भी (न आ मिनन्) तेरी हिंसा नहीं कर सकते । ॥ २७ ॥

१ पुनानः मखस्यसे, राधः दित्सन्तं शतं ह्रुतः न आ मिनन्— शुद्ध होकर यज्ञमें अपना समर्पण करता है और यज्ञके लिये धन देता है, उसको सेंकडो शत्रु भी विनष्ट नहीं कर सकते ।

[४२६] हे (इन्दो) सोम ! (वृषा सुतः) बलवान् रस निकाला तू (पवस्व) रस भरपूर रीतिसे दे । (जने) जनोंमें (नः यशसः कृधी) हमें यशस्वी कर । (विश्वाः द्विषः अपजहि) सब शत्रुओंको पराभूत कर ॥ २८ ॥

१ जनेनः यशसः कृधी— लोकोंमें हमें यशस्वी कर ।

२ विश्वाः द्विषः अपजहि— सब हमारे शत्रुओंको पराभूत कर ।

३ वृषा सुतः पवस्व— बलवर्धन करनेवाला तेरा रस हमें दे ।

[४२७] हे (इन्दो) सोम ! (अस्य ते सख्ये) इस तेरी मित्रतामें (वयं) हम (उत्तमे द्युम्ने) उत्तम अन्नमें तृप्त हुए (पृतन्यतः सासह्याम) सैन्य लेकर हमारे ऊपर आनेवाले शत्रुओंका हम पराभव कर सकेंगे ॥ २९ ॥

१ वयं पृतन्यतः सासह्याम— सैन्य लेकर हमारे उपर हमला करनेवाले शत्रुके आक्रमणका हम नाश करेंगे ।

२ अस्य ते सख्ये उत्तमे द्युम्ने पृतन्यतः सासह्याम— तेरी मित्रतामें और उत्तम तेजस्वितामें रहकर हम सैन्यसे हमपर हमला करनेवाले शत्रुका पराभव कर सकेंगे ।

४२८ या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे । रक्षा समस्य नो निदः ॥ ३० ॥

[६२]

(ऋषिः- जमदग्निर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

४२९ एते असृग्रमिन्दव—स्तिरः पवित्रमाशवः । विश्वान्यभि सौभगा ॥ १ ॥
४३० विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः । तना कृण्वन्तो अर्वते ॥ २ ॥
४३१ कृण्वन्तो वरिवो गवे ऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ३ ॥
४३२ असाव्यंशुर्मदाया—ऽप्सु दक्षो गिरिष्ठाः । श्येनो न योनिमासदत् ॥ ४ ॥

अर्थ— [४२८] (ते) तेरे (भीमानि आयुधा) भयंकर आयुध (धूर्वणे) शत्रुका वध करनेके लिये हैं वे आयुध (तिग्मानि सन्ति) अति तीक्ष्ण हैं, अतः उनसे (समस्य निदः नः रक्ष) सब हमारे शत्रुओंसे हमारी उत्तम सुरक्षा कर ॥ ३० ॥

वीरोंके पास उत्तम तीक्ष्ण आयुध रहे। वे आयुध शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हों। हमारे शत्रुका पराभव करके हमारी उत्तम रक्षा करनेमें वे आयुध समर्थ हों।

[६२]

[४२९] (आशवः) शीघ्रगामी (एते इन्दवः) ये सोमरस (पवित्रं) छाननीमेंसे (तिरः असृग्रं) नीचे उतर रहे हैं। (विश्वानि सौभगा अभि) सब प्रकारके सौभाग्य ये देते हैं ॥ १ ॥

सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है। यह सब प्रकारकी सुस्थिताएं देता है।

[४३०] बलवान सोम (पुरु दुरिता विघ्नन्तः) बहुत पापोंका नाश करते हैं, (तोकाय) हमारे पुत्रोंके लिये तथा (वाजिनः) घोडोंके लिये (सुगा) सुख तथा (तना) धन (कृण्वन्तः) करते हुए छाननीमेंसे जाते हैं ॥ २ ॥

१ वाजिनः पुरु दुरिता निघ्नन्तः— सोम पापोंको दूर करते हैं।

२ तोकाय वाजिनः सुगा तना कृण्वन्तः— पुत्रोंके लिये तथा घोडोंके लिये अथवा सामर्थ्यवालोंके लिये धन उत्तम रीतिसे प्राप्त हो ऐसा करते हैं।

[४३१] (गवे) गौओंके लिये और (अस्मभ्यं) हमारे लिये (संयतं वरिवः) आकर्षित करनेवाला धन और (इळां) अन्न (कृण्वन्तः) तैयार करके देनेवाले ये सोम (सुष्टुतिं अभ्यर्षन्ति) उत्तम स्तुतिको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

सोमसे गौवोंको तथा हमको धन और अन्न प्राप्त होता है, इसलिये इस सोमकी स्तुति की जाती है।

[४३२] (गिरिष्ठाः) पर्वत पर उत्पन्न हुए (अंशुः) सोमका (मदाय असावि) आनंद देनेके लिये रस निकाला है। (अप्सु दक्षः) जलोंमें वह मिश्रित किया है। वह सोम (श्येनः न) श्येन पक्षीके समान यज्ञमें (योनिं आसदत्) अपने स्थान पर बैठता है ॥ ४ ॥

सोम पर्वतके शिखरपर उत्पन्न होता है, उसका रस पीनेसे आनंद होता है। वह सोमरस जलमें मिश्रित किया जाता है, और उस सोमरसको यज्ञमें अपने स्थानमें रखा जाता है।

४३३ शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ५ ॥
४३४ आदीमश्वं न हेतारोऽशूशुभन्नमृताय । मध्वो रसं सधमादे ॥ ६ ॥
४३५ यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये । ताभिः पवित्रमासदः ॥ ७ ॥
४३६ सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो रोमाण्यव्यया । सीदन् योना वनेष्वा ॥ ८ ॥
४३७ त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद्घृतं पयः ॥ ९ ॥
४३८ अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति । हिन्वान आप्यं बृहत् ॥ १० ॥
४३९ एष वृषा वृषव्रतः पवमानो अशस्तिहा । करद्वसूनि दाशुषे ॥ ११ ॥

अर्थ— [४३३] (देववातं) देवोंको प्रिय यह सोमरस (शुभ्रं अन्धः) उत्तम स्वच्छ अन्न (गावः पयोभिः स्वदन्ति) गौवें अपने दूधसे स्वादु बनाती हैं। यह सोम (नृभिः सुतः) ऋत्विजोंके द्वारा रस निकाला (अप्सु धूतः) जलोंमें मिश्रित किया और शुद्ध किया है ॥ ५ ॥

१ देववातं शुभ्रं अन्धः— देवोंके लिये प्रिय ऐसा यह सोमरस तेजस्वी अन्न ही है।
२ गावः पयोभिः स्वदन्ति — गौवें अपने दूधसे उसको स्वादु बनाती हैं।
३ नृभिः सुतः अप्सु धूतः— याजकोंने यह रस निकाला और जलोंमें मिश्रित किया है।

[४३४] (आत्) पश्चात् (होतारः) याज्ञिक लोग (सधमादे) यज्ञमें (ईं) इस (मध्वः) मधुर सोमके रसको (अमृताय अश्वं न) अमर बननेके लिये जिस तरह घोडेको (अशूशुभन्) सुशोभित करते हैं वैसे दूध आदिके मिश्रणसे सोमको सुशोभित करते हैं ॥ ६ ॥

अश्वमेधमें घोडेको सुशोभित करते हैं, उस प्रकार सोमयागमें सोमरसको गोदुग्ध आदिके मिश्रणसे सुशोभित करते हैं।

[४३५] हे (इन्दो) सोम ! (ऊतये) संरक्षणके लिये (याः ते धाराः) जो तेरी रसकी धारायें (मधुश्च्युतः) मधु रसको स्रवनेवाला (ऊतये असृग्रन्) संरक्षणके लिये स्रवती हैं, उन धाराओंके साथ तू (पवित्रं आसदः) छाननीमें बैठ ॥ ७ ॥

यज्ञ सबके संरक्षणके लिये होता है। उस यज्ञमें सोमरसकी मधुर धारायें छाननीमेंसे छानी जाती हैं।

[४३६] (सः) वह सोम (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (अव्यया रोमाणि तिरः) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे (अर्ष) नीचे उतरता है और (वनेषु योना आसीदन्) यज्ञके पात्रोंमें बैठता है ॥ ८ ॥

यज्ञमें सोमरस इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है। वह रस मेंढीके बालोंकी छाननीसे छाना जाता है और छाना जानेपर वह यज्ञ पात्रोंमें रखा जाता है।

[४३७] हे (इन्दो) सोम ! (त्वं) तू (अंगिरोभ्यः) अंगिरोंके लिये (स्वादिष्ठः) मधुर लगनेवाला (वरिवो वित् घृतं पयः) अन्नके साथ घी और दूध (परिस्रव) दे दो ॥ ९ ॥

[४३८] (अयं) यह सोम (विचर्षणिः) विशेष दृष्टि देनेवाला (पवमानः) छाना जानेवाला (आप्यं बृहत् हिन्वानः) जलसे उत्पन्न होनेवाला बहुत अन्न देनेवाला (हितः) यज्ञ स्थानमें रखा है ॥ १० ॥

[४३९] (एषः वृषा) यह इच्छा पूर्ण करनेवाला (वृषव्रतः) बलवर्धक कार्य करनेवाला (अशस्ति- हा) दुष्टोंका नाश करनेवाला (पवमानः) सोम (वसूनि दाशुषे करत्) धनोंको दाताके लिये दिया करता है ॥ ११ ॥

१ दाशुषे वसूनि पवमानः करत्— दाताके लिये धन यह सोम देता है।
२ एष वृषा अशस्तिहा— यह बलवान सोम दुष्टोंका नाश करता है।

४४० आ पंवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ १२ ॥
४४१ एष स्य परि षिच्यते मर्मृज्यमान आयुभिः । उरुगायः कविक्रतुः ॥ १३ ॥
४४२ सहस्रोतिः शतामघो विमानो रजसः कविः । इन्द्राय पवते मदः ॥ १४ ॥
४४३ गिरा जात इह स्तुत इन्दुरिन्द्राय धीयते । विर्योना वसताविव ॥ १५ ॥
४४४ पवमानः सुतो नृभिः सोमो वाजमिवासरत् । चमूषु शक्मनासदम् ॥ १६ ॥
४४५ तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे । ऋषीणां सप्त धीतिभिः ॥ १७ ॥
४४६ तं सोतारो धनस्पृतमाशुं वाजाय यातवे । हरिं हिनोत वाजिनम् ॥ १८ ॥

अर्थ— [४४०] (गोमन्तं) गौओंसे युक्त (अश्विनं) घोडोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रं) तेजस्वी (पुरुस्पृहं) अनेकोंके लिये अभीप्सित (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों प्रकारका धन (आ पवस्व) हमें दे दो ॥ १२ ॥

[४४१] (उरुगायः) जिसकी बहुत स्तुति होती है, (कविक्रतुः) जो ज्ञान पूर्वक कर्म करता है, (आयुभिः मर्मृज्यमानः) याजकों द्वारा शुद्ध होनेवाला (एषः स्यः) यह वह सोम (परिषिच्यते) रस निकाला जाता है ॥ १३ ॥

यज्ञमें यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमका रस निकालनेके समय उसकी स्तुति करते हैं और उसका रस निकालते हैं ।

[४४२] (सहस्रोतिः) सहस्रों प्रकारोंसे रक्षण करनेवाला (शतामघः) सैंकडो प्रकारोंके धन देनेवाला (रजसः विमानः) रजो लोकको निर्माण करनेवाला (कविः) ज्ञानी (मदः) आनंद बढानेवाला सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रको देनेके लिये शुद्ध किया जाता है ॥ १४ ॥

[४४३] (जातः इन्दुः) रस निकाला सोम (गिरा स्तुतः) हमारी वाणीसे स्तुति किया गया (इह) इस यज्ञमें (इन्द्राय धीयते) इन्द्रके लिये रखा रहता है (विः) पक्षी जैसा (योना वसतौ इव) अपने घरमें रहता है ॥ १५ ॥

यज्ञमें ऋत्विज लोक सोमकी तथा इन्द्रकी स्तुति गाते हैं और सोमसे रस निकालकर वह रस इन्द्रको देनेके लिये रखते हैं ।

[४४४] (पवमानः नृभिः सुतः सोमः) शुद्ध किया गया याजकोंके द्वारा रस निकाला सोम (वाजं इव) वीर युद्धमें जाते हैं वैसा (चमूषु शक्मना आसदम्) पात्रोंमें अपने सामर्थ्यसे जाता है ।

याजक सोमका रस निकालते हैं और उस रसको शुद्ध करके यज्ञके पात्रोंमें रखते हैं ।

[४४५] (त्री-पृष्ठे) तीन सवनोंके (त्रि वन्धुरे) तीन वेदोंके (ऋषीणां रथे) ऋषियोंके यज्ञरूपी रथमें (सप्त धीतिभिः) सात छंदोंके द्वारा (यातवे) देवोंके पास जानेके लिये ऋषि इसकी योजना करते हैं ॥ १७ ॥

सोमरसको यज्ञके रथमें बिठलाते हैं और उसको इन्द्रादि देवोंके समीप पहुंचाते हैं । उस समय सात छंदोंके मंत्र बोले जाते हैं ।

तीन यज्ञके सवन होते हैं, प्रातः सवन, माध्यंदिन सवन और सायं सवन । इन तीन सवनोंमें तीन स्वरोंमें वेदमंत्र बोले जाते हैं ।

[४४६] (सोतारः) सोमसे रस निकालनेवाले ऋत्विज (वाजाय यातवे) युद्धमें जानेके लिये वीर (तं आशुं धनस्पृतं हरिं) उस त्वरासे युद्धमें जानेके लिये सिद्ध हुए घोडेको जैसे युद्धमें भेजते हैं उस प्रकार (वाजिनं हरिं हिनोत) बलवान् हरे रंगके सोमको यज्ञमें प्रेरित करें ॥ १८ ॥

सोमसे रस निकालकर उस रसको देवोंको देनेके लिये यज्ञमें समर्पित करे ।

४४७ आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः । शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ १९ ॥
४४८ आ त इन्दो मदाय कं पयो दुहन्त्यायवः । देवा देवेभ्यो मधु ॥ २० ॥
४४९ आ नः सोमं पवित्र आ सृजता मधुमत्तमम् । देवेभ्यो देवश्रुत्तमम् ॥ २१ ॥
४५० एते सोमा असृक्षत गृणानाः श्रवसे महे । मदिन्तमस्य धारया ॥ २२ ॥
४५१ अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥ २३ ॥
४५२ उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥ २४ ॥
४५३ पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः । अभि विश्वानि काव्या ॥ २५ ॥

अर्थ—[४४७] (सुतः) रस निकाला सोम (कलशं आविशन् तिष्ठति) कलशमें आकर रहता है और (विश्वाः श्रियः) सब शोभाएं देता हुआ (गोषु शूरः न तिष्ठति) गौवोंमें जैसा शूर रहता है वैसा सोम यज्ञोंमें रहता है ॥ १९ ॥

१ सोमः विश्वा श्रियः— सोम सब शोभाएं देता है । सब प्रकारकी शोभाएं बढानी योग्य हैं । पर शोभाएं बढानेके कार्यमें अपना कर्तव्य भूलना नहीं चाहिये ।

२ गोषु शूरः तिष्ठति— गौओंका रक्षण शूर पुरुष करता है । शूर पुरुष गौओंमें रहे और उनका संरक्षण करे ।

[४४८] हे (इन्दो) सोम ! (देवाः) सब देव तथा (आयवः) सब ऋत्विज लोग (देवेभ्यः) देवोंको (मदाय) आनंद देनेके लिये (मधु पयः) मधुर दुग्धमिश्रित रस (दुहन्ति) निकालते हैं ॥ २० ॥

यज्ञमें देवोंको देनेके लिये सब देव तथा सब ऋत्विज लोग मिलकर सोमका रस निकालते हैं, और वह रस यज्ञमें देवोंको दिया जाता है । उस रसको पीकर सब आनंदित होते हैं ।

[४४९] हे ऋत्विजो ! (देवेभ्यः देवश्रुत्तमं) देवोंके लिये अत्यंत प्रिय (मधुमत्तमं) अतिमधुर (नः सोमं) हमारे सोमको (पवित्रे) छाननीमें (आ सृजत) रखो ॥ २१ ॥

[४५०] (गृणानाः) स्तुती किये गये (एते सोमाः) ये सोमरस (महे श्रवसे) बडे अन्नके प्राप्तिके लिये (मदिन्तमस्य धारया) आनंद बढानेवाले रसकी धारासे (असृक्षत) उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥

सोम उत्तम अन्न है और वह बडा आनंद देनेवाला है । यह सोमरूपी अन्न धारासे यज्ञके पात्रोंमें छाननीमेंसे उतरता है ।

[४५१] हे सोम ! (पुनानः) पवित्र होता हुआ (वीतये) भक्षण करनेके समय (गव्यानि नृम्णा) गौओंसे मिलनेवाले दूध आदि पदार्थोंके साथ (अभि अर्षसि) मिलता है, ऐसा तू (सनद्वाजः) अन्न देता हुआ (परि-स्रव) छाना जा ॥ २३ ॥

सोमरस पीनेके लिये उसमें गौका दूध मिलाया जाता है और वह उत्तम रीतिसे छाननेके पश्चात् पीया जाता है ।

[४५२] (जमदग्निना गृणानः) जमदग्नि ऋषिके द्वारा (परिष्टुभः) स्तुति किया गया तू (उत नः गोमतीः विश्वाः इषः) हमारे गोदुग्ध मिश्रित सब अन्नोंको (अर्ष) प्राप्त हो ॥ २४ ॥

जमदग्नि ऋषि सोमकी स्तुति करते हैं । गोदुग्ध मिश्रित अनेक प्रकारके अन्नोंके साथ सोमरस तैयार होता है । पश्चात् वह रस और अन्न देवोंको यज्ञमें दिया जाता है ।

[४५३] हे (सोम) सोम ! (अग्रियः) तू मुख्य है, (चित्राभिः ऊतिभिः) शक्ति युक्त संरक्षणोंके तथा (वाचः पवस्व) हमारी स्तुतिरूप वाणियोंके साथ यज्ञमें छाना जा और (विश्वानि काव्या अभि पवस्व) सब प्रकारकी स्तुतिरूपी काव्योंको प्राप्त हो ॥ २५ ॥

४५४ त्वं संमुद्रियां अपो ऽग्रियो वाचं ईरयंन् । पवंस्व विश्वमेजय ॥ २६ ॥
४५५ तुभ्येमा भुवंना कवे महिम्ने सोंम तस्थिरे । तुभ्यंमर्षन्ति सिन्धंवः ॥ २७ ॥
४५६ प्र ते दिवो न वृष्टयो धारां यन्त्यसुश्चतः । अभि शुक्रामुंपस्तिरंम् ॥ २८ ॥
४५७ इन्द्रायेन्दुं पुनीतनो॒ग्रं दक्षांय साधंनम् । ईशानं वीतिराधसम् ॥ २९ ॥
४५८ पवंमान ऋतः कविः सोमंः पवित्रमासंदत् । दधंत् स्तोत्रे सुवीर्यंम् ॥ ३० ॥

[६३]

(ऋषिः- निध्रुविः काश्यपः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

४५९ आ पवंस्व सहस्रिणं रयिं सोंम सुवीर्यंम् । अस्मे श्रवांसि धारय ॥ १ ॥

अर्थ— [४५४] हे (विश्वमेजय) विश्वमें प्रेरणा करनेवाले सोम ! (अग्रियः) मुख्य तू है, (वाचः ईरयन्) वाणीको प्रेरित करता हुआ (समुद्रिया अपः) अन्तरिक्षके जलोंको चलानेकी प्रेरणा कर और (पवस्व) रस उत्पन्न कर ॥ २६ ॥

सोम स्तुति करनेवाले याजकोंको स्तुति करनेकी प्रेरणा देता है, और जलोंको अपने अन्दर लाकर अपनेमें मिश्रित होनेकी प्रेरणा देता है ।

[४५५] हे (कवे सोम) काव्यकी प्रेरणा देनेवाले सोम ! (तुभ्यं) तेरे (महिम्ने) महिमाके लिये ही (इमा भुवना) ये सब भुवन (तस्थिरे) सुस्थिर होकर रहे हैं। तथा (सिन्धवः) नदीयां (तुभ्यं अर्षन्ति) तुम्हारे लिये ही चल रही हैं ॥ २७ ॥

सोमकी इतनी महत्ती है कि ये सब भुवन सोमके लिये स्थिर रहे हैं और नदियां उस सोमरसमें अपना जल मिलानेके लिये ही चल रही हैं । सोमरसमें नदियोंका जल मिलाया जाता है और सोमयज्ञसे ही यह विश्व सुरक्षित रहा है ।

[४५६] हे सोम ! (दिवः वृष्टयः न) द्युलोकसे वृष्टि होनेके समान (ते) तेरी (असश्चतः धाराः) चलनेवाली रसकी धाराएं (शुक्रां उपस्तिरं अभि) शुद्ध छाननीके पाससे चल रही हैं ॥ २८ ॥

[४५७] हे ऋत्विजो ! (उग्रं) विशेष प्रभावी (दक्षाय साधनं) बलका साधन (ईशानं) धनोंके स्वामी ऐसे (वीतिराधसं) धन देनेवाले (इन्दुं) सोमको (इन्द्राय पुनीतन) इन्द्रके लिये रस निकालो ॥ २९ ॥

सोम बल बढानेका मुख्य साधन है । वह सोम याजकोंके लिये धन देता है । उस सोमका रस इन्द्रको देनेके लिये निकालो ।

[४५८] (ऋतः कविः) सत्यदर्शी कवि (पवमानः सोमः) रस निकाला सोम (स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्) स्तोताके लिये उत्तम बल देता हुआ (पवित्रं आसदत्) छाननीपर आता है ॥ ३० ॥

[६३]

[४५९] हे (सोम) सोम ! तू (सुवीर्यं सहस्रिणं रयिं) उत्तम वीर्ययुक्त सहस्र प्रकारका धन (आ पवस्व) हमारे लिये दे, तथा (अस्मे) हमारे लिये (श्रवांसि धारय) अन्नोंको देओ ॥ १ ॥

१ सुवीर्यं सहस्रिणं रयिं आ पवस्व— उत्तम पराक्रम करनेवाला सहस्रों प्रकारका धन हमें दे ।

२ अस्मे श्रवांसि धारय— हमारे लिये अनेक प्रकारके अन्न दे ।

४६० इषमूर्जं च पिन्वस इन्द्राय मत्सरिन्तमः	चमूष्वा नि षीदसि	॥ २ ॥
४६१ सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे अक्षरत्	मधुमाँ अस्तु वायवे	॥ ३ ॥
४६२ एते असृग्रमाशवो ऽति ह्वरांसि बभ्रवः	सोमा ऋतस्य धारया	॥ ४ ॥
४६३ इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्	अपघ्नन्तो अराव्णः	॥ ५ ॥
४६४ सुता अनु स्वमा रजो ऽभ्यर्षन्ति बभ्रवः	इन्द्रं गच्छन्त इन्दवः	॥ ६ ॥
४६५ अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः	हिन्वानो मानुषीरपः	॥ ७ ॥
४६६ अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि	अन्तरिक्षेण यातवे	॥ ८ ॥

अर्थ— [४६०] हे सोम ! (मत्सरिन्तमः) अत्यंत आनंद देनेवाला तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (इषं ऊर्जं च) अन्न और रस (पिन्वसे) निकालो । तू (चमूषु आ सीदसि) यज्ञ पात्रोंमें बैठता है ॥ २ ॥

१ सोमः मत्सरिन्तमः— सोमरस अत्यंत आनंद देनेवाला है ।

२ इन्द्राय इषं ऊर्जं पिन्वसे— इन्द्रके लिये अन्न तथा रस तू देता है ।

[४६१] (इन्द्राय विष्णवे वायवे) इन्द्र, विष्णु और वायुके लिये (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (कलशे अक्षरत) कलशमें जाता है । वह सोमरस (मधुमान् अस्तु) मीठा होकर रहे ॥ ३ ॥

[४६२] (बभ्रवः एते आशवः सोमाः) भूरे रंगके ये शीघ्रगामी सोमरस (ऋतस्य धारया असृग्रं) जलकी धाराके साथ उत्पन्न किये जाते है ।

जलमें सोमरस मिलाया जाता है । पश्चात् उसका यज्ञ किया जाता है ।

[४६३] (इन्द्रं वर्धन्तः) इन्द्रका सन्मान बढानेवाले (अप्तुरः) उदकके साथ जानेवाले (विश्वं आर्यं कृण्वन्तः) विश्वको आर्य बनानेवाले (अराव्णः अपघ्नन्तः) दान न देनेवालोंको मारनेवाले ये सोम हैं ॥ ५ ॥

१ इन्द्रं वर्धन्तः— इन्द्रका सन्मान बढानेवाले सोम हैं ।

२ अप्तुरः— जलके साथ मिश्रित ये सोमरस होते हैं ।

३ विश्वं आर्यं कृण्वन्तः— संपूर्ण विश्वको आर्यधर्ममें लेनेवाले ये हैं ।

४ अराव्णः अपघ्नन्तः— दान न देनेवाले दुष्टोंका नाश ये करते हैं ।

[४६४] (बभ्रवः) भूरे रंगके (सुताः इन्दवः) रस निकाले सोम (इन्द्रं आ गच्छन्तः) इन्द्रके समीप जाते हैं उस समय वे (स्वं रजः अनु अभ्यर्षन्ति) अपने स्थानको प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रके पास जानेके लिये सोमरस तैयार रहते हैं, उस समय वे अपने स्थानमें प्रथम जाते हैं और पश्चात् इन्द्रके पास जाते हैं ।

[४६५] हे सोम (मानुषीः अपः हिन्वानः) मनुष्योंके लिये हितकारी जलोंको प्रेरणा करनेवाला (यया धारया सूर्यं अरोचयः) जिस धारासे तूने सूर्यको प्रकाशित किया (अया पवस्व) उस धारासे यहां रस निकालो ॥ ७ ॥

[४६६] (पवमानः) सोमरस (अन्तरिक्षेण यातवे) अन्तरिक्षमेंसे जानेके लिये (मनौ अधि) मनुष्यमें (सूरः एतशं अयुक्त) सूर्यके घोडेके साथ मिलता है ॥ ८ ॥

सूर्यके किरणोंसे सोमरस अन्तरिक्षमें गमन करता है । सूर्यके किरण उस सोमरसको लेकर अन्तरिक्षमें जाते हैं । सूर्य किरणोंके द्वारा सोमरस अन्तरिक्षमें जाते हैं ।

४६७ उत त्या हरितो दश सूरो अयुक्त यातवे । इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ॥ ९ ॥
४६८ परीतो वायवे सुतं गिर इन्द्राय मत्सरम् । अव्यो वारेषु सिञ्चत ॥ १० ॥
४६९ पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् । यो दूणाशो वनुष्यता ॥ ११ ॥
४७० अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । अभि वाजमुत श्रवः ॥ १२ ॥
४७१ सोमो देवो न सूर्यो ऽद्रिभिः पवते सुतः । दधानः कलशे रसम् ॥ १३ ॥
४७२ एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ १४ ॥
४७३ सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः । पवित्रमत्यक्षरन् ॥ १५ ॥
४७४ प्र सोम मधुमत्तमो राये अर्ष पवित्र आ । मदो यो देववीतमः ॥ १६ ॥
४७५ तमीं मृजन्त्यायवो हरिं नदीषु वाजिनम् । इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ॥ १७ ॥

अर्थ—[४६७] (उत) और (इन्दुः) सोम (इन्द्रः इति ब्रुवन्) इन्द्र ऐसा बोलता हुआ (सूरः) सूर्यके (यातवे) जानेके लिये (त्या दश हरितः) उन दस घोडोंको जोडता है ॥ ९ ॥

[४६८] हे (गिरः) स्तुति करनेवाले ऋत्विजो ! तुम (वायवे) वायुके लिये और (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (सुतं मत्सरं) रस निकाले आनंददायक सोमरसको (अव्यः वारेषु) भेडीके बालोंकी छाननीयोंमें (इतः परि सिंचत) छानो ॥ १० ॥

[४६९] (पवमान सोम) हे शुद्ध होनेवाला सोमरस ! (यः वनुष्यता दूणाशः) शत्रुसे नष्ट न होनेवाला धन है उस (दुष्टरं रयिं) विनष्ट न होनेवाले धनको (अस्मभ्यं विदा) हमें देओ ॥ ११ ॥

हमें ऐसा धन मिले जो शत्रुसे विनष्ट न हो सके ।

[४७०] हे सोम ! (गोमन्तं अश्विनं) गौवोंसे युक्त तथा घोडोंसे युक्त (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों प्रकारका धन (अभ्यर्ष) हमें दे और (वाजं उत श्रवः अभि अर्ष) बल और अन्न हमें दो ॥ १२ ॥

[४७१] (देवः न) देवके समान (सूर्यः) तेजस्वी (सोमः) सोम (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला रस (कलशे रसं दधानः) कलशमें रसको रखता है ॥ १३ ॥

[४७२] (एते) ये (आर्याः शुक्राः) श्रेष्ठ और स्वच्छ सोमरस (ऋतस्य धारया) जलकी धाराके साथ (धामानि) याजकोंके गृहोंमें (गोमन्तं वाजं) गौके दूधके साथ अन्न (अक्षरन्) देते हैं ॥ १४ ॥

इन सोमके रसोंमें जल मिलाया जाता है तथा गौका दूध भी उस सोमरसमें मिलाया जाता है । पश्चात् उस सोमरसका उपयोग यज्ञमें किया जाता है ।

[४७३] (सोमासः सुताः) सोमका रस निकाला (दध्याशिरः) दहींके साथ उसका मिश्रण किया (इन्द्राय वज्रिणे) वज्रधारी इन्द्रके लिये देनेके कारण (पवित्रं अक्षरन्) छाननीमेंसे छाने जाने लगा ॥ १५ ॥

सोमका रस निकालते हैं, उसका दहीके साथ मिश्रण किया जाता है और इन्द्रको देनेके पूर्व वह छाननीसे छाना जाता है । छानकर उस रसको पात्रमें रख देते हैं और पश्चात् इन्द्रको अर्पण किया जाता है ।

[४७४] हे (सोम) सोम ! तेरा (यः मदः देववीतमः) जो आनंद देनेवाला तथा देवोंके लिये अति प्रिय रस है (राये) ऐश्वर्य बढानेके लिये वह रस (पवित्रे आ अर्ष) छाननीमेंसे छाना जाय ॥ १६ ॥

[४७५] (तं हरिं इन्दुं) उस हरे वर्णके (इन्द्राय मत्सरं) इन्द्रको आनंद देनेवाला (आयवः) ऋत्विज लोग (वाजिनं नदीषु) बल बढानेवाले सोमको नदीके जलमें (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

सोमका इन्द्रको देनेके लिये रस निकाला जाता है, उस रसमें जल मिलाकर उस रसको छाननीमेंसे छानते हैं और वह रस इन्द्रको यज्ञ करनेवाले ऋत्विज देते हैं ।

४७६ आ पवस्व हिरण्यव॒दश्वा॑वत् सोम वी॒रव॑त् । वाजं॒ गोम॑न्तमा भ॑र ॥ १८ ॥
४७७ परि॒ वाजे॒ न वा॑ज॒युमव्यो॒ वारे॑षु सिञ्चत । इन्द्रा॑य॒ मधु॑मत्तमम् ॥ १९ ॥
४७८ क॒विं मृ॑जन्ति॒ मर्ज्यं॒ धीभि॒र्विप्रा॑ अव॒स्यवः॑ । वृषा॒ कनि॑क्रदर्षति ॥ २० ॥
४७९ वृष॑णं धी॒भिर॒प्तुरं॒ सोम॑मृ॒तस्य॒ धार॑या । म॒ती विप्राः॒ सम॑स्वरन् ॥ २१ ॥
४८० पव॑स्व देवायु॒षगिन्द्रं॑ गच्छतु॒ ते॒ मदः॑ । वा॒युमा रो॑ह॒ धर्म॑णा ॥ २२ ॥
४८१ पव॑मान॒ नि तो॑शसे र॒यिं सो॑म श्र॒वाय्य॑म् । प्रि॒यः स॑मु॒द्रमा वि॑श ॥ २३ ॥
४८२ अ॒प॒घ्नन् प॑वसे॒ मृधः॑ क्रतु॒वित् सो॑म मत्स॒रः । नु॒दस्वादे॑वयुं॒ जन॑म् ॥ २४ ॥

अर्थ— [४७६] हे (सोम) तू हमारे लिये (हिरण्यवत्) सुवर्ण आदि धनसे युक्त (अश्वावत्) घोडोंसे युक्त (वीरवत्) वीरपुत्रोंसे युक्त धन (आ पवस्व) देवो तथा (गोमन्तं वाजं आभर) गौओंके दूधसे युक्त अन्न भरपूर दो ॥ १८ ॥

[४७७] (वाजे न वाजयुं) युद्धमें युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले वीरको जैसा भेजते हैं, उस प्रकार (अव्यः वारेषु) भेडोंके बालोंकी छाननीमें (इन्द्राय मधुमत्तमं) इन्द्रके लिये अति मधुर रसको (परि सिंचत) छाननेके लिये छोडो ॥ १९ ॥

१ वाजे वाजयुं न — युद्धमें युद्धकी इच्छा करनेवाले वीरको भेजते हैं उस प्रकार तुम इस रसको इन्द्रके लिये देवो ।

[४७८] (अवस्यवः विप्राः) अपना संरक्षण करनेकी इच्छा करनेवाले विद्वान् (धीभिः) अपनी अंगुलियोंसे (मर्ज्यं कविं मृजन्ति) शुद्ध होनेवाले ज्ञानवर्धन करनेवाले सोमको शुद्ध करते हैं, वह (वृषा) बलवर्धन करनेवाला सोम (कनिक्रदत् अर्षति) शब्द करता हुआ पात्रमें गिरता है ॥ २० ॥

[४७९] (वृषणं) बल बढानेवाले (अप्तुरं) जलके साथ मिलनेवाले (सोमं) सोमरसकी (ऋतस्य धारया) जलकी धाराके साथ (धीभिः) स्तोत्रोंके द्वारा (मती) अपनी बुद्धिके अनुसार (विप्राः समस्वरन्) ज्ञानी स्तुति गाते हैं ॥ २१ ॥

[४८०] हे (देव) देव सोम ! (पवस्व) तूं छाना जा (ते मदः) तेरा यह आनंद देनेवाला रस (इन्द्रं गच्छतु) इन्द्रके पास जावे । (धर्मणा वायुं आरोह) अपने कर्तव्यके साथ वायुपर चढ ॥ २२ ॥

१ ते मदः इन्द्रं गच्छतु— तेरा आनंद बढानेवाला रस इन्द्रके पास जावे ।

२ धर्मणा वायुं आरोह— अपनी शक्तिसे तू वायुमें चढो । सोम रस पीनेसे शक्ति बढती है और उस शक्तिके कारण वह मनुष्य ऊंचे स्थान पर अच्छी प्रकार चढ सकता है ।

[४८१] हे (पवमान सोम) रस निकाले सोम ! (श्रवाय्यं रयिं) वर्णनीय ऐसे शत्रुके धनको (नितोशसे) शत्रुसे निकाल कर देता है ऐसा तू (प्रियः) सबको प्रिय होकर (समुद्रं आ विश) जलमें मिलकर रह ॥ २३ ॥

१ श्रवाय्यं रयिं नितोशसे— प्रशंसनीय धन देता है ।

२ प्रियः समुद्रं आ विश— प्रिय होकर उत्तम जीवन चलाओ ।

४८३ पव॑माना असृक्षत सोमा॑ः शुक्रास इन्द॑वः । अभि विश्वा॑नि काव्या॑ ॥ २५ ॥
४८४ पव॑मानास आशव॑ः शुभ्रा असृग्रमिन्द॑वः । घ्नन्तो विश्वा अप द्विष॑ः ॥ २६ ॥
४८५ पव॑माना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत । पृथिव्या अधि सान॑वि ॥ २७ ॥
४८६ पुनानः सोम धारयेन्दो विश्वा अप स्रिध॑ः । जहि रक्षां॑सि सुक्रतो ॥ २८ ॥
४८७ अपघ्नन् त्सोम रक्षसोऽभ्य॑र्ष कनि॑क्रदत् । द्युमन्तं शुष्म॑मुत्तमम् ॥ २९ ॥
४८८ अस्मे वसू॑नि धारय सोम॑ दिव्यानि पार्थि॑वा । इन्दो विश्वा॑नि वार्या॑ ॥ ३० ॥

अर्थ— [४८२] हे (सोम) सोम ! (मत्सरः) आनंद बढानेवाला तू (मृधः अपघ्नन्) दुष्ट शत्रुओंका विनाश करता है और (क्रतुवित्) उत्तम कर्म करना जानता है (अदेवयुं जनं नुदस्व) राक्षस वर्गके लोगोंको दूर कर ॥ २४ ॥

१ मत्सरः मृधः अपघ्नन्— आनंद बढानेवाला वीर शत्रुओंको दूर करता है ।

२ क्रतुवित् अदेवयुं जनं नुदस्व— अच्छे कर्मोंको जाननेवाला तू राक्षसों जैसे जनोंको दूर करो।

[४८३] (पवमानाः) रस निकाले (शुक्रासः इन्दवः सोमाः) शुद्ध चमकनेवाले सोमरस (विश्वानि काव्या अभि असृक्षत) अनेक स्तोत्र निर्माण करता है ॥ २५ ॥

सोमपर अनेक स्तोत्र किये जाते हैं और वे गाये जाते हैं ।

[४८४] (पवमानासः) रस निकाले (आशवः शुभ्रा इन्दवः) शीघ्रगामी शुभ्र वर्णके सोमरस (विश्वाः द्विषः अपघ्नन्तः) सब शत्रुओंका नाश करते हुए (असृग्रं) उत्पन्न होते हैं ॥ २६ ॥

[४८५] (पवमानाः) रस निकाले सोम (दिवः परि) द्युलोकके उपरसे (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे (पृथिव्या सानवि अधि) तथा पृथिवी परके ऊंचे भागसे (असृक्षत) तैयार किये जाते हैं ॥ २७ ॥

द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवीके ऊंचे पर्वतके जैसे स्थानसे सोम लाया जाता है । सोम वनस्पति पर्वत जैसे ऊंचे स्थानमें उगती है, अतः यह सोम ऊंचे स्थानसेही लाया जाता है ।

[४८६] हे (इन्दो सुक्रतो सोम) तेजस्वी उत्तम यज्ञरूप कर्म करनेवाले सोम ! (विश्वाः स्रिधः अप-जहि) सब शत्रुओंको पराजित करके दूर कर (रक्षांसि अप जहि) राक्षसोंको दूर कर और (धारया पुनानः) धारासे छाननीमेंसे शुद्ध बनो ॥ २८ ॥

१ विश्वाः स्रिधः अप जहि— सब शत्रुओंको पराजित करके दूर कर।

२ रक्षांसि अप जहि— सब राक्षसोंको पराजित करके दूर कर ।

३ पुनानः— स्वयं शुद्ध रहो, शुद्ध होकर विराजो ।

[४८७] हे (सोम) सोम ! (राक्षसः अपघ्नन्) राक्षसोंका विनाश करके (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ तू (उत्तमं द्युमन्तं शुष्मं) उत्तम तेजस्वी बल (अभि अर्ष) हमें दे ॥ २९ ॥

१ रक्षसः अपघ्नन्— राक्षसोंका नाश कर ।

२ उत्तमं द्युमन्तं शुष्मं अभि अर्ष— उत्तम तेजस्वी बल हमें प्राप्त हो ऐसा कर ।

[४८८] हे सोम ! (दिव्यानि) द्युलोकमें उत्पन्न हुए तथा (पार्थिवा) पृथिवी पर उत्पन्न हुए (विश्वानि वार्या) सब स्वीकारने योग्य (वसूनि) धन (अस्मे धारय) हमें देओ ॥ ३० ॥

द्युलोकमें तथा पृथिवीपर जो जो अनेक प्रकारके धन हैं वे सब धन हमें प्राप्त हों ।

[६४]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

४८९ वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः । वृषा धर्माणि दधिषे ॥ १ ॥
४९० वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः । सत्यं वृषन् वृषेदसि ॥ २ ॥
४९१ अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ३ ॥
४९२ असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाशवः ॥ ४ ॥
४९३ शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः । पवन्ते वारे अव्यये ॥ ५ ॥
४९४ ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा । पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥ ६ ॥

[६४]

अर्थ— [४८९] हे (सोम) सोम ! तू (वृषा द्युमान्) बलवान तथा तेजस्वी (असि) हो । हे (देव) दिव्य सोम ! तू (वृषव्रतः) बल बढानेका व्रत चलानेवाला है । तू (वृषा) बलवान होकर (धर्माणि दधिषे) कर्तव्य कर्म करता है ॥ १ ॥

१ वृषा द्युमान्— बलवान तथा तेजस्वी होना चाहिये ।
२ वृषव्रतः— बल बढानेका व्रत करनेवाला है ।
३ वृषा धर्माणि दधिषे— बलवान होनेके कर्तव्य धारण करता है ।

[४९०] हे (वृषन्) बलको बढानेवाले सोम (ते वृष्णः) तुझ बलवानका (शवः वृष्ण्यं) सामर्थ्य बल बढानेवाला है । तेरा (वनं वृषा) रस बलवर्धक है (मदः वृषा) तेरेसे प्राप्त होनेवाला आनंद बल बढानेवाला है । यह (सत्यं) सत्य है कि तू (वृषा इत् असि) सच्चा सामर्थ्य बढानेवाला है ॥ २ ॥

बलका संवर्धन करना अत्यंत आवश्यक है । सोमरस पीनेसे यह बल प्राप्त होता है ।

[४९१] हे (इन्दो) सोम ! (वृषा) बलवान तू (अश्वः न) घोडेके समान (संचक्रदः) शब्द करता है । तथा तू (गाः) गौवें (अर्वतः) घोडे (सं) देता है । ऐसा तू (नः राये) हमारे धनके लिये (दुरः वि वृधि) द्वार खोल दो ॥ ३ ॥

१ नः राये दुरः वि वृधि — हमारे पास धन आ जावे इसके लिये दरवाजे खोलकर रखो, जिन द्वारोंसे धन हमारे समीप आ जाय ।
२ नः अर्वतः गाः सं— हमारे पास गौवें और घोडे आ जाय और हमारे पास रहें ।

[४९२] (वाजिनः) बलवान (शुक्रासः) उज्वल (आशवः) और वेगवान (सोमासः) सोमके रस (गव्या) गौकी इच्छासे (अश्वया) घोडेकी इच्छासे (वीरया) वीर पुत्रकी इच्छासे ऋत्विजोंके द्वारा (प्र असृक्षत) निकाले जाते हैं ॥ ४ ॥

[४९३] (ऋतायुभिः शुम्भमानाः) यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंने सुशोभित किये (गभस्त्योः मृज्यमानाः) दोनो हाथोंसे संशोधित किये सोमरस (अव्यये) भेडोंके बालोंकी (वारे पवन्ते) छाननोंमें छाने जाते हैं ॥ ५ ॥

[४९४] (ते सोमाः) वे सोमरस (दिव्यानि) द्युलोकमें उत्पन्न (अन्तरिक्ष्या) अन्तरिक्षमें उत्पन्न (पार्थिवा) पृथिवीपर उत्पन्न हुए (विश्वा वसु) सब प्रकारके धन (दाशुषे) यज्ञमें धनका दान करनेवाले यजमानके लिये (आ पवन्तां) प्रदान करें ॥ ६ ॥

×

४९५ पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत । सूर्यस्येव न रश्मयः ॥ ७ ॥
४९६ केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि । समुद्रः सोम पिन्वसे ॥ ८ ॥
४९७ हिन्वानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि । अक्रान् देवो न सूर्यः ॥ ९ ॥
४९८ इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती । सृजदश्वं रथीरिव ॥ १० ॥
४९९ ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ देवावीः पर्यक्षरत् । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ११ ॥
५०० स नो अर्ष पवित्र आ मदो यो देववीतमः । इन्दविन्द्राय पीतये ॥ १२ ॥
५०१ इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः । इन्दो रुचाभि गा इहि ॥ १३ ॥

अर्थ— [४९५] हे (विश्व वित्) सब विश्वको देखनेवाले सोम ! (पवमानस्य) छाननीमेंसे गिरनेवाले (ते सर्गाः) तेरे प्रवाह (सूर्यस्य रश्मयः न) सूर्यके किरणोंके समान (प्र असृक्षत) तेजस्वी दीख रहे हैं ॥ ७ ॥

सूर्यके किरण जैसे चमकते हैं वैसे सोमरसके धारा प्रवाह चमकते हुए नीचेके पात्रमें उतरते हैं ॥ ७ ॥

[४९६] हे (सोम) सोम ! (समुद्रः) समुद्रके समान रसमय तू (केतुं कृण्वन्) ज्ञान देनेवाला (विश्वा रूपाणि अभि अर्षसि) अनेक रूपोंको भी देता है और साथ साथ (पिन्वसे) अनेक धनोंको देता है ॥ ८ ॥

जो ज्ञान देता है वह ज्ञानके द्वारा अनेक प्रकारके धनोंको देता है। ज्ञान धन देनेवाला होता है।

[४९७] हे (पवमान) सोम ! (हिन्वानः) यज्ञमें प्रेरित होनेवाला तू (वाचं इष्यसि) स्तुति करनेकी प्रेरणा देता है (विधर्मणि) धारण करनेमें समर्थ छाननीमें जब जाता है जैसा (देवः सूर्यः न अक्रान्) जैसा सूर्य चलकर प्रेरणा देता है ॥ ९ ॥

जब छाननीमें सोम छाना जाता है तब वह सोम स्तुति करनेकी प्रेरणा यज्ञकर्ता ऋत्विजोंको देता है। सोमरस छाना जानेके समय ऋत्विज उसकी स्तुति करते हैं।

[४९८] (चेतनः) उत्साह देनेवाला (प्रियः इन्दुः) देवोंको प्रिय यह सोमरस (कवीनां मती) ज्ञानीयोंकी की हुई स्तुतिसे (पविष्ट) छाना जाता है (रथि अश्वं सृजत् इव) रथ चलानेवाला जैसा घोडेको चलानेको प्रेरणा देता है ॥ १० ॥

रथ चलानेवाला जैसा घोडेको चलाता है उस प्रकार यज्ञ करनेवाले याजक सोमको स्तुति करते हैं और सोम यज्ञक कार्य चलाते हैं।

[४९९] हे सोम ! (यः ते) जो तेरी (देवावीः ऊर्मिः) देवको प्राप्त करनेवाली लहर है (पवित्रे पर्यक्षरत्) छाननीमेंसे नीचे गिरती है (ऋतस्य योनिं आसीदन्) यज्ञके स्थानपर वह रहती है ॥ ११ ॥

सोमरसकी धारा देवोंको प्राप्त होनेकी इच्छा करती है और छाननीमेंसे कलशमें आकर रहती है।

[५००] हे (इन्दो) सोम ! (यः देववीतमः मदः) जो देवोंको अति प्रिय ऐसा आनंदकारक सोमरस है, वह (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पीनेके लिये (नः पवित्रे) हमारी छाननीमेंसे (आ अर्ष) नीचे पात्रमें उतर ॥ १२ ॥

[५०१] हे (इन्दो) सोम ! (मनीषिभिः मृज्यमानः) मननशील याजकोंके द्वारा संशोधित होनेवाला तू (इषे) अन्नके लिये (धारया पवस्व) धारासे शुद्ध हो जाओ। (रुचा गाः अभि इहि) अपने तेजसे गौवोंके पास जा ॥ १३ ॥

ज्ञानी यज्ञकर्ता ऋत्विजोंसे शुद्ध होनेवाला सोमरस हमारे अन्नके लिये धारासे संशोधित होकर गौके दूधमें मिश्रित होवे। सोमरसमें गौका दूध मिलाकर अन्नके समान उस सोमरसका उपयोग किया जाता है।

५०२ पुनानो वरिवस्कृध्यू१र्जं जनाय गिर्वणः । हरे सृजान आशिरम् ॥ १४ ॥
५०३ पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम् । द्युतानो वाजिभिर्यतः ॥ १५ ॥
५०४ प्र हिन्वानास इन्दवो ऽच्छा समुद्रमाशवः । धिया जूता असृक्षत ॥ १६ ॥
५०५ मर्मृजानास आयवो वृथा समुद्रमिन्दवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १७ ॥
५०६ परि णो याह्यस्मयु-र्विश्वा वसून्योजसा । पाहि नः शर्म वीरवत् ॥ १८ ॥
५०७ मिमाति वह्निरेतशः पदं युजान ऋक्वभिः । प्र यत् समुद्र आहितः ॥ १९ ॥

अर्थ— [५०२] हे (गिर्वणः) स्तुतियोंसे प्रशंसित (हरे) हरे रंगके सोम ! (आशिरं सृजानः) गोदुग्धके साथ मिलकर (पुनानः) छाना जाकर शुद्ध होता हुआ सोम (जनाय) लोकोंके लिये (वरिवः ऊर्जं कृधि) धन और अन्न तैयार करे । ॥ १४ ॥

सोमरसमें गौका दूध मिलाकर वह मिश्रण छाननीमेंसे छाना जानेपर वह जनोंके लिये उत्तम अन्न रूपी धन बनता है । उस मिश्रणका यज्ञ करके, उसको देवोंको अर्पण करके यज्ञ करके शेष रहा यज्ञकर्ता पीते हैं ।

[५०३] हे सोम ! (द्युतानः) तेजस्वी (वाजिभिः यतः) बलवान यजमानोंके द्वारा लिया हुआ (देव-वीतये पुनानः) यज्ञमें देवोंको देनेके लिये शुद्ध किया हुआ तू (इन्द्रस्य निष्कृतं याहि) इन्द्रके स्थानको पहुंच ॥ १५ ॥

तेजस्वी सोम याजकोंके द्वारा लिया जाता है और वह इन्द्रको समर्पण किया जाता है ।

[५०४] (आशवः इन्दवः) वेगवान सोम (समुद्रं) अन्तरिक्षमें होते हैं । वे सोम (हिन्वानाः) यज्ञ भूमिमें प्रेरित करनेपर (धिया जूताः) अंगुलिसे दबानेपर (प्र असृक्षत) रस देते हैं ॥ १६ ॥

सोम वनस्पति हिमालयके पर्वत शिखर पर होती है । वहांसे वह यज्ञ स्थानमें लायी जाती है. और उससे रस निकाला जाता है । और उस रसका यज्ञमें देवोंके लिये समर्पण किया जाता है ।

[५०५] (मर्मृजानासः आयवः) शुद्ध होनेवाले गमनशील (इन्दवः) सोमरस (वृथा) सहजहीसे (समुद्रं) अन्तरिक्षमें होते हैं । वे (ऋतस्य योनिं) यज्ञके स्थानमें (अग्मन्) जाते हैं ॥ १७ ॥

शुद्ध करनेके समय सोमरस सहजहीसे पानीमें मिलकर छाने जाते हैं और यज्ञके स्थानमें रखे रहते हैं । पश्चात् यज्ञमें अर्पण किया जाता है ।

[५०६] हे सोम ! (अस्मयुः) हमारे यज्ञमें आनेकी इच्छा करनेवाला तू (विश्वा वसूनि) संपूर्ण धनोंको (ओजसा) अपने सामर्थ्यसे (परि याहि) प्राप्त कर तथा (नः) हमारे (वीरवत् शर्म पाहि) पुत्र युक्त घरका संरक्षण कर ॥ १८ ॥

१ विश्वा वसूनि ओजसा परि पाहि— सब धनोंका संरक्षण अपने बलसे कर ।
२ नः वीरवत् शर्म पाहि— हमारे पुत्रोंसे युक्त घरका रक्षण कर ।

[५०७] हे सोम ! (यत्) जब (वह्निः) वहन करनेवाला (एतशः) घोडा अर्थात् सोम (मिमाति) शब्द करता है (ऋक्वभिः) ऋत्विजोंके द्वारा (पदं युजानः) यज्ञके स्थानमें आता है तब (समुद्रे आहितः) जलमें वह मिश्रित किया जाता है ॥ १९ ॥

जब ऋत्विज लोग सोमको यज्ञस्थानमें लाते हैं और उस सोमको जलमें मिलाते हैं, तब वह शब्द करता हुआ जलमें मिलता है ।

५०८ आ यद्योनिं हिरण्ययं—माशुर्ऋतस्य सीदति । जहात्यप्रचेतसः ॥ २० ॥
५०९ अभि वेना अनूषते—यक्षन्ति प्रचेतसः । मज्जन्त्यविचेतसः ॥ २१ ॥
५१० इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ २२ ॥
५११ तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति वेधसः । सं त्वा मृजन्त्यायवः ॥ २३ ॥
५१२ रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्ति वरुणः कवे । पवमानस्य मरुतः ॥ २४ ॥
५१३ त्वं सोम विपश्चितं पुनानो वाचमिष्यसि । इन्दो सहस्रभर्णसम् ॥ २५ ॥
५१४ उतो सहस्रभर्णसं वाचं सोम मखस्युवम् । पुनान इन्दवा भर ॥ २६ ॥

अर्थ—[५०८] (यत्) जब (हिरण्ययं योनिं) सुवर्णसदृश स्थानमें (ऋतस्य) यज्ञमें आकर (आशुः) वेगसे आनेवाला सोम (सीदति) बैठता है तब वह (अ प्रचेतसः जहाति) अज्ञानियोंको दूर करता है ॥ २० ॥

जब यज्ञके स्थानमें सोम आकर अपने स्थानमें बैठता है, तब अज्ञानियोंको यज्ञके स्थानसे दूर करता है, और ज्ञानियोंके साथ रहकर यज्ञस्थानमें विराजता है ।

[५०९] (वेनाः) स्तुति करनेवाले ज्ञानी (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं । (प्रचेतसः इयक्षन्ति) ज्ञानी लोग यजन करनेकी इच्छा करते हैं । (अविचेतसः) अज्ञानी (मज्जन्ति) अज्ञानमें डूब जाते हैं ॥ २१ ॥

१ वेनाः अभि अनूषत— ज्ञानी लोग परमात्माकी स्तुति करते हैं ।
२ प्रचेतसः इयक्षन्ति— विशेष ज्ञानी यज्ञ करना चाहते हैं ।
३ अविचेतसः मज्जन्ति— अज्ञानी अज्ञानमें डूबते हैं ।

[५१०] हे (इन्दो) सोम ! (मधुमत्तमः) अति मधुर तू (ऋतस्य योनिं आसदं) यज्ञके स्थानमें बैठनेकी इच्छासे (मरुत्वते इन्द्राय) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिये (पवस्व) रस निकालो ॥ २२ ॥

यज्ञके स्थानमें मरुत वीरोंके साथ इन्द्रको देनेके लिये सोमका रस निकालते हैं और वह रस मरुतोंको तथा इन्द्रको देते हैं ।

[५११] हे सोम ! (तं त्वा) उस तुझे (वचोविदः विप्राः) स्तुति करनेवाले (वेधसः) कर्म करनेमें प्रवीण ज्ञानी (परिष्कृण्वन्ति) अलंकृत करते हैं तथा (आयवः) विज्ञानी लोग (त्वा सं मृजन्ति) तुझे योग्य रीतिसे शुद्ध करते हैं ॥ २३ ॥

ज्ञानी लोग सोमको यज्ञ करनेके लिये तैयार करते हैं ।

[५१२] हे (कवे) ज्ञानी सोम ! (ते पवमानस्य रसं) तुझ शुद्ध होनेवाले सोमके रसको मित्र, अर्यमा, वरुण और (मरुतः) सब मरुत (पिबन्ति) पीते हैं ॥ २४ ॥

सोमके रसको शुद्ध करके सब मित्र वरुण आदि देव पीते हैं ।

[५१३] हे (इन्दो सोम) तेजस्वी सोम ! (त्वं) तू (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (विपश्चितं सहस्रभर्णसं वाचं) पवित्र सहस्र प्रकारके स्तोत्र (इष्यसि) प्रेरित करता है ॥ २५ ॥

सोमरस शुद्ध करनेके समय सहस्र प्रकारके उत्तम स्तोत्र गाये जाते हैं ।

[५१४] (उतो) और (सहस्रभर्णसं मखस्युवं वाचं) सहस्र प्रकारके यज्ञोंके स्तोत्र (पुनानः इन्दो) शुद्ध होनेवाला तू सोम (आ भर) बोलनेकी प्रेरणा कर ॥ २६ ॥

५१५ पुनान इन्दवेषां पुरुहूत जनानाम् । प्रियः समुद्रमा विश ॥ २७ ॥
५१६ दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ २८ ॥
५१७ हिन्वानो हेतृभिर्यत आ वाजं वाज्यक्रमीत् । सीदन्तो वनुषो यथा ॥ २९ ॥
५१८ ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवः कविः । पवस्व सूर्यो दृशे ॥ ३० ॥

[६५]

(ऋषिः- भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- गायत्री ।)

५१९ हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् । महामिन्दुं महीयुवः ॥ १ ॥
५२० पवमान रुचारुचा देवो देवेभ्यस्परि । विश्वा वसून्या विश ॥ २ ॥
५२१ आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः । इषे पवस्व संयतम् ॥ ३ ॥

अर्थ - [५१५] (इन्दो) हे सोम ! (एषां जनानां) इन लोकोंके द्वारा (पुरुहूत) अनेक प्रकारसे प्रार्थना करनेपर उनके लिये (प्रियः) प्रिय हुआ तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ (समुद्रं आविश) जलमें मिल जावो ॥ २७ ॥

[५१६] (शुक्राः) शुद्ध हुए (दविद्युतत्या रुचा) तेजस्वी प्रकाशसे युक्त (परिष्टोभन्त्या कृपा) चारों ओरसे शब्द करनेवाली धारासे (सोमाः) सोमरस (गवाशिरः) गौके दूधके साथ मिलते हैं ॥ २८ ॥

[५१७] (वाजी) बलवान सोम (हेतृभिः हिन्वानः) स्तोताओंके द्वारा प्रेरित होकर वीर जैसा (यतः) नियमित रीतिसे (वाजं आ अक्रमीत्) यज्ञमें जाता है (यथा वनुषः सीदन्तः) जैसे वीर युद्धमें जाते हैं ॥ २९ ॥

जैसे वीर आनंदसे युद्धमें जाते हैं, वैसा यह सोम आनंदसे यज्ञमें जाता है ।

[५१८] हे (सोम) सोम ! तू (कविः) ज्ञानी तथा (सूर्यः दृशे) सूर्यके समान तेजस्वी (ऋधक्) होकर (संजग्मानः) साथ रहकर (दिवः) द्युलोकमेंसे (दृशे पवस्व) दर्शन करनेके लिये रस निकालो ॥ ३० ॥

सोमरस ज्ञान बढाता है, सूर्यके समान चमकता है, द्युलोकसे प्रकाश देनेके समान तेजस्वी होता है ।

[६५]

[५१९] (उस्रयः) कर्म करनेमें कुशल (स्वसारः जामयः) बहिने जैसी (पतिं) पतिका अर्थात् स्त्रियां जैसी अपने पतिको उत्साहित करती हैं, उस प्रकार (महीयुवः) सामर्थ्यवान् (उस्रयः) कर्म करनेकी इच्छा करनेवाले ऋत्विज (महां इन्दुं हिन्वन्ति) महान सोमको यज्ञमें प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

[५२०] हे (पवमान) शुद्ध सोम ! (रुचा रुचा देवः) तेजस्वी प्रकाशमय ऐसा तू देव (देवेभ्यः परि) देवोंके पाससे (विश्वा वसूनि) सब धन लाकर (आ विश) यज्ञस्थानमें प्रविष्ट हो ॥ २ ॥

[५२१] हे (पवमान) सोम ! (सुष्टुतिं वृष्टिं) उत्तम स्तुतिके साथ की हुई सोमरससे सेवाके (देवेभ्यः दुवः) तथा देवोंसे संरक्षण प्राप्त करनेके लिये तथा (इषे) अन्नके लिये (संयतं पवस्व) तूं अपना रस देवो ॥ ३ ॥

सोमरस देवोंको समर्पण करनेसे देवोंकी सेवा होती है, देवोंसे संरक्षण होता है तथा सोमरससे अन्न भी प्राप्त होता है ।

५२२ वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे । पवमान स्वाध्यः ॥ ४ ॥
५२३ आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध । इहो ष्विन्दवा गहि ॥ ५ ॥
५२४ यदद्भिः परिषिच्यसे मृज्यमानो गभस्त्योः । द्रुणा सधस्थमश्नुषे ॥ ६ ॥
५२५ प्र सोमाय व्यश्ववत् पवमानाय गायत । महे सहस्रचक्षसे ॥ ७ ॥
५२६ यस्य वर्णं मधुश्चुतं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः । इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥ ८ ॥
५२७ तस्य ते वाजिनो वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । सखित्वमा वृणीमहे ॥ ९ ॥
५२८ वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः । विश्वा दधान ओजसा ॥ १० ॥

अर्थ— [५२२] हे (पवमान) सोम ! तू (वृषा असि हि) निश्चयसे बलवान हो अतः हम (भानुना द्युमन्तं त्वा) स्वकीय तेजसे प्रकाशनेवाले तुझे (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ वृषा असि हि— तू सचमुच बलशाली हो ।

२ भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे— स्वकीय तेजसे प्रकाशित रहनेवाले तुझे अपने पास बुलाते हैं । स्वकीय तेजसे जो प्रकाशित होते हैं उनको ही अपने पास बुलाना योग्य है ।

[५२३] हे (स्वायुध) उत्तम शस्त्रास्त्र रखनेवाले (पवमान) सोम ! (मन्दमानः) आनंदित रहनेवाला तू (सुवीर्यं आ पवस्व) उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य प्रदान कर । (इह उ) यहां (इन्दो) हे सोम (सु आगहि) उत्तम रीतिसे आओ ॥ ५ ॥

१ मन्दमानः सुवीर्यं पवस्व— आनंदित रहकर पराक्रम कर ।

[५२४] हे सोम ! (गभस्त्योः मृज्यमानः) दोनों हाथोंसे शुद्ध होनेवाला तू (यत् अद्भिः परिषिच्यसे) जब जलोंके साथ मिलाया जाता है (द्रुणा सधस्थं अश्नुषे) तब तू पात्रोंमें अपना स्थान प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

सोम दोनों हाथोंसे दबाकर शुद्ध किया जाता है, और उस रसमें जल मिलाया जाता है तब वह सोम यज्ञस्थानके पात्रोंमें रखा जाता है ।

[५२५] (महे सहस्रचक्षसे) महान और सहस्रों प्रकारसे देखनेवाले (व्यश्ववत्) व्यश्व ऋषिके समान (पवमानाय सोमाय) शुद्ध होनेवाले सोमके गुणोंका (गायत) गायन करो ॥ ७ ॥

व्यश्व ऋषिने जैसा सामगान किया था, उस प्रकार इस सोमके मंत्रोंका गायन करो । " या ऋक् तत् साम " पादवद्ध काव्य गाया जाता है । व्यश्व ऋषिने वैसा गायन किया था, उस रीतिसे तुम भी वेदमंत्रोंका गायन करो ।

[५२६] (यस्य वर्णं मधुश्चुतं) जिसका रस मधुर है और शत्रुका विनाश करनेवाला है उस (हरिं) हरे रंगके सोमको (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटकर रस निकालते हैं, वह (इन्दुं) सोमरस (इन्द्राय पीतये) इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है ॥ ८ ॥

सोमरस मधुर है, उस रसको पीकर वीर पुरुष शत्रुके नाश करनेका अपना सामर्थ्य बढाते हैं । अतः वह सोमरस इन्द्रको पीनेके लिये देते हैं, जिससे इन्द्र शत्रुओंका नाश करनेमें सामर्थ्यवान होता है ।

[५२७] (विश्वा धनानि जिग्युषः) सब धनोंको विजयसे प्राप्त करनेवाले (तस्य ते) उस तेरे हम (सखि त्वं आवृणीमहे) मित्रभाव रखना चाहते हैं ॥ ९ ॥

सब धनोंको विजयसे प्राप्त करनेवाले तेरे साथ हम मित्रभावसे रहना चाहते हैं ।

[५२८] (धारया वृषा पवस्व) धारासे बलवान होकर नीचे गिरो (मरुत्वते च मत्सरः) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको आनंद देनेवाला हो और (ओजसा) अपने बलसे (विश्वा दधानः) सबका धारण करनेवाला हो ॥ १० ॥

५२९	तं त्वा धर्तारमोण्योः पवमान स्वर्दृशम्	हिन्वे वाजेषु वाजिनम्	॥ ११ ॥
५३०	अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया	युजं वाजेषु चोदय	॥ १२ ॥
५३१	आ न इन्दो महीमिषं पवस्व विश्वदर्शतः	अस्मभ्यं सोम गातुवित्	॥ १३ ॥
५३२	आ कलशा अनूषते न्दो धाराभिरोजसा	एन्द्रस्य पीतये विश	॥ १४ ॥
५३३	यस्य ते मद्यं रसं तीव्रं दुहन्त्यद्रिभिः	स पवस्वाभिमातिहा	॥ १५ ॥
५३४	राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि	अन्तरिक्षेण यातवे	॥ १६ ॥
५३५	आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम्	वहा भगत्तिमूतये	॥ १७ ॥

अर्थ— [५२९] हे (पवमान) सोम ! (ओण्योः धर्तारं) द्युलोक और पृथिवीका धारण करनेवाले (स्वर्दृशं) और सबका निरीक्षण करनेवाले (वाजेषु वाजिनं) युद्धोंमें बलवान (तं त्वा) उस तुझे (हिन्वे) मैं प्रेरित करता हूं ॥ ११ ॥

सबको धारण करनेवाले, उत्तम निरीक्षक, बलवान वीरको मैं यज्ञमें कार्य करनेकी प्रेरणा करता हूं। ऐसा वीर यज्ञमें आकर बिराजे और यज्ञका कार्य करे।

[५३०] (अया विपा चित्तः) इन अंगुलियोंसे प्रेरित हुआ (हरिः) हरे रंगका सोम (अनया धारया पवस्व) इस उत्तम धारासे पात्रमें गिरे (वाजेषु युजं चोदय) और युद्धोंमें मित्र इन्द्रको जानेकी प्रेरणा देवे ॥ १२ ॥

अंगुलियोंसे दबाकर सोमसे रस निकाले, उस रसको इन्द्रको पीनेके लिये दें, और वह इन्द्र सोमरस पीकर युद्धमें जावे और युद्धमें शत्रुके वीरोंका विनाश करे।

[५३१] हे (इन्दो) सोम ! (विश्वदर्शतः) संपूर्ण विश्वका दर्शन करानेवाला तू (महीं इषं) बहुत अन्न (नः) हमारे लिये (आ पवस्व) प्रदान कर। हे (सोम) सोम ! तू (अस्मभ्यं गातुवित्) हमारा मार्गदर्शक है ॥ १३ ॥

[५३२] हे (इन्दो) सोम! (ओजसा) अपने सामर्थ्यसे (धाराभिः) रसकी धाराओंके साथ (कलशाः) कलशोंकी (आ अनूषत) स्तुति की जाती है (इन्द्रस्य पीतये आविश) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये इन कलशोंमें तू प्रविष्ट होकर रहो ॥ १४ ॥

यज्ञमें ऋत्विज लोक कलशोंमें रखे सोमरसकी स्तुति करते हैं। वह सोमरस इन्द्रादि देवोंको पीनेके लिये दिया जाता है।

[५३३] (यस्य ते) जिस तेरे (तीव्रं रसं) तीक्ष्ण (मद्यं) आनंद देनेवाले रसको (अद्रिभिः दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर निकालते हैं, (सः) वह (अभिमातिहा) शत्रुओंका नाशक होकर (पवस्व) निकाला जाय ॥ १५ ॥

[५३४] (मनौ अधि) यज्ञके अन्दर (पवमानः) सोम (राजा) राजा (मेधाभिः ईयते) स्तुति मंत्रोंसे गाया जाता है। यह (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्षसे द्रोण कलशमें (यातवे) जानेके समय गान होता है॥ १६ ॥

[५३५] हे (इन्दो) सोम ! (शतग्विनं) सेकडों गौवोंसे युक्त (गवां पोषं) गौवोंके पोषण करनेवाले (स्वश्व्यं) उत्तम घोडोंको पास रखनेवाले (भगत्तिं) भाग्यको (ऊतये वह) हमारे रक्षणके लिये हमें देओ ॥ १७ ॥

हमारे पास सेकडों गौवें हों, उत्तम घोडे हों, तथा उत्तम गौवें उत्पन्न हों ऐसा धन भी हमारे संरक्षणके लिये हमारे पास हो ॥

५३६ आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर । सुष्वाणो देववीतये ॥ १८ ॥
५३७ अर्षा सोम द्युमत्तमो ऽभि द्रोणानि रोरुवत् । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ १९ ॥
५३८ अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः । सोमो अर्षति विष्णवे ॥ २० ॥
५३९ इषं तोकाय नो दधद् अस्मभ्यं सोम विश्वतः । आ पवस्व सहस्रिणम् ॥ २१ ॥
५४० ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । ये वादः शर्यणावति ॥ २२ ॥
५४१ य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम् । ये वा जनेषु पञ्चसु ॥ २३ ॥
५४२ ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम् । सुवाना देवास इन्दवः ॥ २४ ॥
५४३ पवते हर्यतो हरि र्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥ २५ ॥

अर्थ— [५३६] हे (सोम) सोम ! (देववीतये) देवोंको पीनेको देनेके लिये (सुष्वाणः) रस निकाला तू (सहः आजुवः) सामर्थ्ययुक्त हो तथा (नः) हमारे लिये (जुवः) शक्ति बढावो (न) और (वर्चसं रूपं भर) तेजको बढानेवाला रूप दे दो ॥ १८ ॥

[५३७] हे (सोम) सोम ! तू (द्युमत्तमः) तेजस्वी होकर (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (द्रोणानि अभि अर्ष) पात्रोंमें निवास कर (न) जिस प्रकार (श्येनः) श्येन पक्षी (योनिं आ सीदन्) अपने घरमें आकर रहता है ॥ १९ ॥

[५३८] इन्द्र, वायु, वरुण, मरुत् तथा विष्णुको देनेके लिये (अप्सा) जलके साथ मिलकर (सोमः अर्षति) सोमरस पात्रोंमें रखा जाता है ॥ २० ॥

[५३९] हे (सोम) सोम ! (नः तोकाय) हमारे पुत्रोंके लिये तथा (अस्मभ्यं) हमारे लिये (इषं दधत्) अन्न देकर (सहस्रिणं) सहस्र प्रकारका धन (आ पवस्व) दे दो ॥ २१ ॥

[५४०] (ये सोमासः परावति) जो सोम दूरके देशोंमें है तथा (ये) जो सोम (अर्वावति) समीपके प्रदेशमें इन्द्रको देनेके लिये (सुन्विरे) रस निकालनेके लिये रखे हैं (ये वा अदः शर्यणावति) जो इस शर्यणावतके प्रदेशमें हैं वे हमें अभीष्ट फल देते हैं ॥ २२ ॥

[५४१] (ये आर्जीकेषु) जो आर्जीकोंके देशोंमें, (ये कृत्वसु) जो कृत्व देशोंमें तथा (पस्त्यानां मध्ये) पस्त्य स्थानमें तथा (ये वा पञ्च जनेषु) जो पंच जनोंमें जो सोम हैं वे सोम यज्ञमें लिये जाते हैं ॥ २३ ॥

१ आर्जीकेषु, कृत्वसु, पस्त्यानां मध्ये पंच जनेषु— आर्जीक, कृत्व, पस्त्य, इनमें जो पंचजन है उनमें सोमका उपयोग किया जाता है। और सोमसे यज्ञ किया जाता है।

[५४२] (देवासः इन्दवः) सोमदेव (सुवानाः) रस निकालनेसे (नः) हमें (दिवस्परि वृष्टिं) द्युलोकके स्थानसे वृष्टि तथा (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य (आ पवन्तां) देवें ॥ २४ ॥

[५४३] (हर्यतः हरिः) दिव्यत्वकी शक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला हरे रंगका सोम (जमदग्निना गृणानः) जमदग्नि ऋषिके द्वारा स्तुति किया गया (हिन्वानः) यज्ञमें प्रेरित किया हुआ (गोः त्वचि अधि) गौके चर्मपर (पवते) रहकर रस निकाला जाता है ॥ २५ ॥

सोमकी स्तुति ऋषि करते हैं। गौके चर्मपर रखे पात्रोंमें सोमका रस रखा रहता है। और उसका प्रयोग यज्ञमें किया जाता है।

५४४ प्र शुक्रासो वयोजुवो हिन्वानासो न सप्तयः । श्रीणाना अप्सु मृञ्जत ॥ २६ ॥
५४५ तं त्वा सुतेष्वाभुवो हिन्विरे देवतातये । स पवस्वानया रुचा ॥ २७ ॥
५४६ आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २८ ॥
५४७ आ मन्द्रमा वरेण्य—मा विप्रमा मनीषिणम् । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ २९ ॥
५४८ आ रयिमा सुचेतुन—मा सुक्रतो तनूष्वा । पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥ ३० ॥

[६६]

(ऋषिः- शतं वैखानसाः । देवताः- पवमानः सोमः, १९-२१ अग्निः पवमानः । छन्दः- गायत्री, १८ अनुष्टुप् ।)

५४९ पवस्व विश्वचर्षणे ऽभि विश्वानि काव्या । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ १ ॥
५५० ताभ्यां विश्वस्य राजसि ये पवमान धामनी । प्रतीची सोम तस्थतुः ॥ २ ॥

अर्थ— [५४४] (शुक्रासः) स्वच्छ (वयोयुजः) अन्न देनेवाले (श्रीणानः) जलकेसाथ मिश्रित हुए (हिन्वानासः सप्तयः न) चलनेवाले घोडोंके समान (अप्सु प्र मृञ्जत) जलोंमें स्वच्छ किये जाते हैं ॥ २६ ॥

जैसे दौडनेवाले घोडे जलोंमें स्वच्छ करनेके लिये धोये जाते हैं, उस प्रकार ये सोमरस पानीमेंसे मिलाकर स्वच्छ किये जाते हैं।

[५४५] (आभुवः) ऋत्विज लोग (देवतातये) देवोंको देनेके लिये (सुतेषु) यज्ञोंमें (तं त्वा) उस तुझ सोमको (हिन्विरे) प्रेरित करते हैं। (सः) वह प्रेरित हुआ तू (अनया रुचा) इस प्रकारके प्रकाशके साथ (पवस्व) रस निकालकर दे ॥ २७ ॥

[५४६] (ते) तेरे (मयोभुवं) सुखदायक (पुरुस्पृहं) बहुतों द्वारा प्रशंसित (पान्तं) संरक्षण करनेवाले (दक्षं) बलको (आ वृणीमहे) हम स्वीकार करते हैं। तुम्हारा बल (वह्निं) धनादि ऐश्वर्य देनेवाला है ॥ २८ ॥

[५४७] (मन्द्रं) आनंद देनेवाले (वरेण्यं) श्रेष्ठ (विप्रं) ज्ञान देनेवाले (मनीषिणं) बुद्धिको बढानेवाले (पुरुस्पृहं पान्तं) अनेकों द्वारा प्रशंसित और सुरक्षा करनेवाले तुझे हम स्वीकारते हैं ॥ २९ ॥

[५४८] हे (सुक्रतो) उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाले ! (रयिं आ) तेरेसे हम धन चाहते हैं, (सुचेतुनं आ) उत्तम ज्ञान चाहते हैं (तनुषा आ) पुत्र पौत्रादिकोंको चाहते हैं (पुरुस्पृहं पान्तं) सब लोकोंने प्रशंसित उत्तम सुरक्षा करके संरक्षण करनेके सामर्थ्यको चाहते हैं ॥ ३० ॥

[६६]

[५४९] हे (विश्वचर्षणे) सबका निरीक्षण करनेवाले सोम ! (विश्वानि काव्या अभि) सब काव्योंके अनुसार जैसा (सखा सखिभ्यः ईड्यः) मित्र मित्रोंकी स्तुतिके योग्य होता है, वैसा तू हमारे स्तुतिके काव्य सुनकर अपना उत्तम रस हमें देओ ॥ १ ॥

[५५०] हे (पवमान सोम) रस देनेवाले सोम ! (ये धामनी) जो तेरे दो स्थान यज्ञमें हैं, (ताभ्यां विश्वस्य राजसि) इन दोनों स्थानोंसे तू विश्वमें राजा, मुख्य, हुआ है। (प्रतीची तस्थतुः) वे दो स्थान पूर्व तथा पश्चिम स्थानमें यज्ञमें रहते हैं ॥ २ ॥

×

५५१ परि धामानि यानि ते त्वं सोमासि विश्वतः । पवमान ऋतुभिः कवे ॥ ३ ॥
५५२ पवस्व जनयन्निषो ऽभि विश्वानि वार्या । सखा सखिभ्य ऊतये ॥ ४ ॥
५५३ तव शुक्रासो अर्चयो दिवस्पृष्ठे वि तन्वते । पवित्रं सोम धामभिः ॥ ५ ॥
५५४ तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते । तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥ ६ ॥
५५५ प्र सोम याहि धारया सुत इन्द्राय मत्सरः । दधानो अक्षिति श्रवः ॥ ७ ॥
५५६ समु त्वा धीभिरस्वरन् हिन्वतीः सप्त जामयः । विप्रमाजा विवस्वतः ॥ ८ ॥
५५७ मृजन्ति त्वा समग्रुवो ऽव्ये जीरावधि ष्वणि । रेभो यदज्यसे वने ॥ ९ ॥

अर्थ— [५५१] हे (पवमान सोम) रस निकाला गया सोम! (ते) तेरे (यानि धामानि) जो स्थान (विश्वतः परि) सब विश्वमें (असि) हैं। हे (कवे) ज्ञानी सोम ! वे स्थान (ऋतुभिः) ऋतुओंके अनुसार हैं ॥ ३ ॥

सोमके जो स्थान देशमें अनेक हैं, वे ऋतुओंके अनुकूल वहां हैं। अमुक ऋतुमें अमुक स्थानमें सोम प्राप्त होता है।

[५५२] हे सोम ! तू (सखा) सबका मित्र है, तू (विश्वानि वार्या अभि) सब स्वीकार करने योग्य स्तोत्र देखकर (सखिभ्यः ऊतये) मित्रोंके संरक्षणके लिये (इषः जनयन्) अनेक प्रकारके अन्न उत्पन्न करके (पवस्व) तू अपनेमेंसे रस यज्ञमें उत्पन्न करके दे ॥ ४ ॥

[५५३] हे (सोम) सोम ! (तव शुक्रासः अर्चयः) तेरे तेजस्वी प्रकाशके किरण (दिवः पृष्ठे) द्युलोकके अधो भाग पर अर्थात् पृथिवीपर (पवित्रं) पवित्र जल (धामभिः वितन्वते) अपने अपने स्थानोंसे फैलाते हैं ॥ ५ ॥

[५५४] हे (सोम) सोम ! (इमे सप्त सिन्धवः) ये सात नदियां (तव प्रशिषं) तेरी आज्ञाको मानकर (सिस्रते) चल रही हैं और (धेनवः) गौवें (तुभ्यं धावन्ति) तेरे समीप दौडकर आती हैं ॥ ६ ॥

१ सप्त सिन्धवः तव प्रशिषं सिस्रते— सात नदियोंके जल तेरी–सोमकी–आज्ञाका पालन करते हैं। सोमरसमें वे जल मिलाये जाते हैं।

२ धेनवः तुभ्यं धावन्ति— गौवें सोमके पास दौडकर आती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है।

[५५५] हे सोम ! (अक्षिति श्रवः दधानः) अक्षय अन्नका धारण करनेवाला तू (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके-लिये (मत्सरः सुतः) आनंद देनेवाला रस निकाला तू (धारया) धारासे (प्रयाहि) चलो। इन्द्रके पास पहुंचो ॥ ७ ॥

[५५६] हे सोम ! (हिन्वतीः) प्रेरणा देनेवाले (सप्त जामयः) सात ऋत्विज (त्वा विप्रं) तुझ ज्ञानीका (विवस्वतः आजौ) यज्ञकार्यमें (धीतिभिः) स्तुतियोंसे (सं अस्वरन् उ) उत्तम प्रकार वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

सात ऋत्विज यज्ञमें सोमकी स्तुति करते हैं।

[५५७] हे सोम ! (अग्रुवः) अंगुलियोंसे (अव्ये जीरौ स्वणि अधि) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाननेके समय तू शब्द करता हुआ छाना जाता है, उस समय (त्वा सं मृजन्ति) तुझे शुद्ध करती हैं। (यत् रेभः वने अज्यसे) जब शब्द करता हुआ तू पानीमें मिलाया जाता है ॥ ९ ॥

ऋत्विजोंकी अंगुलियां सोमको पकडती हैं और पानीमें सोमरस मिलाया जाता है और छाना जाता है, उस समय सोमरस शब्द करता हुआ पानीमें गिरता है।

५५८ पवमानस्य ते कवे वाजिन् त्सर्गा असृक्षत । अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥ १० ॥
५५९ अच्छा कोशं मधुश्चुत-मसृग्रं वारे अव्यये । अवावशन्त धीतयः ॥ ११ ॥
५६० अच्छा समुद्रमिन्दवो ऽस्तं गावो न धेनवः । अग्मन्नृतस्य योनिमा ॥ १२ ॥
५६१ प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ १३ ॥
५६२ अस्य ते सख्ये वय-मियक्षन्तस्त्वोतयः । इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ १४ ॥
५६३ आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे । एन्द्रस्य जठरे विश ॥ १५ ॥

अर्थ— [५५८] हे (कवे वाजिन्) ज्ञानी और अन्नवान सोम ! (ते पवमानस्य) तुझ शुद्ध होनेवाले सोमरसकी (सर्गाः असृक्षत) धाराएं चलने लगती हैं, (न) जैसे (श्रवस्यवः अर्वन्तः) अश्वशालासे घोडे छोडे जाते हैं ॥ १० ॥

अपने बांधनेके स्थानसे छोडनेसे घोडे चलने लगते हैं, उस प्रकार सोमसे रसकी धाराएं वेगसे नीचे पात्रमें उतरती हैं ।

[५५९] (मधुश्चुतं) मधुर रस रखनेके स्थानमें रहे (कोशं) पात्रमें (अव्यये वारे) भेडोंके बालोंकी छाननीमेंसे (असृग्रं) रस छानकर रखा जाता है, (धीतयः) अंगुलियां (अवा वशन्तः) पुनः पुनः उस रसको शुद्ध करती हैं ॥ ११ ॥

[५६०] (इन्दवः) सोमरस (समुद्रं अच्छ अभि) जलमें मिलनेके लिये जाते हैं और (गावः धेनवः न) प्रसूत हुई गौवें (अस्तं) घरमें आती हैं उनके समान (ऋतस्य योनिं आ अग्मन्) सोम यज्ञके स्थानमें जाते हैं ॥ १२ ॥

सोमरस जलमें मिलाते हैं, तथा गौवें अपने बछडेको मिलनेकी इच्छासे अपने निवास स्थानमें आती है वैसे सोमरस यज्ञमें आते हैं ।

[५६१] हे (इन्दो) सोम ! (न महे रणे) हमारे बडे यज्ञमें (सिन्धवः आपः) नदियोंके जल (अर्षन्ति) आते हैं और सोमरसमें मिलाये जाते हैं, जब सोमरस (यत् गोभिः वासयिष्यसे) जब सोमरस गोदुग्धसे मिश्रित किया जाता है ॥ १३ ॥

नदियोंके जल सोमरसमें मिलाये जाते हैं और गौका दूध भी सोम रसमें मिलाया जाता है । इस मिश्रिणका यज्ञ होता है । पश्चात् उसका सेवन किया जाता है ।

[५६२] हे (इन्दो) सोम ! (अस्य ते सख्ये) इस तेरी मित्रतामें रहे (वयं) हम (त्वोतयः) तेरेसे सुरक्षितता (इयक्षन्तः) चाहते हुए हम (सखित्वं उश्मसि) तेरी मित्रता चाहते हैं ॥ १४ ॥

[५६३] हे (सोम) सोम ! (महे नृचक्षसे) बडे मानवोंका निरीक्षण करनेवाले (गविष्टये) गौओंका रक्षण करनेवाले इन्द्रके लिये (आ पवस्व) तू रस निकालो और (इन्द्रस्य जठरे आ विश) इन्द्रके पेटमें जा ॥ १५ ॥

१ महे नृचक्षसे— मानवोंके कर्मोंका निरीक्षण करनेवाला इन्द्र है ।

२ गविष्टये— गौओंका रक्षण करनेवाला इन्द्र है ।

ऐसे इन्द्रके पेटमें सोमरस यज्ञमें जावे । यज्ञमें सोमरस इन्द्रको अर्पण किया जाता है ।

५६४ म॒हाँ अ॑सि सोम॒ ज्येष्ठ॑ उ॒ग्राणा॑मिन्दु॒ ओजि॑ष्ठः । यु॒ध्वा सञ्छश्व॑ज्जिगेथ ॥ १६ ॥
५६५ य उ॒ग्रेभ्य॑श्चि॒दोजी॑या॒ञ्छूरे॑भ्यश्चि॒च्छूर॑तरः । भू॒रि॒दाभ्य॑श्चि॒न्मंही॑यान् ॥ १७ ॥
५६६ त्वं सो॑म॒ सूर॒ एष॒स्तो॒कस्य॑ सा॒ता त॒नूना॑म् । ॥ १८ ॥
वृ॒णीमहे॑ स॒ख्याय॑ वृ॒णीमहे॒ युज्या॑य
५६७ अग्न॒ आयूं॑षि पवस॒ आ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः । आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म् ॥ १९ ॥
५६८ अ॒ग्निॠषि॒ः पव॑मान॒ः पाञ्च॑जन्यः पु॒रोहि॑तः । तमी॑महे महाग॒यम् ॥ २० ॥

अर्थ—[५६४] हे (सोम) सोम ! तू (महान् असि) तूं बडा है, तूं (ज्येष्ठः) श्रेष्ठ है। हे (इन्दो) सोम ! तू (उग्राणां ओजिष्ठः) वीरोंमें श्रेष्ठ है। (युध्वा सन्) युद्ध करके ही (शश्वत् जिगेथ) हमेशा जीतता है ॥ १६ ॥

१ महान् जयेष्ठः असि— तू बडा श्रेष्ठ है।

२ उग्राणां ओजिष्ठः— शूरोंमें अधिक श्रेष्ठ वीर है।

३ युध्वा सन् शश्वत् जिगेथ— युद्ध करके सदा शत्रुपर विजय करता है।

[५६५] (यः) जो सोम (उग्रेभिः ओजीयान् चित्) उग्रवीरोंसे अधिक उग्र है, (यः शुरेभिः शूरतरः चित्) जो शूरोंसे भी अधिक शूर है, तथा (भूरिदाभ्यः चित्) अधिक दान देनेवालोंसे (महीयान्) भी बडा दानी है ॥ १७ ॥

१ यः उग्रेभिः ओजीयान्— उग्रवीरोंसे जो अधिक उग्र है।

२ यः शूरेभिः शूरतरः— जो शूरोंसे अधिक शूर है।

३ भूरिदाभ्यः महीयान्— अधिक दान देनेवालोंसे भी अधिक दान देता है।

ये बडे पुरुष प्रशंसनीय हैं।

[५६६] हे (सोम) सोम ! तू (सूरः) उत्तम वीर्यवान (इषः) अन्न हमें दे दो तथा (तोकस्य तनूनां साता) पुत्र पौत्रोंके शरीरोंके साथ संबंध हमारा उत्तम रीतिसे रहे। (सख्याय वृणीमहे) मित्रताका संबंध हम चाहते हैं। (युज्याय वृणीमहे) सहायकका संबंध तुमसे हम चाहते हैं ॥ १८ ॥

१ सुरः इषः--- तू वीर्यवान हो, हमें अन्न दो।

२ तोकस्य तनुनां साता— पुत्र पौत्रोंके साथ संबंध हो जाय।

३ सख्याय युज्याय वृणीमहे— तुम्हारे साथ मित्रता तथा सहायकका संबंध जोडना चाहते हैं।

[५६७] हे (अग्ने) अग्ने ! (आयूंषि पवसे) हमारे जीवनोंका संरक्षण तू करता है। (नः) हमारे लिये (इषं ऊर्जं च सुव) अन्न और बल दे। (दुच्छुनां आरे बाधस्व) दुष्टोंको दूर कर ॥ १९ ॥

१ नः आयूंषि पवसे— हमारी आयुका संरक्षण कर।

२ नः इषं ऊर्जं च सुव— हमारे लिये अन्न और बल दे।

३ दुच्छुनां आरे बाधस्व— दुष्टोंको दूर करके नष्ट कर।

[५६८] (अग्निः ऋषिः) अग्निऋषि अर्थात् ज्ञानी या ज्ञान देनेवाला है। (पांचजन्यः पवमानः पुरोहितः) पंच जनोंका हित करनेवाला पवमान सामने रखा है (तं महागयं ईमहे) उस बडे घरवाले अग्निकी हम स्तुति गाते हैं ॥ २० ॥

अग्नि ज्ञान देता है, अपने प्रकाशसे सबका ज्ञान करता है। पंच जनोंका हित करनेवाला पवमान सोम यज्ञमें अग्रस्थानमें रखा है। उसकी हम स्तुति करते हैं। अग्निकी उष्णता शरीरमें रहनेसे मनुष्यको ज्ञान प्राप्त होता है। शरीर थंडा हो जायगा तो ज्ञान नहीं होता। अग्निका यह महत्व है।

५६९ अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् ॥ २१ ॥
५७० पवमानो अति स्रिधो ऽभ्यर्षति सुष्टुतिम् । सूरो न विश्वदर्शतः ॥ २२ ॥
५७१ स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान् प्रयसे हितः । इन्दुरत्यो विचक्षणः ॥ २३ ॥
५७२ पवमान ऋतं बृहच्छुक्रं ज्योतिरजीजनत् । कृष्णा तमांसि जङ्घनत् ॥ २४ ॥
५७३ पवमानस्य जङ्घ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत । जीरा अजिरशोचिषः ॥ २५ ॥
५७४ पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः । हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥ २६ ॥

अर्थ— [५६९] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्वपा) उत्तम कर्म करनेवाला तू (अस्मे) हमारे लिये (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम करनेका बल, (वर्चः) तेज (पवस्व) उत्पन्न करके देओ। (मयि रयिं पोषं दधत्) मेरे अंदर धन और पुष्टी धारण कर ॥ २१ ॥

१ स्वपा अस्मे सुवीर्यं वर्चः पवस्व— उत्तम कर्म करनेवाला तू हमारेमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति और तेज बढावो।

२ मयि रयिं पोषं दधत्— मेरे अन्दर धन तथा पोषण करनेकी शक्ति रखो।

[५७०] (पवमानः स्रिधः अति) सोम शत्रुओंका अतिक्रमण करके दूर जाता है, (सुष्टुतिं अभ्यर्षति) उत्तम स्तुति प्राप्त करता है। यह पवमान (सुरः न) सूर्यके समान (विश्वदर्शतः) सबको बतानेवाला है ॥ २२ ॥

१ पवमानः स्रिधः अति— यह सोम शत्रुको दूर करता है।

२ सूरः न विश्वदर्शतः— यह सोम सूर्यके समान सबको दर्शाता है।

३ सुष्टुतिं अभ्यर्षति— उत्तम स्तुति प्राप्त करता है।

[५७१] (आयुभिः मर्मृजानः सः इन्दुः) ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध होनेवाला वह सोम (अत्यः) देवोंके पास जाता है। वह सोम (प्रयस्वान्) देवोंके पास जानेवाला (प्रयसे हितः) यज्ञमें अर्पण करनेके लिये रखा है। यह (विचक्षणः) तेजस्वी है ॥ २३ ॥

[५७२] यह (पवमानः) सोम (बृहत् ऋतं शुक्रं ज्योतिः) बडा सत्य तेजस्वी प्रकाश (अजीजनत्) उत्पन्न करता है और (कृष्णा तमांसि जंघनत्) काले अन्धकारका नाश करता है ॥ २४ ॥

सोम प्रकाशसे चमकता है, इस कारण वह सोम अंधेरेका नाश करके प्रकाश देता है।

[५७३] (जंघ्नतः) अंधकारका नाश करनेवाली (हरेः) हरे रंगके (पवमानस्य) सोमकी (चन्द्राः असृक्षत) किरणे बाहेर आ रही हैं। ये प्रकाश किरणें (जीराः) जलदीसे जानेवाली तथा (अजिरशोचिषः) चारों ओर प्रकाश देनेवाली हैं ॥ २५ ॥

सोमरस चमकता है। उससे प्रकाश किरणें बाहेर आती हैं। इससे अन्धकार दूर होता है।

[५७४] (पवमानः) सोम (रथीतमः) उत्तम रथवान है (शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः) शुभ्र किरणोंसे अति स्वच्छ दीखता है। (मरुद्गणः) मरुतोंके गणोंके साथ रहनेवाला यह सोम (हरिः चन्द्रः) हरे रंगका प्रकाश देता है ॥ २६ ॥

सोम अति शुभ्रवर्णका होता है, वह उत्तम रथवीरके समान बडा शूर है, वीरके समान कार्य करनेवाला है। मरुतों के समान वीरताके कार्य यह करता है। इसका रंग हरा है और यह प्रकाशमान होता है।

५७५ पवमानो व्यश्नवद्रश्मिभिर्वाजसातमः । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ २७ ॥
५७६ प्र सुवान इन्दुरक्षाः पवित्रमत्यव्ययम् । पुनान इन्दुरिन्द्रमा ॥ २८ ॥
५७७ एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः । इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ २९ ॥
५७८ यस्य ते द्युम्नवत् पयः पवमानाभृतं दिवः । तेन नो मृळ जीवसे ॥ ३० ॥

[६७]

(ऋषिः- १-३ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, ४-६ कश्यपो मारीचः, ७-९ गोतमो राहूगणः, १०-१२ अत्रिर्भौमः, १३-१५ विश्वामित्रो गाथिनः, १६-१८ जमदग्निर्भार्गवः, १९-२१ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, २२-३२ पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा । देवताः- पवमानः सोमः, १०-१२ पवमानः पूषा वा, २३-२७ पवमानोऽग्निः, २५ पवमानः सविता वा, २६ पवमानाग्निसवितारः, २७ विश्वेदेवा वा, ३१-३२ पावमान्यध्येता । छन्दः- गायत्री १६-१८ नित्यद्विपदा गायत्री, ३० पुरउष्णिक्; २७, ३१, ३२ अनुष्टुप् ।)

५७९ त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे । पवस्व मंहयद्रयिः ॥ १ ॥
५८० त्वं सुतो नृमादनो दधन्वान् मत्सरिन्तमः । इन्द्राय सूरिरन्धसा ॥ २ ॥

अर्थ— [५७५] (पवमानः) सोम (रश्मिभिः व्यश्नवत्) अपने तेजके किरणोंसे विश्वमें व्यापता है । यह (वाजसातमः) उत्तम अन्न देता है, तथा (स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्) स्तोताके लिये उत्तम शौर्य प्रदान करता है ॥ २७ ॥

[५७६] (सुवानः इन्दुः) रस निकाला सोम (अव्ययं) भेडाके बालोंसे बनायी (पवित्रं) छाननीमेंसे (पुनानः) छाना जानेवाला (इन्द्रं प्र आ) इन्द्रके पास (अक्षाः) जाता है ॥ २८ ॥

[५७७] (एषः सोमः) यह सोम (गवां त्वचि) गौके चर्मपर (अद्रिभिः) पत्थरोंके साथ (क्रीडति) खेलता है और (इन्द्रं) इन्द्रको (मदाय जोहुवत्) आनंद प्राप्त करनेके लिये बुलाता है ॥ २९ ॥

गौवोंके चर्म पर पात्रमें रखा यह सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है और वह सोम आनंद प्राप्त करनेके लिये इन्द्रको बुलाता है । सोमरस पीनेसे आनंद प्राप्त होता है ।

[५७८] (यस्य ते) जिस तेरा (द्युम्नवत् पयः) तेजस्वी सोमरसरूपी दुग्ध जैसा अन्न (दिवः आभृतं) द्युलोकसे लाया है । हे (पवमान) सोम ! (तेन) उस सोमरससे (जीवसे) दीर्घजीवन प्राप्त करनेके लिये (नः मृळ) हमें सुखी रख ॥ ३० ॥

सोम स्वर्गसे अर्थात् हिमालयके शिखरके ऊपरसे लाया है । उस सोमरसके पानसे दीर्घजीवन तथा सुख प्राप्त करें ।

[६७]

[५७९] हे (सोम) सोम ! तू (मन्द्रः) आनंद देनेवाला (ओजिष्ठः) बल बढानेवाला और (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञमें (धारयुः असि) धारासे रस देनेवाला है । ऐसा तू (मंद्रयत्) आनंद देता हुआ (रयिः पवस्व) धन दे ॥ १ ॥

सोमरस पीनेसे उत्साहमय आनंद प्राप्त होता है । आनंद देनेवाला यह सोम धन देकर हमारा आनंद बढावे ।

[५८०] (त्वं सुतः) तेरा रस निकालनेपर वह (नृमादनः) मनुष्योंका अर्थात् ऋत्विजोंका आनंद बढाता है, (दधन्वान्) यजमानोंको धन देनेवाला और (मत्सरिन्तमः) आनंद देनेवाला होता है, ऐसा तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (अन्धसा सूरिः) अन्नके साथ आनंद देनेवाला हो ॥ २ ॥

५८१ त्वं सुष्वाणो अद्रिभि—रभ्यर्ष कनिक्रदत् । द्युमन्तं शुष्ममुत्तमम् ॥ ३ ॥
५८२ इन्दुर्हिन्वानो अर्षति तिरो वाराण्यव्यया । हरिर्वाजमचिक्रदत् ॥ ४ ॥
५८३ इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा । वि वाजान् त्सोम गोमतः ॥ ५ ॥
५८४ आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् । भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ६ ॥
५८५ पवमानास इन्दव—स्तिरः पवित्रमाशवः । इन्द्रं यामेभिराशत ॥ ७ ॥
५८६ ककुहः सोम्यो रस इन्दुरिन्द्राय पूर्व्यः । आयुः पवत आयवे ॥ ८ ॥
५८७ हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं मधुश्चुतम् । अभि गिरा समस्वरन् ॥ ९ ॥
५८८ अविता नो अजाश्वः पूषा यामनियामनि । आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १० ॥
५८९ अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु । आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ ११ ॥

अर्थ— [५८१] हे सोम ! (अद्रिभिः सुष्वानः त्वं) पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला तू (द्युमन्तं उत्तमं शुष्मं) तेजस्वी उत्तम बलवर्धक अन्न (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ हमें दे ॥ ३ ॥

[५८२] (हिन्वानः इन्दुः) प्रेरित हुआ सोम (अव्यया वाराणि तिरः) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे (अर्षति) नीचे उतरता है। उस समय (हरिः) हरे रंगका यह सोम (वाजं अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ नीचेके पात्रमें उतरता है ॥ ४ ॥

[५८३] हे सोम ! (अव्यं वि अर्षसि) तू मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है। (श्रवांसि वि) हविष्यान्नोंको प्राप्त करता है। (सौभगा वि) अनेक सौभाग्य प्राप्त करता है। (गोमतः वाजानि वि अर्षसि) गौओंसे प्राप्त होनेवाले विविध अन्न प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

[५८४] हे (इन्दो सोम) प्रकाशमान सोम। (शतग्विनं) सेंकडों गौवोंसे युक्त (सहस्रिणं रयिं) सहस्र प्रकारका (अश्विनं) अनेक घोडोंसे युक्त धन (नः आ भर) हमें भरपूर दो ॥ ६ ॥

[५८५] (पवित्रं तिरः) छाननीमेंसे छाने जानेवाले (पवमानासः आशवः) शुद्ध होनेवाले शीघ्रगामी (इन्दवः) सोमरस (यामेभिः) अपनी गतियोंसे (इन्द्रं आशत) इन्द्रको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

[५८६] (ककुहः) सोमरस (सोम्यः रसः) सोमनामक वनस्पतिसे निकाला रस है। (आयुः) इन्द्रके पास जानेवाला यह (इन्दुः) सोम (आयवे इन्द्राय पूर्व्यः) सर्वत्र गमन करनेवाले इन्द्रको देनेके लिये (पवते) यह प्रथम निकाला रस है ॥ ८ ॥

[५८७] (उस्रियः) अंगुलियां (मधुश्चुतं) मधुर रस देनेवाले (सूरं पवमानं) उत्तम वीर्ययुक्त सोमको (हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं। उस समय (गिरा) स्तुतिका (सं अभिस्वरन्) गान ऋत्विज करते हैं ॥ ९ ॥

सोमको अंगुलियां पकडती हैं, उस सोमको दबाकर उससे रस निकालती हैं। उस समय ऋत्विज मंत्रपाठ करते हैं।

[५८८] (अजाश्वः) मेंढोंको अश्वस्थानोंमें जोडनेवाला (पूषा) पूषा देव (यामनि यामनि) सब गमन स्थानोंमें (नः अविता) हमारा रक्षण करनेवाला हो। यह (कन्यासु) कन्याओंके विषयमें (नः आ भक्षत्) हमारी सहायता करे ॥ १० ॥

[५८९] (अयं सोमः) यह सोम (कपर्दिने) मुकुटधारी पूषाके लिये (मधु घृतं न) मधुर घृतके समान (पवते) रस देता है। और (नः कन्यासु आ भक्षत्) हमारी कन्याओंके विषयमें सहायता करता है ॥ ११ ॥

५९० अयं तं आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि । आ भक्षत् कन्यासु नः ॥ १२ ॥
५९१ वाचो जन्तुः कवीनां पवस्व सोम धारया । देवेषु रत्नधा असि ॥ १३ ॥
५९२ आ कलशेषु धावति श्येनो वर्म वि गाहते । अभि द्रोणा कनिक्रदत् ॥ १४ ॥
५९३ परि प्र सोम ते रसो ऽसर्जि कलशे सुतः । श्येनो न तक्तो अर्षति ॥ १५ ॥
५९४ पवस्व सोम मन्दय-न्निन्द्राय मधुमत्तमः ॥ १६ ॥
५९५ असृग्रन् देववीतये वाजयन्तो रथा इव ॥ १७ ॥
५९६ ते सुतासो मदिन्तमाः शुक्रा वायुमसृक्षत ॥ १८ ॥
५९७ ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि । दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ॥ १९ ॥
५९८ एष तुन्नो अभिष्टुतः, पवित्रमति गाहते । रक्षोहा वारमव्ययम् ॥ २० ॥
५९९ यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह । पवमान वि तज्जहि ॥ २१ ॥

अर्थ — [५९०] हे (आघृणे) तेजस्वी ! (सुतः अयं) रस देनेवाला यह सोम (ते) तेरे लिये (शुचि घृतं न पवते) शुद्ध घीके समान रस देता है। (नः कन्यासु आ भक्षत्) और हमारी कन्याओंके विषयमें सहायता करता है ॥ १२ ॥

[५९१] हे (सोम) सोम ! (कवीनां वाचः जन्तुः) ज्ञानियोंकी स्तुतियोंको प्रेरणा देनेवाला तूं (धारया पवस्व) धारासे रस दे। (देवेषु रत्नधा असि) देवोंमें तू रमणीय पदार्थ देनेवाला है ॥ १३ ॥

[५९२] जैसा (श्येनः वर्म विगाहते) श्येन पक्षी अपने घरमें आता है, वैसा सोम (कलशेषु आ धावति) कलशोंमें जाता है। सोमरस (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (द्रोणा अभि) पात्रोंमें जाता है ॥ १४ ॥

[५९३] हे सोम ! (कलशे सुतः ते रसः) कलशमें रखा तेरा रस (परि प्र असर्जि) अलग अलग पात्रोंमें यज्ञमें रखा जाता है। (श्येनः न तक्तः अर्षति) जैसा श्येन पक्षी अपने स्थानमें आकर रहता है ॥ १५ ॥

[५९४] हे (सोम) सोम ! (इन्द्राय मन्दयन्) इन्द्रको आनन्द देनेके लिये (मधुमत्तमः पवस्व) अति मधुर रस दे ॥ १६ ॥

[५९५] (वाजयन्तः रथा इव) शत्रुको पराभूत करनेवाले रथोंके समान (देववीतये असृग्रन्) देवोंको पीनेको देनेके लिये ये रस निकाले हैं ॥ १७ ॥

[५९६] (मदिन्तमाः शुक्रा) आनंद देनेवाले तेजस्वी सोमरस (वायुं) वायुके समान शब्द (असृक्षत). करते हैं ॥ १८ ॥

[५९७] हे (सोम) सोम ! (ग्राव्णा तुन्नः) पत्थरसे कूटा हुआ सोम (पवित्रं गच्छति) छाननीमेंसे जाता है। यह सोम (स्तोत्रे) स्तुति करनेवालेके लिये (सुवार्यं दधत्) उत्तम बल धारण करता है ॥ १९ ॥

[५९८] (एषः) यह सोम (तुन्नः) कूटा हुआ तथा (अभिष्टुतः) स्तुति किया गया (पवित्रं अति गाहते) छाननीसे छाना जाता है। यह (रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करता है, यह सोमरस (अव्ययं वारं) भेडीकी छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ २० ॥

शरीरमें जो दोष रहते हैं वे यहां राक्षस करके कहे हैं।

[५९९] हे (पवमान) सोम ! (यत् अन्ति) जो भय पास है (यत् च दूरके) जो भय दूर है, (भयं मां इह विन्दति) जो भय मुझे यहां प्राप्त होता है (तत् विजहि) उस भयको दूर कर ॥ २१ ॥

६०० पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु नः ॥ २२ ॥
६०१ यत् ते पवित्रमर्चिष्य—ग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनीहि नः ॥ २३ ॥
६०२ यत् ते पवित्रमर्चिव—दग्ने तेन पुनीहि नः । ब्रह्मसवैः पुनीहि नः ॥ २४ ॥
६०३ उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥ २५ ॥
६०४ त्रिभिष्ट्वं देव सवित—र्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः । अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥ २६ ॥
६०५ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया ।
विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा ॥ २७ ॥
६०६ प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः । देवेभ्य उत्तमं हविः ॥ २८ ॥
६०७ उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम् । अगन्म बिभ्रतो नमः ॥ २९ ॥
६०८ अलाय्यस्य परशुर्ननाश त—मा पवस्व देव सोम । आखुं चिदेव देव सोम ॥ ३० ॥

अर्थ — [६००] (सः विचर्षणिः पवमानः) वह सर्वदर्शक सोम (यः पोता) जो पवित्र करनेवाला है वह (पवित्रेण) छाननीमेंसे (सः नः पुनातु) हमें पवित्र करे ॥ २२ ॥

[६०१] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् ते अन्तरा) जो तेरे अन्दर (अर्चिषि पवित्रं) पवित्र करनेवाला तेज (विततं) फैला हैं (तेन नः ब्रह्म पुनीहि) उसके द्वारा हमारा ज्ञान पवित्र कर ॥ २३ ॥

[६०२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् ते पवित्रं अर्चिवत्) जो तेरा पवित्र करनेवाला तेज है (तेन नः पुनीहि) उस तेजसे हमें पवित्र कर (ब्रह्मसवैः) ज्ञानके स्तोत्रोंसे (नः पुनीहि) हमें पवित्र कर ॥ २४ ॥

[६०३] हे (सवितः देव) सूर्य देव ! तू (पवित्रेण सवेन च उभाभ्यां) छाननी और रस निकालने इन दोनोंसे (विश्वतः मां पुनीहि) सब प्रकारसे मुझे पवित्र कर ॥ २५ ॥

[६०४] हे (सवितः देव) सविता देव ! (त्वं) तू (त्रिभिः वर्षिष्ठैः धामभिः) तीनों श्रेष्ठ स्थानोंसे हे (सोम) सोम तथा (अग्ने) हे अग्ने (दक्षैः नः पुनीहि) अपने सामर्थ्योंसे हमें पवित्र कर ॥ २६ ॥

[६०५] (देवजनाः मा पुनन्तु) दिव्य जन हमें पवित्र करें, (वसवः) अष्ट वसु (धिया) बुद्धिके द्वारा हमें (पुनन्तु) पवित्र करें। (विश्वे देवाः मा पुनीत) सब देव मुझे पवित्र करें। (जातवेद) जातवेद ! (मा पुनीहि) मुझे पवित्र कर ॥ २७ ॥

[६०६] हे (सोम) सोम ! (प्र प्यायस्व) हमारा संवर्धन कर तथा (विश्वेभिः अंशुभिः) सब प्रकारसे (देवेभ्यः उत्तमं हविः) देवोंको अर्पण करने योग्य हविष्य पदार्थ (स्यन्दस्व) हमारे पास हो ऐसा कर ॥ २८ ॥

[६०७] (प्रियं) उपासकोंको प्रिय (पनिप्नतं) शब्द करनेवाले (युवानं) तरुण (आहुति वृधं) आहुतियोंसे बढनेवाले पवमानको हम (नमः) नमन करते हैं और (उप अगन्म) उसके समीप जाते हैं ॥ २९ ॥

[६०८] (अलाय्यस्य) हमला करनेवाले शत्रुका (परशुः) शस्त्र (ननाश) नष्ट होता है। हे (सोम देव) देव सोम ! (आ पवस्व) आकर अपना रस दे। (आखुं चित् एव) शत्रुका नाश कर ॥ ३० ॥

१ अलाय्यस्य परशुः ननाश— हमला करनेवाले शत्रुके शस्त्र नष्ट करने योग्य होते हैं। अपने प्रयत्नसे शत्रुके शस्त्र अस्त्र नष्ट करना योग्य है।

२ आखुं चित् एव— शत्रुका नाश करो।

×

६०९ यः पा॑वमा॒नीर॒ध्ये॒त्यृषि॑भि॒: संभृ॑तं॒ रस॑म् ।
सर्वं॒ स पू॒तम॑श्नाति स्वदि॒तं मा॑त॒रिश्व॑ना ॥ ३१ ॥
६१० पा॒व॒मा॒नीर्यो अ॒ध्ये॒त्यृषि॑भि॒: संभृ॑तं॒ रस॑म् ।
तस्मै॒ सर॑स्वती दुहे क्षी॒रं स॒र्पिर्मधू॑द॒कम् ॥ ३२ ॥

[६८]

(ऋषिः- वत्सप्रिर्भालन्दनः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, १० त्रिष्टुप् ।)

६११ प्र दे॒वमच्छा॒ मधु॑मन्त॒ इन्द॒वो ऽसि॑ष्यदन्त॒ गाव॒ आ न धे॒नव॑: ।
ब॒र्हि॒षदो॑ वच॒नाव॑न्त॒ ऊध॑भिः परि॒स्रुत॑मु॒स्रिया॑ नि॒र्णिजं॑ धिरे ॥ १ ॥

अर्थ— [६०९] (यः) जो मनुष्य (पावमानीः) पवमान देवताकी स्तुति करनेवाले मंत्रोंका अर्थात् (ऋषिभिः संभृतं रसं) ऋषियोंके द्वारा संग्रह किये सारभूत मंत्रोंका (अध्येति) अध्ययन करता है (सः) वह मनुष्य (सर्वं पूतं अश्नाति) सब पवित्र अन्न ही भक्षण करता है (मातरिश्वना स्वदितं) वायुने जो प्रथम भक्षण किया होता है ॥ ३१ ॥

शुद्ध वायुसे खाया हुआ, अर्थात् शुद्ध वायुसे पवित्र हुआ पवमान है। इस पवमान सूक्तोंका अध्ययन ऋषि करते थे और उससे बोध प्राप्त करते थे ।

[६१०] (यः) जो (पवमानीः) पवमान अर्थात् सोम देवताके मंत्रोंके संग्रहका (अध्येति) अध्ययन करता है, यह पवमानके मंत्रोंका संग्रह (ऋषिभिः संभृतं रसं) ऋषियोंने एकत्रित किया ज्ञानका रस ही है, (तस्मै) उस अध्ययन करनेवालेके हित करनेके लिये (सरस्वती) विद्यादेवी (क्षीरं) दूध, (सर्पिः) घी, (मधु) मध (उदकं दुहे) जल दुहकर देती है ॥ ३२ ॥

जो इन पवमानके मंत्रोंका अध्ययन करता है, उसको पर्याप्त मधुर अन्न प्राप्त होता है। और इसके सेवनसे उसका अत्यंत कल्याण होता है ।

[६८]

[६११] (मधुमन्त इन्दवः) मधुर सोमरस (देवं) इन्द्र देवके पास पहुंचनेके लिये (अच्छ) उत्तम रीतिसे (प्र असिष्यदन्त) प्रवाहित हुए । (गावः धेनवः आ) दूध देनेवाली गौवें जैसी अपने बछेके पास दूध पिलानेके लिये जाती है। (बर्हिषदः उस्रियाः) यज्ञमें बैठनेवाली गौवें (ऊधभिः) अपने दूध देनेके भागोंके साथ (वचनावन्तः) हंबारव शब्द करती हुई (परिस्रुतं निर्णिजं धिरे) दूध इन्द्रके लिये धारण करती हैं ॥ १ ॥

१ मधुमन्त इन्दवः देवं अच्छ प्र असिष्यन्त— मधुर सोमरस इन्द्रको देनेके लिये उत्तम रीतिसे तैयार किये हैं ।

२ गावः धेनवः आ— गौवें अपने बछेको दूध देनेके लिये जैसी तैयार रहती हैं, वैसे सोमरस इन्द्रको देनेके लिये तैयार हुए ।

३ बर्हिषदः उस्रियाः ऊधभिः वचनावन्तः परिस्रुतं निर्णिजं धिरे— यज्ञ स्थानमें बैठी हुई गौवें जिस प्रकार अपने दुग्धाशयमें दूध धारण करती हैं और यज्ञ करनेवालोंके वचन सुननेकी इच्छा करती हैं, उस प्रकार ये सोमरस यज्ञमें तैयार होकर यज्ञमें जानेकी इच्छा करते हैं ।

६१२ स रोरुवदभि पूर्वा अचिक्रद—दुपारुहः श्रथयन् त्स्वादते हरिः ।
तिरः पवित्रं परियन्नुरु ज्रयो नि शर्याणि दधते देव आ वरम् ॥ २ ॥
६१३ वि यो ममे यम्या संयती मदः साकंवृधा पयसा पिन्वदक्षिता ।
मही अपारे रजसी विवेविद—दभिव्रजन्नक्षितं पाज आ ददे ॥ ३ ॥
६१४ स मातरा विचरन् वाजयन्नपः प्र मेधिरः स्वधया पिन्वते पदम् ।
अंशुर्यवेन पिपिशे यतो नृभिः सं जामिभिर्नसते रक्षते शिरः ॥ ४ ॥

अर्थ— [६१२] (रोरुवत् सः) शब्द करनेवाला वह सोम (पूर्वा अभि) पहिली मुख्य स्तुतियां (अचिक्रदत्) सुनता है । (हरिः) हरे रंगका वह सोम (उपारुहः) ऊपर रहकर (श्रथयन्) विशेष रूपसे (स्वादते) मीठा रस बनाता है । (पवित्रं तिरः) छाननीका तिरस्कार करके (परियन्) आगे जानेवाला यह सोम (उरु ज्रयः) बडा वेग धारण करता है (शर्याणि नि दधते) शत्रुओंको दूर करता है और यह (देवः) दिव्य सोम (वरं आ दधते) श्रेष्ठको धारण करता है ।

१ रोरुवत् पूर्वा अभि अचिक्रदत्— शब्द करता हुआ यह सोमरस पात्रमें गिरते समय शब्द करता हुआ गिरता है । पात्रमें गिरनेका इसका शब्द होता है ।

२ हरिः उपारुहः श्रथयन् स्वदते— हरे रंगका यह सोम ऊपरसे नीचेके पात्रमें गिरता हुआ शब्द करते हुए गिरता है ।

३ पवित्रं तिरः परियन् उरु ज्रयः— छाननीसे नीचे गिरनेके समय बडे वेगसे नीचे गिरता है ।

४ शर्याणि निदधते— शत्रुओंको दूर करता है ।

५ देवः वरं आ दधते— यह दिव्य सोम श्रेष्ठोंको धारण करता है । श्रेष्ठोंको अपना आश्रय देकर उनको सुरक्षित रखता है ।

[६१३] (यः मदः) जो आनंद बढानेवाला सोमरस (यम्या संयती) परस्पर साथ रहनेवाली द्यावा पृथिवीको (विममे) विशेष रीतिसे साथ रखता है, इससे वे दोनों (साकं वृधा) साथ रहकर उन्नति करता हैं, तथा (अक्षिता) क्षीण नहीं होती, इसके लिये यह सोमरस (पयसा अपिन्वत्) दूधके साथ मिश्रित होता है । तथा (मही अपारे रजसी) बडे अपार द्यावा पृथिवी है यह (विवेदिदत्) जानता है और (आभिव्रजन्) आगे बढता हुआ (अक्षितं पाजः) अक्षय अन्नको (आददे) स्वीकारता है ॥ ३ ॥

१ यः मदः यम्या संयती विममे— जो आनंद बढानेवाला सोम द्युलोक और पृथिवीको साथ रखता है।

२ साकं वृधा अक्षिता— साथ रहकर बढनेवाली अक्षय ऐसी ये द्यावा पृथिवी हैं यह जानना चाहिये ।

३ मही अपारे रजसी विवेदिदत्— ये द्यावा पृथिवी बडे विशाल है यह जानता है ।

४ अक्षितं पाजः आददे— अविनाशी अर्थात् कम न होनेवाला अन्न यह प्राप्त करता है ।

[६१४] (मेधिरः) बुद्धिमान (सः) वह सोम (मातरा) मातारूपी द्यु और पृथिवी (विचरन्) के ऊपरसे विचरण करता है, और (अपः वाजयन्) जलोंको प्रेरित करता है। यह (स्वधया) अपनी शक्तिसे (पदं प्र पिन्वते) अपना पांव प्रेरता है। (अंशुः) यह सोम (यवेन पिपिशे) जबके अन्नसे पुष्ट होता है। यह सोम (नृभिः जामिभिः) ऋत्विजोंकी अंगुलियोंसे (सं नसते) मिलकर रहता है (शिरः रक्षते) सब भूतमात्रका रक्षण करता है ॥ ४ ॥

१ मेधिरः सः मातरा विचरन्— वह बुद्धिमान सोम द्युलोक और पृथिवीपर भ्रमण करता है। इस सोमको हिमालयके शिखरके ऊपरसे याज्ञिक लोग लाते हैं और देशभर ले जाकर यज्ञ करते हैं ।

२ अपः वाजयन्— यह सोम अन्तरिक्षसे जलोंको नीचे पृथिवी पर भेजता है । इससे वृष्टि होती है । यह पर्वतके शिखरपर रहता है अतः वह वहांसे वृष्टिको पृथिवी पर भेजता है ऐसा वर्णन किया गया है ।

३ नृभिः जामिभिः सं नसते— यह सोम यज्ञकर्ता ऋत्विजोंके साथ रहता है । यज्ञकर्ताके साथ सोम रहता है ।

४ रक्षते— सबका रक्षण करता है। यह सोम उत्तम अन्न है, बल बढाता है। अतः यह सबका रक्षक होता है।

६१५ सं दक्षेण मनसा जायते कविॠतस्य गर्भो निहितो यमा परः ।
यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुर्गुहा हितं जनिम नेममुद्यतम् ॥ ५ ॥

६१६ मन्द्रस्य रूपं विविदुर्मनीषिणः श्येनो यदन्धो अभरत् परावतः ।
तं मर्जयन्त सुवृधं नदीष्वाँ उशन्तमंशुं परियन्तमृग्मियम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [६१५] (दक्षेण मनसा) दक्ष मनसे (संजायते) सम्यक् रीतिसे यह सोम उत्पन्न होता है । यह (ऋतस्य गर्भः) यज्ञका उत्पत्ति स्थान है । यह (यमा) नियमके अनुसार (परः निहितः) ऊपरके स्थानमें रखा है । (यूना) ये दोनों, सूर्य और सोम (प्रथमं विजज्ञतुः) प्रथम मालूम हुए । (गुहा हितं) गुप्त स्थानमें रहा इनका (जनिम) जन्म (नेमं उद्यतं) नियमानुसार प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

१ दक्षेन मनसा संजायते— दक्षतासे संयुक्त मनसे यह सोम उत्पन्न होता है । सोमरस पीनेसे मनमें विशेष स्फुरण उत्पन्न होता है और यह स्फुरण मनुष्यको यज्ञ करनेका उत्साह बढाता है ।

२ ऋतस्य गर्भः— यह सोम यज्ञका गर्भ है ऐसा कहते हैं । यज्ञकी उत्पत्ति सोमकी प्राप्ति होनेके पश्चात् ही हो गयी है ।

३ परः निहितः— यह सोम पर्वतके शिखर पर रहता है ।

४ युना प्रथमं विजज्ञतुः— सूर्य और चन्द्र ये प्रथम दीखे । इनमें चन्द्र ही सोम है । चन्द्रका नाम इस कारण सोम है ।

५ गुहाहितं जनिम— ये गुहामें, गुप्त स्थानमें, उदयके पूर्व रहते हैं ।

६ नेमं उद्यतं— नियमानुसार ये सूर्य और सोम (चन्द्र) प्रकाशित होते हैं । नियमानुसार इनका उदय होता है, और इनका अस्त भी नियमानुसार ही होता है । ये नियमानुसार घूमते रहते दीखते हैं ।

[६१६] (मनीषिणः) ज्ञानी जनोंने (मन्द्रस्य रूपं विविदुः) आनंद बढानेवाले इस सोमका स्वरूप जाना । (यत् अन्धः) जो सोमरूप अन्न (श्येनः परावतः अभरत्) श्येन पक्षीने दूरसे लाया था । (तं सुवृधं) उस उत्तम रीतिसे बढनेवाले सोमको (नदीषु) जलोंमें (आ मर्जयन्तः) उत्तम रीतिसे छानते हैं । यह सोम (उशंतं) देवोंके पास जानेकी इच्छा करता है, (परियन्तं) देवोंके समीप जाता है और यह सोम (ऋग्मियं) स्तुति करने योग्य है ॥ ६ ॥

१ मनीषिणः मन्द्रस्य रूपं विविदुः— ज्ञानी जनोंने इस आनंद बढानेवाले सोमके रूपों तथा गुणोंको जान लिया था । इस कारण वे ज्ञानी जन इसका यज्ञ करते और सेवन करते थे ।

२ यत् अन्धः श्येनः परावतः अभरत्— जिस अन्नरूप इस सोमको श्येन पक्षीने दूरसे लाया था । पर्वतके शिखर परसे लाया था ।

३ तं सुवृधं नदीषु आ मर्जयन्तः— उस उत्तम प्रकार आनंद बढानेवाले इस सोमको नदीके जलमें ऋत्विजोंने शुद्ध किया ।

४ उशंतं परियन्तं ऋग्मियं— यह सोम देवोंको अर्पण करने योग्य है, वह देवोंके पास जाता है अतः स्तुतिके योग्य है । यज्ञमें सोम देवोंको अर्पण किया जाता है और पश्चात् यज्ञकर्ता उस सोमरसका सेवन करते हैं ।

६१७ त्वां मृजन्ति दश योषणः सुतं सोम ऋषिभिर्मतिभिर्धीतिभिर्हितम् ।
अव्यो वारेभिरुत देवहूतिभि- र्नृभिर्यतो वाजमा दर्षि सातये ॥ ७ ॥
६१८ परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभः ।
यो धारया मधुमाँ ऊर्मिणा दिव इयर्ति वाचं रयिषाळमर्त्यः ॥ ८ ॥
६१९ अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत् प्रियम् ॥ ९ ॥

अर्थ — [६१७] हे (सोम) सोम ! (योषणः दश) दस अंगुलियां (त्वां सुतं) तुझ रस निकाले सोमको (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं । यह सोम (ऋषिभिः) ऋषियोंने (मतिभिः) बुद्धिपूर्वक (धीतिभिः हितं) यज्ञकर्मोंके द्वारा यज्ञस्थानमें रखा होता है । यह सोम (अव्यः वारेभिः) भेडीके बालोंकी छाननीसे छाना (नृभिः देवहूतिभिः यतः) देवोंकी स्तुति करनेवाले ऋत्विजोंने रखा (सातये) दानके लिये (वाजं आ दर्षि) अन्न देता है ॥ ७ ॥

१ दश योषणः त्वां सुतं मृजन्ति— ऋत्विजकी दश अंगुलियां सोमको दबाकर रस निकालती हैं और उसको छानकर शुद्ध करती हैं ।

२ ऋषिभिः मतिभिः धीतिभिः हितः— ऋषियोंने अपनी बुद्धिसे यज्ञकर्मके स्थानपर इस सोमको रखा है ।

३ नृभिः देवहूतिभिः सातये यतः— ऋत्विजोंने देवोंकी स्तुतिके साथ देवोंको देनेके लिये यज्ञस्थानमें रखा यह सोम है ।

४ सातये वाजं आदर्षि— दान देनेके लिये यह सोम पर्याप्त अन्न देता है ।

[६१८] (परिप्रयन्तं) यज्ञ पात्रोंमें आनेवाले (वय्यं) देवोंके लिये प्रिय अर्थात् इच्छा करने योग्य (सुषंसदं) उत्तम संगति करने योग्य (सोमं) सोमरसकी (मनीषा स्तुभः अभ्यनूषत) मनः पूर्वक स्तुतियां की जाती हैं । (मधुमान् यः) मधुर रसवाला यह सोम (धारया) धारासे (ऊर्मिणा) ऊर्मिके साथ (दिवः इयर्ति) द्युलोकसे आता है और (रयिषाट् अमर्त्यः) शत्रुके धनपर अपना अधिकार करनेवाला यह अमर सोम (वाचं इयर्ति) स्तुति करनेकी प्रेरणा करता है ।

१ परिप्रयन्तं वय्यं सुसंसदं सोमं मनीषा स्तुभः अभ्यनूषत— यज्ञके पात्रोंमें रखे, देवोंके लिये प्रिय, उत्तम संगति करने योग्य सोमरसकी मनःपूर्वक स्तुति यज्ञमें ऋत्विज करते हैं ।

२ मधुमान् यः धारया ऊर्मिणा दिवः इयर्ति— तेजस्वी यह सोमरस धारासे ऊर्मीके साथ ऊपरसे नीचेके पात्रमें पडता है ।

३ रयिषाट् अमर्त्यः वाचं इयर्ति— शत्रुके धनपर अपना अधिकार करनेवाला यह सोमरस स्तुति करने की प्रेरणा करता है । इस कारण ऋत्विज लोग यज्ञमें इसकी स्तुति करते हैं ।

[६१९] (अयं सोमः) यह सोम (दिवः) द्युलोकसे (विश्वं रजः) सब जल (आ इयर्ति) पृथिवीपर प्रेरीत करता है । (पुनानः सोमः) शुद्ध किया हुआ सोमरस (कलशेषु सीदति) यज्ञके कलशोंमें बैठता–रहता है । (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला यह रस (पुनानः इन्दुः) छाना जानेपर यह सोमरस (प्रियं वरिवः) प्रिय धन (विदत्) प्राप्त करता है । अर्थात् स्तुति करनेवालोंको– ऋत्विजोंको देता है ॥ ९ ॥

१ अयं सोमः दिवः विश्वं रजः आ इयर्ति— यह सोम द्युलोकसे सब जल पृथिवीपर वृष्टिके रूपसे भेजता है । सोम पर्वतके शिखर पर रहता है और वृष्टि ऊपरसे होती है । इसलिये कहा है कि सोम बरसाद नीचे भेजता है ।

२ पुनानः सोमः कलशेषु सीदती— छाना गया सोमरस कलशोंमें रखा रहता है ।

३ अद्रिभिः सुतः पुनानः इन्दुः प्रियं वरिवः ददत्— पत्थरोंसे कूटकर निकाला सोमरस प्रिय धन याजकोंको देता है ।

६२० एवा नः सोम परिषिच्यमानो वयो दधच्चित्रतमं पवस्व ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ १० ॥

[६९]

(ऋषिः- हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ९-१० त्रिष्टुप् ।)

६२१ इषुर्न धन्वन् प्रति धीयते मति- र्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आय- त्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥ १ ॥

६२२ उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ॥ २ ॥

अर्थ— [६२०] हे (सोम) सोम ! तू (परिषिच्यमानः) जल या गौके दूधसे मिलाया हुआ (एव) ही (चित्रतमं वयः दधत्) अनेक प्रकारका अन्न धारण करके (पवस्व) हमें दे। (अद्वेषे) द्वेष रहित (द्यावा-पृथिवी) द्युलोक और पृथिवीको हम (हुवेम) बुलाते हैं। (देवाः) देव (अस्मे सुवीरं रयिं धत्त) हमारे लिये उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन दें ॥ १० ॥

१ परिषिच्यमानः चित्रतमं वयः दधत्-- गौके दूध या जलके साथ मिलाया सोमरस हमें अनेक प्रकार-का अन्न देवे ।

२ अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम— द्वेष रहित हुऐ द्युलोक और पृथिवीके हम पास रहते हैं। द्युलोकसे पृथिवी पर्यंत सब स्थान द्वेष रहित अर्थात् शत्रु रहित हों। यहां पृथिवीसे आकाशतकके स्थानमें हमारा कोइ शत्रु न रहे। सब हमारे मित्र बनकर रहें।

३ देवाः अस्मे सुवीरं रयिं धत्त— देव हमें उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन प्रदान करें। हमें धन मिले और उत्तम वीर पुत्र भी प्राप्त हों। पुत्र उत्तम वीर हों। डरनेवाले संबंधी या पुत्रपौत्र हमें न हों।

[६९]

[६२१] इस इन्द्रकी (मतिः) स्तुति (प्रति धीयते) हमारे द्वारा की जाती है। (न) जिस प्रकार (इषुः धन्वन) बाण धनुष्यपर लगाया जाता है। अथवा (वत्सः न) जैसा पुत्र (मातुः ऊधनि उप सर्जि) माताकी गोदमें बैठता है। (उरुधारा इव) दूध देनेवाली गौके समान (अग्रे आयती) समीप आनेवाली (दुहे) दूध देती है (अस्य व्रतेषु अपि) इसके व्रतोंमें भी (सोम) सोम (इष्यते) प्रेरित किया जाता है ॥ १ ॥

१ मतिः प्रति धीयते— इन्द्रकी स्तुति की जाती है। स्तुति करनेवालोंके मनमें दूसरा कोई विषय नहीं होता।

२ इषु धन्वन् न— जैसा बाण धनुष्यपर धारण करते हैं, उस समय बाणका लक्ष्य निश्चित रहता है। उस प्रकार देवकी स्तुति करनेके समय स्तुति करनेवालेका ध्यान देवताके ऊपर ही रहना चाहिये।

३ वत्सः मातुः ऊधनि उपसर्जि— पुत्र माताके गोदमें बैठता है उस समय पुत्रका ध्यान माताके ऊपर ही रहता है। वैसा उपासना करनेवालेका ध्यान उपास्य पर हि होना चाहिये। इधर उधर मन भटकना योग्य नहीं है।

[६२२] इन्द्रकी (मतिः) स्तुति (उपो पृच्यते) की जाती है तथा (मधु) मधुर सोमरसकी धारा (सिच्यते) दी जाती है। वह (मन्द्राजनी) आनन्द दनेवाली रसधारा (आसनि अन्तः चोदते) इन्द्रके मुखमें प्रेरित की जाती है। (मधुमान् द्रप्सः) मधुर प्रवाहित होनेवाला रस (प्रघ्नतां संतनिः इव) शत्रुपर आघात करने वालोंके बाणोंके समान (पवमानः) सोमरस (वारं परि अर्षति) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे शीघ्रतासे जाता है ॥ २ ॥

१ मतिः उपो पृच्यते— देवताकी स्तुति की जाती है।

२ मधु सिच्यते— मधुर सोमरस निकाला जाता है।

३ मन्द्राजनी आसनि अन्तः चोदते— आनन्द देनेवाला सोमरस इन्द्रके मुखमें दिया जाता है।

४ मधुमान् द्रप्सः पवमान. प्रघ्नतां संतनिः इव वारं परि अर्षति— मीठा सोमरस आघात करनेवालोंके बाणोंके समान बालोंकी छाननीमेंसे नीचे उतरता है।

६२३ अव्ये॑ वधू॒युः प॑वते॒ परि॑ त्व॒चि श्र॑थ्नी॒ते न॒प्तीरदि॑ते॑र्ऋ॒तं यते॑ ।
हरि॑रक्रान् यज॒तः सं॑य॒तो मदो॒ नृम्णा॒ शिशा॑नो महि॒षो न शो॑भते ॥ ३ ॥
६२४ उ॒क्षा मि॑मा॒ति प्रति॑ यन्ति धे॒नवो॑ दे॒वस्य॑ दे॒वीरुप॑ यन्ति निष्कृ॒तम् ।
अत्य॑क्रमी॒दर्जु॑नं॒ वार॑म॒व्यय॒मत्कं॒ न नि॒क्तं परि॒ सोमो॑ अव्यत ॥ ४ ॥
६२५ अमृ॑क्तेन॒ रुश॑ता॒ वास॑सा॒ हरि॒रम॑र्त्यो निर्णिजा॒नः परि॑ व्यत ।
दि॒वस्पृ॒ष्ठं ब॒र्हणा॑ नि॒र्णिजे॑ कृतो॒पस्तर॑णं च॒म्वो॑र्नभ॒स्मय॑म् ॥ ५ ॥

अर्थ — [६२३] (वधूयुः) वधूके समान सोम (अव्ये त्वचि) मेंढीके चर्मपर (परि पवते) स्वच्छ किया जाता है। (अदितेः नप्ती) अदीन पृथिवीकी नात सोम औषधि (ऋतं यते) यज्ञमें जानेवाले यजमानके लिये (श्रथ्नीते) अग्र भागमें जानेकी प्रेरणा करती है। (हरिः) हरे रंगका (यजतः) यज्ञके लिये योग्य (संयतः मदः) प्राप्त किया हुआ यह आनंद देनेवाला सोम (अक्रान्) आगे बढता है। यह सोम (नृम्णा) बलोंको (शिशानः) तीक्ष्ण करके बढाता है। (महिषः न) बडे वीरके समान (शोभते) सुशोभित दीखता है ॥ ३ ॥

१ वधूयुः अव्ये त्वचि परि पवते— वधूके समान शुद्ध सोम मेंढीके चर्मपर स्वच्छ किया जाता है। मेंढीके चर्मपर पात्रोंमें रखा सोम छाना जाकर शुद्ध किया जाता है।

२ अदितेः नप्ती ऋतं यते श्रथ्नीते— अदितिकी नात यह सोमवल्ली यज्ञमें जानेकी प्रेरणा यजमानको देती है। अदितिसे देव, देवोंसे वर्षा, वर्षासे सोम औषधि होती है। अतः यह अदितिकी नात है।

३ हरिः यजतः संयतः मदः अक्रान्— हरे रंगका यह सोम यज्ञ करनेवालेका आनंद बढाता हुआ यज्ञमें आगे जाता है।

४ नृम्णा शिशानः महिषः न शोभते— अपने बलोंसे वीरके समान शोभता है।

[६२४] (उक्षा मिमाति) बैल पुकारता है, (धेनवः प्रति यन्ति) उसका अनुकरण गौवें करती हैं। (देवस्य निष्कृतं) तेजस्वी पुरुषके स्थानको (देवीः उपयन्ति) देवियां जाती हैं। यह सोमरस (अव्ययं वारं) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे (अत्यक्रमीत्) छाना जाता है और यह (सोमः) सोम (अत्कं न निक्तं) अपने कवचको (परि अव्यत) प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

१ उक्षा मिमाति, परि धेनवः यन्ति— बैल पुकारता है उसका शब्द सुनकर गौवें उसके समीप जाती है।

२ देवस्य निष्कृतं देवीः उपयन्ति— देवके स्थानपर देवियां जाकर रहती हैं। पुरुषके स्थानमें जाकर रहती हैं।

३ अव्ययं वारं अत्यक्रमीत्— मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे सोमरस छाना जाता है।

४ सोमः अत्कं न निक्तं परि अव्यत्— सोमरस अपने कवचको अर्थात् जलको अपने ऊपर धारण करता है अर्थात् सोमरस जलमें मिलाया जाता है।

[६२५] (अमर्त्यः हरिः) अमर हरे रंगका सोम (निर्णिजानः) जलके साथ मिश्रित होकर शुद्ध होता हुआ (अमृक्तेन रुशता वाससा) शुद्ध किये तेजस्वी वस्त्रसे (परिव्यत) आच्छादित होता है। (दिवस्पृष्ठं) द्युलोकके पृष्ठ भागपर रहनेवाले सूर्यको निर्माण करके (बर्हणा निर्णिजे) तेजसे युक्त करता है। यह सोम (चम्वोः नभस्मयं) पात्रमें प्रकाशमय रस देता है ॥ ५ ॥

१ अमर्त्यः हरिः अमृक्तेन रुशता वाससा परिव्यत— यह अमर हरे रंगका सोमरस अमर तेजस्वी वस्त्रसे आच्छादित होता है। सोमरसमें गौका श्वेत वर्णका दूध मिलाया जाता है। वह मिश्रण तेजस्वी दीखता है।

२ दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजं, चम्वोः नभस्मयं— यह सोम द्युलोकके समान तेजस्वी दीखता है, अतः वह पात्रके अन्दर चमकता रहता है। सोमरस तेजस्वी होता है, अतः वह पात्रमें रखनेपर भी चमकता रहता है। अतः वह तेजस्वी दीखता है।

६२६ सूर्य॑स्येव र॒श्मयो॑ द्रावयि॒त्नवो॑ मत्स॒रास॑ः प्र॒सुप॑ः सा॒कमी॑रते ।
तन्तुं॑ त॒तं परि॒ सर्गा॑स आ॒शवो॒ नेन्द्रा॑दृते प॑वते॒ धाम॒ किं च॒न ॥ ६ ॥

६२७ सिन्धो॑रिव प्रव॒णे नि॒म्न आ॒शवो॒ वृष॑च्युता॒ मदा॑सो गा॒तुमा॑शत ।
शं नो॑ निवे॒शे द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे॒ ऽस्मे वाजा॑ः सोम तिष्ठन्तु कृ॒ष्टय॑ः ॥ ७ ॥

६२८ आ न॑ः पवस्व॒ वसु॑म॒द्धिर॑ण्यव॒दश्वा॑व॒द्गोम॒द्यव॑मत् सु॒वीर्य॑म् ।
यू॒यं हि सो॑म पि॒तरो॒ मम॒ स्थन॑ दि॒वो मू॒र्धान॑ः प्रस्थि॑ता वय॒स्कृत॑ः ॥ ८ ॥

अर्थ— [६२६] (सूर्यस्य रश्मयः इव) सूर्यकी किरणोंके समान (द्रावयित्नवः मत्सरासः) गमनशील तथा आनंद देनेवाले (प्रसुपः) शत्रुओंका विनाश करनेवाले (आशवः) त्वराशील (सर्गासः) सोमरस (ततं तन्तुं) तने हुए धागोंमेंसे (साकं ईरते) साथ छाने जाते है । वे सोमरस (इन्द्रात् ऋते) इन्द्रके सिवाय (किंचन धाम) कोई भी स्थानको (न पवते) जाते नहीं ॥ ६ ॥

१ मत्सरासः सर्गासः साकं ईरते— आनंद देनेवाले ये सोमरस साथ साथ छाननीसे नीचेके पात्रमें उतरते हैं ।

२ इन्द्रात् ऋते किंचन धाम न पवते— इन्द्रके सिवाय दूसरा कोई स्थान उनको पसंत नहीं हैं ।

३ प्रसुपः— ये सोमरस शत्रुका नाश करते हैं ।

इन सोमरसोंका प्रथम यज्ञमें देवताओंकि लिये अर्पण करके पश्चात् उनका सेवन करना योग्य है ।

[६२७] (वृषच्युताः) ऋत्विजोंके द्वारा रस निकाले सोमरस (मदासः) आनंद देते हैं । वे इन्द्रके पास (गातुं आशत) जानेकी इच्छा करते हैं । (सिन्धोः प्रवणे इव) नदीके प्रवाह जैसे निम्न भागमें जाते हैं वैसे वे इन्द्रके पास जाते हैं । (नः निवेशे) हमारे घरमें (द्विपदे चतुष्पदे शं) दो पांववाले अर्थात् मनुष्योंका तथा गौ आदि पशुओंका कल्याण हो । हे सोम ! (अस्मे वाजाः) हमारे पास सब अन्न तथा (कृष्टयः तिष्ठन्तु) पुत्र आदि जन रहें ॥ ७ ॥

१ वृषच्युताः मदासः गातुं आशत— ऋत्विजोंने तैयार किये सोमरस इन्द्रके पास जानेकी इच्छा करते हैं । यज्ञमें इन्द्रको सोमरस देते हैं और पश्चात् यज्ञकर्ता उसका स्वीकार करते हैं ।

२ सिन्धो प्रवणे इव— नदीके जल जैसे नीचेके भागमें जाते हैं वैसे ये रस यज्ञके स्थानमें जाते हैं । सोम पर्वतके शिखरपर होता है वहांसे वह यज्ञमें लाया जाता है । अर्थात् वह सोम पर्वतके शिखरपरसे नीचे लाया जाता है ।

३ नः निवेशे द्विपदे चतुष्पदे शं-- हमारे स्थानमें मनुष्यों तथा पशुओंका कल्याण होता रहे ।

४ अस्मे वाजाः कृष्टयः तिष्ठन्तु-- हमारे पास सब प्रकारके अन्न तथा पुत्र पौत्र आदि सब आनंद प्रसन्न स्थितिमें रहें ।

[६२८] हे (सोम) सोम ! (नः) हमारे लिये (वसुमत्) धनसे युक्त (हिरण्यवत्) सुवर्णसे युक्त (अश्वावत्) घोडोंसे युक्त (गोमत्) गौवोंसे युक्त (यवमत्) यव आदि धान्यसे युक्त (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम की शक्तिसे युक्त धन (आ पवस्व) प्राप्त हो । (यूयं हि मम पितरः स्थन) आप ही हमारे पिता हैं । (दिवः मूर्धानः प्रस्थिताः) द्युलोकके शिखरपर तुम रहते हो तथा तुम (वयस्कृतः) अन्न देनेवाले हो ॥ ८ ॥

सोम हम मानवोंके लिये नीचे लिखे जैसा होता है ।

१ वसुमत्— धनसे युक्त ।

२ हिरण्यवत्— सुवर्ण देनेवाला ।

६२९ एते सोमाः पवमानास इन्द्रं रथा इव प्र ययुः सातिमच्छ ।
सुताः पवित्रमति यन्त्यव्यं हित्वी वव्रिं हरितो वृष्टिमच्छ ॥ ९ ॥
६३० इन्दविन्द्राय बृहते पवस्व सुमृळीको अनवद्यो रिशादाः ।
भरा चन्द्राणि गृणते वसूनि देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १० ॥

अर्थ— ३ अश्वावत् – घोडे देनेवाला ।
४ गोमत्— गौवोंसे युक्त ।
५ यवमत्— अन्न देनेवाला ।
६ सुवीर्य— उत्तम वीर्य देनेवाला ।
७ युयं हि मम पितरः— तुम हमारे पितर हो ।
८ दिवः मूर्धानः प्रस्थिताः — द्युलोकमें रहते हो ।
९ वयस्कृतः— अन्न देते हैं ।
सोमसे इनकी प्राप्ती हो सकती है ।

[६२९] (पवमानासः एते सोमाः) स्वच्छ किये जानेवाले ये सोमरस (रथाः सातिः इव) रथ जैसे शत्रुका धन लूटकर लानेके लिये (अच्छ प्रययुः) अच्छी तरह जाते हैं वैसे (इन्द्रं) इन्द्रके पास जाते हैं । ये सोमरस (सुताः) रसरूपमें (अव्ययं पवित्रं अति यन्ति) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे जाते हैं । (वव्रिं हित्वी) वृद्धताको दूर करके तरुण होकर (वृष्टिं अच्छ) वृष्टीके स्थान पर जाते हैं ॥ ९ ॥

१ पवमानासः एते सोमाः इन्द्रं अच्छ प्रययुः— स्वच्छ किये ये सोमरस सीधे इन्द्रके पास जाते हैं ।
२ रथा सातिं इव— रथ जैसे शत्रुका धन लूटनेके लिये जाते हैं ।
३ सुताः अव्ययं पवित्रं अति यन्ति— रस निकाले सोम मेढीकी छाननीमेंसे छाने जाते हैं ।
४ वव्रिं हित्वी— वृद्धावस्थाको दूर किया जा सकता है ।
५ वृष्टिं अच्छ— जहां वृष्टि होती है उस प्रदेशमें जाकर रहना अच्छा है । वृष्टि न होनेवाले स्थानकी अपेक्षा वृष्टि जहां अच्छी होती है वह स्थान रहनेके लिये अच्छा होता है । वृष्टी जहां होती है, वहां हरियावल होती है । जहां वृष्टि नहीं होती वहां धान्य आदि नहीं उत्पन्न होता । अतः वृष्टि होती है वह स्थान अच्छा होता है ।

[६३०] हे (इन्दो) सोम ! (बृहते इन्द्राय पवस्व) बडे इन्द्रके लिये रस निकालकर दे । (सु-मृळीकः) उत्तम सुख देनेवाला (अनवद्यः रिशादाः) अनिंदनीय और शत्रुका नाश करनेवाला तू हो । (गृणते) स्तुति करनेवालेके लिये (वसूनि आभर) धन भरपूर दो । हे (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोको ! (नः) हमारा (देवैः) दिव्य धनोंके द्वारा (प्रावतं) संरक्षण करो ॥ १० ॥

१ बृहते इन्द्राय पवस्व— महान इन्द्रको देनेके लिये रस निकाल कर दो ।
२ सुमृळीकः अनवद्यः रिशादाः— उत्तम सुख देनेवाला हो, अनिंदनीय बनो और शत्रुओंका नाश करनेवाला बनो ।
३ गृणते वसूनि आभर— स्तुति करनेवालेके लिये भरपूर धन दो ।
४ द्यावा पृथिवी नः देवैः प्रावतं – द्युलोक और पृथिवी ये दोनों लोक दिव्य शक्तियोंसे हमारा संरक्षण करें ।

×

[७०]

(ऋषिः- रेणुर्वैश्वामित्रः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, १० त्रिष्टुप् ।)

६३१ त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ १ ॥

६३२ स भिक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः ॥ २ ॥

६३३ ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवो ऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत ॥ ३ ॥

---

[७०]

अर्थ -- [६३१] (पूर्व्ये व्योमनी) पूर्व समयमें किये यज्ञमें (त्रिः सप्त धेनवः) तीन वार सात अर्थात् इक्कीस गौवें (सत्यां आशिरं) उत्तम दूध आदि (दुदुह्रे) देती रहीं। (चत्वारि अन्या भुवनानि) इसने चार अन्य स्थान (चारूणि चक्रे) सुन्दर निर्माण किये। (यत् ऋतैः अवर्धत) जो यज्ञोंके द्वारा बढते रहे हैं ॥ १ ॥

१ पूर्व्ये व्योमनि त्रिः सप्त धेनवः सत्यां आशिरं दुदुह्रे— पूर्व समयमें किये यज्ञोंमें इक्कीस गौवें दूध देती थीं। इनके दूधसे घी बनता था और उससे यज्ञ किया जाता था। गौका घी यज्ञमें हवनके लिये प्रयुक्त होता था। गौके घीका हवन ही रोगकृमियोंको विनष्ट करनेमें समर्थ रहता है। किसी दूसरे घीमें यह शुभ गुण नहीं हैं, इसी लिये यज्ञमें गौके घीका ही होना उचित है।

२ चत्वारि अन्या भुवनानि चारूणि चक्रे यत् ऋतैः अवर्धत— चार अन्य ऐसे सुन्दर स्थान बनाये गये जो यज्ञोंसे बढ रहे थे। जहां यज्ञ होता है वह स्थान रहनेके लिये अच्छा होता है। यज्ञ स्थानमें यज्ञ होते हैं, इससे वह स्थान रोगरहित होता है, अतः वह रहनेके लिये योग्य होता है।

[६३२] (सः) वह पवमान सोम (चारुणः अमृतस्य) सुन्दर उदककी (भिक्षमाणः) मांग करता है। (उभे द्यावा) दोनों द्युलोक और पृथिवी (काव्येन विशश्रथे) काव्यके द्वारा विभक्त रही हैं। (तेजिष्ठा अपः) तेजस्वी जल (मंहना) अपने महत्वसे (परि व्यत) व्याप्त होता है। (यदि) जब (देवस्य श्रवसा) तेजस्वी सोमका स्थान यज्ञके द्वारा (विदुः) जानते हैं ॥ २ ॥

१ सः चारुणः अमृतस्य भिक्षमाणः— वह सोम सुंदर उदक चाहता है। सोमरस अपनेमें स्वच्छ उदक मिलानेकी इच्छा करता है। सोममें स्वच्छ जल मिलाया जाता है।

२ उभे द्यावा पृथिवी काव्येन विशश्रथे— दोनों द्युलोक और पृथिवी काव्यके वर्णनसे पृथक् प्रतीत होती दीखती हैं।

३ तेजिष्ठा अपः मंहना परिव्यत— तेजस्वी जल अपनी महिमासे व्यापता है। इन द्यावा पृथिवीमें फैलता है।

४ यदि देवस्य श्रवसा विदुः— यदि सोम देवका स्थान ये जानते हैं उनका कल्याण सोम कर सकता है। सोमके गुण जानने चाहिये और उनका उपयोग यज्ञकर्ममें योग्य रीतिसे करना चाहिये।

[६३३] (अस्य केतवः) इस सोमके किरण (अमृत्यवः) अमर तथा (अदाभ्यासः) अहिंसित होकर (उभे जनुषी) दोनों स्थावर तथा जंगम पदार्थोंको (अनु सन्तु) अनुकूल होकर सुरक्षित रखते रहें। (येभिः) जिनके किरणोंके द्वारा (नृम्णा) बल और (देव्या) दिव्य अन्न (पुनते) पवित्र करता है। (आदित्) इसके अनन्तर (राजानं) सोमको (मनना) माननीय स्तुतियां (अगृभ्णत) प्रशंसित करती हैं ॥ ३ ॥

६३४ स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा ।
व्रतानि पानो अमृतस्य चारुण उभे नृचक्षा अनु पश्यते विशौ ॥ ४ ॥
६३५ स मर्मृजान इन्द्रियाय धायस ओभे अन्ता रोदसी हर्षते हितः ।
वृषा शुष्मेण बाधते वि दुर्मतीरादेदिशानः शर्यहेव शुरुधः ॥ ५ ॥

अर्थ— १ अस्य अमृत्यवः अदाभ्यः केतवः अनुयन्तु— इस सोमके किरण अमर तथा किसीके सामर्थ्यसे न दबनेवाले हैं । वे हमारे सहायक होकर रहें । सोमके किरण सहायक होते हैं ।

२ येभिः नृम्णा देव्या पुनते— जिन सोमके प्रकाशके किरणोंसे मनुष्यके बल और अन्न पुनीत होते हैं । मनुष्यका बल बढाते हैं ।

३ आदित् राजानं मनसा अगृभ्णीत — इस कारण इस सोमराजाकी मनकी अनुकूलता करके स्तुति करते हैं । मनन करके उसका सामर्थ्य जानकर उसकी प्रशंसा करते हैं । जो राजा ऐसी सहायता करता है उस प्रजाकी सहायता करनेवाले राजाकी प्रशंसा करनी चाहिये ।

[६३४] (सः) वह (सुकर्मभिः दशभिः) उत्तम कर्म करनेवाली दस अंगुलियोंसे (मृज्यमानः) शुद्ध होनेवाला सोम (सचा) सच्चे सहायक (प्रमे) लोकोंको जानता है, उनकी योग्यतासे उनको यथा योग्य रीतिसे जानता है । अतः वह सोम (मातृषु) माताके समान (मध्यमासु प्र) मध्य स्थानमें- यज्ञस्थानमें रहता है । वह सोम ! (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला सोम (चारुणः अमृतस्य) उत्तम जलकी वृष्टी करनेके लिये (व्रतानि पानः) यज्ञादि व्रतोंका पालन करता है (उभे विशौ) दोनों प्रकारके मनुष्योंको (अनु पश्यते) उत्तम निरीक्षण करता है ॥ ४ ॥

१ सः सुकर्मभिः दशभिः मृज्यमानः सचा प्रमे— वह सोम उत्तम कर्म करनेवाली दस अंगुलियोंसे शुद्ध होता हुआ सच्चे सहायकोंको जानता है । जो उत्तम शुद्धता करते हैं वे उत्तम सहाय्यकारी हैं । यह सहाय्य करनेवालोंकी परीक्षा है ।

२ सः मातृषु मध्यमासु प्र मे — वे माताओंमें उत्तम तथा मध्यमको ठीक प्रकारसे जानता है ।

३ सः नृचक्षाः— वह मनुष्योंके आचरणका निरीक्षण करता है ।

४ चारुणः अमृतस्य व्रतानि पानः — सुंदर अमर व्रतोंका पालन करता है ।

५ उभे विशौ अनु पश्यते— वह दोनों प्रकारके- उत्तम तथा नीच मनुष्योंका उत्तम रीतिसे परीक्षण करता है ।

[६३५] (मर्मृजानः सः) शुद्ध होता हुआ वह सोम (धायसे इन्द्रियाय) सबका धारण करनेवाले इन्द्रके सामर्थ्यके लिये (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें (हितः) रखा हुआ (हर्षते) आनंदित होता है । (वृषा) कामनाओंकी पूर्णता करनेवाला (शुष्मेण) शत्रुका शोषण करनेवाले बलसे (दुर्मतीः विबाधते) दुष्ट बुद्धिके शत्रुओंका विनाश करता है । (आदेदिशानः) पुनः पुनः शत्रुओंको आह्वान देता है, (शर्यहा इव शुरुधः) शत्रुको मारनेमें समर्थ वीर जैसा शत्रुको आह्वान देता है ॥ ५ ॥

१ मर्मृजानः सः धायसे इन्द्रियाय उभे रोदसी हितः हर्षते— शुद्ध होनेवाला सबका धारण करनेवाले इन्द्रको देनेके लिये यज्ञस्थानमें रखा वह सोम आनंदित होता हुआ वहां रहता है । शुद्ध होनेका पहिला आनंद है, सबका आधार होकर रहना दूसरा आनंद है । ये दोनों प्रकारके आनंद सोममें रहते हैं ।

२ शुद्ध होकर परिशुद्ध रहना यह हरएकके लिये आनंद देनेवाला है ।

३ वृषा शुष्मेण दुर्मतीः विबाधते— बलवान होकर अपने बलसे दुष्ट बुद्धिवालोंकी दुष्ट बुद्धिको दूर करना यह सज्जनोंका कर्तव्य है ।

४ आदेदिशानः शर्यहा इव शुरुधः— शत्रुको आह्वान करनेवाला वीर शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होकर अपना वीरत्व दर्शाता है । ऐसा करना योग्य है ।

६३६ स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।
जानन्नृतं प्रथमं यत् स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ६ ॥
६३७ रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७ ॥
६३८ शुचिः पुनानस्तन्वमरेपस—मव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः ॥ ८ ॥

अर्थ — [६३६] (सः) वह सोम (मातरा) द्यावापृथिवीरूपी दोनों माताओंको (ददृशानः) बारंवार देखता हुआ (नानदत्) शब्द करता हुआ (एति) सर्वत्र जाता है। (उस्रियः न) गौका बच्चा जैसा गौके पीछे शब्द करता हुआ जाता है, उस प्रकार यह सोम द्यावा पृथिवीके पास जाता है। जैसा (मरुतां इव स्वनः) मरुतोंका शब्द करते हुए गमन होता है। (यत्) जो उदक (स्वर्णरं) सब मानवोंका हित करता है, उस उदकके समान (प्रथमं ऋतं जानन्) मुख्य सच्चा उदक है यह जानकर (सुक्रतुः) उत्तम यज्ञ करनेवाला यह सोम (प्रशस्तये) स्तुति करनेके लिये (कं अवृणीत) मनुष्यका अर्थात् ऋत्विजोंको प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

१ सः मातरा ददृशानः नानदत् एति— यह सोम द्यावा पृथिवीरूपी दोनों माताओंको प्रेमसे देखकर शब्द करता हुआ, यज्ञ स्थानमें पहुंचता है।

२ उस्रियः न— जैसा गौका बच्चा माता गौके पास जाता है।

३ मरुतां स्वनः इव— मरुत् वीरोंका जैसा शब्द करते हुए गमन होता है, वैसा सोम शब्द करते हुए यज्ञ पात्रमें जाता है।

४ स्वर्णरं जानन् ऋतं सुक्रतुः— उदकको जानकर शुद्ध उदकको उत्तम यज्ञ करनेवाला सोम जानकर उस उदकमें मिल जाता है।

५ प्रशस्तये कं अवृणीत— यज्ञ करनेके लिये उदकके साथ मिलाता है। यज्ञ करनेवाले ऋत्विज सोमरस-को जलमें मिलाते हैं, और उससे यज्ञ करते हैं।

[६३७] (भीमः) शत्रुओंके लिये भयंकर (वृषभः) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (विचक्षणः) उत्तम रीतिसे सबका निरीक्षण करनेवाला वह सोम (तविष्यया) अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाला (हरिणी शृंगे) हरे रंगके दो सींगोंको (शिशानः) तीक्ष्ण करनेवाला (रुवति) शब्द करता है। वह (सोमः) सोम (सुकृतं योनिं) उत्तम रीतिसे किये अपने स्थानको (आ निषीदति) उत्तम रीतिसे बैठता है। इस सोमको स्वच्छ करनेवाली (निर्णिक्) निश्चयसे (गव्ययी त्वक् भवति) मेढीके बालोंकी छाननी है जिस पर वह स्वच्छ किया जाता है ॥ ७ ॥

१ भीमः वृषभः विचक्षणः— भयंकर सामर्थ्य बढानेवाला, कामनाओं पूर्ण करनेवाला तथा उत्तम निरीक्षण करनेवाला यह सोम है। सोमका सेवन करनेसे सामर्थ्य बढता है, इच्छाओंकी पूर्ति होती है। तथा कार्यका उत्तम निरीक्षण करनेकी दक्षता बढती है।

२ हरिणी शृंगे शिशानः— दोनों सींग शत्रुओंको मारनेके लिये तैयार करता है। युद्धकी तैयारी करता है।

३ गव्ययी त्वक् भवति — जिस पर पात्र रखकर उनमें सोम स्वच्छ किया जाता है वह मेढीके बालोंकी छाननी होती है।

४ अव्ययी— मेढीके बालोंकी छाननी होती है जिसमेंसे सोमरस छाना जाता है।

[६३८] (अरेपसं) निष्पाप (तन्वं पुनानः) शरीरको पवित्र करनेवाला (शुचिः) शुद्ध (हरिः) हरे रंगका सोम (सानवि) यज्ञ स्थानमें ऊपर रखे (अव्ये न्यधाविष्ट) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे रखा है। वह यज्ञ-कर्ता (सुकर्मभिः) ऋत्विजोंने मित्र, वरुण, वायु आदि देवताओंके लिये (क्रियते) दिया जाता है।

६३९ पव॑स्व सोम दे॒ववी॑तये॒ वृषे॒न्द्र॑स्य॒ हार्दि॑ सोम॒धान॒मा वि॑श ।
पु॒रा नो॑ बा॒धाद्दु॑रि॒ताति॑ पारय क्षेत्र॒विद्धि॒ दिश॒ आहा॑ विपृच्छ॒ते ॥ ९ ॥
६४० हि॒तो न सप्ति॑र॒भि वाज॑मर्षे॒न्द्र॑स्येन्दो ज॒ठर॒मा प॑वस्व ।
ना॒वा न सिन्धु॒मति॑ पर्षि वि॒द्वाञ्छूरो॒ न युध्य॒न्नव॑ नो नि॒दः स्पः॑ ॥ १० ॥

अर्थ— १ अरेपसं तन्वं पुनानः— निष्पाप कर्म करनेवालोंका शरीर पवित्र होता है ।

२ हरिः सानावि अव्ये न्यधाविष्ट— हरे रंगका सोम मेंढीके बालोंकी छाननीमें रखा होता है ।

३ सुकर्मभिः मित्राय, वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते— उत्तम यज्ञ करनेवाले मित्र, वरुण, वायु आदि देवोंको देनेके लिये तीन धारण शक्तियोंसे युक्त यह सोमका मधुर रस तैयार किया जाता है ।

यह सोमका रस तैयार किया जाता है, और उक्त देवोंको समर्पण किया जाता है । इसके पश्चात् उस सोमरसका पान यज्ञकर्ता लोग करते हैं ।

[६३९] हे (सोम) सोम ! (वृषा) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तू (देववीतये) देवोंको देनेके लिये (पवस्व) रस निकाल कर दे । (इन्द्रस्य हार्दि) इन्द्रके लिये प्रिय तू (सोमधानं आ विश) सोमरस रखनेके पात्रमें प्रविष्ट होकर रह । (पुरा) पहलेसे ही (नः बाधात्) हमें पीडा देनेवाले (दुरिता अति पारय) पाप हमसे दूर कर । (क्षेत्रवित् हि) क्षेत्रका मार्ग जाननेवाला हि (विपृच्छते) मार्ग पूछनेवालेको (दिश आह) दिशा बताता है ॥ ९ ॥

१ वृषा देववीतये पवस्व— शक्तिमान तू सोम देवोंको पीनेको देनेके लिये रस निकाल कर देवो ।

२ इन्द्रस्य हार्दि— इन्द्रके लिये तू प्रिय है ।

३ पुरा नः बाधात् दुरिता अति पवस्व-- पहिलेसे हमें कष्ट देनेवाले पाप हमसे दूर कर ।

४ क्षेत्रवित् हि विपृच्छते दिश आह-- स्थान जाननेवाला ही मार्ग पूछनेवालेको योग्य मार्ग बता सकता है । जो मार्ग जानता नहीं वह योग्य मार्ग बता नहीं सकता ।

[६४०] हे (सोम) सोम ! तू (वाजं अभि अर्ष) अपने कलशमें जाकर रह । (हितः न सप्तिः) प्रेरणा दिया हुआ घोडा जैसा (वाजं अर्ष) युद्धस्थानमें जाता है वैसा तू कलशमें जा । तथा हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्रस्य जठरं आ पवस्व) इन्द्रके पेटमें जाकर रह । जैसा नौका चलानेवाला (नावा) नौकासे (सिन्धुं न) नदीके (अति पर्षि) पार जाता है । (विद्वान् शूरः न) विद्वान् शूर पुरुषके समान (युध्यन्) युद्ध करता हुआ (नः अव) हमारा संरक्षण कर और (निदः स्पः) हमारे निंदकोंको पराजित करके दूर कर ॥ १० ॥

१ वाजं अभि अर्ष— [illegible] आगे बढो ।

२ हितः सप्तिः न— प्रेरित किया घोडा जैसा युद्धमें जाता है वैसा तू युद्धमें आगे बढ ।

३ इन्द्रस्य जठरं आ विश— इन्द्रके पेटमें जा ।

४ नावा सिन्धुं न-- नौकासे जैसा नदीके पार होते है वैसा तू हमें दुःखोंसे पार कर ।

५ विद्वान शूरः न — विद्वान् शूरके समान तू विद्वान् और शूर बन ।

६ युध्यन् नः अव-- युद्ध करके हमारा रक्षण कर ।

७ निदः स्पः— हमारे शत्रुओंको दूर कर ।

[७१]

(ऋषिः- ऋषभो विश्वामित्रः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ९ त्रिष्टुप् ।)

६४१ आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्या३सदं वेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पयं उपस्तिरे चम्वो३र्ब्रह्म निर्णिजे ॥ १ ॥

६४२ प्र कृष्टिहेव शूष एति रोरुव—दसुर्यं१ वर्णं नि रिणीते अस्य तम् ।
जहाति वव्रिं पितुरेति निष्कृत—मुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥ २ ॥

६४३ अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्यो—र्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥ ३ ॥

[७१]

अर्थ— [६४१] यज्ञमें (दक्षिणा आ सृज्यते) दक्षिणा दी जाती है। (शुष्मी) बल बढानेवाला सोम (आसदं वेति) अपने स्थानमें जाकर रहता है। (जागृविः) जाग्रत रहनेवाला सोम (द्रुहः रक्षसः पाति) द्रोह करनेवाले राक्षसोंसे संरक्षण करता है। (हरिः सोमः) हरे रंगका सोम (नभः पयः ओपशं कृणुते) आकाशसे जल सबका धारण करनेके लिये करता है। (चम्वोः उपस्तिरे) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें (ब्रह्म निर्णिजे) सूर्य प्रकाश देनेके लिये करता है ॥ १ ॥

१ दक्षिणा आ सृज्यते— यज्ञके पश्चात् ज्ञानियोंको योग्य दक्षिणा दी जाती है।

२ शुष्मी आसदं वेति— बल बढानेवाला सोम अपने स्थानमें यज्ञमें बैठता है।

३ जागृविः द्रुहः रक्षसः पाति— जागृत रहा वीर द्रोह करनेवाले राक्षसोंसे संरक्षण करता है।

४ हरिः सोमः नभः पयः ओपशं कृणुते— हरे रंगका सोम आकाशसे गिरनेवाले जलको अपना घर बनाता है।

५ चम्वोः उपस्तिरे ब्रह्म निर्णिजे— द्यु और पृथिवीके मध्यमें प्रकाश देनेके लिये सूर्य बनाया है।

[६४२] (शूषः) शत्रुओंका शोषण करनेवाला सोम (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (कृष्टिहा इव) शत्रुके वीर मनुष्योंकी हत्या करनेवाले शूरके समान (प्रएति) आगे बढता है। (असुर्यं अस्य तं वर्णं) असुर राक्षसोंका नाश करनेवाला इसका वह बल (नि रिणीते) बढता जाता है। (वव्रिं जहाति) वार्धक्य दूर करता है। (पितुः निष्कृतं एति) यह सोम अन्नरूपमें सुसंस्कृत होकर यज्ञमें जाता है। (तना) मेंढोके बालोंकी छाननीमेंसे (निर्णिजं) छानकर नीचे उतरनेके लिये (कृणुते) स्थान तैयार करता है ॥ २ ॥

१ कृष्टिहा इव शूषः रोरुवत् प्रएति— शत्रुके वीरोंकी हत्या करनेवाले शूरके समान यह सोम शब्द करता हुआ आगे जाता है।

२ असुर्यं अस्य तं वर्णं निरिणीते— राक्षसोंका नाश करनेका इसका सामर्थ्य बढता है।

३ पितुः निष्कृतं एति— अन्नरूप यह सोम आगे बढता है।

४ तना निर्णिजं कृणुते— मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे अपना स्थान यह सोम निर्माण करता है। सोमरस छाननीमेंसे छाना जाता है और पश्चात् पीया जाता है।

[६४३] (अद्रिभिः) पत्थरोंसे (गभस्त्योः) हाथों द्वारा कूटकर (सुतः) रस निकाला यह सोम (पवते) यज्ञके पात्रोंमें जाता है। (वृषायते) बलवान होता है। (मती) स्तुतिसे (नभसा वेपते) आकाशमें सर्वत्र जाता है। (सः मोदते) वह आनंदित होता है, तथा (नसते) पात्रोंमें जाता है। (गिरा साधते) स्तुति करनेपर अभीष्ट सिद्ध करता है। (अप्सु नेनिक्ते) जलोंमें मिश्रित होकर शुद्ध होता है। (परीमणि) यज्ञमें (यजते) पूजित होता है ॥ ३ ॥

६४४ परिं द्युक्षं सहंसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्यं सक्षणिम् ।
आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥ ४ ॥
६४५ समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।
जिगादुप जयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥ ५ ॥

अर्थ— १ अद्रिभिः गभस्त्योः सुतः पवते— पत्थरोंसे कूटकर हाथों द्वारा दबाकर निकाला यह सोमरस यज्ञमें शुद्ध होता है।.

२ वृषायते— यह सोम बल बढानेवाला होता है।

३ मती नभसा वेपते— स्तुति करनेसे वह सोम सर्वत्र पहुंचता है।

४ नसते— वह सोम यज्ञ पात्रोंमें जाकर रहता है।

५ गिरा साधते-- स्तुति करनेवालोंकी इच्छा पूर्ण करता है।

६ अप्सु नेनिक्ते— जलोंमें मिश्रित किया जाता है।

७ परिमाणि यजते-- यज्ञमें सोम उत्तम रीतिसे पूज्य माना जाता है।

[६४४] (सहसः मध्वः) बलवान मधुर सोमरस (द्युक्षं) द्युलोकमें रहनेवाले तथा (पर्वता वृधं) पर्वत पर रहनेवाले (हर्म्यस्य सक्षिणं) शत्रुके नगरको तोडनेवाले इन्द्रके (परि सिंचन्ति) पास जाते हैं। (सुहुतादः गावः) उत्तम हवन योग्य अन्न खानेवालीं गौवें (मूर्धन् ऊधनि) बडे दुग्धाशयमें रहे (अग्रियं) मुख्य दूधको (वरीमभिः) श्रेष्ठ गुणोंके साथ इन्द्रके लिये (श्रीणन्ति) देती है ॥ ४ ॥

१ सहसः मध्वः घुक्षं पर्वतावृधं हर्म्यस्य सक्षिणं परि सिंचन्ति— बल बढानेवाले, मधुर सोमरस द्युलोकमें रहनेवाले तथा पर्वतपर रहनेवाले, शत्रुके किलोंको तोडनेवाले इन्द्रको दिये जाते हैं।

२ द्युक्षं पर्वतावृधं हर्म्यस्य साक्षिणं परिषिंचन्ति— द्युलोकमें रहनेवाले पर्वत पर किलेमें रहनेवाले, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रको सोमरस दिये जाते हैं।

३ सुहुतादः गावः मूर्धन् ऊधनि अग्रियं वरीमभिः श्रीणन्ति— उत्तम अन्न खानेवाली गौवें अपने श्रेष्ठ दुग्धाशयमें रहे दूधको उत्तम श्रेष्ठ गुणोंके साथ देती हैं।

[६४५] (भुरिजोः) दोनों बाहुओंकी (दश स्वसारः) दश अंगुलियां इस सोमको (आदितेः उपस्थे) भूमिके पास– यज्ञस्थानमें (सं अहेषत) उत्तम रीतिसे प्रेरित करती हैं। जैसे (रथं इव) रथको अंगुलियां प्रेरित करती हैं। यह सोमरस (जिगात्) पात्रोंमें जाता है तथा (गोः अपीच्यं पदं) गौके अन्दर रहनेवाले दूधको (जयति) प्राप्त करता है (यत् अस्य) जो इसकी (मतुथा) स्तोते ऋत्विज स्तुति करते हुए (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

१ भुरिजोः दश स्वसारः अदिते उपस्थे सं अहेषत— दोनों हाथोंकी दस अंगुलिया यज्ञके स्थानमें सोमके रसको निकालती हैं।

२ रथं इव— जैसे रथको अंगुलियां चलाती हैं।

३ जिगात्— यह सोमरस यज्ञ पात्रोंमें जाता है।

४ गोः अपीच्यं पदं जयति— गौसे दूधको प्राप्त करता है।

५ यत् अस्य मतुथा अजीजनन्— जो इस सोमकी स्तुति करनेवाले ऋत्विज सोमसे रस निकालते हैं।

६४६ श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।
ए रिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिरा ऽश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥ ६ ॥
६४७ परा व्यक्तो अरुषो दिवः कवि–र्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।
सहस्रणीतिर्यतिः परायती रेभो न पूर्वीरुषसो वि राजति ॥ ७ ॥
६४८ त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत् समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया ॥ ८ ॥

अर्थ—[६४६] (देवः) तेजस्वी सोम (धिया कृतं) अपने कर्तव्य द्वारा किये (हिरण्ययं आसदं) सुवर्ण निर्मित (सदनं) स्थान पर (एषति) जाकर विराजता है। जैसा (श्येनो न योनिं) श्येन पक्षी अपने स्थान पर जाता है। पश्चात् (ईं) इस (प्रियं) प्रिय सोमको (गिरा) स्तुतिसे (बर्हिषि) यज्ञमें (आ रिणन्ति) प्रेरित करते हैं। जैसा (यज्ञियः) यज्ञके लिये (अश्वः) घोडा (देवान् अपि एति) देवोंके पास त्वरासे जाता है ॥ ६ ॥

१ देवः धिया कृतं हिरण्यय आसदं सदनं एषति— दिव्य सोम स्तुति करने पर सुवर्णमय आसन पर जाकर बैठता है। यज्ञमें उच्च स्थान पर जाकर सोम रहता है।

२ ईं प्रियं गिरा आ रिणन्ति— इस सोमकी प्रीति पूर्वक स्तोता ऋत्विज स्तुति करते हैं।

३ यज्ञीय अश्वः देवान् अपि एति— यज्ञका घोडा देवोंके पास जैसा जाता है वैसा सोमरस देवोंके पास जाता है।

[६४७] (अरुषः) तेजस्वी (कविः) ज्ञानका संवर्धन करनेवाला (व्यक्तः) स्पष्ट रीतिसे दीखनेवाला साम (दिवः परा) उच्च स्थानपर रहता है। (वृषा) बलवान (त्रिपृष्ठः) यज्ञमें तीन स्थानोंमें रहनेवाला सोम (गाः अभि अनविष्ट) स्तुति प्राप्त करता है, अथवा गोदुग्धमें मिलाया जाता है। (सहस्रणीतिः) हजारों प्रकारसे देखने-वाला (यतिः परायतिः) यज्ञपात्रोंमें जानेवाला और यज्ञपात्रोंमेंसे बाहेर आनेवाला (रेभः न) स्तोताके समान (पूर्वीः उषसः) बहुत पूर्व उषःकालोंमें (वि राजति) विशेष प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

१ अरुषः कविः व्यक्तः दिवः परा— तेजस्वी ज्ञानीरूपसे व्यक्त हुआ यह सोम उच्च स्थानपर विराजता है।

२ वृषा त्रिपृष्ठः गाः अभि अनविष्ट— बलवान और तीन यज्ञ स्थानोंमें रहनेवाला यह सोम गौओंके दूधमें मिलता है।

३ पूर्वीः उषसः विराजति— प्रथम उषःकालोंमें यह सोम चमकता है।

४ सहस्रणीतिः यतिः परायतिः विराजति— हजारों प्रकारोंसे यह सोम यज्ञ स्थानोंमें लाया जाता है, और उसका समर्पण भी अनेक प्रकारोंसे किया जाता है। ऐसा यह सोम यज्ञस्थानमें रहता है।

[६४८] (अस्य) इस सोमका (वर्णः) रंग, किरण (त्वेषं रूपं कृणुते) तेजस्वी रूप बनाता है। (सः) वह प्रकाश किरण (यत्र समृता) जहां मिलता है, वहां वह (अशयत्) रहता है और वह किरण (स्रिधः सेधति) शत्रुओंका विनाश करता है। (अप्सा) उदकोंको देनेवाला (स्वधया) हविरूपसे (दैव्यं जनं याति) दिव्य जनोंके पास जाता है। तथा (सुष्टुती सं नसते) उत्तम स्तुतिको प्राप्त करता है। तथा वह सोम (गो अग्रया) गौको मुख्य रूपसे मांगता है, उस मांगनेकी भाषासे (सं नसते) सम्यक् रीतिसे वह मिलकर रहता है ॥ ८ ॥

६४९ उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥ ९ ॥

[७२]

(ऋषिः- हरिमन्त आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६५० हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित् परिप्रियः ॥ १ ॥

अर्थ— १ अस्य वर्णः त्वेषं रूपं कृणुते— इस सोमका रंग तेजस्वी होता है ।

२ सः यत्र समृता, अशयत् — वह सोम जहां मिलता है वहां ही वह रहता है । हिमालयके शिखर पर वह होता है और वहां ही वह प्राप्त होता है ।

३ स्रिधः सेधति— यह सोम शत्रुओंका नाश करता है ।

४ अप्सा स्वधया दैव्यं जनं यन्ति— पानीके साथ मिलकर दिव्य जनोंको प्राप्त होता है । पानीके साथ मिलाकर उसको श्रेष्ठ लोक सेवन करते हैं ।

५ सुष्टुतीः संनसते— सोमकी उत्तम स्तुति की जाती है ।

६ गो अग्रया संनसते — गौके दूधसे सोमरस मिलाया जाता है । पश्चात् वह पीया जाता है ।

[६४९] (उक्षा इव) जैसा बैल (यूथा) गौओंके झुंड (परियन्) चारों ओर देखकर (अरावीत्) शब्द करता है, वैसा (सूर्यस्य त्विषीः) सूर्यके जैसा तेज (अधि अधित) चारों ओर सोम फैलाता है । (दिव्य सुपर्णः) वह द्युलोकमें उत्पन्न हुआ सोम (क्षां अवचक्षते) पृथिवीको देखता है । तथा यह (सोम) सोम (जाः) प्रजाओंको (क्रतुना परि पश्यते) यज्ञके साथ संबंध रखकर देखता है ॥ ९ ॥

१ उक्षा इव यूथा परियन् अरावीत्-- बैल गौओंके झुंडोको देखकर शब्द करता है । वैसा सोम यज्ञमें यजमानादिकोंको देखकर शब्द करके अपनेमेंसे रस निकाल कर देता है ।

२ सूर्यस्य त्विषीः अधि अधिते-- सूर्यके तेजके समान यह सोम अपना तेज यज्ञस्थानमें फैलाता है ।

३ दिव्यः सुपर्णः क्षां अवचक्षते-- यह दिव्य उत्तम पानोंवाला सोम पृथिवीका निरीक्षण करता है । पृथिवी पर यज्ञकर्ता उस सोमको लाते हैं ।

४ सोमः जाः क्रतुना परि पश्यते-- सोम यज्ञमें सब प्रजाजनोंको देखता है । यज्ञस्थानमें वह याजकोंको देखता है । उन याजकोंका निरीक्षण करता है ।

[७२]

[६५०] यज्ञ करनेवाले ऋत्विज (हरिं मृजन्ति) हरे सोमको शुद्ध करते हैं । वह (अरुषः) तेजस्वी सोम (धेनुभिः सं युज्यते) गौके दूधके साथ मिलाया जाता है । वह (कलशे) कलशमें रहा (सोमः) सोम (अज्यते) शब्द करता है । (यत् उत् ईरयति) जब यह सोम शब्द करता है तब वह (मती हिन्वते) स्तुतियोंको प्रेरित करता है । (पुरुष्टुतस्य) अधिक स्तुति किये गये सोमके (कतिचित् परिप्रियः) कई प्रकारके धन प्रिय होकर उनके साथ रहते हैं ॥ १ ॥

१ हरिं मृजन्ति-- हरे रंगके सोमको शुद्ध किया जाता है ।

२ अरुषः धेनुभिः संयुज्यते-- तेजस्वी सोम गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है ।

३ कलशे सोमः अज्यते-- सोमरस कलशमें रखा जाता है ।

४ यत् उत् ईरयति मती हिन्वते-- जब यह सोम शब्द करता हुआ पात्रमें जाता है तब उसकी स्तुति की जाती है ।

५ पुरुष्टुतस्य कतिचित् परिप्रियः-- अच्छी स्तुति करनेपर यजमानके पास कई प्रकारके धन आते हैं । यजमानको धन अनेक प्रकारसे प्राप्त होते हैं ।

६५१ साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।
यदी मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीळाभिर्दशभिः काम्यं मधु ॥ २ ॥
६५२ अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ३ ॥
६५३ नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ ४ ॥

अर्थ— [६५१] (बहवः मनीषिणः) बहुत बुद्धिमान (साकं वदन्ति) साथ मन्त्रोंको बोलते हैं। (यत्) जब (इन्द्रस्य जठरे) इन्द्रके पेटमें डालनेके लिये (सोमं आदुहुः) सोमका रस निकालते हैं । जब (सुगभस्तयः नरः) उत्तम हाथवाले ऋत्विज (यदि) जब (काम्यं मधु) प्रिय मधुर रस (दशभिः सनीळाभिः) दस अंगुलियोंसे (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ २ ॥

१ बहवः मनीषिणः साकं वदन्ति— बहुत बुद्धिमान ऋत्विज एक स्थान पर यज्ञके समीप बैठकर मंत्रोंको बोलते हैं।

२ यत् इन्द्रस्य जठरे सोमं आदुहुः— जब इन्द्रके पटमें सोमरस डालनेके लिये सोमका रस निकालते हैं।

३ सुगभस्तयः नरः दशभिः सनीळाभिः काम्यं मधु मृजन्ति— उत्तम हाथोंवाले ऋत्विज अपने दोनों हाथोंकी दस अंगुलियोंसे प्रिय मधुर सोमका रस निकालते हैं, और उसको शुद्ध करते हैं।

[६५२] वह सोम (अरममाणः) रममाण न होकर (गाः अत्येति) गौओंके दूधमें जाता है। (सूर्यस्य दुहितुः) सूर्यकी पुत्री उषाके लिये (रवं) शब्दको (तिरः) दूर करता है। (विनंगृसः) स्तुति करनेवाला ऋत्विज (अस्मै) इस सोमके लिये (जोषं अनु अभरत्) स्तोत्र बोलता है। यह सोम (द्वयीभि स्वसृभिः जामिभिः) दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे— बहिनों जैसे अंगुलियोंसे (संक्षेति) संबंध रखता है ॥ ३ ॥

१ अरममाणः गाः अत्येति— दूसरे स्थानमें न रममाण होनेवाला यह सोमरस गौओंके दूधमें मिल जाता है।

२ सूर्यस्य दुहितुः रवं तिरः— सूर्यकी पुत्री उषाके समय यह सोम दूसरे शब्दोंको दूर करके अपना शब्द ही ऋत्विजोंको सुनाता है। इस समय सोमका शब्द ही सुनाई देता है।

३ विनंगृसः अस्मै जोषं अनु अभरत्— स्तुति करनेवाले ऋत्विज इस सोमके स्तोत्र बोलते हैं।

४ द्वयीभिः स्वसृभिः जामिभिः संक्षेति— दोनों हाथोंकी बहिनोंके समान अंगुलियोंसे इस सोमका संबंध होता है। दोनों हाथोंकी अंगुलियां इस सोमका रस निकालती हैं।

[६५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते बर्हिषि प्रियः) तेरे यज्ञमें यह प्रिय (सोमः) सोम (धिया पवते) अपने यज्ञकर्ममें शुद्ध होता है। (नृधूतः) ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध हुआ (अद्रिषुतः) पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला (गवां पतिः) गौओंका स्वामी (प्रदिवः) प्राचीन कालसे (प्रियः) देवोंके लिये प्रिय (इन्दुः ऋत्वियः) यह सोम (पुरंधिवान्) अनेक कर्म करनेवाला (मनुषः यज्ञसाधनः) मनुष्यके यज्ञका साधन (शुचिः) शुद्ध ऐसा यह सोम हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते पवते) तेरे लिये रस देता है ॥ ४ ॥

१ हे इन्द्र ते बर्हिषि प्रियः सोमः धिया पवते— हे इन्द्र तेरे लिये यज्ञमें प्रिय सोम यज्ञस्थानमें शुद्ध होता है।

६५४ नृबाहुभ्यां चोदितो धारया सुतो ऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आप्राः क्रतून् त्समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्वोरासदद्धरिः ॥ ५ ॥
६५५ अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः ।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥ ६ ॥

अर्थ— २ नृधूतः अद्रिषुतः गवां पातिः प्रदिवः प्रियः इन्दुः ऋत्वियः— ऋत्विजोंने शुद्ध किया, पत्थरोंसे कूटकर निकाला, गौके दूधके साथ मिलाया, प्राचीन कालसे देवोंके लिये प्रिय हुआ यह सोम यज्ञमें उपयोगी है ।

३ पुरंधिवान् मनुषः यज्ञसाधनः शुचिः इन्दुः पवते— अनेक यज्ञकर्मोंमें उपयोगी, मनुष्यों द्वारा किये जानेवाले यज्ञोंमें उपयोगी शुद्ध ऐसा यह सोम यज्ञस्थानमें रस निकालनेके यज्ञकर्ममें उपयोगी होता है ।

[६५४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नृबाहुभ्यां) यज्ञ कर्म करनेवाले ऋत्विजोंकी बाहुओंके द्वारा (चोदितः) प्रेरित होकर (धारया सुतः) धारासे रस निकाला (सोमः) सोम (ये अनुष्वधं) तेरे बलको बढानेके लिये (पवते) शुद्ध होता है । इस सोमरसके पान करनेसे (क्रतून् आ प्राः) यज्ञोंको करता है और शत्रुओंको (समजैः) जीतता है । (अधारे) अहिंसामय यज्ञमें (मतीः समजैः) अभिमानी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करता है । वह (हरिः) हरे रंगका सोम (चम्वोः आसदत्) कलशोंमें रहता है, जैसा (वेः न द्रुषद्) पक्षी वृक्षपर रहता है ॥ ५ ॥

१ हे इन्द्र ! नृबाहुभ्यां चोदितः धारया सुतः सोमः ते अनुष्वधं पवते— हे इन्द्र ! ऋत्विजोंके बाहुओंसे प्रेरित हुआ, धारासे रस देनेवाला सोम तेरा बल बढानेके लिये यज्ञमें आता है । यह सोम पीकर इन्द्र आदि सब देवता अपना बल बढाते है । यह सोमरस बल बढानेवाला है ।

२ क्रतून् आप्राः— यह सोम यज्ञोंको करता है ।

३ समजैः— यह सोम शत्रुओंको जीतता है । सोमरस पीनेसे वीरोंका बल बढता है और वे वीर शत्रुको पराजित करते हैं ।

४ हरिः चम्वोः आसदत्— यह हरे रंगका सोम पात्रोंमें रहता है ।

[६५५] (कवयः) ज्ञानी (अपसः मनीषिणः)कर्म करनेवाले बुद्धिमान मनुष्य (स्तनयन्तं) शब्द करनेवाले (अक्षितं कविं) क्षीण न होनेवाले ज्ञान बढानेवाले (अंशुं) सोमका (दुहन्ति) रस निकालते हैं । (पुनः भुवः) पुनः पुनः प्रसूत होनेवाली (गावः) गौवें और (मतयः) ज्ञानी याजक (ईं) इस सोमको (संयन्ति) मिलकर, इकट्ठे होकर (ऋतस्य योना) यज्ञके स्थान पर सोमका रस निकाला करते हैं ॥ ६ ॥

१ कवयः अपसः मनीषिणः स्तनयन्तं अक्षितं कविं दुहन्ति— ज्ञानी यज्ञकर्मको करनेके समय शब्द करनेवाले, क्षीण न होनेवाले, ज्ञान बढानेवाले सोमका रस निकालते हैं ।

२ पुनः भुवः गावः मतयः ईं संयन्ति— बारंवार प्रसूत होनेवाली तरुण गौवें और ज्ञानी ऋत्विज मिलकर इस यज्ञको करते हैं ।

३ ऋतस्य योना— यज्ञके स्थानमें किया जाता है ।

४ स्तनयन्तं अक्षितं कविं दुहन्ति— शब्द करनेवाले, क्षीण न होनेवाले, ज्ञान बढानेवाले सोमका यज्ञमें रस निकालते हैं । सोम ज्ञान बढाता है, शरीरको क्षीण होनेसे बचाता है । यह सोमरस पीनेसे शरीर बलवान बनता है, बुद्धि तथा मन विकसित होता है । तथा उत्साह भी बढता है ।

६५६ नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवो३ ऽपामूर्मौ सिन्धुष्वन्तरुक्षितः ।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ७ ॥
६५७ स तू पवस्व परि पार्थिवं रजः स्तोत्रे शिक्षन्नाधून्वते च सुक्रतो ।
मा नो निर्भाग्वसुनः सादनस्पृशो रयिं पिशङ्गं बहुलं वसीमहि ॥ ८ ॥
६५८ आ तू न इन्दो शतदात्वश्व्यं सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत् ।
उप मास्व बृहती रेवतीरिषो ऽधि स्तोत्रस्य पवमान नो गहि ॥ ९ ॥

अर्थ— [६५६] (महः दिवः धरुणः) बडे द्युलोकका धारण करनेवाली (पृथिव्याः नाभा) पृथिवीके उच्च स्थानमें रहनेवाला (सिन्धुषु अपां ऊर्मौ) नदीयोंके जलोंमें (उक्षितः) रहनेवाला (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्रके वज्रके समान (वृषभः) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (विभूवसुः) बहुत धनसे युक्त यह (चारु मत्सरः सोमः) सुन्दर आनंद देनेवाला यह सोम (हृदे पवते) मनको आनंद देनेके लिये रस देता है ॥ ७ ॥

१ महः दिवः धरुणः— यह सोम द्युलोकका धारण करता है। यह पर्वतके शिखर पर होता है, इसलिये वह वहांसे द्युलोकको धारण करता है, ऐसा माना जाता है ।

२ पृथिव्या नाभा— पृथिवीमें जो वनस्पतियां है उन सबमें यह सोम मुख्य है। अतः पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंमें इस सोमको मुख्य कहा है ।

३ इन्द्रस्य वज्रः— इन्द्रका वज्र जैसा श्रेष्ठ है वैसा यह सोम श्रेष्ठ है ।

४ वृषभः— यह सोम बलको बढानेवाला है ।

५ विभूवसुः— अनेक धन इसके सामर्थ्यसे प्राप्त होते हैं ।

६ चारु मत्सरः सोमः— यह सोम अत्यंत आनंद बढानेवाला है ।

७ हृदे पवते— मनको आनंद देनेवाला रस यह सोम देता है।

[६५७] हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले सोम ! तू (पार्थिवं रजः) पृथिवीके लोकको देखकर (तु) त्वरासे (परिपवस्व) पूर्ण रीतिसे रस निकाल दो । (आधुन्वते स्तोत्रे) यज्ञ करनेवालेके लिये धनादिक (शिक्षन्) देकर तैयार करो । (नः) हमें (वसुनः) धनसे (मा निर्भाक्) पृथक् न कर । (सादन स्पृशः) घरके धनोंसे हमें युक्त कर । (बहुलं पिशंगं रयिं) बहुत नाना प्रकारका धनसे (वसीमहि) युक्त होकर हम रहेंगे ॥ ८ ॥

१ सः तु पार्थिवं रजः परिपवस्व— वह तू सोम पृथिवी लोकके ऊपर चारों ओर अपना रस देओ ।

२ आधुन्वते स्तोत्रे शिक्षन्— यज्ञ करनेवालेके लि धनादि पर्याप्त प्रमाणमें दे ।

३ नः वसुनः मा निर्भाक्— हमें धनसे पृथक् न कर । हमें पर्याप्त धन दे ।

४ सादनस्पृशः बहुलं पिशंगं रयिं वसीमहि— घरमें रहे धनोंसे हमें संयुक्त कर। हमारे घरमें श्री पुत्र तथा धन धान्य आदि सब भरपूर रहे ऐसा कर ।

[६५८] हे (इन्दो) सोम ! (नः तु) हमको अति शीघ्र धन (आ) दे दो। (शतदातु) सेंकडों प्रकारके दातृत्वसे युक्त (अश्व्यं) घोडोंसे युक्त (सहस्रदातु) सहस्रों प्रकारोंके दान जिससे दिये जा सकते हैं ऐसा धन दे दो । (पशुमत् हिरण्यवत्) वह धन पशुओंसे युक्त तथा सुवर्णसे युक्त हो । हे (पवमान) सोम ! (नः) हमारे (स्तोत्रस्य) स्तोत्रके श्रवण करनेके लिये (अधि गहि) आओ । तथा (बृहतीः रेवती इषः) बडे धनयुक्त अन्न हमें (उप मास्व) दे दो ॥ ९ ॥

[७३]

(ऋषिः- पवित्र आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६५९ स्रक्के द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन् स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥ १ ॥
६६० सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥ २ ॥

अर्थ— १ नः तु शतदातु सहस्रदातु अश्व्यं आ -- हमें सैंकडों प्रकारका तथा हजारों प्रकारका अश्व युक्त धन दो ।

२ पशुमत्— अनेक पशुओंसे युक्त वह धन दो ।

३ हिरण्यवत्— सुवर्ण आदिसे युक्त वह धन दो ।

४ बृहतीः रेवतीः इषः उपमास्व— बहुत धनसे युक्त अन्न हमें पर्याप्त प्रमाणमें दे दो ।

हमें धन, अन्न, तथा घोडे और गौवें चाहिये । यह सब प्रकारका धन हमें पर्याप्त प्रमाणमें दे दो ।

[७३]

[६५९] (स्रक्के) यज्ञके मुख्य स्थानमें रहनेवाले पात्रोंमें (धमतः) रस निकालनेके समय (द्रप्सस्य) सोमके अंश (समस्वरन्) शब्द करते हुए उतर रहे हैं । (ऋतस्य योना) यज्ञके स्थानमें (नाभयः समस्वरन्त) सोमरस आ रहे हैं । (असुरः सः) बलशाली वह सोम (मूर्ध्नः त्रीन् आरभे) मुख्यतः तीनों लोकोंमें अपने पवित्र कार्यका आरंभ करता है और (चक्रे) अपना कार्य करता है । (सत्यस्य नावः) सत्य स्वरूपी सोमकी नौकाएं अर्थात् यज्ञपात्र (सुकृतं अपीपरन्) सत्कर्म करनेवाले यजमानको सहायता करते हैं ॥ १ ॥

१ स्रक्के धमतः द्रप्सस्य समस्वरन्— यज्ञपात्रोंमें जानेवाले सोमरसके अंश यज्ञपात्रोंमें जानेके समय शब्द करते हुए जाते हैं ।

२ ऋतस्य योना नाभयः समस्वरन्— यज्ञके स्थानमें सोमरस यज्ञपात्रमें पहुंचनेका शब्द कर रहे हैं ।

३ असुरः सः मूर्ध्नः त्रीन् आरभे— बलवान् वह सोम मुख्यतः तीन पात्रोंमें गमन करना प्रारंभ करता है ।

४ सत्यस्य नावः सुकृतं अपीपरन्— यज्ञकी नौकाएं यज्ञकर्ताको पूर्णरूपसे सहायता करती हैं ।

[६६०] (महिषाः) बडे ऋत्विज (सम्यञ्चः) उत्तम रीतिसे संगठित होकर (सम्यक् अहेषत) उत्तम प्रेरणा देते हैं । पश्चात् (वेनाः) उत्तम फल चाहनेवाले ऋत्विज (सिन्धोः ऊर्मौ अधि) उदककी ऊर्मीमें (अवीविपन्) सोमको रखते या मिलाते हैं । (अर्कं जनयन्तः) स्तोत्र कहते हुए (इन्द्रस्य प्रियां तन्वं) इन्द्रके प्रिय शरीरको (मधोः धाराभिः) सोमकी मधुर धाराओंसे (अवीवृधन्) परिपुष्ट करते हैं ॥ २ ॥

१ महिषाः सम्यञ्चः सम्यक् अहेषत— ज्ञानी बडे ऋत्विज उत्तम रीतिसे मिलकर सोमको यज्ञमें प्रेरित करते हैं । सोमयज्ञ ज्ञानी लोग करते हैं ।

२ वेनाः सिन्धोः ऊर्मौ अधि अवीविपन्— उत्तम ज्ञानी ऋत्विज जलमें सोमको मिलाते हैं । सोमरसमें जल मिलाते हैं ।

३ अर्कं जनयन्तः— स्तोत्र करके उसको बोलते हैं ।

४ इन्द्रस्य प्रियां तन्वं मधोः धाराभिः अवीवृधन्— इन्द्रके शरीरको सोमके मधुर रससे बढाते हैं । सोमरस पीकर वीरोंके शरीर हृष्ट पुष्ट होते हैं ।

६६१ पवित्रवन्तः परि वाचमासते पितैषां प्रत्नो अभि रक्षति व्रतम् ।
महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥ ३ ॥
६६२ सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः ।
अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥ ४ ॥
६६३ पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान् ।
इन्द्रद्विष्टामप धमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥ ५ ॥

अर्थ— [६६१] (पवित्रवन्तः) पवित्रता करनेके सामर्थ्यसे युक्त सोम (वाचं) स्तुतिको (परि आसते) प्राप्त करता है। पश्चात् (एषां प्रत्नः पिता) इनका पुराणा पिता यह सोम (व्रतं अभि रक्षति) अपने व्रतका रक्षण करता है। (वरुणः) अपने तेजसे सबको आच्छादित करनेवाला (महः समुद्रं) बडे अन्तरिक्षको (तिरः दधे) भर देता है। (धीराः) बुद्धिमान् ऋत्विज (धरुणेषु) सबको धारण करनेवाले उदकोंमें (आरभं शेकुः) सोमको रखनेके लिये समर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

१ पवित्रवन्तः वाचं परि आसते— सोमरसको शुद्ध करनेवाले स्तुतिकी वाणी बोलते रहते हैं। सोमरसको छाननेके समय उसकी स्तुति याजक लोक करते हैं।

२ एषां प्रत्नः पिता व्रतं अभि रक्षति— इन स्तुति करनेवालोंका संरक्षक पिता यह सोम अपना यज्ञ करनेका व्रत सुरक्षित रखता है।

३ वरुणः महः समुद्रं तिरः दधे— श्रेष्ठ सोम बडे आकाशरूपी महासागरको अपने प्रकाशसे भर देता है।

४ धीराः धरुणेषु आरभं शेकुः— बुद्धिमान् ऋत्विज सबका धारण करनेवाले जलोंमें सोमको मिश्रित करनेमें समर्थ होते हैं।

सोमरसको जलमें मिलाते हैं और पश्चात् उसका यज्ञ करते हैं। तथा देवोंको अर्पण करते हैं और पश्चात् सेवन करते हैं।

[६६२] (सहस्रधारे) सहस्रों जलधाराओंसे युक्त अन्तरिक्षमेंसे (ते) वे सोमके किरण (अव समस्वरन्) पृथिवी पर आ रहे हैं। (दिवः नाके) द्युलोकके ऊपर (मधुजिह्वाः असश्चतः) मधुरतासे युक्त होकर ये रहते हैं। (अस्य स्पशः) इस सोमके किरण (भूर्णयः) शीघ्र जानेवाले होते हैं अतः वे (न निमिषन्ति) स्थिर नहीं रहते। (पदे पदे) प्रत्येक स्थान पर (सेतवः सन्ति) सेतु जैसे होते हैं तथा (पाशिनः) पापियोंको बाधक होते हैं ॥ ४ ॥

१ सहस्रधारे ते अव समस्वरन्— सहस्रधाराओंसे अर्थात् जलधाराओंसे वे सोमके किरण पृथिवी पर पर्जन्यके रूपसे आते हैं। पर्जन्यकी वृष्टिमेंसे सोमके रसपूर्ण किरण पृथिवी पर आते हैं।

२ मधुजिह्वाः असश्चतः अस्य स्पशः भूर्णयः न निमिषन्ति— मधुरतासे युक्त, सतत चलनेवाले इस सोमके किरण एक स्थान पर स्थिर नहीं रहते।

३ पदे पदे सेतवः पाशिनः सन्ति— प्रत्येक स्थानमें पापियोंको बाधक होकर ये सोम रहते हैं।

[६६३] (पितुः मातुः) पिता और माताके समान ये द्युलोक और भूलोकसे (ये) जो सोमके किरण (अधि आ समस्वरन्) आ रहे हैं वे (ऋचा) स्तुतिसे (शोचन्तः) प्रकाशित होते हैं। वे (अव्रतान्) कुकर्म करनेवालोंको (संदहन्तः) उत्तम रीतिसे नष्ट करते हैं। वे सोमके प्रकाश किरण (इन्द्रद्विष्टात् असिक्नीं) इन्द्र जिसका द्वेष करता है वैसी रात्रीरूप (त्वचं) राक्षसको (अपधमन्ति) दूर करते हैं अर्थात् (भूमनः दिवः परि) विस्तृत द्युलोकके ऊपरसे दुष्टोंको (मायया अप धमन्ति) अपनी शक्तिसे दुष्टोंको दूर कर सकते हैं ॥ ५ ॥

६६४ प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥ ६ ॥
६६५ सहस्रधारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वञ्चः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ७ ॥

अर्थ— १ पितुः मातुः ये अधि आ समस्वरन्, ते ऋचा शोचन्त अव्रतान् संदहन्तः— द्युलोक तथा पृथिवी में जो सोमके प्रकाश किरण आ रहे हैं, उनकी प्रशंसा वेदकी ऋचाएं करती हैं, वे व्रतका पालन न करनेवालोंका नाश करते हैं। धर्मके व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

२ इन्द्रद्विष्टान् अपधमन्ति— इन्द्र जिनका द्वेष करता है उनको सोम दूर करता है।

३ भूमनः दिवः परि मायया अपधमन्ति— बडे विस्तृत द्युलोकके ऊपरसे अपनी शक्तिसे वे सोम दुष्टोंको दूर करते हैं। दुष्टोंको सब स्थानोंसे दूर करना योग्य है।

[६६४] (श्लोकयन्त्रासः) स्तुति करने योग्य और (रभसस्य मन्तवः) वेगसे चलनेवाले (ये) जो सोमके प्रकाश किरण हैं (प्रत्नात् मानात्) वे प्रथम अन्तरिक्षमेंसे (अधि आ समस्वरन्) चलते रहे हैं। उनको (अनक्षासः) शुद्ध दृष्टि हीन (बधिराः) देवोंकी स्तुतिका श्रवण न करनेवाले दुष्ट मनुष्य (अप अहासत) देख नहीं सकते। (ऋतस्य पन्थां) सत्य यज्ञके मार्गको (दुष्कृतः) दुष्ट कर्म करनेवाले लोक (न तरन्ति) पार नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

१ श्लोकयन्त्रासः रभसस्य मन्तवः ये प्रत्नासः मानात् अधि आ समस्वरन्— स्तुतिके योग्य और वेगसे गमन करनेवाले सोमके प्रकाश किरण हैं, वे अन्तरिक्षमेंसे चलते हैं। इसका कारण यह है कि सोम पर्वतके शिखरपर रहता है। वहांसे उसके प्रकाश किरण चलते हैं। वे अन्तरिक्षमें चलते हैं।

२ अनक्षासः बधिरा अप अहासत— दृष्टि हीन और बहिरे लोग उन किरणोंको नहीं देख सकते। ज्ञानहीन जो होते हैं वे उन किरणोंको नहीं देख सकते।

३ ऋतस्य पन्थां दुष्कृतः न तरन्ति— यज्ञके सत्य मार्ग परसे दुष्ट मनुष्य जा नहीं सकते। दुष्ट मनुष्य सत्य मार्ग पर चल नहीं सकते।

[६६५] (कवयः मनीषिणः) ज्ञानी विद्वान (सहस्रधारे वितते पवित्रे) सहस्रधाराओंसे नीचे गिरनेवाले सोमरसको छाननीमेंसे जानेके समय (एषा वाचं आ पुनन्ति) इनको अपनी स्तुतिरूपी वाणीसे पवित्र करते हैं। (रुद्रासः) रुद्रके पुत्र मरुत् (स्पशः) स्तुतिसे वश होनेवाले (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले (सुदृशः) सुन्दर दीखनेवाले (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (स्वञ्चः) सुंदर कार्य करनेवाले (इषिरासः) उत्तम आक्रमण शत्रुपर करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

१ कवयः मनीषिणः सहस्रधारे वितते पवित्रे वाचं आ पुनन्ति— ज्ञानी मनीषी ऋत्विज सहस्रों धाराओंसे सोमरसको नीचेके पात्रमें गिरनेवाले छाननीमेंसे सोमरसके गिरनेके समय उसकी स्तुति करते हैं।

२ रुद्रासः स्पशः अद्रुहः सुदृशः नृचक्षाः स्वञ्चः इषिरासः— रुद्रके पुत्र मरुत् गण स्तुतिसे वश होनेवाले, द्रोह न करनेवाले, उत्तम सुंदर दीखनेवाले, मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले, सुंदर कार्य करनेवाले, शत्रुपर हमला करनेवाले होते हैं। मरुद्वीरोंके गुण ये हैं।

रुद्रासः— भयंकर कार्य करनेवाले, २ स्पशः— स्तुति करनेके योग्य कार्य करनेवाले, ३ अद्रुहः— विना कारण किसीका द्रोह न करनेवाले, ४ सुदृशः— देखनेमें सुन्दर, ५ नृचक्षाः— मानवोंकी परीक्षा करनेवाले, ६ स्वञ्चः— सुन्दर कार्य करनेवाले, ७ इषिरासः— शत्रुपर उत्तम प्रकारसे आक्रमण करनेवाले ये मरुत् नामक वीर होते हैं।

६६६ ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतु—स्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे ।
विद्वान् त्स विश्वा भुवनाभि पश्य—त्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥ ८ ॥
६६७ ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया अग्रे वरुणस्य मायया ।
धीराश्चित् तत् समिनक्षन्त आशता—ऽत्रा कर्तमव पदात्यप्रभुः ॥ ९ ॥

[७४]

(ऋषिः- कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ८ त्रिष्टुप् ।)

६६८ शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्व१र्यद्वाज्यरुषः सिषासति ।
दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥ १ ॥

---

[७४]

अर्थ— [६६६] (ऋतस्य गोपाः) यज्ञका संरक्षक (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला यह सोम (दभाय न) किसी दुष्टसे दबनेवाला नहीं है । (सः) वह सोम (त्री) तीन (पवित्रा) पवित्र करनेवालोंको (हृदि अन्तः आदधे) अपने हृदयमें धारण करता है । (विद्वान् सः) वह ज्ञानी सोम (विश्वा भुवनानि) सब भुवनोंको (अभि पश्यति) विशेष रीतिसे देखता है । (कर्ते अव्रतान्) कर्म करनेवालोंमें जो नियम रहित रीतिसे कार्य करते हैं, (अजुष्टान्) उन अप्रिय करनेवालोंको (अव विध्यति) ताडन करता है ।

१ ऋतस्य गोपाः सुक्रतुः न दभाय— सच्चे कर्मका संरक्षक स्वयं उत्तम कर्म करनेवाला किसीसे कभी दबता नहीं ।

२ सः त्री पवित्रा हृदि अन्तः आदधे— वह तीन पवित्र कर्मोंको अपने हृदयमें रखता है । शरीर, मन तथा बुद्धिसे तीन पवित्र करनेके कार्य करता है ।

३ विश्वा भुवनानि विद्वान् सः अभिपश्यति— सब भुवनोंको वह विद्वान् विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे देखता रहता है ।

४ कर्ते अव्रतान् अजुष्टान् अवविध्यति— कार्य करनेवालोंमें जो अयोग्य रीतिसे कार्य करते हैं उन अयोग्य कार्य कर्ताओंको वह ताडन करता है, मारता है, उनको दण्ड देता है ।

[६६७] (ऋतस्य तन्तुः) यज्ञका विस्तार करनेवाला (पवित्रे विततः) पवित्रमें फैला हुआ सोम है । (वरुणस्य जिह्वाया अग्रे) वह वरुणकी जिह्वाके अग्रभागमें (मायया आ) अपनी शक्तिसे रहा है । (धीराः चित्) बुद्धिमान लोक (तत् समिनक्षन्त) उसको व्यापते हैं और (आशत) प्राप्त करते हैं । (कर्ते अप्रभुः) जो कर्तृत्वमें असमर्थ होता है वह (अव पदाति) नीचे गिरता है ॥ ९ ॥

१ ऋतस्य तन्तुः पवित्रे विततः— यज्ञकर्मका विस्तार करनेवाला सोम छाननीमें फैला है । छाना जा रहा है ।

२ वरुणस्य जिह्वाया अग्रे मायया आ— वरुणकी जिह्वाके अग्रभागमें अर्थात् जलमें वह सोम अपनी शक्तिसे मिलता है ।

३ धीराः चित् तत् समिनक्षन्त— ज्ञानी लोक उसको देखते हैं । याजक ऋत्विज उस सोमको देखते हैं ।

४ आशत— उस सोमको प्राप्त करते हैं, देखते हैं ।

५ अप्रभुः कर्ते अव पदाति— जो कर्म करनेमें असमर्थ होता है वह नीचे गिरता है ।

[६६८] (वने जातः) जलमें उत्पन्न हुआ (शिशुः न) बालकके समान यह सोम (अव चक्रदत्) शब्द करता है । (यत्) जब (वाजी अरुषः) घोडा जानेकी इच्छा करता है, वैसा सोम (स्वः) स्वर्गलोकमें (सिषासति) जानेकी इच्छा करता है । यह सोम (अरुषः) चमकता है (पयो वृधा) दूधसे मिश्रित होनेवाला (दिवः रेतसा) दिव्य उदकके साथ (सचते) मिलता है । उस सोमको (सुमती) उत्तम बुद्धिवाले हम (सप्रथः) धनसे युक्त (शर्म) गृह मिले ऐसा हम (तमीमहे) चाहते हैं ॥ १ ॥

६६९ दिवो यः स्कम्भो धरुणः स्वातत आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः ।
सेमे मही रोदसी यक्षदावृता समीचीने दाधार समिषः कविः ॥ २ ॥
६७० महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।
ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषाऽपां नेता य इतऊतिर्ऋग्मियः ॥ ३ ॥

अर्थ— १ शिशुः न, वने जातः अवचक्रदत्— उत्पन्न हुए बालकके समान, यह सोम शब्द करता है ।

२ यत् वाजी अरुषः स्वः सिषासति— जैसा घोडा जानेकी इच्छा करता हुआ शब्द करता है वैसा सोम देवोंके पास जानेके समय शब्द करता है ।

३ अरुषः पयोवृधा दिवः रेतसा सचते— तेजस्वी सोम दूधमें मिलाया जानेपर दिव्य उदकके साथ भी मिलता है ।

४ सुमती सप्रथः शर्म तमीमहे— उत्तम बुद्धिवाले हम हमें धनसे युक्त घर मिले ऐसा हम चाहते हैं ।

[६६९] (दिवः स्कंभः) द्युलोकका आधारस्तंभ (धरुणः) सबका धारण कर्ता (स्वाततः) सर्वत्र व्याप्त होकर रहनेवाला (आपूर्णः) सर्वत्र पूर्णरूपसे भरा हुआ (यः अंशुः) जो सोमरस (विश्वतः पर्येति) सवत्र व्यापता है (सः) वह सोम (इमे मही रोदसी) ये बडे द्यु और पृथिवी ये लोकोंमें (आवृता यक्षत्) अपने कर्मसे यजन करे । तथा यह (समीचीने दाधार) द्युलोक और पृथिवीको मिलकर धारण करता है । यह (कविः) ज्ञानी सोम (इषः संदाधार) अन्नोंको धारण करता है ॥ २ ॥

१ दिवः स्कंभः धरुणः स्वाततः आपूर्णः यः अंशुः विश्वतः पर्येति— द्युलोकका आधार, विश्वका धारण करनेवाला, सर्वत्र व्यापक, सर्वत्र परिपूर्ण रीतिसे भरा हुआ यह सोम सर्वत्र व्यापता है ।

२ दिवः स्कंभः— द्युलोकका आधार स्तंभ । सोम पर्वत शिखर पर होता है, अतः वह द्युलोकका धारण कर्ता कहा है ।

३ अंशुः विश्वतः पर्येति— सोम सर्वत्र व्यापता है । सर्वत्र प्रिय है ।

४ समीचीने दाधार— द्यु और पृथिवीका धारण सोम करता है । दोनों लोकोंमें वह सन्मान प्राप्त करता है ।

५ कविः इषः संदाधार— ज्ञान बढानेवाला सोम सब प्रकारके अन्नोंको धारण करता है ।

[६७०] (ऋतं यते) यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके लिये (सुकृतं सोम्यं मधु) उत्तम यज्ञकर्ममें प्रयुक्त होनेवाला सोमका रस (प्सरः) पीनेके लिये उत्तम होता है । (अदितेः गव्यूतिः) पृथिवीका मार्ग (उर्वी) विस्तीर्ण होता है । (यः) जो इन्द्र (इतः वृष्टेः ईशे) यहांकी वृष्टिका स्वामी है । यह इन्द्र (उस्रियः) गौओंका हित करता है । (अपां वृषा) जलोंकी वृष्टि करता है । (नेता) सबका नियामक है । तथा (इत ऊतिः) यज्ञमें जो जाता है तथा वह (ऋग्मियः) प्रशंसाके योग्य है ॥ ३ ॥

१ ऋतं यते सुकृतं सोम्यं मधु प्सरः— यज्ञमें जानेवाले इन्द्रके लिये उत्तम रीतिसे तैयार किया सोमरस पीनेके योग्य मधुर है ।

२ अदितेः गव्यूतिः उर्वी— पृथिवीका मार्ग विस्तृत है ।

३ यः इतः वृष्टेः ईशे उस्रियः— जो यहां वृष्टि करता है वह गौओंका हित करता है । वृष्टिसे घांस उत्पन्न होता है जिस पर गौवें उपजीविका करती हैं, अतः वृष्टि करनेवाला गौवोंका हित करनेवाला कहलाता है ।

४ अपां वृषा नेता— जलोंकी वृष्टि जो करता है वह नियामक है ।

५ इत ऊतिः ऋग्मियः— यज्ञमें जो जाता है वह प्रशंसनीय है । अतः यज्ञमें जाना चाहिये । यज्ञसे दूर नहीं रहना चाहिये ।

×

६७१ आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय ऋतस्य नाभिरमृतं वि जायते ।
समीचीनाः सुदानवः प्रीणन्ति तं नरो हितमव मेहन्ति पेरवः ॥ ४ ॥
६७२ अरावीदंशुः सचमान ऊर्मिणा देवाव्यं१ मनुषे पिन्वति त्वचम् ।
दधाति गर्भमदितेरुपस्थ आ येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ५ ॥
६७३ सहस्रधारेऽव ता असश्चत स्तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः ।
चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवो हविर्भरन्त्यमृतं घृतश्चुतः ॥ ६ ॥

अर्थ— [६७१] (आत्मन्वत् घृतं पयः) साररूपी घीके सदृश जल (नभसः दुह्यते) आकाशमेंसे दुहा जाता है। यह (ऋतस्य नाभिः) यज्ञका मध्य स्थान है। वहांसे (अमृतं विजायते) अमर जीवन देनेवाला जलरूपी अमृत विशेष करके उत्पन्न होता है । (सुदानवः) उत्तम दान करनेवाले (समीचीनाः) एकत्र बैठनेवाले यजमान (तं प्रीणन्ति) उस सोमको स्तुतिसे प्रसन्न करते हैं । और (नरः) नेता लोग (पेरवः) रक्षक होते हैं, वे (हितं अव मेहन्ति) हितकारक पदार्थोंकी वृष्टी करते हैं । हित करते हैं ॥ ४ ॥

१ नभसः आत्मन्वत् घृतं पयः दुह्यते अन्तरिक्षसे जीवनका सारभूत जल वृष्टिके रूपमें पृथिवीके ऊपर बरसता है । इस जीवनरससे प्राणियोंका जीवन सुखमय हो जाता है ।

२ ऋतस्य नाभिः— यह यज्ञका मध्य अर्थात् मुख्य स्थान है ।

३ अमृतं विजायते— उससे अमृत उत्पन्न होता है । यह जल अमृत ही है ।

४ सुदानवः समीचीनाः तं प्रीणयन्ति— उत्तम दान देनेवाले यज्ञकर्ता एकत्र यज्ञस्थानमें बैठते हैं और उसको प्रसन्न करते हैं । सोमरसमें जल मिश्रित करके उसको आनंद देनेवाला पेय बनाते हैं ।

५ नरः पेरवः— नेता लोग उसका रक्षण करते हैं ।

६ हितं अवमेहन्ति— हितकारक पदार्थ सबके हितार्थ सबको प्रदान करते हैं । इस दानसे सबका हित होता है ।

[६७२] (ऊर्मिणा) जलसे (सचमानः) मिश्रित होनेवाला (अंशुः) सोम (अरावीत्) शब्द करता है । (देवाव्यं त्वचं) देवोंका रक्षण करनेवाले अपने शरीरको (मनुषे पिन्वति) मानवी हितके लिये अर्पण करता है । (अदितेः उपस्थे) पृथिवीके ऊपर (गर्भं आ दधाति) अपना गर्भ- मुख्य भाग- स्थापन करता है । (येन) जिससे (तोकं तनयं च) पुत्र और संतान (धामहे) हम धारण करते हैं ॥ ५ ॥

१ ऊर्मिणा सचमानः अंशुः अरावीत्-- जलमें मिलानेवाला सोमरस शब्द करता हुआ जलके साथ मिलता है ।

२ देवाव्यं त्वचं मनुषे पिन्वति — देवोंका रक्षण करनेवाला अपना शरीर याजकोंको देता है । याजक इससे यज्ञ करते हैं ।

३ अदितेः उपस्थे गर्भं आ दधाति— पृथिवीके ऊपर यह सोम अपना गर्भ स्थापन करता है । इससे भूमिपर औषधियां उत्पन्न होकर लोगोंके रोगोंको दूर करती हैं और उनको नीरोग बनाती हैं ।

४ येन तोकं तनयं च धामहे — इससे पुत्र पौत्रोंको हम धारण करके उनका रक्षण करनेमें हम समर्थ होते हैं ।

[६७३] (सहस्रधारे) बहुत उदकयुक्त (तृतीये रजसि) तृतीय लोकमें अर्थात् स्वर्गमें (असश्चतः) परस्पर दूर रहनेवाले (ताः) वे सोमके रस (अव सन्तु) पृथिवीपर नीचे गिर जांय । (प्रजावतीः) प्रजाके लिये वे सहायक हो जांय । (चतस्रः नाभः) चार प्रकारके सोमके प्रकाश किरण (दिवः अवः हिताः) द्युलोकसे नीचे आते हैं । वे (घृतश्चुतः) उदक देनेवाले सोमरस (अमृतं हविः भरन्ति) अमरत्व देनेवाला हविष्य भरपूर देते हैं । वह (अवः) रक्षणशक्तिसे युक्त होता है ॥ ६ ॥

६७४ श्वेतं रूपं कृणुते यत् सिषासति सोमो मीढ्वाँ असुरो वेद भूमनः ।
धिया शमी सचते सेमभि प्रवद् दिवस्कवन्धमव दर्षदुद्रिणम् ॥ ७ ॥
६७५ अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत् ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥ ८ ॥

अर्थ— १ सहस्रधारे तृतीये रजसि अवश्चतः ताः अव सन्तु— बहुत जलमय तीसरे लोकमें अर्थात् स्वर्गमें रहनेवाले वे सोमरस पृथिवीपर आजांय । सोम पर्वत शिखरपर होता है, वहांसे वह पृथिवीपर यज्ञ-स्थानमें आ जाय ।

२ प्रजावतीः चतस्रः नाभः दिवः अवहिताः— प्रजाके लिये हितकारक सोमके चार प्रकारके प्रकाश द्युलोकसे नीचे आते हैं । (१) सोम पर्वतपर रहता है, (२) वहांसे उसको नीचे लाया जाता है, (३) यज्ञमें उसको रखते है और (४) देवोंको समर्पित होता है । ये सोमके चार स्थान हैं और वहांके चार प्रकारके प्रकाश हैं ।

३ घृतश्चुतः अमृतं हविः भरन्ति— उदकमें मिश्रित सोम यज्ञमें हविरूप होकर रहते हैं ।

४ अवः— वे सोमके रस यज्ञ करनेवालोंका तथा जहां यज्ञ होता है वहांके जनताका वे सोमरस संरक्षण करते हैं । सोम यज्ञसे रोग दूर होते हैं, इससे जनताका संरक्षण होता है ।

[६७४] (श्वेतं रूपं कृणुते) सोम अपना श्वेत रूप करता है (यत्) जब वह (सिषासति) स्वर्गमें जानेकी इच्छासे यज्ञमें बैठता है । (ततः) तब (मीढ्वान्) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला (असुरः) बलवान (सोमः) सोम (भूमनः वेद) अनेक धन याजकोंको देना चाहता है । (सः) वह सोम (धिया प्रवत् शमी) बुद्धिसे विशेष कर्मोंको (अभि सचते) पूर्ण करता है । और (दिवः) अन्तरिक्षमेंसे (उद्रिणं कवंधं) उदक देनेवाले मेघको (अवदर्षत्) नीचे भेजता है । वृष्टि करता है ॥ ७ ॥

१ यत् सिषासति श्वेतं रूपं कृणुते— जब सोम यज्ञमें अपने स्थानमें बैठता है, तब सोमरसका रूप श्वेत दीखता है ।

२ ततः मीढ्वान् असुरः सोमः भूमनः वेद— तब यज्ञमें याजकोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये यह सोम अनेक प्रकारके धन याजकोंको देता है ।

३ सः धिया प्रवत् शमी अभि सचते— वह सोम बुद्धिपूर्वक अनेक प्रकारके यज्ञमें कर्म करता है ।

४ उद्रिणं कवंधं अवदर्षत्— जलकी वृष्टि करनेवाले मेघोंको पृथिवीपर भेजता है और वृष्टि करवा कर सब जनोंको जल देता है ।

[६७५] (अध) पश्चात् (श्वेतं गोभिः अक्तं) श्वेत वर्ण गोदुग्धसे युक्त होकर (कार्ष्मन्) अपनी दिशामें-स्थानमें (ससवान्) रहनेवाला सोम (कलशं) कलशमें (आ अक्रमीत्) रहता है । जैसा (वाजी) घोडा युद्धमें आक्रमण करता है । उस सोमकी (देवयन्तः) देवोंको प्राप्त करनेवाले ऋत्विज (मनसा आ हिन्विरे) मनसे उत्तम रीतिसे उस सोमको प्रेरित करते हैं जिस प्रकार (शतहिमाय कक्षीवते गोनाम्) सैंकडों प्रकारसे स्तुति करनेवाले कक्षीवान् ऋषिको देनेके लिये गौवें प्रेरित होती हैं ॥ ८ ॥

१ अथ श्वेतं गोभिः अक्तं कार्ष्मन् ससवान् कलशं आ अक्रमीत्— पश्चात् उत्तम गोदुग्धसे भरे हुए कलशमें सोमरस गोदुग्धके साथ मिलनेके लिये जाता है । गोदुग्धसे सोमरस मिश्रित होता है ।

२ वाजी आ अक्रमीत्— जैसा घोडा युद्धभूमिमें जाता है वैसा सोमरस गोदुग्धके साथ मिलता है ।

३ देवयन्तः मनसा आ हिन्विरे— देवताओंको प्राप्त करनेवाले ऋत्विज मनसे उस सोमकी स्तुति करके यज्ञमें प्रेरित करते हैं ।

४ शतहिमाय कक्षीवते गोनाम्— सौ वर्षके कक्षीवान् ऋषिको अनेक गौवें दीं गयीं । यज्ञमें गौओंको दानमें दिया जाता था ।

६७६ अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसो ऽव्यो वारं वि पवमान धावति ।
स मृज्यमानः कविभिर्मदिन्तम स्वदस्वेन्द्राय पवमान पीतये ॥ ९ ॥

[७५]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६७७ अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः ॥ १ ॥
६७८ ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यं नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ २ ॥

अर्थ- [६७६] हे (पवमान सोम) शुद्ध होनेवाले सोम ! (अद्भिः) जलोंसे (पपृचानस्य ते) मिश्रित होनेवाले तेरा (रसः) रस (अव्यः वारं) भेडोंके बालोंकी छाननीमेंसे (विधावति) छाना जाता है। तब (मदिन्तम) आनंद देनेवाले (पवमान) सोम ! तू (कविभिः मृज्यमानः) ऋत्विजोके द्वारा शुद्ध होनेवाला (इन्द्राय पीतये) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये (स्वदस्व) रस दो ॥ ९ ॥

१ अद्भिः पपृचानस्य ते रसः अव्यं वारं विधावति— जलके साथ मिश्रित होनेवाले तेरा रस- सोमरस- भेडोंके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है । शुद्ध और स्वच्छ किया जाता है ।

२ हे मदिन्तम ! पवमान ! कविभिः मृज्यमानः इन्द्राय पीतये स्वदस्व— हे आनंद देनेवाले सोम ! ज्ञानी ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध किया हुआ सोमरस इन्द्रको पीनेके लिये दिया जाता है ।

[६७७] (चनो हितः) अन्नके लिये हितकारक सोम (प्रियाणि नामानि) प्रिय उदकोंको (अभि पवते) प्राप्त करता है । (येषु) जिन उदकोंमें (यह्वः) महान यह सोम (अधि वर्धते) बढता रहता है । (बृहन्) यह महान् सोम (बृहत सूर्यस्य) बडे सूर्यके (विश्वंचं रथं अधि) सर्वगामी रथके ऊपर (विचक्षणः) सबको देखने- वाला होकर (आरुहत्) आरोहण करता है ॥ १ ॥

१ चनो हितः प्रियाणि नामानि अभि पवते— अन्नका सहायक यह सोम प्रिय उदकमें मिश्रित किया जाता है । पश्चात् उसका यज्ञमें समर्पण होता है और तदनंतर वह पीया करता है ।

२ यह्वः येषु अधि वर्धते— यह महान् सोम जलोंके साथ मिश्रित होनेसे बढता है ।

३ बृहन् विचक्षणः बृहतः सूर्यस्य विष्वंचं रथं आरुहत्— यह बडा ज्ञान बढानेवाला सोम बडे सूर्यके चारों ओर घुमनेवाले रथ पर चढता है ।
" अग्नौ प्रास्ताहुतिः आदित्यमुपतिष्ठते "— अग्निमें डाली हुई आहुति सूर्यपर जाती है । इस तरह यह सोमकी आहुति सूर्य किरणसे सूर्यपर पहुंचती है ।

[६७८] (ऋतस्य जिह्वा) यज्ञकी जिह्वारूप यह सोम (प्रियं मधु पवते) प्रिय मधुर रस देता है । (वक्ता) स्तुतियोंको बोलनेवाला यजमान (अस्याः धियः) इस कर्मका- यज्ञके कर्मका (पतिः) पालन करने- वाला (अदाभ्यः) न दबनेवाला होता है । (पुत्रः) यजमान (पित्रोः अपीच्यं नाम) मातापिताका गुप्त नाम (अधि दधाति) जानता है । यह (तृतीयं नाम) तीसरा नाम (दिवः रोचने अधि दधाति) द्युलोकको तेजस्वी करनेवाले सोमका होता है ॥ २ ॥

६७९ अवं द्युतानः कलशाँ अचिक्रदु—न्नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्ययें ।
अभीमृतस्यं दोहनां अनूषता—ऽधिं त्रिपृष्ठ उषसो वि राजति ॥ ३ ॥
६८० अद्रिंभिः सुतो मतिभिश्चनोहितः प्ररोचयन् रोदसी मातरा शुचिः ।
रोमाण्यव्यां समया वि धांवति मधोर्धारा पिन्वंमाना दिवेदिंवे ॥ ४ ॥
६८१ परिं सोम प्र धंन्वा स्वस्तये नृभिः पुनानो अभि वांसयाशिरम् ।
ये ते मदां आहनसो विहांयस—स्तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम् ॥ ५ ॥

अर्थ— १ ऋतस्य जिह्वा प्रियं मधु पवते— यज्ञकी जिह्वारूपी यह सोम प्रिय मधुर रस देता है। यज्ञमें यह सोमसे रस निकालते हैं।

२ वक्ता अस्याः धियः पतिः अदाभ्यः — स्तुति करनेवाला यजमान इस देवताओंकी स्तुतिका न दब जानेवाला पालन कर्ता होता है। वह यज्ञस्थानमें स्तुति करता है।

३ पुत्रः पित्रोः अपीच्यं नाम अधि दधाति — पुत्र मातापिताका तीसरा गुप्त नाम जानता है। पुत्र जैसा अपने मातापिताके नाम जानता है, उस प्रकार यजमान सोमके सब नाम जानता है। यजमान सोमके गुणोंके सब नाम जानता है।

[६७९] (द्युतानः) तेजस्वी (नृभिः) ऋत्विजोंने (हिरण्यये कोशे) सुवर्णके पात्रमें (येमानः) रखा सोम होता है। (ऋतस्य) यज्ञके समय (दोहनाः) रस निकालनेवाले ऋत्विज (ईं) इस सोमकी (अभि अनूषत) स्तुति करते हैं। (त्रिपृष्ठः) तीन सवनोंमें रहनेवाला यह सोम (उषसः अधि विराजति) उषःकालमें चमकता है ॥ ३ ॥

१ द्युतानः नृभिः हिण्ययये कोशे येमानः— यह तेजस्वी सोम ऋत्विजोंने सुवर्णके पात्रमें रखा रहता है। यज्ञस्थानमें यह सोम रहता है।

२ ऋतस्य दोहनाः ईं अभि अनूषत— यज्ञको करनेवाले ऋत्विज इस सोमकी स्तुति गाते हैं।

३ त्रिपृष्ठः उषसः अधि विराजति— यह तीन सवनोंमें रहनेवाला सोम उषःकालमें चमकने लगता है।

[६८०] (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला (मतिभिः) बुद्धिवालोंने (चनो हितः) अन्न-रूपसे रखा और (शुचिः) शुद्ध हुआ सोम (रोदसी मातरा) द्युलोक तथा पृथिवीरूपी माताओंको (प्ररोचयन्) तेजस्वी करता है। यह सोम (समया) यज्ञके समीप (वि धावति) जाता है और (दिवे दिवे) प्रतिदिन (मधोः धाराः पिन्वमानाः) मधुर सोमरसकी धाराओंको शुद्ध कर देता है ॥ ४ ॥

१ अद्रिभिः सुतः— यह सोम पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला गया है।

२ मतिभिः चनो हितः — बुद्धिमान याज्ञिकोंने उस सोमको अन्नके रूपमें यज्ञस्थानमें लिया और रखा है।

३ शुचिः मातरा रोदसी प्ररोचयन्— यह शुद्ध सोम द्यावापृथिवीको तेजस्वी करता है।

४ समया वि धावति— वह सोम यज्ञके समीप जाकर रहता है।

५ दिवे दिवे मधोः पिन्वमानाः— प्रतिदिन यह सोम मधुर रसको धाराओंसे शुद्ध करके देता है।

[६८१] हे (सोम) सोम ! (स्वस्तये) कल्याण करनेके लिये (परि प्र धन्व) तू आकर यहां रहो। (नृभिः पुनानः) यज्ञकर्ता विद्वानोंके द्वारा शुद्ध हुआ तू (आशिरं अभिवासय) दूध आदिमें जाकर रहो। (ते ये मदाः) तेरे जो ये आनद देनेवाले रस हैं तथा (आहनसः) शत्रुओंको मारनेवाले हैं वे (विहायसः) बडे शक्ति-संपन्न हैं (तेभिः) उनके साथ हमें (मघं दातवे) धन देनेके लिये (इन्द्रं चोदय) इन्द्रको उत्तेजित कर ॥ ५ ॥

[७६]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६८२ धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभि- र्वृथा पाजांसि कृणुते नदीष्वा ॥ १ ॥
६८३ शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन् रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभि- रिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ २ ॥

अर्थ— १ स्वस्तये परि प्रधन्व— हम सबका कल्याण करनेके लिये तू यहां आकर, उत्साह बढानेके लिये, रहो। यहां रहो और सबका उत्साह बढाओ।

२ नृभिः पुनानः आशिरं अभिवासय— नेताओं द्वारा शुद्ध किया हुआ तू दूध आदिका सेवन करके यहां रहो। सोमरसमें दूध आदिका मिश्रण किया जाता है और पश्चात् उसका सेवन किया जाता है।

३ ते ये मदाः आहनसः विहायसः— तेरे जो आनंद तथा उत्साह बढनेवाले श्रेष्ठ रस हैं वे सेवन करने योग्य हैं।

४ तेभिः मघं दातये इन्द्रं चोदयः— उनके द्वारा धन देनेके लिये इन्द्रको प्रेरणा दे। इन्द्र हमको धन देवे, ऐसा तू उस इन्द्रको प्रेरित कर।

[७६]

[६८२] (दिवः धर्ता) द्युलोकका धारण करनेवाला सोमरस (पवते) शुद्ध किया जाता है। वह (कृत्व्यः शुद्ध किया करने योग्य है। (रसः) उस सोमका रस (देवानां दक्षः) देवोंका बल बढानेवाला है, तथा (नृभिः अनुमाद्यः ऋत्विज मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय है। यह सोमरस (हरिः) हरे रंगका है। वह (अत्यः न) घोडेके समान बलके कार्योंमें प्रगति करनेवाला है। वह (सत्वभिः) अपने बलोंसे (नदीषु) जलोंमें (वृथा) विना आयास (पाजांसि कृणुते) अनेक बलके कार्य करता है ॥ १ ॥

१ दिवः धर्ता पवते— यह सोम द्युलोकका धारण करता है। यह सोम पर्वतोंके शिखर पर होता है अतः वह द्युलोकका धारण कर्ता कहा है।

२ कृत्व्यः— वह सोम शुद्ध करके सेवन करने योग्य है। यह रस छाना जाकर सेवन करने योग्य होता है।

३ रसः दक्षः— यह सोमरस बल बढाता है। सोमरस पीनेसे बल बढता है।

४ नृभिः अनुमाद्यः— मनुष्योंके द्वारा यह सोम प्रशंसनीय है।

५ हरिः अत्यः न सत्वभिः नदीषु वृथा पाजांसि कृणुते— यह हरे रंगका सोम अपने बलोंसे जलोंमें सहज मिश्रित होकर सेवन किया, तो वह अनेक बलके कार्य कराता है।

[६८३] यह सोम (गभस्त्योः आयुधा) हाथोंमें आयुधोंको (शूरः न) शूरके समान धारण करता है। (स्वः सिषासन्) यज्ञमें बैठनेकी इच्छा करता है। (रथिरः) यह रथसे युक्त होता है। (गविष्टिषु) गौवों संबंधी यज्ञोंमें (इन्द्रस्य शुष्मं इरयन्) इन्द्रके बलको प्रेरणा देता है। वह (इन्दुः) सोम (अपस्युभिः मनीषिभिः) कर्म करनेवाले ज्ञानियोंके द्वारा (हिन्वानः) प्रेरित हुआ गौओंके दूधके साथ (अज्यते) स्तुतिसे प्रशंसित किया जाता है ॥ २ ॥

६८४ इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश ।
प्र णः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया न वाजाँ उप मासि शश्वतः ॥ ३ ॥
६८५ विश्वस्य राजा पवते स्वर्दृशं ऋतस्य धीतिमृषिषाळवीवशत् ।
यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते पिता मतीनामसमष्टकाव्यः ॥ ४ ॥

अर्थ— १ शूरः न गभस्त्योः आयुधा— शूरके समान यह हाथोंमें आयुध धारण करता है । युद्धमें जानेके समय शूर पुरुष हाथमें शस्त्र लेता है ।

२ स्वः सिषासन्— यह यज्ञ करनेके लिये यज्ञके स्थानपर बैठता है ।

३ रथिरः— यह रथमें बैठकर गमन करनेमें चतुर है ।

४ गविष्टिषु इन्द्रस्य शुष्मं ईरयन्— यज्ञोंमें तथा युद्धोंमें यह इन्द्रका बल बढाता है ।

५ इन्दुः अपस्युभिः मनीषिभिः हिन्वानः अज्यते— यह सोम यज्ञकर्म करनेवाले बुद्धिमान लोकों द्वारा प्रेरित होकर स्तुतिसे प्रशंसित होता है ।

[६८४] हे (सोम) सोम ! (पवमानः) शुद्ध होता हुआ तू (तावष्यमाणः) बढता हुआ (इन्द्रस्य जठरेषु) इन्द्रके पेटमें (ऊर्मिणा आविश) प्रवेश कर (विद्युत् अभ्रा इव) विद्युत् मेघोंको- मेघोंमेंसे जलको दुहती है, उस प्रकार (प्र पिन्व) दोहन करके वृष्टि कर । तथा (धिया) कर्मके द्वारा (न) अब (शश्वतः) बहुत (वाजान्) अन्नोंको (उप मासि) निर्माण करता है ॥ ३ ॥

१ हे सोम ! पवमानः तविष्यमाण इन्द्रस्य जठरेषु ऊर्मिणा आविश— हे सोम ! तू शुद्ध होकर, छाना जाकर, गोदुग्ध आदिसे मिश्रित होनेसे बढकर इन्द्रके पेटमें जाकर निवास कर ।
सोमरस प्रथम छानकर शुद्ध किया जाता है और पश्चात् गोदुग्ध आदिको मिलानेके पश्चात् पिया जाता है ।

२ विद्युत अभ्रा इव प्र पिन्व— बिजली अभ्रोंसे वृष्टि कराती है उस प्रकार सोमसे रस निकालो ।

३ धिया न शश्वत् वाजान् उपमासि— कर्मसे बहुत अन्न उत्पन्न किये जाते हैं । उस प्रकार तू बहुत अन्न उत्पन्न कर । बुद्धि और कर्मसे अन्न बहुत प्रकारके उत्पन्न किये जा सकते हैं । वैसे अन्न उत्पन्न करने चाहिये ।

[६८५] (विश्वस्य राजा) संपूर्ण विश्वका राजा यह सोम है । (स्वर्दृशः ऋतस्य) सबके निरीक्षक इन्द्रके (धीतिं) कर्मको (ऋषिषाट्) ऋषियोंके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुआ सोम (अवीवशत्) प्रशंसित करता है । (यः) जो सोम (सूर्यस्य) सूर्यके (असिरेण) किरणोंसे (मृज्यते) शुद्ध किया जाता है । (मतीनां पिता) यह सोम स्तुतियोंका रक्षक है । यह (असमष्टकाव्यः) उत्तम पूर्ण रीतिसे वर्णनीय है ॥ ४ ॥

१ विश्वस्य राजा— यह सोम विश्वका राजा अर्थात् मुख्य है ।

२ स्वर्दृशः ऋतस्य धीतिं ऋषिषाट् अवीवशत् - सब विश्वके निरीक्षक इन्द्र देवके कर्मकी ऋषियों द्वारा प्रशंसित हुआ यह सोम प्रशंसा करता है । इन्द्रके गुणोंका वर्णन करता है ।

३ यः सूर्यस्य असिरेण मृज्यते— यह सोम सूर्यके किरणोंमें रखकर शुद्ध किया जाता है ।

४ मतीनां पिता— यह सोम बुद्धिद्वारा की हुई स्तुतिका सच्चा संरक्षक है । बुद्धियोंका संरक्षण करता है ।

५ असमष्टकाव्यः— यह सोम उत्तम प्रकार वर्णन करने योग्य है । सब प्रकारसे प्रशंसनीय है ।

६८६ वृषे॑व यू॒था परि॒ कोश॑मर्ष॒—स्य॒पामु॒पस्थे॑ वृ॒ष॒भः कनि॑क्रदत् ।
स इन्द्रा॑य पवसे मत्स॒रिन्त॑मो॒ यथा॒ जेषा॑म सुमि॒थे त्वोत॑यः ॥ ५ ॥

[७७]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६८७ ए॒ष प्र कोशे॒ मधु॑माँ अचिक्रद॒—दिन्द्र॑स्य॒ वज्रो॒ वपु॑षो॒ वपु॑ष्टरः ।
अ॒भीमृ॒तस्य॑ सु॒दुघा॑ घृत॒श्चुतो॑ वा॒श्रा अ॑र्षन्ति॒ पय॑सेव धे॒नवः॑ ॥ १ ॥

६८८ स पू॒र्व्यः प॑वते॒ यं दि॒वस्परि॑ श्ये॒नो म॑था॒यदि॑षि॒तस्ति॒रो रजः॑ ।

अर्थ— [६८६] (वृषा यूथा इव) जैसा बैल बैलोंके समूहमें जाता है वैसा तू सोम (कोशं परि अर्षसि) पात्रमें जाता है । (अपां उपस्थे) जलोंके पास अन्तरिक्षमें (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ जैसा मेघ जाता है वैसा यह सोम यज्ञपात्रोंमें शब्द करता हुआ जाता है । (सः) वह सोम तू (इन्द्राय पवसे) इन्द्रको देनेके लिये शुद्ध होता है । तू (मत्सरिन्तमः) अति आनंद देनेवाला है । तू हमें सहाय कर जिससे (त्वा ऊतयः) तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम (समिथे) युद्धमें (जेषाम) विजयी होंगे ॥ ५ ॥

१ वृषा यूथा इव— बैल बैलोंके समूहमें जाता है वैसा सोम (कोशं अर्षति) पात्रमें जाता है ।
२ अपां उपस्थे कनिक्रदत्— जलमें शब्द करता हुआ सोमरस मिश्रित होता है ।
३ स इन्द्राय पवसे— वह सोम तू इन्द्रको देनेके लिये छाना जाता है ।
४ मत्सरिन्तमः— सोम अत्यन्त आनंद देता है ।
५ त्वा ऊतयः समिथे जेषाम— तेरेसे सुरक्षित हुए हम युद्धमें विजय प्राप्त करेंगे ।

[७७]

[६८७] (एषः) यह सोम (मधुमान्) मधुर स्वादयुक्त (कोशं) द्रोण पात्रमें (प्र अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है । (इन्द्रस्य वज्रः) यह सोम इन्द्रके वज्रके समान (वपुषः वपुष्टरः) शरीरसे बलवान है । (ईं) इस (ऋतस्य) यज्ञके उपयोगी सोमरसकी धाराएं (अभि अर्षन्ति) चलती हैं । (घृतश्चुतः) घी देनेवाली (वाश्राः धेनवः इव) शब्द करती हुई आनेवाली गौवोंके समान यह सोम पात्रमें आता है ॥ १ ॥

१ एषः मधुमान् कोशं प्र अचिक्रदत्— यह मीठा सोमरस पात्रमें शब्द करता हुआ जाता है ।
२ इन्द्रस्य वज्रः वपुषः वपुष्टरः— इन्द्रके वज्रके समान यह सोम शरीरका बल बढानेवाला है ।
३ ईं ऋतस्य अभि अर्षन्ति— इस यज्ञीय सोमरसकी धाराएं चलती हैं ।
४ घृतश्चुतः वाश्राः धेनवः इव— घी देनेवाली शब्द करती हुई आनेवाली जैसी गौवें होती हैं, वैसे ये सोमरसकी धाराएं आती हैं ।

[६८८] (सः) वह सोम (पूर्व्यः) पूर्व कालसे (पवते) छाना जाकर शुद्ध होता है । (यं) जिस सोमके (दिवः) द्युलोकसे (श्येनः इषितः) प्रेरित किया हुआ श्येन पक्षी (परिमथायत्) विघ्नोंको दूर करके (तिरः) संकटोंका तिरस्कार करके (रजः) रजो लोकसे (सः) वह सोम (मध्वः आ युवते) मधुरताके साथ मिलता है । (बीविजानः इत्) वह नीचे आता हुआ (कृशानोः अस्तु) सोमके पालकका होता है । (बिभ्युषा मनसा ह) भयभीत हुए मनसे जैसा कोई कार्य करता है वैसा यह सोम यज्ञमें रहता है ॥ २ ॥

१ सः पूर्व्यः पवते — वह सोम पहिलेसे शुद्ध होता है ।
२ दिवः श्येनः इषितः परिमथायत्— द्युलोकसे श्येन पक्षीनें प्रेरित होकर लाया है ।
३ रजः तिरः सः मध्वः आ युवते— रजो लोकसे आया वह सोम मधुरतासे युक्त होता है ।
४ बिभ्युषा मनसा ह— भयभीत मनसे जैसा कोई मनुष्य कार्य करता है वैसा यह सोम यज्ञके कार्य करता है ।

स मध्व आ युवते वेविजान इत् कृशानोरस्तुर्मनसाह बिभ्युषा ॥ २ ॥
६८९ ते नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो३ न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥ ३ ॥
६९० अयं नो विद्वान् वनवद्वनुष्यत इन्दुः सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः ।
इनस्य यः सदने गर्भमादधे गवामुरुब्जमभ्यर्षति व्रजम् ॥ ४ ॥
६९१ चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसो महाँ अदब्धो वरुणो हुरुग्यते ।
असावि मित्रो वृजनेषु यज्ञियोऽत्यो न यूथे वृषयुः कनिक्रदत् ॥ ५ ॥

अर्थ—[६८९] (ते) वे (पूर्वासः) पूर्व समयके (उपरासः) तथा नंतरके समयके (इन्दवः) सोमरस (महे गोमते) महान गौवोंके दूध आदिसे युक्त (नः वाजाय) हमारे अन्नके लिये हमें (धन्वन्तु) प्राप्त हों । वे सोमरस (ईक्षेण्यासः) दर्शनीय (अह्यः न) स्त्रियोंके समान (चारवः) रमणीय (ये) जो सोमरस (ब्रह्म ब्रह्म) सर्व स्तुतियां तथा (हविः हविः) सब हवि (जुजुषुः) सेवन करते हैं ॥ ३ ॥

१ ते पूर्वासः उपरासः इन्दवः महे गोमते वाजाय नः धन्वन्तु— वे पूर्व कालके तथा नवीन सोमरस बडे गोदुग्धादिसे युक्त अन्नके रूपसे हमको प्राप्त हों ।

२ ईक्षेण्यासः अह्यः न चारवः ये ब्रह्म ब्रह्म हविः हविः जुजुषुः— प्रेक्षणीय स्त्रियोंके समान वे सोमरस उत्तम स्तुतियां तथा हविरूप अन्न होकर प्रशंसाको प्राप्त होते हैं ।

३ ब्रह्म ब्रह्म— अनेक प्रकारकी स्तुतियां सोमरसकी होती हैं ।

४ हविः हविः— अनेक प्रकारकी हविरूप सामग्री सोमकी होती है । सोमके स्वाहाकारसे उत्तम रीतिसे नीरोगता होती है । वायुमंडलकी उत्तम शुद्धता होती है ।

[६९०] (अयं इन्दुः) यह सोम (नः वनुष्यतः) हमारा नाश करनेवाले शत्रुओंको (विद्वान्) जानता है, उन शत्रुओंका (वनवत्) उनका वह नाश करे । (सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः) एकत्रित हुए मनोंसे उत्तम स्तुति की जाती है । (यः) जो सोम (इनस्य) अग्निके सदने) यज्ञगृहमें (गर्भं आदधे) औषधियोंमें गर्भ रूपसे रहता है । जो (गवां) गौवोंके अन्दर तथा (उरुब्जं) जलोंके मध्यमें (व्रजं अभ्यर्षति) उत्पादकके रूपसे रहता है ॥ ४ ॥

१ अयं इन्दुः नः वनुष्यतः विद्वान् वनवत्— यह सोम हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले हमारे शत्रुओंको जानता है, अतः वह उन शत्रुओंका नाश करे ।

२ सत्राचा मनसा पुरुष्टुतः— अनेक मनुष्य एकत्रित होकर एकाग्रतासे युक्त मनसे इसकी स्तुति अनेक प्रकारोंसे की जाती है ।

३ यः इनस्य सदने गर्भं आदधे— जो अग्निके यज्ञस्थानमें मुख्य रूपसे रहता है । औषधियोंके मध्यमें यह रहता है ।

४ गवां उरुब्जं व्रजं अभ्यर्षति— गौओंमें तथा जलोंमें यह सोम आनंदका उत्पादक होकर रहता है । गौवें सोमको खाती हैं अतः वह गौवोंके पेटमें रहता है । तथा जलोंमें मिश्रित होकर सोमरस रहता है ।

[६९१] (चक्रिः) सबका निर्माणकर्ता (कृत्व्यः) कर्म करनेमें कुशल (रसः) रसरूप यह सोम (महान्) बडा है । वह (अदब्धः) अविनाशी (हुरुक् यते) दुष्टोंको दूर करता है । (असावि) सोमका रस निकालते हैं । (वृजनेषु मित्रः) शत्रुओंका हमारे ऊपर हमला होनेपर यह मित्र होकर रहता है । यह सोम (यज्ञियः) यज्ञमें मुख्य होकर रहता है (यूथे अत्यः न) समूहके चपल घोडेके समान यह मुख्य रहता है । यह (वृषयुः कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ मुख्य स्थानमें रहता है ॥ ५ ॥

×

[७८]

(ऋषिः- कविर्भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

६९२ प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यद--दपो वसानो अभि गा इयक्षति ।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥ १ ॥
६९३ इन्द्राय सोम परि षिच्यसे नृभि--र्नृचक्षा ऊर्मिः कविरज्यसे वने ।
पूर्वीर्हि ते स्रुतयः सन्ति यातवे सहस्रमश्वा हरयश्चमूषदः ॥ २ ॥

अर्थ-- १ चक्री कृत्व्यः रसः महान् अदब्धः हुरुग्यते-- सबका निर्माण करनेवाला, कर्म करनेमें कुशल, साररूप महान और न दबनेवाला यह सोम दुष्टोंको दूर करता है । यह किसीसे दबनेवाला नहीं है ।
२ वृजनेषु मित्रः-- शत्रुसे हमला होनेपर यह मित्ररूपसे सहायता करता है ।
३ यज्ञियः-- यह परम पूजनीय होता है ।
४ यूथे अत्यः न-- समूहमें चपल घोडेके समान यह आगे रहता है ।
५ वृषयुः कनिक्रदत्-- शब्द करता हुआ यह मुख्य स्थानपर रहता है ।

[७८]

[६९२] (राजा) यज्ञका राजा यह सोम (वाचं जनयन्) शब्द करता हुआ (असिष्यदत्) रस प्रदान करता है । (अपः वसानः) जलमें मिश्रित होकर रहनेवाला यह सोम (गाः अभि इयक्षति) स्तुतियां प्राप्त करता है । (अस्य रिप्रं) इस सोमका आवरण (अविः) बकरीके बालोंसे बनायी छाननी (तान्वा गृभ्णाति) अपने शरीरसे स्वीकारता है । (शुद्धः) शुद्ध होकर (देवानां निष्कृतं) देवोंके स्थानमें (उपयाति) जाता है ॥ १ ॥

१ राजा वाचं जनयन् असिष्यदत्-- यज्ञका राजा यह सोम शब्द करता हुआ अपने स्थानमें यज्ञमें बैठा रहता है ।
२ अपः वसानः गाः अभि इयक्षति-- जलमें मिश्रित होकर गौवोंके दूधसे मिश्रित होता है, अथवा स्तुतियां सुनता रहता है ।
३ अस्य रिप्रं अविः तान्वा गृभ्णाति-- इसका आवरण भेडीके बालोंका होता है, उस आवरणको अपने शरीरसे धारण करता है । भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे सोमरस छाना जाता है ।
४ शुद्धः देवानां निष्कृतं उपयाति-- शुद्ध होकर अर्थात् छाना जाकर यह सोमरस देवोंके पास जाता है । देव इसका स्वीकार करते हैं ।

[६९३] हे (सोम) सोम ! तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (नृभिः) यज्ञकर्ता याजकोंने (परि षिच्यसे) रस निकाला जाता है । (नृचक्षा) याजकोंके द्वारा निरीक्षण किया (ऊर्मिः कविः) प्रेरित हुआ ज्ञानी सोम (वने अज्यसे) जलमें मिलाया जाता है । (पूर्वीः ते स्रुतयः) पूर्व कालसे तेरे अनेक मार्ग (यातवे सन्ति) यज्ञमें जानेके लिये हुए हैं । (सहस्रं हरयः अश्वाः) हजारों हरे रंगके घोडोंके समान (चमूषदः) रस निकालनेके समय यज्ञस्थानमें बैठनेवाले होते हैं ॥ २ ॥

१ हे सोम ! नृभिः इन्द्राय परि षिच्यसे-- हे सोम ! याजकोंके द्वारा इन्द्रको देनेके लिये तेरा रस निकाला जाता है ।
२ नृचक्षा ऊर्मिः कविः वने अज्यसे-- याजकोंके द्वारा उत्तम रीतिसे जिसका निरीक्षण होता है ऐसा सोमरस जलमें मिलाया जाता है ।
३ पूर्वीः ते स्रुतयः यातवे सन्ति-- प्राचीन कालसे तेरे यज्ञमें जानेके अनेक मार्ग प्रसिद्ध हुए हैं ।
४ सहस्रं हरयः अश्वाः चमूषदः-- युद्धमें जानेवाले सहस्रों घोडोंके समान यज्ञस्थानमें जाकर बैठनेवाले सहस्रों मनुष्य होते हैं । यज्ञमें अनेक मनुष्य जांय और यज्ञको देखें ।

६९४ समुद्रियां अप्सरसो मनीषिण--मासीना अन्तरभि सोममक्षरन् ।
ता ईं हिन्वन्ति हर्म्यस्य सक्षणिं याचन्ते सुम्नं पवमानमक्षितम् ॥ ३ ॥
६९५ गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित् स्वर्जिदब्जित् पवते सहस्रजित् ।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥ ४ ॥
६९६ एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन् द्रविणान्यर्षसि ।
जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥ ५ ॥

अर्थ-- [६९४] (समुद्रियाः) अन्तरिक्ष स्थानीय (अप्सरसः) जल (अन्तः) अन्दर (आसीनाः) रहनेवाले (मनीषिणं सोमं) बुद्धिवर्धक सोमके समीप (अभि अक्षरन्) पहुंचते हैं। (ताः) वे जल (ईं) इस सोमको (हर्म्यस्य सक्षणिं) यज्ञगृहके समीप (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं। और (अक्षितं पवमानं) अविनाशी सोमको (सुम्नं याचन्ते) सुख मांगते हैं ॥ २ ॥

१ समुद्रिया अप्सरसः अन्तः आसीनाः मनीषिणं सोमं अभि अक्षरन्-- अन्तरिक्षमें रहे जलोंके अन्दर बुद्धिकी शक्ति बढानेवाले सोम जाते हैं। जलमें सोमरस मिलाया जाता है।

२ ताः ईं हर्म्यस्य सक्षणिं हिन्वन्ति-- वे जल इस सोमको यज्ञमें जानेकी प्रेरणा करते हैं। यज्ञस्थानमें सोमरसमें जल मिलाया जाता है।

३ अक्षितं पवमानं सुम्नं याचन्ते-- अविनाशी सोमके पास सुख प्राप्त होनेकी मांग याजक करते हैं। सोम सुख और आनंद देता है तथा सुख बढाता है। सोमरस पीनेसे आनंद बढता है।

[६९५] (नः) हमारे लिये (गोजित्) गौंको जितनेवाला (रथजित्) रथोंको जीतनेवाला (हिरण्यजित्) सुवर्णको जितनेवाला (अब्जित्) जलोंको जितनेवाला (सहस्रजित्) सहस्रों प्रकारके धनोंको जितनेवाला (सोमः पवते) सोमरस निकालनेके लिये शुद्ध किया जाता है। (यं) जिस सोमको (देवासः) सब देवोंने (पीतये) पीनेके लिये (मदं) आनंद बढानेवाला (स्वादिष्ठं) मधुर (द्रप्सं) रसरूपी (अरुणं) अरुण रंगवाला (मयोभुवं) सुख बढानेवाला (चक्रिरे) बनाया है ॥ ४ ॥

(नः) हमारे लिये (सोमः पवते) सोमका रस निकाला जाता है, वह सोम ऐसा होता है।

१ गोजित्-- गोदुग्धमें मिलाया जाता है।

२ रथजित्-- रथमें बैठनेवाले वीर शत्रुओंको जानते हैं।

३ अब्जित्-- जलोंको जीतकर अपने आधीन करके रखते हैं।

४ सहस्रजित्-- सहस्रों प्रकारके धनोंको जीतते हैं।

५ देवासः यं पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्सं अरुणं मयोभुवं चक्रिरे-- देवोंने इस सोमको अपने पीनेके लिये आनंददायक, स्वादिष्ट, रसरूप भूरे रंगका सुखदायी ऐसा बनाया।

[६९६] हे (सोम) सोम! (एतानि द्रविणानि) ये धन (सत्यानि कृण्वन्) सत्य रीतिसे सहायक करनेवाला तू (पवमानः अर्षसि) शुद्ध होकर आगे जाता है। (जहि शत्रुं) पराजित करो शत्रुको (यः दूरके अन्तिके च) जो शत्रु दूर है तथा जो पास है, उन सब शत्रुओंको दूर करो। तथा (उर्वीं गव्यूतिं) बडा विस्तीर्ण मार्ग (च) तथा (अभयं) निर्भयता (नः कृधि) हमारे लिये करो ॥ ५ ॥

[७९]

(ऋषिः - कविर्भार्गवः । देवताः– पवमानः सोमः । छन्दः– जगती ।)

६९७ अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र सुवानासो बृहद्दिवेषु हरयः ।
वि च नशन् न इषो अरातयोऽर्यो नशन्त सनिषन्त नो धियः ॥ १ ॥
६९८ प्र णो धन्वन्त्विन्दवो मदच्युतो धना वा येभिरर्वतो जुनीमसि ।
तिरो मर्तस्य कस्य चित् परिह्वृतिं वयं धनानि विश्वधा भरेमहि ॥ २ ॥

अर्थ-- १ एतानि द्राविणानि सत्यानि कृण्वन्— वे सब धन हमारे लिये सत्य धन करो । ये सब हमें प्राप्त हों ऐसा करो ।

२ यः दूरके यः अन्तिके च, शत्रुं जहि— जो शत्रु दूर होगा अथवा जो शत्रु पास होगा, उन सब शत्रुओंको पराजित करो ।

३ ऊर्वीं गव्यूतिं नः कृधि— विस्तीर्ण मार्ग हमारी उन्नतिके लिये कर । हम उस मार्गसे जांय और उन्नति प्राप्त करें ।

४ नः अभयं कृधि— हमारे लिये निर्भयता सर्वत्र प्राप्त होती रहे ऐसा कर ।

[७९]

[६९७] (अचोदसः) विना दूसरेकी प्रेरणासे स्वयं प्रेरित हुए (इन्दवः) सोम (नः धन्वन्तु) हमें प्रेरित करें । (बृहद्दिवेषु) अति तेजस्वी यज्ञोंमें (हरयः प्र सुवानासः) हरे रंगके सोम अपना रस देते हैं । (नः इषः अरातयः) हमारे अन्नके जो शत्रु है वे शत्रु (वि नशन्त च) विशेष रीतिसे नष्ट हो जांय । तथा (अर्यः) सब शत्रु (नशन्त) विनष्ट हो जांय और (नः धियः) हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको (सनिषन्त) सफलता प्राप्त होती रहे ॥ १ ॥

१ अचोदसः इन्दवः न धन्वन्तु— स्वयं प्रेरित हुए सोम हमें सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देते रहें ।

२ बृहद्दिवेषु हरयः प्रसुवानासः— यज्ञोंमें हरे रंगके सोम रस देते रहें ।

३ नः इषः अरातयः च विनशन्त— हमारे अन्नके शत्रु विशेष रीतिसे नष्ट हो जांय । अन्नका नाश करनेवाले शत्रु नष्ट हो जांय ।

४ अर्यः विनशन्त— हमारे शत्रु नष्ट हो जांय ।

५ नः धियः सनिषन्त-- हमारी बुद्धियोंसे किये कर्मोंको सफलता प्राप्त हो जांय । हमारे कर्म यशस्वी हो जांय ।

[६९८] (नः इन्द्रवः) हमारे सोमरस (मदच्युतः) आनंद बढाते हुए (धना प्र धन्वन्तु) धनोंको हमारे पास प्रेरित करें । (येभिः) इन सोमोंसे (अर्वतः जुनीमसि) बलवान शत्रुके साथ हम मुकाबला कर सकें । (कस्य चित् मर्तस्य) किसी शत्रुकी (परिह्वृतिं) बाधा करनेकी प्रवृत्तिको (तिरः) दूर करके (वयं) हम (धनानि) धनोंको (विश्वधा भरेमहि) सब प्रकारोंसे भरपूर प्राप्त करेंगे ॥ २ ॥

१ इन्दवः मदच्युतः धना प्र धन्वन्तु— सोमरस आनंद बढाते हुए धनोंको हमारे पास प्रेरित करें ।

२ येभिः अर्वतः जुनीमसि— जिन सोमरसोंसे शक्ति प्राप्त करके शत्रुसे मुकाबला कर सकेंगे ।

३ कस्यचित् मर्तस्य परिह्वृतिं तिरः— किसी भी दुष्ट शत्रुकी हमारे लिये दुःख देनेकी प्रवृत्तिको हम दूर करेंगे । ऐसे समर्थ वीर हम बनेंगे ।

४ वयं धनानि विश्वधा भरेमहि— हम धनोंको अनेक प्रकारके प्रयत्नोंसे भरपूर भर देंगे । धनोंको अनेक सदुपायोंसे प्राप्त करेंगे ।

६९९ उत स्वस्या अरात्या अरिर्हि ष उतान्यस्या अरात्या वृको हि षः ।
धन्वन् न तृष्णा समरीत ताँ अभि सोम जहि पवमान दुराध्यः ॥ ३ ॥
७०० दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः ।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्यप्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥
७०१ एवा त इन्दो सुभ्वं सुपेशसं रसं तुञ्जन्ति प्रथमा अभिश्रियः ।
निदंनिदं पवमान नि तारिष आविस्ते शुष्मो भवतु प्रियो मदः ॥ ५ ॥

अर्थ-- [६९९] (उत) और (सः) वह सोम (स्वस्याः अरात्याः) अपने शत्रुको (अरिः) नाश करनेवाला है तथा (सः) वह सोम (अन्यस्याः अरात्याः) दूसरे शत्रुका भी (वृकः हि) नाश करनेवाला है । (धन्वन् तृष्णा न) मरु देशमें रहनेवालेकी इच्छा (समरीत) जैसी होती है (तां अभि) उसके अनुकूल कार्य करो । (सोमं) सोम (पवमान) रस ! (दुराध्यः अभि जहि) दुष्ट शत्रुका विनाश करो ॥ ३ ॥

१ उतः सः स्वस्याः अरात्याः अरिः-- वह सोम अपने शत्रुका विनाश करनेवाला है ।

२ सः अन्यस्याः अरात्याः वृकः हि— वह दूसरे शत्रुका भी विनाश करनेवाला है ।

३ धन्वन् तृष्णो न समरीत तां अभि— मरु देशमें, जलहीन देशमें रहनेवालेकी इच्छा होती है वैसी इच्छा धारण करो । मरु देशमें सबको जल प्राप्त करनेकी इच्छा होती है, वैसी जीवन प्राप्त करनेकी इच्छा करो ।

४ दुराध्यः अभि जहि— दुष्ट शत्रुओंका नाश करो ।

[७००] हे सोम ! (ते) तेरा (परमः) उत्तम अंश (दिवि) द्युलोकमें (नाभा) मुख्य स्थानमें रहता है । (यः आददे) जो हविष्यान्नका स्वीकार करता है । (पृथिव्याः सानवि) पृथिवीपरके ऊंचे स्थानमें (क्षिपाः रुरुहुः) रहकर वे बढते हैं । (अद्रयः त्वा बप्सन्ति) पत्थर तुझे कूटते हैं । (गोः अधि त्वचि) गौके चर्मपर तुझे रखते हैं । (त्वा हस्तैः अप्सुः) तुझे जलोंमें हाथोंसे (मनीषिणः दुदुहुः) विद्वान् मिलाकर तेरा रस निकालते हैं ॥ ४ ॥

१ ते परमा दिवि नाभा— हे सोम ! तेरा मुख्य भाग द्युलोकके मुख्य उच्च स्थानमें उगता है । पर्वतके शिखरपर सोम उगता है । वह स्थान द्युलोकका होता है । हिमालयके ऊंचे शिखरपर सोम होता है । वह द्युलोक ही है ।

२ पृथिव्याः सानवि क्षिपाः रुरुहुः— पृथिवीके ऊंच भागमें ये सोमवल्लियां उगती और बढती हैं ।

३ अद्रयः त्वा बप्सन्ति— पत्थर सोमको कूटते हैं और उससे रस निकालते हैं ।

४ गोः त्वचि अधि त्वा हस्तैः अप्सु दुदुहुः-- गौके चर्मपर सोमको रखकर हाथोंसे जलोंमें मिलाकर तुम्हारा रस यज्ञकर्ता निकालते हैं ।

[७०१] हे (इन्दो) सोम ! (एव) इस प्रकार (ते सुभ्वं सुपेशसं) तरा उत्तम यज्ञभवनमें उत्तम रूपसंपन्न (रसं) रस (प्रथमाः) मुख्य अध्वर्यु (अभिश्रियः) मिलकर (तुञ्जन्ति) निकालते हैं । हे (पवमान) सोम ! (निदं निदं) हमारे निंदकको अर्थात् हमारे शत्रुको (नितारिषः) विनष्ट कर । (ते शुष्मः) तेरा बल बढानेवाला (प्रियः मदः) आनंद बढानेवाला रस (आविः) बाहर (भवतु) आ जांय ॥ ५ ॥

[८०]

(ऋषिः- वसुर्भारद्वाजः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७०२ सोमस्य धारा पवते नृचक्षस ऋतेन देवान् हवते दिवस्परि ।
बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते समुद्रासो न सवनानि विव्यचुः ॥ १ ॥

७०३ यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषता ऽयोहतं योनिमा रोहसि द्युमान् ।
मघोनामायुः प्रतिरन् महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥ २ ॥

---

१ हे इन्दो ! पव ते सुभ्वं सुपेशसं रसं प्रथमाः अभिश्रियः तुञ्जन्ति— हे सोम ! तेरा उत्तम सुंदर रस मुख्य अध्वर्यु मिलकर निकालते हैं ।

२ निदं निदं नि तारिष— हमारे सब शत्रुओंका नाश कर ।

३ ते शुष्मः प्रियः मदः आविः भवतु— तेरा बल बढानेवाला आनंद बढानेवाला रस बाहर आ जाय । सोमका रस पीनेवालेका बल बढाता है इस कारण वीर लोग इस सोमरसको पीते हैं और युद्धमें पराक्रम करते हैं ।

[८०]

[७०२] (सोमस्य धारा पवते) सोमरसकी धाराएं शुद्ध हो रही हैं । (नृचक्षसः) यज्ञकर्ताओंको देखनेवाला सोम (ऋतेन देवान्) यज्ञके द्वारा देवोंको (हवते) हवन करता है (दिवस्परि) द्युलोकके ऊपर पहुंचनेके लिये (बृहस्पतेः) बृहस्पतिके (रवथेन) शब्दोंके द्वारा (वि दिद्युते) प्रकाशित होता है । (समुद्रासः न) समुद्रोंके समान पृथिवीको (सवनानि विव्यचुः) यज्ञके स्तोत्र व्यापते हैं ॥ १ ॥

१ सोमस्य धारा पवते— सोमरसकी धारा शुद्ध हो रही है ।

२ नृचक्षसः ऋतेन देवान् हवते— मनुष्योंका- यज्ञकर्ताओंका निरीक्षण करनेवाला सोम यज्ञके द्वारा देवोंके पास हवनीय पदार्थ पहुंचाता है ।

३ दिवस्परि बृहस्पतेः रवथेन विदिद्युते — द्युलोकके ऊपर बृहस्पतिके शब्दोंके द्वारा सोमका प्रकाश जाता है ।

४ समुद्रासः न सवनानि विव्यचुः— पृथिवीपर जैसे समुद्र व्याप रहे हैं, वैसे सोमके रस यज्ञमें व्याप रहे हैं ।

[७०३] हे (वाजिन्) अन्न युक्त सोम ! (यं त्वा) जिस तेरी (अघ्न्याः) गौवें (अभ्यनूषते) स्तुति करती हैं वह तू (अयोहतं) सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले हाथसे सुसंस्कार युक्त किया हुआ (योनिं आरोहसि) यज्ञके स्थान पर बैठता है और वहां (द्युमान्) तेजस्वी होता है । हे (सोम) सोम ! (मघोनां) हवन करनेवालोंकी (आयुः) आयुष्य तथा (महिश्रवः) बहुत अन्न (प्रातिरत्) बढाता है और (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वृषा मदः पवसे) बल और आनंद बढानेवाला होता है ॥ २ ॥

१ त्वा अघ्न्याः अभ्यनूषत— हे सोम ! गौवें तेरी प्रशंसा करती है ।

२ अयोहतं योनिं आरोहसि— सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले याजकोंके यज्ञस्थानमें तू रहता है । जहां यज्ञ होता है वहां सोम रहता है । (द्युमान्) सोम तेजस्वी दीखता है ।

३ मघोनां आयुः महिश्रवः प्रतिरत्— यज्ञ कर्ताओंकी आयु तथा अन्न आदि ऐश्वर्य सोम बढाता है ।

४ इन्द्राय वृषा मदः पवसे— इन्द्रका बल तथा आनंद सोम बढाता है । सोमरस पीनेसे बल तथा आनंदमय उत्साह बढता है ।

७०४ एन्द्रस्य कुक्षा पवते मदिन्तम ऊर्जं वसानः श्रवसे सुमङ्गलः ।
प्रत्यङ् स विश्वा भुवनाभि पप्रथे क्रीळन् हरिरत्यः स्यन्दते वृषा ॥ ३ ॥
७०५ तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं नरः सहस्रधारं दुहते दश क्षिपः ।
नृभिः सोम प्रच्युतो ग्रावभिः सुतो विश्वान् देवाँ आ पवस्वा सहस्रजित् ॥ ४ ॥
७०६ तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तमद्रिभि- र्दुहन्त्यप्सु वृषभं दश क्षिपः ।
इन्द्रं सोम मादयन् दैव्यं जनं सिन्धोरिवोर्मिः पवमानो अर्षसि ॥ ५ ॥

अर्थ— [७०४] यह सोम (इन्द्रस्य कुक्षा) इन्द्रकी कुक्षीमें जानेके लिये (आ पवते) रस निकाला जाता है। (श्रवसे) अन्नके लिये यह सोमरस निकालते हैं। यह सोम (मदिन्तमः) आनंद देनेवाला (ऊर्जं वसानः) बल बढाता है। (सुमंगलः) उत्तम कल्याण करनेवाला है। (सः) वह सोमरस (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष रीतिसे (विश्वा भुवनानि) सब भुवनोंको (अभि पप्रथे) प्रकाशित करता है। यह (क्रीळन्) यज्ञ स्थानमें खेलकर (हरिः) हरे रंगका सोम (अत्यः) चपल घोडेके समान (वृषा स्यन्दते) बल बढाकर रसरूपसे प्रकट होता है ॥ ३ ॥

१ इन्द्रस्य कुक्षा आ पवते-- इन्द्रके पेटमें जानेके लिये यह सोमका रस निकाला जाता है।

२ श्रवसे-- अन्नके लिये यह सोमरस उपयोगी होता है।

३ मदिन्तमः ऊर्जं वसानः सुमंगलः-- यह सोमरस आनंद बढानेवाला, बल बढानेवाला तथा उत्तम कल्याण करनेवाला है।

४ सः प्रत्यङ् विश्वा भुवनानि अभि पप्रथे-- यह सोमरस सब यज्ञस्थानोंमें विशेषतः पहुंच कर रहता है।

५ क्रीडन् हरिः अत्यः वृषा स्यन्दते-- खेलोंमें प्रवीण, हरे रंगका यह सोम चपल घोडेके समान बलवान होकर खेलता रहता है।

[७०५] (तं त्वा) उस तुझे (देवेभ्यः) देवोंको देनेके लिये (मधुमत्तमं) अत्यन्त मधुर (सहस्रधारं) हजारों धाराओंसे (नरः) याजक लोगोंकी (दश क्षिपः) दस अंगुलियां (दुहते) रस निकालती हैं। हे (सोम) सोम ! (नृभिः) याजकोंके द्वारा (ग्रावभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला (सहस्रजित्) सहस्रों प्रकारोंसे विजय प्राप्त करनेवाला (विश्वान् देवान्) सब देवोंको देनेके लिये (आ पवस्व) रस निकाल दो ॥ ४ ॥

१ देवेभ्यः तं त्वा मधुमत्तमं सहस्रधारं नरः दश क्षिपः दुहते-- देवोंको पीनेके लिये देनेकी इच्छासे तेरा अति मधुर हजारों धाराओंसे निकलनेवाला रस याजकोंकी दस अंगुलियां निकालती हैं।

२ हे सोम ! नृभिः ग्रावभिः सुतः सहस्रजित् विश्वान् देवान् आ पवस्व— हे सोम ! याजकोंने पत्थरोंसे कूटकर निकाला सहस्रोंको अनेक प्रकार जीतनेवाला सब देवोंको देनेके लिये निकाला यह रस है।

[७०६] (तं) उस (मधुमन्तं) मधुर (वृषभं) कामना पूर्ण करनेवाले (त्वा) तेरा अर्थात् सोमका (हस्तिनः दश क्षिपः) उत्तम हाथवालेकी दस अंगुलियां (अद्रिभिः अप्सु दुहन्ति) पत्थरोंसे कूटकर जलमें रस दुहती हैं। (इन्द्रं) इन्द्रको तथा (अन्यं दैव्यं जनं) दूसरे दिव्य जनको (मादयन्) आनंद देनेके लिये हे (सोम) सोम (सिन्धोः ऊर्मिः इव) सिन्धुकी लहरीके समान (पवमानः अर्षसि) शुद्ध होकर आगे जाता है ॥ ५ ॥

१ तं मधुमन्तं वृषभं त्वा हस्तिनः दश क्षिपः अद्रिभिः अप्सु दुहन्ति-- उस मधुर बल बढानेवाले तुझ सोमका याजकोंकी दस अंगुलियां जलमें रस निकालकर मिलाती हैं।

२ इन्द्रं अन्यं दैव्यं जनं मादयन् सिन्धोः ऊर्मिः इव पवमानः अर्षसि-- इन्द्रको तथा अन्य देवोंको आनंदित करनेके लिये सिन्धुकी लहरीके समान यह सोमरस निकाला जाता है।

[८१]

(ऋषिः- वसुर्भारद्वाजः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ५ त्रिष्टुप् ।)

७०७ प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥ १ ॥
७०८ अच्छा हि सोमः कलशाँ असिष्यददत्यो न वोळ्हा रघुवर्तनिर्वृषा ।
अथा देवानामुभयस्य जन्मनो विद्वाँ अश्नोत्यमुत इतश्च यत् ॥ २ ॥
७०९ आ नः सोम पवमानः किरा वस्विन्दो भव मघवा राधसो महः ।
शिक्षा वयोधो वसवे सु चेतुना मा नो गयमारे अस्मत् परा सिचः ॥ ३ ॥

[८१]

अर्थ--[७०७] (पवमानस्य) शुद्ध किये जानेवाले (सोमस्य) सोमरसकी (सुपेशसः) सुंदर (ऊर्मयः) लहरियां (इन्द्रस्य जठरं प्र यन्ति) इन्द्रके पेटमें जाती हैं । (यत्) जब (ईं सुताः सोमाः) ये रस निकाले सोम (गवां यशसा दध्ना) गौंके दही आदिके साथ (उन्नीताः) मिश्रित किये (दानाय) दान देनेके लिये (शूरं उदमन्दिषुः) शूर इन्द्रको उत्साहित करते है ॥ १ ॥

१ पवमानस्य सोमस्य सुपेशसः ऊर्मयः इन्द्रस्य जठरं प्रयन्ति-- शुद्ध होनेवाले सोमरसकी सुंदर लहरियां इन्द्रके पेटमें जाती हैं । सोमरस इन्द्र पीता है ।

२ यत् ईं सुतासः सोमाः गवां यशसा दध्ना उन्नीताः दानाय शूरं उदमन्दिषुः-- ये सोमरस गौओंके दूध या दहीके साथ मिलाये जानेपर वे शूर इन्द्रके पेटमें जाकर उस इन्द्रको उत्साहित करते हैं। सोमरस पीनेसे वीरोंका उत्साह बढ जाता है और वे अपना वीरताका कार्य अधिक उत्साहसे कर सकते हैं।

[७०८] यह (सोमः) सोमरस (कलशान्) कलशोंमें (अच्छ) ठीक रीतिसे (असिष्यदत्) जाता है, (अत्यः न वोळ्हा) घोडा जैसा गाडी जोडनेमें लगा होता है, जो घोडा (रघुवर्तनिः वृषा) जलद चालनेवाला तथा बलवान होता है । (अथ) जैसा (देवानां) देवोंके (उभयस्य जन्मनः विद्वान्) दोनों जन्मोंको जाननेवाला ज्ञानी होता है । (यत्) वह दो जन्म (अमुतः) द्युलोकसे तथा (इतः) इस भूलोकसे (अश्नोति) व्यापता है ॥ २ ॥

१ सोमः कलशान् अच्छ असिष्यदत्— यह सोमरस कलशोंमें जाकर रहता है ।

२ रघुवर्तनिः वृषा अत्यः वोळ्हा न— जैसे चपल बलवान् घोडा दौडकर चलता है ।

३ अथ देवानां उभयस्य जन्मनः विद्वान्, अमुतः इतः अश्नोति – जैसे देवोंके दोनों प्रकारके जन्मोंको जाननेवाला ज्ञानी द्युलोक और भूलोकमें उनके जन्मका वृत्त जानता है । देव द्युलोकमें तथा भूलोकमें आकर कार्य करते हैं । यह उनका कार्य ठीक प्रकार जानना चाहिये । सूर्य द्युलोकमें है, परंतु उसका प्रकाश भूमीपर आता है । ऐसा देवोंका कार्य दोनों स्थानोंमें होता है । यह जानना चाहिये।

[७०९] हे (सोम) सोम ! (पवमानः) शुद्ध होता हुआ तू (नः) हमारे लिये (वसु) धन (आ किर) दे । हे (इन्दो) सोम ! तू (महः राधसः मघवा भव) बडे धनको देनेवाला हो । हे (वयोधः) अन्नके दाता तू सोम (वसवे) यहां रहनेवाले हमारे जैसों किये (सु चेतुना) उत्तम ज्ञानके साथ (नः गयं) हमारे गृह आदि धनको (अस्मत् परा आरे मा सिचः) हमसे दूर प्रेरित न कर ॥ ३ ॥

७१० आ नः॑ पू॒षा पव॑मानः सुरा॒तयो॑ मि॒त्रो ग॑च्छन्तु॒ वरु॑णः स॒जोष॑सः ।
बृ॒ह॒स्पति॑र्म॒रुतो॑ वा॒युर॒श्विना॒ त्वष्टा॑ सवि॒ता सु॒यमा॒ सर॑स्वती ॥ ४ ॥
७११ उ॒भे द्यावा॑पृथि॒वी वि॑श्व॒मिन्वे॑ अ॒र्य॒मा दे॒वो अदि॑ति॒र्वि॑धा॒ता ।
भगो॑ नृ॒शंस॑ उ॒र्व१॒॑न्तरि॑क्षं॒ विश्वे॑ दे॒वाः पव॑मानं जुषन्त ॥ ५ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! पवमानः नः वसु आ किर — हे सोम ! शुद्ध होकर तू हम सबके लिये पर्याप्त धन दो ।

२ हे इन्दो ! महः राधसः मघवा भव— हे सोम ! तू विपुल धनको देनेवाला होवो ।

३ हे वयोधः ! वसवे सुचेतुना नः गयं अस्मत् परा आरे मा सिचः-- हे अन्नके दान करनेवाले सोम ! यहां रहनेवाले हमारे जैसोंके लिये उत्तम ज्ञानके साथ हमारे गृह आदि धनको हमसे दूर न करो । हमारे रहनेके घर तथा सब प्रकारके अन्य धन हमारे पास सुस्थिर रूपसे रहें, कभी विनष्ट न हों ऐसा करो ।

[७१०] (सुरातयः) उत्तम दान देनेवाले पूषा, (पवमानः) सोम, मित्र, वरुण, (सजोषसः) साथ रहनेवाले बृहस्पति, मरुत्, वायु, अश्विनौ, त्वष्टा, सविता तथा (सुयमा) उत्तम रीतिसे नियमोंका पालन करनेवाली सरस्वती ये देवताएं (नः आ गच्छन्तु) हमारे पास आजांय ॥ ४ ॥

१ पूषा— पोषण करनेवाला पूषा देव है । वह हमारा पोषण करे ।

२ पवमानः — सोम देव हमें अपना रस दे और हमारा बल बढावे ।

३ मित्रः— मित्रवत् हमारे साथ आचरण करे ।

४ वरुणः— श्रेष्ठतासे हमें युक्त करे ।

५ बृहस्पति— हमें ज्ञान प्रदान करे, हमारा ज्ञान बढावे ।

६ मरुत्— युद्ध करनेवाले सैनिक हमें सैनिकीय शिक्षा दें और युद्धमें विजय मिले ऐसा करें ।

७ वायुः— प्राणकी शक्ति बढाकर हमें दीर्घायु करे ।

८ अश्विनौ-- ये वैद्य हमें रोगरहित अर्थात् नीरोग करें ।

९ त्वष्टा-- उत्तम कार्य करनेकी शिक्षा हमें दें । हमें उत्तम कारीगर बनावें ।

१० सविता-- (सर्वस्य प्रसविता) यह उत्पादक शक्ति हमें दें ।

११ सुयमा सरस्वती-- यह विद्या देवी हमें विद्या प्रदान करे । हमें ज्ञानी बनावे । यम नियमोंमें रहकर अपनी उन्नति करनेकी शिक्षा हमें दें ।

[७११] (विश्वं इन्वे) सर्वव्यापक (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी ये (उभे) दोनों (अर्यमा देवः) तथा अर्यमा देव (अदितिः) प्रकृति देवी, विधाता देव, भग (नृशंसः उरु अंतरिक्षं) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यह विस्तृत अंतरिक्ष, (विश्वेदेवाः) सब देव (पवमानं जुषन्त) सोमको सेवन करें ॥ ५ ॥

१ विश्वमिन्वे उभे द्यावापृथिवी— सर्वत्र व्याप्त द्यु और पृथिवी ये दोनों देव ।

२ अर्यमा देवः— श्रेष्ठ तथा कनिष्ठकी परीक्षा करनेवाला देव ।

३ अदिति— मूल प्रकृति ।

४ विधाता — सबको उत्पन्न करनेवाला देव ।

५ भगः— ऐश्वर्यवान देव, भाग्यवान, धनवान देव ।

६ नृशंसः — मनुष्य जिसकी प्रशंसा करते हैं वह देव ।

७ उरु अन्तरिक्ष— विशाल अन्तरिक्ष ।

८ विश्वे देवाः— सब देव ।

९ पवमानं जुषन्त— वे सब देव सोमरसका सेवन करें ।

×

[८२]

(ऋषिः- वसुभारद्वाजः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ५ त्रिष्टुप् ।)

७१२ असा॑वि॒ सोमो॑ अरु॒षो वृषा॒ हरी॒ राजे॑व द॒स्मो अ॒भि गा अ॑चिक्रदत् ।
पुना॒नो वारं॒ पर्ये॑त्य॒व्ययं॑ श्ये॒नो न योनिं॑ घृ॒तव॑न्तमा॒सद॑म् ॥ १ ॥

७१३ क॒विर्वे॑ध॒स्या पर्ये॑षि॒ माहि॑न॒मत्यो॒ न मृ॒ष्टो अ॒भि वाज॑मर्षसि ।
अ॒प॒सेध॑न् दुरि॒ता सो॑म मृळय घृ॒तं वसा॑नः॒ परि॑ यासि नि॒र्णिज॑म् ॥ २ ॥

७१४ प॒र्जन्यः॑ पि॒ता म॑हि॒षस्य॑ प॒र्णिनो॒ नाभा॑ पृथि॒व्या गि॒रिषु॒ क्षयं॑ दधे ।
स्वसा॑र॒ आपो॑ अ॒भि गा उ॒ताम॑र॒न् सं ग्राव॑भिर्नसते वी॒ते अ॑ध्व॒रे ॥ ३ ॥

---

[८२]

अर्थ— [७१२] (अरुषः) तेजस्वी (वृषा) बलवर्धक (हरिः) हरे रंगका (दस्मः) दर्शनीय (राजा इव) राजाके समान यह सोम (गाः अभि) जलके पास (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है । यह (सोमः) सोमका (असावि) रस निकाला है । (पुनानः) यह छाना जानेके समय (अव्ययं वारं पर्येति) मेंढाके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है । (श्येनः योनिं न) श्येन पक्षी जैसा अपने स्थानमें आ जाता है वैसा यह सोम (घृतवन्तं आसदं) जलयुक्त स्थानमें आता है ॥ १ ॥

[७१३] (कविः) दूरदर्शी तू सोम (वेधस्या) यज्ञ करनेकी इच्छासे (माहिनं पर्येषि) प्रशंसनीय छाननीमेंसे गुजरता है (मृष्टः अत्यः न) जैसा स्नान किया घोडा (वाजं अभि अर्षसि) युद्धमें जाता है । हे (सोम) सोम ! (दुरिता अपसेधन्) हमारे पापोंको दूर कर और (मृळय) हमें सुखी कर । (घृतं वसानः) जलमें मिश्रित होकर (निर्णिजं परि यासि) तू छाननीमेंसे पवित्र होता है ॥ २ ॥

१ कविः वेधस्या माहिनं पर्येषि— दूरदर्शी सोम यज्ञ करनेकी इच्छासे प्रशंसनीय छाननीमेंसे गुजरता है । सोमरस छाना जाता है ।

२ मृष्टः अत्यः न वाजं अभि अर्षसि— जैसा स्नान किया घोडा युद्धमें जाता है वैसा शुद्ध हुआ सोम यज्ञमें जाता है ।

३ हे सोम ! दुरिता अपसेधन् मृळय— हे सोम ! तू हमारे पाप दूर कर और हमें सुखी कर ।

४ घृतं वसानः निर्णिजं परियासि— जलमें मिश्रित होकर तू छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[७१४] (महिषस्य) इस महान (पर्णिनः) पानवाले सोमका (पिता पर्जन्यः) पिता पर्जन्य है । यह सोम (पृथिव्या नाभा) पृथिवीके नाभीमें (गिरिषु क्षयं दधे) पर्वतोंमें निवास स्थान करता है । (उत) और (स्वसारः आपः) इस सोमकी बहिने जल धाराएं हैं । (गाः) स्तुतियां (अभि असरन्) चलती है । (वीते अध्वरे) यज्ञके समयमें (ग्रावभिः सं नसते) पत्थरोंके साथ रहता है ॥ ३ ॥

१ महिषस्य पर्णिनः पिता पर्जन्यः— महान पानोंवाले इस सोमका पिता पर्जन्य है । वृष्टिके जलसे पर्वतपर यह उत्पन्न होता है ।

२ पृथिव्या नाभा गिरिषु क्षयं दधे— पृथिवीपर पर्वतोंके शिखर पर यह सोम रहता है । पर्वतोंके शिखर पर यह सोम उगता है ।

३ उत स्वसारः आपः-- इस सोमकी बहिनें जल धाराएं हैं ।

४ गाः अभि असरन्— यज्ञमें सोमकी स्तुतियां होती हैं । यह सोम गोदुग्धके साथ मिलकर रहता है ।

५ वीते अध्वरे ग्रावभिः सं नसते— यज्ञमें यह सोम पत्थरोंके साथ कूटा जाता है और इसका रस निकाला जाता है ।

७१५ जायेव पत्यावधि शेव मंहसे पज्राया गर्भ शृणुहि ब्रवीमि ते ।
अन्तर्वाणीषु प्र चरा सु जीवसेऽनिन्द्यो वृजने सोम जागृहि ॥ ४ ॥
७१६ यथा पूर्वेभ्यः शतसा अमृध्रः सहस्रसाः पर्यया वाजमिन्दो ।
एवा पवस्व सुविताय नव्यसे तव व्रतमन्वापः सचन्ते ॥ ५ ॥

[८३]

(ऋषिः- पवित्र आङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७१७ पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥ १ ॥

अर्थ—[७१५] (जाया इव पत्यौ) पत्नी जैसी पतिको (शेव) सुख (अधि मंहसे) देती है, उस प्रकार हे सोम ! तू यजमानको सुख देता है । (पज्राया गर्भ) हे पर्जन्यके पुत्र सोम ! (शृणुहि) सुन । (ते ब्रवीमि) तुझे मैं कहता हूं । वह तूं (वाणीषु अन्तः) स्तुतियोंके अन्दर (सु प्रचर) उत्तम रीतिसे रह और (जीवसे) हमारे जीवनके लिये हे (सोम) सोम ! (अनिन्द्यः) स्तुतिके लिये योग्य होकर (वृजने जागृहि) हमारे शत्रुके विषयमें जागृत रहो ॥ ४ ॥

१ जाया पत्यै इव शेव अधि मंहसे — स्त्री जैसी पतिको सुख देती है उस प्रकार सोम यजमानको सुख देता है ।

२ वाणीषु अन्तः सु प्रचर — स्तुतियोंके अन्दर तू अपने शुभ गुणोंके साथ रह । स्तोत्रोंसे तेरा यथार्थ ज्ञान होता रहे ।

३ जीवसे जागृहि — हमारे जीवनमें हमें सुख मिले इस विषयमें जाग्रत रहकर यत्न कर ।

४ अनिंद्यः वृजने जागृहि — निंदाके योग्य न होकर हमारे शत्रुका जाग्रत रहकर सूक्ष्म दृष्टीसे निरीक्षण कर । शत्रु हमारे ऊपर आक्रमण न करे ऐसा कर ।

[७१६] हे (इन्दो) सोम ! तू (यथा) जैसा (पूर्वेभ्यः) पूर्व समयके ऋषियोंके लिये (शतसा) सैकडों प्रकारके धन (पर्ययाः) देता रहा तथा (सहस्रसाः) सहस्रों प्रकारके (वाजं) अन्न आदि धन सांप्रतके ज्ञानीयोंको देवो (अमृध्रः) अहिंसित होकर यह कार्य कर । (एव) इस प्रकार (नव्यसे सुविताय) नवीन ज्ञानीके सुखके लिये (पवस्व) रस देता रहो । (तव व्रतं) तेरा व्रत (आपः) ये यज्ञस्थानीय जल (अनुसचन्ते) अनुकूल होकर पूर्ण करते हैं ॥ ५ ॥

१ हे इन्दो ! यथा पूर्वेभ्यः शतसा पर्ययाः, सहस्रसाः वाजं अमृध्रः— हे सोम ! जैसा तूने पूर्वकालके ज्ञानियोंको सैंकडों प्रकारके धन दिये थे, वैसे सांप्रतके ज्ञानियोंको सहस्रों प्रकारके धन दे दो ।

२ अमृध्रः— तूं अहिंसित होकर कार्य करते रहो ।

३ नव्यसे सुविताय पवस्व— नवीन ज्ञानियोंको सुख देनेके लिये रस निकालकर दे दो ।

४ तव व्रतं आपः अनुसचन्ते — तेरे व्रतको ये यज्ञस्थानके जल अनुकूल होकर पूर्ण कर देंगे ।

[८३]

[७१७] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन् ! (ते पवित्रं विततं) तेरा पवित्रता करनेका कार्य फैला है । (प्रभुः) तूं सबका प्रभु हो, तुम्हारे (गात्राणि) अंग (विश्वतः पर्येषि) सर्वत्र फैले हैं । (अतप्ततनूः) जिसका शरीर कार्य करनेसे तप्त नहीं हुआ है, वह (आमः तत् अश्नुते) अपरिपक्व मनुष्य उस सुखको प्राप्त नहीं कर सकता । (शृतासः इत्) वे परिपक्व हुए मनुष्य ही (तत् समाशत) उस आनंदको प्राप्त कर सकते हैं ॥ १ ॥

७१८ तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे शोचन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन् ।
अवन्त्यस्य पवीतारमाशवो दिवस्पृष्ठमधि तिष्ठन्ति चेतसा ॥ २ ॥
७१९ अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ३ ॥

अर्थ-- १ हे ब्रह्मणस्पते ! ते पवित्रं विततं— हे ज्ञानी प्रभु ! तेरा पवित्रता चारों ओर करनेका कार्य चल रहा है । ज्ञान प्रचार करके सुविचारोंको फैलाकर सबकी पवित्रता करनेका कार्य ज्ञानी लोक कर रहे हैं ।

२ प्रभुः गात्राणि विश्वतः पर्येषि— तू सबका प्रभु है । अपने ज्ञानका प्रसार करनेके सब अंग उपांग चारों ओर फैला रहा है ।

३ अततनूः तत् आमः न अश्नुते— अपरिपक्व मनुष्य उस परम सुखको प्राप्त नहीं कर सकता । शरीर कष्ट सहन करनेका अभ्यासी हो, वही परम सुख प्राप्त कर सकता है ।

४ शृतास इत् तत् समासते— परिपक्व हुए मनुष्य ही उस श्रेष्ठ सुखको प्राप्त कर सकते हैं ।

[७१८] (तपोः पवित्रं) शत्रुको तपानेवाले सोमका पवित्र करनेवाला अंग (दिवः पदे विततं) द्युलोकके उच्च स्थानमें फैला है । (अस्य) इस सोमके (तन्तवः शोचन्तः) अंश प्रकाशित होकर (व्यस्थिरन्) विविध प्रकारसे स्थिर हुए हैं । (अस्य तन्तवः) इस सोमके अंश (पवितारं अवन्ति) पवित्रता करनेवालेका संरक्षण करते हैं । वे (दिवः पृष्ठं) द्युलोकके पृष्ठ भागपर (चेतसा अधितिष्ठन्ति) बुद्धिसे युक्त होकर रहते हैं ॥ २ ॥

१ तपोः पवित्रं दिवः पदे विततम्— शत्रुको ताप देनेवाला सोमका अंग द्युलोकमें उच्च स्थानमें फैला है ।

२ अस्य तन्तवः शोचन्तः व्यस्थिरन्— इस सोमके अंश प्रकाशित होकर अनेक स्थानोंमें स्थिर हुए हैं । अनेक स्थानोंमें सोम उत्पन्न होकर बढता है ।

३ अस्य तन्तवः पवितारं अवन्ति— इस सोमके अंश उसको शुद्ध करनेवालेका संरक्षण करते हैं ।

४ दिवः पृष्ठं चेतसा अधि तिष्ठन्ति— द्युलोकके पृष्ठ भागपर वे अंश बुद्धिसे युक्त होकर रहते हैं । सोमके अंश द्युलोकमें रहते हैं और वे बुद्धिको बढाते हैं । सोमरस पीनेसे बुद्धि बढती है ।

[७१९] (उषसः) उषाके संबंधित (पृश्निः) आदित्यके विषयमें मुख्य यह सोम (अरूरुचत्) प्रकाशित होता है । वह (उक्षा) जलका सिंचन करनेवाला उदकसे सबका (बिभर्ति) पोषण करता है । अर्थात् (भुवनानि वाजयुः) भुवनोंको अन्न देता है । (मायाविनः) ज्ञानी लोग (अस्य मायया) इसकी प्रज्ञासे (ममिरे) जगत्का निवारण करते हैं । (नृचक्षसः पितरः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले (पितरः) रक्षक लोग (गर्भ आ दधुः) गर्भका धारण करते हैं ॥ २ ॥

१ उषसः पृश्निः अरूरुचत्— उसःकालमें सूर्य प्रकाशता है ।

२ उक्षा बिभर्ति— जलका सिंचन करनेवाला सबका धारण करता है ।

३ भुवनानि वाजयुः— भुवनोंको वह अन्न देता है । सूर्य प्रकाश तथा जल सिंचनसे सबको अन्न मिलता है ।

४ अस्य मायया ममिरे – इसका मायाशक्तिसे निरीक्षण किया जाता है ।

५ नृचक्षसः पितरः पितरः गर्भं आदधुः— मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले रक्षक गर्भका धारण पोषण करते हैं । इससे सबकी उत्पत्ति होती है। गर्भका संरक्षण, पोषण तथा योग्य रीतिसे वृद्धि होनी योग्य है।

७२० गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः ।
गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥ ४ ॥
७२१ हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यं नभो वसानः परि यास्यध्वरम् ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहः सहस्रभृष्टिर्जयसि श्रवो बृहत् ॥ ५ ॥

[८४]

(ऋषिः- वाच्यः प्रजापतिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७२२ पवस्व देवमादनो विचर्षणि-रप्सा इन्द्राय वरुणाय वायवे ।
कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिम-दुरुक्षितौ गृणीहि दैव्यं जनम् ॥ १ ॥

अर्थ-- [७२०] (गंधर्वः) सूर्य (अस्य पदं) इस सोमके स्थानका (इत्था रक्षति) ऐसा रक्षण करता है। (देवानां) देवोंके (जनिमानि पाति) जीवनोंका रक्षण करता है । (रिपुं) शत्रुको (निधया) पाशसे (गृभ्णाति) पकडता है । (निधापतिः) पाशोंका स्वामी (मधुनः भक्षं) मधुर सोमरसका भक्षण (सुकृत्तमा आशत) उत्तम कार्य करनेवाला करता है ॥ ४ ॥

१ गंधर्वः अस्य पदं इत्था रक्षति— सूर्य इस सोमके स्थानका ऐसा संरक्षण करता है । सूर्यके किरण इस सोमका संरक्षण करते हैं ।

२ देवानां जनिमानि पाति— देवोंके जीवनोंका सूर्य रक्षण करता है ।

३ रिपुं निधया गृभ्णाति— शत्रुको पाशोंसे यह बांधता है ।

४ निधापतिः मधुनः भक्षः सुकृत्तमा आशत— पाशोंका स्वामी इस मधुर सोमरसका भक्षण उत्तम कार्य करनेके समय करता है । उत्तम कार्य करनेके समय इस मधुर सोमरसका सेवन करनेसे उत्साह बढता है और उससे उत्तम कार्य उत्तम रीतिसे होता है ।

[७२१] हे (हविष्मः) उदक युक्त सोम ! (हविः) पवित्र (नभः) जलके साथ (वसानः) रहनेवाला (महि दैव्यं सद्म) बडे दिव्य गृहमें रहकर (अध्वरं परियासि) यज्ञमें जाता है । (राजा) राजा (पवित्ररथः) पवित्र रथमें बैठकर (वाजं आरुहः) युद्धमें जाता है और (सहस्रभृष्टिः) अनेक आयुधोंसे युद्ध करके (बृहत् श्रवः) बहुत अन्न (जयसि) विजयसे प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ हविष्मः हविः नभः वसानः महि दैव्यं सद्म अध्वरं परियासि— उदकके साथ पवित्र स्थानमें रहनेवाला सोम बडे यज्ञगृहमें होनेवाले यज्ञमें जाता है ।

२ अध्वर— (अ+ध्वरः) जिसमें हिंसा नहीं होती वह यज्ञ ।

३ राजा पवित्ररथः वाजं आरुहः— राजा उत्तम रथमें बैठकर यज्ञमें जाता है । और उस युद्धमें—

४ सहस्रभृष्टिः बृहत् श्रवः जयसि— हजारों आयुधोंका शत्रुके वध करनेके लिये उपयोग करके बहुत अन्न विजयसे प्राप्त करता है । युद्धमें अनेक शस्त्रों और अस्त्रोंका उपयोग करके शत्रुका पराभव करना योग्य है । शत्रुका पराभव करके बहुत अन्न प्राप्त करना योग्य है ।

[८४]

[७२२] हे सोम ! तू (देवमादनः) देवोंको आनंद देनेवाला (विचर्षणिः) विशेष रीतिसे निरीक्षण करनेवाला (अप्सा) जल देनेवाला (पवस्व) रस दे दो । (इन्द्राय वरुणाय वायवे) इन्द्र वरुण तथा वायुके लिये रस दे । (नः) हमारे लिये (अद्य) आज ही (वरिवः) धन (स्वस्तिमत्) कल्याण करनेवाला (कृधि) कर । (उरुक्षितौ) इस विशाल भूमिपर (दैव्यं जनं गृणीहि) दिव्य जनको सुखी कर ॥ १ ॥

७२३ आ यस्तस्थौ भुवनान्यमर्त्यो विश्वानि सोमः परि तान्यर्षति ।
कृण्वन् त्संचृतं विचृतमभिष्टय इन्दुः सिषक्त्युषसं न सूर्यः ॥ २ ॥
७२४ आ यो गोभिः सृज्यत ओषधीष्वा देवानां सुम्न इषयन्नुपावसुः ।
आ विद्युता पवते धारया सुत इन्द्रं सोमो मादयन् दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥

अर्थ— १ देवमादनः विचर्षणिः अच्छा पवस्व— हे सोम ! तू देवोंको आनंद देनेवाला विशेष रीतिसे निरीक्षण करनेवाला रस निकालो ।

२ इन्द्राय वरुणाय वायवे— इन्द्र वरुण तथा वायु आदि देवोंके लिये रस देवो ।

३ नः अद्य वरिवः स्वस्तिमत् कृधि— हमारे लिये आज ही धन कल्याण करनेवाला कर ।

४ उरुक्षितौ दैव्यं जनं गृणीहि— इस विस्तीर्ण भूमीपर दिव्य जनको सुखी कर। उत्तम सदाचारी मनुष्य ही इस भूमीपर सुखसे रहें ऐसा कर ।

[७२३] (यः सोमः) जो सोम (अमर्त्यः) अमर होकर (विश्वानि भुवनानि) इन सब भुवनोंमें (आतस्थौ) रहा है । वह (तान् परि अर्षति) उनमें जाता है । वह (इन्दुः) सोम देव्यजनोंको (संचृतं) दिव्य भावोंसे संयुक्त करता है और (विचृतं) दुष्ट भावोंसे दूर (कृण्वन्) करता है और (अभिष्टये) इष्ट फल प्राप्ति के लिये (सिषक्ति) यज्ञमें आता है । जैसा (सूर्यः उषसं न) सूर्य उषाके साथ रहता है ॥ २ ॥

१ यः सोमः अमर्त्यः विश्वानि भुवनानि आ तस्थौ — यह अमर सोम सब भुवनोंमें -यज्ञोंमें-उपस्थित रहता है ।

२ तान् परि अर्षति— उन यज्ञोंमें जाता है ।

३ इन्दुः संचृतं विचृतं कृण्वन्— यह सोम मनुष्यको दैवी भावोंसे युक्त तथा राक्षसी भावोंसे दूर करता है ।

४ अभिष्टये सिषक्ति— अभीष्टकी सिद्धिके लिये यज्ञमें आता है ।

५ सूर्यः उषसं न— जैसा सूर्य उषाके साथ रहता है ।

[७२४] (यः सोमः) जो सोम (गोभिः) गौके दूधके साथ (औषधीषु) औषधिरसोंमें (आ सृज्यते) मिलाया जाता है । यह सोमरस (देवानां सुम्ने) देवोंके सुखके लिये निकाला जाता है । (इषयन्) देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है तथा (उपावसुः) शत्रुओंका धन शत्रुओंको पराजित करके प्राप्त करता है । वह सोम (विद्युता धारया) तेजस्वी धारासे (आ पवते) रस देता है । यह (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (इन्द्रं) इन्द्रको, तथा (दैव्यं जनं मादयन्) दिव्य जनोंको आनंद देता है ॥ ३ ॥

१ सोमः गोभिः ओषधीषु आसृज्यते— यह सोमरस गौके दूधके साथ- औषधिरसोंके साथ- जलोंके साथ मिलाया जाता है ।

२ इषयन्— देवोंके पास जानेकी इच्छा करता है ।

३ उपावसुः— शत्रुओंको पराजित करके उनका धन जीतकर लाता है ।

४ विद्युता धारया आ पवते— तेजस्वी धारासे रस देता है । सोमरस चमकता रहता है ।

५ सुतः सोम इन्द्रं दैव्यं जन मादयन्— सोमरस इन्द्रको तथा दिव्यजनोंको अनंद देता है । सोमरस पीनेसे उत्साहमय आनंद बढता है ।

७२५ एष स्य सोमः पवते सहस्रजि—द्धिन्वानो वाचमिषिरामुषर्बुधम् ।
इन्दुः समुद्रमुदियर्ति वायुभि—रेन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति ॥ ४ ॥
७२६ अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।
धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ ५ ॥

[८५]

(ऋषिः- वेनो भार्गवः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती, ११-१२ त्रिष्टुप् ।)

७२७ इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवा—ऽपामीवा भवतु रक्षसा सह ।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ॥ १ ॥

अर्थ— [७२५] (एषः स्यः सोमः) यह वही सोम (पवते) रस देता है। यह सोम (सहस्राजित्) हजारों धनोंको जीतता है। (वाचं हिन्वानः) स्तुति करनेकी प्रेरणा देता है। (इषिरां) सदिच्छाकी प्रेरणा (उषर्बुधं) उषः कालमें जाग्रत होनेकी प्रेरणा देता है। यह (इन्दुः) सोम (समुद्रं) रस प्रवाहको (उदियर्ति) ऊपर जानेकी प्रेरणा (वायुभिः) वायुके द्वारा देता है। यह (इन्द्रस्य हार्दि) इन्द्रके लिये प्रिय सोमरस (कलशेषु सीदति) कलशोंमें रहता है ॥ ४ ॥

१ एषः सोमः पवते सहस्राजित्-- यह सोमका रस निकाला है, वह हजारों प्रकारोंसे शत्रुको जीतता है और उनका धन प्राप्त करता है।

२ वाचं हिन्वानः-- यह सोम स्तुति करनेकी प्रेरणा देता है।

३ इषिरां उषर्बुधं-- सदिच्छाकी तथा उषःकालमें जाग्रत होकर उठनेकी प्रेरणा देता है।

४ इन्दुः समुद्रं उदियर्ति— यह सोमरस जलमें मिश्रित हो जाता है।

५ वायुभिः इन्द्रस्य हार्दि कलशेषु सीदति-- यह सोमरस वायुके साथ मिलकर इन्द्रके लिये यह प्रिय होकर कलशोंमें रहता है। इन्द्रको देनेके लिये इस सोमरसको कलशोंमें रखते हैं।

[७२६] (त्यं पयोवृधं सोमं) उस दूधके साथ मिश्रित होकर बढनेवाले सोमको (गावः) गौवें (स्वर्विदं) अपना ज्ञान बढानेवाले (मतिभिः श्रीणन्ति) स्तुतियोंके साथ अपने दूधमें मिलातीं हैं। (धनंजयः) शत्रुके धनको जीतनेवाला सोम (काव्येन पवते) स्तोत्र पाठके साथ रस देता है। यह (कृत्व्यः) कर्म करनेमें कुशलता बढानेवाला (विप्रः) बुद्धिमान (कविः) ज्ञानी (स्वर्चनाः) उत्तम अन्नसे युक्त (रसः) यह सोम (पवते) रस देता है ॥ ५ ॥

१ त्यं पयोवृधं स्वर्विदं सोमं मतिभिः श्रीणन्ति— उस दूधके मिश्रित होकर बढनेवाले ज्ञान बढानेवाले सोमको स्तुति पाठके साथ जल तथा दूधके साथ मिलाते हैं।

२ धनंजयः काव्येन पवते— युद्धको जीतनेवाला सोम स्तोत्रोंके गानके साथ रस देता है।

३ कृत्व्यः विप्रः कविः स्वर्चनाः रसः पवते— कर्म करनेमें चतुर, ज्ञानी, दूरदर्शी, उत्तम अन्नरूपी यह सोमरस निकाला जाता है।

[८५]

[७२७] हे (सोम) तू (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (सुषुतः) उत्तम रीतिसे रस निकाला हुआ (परि स्रव) सब प्रकारसे रस निकालकर दो। (अमीवा) रोग (रक्षसासह) राक्षसके साथ (अप भवतु) दूर हो जांय। (ते) तेरे (द्वयाविनः) पुण्य और पाप करनेवाले (रसस्य) रसको पीकर (मा मत्सत) मदमत्त न हों। (इन्दवः) तेरे सोमरस (इह) इस यज्ञमें (द्रविणस्वन्तः) धनयुक्त हो जांय ॥ १ ॥

७२८ अस्मान् त्सम॒र्ये पवमान चोदय॒ दक्षो॑ दे॒वाना॒मसि॒ हि प्रि॒यो मद॑: ।
ज॒हि शत्रूँ॑र॒भ्या भ॑न्दनायतः पिबे॑न्द्र सोम॒मव॑ नो॒ मृधो॑ जहि ॥ २ ॥
७२९ अद॑ब्ध इन्दो पवसे म॒दिन्त॑म आ॒त्मेन्द्र॑स्य भवसि धा॒सिरु॑त्तमः ।
अ॒भि स्व॑रन्ति ब॒हवो॑ मनी॒षिणो॒ राजा॑नमस्य भुव॑नस्य निंसते ॥ ३ ॥

अर्थ— १ हे सोम! इन्द्राय सुषुतः परिस्रव— हे सोम! इन्द्रको देनेके लिये रस निकाला हुआ तू अच्छी तरह रसरूपमें हो जाओ।

२ अमीवा रक्षसा सह अप भवतु— रोग राक्षसके साथ, दुष्टके साथ दूर हो जाय।

३ द्वयाविनः ते रसस्य मा मत्सत— पापी लोक तेरे रससे आनंदित न हों। पापियोंको तेरा रस प्राप्त न हो। द्वयाविनः— दोनों प्रकारके कर्म करनेवालोंको सोमरस न मिले। अनिश्चित रूपसे अयोग्य कर्म करनेवाले, समय पर योग्य तथा अयोग्य कार्य करनेवालोंको यह सोम प्राप्त न हो।

[७२८] हे (पवमान) सोम ! (समर्ये) युद्धमें (अस्मान्) हमको (चोदय) प्रेरित कर। (देवानां मध्ये) देवोंके मध्यमें तू (दक्षः) दक्षतासे युक्त तथा (प्रियः मदः) प्रिय आनंद बढानेवाला हो। (शत्रून् जहि) हमारे शत्रुओंको पराजित कर। (अभि आ) हमारे पास आओ। (भन्दनायतः) स्तुति चाहनेवाले ! हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोमं पिब) सोमका रस पीओ और (नः मृधः अवजहि) हमारे शत्रुओंको पराभूत कर ॥ २ ॥

१ समर्ये अस्मान् चोदय— युद्धमें जानेकी हमें प्रेरणा करो।
२ देवानां मध्ये दक्षः— देवोंके मध्यमें तू अति दक्ष हो।
३ प्रियः मदः— देवोंमें तू सबको प्रिय तथा आनंद देनेवाला हो।
४ शत्रून् जहि— हमारे शत्रुओंको पराभूत करके दूर करो।
५ अभि आ— हमारे पास आकर रहो।
६ भन्दनायतः— स्तुति करनेवालो ! तुम स्तुति करो।
७ इन्द्र ! सोमं पिब— हे इन्द्र ! तू सोमरस पीओ।
८ नः मृधः जहि— हमारे शत्रुओंको पराभूत करो। हमारे शत्रुत्रओंको पराभूत करके दूर करो।

[७२९] हे (सोम) सोम ! तू (अदब्धः) अहिंसित तथा (मदिन्तमः) आनंद देनेवाला होकर (पवसे) तेरा रस निकाला जाता है। तू (आत्मा इन्द्रस्य) इन्द्रका आत्मा (भवसि) होता है तथा (उत्तमः धासिः) उत्तम धारण सामर्थ्यसे युक्त अन्नरूप होता है। (अस्य भुवनस्य राजानं) इस भुवनके राजा सोमकी (बहवः मनीषिणः) बहुत मननशील ज्ञानी (अभि स्वरन्ति) स्तुति करते हैं और (निंसते) उसको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

१ हे सोम ! अदब्ध मदिन्तमः पवसे— हे सोम ! तू अहिंसित होकर तथा अत्यंत आनंद देनेवाला होकर रस निकाल कर दो।

२ इन्द्रस्य आत्मा भवसि— तू इन्द्रका आत्मा अर्थात् इन्द्रके लिये अति प्रिय हो।

३ उत्तमः धासि— तू उत्तम धारक शक्तिसे युक्त हो।

४ बहवः मनीषिणः अभि स्वरन्ति— बहुत ज्ञानी तेरी स्तुति करते हैं।

५ बहवः मनीषिणः निंसते— बहुत ज्ञानी तुझे प्राप्त करते हैं।

७३० सहस्रणीथः शतधारो अद्भुत इन्द्रायेन्दुः पवते काम्यं मधु ।
जयन् क्षेत्रमभ्यर्षा जयन्नप उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः ॥ ४ ॥
७३१ कनिक्रदत् कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसि-रिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥ ५ ॥
७३२ स्वादुः पवस्व दिव्याय जन्मने स्वादुरिन्द्राय सुहवीतुनाम्ने ।
स्वादुर्मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये मधुमाँ अदाभ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ— [७३०] (सहस्रणीथः) सहस्रों प्रकारोंसे लाया गया (शतधारः) सैंकडों धाराओंसे रस देनेवाला (अद्भुतः इन्दुः) अद्भुत सोम (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (काम्यं मधु) इष्ट मधुर (पवते) रस देता है । हमारे लिये (क्षेत्रं जयन्) स्थानको जीत कर (अभ्यर्ष) आगे चल (अपः जयन्) जलोंको जीत कर, हे (सोम) सोम ! (मीढ्वः) सिंचन करनेवाला तू (नः) हमारे लिये (गातुं) उन्नतिका मार्ग (कृणु) कर ॥ ३ ॥

१ सहस्रणीथः शतधारः अद्भुतः इन्दुः इन्द्राय काम्यं मधु पवते-- सहस्र रीतियोंसे लाया हुआ, सेंकडो धाराओंसे रस देनेवाला यह सोम मधुर तथा प्रिय रस देता है ।

२ क्षेत्रं जयन्-- स्थानोंको जीत कर हमें दे दो ।

३ अभ्यर्ष-- आगे प्रगति कर । पीछे न रह ।

४ अपः जयन्— जल स्थानोंको विजय करके प्राप्त करो ।

५ हे सोम ! मीढ्वः नः गातुं कृणु-- हे सोम ! रस देनेवाला तूं हमारी उन्नति करनेके लिये उत्तम मार्ग करो । उस मार्गसे हम जांय और अपनी उन्नति करेंगे । ऐसा सुगम मार्ग कर ।

[७३१] हे (सोम) सोम ! (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ तू (कलशे) कलशमें (गोभिः अज्यसे) गौके दूधके साथ मिलकर रहता है । (अव्ययं वारं) मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे (समया) उसके पास (अर्षसि) जाता है । (मर्मृज्यमानः) शुद्ध होकर (अत्यः न) चपल घोडेके समान (सानसिः) सेवनीय होकर (इन्द्रस्य जठरं) इन्द्रके पेटमें (समक्षरः) जाता है ।

१ हे सोमः कनिक्रदत् कलशे गोभिः अज्यसे— हे सोम ! तूं शब्द करता हुआ कलशमें गौके दूधके साथ मिश्रित होकर जाता है । गौके दूधके साथ मिश्रित होकर सोमरस कलशमें रखा जाता है ।

२ अव्ययं वारं समया अर्षसि— मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे उसी समय नीचेके पात्रमें छाना जाता है ।

३ मर्मृज्यमानः इन्द्रस्य जठरं समक्षर-- हे सोम ! छाननेके बाद इन्द्रके पेटमें प्रवेश कर ।

४ सानसिः-- सेवन करने योग्य छाना जाकर शुद्ध हो जाओ ।

[७३२] हे सोम ! तू (दिव्याय जन्मने) दिव्य जन्मवाले देवगणोंके लिये (स्वादुः पवस्व) मीठा रस निकालो । (सुहवीतु नाम्ने इन्द्राय) प्रशंसनीय नामवाले इन्द्रके लिये (स्वादुः) स्वादिष्ठ रस देवो । (मित्राय वरुणाय वायवे बृहस्पतये) मित्र, वरुण, वायु, बृहस्पति आदि देवोंके लिये (अदाभ्यः) न दब जानेवाला होकर तू (मधुमान्) मधुर रस देनेवाला हो ॥ ६ ॥

दिव्य जन्मवाले देवोंके लिये अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, बृहस्पति आदि देवोंके लिये पीनेको देनेके लिये सोमका रस मिले । यह मीठा रस इन सब देवोंको दिया जाय ।

दिव्य जन्म— द्युलोकमें, आकाशमें देवोंका जन्म हुआ है । तथा इन देवोंका दिव्य जन्म हैं । दिव्य कर्म ये देव करते हैं । इस कारण सोमरस इन देवोंको दिया जाता है ।

इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, बृहस्पति आदि देवोंको यह रस देना चाहिये । यह यज्ञमें समर्पणसे दिया जाता है ।

×

७३३ अत्यं मृजन्ति कलशे दश क्षिपः प्र विप्राणां मतयो वाच ईरते ।
पवमाना अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिमेन्द्रं विशन्ति मदिरास इन्दवः ॥ ७ ॥
७३४ पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥ ८ ॥
७३५ अधि द्यामस्थाद्वृषभो विचक्षणोऽरूरुचद्वि दिवो रोचना कविः ।
राजा पवित्रमत्येति रोरुवद्दिवः पीयूषं दुहते नृचक्षसः ॥ ९ ॥

अर्थ— [७३३] (अत्यं) घोडेके समान इस सोमको (कलशे) कलशमें रखकर (दश क्षिपः दस अंगुलियां (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं । तथा (विप्राणां मतयः) विप्रोंके मध्यमें स्तुति करनेवाले विद्वान् (वाचः ईरते) स्तुति करते हैं । (पवमानाः) सोमके शुद्ध होनेवाले रस (सुष्टुतिं अभ्यर्षन्ति) स्तुतिको सुनते हैं । (इन्द्रं) इन्द्रको (मदिरास इन्दवः) आनंददायक सोमरस (विशन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

१ अत्यं कलशे दश क्षिपः मृजन्ति— घोडेके समान इस सोमको दस अंगुलियां शुद्ध करती हैं ।

२ विप्राणां मतयः वाचः ईरते— ब्राह्मणोंकी बुद्धियां स्तुति करती हैं ।

३ पवमानाः सुष्टुतिं अभ्यर्षन्ति - सोमरस उत्तम स्तुतिको सुनते रहते हैं । सोमका रस निकालनेके समय स्तोत्र पाठ होता रहता है ।

४ इन्द्रं मदिरासः इन्दवः विशन्ति— इन्द्रके पेटमें आनंद देनेवाले सोमके रस जाते हैं ।

[७३४] हे सोम ! (पवमानः) स्वच्छ होता हुआ तूं (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम तथा (उर्वीं गव्यूतिं) बडे गौओंको प्राप्त करनेके मार्गोंको और (महि सप्रथः शर्म) बडा व्यापक घर अथवा सुख (अभ्यर्ष) हमें दे । (नः) हमें (अस्य) इस कर्मका (परिषूतिः मा किः) हिंसा रूपी फल न दे । हे (इन्दो) सोम ! (त्वया) तेरे साथ रहकर (धनं धनं जयेम) सब प्रकारका धन हम प्राप्त करेंगे ॥ ८ ॥

१ हे पवमान ! सुवीर्यं अभ्यर्ष— हे सोम ! हमें पराक्रम करनेका सामर्थ्य देओ ।

२ उर्वीं गव्यूतिं-- गौओंको प्राप्त करनेकी शक्तिसे हमें प्राप्त हो ।

३ महि सप्रथः शर्म— बडा घर, बडा सुख हमें प्राप्त हो ।

४ नः अस्य परिषूतिः मा किः— हमें हिंसा किसी प्रकारकी प्राप्त न हो ।

५ हे इन्दो ! त्वया वयं धनं धनं जयेम— हे सोम ! तेरे साथ रहकर हम अनेक प्रकारका धन प्राप्त करके सुखसे रहेंगे ।

[७३५] यह सोम (वृषभः) बलवान् (द्यां अस्थात्) द्युलोकमें रहा है । यह (विचक्षणः) विशेष देखनेवाला (कविः) ज्ञानी (दिवः रोचना) द्युलोकके प्रकाशको (अधि अरूरुचत्) विशेष प्रकाशित करता है । (राजा) राजा सोम (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे छाना जाकर नीचेके पात्रमें उतरता है । (नृचक्षसः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले ये सोम (पीयूषं दुहते) अमृत समान रस देते हैं ॥ ९ ॥

१ वृषभः द्यां अस्थात्-- बलवान सोम द्युलोकमें रहता है ।

२ कविः दिवः रोचना अधि अरूरुचत्— यह ज्ञानी सोमरस द्युलोकका तेज अधिक तेजस्वी करता है ।

३ राजा रोरुवत् पवित्रं अत्येति-- यह सोम राजा शब्द करता हुआ छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें उतरता है ।

४ नृचक्षसः पीयूषं दुहते— मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले अमृत रसका दोहन करते हैं ।

७३६ दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ १० ॥
७३७ नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं गिरो वेनानामकृपन्त पूर्वीः ।
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम् ॥ ११ ॥
७३८ ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपा प्रतिचक्षाणो अस्य ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत् प्रारूरुचद्रोदसी मातरा शुचिः ॥ १२ ॥

अर्थ— [७३६] (दिवः नाके) द्युलोकके सुखमय यज्ञस्थानमें (मधुजिह्वाः) मधुर वाणीहि बोलनेवाले (असश्चतः) पृथक् रहनेवाले (वेनाः) महर्षिगण (गिरिष्ठां) पर्वतपर रहनेवाले (अप्सु वा वृधानं) जलोंमें बढनेवाले (द्रप्सं) रसरूपमें वर्तमान (समुद्रे) जलोंमें (सिंधो ऊर्मा) सिन्धूके लहरीमें मिलनेवाले (मधुमन्तं) मीठे सोमरसको (पवित्रे) छाननामें छानकर (आ दुहन्ति) रस निकालते हैं ॥ १० ॥

१ दिवः नाके— द्युलोकके सुख बढानेवाले यज्ञस्थानमें,

२ मधुजिह्वः असश्चतः वेनाः दुहन्ति— मीठा रस देनेवाले यज्ञमें पृथक् पृथक् अपने अपने स्थानमें बैठनेवाले याजक सोमरस निकालते हैं ।

३ पवित्रे— छाननोंमेंसे सोमरस छानते हैं। स्वच्छ करते है।

४ गिरिष्ठां, अप्सु वावृधानं, द्रप्सं मधुमन्तं— पर्वत पर उगनेवाला, जलोंसे बढानेवाला, रसरूप तथा मीठा सोम होता है। पर्वत शिखरपर सोम उगता है, सोमरस जलोंमें मिलाया जाता है तथा वह मीठा रस होता है।

५ आ दुहन्ति— यज्ञकर्ता जन सोमका रस यज्ञस्थानमें निकालते है।

[७३७] (नाके) द्युलोकमें (उपपतिवांसं सुपर्णं) उत्पन्न होनेवाले सोमकी स्तुति (वेनानां गिरः) ज्ञानीयोंकी वाणियां (पूर्वीः) पहिलेसेही (उपकृपन्त) करती रहीं हैं। (शिशुं) बलके समान इस संस्कारके योग्य सोमको (मतयः) स्तुतियां (रिहन्ति) प्राप्त होती हैं। (पनिप्नतं) शब्द करनेवाले (शकुनं) पक्षीके समान (क्षामणि स्थां) यज्ञस्थानमें रहे (हिरण्ययं) सुवर्ण जैसे तेजस्वी सोमकी स्तुति होती है ॥ ११ ॥

१ नाके उपपतिवांसं सुपर्णं वेनानां गिरः पूर्वीः उपकृपन्त— द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले, उत्तम पात्रोंवाले सोमकी स्तुति ज्ञानियोंकी वाणियां पहिलेसे करती रहीं हैं।

२ मतयः शिशुं रिहन्ति— ज्ञानियोंकी बुद्धियां बालकके समान आदरणीय सोमकी स्तुति करती हैं।

३ पनिप्नतं क्षामणिस्थां हिरण्ययं शकुनं रिहन्ति— शब्द करनेवाले, यज्ञस्थानमें रहनेवाले, सुवर्णके समान तेजस्वी, पक्षीके समान पर्वतपर रहनेवाले सोमकी ज्ञानी स्तुति करते हैं।

[७३८] (ऊर्ध्वः गन्धर्वः) ऊंचे स्थानमें किरणोंको धारण करनेवाला सोम (नाके अधि अस्थात्) स्वर्गके ऊपर रहा है। (अस्य) इस आदित्यकी (विश्वा रूपाणि प्रतिचक्षाणः) अनेक रूपें देखता है। (भानुः) सूर्य (शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्) तेजस्वी प्रकाशसे चमकता है। (शुचिः) तेजस्वी सूर्य (मातरा रोदसी) माताके समान द्यु और पृथिवी ये दोनोंको (प्रारूरुचत्) प्रकाशित करता है ॥ १२ ॥

१ ऊर्ध्वः गंधर्वः नाके अधि अस्थात्— ऊंचे स्थानमें रहनेवाला सोम स्वर्गमें उच्च स्थान पर रहता है। ऊंचे पहाडोंके शिखर पर सोम उगता और बढता है।

२ विश्वा रूपाणि प्रतिचक्षाणः— सब रूपोंको वहांसे देखता है।

३ भानुः शुक्रेण शोचिषा व्यद्यौत्— सूर्य तेजस्वी प्रकाशसे चमकता है।

४ शुचिः मातरा रोदसी प्रारूरुचत्— तेजस्वी सूर्य द्यु तथा पृथिवी इन दोनों माताओंको प्रकाशित करता है।

[८६]

(ऋषिः- १-१० अकृष्टा माषाः, ११-२० सिकता निवावरी, २१-३० पृश्नयोऽजाः, ३१-४० अकृष्टमाषादयस्त्रयः, ४१-४५ भौमोऽत्रिः, ४६-४८ गृत्समदः शौनकः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- जगती ।)

७३९ प्र तं आशवः पवमान धीजवो मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना ।
दिव्याः सुपर्णा मधुमन्त इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते ॥ १ ॥

७४० प्र ते मदासो मदिरास आशवो ऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक् ।
धेनुर्न वत्सं पयसाभि वज्रिण- मिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥ २ ॥

७४१ अत्यो न हियानो अभि वाजमर्ष स्वर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम् ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्यये सोमः पुनान इन्द्रियाय धायसे ॥ ३ ॥

अर्थ- [७३९] हे (पवमान) सोम ! (ते) तेरे (आशवः) व्यापक (धीजवाः) मनके वेगके समान (मदाः) आनंद देनेवाले रस (रघुजाः इव) शीघ्र जानेवाले घोडेके समान (त्मना प्र अर्षन्ति) स्वयं चल रहे हैं। (दिव्याः सुपर्णाः) दिव्य रस (मधुमन्त इन्दवः) मधुर सोमरस (मदिन्तमासः) आनंद बढाते हुए (कोशं परि आसते) कलशमें जाते हैं ॥ १ ॥

१ हे पवमान ! आशवः धीजवाः ते मदाः रघुजा इव त्मना अर्षन्ति— हे सोम ! मनके समान वेगवान तेरे आनंद देनेवाले रस घोडेके समान स्वयं नीचे पात्रमें जाते हैं।

२ दिव्याः सुपर्णाः मधुमन्त इन्दवः मदिन्तमासः कोशं परि आसते— दिव्य रसरूपी मीठे सोमरस आनंद बढाते हुए पात्रमें जाते हैं। यज्ञके पात्रोंमें सोमरस छाननेके पश्चात् जाकर रहते हैं।

[७४०] (ते) तेरे (मदिरासः) आनंद देनेवाले (मदासः) रस (आशवः) गतिमान (यथा रथ्यासः) जैसे रथके घोडे वैसे (पृथक् असृक्षत) अलग होकर आते हैं। (धेनुः पयसा वत्सं न) गौ जैसी अपने बच्चेको दूधसे तृप्त करती है उस प्रकार (वज्रिणं इन्द्रं) वज्रधारी इन्द्रको (मधुमन्तः ऊर्मयः इन्दवः) मीठे लहरियोंसे आनेवाले सोमरस तृप्त करते हैं ॥ २ ॥

१ ते मदिरासः आशवः पृथक् असृक्षत, यथा रथ्यासः— तेरे आनंद देनेवाले गतिमान रस पृथक् होकर बाहर आ रहे हैं जैसे रथके घोडे पृथक् होकर चलते हैं।

२ धेनुः पयसा वत्सं न— गौ जैसी अपने दूधसे अपने बच्चेको तृप्त करती है, वैसे ये सोमरस देवोंको संतुष्ट करते हैं।

३ वज्रिणं इन्द्रं मधुमन्तः ऊर्मयः इन्दवः— वज्रधारी इन्द्रको ये सोमके मीठे रस तृप्त करते हैं।

[७४१] (अत्यः न) घोडेके समान (हियानः) प्रेरित किया हुआ तू (वाजं अभि अर्ष) संग्रामके स्थान पर जा। (स्वर्वित्) सर्वज्ञ तू (कोशं) पात्रमें (दिवः अद्रि मातरं) द्युलोकसे मेघसे जैसा उदक आता है वैसा तू जा। (वृषा) बलवान् तू (सोमः) सोम (अव्यये पवित्रे सानौ अधि) मेढीके छाननीके मध्यमें (पुनानः) छाना जाता हुआ (इन्द्राय धायसे) धारण करनेकी शक्तिवाले इन्द्रको देनेके लिये तैयार हो ॥ ३ ॥

१ अत्यः न हियानः वाजं अभि अर्ष— घोडा प्रेरित होनेपर जैसा युद्धमें जाता है, वैसा तू हे सोम ! यज्ञमें जा।

२ स्वर्वित् दिवः कोशं अद्रिमातरं— आत्मज्ञानी तू सर्वज्ञ मेघसे जैसा उदक पर्वतके शिखरपर आता है वैसा तू यज्ञमें जा और अपने स्थानमें रहो।

३ सोमः अव्यये पवित्रे सानौ अधि पुनानः— सोम मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है।

४ इन्द्राय धायसे— धारण शक्तिवाले इन्द्रको देनेके लिये यह सोमरस छानकर तैयार किया जाता है।

७४२ प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवों दिव्या अंसृग्रन् पयसा धरीमणि ।
प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरीरसृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः ॥ ४ ॥
७४३ विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोस्ते सतः परि यन्ति केतवः ।
व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि ॥ ५ ॥
७४४ उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योना कलशेषु सीदति ॥ ६ ॥

अर्थ— [७४२] हे (पवमान) सोम ! (ते) तेरी धाराएं (आश्विनीः) व्याप्त (धीजुवः) मनके समान वेगवान (दिव्याः) द्योतमान (पयसा) दूधसे मिश्रित होकर (धरीमणि) कलशमें (प्र असृग्रन्) विशेष प्रकार प्रवेश करती हैं । (ये) जो (वेधसः) ज्ञानी (ऋषयः) ऋषी लोग, हे सोम ! (ऋषिषाणः) ऋषियों द्वारा निकाले (त्वा) तुझे (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं, वे (स्थाविरीः) स्थायी धारासे (अन्तः) पात्रमें (प्र असृक्षत) छोडते हैं ॥ ४ ॥

१ हे पवमान ! ते आश्विनीः धीजुवः दिव्याः पयसा धरीमणि प्र असृग्रन्— हे सोम ! तेरी वेगवान् बुद्धिवर्धक दिव्य तथा दूधसे मिश्रित धारायें कलशमें गिर रही हैं । सोमरसमें गौका दूध मिलाकर उसका प्रयोग यज्ञमें किया जाता है ।

२ ये वेधसः ऋषयः ऋषिषाणः त्वा मृजन्ति स्थाविरीः अन्तः प्र असृक्षत— जो ज्ञानी ऋषि ऋषियोंद्वारा निकाले सोमरसको शुद्ध करते हैं और स्थिर धारासे यज्ञपात्रोंमें रखते हैं ।

[७४३] हे (विश्वचक्षः) सबके निरीक्षक सोम ! (प्रभोः सतः ते) प्रभु रहनेवाले तेरे (ऋभ्वसः केतवः) बडे किरण (विश्वा धामानि) सब स्थानोंमें (परियन्ति) जाते हैं । हे (सोम) सोम ! (व्यानशिः) व्यापक होनेवाला तू (धर्मभिः पवसे) अपने गुणधर्मोंके साथ अपनेसे रस देते हो तथा (विश्वस्य भुवनस्य पतिः) सब भुवनोंका पालक होकर (राजसि) विराजता है ॥ ५ ॥

१ हे विश्वचक्षः ! प्रभोः सतः ते ऋभसः केतवः विश्वा धामानि परियन्ति— हे सबके निरीक्षण करनेवाले सोम ! तू सबके स्वामी हो । तेरे तेजस्वी किरण सब स्थानोंमें जाते हैं ।

२ हे सोम ! व्यानशिः धर्मभिः पवस्व— हे सोम ! तू अपने व्यापक होकर अपने गुण धर्मोंके साथ रस दे ।

३ विश्वस्य भुवनस्य पतिः राजसि— तू सब भुवनोंका स्वामी होकर चमकता रहता है । तू सबका स्वामी होकर चमकता रहता है ।

[७४४] (पवमानस्य) रस निकाले जानेवाले (ध्रुवस्य सतः) स्थिर रहनेवाले तुम सोमके (केतवः रश्मयः) प्रकाशमान किरण (उभयतः परियन्ति) दोनों ओरसे बाहर आते हैं (यदि) जब (हरिः) हरे रंगका यह सोम (पवित्रे अधि मृज्यते) छाननीमें शुद्ध किया जाता है तब (सत्ता) रहनेवाला यह सोम (कलशेषु योनौ) कलशोंके अपने स्थानमें (निषीदति) रहता है ॥ ६ ॥

१ पवमानस्य ध्रुवस्य सतः केतवः रश्मयः उभयतः परियन्ति— शुद्ध होनेवाले तथा स्वस्थानमें स्थिर रहनेवाले सोमके प्रकाश किरण दोनों ओरसे बाहर आ रहे हैं । सोम चमक रहा है ।

२ यदि हरिः पवित्रे अधि मृज्यते, सत्ता कलशेषु योनौ निषीदति— यदि हरे रंगका यह सोम छाननीमें शुद्ध होता है उस समय वह शुद्ध होकर कलशोंमें रखा जाता है ।

७४५ यज्ञस्य केतुः पवते स्वध्वरः सोमो देवानामुप याति निष्कृतम् ।
सहस्रधारः परि कोशमर्षति वृषा पवित्रमत्येति रोरुवत् ॥ ७ ॥
७४६ राजा समुद्रं नद्यो वि गाहते ऽपामूर्मिं सचते सिन्धुषु श्रितः ।
अध्यस्थात् सानु पवमानो अव्ययं नाभा पृथिव्या धरुणो महो दिवः ॥ ८ ॥
७४७ दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदद् द्यौश्च यस्य पृथिवी च धर्मभिः ।
इन्द्रस्य सख्यं पवते विवेविदत् सोमः पुनानः कलशेषु सीदति ॥ ९ ॥

अर्थ— [७४५] (यज्ञस्य केतुः) यज्ञका प्रकाशक (स्वध्वरः सोमः) उत्तम यज्ञ करनेवाला सोम (देवानां निष्कृतं) देवोंके स्थानके प्रति (उपयाति) जाता है और वहां (पवते) रस देता है। (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे (कोशं परि अर्षति) कलशमें जाता है। (वृषा) रस देनेवाला यह सोम (रोरुवत्) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे नीचे उतरता है ॥ ७ ॥

१ यज्ञस्य केतुः स्वध्वरः सोमः देवानां निष्कृतं उप याति— यज्ञमें मुख्य, उत्तम अहिंसामय यज्ञ करनेवाला सोम देवोंके स्थानके समीप जाता है।

२ पवते— और देवोंके स्थानमें- यज्ञमें- अपना रस देता है। जो रस यज्ञके द्वारा देवोंको प्राप्त होता है।

३ सहस्रधारः कोशं परि अर्षति— सहस्रों धाराओंसे यज्ञके पात्रोंमें यह रस जाकर रहता है।

४ वृषा रोरुवत् पवित्रं अत्येति— बलवान् यह सोमरस शब्द करता हुआ छाननीमेंसे गुजरता है और पात्रमें गिरता है।

[७४६] यह (राजा) राजा सोम (समुद्रं नद्यः) अन्तरिक्षके जलमें (वि गाहते) स्नान करता है, मिश्रित होता है तथा (अपां ऊर्मिं सचते) जलकी प्रवाहको प्राप्त करता है। (सिन्धुषु श्रितः) उदकमें मिश्रित होता है, (पवमानः) पवित्र होता है (अव्ययं सानु अध्यस्थात्) मेंढोके बालोंकी छाननीपर चढता है। (महः दिवः धरुणः) बडे द्युलोकका धारण करनेवाला यह सोम है ॥ ८ ॥

१ राजा समुद्रं नद्यः वि गाहते— यह सोम राजा नदियोंके जलमें स्नान करता है। जलके साथ मिश्रित किया जाता है।

२ अपां ऊर्मिं सचते— जलोंके प्रवाहको प्राप्त करता है। जलके साथ मिश्रित होता है।

३ सिन्धुषु श्रितः— नदीके जलमें मिश्रित किया जाता है।

४ अव्ययं सानु अध्यस्थात्— मेंढोके बालोंकी छाननीपर चढता है। छाना जाता है।

५ महः दिवः धरुणः— बडे द्युलोकका धारण करता है।

[७४७] (दिवः न सानु) द्युलोकके उच्च स्थानको (स्तनयन्) निनादित करता हुआ (अचिक्रदत्) शब्द करता है। (यस्य धर्मभिः) जिसके धारण सामर्थ्यसे (द्यौः च पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी धारण की जाती है। ऐसा यह (सोमः) सोम (इन्द्रस्य सख्यं) इन्द्रके साथ मित्रता (विवेविदत्) करना जानता है। ऐसा यह (सोमः) सोमरस (पुनानः) स्वच्छ किया जाता है और (कलशेषु सीदति) कलशोंमें रहता है ॥ ९ ॥

१ यह सोम (दिवः सानु न) द्युलोकके उच्च भागको (स्तनयन्) निनादित करता हुआ (अचिक्रदत्) शब्द करता है।

२ यस्य धर्मभिः द्यौः च पृथिवी— जिस सोमके सामर्थ्योंसे द्युलोक और पृथिवीका धारण हो रहा है।

३ सोमः इन्द्रस्य सख्यं विवेविदत्— यह सोम इन्द्रके साथ मित्रता करता है।

४ सोमः पुनानः कलशेषु सीदति— सोमरस छाना जाकर कलशोंमें रहता है।

७४८ ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥ १० ॥
७४९ अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥ ११ ॥
७५० अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षत्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छति ।
अग्रे वाजस्य भजते महाधनं स्वायुधः सोतृभिः पूयते वृषा ॥ १२ ॥

अर्थ—[७४८] (यज्ञस्य ज्योतिः) यज्ञका प्रकाशक सोम (देवानां) देवोंके लिये (प्रियं मधु) प्रिय मधुर रसको (पवते) निकालकर देता है। यह सोम (पिता) रक्षक (देवानां जनिता) देवोंको उत्पन्न करनेवाला (विभू-वसुः) अधिक धनसे युक्त यह सोम (अपीच्यं रत्नं) गुप्त धनको (स्वधयोः) द्यावा पृथिवीके लिये (दधाति) धारण करता है। यह सोमरस (मदिन्तमः) अतिशय आनंद देनेवाला (मत्सरः) प्रसन्नता करनेवाला (इन्द्रियः रसः) इन्द्रके लिये प्रिय यह सोमरस है ॥ १० ॥

१ यज्ञस्य ज्योतिः देवानां प्रियं मधु पवते— यज्ञका प्रकाशक देवोंके लिये प्रिय ऐसा यह मधुर सोमरस निकाला गया है।

२ देवानां जनिता पिता विभूवसुः अपीच्यं रत्नं स्वधयोः दधाति— देवोंमें देवत्व उत्पन्न करने-वाला, अनेक धनोंसे युक्त गुप्त धनको धारण करनेवाला द्यावा पृथिवीके लिये धारण करता है।

३ मदिन्तमः मत्सरः इन्द्रियः रसः— अति आनंद देनेवाला प्रसन्न करनेवाला इन्द्रके लिये आनन्द देनेवाला यह रस है।

[७४९] (वाजी) गमनशील यह सोम (अभिक्रन्दन्) शब्द करता हुआ (कलशं अभि अर्षति) कलशमें जाता है। यह (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी (शतधारः विचक्षणः) सेकडों धाराओंसे पात्रमें आने-वाला उत्तम रीतिसे निरीक्षण करनेवाला है। (हरिः) हरे रंगका यह सोम (मित्रस्य सदनेषु सीदति) मित्ररूपी यज्ञके स्थानमें बैठता है। यह (वृषा) सामर्थ्यवान् सोम (अविभिः मर्मृजानः) भेडीके बालोंकी छाननीसे पवित्र होता हुआ (सिन्धुभिः) जलोंसे मिश्रित होकर रहता है ॥ ११ ॥

१ वाजी अभिक्रन्दन् कलशं अभि अर्षति— यह प्रगतिशील सोमरस शब्द करता हुआ कलशमें जाता है।

२ शतधारः विचक्षणः— सेंकडों धाराओंसे यह तेजस्वी रस देता है और वह उत्तम निरीक्षण करता है।

३ हरिः मित्रस्य सदनेषु सीदति— यह हरे रंगका सोम यज्ञके स्थानमें रहता है।

४ वृषा अविभिः मर्मृजानः सिन्धुभिः— यह बलवर्धक सोम भेडीके बालोंकी छाननीसे छाना जाकर जलके साथ मिश्रित होकर रहता है।

[७५०] (यः पवमानः) यह सोम (सिंधूनां अग्रे अर्षति) जलोंमें मिलकर रहता है। (अग्रियः) यह अग्रगण्य सोम (अग्रे) अग्रभागमें (वाचः) स्तुतियोंके प्राप्त होकर (गोषु गच्छति) गोदुग्धमें मिश्रित होता है। (वाजस्य) अन्नके लाभके लिये (महाधनं) युद्धमें (भजते) जाता है। यह (स्वायुधः) उत्तम शस्त्रोंके साथ रहनेवाला (वृषा) बलका संवर्धन करनेवाला सोम (सोतृभिः पूयते) रस निकालनेवाले इसका रस निकालते हैं ॥ १२ ॥

७५१ अयं मतवाञ्छकुनो यथा हितो ऽव्ये ससार पवमान ऊर्मिणा ।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ १३ ॥
७५२ द्रापिं वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पितः ।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत् प्रत्नमस्य पितरमा विवासति ॥ १४ ॥
७५३ सो अस्य विशे महि शर्म यच्छति यो अस्य धाम प्रथमं व्यानशे ।
पदं यदस्य परमे व्योमन् यतो विश्वा अभि सं याति संयतः ॥ १५ ॥

अर्थ— १ यः पवमानः सिन्धूनां अग्रे अर्षति— यह सोम जलोंमें मिलकर आगे बढता जाता है ।

२ अग्रियः अग्रे वाचः गोषु गच्छति— अग्रगामी यह सोम अग्रभागमें स्तुतिको प्राप्त करके गोदुग्धमें मिश्रित किया जाता है ।

३ वाजस्य महाधनं भजते— अन्न प्राप्त करनेके लिये युद्धमें जाता है ।

४ महाधनं— बहुत धन युद्धमें विजय प्राप्त होनेसे प्राप्त हो सकता है ।

५ स्वायुधः— (सु-आयुधः) उत्तम शस्त्रास्त्र अपनेपास रखनेवाला वीर । यही धन प्राप्त कर सकता है ।

६ वृषा— बलवान, सामर्थ्यवान ।

[७५१] (अयं) यह (मतवान्) स्तोत्रोंसे स्तुति किया जानेवाला (पवमानः) सोम (हितः) यज्ञस्थानमें रखा है (यथा शकुनः) जैसा शकुन नामक पक्षी शीघ्र दौडता है, उस प्रकार हे (कवे) ज्ञानी सोम तू (ऊर्मिणा) लहरियोंसे (अव्ये ससार) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे नीचेके पात्रमें आता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव क्रत्वा) तेरे कर्तृत्वसे (रोदसी अन्तरा) द्युलोक और पृथिवी लोकके मध्यमें यह (शुचिः) शुद्ध (सोमः) सोम (धिया पवते) स्तुतिके साथ शुद्ध होता है ॥ १३ ॥

१ अयं मतवान पवमानः हितः-- यह स्तुत्य शुद्ध सोम यज्ञस्थानमें रखा है ।

२ यथा शकुनः ऊर्मिणा अव्ये ससार— जैसा शकुन पक्षी दौडता है उस प्रकार यह सोम मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाकर नीचेके पात्रमें आता है ।

३ हे इन्द्र ! तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा शुचिः सोमः धिया पवते— हे इन्द्र ! तेरे कर्तृत्वसे दोनों द्युलोक और भूलोकके मध्यमें यह शुद्ध होनेवाला सोम स्तोत्र पाठके साथ रस दे रहा है ।

[७५२] (दिविस्पृशं द्रापिं वसानः) द्युलोकको स्पर्श करनेवाले कवचको धारण करनेवाला (यजतः) पूजनीय (अन्तरिक्षप्राः) अन्तरिक्षको भरपूर रीतिसे भर देनेवाला सोम (भुवनेषु अर्पितः) उदकसे मिश्रित होकर (स्वः जज्ञान) स्वर्गसुख उत्पन्न करनेवाला (नभसा अभ्यक्रमीत्) जलके साथ रहनेवाला सोम यज्ञस्थानमें आता है । (अस्य पितरं) इसके पालन कर्ता (प्रत्नं) पुराणे इन्द्रकी (आ विवासति) परिचर्या करता है ॥ १४ ॥

१ दिविस्पृशं द्रापिं वसानः यजतः अन्तरिक्षप्राः भुवनेषु अर्पितः स्वः जज्ञानः नभसा अभ्यक्रमीत्— द्युलोकको स्पर्श करनेवाला, तेजका कवच पहननेवाला, पूज्य अन्तरिक्षको भरपूर भर देनेवाला भुवनोंमें भरा हुआ, सुख देनेवाला जलके साथ मिला हुआ सोमरस यज्ञस्थानमें आकर रहता है ।

२ अस्य पिता प्रत्नं आ विवासति— इसका पालनकर्ता यजमान पुराण पुरुष इन्द्रकी परिचर्या करता है । यज्ञ करके इन्द्रकी परिचर्या करता है ।

[७५३] (सः) वह सोम (अस्य विशे) इस इन्द्रके प्रवेशके लिये (महि शर्म यच्छति) बडा सुख देता है । (यः) जो सोम (अस्य धाम) इस इन्द्रके शरीरमें (प्रथमं व्यानशे) प्रथम प्रविष्ट हुआ है । (यत् अस्य) जो इस सोमका (परमे व्योमन्) उत्तम श्रेष्ठ द्युलोकमें (पदं) स्थान होता है । (यतः) जिससे तृप्त हुआ इन्द्र (विश्वाः संयतः) सब संग्रामोंमें (अभि संयाति) जाता है ॥ १५ ॥

७५४ प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयाम्ना पथा ॥ १६ ॥
७५५ प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।
सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभो ऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥ १७ ॥
७५६ आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिष मिन्दो पवस्व पवमानो अस्रिधम्
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत् सुवीर्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ— १ सः अस्य विशे महि शर्म यच्छति — वह सोम इन्द्रके प्रवेश करनेके समय बडा सुख देता है ।
२ यः अस्य धाम प्रथमं व्यानशे — जो सोम इस इन्द्रके स्थानमें प्रथम प्रविष्ट हुआ है ।
३ यत् अस्य परमे व्योमन् पदं — जो इस सोमका परम श्रेष्ठ द्युलोकमें स्थान है ।
४ यतः विश्वा संयतः अभि संयाति — जिससे बल प्राप्त कर इन्द्र अनेक युद्धोंमें जाता है, और शत्रुसे युद्ध करता है । वह बल बढानेवाला यह सोम है ।

[७५४] (इन्दुः) सोम (इन्द्रस्य निष्कृतं) इन्द्रके उदरके स्थानमें (प्रो अयासीत्) जाता है । (सखा) मित्र हुआ यह सोम (सख्युः) मित्ररूप इन्द्रके (संगिरं) उदरमें (न प्र मिनाति) कष्ट नहीं देता है । (मर्यः इव युवतिभिः) पुरुष जैसा स्त्रियोंके साथ (सं अर्षति) मिलकर रहता है वैसा (सोमः) सोम (शतयाम्ना पथा) सैंकडों मार्गोंसे (कलशे समर्षति) कलशमें जाता है ॥ १६ ॥

१ इन्दुः इन्द्रस्य निष्कृतं प्रो अयासीत्— सोमरस इन्द्रके पेटमें विशेष रीतिसे जाता है ।
२ सखा सख्युः संगिरं न प्र मिनाति— यह मित्र जैसा सोम मित्ररूपी इन्द्रके पेटमें किसी प्रकारके कष्ट नहीं देता है ।
३ मर्यः युवतिभिः सं अर्षति— पुरुष जैसा स्त्रियोंके साथ मिलजुलकर रहता है ।
४ सोमः शतयाम्ना पथा कलशे समर्षति— सोम सैंकडों मार्गोंसे कलशमें जाकर रहता है । अनेक रीतियोंसे निकाला यह सोमरस कलशोंमें छानकर रखा जाता है ।

[७५५] हे सोम ! (वः धियः) आपको सुबुद्धियां (मन्द्रयुवः) आनंददायक स्तुतिकी इच्छावाले (विपन्युवः) स्तोता (पनस्युवः) यज्ञकर्ता (संवसनेषु प्र अक्रमुः) यज्ञगृहोंमें प्राप्त करते हैं । (सोमं) सोमकी (मनीषाः) मनन करनेवाले (स्तुभः अभ्यनूषत) स्तुतियां करते हैं । और (धेनवः) गौवें (पयसा) अपने दूधसे (ईं) इस सोमको (अशिश्रयुः) मिलाती है ॥ १७ ॥

१ वः धियः मन्द्रयुवः विपन्युवः पनस्युवः संवसनेषु प्र अक्रमुः — आपकी उत्तम बुद्धियां स्तोता याजक यज्ञकर्ता यज्ञोंमें प्राप्त करते हैं ।
२ सोमं मनीषाः स्तुभः अभ्यनूषत— सोमकी स्तुतियां मननशील विद्वान करते हैं ।
३ धेनवः पयसा ईं अशिश्रियुः— गौवें अपने दूधको इस सोमरसके साथ मिलाती हैं ।

[७५६] हे (इन्दो सोम) चमनेवाले सोम ! (पवमानः) शुद्ध होनेवाला तू (नः) हमारे लिये (संयतं) एकत्रित हुआ (पिप्युषीं इषं) पुष्टिकारक अन्न (अस्रिधं पवस्व) क्षीणता न करके रसके रूपमें दओ । (या) जो (क्षुमत् वाजवत्) शब्द करता हुआ मधुता युक्त (असश्चुषी) प्रतिबंध रहित (दोहते) दुहा है । (क्षुमत्) शब्द युक्त (वाजवत्) अन्नरूप (मधुमत्) माठा (सुवीर्यं) उत्तम रीतिसे वीर्य बढानेवाले पुत्र मिले ऐसा वीर्य बढानेवाला (अहन् त्रिः) एक दिनमें तीन बार दूध दो ॥ १८ ॥

×

७५७ वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नः प्रतरीतोषसो दिवः ।
क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवश॒दिन्द्रस्य हार्द्याविशन् मनीषिभिः ॥ १९ ॥
७५८ मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कवि॒र्नृभिर्यतः परि कोशाँ अचिक्रदत् ।
त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षर॒दिन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे ॥ २० ॥
७५९ अयं पुनान उषसो वि रोचय॒दयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत् ।
अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ २१ ॥

अर्थ— १ हे इन्दो सोम ! पवमानः नः संयतं पिप्युषीं इषं अस्रिधं पवस्व— हे चमकनेवाले सोम ! शुद्ध होता हुआ तूं हमारे लिये एकत्रित हुआ पुष्टिकारक अन्न, क्षीणता न करे, ऐसा दो ।

२ या क्षुमत् वाजवत् असश्चुषी दोहते— जो गौ शब्द करती हुई प्रतिबंध रहित होकर दूध देती है ।

३ क्षुमत् वाजवत् मधुमत् सुवीर्यं अहन् त्रिः— शब्द करके अन्नरूप मधुरता तथा उत्तम वीर्य बढानेवाला दिनमें तीनवार निकाला दूध होता है वैसा दूध हमें प्राप्त हो ।

[७५७] यह (सोमः) सोम (मतीनां वृषा) बुद्धियोंको बढानेवाला (विचक्षणः) विशेष रीतिसे देखनेवाला (अह्नः) दिनका (उषसः दिवः) उषा तथा द्युलोकका (प्रतरीता) वर्धन करनेवाला (पवते) रस देता है । (सिन्धूनां क्राणा) उदकोंका कर्ता (कलशान् अवीवशत्) कलशोंमें जाता है । (इन्द्रस्य हार्दि आविशन्) इन्द्रके हृदयमें प्रविष्ट होता है । (मनीषिभिः) बुद्धिवानोंके द्वारा स्तुति किया जाता है ॥ १९ ॥

१ सोमः मतीनां वृषा— सोमरस बुद्धियोंको बढाता है ।

२ विचक्षणः— विशेष निरीक्षण करनेकी शक्ति बढाता है ।

३ अह्नः उषसः दिवः प्रतरिता— दिन, उषःकाल, द्युलोककी उन्नति करता है ।

४ सिन्धूनां क्राणा-- नदियोंको चलाता है, निर्माण करता है ।

५ कलशान् अवीवशत्-- कलशोंमें सोमरस रखा जाता है ।

६ इन्द्रस्य हार्दि आविशत्— इन्द्रके हृदयको प्रिय है । शूर पुरुषको यह प्रिय होता है ।

७ मनीषिभिः— बुद्धिमानोंको यह स्तुति करने योग्य है ।

[७५८] यह सोम (मनीषिभिः पवते) ज्ञानियोंके द्वारा रस निकाला जाता है । यह (पूर्व्यः) प्राचीन कालसे (कविः) ज्ञान बढानेवाला करके प्रसिद्ध है । (नृभिः) याजकोंके द्वारा (यतः) नियमोंके अनुसार (कोशान्) पात्रोंमें (परि अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है । (त्रितस्य नाम) इन्द्रके नामको (जनयन्) प्रसिद्ध करता हुआ (मधु क्षरन्) मधुर रस देता है (इन्द्रस्य वायोः) इन्द्र और वायुके (सख्याय कर्तवे) मित्रता करनेके लिये यह सोम अपना रस देता है ॥ २० ॥

१ मनीषिभिः पवते— ज्ञानी लोग इसका रस निकालते हैं ।

२ पूर्व्यः कविः— यह सोम पूर्वकालसे ज्ञान बढानेवाला है ।

३ नृभिः यतः कोशान् परि अचिक्रदत्— याजकोंके द्वारा नियमबद्ध हुआ यह सोम यज्ञपात्रोंमें शब्द करता हुआ जाता है ।

४ त्रितस्य नाम जनयन् मधु क्षरत्— इन्द्रके नामको प्रकट करता हुआ यह सोम मधुर रस देता है ।

५ इन्द्रस्य वायोः सख्याय कर्तवे— इन्द्र तथा वायुके साथ मित्रता करनेके लिये यह सोम रस देता है ।

[७५९] (अयं पुनानः) यह सोम शुद्ध होता हुआ (उषसः विरोचयत्) उषःकालोंको तेजस्वी करता है । (अयं) यह सोम (सिन्धुभ्यः) सिंधुओंके जलोंसे युक्त होकर (लोककृत्) लोकोंका सहायक (अभवत्) होता है । (अयं सोमः) यह सोम (आशिरं दुहानः) रस निकालता हुआ (चारु मत्सरः) उत्तम आनंद देता हुआ (हृदे पवते) हृदयको देता हुआ रस निकाल देता है ॥ २१ ॥

७६० पव॑स्व सोम दि॒व्येषु॒ धाम॑सु सृजा॒न इ॑न्दो क॒लशे॑ प॒वित्र॒ आ ।
सीद॒न्निन्द्र॑स्य ज॒ठरे॒ कनि॑क्रद॒न्नृभि॑र्य॒तः सूर्य॒मारो॑हयो दि॒वि ॥ २२ ॥
७६१ अद्रि॑भिः सु॒तः प॑वसे प॒वित्र॒ आँ इन्दु॒रिन्द्र॑स्य ज॒ठरे॑ष्वावि॒शन् ।
त्वं नृ॒चक्षा॑ अभवो विचक्षण॒ सोम॑ गो॒त्रमङ्गि॑रोभ्योऽवृणो॒रप॑ ॥ २३ ॥
७६२ त्वां सो॑म॒ पव॑मानं स्वा॒ध्यो ऽनु॒ विप्रा॑सो अमदन्नव॒स्यवः॑ ।
त्वां सु॑प॒र्ण आभ॑रद् दि॒वस्परी॒न्दो॒ विश्वा॑भिर्म॒तिभि॒: परि॑ष्कृतम् ॥ २४ ॥

अर्थ— १ अयं पुनानः उषसः निरोचयत्— यह सोम शुद्ध होता हुआ उषाओंको तेजस्वी बनाता है ।

२ अयं सिन्धुभ्यः लोककृत् अभवत्— यह सिन्धुओंके जलमें मिलकर लोकसहायता करनेवाला होता है । लोगोंकी अर्थात् याजकोंकी सहायता करनेवाला होता है ।

३ अयं सोमः आशिरं दुहानः चारु मत्सरः हृदे पवते— यह सोमरस दूधके साथ मिलकर मधुर तथा आनंद देनेवाला होता है ।

[७६०] हे (इन्दो सोम) प्रकाश देनेवाले सोम (दिव्येषु धामसु) दिव्य यज्ञ स्थानोंमें (आ पवस्व) रस दे । (कलशे पवित्रे सृजानः) कलशमें छाननेके बाद रखा यह सोम है । (इन्द्रस्य जठरे) इन्द्रके पेटमें (कनिक्रदत् सीदन्) शब्द करता हुआ जाता है । (नृभिः यतः) याजकोंने यज्ञमें रखा यह सोम (दिवि) द्युलोकमें (सूर्यं आरोहयः) सूर्यको चढाता है ॥ २२ ॥

१ हे इन्दो सोम ! दिव्येषु धामसु आ पवस्व— हे सोम तू दिव्य यज्ञस्थानोंमें अपना रस दो ।

२ कलशे पवित्रे सृजानः— कलशमें तथा छाननीमेंसे गुजरता हुआ तू सोम हो ।

३ इन्द्रस्य जठरे कनिक्रदत् सीदन् दिवि सूर्यं आरोहयः— इन्द्रके पेटमें शब्द करता हुआ पहुंचता है और वह सोम द्युलोकमें सूर्यको पहुंचाता है ।

[७६१] हे (इन्दो) सोम ! तू (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला रस (पवित्रे आ पवसे) छाननीमेंसे शुद्ध होता है । और (इन्द्रस्य जठरेषु आविशन्) इन्द्रके पेटमें प्रवेश करता है । हे (सोम) सोम ! (विचक्षण) विशेष निरीक्षण करनेवाला तथा (नृचक्षाः) मानवोंका निरीक्षण करनेवाला हो । (अंगिरोभ्यः) यज्ञकर्ता अंगिरोंके लिये (गोत्रं अपः) गौओंका रक्षण करनेवाला जल (अप अवृणोः) अपने पास रखता है ॥ २३ ॥

१ अद्रिभिः सुतः पवित्रे आ पवसे— पत्थरोंसे कूटकर निकाला यह सोमरस छाननीपर छाना जाता है ।

२ इन्द्रस्य जठरेषु आविशन्— इन्द्रके पेटमें यह सोमरस जाता है ।

३ हे विचक्षण सोम ! नृचक्षाः अंगिरोभ्यः गोत्रं अपः अप अवृणोः— हे विशेष रीतिसे निरीक्षण करनेवाले सोम ! तू मानवोंका निरीक्षण करता है, और यज्ञकर्ताओंके लिये गौओंका रक्षण करनेका सामर्थ्य देता है ।

४ गोत्रं— (गो-त्रं) गौओंका संरक्षण करनेकी शक्ति मानवोंमें बढे ।

[७६२] हे (सोम) सोम ! (पवमानं त्वां) रस निकाले तेरी (स्वाध्यः विप्रासः) स्वाध्याय करनेवाले ब्राह्मण (अवस्यवः) अपना संरक्षण करनेकी इच्छा करके (अनु अमदन्) स्तुति करते हैं । हे (इन्दो) सोम ! (त्वां सुपर्णः) तुझे श्येन पक्षी (दिवः परि) द्युलोकके ऊपरसे (आभरत्) ले आया है । तू (विश्वाभिः मतिभिः परिष्कृतं) स्तुतियोंसे प्रशंसित हुआ है ॥ २४ ॥

७६३ अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः ।
अपामुपस्थे अध्यायवः कवि मृतस्य योना महिषा अहेषत ॥ २५ ॥
७६४ इन्दुः पुनानो अति गाहते मृधो विश्वानि कृण्वन् त्सुपथानि यज्यवे ।
गाः कृण्वानो निर्णिजं हर्यतः कवि रत्यो न क्रीळन् परि वारमर्षति ॥ २६ ॥
७६५ असश्चतः शतधारा अभिश्रियो हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः ।
क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ २७ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! स्वाध्यः विप्रास पवमानं त्वां अवस्यवः अनु अमदन्— हे सोम स्वाध्याय करनेवाले ब्राह्मण शुद्ध करते हुए तेरी स्तुति, अपना संरक्षण करनेकी इच्छासे करते हैं ।

२ हे इन्दो सुपर्णः त्वां दिवः परि आभरत्— हे सोम ! श्येन पक्षीने तुझे द्युलोकके ऊपरसे लाया है । हिमालयके शिखरपर सोम उगता है । वहांसे उस सोमको भूमिपर लाते हैं ।

३ विश्वाभिः मतिभिः परिष्कृतम्— अनेक प्रकारकी स्तुतियां गाकर उस सोमको यज्ञकर्ता शुद्ध करते हैं।

[७६३] (अव्ये वारे) मेढीके बालोंकी छाननीके ऊपर (ऊर्मिणा परि पुनानं) रसरूपमें शुद्ध होनेवाले (हरिं) हरे रंगके सोमरसको (सप्त धेनवः) सात नदियां अथवा गौवें (अभि नवन्ते) प्राप्त करती हैं । (कविं) ज्ञान बढानेवाले सोमको (अपां उपस्थे) जलोंके समीप (ऋतस्य योनौ) यज्ञके स्थानमें (महिषाः आयवः) बडे ज्ञानी लोग (अधि अहेषत) प्रेरित करते हैं ॥ २५ ॥

१ अव्ये वारे ऊर्मिणा परिपुनानं हरिं सप्त धेनवः अभि नवन्ते— मेढीके बालोंकी छाननीपर लहरियोंसे शुद्ध होनेवाले सोमरसको सात गौवें अपने दूधमें प्राप्त करती हैं । गौओंके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है ।

२ कविं अपां उपस्थे ऋतस्य योनौ महिषा आयवः अधि अहेषत— इस ज्ञान बढानेवाले सोमको यज्ञके स्थानमें जानेकी ज्ञानी पुरुष प्रेरणा करते हैं । यज्ञके स्थानमें सोम लाया जाता है और उसका रस इन्द्र आदि देवताओंको अर्पण किया जाता है । और पश्चात् यज्ञकर्ता जन उस रसका सेवन करते हैं ।

[७६४] यह (इन्दुः) सोमरस (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (मृधः) हिंसक शत्रुओंको (अतिगाहते) लांघकर जाता है, तथा (यज्यवे) यज्ञ करनेवालेके लिये (सुपथानि कृण्वन्) उत्तम मार्ग करता है । (निर्णिजं गाः कृण्वानः) अपना रूप गौओंके समान करता है । (हर्यतः कविः) प्रगतिशील ज्ञानी जैसा यह सोम (अत्यः न) घोडेके समान (क्रीळन्) खेलता हुआ (वारं परि अर्षति) छाननीमेंसे शुद्ध होकर नीचेके पात्रमें आता है ॥ २६ ॥

१ इन्दुः पुनानः मृधः अतिगाहते— सोमरस शुद्ध होकर शत्रुओंको दूर करता है ।
२ यज्यवे सुपथानि कृण्वन्— यज्ञकर्ताके लिये उत्तम मार्ग उन्नति प्राप्त करनेके लिये कर देता है ।
३ हर्यतः कविः— प्रगति करनेवाले ज्ञानी जैसा यह सोम है ।
४ अत्यः न क्रीडन्— घोडेके समान यह क्रीडामें कुशलता बढाता है ।
५ वारं परि अर्षति — मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे शुद्ध होता हुआ यह गुजरता है और शुद्ध होकर यज्ञमें आ जाता है ।

[७६५] (असश्चतः) मिले हुए (शतधाराः) सैंकडों धाराओंसे (अभि श्रियः) चारों ओरसे साथ रहनेवाले (ताः) वे सूर्यकिरण (हरिं अव नवन्ते) हरे सोमके साथ रहते हैं । वे (उदन्युवः) उदककी इच्छा करते हैं । (क्षिपः) अंगुलियां (गोभिः आवृतं) गोदुग्धसे मिले सोमरसको (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं । यह (दिवः रोचने) द्युलोकके (तृतीये पृष्ठे) तीसरे स्थानमें रहे सोमके लिये होता है ॥ २७ ॥

७६६ तवेमाः प्रजा दिव्यस्य रेतस— स्त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि ।
अथेदं विश्वं पवमान ते वशे त्वमिन्दो प्रथमो धामधा असि ॥ २८ ॥
७६७ त्वं समुद्रो असि विश्ववित् कवे तवेमाः पञ्च प्रदिशो विधर्मणि ।
त्वं द्यां च पृथिवीं चाति जभ्रिषे तव ज्योतींषि पवमान सूर्यः ॥ २९ ॥
७६८ त्वं पवित्रे रजसो विधर्मणि देवेभ्यः सोम पवमान पूयसे ।
त्वामुशिजः प्रथमा अगृभ्णत तुभ्येमा विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥

अर्थ— १ असश्चतः शतधाराः अभिश्रियः ताः हरिं अव नमन्ते— साथ रहे सेंकडों धाराओंसे तेजस्वी वे किरण सोमके साथ रहते हैं। इस कारण सोमरस तेजस्वी दीखता है।

२ क्षिपः गोभिः आवृतं मृजन्ति— अंगुलियां गोदुग्धके साथ मिले सोमको शुद्ध करती हैं। दबाकर रस निकालती हैं।

३ दिवः रोचने तृतीये पृष्ठे— द्युलोकके चमकीले तीसरे स्थानमें सोम रहता है। इस सोमका रस निकाला जाता है, और इस रसका यज्ञ किया जाता है।

[७६६] (तव दिव्यस्य रेतसः) तेरे दिव्य वीर्यसे (इमाः प्रजाः) ये सब प्रजाएं उत्पन्न हुई हैं। (त्वं) तू (विश्वस्य भुवनस्य) सब भुवनोंका (राजसि) स्वामी है। हे (पवमान) सोम ! (अथ इदं विश्वं) और यह सब विश्व (त्वे वशे) तेरे आधीन हुआ है। हे (इन्दो) सोम ! (त्वं) तू (प्रथमः) पहिला (धामधा असि) विश्वको धारण करनेवाला हो ॥ २८ ॥

१ तव दिव्यस्य रेतसः इमाः प्रजाः— तेरे दिव्य वीर्यसे ये सब प्रजाएं उत्पन्न हुई हैं। इस सब विश्वका उत्पन्न करनेवाला तू है।

२ त्वं विश्वस्य भुवनस्य राजसि— तू इन सब भुवनोंका राजा है।

३ हे पवमान ! अथ इदं विश्वं त्वे वशे— हे सोम ! यह सब विश्व तेरे वशमें रहा है।

४ हे सोम ! त्वं प्रथमः धामधाः असि— हे सोम ! तू पहिला स्थानका धारण करनेवाला, सबका आश्रयदाता है। तेरे आश्रयसे यह सब रहा है।

[७६७] हे (कवे) ज्ञानी सोम ! तू (समुद्रः) जलमय रसरूप (असि) हो, तथा (विश्ववित्) सर्वज्ञ हो, अतः (तव विधर्मणि) तेरी विशेष धारण करनेकी शक्तिसे ये (पञ्च प्रदिशः) पांचो दिशाएं रही हैं। (त्वं द्यां च पृथिवीं च) तू द्यौ और पृथिवीको (जभ्रिषे) धारण करता है। हे (पवमान) सोम ! (सूर्यः) सूर्य (तव ज्योतींषि) तेरे तेजोंको बढाता है ॥ २९ ॥

१ कवे! समुद्रः असि— हे ज्ञानसंवर्धक सोम ! तू रसका समुद्र ही हो।

२ विश्ववित्— सबको यथायोग्य रीतिसे जाननेवाला हो।

३ तव विधर्मणि पञ्च प्रदिशः तेरी विशेष धारण करनेकी शक्तिसे ये पांचो दिशाएं रही हैं। तेरा आधार इन दिशाओंमें रहे पदार्थोंको है।

४ त्वं द्यां च पृथिवीं च जभ्रिषे— तू द्यु और पृथिवीका धारण करता है।

५ हे पवमान ! तव ज्योतींषि सूर्यः— हे सोम ! तेरा प्रकाश सूर्यके रूपसे बाहर आया है।

[७६८] हे (पवमान सोम) शुद्ध होनेवाले सोम ! (त्वं) तू (रजसः विधर्मणि) रसके धारक (पवित्रे) छाननीमेंसे (देवेभ्यः पूयसे) देवोंको देनेके लिये शुद्ध किया जाता है। (त्वां) तुझे (उशिजः) इच्छा करनेवाले (प्रथमाः) मुख्य ऋत्विज (अगृभ्णत) लेते हैं। (तुभ्यं) तेरे ऊपर (इमानि विश्वा भुवनानि) ये सब भुवन (येमिरे) प्रेम करते हैं ॥ ३० ॥

७६९ प्र रेभ एत्यति वारमव्ययं वृषा वनेष्वव चक्रदद्धरिः ।
सं धीतयो वावशाना अनूषत शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम् ॥ ३१ ॥
७७० स सूर्यस्य रश्मिभिः परि व्यत तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथा विदे ।
नयन्नृतस्य प्रशिषो नवीयसीः पतिर्जनीनामुप याति निष्कृतम् ॥ ३२ ॥
७७१ राजा सिन्धूनां पवते पतिर्दिव ऋतस्य याति पथिभिः कनिक्रदत् ।
सहस्रधारः परि षिच्यते हरिः पुनानो वाचं जनयन्नुपावसुः ॥ ३३ ॥

अर्थ— १ हे पवमान सोम ! त्वं रजसः विधर्माणि पवित्रे देवेभ्यः पूयसे— हे पवित्र सोम ! तू रसका मुख्य आधार है, तू छाननीमेंसे देवोंको देनेके लिये शुद्ध होता है ।

२ त्वां उशिजः प्रथमाः अगृभ्णत— तुझे यज्ञ करनेवाले पहिले अर्थात् श्रेष्ठ ऋत्विज यज्ञके लिये प्राप्त करते हैं । सबसे पहिले तुझे प्राप्त करते हैं और पीछे यज्ञका प्रारंभ करते हैं ।

३ तुभ्यं इमानि विश्वानि भुवनानि येमिरे— तेरे ऊपर ये सब भुवन प्रेम करते हैं । सबके प्रेमका तू सोम ही मूल आधार है ।

[७६९] (रेभः) शब्द करनेवाला सोम (अव्ययं वारं) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (प्र अति एति) छाना जाता है । (वृषा) बलवान (हरिः) हरे रंगका सोम (वनेषु) उदकोंमें (अवचक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है । (धीतयः वावशानाः) छान करनेवाले याजक ऋत्विज (शिशुं) सोमकी (सं अनूषत) उत्तम रीतिसे स्तुति करते हैं । (मतयः पनिप्नतम्) स्तुतियां चलती रहती हैं ॥ ३१ ॥

१ रेभः अव्ययं वारं प्र अति एति— सोम भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

२ वृषा हरिः वनेषु अवचक्रदत्— बलवर्धक हरे रंगका सोम जलोंके साथ शब्द करता हुआ मिलता है ।

३ धीतयः वावशानाः शिशुं सं अनूषत— ध्यान करनेवाले ऋत्विज सोमकी स्तुति करते हैं ।

४ मतयः पनिप्नतम्— यज्ञस्थानमें सोमकी स्तुतियां चल रहीं हैं ।

[७७०] (सः) वह सोम (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्यके किरणोंसे (परिव्यत) अपनेको घेरता है । (त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः) तीन सवनोंसे युक्त यज्ञको फैलाता है (यथा विदे) यह कार्य करना वह जानता है । (ऋतस्य नवीयसीः प्रशिषः नयन्) यज्ञकी नवीन उत्तम इच्छाएं पूर्ण करता है । (जनीनां पतिः) याजकोंकी धर्मपत्नीयोंका यह स्वामी सोमरस (निष्कृतं उपयाति) अपने पात्रमें जाकर रहता है ॥ ३२ ॥

१ सः सूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत— वह सोम सूर्यके किरणोंसे अपने आपको घेर लेता है । सूर्यके किरण उसपर प्रकाशते रहते हैं ।

२ त्रिवृतं तन्तुं तन्वानः यथा विदे— तीन सवनोंवाला यज्ञ वह करता है, जैसा यज्ञ करना वह जानता है ।

३ ऋतस्य नवीयसी प्रशिषः नयन्— यज्ञके नवीन उद्देश्योंको वह ठीक रीतिसे करता है ।

४ जनीनां पतिः निष्कृतं उपयाति— स्त्रियोंका स्वामी यह सोम यज्ञमें अपने निश्चित स्थानमें जाकर रहता है ।

[७७१] (सिन्धूनां राजा) जलोंका स्वामी (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी (ऋतस्य पथिभिः) यज्ञके मार्गसे (कनिक्रदत् याति) शब्द करता हुआ जाता है । (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे आनेवाला (हरिः) हरे रंगका यह सोम याजकों द्वारा पात्रोंमें (परिषिच्यते) रखा जाता है । वह (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (उपावसुः) यज्ञके पास रहनेकी इच्छा करनेवाला यह सोम (वाचं जनयन्) स्तुतिको निर्माण करता है ॥ ३३ ॥

७७२ पवमान महार्णो वि धावसि सूरो न चित्रो अव्ययानि पव्यया ।
गभस्तिपूतो नृभिरद्रिभिः सुतो महे वाजाय धन्याय धन्वसि ॥ ३४ ॥
७७३ इषमूर्जं पवमानाभ्यर्षसि श्येनो न वंसु कलशेषु सीदसि ।
इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतो दिवो विष्टम्भ उपमो विचक्षणः ॥ ३५ ॥

अर्थ— १ सिन्धूनां राजा— यह सोमरस नदियोंके जलके साथ मिलकर रहता है, अतः उसको नदियोंका राजा कहा जाता है।

२ दिवः पतिः— द्युलोकका यह स्वामी है। यह पर्वतोंके शिखरपर होता है, अतः यह द्युलोकका निवासी कहा है।

३ ऋतस्य पथिभिः कनिक्रदत् याति— यज्ञके मार्गोंसे यह सोम जाता है। यज्ञमें यह मुख्य पदार्थ है।

४ सहस्रधारः हरिः परिषिच्यते— हजारों धाराओंसे यह हरे रंगका सोम यज्ञपात्रोंमें रखा जाता है।

५ पुनानः उगावसुः वाचं जनयन्— छाना जानेवाला तथा यज्ञके समीप रहनेवाला यह सोम स्तुति-स्तोत्र याजकों द्वारा गानेकी प्रेरणा देता है।

[७७२] हे (पवमान) सोम ! (महि अर्णः) बहुत जलके पास (वि धावसि) तू जाता है। (सूरः न चित्रः) सूर्यके समान इष्ट या पूज्य होकर (अव्ययानि) मेंढीके बालोंके (पात्राणि) छाननेके पात्रोंमें (पव्यया) जाता है। (नृभिः आद्रिभिः सुतः) याजकोंने पत्थरोंसे कूटकर निकाला हुआ यह सोमरस (महे वाजाय) बडे युद्धके लिये (धन्याय) धन प्राप्त करनेके लिये (धन्वसि) जाता है ॥ ३४ ॥

१ हे पवमान ! महि अर्णः विधावसि— हे सोम ! तू बडे उदकमें दौडकर जाता है। उदकमें सोमरस मिलाया जाता है।

२ सूरः न चित्रः अव्ययानि पात्राणि पव्यया— सूर्यके समान तू पूजनीय है। ऐसा तू मेंढीके बालोंकी छाननीमेंसे छानकर यज्ञपात्रोंमें जाकर रहता है।

३ नृभिः अद्रिभिः सुतः— याजकोंने पत्थरोंसे कूटकर सोमका रस निकाला है।

४ महे वाजाय धन्याय धन्वसि— बडे युद्धमें धन प्राप्त करनेके लिये यह जाता है। वीर लोग सोमरस पीकर उत्साहित होकर युद्ध करते हैं और शत्रुको जीतकर उस शत्रुके धनपर अपना अधिकार जमाते हैं।

[७७३] हे (पवमान) सोम ! तू (इषं ऊर्जं) अन्न और बल (अभ्यर्षसि) बढाता है। (श्येनः न वंसु) श्येन पक्षी जैसा अपने घरमें आकर रहता है वैसा तू (कलशेषु सीदसि) कलशोंमें रहता है। (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (मद्वा) उत्साह बढानेवाला (मद्यः) आनंदकारक (मदः सुतः) यह रस निकाला है। यह (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकका धारण कर्ता (उपमा) उदाहरण देनेयोग्य (विचक्षणः) द्रष्टा है ॥ ३५ ॥

१ हे पवमान ! इषं ऊर्जं अभ्यर्षसि— हे सोम ! तू अन्न और बल बढाता है।

२ श्येनः न वंसु— श्येन पक्षी जैसा अपने स्थानमें जाकर रहता है।

३ कलशेषु सीदसि— वैसा तू यज्ञपात्रोंमें सोम रखा रहता है।

४ इन्द्राय मद्वा मद्यः मदः सुतः - इन्द्रको आनंद देनेवाला यह रस है।

५ दिवः विष्टम्भः— द्युलोकका यह आधार है।

६ उपमा विचक्षणः— उपमा देने योग्य यह सर्वद्रष्टा है।

७७४ सप्त स्वसा॑रो अ॒भि मा॒तरः॒ शिशुं॒ नवं॑ जज्ञा॒नं जेन्यं॑ विप॒श्चित॑म् ।
अ॒पां ग॑न्ध॒र्वं दि॒व्यं नृ॒चक्ष॑सं॒ सोमं॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य रा॒जसे॑ ॥ ३६ ॥
७७५ ई॒शा॒न इ॒मा भुव॑नानि॒ वीय॑से युजा॒न इ॑न्दो ह॒रितः॑ सुप॒र्ण्यः॑ ।
तास्ते॑ क्षरन्तु॒ मधु॑मद्घृ॒तं पय॒स्तव॑ व्र॒ते सो॑म तिष्ठन्तु कृ॒ष्टयः॑ ॥ ३७ ॥
७७६ त्वं नृ॒चक्षा॑ असि सोम वि॒श्वतः॒ पव॑मान वृषभ॒ ता वि धा॑वसि ।
स नः॑ पवस्व॒ वसु॑म॒द्धिर॑ण्यव॒द्व॒यं स्या॑म॒ भुव॑नेषु जी॒वसे॑ ॥ ३८ ॥

अर्थ— [७७४] (**सप्त**) सात (**स्वसारः**) बहिनें तथा (**मातरः**) माताएं (**नवं जज्ञानं शिशुं**) नवीन उत्पन्न हुए बालकको (**जेन्यं**) जयशील (**विपश्चितं**) ज्ञानी होने योग्य मानकर (**अभि**) पास जाती हैं, उस प्रकार (**विश्वस्य भुवनस्य राजसे**) सब भुवनका राज्य करनेकी इच्छासे (**अपां गंधर्वं**) पानीके साथ मिलाये गये (**दिव्यं नृचक्षसं सोमं**) दिव्य मानवोंका निरीक्षण करनेवाले सोमको (**विश्वस्य भुवनस्य राजसे**) सब भुवनोंके ऊपर विराजमान होनेके लिये रस निकालते हैं ॥ ३६ ॥

१ **सप्त स्वसारः मातरः** — सात नदियोंका जल यज्ञमें लाया जाता है और उस जलमें सोमरस मिलाया जाता है ।

२ **नवं जज्ञानं शिशुं जेन्यं विपश्चितः अभि**— नये उत्पन्न हुए पुत्रको जैसा प्रेमसे देखते हैं उस प्रकार याजक इस सोमको प्रेमसे देखते हैं ।

३ **विश्वस्य भुवनस्य राजसे**— सब भुवनको प्रकाशित करनेके लिये यज्ञमें सोम रखा रहता है ।

४ **दिव्यं नृचक्षसं सोम**— दिव्य रीतिसे सबका निरीक्षण करनेवाले सोमको यज्ञस्थानमें ऋत्विज रखते हैं ।

[७७५] हे (**इन्दो**) सोम ! (**ईशानः**) तू स्वामी है (**इमा भुवनानि वीयसे**) इन भुवनोंमें तू जाता है (**हरितः सुपर्ण्यः**) हरित वर्णके उत्तम गतिमान अश्वोंको रथमें (**युजानः**) जोडकर तू जाता है (**ताः**) वे (**ते**) तेरे लिये **मधुमत् घृतं पयः**) मीठा घी और दूध (**क्षरन्तु**) देवें । हे (**सोम**) सोम ! (**तव व्रते**) तेरे व्रतमें (**कृष्टयः तिष्ठन्तु**) मनुष्य रहें ॥ ३७ ॥

१ **हे इन्दो ! ईशानः, इमा भुवनानि वीर्यसे**— हे सोम ! तूं सबका स्वामी है । इन सब भुवनोंमें तू जाता है । यज्ञके लिये सोम लाया जाता है ।

२ **हरितः सुपर्ण्यः युजानः**— उत्तम गमन करनेवाले घोडोंको रथमें जोडता है । सोम लानेके रथको घोडे जोते जाते थे ।

३ **ताः ते मधुमत् घृतं पयः क्षरन्तु**— वे तेरे लिये मधुर घी और दूध देवें । सोममें ये मधुर दूध मिलाया जाता है ।

४ **हे सोम तव व्रते कृष्टयः तिष्ठन्तु** – हे सोम ! तेरे यज्ञरूपी व्रतमें मनुष्य आकर रहें ।

[७७६] हे (**सोम**) सोम ! (**त्वं विश्वतः**) तूं सब प्रकारसे (**नृचक्षाः असि**) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला है । हे (**पवमान वृषभ**) सोमके बलवर्धक रस ! (**ताः विधावसि**) उन जलोंमें तू मिल जाता है । (**सः नः पवस्व**) वह तू हमारे लिये रस दे । वह तू हमें (**वसुमत्**) गौं आदिसे युक्त पशु तथा (**हिरण्यवत्**) सुवर्ण आदि धन दे दो । (**वयं**) हम (**भुवनेषु**) इन भुवनोंमें (**जीवसे स्याम**) दीर्घ जीवनसे युक्त हो जांय ॥ ३८ ॥

७७७ गोवित् पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित् तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥ ३९ ॥
७७८ उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत् सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत् ॥ ४० ॥
७७९ स मन्दना उदियर्ति प्रजावतीर्विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि ।
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यं पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात् ॥ ४१ ॥

अर्थ – १ हे सोम ! त्वं विश्वतः नृचक्षाः असि— हे सोम ! तू सब प्रकारसे मानवोंका निरीक्षण करनेवाला है ।
२ हे पवमान वृषभ ! ताः विधावसि – हे बलवान सोम ! तूं जलोंमें मिलता है । जलोंमें सोमरस मिलाकर पीया जाता है ।
३ सः नः पवस्व— वह तूं हमारे लिये रस दे ।
४ वसुमत् हिरण्यवत्— धन तथा सुवर्ण आदिसे युक्त हम होकर यहां रहें ।
५ वयं भुवनेषु जीवसे स्याम— हम इस भुवनमें दीर्घ जीवन प्राप्त करके सुखसे रहें ऐसा कर ।

[७७७] हे (सोम) सोम ! (गोवित्) गौवें प्राप्त करनेवाला, (वसुवित्) धनवान् (हिरण्यवित्) सुवर्ण युक्त, (रेतोधाः) उदकका धारण करनेवाला तथा (भुवनेषु अर्पितः) जलके साथ मिश्रित हुआ (पवस्व) रस दे दो । हे सोम ! (त्वं सुवीरः असि) तू उत्तम वीर है, तथा तू (विश्ववित्) सब जाननेवाला हो (तं त्वा) उस तुझको (इमे विप्राः) ज्ञानी लोग (गिरा उप आसते) स्तुति करते हुए तेरे पास बैठते हैं ॥ ३९ ॥

१ सोम ! गोवित— हे सोम ! तू गौवें प्राप्त करनेवाला है । गौवोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।
२ वसुवित् हिरण्यवित् रेतोधाः भुवनेषु अर्पितः— हे सोम ! तू धन, सुवर्ण, वीर्य आदिसे युक्त होकर भुवनोंमें रहता है ।
३ भुवनेषु अर्पितः— तूं जलोंमें मिलाया जाता है ।
४ त्वं सुवीरः असि— तूं उत्तम वीर है । सोमरस वीरता बढाता है ।
५ विश्ववित्-- तूं सबका ज्ञाता है ।
६ तं त्वा इमे विप्रा गिरा उप आसते— तेरी स्तुति ये ज्ञानी करते हुए यज्ञमें बैठे हैं ।

[७७८] (मध्वः ऊर्मिः) मधुर रसकी लहरें तथा (वनना) स्तुतियां (उत् अतिष्ठिपत्) ऊपर सुनाई दे रही हैं । (अपः वसानः) जलमें मिलाया (महिषः) महान सोमरस (वि गाहते) कलशमें जाता है । (पवित्ररथः राजा) पवित्र रथवाला राजा (वाजं आरुहत्) युद्धमें जाता है । तब यह सोम (सहस्रभृष्टिः) सहस्रों प्रकारके (बृहत् श्रवः) बहुत अन्न (जयति) विजय करके प्राप्त करता है ॥ ४० ॥

१ मध्वः ऊर्मिः वनना उद्तिष्ठिपत्— मधुर सोमरसकी लहरें तथा उसकी स्तुतियां शुद्ध हो गयी हैं ।
२ अपः वसानः महिषः वि गाहते— जलमें मिलाया यह सोमरस कलशमें रखा गया है ।
३ पवित्ररथः राजा वाजं आरुहत्— उत्तम रथमें बैठा हुआ राजा युद्धमें जाता है वैसा यह सोम यज्ञमें आता है ।
४ सहस्रभृष्टिः बृहत् श्रवः जयति— वीर सहस्रों प्रकारके अन्न तथा बडा यश युद्धमें विजय प्राप्त करनेसे प्राप्त होते हैं ।

[७७९] (सः) वह सोम (विश्वायुः) सबको चलानेवाली (प्रजावतीः) प्रजा देनेवाली (सुभराः) उत्तम अर्थवाली (विश्वाः) सब (मन्दनाः) स्तुतियां (अहः दिवि) दिनमें तथा रात्रीमें (उदियर्ति) प्रेरित करती हैं । (ब्रह्म) ज्ञानपूर्वक किया कर्म (प्रजावत्) प्रजायुक्त (रयिमत्) धन युक्त (अश्वपस्त्यं) गृहादिसे युक्त (पीतः) पीये हुए (इन्दो) सोम ! (इन्द्रं) इन्द्रके पास (अस्मभ्यं याचतात्) हमारे लिये मांगो ॥ ४१ ॥

×

७८० सो अग्रे अह्नां हरिर्हर्यतो मदः प्र चेतसा चेतयते अनु द्युभिः ।
द्वा जना यातयन्नन्तरीयते नरा च शंसं दैव्यं च धर्तरि ॥ ४२ ॥
७८१ अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥ ४३ ॥

अर्थ— १ सः विश्वायुः प्रजावतीः सुभराः विश्वाः मन्दना अहः दिवि उदियर्ति — वह पूर्ण आयुसे युक्त, प्रजासे युक्त, उत्तम भरपूर धन देनेवाली सब स्तुतियां दिन रात चल रही हैं। इन्द्र देवकी स्तुतियां चल रही हैं।

२ ब्रह्म प्रजावत् रयिमत् अश्वपत्यं इन्द्रं अस्मभ्यं याचतात्— प्रजायुक्त, धनयुक्त, गृहदार अश्व आदिसे युक्त, धन इन्द्रके पास हमारे लिये मांगो।

हमें धन चाहिये पर वह धन सन्तानोंके साथ, अश्व गौवें आदिके साथ रहनेवाला ही धन चाहिये। धन मिले और संतान न हों ऐसा धन हमें मांगना नहीं चाहिये।

[७८०] (सः) वह सोम (अग्रे) सबके सन्मुख (चेतसा) ज्ञानपूर्वक (अह्नां द्युभिः) दिनोंके प्रकाश-किरणोंसे (अनु प्र चेतयते) अनुकूल रीतिसे चेतना उत्पन्न करता है। (हरिः) हरे रंगका (हर्यतः) प्रिय (मदः) हर्ष उत्पन्न करनेवाला (द्वा जना) दो जनोंको अर्थात् स्तोता तथा यजन कर्ताको (यातयन्) योग्य स्थानको पहुंचाता है और (अंतः ईयते) द्यु और पृथिवीके मध्यमें पहुंचता है। (नराशंसं) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित (दैव्यं) दिव्य धन (धर्तरि) यजमानके पास (यातयन्) पहुंचाता है ॥ ४२ ॥

१ सः अग्रे चेतसा अह्नां द्युभिः अनु प्र चेतयते- वह सोम सबके सन्मुख ज्ञानसे दिनोंके प्रकाशोंसे अनुकूल प्रेरणा देता है। सोम प्रकाशता है और दिन उत्पन्न होनेकी सूचना करता है। यज्ञस्थानमें सोम प्रकाशता है, इससे विदित होता है कि दिन ही प्रकाशता है।

२ हरिः हर्यतः मदः द्वा जना यातयन्— हरे रंगका पूज्य तथा आनंद बढानेवाला सोम स्तुति करनेवालेको तथा यज्ञ करनेवालेको उच्च स्थान पर पहुंचाता है।

३ नराशंसं दैव्यं धर्तरि यातयन्— मनुष्योंसे प्रशंसित ऐसा दिव्य धन यज्ञकर्ताओंके पास पहुंचाता है।

[७८१] ऋत्विज यज्ञके समय सोमरसको गौके दूधके साथ (अञ्जते) मिलाते हैं, (व्यञ्जते) अनेक प्रकारसे मिलाते हैं। (समञ्जते) योग्य रीतिसे मिलाते हैं। (क्रतुं रिहन्ति) यज्ञमें समर्पित पदार्थोंको देव स्वाद लेते हैं। (मधुना अभ्यञ्जते) मीठे दूधके साथ मिलाते हैं। (सिन्धोः उच्छ्वासे) नदीके जलमें पतयन्तं उक्षणं) मिश्रित होनेवाले (हिरण्यपावाः) सुवर्णसे शुद्ध होनेवाले सोमको (पशुं) देखनेवालेको (आसु गृभ्णते) इन जलोंमें प्राप्त करते हैं ॥ ४३ ॥

१ अञ्जते, व्यञ्जते, समञ्जते— सोमरसको गौके दूधके साथ मिलाते है, विशेष रीतिसे मिलाते हैं, तथा योग्य रीतिसे मिलाते हैं।

२ क्रतुं रिहन्ति— देव यज्ञमें समर्पित पदार्थकी स्वाद लेते हैं। उस पदार्थका स्वाद करके देखते हैं कि यह उत्तम है वा नहीं।

३ मधुना अभ्यञ्जते— मीठे दूधके साथ सोमरसको मिलाते हैं।

४ सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तम् उक्षणं – नदीके जलमें मिलाये जानेवाले सोमको ऋत्विज लोग देखते हैं।

५ हिरण्यपावाः पशुं आसु गृभ्णते— सुवर्णसे शुद्ध होनेवाले सोमरसको इन नदियोंके जलोंके साथ मिलाते हैं।

७८२ विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीळन्नसरद्वृषा हरिः ॥ ४४ ॥
७८३ अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः ।
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः ॥ ४५ ॥
७८४ असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मदः परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्षति ।
अंशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतं गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययुः ॥ ४६ ॥

अर्थ— [७८२] हे ऋत्विजो ! (विपश्चिते) ज्ञानी (पवमानाय) सोमकी (गायत) स्तुतिके मंत्रोंका गायन करो । वह (मही धारा न) बडा वृष्टिकी धाराके समान (अन्धः) अन्नको (अति अर्षति) देता है । (अहिः न) सर्पके समान (जूर्णां त्वचं) जीर्ण त्वचाको (अति सर्पति) दूर करता है । (अत्यः न क्रीळन्) घोडेके समान खेलता हुआ यह (हरिः) हरे रंगका सोमरस (असरत्) कलशमें जाता है ॥ ४४ ॥

१ विपश्चिते पवमानाय गायत — ज्ञान बढानेवाले सोमकी स्तुतिके मंत्रोंका गान करो। उनके सामवेदके मंत्रोंका उत्तम गायन करो ।

२ मही धारा न अन्धः अति अर्षति— बडी वृष्टिकी धाराके समान यह सोम अन्न देता है ।

३ अहिः न जूर्णां त्वचं अति अर्षति— सर्पके समान यह सोम अपनी त्वचाको दूर करता है और रस देता है ।

४ अत्यः न क्रीळन् हरिः असरत्— घोडेके समान यह खेलता हुआ, हरे रंगका सोमरस कलशमें जाकर रहता है ।

[७८३] (अग्रेगः) अग्रगामी (राजा) राजमान्य (अप्यः) जलमें मिलाया सोमरस (तविष्यते) की स्तुति की जाती है जो (अह्नां विमानः) दिनोंका निर्माण करता है (भुवनेषु अर्पितः) जलोंमें मिश्रित हुआ है। (हरिः) हरे रंगका (घृतस्नुः) जलमें मिश्रित हुआ (सुदृशीकः) सुन्दर दीखनेवाला (अर्णवः) जलमें मिश्रित हुआ (ज्योतीरथः) तेजस्वी रथवाला राजा (राये) धन देता है तथा (ओक्यः) गृह भी देता है, (पवते) ऐसे सोमका रस निकालते हैं ॥ ४५ ॥

१ अग्रेगः राजा— आगे बढनेवाले राजाकी जैसी स्तुति होती है वैसी इस सोमकी स्तुति की जाती है ।

२ अप्यः तविष्यते-- जलमें मिलाये सोमकी स्तुति की जाती है ।

३ अह्नां विमानः भुवनेषु अर्पितः-- यज्ञके दिनोंको गिनता है और यज्ञके पात्रोंमें रखा यह सोम है ।

४ हरिः घृतस्नुः सुदृशीकः अर्णवः-- हरे रंगका, जलमें मिश्रित किया, सुंदर दीखनेवाला जलके साथ रहा यह सोम है ।

५ ज्योतीरथः राये ओक्यः पवते-- तेजस्वी रथवाले राजाके समान धन और घर देता हुआ, रस देता है ।

[७८४] (दिवः स्कंभः) द्युलोकके आधार (उद्यतः) उद्यमशील सोमका (मदः असर्जि) रस निकालते हैं। (त्रिधातुः) तीन कलशोंमें (भुवनानि परि अर्षति) अपने स्थानमें प्राप्त करके रहता है। (अंशुं) सोम (पनिप्नतं) शब्द करनेवालेको (मतयः रिहन्ति) बुद्धिमान ऋत्विज स्तुति करते हैं। (यदि निर्णिजं) जब तेजस्वी सोमको (ऋग्मिणः गिरा ययुः) ऋत्विज स्तुति करते हुए प्राप्त करते हैं ॥ ४६ ॥

७८५ प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः पुनानस्य संयतो यन्ति रंहयः ।
यद्गोभिरिन्दो चम्वोः समज्यस आ सुवानः सोम कलशेषु सीदसि ॥ ४७ ॥
७८६ पवस्व सोम क्रतुविन्न उक्थ्यो ऽव्यो वारे परि धाव मधु प्रियम् ।
जहि विश्वान् रक्षस इन्दो अत्रिणो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ४८ ॥

[८७]

(ऋषिः- उशना काव्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७८७ प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तो ऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥ १ ॥

अर्थ— १ दिवः स्कम्भः उद्यतः मदः असर्जि — द्युलोकके धारण करनेवाले श्रेष्ठ आनंददायक सोमरसको निकाला है ।

२ त्रिधातुः भुवनानि परि अर्षति— तीन कलशोंमें अपना स्थान प्राप्त करके वहां यह सोमरस रहता है ।

३ पनिप्नतं अंशुं मतयः रिहन्ति — शब्द करनेवाले सोमकी बुद्धिवानोंकी बुद्धियां स्तुति करती हैं ।

४ यदि निर्णिजं ऋग्मिणः गिरा ययुः -- जब इस तेजस्वी सोमकी स्तुति ज्ञानी लोग करते रहते हैं ।

[७८५] (पुनानस्य) छाने जानेवाली (संयतः) मिली (रंहयः ते धाराः) शब्द करनेवाली तेरी धाराएं (मेष्यः अण्वानि) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे (अति प्रयन्ति) छानी जाकर नीचे आ रही हैं । हे (इन्दो) सोम ! (यद् गोभिः) जब उदकके साथ (चम्वोः समज्यसे) पात्रमें मिलाया जाता है, उस समय (सुवानः) रस निकालने पर (सोमः) सोमरस (कलशेषु आ सीदसि) कलशोंमें रखा जाता है ॥ ४७ ॥

१ पुनानस्य संयतः रंहयः ते धाराः मेष्यः अण्वानि अति प्रयन्ति— छानेजानेवाले सोमरसकी शब्द करती हुई धाराएं मेढीकी बालोंकी छाननीमेंसे छानी जाती हैं ।

२ यत् गोभिः चम्वोः समज्यसे-- जब सोमरस जलके साथ तथा गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है ।

३ सुवानः सोमः कलशेषु आ सीदसि-- रस निकाला सोम कलशोंमें जाकर बैठता है । कलशोंमें सोमरस रखते हैं ।

[७८६] हे (सोम) सोम ! (नः) हमारे यज्ञकर्मको (क्रतुवित्) जाननेवाला (उक्थ्यः) प्रशंसनीय तू (नः) हमारे यज्ञके लिये (पवस्व) रस निकाल कर दे । (अव्यः वारे) मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे (मधु प्रियं) आनंद बढानेवाला रस देनेके लिये (परि धाव) जलदी गुजर जाओ । हे (इन्दो) सोम ! (अत्रिणः) भक्षण करनेवाले (विश्वान् रक्षसः) सब राक्षसोंको (जहि) जीता । (विदथे) युद्धमें अथवा यज्ञमें (सुवीराः) उत्तम वीर होकर तेरे विषयमें हम (बृहत् वदेम) बहुत स्तुतिके वक्तव्य बोलेंगे ॥ ४८ ॥

१ हे सोम ! क्रतुवित् उक्थ्यः नः पवस्व— हे सोम ! तू हमारे यज्ञको जाननेवाला तथा प्रशंसनीय हो ! वह तू हमारे लिये अपना रस दे ।

२ अव्यः वारे मधु प्रियं परि धाव— मेढीके बालोंकी छाननीमेंसे अपना मधुर रस जलदीसे निकाल दो ।

३ हे इन्दो ! विश्वान् अत्रिणः रक्षसः जहि — हे सोम ! सब सर्वभक्षक राक्षसोंको पराभूत करो ।

४ सुवीराः विदथे बृहद् वदेम— हम उत्तम वीर बनकर युद्धमें तुम्हारे विषयमें स्तुति रूप बहुत भाषण करेंगे ।

[८७]

[७८७] हे सोम ! (तु) शीघ्र ही (प्र द्रव) रस निकालकर दे । (कोशं) पात्रमें (परि नि षीद) जाकर रह । (नृभिः पुनानः) ऋत्विजों द्वारा शुद्ध किया हुआ (वाजं अभि अर्ष) अन्नके उद्देश्यसे आगे चल । (अश्वं न) घोडेके समान (त्वा वाजिनं मर्जयन्तः) तुझ बलवान सोमको शुद्ध करनेवाले (बर्हिः अच्छ) यज्ञके पास (रशनाभिः नयन्ति) अंगुलियोंसे पकड कर ले जाते हैं ॥ १ ॥

७८८ स्वायुधः पवते देव इन्दु॒रशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः ।
पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः ॥ २ ॥
७८९ ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ३ ॥
७९० एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णे परि पवित्रे अक्षाः ।
सहस्रसाः शतसा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात् ॥ ४ ॥

—अर्थ १ हे सोम ! तु प्र द्रव— हे सोम ! शीघ्र ही तेरा रस निकाल दो ।
२ कोशं परि निषीद-- पात्रमें जाकर रह ।
३ नृभिः पुनानः वाजं अभि अर्ष— ऋत्विजोंके द्वारा शुद्ध किया जानेवाला तू अन्नके रूपमें आगे जा ।
४ अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तः-- घोडेके समान तुझे सोमको ऋत्विज शुद्ध करते हैं ।
५ बर्हिः अच्छ रशनाभिः नयन्ति -- सोमको यज्ञके समीप अंगुलियोंसे पकडकर यज्ञकर्ता ले जाते हैं ।

[७८८] (स्वायुधः) उत्तम आयुधोंसे युक्त यह (देवः इन्दुः) सोमदेव (पवते) रस निकाल देता है । (अशस्तिहा) दुष्टोंका नाश करनेवाला (वृजनं रक्षमाणः) उपद्रव करनेवालोंसे संरक्षण करनेवाला (देवानां पिता) देवोंका रक्षक (जनिता) उत्पादक (सुदक्षः) उत्तम बलवान (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकको आधार देनेवाला (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवीका धारण कर्ता यह सोम है ॥ २ ॥

१ स्वायुधः देवः इन्दुः पवते— उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे युक्त सोमदेव रस देता है । वीर सोमरस पीकर शस्त्रास्त्रोंका उत्तम रीतिसे उपयोग करके विजय प्राप्त करते हैं ।
२ अशस्तिहा वृजनं रक्षमाणः देवानां पिता-- निंदनीय दुष्टोंसे उत्तम मनुष्यका संरक्षण करनेवाला, देवोंका पालक सोम है ।
३ जनिता सुदक्षः दिवः विष्टम्भः पृथिव्या धरुणः— सबका उत्पादक, उत्तम दक्ष, द्युलोकका धारण करनेवाला तथा पृथिवीका आधार यह सोम है ।

[७८९] (कविः) अतीन्द्रिय स्थितिको देखनेवाला (विप्रः) ज्ञानी (जनानां पुर एता) जनोंके अग्रभागमें रहकर आगे जानेवाला (ऋभुः) तेजस्वी (धीरः) धैर्यवान् (उशना) वशमें रखनेवाला (काव्येन विवेद) कवित्वसे ज्ञान प्राप्त करता है । (यत्) जो (आसां गोनां) इन भाषणोंका (अपीच्यं) गुप्त (गुह्यं नाम) रीतिसे रखा हुआ स्थान जानता है ॥ ३ ॥

यह सोम (कविः) अतीन्द्रिय स्थितिको स्पष्ट रीतिसे देखता है, (विप्रः) विशेष जाननेवाला है, (जनानां पुर एतां) सब लोगोंके अग्रभागमें रहकर आगे बढनेवाला है, (ऋभुः) तेजस्वी है, (धीरः) धैर्यवान् है सब प्रसंगोंमें धैर्य धारण करके जनोंको आगे बढाता है । (उशना) सबको वशमें करनेवाला है (काव्येन विवेद) कवित्व शक्तिसे सब जानता है । (यत्) जो (आसां गोनां) इन भाषणोंमें (अपीच्यं गुह्यं नाम) अदृश्य गुप्त कारण है । यह सब यह सोम जानता है ।

सोमरस पीनेसे वीरमें ये शुभ गुण बढते हैं और वह वीर अधिक कार्य उत्तम रीतिसे करनेमें समर्थ हो जाता है ।

[७९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तेरे लिये (एषः स्यः सोमः) यह सोम (मधुमान्) मीठा (वृषा) बलवर्धक (पवित्रे परि अक्षाः) छाननीमेंसे छाना जाता है । (सहस्रसाः) यह सोम सहस्रों प्रकारके लाभ देनेवाला तथा (शतसाः) सैंकडों लाभ देनेवाला तथा (भूरिदावा) बहुत लाभ देनेवाला (वाजी) बलवान् (शश्वत्तमं) शाश्वत (बर्हिः) यज्ञमें (आ अस्थात्) आकर रहता है ॥ ४ ॥

७९१ एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि ।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥ ५ ॥
७९२ परि हि ष्मा पुरुहूतो जनानां विश्वासरद्भोजना पूयमानः ।
अथा भर श्येनभृत प्रयांसि रयिं तुञ्जानो अभि वाजमर्ष ॥ ६ ॥
७९३ एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा ।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥ ७ ॥

अर्थ— १ हे इन्द्र ! वृष्णे ते एषः स्यः सोमः मधुमान् वृषा पवित्रे परि अक्षाः— हे इन्द्र ! बलशाली ऐसे तेरे लिये पीनेको देनेके लिये यह मीठा तथा उत्साह बढानेवाला सोम छाननीमें छाता जाता है ।

२ शतसाः सहस्रसाः भूरिदावा वाजी शश्वत्तमं बर्हिः आ अस्थात्— सेंकडो, सहस्रों तथा अधिक लाभ पहुंचानेवाला यह बल बढानेवाला सोम अनादि कालसे यज्ञमें आता रहा है । अनादि कालसे सोमका यज्ञ किया जाता है ।

[७९१] (एते सोमाः) ये सोमरस (गव्या सहस्रा श्रवांसि) गोदुग्धसे बने सहस्रों प्रकारके अन्न देनेके लिये (पवित्रेभिः पवमानाः) छाननीसे छाना जानेवाले (अमृताय) अमृत जैसे (महे वाजाय) बडे अन्नके लिये (अभि असृग्रन्) उत्पन्न हो रहे हैं । जैसे (श्रवस्यवः) अन्नकी इच्छा करनेवाले (पृतनाजः) शत्रुकी सेनाको जीतनेवाले (अत्याः न) घोडे जैसे हैं ॥ ५ ॥

१ एते सोमाः गव्या सहस्रा श्रवांसि पवित्रेभिः पवमानाः अमृताय महे वाजाय अभि असृग्रन्– ये सोम गोदुग्धसे बने सहस्रों प्रकारके अन्न देनेके लिये छाननीसे छाने जाकर अमृत जैसे बडे अन्नके लिये अपना रस दे रहे हैं ।

२ श्रवस्यवः पृतनाजः अत्याः न— अन्नकी इच्छा करनेवाले शत्रुकी सेनाको जीतनेवाले घोडे जैसे आगे बढते हैं, वैसे ये सोमरस छाननीसे आगे आ रहे हैं ।

[७९२] (पुरुहूतः) बहुतों द्वारा स्तुति किया हुआ (पूयमानः) शुद्ध किया जानेवाला (जनानां विश्वा भोजनानि) मनुष्योंके सब प्रकारके भोजनोंके लिये (परि असरत्) यह सोम यज्ञस्थानमें आता है । (श्येनभृत) श्येन पक्षीने लाये गये हे सोम ! (अथ प्रयांसि) अब अन्नोंको (आ भर) भरपूर भर दो । (रयिं तुंजानः) धन देता हुआ (वाजं अभि अर्ष) अन्न सब प्रकारसे देओ ॥ ६ ॥

१ पुरुहूतः पूयमानः जनानां विश्वा भोजनानि परि असरत्— बहुत ज्ञानियोंके द्वारा प्रशंसित, शुद्ध होनेवाला, लोगोंके सब प्रकारके भोजनोंमें यह सोमरस आता है ।

२ श्येनभृत ! अथ प्रयांसि आ भर – हे श्येन पक्षीसे लाये गये सोम ! सब प्रकारके अन्न भरपूर देओ ।

३ रयिं तुंजानः वाजं अभि अर्ष— धन देकर साथ अन्नभी देओ ।

[७९३] (एषः सुवानः) यह रस निकालते समय (सोमः) सोमरस (अर्वा) गमन करनेमें कुशल (सर्गो न सृष्टः) बंधनसे छोडा हुआ (अदधावत्) घोडा जैसा दौडता है वैसा (पवित्रे) छाननीमेंसे (परि) दौडता है । (तिग्मे शृंगे शिशानः) तीक्ष्ण शृंगोंको अधिक तीक्ष्ण करता है जैसा (महिषः) महिष (गा गव्यन्) गौवोंकी इच्छा करता हुआ (शूरः न) शूरवीरके समान (सत्वा) अपने स्थानको जैसा जाता है । वैसा यह सोम यज्ञस्थानमें जाता है ॥ ७ ॥

७९४ एषा य॑यौ पर॒माद॒न्तरद्रेः कूचि॑त् स॒तीरू॒र्वे गा वि॑वेद ।
दि॒वो न वि॒द्युत् स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रैः सोम॑स्य ते पवत इन्द्र॒ धारा॑ ॥ ८ ॥
७९५ उ॒त स्म॑ रा॒शिं परि॑ यासि॒ गोना॒मिन्द्रे॑ण सोम स॒रथं॑ पुना॒नः ।
पू॒र्वीरिषो॑ बृह॒तीर्जी॑रदानो॒ शिक्षा॑ शचीव॒स्तव॒ ता उ॑पष्टु॒त् ॥ ९ ॥

अर्थ— १ एषः सुवानः सोमः, अर्वा सर्गो न सृष्टः अदधावत्, तथा पवित्रे परि अदधावत्— यह रस निकालनेके समय सोम, घोडा जैसा बंधनसे छूटने पर दौडता है, वैसा छाननीमेंसे गुजरता है।

२ तिग्मे शृंगे शिशानः महिषः सत्वा— तीक्ष्ण सींगोंको अधिक तीक्ष्ण करनेवाला भैसा जैसा अपने बलसे जाता है वैसा यह सोमरस छाननीमेंसे जाता है।

[७९४] (एषा) यह सोमरसकी धारा (परमात्) ऊंचे स्थानसे (ययौ) चलती है। यह (अद्रेः अन्तः) पर्वतके ऊपरसे तथा (कूचित्) कहांसे (परमात् ऊर्वे) दूसरे प्रकारके देशसे (सतीः) होती हुई (गाः विवेद) गौवोंको प्राप्त करती है। (दिवः न विद्युत्) द्युलोकसे जैसी विद्युत् (स्तनयन्ती) शब्द करती हुई (अभ्रैः) मेघोंसे प्रेरित होकर जाती है वैसो हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे लिये (सोमस्य धारा) सोमरसकी धाराएं (पवते) चलती हैं ॥ ८ ॥

१ एषा परमात् ययौ — यह सोमरसकी धारा ऊंचे स्थानसे चलती है।

२ अद्रेः अन्तः— पर्वतके ऊपरसे सोमकी धारा चलती है।

३ कूचित् परमात् ऊर्वे सतीः गाः विवेद— कहासे दूसरे उच्च स्थानसे जाती है और गौवें प्राप्त करती है। गौके दूधसे सोमरसको धारा मिलती है। सोमरसमें गोदुग्ध मिलाया जाता है।

४ दिवः विद्युत् न स्तनयन्ती अभ्रैः – द्युलोकसे बिजली जैसी शब्द करती हुई अभ्रोंके साथ चलती है।

५ हे इन्द्र ! ते सोमस्य धारा पवते— हे इन्द्र ! तेरे लिये सोमरसकी धारा शुद्ध होती है।

[७९५] हे (सोम) सोम ! (उत स्म) और (पुनानः) छाना जाता हुआ तू (गोनां राशिं परि यासि) गौवोंके समूहके पास जाता है। (इन्द्रेण सरथं) इन्द्रके साथ एक रथमें बैठा हुआ तू (जीर दानो) त्वरित दान देनेकी इच्छा करनेवाला (उपष्टुत्) स्तुति जिसकी चल रही है ऐसा (पूर्वीः बृहतीः इषः) बहुत अधिक अन्न (शिक्ष) हमें देओ। हे (शचीवः) अन्नवान् सोम ! (ताः तव) वे अन्न तुम्हारे ही हैं ॥ ९ ॥

१ हे सोम ! उत स्म पुनानः गोनां राशिं परि यासि— हे सोम ! तू छाना जाकर गौवोंके समूहको प्राप्त होता है। सोमरस गौवोंके दूधमें मिलाया जाता है।

२ इन्द्रेण सरथं जीर दानो उपष्टुत्— इन्द्रके रथमें बैठनेवाले सोमकी दान देनेके कारण अच्छी प्रकार स्तुति की जाती है।

३ पूर्वीः बृहतीः इषः शिक्ष— प्रथम बडे अन्न हमें दे।

४ शचीवः ता तव— हे अन्नवाले सोम ! वे सब अन्न तुम्हारे ही हैं। सब अन्न सोमके साथ रहते हैं।

[८८]

(ऋषिः- उशना काव्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

७९६ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥ १ ॥
७९७ स ईं रथो न भुरिषाळयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त ॥ २ ॥
७९८ वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा नासत्येव हव आ शंभविष्ठः ।
विश्ववारो द्रविणोदा इव त्मन् पूषेव धीजवनोऽसि सोम ॥ ३ ॥

[८८]

अर्थ— [७९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं सोमः) यह सोम (तुभ्यं सुन्वे) तेरे लिये रस निकाल कर देता है । (तुभ्यं पवते) तेरे लिये छाना जा रहा है । (अस्य त्वं पाहि) इसको तू पी । (त्वं ह) तू ही (यं चकृषे) जिसको करता है । (त्वं ववृषे) तू ही इसका स्वीकार करता है । (इन्दुं) इस सोमको (मदाय) आनंदके लिये (युज्याय) सहाय्यके लिये (सोमं) सोमरसको प्राप्त कर ॥ १ ॥

१ इन्द्र ! अयं सोमः तुभ्यं सुन्वे— हे इन्द्र ! यह सोमरस तेरे लिये तैयार किया है ।
२ तुभ्यं पवते— तेरे लिये यह रस शुद्ध करते हैं ।
३ अस्य त्वं पाहि— इसको तू पी ।
४ यं त्वं ह चकृषे— जिसको तू करता है, उत्पन्न करता है ।
५ त्वं ववृषे— तू इसका स्वीकार करता है ।
६ इन्दुं मदाय युज्याय सोमं पाहि— सोमरसको आनंद प्राप्त करनेके लिये, योग्य सहाय्य प्राप्त करनेके लिये इस सोमरसको पी ।

[७९७] (सः ईं) वह यह सोम (भूरिषाट् रथः न) बहुत भार ले जानेवाले रथके समान (अयोजि) बहुत भार ले जानेकी योजना करता है अर्थात् (महः पुरूणि वसूनि सातये) बडे विपुल धन देनेके लिये तैयारी करता है । (आत् ईं) उसके बाद (विश्वा नहुष्याणि) सब मानवोंके संबंधमें (जाता) उत्पन्न हुए हमारे विरोध (ऊर्ध्वा वने स्वर्षाता) करनेको प्राप्त हुए संग्रामोंमें (नवन्त) प्राप्त करते हैं ।

१ सः ईं भूरिषाट् रथः न अयोजि— वह सोम बहुत भार ले जानेवाले रथके समान बहुत भार ले जानेका कार्य करता है ।
२ महः पुरूणि वसूनि सातये— बडे विशाल धन देनेकी तैयारी वह सोम करता है । बहुत धन देता है ।
३ आत् ईं विश्वा नहुष्याणि जाता ऊर्ध्वा वने स्वर्षाता नवन्त— इसके पश्चात् सब मानव समाजके संबंधमें उत्पन्न हुए बडे संग्रामोंमें सहायता करता है । अनुयायियोंका संरक्षण करता है ।

[७९८] (यः) जो सोम ! (नियुत्वान्) घोडोंवाले (वायुः न) वायुके समान (इष्ट यामा) इष्ट स्थानमें जानेवाला है । (नासत्या इव) अश्विनौके समान (हवे) निमंत्रण (आ शंभविष्ठः) सुखकारक मानता है । (द्रविणोदाः इव) धनके दाताके समान (त्मन्) अपनेको (विश्ववारा) विश्वने स्वीकार करने योग्य मानता है । हे (सोम) सोम ! (पूषा इव) पोषक देवके समान (धीजवनः असि) तू मनके वेगसे यज्ञमें जानेवाले हो ॥ ३ ॥

७९९ इन्द्रो न यो महा कर्माणि चक्रि- र्हन्ता वृत्राणामसि सोम पूर्भित् ।
पैद्वो न हि त्वमहिनाम्नां हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः ॥ ४ ॥
८०० अग्निर्न यो वन आ सृज्यमानो वृथा पाजांसि कृणुते नदीषु ।
जनो न युध्वा महत उपब्दि- रियर्ति सोमः पवमान ऊर्मिम् ॥ ५ ॥

अर्थ— १ यः सोमः, नियुत्वान् वायुः न, इष्टयामा— यह सोम घोडोंको वाहन करनेवाले वायुके समान इष्ट स्थानमें अपनी इच्छानुसार जाता है । यज्ञमें सोम जाकर वहां रहता है ।

२ नासत्या इव हवे आशंभविष्ट— अश्विनौके समान बुलाया जानेपर बुलानेवालेके पास आनंदसे जाता है ।

३ द्रविणोदाः इव त्मन् विश्ववारा— धन देनेवालेके समान अपने आपको सबके स्वीकार करने योग्य मानता है ।

४ पूषा इव धीजवनः असि— पूषा देवके समान मनोवेगसे इष्ट स्थानमें गमन करता है ।

[७९९] (इन्द्रः न) इन्द्रके समान (यः) जो तू (महा कर्माणि चक्रिः) बडे कर्म करता है, वह तू हे (सोम) सोम ! (वृत्राणां हन्ता असि) हमें घेरनेवाले शत्रुओंका वध करनेवाला तू है । तू (पूः भित्) शत्रुके नागरिक किले तोडनेवाला है । (पैद्वः न) घोडेके समान (त्वं) तू (अहिनाम्नां हन्ता) अहि नामक शत्रुओंका विनाश करनेवाला हो । हे (सोम) सोम ! (विश्वस्य दस्योः हन्ता असि) सब शत्रुओंका विनाश करनेवाला तू है ॥ ४ ॥

१ इन्द्रः न यः महा कर्माणि चक्रिः— इन्द्रके समान जो सोम बडे कर्मोंको करता है ।

२ हे सोम ! वृत्राणां हन्ता असि— हे सोम ! तू घेरकर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंको मारनेवाला है । वृत्र— घेरकर आक्रमण करनेवाला शत्रु । घेरनेवाले शत्रुको शीघ्र मारना योग्य है ।

३ पूर्भित्— " पूः, पुर " ये नगरवाचक पद हैं । नगरोंके चारों ओर किला अर्थात् पत्थरोंकी मजबूत दिवारके रूपमें होता है । शत्रुके ऐसे नागरिक किले तोडकर शत्रुको विनष्ट किया जाता था ।

४ अहिनाम्नां हन्ता— अहि नामके शत्रुओंका विनाशक तू है ।

५ विश्वस्य दस्योः हन्ता असि— सब शत्रुओंको मारनेवाला तू है ।

[८००] (अग्निः न) अग्निके समान (यः) जो सोम (वने सृज्यमानः) वनमें उत्पन्न होता हुआ (वृथा) सहज रीतिसे (नदीषु) नदीके जलोंमें (पाजांसि कृणुते) सामर्थ्यके कार्य करता है । (युध्वा जनः न) युद्ध करनेवाला वीर जैसा (महतः उपब्दिः) बडे शत्रुजनको पुकार करनेका अवसर देता है वैसा यह (पवमानः सोमः) छाना जानेवाला सोम (ऊर्मिं इयर्ति) रसकी लहरोंको प्रेरित करता है ॥ ५ ॥

१ अग्निः न यः वने सृज्यमानः वृथा नदीषु पाजांसि कृणुते— अग्निके समान यह सोम वनमें उत्पन्न होकर नदीके जलमें शब्द करता हुआ सामर्थ्य प्रकाशित करता है । नदीके जलमें मिलकर यज्ञमें जाता है ।

२ युध्वा जनः न महतः उपब्दिः पवमानः सोमः ऊर्मिं इयर्ति— युद्ध करनेवाला वीर पुरुष जैसा बडे शत्रुको बडे शब्द करनेका अवसर देता है, वैसा यह पवमान सोम अपनी रसकी लहरे शब्द करता हुआ बाहर प्रेरित करता है ।

×

८०१ एते सोमा अति वाराण्यव्या दिव्या न कोशासो अभ्रवर्षाः ।
वृथा समुद्रं सिन्धवो न नीचीः सुतासो अभि कलशाँ असृग्रन् ॥ ६ ॥
८०२ शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वाऽनभिशस्ता दिव्या यथा विट् ।
आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः सहस्राप्साः पृतनाषाण्न यज्ञः ॥ ७ ॥
८०३ राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ८ ॥

अर्थ— [८०१] (एते सोमाः) ये सोमरस (अव्या वाराणि अति) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाने जाते हैं । (दिव्या न कोशासः) द्युलोकके कोशोंके समान (अभ्रवर्षाः) मेघोंसे नीचे वृष्टि करते हैं । (वृथा) सहज रीतिसे (समुद्रं) समुद्रके पास (सिन्धवः न) नदियोंके समान (नीचीः) नीचे जानेवाले (सुतासः) सोमसे निकाले रस (कलशान् अभि असृग्रन्) कलशोंमें जाते हैं ॥ ६ ॥

१ एते सोमाः अव्या वाराणि अति— ये सोमरस भेंडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाने जाते हैं ।
२ दिव्याः कोशासः न अभ्रवर्षाः— अभ्रोंसे वृष्टि करनेवाले द्युलोकमें रहे जलके कोशोंके समान ये सोम नीचेके पात्रोंमें रस देते रहते हैं ।
३ समुद्रं सिन्धवः वृथा न— समुद्रके पास जैसी सहज नदियां जाती हैं और समुद्रमें मिलती हैं, उस प्रकार ये सोमरस जलमें मिलते हैं ।
४ सुतासः कलशान् अभि असृग्रन्— सोमरस कलशोंमें जाकर रहते हैं ।

[८०२] हे सोम ! (शुष्मी) बलवान तू (मारुतं शर्धः न) मरुतोंके बल बलके समान (पवस्व) रस दे । (यथा दिव्या विट्) जैसा दिव्य प्रजा (अनभिशस्ता) निंदनीय नहीं होती । (आपः न) जलोंके समान (मक्षू) शीघ्र (सुमतिः भव) उत्तम बुद्धिमान हो जावो । (सहस्राप्साः) अनेक रूपोंवाला तू (पृतनाषाट्) युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाले इन्द्रके समान (यज्ञः न) यज्ञके योग्य हो ॥ ७ ॥

१ हे सोम ! शुष्मी मारुतं शर्धः न पवस्व - हे सोम ! बलवान हुआ तू मरुतोंके बलके समान बल बढानेवाला रस दे ।
२ यथा दिव्या विट अनभिशस्ता— जैसी दिव्य प्रजा निंदनीय नहीं होती, वैसे तुम, हे सोम ! निंदनीय नहीं हो ।
३ आप न मक्षू सुमतिः भव— जलोंके समान तू शीघ्र उत्तम शांति अथवा सुमति देनेवाला हो ।
४ सहस्राप्सा पृतनाषाट् यज्ञ न— सहस्रों प्रकारके रूपोंवाला तू युद्धोंमें विजय प्राप्त करनेवाला, यज्ञके समान पूज्य हो । सहस्राप्सा- हजारों रूप धारण करनेवाला, पृतनाषाट्- युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला, यज्ञः न-यज्ञके समान पूज्य हो ।

[८०३] हे (सोम) सोम ! (ते वरुणस्य राज्ञः) तुझ श्रेष्ठ राजाके (व्रतानि) व्रत है उनको हम करते हैं । (तव धाम) तेरा स्थान (बृहत् गभीरं) बडा गभीर है । (प्रियः मित्रः न) प्रिय मित्रके समान (त्वं शुचिः असि) तू शुद्ध है । (अर्य एव) श्रेष्ठका तू (दक्षाय्यः) दक्ष रहता है ॥ ८ ॥

१ ते वरुणस्य राज्ञः व्रतानि— तुझ श्रेष्ठ राजाके व्रतोंका हम उत्तम रीतिसे पालन करते हैं ।
२ तव धाम बृहत् गभीरं— तेरा स्थान बडा विशाल और गंभीर है ।
३ प्रियः मित्रः न त्वं शुचिः असि— प्रिय मित्रके समान तू अत्यंत पवित्र है ।
४ अर्य एव दक्षाय्यः असि— श्रेष्ठका संरक्षण करनेमें सदा दक्ष रहता है ।

[८९]

(ऋषिः- उशना काव्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८०४ प्रो स्य वह्निः पथ्याभिरस्यान् दिवो न वृष्टिः पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारो असदन्न्यस्मे मातुरुपस्थे वन आ च सोमः ॥ १ ॥

८०५ राजा सिन्धूनामवसिष्ट वास ऋतस्य नावमारुहद्रजिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सो वावृधे श्येनजूतो दुह ईं पिता दुह ईं पितुर्जाम् ॥ २ ॥

८०६ सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ३ ॥

अर्थ – [८०४] (प्रो अस्थान्) उस सोमका रस निकाला जाता है (स्यः) वह (पथ्याभिः) मार्गोंसे (वह्निः) चलानेवाला है । (दिवः वृष्टिः न) द्युलोकसे वृष्टी होनेके समान (पवमानः अक्षाः) रस निकालता हुआ सोम यज्ञ पात्रोंमें व्यापता है । (सः) वह (सोमः) सोमरस (सहस्रधारः) अनेक धाराओंसे (अस्मे) हमारे पास (नि आसदत्) रहे ॥ १ ॥

१ प्रो अस्थान् – उस सोमका रस निकाला जा रहा है ।

२ सः पथ्याभिः वह्निः— वह सोम योग्य मार्गसे सबको चलाता है ।

३ दिवः वृष्टिं न— द्युलोकसे वृष्टि होती है वैसा यह रस सोमसे निकलता है ।

४ सः सोमः सहस्रधाराः अस्मे नि असदत्— वह सोम सहस्रों धाराओंसे हमें अपना रस देवे । उस रसके सेवन करनेसे हम रोग रहित हो जांय ।

[८०५] यह (सिन्धूनां राजा) जलोंका राजा सोम (वासः) अपना निवास स्थान गौका दूध करके (अवसिष्ट) उसमें रहता है तथा (रजिष्ठां) यज्ञकी (ऋतस्य नावं आरुहत्) सत्य नौका पर आरोहण करता है । (श्येनजूतः) श्येन पक्षीने लाया (द्रप्सः) सोमरस (अप्सु वावृधे) जलोंमें मिश्रित होकर बढता है । (ईं पिता दुहे) इसका पालन कर्ता इसका रस निकाले । (पितुः जां) द्युलोकसे उत्पन्न हुआ सोमका रस यज्ञकर्ता निकाले ॥ २ ॥

१ सिन्धूनां राजा वासः रजिष्ठां ऋतस्य नावं आरुहत्— जलोंमें मिश्रित होनेवाला तेजस्वी सोम यज्ञकी नौकापर आरोहण करता है । यज्ञस्थानमें रहता है और यज्ञ करता है । सोमरसमें नदियोंका जल मिलाया जाता है ।

२ श्येनजूतः द्रप्सः अप्सु वावृधे— श्येन पक्षीने लाया यह सोम जलोंमें मिश्रित होनेसे बढता है ।

३ ईं पिता दुहे— इस यज्ञका कर्ता इस सोमसे रस निकाले ।

४ पितुः जां दुहे— द्युलोकरूपी पिता है, इसका पुत्र सोम है, यज्ञकर्ता यज्ञमें इस सोमका रस निकाले ।

[८०६] (सिंहं) शत्रुका नाश करनेवाले (मध्वं अयासं) मधुर उदकको प्रेरणा करनेवाले (हरिं) हरे रंगके (अरुषं) प्रकाश देनेवाले (अस्य दिवः पतिं) इस द्युलोकके पालक सोमरसका (नसन्त) रस निकालते हैं । (युत्सु शूरः) युद्धोंमें शूर है (प्रथमः) प्रथमसे ही (गाः पृच्छते) गौवोंके विषयमें पूछता है । (अस्य चक्षसा) इस सोमके सामर्थ्यसे (उक्षा) इन्द्र देव (परि पाति) सबका संरक्षण करता है ॥ ३ ॥

८०७ मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं रथे युञ्जन्त्युरुचक्र ऋष्वम् ।
स्वसार ईं जामयो मर्जयन्ति सनाभयो वाजिनमूर्जयन्ति ॥ ४ ॥
८०८ चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः ।
ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ५ ॥

अर्थ— १ सिंहं मध्वः अयासं हरिं अरुणं अस्य दिवः पतिं नसन्त— शत्रुका नाश करनेवाले, मधुर रसके साथ जलसे मिश्रित होनेवाले, हरे रंगके तेजस्वी द्युलोकके स्वामी सोमका यज्ञकर्ता रस निकालते हैं।

२ युत्सु शूरः— यह सोमरस युद्धमें शूरोंकी शूरता बढाता है।

३ प्रथमः गाः पृच्छते— सबसे प्रथम यह गौओंके विषयमें पूछता है। यह सोम गौके दूधके साथ मिश्रित होना चाहता है।

४ अस्य चक्षसा उक्षा परिपाति— इसके सामर्थ्य इन्द्र सबका संरक्षण करता है। इन्द्रके अन्दरकी संरक्षण करनेकी शक्ति सोमरस पीनेसे बढती है।

[८०७] (मधुपृष्ठं) मधुर पृष्ठभागवाले (घोरं) भयानक (अयासं) रीतिसे जानेवाले (ऋष्वं) दर्शनीय ऐसे सोमको (उरुचक्रे) विशेष चक्रवाले (रथे) रथमें (युञ्जन्ति) युक्त करते हैं। यज्ञमें उपयुक्त करते हैं। (ईं) इस सोमको (स्वसारः) अंगुलियां (मर्जयन्ति) शुद्ध करती हैं। (सनाभयः) समान बंधनमें रहे (वाजिनं) बलशाली सोमको (ऊर्जयन्ति) बलवान करते हैं ॥ ४ ॥

१ मधुपृष्ठं घोरं अयासं ऋष्वं उरुचक्रे रथे युञ्जन्ति— मधुर पृष्ठ भागवाले घोर भयानक रीतिसे चलनेवाले दर्शनीय सोमको यज्ञके चक्रमें ऋत्विज लोग लगाते हैं। वहां वह सोम ऋत्विजोंके द्वार यज्ञ कराता है और सबका कल्याण करता है।

२ ईं स्वसारः मर्जयन्ति— इस सोमको अंगुलियां पकडती हैं और उससे रस निकालती हैं। वह सोमरस छाना जाता है।

३ सनाभयः वाजिनं ऊर्जयन्ति— समान बंधनमें रहे ऋत्विज इस बल बढानेवाले सोमको अधिक बलवान करते हैं और इसका यज्ञ करते हैं।

[८०८] (चतस्रः घृतदुहः) चार घी देनेवाली गौवें (ईं सचन्ते) इस सोमकी सेवा करती हैं जो (समाने धरुणे अन्तः) समान आश्रय स्थानमें रहती हैं। (ताः ईं अर्षन्ति) वे गौवें इस सोमको प्राप्त करती हैं। और (नमसा पुनानाः) अन्नके साधनसे पवित्र करती हैं, (ताः पूर्वीः) वे बहुत गौवें (विश्वतः परि यन्ति) चारों ओरसे इसको घेरती हैं ॥ ५ ॥

१ चतस्रः घृतदुहः ईं सचन्ते— चार घी देनेवाली गौवें अपने दूध घी आदिसे इस सोमकी सेवा करती हैं। इनका दूध आदि इस सोमरसमें मिलाया जाता है।

२ समाने धरुणे अन्तः ताः ईं अर्षन्ति— समान आधारके अन्दर वे गौवें इस सोमरसको प्राप्त करती हैं और अपना दूध सोमरसमें मिलाती हैं।

३ नमसा पुनानाः ताः पूर्वीः विश्वतः परियन्ति— वे गौवें अपने दूध आदि अन्नसे सबको पवित्र करती हैं और इस सोमरसमें पहिलेसे चारों ओरसे अपना दूध मिलाती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जानेपर ही वह पिया जाता है।

८०९ विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्या विश्वा उत क्षितयो हस्ते अस्य ।
असत् त उत्सो गृणते नियुत्वान् मध्वो अंशुः पवत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
८१० वन्वन्नवातो अभि देववीतिमिन्द्राय सोम वृत्रहा पवस्व ।
शग्धि महः पुरुश्चन्द्रस्य रायः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ७ ॥

[९०]

(ऋषिः- वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८११ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिष्यन्नयासीत् ।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः ॥ १ ॥

अर्थ- [८०९] यह सोम (दिवः विष्टम्भः) द्युलोकका आधार है तथा (पृथिव्याः धरुणः) पृथिवीका आधार है तथा (उत विश्वाः क्षितयः) सब प्रजाएं (अस्य हस्ते) इस सोमके हाथमें रहीं है। (उत्सः) उत्साह वर्धक इस सोम (गृणते) की स्तुति की जाती है। यह सोम! (ते) तेरा स्थान (नियुत्वान्) घोडोंसे युक्त (असत्) होता है। (मध्वः अंशुः) यह मधुर सोमरस (इन्द्रियाय पवते) इन्द्रको अर्पण करनेके लिये इस सोमका रस निकालते हैं ॥ ६ ॥

१ अंशुः दिवः विष्टम्भः पृथिव्या धरुणः— यह सोम द्युलोकका आधार और पृथिवीका आश्रय है।
२ उत विश्वाः क्षितयः अस्य हस्ते— और सब प्रजाएं इसके हाथके आश्रयसे रहती हैं।
३ उत्सः गृणते— उत्साह वर्धक इस सोमकी स्तुति होती है।
४ नियुत्वान् असत् — यह सोम घोडोंके साथ रहता है। इसके साथ घोडे रहते हैं।
५ अंशुः इन्द्रियाय पवते— यह सोम इन्द्रको पीनेके लिये रस निकाल देता है।

[८१०] (वन्वन् अवातः) हे सोम ! शत्रुओंके द्वारा पराभूत न हुआ तू (देववीतिं अभि) यज्ञके पास जा। हे (सोम) सोम ! (वृत्रहा इन्द्राय) वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रके लिये (पवस्व) तू रस दे। (पुरुश्चन्द्रस्य महः रायः) तेजस्वी धन बहुत (शग्धि) दे दो। हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम पराक्रमके हम स्वामी बने ॥ ७ ॥

१ वन्वन् अवातः— शत्रुओंको दूर करके हम विजयी बने।
२ देववीतिं अभि— यज्ञमें हम जायें। जहां यज्ञ हो रहा हो वहां अवश्य जाना चाहिये।
३ हे सोम ! वृत्रहा इन्द्राय पवस्व— हे सोम ! वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रके लिये तू अपना रस निकालकर दे।
४ पुरुश्चन्द्रस्य महः रायः शग्धि— तेजस्वी धन हमें बहुत दो।
५ सुवीर्यस्य पतयः स्याम— हम उत्तम पराक्रम करनेवाले हो जांय। उत्तम पराक्रम करनेसे ही धन प्राप्त होता है।

[९०]

[८११] (हिन्वानः) प्रेरणा देनेवाला (रोदस्योः जनिता) द्युलोक और पृथिवीका उत्पन्न करनेवाला सोम (वाजं सनिष्यन्) अन्न देता है (प्र आयासीत्) और आगे चलता है। (इन्द्रं गच्छन्) इन्द्रके पास जाता है (आयुधा संशिशानः) शस्त्रोंको तीक्ष्ण करता है और हमें देनेके लिये (विश्वा वसु) सब धन (हस्तयोः आदधानः) हाथोंमें धारण करता है ॥ १ ॥

८१२ अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधा—माङ्गूषाणामवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धून् वि रत्नधा दयते वार्याणि ॥ २ ॥

८१३ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावा—ञ्जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्व—षाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥ ३ ॥

अर्थ— १ हिन्वानः— उत्तम कार्य करनेकी प्रेरणा यह सोम देता है।
२ रोदस्योः जनिता— द्यावापृथिवीसे उत्साह उत्पन्न करता है।
३ वाजं सनिष्यन्— अन्न देता है और अन्नसे सबका पोषण करता है।
४ प्र अयासीत्— प्रगति करता है, प्रगतिका मार्ग दिखाता है।
५ इन्द्रं गच्छन्— इन्द्रके पास जाकर रहता है।
६ आयुधा संशिशानः— शस्त्रास्त्रोंको तीक्ष्ण करता है।
७ विश्वा वसु हस्तयोः आदधानः— सब धन दान करनेके हेतुसे अपने हाथोंमें धारण करता है।

[८१२] (त्रिपृष्ठं) तीन स्थानोंमें रहनेवाले (वृषणं) वर्षा करनेवाले (वयोधां) अन्नका दान करनेवाले (आंगूषाणां) स्तोताओंकी सोमकी (वाणीः) स्तुतियां (अभि वावशन्त) चल रही हैं। (वना वसानः) जलमें रहनेवाला (वरुणः न) वरुणके समान (सिन्धून्) नदी जलोंके साथ मिश्रित होकर रहता है। (रत्नधाः) रत्नोंका धारण करनेवाला यह सोम (वार्याणि दयते) धनोंको देता है ॥ २ ॥

१ त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधां आंगूषाणां वाणीः अभि वावशन्त— तीन स्थानमें रहनेवाले, बल बढानेवाले, अन्न देनेवाले सोमकी स्तुतियां याजक लोग कर रहे हैं।
२ वनाः वसानः वरुणः न सिन्धून्— जलमें मिश्रित होनेवाला सोमरस, वरुणके समान नदियोंके जलमें मिश्रित होता है।
३ रत्नधा वार्याणि दयते— रत्नोंका धारण करनेवाला सोमरस इष्ट धनोंको देता है।

[८१३] (शूरग्रामः) शूरोंका समूह (सर्ववीरः) सब वीरोंसे युक्त महाशूर (सहावान्) कष्टोंको सहन करनेवाला (जेता) विजय प्राप्त करनेवाला (धनानि सनिता) धनोंको पास रखनेवाला (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधोंवाला (क्षिप्रधन्वा) धनुष्यबाण शीघ्र चलानेवाला (समत्सु असाळ्हः) संग्रामोंमें शत्रुको जीतनेवाला (पृतनासु शत्रून् साह्वान) युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला यह सोम है ॥ ३ ॥

१ शूरग्रामः— जिसके साथ शूरवीर पुरुषोंका बडा समाज सदा रहता है।
२ सर्ववीरः— सब प्रकारकी वीरता जिसमें है।
३ सहावान्— कष्टोंको सहन करनेवाला है।
४ जेता— युद्धमें विजय प्राप्त करता है।
५ धनानि सनिता— धनोंका दान करता है, सहायकोंको धन देता है।
६ तिग्मायुधः— जिसके आयुध तीक्ष्ण होते हैं।
७ क्षिप्रधन्वा— धनुष्य शीघ्रताके साथ चलाता है।
८ समत्सु असाळ्हः— युद्धोंमें शत्रुके लिये असह्य होता है।
९ पृतनासु शत्रून् आह्वान्— युद्धोंमें शत्रुका हमला सहन करनेमें समर्थ।

ये गुण वीर पुरुषोंमें होने चाहिये। इन शुभ गुणोंसे ही मनुष्यका युद्धमें विजयी हो सकता है।

८१४ उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन् त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ४ ॥
८१५ मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥ ५ ॥
८१६ एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [८१४] हे सोम ! (उरुगव्यूतिः) विस्तीर्ण मार्गसे जानेवाला (अभयानि कृण्वन्) निर्भयता करनेवाला तू (पुरंधी समीचीने) द्यावापृथिवीको परस्पर सहायक करके (आ पवस्व) तू अपना रस दे। (अपः) जलप्रवाह (उषसः) उषाएं (स्वः) सूर्य तथा (गाः) सूर्य किरणोंको (सिषासन्) अपने पोषण करनेके लिये रखता हुआ (सं चिक्रदः) शब्द करता है। (अस्मभ्यं) हमारे लिये (महः वाजान्) बडा अन्न देनेकी इच्छा करता है ॥ ४ ॥

१ उरुगव्यूतिः अभयानि कृण्वन्— विस्तीर्ण मार्गसे जानेवाला तू सर्वत्र निर्भयता उत्पन्न करता है।
२ पुरंधी समीचीने— द्यु और पृथिवीमें परस्पर एकता करता है।
३ अपः उषसः स्वः गाः सिषासन्— जलप्रवाह, उषा, द्यु, किरण या गौवें इनको सुव्यवस्थित रीतिसे रखता है।
४ अस्मभ्यं महः वाजान्—हमें बहुत अन्न दे।
५ अभयानि कृण्वन्— सर्वत्र निर्भयता करो।

[८१५] हे (पवमान) सोम ! (वरुणं मत्सि) वरुणको आनंदित करता है। (मित्रं मत्सि) मित्रको प्रसन्न करता है। (इन्द्रं मत्सि) इन्द्रको प्रसन्न करता है। हे (इन्दो) सोम ! (पवमान) सोमरस ! (विष्णुं) विष्णुको आनंदित करता है। (मारुतं शर्धः मत्सि) मरुतोंके समुदायको प्रसन्न करता है। हे (इन्दो) सोम ! तू (देवान् मत्सि) देवोंको आनंदित करता है। (महां इन्द्रं मदाय) बडे इन्द्रको तू आनंद देता है ॥ ५ ॥

हे सोम ! तू वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, मरुद्‌गण, सब देव इन सबको आनंदित करता है। सोमरस पीनेसे सब देव आनंदित होते हैं।

१ हे इन्दो ! देवान् मत्सि— हे सोम ! तू सब देवोंको आनंद देता है। ये सब देव यज्ञमें आते हैं, यज्ञमें सोमरस पीते हैं और आनंद प्रसन्न होते हैं। सोमरस पीनेसे मन आनंदसे प्रसन्न होता है।

[८१६] हे सोम ! (एव) इस प्रकार स्तुति किया हुआ तू (क्रतुमान्) यज्ञ करनेवाला (राजा इव) राजाके समान (अमेन) बलसे (विश्वा दुरिता) सब दुष्ट कृत्य (घनिघ्नन्) विनाश करके (पवस्व) रस निकालो। हे (इन्दो) सोम ! (सूक्ताय वचसे) उत्तम स्तोत्रके लिये (वयो धाः) अन्न दो और (यूयं) तुम सब देव (स्वस्तिभिः) कल्याणके मार्गोंसे (सदा नः पात) सदा हमारा रक्षण करो ॥ ६ ॥

१ एव क्रतुमान् राजा इव अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नन्— इस प्रकार शुभकर्म करनेवाले राजाके समान अपने बलसे सब दुष्ट कृत्योंका विनाश करो। स्वयं शुभ कर्म करो और जो दुष्ट कृत्य करते हैं उनका विनाश करो।
२ सूक्ताय वचसे वयो धाः— उत्तम स्तुति करनेवालेके लिये अन्नका दान करो।
३ यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात— तुम उत्तम आचरणसे सदा हमारा संरक्षण करो।

[९१]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८१७ असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमो मनीषी ।
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये ऽजन्ति वह्निं सदनान्यच्छ ॥ १ ॥

८१८ वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यै- रधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभि- र्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ २ ॥

८१९ वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोवि- दध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥ ३ ॥

[९१]

अर्थ— [८१७] (वक्वा) वक्ता, शब्द करनेवाला सोम (आजौ) यज्ञरूप (धिया) बुद्धिपूर्वक किये कर्ममें (असर्जि) रस निकाल देता है (यथा रथ्ये आजौ) जैसे रथोंके युद्धमें घोडा (धिया) बुद्धिसे प्रेरित किया जाता है वैसा यह (मनोता) मननशील (प्रथमः मनीषी) प्रमुख ज्ञानी यज्ञकार्यमें प्रेरित किया जाता है उस प्रकार (दश स्वसारः) दस बहिनें, दस अंगुलियां (अव्ये सानौ) मेढीके बालोंकी बनी छाननीके (अधि) ऊपर (सदनानि अच्छ) यज्ञस्थानोंके पास (वन्हिं अजन्ति) तेजस्वी सोमको प्रेरित करती हैं ॥ १ ॥

१ वक्वा आजौ धिया असर्जि— शब्द करनेवाला सोम यज्ञमें स्तुतिके साथ रस निकालता है ।

२ यथा रथ्ये आजौ धिया— जैसा रथयुद्धमें बुद्धिसे प्रेरित घोडा चलाया जाता है ।

३ मनोता प्रथमः मनीषी— मननशील मुख्य विद्वान् यज्ञमें मुख्य होता है ।

४ दश स्वसारः अव्ये सानौ अधि सदनानि अच्छ वन्हिं अजन्ति— दस अंगुलियां मेढीके बालोंकी छाननीके ऊपर यज्ञके स्थानमें इस तेजस्वी सोमको प्रेरित करती हैं ।

[८१८] (कव्यैः) कवियों द्वारा (नहुष्येभिः) विद्वानों द्वारा (अधि सुवानः इन्दुः) रस निकाला सोम (दिव्यस्य जनस्य वीती) दिव्य जनोंके भक्षणके लिये यज्ञमें (अधि) जाता है । (यः अमृतः) मरण धर्मरहित यह सोम (नृभिः मर्त्येभिः मृजानः) मनुष्यों अर्थात् याजकों द्वारा शुद्ध किया जाता है । (अविभिः गोभिः अद्भिः) मेढीके बालोंसे शुद्ध होकर गोदुग्ध तथा जलसे मिश्रित होकर सोम यज्ञमें आता है ॥ २ ॥

१ कव्यैः नहुष्येभिः अधि सुवानः इन्दुः— विद्वान कवियों द्वारा इस सोमका रस निकाला जाता है ।

२ दिव्यस्य जनस्य वीती अधि— दिव्य जन इसका भक्षण करते हैं ।

३ यः अमृतः मर्त्येभिः नृभिः मृजानः— यह सोम अमृत जैसा उत्तम पेय है, वह मानवोंके द्वारा निकाला रस है ।

४ अविभिः गोभिः अद्भिः मृजानः— मेढीके बालोंकी छाननीपर गोदुग्धमें तथा जलोंमें मिलाकर शुद्ध किया जाता है ।

[८१९] (वृषा) इच्छाकी तृप्ती करनेवाला (रोरुवत्) शब्द करनेवाला (अंशुः पवमानः) सोम शुद्ध होता हुआ (अस्मै वृष्णे) इस वृष्टी करनेवाले इन्द्रके लिये (रुशत्) अपना तेज दिखाता है । और (गोः पयः ईर्ते) गौका दूध उसमें मिलाया जाता है । (वचोवित्) स्तुतिको जाननेवाला (सूरः) उत्तम वीर्यवान प्रेरक सोम (अध्वस्मभिः) अहिंसाशील (सहस्रं पथिभिः) हजारों मार्गोंसे (अण्वं विं याति) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ ३ ॥

८२० रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि पुनान इन्द ऊर्णुहि वि वाजान् ।
वृश्चोपरिष्टात् तुजता वधेन ये अन्ति दूरादुपनायमेषाम् ॥ ४ ॥
८२१ स प्रत्नवन्नव्यसे विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः ।
ये दुष्षहासो वनुषा बृहन्त-स्तांस्ते अश्याम पुरुकृत् पुरुक्षो ॥ ५ ॥
८२२ एवा पुनानो अपः स्वर्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।
शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥ ६ ॥

अर्थ — १ वृषा रोरुवत् अंशुः पवमानः अस्मै वृष्णे रुशत्— वृष्टि करनेवाला शब्द करनेवाला शुद्ध होनेवाला सोम इस बलशाली इन्द्रके लिये अपना तेज दिखाता है ।

२ गोः पयः ईर्ते— गौका दूध उस सोमरसमें मिलाया जाता है ।

३ सूरः अध्वस्मभिः सहस्रं पथिभिः अण्वं वि याति— यह उत्तम प्रेरणा देनेवाला सोम हजारों अहिंसाके मार्गोंसे छाननीमेंसे छाना जा रहा है ।

[८२०] हे (इन्दो) सोम ! तू (रक्षसः) राक्षसोंके (दृळ्हा सदांसि) सुदृढ स्थानोंको (रुज) विनष्ट कर । (पुनानः) शुद्ध होकर (वाजान् वि ऊर्णुहि) उनके बलोंको विनष्ट कर । उनके अन्नोंको नष्ट कर । (ये उपरिष्टात्) जो ऊपरसे आते हैं, (ये अन्ति) जो हमारे समीप हैं, (दूरात्) जो दूरसे आते हैं (एषां उपनायं) इनके मुख्य नायकको (वधेन वृश्च) वध करके विनष्ट करो ॥ ४ ॥

१ हे इन्दो ! रक्षसः दृळ्हा सदांसि रुज— हे सोम ! तू राक्षसोंके मजबूत किलों जैसे स्थानोंको विनष्ट कर ।

२ पुनानः वाजान् वि ऊर्णुहि— शुद्ध होकर उन राक्षसोंके सामर्थ्योंको विनष्ट कर ।

३ ये उपरिष्टात्, ये अन्ति, ये दूरात् एषां उपनायं वधेन वृश्च— जो शत्रु ऊपरसे आते हैं, जो पास हैं, जो दूर हैं, उनके मुख्य संचालकको वध करके विनष्ट कर ।

[८२१] हे (विश्ववार) सबके स्वीकार करने योग्य सोम ! (सः) वह तू (प्रत्नवत्) प्राचीनके समान (नव्यसे) नवीन (सूक्ताय) सूक्तके लिये (पथः प्राचः कृणुहि) मार्गोंको प्राचीन जैसा करो । हे (पुरुकृत्) बहुत कर्म करनेवाले (पुरुक्षो) बहुत स्तुतिके योग्य हे सोम ! जो (दुः सहासः) शत्रुरूपी राक्षसोंसे सहन करनेके लिये अयोग्य (वनुषा) हिंसासे युक्त (बृहन्तः) बडे (ये) जो तेरे अंश हैं (तान् ते अश्याम) उन तुम्हारे गुणोंको हम प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥

१ हे विश्ववार ! सः प्रत्नवत् नव्यसे सूक्ताय पथः प्राचः कृणुहि— हे सबको स्वीकार करने योग्य सोम ! वह तू प्राचीन सूक्तोंके समान नवीन सूक्तोंके लिये उत्तम मार्ग तैयार करो ।

२ पुरुकृत् पुरुक्षो— बहुत कर्म करनेवाले और बहुत स्तुतिके योग्य सोम ।

३ दुःसहासः वनुषा बृहन्तः ये तान् ते अश्याम— शत्रुरूपी राक्षसोंके लिये सहन करनेके लिये कठिन ऐसे जो तेरे बडे श्रेष्ठ शुभ गुण हैं उनको हम प्राप्त करके अपने अंदर धारण करेंगे ।

[८२२] हे (सोम) सोम ! (एव) इस प्रकार (पुनानः) शुद्ध होता हुआ तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (अपः रिरीहि) जल दे । (स्वः गाः) स्वर्ग, गौवें (भूरि तोका तनयानि) बहुत पुत्र पौत्र दे । (नः) हमारा (क्षेत्रं) स्थान (शं) सुखदायक कर । हे (सोम) सोम ! (ज्योतींषि) इन नक्षत्रोंको (उरु) विस्तीर्ण कर । तथा (नः) हमारे लिये (सूर्यं) सूर्यके (ज्योक्) देखनेके लिये (दृशये कुरु) दर्शनीय कर ॥ ६ ॥

×

[९२]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८२३ परिं सुवानो हरिरंशुः पवित्रे रथो न संर्जि सनये हियानः ।
आपच्छ्लोकमिन्द्रियं पूयमानः प्रति देवाँ अंजुषत प्रयोंभिः ॥ १ ॥
८२४ अच्छा नृचक्षा असरत् पवित्रे नाम दधानः कविरस्य योनौ ।
सीदन् होतेव सदने चमूषूपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः ॥ २ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! एव पुनानः अस्मभ्यं अपः रिरीहि— इस प्रकार शुद्ध होकर हे सोम ! तू हमें जल देओ ।

२ स्वः गाः भूरि तोका तनयानि— सुख, स्वर्ग, गौवें, तथा बहुत पुत्र और पौत्र दे ।

३ नः क्षेत्र शं— हमारा स्थान हमें सुख देनेवाला हो जाय ।

४ ज्योतींषि ऊरु— ये नक्षत्र विस्तीर्ण होकर हमें विशेष सुख दें ।

५ सूर्यं ज्योक् दृशये कुरु— सूर्य बहुत काल दीखे ऐसा कर । हमें दीर्घायु कर जिससे हमें सूर्य बहुत वर्षतक दीखता रहे ।

[९२]

[८२३] (सुवानः) रस निकाला गया (हियानः) प्रेरित किया गया (हरिः अंशुः) हरे रंगका सोम (पवित्रे) छाननीमेंसे (सनये) देवोंकी प्रसन्नताके लिये (परि सर्जि) छाना जाता है । (रथः न) रथ जैसा शत्रु वधके लिये प्रेरित किया जाता है । (पूयमानः) शुद्ध किया जानेवाला (इन्द्रियं श्लोकं आपत्) इन्द्रकी स्तुतिको सुनता है । और यह सोम (प्रयोभिः) अन्नोंके द्वारा (देवान् प्रति अजूषत) देवोंकी सेवा करता है ॥ १ ॥

१ सुवानः हियानः हरिः अंशु पवित्रे सनये परि सर्जि— रस निकाला प्रेरित होनेपर यह सोम छाननीमेंसे देवोंको देनेके लिये छाना जाता है ।

२ रथः न— रथ जैसा युद्धमें जाता है वैसा यह सोम यज्ञमें जाता है ।

३ पूयमानः इन्द्रियं श्लोकं आपत्— छाना जाकर यह सोम इन्द्रकी की हुई स्तुति सुनता है ।

४ प्रयोभिः देवान् प्रति अजूषत— अन्नोंके साथ देवोंके पास यह पहुंचता है ।

[८२४] (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला (कविः) ज्ञानी सोम (नाम दधानः) जलके साथ मिलकर रहनेवाला (अस्य योनौ) इस यज्ञके स्थानमें (पवित्र अच्छ असरत्) छाननीमेंसे अच्छी तरह छाना जाता है । (होता इव) हवन करनेवालेके समान (सदने) यज्ञके स्थानमें (चमूषु सीदन्) पात्रोंमें रहता है । उस समय (सप्त विप्राः) सात ज्ञानी ऋत्विज (ऋषयः) तत्वज्ञानी (ईं) इस सोमके समीप (उप अग्मन्) स्तोत्र कहते हुए बैठते हैं ॥ २ ॥

१ नृचक्षाः कविः नाम दधानः अस्य योनौ पवित्रे अच्छ असरत्— मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला ज्ञानी सोम जलके साथ मिलकर इस यज्ञके स्थानमें छाननीमेंसे छाना जाता है ।

२ होता इव सदने चमूषु सीदन्— हवन करनेवालेके समान यज्ञस्थानमें पात्रोंमें यह सोमरस रहता है ।

३ सप्त विप्राः ऋषयः ईं उप अग्मन्— सात ज्ञानी ऋषि इस सोमके पास जाते हैं और यज्ञमें उस सोमको लाते हैं और यज्ञमें देवताओंको देते हैं ।

८२५ प्र सुमेधा गातुविद्विश्वदेवः सोमः पुनानः सद एति नित्यम् ।
भुवद्विश्वेषु काव्येषु रन्ता ऽनु जनान् यतते पञ्च धीरः ॥ ३ ॥
८२६ तव त्ये सोम पवमान निण्ये विश्वे देवास्त्रय एकादशासः ।
दश स्वधाभिरधि सानो अव्ये मृजन्ति त्वा नद्यः सप्त यह्वीः ॥ ४ ॥
८२७ तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारवः संनसन्त ।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोकं प्रावन्मनुं दस्यवे करभीकम् ॥ ५ ॥

अर्थ — [८२५] (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान (गातुवित्) मार्गका ज्ञाता (विश्वदेवः) सब प्रकाशमय (पुनानः सोमः) छाना जानेवाला सोम (नित्यं) सदा (सदः) कलशके पास (प्र एति) जाता है (विश्वेषु काव्येषु) सब काव्योंमें (रन्ता भुवत्) रममाण होता है ! (धीरः) धैर्यवान यह सोम (पञ्च जनान्) पांच प्रकारके लोगोंके (अनु यतते) अनुकूल बनकर उनकी उन्नतिके लिये प्रयत्न करता है ॥ ३ ॥

१ सुमेधाः गातुवित् विश्वदेवः पुनानः सोमः नित्यं सदः प्र एति— उत्तम बुद्धिमान, प्रगतिका मार्ग जाननेवाला, सर्वदेव सदृश शुद्ध होनेवाला सोम सदा यज्ञस्थानमें जाता है ।

२ विश्वेषु काव्येषु रन्ता भुवत्— सब स्तुतिके काव्योंमें वह सोम आनंदित होता है ।

३ धीरः पञ्चजनान् अनुयतते— यह धैर्यधारी सोम पांच जनोंके हित करनेका यत्न करता है । ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कर्मचारी तथा सेवक ये पांच प्रकारके लोग हैं । इनके अनुकूल सब कार्य करने चाहिये ।

[८२६] हे (पवमान सोम) पवित्र होनेवाले सोम ! (तव त्ये) तुम्हारे वे (त्रयः एकादशासः) तीन-वार ग्यारह अर्थात् तैतीस (देवाः) देवताएं (विश्वे देवाः) अर्थात् सब देव (निण्ये) द्युलोकमें हैं । (दश) दस अंगुलियां (अव्ये सानौ अधि) भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर (स्वधाभिः) जलोंसे (यह्वीः सप्त नद्यः) बडी सात नदियां (मृजन्ति) शुद्ध करती हैं ॥ ४ ॥

१ हे पवमान सोम ! तव त्ये त्रयः एकादशासः देवाः विश्वे देवाः निण्ये— हे पवमान सोम ! तेरे वे तैतीस देव अर्थात् सब देव द्युलोकमें गुप्त रीतिसे रहते हैं ।

२ दश अव्ये सानो अधि स्वधाभिः यह्वीः सप्त नद्यः मृजन्ति— दस अंगुलियां भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर सात नदियोंके जलोंसे तुझे शुद्ध करती हैं ।

सात नदियोंका जल यज्ञमें लाया जाता है और उस जलको सोमरसके साथ मिलाकर वह मिश्रण भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[८२७] (सत्यं तत्) सत्य वह प्रसिद्ध (पवमानस्य नु) सोमका स्थान (अस्तु) है (यत्र) जहां (विश्वे कारवः) सब स्तोता लोग (संनसन्त) एकत्रित होकर बैठते हैं । इस सोमकी (यत् ज्योतिः) जो ज्योति (अह्ने) दिनके लिये (लोकं) प्रकाश (अकृणोत्) करती है वह ज्योति (मनुं प्रावत्) मनुका संरक्षण करती है । तथा सोम अपना तेज (दस्यवे अभीकं) दस्युओंके लिये विनाशक (कः) करता है ॥ ५ ॥

१ तत् पवमानस्य सत्यं अस्तु— वह सोमका यज्ञमें सत्य स्थान है ।

२ यत्र विश्वे कारवः संनसन्त— जहां सब स्तोता लोग मिलकर बैठते हैं । वह यज्ञका स्थान है जहां सोमके साथ याजक बैठते हैं ।

३ यत् ज्योतिः अह्ने लोकं अकृणोत्— जो ज्योति दिनके लिये प्रकाश देती है ।

४ मनुं प्रावत्— मनुष्यका संरक्षण वह ज्योति करती है ।

५ दस्यवे अभीकं कः— शत्रुके लिये विनाश करनेवाला वह तेज होता है ।

८२८ परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः ।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत् सीदन् मृगो न महिषो वनेषु ॥ ६ ॥

[९३]

(ऋषिः- नोधा गौतमः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८२९ साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥ १ ॥

८३० सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन् त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [८२८] (होता) ऋत्विज (पशुमन्ति सद्म इव) पशु युक्त यज्ञगृहमें जैसा जाता है अथवा (राजा) राजा (सत्यः) सत्य कर्म करनेवाला जैसा (समितीः इयानः) राज समितिको जानेवाला होता है वैसा (पुनानः सोमः) स्वच्छ छाना जानेवाला सोम (कलशान् अयासीत्) कलशोंमें जाता है। (मृगः महिषः वनेषु सीदन् न) मृग महिष जैसा उदकोंमें जाता है ॥ ६ ॥

१ होता पशुमन्ति सद्म इव— यज्ञ करनेवाला गौ आदि पशुओंसे युक्त यज्ञके गृहमें जैसा जाता है ।

२ सत्यः राजा समितीः इयानः— सच्चा राजा जैसा प्रजाकी समितिको जाता है । राष्ट्रसभा यह " समिति " है । ग्रामसभा " सभा " कहती है । ग्रामसभा, राष्ट्र समिति, आमंत्रण मंत्रीमंडल ये तीन सभाओं द्वारा वैदिक समय राज्यशासन चलाया जाता था ।

३ पुनानः सोमः कलशान् अयासीत्— स्वच्छ हुआ सोमरस कलशोंमें जाकर रहता है । जैसा राजा सभा, समिति और मंत्रीमंडलमें जाकर रहता है, वैसा यह सोम कलशोंमें जाकर रहता है ।

४ मृगः न महिषः वनेषु सीदन् न— महिष जैसा जलोंमें बैठता है वैसा राजा सभाओंमें विराजता है।

[९३]

[८२९] (साकं- उक्षाः) साथ रहकर सींचनेवाली (स्वसारः) बहिनोंके समान (दश) दस (धीतयः) अंगुलियां (मर्जयन्त) सोमको शुद्ध करती हैं । ये अंगुलियां (धीरस्य) वीर सोमको (धनुत्रीः) प्रेरणा देती हैं । (हरिः) हरे रंगका सोम (सूर्यस्य जाः) सूर्यसे उत्पन्न हुई दिशाओंमें (पर्यद्रवत्) जाकर रस देता है और (अत्यः वाजी न) शीघ्र दौडनेवाले घोडेके समान (द्रोणं ननक्षे) कलशमें जाता है ॥ १ ॥

१ साकं उक्षाः स्वसारः दश मर्जयन्त— साथ जलका सिंचन करनेवाली बहिनोंके समान दस अंगुलियां इस सोमको शुद्ध करती हैं ।

२ धीरस्य धनुत्रीः— वीर सोमको ये प्रेरणा देती हैं । देवताओंके समीप पहुंचनेकी प्रेरणा देती हैं ।

३ हरिः सूर्यस्य जाः पर्यद्रवत्— हरे रंगका सोम सूर्यसे उत्पन्न हुई दिशाओंमें रस देता है । चारों दिशाओंमें सोमसे रस निकलता है ।

४ द्रोणं ननक्षे— कलशमें यह रस जाता है ।

५ अत्यः वाजी न— दौडनेवाले घोडेके समान यह सोमरस कलशमें जाता है ।

[८३०] (वावशानः) देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला (वृषा) कामनाओंकी पूर्णता करनेवाला (पुरुवारः) अनेकों द्वारा स्वीकार करने योग्य सोम (अद्भिः सं दधन्वे) जलोंके साथ मिलता है । (मातृभिः शिशुः न) माताओंसे जैसा बालक मिलकर रहता है । (मर्यः न योषां) पुरुष जैसा स्त्रीके पास जाता है । वैसा (निष्कृतं अभियन्) अपने नियत स्थानके पास जाता है। वैसा (उस्रियाभिः) गौओंके दूधके साथ मिलकर (कलशं संगच्छते) कलशमें मिल जाता है ॥ २ ॥

८३१ उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३ ॥

८३२ स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्यगा दावने वसूनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ— १ वावशानः वृषा पुरुवारः अद्भिः सं दधन्वे— देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला, वृष्टि करनेवाला, अनेकों द्वारा स्वीकृत किया हुआ सोमरस जलोंके साथ मिलता है ।

२ मातृभिः शिशुः न— माताओंके साथ जैसा बालक मिलता है वैसा यह मिलता है ।

३ मर्यः योषां न— पुरुष जैसा स्त्रीके साथ मिलकर रहता है, वैसा यह सोमरस जलके साथ मिलकर रहता है ।

४ निष्कृतं अभियन्, उस्रियाभिः कलशं संगच्छते— सोम अपने नियत स्थानको प्राप्त करता है और गोदुग्धके साथ मिलकर कलशमें जाता है ।

[८३१] (उत) और (अघ्न्यायाः) गौका (ऊधः) दूधका स्थान यह सोम (प्र पिप्ये) विशेष रीतिसे पुष्ट करता है । (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान यह (इन्दुः) सोम (धाराभिः सचते) रसधाराओंसे मिश्रित होता है । (गावः) गौवें (पयसा) अपने दूधसे (मूर्धानं) मुख्य सोमको (चमूषु) कलशोंमें (अभि श्रीणन्ति) मिश्रित करती हैं । (निक्तैः वसुभिः न) जैसा धौत वस्त्रोंसे शरीर आच्छादित होता है ॥ ३ ॥

१ अघ्न्यायाः ऊधः उत प्र पिप्ये— यह सोम गौका दूधका स्थान विशेष पुष्ट करता है । सोम खानेसे गौका दुग्धाशय पुष्ट होता है ।

२ सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते— उत्तम बुद्धि बढानेवाला यह सोम अपनी रस धाराओंसे दूधमें मिल जाता है ।

३ गावः पयसा मूर्धानं चमूषु अभि श्रीणन्ति— गौवें अपने दूधके साथ इस श्रेष्ठ सोमको कलशोंमें मिश्रित करती हैं । कलशोंमें दूधके साथ सोमका रस मिश्रित किया जाता है ।

४ निक्तैः वसुभिः न— जैसा शुभ्र वस्त्रसे शरीर वेष्टित होता है वैसा सोमरस दूधसे परिवेष्टित अर्थात् मिश्रित किया जाता है ।

[८३२] हे (पवमान) सोम ! (सः) वह तू (नः) हमारे लिये (देवेभिः) देवोंके साथ वह धन (रद) प्रदान करो । हे (इन्दो) सोम ! (वावशानः) इच्छा करता हुआ तू (अश्विनं रयिं) घोडोंसे युक्त धन प्रदान (नः) हमारे लिये करो । (रथिरायतां) रथी वीरोंकी इच्छानुसार (उशती) इच्छा करनेवाली (पुरंधिः) श्रेष्ठ बुद्धि (वसूनां दानवे) धनोंका दान करनेके लिये (आ) हमारे पास आवे ॥ ४ ॥

१ हे पवमान ! सः नः देवेभिः रद— हे सोम ! वह तू हमारे पास देवोंके साथ धन भेज दो ।

२ हे इन्दो ! वावशानः अश्विनं रयिं नः रद— हे सोम ! तू इच्छापूर्वक घोडोंके साथ धन हमें प्रदान करो । हमें धन मिले तथा घोडे भी मिलें ।

३ रथिरायतां उशती पुरंधिः वसूनां दानवे आ— रथोंमें बैठनेवाले वीरोंकी बडी बुद्धि धन देनेके लिये प्रवृत्त हो । रथमें बैठनेवाले वीर भी धनका दान करें ।

८३३ नू नो र॒यिमुप॑ मास्व नृ॒वन्तं॑ पुना॒नो वा॒ताप्यं॑ वि॒श्वश्च॑न्द्रम् ।
प्र व॑न्दि॒तुरि॑न्दो ता॒र्यायुः॑ प्रा॒तर्म॒क्षू धि॒याव॑सु॒र्जग॑म्यात् ॥ ५ ॥

[९४]

(ऋषिः- कण्वो घौरः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८३४ अधि॒ यद॑स्मिन् वा॒जिनी॑व॒ शुभः॒ स्पर्ध॑न्ते॒ धियः॒ सूर्ये॒ न विशः॑ ।
अ॒पो वृ॑णा॒नः प॑वते कवी॒यन् व्र॒जं न प॑शु॒वर्ध॑नाय॒ मन्म॑ ॥ १ ॥

अर्थ—[८३३] हे सोम ! (पुनानः) छाना जानेवाला तू (नः) हमारे लिये (नु) त्वरासे (नृवन्तं) पुत्र पौत्रोंसे युक्त (रयिं) धन (उप मास्व) प्राप्त कराओ । तथा (विश्वश्चन्द्रं) सबको आनंद देनेवाला (वाताप्यं) जलसे युक्त धन हमें दे दो । हे (इन्दो) सोम ! (वन्दितुः) तेरी स्तुति करनेवालेका (आयुः प्र तारि) आयु दीर्घ करो । हे सोम ! (धियावसुः) बुद्धिसे युक्त धन देनेवाला तू (प्रातः मक्षु) सबेरे अथवा शीघ्र ही हमारे यज्ञके पास (जगम्यात्) आ जाओ ॥ ५ ॥

१ पुनानः नः नु नृवन्तं रयिं उप मास्व— शुद्ध होकर तू, हे सोम ! हमारे लिये पुत्र पौत्रोंसे युक्त धन प्राप्त कर दो ।

२ विश्वश्चन्द्रं वाताप्यं— सबका आनंद बढानेवाला जलयुक्त, सुखसे पूर्ण जीवनवाला धन हमें प्राप्त हो।

३ हे इन्दो ! वन्दितुः आयुः प्र तारि— हे सोम ! तेरी स्तुति करनेवालेकी आयु तू बढा दो ।

४ धियावसुः प्रातः मक्षु प्र जगम्यात्— बुद्धिसे धन बढानेवाला तू सबेरे तथा शीघ्र ही हमारे पास आकर हमें मिलो ।

[९४]

[८३४] (यत्) जिस समय (अस्मिन्) इस सोमरसमें (वाजिनि इव) घोडे पर जैसे (शुभः) अलंकार शोभते हैं तथा (सूर्ये न विशः) सूर्यमें जैसे किरण शोभते हैं वैसी (धियः अधि स्पर्धन्ते) अंगुलियां स्पर्धा करती हैं । तब यह सोम (अपः वृणानः) जलके साथ मिश्रित हुआ (पवते) पात्रोंमें अपना रस देता है (कवीयन्) और कविकी इच्छा करता है जैसा (पशुवर्धनाय) गौ आदि पशुओंके संवर्धनके लिये (मन्म व्रजं न) माननीय गोशालामें कोई जाता है ॥ १ ॥

१ यत् अस्मिन् धियः अधि स्पर्धन्ते— जिस समय इस सोममें अंगुलियां रस निकालनेकी स्पर्धा करती हैं । अंगुलियां इसको दबातीं और रस निकालतीं हैं ।

२ वाजिनि इव शुभः— घोडे पर जैसे अलंकार होते हैं वैसी सोमपर अंगुलियां खेलती हैं, सोमको दबाकर उससे रस निकालती हैं ।

३ सूर्ये न विशः— सूर्यके किरण वैसी ये अंगुलियां सोमपर चलायी जाती हैं ।

४ अपः वृणानः पवते— जलसे मिश्रित होकर सोम रस देता है ।

५ कवीयन्— स्तुति करनेवालोंकी इच्छा सोम करता है ।

६ पशुवर्धनाय मन्म व्रजं न— गौ आदि पशुओंकी संख्या बढे इस लिये निरीक्षण करनेके लिये जैसे गोशालामें जाते हैं, उस प्रकार यज्ञमें सोमका निरीक्षण ऋत्विज लोक करते हैं ।

८३५ द्विता व्यू॒र्ण्वन्नमृत॑स्य धाम॑ स्व॒र्विदे॒ भुव॑नानि प्रथन्त ।
धिय॑: पिन्वा॒नाः स्वस॑रे॒ न गाव॑ ऋता॒यन्ती॑र॒भि वा॑वश्र॒ इन्दु॑म् ॥ २ ॥
८३६ परि॒ यत् क॒विः काव्या॒ भर॑ते॒ शूरो॒ न रथो॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
दे॒वेषु॒ यशो॒ मर्ता॑य॒ भूष॒न् दक्षा॑य रा॒यः पु॑रु॒भूषु॒ नव्य॑: ॥ ३ ॥
८३७ श्रि॒ये जा॒तः श्रि॒य आ निरि॑याय॒ श्रि॒यं वयो॑ जरि॒तृभ्यो॑ दधाति ।
श्रि॒यं॒ वसा॑ना अमृत॒त्वमा॑य॒न् भव॑न्ति स॒त्या स॑मि॒था मि॒तद्रौ॑ ॥ ४ ॥

अर्थ— [८३५] सोम (अमृतस्य धाम) जलके स्थानको (द्विता) दो प्रकारोंसे (व्यूर्ण्वन्) अपने तेजसे व्यापता है। उस समय (स्वर्विदे) सर्वज्ञ सोमके लिये (भुवनानि प्रथन्त) भुवन विस्तीर्ण हो जाते हैं। उस समय (पिन्वानाः धियः) स्तुति करनेवाली वाणियां (ऋतायन्तीः) यज्ञकी इच्छा करती हुई (इन्दुं) सोमकी (स्वसरे) यज्ञके दिन (अभि वावश्रे) स्तुति करती हैं। (गावः न) जैसी गौवें गोशालामें रहकर शब्द करती हैं ॥ २ ॥

१ अमृतस्य धाम द्विता व्यूर्ण्वन्— जलके स्थानको सोम दो प्रकारसे प्राप्त करता है। सोममें दो बार जल मिलाया जाता है।

२ स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त— सोमके लिये भुवन विस्तीर्ण होते हैं।

३ पिन्वानाः धियः ऋतायन्तीः इन्दुं स्वसरे अभि वावश्रे— स्तुति करनेवाली वाणियां यज्ञ करनेकी इच्छा करती हुई यज्ञस्थानमें सोमकी स्तुति करती हैं।

४ गावः न— गौवें गोशालामें रहती हैं उस प्रकार सोम यज्ञस्थानमें रहता है।

[८३६] (कविः) ज्ञानी सोम (काव्या) काव्य अर्थात् स्तोत्र (यत्) जिस समय (परि भरते) सुनता है। (शूरः न) वीर पुरुषके समान (विश्वा भुवनानि) सब युद्धोंमें (रथः) रथ जैसा जाता है। तब (देवेषु यशः) देवोंके पास जो धन होता है वह (मर्ताय) मनुष्यके लिये (भूषन्) भूषण जैसा होता है। उस समय वह सोम (रायः दक्षाय) धनकी वृद्धि करनेके लिये (पुरुभूषु) यज्ञोंमें (नव्यः) स्तुतिके लिये योग्य होता है ॥ ३ ॥

१ कविः यत् काव्या परिभरते, शूरः न विश्वा भुवनानि रथः— यह ज्ञानी सोम जिस समय स्तुतिके काव्य सुनता है, उस समय शूर जैसा अपना रथ सब भुवनोंमें चलाता है। स्तुतिसे वह सर्वत्र प्रिय होता है और सर्वत्र वह पहुंचता है।

२ देवेषु यशः मर्ताय भूषन्— देवोंके पासका धन मानवोंके लिये भूषणरूप होता है।

३ रायः दक्षाय पुरुभूषु नव्यः— सोम धनकी वृद्धि करनेके लिये यज्ञोंमें स्तुतिके लिये योग्य समझा जाता है।

[८३७] वह सोम (श्रिये जातः) संपत्ति बढानेके लिये उत्पन्न हुआ है। (श्रिये आ निरियाय) धनके लिये वह यज्ञमें जाता है। वह (जरितृभ्यः) स्तुति करनेवालोंके लिये (श्रियं वयः) धन और अन्न (दधाति) देता है। (श्रियं वसानाः) शोभाको धारण करनेवाले स्तुति करनेवाले ऋत्विज (अमृतत्वं आयन्) अमरपनको प्राप्त करते हैं। उस (मितद्रौ) नियमपूर्वक आक्रमण करनेवाले सोममें (समिथा) युद्ध (सत्या भवन्ति) सत्य होते हैं ॥ ४ ॥

८३८ इषमूर्जमभ्यर्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।
विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥ ५ ॥

[९५]

(ऋषिः- प्रस्कण्वः काण्वः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८३९ कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥ १ ॥

अर्थ— १ श्रिये जातः— धनके लिये यह सोम उत्पन्न हुआ है ।
२ श्रिये आ निरियाय - धनके लिये सोम यज्ञमें लाया जाता है ।
३ जरितृभ्यः श्रियं वयः दधाति— स्तुति करनेवालोंके लिये यह सोम धन तथा अन्न देता है ।
४ श्रियं वसानाः अमृतत्वं आयन्— स्तुति करनेवाले अमर होते हैं ।
५ मितद्रौ समिथा सत्या भवन्ति— नियमपूर्वक आक्रमण करनेवाले वीरोंके युद्ध सच्चे युद्ध होते हैं ।

[८३८] हे (पवमान) सोम ! (इषं उर्जा) अन्न और बलवर्धक रस (अभ्यर्ष) हमें प्रदान कर । (गां) गौको तथा (उरुज्योतिः) विशेष प्रकाश देनेवाला सूर्य (कृणुहि) निर्माण कर । (देवान् मत्सि) सब देवोंको आनन्द प्रसन्न कर । (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (विश्वानि तानि) सब वे राक्षस (सुषहा) सहज पराभूत होनेवाले हैं । तूं (शत्रुन् बाधसे) शत्रुओंको पराजित कर सकता है ॥ ५ ॥

१ हे पवमान ! इषं उर्जं अभ्यर्ष — हे सोम ! तू हमें अन्न और रस या बल दे दो । अन्न और सामर्थ्य हमें प्रदान कर ।
२ गां उरुज्योतिः कृणुहि— गौ तथा विशेष प्रकाश निर्माण कर । प्रकाश होता रहा तो गौवें बढेंगी, और गौओंसे मानवोंका कल्याण होगा ।
३ देवान् मत्सि— देवोंको आनंद प्रसन्न करो । सब देव आनंद प्रसन्न होंगे, तो सबको सुरक्षित स्थितिमें रखेंगे ।
४ तुभ्यं तानि विश्वानि सुषहा— तुम्हारे लिये वे सब राक्षस रूपी शत्रु सहज पराभूत होनेवाले हो और तू विजयी होवो ।
५ शत्रुन् बाधसे— तू शत्रुओंका पराभव करता है ।

[९५]

[८३९] (आ सृज्यमानः) रस निकाला जानेवाला (हरिः) हरे रंगका सोम (कनिक्रन्ति) शब्द करता है । (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (वनस्य जठरे सीदन्) कलशके अन्दर रहता है । (नृभिः यतः) ऋत्विजोंने अपने यज्ञमें रखा यह सोम (गाः निर्णिजं कृणुते) गौके दूधको अपना रूप बनाता है । (अतः) इस सोमके लिये (मतीः) स्तुतियां (स्वधाभिः जनयत) हविके साथ ऋत्विज करते हैं ॥ १ ॥

१ सृज्यमानः हरिः कनिक्रन्ति— रस निकाला हरे रंगका सोम शब्द करता है । सोमके रस निकालने-का शब्द होता है ।
२ पुनानः वनस्य जठरे सीदन्— छाना जानेवाला सोम कलशके अन्दर रहता है ।
३ नृभिः यतः गाः निर्णिजं कृणुते— ऋत्विजोंने यज्ञमें रखा यह सोम गोदुग्धसें मिलकर अपना रूप श्वेत बनाता है ।
४ अतः मतीः स्वधाभिः जनयत— इस सोमके लिये स्तुतियां हवीके देनेके समय याजक करते हैं ।

८४० हरिः सृजानः पथ्यामृतस्येयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
देवो देवानां गुह्यानि नामाऽऽविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे ॥ २ ॥
८४१ अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाऽऽ च विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥ ३ ॥
८४२ तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ४ ॥

अर्थ—[८४०] (सृजानः हरिः) रस निकाला हुरे रंगका सोम (ऋतस्य) यज्ञकी (पथ्यां वाचं) मार्ग दर्शक स्तुतिरूप वाणीको (इयर्ति) प्रेरित करता है, (अरिता नावं इव) नौका चलानेवाला जैसा नौकाको चलाता है। (देवः) तेजस्वी यह सोम (देवानां गुह्यानि नाम) देवोंके गुप्त नामोंको (प्रवाचे) कहनेके लिये (बर्हिषि) यज्ञमें (आविः कृणोति) प्रकट करता है ॥ २ ॥

१ सृजानः हरिः ऋतस्य पथ्यां वाचं इयर्ति— सोमका रस यज्ञमें स्तुतिकी वाणीको प्रेरित करता है।

२ अरिता नावं इव— नौका चलानेवाला जैसा नौकाको चलाता है।

३ देवः देवानां गुह्यानि नाम प्रवाचे बर्हिषि आविः कृणोति— तेजस्वी सोम देवोंके गुह्य गुणोंकी स्तुति करनेके लिये याजकोंको प्रवृत्त करता है। स्तोता लोग सोमकी स्तुतिके मंत्र गाते हैं और यज्ञकर्म करते हैं। इन स्तुतियोंके नाम गुह्य अर्थ बतानेवाले होते हैं। पदोंके गुह्य अर्थ ही मुख्य होते हैं। मंत्रोंके तथा पदोंके गुह्य अर्थको ही देखना आवश्यक रहता है।

[८४१] (अपां इव ऊर्मयः) जलोंकी ऊर्मियोंके समान त्वरासे चलते हैं यह (इत्) सत्य है। उस प्रकार (तर्तुराणाः) त्वरा करनेवाले ऋत्विज (मनीषा) स्तुति (सोमं अच्छ) सोमके पास (प्र ईरते) प्रेरित करते हैं। (नमस्यन्तीः) सोमको नमन करनेवाली स्तुतियां (उप सं यन्ति च) सोमके पास जाती हैं। (उशतीः) सोमकी इच्छा करनेवाली स्तुतियां (उशन्तं) इच्छा करनेवाले सोमको (आ विशन्ति) प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥

१ अपां ऊर्मयः इव इत् तर्तुराणाः सोमं अच्छ मनीषा प्र ईरते— जलोंकी लहरियोंके समान त्वरासे यज्ञका कार्य करनेवाले ऋत्विज सोमकी स्तुति अच्छी रीतिसे करते हैं।

२ नमस्यन्तीः उप सं यन्ति— सोमको नमन करती हुई पास जाती हैं।

३ उशतीः उशन्तं आ विशन्ति— सोमकी इच्छा करनेवाली स्तुतियां सोमको प्राप्त करती हैं। स्तुतियां सोममें प्रवेश करती हैं अर्थात् सोमके अति समीप पहुंचती हैं।

[८४२] (मर्मृजानं) शुद्ध होनेवाले (महिषं न) महिष पशुके समान (सानौ उक्षणं) ऊंचे स्थानमें (गिरिष्ठां) पर्वत पर रहनेवाले (तं अंशुं) उस सोमका (दुहन्ति) रस निकालते हैं। (तं) उस (वावशानं) इच्छा करनेवाले सोमको (मतयः सचन्ते) स्तुतियां प्राप्त होती हैं। (त्रितः) तीन स्थानोंमें रहनेवाला इन्द्र (वरुणं) शत्रुनाशक सोमको (समुद्रे) अन्तरिक्षमें अथवा जलमें (बिभर्ति) धारण करता है ॥ ४ ॥

१ मर्मृजानं महिषं न सानौ उक्षणं गिरिष्ठां तं अंशुं दुहन्ति— शुद्ध होनेवाले बलवानके समान उच्च स्थानमें रहनेवाले सोमका रस यज्ञकर्ता लोग निकालते हैं।

२ तं वावशानं मतयः सचन्ते— उस शुभ इच्छा करनेवाले सोमकी बुद्धियां स्तुति करती हैं।

३ त्रितः वरुणं समुद्रे बिभर्ति— तीन स्थानमें रहनेवाला इन्द्र शत्रुका नाश करनेवाले सोमको धारण करता है। सोमका रस इन्द्र पीता है।

×

८४३ इ॒ष्यन् वाच॑मुपव॒क्तेव॒ होतुः॑ पुना॒न इ॑न्दो॒ वि ष्या॑ मनी॒षाम् ।
इन्द्र॑श्च॒ यत् क्षय॑थः॒ सौभ॑गाय सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥ ५ ॥

[९६]

(ऋषिः- दैवोदासिः प्रतर्दनः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

८४४ प्र से॑ना॒नीः शूरो॒ अग्रे॒ रथा॑नां ग॒व्यन्ने॑ति॒ हर्ष॑ते अ॒स्य सेना॑ ।
भ॒द्रान् कृ॒ण्वन्नि॑न्द्रह॒वान् त्सखि॑भ्य॒ आ सोमो॒ वस्त्रा॑ रभ॒सानि॑ दत्ते ॥ १ ॥

८४५ सम॑स्य॒ हरिं॒ हर॑यो मृजन्त्यश्वह॒यैरनि॑शितं॒ नमो॑भिः ।
आ ति॑ष्ठति॒ रथ॒मिन्द्र॑स्य॒ सखा॑ वि॒द्वाँ ए॑ना सुम॒तिं या॒त्यच्छ॑ ॥ २ ॥

अर्थ—[८४३] हे (इन्दो) सोम ! (वाचं इष्यन्) स्तुति करनेकी प्रेरणा देनेवाला (होतुः उपवक्ता इव) यज्ञ करनेवालेके सहायके समान (पुनानः) शुद्ध होनेवाला (मनीषां विष्य) तू बुद्धिको यज्ञ करनेकी प्रेरणा कर । (यत्) जब (इन्द्रः च) इन्द्र और तू यज्ञमें (क्षयथः) साथ बैठते हो तब हम उपासक (सौभगाय) उत्तम भाग्यके स्वामी होंगे और (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम पराक्रम करनेवाले हो जांयगे ॥ ५ ॥

१ हे सोम ! वाचं इष्यन्— हे सोम ! तू स्तुति करनेकी प्रेरणा कर ।

२ होतुः प्रवक्ता इव— यज्ञ करनेवालेके सहायके समान तू सहायक हो और हमसे यज्ञके समान उत्तम कर्म कराओ ।

३ मनीषां विष्य— बुद्धिको यज्ञ करनेकी प्रेरणा दो ।

४ यत् इन्द्रः च क्षयथः— जब इन्द्र और तू सोम यज्ञमें बैठते हैं ।

५ सौभगाय— वह सौभाग्यके लिये होता है ।

६ सुवीर्यस्य पतयः स्याम— उत्तम पराक्रम उत्तम रीतिसे करनेवाले हम होंगे ।

[९६]

[८४४] (सेनानीः) सेनाका संचालन करनेवाला (शूरः) वीर (सोमः) सोम (गव्यन्) शत्रुकी गौवोंकी इच्छा करनेवाला (रथानां अग्रे) रथोंके अग्र भागमें (प्र एति) जाता है । (अस्य सेना हर्षते) इसके सैन्यको आनंद होता है । (सखिभ्यः) मित्रोंके लिये (इन्द्रहवान्) इन्द्रके लिये आह्वानोंको (भद्रान् कृण्वन्) कल्याणरूप करके यह (सोमः) सोम (रभसानि वस्त्राणि) श्वेत रंगके वस्त्र (दत्ते) धारण करता है । सोम दूधके साथ मिलकर रहता है ॥ १ ॥

१ शूरः सेनानीः रथानां अग्रे प्र एति— शूर सेनापति रथोंके आगे गमन करता है । कभी पीछे नहीं रहता ।

२ सोमः गव्यन् अग्रे प्र एति— सोमरस ही गोदुग्ध मिलाकर यज्ञस्थानमें आगे जाता है ।

३ अस्य सेना हर्षते— इस सेनापतिकी सेना आनंदित होती है । उत्साहसे शत्रुपर हमला चढाती है ।

४ सखिभ्यः इन्द्रहवान् भद्रान् कृण्वन्— मित्रोंके लिये इन्द्रके आह्वानोंको कल्याणकारी करता है ।

५ सोमः रभसानि वस्त्राणि दत्ते— सोम श्वेत वस्त्र धारण करता है । सोमरसमें दूध मिलानेसे वह सोमरस श्वेत वस्त्रधारी जैसा दीखने लगता है ।

[८४५] (हरयः) ऋत्विज लोग (हरिं) हरे रंगके (अस्य) इस सोमके रसको (सं मृजन्ति) अच्छी रीतिसे शुद्ध करते हैं । (अश्वहयैः अनिशितं रथं) घोडे आदि जिसमें नहीं लगते ऐसे यज्ञस्थानमें (नमोभिः) स्तुतियोंसे प्रसन्न करते हैं । वहां वह सोम (आ तिष्ठति) रहता है । (इन्द्रस्य सखा) इन्द्रका मित्र यह (विद्वान्) ज्ञानी सोम (एना) इस यज्ञ साधनसे (सुमतिं अच्छ याति) उत्तम स्तुति करनेवाले यज्ञकर्ताके पास सीधा जाता है ॥ २ ॥

८४६ स नो देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरस इन्द्रपानः ।
कृण्वन्नपो वर्षयन् द्यामुतेमा-मुरोरा नो वरिवस्या पुनानः ॥ ३ ॥
८४७ अजीतयेऽहतये पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते ।
तदुशन्ति विश्व इमे सखाय-स्तदहं वश्मि पवमान सोम ॥ ४ ॥

अर्थ— १ हरयः अस्य हरिं सं मृजन्ति— यज्ञकर्ता ऋत्विज लोग इस सोमके हरे रंगके रसको उत्तम रीतिसे शुद्ध करते हैं। उस रसको छानते हैं।

२ अश्वहयैः अनिशितं रथं नमोभिः आ तिष्ठति— घोडे जिसमें नहीं लगाये जाते ऐसे यज्ञके रथके लिये स्तुतिके स्तोत्र पढकर करते हैं।

३ इन्द्रस्य विद्वान् सखा एना सुमतिं अच्छ याति— इन्द्रका ज्ञानी मित्र यह सोम इस यज्ञके अन्दर उत्तम स्तुतिको प्राप्त करता है।

[८४६] हे (देव सोम) दिव्य सोम ! (सः इन्द्रपानः) वह इन्द्रके लिये पीनेके योग्य तू (नः) हमारे (देवताते) देवोंके लिये चलाये हुए इस यज्ञमें (महे प्सरसे) बडे इन्द्रके पीनेके लिये (पवस्व) रस निकाल कर दे। (अपः कृण्वन्) जलके साथ मिश्रण करनेवाला तू (उत इमां द्यां) और इस द्युलोकको (वर्षयन्) वृष्टिके जलसे युक्त करके (उरोः) विस्तीर्ण अन्तरिक्षसे (आ) आनेवाला तू (पुनानः) छाना जाकर (नः) हमारे लिये (वरिवस्य) धनका देनेवाला तू है ॥ ३ ॥

१ हे देव सोम ! सः इन्द्रपानः नः देवताते महे प्सरसे पवस्व— हे दिव्य सोम ! वह तू इन्द्रके पीनेके योग्य हो, इसलिये हमारे इस देवोंके लिये चलाये यज्ञमें इन्द्रादि देवोंको पीनेके लिये रस निकाल कर दे।

२ अपः कृण्वन्— जलोंके साथ मिश्रण करनेके लिये तू तैयार रह।

३ उत इमां द्यां वर्षयन्— इस द्युलोकको वृष्टिसे युक्त करो।

४ उरोः आ पुनानः नः वरिवस्य— विस्तीर्ण इस अन्तरिक्षसे आकर शुद्ध होकर हमें यज्ञ करनेके लिये धन प्रदान कीजिये। उस धनसे हम यज्ञ करेंगे, इन यज्ञोंसे सब देव प्रसन्न होंगे।

[८४७] (अजीतये) शत्रुसे अजिक्य होनेके लिये, (अहतये) शत्रुसे मारे न जांय इस लिये, (स्वस्तये) हमारा उत्तम जीवन हो इस लिये, (बृहते सर्वतातये) बडे सब प्रकारके यज्ञोंके लिये हे सोम ! तू (पवस्व) शुद्ध रस देनेवाला हो जाओ। (विश्वे इमे सखायः) सब ये मित्र (तत् उशन्ति) यही चाहते हैं। हे (पवमान सोम) रस देनेवाले सोम ! (तत् अहं वश्मि) यही मैं चाहता हूं ॥ ४ ॥

१ अजीतये— शत्रुसे अजिक्य होनेके लिये यत्न करो।

२ अहतये— शत्रुके द्वारा अपना वध न हो ऐसा यत्न करो।

३ स्वस्तये— अपना अस्तित्व उत्तम रीतिसे कल्याणपूर्ण हो।

४ बृहते सर्वतातये— बडे यज्ञ करनेकी हमारी शक्ति बढे।

५ पवस्व— अजिक्यत्व, अहनन, स्वास्थ्य, बडे यज्ञ करनेकी शक्ति प्राप्त होनेके लिये अपना रस देओ।

६ विश्वे इमे सखायः तत् उशन्ति— हमारे सब मित्र यही चाहते हैं।

७ तत् अहं वश्मि— मैं भी यही चाहता हूं कि हमारा विजय हो, हम दीर्घायु तक जीवित रहें, शत्रुसे हमारा घात न हो, हमारा सदा कल्याण होता रहे, हम बडे यज्ञ कर सकें। हर एक मनुष्य यही इच्छा सदा करे।

८४८ सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ ५ ॥
८४९ ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीना-मृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ ६ ॥
८५० प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धु-र्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन् वृजनेमावरा-ण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ७ ॥

अर्थ— [८४८] (सोमः पवते) सोम रस निकालकर देता है । यह सोम (मतीनां जनिता) बुद्धियोंका निर्माण करता है । (दिवः जनिता) द्युलोकको निर्माण करता है । (पृथिव्याः जनिता) पृथिवीका निर्माण करता है, (अग्निः जनिता) अग्निको निर्माण करता है, (सूर्यस्य जनिता) सूर्यका निर्माण करता है, (इन्द्रस्य जनिता) इन्द्रका निर्माण करता है और (उत विष्णोः जनिता) विष्णुका निर्माण करता है ॥ ५ ॥

१ सोमः मतीनां जनिता— सोम बुद्धियोंको निर्माण करता है । सोमरस पीनेसे बुद्धियां बढती हैं ।

२ सोमः दिवः पृथिव्याः अग्नेः सूर्यस्य, इन्द्रस्य उत विष्णोः जनिता— सोमरस द्युलोक, पृथिवी, अग्नि, सूर्य, इन्द्र और विष्णु आदिको यज्ञमें लाता है और उपास्य रूपमें यज्ञस्थानमें रखता है । यज्ञमें ये देव रहते हैं और सोमयाग पूर्ण करते हैं । यज्ञमें सब देव उपस्थित रहते हैं । हर एक वैदिक यज्ञमें सब देव उपस्थित रहते हैं । इस कारण यज्ञस्थान देवस्थान कहलाता है ।

[८४९] यह (सोमः) सोम (देवानां ब्रह्मा) देवोंमें ब्रह्माके समान, (कवीनां पदवीः) ज्ञानियोंमें मुख्य पदधारीके समान, (विप्राणां ऋषिः) विशेष विद्वानोंमें ऋषिके समान, (मृगाणां महिषः) मृगोंमें महिषके समान महा बलिष्ठ, (गृध्राणां श्येनः) पक्षियोंमें श्येन पक्षीके समान (वनानां स्वधितिः) हिंसकोंमें शस्त्रके समान यह सोमरस (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ ६ ॥

१ देवानां ब्रह्मा— देवोंमें ब्रह्मा जैसा मुख्य है वैसा यह सोम यज्ञमें मुख्य है ।

२ कवीनां पदवीः— ज्ञानियोंमें मुख्य पद धारण करनेवाला यह सोम है ।

३ विप्राणां ऋषिः— विशेष ज्ञानियोंमें ऋषि जैसा यह सोम है ।

४ मृगोंमें महिषः— पशुओंमें भैसेके समान यह श्रेष्ठ सोम है ।

५ गृध्राणां श्येनः— पक्षियोंमें श्येन पक्षी जैसा यह सोम श्रेष्ठ है ।

६ वनानां स्वधितिः— हिंसकोंमें शस्त्रके समान यह सोम है ।

७ रेभन् पवित्रं अत्येति— शब्द करता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है ।

[८५०] (पवमानः सोमः) रस निकाला हुआ सोम (मनीषाः गिरः) मनके लिये प्रिय लगनेवाली स्तुतियां (प्रावीविपत्) प्रेरित करता है । (सिन्धुः) नदी (वाचः ऊर्मिं न) जैसी शब्दको प्रेरित करती है । (वृषभः) बैल जैसा (अन्तः पश्यन्) गुप्त स्थितिको देखकर (अवराणि) दुर्बलोंके द्वारा अनिवारणीय (इमा वृजना) इन बलोंको (आ तिष्ठति) धारण करके खडा रहता है । जैसा (वृषभः) बैल जैसा (गोषु जानन् तिष्ठति) गौवोंमें ज्ञानपूर्वक रहता है ॥ ७ ॥

१ पवमानः सोमः मनीषा गिरः प्रावीविपत्— सोमरस शुद्ध होता हुआ मनन पूर्वक किये स्तोत्रोंको प्रेरित करता है ।

२ सिन्धुः वाचः ऊर्मिं न— नदी जैसी अपने गतिमान जलका शब्द करती है ।

३ वृषभः अन्तः पश्यन् अवराणि इमा वृजना आ तिष्ठति— बैल जैसा अन्दर देखता है और अनिवारणीय इन बलोंको धारण करके खडा रहता है ।

४ वृषभः गोषु जानन् तिष्ठति— बैल जैसा जानता हुआ गौओंमें रहता है । इस प्रकार सोम यज्ञस्थानमें रहता है ।

८५१ स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष ।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यंशोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ८ ॥
८५२ परि प्रियः कलशे देववात इन्द्राय सोमो रण्यो मदाय ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुर्वाजी न सप्तिः समना जिगाति ॥ ९ ॥
८५३ स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो मृजानो अप्सु दुदुहानो अद्रौ ।
अभिशस्तिपा भुवनस्य राजा विदद्गातुं ब्रह्मणे पूयमानः ॥ १० ॥

अर्थ — [८५१] हे (मत्सरः) आनंद बढानेवाला (सः) वह सोम (पृत्सु वन्वन्) युद्धोंमें शत्रुका नाश करके (अवातः) शत्रुके लिये अनाक्रमणीय होकर (सहस्ररेताः) हजारों बलोंसे युक्त होकर (वाजं) शत्रुके बलपर (अभि अर्ष) आक्रमण कर । हे (इन्दो) सोम ! (पवमानः) शुद्ध होता हुआ (मनीषी) ज्ञानी तू (गाः इषण्यन्) स्तुतियोंको प्रेरित करता हुआ (इन्द्राय) इन्द्रको देनेके लिये (गाः इषण्यन्) गोदुग्धमें मिलकर (अंशोः ऊर्मिं ईरय) सोमरसकी लहरको प्रेरित कर ॥ ८ ॥

१ मत्सरः सः पृत्सु वन्वन् अवातः सहस्ररेताः वाजं अभि अर्ष — आनंद बढानेवाला वह सोम युद्धोंमें शत्रुका नाश करता है, शत्रुके लिये अनिवारणीय होता है, हजारों बलोंसे युक्त होकर शत्रुपर हमला करता है । सोमरस पीनेसे सैनिकोंका बल बढता है और वे सैनिक शत्रुपर वेगसे आक्रमण कर सकते हैं ।

२ हे इन्दो ! पवमानः मनीषा गा इषण्यन् इन्द्राय अंशोः ऊर्मिं ईरय — हे सोम ! शुद्ध होकर मनन शक्ति बढाकर गौके दूधमें मिलकर इन्द्रके लिये सोमरसकी लहर अर्पण कर ।

[८५२] (प्रियः) सबको प्रिय इस कारण (देववातः) देव जिसको प्राप्त करते हैं ऐसा (रण्यः सोमः) रमणीय सोम (इन्द्राय मदाय) इन्द्रके आनंदके लिये (कलशे परि जिगाति) कलशमें जाता है । (सहस्रधारः) हजारों धाराओंसे (शतवाजः) सैकडों बलोंसे बलवान (इन्दुः) सोम (सप्तिः वाजी न) बलवान घोडा जैसा (समना जिगाति) युद्धमें जाता है वैसा सोमरस कलशमें जाता है ॥ ९ ॥

१ प्रियः देववातः रण्यः सोमः इन्द्राय मदाय कलशे परि जिगाति — सबको प्रिय देव जिसको प्राप्त करते हैं, वह सोम इन्द्रको आनंद देनेके लिये कलशमें जाकर रहता है ।

२ सहस्रधारः शतवाजः इन्दुः समना जिगाति, सप्तिः न — सहस्रों धाराओंसे रस देनेवाला, सैकडों बलोंको बढानेवाला यह सोम, घोडा जैसा युद्धमें जाता है उस प्रकार यह सोम यज्ञस्थानमें आता है ।

३ सप्तिः समना जिगाति — घोडा युद्धमें न डरता हुआ जाता है । वैसा वीर न डरता हुआ युद्धमें जाकर शत्रुका सामना करे और विजय प्राप्त करे ।

[८५३] (पूर्व्यः) पूर्व कालसे ऋत्विजों द्वारा यज्ञमें लाया गया (वसुवित्) धनसे युक्त (जायमानः) होनेवाला (सः) वह सोम (अप्सु मृजानः) जलोंमें मिलकर छाना जानेवाला (अद्रौ दुदुहानः) पत्थरोंसे कूट-कर रस निकाला (अभिशस्तिपाः) शत्रुओंसे रक्षण करनेवाला (भुवनस्य राजा) सब उत्पन्न हुए पदार्थोंका राजा (पूयमानः) छाना जाता हुआ (ब्रह्मणे गातुं विदत्) यज्ञके लिये मार्ग जानता है ॥ १० ॥

१ पूर्व्यः वसुवित् जायमानः सः अप्सु मृजानः अद्रौ दुहानः अभिशस्तिपाः भुवनस्य राजा पूयमानः ब्रह्मणे गातुं विदत् — प्राचीन कालसे यज्ञमें लाया हुआ, धनवान होनेवाला वह सोम, जलोंमें मिलकर शुद्ध होता हुआ, पत्थरोंसे कूटकर रस निकाला, छाननीसे छाना जाकर यज्ञमें आता है । इस सोमरसका यज्ञमें देवोंको अर्पण होनेके पश्चात् ऋत्विज आदि याजक सेवन करते हैं ।

८५४ त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ११ ॥
८५५ यथापवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविणं दधान इन्द्रे सं तिष्ठ जनयायुधानि ॥ १२ ॥
८५६ पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावा ऽपो वसानो अधि सानो अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवान्ति सीद मदिन्तमो मत्सर इन्द्रपानः ॥ १३ ॥

अर्थ— [८५४] हे (पवमान सोम) छाने जानेवाले सोम ! (धीराः नः पितरः) कर्म करनेमें बुद्धिमान् ऐसे हमारे पूर्वज (पूर्वे) प्राचीन कालमें (त्वया हि) तेरी सहायतासे (कर्माणि चक्रुः) यज्ञके कार्य करते रहे। (वन्वन्) शत्रुका निःपात करनेवाले (अवातः) शत्रुसे अहिंसित होकर (परिधीः अपोर्णु) शत्रुओंको दूर कर, शत्रुओंका पराजय कर और (वीरेभिः अश्वैः) वीरोंसे तथा घोडोंसे युक्त हमें करो तथा (नः) हमें (मघवा भव) धन देनेवाला हो ॥ ११ ॥

१ हे पवमान सोम ! नः पूर्वे धीराः पितरः त्वया हि कर्माणि चक्रुः— हे पवमान सोम ! हमारे प्राचीन बुद्धिमान पितरोंने तेरी सहायतासे हि अनेक यज्ञ याग किये थे।

२ वन्वन्— शत्रुओंका निःपात कर।

३ अवातः— शत्रुओंसे तुमको दुःख न हो। शत्रुओंसे तुम हिंसित न होवो।

४ परिधीः अपोर्णु— चारों ओरसे घेरनेवाले शत्रुओंको तू दूर कर।

५ वीरेभिः अश्वैः — वीरोंसे तथा घोडोंसे हम युक्त होकर रहें।

६ नः मघवा भव— हमें धन देनेवाला तू हो।

[८५५] हे सोम ! (यथा) जिस प्रकार तू पूर्व समयमें (मनवे) मननशील राजाके लिये (वयोधाः) अन्न देनेवाला (अमित्रहा) शत्रुका विनाश करनेवाला (वरिवोवित्) धनसे युक्त (हविष्मान्) हवनीय द्रव्योंसे युक्त होकर (अपवथाः) धन देनेके लिये यज्ञकर्ताके पास आते थे उस प्रकार (द्रविणं दधानः) धन लेकर (पवस्व) हमारे पास आ तथा (इन्द्रे संतिष्ठ) इन्द्रके पास जाकर रहो तथा (आयुधानि जनय) शस्त्रास्त्रोंको निर्माण करो ॥ १२ ॥

१ यथा मनवे वयोधा अमित्रहा— जैसा तू मननशीलके लिये अन्न देनेवाला तथा शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला होता है।

२ वरिवोवित् हविष्मान् अपवथाः— धन देनेवाला यज्ञ करनेवाला होकर रस देता है। यज्ञमें सोम रस देता है।

३ द्रविणं दधानः पवस्व— धन देकर सोमका रस निकालकर दे दो।

४ इन्द्र संतिष्ठ— इन्द्रको अर्पण करनेके लिये यज्ञमें रह।

५ आयुधानि जनय— शस्त्रास्त्र निर्माण कर। और वे शस्त्रास्त्र योग्य समयमें वीरोंको प्राप्त हों।

[८५६] हे सोम ! (मधुमान्) मीठे रसको देनेवाला (ऋतावा) यज्ञ करनेवाला (अपः वसानः) जलोंसे मिश्रित होकर (अधि अव्ये सानौ) मेंढीके बालोंकी छाननीके ऊपर जाकर तू (पवस्व) रस दे दो। पश्चात् (मदिन्तमः) आनंद देनेवाला (इन्द्रपानः) इन्द्रको पीनेको देनेके लिये (मत्सरः) हर्ष बढानेवाला (घृतवन्ति द्रोणानि) जलसे युक्त पात्रोंमें (अव सीद) जाकर बैठ ॥ १३ ॥

८५७ वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।
सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन् न आयुः ॥ १४ ॥
८५८ एष स्य सोमो मतिभिः पुनानो ऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः ।
पयो न दुग्धमदितेरिषिर मुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥ १५ ॥
८५९ स्वायुधः सोतृभिः पूयमानो ऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्या ऽभि वायुमभि गा देव सोम ॥ १६ ॥

अर्थ— १ मधुमान्— सोमरस मीठा होता है ।
२ ऋतावा— सोमरस यज्ञ कराता है ।
३ अपः वसानः— पानीमें सोमरस मिलाया जाता है ।
४ अव्ये सानौ अधि पवस्व— भेडीके बालोंकी छाननीसे सोमका रस छाना जाता है ।
५ मदिन्तमः इन्द्रपानः मत्सरः— आनंद बढानेवाला यह रस इन्द्रको पीनेको देनेके लिये तैयार किया है ।
६ घृतवन्ति द्रोणानि अवसीद्— जलयुक्त पात्रोंमें सोमरस मिलाकर रखा जाता है ।

[८५७] हे सोम ! (शतधारः) सैकडों धाराओंसे तू (दिवः वृष्टिं पवस्व) द्युलोकसे वर्षा कर । (देववीतौ) यज्ञमें (सहस्रसा) सहस्रों प्रकारके धन दो और (वाजयुः) अन्न देनेकी इच्छा करता हुआ (सिन्धुभिः कलशे सं) जलोंमें मिलकर कलशमें जाकर रह । तथा (नः आयुः प्रतिरन्) हमारी आयु बढाकर (उस्रियाभिः सं) गोदुग्धसे मिश्रित होकर यज्ञमें आओ ॥ १४ ॥

१ शतधारः दिवः वृष्टिं पवस्व— सैकडों जलधाराओंसे द्युलोकसे वृष्टि करो ।
२ देववीतौ सहस्रसा— यज्ञमें हजारों प्रकारोंसे धन दो ।
३ वाजयुः— अन्न देनेकी इच्छा कर ।
४ सिन्धुभिः कलशे सं पवस्व— जलोंके साथ मिश्रित होकर कलशमें अपना रस सुरक्षित रखो ।
५ नः आयुः प्रतिरन्— हमारी आयु बढा दो ।
६ उस्रियाभिः सं पवस्व— गौओंके दूधके साथ मिश्रित होकर सोम यज्ञस्थानमें रहे । यज्ञस्थानमें सोमरस गौके दूधके साथ मिश्रित करके रखा जाय ।

[८५८] (एषः स्यः सोमः) यह वह सोम (मतिभिः पुनानः) बुद्धिवानोंके द्वारा शुद्ध होनेवाला (अत्यः वाजी न) चपल घोडेके समान (अरातीः तरति इत) शत्रुओंको दूर करता है । (अदितेः इषिरं दुग्धं पयः न) गौका स्वीकार करने योग्य दूधके समान सोमरस पवित्र है । (उरुः गातुः इव) विस्तीर्ण मार्गके समान (वोळ्हा सुयमः न) घोडा जैसा उत्तम रीतिसे स्वाधीन रहता है वैसा यह सोमरस यज्ञकर्ताओंके आधीन रहता है ॥ १५ ॥

१ एषः स्यः सोमः मतिभिः पुनानः अरातीः इत् तरति, अत्यः वाजी न— यह सोमरस याजकोंके द्वारा शुद्ध होकर शत्रुओंको दूर करता है, कष्टोंको दूर करता है । जैसा घोडा शत्रुको दूर करता है ।
२ अदितेः इषिरं दुग्धं पयः न— गौका दूध जैसा शारीरिक कष्टोंको दूर करता है ।
३ उरुः गातुः न— विस्तीर्ण मार्ग जैसा प्रवास करनेवालेके कष्टोंको दूर करता है ।
४ वोळ्हा सुयमः न— स्वाधीन रहनेवाला घोडा जैसा सुख देता है, वैसा यह सोम सुख देता है ।

[८५९] (स्वायुधः) उत्तम यज्ञीय साधनोंसे युक्त (सोतृभिः पूयमानः) यज्ञकर्ताओंके द्वारा शुद्ध किया जानेवाला तू सोम (गुह्यं चारु नाम) गुह्य सुन्दर रसात्मक स्वरूप (अभ्यर्ष) प्राप्त कर । रसरूप हो जाओ । (सप्तिः इव) घोडेके समान तू (श्रवस्या) हमारी इच्छाके अनुसार (वाजं अभि गमय) अन्न हमें प्राप्त हो ऐसा कर । हे (सोमदेव) सोमदेव (वायुं अभि) प्राणको प्राप्त करावो (गाः अभि) गोदुग्धको प्राप्त करावो ॥ १६ ॥

८६० शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति वह्निं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येना कविः सन् त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ १७ ॥
८६१ ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन् त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ १८ ॥

अर्थ — १ स्वायुधः सोतृभिः पूयमानः गुह्यं चारु नाम अभ्यर्ष— उत्तम यज्ञसाधनोंसे युक्त होकर यज्ञकर्ताओं द्वारा शुद्ध होनेवाला सोम यज्ञमें सुंदर रसका स्वरूप प्राप्त करता है । यज्ञमें सोमवल्लीसे रस निकालते हैं और उस रसका यज्ञ करते हैं ।

२ सप्तिः इव श्रवस्या वाजं गमय— घोडेके समान हमारी इच्छाके अनुकूल हमें अन्न प्राप्त कराओ । हमें इष्ट अन्न विपुल प्राप्त हो ।

३ हे सोमदेव ! वायुं अभि गमय— हे सोम ! हमें उत्तम प्राण प्राप्त हो । हमें दीर्घ जीवन प्राप्त हो ।

४ गाः अभि गमय— हमें गौओंका दूध भरपूर मिले ।

[८६०] (शिशुं) पापोंको दूर करनेवाले (जज्ञानं) नये उत्पन्न हुए (हर्यतं) सब जिसको चाहते हैं ऐसे सोमको यज्ञस्थानमें याज्ञिक (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं । (मरुतः) मरुत् गण (गणेन) संघके द्वारा (वह्निं शुम्भन्ति) वहन करनेवाले सोमको शुद्ध करते हैं । (कविः) ज्ञानी (सोमः) सोम (काव्येन) स्तोत्रपाठके साथ (कविः सन् रेभन्) कविके समान शब्द करता हुआ (गीर्भिः) स्तुतिसे (पवित्रं अत्येति) छाननीमेंसे छाना जाता है ॥ १७ ॥

१ जज्ञानं हर्यतं शिशुं मृजन्ति— नये उत्पन्न हुए प्रिय बालकको शुद्ध करनेके समान सोमको शुद्ध करते हैं । नये बालकको शुद्ध स्थितिमें रखना चाहिये ।

२ मरुतः गणेन वह्निं शुम्भन्ति — मरुत गणशः सोमको शुद्ध करते हैं ।

३ कविः सोमः काव्येन कविः सन् रेभन् गीर्भिः पवित्रं अत्येति— क्रांतदर्शी सोम स्तोत्रपाठके साथ कविके समान काव्य सुनता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है । सोमरस पीनेसे काव्य करनेकी स्फूर्ति होती है इस कारण सोमरसको यहां कवि करके कहा है ।

[८६१] (ऋषिमनाः) ऋषियोंके समान मननशील (ऋषिकृत्) ऋषियोंके समान कार्य करनेवाला (स्वर्षाः) स्वयं प्रकाशी (सहस्रणीथः) सहस्रों स्तुतिस्तोत्र जिसके गाये जाते हैं, (कवीनां पदवीः) कवियोंके पदका धारण करनेवाला (यः) जो सोम है वह (महिषः) बडा महान (सोमः) सोम (तृतीयं धाम सिषासन्) तीसरे महान स्थानमें रहनेवाला (स्तुप्) स्तुतिसे प्रशंसित होकर (विराजं) तेजस्वी इन्द्रको (अनुराजति) प्रकाशित करता है ॥ १८ ॥

१ ऋषिमनाः ऋषिकृत् स्वर्षा— ऋषियोंके समान मनन शक्ति देनेवाला ऋषियोंके समान कार्य करनेवाला स्वयं प्रकाशमान सोम है ।

२ कवीनां पदवीः सहस्रणीथः महिषः सोमः— कवित्वका पद लेनेवाला अनेक स्तुतिस्तोत्र जिसके गाये जाते हैं वह महान सोम है ।

३ तृतीयं धाम सिषासन् स्तुप् विराजं अनुविराजति— तीसरे श्रेष्ठ स्थानमें बैठनेवाला स्तुतिसे आनंदित होकर तेजस्वी इन्द्रको प्रकाशित करता है । यज्ञस्थानमें सोम श्रेष्ठ स्थानमें रहता है और वहांसे वह इन्द्रको अधिक तेजस्वी बनाता है । यज्ञस्थानमें जो सबसे श्रेष्ठ स्थान होता है वहां सोम रहता है और वहांसे वह इन्द्रको दिया जाता है ।

८६२ च॒मू॒षच्छ्ये॒नः श॑कु॒नो वि॒भृत्वा॑ गो॒वि॒न्दुर्द्र॒प्स आयु॑धानि॒ बिभ्र॑त् ।
अ॒पामू॒र्मिं सच॑मानः समु॒द्रं तु॒रीयं॒ धाम॑ महि॒षो वि॑वक्ति ॥ १९ ॥
८६३ मर्यो॒ न शु॒भ्रस्त॒न्वं॑ मृजा॒नो ऽत्यो॒ न सृत्वा॑ स॒नये॒ धना॑नाम् ।
वृषे॑व यू॒था परि॒ कोश॒मर्ष॒न् कनि॑क्रदच्च॒म्वो॒३॒॑रा वि॑वेश ॥ २० ॥
८६४ पव॑स्वेन्दो॒ पव॑मानो॒ महो॑भिः॒ कनि॑क्रद॒त् परि॒ वारा॑ण्यर्ष ।
क्रीळ॑ञ्च॒म्वो॒३॒॑रा वि॑श पू॒यमा॑न॒ इन्द्रं॑ ते॒ रसो॑ मदि॒रो म॑मत्तु ॥ २१ ॥
८६५ प्रास्य॒ धारा॑ बृह॒तीर॑सृग्र॒न्नक्तो॒ गोभिः॑ क॒लशाँ॒ आ वि॑वेश ।
साम॑ कृ॒ण्वन् त्सा॑म॒न्यो॑ विप॒श्चित् क्रन्द॑न्नेत्य॒भि सख्यु॒र्न जा॒मिम् ॥ २२ ॥

अर्थ—[८६२] (चमूषत्) कलशमें रहनेवाला (श्येनः) प्रशंसनीय (शकुनः) शक्तिमान (विभृत्वा) यज्ञ पात्रोंमें जानेवाला (गोविन्दुः) गौओंके दूधमें मिलनेकी इच्छा करनेवाला (द्रप्सः) रसके रूप (आयुधानि बिभ्रत्) यज्ञके पात्रोंमें रहनेवाला (अपां उर्मिं समुद्रं) अन्तरिक्षमें बहनेवाले जलमें (सचमानः) रहनेवाला (महिषः) महान् सोम (तुरीयं धाम विवक्ति) चतुर्थस्थानमें रहता है ॥ १९ ॥

यज्ञस्थानमें सोम रहता है वह सोमरस इन गुणोंसे युक्त है-चमूषत्-कलशोंमें सोमरस रहता है । वह (श्येनः) प्रशंसनीय होता है, (शकुनः) बडी शक्तिसे युक्त होता है, (विभृत्वा) यज्ञके कालमें यज्ञ पात्रोंमें रखा होता है, (गोविन्दुः) गौवोंके दूधके साथ मिलकर रखा जाता है, (द्रप्सः) वह सोम यज्ञके समय रसके रूपमें रहता है, (आयुधानि बिभ्रत्) यज्ञके पात्रोंमें रहता है, यज्ञके पात्रोंको धारण करता है, अथवा यज्ञके पात्र उस सोमरसको धारण करते हैं (अपां ऊर्मिं समुद्रं सचमानः) जलोंमें मिश्रित होकर सोमरस रहता है, (महिषः) महान् शक्ति देनेवाला यह सोमरस है । यह सोम यज्ञस्थानमें श्रेष्ठ स्थानमें रखा रहता है ।

[८६३] (शुभ्रः मर्यः न) गौर वर्ण या अलंकारोंसे युक्त मनुष्यके समान (तन्वं मृजानः) अपने शरीरको स्वच्छ करता हुआ (धनानां सनये) धनोंको प्राप्त करनेके लिये (अत्यः न) चपल घोडेके समान (सृत्वा) शीघ्रतासे जानेवाला (वृषा इव युथा) घोडा जैसा समूहमें जाता है (कोशं परि अर्षन्) यज्ञपात्रमें जाते हुए यह सोमरस (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (चम्वोः आ विवेश) कलशमें प्रवेश करता है ॥ २० ॥

[८६४] हे (इन्दो) सोम ! (महोभिः पवमानः) बडे याजकोंके द्वारा छाना जानेवाला (कनिक्रतत्) शब्द करता हुआ (वाराणि परि अर्ष) छाननीमेंसे चला जा अर्थात् छाना जा । (क्रीळन्) खेलता हुआ (चम्वोः आविश) यज्ञ पात्रोंमें जाकर रह । (पूयमानः) स्वच्छ होकर (ते रसः) तेरा रस (मदिरः) आनंद बढानेवाला होकर (इन्द्रं ममत्तु) इन्द्रका आनंद बढावे ॥ २१ ॥

[८६५] (अस्य) इस सोमरसकी (बृहतीः धाराः) बडी रसधाराएं (प्र असृग्रन्) विशेष रीतिसे चलने लगी । पश्चात् (गोभिः अक्तः) गौके दूधसे मिला हुआ सोमरस (कलशान् आ विवेश) कलशोंमें प्रविष्ट हुआ । (साम कृण्वन्) सामगायन करनेवाला (सामान्यः) सामवेदी (विपश्चित्) ज्ञानी याजक (क्रन्दन्) साम गायन करता हुआ (अभि एति) आगे जाता है । (सख्युः जामिं न) मित्ररूपी स्त्रीके पास जैसा पुरुष जाता है ॥ २२ ॥

८६६ अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून् प्रियां न जारो अभिगीत इन्दुः ।
सीदन् वनेषु शकुनो न पत्वा सोमः पुनानः कलशेषु सत्ता ॥ २३ ॥
८६७ आ ते रुचः पवमानस्य सोम योषेव यन्ति सुदुघाः सुधाराः ।
हरिरानीतः पुरुवारो अप्स्व- चिक्रदत् कलशे देवयूनाम् ॥ २४ ॥

[९७]

(ऋषिः- १-३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, ४-६ वासिष्ठ इन्द्रप्रमतिः, ७-९ वासिष्ठो वृषगणः, १०-१२ वासिष्ठो मन्युः, १३-१५ वासिष्ठ उपमन्युः, १६-१८ वासिष्ठो व्याघ्रपाद्, १९-२१ वासिष्ठः शक्तिः, २२-२४ वासिष्ठः कर्णश्रुद्, २५-२७ वासिष्ठो मृळीकः, २८-३० वासिष्ठो वसुक्रः, ३१-४४ पराशरः शाक्त्यः, ४५-५८ कुत्स आङ्गिरसः। देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः- त्रिष्टुप्।)

८६८ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ १ ॥

अर्थ — [८६६] हे (पवमानः) सोम ! (अभिगीतः इन्दुः) स्तुति किया गया सोमरस (शत्रून् अपघ्नन्) शत्रुओंका नाश करके (एषि) आता है । (जारः प्रियां न) जार जैसा प्रिय स्त्रीके समीप जाता है । (पत्वा शकुनः) अपने स्थान पर आनेवाला पक्षी जैसा आता है वैसा (वनेषु सीदन् सोमः) जलके साथ मिलनेवाला सोम (पुनानः) शुद्ध होकर (कलशेषु सत्ता) कलशोंमें बैठता है ॥ २३ ॥

[८६७] हे (सोम) सोम ! (पवमानस्य ते) रस निकाले जानेवाले (रुचः) तेरे प्रकाश (योषा इव) स्त्रीके समान (सुधारा सुदुघाः यन्ति) उत्तम धारासे दूधकी धाराके समान जाते हैं । (हरिः) हरे रंगका यह सोम (आनीतः) ऋत्विजोंने लाया हुआ (पुरुवारः) बहुत बार स्वीकार करने योग्य (अप्सु) जलमें (देवयूनां कलशे) देवोंकी प्राप्तीकी इच्छा करनेवाले याजकोंके यज्ञस्थानीय कलशमें (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ जाता है ॥ २४ ॥

१ हे सोम ! पवमानस्य ते रुचः यन्ति— हे सोम ! रस निकाले तुझसे प्रकाश किरण बाहर आते हैं ।
२ योषा इव— स्त्रियां जैसी आती हैं वैसी ये प्रकाश धाराएं आती हैं ।
३ सुधाराः सुदुघाः यन्ति— उत्तम दूधकी धाराके समान सोमकी रस धाराएं चलती हैं ।
४ हरिः आनीतः पुरुवारः देवयूनां कलशे अचिक्रदत्— यह हरे रंगका सोम लाया जानेपर अनेक बार देवोंके लिये रखे कलशमें शब्द करता हुआ प्रविष्ट होता है ।

[९७]

[८६८] (अस्य प्रेषा) इस सोमकी प्रेरक शक्ति (हेमना पूयमानः) सुवर्णके साथ शुद्ध होकर (देवः) यह दिव्य सोम (रसं) अपने रसको (देवेभिः) दिव्य गुणोंके साथ (समपृक्त) देता है । (सुतः) रस निकाला यह सोम (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं परि एति) छाननामेंसे छाना जाता है जैसा (होता) हवनकर्ता (पशुमन्ति मिता सद्म) गौ आदि पशु जहां बांधे होते हैं उस घरके समीप जाता है ॥ १ ॥

१ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानः देवः देवेभिः रसं समपृक्त — इस सोमकी दिव्य शक्ति सुवर्णके साथ शुद्ध होकर यह दिव्य सोम अपने दिव्य शक्ति युक्त रसको देता है । सोमका रस निकालनेके समय हाथकी अंगुलिमें सोनेकी अांगठी रखनी चाहिये । इससे सोमसे रस निकालनेके समय उस सुवर्णका स्पर्श उस रसको हो जाय । इस सुवर्णके स्पर्शसे सोमरसमें दिव्य शक्ति प्रकट होती है ।

८६९ भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ २ ॥
८७० समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३ ॥
८७१ प्र गायताभ्यर्चाम देवान् त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥ ४ ॥

अर्थ— २ सुतः रेभन् पवित्रं परि एति— सोमरस शब्द करता हुआ छाननीमेंसे छाना जाता है ।

३ होता पशुमन्ति मिता सद्म परि एति— होता याजक गौ आदि पशु बांधे रहते हैं उस घरके समीप पशुओंका निरीक्षण करनेके लिये जाता है और वहां गौ आदि पशु कैसे हैं इसका निरीक्षण करता है ।

[८६९] (भद्रा) कल्याण करनेवाले (समन्या) संग्रामके योग्य (वस्त्रा) वस्त्रोंको (वसानः) धारण करनेवाला (महान् कविः) बडा काव्य कर्ता (निवचनानि शंसन्) उत्तम स्तोत्र बोलनेवाला (विचक्षणः) महा ज्ञानी (जागृविः) जाग्रत रहनेवाला सोम (देववीतौ) देवोंके प्राप्तिके लिये किये जानेवाले यज्ञमें (चम्वोः आ वच्यस्व) कलशमें प्रवेश करो ॥ २ ॥

१ भद्रा वस्त्रा वसानः— कल्याण करनेवाले वस्त्र मनुष्य पहने । हानि करनेवाले वस्त्र कदापि पहनने नहीं चाहिये ।

२ समन्या वस्त्रा वसानः— युद्धके समय युद्धके लिये अनुकूल हों, ऐसे वस्त्र पहनने योग्य हैं ।

३ महान् कविः निवचनानि शंसन् — उत्तम दूर दृष्टीसे युक्त ज्ञानी उत्तम उपदेश करें, जिससे उस उपदेशको सुननेवाले योग्य आचरण करनेमें समर्थ हो जांय ।

४ विचक्षणः जागृविः— महा ज्ञानो सदा जाग्रत रहें और योग्य उपदेश करते रहें, जिसको सुननेवाले सदा जाग्रत रहकर योग्य मार्गसे चलकर उन्नति प्राप्त करनेमें समर्थ हो जांय ।

५ देववीतौ चम्वोः आवच्यस्व— सोमरस यज्ञमें कलशोंमें रखा जाय ।

[८७०] (यशसां यशस्तरः) यशस्वियोंमें अधिक यशस्वी (क्षैतः) पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाला (प्रियः) आनंद बढानेवाला सोम (सानौ अव्ये) ऊंचे भेडीके बालोंकी छाननीपर (अस्मे) हमारे लिये (सं मृज्यते उ) शुद्ध किया जाता है । (पूयमानः) स्वच्छ होनेवाला तू (धन्वा) अन्तरिक्षमें (अभि स्वर) शब्द करता हुआ जाकर रह । (यूयं) तुम सोमके रसों (स्वस्तिभिः) कल्याण करनेवाले मार्गोंसे (सदा नः पात) सदा हमारा रक्षण करो । ॥ ३ ॥

१ यशसा यशस्तरः क्षैतः प्रियः सानौ अव्ये अस्मे सं मृज्यते— यशसे अधिक यशस्वी भूमिपर उत्पन्न होनेवाला प्रिय सोम भेडीके बालोंकी छाननीपर छाना जाता है ।

२ पूयमानः धन्वा अभि स्वर— छाना जानेवाला यह सोम अन्तरिक्षके स्थानपर रहकर शब्द करता है ।

३ यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात— तुम कल्याण करनेके मार्गोंसे हमारा सर्वदा रक्षण करो । कल्याण करनेके मार्ग उत्तम तथा सच्चा कल्याण करनेवाले हों । उन्हीं सत्य मार्गोंसे हमारा रक्षण होता रहे ।

[८७१] हे याजको ! (प्र गायत) सोमकी विशेष स्तुति करो । तथा (देवान् अभ्यर्चाम) देवोंकी अर्चना हम करेंगे (महते धनाय) बडा धन प्राप्त करनेके लिये (सोमं हिनोत) सोमको प्रेरित करो । (स्वादुः) मीठा सोमरस (अव्यं वारं) भेडीके बालोंकी छाननी पर (अति पवाते) छाना जाता है । (देवयुः नः) देवोंके पास जानेवाला यह हमारा सोम (कलशं आसीदति) कलशमें रहता है ॥ ४ ॥

८७२ इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन् सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्व—मगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥ ५ ॥

८७३ स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

अर्थ— १ प्र गायत— सोमकी विशेष स्तुति करो ।

२ देवान् अभ्यर्चाम— हम देवोंकी अर्चना करेंगे ।

३ महते धनाय सोमं हिनोत— बहुत धन प्राप्त करानेके लिये सोमके प्रेरित करो । सोमकी सहायतासे यज्ञ करनेके लिये बहुत धन मिले ।

४ स्वादुः अव्यं वारं अति पवते— मीठा सोमरस भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

५ देवयुः नः कलशं आसीदति — देवोंके पास जानेवाला यह सोम कलशमें रहता है ।

[८७२] (देवानां सख्यं) देवोंमें साथ मित्रताको (उप आयन्) प्राप्त करके (सहस्रधारः इन्दुः) सहस्रों धाराओंसे यह सोमरस (मदाय) आनंदके लिये (पवते) रस देता है । (नृभिः स्तवानः) याजकों द्वारा स्तुति किया हुआ (पूर्वं धाम) पुराणे स्थानको प्राप्त करता है । (महते सौभगाय)-बडे सौभाग्यके लिये (इन्द्रं अनु अगन्) इन्द्रको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ देवानां सख्यं उप आयन् सहस्रधारः इन्दुः मदाय पवते— देवोंके साथ मित्रता करनेकी इच्छासे हजारों धाराओंसे छाननीमेंसे छाना जानेवाला सोम देवोंको आनंद देनेके लिये रस निकालता है ।

२ नृभिः स्तवानः— याजक जन सोमकी स्तुति करते हैं ।

३ पूर्वं धाम महते सौभगाय इन्द्रं अनु अगन् — पुराणे यज्ञस्थानमें महान सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये यह सोमरस इन्द्रको प्राप्त करता है ।

[८७३] हे सोम ! (हरिः पुनानः) हरे रंगका तू शुद्ध होकर (स्तोत्रे) स्तोत्रपाठ होनेपर (राये अर्ष) धन यज्ञके लिये प्राप्त करनेके लिये आगे बढ । (ते मदः) तेरा आनंद देनेवाला रस (भराय) शत्रुको दूर करनेके लिये (इन्द्रं गच्छतु) इन्द्रके पास जाय । (सरथं) एक ही रथपर बैठकर (देवैः) देवोंके साथ (याहि) जा । (राधः अच्छ) धन प्राप्त करनेके लिये जा । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम अच्छे साधनोंसे सदा हम सबकी सुरक्षा करो ॥ ६ ॥

१ पुनानः हरिः स्तोत्रे राये अर्ष— छाना जानेवाला हरे रंगका सोम स्तुति करनेपर धन प्राप्त करनेके लिये आगे बढे ।

२ ते मदः भराय इन्द्रं गच्छतु— तेरा आनंद बढानेवाला रस शत्रुसे युद्ध करनेके समय इन्द्रके पास जाय ।

३ देवैः सरथं याहि— देवोंके साथ उनके रथमें रहकर सोमरस उनके साथ चले ।

४ राधः अच्छ— धन योग्य रीतिसे प्राप्त हो ।

५ यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात— तुम उत्तम मार्गोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ।

८७४ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ७ ॥
८७५ प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम् ॥ ८ ॥
८७६ स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः ॥ ९ ॥

अर्थ— [८७४] (उशना इव) उशना नामक ऋषिके समान (काव्यं ब्रुवाणः) काव्यका उच्चारण करनेवाला (देवः) स्तुति करनेवाला ऋषि (देवानां जनिम) देवोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त (प्र विवक्ति) कहता है । (महिव्रतः) बडा व्रत पालन करनेवाला (शुचिबन्धुः) शुद्ध तेजसे युक्त (पावकः) शुद्धता करनेवाला (वराहः) श्रेष्ठ दिन माननेवाला (रेभन्) शब्द करता हुआ सोम (पदा) अपने पात्रोंमें (अभ्येति) जाता है ॥ ७ ॥

१ उशना इव काव्यं ब्रुवाणः देवः देवानां जनिम प्रविवक्ति— उशना ऋषिके समान काव्य करके बोलनेवाला देव देवोंके जन्मके वृतान्त बोलता था ।

२ महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः वराहः रेभन् पदा अभ्येति— महान् नियमोंका पालन करनेवाला स्वयं शुद्ध और दूसरोंको पवित्र करनेवाला श्रेष्ठ दिन शब्द करता हुआ अपने पावोंसे आगे जाता है ।

[८७५] (हंसासः) शत्रुओंके द्वारा आक्रमण होनेपर (वृषगणाः) बलवान् वीरोंके समुदाय (अमात्) शत्रुसे त्रस्त होकर (तृपलं) शीघ्र शत्रुपर प्रहार करनेवाले (मन्युं) और शत्रुका विनाश करनेवाले सोमके समीप (अच्छ) उत्तम प्रकार (अस्तं अयासुः) यज्ञ गृहके पास गये । (आंगूष्यं) सबको प्राप्त करने योग्य (दुर्मर्षं) शत्रुके आक्रमण जहां नहीं होते ऐसे (पवमानं) सोमके उद्देश्यसे (साकं) साथ साथ (सखायः) मित्ररूप याजक (वाणं) वाद्यको (प्र वदन्ति) बजाते हैं ॥ ८ ॥

१ हंसासः वृषगणाः अमात् तृपलं मन्युं अच्छ अस्तं अयासुः— शत्रुओंका आक्रमण जिनपर हुआ है ऐसे बलवान् वीर शत्रुसे संत्रस्त होकर शीघ्रतासे शत्रुके नाश करनेवाल सोमके पास जाते हैं । सोमरस पीकर शीघ्र शत्रुका नाश करते हैं । सोमरस पीनेसे वीरता बढती है ।

२ आंगूष्यं दुर्मर्षं पवमानं साकं सखायः वाणं प्रवदन्ति— सबको प्राप्त करने योग्य, शत्रुसे आक्रमण जिसपर नहीं होते ऐसे सोमको संमानित करनेके लिये वाद्य बजाते हैं । सोम यज्ञमें वाद्यभी बजाये जाते हैं ।

[८७६] (सः रंहते) वह सोम शीघ्रतासे जाता है (उरुगायस्य जूतिं) बहु प्रशंसितके गमन सामर्थ्यका अनुकरण करता है । (वृथा) सहज (क्रीळन्तं) खेलनेवाले इस सोमको (गावः) गमन करनेवाले अन्य कोई (न मिमीते) अनुकरण कर नहीं सकते । (तिग्म शृंगः) तीक्ष्ण तेजसे युक्त सोम (परीणसं कृणुते) अनेक रीतिसे अपना तेज प्रकट करता है । (दिवाः हरिः ददृशे) दिनमें यह सोम हरे रंगका दीखता है (नक्तं ऋज्रः) और रातके समय स्पष्ट प्रकाशयुक्त दीखता है ॥ ९ ॥

१ सः रंहते— वह सोम शीघ्रतासे जाता है । पात्रोंमें प्रवेश करता है ।

२ उरुगायस्य जूतिं— चपलतासे गमन करनेवालेका अनुकरण करता है ।

३ वृथा क्रीडन्तं गावः न मिमीते— सहज खेलनेवाले इस सोमका अनुसरण कोई अन्य नहीं कर सकते, ऐसी इसकी गति होती है ।

८७७ इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यराती र्वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥ १० ॥
८७८ अध धारया मध्वा पृचान स्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ॥ ११ ॥
८७९ अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान् त्स्वेन रसेन पृञ्चन् ।
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये ॥ १२ ॥

अर्थ— ४ गावः— शीघ्रतासे गमन करनेवाले ।

५ तिग्मशृंगः परीणसं कृणुते— तीक्ष्ण तेजसे युक्त यह सोम अनेक रीतिसे अपना तेज प्रकाशित करता है ।

६ दिवा हरिः ददृशे— यह दिनमें हरा दीखता है ।

७ नक्तं ऋज्रः— रातमें तेजस्वी प्रकाशवाला दीखता है ।

[८७७] (इन्दुः वाजी) सोम बल बढानेवाला है (गोन्योघाः) वह गमयशील (सोमः) सोम (इन्द्रे) इन्द्रमें (सहः इन्वन्) बल बढानेवाले रसको प्रेरित करता है (मदाय पवते) उस इन्द्रके आनंद बढानेके लिये रस निकालकर देता है, (रक्षः हन्ति) राक्षसोंको मारता है । (अरातीः परि बाधते) शत्रुओंका चारों ओरसे संहार करता है, (वरिवः कृण्वन्) धन देता है और यह सोम (वृजनस्य राजा) बलका स्वामी है ॥ १० ॥

१ इन्दुः वाजी— सोमरस बल बढाता है ।

२ गोन्योघाः सोमः इन्द्रे सहः इन्वन्— वह प्रगतिशील सोम इन्द्रमें बल बढाता है ।

३ मदाय पवते— इन्द्रका आनंद बढानेके लिये रस निकालता है ।

४ रक्षः हन्ति— राक्षसोंका नाश करता है । देव सोमरस पीते हैं और अपना बल बढाकर दुष्ट राक्षसोंका नाश करते हैं ।

५ अरातीः परि बाधते— सोम शत्रुओंको विनष्ट करता है ।

६ वरिवः कृण्वन्— सोम धन देता है ।

७ वृजनस्य राजा— यह सोमरस बलका स्वामी है ।

[८७८] (अध) इसके नंतर (अद्रिदुग्धः) पत्थरोंसे कूटकर निकाला सोमरस (मध्वा धारया) मधुर धारासे (पृचानः) देवोंके साथ संबंध करके (रोम तिरः) बालोंकी छाननासे छाना जाकर (पवते) रस निकालकर देता है । (इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः) इन्द्रके साथ मित्रता करता हुआ (देवः मत्सरः) प्रकाशयुक्त होकर आनंद देता है वह (इन्दुः) सोमरस (देवस्य मदाय पवते) देवोंके आनंदके लिये रस देता है ॥ ११ ॥

१ अध अद्रिदुग्धः मध्वा धारया पृचानः रोम तिरः पवते— अब पत्थरोंसे कूटकर निकाला सोमरस मधुर धारासे छाननीमेंसे छाना जाकर नीचेके पात्रोंमें उतरता है ।

२ इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः— यह सोम इन्द्रके साथ मित्रता करना चाहता है ।

३ देवः मत्सरः इन्दुः देवस्य मदाय पवते – दिव्य आनंद बढानेवाला यह सोम देवोंका आनंद बढानेके लिये रस देता है ।

[८७९] (प्रियाणि धर्माणि) प्रिय गुणोंको, प्रिय तेजोंको (ऋतुथा वसानः) योग्य कालमें धारण करनेवाला (देवः इन्दुः) दिव्य सोमरस (पुनानः) छाना जाकर (अभि पवते) रस देता है । (स्वेन रसेन) अपने रससे (देवान् पृञ्चन्) देवोंको संयुक्त करता है । इसको (दश क्षिपः) दश अंगुलियां (सानौ अव्ये) उच्च स्थानमें स्थित छाननीमेंसे (अव्यत) छानती हैं ॥ १२ ॥

८८० वृषा शोणो अभिकनिक्रदुद्गा नुदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।
इन्द्रस्येव वुग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचुमेमाम् ॥ १३ ॥
८८१ रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमानः संतुनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः ॥ १४ ॥
८८२ एवा पवस्व मदिरो मदायो—दग्राभस्य नमयन् वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ १५ ॥

अर्थ— १ प्रियाणि धर्माणि ऋतुथा वसानः— प्रिय गुणधर्मोंको योग्य समयमें धारण करता है, ऐसा यह सोम गुणवान् है ।

२ देवः इन्दुः पुनानः अभि पवते— दिव्य सोम छाना जाकर रस निकालकर देता है ।

३ स्वेन रसेन देवान् पृञ्चन्— अपने रससे देवोंको संतुष्ट करता है ।

४ दश क्षिपः अव्ये सानौ अव्यत— दस अंगुलियां उस सोमको भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छानती हैं ।

[८८०] (शोणः) लाल वर्णवाला (वृषा) बलवान् बैल (गाः) गौओंको देखकर (अभिकनिक्रदत्) शब्द करता है । वैसा (नदयन्) शब्द करनेवाला सोम (पृथिवीं उत द्यां एति) पृथिवीपर तथा द्युलोकपर जाता है । (वग्नुः) शब्द जैसा (इन्द्रस्य आजौ इव) इन्द्रका युद्धमें (आ शृण्वे) सुनाई देता है इस प्रकार (प्रचेतयन्) उत्साह देता हुआ (इमां वाचं अर्षति) इस शब्दको प्रकट करता है ॥ १३ ॥

१ शोणः वृषा गाः अभिक्रनिक्रदत्— लाल रंगका बैल गौओंको देखकर शब्द करता है ।

२ तथा नदयन् सोमः पृथिवीं उत द्यां एति— उस प्रकार शब्द करता हुआ सोम पृथिवीपर तथा द्युलोकपर जाता है ।

३ इन्द्रस्य आजौ इव वग्नुः आ शृण्वे— युद्धमें जैसा इन्द्रका शब्द सुनाई देता है ।

४ प्रचेतयन् इमां वाचं अर्षति— उत्साह बढाता हुआ इस शब्दको सोम करता है । सोमरस पात्रमें गिरता है उस समय शब्द करता हुआ गिरता है ।

[८८१] हे सोम ! (रसाय्यः) उत्तम मधुर रस देनेवाला (पयसा पिन्वमानः) दूधके साथ मिला हुआ (ईरयन् मधुमन्तं अंशुं) मीठे सोमरसको प्रेरित करके तू (एषि) जाता है । हे सोम ! (परिषिच्यमानः) जलके साथ मिलकर (पवमानः) छाना जाकर (संतनिं) सतत चलनेवाली धाराको (कृण्वन्) निर्माण करके (इन्द्राय एषि) इन्द्रके पास जाता है ॥ १४ ॥

१ रसाय्यः पयसा पिन्वमानः— रसरूप सोम दूधके साथ मिलाया जाता है ।

२ मधुमन्तं अंशुं ईरयन् एषि— मीठे सोमरसको प्रेरित करता है । सोमसे मीठा रस प्रवाहित होता है ।

३ परिषिच्यमानः पवमानः संतनिं कृण्वन् इन्द्राय एषि— जलके साथ मिलकर सोमरस धाराके रूपसे इन्द्रके पास जाता है । इन्द्र सोमरसका पान करता है ।

इन्द्र आदि देवोंको यह सोमरस दिया जाता है । वे देव इस सोमरसका सेवन करते हैं ।

[८८२] हे (सोम) सोम ! (मदिरः) आनंद देनेवाला तू (उदग्राभस्य) मेघको (वधस्नैः नमयन्) हनन करनेके साधनोंसे नम्र करता हुआ (मदाय पवस्व) देवोंको आनंद देनेके लिये रस निकालकर देओ । (रुशन्तं वर्णं) तेजस्वी वर्णको (परि भरमाणः) सब प्रकारसे धारण करके (सिक्तः) यज्ञके पात्रोंमें रखा तू (गव्युः) गौ दुग्धकी इच्छा करके (नः परि अर्ष) हमारे पास आ ॥ १५ ॥

८८३ जुष्टी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।
घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ॥ १६ ॥
८८४ वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।
स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन् बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून् ॥ १७ ॥
८८५ ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।
अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान् ॥ १८ ॥

अर्थ— १ हे सोम ! मदिरः उदग्राभस्य बधस्नैः नमयन् मदाय पवस्व— हे सोम ! आनंद देनेवाला तू मेघोंको तोडनेके साधनोंसे नम्र करके देवोंको आनंद देनेके लिये रस निकालकर दो । सोमरसमें जल मिलाकर उस रसको पीनेके लिये योग्य करो ।

२ रुशन्तं वर्णं परि भरमाणः— तेजस्वी प्रकाश चारों ओरसे बढाकर यज्ञपात्रोंमें रहो ।

३ गव्युः नः परि अर्ष— गौके दूधसे मिलकर हमारे पास आकर रहो ।

[८८३] हे (इन्दो) सोम ! (जुष्टी) स्तुतिसे आनंदित होकर (नः) हमारे लिये (सुपथा) उत्तम मार्ग (वरिवांसि सुगानि कृण्वन्) तथा धन सुगमतासे प्राप्त होने योग्य करके (उरौ पवस्व) कलशमें अपना रस निकालकर रख । (घनेव) शस्त्रोंसे (विष्वक्) सब (दुरितानि विघ्नन्) राक्षसोंको विनष्ट करके (सानो) उच्च भागसे (अव्ये) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (स्नुना) धारासे (अधि धन्व) प्रवाहित हो ॥ १६ ॥

१ हे इन्दो ! जुष्टी नः सुपथा वरिवांसि सुगानि कृण्वन्— हे सोम ! तू स्तुति की जानेपर हमारे लिये उत्तम मार्गसे धन प्राप्त होते रहें ऐसा कर ।

२ उरौ पवस्व— कलशमें रस निकालकर रखो ।

३ विष्वक् दुरितानि विघ्नन्— सब पापोंको पाप करनेवाले राक्षसोंको नष्ट कर दो ।

४ अव्ये सानौ स्नुना अधि धन्व— भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपरसे धारासे प्रवाहित होवो ।

[८८४] हे सोम ! (नः) हमारे सुखके लिये (दिव्यां) द्युलोकमेंसे होनेवाली (जिगत्नुं) प्रगतिशील (इळावतीं) अन्नको उत्पन्न करनेवाली (शंगयीं) सुख देनेवाली (जीरदानुं) शीघ्रतासे दान देनेवाली (वृष्टिं) वृष्टिको (अर्ष) दे दो । हे (इन्दो) सोम ! तू (स्तुकेव वीता) सन्तानोंके समान (बन्धून् विचिन्वन्) संबंधियोंको प्राप्त करके (अवरान् वायून्) निम्न स्थानके वायु सदृश सुख देनेवाले संबंधियोंसे अपना संबंध कर ॥ १७ ॥

१ दिव्यां जगत्नुं इळावतीं शंगयीं जीरदानुं वृष्टिं अर्ष— द्युलोकसे आनेवाली, प्रगति करनेमें सहाय करनेवाली, अन्न उत्पन्न करनेवाली, सुख देनेवाली, दान देनेवाली वर्षा, हे सोम ! तू उत्पन्न कर ।

२ स्तुकेन वीता बन्धून् विचिन्वन् अवरान् वायून्— सन्तानोंके समान अपने बांधवोंको ढूंढकर प्राप्त कर और अपने सुखके लिये उत्तम शुद्ध वायुको प्राप्त कर । उत्तम शुद्ध वायु जहां होगी, वहां अपना स्थान करो । सुखी जीवन होनेके लिये उत्तम शुद्ध वायुकी आवश्यकता होती है । ऐसे शुद्ध वायुके स्थानमें ही निवास करना योग्य है ।

[८८५] (पुनानः) शुद्ध होकर तू (ग्रथितं) पापोंसे युक्त हुए मुझे (वि ष्य) पापोंसे मुक्त कर । (ग्रंथिं न) जैसा कोइ गांठको खोलता है । तथा हे सोम ! तू (ऋजुं गातुं च) सरल मार्ग तथा (वृजिनं च) बल हमें देओ । (हरिः आ सृजानः) हरे रंगका तू रस निकालनेपर (अत्यः न क्रदः) घोडेके समान शब्द कर । हे (देव) दिव्य सोम ! (मर्यः) शत्रुओंके लिये मारनेवाला हो और (पस्त्यावान्) अपने लिये उत्तम घरसे युक्त होकर (धन्व) कलशोंमें आकर रहो ॥ १८ ॥

८८६ जुष्टो मदा॑य दे॒वता॑त इन्दो॒ परि॒ ष्णुना॑ धन्व॒ सानो॒ अव्ये॑ ।
स॒हस्र॑धारः सुर॒भिरद॑ब्धः॒ परि॑ स्रव॒ वाज॑सातौ नृ॒षह्ये॑ ॥ १९ ॥
८८७ अ॒र॒श्मानो॒ ये॑ऽर॒था अयु॑क्ता॒ अत्या॑सो॒ न स॑सृ॒जा॒नास॑ आ॒जौ ।
ए॒ते शु॒क्रासो॑ धन्वन्ति॒ सोमा॒ देवा॑स॒स्ताँ उप॑ याता॒ पिब॑ध्यै ॥ २० ॥

अर्थ— १ पुनानः ग्रथितं वि ष्य— तू पवित्र होकर हमें पापोंसे मुक्त कर ।
२ ग्रंथिं न— जैसा कोई गांठ खोलता है उस प्रकार हमें मुक्त कर ।
३ ऋजुं गातुं— सरल मार्ग हमें बताओ ।
४ वृजिनं— हमें बल प्राप्त हो ऐसा कर ।
५ हरिः सृजानः अत्यः न आक्रन्द— हरे रंगका सोमका रस तैयार होनेपर वह घोडेके समान शब्द करता है, और कलशमें जाता है ।
६ मर्धः— दुष्टोंको मारनेवाला बनो ।
७ पस्त्यानां धन्व— अपने लिये उत्तम घर तैयार करो और उसमें जाकर रहो ।

[८८६] हे (इन्दो) सोम ! (मदाय जुष्टः) आनंद बढानेके लिये योग्य ऐसा तू (देवताते) यज्ञमें (सानौ अव्ये) ऊंचे भेडीके बालोंकी छाननीपर (स्नुना) धारासे (परि धन्व) चलकर रह । छाना जा (सहस्रधारः सुरभिः) सहस्रों धाराओंसे चलकर सुगंधि युक्त तू (अदब्धः) अहिंसित होता हुआ (वाजसातौ) अन्नके लाभके लिये (नृषह्ये) युद्धमें जानेवाले वीरोंके लिये (परि स्रव) रस देओ ॥ १९ ॥

१ हे इन्दो ! मदाय जुष्टः देवताते सानौ अव्ये स्नुना परि धन्व— हे सोम ! आनंद देनेके लिये योग्य तू यज्ञमें उच्च स्थान पर रहे भेडीके बालोंकी छाननीके ऊपर अपनी रसकी धारासे छाना जा । छाना जाकर शुद्ध हो जाओ ।

२ सहस्रधारः सुरभिः— हजारों धाराओंसे छाना जाकर उत्तम सुगंधसे युक्त बनो । सोमरस उत्तम रीतिसे छाना जानेपर उत्तम सुगंध देता है ।

३ अदब्धः वाजसातौ नृषह्ये परि स्रव— किसी शत्रुसे हिंसित न होकर अन्नके लिये किये जानेवाले युद्धमें सोमका रस उपयोगी है । अर्थात वीर सोमरस पीकर शत्रुको पराजित करके अन्न प्राप्त करते हैं ।

[८८७] (अरश्मानः) रस्सीसे विरहित (अरथा) रथोंसे विरहित (अयुक्ताः) किसी सत्कार्यमें न जानेवाले (ये आजौ) जो युद्धमें (ससृज्यमानासः) जानेवाले (अत्यासः न) घोडोंके समान त्वरासे ध्येय तक पहुंचते हैं, उस प्रकार (एते शुक्रासः सोमाः) ये शुद्ध सोमरस (धन्वन्ति) कलशोंमें जाते हैं । (देवासः) देव (तान् पिबध्यै) उन रसोंको पीनेके लिये (उप यात) जाते हैं ॥ २० ॥

१ अरश्मयः अरथाः अयुक्ताः आजौ ससृज्यमानासः अत्यासः न — रश्मीरहित, रथके साथ न जोडे, पर युद्धमें लिये गये घोडे जैसे होते हैं वैसे ये सोमरस यज्ञस्थानमें रहते हैं ।

२ एते शुक्रासः सोमा धन्वन्ति— ये शुद्ध सोमरस कलशोंमें जाकर वहां रहते हैं ।

३ देवासः तान् पिबध्यै उपयात— देव उन सोमरसोंको पीवें इसलिये वे सोमरस कलशोंमें जाकर रहते हैं । सोमरस कलशोंमें रखे जाते हैं । पश्चात् वे सोमरस देवोंको अर्पण किये जाते हैं । उसके बाद देव उन रसोंको पीते हैं ।

×

८८८ एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ॥ २१ ॥
८८९ तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥ २२ ॥
८९० प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ॥ २३ ॥

अर्थ— [८८८] हे (इन्दो) सोम ! (नः एव देववीतिं) हमारे हि यज्ञमें (नभः) द्युलोकसे (अर्णः) जल (चमूषु परिस्रव) यज्ञके कलशोंमें भर दे । पश्चात् (सोमः) सोमरस (काम्यं) प्राप्त करने योग्य (बृहन्तं) बडा (उग्रं वीरवन्तं रयिं) उग्र पुत्रयुक्त धन (अस्मभ्यं ददातु) हमें देवे ॥ २१ ॥

१ इन्दो ! नः एव देववीतिं नभः अर्णः चमूषु परिस्रव— हे सोम ! हमारे यज्ञमें आकाशसे जल लाकर यज्ञके पात्रोंमें रखे ।

२ सोमः काम्यं बृहन्तं उग्रं वीरवन्तं रयिं अस्मभ्यं ददातु— सोम इस इच्छा करने योग्य बडे उग्र सुपुत्र युक्त धनको हमें देवे । धन ऐसा चाहिये कि जिसके साथ वीरपुत्र भी हों । पुत्रपौत्रोंके विना केवल धन नहीं चाहिये ।

३ उग्रं वीरवन्तं रयिं अस्मभ्यं ददातु— उग्र वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त धन चाहिये । साधारण पुत्रपौत्र न हों । वे पुत्रपौत्र उत्तम वीर शूर हों । पराक्रम करनेवाले हों ।

[८८९] (वेनतः) इच्छा करनेवाले (मनसः) मनःपूर्वक स्तुति करनेवालेकी (वाक्) स्तुति (यदि तक्षत्) यदि इस सोमपर संस्कार करेगी । जैसी (धर्मणि) धारण करनेवालेकी वाणी (क्षोः अनीके) बोलनेवालेके मुखमें (ज्येष्ठस्य) श्रेष्ठ राजाकी स्तुति रहती है, उस प्रकार (आत्) पश्चात् (वरं जुष्टं पतिं) श्रेष्ठ सेवनीय सबके पालक (कलशे ईं इन्दुं) कलशमें रखे इस सोमरसको (वावशानाः गावः) प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली गौवें (आ आयन्) प्राप्त करती हैं ॥ २२ ॥

१ वेनतः मनसः वाक् यदि तक्षत्— इच्छा पूर्वक मनसे स्तुति करनेवालेकी स्तुति इस सोमपर संस्कार करती है । स्तुतिसे अच्छे संस्कार होते हैं ।

२ ज्येष्ठस्य धर्मणि क्षोः अनीके— श्रेष्ठ राजाकी स्तुति जैसी स्तुति करनेवालेके मुखमें होती है । श्रेष्ठकी स्तुति बोलनेवालेके मुखसे बाहर आती है ।

३ वावशानाः गावः वरं जुष्टं पतिं कलशे इन्दुं आयन्— इच्छा करनेवाली गौवोंका दूध श्रेष्ठ सेवनीय सोमरसके साथ कलशमें मिलाया जाता है । यज्ञस्थानमें गौवोंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है ।

[८९०] (दिव्यः) द्युलोकमें उत्पन्न हुआ (दानुदः) दाताओंको धन आदि देनेवाला (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान सोम (ऋताय) इन्द्रके लिये (ऋतं) सोमके सच्चे रसको (पवते) रस देता है । (राजा) यह राजा सोम (वृजन्यस्य धर्मा) उत्तम बलको धारण करनेवाला होता है । (दशभिः) दस (रश्मिभिः) अंगुलियोंसे (भूम प्र भारि) विशेष रीतिसे उसको धारण किया जाता है ॥ २३ ॥

१ दिव्यः दानुदः सुमेधाः ऋताय ऋतं पवते— दिव्य दाता उत्तम बुद्धिमान यह सोम इन्द्रके पीनेके लिये रस देता है ।

२ राजा वृजनस्य धर्मा— यह राजा सोम बलको धारण करता है और वीरका बल बढाता है ।

३ दशभिः रश्मिभिः भूम प्र भारि— दस अंगुलियोंसे उस सोमको विशेष प्रकारसे धारण किया जाता है और उस सोमसे रस निकाला जाता है ।

८९१ पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणा—मृतं भरत् सुभृतं चार्विन्दुः ॥ २४ ॥
८९२ अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छे—न्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित् पुनानः ॥ २५ ॥
८९३ देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ॥ २६ ॥

अर्थ— [८९१] (पवित्रेभिः पवमानः) छाननीयोंमेंसे शुद्ध होनेवाला (नृचक्षाः) मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाला (देवानां) देवोंका तथा (मर्त्यानां राजा) मनुष्योंका राजा (रयीणां रयि पतिः) धनोंकी धनपति है। वह (द्विता) देवों और मनुष्योंमें (भुवत्) रहता है। वह (इन्दुः) सोम (सुभृतं चारु ऋतं) उत्तम तथा सुंदर रीतिसे जलको (भरत्) धारण करता है॥ २४ ॥

१ पवित्रेभिः पवमानः— यह सोम छाननीयोंसे छाना जाता है।

२ नृचक्षा देवानां मर्त्यानां राजा— यह सोम मनुष्योंका निरीक्षण करता है और यह देवों और मानवोंका राजा है।

३ रयीणां रयिपतिः— धनोंका यह स्वामी सच्चा धनपति है।

४ द्विता भुवत्— यह सोम देवों तथा मनुष्योंमें रहता है। दोनोंको प्रिय है।

५ इन्दुः सुभृतं चारु ऋतं भरत्— यह सोम उत्तम रीतिसे सुंदर जल अपनेमें धारण करता है। जलसे उत्तम रीतिसे मिश्रित होता है।

[८९२] हे सोम ! युद्धमें (अर्वान् इव) घोडा जैसा जाता है वैसा तू (श्रवसे) अन्नके लिये तथा (सातिं अच्छ) धनके लाभके लिये तथा (इन्द्रस्य वायोः) इन्द्र और वायुके (वीतिं अभि अर्ष) पीनेके लिये चल। (सः) वह तू (सहस्रा) हजारों (बृहतीः इषः) बडे अन्न (नः दाः) हमें दो। हे सोम ! (पुनानः) छाना जानेवाला तू (द्रविणोवित् भव) हमारे लिये धन देनेवाला हो जाओ॥ २५ ॥

१ अर्वान् इव – घोडा जैसा युद्धभूमीमें जाता है वैसा सोम यज्ञके स्थानमें जाता है।

२ श्रवसे सातिं अच्छ— अन्न और धनके लिये यज्ञमें आओ।

३ इन्द्रस्य वायोः वीतिं अभि अर्ष— इन्द्र और वायुके पीनेके लिये तुम आगे बढो।

४ सः सहस्रासः इषः नः दाः— वह तू सहस्रों प्रकारके अन्न हमें दो।

५ पुनानः द्रविणोवित् भव— छाना जाकर हमें धन देनेवाला हो।

[८९३] (देवाव्यः) देवोंकी तृप्ती करनेवाले (परिषिच्यमानाः) पात्रोंमें रहकर जलके साथ मिलनेवाले (सोमाः) सोमके रस (नः) हमारे लिये (सुवीरं क्षयं धन्वन्तु) उत्तम पुत्रोंसे युक्त घर देवें। (आयज्यवः) समन्तात् यज्ञ करनेवाले (विश्ववाराः) सबको स्वीकार करने योग्य (होतारः) हवन करनेवाले (दिवियजः) द्युलोकमें रहनेवाले देवोंके लिये हवन करनेवाले (मन्द्रतमाः) अत्यंत आनंद देनेवालोंके (न) समान ये सोमरस आनंद देनेवाले हैं॥ २६ ॥

१ देवाव्यः परिषिच्यमानाः सोमाः नः सुवीरं क्षयं धन्वन्तु— देवोंको तृप्त करनेवाले, पात्रोंमें जलके साथ मिलनेवाले सोमरस हमारे लिये उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त घर देवें।

२ आयज्यवः विश्ववाराः होतारः दिवियजः मन्द्रतमाः न सोमाः— यज्ञ करनेवाले सबके साथ मित्रता रखनेवाले हवन करनेवाले द्युलोकके देवोंके लिये यजन करनेवाले आनंद देनेवाले ये सोमरस हैं।

८९४ एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ॥ २७ ॥
८९५ अश्वो न क्रंदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ॥ २८ ॥
८९६ शतं धारा देवजाता असृग्रन् त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ॥ २९ ॥

अर्थ— [८९४] हे (सोमदेव) देव सोम ! (देवपानः) देवोंके पीनेके योग्य तू (देवताते) देवोंके द्वारा किये यज्ञमें (महे प्सरसे) देवोंके पीनेके लिये (एव पवस्व) ही रस दो। उस तेरी प्रेरणासे (हिताः) प्रेरित होकर हम (समर्ये) युद्धमें (महः चित्) बडे महान् शत्रुओंकोभी (स्मसि हि) पराजित कर सकेंगे। (पूयमानः) शुद्ध होकर तू (रोदसी) द्युलोक और पृथिवीको (सुस्थाने कृधि) उत्तम रीतिसे रहनेके लिये सुयोग्य कर ॥ २७ ॥

१ हे सोमदेव ! देवपानः देवताते महे प्सरसे एव पवस्व— हे देव सोम ! देवोंको पीनेके लिये योग्य तू यज्ञमें देवोंको पीनेको देनेके लिये रस निकालकर देओ ।

२ हिताः समर्ये महः चित् स्मसि हि— तेरी प्रेरणासे युद्धमें हम बडे शत्रुओंकोभी पराजित कर सकेंगे ।

३ पूयमानः रोदसी सुस्थाने कृधि— शुद्ध किया गया तू द्यु और पृथिवीको उत्तम रीतिसे रहनेके लिये योग्य कर ।

[८९५] हे सोम ! (वृषभिः युजानः) ऋत्विजों द्वारा संयुक्त किया हुआ तू (अश्वः न क्रदः) घोडेके समान शब्द करता है । (सिंहः न भीमः) सिंहके समान भयंकर है तथा (मनसः जवीयान्) मनसे वेगवान् है। (अर्वाचीनैः पथिभिः) आधुनिक मार्गोंसे अर्थात् (ये रजिष्ठाः) जो मार्ग सीधे रहते हैं उनसे हे (इन्दो) सोम ! (नः सौमनसं आपवस्व) हम सबके लिये उत्तम मनसे रस दे ॥ २८ ॥

१ वृषभिः युजानः— ऋत्विजों द्वारा यज्ञमें सोम समर्पण किया जाता है।

२ अश्वः न क्रदः— घोडेके समान सोम शब्द करता है ।

३ सिंहः न भीमः— सिंहके समान वह भयंकर होता है ।

४ मनसः जवीयान्— मनसे भी वह सोम वेगवान् होता है। मनसे भी त्वरासे वह यज्ञकार्य करता है ।

५ अर्वाचीनैः पथिभिः, ये रजिष्ठाः, नः सौमनसं आपवस्व— अर्वाचीन मार्गोंसे, जो सीधे मार्गसे हैं उनसे हमारे लिये उत्तम मनके विचार बढानेके लिये अपनेमेंसे रस निकालकर दे ।

[८९६] हे (इन्दो) सोम ! (देवजाताः शतं धाराः) देवोंके लिये उत्पन्न हुई सौ धाराएं (असृग्रन्) उत्पन्न हुई हैं। (कवयः) ज्ञानी लोग (सहस्रं एनाः) हजारों प्रकारोंसे इस सोमको (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं। हे (इन्दो) सोम ! (सनित्रं) धनको (दिवः आ पवस्व) द्युलोकसे हमें देओ । तू (महतः धनस्य) बडे धनका (पुरः एता असि) पूर्ण रीतिसे दाता हो ॥ २९ ॥

१ हे इन्दो ! देवजाताः शतं धाराः असृग्रन्— हे सोम ! इस दिव्य सोमसे सैकडों रसकी धाराएं चलने लगी ।

२ कवयः एनाः सहस्रं मृजन्ति — ज्ञानी ऋत्विज इस सोमको सहस्रों प्रकारोंसे शुद्ध करते हैं ।

३ हे इन्दो ! सनित्रं दिवः आ पवस्व— हे सोम ! तू धन द्युलोकसे हमें दे ।

४ महतः धनस्य पुर एता असि— तू बडे धनको देनेवाला हो। तू बहुत धन देनेवाला उत्तम दाता हो ।

८९७ दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां　राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान　आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम्　॥ ३० ॥
८९८ प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्　वारान् यत् पूतो अत्येष्यव्यान् ।
पवमान पवसे धाम गोनां　जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः　॥ ३१ ॥
८९९ कनिक्रददनु पन्थामृतस्य　शुक्रो वि भास्यमृतस्य धाम ।
स इन्द्राय पवसे मत्सरवान्　हिन्वानो वाचं मतिभिः कवीनाम्　॥ ३२ ॥

अर्थ— [८९७] (दिवः न) प्रकाश देनेवाले सूर्यके जैसे (अह्नां सर्गाः) दिनोंके प्रकाश किरण (अससृग्रम्) चलते हैं उस प्रकार सोमकी रसधाराएं चलती हैं । (धीरः राजा) बुद्धि बढानेवाला यह राजा सोम (मित्रं न) मित्रके समान (न प्र मिनाति) किसीको दुःख नहीं देता । (क्रतुभिः यतानः पुत्रः) अपने कर्मोंसे उन्नतिका यत्न करनेवाले पुत्रके समान (अस्यै विशे) इस प्रजाके लिये (अजीतिं आ पवस्व) विजयके लिये, हे सोम ! तू रस दे ॥ ३० ॥

१ दिवः न अह्नां सर्गाः असृग्रन्— द्युलोकसे जैसे सूर्यके किरण चलते हैं, वैसी सोमसे रसकी धाराएं चलती हैं ।

२ मित्रं न, धीरः राजा न प्र मिनाति— मित्रके समान धैर्यवान राजा किसीको दुःख नहीं देता ।

३ क्रतुभिः यतानः पुत्रः अस्यै विशे अजीतिं आ पवस्व— यज्ञकार्य करनेवाला जैसा पुत्र सुख देता है, वैसा यह सोम इस प्रजाको विजय प्राप्त कराके सुख देता है । इस सुख देनेके लिये हे सोम ! तू रस दे ।

[८९८] (ते) तेरी (मधुमतीः धाराः प्र असृग्रन्) मीठा रसधाराएं चल रही हैं । (यत्) जब (पूतः) छाना गया तू सोम (अव्यान् वारान् अत्येषि) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे तू छाना जाता है । हे (पवमान) सोम ! (गोनां धाम) गौओंके स्थानमें (पवसे) रससे मिश्रित हो जाता है, तब (जज्ञानः) शुद्ध होकर (अर्कैः) अपने तेजसे (सूर्यं अपिन्वः) सूर्यकोभी पूर्ण प्रकाशित करता है ॥ ३१ ॥

१ ते मधुमतीः धारा प्र असृग्रन्— हे सोम ! तेरेसे मीठी रसकी धाराएं चल रही हैं ।

२ यत् पूतः अव्यान् वारान् अत्येषि— जब तू छाना जाता है तब भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे छाना जाता है ।

३ पवमान ! गोनां धाम पवसे— हे सोम ! तू गौओंके स्थानमें अपना रस निकालकर देता है । गोदुग्धमें सोमरस मिलाया जाता है ।

४ जज्ञानः अर्कैः सूर्यं अपिन्वः— सोमरस तैयार होनेपर वह अपने तेजसे सूर्यको प्रकाशित करता है । सोमरस चमकता है ।

[८९९] वह सोम ! (ऋतस्य पन्थां) यज्ञके मार्गको (अनु कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ आक्रमण करता है । (अमृतस्य धाम) अमृतके स्थानको (शुक्रः वि भासि) तेजस्वी होकर प्रकाशित करता है । (मत्सरवान्) आनंद बढानेवाला (सः) वह तू सोम (इन्द्राय पवसे) इन्द्रके लिये रस देता है । (कविनां मतिभिः) ज्ञानियोंकी की हुई स्तुतियोंके साथ (वाचं हिन्वानः) शब्द करता है ॥ ३२ ॥

९०० दि॒व्यः सु॑प॒र्णोऽव॑ चाक्षि सोम॒ पिन्व॒न् धारा॑ः कर्म॑णा दे॒ववी॑तौ ।
एन्दो॑ विश क॒लशं॑ सोम॒धानं॒ क्रन्द॑न्निहि॒ सूर्य॒स्योप॑ र॒श्मिम् ॥ ३३ ॥

९०१ ति॒स्रो वाचं॒ ईरयति॒ प्र वह्नि॑र्ऋ॒तस्य॑ धी॒तिं ब्रह्म॑णो मनी॒षाम् ।
गावो॑ यन्ति॒ गोप॑तिं पृ॒च्छमा॑नाः॒ सोमं॑ यन्ति म॒तयो॑ वावशा॒नाः ॥ ३४ ॥

९०२ सोमं॒ गावो॑ धे॒नवो॑ वावशा॒नाः सोमं॒ विप्रा॑ म॒तिभि॑ः पृ॒च्छमा॑नाः ।
सोम॑ः सु॒तः पू॑यते अ॒ज्यमा॑न॒ः सोमे॑ अ॒र्कास्त्रि॒ष्टुभः॒ सं न॑वन्ते ॥ ३५ ॥

अर्थ— १ ऋतस्य पन्थां अनु कनिक्रदत्— यज्ञके मार्गका आक्रमण शब्द करता हुआ यह सोम करता है ।
२ शुक्रः अमृतस्य धाम विभाति— शुद्ध हुआ यह सोम अमर यज्ञस्थानमें प्रकाशता है ।
३ मत्सरवान् सः इन्द्राय पवते— आनंद बढानेवाला यह सोम इन्द्रके लिये अपना रस देता है ।
४ कविनां मतिभिः वाचं हिन्वानः— ज्ञानियोंके स्तुतिसे स्तोत्रोंको प्रेरित करता है । ज्ञानी लोग यज्ञमें सोमकी स्तुति करते हैं ।

[९००] हे (सोम) सोम ! तू (दिव्यः सुपर्णः) स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाला उत्तम पत्तोंसे युक्त है । तू (अव चाक्षि) तू चारों तरफ देख । (देववीतौ) देवोंके लिये किये जानेवाले यज्ञमें (कर्मणा) यज्ञके कर्मके साथ (धाराः पिन्वन्) रसकी धाराएं निकालता है । हे (इन्दो) सोम ! (सोमधानं कलशं) सोमरस रखनेके कलशमें (आ विश) प्रविष्ट हो । (क्रन्दन्) शब्द करता हुआ (सूर्यस्य रश्मिं) सूर्यके किरणोंके (उप इहि) पास जा ॥ ३३ ॥

१ हे सोम ! दिव्यः सुपर्ण अव चाक्ष— हे सोम ! तू उत्तम पत्तोंसे युक्त है । तू चारों ओर देख ।
२ देववीतौ कर्मणा धाराः पिन्वन्— यज्ञमें यजनके कर्मके साथ अपने रसकी धारा देता रह ।
३ हे इन्दो ! सोमधानं कलशं आ विश— हे सोम ! तू सोमरस रखनेके कलशमें प्रविष्ट होओ ।
४ क्रन्दन् सूर्यस्य रश्मिं उप इहि – शब्द करता हुआ तू सूर्य प्रकाशको प्राप्त कर ।

[९०१] (वह्निः) यज्ञ करनेवाला (तिस्रः वाचः प्र ईरयति) तीन वाणियोंको अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदको बोलता है । तथा (ऋतस्य) यज्ञकी (धीतिं) धारण करनेवाली (ब्रह्मणः मनीषां) ब्राह्मणोंकी बुद्धिको प्रेरित करता है । (गावः) गौवें (गोपतिं पृच्छमानाः) सोमको पूछती हुई (यन्ति) जाती हैं । (वावशानाः मतयः) इच्छा करनेवाली बुद्धियां (सोमं यन्ति) सोमके पास जाती हैं ॥ ३४ ॥

१ वह्निः तिस्रः वाचः प्र ईरयति— यज्ञ करनेवाला तीन वेदोंको पढनेके लिये प्रेरित करता है । यज्ञमें तीनों वेदोंका अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मंत्रोंका पठन होता है ।
२ ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणः मनीषां प्र ईरयति— यज्ञको धारण करनेवाली ज्ञानीकी बुद्धि मनुष्योंको उत्तम प्रेरणा देती है । और इस प्रेरणासे मनुष्य उत्तम कर्म करके श्रेष्ठ बनता है ।
३ गावः गोपतिं यन्ति— गौवें गोपालके समीप जाती हैं । वाणियां वक्ताके पास रहती हैं ।
४ वावशानाः मतयः सोमं यन्ति— इच्छा करनेवालेकी बुद्धियां सोमकी स्तुति करती हैं । इससे उस स्तुति करनेवालेको उत्तम प्रेरणा प्राप्त होती है ।

[९०२] (धेनवः) आनंद देनेवाली (गावः) गौवें (सोमं वावशानाः) सोमके साथ रहनेकी इच्छा करनेवाली होती हैं । (विप्राः) ज्ञानी स्तुति करनेवाले (मतिभिः) अपनी बुद्धियोंसे (सोमं पृच्छमानाः) सोमके विषयमें विचार करते हैं । (अज्यमानः) गौओंके दूधके साथ मिश्र होनेवाला (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (पूयते) छाना जाता है । (त्रिष्टुभः अर्काः) त्रिष्टुप् आदि छंदोंके मंत्र (सोमे संनवन्ते) सोमके साथ स्तुतिसे संमिलित होते हैं ॥ ३५ ॥

९०३ एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति ।
इन्द्रमा विश बृहता रवेण वर्धया वाचं जनया पुरंधिम् ॥ ३६ ॥
९०४ आ जागृविर्विप्र ऋता मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु ।
सपन्ति यं मिथुनासो निकामा अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः ॥ ३७ ॥
९०५ स पुनान उप सूरे न धातो भे अप्रा रोदसी वि ष आवः ।
प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती स तू धनं कारिणे न प्र यंसत् ॥ ३८ ॥

अर्थ— १ धेनवः गावः सोमं वावशानाः — गौवें अपना दूध सोमरसमें मिलानेकी इच्छा करती हैं ।
२ विप्राः मतिभिः सोमं पृच्छमानाः— ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे सोमकी स्तुति करते हैं ।
३ अज्यमानः सुतः सोमः पूयते— गौके दूधसे मिलाया हुआ सोम छाना जाता है ।
४ त्रिष्टुभः अर्काः सोमे नवन्ते— त्रिष्टुप् आदि छंदोंके मंत्र सोमकी स्तुति करते हैं ।

[९०३] हे (सोम) सोम ! (परिषिच्यमानः) पात्रोंमें रखा हुआ तथा (पूयमानः) छाना हुआ तू (नः) हमारा (एव) निश्चयसे (स्वस्ति) कल्याण (आ पवस्व) कर । (बृहता रवेण) बडे शब्द करता हुआ (इन्द्रं आ विश) इन्द्रको प्राप्त हो जाओ । (वाचं वर्धय) स्तुति रूप वाणीकी वृद्धि करो (पुरंधिं जनय) श्रेष्ठ बुद्धिको बढाओ ॥ ३६ ॥

१ हे सोम ! परिषिच्यमानः पूयमानः नः एव स्वस्ति आ पवस्व— हे सोम ! तू पात्रोंमें रखा और छाना गया हमारा निश्चयसे कल्याण करनेके लिये रस निकालकर देओ ।
२ बृहता रवेण इन्द्रं आ विश— बडा शब्द करता हुआ तू इन्द्रके पास जा ।
३ वाचं वर्धय— स्तुति अधिक बढाओ ।
४ पुरंधिं जनय— बुद्धिको बढाओ । बुद्धिकी उत्तम रीतिसे वृद्धि करो । कृपा प्रकट कर । जनताका हित करनेकी कृपा कर । नगरका हित करनेकी कृपा कर ।

[९०४] (जागृविः) जाग्रत रहनेवाला (ऋता मतीनां) सत्य बुद्धियोंसे (विप्रः) विशेष ज्ञानी (सोमः) सोम (पुनानः) शुद्ध होता हुआ (चमूषु आसदत्) पात्रोंमें रहता है । (मिथुनासः) परस्पर मिलकर यज्ञ करनेवाले ऋत्विज (निकामाः) सदिच्छावाले (रथिरासः सुहस्ताः) याजक उत्तम हाथोंवाले (अध्वर्यवः) याजक (यं सपन्ति) इस सोमको अपने हाथोंसे स्पर्श करते हैं ॥ ३७ ॥

१ जागृविः ऋता मतीनां विप्रः सोमः पुनानः— जागृत बुद्धियोंको बढानेवाला यह ज्ञानी सोम छाना जाता है ।
२ चमूषु आसदत्— सोमरस यज्ञपात्रोंमें रखा रहता है ।
३ मिथुनासः निकामाः रथिरासः सुहस्ताः अध्वर्यवः यं सपन्ति— परस्पर मिलकर यज्ञ करनेवाले सदिच्छावाले याजक अपने उत्तम शुद्ध हाथोंसे इस सोमको पकडते हैं ।

[९०५] (पुनानः सः) शुद्ध किया जानेवाला वह सोम इन्द्रके (उप) पास जाता है । (सूरे न) जैसा सूर्यमें (धाता) संवत्सर जाता है । (उभे रोदसी) दोनों द्यावापृथिवी (आ अप्राः) अपनी महिमासे पूर्णता करती हैं । (सः) वह सोम (वि आवः) अपने तेजसे अंधकारको दूर करता है । (यस्य) जिस सोमकी (प्रिया) प्रिय (प्रियसासः) अति आनंद दायक धाराएं (ऊती चित्) रक्षण करनेके लिये चलती हैं । (सः तु) वह (धनं) धनको (नः प्रयंसत्) हमें दे दो (कारिणे न) जैसा कार्य करनेवालेको धन दिया जाता है ॥ ३८ ॥

९०६ स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत् ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ३९ ॥
९०७ अक्रान् त्समुद्रः प्रथमे विधर्म-ञ्जनयन् प्रजा भुवनस्य राजा ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत् सोमो वावृधे सुवान इन्दुः ॥ ४० ॥
९०८ महत् तत् सोमो महिषश्चकारा-ऽपां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजो ऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ४१ ॥

अर्थ— १ पुनानः सः उप— शुद्ध होनेवाला सोम इन्द्रके पास जाता है ।
२ सूरे धाता न— जैसा सूर्यके साथ संवत्सर संबंधित होता है ।
३ उभे रोदसी आप्रा— द्यावापृथिवी दोनों सोमसे तेजस्वी होते हैं ।
४ सः वि आवः— वह सोम अपने तेजसे अंधकार दूर करता है ।
५ यस्य प्रिया प्रियसासः ऊती चित्— जिस सोमकी प्रिय रसधाराएं रक्षण करती हुई चलती हैं ।
६ स तु धनं नः प्रयंसत्— वह सोम धन हमें देता है ।
७ कारिणे न— जैसा कार्य करनेवाले कारीगरको धन दिया जाता है ।

[९०६] (वर्धिता) देवोंका संवर्धन करनेवाला (वर्धनः) स्वयं बढानेवाला (पूयमानः) स्वच्छ होने-वाला (मीढ्वान्) इच्छा तृप्त करनेवाला (सः सोमः) वह सोम (ज्योतिषा) अपने तेजसे (नः अभि आवीत्) हमारा रक्षण करता है । (येन) जिस सोमसे (पदज्ञाः) गौवोंके पदोंसे गौवोंको जाननेवाले (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व कालके पितर (स्वर्विदः) सर्वज्ञ होकर (अद्रिं उष्णन्) पर्वत पर ढूंढकर (गाः) गौवोंको प्राप्त कर सके ॥ ३९ ॥

१ वर्धिता वर्धनः पूयमानः ज्योतिषा नः अभि आवीत्— देवोंको बढानेवाला स्वयं बढनेवाला छाना जानेवाला सोम अपने तेजसे हमारा संरक्षण करता है ।
२ येन पदज्ञाः नः पूर्वे पितरः स्वर्विदः अद्रिं गाः उष्णन्— जिस सोमकी सहायतासे ज्ञानी हुए हमारे पूर्वज आत्म ज्ञानी होकर गौवोंको पहाडोंमेंसे ढूंढकर प्राप्त कर सके ।

दुष्टोंने गौवें पकडकर पहाडोंमें रखी थीं । उनको प्राप्त किया और गौवोंको अपने आश्रममें लाया ।

[९०७] (समुद्रः) जल देनेवाला (राजा) राजा सोम (प्रथमे भुवनस्य विधर्मन्) विस्तृत उदकको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (प्रजाः जनयन्) प्रजाको उत्पन्न करके (अक्रान्) परे जाता है । (वृषा) बलवान (सुवानः इन्दुः) रस निकालनेवाला (सोमः) सोम (अधि सानौ अव्ये) मेंढीके बालोंकी (पवित्रे) छाननीके ऊपर (बृहत् वावृधे) अधिक बढता है ॥ ४० ॥

१ समुद्रः राजा प्रथमे भुवनस्य विधर्मन् प्रजाः जनयन् अक्रान्— जलके साथ अपना संबंध रखने-वाला सोम राजा अन्तरिक्षमें जलको धारण करके विशेष रीतिसे प्रजाका पोषण करके प्रगति करता है ।
२ सुवानः इन्दुः सोमः अधि सानौ अव्ये पवित्रे बृहत् वावृधे— रस निकालनेवाला तेजस्वी सोम मेंढीके बालोंकी छाननीपर बढता रहता है । सोमरसमें जल मिलनेसे सोमरस बढता जाता है । पश्चात् उसको छानते हैं ।

[९०८] (महिषः सोमः) बडा सोम (तत् महत् चकार) उस महान कर्मको करता रहा है । (यत् अपां गर्भः) जो जलोंको उत्पन्न करनेवाला (देवान् अवृणीत) देवोंको अपने पास करता है । (पवमानः) सोम (इन्द्रे) इन्द्रमें (ओजः अदधात्) बल बढाता है तथा (इन्दुः) सोम (सूर्ये ज्योतिः अजनयत्) सूर्यमें तेज उत्पन्न करता है ॥ ४१ ॥

९०९ मत्सि॑ वा॒युमि॒ष्टये॒ राध॑से च॒ मत्सि॑ मि॒त्रावरु॑णा पू॒यमा॑नः ।
मत्सि॒ शर्धो॒ मारु॑तं॒ मत्सि॑ दे॒वान् मत्सि॒ द्यावा॑पृथि॒वी दे॑व सोम ॥ ४२ ॥
९१० ऋ॒जुः प॑वस्व वृ॒जिन॑स्य ह॒न्ता ऽपामी॑वां॒ बाध॑मानो॒ मृध॑श्च ।
अ॒भि॒श्री॒णन् पय॒: पय॑सा॒भि गोना॒मिन्द्र॑स्य॒ त्वं तव॑ व॒यं सखा॑यः ॥ ४३ ॥

अर्थ— १ महिषः सोमः तत् महत् चकार— बडा सोम उस महान कार्यको करता है।

२ यत् अपां गर्भः देवान् अवृणीत — जो जलोंका गर्भरूप सोम देवोंको अपने पास रखता है। यज्ञमें देवोंके स्थानमें सोम रखा होता है। सोम रखा होता है उस स्थानमें देव रहते हैं।

३ पवमानः इन्द्रे ओजः अदधात्— सोम इन्द्रका बल बढाता है।

४ इन्दुः सूर्ये ज्योतिः अजनयत्— सोम सूर्यमें प्रकाश उत्पन्न करता है।

[९०९] हे (सोमदेव) सोमदेव ! तू (इष्टये) अन्नके लिये तथा (राधसे) धनके लिये (वायुं मत्सि) वायुको आनंदित कर। तू छाननीसे शुद्ध किया जाता हुआ (मित्रावरुणा मत्सि) मित्र और वरुणको आनंदित कर। (मारुतं शर्धः) मरुतोंके संघको प्रसन्न करता है। (देवान् मत्सि) इन्द्र आदि देवोंको आनंदित करता है तथा (द्यावा पृथिवी मत्सि) द्युलोक और पृथिवीको आनंदित करता है ॥ ४२ ॥

१ हे सोमदेव ! इष्टये राधसे वायुं मत्सि— हे देव सोम ! तू अन्नके लिये तथा धनके लिये वायु देवको प्रसन्न कर। वायु शुद्ध तथा प्रसन्न रहा तो सबको आनंद प्राप्त हो सकता है।

२ मित्रा वरुणा मत्सि— मित्र और वरुणको तू आनंदित रखता है।

३ मारुतं शर्धः मत्सि— मरुतोंके सैन्यको तू प्रसन्न रखता है।

४ देवान् मत्सि— तू देवोंको प्रसन्न रखता है।

५ द्यावा पृथिवी मत्सि— द्युलोक और पृथिवीको सोम प्रसन्न करता है।

सोमरस वायु, मित्र, वरुण, मरुत्गण, अन्य सब देव, द्यावा पृथिवी आदि सब देवोंको आनंदित स्थितिमें रखता है। सोमरस पीनेसे सब आनंद प्रसन्न रहते हैं।

[९१०] हे सोम ! तू (ऋजुः) सरलतासे (पवस्व) रस निकालकर दे। (वृजिनस्य हन्ता) दुष्टोंका नाश करनेवाला, (अमीवां अप बाधमानः) रोगोंका नाश करनेवाला, दुष्टोंका नाश करनेवाला (मृधः च बाधमानः) शत्रुओंका नाश करनेवाला हो। (पयः) अपने रसके साथ (गोनां पयसा) गौवोंके दूधके साथ (अभिश्रीणन्) मिश्रित करके (त्वं इन्द्रस्य) तू इन्द्रका मित्र है और (वयं तव सखायः) हम तेरे मित्र हैं ॥ ४३ ॥

१ हे सोम ! ऋजुः पवस्व— हे सोम सरलतासे रस दे।

२ वृजिनस्य हन्ता— तू दुष्टोंका नाश करता है।

३ अमीवां अप बाधमानः— तू रोग बीजोंका नाश करता है।

४ मृधः च अप बाधमानः— तू अपने शत्रुओंका नाश करनेवाला है।

५ पयः गोनां पयसा अभिश्रीणन्— तू अपने सोमरसको गौवोंके दूधके साथ मिलाता है।

६ त्वं इन्द्रस्य सखा— तू इन्द्रका मित्र है।

७ वयं तव सखायः— हम तेरे मित्र हैं।

×

९११ मध्वः सूदं पवस्व वस्व उत्सं वीरं च न आ पवस्वा भगं च ।
स्वदस्वेन्द्राय पवमान इन्दो रयिं च न आ पवस्वा समुद्रात् ॥ ४४ ॥
९१२ सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।
आ योनिं वन्यमसदत् पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत् समद्भिः ॥ ४५ ॥
९१३ एष स्य ते पवत इन्द्र सोमश्चमूषु धीर उशते तवस्वान् ।
स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः कामो न यो देवयतामसर्जि ॥ ४६ ॥

अर्थ—[९११] हे सोम ! (मध्वः सूदं) मधुरताके घनीभूत (वस्वः उत्सं) धन देनेवाले (आ पवस्व) रसको देओ । (नः) हमारे लिये (वीरं च) वीर पुत्रको (आ पवस्व) देओ । तथा (भगं च) धन भी देओ । हे (पवमान इन्दो) शुद्ध किये जानेवाले सोम ! (इन्द्राय स्वदस्व) इन्द्रके लिये रस देओ । तथा (समुद्रात्) अन्तरिक्षसे (रयिं च) धनको (नः आ पवस्व) हमें देओ । ॥ ४४ ॥

१ हे सोम ! मध्वः सूदं वस्वः उत्सं आ पवस्व— हे सोम ! तू मधुरतासे परिपूर्ण तथा धन देनेवाले रसको देओ ।
२ नः वीरं च आ पवस्व— हमें वीर पुत्र देओ ।
३ भगं च आ पवस्व— हमें धन देओ ।
४ हे पवमान इन्दो ! इन्द्राय स्वदस्व— हे सोमरस ! तू इन्द्रके लिये रस देओ ।
५ समुद्रात् रयिं नः आ पवस्व— अन्तरिक्षसे धन हमारे लिये अपने रसके साथ देओ ।

[९१२] (सुतः सोमः) रस निकाला सोम (धारया) अपनी रसधारासे (अत्यः न) घोडेके समान (हित्वा) गमनशील रहता है । (वाजी) बलवान सोम (सिन्धुः न) नदीके समान (निम्नं) नीचे रखे कलशमें (अभि अक्षाः) जाता है । (पुनानः) शुद्ध होनेवाला सोम (वन्यं योनिं) वृक्षसे बने कलशमें (आ असदत्) बैठता है । वह (इन्दुः) सोम (गोभिः) गौवोंके दूधके साथ मिश्रित होकर (अद्भिः सं असरत्) जलके साथ मिश्रित होता है (पुनानः) तथा छाना जाता है ॥ ४५ ॥

१ सुतः सोमः धारया हित्वा अत्यः न— सोमका रस निकालने पर वह धारासे नीचे रखे पात्रमें जाता है जैसा घोडा जाता है ।
२ सिन्धुः न वाजी अभि अक्षाः— नदी जैसी निम्न भागमें जाती है वैसा यह बल बढानेवाला सोम नीचेके कलशमें जाता है ।
३ पुनानः वन्यं योनिं आ असदत्— छाना जानेवाला सोमरस वृक्षसे बने कलशमें जाकर रहता है ।
४ इन्दुः गोभिः अद्भिः समसरत् सोमरस गौओंके दूध तथा जलके साथ मिलाया जाता है ।

[९१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (उशते ते) इच्छा करनेवाले तेरे लिये (धीरः तवस्वान्) धैर्यवान् तथा वेगवान् (स्यः एषः सोमः) वह यह सोम (चमूषु पवते) कलशोंमें रस देता है । (स्वर्चक्षाः) सबका निरीक्षक (रथिरः) रथमें बैठनेवाला वीर (सत्यशुष्मः) सच्चे बलसे युक्त (यः) जो सोम (देवयतां कामः) याजकोंकी इच्छा (न) के समान (असर्जि) कामना करता है ॥ ४६ ॥

१ हे इन्द्र ! ते उशते धीरः तवस्वान् स्यः एषः सोमः चमूषु पवते— हे इन्द्र ! तेरी इच्छाके अनुसार धैर्यशाली बलवान् यह सोम कलशोंमें अपना रस रखता है ।
२ स्वर्चक्षा रथिरः सत्यशुष्मः यः देवयतां कामः न असर्जि— सबका निरीक्षण करनेवाले रथमें बैठनेवाले सच्चे वीरके समान यह सोम यज्ञ करनेवालोंकी इच्छा तृप्त करता है ।

९१४ एष प्रत्नेन वयसा पुनान--स्तिरो वर्पांसि दुहितुर्दधानः ।
वसानः शर्म त्रिवरूथमप्सु होतेव याति समनेषु रेभन् ॥ ४७ ॥
९१५ नू नस्त्वं रथिरो देव सोम परि स्रव चम्वोः पूयमानः ।
अप्सु स्वादिष्ठो मधुमाँ ऋतावा देवो न यः सविता सत्यमन्मा ॥ ४८ ॥
९१६ अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः ।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठा--मभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ॥ ४९ ॥

अर्थ--[९१४] (प्रत्नेन वयसा पुनानः) प्राचीन कालसे अन्नके द्वारा छाना जानेवाला (दुहितुः) पृथिवीके (वर्पांसि) रूपोंको (तिरः दधानः) दूर करता हुआ (त्रिवरूथं शर्म वसानः) शीत उष्ण वर्षारूप तीन प्रकारके स्थानमें रहनेवाला (अप्सु होता इव) कलशोंमें रहनेवाले जलमें रहनेवाला (रेभन्) शब्द करता हुआ (समनेषु याति) यज्ञोंमें जाता है ॥ ४७ ॥

१ प्रत्नेन वयसा पुनानः-- पूर्व कालसे यज्ञके अन्नके साथ यह सोमरस छाना जाकर शुद्ध किया जाता है ।

२ दुहितुः वर्पांसि तिरः दधानः-- पृथिवीके नाना प्रदेशोंके रूपोंको दूर रखता है । देशभेदसे रूपभेद होता है अतः यह सोम उस रूप भेदका विचार नहीं करता ।

३ त्रिवरूथं शर्म वसानः-- शीत, उष्ण तथा पर्जन्य कालोंसे उत्पन्न होनेवाले विभिन्न रूपोंमें रहनेवाला यह सोम एकही रूप धारण करता है । तीनों कालोंमें यह सोम समान रूपसे रहता है ।

४ अप्सु रेभन् समनेषु याति-- जलके साथ मिश्रित होकर यह सोम शब्द करता हुआ यज्ञमें जाता है । सोमरस यज्ञपात्रोंमें रखा जानेके समय शब्द करके पात्रोंमें गिरता है ।

[९१५] हे (सोम देव) सोम देव ! (रथिरः त्वं) रथसे युक्त तू (नः) हमारे यज्ञमें (चम्वोः पूयमानः) यज्ञपात्रोंसे छाना जाकर (अप्सु नु) जलोंमें (परि स्रव) अपना रस देवो । (स्वादिष्ठः) स्वाद युक्त (मधुमान्) मधुर (ऋतावा) यज्ञवान् (सविता) सबका प्रेरक (यः) जो तू (देवः न) देवके समान (सत्यमन्मा) सत्य और मनन करने योग्य स्तुति सुनता हुआ अपनेमेंसे रस देवो ॥ ४८ ॥

१ हे सोम देव ! रथिरः त्वं नः चम्वोः पूयमानः अप्सु नु परिस्रव-- हे दिव्य सोम ! रथमें रहनेवाला, यज्ञरूप रथमें रहनेवाला तू पात्रोंमें छाना जाकर जलोंमें मिश्रित होकर यज्ञमें रहो ।

२ स्वादिष्ठः मधुमान् ऋतावा सविता सत्यमन्मा-- स्वादिष्ट, मधुर, यज्ञमें रहनेवाला, सबको उत्तम कार्यकी प्रेरणा देनेवाला, सत्य स्तुति प्रिय ऐसा तू सोम हो ।

[९१६] हे सोम ! (गृणानः) स्तुति किया गया तू (वीती) पीनेके लिये (वायुं अभि अर्ष) वायुके पास जा । तथा छाननीसे (पूयमानः) शुद्ध किया हुआ तू (मित्रावरुणा अभि अर्ष) मित्र और वरुणके पास जा । तथा (नरं) नेता (धीजवनं) बुद्धिके समान वेगवान (रथेष्ठां) रथमें रहनेवाले अश्विनौ देवोंके (अभि अर्ष) पास जा । (वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं) बलवान वज्रके समान बाहुवाले इन्द्रके पास (अभि अर्ष) जाओ ॥ ४९ ॥

१ गृणानः वीती वायुं अभि अर्ष-- स्तुति करनेपर पीनेके लिये, हे सोम ! तू वायुके पास जा ।

२ पूयमानः मित्रावरुणा अभि अर्ष-- छाना जानेपर मित्र और वरुणके पास जा ।

३ नरं धीजवनं रथेष्ठां अभि अर्ष-- बुद्धिके समान वेगवान रथमें बैठनेवाले अश्विनौ देवोंके पास जा ।

४ वृषणं वज्रबाहुं इन्द्रं अभि अर्ष-- बलवान् वज्रके समान बाहुवाले इन्द्रके पास जा ।

९१७ अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षा—ऽभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः ।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्या ऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ॥ ५० ॥
९१८ अभी नो अर्ष दिव्या वसू—न्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः ।
अभि येन द्रविणमश्नवामा—ऽभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः ॥ ५१ ॥
९१९ अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिदत्र वातो न जूतः पुरुमेधश्चित् तकवे नरं दात् ॥ ५२ ॥

अर्थ—[९१७] हे सोम! तू हमारे (सुवसनानि वस्त्रा) उत्तम वस्त्रोंके पास (अभि अर्ष) जा। तथा (पूयमानः) छाना जाकर (सुदुघाः धेनुः) उत्तम दूध देनेवाली गौवोंके पास (अभि अर्ष) जा। (भर्तवे) पोषणके लिये (चन्द्रा हिरण्यानि) चमकनेवाले सुवर्णके अलंकारोंके (अभि अर्ष) पास जा। हे (देव सोम) दिव्य सोम। (रथिनः अश्वान्) रथ चलानेवाले घोडोंको (अभि) प्राप्त कराओ ॥ ५० ॥

१ हे सोम ! सुवसनानि वस्त्रा अभि अर्ष— हे सोम ! तू उत्तम वस्त्रोंको प्राप्त करो। जहां उत्तम वस्त्र होते हैं ऐसे धन हमें प्राप्त हों।

२ पूयमानः सुदुघाः धेनुः अभि अर्ष— शुद्ध होकर उत्तम दूध देनेवाली गौवोंके दूधमें सोमरस मिलाया जाय।

३ भर्तवे चन्द्रा हिरण्यानि अभि अर्ष— पोषणके लिये चमकीले सुवर्णके अलंकारोंको प्राप्त कर।

४ हे सोम देव ! रथिनः अश्वान् अभि अर्ष— हे दिव्य सोम ! रथको जोडे जाने योग्य घोडोंको प्राप्त कर। जहां सोमरस निकाला जाता है ऐसे याजकके पास उत्तम रथको चलानेवाले उत्तम वेगवान घोडे हों।

[९१८] हे सोम ! (पूयमानः) छाना जाकर (दिव्या वसूनि) दिव्य धन (नः अभि अर्ष) हमें देवो। तथा (विश्वा पार्थिवा) सब पृथिवीपर उत्पन्न धनोंको (अभि अर्ष) हमें देवो। (येन) जिस सामर्थ्यसे (द्रविणं अभि अश्नवाम) हम धन प्राप्त कर सकेंगे वह सामर्थ्य हमें दो। (जमदग्निवत्) जमदग्निके समान (नः) हमारे लिये (आर्षेयं) ऋषिके योग्य मंत्र (अभि अर्ष) हमें दो ॥ ५१ ॥

१ पूयमानः दिव्या वसूनि नः अभि अर्ष—शुद्ध किया गया तू सोम दिव्य धन हमें दे।

२ विश्वा पार्थिवा अभि अर्ष— सब पार्थिव धन हमें दे।

३ येन द्रविणं अभि अश्नवाम— जिस सामर्थ्यसे हम धन प्राप्त कर सकेंगे, वह सामर्थ्य हमें दे।

४ जमदग्निवत् आर्षेयं नः अभि अर्ष— जमदग्निके समान ऋषिके योग्य सामर्थ्य हमें दो।

[९१९] हे (इन्दो) सोम ! (अया पवा) इस सोमकी धारासे (एना वसूनि पवस्व) इन धनोंको देओ। (मांश्चत्वे सरसि) मान देने योग्य जलमें (प्र धन्व) तू मिश्रित होओ। (अत्र) इस यज्ञमें (ब्रध्नः चित्) सबको अपने ज्ञानसे प्रदर्शित करनेवाला (वातः न जूनः) वायुके समान वेगवान (पुरुमेधः चित्) बहुत यज्ञोंसे सन्मानित (तकवे) यज्ञकर्मके लिये (नरं दात्) पुत्रको देता है ॥ ५२ ॥

१ हे सोम ! अया पवा एना वसूनि पवस्व— इस सोमरसकी धारासे इन धनोंको देओ।

२ मांश्चत्वे सरसि प्र धन्व— इन उत्तम जलोंमें तू मिश्रित हो जा।

३ अत्र ब्रध्नः चित् वातः न जूतः पुरुमेधः चित् तकवे नरं दात्— इस यज्ञमें अपने ज्ञानसे ज्ञान देनेवाला वायुके समान वेगवान अनेक यज्ञोंके करनेसे सन्मान जिसको प्राप्त हुआ है, ऐसा पुत्र यह सोम देता है।

९२० उत नं एना पंत्रया पंवस्वा-ऽधिं श्रुते श्रवाय्यंस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रां नैगुतो वसूंनि वृक्षं न पक्कं धूंनवद्रणांय ॥ ५३ ॥
९२१ महीमे अंस्य वृषनाम शूषे माँश्चंत्वे वा पृशंने वा वधंत्रे ।
अस्वांपयन्निगुतंः स्नेहयच्चा-ऽपामित्राँ अपाचितो अचेतः ॥ ५४ ॥
९२२ सं त्री पवित्रा विततान्येष्य-न्वेकं धावसि पूयमांनः ।
असि भगो असिं दात्रस्यं दाता ऽसिं मघवां मघवंद्भ्य इन्दो ॥ ५५ ॥

अर्थ— [९२०] हे सोम ! (उत) और (श्रवाय्यस्य) श्रवणीय ऐसे तुझ सोमका (श्रुते तीर्थे) श्रवणीय पवित्र (नः) हमारे यज्ञस्थानमें (एना पवया) इस पवित्र धारासे (अधि पवस्व) रस दे। (नैगुतः) शत्रुका नाश करनेवाला यह सोम (षष्टिं सहस्रा) साठ हजार (वसूनि) धन (रणाय धूनवत्) शत्रुओंका नाश करनेके लिये देता है। (पक्कं वृक्षं न) पके फलवाले वृक्षको जैसा हिलाया जाता है ॥ ५३ ॥

१ हे सोम ! उत श्रवाय्यस्य श्रुते तीर्थे नः एना पवया अधि पवस्व— हे सोम ! वर्णनके लिये योग्य ऐसे इस यज्ञस्थानमें हमारे लिये पवित्र धारासे अपना रस निकालकर दो।

२ नैगुतः षष्टं सहस्रा वसूनि रणाय धूनवत्— शत्रुका नाश करनेके लिये साठ हजार धन युद्धके लिये देता है।

३ पक्कं वृक्षं न— जैसे पके फलवाला वृक्ष हिलाकर उससे पके हुए फल लिये जाते हैं।

[९२१] (महि) महान (वृषनाम) शत्रुपर शस्त्रोंका वर्षण करके शत्रुको नम्र करना (इमे) ये दो काम (अस्य शूषे) इस सोमके लिये सुखकर हैं। (मांश्चत्वे) अश्व युद्ध (वा पृशने) अथवा बाहुयुद्ध ये दोनों (वधत्रे) युद्ध शत्रुका वध करनेमें समर्थ होते हैं। वह यह सोम (निगुतः) नीचेसे शत्रुको (अस्वापयन्) गिराकर (स्नेहयत् च) शत्रुको भगाता है। हे सोम ! तू (अमित्रान्) शत्रुओंको (अप अचितः) दूर कर। तथा (अचितः) नास्तिकोंको (इतः) यहांसे (अप अच) दूर कर ॥ ५४ ॥

१ महि वृष-नाम इमे अस्य शूषे— शत्रुपर शस्त्रोंकी वृष्टि करना और शत्रुको नरम करना ये दो कार्य इसके लिये सुखदायक है। ये दो कार्य यह करता है। 'वृष'– शत्रुपर शस्त्रोंका वर्षाव करना और 'नाम'– शत्रुको नरम करना ये वीरके दो कार्य हैं।

२ मांश्चत्वे वा पृशने वधत्रे— अश्वयुद्ध अथवा बाहुयुद्ध ये दोनों प्रकारके युद्ध शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हैं।

३ निगुतः अस्वापयन् स्नेहयत् च— शत्रुको नीचे भगाकर उस शत्रुका नाश करता है।

४ अमित्रान् अप अचितः— शत्रुको दूर करता है।

५ अचितः इतः अप अच— नास्तिकोंको यहांसे दूर कर।

[९२२] हे सोम ! (विततानि) विस्तृत (त्री पवित्रा) तीन छाननियोंके पास तू (सं एषि) जाता है। और (पूयमानः) छाना जानेवाला तू (एकं) एकके पास (अनु धावसि) दौडकर पहुंचता है। तू (भगः असि) भाग्यवान है। तथा तू (दात्रस्य दाता असि) धनका दाता है। हे (इन्दो) सोम ! (मघवद्भ्यः) धनवानोंके लिये भी (मघवा असि) तू अधिक धनवान हो ॥ ५५ ॥

९२३ एष विश्ववित् पवते मनीषी सोमो विश्वस्य भुवनस्य राजा ।
द्रप्साँ ईरयन् विदथेष्विन्दु- र्वि वारमव्यं समयाति याति ॥ ५६ ॥
९२४ इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः ।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन ॥ ५७ ॥
९२५ त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता- मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५८ ॥

अर्थ १ हे सोम ! त्री विततानि पवित्रा सं एषि— हे सोम ! तू तीन छाननीयोंमेंसे छाना जाता है ।
२ पूयमानः एकं अनु धावसि— छाना जानेवाला तू एक छाननीमेंसे शीघ्रतासे छाना जाता है ।
३ भगः असि— तू भाग्यवान है । तू धनवान है ।
४ दात्रस्य दाता असि— तू धनका दाता है ।
५ हे इन्दो ! मघवद्भ्यः मघवा असि— हे सोम ! तू धनवानोंसे भी अधिक धनवान है ।

[९२३] (विश्ववित्) सर्वज्ञ (मनीषी) बुद्धिमान (विश्वस्य भुवनस्य राजा) सब भुवनोंका राजा (एषः सोमः) यह सोम (पवते) रस देता है । (विदथेषु) यज्ञोंमें (द्रप्सान् ईरयन्) रसोंको देता है । यह (इन्दुः) सोम (अव्यं वारं) भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे (समया) दोनों तरफसे (वि अति याति) जाता है ॥ ५६ ॥

१ विश्ववित् मनीषी विश्वस्य भुवनस्य राजा एष सोमः पवते— सर्वज्ञ ज्ञानी सब भुवनोंका राजा यह सोम रस देता है ।
२ विदथेषु द्रप्सान् ईरयन्— यज्ञोंमें सोमके रसोंको प्रेरित करता है । यज्ञमें सोमरस निकाले जाते हैं ।
३ इन्दुः अव्यं वारं समया वि अति याति— यह सोमरस भेडीके बालोंकी छाननीमेंसे एकसाथ दोनों ओरसे छाना जाता है ।

[९२४] (महिषाः) महान पूज्य (अदब्धाः) निर्भय देव (इन्दुं रिहन्ति) सोमके रसका स्वाद लेते हैं । (गृध्राः कवयः न) धनकी इच्छा करनेवाले कवियोंके समान (पदे) यज्ञस्थानमें विद्वान् (रेभन्ति) स्तुति करते हैं । (दशभिः क्षिपाभिः) दसों अंगुलियोंसे (धीराः हिन्वन्ति) याजक प्रेरित करते हैं । (अपां रसेन) जलोंके रसके साथ (रूपं समञ्जते) इस सोमका रस मिलाया जाता है ॥ ५७ ॥

१ महिषाः अदब्धाः इन्दुं रिहन्ति— बडे निर्भय देव सोमके रसका स्वाद लेते हैं ।
२ गृध्राः कवयः न— धनकी इच्छा करनेवाले कवि जैसा रसका स्वाद लेते हैं ।
३ पदे रेभन्ति— यज्ञस्थानमें स्तुति चलती रहती है ।
४ दशभिः क्षिपाभिः धीराः हिन्वन्ति— दसों अंगुलियोंसे ज्ञानी याजक सोमरसको प्रेरित करते हैं ।
५ अपां रसेन रूपं समंजते— जलके साथ सोमरस मिलाया जाता है ।

[९२५] हे (सोम) सोम ! (पवमानेन त्वया) छाना जानेवाले तेरी सहायतासे (भरे) युद्धमें (शश्वत् कृतं) बहुत कार्य (वयं वि चिनुयाम) हम करते हैं । (तत्) इस कारण मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी (उत) और (द्यौः) द्युलोक (नः मामहन्तां) हमारा धनादिके दानसे सत्कार करें । हमारी उन्नति करें ॥ ५८ ॥

१ भरे पवमानेन त्वया शश्वत् कृतं वयं विचिनुयाम— युद्धमें सोमरससे जो कार्य किया जाता है वह सब कार्य हम करते हैं । वीर सोमरस पीकर युद्धमें बडा कार्य करते हैं । वैसा हम बडा कार्य करेंगे ।
२ मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु ये सब देव धन देकर हमारी सहायता करें और हमारी उन्नति करें ।

[९८]

(ऋषिः- अम्बरीषो वार्षागिरः, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । देवताः- पवमानः सोमः ।
छन्दः- अनुष्टुप्, ११ बृहती ।)

९२६ अभि नो वाजसातमं रयिमर्ष पुरुस्पृहम् ।
इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभ्वासहम् ॥ १ ॥
९२७ परि ष्य सुवानो अव्ययं रथे न वर्माव्यत ।
इन्दुरभि द्रुणा हितो हियानो धाराभिरक्षाः ॥ २ ॥
९२८ परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ ३ ॥
९२९ स हि त्वं देव शश्वते वसु मर्ताय दाशुषे ।
इन्दो सहस्रिणं रयिं शतात्मानं विवाससि ॥ ४ ॥
९३० वयं ते अस्य वृत्रहन् वसो वस्वः पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्नस्याध्रिगो ॥ ५ ॥

[९८]

अर्थ— [९२६] हे (इन्दो) सोमरस ! तू (नः) हमें (वाजसातमं) अनेक तरहसे पोषक (पुरुस्पृहं) अत्यन्त स्तुत्य (सहस्रभर्णसं) हजारों शक्तियोंका पोषण करनेवाले (तुविद्युम्नं) अत्यन्त कीर्तिप्रद और (विश्वासहं) बडोंका पराभव करनेवाले (रयिं) धनको (अभि अर्ष) प्रदान कर ॥ १ ॥

[९२७] (वर्म रथे न) कवचधारी पुरुष जिस तरह रथमें बैठता है, उसी तरह (स्यः) वह सोमरस (सुवानः) निचोडनेके बाद (अव्ययं परि अव्यत) छलनीकी तरफ दौडता है । (हियानः इन्दुः) स्तुत होता हुआ सोमरस (द्रुणा हितः) द्रोण या बर्तनसे डाले जानेपर (धाराभिः अक्षाः) धाराओंसे बहता है ॥ २ ॥

[९२८] (अध्वरे ऊर्ध्वः यः) यज्ञमें मुख्य जो सोमरस (धारा) धाराके रूपमें (भ्राजा न) तेज या प्रकाशकी धाराके समान (गव्ययुः एति) गायके दूधमें मिलनेकी इच्छा करते हुए जाता है, (स्यः मदच्युतः सुवानः इन्दुः) वह आनंद उत्पन्न करनेवाला तथा निचोडा जाता हुआ सोम (अव्ये परि अक्षा) छलनीकी तरफ जाता है ॥ ३ ॥

[९२९] हे (देव इन्दो) देव सोम ! (सः त्वं) वह तू (शश्वते दाशुषे मर्ताय) सदा दान देनेवाले मनुष्यको (सहस्रिणं शतात्मानं रयिं) हजारों और सैंकडोंकी संख्यामें धनको (विवाससि) प्रदान करता है ॥ ४ ॥

[९३०] हे (वृत्रहन्) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! (वयं अस्य ते) हम तेरे ही हैं। हे (वसो) सबके आधाररूप सोम ! हम (पुरुस्पृहः वस्वः) अत्यन्त स्पृहणीय सम्पत्तिके (नेदिष्ठतमा) अत्यन्त समीप हों, हे (अध्रिगो) चंचल सोम ! हम तेरे (सुम्नस्य इषः स्याम) सुख और अन्न पानेके अधिकारी हों ॥ ५ ॥

९३१ द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त्यूर्मिणम् ॥ ६ ॥
९३२ परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥ ७ ॥
९३३ अस्य वो ह्यवसा पान्तो दक्षसाधनम् ।
यः सूरिषु श्रवो बृहद् दधे स्वर्ण हर्यतः ॥ ८ ॥
९३४ स वां यज्ञेषु मानवी इन्दुर्जनिष्ट रोदसी ।
देवो देवी गिरिष्ठा अस्रेधन् तं तुविष्वणि ॥ ९ ॥
९३५ इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते देवाय सदनासदे ॥ १० ॥
९३६ ते प्रत्नासो व्युष्टिषु सोमाः पवित्रे अक्षरन् ।
अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः प्रातस्ताँ अप्रचेतसः ॥ ११ ॥

अर्थ— [९३१] (द्विः पंच स्वसारः) दस बहिनें अर्थात् उंगलियां (यं स्वयशसं) जिस स्वयं यशस्वी (अद्रिसंहतं) पत्थरोंसे कूटे जानेवाले (इन्द्रस्य प्रियं) इन्द्रको प्रिय (काम्यं) कमनीय तथा (ऊर्मिणं) उत्साहकी लहर उत्पन्न करनेवाले सोमको (प्रस्नापयन्ति) नहलाती हैं ॥ ६ ॥

[९३२] (यः) जो सोम ! (विश्वान् देवान् इत्) सभी देवोंके पास (मदेन सह परि गच्छति) आनन्दसे युक्त होकर जाता है, (त्यं हर्यतं) उस स्पृहणीय (हरिं बभ्रुं) आकर्षण शक्ति तथा भरणपोषणकी शक्तिसे युक्त सोमरसको (वारेण पुनन्ति) छलनीसे छानकर पवित्र करते हैं ॥ ७ ॥

[९३३] (स्वः न हर्यतः यः) सूर्यके समान तेजस्वी जो (सूरिषु बृहत् श्रवः दधे) विद्वानोंको भरपूर देता है, ऐसे (अस्य) इस सोमके (अवसा) रक्षणशक्तिसे युक्त तथा (दक्षसाधनं) बलबढानेवाले रसको (वः पान्त) तुम पीओ ॥ ८ ॥

[९३४] (मानवी देवी रोदसी) हे मनुष्योंका हित करनेवाले तेजस्वी द्युलोक और पृथ्वीलोक ! (वां यज्ञेषु) तुम्हारे यज्ञोंमें (सः इन्दुः जनिष्ट) वह सोम उत्पन्न किया जाता है । (देवः) वह तेजस्वी सोमरस (गिरिष्ठाः) पर्वत पर रहता है । (तं) उस सोमको मनुष्य (तुविष्वणि अस्रेधन्) यज्ञमें तैयार करते हैं ॥ ९ ॥

[९३५] हे (सोम) सोम ! (वृत्रघ्ने इन्द्राय पातवे) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रके पीनेके लिये (परि षिच्यसे) तू निचोडा जाता है । (दक्षिणावते नरे) दान देनेवाले मनुष्य और (सदनासदे देवाय) यज्ञमें बैठनेवाले विद्वान्के पीनेके लिये तू निचोडा जाता है ॥ १० ॥

[९३६] जो सोम (प्रातः) प्रातःकाल (सनुतः) छिपे हुए (अप्रचेतसः) अज्ञानी (हुरश्चितः) चोर हैं, (तान्) उन्हें (अपप्रोथन्तः) भगा देते हैं, (ते प्रत्नासः सोमाः) वे प्राचीन सोम (व्युष्टिषु) प्रातःकालके समय (पवित्रे अक्षरन्) छलनीमें छाने जाते हैं ॥ ११ ॥

९३७ तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥

[९९]

(ऋषिः- रेभसूनू काश्यपौ । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अनुष्टुप्, १ बृहती ।)

९३८ आ हर्यताय धृष्णवे धनुस्तन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रां वयन्त्यसुराय निर्णिजं विपामग्रे महीयुवः ॥ १ ॥

९३९ अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहते ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥ २ ॥

९४० तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ३ ॥

९४१ तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥ ४ ॥

अर्थ—[९३७] हे (सखायः) मित्रो ! (वयं यूयं च) हम और तुम तथा (सूरयः) अन्य सभी विद्वान् (पुरोरुचं) अत्यधिक तेजस्वी, (वाजगन्ध्यं) बलकारक तथा उत्तम सुगंधीवाले सोमरसको (अश्याम) पीएं और (वाजपस्त्यं सनेम) बलके स्वामित्वको प्राप्त करें ॥ १२ ॥

[९९]

[९३८] (हर्यताय धृष्णवे) इस स्पृहणीय और शत्रुओंका पराभव करनेवाले सोमके लिये (पौंस्यं धनुः) पराक्रमी धनुषको लोग (तन्वन्ति) फैलाते हैं । (महीयुवः) ऋत्विज (विपां अग्रे) विद्वानोंके आगे (असुराय निर्णिजं) बलशाली सोमको छाननेके लिये (शुक्रां वयन्ति) अपने तेजको विस्तृत करते हैं ॥ १ ॥

[९३९] (यदि विवस्वतः धियः) जब ऋत्विजोंकी बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियां (हरिं) सोमरसको (यातवे हिन्वन्ति) बहनेके लिये प्रेरित करती हैं, तब (क्षपः अध परिष्कृतः) रात्रीके बाद अर्थात् प्रातःकालमें तैय्यार किया हुआ सोम (वाजान् अभि प्र गाहते) बलकी तरफ जाता है ॥ २ ॥

[९४०] (यः मदः) जो आनन्ददायी रस (इन्द्रपातमः) इन्द्रके द्वारा अत्यधिक पीने योग्य है, तथा (यं) जिसे (गावः सूरयः) गायें और विद्वान् (पूरा नूनं च) पहले और आज भी (आसभिः दधुः) मुंहसे पीते हैं, ऐसे (अस्य तं) इस सोमके उस रसको हम (मर्जयामसि) शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

[९४१] (उत) और जिसे (देवानां नाम बिभ्रतीः धीतयः) देवोंके नामको धारण करनेवाला बुद्धियां (कृपन्त) सामर्थ्य युक्त करते हैं, (पुनानं तं) पवित्र होते हुए उस सोमरसकी (पुराण्या गाथया) पुरानी गाथाओंसे (अभि अनूषत) लोग स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

×

९४२ तमुक्षमाणमव्यये वारे पुनन्ति धर्णसिम् ।
दूतं न पूर्वचित्तय आ शासते मनीषिणः ॥ ५ ॥
९४३ स पुनानो मदिन्तमः सोमश्चमूषु सीदति ।
पशौ न रेत आदधत् पतिर्वचस्यते धियः ॥ ६ ॥
९४४ स मृज्यते सुकर्मभिर्देवो देवेभ्यः सुतः ।
विदे यदासु संददिर्महीरपो वि गाहते ॥ ७ ॥
९४५ सुत इन्दो पवित्र आ नृभिर्यतो वि नीयसे ।
इन्द्राय मत्सरिन्तमश्चमूष्वा नि षीदसि ॥ ८ ॥

[१००]

(ऋषिः- रेभसूनू काश्यपौ । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अनुष्टुप् ।)

९४६ अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ १ ॥
९४७ पुनान इन्दवा भर सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
त्वं वसूनि पुष्यसि विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ २ ॥

अर्थ- [९४२] (उक्षमाणं) गो-दुग्धसे सींचे जानेवाले तथा (धर्णसिं) सबको धारण करनेवाले सोमको (वारे अव्यये) बालोंवाली छलनीसे (पुनन्ति) छानकर पवित्र करते हैं। तथा (मनीषिणः) बुद्धिमान जन (दूतं न) दूतके समान (पूर्वचित्तये) प्रथम जाननेके लिये (आ शासते) इस सोमकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[९४३] (पुनानः) पवित्र होता हुआ तथा (मदिन्तमः सोमः) अत्यन्त आनन्ददायक सोमरस (पशौ रेतः न) जिस तरह गौ आदिमें वीर्य स्थापित किया जाता है, उसी तरह (चमूषु सीदति) पात्रोंमें स्थापित किया जाता है, (आदधत्) पात्रमें रखा हुआ (धियः पतिः) बुद्धियोंका स्वामी वह सोम (वचस्यते) स्तुत होता है ॥ ६ ॥

[९४४] (यत्) जब सोम (आसु) इन मानवी प्रजाओंमें (संददिः विदे) दाताके रूपमें जाना जाता है- तब वह सोम (महीः अपः वि गाहते) बहुत सारे जलमें प्रविष्ट होता है, तथा तब (सुकर्मभिः) उत्तमकर्म करनेवालोंके द्वारा (देवेभ्यः सुतः देवः) देवोंके लिये निचोडा गया सोमदेव (मृज्यते) शुद्ध किया जाता है ॥ ७ ॥

[९४५] हे (इन्दो) सोमरस ! (सुतः आयतः) निचोडा गया तथा अत्यन्त विस्तृत तू (नृभिः पवित्रे वि नीयसे) ऋत्विजोंके द्वारा छलनीमें ले जाया जाता है, तब (मत्सरिन्तमः) अत्यन्त आनन्ददायक तू (इन्द्राय) इन्द्रके पीनेके लिए (चमूषु आ निषीदसि) पात्रोंमें जाकर बैठ जाता है ॥ ८ ॥

[१००]

[९४६] (न) जिस तरह (मातरः) गोमातायें (पूर्वे आयुनि जातं वत्सं) छोटी उम्रमें उत्पन्न हुए अपने बछडेको (रिहन्ति) चाटती हैं, उसी तरह (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले यज्ञकर्ता (इन्द्रस्य प्रियं) इन्द्रको प्रिय (काम्यं) सबके द्वारा चाहने योग्य सोमको (अभि नवन्ते) प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

[९४७] हे (इन्दो सोम) देदीप्यमान सोम ! तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ (द्विबर्हसं रयिं) दोनों लोकोंको पुष्ट करनेवाले धनको हमें (आ भर) भरपूर दे, (त्वं) तू (दाशुषः गृहे) दाताके घरमें (विश्वानि वसूनि पुष्यसि) सभी धनोंको पुष्ट करता है ॥ २ ॥

९४८ त्वं धियं मनोयुजं सृजा वृष्टिं न तन्यतुः ।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि ॥ ३ ॥
९४९ परि ते जिग्युषो यथा धारा सुतस्य धावति ।
रंहमाणा व्य१व्ययं वारं वाजीव सानसिः ॥ ४ ॥
९५० क्रत्वे दक्षाय नः कवे पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतो मित्राय वरुणाय च ॥ ५ ॥
९५१ पवस्व वाजसातमः पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तमः ॥ ६ ॥
९५२ त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥ ७ ॥
९५३ पवमान महि श्रवश्चित्रेभिर्यासि रश्मिभिः ।
शर्धन् तमांसि जिघ्नसे विश्वानि दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

अर्थ— [९४८] हे (सोम) सोम! (तन्यतुः वृष्टिं न) मेघ जिस तरह वृष्टि करता है, उसी तरह (त्वं) तू (मनोयुजं धियं) मनको उत्तम बनानेवाली बुद्धिको (सृज) प्रेरित कर। (त्वं) तू (पार्थिवा दिव्या वसूनि) पृथ्वी और द्युलोक परके धनोंको (पुष्यसि) पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

[९४९] हे सोम! (सुतस्य ते) निचोडे गए तेरी (सानसिः रंहमाणा धारा) सेवनीय तथा वेगसे बहनेवाली धारा (अव्ययं वारं) भेडके बालोंसे बनी हुई छलनीकी तरफ (जिग्युषः वाजी इव) वीरके घोडेके समान (धावति) दौडती है ॥ ४ ॥

[९५०] हे (कवे सोम) ज्ञानी सोम! (इन्द्राय वरुणाय मित्राय च पातवे सुतः) इन्द्र, वरुण और मित्रके पीनेके लिये निचोडा गया तू (नः क्रत्वे दक्षाय) हमें ज्ञानी तथा बलवान् बनानेके लिये (धारया पवस्व) धार बांधकर पवित्र हो ॥ ५ ॥

[९५१] हे (सोम) सोम! (वाजसातमः मधुमत्तमः सुतः) अत्यन्त श्रेष्ठ बलवाला, अत्यन्त मधुर और निचोडा गया तू (इन्द्राय विष्णवे देवेभ्यः) इन्द्र, विष्णु और अन्य देवोंको पीनेके लिये (पवित्रे धारया पवस्व) छलनीमें धार बांधकर पवित्र हो ॥ ६ ॥

[९५२] हे (पवमान) पवमान सोम! (पवित्रे) छलनीमें स्थित (त्वां हरिं) तुझ हरे वर्णके सोमरसको (विधर्मणि) यज्ञमें (अद्रुहः मातरः) द्रोह न करनेवाले तथा माताके समान प्रेम करनेवाले जल (जातं वत्सं धेनवः न) उत्पन्न हुए बछडेको गायोंके समान (रिहन्ति) चाटते हैं ॥ ७ ॥

[९५३] हे (पवमान) पवित्र सोम! तू (चित्रेभिः रश्मिभिः यासि) अपनी सुन्दर किरणोंके साथ सर्वत्र जाता है, और (महि श्रवः) महान यशको प्राप्त करता है, तू (दाशुषः गृहे) दाताके घरमें जाकर (शर्धन्) अपना पराक्रम दीखाते हुए तू (विश्वानि तमांसि जिघ्नसे) संपूर्ण अंधकारको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

९५४ त्वं द्यां च॑ महिव्रत पृ॒थि॒वीं चाति॑ जभ्रिषे ।
प्रति॑ द्रा॒पिम॑मुञ्चथा॒ः पव॑मान महि॒त्वना ॥ ९ ॥

[१०१]

(ऋषिः- अन्धीगुः श्यावाश्विः, ४-६ ययातिर्नाहुषः, ७-९ नहुषो मानवः, १०-१२ मनुः सांवरणः, १३-१६ वैश्वामित्रो वाच्यो वा प्रजापतिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अनुष्टुप्, २-३ गायत्री ।)

९५५ पु॒रोजि॑ती वो॒ अन्ध॑सः सु॒ताय॑ मादयि॒त्नवे॑ ।
अप॒ श्वानं॑ श्नथिष्टन॒ सखा॑यो दीर्घजि॒ह्व्य॑म् ॥ १ ॥

९५६ यो धार॑या पाव॒कया॑ परिप्र॒स्यन्द॑ते सु॒तः । इन्दु॒रश्वो॒ न कृत्व्य॑ः ॥ २ ॥

९५७ तं दु॒रोष॑म॒भी नर॒ः सोमं॑ वि॒श्वाच्या॑ धि॒या । य॒ज्ञं हि॑न्व॒न्त्यद्रि॑भिः ॥ ३ ॥

९५८ सु॒तासो॒ मधु॑मत्तमा॒ः सोमा॒ इन्द्रा॑य म॒न्दिन॑ः ।
प॒वित्र॑वन्तो अक्षरन् दे॒वान् ग॑च्छन्तु वो॒ मदा॑ः ॥ ४ ॥

९५९ इन्दु॒रिन्द्रा॑य पवत॒ इति॑ दे॒वासो॑ अब्रुवन् ।
वा॒चस्पति॑र्मखस्यते॒ विश्व॒स्येशा॑न॒ ओज॑सा ॥ ५ ॥

अर्थ— [९५४] हे (महिव्रत) महान कर्म करनेवाले सोम ! (त्वं) तू (द्यां च पृथिवीं च) द्युलोक और पृथ्वीलोकको (अति जभ्रिषे) उत्तम रीतिसे धारण करता है । हे (पवमान) पवमान सोम ! तू (महित्वना) अपने महत्त्वसे (द्रापिं प्रति अमुंचथाः) कवचको धारण करता है ॥ ९ ॥

[१०१]

[९५५] (पुरोजिती अन्धसः) सामने रखे हुए सोमरूपी अन्नके (सुताय मादयित्नवे) निचोडे गए आनन्दकारी रसको पीनेके लिये (दीर्घजिह्व्यं श्वानं) लम्बी जीभ निकाले हुए कुत्तेको; हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम (अप श्नथिष्टन) दूर भगाओ ॥ १ ॥

[९५६] (सुतः कृत्व्यः) निचोडा गया तथा पराक्रमसे युक्त (यः इन्दुः) जो सोम (पावकया धारया) अपनी पवित्र धारासे (अश्वः न) अश्वके समान (परि प्र स्यन्दते) बह रहा है ॥ २ ॥

[९५७] (नरः) लोग (तं दुरोषं सोमं) उस अहिंस्य सोमको (यज्ञं) यज्ञमें (विश्वाच्या धिया) सम्पूर्ण उत्तम बुद्धिसे (अद्रिभिः हिन्वन्ति) पत्थरोंसे कूटते हैं ॥ ३ ॥

[९५८] (सुतासः मधुमत्तमाः) निचोडे गए, अत्यन्त मधुर (मन्दिनः) आनन्ददायक तथा (पवित्रवन्तः) पवित्र (सोमाः) सोमरस (इन्द्राय अक्षरन्) इन्द्रके लिये बहते हैं, हे सोमरसो ! (वः मदाः) तुम्हारे आनन्द (देवान् गच्छन्तु) देवोंके पास जाएं ॥ ४ ॥

[९५९] (इन्दुः) सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रके लिये बह रहा है, (इति) इस प्रकार (देवासः अब्रुवन्) देवोंने कहा तब (ओजसा विश्वस्य ईशानः) अपने सामर्थ्यसे सबपर शासन करनेवाला (वाचस्पतिः) वाचस्पति देव (मखस्यते) यज्ञकी इच्छा करता है ॥ ५ ॥

९६० सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥
९६१ अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥ ७ ॥
९६२ समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः ।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥ ८ ॥
९६३ य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम् ।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहै ॥ ९ ॥
९६४ सोमाः पवन्त इन्दवो ऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः सुवाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥ १० ॥
९६५ सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ॥ ११ ॥

अर्थ — [९६०] (समुद्रः) जलमय (वाचं ईङ्खयः) स्तुतिको प्रेरित करनेवाला (रयीणां पतिः) धनैश्वर्योंका स्वामी (दिवे दिवे इन्द्रस्य सखा) प्रतिदिन इन्द्रका मित्र तथा (सहस्रधारः सोमः पवते) हजारों धाराओंवाला सोमरस छाना जाता ॥ ६ ॥

[९६१] (पूषा) सबका पालन पोषण करनेवाला, (रयिः) धनवान् (भगः) ऐश्वर्यशाली (अयं सोमः) यह सोमरस (पुनानः अर्षति) सबको पवित्र करता हुआ छनता है, (विश्वस्य भूमनः पतिः) संपूर्ण प्राणियोंका पालक यह सोम (उभे रोदसी वि अख्यत्) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोकको प्रकाशित करता है ॥ ७ ॥

[९६२] (प्रियाः घृष्वयः गावः) प्रिय और तेजयुक्त गायें (मदाय अनूषत) इस आनन्दकारी सोमरसको पीनेके लिये शब्द करती हैं । (पवमानासः इन्दवः सोमासः) पवित्र होनेवाले तेजस्वी सोमरस (पथः कृण्वते) अपना मार्ग बनाते हैं ॥ ८ ॥

[९६३] हे (पवमान) पवित्र सोम ! तेरा (यः) जो रस (पंचचर्षणीः अभि) पांच जनोंमें व्याप्त है, (येन रयिं वनामहै) जिससे हम ऐश्वर्य प्राप्त कर सकें, तथा (यः ओजिष्ठः) जो अत्यन्त ओजयुक्त है, (तं श्रवाय्यं) उस यशसे युक्त रसको हमें (आ भर) भरपूर दे ॥ ९ ॥

[९६४] (मित्राः) मित्रके समान हित करनेवाले (सुवानाः) निचोडे जाते हुए (अरेपसः) निष्पाप (स्वाध्यः) उत्तम ज्ञानवाले (स्वर्विदः) ज्योति प्राप्त करानेवाले (गातु वित्तमाः) उत्तम रास्तोंको अच्छी तरह जाननेवाले तथा (इन्दवः सोमाः) तेजस्वी सोम (अस्मभ्यं पवन्ते) हमारे लिये बहते हैं ॥ १० ॥

[९६५] (गोः त्वचि अधि चितानाः) गायके चमडेके ऊपर रखकर (अद्रिभिः सुष्वाणासः) पत्थरोंसे कूटकर निचोडे गए (वसुविदः) धनको प्राप्त करानेवाले ये सोम (अस्मभ्यं इषं अभितः सं अस्वरन्) हमें अन्नको चारों ओरसे प्रदान करें ॥ ११ ॥

९६६ एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूर्यासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥ १२ ॥
९६७ प्र सुन्वानस्यान्धसो मर्तो न वृत तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥ १३ ॥
९६८ आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥ १४ ॥
९६९ स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ॥ १५ ॥
९७० अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरि-रिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥ १६ ॥

[१०२]

(ऋषिः- त्रित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९७१ क्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् । विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥ १ ॥

अर्थ— [९६६] (पूताः) पवित्र हुए (विपश्चितः) ज्ञानी (दध्याशिरः) दहीसे मिश्रित (घृते जिगत्नवः) जलमें जानेकी इच्छा करनेवाले तथा (ध्रुवा) स्थिर (एते सोमासः) ये सोमरस (सूर्यासः न दर्शतासः) सूर्यके समान दर्शनीय हैं ॥ १२ ॥

[९६७] (सुन्वानस्य अन्धसः) निचोडे जाते हुए इस अन्नरूप सोमको (तत् वचः) उस प्रशंसाको (मर्तः न प्र वृत) साधारण मनुष्य न सुन सके । हे मनुष्यो ! (भृगवः मखं न) भृगुओंने जिसतरह मखको दूर भगाया था, उसी तरह तुम (अराधसं श्वानं अप हत) ऐश्वर्यसे रहित कुत्तेको दूर भगाओ ॥ १३ ॥

[९६८] (ओण्योः भुजे पुत्रः न) माता पिताकी बाहोंमें जिसतरह पुत्र छिप जाता है, उसी तरह (जामिः) सबका भाईरूप यह सोमरस (अत्के आ अव्यत) अपने कवचमें छिप जाता है, तथा (जारः योषणां न) जिसतरह कोई व्यभिचारी व्यभिचारिणी स्त्रीके पास जाता है, अथवा (वरः न) जैसे कोई वर कन्याके पास जाता है, उसी तरह यह सोमरस (योनिं आसदं सरत्) पात्रमें बैठनेके लिए जाता है ॥ १४ ॥

[९६९] (दक्षसाधनः सः) बलको सिद्ध करनेवाला वह सोम (वीरः) वीर है, (यः रोदसी वि तस्तम्भ) जिसने द्युलोक और पृथ्वीलोकको और द्युलोकको स्थिर किया था । (हरिः) हरे रंगका यह सोमरस (वेधा न) ज्ञानीके समान (योनिं आसदं) अपने स्थानपर बैठनेके लिए (पवित्रे अव्यत) छलनीमें जाता है ॥ १५ ॥

[९७०] यह (सोमः) सोम (अव्यः वारेभिः) भेडके बालोंकी छलनीसे (पवते) छाना जाता है । (गव्ये त्वचि अधि) गायके चमडेके ऊपर रखा हुआ (वृषा हरिः) बलवान् सोम (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (इन्द्रस्य निष्कृतं अभि एति) इन्द्रके स्थानकी तरफ जाता है ॥ १६ ॥

[१०२]

[९७१] (क्राणा) कर्ता (महीनां शिशुः) पृथ्वीका पुत्र सोम (ऋतस्य दीधितिं हिन्वन्) यज्ञकी ज्वालाको प्रेरित करते हुए (द्विता) पृथ्वी और द्यु इन दोनों लोकोंमें रहनेवाले (विश्वा परि भुवत) सभी धनों पर अधिकार करता है ॥ १ ॥

९७२ उप त्रितस्य पाष्योऽरभक्त यद्गुहा पदम् । यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥ २ ॥
९७३ त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरया रयिम् । मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ॥ ३ ॥
९७४ जज्ञानं सप्त मातरो वेधामशासत श्रिये । अयं ध्रुवो रयीणां चिकेत यत् ॥ ४ ॥
९७५ अस्य व्रते सजोषसो विश्वे देवासो अद्रुहः । स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत् ॥ ५ ॥
९७६ यमी गर्भमृतावृधो दृशे चारुमजीजनन् । कविं मंहिष्ठमध्वरे पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥
९७७ समीचीने अभि त्मना यह्वी ऋतस्य मातरा । तन्वाना यज्ञमानुषग्यदञ्जते ॥ ७ ॥
९७८ क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिर्ऋणोरप व्रजं दिवः । हिन्वन्नृतस्य दीधितिं प्राध्वरे ॥ ८ ॥

[१०३]

(ऋषिः- द्वित आप्त्यः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९७९ प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उद्यतम् । भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥ १ ॥

अर्थ— [९७२] (यत्) जब सोम (त्रितस्य गुहा) त्रितके यज्ञमें (पाष्योः पदं) पत्थरोंके स्थान पर (उप अभक्त) जाकर बैठता है, (अध) इसके बाद (सप्त धामभिः) सात छन्दोंके द्वारा (यज्ञस्य प्रियं) यज्ञके प्रिय सोमकी स्तुति होती है ॥ २ ॥

[९७३] हे सोम ! तू (त्रितस्य) त्रित ऋषिके (त्रीणि धारया) तीनों सवनोंमें धारासे बह, तथा (पृष्ठेषु) उन यज्ञोंमें (रयिं आ ईरय) ऐश्वर्यको प्रेरित कर । (सुक्रतुः अस्य योजना वि मिमीते) उत्तम यज्ञ करनेवाला इस सोमकी सारी योजनाओं अच्छी तरह नाप लेता है ॥ ३ ॥

[९७४] (यत्) क्योंकि (ध्रुवः अयं) स्थिर यह सोम (रयीणां चिकेत) ऐश्वर्योंको जानता है, इसलिए (सप्त मातरः) सात छन्दरूपी मातायें (जज्ञानं वेधां) उत्पन्न हुए ज्ञानी इस सोमको (श्रिये अशासत) ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए प्रेरित करती हैं ॥ ४ ॥

[९७५] (यत्) जब (स्पार्हाः रन्तयः) स्पृहणीय तथा आनन्ददायी देव (जुषन्तः) सोमरसका सेवन करते हैं, तब (अस्य व्रते) इस सोमके व्रतमें (अद्रुहः विश्वे देवासः) द्रोह न करनेवाले सभी देव (सजोषसः भवन्ति) संगठित होते हैं ॥ ५ ॥

[९७६] (ऋतावृधः) यज्ञको बढानेवाले जलोंने (गर्भं) गर्भ स्थानीय जिस सोमको (अध्वरे) यज्ञमें (ईं चारुं कविं मंहिष्ठं पुरुस्पृहं) इस सुन्दर, ज्ञानी अत्यन्त पूजनीय और बहुतों द्वारा चाहे जाने योग्य (अजीजनन्) उत्पन्न किया ।

[९७७] (यत्) जब (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञका विस्तार करनेवाले लोग सोमको (आनुषक् अंजते) एक साथ पानी मिलाते हैं, तब वह सोम (त्मना) स्वयं ही (समीचीने) परस्पर संयुक्त, (यह्वी) महान् तथा (ऋतस्य मातरा) यज्ञका निर्माण करनेवाली द्यावापृथिवीकी तरफ जाता है ॥ ७ ॥

[९७८] हे सोम ! तू (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञमें (ऋतस्य दीधितिं प्र हिन्वन्) यज्ञके तेजको अधिक प्रेरित करते हुए (क्रत्वा शुक्रेभिः अक्षभिः) ज्ञान तथा प्रदीप्त तेजोंसे (व्रजं) अन्धकारके समूहको (दिवः अप ऋणोः) द्युलोकसे नष्ट कर ॥ ८ ॥

[१०३]

[९७९] हे स्तोता ! (भराः भृतिं न) जिस तरह सेवक अपना वेतन लेते हैं, उसी तरह तू (पुनानाय वेधसे) पवित्र होनेवाले, ज्ञानी, (मतिभिः जुजोषते) स्तुतियोंसे प्रसन्न होनेवाले (सोमाय) सोमके लिए (उद्यतं वचः प्र भर) उन्नतिदायक वाणीको प्रदान करो ॥ १ ॥

९८० परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति । त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ २ ॥
९८१ परि कोशं मधुश्चुतं मव्यये वारे अर्षति । अभि वाणीर्ऋषीणां सप्त नूषत ॥ ३ ॥
९८२ परि णेता मतीनां विश्वदेवो अदाभ्यः । सोमः पुनानश्चम्वोर्विशद्धरिः ॥ ४ ॥
९८३ परि दैवीरनु स्वधा इन्द्रेण याहि सरथम् । पुनानो वाघद्वाघद्भिरमर्त्यः ॥ ५ ॥
९८४ परि सप्तिर्न वाजयु र्देवो देवेभ्यः सुतः । व्यानशिः पवमानो वि धावति ॥ ६ ॥

[१०४]

(ऋषिः-पर्वतनारदौ काण्वौ, काश्यप्यौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ वा ।
देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक्)

९८५ सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत । शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥ १ ॥
९८६ समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम् । देवाव्यं मदमभि द्विशवसम् ॥ २ ॥

अर्थ— [९८०] (गोभिः अंजानः) गोदुग्धसे मिश्रित होता हुआ सोमरस (अव्यया वाराणि) भेडके बालोंकी बनी छलनीकी ओर (परि अर्षति) जाता है । (पुनानः हरिः) पवित्र होता हुआ हरितवर्णका सोमरस (त्री सधस्था) तीन स्थानों पर बैठता है ॥ २ ॥

[९८१] (मधुश्चुतं) मीठा रस (अव्यये वारे) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे (कोशं) पात्रमें (परि अर्षति) जाकर गिरता है । (सप्त ऋषीणां वाणीः अभि नूषत) सात ऋषियोंकी वाणी सोमरसकी स्तुति करती है ॥ ३ ॥

[९८२] (मतीनां नेता) बुद्धियोंको उत्तमताकी तरफ प्रेरित करनेवाला (विश्वदेवः) सभी देवोंको प्रिय (अदाभ्यः) किसीसेभी हिंसित न होनेवाला तथा (पुनानः) पवित्र होता हुआ (हरिः सोमः) हरे वर्णका सोमरस (चम्वोः विशत्) कूटनेके पत्थरों पर जाकर बैठता है ॥ ४ ॥

[९८३] हे सोम ! (पुनानः) पवित्र होता हुआ (वाघद्भिः वाघत्) स्तोताओंसे स्तुत होता हुआ, (अमर्त्यः) मरण धर्मसे रहित तू (इन्द्रेण सरथं) इन्द्रके साथ एक ही रथ पर बैठकर (दैवीः स्वधाः अनु परि याहि) दिव्य बलोंके अनुकूल होकर चल ॥ ५ ॥

[९८४] (वाजयुः) बलकी इच्छा करनेवाला (देवः) तेजस्वी (देवेभ्यः सुतः) देवोंके लिए निचोडा हुआ (वि आनशिः) सर्वत्र व्याप्त (पवमानः) पवमान सोम (सप्तिः न) घोडेके समान (परि वि धावति) चारों ओर दौडता है ॥ ६ ॥

[१०४]

[९८५] (सखायः आ निषीदत) हे मित्रो ! आओ, बैठो (पुनानाय प्र गायत) पवित्र करनेवाले सोमके लिए गान करो, तथा (श्रिये) कल्याणके लिए (यज्ञैः) यज्ञोंसे सोमको (शिशुं न) बच्चेके समान (परि भूषत) अलंकृत करो ॥ १ ॥

[९८६] (वत्सं मातृभिः न) बच्चेको जिस तरह माताओंसे संयुक्त करते हैं, उसी तरह हे मनुष्यो ! (गयसाधनं) गृहके साधन (ईं) इस सोमको (सं सृजत) अच्छी रीतिसे तैयार करो । (देवाव्यं मदं द्विशवसं) देवोंके रक्षक, आनन्ददायी तथा शारीरिक और मानसिक इन दो तरहके बलोंको देनेवाले सोमको (अभि) तैय्यार करो ॥ २ ॥

९८७ पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये । यथा मित्राय वरुणाय शंतमः ॥ ३ ॥
९८८ अस्मभ्यं त्वा वसुविदं-मभि वाणीरनूषत । गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि ॥ ४ ॥
९८९ स नो मदानां पत इन्दो देवप्सरा असि । सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥ ५ ॥
९९० सनेमि कृध्य१स्मदा रक्षसं कं चिदत्रिणम् । अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः ॥ ६ ॥

[१०५]

(ऋषिः- पर्वतनारदौ काण्वौ । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९९१ तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत । शिशुं न यज्ञैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥ १ ॥
९९२ सं वत्स इव मातृभि-रिन्दुर्हिन्वानो अज्यते । देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥ २ ॥
९९३ अयं दक्षाय साधनो ऽयं शर्धाय वीतये । अयं देवेभ्यो मधुमत्तमः सुतः ॥ ३ ॥

अर्थ— [९८७] (शर्धाय वीतये) शक्तिकी प्राप्ति तथा पीनेके लिये (दक्षसाधनं) बलके साधक सोमरसको (यथा) यथा योग्य (पुनात) पवित्र करो । (यथा) ताकि वह सोमरस (मित्राय वरुणाय शंतमः) मित्र और वरुणके लिये अत्यन्त सुखदायक हो ॥ ३ ॥

[९८८] (वसुविदं) धनको प्राप्त करानेवाले (त्वा) तेरी, हे सोम ! (अस्मभ्यं वाणीः अभि अनूषत) हमारी वाणियां स्तुति करती हैं । हे सोम ! (ते वर्णं) तेरे हरे रंगको हम (गोभिः) गोदुग्धसे (अभि वासयामसि) चारों ओरसे आच्छादित करते हैं ॥ ४ ॥

[९८९] (नः मदानां पते) हमारे आनंदके स्वामी (इन्दो) सोम ! (सः) वह तू (देवप्सरा असि) तेजस्वी रूपवाला है । तू (सखा इव सख्ये) मित्र जिस प्रकार अपने मित्रके लिये मार्गदर्शक होता है, उसी तरह तू (गातु वित्तमः) हमारे लिये उत्तम मार्गदर्शक हो ॥ ५ ॥

[९९०] हे सोम ! (अस्मत् सनेमि कृधि) हमसे पुरानी मित्रता कर, तथा (कं चित्) किसी भी (अत्रिणं) खानेवाले (अदेवं) देवको न माननेवाले नास्तिक (द्वयुं) दो तरहका व्यवहार करनेवाले (रक्षसं अप) राक्षसको दूर कर, तथा (नः अंहः युयोधि) हमसे पापको पृथक् कर ॥ ६ ॥

[१०५]

[९९१] हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम (मदाय पुनानं) आनन्दके लिए पवित्र होते हुए (तं अभि गायत) उस सोमके लिए गान करो, तथा (शिशुं न) शिशुको जिस तरह अलंकारोंसे सुशोभित करते हैं, उसी तरह (यज्ञैः गूर्तिभिः स्वदयन्त) यज्ञों और स्तुतियोंसे उसे स्वादिष्ट बनाओ ॥ १ ॥

[९९२] (वत्सः मातृभिः इव) बछडे जिस तरह माताओंसे संयुक्त होते हैं, उसी तरह (देवावीः) देवोंका रक्षक (मदः) आनंददायी (मतिभिः परिष्कृतः) स्तुतियोंसे संस्कृत हुआ (हिन्वानः इन्दुः) प्रेरणा देनेवाला सोमरस (सं अज्यते) जलसे अच्छी तरह मिलाया जाता है ॥ २ ॥

[९९३] (अयं दक्षाय साधनः) यह सोम बलको सिद्ध करनेवाला है, (अयं शर्धाय वीतये) यह बलप्राप्ति और पीनेके लिये तैयार किया जाता है, (मधुमत्तमः अयं) अत्यन्त मधुर यह सोमरस (देवेभ्यः सुतः) देवोंके लिये निचोडा गया है ॥ ३ ॥

×

९९४ गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धन्व । शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम् ॥ ४ ॥
९९५ स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः । सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥ ५ ॥
९९६ सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं कं चिदत्रिणम् । साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥ ६ ॥

[१०६]

(ऋषिः- १-३, १०-१४ अग्निश्चाक्षुषः, ४-६ चक्षुर्मानवः, ७-९ मनुराप्सवः ।
देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- उष्णिक् ।)

९९७ इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः । श्रुष्टी जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥ १ ॥
९९८ अयं भराय सानसि-रिन्द्राय पवते सुतः । सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे ॥ २ ॥
९९९ अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णीत सानसिम् । वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित् ॥ ३ ॥
१००० प्र धन्वा सोम जागृवि-रिन्द्रायेन्दो परि स्रव । द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [९९४] हे (सुदक्ष इन्दो) अत्यन्त बलवान् सोमरस ! (सुतः) निचोडा गया तू (नः) हमें (गोमत् अश्ववत्) गायों और घोडोंसे युक्त धन (धन्व) प्राप्त करा। तब मैं (ते शुचिं वर्णं) तेरे तेजस्वी वर्णको (गोषु अधि दीधरं) गोदुग्धमें मिलाता हू ॥ ४ ॥

[९९५] हे (हरीणां पते) हरित वर्णकी ओषधियोंके स्वामिन् (देवप्सरस्तम इन्दो) अत्यन्त तेजस्वी रूपवाले सोम ! (नर्यः स) मनुष्योंका हित करनेवाला वह तू (सखा इव सख्ये) मित्र जिस प्रकार अपने दूसरे मित्रको तेजस्वी बनाता है, उसी तरह (नः रुचे भव) हमें तेजस्वी बनानेवाला हो ॥ ५ ॥

[९९६] हे (इन्दो) सोमरस ! (त्वं) तू (अस्मत्) हमें (सनेमि आ) प्राचीन धनको प्रदान कर। तथा (साह्वान्) शत्रुओंका पराभव करता हुआ तू (अ-देवं देवको न माननेवाले (अत्रिणं कं चित्) अतिशय खानेवाले किसी भी शत्रुको (परिबाधः) दूरसे ही रोक दे, तथा (द्वयुं अप) दो तरहका व्यवहार करनेवाले शत्रुको भी दूर कर ॥ ६ ॥

[१०६]

[९९७] (जातासः) उत्पन्न हुए (स्वर्विदः) प्रकाश मार्गको जाननेवाले (हरयः) हरे वर्णके (सुताः) तथा निचोडे गए (इमे इन्दवः) ये सोमरस (वृषणं इन्द्रं) बलवान् इन्द्रके पास (श्रुष्टी अच्छ यन्तु) शीघ्र ही सीधे जाएं ॥ १ ॥

[९९८] (भराय सानसि) संग्राममें बुलाये जाने योग्य (सुतः अयं सोमः) निचोडा गया यह सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रके लिए पवित्र किया जाता है। (यथा विदे) जिस तरह वह सोम अन्य देवोंको जानता है, उसी तरह यह (सोमः) सोम (जैत्रस्य चेतति) जयशील इन्द्रको जानता है ॥ २ ॥

[९९९] (इन्द्रः) इन्द्र (अस्य इत् मदेषु) इसी सोमके आनंदमें (सानसिं ग्राभं) ग्रहण करने योग्य धनुषको (गृभ्णीत) पकडता है, (अप्सुजित्) पराक्रमशालियोंको भी जीतनेवाला यह इन्द्र (वृषणं वज्रं च सं भरत्) बलयुक्त वज्रको धारण करता है ॥ ३ ॥

[१०००] हे (सोम) सोम ! (जागृविः) सदा जागृत रहनेवाला तू (प्र धन्व) बह। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) तू इन्द्रके लिये बह। तथा (स्वर्विदं) प्रकाश मार्गको जाननेवाले तथा (द्युमन्तं शुष्मं आ भर) तेजस्वी बलको भरपूर दे ॥ ४ ॥

१००१ इन्द्राय वृषणं मदं पवस्व विश्वदर्शतः । सहस्रयामा पथिकृद्विचक्षणः ॥ ५ ॥
१००२ अस्मभ्यं गातुवित्तमो देवेभ्यो मधुमत्तमः । सहस्रं याहि पथिभिः कनिक्रदत् ॥ ६ ॥
१००३ पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा । आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥ ७ ॥
१००४ तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः । त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥ ८ ॥
१००५ आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् । वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥ ९ ॥
१००६ सोमः पुनान ऊर्मिणाऽव्यो वारं वि धावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ १० ॥
१००७ धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं वने क्रीळन्तमत्यविम् । अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ॥ ११ ॥
१००८ असर्जि कलशाँ अभि मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः । पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत् ॥ १२ ॥

अर्थ – [१००१] हे सोम ! (विश्व दर्शतः) सबको देखनेवाले, (सहस्रयामा) अनेकों मार्गोंके ज्ञाता, (पथि कृत्) मार्गोंका निर्माण करनेवाले (विचक्षणः) बुद्धिमान तू (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (वृषणं मदं पवस्व) बलवान् और आनन्दकारी रसको पवित्र कर ॥ ५ ॥

[१००२] (अस्मभ्यं गातुवित्तमः) हमारे लिये उत्तम रीतिसे मार्ग बतानेवाला, तथा (देवेभ्यः मधुमत्तमः) देवोंके लिये अत्यन्त मधुर तू हे सोम ! (कनिक्रदत्) शब्द करते हुए (सहस्रं पथिभिः याहि) हजारों मार्गोंसे जा ॥ ६ ॥

[१००३] हे (इन्दो) सोम ! (देववीतये) देवोंके भक्षणके लिए (ओजसा) तेजसे युक्त होकर (धाराभिः पवस्व) धाराओंसे पवित्र हो। हे (सोम) सोम ! (मधुमान्) मधुर रसवाला तू (नः कलशं आ सदः) हमारे कलशमें आकर बैठ ॥ ७ ॥

[१००४] हे सोम ! (उदप्रुतः तव द्रप्साः) जलकी तरफ जानेवाले तेरे रस (इन्द्रं मदाय) इन्द्रको आनन्द देनेके लिए (वावृधुः) बढते हैं। (कं) सुखरूप (त्वां) तुझे (देवासः अमृताय पपुः) देवगणोंने अमरता प्राप्त करनेके लिए पिया ॥ ८ ॥

[१००५] (वृष्टि द्यावः रीत्यापः स्वर्विदः) द्युलोकसे वृष्टि करके जल प्रवाहोंको पृथ्वीकी तरफ प्रेरित करनेवाले तथा सुखको प्राप्त करनेवाले (सुतासः इन्दवः) निचोडे गए सोमरसो ! (पुनानाः) पवित्र होते हुए तुम (नः रयिं आ धावत) हमें ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ९ ॥

[१००६] (पवमानः) पवित्र करनेवाला (वाचः अग्रे कनिक्रदत्) स्तुतियोंके पहले ही शब्द करनेवाला (सोमः) सोमरस (पुनानः) पवित्र होते समय (ऊर्मिणा) अपनी लहरोंके द्वारा (अव्यः वारं वि धावति) भेडके बालोंकी बनी छलनीकी तरफ दौडता है ॥ १० ॥

[१००७] (वाजिनं) बलशाली (वने क्रीळन्तं) जलमें खेलनेवाले तथा (अति अविं) छलनीसे गिरनेवाले सोमको लोग (धीभिः हिन्वन्ति) स्तुतियोंसे प्रेरित करते हैं। (त्रिपृष्ठं) तीन सवनोंमें रहनेवाले इस सोमका (मतयः) बुद्धियां (अभि सं अस्वरन्) अच्छी तरह वर्णन करती हैं ॥ ११ ॥

[१००८] (वाजयुः) बल प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सोमको (कलशान् अभि असर्जि) कलशोंकी तरफ उसी तरह प्रेरित करता है कि जिस तरह (मीळ्हे सप्तिः न) संग्राममें घोडेको प्रेरित करते हैं। (पुनानः) पवित्र होता हुआ सोम (वाचं जनयन्) स्तुतिको उत्पन्न करता हुआ (असिष्यदत्) पात्रोंमें बैठा ॥ १२ ॥

१००९ पवते हर्यतो हरि—रति ह्वरांसि रंह्या । अभ्यर्षन् त्स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥ १३ ॥
१०१० अया पवस्व देवयु—र्मधोर्धारा असृक्षत । रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः ॥ १४ ॥

[१०७]

ऋषिः- सप्तर्षयः (१ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, २ कश्यपो मारीचः, ३ गोतमो राहूगणः, ४ भौमोऽत्रिः, ५ विश्वामित्रो गाथिनः, ६ जमदग्निर्भार्गवः, ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः) देवता- पवमानः सोमः । छन्दः- प्रगाथः= (१, ४, ६, ८, ९, १०, १२, १४, १७, बृहती: २, ५, ७, ११, १३, १५, १८, सतोबृहती,) ३, १६, द्विपदा विराट्; १९-२६ प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

१०११ परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्व१न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ १ ॥
१०१२ नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवा—ऽदब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित् त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ २ ॥
१०१३ परि सुवानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१००९] (हर्यतः हरिः) अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक सोम (रंह्या) अपने वेगसे (स्तोतृभ्यः वीरवद्यशः अभ्यर्षन्) स्तोताओंको वीरतासे युक्त यशको प्रदान करता हुआ (ह्वरांसि अति पवते) दुष्टोंको भी अत्यन्त पवित्र करता है ॥ १३ ॥

[१०१०] (देवयुः) देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला तू हे सोम ! (अया पवस्व) इस धारासे सबको पवित्र कर । (मधोः धाराः असृक्षत) मधुर सोमकी धारायें बह रही हैं । हे सोम ! तू (रेभन्) शब्द करता हुआ (पवित्रं विश्वतः परि एषि) छलनीके चारों ओर जाता है ॥ १४ ॥

[१०७]

[१०११] (यः सोमः) जो सोम (उत्तमं हविः) उत्तम हवि है, (नर्यः यः) मनुष्योंका हित करनेवाला जो सोमरस (अप्सु अन्तः आ दधन्वान्) जलके अन्दर धारण किया जाता है, जिस (सोमं) सोमको (अद्रिभिः सुषाव) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया था, उस (सुतं) निचोडे गये सोमरसको (इतः परि षिंचत) यहांसे चारों ओर सींचो ॥ १ ॥

[१०१२] हे सोमरस ! (अदब्धः) किसीसे भी हिंसित न होनेवाला (सुरभिंतरः) अत्यन्त सुगंधित तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ तू (नूनं) निश्चयसे (अविभिः परि स्रव) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे छनता रह । (सुते) निचोडनेके बाद (अप्सु) जलमें रहनेवाले (उत्तरं त्वा) श्रेष्ठ तेरी (अन्धसा गोभिः श्रीणन्तः) अन्न तथा गोदुग्धसे मिश्रित करते हुए हम (मदामः) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[१०१३] (देवमादनः) देवोंको आनन्दित करनेवाला (क्रतुः) कर्मशील (इन्दुः) तेजस्वी (विचक्षणः) बुद्धिमान् (सुवानः) निचुडा हुआ सोमरस (चक्षसे परि स्रवति) सबको देखनेके लिए छाना जाता है ॥ ३ ॥

१०१४ पुनानः सोम धारया ऽपो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीद—स्युत्सो देव हिरण्ययः ॥ ४ ॥

१०१५ दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत् ।
आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षति नृभिर्धूतो विचक्षणः ॥ ५ ॥

१०१६ पुनानः सोम जागृवि—रव्यो वारे परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तमो मध्वा यज्ञं मिमिक्ष नः ॥ ६ ॥

१०१७ सोमो मीढ्वान् पवते गातुवित्तम ऋषिर्विप्रो विचक्षणः ।
त्वं कविरभवो देववीतम आ सूर्यं रोहयो दिवि ॥ ७ ॥

१०१८ सोम उ षुवाणः सोतृभि—रधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ॥ ८ ॥

अर्थ—[१०१४] हे (सोम) सोम! (पुनानः) पवित्र होता हुआ तू (अपः वसानः) जलसे आच्छादित होकर (धारया अर्षसि) धारासे छलनीमें जाता है। इसके बाद (रत्नधाः) रत्नोंको धारण करनेवाला तू (ऋतस्य योनिं आ सीदसि) यज्ञके स्थानमें आकर बैठता है । हे (देव) तेजस्वी सोम ! (उत्सः) प्रवाह युक्त तू (हिरण्ययः) सोनेके समान वर्णवाला है ॥ ४ ॥

[१०१५] (दिव्यं मधु प्रियं) दिव्य, मधुर और प्रिय (ऊधः दुहानः) रसको दुहता हुआ (प्रत्नं सधस्थं आ सदत्) अपने प्राचीन स्थान पर आकर बैठता है । (नृभिः धूतः) मनुष्योंके द्वारा तैयार किया गया (विचक्षणः) बुद्धिमान् तथा (वाजी) बलवान् सोम (आ पृच्छ्यं धरुणं अर्षति) स्तुतिके योग्य तथा धारक पात्रमें जाता है ॥ ५ ॥

[१०१६] हे (सोम) सोम ! (जागृविः प्रियः) सदा जागृत रहनेवाला तथा सबका प्रिय तू (पुनानः) पवित्र होता हुआ (अव्यः वारे) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे (परि) छनता है । (विप्रः त्वं) ज्ञानी तू (अंगिरस्तमः अभवः) अंगोंमें रहनेवाला श्रेष्ठतम रस हुआ है । तू (नः यज्ञं मध्वा मिमिक्ष) हमारे यज्ञको मधुर रससे सींच ॥ ६ ॥

[१०१८] (मीढ्वान्) अत्यन्त हर्षदायक (गातुवित्तमः) सन्मार्गको बतानेवालोंमें सर्व श्रेष्ठ (ऋषिः) ज्ञानी (विप्रः) मेधावी (विचक्षणः) सबको देखनेवाला यह (सोमः) सोमरस (पवते) पवित्र होता है । हे सोम ! (कविः) दूरदर्शी (त्वं) तू (देववीतमः अभवः) देवोंको अत्यन्त प्रिय हुआ है तथा (दिवि सूर्यं आ रोहयः) द्युलोकमें सूर्यको चढाया है ॥ ७ ॥

[१०१८] (सोतृभिः सुवानः सोमः) ऋत्विजोंके द्वारा निचोडा जाता हुआ सोम (स्नुभिः अधि याति) ऊंची छलनियोंसे नीचे जाता है । यह सोम (अश्वया इव) घोडीकी तरह (हरिता धारया मन्द्रया धारया याति) हरी और आनन्ददायक धारासे जाता है ॥ ८ ॥

१०१९ अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ॥ ९ ॥

१०२० आ सोम सुवानो अद्रिभि-स्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे ॥ १० ॥

१०२१ स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीळ्हे सप्तिर्न वाजयुः ।
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ॥ ११ ॥

१०२२ प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृवि-रच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ १२ ॥

१०२३ आ हर्यतो अर्जुने अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥ १३ ॥

अर्थ—[१०१९] (गोमान्) प्रवाहित होनेवाला यह सोम (गोभिः) गोदुग्धसे मिश्रित होकर (अनुपे अक्षाः) कलशमें जाता है। (सोमः) यह सोमरस (दुग्धाभिः अक्षाः) दूधसे मिलकर छनता है। (समुद्रं न) जिस तरह नदियां समुद्रकी ओर जाती हैं, उसी तरह (संवरणानि अग्मन्) सेवनीय सोमरस बहते हैं। (मन्दी) आनन्द देनेवाला सोम (मदाय तोशते) आनन्दके लिए कूटा जाता है ॥ ९ ॥

[१०२०] हे (सोम) सोम ! (अद्रिभिः सुवानः) पत्थरोंसे निचोडा जाता हुआ तू (अव्यया वाराणि) भेडके बालोंकी बनी हुई छलनियोंसे (आ तिरः) छाना जाता है। (हरिः) सब रोगोंको हरण करनेवाला यह सोम (चम्वोः विशत्) पात्रोंमें उसी तरह प्रविष्ट होता है कि जिस तरह (जनः पुरि न) मनुष्य नगरमें प्रविष्ट होता है ॥ १० ॥

[१०२१] (अनुमाद्यः) आनन्द देनेवाला (मनीषिभिः विप्रेभिः) बुद्धिशाली तथा ज्ञानी मनुष्योंकी (ऋक्वभिः) स्तुतियोंसे (पवमानः) पवित्र होता हुआ (सोमः) सोम (वाजयुः) अन्न प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला होकर (मेष्यः अण्वानि) भेडके बालोंकी बनी सूक्ष्म छलनीसे (तिरः) छाना जाकर उसी तरह (मामृजे) शुद्ध होता है, जिसतरह (मीळ्हे सप्तिः न) संग्राममें घोडा अलंकृत किया जाता है ॥ ११ ॥

[१०२२] हे (सोम) सोम ! (देववीतये) देवगण तुझे पी सके, इसलिए (अर्णसा) जलसे (प्र पिप्ये) उसी तरह तृप्त हो, कि जिसतरह (सिन्धुः न) समुद्र नदियोंके जलसे तृप्त होता है, तथा तू (मदिरः न जागृविः) आनन्ददायक रसके समान उत्साहको देनेवाला है। (अंशोः पयसा) सोमके रससे (मधुश्चुतं कोशं) मधुसे भरे हुए कलशकी ओर (अच्छ) सीधा जाता है ॥ १२ ॥

[१०२३] (हर्यतः प्रियः) स्पृहणीय और प्रिय लगनेवाला (सूनुः न मर्ज्यः) पुत्रके समान शुद्ध किया जानेवाला सोम (अर्जुने अत्के) गौर वर्णके रूपमें (आ अव्यत) आच्छादित करता है। (तं ईं) उस इस सोम रसको (नदीषु) जलमें (गभस्त्योः) दोनों हाथोंकी अंगुलियां (आ हिन्वन्ति) प्रेरित करती हैं (अपसो यथा रथं) जैसे वेगशाली मनुष्य युद्धमें रथको प्रेरित करते हैं ॥ १३ ॥

१०२४ अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।
समुद्रस्याधि विष्टपि मनीषिणो मत्सरासः स्वर्विदः ॥ १४ ॥

१०२५ तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।
अर्षन्मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत् ॥ १५ ॥

१०२६ नृभिर्येमानो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रियः ॥ १६ ॥

१०२७ इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥ १७ ॥

१०२८ पुनानश्चमू जनयन् मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।
अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन् वनेष्वव्यत ॥ १८ ॥

१०२९ तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि ॥ १९ ॥

अर्थ—[१०२४] (मनीषिणः आयवः) बुद्धिमान् ऋत्विज (मत्सरासः स्वर्विदः सोमरसः) आनन्द बढानेवाले सुखमय सोमरसोंको (समुद्रस्य अधि विष्टपे) जलपात्रके ऊपर रखी हुई छलनीमेंसे (मद्यं मदं अभि पवन्ते) आनन्द और उत्साह बढानेके लिये छानते हैं ॥ १४ ॥

[१०२५] (पवमानः देवः) शुद्ध किया जानेवाला (राजा) तेजस्वी सोम (बृहत् ऋतं समुद्रं) महान् जलसे युक्त कलशमें (ऊर्मिणा तरत्) लहरोंसे युक्त होकर बहता है, (हिन्वानः ऋतं बृहत्) प्रेरणा देनेवाला यह सत्य सोमरस (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुण द्वारा (धर्मणा प्र अर्षन्) धारण किए जानेके लिए छाना जाता है, कलशमें गिरता है ॥ १५ ॥

[१०२६] (नृभिः येमाणः) ऋत्विजोंके द्वारा तैयार होनेवाला (हर्यतः विचक्षणः) वर्णनीय, विशेष ज्ञान बढानेवाला (देवः राजा) दिव्य सोम राजा (समुद्रियः) जलोंमें इन्द्रके लिये छाना जाता है ॥ १६ ॥

[१०२७] (मदः सुतः सोमः) आनन्ददायक निचोडा हुआ सोम (मरुत्वते इन्द्राय पवते) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिये शुद्ध होता है, बादमें वह (सहस्र-धारः) अनेक धाराओंसे (अव्यं अत्यर्षति) बकरीके बालोंकी छलनीसे छनता है, (तं) उसे (ईं आयवः मृजन्ति) ऋत्विज करते हैं ॥ १७ ॥

[१०२८] (अपः वसानः) जलपात्रके ऊपरकी छलनीमेंसे शुद्ध किया जानेवाला (चमू पुनानः मतिं जनयन्) स्तुतिका प्रेरक ज्ञानको प्रकट करनेवाला (कविः) क्रान्तप्रज्ञ (सोमः) सोम (देवेषु रण्यति) इन्द्रादि देवोंके पास जाता है । (अपः वसानः) जलमें मिलकर और (वनेषु सीदन्) काष्ठ पात्रोंमें बैठकर (उत्-तरः) उत्कृष्टतर होकर (गोभिः परि अव्यत) दुग्ध आदिमें मिलाया जाता है ॥ १८ ॥

[१०२९] हे (इन्दो सोम) सोमरस ! (तव) तेरी (सख्ये) मित्रतामें (दिवे दिवे अहं) प्रतिदिन मैं (रराण) आनन्दित होऊं, (बभ्रो) हे सोम ! (पुरूणि मां न्यवचरन्ति) बहुतसे दुष्ट मनुष्य मुझे कष्ट देते हैं, (तान् परिधीन् अतीहि) उन दुष्टोंको नष्ट कर ॥ १९ ॥

१०३० उताहं नक्तमुत सोम ते दिवा सख्याय बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥ २० ॥
१०३१ मृज्यमानः सुहस्त्य समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ॥ २१ ॥
१०३२ मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ २२ ॥
१०३३ पवस्व वाजसातये ऽभि विश्वानि काव्या ।
त्वं समुद्रं प्रथमो वि धारयो देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ २३ ॥
१०३४ स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्मभिः ।
त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः ॥ २४ ॥
१०३५ पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च ॥ २५ ॥

अर्थ— [१०३०] हे (बभ्रो) भूरे रंगके सोम ! (उत नक्तं उत दिवा) रात अथवा दिन (तव ऊधानि अहं) तेरे पास मैं रहूं (ते घृणा) अपने तेजसे (तपन्तं) चमकनेवाले तुझे तथा (परं सूर्यं) दूर चमकनेवाले सूर्यको (शकुनाः इव अति पप्तिम) पक्षीके समान हम देखते हैं ॥ २० ॥

[१०३१] हे (सु- हस्त्या) उत्तम हाथोंकी अंगुलिसे निकाले गये सोम ! (मृज्यमानः) पवित्र करनेवाला तू (समुद्रे वाचं इन्वसि) नीचे पानीके बर्तनमें पडता हुआ शब्द करता है, हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू (पिशंगं) पीले रंगके (बहुलं पुरुस्पृहं रयिं) बहुत चाहने योग्य धन (अभ्यर्षसि) देता है ॥ २१ ॥

१ समुद्रः— पानीसे भरे हुए बर्तन

२ पिशंगं रयिं— पीले रंगका सोना, सोनेके सिक्के ।

[१०३२] (वृषा मृजानः) बल बढानेवाला, शुद्ध होनेवाला (अव्यये वारे पवमानः) भेडके बालोंकी छलनीसे छननेवाला (वने अव चक्रदः) पानीमें शब्द करता हुआ गिरता है । हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू (देवानां) देवताओंके लिये (गोभिः अंजानः) गायके दूधके साथ मिलाया जाता है और (निष्कृतं अर्षसि) शुद्ध किये हुए स्थानपर तू जाता है ॥ २२ ॥

[१०३३] हे (सोम) सोम ! (विश्वानि काव्या) सब स्तोत्रोंसे पवित्र ज्ञान युक्त और (अभि) मुख्य रूपसे (वाजसातये) अन्न प्राप्त करनेवाला तू (पवस्व) शुद्ध हो । हे सोम ! (देवेभ्यः मत्सरः) देवताओंको आनन्द देनेवाला तू (समुद्रं) पानीके बीचमें मिलकर (वि धारयः) विशेष गुणधर्मोंसे युक्त होकर (प्रथमे) श्रेष्ठ यज्ञमें पवित्र हो ॥ २१ ॥

[१०३४] हे (सोम) सोम ! तू (पार्थिवं रजः दिव्या धर्मभिः) पृथिवी लोक और दिव्य लोकको धारक सामर्थ्योंके साथ (परि पवस्व) पवित्र कर । हे (विचक्षण) कुशल समर्थ ! (विप्रासः) बुद्धिमान् लोग (मतिभिः धीतिभिः) स्तुतियों और अंगुलियोंके द्वारा (शुभ्रं त्वां) श्वेतवर्ण तुझे (हिन्वन्ति) निचोडते हैं ॥ २४ ॥

[१०३५] (मरुत्वन्तः) मरुतोंसे युक्त (मत्सराः) आनन्द देनेवाले (इन्द्रियाः) इन्द्रको चाहनेवाले, (मेधां प्रयांसि) स्तुति और अन्नको (अभि) सामने रखनेवाले (हयाः पवमानाः) यज्ञमें जानेवाले और शुद्ध होनेवाले सोमरस (धारया पवित्रं असृक्षत) धाराके रूपमें छाननीमेंसे नीचे गिरने लगते हैं ॥ २५ ॥

१०३६ अपो वसा॑नः॒ परि॒ कोश॑मर्षती॒न्दुर्हि॑या॒नः सो॒तृभि॑ः ।
ज॒नय॒ञ्ज्योति॑र्म॒न्दना॑ अवीवश॒द् गाः कृ॑ण्वा॒नो न नि॒र्णिज॑म् ॥ २६ ॥

[१०८]

(ऋषिः- १-२ गौरिवीतिः शाक्त्यः; ३, १४-१६ शक्तिर्वासिष्ठः; ४-५ ऊरुराङ्गिरसः, ६-७ ऋजिश्वा भारद्वाजः, ८-९ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, १०-११ कृतयशा आङ्गिरसः, १२-१३ ऋणंचयो राजर्षिः। देवताः- पवमानः सोमः। छन्दः काकुभः प्रगाथः = (विषमा ककुप्, समा सतोबृहती), १३ यवमध्या गायत्री।)

१०३७ पव॑स्व॒ मधु॑मत्तम॒ इन्द्रा॑य सोम क्रतु॒वित्त॑मो॒ मद॑ः । महि॑ द्यु॒क्षत॑मो॒ मद॑ः ॥ १ ॥
१०३८ यस्य॑ ते पी॒त्वा वृ॑ष॒भो वृ॑षा॒यते॒ ऽस्य पी॒ता स्व॒र्विद॑ः ।
स सु॒प्रके॑तो अ॒भ्य॑क्रमी॒दिषो॒ ऽच्छा॒ वाजं॒ नैत॑शः ॥ २ ॥
१०३९ त्वं ह्य१ङ्ग दैव्या॒ पव॑मान॒ जनि॑मानि द्यु॒मत्त॑मः । अ॒मृ॒त॒त्वाय॑ घो॒षय॑ः ॥ ३ ॥
१०४० येना॒ नव॑ग्वो द॒ध्यङ्ङ॑पोर्णु॒ते येन॒ विप्रा॑स आपि॒रे ।
दे॒वानां॑ सु॒म्ने अ॒मृत॑स्य॒ चारु॑णो॒ येन॒ श्रवां॑स्यान॒शुः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१०३६] (सोतृभिः हियानः) ऋत्विजोंसे निचोडता हुआ और (अपः वसानः) जलमें मिलाया हुआ (इन्दुः) सोमरस (कोशम् परि अर्षति) कलशमें जाता है। (ज्योतिः जनयन्) दीप्तिमय प्रकाशको निर्माण कर और (मन्दनाः गाः कृण्वानः) दूध आदिको अपना वस्त्र बनाकर (निः निजम् कृण्वानः) अभी स्तुतिकी इच्छा करता है ॥ २६ ॥

[१०८]

[१०३७] हे सोम ! (मधुमत्तमः) बहुत मीठा (क्रतु वित्तमः) यज्ञके सम्बन्धमें सब कुछ जाननेवाला (महि द्युक्षतमः) महान् तेजस्वी और (मदः) हर्ष बढानेवाला तू (इन्द्राय मदः पवस्व) इन्द्रको आनन्द देनेके लिये पवित्र हो ॥ १ ॥

[१०३८] हे सोम ! (वृषभः) बलवान इन्द्र (यस्य ते पीत्वा) जिस तुझे पीकर (वृषायते) अधिक बलवान् होता है, (स्वः- विदः अस्य पीत्वा) आत्मज्ञानी भी इसे पीकर आनन्दित होता है। (सु-प्र-केतः सः) उत्तम ज्ञानी वह इन्द्र (इषः) शत्रुके अन्नोंको (एतशः वाजं अभि न) जिस प्रकार घोडा संग्राममें जाकर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार (अभ्यक्रमीत्) अपने अधिकारमें करता है ॥ २ ॥

[१०३९] हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! (द्युमत्तमः) अत्यन्त तेजस्वी (त्वं हि) तू (दैव्यं जनिमानि) दिव्य जन्मोंको जानता है, और हे (अंग) प्रिय सोम ! तू (अमृतत्वाय घोषयन्) अमरताकी घोषणा करता है ॥ ३ ॥

[१०४०] (नव-ग्वा दध्यङ्) नौ गायोंका पोषण करनेवाला दध्यङ् ऋषि (येन अपोर्णुते) जिस सोमके द्वारा यज्ञका द्वार खोलता है। (विप्रासः येन आपिरे) यज्ञ करनेवाले विप्रोंने जिस सोमकी सहायतासे गायें प्राप्त कीं, (देवानां सुम्ने) देवोंके यज्ञसे सुख प्राप्त होनेपर (चारुणः अमृतस्य श्रवांसि) श्रेष्ठ अन्नको सहायतासे मिलनेवाले अन्नको (येन आनशुः) जिस सोमकी सहायतासे यजमान प्राप्त करते हैं, वह तू सोम देवोंको प्राप्त हो ॥ ४ ॥

×

१०४१ एष स्य धारया सुतो ऽव्यो वारेभिः पवते मदिन्तमः । क्रीळन्नूर्मिरपामिव ॥ ५ ॥
१०४२ य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ६ ॥
१०४३ आ सोता परि षिञ्चता ऽश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् । वनक्रक्षमुदप्रुतम् ॥ ७ ॥
१०४४ सहस्रधारं वृषभं पयोवृधं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ॥ ८ ॥
१०४५ अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुः । वि कोशं मध्यमं युव ॥ ९ ॥
१०४६ आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥ १० ॥
१०४७ एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः । विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ॥ ११ ॥

अर्थ—[१०४१] (मदिन्तमः) अत्यन्त आनन्द देनेवाला (अपां ऊर्मिः इव क्रीडन्) जलके लहरके समान खेल करते हुए (स्यः एषः सुतः) यह सोमरस (अव्याः वारेभिः) बकरीके बालोंसे बने हुए छाननीसे (धारया पवते) धार बांधकर कलशमें छाना जाता है ॥ ५ ॥

[१०४२] (यः) जो (उस्रियाः अप्याः) फैलनेवाले और जलोंको धारण करनेवाले (अश्मनः अन्तः) मेघोंमें (गाः) जलोंको (निः अकृन्तत्) बलसे छिन्न भिन्न करते हुए तू (गव्यं अश्व्यं व्रजं) गाय और घोडोंके समूहको (अभि तत्निषे) चारों ओरसे घेरता है । हे (धृष्णो) शत्रुओंको मारनेवाले सोम ! (वर्मी इव आ रुज) कवच धारण करनेवाले वीरोंके समान तू शत्रुओंका नाश कर ॥ ६ ॥

[१०४३] हे ऋत्विजो ! (अश्वं न) घोडेके समान वेगवान् (स्तोमं) स्तुतिके योग्य (अप्तुरं) जलके समान वेगवान् (रजस्तुरं) प्रकाशकी किरणके समान शीघ्रता करनेवाले (वन- क्रक्षं) जलसे मिश्रित (उद प्लुतं) जलके साथ मिले हुए सोमका (सोत) रस निचोडो, (परि षिंचत) और उसमें दूध मिलाओ ॥ ७ ॥

[१०४४] (सहस्रधारं वृषभं) हजारों धाराओंसे छाना जानेवाला, बलवर्धक (पयोवृधं) दूधमें मिलाये गये पुष्टिवर्धक प्रिय सोमको (देवाय जन्मने) देवोंको देनेके लिये शुद्ध करो । (देवः ऋतं) दिव्य और यज्ञरूप (बृहत् ऋतजातः) महान् और यज्ञमें लाया गया (यः राजा) जो राजा सोम है, वह (ऋतेन वि वावृधे) जलसे बढाया जाता है ॥ ८ ॥

[१०४५] हे (इषस्पते) अन्नके स्वामी (देव) प्रकाशमान देव सोम ! (देवयुः) तू देवोंकी इच्छा करनेवाला है, तू हमें (द्युम्नं बृहत् यशः) तेजस्वी और श्रेष्ठ यश (अभि दिदीहि) दे और (मध्यमं कोशं) शहदके कोशमें (वि युव) जाकर भर जा ॥ ९ ॥

[१०४६] हे (सु-दक्ष) उत्तम बलशाली सोम ! (चम्वोः सुतः) कलसेमें रखा हुआ तू (वह्निः न) सब प्रजाओंका चालक या नेता जैसे राजा होता है, उसी प्रकार (विशां विश्पतिः) प्रजाओंका पालक होकर (आ वच्यस्व) कलसेमें आ, (गविष्टये) गाय पानेकी इच्छावाले यजमान की (धियः जिन्वा) बुद्धियोंको प्रेरित करते हुए (दिवः अपां वृष्टिं रीतिं) द्युलोकसे जैसे पानी गिरता है, उसी प्रकार (पवस्व) नीचेके बर्तनमें तू छानता जा ॥ १० ॥

[१०४७] (दिवः) तेजस्वी ऋत्विज (मदच्युतं सहस्रधारं) आनन्दके प्रेरक और हजारों धाराओंसे बर्तनमें गिरनेवाले (वृषभं) बलवर्धक (विश्वा वसूनि बिभ्रतं) सब धनोंके धारण करनेवाले (एतं त्यं उ) इस उस सोमका (दुहुः) रस निकालते हैं ॥ ११ ॥

१०४८ वृषा वि जज्ञे जनयन्नमर्त्यः प्रतपञ्ज्योतिषा तमः ।
स सुष्टुतः कविभिर्निर्णिजं दधे त्रिधात्वस्य दंससा ॥ १२ ॥
१०४९ स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इळानाम् । सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥ १३ ॥
१०५० यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ॥ १४ ॥
१०५१ इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः । पवस्व मधुमत्तमः ॥ १५ ॥
१०५२ इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ॥ १६ ॥

[१०९]

(ऋषिः- अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरयः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- द्विपदा विराट् ।)

१०५३ परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥ १ ॥
१०५४ इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयाः क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः ॥ २ ॥

अर्थ— [१०४८] (वृषा जनयन्) शब्दको उत्पन्न करनेवाला बलवान् कामवर्षक (ज्योतिषा तमः प्रतपन्) अपने तेजसे अन्धकारको दूर करनेवाला, और (अमर्त्यः) अमर सोमको (विजज्ञे) जाना जाता है । (कविभिः सुष्टुतः स) क्रान्तदर्शी ऋत्विजोंके द्वारा स्तुत सोम (निः निजं दधे) विशुद्ध रूपसे मिलाया जाता है । (त्रिधातु) तीन जगह रखा हुआ वह सोम (अस्य दंससाः) इसके कर्म सामर्थ्योंसे याज्ञिक कर्मोंके लिये धारण किया जाता है ॥ १२ ॥

[१०४९] (यः वसूनां) जो धनोंका (यः रायां) जो दूध आदि पदार्थोंका (यः इळानां) जो भूमियोंका (यः सुक्षितीनां) जो उत्तम सन्तानोंका (आनेता) देनेवाला है, (सः) उस सोमका रस (सुन्वे) निकाल लिया है ॥ १३ ॥

[१०५०] (न यस्य इन्द्रः पिबात्) हमारे जिस सोमरसको इन्द्र पीता है, (यस्य मरुतः) जिसका रस मरुत पीते हैं (वा) अथवा (यस्य अर्यमणा भगः) जिसके रसको अर्यमाके साथ भग देव पीते हैं, (येन महे अवसे) जिस सोमके द्वारा महान् संरक्षणके लिये (मित्रावरुणा आ करामहे) मित्र और वरुणको बुलाया जाता है, उसी प्रकार (इन्द्रः आ) इन्द्रको बुलाया है ॥ १४ ॥

[१०५१] हे (सोम) सोम ! (नृभिः यतः) ऋत्विजोंके द्वारा संयत (सु-आयुधः) उत्तम शस्त्रोंसे युक्त (मधुमत्तमः) अतीव मधुर और (मन्दितमः) अत्यंत मदकर होकर तुम (इन्द्राय पातवे) इन्द्रके पीनेके लिये (पवस्व) बहो ॥ १५ ॥

[१०५२] हे सोम ! (सिन्धवः समुद्रं इव) जैसे नदियां समुद्रमें प्रवेश करती हैं वैसे ही (इन्द्रस्य हार्दि) इन्द्रके हृदयरूप (सोम धानम्) कलशमें (आ विश) प्रवेश करो । तू (मित्राय) मित्र, (वरुणाय) वरुण और (वायवे) वायुके लिये (जुष्टः) प्रीतियुक्त सेवित (दिवः) द्युलोकके (उत्तमः) सर्वोत्तम (वि-स्तम्भः) महान् आश्रय है ॥ १६ ॥

[१०९]

[१०५३] हे सोम ! (स्वादुः) स्वादिष्ट तू (इन्द्राय मित्राय पूष्णे) इन्द्र, मित्र और पूषाके लिये और (भगाय) भगके लिये (परि प्र धन्व) बर्तनमें भरा रह ॥ १ ॥

[१०५४] हे सोम ! (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान और बल प्राप्त करनेके लिये (सुतस्य ते) तेरा रस (इन्द्रः पेयात्) इन्द्र पिये और (विश्वे च देवाः) सब देव भी पियें (१) ॥ २ ॥

१०५५ एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः ॥ ३ ॥
१०५६ पवस्व सोम महान् त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥ ४ ॥
१०५७ शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजायै ॥ ५ ॥
१०५८ दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी पवस्व ॥ ६ ॥
१०५९ पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महामवीनामनु पूर्व्यः ॥ ७ ॥
१०६० नृभिर्येमानो जज्ञानः पूतः क्षरद्विश्वानि मन्द्रः स्वर्वित् ॥ ८ ॥
१०६१ इन्दुः पुनानः प्रजामुराणः करद्विश्वानि द्रविणानि नः ॥ ९ ॥
१०६२ पवस्व सोम क्रत्वे दक्षायाऽश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥ १० ॥
१०६३ तं ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥ ११ ॥

अर्थ— [१०५५] हे सोम ! (शुक्रः दिव्यः) तेजस्वी और स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हुआ (पीयूषः सः) पीनेके योग्य तू (अमृताय) अमर होनेके लिये (महे क्षयाय एव) महान् स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छासे (अर्ष) आगे जा ॥ ३ ॥

[१०५६] हे (सोम) सोम ! (महान् समुद्रः) महान् समुद्रके समान रससे युक्त (पिता) पालन करने-वाला तू (देवानां विश्वा धाम) देवोंके सब स्थानोंमें — पात्रोंमें (अभि पवस्व) भरा रह (२) ॥ ४ ॥

[१०५७] हे (सोम) सोम ! (शुक्रः) चमकनेवाला तू (देवेभ्यः पवस्व) देवोंके लिये छनता जा। (दिवे पृथिव्यै) द्युलोकको, पृथ्वी लोकको तथा (प्रजाभ्यः शं) प्रजाओंको सुख मिले ॥ ५ ॥

[१०५८] हे सोम ! तू (शुक्रः पीयूषः) तेजस्वी और पीनेके योग्य (दिवः धर्त्ता असि) द्युलोकका धारण करनेवाला है। (वाजी) बलवान् तू (सत्ये) यज्ञमें (विधर्मन् पवस्व) विविध कर्म करनेके समय छनता जा (३) ॥ ६ ॥

[१०५९] हे सोम ! तू (द्युम्नी) तेजस्वी, (सु- धारः) उत्तम प्रकारसे धार बंधकर बर्तनमें गिरनेवाला (अनु- पूर्व्यः महान्) पहलेके समानही महान् रहनेवाला है, अतः तू (अवीनां अनु पवस्व) रखे जानेवाले बर्तनमें मेषलोमोंसे होकर ठीक प्रकारसे भर जा। बर्तनमें सोमरस भरा जाता है ॥ ७ ॥

[१०६०] वह सोम (नृभिः येमानः) ऋत्विजों द्वारा नियत— निचोडा गया (जज्ञानः) विशुद्ध (पूतः) पवित्र (मन्द्रः) प्रसन्न मद युक्त और (स्वः- वित्) सर्वज्ञ है। वह हमें (विश्वानि क्षरत्) सब प्रकारकी संपत्ति दे (४) ॥ ८ ॥

[१०६१] (इन्दुः) तेजस्वी सोम (उराणः) मेंढोंके बालोंकी छननीसे छाना गया (पुनानः) सबकी वृद्धि करनेवाला पवित्र (नः) हमें (प्रजाम) प्रजा और (विश्वानि द्रविणानि) सब प्रकारकी संपत्ति (करत्) देओ ॥ ९ ॥

[१०६२] हे सोम ! (अश्वः न) घोडेके समान (निक्तः) पानीसे धोकर शुद्ध किया गया (वाजी) बल बढानेवाला, वेगवान् तू (क्रत्वे दक्षाय) ज्ञान, बल और (धनाय) धनकी प्राप्तिके लिये (पवस्व) शुद्ध होकर बर्तनमें भरा रह (५) ॥ १० ॥

[१०६३] हे सोम ! (सोतारः) रस निकालनेवाले ऋत्विज (ते रसं) तेरे रसको (मदाय पुनन्ति) आनन्द प्राप्तिके लिए शुद्ध करते हैं, तथा (महे द्युम्नाय तं सोमं) महान् तेजस्वी सोमरसोंको छानते हैं ॥ ११ ॥

१०६४ शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥ १२ ॥
१०६५ इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायाऽपामुपस्थे कविर्भगाय ॥ १३ ॥
१०६६ बिभर्ति चार्विन्द्रस्य नाम येन विश्वानि वृत्रा जघान ॥ १४ ॥
१०६७ पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥ १५ ॥
१०६८ प्र सुवानो अक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥ १६ ॥
१०६९ स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ १७ ॥
१०७० प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः ॥ १८ ॥
१०७१ असर्जि वाजी तिरः पवित्रमिन्द्राय सोमः सहस्रधारः ॥ १९ ॥
१०७२ अञ्जन्त्येनं मध्वो रसेनेन्द्राय वृष्ण इन्दुं मदाय ॥ २० ॥
१०७३ देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसेऽपो वसानं हरिं मृजन्ति ॥ २१ ॥
१०७४ इन्दुरिन्द्राय तोशते नि तोशते श्रीणन्नुग्रो रिणन्नपः ॥ २२ ॥

अर्थ— [१०६४] (शिशुं जज्ञानम्) नये पैदा हुए बच्चेको जैसे शुद्ध करते हैं उसी प्रकार ऋत्विग्गण (देवेभ्यः) देवोंके देनेके लिए (हरिं इन्दुं सोमं) हरे रंगके चमकनेवाले सोमको (पवित्रे मृजन्ति) छलनीसे शुद्ध करते हैं (६) ॥ १२ ॥

[१०६५] (चारुः कविः) कल्याण स्वरूप सुन्दर ज्ञानी (इन्दुः) यह सोम (अपां उपस्थे) अन्तरिक्षमें पानीके पास (भगाय मदाय) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दके लिये (पविष्ट) पहुंचाता है, पानीमें मिलाया जाता है ॥ १३ ॥

[१०६६] वह सोम (इन्द्रस्य) इन्द्रका (चारुः नाम बिभर्ति) कल्याणकर शरीरको धारण करता है, (येन) जिससे (विश्वानि वृत्रा जघान) इन्द्रने सारे पापी राक्षसोंको मारा (७) ॥ १४ ॥

[१०६७] (नृभिः सुतस्य) ऋत्विजों द्वारा निचोडा हुआ हुआ और (गोभिः श्रीतस्य) गोदुग्धमें मिश्रित (अस्य) सोमके रसका (विश्वे देवासः पिबन्ति) समस्त देवता पान करते हैं ॥ १५ ॥

[१०६८] (सुवानः) उत्तम रीतिसे छाना जानेवाला (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे सम्पन्न सोम (अव्यं वारं पवित्रं तिरः प्र अक्षाः) बालोंकी बनी छलनीसे शुद्ध होकर चारों ओरसे छाना जाता है (९) ॥ १६ ॥

[१०६९] हे (सहस्र- रेताः) अनेक बलोंसे युक्त (अद्भिः मृजानः) जलसे धोया जानेवाला (गोभिः श्रीणानः सः वाजी) गायके दूधसे मिलाया जानेवाला वह बलवान् सोम (अक्षाः) छाना जाता है ॥ १७ ॥

[१०७०] हे (सोम) सोम ! (नृभिः येमानः) ऋत्विजोंके द्वारा नियममें रखा गया (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया तू (इन्द्रस्य कुक्षा) इन्द्रके पेटमें (प्र याहि) भर जा (९) ॥ १८ ॥

[१०७१] (पवित्रं) छलनीसे छाना गया शुद्ध हुआ (वाजी) बलवान् ज्ञानी और (सहस्रधारः) हजारों धाराओंसे युक्त (सोमः) सोम (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (तिरः असर्जि) बनाया जाता है ॥ १९ ॥

[१०७२] (वृष्णः) काम वर्षक— सुखवर्षी (इन्द्राय मदाय) इन्द्रकी मत्तताके लिये ऋत्विक् जन (एनं इन्दुं) इस सोमको (मध्वः रसेन अञ्जन्ति) मधुर गोरसके साथ मिलाते है (१०) ॥ २० ॥

[१०७३] हे सोम ! (अपः वसानम्) जलमें मिले और (हरिं) हरितवर्ण कान्तियुक्त (त्वा) तुझे (देवेभ्यः पाजसे) देवोंके पान और बलके लिये ऋत्विक् लोग (मृजन्ति) शुद्ध करते है ॥ २१ ॥

[१०७४] (उग्रः इन्दुः) यह उग्र बलशाली सोम (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (तोशते) प्रथम तपाया जाकर (नि तोशते) अच्छी तरहसे शुद्ध किया जाता है, फिर (श्रीणन्) छाना जाता हुआ (अपः रिणन्) पानीमें मिलाया जाता है (११) ॥ २२ ॥

[११०]

(ऋषिः- त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । देवताः- पवमानः सोमः ।
छन्दः- १-३ पिपीलिकमध्या अनुष्टुप्, ४-९ ऊर्ध्वबृहती, १०-१२ विराट् ।)

१०७५ पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईयसे ॥ १ ॥

१०७६ अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये ।
वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे ॥ २ ॥

१०७७ अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥ ३ ॥

१०७८ अजीजनो अमृत मर्त्येष्वाँ ऋतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः ।
सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत् ॥ ४ ॥

१०७९ अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् ।
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥ ५ ॥

१०८० आदीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत ।
वारं न देवः सविता व्यूर्णुते ॥ ६ ॥

---

[११०]

अर्थ— [१०७५] हे सोम ! तू (वाज- सातये) अन्नकी प्राप्तिके लिये (सु परि प्र धन्व) उत्तम रीतिसे बर्तनमें भरा रह, (सक्षणिः वृत्राणि परि) सामार्थ्यवान् होकर तू शत्रुपर हमला कर, (नः ऋणया) हमारे ऋणोंको नष्ट करनेवाला तू (द्विषः तरध्यै) शत्रुओंसे पार होनेके लिए (ईयसे) उन शत्रुओंपर चढाई करनेके लिए जाता है ॥ १ ॥

[१०७६] हे सोम ! (सुतं त्वा) रस निकालनेके बाद तेरी (अनु मदामसि हि) हम उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं । हे (पवमान) पवित्र सोम ! (महे समर्य- राज्ये) महान् श्रेष्ठ राजाके संरक्षणके लिये (वाजान् अभि प्र गाहसे) अपने बलसे युक्त होकर शत्रुसेनापर तू हमला करनेके लिए जाता है ॥ २ ॥

[१०७७] हे (पवमान) सोम ! (पयः विधारे हि) जल धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (शक्मना सूर्यं अजीजनः) अपनी शक्तिसे तूने सूर्यको उत्पन्न किया । (गो- जीरया पुरंध्या) स्तुति करनेवालोंको गाय देनकी बुद्धिसे (रंहमाणः) तू प्रगतीवाला हुआ है ॥ ३ ॥

[१०७८] हे (अमृत) अमृतरूपी सोम ! तूने (ऋतस्य चारुणः अमृतस्य) सत्य और मंगलकारक पानीको धारण करनेवाले अन्तरिक्षमें (मर्त्येषु धर्मन् अजीजनः) सूर्यको मनुष्योंके लिए उत्पन्न किया (सनिष्यदत्) देवोंकी सेवा की । (वाजं अच्छ) तू युद्धके लिए सीधे ही (सदा असरः) हमेशा जाता है ॥ ४ ॥

[१०७९] हे सोम ! (श्रवसा) बलसे युक्त होकर (अभि-अभि ततर्दिथ) तू छलनीसे नीचे गिरता है, (न) जिस प्रकार (जनपान) मनुष्योंके पीनेके लिए (गभस्त्योः शर्याभिः) हाथोंकी अंगुलियोंसे (कं चित् अ- क्षितं उत्सं) किसी न चूनेवाले हौजको (भरमाणः) पानीसे भरते हैं, उसी प्रकार तू कलशमें भरता है ॥ ५ ॥

[१०८०] (आत्) बादमें (पश्यमानसः दिव्यः वसुरुचः) इसको देखनेवाले दिव्य वसुरुच, जबतक (दिवः सविता) द्युलोकसे सूर्य (वारं न व्यूर्णुते , सबको ढकनेवाले अन्धकारको दूर नहीं करता, तबतक (आप्यं ईं अभ्यनूषत) भाईके समान इस सोमकी स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

१०८१ त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।
स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥ ७ ॥
१०८२ दिवः पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधुक्षत ।
इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ॥ ८ ॥
१०८३ अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना ।
यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ९ ॥
१०८४ सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन् पवमानो अक्षाः ।
सहस्रधारः शतवाज इन्दुः ॥ १० ॥
१०८५ एष पुनानो मधुमाँ ऋतावे-न्द्रायेन्दुः पवते स्वादुरूर्मिः ।
वाजसनिर्वरिवोविद्वयोधाः ॥ ११ ॥
१०८६ स पवस्व सहमानः पृतन्यून् त्सेधन् रक्षांस्यप दुर्गहाणि ।
स्वायुधः सासह्वान् त्सोम शत्रून् ॥ १२ ॥

अर्थ—[१०८१] (सोम) हे सोम ! (प्रथमाः वृक्त- बर्हिषः) सबोंसे प्रथम आसन फैलानेवाले यजमान (महे वाजाय श्रवसे) विशेष बल और अन्नके लिए (त्वे धियं दधुः) तेरे विषयमें उत्तम विचार रखते हैं। (सः त्वं) वह तू (वीर) हे वीर सोम ! (नः वीर्याय चोदय) हमें वीर होनेके लिए प्रेरित कर ॥ ७ ॥

[१०८२] (यत् दिवः) जो द्युलोकमें देवोंके पीने योग्य (पीयूषं उक्थ्यं) अमृत प्रशंसनीय है, वह (पूर्व्यं) पहलेसे मिलनेवाला अमृत (महः गाहात् दिवः) महान् और अगाध द्युलोकसे (आ निरधुक्षत) निकाला गया है। इसके बाद (इन्द्रं अभि) इन्द्रके आगे (जायमानं) उत्पन्न हुए हुए सोमको (समस्वरन्) यज्ञकर्ता स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[१०८३] हे (पवमान) सोम ! (अध) बादमें (यत् इमे रोदसी) जब इस द्यु और पृथिवी (इमा विश्वा भुवना च) और इन सभी प्राणियोंमें (मज्मना यूथे निःष्ठा वृषभः न) अपने बलसे गायोंके झुण्डके बीचमें रहनेवाले बैलके समान (वि तिष्ठसे) तू विराजमान होता है ॥ ९ ॥

[१०८४] (सोमः) यह सोम (सहस्रधारः) सहस्रों धाराओंसे युक्त (पुनानः) पवित्र-शुद्ध किया हुआ (शत-वाजः) असीम सामर्थ्यवाला (इन्दुः) वरणीय रूपवाला तेजस्वी और (अव्यये वारे पवमानः) क्षरणशील सोम मेषलोममय छननीसे (शिशुः न क्रीळन्) शिशुके समान क्रीडा करता हुआ (अक्षाः) कलसमें भरता है ॥ १० ॥

[१०८५] (एषः) यह (पुनानः) छननीसे शुद्ध किया हुआ (मधुमान्) मधुरतायुक्त (ऋतावा) यज्ञयुक्त, क्षरणशील (स्वादुः) सुखद (ऊर्मिः) रसधारा सङ्ग (वाजसनिः) अन्नदाता (वरिवः वित्) धन दाता और (वयः धाः) आयु- बल दाता (इन्दुः) तेजस्वी सोम (इन्द्राय पवते) इन्द्रके लिए बहता है ॥ ११ ॥

[१०८६] हे (सोम) सोम ! (सः) वह तू (पृतन्यून्) संग्रामेच्छु शत्रुओंको (सहमानः पवस्व) सबको पराजित करता हुआ (दुर्गहाणि रक्षांसि) दुर्दम्य राक्षसोंको नष्ट कर और तू (सु- आयुधः) उत्तम आयुधोंसे युक्त होकर (शत्रून् सासह्वान्) शत्रुओंका विनाश करते हुए बहो ॥ १२ ॥

[१११]

(ऋषिः- अनानतः पारुच्छेपिः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- अत्यष्टिः ।)

१०८७ अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति स्वयुग्वभिः सूरो न स्वयुग्वभिः ।
धारा सुतस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।
विश्वा यद्रूपा परियात्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥ १ ॥
१०८८ त्वं त्यत् पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद् यत्रा रणन्ति धीतयः ।
त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥ २ ॥
१०८९ पूर्वामनु प्रदिशं याति चेकितत् सं रश्मिभिर्यतते दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्ये— न्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।
वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥ ३ ॥

[११२]

(ऋषिः- शिशुराङ्गिरसः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- पङ्क्तिः ।)

१०९० नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम् ।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छती— न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥

---

[१११]

अर्थ— [१०८७] (पुनानः) छाननीसे छाना जानेवाला सोमरस (हरिण्या अया रुचा) हरे रंगके अपने इस तेजसे (विश्वा द्वेषांसि तरति) सब शत्रुओंको दूर करता हैं, (सूरः स्वयुग्वभिः न) सूर्य अपनी किरणोंसे जैसे अन्धकारको नष्ट करता है, उसी प्रकार (सुतस्य धारा रोचते) उत्तम दीखनेवाले इस सोमरसकी धार चमकती है, (पुनानः हरिः अरुषः) छाना जानेवाला हरे रंगका यह सोमरस चमकता है, (यत्) जो (सप्तास्येभिः ऋक्वभिः) तेजके सात मुखों तथा स्तोत्रोंसे और (ऋक्वभिः) तेजोंसे (विश्वा रूपाणि परियासि) अनेक रूप धारण करता है ॥ १॥

[१०८८] हे सोम ! (त्वं ह) तूने (पणीनां त्यत् वसु) पणियोंसे उस धनको (विदः) प्राप्त किया। (ऋतस्य धीतिभिः मातृभिः) यज्ञके आधार भूत जलोंसे (स्वे दमे सं मर्जयसि) अपने यज्ञके स्थानमें उत्तम प्रकारसे तू शुद्ध होता है। (परावतः न साम तत्) दूरसे वह सामगान सुननेमें आता है (यत्र धीतयः रणन्ति) जहां यज्ञ करनेवाले यजमान आनन्दित हुए हुए दीखते हैं, (त्रिधातुभिः अरुषीभिः) तीन स्थानपर प्रकाशनेवाले तेजोंसे (रोचमानः) चमकनेवाला सोम (वयः दधे वयः दधे) अन्न देना है, निश्चयसे अन्न देता है ॥ २ ॥

[१०८९] (चेकितत् पूर्वां प्रदिशं अनु याति) सर्व ज्ञानी सोम पूर्व दिशाको जाता है, तब (दैव्यः दर्शतः रथः रश्मिभिः सं यतते) दिव्य और सुन्दर ऐसा तेरा रथ किरणोंके कारण तेजस्वी दीखता है। (पौंस्या उक्थानि अग्मन्) पौरुषका वर्णन करनेवाले सोम इन्द्रको प्राप्त होते हैं। स्तोतो उनसे (जैत्राय इन्द्रं हर्षयन्) विजयके लिए इन्द्रको प्रसन्न करते हैं (वज्रः च) वज्र भी इन्द्रको प्राप्त होता है, हे सोम और इन्द्र ! (यत् समत्सु अनपच्युता भवथः) तब तुम दोनों युद्धमें नहीं हारते ॥ ३ ॥

[११२]

[१०९०] (नः धियः नानानं) हमारी बुद्धियां अनेक प्रकारकी हैं। (जनानाम् व्रतानि वि) दूसरे मनुष्योंके कर्म भी अनेक प्रकारके हैं। (तक्षा) बढई- शिल्पी (रिष्टं इच्छति) लकडीका काम चाहता है, (भिषक् रुतं इच्छति) वैद्य रोगीको चाहता है, और (ब्रह्मा) वेदका विद्वान् ब्राह्मण (सुन्वन्तं इच्छति) यज्ञ करनेवाले यजमानको चाहता है। उसी प्रकार हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (इन्द्राय परिस्रव) तू इन्द्रके लिये स्रवित होओ ॥१॥

१०९१ जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः शकुनानाम् ।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभि- र्हिरण्यवन्तमिच्छती- न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥
१०९२ कारुरहं ततो भिष- गुपलप्रक्षिणी नना ।
नानाधियो वसूयवो ऽनु गा इव तस्थिमे- न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥
१०९३ अश्वो वोळ्हा सुखं रथं हसनामुपमन्त्रिणः ।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ वारिन्मण्डूक इच्छती- न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

[११३]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- पङ्क्तिः ।)

१०९४ शर्यणावति सोम- मिन्द्रः पिबतु वृत्रहा ।
बलं दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महद्- दिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥
१०९५ आ पवस्व दिशां पत आर्जीकात् सोम मीढ्वः ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

अर्थ— [१०९१] (जरतीभिः ओषधीभिः) पुराने परिपक्व काठ – ओषधियां (शकुनानाम् पर्णेभिः) पक्षियोंके पंख और (द्युभिः अश्मभिः) तीक्ष्ण शिलाओंसे बाण बनाये जाते हैं । (कार्मारः) कुशल शिल्पी बाण बेचनेके लिये (हिरण्यवन्तं इच्छति) धनवान् पुरुषकी इच्छा करता है; वैसे ही मैं सोमके प्रवाहकी इच्छा करता हूं । हे (इन्दो) सोम (इन्द्राय परिस्रव) तू इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ २ ॥

[१०९२] (अहं कारुः) मैं शिल्पी– स्तोता हूं, (ततः भिषक्) मेरा पुत्र वा पिता भिषक् है और (नना) माता वा कन्या (उपलप्रक्षिणी) यव– भर्जनकारिणी है । हम सब (नाना धियः) अनेक भिन्न कर्म करनेवाले हैं । जैसे (गाः इव) गोपालक गौओंके पीछे रहते हैं, उसी प्रकार हम भी (वसूयवः) धनकी इच्छा करते हुए, तुम्हारी (अनुतस्थिम) सेवा करते हैं । हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ ३ ॥

[१०९३] (वोळ्हा अश्वः) भार वहन करनेवाला घोडा (सुखं) सुखसे चलने योग्य (रथम्) कल्याण कर रथको (इच्छति) इच्छा करता है । (उपमन्त्रिणः हसनाम्) मित्र–सुहृद परस्पर हास– परिहासकी इच्छा करता है और (शेपः रोमण्वन्तौ भेदौ) पुरुषका जननेंद्रिय रोमोंवाला भेद (द्विधाभित्) स्त्रीके अंगकी कामना करता है । (मण्डूक वारिन् इच्छति) मेंढक जलमय तालाबकी इच्छा करता है; मैं सोमका स्रवण चाहता हूं । हे (इन्दो) सोम ! तुम (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये स्रवित होओ ॥ ४ ॥

[११३]

[१०९४] (आत्मनि) अपनेमें (बलं दधानः) महान् बल धारण करता हुआ और (महत् वीर्यं करिष्यन्) महान् पराक्रम करनेवाला (वृत्रहा) वृत्रहन्ता (इन्द्रः) इन्द्र (शर्यणावति सोमं पिबतु) कुरुक्षेत्रके पासवाले शर्यणावत् सरोवरमें स्थित सोमको पिये । हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये धाराओंसे बहता रहो ॥ १ ॥

[१०९५] हे (दिशां पते) दिशाओंके स्वामी और (मीढ्वः) कामनाओंकी वर्षा करनेवाले (सोम) सोम ! (ऋतवाकेन) पवित्र वेद मंत्रोंसे और (सत्येन) सत्य नियमोंका पालन करनेवाले ऋत्विजोंने (श्रद्धया) श्रद्धा और (तपसा) तपसे युक्त होकर तुझे (सुत) स्तविक किया है; इससे तू (आर्जीकात् आ पवस्व) आर्जीक देश– (व्यास नदीके पासका प्रदेश) से आकर क्षरित होओ । हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (इन्द्राय परिस्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ २ ॥

×

१०९६ पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।
तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन् तं सोमे रसमादधु—रिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

१०९७ ऋतं वदन्नृतद्युम्न सत्यं वदन् त्सत्यकर्मन् ।
श्रद्धां वदन् त्सोम राजन् धात्रा सोम परिष्कृत इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

१०९८ सत्यमुग्रस्य बृहतः सं स्रवन्ति संस्रवाः ।
सं यन्ति रसिनो रसाः पुनानो ब्रह्मणा हर इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ५ ॥

१०९९ यत्र ब्रह्मा पवमान छन्दस्यां वाचं वदन् ।
ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनय—न्निन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ६ ॥

११०० यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन् मां धेहि पवमाना—ऽमृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ७ ॥

अर्थ— [१०९६] (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री श्रद्धा (पर्जन्यवृद्धम्) वर्षाके जलसे वर्धित और (तं महिषं) उस महान् सोमको (आभरत्) स्वर्गसे ले आयी । (गन्धर्वाः तं प्रत्यगृभ्णन्) गन्धर्वों (वसु आदि) ने उसे ग्रहण किया और उन्होंने (सोमे रसं आदधुः) सोममें रस रख दिया । हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ ३ ॥

[१०९७] हे (ऋतद्युम्न) सत्य कान्ति युक्त, (सत्यकर्मन्) सत्यकर्मा, (सोम) सोम तू (ऋतं वदन्) यथावत् वचन कहता हुआ (सत्यं वदन्) सत्य बोलता हुआ, (श्रद्धां वदन्) श्रद्धापूर्वक बोलता हुआ, हे (इन्दो) तेजस्वी सोम ! (धात्रा परिष्कृतः) यजमानसे और अलंकृत शुद्ध होकर, हे (राजन्) सोम राजन् ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये स्रवित होओ ॥ ४ ॥

[१०९८] (सत्यं उग्रस्य) सत्य- यथार्थ बलवान् और (बृहतः) महान् (संस्रवाः संस्रवन्ति) अच्छी प्रकार एक साथ बहनेवाली धाराएं बह रही हैं । (रसिनः) रसवान् सोमके (रसाः) रस (सं यन्ति) एक साथ बह रहे हैं । हे (हरे) हरितवर्ण सोम ! (ब्रह्मणा पुनानः) ब्राह्मणके द्वारा मंत्रोंसे शुद्ध किया गया तू (इन्द्राय परि स्रव) इंद्रके लिये क्षरित होओ ॥ ५ ॥

[१०९९] हे (पवमान) पवित्र सोम ! (छन्दस्यां वाचं वदत्) छन्दोंमें बनायी स्तुतिका उच्चारण करनेवाला, (ग्राव्णा) पत्थरोंसे कूटकर शुद्ध किये हुए (सोमेन आनन्दं जनयन्) सोमसे देवोंका आनन्द उत्पन्न करनेवाला (ब्रह्मा) ब्राह्मण (यत्र) जहां (सोमे महीयते) सोमकी पूजा करता है, वहां हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहता रहो ॥ ६ ॥

[११००] हे (पवमान) पवित्र सोम ! (यत्र अजस्रं ज्योतिः) जहां अखण्ड तेज है और (यस्मिन् लोके स्वः हितम) जिस लोकमें सूर्य- स्वर्ग— सुख स्थित है, (तस्मिन्) उस (अमृते अक्षिते लोके) अमर और अक्षीण लोकमें (मां धेहि) मुझे रख । हे (इन्दो इन्द्राय परि स्रव) सोम ! तू इन्द्रके लिये बहो ॥ ७ ॥

११०१ यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः ।
यत्रामूर्यह्वतीराप स्तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ८ ॥

११०२ यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्त स्तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ९ ॥

११०३ यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम् ।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १० ॥

११०४ यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामा स्तत्र माममृतं कृधी न्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ११ ॥

[११४]

(ऋषिः- कश्यपो मारीचः । देवताः- पवमानः सोमः । छन्दः- पङ्क्तिः ।)

११०५ य इन्दोः पवमानस्या ऽनु धामान्यक्रमीत् ।
तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मन इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ १ ॥

अर्थ— [११०१] (यत्र वैवस्वतः राजा) जहां विवस्वान्‌का पुत्र राजा राजा है, (यत्र दिवः अवरोधनं) जहां स्वर्गका द्वार है, सूर्यको अवरोध करनेवाली रात है, (यत्र अमूः यह्वतीः आपः) जहां वे बडी बडी नदियां बहती हैं, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां मुझे अमर करो। हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहो ॥ ८ ॥

[११०२] (यत्र त्रिनाके त्रिदिवे) जिस उत्तम स्वर्ग लोकमें— तीसरे लोकमें (दिवः अनुकामं चरणं) सूर्य अपनी इच्छाके अनुसार घूमता है, और (यत्र लोकाः ज्योतिष्मन्तः) जहां लोक-जन तेजोमय हैं, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां मुझे अमर करो । हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहो ॥ ९ ॥

[११०३] (यत्र कामाः निकामाः च) जिस लोकमें श्रेष्ठ काम्यमान और प्रार्थनीय देवताएं रहते हैं (यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्) जहां प्रतापी सूर्यका स्थान है, और (यत्र स्वधा च तृप्तिः च) जहां स्वधा के साथ दिया गया अन्न और तृप्ति है, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां तू मुझे अमर कर । हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ १० ॥

[११०४] (यत्र आनन्दः च मोदाः च) जहां आनन्द और हर्ष, (मुदः प्रमुदः आसते) आल्हाद और प्रमोद- ये चार प्रकारके आनन्द हैं; (यत्र कामस्य कामाः आप्ताः) जहां अभिलाषीकी सारी कामनाएं पूर्ण होती हैं, (तत्र मां अमृतं कृधि) वहां मुझे अमर करो । हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहो ॥ ११ ॥

[११४]

[११०५] (यः) जो (इन्दोः पवमानस्य) तेजस्वी पवित्र सोमके (धामानि अनु अक्रमीत्) स्थानोंको- तेजको प्राप्त करता है, और हे (सोम) सोम ! (यः ते मनः अविधत्) जो तेरे चित्तके अनुकूल रहकर, आचरण करता है, (तं सुप्रजा इति आहुः) उसको उत्तम संततिसे युक्त गृहपति कहते हैं । हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बहता रहो ॥ १ ॥

११०६ ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पति–रिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ २ ॥

११०७ सप्त दिशो नानासूर्याः सप्त होतार ऋत्विजः ।
देवा आदित्या ये सप्त तेभिः सोमाभि रक्ष न इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

११०८ यत् ते राजञ्छृतं हवि–स्तेन सोमाभि रक्ष नः ।
अरातीवा मा नस्तारी–न्मो च नः किं चनाममु–दिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४ ॥

॥ इति नवमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ—[११०६] हे (कश्यप ऋषे) कश्यप ऋषि ! (मन्त्रकृतां) मन्त्रोंके रचयिताओंके जिन (स्तोमैः) स्तुति युक्त (गिरः उत्-वर्धयन्) वचनोंसे सोम रूपवित होता है, उस सोमकी पूजा कर; (यः वीरुधां पतिः) जो वनस्पति— ओषधियोंका पालक है, उस (राजानं सोमं) राजा सोमको (नमस्य) सत्कार पूर्वक प्रणाम कर। हे (इन्दो) सोम ! तू (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये प्रवाहित होओ ॥ २ ॥

[११०७] (सप्त दिशः नानासूर्याः) सात दिशाएं, ऋतु (सप्त होतारः ऋत्विजः) यज्ञ कर्ता सात ऋत्विज और (ये सप्त आदित्या देवाः) जो सात सूर्य हैं, हे (सोम) सोम ! (सत्से तेभिः नः अभि रक्ष) उनके साथ हमारी रक्षा कर। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये तू बहता रह ॥ ३ ॥

[११०८] हे (राजान् सोम) राजा सोम ! (यत् ते शृतं हविः) जो तेरे लिये हवनीय अन्नका पाक किया हुआ है, (तेन नः अभि रक्ष) उससे हमारी रक्षा कर। (अरातीवा नः मा तारीत्) शत्रु हमें न मारे और (नः किंचन मो आममत्) शत्रु हमारे किसीभी पदार्थका अपहरण न करे। हे (इन्दो) सोम ! (इन्द्राय परि स्रव) इन्द्रके लिये बह ॥ ४ ॥

॥ नववां मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध – भाष्य

नवम मण्डल

मन्त्रवर्णानुक्रमसूची

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तं ६५५
अक्रान्त्समुद: प्रथमे ९०७
अग्न आयूंषि पवसे ५६७
अग्निऋंषि: पवमान: ५६८
अग्निर्न यो वन आ ८००
अग्ने पवस्व स्वपा: ५६९
अग्रगो राजाप्यस्तविष्यते ७८३
अग्ने सिन्धूनां पवमानो ७५०
अचिक्रदद्वृषा हरि: १६
अचोदसो नो धन्वन्तु ६९७
अच्छा कोशं मधुश्च्युतं ५५९
अच्छा नृचक्षा असरत् ८२४
अच्छा समुद्रमिन्दवो ५६०
अच्छा हि सोम: कलशान् ७०८
अजीजनो अमृतं १०७८
अजीजनो हि पवमान १०७७
अजीतयेऽहतये पवस्व ८४७
अञ्जते व्यञ्जते ७८१
अञ्जन्त्येनं मध्वो १०७२
अतस्त्वा रयिमभि ३४४
अति श्री सोम रोचना १५२
अति वारान् पवमानो ३९७
अति श्रिती तिरश्चता १२९
अत्यं मृजन्ति कलशे ७३३
अत्या हियाना न हेतृभि: १२०
अत्यू पवित्रमक्रमीद् ३२८
अत्यूर्मिर्मत्सरो मद: १५०
अत्यो न हियानो ७४१
अदब्ध इन्दो पवसे ७२९
अद्भि: सोम पपृचानस्य ६७६
अद्रिभि: सुत: पवते गभस्त्यो: ६४३
अद्रिभि: सुत: पवसे पवित्र ७६१
अद्रिभि: सुतो मतिभि: ६८०
अध क्षपा परिष्कृतो ९३९
अध धारया मध्वा ८७८
अध यदिमे पवमान १०८३
अध श्वेतं कलशं ६७५
अधा हिन्वान इन्द्रियं ३४६
अधि द्यामस्थाद्वृषभो ७३५
अधि यदस्मिन् वाजिनीव ८३४
अधुक्षत प्रियं मधु १३
अध्वर्यो अद्रिभि: सुतं ३५७
अनप्तमप्सु दुष्टुरं १४२
अनु द्रप्सास इन्दव: ५५
अनु प्रत्नास आयव: १९२
अनु हि त्वां सुतं सोम १०७६
अनूपे गोमान् गोभिरक्षा: १०१९
अपघ्नन्तो अराव्ण: १२३
अपघ्नन्नेषि पवमान ८६६
अपघ्नन् पवते मृधो ४२३
अपघ्नन् पवसे मृध: ४८२
अपघ्नन् त्सोम रक्षसो ४८७
अप द्वारा मतीनां ९३
अपामिवेदूर्मयस्तर्तुराणा: ८४१
अपो वसान: परि १०३६
अप्सा इन्द्राय वायवे ५३८
अप्सु त्वा मधुमत्तमं २३९
अभिक्रन्दन् कलशं ७४९
अभि क्षिप: समग्मत १३०
अभि गव्यानि वीतये ४५१
अभि गावो अधन्विषु: १९९
अभि गावो अनूषत २५१
अभि ते मधुना पयो ९८
अभि त्यं गाव: पयसा ७२६
अभि त्यं पूर्व्यं मदं ५४
अभि त्यं मद्यं मदं ५३
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं ८१२
अभि त्वा योषणो दश ३८१
अभि द्युम्नं बृहद्यश: १०४५
अभि द्रोणानि बभ्रव: २५४
अभि नो वाजसातमं ९२६
अभि प्रियाणि काव्या ३८४

अभि प्रियाणि पवते ६७७
अभि प्रियाणि पवते पुनानः ८७९
अभि प्रिया दिवस्पदं ९६
अभि प्रिया दिवस्पदा ११३
अभि ब्रह्मीरनूषत २५७
अभि वस्त्रा सुवसनानि ९१७
अभि वह्निरमर्त्यः ८४
अभि वायुं वीत्यर्षा ९१६
अभि विप्रा अनूषत गावः १०७
अभि विप्रा अनूषत मूर्धन् १५३
अभि विश्वानि वार्या ३११
अभि वेना अनूषत ५०९
अभि सुवानास इन्दवो १४९
अभि सोमास आयवः १९४
अभि सोमास आयवः १०२४
अभी नवन्ते अद्रुहः ९४६
अभी नो अर्षा दिव्या ९१८
अभी उ ममध्न्या उत ९
अभीमृतस्य विष्टपं २६३
अभ्यभि हि श्रवसा १०७९
अभ्यर्ष बृहद्यशो १७३
अभ्यर्ष महानां ४
अभ्यर्ष विचक्षण ३६१
अभ्यर्ष सहस्त्रिणं ४७०
अभ्यर्ष स्वायुध ३७
अभ्यर्षानपच्युतो ३८
अमित्रहा विचर्षणिः १०३
अमृक्तेन रुशता वससा ६२५
अयं विचर्षणिर्हितः ४३८
अयं विश्वानि तिष्ठति ३७३
अयं स यो दिवस्परि २९२
अयं सूर्य इवोपदृक् ३७२
अयं सोम इन्द्र तुभ्यं ७९६
अयं सोमः कपर्दिने ५८९
अयं त आघृणे सुतो ५९०
अयं दक्षाय साधनो ९९३
अयं दिव इयर्ति विश्वं ६१९
अयं देवेषु जागृविः ३२१
अयं नो विद्वान् ६९०
अयं पुनान उषसो ७५९
अयं पूषा रयिर्भगः ९६१
अयं भराय सानसि ९९८
अयं मतवाञ्छकुनो ७५१
अया चित्तो विपानया ५३०
अया निजघ्निरोजसा ३६८
अया पवस्व देवयुः १०१०
अया पवस्व धारया ४६५
अया पवा पवस्वैना ९१९
अया रुचा हरिण्या १०८७
अया वीती परि स्रव ३९९
अया सोमः सुकृत्यया ३३७
अयुक्त सूर एतशं ४६६
अरममाणो अत्येति ६५२
अरश्मानो येऽरथा ८८७
अरावीदंशुः सचमानः ६७२
अरुषो जनयन् गिरः २०९
अरुरुचदुषसः पृश्निरग्रिय ७१९
अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छे ८९२
अर्षा णः सोम शं गवे ४१३
अर्षा सोम द्युमत्तमो ५३७
अलाय्यस्य परशुर्ननाश ६०८
अव द्युतानः कलशाँ ६७९
अवा कल्पेषु नः पुम ८५
अवावशन्त धीतयो १६६
अविता नो अजाश्वः ५८८
अव्ये पुनानं परि वार ७६३
अव्ये वधूयुः पवते ६२३
अव्यो वारे परि प्रियं ३५४
अव्यो वारे परि प्रियो ६६
अव्यो वारेभिः पवते ९७०
अश्वो न क्रदो वृषभिः ८९५
अश्वो न चक्रदो वृषा ४९१
अश्वो वोळ्हा सुखं १०९३
असर्जि कलशाँ अभि १००८
असर्जि रथ्यो यथा २७१
असर्जि वक्वा रथ्ये ८१७
असर्जि वाजी तिरः पवित्रं १०७१
असर्जि स्कम्भो दिव ७८४
असश्चतः शतधारा ७६५
असावि सोमो अरुषो ७१२
असाव्यंशुर्मदायाप्सु ४३२
असृक्षत प्र वाजिनो ४९२
असृग्रन् देववीतये ३३१
असृग्रन् देववीतये वाजयन्तो ५९५
असृग्रमिन्दवः पथा ६१
अस्मभ्यं रोदसी रयिं ६९
अस्मभ्यं गातुवित्तमो १००२
अस्मभ्यं त्वा वसुविदं ९८८
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रयुः १९
अस्मान् त्समर्ये पवमान ७२८
अस्मे धेहि द्युमद्यशो २५२
अस्मे वसूनि धारय ४८८
अस्य ते सख्ये वयं ४२७
अस्य ते सख्ये वयमियक्षंतः ५६२
अस्य पीत्वा मदानां १९७
अस्य प्रत्नामनु द्युतं ३७१
अस्य प्रेषा हेमना ८६८
अस्य वो ह्यवसा ९३३
अस्य व्रतानि नाधृषे ३६९
अस्य व्रते सजोषसो ९७५
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्रभं ९९९
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा १०
आ कलशा अनूषते ५३२
आ कलशेषु धावति श्येन ५९२
आ कलशेषु धावति पवित्रे १५१
आ जागृविर्विप्र ऋता ९०४
आ जामिरत्के अव्यत ९६८
आ त इन्दो मदाय कं ४४८
आ तू न इन्दो शतदातु ६५८
आ ते दक्षं मयोभुवं ५४६
आ ते रुचः पवमानस्य ८६७
आत्मन्वन्नभो दुह्यते ६७१
आत्मा यज्ञस्य रंह्या ५९
आत् सोम इन्द्रियो रसो ३३९
आ दक्षिणा सृज्यते ६४१
आदस्य शुष्मिणो रसे १२६
आ दिवस्पृष्ठमश्वयुः २७६
आदी हंसो यथा गणं २४९
आदी के चित् १०८०
आदीं त्रितस्य योषणो २४८
आदीमश्वं न हेतारो ४३४
आ धावता सुहस्त्यः ३३४

आ न इन्दो महीमिषं ५३१
आ न इन्दो शतग्विनं ५८४
आ न इन्दो शतग्विनं गवां ५३५
आ नः पवस्व धारया २६५
आ नः पवस्व वसुमद् ६२८
आ नः पूषा पवमानः ७१०
आ नः शुष्मं नृषाह्यं २३७
आ नः सुतास इन्दवः १००५
आ नः सोम पवमानः ७०९
आ नः सोम पवित्र आ ४४९
आ नः सोम संयन्तं ७५६
आ नः सोम सहो जुवो ५३६
आ पवमान धारय ११४
आ पवमान नो भरायो १९३
आ पवमान सुष्टुतिं ५२१
आ पवस्व गविष्टये ५६३
आ पवस्व दिशां पत १०९५
आ पवस्व मदिन्तम २१० ३५५
आ पवस्व महीमिषं ३०४
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम ४५९
आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तं ४४०
आ पवस्व सुवीर्यं ५२३
आ पवस्व हिरण्यवत् ४७६
आपानासो विवस्वतो ९२
आ प्यायस्व समेतु ते २४४
आ मन्द्रमा वरेण्यं ५४७
आ मित्रावरुणा भगं ६८
आ यद्योनिं हिरण्ययं ५०८
आ ययो त्रिंशतं तना ३९०
आ यस्तस्थौ भुवनानि ७२३
आ यो गोभिः सृज्यत ७२४
आ योनिमरुणो रुहत् २९६
आ यो विश्वानि वार्या १५९
आ रयिमा सुचेतुनं ५४८
आ वच्यस्व महि प्सरो १२
आ वच्यस्व सुदक्ष १०४६
आविवासन् परावतो २९३
आविशन् कलशं सुतो ४४७
आसुरषं बृहन्मते २८९
आ सोता परि षिंचता १०४३
आ सोम सुवानो अद्रिभिः १०२०
आस्मिन्पिशङ्गमिन्दवो १८१
आ हर्यताय धृष्णवे ९३८
आ हर्यतो अर्जुने १०२३
इन्दविन्द्राय बृहते ६३०
इन्दुं रिहन्ति महिषा ९२४
इन्दुः पविष्ट चारुर्मदाय १०६५
इन्दुः पविष्ट चेतनः ४९८
इन्दुः पुनानः प्रजां १०६१
इन्दुः पुनानो अति गाहते ७६४
इन्दुरत्यो न वाजसृत् ३१७
इन्दुरिन्द्राय तोशते १०७४
इन्दुरिन्द्राय पवत ९५९
इन्दुर्देवानामुप सख्यं ८७२
इन्दुर्वाजी पवते ८७७
इन्दुर्हिन्वानो अर्षति ५८२
इन्दुर्हियानः सोतृभि २३६
इन्दो यथा तव स्तवो ३७६
इन्दो यदद्रिभिः सुतः २०२
इन्दो व्यव्यमर्षसि ५८३
इन्दो समुद्रमीङ्खय २६६
इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः ४६३
इन्द्रमच्छ सुता इमे ९९७
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य १०५४
इन्द्रस्य सोम पवमानं ६८४
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो ७२
इन्द्रस्य सोम राधसे ३९८
इन्द्रस्य हार्दि सोमधानं १०५२
इन्द्राय पवते मदः १०२७
इन्द्राय वृषणं मदं १००१
इन्द्राय सोम परि षिच्यसे ६९३
इन्द्राय सोम पवसे १९६
इन्द्राय सोम पातवे नृभिः १०५१
इन्द्राय सोम पातवे मदाय १०४
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने ९३५
इन्द्राय सोम सुषुतः ७२७
इन्द्रायेंदु पुनीतनो ४५७
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते ५१०
इन्द्रो न यो महा कर्माणि ७९९
इषं तोकाय नो दधत् ५३९
इषमूर्जं च पिन्वस ४६०
इषमूर्जमभ्यर्षाश्च गा ८३८
इषमूर्जं पवमानभ्यर्षासि ७७३
इषर्नं धन्वन् प्रति ६२१
इषे पवस्व धारया ५०१
इष्यन् वाचमुप वक्तेव ८४३
ईळेन्यः पवमानो ४३
ईशान इमा भुवनानि ७७५
उक्षा मिमाति प्रति ६२४
उक्षेव यूथा परियन्नरावी ६४९
उच्चा ते जातमन्धसो ४०८
उत त्या हरितो दश ४६७
उत त्वामरुणं वयं ३२७
उत न एना पवया ९२०
उत नो गोमतीरिषो ४५२
उत नो गोविदश्ववित् ३७७
उत नो वाजसातये ११८
उत प्र पिप्य ऊधर ८३१
उत स्म राशिं परि ७९५
उत स्वस्य अरात्यः ६९९
उताहं नक्तमुत सोम १०३०
उतो सहस्रभर्णसं ५१४
उत्ते शुष्मास ईरते ३५२
उत्ते शुष्मासो अस्थुः ३६७
उदातैर्जिहते बृहद् ४५
उन्मध्व ऊर्मिर्वननां ७७८
उप त्रितस्य पाष्योः ९७२
उप प्रियं पनिप्नतं ६०७
उप शिक्षाप तस्थुषो १६८
उपास्मै गायता नरः ९७
उपो मतिः पृच्यते ६२२
उपो षु जातमप्तुरं ४११
उभयतः पवमानस्य ७४४
उभा देवा नृचक्षसा ४७
उभाभ्यां देव सवितः ६०३
उभे द्यावापृथिवी विश्वमिन्वे ७११
उभे सोमावचाकसन् २५०

उरु गव्यूतिर भयानि कृण्वन् ८१४
उशा वेद वसूनां ३८८
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि ७३८
ऊर्मिर्यस्ते पवित्र आ ४९९
ऋजुः पवस्व वृजिनस्य ९१०
ऋतं वदन्नृतद्युम्न १०९७
ऋतस्य गोपा न दभाय ६६६
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु ६७८
ऋतस्य तन्तुर्विततः ६६७
ऋधक् सोम स्वस्तये ५१८
ऋभुर्न रथ्यं नवं १८२
ऋषिमना य ऋषिकृत् ८६१
ऋषिर्विप्रः पुरएता ७८९
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः ११०६
एत उ त्ये अवीवशन् १८३
एतं त्यं हरितो दश २८५
एतं त्रितस्य योषणो २८४
एतमु त्यं दश क्षिपो १३९
एतम त्यं दश क्षिपः ४०५
एतमु त्यं मदच्युतं १०४७
एतं मृजन्ति मर्ज्यं पवमानं ३३६
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणे १३८
एतानि सोम पवमानो ६९६
एते असृग्रमाशवो ४६२
एते असृग्रमिन्दवः ४२९
एते धामान्यार्या ४७२
एते धावन्तीन्दवः १७७
एते पूता विपश्चितः (विपा) १८६
एते पूता विपश्चितः (सूर्यासो) ९६६
एते पृष्ठानि रोदसोः १८८
एते मृष्टा अमर्त्याः १८७
एते वाता इवोरवः १८५
एते विश्वानि वार्या १८०
एते सोमा अति वाराण्यव्या ८०१
एते सोमा अभि गव्या ७९१
एते सोमा अभि प्रियं ७०
एते सोमा असृक्षत ४५०
एते सोमः पवमानास ६२९
एते सोमास आशवो १८४
एते सोमास इन्दवः ३३३
एना विश्वान्यर्य आ ४०९
एन्दो पार्थिवं रयिं २३४
एन्द्रस्य कुक्षा पवते ७०४
एवा त इन्दो सुभ्वम् ७०१
एवा देव देवताते ८९४
एवा न इन्दो अभि ८८८
एवा नः सोम परिषिच्यमान आ ९०३
एवा नःसोम परिषिच्यमानो वयो ६२०
एवा पवस्व मदिरो ८८२
एवा पुनान इन्द्रयुः ६०
एवा पुनानो अपः स्वः ८२२
एवामृताय महे क्षयाय १०५५
एवा राजेव क्रतुमाँ ८१६
एष इन्द्राय वायवे २१८
एष उ स्य पुरुव्रतो ३०
एष उ स्य वृषा रथो २८३
एष कविरभिष्टुतः २१७
एष गव्युरचक्रदत् २२०
एष तुन्नो अभिष्टुतः ५९८
एष दिवं वि धावति २७
एष दिवं व्यासरत् २८
एष देवः शुभायते २२५
एष देवो अमर्त्यः २१
एषा देवो रथर्यति २५
एषा देवो विपन्युभिः २३
एषा देवो विपा कृतो २२
एवा धिया यात्यण्व्या १३२
एष नृभिर्वि नीयते २१९
एष पवित्रे अक्षरत् २२४
एष पुनानो मधुमाँ १०८५
एष पुरु धियायते १३३
एष प्र कोशे मधुमाँ ६८७
एष प्रत्नेन जन्मना २९
एष प्रत्नेन मन्मना ३०८
एष प्रत्नेन वयसा ९१४
एव रुक्मिभिरीयते ११६
एष वसूनि पिन्दना ११७
एष वाजी हितो नृभिः २२३
एष विप्रैरभिष्टुतो २६
एष विश्ववित् पवते ९२३
एषा विश्वानि वार्या २४
एष वृषा कनिक्रदत् २२६
एष वृषा वृषव्रतः ४३९
एष शुष्म्यदाभ्यः २२८
एष शुष्म्यसिष्यदत् २२२
एष शृङ्गाणि दोधुवत् १३५
एव सुवानः परि सोमः ७९३
एष सूर्यमरोचयत् २२७
एष सूर्येण हासते २२१
एष सोमो अधि त्वचि ५७७
एष स्य ते पवत ९१३
एष स्य ते मधुमाँ ७१०
एष स्य धारया १०४१
एष स्य परि षिच्यते ४४१
एष स्य पीतये सुतो २८८
एष स्य मद्यो रसो २८७
एष स्य मानुषीष्वा २८६
एष स्य सोमः पवते ७२५
एष स्य सोमो मतिभिः ८५८
एष हितो वि नीयते १३४
एषा ययौ परमादन्तः ७९४
ककुहः सोम्यो रस ५८६
कनिक्रदत् कलशे गोभिरज्य ७३१
कनिक्रददनु पन्थामृतस्य ८९९
कनिक्रन्ति हरिरा ८३९
कविं मृजन्ति मर्ज्यं ४७८
कविर्वेधस्या पर्येषि ७१३
कारुरहं ततोऽभिषक् १०९२
कुविद्वृषण्यन्तीभ्यः १६७
कृण्वन्तो वरिवो गवे ४३१
कृतानीदस्य कर्त्वा ३३८
केतुं कृण्वन् दिवस्परि ४९६
क्रत्वा दक्षस्य रथ्यं १४१
क्रत्वा शुक्रेभिरक्षभिः ९७८
क्रत्वे दक्षाय नः कवे ९५०
क्राणा शिशुर्महीनां ९७१
क्ळुर्मखो न मंहयुः १७६

गन्धर्वं इत्था पदमस्य	७२०
गिरस्त इदं ओजसा	१७
गिरा जात इह स्तुत	४४३
गिरा यदी सबन्धवः	१२५
गोजिन्नः सोमो रथजिद्	६९५
गोमन्न इन्दो अश्ववत्	९९४
गोमन्नः सोम वीरवद्	३१२
गोवित् पवस्व वसुविद्	७७७
गोषा इन्दो नृषा अस्य	२०
ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं	८८५
ग्राव्णा तुन्नो अभि ष्टुतः	५९७
घृतं पवस्व धारया	३४९
चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो	६९१
चतस्र ईं घृतदुहः	८०८
चमूषच्छ्येनः शकुनो	८६२
चरुर्न यस्तमीङ्खये	३६४
जघ्निर्वृत्रममित्रियं	४१८
जज्ञानं सप्तमातरो	९७४
जनयन् रोचना दिवो	३०७
जरतीभिरोषधीभिः पर्णेभिः	१०९१
जायेव पत्यावधि शेव	७१५
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः	१२२
जुष्टो मदाय देवतात	८८६
जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा	८८३
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते	७४८
तं वः सखायो मदाय	९९१
तं वेधां मेधयाह्यन्	२१३
तं सखायः पुरोरुचम्	९३७
तं सानावधि जामयो	२१५
तं सोतारो धनस्पृतं	४४६
तं हिन्वन्ति मदच्युतं	३७०
तक्षद्यदी मनसो	८८९
तं मायया पुराण्या	९४१
तं गावो अभ्यनूषत	२१२
तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं	२६९
तं गोभिर्वृषणं रसं	९७
तनूनपात्पवमानः	४२
तन्तुं तन्वानमुत्तमं	१८९
तं ते सोतारो रसं	१०६३
तं त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे	४४५
तं त्वा देवेभ्यो मधुमत्तमं	७०५
तं त्वा धर्तारमोण्योः	५२९
तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं	३४२
तं त्वा मदाय घृष्वय	१८
तं त्वा विप्रा वचोविदः	५११
तं त्वा सहस्रचक्षसं	३९६
तं त्वा सुतेष्वाभुवो	५४५
तं त्वा हस्तिनो मधुमन्तं	७०६
तं त्वा हिन्वन्ति वेधसः	२१६
तं दुरोषमभी नरः	९५७
तन्नु सत्यं पवमानस्यास्तु	८२७
तं नो विश्वा अवस्युवो	३१४
तपोष्पवित्रं विततं	७१८
तममृक्षन्त वाजिनं	२११
तमस्य मर्जयामसि	९४०
तमह्यन् भुरिजोर्धिया	२१४
तमिद्वर्धन्तु नो गिरो	४१२
तमीं हिन्वन्त्यग्रुवो	८
तमीमण्वीः समर्य आ	७
तमी मृजन्त्यायवो	४७५
तमुक्षमाणमव्यये	९४२
तमु त्वा वाजिनं नरो	१५४
तं मर्मृजानं महिषं	८४२
तया पवस्व धारया यया गाव	३४८
तया पवस्व धारया यया पितो	३३०
तरत् स मन्दी धावति	३८७
तरत् समुद्रं पवमान	१०२५
तव क्रत्वा तवोतिभिः	३६
तव त्य इन्दो अन्धसो	३५९
तव त्ये सोम पवमान	८२६
तव द्रप्सा उदप्रुत	१००४
तव प्रत्नेभिरध्वभिः	३६३
तव विश्वे सजोषसो	१५८
तव शुक्रासो अर्चयो	५५३
तवाहं सोम रारण	१०२९
तवेमाः प्रजा दिव्यस्य	७६६
तवेमे सप्त सिन्धवः	५५४
तस्य ते वाजिनो वयं	५२७
ता अभि सन्तमस्तृतं	८३
ताभ्यां विश्वस्य राजसि	५५०
तिस्रो वाच ईरयति	९०१
तिस्रो वाच उदीरते	२५६
तुभ्यं वाता अभिप्रियः	२४३
तुभ्यं गावो घृतं पयो	२४५
तुभ्येमा भुवना कवे	४५५
ते अस्य सन्तु केतवो	६३३
ते नः पूर्वास उपरास	६८९
ते नः सहस्रिणं रयिं	११९
ते नो वृष्टिं दिवस्परि	५४२
ते प्रत्नासो व्युष्टिषु	९३६
ते विश्वा दाशुषे वसु	४९४
ते सुतासो मदिन्तमाः	५९६
त्रिभिष्ट्वं देव सवितः	६०४
त्रिरस्मै सप्त धेनवो	६३१
त्रीणि त्रितस्य धारया	९७३
त्वं राजेव सुव्रतो	१७४
त्वं विप्रस्त्वं कविः	१५७
त्वं समुद्रिया अपो	४५४
त्वं समुद्रो असि विश्ववित्	७६७
त्वं सुतो नृमादनो	५८०
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिः	५८१
त्वं सूर्यो न आ भज	३५
त्वं सोम नृमादनः	२०१
त्वं सोम पणिभ्य आ	१९०
त्वं सोम पवमानो	३९३
त्वं सोम विपश्चितं तना	१४७
त्वं सोम विपश्चितं पुनानो	५१३
त्वं सोम सूर एष स्तोकस्य	५६६
त्वं सोमासि धारयुः	५७९
त्वं हि सोम वर्धयन्	३६०
त्वं ह्यङ्ग दैव्या	१०३९
त्वं त्यत् पणीनां	१०८८
त्वं द्यां च महिव्रत	९५४
त्वं धियं मनोयुजं	९४८
त्वं नृचक्षा असि सोम	७७६
त्वमिन्दो परि स्रव	४३७
त्वमिन्द्राय विष्णवे	३८२

त्वं पवित्रे रजसो ७६८
त्वया वयं पवमानेन ९२५
त्वया वीरेण वीरवो ३६७
त्वया हि नः पितरः ८५४
त्वष्टारमग्रजां गोपां ४९
त्वां यज्ञैरवीवृधन् ३९
त्वां रिहन्ति मातरो ९५२
त्वां सोम पवमानं स्वाध्यः ७६२
त्वामच्छा चरामसि ५
त्वां मृजन्ति दश ६१७
त्वेषं रूपं कृणुते ६४८
त्वे सोम प्रथमा १०८१
त्वोतासस्तवावसा ४२२
दविद्युतत्या रुचा ५१६
दिवः पीयूषमुत्तमं ३५८
दिवः पीयूषं पूर्व्यं १०८२
दिवस्पृथिव्या अधि २४२
दिवि ते नाभा परमो ७००
दिवो धर्तासि शुक्रः १०५८
दिवो न सर्गा अससृग्र ८९७
दिवो न सानुं पिप्युषी १४६
दिवो न सानु स्तनयन् ७४७
दिवो नाके मधुजिह्वा ७३६
दिवो नाभा विचक्षणो १०९
दिवो यः स्कम्भो धरुणः ६६९
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि ९००
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु १०१५
दुहानः प्रत्नमित् पयः ३१०
देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः ८९३
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं ७४
देवेभ्यस्त्वा वृथा पाजसे १०७३
देवो देवाय धारये ५८
द्रापिं वसानो यजतो ७५२
द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य ८३५
द्वियं पञ्च स्वयशसं ९३१
धर्ता दिवः पवते ६८२
धीभिर्हिन्वन्ति वाजिनं १००७
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः ३८९
न त्वा शतं चन ह्रुतो ४२५
नप्तीभिर्यो विवस्वतः १२८
नमसेदुप सीदत १०२
नाके सुपर्णमुपपप्तिवांसं ७३७
नानानं वा उ नो १०९०
नाभा नाभिं न आ ददे ९५
नाभा पृथिव्या धरुणो ६५६
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिः ११२
निरिणानो वि धावति १२७
नि शत्रोः सोम वृष्ण्यं १६९
नि शुष्ममिन्दवेषां ३६५
नूनं पुनानोऽविभिः १०१२
नू नव्यसे नवीयसे ८६
नू नस्त्वं रथिरो ९१५
नू नो रयिमुप मास्व ८३३
नू नो रयिं महामिन्दो २९७
नृचक्षसं त्वा वयं ७८
नृधूतो अद्रिषुतो ६५३
नृबाहुभ्यां चोदितो ६५४
नृभिर्येमानो जज्ञानः १०६०
नृभिर्येमानो हर्यतो १०२६
परा व्यक्तो अरुषो ६४७
परि कोशं मधुश्चुतं ९८१
परि णः शर्मयन्त्या ३०६
परि णेता मतीनां ९८२
परि णो अश्वमश्ववित् ४०१
परि णो देववीतये ३७४
परि णो याह्यस्मयुः ५०६
परि ते जिग्युषो यथा ९४९
परि त्यं हर्यतं हरिं ९३२
परि दिव्यानि मर्मृशद् १३१
परि दैवीरनु स्वधा ९८३
परि द्युक्षं सहसः ६४४
परि द्युक्षः सनद्रयिः ३६२
परि धामनि यानि ते ५५१
परि प्र धन्वेन्द्राय सोम १०५३
परिप्रयन्तं वय्यं सुषंसदं ६१८
परि प्र सोम ते रसो ५९३
परि प्रासिष्यदत् कविः १२४
परि प्रियः कलशे ८५२
परि प्रिया दिवः कविः ७९
परि यत् कविः काव्या ८३६
परि यत् काव्या कविः ६४
परि यो रोदसी उभे १६१
परि वाजे न वाजयुं ४७७
परि वारण्यव्यया ९८०
परि विश्वानि चेतसा १७२
परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं २९०
परिष्कृतास इन्दवो ३३२
परि ष्य सुवानो अक्ष इन्दुः ९२८
परि ष्य सुवानो अव्ययं ९२७
परि सद्मेव पशुमान्ति ८२८
परि सप्तिर्न वाजयुः ९८४
परि सुवानश्चक्षसे १०१३
परि सुवानास इन्दवो ९१
परि सुवानो गिरिष्ठाः १५६
परि सुवानो हरिरंशुः ८२३
परि सोम ऋतं बृहत् ३७१
परि सोम प्र धन्वा ६८१
परि हि ष्मा पुरुहूतो ७९२
परीतो वायवे सुतं ४६८
परीतो षिञ्चता सुतं सोम १०११
पर्जन्यः पिता महिषस्य ७१४
पर्जन्यवृद्धं महिषं १०९३
पर्यू षु प्र धन्व १०७५
पवते हर्यतो हरिः १००९
पवते हर्यतो हरिर्गृणानो ५४३
पवन्ते वाजसातये ११७
पवमान ऋतः कविः ४५८
पवमान ऋतं बृहत् ५७२
पवमान सुतो नृभिः ४४४
पवमान सो अद्य नः ६००
पवमान धिया हितो २०६
पवमान नि तोशसे ४८१
पवमानमवस्यवो ११६
पवमान महि श्रव ९५३
पवमान महि श्रवो गाम् ८७
पवमान मह्यर्णो ७७२
पवमान रसस्तव ४१६
पवमान रुचा रुचा ५२०
पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम दुष्टरम् ४६९

पवमान विदा रयिमस्मभ्यं सोम सुश्रियम् ३१६
पवमान सुवीर्यं १०५
पवमानस्य जङ्घ्नतो ५७३
पवमानस्य ते कवे ५५८
पवमानस्य ते रसो ४१५
पवमानस्य ते वयं ४०२
पवमानस्य विश्ववित् ४९५
पवमान स्वर्विदो ३९४
पवमाना असृक्षत पवित्रमति १०३५
पवमान असृक्षत सोमाः ४८३
पवमाना दिवस्परि ४८५
पवमानास आशवः ४८४
पवमानास इन्दवः ५८५
पवमानो अजीजनद् ४१४
पवमानो अति स्रिधो ५७०
पवमानो अभि स्पृधो ६५
पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यम् ७३४
पवमानो असिष्यद द्रक्षांसि ३५१
पवमानो रथीतमः ५७४
पवमानो व्यश्नवत् ५७५
पवस्व गोजिदश्वजित् ३९१
पवस्व जनयन्निषो ५५२
पवस्व दक्षसाधनो २०५
पवस्व देवमादनो ७२२
पवस्व देववीतय इन्दो १००३
पवस्व देववीरति ११
पवस्व देवायुषग् ४८०
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय १०३७
पवस्व वाचो अग्रियः ४५३
पवस्व वाजसातमः ९५१
पवस्व वाजसातयेऽभिविश्वानि १०३३
पवस्व वाजसातये विप्रस्य ३१८
पवस्व विश्वचर्षणे ५४९
पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिः २०३
पवस्व वृष्टिमा सु नो ३४७
पवस्व सोम क्रतुविन् ७८६
पवस्व सोम क्रत्वे दक्षाय १०६२
पवस्व सोम दिव्येषु ७६०
पवस्व सोम देववीतये ६३९
पवस्व सोम द्युम्नी १०५९
पवस्व सोम मधुमां ८५६
पवस्व सोम मन्दयन् ५९४
पवस्व सोम महान् १०५६
पवस्वाद्भ्यो अदाभ्यः ३९२
पवस्वेन्दो पवमानो ८६४
पवस्वेन्दो वृषा सुतः ४२६
पवित्रं ते विततं ७१७
पवित्रवन्तः परि वाचं ६६१
पवित्रेभिः पवमानो ८९१
पवीतारः पुनीतन ३४
पावमानीर्यो अध्येति ५१०
पितुर्मातुरध्या ये ६६३
पिबन्त्यस्य विश्वे १०६७
पुनन्तु मां देवजनाः ६०५
पुनाता दक्षसाधनं ९८७
पुनाति ते परिस्रुतं ६
पुनान इन्दवा भर (त्वं वसूनि) ९४७
पुनान इन्दवा भर (वृषन्) ३००
पुनान इन्दवेषां पुरुहूत ५१५
पुनानः कलशेष्वा ७५
पुनानः सोम जागृविः १०१६
पुनानः सोम धारयापो १०१४
पुनानः सोम धारयेन्दो ४८६
पुनानश्चमू जनयन् १०२८
पुनानासश्चमूषदो ७१
पुनानो अक्रमीदभि २९५
पुनानो देववीतय ५०३
पुनानो याति हर्यतः ३१५
पुनानो रूपे अव्यये १४५
पुनानो वरिवस्कृधि ५०२
पुरः सद्य इत्थाधिये ४००
पुरोजिती वो अन्धसः ९५५
पूर्वामनु प्रदिशं याति १०८९
प्र कविर्देववीतये १७०
प्र काव्यमुशनेव ८७४
प्र कृष्टिहेव शूष एति ६४२
प्र गायताभ्यर्चाम ८७१
प्र गायत्रेण गायत ३९५
प्र ण इन्दो महे तन ३१९
प्र ण इन्दो महे रण ५६१
प्र णो धन्वत्विन्दवो ६९८
प्र त आशवः पवमान ७३९
प्र त आश्विनीः पवमान ७४२
प्र तु द्रव परि कोशं ७८७
प्र ते दिवो न वृष्टयो ४५६
प्र ते धारा अत्यण्वानि ७८५
प्र ते धारा असश्चतो ३८३
प्र ते धारा मधुमतीः ८९८
प्र ते मदासो मदिरास ७४०
प्र ते सोतार ओण्योः १४०
प्रत्नान्मानादध्या ये ६६४
प्र त्वा नमोभिरिन्दव १४४
प्र दानुदो दिव्यो दानु ८९०
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवो ६११
प्र धन्वा सोम जागृविः १०००
प्र धारा अस्य शुष्मिणो २३५
प्र धारा मध्वो अग्रियो ६२
प्र निम्नेनेव सिन्धवो १४८
प्र पवमान धन्वसि २००
प्र पुनानस्य चेतसा १४३
प्र पुनानाय वेधसे ९७९
प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व ६०६
प्रप्र क्षयाय पन्यसे ८०
प्र युजो वाचो अग्रियो ६३
प्र ये गावो न भूर्णयः ३०१
प्र राजा वाचं जनयन् ९९२
प्र रेभ एत्यति वारं ७६९
प्र वाचमिन्दुरिष्यति १११
प्र वाजमिन्दुरिष्यति २६८
प्रवृण्वन्तो अभियुजः १७८
प्र वो धियो मन्द्रयुवो ७५५
प्र शुक्रासो वयोजुवो ५४४
प्र सुन्वा नस्यान्धसो ९६७
प्रसवे त उदीरते ३५३
प्र सुमेधा गातुवित् ८२५

प्र सुवान इन्दुरक्षाः	५७६
प्र सुवानो अक्षाः सहस्र	१०६८
प्र सुवानो धारया तने	२५९
प्र सेनानीः शूरो	८४४
प्र सोम देववीतये	१०२२
प्र सोम मधुमत्तमो	४७४
प्र सोम याहि धारया	५५५
प्र सोम याहीन्द्रस्य	१०७०
प्र सोमस्य पवमानयोमँया	७०७
प्र सोमाय व्यश्ववत्	५२५
प्र सोमासः स्वाध्यः	२४१
प्र सोमासो अधन्विषुः	१९८
प्र सोमासो मदच्युतः	२४७
प्र सोमासो विपश्चितो	२५३
प्र सोमा अति धारया	२३८
प्र स्वानासो रथा इवा	८८
प्र हंसासस्तृपलं मन्युं	८७५
प्र हिन्वानास इन्दवो	५०४
प्र हिन्वानो जनिता	८११
प्रावीविपद्वाच ऊर्मि	८५०
प्रास्य धारा अक्षरन्	२२९
प्रास्य धारा बृहतीः	८६५
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य	७५४
प्रो स्य वह्निः पथ्याभिः	८०४
बभ्रवे नु स्वतवसे	१००
बर्हिः प्राचीनमोजसा	४४
बिभर्ति चार्विन्द्रस्य	१०६६
ब्रह्मा देवानां पदवीः	८४९
भद्रा वस्त्रा समन्या	८६९
भारती पवमानस्य	४८
भुवत् त्रितस्य मर्ज्यो	२६२
मघोन आ पवस्व नो	७६
मती जुष्टो धिया हितः	३२०
मत्सि वायुमिष्टये	९०९
मत्सि सोम वरुणं	८१५
मदच्युत्क्षेति सादने	१०८
मधुपृष्ठं घोरमयासमश्वं	८०७
मधोर्धारामनु क्षर	१५५
मध्वः सूदं पवस्व	९११
मनीषिभिः पवते	७५८
मन्द्रया सोमा धारया	५२
मन्द्रस्य रूपं विविदर्मनीषिणः	६१६
मर्मृजानास आयवो	५०५
मर्यो न शुभ्रस्तन्वं	८६३
महत्तत्सोमो महिषः	९०८
महाँ असि सोम ज्येष्ठ	५६४
महान्तं त्वा महीरनु	१४
महि प्सरः सुकृतं	६७०
महीमे अस्य वृषनाम	९२१
महो नो राय आ भर	४२४
मिमाति वह्निरेतशः	५०७
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो	७३
मृजन्ति त्वा समग्रुवो	५५७
मृजानो वारे पवमानो	१०३२
मृज्यमानः सुहस्त्य	१०३१
य आर्जीकेषु कृत्वसु	५४१
य इन्दोः पवमानस्य	११०५
य इमे रोदसी मही	१६०
य उग्रेभ्यश्चिदोजियान्	५६५
य उस्रिया अप्या अन्तः	१०४२
य ओजिष्ठस्तमा भर	९६३
यः पावमानीरध्येति	६०९
यः सोमः कलशेष्वाँ	११०
यज्ञस्य केतुः पवते	७४५
यत्ते पवित्रमर्चिवत्	६०२
यत्ते पवित्रमर्चिषि	६०१
यत्ते राजञ्छृतं हविः	११०८
यत्र कामा निकामाश्च	११०३
यत्र ज्योतिरजस्रं	११००
यत्र ब्रह्मा पवमान	१०९९
यत्र राजा वैवस्वतो	११०१
यत्र नन्दाश्च मोदाश्च	११०४
यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके	१००२
यत सोम चित्रमुक्थ्यं	१६३
यत् सोमो वाजमर्षति	३८०
यथापवथा मनवे	८५५
यथा पूर्वेभ्यः शतसा	७१६
यदद्भिः परिषिच्यसे	५२४
यदन्ति यच्च दूरके	५९९
यं त्वा वाजिन्नघ्न्या	७०३
यमत्यमिव वाजिनं	५६
यमी गर्भमृतावृधो	९७६
यवंयवं नो अन्धसा	३७५
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना	४१७
यस्य ते द्युम्नवत् पयः	५७८
यस्य ते पीत्वा	१०३८
यस्य ते मद्यं रसं	५३३
यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य	१०५०
यस्य वर्णं मधुश्चुतं	५२६
या ते भीमान्यायुधा	४२८
यास्ते धारा मधुश्चुतो	४३५
युवं हि स्थः स्वर्पती	१६४
ये ते पवित्रमूर्मयो	४०३
येना नवग्वो दध्यङ्	१०४०
ये सोमासः परावति	५४०
यो अत्य इव मृज्यते	३१३
यो जिनाति न जीयते	३७८
यो धारया पावकया	९५६
रक्षा सु नो अररुषः	२३३
रक्षोहा विश्वचर्षणिः	२
रयिं नश्चित्रमश्विनं	४०
रसं ते मित्रो अर्यमा	५१२
रसाय्यः पयसा पिन्वमान	८८१
राजानो न प्रशस्तिभिः	९०
राजा मेधाभिरीयते	५३४
राजा समुद्रं नद्यो	७४६
राजा सिन्धूनामवसिष्ट	८०५
राजा सिन्धूनां पवते	७७१
राज्ञो नु ते वरुणस्य	८०३
रायः समुद्रांश्चतुरो	२५८
रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः	८२०
रुवति भीमो वृषभः	६३७
वनस्पतिं पवमान	५०
वन्वन्नवातो अभि	८१०
वयं ते अस्य वृत्रहन्	९३०
वरिवो धातमो भव	३
वाचो जन्तुः कवीनां	५९१

वायुर्न यो नियुत्वाँ ७९८
वावृधानाय तूर्वये ३०९
वाश्रा अर्षन्तीन्दवो १२१
विघ्नन्तो दुरिता पुरु ४३०
विपश्चिते पवमानाय ७८२
वि यो ममे यम्या ६१३
विश्वस्मा इत् स्वर्दृशे ३४५
विश्वस्य राजा पवते ६८५
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ७४३
विश्वा रुपाण्याविशन् २०८
विश्वा वसूनि संजयन् २३२
विश्वा सोम पवमान २९८
विश्वे देवाः स्वाहाकृति ५१
विश्वो यस्य व्रते जनो २७०
विष्टम्भो दिवो धरुणः ८०९
वीती जनस्य दिव्यस्य ८१८
वृथा क्रीळन्त इन्दवः १७९
वृषणं धीमिरप्तुरं ४७९
वृषाणं वृषभिर्यतं २६१
वृषा पवस्य धारया ५२८
वृषा पुनान आयुषु १६५
वृषा मतीनां पवते ७५७
वृषा वि जज्ञे जनयन् १०४८
वृषा वृष्णे रोरुवद् ८१९
वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् ८८०
वृषा सोम द्युमाँ असि ४८९
वृषा ह्यसि भानुना ५२२
वृषेव यूथा परि कोशं ६८६
वृष्टिं दिवः परि स्रव ७७
वृष्टिं दिवः शतधारः ८५७
वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां ८८४
वृष्णस्ते वृष्ण्यंशवो ४९०
शतं धारा देवजाताः ८९६
शतं न इन्द ऊतिभिः ३६६
शर्यणावति सोमं १०९४
शिशुं जज्ञानं हरिं १०६४
शिशु जज्ञानं हर्यतं ८६०
शिशुनं जातोऽव ६६८
शुक्रः पवस्व देवेभ्यः १०५७
शुचिः पावक उच्यते २०४
शुचिः पुनानस्तन्वमरेपस ६३८
शुभ्रमन्धो देववातं ४३३
शुम्भमान ऋतायुभिः २७४
शुम्भमाना ऋतायुभिः ४९३
शुष्मी शर्धो न मारुतं ८०२
शूरग्रामः सर्ववीरः ८१३
शूरो न धत्त आयुधा ६८३
शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः ३०३
श्येनो न योनिं सदनं ६४६
श्रिये जातः श्रिय ८३७
श्वेतं रुपं कृणुते ६७४
स ईं रथो न भुरिषाळ् ७९७
सं वत्स इव मातृभिः ९९२
संवृक्तधृष्णुमक्थ्यं ३४३
सखाय आ नि षीदत ९८५
स तू पवस्व परि पार्थिवं राजा स्तोत्रे ६५७
स तू पवस्व परि पार्थिवं राजो दिव्या च १०३४
सत्यमुग्रस्य बृहतः १०९८
स त्रितस्याधि सानवि २८०
स देवः कविनेषितो २८२
स न इन्द्राय यज्यवे ४१०
स न ऊर्जे व्यव्ययं ३५०
स नः पवस्व वाजयुः ३२२
स नः पवस्व शं गवे ९९
स नः पुनान आ भर रयिं वीरमतीम् ४०४
स नः पुनान आ भर रयिं स्तोत्रे २९९
सना च सोम जेषि च ३१
सना ज्योतिः सना स्वः ३२
सना दक्षमुत क्रतुं ३३
सनेमि कृध्यास्मदा ९९०
सनेमि त्वमस्मदाँ अदेवं ९९६
स नो अद्य वसुत्तये ३२४
स नो अर्ष पवित्र आ ५००
स नो अर्षाभि दूत्यं ३२६
स नो ज्योतींषि पूर्व्य २७३
स नो देव देवताते ८४६
स नो देवेभिः पवमान ८३२
स नो भगाय वायवे पूष्णे ४०७
स नो भगाय वायवे विप्रवीरः ३२३
स नो मदानां पत ९८९
स नो विश्वा दिवो वसूतो ३८६
स नो हरीणां पत ९९५
सं त्री पवित्रो विततानि ९२२
सं दक्षेण मनसा जायते ६१५
सं देवैः शोभते वृषा २०७
स पवस्व धनंजय ३३५
स पवस्व मदाय कं ३२५
स पवस्व मदिन्तम ३५६
स पवस्व य अविथेन्द्रं ४२०
स पवस्व विचर्षण ३०५
स पवस्व सहमानः १०८६
स पवित्रे विचक्षणो २७८
स पुनान उप सूरे न ९०५
स पुनानो मदिन्तमः ९४३
स पूर्व्यः पवते ६८८
स पूर्व्यो वसुविज्जायमानो ८५३
सप्त दिशो नानासूर्याः ११०७
सप्त स्वसारो अभि मातरः ७७४
सप्ति मृजन्ति वेधसो २३०
स प्रत्नवन्नव्यसे ८२१
स भन्दना उदियर्ति ७७९
सं भिक्षमाणो अमृतस्य ६३२
स मत्सरः पृत्सु वन्वन् ८५१
स मर्मृजान आयुभिः प्रयस्वान् ५७१
स मर्मृजान आयुभिरिभो ३८५
स मर्मृजान इन्द्रियाय ६३५
समस्य हरिं हरयो ८४५
स मातरा न ददृशान ६३६
स मातरा विचरन् वाजयान् ६१४
स मामृजे तिरो अण्वानि १०२१
समिद्धो विश्वतस्पतिः ४१
समिन्द्रेणोत वायुना ४०६
समीचीना अनूषत २९४
समीचीनास आसते ९४

समीचीने अभि त्मना ९७७
समी रथं न भुरिजोरहेषत ६४५
समी वत्सं न मातृभिः ९८६
समी सखायो अस्वरन् ३२९
समु त्वा धीभिरस्वरन् ५५६
समुद्रिया अप्सरसो ६९४
समुद्रो अप्सु मामृजे १५
समु प्रिया अनूषत ९६२
समु प्रियो मृज्यते ८७८
स मृज्यते सुकर्मभिः ९४४
स मृज्यमानो दशभिः ६३४
समेनमन्हुता इमा २६४
सं मातृभिर्न शिशुः ८३८
संमिश्लो अरुषो भव ४१९
सम्यक् सम्यञ्चो महिषा ६६०
स रंहत उरुगायस्य ८७६
स रोरुवदभिपूर्वा ६१२
स वर्धिता वर्धनः ९०६
स वह्निः सोम जागृविः ९७९
स वह्निरप्सु दुष्टरो १७५
स वां यज्ञेषु मानवी ९३४
स वाजी रोचना दिवः २७९
स वाज्यक्षाः सहस्रेरेताः १०६९
स विश्वा दाशुषे वसु २७५
स वीरो दक्षसाधनो ९६९
स वृत्रहा वृषा सुतो २८१
स वायुमिन्द्रमश्विना ६७
स शुष्मी कलशेष्वा १६२
स सप्त धीतिभिर्हितो ८२
स सुतः पीतये वृषा २७७
स सुन्वे यो वसूनां १०४९
स सूनुर्मातरा शुचिः ८१
स सूर्यस्य रश्मिभिः परि ७७७
सहस्रणीयः शतधारो ७३०
सहस्रधारं वृषभं १०४४
सहस्रधारः पवते समुद्रो ९६०
सहस्रधारेऽव ता असश्चतः ६७३
सहस्रधारेऽव ते समस्वरन् ६६२
सहस्रधारे वितते पवित्र ६६५
सहस्रोतिः शतामघो ४४२
स हि त्वं देव शश्वते ९२९
स हि ष्मा जरितृभ्य आ १७१
साकं वदन्ति बहवो ६५१
साकमुक्षो मर्जयन्त ८२९
सिंहं नसन्त मध्वो ८०६
सिन्धोरिव प्रवणे ६२७
सिषासतू रयीणां ३४१
सुत इन्दो पवित्र आ ९४५
सुत इन्द्राय वायवे २६०
सुत इन्द्राय विष्णवे ४६१
सुत एति पवित्र आ २९१
सुता अनु स्वमारजो ४६४
सुता इन्द्राय वज्रिणे ४७३
सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय २५५
सुतासो मधुमत्तमाः ९५८
सुनोता मधुमत्तमं सोमं २४०
सुवितस्य मनामहेऽति ३०२
सुवीरासो वयं धना ४२१
सुशिल्पे बृहती मही ४६
सुषहा सोम तानि ते २३१
सुष्वाणासो व्यद्रिभि ९६५
सूर्यस्येव रश्मयो ६२६
सो अग्ने अह्ना हरिः ७८०
सो अर्षेन्द्राय पीतये ४३६
सो अस्य विशे महि ७५३
सोम उ षुवाणः सोतृभिः १०१८
सोमः पवते जनिता ८४८
सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यो १००६
सोमः पुनानो अर्षति ११५
सोमः पुनानो अव्ययं १०८४
सोमः सुतो धारयात्यो ९१२
सोमं गावो धेनवो ९०२
सोमस्य धारा पवते ७०२
सोमा असृग्रमाशवो १९१
सोमा असृग्रमिन्दवः १०६
सोमाः पवन्त इन्दवो ९६४
सोमो अर्षति धर्णसिः १९५
सोमो देवो न सूर्यो ४७१
सोमो मीढ्वान् पवते १०१७
स्तोत्रे राये हरिरर्षा ८७३
स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः ६५९
स्वयं कविर्विधर्तरि ३४०
स्वादिष्ठया मदिष्ठया १
स्वादुः पवस्व दिव्याय ७३२
स्वायुधः पवते देव इन्दुः ७८८
स्वायुधः सोतृभिः पूयमानो ८५९
स्वायुधस्य ते सतो २४६
हरिः सृजनः पथ्याम् ८४०
हरिं मृजन्त्यरुषो ६५०
हविर्हविष्मो महि सद्म ७२१
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः १०१
हितो न सप्तिराभि ६४०
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः पवमानं ५८७
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वरासो ५१९
हिन्वानासो रथा इव ८९
हिन्वानो वाचमिष्यसि ४९७
हिन्वानो हेतृभिर्यतं ५१७

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य

दशम मण्डल

(१) [प्रथमोऽनुवाकः ॥१॥ सू० १-१६]

७ त्रित आप्त्यः । आग्नः । त्रिष्टुप् ।

अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः १

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः २

[१]

[१] (बृहत्) महान् यह अग्नि (उषसां अग्रे) उषाओंके आगे – उषःकालमें (ऊर्ध्वः) प्रज्वलित होकर (अस्थात्) रहता है। (तमसः) रात्रीके अंधकारसे (निर्जगन्वान्) निकलकर (ज्योतिषा) अपने तेजसे (आगात्) प्रकाशित होकर रहता है। (स्वङ्गः जातः अग्निः) अपने उत्तम तेजसे प्रकाशित होकर यह अग्नि (भानुना) अपने तेजसे (विश्वा सद्मानि) सब स्थान (आ अप्राः) भर देता है ॥ १ ॥

१ उषसां अग्रे बृहत् ऊर्ध्वः अस्थात् — उषःकालमें प्रथम यह अग्नि प्रज्वलित होकर रहता है। उषःकालमें यज्ञकर्ता अग्नि प्रदीप्त करते हैं।

२ तमसः निर्जगन्वान् ज्योतिषा आगात् — अन्धकारको दूर करता है और अपने तेजसे युक्त होकर आगे आता है।

३ स्वङ्गः जातः अग्निः -- अपने उत्तम तेजसे यह अग्नि प्रकाशता है।

४ भानुना विश्वा सद्मानि आ अप्राः — अग्नि अपने तेजसे सब स्थानोंको भर देता है।

[२] हे (अग्ने) अग्ने! (जातः) उत्पन्न हुआ (ओषधीषु) औषधियोंसे बने अरणियोंमें रहनेवाला (सः) वह तू (रोदस्योः) द्यावा पृथिवीके (गर्भः असि) गर्भरूप हो। (चारुः विभृतः) उत्तम यज्ञस्थानमें धारण किया हुआ हो। और (चित्रः शिशुः) उत्तम पुत्र जैसा (तमांसि अक्तून्) रात्रीके समान शत्रुओंको (परि) पराभूत करता है। वह तू (मातृभ्यः) माताओंके समान (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (अधि) उनके समीप (गाः) जाता है ॥ २ ॥

१ ओषधीषु जातः सः रोदस्योः गर्भः असि — औषधियोंमें उत्पन्न हुआ वह तू द्यावापृथिवीमें गर्भके समान हो। द्युलोक पृथिवी लोकमें तू अग्नि ही तेजस्वी दीखनेवाला देव है।

२ चारुः विभृतः शिशुः चित्रः तमांसि अक्तून् परि — उत्तम रीतिसे पालन किया पुत्र जैसा तेजस्वी होकर, रात्रीके अन्धकार आदि शत्रुओंको दूर करता है। वैसा तरुण शक्तिमान् होकर शत्रुओंको दूर करे।

३ कनिक्रदत् मातृभ्यः अधि गाः — शब्द करता हुआ माताओंके पास जैसा पुत्र जाता है वैसा अग्निके समीप याजक जावे और यज्ञ करे।

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ३
अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ४
होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् ५

---

[३] (विद्वान् जातः) ज्ञानी होकर यह (बृहत् विष्णुः) बडा व्यापक देव (इत्था) इस प्रकार (अस्य परं तृतीयं) इसके श्रेष्ठ तीसरे स्थानको (अभि पाति) सुरक्षित रखता है। (अस्य) इसके (स्वं पयः) अपने जलको (आसा) मुखसे (यत्) जब (अक्रत) यजमान उसकी प्रार्थना करते हैं तब (अत्र) यहां रहे स्तोतागण (सचेतसः) मनःपूर्वक (अभि अर्चन्ति) इसकी अर्चना करते हैं ॥ ३ ॥

१ विद्वान् जातः बृहत् विष्णुः इत्था अस्य परं तृतीयं अभि पाति— विद्वान् होकर प्रसिद्ध हुआ यह बडा व्यापक देव इस प्रकार इसके श्रेष्ठ तीसरे स्थानको सुरक्षित रखता है।

२ अस्य स्वं पयः आसा यत् अक्रत— इसके अपने जलको अपने मुखसे उत्पन्न करता है, तब वह जीवनरूप जल नवजीवन देता है।

३ अत्र सचेतसः अभि अर्चन्ति— यहां यज्ञस्थानमें ज्ञानी अन्तःकरणपूर्वक स्तोत्रोंसे इसका सत्कार करते हैं। यज्ञके स्थानपर यह सत्कार करनेका कार्य याजक करते हैं।

[४] हे अग्ने! (अतः उ) इसी कारणसे (पितृभृतः) पिताके समान (जनित्रीः) उत्पन्न करनेवाली औषधियां (अन्नावृधं त्वा) अन्नको बढानेवाले तेरी (अन्नैः प्रति चरन्ति) अन्नोंसे सेवा करते हैं, अन्न अर्पण करके तेरी परिचर्या करते हैं। इसलिये (ईं ताः) इन औषधियोंके पास (प्रति एषि) तू जाता है। (अन्यरूपाः पुनः) जीर्ण हुए औषधियोंके पास भी तू जाता है। (त्वं) तू (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (होता असि) हवन करनेवाला हो ॥ ४ ॥

१ अतः उ पितृभृतः जनित्रीः अन्नावृधं त्वा अन्नैः प्रति चरन्ति— इसी कारणसे पिताके समान अग्निको उत्पन्न करनेवाली औषधियां अन्नको बढानेवाले तेरी अन्नका हवन करके सेवा करती हैं। अग्निमें औषधियोंका हवन होनेसे अन्नका अधिक उत्पादन होता है। हवामें गये अणु अन्नका अधिक उत्पादन करनेमें सहायक होते हैं।

२ ईं ताः प्रति एषि— इन औषधियोंके पास तू जाता है। औषधियोंके हवन करनेसे अग्नि बढता है और औषधियोंके सूक्ष्म अंश फलनेमें सहाय्य होता है।

३ अन्यरूपाः पुनः प्रति एषि— जीर्ण हुई औषधियां इस अग्निको वारंवार प्रदीप्त करती हैं। शुष्क औषधियोंके हवनसे अग्नि बढता है।

४ मानुषीषु विक्षु होता असि— मानवी प्रजामें होता अर्थात् यज्ञ करनेवाला यही कार्य करता है।

[५] (अध्वरस्य यज्ञस्य) अहिंसामय यज्ञमें (होतारं) हवन करनेवाले (चित्ररथं) नाना प्रकारके रूपके रथके समान स्थानमें रहनेवाले (यज्ञस्य यज्ञस्य केतुं) यज्ञ स्वरूप कर्मके प्राज्ञापक (रुशन्तं) श्वेतवर्णवाले (देवस्य देवस्य) सब देवोंके (अर्धिं) मुख्य इन्द्रके (प्रति) पास (जनानां अतिथिं) मनुष्योंको अतिथिके समान पूज्य (अग्निं) अग्निका (तु श्रिया) तत्काल हम स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन् यक्षीह देवान् ६
आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाऽथा वह सहस्येह देवान् ७ [२९] (७)

---

१ अ-ध्वर— (ध्वरा) हिंसासे जो रहित होता है व 'अ-ध्वर' कहलाता है । हिंसा रहित यज्ञ अध्वर कहलाता है ।

२ अ-ध्वरः यज्ञः— जिसमें हिंसा नहीं होती ऐसा यज्ञ ।

३ अध्वरस्य होतारं अग्नि— हिंसारहित हवन जिसमें होता है ऐसा यह यज्ञका अग्नि है ।

४ जनानां अतिथिं अग्नि श्रिया— मनुष्योंके लिये अतिथिके समान पूज्य अग्नि है, इसकी स्तुति की जाती है ।

५ अध्वरस्य यज्ञस्य होतारं— हिंसारहित यज्ञका हवन करनेवाला यह अग्नि है ।

[६] हे (राजन्) तेजस्वी अग्ने ! (अध) और (पेशनानि वस्त्राणि वसानः) तेजस्वी प्रकाशरूपी वस्त्र धारण करनेवाला (पृथिव्याः नाभा) पृथिवीके यज्ञरूप नाभिस्थानमें (इळायाः पदे) अर्थात् उत्तरवेदीमें (जातः अरुषः अग्निः) प्रकट हुआ तेजस्वी अग्नि (पुरोहितः) सामने रखा (इह देवान् यक्षि) यहां इस यज्ञमें देवोंका यजन करे ॥ ६ ॥

१ राजन्— तेजस्वी, प्रकाशयुक्त अग्नि ।

२ पेशनानि वस्त्राणि वसानः— तेजोरूप वस्त्र धारण करनेवाला अग्नि है । अग्निके वस्त्र प्रकाशके किरण हैं ।

३ पृथिव्याः नाभा— पृथिवीकी नाभि यज्ञस्थान है ।

४ इळायाः पदे जातः अरुषः अग्निः— उत्तरवेदीके स्थानमें प्रदीप्त हुआ अग्नि तेजस्वी होता है ।

५ पुरोहितः इह देवान् यक्षि— सामने रखा अग्नि इस यज्ञस्थानमें देवोंको हविष्यान्न अर्पण करे ।

[७] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (उभे द्यावापृथिवी) दोनों द्युलोक और पृथिवीलोकको (आ ततन्थ) विस्तृत करता है । (न) जैसा (पुत्रः) पुत्र (मातरा) मातापिताको धनादिसे (सदा) सदा मदत करता है । हे (यविष्ठ) तरुणपुत्र (उशतः अच्छ) इच्छा करनेवालोंके उद्देश्यसे अर्थात् अपने मातापिताके उद्देश्यसे (प्र-याहि) जाता है (अथ) और हे (सहस्य) बलवान् अग्ने ! (इह) इस हमारे यज्ञमें (देवान् आ वह) देवोंको ले आओ ॥ ७ ॥

१ हे अग्ने ! उभे द्यावापृथिवी आततन्थ— हे अग्ने ! तू द्युलोक और पृथिवीको विस्तृत करता है ।

२ पुत्रः मातरा सदा— पुत्र जैसा अपने मातापिताकी सहायता करता है वैसा अग्नि सहायता हरप्रकारकी करता है । इससे मनुष्य सुखी होते हैं ।

३ हे यविष्ठ ! उशतः अच्छ प्र याहि— हे तरुण पुत्र ! तू सहायताकी इच्छा करनेवाले मातापिताके पास जा और उनकी सहायता कर ।

४ अथ सहस्य ! देवान् आ वह— और बलवान् तरुण ! देवोंको यहां ला । देवोंकी सहायता मिले ऐसा उत्तम आचरण कर ।

(२)

७ त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँऋतुपते यजेह। १
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः
वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा। २
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान् यजत्वग्निरर्हन्
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम्। ३ (१०)
अग्निर्विद्वान् त्स यजात् सेदु होता सो अध्वरान् त्स ऋतून् कल्पयाति

[२]

[८] हे (यविष्ठ) अति तरुण अग्ने! (उशतः देवान्) सहाय्य करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको (पिप्रीहि) प्रसन्न कर। हे (ऋतुपते) ऋतुओंके स्वामिन! (ऋतून् विद्वान्) ऋतुओंका विचार करके (इह यज) यहां यज्ञ कर। हे (अग्ने) अग्ने! (ये दैव्याः ऋत्विजाः) जो दिव्य ज्ञानवान् ऋत्विज हैं, (तेभिः) उनके साथ यज्ञ कर। क्योंकि (त्वं) तू (होतॄणां) होताओंके मध्यमें (आ यजिष्ठः असि) मुख्य यज्ञ करनेवाला हो ॥ १ ॥

१ हे यविष्ठ! उशतः देवान् पिप्रीहि— हे तरुण अग्ने! सबका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको संतुष्ट कर। इससे वे देव सबका कल्याण कर सकनेमें समर्थ होंगे।

२ हे ऋतुपते! ऋतून् विद्वान् इह यज — ऋतुओंको जाननेवाले देव! ऋतुओंको जानकर यहां यज्ञ कर। किस ऋतुमें क्या होता है यह जानकर उसके अनुसार यज्ञ करना चाहिये।

३ ये दैव्याः ऋत्विजाः तेभिः इह यज — जो दिव्य ज्ञानवाले याजक हैं उनके साथ तू यज्ञ कर। इससे सबका कल्याण होगा।

४ त्वं होतॄणां आ यजिष्ठः असि— तू हवन करनेवालोंमें मुख्य हवन करनेवाला है। किस ऋतुमें क्या हवन करना चाहिये इसका ज्ञान करनेवालोंको होना आवश्यक है।

[९] हे अग्ने! (जनानां होत्रं) यजमानोंका हवनरूप कर्म हो ऐसा (वेषि) तू चाहता है। और (उत पोत्रं) और स्तुति भी तू चाहता है। तू (मन्धाता) बुद्धिमान् (द्रविणोदा) धनका देनेवाला और (ऋतावा) सत्य मार्गका रक्षक हो। (वयं) हम सब यजमान (हवींषि स्वाहा कृणवाम) हविर्द्रव्योंका स्वाहाकार करते हैं (अर्हन् देवः अग्निः) योग्य अग्निदेव (देवान् यजतु) देवोंके लिये यज्ञ करे ॥ २ ॥

१ जनानां होत्रं वेषि— लोकोंका यज्ञकर्म होता रहे ऐसा अग्नि चाहता है।

२ मन्धाता द्रविणोदा ऋतावा— तू बुद्धिमान्, धन देनेवाला तथा सत्य यज्ञमार्गका संरक्षक है। मनुष्य बुद्धिमान् हो, धनका दान करे और सत्य धर्मका संरक्षण करे। मनुष्य ये तीन कार्य अवश्य करे।

३ वयं हवींषि स्वाहा कृणवाम— हम हवन द्रव्योंका उत्तम रीतिसे स्वाहाकार करके यज्ञ करे।

४ अग्निः देवः देवान् यजतु— अग्निदेव अन्य देवोंके लिये हवन कराके और उन देवोंके पास उनके लिये दिये हवनको पहुंचावे।

[१०] (देवानां पन्थां अपि आगन्म) देवोंके मार्गसे ही हम जायेंगें। (यत् शक्नवाम) यदि शक्य हुआ तो अवश्य देवोंके मार्गसे जायेंगें। (तत् अनु प्रवोळ्हुम्) वह अनुकूलतासे हो जाय। (सः विद्वान् अग्निः) वह अग्नि ज्ञानी है (सः अग्निः देवान् यजात्) वह अग्नि देवोंका यज्ञ करे। (स इत् उ) वही (होता) हवनकर्ता है (सः अध्वरान्) वह अहिंसायुक्त यज्ञोंको तथा (ऋतून्) ऋतुओंको (कल्पयाति) करता है ॥ ३ ॥

यद्वो॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॑ वि॒दुषां॑ दे॒वा अवि॑दुष्टरासः ।
अ॒ग्निष्टद्विश्व॒मा पृ॑णाति वि॒द्वान् येभि॑र्दे॒वाँ ऋ॒तुभिः॑ क॒ल्पया॑ति ४
यत् पा॑क॒त्रा मन॑सा दी॒नद॑क्षा न य॒ज्ञस्य॑ मन्व॒ते मर्त्या॑सः ।
अ॒ग्निष्टद्धोता॑ क्रतु॒विद्वि॑जा॒नन् यजि॑ष्ठो दे॒वाँ ऋ॑तु॒शो य॑जाति ५
विश्वे॑षां॒ ह्य॑ध्व॒रा॒णा॒मनी॑कं चि॒त्रं के॒तुं जनि॑ता त्वा ज॒जान॑ ।
स आ य॑जस्व नृ॒वती॒रनु॒ क्षाः स्पा॒र्हा इषः॑ क्षु॒मती॑र्वि॒श्वज॑न्याः ६

---

१ देवानां पन्थां अपि आगन्म— देवोंके मार्गसे हम जायेंगे । देवोंने जैसा किया वैसा कार्य हम करेंगे ।
२ यत् शक्नवाम — जहां तक हमारी शक्तिसे हो सकता है वहां तक हम देवोंके मार्गसे ही जायेंगे ।
३ तत् अनु प्रवोळ्हुं — वह देवोंके मार्गसे जानेका कार्य अनुकूलतासे हो जाय । उसमें विरोध खडा न हो ।
४ स विद्वान अग्निः देवान् यजात्— वह ज्ञानी अग्नि देवोंके लिये यज्ञ करे ।
५ स इत् होता अध्वरान् ऋतून् कल्पयाति — वह अग्नि हवन करता है, हिंसारहित यज्ञ और ऋतुओंको करता है ।

[११] हे (देवाः) देवो ! (अविदुष्टरासः) अज्ञानी (वयं) हम सब (वः) आपके (यत् व्रतानि) जो व्रत हैं (विदुषां) उनको जानकर प्रमिनाम) विनष्ट कर रहे हैं । (विद्वान् अग्निः) यह सब जाननेवाला अग्नि (तत् विश्वं आ पृणाति) उस सब कर्मको पूर्ण करे । (येभिः ऋतुभिः) जिन ऋतुओंसे (देवान् कल्पयाति) देवोंको पूर्ण करता है ॥ ४ ॥

१ हे देवाः ! अविदुष्टरासः वयं वः व्रतानि विदुषां प्रमिनाम — हे देवो ! अज्ञानी हम आपके उत्तम कार्योंको विनष्ट करते हैं ।

२ विद्वान् अग्निः तत् विश्वं आ पृणाति— विद्वान् अग्नि वह सब पूर्ण करता है । उत्तमरीतिसे परिपूर्ण करता है ।

३ येभिः ऋतुभिः देवान् कल्पयाति— जिन ऋतुओंसे अग्नि देवोंको पूर्ण कर देता है, उनका विचार करके मनुष्योंको भी वैसे कार्य करने चाहिये । ये मनुष्योंके कार्य ऋतुओंके अनुकूल हों । बालपन, तारुण्य वार्धक्य ये मानव जीवनमें ऋतु हैं । इनमें जैसे कार्य करने चाहिये ऐसा शास्त्रमें कहा है, वैसेही कार्य मनुष्य करे और अपने जीवनका सार्थक करे ।

[१२] (दीनदक्षाः) निर्बल (मर्त्यासः) ऋत्विज तथा यज्ञकर्ता लोग (पाकत्रा) परिपक्व होनेवाले (मनसा) मनोबलसे युक्त (यत्) जो (यज्ञस्य न मन्वते) यज्ञकर्म करनेकी विधि नहीं जानते (तत् विजानन् होता) उस विधिको जाननेवाला होता (यजिष्ठः) यज्ञ करनेवाला (अग्निः) अग्नि (ऋतुवित्) यज्ञविधि जानता है और (तत्) उस यज्ञविधिको जानकर (देवान्) देवोंके लिये (ऋतुशः यजाति) ऋतुके अनुकूल यज्ञ करता है ।५॥

१ दीनदक्षाः मर्त्यासः पाकत्रा मनसा यत् यज्ञस्य न मन्वते— निर्बल याजक मानव परिपक्व मनसे जो यज्ञकी विधि है उसको नहीं जानते । जो अज्ञानी लोग हैं वे यज्ञविधिको नहीं जानते हैं ।

२ तत् विजानन् होता यजिष्ठः ऋतुवित् अग्निः देवान् ऋतुशः यजाति— उस यज्ञविधिको जाननेवाला होता यज्ञविधि जाननेके कारण ऋतुके अनुसार यज्ञ करके देवोंको प्रसन्न करता है । यज्ञकी विधि उत्तम रीतिसे जाननी चाहिये और ऋतुओंके अनुसार यज्ञकर्म करने चाहिये । ऐसे विधिके अनुसार हुए यज्ञ ही मनुष्योंका सुख, आरोग्य आदि बढा सकते हैं ।

[१३] हे अग्ने ! (विश्वेषां अध्वराणां अनीकं) सब अहिंसायुक्त यज्ञोंका मुख्य और (चित्रं केतुं) इच्छा करने योग्य विशेष ज्ञान देनेवालेको (जनिता) उत्पन्न करनेवाला यजमान (त्वा जजान) तुझे उत्पन्न करता है । (सः) वह तू (नृवतीः क्षाः) मानवोंसे युक्त भूमीपर (स्पार्हाः) स्पृहणाय (क्षुमतीः) स्तुतियुक्त (विश्वजन्याः) सब मानवोंका हित करनेवाले (इषः) अन्नोंका (यजस्व) यज्ञ कर ॥ ६ ॥

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान् पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ७ [२०] (१४)

(३)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहताऽसिक्नीमेति रुशतीमपाजन् १

---

१ विश्वेषां अध्वराणां अनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान— सब अहिंसामय कर्मोंका मुख्य और इच्छा करनेयोग्य ज्ञानका प्रचार करनेवाला यजमान तुझे उत्पन्न करता है। ऐसा यजमान अग्निको उत्पन्न करके उसमें यजन द्रव्योंकी आहुति देता है।

२ सः नृवतीः क्षाः स्पार्हा क्षुमतीः विश्वजन्या इषः यजस्व— वहां मानवोंसे युक्त भूमीपर स्पृहणीय स्तुति करने योग्य सब मानवोंका हित करनेवाले उत्तम अन्नका हवन किया जाता है।

सबका हित करनेवाले उत्तम अन्नके पदार्थोंका हवन करना चाहिये। हवनीय पदार्थ ऐसे हों कि जो मानवोंके उत्तम अन्नरूप हो सकते हैं।

[१४] (यं त्वा) जिस तुझको (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीने (जजान) उत्पन्न किया, (यं त्वा आपः) जिस तुझे जलने उत्पन्न किया, (यं त्वा) जिस तुझे (सुजनिमा त्वष्टा जजान) उत्तम जन्मवाले त्वष्टाने उत्पन्न किया ऐसा तू (पितृयाणं) पितरोंके जानेके मार्गको (अनु प्र विद्वान्) जाननेवाला तू, हे (अग्ने) अग्ने ! (द्युमत्) तेजस्वी होकर (समिधानः) प्रदीप्त होकर (वि भाहि) विशेष तेजस्वी होकर रहो ॥ ७ ॥

१ यं त्वा द्यावापृथिवी जजान— जिस तुझ अग्निको द्युलोक और पृथिवी इन दोनों लोगोंने उत्पन्न किया है। द्यु और पृथिवीमें अग्नि उत्पन्न हुआ।

२ यं त्वा आपः जजान— मेघोंमें रहे जल विद्युत्रूपी अग्निको उत्पन्न करते हैं।

३ यं त्वा सुजनिमा त्वष्टा जजान— जिस अग्निको उत्तम कारीगर बनाता है। कारीगर घर्षणसे अग्नि उत्पन्न करता है।

४ पितृयाणं अनु प्र विद्वान्— पितरोंके मार्गको यह जानता है।

५ समिधानः द्युमत् विभाहि— समिधाओंसे प्रज्वलित होकर, हे अग्ने ! तू प्रकाशित हो जाओ।

[३]

[१५] हे (राजन्) प्रकाशित होनेवाले अग्ने ! तू (इनः) स्वामी है। (अरतिः) हवि लेकर देवोंके पास जानेवाला (समिद्धः रौद्रः) समिधाओंसे प्रदीप्त होकर भयंकर दीखनेवाला (सुषुमान्) उत्तम प्रदीप्त दीखनेवाला (दक्षाय अदर्शि) बल बढाता हुआ दीखता है। (चिकित्) ज्ञानवान् होकर (वि भाति) विशेषरीतिसे प्रकाशता है। (बृहता-भासा) बडे तेजसे (असिक्नीं एति) रात्रीमें प्रकट होता है। (रुशतीं अपाजन् एति) तेजस्वी प्रकाश प्रकट करके आगे जाता है ॥ १ ॥

१ हे राजन् ! इनः— हे तेजस्वी अग्ने ! तू स्वामी हो।

२ अरतिः— हवि लेकर देवोंके पास जाकर उनको हवि देता है।

३ समिद्धः रौद्रः सुषुमान् दक्षाय अदर्शि— समिधाओंसे प्रदीप्त होकर भयंकर दीखता है और बल बढाता है ऐसा दीखता है।

४ चिकित् विभाति— ज्ञान बढाता है और प्रकाशता है।

५ बृहता भासा असिक्नीं एति— बडे तेजसे रात्रीमें आता है।

६ रुशतीं अपाजन् एति— प्रकाश देता हुआ आगे बढता है।

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन् योषां बृहतः पितुर्जाम्।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति　　२
भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्　　३
अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे　　४

---

[१६] वह अग्नि (यत्) जब (कृष्णां एनीं) कृष्णवर्णकी रात्रीको (वर्पसा) अपनी ज्वालासे (अभि भूत्) पराभूत करता है। (बृहतः पितुः) बडे जगत्के पालन करनेवाले सूर्यसे (जां) उत्पन्न हुई (योषां) उषाको (जनयन्) उत्पन्न करता है। तब (अरतिः) गमनशील अग्नि (दिवः वसुभिः) द्युलोकके अन्दर रहनेवाले तेजोंसे (सूर्यस्य भानुं) सूर्यके प्रकाशको (ऊर्ध्वं) ऊपर (स्तभायन्) स्थिर करनेके लिये (विभाति) विशेषरीतिसे प्रकाशता है ॥ २ ॥

१ यत् कृष्णां एनीं वर्पसा अभि भूत् — जब काले रंगकी रात्रीको अपनी ज्वालाओंसे पराभूत करता है अर्थात् रात्रीके अन्धकारमें अग्नि प्रज्वलित होकर प्रकाशित होता है।

२ बृहतः पितुः जां योषां जनयन्— बडे पिता सूर्यसे उत्पन्न हुई उषाको उत्पन्न करता है। सूर्यसे उषा उत्पन्न होती है और प्रकाशने लगती है।

३ अरतिः दिवः वसुभिः सूर्यस्य भानुं ऊर्ध्वं विभाति— प्रगतिशील अग्नि द्युलोकमें रहनेवाले तेजोंसे सूर्यके प्रकाशको ऊपरके स्थानमें प्रकाशित करता है।

[१७] (भद्रः) कल्याण करनेवाला अग्नि (भद्रया) कल्याण करनेवाली उषाके साथ (सचमानः) रहनेवाला (आगात्) आया है। पश्चात् (जारः) शत्रुओंका नाश करनेवाला (अग्निः) अग्नि (स्वसारं) बहिन उषाके (पश्चात् अभ्येति) पीछेसे आता है। (सुप्रकेतैः द्युभिः) उत्तम प्रकाशित हुए तेजोंके साथ (वितिष्ठन्) रहता हुआ वह (अग्निः) अग्नि (रुशद्भिः वर्णैः) तेजस्वी किरणोंसे (रामं) काले अन्धकारको (अभि अस्थात्) दूर करके रहता है ॥ ३ ॥

१ भद्रः भद्रया सचमानः आगात्— कल्याण करनेवाला अग्नि कल्याण करनेवाली उषाके साथ यज्ञस्थानमें आया है।

२ जारः अग्निः स्वसारं पश्चात् अभ्येति— शत्रुओंका नाश करनेवाला अग्नि अपनी बहिन उषाके पीछेसे आता है। उषःकालके पश्चात् यज्ञस्थानमें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है।

३ सुप्रकेतैः द्युभिः वितिष्ठन् अग्निः रुशद्भिः वर्णैः रामं अभि अस्थात् – तेजस्वी किरणोंसे युक्त अग्नि अपने प्रकाशके किरणोंसे रात्रीके अन्धकारको दूर करता है। रात्रीके समय अग्नि प्रकाशित होकर रात्रीके अन्धकारको दूर करता है। इस प्रकार मनुष्य अपने ज्ञानसे अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करे।

[१८] (बृहतः अस्य अग्नेः) इस बडे अग्निके (इन्धानाः यामासः) प्रदीप्त किरण (वग्नून न) स्तुति करनेवालेको कष्ट नहीं देते हैं। (सख्युः शिवस्य अग्नेः) कल्याण करनेवाले मित्ररूप अग्निके (ईड्यस्य वृष्णोः बृहतः) स्तुतिके योग्य बलवर्धक बडे (स्व असः) अपने मुखके (अक्तवः) अन्धकारको दूर करनेवाले (भामासः) किरण (यामन्) यज्ञमें (चिकित्रे) फैल रहे हैं ॥ ४ ॥

१ बृहतः अस्य अग्नेः इन्धानाः यामासः वग्नून् न— इस बडे अग्निके प्रदीप्त किरण स्तुति करनेवाले ऋत्विजोंको कष्ट नहीं देते।

२ सख्युः शिवस्य ईड्यस्य बृहतः वृष्णोः स्व आसः अक्तवः अभासः— मित्र तथा कल्याण करनेवाले स्तुतिके योग्य बडे बलवान् अग्निके मुखसे अन्धकारको दूर करनेवाले किरण बाहर आते हैं।

३ यामन् चिकित्रे— यज्ञस्थानमें अग्निके प्रकाश किरण फैल रहे हैं।

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ५
अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन् नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ६
स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ७ [२१] (२१)

[१९ | (रोचमानस्य) प्रदीप्त हुए (बृहतः सुदिवः) बडे तेजस्वी (यस्य भामासः) जिस अग्निके किरण (स्वनाः न) शब्दोंके समान (पवन्ते) सर्वत्र चल रहे हैं। (यः) जो अग्नि (ज्येष्ठेभिः तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिः) अपने श्रेष्ठ तेजस्वी क्रीडा करनेवाले किरणोंसे (वर्षिष्ठेभिः भानुमद्भिः) श्रेष्ठ तेजस्वी प्रकाशसे (द्यां नक्षति) द्युलोकको व्यापता है ॥ ५ ॥

१ रोचमानस्य बृहतः सुदिवः यस्य भामासः स्वनाः न पवन्ते - तेजस्वी बडे प्रदीप्त ऐसे जिसके किरण शब्दोंके समान चारों ओर फैल रहे हैं।

२ ज्येष्ठेभिः तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिः वर्षिष्ठेभिः भानुभिः द्यां नक्षति— अपने तेजस्वी श्रेष्ठ क्रीडा करनेवाले प्रचंड तेजस्वी किरणोंसे जो द्युलोकमें प्रकाश पहुंचाता है।

[२०] (ददृशानपवेः) दर्शनीय तेजसे युक्त (जेहमानस्य) देवोंके पास हवि लेकर जानेवाले (अस्य शुष्मासः) इसके बलवान् (नियुद्भिः) वायुके घोडोंसे (स्वनयन्) शब्द करते हुए (देवतमः) देवोंके श्रेष्ठ (अरति) प्रगमनशील (विभ्वः) वैभवसे युक्त महान् (यः) जो अग्नि (प्रत्नेभिः) प्राचीनकालसे (रुशद्भिः रेभद्भिः) तेजस्वी होकर शब्द करनेवाले प्रकाशसे (विभाति) प्रकाशता है ॥ ६ ॥

१ ददृशानपवेः जेहमानस्य— उत्तम तेजस्वी हविको देवोंके पास यह अग्नि पहुंचाता है। अग्निमें हवन किये हविर्द्रव्य जिन देवोंके नामसे अर्पण किये जाते हैं उन देवोंके पास वे पहुंचाये जाते हैं। अग्नि यह पहुंचानेका कार्य करता है।

२ अस्य शुष्मासः— इसके बलवान् घोडे होते है।

३ यः प्रत्नेभिः रुशद्भिः रेभद्भिः विभाति— यह अग्नि तेजस्वी प्रकाशके किरणोंसे प्रकाशता है। इससे तेजस्वी प्रकाश चारों ओर फैलता है।

[२१] हे अग्ने ! (सः) वह तू (नः) हमारे यज्ञमें (महि) बडे देवोंको (आ वक्षि) ले आओ। तथा (युवत्योः) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें (अरतिः) जानेवाला तू अग्नि (आ सत्सि) हमारे यज्ञमें आओ। (सुतुकः) उत्तमरीतिसे याजकोंको प्राप्त होनेवाला (रभस्वान् अग्निः) वेगवान् अग्नि तू (सुकेतुभिः) सहज प्राप्त होनेवाले (रभस्वद्भिः) वेगवान् (अश्वैः) घोडोंसे (इह) इस हमारे यज्ञमें (आ गम्याः) आओ ॥ ७ ॥

१ सः नः महि आ वक्षि— हे अग्ने ! वह तू हमारे इस यज्ञमें सब बडे देवोंको ले आओ।

२ युवत्योः अरतिः आ सत्सि— द्यावापृथिवीमें जानेवाला तू यहां हमारे यज्ञमें आओ और बैठ जाओ।

३ सुतुकः रभस्वान् अग्निः सुतुकेभिः रभस्वद्भिः अश्वैः इह आगम्याः— याजकोंको प्राप्त होनेवाला अग्नि वेगवान् अग्नि वेगवान् शब्द करनेवाले घोडोंसे यहां हमारे यज्ञमें आ जावे।

(४)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् १ (२१

यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन २
शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ३
मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन् रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ४

---

[४]

[२२] हे अग्ने ! (ते प्र यक्षि) तेरे लिये हवि में अर्पण करता हूं । तथा (मन्म) मननीय स्तुति (ते प्र इयर्मि) तेरे लिये बोलता हूं । (वन्द्यः) वन्दनीय तू (नः हवेषु) हमारे यज्ञोंमें (यथा) जैसा (भुवः असि) बैठनेवाला होता है वैसे तुझे में हवि अर्पण करता हूं । (प्रत्न राजन्) हे पुराणे तेजस्वी (अग्ने) अग्ने ! (त्वं) तू (इयक्षवे पूरवे) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके लिये (धन्वन् इव) मरुदेशमें (प्रपा असि) जलस्थानके समान तू है ॥ १ ॥

१ ते प्र यक्षि— हे अग्ने ! तेरे लिये में हवि अर्पण करता हूं ।
२ ते मन्म प्र इयर्मि— तेरी स्तुति में करता हूं ।
३ नः हवेषु वन्द्यः यथा भुवः असि— हमारे यज्ञोंमें जैसा जैसा कोई वंदनीय आकर बैठता है वैसा तू बैठा है ।
४ हे प्रत्न राजन् अग्ने — हे पुराणे तेजस्वी अग्ने !
५ त्वं इयक्षवे पूरवे धन्वन् इव प्रपा असि— तू यज्ञ करनेवाले मनुष्यके लिये मरुदेशमें जलस्थानके समान शान्ति देनेवाला है ।

[२३] हे (यविष्ठ) तरुण बलवान् अग्नि ! (गावः उष्णम् इव व्रजम्) जैसे गायें शीतसे पीडित होकर उष्ण गोशालाकी ओर जाती हैं, वैसेही (यं त्वा) जिस तुझको (जनासः) मनुष्य फल प्राप्तिके लिये (अभि सञ्चरन्ति) शरण आते हैं । तू (देवानाम् मर्त्यानाम् दूतो असि) देवों और मानवोंके दूत हो । (महान्) महान् तुम (अन्तः) द्यावापृथिवीके बीचमें– अन्तरिक्षमें (रोचनेन चरसि) प्रकाशित होकर विचरता है ॥ २ ॥

[२४] हे अग्नि ! (शिशुं न माता) जैसे माता पुत्रको (वर्धयन्ती सचनस्यमाना बिभर्ति) पोषण करके और अपने संपर्कमें रखना चाहती है, वैसेही पृथिवी माता (त्वा जेन्यं) तुझ जयशीलको बढाती हुई तथा संपर्ककी इच्छा करके धारण करती है । तू (हर्यन्) अभिलाषी होकर (धनोः अधि) अन्तरिक्षके प्रशस्त मार्गसे (प्रवता यासि) नीचेके स्थानोंको जाता है, (अवसृष्टः पशुः इव) जैसे बंधनसे छुटे हुए पशु गोष्ठमें जानेकी इच्छा करता है तथा (जिगीषसे) उसको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

[२५] हे (अग्ने) अग्नि ! हे (अमूर) मोहरहित ! हे (चिकित्वः) ज्ञानमय ! (वयं मूराः) हम मूढ मनुष्य (महित्वं न) तेरी महिमाको नहीं जानते । हे (अंग) तेजस्वी अग्नि ! (त्वं वित्से) अपनी महिमाको तूही जानता है । तू (वव्रिः) मूर्तिमान् होकर (शये) सुखसे सोता है और (जिह्वया) जिह्वाके द्वारा (अदन् चरति) हविका भक्षण करता हुआ विचरता है । तू (विश्पतिः सन्) प्रजाओंका अधिपति होकर (युवतिं रेरिह्यते) कोई भूपतिके समान अपनी प्रिय पत्नीका उपभोग करता है ॥ ४ ॥

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ५
तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ६
ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चे—यं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ७ [३२] (२८)

(५)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

एकः समुद्रो धरुणो रयीणा—मस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः १
समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि २

---

[२६] (नव्यः सनयासु कूचित् जायते) सूखी लकडियोंमें नित्य नया अग्नि कहीं भी उत्पन्न हो जाता है; और (धूमकेतुः) धूमकी ध्वजासे युक्त (पलितः वने तस्थौ) पिंगलवर्ण तेजसे वनमें वास करता है । (अस्नाता) स्नानके विनाही (वृषभः आपः न) प्याससे वृषभके समान (प्रवेति) जलोंके पास जाता है; परंतु (यं मर्त्ताः सचेतसः प्रणयन्त) ऐसे अग्निकोही स्थिर चित्त मनुष्य वेदीपर रखते हैं ॥ ५ ॥

[२७] जैसे (तनूत्यजा इव वनर्गू तस्करा) देहको सहजहीसे त्यागनेवाले और वनमें विचरनेवाले पापी दो चोर (दशभिः रशनाभिः अभ्यधीताम्) दसों रस्सियोंसे पथिकको बांध डालते हैं, वैसेही हमारे दोनों हाथ दसों अंगुलियोंसे (मन और अहंकार इन) दोनों चोरोंको अच्छी प्रकार पकडती हैं। हे (अग्ने) अग्नि ! (इयं ते) यह तेरी (नव्यसी मनीषा) नयी अपूर्व और मननीय स्तुति में करता हूं; इससे (शुचयद्भिः) सबका प्रकाश करनेवाले अपने (अंगैः) तेजसे (रथं न) अश्वोंसे रथके समान यज्ञमें संयोजित कर ॥ ६ ॥

[२८] हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि ! (ब्रह्म च इयं च गीः) हमने गाया हुआ यह स्तुति-प्रार्थना सूक्त तुझे अर्पण किया और (नमः च) नमस्कार भी किया । यह स्तुति (ते सदम् इत्) तेरा महात्म्य सदा ही (वर्धनी भूत्) बढानेवाली हो । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (नः तनयानि तोका) हमारे पुत्र-पौत्रोंकी (रक्ष आ) रक्षा कर; (उत नः तन्वः) और हमारे शरीरोंकी (अप्रयुच्छन् रक्ष) सावधान होकर रक्षा कर ॥ ७ ॥

[५]

[२९] (एकः) अद्वितीय, (समुद्रः) समुद्रवत् आधारभूत, (रयीणां धरुणः) सब धनोंके धारक और (भूरिजन्मा) अनेक प्रकारके जन्मवाले अग्नि (अस्मत् हृदः) हमारे अभिलषित हृदयोंको (विचष्टे) जानता है । वह (निण्योः उपस्थे) आकाश और पृथिवीके बीच (ऊधः) अन्तरिक्षमें (सिषक्ति) वर्तमान होता है, और (उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः) विद्युत् रूपमें मेघका सेवन करता है ॥ १ ॥

[३०] (वृषणः महिषाः) आहुतियोंके देनेवाले बडे यजमान (समानं नीळं वसानाः) समानरूपसे नील अग्निको मन्त्रसे आच्छादित करते हुए (अर्वतीभिः सञ्जग्मिरे) घोडेवाले हुए । (कवयः) मेधावी लोग (ऋतस्य पदं नि पान्ति) सद्धर्मके स्थानको सुरक्षित रखते हैं, स्तुति करते हैं । (गुहा) वे गूढ हृदयमें (पराणि नामानि) रहस्यमय प्रधान नामोंको (दधिरे) धारण करते हैं ॥ २ ॥

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित् तन्तुं मनसा वियन्तः ३
ऋतस्य हि वर्तनयः सुजात मिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ४
सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन् वव्रिमविदत् पूषणस्य ५
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षु स्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ६
असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ७ [३३] (३५)

---

[३१] (ऋतायिनी मायिनी) अन्न, तेज, सत्य और धन–कर्मसे युक्त द्यावापृथिवी (शिशुं सं दधाते) अग्निको धारण–पोषण करते हुए (वर्धयन्ती मित्वा जज्ञतुः) काल–परिमाण करके उत्तम अग्निको प्रकट करते हैं, जैसे बुद्धिमान् माता–पिता बालकका पोषण करके उसको बडा करते हैं। तथा (चरतः ध्रुवस्य विश्वस्य नाभिं तन्तुं कवेः) सब जङ्गम और स्थावर जगत्के नाभिरूप मेधावी विस्तारक अग्निको (मनसा) मनसे (वियन्तः) जानकर उपासना करते हुए (चित्) प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३ ॥

[३२] (ऋतस्य हि वर्तनयः) यज्ञके प्रवर्तक, (वाजाय इषः) ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले, (प्रदिवः) प्राचीन लोग (सुजातम्) अच्छी तरह प्रज्वलित अग्निकी (सचन्ते) बलके लिये उपासना करते हैं। (रोदसी) द्यावा–पृथिवीने (अधीवासं वावसाने) त्रैलोक्य निवासी सूर्यरूप अग्निको (मधूनाम् घृतैः अन्नैः) मधु, घी–जल और अन्नोंसे (वावृधाते) वर्धित किया ॥ ४ ॥

[३३] (विद्वान्) स्तोताओंके द्वारा स्तवित और सर्वज्ञ अग्निने (सप्त स्वसः अरुषीः) कान्तियुक्त–रमणीय सात भगिनीरूप ज्वालाओंको (वावशानः) वश करता हुआ (मध्वः कम् दृशे) सरलतासे–सुखदायक सारे पदार्थोंको देखनेके लिए (उत् जभार) उनको उपर उठाया। (पुराजाः अन्तरिक्षे अन्तः येमे) प्राचीन कालमें उत्पन्न अग्निने द्यावापृथिवीके बीचमें उनको बद्ध किया और (वव्रिम् इच्छन्) तेजस्वी यजमानोंकी इच्छा करनेवाले अग्निने (पूषणस्य अविदत्) पोषक वर्गको प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[३४] (कवयः सप्त मर्यादाः ततक्षुः) बुद्धिमान् लोगोंने सात मर्यादाओंको निर्माण किया। (तासाम् एकाम् इत्) उनमेंसे एकको भी जो (अभि गात्) प्राप्त होता है वह (अंहुरः) पापी है। (आयोः) पापसे मनुष्यको (स्कम्भः) रोकनेवाला अग्नि है। अग्नि (उपमस्य पथां विसर्गे) समीपवर्ती मनुष्यके विविध मार्गोंके स्थानमें, (नीळे) आदित्य–किरणोंके विचरण मार्गमें और (धरुणेषु) जलके बीचमें–त्रैलोक्यमें (तस्थौ) स्थिर होकर विराजता है ॥ ६ ॥

[३५] (परमे व्योमन्) सर्वश्रेष्ठ, सब तरहसे रक्षा करनेवाले, परमधाम अग्नि (असत् च सत् च) सृष्टिके पहले असत् और सत्– सूक्ष्म और सूक्ष्म जगत्में है। (दक्षस्य जन्मन् अदितेः उपस्थे) वह अन्तरिक्षमें सूर्यरूपसे उत्पन्न हुआ है। (नः) वह हमसे पहले तथा (ऋतस्य प्रथमजाः ह) यज्ञके पहके निश्चयसे उत्पन्न हुआ है, (पूर्वे आयुनि) पहले सृष्टिके आरंभमें (वृषभः च धेनुः) अग्निही बैल और गायके रूपमें उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥

+

[षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ व० १-२८] (६)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

अयं स यस्य शर्मन्नवोभि- रग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा १

यो भानुभिर्विभावा विभा- त्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्यो ऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः २

ईशे यो विश्वस्या देववीते- रीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन् मना हवींष्यग्ना- वरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ३

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कै- र्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा३ यजिष्ठः संमिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ४

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमान- मग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ५

---

[६]

[३६] (अयं स) यह वह अग्नि है, (यस्य अग्नेः) जिस अग्निके (अवोभिः) रक्षणोंसे (अभिष्टौ) अभीष्ट फलप्राप्तिके लिये (जरिता) स्तुति करनेवाला (शर्मन् एधते) अपने घरमें सुखसे बढता है; (यः) जो (दीप्तिमान् अग्निः ज्येष्ठेभिः भानुभिः ऋषूणां) उत्तम सूर्य किरणोंके प्रशस्त तेजसे (परिवीतः पर्येति) युक्त होकर सर्वत्र जाता है ॥ १ ॥

[३७] (यो अग्निः देवेभिः विभावा भानुभिः विभाति) जो प्रदीप्त अग्नि देवोंके उत्तम तेजसे चमकता है, प्रकाशता है, वह (ऋतावा अजस्रः) सत्य और नित्य है; (यः) जो (सखिभ्यः सख्या आ विवाय) मित्रों-भक्तोंके कल्याणमय कार्य करनेके लिये वह (सप्तिः न अत्यः) वेगवान् अश्वके समान (अपरिह्वृतः) अथक उनके पास जाता है ॥ २ ॥

[३८] (यो विश्वस्याः देववीतेः ईशे) जो अग्नि सब विश्वका–यज्ञोंका प्रभु है, वह सर्वगामी है। (विश्वायुः उषसः व्युष्टौ ईशे) जो सबका जीवनदाता होकर, उषःकालमें होम करनेवाले यजमानोंके प्रभु है। (यस्मिन् अग्नौ) जिस अग्निमें (मना हवींषि) भक्त मनके अनुकूल हविर्द्रव्य समर्पण करते हैं, वह (अरिष्टरथः) मंगलकारक रथ (शूषैः स्कभ्नाति) शत्रुबलसे अबध्य होकर जगत्को गिरनेसे रोकता है ॥ ३ ॥

[३९] (शूषेभिः वृधः) अनेक प्रकारके सामर्थ्योंसे वर्द्धित, (अर्कैः जुषाणः) स्तोत्रोंसे स्तवित (रघुपत्वा) शीघ्रगामी रथोंसे जानेवाला (देवान् अच्छ आ जिगाति) देवोंके पास वेगसे जाता है। (स अग्निः) वह अग्नि (मन्द्रः) प्रशंसनीय, (होता) देवोंका दूत, (जुह्वा यजिष्ठः) वाणीसे यज्ञ योग्य, (संमिश्लः) सबका साथी देव-युक्त (देवान् आ जिघर्ति) देवोंको हवि देता है ॥ ४ ॥

[४०] हे ऋत्विजो ! तुम (उस्राम्) भोग ऐश्वर्य देनेवाले, (रेजमानं अग्निं) तेजस्वी अग्निको (इन्द्रं न गीर्भिः नमोभिः) इन्द्रके समान स्तुति–स्तोत्रों और हवियोंसे (आ कृणुध्वम्) हमारे सम्मुख करो; (यं) जिसका (विप्रासः) बडे बडे विद्वान् (मतिभिः आ गृणन्ति) आदरयुक्त स्तुतियोंसे गुणगान करते हैं; कारण वह (जात-वेदसं) ज्ञानी और (सहानां जुह्वं) देवोंके बुलानेवाला–बलोंके प्रमुख दाता है ॥ ५ ॥

सं यस्मि॑न् विश्वा॒ वसू॑नि ज॒ग्मु-र्वाजे॒ नाश्वाः॒ सप्ती॑वन्त॒ एवैः॑ ।
अ॒स्मे ऊ॒तीरिन्द्र॑वाततमा अर्वाची॒ना अ॑ग्न॒ आ कृ॑णुष्व ६

अधा॒ ह्य॑ग्ने म॒ह्ना नि॒षद्या॑ स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ ब॒भूथ॑ ।
तं ते॑ दे॒वासो॒ अनु॒ केत॑माय॒-न्नधा॑वर्धन्त प्रथ॒मास॒ ऊमाः॑ ७ [१] (४२)

(७)

७ त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

स्व॒स्ति नो॑ दि॒वो अ॑ग्ने पृथि॒व्या वि॒श्वायु॑र्धेहि य॒जथा॑य देव ।
सचे॑महि॒ तव॑ दस्म प्रके॒तै-रु॑रु॒ष्या ण॑ उ॒रुभि॑र्देव॒ शंसैः॑ १

इ॒मा अ॑ग्ने म॒तय॒स्तुभ्यं॑ जा॒ता गोभि॒रश्वै॑र॒भि गृ॑णन्ति॒ राधः॑ ।
य॒दा ते॒ मर्तो॒ अनु॒ भोग॒मान॒ड्-वसो॒ दधा॑नो म॒तिभिः॑ सुजात २

अ॒ग्निं म॑न्ये पि॒तर॑म॒ग्निमा॒पि-म॒ग्निं भ्रात॑रं॒ सद॒मित् सखा॑यम् ।
अ॒ग्नेरनी॑कं बृह॒तः स॑पर्यं दि॒वि शु॒क्रं य॑ज॒तं सूर्य॑स्य ३

---

[४१] (वाजे सप्तीवन्तः अश्वाः न एवैः) युद्धमें जैसे शीघ्रगामी घोडे एकत्र होते हैं, उन्हींके समान (यस्मिन् विश्वा वसूनि सं जग्मुः) तुममें--तुम्हारे अधीन संसारके सारे धन-ऐश्वर्य एकत्र रहे हैं; हे (अग्ने) अग्निदेव ! तू (अस्मे) हमारे लिए (इन्द्रवाततमाः) तेजस्वी इन्द्रसे प्राप्त (अर्वाचीनाः ऊतीः) नवीन नवीन रक्षाएं (आ कृणुष्व) प्राप्त करा ॥ ६ ॥

[४२] (अधा हि) और, हे (अग्ने) अग्नि ! तू (मह्ना निषद्या) जन्मके साथ ही महत्त्व लाभ करके (सद्यो जज्ञानः) शीघ्र प्रकट होकर स्थान ग्रहण करके (हव्यः बभूथ) हवनीय होता है । इसलिये (ते देवासः) वे देवतालोग तुम्हें देखते ही (तं केतं अनु आयन्) तेरा अनुसरण करते हैं; (अध) और (प्रथमासः ऊमाः) वे उत्तम लोग तुमसे रक्षित होकर (अवर्धन्त) उत्कर्षित होने लगे ॥ ७ ॥

[७]

[४३] हे (देव अग्ने) दिव्य अग्नि ! तू (दिवः पृथिव्या) द्यावापृथिवीसे (नः) हमारे लिये (विश्वायुः स्वस्ति) सब तरहका अन्न और कल्याण (यजथाय धेहि) यज्ञके लिये प्रदान कर; इससे हम (सचेमहि) हम तेरी सेवा-यज्ञ करेंगे । हे (दस्म देव) अतुलनीय तेजस्वी अग्ने ! तू (नः) हमारी (तव प्रकेतैः) तेरे विपुल ज्ञानोंसे युक्त (उरुभिः शंसैः) उत्तम रक्षणोंसे (आ उरुष्य) रक्षा कर ॥ १ ॥

[४४] हे (अग्ने) तेजस्वी देव ! (इमाः मतयः) ये स्तुतियां (तुभ्यं जाताः) तेरे लिये कही गयी हैं । (गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति) गौओं और अश्वोंके सहित तुमने हमारे लिये जो धन दिया है, इसलिये तेरी ही प्रशंसा की जाती है । (यदा) जब (मर्तः) मनुष्य (ते भोगं अनु आनट्) तेरा दिया भोग्य धन प्राप्त करता है, हे (सुजात वसो) उत्तम गुणोंवाले धनदाता ! तब (मतिभिः दधानः) हम तुम्हारी स्तुतियां करते हैं ॥ २ ॥

[४५] मैं (अग्निं) अग्निको ही (पितरं मन्ये) पिता मानता हूं, (अग्निं आपिम्) अग्निको ही बन्धु, (अग्निं भ्रातरं) अग्निको ही भ्राता और (सदम् इत्) सदैव ही (सखायम्) मित्र मानता हूं । मैं (बृहतः अग्नेः) उस महान् अग्निके (अनीकं सपर्यम्) स्थानकी उपासना करता हूं, (दिवि) जैसे द्युलोकस्थित (सूर्यस्य यजतं शुक्रं) पूजनीय और प्रदीप्त सूर्यमण्डलकी कोई उपासना करता है ॥ ३ ॥

सिधा अग्ने धियो अस्मे सनुत्री॒र्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षु॒र्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ४ (४६)

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ५

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान् किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवा॒नेवा यजस्व तन्वं सुजात ६

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो॒ अप्रयुच्छन् ७ [२] (४९)

(८)

९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । अग्निः, ७-९ इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र केतुना बृहता यात्यग्नि॒रा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तॉं उपमाँ उदान॒ळपामुपस्थे महिषो ववर्ध १

[४६] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (अस्मे धियः) हमारी स्तुतियां और बुद्धियां (सिध्राः) उपासनारूप सिद्ध हुई हैं; वे (अस्मे सनुत्रीः) हमें फलदायक हो । तू (नित्य होता) गृहमें नित्य आहुत तू (यं दमे त्रायसे) जिसकी संयमित रखकर रक्षा करता है (सः ऋतावा) वह मैं सत्यनिष्ठ धनपति बनकर (रोहित् अश्वः) लाल अश्वोंवाला और (पुरुक्षुः) बहुत अन्नोंका स्वामी हो जाऊं; तब (द्युभिः अहभिः) सम्पन्न दिनोंमें (अस्मा वामम् अस्तु) हमें तुझे उत्तम हवनीय द्रव्य समर्पण करनेका लाभ हो सके ॥ ४ ॥

[४७] (द्युभिः हितं) तेजसे युक्त, (मित्रं इव प्रयोगं) मित्रके समान सत्कर्ता, (प्रत्नम्) प्राचीन, (ऋत्विजं) ऋत्विक्, (अध्वरस्य जारं) यज्ञके समापक (अग्निं बाहुभ्यां आयवः अजनन्त) अग्निकोय जमानोंने अपने हाथोंसे प्रकट किया, (होतारं विक्षु न्यसादयन्त) और मनुष्योंने देवोंके आह्वान और यज्ञके लिये प्रजाओंमें उसकी स्थापना की ॥ ५ ॥

[४८] हे (देव) तेजस्वी अग्नि ! तू (दिवि स्वयं देवान् यजस्व) द्युलोकमें स्थित देवोंका स्वयं यजन कर । (अप्रचेताः) अल्पज्ञ और (पाकः) निर्बोध मनुष्य (ते किं कृणवन्) तुम्हारे बिना क्या कर सकता है ? हे (देव) देव ! तू (ऋतुभिः यथा देवान् अयजः) समय-समयपर जैसे देवोंका यजन करता है, (एव) वैसे ही हे (सुजाता) सुजन्मा ! (तन्वं यजस्व) तू अपना भी कर ॥ ६ ॥

[४९] हे (अग्ने) ज्ञानी देव ! तू (नः अविता उत गोपा आ भव) दृष्ट-अदृष्ट संकटोंसे हमारा रक्षणकर्ता हो । तू (नः वयस्कृत् उत वयोधाः भव) तू हमारे लिये अन्नके कर्ता और दाता भी बनो । हे (सुमहो) पूज्य अग्ने ! (नः हव्यदातिं आ रास्व) हमें हवन करनेकी सामग्रीका दान कर ! (उत नः तन्वः) हमारे शरीरकी (अप्रयुच्छन् त्रास्व) बिना प्रमाद किये रक्षा कर ॥ ७ ॥

[८]

[५०] वह (अग्निः) अग्नि (बृहता केतुना) बडे भारी ज्ञानसे युक्त होकर (रोदसी प्र याति) द्यावा-पृथिवीमें जाता है; (वृषभः रोरवीति) और देवोंको बुलानेके समय वृषभके समान शब्द करता है । अग्नि (दिवः चित् अन्तान् उपमां) द्युलोकके सीमान्त वा समीपके प्रदेशमें रहकर (उद् आनट्) व्याप्त करता है और वह (महिषः अपाम् उपस्थे) महान् जलभण्डार-अन्तरिक्षमें विद्युत्रूपसे (ववर्ध) अत्यंत बढता है ॥ १ ॥

मुमोदु गर्भो वृषभः कुकुद्मा- नस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन् त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति २
आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ३
उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन् मित्रं तन्वे३ स्वायै ४
भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ५ [३]
भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ६

---

[५१] वह (गर्भः) सर्वग्राही, (वृषभः) सुख-कामोंका वर्षक, (ककुद्मान्) तेजस्वी अग्नि प्रसन्न होता है; (अस्रेमा वत्सः) परिपूर्ण ,स्तुत्य (शिमीवान् अरावीत) कर्मकुशल अग्नि शब्द करता है; (सः) वह (देवताति उद्यतानि कृण्वन्) यज्ञमें उत्साहपूर्ण कर्म करनेवाला अग्नि (स्वेषु क्षयेषु) अपने आहवनीय स्थानोंमें (प्रथमः जिगाति) सबसे मुख्य होकर विराजता है ॥ २ ॥

[५२] (यः) जो (पित्रोः मूर्धानं अरब्धनि) मातृ-पितृरूप द्यावापृथिवीके मस्तकपर अपना तेज विस्तृत करता है, उस (सूरः अर्णः) सुवीर्यवाले तेजस्वी अग्निके तेजको (अध्वरे दधिरे) याज्ञिक यज्ञमें स्थापन-धारण करते हैं। (अस्य पत्मन् ऋतस्य योनौ) इस अग्निके यज्ञस्थानमें व्याप्त (अरुषीः अश्वबुध्नाः) तेजस्वी और हवि आदिसे युक्त (तन्वः जुषन्त) शरीरकी सेवा विद्वान् लोग करते हैं ॥ ३ ॥

[५३] हे (वसो) स्तुत्य अग्नि ! तू (उषः उषः हि अग्रम् एषि) सब उषाओंके पहले ही आ जाता है; (त्वं यमयोः विभावा अभवः) तू दिन-रात्रिके जोडोंमें दीप्तिकर्ता हो । तू (स्वायै तन्वे जनयन्) अपने शरीरसे सूर्यको उत्पन्न करके (ऋताय सप्त पदानि दधिषे) यज्ञके लिये सात स्थानोंको धारण करता है ॥ ४ ॥

[५४] हे अग्नि ! (महः ऋतस्य चक्षुः भुवः) तुम महान् यज्ञके- सृष्टि नियमोंके- चक्षुके समान प्रकाशक हो; (गोपाः) तुम यज्ञके रक्षक हो । (यत् ऋताय वेषि वरुणः भुवः) जब तुम यज्ञके लिये वरुण होकर जाते हो, उस समय तुम ही रक्षक होते हो । हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि ! तू ही (अपां नपात्) जलका पौत्र है, (कारण जलसे मेघ और मेघसे विद्युत्-अग्नि उत्पन्न होती है) (यस्य हव्यं जुजोषः) तू जिस यजमानकी हवि ग्रहण करता है, (दूतः भुवः) उसका दूत होता है ॥ ५ ॥

[५५] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (यत्र शिवाभिः नियुद्भिः सचसे) तुम जिस अन्तरिक्षमें कल्याणप्रद सुंदर अश्वोंवाले घोडोंसे युक्त वायुके साथ मिलते हो, (यज्ञस्य रजसः च नेता भुवः) उसमें तुम यज्ञ और जलके नेता होते हो । तू ही (दिवि) द्युलोकमें (मूर्धानं स्वर्षाम् दधिषे) श्रेष्ठ और सर्वपोषक सूर्यको धारण करता है; तू (जिह्वाम् हव्यवाहम् चकृषे) अपनी जिह्वाको हव्यवाहिका बनाता है ॥ ६ ॥

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्त रिच्छन् धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ७
स पित्र्याण्यायुधानि विद्वा निन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान् त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ८
भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजो ऽवाभिनत् सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोना माचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ९ [४] (५८)

(९)

९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, सिन्धुद्वीप आम्बरीषो वा । आपः । गायत्री, ५ वर्धमाना गायत्री, ७ प्रतिष्ठा गायत्री, ८-९ अनुष्टुप् ।

आपो हि ष्ठा मयोभुव स्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे १
यो वः शिवतमो रस स्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः २
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ३

---

[५६] (त्रितः क्रतुना) त्रित ऋषिने यज्ञ करके प्रार्थना की कि (परस्य पितुः एवैः धीतिम् इच्छन्) यज्ञमें परम पिताका इन कर्मोंसे ध्यान-उपासना करके कामना करता हुआ (अस्य अन्तः वव्रे) इसको अपने भीतर वरण करे । (पित्रोः उपस्थे) द्यावापृथिवी-रूप माता-पिताके पास (सचस्यमानः जामि ब्रुवाणः) प्राप्त होकर स्तुति करता हुआ (आयुधानि वेति) त्रितने विपत्तियोंसे रक्षण करनेके लिये युद्धके साधनोंको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

[५७] (स आप्त्यः इन्द्रेषितः) उस आप्त्यके पुत्र त्रितने इन्द्रसे प्रेरित होकर और (पित्र्याणि आयुधानि विद्वान्) अपने पिताके युद्धास्त्रोंका ज्ञानी होनेसे (अभ्ययुद्धत्) बहुत युद्ध किया । (सप्तरश्मिं त्रिशीर्षाणं जघन्वान्) सात रश्मियोंवाले त्रिशिराका उसने वध किया; (त्रितः त्वाष्ट्रस्य चित् गाः निः ससृजे) त्रितने त्वष्टाके पुत्रकी गायोंका भी हरण कर लिया ॥ ८ ॥

[५८] (सत्पतिः इन्द्रः) सज्जनोंका रक्षण कर्ता स्वामी इन्द्रने (भूरि ओजः उदिनक्षन्तं मन्यमानम्) अत्यंत बल प्राप्त करनेवाले और अभिमानी त्वष्टाके पुत्रको (अवाभिनत्) विदीर्ण किया । उन्होंने (गोनाम् आचक्रणः) गायोंको बुलाते हुए (त्वाष्ट्रस्य विश्वरूपस्य) त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके (त्रीणि शीर्षाणि) तीन सिरोंको (परा वर्क) काट डाला ॥ ९ ॥

[९]

[५९] हे (आपः) जल ! (मयः भुवः हि आस्थ) तुम सुखको उत्पन्न करनेवाले आधार हो । (ताः नः ऊर्जे दधातन) वे हमें उत्तम बल देनेके लिये अन्न-संचय करें; (महे रणाय चक्षसे) पवित्र और रमणीय आत्म-ज्ञानके लिये हमें सुरक्षित रखें ॥ १ ॥

[६०] हे जल ! (उशतीः इव मातरः) जैसे माताएं बच्चोंको दूध देती हैं, वैसे ही (वः यः शिवतमः रसः) आपका जो कल्याणकारी रस- ज्ञान और बल- है (तस्य इह नः भाजयते) इसका हमें यहां सेवन कराइये ॥ २ ॥

[६१] हे (आपः) शान्तिप्रद जल ! (वः यस्य क्षयाय जिन्वथ) आप जिस रोगोंके विनाशके लिये हमें प्रसन्न करते हो, (तस्मै अरं गमाम) उनके विनाशकी इच्छासे हम तुम्हारा स्वीकार करते हैं; (नः च आ जनयथ) हमारी वंशवृद्धि करो ॥ ३ ॥

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ । शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः ४
ईशा॑ना॒ वार्या॑णां॒ क्षय॑न्तीश्चर्षणी॒नाम् । अ॒पो या॑चामि भेष॒जम् ५
अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा । अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वश॑म्भुवम् ६
आपः॑ पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३ मम॑ । ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ७
इ॒दमा॑पः॒ प्र व॑हत॒ यत् किं च॑ दुरि॒तं मयि॑ ।
यद्वा॒हम॑भिदु॒द्रोह॒ यद्वा॑ शे॒प उ॒तानृ॑तम् ८
आपो॑ अ॒द्यान्व॑चारिषं॒ रसे॑न॒ सम॑गस्महि ।
पय॑स्वानग्न॒ आ ग॑हि॒ तं मा॒ सं सृ॑ज॒ वर्च॑सा ९ [५] (६७)

(१०)

१४ नवमीवर्ज्यानामयुजां षष्ठ्याश्च वैवस्वती यमी ऋषिका । यमः । षष्ठीवर्ज्यानां युजां नवम्याश्च वैवस्वतो यमः ऋषिः । यमी । त्रिष्टुप्, १३ विराट्स्थाना ।

ओ चि॒त् सखा॑यं स॒ख्या व॑वृत्यां ति॒रः पु॒रू चि॑दर्ण॒वं ज॑ग॒न्वान् ।
पि॒तुर्नपा॑त॒मा द॑धीत वे॒धा अधि॒ क्षमि॑ प्रत॒रं दीध्या॑नः १

[६२] (देवीः आपः) दिव्य ज्ञानप्रकाशमय जल (नः शं भवतु) हमें शान्ति-सुखदायक हों, वे (अभीष्टये) अभीष्ट प्राप्तिके लिये हों । (पीतये भवन्तु) हमें आरोग्यदायक उदक पीनेके लिये मिले । वे (नः शं योः) हमें रोग और अवर्षण दूर करनेके लिये (अभि स्रवन्तु) हमारे ऊपर क्षरित हों ॥ ४ ॥

[६३] (अपः वार्याणां ईशाना) जल अभिलषित वस्तुओंके स्वामी हैं; वेही रोग निवारण, आरोग्य करनेमें समर्थ हैं, वेही (चर्षणीनां क्षयन्ती) प्राणीमात्रको बसानेवाले हैं । (भेषजम् याचामि) मैं उनसे औषधिकी प्रार्थना करता हूं ॥ ५ ॥

[६४] (अप्सु अन्तर्विश्वानि भेषजा) जलमें सब औषधियां और (विश्वशंभुवं अग्निं च) सब जगत्को सुख देनेवाला अग्नि भी है- यह (सोमः मे अब्रवीत्) सोमने मुझसे कहा ॥ ६ ॥

[६५] हे (आपः) जलो ! (मम तन्वे) मेरे शरीरके लिये (वरूथं भेषजं पृणीत) संरक्षक औषधि देओ, (ज्योक् च सूर्यं दृशे) जिससे निरोग होकर में बहुत कालतक सूर्यको देखता रहूं ॥ ७ ॥

[६६] (मयि यत् किं च दुरितं) मुझमें जो दोष हो (यत् वा अहं अभिदुद्रोह) अथवा जो मैंने द्रोह किया हो, (यत् वा शेपे) जो मैंने शाप दिया हो (उत अनृतं) जो असत्य भाषण किया हो (इदं आपः प्रवहत) यह सब दोष ये जल मेरे शरीरसे बाहर कर ले जावें और मैं शुद्ध बन जाऊं ॥ ८ ॥

[६७] (अद्य आपः अनु अचारिषं) आज जलमें मैं प्रविष्ट हुआ हूं (रसेन सं अगस्महि) मैं इस जलके रसके साथ संमिलित हुआ हूं; हे (अग्ने) अग्नि ! (पयस्वान् आगहि) तू जलमें स्थित है, मेरे पास आ (तं मा वर्चसा संसृज) और उस मुझे तेजसे युक्त कर ॥ ९ ॥

[१०]

[६८] [यमी यमसे कहती है—] (तिरः पुरू चित् अर्णवं जगन्वान्) गुप्त-निर्जन और प्रशस्त समुद्रके प्रदेशमें आकर मैं (सखी आ सख्या सखायं) मित्र होकर या सख्य भावके लिये मित्र रूपमें तुमको (ओ ववृत्यां

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् २
उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ३
न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ४
गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ५ [६] (७२)
को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ६

चित्) सादर अभिमुख करना चाहती हूं। (वेधाः) प्रजापति- विधाताने समझा कि (पितुः नपातम्) पिताके नातीको (प्रतरं दीध्यानः) नौकासमान गुणवान् श्रेष्ठ पुत्रके निर्माणके लिये (क्षमि) पुत्रोत्पादन समर्थ मुझमें (अधि आ दधीत) तेरा गर्भ स्थापित होवे ॥ १ ॥

[६७] [यम कहता है—] (ते सखा ते एतत् सख्यं) तुम्हारा मित्र-साथी यम (ते एतत् सख्यं) तुम्हारे साथ इस प्रकारके सम्पर्कको (न वष्टि) इच्छा नहीं करता; (यत्) क्यों कि (सलक्ष्मा) तुम सहोदरा भगिनी हो, (विषुरूपा भवाति) विषम लक्षणवाली अगन्तव्या हो। यह निर्जन प्रदेश नहीं है; (उर्विया) इस भूमिमें (असुरस्य महः वीराः पुत्रासः) असुरोंके महान् बलवान् और वीर पुत्र हैं, जो (दिवः धर्तारः) द्यावादि लोकोंको धारण करनेवाले हैं, वे (परि ख्यन्) सर्वत्र देखते हैं ॥ २ ॥

[७०] [यमी कहती है—] (एकस्य मर्तस्य चित् त्यजसं) यद्यपि कोई मनुष्यके लिये ऐसा सम्बन्ध त्याज्य है, (ते अमृतासः) तो भी अमर देवता लोग (एतत् आ उशन्ति घ) इच्छापूर्वक ऐसा संसर्ग अवश्य चाहते हैं। (ते मनः अस्मे निधायि) मेरी जैसी इच्छा होती है, वैसीही तुम भी करो; तूही (जन्युः पतिः तन्वम् आ विविश्याः) पुत्र जन्म दाता पतिरूपमें मेरे देहमें गर्भ रूपसे प्रविष्ट हो ॥ ३ ॥

[७१] [यम कहता है—] (यत् कत् ह पुरा न चकृम) पहले हमने ऐसा कर्म नहीं किया। (ऋता वदन्तः नूनम् अनृतं रपेम) हम सत्यवादी हैं, अवश्यही हमने कभी असत्य वचन नहीं किया है। (गन्धर्वः अप्सु) अन्तरिक्षमें स्थित गन्धर्व या जलके धारक आदित्य और (अप्या च योषा) हमारा पोषण करनेवाली योषा (सूर्यकी स्त्री सरण्यू) (नः सा नाभिः) हमारे माता-पिता हैं; (नौ तत् परमं जामि) वही हमारा श्रेष्ठ बन्धुभाव है; इसलिये ऐसा सम्बन्ध उचित नहीं ॥ ४ ॥

[७२] [यमी कहती है —] (सविता विश्वरूपः) सर्व प्रेरक और सर्व व्यापक (जनिता त्वष्टा देवः) उत्पन्नकर्ता त्वष्टा देवने (गर्भे नु नौ दम्पती कः) हमें गर्भावस्थामेंही पति-पत्नी बना दिया है। (अस्य व्रतानि नकिः प्र मिनन्ति) उस प्रजापतिकी इच्छाको कोई नाश नहीं कर सकता; (नौ अस्य) हमारे इस सम्बन्धको (पृथिवी उत द्यौः वेद) पृथिवी और द्युलोक भी जानते हैं ॥ ५ ॥

[७३] (अस्य प्रथमस्य अह्नः कः वेद) इस प्रथम दिनकी (सम्बन्ध की) बात कौन जानता है ? (ईं कः ददर्श) इस गर्भ धारणको कौन देखता है ? (इह कः प्रवोचत्) इस सम्बन्धको कौन बतला सकता है ? (मित्रस्य वरुणस्य बृहत् धाम) मित्र और वरुणके इस विस्तृत जगत्में (आहनः नॄन् वीच्य) अधःपातकी कल्पनासे भरा हुआ तू (कत् उ ब्रवः) यह क्या कहता है ? ॥ ६ ॥

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन् त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ७
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ८
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ९
आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहु मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् १० [७]

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ११

---

[७४] (समाने योनौ सहशेय्याय) एकही स्थानमें सहशयन करनेके लिये (यमस्य कामः) यम विषयक काम–अभिलाषा (मा यम्यं आ अगन्) मुझ यमीको प्राप्त हुआ है। (पत्ये जाया इव) पतिके पास पत्नी जैसे अपनी देहका प्रकाशन करती है, वैसेही तुम्हारे पास (तन्वं रिरिच्यां) अपने शरीरको प्रदान कर देती हूं। हम (रथ्या इव चक्रा) रथके दोनों चक्रोंके समान (वि वृहेव चित्) एक कार्यमें प्रवृत्त हों ॥ ७ ॥

[७५] [यम कहता है—] (इह ये देवानां स्पशः चरन्ति) इस लोकमें जो देवोंके गुप्तचर हैं, वे दिनरात संचार करते हैं; (एते न तिष्ठन्ति न निमिषन्ति) वे कहीं भी खडे नहीं रहते, उनकी आंखें कभी बन्द नहीं होती। हे (आहनः ; आक्षेपकारिणि– दुःखदायिनी ! तुम (मत् अन्येन तूयं याहि) मेरे सिवाय अन्य पुरुषके साथ शीघ्र जा और (रथ्या इव चक्रा वि वृह) रथके चक्रोंके समान उसके साथ सम्बन्ध करो ॥ ८ ॥

[७६] [यमी कहती है —] (रात्रीभिः अहभिः अस्म आ दशस्येत्) रात्री और दिन हमारा इच्छित हमको देवे; (सूर्यस्य चक्षुः) सूर्यका तेज (मुहुः उन्मिमीयात्) फिर यमके लिये उदित हो। (दिवा पृथिव्याः मिथुना) द्यावा–पृथिवीके समान हमारा जोडा (सबन्धू) बांधवभूत है, इसलिये (यमस्य यमीः) यमकी यमी (बिभृयात्) पत्नी होवे; (अजामि) यही निर्दोष है ॥ ९ ॥

[७७] [यम कहता है–] (ता उत्तरा युगानि घा आगच्छान्) वे श्रेष्ठ युग पर्व भविष्यमें आ जायेंगे (यत्र) जिसमें (जामयः) भगिनियां (अजामि कृणवन्) बन्धुत्वके विहीन भ्राताको पति बनावेगी। इसलिये हे (सुभगे) सुन्दरी ! (मत् अन्यं पतिं इच्छस्व) मुझसे दूसरेको पति बनानेकी इच्छा कर; तू (वृषभाय बाहुं उप बर्बृहि) वीर्य सेवन करनेमें समर्थके बाहुका आश्रय ले ॥ १० ॥

[७८] [यमी कहती है–] (किं भ्राता असत्) वह कैसा भ्राता है, (यत् अनाथं भवाति) जिसके रहते भगिनी अनाथा हो जाय ? (किं उ स्वसा) वह भगिनी ही क्या है, (यत् निर्ऋतिः निगच्छात्) जिसके रहते भ्राताका दुःख दूर न करते चली जाऊं ? (काममूता) मैं कामसे पीडित होकर (एतत् बहु रपामि) इस प्रकार बहुत कुछ बोल रही हूं; (मे तन्वा) मेरे देहसे (तन्वं सं पिपृग्धि) अपने देहको संलग्न कर ॥ ११ ॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् १२

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् १३

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाऽधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् १४ [८] (८१)

(११)

९ आङ्गिर्हविर्धानः । अग्निः । जगती, ७-९ त्रिष्टुप् ।

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् १

रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति २

[७९] [यम कहता है—] (वा उ ते तन्वा तन्वं न सं पपृच्यां) जब यह सत्य है, तो तेरी देहसे में अपने देहको मिलानेकी इच्छा नहीं करता हूं; क्योंकि (यः स्वसारं निगच्छात्) जो भ्राता भगिनीका संभोग करता है, उसे (पापं आहुः) लोग पापी कहते हैं; (अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व) तू मुझे छोडकर अन्य पुरुषके साथ आमोद-प्रमोद कर; हे (सुभगे) सुंदरी ! (ते भ्राता एतत् न वष्टि) तुम्हारा भाई तुम्हारे साथ इस सम्बन्धकी इच्छा नहीं करता ॥ १२ ॥

[८०] [यमी कहती है—] हे (यम) यम ! (बत बतः असि) अरे, तू बडा दुर्बल है; (ते मनः हृदयं च नैव आविदाम) तेरे मन और हृदयको में नहीं जान सकी । (किल युक्तं त्वा अन्या कक्षा इव) क्या सुयोग्य तुझको कोई अन्य स्त्री, जैसे रस्सी घोडेको बांधती है, और (वृक्षम् लिबुजा इव) वृक्षको लता परिवेष्टित करती है; (परि ष्वजाते) आलिंगित करती है ? ॥ १३ ॥

[८१] [यम कहता है -] हे (यमि) यमी ! (त्वं अन्यं ऊ षु वृक्षम् लिबुजा इव) तुम भी अन्य पुरुषको वृक्षकी लताके समान आलिंगन करो; और (अन्यः उ त्वां परि ष्वजाते) अन्य पुरुष तुम्हें आलिंगित करे । (तस्य वा त्वं मनः इच्छ) उसीका मन तुम हरण करो, (स वा तव) वह भी तुम्हारे मनका हरण करे; (अध सुभद्रां संविदं आ कृणुष्व) और तुम उसीके साथ अपने कल्याणप्रद सहवासका सुख भोगो ॥ १४ ॥

[११]

[८२] (वृषा यह्वः अदाभ्यः) वर्षा करनेवाला, महान् और अदम्य अग्निने (दिवः वृष्णे दोहसा) आकाशसे वर्षणशील मेघके दोहनसे (पयांसि दुदुहे) यज्ञ करनेवाले यजमानके लिये जलोंकी वर्षा की; (स वरुणः धिया यथा विश्वं वेद) जैसे वह वरुण बुद्धिसे सब जगत्को जानता है, वैसेही (स यज्ञियः) वह अग्नि भी जानता है; (यज्ञियां ऋतून् यजतु) यज्ञीय अग्नि यज्ञ योग्य ऋतुओंका पूजन करे ॥ १ ॥

[८३] (अप्या गन्धर्वीः योषणा रपत्) अग्निके गुणोंको कहनेवाली जलसे प्राप्य-संस्कृत-गन्धर्वकी स्त्रीने स्तुति की; (नदस्य नादे मे मनः परि पातु) ध्यानावस्थित स्थितिमें स्तुति करनेवाला मेरा मन मेरी रक्षा करे ! (अदितिः नः इष्टस्य मध्ये नि धातु) अखण्डनीय अग्नि हमें यज्ञ-यागके बीच स्थापित करे; और (नः ज्येष्ठः प्रथमः भ्राता वि वोचति) हमारे कुलके मुख्य सबसे बडे भ्राता यह स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ३ (८४)

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ४

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ५ [९]

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ६

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ७

---

[८४] (यद् उशतां उशन्तं क्रतुं अग्निं) जब यज्ञ-होम करनेकी इच्छा वाले और यज्ञ कार्य पूर्ण करने वाले अग्निको (विथदाय होतारं जीजनन्) स्तुति करके यज्ञके लिये उत्पन्न किया गया, उस समय (सो चित् नु क्षुमती यशस्वती स्वर्वती भद्रा उषा) वह कामनावती, उत्तम शब्दवाली, कीर्तिवाली, प्रख्यात-प्रसिद्ध उषा (मनवे उवास) मनुष्यके लिये आदित्यको लेकर उदित हो गई ॥ ३ ॥

[८५] (अध अध्वरे इषितः श्येनः) अनन्तर अग्निसे प्रेरित होकर यज्ञमें भेजा हुआ श्येनपक्षी (विभ्वं विचक्षणं त्यं द्रप्सं विराभरत्) महान्, आकर्षक और परिपूर्ण सोमको ले आया; (यदि आर्याः विशः दस्मं होतारं अग्निं वृणते) जिस समय श्रेष्ठ लोग सामने जाने योग्य, आकर्षक और देवोंको बुलानेवाले अग्निकी प्रार्थना करते हैं, (अध धीः अजायत) उस समय यज्ञकर्म उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

[८६] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (पुष्यते यवसा इव) पशुओंके लिये जैसे घास उत्तम रुचिकर होते हैं, वैसेही तुम (सदा रण्वः असि) सदा रमणीय हो; तुम (स्वध्वरः मनुषः होत्राभिः) मनुष्योंको उत्तम हवन-यज्ञसे लाभदायक होवो । (शशमानः विप्रस्य उक्थं वाजं ससवान्) स्तोताका स्तोत्र सुनकर और हविर्द्रव्य ग्रहण करता हुआ तू (भूरिभिः उपयासि) अनेक देवोंके साथ जाते हो ॥ ५ ॥

[८७] हे अग्नि देव ! (जारः आ भगम्) जैसे रात्रिको जीर्ण करनेवाला सूर्य अपना तेज सब ओर फैलाता है, वैसे तू भी (पितरा उद् ईरय) अपना तेज मातृ-पितृरूप पृथिवीमें प्रसृत कर; (हर्यतः इयक्षति) यज्ञाभिलाषी यजमान यज्ञ करनेकी इच्छा करता है; (हृत्ता इष्यति) वह हृदयसे उनको चाहता है। (अग्निः विवक्ति) अग्नि स्तुतिको वर्धित करता है। (मखः स्वपस्यते तविष्यते) ब्रह्मा यज्ञकर्म उत्तम रीतिसे सम्पन्न करनेके लिये उत्सुक हैं; वह स्तोत्रको बढाते हैं; और (असुरः मती वेपते) वह मन ही मन कर्ममें कुछ न्यूनता तो निर्माण नहीं होगी, इस आशंकासे डरते हैं ॥ ६ ॥

[८८] हे (अग्ने) बलवान् अग्नि ! (यः मर्तः ते सुमतिं अक्षत्) जो मनुष्य तेरी कृपाको प्राप्त कर लेता है, हे (सहसः सूनो) तेजके प्रेरक ! (सः अति प्रशृण्वे) वह अत्यंत प्रसिद्ध हो जाता है। (इषं दधानः) अन्नकी समृद्धिसे सम्पन्न, (अश्वैः वहमानः) अश्वोंसे युक्त, (द्युमान् अमवान्) तेजस्वी और बलवान् (स द्यून् भूषति) वह मनुष्य अनेक दिनोंतक सुखी रहता है ॥ ७ ॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ८
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ९ [१०] (९०)

(११)

९ आङ्गिर्हविर्धानः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेना-ऽभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन् त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् १
देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् २
स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गो-रतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गु-र्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ३

---

[८९] हे (यजत्र अग्ने) पूज्य यजनीय अग्नि ! (यत्) जिस समय हम (यजता देवेषु) यजनीय देवोंके लिये (एषा देवी समितिः भवाति) की हुई स्तुतियां उनको प्रिय होगी और (यत्) जब हे (स्वधावः) स्वधा-युक्त अग्नि ! तू (रत्ना विभजासि) नानाप्रकारके रत्न यज्ञकर्ताओंको विभक्त करके देगा, तब (अत्र) इस समय (नः वसुमन्तं भागं वीतात्) हमारा धनका भाग हमें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

[९०] हे (अग्ने) अग्नि ! (सधस्थे सदने नः श्रुधी) सब देवताओंसे युक्त गृहोंमें रहकर तू हमारे स्तोत्रोंका श्रवण कर; (अमृतस्य द्रवित्नुं रथं आ युक्ष्व) तू अमृत बरसानेवाले रथको योजित कर । (देवपुत्रे रोदसी नः आ वह) देवोंके माता-पिता द्यावापृथिवीको हमारे पास ले आवो; (देवानाम् माकिः अप भूः) देवोंमेंसे कोई हमारे यज्ञमेंसे चले नहीं जावे इसलिये (इह स्याः) तू यहीं रह; देवोंके पाससे नहीं जाना ॥ ९ ॥

[११]

[९१] (प्रथमे सत्यवाचा द्यावा क्षामा) यज्ञके समय मुख्य और सत्यवादी द्यावा पृथिवी (ऋतेन अभिश्रावे भवतः) नियम बद्ध होकर पहले अग्निका आह्वान करें । (देवः होता) तेजस्वी अग्नि यज्ञके लिये (मर्तान् यजथाय कृण्वन्) मनुष्योंको प्रेरित करके और (स्वं असुं यन्) अपने तेजको धारण करके (प्रत्यङ् सीदत्) देवोंको बुलानेके लिये बैठे ॥ १ ॥

[९२] (देवः देवान् परिभूः ऋतेन चिकित्वान् प्रथमः नः हव्यं आ वह) दिव्य, देवोंमें सत्यसे मुख्य, ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ अग्नि हमें देवोंके पास जाते हुए उत्तम हविको ले आवे । अग्नि (धूमकेतुः समिधाः भाऋजीकः मन्द्रः होता नित्यः वाचा यजीयान्) धूम्रध्वज, समिधाके द्वारा उर्ध्व ज्वलन, अपनी कांतिसे उज्ज्वल, स्तुत्य, देवोंको बुलानेवाला नित्य और मुखसे हवन किया जाता है ॥ २ ॥

[९३] (यदि देवस्य गोः) जब अग्निदेवसे (स्वावृक् अमृतं) सुखद जल उत्पन्न होते हैं, (अतः उर्वीः जातासः धारयन्त) तब इससे उत्पन्न हुई ओषधियां द्यावापृथिवी धारण करते हैं; (तत् ते यजुः विश्वे देवाः अनु गुः) उस तुम्हारे जलदानको सारे देवता-स्तोते स्तुति-प्रशंसा करते हैं; (यद् एनी दिव्यं घृतं वाः दुहे) तुम्हारी प्रभा स्वर्गीय घृत-जल उत्पन्न करती है ॥ ३ ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ४
किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याऽति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ५ [११]
दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ६ (९६)
यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ७
यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान् त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ८

---

[९४] हे अग्नि ! (वां अपः वर्धाय) हमारे यज्ञरूप कर्मको वृद्धिगत करो; (घृतस्नू द्यावाभूमी) जलके वर्षानेवाले द्यावा-पृथिवी ! (अर्चामि) मैं तुम्हारी पूजा और स्तुति करता हूं; हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (मे शृणुत) मेरा स्तोत्र श्रवण करो । (यत् द्यावः अहा असुनीतिं अयन्) जिस समय स्तोता लोग सब काल-यज्ञके समय-स्तुति करते हैं, तब (अत्र पितरा मध्वा नः शिशीताम्) यहां माता-पितारूप द्यावापृथिवी वृष्टिजलका वर्षण करके हमें बहुत मददरूप होवे ॥ ४ ॥

[९५] (राजा नः किं स्वित् जगृहे) प्रदीप्त अग्नि राजा क्या हमारी स्तुति और हविका स्वीकार करे ? (अस्य व्रतं कत् अति चकृम) क्या इस अग्निके व्रतोंका उपयुक्त पालन हमने किया है ? (कः विवेद) यह कौन जानता है ? (मित्रः चित् जुहुराणः हि नः श्लोकः देवान् याताम्) सुहृद मित्रके बुलानेपर जैसे वह आता है, वैसे अग्नि भी आ सकता है; हमारी यह स्तुति देवोंके पास जाय; (वाजः अपि अस्ति) और हमने समर्पण किये हुए हवि भी देवताओंके पास जाय ॥ ५ ॥

[९६] (यत् अत्र अमृतस्य नाम सलक्ष्मा विषुरूपा दुर्मन्तु भवाति) जो जल यहां पृथिवीपर अमृत स्वरूप समान लक्षणोंसे युक्त और नाना रूपका गहन होता है । (यः यमस्य सुमन्तु मनवते) जो यमके अपराधको क्षमा करता है, हे (ऋष्व अग्ने) महान्.तेजस्वी अग्नि ! तू (अ प्रयुच्छन् तं पाहि) क्षमाशील होकर उसकी रक्षा कर ॥ ६ ॥

[९७] (यस्मिन् विदथे देवाः मादयन्ते) अग्निके यज्ञमें उपस्थित रहनेपर देवता लोग प्रसन्न होते हैं, और (विवस्वन्तः सदने) यजमानके तेजस्वी वेदीरूप स्थानमें (धारयन्ते) उसे स्थापित करते हैं। उन्होंने (सूर्ये ज्योतिः अदधुः) सूर्यमें तेजको (दिनोंको) स्थापित किया; और (मासि अक्तून्) चन्द्रमामें रात्रिको स्थापित किया; इसलिये (अजस्रा द्योतनिं परि चरतः) निरन्तर चन्द्र सूर्य तेजस्वी होते हैं ॥ ७ ॥

[९८] (यस्मिन् मन्मनि देवाः संचरन्ति) जिस ज्ञानमय अग्निके उपस्थित रहनेपर देवताएं अपना कार्य सम्पन्न करते हैं; (वयं अस्य अपीच्ये न विद्म) हम इसके अप्रकट-गुप्त रूपको नहीं समझते हैं; (अत्र मित्रः अदितिः सविता देवः वरुणाय नः अनागान् वोचत्) इस यज्ञमें मित्र, अदिति, सूर्य पापनाशक अग्निके पास हमें निष्पाप कहें ॥ ८ ॥

श्रुधी नों अग्ने सदने सधस्थें युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नों वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामपं भूरिह स्याः ९ [१२] (९९

(१३)

५ आङ्गिर्हविर्धानः, विवस्वानादित्यो वा । हविर्धाने । त्रिष्टुप्, ५ जगती ।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि र्वि श्लोकं एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः १
यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः २
पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एता मृतस्य नाभावधि सं पुनामि ३
देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ४

[९९] हे (अग्ने) अग्नि ! (सधस्थे सदने नः श्रुधी) सब देवताओंसे युक्त गृहोंमें रहकर तू हमारे स्तोत्रोंका श्रवण कर; (अमृतस्य द्रवितुं रथं आ युक्ष्व) तू अमृत बरसानेवाले रथको योजित कर। (देवपुत्रे रोदसी नः आ वह) देवोंके माता-पिता द्यावा पृथिवीको हमारे पास ले आवो; (देवानाम् माकिः अप भूः) देवोंमेंसे कोई हमारे यज्ञमेंसे चले नहीं जावे इसलिये (इहः स्याः) तू यहीं रह; देवोंके पाससे नहीं जाना ॥ ९ ॥

[१३]

[१००] हे शकट ! (वां पूर्व्यं नमोभिः ब्रह्म युजे) प्राचीन कालमें उत्पन्न मन्त्रका उच्चारण करके अन्नयुक्त तुम्हें मैं ले जाता हूं; (सूरेः श्लोकः पथ्या इव वि एतु) स्तोताकी आहुतिके समान यह मेरा स्तोत्र देवोंके पास पहुंचे । (विश्वे अमृतस्य पुत्राः) अमर प्रजापतिके सब पुत्र (ये दिव्यानि धामानि आ तस्थुः) जो देव दिव्य धाममें रहते हैं, हमारी (शृण्वन्तु) स्तुतियां सुनें ॥ १ ॥

[१०१] (यद् यमे इव) जब तुम जुडवेंके समान (यतमाने एतं) जोरसे यज्ञगृहमें जाते हैं, तब (वां देवयन्तः मनुषाः प्र भरन्) देव भक्त मनुष्य तुम्हारे ऊपर होम द्रव्य लावते हैं; (स्वं उ लोकं विदाने) तुम अपना स्थान जानकर (आ सीदतम्) खडा रहते हो (नः इन्दवे स्वासस्थे भवतम्) उस समय तुम सोमका सुन्दर स्थान बनते हो ॥ २ ॥

[१०२] (रूपः पञ्च पदानि अन्वरोहं) यज्ञके जो पांच (धाना, सोम, पशु, पुरोडाश और घृत) उपकरण-स्थान हैं, उनको मैं यथाक्रम चढूं; (व्रतेन चतुष्पदीम् अन्वेमि) यथा नियम चार त्रिष्टुबादि छन्दोंका प्रयोग करता हूं । (एतां अक्षरेण प्रति मिमे) ओंकारका उच्चारण करके कार्यको सम्पन्न करता हूं; (ऋतस्य नाभौ अधि सं पुनामि) यज्ञकी नाभिरूप वेदीपर मैं सोमको पवित्र करता हूं ॥ ३ ॥

[१०३] (देवेभ्यः मृत्युं अवृणीत कम्) देवोंके लिये मृत्युको दूर हटावो, (प्रजायै अमृतं न अवृणीत कम्) प्रजाके लिये अमर जीवनको नष्ट न होने दो । (बृहस्पतिं यज्ञं ऋषिं अकृण्वत) यज्ञकर्ता लोग मन्त्रोंसे पवित्र यज्ञका अनुष्ठान करते हैं; (यमः प्रियां तन्वं प्रारिरेचीत्) जिससे यम हमारे शरीरको मृत्युके पास नहीं भेजता है ॥ ४ ॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ५ [१३] (१०४)

(१४)

१६ वैवस्वतो यमः । यमः, ६ अङ्गिरःपित्रथर्वभृगुसोमाः, ७-९ लिङ्गोक्तदेवताः, पितरो वा, १०-१२ श्वानौ । त्रिष्टुप्, १३, १४, १६, अनुष्टुप्, १५ बृहती ।

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य १
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयु रेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः २
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभि र्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान् त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ३ (१०७)
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदा ऽङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वह न्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ४

[१०४] (पित्रे पुत्रासः मरुत्वते शिशवे सप्त क्षरन्ति) स्तुत्य, पितृस्वरूप और प्रशंसनीय सुंदर सोमसे सात छंद (स्तुति रूप) निकलते हैं; (उतं ऋतं अपि अवीवृतन्) उस समय स्तोता लोग स्तुतियोंका गान करते हैं; (अस्य उभयस्य उभे इत् राजते) ये दोनों शकट दोनों लोकोंमें प्रकाशित होते हैं; (उभे यतेते) दोनों प्रयत्न करते हैं; (उभयस्य पुष्यतः) और देवों तथा मनुष्योंका पोषण करते हैं ॥ ५ ॥

[१४]

[१०५] (यमं राजानं हविषा दुवस्य) हे यजमान, तुम पितरोंके राजा यमकी हवि आदिके द्वारा उपासना कर। (प्रवतः महीः परेयिवांसं) यम उत्तम पुण्यमय कर्म करनेवालोंको सुखद स्थानमें ले जानेवाला, और (अनु बहुभ्यः पन्थां अनुपस्पशानम्) बहुतोंके हितार्थ योग्य मार्गके दृष्टा है, (वैवस्वतं जनानां सगमनम्) विवस्वानके पुत्र यमके पासही मनुष्योंको जाना पडता है ॥ १ ॥

[१०६] (प्रथमः यमः नः गातुं विवेद) सबमें मुख्य यम पापपुण्यको जानता है; (एषा गव्यूतिः अपभर्तवा न उ) उसका वह मार्ग- नियम कोई बदल नहीं सकता- मार्गका विनाश नहीं कर सकता; (पूर्वे यत्र नः पितरः परेयुः) पहले जिस मार्गसे हमारे पूर्वज गये हैं, (एना स्वाः पथ्याः जज्ञानाः अनु आ) उसी मार्गसे अपने-अपने कर्मानुसार हम सब जायेंगे ॥ २ ॥

[१०७] (मातली कव्यैः) इन्द्र कव्यभुग् पितरोंकी सहायतासे (यमः अङ्गिरोभिः) यम अंगिरसादि पितरोंकी सहायतासे और (बृहस्पतिः ऋक्वभिः) बृहस्पति ऋक्ववादि पितरोंकी सहायतासे (वावृधानः) उत्कर्ष पाते हैं। (देवाः यान् च वावृधुः) देव जिनको उन्नत करते हैं और (ये देवान्) जो देवोंको बढाते हैं, उनमेंसे (अन्ये) कोई (स्वाहा) स्वाहाके द्वारा और (अन्ये स्वधया) कोई स्वधासे (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥

[१०८] हे (यम) यम ! (अङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः इमं प्रस्तरं आ सीद) अंगिरादि पितरोंके साथ तू इस श्रेष्ठ यज्ञमें आकर बैठो। (कविशस्ताः मन्त्राः त्वा आ वहन्तु) विद्वान् लोगोंके मन्त्र तुझे बुलावे; हे (राजन्) राजा यम ! (एना हविषा मादयस्व) इन हविसे संतुष्ट होकर तू हमें प्रसन्न कर ॥ ४ ॥

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभि—र्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते ऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ५ [१४]

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियाना—मपि भद्रे सौमनसे स्याम ६

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभि—र्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ७

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने—ष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ८

अपेत वीत वि च सर्पतातो ऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ९

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन् त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति १० [१५]

---

[१०९] हे (यम) यम ! (वैरूपैः यज्ञियेभिः अङ्गिरोभिः आ गहि) विविध रूप धारण करनेवाले पूजाके योग्य अंगिरोंके साथ तू आ और (इह मादयस्व) इस यज्ञमें सन्मान करनेवाले यजमानको संतुष्ट कर । (यः ते पिता विवस्वन्तं हुवे) जो तुम्हारे पिता विवस्वान् हैं उनको में यज्ञमें बुलाता हूं; (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि निषद्य आ) इस यज्ञमें वह कुशासनपर बैठकर हमें संतुष्ट करें ॥ ५ ॥

[११०] (अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः नः पितरः नवग्वाः) अङ्गिरा, अथर्वा और भृग्वादि हमारे पितर अभी ही आये हैं, और (सोम्यासः) वे सोमके अधिकारी हैं। (तेषां यज्ञियानां सुमतौ वयं) उन यज्ञार्ह पितरोंका अनुग्रह हमें प्राप्त होवे; और (अपि भद्रे सौमनसे स्याम) हम उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर कल्याणमार्गी बनें ॥ ६ ॥

[१११] हे पिता ! (यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः) जहां हमारे पूर्व पितर जीवन पार कर गये हैं, (पूर्वेभिः पथिभिः प्रेहि प्रेहि) उन प्राचीन मार्गोंसे तुम भी जाओ । (स्वधया मदन्ता) स्वधाकार–अमृतान्नसे प्रसन्न–तृप्त हुए (राजाना यमं वरुणं च देवं) राजा यम और वरुण देव (उभा पश्यासि) इन दोनोंको देख ॥ ७ ॥

[११२] हे पिता ! (परमे व्योमन् पितृभिः सं गच्छस्व) श्रेष्ठ स्वर्गमें अपने पितरोंके साथ मिलो; (यमेन इष्टापूर्तेन सं) वैसेही अपने यज्ञ, दान आदि पुण्य कर्मके फलसे भी मिलो; (अवद्यं हित्वाय पुनः अस्तम् एहि) पापाचरणको छोडकर फिर गृहमें प्रवेश करो; (सुवर्चाः तन्वा सं गच्छस्व) और तेजस्वी शरीरको प्राप्त कर ॥ ८ ॥

[११३] हे दुष्ट पिशाचों ! (अतः अप इत) यहांसे चले जाओ; (वि इत) हट जाओ; (वि सर्पत च) दूर चले जाओ; (पितरः अस्मै एवं लोकं आ अक्रन्) पितरोंने इस मृत मनुष्यके लिये यह स्थान (दहन स्थान) आक्रमित किया है; (अहोभिः अक्तुभिः अद्भिः व्यक्तं) यह स्थान दिन–रात और जलसे युक्त है; (यमः अस्मै अवसानं ददाति) यमने इस स्थानको मृत मनुष्यके लिये दिया है ॥ ९ ॥

[११४] हे मनुष्य ! (चतुरक्षौ शबलौ सारमेयौ श्वानौ) चार आखोंवाले और विचित्र वर्णवाले ये जो दो कुत्ते हैं, (साधुना पथा अति द्रव) इनके पाससे उत्तम मार्गसे तुम शीघ्र चले जाओ । (अथ ये) अनन्तर जो पितर (यमेन सधमादं मदन्ति) यमके साथ सदा आनन्दका अनुभव करते हैं; उन (सुविदत्रान् पितॄन् उपेही) ज्ञानवान् पितरोंको प्राप्त कर ॥ १० ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन् त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ११

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १२

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छ त्यग्निदूतो अरंकृतः १३

यमाय घृतवद्धवि र्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे १४

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः १५

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता १६ [१६] (१२०)

---

[११५] हे (यम) यम ! (ते रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ) तुम्हारे गृहके रक्षक, चार आखोंवाले, मार्गके रक्षक और लोगोंके द्वारा प्रसिद्ध (यौ श्वानौ) जो दो श्वान हैं, (ताभ्यां एनं परि देहि) उनसे इस मृत व्यक्तिकी रक्षा करो । हे (राजन्) राजा ! (अस्मै स्वस्ति च अनमीवं च धेहि) इसे कल्याणभागी और नीरोगी करो ॥ ११ ॥

[११६] (यमस्य दूतौ) यमके दूत, (अरूणसौ) लम्बी नाकोंवाले, (असुतृपा) प्राणिजीवी और (उदुम्बलौ) अत्यंत बलशाली (जनान् अनुचरतः) ऐसे दो श्वान मनुष्योंको लक्ष्य करके विचरण करते हैं; (तौ अस्मभ्यं) वे हमें (सूर्याय दृशये) सूर्यके दर्शनके लिये (इह अद्य) यहां आज (भद्रं असुं पुनः दाताम्) कल्याणकारक उचित प्राण दें ॥ १२ ॥

[११७] हे ऋत्विको ! (यमाय सोमं सुनुत) यमके लिये सोमको निचोडो, और (यमाय हविः जुहुत) यमके लिये हविका हवन करो । (अग्निदूतः अरंकृतः यज्ञः) जिसके अग्नि दूत है और जिसे अनेक द्रव्योंसे सुशोभित किया है, वह यज्ञ (यमं ह गच्छति) यमकी ओर जाता है ॥ १३ ॥

[११८] हे ऋत्विको ! (यमाय घृतवत् हविः जुहोत) यमके लिये घृतयुक्त हविका हवन करो और (प्रतिष्ठत च) यमकी स्तुति-उपासना करो । (देवेषु सः) देवोंके बीच यम (नः जीवसे दीर्घायुः प्र आ यमद्) हमारे दीर्घ जीवनके लिये दीर्घायुष्य प्रदान करे ॥ १४ ॥

[११९] हे ऋत्विजो ! (राज्ञे यमाय मधुमत्तमं हव्यं जुहोतन) राजा यमके लिये अत्यंत मधुर हवि अर्पण करो । (पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ऋषिभ्यः इदं नमः) पूर्वज और पूर्व मार्गदर्शक ऋषियोंके लिये यह नमस्कार है ॥ १५ ॥

[१२०] (त्रिकद्रुकेभिः षट् उर्वीः एकं इत् बृहत् पतति) यमराज त्रिकद्रुक नामक यज्ञमें (ज्योति, गौ और आयु) संरक्षणके लिये प्राप्त होवे; यम छः स्थानोंमें (द्युलोक, भूलोक, जल, औषधियां, ऋक् और सूनृत) रहता है; यह एक ही के संरक्षणके लिये प्राप्त होवे । (त्रिष्टुप्, गायत्री, छन्दांसि ता सर्वा यमे आहिता) त्रिष्टुप्, गायत्री और अन्य सब छंद- वे सब यममें स्थापित हैं ॥ १६ ॥

+

(१५)

१४ शङ्खो यामायनः । पितरः । त्रिष्टुप्, ११ जगती ।

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृकाः ऋतज्ञा-स्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु १
इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु २
आहं पितॄन् त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ३
बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वा-गिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेना-ऽथा नः शं योररपो दधात ४
उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्व-धि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ५ [१७]

---

[१५]

[१२१] (अवरे उत् उदीरताम्) जो पितर पृथिवीपर हैं वे उन्नत स्थानको प्राप्त करें; (परासः पितरः उत्) जो पितर स्वर्गमें- उच्च स्थानपर हैं, वे वहीं रहे; (मध्यमाः सोम्यासः) जो मध्यम स्थानका आश्रय करके रहे हैं, वे उच्च स्थानको-पदको प्राप्त करें । (ये ऋतज्ञा असुम् इयुः अवृका) जो सोमरस पिते हैं, और सत्य स्वरूप, केवल प्राणरूप और शत्रुरहित पितर हैं, (ते पितरः हवेषु नः अवन्तु) वे पितर यज्ञकालमें हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

[१२२] (ये पूर्वासः) जो पहले उत्पन्न होकर मृत हुए, और (ये उपरासः इयुः) जो अनन्तर पीछे उत्पन्न होकर मरे, (ये पार्थिवे रजस्य आ निषत्ता) जो पृथिवीपर राजस कार्य करके उत्तम पदोंपर विराजमान हैं और (ये वा नूनं सुवृजानासु विक्षु) जो निश्चयसे समृद्ध-भाग्यवान् बांधवोंमें हैं, (पितृभ्यः अद्य इदं नमः अस्तु) उन सब पितरोंको आज यह नमस्कार है ॥ २ ॥

[१२३] (अहं सुविदत्रान् पितॄन् अवित्सि) मैंने ज्ञानवान् पितरोंको पाया है, (विष्णोः नपातं च विक्रमणं च) मैंने यज्ञका फल और प्रवृत्ति भी पाया है । (ये बर्हिषदः सुतस्य पित्वः स्वधया भजन्त) जो पितर कुशासन-पर बैठकर उत्तम सोमरस हव्यके साथ ग्रहण करते हैं, ((ते इह आगमिष्ठाः) वे सब यहां आये हैं ॥ ३ ॥

[१२४] हे (बर्हिषदः पितरः) कुशासनपर बैठनेवाले पितरों ! आप (ऊती अर्वाक्) हमें संरक्षण दो। (इमा हव्या वः चकृम जुषध्वम्) तुम्हारे लिये इन हविर्द्रव्योंको अर्पण करते हैं, इनका आस्वाद लीजिए। (ते आगत) वे आप आइए। (अथ शन्तमेन अवसा) और मंगलप्रद, कल्याणमय प्रीतिसे (नः शंयोः दधात) हमें सुखकी प्राप्ति कराइये । (अरपः) अनन्तर दुःखरहित करो और पापसे दूर करो ॥ ४ ॥

[१२५] (बर्हिष्येषु प्रियेषु निधिषु सोम्यासः पितरः उपहूताः) कुशोंके उपर सब मनोहर, प्रिय, विपुल हविर्द्रव्य रखकर, इनका और सोमरसका उपभोग करनेके लिये पितरोंको सन्मानपूर्वक बुलाये हैं । (ते इह आगमन्तु) वे यहां आवे; (ते आधि श्रवन्तु ब्रुवन्तु) वे हमारी स्तुति प्रसन्न मनसे श्रवण करें; (ते अस्मान् अवन्तु) और वे हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्ये- मं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ६
आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ७
ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो ऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्यु-शन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ८
ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ९
ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः १० [१८]

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्य-था रयिं सर्ववीरं दधातन ११

---

[१२६] हे (पितरः) पितरों ! (विश्वे दक्षिणतः जानु आच्य) आप सब लोग दक्षिणकी ओर घुटने टेककर (निषद्य) बैठकर (इमं यज्ञं अभिगृणीत) हमारे इस यज्ञकी प्रशंसा करो। (यद् वः पुरुषता आगः कराम) वैसेही तुम्हारे प्रति हमसे मनुष्य होनेके कारण अपराध होना सम्भव है, (केन चित् नः मा हिंसिष्ट) किसी भी कारणसे तुम हमारे उपर क्रोध नहीं करना ॥ ६ ॥

[१२७] हे (पितरः) पितरों ! (अरुणीनां उपस्थे आसीनासः) श्रेष्ठ देवोंके पास बैठे हुए तुम लोग (दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त) हवि-दान देनेवाले मनुष्यके लिये धन दो। (तस्य पुत्रेभ्यः वस्वः प्रयच्छत) तुम उस यजमानके पुत्रको धन दो; (ते इह ऊर्जं दधात) वे तुम इस यज्ञमें बहुत धन प्रदान करो ॥ ७ ॥

[१२८] (ये नः सोम्यासः पूर्वे पितरः) जो हमारे सोम पीनेवाले प्राचीन पितर (वसिष्ठाः सोमपीथं अनु ऊहिरे) धनवान् थे, उन्होंने सोमपान यथानियम किया था; (तेभिः उशद्भिः संरराणः यमः) उन हमारे हविकी अभिलाषा करनेवाले पितरोंके साथ सुखपूर्वक रहता हुआ यम (प्रतिकामं उशन् हवींषु अत्तु) इन हविर्द्रव्योंका आनंदसे यथेच्छ भोजन करे ॥ ८ ॥

[१२९] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (ये होत्राविदः स्तोमतष्टासः) जो पितर अग्निहोत्रको जाननेवाले, ऋचाओंसे — स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं और (देवत्रा जेहमानाः तातृषुः) देवत्वकी प्राप्ति कर चुके हैं, उनको प्राप्त होकर, यदि वे धनादिकी इच्छा करते हैं, उन (अर्कैः सुविदत्रेभिः सत्यैः कव्यैः घर्मसद्भिः पितृभिः) अर्चनीय, ज्ञानी, सत्यवादी, बुद्धिमान् तेजस्वी यज्ञस्थ पितरोंके साथ (अर्वाङ् आ याहि) तू हमारे पास आ ॥ ९ ॥

[१३०] (ये सत्यासः हविरदः हविष्पा) जो सत्याचरणशील, हविका भक्षण करनेवाले और रसपान करनेवाले पितर हैं (इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः) वे इन्द्र और देवोंके साथ एक रथमेंही बैठे हैं। हे (अग्ने) अग्निदेव ! (देववन्दैः पूर्वैः परैः घर्मसद्भिः पितृभिः) उन सब देवोंकी उपासना करनेवाले, प्राचीन श्रेष्ठ यज्ञके अनुष्ठाता पितरोंके साथ (सहस्रं आ याहि) त्वरित होकर आ ॥ १० ॥

[१३१] हे (अग्निष्वात्ताः पितरः) अग्निदग्ध पितरो ! (इह आगच्छत) तुम यहां आओ और (सदःसदः सदत) सब अपने अपने आसनपर बैठो। हे (सुप्रणीतयः) पूज्य ! (प्रयतानि हवींषि आ अत्त) पात्रोंमें परसे हुए हविर्द्रव्योंका भक्षण करो; (अथ बर्हिषी सर्ववीरं रयिं दधातन) और पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त धन हमें दो ॥ ११ ॥

त्वम॑ग्न ईळि॒तो जा॑तवे॒दो ऽवा॑ड्ढ॒व्यानि॑ सुर॒भीणि॑ कृ॒त्वी ।
प्रादा॑: पि॒तृभ्य॑: स्व॒धया॒ ते अ॑क्ष॒न्नद्धि त्वं दे॑व॒ प्रय॑ता ह॒वींषि॑ १२
ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ उ॑ च॒ न प्र॑वि॒द्म ।
त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेद॒: स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञं सुकृ॑तं जुषस्व १३ (१३३)
ये अ॑ग्निद॒ग्धा ये अन॑ग्निदग्धा॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते ।
तेभि॑: स्व॒राळसु॑नीतिमे॒तां य॑थाव॒शं त॒न्वं॑ कल्पयस्व १४ [१९] (१३४)

(१६)

१४ दमनो यामायनः । अग्निः । त्रिष्टुप्, ११–१४ अनुष्टुप् ।

मैन॑मग्ने॒ वि द॑हो॒ माभि शो॑चो॒ मास्य॒ त्वचं॑ चिक्षिपो॒ मा शरी॑रम् ।
य॒दा शृ॒तं कृ॒णवो॑ जातवे॒दो ऽथे॑मेनं॒ प्र हि॑णुतात् पि॒तृभ्य॑: १
शृ॒तं य॒दा कर॑सि जातवे॒दो ऽथे॑मेनं॒ परि॑ दत्तात् पि॒तृभ्य॑: ।
य॒दा गच्छा॒त्यसु॑नीतिमे॒तामथा॑ दे॒वानां॑ वश॒नीर्भ॑वाति २

---

[१३२] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्निदेव ! (त्वं ईळितः हव्यानि सुरभीणि कृत्वी अवाट्) हमने तुम्हारी स्तुति की है; तुमने हमारी हविको मान्य करके, उत्तम गन्धयुक्त करके पितरोंको दिया है। (पितृभ्यः प्रादाः ते स्वधया अक्षन्) वे पितर स्वधाके साथ दिये गये हविका भक्षण करें; (त्वं देव) तू भी हे देव ! (प्रयता हवींषि अद्धि) प्रयत्नसे अर्पण किये हविका भक्षण कर ॥ १२ ॥

[१३३] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (ये च इह पितरः यान् च विद्म) यहां जो पितर आये हैं, जिनको हम जानते हैं; (ये च न इह यान् उ च न प्रविद्म) और जो यहां नहीं आये हैं, जिन्हें हम नहीं जानते हैं; (यति ते त्वं वेत्थ) उन सबको तुम जानते हो; तो (स्वधाभिः सुकृतं यज्ञं जुषस्व) स्वधायुक्त इस सुप्रतिष्ठित यज्ञका स्वीकार कर ॥ १३ ॥

[१३४] हे अग्ने ! (ये अग्निदग्धाः ये अनग्निदग्धाः) जो पितर अग्निसे जलाये गये हैं, और जो नहीं जलाये गये हैं, और (मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते) जो सब स्वर्गमें स्वधारूप अन्नसे तृप्त होकर आनन्दित रहते हैं; (तेभिः स्वराट् एताम् असुनीतिं तन्वं) उनके साथ तू मिलकर हमारे पितरोंके इस प्राणधार शरीरको (यथावशं कल्पयस्व) यथाशक्ति समर्थ बना ॥ १४ ॥

[१६]

[१३५] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (एनं मा वि दहः) इसको भस्म नहीं करना; (मा अभि शोचः) इसे क्लेश नहीं देना; (अस्य त्वचं मा चिक्षिपः मा शरीरं) इसके चर्म या शरीरको छिन्न भिन्न नहीं करना; हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्नि ! (यदा शृतं कृणवः) जिस समय तू इसे पूर्णतया जलाता है, (अन्य एनं पितृभ्यः प्र हिणुतात्) उसी समय इसे पितरोंके पास भेज देना ॥ १ ॥

[१३६] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (यदा एनं शृतं ईं करसि) जब तू इसको पूर्णतया जलाएगा (अथ एनं पितृभ्यः परि दत्तात्) तब इसको पितरोंको प्रदान कर । (यदा एतां असुनीतिं गच्छाति) जब यह शरीर मृत होता है, (अथ देवानां वशनीः भवाति) तब वह देवोंके वशमें रहता है ॥ २ ॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हित- मोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ३
अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेद- स्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ४
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ५ [२०]

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ६
अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाति ७
इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपान- स्तस्मिन् देवा अमृता मादयन्ते ८

---

[१३७] हे मृत मनुष्य ! (सूर्यं चक्षुः गच्छतु आत्मा वातम्) तेरा नेत्र सूर्यके पास जाय और प्राण वायुमें; (धर्मणा द्यां च गच्छ पृथिवीं च) और तू अपने पुण्य फलसे स्वर्ग वा पृथिवीपर जा; (वा अपः गच्छ) अथवा जलमें जा; (यदि तत्र ते हितं शरीरैः ओषधीषु प्रति तिष्ठ) यदि उनमें तेरा हित है तो तू सूक्ष्म शरीरोंसे ओषधियोंमें रह ॥ ३ ॥

[१३८] (अजः भागः तं तपसा तपस्व) जन्मरहित जो अंश है, उसे तू अपने तेजसे तप्त कर; (ते शोचिः तं तपतु) तुम्हारा तेज उसे तप्त करे; (ते अर्चिः तं) तुम्हारी ज्वाला उसे तप्त करे; हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (याः ते शिवाः तन्वः) जो तुम्हारी मंगलप्रदायी मूर्तियां हैं, (ताभिः एनं सुकृतां लोकं वह) उनसे इसको पुण्यवान् लोगोंके लोकमें ले जाओ ॥ ४ ॥

[१३९] हे (अग्ने) अग्नि ! (यः ते आहुतः स्वधाभिः चरति) जो तेरा आहुतिस्वरूप होकर स्वधासे युक्त हविका भोजन करता है, उसे तू (पुनः पितृभ्यः अव सृज) फिर पितरोंके लिये उत्पन्न कर। हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्नि ! (शेषः वसानः आयुः उपवेतु) इसका जो भाग अवशिष्ट है वह प्राण धारण करके उठ जाय; वह (तन्वा सं गच्छताम्) सदा दृढ शरीर प्राप्त करे ॥ ५ ॥

[१४०] हे मृत मनुष्य ! (यत् ते कृष्णः शकुनः आतुतोदः) तुम्हारे शरीरके अंशको काकने बहुत पीडा पहुंचायी होगी, (पिपीलः सर्पः उत वा श्वापदः) अथवा कीडा, मकोडा, सांप, वा हिंस्र पशुने उसको व्यथित किया होगा, तो (तत् अग्निः विश्वात् अगदं कृणोतु) उसको सर्व भक्षक अग्नि नीरोगी-पीडा रहित करे (यः सोमः च ब्राह्मणान् आविवेश) जो औषधिविज्ञ सोम ब्राह्मणोंमें रहता है, वह भी उसे नीरोग करे ॥ ६ ॥

[१४१] हे मृत ! (अग्नेः वर्म गोभिः परि व्ययस्व) तुम अग्निका कवच जो वेदी है उसे गोचर्मसे आच्छादित करो; (पीवसा मेदसा च सं प्र ऊर्णुष्व) तुम अपने मेद और मांससे आच्छादित होओ। जिससे (धृष्णुः जर्हृषाणः दधृक् हरसा विधक्ष्यन्) अपने तेजसे धृष्टहृष्ट अग्नि, बलपूर्वक सबको जलानेवाला (त्वा नेत् पर्यङ्खयति) तुझे घेर न ले ॥ ७ ॥

[१४२] हे (अग्ने) अग्निदेव ! (इमं चमसं मा विजिह्वरः) इस चमसपात्रको तू विचलित न कर; (उत देवानां सोम्यानां प्रियः) यह देव और पितरोंको प्रिय है। (यः चमसः एषः देवपानः) यह जो चमस है वह देवोंके पान करनेके लियेही है; (तस्मिन् देवाः अमृताः मादयन्ते) उससे समस्त अमर देव और पितर आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ९
यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृह मिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे १० [२१]

यो अग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ११
उशन्तस्त्वा नि धीम ह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे १२ (१४६)

यं त्वमग्ने समदह स्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा १३
शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या३ सु सं गम इमं स्व१ग्निं हर्षय १४ [२२] (१४८)

---

[१४३] मैं (क्रव्यादं अग्निं दूरं प्र हिणोमि) माँस खानेवाले अग्निको दूर हटाता हूं; (रिप्रवाहः यमराज्ञः गच्छतु) पापवाहक अग्नि यमराजाके पास जांय। (इह एव अयं इतरः प्रजानन् जातवेदः) यहीं यह एक दूसरा सर्वप्रसिद्ध सर्वज्ञ अग्नि है, वह (देवेभ्यः हव्यं वहतु) देवोंके पास हवि ले जाय ॥ ९ ॥

[१४४] (यः क्रव्यात् अग्निः इमं वः गृहं प्रविवेश) जो मांसभक्षक अग्नि इस तुम्हारे घरमें घुसा है, उसे (पितृयज्ञाय इतरं जातवेदसं पश्यन्) पितृ यज्ञके लिये यह दूसरा अग्नि है, इसलिये (तं हरामि) मैं उसको दूर करता हूं। (सः परमे सधस्थे देवं घर्मं इन्वात्) वह परम श्रेष्ठ स्थानमें स्थित अग्नि तेजस्वी यज्ञको प्राप्त करे ॥ १० ॥

[१४५] (यः क्रव्यवाहनः ऋतावृधः अग्निः पितॄन् यक्षत्) जो कव्यवाहक और यज्ञकी उन्नति करनेवाला अग्नि पितरोंका आदर करता है, वह (देवेभ्यः च पितृभ्यः हव्यानि प्र आ वोचति) देवों और पितरोंके लिये हविर्द्रव्योंको ले जाता है ॥ ११ ॥

[१४६] हे अग्नि ! (उशन्तः त्वा निधीमहि) फलोंकी इच्छावाले हम तुझे यत्नपूर्वक स्थापित करते हैं और (उशन्तः समिधीमहि) तुझे प्रदीप्त करते हैं। (उशन् उशतः पितॄन्) यज्ञाभिलाषी स्वेच्छासे आनेवाले देवों और पितरोंके पास (हविषे अत्तवे आ वह) भक्षणके लिये हविर्द्रव्य ले आ ॥ १२ ॥

[१४७] हे (अग्ने) अग्नि देव ! (त्वं यं सं अदहः) तुमने जिस भूभागको जलाया है, (तं उ पुनः निर्वापय) उसकोही फिर शान्त कर। (अत्र कियाम्बु पाकदूर्वा व्यल्कशा रोहतु) यहां जलसे परिपूर्ण पुष्करिणी और विविध शाखाओंवाली दूब उत्पन्न होवो ॥ १३ ॥

[१४८] हे (शीतिके) शान्त स्वभाववाली ! हे (शीतिकावति) शीतवत् शान्तिदायक ओषधियोंसे युक्त ! हे (ह्लादिके ह्लादिकावति) आह्लादक पृथिवी ! तुम आह्लाद देनेवाली हो। तू (मण्डूक्या आ सु सं गमः) बहुत मण्डूकिओंसे युक्त हो– और (इमं अग्निं सु हर्षय) इस अग्निको अत्यंत संतुष्ट कर ॥ १४ ॥

(१७) [द्वितीयोऽनुवाकः ॥२॥ सू० १७-२९]

१४ देवश्रवा यामायनः । १-२ सरण्यूः,३-६ पूषा, ७-९ सरस्वती, १०-१४ आपः,
११-१३ सोमो वा । त्रिष्टुप्, १३-१४ अनुष्टुप्, १३ पुरस्ताद्बृहती वा ।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोती—तीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश १
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत् तदासी—दजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः २
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वा—ननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यो ऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ३
आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययु—स्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ४
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो ऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ५ [२३]

---

[१७]

[१४९] (त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति) त्वष्टा देव अपनी कन्याका विवाह करनेवाला है, इसलिये (इदं विश्वं भुवनं समेति) यह सारा जगत् आ गया है । जिस समय (यमस्य माता पर्युह्यमाना) विवस्वान्‌के साथ यमकी माताका विवाह हुआ, उस समय (विवस्वतः महः जाया ननाश) विवस्वान्‌की महान् पत्नी अदृष्ट हुई ॥ १ ॥

[१५०] (अमृतां मर्त्येभ्यः अपागूहन्) अमर सरण्यूको मनुष्योंके लिये देवोंने छिपाकर रखा; (विवस्वते सवर्णां कृत्वा अददुः) सरण्यूके सदृश दूसरी स्त्रीका निर्माण करके देवोंने उसे विवस्वान्‌को दिया । उस समय (सरण्यूः उत तत् आसीत् अश्विनौ अभरत्) सरण्यूने जो वहां थी उससे अश्विनोको गर्भमें धारण किया और (द्वा मिथुना अजहात्) दो जोडोंको (यम यमी) उत्पन्न किया ॥ २ ॥

[१५१] (विद्वान् भुवनस्य गोपाः अनष्टपशुः पूषा) ज्ञानी, सब जगत्‌का रक्षक और पशुयुक्त पूषादेव (त्वा इतः प्र च्यावयतु) तुझे यहांसे उत्तम लोकमें ले जाय । (सः अग्निः) वह अग्नि (त्वा एतेभ्यः पितृभ्यः सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः परि ददत्) तुझे धन-सुख आदिके दाता देवों और इन पितरोंके पास ले जायं ॥ ३ ॥

[१५२] (विश्वायुः वायुः त्वा परि पासति) सर्वगामी वायु तेरी सर्वत्र रक्षा करे; (त्वा पूषा प्रपथे पुरस्तात् पातु) उत्तममार्गमें सबके अग्रभागमें रहनेवाले पूषा तेरी रक्षा करे । (यत्र सुकृतः आसते) जहां पुण्यात्मा विराजते हैं और (यत्र ते ययुः) जिस उत्तम लोकमें वे जाते हैं; (तत्र त्वा सविता देवः दधातु) वहां सविता-सूर्यदेव तुझे स्थापित करे ॥ ४ ॥

[१५३] (पूषा इमाः सर्वाः आशाः अनु वेद) पूषा इन सब दिशाओं को जानता है; (सः अस्मान् अभयतमेन नेषत्) वह हमें निर्भय मार्गसे ले जायं । (स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरः प्रजानन् अयुच्छन् पुरः एतु) कल्याणप्रद, तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानी पूषा सदा हमारे आगे रहे ॥ ५ ॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ६
सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ७
सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वाऽनमीवा इष आ धेह्यस्मे ८
सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ९
आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि १० [२४] (१५८)
द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ११

---

[१५४] (पथाम् प्रपथे पूषा अजनिष्ट) सब मार्गोंमें श्रेष्ठ मार्गमें पूषा उत्पन्न हुआ; (दिवः प्रपथे पृथिव्याः प्रपथे) और वह स्वर्ग तथा पृथिवीके उत्तम मार्गमें उत्पन्न हुआ। (उभे प्रियतमे सधस्थे) अत्यंत प्रिय और श्रेष्ठ स्थान जो द्यावापृथिवी हैं उनमें (प्रजानन् आ च परा च अभि चरति) वह ज्ञानी पूषा अनुकूल और प्रतिकूल होकर विद्यमान रहता है ॥ ६ ॥

[१५५] (देवयन्तः सरस्वतीं हवन्ते) देवेच्छु लोग सरस्वतीका आवाहन करते हैं; (तायमाने अध्वरे सरस्वतीं) यज्ञके विस्तृत होनेपर सरस्वतीका स्मरण करते हैं। (सुकृतः सरस्वतीं अह्वयन्त) पुण्यात्मा लोग सरस्वतीको बुलाते हैं, इसलिये (सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्) सरस्वती दाताकी अभिलाषा पूरी करती है ॥ ७ ॥

[१५६] हे (सरस्वति देवि) सरस्वती देवि ! (या स्वधाभिः पितृभिः मदन्ती) तू पितरोंके साथ उत्तम अन्नसे तृप्त होकर प्रसन्न चित्तसे (सरथं ययाथ) एक रथ पर जाओ। (अस्मिन् आसद्य बर्हिषि मादयस्व) इस यज्ञमें उत्तम आसनपर बैठकर आनन्द कर; (अस्मे अनमीवाः इषः आ धेहि) हमें नीरोग और अन्नवान कर। ८ ॥

[१५७] (पितरः दक्षिणा यज्ञं अभिनक्षमाणाः यां सरस्वतीं हवन्ते) पितर लोग दक्षिण भागमें यज्ञको प्राप्त होते हुए, जिस सरस्वतीको बुलाते हैं; (अत्र सहस्रार्घं इडः भागं रायः पोषं यजमानेषु धेहि) वह तू यहां सहस्रों प्रकारसे उपयोगी अन्न भाग और प्रचुर धन हमें दे ॥ ९ ॥

[१५८] (अस्मान् आपः मातरः शुन्धयन्तु) हमें मातृस्वरूप जल पवित्र करे; (घृतप्वः नः घृतेन पुनन्तु) घृतरूप जल हमें घृत-जलसे पवित्र करे। (देवीः विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति) जलदेवी सारे पापोंको अपने स्रोतमें बहा ले जायं; (आभ्यः इत् शुचिः उत् एमि) जलमेंसे स्वच्छ और पवित्र होकर मैं ऊपर आता हूं ॥ १० ॥

[१५९] (द्रप्सः प्रथमान् द्यून् अनु) सोमरस प्राचीन लोगों और स्वर्गीय लोगोंके उद्देश्यसे (चस्कन्द) क्षरित हुआ- और (यः च पूर्वः इमं च योनिं च अनु) जो हमारा तेजरूप पूर्वज था, उसके पास भी वह गया। (सप्त होत्राः समानं योनिं अनु संचरन्तं द्रप्सं अनु जुहोमि) हम सात हवनकर्ता समान लोकोंमें विचरनेवाले उस सोमरसका हवन करते हैं ॥ ११ ॥

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ अं॒शु॒र्बा॒हुच्यु॑तो धि॒षणा॑या उ॒पस्था॑त् ।
अ॒ध्व॒र्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॑त् तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृतम् १२

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शु॒र॒वश्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा ।
अ॒यं दे॒वो बृ॒हस्प॒तिः सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से १३

पय॑स्वती॒रोष॑धय॒: पय॑स्वन्माम॒कं वच॑: ।
अ॒पां पय॑स्व॒दित् पय॒स्तेन॑ मा स॒ह शु॑न्धत १४ [२५] (१६२)

(१८)

१४ संकुसुको यामायनः । १-४ मृत्युः, ५ धाता, ६ त्वष्टा, ७-१४ पितृमेधः, १४ प्रजापतिर्वा ।
त्रिष्टुप्, ११ प्रस्तारपङ्क्तिः, १३ जगती, १४ अनुष्टुप् ।

परं॑ मृत्यो॒ अनु॒ परे॑हि॒ पन्थां॒ यस्ते॒ स्व इत॑रो दे॒वयाना॑त् ।
चक्षु॑ष्मते शृण्व॒ते ते॑ ब्रवीमि॒ मा नः॑ प्र॒जां री॑रिषो॒ मोत वी॒रान् १

मृ॒त्योः प॒दं यो॒पय॑न्तो॒ यदै॑त॒ द्राघी॑य॒ आयु॑: प्रत॒रं दधा॑नाः ।
आ॒प्याय॑मानाः प्र॒जया॒ धने॑न शु॒द्धाः पू॒ता भ॑वत यज्ञियासः २

[१६०] हे सोम ! (यः ते द्रप्सः स्कन्दति) जो तेरा तेजस्वी रस प्रवाहित होता है, (वा यः ते अंशुः अध्वर्योः बाहुच्युतुः धिषणायाः उपस्थात्) अथवा जो तेरा अंश–रस अध्वर्युके हाथसे प्रस्तर फलकके पास गिरता है, (वा यः पवित्रात् परि) अथवा जो पवित्रसे क्षरित होता है, (तं ते मनसा वषट् कृतं जुहोमि) उस रसको मनः-पूर्वक वषट्कार रूपमें तुझे अर्पण करता हूं ॥ १२ ॥

[१६१] हे सोम ! (यः ते द्रप्सः स्कन्नः) जो तेरा रस क्षरित हुआ है और (यः ते अंशुः स्रुचा अवः च यः परः) जो तेरा भाग है, जो स्रुचासे यहां तथा प्रवाहित हुआ है, (तं अयं देवः बृहस्पतिः) उस सब सोमका यह बृहस्पति देव (राधसे सं सिञ्चतु) ऐश्वर्य वृद्धिके लिये सेवन करे ॥ १३ ॥

[१६२] हे जल ! (ओषधयः पयस्वतीः) ओषधियां पुष्टियुक्त रससे परिपूर्ण हैं । (मामकं वचः पयस्वन्) मेरा वचन सारयुक्त है । (अपां पयः पयस्वत्) जलोंका सारभूत अंश भी सारयुक्त है, (तेन सह मा शुन्धत) उससे आप साथही मुझे शुद्ध करो ॥ १४ ॥

[१८]

[१६३] हे (मृत्यो) मृत्यु ! (परं पन्थां अनु इहि) तू सबसे भिन्न मार्गसे जा। (परा इहि) दूसरे मार्गका अनुसरण कर। (देवयानात् इतरः यः ते स्वः) जो मार्ग देवयानसे अलग है उस मार्गसेही तू जा; हे (चक्षुष्मते) आंखवाले और (शृण्वते) सब कुछ सुननेवाले ! (ते ब्रवीमि) तुझे नम्रतापूर्वक कहता हू; (नः प्रजां मा रीरिषः उत वीरान् मा) हमारे पुत्र–पौत्र आदिको तथा वीरोंको भी नहीं मारना ॥ १ ॥

[१६४] जो लोग (मृत्योः पदं योपयन्तः यत् ऐत) मृत्युके कारण–मार्गको छोडकर जाते हैं, वे (द्राघीयः प्रतरं आयुः दधानाः) दीर्घ और उत्तम आयुष्य धारण करनेवाले होते हैं। हे (यज्ञियासः) यज्ञशील यजमानों ! तुम (प्रजया धनेन आप्यायमानाः) प्रजा तथा धनसे युक्त होकर (शुद्धाः पूताः भवत) शुद्ध और पवित्र बनकर रहो ॥ २ ॥

+

इमे जीवा वि मृतैराववृत्र- न्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ३
इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूची- रन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ४
यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्ये- वा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ५ [२६]

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ६
इमा नारीरविधवाः सुपत्नी- राञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ७
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ८ (१७०)

---

[१६५] (इमे जीवाः) ये जीवित मनुष्य (मृतैः वि आववृत्रन्) मृत बन्धुजनोंसे घिरकर न रहें; (अद्य नः देवहुतिः भद्रा अभूत्) आज हमारा पितृ मेध यज्ञ कल्याणकर हो। अनन्तर हम (प्रतरं द्राघीयः आयुः दधानाः) उत्तम दीर्घायुष्य धारण करनेवाले होकर (नृतये हसाय प्राञ्चः अगाम) नृत्य और हास्य-आनन्दके लिये पूर्व दिशाकी ओर मुख करके आगेके मार्गपर बढें ॥ ३ ॥

[१६६] मैं (जीवेभ्यः इमं परिधिं दधामि) जीवनधारी मनुष्योंकी रक्षाके लिये, इस पाषाणकी स्थापना करता हूं; (एषां अपरः एतम् अर्थं मा गात् नु) इनमेंसे कोईभी उस मृत्युके मार्गसे न जावे। ये लोग (शतं शरदः पुरूचीः जीवन्तु) सैकडों वर्ष जीवित रहें और इसलिये (पर्वतेन मृत्युः अन्तः दधताम्) पाषाणसे मृत्युको मैं दूर करता हूं ॥ ४ ॥

[१६७] (यथा अहानि अनुपूर्वं भवन्ति) जैसे दिन एक दूसरेके बाद क्रमसे होते हैं, (यथा ऋतवः ऋतुभिः साधु यन्ति) जैसे ऋतुएं ऋतुओंके पश्चात् बीतती हैं, (यथा पूर्वम् अपरः न जहाति) जैसे पूर्व विद्यमान पितरों आदिको आधुनिक पुत्र आदि त्यागते नहीं [अर्थात् पहलेही मरते नहीं] (एव) ऐसेही हे (धातः) धारण कर्ता प्रभो ! (एषां आयूंषि कल्पय) इनका दीर्घ आयुष्य कर ॥ ५ ॥

[१६८] हे पुत्रादिको ! तुम (जरसं वृणानाः आयुः आ रोहत) वृद्ध होते हुए आयुमें अधिष्ठित रहो; (अनुपूर्वं यतमानाः यति ष्ठ) क्रमसे तुम प्रयत्नशील रहो। (इह सुजनिमा सजोषा त्वष्टा वः जीवसे दीर्घं आयुः करति) इस लोकमें कुलीन त्वष्टा तुम्हें तुम लोगोंके साथ जीनेके लिये दीर्घ आयु करे ॥ ६ ॥

[१६९] (इमाः अविधवाः सुपत्नीः नारीः आंजनेन सर्पिषाः सं विशन्तु) ये सधवा और श्रेष्ठ स्त्रियां घृताञ्जनसे सुशोभित होकर अपने गृहमें प्रवेश करें; वे (अनश्रवः अनमीवाः सुरत्नाः जनयः अग्रे योनिं आ रोहन्तु) अश्रुरहित, नीरोग और आभूषणोंसे युक्त होकर आदरपूर्वक पहले गृहमें आवें ॥ ७ ॥

[१७०] हे (नारि) स्त्रि ! तू (जीवलोकं अभि उत् ईर्ष्व) जीवित लोगोंका विचार करके यहांसे उठो; (एतं गतासुं उप शेषे) तेरा पति मरा हुआ है, इसके पास तुम व्यर्थ सोयी हुई हो; (एहि) इधर आवो। (हस्तग्राभस्य दिधिषोः तव पत्युः) पाणिग्रहण करनेवाले और पोषण करनेवाले तेरे पालक पतिके (इदं जनित्वं अभि सं बभूथ) इस सन्तानको लक्ष्य करके तू उससे मिलकर रह ॥ ८ ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ९
उप सर्प मातरं भूमिमेता-मुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् १० [२७]

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचा ऽभ्येनं भूम ऊर्णुहि ११
उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र १२
उत ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परी-मं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु १३
प्रतीचीने मामहनी-ष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाच-मश्वं रशनया यथा १४ [२८] (१७६)

---

[१७१] (अस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय) अपनी प्रजाके रक्षणके लिये उपयुक्त तेज और बल हमें प्राप्त होवे इसलिये मैं (मृतस्य हस्तात् धनुः आददानः) मृत व्यक्तिके हाथसे धनु लेकर बोलता हूं (त्वं अत्र एव तुम यहीं रहो । (इह वयं सुवीराः) इस राष्ट्रमें हम उत्तम वीर पुत्रवाले होकर (विश्वाः अभिमातीः स्पृधः जयेम) सब अभिमानी शत्रुओंको जीतें ॥ ९ ॥

[१७२] (एतां मातरं उरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवां भूमिं उप सर्प) इस मातृस्वरूपिणी, बिस्तीर्ण, सर्वव्यापिनी तथा सुखदात्री भूमाताके पास जाओ । (एषा ऊर्णम्रदाः दक्षिणावतः युवतिः) यह ऊनके समान मृदु तथा दान देनेवाले पुरुषकी युवती स्त्री जैसी सर्व स्वामिनी है; वह (त्वा निर्ऋतेः उपस्थात् पातु) तुझे पापाचरणसे बचावे ॥ १० ॥

[१७३] (पृथिवि) पृथिवी ! (उत् श्वञ्चस्व मा नि बाधथाः) इस उच्च स्थानपर ले जा; इसे पीडा नहीं देना । (अस्मै सूपायना सूपवञ्चना भव) इसका अच्छी रीतिसे स्वागत करनेवाली और सुखसे समीप रहनेवाली होओ । हे (भूमे) भूमि ! (यथा माता पुत्रं सिचा) जैसे माता पुत्रको अञ्चलसे ढकती है, वैसे ही (एनं अभि ऊर्णुहि) इसे सब ओरसे आच्छादित कर ॥ ११ ॥

[१७४] (उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु) इसे आच्छादित करनेवाली पृथिवी भली भांति अवस्थित हो; और (सहस्रं मितः उप श्रयन्ताम् हि) सहस्रों धूलियां इसके ऊपर आश्रय लें। (ते घृतश्चुतः गृहासः भवन्तु) वे घृतपूर्ण गृहके समान हों; तथा (अस्मै) इसके लिये (अत्र शरणाः सन्तु) यहां वे सुखदायक आश्रय हों ॥ १२ ॥

[१७५] (ते पृथिवीं उत् स्तभ्नामि) तेरे ऊपर भूमिको उत्तम रीतिसे योजित करता हूं; (इमं लोगं त्वत् परि निदधत् अहं मो रिषम्) तुम्हारी ऊपर मैं यह लोढा रखता हूं; मैं तुझे कष्ट नहीं देता हूं; (ते एतां स्थूणां पितरः धारयन्तु) तेरे इस टेकको पितर लोग धारण करें; (अत्र यमः ते सादना मिनोतु) यहां यम तेरे लिये निवासस्थान कर दे ॥ १४ ॥

[सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ व० १-३०] (१९)

८ मथितो यामायनः, भृगुर्वारुणिर्वा, भार्गवश्च्यवनो वा । आपः, गावो वा,
१ उत्तरार्धर्चस्य अग्नीषोमौ। अनुष्टुप्, ६ गायत्री ।

नि वर्तध्वं मानु गाताऽस्मान् त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् १
पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छ त्वग्निरेना उपाजतु २
पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन् पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ३
यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ४
य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ५

---

[१७६] (इष्वाः पर्ण इव) जैसे बाजके मूलमें 'पर्ण'– पांख लगाते हैं, (प्रतीचीने अहनि मां आ दधुः) वैसे ही सर्व पूज्य दिनमें देवोंने मुझे रखा है; (यथा रशनया अश्वं) जैसे शीघ्रगामी अश्वको रस्सीसें रोका जाता है, वैसेही (प्रतीचीं वाचं आ जग्रभ) मेरी पूज्य स्तुतिको रखो ॥ १४ ॥

[१९]

[१७७] हे गौओ ! (नि वर्तध्वं) तुम हमारे पास लौट आओ; (मा अनु गात) हमारे सिवा दूसरेके पास मत जाओ; (रेवतीः अस्मान् सिषक्त) हे धनवती गायो ! हमें दुग्ध दान करके सेवित करो; (पुनर्वसू अग्नि-सोमा) बार बार धन देनेवाले अग्नि और सोम ! तुम (अस्मे रयिं धारयतम्) हमें धन दो ॥ १ ॥

[१७८] (एना पुनः निवर्तय) तू इन गायोंको फिर लौटा; (एना पुनः नि आ कुरु) इन्हें बार बार हमारे वशमें कर ! (इन्द्रः एना नि यच्छतु) इन्द्रभी इन्हें तुम्हें सहाय्यभूत होकर तुम्हारे वशमें करें; (अग्निः एना उपाजतु) अग्नि इन्हें उपयोगिनी करें ॥ २ ॥

[१७९] (एताः पुनः निवर्तन्ताम्) ये गायें बार बार लौटकर मेरे पास आवे; (अस्मिन् गोपतौ पुष्यन्तु) गौओंके पालक मेरे अधीन होकर पुष्ट होवें । हे (अग्ने) अग्नि देव ! (इह एव नि धारय) इस स्थानमें ही इनको मेरे पास तू रख; (या रयिः इह तिष्ठतु) और जो धन है वह यहां स्थिर रूपसे रहे ॥ ३ ॥

[१८०] (यत् नियानं न्ययनं संज्ञानं) में जो गोष्ठ–गोशाला, गौओंके गृह आनेकी, गौओंके नियमसे लौट आना, (यत् परायणं आवर्तनं निवर्तनं) जो पहचानना, रहना, चरनेके लिये जाना, फिर लौटकर आना, और (यः गोपाः तं अपि हुवे) गो रक्षक गोपालकी भी इच्छा करता हूं ॥ ४ ॥

[१८१] (यः गोपाः व्ययनं उदानट्) जो गोपाल चारों ओर गायोंको खोज करता है, (यः परायणं उदानट्) जो उनके साथ जानेका अनुभव करता है, (आवर्तनं निवर्तनं अपि नि वर्तताम्) जो गायोंको घरपर ले आता है और जो गायें चराता है, वह कुशलपूर्वक घरपर लौट आवे ॥ ५ ॥

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि । जीवाभिर्भुनजामहै ६ (१८२)
परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञिया- स्ते रय्या सं सृजन्तु नः ७
आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिश- स्ताभ्य एना नि वर्तय ८ [१] (१८४)

(२०)

१० ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अग्निः । गायत्री, १ एकपदा विराट् (एष मन्त्रः शान्त्यर्थः), २ अनुष्टुप्, ९ विराट् १० त्रिष्टुप् ।

भद्रं नो अपि वातय मनः १
अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन् त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः २
यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ३
अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् । कविरभ्रं दीद्यानः ४
जुषद्धव्या मानुषस्यो- र्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे । मिन्वन् त्सद्म पुर एति ५

---

[१८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (आ निवर्त निवर्तय) तू हमारी ओर होओ; गायोंको हमारी ओर करो; (नः पुनः गाः देहि) हमें बार बार गायें दो ! (जीवाभिः भुनजामहै) उनके कारण हम उपभोग कर सकें ॥ ६ ॥

[१८३] हे (देवाः) देवो ! (वः ऊर्जा घृतेन पयसा विश्वतः परि दधे) मैं तुम लोगोंको विपुल अन्न, घृत और दुग्ध आदि पदार्थ सब प्रकारसे समर्पण करता हूं; (ये के च यज्ञियाः देवाः) जो कोई भी यज्ञार्ह देवता हैं, (ते नः रय्या सं सृजन्तु) वे हमें धनसे सम्पन्न करें ॥ ७ ॥

[१८४] हे (निवर्तन) चरवाहा ! आ वर्तय निवर्तन निवर्तन नि वर्तय) गायोंको मेरे पास ले आओ; हे गायों, तुम भी आओ । हे चरवाहा, गायोंको लौटाओ । (भूम्याः चतस्रः प्रदिशः ताभ्यः एनाः निवर्तय) भूमिकी चार दिशाएं हैं, उन सबसे उनको रोककर उनको फिर लौटाओ ॥ ८ ॥

[२०]

[१८५] हे अग्नि देव ! (नः मनः भद्रं अपि वातय) तू हमारे मनको शुभ संकल्पसे युक्त कर ॥ १ ॥

[१८६] (भुजां अग्निं यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुं ईळे) हविका भोग करनेवाले देवोंमें अतीव युवक, शासक, सबके मित्र और अपराजित अग्निकी मैं स्तुति करता हूं; (यस्य धर्मन् एनीः मातुः ऊधः यस्य स्वः सपर्यन्ति) जिसके यज्ञमें उसे प्राप्त करके सब देवता माताके स्तनके समान अपनी आहुतियोंका सेवन करते हैं ॥ २ ॥

[१८७] (यम् कृपनीडं भासाकेतुं आसा वर्धयन्ति) जिस कर्माधार और तेजस्वी अग्निको स्तोता लोग उपासना-स्तोत्रोंसे वर्द्धित करते हैं, (श्रेणिदन् भ्राजते) वह कल्याण करनेवाला अग्नि अत्यंत शोभित होता है ॥ ३ ॥

[१८८] (विशां अर्यः गातुः) अग्नि यजमानोंके लिये आश्रणीय है; (यत् दिवः अन्तान् प्र आनट्) जब प्रदीप्त होकर ऊपर उठता है, तब वह द्युलोक तक व्याप्त कर लेता है; (अभ्रं दीद्यानः कविः प्र एति) मेघोंको भी प्रकाशित करके विद्वान् अग्नि उत्तम पद पर स्थित है ॥ ४ ॥

[१८९] (मानुषस्य यज्ञे हव्या जुषत् ऊर्ध्वः तस्थौ) मनुष्यके यज्ञमें हविका सेवन करनेवाला अग्नि ज्वालायुक्त होकर ऊपर उठता है, तब वह (सद्म मिन्वन् पुरः एति) वेदीको मापता हुआ सामने आता है ॥ ५ ॥

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति । अग्निं देवा वाशीमन्तम् ६ [२]
यज्ञासाहं दुव इषे ऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः ७
नरो ये के चास्मदा विश्वेत् ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः ८
कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ९
एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आ वक्षत् सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः १० [३] (१९४)

(२१)

८ ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अग्निः । आस्तारपङ्क्तिः ।

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे १

---

[१९०] (सः हविः यज्ञः क्षेमः हि) वह अग्नि ही हवि, यज्ञ और कल्याण करनेवाला है; (अस्य गातुः श्रुष्टी इत्) यही देवोंके पास बुलानेके लिये जाता है, (देवाः वाशीमन्तम् अग्निं) देवता भी उस स्तुत्य अग्निके साथ आते हैं ॥ ६ ॥

[१९१] देवोंको बुलानेवाले (आयुम् आहुः) सबका जीवन ऐसे (अग्निं) अग्निको (अद्रेः सुनूम्) लोग पत्थरका पुत्र कहते हैं, और जो (यज्ञासाहं) यज्ञके धारक है, उस अग्निकी (पूर्वस्य शेवस्य) उत्कृष्ट सुखकी प्राप्तिके लिये (दुव इषे) सेवा करनेकी में अभिलाषा करता हूं ॥ ७ ॥

[१९२] (अस्मत् ये के च नरः) हमारे जो भी पुत्र, पौत्रादि उत्तम पुरुष हैं, (ते) वे सब (अग्निं हविषा वर्धन्तः) अग्निका हवि द्वारा संवर्धन करते हुए (विश्वा इत् वामे आ स्युः) समस्त प्रकारसे श्रेष्ठतम संपत्तिमें रहें, ऐसी हम आशा करते हैं ॥ ८ ॥

[१९३] (अस्य) अग्निका (यामः) रथ (कृष्णः श्वेतः अरुषः बभ्रः ऋजः) कृष्ण वर्ण, शुभ्रवर्ण, तेजस्वी, लाल, सरल-गन्ता (उत्) और (शोणः यशस्वान्) वेगवान् एवं यशस्वी, संपन्न है; इसको (जनिता हिरण्यरूपं जजान) प्रजापतिने सुवर्ण सदृश उज्ज्वल बनाया है ॥ ९ ॥

[१९४] (एव) इस प्रकार हे (अग्ने) तेजस्वी बलपुत्र अग्नि ! (अमृतेभिः सजोषाः) तुम अमर धनसे युक्त हो । (सुमतीः इयानः विमदः) अपनी उत्तम बुद्धिकी इच्छा करनेवाले विमद ऋषिने (ते मनीषां गिरः आ वक्षत्) तेरे लिये अपनी मनकी उत्तम भावना युक्त स्तुति- स्त्रोत्रोंको कहा है । हे (ऊर्जं नपात्) बलके देनेवाले ! तू (इषं ऊर्जं सुक्षितिं विश्वं) अन्न, बल और योग्य निवास तथा जो सब कुछ देने योग्य है, वह सब प्रदान कर ॥ १० ॥

[२१]

[१९५] (स्तीर्णबर्हिषे यज्ञाय) बिछे विस्तृत कुशवाले आसनोंसे युक्त यज्ञके लिये, (स्ववृक्तिभिः होतारं) अपनी बनायी स्तुतियोंसे देवोंको बुलानेवाले और (पावकशोचिषं शीरं) पवित्र प्रकाशमय तथा सर्वव्यापक (अग्निं न त्वा आ वृणीमहे) अग्नि, तुझको हम वरण करते हैं; (वः मदे वि) और हम आनन्दके लिये अपनाते हैं । तू (विवक्षसे) उसको धारण कर ॥ १ ॥

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे २
त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ३ (१९७)
यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ४
अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ५ [४]
त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ६
त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ७

---

[१९६] (अश्वराधसः स्वाभुवः ते त्वा शुम्भन्ति) तेजस्वी और धनसम्पन्न वे यजमान तुझे सुशोभित करते हैं। हे (अग्ने) तेजस्वी अग्नि! (उपसेचनी ऋजीतिः आहुतिः वि मदे त्वां वेति) क्षरणशील और सरल जानेवाली आहुति तृप्तीके लिये तुम्हारे पास जाती है; तू (विवक्षसे) उसे धारण करता है और बढता है ॥ २ ॥

[१९७] जैसे (सिञ्चनीः इव) जल सींचन करके पृथिवीकी सेवा करता है, वैसेही (धर्माणः जुहूभिः त्वे आसते) यज्ञके धारक ऋत्विक् होमपात्रोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं; (मदे) सब देवोंके आनन्दके लिये तू (कृष्णा अर्जुना रूपाणि) कृष्ण, सफेद ज्वालारूप (विश्वाः श्रियः) सब प्रकारकी शोभाको (धिषे) धारण करता है; और हे (अग्नि) अग्नि देव! (विवक्षसे) तू महान् है ॥ ३ ॥

[१९८] हे (अग्ने) तेजस्वी अग्नि! हे (सहसावन् अमर्त्य) बलशाली तथा अमर! तू (यं रयिं चित्रं मन्यसे) जिस धनको श्रेष्ठ, आश्चर्यकारक मानता है, तू (तम्) उसको (नः वाजसातये) हमारे बल और अन्नवृद्धिके लिये और (वि मदे) देवोंकी तृप्तिके लिये (यज्ञेषु आ भर) यज्ञोंमें हमारे निमित्त ले आओ! तू (विवक्षसे) महान् शक्तिशाली है ॥ ४ ॥

[१९९] (अथर्वणा अग्निः जातः) अथर्वा ऋषिने अग्निको उत्पन्न किया था; (विश्वानि काव्या विदद्) वह सब प्रकारके स्तुति-स्तोत्रोंको जानता है। वह (काम्यः विवस्वतः यमस्य दूतः भुवत्) सबके इच्छनीय होकर देवोंको बुलानेके लिये यजमानका दूत भी हो। वह (वः वि मदे) तुम्हारे आनन्द और सुखोंके लिये हो। वह (विवक्षसे) सत्यही गुणवान्, महान् और समर्थ है ॥ ५ ॥

[२००] हे (अग्ने) अग्नि देव! (यज्ञेषु अध्वरे प्रयति त्वाम् ईळते) ऋत्विक् और यजमान यज्ञ कार्योंके आरम्भ होनेपर तुम्हारी स्तुति करते हैं; और (त्वं) तू (विश्वा काम्या वसूनि वि दधासि) सब प्रकारके अभिलषित धनोंको विशेष करके धारण करता है; (वः मदे दाशुषे) तू लोगोंके आनन्द और कल्याणके लिये दानशील हो, इस लिये (विवक्षसे) तुम महान् पूज्य हो ॥ ६ ॥

[२०१] हे (अग्ने) अग्नि देव! (यज्ञेषु घृतप्रतीकं ऋत्विजं) यज्ञोंमें घृतसे प्रदीप्त, तेजस्वी तथा ऋत्विजोंके साथ होते हुए, (चारुं शुक्रं चेतिष्ठम्) सुन्दर, समर्थ और अत्यंत ज्ञानी (त्वां मनुषः वः मदे नि षेदिरे) तुझको यजमान लोग तृप्तीके लिये स्थापित करते हैं; (विवक्षसे) तुम महान् हो ॥ ७ ॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन् वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ८ [५] (२०२)

(२२)

१५ ऐन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । इन्द्रः । पुरस्ताद्बृहती; ५,७,९ अनुष्टुप्; १५ त्रिष्टुप्।

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा १

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या २

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ३

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ४

---

[२०२] हे (अग्ने) तेजस्वी अग्निदेव ! तू (बृहत्) महान् है; तू (शुक्रेण शोचिषा उरु प्रथयसे) प्रदीप्त तेजसे अत्यंत प्रसिद्ध होते हो । (अभिक्रन्दन् वृषायसे) समरके समय दर्पित वृषके समान शब्द करते हुए अत्यंत बलवान् होते हो; तू (जामिषु गर्भं दधासि) ओषधियोंमें बीज धारण करते हो; (वः वि मदे विवक्षसे) मद उत्पन्न होनेपर तुम महान् होते हो ॥ ८ ॥

[२२]

[२०३] (इन्द्रः कुह श्रुतः) इन्द्र आज कहां प्रख्यात है ? (अद्य मित्रः न कस्मिन् जने श्रूयते) आज मित्रके समान वह इन्द्र किस जनसमूहमें विख्यात होता होगा ? (यः ऋषीणां क्षये वा गुहा वा गिरा चर्कृषे) जो ऋषियोंके आश्रममें या गुहामें स्तुतियोंसे उपासित होता है वह इन्द्र आज कहां होगा ? ॥ १ ॥

[२०४] (अद्य इह इन्द्रः श्रुतः) आज इस यज्ञमें इन्द्र प्रमुख है; (वज्री ऋचीषमः अस्मे स्तवे) आज हम वज्रधर और स्तुत्य इन्द्रकी स्तुति करते हैं । (यः जनेषु मित्रः न असामि यशः आ चक्रे) जो इन्द्र लोगोंमें मित्रके समान है तथा पूर्ण रूपसे यश, कीर्ती उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[२०५] (यः महः शवसः पतिः) जो इन्द्र महान् बलका अधिपति, (असामि महः नृम्णस्य तूतुजिः) और अमर्याद महान् धनोंका दाता है; (धृष्णोः वज्रस्य भर्ता) वह शत्रुओंके नाशक वज्रका धारक है; वह (प्रियं पुत्रं इव पिता) पिता जैसे प्रिय पुत्रकी रक्षा करता है, वैसेही हमारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

[२०६] हे (वज्रिवः) वज्रधर इन्द्र ! (देवः) तुम द्युतिमान् हो; (देवस्य वातस्य धुनी विरुक्मता पथा स्यन्ता अश्वा युजानः) तुम वायु देवसे भी वेगवान् प्रेरक उचित मार्गसे जानेवाले दोनों अश्वोंको रथमें जोतकर, और (अध्वनः सृजानः स्तोषि) मार्गको उत्पन्न करता हुआ सदा स्तुत्य होते हो ॥ ४ ॥

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ५ [६]

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद् दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ६

आ न इन्द्र पृक्षसे ऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत् त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ७ (२०९)

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तु रन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ८

त्वं न इन्द्र शूर शूरै रुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ९

त्वं तान् वृत्रहत्ये चोदयो नॄन् कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् १० [७]

---

[२०७] हे इन्द्र ! (त्वं त्या चित् वातस्य ऋज्रा अश्वा) तू उन दोनों वायुके समान वेगवाले और सरल गामी अश्वोंको (त्मना वहध्यै आ अगाः) अपने सामर्थ्यसे चलाकर हमारे समक्ष जाते हो; (ययोः न देवः न मर्त्यः यन्ता) जिन दोनों अश्वोंको सञ्चालन कर सके ऐसा कोई भी देवोंमें और मनुष्योंमें नहीं है; और (न किः विदाय्यः) न कोई इनके बलको जान सके ॥ ५ ॥

[२०८] यज्ञ समाप्तिके बाद (उशनाः अध ग्मन्ता वां पृच्छते) जिस समय-इन्द्र और अग्नि अपने स्थानों को जाने लगे, उस समय भार्गव उशनाने तुमसे पूछा कि- (कदर्थाः पराकाद् दिवः ग्मः च) किस प्रयोजनसे तुम लोग इतनी दूरसे- द्युलोक और भूलोकसे- (नः मर्त्यं गृहं आ जग्मतुः) हम मनुष्योंके गृहपर आये हो ? ॥ ६ ॥

[२०९] हे (इन्द्र) इन्द्र देव ! तू (नः आ पृक्षसे) हमें सब प्रकारसे संरक्षण दो । (अस्माकं ब्रह्म उद्यतम्) हमने इस यज्ञकी सामग्री, हमारा महान् स्तवन तेरे लिये समर्पित की है । (त्वा तत् अमानुषम् अवः याचामहे) हम तुझसे उसी अमानुष -उत्तम बलकी- रक्षणकी याचना करते हैं, (यत् शुष्णं हन्) जिससे तुमने शुष्ण-राक्षसका नाश किया ॥ ७ ॥

[२१०] हे (अमित्रहन्) शत्रुनाशक इन्द्र ! जो (अकर्मा अमन्तुः अन्यव्रतः अमानुषः दस्युः नः अभि) कर्महीन, सबका अपमान करनेवाला, यज्ञादि कर्मोंसे शून्य, आसुरी वृत्तिसे परिपूर्ण दस्यु हमारी चारों ओर घेरे पडा है, (त्वं तस्य दासस्य वधः दम्भय) तू उस दस्यु जातिको दण्ड देकर विनष्ट कर ॥ ८ ॥

[२११] हे (शूर इन्द्र) पराक्रमी इन्द्र ! (त्वं नः शूरैः उत) तू हमारी रक्षा शूर मरुतोंके साथ कर; (बर्हणा त्वा ऊतासः) तुझसे रक्षित होकर हम संग्राममें तेरे बलसे शत्रु विनाशमें समर्थ होंगे । (ते पूर्तयः पुरुत्रा) तेरे इच्छा पूर्ण करनेके साधन बहुत हैं । (यथा क्षोणयः विनवन्त) तेरे भक्त स्वामीके समान तेरी अनंत विविध स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

[२१२] हे (शूर वज्रिवः) शूर वज्रधर इन्द्र ! (त्वं वृत्रहत्ये कार्पाणे तान् नॄन् चोदयः) तू वृत्र-वध- शत्रुओंका नाश-के लिये संग्राममें योद्धाओंको प्रेरित करते हो; (यदि कवीनां नक्षत्रशवसाम् विशां गुहा) जिस समय तुम विद्वान् स्तोताओंका नक्षत्रवासी देवोंके प्रति उत्तम स्तोत्र सुनते हो ॥ १० ॥

+

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ११
माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वी रस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः १२
अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्या ऽहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः १३
अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे नि शिश्नथः १४
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः १५ [८] (२१७)

(२३)

७ ऐन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । इन्द्रः । जगती, १, ७ त्रिष्टुप्, ५ अभिसारिणी ।

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं१ विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद् वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा १

---

[२१३] हे (शूर वज्रिवः इंद्र) शूर वज्रधर इंद्र ! (यत् ह सयावभिः शुष्णस्य विश्वं जातं दम्भयः) जिस निश्चयसे तुमने मरुतोंके साथ शुष्णके सारे वंशका विनाश किया है; (आक्षाणे दानाप्नसः ते ता मक्षू) युद्ध क्षेत्रमें कृपापूर्ण दानरूप कर्म करनेवाले तेरे वे कर्म अत्यंत शीघ्र ही हुए हैं ॥ ११ ॥

[२१४] हे (शूर इन्द्र) शूरवीर इन्द्र ! (अस्मे अभिष्टयः वस्वीः अकुध्र्यग् मा भूवन्) हमारी इच्छाएं और धन सम्पदाएं कभी निष्फल न हों; हे (वज्रिवः) वज्रधर ! (वयं वयं ते सुम्ने आसां स्याम) हम सब सदा तेरी रक्षामें फलद्रुप होकर सदा सुखमें रहें ॥ १२ ॥

[२१५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्मे ता ते उपस्पृशः सत्या अहिंसन्तीः सन्तु) हमारी वे अभिलाषा और स्तुतियां तेरे पास पहुंचकर सत्य और तुम्हें प्रसन्न करनेवाली होकर अहिंसक हों । हे (वज्रिवः) वज्रधर ! (यासां धेनूनां न भुजः विद्याम) जिनके फलस्वरूप गौओंके दूधके समान हम तुम्हारे प्रसादका फल भोगें ॥ १३ ॥

[२१६] (यद्) जैसे (वेद्यानां शचीभिः) विद्वान् लोगों और तेरे सम्बन्धी यज्ञ क्रियाओं द्वारा (अहस्ता अपदी क्षाः वर्धत) यह पृथिवी हस्त-पाद-शून्या होकर भी बढती है, तब (विश्वायवे परि प्रदक्षिणित्) समस्त लोगोंके कल्याणके लिये पृथिवीकी चारों ओरसे प्रदक्षिणा करके (शुष्णं नि शिश्नथः) दुष्ट शुष्ण असुरको मार दिया ॥ १४ ॥

[२१७] हे (शूर इन्द्र) पराक्रमी इन्द्र ! तू (सोमं पिब पिब) सोमका शीघ्र पान करो; हे (वसवान) धनवान् इन्द्र ! तू (वसुः सन् मा रिषण्यः) स्वयं धनी हो, इस लिये रक्षक होकर हमारी हिंसा मत कर । (उत गृणतः मघोनः त्रायस्व) परंतु स्तोता यजमानकी रक्षा कर; (नः महः रायः) हमारे विपुल धन हों और (रेवतः कृधी) तू हमे धनवान बना ॥ १५ ॥

[२३]

[२१८] (वज्रदक्षिणं विव्रतानाम् हरीणां रथ्यं इन्द्रं यजामहे) दायें हाथमें वज्र धारण करनेवाले, विविध कर्म कुशल हरितवर्ण अश्वोंको रथमें जोतनेवाले इन्द्रकी हम उपासना करते हैं । सोमपानके अनन्तर वह (श्मश्रु प्र दोधुवत्) अपने केशोंको बार बार हिलाकर (सेनाभिः राधसा वि दयमानः) विस्तृत सेनासहित और विपुल धनों-अन्न आदिको लेकर शत्रुओंका नाश करके (वि ऊर्ध्वथा भूत्) विविध प्रकारसे सर्वोपरि हुआ ॥ १ ॥

हरी न्वस्य या वने विदे वस्वि न्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवो ऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् २
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ३
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधू दिद्धूनोति वातो यथा वनम् ४
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ५ (२२२)

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजन न्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य य दा पशुं न गोपाः करामहे ६
माकिर्न एना सख्या वि यौषु स्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिव दस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ७ [९] (२२४)

---

[२१९] (या हरी नु अस्य वने वसु विदे) इन्द्रके इन दो अश्वोंने यज्ञमें (आहुतियोंके रूपमें) धन प्राप्त किया है; (मघैः मघवा इन्द्रः वृत्रहा भुवत्) उन्हींसे प्राप्त विपुल धनोंका स्वामी होकर इन्द्रने वृत्रको नष्ट किया। वह (ऋभुः वाजः ऋभुक्षाः शवः पत्यते) तेजस्वी, बलवान् और आश्रयदाता इन्द्र बल और धनका अधिपति है। मैं (दासस्य नाम चित् अव क्ष्णौमि) दस्यु जातिका-शत्रुओंका नाम तक को नष्ट कर देना चाहता हूं ॥ २ ॥

[२२०] (यदा इन्द्रः हिरण्यं वज्रं) जब इन्द्र सुवर्णमय-तेजस्वी वज्रको धारण करता है, (अस्य यं रथं हरी वहतः) इसका जो रथ हरितवर्णवाले दो अश्वोंके साथ जाता है, तब (सूरिभिः वि आ तिष्ठति) वह उसीपर विद्वानोंके साथ विविध प्रकारसे बैठता है। (मघवा सनश्रुतः वाजस्य दीर्घश्रवसः पतिः) इन्द्र दानादिसे विख्यात, बहुश्रुत और अन्न-धनादि ऐश्वर्यका अधिपति है ॥ ३ ॥

[२२१] जैसे (सो चित् नु वृष्टिः) वही उत्तम वर्षा है जो (स्वासचाँ यूथ्या) अपने पशु-समूहको सिंचती है; वैसेही (इन्द्रः हरिता श्मश्रूणि अभि प्रुष्णुते) इन्द्र हरितवर्ण सोमरसके द्वारा अपनी मूंछ भिगोता है। फिर वह (सुते सुक्षयं अव वेति) सुंदर यज्ञ गृहमें जाता है और (मधु वेति) वहां जो मधुर सोमरस रहता है, उसे पीकर (यथा वातः वनं उद् धुनोति) जैसे वायु वनको कंपाती है, वैसेही शत्रुओंको त्रस्त करता है ॥ ४ ॥

[२२२] (विवाचः मृध्रवाचः) विपरीत नाना प्रकारके वचन बोलनेवाले शत्रु लोगोंको (यः वाचा) जो इन्द्र अपने वचनसे चुप करके, (पुरु सहस्रा अशिवा जघान) अनेक सहस्र शत्रुओंका संहार करता है; और (यः पिता इव तविषीं शवः वावृधे) जो पिताके समान मनुष्योंका बल बढाता और अन्नसे वृद्धि करता है, हम (अस्य तत् तत् इत् पौंस्यं गृणीमसि) इसके ही उस उस सामर्थ्यका वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

[२२३] हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते सुदानवे) तुझे उत्तम दाता जानकर (अपूर्व्यं पुरुतमं स्तोमं) अत्यंत अनुपम, सबसे श्रेष्ठ स्तोत्र हम (विमदाः अजीजनन्) विमद वंशीय विद्वानोंने धन प्राप्तिके लिये बनाया है। (अस्य इनस्य भोजनं आ विद्म हि) उस तुझ स्वामीके ऐश्वर्यको हम जानते हैं और (पशुं न गोपाः) जैसे गोपालक पशुको अपने पास बुलाता है, वैसही हम (आ करामहे) धनप्राप्तिके लिये तुझे बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[२२४] हे (इन्द्र) इन्द्र! (तव च विमदस्य ऋषेः च) तेरे और विमद ऋषिके (एना सख्या न माकिः वि यौषुः) साथ जो मैत्रीभाव है, वह कोई न तोडे और ये कभी नष्ट न होवें। हे (देव) देव! (जामिवत् सख्या प्रमतिं विद्म हि) हम तेरे भाईके प्रति भगिनीके समान जो मित्रताके भाव हैं, उस तेरी बुद्धिको जानते हैं; (ते अस्मे शिवानि सन्तु) वे तेरे मित्र-प्रेमभाव हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥ ७ ॥